श्रीमद्रविषेणाचार्यकृतं

पद्मचरितापरनामधेयं

पद्मपुराणम्

प्रथमं पर्व

सिद्धं संपूर्णभव्यार्थं सिद्धेः कारणमुत्तमम् । प्रशस्तदर्शनज्ञानचारित्रप्रतिपादिनम् ॥१॥
सुरेन्द्रमुकुटाश्लिष्टपादपद्मांशुकेशरम् । प्रणमामि महावीरं लोकत्रितयमङ्गलम् ॥२॥
प्रथमं चावसर्पिण्यामृषभं जिनपुङ्गवम् । योगिनं सर्वविद्यानां विधातारं स्वयंभुवम् ॥३॥
अजितं विजिताशेषबाह्यशारीरशात्रवम् । शम्भवं यौ भवस्यस्मादित्यभिख्यामुपागतम् ॥४॥
अभिनन्दितनिःशेषभुवनं चाभिनन्दनम् । सुमतिं सुमतिं नाथं मतान्तरनिरासिनम् ॥५॥
उद्यदर्ककराक्रीढपद्माकरसमप्रभम् । पद्मप्रभं सुपार्श्वं च सुपार्श्वं सर्ववेदिनम् ॥६॥
शरत्सकलचन्द्राभं परं चन्द्रप्रभं प्रभुम् । पुष्पदन्तं च संफुल्लकुन्दपुष्पप्रभद्विजम् ॥७॥
शीतलं शीतलध्यानदायिनं परमेष्ठिनम् । श्रेयांसं भव्यसस्यानां श्रेयांसं धर्मदेशिनम् ॥८॥

चिदानन्द चैतन्य के गुण अनन्त उर धार ।
भाषा पद्मपुराण की भाषूँ श्रुति अनुसार ॥ —दौलतरामजी

जो स्वयं कृतकृत्य हैं, जिनके प्रसादसे भव्यजीवोंके मनोरथ पूर्ण होते हैं, जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका प्रतिपादन करनेवाले हैं, जिनके चरणकमलोंकी किरणरूपी केशर इन्द्रोंके मुकुटोंसे आश्लिष्ट हो रही है तथा जो तीनों लोकोंमें मंगलस्वरूप हैं ऐसे महावीर भगवान्को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१-२॥ जो योगी थे, समस्त विद्याओंके विधाता और स्वयम्भू थे ऐसे अवसर्पिणी कालके प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभजिनेन्द्रको नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥ जिन्होंने समस्त अन्तरंग और बहिरंग शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर ली ऐसे अजितनाथ भगवान्को तथा जिनसे शम् अर्थात् सुख प्राप्त होता है ऐसे सार्थक नामको धारण करनेवाले शम्भवनाथ भगवान्को नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥ समस्त संसारको आनन्दित करनेवाले अभिनन्दन भगवान्को एवं सम्यग्ज्ञानके धारक और अन्य मत-मतान्तरोंका निराकरण करनेवाले सुमतिनाथ जिनेन्द्रको नमस्कार करता हूँ ॥५॥ उदित होते हुए सूर्यकी किरणोंसे व्याप्त कमलोंके समूहके समान कान्तिको धारण करनेवाले पद्मप्रभ भगवान्को तथा जिनकी पसली अत्यन्त सुन्दर थीं ऐसे सर्वज्ञ सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्रको नमस्कार करता हूँ ॥ ६ ॥ जिनके शरीरकी प्रभा शरदृतुके पूर्ण चन्द्रमाके समान थी ऐसे अत्यन्त श्रेष्ठ चन्द्रप्रभ स्वामीको और जिनके दाँत फूले हुए कुन्द पुष्पके समान कान्ति के धारक थे ऐसे पुष्पदन्त भगवान्को नमस्कार करता हूँ ॥ ७ ॥ जो शीतल अर्थात् शान्तिदायक ध्यानके देनेवाले थे ऐसे शीतलनाथ जिनेन्द्रको तथा जो कल्याण रूप थे एवं भव्य-

वासुपूज्यं सतामीशं वसुपूज्यं जितद्विषम् । विमलं जन्ममूलानां मलानामतिदूरगम् ॥९॥
अनन्तं दधतं ज्ञानमनन्तं कान्तदर्शनम् । धर्मं धर्मध्रुवाधारं शान्तिं शान्तिजिताहितम् ॥१०॥
कुन्थुप्रभृतिसत्त्वानां कुन्थुं हितनिरूपितम् । अशेषक्लेशनिर्मोक्षपूर्वसौख्यारणादरम् ॥११॥
संसारस्य निहन्तारं मल्लं मल्लिं मलोज्झितम् । नमिं च प्रणताशेषं सुरासुरगुरुं विभुम् ॥१२॥
अरिष्टनेमिमभ्यूनारिष्टनेमिं महाद्युतिम् । पार्श्वं नागेन्द्रसंसक्तपरिपार्श्वं विशां पतिम् ॥१३॥
सुव्रतं सुव्रतानां च देशकं दोषदारिणम् । यस्य तीर्थे समुत्पन्नं पद्मस्य चरितं शुभम् ॥१४॥
अन्यानपि महाभागान् मुनीन् गणधरादिकान् । प्रणम्य मनसा वाचा कायेन च पुनः पुनः ॥१५॥
पद्मस्य चरितं वक्ष्ये पद्मालिङ्गितवक्षसः । प्रफुल्लपद्मवक्त्रस्य [2]पुरुपुण्यस्य धीमतः ॥१६॥
अनन्तगुणगेहस्य तस्योदारविचेष्टिनः । गदितुं चरितं शक्तः केवलं श्रुतकेवली ॥१७॥
यादृशोऽपि वदत्येव चरितं यस्य यत्नवान् । तच्चरितं क्रमायातं परमं देशदेशनात् ॥१८॥
मत्तवारणसंक्षुण्णे व्रजन्ति हरिणाः पथि । प्रविशन्ति भटा युद्धं महाभटपुरस्सराः ॥१९॥
भास्वता भासितानर्थान् सुखेनालोकते जनः । सूचीमुखविनिर्भिन्नं मणिं विशति सूत्रकम् ॥२०॥

जीवोंको धर्मका उपदेश देते थे ऐसे श्रेयांसनाथ भगवान्‌को नमस्कार करता हूँ ॥८॥ जो सज्जनोंके स्वामी थे एवं कुबेरके द्वारा पूज्य थे ऐसे वासुपूज्य भगवान्‌को और संसारके मूलकारण मिथ्यादर्शन आदि मलोंसे बहुत दूर रहनेवाले श्रीविमलनाथ भगवान्‌को नमस्कार करता हूँ ॥ ९ ॥ जो अनन्त ज्ञानको धारण करते थे तथा जिनका दर्शन अत्यन्त सुन्दर था ऐसे अनन्तनाथ जिनेन्द्रको, धर्मके स्थायी आधार धर्मनाथ स्वामीको और शान्तिके द्वारा ही शत्रुओंको जीतनेवाले शान्तिनाथ तीर्थंकरको नमस्कार करता हूँ ॥१०॥ जिन्होंने कुन्थु आदि समस्त प्राणियोंके लिए हितका निरूपण किया था ऐसे कुन्थुनाथ भगवान्‌को और समस्त दुःखोंसे मुक्ति पाकर जिन्होंने अनन्तसुख प्राप्त किया था ऐसे अरनाथ जिनेन्द्रको नमस्कार करता हूँ ॥११॥ जो संसारको नष्ट करनेके लिए अद्वितीय मल्ल थे ऐसे मलरहित मल्लिनाथ भगवान्‌को और जिन्हें समस्त लोग प्रणाम करते थे तथा सुर-असुर सभीके गुरु थे ऐसे नमिनाथ स्वामीको नमस्कार करता हूँ ॥१२॥ जो बहुत भारी अरिष्ट अर्थात् दुःखसमूहको नष्ट करनेके लिए नेमि अर्थात् चक्रधाराके समान थे साथ ही अतिशय कान्तिके धारक थे ऐसे अरिष्टनेमि नामक बाईसवें तीर्थंकरको तथा जिनके समीपमें धरणेन्द्र आकर बैठा था साथ ही जो समस्त प्रजाके स्वामी थे ऐसे पार्श्वनाथ भगवान्‌को नमस्कार करता हूँ ॥१३॥ जो उत्तम व्रतोंका उपदेश देनेवाले थे, जिन्होंने क्षुधा, तृषा आदि दोष नष्ट कर दिये थे और जिनके तीर्थमें पद्म अर्थात् कथानायक रामचन्द्रजीका शुभचरित उत्पन्न हुआ था ऐसे मुनि सुव्रतनाथ भगवान्‌को नमस्कार करता हूँ ॥१४॥ इनके सिवाय महाभाग्यशाली गणधरों आदिको लेकर अन्यान्य मुनिराजोंको मन, वचन, कायसे बार-बार प्रणाम करता हूँ ॥१५॥ इस प्रकार प्रणाम कर मैं उन रामचन्द्रजीका चरित्र कहूँगा जिनका कि वक्षःस्थल पद्मा अर्थात् लक्ष्मी अथवा पद्म नामक चिह्नसे आलिंगित था, जिनका मुख प्रफुल्लित कमलके समान था, जो विशाल पुण्यके धारक थे, बुद्धिमान् थे, अनन्त गुणोंके गृहस्वरूप थे और उदार-उत्कृष्ट चेष्टाओंके धारक थे। उनका चरित्र कहनेमें यद्यपि श्रुतकेवली ही समर्थ हैं तो भी आचार्य-परम्पराके उपदेशसे आये हुए उस उत्कृष्ट चरित्रको मेरे जैसे क्षुद्र पुरुष भी कर रहे हैं सो उसका कारण स्पष्ट ही है ॥१६-१८॥ मदोन्मत्त हाथियोंके द्वारा संचरित मार्गमें हरिण भी चले जाते हैं तथा जिनके आगे बड़े-बड़े योद्धा चल रहे हैं ऐसे साधारण योद्धा भी युद्धमें प्रवेश करते ही हैं ॥१९॥ सूर्यके द्वारा प्रकाशित पदार्थोंको साधारण

---

१. वसुना कुबेरेण पूज्यं वसुपूज्यं 'वसुर्मयूखाग्निधनाधिपेषु' इति कोषः । २. गुरुपुण्यस्य, म. पुंसः पुण्यस्य ।

बुधपरम्परिकमायातं चरितं रामगोचरम् । भक्त्या प्रणोदिता बुद्धिः प्रष्टुं मम समुद्यता ॥२१॥
विशिष्टचिन्तयायातं यच्च श्रेयः क्षणान्महत् । तेनैव रक्षिता याता चारुतां मम भारती ॥२२॥
व्यक्ताकारादिवर्णा वाग् लम्भिता या न सत्कथाम् । सा तस्य निष्फला जन्तोः पापादानाय केवलम् ॥२३॥
बुद्धिं व्रजति विज्ञानं यशश्चरति निर्मलम् । प्रयाति दुरितं दूरं महापुरुषकीर्तनात् ॥२४॥
अल्पकालमिदं जन्तोः शरीरं रोगनिर्भरम् । यशस्तु सत्कथाजन्म यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥२५॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पुरुषेणात्मवेदिना । शरीरं स्थास्नु कर्त्तव्यं महापुरुषकीर्तनम् ॥२६॥
लोकद्वयफलं तेन लब्धं भवति जन्तुना । यो विधत्ते कथां हृद्यां सज्जनानन्ददायिनीम् ॥२७॥
सत्कथाश्रवणौ यौ च श्रवणौ तौ मतौ मम । अन्यौ चिटूपकस्येव श्रवणाकारधारिणौ ॥२८॥
सच्चेष्टावर्णना वर्णा घूर्णन्ते यत्र मूर्धनि । अयं मूर्द्धाऽन्यमूर्द्धा तु नालिकेरकरङ्कवत् ॥२९॥
सत्कीर्तनसुधास्वादसक्तं च रसनं स्मृतम् । अन्यच्च दुर्वचोधारं क्षेपाणदुहितुः फलम् ॥३०॥
श्रेष्ठावोष्ठौ च तावेव यौ सुकीर्तनवर्तिनौ । न शम्बूकास्यसंभुक्तजलौकापृष्ठसंनिभौ ॥३१॥
दन्तास्त एव ये शान्तकथासंगमरञ्जिताः । शेषाः सश्लेष्मनिर्वाणद्वारबन्धाय केवलम् ॥३२॥
मुखं श्रेयःपरिप्राप्तेर्मुखं मुख्यकथारतम् । अन्यत्तु मलसंपूर्णं दन्तकीटाकुलं बिलम् ॥३३॥

मनुष्य सुखपूर्वक देख लेते हैं और सुईके अग्रभागसे बिदारे हुए मणिमें सूत अनायास ही प्रवेश कर लेता है ॥२०॥ रामचन्द्रजीका जो चरित्र विद्वानोंकी परम्परा से चला आ रहा है उसे पूछनेके लिए मेरी बुद्धि भक्तिसे प्रेरित होकर ही उद्यत हुई है ॥२१॥ विशिष्ट पुरुषोंके चिन्तवनसे तत्काल जो महान् पुण्य प्राप्त होता है उसीके द्वारा रक्षित होकर मेरी वाणी सुन्दरताको प्राप्त हुई है ॥२२॥ जिस पुरुषकी वाणीमें अकार आदि अक्षर तो व्यक्त हैं पर जो सत्पुरुषोंकी कथाको प्राप्त नहीं करायी गयी है उसकी वह वाणी निष्फल है और केवल पाप-संचयका ही कारण है ॥२३॥ महापुरुषोंका कीर्तन करनेसे विज्ञान वृद्धिको प्राप्त होता है, निर्मल यश फैलता है और पाप दूर चला जाता है ॥२४॥

जीवोंका यह शरीर रोगोंसे भरा हुआ है तथा अल्प काल तक ही ठहरनेवाला है परन्तु सत्पुरुषोंकी कथासे जो यश उत्पन्न होता है वह जबतक सूर्य, चन्द्रमा और तारे रहेंगे तबतक रहता है ॥२५॥ इसलिए आत्मज्ञानी पुरुषको सब प्रकारका प्रयत्न कर महापुरुषोंके कीर्तनसे अपना शरीर स्थायी बनाना चाहिए अर्थात् यश प्राप्त करना चाहिए ॥२६॥ जो मनुष्य सज्जनोंको आनन्द देनेवाली मनोहारिणी कथा करता है वह दोनों लोकोंका फल प्राप्त कर लेता है ॥२७॥ मनुष्यके जो कान सत्पुरुषोंकी कथाका श्रवण करते हैं मैं उन्हें ही कान मानता हूँ बाकी तो विदूषकके कानोंके समान केवल कानोंका आकार ही धारण करते हैं ॥२८॥ सत्पुरुषोंकी चेष्टाको वर्णन करनेवाले वर्ण-अक्षर जिस मस्तकमें घूमते हैं वही वास्तवमें मस्तक है बाकी तो नारियलके करंक—कड़े आवरणके समान हैं ॥२९॥ जो जिह्वा सत्पुरुषोंके कीर्तन रूपी अमृतका आस्वाद लेनेमें लीन है मैं उन्हें ही जिह्वा मानता हूँ बाकी तो दुर्वचनोंको कहनेवाली छुरीका मानो फलक ही है ॥३०॥ श्रेष्ठ ओंठ वे ही हैं जो कि सत्पुरुषोंका कीर्तन करनेमें लगे रहते हैं बाकी तो शम्बूक नामक जन्तुके मुखसे भुक्त जोंकके पृष्ठके समान ही हैं ॥३१॥ दांत वही हैं जो कि शान्त पुरुषोंकी कथाके समागमसे सदा रंजित रहते हैं—उसीमें लगे रहते हैं बाकी तो कफ निकलनेके द्वारको रोकनेवाले मानो आवरण ही हैं ॥३२॥ मुख वही है जो कल्याणकी प्राप्तिका प्रमुख कारण है और श्रेष्ठ पुरुषोंकी कथा कहनेमें सदा अनुरक्त रहता है बाकी तो मलसे भरा एवं दन्तरूपी कीड़ोंसे

---

१. असिपुत्र्याः ।

वदिता योऽथवा श्रोता श्रेयसो वचसो नरः । पुमान् स एव शेषस्तु शिल्पिकल्पितकायवत् ॥३४॥
गुणदोषसमाहारे गुणान् गृह्णन्ति साधवः । क्षीरवारिसमाहारे हंसः क्षीरमिवाखिलम् ॥३५॥
गुणदोषसमाहारे दोषान् गृह्णन्त्यसाधवः । मुक्ताफलानि संत्यज्य काका मांसमिव द्विपात् ॥३६॥
अदोषामपि [1]दोषाढ्यां पश्यन्ति रचनां खलाः । रविभूर्तिमिवोलूकास्तमालदलकालिकाम् ॥३७॥
सरो-जलागमद्वारजालकामीव दुर्जनाः । [2]धारयन्ति सदा दोषान् गुणबन्धनवर्जिताः ॥३८॥
इत्यभावमिति संचिन्त्य सज्जनस्येतरस्य च । प्रवर्तन्ते कथाबन्धे स्वार्थमुद्दिश्य साधवः ॥३९॥
सत्कथाश्रवणाद् यच्च सुखं संपद्यते नृणाम् । कृतिनां स्वार्थ[3] मुत्पन्नौ पुण्योपार्जनकारणम् ॥४०॥
[4]वर्द्धमानजिनेन्द्रोक्तः सोऽयमर्थो गणेश्वरम् । इन्द्रभूतिं परिप्राप्तः सुधर्म[5] धारणीभवम् ॥४१॥
प्रभवं क्रमतः कीर्तिं ततोऽनु(नू)त्तरवाग्मिनम् । लिखितं तस्य संप्राप्य रवेर्येणोऽयमुद्गतः ॥४२॥
स्थितिर्वंशसमुत्पत्तिः प्रस्थानं संयुगं ततः । लवणाङ्कुशसंभूतिर्भवोक्तिः परिनिर्वृतिः ॥४३॥
भवान्तरमथैर्भूरिप्रकारैश्चारुपर्वभिः । युक्ताः सप्त पुराणेऽस्मिन्नधिकारा इमे स्मृताः ॥४४॥
पद्मचेष्टितसंबन्धकारणं [6]तावदेव च । त्रैशलादिगतं वक्ष्ये सूत्रं संक्षेपि तथथा ॥४५॥
वीरस्य समवस्थानं कुबाह्यगिरिमूर्द्धनि । श्रेणिकस्य परिप्रश्नमिश्रभूतेर्महात्मनः ॥४६॥
तत्र प्रश्ने युगे यत्तामुत्पत्तिं कुलकारिणाम् । भीतीश्च जगतो दुःखकारणाकस्मिकेक्षणात् ॥४७॥

व्याप्त मानो गड्ढा ही है ॥३३॥ जो मनुष्य कल्याणकारी वचनोंको कहता है अथवा सुनता है वास्तवमें वही मनुष्य है बाकी तो शिल्पकारके द्वारा बनाये हुए मनुष्यके पुतलेके समान हैं ॥३४॥ जिस प्रकार दूध और पानीके समूहमें-से हंस समस्त दूधको ग्रहण कर लेता है उसी प्रकार सत्पुरुष गुण और दोषोंके समूहमें-से गुणोंको ही ग्रहण करते हैं ॥३५॥ और जिस प्रकार काक हाथियोंके गण्डस्थलसे मुक्ता फलोंको छोड़कर केवल मांस ही ग्रहण करते हैं उसी प्रकार दुर्जन गुण और दोषोंके समूहमें-से केवल दोषोंको ही ग्रहण करते हैं ॥३६॥ जिस प्रकार उलूक पक्षी सूर्यकी मूर्तिको तमालपत्रके समान काली-काली ही देखते हैं उसी प्रकार दुष्ट पुरुष निर्दोष रचनाको भी दोषयुक्त ही देखते हैं ॥३७॥ जिस प्रकार किसी सरोवरमें जल आनेके द्वारपर लगी हुई जाली जलको तो नहीं रोकती किन्तु कूड़ा-कर्कटको रोक लेती है उसी प्रकार दुष्ट मनुष्य गुणोंको तो नहीं रोक पाते किन्तु कूड़ा-कर्कटके समान दोषोंको ही रोककर धारण करते हैं ॥३८॥ सज्जन और दुर्जनका ऐसा स्वभाव ही है यह विचारकर सत्पुरुष स्वार्थ—आत्मप्रयोजनको लेकर ही कथाकी रचना करनेमें प्रवृत्त होते हैं ॥३९॥ उत्तम कथाके सुननेसे मनुष्योंको जो सुख उत्पन्न होता है वही बुद्धिमान् मनुष्योंका स्वार्थ—आत्मप्रयोजन कहलाता है तथा यही पुण्योपार्जनका कारण होता है ॥४०॥ श्री वर्धमान जिनेन्द्रके द्वारा कहा हुआ यह अर्थ इन्द्रभूति नामक गौतम गणधरको प्राप्त हुआ। फिर धारिणीके पुत्र सुधर्माचार्यको प्राप्त हुआ। फिर प्रभवको प्राप्त हुआ, फिर कीर्तिधर आचार्यको प्राप्त हुआ। उनके अनन्तर उत्तरवाग्मी मुनिको प्राप्त हुआ। तदनन्तर उनका लिखा प्राप्त कर यह रविषेणाचार्यका प्रयत्न प्रकट हुआ है ॥४१-४२॥ इस पुराणमें निम्नलिखित सात अधिकार हैं—(१) लोकस्थिति, (२) वंशोंकी उत्पत्ति, (३) वनके लिए प्रस्थान, (४) युद्ध, (५) लवणांकुशकी उत्पत्ति, (६) भवान्तर निरूपण और (७) रामचन्द्रजीका निर्वाण। ये सातों ही अधिकार अनेक प्रकारके सुन्दर-सुन्दर पर्वोंसे सहित हैं ॥४३-४४॥ रामचन्द्रजीकी कथाका सम्बन्ध बतलानेके लिए भगवान् महावीर स्वामीकी भी संक्षिप्त कथा कहूँगा जो इस प्रकार है।

---

१. दोषोक्तां म. । २. चारयन्ति क. । ३. स्वर्थं क. । ४. ग्रन्थान्तेऽपि १२३ तमपर्वणः १६६ तमश्लोके ग्रन्थकर्त्रा ग्रन्थानुपूर्वीमुद्दिश्य निम्नाङ्कितः श्लोको दत्तः—"निर्दिष्टं सकलैर्जनेन भुवनैः श्रीवर्द्धमानेन यत्तत्स्वं वासवभूतिना निगदितं अम्बोः प्रशिष्यस्य च । शिल्येणोत्तरवाग्मिना प्रकटितं पद्मस्य वृत्तं मुनेः श्रेयः साधुसमाधिवृद्धिकरणं सर्वोत्तमं मङ्गलम् ॥" ५. धारिणी म. । ६. तावदत्र स., म. । ७. यत्नां म. । ८. कुलकारिणीम् म. ।

ऋषभस्य समुत्पत्तिमभिषेकं नगाधिपे । उपदेशं च विविधं लोकस्यार्तिविनाशनम् ॥४८॥
आप्तव्यं केवलोत्पत्तिमैश्वर्यं विष्टपातिगम् । सर्वामराधिपायानं निर्वाणसुखसंगमम् ॥४९॥
प्रथनं बाहुबलिनो भरतेन समं महत् । समुद्भवं द्विजातीनां कुतीर्थिकगणस्य च ॥५०॥
इक्ष्वाकुप्रभृतीनां च वंशानां गुणकीर्तनम् । विद्याधरसमुत्पत्तिं विद्युद्दंष्ट्रसमुद्भवम् ॥५१॥
उपसर्गं जयन्तस्य केवलज्ञानसंपदम् । नागराजस्य संक्षोभं विद्याहरणतर्जनं[1] ॥५२॥
अजितस्यावतारं पूर्णघनसुलाभकम् । विद्याधरकुमारस्य शरणं प्रतिसंश्रयम् ॥५३॥
रक्षोनाथपरिप्राप्तिं रक्षोद्वीपसमाश्रयम् । सगरस्य समुत्पत्तिं दुःखदीक्षणनिर्वृतौ[2] ॥५४॥
अतिक्रान्तमहारक्षोजन्मनः परिकीर्तनम् । शाखामृगध्वजानां च प्रज्ञप्तिमतिविस्तरात्[3] ॥५५॥
तडित्केशस्य चरितमुदधेरमरस्य च । किष्किन्धान्ध्रखगोत्पादं श्रीमालाखेचरागमम् ॥५६॥
वधाद् विजयसिंहस्य कोपं चाशनिवेगजम् । अन्ध्रकान्तमरिप्राप्तिं पुरस्य[4] विनिवेशनम् ॥५७॥
किष्किन्धपुरविन्यासं मधुपर्वतमूर्द्धनि । सुकेशनन्दनादीनां लङ्काप्राप्तिनिरूपणम् ॥५८॥
निर्घातवधहेतुं च मालिनः संपदं पराम् । दक्षिणे विजयार्धस्य भागे च रथनूपुरे ॥५९॥
पुरे जननमिन्द्रस्य सर्वविद्याभृतां विभोः । मालिनः पञ्चतावाप्तिं जन्म वैश्रवणस्य च ॥६०॥

एक बार कुशाग्र पर्वत—विपुलाचल के शिखरपर भगवान् महावीर स्वामी समवसरण सहित आकर विराजमान हुए। जिसमें राजा श्रेणिकने जाकर इन्द्रभूति गणधरसे प्रश्न किया। उस प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने सर्वप्रथम युगोंका वर्णन किया। फिर कुलकरोंकी उत्पत्तिका वर्णन हुआ। अकस्मात् दुःखके कारण देखनेसे जगत्के जीवोंको भय उत्पन्न हुआ इसका वर्णन किया ॥४५-४७॥ भगवान् ऋषभदेवकी उत्पत्ति, सुमेरु पर्वतपर उनका अभिषेक और लोककी पीड़ाको नष्ट करनेवाला उनका विविध प्रकारका उपदेश बताया गया ॥४८॥ भगवान् ऋषभदेवने दीक्षा धारण की, उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, उनका लोकोत्तर ऐश्वर्य प्रकट हुआ, सब इन्द्रोंका आगमन हुआ और भगवान्को मोक्ष-सुखका समागम हुआ ॥४९॥ भरतके साथ बाहुबलीका बहुत भारी युद्ध हुआ, ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति और मिथ्याधर्मको फैलानेवाले कुतीर्थियोंका आविर्भाव हुआ ॥५०॥ इक्ष्वाकु आदि वंशोंकी उत्पत्ति, उनकी प्रशंसाका निरूपण, विद्याधरों की उत्पत्ति तथा उनके वंशमें विद्युद्दंष्ट्र विद्याधरके द्वारा संजयन्त मुनिको उपसर्ग हुआ। मुनिराज उपसर्ग सह केवलज्ञानी होकर निर्वाणको प्राप्त हुए। इस घटनासे धरणेन्द्रको विद्युद्दंष्ट्रके प्रति बहुत क्षोभ उत्पन्न हुआ जिससे उसने उसकी विद्याएँ छीन लीं तथा उसे बहुत भारी तर्जना दी ॥५१-५२॥ तदनन्तर श्री अजितनाथ भगवान्का जन्म, पूर्णमेघ विद्याधर और उसकी पुत्रीके सुखका वर्णन, विद्याधर कुमारका भगवान् अजितनाथकी शरणमें आना, राक्षस द्वीपके स्वामी व्यन्तर देवका आना तथा प्रसन्न होकर पूर्णमेघके लिए राक्षस द्वीपका देना, सगर चक्रवर्तीका उत्पन्न होना, पुत्रोंका मरण सुन उसके दुःखसे उन्होंने दीक्षाधारण की तथा निर्वाण प्राप्त किया ॥५३-५४॥ पूर्णमेघके वंशमें महारक्षका जन्म तथा वानरवंशी विद्याधरोंकी उत्पत्तिका विस्तारसे वर्णन ॥५५॥ विद्युत्केश विद्याधरका चरित्र, तदनन्तर उदधिविक्रम और अमरविक्रम विद्याधरका कथन, वानर-वंशियोंमें किष्किन्ध और अन्ध्रक नामक विद्याधरोंका जन्म लेना, श्रीमाला विद्याधरीका संगम होना ॥५६॥ विजयसिंहके वधसे अशनिवेगको क्रोध उत्पन्न होना, अन्ध्रकका मारा जाना और वानरवंशियोंका मधुपर्वतके शिखरपर किष्किन्धपुर नामक नगर बसाकर उसमें निवास करना। सुकेशीके पुत्र आदिको लंकाकी प्राप्ति होना ॥५७-५८॥ निर्घात विद्याधरके वधसे मालीको बहुत भारी सम्पदाका प्राप्त होना, विजयार्ध पर्वतके दक्षिणभाग सम्बन्धी रथनूपुर नगरमें समस्त विद्याधरोंके अधिपति इन्द्रनामक विद्याधरका जन्म लेना, मालीका मारा जाना और वैश्रवणका उत्पन्न होना ॥५९-६०॥ सुमालीके पुत्र रत्नश्रवाका पुष्पान्तक

१. तर्जने म.। २. निर्वृतिम् म.। ३. विस्तराम् म.। ४. पुरसुन्दरखेटनम् म.।

पुष्पान्तकसमावेशं तनयस्य सुमालिनः । कैकस्या सह संयोगं चारुस्वप्नावलोकनम् ॥६१॥
दशाननस्य प्रजनिं[1] विद्यानां समुपासनम् । अनावृतस्य संक्षोभमागमं च सुमालिनः ॥६२॥
मन्दोदर्याः परिप्राप्तिं कन्यकानां निरीक्षणम् । चेष्टितैर्भानुकर्णस्य कोपं वैश्रवणोद्भवम् ॥६३॥
यक्षराक्षससंग्रामं धनदस्य तपस्यनम् । लङ्कागमं दशास्यस्य प्रशस्त[प्रस्त]चैत्यावलोकनम् ॥६४॥
श्रीमतो हरिषेणस्य माहात्म्यं पापनाशनम् । त्रिजगद्भूषणाभिख्यं द्विरदेन्द्रविलोकनम् ॥६५॥
यमस्थानच्युतिं चार्करजः किष्किन्धसंगमम् । [3]चोरणं कैकसेर्यायाश्च स्वरालङ्कारसंश्रयम् ॥६६॥
अनुराधामहादुःखं चन्द्रोदरवियोगतः । विराधितपुरभ्रंशं सुग्रीवश्रीसमागमम् ॥६७॥
वालेः प्रव्रजनं क्षोभमष्टापदमहीभृतः । सुग्रीवस्य सुतारायां लाभं साहसगामिनः ॥६८॥
संतापं विजयार्द्धाद्रिगमनं रावणस्य च । .....॥६९॥
अनरण्यसहस्रांशुवैराग्यं यज्ञनाशनम् । मधुपूर्वभवाख्यातमुपरम्भाभिभाषणम् ॥७०॥
विद्यालाभं महेन्द्रस्य राज्यलक्ष्मीपरिक्षयम् । दशास्यमेरुगमनं पुनश्च विनिवर्तनम् ॥७१॥
अनन्तवीर्यकैवल्यं दशास्यनियमक्रियाम् । हनूमतः समुत्पत्तिं कपिकेतोर्महात्मनः ॥७२॥
अष्टापदे महेन्द्रेण प्रह्लादस्याभिभाषणम् । वायोः कोपं प्रसादं च तत्कायाप्रजनोज्झने ॥७३॥
दिगम्बरेण कथनं हनूमत्पूर्वजन्मनः । [7]सूतिं हनूरुहप्राप्तिं प्रतिसूर्येण कारिताम् ॥७४॥

नामक नगर बसाना, कैकसीके साथ उसका संयोग होना, और केकसीका शुभ स्वप्नोंका देखना ॥६१॥ रावणका उत्पन्न होना और विद्याओंका साधन करना, अनावृत नामक देवको क्षोभ होना तथा सुमालीका आगमन होना ॥६२॥ रावणको मन्दोदरीकी प्राप्ति होना, साथ ही अन्य अनेक कन्याओंका अवलोकन होना और भानुकर्णकी चेष्टाओंसे वैश्रवणका कुपित होना ॥६३॥ यक्ष और राक्षस नामक विद्याधरोंका संग्राम, वैश्रवणका तप धारण करना, रावणका लंकामें आना और श्रेष्ठ चैत्यालयोंका अवलोकन करना ॥६४॥ पापोंको नष्ट करनेवाला हरिषेण चक्रवर्तीका माहात्म्य, त्रिलोकमण्डन हाथी का अवलोकन ॥६५॥ यमनामक लोकपालको अपने स्थानसे च्युत करना तथा वानरवंशी राजा सूर्यरजको किष्किन्धापुरका संगम करना। तदनन्तर रावणकी बहन शूर्पणखाको खर-दूषण द्वारा हर ले जाना और उसीके साथ विवाह देना और खर-दूषणका पाताल लंका जाना ॥६६॥ चन्द्रोदरका युद्धमें मारा जाना और उसके वियोगसे उसकी रानी अनुराधाको बहुत दुःख उठाना, चन्द्रोदरके पुत्र विराधितका नगरसे भ्रष्ट होना तथा सुग्रीवको राज्यलक्ष्मीकी प्राप्ति होना ॥६७॥ बालिका दीक्षा लेना, रावणका कैलासपर्वतको उठाना, सुग्रीवको सुताराकी प्राप्ति होना, सुताराकी प्राप्ति न होनेसे साहसगति विद्याधरको सन्तापका होना तथा रावणका विजयार्ध पर्वतपर जाना ॥६८-६९॥ राजा अनरण्य और सहस्ररश्मिका विरक्त होना, रावणके द्वारा यज्ञका नाश हुआ उसका वर्णन, मधुके पूर्वभवोंका व्याख्यान और रावणकी पुत्री उपरम्भाका मधुके साथ अभिभाषण ॥७०॥ रावणको विद्याका लाभ होना, इन्द्रकी राज्यलक्ष्मीका क्षय होना, रावणका सुमेरु पर्वतपर जाना और वहाँसे वापस लौटना ॥७१॥ अनन्तवीर्य मुनिको केवलज्ञान उत्पन्न होना, रावणका उनके समक्ष यह नियम ग्रहण करना कि 'जो परस्त्री मुझे नहीं चाहेगी मैं उसे नहीं चाहूँगा', तदनन्तर वानरवंशी महात्मा हनुमान्‌के जन्म का वर्णन ॥७२॥ कैलास पर्वतपर अंजनाके पिता राजा महेन्द्रका पवनंजयके पिता राजा प्रह्लादसे यह भाषण होना कि हमारी पुत्रीका तुम्हारे पुत्रसे सम्बन्ध हो, पवनंजयके साथ अंजनाका विवाह, पवनंजयका कुपित होना। तदनन्तर चकवा-चकवीका वियोग देख प्रसन्न होना, अंजनाके गर्भ रहना और सासु द्वारा उसका घरसे निकाला जाना ॥७३॥ मुनिराजके द्वारा हनुमान्‌के पूर्वजन्मका कथन होना, गुफामें हनुमान्‌का जन्म होना

---

१. प्रजनं म. । २. भिख्यं म. । ३. चारणं म. । ४. कैकसेयाश्च म. । ५. चन्द्रोदय म. । ६. जन्यनाशनम् क. । ७. नियमग्रहम् म. । ८. सज्जाया ख. । ९. 'सूतिस्तनूरुहप्राप्तिं प्रतिसूर्येण कारितम्' म. ।

भूताटवीं प्रविष्टस्य वायोरिभविलोकनम्[1] । विद्याधरसमायोगमञ्जनादर्शनोत्सवम् ॥७५॥
वायुपुत्रसहायत्वं दारुणं परमं रणम् । रावणस्य महाराज्यं जैनमुत्सेधमन्तरम् ॥७६॥
रामकेशवतच्छत्रुषट्खण्डपरिचेष्टितम्[2] । दशस्यन्दनसंभूतिं कैकय्या वरसंपदम् ॥७७॥
पद्मलक्ष्मणशत्रुघ्नभरतानां समुद्भवम् । सीतोत्पत्तिं प्रभाचक्रहृतिं[3] तन्मातृशोचनम् ॥७८॥
नारदालिखितां सीतां दृष्ट्वा भ्रातुर्विमूढताम् । स्वयंवराय वृत्तान्तं चापरत्नस्य खोद्भवम् ॥७९॥
सर्वभूतशरण्यस्य दशस्यन्दनदीक्षणम् । भाचक्रान्यभवज्ञानं विदेहायाश्च दर्शनम् ॥८०॥
कैकय्या वरतो राज्यप्रापणं भरतस्य च । वैदेहीपद्मसौमित्रिगमनं दक्षिणाशया ॥८१॥
चेष्टितं वज्रकर्णस्य[4] लाभं कल्याणयोषितः । रुद्रभूतिवशीकारं बालखिल्यविमोचनम् ॥८२॥
निकामरुणग्रामे रामपुर्यां[5] निवेशनम् । संगमं वनमालाया अतिवीर्यसमुन्नतिम् ॥८३॥
प्राप्तिं च जितपद्माया: कौलदेशविभूषणम्[6] । चरितं कारणं रामचैत्यानां वंशपर्वते ॥८४॥
जटायुनियमप्राप्तिं पात्रदानफलोदयम् । महानागरथारोहं शम्बूकविनिपातनम्[7] ॥८५॥
कैकसेय्याश्च वृत्तान्तं खरदूषणविग्रहम् । सीताहरणशोकं च शोकं रामस्य दुर्धरम् ॥८६॥
विराधितस्यागमनं खरदूषणपञ्चताम् । विद्यानां रत्नजटिनश्छेदं सुग्रीवसंगमम् ॥८७॥

और अंजनाके मामा प्रतिसूर्यके द्वारा अंजना तथा हनुमान्‌को हनुरुह द्वीपमें ले जाना ॥७४॥ तदनन्तर पवनंजयका भूताटवीमें प्रवेश, वहाँ उसका हाथी देख प्रतिसूर्य विद्याधरका आगमन और अंजनाको देखनेका पवनंजयको बहुत भारी हर्ष हुआ इसका वर्णन ॥७५॥ हनुमान्‌के द्वारा रावणको सहायता-की प्राप्ति तथा वरुणके साथ रावणका भयंकर युद्ध होना। रावणके महान् राज्यका वर्णन तथा तीर्थंकरोंकी ऊँचाई और अन्तराल आदिका निरूपण ॥७६॥ बलभद्र, नारायण और उनके शत्रु प्रतिनारायण आदिकी छह खण्डोंमें होनेवाली चेष्टाओंका वर्णन, राजा दशरथकी उत्पत्ति और कैकयीको वरदान देनेका कथन ॥७७॥ राजा दशरथके राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और भरतका जन्म होना, राजा जनकके सीताकी उत्पत्ति और भामण्डलके हरणसे उसकी माताको शोक उत्पन्न होना ॥७८॥ नारदके द्वारा चित्रमें लिखी सीताको देख भाई भामण्डलको मोह उत्पन्न होना, सीताके स्वयंवर का वृत्तान्त और स्वयंवरमें धनुषरत्नका प्रकट होना ॥७९॥ सर्वभूतशरण्य नामक मुनिराजके पास राजा दशरथका दीक्षा लेना, सीताको देखकर भामण्डलको अन्य भवोंका ज्ञान होना ॥८०॥

कैकयीके वरदानके कारण भरतको राज्य मिलना और सीता, राम तथा लक्ष्मणका दक्षिण दिशाकी ओर जाना ॥८१॥ वज्रकर्णका चरित्र, लक्ष्मणको कल्याणमाला स्त्रीका लाभ होना, रुद्रभूतिको वशमें करना और बालखिल्यको छुड़ाना ॥८२॥ अरुण ग्राममें श्रीरामका आना, वहाँ देवोंके द्वारा बसायी हुई रामपुरी नगरी में रहना, लक्ष्मणका वनमालाके साथ समागम होना और अतिवीर्यकी उन्नतिका वर्णन ॥८३॥ तदनन्तर लक्ष्मणको जितपद्माकी प्राप्ति होना, कुलभूषण और देवभूषण मुनिका चरित्र, श्रीरामने वंशस्थल पर्वतपर जिनमन्दिर बनवाये उनका वर्णन ॥८४॥ जटायु पक्षीको व्रतप्राप्ति, पात्रदानके फलकी महिमा, बड़े-बड़े हाथियोंसे जुते रथपर राम-लक्ष्मण आदि का आरूढ़ होना, तथा शम्बूकका मारा जाना ॥८५॥ शूर्पणखाका वृत्तान्त, खर-दूषणके साथ श्रीरामके युद्धका वर्णन, सीताके वियोगसे रामको बहुत भारी शोकका होना ॥८६॥ विराधित नामक विद्याधरका आगमन, खरदूषणका मरण, रावणके द्वारा रत्नजटी विद्याधरकी विद्याओंका

---

१. विलोकने म. । २. परिवेष्टितम् म. । ३. दूतं (?) म. । ४. वज्रकरणस्य म. । ५. रामपुर्याभिवेशनम् म. । ६. रामं म. । ७. शङ्कविनिपातनम् म. ।

निधनं साहसगतेः सोतोदन्तं विहायसा । यानं विभीषणायानं वितीर्णं हरिपक्षयोः ॥८८॥
इन्द्रजित्कुम्भकर्णाब्दस्वरपन्नगबन्धनम् । सौमित्रशक्तिनिर्भेदविशल्याशल्यताकृतिम् ॥८९॥
रावणस्य प्रवेशं च जिनेश्वरगृहे[1] स्तुतिम् । लङ्काभिभवनं प्रातिहार्यं देवैः प्रकल्पितम् ॥९०॥
चक्रोत्पत्तिं च सौमित्रेः[2] कैकसेयस्य हिंसनम् । विलापं तस्य नारीणां कैवल्यागमनं ततः ॥९१॥
दीक्षाभिग्रहणं तेषां सीतया सह संगमम् । नारदस्य च संप्राप्तिमयोध्याया निवेशनम् ॥९२॥
पूर्वजन्मानुचरितं गजस्य भरतस्य च । तत्प्राग्रज्यं महाराज्यं सौरचक्रप्रहारिणोः[3][4] ॥९३॥
लाभं मनोरमायाश्च लक्ष्म्यालिङ्गितवक्षसः । संयुगे मरणप्राप्तिं सुमधोर्लवणस्य च ॥९४॥
मथुरायां सदेशायामुपसर्गविनाशनम् । सप्तर्षिसंश्रयात् सीतानिर्वासपरिदेवने ॥९५॥
वज्रजङ्घपरित्राणं लवणांकुशसंभवम् । अन्यराज्यपराभूतिं[5] पित्रा सह महाहवम् ॥९६॥
सर्वभूषणकैवल्यसंप्राप्तावमरागमम् । प्रातिहार्यं च वैदेह्या विभीषणभवान्तरम् ॥९७॥
तपः कृतान्तवक्त्रस्य[6] परिक्षोभं स्वयंवरे । श्रमणत्वं कुमाराणां प्रभामण्डलदुर्गतिम्[7] ॥९८॥
दीक्षां पवनपुत्रस्य नारायणपरासुताम् । रामात्मजतपःप्राप्तिं पद्मशोकं च दारुणम् ॥९९॥
पूर्वामरेन्द्रजनिताद् बोधान्निर्ग्रन्थताश्रयम् । केवलज्ञानसंप्राप्तिं निर्वाणपदसंगतिम् ॥१००॥

छेदा जाना तथा सुग्रीवका रामके साथ समागम होना ॥८७॥ सुग्रीवके निमित्त रामने साहसगतिको मारा, रत्नजटीने सीताका सब वृत्तान्त रामसे कहा, रामने आकाशमार्गसे लंकापर चढ़ाई की, विभीषण रामसे आकर मिला और राम तथा लक्ष्मणको सिंहवाहिनी गरुडवाहिनी विद्याओंकी प्राप्ति हुई ॥८८॥ इन्द्रजित्, कुम्भकर्ण और मेघनादका नागपाशसे बाँधा जाना, लक्ष्मणको शक्ति लगना और विशल्याके द्वारा शल्यरहित होना ॥८९॥ बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करनेके लिए रावणका शान्तिनाथ भगवान्‌के मन्दिरमें प्रवेश कर स्तुति करना, रामके कटकके विद्याधरकुमारोंका लंकापर आक्रमण करना, देवोंके प्रभावसे विद्याधर कुमारोंका पीछे कटकमें वापस आना ॥९०॥ लक्ष्मणको चक्ररत्नकी प्राप्ति होना, रावणका मारा जाना, उसकी स्त्रियोंका विलाप करना तथा केवलीका आगमन ॥९१॥ इन्द्रजित् आदिका दीक्षा लेना, रामका सीताके साथ समागम होना, नारदका आना और श्रीरामका अयोध्यामें वापस आकर प्रवेश करना ॥९२॥ भरत और त्रिलोकमण्डन हाथीके पूर्वभवका वर्णन, भरतका वैराग्य, राम तथा लक्ष्मणके राज्यका विस्तार ॥९३॥ जिसका वक्षःस्थल राजलक्ष्मीसे आलिंगित हो रहा था ऐसे लक्ष्मणके लिए मनोरमाकी प्राप्ति होना, युद्धमें मधु और लवणका मारा जाना ॥९४॥ अनेक देशोंके साथ मथुरा नगरीमें धरणेन्द्रके कोपसे मरीरोगका उपसर्ग और सप्तर्षियोंके प्रभावसे उसका दूर होना, सीताको घरसे निकालना तथा उसके विलापका वर्णन ॥९५॥ राजा वज्रजंघके द्वारा सीताकी रक्षा होना, लवणांकुशका जन्म लेना, बड़े होनेपर लवणांकुशके द्वारा अन्य राजाओंका पराभव होकर वज्रजंघके राज्यका विस्तार किया जाना और अन्तमें उनका अपने पिता रामचन्द्रजीके साथ युद्ध होना ॥९६॥ सर्वभूषण मुनिराजको केवलज्ञान प्राप्त होनेके उपलक्ष्यमें देवोंका आना, अग्निपरीक्षा द्वारा सीताका अपवाद दूर होना, विभीषणके भवान्तरोंका निरूपण ॥९७॥ कृतान्तवक्त्र सेनापतिका तप लेना, स्वयंवरमें राम और लक्ष्मणके पुत्रोंमें क्षोभ होना, लक्ष्मणके पुत्रोंका दीक्षा धारण करना और विद्युत्पातसे भामण्डलका दुर्मरण होना ॥९८॥ हनुमान्‌का दीक्षा लेना, लक्ष्मणका मरण होना, रामके पुत्रोंका तप धारण करना और भाईके वियोगसे रामको बहुत भारी शोकका उत्पन्न होना ॥९९॥ पूर्वभवके मित्र देवके द्वारा उत्पादित प्रतिबोधसे रामका दीक्षा लेना, केवल-

---

१. जिनशान्तिगृहं शुभम् म. । २. सौमित्रः [?] । ३. तत्प्राग्रज्यां म. । ४. प्रहारिणः म. । ५. पराभूतिः म. । ६. वक्त्रस्य म. । ७. दुर्मतिम् म. ।

एतत्सर्वं समाधाय मनः शृणुत सज्जनाः । सिद्धास्पदपरिप्राप्तेः सोपानमतिसौख्यदम् ॥१०१॥

शार्दूलविक्रीडितम्

पद्मादीन् मुनिसत्तमान् स्मृतिपथे तावन्नृणां कुर्वतां
दूरं भावमाननेन मनसा मोदं[1] परं बिभ्रताम् ।
पापं याति भिदां सहस्रगणनैः खण्डैश्चिरं सञ्चितं
निःशेषं चरितं तु चन्द्रधवलं किं शृण्वतामुच्यते ॥१०२॥
एतत्तैः[2] कृतमुत्तमं परिहृतं तैश्चेदमनस्करं
कर्मात्यन्तविवेकधिक्षणचतुराः सन्तः प्रशस्ता जनाः ।
सेवध्वं चरितं पुराणपुरुषैरासेवितं शक्तितः[3]
सन्मार्गे[4] प्रकटीकृते हि रविणा कश्चास्खदृष्टिः स्खलेत् ॥१०३॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते मूत्रविधानं नाम प्रथमं पर्व ।

□

ज्ञान प्राप्त होना और निर्वाणपदकी प्राप्ति करना ॥१००॥ हे सत्पुरुषो ! रामचन्द्रका यह चरित्र मोक्षपदरूपी मन्दिरकी प्राप्तिके लिए सीढ़ीके समान है तथा सुखदायक है इसलिए इस सब चरित्र-को तुम मन स्थिर कर सुनो ॥१०१॥

जो मनुष्य श्रीराम आदि श्रेष्ठ मुनियोंका ध्यान करते हैं और उनके प्रति अतिशय भक्ति-भावसे नम्रीभूत हृदयसे प्रमोदकी धारणा करते हैं उनका चिरसंचित पाप-कर्म हजार टूक होकर नाशको प्राप्त होता है फिर जो उनके चन्द्रमाके समान उज्ज्वल समस्त चरित्रको सुनते हैं उनका तो कहना ही क्या है ? ॥१०२॥ आचार्य रविषेण कहते हैं कि इस तरह यह चरित्र उन्हीं इन्द्रभूति गणधरके द्वारा किया हुआ है और पाप उत्पन्न करनेवाला यह अशुभ कर्म उन्हींके द्वारा नष्ट किया गया है, इसलिए हे विवेकशाली चतुर पुरुषो, प्राचीन पुरुषोंके द्वारा सेवित इस परम पवित्र चरित्रकी तुम सब शक्तिके अनुसार सेवा करो—इसका पठन-पाठन करो क्योंकि जब सूर्यके द्वारा समीचीन मार्ग प्रकट कर दिया जाता है तब ऐसा कौन भली दृष्टिका धारक होगा जो स्खलित होगा—चूककर नीचे गिरेगा ॥१०३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्यनिर्मित पद्म-चरितमें वर्णनीय
विषयोंका संक्षेपमें निरूपण करनेवाला प्रथम पर्व पूर्ण हुआ ।

□

---

१. मोक्षं म. । २. एतच्चैः म. । ३. सर्वतः म. । ४. सन्मार्गप्रकटीकृते म. ।

द्वितीयं पर्व

अथ जम्बूमति द्वीपे क्षेत्रे भरतनामनि । मगधाभिख्यया ख्यातो विषयोऽस्ति समुज्ज्वलः ॥१॥
निवासः पूर्णपुण्यानां वासवावाससंनिभः । व्यवहारैरसंकीर्णैः कृतलोकव्यवस्थितिः ॥२॥
क्षेत्राणि दूरमे यस्मिन्नुल्लाङ्गलैः स्थलाब्जमूलसंघातान् महीसारगुणानिव ॥३॥
क्षीरसेकादिवोद्भूतैर्मन्दानिलचलद्दलैः । पुण्ड्रेक्षुवाटसंतानैर्व्याप्तानन्तरभूतलः ॥४॥
अपूर्वपर्वताकारैर्निर्भरैः स्थलधामभिः । सस्यकूटैः सुषिन्यस्तैः सीमान्ता यस्य सङ्कटाः ॥५॥
उद्घाटकघटीसिक्तैर्यत्र जीरकजूटकैः । नितान्तहरितैरुर्वी जटालेव विराजते ॥६॥
उर्वराया वरीयोभिः यः शालेयैरलंकृतः । मुद्गकोशीपुटैर्यस्मिन्नुद्देशाः[1] कपिलत्विषः[2] ॥७॥
तापस्फुटितकोशीकै राजमाषैर्निरन्तराः । उद्देशा यस्य किर्मीरा निक्षेत्रियतृणोद्गमाः ॥८॥
अधिष्ठिताः[4] स्थलीपृष्ठैः[5] श्रेष्ठशोभूमधामभिः । प्रशस्यैरन्यसस्यैश्च युक्तैः[7] प्रत्यूहवर्जितैः[8] ॥९॥
महामहिषपृष्ठस्थगायद्गोपालपालितैः । कीटातिलम्पटोद्ग्रीववलाकानुगतोध्वभिः ॥१०॥
विवर्णसूत्रसंबद्धघण्टारटितहारिभिः । क्षरच्छिरजस्त्रास्रात् पीतक्षीरोदवत् पयः ॥११॥

अथानन्तर—जम्बू द्वीपके भरत क्षेत्रमें मगध नामसे प्रसिद्ध एक अत्यन्त उज्ज्वल देश है ॥ १ ॥ वह देश पूर्ण पुण्यके धारक मनुष्योंका निवासस्थान है, इन्द्रकी नगरीके समान जान पड़ता है और उदारतापूर्ण व्यवहारसे लोगोंकी सब व्यवस्था करता है ॥ २ ॥ जिस देशके खेत हलोंके अग्रभागसे विदारण किये हुए स्थल-कमलोंकी जड़ोंके समूहको इस प्रकार धारण करते हैं मानो पृथिवीके श्रेष्ठ गुणोंको ही धारण कर रहे हों ॥३॥ जो दूधके सिंचनसे ही मानो उत्पन्न हुए थे और मन्द-मन्द वायुसे जिनके पत्ते हिल रहे थे ऐसे पौड़ों और ईखोंके वनोंके समूहसे जिस देशका निकटवर्ती भूमिभाग सदा व्याप्त रहता है ॥ ४ ॥ जिस देशके समीपवर्ती प्रदेश खलिहानोंमें जुदी-जुदी लगी हुई अपूर्व पर्वतोंके समान बड़ी-बड़ी धान्यकी राशियोंसे सदा व्याप्त रहते हैं ॥ ५ ॥ जिस देशकी पृथिवी रेंहटकी घड़ियोंसे सींचे गये अत्यन्त हरे-भरे जीरों और धानोंके समूहसे ऐसी जान पड़ती है मानो उसने जटाएँ ही धारण कर रखी हों ॥ ६ ॥ जहाँकी भूमि अत्यन्त उपजाऊ है, जो धानके श्रेष्ठ खेतोंसे अलंकृत है और जिसके भू-भाग मूँग और मौठकी फलियोंसे पीले-पीले हो रहे हैं ॥ ७ ॥ गर्मीके कारण जिनकी फली चटक गयी थी ऐसे रोंसा अथवा वर्बटीके बीजोंसे वहाँके भू-भाग निरन्तर व्याप्त होकर चित्र-विचित्र दिख रहे हैं और ऐसे जान पड़ते हैं कि वहाँ तृणके अंकुर उत्पन्न ही नहीं होंगे ॥ ८ ॥ जो देश उत्तमोत्तम गेहुँओंकी उत्पत्तिके स्थानभूत खेतोंसे सहित है तथा विघ्न-रहित अन्य अनेक प्रकारके उत्तमोत्तम अनाजोंसे परिपूर्ण है ॥ ९ ॥ बड़े-बड़े भैंसोंकी पीठपर बैठे गाते हुए ग्वाले जिनकी रक्षा कर रहे हैं, शरीरके भिन्न-भिन्न भागोंमें लगे हुए कीड़ोंके लोभसे ऊपरको गरदन उठाकर चलनेवाले बगले मार्गमें जिनके पीछे लग रहे हैं, रंग-विरंगे सूत्रोंमें बँधे हुए घण्टाओंके शब्दसे जो बहुत मनोहर जान पड़ती हैं, जिनके स्तनोंसे दूध झर रहा है और उससे जो ऐसी जान पड़ती हैं मानो पहले पिये हुए क्षीरोदकको अजीर्णके भयसे छोड़ती रहती हैं, मधुर रससे सम्पन्न तथा इतने कोमल कि मुँहकी भाप मात्रसे टूट जावें ऐसे सर्वत्र व्याप्त तृणोंके द्वारा जो अत्यन्त

---

१. न्नुद्देशान् म. । २. कपिलत्विषा म. । ३. यत्र म. । ४. अधिष्ठिते म. । ५. स्थलीपृष्ठं म. । ६. अन्यशस्यैः म. । ७. युक्तप्रत्यूह म., क. । ८. गतध्वनिः म. ।

सुस्वादुरससंपन्नैर्बाष्पच्छेदैरनन्तरैः । तृणैस्तृप्तिं परिप्राप्तैर्गोधनैः सितकक्षभूः ॥१२॥
सारीकृतसमुद्देशः कृष्णसारैर्विसारिभिः । सहस्रसंख्यैर्गावीणस्वामिनो लोचनैरिव ॥१३॥
केतकीधूलिधवला यस्य देशाः समुन्नताः । गङ्गापुलिनसंकाशा[1] विभान्ति जनसेविताः[2] ॥१४॥
शाककन्दलवाढ्येन श्यामलश्रीधरः क्वचित् । वनपालकृतास्वादैर्नालिकेरैर्विराजितः ॥१५॥
कोटिभिः शुकचञ्चूनां तथा शाखामृगाननैः । संदिग्धकुसुमैर्युक्तः पृथुभिर्दाडिमीवनैः ॥१६॥
वस्स [वन] पालीकराघृष्टमातुलिङ्गीफलाम्बसा । लिप्ताः कुङ्कुमपुष्पाणां प्रकरैरुपशोभिताः ॥१७॥
फलस्वादूपयःपानसुखसंसुप्तमार्गगाः । वनदेवीप्रपाकारा द्राक्षाणां यत्र मण्डपाः ॥१८॥
विलुप्यमानैः पथिकैः पिण्डखर्जूरपादपैः । कपिभिश्च कृताच्छोटैर्मोचानां निचितः फलैः ॥१९॥
शुक्लार्जुनवनाकीर्णतटदेशैर्महोदरैः । गोकुलाकलितोदारस्वरवत्कूलधारिभिः ॥२०॥
विधुतच्छफरीनेत्रैर्विकसत्पङ्कजैरिव । हसद्भिरिव शुक्लानां पङ्कजानां कदम्बकैः ॥२१॥
तुङ्गैस्तरङ्गसंघातैर्नर्तनप्रसृतैरिव । गायद्भिरिव संसक्तैर्हंसानां मधुरस्वनैः ॥२२॥
सोमोदजनसंघातैः समासेवितसत्तटैः । सरोभिः सारसाकीर्णैर्वनरन्ध्रेषु भूषितः ॥२३॥ [कलापकम्]
संक्रीडनैर्वपुष्मद्भिरविकोष्ट्रकवर्णकैः । कृतसंबाधसर्वाशो[3] हितपालकपालितैः[4] ॥२४॥
दिवाकररथाश्वानां लोभनार्थमिवोचितैः[5] । पृष्टैः कुङ्कुमपङ्केन चलत्प्रोथपुटैर्मुखैः ॥२५॥

तृप्तिको प्राप्त थीं ऐसी गायोंके द्वारा उस देशके वन सफेद-सफेद हो रहे हैं ॥ १०-१२ ॥ जो इन्द्रके नेत्रोंके समान जान पड़ते हैं ऐसे इधर-उधर चौकड़ियाँ भरनेवाले हजारों श्याम हरिणसे उस देशके भू-भाग चित्र-विचित्र हो रहे हैं ॥१३॥ जिस देशके ऊँचे-ऊँचे प्रदेश केतकीकी धूलिसे सफेद-सफेद हो रहे हैं और ऐसे जान पड़ते हैं मानो मनुष्योंके द्वारा सेवित गंगाके पुलिन ही हों ॥१४॥ जो देश कहीं तो शाकके खेतोंसे हरी-भरी शोभाको धारण करता है और कहीं वनपालोंसे आस्वादित नारियलोंसे सुशोभित है ॥१५॥ जिनके फूल तोताओंकी चोचोंके अग्रभाग तथा वानरोंके मुखोंका संशय उत्पन्न करनेवाले हैं ऐसे अनारके बगीचोंसे वह देश युक्त है ॥१६॥ जो वनपालियों के हाथसे मर्दित बिजौराके फलोंके रससे लिप्त हैं, केशरके फूलोंके समूहसे शोभित हैं, तथा फल खाकर और पानी पीकर जिनमें पथिक जन सुखसे सो रहे हैं ऐसे दाखोंके मण्डप उस देशमें जगह-जगह इस प्रकार छाये हुए हैं मानो वनदेवीके प्याऊके स्थान ही हों ॥१७-१८॥ जिन्हें पथिक जन तोड़-तोड़कर खा रहे हैं ऐसे पिण्ड खर्जूरके वृक्षोंसे तथा वानरोंके द्वारा तोड़कर गिराये हुए केलाके फलोंसे वह देश व्याप्त है ॥१९॥ जिनके किनारे ऊँचे-ऊँचे अर्जुन वृक्षोंके वनोंसे व्याप्त हैं, जो गायोंके समूहके द्वारा किये हुए उत्कट शब्दसे युक्त कूलोंको धारण कर रहे हैं, जो उछलती हुई मछलियोंके द्वारा नेत्र खोले हुएके समान और फूले हुए सफेद कमलोंके समूहसे हँसते हुएके समान जान पड़ते हैं, ऊँची-ऊँची लहरोंके समूहसे जो ऐसे जान पड़ते हैं मानो नृत्यके लिए ही तैयार खड़े हों, उपस्थित हंसोंकी मधुर ध्वनिसे जो ऐसे जान पड़ते हैं मानो गान ही कर रहे हों, जिनके उत्तमोत्तम तटोंपर हर्षसे भरे मनुष्योंके झुण्डके झुण्ड बैठे हुए हैं और जो कमलोंसे व्याप्त हैं ऐसे सरोवरोंसे वह देश प्रत्येक वन-खण्डोंमें सुशोभित है ॥२०-२३॥ हितकारी पालक जिनकी रक्षा कर रहे हैं ऐसे खेलते हुए सुन्दर शरीर के धारक भेड़, ऊँट तथा गायोंके बछड़ोंसे उस देशकी समस्त दिशाओंमें भीड़ लगी रहती है ॥२४॥ सूर्यके रथके घोड़ोंको लुभानेके लिए ही मानो जिनके पीठके प्रदेश केशरकी पंकसे लिप्त हैं और जो चंचल अग्रभागवाले मुखोंसे वायुका स्वच्छन्दतापूर्वक इसलिए

---

१. संकाशो म. । २. जिनसेवितः म. । ३. कृताचोटैः म. । ४. कलितादार म. । ५. संसक्तः म. । संसक्तं क. । ६. सामोदजनसंघातसमासितसरित्तटैः म. । (?) ७. सर्वाशा म. । ८. पालकैः म. । ९. मित्रोचितैः म. ।

उदरस्थकिशोराणां जवायेव प्रभञ्जनम् । स्वच्छन्दमापिबन्तीनां वडवानां गणैश्चितः ॥२६॥ [युग्मम्]
चरद्भिर्हंससंघातैर्घमैर्जनगुणैरिव । रवेणाकृष्टचेतोभिरत्यन्तधवलः क्वचित् ॥२७॥
संगीतस्वनसंयुक्तैर्मयूरस्वनमिश्रितैः । यस्मिन्मुरजनिर्घोषैर्मुखरं गगनं सदा ॥२८॥
शरन्निशाकरश्वेतवृत्तैर्मुक्ताफलोपमैः । आनन्ददानचतुरैर्गुणवद्भिः प्रसाधितः[2] ॥२९॥
तर्पिताध्वगसंघातैः फलैर्वरतरूपमैः । महाकुटुम्बिभिर्नित्यं प्राप्तोऽभिगमनीयताम् ॥३०॥
सारकस्तूरिकागन्धमृगरोमभिरावृतैः । हिमवत्पादसदृशैः कृतस्थैर्यो महत्तरैः ॥३१॥
हताः कुदृष्टयो यस्मिन् जिनप्रवचनाञ्जनैः । पापकक्षं च निर्दग्धं महामुनितपोऽग्निभिः ॥३२॥
तत्रास्ति सर्वतः कान्तं नाम्ना राजगृहं पुरम् । कुसुमामोदसुभगं भुवनस्येव यौवनम् ॥३३॥
महिषीणां सहस्रैर्यैः कुङ्कुमाङ्कितविग्रहैः । धर्मान्तःपुरनिर्भासं धत्ते मानसकर्षणम् ॥३४॥
मरुद्दुद्धूतचमरैर्बालव्यजनशोभितैः । प्रान्तैरमरराजस्य च्छायां यदवलम्बते ॥३५॥

पान कर रही हैं मानो अपने उदरमें स्थित बच्चोंको गतिके वेगकी शिक्षा ही देनी चाहती हों ऐसी घोड़ियोंके समूहसे वह देश व्याप्त हो ॥२५-२६॥ जो मनुष्योंके बहुत भारी गुणोंके समूहके समान जान पड़ते हैं तथा जो अपने शब्दसे लोगोंका चित्त आकर्षित करते हैं ऐसे चलते-फिरते हंसोंके झुण्डोंसे वह देश कहीं-कहीं अत्यधिक सफेद हो रहा है ॥२७॥ संगीतके शब्दोंसे युक्त तथा मयूरोंके शब्दसे मिश्रित मृदंगोंकी मनोहर आवाजसे उस देशका आकाश सदा शब्दायमान रहता है ॥२८॥ जो शरद् ऋतुके चन्द्रमाके समान श्वेतवृत्त अर्थात् निर्मल चरित्रके धारक हैं (पक्षमें श्वेतवर्ण गोलाकार हैं), मुक्ताफलके समान हैं, तथा आनन्दके देनेमें चतुर हैं ऐसे गुणी मनुष्योंसे वह देश सदा सुशोभित रहता है ॥२९॥ जिन्होंने आहार आदि की व्यवस्थासे पथिकोंके समूहको सन्तुष्ट किया है तथा जो फलोंके द्वारा श्रेष्ठ वृक्षोंके समान जान पड़ते हैं ऐसे बड़े-बड़े गृहस्थोंके कारण उस देशमें लोगोंका सदा आवागमन होता रहता है ॥३०॥ कस्तूरी आदि सुगन्धित द्रव्य तथा भाँति-भाँतिके वस्त्रोंसे वेष्टित होनेके कारण जो हिमालयके प्रत्यन्त पर्वतों (शाखा) के समान जान पड़ते हैं ऐसे बड़े-बड़े लोग उस देशमें निवास करते हैं ॥३१॥ उस देशमें मिथ्यात्वरूपी दृष्टिके विकार जैनवचनरूपी अंजनके द्वारा दूर होते रहते हैं और पापरूपी वन महा-मुनियोंकी तपरूपी अग्निसे भस्म होता रहता है ॥३२॥

उस मगध देशमें सब ओरसे सुन्दर तथा फूलोंकी सुगन्धिसे मनोहर राजगृह नामका नगर है जो ऐसा जान पड़ता है मानो संसारका यौवन ही हो ॥३३॥ वह राजगृह नगर धर्म अर्थात् यमराजके अन्तःपुरके समान सदा मनको अपनी ओर खींचता रहता है क्योंकि जिस प्रकार यमराजका अन्तःपुर केशरसे युक्त शरीरको धारण करनेवाली हजारों महिषियों अर्थात् भैंसोंसे युक्त होता है उसी प्रकार वह राजगृह नगर भी केशरसे लिप्त शरीरको धारण करनेवाली हजारों महिषियों अर्थात् रानियोंसे सुशोभित है। भावार्थ—महिषी नाम भैंसका है और जिसका राज्याभिषेक किया गया ऐसी रानीका भी है। लोकमें यमराज महिषवाहन नामसे प्रसिद्ध हैं इसलिए उसके अन्तःपुरमें महिषोंकी स्त्रियों—महिषियोंका रहना उचित ही है और राजगृह नगरमें राजाकी रानियोंका सद्भाव युक्तियुक्त ही है ॥३४॥ उस नगरके प्रदेश जहाँ-तहाँ बालव्यजन अर्थात् छोटे-छोटे पंखोंसे सुशोभित थे और जहाँ-तहाँ उनमें मरुत अर्थात् वायुके द्वारा चमर कम्पित हो रहे थे इसलिए वह नगर इन्द्रकी शोभाको प्राप्त हो रहा था क्योंकि इन्द्रके समीपवर्ती प्रदेश भी बालव्यजनोंसे सुशोभित होते हैं और उनमें मरुत् अर्थात् देवोंके

---

१. पुरश्च म. । २. प्रसाधितं ख. । ३. भुवनस्यैव म. ।

[1]संतापमपरिप्राप्तैः कृतमीश्वरमार्गणैः । मनुजैर्यत्करोतीव त्रिपुरस्य जिगीषुताम् ॥३६॥
सुधारससमासंगपाण्डुरागारपङ्क्तिभिः । टङ्ककल्पितशीतांशुशीलाभिरिव कल्पितम् ॥३७॥
मदिरामत्तवनिताभूषणस्वनसंभृतम् । कुबेरनगरस्येव द्वितीयं संनिवेशनम् ॥३८॥
तपोवनं मुनिश्रेष्ठैर्वेश्याभिः काममन्दिरम् । लासकैर्नृत्तभवनं शत्रुभिर्यमपत्तनम् ॥३९॥
शस्त्रिभिर्वीरनिलयोऽभिलाषमणिरर्थिभिः । विद्यार्थिभिर्गुरोः सद्म वन्दिभिर्धूर्तपत्तनम् ॥४०॥
गन्धर्वनगरं गीतशास्त्रकौशलकोविदैः । विज्ञानग्रहणोद्युक्तैर्मन्दिरं विश्वकर्मणः ॥४१॥
साधूनां संगमः सद्भिर्भूमिर्लाभस्य वाणिजैः । पञ्जरं शरणप्राप्तैर्वज्रदारुविनिर्मितम् ॥४२॥
वार्तिकैरसुरच्छिद्रं विदग्धैर्विटमण्डली । परिणामो मनोज्ञस्य कर्मणो मार्गवर्तिभिः ॥४३॥
चारणैरुत्सवावासः कामुकैरप्सरःपुरम् । [3]सिद्धलोकश्च विदितं यत्सदा सुखिभिर्जनैः ॥४४॥
यत्र मातङ्गगामिन्यः शीलवत्यश्च योषितः । श्यामाश्च पद्मरागिण्यो गौर्यश्च विभवाश्रयाः ॥४५॥
चन्द्रकान्तशरीराश्च शिरीषसुकुमारिकाः । भुजङ्गानामगम्याश्च कम्बुकान्तनिवासाः ॥४६॥

द्वारा चमर कम्पित होते रहते हैं ॥ ३५ ॥ वह नगर, मानो त्रिपुर नगरको जीतना ही चाहता है क्योंकि जिस प्रकार त्रिपुर नगरके निवासी मनुष्य ईश्वरमार्गणैः अर्थात् महादेवके बाणोंके द्वारा किये हुए सन्तापको प्राप्त हैं उस प्रकार उस नगरके मनुष्य ईश्वरमार्गणैः अर्थात् धनिक-वर्गकी याचनासे प्राप्त सन्तापको प्राप्त नहीं थे—सभी सुखसे सम्पन्न हैं ॥३६॥ वह नगर चूनासे पुते सफेद महलोंकी पंक्तिसे ऐसा जान पड़ता है मानो टाँकियोंसे गढ़े चन्द्रकान्त मणियोंसे ही बनाया गया हो ॥ ३७ ॥ वह नगर मदिराके नशामें मस्त स्त्रियोंके आभूषणोंकी झनकारसे सदा भरा रहता है इसलिए ऐसा जान पड़ता है मानो कुबेरकी नगरी अर्थात् अलकापुरीका द्वितीय प्रति-बिम्ब ही हो ॥३८॥ उस नगरको श्रेष्ठ मुनियोंने तपोवन समझा था, वेश्याओंने कामका मन्दिर माना था, नृत्यकारोंने नृत्यभवन समझा था और शत्रुओंने यमराजका नगर माना था ॥ ३९ ॥ शस्त्रधारियोंने वीरोंका घर समझा था, याचकोंने चिन्तामणि, विद्यार्थियोंने गुरुका भवन और बन्दीजनोंने धूर्तोंका नगर माना था ॥४०॥ संगीत शास्त्रके पारगामी विद्वानोंने उस नगरको गन्धर्वका नगर और विज्ञानके ग्रहण करनेमें तत्पर मनुष्योंने विश्वकर्माका भवन समझा था ॥४१॥ सज्जनोंने सत्समागमका स्थान माना था, व्यापारियोंने लाभकी भूमि और शरणागत मनुष्योंने वज्रमय लकड़ीसे निर्मित-सुरक्षित पंजर समझा था ॥४२॥ समाचार प्रेषक उसे असुरोंके बिल-जैसा रहस्यपूर्ण स्थान मानते थे, चतुर जन उसे विटमण्डली—विटोंका जमघट समझते थे, और समीचीन मार्गमें चलनेवाले मनुष्य उसे किसी मनोज्ञ—उत्कृष्ट कर्मका सुफल मानते थे ॥ ४३ ॥ चारण लोग उसे उत्सवोंका निवास, कामीजन अप्सराओंका नगर और सुखीजन सिद्धोंका लोक मानते थे ॥ ४४ ॥ उस नगरकी स्त्रियाँ यद्यपि मातंगगामिनी थीं अर्थात् चाण्डालोंके साथ गमन करनेवाली थीं फिर भी शीलवती कहलाती थीं (पक्षमें हाथियोंके समान सुन्दर चालवाली थीं तथा शीलवती अर्थात् पातिव्रत्य धर्मसे सुशोभित थीं ।) श्यामा अर्थात् श्यामवर्णवाली होकर भी पद्मरागिण्यः अर्थात् पद्मराग मणि-जैसी लाल कान्तिसे सम्पन्न थीं (पक्षमें श्यामा अर्थात् नवयौवनसे युक्त होकर पद्मरागिण्यः अर्थात् कमलोंमें अनुराग रखनेवाली थीं अथवा पद्मराग मणियोंसे युक्त थीं) । साथ ही गौरी अर्थात् पार्वती होकर भी विभवाश्रया अर्थात् महादेवके आश्रयसे रहित थीं (पक्षमें गौर्यः अर्थात् गौर वर्ण होकर विभवाश्रयाः अर्थात् सम्पदाओंसे सम्पन्न थीं) ॥ ४५ ॥ उन स्त्रियोंके शरीर चन्द्रकान्त मणियोंसे निर्मित थे फिर भी वे शिरीषके समान

---

१. संतापमपरैः म. । २. चर्ण—ख. । ३. सर्वलोकश्च म. ।

महालावण्ययुक्ताश्च मधुराभाषतत्पराः । प्रसन्नोज्ज्वलवक्त्राश्च प्रमादरहिसंहिताः ॥४७॥
कलत्रस्य पृथोर्लक्ष्मीं दधतेऽथ च दुर्विधाः । मनोज्ञा नितरां मध्ये सुवृत्ताश्चायतिं गताः ॥४८॥
लोकान्तपर्वताकारं यत्र प्राकारमण्डलम् । समुद्रोदरनिर्भासपरिखाकृतवेष्टनम् ॥४९॥
आसीत्तत्र पुरे राजा श्रेणिको नाम विश्रुतः । देवेन्द्र इव विभ्राणः सर्ववर्णधरं धनुः ॥५०॥
कल्याणप्रकृतित्वेन यश्च पर्वतराजवत् । समुद्र इव मर्यादालङ्घनत्रस्तचेतसा ॥५१॥
कलानां ग्रहणे चन्द्रो लोकधृत्या धरामयः । दिवाकरः प्रतापेन कुबेरो धनसंपदा ॥५२॥
शौर्यरक्षितलोकोऽपि नयानुगतमानसः । लक्ष्म्यापि कृतसंबन्धो न गर्वग्रहदूषितः ॥५३॥
जितजेयोऽपि नो शस्त्रव्यायामेषु पराङ्मुखः । विधुरेष्वप्यसंभ्रान्तः प्रणतेष्वपि पूजकः ॥५४॥
रत्नबुद्धिरभूद् यस्य मलमुक्तेषु साधुषु । पृथिवीभेदविज्ञानं पाषाणशकलेषु तु ॥५५॥

सुकुमार थीं (पक्षमें उनके शरीर चन्द्रमाके समान कान्त—सुन्दर थे और वे शिरीषके फूलके समान कोमल शरीरवाली थीं । वे स्त्रियाँ यद्यपि भुजंगों अर्थात् सर्पोंके अगम्य थीं फिर भी उनके शरीर कंचुक अर्थात् कांचलियोंसे युक्त थे (पक्षमें भुजंगों अर्थात् विटपुरुषोंके अगम्य थीं और उनके शरीर कंचुक अर्थात् चोलियोंसे सुशोभित थे) ॥४६॥ वे स्त्रियाँ यद्यपि महालावण्य अर्थात् बहुत भारी खारापनसे युक्त थीं फिर भी मधुराभास-तत्परा अर्थात् मिष्ट भाषण करनेमें तत्पर थीं (पक्षमें महालावण्य अर्थात् बहुत भारी सौन्दर्यसे युक्त थीं और प्रिय वचन बोलनेमें तत्पर थीं) । उनके मुख प्रसन्न तथा उज्ज्वल थे और उनकी चेष्टाएँ प्रमादसे रहित थीं ॥४७॥ वे स्त्रियाँ अत्यन्त सुन्दर थीं, स्थूल नितम्बोंकी शोभा धारण करती थीं, उनका मध्यभाग अत्यन्त मनोहर था, वे सदाचारसे युक्त थीं और उत्तम भविष्यसे सम्पन्न थीं । (इस श्लोकमें भी ऊपरके श्लोकोंके समान विरोधाभास अलंकार है जो इस प्रकार घटित होता है—वहाँ की स्त्रियाँ दुर्विधा अर्थात् दरिद्र होकर भी कलत्र अर्थात् स्त्री-सम्बन्धी भारी लक्ष्मी सम्पदाको धारण करती थीं और सुवृत्त अर्थात् गोलाकार होकर भी आयति गता अर्थात् लम्बाईको प्राप्त थीं । (इस विरोधाभासका परिहार अर्थमें किया गया है)॥४८॥ उस राजगृह नगरका जो कोट था वह (मनुष्य) लोकके अन्तमें स्थित मानुषोत्तर पर्वतके समान जान पड़ता था तथा समुद्रके समान गम्भीर परिखा उसे चारों ओरसे घेरे हुई थी॥४९॥ उस राजगृह नगरमें श्रेणिक नामका प्रसिद्ध राजा रहता था जो कि इन्द्रके समान सर्ववर्णधर अर्थात् ब्राह्मणादि समस्त वर्णोंकी व्यवस्था करनेवाले (पक्षमें लाल-पीले आदि समस्त रंगोंको धारण करनेवाले) धनुषको धारण करता था ॥५०॥ वह राजा कल्याणप्रकृति था अर्थात् कल्याणकारी स्वभावको धारण करनेवाला था (पक्षमें सुवर्णमय था) इसलिए सुमेरुपर्वतके समान जान पड़ता था और उसका चित्त मर्यादाके उल्लंघनसे सदा भयभीत रहता था अतः वह समुद्रके समान प्रतीत होता था ॥५१॥ राजा श्रेणिक कलाओंके ग्रहण करनेमें चन्द्रमा था, लोकको धारण करनेमें पृथिवीरूप था, प्रतापसे सूर्य था और धन-सम्पत्तिसे कुबेर था ॥५२॥ वह अपनी शूरवीरतासे समस्त लोकोंकी रक्षा करता था फिर भी उसका मन सदा नीतिसे भरा रहता था और लक्ष्मीके साथ उसका सम्बन्ध था तो भी अहंकाररूपी ग्रहसे वह कभी दूषित नहीं होता था ॥५३॥ उसने यद्यपि जीतने योग्य शत्रुओंको जीत लिया था तो भी वह शस्त्र-विषयक व्यायामसे विमुख नहीं रहता था । वह आपत्तिके समय भी कभी व्यग्र नहीं होता था और जो मनुष्य उसके समक्ष नम्रीभूत होते थे उनका वह सम्मान करता था ॥५४॥ वह दोषरहित सज्जनोंको ही रत्न समझता था, पाषाणके टुकड़ोंको तो केवल पृथ्वीका एक विशेष परिणमन ही मानता था ॥५५॥

---

१. मधुरालाप म. । २. चतुर्विधाः म. । ३. विभ्राणः । ४. इति क. । ५. तयानु-म. । नवानु-क. । ६. रत्नभूति-म. ।

क्रियासु दानयुक्तासु महासाधनदर्शनम् । बृहत्कीटपरिज्ञानं मदोत्कटगजेषु तु ॥५६॥
सर्वस्याग्रेसरे प्रीतिर्यशस्यत्यन्तमुन्नता । जरत्तृणसमा बुद्धिर्जीविते तु विनश्वरे ॥५७॥
प्रसाधनमतिः प्रासकरोत्स्वाशासु संततम् । आत्मीयासु तु मार्गासु विबोधश्चार्यपुत्रकः ॥५८॥
गुणाधनमिते चापे प्रतिपक्षिः सहायजा । न पिण्डमात्रसंतुष्टे भृत्यवर्गेऽपचारिणि ॥५९॥
वातोऽपि नाहरत्किंचिद्यत्र रक्षति मेदिनीम् । प्राणत्यन्त न हिंसायां क्रूराः पशुगणा अपि ॥६०॥
वृषघातीनि नो यस्य चरितानि हरेरिव । वैभवं चेष्टितं दक्षवर्गतापि पिनाकिवत् ॥६१॥
गोत्रनाशकरी चेष्टा नामराधिपतेरिव । नातिदण्डग्रहप्रीतिर्दक्षिणाशाविभोरिव ॥६२॥
वरुणस्येव न द्रव्यं निखिलग्राहरक्षितम् । निःफला संनिधिप्राप्तिर्नोत्तराशापतेरिव ॥६३॥
बुद्धस्येव न निर्मुक्तमर्थवादेन दर्शनम् । न श्रीर्बहुलदोषोपघातिनी शीतगोरिव ॥६४॥
त्यागस्य नार्थिनो यस्य पर्याप्तिं समुपागताः । प्रज्ञायाश्च न शास्त्राणि कवित्वस्य न भारती ॥६५॥

जिनमें दान दिया जाता था, ऐसी क्रियाओंको—धार्मिक अनुष्ठानोंको ही वह कार्यकी सिद्धिका श्रेष्ठ साधन समझता था। मदसे उत्कट हाथियोंको तो वह दीर्घकाय कीड़ा ही मानता था ॥५६॥ सबके आगे चलनेवाले यशमें ही वह बहुत भारी प्रेम करता था। नश्वर जीवनको तो वह जीर्ण तृणके समान तुच्छ मानता था ॥५७॥ वह आर्यपुत्र कर प्रदान करनेवाली दिशाओंको ही सदा अपना अलंकार समझता था। स्त्रियोंसे तो सदा विमुख रहता था ॥५८॥ गुण अर्थात् डोरीसे झुके धनुषको ही वह अपना सहायक समझता था। भोजनसे सन्तुष्ट होनेवाले अपकारी सेवकोंके समूहको वह कभी भी सहायक नहीं मानता था ॥५९॥ उसके राज्यमें वायु भी किसीका कुछ हरण नहीं करती थी फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या थी। इसी प्रकार दुष्ट पशुओंके समूह भी हिंसामें प्रवृत्त नहीं होते थे फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या थी ॥६०॥ हरि अर्थात् विष्णुकी चेष्टाएँ तो वृषघाती अर्थात् वृषासुरको नष्ट करनेवाली थीं पर उसकी चेष्टाएँ वृषघाती अर्थात् धर्मका घात करनेवाली नहीं थीं। इसी प्रकार महादेवजीका वैभव दक्षवर्गतापि अर्थात् राजा दक्षके परिवारको सन्ताप पहुँचानेवाला था परन्तु उसका वैभव दक्षवर्गतापि अर्थात् चतुर मनुष्योंके समूहको सन्ताप पहुँचानेवाला नहीं था ॥६१॥ जिस प्रकार इन्द्रकी चेष्टा गोत्रनाशकरी अर्थात् पर्वतोंका नाश करनेवाली थी उस प्रकार उसकी चेष्टा गोत्रनाशकारी अर्थात् वंशका नाश करनेवाली नहीं थी और जिस प्रकार दक्षिण दिशाके अधिपति यमराजके अतिदण्डग्रहप्रीति अर्थात् दण्डधारण करनेमें अधिक प्रीति रहती है उस प्रकार उसके अतिदण्डग्रहप्रीति अर्थात् बहुत भारी सजा देनेमें प्रीति नहीं रहती थी ॥६२॥ जिस प्रकार वरुणका द्रव्य मगरमच्छ आदि दुष्ट जलचरोंसे रहित होता है उस प्रकार उसका द्रव्य दुष्ट मनुष्योंसे रक्षित नहीं था अर्थात् उसका सब उपभोग कर सकते थे और जिस प्रकार कुबेरकी सन्निधि अर्थात् उत्तमनिधिका पाना निष्फल है उस प्रकार उसको सन्निधि अर्थात् सज्जनरूपी निधिका पाना निष्फल नहीं था ॥६३॥ जिस प्रकार बुद्धका दर्शन अर्थात् अर्थवाद-वास्तविकवादसे रहित होता है उस प्रकार उसका दर्शन अर्थात् साक्षात्कार अर्थवाद-धनप्राप्तिसे रहित नहीं होता था और जिस प्रकार चन्द्रमाकी भी बहुलदोषोपघातिनी अर्थात् कृष्णपक्षकी रात्रिसे उपहृत—नष्ट हो जाती है उस प्रकार उसकी भी बहुलदोषोपघातिनी अर्थात् बहुत भारी दोषोंसे नष्ट होनेवाली नहीं थी ॥६४॥ याचकगण उसके त्यागगुणकी पूर्णताको प्राप्त नहीं हो सके थे अर्थात् वह जितना त्याग-दान करना चाहता था उतने याचक नहीं मिलते थे। शास्त्र उसकी बुद्धिकी पूर्णताको प्राप्त नहीं थे, अर्थात् उसकी बुद्धि बहुत भारी थी और शास्त्र अल्प थे। इसी प्रकार सरस्वती उसकी कवित्व शक्तिकी पूर्णताको प्राप्त नहीं थी

१. कराश्वासासु म.। २. विबोधाश्चन्द्रपुत्रिका म.। ३. प्रज्ञायाश्च म.।

साहसानि महिम्नो न नोत्साहस्य च चेष्टितम् । दिगाननानि नो [1]कीर्तेर्न संख्या गुणसंपदः ॥६५॥
चित्तानि नानुरागस्य जनस्याखिलभूतले । कला न कुशलत्वस्य न प्रतापस्य शत्रवः ॥६७॥
कथमस्मद्विधैस्तस्य [3]शक्यन्ते गदितुं गुणाः । यस्येन्द्रसदसि ज्ञातं सम्यग्दर्शनमुत्तमम् ॥६८॥
उद्धतेषु सदा तेन वज्रदण्डेन शत्रुषु । तपोधनसमृद्धेषु [4]नमता वेतसायितम् ॥६९॥
रक्षिता बाहुदण्डेन सकला तस्य मेदिनी । पुरस्य स्थितिमात्रं तु प्राकारपरिखादिकम् ॥७०॥
तत्पत्नी चेलनानाम्नी [5]शीलाम्बरविभूषणा । सम्यग्दर्शनसंशुद्धा श्रावकाचारवेदिनी ॥७१॥
एकदा तु पुरस्यास्य समीपं जिनसत्तमः । श्रीमान् प्राप्तो महावीरः सुरासुरनतक्रमः ॥७२॥
मातुरप्युदरे यस्य दिक्कुमारीविशोधिते । ज्ञानत्रयसमेतस्य सुखमासीत् सुरेन्द्रजम् ॥७३॥
जन्मनोऽर्वाक्पुरस्तात्च यस्य शक्रनिदेशतः । अपूरयत् पितुः सद्म धनदो रत्नवृष्टिभिः ॥७४॥
जननाभिषवे यस्य नगराजस्य मूर्द्धनि । चक्रे महोत्सवो देवैराखण्डलसमन्वितैः ॥७५॥
पादाङ्गुष्ठेन यो मेरुमनायासेन कम्पयन् । लेभे नाम महावीर इति नाकालयाधिपात् ॥७६॥
अमृतेन निषिक्तेन यस्याङ्गुष्ठेऽमरेशिना । वृत्तिरासीच्छरीरस्य बालस्याबालकर्मणः ॥७७॥

अर्थात् वह जितनी कविता कर सकता था उतनी सरस्वती नहीं थी—उतना शब्द-भण्डार नहीं था ॥६५॥ साहसपूर्ण कार्य उसकी महिमाका अन्त नहीं पा सके थे, चेष्टाएँ उसके उत्साहकी सीमा नहीं प्राप्त कर सकी थीं, दिशाओंके अन्त उसकी कीर्तिका अवसान नहीं पा सके थे और संख्या उसकी गुणरूप सम्पदाकी पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकी थी अर्थात् उसकी गुणरूपी सम्पदा संख्यासे रहित थी—अपरिमित थी ॥६६॥ समस्त पृथिवीतलपर मनुष्योंके चित्त उसके अनुरागकी सीमा नहीं पा सके थे, कला चतुराई उसकी कुशलताकी अवधि नहीं प्राप्त कर सकी थीं और शत्रु उसके प्रताप-तेजकी पूर्णता प्राप्त नहीं कर सके थे ॥६७॥ इन्द्रकी सभामें जिसके उत्तम सम्यग्दर्शनकी चर्चा होती थी उस राजा श्रेणिकके गुण हमारे जैसे तुच्छ शक्तिके धारक पुरुषोंके द्वारा कैसे कहे जा सकते हैं ॥६८॥ वह राजा, उद्दण्ड शत्रुओंपर तो वज्रदण्डके समान कठोर व्यवहार करता था और तपरूपी धनसे समृद्ध गुणी मनुष्योंको नमस्कार करता हुआ उनके साथ बेंतके समान आचरण करता था ॥६९॥ उसने अपने भुजदण्डसे ही समस्त पृथिवीकी रक्षा की थी—नगरके चारों ओर जो कोट तथा परिखा आदिक वस्तुएँ थीं वह केवल शोभाके लिए ही थीं ॥७०॥ राजा श्रेणिककी पत्नीका नाम चेलना था। वह शीलरूपी वस्त्राभूषणोंसे सहित थी। सम्यग्दर्शनसे शुद्ध थी तथा श्रावकाचारको जाननेवाली थी ॥७१॥ किसी एक समय, अनन्त चतुष्टयरूपी लक्ष्मीसे सम्पन्न तथा सुर और असुर जिनके चरणोंको नमस्कार करते थे ऐसे महावीर जिनेन्द्र उस राजगृह नगरके समीप आये ॥७२॥ वे महावीर जिनेन्द्र, जो कि दिक्-कुमारियोंके द्वारा शुद्ध किये हुए माताके उदरमें भी मति, श्रुत तथा अवधि इन तीन ज्ञानोंसे सहित थे तथा जिन्हें उस गर्भवासके समय भी इन्द्रके समान सुख प्राप्त था ॥७३॥ जिनके जन्म लेनेके पहले और पीछे भी इन्द्रके आदेशसे कुबेरने उनके पिताका घर रत्नोंकी वृष्टिसे भर दिया था ॥७४॥ जिनके जन्माभिषेकके समय देवोंने इन्द्रोंके साथ मिलकर सुमेरु पर्वतके शिखरपर बहुत भारी उत्सव किया था ॥७५॥ जिन्होंने अपने पैरके अँगूठोंसे अनायास ही सुमेरु पर्वतको कम्पित कर इन्द्रसे 'महावीर' ऐसा नाम प्राप्त किया था ॥७६॥ बालक होनेपर भी अबालकोचित कार्य करनेवाले जिन महावीर जिनेन्द्रके शरीरकी वृत्ति इन्द्रके द्वारा अँगूठेमें सींचे हुए अमृतसे होती

---

१. कीर्ति -म. । २. शत्रवः म. । ३. -मस्मद्विधैस्तस्य म. । ४. न मता चेतसायति (?) म. । ५. एष श्लोकः 'क.' पुस्तके नास्ति ।

[1]सुत्रामप्रहितैर्यस्य कान्तैः सुरकुमारकैः । कुमारचेष्टितैश्चारुविनीतैरुपसेवितम् ॥७८॥
आनन्दः परमां वृद्धिं येन सार्धमुपागतः । पित्रोर्बन्धुसमूहस्य त्रयस्य भुवनस्य च ॥७९॥
यत्र जाते पितुः सर्वे नृपाश्चिरविरोधिनः । महाप्रभावसंपन्ना जाता प्रणतमस्तकाः ॥८०॥
रथैर्मत्तगजेन्द्रैश्च वायुवेगैश्च वाजिभिः । प्राभृतद्रव्यसंयुक्तैः क्रमेलककुलैस्तथा ॥८१॥
[2]उत्सृष्टचामरच्छत्रवाहनादिपरिच्छदैः । काङ्क्षद्भिः प्रतिसामन्तै राजेन्द्रालोकनोत्सवम् ॥८२॥
नानादेशसमायातैर्महत्तरगणैस्तथा । पितुर्यस्यानुभावेन क्षुभ्रोम भवनाजिरम् ॥८३॥
अल्पकर्मकलङ्कत्वाद्यस्य भोगेषु हारिषु । चित्तं न सङ्गमायातं[4] पयःस्विव सरोरुहम् ॥८४॥
विद्युद्विलसिताकारां ज्ञात्वा यः सर्वसंपदम् । प्रव्रव्राज स्वयंबुद्धः कृतलौकान्तिकागमः ॥८५॥
सम्यग्दर्शनसंबोधचारित्रत्रितयं प्रभुः । यः समाराध्य चिच्छेद घातिकर्मचतुष्टयम् ॥८६॥
संप्राप्य केवलज्ञानं लोकालोकावलोककम् । धर्मतीर्थं कृतं येन लोकार्थं कृतिना[6] सता ॥८७॥
अवाप्तप्रापणीयस्य कृतनिष्ठात्मकर्मणः । भास्करस्येव यस्याभूत् परकृत्याय चेष्टितम् ॥८८॥
मलस्वेदविनिर्मुक्तं क्षीरसप्रभशोणितम्[7] । स्वाकारगन्धसंघातं शक्त्या युक्तमनन्तया ॥८९॥
चारुलक्षणसंपूर्णं हितसंमितभाषणम्[8] । अप्रमेयगुणागारं यो बभार परं वपुः ॥९०॥
यस्मिन् विहरणप्राप्ते योजनानां शतद्वये । दुर्भिक्षपरपीडानामीतीनां च न संभवः ॥९१॥

थी ॥७७॥ बालकों जैसी चेष्टा करनेवाले, मनोहर विनयके धारक, इन्द्रके द्वारा भेजे हुए सुन्दर देवकुमार सदा जिनकी सेवा किया करते थे ॥७८॥ जिनके साथ ही साथ माता-पिताका, बन्धु-समूहका और तीनों लोकोंका आनन्द परम वृद्धिको प्राप्त हुआ था ॥७९॥ जिनके उत्पन्न होते ही पिताके चिरविरोधी प्रभावशाली समस्त राजा उनके प्रति नतमस्तक हो गये थे ॥८०॥ जिनके पिताके भवनका आँगन रथोंसे, मदोन्मत्त हाथियोंसे, वायुके समान वेगशाली घोड़ोंसे, उपहारके अनेक द्रव्योंसे युक्त ऊँटोंके समूहसे, छत्र, चमर, वाहन आदि विभूतिका त्याग कर राजाधिराज महाराजके दर्शनकी इच्छा करनेवाले अनेक मण्डलेश्वर राजाओंसे तथा नाना देशोंसे आये हुए अन्य अनेक बड़े-बड़े लोगोंसे सदा क्षोभको प्राप्त होता रहता था ॥८१-८३॥ जिस प्रकार कमल जलमें आसक्तिको प्राप्त नहीं होता—उससे निर्लिप्त ही रहता है उसी प्रकार जिनका चित्त कर्मरूपी कलंककी मन्दतासे मनोहारी विषयोंमें आसक्तिको प्राप्त नहीं हुआ था—उससे निर्लिप्त ही रहता था ॥८४॥ जो स्वयंबुद्ध भगवान् समस्त सम्पदाको बिजलीकी चमकके समान क्षणभंगुर जानकर विरक्त हुए और जिनके दीक्षाकल्याणकमें लौकान्तिक देवोंका आगमन हुआ था ॥८५॥ जिन्होंने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र इन तीनोंकी आराधना कर चार घातिया कर्मोंका विनाश किया था ॥८६॥ जिन्होंने लोक और अलोकको प्रकाशित करनेवाला केवलज्ञान प्राप्त कर लोककल्याणके लिए धर्मतीर्थका प्रवर्तन किया था तथा स्वयं कृतकृत्य हुए थे ॥८७॥ जो प्राप्त करने योग्य समस्त पदार्थ प्राप्त कर चुके थे और करने योग्य समस्त कार्य समाप्त कर चुके थे इसीलिए जिनकी समस्त चेष्टाएँ सूर्यके समान केवल परोपकारके लिए ही होती थीं ॥८८॥ जो जन्मसे ही ऐसे उत्कृष्ट शरीरको धारण करते थे, जो कि मल तथा पसीनासे रहित था, दूधके समान सफेद जिसमें रुधिर था, जो उत्तम संस्थान, उत्तम गन्ध और उत्तम संहननसे सहित था, अनन्त बलसे युक्त था, सुन्दर-सुन्दर लक्षणोंसे पूर्ण था, हित मित वचन बोलनेवाला था और अपरिमित गुणोंका भण्डार था ॥८९-९०॥ जिनके विहार करते समय दो सौ योजन तक दुर्भिक्ष आदि दूसरोंको पीड़ा पहुँचानेवाले कार्य तथा अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि ईतियोंका होना सम्भव

१. सुत्रामा—म. । २. -रिव म. । ३. उद्घृष्ट म. । ४. -मायातैः म. । ५. मला म. । ६. संघ म. । ७. संमत म. । ८. गुणाधारं म. ।

विद्यानां यः समस्तानां परमेश्वरतां गतः । विशुद्धस्फटिकच्छायं [1]छायामपि न यद्वपुः ॥९२॥
पक्ष्मस्पन्दविनिर्मुक्ते प्रशान्ते यस्य लोचने । [2]समा नखा महानीलस्निग्धच्छायाश्च मूर्द्धजा ॥९३॥
मैत्री समस्तविषया विहारानुगवायुता । [3]विभूतिश्च प्रभोर्यस्य भुवनानन्दकारणम् ॥९४॥
सर्वर्तुफलपुष्पाणि धारयन्ति महीरुहाः । यस्मिन्नासन्नमायाते धरणी दर्पणायते ॥९५॥
सुगन्धिमरुतो [4]यस्य योजनान्तरभूतलम् । कुर्वते पांसुपाषाण[5]कण्टकादिविरुज्झितम् ॥९६॥
विद्युन्मालाकृताभिख्यैस्तदेव स्तनितामरैः । सुगन्धसलिलैः सिक्तं सोत्साहैर्यस्य सादरैः ॥९७॥
अप्रमेयमृदुत्वानि यस्य पद्मानि गच्छतः । धरण्यामुपजायन्ते [6]यस्य व्योमविहारिणः ॥९८॥
अत्यन्तफलसंपत्तिनम्रशाल्यादिभूषिता । धरणी जायते [7]यस्मिन् समेते सस्यकारणम् ॥९९॥
शरत्सरःसमाकारं जायते विमलं नभः । धूमकादिविनिर्मुक्ता दिशस्तु सुखदर्शनाः ॥१००॥
स्फुरितारसहस्रेण प्रभामण्डलचारुणा । यत्पुरो धर्मचक्रेण स्थीयते [8]जितभानुना ॥१०१॥
अवस्थानं चकारासौ विपुले विपुलाह्वये । नानानिर्झरनिस्यन्दमधुरारावहारिणि ॥१०२॥
पुष्पोपशोभितोद्देशे लतालिङ्गितपादपे । अधित्यकासु विस्रब्धनिर्वैरव्याघ्रसेविते ॥१०३॥
नमतीव सदाध्वानधूर्णितोदारपादपैः । हसतीव समुत्सर्पि[9]निर्झरामलशीकरैः ॥१०४॥

नहीं था ॥९१॥ जो समस्त विद्याओंकी परमेश्वरताको प्राप्त थे, स्फटिकके समान निर्मल कान्तिवाला जिनका शरीर छायाको प्राप्त नहीं होता था अर्थात् जिनके शरीरकी परछाईं नहीं पड़ती थी ॥९२॥ जिनके नेत्र टिमकारसे रहित अत्यन्त शान्त थे, जिनके नख और महानील मणिके समान स्निग्ध कान्तिको धारण करनेवाले बाल सदा समान थे अर्थात् वृद्धिसे रहित थे ॥९३॥ समस्त जीवोंमें मैत्रीभाव रहता था, विहारके अनुकूल मन्द-मन्द वायु चलती थी, जिनका विहार समस्त संसारके आनन्दका कारण था ॥९४॥ वृक्ष सब ऋतुओंके फल-फूल धारण करते थे और जिनके पास आते ही पृथिवी दर्पणके समान आचरण करने लगती थी ॥९५॥ जिनके एक योजनके अन्तरालमें वर्तमान भूमिको सुगन्धित पवन सदा धूलि, पाषाण और कण्टक आदिसे रहित करती रहती थी ॥९६॥ बिजलीकी मालासे जिनकी शोभा बढ़ रही है ऐसे स्तनितकुमार—मेघ कुमार जातिके देव बड़े उत्साह और आदरके साथ उस योजनान्तरालवर्ती भूमिको सुगन्धित जलसे सींचते रहते थे ॥९७॥ जो आकाशमें विहार करते थे और विहार करते समय जिनके चरणोंके तले देव लोग अत्यन्त कोमल कमलोंकी रचना करते थे ॥९८॥ जिनके समीप आनेपर पृथिवी बहुत भारी फलोंके भारसे नम्रीभूत धान आदिके पौधोंसे विभूषित हो उठती थी तथा सब प्रकारका अन्न उसमें उत्पन्न हो जाता था ॥९९॥ आकाश शरद् ऋतुके तालाबके समान निर्मल हो जाता था और दिशाएँ धूमक आदि दोषोंसे रहित होकर बड़ी सुन्दर मालूम होने लगती थीं ॥१००॥ जिसमें हजार आरे देदीप्यमान हैं, जो कान्तिके समूहसे जगमगा रहा है और जिसने सूर्यको जीत लिया है ऐसा धर्मचक्र जिनके आगे स्थित रहता था ॥१०१॥

ऊपर कही हुई विशेषताओंसे सहित भगवान् वर्धमान जिनेन्द्र राजगृहके समीपवर्ती उस विशाल विपुलाचलपर अवस्थित हुए जो कि नाना निर्झरोंके मधुर शब्दसे मनोहर था, जिसका प्रत्येक स्थान फूलोंसे सुशोभित था, जिसके वृक्ष लताओंसे आलिंगित थे, सिंह, व्याघ्र आदि दुष्ट जीव वैररहित होकर निश्चिन्ततासे जिसकी अधित्यकाओं (उपरितनभागों) पर बैठे थे, वायुसे हिलते हुए वृक्षोंसे जो ऐसा जान पड़ता था मानो नमस्कार ही कर रहा हो, ऊपर उछलते हुए झरनोंके

---

१. मपनयद्वपुः म. । २. सभा क., ख. । ३. विभूतिश्च म. । ४. यत्र म. । ५. कन्दकादिभिरुत्थितम् म. । ६. सस क., ख. । ७. तस्मिन् म. । ८. जिनभानुना म. । ९. यातघूर्णितादरपादपैः म. । १०. निर्झरा-प. ।

कूजितैः पक्षिसंघानां जल्पतीव मनोहरम् । भ्रमराणां निनादेन गायतीव मदश्रिताम् ॥१०५॥
आलिङ्गतीव सर्वाशाः समीरेण सुगन्धिना । नानाधातुप्रभाजालमण्डितोत्तुङ्गशृङ्गके ॥१०६॥
गुहाग्रसुखसुखासीन[2]दृष्टानन[3]मृगाधिपे । घनपादपखण्डाधःस्थितयूथपतिद्विपे ॥१०७॥
महिम्ना सर्वमाकाशं संछाद्येव व्यवस्थिते । पर्वतेऽष्टापदे रम्ये मगवानिव नाभिजः ॥१०८॥
तत्रास्य जगतां जाता योजनं परिमाणतः । नाम्ना समवसूर्येण सरणेन प्रकीर्तिता ॥१०९॥
आसन्नारिमुखे तत्र जिने जितभवद्विषि । क्षुक्षोभ त्रिदशेन्द्रस्य मृगेन्द्रे[4]रूढमासनम् ॥११०॥
प्रभावात् कस्य मे कम्पं सिंहासनमिदं गतम् । इत्यालोक्य विबु[5]द्धोऽसौ ज्ञानेनावधिना ततः ॥१११॥
आज्ञापयदनुध्यानक्षणायातं कृताञ्जलिम् । सेनापतिं यथा देवाः क्रियन्तामिति वेदिनः ॥११२॥
जिनेन्द्रो भगवान् वीरः स्थितो विपुलभूधरे । तद्वन्दनाय युष्माभिः समेतैर्गम्यतामिति ॥११३॥
ततः शारदजीमूतमहानिचयसंनिभम् । जम्बूनदतटाघातपिङ्गकोटिमहारदम् ॥११४॥
सुवर्णकक्ष्या[6]युक्तं कैलासमिव जङ्गमम् । सरिता रजसाब्जानां पिञ्जरीकृततोयया[7] ॥११५॥
मदान्धमधुपश्रेणीश्रितगण्डविराजितम् । धूलीकदम्बसंवादि सौरभ्यव्याप्तविष्टपम् ॥११६॥
कर्णतालसमासक्तसमीपालक्ष्यशङ्खकम् । वमन्तमिव पद्मानां वनान्यरुणतालुना ॥११७॥

निर्मल छींटोंसे जो ऐसा जान पड़ता था मानो हँस ही रहा हो, पक्षियोंके कलरवसे ऐसा जान पड़ता था मानो मधुर भाषण ही कर रहा हो, मदोन्मत्त भ्रमरों की गुंजारसे ऐसा जान पड़ता था मानो गा ही रहा हो, सुगन्धित पवनसे जो ऐसा जान पड़ता था मानो आलिंगन ही कर रहा हो। जिसके ऊँचे-ऊँचे शिखर नाना धातुओंकी कान्तिके समूहसे सुशोभित थे, जिसकी गुफाओंके अग्रभागमें सुखसे बैठे हुए सिंहोंके मुख दिख रहे थे, जिसकी सघन वृक्षावलीके नीचे गजराज बैठे थे और जो अपनी महिमासे समस्त आकाशको आच्छादित कर स्थित था। जिस प्रकार अत्यन्त रमणीय कैलास पर्वतपर भगवान् वृषभदेव विराजमान हुए थे उसी प्रकार उक्त विपुलाचलपर भगवान् वर्धमान जिनेन्द्र विराजमान हुए ॥१०२–१०८॥ उस विपुलाचलपर एक योजन विस्तारवाली भूमि समवसरणके नामसे प्रसिद्ध थी ॥१०९॥ संसाररूपी शत्रुको जीतनेवाले वर्धमान जिनेन्द्र जब उस समवसरण भूमिमें सिंहासनारूढ़ हुए तब इन्द्रका आसन कम्पायमान हुआ ॥११०॥ इन्द्रने उसी समय विचार किया कि मेरा यह सिंहासन किसके प्रभावसे कम्पायमान हुआ है। विचार करते ही उसे अवधिज्ञानसे सब समाचार विदित हो गया ॥१११॥ इन्द्रने सेनापतिका स्मरण किया और सेनापति तत्काल ही हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। इन्द्रने उसे आदेश दिया कि सब देवोंको यह समाचार मालूम कराओ कि भगवान् वर्धमान जिनेन्द्र विपुलाचलपर विराजमान हैं इसलिए आप सब लोग एकत्रित होकर उनकी वन्दनाके लिए चलिए ॥११२-११३॥ तदनन्तर इन्द्र स्वयं उस ऐरावत हाथीपर आरूढ़ होकर चला जो कि शरदृतुके मेघोंके किसी बड़े समूहके समान जान पड़ता था, सुवर्णमय तटोंके आघातसे जिसकी खीसोंका अग्रभाग पीला-पीला हो रहा था, जो सुवर्णकी मालाओंसे युक्त था और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो कमलों की परागसे जिसका जल पीला हो रहा है ऐसी नदीसे परिवृत कैलास गिरि ही हो। जो मदान्ध भ्रमरोंकी पंक्तिसे युक्त गण्डस्थलोंसे सुशोभित था, कदम्बके फूलोंकी परागसे मिलती-जुलती सुगन्धिसे जिसने समस्त संसारको व्याप्त कर लिया था, जिसके कानोंके समीप शंख नामक आभरण दिखाई दे रहे थे, जो अपने लाल तालुसे कमलोंके वनको उगलता हुआ-सा जान पड़ता था, जो दर्पके कारण ऐसा

---

१. समीरणसुगन्धिना म.। २. सीनं दृष्टानन- म.। ३. विबुधोऽसौ ग.। ४. -दनुज्ञात म.। ५. युक्तः क.। ६. सरितारसजाब्जानां पिञ्जरान्तं ततो यया—म.। (?) ७. सौरभ्य म.।

दलन्तमिव दर्पेण श्वसन्तमिव शौर्यतः । मदान्मूर्छामिवाप्यास्तं गुह्यन्तमिव यौवनात् ॥११८॥
स्निग्धं नखप्रदेशेषु परुषं रोमगोचरे । सच्छिष्यं विनयाबाप्तौ परमं गुरुमानने ॥११९॥
मृदुमूर्द्धानमत्यन्तवृढं परिचयग्रहे । दीर्घमायुषि ह्रस्वत्वं दधतं स्कन्धबन्धने ॥१२०॥
दरिद्रमुदरे नित्यं प्रवृत्तं दानवर्त्मनि । नारदं कलहप्रीतौ गरुडं नागनाशने ॥१२१॥
प्रदोषमिव राजन्तं चारुनक्षत्रमालया । महाघण्टाकृतारावं रक्तचामरमण्डितम् ॥१२२॥
सिन्दूरारुणितोत्तुङ्गकुम्भकूटमनोहरम् । [3]ऐरावतं [4]समारुह्य प्रावर्तत सुराधिपः ॥१२३॥
प्राप्तश्च सहितो देवैरारूढनिजवाहनैः । जिनेन्द्रादर्शनोत्साहोत्फुल्लाननसरोरुहैः ॥१२४॥
कमलायुधमुख्याश्च नभश्चरजनाधिपाः । संप्राप्ताः सहपत्नीका नानालंकारधारिणः ॥१२५॥
ततस्तुष्टाव देवेन्द्रो वचसाश्चर्यमौषुवा । गुणैरखिलतथैर्दिव्यैरत्यन्तविमलैरिति ॥१२६॥
त्वया नाथ जगत्सुप्तं[6] महामोहनिशागतम् । ज्ञानभास्करबिम्बेन बोधितं पुरुतेजसा ॥१२७॥
नमस्ते वीतरागाय सर्वज्ञाय महात्मने । यातोऽय[7] दुर्गमं कूलं संसारोदन्वतः परम् ॥१२८॥
भवता सार्थवाहेन भव्यचेतनवाणिजाः । यास्यन्ति विघ्नमुत्थानं दोषचौरैरलुण्टिताः ॥१२९॥
प्रवर्तितस्त्वया पन्था विमलः सिद्धगामिनाम् । कर्मजालं च निर्दग्धं ज्वलितध्यानवह्निना ॥१३०॥

जान पड़ता था मानो साँस ही ले रहा हो, मदसे ऐसा प्रतीत होता था मानो मूर्च्छाको ही प्राप्त हो रहा हो और यौवनसे ऐसा विदित होता था मानो मोहित ही हो रहा हो। जिसके नखोंके प्रदेश चिकने और शरीरके रोम कठोर थे, विनयके ग्रहण करनेमें जो समीचीन शिष्यके समान जान पड़ता था, जो मुखमें परम गुरु था अर्थात् जिसका मुख बहुत विस्तृत था, जिसका मस्तक कोमल था, जो परिचयके ग्रहण करनेमें अत्यन्त दृढ़ था, जो आयुमें दीर्घता और स्कन्धमें ह्रस्वता धारण करता था अर्थात् जिसकी आयु विशाल थी और गरदन छोटी थी, जो उदरमें दरिद्र था अर्थात् जिसका पेट कृश था, जो दानके मार्गमें सदा प्रवृत्त रहता था अर्थात् जिसके गण्डस्थलोंसे सदा मद झरता रहता था, जो कलहसम्बन्धी प्रेमके धारण करनेमें नारद था अर्थात् नारदके समान कलह-प्रेमी था, जो नागोंका नाश करनेके लिए गरुड़ था, जो सुन्दर नक्षत्रमाला (सत्ताईस दानोंवाली माला पक्षमें नक्षत्रोंके समूह) से प्रदोष—रात्रिके प्रारम्भके समान जान पड़ता था, जो बड़े-बड़े घण्टाओंका शब्द कर रहा था, जो लालरंगके चमरोंसे विभूषित था और जो सिन्दूरके द्वारा लाल-लाल दिखनेवाले उन्नत गण्डस्थलोंके अग्रभागसे मनोहर था ॥११४-१२३॥ जिनेन्द्र भगवान्‌के दर्शन सम्बन्धी उत्साहसे जिनके मुखकमल विकसित हो रहे थे ऐसे समस्त देव अपने-अपने वाहनों-पर सवार होकर इन्द्रके साथ आ मिले ॥१२४॥ देवोंके सिवाय नाना अलंकारोंको धारण करनेवाले कमलायुध आदि विद्याधरोंके राजा भी अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ आकर एकत्रित हो गये ॥१२५॥

तदनन्तर भगवान्‌के वास्तविक, दिव्य तथा अत्यन्त निर्मल गुणोंके द्वारा आश्चर्यको प्राप्त हुए वचनोंसे इन्द्रने निम्न प्रकार स्तुति की ॥१२६॥ हे नाथ! महामोहरूपी निशाके बीच सोते हुए इस समस्त जगत्‌को आपने अपने विशाल तेजके धारक ज्ञानरूपी सूर्यके बिम्बसे जगाया है ॥१२७॥ हे भगवन्! आप वीतराग हो, सर्वज्ञ हो, महात्मा हो, और संसाररूपी समुद्रके दुर्गम अन्तिम तटको प्राप्त हुए हो अतः आपको नमस्कार हो ॥१२८॥ आप उत्तम सार्थवाह हो, भव्य जीवरूपी व्यापारी आपके साथ निर्वाण धामको प्राप्त करेंगे और मार्गमें दोषरूपी चोर उन्हें नहीं लूट सकेंगे ॥१२९॥ आपने मोक्षाभिलाषियोंको निर्मल मोक्षका मार्ग

१. रामगोचरे म. । २. नागनाशने म. । ३. पारावतं म. । ४. समासाद्य म. । ५. -त्साहफुल्ला—क., म. । ६. सुप्ते म. । ७. यतोऽद्य म. ।

निर्बन्धूनामनाथानां दुःखाग्निपरिवर्तिनाम् । बन्धुर्नाथश्च जगतां जातोऽसि परमोदयः ॥१३१॥
कथं [1]कुर्यास्तव स्तोत्रं यस्यान्तपरिवर्जिताः । उपमानेन निर्मुक्ता गुणाः केवलिगोचराः ॥१३२॥
इति [2]स्तुतिं प्रभुत्थासौ विधाय च नमस्कृतिम् । मूर्द्धजानुकराम्भोजमुकुलप्राप्तभूतलः ॥१३३॥
विस्मयं प्राप्तवान् वृद्धा स्थानं [3]तज्जिनपुङ्गवम् । इति यस्य समासेन कथ्यते रूपवर्णनम् ॥१३४॥
इन्द्रस्य पुरुषैरस्य प्रकारत्रितयं कृतम् । नानावर्णमहारत्नसुवर्णमयमुच्चमम् ॥१३५॥
प्रधानाशासुखैस्तुङ्गैर्महावापीसमन्वितैः । चतुर्भिर्गोपुरैर्युक्तं रत्नच्छायापटावृतैः ॥१३६॥
आभूषितं तेन तत्स्थानमष्टमङ्गलकौचितम् । वचसां गोचरातीतामदधत् कामपि श्रियम् ॥१३७॥
तत्र स्फटिकभित्त्यङ्का विभागा द्वादशाभवन् । प्रादक्षिण्यपथत्यक्तप्रदेशसमवस्थिताः ॥१३८॥
तस्थुरेकत्र निर्ग्रन्था गणनाथैरधिष्ठिताः । अन्यत्र [4]सेन्द्रपत्नीकाः कल्पवासिसुराङ्गनाः ॥१३९॥
अपरत्रार्यिकासंघो गणपालीसमन्वितः । [5]ज्योतिषां योषितोऽन्यत्र व्यन्तर्योऽपरत्र च ॥१४०॥
एकत्र भावनस्त्रीणामन्यत्र [6]ज्योतिषां [7]गणः । व्यन्तराणां गणोऽन्यत्र [8]सङ्घोऽन्यत्र च भावनः ॥१४१॥
कल्पवासिन एकस्मिन्नपरत्र च मानुषाः । [9][10]वैरानुभावनिर्मुक्तास्तिर्यञ्चोऽन्यत्र सुस्थिताः ॥१४२॥
ततो मगधराजोऽपि निश्चक्राम महाबलः । संपतत्सुरसंघातजातविस्मयमानसः ॥१४३॥

दिखाया है और ध्यानरूपी देदीप्यमान अग्निके द्वारा कर्मोंके समूहको भस्म किया है ॥१३०॥ जिनका कोई बन्धु नहीं और जिनका कोई नाथ नहीं ऐसे दुःखरूपी अग्निमें वर्तमान संसारके जीवोंके आप ही बन्धु हो, आप ही नाथ हो तथा आप ही परम अभ्युदयके धारक हो ॥१३१॥ हे भगवन् ! हम आपके गुणोंका स्तवन कैसे कर सकते हैं जब कि वे अनन्त हैं, उपमासे रहित हैं तथा केवलज्ञानियोंके विषय हैं ॥१३२॥ इस प्रकार स्तुति कर इन्द्रने भगवान्‌को नमस्कार किया। नमस्कार करते समय उसने मस्तक, घुटने तथा दोनों हस्तरूपी कमलोंके कुड्मलोंसे पृथिवीतलका स्पर्श किया था ॥१३३॥ वह इन्द्र भगवान्‌का समवसरण देखकर आश्चर्यको प्राप्त हुआ था इसलिए यहाँ संक्षेपसे उसका वर्णन किया जाता है ॥१३४॥

इन्द्रके आज्ञाकारी पुरुषोंने सर्वप्रथम समवसरणके तीन कोटोंकी रचना की थी जो अनेक रत्नोंके बड़े-बड़े रत्नों तथा सुवर्णसे निर्मित थे ॥१३५॥ उन कोटोंकी चारों दिशाओंमें चार गोपुर द्वार थे जो बहुत ही ऊँचे थे, बड़ी-बड़ी बावड़ियोंसे सुशोभित थे, तथा रत्नोंकी कान्तिरूपी पटसे आवृत थे ॥१३६॥

गोपुरोंका वह स्थान अष्ट मंगलद्रव्योंसे युक्त था तथा वचनोंसे अगोचर कोई अद्भुत शोभा धारण कर रहा था ॥१३७॥ उस समवसरणमें स्फटिककी दीवालोंसे बारह कोठे बने हुए थे जो प्रदक्षिणा रूपसे स्थित थे ॥१३८॥ उन कोठोंमेंसे प्रथम कोठेमें गणधरोंसे सुशोभित मुनिराज बैठे थे, दूसरेमें इन्द्राणियोंके साथ-साथ कल्पवासी देवोंकी देवांगनाएँ थीं, तीसरेमें गणिनियोंसे सहित आर्यिकाओंका समूह बैठा था, चौथेमें ज्योतिषी देवोंकी देवांगनाएँ थीं, पाँचवेंमें व्यन्तर देवोंकी अंगनाएँ बैठी थीं, छठेमें भवनवासी देवोंकी अंगनाएँ बैठी थीं, सातवेंमें ज्योतिषी देव थे, आठवेंमें व्यन्तर देव थे, नौवेंमें भवनवासी देव थे, दसवेंमें कल्पवासी देव थे, ग्यारहवेंमें मनुष्य थे और बारहवेंमें वैरभावसे रहित तिर्यंच सुखसे बैठे थे ॥१३९-१४२॥ तदनन्तर सब ओरसे आनेवाले देवोंके समूहसे जिसके मनमें आश्चर्य उत्पन्न हो रहा था ऐसा महाबलवान् अथवा बहुत बड़ी सेनाका नायक राजा श्रेणिक भी अपने नगरसे बाहर निकला

---

१. कुर्यास्तव म. । २. परिस्तुति ख. । ३. तज्जैन—म. । ४. सेन्द्रपत्नीकाः क., ख. । ५. ज्योतिषां म. । ६. ज्योतिषां म. । ७. गणो म. । ८. ज्योतिषां म. । ९. गणो म. । १०. वैरानुभव म. ।

दूरादेव हि संत्यज्य वाहनादिपरिच्छदम् । स्तुतिपूर्वं जिनं नत्वा स्वदेशे समुपाविशत् ॥१४४॥
अक्रूरो वारिषेणोऽथ कुमारोऽभयपूर्वकः । [1]विजयावहनामा च तथाऽन्ये नृपसूनवः ॥१४५॥
स्तुतिं कृत्वा [2]प्रणेमुस्ते मस्तकन्यस्तपाणयः । उपविष्टा यथादेशं दधाना विनयं परम् ॥१४६॥
वैदूर्यविटपस्याधो मृदुपल्लवशोभिनः । पुष्पस्तबकमाजालव्याप्ताशस्य विलासिनः ॥१४७॥
कल्पपादपरम्यस्य जनशोकापहारिणः । हरिन्नपलाशस्य नानारत्नगिरेरिव ॥१४८॥
अशोकपादपस्याधो निविष्टः सिंहविष्टरे । नानारत्नसमुद्योतजनितेन्द्र[3]शरासने ॥१४९॥
दिव्यांशुकपरिच्छन्नमृदुस्पर्शमनोहरे । अमरेन्द्रशिरोरत्नप्रभोल्लंघिविधायिनि ॥१५०॥
त्रिलोकेश्वरताचिह्नच्छत्रत्रितयराजिते । सुरपुष्पसमाकीर्णे भूमिमण्डलवर्तिनि ॥१५१॥
यक्षराजकराम्भोजचलच्चामरचारुणि । दुन्दुभिध्वनितोद्भूतप्रशान्तप्रतिशब्दके ॥१५२॥
गतित्रयगतप्राणिभाषारूपनिवृत्तया । घनाघनघनध्वानगभीरनिर्घोषया गिरा ॥१५३॥
परिभूतरविद्योतप्रभामण्डलमध्यगः । लोकायैन्यवदद् धर्मं पृष्टो गणभृता जिनः ॥१५४॥
सत्तैका प्रथमं तत्त्वं जीवाजीवौ ततः परम् । सिद्धाः संसारवन्तश्च जीवास्तु[4] द्विविधाः स्मृताः ॥१५५॥

॥१४३॥ उसने वाहन आदि राजाओंके उपकरणोंका दूरसे ही त्याग कर दिया, फिर समवसरणमें प्रवेश कर स्तुतिपूर्वक जिनेन्द्रदेवको नमस्कार कर अपना स्थान ग्रहण किया ॥ १४४ ॥ दयालु वारिषेण, अभयकुमार, विजयावह तथा अन्य राजकुमारोंने भी हाथ जोड़कर मस्तकसे लगाये, स्तुति पढ़कर भगवान्‌को नमस्कार किया। तदनन्तर बहुत भारी विनयको धारण करते हुए वे सब अपने योग्य स्थानोंपर बैठ गये॥१४५-१४६॥ भगवान् वर्धमान समवसरणमें जिस अशोक वृक्षके नीचे सिंहासनपर विराजमान थे उसकी शाखाएँ वैडूर्य (नील) मणिकी थीं, वह कोमल पल्लवोंसे शोभायमान था, फूलोंके गुच्छोंकी कान्तिसे उसने समस्त दिशाएँ व्याप्त कर ली थीं, वह अत्यन्त सुशोभित था, कल्पवृक्षके समान रमणीय था, मनुष्योंके शोकको हरनेवाला था, उसके पत्ते हरे रंगवाले तथा सघन थे, और वह नाना प्रकारके रत्नोंसे निर्मित पर्वतके समान जान पड़ता था। उनका वह सिंहासन भी नाना रत्नोंके प्रकाशसे इन्द्रधनुषको उत्पन्न कर रहा था। दिव्य वस्त्रसे आच्छादित था, कोमल स्पर्शसे मनोहारी था, इन्द्रके सिरपर लगे हुए रत्नोंकी कान्तिके विस्तारको रोकनेवाला था, तीन लोककी ईश्वरताके चिह्नस्वरूप तीन छत्रोंसे सुशोभित था, देवोंके द्वारा बरसाये हुए फूलोंसे व्याप्त था, भूमिमण्डलपर वर्तमान था, यक्षराजके हाथोंमें स्थित चंचल चमरोंसे सुशोभित था, और दुन्दुभिबाजोंके शब्दोंकी शान्तिपूर्ण प्रतिध्वनि उससे निकल रही थी ॥१४७-१५२॥ भगवान्‌की जो दिव्यध्वनि खिर रही थी वह तीन गति सम्बन्धी जीवोंकी भाषा-रूप परिणमन कर रही थी तथा मेघोंकी सान्द्र गर्जनाके समान उसकी बुलन्द आवाज थी ॥१५३॥ वहाँ सूर्यके प्रकाशको तिरस्कृत करनेवाले प्रभामण्डलके मध्यमें भगवान् विराजमान थे। गणधरके द्वारा प्रश्न किये जानेपर उन्होंने लोगोंके लिए निम्न प्रकारसे धर्मका उपदेश दिया था ॥१५४॥

उन्होंने कहा था कि सबसे पहले एक सत्ता ही तत्त्व है उसके बाद जीव और अजीवके भेदसे तत्त्व दो प्रकारका है। उनमें भी जीवके सिद्ध और संसारीके भेदसे दो भेद माने गये हैं ॥१५५॥ इनके सिवाय जीवोंके भव्य और अभव्य इस प्रकार दो भेद और भी हैं। जिस प्रकार उड़द आदि अनाजमें कुछ तो ऐसे होते हैं जो पक जाते हैं—सीझ जाते हैं और कुछ ऐसे होते हैं कि जो प्रयत्न करनेपर भी नहीं पकते हैं—नहीं सीझते हैं। उसी प्रकार जीवोंमें

१. विजयवाहनामा च तथान्यनृपसूनवः म. । २. प्रणामं च म. । ३. जनितेन्द्रायुधोद्गमे म. । ४. परिच्छन्ने म. । ५. सर्पि म. । ६. जीवाश्च म. ।

पाक्यापाक्यतया माषसस्यवत्प्रविभागतः । सेत्स्यन्तो गदिता भव्या अभव्यास्तु ततोऽन्यथा ॥१५६॥
भव्याभव्यद्वयेनात्र जीवार्थाः परिकीर्तिताः । धर्माधर्मादिभिर्भेदैर्द्वितीयो भिद्यते पुनः ॥१५७॥
जिनदेवितत्त्वानां श्रद्धाश्रद्धानमेतयोः । लक्षणं तत्प्रभेदाश्च पुनरेकेन्द्रियादयः ॥१५८॥
गत्या कायैस्तथा योगैर्वेदैर्लेश्याकषायतः । ज्ञानदर्शनचारित्रैर्गुणश्रेण्यधिरोहणैः ॥१५९॥
निसर्गाज्ञाभ्यसम्यक्त्वैर्नामादिन्यासभेदतः । सदाद्यष्टानुयोगैश्च भिद्यते चेतनः पुनः ॥१६०॥
तत्र संसारिजीवानां केवलं दुःखवेदिनाम् । सुखं संज्ञावमूढानां तत्रैव विषयोद्भवे ॥१६१॥
चक्षुषः पुटसंकोचो यावन्मात्रेण जायते । तावन्तमपि नो कालं नारकाणां सुखासनम् ॥१६२॥
दमनैस्ताडनैर्दोहैर्वाहादिभिरुपद्रवैः । तिरश्चां सततं दुःखं तथा शीतातपादिभिः ॥१६३॥
प्रियाणां विप्रयोगेन तथानिष्टसमागमात् । ईप्सितानामलाभाच्च दुःखं मानुषगोचरम् ॥१६४॥
यथोत्कृष्टसुराणां च दृष्ट्वा भोगं महागुणम् । च्यवनाच्च परं दुःखं देवानामुपजायते ॥१६५॥
एवंदुःखावबद्धेषु चतुर्गतिगतेष्वपि । कर्मभूमिं समासाद्य धर्मोपार्जनमुत्तमम् ॥१६६॥
मनुष्यभावमासाद्य सुकृतं ये न कुर्वते । तेषां करतलप्राप्तममृतं नाशमागतम् ॥१६७॥
संसारे पर्यटन्नेष बहुयोनिसमाकुले । मनुष्यभावमायाति चिरेणात्यन्तदुःखतः ॥१६८॥

भी कुछ जीव तो ऐसे होते हैं जो कर्म नष्ट कर सिद्ध अवस्थाको प्राप्त हो सकते हैं और कुछ ऐसे होते हैं जो प्रयत्न करनेपर भी सिद्ध अवस्थाको प्राप्त नहीं हो सकते। जो सिद्ध हो सकते हैं वे भव्य कहलाते हैं और जो सिद्ध नहीं हो सकते हैं वे अभव्य कहलाते हैं। इस तरह भव्य और अभव्यकी अपेक्षा जीव दो तरहके हैं और अजीव तत्त्वके धर्म, अधर्म, आकाश, काल तथा पुद्गलके भेदसे पाँच भेद हैं ॥१५६-१५७॥ जिनेन्द्र भगवान्‌के द्वारा कहे हुए तत्त्वोंका श्रद्धान होना भव्योंका लक्षण है और उनका श्रद्धान नहीं होना अभव्योंका लक्षण है। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ये भव्य तथा अभव्य जीवोंके उत्तर भेद हैं ॥१५८॥ गति, काय, योग, वेद, लेश्या, कषाय, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, गुणस्थान, निसर्गज एवं अधिगमज सम्यग्दर्शन, नामादि निक्षेप और सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव तथा अल्प बहुत्व इन आठ अनुयोगोंके द्वारा जीव-तत्त्वके अनेक भेद होते हैं ॥१५९-१६०॥ सिद्ध और संसारी इन दो प्रकारके जीवोंमें संसारी जीव केवल दुःखका ही अनुभव करते रहते हैं। पंचेन्द्रियोंके विषयोंसे जो सुख होता है उन्हें संसारी जीव भ्रमवश सुख मान लेते हैं ॥१६१॥ जितनी देरमें नेत्रका पलक झपता है उतनी देरके लिए भी नारकियोंको सुख नहीं होता ॥१६२॥ दमन, ताडन, दोहन, वाहन आदि उपद्रवोंसे तथा शीत, घाम, वर्षा आदिके कारण तिर्यंचोंको निरन्तर दुःख होता रहता है ॥१६३॥ प्रियजनोंके वियोगसे, अनिष्ट वस्तुओंके समागमसे तथा इच्छित पदार्थोंके न मिलनेसे मनुष्य गतिमें भारी दुःख है ॥१६४॥ अपनेसे उत्कृष्ट देवोंके बहुत भारी भोगोंको देखकर तथा वहाँसे च्युत होनेके कारण देवोंको दुःख उत्पन्न होता है ॥१६५॥ इस प्रकार जब चारों गतियोंके जीव बहुत अधिक दुःखसे पीड़ित हैं तब कर्मभूमि पाकर धर्मका उपार्जन करना उत्तम है ॥१६६॥ जो मनुष्य भव पाकर भी धर्म नहीं करते हैं मानो उनकी हथेलीपर आया अमृत नष्ट हो जाता है ॥१६७॥ अनेक योनियोंसे भरे इस संसारमें परिभ्रमण

---

१. पाक्यापाक्यतया माषसस्यवत्प्रविभागतः । भव्याभव्यद्वयेनात्र जीवार्थः परिकीर्तितः ॥१५६॥ धर्माधर्मादिभिर्भेदैर्द्वितीयो भिद्यते पुनः । सेत्स्यन्तो गदिता भव्या अभव्यास्तु ततोऽन्यथा ॥१५७॥ म. । २. भावानां क. । ३. -दैर्ह ख. । ४. तत्र दुःखावबद्धेषु म. । ५. मानुष्यभाव -ख. । ६. संसारं पर्यटन् जन्तुर्बहुयोनिसमाकुलम् म. ।

तत्र [1]लुब्धेषु पापेषु शबरादिषु जायते । आर्यदेशेऽपि संप्राप्ते दुःकुलेषूपजायते ॥१६९॥
लब्धेऽपि सुकुले काणकुण्ठादितनुसंभवः । संपूर्णकायवन्धेऽपि दुर्लभा[2] हीनरोगता ॥१७०॥
एवं सर्वमपि प्राप्य प्रशस्तानां समागमम् । [3]दुर्लभो धर्मसंवेगो विषयास्वादलोभतः ॥१७१॥
ततः केचिद् भृतिं कृत्वा जठरस्यापि पूरणम् । कुर्वतेऽत्यन्तदुःखेन दूरतो विभवोद्भवः ॥१७२॥
रक्तकर्दमवीभत्सशस्त्रसंपातभीषणम् । केचिद् विशन्ति संग्रामं जिह्वाकामवशीकृताः ॥१७३॥
समस्तजन्तुसंबाधं कृत्वाऽन्ये भूमिकर्षणम् । कुटुम्बभरणक्लेशात् कुर्वते[4] नृपपीडिताः ॥१७४॥
एवं यद्यत्प्रकुर्वन्ति कर्म सौख्याभिलाषिणः । तत्र तत्र प्रपद्यन्ते जन्तवो दुःखमुत्तमम् ॥१७५॥
अवाप्यापि धनं क्लेशाच्चोराग्निजलराजतः । पालयन् परमं दुःखमवाप्नोत्याकुलः सदा ॥१७६॥
संप्राप्तं रक्षितं द्रव्यं सुभुक्तस्यापि नो शमः । प्रतिवासरसंवृद्धगर्ह्याग्निर्[5]परिवर्तनात् ॥१७७॥
प्राप्नोति धर्मसंवेगं कथंचित् पूर्वकर्मतः । संसारपदवीमेव नीयतेऽन्यैर्दुरात्मभिः ॥१७८॥
अन्यैस्ते नाशिताः सन्तो नाशयन्त्यपरान् जनान् । धर्मसामान्यशब्देन सेवमानाः [6]परम्पराम् ॥१७९॥
कथं चेतोविशुद्धिः स्यात् परिग्रहवतां सताम् । चेतोविशुद्धिमूलो[7] च तेषां धर्मे स्थितिः कुतः ॥१८०॥

करता हुआ यह जीव बहुत समयके बाद बड़े दुःखसे मनुष्य भवको प्राप्त होता है ॥१६८॥ उस मनुष्य भवमें यह जीव अधिकांश लोभी तथा पाप करनेवाले शबर आदि नीच पुरुषोंमें ही जन्म लेता है। यदि कदाचित् आर्य देश प्राप्त होता है तो वहाँ भी नीच कुलमें ही उत्पन्न होता है ॥१६९॥ यदि भाग्यवश उच्च कुल भी मिलता है तो काना-लूला आदि शरीर प्राप्त होता है। यदि कदाचित् शरीरकी पूर्णता होती है तो नीरोगताका होना अत्यन्त दुर्लभ रहता है ॥१७०॥ इस तरह यदि कदाचित् समस्त उत्तम वस्तुओंका समागम भी हो जाता है तो विषयोंके आस्वादका लोभ रहनेसे धर्मानुराग दुर्लभ ही रहा आता है ॥१७१॥ इस संसारमें कितने ही लोग ऐसे हैं जो दूसरोंकी नौकरी कर बहुत भारी कष्टसे पेट भर पाते हैं उन्हें वैभवकी प्राप्ति होना तो दूर रहा ॥१७२॥ कितने ही लोग जिह्वा और काम इन्द्रियके वशीभूत होकर ऐसे संग्राममें प्रवेश करते हैं जो कि रक्तकी कीचड़से घृणित तथा शस्त्रोंकी वर्षासे भयंकर होता है ॥१७३॥ कितने ही लोग अनेक जीवोंको बाधा पहुँचानेवाली भूमि जोतनेकी आजीविका कर बड़े क्लेशसे अपने कुटुम्बका पालन करते हैं और उतनेपर भी राजाओंकी ओरसे निरन्तर पीड़ित रहते हैं॥१७४॥ इस तरह सुखकी इच्छा रखनेवाले जीव जो कार्य करते हैं वे उसीमें बहुत भारी दुःखको प्राप्त करते हैं ॥१७५॥

यदि किसी तरह कष्टसे धन मिल भी जाता है तो चोर, अग्नि, जल और राजासे उसकी रक्षा करता हुआ यह प्राणी बहुत दुःख पाता है और उससे सदा व्याकुल रहता है ॥१७६॥ यदि प्राप्त हुआ धन सुरक्षित भी रहता है तो उसे भोगते हुए इस प्राणीको कभी शान्ति नहीं होती क्योंकि उसकी लालसारूपी अग्नि प्रति दिन बढ़ती रहती है ॥१७७॥ यदि किसी तरह पूर्वोपार्जित पुण्य कर्मके उदयसे धर्म भावनाको प्राप्त होता भी है तो अन्य दुष्टजनोंके द्वारा पुनः उसी संसारके मार्गमें ला दिया जाता है ॥१७८॥ अन्य पुरुषोंके द्वारा नष्ट हुए सत्पुरुष अन्य लोगोंको भी नष्ट कर देते हैं—पथभ्रष्ट कर देते हैं और धर्मसामान्यकी अपेक्षा केवल रूढ़िका ही पालन करते हैं ॥१७९॥ परिग्रही मनुष्योंके चित्तमें विशुद्धता कैसे हो सकती है और जिसमें चित्तकी विशुद्धता ही मूल कारण है ऐसी धर्मकी स्थिति उन परिग्रही मनुष्योंमें

---

१. लब्धेषु म. । २. हि निरोगता ख., म. । ३. दुर्लभं क. । ४. अनन्त म. । ५. कुर्वन्ति म. । ६. गर्भाग्नि म. । ७. परंपरम् क । परस्परम् म. । ८. मूलाच्च ग. ।

यावत्परिग्रहासक्तिस्तावत्प्राणिनिपीडनम्[1] । हिंसा[2]तः संसृतेर्मूलं दुःखं संसारसंज्ञकम् ॥१८१॥
परिग्रहपरिष्वङ्गाद् द्वेषो रागश्च जायते । रागद्वेषौ च [3]संसारे दुःखस्योत्तमकारणम् ॥१८२॥
लब्ध्वापि दर्शनं सम्यक् प्रशमादर्शनावृतेः । चारित्रं न प्रपद्यन्ते चारित्रावरणावृताः ॥१८३॥
चारित्रमपि संप्राप्ताः कुर्वन्तः परमं तपः । परीषहैः पुनर्भग्नं [4]नीयन्ते [5]दुःखविक्रमैः ॥१८४॥
अणुव्रतानि सेवन्ते केचित् भङ्गमुपागताः । केचिद्दर्शनमात्रेण भवन्ति परितोषिणः ॥१८५॥
केचिद् गम्भीरसंसारकूपहस्तावलम्बनम् । सम्यग्दर्शनमुत्सृज्य मिथ्यादृष्टिमुपासते ॥१८६॥
मिथ्यादर्शनसंयुक्तास्ते पुनर्भवसंकटे । भ्राम्यन्ति सततं जीवा दुःखाग्निपरिवर्तिनः ॥१८७॥
केचित्तु पुण्यकर्माणश्चारित्रमवलम्बितम् । निर्वहन्ति महाशूरा यावत्प्राणविसर्जनम्[6] ॥१८८॥
ते समाधिं समासाद्य कृत्वा देहविसर्जनम् । नारायणादितां यान्ति निदानकृतदोषतः ॥१८९॥
ते पुनः परपीडायां रता निर्दयचेतसः । नरकेषु महादुःखं प्राप्नुवन्ति सुदुस्तरम् ॥१९०॥
केचित्तु सुतपः कृत्वा यान्ति गीर्वाणनाथताम् । अपरे बलदेवत्वमन्ये[7]ऽनुत्तरवासिताम् ॥१९१॥
केचित्प्राप्य महासत्त्वा जिनकर्माणि षोडश । तीर्थकृत्त्वं प्रपद्यन्ते त्रैलोक्यक्षोभकारणम् ॥१९२॥
केचिच्चिरन्तरायेण त्रितयाराधने रताः । द्वित्रैर्भवैर्विमुच्यन्ते कर्माष्टककलङ्कतः ॥१९३॥
संप्राप्ताः परमं स्थानं मुक्तानामुपमोज्झितम् । अनन्तं निःप्रतिद्वन्द्वं लभन्ते सुखमुत्तमम् ॥१९४॥

कहाँसे हो सकती है ॥१८०॥ जब तक परिग्रहमें आसक्ति है तब तक प्राणियोंकी हिंसा होना निश्चित है। हिंसा ही संसारका मूल कारण है और दुःखको ही संसार कहते हैं ॥१८१॥ परिग्रहके सम्बन्धसे राग और द्वेष उत्पन्न होते हैं तथा राग और द्वेष ही संसार सम्बन्धी दुःखके प्रबल कारण हैं ॥१८२॥ दर्शनमोह कर्मका उपशम होनेसे कितने ही प्राणी यद्यपि सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेते हैं तथापि चारित्र मोहके आवरणसे आवृत रहनेके कारण वे सम्यक् चारित्रको प्राप्त नहीं कर सकते ॥१८३॥ कितने ही लोग सम्यक् चारित्रको पाकर श्रेष्ठ तप भी करते हैं परन्तु दुःखदायी परिषहोंके निमित्तसे भ्रष्ट हो जाते हैं ॥१८४॥ परिषहोंके निमित्तसे भ्रष्ट हुए कितने ही लोग अणुव्रतोंका सेवन करते हैं और कितने ही केवल सम्यग्दर्शनसे सन्तुष्ट रह जाते हैं अर्थात् किसी प्रकारका व्रत नहीं पालते हैं ॥१८५॥ कितने ही लोग संसाररूपी गहरे कुएँसे हस्तावलम्बन देकर, निकालनेवाले सम्यग्दर्शनको छोड़कर फिरसे मिथ्यादर्शनकी सेवा करने लगते हैं ॥१८६॥ तथा ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव निरन्तर दुःखरूपी अग्निके बीच रहते हुए संकटपूर्ण संसारमें भ्रमण करते रहते हैं ॥१८७॥ कितने ही ऐसे महाशूरवीर पुण्यात्मा जीव हैं जो ग्रहण किये हुए चारित्रको जीवन पर्यन्त धारण करते हैं ॥१८८॥ और समाधिपूर्वक शरीर त्याग कर निदानके दोषसे नारायण आदि पदको प्राप्त होते हैं ॥१८९॥ जो नारायण होते हैं वे दूसरोंको पीड़ा पहुँचानेमें तत्पर रहते हैं तथा उनका चित्त निर्दय रहता है इसलिए वे मरकर नियमसे नरकोंमें भारी दुःख भोगते हैं ॥१९०॥ कितने ही लोग सुतप करके इन्द्र पदको प्राप्त होते हैं। कितने ही बलदेव पदवी पाते हैं और कितने ही अनुत्तर विमानोंमें निवास प्राप्त करते हैं ॥१९१॥ कितने ही महाधैर्यवान् मनुष्य षोडश कारण भावनाओंका चिन्तवन कर तीनों लोकोंमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाले तीर्थंकर पद प्राप्त करते हैं ॥१९२॥ और कितने ही लोग निरन्तराय रूपसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक् चारित्रकी आराधनामें तत्पर रहते हुए दो-तीन भवमें ही अष्ट कर्मरूप कलंकसे मुक्त हो जाते हैं ॥१९३॥ वे फिर मुक्त जीवोंके उत्कृष्ट एवं निरुपम स्थानको पाकर अनन्त काल तक निर्बाध उत्तम सुखका उपभोग

---

१. निपीडना क.। २. हिंसा च म.। ३. संसारदुःखस्योत्पत्तिकारणम् म.। ४. नीयते म.। ५. दुरतिक्रमैः म.। ६. विसर्जनम् म.। ७. मन्ये तूत्तरवासिताम् म.।

ततस्ते निर्गतं धर्मं जिनवक्त्रारविन्दतः । श्रुत्वा हर्षं परं जग्मुस्तिर्यक्त्रिदशमानवाः ॥१९५॥
अणुव्रतानि संप्राप्ताः केचित् केचिन्निरम्बरम् । तपश्चरितुमारब्धाः संसारोद्विग्नमानसाः ॥१९६॥
सम्यग्दर्शनमायाताः केचित् केचित्स्वशक्तितः । विरतिं जगृहुः पापसमुपार्जनकर्मणः ॥१९७॥
श्रुत्वा धर्मं जिनं स्तुत्वा प्रणम्य च यथाविधि । धर्मसुस्थितचित्तास्ते यातास्ते स्थानं यथायथम् ॥१९८॥
श्रेणिकोऽपि महाराजो राजमानो नृपश्रिया । वर्णश्रवणहृष्टात्मा प्रविवेश निजं पुरम् ॥१९९॥
अथ तीर्थंकरोदारतेजोमण्डलदर्शनात् । विलक्ष इव तिग्मांशुर्[1]क्षिप्तमैच्छन्निधेर्विधुम् ॥२००॥
अस्ताचलसमीपस्थ[3]ः सरोरुहरुचामिव । मणीनां किरणैश्छन्नो जगामास्यन्तशोणताम् ॥२०१॥
अमन्दायन्त किरणा नित्यमस्यानुयायिनः । कस्य वा तेजसो वृद्धिः स्वामिन्यापदमागते ॥२०२॥
ततो विलोचनैः साश्रैरीक्षितः कोकयोषिताम् । अदर्शनं ययौ मन्दं कृपयेव विरोचनः ॥२०३॥
धर्मश्रवणतो मुक्तो यो रागः प्राणिनां गणैः । सन्ध्याच्छलेन तेनैव ककुभां चक्रमाश्रितम् ॥२०४॥
उपकारे प्रवृत्तोऽयमस्माभ्यप्रार्थितः परम् । इतीव चक्षुर्लोकस्य मित्रेणेव[4] समं गतम् ॥२०५॥
व्रजतो दिननाथस्य रागं प्रलयगामिनम् । संकुचन्त्यरविन्दानि कवलैरिव गृह्णते ॥२०६॥
समीकृत्योन्नतोच्चत्वं विस्तारायतदर्शितम् । तमोभिः कलुषैर्व्याप्तं दुर्जनस्येव चेष्टितम् ॥२०७॥

करते हैं ॥१९४॥ इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान्‌के मुखारविन्दसे निकले हुए धर्मको सुनकर मनुष्य, तिर्यंच तथा देव तीनों गतिके जीव परम हर्षको प्राप्त हुए ॥१९५॥ धर्मोपदेश सुनकर कितने ही लोगोंने अणुव्रत धारण किये और संसारसे भयभीत चित्त होकर कितने ही लोगोंने दिगम्बर दीक्षा धारण की ॥१९६॥ कितने ही लोगोंने केवल सम्यग्दर्शन ही धारण किया और कितने ही लोगोंने अपनी शक्तिके अनुसार पाप कार्योंका त्याग किया ॥१९७॥ इस तरह धर्म श्रवण कर सबने श्रीवर्धमान जिनेन्द्रको स्तुति कर उन्हें विधिपूर्वक नमस्कार किया और तदनन्तर धर्ममें चित्त लगाते हुए सब यथायोग्य अपने-अपने स्थानपर चले गये ॥१९८॥ धर्म श्रवण करनेसे जिसकी आत्मा हर्षित हो रही थी ऐसे महाराज श्रेणिकने भी राजलक्ष्मीसे सुशोभित होते हुए अपने नगरमें प्रवेश किया ॥१९९॥

तदनन्तर सूर्यने पश्चिम समुद्रमें अवगाहन करनेकी इच्छा की सो ऐसा जान पड़ता था मानो भगवान्‌के उत्कृष्ट तेज पुंजको देखकर वह इतना अधिक लज्जित हो गया था कि समुद्रमें डूबकर आत्मघात ही करना चाहता था ॥२००॥ सन्ध्याके समय सूर्य अस्ताचलके समीप पहुँचकर अत्यन्त लालिमाको धारण करने लगा था जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो पद्मराग मणियोंकी किरणोंसे आच्छादित होकर ही लालिमा धारण करने लगा था ॥२०१॥ निरन्तर सूर्यका अनुगमन करनेवाली किरणें भी मन्द पड़ गयीं सो ठीक ही है क्योंकि स्वामीके विपत्तिग्रस्त रहते हुए किसके तेजकी वृद्धि हो सकती है ? अर्थात् किसीके नहीं ॥२०२॥ तदनन्तर चकवियोंने अश्रु भरे नेत्रोंसे सूर्यकी ओर देखा इसलिए उनपर दया करनेके कारण ही मानो वह धीरे-धीरे अदृश्य हुआ था ॥२०३॥ धर्म श्रवण करनेसे प्राणियोंने जो राग छोड़ा था सन्ध्याके छलसे मानो उसीने दिशाओंके मण्डलको आच्छादित कर लिया था ॥२०४॥ जिस प्रकार मित्र बिना प्रार्थना किये ही लोगोंके उपकार करनेमें प्रवृत्त होता है उसी प्रकार सूर्य भी बिना प्रार्थना किये ही हम लोगोंके उपकार करनेमें प्रवृत्त रहता है इसलिए सूर्यका अस्त हो रहा है मानो मित्र ही अस्त हो रहा है ॥२०५॥ उस समय कमल संकुचित हो रहे थे जिससे ऐसे जान पड़ते थे मानो अस्तंगामी सूर्यके प्रलयोन्मुख राग (लालिमा) को ग्रास बना-बनाकर ग्रहण ही कर रहे थे ॥२०६॥ जिसने विस्तार और ऊँचाईको एक रूपमें परिणत कर दिया था, तथा जिसका निरूपण नहीं किया जा

---

१. कर्मतः म. । २. तमैच्छन्नि -म. । ३. समीपस्थसरोरुह म. । ४. मित्रेणैव सुमङ्गलम् ख. । ५. ततः म. ।

पिदधे सान्ध्यमुद्योतं सकलं बहलं तमः । पटलं धूमसंबन्धि प्रशाम्यन्तमिवानलम् ॥२०८॥
चम्पकक्षारकाकारप्रदीपप्रकरोऽगमत् । कम्पितो मन्दवातेन यामिनीकर्णपूरताम् ॥२०९॥
मृणा रसेन पद्मानां भृतपक्षा मृणालकैः । कृत्वा कण्डूयनं निद्रां राजहंसाः सिषेविरे ॥२१०॥
अग्निमल्लमल्लिकास्रग्राही सायंतनो मरुत् । वातुं प्रववृते मन्दं निशानिःश्वासशंकितः ॥२११॥
उच्चकेसरकोटीनां संकटेषु कदम्बकैः । कुशेशयकुटीरेषु शिश्ये षट्पदसंहतिः ॥२१२॥
नितान्तविमलैश्चक्रे रम्यं तारागणैर्नभः । त्रैलोक्यं जिननाथस्य सुभाषितचयैरिव ॥२१३॥
तमोऽथ विमलैर्भिन्नं शशाङ्ककिरणाङ्कुरैः । एकान्तवादिनां वाक्यं नयैरिव जिनोदितैः ॥२१४॥
उज्जगाम च शीतांशुर्लोकनेत्राभिनन्दितः । वपुर्बिभ्रत् कृताकम्पं ध्वान्तकोपादिवारुणम् ॥२१५॥
चन्द्रालोके ततो लोकैः करग्राह्यत्वमागते । आरेभे तमसा खिन्नः क्षीरोदाङ्क हृदासितुम् ॥२१६॥
आमृष्टानि करैरिन्दोर्बहून्यासोदमुत्तमम् । सहसातीव यातानि कुमुदानि विकासिताम् ॥२१७॥
इति स्पष्टे समुद्भूते प्रदोषे जनसौख्यदे । प्रवृत्तदम्पतिप्रीतिप्रवृद्धमदोत्सवे ॥२१८॥
तरङ्गमङ्गुराकारगङ्गापुलिनसंनिभे । [illegible] ॥२१९॥

सकता था ऐसा अन्धकार प्रकटताको प्राप्त हुआ। जिस प्रकार दुर्जनकी चेष्टा उच्च और नीचको एक समान करती है तथा विषमताके कारण उसका निरूपण करना कठिन होता है उसी प्रकार वह अन्धकार भी ऊँचे-नीचे प्रदेशोंको एक समान कर रहा था और विषमताके कारण उसका निरूपण करना भी कठिन था ॥२०७॥ जिस प्रकार धूमका पटल बुझती हुई अग्निको आच्छादित कर लेता है उसी प्रकार बढ़ते हुए समस्त अन्धकारने सन्ध्या सम्बन्धी अरुण प्रकाशको आच्छादित कर लिया था ॥२०८॥ चम्पाकी कलियोंके आकारको धारण करनेवाला दीपकोंका समूह वायुके मन्द-मन्द झोंकेसे हिलता हुआ ऐसा जान पड़ता था मानो रात्रिरूपी स्त्रीके कर्णफूलोंका समूह ही हो ॥२०९॥ जो कमलोंका रस पीकर तृप्त हो रहे थे तथा मृणालके द्वारा खुजली कर अपने पंख फड़फड़ा रहे थे ऐसे राजहंस पक्षी निद्राका सेवन करने लगे ॥२१०॥ जो स्त्रियोंकी चोटियोंमें गुथी मालतीकी मालाओंको हरण कर रही थी ऐसी सन्ध्या समयकी वायु रात्रिरूपी स्त्रीके श्वासोच्छ्वासके समान धीरे-धीरे बहने लगी ॥२११॥ ऊँची उठी हुई केशरकी कणिकाओंके समूहसे जिनकी संकीर्णता बढ़ रही थी ऐसी कमलकी कोटरोंमें भ्रमरोंके समूह सोने लगे ॥२१२॥ जिस प्रकार जिनेन्द्र भगवान्‌के अत्यन्त निर्मल उपदेशोंके समूहसे तीनों लोक रमणीय हो जाते हैं उसी प्रकार अत्यन्त उज्ज्वल ताराओंके समूहसे आकाश रमणीय हो गया था ॥२१३॥ जिस प्रकार जिनेन्द्र भगवान्‌के द्वारा कहे हुए नयसे एकान्तवादियोंके वचन खण्ड-खण्ड हो जाते हैं उसी प्रकार चन्द्रमाकी निर्मल किरणोंके प्रादुर्भावसे अन्धकार खण्ड-खण्ड हो गया था ॥२१४॥ तदनन्तर लोगोंके नेत्रोंने जिसका अभिनन्दन किया था और जो अन्धकारके ऊपर क्रोध धारण करनेके कारण ही मानो कुछ-कुछ काँपते हुए लाल शरीरको धारण कर रहा था ऐसे चन्द्रमाका उदय हुआ ॥२१५॥ जब चन्द्रमाकी उज्ज्वल चाँदनी सब ओर फैल गयी तब यह संसार ऐसा जान पड़ने लगा मानो अन्धकारसे खिन्न होकर क्षीरसमुद्रकी गोदमें ही बैठनेकी तैयारी कर रहा हो ॥२१६॥ सहसा कुमुद फूल उठे सो वे ऐसे जान पड़ते थे मानो चन्द्रमाकी किरणोंका स्पर्श पाकर ही बहुत भारी आमोद—हर्ष (पक्षमें गन्ध) को धारण कर रहे थे ॥२१७॥ इस प्रकार स्त्री-पुरुषोंकी प्रीतिसे जिसमें अनेक समद—उत्सवोंकी वृद्धि हो रही थी और जो जनसमुदायको सुख देनेवाला था ऐसा प्रदोष काल जब स्पष्ट रूपसे प्रकट हो चुका तब राजकार्य निपटाकर जिनेन्द्र भगवान्‌की कथा करता हुआ श्रेणिक राजा उस शय्यापर सुखसे सो गया जो कि तरंगोंके

१. त्रिदशै ख., म. । २. चम्पकः कारिकाकार-म. । ३. कम्प-म. । ४. लोककरग्राह्यत्व म. । ५. मदनोत्सवे म. । ६. भुवनोदरे म. ।

गवाक्षमुखनिर्यातकुसुमोत्तमसौरभे । पार्श्वस्थवारवनिताकलगीतमनोरमे ॥२२०॥
ज्वलज्जातिसमीपस्थस्फटिकच्छन्नदीपके । अप्रमत्तशरीररक्षिगणकल्पितरक्षणे ॥२२१॥
प्रसूनप्रकरावासमण्डनक्ष्मातलस्थिते । उपधाङ्कसुविन्यस्तसुकुमारोपधानके ॥२२२॥
जिनेशपादपूताशाकृतमस्तकधामनि । प्रतिपादकविन्यस्ततनुविस्तीर्णपट्टके ॥२२३॥
विधाय भूभुजः कृत्यं कृतजैनेन्द्रसंकथः । शयनीये सुखं शिश्ये कुशाग्रनगराधिपः ॥२२४॥
जिनेन्द्रमेव चापश्यत् स्वप्नेऽपि च पुनः पुनः । पर्यपृच्छच्च संदेहं पपाठ च जिनोदितम् ॥२२५॥
ततो मदकलेभेन्द्रनिद्राविद्रावकारिणा । गेहकक्षातिगम्भीरगुहागोचरगामिना ॥२२६॥
महाजलदसंघातघीरघोषहारिणा । प्रभातसूर्यवाद्येन विबुद्धो मगधाधिपः ॥२२७॥
अचिन्तयच्च वीरेण भाषितं धर्महेतुकम् । चक्रवर्त्यादिवीराणां संभवं प्रणिधानतः ॥२२८॥
अथास्य चरिते पद्मसंबन्धिनि गतं मनः । संदेह इव चेत्यासीद्रक्षःसु प्लवगेषु च ॥२२९॥
कथं जिनेन्द्रधर्मेण जाताः सन्तो नरोत्तमाः । महाकुलीना विद्वांसो विद्याद्योतितमानसाः ॥२३०॥
श्रूयन्ते लौकिके ग्रन्थे राक्षसा रावणादयः । वसाशोणितमांसादिपानभक्षणकारिणः ॥२३१॥
रावणस्य किल भ्राता कुम्भकर्णो महाबलः । घोरनिद्रापरीतः षण्मासान् शेते निरन्तरम् ॥२३२॥
मत्तैरपि गजैस्तस्य क्रियते मर्दनं यदि । तप्ततैलकटाहैश्च पूर्येते श्रवणौ यदि ॥२३३॥
भेरीशङ्खनिनादोऽपि सुमहानपि जन्यते । तथापि किल नायाति कालेऽपूर्णे विबुद्धताम् ॥२३४॥
क्षुत्तृष्णाव्याकुलश्वासौ विबुद्धः सन्महोदरः । भक्षयत्यग्रतो दृष्ट्वा हस्त्यादीनपि दुर्द्धरः ॥२३५॥

कारण क्षत-विक्षत हुए गंगाके पुलिनके समान जान पड़ती थी। जड़े हुए रत्नोंकी कान्तिसे जिसने महलके समस्त मध्यभागको आलिंगित कर दिया था, जिसके फूलोंकी उत्तम सुगन्धि झरोखोंसे बाहर निकल रही थी, पासमें बैठी वेश्याओंके मधुरगानसे जो मनोहर थी, जिसके पास ही स्फटिकमणिनिर्मित आवरणसे आच्छादित दीपक जल रहा था, अंगरक्षक लोग प्रमाद छोड़कर जिसकी रक्षा कर रहे थे, जो फूलोंके समूहसे सुशोभित पृथिवीतलपर बिछी हुई थी, जिसपर कोमल तकिया रखा हुआ था, जिनेन्द्र भगवान्‌के चरणकमलोंसे पवित्र दिशाकी ओर जिसका सिरहाना था, तथा जिसके प्रत्येक पायेपर सूक्ष्म किन्तु विस्तृत पट्ट बिछे हुए थे ॥२१८-२२४॥ राजा श्रेणिक स्वप्नमें भी बार-बार जिनेन्द्र भगवान्‌के दर्शन करता था, बार-बार उन्हींसे संशयकी बात पूछता था और उन्हींके द्वारा कथित तत्त्वका पाठ करता था ॥२२५॥

तदनन्तर—मदोन्मत्त गजराजकी निद्राको दूर करनेवाले, महलकी कक्षाओंरूपी गुफाओंमें गूँजनेवाले एवं बड़े-बड़े मेघोंकी गम्भीर गर्जनाको हरनेवाले प्रातःकालीन तुरहीके शब्द सुनकर राजा श्रेणिक जागृत हुआ ॥२२६-२२७॥ जागते ही उसने भगवान् महावीरके द्वारा भाषित, चक्रवर्ती आदि वीर पुरुषोंके धर्मवर्धक चरितका एकाग्रचित्तसे चिन्तवन किया ॥ २२८ ॥ अथानन्तर उसका चित्त बलभद्र पदके धारक रामचन्द्रजीके चरितकी ओर गया और उसे राक्षसों तथा वानरोंके विषयमें सन्देह-सा होने लगा ॥ २२९ ॥ वह विचारने लगा कि अहो ! जो जिनधर्मके प्रभावसे उत्तम मनुष्य थे, उच्चकुलमें उत्पन्न थे, विद्वान् थे और विद्याओंके द्वारा जिनके मन प्रकाशमान थे ऐसे रावण आदिक लौकिक ग्रन्थोंमें चर्बी, रुधिर तथा मांस आदिका पान एवं भक्षण करनेवाले राक्षस सुने जाते हैं ॥ २३०-२३१ ॥ रावणका भाई कुम्भकर्ण महाबलवान् था और घोर निद्रासे युक्त होकर छह माह तक निरन्तर सोता रहता था ॥ २३२ ॥ यदि मदोन्मत्त हाथियोंके द्वारा भी उसका मर्दन किया जाये, तपे हुए तेलके कड़ाहोंसे उसके कान भरे जावें और भेरी तथा शंखोंका बहुत भारी शब्द किया जाये तो भी समय पूर्ण न होने पर वह जागृत नहीं होता था ॥ २३३-२३४ ॥ बहुत बड़े पेटको

---

१. पूतांशां क. । २. निद्रां म. । ३. घोषानुहारिणा म. । ४. संबन्ध म. । ५. विवादेऽपि म. ।

तिर्यङ्मनुष्यदेवैः कृत्वा तृप्तिं ततः पुनः । स्वपित्येव विमुक्तान्यनिःशेषपुरुषस्थितिः ॥२३६॥
अहो कुकविभिर्मूर्खैर्विद्याधरकुमारकः[1] । अन्याख्यानमिदं नीतो दुःकृतग्रन्थकत्थकैः[2] ॥२३७॥
एवंविधं किल ग्रन्थं रामायणमुदाहृतम् । शृण्वतां सकलं पापं क्षयमायाति तत्क्षणात् ॥२३८॥
तापत्यजनचित्तस्य[3] सोऽयमग्निसमागमः । शीतापनोदकामस्य तुषारानिलसंगमः ॥२३९॥
घृतक्वीनकाङ्क्षस्य[4] तदिदं जलमन्थनम् । सिकतापीडनं[5] तैलमवाप्तुमिवाञ्छतः ॥२४०॥
महापुरुषचारित्रकूटदोषविभाविषु । पापैरधर्मशास्त्रेषु धर्मशास्त्रमतिः कृता ॥२४१॥
अमराधिपतिर्येनासौ राक्षसेन पराजितः । आकर्णाकृष्टनिर्मुक्तैर्बाणैर्मर्मविदारिभिः ॥२४२॥
देवानामधिपः क्वासौ क्वायं मानुषः । तस्य चिन्तितमात्रेण यावद् यो भस्मराशिताम् ॥२४३॥
ऐरावतो गजो यस्य यस्य वज्रं महायुधम् । समेरुवारिधिं क्षोणीं योऽनायासात् समुद्वहेत् ॥२४४॥
सोऽयं[6] मानुषमात्रेण विद्याभाजाऽल्पशक्तिना । आनीयते कथं भङ्गं प्रभुः स्वर्गनिवासिनाम् ॥२४५॥
बन्दीगृहगृहीतोऽसौ प्रभुणा रक्षसां किल । लङ्कायां निवसन् कारागृहे नित्यं सुसंयतः ॥२४६॥
मृगैः सिंहवधः सोऽयं शिलानां पेषणं तिलैः । वधो गण्डूपदेनाहेर्गजेन्द्रशसनं शुना ॥२४७॥

धारण करनेवाला वह कुम्भकर्ण जब जागता था तब भूख और प्याससे इतना व्याकुल हो उठता था कि सामने हाथी आदि जो भी दिखते थे उन्हें खा जाता था। इस प्रकार वह बहुत ही दुर्धर था ॥२३५॥ तिर्यंच, मनुष्य और देवोंके द्वारा वह तृप्ति कर पुनः सो जाता था उस समय उसके पास अन्य कोई भी पुरुष नहीं ठहर सकता था ॥२३६॥ अहो ! कितने आश्चर्य की बात है कि पापवर्धक खोटे ग्रन्थोंकी रचना करनेवाले मूर्ख कुकवियोंने उस विद्याधर कुमारका कैसा बीभत्स चरित चित्रण किया है ॥२३७॥ जिसमें यह सब चरित्र-चित्रण किया गया है वह ग्रन्थ रामायणके नामसे प्रसिद्ध है और जिसके विषयमें यह प्रसिद्धि है कि वह सुननेवाले मनुष्योंके समस्त पाप तत्क्षणमें नष्ट कर देता है ॥२३८॥ सो जिसका चित्त तापका त्याग करनेके लिए उत्सुक है उसके लिए यह रामायण मानो अग्निका समागम है और जो शीत दूर करनेकी इच्छा करता है उसके लिए मानो हिममिश्रित शीतल वायुका समागम है ॥२३९॥ घीकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यका जिस प्रकार पानीका बिलोवना व्यर्थ है और तेल प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यका बालूका पेलना निःसार है उसी प्रकार पाप त्यागकी इच्छा करनेवाले मनुष्यका रामायणका आश्रय लेना व्यर्थ है ॥२४०॥ जो महापुरुषोंके चारित्रमें प्रकट करते हैं ऐसे अधर्म शास्त्रोंमें भी पापी पुरुषोंने धर्मशास्त्रकी कल्पना कर रखी है ॥२४१॥ रामायणमें यह भी लिखा है कि रावणने कान तक खींचकर छोड़े हुए बाणोंसे देवोंके अधिपति इन्द्रको भी पराजित कर दिया था ॥२४२॥ अहो ! कहाँ तो देवोंका स्वामी इन्द्र और कहाँ वह तुच्छ मनुष्य जो कि इन्द्रकी चिन्तामात्रसे भस्मकी राशि हो सकता है ? ॥२४३॥ जिसके ऐरावत हाथी था और वज्र जैसा महान् शस्त्र था तथा जो सुमेरु पर्वत और समुद्रोंसे सुशोभित पृथिवीको अनायास ही उठा सकता था ॥२४४॥ ऐसा इन्द्र अल्प शक्ति के धारक विद्याधरके द्वारा जो कि एक साधारण मनुष्य ही था कैसे पराजित हो सकता था ॥२४५॥ उसमें यह भी लिखा है कि राक्षसोंके राजा रावणने इन्द्रको अपने बन्दीगृहमें पकड़कर रखा था और उसने बन्धनसे बद्ध होकर लंकाके बन्दीगृहमें चिरकाल तक निवास किया था ॥२४६॥ सो ऐसा कहना मृगोंके द्वारा सिंहका वध होना, तिलोंके द्वारा शिलाओंका पीसा जाना, पनिया साँपके द्वारा नागका मारा जाना और कुत्ताके द्वारा गजराजका दमन होनेके समान है ॥२४७॥ व्रतके धारक

---

१. कुमारकैः क. । २. कच्छकैः म. । ३. तापश्च जन (?) म. । ४. कामस्य म. । ५. पीलनं ख. । ६. सोऽहं म. ।

वतप्राप्तेन रामेण सौवर्णो रुरुराहतः । सुग्रीवस्याग्रजः रुग्यर्थं जनकेन समस्तथा ॥२४८॥
अश्रद्धेयमिदं सर्वं वियुक्तमुपपत्तिभिः । भगवन्तं गणाधीशं इत्योऽहं पृष्टास्मि गौतमम् ॥२४९॥
एवं चिन्तयतस्तस्य महाराजस्य धीमतः । वन्दिभिस्तूर्यनादान्ते जयशब्दो महान् कृतः ॥२५०॥
कुलपुत्रेण चासन्नस्वामिनो बोधमीयुषा । निसर्गेणैव पठितः श्लोकोऽर्थं जरठायुषः ॥२५१॥
प्रष्टव्या गुरवो नित्यमर्थं ज्ञातमपि स्वयम् । स तैर्निश्चयमानीतो ददाति परमं सुखम् ॥२५२॥
एतदानन्दयँश्चारु निमित्तं मगधाधिपः । शयनीयात् समुत्तस्थौ स्वस्त्रीभिः कृतमङ्गलः ॥२५३॥

मालिनीच्छन्दः

अथ कुसुमपटान्तःसुप्तनिष्क्रान्तभृङ्ग-प्रहितमधुरवादात्यन्तरम्यैकदेशात् ।
जडपवनविधूताकम्पितापाण्डुदीपान् निरगमदवनीशः श्रीमतो वासगेहात् ॥२५४॥
रदनशिखरदष्टस्पष्टबिम्बौष्ठपुष्ट-प्रतिहतजयनादं श्रीसमानद्युतीनाम् ।
करमुकुलनिबद्धस्वच्छपद्माकराणां श्रवणपथमनैषीच्चैष वाराङ्गनानाम् ॥२५५॥
अतिशयशुभचिन्तासङ्गनिष्कम्पभावाश्चरपतिरुपनीताशेषतत्कालभावः ।
धवलकमलभासो वासगेहादुपेतो रविरिव शरदभ्रोदारवृन्दादभासीत् ॥२५६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते श्रेणिकचिन्ताभिधानं नाम द्वितीयं पर्व ॥२॥

□

रामचन्द्रजीने सुवर्ण मृगको मारा था, और स्त्रीके पीछे सुग्रीवके बड़े भाई वालीको जो कि उसके पिताके समान था, मारा था ॥२४८॥ यह सब कथानक युक्तियोंसे रहित होनेके कारण श्रद्धान करनेके योग्य नहीं है। यह सब कथा मैं कल भगवान् गौतम गणधरसे पूछूँगा ॥२४९॥ इस प्रकार बुद्धिमान् महाराज श्रेणिक चिन्ता कर रहे थे कि तुरहीका शब्द बन्द होते ही वन्दीजनोंने जोरसे जयघोष किया ॥२५०॥ उसी समय महाराज श्रेणिकके समीपवर्ती चिरजीवी कुलपुत्रने जागकर स्वभाववश निम्न श्लोक पढ़ा कि जिस पदार्थको स्वयं जानते हैं उस पदार्थको भी गुरुजनोंसे नित्य ही पूछना चाहिए क्योंकि उनके द्वारा निश्चयको प्राप्त कराया हुआ पदार्थ परम सुख प्रदान करता है ॥२५१-२५२॥ इस सुन्दर निमित्तसे जो आनन्दको प्राप्त थे तथा अपनी स्त्रियोंने जिनका मंगलाचार किया था ऐसे महाराज श्रेणिक शय्यासे उठे ॥२५३॥

तदनन्तर—पुष्परूपी पटके भीतर सोकर बाहर निकले हुए भ्रमरोंकी मधुर गुंजारसे जिसका एक भाग बहुत ही रमणीय था, जिसके भीतर जलते हुए निष्प्रभ दीपक प्रातःकालकी शीत वायुके झोंकेसे हिल रहे थे और जो बहुत ही शोभासम्पन्न था ऐसे निवासगृहसे राजा श्रेणिक बाहर निकले ॥२५४॥ बाहर निकलते ही उन्होंने लक्ष्मीके समान कान्तिवाली तथा करकुड्मलोंके द्वारा कमलोंकी शोभाको प्रकट करनेवाली वारांगनाओंके नुकीले दाँतोंसे दष्ट श्रेष्ठ बिम्बसे निर्गत जयनादको सुना ॥२५५॥ इस प्रकार अत्यन्त शुभ ध्यानके प्रभावसे निश्चलताको प्राप्त हुए शुभ भावसे जिन्हें तत्कालके उपयोगी समस्त शुभ भावोंकी प्राप्ति हुई थी ऐसे महाराज श्रेणिक, सफेद कमलके समान कान्तिवाले निवासगृहसे बाहर निकलकर शरद् ऋतुके मेघोंके समूहसे बाहर निकले हुए सूर्यके समान सुशोभित हो रहे थे ॥२५६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्यविरचित पद्म-चरितमें महाराज श्रेणिककी चिन्ताको प्रकट करनेवाला दूसरा पर्व पूर्ण हुआ ॥२॥

□

१. नादाभ्यन्तरस्यैकदेशात् म. । २. जयनाद म. ।

तृतीयं पर्व

आस्थानमण्डपेऽथासौ कृताशेषतनुस्थितिः । सर्वालंकारसंपन्नो निविष्टो भद्रविष्टरे ॥१॥
सामन्तैश्च प्रतीहारदत्तद्वारैरुपागतैः । केयूरकोटिसंघट्टपाटितप्रवरांशुकैः ॥२॥
पल्वलभ्रमरसंगीतमौलिमालावतंसकैः । [1]कटकांशुचयच्छन्नकराग्रस्पृष्टभूतलैः ॥३॥
ललत्प्रालम्बतरलप्रभापटलसारितैः । प्रणतः सद्गुणग्रामसमावर्जितमानसैः ॥४॥
ततस्तैरनुयातोऽसावारूढवरवाहनैः । पृष्ठाहितकुथाशोभां भद्रामारुह्य वासताम् ॥५॥
गृहीतमण्डलाग्रेण बद्धसायकधेनुना । प्रकोष्ठे दधता वामे कटकं हेमनिर्मितम् ॥६॥
वूरसुङ्गीयमानेन वायुमार्गं मुहुर्मुहुः । मृगाणामिव यूथेन नभस्वदनुगामिना ॥७॥
याहि याहि पुरोमार्गादपसर्प व्रज व्रज । चल किं स्तब्धोऽसीति पादातेन कृतध्वनिः ॥८॥
निश्चक्राम पुरो राजा वन्दिनः पठतोऽग्रतः । आकर्णयन् समाधानन्यस्तचित्तः सुभाषितम् ॥९॥
प्राप्तश्च नमसो सेनं यस्मिन्मुनिभिरावृतः । सर्वश्रुतजलस्नाननिर्मलीकृतचेतनः ॥१०॥
शुद्धध्यानसमाविष्टस्तत्त्वाख्यानपरायणः । उपविष्टः सुखस्पर्शे लब्ध्युत्पन्ने मयूरके ॥११॥
कान्त्या तारापतेस्तुल्यो दीप्त्या भास्करसंनिभः । अशोकपल्लवच्छायपाणिपादोम्बुजेक्षणः ॥१२॥

अथानन्तर दूसरे दिन शरीर सम्बन्धी समस्त क्रियाओंको पूर्ण कर सर्व आभरणोंसे सुशोभित महाराज श्रेणिक सभामण्डपमें आकर उत्तम सिंहासनपर विराजमान हुए ॥१॥ उसी समय द्वारपालोंने जिन्हें प्रवेश कराया था ऐसे आये हुए सामन्तोंने उन्हें नमस्कार किया। नमस्कार करते समय उन सामन्तोंके श्रेष्ठ वस्त्र, बाजूबन्दोंके अग्रभागके संघर्षणसे फट रहे थे, जिनपर भ्रमर गुंजार कर रहे थे ऐसी मुकुटमें लगी हुई श्रेष्ठ मालाएँ नीचे पड़ रही थीं, वलयकी किरणोंके समूहसे आच्छादित पाणितलसे वे पृथिवीतलका स्पर्श कर रहे थे, हिलती हुई मालाके मध्यमणि सम्बन्धी प्रभाके समूहसे व्याप्त थे, और महाराजके उत्तमोत्तम गुणोंके समूहसे उनके मन महाराजकी ओर आसक्त हो रहे थे ॥२-४॥ तदनन्तर श्रेष्ठ वाहनोंपर आरूढ़ हुए उन्हीं सब सामन्तोंसे अनुगत महाराज श्रेणिक, पीठपर पड़ी झूलसे सुशोभित उत्तम हथिनीपर सवार होकर श्रीवर्धमान जिनेन्द्रके समवसरणकी ओर चले ॥५॥ जिन्होंने अपने हाथमें तलवार ले रखी थी, कमरमें छुरी बाँध रखी थी, जो बायें हाथमें सुवर्ण निर्मित कड़ा पहने हुए थे, बार-बार आकाशमें दूर तक छलांग भर रहे थे और इसीलिए जो वायुके पीछे चलनेवाले वातप्रमी मृगोंके झुण्डके समान जान पड़ते थे तथा जो 'चलो चलो, मार्ग छोड़ो, हटो आगे क्यों खड़े हो गये' इस प्रकारके शब्दोंका उच्चारण कर रहे थे ऐसे भृत्योंका समूह उनके आगे कोलाहल करता जाता था ॥६-८॥ आगे-आगे वन्दीजन सुभाषित पढ़ रहे थे सो महाराज उन्हें चित्त स्थिर कर श्रवण करते जाते थे। इस प्रकार नगरसे निकलकर राजा श्रेणिक उस स्थानपर पहुँचे जहाँ गौतम गणधर विराजमान थे। गौतम स्वामी अनेक मुनियोंसे घिरे हुए थे, समस्त शास्त्ररूपी जलमें स्नान करनेसे उनकी चेतना निर्मल हो गयी थी, शुद्ध ध्यानसे सहित थे, तत्त्वोंके व्याख्यानमें तत्पर थे, सुखकर स्पर्शसे सहित एवं लब्धियोंके कारण प्राप्त हुए मयूराकार आसनपर विराजमान थे, कान्तिसे चन्द्रमाके समान थे, दीप्तिसे सूर्यके सदृश थे, उनके हाथ और पैर अशोकके पल्लवोंके

१. कटकांशुचयैश्छन्नकराग्रस्पृष्ट- म.। २. हेमनिर्मिते म.। ३. दर्पसर्प म.। ४. पाठतो क.। ५. मसूरके म, अथ 'मृगासने' इति पाठः सुष्ठु प्रतिभाति। ६. पादाम्बुजेक्षणः ख., पद्माम्बुजेक्षणः क.।

प्रशान्तेन शरीरेण भुवनं शमयन्निव । पतिर्गणस्य साधूनां गौतमाख्योऽवतिष्ठते ॥१३॥
दूरादेवावतीर्यश्च करेणोच्चरणायनः । प्रमोदोत्फुल्लनयनो ह्रीनम्रो विनयान्वितः ॥१४॥
ततस्तं त्रिपरीत्यासौ प्रणम्य च कृताञ्जलिः । दत्ताशीर्गणनाथेन धरायां समुपाविशत् ॥१५॥
अथ दन्तप्रभाजालधवलीकृतभूतलः । पर्यपृच्छदिदं राजा कुशलप्रश्नपूर्वकम् ॥१६॥
भगवन् पद्मचरितं[1] श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः । उत्पादितान्यथैवास्मिन् प्रसिद्धिः कुमतानुगैः ॥१७॥
राक्षसो[2] हि स[3] लङ्केशो विद्यावान् मानवोऽपि वा । तिर्यग्भिः परिभूतोऽसौ कथं क्षुद्रकपालकैः ॥१८॥
अस्ति[4] चात्यन्तदुर्गन्धं कथं मानुषविग्रहम् । कथं वा राक्षसेन्द्रेण वालिशिष्टेन भाषितः ॥१९॥
गत्वा वा देवनिलयं भङ्क्त्वा[5]पवनमुत्तमम् । बन्दीगृहं कथं नीतो रावणेनामराधिपः ॥२०॥
सर्वशास्त्रार्थकुशलो रोगवर्जितविग्रहः । शेते च स कथं मासान् षडेतस्य वरोऽनुजः ॥२१॥
कथं चात्यन्तगुरुभिः पर्वतैरलमुच्चतः । सेतुः शाखामृगैर्बद्धो यः सुरैरपि दुर्घटः ॥२२॥
प्रसीद भगवन्नेतत्सर्वं कथयितुं मम । उत्तारयन् बहून् भव्यान् संशयोदारकर्दमात् ॥२३॥
एवमुक्तो गणेशः[7] स निर्गतैर्दशनांशुभिः । क्षालयन्निव निःशेषं कुसुमैर्मलिनं जगत् ॥२४॥
लतागहनमध्यस्थान्नर्तयन्मुरगद्विषः । गम्भीरास्मोदनिर्घोषधीरयोदाहरद् गिरा[8] ॥२५॥
शृण्वायुष्मन् महीपाल देवानांप्रिय यत्नतः । मम वाक्यं जिनेन्द्रोक्तं तत्त्वशंसनतत्परम् ॥२६॥
रावणो राक्षसो नैव न चापि मनुजाशनः । अलीकमेव तत्सर्वं यद्वदन्ति कुवादिनः ॥२७॥

समान लाल-लाल थे, उनके नेत्र कमलोंके समान थे, अपने शान्त शरीरसे संसारको शान्त कर रहे थे, और मुनियोंके अधिपति थे ॥९-१३॥ राजा श्रेणिक दूरसे ही हस्तिनीसे नीचे उतरकर पैदल चलने लगे, उनके नेत्र हर्षसे फूल गये, और उनका शरीर विनयसे झुक गया। वहाँ जाकर उन्होंने तीन प्रदक्षिणाएँ दीं, हाथ जोड़कर प्रणाम किया और फिर गणधर स्वामीका आशीर्वाद प्राप्त कर वे पृथ्वीपर ही बैठ गये ॥१४-१५॥

तदनन्तर—दाँतोंकी प्रभासे पृथ्वी-तलको सफेद करते हुए राजा श्रेणिकने कुशल-प्रश्न पूछनेके बाद गणधर महाराजसे यह पूछा ॥१६॥ उन्होंने कहा कि हे भगवन्! मैं रामचन्द्रजीका वास्तविक चरित्र सुनना चाहता हूँ क्योंकि कुधर्मके अनुगामी लोगोंने उनके विषयमें अन्य प्रकारकी ही प्रसिद्धि उत्पन्न कर दी है ॥१७॥ लंकाका स्वामी रावण, राक्षस वंशी विद्याधर मनुष्य होकर भी तिर्यंचगतिके क्षुद्र वानरोंके द्वारा किस प्रकार पराजित हुआ ॥१८॥ वह, अत्यन्त दुर्गन्धित मनुष्य शरीरका भक्षण कैसे करता होगा? रामचन्द्रजीने कपटसे बालिको कैसे मारा होगा? देवोंके नगरमें जाकर तथा उसके उत्तम उपवनको नष्ट कर रावण इन्द्रको बन्दीगृहमें किस प्रकार लाया होगा? उसका छोटा भाई कुम्भकर्ण तो समस्त शास्त्रोंके अर्थ जाननेमें कुशल था तथा नीरोग शरीरका धारक था फिर छह माह तक किस प्रकार सोता रहता होगा? जो देवोंके द्वारा भी अशक्य था ऐसा बहुत ऊँचा पुल भारी-भारी पर्वतोंके द्वारा वानरोंने कैसे बनाया होगा? ॥१९-२२॥ हे भगवन्! मेरे लिए यह सब कहनेके अर्थ प्रसन्न हूजिए और संशयरूपी भारी कीचड़से अनेक भव्य जीवोंका उद्धार कीजिए ॥२३॥

इस प्रकार राजा श्रेणिकके पूछनेपर गौतम गणधर, अपने दाँतोंकी किरणोंसे समस्त मलिन संसारको धोकर फूलोंसे सजाते हुए और मेघ गर्जनाके समान गम्भीर वाणीके द्वारा लतागृहोंके मध्यमें स्थित मयूरोंको नृत्य कराते हुए कहने लगे ॥२४-२५॥ कि हे आयुष्मन्! हे देवोंके प्रिय! भूपाल! तू यत्नपूर्वक मेरे वचन सुन। मेरे वचन जिनेन्द्र भगवान्‌के द्वारा उपदिष्ट हैं, तथा पदार्थका सत्यस्वरूप प्रकट करनेमें तत्पर हैं ॥२६॥ रावण राक्षस नहीं था और न

---

१. चरितं ख.। २. राक्षसोऽपि हि म.। ३. सुलङ्केशो क.। ४. अति चात्यन्त म.। ५. भङ्क्त्वा पवन म.। ६. उत्तरय-म.। ७. गणेशस्य म.। ८. निर्घोषं म.।

न विना पीठबन्धेन विधातुं सद्म शक्यते । कथाप्रस्तावहीनं च वचनं छिन्नमूलकम् ॥२८॥
अतः शृणु ततस्तावत्क्षेत्रकालोपवर्णनम् । महतां पुरुषाणां च चरितं पापनाशनम् ॥२९॥
अनन्तालोकनभसो मध्ये लोकस्त्रिधा स्थितः । तालोलूखलसंकाशो [3]वलयैस्त्रिभिरावृतः ॥३०॥
तिर्यग्लोकस्य मध्येऽस्मिन् संख्यातिक्रममागतैः । वेष्टितो वलयाकारैर्द्वीपैरम्भोधिभिस्तथा ॥३१॥
कुलालचक्रसंस्थानो जम्बूद्वीपोऽयमुत्तमः । लवणाम्भोधिमध्यस्थः सर्वतो लक्षयोजनः ॥३२॥
तस्य मध्ये महामेरुर्मूले [4]वज्रमयोऽक्षयः । ततो जाम्बूनदमयो मणिरत्नमयस्ततः ॥३३॥
संध्यानुरक्तमेघौघसदृशोत्तुङ्गशृङ्गकः । कलामात्रविवरास्पृष्टसौधर्मभौमिकः [5] ॥३४॥
योजनानां सहस्राणि नवतिर्नव चोच्छ्रितः । सहस्रमवगाढश्च स्थितो वज्रमयः क्षितौ ॥३५॥
[6]विपुलं शिखरे चैकं धरण्यां दशसंगुणम् । राजते तिर्यगाकाशं [7]मातुं दण्ड इवोच्छ्रितः ॥३६॥
द्वौ च तत्र कुरुद्वीपे [8]क्षेत्रैः सप्तभिरन्विते [9] । षट् क्षेत्राणां विभङ्कारो [10]राजन्ते कुलपर्वताः ॥३७॥
द्वौ महापादपौ ज्ञेयौ विद्याधरपुरीशतम् । अधिकं दशभिस्तत्र विजयार्द्धेष्वधैकशः [11] ॥३८॥

मनुष्योंको ही खाता था। मिथ्यावादी लोग जो कहते हैं सो सब मिथ्या ही कहते हैं ॥२७॥ जिस प्रकार नींवके बिना भवन नहीं बनाया जा सकता है उसी प्रकार कथाके प्रस्तावके बिना कोई वचन नहीं कहे जा सकते हैं क्योंकि इस तरहके वचन निर्मूल होते हैं और निर्मूल होनेके कारण उनमें प्रामाणिकता नहीं आती है ॥२८॥ इसलिए सबसे पहले तुम क्षेत्र और कालका वर्णन सुनो। तदनन्तर पापोंको नष्ट करनेवाला महापुरुषोंका चरित्र सुनो ॥२९॥

अनन्त अलोकाकाशके मध्यमें तीन वातवलयोंसे वेष्टित तीन लोक स्थित हैं। अनन्त अलोकाकाशके बीचमें यह उन्नताकार लोक ऐसा जान पड़ता है मानो किसी उदूखलके बीच बड़ा भारी तालका वृक्ष खड़ा किया गया हो ॥३०॥ इस लोकका मध्यभाग जो कि तिर्यग्लोकके नामसे प्रसिद्ध है चूड़ीके आकारवाले असंख्यात द्वीप और समुद्रोंसे वेष्टित है ॥३१॥ कुम्भकारके चक्रके समान यह जम्बूद्वीप है। यह जम्बूद्वीप सब द्वीपोंमें उत्तम है, लवणसमुद्रके मध्यमें स्थित है और सब ओरसे एक लाख योजन विस्तारवाला है ॥३२॥ इस जम्बूद्वीपके मध्यमें सुमेरु पर्वत है। यह पर्वत कभी नष्ट नहीं होता, इसका मूल भाग वज्र अर्थात् हीरोंका बना है और ऊपरका भाग सुवर्ण तथा मणियों एवं रत्नोंसे निर्मित है ॥३३॥ इसकी ऊँची चोटी सन्ध्याके कारण लाल-लाल दिखनेवाले मेघोंके समूहके समान जान पड़ती है। सौधर्म स्वर्गकी भूमि और इस पर्वतके शिखरमें केवल बालके अग्रभाग बराबर ही अन्तर रह जाता है ॥३४॥ यह निन्यानबे हजार योजन ऊपर उठा है और एक हजार योजन नीचे पृथिवीमें प्रविष्ट है। पृथिवीके भीतर यह पर्वत वज्रमय है ॥३५॥ यह पर्वत पृथिवीपर दस हजार योजन और शिखरपर एक हजार योजन चौड़ा है और ऐसा जान पड़ता है मानो मध्यम लोकके आकाशको नापनेके लिए एक दण्ड ही खड़ा किया गया है ॥३६॥ यह जम्बूद्वीप भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत इन सात क्षेत्रोंसे सहित है। तथा इसीके विदेह क्षेत्रमें देवकुरु और उत्तरकुरु नामसे प्रसिद्ध दो कुरु प्रदेश भी हैं। इन सात क्षेत्रोंका विभाग करनेवाले छह कुलाचल भी इसी जम्बूद्वीपमें सुशोभित हैं ॥३७॥ जम्बू और शाल्मली ये दो महावृक्ष हैं। जम्बूद्वीपमें चौंतीस विजयार्ध पर्वत हैं और प्रत्येक विजयार्ध पर्वतपर एक सौ दस एक सौ दस विद्याधरोंकी नगरियाँ हैं ॥३८॥

१. वनं च. क.। २. तालोदूखल ख.। ३. वलिभिस्त्रिभि -म.। ४. हीरकमयः। ५. भूमिकः म.। भौमिकं विमानमिति यावत्। ६. विपुलः म., क.। ७. संगतम् म.। ८. मानदण्ड म.। ९. द्वीपो क., ख.। १०. -रन्विती क., ख.। ११. राजते क., ख.। १२. -ष्वनैकशः म.।

त्रिंशत्सप्तभिर्युक्ता राजधान्यः प्रकीर्तिताः । चतुर्दश महानद्यो जम्बूवृक्षे जिनालयः ॥३९॥
षड् भोगक्षितयः प्रोक्ता अष्टौ जिनगृहाणि च । अष्टषष्टिर्गुहामानं भवनानां च तत्स्मृतम् ॥४०॥
सिंहासनानि चत्वारि त्रिंशच्च गदितानि हु । विजयार्द्धनगा द्वौ च राजतौ परिकीर्तितौ ॥४१॥
वक्षारगिरियुक्तेषु समस्तेषु नगेषु [1]सु । भवनानि जिनेन्द्राणां राजन्ते रत्नराशिभिः ॥४२॥
जम्बूभरतसंज्ञायां क्षोण्यां दक्षिणयाशया । सुमहान् राक्षसो द्वीपो जिनबिम्बसमन्वितः ॥४३॥
महाविदेहवर्षस्य जगत्यां पश्चिमाशया । विशालः किन्नरद्वीपो जिनबिम्बोज्ज्वलः शुभः ॥४४॥
तथैरावतवर्षस्य क्षित्याम्युत्तरया दिशा । गन्धर्वो नामतो द्वीपः [2]सच्चैत्यालयभूषितः ॥४५॥
मेरोः पूर्वविदेहस्य जगत्यां पूर्वयाशया । रराज धरणद्वीपो जिनायतनसंकुलः ॥४६॥
भरतैरावतक्षेत्रे वृद्धिहानिसमन्विते । शेषास्तु भूमयः प्रोक्तास्तुल्यकालव्यवस्थिताः ॥४७॥
जम्बूवृक्षस्य भवने सुरोऽनावृतशब्दितः । शतैः किल्बिषकाख्यानामास्ते बहुभिरावृतः ॥४८॥
[4]अस्मिँश्च भरतक्षेत्रे पुरोत्तरकुरूपमम् । कल्पपादपसंकीर्णं सुषमायां विराजते ॥४९॥
तरुणादित्यसंकाशा गव्यूतित्रयमुच्छ्रिताः । सर्वलक्षणसंपूर्णाः प्रजा यत्र विरेजिरे ॥५०॥
युग्ममुत्पद्यते तत्र पल्यानां त्रयमायुषा । प्रेमबन्धनबद्धं च म्रियते युगलं समम् ॥५१॥

जम्बूद्वीपमें बत्तीस विदेह, एक भरत और एक ऐरावत ऐसे चौंतीस क्षेत्र हैं और एक-एक क्षेत्रमें एक-एक राजधानी है इस तरह चौंतीस राजधानियाँ हैं, चौदह महानदियाँ हैं, जम्बूवृक्षके ऊपर अकृत्रिम जिनालय है ॥३९॥ हैमवत, हरिवर्ष, रम्यक, हैरण्यवत, देवकुरु और उत्तरकुरु इस प्रकार छह भोगभूमियाँ हैं। मेरु, गजदन्त, कुलाचल, वक्षारगिरि, विजयार्ध, जम्बूवृक्ष और शाल्मलीवृक्ष, इन सात स्थानोंपर अकृत्रिम तथा सर्वत्र कृत्रिम इस प्रकार आठ जिनमन्दिर हैं। बत्तीस विदेह क्षेत्रके तथा भरत और ऐरावतके एक-एक इस प्रकार कुल चौंतीस विजयार्ध पर्वत हैं। उनमें प्रत्येकमें दो-दो गुफाएँ हैं इस तरह अड़सठ गुफाएँ हैं। और इतने ही भवनोंकी संख्या है ॥४०॥ बत्तीस विदेह क्षेत्र तथा एक भरत और एक ऐरावत इन चौंतीस स्थानोंमें एक साथ तीर्थंकर भगवान् हो सकते हैं इसलिए समवसरणमें भगवान्के चौंतीस सिंहासन हैं। विदेहके सिवाय भरत और ऐरावत क्षेत्रमें रजतमय दो विजयार्ध पर्वत कहे गये हैं ॥४१॥ वक्षारगिरियोंसे युक्त समस्त पर्वतोंपर जिनेन्द्र भगवान्के मन्दिर हैं जो कि रत्नोंकी राशिसे सुशोभित हो रहे हैं ॥४२॥ जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रकी दक्षिण दिशामें जिन-प्रतिमाओंसे सुशोभित एक बड़ा भारी राक्षस नामका द्वीप है ॥४३॥ महाविदेह क्षेत्रकी पश्चिम दिशामें जिनबिम्बोंसे देदीप्यमान किन्नरद्वीप नामका विशाल शुभद्वीप है ॥४४॥ ऐरावत क्षेत्रकी उत्तर दिशामें गन्धर्व नामका द्वीप है जो कि उत्तमोत्तम चैत्यालयोंसे विभूषित है ॥४५॥ मेरु पर्वतसे पूर्वकी ओर जो विदेह क्षेत्र है उसकी पूर्व दिशामें धरणद्वीप सुशोभित हो रहा है। यह धरण द्वीप भी जिन-मन्दिरोंसे व्याप्त है ॥४६॥ भरत और ऐरावत ये दोनों क्षेत्र वृद्धि और हानिसे सहित हैं। अन्य क्षेत्रोंकी भूमियाँ व्यवस्थित हैं अर्थात् उनमें कालचक्रका परिवर्तन नहीं होता ॥४७॥ जम्बूवृक्षके ऊपर जो भवन है उसमें अनावृत नामका देव रहता है। यह देव किल्बिष जातिके अनेक शत देवोंसे आवृत रहता है ॥४८॥ इस भरत क्षेत्रमें जब पहले सुषमा नामका पहला काल था तब वह उत्तरकुरुके समान कल्पवृक्षोंसे व्याप्त था अर्थात् यहाँ उत्तम भोगभूमिकी रचना थी ॥४९॥ उस समय यहाँके लोग मध्याह्नके सूर्यके समान देदीप्यमान, दो कोश ऊँचे और सर्वलक्षणोंसे पूर्ण-सुशोभित होते थे ॥५०॥ यहाँ स्त्री-पुरुषका जोड़ा साथ-ही-साथ उत्पन्न होता था, तीन

---

१. जम्बूवृक्षो क.। 'विजयार्द्धनगाश्चापि राजताः परिकीर्तिताः' इत्यपि पाठः टिप्पणपुस्तके संकलितः। २. च. म.। ३. सच्चैत्यालय म., क.। ४. 'अस्मिंश्च भरतक्षेत्रं पुरोत्तरकुरूपमाम्। कल्पानां पादपाः कीर्णं सुषमायां विराजिरे ॥' क.।

कालेन चित्ता भूमी रत्नैश्च मणिभिस्तथा । कालानुभावतश्चित्रैः सर्वकामफलप्रदा ॥५२॥
चतुरङ्गुलमानैश्च चित्रैर्गन्धेन चारुभिः । विमलातिमृदुस्पर्शैस्तृणैश्छन्ना[1] विराजिता ॥५३॥
सर्वर्तुफलपुष्पैश्च तरवो रेजुरुज्ज्वलाः । स्वतन्त्राश्च सुखेनास्थुर्गोमहिष्यादिकादयः ॥५४॥
कल्पवृक्षसमुत्पन्नं भक्षयन्तो यथेप्सितम् । अन्नं सिंहादयः सौम्या हिंसां तत्र न चक्रिरे ॥५५॥
पद्मादिजलजच्छन्नाः सौवर्णमणिशोभिनाः[2] । सम्पूर्णा रेजिरे वाप्यो मधुक्षीरघृतादिभिः ॥५६॥
गिरयोऽत्यन्तमुत्तुङ्गाः पञ्चवर्णसमुज्ज्वलाः । नानारत्नकरच्छन्नाः[3] सर्वप्राणिसुखावहाः ॥५७॥
नद्यो निर्जन्तुका रम्याः क्षीरसर्पिर्मधूदकाः । अत्यन्तसुरसास्वादा रत्नोद्योतितरोधसः[4] ॥५८॥
नातिशीतं न चात्युष्णं तीव्रमारुतवर्जितम् । सर्वप्रतिभयैर्मुक्तं नित्योद्भूतसमुत्सवम् ॥५९॥
ज्योतिर्द्रुमप्रभाजालच्छन्नेन्दुरविमण्डलम्[5] । सर्वेन्द्रियसुखास्वादप्रदकल्पमहातरु[6] ॥६०॥
प्रासादास्तत्र वृक्षेषु विपुलोद्यानभूमयः । शयनासनमैद्येष्ट[7]स्वादुपानाशनानि च ॥६१॥
वस्त्रानुलेपनादीनि तूर्यशब्दा मनोहराः । आमोदिनस्तथा गन्धाः सर्वं चैत्यत्तरूद्भवम्[8] ॥६२॥
दशभेदेषु तेष्वेवं कल्पवृक्षेषु चारुषु । रेमिरे तत्र युग्मानि सुरलोक इवानिशम् ॥६३॥
एवं प्रोक्ते गणेशेन पुनः श्रेणिकभूपतिः । भोगभूमौ समुत्पत्तेः कारणं परिपृष्टवान[9] ॥६४॥
कथितं च गणेशेन तत्रत्ये प्रगुणा जनाः । साधुदानसमायुक्ता भवन्त्येते सुमानुषाः ॥६५॥

पल्यकी उनकी आयु होती थी और प्रेम बन्धनबद्ध रहते हुए साथ-ही-साथ उनकी मृत्यु होती थी ॥५१॥ यहाँकी भूमि सुवर्ण तथा नाना प्रकारके रत्नोंसे खचित थी और कालके प्रभावसे सबके लिए मनोवांछित फल प्रदान करनेवाली थी ॥५२॥ सुगन्धित, निर्मल तथा कोमल स्पर्श-वाली, चतुरंगुल प्रमाण घाससे वहाँ की भूमि सदा सुशोभित रहती थी ॥ ५३ ॥ वृक्ष सब ऋतुओंके फल और फूलोंसे सुशोभित रहते थे तथा गाय, भैंस, भेड़ आदि जानवर स्वतन्त्रता-पूर्वक सुखसे निवास करते थे ॥५४॥ वहाँके सिंह आदि जन्तु कल्पवृक्षोंसे उत्पन्न हुए मनवांछित अन्नको खाते हुए सदा सौम्य—शान्त रहते थे। कभी किसी जीवकी हिंसा नहीं करते थे ॥५५॥ वहाँ की वापिकाएँ पद्म आदि कमलोंसे आच्छादित, सुवर्ण और मणियोंसे सुशोभित तथा मधु, क्षीर एवं घृत आदिसे भरी हुई अत्यधिक शोभायमान रहती थीं ॥ ५६ ॥ वहाँके पर्वत अत्यन्त ऊँचे थे, पाँच प्रकारके वर्णोंसे उज्ज्वल थे, नाना प्रकारके रत्नोंकी कान्तिसे व्याप्त थे तथा सर्व-प्राणियोंको सुख उपजानेवाले थे ॥ ५७ ॥ वहाँ की नदियाँ मगरमच्छादि जन्तुओंसे रहित थीं, सुन्दर थीं, उनका जल दूध, घी और मधुके समान था, उनका आस्वाद अत्यन्त सुरस था और उनके किनारे रत्नोंसे देदीप्यमान थे ॥५८॥ वहाँ न तो अधिक शीत पड़ती थी, न अधिक गर्मी होती थी, न तीव्र वायु चलती थी। वह सब प्रकारके भयोंसे रहित था और वहाँ निरन्तर नये-नये उत्सव होते रहते थे ॥५९॥ वहाँ ज्योतिरंग जातिके वृक्षोंकी कान्तिके समूहसे सूर्य और चन्द्रमाके मण्डल छिपे रहते थे—दिखाई नहीं पड़ते थे तथा सर्व इन्द्रियोंको सुखास्वादके देनेवाले कल्पवृक्ष सुशोभित रहते थे ॥६०॥ वहाँ बड़े-बड़े बाग-बगीचे और विस्तृत भूभागसे सहित महल, शयन, आसन, मद्य, इष्ट और मधुर पेय, भोजन, वस्त्र, अनुलेपन, तुरहीके मनोहर शब्द और दूर तक फैलनेवाली सुन्दर गन्ध तथा इनके सिवाय और भी अनेक प्रकारकी सामग्री कल्पवृक्षोंसे प्राप्त होती थी ॥६१॥ इस प्रकार वहाँके दम्पती, दस प्रकारके सुन्दर कल्पवृक्षोंके नीचे देवदम्पती-के समान रात-दिन क्रीड़ा करते रहते थे ॥ ६२-६३ ॥ इस तरह गणधर भगवान्‌के कह चुकनेपर राजा श्रेणिकने उनसे भोगभूमिमें उपजनेका कारण पूछा ॥ ६४ ॥ उत्तरमें गणधर भगवान् कहने लगे कि जो सरलचित्तके धारी मनुष्य मुनियोंके लिए आहार आदि दान देते हैं वे ही इन भोग-

---

१. कार्य—ख. । २. विराजते म. । ३. रोधसः म. । ४. रत्नाकरच्छन्नाः म. । ५. ज्योतिःक्रम म. । ६. तरुः म. । ७. -मेष्वेव म. । ८. वाद्यतरोद्भवम् ख. । ९. तत्र मे म. ।

ये पुनः कुत्सिते दानं ददते भोगतृष्णया । तेऽपि हस्त्यादितां गत्वा [1]भुञ्जते दानजं फलम् ॥६६॥
निताम्तं मृदुनि क्षेत्रे दूरं कृष्टे हलानलैः । क्षिप्तं बीजं यथानन्तगुणं सस्यं प्रयच्छति ॥६७॥
यथा चेक्षुषु निक्षिप्तं माधुर्यं वारि गच्छति । पीतं च धेनुभिस्तोयं क्षीरत्वेन [2]विवर्तते ॥६८॥
एवं साधौ तपोऽगारे व्रतालंकृतविग्रहे । सर्वग्रन्थविनिर्मुक्ते दत्तं दानं महाफलम् ॥६९॥
[3]खिले गतं यथा क्षेत्रे बीजमल्पफलं भवेत् । निम्बेषु च तथा क्षिप्तं कटुत्वं वारि गच्छति ॥७०॥
यथा च पन्नगैः पीतं क्षीरं संजायते विषम् । कुपात्रेषु तथा दत्तं दानं कुफलदं भवेत् ॥७१॥
एवं दानस्य सदृशो धरेन्द्र फलसंभवः । यद्यदाधीयते वस्तु दर्पणे तस्य दर्शनम् ॥७२॥
यथा शुक्लं च कृष्णं च पक्षद्वयमनन्तरम् । उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योरेवं क्रमसमुद्भवः ॥७३॥
अथ कौलान्वयो हानिं तेषु यातेष्वनुक्रमात् । कल्पपादपखण्डेषु शृणु कौलकरीं स्थितिम् ॥७४॥
प्रतिश्रुतिरिति ज्ञेय आद्यः कुलकरो महान् । श्रुत्वा तस्य वचः सर्वाः प्रजाः सौस्थित्यमागताः ॥७५॥
[4]ज्ञानत्रयमतीतं यो जानाति सह जिनैः सिद्धैः । शुभचेष्टासमुद्युक्तो व्यवस्थानां प्रदेशकः ॥७६॥
ततो वर्षसहस्राणामतिक्रान्तासु कोटिषु । सङ्घीषु स मनुः प्राप्तो जन्म सन्मतिसंज्ञितः ॥७७॥
ततः क्षेमंकरो जातः क्षेमधृत्तदनन्तरम् । अभूत् सीमंकरस्तस्मात् सीमधृच्च ततः परम् ॥७८॥
चक्षुष्मानपरस्तस्मात्तं गत्वा सभयाः प्रजाः । अपृच्छन्नाथ कावेतौ दृश्येते गगनार्णवे ॥७९॥
ततो जगाद चक्षुष्मान् विदेहे मनुते जिनात् । युक्तो जन्मान्तरस्मृत्या यथाकालपरिक्षये ॥८०॥

भूमियोंमें उत्तम मनुष्य होते हैं ॥६५॥ तथा जो भोगोंकी तृष्णासे कुपात्रके लिए दान देते हैं वे भी हस्ती आदिकी पर्याय प्राप्त कर दानका फल भोगते हैं ॥ ६६ ॥ जिस प्रकार हलकी नोंकसे दूर तक जुते और अत्यन्त कोमल क्षेत्रमें बोया हुआ बीज अनन्तगुणा धान्य प्रदान करता है अथवा जिस प्रकार ईखोंमें दिया हुआ पानी मधुरताको प्राप्त होता है और गायोंके द्वारा पिया हुआ पानी दूध रूपमें परिणत हो जाता है उसी प्रकार तपके भण्डार और व्रतोंसे अलंकृत शरीरके धारक सर्व-परिग्रह रहित मुनिके लिए दिया हुआ दान महाफलको देनेवाला होता है ॥६७–६९॥ जिस प्रकार ऊषर क्षेत्रमें बोया हुआ बीज अल्पफल देता है अथवा नीमके वृक्षोंमें दिया हुआ पानी जिस प्रकार कड़आ हो जाता है और सांपोंके द्वारा पिया हुआ पानी जिस प्रकार विष रूपमें परिणत हो जाता है उसी प्रकार कुपात्रोंमें दिया हुआ दान कुफलको देनेवाला होता है ॥ ७०–७१ ॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! जो जैसा दान देता है उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है। दर्पणके सामने जो-जो वस्तु रखी जाती है वही-वही दिखाई देती है ॥७२॥

जिस प्रकार शुक्ल और कृष्णके भेदसे दो पक्ष एकके बाद एक प्रकट होते हैं उसी प्रकार उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी ये दो काल क्रमसे प्रकट होते हैं ॥७३॥ अथानन्तर तृतीय कालका अन्त होनेके कारण जब क्रमसे कल्पवृक्षोंका समूह नष्ट होने लगा तब चौदह कुलकर उत्पन्न हुए उस समयकी व्यवस्था कहता हूँ सो हे श्रेणिक ! सुन ॥७४॥ सबसे पहले प्रतिश्रुति नामके प्रथम कुलकर हुए। उनके वचन सुनकर प्रजा आनन्दको प्राप्त हुई ॥७५॥ वे अपने तीन जन्म पहलेकी बात जानते थे, शुभचेष्टाओंके चलानेमें तत्पर रहते थे और सब प्रकारकी व्यवस्थाओंका निर्देश करनेवाले थे ॥ ७६ ॥ उनके बाद अनेक करोड़ हजार वर्ष बीतनेपर सन्मति नामके द्वितीय कुलकर उत्पन्न हुए ॥७७॥ उनके बाद क्षेमंकर, फिर क्षेमन्धर, तत्पश्चात् सीमंकर और उनके पीछे सीमन्धर नामके कुलकर उत्पन्न हुए ॥७८॥ उनके बाद चक्षुष्मान् कुलकर हुए। उनके समय प्रजा सूर्य चन्द्रमाको देखकर भयभीत हो उनसे पूछने लगी कि हे स्वामिन् ! आकाशरूपी समुद्रमें ये दो पदार्थ क्या दिख रहे हैं ? ॥७९॥ प्रजाका प्रश्न सुनकर चक्षुष्मान्को अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आया।

१. भुञ्जन्ते म. । २. निवर्तते म. । ३. खले म. । ४. अथो ख. । ५. कालान्तरोत्पत्त्या म. । ६. क्षेमभृत् म. ।

क्षीणेषु धृतिकृक्षेषु समुद्भूतप्रभाविमौ । चन्द्रादित्याविति ख्यातौ ज्योतिर्देवौ स्फुटौ स्थितौ ॥८१॥
ज्योतिषा भावनाः कल्पा व्यन्तराश्च चतुर्विधाः । देवा भवन्ति योग्येन कर्मणा जन्तवो भवे ॥८२॥
तत्राद्यं चन्द्रमाः शीतस्तीव्ररुस्त्वेष भास्करः । एतौ कालस्वभावेन दृश्येते गगनामरौ ॥८३॥
मानावस्तंगते तीव्रे कान्तिर्भवति शीतगोः । व्योम्नि नक्षत्रचक्रं च प्रकटत्वं प्रपद्यते ॥८४॥
स्वभावमिति कालस्य ज्ञात्वा त्यजत भीतताम् । इत्युक्ता भयमत्यस्य प्रजा याता यथागतम् ॥८५॥
चक्षुष्मति ततोऽतीते यशस्वीति समुद्गतः । विज्ञेयो विपुलस्तस्मादभिचन्द्रः परस्ततः ॥८६॥
चन्द्राभश्च परस्तस्मान्मरुदेवस्ततुसरः । ततः प्रसेनजिज्जातो नाभिरन्त्यस्ततोऽभवत् ॥८७॥
एते पितृसमाः प्रोक्ताः प्रजानां कुलकारिणः । शुभैः कर्मभिरुत्पन्नाश्चतुर्दश समा धिया ॥८८॥
अथ कल्पद्रुमो नाभेरस्य क्षेत्रस्य मध्यगः । स्थितः प्रासादरूपेण विभात्यत्यन्तमुन्नतः ॥८९॥
मुक्तादामचितो हेमरत्नकल्पितभित्तिकः । श्रितो स एक एवासीत् वाप्युद्यानविभूषितः ॥९०॥
गृहीतहृदया तस्य बभूव घनितोसमा । प्रचलत्तारका भार्या रोहिणीव कलावतः ॥९१॥
गङ्गेव वाहिनीशस्य महाभूभृत्कुलोद्गता । हंसीव राजहंसस्य मानसानुगमक्षमा ॥९२॥

उस समय उन्होंने विदेह क्षेत्रमें भी जिनेन्द्रदेवके मुखसे जो कुछ श्रवण किया था वह सब स्मरणमें आ गया। उन्होंने कहा कि तृतीय कालका क्षय होना निकट है इसलिए ज्योतिरंग जातिके कल्प वृक्षोंकी कान्ति मन्द पड़ गयी है और चन्द्रमा तथा सूर्यकी कान्ति प्रकट हो रही है। ये चन्द्रमा और सूर्य नामसे प्रसिद्ध दो ज्योतिषी देव आकाशमें प्रकट दिख रहे हैं ॥८०-८१॥ ज्योतिषी, भवनवासी, व्यन्तर और कल्पवासीके भेदसे देव चार प्रकारके होते हैं। संसारके प्राणी अपने-अपने कर्मोंकी योग्यताके अनुसार इनमें जन्म ग्रहण करते हैं ॥८२॥ इनमें जो शीत किरणोंवाला है वह चन्द्रमा है और जो उष्ण किरणोंका धारक है वह सूर्य है। कालके स्वभावसे ये दोनों आकाशगामी देव दिखाई देने लगे हैं ॥८३॥ जब सूर्य अस्त हो जाता है तब चन्द्रमाकी कान्ति बढ़ जाती है। सूर्य और चन्द्रमाके सिवाय आकाशमें यह नक्षत्रोंका समूह भी प्रकट हो रहा है ॥८४॥ यह सब कालका स्वभाव है ऐसा जानकर आप लोग भयको छोड़ें। चक्षुष्मान् कुलकरने जब प्रजासे यह कहा तब वह भय छोड़कर पहलेके समान सुखसे रहने लगी ॥८५॥ जब चक्षुष्मान् कुलकर स्वर्ग-गामी हो गये तो उनके बाद यशस्वी नामक कुलकर उत्पन्न हुए। उनके बाद विपुल, उनके पीछे अभिचन्द्र, उनके पश्चात् चन्द्राभ, उनके अनन्तर मरुदेव, उनके बाद प्रसेनजित् और उनके पीछे नाभिनामक कुलकर उत्पन्न हुए। इन कुलकरोंमें नाभिराज अन्तिम कुलकर थे ॥८६-८७॥ ये चौदह कुलकर प्रजाके पिताके समान कहे गये हैं, पुण्य कर्मके उदयसे इनकी उत्पत्ति होती है और बुद्धिकी अपेक्षा सब समान होते हैं ॥८८॥

अथानन्तर चौदहवें कुलकर नाभिराजके समयमें सब कल्पवृक्ष नष्ट हो गये। केवल इन्हींके क्षेत्रके मध्यमें स्थित एक कल्पवृक्ष रह गया जो प्रासाद अर्थात् भवनके रूपमें स्थित था और अत्यन्त ऊँचा था ॥८९॥ उनका वह प्रासाद मोतियोंकी मालाओंसे व्याप्त था, सुवर्ण और रत्नोंसे उसकी दीवालें बनी थीं, बापी और बगीचासे सुशोभित था तथा पृथिवीपर एक अद्वितीय ही था ॥९०॥ नाभिराजके हृदयको हरनेवाली मरुदेवी नामकी उत्तम रानी थी। जिस प्रकार चन्द्रमाकी भार्या रोहिणी प्रचलत्तारका अर्थात् चंचल तारा रूप होती है उसी प्रकार मरुदेवी भी प्रचलत्तारका थी अर्थात् उसकी आँखोंकी पुतली चंचल थी ॥९१॥ जिस प्रकार समुद्रकी स्त्री गंगा महाभू-भृत्कुलोद्गता है अर्थात् हिमगिरि नामक उच्च पर्वतके कुलमें उत्पन्न हुई है उसी प्रकार मरुदेवी भी

---

१. तत्रार्य ख. । २. तीव्ररुरेष म. । ३. गगनामरैः ख. । ४. भीतितां म. । ५. इत्युक्तास्तं समाम्यर्च्य म. । ६. समाधियः म. । ७. नाभिरस्य क. ।

अरुन्धतीव नायस्य नित्यं पार्श्वानुवर्तिनी । हंसीव गमने वाचि परपुष्टवधूसमा ॥९३॥
चक्राह्वेव पतिप्रीतावित्यादिसमुदाहृतम् । यां प्रति प्रतिपद्येत सर्वं हीनोपमानताम् ॥९४॥
पूजिता सर्वलोकस्य मरुदेवीति विश्रुता । यथा त्रिलोकवन्द्यस्य धर्मस्य श्रुतदेवता ॥९५॥
[illegible] या सकलाभिरिव निर्मिता । दर्पणश्रीजिगीषेव प्रतिपाणिगृहीतिषु[1] ॥९६॥
निर्मितात्मस्वरूपेव परचित्तप्रतीतिषु । सिद्धजीवस्वभावेव त्रिलोकव्याप्तकर्मणि ॥९७॥
पुण्यवृत्तितया जैत्र्या श्रुत्येव परिकल्पिता । अमृतात्मेव तृष्यत्सु भृत्येषु वसुवृष्टिवत् ॥९८॥
सखीषु निर्वृतेस्तुल्या विलासान्मदिरात्मिका । रूपस्य परमावस्था रतेरिव तनुस्थितिः ॥९९॥
मण्डनं मुण्डमालाया यस्याश्चक्षुरभूद् वरम् । असितोत्पलदामानि केवलं भारमात्रकम् ॥१००॥
अलकभ्रमरा एव भूषा मालान्तयोः सदा । दलानि तु तमालस्य पुनरुक्तानि केवलम् ॥१०१॥
प्राणेशसंकथा एव सुभगं कर्णभूषणम् । डम्बरो रत्नकनककुण्डलादिपरिग्रहः ॥१०२॥
कपोलावेव सततं स्फुटालोकस्य कारणम् । रत्नप्रभाप्रदीपास्तु विभवायैव केवलम् ॥१०३॥

महाभूभृत्कुलोद्गता अर्थात् उत्कृष्ट राजवंशमें उत्पन्न हुई थी और राजहंसकी स्त्री जिस प्रकार मानसानुगमक्षमा अर्थात् मानस सरोवरकी ओर गमन करनेमें समर्थ रहती है उसी प्रकार मरुदेवी भी मानसानुगमक्षमा अर्थात् नाभिराजके मनके अनुकूल प्रवृत्ति करनेमें समर्थ थी ॥९२॥ जिस प्रकार अरुन्धती सदा अपने पतिके पास रहती थी उसी प्रकार मरुदेवी भी निरन्तर पतिके पास रहती थी। वह गमन करनेमें हंसीके समान थी और मधुर वचन बोलनेमें कोयलके अनुरूप थी ॥९३॥ वह पतिके साथ प्रेम करनेमें चकवीके समान थी इत्यादि जो कहा जाता है वह सब मरुदेवी के प्रति हीनोपमा दोषको प्राप्त होता है ॥९४॥ जिस प्रकार तीनों लोकोंके द्वारा वन्दनीय धर्मकी भार्या श्रुतदेवताके नामसे प्रसिद्ध है उसी प्रकार नाभिराजकी वह भार्या मरुदेवी नामसे प्रसिद्ध थी तथा समस्त लोकोंके द्वारा पूजनीय थी ॥९५॥ उसमें रंच मात्र भी ऊष्मा अर्थात् क्रोध या अहंकार की गर्मी नहीं थी इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो चन्द्रमाकी कलाओंसे ही उसका निर्माण हुआ हो। उसे प्रत्येक मनुष्य अपने हाथमें लेना चाहता था—स्वीकृत करना चाहता था इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो दर्पणकी शोभाको जीतना चाहती हो ॥९६॥ वह दूसरेके मनोगत भावको समझनेवाली थी इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो आत्मासे ही उसके स्वरूपकी रचना हुई हो। उसके कार्य तीनों लोकोंमें व्याप्त थे इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो मुक्त जीवके समान ही उसका स्वभाव था ॥९७॥ उसकी प्रवृत्ति पुण्यरूप थी इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो जिनवाणीसे ही उसकी रचना हुई हो। वह तृष्णासे भरे भृत्योंके लिए धनवृष्टिके समान थी इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो अमृत स्वरूप ही हो ॥९८॥ सखियोंको सन्तोष उपजानेवाली थी इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो निर्वृति अर्थात् मुक्तिके समान ही हो। उसका शरीर हाव-भाव-विलाससे सहित था इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो मदिरास्वरूप ही हो। वह सौन्दर्यकी परम काष्ठाको प्राप्त थी अर्थात् अत्यन्त सुन्दरी थी इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो रतिकी प्रतिमा ही हो ॥९९॥ उसके मस्तकको अलंकृत करनेके लिए उसके नेत्र ही पर्याप्त थे, नील कमलोंकी मालाएँ तो केवल भारस्वरूप ही थीं ॥१००॥ भ्रमरके समान काले केश ही उसके ललाटके दोनों भागोंके आभूषण थे, तमालपुष्पकी कलिकाएँ तो केवल भार मात्र थीं ॥१०१॥ प्राणवल्लभकी कथा-वार्ता सुनना ही उसके कानोंका आभूषण था, रत्न तथा सुवर्णके कुण्डल आदिका धारण करना आडम्बर मात्र था ॥१०२॥ उसके दोनों कपोल ही निरन्तर स्पष्ट प्रकाशके कारण

---

१. प्रतिप्राणिगृहीतिषु म.।

हासा एव च सद्गन्धाः पटवासाः सितत्विषः । कर्पूरपांशवः कान्तिव्याघातायैव केवलम् ॥१०४॥
वाक्येव मधुरा वीणा वाद्यश्रुतिकुतूहलम् । कृतं तु परिवर्गेण तन्त्रीनिकरताडनम् ॥१०५॥
कान्तिरेवाधरोद्भूता रागोऽङ्गस्य सदुज्ज्वलः निर्गुणः कौङ्कुमः पङ्के [illegible] कलङ्कनम् ॥१०६॥
परिहासप्रहाराय भुजावेव सुकोमलौ । प्रयोजनमतीतानि मृणालशकलानि तु ॥१०७॥
यौवनोष्मसमुद्भूता मण्डनं स्वेदबिन्दवः । कुचयोर्हारभारस्तु वृथैव परिकल्पितः ॥१०८॥
शिलातलविशाला च श्रोणी विस्मयकारणम् । [1]निमित्तेन विना जाता भवने मणिवेदिका ॥१०९॥
भूषणं भ्रमरा एव निलीनाः कमलाशया । पादयोरैन्द्रनीले च नूपुरे निःप्रयोजने ॥११०॥
तस्या नाभिसमेताया भोगं कल्पतरूद्भवम् । भुञ्जानाया दुराख्यानं ग्रन्थकोटिशतैरपि ॥१११॥
इन्द्राज्ञापरितुष्टाभिर्दिक्कुमारीभिरादरात् । कर्मस्विष्टसमये प्राप्ते परिचर्या प्रवर्तिता ॥११२॥
नन्दाज्ञापय जीवेति कृतशब्दाः ससंभ्रमम् । प्रतीयुः शासनं तस्या लक्ष्मीश्रीधृतिकीर्तयः ॥११३॥
स्तुवन्ति काश्चित्तत्काले तां गुणैर्हृदयंगमैः । काश्चिदुत्परमविज्ञाना उपगायन्ति वीणया ॥११४॥
अत्यन्तमद्भुतं काश्चिद्गायन्ति श्रवणामृतम् । पादयोर्लोटनं काश्चित्कुर्वते मृदुपाणिकाः ॥११५॥
ताम्बूलदायिनी काचित्काचिदासनदायिनी । मण्डलाग्रकरा काचित् सततं पालनोद्यता ॥११६॥
काश्चिदभ्यन्तरद्वारे बाह्यद्वारे तथा परा । गृहीतकुन्तसौवर्णवेत्रदण्डासिहेतयः ॥११७॥

थे, रत्नमय दीपकोंकी प्रभा केवल वैभव बतलानेके लिए ही थी ॥१०३॥ उसकी मन्द मुसकान ही उत्तम गन्धसे युक्त सुगन्धित चूर्ण थी, कपूरकी सफेद रज केवल कान्तिको नष्ट करनेवाली थी ॥१०४॥ उसकी वाणी ही मधुर वीणा थी, परिकरके द्वारा किया हुआ जो बाजा सुननेका कौतूहल था वह मात्र तारोंके समूहको ताडन करना था ॥१०५॥ उसके अधरोष्ठसे प्रकट हुई कान्ति ही उसके शरीरका देदीप्यमान अंगराग था। कुंकुम आदिका लेप गुणरहित तथा सौन्दर्यको कलंकित करनेवाला था ॥१०६॥ उसकी कोमल भुजाएँ ही परिहासके समय पतिपर प्रहार करनेके लिए पर्याप्त थीं, मृणालके टुकड़े निष्प्रयोजन थे ॥१०७॥ यौवनकी गरमीसे उत्पन्न हुई पसीनेकी बूँदें ही उसके दोनों स्तनोंका आभूषण थीं, उनपर हारका बोझ तो व्यर्थ ही डाला गया था ॥१०८॥ शिलातलके समान विशाल उसकी नितम्बस्थली ही आश्चर्यका कारण थी, महलके भीतर जो मणियोंकी वेदी बनायी गयी थी वह बिना कारण ही बनायी गयी थी ॥१०९॥ कमल समझकर बैठे हुए भ्रमर ही उसके दोनों चरणोंके आभूषण थे, उनमें जो इन्द्रनील मणिके नूपुर पहनाये गये थे वे व्यर्थ थे ॥११०॥ नाभिराजके साथ, कल्पवृक्षसे उत्पन्न हुए भोगोंको भोगनेवाली मरुदेवीके पुण्यवैभवका वर्णन करना करोड़ों ग्रन्थोंके द्वारा भी अशक्य है ॥१११॥

जब भगवान् ऋषभदेवके गर्भावतारका समय प्राप्त हुआ तब इन्द्रकी आज्ञासे सन्तुष्ट हुई दिक्कुमारी देवियाँ बड़े आदरसे मरुदेवीकी सेवा करने लगीं ॥११२॥ 'वृद्धिको प्राप्त होओ', 'आज्ञा देओ', 'चिरकाल तक जीवित रहो' इत्यादि शब्दोंको सम्भ्रमके साथ उच्चारण करनेवाली लक्ष्मी, श्री, धृति और कीर्ति आदि देवियाँ उसकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करने लगीं ॥११३॥ उस समय कितनी ही देवियाँ हृदयहारी गुणोंके द्वारा उसकी स्तुति करती थीं, और उत्कृष्ट विज्ञानसे सम्पन्न कितनी ही देवियाँ वीणा बजाकर उसका गुणगान करती थीं ॥११४॥ कोई कानोंके लिए अमृतके समान आनन्द देनेवाला आश्चर्यकारक उत्तम गान गाती थीं और कोमल हाथोंवाली कितनी ही देवियाँ उसके पैर पलोटती थीं ॥११५॥ कोई पान देती थी, और कोई आसन देती थी और कोई तलवार हाथमें लेकर सदा रक्षा करनेमें तत्पर रहती थी ॥११६॥ कोई महलके भीतरी द्वारपर और कोई महलके बाहरी द्वारपर भाला, सुवर्णकी छड़ी, दण्ड और तलवार आदि हथि-

१. निमित्तेन म., ख. । २. प्राप्ता ख., प्राप्त क. ।

चामरग्राहिणी काचित्काचिच्छत्रस्य धारिका । आनेत्री वाससां काचिद् भूषणानां ततः परा ॥११७॥
शयनीयविधौ काचित् सक्ता सम्मार्जने परा । पुष्पप्रकरणे काचित्काचिद्गन्धानुलेपने ॥११९॥
पानाशनविधौ काचित् काचिदाह्वानकर्मणि । एवं कर्तव्यतां तस्याः सर्वाः कुर्वन्ति देवताः ॥१२०॥
चिन्तायाः अपि न क्लेशं प्रापेदं नृपवल्लभा । अन्यदा शयनीये स्वे सुप्ता सात्यन्तकोमले ॥१२१॥
पटांशुकपरिच्छन्ने प्रान्तयोः सोपधानके । तस्या मध्ये सुखं लब्धा स्वपुण्यपरिपाकतः ॥१२२॥
गृहीतामलशस्त्राभिर्देवीभिः पर्युपासिता । अद्राक्षीत् षोडश स्वप्नानिति श्रेयोविधायिनः ॥१२३॥
करटच्युतदानाम्बुगन्धसंबद्धषट्पदम् । वारणं चन्द्रधवलं मन्द्रगर्जितकारणम् ॥१२४॥
वृषभं दुन्दुभिस्कन्धं शुभदं शुभ्रदं शुभम् । सदृशं शरदभ्रौघसंघाताकारधारिणम् ॥१२५॥
शीतांशुकिरणश्वेतकेसरालीविराजितम् । शशिरेखासदृग्दंष्ट्राद्वन्द्वयुक्तं मृगाधिपम् ॥१२६॥
सिच्यमानां श्रियं नागैः कुम्भैः सौवर्णराजितैः । उत्फुल्लपुण्डरीकस्थ स्थितामुपरि निश्चलाम् ॥१२७॥
पुन्नागमालतीकुन्दचम्पकादिप्रकल्पिते । नितान्तं दामनी दीर्घे सौरभाकृष्टषट्पदे ॥१२८॥
उदयाचलमूर्धस्थं प्रध्वस्ततिमिरौघवम् । विश्रब्धदर्शनं भानुं मुक्तं मेघाद्युपद्रवैः ॥१२९॥
बन्धुं कुमुदखण्डानां मण्डनं रात्रियोषितः । धवलीकृतसर्वाशं किरणैस्तारकापतिम् ॥१३०॥
अन्योन्यप्रेमसंबन्धं प्रस्फुरद्विमले जले । विद्युत्पुञ्जसमाकारं मीनयोर्युगलं शुभम् ॥१३१॥

चार लेकर पहरा देती थीं ॥११७॥ कोई चमर ढोलती थीं, कोई वस्त्र लाकर देती थी और कोई आभूषण लाकर उपस्थित करती थी ॥११८॥ कोई शय्या बिछानेके कार्यमें लगी थी, कोई बुहारनेके कार्यमें तत्पर थी, कोई पुष्प बिखेरनेमें लीन थी और कोई सुगन्धित द्रव्यका लेप लगानेमें व्यस्त थी ॥११९॥ कोई भोजन-पानके कार्यमें व्यग्र थी और कोई बुलाने आदिके कार्यमें लीन थी। इस प्रकार समस्त देवियाँ उसका कार्य करती थीं ॥१२०॥ इस प्रकार नाभिराजकी प्रियवल्लभा मरुदेवीको किसी बातकी चिन्ताका क्लेश नहीं उठाना पड़ता था अर्थात् बिना चिन्ता किये ही समस्त कार्य सम्पन्न हो जाते थे। एक दिन वह चीनवस्त्रसे आच्छादित तथा जिसके दोनों ओर तकिया रखे हुए थे, ऐसी अत्यन्त कोमल शय्यापर सो रही थी और उसके बीच अपने पुण्यकर्मके उदयसे सुखका अनुभव कर रही थी ॥१२१-१२२॥ निर्मल शस्त्र लेकर देवियाँ उसकी सेवा कर रही थीं उसी समय उसने कल्याण करनेवाले निम्नलिखित सोलह स्वप्न देखे ॥१२३॥ पहले स्वप्नमें गण्डस्थलसे च्युत मदजलकी गन्धसे जिसपर भ्रमर लग रहे थे ऐसा तथा चन्द्रमाके समान सफेद और गम्भीर गर्जना करनेवाला हाथी देखा ॥१२४॥ दूसरे स्वप्नमें ऐसा बैल देखा जिसका कि स्कन्ध दुन्दुभि नामक बाजेके समान था, जो शुभ कान्दीलको धारण कर रहा था, शब्द कर रहा था और शरद्ऋतुके मेघ समूहके समान आकारको धारण करनेवाला था ॥१२५॥ तीसरे स्वप्नमें चन्द्रमाकी किरणोंके समान धवल सटाओंके समूहसे सुशोभित एवं चन्द्रमाकी रेखाके समान दोनों दाढ़ोंसे युक्त सिंहको देखा ॥१२६॥ चौथे स्वप्नमें हाथी, सुवर्ण तथा चाँदीके कलशोंसे जिसका अभिषेक कर रहे थे, तथा जो फूले हुए कमलपर निश्चल बैठी हुई थी ऐसी लक्ष्मी देखी ॥१२७॥ पाँचवें स्वप्नमें पुन्नाग, मालती, कुन्द तथा चम्पा आदिके फूलोंसे निर्मित और अपनी सुगन्धिसे भ्रमरोंको आकृष्ट करनेवाली दो बहुत बड़ी मालाएँ देखीं ॥१२८॥ छठवें स्वप्नमें उदयाचलके मस्तकपर स्थित, अन्धकारके समूहको नष्ट करनेवाला, एवं मेघ आदिके उपद्रवोंसे रहित, निर्भय दर्शनको देनेवाला सूर्य देखा ॥१२९॥ सातवें स्वप्नमें ऐसा चन्द्रमा देखा कि जो कुमुदोंके समूहका बन्धु था—उन्हें विकसित करनेवाला था, रात्रिरूपी स्त्रीका मानो आभूषण था, किरणोंके द्वारा समस्त दिशाओंको सफेद करनेवाला था और ताराओंका पति था ॥१३०॥ आठवें स्वप्नमें जो परस्परके प्रेमसे सम्बद्ध थे, निर्मल जलमें तैर रहे थे, बिजलीके

---

१. शयने च स्वे क.। २. म पुस्तके अनयोः श्लोकयोः क्रममेदोऽस्ति। ३. ककुभम् म.।

हारोपशोभितग्रीवं पुष्पमालापरिष्कृतम् । मणिभिः कलशं पूर्णं पञ्चवर्णैः समुज्ज्वलम् ॥१३२॥
पद्मेन्दीवरसंछन्नं विमलाम्बुमहासरः । नानापक्षिगणाकीर्णं चारुसोपानमण्डितम् ॥१३३॥
चलन्मीनमहानक्रचलितोत्तुङ्गवीचिकम् । मेघपङ्क्तिसमासक्तं नभस्तुल्यं महीपतिम् ॥१३४॥
[illegible] चारु विष्टरं तुरगोत्तमम् ॥१३५॥
सुमेरुशिखराकारं सुमानं रत्नराजितम् । विमानं बुद्बुदादर्शचामरादिविभूषणम् ॥१३६॥
कल्पद्रुमगृहाकारं भवनं बहुभूमिकम् । मुक्तादामकृतच्छायं रत्नांशुपटलावृतम् ॥१३७॥
पञ्चवर्णमहारत्नराशिमत्यन्तमुन्नतम् । अन्योऽन्यकिरणोद्योतजनितेन्द्रशरासनम् ॥१३८॥
ज्वालाजटालमनलं धूमसंभववर्जितम् । प्रदक्षिणकृतावर्तमनिन्धनसमुद्भवम् ॥१३९॥
अनन्तरं च स्वप्नानां दर्शनाद्यारुदर्शना । सा प्रबोधं समायाता जयमङ्गलनिस्वनैः ॥१४०॥
त्वद्वक्त्रकान्तिसंभूतत्रपयेव निशाकरः । एष संप्रति संजातः छायया परिवर्जितः ॥१४१॥
अयं भाति सहस्रांशुरुदयाचलमस्तके । कलशो मङ्गलार्थं च सिन्दूरेणेव गुण्ठितः ॥१४२॥
संप्रति त्वस्मितेनैव तिमिरं यास्यति क्षयम् । इतीव स्वस्य वैयर्थ्यात् प्रदीपाः पाण्डुतां गताः ॥१४३॥
कुलायेभ्यश्छकुन्तानां कलकोलाहलाकुलम् । मङ्गलं ते करोतीव निजनीडसुखस्थितम् ॥१४४॥
अमी प्रभातवातेन जडमन्देन संगताः । निद्राशेषादिवेदानीं धूर्णन्ते गृहपादपाः ॥१४५॥

दण्डके समान जिनका आकार था ऐसे मीनोंका शुभ जोड़ा देखा ॥१३१॥ नौवें स्वप्नमें जिसकी ग्रीवा हारसे सुशोभित थी, जो फूलोंकी मालाओंसे सुसज्जित था और जो पंचवर्णके मणियोंसे भरा हुआ था, ऐसा उज्ज्वल कलश देखा ॥ १३२ ॥ दसवें स्वप्नमें कमलों और नील कमलोंसे आच्छादित, निर्मल जलसे युक्त, नाना पक्षियोंसे व्याप्त तथा सुन्दर सीढ़ियोंसे सुशोभित विशाल सरोवर देखा ॥१३३॥ ग्यारहवें स्वप्नमें, चलते हुए मीन और बड़े-बड़े नक्रोंसे जिनमें ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही थीं, जो मेघोंसे युक्त था तथा आकाशके समान जान पड़ता था ऐसा सागर देखा ॥१३४॥ बारहवें स्वप्नमें बड़े-बड़े सिंहोंसे युक्त, अनेक प्रकारके रत्नोंसे उज्ज्वल, सुवर्णनिर्मित, बहुत ऊँचा सुन्दर सिंहासन देखा ॥१३५॥ तेरहवें स्वप्नमें ऐसा विमान देखा कि जिसका आकार सुमेरु पर्वतके शिखरके समान था, जिसका विस्तार बहुत था, जो रत्नोंसे सुशोभित था तथा गोले दर्पण और चमर आदिसे विभूषित था ॥ १३६ ॥ चौदहवें स्वप्नमें ऐसा भवन देखा कि जिसका आकार कल्पवृक्षनिर्मित प्रासादके समान था, जिसके अनेक खण्ड थे, मोतियोंकी मालाओंसे जिसकी शोभा बढ़ रही थी और जो रत्नोंकी किरणोंके समूहसे आवृत था ॥१३७॥ पन्द्रहवें स्वप्नमें, परस्परकी किरणोंके प्रकाशसे इन्द्रधनुषको उत्पन्न करनेवाली, अत्यन्त ऊँची पाँच प्रकारके रत्नोंकी राशि देखी ॥१३८॥ और सोलहवें स्वप्नमें ज्वालाओंसे व्याप्त, धूमसे रहित, दक्षिण दिशाकी ओर आवर्त ग्रहण करनेवाली एवं ईन्धनमें रहित अग्नि देखी ॥१३९॥ स्वप्न देखनेके बाद ही सुन्दरांगी मरुदेवी बन्दीजनोंकी मंगलमय जय-जय ध्वनिसे जाग उठी ॥१४०॥ उस समय बन्दीजन कह रहे थे कि हे देवि ! यह चन्द्रमा तुम्हारे मुखकी कान्तिसे उत्पन्न हुई लज्जाके कारण ही इस समय छाया अर्थात् कान्तिसे रहित हो गया है ॥१४१॥ उदयाचलके शिखरपर यह सूर्य ऐसा जान पड़ता है मानो मंगलके लिए सिन्दूरसे अनुरंजित कलश ही हो ॥१४२॥ इस समय तुम्हारी मुसकानसे ही अन्धकार नष्ट हो जायेगा इसलिए दीपक मानो अपने आपकी व्यर्थताका अनुभव करते हुए ही निष्प्रभ हो गये हैं ॥१४३॥ यह पक्षियोंका समूह अपने घोंसलोंमें सुखसे ठहरकर जो मनोहर कोलाहल कर रहा है सो ऐसा जान पड़ता है मानो तुम्हारा मंगल ही कर रहा है ॥१४४॥ ये घरके वृक्ष प्रातःकालकी शीतल और मन्द वायुसे संगत होकर ऐसे जान पड़ते हैं मानो अवशिष्ट

---

१. बुबुदादर्श म. । २. सिन्दूरेणैव म. । ३. त्वत्स्मितेनैव म. । ४. मुखस्थितम् म. ।

[1]एषापि गृहवाप्यन्ते भानुबिम्बावलोकनात् । हृष्टाह्वयति जीवेशं चक्रवाकी कलस्वनम् ॥१४६॥
त्वद्गतिप्रेक्षणेबैते कृतोत्कण्ठा इवाधुना । कुर्वन्ति कूजितं हंसा निद्रानिर्वासकारणम् ॥१४७॥
उत्क्षिप्यमाणकंसोत्थनिःस्वनप्रतिमो महान् । अलं सारसचक्राणां [3]क्रेङ्कारोऽयं [4]विराजते ॥१४८॥
निशान्त इदयं स्पष्टो [5]जातो निर्मलचेष्टिते । देवि मुञ्चाधुना निद्रामिति वन्दिकृतस्तवा ॥१४९॥
अमुञ्चच्छयनीयं च समुद्भूततरङ्गकम् । सुमनोभिः समाकीर्णं साभ्रतारं[7]नभःसमम् ॥१५०॥
वासगेहाच्च निःक्रान्ता प्रस्थास्मकृतकर्मिका[8] । ययौ नाभिसमीपं सा दिनश्रीरिव भास्करम् ॥१५१॥
भद्रासननिविष्टाय तस्मै स्वर्वासनस्थिता । कराभ्यां कुड्मलं कृत्वा क्रमात् स्वप्नान्न्यवेदयत् ॥१५२॥
इति विज्ञानभीतेन पराधत्तीकृतः पतिः । जगाद त्वयि संभूतस्त्रैलोक्यस्य गुरुः शुभे । १५३॥
इत्युक्ता सा परं हर्षं जगाम कमलेक्षणा । मूर्तिरिन्दोरिवोदारा दधती कान्तिसंहती[9] ॥१५४॥
संभविष्यति [10]षण्मासाज्जिने शक्राज्ञयामुचत् । रत्नवृष्टिं धनाधीशो [11]मासान्पञ्चदशादृतः ॥१५५॥
तस्मिन् गर्भस्थिते यस्माज्जाता वृष्टिर्हिरण्मयी । हिरण्यगर्भनाम्नासौ स्तुतस्तस्मात् सुरेश्वरैः ॥१५६॥
ज्ञानैर्जिनस्त्रिभिर्युक्तः कुक्षौ तस्याश्चचाल न । माभूत् संचलनादस्याः पीडेति कृतमानसः ॥१५७॥
यथा दर्पणसंक्रान्तच्छायामात्रेण पावकः । आधाता न विकारस्य तथा तस्या बभूव सः ॥१५८॥

निद्राके कारण ही झूम रहे हैं ॥१४५॥ घरकी बावड़ीके समीप जो यह चकवी खड़ी है वह सूर्यका बिम्ब देखकर हर्षित होती हुई मधुर शब्दोंसे अपने प्राणवल्लभको बुला रही है ॥१४६॥ ये हंस तुम्हारी सुन्दर चालको देखनेके लिए उत्कण्ठित हो रहे हैं इसीलिए मानो इस समय निद्रा दूर करनेके लिए मनोहर शब्द कर रहे हैं ॥१४७॥ जिसकी तुलना उकेरे जानेवाले काँसेसे उत्पन्न शब्दके साथ ठीक बैठती है ऐसे यह सारस पक्षियोंका क्रेंकार शब्द अत्यधिक सुशोभित हो रहा है ॥१४८॥ हे निर्मल चेष्टाकी धारक देवि ! अब स्पष्ट ही प्रातःकाल हो गया है इसलिए इस समय निद्राको छोड़ो। इस तरह वन्दीजन जिसकी स्तुति कर रहे थे ऐसी मरुदेवीने, जिसपर चन्द्रकी सिकुड़नसे मानो लहरें उठ रही थीं तथा जो फूलोंसे व्याप्त होनेके कारण मेघ और नक्षत्रोंसे युक्त आकाशके समान जान पड़ती थी, ऐसी शय्या छोड़ दी ॥१४९-१५०॥ निवासगृहसे निकलकर जिसने समस्त कार्य सम्पन्न किये थे ऐसी मरुदेवी नाभिराजके पास इस तरह पहुँची जिस तरह कि दिनकी लक्ष्मी सूर्यके पास पहुँचती है ॥१५१॥ वहाँ जाकर वह नीचे आसनपर बैठी और उत्तम सिंहासनपर आरूढ़ हृदयवल्लभके लिए हाथ जोड़कर क्रमसे स्वप्न निवेदित करने लगी ॥१५२॥ इस प्रकार रानीके स्वप्न सुनकर हर्षसे विवश हुए नाभिराजने कहा कि हे देवि ! तुम्हारे गर्भमें त्रिलोकीनाथने अवतार ग्रहण किया है ॥१५३॥ नाभिराजके इतना कहते ही कमललोचना मरुदेवी परम हर्षको प्राप्त हुई और चन्द्रमाकी उत्कृष्ट मूर्तिके समान कान्तिके समूहको धारण करने लगी ॥१५४॥ जिनेन्द्र भगवान्‌के गर्भस्थ होनेमें जब छह माह बाकी थे तभीसे इन्द्रकी आज्ञानुसार कुबेरसे बड़े आदरके साथ रत्नवृष्टि करना प्रारम्भ कर दिया था ॥१५५॥ चूँकि भगवान्‌के गर्भस्थित रहते हुए यह पृथिवी सुवर्णमयी हो गयी थी इसलिए इन्द्रने 'हिरण्यगर्भ' इस नामसे उनकी स्तुति की थी ॥१५६॥ भगवान्, गर्भमें भी मति, श्रुत और अवधि इन तीन ज्ञानोंसे युक्त थे तथा हमारे हलन-चलनसे माताको कष्ट न हो इस अभिप्रायसे वे गर्भमें चल-विचल नहीं होते थे ॥ १५७ ॥ जिस प्रकार दर्पणमें अग्निकी छाया पड़नेसे कोई विकार नहीं होता है उसी प्रकार भगवान्‌के गर्भमें स्थित रहते हुए भी माता मरुदेवीके शरीरमें कुछ भी विकार नहीं हुआ था ॥१५८॥

---

१. एषा त्वद्गृहवाप्यन्ते म. । २. कलस्वनैः म. । ३. क्रंकारोऽयं म. । ४. विराजितः म. । ५. ज्योतिर्निर्मल म. । ६. तारा म. । ७. कर्मका क. । ८. स्वप्नान्यवेदयत् म. । ९. संहितम् क. । १०. षण्मास्ये जिने क. । ११. मासात्पञ्च दशादितः म. ।

निश्चक्राम ततो गर्भात् पूर्णे काले जिनोत्तमः । मलस्पर्शविनिर्मुक्तः स्फटिकादिव सद्मतः ॥१५९॥
ततो महोत्सवश्चक्रे नाभिना सुतजन्मनि । समानन्दितनिःशेषजनो युक्त्या यथोक्तया ॥१६०॥
त्रैलोक्यं क्षोभमायातमैन्द्रं कम्पितमासनम् । सुरासुराश्च संजाताः किंकिमेतदितिस्वनाः ॥१६१॥
अनाघ्मातस्ततः शङ्खो दध्वान भवनश्रिताम् । व्यन्तराधिपतेर्गेहेषु रराट पटहः स्वयम् ॥१६२॥
ज्योतिषां निलये जातमकस्मात् सिंहघुंहितम् । कल्पाधिपगृहे स्पष्टं घण्टारवं रराण च ॥१६३॥
एवंविधशुभोत्पातैर्ज्ञाततीर्थकरोद्भवाः । प्रचलद्भिः किरीटैश्च प्रयुक्तावधयस्ततः ॥१६४॥
प्रास्थिषन्त महोत्साहा इन्द्रा नाभीयमालयम् । वारणेन्द्रसमारूढाः कृतमण्डनविग्रहाः ॥१६५॥
ततः कन्दर्पिणः केचित् सुरा नृत्यं प्रचक्रिरे । चक्रुरास्फोटनं केचिद् बलानां केचिदुद्भटम् ॥१६६॥
केचित् केसरिणो नादं मुमुचुर्व्यासविष्टपम् । विकुर्वन्ति बहून् वेषान् केचिन् केचिज्जगुर्वरम् ॥१६७॥
उत्पतद्भिः पतद्भिश्च ततो देवैरिदं जगत् । महारावसमापूर्णं स्थानभ्रंशमिवागतम् ॥१६८॥
ततः साकेतनगरं धनदेन विनिर्मितम् । विजयार्द्धनगाकारप्राकारेण समावृतम् ॥१६९॥
पातालोदरगम्भीरपरिखाकृतवेष्टनम् । तुङ्गगोपुरकूटाग्रदूरनष्टान्तरिक्षकम् ॥१७०॥
नानारत्नकरोद्योतपटप्रावृतसद्मकम् । इन्द्राः क्षणेन संप्रापुर्महाभूतिसमन्विताः ॥१७१॥
पुरं प्रदक्षिणीकृत्य त्रिः शक्रः सहितोऽमरैः । प्रविष्टः प्रसवागारात् पौलोम्यानीय जिनम् ॥१७२॥

मद जगत् पूर्ण हो चुका तब भगवान् मलका स्पर्श किये बिना ही गर्भसे इस प्रकार बाहर निकले जिस प्रकार कि किसी स्फटिकमणि निर्मित घरसे बाहर निकले हों ॥१५९॥

तदनन्तर—नाभिराजने पुत्रजन्मका यथोक्त महोत्सव किया जिससे समस्त लोग हर्षित हो गये ॥१६०॥ तीन लोक क्षोभको प्राप्त हो गये, इन्द्रका आसन कम्पित हो गया और समस्त सुर तथा असुर 'क्या है ?' यह शब्द करने लगे ॥१६१॥ उसी समय भवनवासी देवोंके भवनोंमें बिना बजाये ही शंख बजने लगे, व्यन्तरोंके भवनोंमें अपने आप ही भेरियोंके शब्द होने लगे, ज्योतिषी देवोंके घरमें अकस्मात् सिंहोंकी गर्जना होने लगी और कल्पवासी देवोंके घरोंमें अपने-अपने घण्टा शब्द करने लगे ॥१६२-१६३॥ इस प्रकारके शुभ उत्पातोंसे तथा मुकुटोंके नम्रीभूत होनेसे इन्द्रोंने अवधिज्ञानका उपयोग किया और उसके द्वारा उन्हें तीर्थंकरके जन्मका समाचार विदित हो गया ॥१६४॥ तदनन्तर जो बहुत भारी उत्साहसे भरे हुए थे तथा जिनके शरीर आभूषणोंसे जगमगा रहे थे ऐसे इन्द्रने गजराज—ऐरावत हाथीपर आरूढ़ होकर नाभिराजके घरकी ओर प्रस्थान किया ॥१६५॥ उस समय कामसे युक्त कितने ही देव नृत्य कर रहे थे, कितने ही तालियाँ बजा रहे थे, कितने ही अपनी सेनाको उन्नत बना रहे थे, कितने ही समस्त लोकमें फैलनेवाला सिंहनाद कर रहे थे, कितने ही विक्रियासे अनेक वेष बना रहे थे, और कितने ही उत्कृष्ट गाना गा रहे थे ॥१६६-१६७॥ उस समय बहुत भारी शब्दोंसे भरा हुआ यह संसार ऊपर जानेवाले और नीचे आनेवाले देवोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो स्वकीय स्थानसे भ्रष्ट ही हो गया हो ॥१६८॥ तदनन्तर कुबेरने अयोध्या नगरीकी रचना की। वह अयोध्या नगरी विजयार्ध पर्वतके समान आकार-वाले विशाल कोटसे घिरी हुई थी ॥१६९॥ पाताल तक गहरी परिखा उसे चारों ओरसे घेरे हुए थी और ऊँचे-ऊँचे गोपुरोंके शिखरोंके अग्रभागसे वहाँका आकाश दूर तक विदीर्ण हो रहा था ॥१७०॥ महाविभूतिसे युक्त इन्द्र क्षणभरमें नाभिराजके उस घर जा पहुँचे जो कि नाना रत्नोंकी किरणोंके प्रकाशरूपी वस्त्रसे आवृत था ॥१७१॥ इन्द्रने पहले देवोंके साथ-साथ नगरकी तीन

---

१. स्फटिकादिव म. । २. व्यन्तराधिपतेर्गेहे म. । ३. ररास च ख. । ४. नृत्तं ख., म. । ५. बलानं ख., म. । ६. नादान् म. । ७. विष्टपान् म. । ८. वरम् म. । ९. -नापयज्जिनम् म. ।

जिनमातुस्ततः कृत्वा मायाबालं प्रणामिनी । बालमानीय शक्रस्य शची चक्रे करद्वये ॥१७३॥
रूपं पश्यन् जिनस्यासौ सहस्रनयनोऽपि सन् । तृप्तिमिन्द्रो न संप्राप त्रैलोक्यातिशयस्थितम् ॥१७४॥
ततस्तमङ्कमारोप्य समारुह्य गजाधिपम् । गृहीतचामरच्छत्रो भक्त्या परमया स्वयम् ॥१७५॥
अवाप मेरुशिखरं सर्वैर्देवैः समन्वितः । वैडूर्यादिमहारत्नमरीचिनिचयोज्ज्वलम् ॥१७६॥
पाण्डुकम्बलसंज्ञायां शिलायां सिंहविष्टरे । ततो जिनः सुरेशेन स्थापितः पृष्ठवर्तिना ॥१७७॥
ततः समाहता[1] भेर्यः क्षुब्धसागरनिःस्वनाः । मृदङ्गशङ्खशब्दाश्च साट्टहासाः कृताः सुरैः ॥१७८॥
यक्षकिन्नरगन्धर्वाः सह तुम्बुरुनारदाः । विश्वावसुसमायुक्ताः कुर्वाणा मूर्च्छना वराः ॥१७९॥
गायन्ति सह पत्नीभिर्मनःश्रोत्रहरं तदा । वीणावादनमारब्धा[2] कर्तुं लक्ष्मीश्च सादरा ॥१८०॥
हावभावसमेताश्च नृत्यन्त्यप्सरसो वरम् । अङ्गहारं यथावस्तु कुर्वाणाः कृतभूषणाः ॥१८१॥
एवं तत्र महातोये जनितेऽमरसत्तमैः । अभिषेकाय देवेन्द्रो जग्राह कलशं शुभम् ॥१८२॥
ततः क्षीरार्णवाम्भोभिः पूर्णैः कुम्भैर्महोदरैः । चामीकरमयैः पद्मच्छन्नवक्त्रैः सपल्लवैः ॥१८३॥
अभिषेकं जिनेन्द्रस्य चकार त्रिदशाधिपः । कृत्वा वैक्रियसामर्थ्यादात्मानं बहुविग्रहम् ॥१८४॥
यमो वैश्रवणः सोमो वरुणोऽन्ये च नाकिनः । [3]शेषशक्रादयः सर्वे चक्रुर्भक्त्याभिषेचनम् ॥१८५॥
इन्द्राणीप्रमुखा देव्यः सद्गन्धैरनुलेपनैः । चक्रुरुद्वर्तनं भक्त्या करैः पल्लवकोमलैः ॥१८६॥

प्रदक्षिणाएँ दीं। फिर नाभिराजके घरमें प्रवेश किया और तदनन्तर इन्द्राणीके द्वारा प्रसूतिका-गृहसे जिन-बालकको बुलवाया ॥१७२॥ इन्द्राणीने प्रसूतिका-गृहमें जाकर पहले जिन-माताको नमस्कार किया। फिर माताके पास मायामयी बालक रखकर जिन-बालकको उठा लिया और बाहर लाकर इन्द्रके हाथोंमें सौंप दिया ॥१७३॥ यद्यपि इन्द्र हजार नेत्रोंका धारक था तथापि तीनों लोकोंमें अतिशय पूर्ण भगवान्‌का रूप देखकर वह तृप्तिको प्राप्त नहीं हुआ था ॥१७४॥ तदनन्तर—सौधर्मेन्द्र भगवान्‌को गोदमें बैठाकर ऐरावत हाथीपर आरूढ़ हुआ और श्रेष्ठ भक्तिसे सहित अन्य देवोंने चमर तथा छत्र आदि स्वयं ही ग्रहण किये ॥१७५॥ इस प्रकार इन्द्र समस्त देवोंके साथ चलकर वैडूर्य आदि महारत्नोंकी कान्तिके समूहसे उज्ज्वल सुमेरु पर्वतके शिखरपर पहुँचा ॥१७६॥ वहाँ पाण्डुकम्बल नामकी शिलापर जो अकृत्रिम सिंहासन स्थित है उसपर इन्द्रने जिन-बालकको विराजमान कर दिया और स्वयं उनके पीछे खड़ा हो गया ॥१७७॥ उसी समय देवोंने क्षुभित समुद्रके समान शब्द करनेवाली भेरियाँ बजायीं, मृदंग और शंखके जोरदार शब्द किये ॥१७८॥ यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, तुम्बुरु, नारद और विश्वावसु उत्कृष्ट मूर्च्छनाएँ करते हुए अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ मन और कानोंको हरण करनेवाले सुन्दर गीत गाने लगे। लक्ष्मी भी बड़े आदरके साथ वीणा बजाने लगी ॥१७९-१८०॥ हाव-भावोंसे भरी एवं आभूषणोंसे सुशोभित अप्सराएँ यथायोग्य अंगहार करती हुई उत्कृष्ट नृत्य करने लगीं ॥१८१॥ इस प्रकार जब वहाँ उत्तमोत्तम देवोंके द्वारा गायन-वादन और नृत्य हो रहा था तब सौधर्मेन्द्रने अभिषेक करनेके लिए शुभ कलश हाथमें लिया ॥१८२॥ तदनन्तर जो क्षीरसागरके जलसे भरे थे, जिनकी अवगाहना बहुत भारी थी, जो सुवर्ण निर्मित थे, जिनके मुख कमलोंसे आच्छादित थे तथा लाल-लाल पल्लव जिनकी शोभा बढ़ा रहे थे, ऐसे एक हजार आठ कलशोंके द्वारा इन्द्रने विक्रियाके प्रभावसे अपने अनेक रूप बनाकर जिन-बालकका अभिषेक किया ॥१८३-१८४॥ यम, वैश्रवण, सोम, वरुण आदि अन्य देवोंने और साथ ही शेष बचे समस्त इन्द्रोंने भक्तिपूर्वक जिन-बालकका अभिषेक किया ॥१८५॥ इन्द्राणी आदि देवियोंने पल्लवोंके समान कोमल हाथोंके द्वारा समीचीन गन्धसे युक्त अनुलेपनसे भगवान्‌को

१. समाहिता म. । २. रब्धाः ख. । ३. मारब्धीकर्तुं ख. । ४. मेघवक्त्रादयः ख., म. ।

महीध्रमिव तं मार्थं कुम्भैर्जलधरैरिव । अभिषिच्य समारब्धाः कर्तुं तस्य विभूषणम् ॥१८७॥
चन्द्रादित्यसमे तस्य कर्णयोः कुण्डले कृते । तत्क्षणं सुरनाथेन वज्रसूचीविभिन्नयोः ॥१८८॥
पद्मरागमणिः शुद्धस्चूडायां विनिवेशितः । जटालमिव संपन्नं शिरो यस्य मरीचिभिः ॥१८९॥
अर्द्धचन्द्राकृतिर्न्यस्ता चन्दनेन ललाटिका । बाहुमूले कृते जात्यहेमकेयूरमण्डिते ॥१९०॥
नक्षत्रस्थूलमुक्ताभिः कल्पितेन मयूखिना । हारेण भूषितं वक्षः श्रीवत्सकृतभूषणम् ॥१९१॥
हरिन्मणिसरोजश्रीरत्नस्थूलमरीचिभिः । संजातपल्लवेनेव प्रालम्बेन विराजितः ॥१९२॥
लक्षणाभरणश्रेष्ठौ प्रकोष्ठौ दधतुः श्रियम् । मणिबन्धनचारुभ्यां कटकाभ्यां सुसंहतौ ॥१९३॥
पट्टांशुकोपरिन्यस्तकटिसूत्रेण राजितम् । नितम्बफलकं संध्यादाम्नेवावनिभृत्तटम् ॥१९४॥
सर्वाङ्गुलीषु विन्यस्तं मुद्रिकाभूषणं वरम् । नानारत्नपरिष्वक्तचामीकरविनिर्मितम् ॥१९५॥
भक्त्या कृतमिदं देवैः सर्वमण्डनयोजनम् । त्रैलोक्यमण्डनस्यास्य कुतोऽन्यन्मण्डनं परम् ॥१९६॥
चन्दनेन समालम्ब्य रोचनाः स्थासकाः कृताः । रेजुस्ते स्फटिकक्षोण्यां कनकाम्बुरुहा इव ॥१९७॥
उत्तरीयं च विन्यस्तमंशुकं कृतपुष्पकम् । अत्यन्तनिर्मलं रेजे सतारमिव तन्नभः ॥१९८॥
पारिजातकसंतानकुसुमैः परिकल्पितम् । षट्पदालीपरिष्वक्तं विनद्धं स्थूलशेखरम् ॥१९९॥
तिलकेन भ्रुवोर्मध्यं[2] सद्गन्धेन विभूषितम् । तिलकत्वं त्रिलोकस्य बिभ्रतश्चारुचेष्टितैः[3] ॥२००॥

उद्वर्तन किया ॥१८६॥ जिस प्रकार मेघोंके द्वारा किसी पर्वतका अभिषेक होता है उसी प्रकार विशाल कलशोंके द्वारा भगवान्‌का अभिषेक कर देव उन्हें आभूषण पहनानेके लिए तत्पर हुए ॥१८७॥ इन्द्रने तत्काल ही वज्रकी सूचीसे विभिन्न किये हुए उनके कानोंमें चन्द्रमा और सूर्यके समान कुण्डल पहनाये ॥१८८॥ चोटीके स्थानपर ऐसा निर्मल पद्मरागमणि पहनाया कि जिसकी किरणोंसे भगवान्‌का सिर जटाओंसे युक्तके समान जान पड़ने लगा ॥१८९॥ भालपर चन्दनके द्वारा अर्धचन्द्राकार ललाटिका बनायी। भुजाओंके मूलभाग उत्तम सुवर्णनिर्मित केयूरोंसे अलंकृत किये ॥१९०॥ श्रीवत्स चिह्नसे सुशोभित वक्षःस्थलको नक्षत्रोंके समान स्थूल मुक्ताफलोंसे निर्मित एवं किरणोंसे प्रकाशमान हारसे अलंकृत किया ॥१९१॥ हरितमणि और पद्मराग मणियोंकी बड़ी मोटी किरणोंसे जिसमें मानो पल्लव ही निकल रहे थे ऐसी बड़ी मालासे उन्हें अलंकृत किया था ॥१९२॥ लक्षणरूपी आभरणोंसे श्रेष्ठ उनकी दोनों भरी कलाइयाँ रत्नखचित सुन्दर कड़ोंसे बहुत भारी शोभाको धारण कर रही थीं ॥१९३॥ रेशमी वस्त्रके ऊपर पहनायी हुई करधनीसे सुशोभित उनका नितम्बस्थल ऐसा जान पड़ता था मानो सन्ध्याकी लाल-लाल रेखासे सुशोभित किसी पर्वत-का तट ही हो ॥१९४॥ उनकी समस्त अंगुलियोंमें नाना रत्नोंसे खचित सुवर्णमय अँगूठियाँ पहनायी गयी थीं ॥१९५॥ देवोंने भगवान्‌के लिए जो सब प्रकारके आभूषण पहनाये थे वे भक्तिवश ही पहनाये थे वैसे भगवान् स्वयं तीन लोकके आभरण थे अन्य पदार्थ उनकी क्या शोभा बढ़ाते ? ॥१९६॥ उनके शरीरपर चन्दनका लेप लगाकर जो रोचनके पीले-पीले बिन्दु रखे गये थे, वे ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो स्फटिककी भूमिपर सुवर्ण कमल ही रखे गये हों ॥१९७॥ जिसपर कसीदासे अनेक फूल बनाये गये थे ऐसा उत्तरीय वस्त्र उनके शरीरपर पहनाया गया था और वह ऐसा जान पड़ता था मानो ताराओंसे सुशोभित निर्मल आकाश ही हो ॥१९८॥ पारिजात और सन्तानक नामक कल्पवृक्षोंके फूलोंसे जिसकी रचना हुई थी, तथा जिसपर भ्रमरोंके समूह लग रहे थे ऐसा बड़ा सेहरा उनके सिरपर बाँधा गया था ॥१९९॥ चूँकि सुन्दर चेष्टाओंको धारण करने-वाले भगवान् तीन लोकके तिलक थे इसलिए उनकी दोनों भौंहोंका मध्यभाग सुगन्धित तिलकसे

---

१. भूषकम् म. । २. भ्रुवोर्मध्यं म. । ३. चेष्टितम् ख. ।

ततस्तं भूषितं सन्तं त्रिलोकस्य विभूषणम् । तुष्टास्तुष्टुवुरित्थं ते देवाः शक्रपुरस्सराः ॥२०१॥
नष्टधर्मे जगत्यस्मिन्नज्ञानतमसावृते । आस्यसे भव्यसत्त्वानामुदितस्त्वं दिवाकरः ॥२०२॥
किरणैर्जिनचन्द्रस्य विमलैस्तव वाङ्मयैः । प्रबोधं यास्यतीदानीं भव्यसत्त्वकुमुद्वती ॥२०३॥
भव्यानां सत्त्वदृष्ट्यर्थं केवलानलसंभवः । ज्वलितस्त्वं प्रदीपोऽसि स्वयमेव जगद्गृहे ॥२०४॥
पापशत्रुनिघाताय जातस्त्वं शितसायकः । कर्ता भवाटवीदाहं त्वमेव ध्यानवह्निना ॥२०५॥
दुष्टेन्द्रियमहानागदमनाय खमुद्गतः । वैनतेयो महावायुः संदेहघनसंपदाम् ॥२०६॥
धर्माम्बुबिन्दुसंप्राप्तितृषिता भव्यचातकाः । उन्मुखास्त्वामुदीक्षन्ते नाथामृतमहाघनम् ॥२०७॥
नमस्ते त्रिजगद्गीतनिरन्तामलकीर्तये । नमस्ते गुणपुष्पाय तरवे कामदायिने ॥२०८॥
कर्मकाष्ठकुठाराय तीक्ष्णधाराय ते नमः । नमस्ते मोहतुङ्गाद्रिभङ्गवज्रात्मने सदा ॥२०९॥
विध्मापकाय दुःखाग्नेर्नमस्ते सलिलात्मने । रजःसङ्गविहीनाय नमस्ते गगनात्मने ॥२१०॥
इति स्तुत्वा विधानेन प्रणम्य च पुनः पुनः । समारोप्य गजं अग्मुरयोध्याभिमुखाः सुराः ॥२११॥
मातुरङ्के[1] ततः कृत्वा शक्रः शच्या जिनार्भकम् । विधाय परमानन्दं स्वस्थानं ससुरोऽगमत् ॥२१२॥
ततस्तमम्बरैर्दिव्यैरलङ्कारैश्च भूषितम् । दिग्धं[3] च परमामोदघ्राणहार्यानुलेपनैः ॥२१३॥

अलंकृत किया गया था ॥२००॥ इस प्रकार तीन लोकके आभरणस्वरूप भगवान् जब नाना अलंकारोंसे अलंकृत हो गये तब इन्द्र आदि देव उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥२०१॥

हे भगवन् ! धर्मरहित तथा अज्ञानरूपी अन्धकारसे आच्छादित इस संसारमें भ्रमण करनेवाले लोगोंके लिए आप सूर्यके समान उदित हुए हो ॥२०२॥ हे जिनराज ! आप चन्द्रमाके समान हो सो आपके उपदेशरूपी निर्मल किरणोंके द्वारा अब भव्य जीवरूपी कुमुदिनी अवश्य ही विकासको प्राप्त होगी ॥२०३॥ हे नाथ ! आप इस संसाररूपी घरमें 'भव्य जीवोंको जीव-अजीव आदि तत्त्वोंका ठीक-ठीक दर्शन हो' इस उद्देश्यसे स्वयं ही जलते हुए वह महान् दीपक हो कि जिसकी उत्पत्ति केवलज्ञानरूपी अग्निसे होती है ॥२०४॥ पापरूपी शत्रुओंको नष्ट करनेके लिए आप तीक्ष्ण बाण हैं। तथा आप ही ध्यानरूपी अग्निके द्वारा संसाररूपी अटवीका दाह करेंगे ॥२०५॥ हे प्रभो ! आप दुष्ट इन्द्रियरूप नागोंका दमन करनेके लिए गरुड़के समान उदित हुए हो, तथा आप ही सन्देहरूपी मेघोंको उड़ानेके लिए प्रचण्ड वायुके समान हो ॥२०६॥ हे नाथ ! आप अमृत प्रदान करनेके लिए महामेघ हो इसलिए धर्मरूपी जलकी बूँदोंकी प्राप्तिके लिए तृषातुर भव्य जीवरूपी चातक ऊपरकी ओर मुख कर आपको देख रहे हैं ॥२०७॥ हे स्वामिन् ! आपकी अत्यन्त निर्मल कीर्ति तीनों लोकोंके द्वारा गायी जाती है इसलिए आपको नमस्कार हो। हे नाथ ! आप गुणरूपी फूलोंसे सुशोभित तथा मनोवांछित फल प्रदान करनेवाले वृक्षस्वरूप हैं अतः आपको नमस्कार हो ॥२०८॥ आप कर्मरूपी काष्ठको विदारण करनेके लिए तीक्ष्ण धारवाली कुठारके समान हैं अतः आपको नमस्कार हो। इसी प्रकार आप मोहरूपी उन्नत पर्वतको भेदनेके लिए वज्रस्वरूप हो इसलिए आपको नमस्कार हो ॥२०९॥ आप दुःखरूपी अग्निको बुझानेके लिए जलस्वरूप रजके संगमसे रहित आकाशस्वरूप हो अतः आपको नमस्कार हो ॥२१०॥

इस तरह देवोंने विधि-पूर्वक भगवान्‌की स्तुति की, बार-बार प्रणाम किया और तदनन्तर उन्हें ऐरावत हाथीपर सवार कर अयोध्याकी ओर प्रयाण किया ॥२११॥ अयोध्या आकर इन्द्रने जिन-बालकको इन्द्राणीके हाथसे माताकी गोदमें विराजमान करा दिया, आनन्द नामका उत्कृष्ट नाटक किया और तदनन्तर वह अन्य देवोंके साथ अपने स्थानपर चला गया ॥२१२॥ अथानन्तर

---

१. लेखः कृत्वा म. । २. तममरैः-क. । ३. लिप्तं च म. ।

हृष्टा संवीक्ष्य तनयमङ्कस्थं जननी तदा । निजच्छायापरिष्वङ्गपिञ्जरीकृतदिङ्मुखम् ॥२१४॥
आश्लिष्यन्ती मृदुस्पर्शं कौतुकव्याप्तमानसा । वाङ्मनोऽगोचरं प्राप्ता सुखार्णवम् ॥२१५॥
अङ्कासीनेन सा तेन रराज प्रमदोत्तमा । नवोदितेन पूर्वाशा बिम्बेन सवितुर्यथा ॥२१६॥
नाभिश्च तत्सुतं दृष्ट्वा दिव्यालङ्कारधारिणम् । त्रैलोक्यैश्वर्यसंयुक्तं मेने स्वं परमद्युतिम् ॥२१७॥
सुतगात्रसमासंगसंजातसुखसंपदः । मीलिताक्षित्रिभागस्य मनोऽस्य द्रवतां गतम् ॥२१८॥
सुरेन्द्रपूजया प्राप्तः प्रधानत्वं जिनो यतः । ततस्तमृषभाभिख्यां निन्यतुः पितरौ सुतम् ॥२१९॥
तयोरन्योन्यसंबद्धं प्रेम यद् वृद्धिमागतम् । तज्जातमधुना बाले पूर्वचन्द्र तयोरपि ॥२२०॥
कराङ्गुष्ठे ततो न्यस्तममृतं वज्रपाणिना । पिबन् क्रमेण संप्राप देहस्योपचयं जिनः ॥२२१॥
ततः कुमारकैर्युक्तो वयस्यैरिन्द्रनोदितैः । अनवद्यां चकारासौ क्रीडां पित्रोः सुखावहाम् ॥२२२॥
आसनं शयनं यानं भोजनं वसनानि च । चारणादिकमन्यच्च सकलं तस्य शक्रजम् ॥२२३॥
अल्पीयसैव कालेन परां वृद्धिमवाप सः । मेरुभित्तिसमाकारं विस्तीर्णोरस्कमुन्नतम् ॥२२४॥
आशागजेन्द्रमालानस्तम्भसंस्थानतां गतौ । बाहू तस्य समस्तस्य जगतः कल्पपादपौ ॥२२५॥
ऊरुदण्डद्वयं दधे स्वकान्तिकृतचर्चनम् । त्रैलोक्यगृहधृत्यर्थं स्तम्भद्वयसमुच्छ्रितम् ॥२२६॥

दिव्य वस्त्रों और अलंकारोंसे अलंकृत, तथा उत्कृष्ट सुगन्धिके कारण नासिकाको हरण करनेवाले विलेपनसे लिप्त एवं अपनी कान्तिके सम्पर्कसे दिशाओंके अग्रभागको पीला करनेवाले अंकस्थ पुत्रको देखकर उस समय माता मरुदेवी बहुत ही सन्तुष्ट हो रही थी ॥२१३-२१४॥ जिसका हृदय कौतुकसे भर रहा था ऐसी मरुदेवी कोमल स्पर्शवाले पुत्रका आलिंगन करती हुई वर्णनातीत सुखरूपी सागरमें जा उतरी थी ॥२१५॥ वह उत्तम नारी मरुदेवी गोदमें स्थित जिन-बालकसे इस प्रकार सुशोभित हो रही थी जिस प्रकार कि नवीन उदित सूर्यके बिम्बसे पूर्व दिशा सुशोभित होती है ॥२१६॥ नाभिराजने दिव्य अलंकारोंको धारण करनेवाले एवं उत्कृष्ट कान्तिसे युक्त उस पुत्रको देखकर अपने आपको तीन लोकके ऐश्वर्यसे युक्त माना था ॥२१७॥ पुत्रके शरीरके सम्बन्धसे जिन्हें सुखरूप सम्पदा उत्पन्न हुई है तथा उस सुखका आस्वाद करते समय जिनके नेत्रका तृतीय भाग निमीलित हो रहा है ऐसा नाभिराजका मन उस पुत्रको देखकर द्रवीभूत हो गया था ॥२१८॥ चूँकि वे जिनेन्द्र इन्द्रके द्वारा की हुई पूजासे प्रधानताको प्राप्त हुए थे इसलिए माता-पिताने उनका 'ऋषभ' यह नाम रखा ॥२१९॥ माता-पिताका जो परस्पर सम्बन्धी प्रेम वृद्धिको प्राप्त हुआ था वह उस समय बालक ऋषभदेवमें केन्द्रित हो गया था ॥२२०॥ इन्द्रने भगवान्‌के हाथके अँगूठेमें जो अमृत निक्षिप्त किया था उसका पान करते हुए वे क्रमशः शरीर सम्बन्धी वृद्धिको प्राप्त हुए थे ॥२२१॥ तदनन्तर, इन्द्रके द्वारा अनुमोदित समान अवस्थावाले देव-कुमारोंसे युक्त होकर भगवान् माता-पिताको सुख पहुँचानेवाली निर्दोष क्रीड़ा करने लगे ॥२२२॥ आसन, शयन, वाहन, भोजन, वस्त्र तथा चारण आदिक जितना भी उनका परिकर था वह सब उन्हें इन्द्रसे प्राप्त होता था ॥२२३॥ वे थोड़े ही समयमें परम वृद्धिको प्राप्त हो गये। उनका वक्षःस्थल मेरु पर्वतकी भित्तिके समान चौड़ा और उन्नत हो गया ॥२२४॥ समस्त संसारके लिए कल्पवृक्षके समान जो उनकी भुजाएँ थीं, वे आशा-रूपी दिग्गजोंको बाँधनेके लिए खम्भोंका आकार धारण कर रही थीं ॥२२५॥ उनके दोनों ऊरु-दण्ड अपनी निजकी कान्तिके द्वारा किये हुए लेपनको धारण कर रहे थे और ऐसे जान पड़ते थे मानो तीन लोकरूपी घरको धारण करनेके लिए दो खम्भे ही खड़े किये गये हों ॥२२६॥ उनके

---

१. देहस्योपशमं म. । २. सुखावहाः क. ।

द्वयं बभार तद्वक्त्रमन्योन्यस्य विरोधकम् । कान्त्या जितनिशानाथं दीप्त्या च जितभास्करम् ॥२२७॥
करौ तस्यारुणच्छायौ पल्लवादपि कोमलौ । [1]धूलीकारे समस्तानां भूभृतामथ च क्षमौ ॥२२८॥
निबिडः केशसंघातः स्निग्धोऽत्यन्तं बभूव च । नीलाञ्जनशिलाकारो मूर्ध्नि हेमगिरेरिव ॥२२९॥
धर्मात्मनापि लोकस्य तेन सर्वस्य लोचने । उपमानमतीतेन हृते रूपेण शंभुना ॥२३०॥
तस्मिन् काले प्रणष्टेषु कल्पवृक्षेष्वशेषतः । अकृष्टपच्यसस्येन मही सर्वा विराजते ॥२३१॥
वाणिज्यव्यवहारेण शिल्पैश्च रहिताः प्रजाः । अभावाद् धर्मसंज्ञायाः पाखण्डैश्च विवर्जिताः ॥२३२॥
आसंदिक्षुरसस्तासामाहारः षड्रसान्वितः । स्वयं छिन्नच्युतः कान्तिवीर्यादिकरणक्षमः ॥२३३॥
सोऽपि कालानुभावेन स्वयं गलति नो यदा । यन्त्रनिष्पीडनज्ञश्च न लोकोऽनुपदेशतः ॥२३४॥
पश्यन्योऽपि तदा सस्यं तत्संस्कारविधौ जडाः । सुधासंतापिताः सद्यः[2] प्रजा व्याकुलतां गताः ॥२३५॥
ततः शरणमायुक्ता नाभिं संघातमागताः । उच्चुश्चेति वचः स्तुत्वा प्रणम्य च महार्तयः ॥२३६॥
नाथ भीताः समस्तास्ते प्रक्षयं कल्पपादपाः । क्षुधा संतापितानस्मांस्त्रायस्व शरणागतान् ॥२३७॥
भूमिजं फलसंपन्नं किमप्येतच्च दृश्यते । विधिमस्य न जानीमः संस्कारे भक्षणोचितम् ॥२३८॥
स्वच्छन्दचारिणामेतद्गोकुलानां स्तनान्तरात् । क्षरद्भक्ष्यममक्ष्यं किं कथं चेति वद प्रभो ॥२३९॥

मुखने कान्तिसे चन्द्रमाको जीत लिया था और तेजने सूर्यको परास्त कर दिया था इस तरह वह परस्परके विरोधी दो पदार्थों—चन्द्रमा और सूर्यको धारण कर रहा था ॥२२७॥ यद्यपि लाल-लाल कान्तिके धारक उनके दोनों हाथ पल्लवसे भी अधिक कोमल थे तथापि वे समस्त पर्वतोंको चूर्ण करनेमें (पक्षमें समस्त राजाओंका पराजय करनेमें) समर्थ थे ॥२२८॥ उनके केशोंका समूह अत्यन्त सघन तथा सचिक्कण था और ऐसा जान पड़ता था मानो मेरु पर्वतके शिखरपर नीलांजनकी शिला ही रखी हो ॥२२९॥ यद्यपि वे भगवान् धर्मात्मा थे—हरण आदिको अधर्म मानते थे तथापि उन्होंने अपने अनुपम रूपसे समस्त लोगोंके नेत्र हरण कर लिये थे। भावार्थ—भगवान्का रूप सर्वजननयनाभिराम था ॥२३०॥ उस समय कल्पवृक्ष पूर्णरूपसे नष्ट हो चुके थे इसलिए समस्त पृथिवी अकृष्टपच्य अर्थात् बिना जोते, बिना बोये ही अपने आप उत्पन्न होनेवाली धान्यसे सुशोभित हो रही थी ॥२३१॥ उस समयकी प्रजा वाणिज्य—लेन-देनका व्यवहार तथा शिल्पसे रहित थी और धर्मका तो नाम भी नहीं था इसलिए पाखण्डसे भी रहित थी ॥२३२॥ जो छह रसोंसे सहित था, स्वयं ही कटकर शाखासे झड़ने लगता था और बल-वीर्य आदिके करनेमें समर्थ था ऐसा इक्षुरस ही उस समयकी प्रजाका आहार था ॥२३३॥ पहले तो वह इक्षुरस अपने आप निकलता था पर कालके प्रभावसे अब उसका स्वयं निकलना बन्द हो गया और लोग बिना कुछ बताये यन्त्रोंके द्वारा ईखको पेलनेकी विधि जानते नहीं थे ॥२३४॥ इसी प्रकार सामने खड़ी हुई धानको लोग देख रहे थे पर उसके संस्कारकी विधि नहीं जानते थे इसलिए भूखसे पीड़ित होकर अत्यन्त व्याकुल हो उठे ॥२३५॥ तदनन्तर बहुत भारी पीड़ासे युक्त वे लोग इकट्ठे होकर नाभिराजकी शरणमें पहुँचे और स्तुति तथा प्रणाम कर निम्नलिखित वचन कहने लगे ॥२३६॥ हे नाथ ! जिनसे हमारा भरण-पोषण होता था वे कल्पवृक्ष अब सबके सब नष्ट हो गये हैं इसलिए भूखसे सन्तप्त होकर आपकी शरणमें आये हुए हम सब लोगोंकी आप रक्षा कीजिए ॥२३७॥ पृथिवीपर उत्पन्न हुई यह कोई वस्तु फलोंसे युक्त दिखाई दे रही है, यह वस्तु संस्कार किये जानेपर खानेके योग्य हो सकती है पर हम लोग इसकी विधि नहीं जानते हैं ॥२३८॥ स्वच्छन्द विचरनेवाली गायोंके स्तनोंके भीतरसे यह कुछ पदार्थ निकल रहा है सो

---

१. पराजये । २. पश्यन्तोऽपि म. । ३. सद्यः म. ।

व्याघ्रसिंहादयः पूर्वं क्रीडास्वालिङ्गनोचिताः । अधुना त्रासयन्त्येते प्रजाः कलहतत्पराः ॥२४०॥
मनोहराणि दिव्यानि स्थलानि जलजानि च । दृश्यन्ते न तु जानीमः सुखमेभिर्यथा भवेत् ॥२४१॥
अतः संस्करणोपायमेतेषां वद देव नः । यतः सुखेन जीवामस्त्वत्प्रसादेन रक्षिताः ॥२४२॥
एवमुक्तः प्रजाभिः सं[1] नाभिः कारुण्यसंगतः । जगाद वचनं धीरो वृत्तेर्दर्शनकारणम् ॥२४३॥
उत्पत्तिसमये यस्य रत्नवृष्टिरभूच्चिरम् । आगमश्च सुरेन्द्राणां लोकक्षोभनकारणम् ॥२४४॥
महातिशयसंपन्नं तमुपेत्य समं वयम् । ऋषभं परिपृच्छामः कारणं जीवनप्रदम् ॥२४५॥
तस्य देवस्य लोकेऽस्मिन् सदृशो नास्ति मानवः । सर्वेषां तमसामन्ते तस्यात्मा संप्रतिष्ठितः ॥२४६॥
इत्युक्तास्तेन[2] ताः सार्कं नाभेयस्यान्तिकं गताः । दृष्ट्वा च पितरं देवो विधिं चक्रे यथोचितम् ॥२४७॥
उपविष्टस्ततो नाभिर्नाभेयश्च यथासनम् । अथैनं स्तोतुमारब्धाः प्रजाः प्रणतिपूर्वकम् ॥२४८॥
लोकं सर्वमतिक्रम्य तेजसा ज्वलितं वपुः । सर्वलक्षणसंपूर्णं तवैतच्चाथ शोभते ॥२४९॥
गुणैस्तव जगत्सर्वं व्याप्तमत्यन्तनिर्मलैः । प्रह्लादकरणैर्नित्यं शशाङ्ककिरणैरिव ॥२५०॥
वयं प्रभुं समायाताः पितरं तव कार्यिणः । गुणान् ज्ञानसमुद्भूतान् स चैष तव भाषते ॥२५१॥
स त्वं कोऽपि महासत्त्वो महात्मातिशयान्वितः । एवंविधोऽपि यं गत्वा निश्चयार्थं निषेवते ॥२५२॥
स त्वमेवंविधो भूत्वा रक्ष नः क्षुत्प्रपीडितान् । उपायस्योपदेशेन सिंहादिभयतस्तथा ॥२५३॥

वह भक्ष्य है या अभक्ष्य है ? हे स्वामिन् ! यह बतलाइए ॥२३९॥ ये सिंह, व्याघ्र आदि जन्तु पहले क्रीड़ाओंके समय आलिंगन करने योग्य होते थे पर अब ये कलहमें तत्पर होकर प्रजाको भयभीत करने लगे हैं ॥२४०॥ और ये आकाश, स्थल तथा जलमें उत्पन्न हुए कितने ही महामनोहर पदार्थ दिख रहे हैं सो इनसे हमें सुख किस तरह होगा यह हम नहीं जानते हैं ॥२४१॥ इसलिए हे देव ! हम लोगोंको इनके संस्कार करनेका उपाय बतलाइए जिससे कि प्रसादसे सुरक्षित होकर हम लोग सुखसे जीवित रह सकें ॥२४२॥ प्रजाके ऐसा कहनेपर नाभिराजाका हृदय दयासे भर गया और वे आजीविकाके उपाय दिखलानेके लिए धीरताके साथ निम्न प्रकार वचन कहने लगे ॥२४३॥ जिनकी उत्पत्तिके समय चिरकाल तक रत्न-वृष्टि हुई थी और लोकमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाला देवोंका आगमन हुआ था ॥२४४॥ महान् अतिशयोंसे सम्पन्न ऋषभदेवके पास चलकर हम लोग उनसे आजीविकाके कारण पूछें ॥२४५॥ इस संसारमें उनके समान कोई मनुष्य नहीं है। उनकी आत्मा सर्व प्रकारके अज्ञानरूपी अन्धकारोंसे परे है ॥२४६॥ नाभिराजाने जब प्रजासे उक्त वचन कहे तो वह उन्हींको साथ लेकर ऋषभनाथ भगवान्‌के पास गयी। भगवान्‌ने पिताको देखकर उनका यथायोग्य सत्कार किया ॥२४७॥ तदनन्तर नाभिराजा और भगवान् ऋषभदेव जब अपने-अपने योग्य आसनोंपर आरूढ़ हो गये तब प्रजाके लोग नमस्कार कर भगवान्‌की इस प्रकार स्तुति करनेके लिए तत्पर हुए ॥२४८॥ हे नाथ ! समस्त लक्षणोंसे भरा हुआ आपका यह शरीर तेजके द्वारा समस्त जगत्‌को आक्रान्त कर देदीप्यमान हो रहा है ॥२४९॥ चन्द्रमाकी किरणोंके समान आनन्द उत्पन्न करनेवाले आपके अत्यन्त निर्मल गुणोंसे समस्त संसार व्याप्त हो रहा है ॥२५०॥ हम लोग कार्य लेकर आपके पिताके पास आये थे परन्तु ये ज्ञानसे उत्पन्न हुए आपके गुणोंका बखान करते हैं ॥२५१॥ जबकि ऐसे विद्वान् महाराज नाभिराज भी आपके पास आकर पदार्थका निश्चय कर लेते हैं तब यह बात स्पष्ट हो जाती है कि आप अतिशयोंसे सुशोभित, धैर्यको धारण करनेवाले कोई अनुपम महात्मा हैं ॥२५२॥ इसलिए आप, भूखसे पीड़ित हुए हम लोगोंकी रक्षा कीजिए तथा सिंह आदि दुष्ट जन्तुओंसे जो भय हो रहा है उसका भी उपाय बतलाइए ॥२५३॥

---

१. सप्रभिः क., म. । २. -स्तेन सार्कं ते म. । ३. तत्र म. ।

ततः कृपासमाक्रान्तहृदयो नाभिनन्दनः । शशास चरणप्राप्ता बद्धाञ्जलिपुटाः प्रजाः ॥२५४॥
शिल्पानां शतमुद्दिष्टं नगराणां च कल्पनम् । ग्रामादिसन्निवेशाश्च तथा वेश्मादिकारणम् ॥२५५॥
क्षतत्राणे नियुक्ता ये तेन नाथेन मानवाः । क्षत्रिया इति ते लोके प्रसिद्धिं गुणतो गताः ॥२५६॥
वाणिज्यकृषिगोरक्षाप्रभृतौ ये निवेशिताः । व्यापारे वैश्यशब्देन ते लोके परिकीर्तिताः ॥२५७॥
ये तु श्रुत्वा हुतिं प्राप्ता नीचकर्मविधायिनः । शूद्रसंज्ञामवापुस्ते भेदैः प्रेष्यादिभिस्तथा ॥२५८॥
युगं तेन कृतं यस्मादित्थमेतत्सुखावहम् । तस्मात्कृतयुगं प्रोक्तं प्रजाभिः प्राप्तसंपदम् ॥२५९॥
नाभेयस्य सुनन्दाऽभूच्चन्दा च वनिताद्वयम् । भरतादय उत्पन्नास्तयोः पुत्रा महौजसः ॥२६०॥
शतेन तस्य पुत्राणां गुणसंबन्धधारणा । अभूदलंकृता क्षोणी नित्यप्राप्तसमुत्सवा ॥२६१॥
तस्यानुपममैश्वर्यं भुञ्जानस्य जगद्गुरोः । प्रयातः सुमहान् कालो नाभेयस्यामितश्रियः ॥२६२॥
अथ नीलाञ्जनाख्यायां नृत्यन्त्यां सुरयोषिति । इयं तस्य समुत्पन्ना बुद्धिर्वैराग्यकारणम् ॥२६३॥
अहो जना विडम्ब्यन्ते परितोषणचेष्टितैः । उन्मत्तचरिताकारैः स्वशरीरखेदकारणैः ॥२६४॥
अत्र कश्चित् पराधीनो लोके भृत्यत्वमागतः । आज्ञां ददाति कश्चिच्च तस्मै गर्वस्खलद्वचाः ॥२६५॥
धिगस्तु संसारं यस्मिन्नुत्पाद्यते परैः । दुःखमेव सुखाभिख्यं नीतं संमूढमानसैः ॥२६६॥
तस्मादिदं परित्यज्य कृत्रिमं क्षयवत्सुखम् । सिद्धसौख्यसमावाप्त्यै करोम्याशु विचेष्टितम् ॥२६७॥
यावदेवं मनस्तस्य प्रवृत्तं शुभचिन्तने । तावल्लौकान्तिकैर्देवैरिदमागत्य भाषितम् ॥२६८॥

तदनन्तर—जिनका हृदय दयासे युक्त था ऐसे भगवान् वृषभदेव हाथ जोड़कर चरणोंमें पड़ी हुई प्रजाको उपदेश देने लगे ॥२५४॥ उन्होंने प्रजाको सैकड़ों प्रकारकी शिल्पकलाओंका उपदेश दिया। नगरोंका विभाग, ग्राम आदिका बसाना, और मकान आदिके बनानेकी कला प्रजाको सिखायी ॥२५५॥ भगवान्‌ने जिन पुरुषोंको विपत्तिग्रस्त मनुष्योंकी रक्षा करनेमें नियुक्त किया था वे अपने गुणोंके कारण लोकमें 'क्षत्रिय' इस नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुए ॥२५६॥ वाणिज्य, खेती, गोरक्षा आदिके व्यापारमें जो लगाये गये थे वे लोकमें वैश्य कहलाये ॥२५७॥ जो नीच कार्य करते थे तथा शास्त्रसे दूर भागते थे उन्हें शूद्र संज्ञा प्राप्त हुई। इनके प्रेष्य दास आदि अनेक भेद थे ॥२५८॥ इस प्रकार सुखको प्राप्त करानेवाला वह युग भगवान् ऋषभदेवके द्वारा किया गया था तथा उसमें सब प्रकारकी सम्पदाएँ सुलभ थीं इसलिए प्रजा उसे कृतयुग कहने लगी थी ॥२५९॥ भगवान् ऋषभदेवके सुनन्दा और नन्दा नामकी दो स्त्रियाँ थीं। उनसे उनके भरत आदि महाप्रतापी पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥२६०॥ भरत आदि सौ भाई थे तथा गुणोंके सम्बन्धसे अत्यन्त सुन्दर थे इसलिए यह पृथ्वी उनसे अलंकृत हुई थी तथा निरन्तर ही अनेक उत्सव प्राप्त करती रहती थी ॥२६१॥ अपरिमित कान्तिको धारण करनेवाले जगद्गुरु भगवान् ऋषभदेवको अनुपम ऐश्वर्यका उपभोग करते हुए जब बहुत भारी काल व्यतीत हो गया ॥२६२॥ तब एक दिन नीलांजना नामक देवीके नृत्य करते समय उन्हें वैराग्यकी उत्पत्तिमें कारणभूत निम्न प्रकारकी बुद्धि उत्पन्न हुई ॥२६३॥ वे विचारने लगे कि अहो! संसारके ये प्राणी दूसरोंको सन्तुष्ट करनेवाले कार्योंसे विडम्बना प्राप्त कर रहे हैं। प्राणियोंके ये कार्य पागलोंकी चेष्टाके समान हैं तथा अपने शरीरको खेद उत्पन्न करनेके लिए कारणस्वरूप हैं ॥२६४॥ संसारकी विचित्रता देखो, यहाँ कोई तो पराधीन होकर दासवृत्तिको प्राप्त होता है और कोई गर्वसे स्खलित वचन होता हुआ उसे आज्ञा प्रदान करता है ॥२६५॥ इस संसारको धिक्कार हो कि जिसमें मोही जीव दुःखको ही, सुख समझकर, उत्पन्न करते हैं ॥२६६॥ इसलिए मैं तो इस विनाशीक तथा कृत्रिम सुखको छोड़कर सिद्ध जीवोंका सुख प्राप्त करनेके लिए शीघ्र ही प्रयत्न करता हूँ ॥२६७॥ इस

---

१. शरणं प्राप्ता क.। २. क्षतित्राणे म.। ३. श्रुता ख.। श्रुत्वा हुतिं म.। ४. प्राप्तसम्मदम् म.। ५. नीलांजसा- म., ख.। ६. परितोषक म.। ७. सिद्धि ख.।

साधु कथानवद्यं ते त्रैलोक्यहितकारणम्[1] । विच्छिन्नस्य महाकालो मोक्षमार्गस्य वर्तते ॥२६९॥
एते विपरिवर्तन्ते भवदुःखमहार्णवे । उपदेशस्य दातारमन्तरेणासुधारिणः ॥२७०॥
अद्यप्रभृति सांप्रतं जीवा देशितेन पथोत्वया[2] । युक्तमक्षयसौख्येन लोकाग्रेऽवस्थितं पदम् ॥२७१॥
इति तस्य प्रबुद्धस्य स्वयमेव महात्मनः । सुरैरुदाहृता वाचः प्रयासाः पुनरुक्तताम् ॥२७२॥
इति निष्क्रमणे तेन चिन्तिते सदनन्तरम् । आगताः पूर्ववद्देवाः पुरन्दरपुरस्सराः ॥२७३॥
आगत्य च सुरैः सर्वैः स्तुतः प्रणतिपूर्वकम् । चिन्तितं साधु नाथेति भाषितं च पुनः पुनः ॥२७४॥
[3]ततो रत्नप्रभाजालजटिलीकृतदिङ्मुखाम् । चन्द्रांशुनिकराकारप्रचलच्चारुचामराम् ॥२७५॥
पूर्णचन्द्रनिभादर्शकृतशोभां सबुद्बुदाम् । अर्द्धचन्द्रकसंयुक्तामंशुकध्वजभूषिताम् ॥२७६॥
दिव्यस्रग्भिः कृतामोदां मुक्ताहारविराजिताम् । सुदर्शनां विमानाभां किङ्किणीभिः कृतस्वनाम् ॥२७७॥
सुरनाथार्पितस्कन्धां देवशिल्पिविनिर्मिताम् । आरुह्य शिबिकां नाथो निर्जगाम निजालयात् ॥२७८॥
ततः शब्देन तूर्याणां नृत्यतां च दिवौकसाम् । त्रिलोकविवरापूरिप्रतिनिनादिना ॥२७९॥
ततोऽत्यन्तमहाभूत्या भक्त्या देवैः समन्वितः । तिलकाह्वं तमुद्यानं संप्राप जिनपुङ्गवः ॥२८०॥
प्रजागः इति देशोऽसौ प्रजाभ्योऽस्मिन् गतो यतः । प्रकृष्टो वा कृतस्त्यागः प्रयागस्तेन कीर्तितः ॥२८१॥
आपृच्छनं ततः कृत्वा पित्रोर्बन्धुजनस्य च । नमः सिद्धेभ्य इत्युक्त्वा श्रामण्यं प्रैक्षपद्यत ॥२८२॥

साधु यहाँ भगवान्‌का चित्त शुभ विचारमें लगा हुआ था कि वहाँ उसी समय लौकान्तिक देवोंने आकर निम्न प्रकार निवेदन करना प्रारम्भ कर दिया ॥२६८॥ वे कहने लगे कि हे नाथ ! आपने जो तीन लोकके जीवोंका हित करनेका विचार किया है सो बहुत ही उत्तम बात है। इस समय मोक्षका मार्ग बन्द हुए बहुत समय हो गया है ॥२६९॥ ये प्राणी उपदेश-दाताके बिना संसाररूपी महासागरमें गोता लगा रहे हैं ॥२७०॥ इस समय प्राणी आपके द्वारा बतलाये हुए मार्गसे चलकर अविनाशी सुखसे युक्त तथा लोकके अग्रभागमें स्थित मुक्त जीवोंके पदको प्राप्त हों ॥२७१॥ इस प्रकार देवोंके द्वारा कहे हुए वचन स्वयम्बुद्ध भगवान् आदिनाथके समक्ष पुनरुक्तताको प्राप्त हुए थे ॥२७२॥ ज्यों ही भगवान्‌ने गृहत्यागका निश्चय किया त्यों ही इन्द्र आदि देव पहलेकी भाँति आ पहुँचे ॥२७३॥ आकर समस्त देवोंने नमस्कारपूर्वक भगवान्‌की स्तुति की और 'हे नाथ ! आपने बहुत अच्छा विचार किया है' यह शब्द बार-बार कहे ॥२७४॥

तदनन्तर, जिसने रत्नोंकी कान्तिके समूहसे दिशाओंके अग्रभागको व्याप्त कर रखा था, जिसके दोनों ओर चन्द्रमाकी किरणोंके समूहके समान सुन्दर चमर ढोले जा रहे थे, पूर्ण चन्द्रमाके समान दर्पणसे जिसकी शोभा बढ़ रही थी, जो बुद्बुदके आकार मणिमय गोलकोंसे सहित थी, अर्द्धचन्द्राकारसे सहित थी, पताकाओंके वस्त्रसे सुशोभित थी, दिव्य मालाओंसे सुगन्धित थी, मोतियोंके हारसे विराजमान थी, देखनेमें बहुत सुन्दर थी, विमानके समान जान पड़ती थी, जिसमें लगी हुई छोटी-छोटी घण्टियाँ सन-सुन शब्द कर रही थीं, और इन्द्रने जिसपर अपना कन्धा लगा रखा था ऐसी देवरूपी शिल्पियोंके द्वारा निर्मित पालकीपर सवार होकर भगवान् अपने घरसे बाहर निकले ॥२७५–२७८॥ तदनन्तर बजते हुए बाजों और नृत्य करते हुए देवोंके प्रतिध्वनि पूर्ण शब्दसे तीनों लोकोंका अन्तराल भर गया ॥२७९॥ बहुत भारी वैभव और भक्तिसे युक्त देवोंके साथ भगवान् तिलक नामक उद्यानमें पहुँचे ॥२८०॥ भगवान् वृषभदेव प्रजा अर्थात् जन समूहसे दूर हो उस तिलक नामक उद्यानमें पहुँचे थे इसलिए उस स्थानका नाम 'प्रजाग' प्रसिद्ध हो गया अथवा भगवान्‌ने उस स्थानपर बहुत भारी याग अर्थात् त्याग किया था, इसलिए उसका नाम 'प्रयाग' भी प्रसिद्ध हुआ ॥२८१॥ वहाँ पहुँचकर भगवान्‌ने माता-पिता तथा बन्धुजनोंसे दीक्षा लेनेकी आज्ञा ली और फिर 'नमः सिद्धेभ्यः'—सिद्धोंके लिए

---

१. त्रैलोक्ये म. । २. यथा ग. । ३. तारारत्न- ख. । ४. प्रतिपद्यत म. ।

अलंकारैः समं त्यक्त्वा वसनानि महामुनिः । चकारासौ परित्यागं केशानां पञ्चमुष्टिभिः ॥२८३॥
ततो रत्नपुटे[1] केशान् प्रतिपद्य सुराधिपः । चिक्षेप मस्तके कृत्वा क्षीराकूपार[2]वारिणि ॥२८४॥
महिमानं ततः कृत्वा जिनदीक्षानिमित्तकम् । यथा यातं सुरा जग्मुर्मनुष्याश्च विचेतसः ॥२८५॥
सहस्राणि च चत्वारि नृपाणां स्वामिभक्तितः । तदाकूतमजानन्ति प्रतिपन्नानि नग्नताम् ॥२८६॥
ततो वर्षार्द्धमात्रं स कायोत्सर्गेण निश्चलः । धराधरेन्द्रवत्तस्थौ कृतेन्द्रियसमस्थितिः ॥२८७॥
वातोद्धूता जटास्तस्य रेजुराकुलमूर्तयः । धूमालय इव सद्ध्यानवह्निसंक्तस्य[3] कर्मणः ॥२८८॥
ततः षडपि नो यावन्मासा गच्छन्ति भूभृताम् । भग्नस्तावदसौ सङ्घः परीषहमहाभटैः ॥२८९॥
केचिच्छ्रिपतिता भूमौ दुःखानिलसमाहताः । केचित् सरसवीर्यत्वादुपविष्टा महीतले ॥२९०॥
कायोत्सर्गं परित्यज्य गताः केचिन् फलाशनम् । संतप्तमूर्तयः केचित् प्रविष्टाः शीतलं जलम् ॥२९१॥
केचिन्नागा इवोद्भूता विविशुर्गिरिगह्वरम् । परावृत्य मनः केचित् प्रारब्धा जिनमीक्षितुम् ॥२९२॥
मानी तत्र मरीचिस्तु दधत्कापायवाससी । परिव्राडासनं चक्रे वल्किभिः प्रत्यवस्थितः[4] ॥२९३॥
ततः फलादिकं तेषां नग्नरूपेण गृह्णताम् । विचेरुर्गगने वाचोऽदर्शनावां[5] सुधाभुजाम् ॥२९४॥
अनेन नग्नरूपेण न वर्तध्वं इदं नृपाः । समाचरितुमस्यर्थं दुःखहेतुरयं हि वः ॥२९५॥
ततः परिदधुः केचित् पत्राण्यन्ये तु वल्कलम् । चर्माणि केचिदन्ये तु वासः प्रथममुज्झितम् ॥२९६॥

नमस्कार हो यह कह दीक्षा धारण कर ली ॥२८२॥ महामुनि वृषभदेवने सब अलंकारोंके साथ ही साथ वस्त्रोंका भी त्याग कर दिया और पंचमुष्टियोंके द्वारा केश उखाड़कर फेंक दिये ॥२८३॥ इन्द्रने उन केशोंको रत्नमयी पिटारेमें रख लिया और तदनन्तर मस्तकपर रखकर उन्हें क्षीर-सागरमें क्षेप आया ॥२८४॥ समस्त देव दीक्षाकल्याणक सम्बन्धी उत्सव कर जिस प्रकार आये थे उसी प्रकार चले गये, साथ ही मनुष्य भी अपना हृदय हराकर यथास्थान चले गये ॥२८५॥ उस समय चार हजार राजाओंने जो कि भगवान्‌के अभिप्रायको नहीं समझ सके थे केवल स्वामि-भक्तिसे प्रेरित होकर नग्न अवस्थाको प्राप्त हुए थे ॥२८६॥ तदनन्तर इन्द्रियोंकी समान अवस्था धारण करनेवाले भगवान् वृषभदेव छह माह तक कायोत्सर्गसे सुमेरु पर्वतके समान निश्चल खड़े रहे ॥२८७॥ हवासे उड़ी हुई उनकी अस्त-व्यस्त जटाएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो समीचीन ध्यानरूपी अग्निसे जलते हुए कर्मके धूमकी पंक्तियां ही हों ॥२८८॥ तदनन्तर छह माह भी नहीं हो पाये थे कि साथ-साथ दीक्षा लेनेवाले राजाओंका समूह परीषहरूपी महायोद्धाओंके द्वारा परास्त हो गया ॥२८९॥ उनमें-से कितने ही राजा दुःखरूपी वायुसे ताड़ित होकर पृथिवीपर गिर गये और कितने ही कुछ सबल शक्तिके धारक होनेसे पृथिवीपर बैठ गये ॥२९०॥ कितने ही भूखसे पीड़ित हो कायोत्सर्ग छोड़कर फल खाने लगे। कितने ही सन्तप्त शरीर होनेके कारण शीतल जलमें जा घुसे ॥२९१॥ कितने ही चारित्रका बन्धन तोड़ उन्मत्त हाथियोंकी तरह पहाड़ोंकी गुफाओंमें घुसने लगे और कितने ही फिरसे मनको लौटाकर जिनेन्द्रदेवके दर्शन करनेके लिए उद्यत हुए ॥२९२॥ उन सब राजाओंमें भरतका पुत्र मरीचि बहुत अहंकारी था इसलिए वह गेरुआ वस्त्र धारण कर परिव्राजक बन गया तथा वल्कलोंको धारण करनेवाले कितने ही लोग उसके साथ हो गये ॥२९३॥ वे राजा लोग नग्नरूपमें ही फलादिक ग्रहण करनेके लिए जब उद्यत हुए तब अदृश्य देवताओंके निम्नांकित वचन आकाशमें प्रकट हुए। हे राजाओ! तुम लोग नग्नवेषमें रहकर यह कार्य न करो क्योंकि ऐसा करना तुम्हारे लिए अत्यन्त दुःखका कारण होगा ॥२९४-२९५॥ देवताओंके वचन सुनकर कितने ही लोगोंने वृक्षोंके पत्ते पहन

---

१. रत्नपटे म., क.। २. क्षीरकूपार-म.। ३. शक्तस्य म., ख., शक्तिस्य (?) म.। ४. इवोद्धता म.। ५. परिव्राट् शासनं म.।

मार्गदर्शक

केचित्स्वेन रूपेण केचिच्च कुशचीवरम् । प्राप्तामीभिस्ततस्तृप्तिः फलैः शीतजलेन च ॥२९७॥
संभूय ते ततो भग्ना दुर्दशाकारवर्तिनः । विश्रब्धाः कर्तुमारब्धा दूरं गत्वा प्रधारणम् ॥२९८॥
सेवां केनचिदिष्टास्ततो नृपेण ते नृपाः । [3]एतेन कथितं किंचित्कस्मैचिद्भवतामिति ॥२९९॥
केनेव सह किंचिदस्माकमिति ते ब्रुवन् । ततोऽन्येनोदितं वाक्यमिति भोगाभिलाषिणा ॥३००॥
उत्तिष्ठत निधान् देशान् व्रजामोऽत्र स्थितेन किम् । प्राप्नुमः पुत्रदारादिवक्त्रालोकनजं सुखम् ॥३०१॥
अपरेणेति तत्रोक्तं व्रजामो विह्वला वयम् । नहि किंचिदकर्तव्यं विद्यतेऽस्माकमार्तितः ॥३०२॥
रोषेण तु विनाथानास्मिरीक्ष्य भरतो रुषा । मारयिष्यति नोऽवश्यं देशान् वापहरिष्यति ॥३०३॥
अथवेषो वा पुनर्यस्मिन् काले राज्यं प्रपत्स्यते । तदास्य दर्शयिष्यामो निरूपाः कथमाननम् ॥३०४॥
तस्मादत्रैव तिष्ठामो भक्षयन्तः फलादिकम् । सेवामस्यैव कुर्वाणा भ्राम्यन्तः सुखमिच्छया ॥३०५॥
प्रतिमास्थस्य तस्याथ नमिश्च विनमिस्तथा । तत्थतुः पादयोर्नत्वा भोगयाचनतत्परौ ॥३०६॥
[4]याच्यमानौ विदित्वा तावासनस्य प्रकम्पनात् । आयातो धरणो नाम्ना नागराजस्परान्वितः ॥३०७॥
विक्रिया जिनरूपं स ताभ्यां विद्ये वरे ददौ । प्राप्य विद्ये वरे यातौ विजयार्द्धनगे क्षणात् ॥३०८॥
योजनानि दशाढ्ये तत्र विद्याभूदालयाः । नानादेशपुराकीर्णामोगैर्भोगक्षितेः[5] समाः ॥३०९॥

लिये, कितने ही लोगोंने वृक्षोंके वल्कल धारण कर लिये, कितने ही लोगोंने चमड़ेसे शरीर आच्छादित कर लिया और कितने ही लोगोंने पहले छोड़े हुए वस्त्र ही फिरसे ग्रहण कर लिये ॥२९६॥ अपने नग्न वेषसे लज्जित होकर कितने ही लोगोंने कुशाओंका वस्त्र धारण किया। इस प्रकार पत्र आदि धारण करनेके बाद वे सब फलों तथा शीतल जलसे तृप्तिको प्राप्त हुए ॥२९७॥ तदनन्तर जिनकी बुरी हालत हो रही थी ऐसे भ्रष्ट हुए सब राजा लोग एकत्रित हो दूर जाकर निःशंक भावसे परस्परमें सलाह करने लगे ॥२९८॥ उनमेंसे किसी राजाने अन्य राजाओंको सम्बोधित करते हुए कहा कि आप लोगोंमेंसे किसीसे भगवान्‌ने कुछ कहा था ॥२९९॥ इसके उत्तरमें अन्य राजाओंने कहा कि इन्होंने हम लोगोंमें-से किसीसे कुछ भी नहीं कहा है। यह सुनकर भोगोंकी अभिलाषा रखनेवाले किसी राजाने कहा कि तो फिर यहाँ रुकनेसे क्या लाभ है ? उठिए, हम लोग अपने-अपने देश चलें और पुत्र तथा स्त्री आदिका मुख देखनेसे उत्पन्न हुआ सुख प्राप्त करें ॥३००-३०१॥ उन्हींमें-से किसीने कहा कि चूँकि हम लोग दुःखी हैं अतः चलनेके लिए तैयार हैं। इस समय ऐसा कोई कार्य नहीं जिसे दुःखके कारण हम कर न सकें परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि हम लोगोंको स्वामीके बिना अकेला ही वापिस आया देखकर भरत मारेगा और अवश्य ही हम लोगोंके देश छीन लेगा ॥३०२-३०३॥ अथवा भगवान् ऋषभदेव जब फिरसे राज्य प्राप्त करेंगे—वनवास छोड़कर पुनः राज्य करने लगेंगे तब हम लोग निर्लज्ज होकर इन्हें मुख कैसे दिखावेंगे ? ॥३०४॥ इसलिए हम लोग फलादिका भक्षण करते हुए यहीं पर रहें और इच्छानुसार सुखपूर्वक भ्रमण करते हुए इन्हींकी सेवा करते रहें ॥३०५॥

अथानन्तर—भगवान् ऋषभदेव प्रतिमायोगसे विराजमान थे कि भोगोंकी याचना करनेमें तत्पर नमि और विनमि उनके चरणोंमें नमस्कार कर वहीं पर खड़े हो गये ॥३०६॥ उसी समय आसनके कम्पायमान होनेसे नागकुमारोंके अधिपति धरणेन्द्रने यह जान लिया कि नमि और विनमि भगवान्‌से याचना कर रहे हैं। यह जानते ही वह शीघ्रतासे वहाँ आ पहुँचा ॥३०७॥ धरणेन्द्रने विक्रियासे भगवान्‌का रूप धरकर नमि और विनमिके लिए दो उत्कृष्ट विद्याएँ दीं। उन विद्याओंको पाकर वे दोनों उसी समय विजयार्द्ध पर्वतपर चले गये ॥३०८॥ समान भूमि-

---

१. प्राप्तामीभिः म. । २. कृत्वा म. । ३. भगवता । ४. तत्थुतः म. । ५. याच्यमानौ म., क. । ६. -क्षितेः म. ।

उपर्यथ समारुह्य योजनानि पुनर्दश । गान्धर्वकिन्नरादीनां नगराणि सहस्रशः ॥३१०॥
अतोऽपि सप्तमिक्रम्य पञ्चयोजनमन्तरम् । अर्हच्छवनसंछन्नो भाति नन्दीश्वराद्रिवत् ॥३११॥
भवनेष्वर्हतां तेषु स्वाध्यायगतचेतसः । मुनयश्चारणा नित्यं तिष्ठन्ति परमौजसः ॥३१२॥
दक्षिणे विजयार्द्धस्य भागे पञ्चाशदाहिताः । रथनूपुरसंध्याभ्रप्रभृतीनां पुरां तलः ॥३१३॥
उत्तरेण तथा षष्टिर्नगराणां निवेशिता । आकाशवल्लभादीनि यानि नामानि बिभ्रति ॥३१४॥
देशग्रामसमाकीर्णं [मटम्बाकारसंकुलम् । सखेटकर्वटाटोपं तत्रैकैकं पुरोत्तमम् ॥३१५॥
उदारगोपुराट्टालं हेमप्राकारतोरणम् । वाप्युद्यानसमाकीर्णं] स्वर्गभोगोत्सवप्रदम् ॥३१६॥
अकृष्टसर्वसस्याढ्यं सर्वपुष्पफलद्रुमम् । सर्वौषधिसमाकीर्णं सर्वकामप्रसाधनम् ॥३१७॥
भोगभूमिसमं शश्वद् राजते यत्र भूतलम् । मधुक्षीरघृतादीनि वहन्ते तत्र निर्झराः ॥३१८॥
सरांसि पद्मयुक्तानि हंसादिकलितानि च । मणिकाञ्चनसोपानाः स्वच्छमिष्टमधूदकाः ॥३१९॥
सरोरुहरजश्छन्ना विरेजुस्तत्र दीर्घिकाः । सवत्सकामधेनूनां संपूर्णेन्दुसमत्विषाम् ॥३२०॥
सुवर्णखुरशृङ्गाणां संघाः शालासु तत्र च । [नेत्रानन्दकरीणां च वसन्ति यत्र धेनवः] ॥३२१॥
यासां वर्चश्च मूत्रं च [1]सुगन्धं रसायनवत् । कान्तिवीर्यप्रदं तासां पयः केनोपमीयते ॥३२२॥
नीलनीरजवर्णानां तथा पद्मसमत्विषाम् । महिषीणां सपुत्राणां सर्वासामत्र षट्कयः ॥३२३॥

तलसे दश योजन ऊपर चलकर विजयार्ध पर्वतपर विद्याधरोंके निवास-स्थान बने हुए हैं। उनके वे निवास-स्थान नाना देश और नगरोंसे व्याप्त हैं तथा भोगोंसे भोगभूमिके समान जान पड़ते हैं ॥३०९॥ विद्याधरोंके निवास-स्थानसे दश योजन ऊपर चलकर गन्धर्व और किन्नर देवोंके हजारों नगर बसे हुए हैं ॥३१०॥ वहाँसे पाँच योजन और ऊपर चलकर वह पर्वत अर्हन्त भगवान्‌के मन्दिरोंसे आच्छादित है तथा नन्दीश्वर द्वीपके पर्वतके समान जान पड़ता है ॥३११॥ अर्हन्त भगवान्‌के उन मन्दिरोंमें स्वाध्यायके प्रेमी, चारणऋद्धिके धारक परम तेजस्वी मुनिराज निरन्तर विद्यमान रहते हैं ॥३१२॥ उस विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीपर रथनूपुर तथा सन्ध्याभ्रको आदि लेकर पचास नगरियाँ हैं और उत्तर श्रेणीपर गगनवल्लभ आदि साठ नगरियाँ हैं ॥३१३-३१४॥ ये प्रत्येक नगरियाँ एकसे एक बढ़कर हैं, नाना देशों और गाँवोंसे व्याप्त हैं, मटम्बोंसे संकीर्ण हैं, खेट और कर्वटोंके विस्तरसे युक्त हैं ॥३१५॥ बड़े-बड़े गोपुरों और अट्टालिकाओंसे विभूषित हैं, सुवर्णमय कोटों और तोरणोंसे अलंकृत हैं, वापिकाओं और बगीचोंसे व्याप्त हैं, स्वर्ग सम्बन्धी भोगोंका उत्सव प्रदान करनेवाली हैं, बिना जोते ही उत्पन्न होनेवाले सर्व प्रकारके फलोंके वृक्षोंसे सहित हैं, सर्व प्रकारकी औषधियोंसे आकीर्ण हैं, और सबके मनोरथोंको सिद्ध करनेवाली हैं ॥३१६-३१७॥ उनका पृथिवीतल हमेशा भोगभूमिके समान सुशोभित रहता है, वहाँके निर्झर सदा मधु, दूध, घी आदि रसोंको बहाते हैं, वहाँके सरोवर कमलोंसे युक्त तथा हंस आदि पक्षियोंसे विभूषित हैं। वहाँकी वापिकाओंकी सीढ़ियाँ मणियों तथा सुवर्णसे निर्मित हैं, उनमें मधुके समान स्वच्छ और मीठा पानी भरा रहता है, तथा वे स्वयं कमलोंकी परागसे आच्छादित रहती हैं। वहाँकी शालाओंमें बछड़ोंसे सुशोभित उन कामधेनुओंके झुण्डके झुण्ड बँधे रहते हैं जिनकी कि कान्ति पूर्ण चन्द्रमाके समान है, जिनके खुर और सींग सुवर्णके समान पीले हैं तथा जो नेत्रोंको आनन्द देनेवाली हैं ॥३१८-३२१॥ वहाँ वे गायें रहती हैं जिनका कि गोबर और मूत्र भी सुगन्धिसे युक्त है तथा रसायनके समान कान्ति और वीर्यको देनेवाला है, फिर उनके दूधकी तो उपमा ही किससे दी जा सकती है ? ॥३२२॥ उन नगरियोंमें नील कमलके समान श्यामल तथा कमलके समान

१. कोष्ठान्तर्गतः पाठः क. ख. पुस्तकयोर्नास्ति । २. कोष्ठकान्तर्गतः पाठः क. ख. पुस्तकयोर्नास्ति । ३. सुगन्धं तु सरुक्कवत् म. ।

धान्यानां पर्वताकाराः पल्यौघाः क्षयवर्जिताः । वाप्युद्यानपरिक्षिप्ताः प्रासादाश्च महाप्रभाः ॥३२४॥
रेणुकण्टकनिर्मुक्ता रथ्यामार्गाः सुखावहाः । महातरुकृतच्छायाः प्रपाः सर्वरसान्विताः ॥३२५॥
मासांश्च चतुरस्तत्र श्रोत्रानन्दकरध्वनिः । देशे काले च पर्जन्यः कुरुतेऽमृतवर्षणम् ॥३२६॥
हिमानिलविनिर्मुक्तो हेमन्तः सुखभागिनाम् । यथेप्सितपरिप्राप्तवाससां साधु वर्तते ॥३२७॥
मृदुतापी निदाघेऽपि शङ्कावानिव भास्करः । नानारत्नप्रभाक्रान्तो बोधकः पद्मसंपदाम् ॥३२८॥
ऋतवोऽन्येऽपि [illegible] । नीहारादिविनिर्मुक्ताः शोभन्ते निर्मला दिशः ॥३२९॥
न क्वचिदेकदेशोऽपि तस्मिन्नस्ति सुखो न यः । रमन्ते सततं सर्वा भोगभूमिष्विव प्रजाः ॥३३०॥
योषितः सुकुमाराङ्गाः सर्वाभरणभूषिताः । इङ्गितज्ञानकुशलाः कीर्तिश्रीह्रीधृतिप्रभाः ॥३३१॥
काश्चित्कमलगर्भाभा काश्चिदिन्दीवरप्रभा । काश्चिच्छिरीषसंकाशा काश्चिद्विद्युत्समद्युतिः ॥३३२॥
नन्दनस्थैव वातेन निर्मितास्ताः सुगन्धतः । वसन्तादिव संभूताश्चारुपुष्पविभूषणात् ॥३३३॥
चन्द्रकान्तिविनिर्माणशरीरा इव चापराः । कुर्वन्ति सततं रामा निजज्योत्स्नासरस्तराम् ॥३३४॥
त्रिवर्णनेत्रशोभिन्यो गत्या हंसवधूसमाः । पीनस्तन्यः कृशोदर्यः सुरस्त्रीसमविभ्रमाः ॥३३५॥

लाल कान्तिको धारण करनेवाली भैंसोंकी पंक्तियाँ अपने बछड़ोंके साथ सदा विचरती रहती हैं ॥३२३॥ वहाँ पर्वतोंके समान अनाजकी राशियाँ हैं, वहाँकी खत्तियों (अनाज रखनेकी खोड़ियों) का कभी क्षय नहीं होता, वापिकाओं और बगीचोंसे घिरे हुए वहाँके महल बहुत भारी कान्तिको धारण करनेवाले हैं ॥३२४॥ वहाँके मार्ग धूलि और कण्टकसे रहित, सुख उपजानेवाले हैं। जिनपर बड़े-बड़े वृक्षोंकी छाया हो रही है तथा जो सर्वप्रकारके रसोंसे सहित हैं ऐसी वहाँकी प्याऊँ हैं ॥३२५॥ जिनकी मधुर आवाज कानोंको आनन्दित करती है ऐसे मेघ वहाँ चार मास तक योग्य देश तथा योग्य कालमें अमृतके समान मधुर जलकी वर्षा करते हैं ॥३२६॥ वहाँकी हेमन्त ऋतु हिममिश्रित शीतल वायुसे रहित होती है तथा इच्छानुसार वस्त्र प्राप्त करनेवाले सुखके उपभोगी मनुष्योंके लिए आनन्ददायी होती है ॥३२७॥ वहाँ ग्रीष्म ऋतुमें भी सूर्य मानो शंकित होकर ही मन्द तेजका धारक रहता है और नाना रत्नोंकी प्रभासे युक्त होकर कमलोंको विकसित करता है ॥३२८॥ वहाँकी अन्य ऋतुएँ भी मनोवांछित वस्तुओंको प्राप्त करानेवाली हैं तथा वहाँकी निर्मल दिशाएँ नीहार (कुहरा) आदिसे रहित होकर अत्यन्त सुशोभित रहती हैं ॥३२९॥ वहाँ ऐसा एक भी स्थान नहीं है जो कि सुखसे युक्त न हो। वहाँकी प्रजा सदा भोगभूमिके समान क्रीड़ा करती रहती है ॥३३०॥ वहाँकी स्त्रियाँ अत्यन्त कोमल शरीरको धारण करनेवाली हैं, सब प्रकारके आभूषणोंसे सुशोभित हैं, अभिप्रायके जाननेमें कुशल हैं, कीर्ति, लक्ष्मी, लज्जा, धैर्य और प्रभाको धारण करनेवाली हैं ॥३३१॥ कोई स्त्री कमलके भीतरी भागके समान कान्तिवाली है, कोई नील कमलके समान श्यामल प्रभाकी धारक है, कोई शिरीषके फूलके समान कोमल तथा हरित वर्णकी है और कोई बिजलीके समान पीली कान्तिसे सुशोभित है ॥३३२॥ वे स्त्रियाँ सुगन्धिसे तो ऐसी जान पड़ती हैं मानो नन्दन वनको वायुसे ही रची गई हों और मनोहर फूलोंके आभरण धारण करनेके कारण ऐसी प्रतिभासित होती हैं मानो वसन्त ऋतुसे ही उत्पन्न हुई हों ॥३३३॥ जिनके शरीर चन्द्रमाकी कान्तिसे बने हुए के समान जान पड़ते थे ऐसी कितनी ही स्त्रियाँ अपनी प्रभारूपी चाँदनीसे निरन्तर सरोवर भरती रहती थीं ॥३३४॥ वे स्त्रियाँ लाल, काले और सफ़ेद इस तरह तीन रंगोंको धारण करनेवाले नेत्रोंसे सुशोभित रहती हैं, उनकी चाल हंसियोंके समान है, उनके स्तन अत्यन्त स्थूल हैं, उदर कृश हैं, और उनके हाव-भाव-विलास देवांगनाओंके समान हैं ॥३३५॥ वहाँके मनुष्य भी

---

१. सुखयतीत सुखः । तस्मिन्नस्यसुखालयः म. । २. सरस्तरम् म., क. ।

नराश्चन्द्रमुखाः शूराः सिंहोरस्का महाभुजाः । आकाशगमने शक्ताः शुभलक्षणगुणक्रियाः ॥३३६॥
न्यायवर्तनसंतुष्टाः स्वर्गवासिसमप्रभाः । विचरन्ति सनारीका यथेष्टं कामरूपिणः ॥३३७॥

शालिनीछन्दः

श्रेण्योरेवं रम्ययोस्तन्नितान्तं विद्याजायासंपरिष्वक्तचित्ताः ।
इष्टान् भोगान् भुञ्जते भूमिदेवा धर्मासक्तानन्तरायेण मुक्ताः ॥३३८॥
एवंरूपा धर्मलाभेन सर्वे संप्राप्यन्ते प्राणिनां[2] भोगलाभाः ।
तस्मात्कर्तुं[3] धर्ममेकं यतध्वं भित्त्वा ध्वान्तं खं[4] रवेस्तुल्यचेष्टाः[5] ॥३३९॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते विद्याधरलोकाभिधानं नाम तृतीयं पर्व ॥३॥

□

चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाले हैं, शूरवीर हैं, सिंहके समान चौड़े वक्षःस्थलसे युक्त हैं, लम्बी भुजाओंसे विभूषित हैं, आकाशमें चलनेमें समर्थ हैं, उत्तम लक्षण, गुण और क्रियाओंसे सहित हैं ॥३३६॥ न्यायपूर्वक प्रवृत्ति करनेसे सदा सन्तुष्ट रहते हैं, देवोंके समान प्रभाके धारक हैं, कामके समान सुन्दर हैं और इच्छानुसार स्त्रियों सहित जहाँ-तहाँ घूमते हैं ॥३३७॥ इस प्रकार जिनका चित्त विद्यारूपी स्त्रियोंमें आसक्त रहता है ऐसे भूमिनिवासी देव अर्थात् विद्याधर, अन्तराय रहित हो विजयार्ध पर्वतकी दोनों मनोहर श्रेणियोंमें धर्मके फलस्वरूप प्राप्त हुए मनोवांछित भोगोंको भोगते रहते हैं ॥३३८॥ इस प्रकारके समस्त भोग प्राणियोंको धर्मके द्वारा ही प्राप्त होते हैं इसलिए हे भव्य जीवो ! जिस प्रकार आकाशमें सूर्य अन्धकारको नष्ट करता है, उसी प्रकार तुम लोग भी अपने अन्तरंग सम्बन्धी अज्ञानान्धकारको नष्ट कर एक धर्मको ही प्राप्त करनेका प्रयत्न करो ॥३३९॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध तथा रविषेणाचार्यके द्वारा कहे हुए पद्मचरितमें विद्याधर लोकका वर्णन करनेवाला तीसरा पर्व समाप्त हुआ ॥३॥

□

---

१. सक्ता: ग. । २. प्राणिनो म., क. । ३. नष्टं ध्वान्तं म. । ४. स्वं म., क. । ५. तुल्यचेष्टम् म. ।

चतुर्थ पर्व

अथासौ भगवान् ध्यानी [1]शातकुम्भप्रभः प्रभुः । हिताय जगते कर्तुं दानधर्मं समुद्यतः ॥१॥
निःशेषदोषनिर्मुक्तो मौनमाश्रित्य नैष्ठिकम् । संहृत्य प्रतिमां धीरो बभ्राम [2]धरणीतलम् ॥२॥
ददृशुस्तं प्रजा देवं भास्यन्तं तुङ्गविग्रहम् । देहप्रभापरिच्छेन्नं [3]द्वितीयमिव भास्करम् ॥३॥
यत्र यत्र पदन्यासमकरोत् स जिनेश्वरः । तस्मिन् विकचपद्मानि भवन्तीव महीतले ॥४॥
मेरुकूटसमाकारभासुरांसैः समाहितः । स रेजे भगवान् दीर्घजटाजालकृतांशुमान् ॥५॥
अन्यदा हास्तिनपुरं विहरन् स समागतः । अविशच्च दिनस्यार्द्धे गते मेरुरिव श्रिया ॥६॥
मध्याह्नरविसंकाशं दृष्ट्वा तं पुरुषोत्तमम् । सर्वे नराश्च नार्यश्च मुमूर्च्छुरतिविस्मयात् ॥७॥
नानावर्णानि वस्त्राणि रत्नानि विविधानि च । [4]हस्त्यश्वरथयानानि तस्मै लौकिकवान् जनः ॥८॥
मुग्धाः पूर्णेन्दुवदनाः कन्यास्तामरसेक्षणाः । उपनिन्युर्नराः केचिद् विनीताकारधारिणः ॥९॥
तस्मै न रुचिताः सद्यः स्वस्याप्यप्रियतां गताः । कन्यास्ता निरलंकारा ध्यायन्त्यस्तं व्यवस्थिताः ॥१०॥
अथ प्रासादशिखरे स्थितः श्रेयान् महीपतिः । दृष्ट्वैनं स्निग्धया दृष्ट्या पूर्वजन्म समस्मरत् ॥११॥

अथानन्तर सुवर्णके समान प्रभाके धारक ध्यानी भगवान् ऋषभदेव प्रभु जगत्के कल्याणके निमित्त दान धर्मकी प्रवृत्ति करनेके लिए उद्यत हुए ॥१॥ धीर-वीर भगवान्ने छह माहके बाद प्रतिमा योग समाप्त कर पृथिवी तलपर भ्रमण करना प्रारम्भ किया। भगवान् समस्त दोषोंसे रहित थे और मौन धारण कर ही विहार करते थे ॥२॥ जिनका शरीर बहुत ही ऊँचा था तथा जो अपने शरीरकी प्रभासे आस-पासके भूमण्डलको आलोकित कर रहे थे ऐसे भ्रमण करनेवाले भगवान्के दर्शन कर प्रजा यह समझती थी मानो दूसरा सूर्य ही भ्रमण कर रहा है ॥३॥ वे जिनराज पृथिवीतलपर जहाँ-जहाँ चरण रखते थे वहाँ ऐसा जान पड़ता था मानो कमल ही खिल उठे हों ॥४॥

उनके कन्धे मेरुपर्वतके शिखरके समान ऊँचे तथा देदीप्यमान थे, उनपर बड़ी-बड़ी जटाएँ किरणोंकी भाँति सुशोभित हो रही थीं और भगवान् स्वयं बड़ी सावधानीसे—ईर्यासमितिसे नीचे देखते हुए विहार करते थे ॥५॥ जो शोभासे मेरु पर्वतके समान जान पड़ते थे ऐसे भगवान् ऋषभदेव किसी दिन विहार करते-करते मध्याह्नके समय हस्तिनापुर नगरमें प्रविष्ट हुए ॥६॥ मध्याह्नके सूर्यके समान देदीप्यमान उन पुरुषोत्तमके दर्शन कर हस्तिनापुरके समस्त स्त्री-पुरुष बड़े आश्चर्यसे मोहको प्राप्त हो गये अर्थात् किसीको यह ध्यान नहीं रहा कि यह आहारकी वेला है इसलिए भगवान्को आहार देना चाहिए ॥७॥ वहाँके लोग नाना वर्णोंके वस्त्र, अनेक प्रकारके रत्न और हाथी, घोड़े, रथ तथा अन्य प्रकारके वाहन ला-लाकर उन्हें समर्पित करने लगे ॥८॥ विनीत वेषको धारण करनेवाले कितने ही लोग पूर्णचन्द्रमाके समान मुखवाली तथा कमलोंके समान नेत्रोंसे सुशोभित सुन्दर-सुन्दर कन्याएँ उनके पास ले आये ॥९॥ जब वे पतिव्रता कन्याएँ भगवान्के लिए रुचिकर नहीं हुईं तब वे निराश होकर स्वयं अपने आपसे ही द्वेष करने लगीं और आभूषण दूर फेंक भगवान्का ध्यान करती हुई खड़ी रह गयीं ॥१०॥

अथानन्तर—महलके शिखरपर खड़े हुए राजा श्रेयांसने उन्हें स्नेहपूर्ण दृष्टिसे देखा और

---

१. शातकौम्भप्रभः म., क. । २. जगाम म. । ३. परिच्छिन्नं ख. । ४. भास्वरांशः म. ।

उत्थाय च नृसिंहोऽसौ सान्तःपुरसुहृज्जनः । कृताञ्जलिपुटैः स्तोत्रैरन्यगोष्ठपुटैश्च[1]जः ॥१२॥
तस्य प्रदक्षिणां कुर्वन् रराज स नराधिपः । मेरोर्निजम्बमण्डल्यां भ्राम्यन्निव दिवाकरः ॥१३॥
ततः कुन्तलभारेण प्रमृज्य चरणद्वयम् । तस्यानन्दाश्रुभिः पूर्वं क्षालितं तेन भूभृता ॥१४॥
रत्नपात्रेण दत्त्वार्घं कृततत्पदमार्जनः । शुचौ देशे विशालायां सीमिनः[2] [illegible] ॥१५॥
रसमिक्षोः समादाय कलशस्थं सुशीतलम् । चकार परमं श्राद्धं तद्गुणाकृष्टमानसः ॥१६॥
ततः प्रमुदितैर्देवैः साधुशब्दौघमिश्रितः । [3]नभोगैर्दुन्दुभिध्वानश्चक्रे दिक्चक्रपूरणः ॥१७॥
पुष्पाणां पञ्चवर्णानां वृष्टीश्च प्रमथाधिपाः । अहो दानमहो दानमित्युक्त्वा ववृषुर्मुदा ॥१८॥
अनिलोऽरिंमुखस्पर्शो दिशः सुरभयन् ववौ । पूरयन्ती नभोभागं वसुधारा पपात च ॥१९॥
संप्राप्तः सुरसन्मानं त्रिजगद्विस्मयप्रदम् । पूजितो भरतस्यापि श्रेयान् प्रीतिसमुत्कटम् ॥२०॥
अथ प्रवर्तनं कृत्वा पाणिपात्रव्रतस्य सः । शुभध्यानं समाविष्टो भूयोऽपि विजितेन्द्रियः ॥२१॥
ततस्तस्य सितध्यानाद् गते मोहे परिक्षयम् । उत्पन्नं केवलज्ञानं लोकालोकावलोकनम् ॥२२॥
तेनैव तच्च संजातं तेजसो मण्डलं महत् । कालं (लस्य) विकिरद्भेदं रात्रिवासरसंभवम् ॥२३॥
तद्देशे विपुलस्कन्धो रत्नपुष्पैरलंकृतः । अशोकपादपोऽभूच्च विलसद्रक्तपल्लवः ॥२४॥

देखते ही उसे पूर्वजन्मका स्मरण हो आया ॥११॥ राजा श्रेयांस महलसे नीचे उतरकर अन्तःपुर तथा अन्य मित्रजनोंके साथ उनके पास आया और हाथ जोड़कर स्तुति-पाठ करता हुआ प्रदक्षिणा देने लगा। भगवान्‌की प्रदक्षिणा देता हुआ राजा श्रेयांस ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो मेरुके मध्य भागकी प्रदक्षिणा देता हुआ सूर्य ही हो ॥१२-१३॥ सर्वप्रथम राजाने अपने केशोंसे भगवान्‌के चरणोंका मार्जन कर आनन्दके आँसुओंसे उनका प्रक्षालन किया ॥१४॥ रत्नमयी पात्रसे अर्घ देकर उनके चरण धोये, पवित्र स्थानमें उन्हें विराजमान किया और तदनन्तर उनके गुणोंसे आकृष्ट चित्त हो, कलशमें रखा हुआ इक्षुका शीतल जल लेकर विधिपूर्वक श्रेष्ठ पारणा करायी—आहार दिया ॥१५-१६॥

उसी समय आकाशमें चलनेवाले देवोंने प्रसन्न होकर साधु-साधु, धन्य-धन्य शब्दोंके समूहसे मिश्रित एवं दिग्मण्डलको मुखरित करनेवाला दुन्दुभि बाजोंका भारी शब्द किया ॥१७॥ प्रमथ जातिके देवोंके अधिपतियोंने 'अहो दानं अहो दानं' कहकर हर्षके साथ पाँच रंगके फूल बरसाये ॥१८॥ अत्यन्त सुखकर स्पर्शसे सहित, दिशाओंको सुगन्धित करनेवाले वायु बहने लगी और आकाशको व्याप्त करती हुई रत्नोंकी धारा बरसने लगी ॥१९॥ इस प्रकार उधर राजा श्रेयांस तीनों जगत्‌को आश्चर्यमें डालनेवाले देवकृत सम्मानको प्राप्त हुआ और इधर सम्राट् भरतने भी बहुत भारी प्रीतिके साथ उसकी पूजा की ॥२०॥

अथानन्तर इन्द्रियोंको जीतनेवाले भगवान् ऋषभदेव, दिगम्बर मुनियोंका व्रत कैसा है ? उन्हें किस प्रकार आहार दिया जाता है ? इसकी प्रवृत्ति चलाकर फिरसे शुभध्यानमें लीन हो गये ॥२१॥ तदनन्तर शुक्लध्यानके प्रभावसे मोहनीय कर्मका क्षय हो जानेपर उन्हें लोक और अलोकको प्रकाशित करनेवाला केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ॥२२॥ केवलज्ञानके साथ ही बहुत भारी भामण्डल उत्पन्न हुआ। उनका वह भामण्डल रात्रि और दिनके कारण होनेवाले कालके भेदको दूर कर रहा था अर्थात् उसके प्रकाशके कारण वहाँ रात-दिनका विभाग नहीं रह पाता था ॥२३॥ जहाँ भगवान्‌को केवलज्ञान हुआ था वहीं एक अशोक वृक्ष प्रकट हो गया। उस अशोक वृक्षका स्कन्ध बहुत मोटा था, वह रत्नमयी फूलोंसे अलंकृत था तथा उसके लाल-लाल पल्लव

---

१. पुरः म.। पुरस्तोत्र क.। २. कृतं तत्पदमर्चनम् ख.। ३. नभौघैः म.। ४. च समं म.। ५. विकसद्रक्त—म.।

प्रकीर्णा सुमनोवृष्टिरामोदाकृष्टषट्पदा । नभःस्थैरमरैर्नानारूपसंभवगामिनी ॥२५॥
महादुन्दुभयो नेदुः क्षुब्धसागरनिस्वनाः । अदृष्टविग्रहैर्दैवैराहताः करपल्लवैः ॥२६॥
यक्षौ पद्मपलाशाक्षौ सर्वालङ्कारभूषितौ । चालयाञ्चक्रतुः स्वैरं चामरे चन्द्रहासिनी ॥२७॥
मेरुमस्तकसंकाशं मुकुटं भूमिशोभितः । सिंहासनं समुत्पन्नं कराहतदिवाकरम् ॥२८॥
त्रिलोकविभुताचिह्नं मुक्ताजालकभूषितम् । छत्रत्रयं समुद्भूतं तस्येव विमलं यशः ॥२९॥
सिंहासनस्थितस्यास्य सरणं समवान्वितम् । प्राप्तस्य वर्णितुं शोभां केवली केवलं प्रभुः ॥३०॥
ततस्तमवधिज्ञानादवगम्य सुराधिपाः । वन्दितुं सपदि प्राप्ताः परिवारसमन्विताः ॥३१॥
ख्यातो वृषभसेनोऽस्य संजातो गणभृत्ततः । अन्ये च श्रमणा जाता महावैराग्ययोगिनः ॥३२॥
यथास्थानं ततस्तेषु सरणे समवान्विते । यत्नादिषु निविष्टेषु गणेशेन प्रचोदितः ॥३३॥
छादयन्तीं स्वनादेन देवदुन्दुभि[1] निःस्वनम् । जगाद भगवान् वाचं तत्त्वार्थपरिशंसिनीम् ॥३४॥
अस्मिंस्त्रिभुवने कृत्स्ने जीवानां हितमिच्छताम् । शरणं परमो धर्मस्तस्माच्च परमं सुखम् ॥३५॥
सुखार्थं चेष्टितं सर्वं तच्च धर्मनिमित्तकम् । एवं ज्ञात्वा जना यत्नात् कुरुध्वं धर्मसंग्रहम् ॥३६॥
वृष्टिर्विना कुतो मेघैः वप्र सस्यं बीजवर्जितम् । जीवानां च विना धर्मात् सुखमुत्पद्यते कुतः ॥३७॥
गन्तुकामो यथा पङ्गुर्मूको वक्तुं समुद्यतः । अन्धो दर्शनकामश्च तथा धर्मादृते सुखम् ॥३८॥

बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहे थे ॥२४॥ आकाशमें स्थित देवोंने सुगन्धिसे भ्रमरोंको आकर्षित करनेवाली एवं नाना आकारमें पड़नेवाली फूलोंकी वर्षा की ॥२५॥ जिनके शब्द, क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रके शब्दके समान भारी थे ऐसे बड़े-बड़े दुन्दुभि बाजे, अदृश्य शरीरके धारक देवोंके द्वारा करपल्लवोंसे ताडित होकर विशाल शब्द करने लगे ॥२६॥ जिनके नेत्र कमलकी कलिकाओंके समान थे तथा जो सर्व प्रकारके आभूषणोंसे सुशोभित थे ऐसे दोनों ओर खड़े हुए दो यक्ष, चन्द्रमाकी हँसी उड़ानेवाले—सफेद चमर इच्छानुसार चलाने लगे ॥२७॥ जो मेरुके शिखरके समान ऊँचा था, पृथिवीरूपी स्त्रीका मानो मुकुट ही था, और अपनी किरणोंसे सूर्यको तिरस्कृत कर रहा था ऐसा सिंहासन उत्पन्न हुआ ॥२८॥ जो तीन लोककी प्रभुताका चिह्नस्वरूप था, मोतियोंकी लड़ियोंसे विभूषित था और भगवान्‌के निर्मल यशके समान जान पड़ता था ऐसा छत्र-त्रय उत्पन्न हुआ ॥२९॥ आचार्य रविषेण कहते हैं कि समवसरणके बीच सिंहासनपर विराजमान हुए भगवान्‌की शोभाका वर्णन करनेके लिए मात्र केवलज्ञानी ही समर्थ हैं, हमारे जैसे तुच्छ पुरुष उस शोभाका वर्णन कैसे कर सकते हैं ॥३०॥

तदनन्तर अवधिज्ञानके द्वारा, भगवान्‌को केवलज्ञान उत्पन्न होनेका समाचार जानकर सब इन्द्र अपने-अपने परिवारोंके साथ वन्दना करनेके लिए शीघ्र ही वहाँ आये ॥३१॥ सर्व प्रथम वृषभसेन नामक मुनिराज इनके प्रसिद्ध गणधर हुए थे। उनके बाद महावैराग्यको धारण करने-वाले अन्य-अन्य मुनिराज भी गणधर होते रहे थे ॥३२॥ उस समवसरणमें जब मुनि, श्रावक तथा देव आदि सब लोग यथास्थान अपने-अपने कोठोंमें बैठ गये तब गणधरने भगवान्‌से उपदेश देनेकी प्रेरणा की ॥३३॥ भगवान् अपने शब्दसे देव-दुन्दुभियोंके शब्दको तिरोहित करते एवं तत्त्वार्थको सूचित करनेवाली निम्नांकित वाणी कहने लगे ॥३४॥ उन्होंने कहा कि इस त्रिलोकात्मक समस्त संसारमें हित चाहनेवाले लोगोंको एक धर्म ही परम शरण है, उसीसे उत्कृष्ट सुख प्राप्त होता है ॥३५॥ प्राणियोंकी समस्त चेष्टाएँ सुखके लिए हैं और सुख धर्मके निमित्तसे होता है, ऐसा जानकर हे भव्य जन ! तुम सब धर्मका संग्रह करो ॥३६॥ बिना मेघोंके वृष्टि कैसे हो सकती है और बिना बीजके अनाज कैसे उत्पन्न हो सकता है। इसी तरह बिना धर्मके जीवोंको सुख कैसे उत्पन्न हो सकता है ? ॥३७॥ जिस प्रकार पंगु मनुष्य चलनेकी इच्छा करे, गूँगा मनुष्य बोलनेकी इच्छा करे,

---

१. निस्वनाम् म. ।

परमाणोः परं स्वल्पं न चान्यन्नभसो महत् । धर्मादन्यश्च लोकेऽस्मिन् सुहृन्नास्ति शरीरिणाम् ॥३९॥
मनुष्यभोगः स्वर्गश्च सिद्धसौख्यं च धर्मतः । प्राप्यते यत्तदन्येन व्यापारेण कृतेन किम् ॥४०॥
अहिंसानिर्मलं धर्मं सेवन्ते ये विपश्चितः । तेषामेवोर्ध्वगमनं यान्ति तिर्यगधोऽन्यथा ॥४१॥
यद्यप्यूर्ध्वं तपःशक्त्या व्रजेयुः परलिङ्गिनः । तथापि किङ्करा भूत्वा ते देवान् समुपासते ॥४२॥
देवदुर्गतिदुःखानि प्राप्य कर्मवशात्ततः । स्वर्गच्युताः पुनस्तिर्यग्योनिमायान्ति दुःखिनः ॥४३॥
सम्यग्दर्शनसंपन्नाः स्वभ्यस्तजिनशासनाः । दिवं गत्वा च्युता बोधिं प्राप्य यान्ति परं शिवम् ॥४४॥
सागाराणां यतीनां च धर्मोऽसौ द्विविधः स्मृतः । तृतीयं ये तु मन्यन्ते दग्धास्ते मोहवह्निना ॥४५॥
अणुव्रतानि पञ्च स्युस्त्रिप्रकारं गुणव्रतम् । शिक्षाव्रतानि चत्वारि धर्मोऽयं गृहमेधिनाम्[2] ॥४६॥
सर्वारम्भपरित्यागं कृत्वा देहेऽपि निःस्पृहाः । कालधर्मेण संयुक्ता गतिं ते यान्ति [3]शोभनाम् ॥४७॥
महाव्रतानि पञ्च स्युस्तथा समितयो मताः । गुप्तयस्तिस्र उद्दिष्टा धर्मोऽयं श्रोमतां सताम् ॥४८॥
धर्मेणानेन संयुक्ताः शुभध्यानपरायणाः । यान्ति नाकं च मोक्षं च हित्वा पूतिकलेवरम् ॥४९॥
येऽपि जातस्वरूपाणां परमब्रह्मचारिणाम् । स्तुतिं कुर्वन्ति भावेन तेऽपि धर्ममवाप्नुयुः ॥५०॥
तेन धर्मप्रभावेण कुगतिं न व्रजन्ति ते । लभन्ते बोधिलाभं च मुच्यन्ते येन किल्बिषात् ॥५१॥
इत्यादि देवदेवेन भाषितं धर्ममुत्तमम् । श्रुत्वा देवा[4] मनुष्याश्च परमामोदमागताः ॥५२॥

और अन्धा मनुष्य देखनेकी इच्छा करे उसी प्रकार धर्मके बिना सुखप्राप्त करना है ॥३८॥ जिस प्रकार इस संसारमें परमाणुसे छोटी कोई चीज नहीं है और आकाशसे बड़ी कोई वस्तु नहीं है उसी प्रकार प्राणियोंका धर्मसे बड़ा कोई मित्र नहीं है ॥३९॥ जब धर्मसे ही मनुष्य सम्बन्धी भोग, स्वर्ग और मुक्त जीवोंको सुख प्राप्त हो जाता है तब दूसरा कार्य करनेसे क्या लाभ है ? ॥४०॥ जो विद्वज्जन अहिंसासे निर्मल धर्मकी सेवा करते हैं उन्हींका ऊर्ध्वगमन होता है अन्य जीव तो तिर्यग्लोक अथवा अधोलोकमें ही जाते हैं ॥४१॥ यद्यपि अन्यलिंगी—हंस-परमहंस—परिव्राजक आदि भी तपश्चरणकी शक्तिसे ऊपर जा सकते हैं—स्वर्गोंमें उत्पन्न हो सकते हैं तथापि वे वहाँ किंकर होकर अन्य देवोंकी उपासना करते हैं ॥४२॥ वे वहाँ देव होकर भी कर्मके वश दुर्गतिके दुःख पाकर स्वर्गसे च्युत होते हैं और दुःखी होते हुए तिर्यंच योनि प्राप्त करते हैं ॥४३॥ जो सम्यग्दर्शनसे सम्पन्न हैं तथा जिन्होंने जिनशासनका अच्छी तरह अभ्यास किया है वे स्वर्ग जाते हैं और वहांसे च्युत होनेपर रत्नत्रयको पाकर उत्कृष्ट मोक्षको प्राप्त करते हैं ॥४४॥ वह धर्म गृहस्थों और मुनियोंके भेदसे दो प्रकारका है। इन दोके सिवाय जो तीसरे प्रकारका धर्म मानते हैं वे मोहरूपी अग्निसे जले हुए हैं ॥४५॥ पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत, यह गृहस्थोंका धर्म है ॥४६॥ जो गृहस्थ अन्त समय सब प्रकारके आरम्भका त्याग कर शरीरमें भी निःस्पृह हो जाते हैं तथा समता भावसे मरण करते हैं वे उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं ॥४७॥ पाँच महाव्रत, पाँच समितियाँ और तीन गुप्तियाँ यह मुनियोंका धर्म है ॥४८॥ जो मनुष्य मुनि धर्मसे युक्त होकर शुभ ध्यानमें तत्पर रहते हैं वे इस दुर्गन्धिपूर्ण बीभत्स शरीरको छोड़कर स्वर्ग अथवा मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥४९॥ जो मनुष्य उत्कृष्ट ब्रह्मचारी दिगम्बर मुनियोंकी भावपूर्वक स्तुति करते हैं वे भी धर्मको प्राप्त हो सकते हैं ॥५०॥ वे उस धर्मके प्रभावसे कुगतियोंमें नहीं जाते किन्तु उस रत्नत्रयरूपी धर्मको प्राप्त कर लेते हैं जिसके कि प्रभावसे पापबन्धनसे मुक्त हो जाते हैं ॥५१॥ इस प्रकार देवाधिदेव भगवान् वृषभदेवके द्वारा कहे हुए उत्तम धर्मको सुनकर देव और मनुष्य सभी परम हर्षको प्राप्त हुए ॥५२॥

---

१. शरीरिणः म. । २. गृहसेविनाम् म. । ३. शोभताम् म. । ४. देवमनुष्याश्च म. । ५. परमं मोद- म. ।

केचित् सम्यग्मतिं भेजुर्गृहिधर्ममथापरे । अनगारव्रतं केचित् स्वशक्तेरनुगामिनः ॥५३॥
ततः समुद्यता गन्तुं जिनं नत्वा सुरासुराः । स्तुत्वा च निजधामानि गता धर्मविभूषिताः ॥५४॥
यं यं देशं स सर्वज्ञः प्रयाति मतियोगतः । योजनानां शतं तत्र जायते स्वर्गविभ्रमम् ॥५५॥
स भ्रमन् बहुदेशेषु भव्यराशीनुपागतान् । रत्नत्रितयदानेन संसारा[1]दुदतीरयत् ॥५६॥
तस्यासीद् गणपालानामशीतिश्चतुरुत्तरा । सहस्राणि च तावन्ति साधूनां [2]सुतपोभृताम् ॥५७॥
अत्यन्तशुद्धचित्तास्ते रविचन्द्रसमप्रभाः । एभिः परिवृतः सर्वां जिनो विहरते महीम् ॥५८॥
चक्रवर्तिश्रियं तावत्प्राप्तो भरतभूपतिः । यस्य क्षेत्रमिदं नाम्ना जगत्प्रकटतां गतम् ॥५९॥
ऋषभस्य शतं पुत्रास्तेजस्कान्तिसमन्विताः । श्रमणव्रतमास्थाय संप्राप्ताः परमं पदम् ॥६०॥
तन्मध्ये भरताधीशः प्रथमो भूति[3]मानभूत् । निवसत्यसावस्मिन् साधुलोकनिषेविते ॥६१॥
अक्षया निधयस्तस्य नवरत्नादिसंभृताः । आकराणां सहस्राणि नवनवतिसंयुताः ॥६२॥
त्रयं सुरभिकोटीनां हलकोटिस्तथोदिताः । चतुरशीतिर्लक्षाणां नरदन्तिनाम् ॥६३॥
कोट्यश्चाष्टौ दशोद्दिष्टा वाजिनां वातरंहसाम् । द्वात्रिंशच्च सहस्राणि पार्थिवानां महौजसाम् ॥६४॥
तावन्त्येव सहस्राणि देशानां पुरसंपदाम् । चतुर्दश च रत्नानि रक्षितानि सदा सुरैः ॥६५॥
पुरन्ध्रीणां सहस्राणि नवतिः षड्भिरन्विताः । ऐश्वर्यं तस्य निःशेषं गदितुं नैव शक्यते ॥६६॥
[4]पोदनाख्ये पुरे तस्य स्थितो बाहुबली नृपः । प्रतिकूलो महासत्त्वस्तुल्योत्पादकमानतः ॥६७॥
तस्य युद्धाय संप्राप्तो भरतश्चक्रगर्वितः । सैन्येन चतुरङ्गेण छादयन् धरणीतलम् ॥६८॥

कितने ही लोगोंने सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानको धारण किया। कितने ही लोगोंने गृहस्थ धर्म अंगीकार किया और अपनी शक्तिका अनुसरण करनेवाले कितने ही लोगोंने मुनिव्रत स्वीकार किया ॥५३॥ तदनन्तर जानेके लिए उद्यत हुए सुर और असुरोंने जिनेन्द्र देवको नमस्कार किया, उनकी स्तुति की और फिर धर्मसे विभूषित होकर सब लोग अपने-अपने स्थानोंपर चले गये ॥५४॥ भगवान्‌का गमन इच्छावश नहीं होता था फिर भी वे जिस-जिस देशमें पहुँचते थे वहाँ सौ योजन तकका क्षेत्र स्वर्गके समान हो जाता था ॥५५॥ इस प्रकार अनेक देशोंमें भ्रमण करते हुए जिनेन्द्र भगवान्‌ने शरणागत भव्य जीवोंको रत्नत्रयका दान देकर संसार-सागरसे पार किया था ॥५६॥ भगवान्‌के चौरासी गणधर थे और चौरासी हजार उत्तम तपस्वी साधु थे ॥५७॥ वे सब साधु अत्यन्त निर्मल हृदयके धारक थे तथा सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रभासे संयुक्त थे। इन सबसे परिवृत्त होकर भगवान्‌ने समस्त पृथिवीपर विहार किया था ॥५८॥ भगवान् ऋषभदेवका पुत्र राजा भरत चक्रवर्तीकी लक्ष्मीको प्राप्त हुआ था और उसीके नामसे यह क्षेत्र संसारमें भरत क्षेत्रके नामसे प्रसिद्ध हुआ था ॥५९॥ भगवान् ऋषभदेवके सौ पुत्र थे जो एकसे एक बढ़कर तेज और कान्तिसे सहित थे तथा जो अन्तमें श्रमणपद—मुनिपद धारण कर परमपद—निर्वाणधामको प्राप्त हुए थे ॥६०॥ उन सौ पुत्रोंके बीच भरत चक्रवर्ती प्रथम पुत्र था जो कि सज्जनोंके समूहसे सेवित अयोध्या नामकी सुन्दर नगरीमें रहता था ॥६१॥ उसके पास नव रत्नोंसे भरी हुई अक्षय नौ निधियाँ थीं, निन्यानबे हजार खानें थीं, तीन करोड़ गायें थीं, एक करोड़ हल थे, चौरासी लाख उत्तम हाथी थे, वायुके समान वेगवाले अठारह करोड़ घोड़े थे, बत्तीस हजार महाप्रतापी राजा थे, नगरोंसे सुशोभित बत्तीस हजार ही देश थे, देव लोग सदा जिनकी रक्षा किया करते थे ऐसे चौदह रत्न थे, और छियानबे हजार स्त्रियाँ थीं। इस प्रकार उसके समस्त ऐश्वर्यका वर्णन करना अशक्य है—कठिन कार्य है ॥६२-६६॥ पोदनपुर नगरमें भरतका सौतेला भाई राजा बाहुबली रहता था। वह अत्यन्त शक्तिशाली था तथा 'मैं और भरत एक ही पिताके दो पुत्र हैं' इस अहंकारसे सदा भरतके विरुद्ध रहता था ॥६७॥ चक्ररत्नके

१. -दुदतीतरत् म. । २. च तपोभृताम् म. । ३. पौतनाख्ये म. । ४. मानसः म. ।

तयोर्गजघटाटोपसंवट्टरवसंकुलम् । संजातं प्रथमं युद्धं बहुसत्त्वक्षयावहम् ॥६९॥
अथोवाच विहस्यैवं भरतं बाहुविक्रमी । किं वराकैर्न लोकैर्न निहतैर्नावयोः ॥७०॥
यदि निःस्पन्दया दृष्ट्या भवताहं पराजितः । ततो निर्जित एवास्मि दृष्टियुद्धे प्रवर्त्यताम् ॥७१॥
दृष्टियुद्धे ततो भग्नस्तथा बाहुरणादिषु । वधार्थं भरतो भ्रातुश्चक्ररत्नं विसृष्टवान् ॥७२॥
तत्तस्यान्त्यशरीरत्वादक्षमं विनिपातने । तस्यैव पुनरायातं समीपं विफलक्रियम् ॥७३॥
ततो भ्रात्रा समं वैरमत्रबुध्य महामनाः । संप्राप्तो भोगवैराग्यं परमं भुजविक्रमी ॥७४॥
संत्यज्य स ततो भोगान् भूत्वा निर्वस्त्रभूषणः । वर्षं प्रतिमया तस्थौ मेरुवन्निःप्रकम्पकः ॥७५॥
वल्मीकविवरोद्यासैरस्युग्रैः स महोरगैः । श्यामादीनां च वल्लीभिः वेष्टितः प्राप केवलम् ॥७६॥
ततः शिवपदं प्रापदायुषः कर्मणः क्षये । प्रथमं सोऽवसर्पिण्यां मुक्तिमार्गं व्यशोधयत् ॥७७॥
भरतस्त्वकरोद् राज्यं कण्टकैः परिवर्जितम् । षड्भिर्भागैर्विभक्तायां सर्वस्यां भरतक्षितौ ॥७८॥
विद्याधरपुराकारा ग्रामाः सर्वसुखावहाः । देवलोकप्रकाराश्च पुरः परमसंपदः ॥७९॥
देवा इव जनास्तेषु रेजुः कृतयुगे सदा । मनोविषयसंप्राप्तविचित्राम्बरभूषणाः ॥८०॥
देशा भोगभुवा तुल्या लोकपालोपमा नृपाः । अप्सरःसदृशो नार्यो मदनावासभूमयः ॥८१॥
एवमेकातपत्रायां पृथिव्यां भरतोऽधिपः । आखण्डल इव स्वर्गे सुङ्क्ते कर्मफलं शुभम् ॥८२॥

अहंकारसे चकनाचूर भरत अपनी चतुरंग सेनाके द्वारा पृथिवीतलको आच्छादित करता हुआ उसके साथ युद्ध करनेके लिए पोदनपुर गया ॥ ६८ ॥ वहाँ उन दोनोंमें हाथियोंके समूहकी टक्करसे उत्पन्न हुए शब्दसे व्याप्त प्रथम युद्ध हुआ। उस युद्धमें अनेक प्राणी मारे गये ॥६९॥ यह देख भुजाओंके बलसे सुशोभित बाहुबलीने हँसकर भरतसे कहा कि इस तरह निरपराध दीन प्राणियोंके वधसे हमारा और आपका क्या प्रयोजन सिद्ध होनेवाला है ॥७०॥ यदि आपने मुझे निश्चल दृष्टिसे पराजित कर दिया तो मैं अपने आपको पराजित समझ लूँगा अतः दृष्टियुद्धमें ही प्रवृत्त होना चाहिए ॥७१॥ बाहुबलीके कहे अनुसार दोनोंका दृष्टियुद्ध हुआ और उसमें भरत हार गया। तदनन्तर जल-युद्ध और बाहु-युद्ध भी हुए उनमें भी भरत हार गया। अन्तमें भरतने भाईका वध करनेके लिए चक्ररत्न चलाया ॥७२॥ परन्तु बाहुबली चरमशरीरी थे अतः वह चक्ररत्न उनका वध करनेमें असमर्थ रहा और निष्फल हो लौटकर भरतके समीप वापस आ गया ॥७३॥ तदनन्तर भाईके साथ वैरका मूल कारण जानकर उदारचेता बाहुबली भोगोंसे अत्यन्त विरक्त हो गये ॥७४॥ उन्होंने उसी समय समस्त भोगोंका त्यागकर वस्त्राभूषण उतारकर फेंक दिये और एक वर्ष तक मेरु पर्वतके समान निष्प्रकम्प खड़े रहकर प्रतिमा योग धारण किया ॥७५॥ उनके पास अनेक वामियाँ लग गयीं जिनके बिलोंसे निकले हुए बड़े-बड़े साँपों और श्यामा आदिकी लताओंने उन्हें वेष्टित कर लिया। इस दशामें उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया ॥७६॥ तदनन्तर आयुकर्मका क्षय होनेपर उन्होंने मोक्ष पद प्राप्त किया और इस अवसर्पिणी कालमें सर्वप्रथम उन्होंने मोक्षमार्ग विशुद्ध किया—निष्कण्टक बनाया ॥७७॥ भरत चक्रवर्तीने छह भागोंसे विभक्त भरत क्षेत्रकी समस्त भूमिपर अपना निष्कण्टक राज्य किया ॥७८॥ उनके राज्यमें भरत क्षेत्रके समस्त गाँव विद्याधरोंके नगरोंके समान सर्व सुखोंसे सम्पन्न थे, समस्त नगर देवलोकके समान उत्कृष्ट सम्पदाओंसे युक्त थे ॥७९॥ और उनमें रहनेवाले मनुष्य, उस कृत युगमें देवोंके समान सदा सुशोभित होते थे। उस समयके मनुष्योंको मनमें इच्छा होते ही तरह-तरहके वस्त्राभूषण प्राप्त होते रहते थे ॥८०॥ वहाँके देश भोगभूमियोंके समान थे, राजा लोकपालोंके तुल्य थे और स्त्रियाँ अप्सराओंके समान कामकी निवासभूमि थीं ॥८१॥ इस तरह जिस प्रकार

---

१. -मार्गं -म. । २. भरताधिपः म. ।

रक्षितं यस्य यक्षाणां सहस्रेण प्रयत्नतः । सर्वेन्द्रियसुखं रत्नं सुभद्राख्यं व्यैराजत[1] ॥८३॥
पञ्च पुत्रशतान्यस्य यैरिदं भरताह्वयम् । क्षेत्रं विभागतो भुक्तं पित्रा दत्तमकण्टकम् ॥८४॥
अथैवं कथितं तेन गौतमेन महात्मना । श्रेणिकः पुनरप्याह वाक्यमेतत्कुतूहली ॥८५॥
वर्णत्रयस्य भगवन्संभवो मे त्वयोदितः उत्पत्तिं ब्रह्मणानां श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥८६॥
प्राणिघातादिकं कृत्वा कर्म साधुजुगुप्सितम् । परं वहन्त्यमी गर्वं धर्मप्राप्तिनिमित्तकम् ॥८७॥
तदेषां विपरीतानामुत्पत्तिं वक्तुमर्हसि । कथं चैषां गृहस्थानां मक्तो लोकः प्रवर्तते ॥८८॥
एवं पृष्टो गणेशोऽसाविदं वचनमब्रवीत् । कृपाङ्गनापरिष्वक्तहृदयो[2] हृतमत्सरः ॥८९॥
श्रेणिक श्रूयतामेषा यथोत्पत्तिरनुत्तरैः[3] जिनैर्दिव्यवचोभिः सोद्गतस्यास्य चेतसाम् ॥९०॥
साकेतनगरासन्ने प्रदेशे प्रथमो जिनः । आसाञ्चक्रेऽन्यदा देवतिर्यङ्मानववेष्टितः ॥९१॥
ज्ञात्वा तं भरतस्तुष्टो गत्वाभिष्टुत्य सुसंस्कृतम्[4] । अन्नं जगाम यत्यर्थं बहुभेदप्रकल्पितम् ॥९२॥
प्रणम्य च जिनं भक्त्या समस्तांश्च दिगम्बरान् । भूमौ[5] करद्वयं कृत्वा वाग्मीमेतामभाषत ॥९३॥
प्रसादं भगवन्तो मे कर्तुमर्हथ याचिताः । प्रतीच्छत मया भिक्षां शोभनामुपपादिताम् ॥९४॥
इत्युक्ते भगवानाह भरतेयं न कल्पते । साधूनामीदृशी भिक्षा या तदुद्देशसंस्कृता ॥९५॥

इन्द्र स्वर्गमें अपने शुभकर्मका फल भोगता है उसी प्रकार भरत चक्रवर्ती भी एकछत्र पृथिवीपर अपने शुभकर्मका फल भोगता था ॥८२॥ एक हजार यक्ष प्रयत्नपूर्वक जिसकी रक्षा करते थे ऐसा समस्त इन्द्रियोंको सुख देनेवाला उसका सुभद्रा नामक स्त्रीरत्न अतिशय शोभायमान था ॥८३॥ भरत चक्रवर्तीके पाँच सौ पुत्र थे जो पिताके द्वारा विभाग कर दिये हुए निष्कण्टक भरत क्षेत्रका उपभोग करते थे ॥८४॥ इस प्रकार महात्मा गौतम गणधरने भगवान् ऋषभदेव तथा उनके पुत्र और पौत्रोंका वर्णन किया जिसे सुनकर कुतूहलसे भरे हुए राजा श्रेणिकने फिरसे यह कहा ॥८५॥

हे भगवन् ! आपने मेरे लिए क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णोंकी उत्पत्ति तो कही अब मैं इस समय ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति और जानना चाहता हूँ ॥८६॥ ये लोग धर्मप्राप्तिके निमित्त, सज्जनोंके द्वारा निन्दित प्राणिहिंसा आदि कार्य कर बहुत भारी गर्वको धारण करते हैं ॥८७॥ इसलिए आप इन विपरीत प्रवृत्ति करनेवालोंकी उत्पत्ति कहनेके योग्य हैं। साथ ही यह भी बतलाइए कि इन गृहस्थ ब्राह्मणोंके लोग भक्त कैसे हो जाते हैं ? ॥८८॥ इस प्रकार दयारूपी स्त्री जिनके हृदयका आलिंगन कर रही थी तथा मत्सर भावको जिन्होंने नष्ट कर दिया था ऐसे गौतम गणधरने राजा श्रेणिकके पूछनेपर निम्नांकित वचन कहे ॥८९॥ हे श्रेणिक ! जिनका हृदय मोहसे आक्रान्त है और इसीलिए जो विपरीत प्रवृत्ति कर रहे हैं ऐसे इन ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति जिस प्रकार हुई वह मैं कहता हूँ तू सुन ॥९०॥

एक बार अयोध्या नगरीके समीपवर्ती प्रदेशमें देव, मनुष्य तथा तिर्यंचोंसे वेष्टित भगवान् ऋषभदेव आकर विराजमान हुए। उन्हें आया जानकर राजा भरत बहुत ही सन्तुष्ट हुआ और मुनियोंके उद्देश्यसे बनवाया हुआ नाना प्रकारका उत्तमोत्तम भोजन नौकरोंसे लिवाकर भगवान्के पास पहुँचा। वहाँ जाकर उसने भक्तिपूर्वक भगवान् ऋषभदेवको तथा अन्य समस्त मुनियोंको नमस्कार किया और पृथ्वीपर दोनों हाथ टेककर यह वचन कहे ॥९१-९३॥ हे भगवन् ! मैं याचना करता हूँ कि आप लोग मुझपर प्रसन्न होइए और मेरे द्वारा तैयार करायी हुई यह उत्तमोत्तम भिक्षा ग्रहण कीजिए। ॥९४॥ भरतके ऐसा कहनेपर भगवान्ने कहा कि हे भरत ! जो भिक्षा मुनियोंके उद्देश्यसे तैयार की जाती है वह उनके योग्य नहीं है—मुनिजन उद्दिष्ट भोजन ग्रहण नहीं

---

१. विराजते म. । २. हृदयोद्गतमत्सरः म. । ३. श्रमौ म. । ४. प्रभाषत म. ।

एते हि तृष्णया मुक्ता निर्जितेन्द्रियशत्रवः । विधायापि बहून् मासानुपवासं महागुणाः ॥९६॥
भिक्षां परगृहे लब्धां निर्दोषां मौनमास्थिताः । भुञ्जते प्राणधृत्यर्थं प्राणा धर्मस्य हेतवः ॥९७॥
धर्मं चरन्ति मोक्षार्थं यत्र पीडा न विद्यते । कथंचिदपि सत्त्वानां सर्वेषां सुखमिच्छताम् ॥९८॥
श्रुत्वा तद्वचनं सम्राडचिन्तयदिदं चिरम् । अहो बत महाकष्टं जैनेश्वरमिदं व्रतम् ॥९९॥
तिष्ठन्ति मुनयो यत्र स्वस्मिन् देहेऽपि निःस्पृहाः । जातरूपधरा धीराः [1]सर्वभूतदयापराः ॥१००॥
इदानीं भोजयाम्येतान् सागारव्रतमाश्रितान् । लक्षणं हेमसूत्रेण कृत्वैतेन महान्धसा ॥१०१॥
प्रकाममन्यदप्येभ्यो दानं यच्छामि भक्तितः । कनीयान् मुनिधर्मस्य धर्मोऽमीभिः समाश्रितः ॥१०२॥
सम्यग्दृष्टिजनं सर्वं ततोऽसौ धरणीतले । [2]न्यमन्त्रयत् महावेगैः पुरुषैः स्वस्य संमतैः ॥१०३॥
महान् कलकलो जातः सर्वस्यामवनौ ततः । भो भो नरा महादानं भरतः कर्तुमुद्यतः ॥१०४॥
उत्तिष्ठताशु गच्छामो वस्त्ररत्नादिकं धनम् । आनयामो नरा ह्येते प्रेषितास्तेन सादराः ॥१०५॥
[illegible] । सम्यग्दृष्टिजनान् राजा गमनं तत्र नो वृथा ॥१०६॥
ततः सम्यग्दृशो [3]याता हर्षं परममागताः । सपुत्रैः कलत्रैश्च पुरुषा विनयस्थिताः ॥१०७॥
मिथ्यादृशोऽपि संप्राप्ता मायया वसुतृष्णया । भवनं राजराजस्य शक्रप्रासादसन्निभम् ॥१०८॥
अङ्गणोप्तयवव्रीहिमुद्गमाषाङ्कुरादिभिः । उक्षित्य लक्षणैः सर्वान् सम्यग्दर्शनसंस्कृतान्॥१०९॥

करते ॥९५॥ ये मुनि तृष्णासे रहित हैं, इन्होंने इन्द्रियरूपी शत्रुओंको जीत लिया है, तथा महान् गुणोंके धारक हैं। ये एक-दो नहीं अनेक महीनोंके उपवास करनेके बाद भी श्रावकोंके घर ही भोजनके लिए जाते हैं और वहाँ प्राप्त हुई निर्दोष भिक्षाको मौन-से खड़े रहकर ग्रहण करते हैं। उनकी यह प्रवृत्ति रसास्वादके लिए न होकर केवल प्राणोंकी रक्षाके लिए ही होती है क्योंकि प्राण धर्मके कारण हैं ॥९६-९७॥ ये मुनि मोक्ष-प्राप्तिके लिए उस धर्मका आचरण कर रहे हैं जिसमें कि सुखकी इच्छा रखनेवाले समस्त प्राणियोंको किसी भी प्रकारकी पीड़ा नहीं दी जाती है ॥९८॥ भगवान्के उक्त वचन सुनकर सम्राट् भरत चिरकाल तक यह विचार करता रहा और कहता रहा कि अहो! जिनेन्द्र भगवान्का यह व्रत महान् कष्टोंसे भरा है। इस व्रतके पालन करनेवाले मुनि अपने शरीरमें निःस्पृह रहते हैं, दिगम्बर होते हैं, धीरवीर तथा समस्त प्राणियोंपर दया करनेमें तत्पर रहते हैं ॥९९-१००॥ इस समय जो यह महान् भोजन-सामग्री तैयार की गयी है इससे गृहस्थका व्रत धारण करनेवाले पुरुषोंको भोजन कराता हूँ तथा इन गृहस्थोंको सुवर्णसूत्रसे चिह्नित करता हूँ ॥१०१॥ भोजनके सिवाय अन्य आवश्यक वस्तुएँ भी इनके लिए भक्तिपूर्वक अच्छी मात्रामें देता हूँ क्योंकि इन लोगोंने जो धर्म धारण किया है वह मुनि धर्मका छोटा भाई ही तो है ॥१०२॥

तदनन्तर—सम्राट् भरतने महावेगशाली अपने इष्ट पुरुषोंको भेजकर पृथिवीतलपर विद्यमान समस्त सम्यग्दृष्टिजनोंको निमन्त्रित किया ॥१०३॥ इस कार्यसे समस्त पृथिवीपर बड़ा कोलाहल मच गया। लोग कहने लगे कि अहो! मनुष्यजन हो! सम्राट् भरत बहुत भारी दान करनेके लिए उद्यत हुआ है ॥१०४॥ इसलिए उठो, शीघ्र चलें, वस्त्र-रत्न आदिक धन लावें, देखो ये आदरसे भरे सेवकजन उसने भेजे हैं ॥१०५॥ यह सुनकर उन्हीं लोगोंमें-से कोई कहने लगे कि यह भरत अपने इष्ट सम्यग्दृष्टिजनोंका ही सत्कार करता है इसलिए हम लोगोंका वहाँ जाना वृथा है ॥१०६॥ यह सुनकर जो सम्यग्दृष्टि पुरुष थे वे परम हर्षको प्राप्त हो स्त्री-पुत्रादिकोंके साथ भरतके पास गये और विनयसे खड़े हो गये ॥१०७॥ जो मिथ्यादृष्टि थे वे भी धनकी तृष्णासे मायामयी सम्यग्दृष्टि बनकर इन्द्रभवनकी तुलना करनेवाले सम्राट् भरतके भवनमें पहुँचे ॥१०८॥ सम्राट् भरतने भवनके आँगनमें बोये हुए जौ, धान, मूँग, उड़द आदिके अंकुरोंसे

---

१. शान्तप्रशममूर्तयः म. । २. न्यामन्त्रयत् क. । ३. जाताः क., ख. ।

अलक्षयत् सरत्नेन सूत्रचिह्नेन चारुणा । चामीकरमयेनासौ प्रावेशयदधो गृहम् ॥११०॥
मिथ्यादृशोऽपि तृष्णार्तांश्चिन्तया व्याकुलीकृताः । जल्पन्तो दीनवाक्यानि प्रविष्टा दुःखसागरम् ॥१११॥
ततो यथेप्सितं दानं श्रावकेभ्यो ददौ नृपः । पूजितानां च चिन्तेयं तेषां जाता दुरात्मनाम् ॥११२॥
वयं केऽपि महापूता जगते हितकारिणः । पूजिता यद्भरेन्द्रेण अद्भुताऽत्यन्तभक्तया ॥११३॥
ततस्ते तेन गर्वेण समस्ते धरणीतले । प्रवृत्ता याचितुं लोकं दृष्ट्वा द्रव्यसमन्वितम् ॥११४॥
ततो मतिसमुद्रेण भरताय निवेदितम् । यथायेति मया जैने वचनं सदसि श्रुतम् ॥११५॥
वर्द्धमानजिनस्यान्ते भविष्यन्ति कलौ युगे । एते ये भवता सृष्टाः पाखण्डिनो महोद्धताः ॥११६॥
प्राणिनो मारयिष्यन्ति धर्मबुद्ध्या विमोहिताः । महाकषायसंयुक्ताः सदा पापक्रियोद्यताः ॥११७॥
कुग्रन्थं वेदसंज्ञं च हिंसाभाषणतत्परम् । वक्ष्यन्ति कर्तृनिर्मुक्तं मोहयन्तोऽखिलाः प्रजाः ॥११८॥
महारम्भेषु संसक्ताः प्रतिग्रहपरायणाः । करिष्यन्ति सदा निन्दां जिनभाषितशासने ॥११९॥
निर्ग्रन्थमग्रतो दृष्ट्वा क्रोधं यास्यन्ति पापिनः । उपद्रवाय लोकस्य विषवृक्षाङ्कुरा इव ॥१२०॥
तच्छ्रुत्वा भरतः क्रुद्धः आदू सर्वान् हन्तुमुद्यतः । ततस्तिरस्ते तत्रस्तेन नाभेयं शरणं गताः ॥१२१॥
यस्मान्मा हननं पुत्र कार्षीरिति [1]निवारितम् । ऋषभेण ततो याता 'माहना' इति ते श्रुतिम् ॥१२२॥
रक्षितास्ते यतस्तेन जिनेन शरणागताः । त्रातारमिन्द्रमिरयुच्चैस्ततस्तं विबुधा जगुः ॥१२३॥

समस्त सम्यग्दृष्टि पुरुषोंकी छाँट अलग कर ली तथा उन्हें जिसमें रत्न पिरोया गया था ऐसे सुवर्णमय सुन्दर सूत्रके चिह्नसे चिह्नित कर भवनके भीतर प्रविष्ट करा लिया ॥१०९-११०॥ तृष्णासे पीड़ित मिथ्यादृष्टि लोग भी चिन्तासे व्याकुल हो दीन वचन कहते हुए दुःखरूपी सागरमें प्रविष्ट हुए ॥१११॥ तदनन्तर—राजा भरतने उन श्रावकोंके लिए इच्छानुसार दान दिया। भरतके द्वारा सम्मान पाकर उनके हृदयमें दुर्भावना उत्पन्न हुई और वे इस प्रकार विचार करने लगे ॥११२॥ कि हम लोग वास्तवमें महापवित्र तथा जगत्का हित करनेवाले कोई अनुपम पुरुष हैं इसीलिए तो राजाधिराज भरतने बड़ी श्रद्धाके साथ हम लोगोंकी पूजा की है ॥११३॥ तदनन्तर वे इसी गर्वसे समस्त पृथिवीतलपर फैल गये और किसी धन-सम्पन्न व्यक्तिको देखकर याचना करने लगे ॥११४॥ तत्पश्चात् किसी दिन मतिसमुद्र नामक मन्त्रीने राजाधिराज भरतसे कहा कि आज मैंने भगवान्के समवसरणमें निम्नांकित वचन सुना है ॥११५॥ वहाँ कहा गया है कि भरतने जो इन ब्राह्मणोंकी रचना की है सो वे वर्द्धमान तीर्थंकरके बाद कलियुग नामक पंचम काल आनेपर पाखण्डी एवं अत्यन्त उद्धत हो जायेंगे ॥११६॥ धर्म बुद्धिसे मोहित होकर अर्थात् धर्म समझकर प्राणियोंको मारेंगे, बहुत भारी कषायसे युक्त होंगे और पाप कार्यके करनेमें तत्पर होंगे ॥११७॥ जो हिंसाका उपदेश देनेमें तत्पर रहेगा ऐसे वेद नामक खोटे शास्त्रको कर्तासे रहित अर्थात् ईश्वर प्रणीत बतलावेंगे और समस्त प्रजाको मोहित करते फिरेंगे ॥११८॥ बड़े-बड़े आरम्भोंमें लीन रहेंगे, दक्षिणा ग्रहण करेंगे और जिनशासनकी सदा निन्दा करेंगे ॥११९॥ निर्ग्रन्थ मुनिको आगे देखकर क्रोधको प्राप्त होंगे और जिस प्रकार विषवृक्षके अंकुर जगत्के उपद्रव अर्थात् अपकारके लिए हैं उसी प्रकार ये पापी भी जगत्के उपद्रवके लिए होंगे—जगत्में सदा अनर्थ उत्पन्न करते रहेंगे ॥१२०॥ मतिसमुद्र मन्त्रीके वचन सुनकर भरत कुपित हो उन सब विप्रोंको मारनेके लिए उद्यत हुआ। तदनन्तर वे भयभीत होकर भगवान् ऋषभदेवकी शरणमें गये ॥१२१॥ भगवान् ऋषभदेवने 'हे पुत्र ! इनका (मा हननं कार्षीः) हनन मत करो' यह शब्द कहकर इनकी रक्षा की थी इसलिए ये आगे चलकर 'माहन' इस प्रसिद्धिको प्राप्त हो गये अर्थात् 'माहन' कहलाने लगे ॥१२२॥ चूँकि इन शरणागत ब्राह्मणोंकी ऋषभ जिनेन्द्रने रक्षा की थी इसलिए देवों अथवा विद्वानोंने भगवान्को

---

१. निवारितः म.।

ये च ते प्रथमं भग्ना नृपा नाथानुगामिनः । प्रतान्तरममी चक्रुः स्वबुद्धिपरिकल्पितम् ॥१२४॥
तेषां शिष्याः प्रशिष्याश्च मोहयन्तः कुहेतुभिः । जगद् गर्वपराधस्ताः कुशास्त्राणि प्रचक्रिरे ॥१२५॥
भृगुरङ्गिशिरा वह्निः कपिलोऽत्रिर्विदस्तथा । अन्ये च बहवोऽज्ञानाज्जाता वल्कलतापसाः ॥१२६॥
स्त्रियं दृष्ट्वा कुचित्तास्ते पुंलिङ्गं प्राप्तविक्रियम् । विदधुर्मोहसंक्लान्ताः कौपीनेन नराधमाः ॥१२७॥
सूत्रकण्ठा पुरा तेन ये सृष्टाश्चक्रवर्तिना । बीजमात्रकृतास्तेऽत्र संप्राप्ताः प्रथिवीतलम् ॥१२८॥
प्रस्तावगतमेतत्ते कथितं द्विजकल्पनम् । इदानीं प्रकृतं वक्ष्ये राजन् शृणु समाहितः ॥१२९॥
अथासौ लोकमुत्तार्य प्रभूतं भवसागरात् । कैलासशिखरे प्राप निर्वृतिं नाभिनन्दनः ॥१३०॥
ततो भरतराजोऽपि प्रव्रज्यां प्रतिपन्नवान् । साम्राज्यं तृणवत् त्यक्त्वा लोकविस्मयकारणम् ॥१३१॥

आर्याछन्दः

स्थित्यधिकारोऽयं ते श्रेणिक गदितः समासतस्त्वेनम् ।
वंशाधिकारमधुना पुरुषवर विद्धि सादरं वक्ष्मि ॥१३२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते ऋषभमाहात्म्याभिधानं नाम चतुर्थं पर्व ॥४॥

□

त्राता अर्थात् रक्षक कहकर उनकी बहुत भारी स्तुति की थी ॥१२३॥ दीक्षाके समय भगवान् ऋषभदेवका अनुकरण करनेवाले जो राजा पहले ही च्युत हो गये थे उन्होंने अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार दूसरे-दूसरे व्रत चलाये थे ॥१२४॥ उन्हींके शिष्य-प्रशिष्योंने अहंकारसे चूर होकर खोटी-खोटी युक्तियोंसे जगत्को मोहित करते हुए अनेक खोटे शास्त्रोंकी रचना की ॥१२५॥ भृगु, अंगिशिरस, वह्नि, कपिल, अत्रि तथा विद आदि अनेक साधु अज्ञानवश वल्कलोंको धारण करनेवाले तापसी हुए ॥१२६॥ स्त्रीको देखकर उनका चित्त दूषित हो जाता था और जननेन्द्रियमें विकार दिखने लगता था इसलिए उन अधम मोही जीवोंने जननेन्द्रियको लँगोटसे आच्छादित कर लिया ॥१२७॥ कण्ठमें सूत्र अर्थात् यज्ञोपवीतको धारण करनेवाले जिन ब्राह्मणोंकी चक्रवर्ती भरतने पहले बीजके समान थोड़ी ही रचना की थी वे अब सन्ततिरूपसे बढ़ते हुए समस्त पृथ्वी तलपर फैल गये ॥१२८॥ गौतम गणधर राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! यह ब्राह्मणोंकी रचना प्रकरणवश मैंने तुझसे कही है। अब सावधान होकर प्रकृत बात कहता हूँ सो सुन ॥१२९॥ भगवान् ऋषभदेव संसार-सागरसे अनेक प्राणियोंका उद्धार कर कैलास पर्वतकी शिखरसे मोक्षको प्राप्त हुए ॥१३०॥ तदनन्तर चक्रवर्ती भरत भी लोगोंको आश्चर्यमें डालनेवाले साम्राज्यको तृणके समान छोड़कर दीक्षाको प्राप्त हुए ॥१३१॥ हे श्रेणिक ! यह स्थिति नामका अधिकार मैंने संक्षेपसे तुझे कहा है, हे श्रेष्ठ पुरुष ! अब वंशाधिकारको कहता हूँ सो आदरसे श्रवण कर ॥१३२॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य प्रणीत पद्मचरितमें ऋषभदेवका माहात्म्य वर्णन करनेवाला चतुर्थ पर्व पूर्ण हुआ ॥४॥

□

---

१. नराधिपाः ख. । २. -मुत्तीर्य क. ।

पञ्चमं पर्व

जगत्यस्मिन् महावंशाश्चत्वारः प्रथिता नृप । एषां रहस्यसंयुक्ताः प्रभेदा बहुधोदिताः ॥१॥
इक्ष्वाकुः प्रथमस्तेषामुक्तो लोकविभूषणः । ऋषिवंशो द्वितीयस्तु चन्द्रार्ककरनिर्मलः ॥२॥
विद्याभृतां तृतीयस्तु वंशोऽत्यन्तमनोहरः । हरिवंशो जगत्ख्यातश्चतुर्थः परिकीर्तितः ॥३॥
तस्यादित्यमहाः पुत्रो भरतस्योदपद्यत । ततः सितयशा जातो बलाङ्कस्तस्य चामवत् ॥४॥
जज्ञे च सुबलस्तस्मात्तस्माच्चापि महाबलः । तस्मादतिबलो जातस्ततश्चामृतशब्दितः ॥५॥
सुभद्रः सागरो भद्रो रवितेजास्तथा शशी । प्रभूततेजास्तेजस्वी तपनोऽथ प्रतापवान् ॥६॥
अतिवीर्यः सुवीर्यश्च तथोदितपराक्रमः । महेन्द्रविक्रमः सूर्य इन्द्रद्युम्नो महेन्द्रजित् ॥७॥
प्रभुर्विभुरविध्वंसी वीतभीर्वृषभध्वजः । गरुडाङ्को मृगाङ्कश्च तथान्ये पृथिवीभृतः ॥८॥
राज्यं सुतेषु निक्षिप्य संसारार्णवभीरवः । शरीरेष्वपि निःसंगा निर्ग्रन्थव्रतमाश्रिताः ॥९॥
अयमादित्यवंशस्ते कथितः क्रमतो नृप । उत्पत्तिः सोमवंशस्य साम्प्रतं परिकीर्त्यते ॥१०॥
ऋषभस्यामवत् पुत्रो नाम्ना बाहुबलीति यः । ततः सोमयशा नाम सौम्यः सूनुरजायत ॥११॥
ततो महाबलो जातस्ततोऽस्य सुबलोऽभवत् । स्मृतो भुजबली तस्यादेवमाद्या नृपाधिपाः ॥१२॥
[2]शशिवंशे समुत्पन्नाः क्रमेण सितचेष्टिताः । श्रामण्यमनुभूयाशु संप्राप्ताः परमं पदम् ॥१३॥

अथानन्तर, गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन्! इस संसारमें चार महावंश प्रसिद्ध हैं और इन महावंशोंके अनेक अवान्तर भेद कहे गये हैं। ये सभी भेद अनेक प्रकारके रहस्योंसे युक्त हैं ॥ १ ॥ उन चार महावंशोंमें पहला इक्ष्वाकुवंश है जो अत्यन्त उत्कृष्ट तथा लोकका आभूषणस्वरूप है। दूसरा ऋषिवंश अथवा चन्द्रवंश है जो चन्द्रमाकी किरणोंके समान निर्मल है ॥ २ ॥ तीसरा विद्याधरोंका वंश है जो अत्यन्त मनोहर है और चौथा हरिवंश है जो संसारमें प्रसिद्ध कहा गया है ॥ ३ ॥ इक्ष्वाकुवंशमें भगवान् ऋषभदेव उत्पन्न हुए, उनके भरत हुए और उनके अर्ककीर्ति महाप्रतापी पुत्र हुए। अर्क नाम सूर्यका है इसलिए इनका वंश सूर्यवंश कहलाने लगा। अर्ककीर्तिके सितयशा नामा पुत्र हुए, उनके बलांक, बलांकके सुबल, सुबलके महाबल, महाबलके अतिबल, अतिबलके अमृत, अमृतके सुभद्र, सुभद्रके सागर, सागरके भद्र, भद्रके रवितेज, रवितेजके शशी, शशीके प्रभूततेज, प्रभूततेजके तेजस्वी, तेजस्वीके प्रतापी तपन, तपनके अतिवीर्य, अतिवीर्यके सुवार्य, सुवीर्यके उदितपराक्रम, उदितपराक्रमके महेन्द्रविक्रम, महेन्द्रविक्रमके सूर्य, सूर्यके इन्द्रद्युम्न, इन्द्रद्युम्नके महेन्द्रजित्, महेन्द्रजित्के प्रभु, प्रभुके विभु, विभुके अविध्वंस, अविध्वंसके वीतभी, वीतभीके वृषभध्वज, वृषभध्वजके गरुडांक और गरुडांकके मृगांक पुत्र हुए। इस प्रकार इस वंशमें अन्य अनेक राजा हुए। ये सभी संसारसे भयभीत थे अतः पुत्रोंके लिए राज्य सौंपकर शरीरसे भी निःस्पृह हो निर्ग्रन्थ व्रतको प्राप्त हुए ॥४–९॥ हे राजन्! मैंने क्रमसे तुझे सूर्यवंशका निरूपण किया है अब सोमवंश अथवा चन्द्रवंशकी उत्पत्ति कही जाती है ॥१०॥

भगवान् ऋषभदेवकी दूसरी रानीसे बाहुबली नामका पुत्र हुआ था, उसके सोमयश नामका सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ था। सोम नाम चन्द्रमाका है सो उसी सोमयशसे सोमवंश अथवा चन्द्रवंशकी परम्परा चली है। सोमयशके महाबल, महाबलके सुबल और सुबलके भुजबलि इस

---

१. नृपः म.। २. शशिवंशसमुत्पन्नाः ख., म.।

केचित्तु तनुकर्माणो भुञ्जानास्तपसः फलम् । स्वर्गे चक्रुरवस्थानमासन्नभवनिर्गमाः ॥१४॥
एष ते सोमवंशोऽपि कथितः पृथिवीपते । वैद्याधरमतो वंशं क्रथयामि समासतः ॥१५॥
नमेर्विद्याधरेन्द्रस्य रत्नमाली सुतोऽभवत् । रत्नवज्रस्ततो जातस्ततो रत्नरथोऽभवत् ॥१६॥
रत्नचित्रोऽभवत्तस्माज्जातश्चन्द्ररथस्ततः । वज्रजङ्घाख्यो वज्रसेनश्रुतिस्ततः ॥१७॥
उद्भूतो वज्रदंष्टोऽतस्ततो वज्रध्वजोऽभवत् । वज्रायुधश्च वज्रश्च सुवज्रो वज्रभृत्तथा ॥१८॥
वज्राभो वज्रबाहुश्च वज्राङ्को वज्रसंज्ञकः । वज्रास्यो वज्रपाणिश्च वज्रजानुश्च वज्रवान् ॥१९॥
विद्युन्मुखः सुवक्त्रश्च विद्युद्दंष्ट्रश्च तत्सुतः । विद्युद्वान् विद्युदाभश्च विद्युद्वेगोऽथ वैद्युतः ॥२०॥
इत्याद्या बहवः शूरा विद्याधरपतीनृपाः । यथा स्वैरं चिरं कालेन चेष्टितोचितमाश्रयम्[1] ॥२१॥
सुतेषु प्रभुतां न्यस्य जिनदीक्षामुपाश्रिताः । हित्वा द्वेषं च रागं च केचित्सिद्धिमुपागताः ॥२२॥
केचिद्विनाशमप्राप्ते समस्ते कर्मबन्धने । संकल्पकृतसांनिध्यं सौरभोगमभुञ्जत ॥२३॥
केचित्तु कर्मपाशेन बद्धाः स्नेहगरीयसा । तत्रैव निधनं याता वागुरायां मृगा इव ॥२४॥
अथ विद्युद्दृढो नाम्ना प्रभुः श्रेण्योर्द्वयोरपि । विद्याबलसमुद्धतो बभूवोन्नतविक्रमः ॥२५॥
अन्यदा स गतोऽपश्यद् विदेहं गगनस्थितः । निर्ग्रन्थं योगमास्थाय शैलमिश्चलविग्रहम् ॥२६॥
स्थापितस्तेन नीत्वासौ नाम्ना पञ्चगिरौ गिरौ । कुरुध्वं वधमस्येति विद्यावन्तश्च चोदिताः ॥२७॥

प्रकार इन्हें आदि लेकर अनेक राजा इस वंशमें क्रमसे उत्पन्न हुए हैं। ये सभी राजा निर्मल चेष्टाओंके धारक थे तथा मुनिपदको धारण कर ही परमपद (मोक्ष) को प्राप्त हुए ॥११-१३॥ कितने ही अल्पकर्म अवशिष्ट रह जानेके कारण तपका फल भोगते हुए स्वर्गमें देव हुए तथा वहाँसे आकर शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करेंगे ॥१४॥ हे राजन् ! यह मैंने तुझे सोमवंश कहा अब आगे संक्षेपसे विद्याधरोंके वंशका वर्णन करता हूँ ॥१५॥

विद्याधरोंका राजा जो नमि था उसके रत्नमाली नामका पुत्र हुआ। रत्नमालीके रत्नवज्र, रत्नवज्रके रत्नरथ, रत्नरथके रत्नचित्र, रत्नचित्रके चन्द्ररथ, चन्द्ररथके वज्रजंघ, वज्रजंघके वज्रसेन, वज्रसेनके वज्रदंष्ट, वज्रदंष्ट्रके वज्रध्वज, वज्रध्वजके वज्रायुध, वज्रायुधके वज्र, वज्रके सुवज्र, सुवज्रके वज्रभृत्, वज्रभृत्के वज्राभ, वज्राभके वज्रबाहु, वज्रबाहुके वज्रसंज्ञ, वज्रसंज्ञके वज्रास्य, वज्रास्यके वज्रपाणि, वज्रपाणिके वज्रजानु, वज्रजानुके वज्रवान्, वज्रवान्के विद्युन्मुख, विद्युन्मुखके सुवक्त्र, सुवक्त्रके विद्युद्दंष्ट्र, विद्युद्दंष्ट्रके विद्युत्वान्, विद्युत्वान्के विद्युदाभ, विद्युदाभके विद्युद्वेग और विद्युद्वेगके वैद्युत नामक पुत्र हुए। ये ही नहीं, इन्हें आदि लेकर अनेक शूरवीर विद्याधरोंके राजा हुए। ये सभी दीर्घ काल तक राज्य कर अपनी-अपनी चेष्टाओंके अनुसार स्थानोंको प्राप्त हुए ॥१६-२१॥ इनमें-से कितने ही राजाओंने पुत्रोंके लिए राज्य सौंपकर जिनदीक्षा धारण की और राग-द्वेष छोड़कर सिद्धिपद प्राप्त किया ॥२२॥ कितने ही राजा समस्त कर्मबन्धनको नष्ट नहीं कर सके इसलिए संकल्प मात्रसे उपस्थित होनेवाले देवोंके सुखका उपभोग करने लगे ॥२३॥ कितने ही लोग स्नेहके कारण गुरुतर कर्मरूपी पाशसे बँधे रहे और जालमें बँधे हरिणोंके समान उसी कर्मरूपी पाशमें बँधे हुए मृत्युको प्राप्त हुए ॥२४॥

अथानन्तर इसी विद्याधरोंके वंशमें एक विद्युद्दृढ़ नामका राजा हुआ जो दोनों श्रेणियोंका स्वामी था, विद्याबलमें अत्यन्त उद्धत और विपुल पराक्रमका धारी था ॥२५॥ किसी एक समय वह विमानमें बैठकर विदेह क्षेत्र गया था वहाँ उसने आकाशसे ही निर्ग्रन्थ मुद्राके धारी संजयन्त मुनिको देखा, उस समय वे ध्यानमें आरूढ़ थे और उनका शरीर पर्वतके समान निश्चल था ॥२६॥ विद्युद्दृढ़ विद्याधरने उन मुनिराजको लाकर पंचगिरि नामक पर्वतपर रख दिया और

---

१. -माश्रमम् म. । २. विद्युद्दंष्ट्रो म. ।

तस्य लोष्टुमिरन्यैश्च हन्यमानस्य योगिनः । बभूव समचित्तस्य संक्लेशो न मनागपि ॥२८॥
ततोऽस्य सहमानस्य संजयन्तस्य दुःसहम् । उपसर्गं समुत्पन्नं केवलं सर्वभासनम् ॥२९॥
धरणेन ततो विद्या हृता विद्युद्दृढस्थिताः । ततोऽसौ हृतविद्यः सन् बभावुपशमं परम् ॥३०॥
ततोऽमया पुनर्लब्धा विद्यानेन व्यवस्थया । प्रणतेनाञ्जलिं कृत्वा संजयन्तस्य पादयोः ॥३१॥
तपःक्लेशेन मद्रस्तां विद्याः सेत्स्यन्ति भूरिणा । सिद्धा अपि तथा सद्यश्छेदं यास्यन्ति दुष्कृतात् ॥३२॥
अर्हद्बिम्बसनाथस्य चैत्यस्योपरि गच्छताम्[1] । साधूनां च प्रमादेऽपि विद्या नंक्ष्यन्ति वः क्षणात् ॥३३॥
धरणेन ततः पृष्टः संजयन्तः कुतूहलात् । विद्युद्दृढेन भगवन् कस्मादेवं विचेष्टितम् ॥३४॥
उवाच भगवानेवं संसारेऽस्मिन् चतुर्गतौ । भ्राम्यन्नहं समुत्पन्नो ग्रामे शकटनामनि ॥३५॥
वणिग्विहितकरो नाम्ना प्रियवादी दयान्वितः । स्वभावार्जवसंपन्नः साधुसेवापरायणः ॥३६॥
कालधर्मं ततः कृत्वा राजा श्रीवर्द्धनाह्वयः । अभवत् कुमुदावत्यां व्यवस्थापालनोद्यतः ॥३७॥
ग्रामे तत्रैव विप्रोऽभूत् स कृत्वा कुत्सितं तपः । कुदेवोऽत्र ततश्च्युत्वा राज्ञः श्रीवर्द्धनस्य तु ॥३८॥
ख्यातो वह्निशिखो नाम्ना सत्यवादीति विश्रुतः । अभूत् पुरोहितो रौद्रो गुप्ताकार्यंकरो महान् ॥३९॥
वणिग्नियमदत्तस्य सं च द्रव्यमपाहृत । राज्ञैवं मृते ततः कृत्वा निर्जितः सोऽङ्गुलीयकम् ॥४०॥

'इनका वध करो' इस प्रकार विद्याधरोंको प्रेरित किया ॥२७॥ राजाकी प्रेरणा पाकर विद्याधरोंने उन्हें पत्थर तथा अन्य साधनोंसे मारना शुरू किया परन्तु वे तो सम चित्तके धारी थे अतः उन्हें थोड़ा भी संक्लेश उत्पन्न नहीं हुआ ॥२८॥ तदनन्तर दुःसह उपसर्गोंको सहन करते हुए उन संजयन्त मुनिराजको समस्त पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाला केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ॥२९॥ उसी समय मुनिराजका पूर्व भवका भाई धरणेन्द्र आया। उसने विद्युद्दृढ़की सब विद्याएँ हर लीं जिससे वह विद्यारहित होकर अत्यन्त शान्त भावको प्राप्त हुआ ॥३०॥ विद्याओंके अभावमें बहुत दुःखी होकर उसने हाथ जोड़कर नम्र भावसे धरणेन्द्रसे पूछा कि अब हमें किसी तरह विद्याएँ सिद्ध हो सकती हैं या नहीं ? तब धरणेन्द्रने कहा कि तुम्हें इन्हीं संजयन्त मुनिराजके चरणोंमें तपश्चरण सम्बन्धी क्लेश उठानेसे फिर भी विद्याएँ सिद्ध हो सकती हैं परन्तु खोटा कार्य करनेसे वे विद्याएँ सिद्ध होने-पर भी पुनः नष्ट हो जायेंगी। जिनप्रतिमासे युक्त मन्दिर और मुनियोंका उल्लंघन कर प्रमादवश यदि ऊपर गमन करोगे तो तुम्हारी विद्याएँ तत्काल नष्ट हो जायेंगी। धरणेन्द्रके द्वारा बतायी हुई व्यवस्थाके अनुसार विद्युद्दृढ़ने संजयन्त मुनिराजके पादमूलमें तपश्चरण कर फिर भी विद्या प्राप्त कर ली ॥३१-३३॥

यह सब होनेके बाद धरणेन्द्रने कुतूहलवश संजयन्त मुनिराजसे पूछा कि हे भगवन्! विद्युद्दृढ़ने आपके प्रति ऐसी चेष्टा क्यों की है ? वह किस कारण आपको हर कर लाया और किस कारण विद्याधरोंसे उसने उपसर्ग कराया ? ॥३४॥ धरणेन्द्रका प्रश्न सुनकर भगवान् संजयन्त केवली इस प्रकार कहने लगे—इस चतुर्गतिरूप संसारमें भ्रमण करता हुआ मैं एक बार शकट नामक गाँवमें हितकर नामक वैश्य हुआ था। मैं अत्यन्त मधुरभाषी, दयालु, स्वभावसम्बन्धी सरलतासे युक्त तथा साधुओंकी सेवामें तत्पर रहता था ॥३५-३६॥ तदनन्तर मैं कुमुदावती नाम-की नगरीमें मर्यादाके पालन करनेमें उद्यत श्रीवर्द्धन नामका राजा हुआ ॥३७॥ उसी ग्राममें एक ब्राह्मण रहता था जो खोटा तप कर कुदेव हुआ था और वहाँसे च्युत होकर मुझ श्रीवर्द्धन राजाका वह्निशिख नामका पुरोहित हुआ था। वह पुरोहित यद्यपि सत्यवादी रूपसे प्रसिद्ध था परन्तु अत्यन्त दुष्टपरिणामी था और छिपकर खोटे कार्य करता था ॥३८-३९॥ उस पुरोहितने एक बार

---

१. चैतस्योपरि म. । २. स्वं च ख., स्वयं क. । ३. राज्ञा म., क. ।

तेनाभिज्ञानदानेन दास्या गत्वा तदालयम् । उपनीतानि रत्नानि वणिजे दुःखवर्तिने ॥४१॥
ततो गृहीतसर्वस्वः खलीकृत्य द्विजाधमः । पुरो निर्वासितो दीनस्तपः परममाचरत् ॥४२॥
मृत्वा कल्पं स माहेन्द्रं प्राप्तस्तस्मात्परिच्युतः । खेचराणामधीशोऽयममूद्विद्युद्दृढध्वनिः ॥४३॥
श्रीवर्द्धनस्तपः कृत्वा मृत्वा कल्पमुपागतः । संजयन्तश्रुतिर्जातो विदेहेऽहं ततश्च्युतः ॥४४॥
तेन दोषानुबन्धेन दृष्ट्वा मां क्रोधमूर्च्छितः । उपसर्गं व्यधादेष कर्मणां वशतां गतः ॥४५॥
योऽसौ नियमदत्तोऽभूत् स कृत्वा तपसोऽर्जनम् । राजा नागकुमाराणां जातस्त्वं शुभमानसः ॥४६॥
अथ विद्युद्दृढस्याभून्नाम्ना दृढरथः सुतः । तत्र राज्यं स निक्षिप्य तपः कृत्वा गतो दिवम् ॥४७॥
अश्वधर्माऽभवत्तस्मादश्वायुरभवत्ततः । अश्वध्वजस्ततो जातस्ततो पद्मनिभोऽभवत् ॥४८॥
पद्ममाली ततो भूतोऽभवत् पद्मरथस्ततः । सिंहयानो मृगोद्धर्मा मेघाक्षः सिंहसप्रभुः ॥४९॥
सिंहकेतुः शशाङ्कास्यश्चन्द्राह्वश्चन्द्रशेखरः । इन्द्रचन्द्ररथाभिख्यौ चक्रधर्मा तदायुधः ॥५०॥
चक्रध्वजो मणिग्रीवो मण्यङ्को मणिभासुरः । मणिस्यन्दनमण्यास्यौ बिम्बोष्ठो लम्बिताधरः ॥५१॥
रक्तोष्ठो हरिचन्द्रश्च पूश्चन्द्रः पूर्णचन्द्रमाः । बालेन्दुश्चन्द्रमश्चूडो व्योमेन्दुरुडुपालनः ॥५२॥
एकचूडो द्विचूडश्च त्रिचूडश्च ततोऽभवत् । वज्रचूडस्ततस्तस्माद्भूरिचूडार्कचूडकौ ॥५३॥
तस्माद्वह्निजटी जातो वह्नितेजास्ततोऽभवत् । बहवश्चैवमन्येऽपि कालेन क्षयमागताः ॥५४॥

नियमदत्त नामक वणिक्का धन छिपा लिया तब रानीने उसके साथ जुआ खेलकर उसकी अँगूठी जीत ली ॥४०॥ रानीकी दासी अँगूठी लेकर तुरन्त द्विजके घर गयी और वहाँ उसकी स्त्रीको दिखाकर उससे रत्न ले आयी। रानीने वे रत्न नियमदत्त वणिक्को जो कि अत्यन्त दुःखी था वापस दे दिये। तदनन्तर मैंने उस दुष्ट ब्राह्मणका सब धन छीन लिया तथा उसे तिरस्कृत कर नगरसे बाहर निकाल दिया। उस दीन-हीन ब्राह्मणको सुबुद्धि उत्पन्न हुई जिससे उसने उत्कृष्ट तपश्चरण किया ॥४१-४२॥ अन्तमें मरकर वह माहेन्द्र स्वर्गमें देव हुआ और वहाँसे च्युत होकर यह विद्युद्दृढ़ नामक विद्याधरोंका राजा हुआ है ॥४३॥ मेरा जीव श्रीवर्द्धन भी तपश्चरण कर मरा और स्वर्गमें देव हुआ। वहाँसे च्युत होकर मैं विदेह क्षेत्रमें संजयन्त हुआ हूँ ॥४४॥ उस पूर्वोक्त दोषके संस्कारसे ही यह विद्याधर मुझे देखकर क्रोधसे एकदम मूर्च्छित हो गया और कर्मोंके वशीभूत होकर उसी संस्कारसे इसने यह उपसर्ग किया है ॥४५॥ और जो वह नियमदत्त नामक वणिक् था वह तपश्चरण कर उसके फलस्वरूप उज्ज्वल हृदयका धारी तू नागकुमारोंका राजा धरणेन्द्र हुआ है ॥४६॥

अथानन्तर—विद्युद्दृढ़के दृढरथ नामक पुत्र हुआ सो विद्युद्दृढ़ उसके लिए राज्य सौंपकर तथा तपश्चरण कर स्वर्ग गया ॥४७॥ इधर दृढरथके अश्वधर्मा, अश्वधर्माके अश्वायु, अश्वायुके अश्वध्वज, अश्वध्वजके पद्मनिभ, पद्मनिभके पद्ममाली, पद्ममालीके पद्मरथ, पद्मरथके सिंहयान, सिंहयानके मृगोद्धर्मा, मृगोद्धर्माके सिंहसप्रभु, सिंहसप्रभुके सिंहकेतु, सिंहकेतुके शशांकमुख, शशांकमुखके चन्द्र, चन्द्रके चन्द्रशेखर, चन्द्रशेखरके इन्द्र, इन्द्रके चन्द्ररथ, चन्द्ररथके चक्रधर्मा, चक्रधर्माके चक्रायुध, चक्रायुधके चक्रध्वज, चक्रध्वजके मणिग्रीव, मणिग्रीवके मण्यंक, मण्यंकके मणिभासुर, मणिभासुरके मणिस्यन्दन, मणिस्यन्दनके मण्यास्य, मण्यास्यके बिम्बोष्ठ, बिम्बोष्ठके लम्बिताधर, लम्बिताधरके रक्तोष्ठ, रक्तोष्ठके हरिचन्द्र, हरिचन्द्रके पूश्चन्द्र, पूश्चन्द्रके पूर्णचन्द्र, पूर्णचन्द्रके बालेन्दु, बालेन्दुके चन्द्रचूड, चन्द्रचूडके व्योमेन्दु, व्योमेन्दुके उडुपालन, उडुपालनके एकचूड, एकचूडके द्विचूड, द्विचूडके त्रिचूड, त्रिचूडके वज्रचूड, वज्रचूडके भूरिचूड, भूरिचूडके अर्कचूड, अर्कचूडके वह्निजटी, वह्निजटीके वह्नितेज नामका पुत्र हुआ। इसी प्रकार और भी बहुत-से

१. वाणिजे म., क.। २. -माचरन् म.। ३. जाता म., ख.। ४. पद्मनभो म.। ५. मृगद्धर्मा म.। मृगाद्धर्मान् ख.। ६. लम्बिताधरः म., ख.।

पालयित्वा श्रियं क्षत्रियस्य पुत्रेषु तां पुनः । दत्त्वा संक्षपणं कर्म सिद्धैरध्यासितां महीम् ॥५५॥
एवं वैद्याधरोऽयं ते राजन् वंशः प्रकीर्तितः । अवतारो द्वितीयस्य युगस्यातः प्रचक्ष्यते ॥५६॥
अस्य नाभेयचिह्नस्य युगस्य विनिवर्तने । हीनाः पुरातना भावाः प्रशस्ता अत्र भूतले ॥५७॥
शिथिलायितुमारब्धा परलोकक्रियारतिः । कामार्थयोः समुत्पन्ना अनस्य परमा मतिः ॥५८॥
अथेक्ष्वाकुकुलोत्थेषु तेष्वतीतेषु राजसु । पुत्रः श्रियां समुत्पन्नो धरणीधरनामतः ॥५९॥
अयोध्यानगरे श्रीमान् प्रख्यातत्रिदशंजयः । इन्दुरेखा प्रिया तस्य जितशत्रुस्तयोः सुतः ॥६०॥
पुरे पोदनसंज्ञेऽथ व्यानन्दस्य महीपतेः । जातामम्भोजमालायां नामतो [2]विजयां सुताम् ॥६१॥
जितशत्रोः समायोज्य प्रव्रज्यां [3]त्रिदशंजयः । निर्वाणं च परिप्राप्तः कैलासधरणीधरे ॥६२॥
अथाजितजिनो जातस्तयोः पूर्वविधानतः । अभिषेकादिदेवेन्द्रैः कृतं नाभेयवर्णितम् ॥६३॥
तस्य पित्रा जिताः सर्वे तज्जन्मनि यतो द्विषः । ततोऽसावजिताभिख्यां संप्राप्तो धरणीतले ॥६४॥
आसन् सुनयनानन्देत्यादयस्तस्य योषितः । यासां शच्यपि रूपेण शक्ता नानुकृतिं प्रति ॥६५॥
अन्यदा रम्यमुद्यानं गतः सान्तःपुरोऽजितः । पूर्वाह्णे फुल्लमैक्षिष्ट पङ्कजानां वनं महत् ॥६६॥
तदेव संकुचद्वीक्ष्य भास्करेऽस्तं यियासति । अनित्यां श्रियो गत्वा निर्वेदं परमं गतः ॥६७॥
ततः पितरमापृच्छ्य मातरं च स बान्धवान् । नाथः पूर्वविधानेन प्रव्रज्यां प्रतिपन्नवान् ॥६८॥

पुत्र हुए जो कालक्रमसे मृत्युको प्राप्त होते गये ॥४८-५४॥ इनमें-से कितने ही विद्याधर राजा लक्ष्मी-का पालन कर तथा अन्तमें पुत्रोंको राज्य सौंपकर कर्मोंका क्षय करते हुए सिद्धभूमिको प्राप्त हुए ॥५५॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन्! इस प्रकार यह विद्याधरोंका वंश कहा। अब द्वितीय युगका अवतार कहा जाता है सो सुन ॥५६॥

भगवान् ऋषभदेवका युग समाप्त होनेपर इस पृथिवीपर जो प्राचीन उत्तम भाव थे वे हीन हो गये, लोगोंकी परलोक सम्बन्धी क्रियाओंमें प्रीति शिथिल होने लगी तथा काम और अर्थ पुरुषार्थमें ही उनकी प्रवर बुद्धि प्रवृत्त होने लगी ॥५७-५८॥ अथानन्तर इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्न हुए राजा जब कालक्रमसे अतीत हो गये तब अयोध्या नगरीमें एक धरणीधर नामक राजा उत्पन्न हुए। उनकी श्रीदेवी नामक रानीसे प्रसिद्ध लक्ष्मीका धारक त्रिदशंजय नामका पुत्र हुआ। इसकी स्त्रीका नाम इन्दुरेखा था, उन दोनोंके जितशत्रु नामका पुत्र हुआ ॥५९-६०॥ पोदनपुर नगरमें व्यानन्द नामक राजा रहते थे, उनकी अम्भोजमाला नामक रानीसे विजया नामकी पुत्री उत्पन्न हुई थी। राजा त्रिदशंजयने जितशत्रुका विवाह विजयाके साथ कराकर दीक्षा धारण कर ली और तपश्चरण कर कैलास पर्वतसे मोक्ष प्राप्त किया ॥६१-६२॥ अथानन्तर राजा जितशत्रु और रानी विजयाके अजितनाथ भगवान्‌का जन्म हुआ। इन्द्रादिक देवोंने भगवान् ऋषभदेवका जैसा अभिषेक आदि किया था वैसा ही भगवान् ऋषभदेवका किया ॥६३॥ चूँकि उनका जन्म होते ही पिताने समस्त शत्रु जीत लिये थे इसलिए पृथिवीतलपर उनका 'अजित' नाम प्रसिद्ध हुआ ॥६४॥ भगवान् अजितनाथकी सुनयना, नन्दा आदि अनेक रानियाँ थीं। वे सब रानियाँ इतनी सुन्दर थीं कि इन्द्राणी भी अपने रूपसे उनकी समानता नहीं कर सकती थी ॥६५॥

अथानन्तर—भगवान् अजितनाथ एक दिन अपने अन्तःपुरके साथ सुन्दर उपवनमें गये। वहाँ उन्होंने प्रातःकालके समय फूला हुआ कमलोंका एक विशाल वन देखा ॥ ६६ ॥ उसी वनको उन्होंने जब सूर्य अस्त होनेको हुआ तब संकुचित होता देखा। इस घटनासे वे लक्ष्मीको अनित्य मानकर परम वैराग्यको प्राप्त हो गये ॥ ६७ ॥ तदनन्तर—पिता, माता और भाइयोंसे पूछकर

१. -मारुरुक्षुः म., क.। २. विजया क.। ३. प्रव्रज्यात्रिदशंजयः म.।

क्षत्रियाणां सहस्राणि दशानेन समं ततः । निष्क्रान्तानि परित्यज्य राज्यबन्धुपरिग्रहम् ॥६९॥
षष्ठोपवाससयुक्ताय तस्मै नाथाय [1]पारणाम् । अदादत्तो ददौ भक्त्या साकेतनगरोद्भवः ॥७०॥
चतुर्दशसु वर्षेषु तस्यातीतेषु ततोऽभवत् । केवलज्ञानमार्हन्त्यं तथा विश्वस्य पूजितम् ॥७१॥
ततश्चातिशयास्तस्य चतुस्त्रिंशत्समुत्थिताः । अष्टौ च प्रातिहार्याणि द्रष्टव्यानीह पूर्ववत् ॥७२॥
नवतिस्तस्य संजाता गणेशाः पादसंश्रिताः । साधूनां चोदितं लक्षं दिवाकरसमत्विषाम् ॥७३॥
कनीयान् जितशत्रोस्तु ख्यातो विजयसागरः । पत्नी सुमङ्गला तस्य तत्सुतः सगरोऽभवत् ॥७४॥
बभूवासौ शुभाकारो द्वितीयश्चक्रवर्तिनाम् । निधानैर्नवभिः ख्यातिं यो गतो वसुधातले ॥७५॥
अस्मिन् यदन्तरे वृत्तं श्रेणिकेदं निशम्यताम् । अस्तीह चक्रवालाख्यं पुरं दक्षिणगोचरम् ॥७६॥
तत्र पूर्णधनो नाम विभुर्व्योमविहारिणाम् । महाप्रभावसंपन्नो विद्याबलसमुन्नतः ॥७७॥
विहायस्तिलकेशं स ययाचे वरकन्यकाम् । नैमित्तिकाज्ञया दत्ता सगराय तु तेन सा ॥७८॥
युद्धं सुलोचनस्योग्रं यावत्पूर्णधनस्य च । गृहीत्वा भगिनीं तावत्सहस्रनयनोऽगमत् ॥७९॥
निपत्य च सुनेत्रं स पुरं पूर्णधनोऽविशत् । अदृष्ट्वा च स तां कन्यां स्वपुरं पुनरागतः ॥८०॥
ततः पितृवधात् क्रुद्धः सहस्रनयनोऽबलः । अरण्ये शरमाक्रान्ते स्थितश्छिद्रेक्षणावृतेः [2] ॥८१॥
तस्याश्वरत्नधरोऽश्वेन हृतस्तं देशमागतः । दृष्ट्वा कोपपरस्तस्मै दुष्टः आत्रे निवेदितः ॥८२॥
तुष्टेन तेन सा तस्मै दत्ता सगरचक्रिणे । चक्रिणाप्यथमानीतो विद्याधरमहीशताम् ॥८३॥

उन्होंने पूर्व विधिके अनुसार दीक्षा धारण कर ली ॥६८॥ इनके साथ अन्य दस हजार क्षत्रियोंने भी राज्य, भाई-बन्धु तथा सब परिग्रहका त्याग कर दीक्षा धारण की थी ॥ ६९ ॥ भगवान्‌ने तेलाका उपवास धारण किया था सो तीन दिन बाद अयोध्या निवासी ब्रह्मदत्त राजाने उन्हें भक्ति-पूर्वक पारणा करायी थी—आहार दिया था ॥७०॥ चौदह वर्ष होनेपर उन्हें केवलज्ञान तथा समस्त संसारके द्वारा पूजनीय अर्हन्तपद प्राप्त हुआ ॥ ७१ ॥ जिस प्रकार भगवान् ऋषभदेवके चौंतीस अतिशय और आठ प्रातिहार्य प्रकट हुए थे उसी प्रकार इनके भी प्रकट हुए ॥ ७२ ॥ इनके पाद-मूलमें रहनेवाले नब्बे गणधर थे तथा सूर्यके समान कान्तिको धारण करनेवाले एक लाख साधु थे ॥ ७३ ॥ जितशत्रुके छोटे भाई विजयसागर थे, उनकी स्त्रीका नाम सुमंगला था, सो उन दोनोंके सगर नामका पुत्र उत्पन्न हुआ ॥७४॥ यह सगर शुभ आकारका धारक दूसरा चक्रवर्ती हुआ और पृथ्वीतलपर नौ निधियोंके कारण परम प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ था ॥ ७५ ॥ हे श्रेणिक ! इसके समय जो वृत्तान्त हुआ उसे तू सुन । भरतक्षेत्रके विजयार्धकी दक्षिण श्रेणीमें एक चक्रवाल नामका नगर है ॥७६॥ उसमें पूर्णधन नामका विद्याधरोंका राजा राज्य करता था । वह महा-प्रभावसे युक्त तथा विद्याओंके बलसे उन्नत था । उसने विहायस्तिलक नगरके राजा सुलोचनसे उसकी कन्याकी याचना की पर सुलोचनने अपनी कन्या पूर्णधनको न देकर निमित्तज्ञानीकी आज्ञानुसार सगर चक्रवर्तीके लिए दी ॥७७-७८॥ इधर राजा सुलोचन और पूर्णधनके बीच जब-तक भयंकर युद्ध होता है तबतक सुलोचनका पुत्र सहस्रनयन अपनी बहनको लेकर अन्यत्र चला गया ॥७९॥ पूर्णधनने सुलोचनको मारकर नगरमें प्रवेश किया परन्तु जब कन्या नहीं देखी तो अपने नगरको वापस लौट आया ॥८०॥ तदनन्तर पिताका वध सुनकर सहस्रनयन पूर्णमेघपर बहुत ही कुपित हुआ परन्तु निर्बल होनेसे कुछ कर नहीं सका । वह अष्टापद आदि हिंसक जन्तुओं-से भरे वनमें रहता था और सदा पूर्णमेघके छिद्र देखता रहता था ॥ ८१ ॥ तदनन्तर एक माया-मयी अश्व सगर चक्रवर्तीको हर ले गया सो वह उसी वनमें आया जिसमें कि सहस्रनयन रहता था । सौभाग्यसे सहस्रनयनकी बहन उत्पलमतीने चक्रवर्तीको देखकर भाईसे यह समाचार कहा ॥ ८२ ॥ सहस्रनयन यह समाचार सुनकर बहुत ही सन्तुष्ट हुआ और उसने उत्पलमती,

१. पारणम् म., ख. । २. वृते क., वृतः म. ।

स्त्रीरत्नं तत्सुतौ कन्यां परं तोषमुपागतः । षट्खण्डाधिपतिः सर्वैः पार्थिवैः कृतशासनः ॥८३॥
प्राप्तविद्याभृदैश्येन पुरं पौर्णघनं ततः । रुद्धं सहस्रनेत्रेण प्राकारेणेव सर्वतः ॥८५॥
ततो महति संग्रामे प्रवृत्ते जनसंक्षये । नीतः सहस्रनेत्रेण पूर्णमेघः परासुताम् ॥८६॥
पुत्रः पूर्णघनस्याथ नाम्ना [1]मेघवाहनः । परैरुद्वासितश्चक्रवालाद् भ्राम्यन् नभोऽङ्गणे ॥८७॥
खेचरैर्बंधुभिः क्रुद्धैरनुयातः सुदुःखितः [2] । अजितं शरणं यातस्त्रैलोक्यसुखकारणम् ॥८८॥
ततो वज्रधरेणासौ पृष्टस्त्रासस्य कारणम् । अब्रवीत् सगरं प्राप्य मम बन्धुक्षयैः कृतः ॥८९॥
अस्मत्पित्रोरभूद् वैरं नैकजीवविनाशनम् । तेनानुबन्धदोषेण नितान्तक्रूरचेतसा ॥९०॥
सहस्रनयनेनाहं त्रासितः शत्रुणा भृशम् । हंसैः समं समुत्पत्य प्रासादादागतो द्रुतम् ॥९१॥
ततो जिनसमीपे तं गृहीतुमसहैर्नृपैः । निवेदिते सहस्राक्षः संप्रतस्थे स्वयं स्वधा ॥९२॥
[3]कोऽपरोऽस्ति मदुद्वीर्यो येनासौ परिरक्ष्यते । इति संचिन्तयन् प्राप्तो जिनस्य धरणीमसौ ॥९३॥
प्रभामण्डलमेवासौ दृष्ट्वा दूरे जिनोद्भवम् । सर्वं गर्वं परित्यज्य प्रणनामाजितं विभुम् ॥९४॥
जिनपादसमीपे तौ मुक्तवैरौ ततः स्थितौ । तत्पित्रोश्चरितं पृष्टो गणिना च जिनाधिपः ॥९५॥
इदं प्रोवाच भगवान् जम्बूद्वीपस्य भारते । पुरे सदृतुसंज्ञाके भावनो नाम वाणिजः ॥९६॥

सगर चक्रवर्तीके लिए प्रदान कर दो। चक्रवर्तीने भी पूर्णघनको विद्याधरोंका राजा बना दिया॥८३॥ जो छह खण्डका अधिपति था तथा समस्त राजा जिसका शासन मानते थे ऐसा चक्रवर्ती सगर उस स्त्रीको पाकर बहुत भारी सन्तोषको प्राप्त हुआ ॥८४॥ विद्याधरोंका आधिपत्य पाकर सहस्रनयनने पूर्णघनके नगरको चारों ओरसे कोटके समान घेर लिया ॥८५॥ तदनन्तर दोनोंके बीच मनुष्योंका संहार करनेवाला बहुत भारी युद्ध हुआ जिसमें सहस्रनयनने पूर्णमेघको मार डाला ॥८६॥ तदनन्तर पूर्णघनके पुत्र मेघवाहनको शत्रुओंने चक्रवाल नगरसे निर्वासित कर दिया सो वह आकाशरूपी आँगनमें भ्रमण करने लगा ॥८७॥ उसे देखकर बहुत-से कुपित विद्याधरोंने उसका पीछा किया सो वह अत्यन्त दुःखी होकर तीन लोकके जीवोंको सुख उत्पन्न करनेवाले भगवान् अजितनाथकी शरणमें पहुँचा ॥८८॥ वहाँ इन्द्रने उससे भयका कारण पूछा। तब मेघवाहनने कहा कि हमारे पिता पूर्णघन और सहस्रनयनके पिता सुलोचनमें अनेक जीवोंका विनाश करनेवाला वैर-भाव चला आ रहा था सो उसी संस्कारके दोषसे अत्यन्त क्रूरचित्तके धारक सहस्रनयनने सगर चक्रवर्तीका बल पाकर मेरे बन्धुजनोंका क्षय किया है। इस शत्रुने मुझे भी बहुत भारी त्रास पहुँचाया है सो मैं महलसे हंसोंके साथ उड़कर शीघ्र ही यहाँ आया हूँ ॥८९-९१॥ तदनन्तर जो राजा मेघवाहनका पीछा कर रहे थे उन्होंने सहस्रनयनसे कहा कि वह इस समय भगवान् अजितनाथके समीप है अतः हम उसे पकड़ नहीं सकते। यह सुनकर सहस्रनयन रोषवश स्वयं ही चला और मन ही मन सोचने लगा कि देखें मुझसे अधिक बलवान् दूसरा कौन है जो इसकी रक्षा कर सके। ऐसा सोचता हुआ वह भगवान्के समवसरणमें आया ॥९२-९३॥ सहस्रनयनने ज्यों ही दूरसे भगवान्का प्रभामण्डल देखा त्यों ही उसका समस्त अहंकार चूर-चूर हो गया। उसने भगवान् अजितनाथको प्रणाम किया। सहस्रनयन और मेघवाहन दोनों ही परस्परका वैर-भाव छोड़कर भगवान्के चरणोंके समीप जा बैठे। तदनन्तर गणधरने भगवान्से उन दोनोंके पिताका चरित्र पूछा सो भगवान् निम्न प्रकार कहने लगे ॥९४-९५॥

जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें सदृतु नामका नगर था। उसमें भावन नामका एक वणिक् रहता था। उसकी आतकी नामक स्त्री और हरिदास नामक पुत्र था। वह भावन यद्यपि चार करोड़

---

१. मेघवाहनः। २. सदुःखितः म.। ३. त्रासक म.। ४. बन्धुः श्रयं कृतः म.। ५. कोऽपरोऽस्ति म.।

भावनोऽन्यकृते तस्य हरिदासश्च तत्सुतः । चतुःकोटीश्वरो भूत्वा यात्रोद्युक्तः स भावनः ॥९७॥
पुत्राय सकलं द्रव्यं न्यासत्वेन समर्पयन् । द्यूतादिवर्जनार्थं च शिक्षामस्मै ददौ परम् ॥९८॥
सहेतुसर्वदोषेभ्य उपदिश्य निवर्तनम् । पुत्राय वाणिजो यातः पोतेन धनतृष्णया ॥९९॥
उपचारेण वेश्यायामासक्त्या द्यूतमण्डले । सुरायामभिमानेन चतुःकोट्योऽपि नाशिताः ॥१००॥
यदासौ निर्जितो द्यूते तदा राज्ञो गृहं गतः । हरिदासो दुराचारो द्रविणार्थं सुरङ्गया ॥१०१॥
आनीयासौ ततो द्रव्यं क्रियाः सर्वाश्चकार सः[1] । न भावनोऽन्यदा गेहमायातो नेक्षते सुतम् ॥ १०२ ॥
हरिदासो गतः क्वेति तेन पृष्टा कुटुम्बिनी । सावोचदमया यातश्चौर्यार्थं च सुरङ्गया ॥१०३॥
ततोऽसौ तस्य मरणं शङ्कमानः सुरङ्गया । प्रस्थितश्चौर्यशान्त्यर्थं गृहाभ्यन्तरदत्तया ॥१०४॥
आगच्छता च पुत्रेण कोऽपि वैरी ममेत्यसौ । खण्डलाग्रेण पापेन वराको विनिपातितः ॥१०५॥
विज्ञातोऽसौ ततस्तेन नखश्मश्रुसटादिभिः । स्पृष्ट्वा मम पितेत्येष प्राप्तो दुःखं च दुःसहम् ॥१०६॥
जनकस्य ततो मृत्युं कृत्वासौ भयविद्रुतः । पर्यटन् दुःखतो देशान् यातः कालेन पञ्चताम् ॥१०७॥
कौलेयकौ शृगालौ च वृषदंशौ वृषौ तथा । नकुलौ महिषावेतौ जातौ च वृषभौ पुनः ॥१०८॥
अन्योऽन्यस्य ततो घातं कृत्वा तौ भवसंकटे । विदेहे पुष्कलावत्यां मनुष्यत्वमुपागतौ ॥१०९॥
उग्रं कृत्वा तपस्तस्मिन्नुत्तरानुत्तराह्वयौ । गत्वा सतारमायातौ जनकौ भवतोरिमौ ॥११०॥
[illegible] आसीत्तस्य तु यः पुत्रः संजातः स सुलोचनः ॥१११॥

द्रव्यका स्वामी था तो भी धन कमानेकी इच्छासे देशान्तरकी यात्राके लिए उद्यत हुआ ॥९६-९७॥ उसने अपना सब धन धरोहरके रूपमें पुत्रके लिए सौंपते हुए, जुआ आदि व्यसनोंके छोड़नेकी उत्कृष्ट शिक्षा दी। उसने कहा कि 'हे पुत्र ! ये जुआ आदि व्यसन समस्त दोषोंके कारण हैं इसलिए इनसे दूर रहना ही श्रेयस्कर है' ऐसा उपदेश देकर वह भावन नामका वणिक् धनकी तृष्णासे जहाजमें बैठकर देशान्तरको चला गया ॥९८-९९॥ पिताके चले जानेपर हरिदासने वेश्या-सेवन, जुआकी आसक्ति तथा मदिराके अहंकारवश चारों करोड़ द्रव्य नष्ट कर दिया ॥१००॥ इस प्रकार जब वह जुआमें सब कुछ हार गया और अन्य जुवाड़ियोंका देनदार हो गया तब वह दुराचारी धनके लिए सुरंग लगाकर राजाके घरमें घुसा तथा वहाँसे धन लाकर अपने सब व्यसनोंकी पूर्ति करने लगा। अथानन्तर कुछ समय बाद जब उसका पिता भावन देशान्तरसे घर लौटा तब उसने पुत्रको नहीं देखकर अपनी स्त्रीसे पूछा कि हरिदास कहाँ गया है ? स्त्रीने उत्तर दिया कि वह इस सुरंगसे चोरी करनेके लिए गया है ॥१०१-१०३॥ तदनन्तर भावनको शंका हुई कि कहीं इस कार्यमें इसका मरण न हो जावे इस शंकासे वह चोरी छुड़ानेके लिए घरके भीतर दी हुई सुरंगसे चला ॥१०४॥ उधरसे उसका पुत्र हरिदास वापस लौट रहा था, सो उसने समझा कि यह कोई मेरा वैरी आ रहा है ऐसा समझकर उस पापीने बेचारे भावनको तलवारसे मार डाला ॥१०५॥ पीछे जब नख, दाढ़ी, मूँछ तथा जटा आदिके स्पर्शसे उसे विदित हुआ कि अरे ! यह तो मेरा पिता है, तब वह दुःसह दुःखको प्राप्त हुआ ॥१०६॥ पिताकी हत्या कर वह भयसे भागा और अनेक देशोंमें दुःखपूर्वक भ्रमण करता हुआ मरा ॥१०७॥ पिता-पुत्र दोनों श्वान हुए, फिर शृगाल हुए, फिर मार्जार हुए, फिर बैल हुए, फिर नेवला हुए, फिर भैंसा हुए और फिर बैल हुए। ये दोनों ही परस्परमें एक दूसरेका घात कर मरे और संसाररूपी वनमें भटकते रहे। अन्तमें विदेह क्षेत्रकी पुष्कलावती नगरीमें मनुष्य हुए ॥१०८-१०९॥ फिर उग्र तपश्चरण कर शतार नामक ग्यारहवें स्वर्गमें उत्तर और अनुत्तर नामक देव हुए। वहाँसे आकर जो भावन नामका पिता था वह पूर्णमेघ विद्याधर हुआ और जो उसका पुत्र था वह सुलोचन

---

१. सोऽभयविद्रुतः म. ।

पित्रोरेवं परिज्ञाय भवदुःखविवर्तनम् । भजतं[1] शमसुज्झित्वा वैरं संसारकारणम् ॥११२॥
चक्रवर्ती ततोऽपृच्छदेतयोः पूर्वजन्मनि । वैरकारणमेवं च भाषितं धर्मचक्रिणा ॥११३॥
जम्बूद्वीपस्य भरते पुरे पद्मकनामनि । सौक्तिको रम्भनामाभूद् विश्रुते प्रथितो धनी ॥११४॥
शङ्खावलिसमाह्वानौ तस्य मैत्रीसमन्वितौ । शिष्यावत्यन्तविख्यातौ धनवन्तौ गुणोत्कटौ ॥११५॥
मा भूदाभ्यां ममोद्भूतः संहताभ्यामिति श्रुतम् । तयोः स[2] भेदमकरोन्नयशास्त्रविचक्षणः ॥११६॥
गोपालकेन संमन्त्र्य शशी मूल्यार्थमन्यदा । चिक्रीषुर्गां गृहं यावदायातो निजलीलया ॥११७॥
क्रीत्वा दैवनियोगात्तामागच्छन्नावली[3] पुरम् । गच्छता शशिना क्रोधाग्निहतो म्लेच्छतामितः ॥११८॥
मृतः शशी बलीवर्दो जातो म्लेच्छेन तेन च । हत्वा वैरानुबन्धेन भक्ष्यतामुपपादितः ॥११९॥
तिर्यग्नारकपान्थः सन्म्लेच्छो मूषकतां गतः । अभूच्छश्यपि मार्जारस्तेन हत्वा स भक्षितः ॥१२०॥
पापकर्मनियोगेन प्राप्तौ नरकभूमिषु । प्राप्यते सुमहद् दुःखं जन्तुभिर्भवसागरे ॥१२१॥
भूयः संसृत्य काश्यां तौ दासौ जातौ सहोदरौ । दास्याः संभ्रमदेवस्य कूटकार्पटिकाह्वयौ ॥१२२॥
जिनवेश्मनि तौ तेन नियुक्तौ प्रेत्य पुण्यतः । [4]रूपानन्दः सुरूपश्च जातौ भूतगणाधिपौ ॥१२३॥
शशिपूर्वो [5]रजोवल्यां च्युत्वाऽभूत् कुलपुत्रकः । कुलंधरोऽपरः पुष्पभूतिः पुत्रः[6] पुरोधसः ॥१२४॥

नामका विद्याधर हुआ। इसी वैरके कारण पूर्णमेघने सुलोचनको मारा है ॥११०-१११॥ गणधर देवने सहस्रनयन और मेघवाहनको समझाया कि तुम दोनों इस तरह अपने पिताओंके सांसारिक दुःखमय परिभ्रमणको जानकर संसारका कारणभूत वैरभाव छोड़कर साम्यभावका सेवन करो ॥११२॥ तदनन्तर सगर चक्रवर्तीने पूछा कि हे भगवन्! मेघवाहन और सहस्रनयनका पूर्व जन्ममें वैर क्यों हुआ? तब धर्मचक्रके अधिपति भगवान्‌ने उनके वैरका कारण निम्न प्रकार समझाया ॥११३॥ उन्होंने कहा कि जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्र सम्बन्धी पद्मक नामक नगरमें गणित शास्त्रका पाठी महाधनवान् रम्भ नामका एक प्रसिद्ध पुरुष रहता था ॥११४॥ उसके दो शिष्य थे—एक चन्द्र और दूसरा आवलि। ये दोनों ही परस्पर मैत्री भावसे सहित थे। अत्यन्त प्रसिद्ध धनवान् और गुणोंसे युक्त थे ॥११५॥ नीतिशास्त्रमें निपुण रम्भने यह विचारकर कि यदि ये दोनों परस्परमें मिले रहेंगे तो हमारा पद भंग कर देंगे, दोनोंमें फूट डाल दी ॥११६॥ एक दिन चन्द्र गाय खरीदना चाहता था सो गोपालके साथ सलाह कर मूल्य लेनेके लिए वह सहज ही अपने घर आया था कि भाग्यवश आवलि उसी गायको खरीदकर अपने गाँवकी ओर आ रहा था। बीचमें चन्द्रने क्रोधवश उसे मार डाला। आवलि मरकर म्लेच्छ हुआ ॥११७-११८॥ और चन्द्र मरकर बैल हुआ सो म्लेच्छने पूर्व वैरके कारण उसे मारकर खा लिया ॥११९॥ म्लेच्छ तिर्यंच तथा नरक योनिमें भ्रमण कर चूहा हुआ और चन्द्रका जीव बैल मरकर बिलाव हुआ सो बिलावने चूहेको मारकर भक्षण किया ॥१२०॥ पाप कर्मके कारण दोनों ही मरकर नरकमें उत्पन्न हुए सो ठीक ही है क्योंकि प्राणी संसाररूपी सागरमें बहुत भारी दुःख पाते ही हैं ॥१२१॥ नरकसे निकलकर दोनों ही बनारसमें संभ्रमदेवकी दासीके कूट और कार्पटिक नामके पुत्र हुए। ये दोनों ही भाई दास थे—दासवृत्तिका काम करते थे सो संभ्रमदेवने इन्हें जिनमन्दिरमें नियुक्त कर दिया। अन्तमें मरकर दोनों ही पुण्यके प्रभावसे रूपानन्द और सुरूप नामक व्यन्तर देव हुए ॥१२२-१२३॥ रूपानन्द चन्द्रका जीव था और सुरूप आवलिका जीव था सो रूपानन्द चय कर रजोवली नगरीमें कुलन्धर नामका कुलपुत्रक हुआ और सुरूप, पुरोहितका पुत्र पुष्पभूति हुआ ॥१२४॥

---

१. भजतः म.। २. संभेद म.। ३. पुरा ख.। ४. रूपानन्दसुरूपश्च स.। ५. रजोवाल्याम् म.। ६. पुत्रपुरोधसः क.।

मित्रौ तौ सैरिकस्यार्थे प्राप्तौ वैरं ततः स्थितेम्[1] । पुष्पभूतिं ततो हन्तुं प्रावर्तत कुलंधरः ॥१२५॥
वृक्षमूलस्थसाधोश्च धर्मं श्रुत्वा प्रशान्तवान् । राज्ञा परीक्षितश्चाभूत् सामन्तः पुण्ययोगतः ॥१२६॥
पुष्पभूतिरिमं दृष्ट्वा धर्माद् विभवमागतम् । जैनो भूत्वा मृतो जातस्तृतीये सुरविष्टपे ॥१२७॥
कुलंधरोऽपि तत्रैव च्युतौ तौ मन्दरावरे । विदेहे धातकीखण्डे जैयवत्यामरिंजये ॥१२८॥
सहस्रशिरसो भूत्वौ क्रूरामरधनश्रुती । जातावत्यन्तविक्रान्तावन्तरङ्गौ [3]सुविश्रुतौ ॥१२९॥
[4]अन्यदेशः समं ताभ्यां वद्धुं प्रातिहत द्विपम् । प्रीतिमैक्षिष्ट सत्त्वानां जन्मनैव विरोधिनाम् ॥१३०॥
धर्मिणोऽमी कथं व्याला इति विस्मयमागतः । अविशत् स महारण्यमपश्यच्च महामुनिम् ॥१३१॥
ततो राजा समं ताभ्यां तस्य केवलिनोऽन्तिके । प्रव्रज्य निर्वृतिं प्रापच्छतारं तु गतावितौ ॥१३२॥
शशिपूर्वस्ततश्च्युत्वा जातोऽयं मेघवाहनः । आवली तु सहस्राक्षो वैरं तेनानयोरिदम् ॥१३३॥
प्रीतिर्ममाधिका कस्मात् सहस्रनयने विभो । इति पृष्टो जिनोऽवोचत् सगरेण ततः पुनः ॥१३४॥
भिक्षादानेन साधूनां रम्भोऽमरकुरुं गतः । सौधर्मं च ततश्च्युत्वा जातश्चन्द्रपुरे हरेः ॥१३५॥
नरेन्द्रस्य धरादेव्यां दयितव्रतकीर्तनः । श्रामण्यान्नाकमारुह्य विदेहे रत्नसंचये । च्युतः ॥१३६॥
महाघोषेण चन्द्रिण्यामुत्पन्नो रत्नसंचये । पयोबलो मुनीभूय प्राप्तः कल्पमाश्रितः ॥१३७॥

यद्यपि कुलन्धर और पुष्पभूति दोनों ही मित्र थे तथापि एक हलवाहकके निमित्तसे उन दोनोंमें शत्रुता हो गयी। फलस्वरूप कुलन्धर पुष्पभूतिको मारनेके लिए प्रवृत्त हुआ ॥१२५॥ मार्गमें उसे एक वृक्षके नीचे विराजमान मुनिराज मिले सो उनसे धर्म श्रवण कर वह शान्त हो गया। राजाने उसकी परीक्षा ली और पुण्यके प्रभावसे उसे मण्डलेश्वर बना दिया ॥१२६॥ पुष्पभूतिने देखा कि धर्मके प्रभावसे ही कुलन्धर वैभवको प्राप्त हुआ है इसलिए वह भी जैनी हो गया और मरकर तीसरे स्वर्गमें देव हुआ ॥१२७॥ कुलन्धर भी उसी तीसरे स्वर्गमें देव हुआ। दोनों ही च्युत होकर धातकी खण्ड द्वीपके पश्चिम विदेह क्षेत्रमें अरिंजय पिता और जयवती माताके पुत्र हुए। एकका नाम क्रूरामर, दूसरेका नाम धनश्रुति था। ये दोनों भाई अत्यन्त शूरवीर एवं सहस्रशीर्ष राजाके विश्वासपात्र प्रसिद्ध सेवक हुए ॥१२८-१२९॥ किसी एक दिन राजा सहस्रशीर्ष इन दोनों सेवकोंके साथ हाथी पकड़नेके लिए वनमें गया। वहाँ उसने जन्मसे ही विरोध रखनेवाले सिंह-मृगादि जीवोंको परस्पर प्रेम करते हुए देखा ॥१३०॥ 'ये हिंसक प्राणी शान्त क्यों हैं?' इस प्रकार आश्चर्यको प्राप्त हुए राजा सहस्रशीर्षने ज्यों ही महावनमें प्रवेश किया त्यों ही उसकी दृष्टि महामुनि केवली भगवान्‌के ऊपर पड़ी ॥१३१॥ तदनन्तर राजा सहस्रशीर्षने दोनों सेवकोंके साथ केवली भगवान्‌के पास दीक्षा धारण कर ली। फलस्वरूप राजा तो मोक्षको प्राप्त हुआ और क्रूरामर तथा धनश्रुति शतार स्वर्ग गये ॥१३२॥ इनमें चन्द्रका जीव क्रूरामर तो स्वर्गसे चयकर मेघवाहन हुआ है और आवलिका जीव धनश्रुति सहस्रनयन हुआ है। इस प्रकार पूर्वभवके कारण इन दोनोंमें वैरभाव है ॥१३३॥

तदनन्तर सगर चक्रवर्तीने भगवान्‌से पूछा कि हे प्रभो! सहस्रनयनमें मेरी अधिक प्रीति है सो इसका क्या कारण है? उत्तरमें भगवान्‌ने कहा कि जो रम्भ नामा गणित शास्त्रका पाठी था वह मुनियोंको आहारदान देनेके कारण देवकुरुमें आर्य हुआ, फिर सौधर्म स्वर्ग गया, वहाँसे च्युत होकर चन्द्रपुर नगरमें राजा हरि और धरा नामकी रानीके व्रतकीर्तन नामका प्यारा पुत्र हुआ। वह मुनिपद धारण कर स्वर्ग गया, वहाँसे च्युत होकर पश्चिम विदेह क्षेत्रके रत्न-संचय नगरमें राजा महाघोष और चन्द्रिणी नामकी रानीके पयोबल नामका पुत्र हुआ। वह मुनि

---

१. स्थितौ म., स्थितः क। २. जयावत्या -म., जायावत्या ख.। ३. शुचिश्रुतौ ख.। ४. अन्यदेशः म., अन्यदा + ईशः इति पदच्छेदः।

प्रच्युत्य भरते जातो नगरे पृथिवीपुरे । यशोधरनरेन्द्रेण जयायां जयकीर्तनः ॥१३८॥
प्रव्रज्य च पितुः पार्श्वे मृत्वा विजयमाश्रितः । च्युत्वा ततो भवान् जातः सगरश्चक्रलाञ्छनः ॥१३९॥
रम्भस्य भवतो यस्मादावली दयितोऽभवत् । तत्पूर्वोऽयं प्रियोऽद्यापि सहस्राक्षस्ततस्तव ॥१४०॥
अवगम्य जिनेन्द्रस्यादात्मपित्रोर्भवान्तरम् । उत्पन्नो धर्मसंवेगस्तयोरत्यन्तमुन्नतः ॥१४१॥
महतो धर्मसंवेगाज्जातौ जातिस्मृतौ ततः । श्रद्धावन्तौ समभ्यर्च्य स्तोतुं तावजितं जिनम् ॥१४२॥
बालिशानामनाथानां सत्त्वानां कारणाद् विना । उपकारं करोषि त्वमाश्चर्यं किमतः परम् ॥१४३॥
उपमामुक्तरूपस्य वीर्येणाप्रमितस्य ते । निरीक्षणेन कस्तृप्तो विद्यतेऽस्मिन् जगत्त्रये ॥१४४॥
लब्धार्थः कृतकृत्योऽपि सर्वदर्शी सुखात्मकः । अचिन्त्यो ज्ञातविज्ञेयस्तथापि जगते हितः ॥१४५॥
[1]सारधर्मोपदेशाख्यं जीवानां त्वं जिनोत्तम । पततां भवपाताले हस्तालम्बं प्रयच्छसि ॥१४६॥
इति तौ गद्गदालापौ वाष्पविप्लुतलोचनौ । परमं हर्षमायातौ प्रणम्य विधिवत्स्थितौ ॥१४७॥
शक्राद्या देवऋषभाः सगराद्या नृपाधिपाः । साधवः सिंहवीर्याद्या ययुः परममद्भुतम् ॥१४८॥
सदस्यथ जिनेन्द्रस्य रक्षसामधिपाविदम् । ऊचतुर्वचनं भीमसुभीमाविति विश्रुतौ ॥१४९॥
खेचराभ्रक धन्योऽसि यस्त्वं शरणमागतः । सर्वज्ञमजितं नाथं तुष्टावावामतस्तव ॥१५०॥
शृणु संप्रति ते स्वास्थ्यं यथा भवति सर्वतः । तं प्रकारं प्रवक्ष्यावः पालनीयस्त्वमावयोः ॥१५१॥

होकर प्राणत नामक चौदहवें स्वर्गमें देव हुआ ॥१३४–१३७॥ वहाँसे च्युत होकर भरत क्षेत्रके पृथिवीपुर नगरमें राजा यशोधर और जया नामकी रानीके जयकीर्तन नामका पुत्र हुआ ॥१३८॥ वह पिताके निकट जिनदीक्षा ले विजय विमानमें उत्पन्न हुआ और वहाँसे चय कर तू सगर चक्रवर्ती हुआ है ॥१३९॥ जब तू रम्भ था तब आवलिके साथ तेरा बहुत स्नेह था। अब आवलि ही सहस्रनयन हुआ है। इसलिए पूर्वसंस्कारके कारण अब भी तेरा उसके साथ गाढ़ स्नेह है ॥१४०॥ इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान्‌के मुखसे अपने तथा पिताके भवान्तर जानकर मेघवाहन और सहस्राक्ष दोनोंको धर्ममें बहुत भारी रुचि उत्पन्न हुई ॥१४१॥ उस धार्मिक रुचिके कारण दोनोंको जाति-स्मरण भी हो गया। तदनन्तर श्रद्धासे भरे मेघवाहन और सहस्रनयन अजितनाथ भगवान्‌की इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥१४२॥ हे भगवन्! जो बुद्धिसे रहित हैं तथा जिनका कोई नाथ—रक्षक नहीं है ऐसे संसारी प्राणियोंका आप बिना कारण ही उपकार करते हैं इससे अधिक आश्चर्य और क्या हो सकता है ॥१४३॥ आपका रूप उपमासे रहित है तथा आप अतुल्य वीर्यके धारक हैं। हे नाथ! इन तीनों लोकोंमें ऐसा कौन पुरुष है जो आपके दर्शनसे सन्तुष्ट हुआ हो ॥१४४॥ हे भगवन्! यद्यपि आप प्राप्त करने योग्य समस्त पदार्थ प्राप्त कर चुके हैं, कृतकृत्य हैं, सर्वदर्शी हैं, सुखस्वरूप हैं, अचिन्त्य हैं, और जानने योग्य समस्त पदार्थोंको जान चुके हैं तथापि जगत्‌का हित करनेके लिए उद्यत हैं ॥१४५॥ हे जिनराज! संसाररूपी अन्धकूपमें पड़ते हुए जीवोंको आप श्रेष्ठ धर्मोपदेशरूपी हस्तावलम्बन प्रदान करते हैं ॥१४६॥ इस प्रकार जिनकी वाणी गद्गद हो रही थी और नेत्र आँसुओंसे भर रहे थे ऐसे परम हर्षको प्राप्त हुए मेघवाहन और सहस्रनयन विधिपूर्वक स्तुति और नमस्कार कर यथास्थान बैठ गये ॥१४७॥ सिंहवीर्य आदि मुनि, इन्द्र आदि देव और सगर आदि राजा परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥१४८॥

अथानन्तर—जिनेन्द्र भगवान्‌के समवसरणमें राक्षसोंके इन्द्र भीम और सुभीम प्रसन्न होकर मेघवाहनसे कहने लगे कि हे विद्याधरके बालक! तू धन्य है जो सर्वज्ञ अजित जिनेन्द्रकी शरणमें आया है, हम दोनों तुझपर सन्तुष्ट हुए हैं अतः जिससे तेरी सर्वप्रकारसे स्वस्थता हो सकेगी वह बात हम तुझसे इस समय कहते हैं सो तू ध्यानसे सुन, तू हम दोनोंकी रक्षाका पात्र है ॥१४९–१५१॥

१. सारं ख.।

सन्त्यत्र लवणाम्भोधावत्युग्रग्राहसंकटे । अत्यन्तदुर्गमा रम्या [1]महाद्वीपाः सहस्रशः ॥१५२॥
क्वचित् क्रीडन्ति गन्धर्वाः किन्नराणां क्वचिद् गणाः । क्वचिच्च यक्षसंघाताः क्वचित्किंपुरुषामराः ॥१५३॥
तत्र मध्येऽस्ति स द्वीपो रक्षसां क्रीडनः शुभः । योजनानां शतान्येष सप्त सर्वतः सप्त कीर्तितः ॥१५४॥
तन्मध्ये मेरुवद् भाति त्रिकूटाख्यो महागिरिः । अत्यन्तदुःप्रवेशो यः शरण्यः सद्गुहागृहैः ॥१५५॥
शिखरं तस्य शैलेन्द्रचूडाकारं मनोहरम् । योजनानि नवोत्तुङ्गं पञ्चाशद्विपुलं ततः ॥१५६॥
नानारत्नप्रभाजालच्छन्नहेममहातटम् । चित्रवल्लीपरिष्वक्तकल्पद्रुमसमाकुलम् ॥१५७॥
त्रिंशद्योजनमानाधः सर्वतस्तस्य राक्षसी । लङ्केति नगरी भाति रत्नजाम्बूनदालया[2] ॥१५८॥
मनोहारिभिरुद्यानैः सरोभिश्च सवारिजैः । महद्भिश्चैत्यगेहैश्च सा महेन्द्रपुरीसमा ॥१५९॥
गच्छ तां दक्षिणाशायां मण्डनत्वमुपागताम् । समं बान्धववर्गेण विद्याधर सुखी भव ॥१६०॥
एवमुक्त्वा ददावस्मै हारं राक्षसपुङ्गवः । देवताधिष्ठितं ज्योत्स्नां कुर्वाणं करकोटिभिः ॥१६१॥
जन्मान्तरसुतप्रीत्या भीमश्चैवं तमब्रवीत् । हारोऽयं तेऽस्त्यदेहस्य युगश्रेष्ठस्य चोदितः ॥१६२॥
धरण्यन्तर्गतं चान्यद्दत्तं स्वाभाविकं पुरम् । विस्तीर्णभरताद्धर्धमधः षड्योजनोगतम् ॥१६३॥
दुःप्रवेशमरातीनां मनसापि महद्गृहम् । अलंकारोदयाभिख्यं स्वर्गतुल्यमभिख्यया ॥१६४॥
परचक्रसमाक्रान्तः कदाचित्त्वेद्भवेरसि[3] । आश्रित्य तत्सदा सिद्धे रहस्यं वंशसंततेः ॥१६५॥

बहुत भारी मगरमच्छोंसे भरे हुए इस लवणसमुद्रमें अत्यन्त दुर्गम्य तथा अतिशय सुन्दर हजारों महाद्वीप हैं ॥१५२॥ उन महाद्वीपोंमें कहीं गन्धर्व, कहीं किन्नरोंके समूह, कहीं यक्षोंके झुण्ड और कहीं किंपुरुषदेव क्रीड़ा करते हैं ॥१५३॥ उन द्वीपोंके बीच एक ऐसा द्वीप है जो राक्षसोंकी शुभ क्रीड़ाका स्थान होनेसे राक्षस द्वीप कहलाता है और सात सौ योजन लम्बा तथा उतना ही चौड़ा है ॥१५४॥ उस राक्षस द्वीपके मध्यमें मेरु पर्वतके समान त्रिकूटाचल नामक विशाल पर्वत है। वह पर्वत अत्यन्त दुःप्रवेश है और उत्तमोत्तम गुहारूपी गृहोंसे सबको शरण देनेवाला है ॥१५५॥ उसकी शिखर सुमेरु पर्वतकी चूलिकाके समान महामनोहर है, वह नौ योजन ऊँचा और पचास योजन चौड़ा है ॥१५६॥ उसके सुवर्णमय किनारे नाना प्रकारके रत्नोंकी कान्तिके समूहसे सदा आच्छादित रहते हैं तथा नाना प्रकारकी लताओंसे आलिंगित कल्पवृक्ष वहाँ संकीर्णता करते रहते हैं ॥१५७॥ उस त्रिकूटाचलके नीचे तीस योजन विस्तारवाली लंका नगरी है, उसमें राक्षस वंशियोंका निवास है, और उसके महल नाना प्रकारके रत्नों एवं सुवर्णसे निर्मित हैं ॥१५८॥ मनको हरण करनेवाले बागबगीचों, कमलोंसे सुशोभित सरोवरों और बड़े-बड़े जिन-मन्दिरोंसे वह नगरी इन्द्रपुरीके समान जान पड़ती है ॥१५९॥ वह लंका नगरी दक्षिण दिशाकी मानो आभूषण ही है। हे विद्याधर! तू अपने बन्धुवर्गके साथ उस नगरीमें जा और सुखी हो ॥१६०॥ ऐसा कहकर राक्षसोंके इन्द्र भीमने उसे देवाधिष्ठित एक हार दिया। वह हार अपनी करोड़ों किरणोंसे चाँदनी उत्पन्न कर रहा था ॥१६१॥ जन्मान्तर सम्बन्धी पुत्रकी प्रीतिके कारण उसने वह हार दिया था और कहा था कि हे विद्याधर! तू चरमशरीरी तथा युगका श्रेष्ठ पुरुष है इसलिए तुझे यह हार दिया है ॥१६२॥ उस हारके सिवाय उसने पृथ्वीके भीतर छिपा हुआ एक ऐसा प्राकृतिक नगर भी दिया जो छह योजन गहरा तथा एक सौ साढ़े इकतीस योजन और डेढ़ कलाप्रमाण चौड़ा था ॥१६३॥ उस नगरमें शत्रुओंका शरीर द्वारा प्रवेश करना तो दूर रहा मनसे भी प्रवेश करना अशक्य था। उसमें बड़े-बड़े महल थे, अलंकारोदय उसका नाम था और शोभासे वह स्वर्गके समान जान पड़ता था ॥१६४॥ यदि तुझपर कदाचित् परचक्रका आक्रमण हो तो इस नगरमें खड्गका आश्रय ले सुखसे रहना। यह तेरी वंश-परम्पराके लिए रहस्य-सुरक्षित स्थान है ॥१६५॥ इस प्रकार राक्षसोंके इन्द्र भीम

१. महीं द्वीपाः म.। २. शरणः म.। ३. लयाः म.। ४. रसि म., क.।

इत्युक्तो राक्षसेशाभ्यां प्राप पूर्णघनात्मजः । प्रमोदं परमं देवं प्रणनाम च सोऽजितम् ॥१६६॥
लब्ध्वा च राक्षसीं विद्यामारुरोहेप्सितत्वरम् । विमानं कामगं नाम प्रस्थितस्तां पुरीमसौ ॥१६७॥
ज्ञात्वा लङ्कावरं चैतं रक्षोभ्यां सर्वबान्धवाः । याता विकासमम्भोजसंघा इव दिवानने ॥१६८॥
विमलामलकान्ताद्या[1] विद्याभाजस्तमृद्धिभिः । सुप्रीताः शीघ्रमायाता नन्दयन्तः सुभाषितैः ॥१६९॥
वेष्टितोऽसौ ततस्तुष्टैः पार्श्वतः पृष्ठतोऽग्रतः । कैश्चिद् द्विरदपृष्ठस्थैः कैश्चित्तुरगयायिभिः ॥१७०॥
जयशब्दकृतारावैः प्राप्तवुन्दुभिनिस्वनैः[2] । श्वेतच्छत्रकृतच्छायैर्ध्वजमालाविभूषितैः ॥१७१॥
विद्याधराणां संघातैः कृताशीर्नमनक्रियैः । गच्छन्नभस्तलेऽपश्यल्लवणार्णवमाकुलम् ॥१७२॥
आकाशमिव विस्तीर्णं पातालमिव निस्तलम् । तमालवनसंकाशमूर्मिमालासमाकुलम् ॥१७३॥
अयं जलगतः शैलो ग्राह्योऽयं प्रकटो महान् । चलितोऽयं महामीनः सभीपैरिति भाषितः ॥१७४॥
त्रिकूटशिखराधस्तान्महाप्राकारगोपुराम् । सन्ध्यामिव[3] विलिम्पन्तीं छायया रुणया नभः ॥१७५॥
कुन्दशुभ्रैः समुत्तुङ्गैर्ध्वजयस्युपशोभितैः । मण्डितां चैत्यसंघातैः सप्राकारैः सतोरणैः ॥१७६॥
प्रविष्टो नगरीं लङ्कां प्रविश्य च जिनालयम् । वन्दित्वा स्वोचितागारमध्युवास समङ्गलम् ॥१७७॥
इतरेऽपि यथा स्वं निविष्टास्तस्य बान्धवाः । रत्नशोभासमाकृष्टमनोनयनपङ्क्तयः ॥१७८॥

और सुभीमने पूर्णघनके पुत्र मेघवाहनसे कहा जिसे सुनकर वह परम हर्षको प्राप्त हुआ। वह अजितनाथ भगवान्‌को नमस्कार कर उठा ॥१६६॥ राक्षसोंके इन्द्र भीमने उसे राक्षसी विद्या दी। उसे लेकर इच्छानुसार चलनेवाले कामग नामक विमानपर आरूढ़ हो वह लंकापुरीकी ओर चला ॥ १६७ ॥ 'राक्षसोंके इन्द्रने इसे वरदानस्वरूप लंका नगरी दी है' यह जानकर मेघवाहनके समस्त भाई बान्धव इस प्रकार हर्षको प्राप्त हुए जिस प्रकार कि प्रातःकालके समय कमलोंके समूह विकास भावको प्राप्त होते हैं ॥ १६८ ॥ विमल, अमल, कान्त आदि अनेक विद्याधर परम प्रसन्न वैभवके साथ शीघ्र ही उसके समीप आये और अनेक प्रकारके मीठे-मीठे शब्दोंसे उसका अभिनन्दन करने लगे ॥१६९॥ सन्तोषसे भरे भाई-बन्धुओंसे वेष्टित होकर मेघवाहनने लंकाकी ओर प्रस्थान किया। उस समय कितने ही विद्याधर उसकी बगलमें चल रहे थे, कितने ही पीछे चल रहे थे, कितने ही आगे जा रहे थे, कितने ही हाथियोंकी पीठपर सवार होकर चल रहे थे, कितने ही घोड़ोंपर आरूढ़ होकर चल रहे थे, कितने ही जय-जय शब्द कर रहे थे, कितने ही दुन्दुभियोंका मधुर शब्द कर रहे थे, कितने ही लोगोंपर सफेद छत्रोंसे छाया हो रही थी तथा कितने ही ध्वजाओं और मालाओंसे सुशोभित थे। पूर्वोक्त विद्याधरोंमें कोई तो मेघवाहनको आशीर्वाद दे रहे थे और कोई नमस्कार कर रहे थे। उन सबके साथ आकाशमें चलते हुए मेघवाहनने लवणसमुद्र देखा ॥ १७०–१७२ ॥ वह लवणसमुद्र आकाशके समान विस्तृत था, पातालके समान गहरा था, तमालवनके समान श्याम था और लहरोंके समूहसे व्याप्त था ॥ १७३ ॥ मेघवाहनके समीप चलनेवाले लोग कह रहे थे कि देखो यह जलके बीच पर्वत दीख रहा है, यह बड़ा भारी मकर छलांग भर रहा है और इधर यह बृहदाकार मच्छ चल रहा है ॥ १७४ ॥ इस प्रकार समुद्रकी शोभा देखते हुए मेघवाहनने त्रिकूटाचलके शिखरके नीचे स्थित लंकापुरीमें प्रवेश किया। वह लंका बहुत भारी प्राकार और गोपुरोंसे सुशोभित थी, अपनी लाल-कान्तिके द्वारा सन्ध्याके समान आकाशको लिप्त कर रही थी, कुन्दके समान सफेद, ऊँचे पताकाओंसे सुशोभित, कोट और तोरणोंसे युक्त जिनमन्दिरोंसे मण्डित थी। लंकानगरीमें प्रविष्ट हो सर्वप्रथम उसने जिनमन्दिरमें जाकर जिनेन्द्रदेवकी वन्दना की और तदनन्तर मंगलोपकरणोंसे युक्त अपने योग्य महलमें निवास किया ॥ १७५–१७७ ॥ रत्नोंकी शोभासे जिनके नेत्र और नेत्रोंकी पंक्तियाँ आकर्षित हो रही थीं ऐसे अन्य भाई-बन्धु भी यथायोग्य महलोंमें ठहर गये ॥१७८॥

१. कान्त्याद्या म. । २. निस्वनैः क० । ३. -ऽपरसंल्लव-म. । ४. विलम्पन्तीं (?) म. ।

अथ किन्नरगीताख्ये पुरे रतिमयूखतः । अनुमत्यां समुत्पन्नां [1]सुप्रभां नाम कन्यकाम् ॥१७९॥
चक्षुर्मानसयोश्चौरीं वसतिं पुष्पधन्वनः । कौमुदीं श्रीकुमुदस्या लावण्यसलदीर्घिकाम् ॥१८०॥
संपदा परयोवाह भूषणानां विभूषणीम् । हृषीकाणामशेषाणां प्रमोदस्य विधायिकाम् ॥१८१॥(विशेषकम्)
ततः खेचरलोकेन मस्तकोपात्तशासनः । पुरन्दर इव स्वर्गे तत्रासाववसच्चिरम् ॥१८२॥
अथ तस्याभवत् पुत्रः पुत्रजन्माभिकाङ्क्षिणः । महारक्ष इति ख्यातिं यो गतः कौलदेवतीम् ॥१८३॥
वन्दनायान्यदा यातोऽजितं तीर्थवाहनः । वन्दित्वा च निजस्थाने स्थितो विनयसंगतः ॥१८४॥
तावदन्यकथाच्छेदे प्रणम्य सगरोऽजितम् । पृच्छतीदं शिरः कृत्वा पाणिपङ्कजदन्तुरम् ॥१८५॥
भगवन्नवसर्पिण्यां भवद्विधजिनेश्वराः । स्वामिनो धर्मचक्रस्य भविष्यन्त्यपरे कति ॥१८६॥
कति वा समतिक्रान्ता जगत्त्रयसुखप्रदाः[2] । भवद्विधनरोत्पत्तिराश्चर्यं भुवनत्रये ॥१८७॥
कति वा रत्नचक्राङ्ककक्ष्मीभाजः प्रकीर्तिताः[3] । हलिनो वासुदेवाश्च कियन्तस्तद्द्विषस्तथा ॥१८८॥
एवं पृष्टो जिनो वाक्यमुवाच सुरदुन्दुभेः । तिरस्कुर्वन्महाध्वानं जनितश्रवणोत्सवम् ॥१८९॥
भाषार्द्धमागधी तस्य भाषमाणस्य नाधरौ । चकार स्पन्दसंयुक्तावहो चित्रमिदं परम् ॥१९०॥
उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योर्धर्मतीर्थप्रवर्तिनः । चतुर्विंशतिसंख्यानाः[4] प्रत्येकं सगरोदिताः ॥१९१॥
मोहान्धध्वान्तसंछन्नं कृत्स्नमासीदिदं जगत् । धर्मसंचेतनामुक्तं निष्पाखण्डमराजकम् ॥१९२॥

अथानन्तर—किन्नरगीत नामा नगरमें राजा रतिमयूख और अनुमति नामक रानीके सुप्रभा नामक कन्या थी। वह कन्या नेत्र और मनको चुरानेवाली थी, कामकी वसतिका थी, लक्ष्मीरूपी कुमुदिनीको विकसित करनेके लिए चाँदनीके समान थी, लावण्यरूपी जलकी वापिका थी, आभूषणोंकी आभूषण थी, और समस्त इन्द्रियोंको हर्ष उत्पन्न करनेवाली थी। राजा मेघवाहनने बड़े वैभवसे उसके साथ विवाह किया ॥ १७९–१८१ ॥ तदनन्तर समस्त विद्याधर लोग जिसकी आज्ञाको सिरपर धारण करते थे ऐसा मेघवाहन लंकापुरीमें चिर काल तक इस प्रकार रहता रहा जिस प्रकार कि इन्द्र स्वर्गमें रहता है ॥ १८२ ॥ कुछ समय बाद पुत्र-जन्मकी इच्छा करनेवाले राजा मेघवाहनके पुत्र उत्पन्न हुआ। वह पुत्र कुल-परम्पराके अनुसार महारक्ष इस नामको प्राप्त हुआ ॥ १८३ ॥ किसी एक दिन राजा मेघवाहन वन्दनाके लिए अजितनाथ भगवान्‌के समवसरणमें गया। वहाँ वन्दना कर बड़ी विनयसे अपने योग्य स्थानपर बैठ गया ॥१८४॥ वहाँ जब चलती हुई अन्य कथा पूर्ण हो चुकी तब सगर चक्रवर्तीने हाथ मस्तकसे लगा नमस्कार कर अजितनाथ जिनेन्द्रसे पूछा ॥१८५॥ कि हे भगवन् ! इस अवसर्पिणी कालमें आगे चलकर आपके समान धर्मचक्रके स्वामी अन्य कितने तीर्थंकर होंगे ? ॥ १८६ ॥ और तीनों जगत्‌के जीवोंको सुख देनेवाले कितने तीर्थंकर पहले हो चुके हैं ? यथार्थमें आप जैसे मनुष्योंकी उत्पत्ति तीनों लोकोंमें आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली है ॥१८७॥ चौदह रत्न और सुदर्शन चक्रसे चिह्नित लक्ष्मीके धारक चक्रवर्ती कितने होंगे ? इसी तरह बलभद्र, नारायण और प्रति-नारायण भी कितने होंगे ॥ १८८ ॥ इस प्रकार सगर चक्रवर्तीके पूछनेपर भगवान् अजितनाथ निम्नांकित वचन बोले। उसके वे वचन देव-दुन्दुभिके गम्भीर शब्दका तिरस्कार कर रहे थे तथा कानोंके लिए परम आनन्द उत्पन्न करनेवाले थे ॥१८९॥ भगवान्‌की भाषा अर्धमागधी भाषा थी और बोलते समय उनके ओठोंको चंचल नहीं कर रही थी। यह बड़े आश्चर्य की बात थी ॥१९०॥ उन्होंने कहा कि हे सगर ! प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीमें धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति करनेवाले चौबीस-चौबीस तीर्थंकर होते हैं ॥१९१॥ जिस समय यह समस्त संसार मोहरूपी गाढ़ अन्धकारसे व्याप्त था, धर्मकी चेतनासे शून्य था, समस्त पाखण्डोंका घर और राजासे रहित था उस समय

१. सुप्रभा नाम ग. । २. प्रदा म. । ३. चक्राङ्का लक्ष्मी -म. । ४. संख्याकाः ख. ।

यदा तदा समुत्पन्नो नाभेयो जिनपुङ्गवः । राजन् तेन कृतः [1]पूर्वः कालः कृतयुगाभिधः ॥१९३॥
कल्पितास्त्रय एवात्र वर्णाः क्रियाभेदविधानतः । सस्यानां च समुत्पत्तिर्जायते कल्पतोयतः ॥१९४॥
सृष्टाः शाले च तस्यैव माहनाः सूत्रधारिणः । सुतेन भरताख्येन तस्य तत्समतेजसा ॥१९५॥
आश्रमश्च [2]समुत्पन्नः सागारेतरभेदतः । विज्ञानानि कलाश्चैव नाभेयेनैव देशिताः ॥१९६॥
दीक्षामास्थाय तेनैव जन्मदुःखानलाहताः । भव्याः कृतात्मकृत्येन नीताः सौख्यं शमाम्बुना ॥१९७॥
त्रैलोक्यमपि संभूय यस्योपम्यादिवेषुषाम् । गुणानामशकं[4] गन्तुमन्तमात्मसमुद्यतेः ॥१९८॥
अष्टापदनगारूढो यः शरीरविसृष्टये । दृष्टः सुरासुरैर्हेमकूटाकारः सविस्मयैः ॥१९९॥
शरणं प्राप्य तं नाथं मुनयो भरतादयः । महाव्रतधरा याताः पदं सिद्धैः समाश्रितम् ॥२००॥
पुण्यं केचिदुपादाय [3]सर्वार्थसौख्यमुपागताः । स्वभावार्जवसंपन्नाः केचिन्मानुष्यकं परम् ॥२०१॥
नितान्तोज्ज्वलमप्यन्ये दृष्टयुस्तस्य नो मतम् । कुदृष्टिरागसंयुक्ताः कौशिका इव भास्करम् ॥२०२॥
ते कुधर्मं समास्थाय कुदेवत्वं प्रपद्य च । पुनस्तिर्यक्षु दुश्चेष्टा भ्रमन्ति नरकेषु च ॥२०३॥
अनेकेऽत्र ततोऽतीते काले रत्नालयोपमे । नाभेययुगविच्छेदे जाते नष्टसमुत्सवे ॥२०४॥
अवतीर्यं दिवो मूर्ध्नः कर्तुं कृतयुगं पुनः । उद्भूतोऽस्मि [5]हिताध्यायी जगतामजितो जिनः ॥२०५॥
आचाराणां विघातेन कुदृष्टीनां च संपदा । धर्मं ग्लानिपरिप्राप्तमुच्छ्रयन्ते जिनोत्तमाः ॥२०६॥
ते तं प्राप्य पुनर्धर्मं जीवा बान्धवमुत्तमम् । प्रपद्यन्ते पुनर्मार्गं सिद्धस्थानाभिगामिनः ॥२०७॥

राजा नाभिके पुत्र ऋषभदेव नामक प्रथम तीर्थंकर हुए थे, हे राजन् ! सर्वप्रथम उन्हींके द्वारा इस कृत युगकी स्थापना हुई थी ॥१९२-१९३॥ उन्होंने क्रियाओंमें भेद होनेसे क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णोंकी कल्पना की थी। उनके समयमें मेघोंके जलसे धान्योंकी उत्पत्ति हुई थी ॥१९४॥ उन्हींके समय उनके समान तेजके धारक भरतपुत्रने यज्ञोपवीतको धारण करनेवाले ब्राह्मणोंकी भी रचना की थी ॥१९५॥ सागार और अनगारके भेदसे दो प्रकारके आश्रम भी उन्हींके समय उत्पन्न हुए थे। समस्त विज्ञान और कलाओंके उपदेश भी उन्हीं भगवान् ऋषभदेवके द्वारा दिये गये थे ॥१९६॥ दीक्षा लेकर भगवान् ऋषभदेवने अपना कार्य किया और जन्म सम्बन्धी दुःखाग्निसे पीड़ित अन्य भव्य जीवोंको शान्तिरूप जलके द्वारा सुख प्राप्त कराया ॥१९७॥ तीन लोकके जीव मिलकर इकट्ठे हो जावें तो भी आत्मतेजसे सुशोभित भगवान् ऋषभदेवके अनुपम गुणोंका अन्त प्राप्त करनेके लिए समर्थ नहीं हो सकते ॥१९८॥ शरीर त्याग करनेके लिए जब भगवान् ऋषभदेव कैलास पर्वतपर आरूढ़ हुए थे तब आश्चर्यसे भरे सुर और असुरोंने उन्हें सुवर्णमय शिखरके समान देखा था ॥१९९॥ उनकी शरणमें जाकर महाव्रत धारण करनेवाले कितने ही भरत आदि मुनि निर्वाण धामको प्राप्त हुए हैं ॥२००॥ कितने ही पुण्य उपार्जन कर स्वर्ग सुखको प्राप्त हैं, और स्वभावसे ही सरलताको धारण करनेवाले कितने ही लोग उत्कृष्ट मनुष्य पदको प्राप्त हुए हैं ॥२०१॥ यद्यपि उनका मत अत्यन्त उज्ज्वल था तो भी मिथ्यादर्शनरूपी रागसे युक्त मनुष्य उसे उस तरह नहीं देख सके थे जिस तरह कि उल्लू सूर्यको नहीं देख सकते हैं ॥२०२॥ ऐसे मिथ्यादृष्टि लोग कुधर्मकी श्रद्धा कर नीचे देवोंमें उत्पन्न होते हैं। फिर तिर्यंचोंमें दुष्ट चेष्टाएँ कर नरकोंमें भ्रमण करते हैं ॥२०३॥ तदनन्तर बहुत काल व्यतीत हो जानेपर जब समुद्रके समान गम्भीर ऋषभदेवका युग—तीर्थ विच्छिन्न हो गया और धार्मिक उत्सव नष्ट हो गया तब सर्वार्थसिद्धिसे चयकर फिरसे कृतयुगकी व्यवस्था करनेके लिए जगत्का हित करनेवाला मैं दूसरा अजितनाथ तीर्थंकर उत्पन्न हुआ हूँ ॥२०४-२०५॥ जब आचारके विघात और मिथ्यादृष्टियोंके वैभवसे समीचीन धर्म ग्लानिको प्राप्त हो जाता है—प्रभावहीन होने लगता है तब तीर्थंकर उत्पन्न होकर उसका उद्योत करते हैं ॥२०६॥

---

१. पूर्वं ख. । २. समुत्पन्नाः म. । ३. -दुपेयुषाम् ख. । ४. -मंशकं ख. । ५. हिताध्यायी ख. ।

ततो मयि गते मोक्षमुत्पत्स्यन्ते जिनाधिपाः । [1]द्वाविंशतिः क्रमादन्ये त्रिलोकोद्योतकारिणः ॥२०८॥
ते च मत्सदृशाः सर्वे कान्तिवीर्यादि[2]भूषिताः । त्रैलोक्यपूजनप्राप्तैर्ज्ञानदर्शनरूपतः ॥२०९॥
चक्राङ्कितां श्रियं भुक्त्वा तेषां मध्ये त्रयो जिनाः । प्राप्स्यन्ति [3]ज्ञानसाम्राज्यमनन्तसुखकारणम् ॥२१०॥
तेषां नामानि सर्वेषां मङ्गलानि जगत्त्रये । महात्मनामहं वक्ष्ये मनःशुद्धिकराणि ते ॥२११॥
ऋषभो वृषभः पुंसामतीतः प्रथमो जिनः । वर्तमानोऽजितश्चाहं परिशेषास्तु भाविनः ॥२१२॥
संभवः संभवो मुक्तेर्भव्यनन्दाभिनन्दनः । सुमतिः पद्मतेजाश्च सुपार्श्वश्चन्द्रसंनिभः ॥२१३॥
पुष्पदन्तोऽष्टकर्मान्तः शीतलः शीलसागरः । श्रेयान् श्रेयान् सुचेष्टासु वासुपूज्योऽर्चितः सताम् ॥२१४॥
विमलानन्तधर्माश्च शान्तिकुन्थ्वरकीर्तिताः । मल्लिसुव्रतनामानौ नमिनेमी च विश्रुतौ ॥२१५॥
पार्श्वो वीरजिनेन्द्रश्च जिनधौरीधुरंधरः । देवाधिदेवता एते जीवस्वास्थ्यव्यवस्थिताः ॥२१६॥
जन्मावतारः सर्वेषां रत्नवृष्ट्याभिनन्दितः । मेरौ जन्माभिषेकश्च सुरैः क्षीरोदवारिणा ॥२१७॥
उपमानविनिर्मुक्तं तेजोरूपं सुखं बलम् । सर्वे जन्मरिपोर्लोके विध्वंसनविधायिनः ॥२१८॥
अस्तं याते महावीरजिनतिग्मांशुमालिनि । लोके पाखण्डखद्योतास्तेजः प्राप्स्यन्ति भूरयः ॥२१९॥
चतुर्गतिकसंसारकूपे ते पतिताः स्वयम् । पातयिष्यन्ति मोहान्धानन्यानप्यसुधारिणः ॥२२०॥
एकस्त्वत्सदृशोऽतीतश्चक्रचिह्नः [4]श्रियः पतिः । भवानेको महावीर्यो जनिष्यन्ति दशापरे ॥२२१॥

संसारके प्राणी उत्कृष्ट बन्धुस्वरूप समीचीन धर्मको पुनः प्राप्त कर मोक्षमार्गको प्राप्त होते हैं और मोक्ष स्थानकी ओर गमन करने लगते हैं अर्थात् विच्छिन्न मोक्षमार्ग फिरसे चालू हो जाता है ॥२०७॥ तदनन्तर जब मैं मोक्ष चला जाऊँगा तब क्रमसे तीनों लोकोंका उद्योत करनेवाले बाईस तीर्थंकर और उत्पन्न होंगे ॥२०८॥ वे सभी तीर्थंकर मेरे ही समान कान्ति, वीर्य आदिसे विभूषित होंगे, मेरे ही समान तीन लोकके जीवोंसे पूजाको प्राप्त होंगे और मेरे ही समान ज्ञानदर्शनके धारक होंगे ॥२०९॥ उन तीर्थंकरोंमें तीन तीर्थंकर (शान्ति, कुन्थु, अर) चक्रवर्तीकी लक्ष्मीका उपभोग कर अनन्त सुखका कारण ज्ञानका साम्राज्य प्राप्त करेंगे ॥२१०॥ अब मैं उन सभी महापुरुषोंके नाम कहता हूँ। उनके ये नाम तीनों जगत्में मंगलस्वरूप हैं तथा हे राजन् सगर ! तेरे मनकी शुद्धता करनेवाले हैं ॥२११॥ पुरुषोंमें श्रेष्ठ ऋषभनाथ प्रथम तीर्थंकर थे जो हो चुके हैं, मैं अजितनाथ वर्तमान तीर्थंकर हूँ और बाकी बाईस तीर्थंकर भविष्यत् तीर्थंकर हैं ॥२१२॥ मुक्तिके कारण सम्भवनाथ, भव्य जीवोंको आनन्दित करनेवाले अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, अष्टकर्मोंको नष्ट करनेवाले पुष्पदन्त, शीलके सागरस्वरूप शीतलनाथ, उत्तम चेष्टाओंके द्वारा कल्याण करनेवाले श्रेयोनाथ, सत्पुरुषोंके द्वारा पूजित वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, सुव्रतनाथ, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और जिनमार्गके धुरन्धर वीरनाथ। ये इस अवसर्पिणी युगके चौबीस तीर्थंकर हैं। ये सभी देवाधिदेव और जीवोंका कल्याण करनेवाले होंगे ॥२१३–२१६॥ इन सभीका जन्मावतरण रत्नोंकी वर्षासे अभिनन्दित होगा तथा देव लोग क्षीरसागरके जलसे सुमेरु पर्वतपर सबका जन्माभिषेक करेंगे ॥२१७॥ इन सभीका तेज, रूप, सुख और बल उपमासे रहित होगा और सभी इस संसारमें जन्मरूपी शत्रुका विध्वंस करनेवाले होंगे अर्थात् मोक्षगामी होंगे ॥२१८॥ जब भगवान् महावीररूपी सूर्य अस्त हो जायेगा तब इस संसारमें बहुत-से पाखण्डरूपी जुगनू तेजको प्राप्त करेंगे ॥२१९॥ वे पाखण्ड पुरुष इस चतुर्गतिरूप संसार कूपमें स्वयं गिरेंगे तथा मोहसे अन्धे अन्य प्राणियोंको भी गिरावेंगे ॥२२०॥ तुम्हारे समान चक्रांकित लक्ष्मीका अधिपति एक चक्रवर्ती तो हो

---

१. द्वाविंशति म.। २. भूतयः क., ख.। ३. ज्ञात म.। ४. भव्यानन्द्यभि-म.। ५. वृष्ट्याभिवन्दितः क.। ६. चिह्नश्रियः म.।

प्रथमो भरतोऽतीतस्सगरस्त्वं च वर्तसे । चक्रलाञ्छितभोगेशा भविष्यन्ति परे नृपाः ॥२२२॥
सनत्कुमारविख्यातिर्मघवा नामतोऽपरः । शान्तिकुन्थ्वरनामानः सुभूमश्चनिकीर्तितः ॥२२३॥
महापद्मः प्रसिद्धश्च हरिषेणश्चनिस्तथा । जयसेननृपश्चान्यो ब्रह्मदत्तो भविष्यति ॥२२४॥
वासुदेवा भविष्यन्ति नव सार्धं प्रतीश्वरैः । बलदेवाश्च तावन्तो धर्मविन्यस्तचेतसः ॥२२५॥
प्रोक्ता एतेऽवसर्पिण्यां जिनप्रभृतयस्तथा । तथैवोत्सर्पिणीकाले भरतैरावतालयोः ॥२२६॥
एवं कर्मवशं श्रुत्वा जीवानां भवसंकटम् । महापुरुषभूतिं च कालस्य च विवर्तनम् ॥२२७॥
अष्टकर्मविमुक्तानां सुखं चोपमयोज्झितम् । जीमूतवाहनश्चक्रे चेतसीदं विचक्षणः ॥२२८॥
कष्टं यैरेव जीवोऽयं कर्मभिः परिसिप्यते । तान्येवोत्सहते कर्तुं मोहितः कर्ममायया ॥२२९॥
आपातमात्ररम्येषु विषवद् दुःखदायिषु । विषयेषु रतिः का वा दुःखोत्पादनवृत्तिषु ॥२३०॥
कृत्वापि हि चिरं सङ्गं धने कान्तासु बन्धुषु । एकाकिनैव कर्तव्यं संसारे परिवर्तनम् ॥२३१॥
तावदेव जनः सर्वः [1]प्रियत्वेनानुवर्तते । दानेन गृह्यते यावत्सारमेयशिशुर्यथा ॥२३२॥
हृयसा चापि कालेन को गतः सह बन्धुभिः । परलोकं कलत्रैर्वा सुहृद्भिर्बान्धवेन वा ॥२३३॥
नागभोगोपमा भोगा भीमा नरकपातिनः । तेषु पुंसः [2]क्व कः [3]पदाश्चित्तवेत्तनः ॥२३४॥
अहो परमिदं चित्रं सङ्गावेन यदाश्रितान् । लक्ष्मीः प्रतारयत्येव दुष्टत्वं किमतः परम् ॥२३५॥

चुका है, अत्यन्त शक्तिशाली द्वितीय चक्रवर्ती तुम हो और तुम दो के सिवाय दस चक्रवर्ती और होंगे ॥२२१॥ चक्रवर्तियोंमें प्रथम चक्रवर्ती भरत हो चुके हैं, द्वितीय चक्रवर्ती सगर तुम विद्यमान ही हो और तुम दोके सिवाय चक्रचिह्नित भोगोंके स्वामी निम्नांकित दस चक्रवर्ती राजा और भी होंगे ॥२२२॥ ३ सनत्कुमार, ४ मघवा, ५ शान्ति, ६ कुन्थु, ७ अर, ८ सुभूम, ९ महापद्म, १० हरिषेण, ११ जयसेन और १२ ब्रह्मदत्त ॥२२३॥ नौ प्रतिनारायणोंके साथ नौ नारायण होंगे और धर्ममें जिनका चित्त लग रहा है ऐसे बलभद्र भी नौ होंगे ॥२२४-२२५॥ हे राजन् ! जिस प्रकार हमने अवसर्पिणी कालमें होनेवाले तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदिका वर्णन किया है उसी प्रकारके तीर्थंकर आदि उत्सर्पिणी कालमें भी भरत तथा ऐरावत क्षेत्रमें होंगे ॥२२६॥ इस प्रकार कर्मोंके वश होनेवाला जीवोंका संसारभ्रमण, महापुरुषोंकी उत्पत्ति, कालचक्रका परिवर्तन और आठ कर्मोंसे रहित जीवोंको होनेवाला अनुपम सुख इन सबका विचारकर बुद्धिमान् मेघवाहनने अपने मनमें निम्न विचार किया ॥२२७-२२८॥ हाय हाय, बड़े दुःखकी बात है कि जिन कर्मोंके द्वारा यह जीव आतापको प्राप्त होता है कर्मरूपी मदिरासे उन्मत्त हुआ यह उन्हीं कर्मोंको करनेके लिए उत्साहित होता है ॥२२९॥ जो प्रारम्भमें ही मनोहर दिखते हैं और अन्तमें विषके समान दुःख देते हैं अथवा दुःख उत्पन्न करना ही जिनका स्वभाव है। ऐसे विषयोंमें क्या प्रेम करना है ? ॥२३०॥ यह जीव धन, स्त्रियों तथा भाई-बन्धुओंका चिरकाल तक संग करता है तो भी संसारमें इसे अकेले ही भ्रमण करना पड़ता है ॥२३१॥ जिस प्रकार कुत्ताके पिल्लेको जबतक रोटीका टुकड़ा देते रहते हैं तभी तक वह प्रेम करता हुआ पीछे लगा रहता है इसी प्रकार इन संसारके सभी प्राणियोंको जब तक कुछ मिलता रहता है तभी तक ये प्रेमी बनकर अपने पीछे लगे रहते हैं ॥२३२॥ इतना भारी काल बीत गया पर इसमें कौन मनुष्य ऐसा है जो भाई-बन्धुओं, स्त्रियों, मित्रों तथा अन्य इष्ट जनोंके साथ परलोकको गया हो ॥२३३॥ ये पंचेन्द्रियोंके भोग साँपके शरीरके समान भयंकर एवं नरकमें गिरानेवाले हैं। ऐसा कौन सचेतन—विचारक पुरुष है जो कि इन विषयोंमें आसक्ति करता हो ? ॥२३४॥ अहो, सबसे बड़ा आश्चर्य तो इस बातका है कि जो मनुष्य लक्ष्मीका

१. वर्तते म. । २. प्रियत्वे मानुवर्तते क. । ३. पदाश्रितान् म. ।

स्वप्ने समागमो यद्वत्तद्वद् बन्धुसमागमः । इन्द्रचापसमानं च क्षणमात्रं च तैः सुखम् ॥२३६॥
जलबुद्बुदवत्कायः सारेण परिवर्जितः । विद्युल्लताविलासेन सदृशं जीवितं चलम् ॥२३७॥
तस्मात्सर्वमिदं हित्वा संसारावासकारणम् । सहायं परिगृह्णामि धर्ममन्यमिचारिणम् ॥२३८॥
महारक्षसि निक्षिप्य राज्यभारं ततः कृती । प्राव्रजत् सोऽजितस्यान्ते महावैराग्यकञ्चुकः ॥२३९॥
दशाधिकं शतं तेन साकं खेचरभोगिनाम् । निर्वेदमाप्य निष्क्रान्तं गेहचारकवासतः ॥२४०॥
महारक्षःशशाङ्कोऽपि विज्ञापनकरोत्करैः । पूरयन् बान्धवाम्भोधिं रेजे लङ्कानभोऽङ्गणे ॥२४१॥
प्राप्य स्वप्नेऽपि तस्याज्ञां महाविद्याधराधिपाः । संभ्रमाद् बोधमायान्ति कृतमस्तकपाणयः ॥२४२॥
प्रथिता विमलाभास्य जाता प्राणसमप्रिया । यस्यानुवर्तनं चक्रे छायेव सततानुगा ॥२४३॥
अमरोदधिभानुभ्यः परां रक्षःश्रुतिं श्रिताः । तस्य तस्यां समुत्पन्नाः पुत्राः सर्वार्थसंमिताः ॥२४४॥
विचित्रकर्मसंपूर्णास्तुङ्गा विस्तारभाजिनः । प्रसिद्धास्तस्य ते पुत्रास्त्रयो लोका इवाभवन् ॥२४५॥
प्रवर्त्यार्जितनाथोऽपि भव्यानां मुक्तिगामिनाम् । पन्थानं प्राप संमेदे निजां प्रकृतिमात्मनः ॥२४६॥
सगरस्य च पत्नीनां सहस्राणां षडुत्तराः । नवतिः शक्रपत्नीनामभवन् तुल्यतेजसाम् ॥२४७॥
सुपुत्राणां च पुत्राणां बिभ्रतां शक्तिमुत्तमाम् । जाताः षष्टिः सहस्राणां रत्नस्तम्भसमत्विषाम् ॥२४८॥
ते कदाचिदथो याताः कैलासं वन्दनार्थिनः । कम्पयन्तः पदन्यासैर्वसुधां पर्वता इव ॥२४९॥

सद्भावनासे आश्रय लेते हैं यह लक्ष्मी उन्हें ही धोखा देती है—ठगती है, इससे बढ़कर दुष्टता और क्या होगी ? ॥२३५॥ जिस प्रकार स्वप्नमें होनेवाला इष्ट जनोंका समागम अस्थायी है उसी प्रकार बन्धुजनोंका समागम भी अस्थायी है। तथा बन्धुजनोंके समागमसे जो सुख होता है वह इन्द्रधनुषके समान क्षणमात्रके लिए ही होता है ॥२३६॥ शरीर पानीके बबूलेके समान सारसे रहित है तथा यह जीवन बिजलीकी चमकके समान चंचल है ॥२३७॥ इसलिए संसार-निवासके कारणभूत इस समस्त परिकरको छोड़कर मैं तो कभी धोखा नहीं देनेवाले एक धर्मरूप सहायकको ही ग्रहण करता हूँ ॥२३८॥ तदनन्तर ऐसा विचारकर वैराग्यरूपी कवचको धारण करनेवाले बुद्धिमान् मेघवाहन विद्याधरने महाराक्षस नामक पुत्रके लिए राज्यभार सौंपकर अजितनाथ भगवान्‌के समीप दीक्षा धारण कर ली ॥२३९॥ राजा मेघवाहनके साथ अन्य एक सौ दस विद्याधर भी वैराग्य प्राप्त कर घररूपी बन्दीगृहसे बाहर निकले ॥२४०॥

इस महाराक्षसरूपी चन्द्रमा भी दानरूपी किरणोंके समूहसे बन्धुजनरूपी समुद्रको हुलसाता हुआ लंकारूपी आकाशांगणके बीच सुशोभित होने लगा ॥२४१॥ उसका ऐसा प्रभाव था कि बड़े-बड़े विद्याधरोंके अधिपति स्वप्नमें भी उसकी आज्ञा प्राप्त कर हड़बड़ाकर जाग उठते थे और हाथ जोड़कर मस्तकसे लगा लेते थे ॥२४२॥ उसकी विमलाभा नामकी प्राणप्रिया वल्लभा थी जो छायाके समान सदा उसके साथ रहती थी ॥२४३॥ उसके अमररक्ष, उदधिरक्ष और भानुरक्ष नामक तीन पुत्र हुए। ये तीनों ही पुत्र सब प्रकारके अर्थोंसे परिपूर्ण थे ॥२४४॥ विचित्र-विचित्र कार्योंसे युक्त थे, उत्तुंग अर्थात् उदार थे और जन-धनसे विस्तारको प्राप्त थे इसलिए ऐसे जान पड़ते मानो तीन लोक ही हों ॥२४५॥ भगवान् अजितनाथ भी मुक्तिगामी भव्य जीवोंको मोक्षका मार्ग प्रवर्ताकर सम्मेद शिखरपर पहुँचे और वहाँसे आत्मस्वभावको प्राप्त हुए—सिद्ध पदको प्राप्त हुए ॥२४६॥ सगर चक्रवर्तीके इन्द्राणीके समान तेजको धारण करनेवाली छयानबे हजार रानियाँ थीं और उत्तम शक्तिको धारण करनेवाले एवं रत्नमयी खम्भोंके समान देदीप्यमान साठ हजार पुत्र थे। उन पुत्रोंके भी अनेक पुत्र थे ॥२४७-२४८॥ किसी समय वे सभी पुत्र वन्दनाके लिए कैलास

---

१. विमलाभस्य म. । २. प्रवृत्य म. । ३. प्राप्य म., क. । ४. सुपुत्राणां म., ख. । ५. कम्पयतां म. ।

विधाय सिद्धबिम्बानां वन्दनां प्रश्रयान्विताः । गिरेस्ते दण्डरत्नेन परिक्षेपं प्रचक्रिरे ॥२५०॥
आरसातलमूलां तां दृष्ट्वा खातां वसुंधराम् । तेषामालोचनं चक्रे नागेन्द्रः क्रोधदीपितः ॥२५१॥
क्रोधवह्नेस्तदास्तस्य ज्वालाभिर्लीढविग्रहाः । भस्मसाद्भावमायाताः सुतास्ते चक्रवर्तिनः ॥२५२॥
तेषां मध्ये न दग्धौ द्वौ कथमप्यनुकम्पया । जीवितात्मकया शक्त्या विषतो जातया यथा ॥२५३॥
[1]सागरीणामिमं मृत्युं दृष्ट्वा युगपदागतम् । दुःखितौ सगरस्यान्तं यातौ भीमभगीरथौ ॥२५४॥
अकस्मात् कथिते[2] मा भूत् प्राणांस्त्याक्षीच्चणादिति । पण्डितैरिति संचिन्त्य निषिद्धौ तौ निवेदने ॥२५५॥
ततः संभूय राजानो मन्त्रिणश्च कुलागताः । नानाशास्त्रविदुद्वाश्च विनोदज्ञा मनीषिणः ॥२५६॥
अविभिन्नमुखच्छायाः पूर्ववेषसमन्विताः । विनयेन यथापूर्वं सगरं समुपागताः ॥२५७॥
नमस्कृत्योपविष्टैस्तैर्यथास्थानं प्रचोदितैः[3] । संज्ञया प्रवयाः कश्चिदिदं वचनमग्रहीत् ॥२५८॥
राजन् सगर पश्य त्वं जगतीमामनित्यताम् । संसारं प्रति यां दृष्ट्वा मानसं न प्रवर्तते ॥२५९॥
राजासीद्भरतो नाम्ना त्वया समपराक्रमः । दासीव येन षट्खण्डा कृता वश्या वसुंधरा ॥२६०॥
तस्यादित्ययशाः पुत्रो बभूवोन्नतविक्रमः । प्रसिद्धो यस्य नाम्नायं वंशः संप्रति वर्तते ॥२६१॥
एवं तस्याप्यभूत् पुत्रस्तस्याप्यन्योऽपरस्ततः । गतास्ते चाधुना सर्वे दर्शनानामगोचरम् ॥२६२॥

पर्वतपर गये। उस समय वे चरणोंके विक्षेपसे पृथिवीको कँपा रहे थे और पर्वतोंके समान जान पड़ते थे ॥२४९॥ कैलास पर्वतपर स्थित सिद्ध प्रतिमाओंकी उन्होंने बड़ी विनयसे वन्दना की और तदनन्तर वे दण्डरत्नसे उस पर्वतके चारों ओर खाई खोदने लगे ॥२५०॥ उन्होंने दण्डरत्नसे पाताल तक गहरी पृथिवी खोद डाली यह देख नागेन्द्रने क्रोधसे प्रज्वलित हो उनकी ओर देखा ॥२५१॥ नागेन्द्रकी क्रोधाग्निकी ज्वालाओंसे जिनका शरीर व्याप्त हो गया था ऐसे वे चक्रवर्तीके पुत्र भस्मीभूत हो गये ॥२५२॥ जिस प्रकार विषको मारक शक्तिके बीच एक जीवक शक्ति भी होती है और उसके प्रभावसे वह कभी-कभी औषधिके समान जीवनका भी कारण बन जाती है इसी प्रकार उस नागेन्द्रकी क्रोधाग्निमें भी जहाँ जलानेकी शक्ति थी वहाँ एक अनुकम्पारूप परिणति भी थी। उसी अनुकम्पारूप परिणतिके कारण उन पुत्रोंके बीचमें भीम, भगीरथ नामक दो पुत्र किसी तरह भस्म नहीं हुए ॥२५३॥ सगर चक्रवर्तीके पुत्रोंकी इस आकस्मिक मृत्युको देखकर वे दोनों ही दुःखी होकर सगरके पास आये ॥२५४॥ सहसा इस समाचारके कहनेपर चक्रवर्ती कहीं प्राण न छोड़ दें ऐसा विचारकर पण्डितजनोंने भीम और भगीरथको यह समाचार चक्रवर्तीसे कहनेके लिए मना कर दिया ॥२५५॥ तदनन्तर राजा, कुल क्रमागत मन्त्री, नाना शास्त्रोंके पारगामी और विनोदके जानकार विद्वज्जन एकत्रित होकर चक्रवर्तीके पास गये। उस समय उन सबके मुखकी कान्तिमें किसी प्रकारका अन्तर नहीं था तथा वेशभूषा भी सबकी पहलेके ही समान थी। सब लोग विनयसे जाकर पहले ही के समान चक्रवर्ती सगरके समीप पहुँचे ॥२५६-२५७॥ नमस्कार कर सब लोग जब यथास्थान बैठ गये तब उनके संकेतसे प्रेरित हो एक वृद्धजनने निम्नांकित वचन कहना शुरू किया ॥२५८॥

हे राजन् सगर! आप संसारकी इस अनित्यताको तो देखो जिसे देखकर फिर संसारकी ओर मन प्रवृत्त नहीं होता ॥२५९॥ पहले तुम्हारे ही समान पराक्रमका धारी राजा भरत हो गया है जिसने इस छहखण्डकी पृथ्वीको दासीके समान वश कर लिया था ॥२६०॥ उसके महापराक्रमी अर्ककीर्ति नामक ऐसा पुत्र हुआ था कि जिसके नामसे यह सूर्यवंश अब तक चल रहा है ॥२६१॥ अर्ककीर्तिके भी पुत्र हुआ और उसके पुत्रको भी पुत्र हुआ परन्तु इस समय वे सब दृष्टिगोचर

---

१. सगरस्यापत्यानि पुमांसः सागरयस्तेषाम् "अत इञ्' इतीञ्प्रत्ययः। २. कथितेनायं म., ख.। ३. प्रचोदिताम् म.।

आसतां तावदेते वा नाकलोकेश्वरा अपि । ज्वलिता विभवैर्यातः क्षणाद् दुःखेन भस्मताम् ॥२६३॥
येऽपि तीर्थंकरा नाम त्रैलोक्यस्यामिनन्दकाः । शरीरं तेऽपि संत्यज्य गच्छन्त्यायुःपरिक्षये ॥२६४॥
महातरौ यथैकस्मिन्नुषित्वा रजनीं पुनः । प्रभाते प्रतिपद्यन्ते ककुभो दश पक्षिणः ॥२६५॥
एवं कुटुम्ब एकस्मिन् संगमं प्राप्य जन्तवः । पुनः स्वां स्वां प्रपद्यन्ते गतिं कर्मवशानुगाः ॥२६६॥
कैश्चित्सच्चेष्टितं तेषां वपुश्चास्यन्तशोभनम् । विषयीकृतमक्षिभ्यामस्माकं तु कथागतम् ॥२६७॥
बलवज्ज्यौ हि सर्वेभ्यो मृत्युरेव महाबलः । आनीता निधनं येन बलवन्तो बलीयसा ॥२६८॥
कथं स्फुटति नो वक्षः स्मृत्वा तेषां महात्मनाम् । विनाशं भरतादीनामहो चित्रमिदं परम् ॥२६९॥
फेनोर्मीन्द्रधनुःस्वप्नविद्युद्बुद्बुदसंनिभाः । संपदः प्रियसंपर्का विग्रहाश्च शरीरिणाम् ॥२७०॥
नास्ति कश्चिन्नरो लोके यो व्रजेदुपमानताम् । यथायममरस्तद्वद्वयं मृत्यूज्झिता इति ॥२७१॥
येऽपि शोषयितुं शक्ताः समुद्रं ग्राससंकुलम् । कुर्युर्वा करयुग्मेन चूर्णं मेरुमहीधरम् ॥२७२॥
उद्धर्तुं धरणीं शक्ता ग्रसितुं चन्द्रभास्करौ[1] । प्रविष्टास्तेऽपि कालेन कृतान्तवदनं नराः ॥२७३॥
मृत्योर्दुर्लङ्घितस्यास्य त्रैलोक्ये वशतां गते । केवलं व्युज्झिताः सिद्धा जिनधर्मसमुद्भवाः ॥२७४॥
यथा ते बहवो यातः कालेन निधनं नृपाः । वयमप्येवं सामान्यं जगतामिदम् ॥२७५॥
तत्र त्रिलोकसामान्ये वस्तुन्यस्मिन् समागते । शोकं कुर्याद्विबुद्धात्मा को नरो भवकारणम् ॥२७६॥
कथायामिति जातायां वीक्ष्यापत्यद्वयं पुनः । मानसे चक्रवर्तीदं चकारेङ्गितकोविदः ॥२७७॥

नहीं हैं ॥२६२॥ अथवा इन सबको रहने दो, स्वर्गलोकके अधिपति भी जो कि वैभवसे देदीप्यमान रहते हैं क्षणभरमें दुःखसे भस्म हो जाते हैं ॥२६३॥ अथवा इन्हें भी जाने दो, तीन लोकको आनन्दित करनेवाले जो तीर्थंकर हैं वे भी आयु समाप्त होनेपर शरीरको छोड़कर चले जाते हैं ॥२६४॥ जिस प्रकार पक्षी रात्रिके समय किसी बड़े वृक्षपर बसकर प्रातःकाल दशों दिशाओंमें चले जाते हैं उसी प्रकार अनेक प्राणी एक कुटुम्बमें एकत्रित होकर कर्मोंके अनुसार फिर अपनी गतिको चले जाते हैं ॥२६५-२६६॥ किन्हींने उन पूर्व पुरुषोंकी चेष्टाएँ तथा उनका अत्यन्त सुन्दर शरीर अपनी आँखोंसे देखा है परन्तु हम कथामात्रसे उन्हें जानते हैं ॥२६७॥ मृत्यु सभी बलवानोंसे अधिक बलवान् है क्योंकि इसने अन्य सभी बलवानोंको परास्त कर दिया है ॥२६८॥ अहो ! यह बड़ा आश्चर्य है कि भरत आदि महापुरुषोंके विनाशका स्मरण कर हमारी छाती नहीं फट रही है ॥२६९॥ जीवोंकी धनसम्पदाएँ, इष्टसमागम और शरीर, फेन, तरंग, इन्द्रधनुष, स्वप्न, बिजली और बबूलाके समान हैं ॥२७०॥ संसारमें ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं है जो इस विषयमें उपमान हो सके कि जिस तरह यह अमर है उसी तरह हम भी अमर रहेंगे ॥२७१॥ जो मगरमच्छोंसे भरे समुद्रको सुखानेके लिए समर्थ हैं अथवा अपने दोनों हाथोंसे सुमेरु पर्वतको चूर्ण करनेमें समर्थ हैं अथवा पृथ्वीको ऊपर उठानेमें और चन्द्रमा तथा सूर्यको ग्रसनेमें समर्थ हैं वे मनुष्य भी काल पाकर यमराजके मुखमें प्रविष्ट हुए हैं ॥२७२-२७३॥ तीनों लोकोंके प्राणी इस दुर्लंघनीय मृत्युके वश हो रहे हैं। यदि कोई बाकी छूटे हैं तो जिनधर्मसे उत्पन्न हुए सिद्ध भगवान् ही छूटे हैं ॥२७४॥

जिस प्रकार बहुत-से राजा कालके द्वारा विनाशको प्राप्त हुए हैं उसी प्रकार हम लोग भी विनाशको प्राप्त होंगे। संसारका यह सामान्य नियम है ॥२७५॥ जो मृत्यु तीन लोकके जीवोंको समान रूपसे आती है उसके प्राप्त होनेपर ऐसा कौन विवेकी पुरुष होगा जो संसारके कारणभूत शोकको करेगा ॥२७६॥ इस प्रकार वृद्ध मनुष्यके द्वारा यह चर्चा चल रही थी इधर चेष्टाओंके जाननेमें निपुण चक्रवर्तीने सामने सिर्फ दो पुत्र देखे। उन्हें देखकर वह मनमें विचार करने लगा

---

१. चन्द्रभास्करा म.।

सर्वदा युगपत्सर्वे मां नमन्ति स्म देहजाः । अद्य द्वौ दीनवदनौ नूनं शेषा गताः क्षयम् ॥२७८॥
एते चान्यापदेशेन कथयन्ति समागताः । नृपाः कथयितुं साक्षादुदारं दुःखमक्षमाः ॥२७९॥
ततः शोकोरगेणासौ दष्टोऽपि न समत्यजन् । प्राणान् सभ्यवचोमन्त्रैः प्रतिपद्य प्रतिक्रियाम् ॥२८०॥
कदलीगर्भनिःसारमवेत्य भवनं सुखम् । भगीरथे श्रियं न्यस्य दीक्षां स समशिश्रियत् ॥२८१॥
त्यजतोऽस्य धरित्रीयं नगराकरमण्डिता । मनस्युदात्तलीलस्य जरत्तृणसमाभवत् ॥२८२॥
सार्द्धं [illegible] । केवलज्ञानमुत्पद्य सिद्धानां पदमाश्रयत् ॥२८३॥
तनयः सागरेंद्रस्य कुर्वन् राज्यं भगीरथः । श्रुतसागरयोगीन्द्रं पृष्टवानेवमन्यदा ॥२८४॥
पितामहस्य मे नाथ तनया युगपत्कृतः । कर्मणो मरणं प्राप्ता मध्ये तेषामहं तु न ॥२८५॥
अवोचद् भगवान् संघो वन्दनार्थं चतुर्विधः । संमेदं प्रस्थितोऽवापदन्तिकग्रामदर्शनम् ॥२८६॥
दृष्ट्वा तमन्तिकग्रामो दुर्वचाः सकलोऽहसत् । कुम्भकारस्तु तत्रैको निषिध्य कृतवान् स्तुतिम् ॥२८७॥
तद्ग्रामवासिनैकेन कृते चौर्ये स भूभृता । परिवेष्ट्यासिलो दग्धो ग्रामो भूर्यपराधकः ॥२८८॥
भस्मसाद्भावमापन्नो यस्मिन् ग्रामोऽघ वासरे । कुम्भकारो गतः क्वापि मध्यस्थेषु निमन्त्रितः ॥२८९॥
कुम्भकारोऽभवन्मृत्वा वाणिजः सुमहाधनः । वराटकसमूहस्तु ग्रामः प्राप्तश्च तेन सः ॥२९०॥
कुम्भकारोऽभवद्राजा ग्रामोऽसौ मातृवाहकाः । हस्तिना चूर्णितास्तस्य ते चिरं भवमभ्रमन् ॥२९१॥

॥२७७॥ कि हमेशा सब पुत्र मुझे एक साथ नमस्कार करते थे पर आज दो ही पुत्र दिख रहे हैं और उतनेपर भी इनके मुख अत्यन्त दीन दिखाई देते हैं। जान पड़ता है कि शेष पुत्र क्षयको प्राप्त हो चुके हैं ॥२७८॥ ये आगत राजा लोग इस भारी दुःखको साक्षात् कहनेमें समर्थ नहीं है इसलिए अन्योक्ति—दूसरेके बहाने कह रहे हैं ॥२७९॥ तदनन्तर सगर चक्रवर्ती यद्यपि शोकरूपी सर्पसे डँसा गया था तो भी सभासदजनोंके वचनरूपी मन्त्रोंसे प्रतिकार—सान्त्वना पाकर उसने प्राण नहीं छोड़े थे ॥२८०॥ उसने संसारके सुखको केलेके गर्भके समान निःसार जानकर भगीरथको राज्यलक्ष्मी सौंपी और स्वयं दीक्षा धारण कर ली ॥२८१॥ उत्कृष्ट लीलाको धारण करनेवाला राजा सगर जब इस पृथ्वीका त्याग कर रहा था तब नाना नगर और सुवर्णादिकी खानोंसे सुशोभित यह पृथ्वी उसके मनमें जीर्णतृणके समान तुच्छ जान पड़ती थी ॥२८२॥ तदनन्तर सगर चक्रवर्ती भीमरथ नामक पुत्रके साथ अजितनाथ भगवान्‌की शरणमें गया। वहाँ दीक्षा धारण कर उसने केवलज्ञान प्राप्त किया और तदनन्तर सिद्धपदका आश्रय लिया अर्थात् मुक्त हुआ ॥२८३॥

सगर चक्रवर्तीका पुत्र जह्नु का लड़का भगीरथ राज्य करने लगा। किसी एक दिन उसने श्रुतसागर मुनिराजसे पूछा ॥२८४॥ कि हमारे बाबा सगरके पुत्र एक साथ किस कर्मके उदयसे मरणको प्राप्त हुए हैं और उनके बीचमें रहता हुआ भी मैं किस कर्मसे बच गया हूँ ॥२८५॥ भगवान् अजितनाथने कहा कि एक बार चतुर्विधसंघ सम्मेदशिखरकी वन्दनाके लिए जा रहा था सो मार्गमें वह अन्तिक नामक ग्राममें पहुँचा ॥२८६॥ संघको देखकर उस अन्तिक ग्रामके सब लोग कुवचन कहते हुए संघकी हँसी करने लगे परन्तु उस ग्राममें एक कुम्भकार था उसने गाँवके सब लोगोंको मना कर संघकी स्तुति की ॥२८७॥ उस गाँवमें रहनेवाले एक मनुष्यने चोरी की थी सो अविवेकी राजाने सोचा कि यह गाँव ही बहुत अपराध करता है इसलिए घेरा डालकर सारा का सारा गाँव जला दिया ॥२८८॥ जिस दिन वह गाँव जलाया गया था उस दिन मध्यस्थ परिणामोंका धारक कुम्भकार निमन्त्रित होकर कहीं बाहर गया था ॥२८९॥ जब कुम्भकार मरा तो वह बहुत भारी धनका अधिपति वैश्य हुआ और गाँवके सब लोग मरकर कौड़ी हुए। वैश्यने उन सब कौड़ियोंको खरीद लिया ॥२९०॥ तदनन्तर कुम्भकारका जीव मरकर राजा हुआ और गाँवके जीव मरकर

१. अथ म.।

राजा च श्रमणो भूत्वा देवीभूय च्युतो भवान् । भगीरथः समुत्पन्नो ग्रामस्तु सगराङ्गजाः ॥२९२॥
संघस्य निन्दनं कृत्वा मृत्युमेति भवे भवे । तेनासौ युगपद्ग्रामो जातः स्तुत्वा त्वमीदृशः ॥२९३॥
श्रुत्वा पूर्वभवमुपशान्तो भगीरथः । अभूत् मुनिमुख्यश्च तपोयोग्यं पदं ययौ ॥२९४॥
वृत्तान्तगतमेतत्ते चरितं सगराश्रितम् । कथितं प्रस्तुतं वक्ष्ये शृणु श्रेणिक साम्प्रतम् ॥२९५॥
योऽसौ तत्र महारक्षो नाम विद्याधराधिपः । लङ्कायां कुरुते राज्यं कण्टकैः परिवर्जितम् ॥२९६॥
सोऽन्यदा कमलच्छन्नवापीर्विकाकृतमण्डनम् । नानारत्नप्रभोत्सृष्टक्रीडापर्वतकारितम् ॥२९७॥
आमोदिकुसुमोद्भासि तरुखण्डविराजितम् । कलकूजितविभ्रान्तशकुन्तगणसंकुलम् ॥२९८॥
रत्नभूमिपरिक्षिप्तं विकासिविविधद्युति[1] । घनपल्लवसच्छायलतामण्डपमण्डितम् ॥२९९॥
अगमत् प्रमदोद्यानमन्तःपुरसमन्वितः । महत्या संपदा युक्तो विद्याबलसमुच्छ्रयः ॥३००॥
तत्र क्रीडितुमारेभे वनिताभिस्समं समम् । कुसुमैस्ताड्यमानश्च ताडयंश्च यथोचितम् ॥३०१॥
काश्चित्पादप्रणामेन कुपिता[2]भीर्ष्यया स्त्रियम् । सान्त्वयन्नन्यया सेन सान्त्व्यमानः सुलीलया ॥३०२॥
उरसा प्रेरयन् काश्चित्त्रिकूटतटशोभिना । पीवरस्तनरम्येण प्रेर्यमाणस्तथान्यया ॥३०३॥
पश्यन् प्रच्छन्नगात्राणि क्रीडाव्याकुलयोषिताम् । रतिसागरमध्यस्थो नन्दनेऽमरराजवत् ॥३०४॥

गिजाई हुए सो राजाके हाथीसे चूर्ण होकर वे सब गिजाइयोंके जीव संसारमें भ्रमण करते रहे ॥२९१॥ कुम्भकारके जीव राजाने मुनि होकर देवपद प्राप्त किया और वहाँसे च्युत होकर तू भगीरथ हुआ है तथा गाँवके सब लोग मरकर सगर चक्रवर्तीके पुत्र हुए हैं ॥२९२॥ मुनि संघकी निन्दा कर यह मनुष्य भव-भवमें मृत्युको प्राप्त होता है। इसी पापसे गाँवके सब लोग भी एक साथ मृत्युको प्राप्त हुए थे और संघकी स्तुति करनेसे तू इस तरह सम्पन्न तथा दीर्घायु हुआ है ॥२९३॥ इस प्रकार भगीरथ भगवान्के मुखसे पूर्वभव सुनकर अत्यन्त शान्त हो गया और मुनियोंमें मुख्य बनकर तपके योग्य पदको प्राप्त हुआ ॥२९४॥ गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! प्रकरण पाकर यह सगरका चरित्र मैंने तुझसे कहा। अब इस समय प्रकृत कथा कहूँगा सो सुन ॥२९५॥

अथानन्तर—जो महारक्ष नामा विद्याधरोंका राजा लंकामें निष्कण्टक राज्य करता था विद्याबलसे समुन्नत वह राजा एक समय अन्तःपुरके साथ क्रीड़ा करनेके लिए बड़े वैभवसे उस प्रमदवनमें गया जो कि कमलोंसे आच्छादित वापिकाओंसे सुशोभित था, जिसके बीचमें नाना रत्नोंकी प्रभासे ऊँचा दिखनेवाला क्रीड़ापर्वत बना हुआ था, खिले हुए फूलोंसे सुशोभित वृक्षोंके समूह जिसकी शोभा बढ़ा रहे थे, अव्यक्त मधुर शब्दोंके साथ इधर-उधर मँडराते हुए पक्षियोंके समूहसे व्याप्त था, जो रत्नमयी भूमिसे वेष्टित था, जिसमें नाना प्रकारकी कान्ति विकसित हो रही थी, और जो सघन पल्लवोंकी समीचीन छायासे युक्त लतामण्डपोंसे सुशोभित था ॥२९६-३००॥ राजा महारक्ष उस प्रमदवनमें अपनी स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करने लगा। कभी स्त्रियाँ उसे फूलोंसे ताड़ना करती थीं और कभी वह फूलोंसे स्त्रियोंको ताड़ना करता था ॥३०१॥ कोई स्त्री अन्य स्त्रीके पास जानेके कारण यदि ईर्ष्यासे कुपित हो जाती थी तो उसे वह चरणोंमें झुककर शान्त कर लेता था। इसी प्रकार कभी आप स्वयं कुपित हो जाता था तो लीलासे भरी स्त्री इसे प्रसन्न कर लेती थी ॥३०२॥ कभी यह त्रिकूटाचलके तटके समान सुशोभित अपने वक्षःस्थलसे किसी स्त्री को प्रेरणा देता था तो अन्य स्त्री उसे भी अपने स्थूल स्तनोंके आलिंगनसे प्रेरणा देती थी ॥३०३॥ इस तरह क्रीड़ामें निमग्न स्त्रियोंके प्रच्छन्न शरीरोंको देखता हुआ यह

---

१. द्युति म.। २. -गीर्षया म.।

अथ वक्त्रे त्रियामायाः परं संकोचमीयुषि । राजीवसंपुटेऽपश्यद् द्विरेफं स निपीडितम् ॥३०५॥
दृष्ट्वा चास्य समुत्पन्ना चिन्तेयं भवनाशिनी । कर्मणो मोहनीयस्य याते शिथिलतां गुणे ॥३०६॥
मकरन्दरसासक्तो मूढस्तृप्तिमनागतः । मृतिं मधुकरः प्राप्तो विगिच्छामन्तवर्जिताम् ॥३०७॥
यथायमत्र संसक्तः[1] प्राप्तो मृत्युं मधुव्रतः । प्राप्स्यामो वयमप्येवं सैक्ताः स्त्रीमुखपङ्कजे ॥३०८॥
यदि तावदयं ध्वस्तो घ्राणेन रसनेन च । कैव वार्ता तदास्मासु पञ्चेन्द्रियवशात्मसु ॥३०९॥
तिर्यग्जातिसमेतस्य युक्तं वास्येदमीदृशम् । वयं तु ज्ञानसंपन्नाः सङ्गमत्र कथं गताः ॥३१०॥
मधुदिग्धासिधारायां लेहने कीदृशं सुखम् । रसनं प्रत्युतायाति शतधा यत्र खण्डनम् ॥३११॥
विषयेषु तथा सौख्यं कीदृशं नाम जायते । यत्र प्रत्युत दुःखानामुपर्युपरि संततिः ॥३१२॥
किम्पाकफलतुल्येभ्यो विषयेभ्यः पराङ्मुखाः । ये नरास्तान्नमस्यामि कायेन वचसा धिया ॥३१३॥
हा कष्टं वञ्चितः पापो दीर्घकालमहं खलैः । विषयैर्विषमासङ्गैर्विषवन्मारणात्मकैः ॥३१४॥
अथात्र समये प्राप्तस्तद्वनं महामुनिः । अर्थानुगतया युक्तः श्रुतसागरसंज्ञया ॥३१५॥
पूर्णः परमरूपेण क्षेपयन् कान्तितो विधुम् । तिरस्कुर्वन् रविं दीप्त्या जयं स्थैर्येण मन्दरम् ॥३१६॥
धर्मध्यानप्रसक्तात्मा रागद्वेषविवर्जितः । भग्नखिदण्डसंपर्कः कषायाणां शमे रतः ॥३१७॥

राजा रतिरूप सागरके मध्यमें स्थित होता हुआ। प्रमदवनमें इस प्रकार क्रीड़ा करता रहा जिस प्रकार कि नन्दन वनमें इन्द्र क्रीड़ा करता है ॥३०४॥

अथानन्तर सूर्य अस्त हुआ और रात्रिका प्रारम्भ होते ही कमलोंके सम्पुट संकोचको प्राप्त होने लगे। राजा महारक्षने एक कमल सम्पुटके भीतर मरा हुआ भौंरा देखा ॥३०५॥ उसी समय मोहनीय कर्मका उदय शिथिल होनेसे उसके हृदयमें संसार-भ्रमणको नष्ट करनेवाली निम्नांकित चिन्ता उत्पन्न हुई ॥३०६॥ वह विचार करने लगा कि देखो मकरन्दके रसमें आसक्त हुआ यह मूढ़ भौंरा तृप्त नहीं हुआ इसलिए मरणको प्राप्त हुआ। आचार्य कहते हैं कि इस अन्तरहित अनन्त इच्छाको धिक्कार हो ॥३०७॥ जिस प्रकार इस कमलमें आसक्त हुआ यह भौंरा मृत्युको प्राप्त हुआ है उसी प्रकार स्त्रियोंके मुखरूपी कमलोंमें आसक्त हुए हम लोग भी मृत्युको प्राप्त होंगे ॥३०८॥ जब कि यह भौंरा घ्राण और रसना इन्द्रियके कारण ही मृत्युको प्राप्त हुआ है तब हम तो पाँचों इन्द्रियोंके वशीभूत हो रहे हैं अतः हमारी बात ही क्या है ? ॥३०९॥ अथवा यह भौंरा तिर्यंच जातिका है—अज्ञानी है अतः इसका ऐसा करना ठीक भी है परन्तु हम तो ज्ञानसे सम्पन्न हैं फिर भी इन विषयोंमें क्यों आसक्त हो रहे हैं ? ॥३१०॥ शहद लपेटी तलवारकी उस धारके चाटनेमें क्या सुख होता है ? जिसपर पड़ते ही जीभके सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं ॥३११॥ विषयोंमें कैसा सुख होता है सो जान पड़ता है उन विषयोंमें जिनमें कि सुखकी बात दूर रही किन्तु दुःखकी सन्तति ही उत्तरोत्तर प्राप्त होती है ॥३१२॥ किंपाक फलके समान विषयोंसे जो मनुष्य विमुख हो गये हैं मैं उन सब महापुरुषोंको मन-वचन-कायसे नमस्कार करता हूँ ॥३१३॥ हाय-हाय, बड़े खेदकी बात है कि मैं बहुत समय तक इन दुष्ट विषयोंसे वंचित होता रहा—धोखा खाता रहा। इन विषयोंकी आसक्ति अत्यन्त विषम है तथा विषके समान मारनेवाली है ॥३१४॥

अथानन्तर उसी समय उस वनमें श्रुतसागर इस सार्थक नामको धारण करनेवाले एक महामुनिराज वहाँ आये ॥३१५॥ श्रुतसागर मुनिराज अत्यन्त सुन्दर रूपसे युक्त थे, वे कान्तिसे चन्द्रमाको लज्जित करते थे, दीप्तिसे सूर्यका तिरस्कार करते थे और धैर्यसे सुमेरुको पराजित करते थे ॥३१६॥ उनकी आत्मा सदा धर्मध्यानमें लीन रहती थी, वे राग-द्वेषसे रहित थे, उन्होंने

---

१. संशक्तः म० । २. शक्ताः म० । ३. दग्धा—म० । ४. समे म० ।

वशीकर्ता हृषीकाणां षट्कायप्राणिवत्सलः । भीसिमिः सप्तभिर्मुक्तो मदाष्टकविवर्जितः ॥३१८॥
साक्षादिव शरीरेण धर्मः संबन्धमागतः । सहितो यतिसङ्घेन महता चारुचेष्टिना ॥३१९॥
स तत्र विपुले शुद्धे भूतले जन्तुवर्जिते । उपविष्टस्तनुच्छायास्थगिताशेषदिङ्मुखः ॥३२०॥
तत्रासानं विदित्वैनं मुखेभ्यो वनरक्षिणाम् । अभीयाय महारक्षो बिभ्रदुत्कण्ठितं मनः ॥३२१॥
अथास्यातिप्रसन्नास्यकान्तितोयेन पादयोः । कुर्वन् प्रक्षालनं राजा पपात शिवदायिनोः ॥३२२॥
प्रणम्य शेषसङ्घं च पृष्ट्वा क्षेमं च सर्वतः । अवस्थाय क्षणं धर्मं भक्तिभावेन सोऽपृच्छत् ॥३२३॥
अथोपशमचन्द्रस्य चित्तस्थस्येव निर्मलैः । दन्तांशुपटलैः कुर्वन् ज्योत्स्नां मुनिरभाषत ॥३२४॥
अहिंसा नृप सद्भावो धर्मस्योक्तो जिनेश्वरैः । परिवारोऽस्तु शेषोऽस्य सत्यभाषादिरिष्यते ॥३२५॥
यां यां जीवाः प्रपद्यन्ते गतिं कर्मानुभावतः । तत्र तत्र रतिं यान्ति जीवनं प्रतिमोहिताः ॥३२६॥
त्रैलोक्यस्य परित्यज्य लाभं मरणभीरवः । इच्छन्ति जीवनं जीवा नान्यदस्ति ततः प्रियम् ॥३२७॥
किमत्र बहुनोक्तेन स्वसंवेद्यमिदं ननु । यथा स्वजीवितं कान्तं सर्वेषां प्राणिनां तथा ॥३२८॥
तस्मादेवंविधं मूढा जीवितं ये शरीरिणाम् । हरन्ति रौद्रकर्माणः पापं तैर्न च किं कृतम् ॥३२९॥
जन्तूनां जीवितं हित्वा कर्मभारगुरूकृताः । पतन्ति नरके जीवा लोहपिण्डवदम्भसि ॥३३०॥

मन-वचन-कायकी निरर्थक प्रवृत्तिरूपी तीन दण्डोंको भग्न कर दिया था, कषायोंके शान्त करनेमें वे सदा तत्पर रहते थे ॥३१७॥ वे इन्द्रियोंको वश करनेवाले थे, छह कायके जीवोंसे स्नेह रखते थे, सात भयों और आठ मदोंसे रहित थे ॥३१८॥ उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो साक्षात् धर्म ही शरीरके साथ सम्बन्धको प्राप्त हुआ है। वे मुनिराज उत्तम चेष्टाके धारक बहुत बड़े मुनिसंघसे सहित थे ॥३१९॥ जिन्होंने अपने शरीरकी कान्तिसे समस्त दिशाओंके अग्रभागको आच्छादित कर दिया था ऐसे वे मुनिराज उस उद्यानके विस्तृत, शुद्ध एवं निर्जन्तुक पृथिवी-तलपर विराजमान हो गये ॥३२०॥ जब राजा महारक्षको वनपालोंके मुखसे वहाँ विराजमान इन मुनिराजका पता चला तो वह उत्कृष्ट हृदयको धारण करता हुआ उनके सम्मुख गया ॥३२१॥

अथानन्तर—अत्यन्त प्रसन्न मुखकी कान्तिरूपी जलके द्वारा प्रक्षालन करता हुआ राजा महारक्ष मुनिराजके कल्याणदायी चरणोंमें जा पड़ा ॥३२२॥ उसने शेष संघको भी नमस्कार किया, सबसे धर्म सम्बन्धी कुशल-क्षेम पूछी और फिर क्षणभर ठहरकर भक्तिभावसे धर्मका स्वरूप पूछा ॥३२३॥ तदनन्तर मुनिराजके हृदयमें जो उपशम भावरूपी चन्द्रमा विद्यमान था उसकी किरणोंके समान निर्मल दाँतोंकी किरणोंके समूहसे चाँदनीको प्रकट हुए मुनिराज कहने लगे ॥३२४॥ उन्होंने कहा कि हे राजन्! जिनेन्द्र भगवान्ने एक अहिंसाके सद्भावको ही धर्म कहा है, बाकी सत्यभाषण आदि सभी इसके परिवार हैं ॥३२५॥ संसारी प्राणी कर्मोंके उदयसे जिस-जिस गतिमें जाते हैं जीवनके प्रति मोहित होते हुए वे उसी-उसीमें प्रेम करने लगते हैं ॥३२६॥ एक ओर तीन लोककी प्राप्ति हो रही हो और दूसरी ओर मरणकी सम्भावना हो तो मरणसे डरनेवाले ये प्राणी तीन लोकका लोभ छोड़कर जीवित रहनेकी इच्छा करते हैं इससे जान पड़ता है कि प्राणियोंको जीवनसे बढ़कर और कोई वस्तु प्रिय नहीं है ॥३२७॥ इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ है? यह बात तो अपने अनुभवसे ही जानी जा सकती है कि जिस प्रकार हमें अपना जीवन प्यारा है उसी प्रकार समस्त प्राणियोंको भी अपना जीवन प्यारा होता है ॥३२८॥ इसलिए जो क्रूरकर्म करनेवाले मूर्ख प्राणी, जीवोंके ऐसे प्रिय जीवनको नष्ट करते हैं उन्होंने कौन-सा पाप नहीं किया? ॥३२९॥ जीवोंके जीवनको नष्ट कर प्राणी कर्मोंके भारसे इतने वजनदार हो जाते हैं कि वे पानीमें लोहपिण्ड-

---

१. -मागताः म० । २. अथास्यासि म० । ३. त्रैलोक्यं म० । ४. वस्तु म० ।

मधु स्रवन्ति ये वाचा हृदये विषदारुणाः । वशे स्थिता हृषीकाणां त्रिःसंध्या दग्धमानसाः ॥३३१॥
साध्वाचारविनिर्मुक्ता यथाकामविधायिनः । ते भ्रमन्ति दुरात्मानस्तिर्यग्गर्भपरम्पराम् ॥३३२॥
दुर्लभं सति जन्तुत्वे मनुष्यत्वं शरीरिणाम् । तस्मादपि सुरूपत्वं ततो धनसमृद्धता ॥३३३॥
ततोऽप्यार्यत्वसंभूतिस्ततो विद्यासमागमः । ततोऽप्यर्थज्ञता तस्माद्दुर्लभो धर्मसंगमः ॥३३४॥
कृत्वा धर्मं ततः केचित् सुखं प्राप्य सुरालये । देव्यादिपरिवारेण कृतं मानसगोचरम् ॥३३५॥
च्युत्वा गर्भगृहे भूयो विण्मूत्रकृतलेपने । चलत्कृमिकुलाकीर्णे दुर्गन्धेऽत्यन्तदुस्सहे ॥३३६॥
चर्मजालकसंछन्नाः पित्तश्लेष्मादिमध्यगाः । जग्धव्याहारनिष्यन्दं लिहन्तो नाडिकाच्युतम् ॥३३७॥
पिण्डीकृतसमस्ताङ्गा दुःखभारसमर्दिताः । उषित्वा निर्गता लब्ध्वा मनुष्यत्वमनिन्दितम् ॥३३८॥
जन्मनः प्रभृति क्रूरा नियमाचारवर्जिताः । सद्दृष्टिरहिताः पापा विषयान् समुपासते ॥३३९॥
ये कामवशतां याताः सम्यक्त्वपरिवर्जिताः । प्राप्नुवन्तो महादुःखं ते भ्रमन्ति भवार्णवे ॥३४०॥
परपीडाकरं वाक्यं वर्जनीयं प्रयत्नतः । हिंसायाः कारणं तद्धि सा च संसारकारणम् ॥३४१॥
तथा स्तेयं स्त्रियाः सङ्गं महापरिणताञ्छनम् । सर्वमेतत्परित्याज्यं पीडाकारणतां गतम् ॥३४२॥
श्रुत्वा धर्मं समाविष्टो वैराग्यं खेचराधिपः । पप्रच्छ प्रणतिं कृत्वा व्यतीतं भवमात्मनः ॥३४३॥

के समान सीधे नरकमें ही पड़ते हैं ॥३३०॥ जो वचनसे तो मानो मधु झरते हैं पर हृदयमें विषके समान दारुण हैं। जो इन्द्रियोंके वशमें स्थित हैं और बाहरसे जिनका मन त्रैकालिक सन्ध्याओंमें निमग्न रहता है ॥३३१॥ जो योग्य आचारसे रहित हैं और इच्छानुसार मनचाही प्रवृत्ति करते हैं ऐसे दुष्ट जीव तिर्यंचयोनिमें परिभ्रमण करते हैं ॥३३२॥ सर्वप्रथम तो जीवोंको मनुष्यपद प्राप्त होना दुर्लभ है, उससे अधिक दुर्लभ सुन्दर रूपका पाना है, उससे अधिक दुर्लभ धनसमृद्धिका पाना है, उससे अधिक दुर्लभ आर्यकुलमें उत्पन्न होना है, उससे अधिक दुर्लभ विद्याका समागम होना है, उससे अधिक दुर्लभ हेयोपादेय पदार्थको जानना है और उससे अधिक दुर्लभ धर्मका समागम होना है ॥३३३-३३४॥

कितने ही लोग धर्म करके उसके प्रभावसे स्वर्गमें देवियों आदिके परिवारसे मानसिक सुख प्राप्त करते हैं ॥३३५॥ वहाँसे चयकर, विष्ठा तथा मूत्रसे लिप्त बिलबिलाते कीड़ाओंसे युक्त, दुर्गन्धित एवं अत्यन्त दुःसह गर्भगृहको प्राप्त होते हैं ॥३३६॥ गर्भमें यह प्राणी चर्मके जालसे आच्छादित रहते हैं, पित्त, श्लेष्मा आदिके बीचमें स्थित रहते हैं और नालद्वारसे च्युत माता द्वारा उपभुक्त आहारके द्रवका आस्वादन करते रहते हैं ॥३३७॥ वहाँ उनके समस्त अंगोपांग संकुचित रहते हैं, और दुःखके भारसे वे सदा पीड़ित रहते हैं। वहाँ रहनेके बाद निकलकर उत्तम मनुष्य पर्याय प्राप्त करते हैं ॥३३८॥ सो कितने ही ऐसे पापी मनुष्य जो कि जन्मसे ही क्रूर होते हैं, नियम, आचार-विचारसे विमुख रहते हैं और सम्यग्दर्शनसे शून्य होते हैं, विषयोंका सेवन करते हैं ॥३३९॥ जो मनुष्य कामके वशीभूत होकर सम्यक्त्व से भ्रष्ट हो जाते हैं वे महादुःख प्राप्त करते हुए संसाररूपी समुद्रमें परिभ्रमण करते हैं ॥३४०॥ दूसरे प्राणियोंको पीड़ा उत्पन्न करनेवाला वचन प्रयत्नपूर्वक छोड़ देना चाहिए क्योंकि ऐसा वचन हिंसाका कारण है और हिंसा संसारका कारण है ॥३४१॥

इसी प्रकार चोरी, परस्त्रीका समागम तथा महापरिग्रहकी आकांक्षा, यह सब भी छोड़नेके योग्य है क्योंकि यह सभी पीड़ाके कारण हैं ॥३४२॥ विद्याधरोंका राजा महारक्ष, मुनिराजके मुखसे धर्मका उपदेश सुनकर वैराग्यको प्राप्त हो गया। तदनन्तर उसने नमस्कार कर मुनिराजसे

---

१. श्रीन्वारान्, त्रिसन्ध्या-म. । २. समादिताः म. ।

चतुर्ज्ञानोपगूढात्मा विनयेनोपसेदुषे । इति तस्मै समासेन जगाद श्रुतसागरः ॥३४४॥
भरते पोदनस्थाने हितो नामेधरोऽभवत् । माधवीति च भार्यास्य प्रीत्याख्यस्त्वं तयोः सुतः ॥३४५॥
अथ तत्रैव नगरे सूपोऽभूदुदयाचलात् । अर्हच्छ्रिया समुत्पन्नो नाम्ना हेमरथो महान् ॥३४६॥
प्रासादे सोऽन्यदा जैने श्रद्धया परयान्वितः । चकार महतीं पूजां लोकविस्मयकारिणीम् ३४७॥
तस्मादुत्थितमाकर्ण्य जयशब्दं जनैः कृतम् । जयेत्यानन्दपूर्णेन त्वयापि परिघोषितम् ॥३४८॥
अमाते च ततस्तस्मिन् गृहाभ्यन्तरगो हुवं [illegible] लसद्भावात्तनं कृतमङ्गणे ॥३४९॥
तस्मादुपात्तकुशलो गतः कालेन पञ्चताम् । अजायत महान् यक्षो यक्षनेत्रसमुत्सवः ॥३५०॥
अवरस्मिन् विदेहेऽथ पुरे काञ्चननामनि । साधूनां शत्रुभिः कर्तुमुपसर्गः प्रवर्तितः ॥३५१॥
निर्धाव्य तान् त्वया शत्रून् मुनीनां धर्मसाधनम् । शरीरं रक्षितं तस्मात् पुण्यैराधिरुपार्जितः ॥३५२॥
विजयार्द्धे ततश्च्युत्वा तडिद्वक्त्रदखेचरात् । श्रीप्रभायां समुद्भूत उदितो नाम विश्रुतः ॥३५३॥
वन्दनाय समायातं नाम्ना चामरविक्रमम् । दृष्ट्वानसि विद्येशं निदानमकरोस्ततः ॥३५४॥
ततो महत्तपस्तप्त्वा कल्पमैशानमाश्रितः । पुनः प्रच्युत्य भूतोऽसि सांप्रतं घनवाहनिः ॥३५५॥
भास्करस्यन्दनस्येव चक्रेण परिवर्तनम् । कृतं त्वया तु संसारे स्त्रीजिह्वावशवर्तिना ॥३५६॥
यावन्तः समतिक्रान्तास्तव देहा भवान्तरे । पिण्ड्यन्ते यदि ते लोके संभवेयुर्न जातुचित् ॥३५७॥
कल्पानां कोटिभिस्तृप्तिं सुरभोगैर्न यो गतः । खेचराणां च भोगेन स्वेच्छाकल्पितवृत्तिना ॥३५८॥

अपना पूर्व भव पूछा ॥३४३॥ चार ज्ञानके धारी श्रुतसागरमुनि विनयसे समीपमें बैठे हुए महारक्ष विद्याधरसे संक्षेपपूर्वक कहने लगे ॥३४४॥

हे राजन्! भरत क्षेत्रके पोदनपुर नगरमें एक हित नामका मनुष्य रहता था। माधवी उसकी स्त्रीका नाम था और तू उन दोनोंके प्रीति नामका पुत्र था ॥३४५॥ उसी पोदनपुर नगरमें उदयाचल राजा और अर्हच्छ्री नामकी रानीसे उत्पन्न हुआ हेमरथ नामका राजा राज्य करता था ॥३४६॥ एक दिन उसने जिनमन्दिरमें, बड़ी श्रद्धाके साथ, लोगोंको आश्चर्यमें डालनेवाली बड़ी पूजा की ॥३४७॥ उस पूजाके समय लोगोंने बड़े जोरसे जय-जय शब्द किया, उसे सुनकर तूने भी आनन्दविभोर हो जय-जय शब्द उच्चारण किया ॥३४८॥ तू इस आनन्दके कारण घरके भीतर ठहर नहीं सका इसलिए बाहर निकलकर आँगनमें इस तरह नृत्य करने लगा जिस प्रकार कि मयूर मेघका शब्द सुनकर नृत्य करने लगता है ॥३४९॥ इस कार्यसे तूने जो पुण्य बन्ध किया था उसके फलस्वरूप तू मरकर यक्षोंके नेत्रोंको आनन्द देनेवाला यक्ष हुआ ॥३५०॥ तदनन्तर किसी दिन पश्चिम विदेहक्षेत्रके कांचनपुर नगरमें शत्रुओंने मुनियोंके ऊपर उपसर्ग करना शुरू किया ॥३५१॥ सो तूने उन शत्रुओंको अलग कर धर्मसाधनमें सहायभूत मुनियोंके शरीरकी रक्षा की। इस कार्यसे तूने बहुत भारी पुण्यका संचय किया ॥३५२॥ तदनन्तर वहाँसे च्युत होकर तू विजयार्ध पर्वतपर तडिदंगद विद्याधर और श्रीप्रभा विद्याधरीके उदित नामका पुत्र उत्पन्न हुआ ॥३५३॥ एक बार अमरविक्रम नामक विद्याधरोंका राजा मुनियोंकी वन्दनाके लिए आया था सो उसे देखकर तूने निदान किया कि मेरे भी ऐसा वैभव हो ॥३५४॥ तदनन्तर महातपश्चरण कर तू दूसरे ऐशान स्वर्गमें देव हुआ और वहाँसे च्युत होकर मेघवाहनका पुत्र महारक्ष हुआ है ॥३५५॥ जिस प्रकार सूर्यके रथका चक्र निरन्तर भ्रमण करता रहता है इसी प्रकार तूने भी स्त्री तथा जिह्वा इन्द्रियके वशीभूत होकर संसारमें परिभ्रमण किया है ॥३५६॥ तूने दूसरे भवोंमें जितने शरीर प्राप्त कर छोड़े हैं यदि वे एकत्रित किये जावें तो तीनों लोकोंमें कभी न समावें ॥३५७॥ जो करोड़ों कल्प तक प्राप्त होनेवाले देवोंके भोगोंसे तथा विद्याधरोंके मनचाहे भोग-विलाससे सन्तुष्ट नहीं हो सका

१. नाम नरोऽभवत् म.। २. -मुत्थितः म.। ३. मेघवाहनपुत्रः।

अष्टभिर्दिवसैः स त्वं कथं प्राप्स्यसि तर्पणम्[1]। स्वप्नजालोपमैर्भोगैरधुना भज्यतां शमः ॥३५९॥
ततस्तस्य विषादोऽभूदायुःक्षयसमुत्थितः। किंतु संसारचक्रस्थजन्मान्तरविवर्तनात् ॥३६०॥
स्थापयित्वा ततो राज्ये तनयं देवरक्षसम्। युवराजप्रतिष्ठायां तथा भास्कररक्षसम् ॥३६१॥
त्यक्त्वा परिग्रहं सर्वं परमार्थपरायणः। स्तम्भतुल्यो महारक्षा लोभेनाभवदुज्झितः ॥३६२॥
पानाहारादिकं त्यक्त्वा सर्वं देहस्य पालनम्। समः शत्रौ च मित्रे च मनः कृत्वा सुनिश्चलम् ॥३६३॥
मौनव्रतं समास्थाय जिनप्रासादमध्यगः। कृत्वा समहतीं पूजामर्हतामभिषेकिणीम् ॥३६४॥
अर्हत्पदपरिध्यानपवित्रीकृतचेतनः। कृत्वा समाधिना कालं स बभूव सुरोत्तमः ॥३६५॥
अथ किन्नरगीताख्ये पुरे श्रीधरनामतः। विद्याजातां[3] रतिं जायां देवरक्षाः प्रपन्नवान् ॥३६६॥
गन्धर्वगीतनगरे[4] सुरसंनिभनामतः। गान्धारीगर्भसंभूतां गन्धर्वां भानुरुद्वहान् ॥३६७॥
सुता दश समुत्पन्ना मनोज्ञा देवरक्षसः। देवाङ्गनासरूपाश्च षट् कन्या गुणभूषणाः ॥३६८॥
तावन्त एव चोत्पन्नाः सुताः कन्याश्च तत्समाः। आदित्यरक्षसो राज्ञः कीर्तिव्याप्तदिगन्तराः ॥३६९॥
स्वनामसदृशनामानि महान्ति नगराणि तैः। निवेशितानि रम्याणि श्रेणिकैतानि जित्वरैः ॥३७०॥
सन्ध्याकारः सुवेलश्च मनोह्लादो मनोहरः। हंसद्वीपो हरिर्योधः समुद्रः काञ्चनस्तथा ॥३७१॥
अर्धस्वर्गोत्कटश्चापि[5] निविशाः स्वर्गसंनिभाः। गीर्वाणरक्षसः पुत्रैर्महाबुद्धिपराक्रमैः ॥३७२॥

वह तू केवल आठ दिन तक प्राप्त होनेवाले स्वप्न अथवा इन्द्रजाल सदृश भोगोंसे कैसे तृप्त होगा ? इसलिए अब भोगोंकी अभिलाषा छोड़ और शान्ति भाव धारण कर ॥३५८–३५९॥ तदनन्तर मुनिराजके मुखसे अपनी आयुका क्षय निकटस्थ जानकर उसे विषाद नहीं हुआ किन्तु 'इस संसार-चक्रमें अब भी मुझे अनेक भव धारण करना है' यह जानकर कुछ खेद अवश्य हुआ ॥३६०॥ तदनन्तर उसने अमररक्ष नामक ज्येष्ठ पुत्रको राज्यपदपर स्थापित कर भानुरक्ष नामक लघु पुत्र-को युवराज बना दिया ॥३६१॥ और स्वयं समस्त परिग्रहका त्याग कर परमार्थमें तत्पर हो स्तम्भ-के समान निश्चल होता हुआ लोभसे रहित हो गया ॥३६२॥ शरीरका पोषण करनेवाले आहार-पानी आदि समस्त पदार्थोंका त्याग कर वह शत्रु तथा मित्रमें सम—मध्यस्थ बन गया और मनको निश्चल कर मौन व्रत ले जिन-मन्दिरके मध्यमें बैठ गया। इन सब कार्योंके पहले उसने अर्हन्त भगवान्‌की अभिषेकपूर्वक विशाल पूजा की ॥३६३–३६४॥ अर्हन्त भगवान्‌के चरणोंके ध्यानसे जिसकी चेतना पवित्र हो गयी थी ऐसा वह विद्याधर समाधिमरण कर उत्तम देव हुआ ॥३६५॥

अथानन्तर अमररक्षने, किन्नरगीत नामक नगरमें श्रीधर राजा और विद्या रानीसे समुत्पन्न रति नामक स्त्रीको प्राप्त किया अर्थात् उसके साथ विवाह किया ॥३६६॥ और भानुरक्षने गन्धर्व-गीत नगरमें राजा सुरसन्निभ और गान्धारी रानीके गर्भसे उत्पन्न, गन्धर्वा नामकी कन्याके साथ विवाह किया ॥३६७॥ अमररक्षके अत्यन्त सुन्दर दस पुत्र और देवांगनाओंके समान सुन्दर रूप-वाली, गुणरूप आभूषणोंसे सहित छह पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं ॥३६८॥ इस प्रकार भानुरक्षके भी अपनी कीर्तिके द्वारा दिग्दिगन्तको व्याप्त करनेवाले दस पुत्र और छह पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं ॥३६९॥ हे श्रेणिक ! उन विजयी राजपुत्रोंने अपने नामके समान नामवाले बड़े-बड़े सुन्दर नगर बसाये ॥३७०॥ उन नगरोंके नाम सुनो—१ सन्ध्याकार, २ सुवेल, ३ मनोह्लाद, ४ मनोहर, ५ हंसद्वीप, ६ हरि, ७ योध, ८ समुद्र, ९ कांचन और १० अर्धस्वर्गोत्कृष्ट। स्वर्गकी समानता रखनेवाले ये दस नगर, महाबुद्धि और पराक्रमको धारण करनेवाले अमररक्षके पुत्रोंने बसाये थे ॥३७१–३७२॥

---

१. तर्पणम् म.। २. किन्नरदान्ताख्ये ख., किन्नरनादाख्ये म.। ३. जातामरिजायां म.। ४. नगरेऽमरसन्निभ क.। ५. सुरूपाश्च क.। ६. दिवश्चापि ब., दशश्चापि क.।

आवर्तविघटाम्भोदा उत्कटस्फुटदुर्ग्रहाः । तटतोयावलीरत्नद्वीपाश्चाभान्ति राक्षसैः ॥३७३॥
नानारत्नकृतोद्योता हेममित्तिप्रभासुराः । राक्षसानां बभूवुस्ते निवासाः क्रीडनार्थिनाम् ॥३७४॥
तत्रैव खेचरैरेभिर्द्वीपान्तरसमाश्रितैः । संनिवेशा महोत्साहैर्नगराणां प्रकल्पिताः ॥३७५॥
ततस्तौ पुत्रयो राज्यं दत्त्वा दीक्षां समाश्रितौ । महातपोधनौ भूत्वा पदं यातौ सनातनम् ॥३७६॥
एवं महति संताने प्रवृत्ते घनवाहने । महापुरुषनिर्व्यूढराज्यप्राव्राज्यवस्तुनि ॥३७७॥
रक्षसस्तनयो जातो मनोवेगाङ्कधारिणः । राक्षसो नाम यस्यायं नाम्ना वंशः प्रकीर्त्यते ॥३७८॥
तस्यादित्यगतिर्जातो बृहत्कीर्तिश्च नन्दनः । योषायां सुप्रभाख्यायां रविचन्द्रसमप्रभौ ॥३७९॥
वृषभौ तौ समासज्य राज्यस्यन्दनजे भरे । श्रमणत्वं समाराध्य देवलोकं समाश्रितः ॥३८०॥
जाता सदनपद्माख्या भार्यादित्यगतेर्वरा । बृहत्कीर्तिस्तथा पुष्पनखेति परिकीर्तिता ॥३८१॥
अथादित्यगतेः पुत्रो नाम्ना भीमप्रभोऽभवत् । सहस्रं यस्य पत्नीनामभूद्देवाङ्गनारुचाम् ॥३८२॥
आसीदष्टोत्तरं तस्य पुत्राणां शतमूर्जितम् । स्तम्भैरिव निजं राज्यं धारितं यैः समन्ततः ॥३८३॥
आत्मजाय ततो राज्यं वितीर्यं ज्यायसे प्रभुः । भीमप्रभः प्रवव्राज प्राप्तश्च परमं पदम् ॥३८४॥
देवेन राक्षसेन्द्रेण राक्षसद्वीपमण्डले । कृतानुकम्पना ऊषुः सुखेनाम्बरगामिनः ॥३८५॥
रक्षन्ति रक्षसो द्वीपं पुण्येन परिरक्षिताः । राक्षसा नामतो द्वीपं प्रसिद्धं तदुपागतम् ॥३८६॥

इसी प्रकार १ आवर्त, २ विघट, ३ अम्भोद, ४ उत्कट, ५ स्फुट, ६ दुर्ग्रह, ७ तट, ८ तोय, ९ आवली और रत्नद्वीप ये दस नगर भानुरक्षके पुत्रोंने बसाये थे ॥३७३॥ जिनमें नाना रत्नोंका उद्योत फैल रहा था तथा जो सुवर्णमयी दीवालोंके प्रकाशसे जगमगा रहे थे ऐसे वे सभी नगर क्रीड़ाके अभिलाषी राक्षसोंके निवास हुए थे ॥३७४॥ वहींपर दूसरे द्वीपोंमें रहनेवाले विद्याधरोंने बड़े उत्साहसे अनेक नगरोंकी रचना की थी ॥३७५॥

अथानन्तर—अमररक्ष और भानुरक्ष दोनों भाई, पुत्रोंको राज्य देकर दीक्षाको प्राप्त हुए और महातमरूपी धनके धारक हो सनातन सिद्ध पदको प्राप्त हुए ॥३७६॥ इस प्रकार जिसमें बड़े-बड़े पुरुषोंद्वारा पहले तो राज्य पालन किया गया और तदनन्तर दीक्षा धारण की गयी ऐसी राजा मेघवाहनकी बहुत बड़ी सन्तानकी परम्परा क्रमपूर्वक चलती रही ॥३७७॥ उसी सन्तान-परम्परामें एक मनोवेग नामक राक्षसके, राक्षस नामका ऐसा प्रभावशाली पुत्र हुआ कि उसके नामसे यह वंश ही राक्षस वंश कहलाने लगा ॥३७८॥ राजा राक्षसके सुप्रभा नामकी रानी थी, उससे उसके आदित्यगति और बृहत्कीर्ति नामके दो पुत्र हुए। ये दोनों ही पुत्र सूर्य और चन्द्रमाके समान कान्ति-से युक्त थे ॥३७९॥ राजा राक्षस, राज्यरूपी रथका भार उठानेमें वृषभके समान उन दोनों पुत्रोंको संलग्न कर तप धर स्वर्गको प्राप्त हुए ॥३८०॥ उन दोनों भाइयोंमें बड़ा भाई आदित्यगति राजा था और छोटा भाई बृहत्कीर्ति युवराज था। आदित्यगतिकी स्त्रीका नाम सदनपद्मा था और बृहत्कीर्ति-की स्त्री पुष्पनखा नामसे प्रसिद्ध थी ॥३८१॥ आदित्यगतिके भीमप्रभ नामका पुत्र हुआ जिसकी देवांगनाओंके समान कान्तिवाली एक हजार स्त्रियाँ थीं ॥३८२॥ उन स्त्रियोंसे उसके एक सौ आठ बलवान् पुत्र हुए थे। ये पुत्र स्तम्भोंके समान चारों ओरसे अपने राज्यको धारण किये थे ॥३८३॥ तदनन्तर राजा भीमप्रभने अपने बड़े पुत्रके लिए राज्य देकर दीक्षा धारण कर ली और क्रमसे तपश्चरण कर परमपद प्राप्त कर लिया ॥३८४॥ इस प्रकार राक्षस देवोंके इन्द्र भीम-सुभीमने जिनपर अनुकम्पा की थी ऐसे मेघवाहनकी वंश-परम्पराके अनेक विद्याधर राक्षसद्वीपमें सुखसे निवास करते रहे ॥३८५॥ पुण्य जिनकी रक्षा कर रहा था ऐसे राक्षसवंशी विद्याधर चूँकि उस राक्षसजातीय देवोंके

---

१. राक्षसम् म.। २. यशोवेगाङ्कधारितः क.। मनोवेगाङ्कधारिणः म.। ३. यातो म.। ४. समाराध्य ख.। ५. राक्षसो ख.।

एष राक्षसवंशस्य समवः परिकीर्तितः । वंशप्रधानपुरुषान् श्रीवर्धिष्यान्यतः परम् ॥३८७॥
पुत्रो भीमप्रभस्याद्यः पूजार्हो नाम विश्रुतः । प्रवव्राज श्रियं न्यस्य तनये जितभास्करे ॥३८८॥
सोऽपि संपरिकीर्त्याख्ये स्थापयित्वा श्रियं सुते । प्राव्रजत् सोऽपि सुग्रीवे निधाय प्राप दीक्षण्यम् ॥३८९॥
सुग्रीवोऽपि हरिग्रीवं संनिवेश्य निजे पदे । उग्रं तपः समाराध्य बभूव सुरसत्तमः ॥३९०॥
हरिग्रीवोऽपि निक्षिप्य श्रीग्रीवे राज्यसंपदम् । गृहीतश्रमणाचारो वनान्तरमशिश्रियत् ॥३९१॥
आरोप्य सुमुखे राज्यं श्रीग्रीवो जनकाश्रितम् । मार्गमाश्रितवान् वीरः सुव्यक्ते सुमुखस्तथा ॥३९२॥
सुव्यक्तोऽमृतवेगाख्ये न्यस्तवान् राक्षसीं श्रियम् । स चापि भानुगत्याह्वे स च चिन्तागतौ सुते ॥३९३॥
इन्द्र इन्द्रप्रभो मेघो मृगारिदमनः पविः । इन्द्रजिद्भानुवर्मा च भानुर्भानुसमप्रभः ॥३९४॥
सुरारिस्त्रिजटो भीमो मोहनोद्धारकौ रविः । चकारो वज्रमध्यश्च प्रमोदः सिंहविक्रमः ॥३९५॥
चामुण्डो मारणो भीष्मो द्विपवाहोऽरिमर्दनः । निर्वाणभक्तिरुग्रश्रीरर्हद्भक्तिरनुत्तरः ॥३९६॥
गतभ्रमोऽनिलश्चण्डो लङ्काशोको मयूरवान् । महाबाहुर्मनोरम्यो भास्करामो बृहद्गतिः ॥३९७॥
बृहत्कान्तोऽरिसंत्रासश्चन्द्रावर्तो महारवः । मेघध्वानगृहक्षोभनक्षत्रदमनादयः ॥३९८॥
[1]अमिधाः कोटिशस्तेषां द्रष्टव्याम्बरचारिणाम् । मायावीर्यसमेतानां विद्याबलमहाद्युचाम् ॥३९९॥
विद्यानुयोगकुशलाः सर्वे श्रीसक्तवक्षसः । लङ्कायां स्वामिनः कान्ताः प्रायशः स्वर्गतश्च्युताः ॥४००॥
स्वेषु पुत्रेषु निक्षिप्य लक्ष्मीं वंशक्रमागताम् । संविग्ना राक्षसाधीशा महाप्रा[2]ज्यमाश्रिताः ॥४०१॥
केचित् कर्मावशेषेण त्रिलोकशिखरं गताः । दिवमीयुः परे केचित् पुण्यपाकानुभावतः ॥४०२॥

द्वीपकी रक्षा करते थे इसलिए वह द्वीप राक्षस नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ और उस द्वीपके रक्षक विद्याधर राक्षस कहलाने लगे ॥३८६॥ गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! यह राक्षसवंशकी उत्पत्ति मैंने तुझसे कही । अब आगे इस वंशके प्रधान पुरुषोंका उल्लेख करूँगा । सो सुन ॥३८७॥ भीमप्रभका प्रथम पुत्र पूजार्ह नामसे प्रसिद्ध था सो वह अपने जितभास्कर नामक पुत्रके लिए राज्यलक्ष्मी सौंपकर दीक्षित हुआ ॥३८८॥ जितभास्कर सम्परिकीर्ति नामक पुत्रको राज्य दे मुनि हुआ और सम्परिकीर्ति सुग्रीवके लिए राज्य सौंप दीक्षाको प्राप्त हुआ ॥३८९॥ सुग्रीव, हरिग्रीवको अपने पदपर बैठाकर उग्र तपश्चरणकी आराधना करता हुआ उत्तम देव हुआ ॥३९०॥ हरिग्रीव भी श्रीग्रीवके लिए राज्यसम्पत्ति देकर मुनिव्रत धार वनमें चला गया ॥३९१॥ श्रीग्रीव सुमुखके लिए राज्य देकर पिताके द्वारा अंगीकृत मार्गको प्राप्त हुआ और बलवान् सुमुखने सुव्यक्त नामक पुत्रको राज्य देकर दीक्षा धारण कर ली ॥३९२॥ सुव्यक्तने अमृतवेग नामक पुत्रके लिए राक्षसवंशकी सम्पदा सौंपकर तप धारण किया । अमृतवेगने भानुगतिको और भानुगतिने चिन्तागतिको वैभव समर्पित कर साधुपद स्वीकृत किया ॥३९३॥ इस प्रकार इन्द्र, इन्द्रप्रभ, मेघ, मृगारिदमन, पवि, इन्द्रजित्, भानुवर्मा, भानु, भानुप्रभ, सुरारि, त्रिजट, भीम, मोहन, उद्धारक, रवि, चकार, वज्रमध्य, प्रमोद, सिंहविक्रम, चामुण्ड, मारण, भीष्म, द्विपवाह, अरिमर्दन, निर्वाण-भक्ति, उग्रश्री, अर्हद्भक्ति, अनुत्तर, गतभ्रम, अनिल, चण्ड, लंकाशोक, मयूरवान्, महाबाहु, मनोरम्य, भास्कराभ, बृहद्गति, बृहत्कान्त, अरिसन्त्रास, चन्द्रावर्त, महारव, मेघध्वान, गृहक्षोभ और नक्षत्रदमन आदि करोड़ों विद्याधर उस वंशमें हुए । ये सभी विद्याधर माया और पराक्रमसे सहित थे तथा विद्या, बल और महाकान्तिके धारक थे ॥३९४-३९९॥ ये सभी लंकाके स्वामी, विद्यानुयोगमें कुशल थे, सबके वक्षःस्थल लक्ष्मीसे सुशोभित थे, सभी सुन्दर थे और प्रायः स्वर्गसे च्युत होकर लंकामें उत्पन्न हुए थे ॥४००॥ ये राक्षसवंशी राजा, संसारसे भयभीत हो वंश-परम्परासे आगत लक्ष्मी अपने पुत्रोंके लिए सौंपकर दीक्षाको प्राप्त हुए थे ॥४०१॥ कितने ही राजा

---

१. संख्येयं म० । २. महाप्राव्राज्यमाश्रिताः म० ।

एवं तेष्वप्यतीतेषु घनप्रभसुतोऽभवत् । लङ्कायामधिपः कीर्तिधवलो नाम विश्रुतः ॥४०३॥
पद्मागर्भे समुद्भूतः खेचरैः कृतशासनः । संभुङ्क्ते परमैश्वर्यं सुनासीरो यथा दिवि ॥४०४॥

वसन्ततिलकावृत्तम्

एवं भवान्तरकृतेन तपोबलेन संप्राप्नुवन्ति पुरुषा मनुजेषु भोगान् ।
देवेषु चोत्तमगुणा गुणभूषिताङ्गा निर्दग्धकर्मपटलाश्च भवन्ति सिद्धाः ॥४०५॥
दुष्कर्मसक्तमतयः परमां लभन्ते निन्दां जना इह भवे मरणात्परं च ।
दुःखानि यान्ति बहुधा पतिताः कुयोनौ ज्ञात्वेति पापतमसो रवितां भजध्वम् ॥४०६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते राक्षसवंशाधिकारः पञ्चमं पर्व ॥५॥

□

कर्मोंको नष्ट कर त्रिलोकके शिखरको प्राप्त हुए, और कितने ही पुण्योदयके प्रभावसे स्वर्गमें उत्पन्न हुए थे ॥४०२॥ इस प्रकार बहुत-से राजा व्यतीत हुए। उनमें लंकाका अधिपति एक घनप्रभ नामक राजा हुआ। उसकी पद्मा नामक स्त्रीके गर्भमें उत्पन्न हुआ कीर्तिधवल नामका प्रसिद्ध पुत्र हुआ। समस्त विद्याधर उसका शासन मानते थे और जिस प्रकार स्वर्गमें इन्द्र परमैश्वर्यका अनुभव करता है उसी प्रकार वह कीर्तिधवल भी लंकामें परमैश्वर्यका अनुभव करता था ॥४०३-४०४॥

इस तरह पूर्वभवमें किये तपश्चरणके बलसे पुरुष, मनुष्यगति तथा देवगतिमें भोग भोगते हैं, वहाँ उत्तम गुणोंसे युक्त तथा नाना गुणोंसे भूषित शरीरके धारक होते हैं, कितने ही मनुष्य कर्मोंके पलटको भस्म कर सिद्ध हो जाते हैं, तथा जिनकी बुद्धि दुष्कर्ममें आसक्त है ऐसे मनुष्य इस लोकमें भारी निन्दाको प्राप्त होते हैं और मरनेके बाद कुयोनिमें पड़कर अनेक प्रकारके दुःख भोगते हैं। ऐसा जानकर हे भव्य जीवो ! पापरूपी अन्धकारको नष्ट करनेके लिए सूर्यकी सदृशता प्राप्त करो ॥४०५-४०६॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरितमें राक्षसवंशका निरूपण करनेवाला पंचम पर्व समाप्त हुआ ॥५॥

□

षष्ठं पर्व

वंशो रक्षोनभोगानां मया ते परिकीर्तितः । शृणु वानरकेतूनां संतानमधुना नृप ॥१॥
विजयार्द्धगिरेर्भागे दक्षिणे स्वर्गसंनिभे । पुरं मेघपुरं नाम्ना शुक्रप्रासादशोभितम् ॥२॥
विद्याभृतां पतिस्तस्मिन्नतीन्द्रो नाम विश्रुतः । [1]अतिक्रम्येव यः शक्रं स्थितो भोगादिसंपदा ॥३॥
श्रीमती नाम तस्यासीत् कान्ता श्रीसमविभ्रमा । यस्याः सति मुखे पक्षौ ज्योत्स्नयेव सदाभवत् ॥४॥
तयोः श्रीकण्ठनामामूत् सुतः श्रुतिविशारदः । [2]यस्य नामनि गते हर्षं दुर्धर्षा बुद्धिरक्षिणः ॥५॥
स्वसा तस्याभवच्चारुर्वी देवी नाम कनीयसी । कामस्य मदने यस्या गते कुसुमधन्वनः ॥६॥
अथ रत्नपुरं नाम पुरं तत्र मनोहरम् । तत्र पुष्पोत्तरो नाम विद्याधारी महाबलैः ॥७॥
तस्य पद्मोत्तराभिख्यः सुतो येन विलोचने । विषयान्तरसंबन्धाज्जनानां [3]विनिवर्तिते ॥८॥
तस्मै पुष्पोत्तरः कन्यां बहुशस्तामयाचत । श्रीकण्ठेन न सा तस्मै दत्ता कर्मानुभावतः ॥९॥
सा तेन कीर्तिधवलाय दत्ता बान्धववाक्यतः । विवाहं च परेणास्या विधिना निरवर्तयत् ॥१०॥
न मेऽभिजनतो दोषो न मे दारिद्र्यसंभवः । न च पुत्रस्य वैरूप्यं न किंचिद्वैरकारणम् ॥११॥
तथापि मम पुत्राय वितीर्णं तेन न स्वसा । इति पुष्पोत्तरो ध्यात्वा कोपावेशं परं गतः ॥१२॥

अथानन्तर—गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् श्रेणिक ! मैंने तेरे लिए राक्षसवंशी विद्याधरोंका वृत्तान्त तो कहा, अब तू वानरवंशियोंका वृत्तान्त सुन ॥१॥ स्वर्गके समान विजयार्ध पर्वतकी जो दक्षिण श्रेणी है उसमें एक मेघपुर नामका नगर है। यह नगर ऊँचे-ऊँचे महलोंसे सुशोभित है ॥२॥ वहाँ विद्याधरोंका राजा अतीन्द्र निवास करता था। राजा अतीन्द्र अत्यन्त प्रसिद्ध था और भोग-सम्पदाके द्वारा मानो इन्द्रका उल्लंघन करता था ॥३॥ उसकी लक्ष्मीके समान हाव-भाव-विलाससे सहित श्रीमती नामकी स्त्री थी। उसका मुख इतना सुन्दर था कि उसके रहते हुए सदा चाँदनीसे युक्त पक्ष ही रहा करता था ॥४॥ उन दोनोंके श्रीकण्ठ नामका पुत्र था। वह पुत्र शास्त्रोंमें निपुण था और जिसका नाम कर्णगत होते ही विद्वान् लोग हर्षको प्राप्त कर लेते थे ॥५॥ उसके महामनोहरदेवी नामकी छोटी बहन थी। उस देवीके नेत्र क्या थे मानो कामदेवके बाण ही थे ॥६॥ अथानन्तर—रत्नपुर नामका एक सुन्दर नगर था जिसमें अत्यन्त बलवान् पुष्पोत्तर नामका विद्याधर राजा निवास करता था ॥७॥ अपने सौन्दर्यरूपी सम्पत्तिके द्वारा देवकन्याके समान सबके मनको आनन्दित करनेवाली पद्माभा नामकी पुत्री और पद्मोत्तर नामका पुत्र था। यह पद्मोत्तर इतना सुन्दर था कि उसने अन्य मनुष्योंके नेत्र दूसरे पदार्थोंके सम्बन्धसे दूर हटा दिये थे अर्थात् सब लोग उसे ही देखते रहना चाहते थे ॥८॥ राजा पुष्पोत्तरने अपने पुत्र पद्मोत्तरके लिए राजा अतीन्द्रकी पुत्री देवीकी बहुत बार याचना की परन्तु श्रीकण्ठ भाईने अपनी बहन पद्मोत्तरके लिए नहीं दी, लंकाके राजा कीर्तिधवलके लिए दी और बड़े वैभवके साथ विधिपूर्वक उसका विवाह कर दिया ॥९-१०॥ यह बात सुन राजा पुष्पोत्तरने बहुत कोप किया। उसने विचार किया कि देखो, न तो हमारे वंशमें कोई दोष है, न मुझमें दरिद्रतारूपी दोष है, न मेरे पुत्रमें कुरूपपना है और न मेरा उनसे कुछ वैर भी है फिर भी श्रीकण्ठने मेरे पुत्रके लिए अपनी बहन नहीं दी ॥११-१२॥

---

१. अतिक्रम्य च म. । अतिक्रम्यैव ख. । २. संपदः क. । ३. चार्या क. । ४. सप्तमश्लोकादनन्तरं म. पुस्तके निम्नाङ्कितः श्लोकोऽधिको वर्तते । 'पद्माभायोत्सुता तस्य मनोह्लादनकारिणी । देवकन्येव सर्वेषां रूपलावण्यसंपदा' । ५. विधिर्न म. ।

चैत्यानां वन्दनां कर्तुं श्रीकण्ठः सुरपर्वतम् । गतोऽन्यदा विमानेन वायुवेगेन चारुणा ॥१३॥
तस्मान्निवर्तमानोऽसौ चेतःश्रोत्रापहारिणम् । भृङ्गाणामिव झंकारमशृणोद् गीतनिःस्वनम् ॥१४॥
रम्यप्रक्वणमिश्रेण तेन गीतस्वनेन सः । धृतो ऋजुगुणेनेव बद्ध्वा निश्चलविग्रहः ॥१५॥
अलोकनमथो चक्रे ततोऽपश्यत्[1] स कन्यकाम् । गुरुणाधिष्ठितां कान्तां संगीतकगृहाङ्गणे ॥१६॥
तस्या रूपसमुद्रेऽसौ निमग्नं मानसं द्रुतम् । न शशाक समुद्धर्तुं धर्त्तुं नागानिव[2] प्रभुः ॥१७॥
स्थितश्चारोऽन्तिकव्योम्नि तया नीलोत्पलाभया । बध्नेव पीवरस्कन्धो दृष्टधाकृष्टो मनोमुधा ॥१८॥
ततो दर्शनमन्योन्यं तयोर्माधुर्यपेशलम् । चकार वरणं प्रेमवद्भावस्य सूचनम् ॥१९॥
ततस्तामिङ्गिताभिज्ञो भुजपञ्जरमध्यगाम् । कृत्वा नभस्तले यातः स्पर्शामीलितलोचनः ॥२०॥
परिवर्गस्ततस्तस्याः प्रलापमुखरीकृतः । पुष्पोत्तराय कन्यायाः श्रीकण्ठेन हृतिं जगौ ॥२१॥
सपौरुषेण संनह्य ततः पुष्पोत्तरो रुषा । तस्यानुपदवीं यातो दन्तदष्टरदच्छदः ॥२२॥
तेनानुभावमानेन व्रजता सुनभस्तले । शशीव घनवृन्देन श्रीकण्ठः शुशुभेऽधिकम् ॥२३॥
आयान्तं पृष्ठतो वृद्ध्वा श्रीकण्ठस्तं महाबलम् । स्वरिसं प्रस्थितौ लङ्कां नीतिशास्त्रविशारदः ॥२४॥
तत्र स्वसुः पतिं गत्वा शरणं स समाश्रयत् । कालप्राप्तं नयं सन्तो युञ्जानाः यान्ति तुङ्गताम् ॥२५॥
सोदरो मम कान्ताया इति स स्नेहनिर्भरम् । संभ्रमेण परिष्वज्य तं चकारासपूजनम् ॥२६॥

किसी एक दिन श्रीकण्ठ अकृत्रिम प्रतिमाओंकी वन्दना करनेके लिए वायुके समान वेगवाले सुन्दर विमानके द्वारा सुमेरुपर्वत पर गया था ॥१३॥ वहाँसे जब वह लौट रहा था तब उसने मन और कानोंको हरण करनेवाला, भ्रमरोंकी झंकारके समान सुन्दर संगीतका शब्द सुना ॥१४॥ वीणाके स्वरसे मिले हुए संगीतके शब्दसे उसका शरीर ऐसा निश्चल हो गया मानो सीधी रस्सीसे ही बाँधकर उसे रोक लिया हो ॥१५॥ तदनन्तर उसने जब ओर देखा तो उसे संगीतगृहके आंगनमें गुरुके साथ बैठी हुई पुष्पोत्तरकी पुत्री पद्माभा दिखी ॥१६॥ उसे देखकर श्रीकण्ठका मन पद्माभाके सौन्दर्यरूपी सागरमें शीघ्र ही ऐसा निमग्न हो गया कि वह उसे निकालनेमें असमर्थ हो गया। जिस प्रकार कोई हाथियोंको पकड़नेमें समर्थ नहीं होता उसी प्रकार वह मनको स्थिर करनेमें समर्थ नहीं हो सका ॥१७॥ श्रीकण्ठ उस कन्याके समीप ही आकाशमें खड़ा रह गया। श्रीकण्ठ सुन्दर शरीरका धारक तथा स्थूल कन्धोंसे युक्त था। पद्माभाने भी चित्तको चुरानेवाली अपनी नीली-नीली दृष्टिसे उसे आकर्षित कर लिया था ॥१८॥ तदनन्तर दोनोंका परस्परमें जो मधुर अवलोकन हुआ उसीने दोनोंका वरण कर दिया अर्थात् मधुर अवलोकनसे ही श्रीकण्ठने पद्माभाको और पद्माभाने श्रीकण्ठको वर लिया। उनका यह वरना पारस्परिक प्रेम भावको सूचित करनेवाला था ॥१९॥ तदनन्तर अभिप्रायको जाननेवाला श्रीकण्ठ पद्माभाको अपने भुजपंजरके मध्यमें स्थित कर आकाशमें ले चला। उस समय पद्माभाके स्पर्शसे उसके नेत्र कुछ-कुछ बन्द हो रहे थे ॥२०॥ प्रलापसे चिल्लाते हुए परिजनके लोगोंने राजा पुष्पोत्तरको खबर दी कि श्रीकण्ठने आपकी कन्याका अपहरण किया है ॥२१॥ यह सुन पुष्पोत्तर भी बहुत क्रुद्ध हुआ। वह क्रोधवश दाँतोंसे ओठ चाबने लगा और सब प्रकारसे तैयार हो श्रीकण्ठके पीछे गया ॥२२॥ श्रीकण्ठ आगे-आगे जा रहा था और पुष्पोत्तर उसके पीछे-पीछे दौड़ रहा था जिससे आकाशके बीच श्रीकण्ठ ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो मेघसमूह जिसके पीछे उड़ रहा है ऐसा चन्द्रमा ही हो ॥२३॥ नीतिशास्त्रमें निपुण श्रीकण्ठने जब अपने पीछे महाबलवान् पुष्पोत्तरको आता देखा तो वह शीघ्र ही लंकाकी ओर चल पड़ा ॥२४॥ वहाँ वह अपने बहनोई कीर्तिधवलकी शरणमें पहुँचा सो ठीक ही है। क्योंकि जो समयानुकूल नीतियोग करते हैं वे उन्नतिको प्राप्त होते ही हैं ॥२५॥ 'यह मेरी स्त्रीका भाई है' यह जानकर कीर्तिधवलने बड़े स्नेहसे उसका आलिंगन कर

१. सुकन्यकाम् ख. । २. नाङ्गानि च म. ।

तयोः कुशलवृत्तान्तप्रश्नो यावत्प्रवर्तते । तावत्पुष्पोत्तरः प्राप्तो महाबलसमन्वितः ॥२७॥
कीर्तिशुक्लस्ततोऽपश्यद् गगनं सर्वतश्चितम् । विद्याधरसमूहेन प्रदीप्तमुरुतेजसा ॥२८॥
असिकुन्तादिभिः शस्त्रैर्विकरालं महास्वनम् । स्थानभ्रंशमिवागच्छद् बलं खेचरसंगमात् ॥२९॥
वाजिभिर्वायुरंहोभिर्गजैश्च जलदोपमैः । विमानैश्च महामानैः सिंहैश्च प्रचलत्सटैः ॥३०॥
दृष्ट्वोत्तरां दिशं व्याप्तां सिंहस्य क्रोधमिश्रितम् । हसन्निवाह समादेशं कीर्तिशुक्लो युधे ददौ ॥३१॥
अकार्येण ततः स्वेन श्रीकण्ठोऽयं त्रपानतः । कीर्तिशुक्लमिदं वाक्यं जगाद त्वरयान्वितम् ॥३२॥
एतं बन्धुजनं रक्ष त्वं मदीयमिहाधुना । करोमि निर्जितं यावत्प्रतिपक्षं तवाश्रयात् ॥३३॥
एवमुक्तो जगादासौ वचनं नयसंगतम् । तवायुक्तमिदं वक्तुं प्राप्यं मां भीतिभेदनम्[1] ॥३४॥
यदि नाभैष नो साम्ना शमं यास्यति दुर्जनः । ततः पश्य प्रविष्टोऽयं मृत्योर्वक्त्रं मदीरितः ॥३५॥
स्थापयित्वेति विश्रब्धं प्रियायाः सोदरं नृपः । उत्कृष्टवयसो धीरान्[2] दूतान् द्रुतमजीगमत् ॥३६॥
उपर्युपरि ते गत्वा क्रमेणेदं बभाषिरे । पुष्पोत्तरं महाप्राज्ञा मधुरालापकोविदाः ॥३७॥
पुष्पोत्तर वदत्येतद्भवन्तं कीर्तिनिर्मलः । अस्मद्वदनविन्यस्तैः पदैरादरसंगतैः ॥३८॥
महाकुलसमुत्पन्नो भवान् विमलचेष्टितः । सर्वस्मिन् जगति ख्यातिं गतः शास्त्रार्थकोविदः ॥३९॥
आगता गोचरं का ते न मर्यादा महामते । कर्णजाहं निधीयेत यास्माभिरधुना तव ॥४०॥
श्रीकण्ठोऽपि कुले जातः शशाङ्ककरनिर्मले । विनयोपेतः कान्तः सर्वकलान्वितः ॥४१॥

अतिथिसत्कार किया ॥२६॥ जबतक उन दोनोंके बीच कुशल-समाचारका प्रश्न चलता है कि तबतक बड़ी भारी सेनाके साथ पुष्पोत्तर वहाँ जा पहुँचा ॥२७॥ तदनन्तर कीर्तिधवलने आकाशकी ओर देखा तो वह आकाश सब ओरसे विद्याधरोंके समूहसे व्याप्त था, विशाल तेजसे देदीप्यमान हो रहा था ॥२८॥ तलवार, भाले आदि शस्त्रोंसे महाभयंकर था, बड़ा भारी शब्द उसमें हो रहा था, विद्याधरोंके समागमसे वह सेना ऐसी जान पड़ती थी मानो अपने स्थानसे भ्रष्ट होनेके कारण ही उसमें वह महाशब्द हो रहा था ॥२९॥ वायुके समान वेगवाले घोड़ों, मेघोंकी उपमा रखनेवाले हाथियों, बड़े-बड़े विमानों और जिनकी गरदनके बाल हिल रहे थे ऐसे सिंहोंसे उत्तर दिशाको व्याप्त देख कीर्तिधवलने क्रोधमिश्रित हँसी हँसकर मन्त्रियोंके लिए युद्धका आदेश दिया ॥३०-३१॥

तदनन्तर अपने अकार्य—खोटे कार्यके कारण लज्जासे अवनत श्रीकण्ठने शीघ्रता करनेवाले कीर्तिधवलसे निम्नांकित वचन कहे ॥३२॥ कि जबतक मैं आपके आश्रयसे शत्रुको परास्त करता हूँ तबतक आप यहाँ मेरे इष्टजन (स्त्री) की रक्षा करो ॥३३॥ श्रीकण्ठके ऐसा कहनेपर कीर्तिधवलने उससे नीतियुक्त वचन कहे कि भयका भेदन करनेवाले मुझको पाकर तुम्हारा यह कहना युक्त नहीं है ॥३४॥ यदि यह दुर्जन साम्यभावसे शान्तिको प्राप्त नहीं होता है तो तुम निश्चित देखना कि यह मेरे द्वारा प्रेरित होकर यमराजके ही मुखमें प्रवेश करेगा ॥३५॥ ऐसा कह अपनी स्त्रीके भाईको तो उसने निश्चिन्त कर महलमें रखा और शीघ्र ही उत्कृष्ट अवस्थावाले धीर-वीर दूतोंको पुष्पोत्तरके पास भेजा ॥३६॥ अतिशय बुद्धिमान् और मधुरभाषण करनेमें निपुण दूतोंने लगे हाथ जाकर पुष्पोत्तरसे यथाक्रम निम्नांकित वचन कहे ॥३७॥ हे पुष्पोत्तर ! हम लोगोंके मुखमें स्थापित एवं आदरपूर्ण वचनोंसे कीर्तिधवल राजा आपसे यह कहता है ॥३८॥ कि आप उच्चकुलमें उत्पन्न हैं, निर्मल चेष्टाओंके धारक हैं, समस्त संसारमें प्रसिद्ध हैं और शास्त्रार्थमें चतुर हैं ॥३९॥ हे महाबुद्धिमान् ! कौन-सी मर्यादा आपके कानोंमें नहीं पड़ी है जिसे इस समय हम लोग आपके कानोंके समीप रखें ॥४०॥ श्रीकण्ठ भी चन्द्रमाकी किरणोंके समान निर्मल कुलमें उत्पन्न हुआ है, धनवान् है, विनयसे युक्त है, सुन्दर है, और सब कलाओंसे सहित है ॥४१॥

---

१. भीतिभेदिनम् । २. धीरो म० ।

तस्य योग्या गुणैः कन्या रूपेण च कुलेन च । समानयोः समायोगं करोतु विधिरिष्यताम् ॥४२॥
न चास्ति कारणं किंचित् सैनयोः संक्षये कृते । स्वभाव एव कन्यानां यत्परागारसेवनम् ॥४३॥
दूतो गायत्येवं तावत्पुत्री तस्याः [illegible] । तया प्रेषिता तत्र दुहित्रेदमभाषत ॥४४॥
ब्रवीति देव पद्मेदं कृत्वा चरणवन्दनम् । स्वयं ते वदितुं शक्ता त्रपया नेति नागता ॥४५॥
तात स्वल्पापि नास्त्यत्र श्रीकण्ठस्यापराधिता । मया कर्मानुभावेन स्वयमेव प्रचोदितः ॥४६॥
यतः सत्कुलजातानां गतिरेषैव योषिताम् । विमुच्यैनमतोऽन्यस्य नरस्य नियमो मम ॥४७॥
इति विज्ञापितो दूत्या चिन्तामेतामसौ श्रितः । किंकर्तव्यं विमूढेन चेतसा विकृवीकृतः ॥४८॥
शुद्धाभिजनता मुख्या गुणानां वरभाजिनाम् । तस्मिँश्च संभवत्येषा[2] पक्षं च बलिनं श्रितैः[3] ॥४९॥
अभिमानात्तथाप्येनं विनेतुं शक्तिरस्ति मे । स्वयमेव तु कन्यायै रोचते क्रियतेऽत्र किम् ॥५०॥
अभिप्रायं ततस्तस्य ज्ञात्वा ते हर्षनिर्भराः । समं दूत्या गता दूता शशासुश्च यथोदितम् ॥५१॥
सुताविज्ञापनात् त्यक्तक्रोधभारोऽभिमानवान् । पुष्पोत्तरो गतः स्थानमात्मीयं परमार्थवित् ॥५२॥
शुक्लायां मार्गशीर्षस्य पक्षतावथ शोभने । मुहूर्ते विधिना वृत्तं पाणिग्रहणमेतयोः ॥५३॥
इति श्रीकण्ठमाहेदं प्रीत्यात्यन्तमुदारया । प्रेरितः कीर्तिधवलो वचनं कृतनिश्चयम् ॥५४॥
वैरिणो बहवः सन्ति विजयार्द्धगिरौ तव । अप्रमत्ततया कालं कियन्तं गमयिष्यसि ॥५५॥
अतस्तिष्ठ त्वमत्रैव रम्ये रत्नालयान्तरे । निजाभिरुचिते स्थाने स्वेच्छया कृतचेष्टितः ॥५६॥
पर्याप्नोति परित्यक्तुं न च त्वां मम मानसम् । मय्रीतिवागुरां छित्वा कथं वा त्वं गमिष्यसि ॥५७॥

तुम्हारी कन्या गुण, रूप तथा कुल सभी बातोंमें उसके योग्य है। इस प्रकार अनुकूल भाग्य, दो समान व्यक्तियोंका संयोग करा दे तो उत्तम है ॥४२॥ जब कि दूसरेके घरकी सेवा करना यह कन्याओंका स्वभाव ही है तब दोनों पक्षकी सेनाओंका क्षय करनेमें कोई कारण दिखाई नहीं देता ॥४३॥ दूत इस प्रकार कह ही रहा था कि इतनेमें पुत्री पद्माभाके द्वारा भेजी हुई दूती आकर पुष्पोत्तरसे कहने लगी ॥४४॥ कि हे देव ! पद्मा आपके चरणोंमें नमस्कार कर कहती है कि मैं लज्जाके कारण आपसे स्वयं निवेदन करनेके लिए नहीं आ सकी हूँ ॥४५॥ हे तात ! इस कार्यमें श्रीकण्ठका थोड़ा भी अपराध नहीं है। कर्मोंके प्रभावसे मैंने इसे स्वयं प्रेरित किया था ॥४६॥ चूँकि सत्कुलमें उत्पन्न हुई स्त्रियोंकी यही मर्यादा है अतः इसे छोड़कर अन्य पुरुषका मेरे नियम है—त्याग है ॥४७॥ इस प्रकार दूतीके कहनेपर 'अब क्या करना चाहिए' इस चिन्ताको प्राप्त हुआ। उस समय वह अपने किंकर्तव्यविमूढ़ चित्तसे बहुत दुःखी हो रहा था ॥४८॥ उसने विचार किया कि वरमें जितने गुण होना चाहिए उनमें शुद्ध वंशमें जन्म लेना सबसे प्रमुख है। यह गुण श्रीकण्ठमें है ही उसके सिवाय यह बलवान् पक्षकी शरणमें आ पहुँचा है ॥४९॥ यद्यपि इसका अभिमान दूर करनेकी मुझमें शक्ति है, पर जब कन्याके लिए यह स्वयं रुचता है तब इस विषयमें क्या किया जा सकता है ? ॥५०॥ तदनन्तर पुष्पोत्तरका अभिप्राय जानकर हर्षसे भरे दूत, दूतीके साथ वापस चले गये और सबने जो बात जैसी थी वैसी ही राजा कीर्तिधवलसे कह दी ॥५१॥ पुत्रीके कहनेसे जिसने क्रोधका भार छोड़ दिया था ऐसा अभिमानी तथा परमार्थको जाननेवाला राजा पुष्पोत्तर अपने स्थानपर वापस चला गया ॥५२॥ अथानन्तर मार्गशीर्ष शुक्ल पक्षकी प्रतिपदाके दिन शुभमुहूर्तमें दोनोंका विधिपूर्वक पाणिग्रहण संस्कार हुआ ॥५३॥ एक दिन उदार प्रेमसे प्रेरित कीर्तिधवलने श्रीकण्ठसे निश्चयपूर्ण निम्नांकित वचन कहे ॥५४॥ चूँकि विजयार्ध पर्वतपर तुम्हारे बहुत-से वैरी हैं अतः तुम सावधानीसे कितना काल बिता सकोगे ॥५५॥ लाभ इसीमें है कि तुम्हें जो स्थान रुचिकर हो वहीं स्वेच्छासे क्रिया करते हुए यहीं अत्यन्त सुन्दर रत्नमयी महलोंमें निवास करो ॥५६॥ मेरा मन

---

१. अद्धाभिजनिता म. । २. -त्येषा म. । ३. श्रिता । ४. पक्षे तावत्सुशोभने ख. ।

श्रीकण्ठमभिधायैवं सचिवं निजमब्रवीत् । पितामहक्रमायातमानन्दाख्यं महामतिम् ॥५८॥
सारासारं त्वया वृद्धं मदीयानां चिरं पुराम् । उपदिश्यतामतः सारं श्रीकण्ठायात्र यत्पुरम् ॥५९॥
इत्युक्तः सचिवः प्राह सितेन हृदयस्थितम् । कूर्चेन स्वामिनं भक्त्या चामरेणेव वीजयन् ॥६०॥
नरेन्द्र तव नास्त्येव पुरं यत्र मनोहरम् । तथापि स्वयमन्विष्य गृह्यतु रुचिदर्शनम् ॥६१॥
मध्ये सागरमेतस्मिन् द्वीपाः सन्त्यतिभूरयः । कल्पद्रुमसमाकारैः पादपैर्व्याप्तदिङ्मुखाः ॥६२॥
आचिता विविधै रत्नैस्तुङ्गशृङ्गा महौजसः । गिरयो येषु देवानां सन्ति क्रीडनहेतवः ॥६३॥
भीमातिभीमदाक्षिण्यात्ते चान्यैरपि यः कृते । अनुज्ञाताः सुरैः सर्वैः पूर्वमित्येवमागमः ॥६४॥
पुराण्यि तेषु रम्याणि सन्ति काञ्चनसद्मभिः । संपूर्णानि महारत्नैः करदृष्टदिवाकरैः ॥६५॥
संध्याकारो मनोह्लादः सुवेलः काञ्चनो हरिः । योधनो जलधिध्वानो हंसद्वीपो भरक्षमः ॥६६॥
अर्द्धस्वर्गोत्कटावर्तौ विघटो[1] रोधनोऽमलः । कान्तः स्फुटतटो रत्नद्वीपस्तोयावली सरः ॥६७॥
अलङ्घनो नभोभानुः क्षेममित्येवमादयः । आसन् ये रमणोद्देशा देवानां निरुपद्रवाः ॥६८॥
त एव सांप्रतं जाता भूरिपुण्यैरुपार्जिताः । पुराणां संनिवेशा वो नानारत्नवसुंधराः ॥६९॥
वृतोऽवरोत्तरे भागे समुद्रपरिवेष्टिते । शतत्रयमतिक्रम्य योजनानामलं पृथुः ॥७०॥
अतिशाखामृगद्वीपः प्रसिद्धो भुवनत्रये । यस्मिन्नवान्तरद्वीपाः सन्ति रम्याः सहस्रशः ॥७१॥
पुष्परागमणेर्भाभिः[2] क्वचित् प्रज्वलसोव यः । सस्यैरिव क्वचिच्छन्नो हरिन्मणिमरीचिभिः ॥७२॥

तुम्हें छोड़नेको समर्थ नहीं है और तुम भी मेरे प्रेमपाशको छोड़कर कैसे जाओगे ॥५७॥ श्रीकण्ठसे ऐसा कहकर कीर्तिधवलने अपने पितामहके क्रमसे आगत महाबुद्धिमान् आनन्द नामक मन्त्रीको बुलाकर कहा ॥५८॥ .कि तुम चिरकालसे मेरे नगरोंकी सारता और असारताको अच्छी तरह जानते हो अतः श्रीकण्ठके लिए जो नगर सारभूत हो सो कहो ॥५९॥ इस प्रकार कहनेपर वृद्ध मन्त्री कहने लगा। जब वह वृद्ध मन्त्री कह रहा था तब उसकी सफेद दाढ़ी वक्षःस्थलपर हिल रही थी और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो हृदयमें विराजमान स्वामीको चमर ही ढोर रहा हो ॥६०॥ उसने कहा कि हे राजन् ! यद्यपि आपके नगरोंमें ऐसा एक भी नगर नहीं है जो सुन्दर न हो तथापि श्रीकण्ठ स्वयं ही खोजकर इच्छानुसार—जो इन्हें रुचिकर हो, ग्रहण कर लें ॥६१॥ इस समुद्रके बीचमें ऐसे बहुतसे द्वीप हैं जहाँ कल्पवृक्षोंके समान आकारवाले वृक्षोंसे दिशाएँ व्याप्त हो रही हैं ॥६२॥ इन द्वीपोंमें ऐसे अनेक पर्वत हैं जो नाना प्रकारके रत्नोंसे व्याप्त हैं, ऊँचे-ऊँचे शिखरोंसे सुशोभित हैं, महादेदीप्यमान हैं और देवोंकी क्रीड़ाके कारण हैं ॥६३॥ राक्षसोंके इन्द्र-भीम, अतिभीम तथा उनके सिवाय अन्य सभी देवोंने आपके वंशजोंके लिए वे सब द्वीप तथा पर्वत दे रखे हैं ऐसा पूर्व परम्परासे सुनते आते हैं ॥६४॥ उन द्वीपोंमें सुवर्णमय महलोंसे मनोहर और किरणोंसे सूर्यको आच्छादित करनेवाले महारत्नोंसे परिपूर्ण अनेक नगर हैं ॥ ६५ ॥ उन नगरोंके नाम इस प्रकार हैं—सन्ध्याकार, मनोह्लाद, सुवेल, कांचन, हरि, योधन, जलधिध्वान, हंसद्वीप, भरक्षम, अर्धस्वर्गोत्कट, आवर्त, विघट, रोधन, अमल, कान्त, स्फुटतट, रत्नद्वीप, तोयावली, सर, अलंघन, नभोभानु और क्षेम इत्यादि अनेक सुन्दर-सुन्दर स्थान हैं। इन स्थानोंमें देव भी उपद्रव नहीं कर सकते हैं ॥६६-६८॥ जो बहुत भारी पुण्यसे प्राप्त हो सकते हैं और जहाँकी वसुधा नाना प्रकारके रत्नोंसे प्रकाशमान है ऐसे वे समस्त नगर इस समय आपके आधीन हैं ॥ ६९ ॥ यहाँ पश्चिमोत्तर भाग अर्थात् वायव्य दिशामें समुद्रके बीच तीन सौ योजन विस्तारवाला बड़ा भारी वानर द्वीप है। यह वानर द्वीप तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है और उसमें महामनोहर हजारों अवान्तर द्वीप हैं ॥७०-७१॥ यह द्वीप कहीं तो पुष्पराग मणियोंकी लाल-लाल प्रभासे ऐसा जान पड़ता है

---

१. वैघटो । २. मणिभाभिः म. ।

इन्द्रनीलप्रभाजालैस्तमसेव चितः क्वचित् । पद्माकरश्रियं धत्ते पद्मरागचयैः क्वचित् ॥७३॥
भ्रमता यत्र वातेन गगने गन्धचारुणा । हृता जानन्ति नो यस्मिन्नतास इति पक्षिणः ॥७४॥
स्फटिकान्तरविन्यस्तैः पद्मरागैः समस्विषः । ज्ञायन्ते चलनाद्यत्र सरःसु कमलाकराः ॥७५॥
मकरन्दध्वासवास्वादाच्छकुन्तैः कलनादिभिः । संभाषत इति द्वीपान् यः समीपव्यवस्थितान् ॥७६॥
यत्रौषधिप्रभाजालैस्तमो दूरं निराकृतम् । चक्रे बहुलपक्षेऽपि समावेशं न रात्रिषु ॥७७॥
यत्रच्छत्रसमाकाराः फलपुष्पसमन्विताः । पादपा विपुलस्कन्धाः कलस्वनशकुन्तयः ॥७८॥
सस्यैः स्वभावसंपन्नैर्वीर्यकान्तिविधायिभिः । चलद्भिर्मन्दवातेन मही यत्र सकञ्चुका ॥७९॥
विकचेन्दीवरैर्यत्र षट्पदौघसमन्वितैः । नयनैरिव वीक्षन्ते[1] दीर्घिका भ्रूविलासिभिः ॥८०॥
पवनाकम्पनाद्यस्मिन् [2]सात्कारश्रोत्रहारिभिः । पुण्ड्रेक्षोर्विपुलैर्वाटैः प्रदेशाः पवनोज्झिताः ॥८१॥
रत्नकाञ्चनविस्तीर्णशिलासंघातशोभनः । मध्ये तस्य महानस्ति किष्कुर्नाम महीधरः ॥८२॥
त्रिकूटेनेव सेनासौ शृङ्गबाहुभिरायतैः । आलिङ्गिता[3] दिशः कान्ताः श्रियमारोपिताः पराम् ॥८३॥
आनन्दवचनादेव सानन्दं परमं गतः । श्रीकण्ठः कीर्तिधवलं प्राहैवमति भास्वतीम् ॥८४॥
ततश्चैत्रस्य दिवसे प्रथमे मङ्गलार्चिते । ययौ सपरिवारोऽसौ द्वीपं वानरलाञ्छितम् ॥८५॥

मानो जल ही रहा हो, कहीं हरे मणियोंकी किरणोंसे आच्छादित होकर ऐसा सुशोभित होता है मानो धानके हरे-भरे पौधोंसे ही आच्छादित हो ॥७२॥ कहीं इन्द्रनील मणियोंके कान्तिसे ऐसा लगता है मानो अन्धकारके समूहसे व्याप्त ही हो, कहीं पद्मराग मणियोंकी कान्तिसे ऐसा जान पड़ता है मानो कमलाकरकी शोभा धारण कर रहा हो ॥ ७३ ॥ जहाँ आकाशमें भ्रमती हुई सुगन्धित वायुसे हरे गये पक्षी यह नहीं समझ पाते है कि हम गिर रहे है ॥७४॥ स्फटिकके बीच-बीचमें लगे हुए पद्मराग मणियोंके समान जिनकी कान्ति है ऐसे तालाबोंके बीच प्रफुल्लित कमलों-के समूह जहाँ हलन-चलनरूप क्रियाके द्वारा ही पहचाने जाते हैं ॥७५॥ जो द्वीप मकरन्दरूपी मदिराके आस्वादनसे मनोहर शब्द करनेवाले मदोन्मत्त पक्षियोंसे ऐसा जान पड़ता है मानो समीपमें स्थित अन्य द्वीपोंसे वार्तालाप ही कर रहा हो ॥ ७६ ॥ जहाँ रात्रिमें चमकनेवाली औषधियोंकी कान्तिके समूहसे अन्धकार इतनी दूर खदेड़ दिया गया था कि वह कृष्ण पक्षकी रात्रियोंमें भी स्थान नहीं पा सका था ॥७७॥ जहाँके वृक्ष छत्रोंके समान आकारवाले हैं, फल और फूलोंसे सहित हैं, उनके स्कन्ध बहुत मोटे हैं और उनपर बैठे हुए पक्षी मनोहर शब्द करते रहते हैं । ७८॥ स्वभावसम्पन्न—अपने आप उत्पन्न, वीर्य और कान्तिको देनेवाले, एवं मन्द-मन्द वायुसे हिलते धानके पौधोंसे जहाँकी पृथिवी ऐसी जान पड़ती है मानो उसने हरे रंगकी चोली ही पहन रखी हो ॥७९॥ जहाँकी वापिकाओंमें भ्रमरोंके समूहसे सुशोभित नील कमल फूल रहे हैं और उनसे वे ऐसी जान पड़ती हैं मानो भौंहोंके सञ्चारसे सुशोभित नेत्रोंसे ही देख रही हों ॥ ८० ॥ हवाके चलनेसे समुत्पन्न अव्यक्त ध्वनिसे कानोंको हरनेवाले पौंडों और ईखोंके बड़े-बड़े बगीचोंसे जहाँके प्रदेश वायुके संचारसे रहित हैं अर्थात् जहाँ पौंडे और ईखके सघन वनोंसे वायुका आवा-गमन रुकता रहता है ॥ ८१ ॥ उस वानरद्वीपके मध्यमें रत्न और सुवर्णकी लम्बी-चौड़ी शिलाओं-से सुशोभित किष्कु नामका बड़ा भारी पर्वत है ॥ ८२ ॥ जैसा यह त्रिकूटाचल है वैसा ही वह किष्कु पर्वत है सो उसकी शिखररूपी लम्बी-लम्बी भुजाओंसे आलिंगित दिशारूपी स्त्रियाँ परम शोभाको प्राप्त हो रही हैं ॥ ८३ ॥ आनन्द मन्त्रीके ऐसे वचन सुनकर परम आनन्दको प्राप्त हुआ श्रीकण्ठ अपने बहनोई कीर्तिधवलसे कहने लगा कि जैसा आप कहते हैं वैसा मुझे स्वीकार है ॥ ८४ ॥ तदनन्तर चैत्र मासके मंगलमय प्रथम दिनमें श्रीकण्ठ अपने परिवारके साथ वानरद्वीप

१. वीक्ष्यन्ते म. । २. सीत्कार म. । ३. आलिङ्गता म. ।

पश्यन्नीलमणिच्छायं गतं नभ इव क्षितिम् । महाग्राहकृताकम्पं समुद्रं विस्मयाकुलः ॥८६॥
ततश्च तं वरद्वीपं[1] प्राप्तः स्वर्गमिवापरम् । व्याहरन्तमिवात्युच्चैः स्वागतं निर्झरस्वनैः ॥८७॥
निर्झराणामतिस्थूलैः शीकरैर्व्योमगामिभिः । हसन्तमिव तोषेण श्रीकण्ठागमजन्मना ॥८८॥
विचित्रमणिसंभूतप्रभाजालेन भास्वता । उच्छ्रिता[2] इव संघातास्तोरणानां समुच्छ्रयाः ॥८९॥
ततस्तमवतीर्णोऽसौ द्वीपमाश्चर्यसंकुलम् । विक्षिपन्[3] दिक्षु सर्वासु दृष्टिं नीलोत्पलद्युतिम् ॥९०॥
खर्जूरामलकीनीपकपित्थागुरुचन्दनैः । प्लक्षार्जुनकदम्बाम्रप्रियालकदलीधवैः ॥९१॥
दाडिमीपूगकङ्कोललवङ्गवकुलैस्तथा । रम्यैरन्यैश्च विविधैः पादपैरुपशोभितम् ॥९२॥
मणिवृक्षा इवोद्भिद्य क्षितिं ते तत्र निःसृताः । स्वस्मिन् निपतितां दृष्टिं नेतुमन्यत्र नो ददुः ॥९३॥
प्रगुणाः काण्डदेशेषु विस्तीर्णाः स्कन्धबन्धने । उपरिच्छत्रसंकाशा घनपल्लवराशयः ॥९४॥
शाखाभिः सुप्रकाशाभिर्नतामिः कुसुमोत्करैः । फलैश्च सरसाः स्वादैः प्राप्ताः संतानमुत्तमम् ॥९५॥
नात्यन्तमुन्नतिं याता न च याता निखर्वताम् । अनायासाङ्गनाप्राप्य प्रसूनफलपल्लवाः ॥९६॥
स्तबकस्तनरम्याभिर्भृङ्गनेत्राभिरादरात् । आलिङ्गिताः सुवल्लीभिश्चलपल्लवपाणिभिः ॥९७॥
परस्परं[4]सुल्लापं कुर्वाणा इव पक्षिणाम् । मनोहरेण नादेन गायन्त इव षट्पदैः ॥९८॥
केचिच्छङ्खदलच्छायाः केचिद्धेमसमप्रभाः । केचित्पङ्कजसंकाशाः केचिद्वैदूर्यसंनिभाः ॥९९॥

गया ॥८५॥ प्रथम ही वह समुद्रको देखकर आश्चर्यसे चकित हो गया। वह समुद्र नीलमणिके समान कान्तिवाला था इससे ऐसा जान पड़ता था मानो नीला आकाश ही पृथिवीपर आ गया हो तथा बड़े-बड़े मगरमच्छ उसमें कम्पन पैदा कर रहे थे ॥८६॥ तदनन्तर उसने वानरद्वीपमें प्रवेश किया। वह द्वीप क्या था मानो दूसरा स्वर्ग ही था, और झरनोंके उच्च स्वरसे ऐसा जान पड़ता था मानो स्वागत शब्दका उच्चारण ही कर रहा था ॥८७॥ झरनोंके बड़े-बड़े छींटे उछलकर आकाशमें पहुँच रहे थे उनसे वह द्वीप ऐसा लगता था मानो श्रीकण्ठके आगमनसे उत्पन्न सन्तोषसे हँस ही रहा हो ॥८८॥ नाना मणियोंकी सुन्दर कान्तिके समूहसे ऐसा जान पड़ता था मानो ऊँचे-ऊँचे तोरणोंके समूह ही वहाँ खड़े किये गये हों ॥८९॥ तदनन्तर समस्त दिशाओंमें अपनी नीली दृष्टि चलाता हुआ श्रीकण्ठ आश्चर्यसे भरे हुए उस वानरद्वीपमें उतरा ॥९०॥ वह द्वीप खजूर, आँवला, नीप, कैंथा, अगरु चन्दन, बड़, कोहा, कदम्ब, आम, अचार, केला, अनार, सुपारी, कंकोल, लौंग तथा अन्य अनेक प्रकारके सुन्दर-सुन्दर वृक्षोंसे सुशोभित था ॥९१-९२॥ वहाँ वे सब वृक्ष इतने सुन्दर जान पड़ते थे मानो पृथिवीको विदीर्ण कर मणिमय वृक्ष ही बाहर निकले हों और इसीलिए वे अपने ऊपर पड़ी हुई दृष्टिको अन्यत्र नहीं ले जाने देते थे ॥९३॥ उन सब वृक्षोंके तने सीधे थे, जहाँसे डालियाँ फूटती हैं ऐसे स्कन्ध अत्यन्त मोटे थे, ऊपर सघन पत्तोंकी राशियाँ छत्रोंके समान सुशोभित थीं, देदीप्यमान तथा कुछ नीचे की ओर झुकी हुई शाखाओंसे, फूलोंके समूहसे और मधुर फलोंसे वे सब उत्तम सन्तानको प्राप्त हुए-से जान पड़ते थे ॥९४-९५॥ वे सब वृक्ष न तो अत्यन्त ऊँचे थे, न अत्यन्त नीचे थे, हाँ, इतने अवश्य थे कि स्त्रियाँ उनके फूल, फल और पल्लवोंको अनायास ही पा लेती थीं ॥९६॥ जो गुच्छेरूपी स्तनोंसे मनोहर थीं, भ्रमर ही जिनके नेत्र थे, और चंचल पल्लव ही जिनके हाथ थे ऐसी लतारूपी स्त्रियाँ बड़े आदरसे उन वृक्षोंका आलिंगन कर रही थीं ॥९७॥ पक्षियोंके मनोहर शब्दसे वे वृक्ष ऐसे जान पड़ते थे मानो परस्परमें वार्तालाप ही कर रहे हों और भ्रमरोंकी मधुर झंकारसे ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो गा ही रहे हों ॥९८॥ कितने ही वृक्ष शंखके टुकड़ोंके समान सफेद कान्तिवाले थे, कितने ही स्वर्णके समान पीले रंगके थे, कितने ही कमलके समान गुलाबी रंगके थे और कितने ही वैदूर्यमणिके समान नीले वर्णके थे ॥९९॥

१. प्राप्तस्वर्ग- म. । २. इच्छता म. । ३. चिक्षिपन् म. । ४. समालापं ख. ।

एवं नानाविधास्तस्मिन् देशा विविधपादपैः । मण्डिता यान् समालोक्य स्वर्गंभूरपि नेक्ष्यते ॥१००॥
[1]जीवंजीवकयुग्मानां व्यक्तवाचां समं शुकैः । आलापः सारिकाभिश्च तस्मिन्नद्भुतकारणम् ॥१०१॥
ततः नानातरुच्छायामण्डलस्थेषु हारिषु । रत्नकाञ्चनदेहेषु पुष्पामोदानुलेपिषु ॥१०२॥
शिलातलेषु विश्रब्धं निविष्टः सेनया समम् । करणीयं च निःशेषं स चक्रे वपुषः सुखम् ॥१०३॥
ततो नानाप्रसूनानां हंससारसनादिनाम् । विमलोदकपूर्णानां सरसां मीनकम्पिनाम् ॥१०४॥
किरतां पुष्पनिकरं तरूणां च [2]महाश्रियाम् । जयशब्दमिवोद्गीर्णं कुर्वतां पक्षिनिःस्वनैः ॥१०५॥
नानारत्नचितानां च भूभागानां सुशोभया । युक्तं भ्रमति स द्वीपमितश्चेतश्च तं सुखी ॥१०६॥
ततः स विहरंस्तस्मिन्वने नन्दनसंनिभे । यथेच्छं क्रीडतोऽपश्यद् वानरान् बहुविभ्रमान् ॥१०७॥
अचिन्तयच्च वृष्टूनैतां सृष्टेरतिविचित्रताम् । तिर्यग्योनिगता ह्येते कथं मानुषसंनिभाः ॥१०८॥
वदनं पाणिपादं च शेषांश्चावयवानमी । दधते मानुषाकारांश्चेष्टां तेषां च संनिभाम् ॥१०९॥
ततस्तैर्महती रन्तुं प्रीतिरस्य [3]समुच्छ्रिता । यथा स्थिरोऽप्यसौ राजा नितान्तं प्रवणीकृतः ॥११०॥
जगाद च समासन्नान् पुरुषान् वदनेक्षिणः । एतानानयत क्षिप्रमिति विस्मितमानसः ॥१११॥
इत्युक्तैः शतशस्तस्य प्लवङ्गा गगनायनैः । उपनीताः प्रमोदेन कृतकेकिकलस्वनाः ॥११२॥
सुशीलैस्तैरसौ साकं रन्तुं प्रवृत्ते नृपः । नर्तयन् तालशब्देन बाहुभ्यां च परामृशन् ॥११३॥

इस तरह नाना प्रकारके वृक्षोंसे सुशोभित वहाँके प्रदेश नाना रंगके दिखाई देते थे। वे प्रदेश इतने सुन्दर थे कि उन्हें देखकर फिर स्वर्गके देखनेकी इच्छा नहीं रहती थी ॥१००॥ तोताओंके समान स्पष्ट बोलनेवाले चकोर और चकोरीका जो मैनाओंके साथ वार्तालाप होता था वह उस वानरद्वीपमें सबसे बड़ा आश्चर्यका कारण था ॥१०१॥

तदनन्तर वह श्रीकण्ठ, नाना प्रकारके वृक्षोंकी छायामें स्थित, फूलोंकी सुगन्धिसे अनुलिप्त, रत्नमय तथा सुवर्णमय शिलातलोंपर सेनाके साथ बैठा और वहीं उसने शरीरको सुख पहुँचानेवाले समस्त कार्य किये ॥१०२-१०३॥ तदनन्तर—जिनमें नाना प्रकारके पुष्प फूल रहे थे, हंस और सारस पक्षी शब्द कर रहे थे, स्वच्छ जल भरा हुआ था और जो मछलियोंके संचारसे कुछ-कुछ कम्पित हो रहे थे ऐसे मालाओंकी, तथा फूलोंके समूहकी वर्षा करनेवाले, महाकान्तिमान् और पक्षियोंकी बोलीके बहाने मानो जोर-जोरसे जय शब्दका उच्चारण करनेवाले वृक्षोंकी, एवं नाना प्रकारके रत्नोंसे व्याप्त भूभागों—प्रदेशोंकी सुषमासे युक्त उस वानर द्वीपमें श्रीकण्ठ जहाँ-तहाँ भ्रमण करता हुआ बहुत सुखी हुआ ॥१०४-१०६॥ तदनन्तर नन्दन वनके समान उस वनमें विहार करते हुए श्रीकण्ठने इच्छानुसार क्रीड़ा करनेवाले अनेक प्रकारके वानर देखे ॥१०७॥ सृष्टिकी इस विचित्रताको देखकर श्रीकण्ठ विचार करने लगा कि देखो ये वानर तिर्यंच योनिमें उत्पन्न हुए हैं फिर भी मनुष्यके समान क्यों हैं ? ॥१०८॥ ये वानर मुख, पैर, हाथ तथा अन्य अवयव भी मनुष्यके अवयवोंके समान ही धारण करते हैं। न केवल अवयव ही, इनकी चेष्टा भी मनुष्योंके समान है ॥१०९॥ तदनन्तर उन वानरोंके साथ क्रीड़ा करनेकी श्रीकण्ठके बहुत भारी इच्छा उत्पन्न हुई। यद्यपि वह स्थिर प्रकृतिका राजा था तो भी अत्यन्त उत्सुक हो उठा ॥११०॥ उसने विस्मित चित्त होकर मुखकी ओर देखनेवाले निकटवर्ती पुरुषोंको आज्ञा दी कि इन वानरोंको शीघ्र ही यहाँ लाओ ॥१११॥ कहनेकी देर थी कि विद्याधरोंने सैकड़ों वानर लाकर उनके समीप खड़े कर दिये। वे सब वानर हर्षसे कल-कल शब्द कर रहे थे ॥११२॥ राजा श्रीकण्ठ उत्तम स्वभावके धारक उन वानरोंके साथ क्रीड़ा करने लगा। कभी वह ताली बजाकर उन्हें नचाता था, कभी अपनी भुजाओंसे उनका स्पर्श करता था और कभी

१. चकोरयुगलाम् । २. महत्त्विषाम् म. । ३. -मिवोद्गीर्तं म. । ४. मानुषाकारां म. । ५. समुत्थिता म. । ६. वदनेक्षणः म. ।

[1]वीक्ष्यमाणः सितान् दन्तान् दाडिमीपुष्पलोहिते । अंचटीटे मुखे तेषां भास्वत्काञ्चनतारके ॥११४॥
यूकापनयनं पश्यन् विनयेन परस्परम् । प्रेम्णा च कलहं रम्यं कृतसोत्कारनिःस्वनम् ॥११५॥
शालिशूकसमच्छायान्मृदिमातिशयान्वितान् । विधूतान् मृदुवातेन केशान् सीमन्तभाजिनः ॥११६॥
कर्णान् विदूषकेंासक्ताश्रवणाकारधारिणः । नितान्तकोमलश्लक्ष्णानचलद्भुपुषां स्पृशन् ॥११७॥
विलोमानि नयँल्लोमान्युदरे मुष्टमाषिनि । उक्षिपंश्च भ्रुवोऽपाङ्गदेशान् रेखावतस्तथा ॥११८॥
ततस्ते तेन बहवः पुरुषाणां समर्पिताः । सृष्टाशनादिभिः कर्तुं पोषणं रतिहेतवः ॥११९॥
आरुह्यिल्का च तान् किष्कुमारोहद्दृष्टेंमानसः । आवकूटैर्लताभिश्च निर्झरैस्तरुभिस्तथा ॥१२०॥
तत्रापश्यत् स विस्तीर्णां वैषम्यरहितां भुवम् । गुप्तां प्रान्ते महामानैर्नगैभिः सोन्नतद्रुमैः ॥१२१॥
पुरं तत्र महच्छेन ख्यातं किष्कुपुराख्यया । निवेशितमरातीनां मानसस्यापि दुर्गमम् ॥१२२॥
प्रमाणं योजनान्यस्य चतुर्दश समन्ततः । त्रिगुणं परिवेषेण क्षेशतश्चाधिकं भवेत् ॥१२३॥
संमुखद्वारविन्यासा मणिकाञ्चनभित्तयः । प्रग्रीवकसमायुक्ता रत्नस्तम्भसमुच्छ्रिताः ॥१२४॥
कपोतपाल्युपान्तेषु महानीलविनिर्मिताः । रत्नभाभिर्निरस्तस्य ध्वान्तस्येवानुकम्पिताः ॥१२५॥

अनारके फूलके समान लाल, चपटी नाकसे युक्त एवं चमकीली सुनहली कनीनिकाओंसे युक्त उनके मुखमें उनके सफेद दाँत देखता था ॥११३-११४॥ वे वानर परस्परमें विनयपूर्वक एक दूसरेके जुएँ अलग कर रहे थे, और प्रेमसे खो-खो शब्द करते हुए मनोहर कलह करते थे। राजा श्रीकण्ठने यह सब देखा ॥११५॥ उन वानरोंके बाल धानके छिलकेके समान पीले थे, अत्यन्त कोमल थे, मन्द-मन्द वायुसे हिल रहे थे और माँगसे सुशोभित थे। इसी प्रकार उनके कान विदूषकके कानोंके समान कुछ अटपटा आकारवाले, अत्यन्त कोमल और चिकने थे। राजा श्रीकण्ठ उनका बड़े प्रेमसे स्पर्श कर रहा था और इस मोहनी सुरसुरीके कारण उनके शरीर निष्कम्प हो रहे थे ॥११६-११७॥ उन वानरोंके कृश पेटपर जो-जो रोम अस्तव्यस्त थे उन्हें यह अपने स्पर्शसे ठीक कर रहा था, साथ ही भौंहोंको तथा रेखासे युक्त कटाक्ष-प्रदेशोंको कुछ-कुछ ऊपरकी ओर उठा रहा था ॥११८॥ तदनन्तर श्रीकण्ठने प्रीतिके कारणभूत बहुत-से वानर मधुर अन्न-पान आदिके द्वारा पोषण करनेके लिए सेवकोंको सौंप दिये ॥ ११९ ॥ इसके बाद पहाड़के शिखरों, लताओं, निर्झरनों और वृक्षोंसे जिसका मन हरा गया था ऐसा श्रीकण्ठ उन वानरोंको लिवाकर किष्कु पर्वतपर चढ़ा ॥१२०॥ वहाँ उसने लम्बी-चौड़ी, विषमतारहित तथा अन्तमें ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंसे सुशोभित उत्तुंग पहाड़ोंसे सुरक्षित भूमि देखी ॥ १२१ ॥ उसी भूमिपर उसने किष्कुपुर नामका एक नगर बसाया। यह नगर शत्रुओंके शरीरकी बात तो दूर रहे मनके लिए भी दुर्गम था ॥ १२२ ॥ यह नगर चौदह योजन लम्बा-चौड़ा था और इसकी परिधि—गोलाई बयालीस योजनसे कुछ अधिक थी ॥ १२३ ॥ इस नगरमें विद्याधरोंने महलोंकी ऐसी-ऐसी ऊँची श्रेणियाँ बनाकर तैयार की थीं कि जिनके सामने उत्तुंग दरवाजे थे, जिनकी दीवालें मणि और सुवर्णसे निर्मित थीं, जो अच्छे-अच्छे बरण्डोंसे सहित थीं, रत्नोंके खम्भोंपर खड़ी थीं। जिनकी कपोतपालीके समीपका भाग महानील मणियोंसे बना था और ऐसा जान पड़ता था कि रत्नोंकी कान्तिने जिस अन्धकारको सब जगहसे खदेड़कर दूर कर किया था मानो उसे यहाँ अनुकम्पावश स्थान ही दिया गया था। जिन महलोंकी देहरी पद्मरागमणियोंसे निर्मित होनेके कारण लाल-लाल दिख रही थीं इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो ताम्बूलके द्वारा जिसकी लाली बढ़ गयी थी ऐसा ओठ ही धारण कर रही हों। जिनके दरवाजोंके ऊपर अनेक मोतियोंकी मालाएँ लटकायी गयी थीं

१. वीक्ष्यमाणः म., ख. । २. नते । ३. कृतसोत्कारनिःस्वनं ख. । ४. विदूषकान् सक्त क. । ५. -दधृत-मानसः म. । ६. कपोल -म. ।

देहलीपिण्डिकामानं पद्मरागविनिर्मितम् । ताम्बूलेनेव सन्ध्यायं धारयन्त्यो रदच्छदम् ॥१२६॥
द्वारोपरि समायुक्तमुक्तादामांशुसंपदा । हसन्त्य इव शेषाणां भवनानां सुरूपताम् ॥१२७॥
शशाङ्कसदृशाकारैर्मणिभिः शिखरास्थितैः । रजनीष्वपि कुर्वाणा संदेहं रजनीकरे ॥१२८॥
चन्द्रकान्तमणिच्छायाकल्पितोदारचन्द्रिकाः । नानारत्नप्रभापङ्क्तिसंदिग्धोल्लसितोरणाः ॥१२९॥
मणिकुट्टिमविन्यस्तरत्नपद्मावलिक्रियाः । पङ्क्तयस्तत्र गेहानां खेचरैर्विनिवेशिताः ॥१३०॥
शुष्कसागरविस्तीर्णा मणिकाञ्चनवालुकाः । राजमार्गाः कृतास्तस्मिन् कौटिल्यपरिवर्जिताः ॥१३१॥
प्राकारस्तत्र विन्यस्तो रत्नच्छायाकृताकृतिः । शिखराग्रैः श्रिया दर्पात् सौधर्ममिव ताडयन् ॥१३२॥
गोपुराणि च तुङ्गानि न्यस्तान्यत्र मरीचिभिः । मणीनां यानि लक्ष्यन्ते स्थगितानीव सर्वदा ॥१३३॥
पुरन्दरपुराकारे पुरे तस्मिन् चिराय सः । पद्मया सहितो रेमे शच्येव [1]विबुधाधिपः ॥१३४॥
भद्रशालवने [2]यानि तथा सौमनसे वने । नन्दने वा न तान्यस्य द्रव्याण्यासुर्दुरापताम् ॥१३५॥
कदाचिदथ तत्रासौ तिष्ठन् प्रासादमूर्धनि । व्रजन्तं [3]वन्दनामक्ष्मा द्वीपं नन्दीश्वरश्रुतिम् ॥१३६॥
पाकशासनमक्षिप्त सत्रा देवैश्चतुर्विधैः । मुकुटानां प्रभाजालैः पिशङ्गितनभस्तलम् ॥१३७॥
कुर्वन्तं बधिरं लोकं समस्तं तूर्यनिःस्वनैः । हरितगितिभिर्युक्तैर्वेगैर्वाहैर्महागुणैः ॥१३८॥
अन्यैश्च विविधैर्यानैः परिवर्गैरधिष्ठितैः । अन्वीयमानं दिव्येन गन्धेन व्याप्तविष्टपम् ॥१३९॥
ततस्तेन श्रुतं पूर्वं [4]मुनिभ्यः संकथागतम् । स्मृतं नन्दीश्वरद्वीपं नन्दनं स्वर्गवासिनाम् ॥१४०॥
स्मृत्वा च विबुधैः सार्द्धमकरोद् गमने मतिम् । खेचरैश्च समं सर्वैः समारूढो मरुत्पथम् ॥१४१॥
स गच्छन् क्रौञ्चयुक्तेन विमानेन सहाङ्गनः । मानुषोत्तरशैलेन निवारितगतिः कृतः ॥१४२॥

और जिनकी किरणोंसे वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो अन्य भवनोंकी सुन्दरताकी हँसी ही उड़ा रही हों। शिखरोंके ऊपर चन्द्रमाके समान आकारवाले मणि लगे हुए थे उनसे जो रात्रिके समय असली चन्द्रमाके विषयमें संशय उत्पन्न कर रहे थे। अर्थात् लोग संशयमें पड़ जाते थे कि असली चन्द्रमा कौन है ? चन्द्रकान्त मणियोंकी कान्तिसे जो भवन उत्तम चाँदनीकी शोभा प्रकट कर रहे थे तथा जिनमें लगे नाना रत्नोंकी प्रभासे ऊँचे-ऊँचे तोरणद्वारोंका सन्देह हो रहा था जिनके मणिनिर्मित फर्शोंपर रत्नमयी कमलोंके चित्राम किये गये थे ॥१२४-१३०॥ उस नगरमें कुटिलतासे रहित—सीधे ऐसे राजमार्ग बनाये गये थे जिनमें कि मणियों और सुवर्णकी धूलि बिखर रही थी तथा जो सूखे सागरके समान लम्बे-चौड़े थे ॥१३१॥ उस नगरमें ऊँचे-ऊँचे गोपुर बनाये गये थे जो मणियोंकी किरणोंसे सदा आच्छादित-से रहा करते थे ॥१३२॥ इन्द्रपुरके समान सुन्दर उस नगरमें राजा श्रीकण्ठ अपनी पद्माभा प्रियाके साथ, इन्द्र-इन्द्राणीके समान चिरकाल तक क्रीड़ा करता रहा ॥१३३॥ भद्रशालवन, सौमनसवन तथा नन्दनवनमें ऐसी कोई वस्तु नहीं थी जो उसे दुर्लभ रही हो ॥१३४॥ अथानन्तर किसी एक दिन राजा श्रीकण्ठ महलकी छतपर बैठा था उसी समय नन्दीश्वर द्वीपकी वन्दना करनेके लिए चतुर्विध देवोंके साथ इन्द्र जा रहा था। वह इन्द्र मुकुटोंकी कान्तिसे आकाशको पीतवर्ण कर रहा था, तुरही बाजोंके शब्दसे समस्त लोकको बधिर बना रहा था, अपने-अपने स्वामियोंसे अधिष्ठित हाथी, घोड़े, हंस, मेढ़ा, ऊँट, भेड़िया तथा हरिण आदि अन्य अनेक वाहन उसके पीछे-पीछे चल रहे थे, और उसकी दिव्य गन्धसे समस्त लोक व्याप्त हो रहा था ॥१३५-१३९॥ श्रीकण्ठने पहले मुनियोंके मुखसे नन्दीश्वर द्वीपका वर्णन सुना था सो देवोंको आनन्दित करनेवाला वह नन्दीश्वर द्वीप उसकी स्मृतिमें आ गया ॥१४०॥ स्मृतिमें आते ही उसने देवोंके साथ नन्दीश्वर द्वीप जानेका विचार किया। विचारकर वह समस्त विद्याधरोंके साथ आकाशमें आरूढ़ हुआ ॥१४१॥ जिसमें विद्यानिर्मित क्रौंचपक्षी जुते थे ऐसे विमानपर अपनी

---

१. इन्द्रः । २. याति म., ख. । ३. वन्दनां म. । ४. मुनिभिः म. ।

अतिक्रान्तौऽततो दृष्ट्वा मानुषोत्तरपर्वतम् । गीर्वाणनिवहान् सर्वान् परमं शोकमागतः ॥१४३॥
परिदेवमथो चक्रे भग्नोत्साहो गतद्युतिः । हा कष्टं क्षुद्रशक्तीनां मनुष्याणां धिगुन्नतिम् ॥१४४॥
नन्दीश्वरे जिनेन्द्राणां प्रतिमानां महाविषाम् । अकृत्रिमेण भावेन करिष्यामीति दर्शनम् ॥१४५॥
पूजां च विविधैः पुष्पैर्धूपैर्गन्धैश्च हारिभिः । नमस्कारं च शिरसा धरासंसक्तमौलिना ॥१४६॥
ये कृता मन्दभाग्येन मया चारुमनोरथाः । कथं ते कर्मभिर्भग्ना अशुभैः पूर्वसंचितैः ॥१४७॥
अथवा श्रुतमेवासीन्मया मानुषपर्वतम् । अतिक्रम्य न गच्छन्ति मानुषा इत्यनेकशः ॥१४८॥
तथापि श्रद्धया तस्मे नितान्तं वृद्धियुक्तया । विस्मृतं गन्तुमुद्युक्तो यतोऽस्मि स्वल्पशक्तिकः ॥१४९॥
तस्मात् करोमि कर्माणि तानि वैरग्यजन्मनि । यातुं नन्दीश्वरं द्वीपं गतिर्मे न विहन्यते ॥१५०॥
इति निश्चित्य मनसा न्यस्य राज्यभरं सुते । अभूत्सहामुनिर्धीरस्त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥१५१॥
वज्रकण्ठस्ततः साद्धं चारुण्या श्रियमुत्तमाम् । भुक्त्वा किष्कुपुरे रम्ये श्रुत्वोपाख्यानकं पितुः ॥१५२॥
[1]ऐश्वर्यं [2]तनये क्षिप्त्वा प्राप वैराग्यरीं क्रियाम् । कीदृशं तदुपाख्यानमित्युक्तो गणभृद्गौ ॥१५३॥
वणिजौ आसतुरावास्तां [3]प्रीतौ स्त्रीभ्यां वियोजितौ । कनीयान् दुर्विधो ज्येष्ठः स्वापतेयी गृहीतवाक्॥१५४॥
अन्विष्यन् संगमादेव प्राप्तः श्रावकतां पराम् । मृगयाजीविना भ्रात्रा परमं दुःखितोऽभवत् ॥१५५॥

प्रिया पद्माभाके साथ बैठकर राजा श्रीकण्ठ आकाशमार्गसे जा रहा था परन्तु जब मानुषोत्तर पर्वतपर पहुँचा तो उसका आगे जाना रुक गया ॥१४३॥ इसकी गति तो रुक गयी परन्तु देवोंके समूह मानुषोत्तर पर्वतको उल्लंघ कर आगे निकल गये। यह देख श्रीकण्ठ परम शोकको प्राप्त हुआ ॥१४४॥ उसका उत्साह भग्न हो गया और कान्ति नष्ट हो गयी। तदनन्तर वह विलाप करने लगा कि हाय-हाय, क्षुद्रशक्तिके धारी मनुष्योंकी उन्नतिको धिक्कार हो ॥१४५॥ 'नन्दीश्वर द्वीपमें जो जिनेन्द्र भगवान्‌की महाकान्तिशाली प्रतिमाएँ हैं मैं निश्छलभावसे उसके दर्शन करूँगा, नाना प्रकारके पुष्प, धूप और मनोहारी गन्धसे उनकी पूजा करूँगा तथा पृथ्वीपर मुकुट झुकाकर शिरसे उन्हें नमस्कार करूँगा' मुझ मन्दभाग्यने ऐसे जो सुन्दर मनोरथ किये थे वे पूर्वसंचित अशुभ कर्मोंके द्वारा किस प्रकार भग्न कर दिये गये ? ॥१४६-१४७॥ अथवा यद्यपि यह बात मैंने अनेक बार सुनी थी कि मनुष्य मानुषोत्तर पर्वतका उल्लंघन कर नहीं जा सकते हैं तथापि अतिशय वृद्धिको प्राप्त हुई श्रद्धाके कारण मैं इस बातको भूल गया और अल्पशक्तिका धारी होकर भी जानेके लिए तत्पर हो गया ॥१४८-१४९॥ इसलिए अब मैं ऐसे कार्य करता हूँ कि जिससे अन्य जन्ममें नन्दीश्वर द्वीप जानेके लिए मेरी गति रोकी न जा सके ॥१५०॥ ऐसा हृदयसे निश्चय कर श्रीकण्ठ, पुत्रके लिए राज्य सौंपकर, समस्त परिग्रहका त्यागी महामुनि हो गया ॥१५१॥

तदनन्तर श्रीकण्ठका पुत्र वज्रकण्ठ अपनी चारुणी नामक वल्लभाके साथ महामनोहर किष्कुपुरमें उत्कृष्ट राज्यलक्ष्मीका उपभोग कर रहा था कि उसने एक दिन वृद्धजनोंसे अपने पिताके पूर्वभव सुने। सुनते ही उसका वैराग्य बढ़ गया और पुत्रके लिए ऐश्वर्य सौंपकर उसने जिनदीक्षा धारण कर ली। यह सुनकर राजा श्रेणिकने गौतम गणधरसे पूछा कि श्रीकण्ठके पूर्वभवका वर्णन कैसा था जिसे सुनकर वज्रकण्ठ तत्काल विरक्त हो गया। उत्तरमें गणधर भगवान् कहने लगे ॥१५२-१५३॥ कि पूर्वभवमें दो भाई वणिक् थे, दोनोंमें परम प्रीति थी परन्तु स्त्रियोंने उन्हें पृथक्-पृथक् कर दिया। उनमें छोटा भाई दरिद्र था और बड़ा भाई धनसम्पन्न था। बड़ा भाई किसी सेठका आज्ञाकारी था सो उसके समागमसे वह श्रावक अवस्थाको प्राप्त हुआ परन्तु छोटा भाई शिकार आदि कुव्यसनोंमें फँसा था। छोटे भाईकी इस दशासे बड़ा भाई सदा दुःखी रहता था

---

१. ऐश्वर्यं म.। २. तनयं म.। ३. प्रीते म.। ४. स्वापतेयं धनमस्ति यस्य स स्वापतेयी धनवानित्यर्थः। ५. गृहीतवान् ख.।

[1]अलीकस्वाहृतस्वामिपुरुषस्य विसर्जने[2] । परीक्ष्य भ्रातरं प्रीतं ददावस्मै महद्धनम् ॥१५५॥
दुष्टां ततः स्त्रियं त्यक्त्वा संगीर्यानुजबोधनम् । प्रव्रज्याक्षममूदिन्द्रः कनीयांस्तु यमी मृतः ॥१५७॥
देवीभूयश्च्युतो जातः श्रीकण्ठस्तत्प्रबुद्धये । आत्मानं दर्शयन्निन्द्रः श्रीमान्नन्दीश्वरं गतः ॥१५८॥
सुरेन्द्रं वीक्ष्य पित्रा ते जातजातिस्मरणोद्यमाः । इदं कथितमस्माकमिति वृद्धास्तमूचिरे ॥१५९॥
एतदाख्यानकं श्रुत्वा वज्रकण्ठोऽभवन्मुनिः । इन्द्रायुधप्रभोऽप्येवं न्यस्य राज्यं शरीरजे ॥१६०॥
तस्य इन्द्रमतो जातो मेरुस्तस्माच्च मन्दरः । समीरणगतिस्तस्मात्तस्मादपि रविप्रभः ॥१६१॥
ततोऽमरप्रभो जातस्त्रिकूटेन्द्रसुतास्य च । परिणेतुं समानीता नाम्ना गुणवती शुभा ॥१६२॥
अथासौ दर्पणच्छाये वेदीसंबन्धिभूतले । मणिभिः कल्पितं चित्रं पश्यन्नाश्चर्यकारणम् ॥१६३॥
भ्रमरालीपरिष्वक्तमारविंदं क्वचिद्वनम् । ऐन्दीवरं वनं चार्द्धपद्मेन्दीवरकं तथा ॥१६४॥
चञ्चूपात्तमृणालानां हंसानां युगलानि च । क्रौञ्चानां सारसानां च तथाऽन्येषां पतत्रिणाम् ॥१६५॥
रत्नचूर्णैरतिश्लक्ष्णैः पञ्चवर्णसमन्वितैः । रचितान् खेचरस्त्रीभिः तत्रापश्यत् प्लवङ्गमान् ॥१६६॥
स तान् दृष्ट्वा परं तोषं जगामाम्बरगाधिपः । मनोज्ञं प्रायशो रूपं धीरस्यापि मनोहरम् ॥१६७॥
अथ[3] पाणिगृहीत्यस्य दृष्ट्वा तान् विकृताननान् । प्रत्यङ्गवेपथुं प्राप्ता प्रचलत्सर्वभूषणा ॥१६८॥

॥१५४–१५५॥ एक दिन उसने अपने स्वामीका एक सेवक छोटे भाईके पास भेजकर झूठ-मूठ ही अपने आहत होनेका समाचार भेजा। उसे सुनकर प्रेमसे भरा छोटा भाई दौड़ा आया। इस घटनासे बड़े भाईने परीक्षा कर ली कि यह हमसे स्नेह रखता है। यह जानकर उसने छोटे भाईके लिए बहुत धन दिया। धन देनेका समाचार जब बड़े भाईकी स्त्रीको मिला तो वह बहुत ही कुपित हुई। इस अनबनके कारण बड़े भाईने अपनी दुष्ट स्त्रीका त्याग कर दिया और छोटे भाईको उपदेश देकर दीक्षा ले ली। समाधिसे मरकर बड़ा भाई इन्द्र हुआ और छोटा भाई शान्त परिणामोंसे मरकर देव हुआ। वहाँसे च्युत होकर छोटे भाईका जीव श्रीकण्ठ हुआ। श्रीकण्ठको सम्बोधनेके लिए बड़े भाईका जीव जो वैभवशाली इन्द्र हुआ था अपने आपको दिखाता हुआ नन्दीश्वरद्वीप गया था। इन्द्रको देखकर तुम्हारे पिता श्रीकण्ठको जातिस्मरण हो गया। यह कथा मुनियोंने हमसे कही थी ऐसा वृद्धजनोंने वज्रकण्ठसे कहा ॥१५६–१५९॥

यह कथा सुनकर वज्रकण्ठ अपने वज्रप्रभ पुत्रके लिए राज्य देकर मुनि हो गया। वज्रप्रभ भी अपने पुत्र इन्द्रमतके लिए राज्य देकर मुनि हुआ। तदनन्तर इन्द्रमतसे मेरु, मेरुसे मन्दर, मन्दरसे समीरणगति, समीरणगतिसे रविप्रभ और रविप्रभसे अमरप्रभ नामक पुत्र हुआ। अमरप्रभ लंकाके धनीकी पुत्री गुणवतीको विवाहनेके लिए अपने नगर ले गया ॥१६०–१६२॥ जहाँ विवाहकी वेदी बनी थी वहाँकी भूमि दर्पणके समान निर्मल थी तथा वहाँ विद्याधरोंकी स्त्रियोंने मणियोंसे आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले अनेक चित्र बना रखे थे। कहीं तो भ्रमरोंसे आलिंगित कमलोंका वन बना हुआ था, कहीं नील कमलोंका वन था, कहीं आधे लाल और नीले कमलोंका वन था, कहीं चोंचसे मृणाल दबाये हुए हंसोंके जोड़े बने थे और कहीं क्रौंच, सारस तथा अन्य पक्षियोंके युगल बने थे। उन्हीं विद्याधरोंने कहीं अत्यन्त चिकने पाँच वर्णके रत्नमयी चूर्णसे वानरोंके चित्र बनाये थे सो इन्हें देखकर विद्याधरोंका स्वामी राजा अमरप्रभ परम सन्तोषको प्राप्त हुआ सो ठीक ही है क्योंकि सुन्दररूप प्रायःकर धीर-वीर मनुष्यके भी मनको हर लेता है ॥१६३–१६७॥ इधर राजा अमरप्रभ तो परम सन्तुष्ट हुआ, उधर वधू गुणवती विकृत मुखवाले उन वानरोंको देखकर भयभीत हो गयी। उसका प्रत्येक अंग काँपने लगा, सब आभूषण

१. व्यलीकं स्वाहितं ब.। २. विसर्जनम् म.। ३. पाणिगृहीतास्यं म., ख.।

निःशेषदृश्यविश्रान्ततारकाकुललोचना । दर्शयन्तीव[1] रोमाञ्चोद्गमादेहबहिर्गमम् ॥१६९॥
स्वेदोदबिन्दुसंबद्धविसर्पत्तिलकालिका । भीरुरप्यतिसच्चेष्टा प्राविशत्सुजपञ्जरम् ॥१७०॥
दृष्ट्वा यान् मुदितः पूर्वं तेभ्योऽकुप्यत् पुनर्वरः । कान्ताभिप्रायसामर्थ्यात् सुरूपमपि नेष्यते ॥१७१॥
ततोऽसावब्रवीत् केन विवाहे मम चित्रिताः । कपयो विविधाकारा अमी विस्रासकारिणः ॥१७२॥
नूनं कश्चिन्ममास्तेऽस्मिन् जनो मत्सरसंगतः । क्षिप्रमन्विष्यतामेष करोम्यस्य वधं स्वयम् ॥१७३॥
ततस्तं कोपगम्भीरगुहागह्वरवर्तिनम् । वर्षीयांसो महाप्राज्ञा मधुरं मन्त्रिणोऽब्रुवन् ॥१७४॥
तात नास्मिन् जनः कोऽपि विद्वेष्टा तव विद्यते । त्वयि वा यस्य विद्वेषः कुतस्तस्यास्ति जीवितम् ॥१७५॥
स त्वं मव प्रसन्नात्मा श्रूयतामत्र कारणम् । विवाहमङ्गले न्यस्ता यतः प्लवगपङ्क्तयः ॥१७६॥
अन्वये भवतामासीच्छ्रीकण्ठो नाम विश्रुतः । येनेदं नाकसंकाशं सृष्टं किष्कुपुरोत्तमम् ॥१७७॥
सकलस्यास्य देशस्य विविधाकारमाजिनः । अभवत् स नृपः सृष्टा प्रपञ्चः कर्मणामिव ॥१७८॥
यस्याद्यापि वनान्तेषु लतागृहसुखस्थिताः । गुणान् गायन्ति किन्नर्यः स्थानकं प्राप्य किन्नराः[2] ॥१७९॥
चञ्चलत्वसमुद्भूतमयशो येन शोधितम् । स्थिरप्रकृतिना लक्ष्म्या वासवोपमशक्तिना ॥१८०॥
स एतान् प्रथमं दृष्ट्वा वानरानत्र रूपिणः । मानुषाकारसंयुक्तान् जगाम किल विस्मयम् ॥१८१॥
रेमे च मुदितोऽमीभिः समं विविधचेष्टितैः । मृष्टाशनादिभिश्चामी नितान्तं सुस्थिताः कृताः ॥१८२॥

चंचल हो उठे, सबके देखते-देखते ही उसकी आँखोंकी पुतलियाँ भयसे घूमने लगीं, उसके सारे शरीरसे रोमांच निकल आये और उनसे वह ऐसे जान पड़ने लगी मानो शरीरधारी भयको ही दिखा रही हो। उसके ललाटपर जो तिलक लगा था वह स्वेदजलकी बूँदोंसे मिलकर फैल गया। यद्यपि वह भयभीत हो रही थी तो भी उसकी चेष्टाएँ उत्तम थीं। अन्तमें वह इतनी भयभीत हुई कि राजा अमरप्रभसे लिपट गयी ॥१६८-१७०॥ राजा अमरप्रभ पहले जिन वानरोंको देखकर प्रसन्न हुआ था अब उन्हीं वानरोंके प्रति अत्यन्त क्रोध करने लगा सो ठीक ही है क्योंकि स्त्रीका अभिप्राय देखकर सुन्दर वस्तु भी रुचिकर नहीं होती ॥१७१॥ तदनन्तर उसने कहा कि हमारे विवाहमें अनेक आकारोंके धारक तथा भय उत्पन्न करनेवाले ये वानर किसने चित्रित किये हैं ? ॥१७२॥ निश्चित ही इस कार्यमें कोई मनुष्य मुझसे ईर्ष्या करनेवाला है सो शीघ्र ही उसकी खोज की जाये, मैं स्वयं ही उसका वध करूँगा ॥१७३॥ तदनन्तर राजा अमरप्रभको क्रोधरूपी गहरी गुहाके मध्य वर्तमान देखकर महाबुद्धिमान् वृद्ध मन्त्री मधुर शब्दोंमें कहने लगे ॥१७४॥ कि हे स्वामिन् ! इस कार्यमें आपसे द्वेष करनेवाला कोई भी नहीं है। भला, आपके साथ जिसका द्वेष होगा उसका जीवन ही कैसे रह सकता है ? ॥१७५॥ आप प्रसन्न होइए और विवाह-मंगलमें जिस कारणसे वानरोंकी पंक्तियाँ चित्रित की गयी हैं वह कारण सुनिए ॥१७६॥ आपके वंशमें श्रीकण्ठ नामका प्रसिद्ध राजा हो गया है जिसने स्वर्गके समान सुन्दर इस किष्कुपुर नामक उत्तम नगरकी रचना की थी ॥१७७॥ जिस प्रकार कर्मोंका मूल कारण रागादि प्रपंच हैं उसी प्रकार अनेक आकार-को धारण करनेवाले इस देशका मूल कारण वही श्रीकण्ठ राजा है ॥१७८॥ वनोंके बीच निकुंजोंमें सुखसे बैठे हुए किन्नर उत्तमोत्तम स्थान पाकर आज भी उस राजाके गुण गाया करते हैं ॥१७९॥ जिसकी प्रकृति स्थिर थी तथा जो इन्द्रतुल्य पराक्रमका धारक था ऐसे उस राजाने चंचलताके कारण उत्पन्न हुआ लक्ष्मीका अपयश दूर कर दिया था ॥१८०॥ सुनते हैं कि वह राजा सर्वप्रथम इस नगरमें सुन्दर रूपके धारक तथा मनुष्यके समान आकारसे संयुक्त इन वानरोंको देखकर आश्चर्यको प्राप्त हुआ था ॥१८१॥ वह राजा नाना प्रकारकी चेष्टाओंको धारण करनेवाले इन वानरोंके साथ बड़ी प्रसन्नतासे क्रीड़ा करता था तथा उसीने इन वानरोंको मधुर आहार-पानी

---

१. दर्शयन्ती च म. । २. किन्नरास् म. । किन्नरान् क. ।

ततः प्रभृति ये जाताः कुले तस्य महाद्युतेः । तस्य भक्त्या रतिं तेऽपि चक्रुरेभिर्नरोत्तमाः ॥१८३॥
युष्माकं पूर्वजैर्यस्मादमी मङ्गलवस्तुषु । प्रकल्पिताः ततस्तेऽपि मङ्गले संनिधापिताः ॥१८४॥
मङ्गलं यस्य यत्पूर्वं पुरुषैः सेवितं कुले । प्रत्यवायेन संबन्धे निरासे तस्य जायते ॥१८५॥
क्रियमाणं तु तद्भक्त्या करोति शुभसंपदम् । तस्मादासेव्यतामेतद्भवतापि सुचेतसा ॥१८६॥
इत्युक्ते मन्त्रिभिः सोऽन्यं प्रत्युवाचामरप्रभः । त्यजन् क्षणेन कोपोत्थविकारं वदनार्पितम् ॥१८७॥
मङ्गलं सेविताः पूर्वैर्यदस्माकममी ततः । किमित्यालिखिता भूमौ यस्यां पादादिसंगमः ॥१८८॥
नमस्कृत्य वहाम्येतान् शिरसा गुरुगौरवात् । रत्नादिरचितान् कृत्वा लक्षणान्मौलिकोटिषु ॥१८९॥
ध्वजेषु गृहशृङ्गेषु तोरणानां च मूर्धसु । शिरस्सु चातपत्राणामेतानाशु प्रयच्छत ॥१९०॥
ततस्तैस्तत्प्रतिज्ञाय तथा सर्वमनुष्ठितम् । यथा दिगीक्ष्यते या या तत्र तत्र प्लवङ्गमाः ॥१९१॥
अथैतस्य समं देव्या भुञ्जानस्य परं सुखम् । विजयार्द्धजिगीषायामकरोन्मानसं पदम् ॥१९२॥
प्रतस्थे च ततो युक्तः सेनया चतुरङ्गया । कपिध्वजः कपिच्छत्रः कपिमौलिः [3]कपिस्तुतः ॥१९३॥
श्रेणिद्वयं विजित्यासौ रणे सत्त्वविमर्दिनि । आस्थापयद्वशे राजा जग्राह न धनं तयोः ॥१९४॥
अभिमानेन तुङ्गानां पुरुषाणामिदं व्रतम् । नमयन्त्येव यच्छत्रुं [4]न्नियते [5]विगताशयाः ॥१९५॥
ततोऽसौ पुनरागच्छत् पुरं किष्कु प्रतीच्छितम् । विजयार्द्धप्रधानेन अनेकपुरुषावृतः ॥१९६॥

आदिके द्वारा सुखी किया था ॥१८२॥ तदनन्तर महाकान्तिके धारक राजा श्रीकण्ठके वंशमें जो उत्तमोत्तम राजा हुए वे भी उसकी भक्तिके कारण इन वानरोंसे प्रेम करते रहे ॥१८३॥ चूँकि आपके पूर्वजोंने इन्हें मांगलिक पदार्थोंमें निश्चित किया था अर्थात् इन्हें मंगलस्वरूप माना था इसलिए ये सब चित्रामरूपसे इस मंगलमय कार्यमें उपस्थित किये गये हैं ॥१८४॥ जिस कुलमें जिस पदार्थकी पहलेसे पुरुषोंके द्वारा मंगलरूपमें उपासना होती आ रही है यदि उसका तिरस्कार किया जाता है तो नियमसे विघ्न-बाधाएँ उपस्थित होती हैं ॥१८५॥ यदि वही कार्य भक्तिपूर्वक किया जाता है तो वह शुभ सम्पदाओंको देता है। हे राजन्! आप उत्तम हृदयके धारक हैं—विचारशील हैं अतः आप भी इन वानरोंके चित्रामकी उपासना कीजिए ॥१८६॥ मन्त्रियोंके ऐसा कहनेपर राजा अमरप्रभने बड़ी सान्त्वनासे उत्तर दिया। क्रोधके कारण उसके मुखपर जो विकार आ गया था उत्तर देते समय उसने उस विकारका त्याग कर दिया था ॥१८७॥ उसने कहा कि यदि हमारे पूर्वजोंने इनकी मंगलरूपसे उपासना की है तो इन्हें इस तरह पृथिवीपर क्यों चित्रित किया गया है जहाँ कि पैर आदिका संगम होता है ॥१८८॥ गुरुजनोंके गौरवसे मैं इन्हें नमस्कार कर शिरपर धारण करूँगा। रत्न आदिके द्वारा वानरोंके चिह्न बनवाकर मुकुटोंके अग्रभागमें, ध्वजाओंमें, महलोंके शिखरोंमें, तोरणोंके अग्रभागमें तथा छत्रोंके ऊपर इन्हें शीघ्र ही धारण करो। इस प्रकार मन्त्रियोंको आज्ञा दी सो उन्होंने 'तथास्तु' कहकर राजाकी आज्ञानुसार सब कुछ किया। जिस दिशामें देखो उसी दिशामें वानर ही वानर दिखाई देते थे ॥१८९–१९१॥

अथानन्तर रानीके साथ परम सुखका उपभोग करते हुए राजा अमरप्रभके मनमें विजयार्ध पर्वतको जीतनेकी इच्छा हुई सो चतुरंग सेनाके साथ उसने प्रस्थान किया। उस समय उसकी ध्वजामें वानरोंका चिह्न था और सब वानरवंशी उसकी स्तुति कर रहे थे ॥१९२–१९३॥ प्राणियोंका मान मर्दन करनेवाले युद्धमें दोनों श्रेणियोंको जीतकर उसने अपने वश किया पर उनका धन नहीं ग्रहण किया ॥१९४॥ सो ठीक ही है क्योंकि अभिमानी मनुष्योंका यह व्रत है कि वे शत्रुको नम्रीभूत ही करते हैं, उसके धनकी आकांक्षा नहीं करते ॥१९५॥ तदनन्तर विजयार्द्ध पर्वतके प्रधान पुरुष जिसके पीछे-पीछे आ रहे थे ऐसा राजा अमरप्रभ दिग्विजय कर किष्कु नगर वापस

---

१. स्वाम्तं ख. । २. -मरप्रभुः । ३. कपिस्मृतिः क., ख. । ४. -न्नशो म. । ५. विगताशया म. ।

आधिपत्यं समस्तानां प्राप्य विद्याभृतामसौ । निश्चला बुभुजे लक्ष्मीं निगडैरिव संयुताम् ॥१९७॥
ततस्तस्य सुतो जातः कपिकेतुरभिख्यया । श्रीप्रभा कामिनी यस्य बभूव गुणधारिणी ॥१९८॥
ससौ विक्रमसंपन्नं स तं वीक्ष्य शरीरजम् । राज्यलक्ष्म्यां समायोज्य निरगाद् गृहबन्धनात् ॥१९९॥
दत्त्वा प्रतिबलायाथ लक्ष्मीं सोऽपि निरिर्ययौ । यातो निगदितोऽप्येष पूर्वैर्हन्त पराङ्मुखैः ॥२००॥
पूर्वोपार्जितपुण्यानां पुरुषाणां प्रयत्नतः । संजातासु न लक्ष्मीषु भावः संजायते महान् ॥२०१॥
यथैव ताः समुत्पन्नास्तेषामल्पप्रयत्नतः । तथैव त्यजतामेषां पीडा तासु न जायते ॥२०२॥
तथा कथंचिदासाद्य सन्तो विषयजं सुखम् । तेषु निर्वेदमागत्य वाञ्छन्ति परमं पदम् ॥२०३॥
[1]यत्नोपकरणैः साध्यमात्मायत्तं निरन्तरम् । [2]महदन्तेव निर्मुक्तं सुखं तत् को न वाञ्छति ॥२०४॥
सुतः प्रतिबलस्यापि गगनानन्दसंज्ञितः । तस्यापि खेचरानन्दस्तस्यापि गिरिनन्दनः ॥२०५॥
एवं वानरकेतूनां वंशे संख्या विवर्जिताः । आत्मीयैः कर्मभिः प्राप्ताः स्वर्गं मोक्षं च मानवाः ॥२०६॥
वंशानुसरणच्छाया मात्रमेतत्प्रकीर्त्यते । नामाप्येषां समस्तानां शक्तः कः परिकीर्तितुम् ॥२०७॥
लक्षणं यस्य यल्लोके स तेन परिकीर्त्यते । सेवकः सेवया युक्तः कर्षकः कर्षणात्तथा ॥२०८॥
धानुष्को धनुषो योगाद् धार्मिको धर्मसेवनात् । क्षत्रियः क्षततस्त्राणाद् ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यतः ॥२०९॥
इक्ष्वाकवो यथा जैते नमेश्च विनमेस्तथा । कुले विद्याधरा जाता विद्याधरणयोगतः ॥२१०॥

आया ॥१९६॥ इस प्रकार समस्त विद्याधरोंका आधिपत्य पाकर उसने चिरकाल तक लक्ष्मीका उपभोग किया। लक्ष्मी चंचल थी सो उसने बेड़ी डालकर ही मानो उसे निश्चल बना दिया था ॥१९७॥

तदनन्तर राजा अमरप्रभके कपिकेतु नामका पुत्र हुआ। उसके अनेक गुणोंको धरनेवाली श्रीप्रभा नामकी रानी थी ॥१९८॥ पुत्रको पराक्रमी देख राजा अमरप्रभ उसे राज्यलक्ष्मी सौंपकर गृहरूपी बन्धनसे बाहर निकला ॥१९९॥ तदनन्तर कपिकेतु भी प्रतिबल नामक पुत्रके लिए राज्यलक्ष्मी देकर घरसे चला गया सो ठीक ही है क्योंकि पूर्व पुरुष राज्यलक्ष्मीको प्रायः विषकी वेलके समान देखते थे ॥२००॥ जिन्होंने पूर्व पर्यायमें पुण्य उपार्जित किया है ऐसे पुरुषोंका प्रयत्नोपार्जित लक्ष्मीमें बड़ा अनुराग नहीं होता ॥२०१॥ पुण्यात्मा मनुष्योंको चूँकि लक्ष्मी थोड़े ही प्रयत्नसे अनायास ही प्राप्त हो जाती है इसलिए उसका त्याग करते हुए उन्हें पीड़ा नहीं होती ॥२०२॥ सत्पुरुष, विषय सम्बन्धी सुखको किसी तरह प्राप्त करते भी हैं तो उससे शीघ्र ही विरक्त हो परम पद—मोक्षकी इच्छा करने लगते हैं ॥२०३॥ जो सुख उपकरणोंके द्वारा साध्य न होकर आत्माके आधीन है, अन्तररहित है, महान् है तथा अन्तसे रहित है उस सुखकी भला कौन नहीं इच्छा करेगा ॥२०४॥ प्रतिबलके गगनानन्द नामका पुत्र हुआ, गगनानन्दके खेचरानन्द और खेचरानन्दके गिरिनन्दन पुत्र हुआ ॥२०५॥ इस प्रकार ध्वजामें वानरोंका चिह्न धारण करनेवाले वानरवंशियोंके वंशमें संख्यातीत राजा हुए सो उनमें अपने-अपने कर्मानुसार कितने ही स्वर्गको प्राप्त हुए और कितने ही मोक्ष गये ॥२०६॥ गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि राजन्! यह तो वंशमें उत्पन्न हुए पुरुषोंका छाया मात्रका निरूपण है। इन सब पुरुषोंका नामोल्लेख करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥२०७॥ लोकमें जिसका जो लक्षण होता है उसका उसी लक्षणसे उल्लेख होता है। जैसे सेवा करनेवाला सेवक, खेती करनेवाला किसान, धनुष धारण करनेवाला धानुष्क, धर्म सेवन करनेवाला धार्मिक, दुःखी जीवोंकी रक्षा करनेवाला क्षत्रिय और ब्रह्मचर्य धारण करनेवाला ब्राह्मण कहा जाता है। जिस प्रकार इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्न हुए पुरुष इक्ष्वाकु कहलाते हैं और नमि-विनमिके वंशमें उत्पन्न हुए पुरुष विद्या धारण करनेके कारण विद्याधर

---

१. यत्नोप -म.। २. महदं तेन म.।

परित्यज्य नृपो राज्यं श्रमणो जायते महान् । तपसा प्राप्य संबन्धं तपो हि श्रम उच्यते ॥२११॥
अर्थं तु व्यक्त पूर्वास्ति शब्दोऽन्यत्र प्रयोगवान् । यष्टिहस्तो यथा यष्टिः कुन्तः कुन्तकरस्तथा ॥२१२॥
मञ्चस्थाः पुरुषा मञ्चा यथा च परिकीर्तिताः । साहचर्यादिभिर्धर्मैरेवमाद्या उदाहृताः ॥२१३॥
तथा [illegible] छत्रादिविनिवेशिना । विद्याधरा गताः ख्यातिं वानरा इति विष्टपे ॥२१४॥
श्रेयसो देवदेवस्य वासुपूज्यस्य चान्तरे । अमरप्रभसंज्ञेन कृतं वानरलक्षणम् ॥२१५॥
तत्कुलान् सेवनाज्जाताः शेषा अपि तथाक्रियाः । परां हि कुरुते प्रीतिं पूर्वाचरितसेवनम् ॥२१६॥
एवं संक्षेपतः प्रोक्तः कपिवंशसमुद्भवः । प्रवक्ष्यामि परां वार्तामिमां श्रेणिक तेऽधुना ॥२१७॥
महोदधिरवो नाम खेचराणामभूत् पतिः । कुले वानरकेतूनां किष्कुनाम्नि पुरोत्तमे ॥२१८॥
विद्युत्प्रकाशा नामास्य पत्नी स्त्रीगुणसंपदाम् । निधानमभवद् भावगृहीतपतिमानसा ॥२१९॥
रामाणामभिरामाणां शतशो योपरि स्थिता । सौभाग्येन तु रूपेण विज्ञानेन तु कर्मभिः ॥२२०॥
पुत्राणां शतमेतस्य साष्टकं वीर्यशालिनाम् । येषु राज्यभरं न्यस्य स भोगान् बुभुजे सुखम् ॥२२१॥
मुनिसुव्रतनाथस्य तीर्थे यः परिकीर्तितः । व्यापारैरद्भुतैर्नित्यमनुरक्तिं खेचरः ॥२२२॥
लङ्कायां स तदा स्वामी रक्षोवंशनभोविधुः । विद्युत्केश इति ख्यातो बभूव जनताप्रियः ॥२२३॥
गत्यागमनसंबद्धमभूत् प्रेम परं तयोः । यतश्चित्तममूदेकं पृथक्त्वं देहमात्रतः ॥२२४॥
तडित्केशस्य विज्ञाय श्रामण्यमुदधिस्वनः । श्रमणत्वं परिप्राप्तः परमार्थविशारदः ॥२२५॥

कहे गये हैं। जो राजा राज्य छोड़कर तपके साथ अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं वे श्रमण कहलाते हैं क्योंकि श्रम करे सो श्रमण और तपश्चरण ही श्रम कहा जाता है ॥२०८–२११॥ इसके सिवाय यह बात तो स्पष्ट ही है कि शब्द कुछ है और उसका प्रयोग कुछ अन्य अर्थमें होता है जैसे जिसके हाथमें यष्टि है वह यष्टि, जिसके हाथमें कुन्त है वह कुन्त और जो मंचपर बैठा है वह मंच कहलाता है। इस तरह साहचर्य आदि धर्मोंके कारण शब्दोंके प्रयोगमें भेद होता है इसके उदाहरण दिये गये हैं ॥२१२–२१३॥ इसी प्रकार जिन विद्याधरोंके छत्र आदिमें वानरके चिह्न थे वे लोकमें 'वानर' इस प्रसिद्धिको प्राप्त हुए ॥२१४॥ देवाधिदेव श्रेयान्सनाथ और वासुपूज्य भगवान्के अन्तरालमें राजा अमरप्रभने अपने मुकुट आदिमें वानरका चिह्न धारण किया था सो उसकी परम्परामें जो अन्य राजा हुए वे भी ऐसा ही करते रहे। यथार्थमें पूर्वजोंकी परिपाटीका आचरण करना परम प्रीति उत्पन्न करता है ॥२१५–२१६॥ गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन्! इस तरह संक्षेपसे वानर-वंशकी उत्पत्ति कही है अब एक दूसरी बात कहता हूँ सो सुन ॥२१७॥ अथानन्तर किष्कुनामक उत्तम नगरमें इसी वानर-वंशमें महोदधि नामक विद्याधर राजा हुआ। इसकी विद्युत्प्रकाशा नामकी रानी थी जो स्त्रियोंके गुणरूपी सम्पदाओंकी मानो खजाना थी। उसने अपनी चेष्टाओंसे पतिका हृदय वश कर लिया था, वह सौभाग्य, रूप, विज्ञान तथा अन्य चेष्टाओंके कारण सैकड़ों सुन्दरी स्त्रियोंकी शिरोमणि थी ॥२१८–२२०॥ राजा महोदधिके एक सौ आठ पराक्रमी पुत्र थे सो उनपर राज्यभार सौंपकर वह सुखसे भोगोंका उपभोग करता था ॥२२१॥ मुनि सुव्रत भगवान्के तीर्थमें राजा महोदधि प्रसिद्ध विद्याधर था। वह अपने आश्चर्यजनक कार्योंसे सदा विद्याधरोंको अनुरक्त रखता था ॥२२२॥ उसी समय लंकामें विद्युत्केश नामक प्रसिद्ध राजा था। जो राक्षस वंशरूप आकाशका मानो चन्द्रमा था और लोगोंका अत्यन्त प्रिय था ॥२२३॥ महोदधि और विद्युत्केशमें परम स्नेह था जो कि एक दूसरेके यहाँ आने-जानेके कारण परम वृद्धिको प्राप्त हुआ था। उन दोनोंका चित्त तो एक था केवल शरीर मात्रसे ही दोनोंमें पृथक्पना था ॥२२४॥ विद्युत्केशने मुनिदीक्षा धारण कर ली

---

१. व म.। २. रक्षोवंशे नभोविधुः म.।

तडित्केशः कुतो हेतोराश्रितो दुर्द्धराकृतिम् । संपृष्टः श्रेणिकेनैवमुवाच गणनायकः ॥२२६॥
अन्यदाथ तडित्केशः प्रमदाढ्यं मनोहरम् । निष्क्रान्तो रन्तुमुद्यानं कृतक्रीडनकालयम् ॥२२७॥
पद्मेन्दीवरसम्पेषु सरःसु स्वच्छवारिषु । उद्यत्तरङ्गभङ्गेषु द्रोणीसंचारचारुषु ॥२२८॥
दोलासु च महार्हासु रचितासनभूमिषु । तुङ्गपादपसक्तासु तुरगेङ्गाप्रवृद्धिषु ॥२२९॥
ततः सोपानमार्गेषु रत्नरञ्जितसानुषु । द्रुमखण्डपरीतेषु हेमपर्वतकेषु च ॥२३०॥
फलपुष्पमनोज्ञेषु चलत्पल्लवशालिषु । लतालिङ्गितदेहेषु महीरुहचयेषु च ॥२३१॥
मुनिक्षोभसमासामर्थ्ययुक्तविभ्रमसंपदाम् । पुष्पादिप्रचयासक्तपाणिपल्लवशोभिनाम् ॥२३२॥
नितम्बवहनायासजातस्वेदाम्बुबिप्रुषाम् । कुचकम्पोच्छलत्स्थूलमुक्ताहारपुरःस्थिषाम् ॥२३३॥
निमज्जदुन्नतस्वल्पसूक्ष्मवलिमध्यविराजिताम् । निःश्वासाकृष्टमत्तालिवारणाकुलचेतसाम् ॥२३४॥
स्रस्ताम्बरसमालम्बिकराणां चलचक्षुषाम् । मध्यमास्थाय दाराणां स रेमे राक्षसाधिपः ॥२३५॥
अथ क्रीडनसक्तायां देव्यास्तस्य पयोधरौ । श्रीचन्द्राख्यां दधानायाः कपिना नखकोटिभिः ॥२३६॥
विपाटितौ स्वभावेन विनयप्रच्युतात्मना । नितान्तं खेद्यमानेन रुषा विकृतचक्षुषा ॥२३७॥
समाश्वास्य ततः कान्तां प्रगलत्स्तनशोणिताम् । निहतो बाणमाकृष्य तडित्केशेन वानरः ॥२३८॥

यह समाचार जानकर परमार्थके जाननेवाले महोदधिने मुनिदीक्षा धारण कर ली ॥२२५॥ यह कथा सुनकर श्रेणिक राजाने गौतम गणधरसे पूछा कि हे स्वामिन् ! विद्युत्केशने किस कारण कठिन दीक्षा धारण की। इसके उत्तरमें गणधर भगवान् इस प्रकार कहने लगे ॥२२६॥ कि किसी समय विद्युत्केश जिसमें क्रीड़ाके अनेक स्थान बने हुए थे ऐसे अत्यन्त सुन्दर प्रमदनामक वनमें क्रीड़ा करनेके लिए गया था सो वहाँ कभी तो वह उन सरोवरोंमें क्रीड़ा करता था जो कमल तथा नील कमलोंसे मनोहर थे, जिनमें स्वच्छ जल भरा था, जिनमें बड़ी-बड़ी लहरें उठ रही थीं तथा नावोंके संचारसे महामनोहर दिखाई देते थे ॥२२७-२२८॥ कभी उन बेशकीमती झूलोंपर झूलता था जिनमें बैठनेका अच्छा आसन बनाया गया था, जो ऊँचे वृक्षसे बँधे थे तथा जिनकी उछाल बहुत लम्बी होती थी ॥२२९॥ कभी उन सुवर्णमय पर्वतोंपर चढ़ता था जिनके ऊपर जानेके लिए सीढ़ियोंके मार्ग बने हुए थे, जिनके शिखर रत्नोंसे रंजित थे, और जो वृक्षोंके समूहसे वेष्टित थे ॥२३०॥ कभी उन वृक्षोंकी झुरमुटमें क्रीड़ा करता था जो फल और फूलोंसे मनोहर थे, जो हिलते हुए पल्लवोंसे सुशोभित थे और जिनके शरीर अनेक लताओंसे आलिंगित थे ॥२३१॥ कभी उन स्त्रियोंके बीच बैठकर क्रीड़ा करता था कि जिनके हाव-भाव-विलासरूप सम्पदाएँ मुनियोंको भी क्षोभित करनेकी सामर्थ्य रखती थीं, जो फूल आदि तोड़नेकी क्रियामें लगे हुए हस्तरूपी पल्लवोंसे शोभायमान थीं, स्थूल नितम्ब धारण करनेके कारण जिनके शरीरपर स्वेद जलकी बूँदें प्रकट हो रही थीं, स्तनोंके कम्पनसे ऊपरकी ओर उछलनेवाले बड़े-बड़े मोतियोंके हारसे जिनकी कान्ति बढ़ रही थी, जिसकी सूक्ष्म रेखाएँ कभी अन्तर्हित हो जाती थीं और कभी प्रकट दिखाई देती थीं ऐसी कमरसे जो सुशोभित थीं, श्वासोच्छ्वाससे आकर्षित मत्त भौंरोंके निराकरण करनेमें जिनका चित्त व्याकुल था, जो नीचे खिसके हुए वस्त्रको अपने हाथसे थामे हुई थीं तथा जिनके नेत्र इधर-उधर चल रहे थे। इस प्रकार राक्षसोंका राजा विद्युत्केश अनेक स्त्रियोंके बीच बैठकर क्रीड़ा कर रहा था ॥२३२-२३५॥ अथानन्तर राजा विद्युत्केशकी रानी श्रीचन्द्रा इधर क्रीड़ामें लीन थी उधर किसी वानरने आकर अपने नाखूनोंके अग्रभागसे उसके दोनों स्तन विदीर्ण कर दिये ॥२३६॥ जिस वानरने उसके स्तन विदीर्ण किये थे वह स्वभावसे ही अविनयी था, क्रोधसे अत्यन्त खेदको प्राप्त हो रहा था, उसके नेत्र विकृत दिखाई देते थे ॥२३७॥ तदनन्तर जिसके स्तनसे खून झड़ रहा था ऐसी वल्लभाको सान्त्वना

१. कम्पोज्झवलत् म. । २. पुर म. । ३. विद्यमानेन म. ।

वेगेन स ततो गत्वा पतितस्तत्र भूतले । तिष्ठन्ति मुनयो यत्र विहायस्तलचारिणः ॥२३९॥
ततस्तं वेपथुग्रस्तं सबाणं वीक्ष्य वानरम् । मुनीनामनुकम्पाऽभूत् संसारस्थितिवेदिनाम् ॥२४०॥
तस्मै पञ्चनमस्कारः सर्वत्यागसमन्वितः । धर्मदानसमुद्युक्तैरुपदिष्टस्तपोधनैः ॥२४१॥
ततः स विकृतां त्यक्त्वा तनुं वानरयोनिजाम् । महोदधिकुमारोऽभूत् क्षणेनोत्तमविग्रहः ॥२४२॥
ततो यावदसौ हन्तुं खेचरोऽन्यान् समुद्यतः । कपींस्तावदयं प्राप्तः कृतस्वतनुपूजनः ॥२४३॥
हन्यमानां नरैः क्रूरैर्दृष्ट्वा वानरसंहतिम् । अक्षे शैक्षिदसामर्थ्यात् कपीनां महतीं व्यधात् ॥२४४॥
दंष्ट्राङ्कुरकरालैस्तैर्वदनैर्भ्रूविकारिभिः । सिन्दूरसदृशच्छायैः कृतभीषणनिःस्वनैः ॥२४५॥
उत्क्षिप्य पर्वतान् केचित् केचिदुन्मूल्य पादपान् । आहत्य धरणीं केचित् पाणिनास्फाल्य चापरे ॥२४६॥
क्रोधसंभारसौद्राक्षा तूरोत्प्लवनकारिणः । बभणुर्वानराध्यक्षं खेचरं भिन्नचेतसम् ॥२४७॥
तिष्ठ तिष्ठ दुराचार मृत्योः संप्रति गोचरे । निहत्य वानरं पाप क्वाद्य शरणं कृतः ॥२४८॥
अभिधायेति तैः सर्वं व्योम पर्वतपाणिभिः । व्याप्तं तथा यथा तस्मिन् सूचीभेदोऽपि नेक्ष्यते ॥२४९॥
ततो विस्मयमापन्नस्तडित्केशो व्यचिन्तयत् । नेदं बलं प्लवङ्गानां किमप्यन्यदिदं भवेत् ॥२५०॥
ततो निरीहदेहोऽसौ माधुर्यमिश्रया गिरा । वानरान्विनयेनेदमब्रवीन्नयपण्डितः ॥२५१॥
सन्तो वदत के यूयं महाभासुरविग्रहाः । न प्रकृत्या प्लवङ्गानां शक्तिरेषा समीक्ष्यते ॥२५२॥

देकर उसने बाण द्वारा वानरको मार डाला ॥२३८॥ घायल वानर वेगसे भागकर वहाँ पृथ्वीपर पड़ा जहाँ कि आकाशगामी मुनिराज विराजमान थे ॥॥२३९॥ जिसके शरीरमें कँपकँपी छूट रही थी तथा बाण छिदा हुआ था ऐसे वानरको देखकर संसारकी स्थितिके जानकार मुनियोंके हृदयमें दया उत्पन्न हुई ॥२४०॥ उसी समय धर्मदान करनेमें तत्पर एवं तपरूपी धनके धारक मुनियोंने उस वानरके लिए सब पदार्थोंका त्याग कराकर पंचनमस्कार मन्त्रका उपदेश दिया ॥२४१॥ उसके फलस्वरूप वह वानर योनिमें उत्पन्न हुए अपने पूर्वविकृत शरीरको छोड़कर क्षणभरमें उत्तम शरीरका धारी महोदधिकुमार नामक भवनवासी देव हुआ ॥२४२॥ तदनन्तर इधर राजा विद्युत्केश जबतक अन्य वानरोंको मारनेके लिए उद्यत हुआ तबतक अवधिज्ञानसे अपना पूर्वभव जानकर महोदधिकुमार देव वहाँ आ पहुँचा। आकर उसने अपने पूर्व शरीरका पूजन किया ॥२४३॥ दुष्ट मनुष्योंके द्वारा वानरोंके समूह मारे जा रहे हैं यह देख उसने विक्रियाकी सामर्थ्यसे वानरोंकी एक बड़ी भारी सेना बनायी ॥२४४॥ उन वानरोंके मुख दाढ़ोंसे विकराल थे, उनकी भौंहें चढ़ी हुई थीं, सिन्दूरके समान लाल-लाल उनका रंग था और वे भयंकर शब्द कर रहे थे ॥२४५॥ कोई वानर पर्वत उखाड़कर हाथमें लिये थे, कोई वृक्ष उखाड़कर हाथमें धारण कर रहे थे, कोई हाथोंसे जमीन कूट रहे थे और कोई पृथ्वी झुला रहे थे ॥२४६॥ क्रोधके भारसे जिनके अंग महारुद्र—महाभयंकर दिख रहे थे और जो दूर-दूर तक लम्बी छलांगें भर रहे थे ऐसे मायामयी वानरोंने अतिशय कुपित वानरवंशी राजा विद्युत्केश विद्याधरसे कहा ॥२४७॥ कि अरे दुराचारी ! ठहर-ठहर, अब तू मृत्युके वश आ पड़ा है, अरे पापी ! वानरको मारकर अब तू किसकी शरणमें जायेगा ? ॥२४८॥ ऐसा कहकर हाथोंमें पर्वत धारण करनेवाले उन मायामयी वानरोंने समस्त आकाशको इस प्रकार व्याप्त कर लिया कि सुई रखनेको भी स्थान नहीं दिखाई देता था ॥२४९॥ तदनन्तर आश्चर्यको प्राप्त हुआ विद्युत्केश विचार करने लगा कि यह वानरोंका बल नहीं है, यह तो कुछ और ही होना चाहिए ॥२५०॥ तब शरीरकी आशा छोड़ नीतिशास्त्रका पण्डित विद्युत्केश मधुरवाणी द्वारा विनयपूर्वक वानरोंसे बोला ॥२५१॥ कि हे सत्पुरुषो ! कहो आप लोग कौन हो ? तुम्हारे शरीर अत्यन्त देदीप्यमान हो रहे हैं, तुम्हारी यह शक्ति वानरोंकी स्वाभाविक शक्ति तो नहीं दिखाई

१. यथास्मिंश्च म. ।

ततस्तं विनयोपेतं वृद्धा खेचरपुङ्गवम् । महोदधिकुमारेण वाक्यमेतदुदाहृतम् ॥२५३॥
तिर्यग्जातिस्वभावेन नितान्तं चपलस्त्वया । अपराद्धः[1] स्वजायायो हतो योऽसौ प्लवङ्गमः ॥२५४॥
सोऽहं साधुप्रसादेन संप्राप्तो देवतामिमाम् । महाशक्तिसमायुक्तो यथेच्छावाप्तसंपदाम् ॥२५५॥
विभूतिं मम पश्य त्वमिति चोक्त्वा परां श्रियम् । स तस्मै प्रकटीचक्रे महोदधिसुरोचिताम् ॥२५६॥
ततोऽसौ वेपथुं प्राप्तो भयात् सर्वशरीरगम् । विदीर्णहृदयो दृष्टरोमा विभ्रान्तलोचनः ॥२५७॥
महोदधिकुमारेण मा भैषीरिति चोदितः । जगाद गद्गदं वाक्यं किं करोमीति दुःखितः ॥२५८॥
ततस्तेन सुरेणासौ गुर्वन्तिकमुपाहृतः । ताभ्यां प्रदक्षिणीकृत्य कृतं तस्याङ्घिवन्दनम् ॥२५९॥
वानरेण सता प्राप्तं मया देवत्वमीदृशम् । गुरुं भवन्तमासाद्य वत्सलं सर्वदेहिनाम् ॥२६०॥
देवेनेत्यभिधायासौ स्तुतो वाग्भिः पुनः पुनः । अर्चितश्च महास्रग्भिः पादयोः प्रणतस्तथा ॥२६१॥
तदाश्चर्यं ततो दृष्ट्वा खेचरेण तपोधनः । संपृष्टः किं करोमीति जगाद वचनं हितम् ॥२६२॥
चतुर्ज्ञानोपगूढात्मा ममास्त्यत्र समीपगः । गुरुस्तस्यान्तिकं याम एष धर्मः सनातनः ॥२६३॥
आचार्ये म्रियमाणे यस्तिष्ठत्यन्तिकगोचरे । करोत्याचार्यकं मूढः शिष्यतां दूरमुत्सृजन् ॥२६४॥
नासौ शिष्यो न चाचार्यो निर्धर्मः स कुमार्गगः । सर्वतो भ्रंशमापातः स्वाचारात् साधुनिन्दितः ॥२६५॥
इत्युक्ते विस्मयोपेतौ जातौ देवनभश्चरौ । चक्रतुश्चेतसेदं च परिवारसमन्वितौ ॥२६६॥

पड़ती ॥२५२॥ तदनन्तर विद्याधरोंके राजा विद्युत्केशको विनयावनत देखकर महोदधिकुमारने यह वचन कहे ॥२५३॥ कि पशुजातिके स्वभावसे जो अत्यन्त चपल था तथा इसी चपलताके कारण जिसने तुम्हारी स्त्रीका अपराध किया था ऐसे जिस वानरको तूने मारा था वह मैं ही हूँ। साधुओंके प्रसादसे इस देवत्व पर्यायको प्राप्त हुआ हूँ। यह पर्याय महाशक्तिसे युक्त है तथा इच्छानुसार इसमें संपदाएँ प्राप्त होती हैं ॥२५४-२५५॥ तुम मेरी विभूतिको देखो यह कह कर उसने महोदधि कुमारदेवके योग्य अपनी उत्कृष्ट लक्ष्मी उसके सामने प्रकट कर दी ॥२५६॥ यह देख भयसे विद्युत्केशका सर्व शरीर काँपने लगा, उसका हृदय विदीर्ण हो गया, रोमांच निकल आये और आँखें घूमने लगीं ॥२५७॥ तब महोदधिकुमारने कहा कि डरो मत। देवकी वाणी सुन, दुःखी होते हुए विद्युत्केशने गद्गद वाणीमें कहा कि मैं क्या करूँ ? जो आप आज्ञा करो सो करूँ ॥२५८॥ तदनन्तर वह देव राजा विद्युत्केशको जिन्होंने पंच नमस्कार मन्त्र दिया था उन गुरुके पास ले गया। वहाँ जाकर देव तथा राजा विद्युत्केश दोनोंने प्रदक्षिणा देकर गुरुके चरणोंमें नमस्कार दिया ॥२५९॥ महोदधिकुमार देवने मुनिराजकी यह कहकर बार-बार स्तुति की कि मैं यद्यपि वानर था तो भी समस्त प्राणियोंसे स्नेह रखनेवाले आप ऐसे गुरुको पाकर मैंने यह देव पर्याय प्राप्त की है। यह कहकर उसने महामालाओंसे मुनिराज की पूजा की तथा चरणोंमें नमस्कार किया ॥२६०-२६१॥ यह आश्चर्य देखकर विद्याधर विद्युत्केशने मुनिराजसे पूछा कि हे देव ! मैं क्या करूँ ? मेरा क्या कर्तव्य है ? इसके उत्तरमें मुनिराजने निम्नांकित हितकारी वचन कहे कि चार ज्ञानके धारी हमारे गुरु पास ही विद्यमान हैं सो हम लोग उन्हींके समीप चलें, यही सनातन धर्म है ॥२६२-२६३॥ आचार्यके समीप रहने पर भी जो उनके पास नहीं जाता है और स्वयं उपदेशादि देकर आचार्यका काम करता है वह मूर्ख शिष्य, शिष्यपनाको दूरसे ही छोड़ देता है। वह न तो शिष्य रहता है और न आचार्य ही कहलाता है, वह धर्मरहित है, कुमार्गगामी है, अपने समस्त आचारसे भ्रष्ट है और साधुजनोंके द्वारा निन्दनीय है ॥२६४-२६५॥ मुनिराजके ऐसा कहनेपर देव और विद्याधर दोनों ही परम आश्चर्यको प्राप्त हुए। अपने-अपने परिवारके साथ उन्होंने मनमें

---

१. अपराधः म., ख. । २. महोदधिः सुरो-म. ।

अहो परममाहात्म्यं तपसो भुवनातिगम् । मुनेरेवंविधस्यापि यदन्यो विद्यते गुरुः ॥२६७॥
ततस्तस्योपकण्ठे ते साधुनाधिष्ठिता ययुः । देवाश्च व्योमयानाश्च धर्मोत्कण्ठितचेतसः ॥२६८॥
गत्वा प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्यादरतो मुनिम् । नातिदूरे न चात्यन्तसमीपे स्थितिमाश्रिताः ॥२६९॥
ततस्तां परमां मूर्तिं तपोराशिसमुत्थया । प्रज्वलन्तीं मुनेर्दीप्त्या[1] दृष्ट्वा देवनभश्चराः ॥२७०॥
चिन्तां कामपि संप्राप्ता धर्माचारसमुद्भवाम् । प्रफुल्लनयनाम्भोजा महाविनयसंगताः ॥२७१॥
ततो देवनभोधानावञ्जलिं न्यस्य मस्तके । पप्रच्छतुर्मुनिं धर्मं फलं चास्य यथोचितम् ॥२७२॥
ततो जन्तुहितासंगनिस्यप्रस्थितमानसः । संसारकारणासंगदूरीकृतसमीहितः ॥२७३॥
सजलाम्भोदगम्भीरधीरया श्रमणो गिरा । जगाद परमं धर्मं जगतोऽभ्युदयावहम् ॥२७४॥
तस्मिन् गदति तद्देशे लतामण्डपसंश्रिताः । ननृतुः शिखिसंघाता मेघनादविशङ्किनः[2] ॥२७५॥
समाधाय मनो धर्मः श्रूयतां सुरखेचरौ । यथा जिनैः समुद्दिष्टो भुवनानन्दकारिभिः ॥२७६॥
धर्मशब्दमात्रेण बहवः प्राणिनोऽधमाः । अधर्ममेव सेवन्ते विचारजडचेतसः ॥२७७॥
मार्गोऽयमिति यो गच्छेद् दिशमज्ञाय मोहवान् । द्राघीयसापि कालेन नेष्टं स्थानं स गच्छति ॥२७८॥
कथाकल्पितधर्माख्यमधर्मं मन्दमानसाः[3] । प्राणिघातादिभिर्जातं सेवन्ते विषयाश्रिताः ॥२७९॥
ते[4] तं भावेन संसेव्य मिथ्यादर्शनदूषिताः । तिर्यग्नरकदुःखानां प्रपद्यन्ते निधानताम् ॥२८०॥
कुहेतुजालसंपूर्णग्रन्थार्थैर्मुग्धबुद्धिकैः । धर्मोपलिप्सया मूढास्ताड्यन्ति नमस्तलम् ॥२८१॥

विचार किया कि अहो तपका कैसा लोकोत्तर माहात्म्य है कि ऐसे सर्वगुणसम्पन्न मुनिराजके भी अन्य गुरु विद्यमान हैं ॥२६६-२६७॥ तदनन्तर धर्मके लिए जिनका चित्त उत्कण्ठित हो रहा था ऐसे देव और विद्याधर उक्त मुनिराजके साथ उनके गुरुके समीप गये ॥२६८॥ वहाँ जाकर उन्होंने बड़े आदरके साथ प्रदक्षिणा देकर गुरुको नमस्कार किया और नमस्कारके अनन्तर न तो अत्यन्त दूर और न अत्यन्त पास किन्तु कुछ दूर हट कर बैठ गये ॥२६९॥ तदनन्तर तपकी राशिसे उत्पन्न दीप्तिसे देदीप्यमान मुनिराजकी उस उत्कृष्ट मुद्राको देखकर देव और विद्याधर धर्माचारसे समुद्भूत किसी अद्भुत चिन्ताको प्राप्त हुए। उस समय हर्ष और आश्चर्यसे सबके नेत्र-कमल प्रफुल्लित हो रहे थे तथा सभी महाविनयसे युक्त थे ॥२७०-२७१॥ तत्पश्चात् देव और विद्याधर दोनोंने हाथ जोड़ मस्तकसे लगाकर मुनिराजसे धर्म तथा उसके यथायोग्य फलको पूछा ॥२७२॥ तदनन्तर जिनका मन सदा प्राणियोंके हितमें लगा रहता था तथा जिनकी समस्त चेष्टाएँ संसारके कारणोंके सम्पर्कसे सदा दूर रहती थीं ऐसे मुनिराज सजल मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर वाणीसे जगत्का कल्याण करनेवाले उत्कृष्ट धर्मका निरूपण करने लगे ॥२७३-२७४॥ जब मुनिराज बोल रहे थे तब लतामण्डपमें स्थित मयूरोंके समूह मेघ गर्जनाकी शंका कर हर्षसे नृत्य करने लगे थे ॥२७५॥ मुनिराजने कहा कि हे देव और विद्याधरो! संसारका कल्याण करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्ने धर्मका जैसा स्वरूप कहा है वैसा ही मैं कहता हूँ आप-लोग मन स्थिर कर सुनो ॥२७६॥ जिनका चित्त विचार करनेमें जड़ है ऐसे बहुत-से अधम प्राणी धर्मके नाम पर अधर्मका ही सेवन करते हैं ॥२७७॥ जो मोही प्राणी गन्तव्य दिशाको जाने बिना 'यही मार्ग है' ऐसा समझ विरुद्धदिशामें जाता है वह दीर्घकाल बीत जाने पर भी इष्ट स्थान पर नहीं पहुँच सकता है ॥२७८॥ विचार करनेकी क्षमतासे रहित विषयलम्पटी मनुष्य, कथा-कहानियों द्वारा जिसे धर्म संज्ञा दी गई है ऐसे जीवघात आदिसे उत्पन्न अधर्मका ही सेवन करते हैं ॥२७९॥ मिथ्यादर्शनसे दूषित मनुष्य ऐसे अधर्मका अभिप्रायपूर्वक सेवनकर तिर्यंच तथा नरकगतिके दुःखोंके पात्र होते हैं ॥२८०॥ कुयुक्तियोंके जालसे परिपूर्ण ग्रन्थोंके अर्थसे मोहित

---

१. दीप्ता म. । २. विशङ्किताः म. । ३. मदमानसाः म. । ४. ते ते म. ।

यद्यपि स्यात् कचित्किञ्चिद्धर्मं प्रति[1] कुशासने । हिंसादिरहिताचारे शरीरक्लमदेशिनि[2] ॥२८२॥
सम्यग्दर्शनहीनत्वान्मूलच्छिन्नं तथापि[3] तत् । [4]नाज्ञानं क्षुद्रचारित्रं तेषां भवति मुक्तये ॥२८३॥
पार्थिवो लोष्टलेशोऽपि वैडूर्यमपि पार्थिवम् । न पार्थिवत्वसामान्यात्तयोस्तुल्यं गुणादिकम् ॥२८४॥
लोष्टुलेशसमो धर्मो मिथ्यादृग्भिः प्रकीर्तितः । वैडूर्यसदृशो जैनो धर्मसंज्ञा तु सर्वगा ॥२८५॥
धर्मस्य हि दया मूलं तस्या मूलमहिंसनम् । परिग्रहवतां पुंसां हिंसनं सततोऽखिलम् ॥२८६॥
तथा सत्यवचो धर्मस्तच्च यन्न परासुखम् । अदत्तादानभुक्तिश्च परनार्याश्च वर्जनम् ॥२८७॥
द्रविणादिषु संतोषो हृषीकाणां निवारणम् । तनूकृतिः कषायाणां विनयो ज्ञानसेविनाम् ॥२८८॥
व्रतमेतद् गृहस्थानां सम्यग्दर्शनचारिणाम् । आगाररहितानां तु शृणु धर्मं यथाविधि ॥२८९॥
पञ्चोदारव्रतोत्तुङ्गनागस्कन्धवर्तिनः । त्रिगुप्तिदृढनीरन्ध्रकङ्कटच्छन्नविग्रहाः ॥२९०॥
पादातेन[7] समायुक्ताः समित्या पञ्चभेदया । नानातपोमहातीक्ष्णशस्त्रयुक्तमनस्कराः ॥२९१॥
वृत्तं कषायसामन्तैर्मोहवारणवर्तिनम् । भवारातिं विनिघ्नन्ति निरम्बरमहानृपाः ॥२९२॥
सर्वारम्भपरित्यागे सम्यग्दर्शनसंगते । धर्मः[9] स्थितोऽनगाराणामेष धर्मः समासतः ॥२९३॥
त्रिलोकश्रीपरि[10]प्राप्तेर्धर्मोऽयं हेतुतां गतः । पुण्य एव परं प्रोक्तो मङ्गलं पुरुषोत्तमैः ॥२९४॥
अन्यः कस्तस्य कथ्येत धर्मस्य परमो गुणः । त्रिलोकशिखरं येन प्राप्यते सुमहासुखम् ॥२९५॥

प्राणी धर्म प्राप्त करनेकी इच्छासे बड़े-बड़े दण्डोंके द्वारा आकाशको ताडित करते हैं अर्थात् जिन कार्योंमें धर्मकी गन्ध भी नहीं उन्हें धर्म समझकर करते हैं ॥२८१॥ जिसमें प्रतिपादित आचार, हिंसादि पापोंसे रहित है तथा जिसमें शरीर-श्रम—कायक्लेशका उपदेश दिया गया है ऐसे किसी मिथ्याशासनमें भी यद्यपि थोड़ा धर्मका अंश होता है तो भी सम्यग्दर्शनसे रहित होनेके कारण वह निर्मूल ही है। ऐसे जीवोंका ज्ञानरहित क्षुद्र चारित्र मुक्तिका कारण नहीं है ॥२८२-२८३॥ मिट्टीका ढेला भी पार्थिव है और वैडूर्य मणि भी पार्थिव है सो पार्थिवत्व सामान्यकी अपेक्षा दोनोंके गुण आदिक एक समान नहीं हो जाते ॥२८४॥ मिथ्यादृष्टियोंके द्वारा निरूपित धर्म मिट्टीके ढेलेके समान है और जिनेन्द्र भगवान्‌के द्वारा निरूपित धर्म वैडूर्य मणिके समान है जब कि धर्म संज्ञा दोनोंमें ही समान है ॥२८५॥ धर्मका मूल दया है और दयाका मूल अहिंसा रूप परिणाम है। परिग्रही मनुष्योंके हिंसा निरन्तर होती रहती है ॥२८६॥ दयाके सिवाय सत्य वचन भी धर्म है परन्तु सत्य वचन वह कहलाता है कि जिससे दूसरेको दुःख न हो। अदत्तादानका त्याग करना, परस्त्रीका छोड़ना, धनादिकमें सन्तोष रखना, इन्द्रियोंका निवारण करना, कषायोंको कृश करना और ज्ञानी मनुष्योंकी विनय करना, यह सम्यग्दृष्टि गृहस्थोंका व्रत अर्थात् धर्मका विधिपूर्वक निरूपण करता हूँ सो सुनो ॥२८७-२८९॥ जो पंच महाव्रत रूपी उन्नत हाथीके स्कन्धपर सवार हैं, तीन गुप्ति रूपी मजबूत तथा निश्छिद्र कवचसे जिनका शरीर आच्छादित है, जो पंच समितिरूपी पैदल सिपाहियोंसे युक्त है, और जो नाना तपरूपी महातीक्ष्ण शस्त्रोंके समूहसे सहित हैं ऐसे दिगम्बर यति रूपी महाराजा, कषाय रूपी सामन्तोंसे परिवृत तथा मोह रूपी हाथीपर सवार संसार रूपी शत्रुको नष्ट करते हैं ॥२९०-२९२॥ जब सब प्रकारके आरम्भका त्याग किया जाता है और सम्यग्दर्शन धारण किया जाता है तभी मुनियोंका धर्म प्राप्त होता है। यह संक्षेपमें धर्मका स्वरूप समझो ॥२९३॥ यह धर्म ही त्रिलोक सम्बन्धी लक्ष्मीकी प्राप्तिका कारण है। उत्तम पुरुषोंने इस धर्मको ही उत्कृष्ट मंगलस्वरूप कहा है ॥२९४॥ जिस धर्मके द्वारा महासुखदायी त्रिलोकका

---

१. धर्मस्य लेशः धर्मं प्रति (अव्ययीभावसमासः)। २. देशिने म., ख.। ३. च म.। ४. न ज्ञानं म.। ५. स तदोद्भवम् म.। ६. त्रिगुप्त म.। ७. पदातीनां समूहः पादातं तेन। ८. महीतीक्ष्ण म.। ९. धर्मस्थिता-नगाराणा -म.। १०. प्राप्ते धर्मोऽयं म.।

सागारेण जनः स्वर्गे भुङ्क्ते भोगान्महागुणान् । देवीनिवहमध्यस्थो मानसेन समाहृतान् ॥२९६॥
निर्वाससां तु धर्मेण मोक्षं प्राप्नोति मानवः । अनौपम्यमनाबाधं सुखं यत्रान्तवर्जितम् ॥२९७॥
स्वर्गगास्तु पुनश्च्युत्वा प्राप्य दैगम्बरीं क्रियाम् । त्रिभिर्भवैः प्रपद्यन्ते प्रकृष्टाः परमं पदम् ॥२९८॥
काकतालीययोगेन प्राप्ता अपि सुरालयम् । कुयोनिषु पुनः पापा भ्रमन्त्येव कुतीर्थिनः ॥२९९॥
जैनमेवोत्तमं वाक्यं जैनमेवोत्तमं तपः । जैन एव परो धर्मो जैनमेव परं मतम् ॥३००॥
नगरं व्रजतः पुंसो वृक्षमूलादिसंगमः । नान्तरीयकतामेति यथा खेदनिवारणः ॥३०१॥
प्रस्थितस्य तथा मोक्षं जिनशासनवर्त्मना । देवविद्याधरादिश्रीरनुषङ्गेण जायते ॥३०२॥
विबुधेन्द्रादिभोगानां हेतुत्वं यत्प्रपद्यते । [2]जिनधर्मो न तच्चित्रं स हि स्वल्पात् सुकृतादपि ॥३०३॥
विपरीतं यदेतस्माद् गृहिश्रमणधर्मतः । चरितं तस्य संज्ञानमधर्मं इति कीर्तितम् ॥३०४॥
भ्रमन्ति येन तिर्यक्षु नानादुःखप्रदायिषु । वाहनाताडनाच्छेदाद्भेदाच्छीतोष्णसंगमात् ॥३०५॥
नित्यान्धकारयुक्तेषु नरकेषु च भूरिषु । तुषारपवनाघातकृतकम्पेषु केषुचित् ॥३०६॥
स्फुरत्स्फुलिङ्गरौद्राग्निज्वालालीढेषु केषुचित् । नानाकारमहारावयन्त्रव्याप्तेषु केषुचित् ॥३०७॥
सिंहव्याघ्रवृकश्येनगृध्रभल्लेषु केषुचित् । चक्रकर्करचक्रान्तासिशोचिर्वृष्टेषु केषुचित् ॥३०८॥

शिखर अर्थात् मोक्ष प्राप्त हो जाता है उस धर्मका और दूसरा कौन उत्कृष्ट गुण कहा जावे ? अर्थात् धर्मका सर्वोपरि गुण यही है कि उससे मोक्ष प्राप्त हो जाता है ॥२९५॥ गृहस्थ धर्मके द्वारा यह मनुष्य स्वर्गमें देवीसमूहके मध्यमें स्थित हो संकल्प मात्रसे प्राप्त उत्तमोत्तम भोगोंको भोगता है और मुनि धर्मके द्वारा उस मोक्षको प्राप्त होता है जहाँ कि इसे अनुपम, निर्बाध तथा अनन्त सुख मिलता है ॥२९६-२९७॥ स्वर्गगामी उत्कृष्ट मनुष्य स्वर्गसे च्युत होकर पुनः मुनिदीक्षा धारण करते हैं और दो तीन भवोंमें ही परम पद—मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं ॥२९८॥ परन्तु जो पापी—मिथ्यादृष्टि जीव हैं वे काकतालीयन्यायसे यद्यपि स्वर्ग प्राप्त कर लेते हैं तो भी वहाँसे च्युत हो कुयोनियोंमें ही भ्रमण करते रहते हैं ॥२९९॥ जिनेन्द्र भगवान्‌के द्वारा कथित वाक्य अर्थात् शास्त्र ही उत्तम वाक्य हैं, जिनेन्द्र भगवान्‌के द्वारा निरूपित तप ही उत्तम तप है, जिनेन्द्र भगवान्‌के द्वारा प्रोक्त धर्म ही परम धर्म है और जिनेन्द्र भगवान्‌के द्वारा उपदिष्ट मत ही परम मत है ॥३००॥ जिस प्रकार नगरकी ओर जानेवाले पुरुषको खेद निवारण करनेवाला जो वृक्षमूल आदिका संगम प्राप्त होता है वह अनायास ही प्राप्त होता है उसी प्रकार जिन शासन रूपी मार्गसे मोक्षकी ओर प्रस्थान करनेवाले पुरुषको जो देव तथा विद्याधर आदिकी लक्ष्मी प्राप्त होती है वह अनुषंगसे ही प्राप्त होती है—उसके लिए मनुष्यको प्रयत्न नहीं करना पड़ता है ॥३०१-३०२॥ 'जिनधर्म, इन्द्र आदिके भोगोंका कारण होता है' इसमें आश्चर्यकी बात नहीं है क्योंकि इन्द्र आदिके भोग तो साधारण पुण्य मात्रसे भी प्राप्त हो जाते हैं ॥३०३॥ इस गृहस्थ और मुनिधर्मके विपरीत जो भी आचरण अथवा ज्ञान है वह अधर्म कहलाता है ॥३०४॥ इस अधर्मके कारण यह जीव वाहन, ताडन, छेदन, भेदन तथा शीत उष्णकी प्राप्ति आदि कारणोंसे नाना दुःख देनेवाले तिर्यंचोंमें भ्रमण करता है ॥३०५॥ इसी अधर्मके कारण यह जीव निरन्तर अन्धकारसे युक्त रहनेवाले अनेक नरकोंमें भ्रमण करता है। इन नरकोंमें कितने ही नरक तो ऐसे हैं जिनमें ठण्डी हवाके कारण निरन्तर शरीर काँपता रहता है। कितने ही ऐसे हैं जो निकलते हुए तिलगोंसे भयंकर दिखनेवाली अग्निकी ज्वालाओंसे व्याप्त हैं। कितने ही ऐसे हैं जो नाना प्रकारके महाशब्द करनेवाले यन्त्रोंसे व्याप्त हैं। कितने ही ऐसे हैं जो विक्रियानिर्मित सिंह, व्याघ्र, वृक, बाज तथा गीध आदि जीवोंसे भरे हुए हैं। कितने ही ऐसे हैं जो चक्र, करौंत, भाला, तलवार आदिकी वर्षा

---

१. निवारिणः म., क. । २. जिनधर्मान्न ख. । ३. संज्ञा न धर्म म. ।

विलीनत्रिपुसीसादिपानदायिषु केषुचित् । तीक्ष्णतुण्डस्फुरत्कृमक्षिकादिषु केषुचित् ॥३०९॥
कृमिप्रकारसंमिश्ररक्तपङ्केषु केषुचित् । परस्परसमुद्भूतबाधाहेतुषु केषुचित् ॥३१०॥
एवंविधेषु जीवानां सदा दुःखविधायिषु । दुःखं यद्भरकेषु स्यात् कः शक्तस्तत्प्रकीर्तितुम् ॥३११॥
यतो यथा पुरा भ्रान्तौ युवां दुःखासु योनिषु । तथा पर्यटनं भूयः प्राप्स्यतो धर्मवर्जितौ ॥३१२॥
इत्युक्ताभ्यां पुनिपृष्टस्ताभ्यां श्रमणसत्तमः । कथं कुयोनिषु भ्रान्तावावामिति मुने वद ॥३१३॥
जन्मान्तरं ततोऽवोचत्तयोः संयममण्डनः । मनो निधीयतां वत्सावित्युक्त्वा मधुरं वचः ॥३१४॥
पर्यटन्तौ युवामत्र संसारे दुःखदायिनि । परस्परस्य कुर्वाणौ वधं मोहपरायणौ ॥३१५॥
मानुष्यभावमायातौ कथंचित् कर्मयोगतः । अयं हि दुर्लभो लोके धर्मोपादानकारणम् ॥३१६॥
व्याधस्तयोरभूदेको विषये काशिनामनि । श्रावस्त्यामपरोऽमात्यपदे स्थैर्यमुपागतः ॥३१७॥
सुयशोदत्तनामासौ प्रव्रज्यामाश्रितः क्षितौ । चचार तपसा युक्तो महताऽत्यन्तरूपवान् ॥३१८॥
ततस्तं सुस्थितं देशे काश्यां प्राणविवर्जिते । पूजनार्थं समायाताः सम्यग्दृष्टिकुलाङ्गनाः ॥३१९॥
स्त्रीभिस्ततः परीतं तं व्याधोऽसौ वीक्ष्य योगिनम् । अतीक्ष्णोद्गिरिभस्राभिः शस्त्रैः कुर्वन् विभीतिकाम् ॥३२०॥
निर्लज्जो वस्त्रमुक्तोऽयं स्नानवर्जितविग्रहः । मृगयायां प्रवृत्तस्य जातो मेऽमङ्गलं महत् ॥३२१॥
वदत्येवं ततो व्याधे धनुर्भीषणकारिणि । मुनेः कलुषतां प्राप्तं ध्यानं दुःखेन संभृतम् ॥३२२॥
इति वाचिन्तयत् क्रोधान्मुष्टिघातेन पापिनम् । कणशश्चूर्णयाम्येनं व्याधं रूक्षवचोमुचम् ॥३२३॥

करनेवाले वृक्षोंसे युक्त हैं। कितने ही ऐसे हैं जिनमें पिघलाया हुआ रांगा, सीसा आदि पिलाया जाता है। कितने ही ऐसे हैं जिनमें तीक्ष्णमुखवाली दुष्ट मक्खियाँ आदि विद्यमान हैं। कितने ही ऐसे हैं जिनमें रक्तकी कीचमें कृमिके समान अनेक छोटे-छोटे जीव बिलबिलाते रहते हैं और कितने ही ऐसे हैं जिनमें परस्पर—एक दूसरेके द्वारा दुःखके कारण उत्पन्न होते रहते हैं ॥३०६–३१०॥ इस प्रकारके सदा दुःखदायी नरकोंमें जीवोंको जो दुःख प्राप्त होता है उसे कहनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥३११॥ जिस प्रकार तुम दोनोंने पहले दुःख देनेवाली अनेक कुयोनियोंमें भ्रमण किया था यदि अब भी तुम धर्मसे वंचित रहते हो तो पुनः अनेक कुयोनियोंमें भ्रमण करना पड़ेगा ॥३१२॥ मुनिराजके यह कहनेपर देव तथा विद्याधरने उनसे पूछा कि हे भगवन् ! हम दोनोंने किस कारण कुयोनियोंमें भ्रमण किया है ? सो कहिए ॥३१३॥

तदनन्तर—'हे वत्सो ! मन स्थिर करो' इस प्रकारके मधुर वचन कहकर संयमरूपी आभूषणसे विभूषित मुनिराज उन दोनोंके भवान्तर कहने लगे ॥३१४॥ इस दुःखदायी संसारमें मोहसे उन्मत्त हो तुम दोनों एक दूसरेका वध करते हुए चिरकाल तक भ्रमण करते रहे ॥३१५॥ तदनन्तर किसी प्रकार कर्मयोगसे मनुष्य भवको प्राप्त हुए। निश्चयसे संसारमें धर्मप्राप्तिका कारणभूत मनुष्यभवका मिलना अत्यन्त कठिन है ॥३१६॥ उनमें-से एक तो काशी देशमें श्रावस्ती नगरीमें राजाका सुयशोदत्तनामा मन्त्री हुआ। सुयशोदत्त अत्यन्त रूपवान् था, कारण पाकर उसने दीक्षा ले ली और महातपश्चरणसे युक्त हो पृथ्वीपर विहार करने लगा ॥३१७॥ विहार करते हुए सुयशोदत्तमुनि काशी देशमें आकर किसी निर्जन्तु स्थानमें विराजमान हो गये। उनकी पूजाके लिए अनेक सम्यग्दृष्टि स्त्रियाँ आयी थीं सो पापी व्याध, स्त्रियोंसे घिरे उन मुनिको देख तीक्ष्ण वचनरूपी शस्त्रोंसे भय उत्पन्न करता हुआ बेधने लगा ॥३१८–३२०॥ यह निर्लज्ज नग्न, तथा स्नानरहित मलिन शरीरका धारक, शिकारके लिए प्रवृत्त हुए मुझको महा अमंगलरूप हुआ है ॥३२१॥ धनुषसे भय उत्पन्न करनेवाला व्याध जब उक्त प्रकारके वचन कह रहा था तब दुःखके कारण मुनिका ध्यान कुछ कलुषताको प्राप्त हो गया ॥३२२॥ क्रोधवश वे विचारने लगे कि रूक्ष वचन कहनेवाले इस पापी व्याधको मैं एक मुट्ठीके प्रहारसे कण-कण कर चूर्ण कर डालता हूँ ॥३२३॥

ततः कापिष्ठगमनं मुनिना चरुणार्जितम् । तदस्य क्रोधसंभारात् क्षणाद् भस्मसुपागतम् ॥३२४॥
ततोऽसौ कालधर्मेण युक्तो ज्योतिःसुरोऽभवत् । ततः प्रच्युत्य जातस्त्वं विद्युत्केशो नमश्चरः ॥३२५॥
व्याधोऽपि सुचिरं भ्रान्त्वा भवद्रुममहावने । लङ्काया प्रमदोद्याने शाखामृगगतिं गतः ॥३२६॥
ततोऽसौ निहतः स्वार्थं त्वया बाणेन चापलात् । प्राप्य पञ्चनमस्कारं जातोऽयं सागरामरः ॥३२७॥
एवं ज्ञात्वा पुनर्वैरं मुञ्चतं देवखेचरौ । मा भूद् भूयोऽपि संसारे भवतोः परिहिण्डनम् ॥३२८॥
वाञ्छितं नरमात्रेण शक्यं यत्र प्रशंसितुम् । सिद्धानां तत्सुखं भद्रौ भद्राचारपरायणौ ॥३२९॥
नमितं नमतां देवैराखण्डलपुरस्सरैः । भक्त्या परमया युक्तौ मुनिसुव्रतमीश्वरम् ॥३३०॥
शरणं प्राप्य तं नाथं निष्ठितात्मप्रतिक्रियम् । परकृत्यसमुद्युक्तं प्राप्स्यथः परमं सुखम् ॥३३१॥
ततो मुनिमुखादित्यान्निर्गतेन वचोंऽशुना । परं प्रबोधमानीतस्तडित्केशः सरोजवत् ॥३३२॥
सुकेशसंज्ञके पुत्रे संक्रमय्य निजं पदम् । शिष्यतामगमद्धीरो मुनेरम्बरचारिणः ३३३॥
सम्यग्दर्शनसंज्ञानसच्चारित्रत्रयं ततः । समाराध्यगतः कालं बभूवामरसत्तमः ॥३३४॥
ततः किष्कुपुरस्वामी महोदधिरवाभिधः । कान्तामिः सहितस्तिष्ठन् विद्युत्सदृशदीप्तिभिः ॥३३५॥
चन्द्रपादाश्रये रम्ये महाप्रासादमूर्धनि । चारुगोष्ठीसुधास्वादं बिभ्रन् देवेन्द्रवत्सुखम् ॥३३६॥
वेगेन महतागत्य धवलाम्बरधारिणा । खेचरेणाग्रतो भूत्वा कृत्वा प्रणतिमादरात् ॥३३७॥
निवेदितस्तडित्केशः प्रव्रज्यां कारणान्विताम् । प्राप्य भोगेषु निर्वेदं दीक्षणे मतिमादधे ॥३३८॥

मुनिने तपश्चरणके प्रभावसे कापिष्ठ स्वर्गमें जाने योग्य जो पुण्य उपार्जन किया था वह क्रोधके कारण क्षणभरमें नष्ट हो गया ॥३२४॥ तदनन्तर कुछ समताभावसे मरकर वह ज्योतिषीदेव हुआ। वहाँसे आकर तू विद्युत्केश नामक विद्याधर हुआ है ॥३२५॥ और व्याधका जीव चिरकाल तक संसाररूपी अटवीमें भ्रमणकर लंकाके प्रमदवनमें वानर हुआ ॥३२६॥ सो चपलता करनेके कारण स्त्रीके निमित्त तूने इसे बाणसे मारा। वही अन्तमें पंचनमस्कार मन्त्र प्राप्त कर महोदधि नामका देव हुआ है ॥३२७॥ ऐसा विचारकर हे देव विद्याधरो ! तुम दोनों अब अपना वैर-भाव छोड़ दो जिससे फिर भी संसारमें भ्रमण नहीं करना पड़े ॥३२८॥ हे भद्र-पुरुषो ! तुम भद्र आचरण करनेमें तत्पर हो इसलिए सिद्धोंके उस सुखकी अभिलाषा करो जिसकी मनुष्य-मात्र प्रशंसा नहीं कर सकता ॥३२९॥ इन्द्र आदि देव जिन्हें नमस्कार करते हैं ऐसे मुनिसुव्रत भगवान्‌को परमभक्तिसे युक्त हो नमस्कार करो ॥३३०॥ वे भगवान् आत्महितका कार्य पूर्ण कर चुके हैं। अब परहितकारी कार्य करनेमें ही संलग्न हैं सो तुम दोनों उनकी शरणमें जाकर परम सुखको प्राप्त करोगे ॥३३१॥ तदनन्तर मुनिराजके मुखरूपी सूर्यसे निर्गत वचनरूपी किरणोंसे विद्युत्केश कमलके समान परम प्रबोधको प्राप्त हुआ ॥३३२॥ फलस्वरूप वह धीर वीर, सुकेश नामक पुत्रके लिए अपना पद सौंपकर चारण ऋद्धि धारी मुनिराजका शिष्य हो गया अर्थात् उनके समीप उसने दीक्षा धारण कर ली ॥३३३॥ तदनन्तर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र इन तीनोंकी आराधना कर वह अन्तमें समाधिके प्रभावसे उत्तम देव हुआ ॥३३४॥

इधर किष्कपुरका स्वामी महोदधि, बिजलीके समान कान्तिको धारण करने वाली स्त्रियोंके साथ, जिस पर चन्द्रमाकी किरणें पड़ रहीं थीं ऐसे महामनोहर उत्तुंग भवनके शिखरपर सुन्दर गोष्ठी रूपी अमृतका स्वाद लेता हुआ इन्द्रके समान सुखसे बैठा था ॥३३५-३३६॥ कि उसी समय शुक्ल वस्त्रको धारण करने वाले एक विद्याधरने बड़े वेगसे आकर तथा सामने खड़े होकर आदर पूर्वक प्रणाम किया और तदनन्तर विद्युत्केश विद्याधरके दीक्षा लेनेका समाचार कहा। समाचार सुनते ही महोदधिने भोगोंसे विरक्त होकर दीक्षा लेनेका विचार किया ॥३३७-३३८॥

---

१. क्षणाद्भस्ममुपागतम् म० । २. वांछितं ख० । ३. -द्धीरो म० ।

प्रव्रजामीति चानेन गदितेऽन्तःपुराम्महान् । तदतिष्ठद् गृहान्तेषु विलापः प्रतिनादवान् ॥३३९॥
तन्त्रीवंशादिसंमिश्रमृदङ्गध्वनितोपमः । अविलापः सुनारीणां सुनेरप्यहरन्मनः ॥३४०॥
तवार्पितः परप्रीत्या तडित्केशेन बालकः । सुकेशो नवराज्यस्थः पालनीयः सुतोऽधुना ॥३४१॥
इति विज्ञाप्यमानोऽपि युवराजेन सादरम् । [1]नेत्रामेयजलस्थूलधारावर्षविधायिना ॥३४२॥
निष्कण्टकमिदं राज्यं भुङ्क्ष्व तावन्महागुणम् । पुरन्दर इवोदारैर्भोगैर्मानय यौवनम् ॥३४३॥
एवं संबोध्यमानोऽपि मन्त्रिभिर्दूनमानसैः । बहुभेदान्युदाहृत्य शास्त्राणि नयकोविदैः ॥३४४॥
अनाथानाथ नः कृत्वा त्वन्मनःस्थितमानसान् । विहाय प्रस्थितः क्वासि लता इव महाद्रुः ॥३४५॥
इति प्रसाद्यमानोऽपि चरणानतमूर्द्धभिः । [2]गुणोद्यप्रियकारीभिर्नारीभिः क्षरदश्रुभिः ॥३४६॥
गुणैर्नाथ तवोदारैर्बद्धां कालं चिरं सतीम् । प्रतिभज्य महालक्ष्मीं योजितां ललितां सदा ॥३४७॥
व्रजसि क्वेति सामन्तैर्गण्डास्तैरश्रुधारिभिः । समं विज्ञाप्यमानोऽपि नृपाटोपविवर्जितैः ॥३४८॥
छित्वा स्नेहमयान् पाशान् त्यक्त्वा सर्वपरिग्रहम् । प्रतिचन्द्राभिधानाय दत्त्वा पुत्राय संपदम् ॥३४९॥
विग्रहेऽपि निरासङ्गो जग्राहोग्रां समग्रधीः । धीरो दैगम्बरीं लक्ष्मीं क्ष्मातलस्थिरचन्द्रमाः ॥३५०॥
ततो ध्यानगजारूढस्तपस्तीक्ष्णपत्रिणा । शिरश्छित्वा भवारातेः प्रविष्टः सिद्धकाननम् ॥३५१॥
प्रतीन्दुरपि पुत्राय किष्किन्धाय ददौ श्रियम् । यौवराज्यं कनिष्ठाय तस्मै चान्ध्रकरूढये ॥३५२॥

महोदधिके यह कहते ही कि मैं दीक्षा लेता हूँ अन्तःपुरसे विलापका बहुत भारी शब्द उठ खड़ा हुआ। उस विलापकी प्रतिध्वनि समस्त महलोंमें गूँजने लगी ॥३३९॥ वीणा-बाँसुरी आदिके शब्दोंसे मिश्रित मृदंग ध्वनिकी तुलना करनेवाला स्त्रियोंका वह विलाप साधारण मनुष्यकी बात जाने दो मुनिके भी चित्तको हर रहा था अर्थात् करुणासे द्रवीभूत कर रहा था ॥३४०॥ उसी समय युवराज भी वहाँ आ गया। वह नेत्रोंमें नहीं समानेवाले जलकी बड़ी मोटी धाराको बरसाता हुआ आदरपूर्वक बोला कि विद्युत्केश अपने पुत्र सुकेशको परमप्रीतिके कारण आपके लिए सौंप गया है। वह नवीन राज्यपर आरूढ़ हुआ है इसलिए आपके द्वारा रक्षा करने योग्य है ॥३४१-३४२॥ जिनका हृदय दुखी हो रहा था ऐसे नीतिनिपुण मन्त्रियोंने भी अनेक शास्त्रोंके उदाहरण देकर प्रेरणा की कि इस महावैभवशाली निष्कण्टक राज्यका इन्द्रके समान उपभोग करो और उत्कृष्ट भोगोंसे यौवनको सफल करो ॥३४३-३४४॥ जिनके मस्तक चरणोंमें नम्रीभूत थे, जो अपने गुणोंके द्वारा उत्कट प्रेम प्रकट कर रही थीं तथा जिनकी आँखोंसे आँसू झर रहे थे ऐसी स्त्रियोंने भी यह कहकर उसे प्रसन्न करनेका प्रयत्न किया कि हे नाथ! जिनके हृदय आपके हृदयमें स्थित हैं ऐसी हम सबको अनाथ बनाकर लताओंको छोड़ वृक्षके समान आप कहाँ जा रहे हैं? ॥३४५-३४६॥ हे नाथ! यह मनोहर राज्यलक्ष्मी पतिव्रता स्त्रीके समान चिरकालसे आपके उत्कृष्ट गुणोंसे बद्ध है—आपमें आसक्त है इसे छोड़कर आप कहाँ जा रहे हैं? और जिनके कपोलोंपर अश्रु बह रहे थे ऐसे सामन्तोंने भी राजकीय आडम्बरसे रहित हो एक साथ प्रार्थना की पर सब मिलकर भी उसके मानसको नहीं बदल सके ॥३४७-३४८॥ अन्तमें उसने स्नेहरूपी पाशको छेदकर तथा समस्त परिग्रहका त्याग कर प्रतिचन्द्र नामक पुत्रके लिए राज्य सौंप दिया और शरीरमें भी निःस्पृह होकर कठिन दैगम्बरी लक्ष्मी—मुनिदीक्षा धारण कर ली। वह पूर्ण बुद्धिको धारण करनेवाला अतिशय गम्भीर था और अपनी सौम्यताके कारण ऐसा जान पड़ता था मानो पृथिवी तलपर स्थिर रहनेवाला चन्द्रमा ही हो ॥३४९-३५०॥ तदनन्तर ध्यानरूपी हाथीपर बैठे हुए मुनिराज महोदधि तपरूपी तीक्ष्ण बाणसे संसाररूपी शत्रुका शिर छेदकर सिद्धवन अर्थात् मोक्षमें प्रविष्ट हुए ॥३५१॥ तदनन्तर प्रतिचन्द्र भी अपने ज्येष्ठ पुत्र किष्किन्धके लिए राज्यलक्ष्मी और अन्ध्रकरूढि नामक छोटे पुत्रके लिए युवराज

---

१. नेत्रमेघ म.। २. गुणोद्यप्रिय म.।

अन्येद्युः प्रतिपन्नश्च जैनमार्गं निरम्बरम् । सिद्धैरासेवितं स्थानं गतश्चामलयोगतः ॥३५३॥
ततस्तावुद्यतौ कृत्यं भ्रातरौ भुवि चक्रतुः । अन्योन्याक्रान्ततेजस्कौ सूर्याचन्द्रमसाविव ॥३५४॥
अत्रान्तरे नभोगानां पर्वते दक्षिणक्षितौ[1] । रथनूपुरनामास्ति पुरं सुरपुराकृति[2] ॥३५५॥
आसीत्तत्रोभयोः श्रेण्योः स्वामी भूरिपराक्रमः । दधावशनिवेगाख्यो यः शत्रुत्रासकारिणीम् ॥३५६॥
पुत्रो विजयसिंहोऽस्य[3] नाम्नाऽऽदित्यपुरं परम् । याच्छन् रूपावलेपेन प्रयातोऽथ स्वयंवरम् ॥३५७॥
विद्यामन्दरसंज्ञस्य सुतामम्बरचारिणः । वेगवत्यां समुत्पन्नां कान्तिदिग्धनभस्तलाम् ॥३५८॥
अथासौ यौवनप्राप्तां वीक्ष्य पुत्रीं मनोहराम् । स्वजनानुमतो मोहात् स्वयंवरमरीरचत् ॥३५९॥
अपरेऽपि खगाः सर्वे विमानैर्मणिशालिभिः । पूरयन्तो नभः शीघ्रं गता भूषितविग्रहाः ॥३६०॥
ततो मञ्चेषु रम्येषु रत्नस्तम्भोद्गतात्मसु । तुङ्गासनसमूढेषु स्फुरन्मणिमरीचिषु ॥३६१॥
मितेन परिवारेण युक्ता देहोपयोगिना । उपविष्टा यथास्थानं प्रधाना व्योमचारिणः ॥३६२॥
श्रीमालायां ततस्तेषां सर्वेषां व्योमचारिणाम् । मध्यस्थायां समं पेतुर्दृष्टीन्दीवरपङ्क्तयः ॥३६३॥
अथ स्वयंवराशानां प्रवृत्ता व्योमचारिणाम् । मदनाश्लिष्टचित्तानामिति सुन्दरविभ्रमाः ॥३६४॥
निष्कम्पमपि मूर्द्धस्थं मुकुटं कश्चिदुन्नतम् । अकरोत् किल निष्कम्पं रत्नांशुच्छन्नपाणिना ॥३६५॥
कश्चित् कूर्परमाधाय कटिपार्श्वे सजृम्भणः । चक्रदेहस्य वलनं स्फुटत्सन्धिकृतस्वनम् ॥३६६॥
प्रदेशेऽपि स्थितां कश्चिदुज्ज्वलामसिपुत्रिकाम् । असारयत् कराग्रेण कटाक्षकृतवीक्षणाम् ॥३६७॥

पद देकर निर्ग्रन्थ दीक्षाको प्राप्त हुआ और निर्मल ध्यानके प्रभावसे सिद्धालयमें प्रविष्ट हो गया अर्थात् मोक्ष चला गया ॥३५२-३५३॥

तदनन्तर—जिनका तेज एक दूसरेमें आक्रान्त हो रहा था ऐसे सूर्य-चन्द्रमाके समान तेजस्वी दोनों भाई किष्किन्ध और अन्धकवृष्टि पृथिवीपर अपना कार्यभार फैलानेको उद्यत हुए ॥३५४॥ इसी समय विजयार्ध पर्वतकी दक्षिणश्रेणीमें इन्द्रके समान रथनूपुर नामका नगर था ॥३५५॥ उसमें दोनों श्रेणियोंका स्वामी महापराक्रमी तथा शत्रुओंको भय उत्पन्न करनेवाला राजा अशनिवेग रहता था ॥३५६॥ अशनिवेगका पुत्र विजयसिंह था। आदित्यपुरके राजा विद्यामन्दर विद्याधरकी वेगवती रानीसे समुत्पन्न एक श्रीमाला नामकी पुत्री थी। वह इतनी सुन्दरी थी कि अपनी कान्तिसे आकाशतलको लिप्त करती थी। विद्यामन्दरने पुत्रीको यौवनवती देख आत्मीयजनोंकी अनुमतिसे स्वयंवर रचवाया। अशनिवेगका पुत्र विजयसिंह श्रीमालाको चाहता था इसलिए रूपके गर्वसे प्रेरित हो स्वयंवरमें गया ॥३५७-३५९॥ जिनके शरीर भूषित थे ऐसे अन्य समस्त विद्याधर भी मणियोंसे सुशोभित विमानोंके द्वारा आकाशको भरते हुए स्वयंवरमें पहुँचे ॥३६०॥ तदनन्तर जो रत्नमय खम्भोंपर खड़े थे, ऊँचे-ऊँचे सिंहासनोंसे युक्त थे तथा जिनमें खचित मणियोंकी किरणें फैल रही थीं ऐसे मनोहर मंचोंपर प्रमुख-प्रमुख विद्याधर यथास्थान आरूढ़ हुए। उन विद्याधरोंके साथ उनकी शरीर-रक्षाके लिए उपयोगी परिमित परिवार भी था ॥३६१-३६२॥ तदनन्तर मध्यमें विराजमान श्रीमाला पुत्रीपर सब विद्याधरोंके नेत्ररूपी नीलकमल एक साथ पड़े ॥३६३॥ तदनन्तर जिनकी आशा स्वयंवरमें लग रही थी और जिनका चित्त कामसे आलिंगित था ऐसे विद्याधरोंमें निम्नांकित सुन्दर चेष्टाएँ प्रकट हुईं ॥३६४॥ किसी विद्याधरके मस्तकपर स्थित उन्नत मुकुट, यद्यपि निश्चल था तो भी वह उसे रत्नोंकी किरणोंसे आच्छादित हाथके द्वारा निश्चल कर रहा था ॥३६५॥ कोई विद्याधर कोहनी कमरके पास रख जमुहाई लेता हुआ शरीरको मोड़ रहा था—अँगड़ाई ले रहा था। उसकी इस क्रियासे शरीरके सन्धि-स्थान चटककर शब्द कर रहे थे ॥३६६॥ कोई

---

१. दक्षिणे स्थितौ म. । २. कृतिः म., ख. । ३. सिंहश्च म. । ४. दृष्टेन्दुवर म. ।

पार्श्वगे पुरुषे कश्चिच्चलयत्येव चामरम् । सलीलमंशुकान्तेन चक्रे वीजनमात्मने ॥३६८॥
सव्येन वक्त्रमाच्छाद्य कश्चिदुत्तलपाणिना । संकोच्य दक्षिणं बाहुं व्याक्षिपद् बद्धमुष्टिकम् ॥३६९॥
पादासनस्थितं कश्चिदुद्यम्य चरणं शनैः । वामोरुफलके चक्रे दक्षिणं रतिदक्षिणः ॥३७०॥
पादाङ्गुष्ठेन कश्चिच्च नेत्रान्तेक्षितकन्यकः । कृत्वा पाणितले गण्डं लिलेख चरणासनम् ॥३७१॥
गाढमप्यपरो बद्धमुन्मुच्य कटिसूत्रकम् । [illegible] शनकैर्[illegible]: शेषागमपि [illegible] ॥३७२॥
स्फुटदन्योऽन्यसंदष्टप्रोत्तानविकराङ्गुलिः । वक्षः कश्चित्समुद्यम्य बहुतोरणमूर्ध्वयन् ॥३७३॥
पार्श्वस्थस्यापरो हस्तं सव्युरास्फाल्य सस्मितम् । कथां चक्रे विना हेतोः कन्याक्षिप्तचलेक्षणः ॥३७४॥
कृतचन्दनचर्चेऽन्यः कुङ्कुमस्थासकाङ्किते । चक्षुर्वक्षसि विक्षेप विशाले कृतहस्तके ॥३७५॥
कश्चित्कुन्तलमालस्थां गृहीत्वा केशवल्लरीम् । कुटिलामपि वामायां प्रदेशिन्यामयोजयत् ॥३७६॥
अधरं कश्चिदाकृष्य वामहस्तेन मन्थरम् । स्वच्छताम्बूलसच्छायमैक्षिष्ट भ्रुवमुन्नयन् ॥३७७॥
अपरोऽभ्रमयत् पद्मं बद्धभ्रमरमण्डलम् । सव्येतरेण हस्तेन विसर्पन् कर्णिकारजः ॥३७८॥
वीणाभिर्वेणुभिः शङ्खैर्मृदङ्गैर्झल्लरैस्तथा । जनितोऽथ महानादः काहलानकमर्दकैः ॥३७९॥
मङ्गलानि प्रयुक्तानि वन्दिभिर्बद्धैर्वृन्दकैः । महापुरुषचेष्टाभिर्निर्वृत्तानि प्रमोदिभिः ॥३८०॥
महानादस्य तस्यान्ते धात्री नाम्ना सुमङ्गला । वामेतरकरोपात्तहेमवेत्रलता ततः ॥३८१॥

विद्याधर बगलमें रखी हुई देदीप्यमान छुरीको हाथके अग्रभागसे चला रहा था तथा बार-बार उसकी ओर कटाक्षसे देखता था ॥३६७॥ यद्यपि पासमें खड़ा पुरुष चमर ढोर रहा था तो भी कोई विद्याधर वस्त्रके अंचलसे लीलापूर्वक मुखके ऊपर हवा कर रहा था ॥३६८॥ कोई एक विद्याधर, जिसकी हथेली ऊपरकी ओर थी ऐसे बायें हाथसे मुँह ढँककर, जिसकी मुट्ठी बँधी थी ऐसी दाहिनी भुजाको संकुचित कर फैला रहा था ॥३६९॥ कोई एक रतिकुशल विद्याधर, पादासनपर रखे दाहिने पाँवको उठाकर धीरे-से बायीं जाँघपर रख रहा था ॥३७०॥ कन्याकी ओर कटाक्ष चलाता हुआ कोई एक युवा हथेलीपर कपोल रखकर पैरके अँगूठेसे पादासनको कुरेद रहा था ॥३७१॥ जिसमें लगा हुआ मणियोंका समूह शेषनागके समान जान पड़ता था ऐसे कसकर बँधे हुए कटिसूत्र-को खोलकर कोई युवा उसे फिर से धीरे-धीरे बाँध रहा था ॥३७२॥ कोई एक युवा दोनों हाथोंकी चटचटाती अँगुलियोंको एक दूसरेमें फँसाकर ऊपरकी ओर कर रहा था तथा सीना फुलाकर भुजाओंका तोरण खड़ा कर रहा था ॥३७३॥ जिसकी चंचल आँखें कन्याकी ओर पड़ रही थीं ऐसा कोई एक युवा बगलमें बैठे हुए मित्रका हाथ अपने हाथमें ले मुसकराता हुआ निष्प्रयोजन कथा कर रहा था—गप-शप लड़ा रहा था ॥३७४॥ कोई एक युवा, जिसपर चन्दनका लेप लगानेके बाद केशरका तिलक लगाया था तथा जिसपर हाथ रखा था ऐसे विशाल वक्षस्थलपर दृष्टि डाल रहा था ॥३७५॥ कोई एक विद्याधर ललाटपर लटकते हुए घुँघराले बालोंको बायें हाथकी प्रदेशिनी अँगुलीमें फँसा रहा था ॥३७६॥ कोई एक युवा स्वच्छ ताम्बूल खानेसे लाल-लाल दिखनेवाले ओठको धीरे-धीरे बायें हाथसे खींचकर भौंह ऊपर उठाता हुआ देख रहा था ॥३७७॥ और कोई एक युवा कर्णिकाकी परागको फैलाता हुआ दाहिने हाथसे जिसपर भौंरे मँडरा रहे थे ऐसा कमल घुमा रहा था ॥३७८॥ उस समय स्वयंवर मण्डपमें वीणा, बाँसुरी शंख, मृदंग, झालर, काहल, भेरी और मर्दक नामक बाजोंसे उत्पन्न महाशब्द हो रहा था ॥३७९॥ महापुरुषोंकी चेष्टाएँ देख जो मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे तथा जिन्होंने अलग-अलग अपने झुण्ड बना रखे थे ऐसे बन्दीजनोंके द्वारा मंगल पाठका उच्चारण हो रहा था ॥३८०॥ तदनन्तर महाशब्दके शान्त होनेके बाद दाहिने हाथमें स्वर्णमय छड़ीको धारण करनेवाली सुमंगला धाय कन्यासे निम्न वचन बोली। उस समय

---

१. संदष्टः । २. मूर्द्धनि ख. । ३. मण्डलैः म., मुड्डुकैः क. । ४. वृद्ध-म. ।

जगाद वचनं कन्यां विनयादाननाननाम् । प्राप्तकल्पलताकारां मणिहेमविभूषणैः ॥३८२॥
सख्यं सन्यस्तविश्रंसिमृदुपाणिसरोरुहाम् । ऊर्ध्वस्थिता स्थितामूर्ध्वं मकरध्वजवर्णिनीम् ॥३८३॥
नभस्तिलकनाम्नोऽयं नगरस्य पतिः सुते । उत्पन्नो विमलायां च चन्द्रकुण्डलभूपतेः ॥३८४॥
मार्तण्डकुण्डलो नाम्ना मार्तण्डविजयी रुचा । प्रकाण्डतां परां प्राप्तो मण्डलाद्यो गुणात्मकः ॥३८५॥
गुणचिन्ताप्रवृत्तासु गोष्ठीष्वस्यादितो बुधाः । नाम गृह्णन्ति रोमाञ्चकण्टकव्याप्तविग्रहाः ॥३८६॥
साकमेतेन रन्तुं चेद्दस्ति ते मनसः स्पृहा । वृणीष्वैनं ततो दृष्टसमस्तग्रन्थसंगमम् ॥३८७॥
ततस्तं यौवनादीषत्प्रच्युतं खेचराधिपम् । आननानतिमात्रेण प्रत्याख्यातवती शुभा ॥३८८॥
भूयोऽवदत्ततो धात्री तनये यच्छ लोचने । पुरुषाणामधीशेऽस्मिन् कान्तिदीप्तिविभूतिभिः ॥३८९॥
अयं रत्नपुराधीशो लक्ष्मीविद्याङ्गयोः सुतः । नाम्ना विद्यासमुद्घातो बहुविद्याधराधिपः ॥३९०॥
अस्य नाम्नि गते कर्णजाहं वीरप्रवर्तने । शत्रवो गृह्णते वायुधूताश्वत्थदलस्थितम्[1] ॥३९१॥
अस्य वक्षसि विस्तीर्णे कृतहारोपधानके । कुनृपभ्रान्तिभिः खिन्ना लक्ष्मीर्विश्रान्तमागता ॥३९२॥
अस्याङ्के यदि ते प्रीतिः स्थातुमस्ति मनोहरे । गृहाणैनं तडिन्माला युज्यतां मन्दराद्रिणा ॥३९३॥
ततः प्रत्याचचक्षे तं चक्षुषैवर्जुदर्शनात्[2] । वाञ्छिते हि वरत्वेन दृष्टिश्चञ्चलतां व्रजेत् ॥३९४॥
ततोऽसौ तदभिप्रायवेदिनी तां सुमङ्गला । अपरं दर्शयन्ती[3] नरेशमिति चाब्रवीत् ॥३९५॥

कन्याका मुख विनयसे अवनत था मणिमयी आभूषणोंसे वह कल्पलताके समान जान पड़ती थी ॥३८१-३८२॥ वह अपना कोमल हस्तकमल यद्यपि सखीके कन्धेपर रखी थी तो भी वह नीचेकी ओर खिसक रहा था। वह पालकीपर सवार थी और कामको प्रकट करनेवाली थी ॥३८३॥ आगत राजकुमारोंका परिचय देती हुई सुमंगला धाय बोली कि हे पुत्रि ! यह नभस्तिलक नगरका राजा, चन्द्रकुण्डल भूपालकी विमला नामक रानीसे उत्पन्न हुआ है ॥३८४॥ मार्तण्डकुण्डल इसका नाम है, अपनी कान्तिसे सूर्यको जीत रहा है, सन्धि, विग्रह आदि गुणोंसे युक्त है तथा इन्हीं सब कारणोंसे यह अपने मण्डलमें परम प्रमुखताको प्राप्त हुआ है ॥३८५॥ जब गोष्ठियोंमें राजाओंके गुणोंकी चर्चा शुरू होती है तब विद्वज्जन सबसे पहले इसीका नाम लेते हैं और हर्षातिरेकके कारण उस समय विद्वज्जनोंके शरीर रोमांचरूपी कण्टकोंसे व्याप्त हो जाते हैं ॥३८६॥ हे पुत्रि ! यदि इसके साथ रमण करनेकी तेरे मनको इच्छा है तो जिसने समस्त शास्त्रोंका सार देखा है ऐसे इस मार्तण्डकुण्डलको स्वीकृत कर ॥३८७॥ तदनन्तर जिसका यौवन कुछ ढल चुका था ऐसे विद्याधरोंके राजा मार्तण्डकुण्डलका श्रीमालाने मुख नीचा करने मात्रसे ही निराकरण कर दिया ॥३८८॥ तदनन्तर सुमंगला धाय बोली कि हे पुत्रि ! कान्ति, दीप्ति और विभूतिके द्वारा जो समस्त पुरुषोंका अधीश्वर है ऐसे इस राजकुमारपर अपनी दृष्टि डालो ॥३८९॥ यह रत्नपुरका स्वामी है, राजा विद्यांग और रानी लक्ष्मीका पुत्र है, विद्यासमुद्घात इसका नाम है तथा समस्त विद्याधरोंका स्वामी है ॥३९०॥ वीरोंमें हलचल मचानेवाला इसका नाम सुनते ही शत्रु भयसे वायुके द्वारा कम्पित पीपलके पत्तेकी दशाको प्राप्त होते हैं अर्थात् पीपलके पत्तेके समान काँपने लगते हैं ॥३९१॥ अनेक क्षुद्र राजाओंके पास भ्रमण करनेसे जो थक गयी थी ऐसी लक्ष्मी, हाररूपी तकियासे सुशोभित इसके विस्तृत वक्षःस्थलपर मानो विश्रामको प्राप्त हुई है ॥३९२॥ यदि इसकी गोदमें बैठनेकी तेरी अभिलाषा है तो इसे स्वीकार कर। बिजली सुमेरुपर्वतके साथ समागमको प्राप्त हो ॥३९३॥ श्रीमाला उसे अपने नेत्रोंसे सरलतापूर्वक देखती रही इसीसे उसका निराकरण हो गया सो ठीक ही है क्योंकि कन्या जिसे वररूपसे पसन्द करती है उसपर उसकी दृष्टि चंचल हो जाती है ॥३९४॥ तदनन्तर उसका अभिप्राय जाननेवाली सुमंगला उसे दूसरे

१. प्रकीर्तने म. । २. वात- म. । ३. स्थितम् ख. ४. दर्शयन्ती न -रेश म. ।

वज्रायुधस्य पुत्रोऽयं वज्रशीलाङ्गसंभवः । वज्रपञ्जरनामाग्रमधिशेते पत्तनम् ॥३९६॥
अस्य बाहुद्वये लक्ष्मीर्दिनेशकरमासुरे । चञ्चलापि स्वभावेन संयतेवावतिष्ठते ॥३९७॥
सत्यमन्येऽपि विद्यन्ते नाममात्रेण खेचराः । तेषां खद्योततुल्यानामयं भास्करतां गतः ॥३९८॥
मानेन शुङ्गतामस्य प्राप्तस्य शिरसः पराम् । संप्राप्तं पुनरुत्कर्षं मुकुटं स्फुटरत्नकम् ॥३९९॥
[1]सुरूपे प्रतिपद्यस्व पतिं विद्याभृतामिमम् । विषयांश्लेष्मसान् शच्या मोक्तुं धीस्तव विद्यते ॥४००॥
इति खेचरभानुं तं दृष्ट्वा कन्या कुमुदती । संकोचं परमं बाला धात्र्येति गदिता पुनः ॥४०१॥
चित्राम्बरस्य पुत्रोऽयं पद्मश्रीकुक्षिसंभवः । निस्यं चन्द्रपुराधीशो नाम्ना चन्द्राननो नृपः ॥४०२॥
पश्य वक्षोऽस्य विस्तीर्णं चारुचन्दनचर्चितम् । चन्द्ररश्मिपरिष्वक्तं कैलासतटसंनिभम् ॥४०३॥
उच्छलत्करभारोऽस्य हारो वक्षसि राजते । उत्सर्पल्लीकरो दूरं कैलास इव निर्झरः ॥४०४॥
नामाक्षरकरैरस्य मनः श्लिष्टमरेरपि । प्रयाति परमं ह्लादं दुःखतापविवर्जितम् ॥४०५॥
याति चेदिह ते चेतः प्रसादं सौम्यदर्शने । रजनीव शशाङ्केन लभस्वैतेन संगमम् ॥४०६॥
ततस्तस्मिन्नपि प्रीतिं न मनोऽस्याः समागतम् । कमलिन्या यथा चन्द्रे नयनानन्दकारिणि ॥४०७॥
पुनराह ततो धात्री कन्ये पश्य पुरन्दरम् । अवतीर्णं महीमेतं भवतीसंगलालसम् ॥४०८॥
सुतोऽयं मेरुकान्तस्य श्रीरम्भागर्भसंभवः । स्वामी मन्दरकुञ्जस्य पुरस्याम्भोधरध्वनिः ॥४०९॥

राजाके पास ले जाकर बोली ॥३९५॥ कि यह राजा वज्रायुध और रानी वज्रशीलाका पुत्र खेचरभानु वज्रपंजर नामक नगरमें रहता है ॥३९६॥ लक्ष्मी यद्यपि स्वभावसे चंचल है तो भी सूर्यकी किरणोंके समान देदीप्यमान इसकी दोनों भुजाओंपर बँधी हुई के समान सदा स्थिर रहती है ॥३९७॥

यह सच है कि नाममात्रके अन्य विद्याधर भी हैं परन्तु वे सब जुगनूके समान हैं और यह उनके बीच सूर्यके समान देदीप्यमान है ॥३९८॥ यद्यपि इसका मस्तक स्वाभाविक प्रमाणसे ही परम ऊँचाईको प्राप्त है फिर भी इसपर जो जगमगाते रत्नोंसे सुशोभित मुकुट बाँधा गया है सो केवल उत्कर्ष प्राप्त करनेके लिए ही बाँधा गया है ॥३९९॥ हे सुन्दरि! यदि इन्द्राणीके समान समस्त भोग भोगनेकी तेरी इच्छा है तो इस विद्याधरोंके अधिपतिको स्वीकृत कर ॥४००॥ तदनन्तर, उस खेचरभानुरूपी सूर्यको देखकर कन्यारूपी कुमुदिनी परम संकोचको प्राप्त हो गयी। यह देख सुमंगला धायने कुछ आगे बढ़कर कहा ॥४०१॥ कि यह राजा चित्राम्बर और रानी पद्मश्रीका पुत्र चन्द्रानन है, चन्द्रपुर नगरका स्वामी है। देखो, सुन्दर चन्दनसे चर्चित इसका वक्षःस्थल कितना चौड़ा है? यह चन्द्रमाकी किरणोंसे आलिंगित कैलास पर्वतके तटके समान कितना भला मालूम होता है? ॥४०२-४०३॥ छलकती हुई किरणोंसे सुशोभित हार इसके वक्षःस्थलपर ऐसा सुशोभित हो रहा है जैसा कि उठते हुए जलकणोंसे सुशोभित निर्झर कैलासके तटपर सुशोभित होता है ॥४०४॥ इसके नामके अक्षररूपी किरणोंसे आलिंगित शत्रुका भी मन परम हर्षको प्राप्त होता है तथा उसका सब दुःखरूपी सन्ताप छूट जाता है ॥४०५॥ हे सौम्यदर्शने! यदि तेरा चित्त इसपर प्रसन्नताको प्राप्त है तो चन्द्रमाके साथ रात्रिके समान तू इसके साथ समागमको प्राप्त हो ॥४०६॥ तदनन्तर नेत्रोंको आनन्दित करनेवाले चन्द्रमापर जिस प्रकार कमलिनीका मन प्रीतिको प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार राजा चन्द्राननपर श्रीमालाका मन प्रीतिको प्राप्त नहीं हुआ ॥४०७॥ तब धाय बोली कि हे कन्ये! इस राजा पुरन्दरको देखो। यह पुरन्दर क्या है मानो तुम्हारे संगमकी लालसासे पृथिवीपर अवतीर्ण हुआ साक्षात् पुरन्दर अर्थात् इन्द्र ही है ॥४०८॥ यह राजा मेरुकान्त और रानी श्रीरम्भाका पुत्र है, मन्दरकुंज नगरका स्वामी है, मेघके समान इसकी जोरदार आवाज

---

१. स्वरूपे म. ।

शक्ता यस्य न संग्रामे दृष्टिं संमुखमागताम् । प्रतिपत्तुं कुतो बाणान् शत्रवो भयदारिताः ॥४१०॥
संभावयामि देवानां नाथोऽप्यस्माद् व्रजेद् भयम् । अभग्नप्रसरो ह्यस्य प्रतापो भ्रमति क्षितिम् ॥४११॥
उन्नतं चरणेनास्य शिरस्ताडय सुस्वने । प्रस्तावे प्रेमयुक्तेषु कलहेषु नितम्बिनि ॥४१२॥
असावपि ततस्तस्या न लेभे मानसे पदम् । चित्रा हि चेतसो वृत्तिः प्रजानां कर्महेतुका ॥४१३॥
अभाषयदिमां बालां ततोऽन्यं व्योमचारिणम् । धात्री मदःसरस्यङ्गं हंसीमुत्कलिका यथा ॥४१४॥
उवाच च सुते पश्य नृपमेतं महाबलम् । मनोजवेन वेगिन्यां संभूतं वायुरंहसम् ॥४१५॥
नाकार्धसंज्ञकस्यार्धं पुरस्य परिरक्षिता । अतिक्रम्य स्थिता यस्य गणनां विमला गुणाः ॥४१६॥
भ्रूसमुत्क्षेपमात्रेण सर्वं यः क्षितिमण्डलम् । भ्रामयति स्वाङ्गवेगोत्थवातपातितभूधरः ॥४१७॥
विद्याबलेन यः कुर्याद् भूमिं गगनमध्यगाम् । दर्शयेद्वा ग्रहान् सर्वान् धरणीतलचारिणः ॥४१८॥
तुरीयं वा सृजेल्लोकं सूर्यं वा चन्द्रशीतलम् । चूर्णयेद्वा धराशैलं स्थापयेद्वानिलं स्थिरम् ॥४१९॥
शोषयेद् वाम्भसां नाथं सूर्तं कुर्वीत वा नभः । भाषितेनोल्बणा किं वा सर्वेषस्य यथेप्सितम् ॥४२०॥
तत्रापि न मनस्तस्याश्चक्रे स्थानमयुक्तिकम् । वदत्येवेति चाज्ञासीत् सर्वशास्त्रकृतश्रमा ॥४२१॥
अन्यानपि बहूनेवं धात्रीदर्शितसंपदः । विद्याबलसमायुक्तान् कन्या तत्याज खेचरान् ॥४२२॥
ततोऽसौ चन्द्रलेखेव व्यतीता[3] याऽमरेश्वरान् । पर्वता इव ते प्राप्ताः श्यामतां लोकवाहिनः ॥४२३॥

है ॥४०९॥ युद्धमें भयसे पीड़ित शत्रु इसकी सम्मुखागत दृष्टिको सहन करनेमें असमर्थ रहते हैं फिर बाणोंकी तो बात ही अलग है ॥४१०॥ मुझे तो लगता है कि देवोंका अधिपति इन्द्र भी इससे भयभीत हो सकता है, वास्तवमें इसका अखण्डित प्रताप समस्त पृथ्वीमें भ्रमण करता है ॥४११॥ हे सुन्दर शब्दोंवाली नितम्बिनि ! प्रेमपूर्ण कलहके समय तू इसके उन्नत मस्तकको अपने चरणसे ताडित कर ॥४१२॥ राजा पुरन्दर भी उसके हृदयमें स्थान नहीं पा सका सो ठीक ही है क्योंकि अपने-अपने कर्मोंके कारण लोगोंकी चित्तवृत्ति विचित्र प्रकारकी होती है ॥४१३॥ जिस प्रकार सरोवरमें तरंग हंसीको दूसरे कमलके पास ले जाती है उसी प्रकार धाय उस कन्याको सभारूपी सरोवरमें किसी दूसरे विद्याधरके पास ले जाकर बोली कि हे पुत्रि ! इस राजा महाबलको देख। यह राजा मनोजवके द्वारा वेगिनी नामक रानीसे उत्पन्न हुआ है। वायुके समान इसका वेग है ॥४१४-४१५॥ नाकार्धपुरका स्वामी है, इसके निर्मल गुण गणनासे परे हैं ॥४१६॥ अपने शरीरके वेगसे उत्पन्न वायुके द्वारा पर्वतोंको गिरा देनेवाला यह राजा भौंह उठाते ही समस्त पृथिवीमें चक्कर लगा देता है ॥४१७॥

यह विद्याके बलसे पृथिवीको आकाशगामिनी बना सकता है और समस्त ग्रहोंको पृथिवीतलचारी दिखा सकता है ॥४१८॥ अथवा तीन लोकके सिवाय चतुर्थ लोककी रचना कर सकता है, सूर्यको चन्द्रमाके समान शीतल बना सकता है, सुमेरु पर्वतका चूर्ण कर सकता है, वायुको स्थिर बना सकता है, समुद्रको सुखा सकता है और आकाशको मूर्तिक बना सकता है। अथवा अधिक कहनेसे क्या ? इसकी जो इच्छा होती है वैसा ही कार्य हो जाता है ॥४१९-४२०॥ धायने यह सब कहा सही, पर कन्याका मन उसमें स्थान नहीं पा सका। कन्या सर्वशास्त्रोंको जाननेवाली थी इसलिए उसने जान लिया कि यह धाय अत्युक्तियुक्त कह रही है—इसके कहनेमें सत्यता नहीं है ॥४२१॥ इस तरह धायके द्वारा जिनके वैभवका वर्णन किया गया था ऐसे बहुत-से विद्याबलधारी विद्याधरोंका परित्याग कर कन्या आगे बढ़ गयी ॥४२२॥ तदनन्तर जिस प्रकार चन्द्रलेखा जिन पर्वतोंको छोड़कर आगे बढ़ जाती है वे पर्वत अन्धकारसे मलिन हो जाते हैं उसी प्रकार कन्या श्रीमाली जिन विद्याधरोंको छोड़कर आगे बढ़ गयी थी वे शोकको

१. मानसंपदाम् क. । २. गणतां म. । ३. व्यतीयाय नभश्चरान् म. ।

खेचराणां विलक्षाणां दृष्ट्वान्योन्यं गतश्रियाम् । प्रवेष्टुं धरणीमासीदभिप्रायस्त्रपावताम् ॥४२४॥
अपकर्ण्य ततो धात्रीं खेचरद्युतिवर्णिनीम् । तस्याः पपात किष्किन्धकुमारे दृष्टिरादरात् ॥४२५॥
ततो मालागुणः कण्ठे दृष्ट एवास्य संगतः । अन्योऽन्यं च समालापः स्निग्धया रचितोऽनया ॥४२६॥
ततो विजयसिंहस्य किष्किन्धान्ध्रकयोर्गता । दृष्टिराहूय तावेवं विद्यावीर्येण गर्वितः ॥४२७॥
विद्याधरसमाजोऽयं क्व भवद्भिरिहागतौ । क्षिप्तदर्शनौ क्षुद्रौ वानरौ विनयच्युतौ ॥४२८॥
नेह देशे वनं रम्यं फलैरस्ति नतानति । न वा निर्झरधारिण्यः सुन्दरा गिरिकन्दराः ॥४२९॥
वृन्दानि वानरीणां वा कुर्वन्ति कुविचेष्टितम् । मांसलोहितवक्त्राणां प्रवृत्तानां यथेप्सितम् ॥४३०॥
आहूतावेह केनैतौ पैशून्यं कपिनिशाचरौ । धूतधमस्य तस्याद्य करोमि निपातनम् ॥४३१॥
निर्घाट्येतामिमावस्मादेशाच्चलाखामृगौ खलौ । वृथा विद्याधरीश्रद्धां दूरं नयत चानयोः ॥४३२॥
रुद्धौ ततो बलौघैस्तौ परुषैर्वानिरध्वजौ । महान्तं क्षोभमायातौ सिंहाविव गजान् प्रति ॥४३३॥
ततः स्वामिपरीवादमहावातताडिता सती । गता क्षोभं चमूवेला रौद्रचेष्टाविधायिनी ॥४३४॥
कश्चिदास्फालयद्वामसंसक्तं दक्षिणपाणिना । वेगाघातसमुत्सर्पद्रक्तसीकरजालकम् ॥४३५॥
कश्चिद् दृष्टिं विनिक्षेप क्षेपीयःक्षुब्धमानसः । कोपावेशारुणां भीमां प्रलयोल्कामिवारिषु ॥४३६॥
कश्चिद्दक्षिणहस्तेन वक्षः कम्प्रेण कोपतः । अस्पृक्षत् सकलं क्रूरकर्म वाञ्छन् महास्पदम् ॥४३७॥

धारण करते हुए मलिनमुख हो गये ॥४२३॥ एक दूसरेको देखनेसे जिनकी कान्ति नष्ट हो गयी थी ऐसे लज्जायुक्त विद्याधरोंके मनमें विचार उठ रहा था कि यदि पृथिवी फट जाये तो उसमें हम प्रविष्ट हो जावें ॥४२४॥ तदनन्तर विद्याधरोंकी कान्तिका वर्णन करनेवाली धायकी उपेक्षा कर श्रीमालाकी दृष्टि बड़े आदरसे किष्किन्धकुमारके ऊपर पड़ी ॥४२५॥ उसने लोगोंके देखते-देखते ही वरमाला किष्किन्धकुमारके गलेमें डाल दी और उसी समय स्नेहसे भरी श्रीमालाने परस्पर वार्तालाप किया ॥४२६॥ तदनन्तर किष्किन्ध और अन्ध्रकरूढिपर विजयसिंह की दृष्टि पड़ी। विद्याके बलसे गर्वित विजयसिंहने उन दोनोंको बुलाकर कहा ॥४२७॥ कि अरे! यह तो विद्याधरोंका समूह है, यहाँ आप लोग कहाँ आ गये? तुम दोनोंका दर्शन अत्यन्त विरूप है। तुम क्षुद्र हो, वानर हो और विनयसे रहित हो ॥४२८॥ न तो यहाँ फलोंसे नम्रीभूत मनोहर वन है और न निर्झरोंको धारण करनेवाली पहाड़की गुफाएँ ही हैं ॥४२९॥ तथा जिनके मुख मांस के समान लाल-लाल हैं ऐसी इच्छानुसार प्रवृत्ति करनेवाली वानरियोंके झुण्ड भी यहाँ कुचेष्टाएँ नहीं कर रहे हैं ॥४३०॥ इन पशुरूप वानर निशाचरोंको यहाँ कौन बुलाकर लाया है? मैं आज उस नीच दूतका निपात—घात करूँ ॥४३१॥ यह कह उसने अपने सैनिकोंसे कहा कि इन दुष्ट वानरोंको इस स्थानसे निकाल दो तथा इन्हें वृथा ही जो विद्याधरी प्राप्त करनेकी श्रद्धा हुई है उसे दूर कर दो ॥४३२॥ तदनन्तर विजयसिंहके कठोर शब्दोंसे रुष्ट हो किष्किन्ध और अन्ध्रकरूढि दोनों वानरवंशी उस तरह महाक्षोभको प्राप्त हुए जिस तरह कि हाथियोंके प्रति सिंह महाक्षोभको प्राप्त होते हैं ॥४३३॥ तदनन्तर स्वामीकी निन्दारूपी महावायुसे ताड़ित विद्याधरोंकी सेनारूपी वेला रुद्र—भयंकर चेष्टा करती हुई परम क्षोभको प्राप्त हुई ॥४३४॥ कोई सामन्त दाहिने हाथसे बायें कन्धेको पीटने लगा। उस समय उसके वेगपूर्ण आघातके कारण बायें कन्धेसे रक्तके छींटोंका समूह उछटने लगा था ॥४३५॥ जिसका चित्त अत्यन्त क्षुभित हो रहा था ऐसा कोई एक सामन्त शत्रुओंपर क्रोधके आवेशसे लाल-लाल भयंकर दृष्टि डाल रहा था। उसकी वह लाल दृष्टि ऐसी जान पड़ती थी मानो प्रलय कालकी उल्का ही हो ॥४३६॥ कोई सैनिक क्रोधसे काँपते हुए दाहिने हाथसे वक्षःस्थलका स्पर्श कर रहा था और

---

१. अपावतः म.। २. दृष्टिरेवास्य म.। ३. गर्विता ख.। ४. कृतानतिः म.। ५. पशुकपि म.। ६. स्वक्षारणाकृतौ क., ख.। ७. अघृक्षत् क.।

करं करेण कश्चिच्च स्मितयुक्तमताडयत् । तथा यथा गतः पान्थः श्रुतैर्बधिरतां चिरम् ॥४३८॥
मूलजालदृढाबद्धमहापीठस्य शाखिनः । कश्चिदुन्मूलनं चक्रे चलत्पल्लवधारिणः ॥४३९॥
मञ्चस्थं स्तम्भमादाय वमक्षांसे परः कपिः । क्षुद्रभंगैर्नभस्तस्य व्याप्तमन्तरवर्जितैः ॥४४०॥
गात्रं वलितमेकेन स्फुटद्व्रणाङ्कितम् । शोणितोदारधाराभिरुत्पातघनसंनिभम् ॥४४१॥
कृताट्टहासमन्येन हसितं विवृताननम् । शब्दात्मकमिवाशेषं कुर्वता भुवनान्तरम् ॥४४२॥
भूतोऽन्येन जटाभारक्षुब्धाशेषदिगाननः । छायया तस्य संजाता शर्वरीव तदा चिरम् ॥४४३॥
[1]संकोचिना भुजे कश्चिद्वामे दक्षिणपाणिना । चकार ताडनं घोरं निर्घातापातभीषणम् ॥४४४॥
सहध्वं[2]ध्वंसनं वाचः परुषायाः फलं खलाः । दुःखदा[3]इति तारेण ध्वनिना मुखराननः[4] ॥४४५॥
अपूर्वायाः पराभूतेस्ततस्ते सहसा भृशम् । कपयोऽभिमुखीभूता हन्तुं खेचरवाहिनीम् ॥४४६॥
गजा गजैस्तता सार्द्धं रथारूढा रथस्थितैः । पदातयश्च पादातैश्चक्रुर्युद्धं सुदारुणम् ॥४४७॥
सेनयोरुभयोर्जातस्ततस्तत्र रणे महान् । दूरस्थितामरभ्रातजनितोदारविस्मयः ॥४४८॥
श्रुत्वा च तत्क्षणं युद्धं सुकेशो राक्षसाधिपः । मनोरथ इवायातः किष्किन्धान्धकयोः सुहृत् ॥४४९॥
अकम्पनसुताहेतोर्यथा युद्धममूत् परम् । तथेदमपि संवृत्तं बीजं युद्धस्य योषितः ॥४५०॥

उससे ऐसा जान पड़ता था मानो समस्त क्रूर कर्म करनेके लिए किसी बड़े स्थानकी खोज ही कर रहा हो ॥४३७॥ किसीने मुसकराते हुए अपने एक हाथसे दूसरे हाथको इतने जोरसे पीटा कि उसका शब्द सुनकर पथिक चिरकालके लिए बहरा हो गया ॥४३८॥ जिसका महापीठ जड़ोंके समूहसे पृथ्वीपर मजबूत बँधा था और जो चंचल पल्लव धारण कर रहा था ऐसे किसी वृक्षको कोई सैनिक जड़से उखाड़ने लगा ॥४३९॥ किसी वानरने मंचका खम्भा लेकर कन्धेपर इतने जोरसे तोड़ा कि उसके निरन्तर बिखरे हुए छोटे-छोटे टुकड़ोंसे आकाश व्याप्त हो गया ॥४४०॥ किसीने अपने शरीरको इतने जोरसे मोड़ा कि उसके पुरे हुए घाव फिरसे फट गये तथा खूनकी बड़ी मोटी धाराओंसे उसका शरीर उत्पात-कालके मेघके समान जान पड़ने लगा ॥४४१॥ किसीने मुँह फाड़कर इतने जोरसे अट्टहास किया कि मानो वह समस्त संसारके अन्तरालको शब्दमय ही करना चाहता था ॥४४२॥

किसीने अपनी जटाओंका समूह इतनी जोरसे हिलाया कि उससे समस्त दिशाएँ व्याप्त हो गयीं और उससे ऐसा जान पड़ने लगा मानो चिरकालके लिए रात्रि ही हो गयी हो ॥४४३॥ कोई सैनिक दाहिने हाथको संकुचित कर उससे बायीं भुजाको इतनी जोरसे पीट रहा था कि उससे वज्रपातके समान भयंकर घोर शब्द हो रहा था ॥४४४॥ 'अरे दुष्ट विद्याधरो ! तुमने जो कठोर वचन कहे हैं उसके फलस्वरूप इस विध्वंसको सहन करो' इस प्रकारके उच्च शब्दोंसे किसीका मुख शब्दायमान हो रहा था अर्थात् कोई चिल्ला-चिल्लाकर उक्त शब्द कह रहा था ॥४४५॥ तदनन्तर उस अपूर्व तिरस्कारके कारण वानरवंशी, विद्याधरोंकी सेनाको नष्ट करनेके लिए सम्मुख आये ॥४४६॥ तत्पश्चात् हाथी हाथियोंसे, रथोंके सवार रथके सवारोंसे और पैदल सिपाही पैदल सिपाहियोंके साथ भयंकर युद्ध करने लगे ॥४४७॥ इस प्रकार दोनों सेनाओंमें वहाँ महायुद्ध हुआ । ऐसा महायुद्ध कि जो दूर खड़े देवोंके समूहको महान् आश्चर्य उत्पन्न कर रहा था ॥४४८॥ किष्किन्ध और अन्धकका मित्र जो सुकेश नामका राक्षसोंका राजा था वह युद्धका समाचार सुन तत्काल ही मनोरथके समान वहाँ आ पहुँचा ॥४४९॥ पहले अकम्पनकी पुत्री सुलोचनाके निमित्त जैसा महायुद्ध हुआ था वैसा ही युद्ध उस समय हुआ सो ठीक ही है क्योंकि युद्धका कारण स्त्रियाँ ही हैं ॥४५०॥

१. संकोचिते म. । २. साम्प्रतम् म. । ३. दुष्टविद्याधराः । ४. मुखराननाः म. । ५. सहनात् म. ।

यावच्च तुमुलं तेषां वर्तते खगरक्षसाम् । तावदादाय तां कन्यां किष्किन्धः कृतिता[1] गतः ॥४५१॥
आहूय चाभियातस्य तावदन्धकभूभृता[2] । कृपाणेन शिरस्तुङ्गं जयसिंहस्य पातितम् ॥४५२॥
तेनैकेन विना सैन्यमितश्चेतश्च तद्गतम् । आत्मनेव विना देहे हृषीकाणां कुलं[3] धनम् ॥४५३॥
ततः सुतवधं श्रुत्वा वज्रेणेव समाहतः । शोकेनाशनिवेगोऽभून्मूर्च्छान्धतमसावृतः ॥४५४॥
ततः स्वदारनेत्राम्बुसिक्तवक्षःस्थलश्चिरात् । ततः प्रबोधमाकारं बभार क्रोधमीषणम् ॥४५५॥
ततस्तस्य समाकारं परिवर्तोऽपि नेक्षितुम् । शशाक प्रलयोत्पातभास्कराकारसन्निभम् ॥४५६॥
सर्वविद्याधरैः सार्द्धं ततोऽसौ शस्त्रभासुरैः । गत्वा किष्कुपुरस्याभूत्तुङ्गशाल इवापरः ॥४५७॥
विदित्वा नगरं रुद्धं ततस्तौ वानरध्वजौ । तडित्केशिसमायुक्तौ निष्क्रान्तौ रणलालसौ ॥४५८॥
गदाभिः शक्तिभिर्बाणैः पाशैः प्रासैर्महासिभिः । ततो दानवसैन्यं तद्ध्वस्तं वानरराक्षसैः ॥४५९॥
दिशा ययान्धको यातः किष्किन्धो वा महाहवे । सुकेशो वा तया याता मार्गाश्चूर्णितखेचराः ॥४६०॥
तत्र पुत्रवधक्रोधवह्निज्वालाप्रदीपितः । अन्धकाभिमुखो जातो वज्रवेगः[4] कृतध्वनिः ॥४६१॥
बालोऽयमन्धकः पापोऽशनिवेगोऽयमुद्धतः । इति ज्ञात्वोत्थितो योद्धुं किष्किन्धोऽशनिरंहसा[5] ॥४६२॥
विद्युद्वाहनमाम्नासौ तत्सुतेन पुरस्कृतः । अभवच्च तयोर्युद्धं दारजातं पराभवम् ॥४६३॥
यावच्च तत्तयोर्युद्धं वर्ततेऽत्यन्तभीषणम् । निहतोऽशनिवेगेन तावदन्धकवानरः ॥४६४॥

इधर जबतक विद्याधर और राक्षसोंके बीच भयंकर युद्ध होता है उधर तबतक कन्याको लेकर किष्किन्ध कृतकृत्य हो गया अर्थात् उसे लेकर युद्धसे भाग गया ॥४५१॥ विद्याधरोंका राजा विजयसिंह ज्यों ही सामने आया त्यों ही अन्धकरूढिने ललकारकर उसका उन्नत मस्तक तलवारसे नीचे गिरा दिया ॥४५२॥ जिस प्रकार एक आत्माके बिना शरीरमें इन्द्रियोंका समूह जहाँ-तहाँ बिखर जाता है उसी प्रकार एक विजयसिंहके बिना समस्त सेना इधर-उधर बिखर गयी ॥४५३॥ जब अशनिवेगने पुत्रके वधका समाचार सुना तो वह शोकके कारण वज्रसे ताड़ित हुएके समान परम दुखी हो मूर्छारूपी गाढ़ अन्धकारसे आवृत हो गया ॥४५४॥ तदनन्तर अपनी स्त्रियोंके नयन जलसे जिसका वक्षःस्थल भीग रहा था ऐसा अशनिवेग, जब प्रबोधको प्राप्त हुआ तब उसने क्रोधसे भयंकर आकार धारण किया ॥४५५॥ तदनन्तर प्रलयकालके उत्पातसूचक भयंकर सूर्यके समान उसके आकारको परिकरके लोग देखनेमें भी समर्थ नहीं हो सके ॥४५६॥ तदनन्तर उसने शस्त्रोंसे देदीप्यमान समस्त विद्याधरोंके साथ जाकर किसी दूसरे ऊँचे कोटके समान किष्कुपुरको घेर लिया ॥४५७॥ तदनन्तर नगरको घिरा जान दोनों भाई युद्धकी लालसा रखते हुए सुकेशके साथ बाहर निकले ॥४५८॥ फिर वानर और राक्षसोंकी सेनाने गदा, शक्ति, बाण, पाश, भाले तथा बड़ी-बड़ी तलवारोंसे विद्याधरोंकी सेनाको विध्वस्त कर दिया ॥४५९॥ उस महायुद्धमें अन्धक, किष्किन्ध और सुकेश जिस दिशामें निकल जाते थे उसी दिशाके मार्ग चूर्णीकृत वानरोंसे भर जाते थे ॥४६०॥ तदनन्तर पुत्रवधसे उत्पन्न क्रोधरूपी अग्निकी ज्वालाओंसे प्रदीप्त हुआ अशनिवेग जोरका शब्द करता हुआ अन्धकके सामने गया ॥४६१॥ तब किष्किन्धने विचारा कि अन्धक अभी बालक है और यह पापी अशनिवेग महा उद्धत है, ऐसा विचारकर वह अशनिवेगके साथ युद्ध करनेके लिए स्वयं उठा ॥४६२॥ सो अशनिवेगके पुत्र विद्युद्वाहनने उसका सामना किया और फलस्वरूप दोनोंमें घोर युद्ध हुआ सो ठीक ही है क्योंकि संसारमें जितना पराभव होता है वह स्त्रीके निमित्त ही होता है ॥४६३॥ इधर जबतक किष्किन्ध और विद्युद्वाहनमें भयंकर युद्ध चलता है उधर तबतक अशनिवेगने अन्धकको

१. कृतिनो भावः कृतिता ताम् । कृत्यतां म. । २. भूतिना क. । ३. बलम् म. । ४. अशनिवेगः । ५. अशनिवेगेन ।

ततोऽसौ पतितो बालः क्षितौ तेजोविवर्जितः । प्रत्यूषशशिनश्छायां बभार गतचेतनः ॥४६५॥
किष्किन्धेनापि निक्षिप्ता विद्युद्वाहनवक्षसि । शिला स ताडितो मूर्छां प्राप्य बोधं पुनर्गतः ॥४६६॥
आदाय तां शिलां तेन ततो वक्षसि ताडितः । किष्किन्धोऽपि गतो मूर्छां घूर्णितेक्षणमानसः ॥४६७॥
लङ्केन्द्रेण ततो नीतः प्रेमसंसक्तचेतसा । किष्कुं[1] प्रमादमुत्क्षिप्य चिरात् प्राप्तश्च चेतनाम् ॥४६८॥
उन्मील्य स ततो नेत्रे यदा नापश्यदन्धकम् । तदापृच्छन्मम भ्राता वर्तते क्वेति पार्श्वगान् ॥४६९॥
ततः प्रलयवातेन क्षोभितस्याम्बुधेः समम् । शुश्रावान्तःपुराक्रन्दमन्धकध्वंसहेतुकम् ॥४७०॥
विप्रलापं ततश्चक्रे प्रतप्तः शोकवह्निना । चिरं भ्रातृगुणध्यानकृतदुःखोर्मिसंततिः ॥४७१॥
हा भ्रातर्मयि सत्येवं कथं प्राप्तोऽसि पञ्चताम् । दक्षिणः पतितो बाहुस्त्वयि मे पातमागते ॥४७२॥
दुरात्मना कथं तेन पापेन विनिपातितम् । शस्त्रं बाले त्वयि क्रूरं धिक् तमन्यायवर्तिनम् ॥४७३॥
अपश्यन्नाकुलोऽभूवं यो भवन्तं निमेषतः । सोऽहं वद कथं प्राणान् धारयिष्यामि सांप्रतम् ॥४७४॥
अथवा निर्मितं चेतो वज्रेण मम दारुणम् । यज्ज्ञात्वापि भवन्मृत्युं शरीरं न विमुञ्चति ॥४७५॥
बाल ते स्मितसंयुक्तं वीरगोष्ठीसमुद्भवम् । स्मरन् स्फुटसमुल्लासं दुःखं प्राप्नोमि दुःसहम् ॥४७६॥
यद्यद्विचेष्टितं सार्द्धं क्रियमाणं त्वया पुरा । प्रसेकमसृतेनेव कृतवत्सर्वगात्रकम् ॥४७७॥
स्मर्यमाणं तदेवेदमधुना मरणं कथम् । प्रयच्छति विषेणेव सेकं मर्मविदारणम् ॥४७८॥

मार डाला ॥४६४॥ तदनन्तर बालक अन्धक, तेजरहित पृथिवीपर गिर पड़ा और निष्प्राण हो प्रातःकालके चन्द्रमाकी कान्तिको धारण करने लगा अर्थात् प्रातःकालीन चन्द्रमाके समान कान्ति-हीन हो गया ॥४६५॥ इधर किष्किन्धने एक शिला विद्युद्वाहनके वक्षःस्थलपर फेंकी जिससे तड़ित् हो वह मूर्च्छित हो गया परन्तु कुछ ही समयमें सचेत होकर उसने वही शिला किष्किन्धके वक्षः-स्थलपर फेंकी जिससे वह भी मूर्च्छाको प्राप्त हो गया। उस समय शिलाके आघातसे उसके नेत्र तथा मन दोनों ही घूम रहे थे ॥४६६-४६७॥ तदनन्तर प्रेमसे जिसका चित्त भर रहा था ऐसा लंकाका राजा सुकेश उसे प्रमाद छोड़कर शीघ्र ही किष्कपुर ले गया। वहाँ चिरकालके बाद उसे चेतना प्राप्त हुई ॥४६८॥ जब उसने आँखें खोलीं और सामने अन्धक को नहीं देखा तब समीपवर्ती लोगोंसे पूछा कि हमारा भाई कहाँ है ? ॥४६९॥ उसी समय उसने प्रलयकी वायुसे क्षोभित समुद्रके समान, अन्धककी मृत्युसे उत्पन्न अन्तःपुरके रोनेका शब्द सुना ॥४७०॥ तदनन्तर जिसके हृदयमें भाईके गुणोंके चिन्तवनसे उत्पन्न दुःखकी लहरें उठ रही थीं ऐसा किष्किन्ध शोकाग्निसे सन्तप्त हो चिरकाल तक विलाप करता रहा ॥४७१॥ हे भाई ! मेरे रहते हुए तू मृत्युको कैसे प्राप्त हो गया ? तेरे मरनेसे मेरी दाहिनी भुजा ही भंगको प्राप्त हुई ॥४७२॥ उस पापी दुष्टने तुझ बालकपर शस्त्र कैसे चलाया ? अन्यायमें प्रवृत्ति करनेवाले उस दुष्टको धिक्कार है ॥४७३॥ जो तुझे निमेष मात्र भी नहीं देखता था तो आकुल हो जाता था वही मैं अब प्राणोंको किस प्रकार धारण करूँगा सो कह ॥४७४॥ अथवा मेरा कठोर चित्त वज्रसे निर्मित है इसीलिए तो वह तेरी मृत्यु जानकर भी शरीर नहीं छोड़ रहा है ॥४७५॥

हे बालक ! मन्द-मन्द मुसकानसे युक्त, वीर पुरुषोंकी गोष्ठीमें समुत्पन्न जो तेरा प्रकट हर्षोल्लास था उसका स्मरण करता हुआ मैं दुःसह दुःख प्राप्त कर रहा हूँ ॥४७६॥ पहले तेरे साथ जो-जो चेष्टाएँ--कौतुक आदि किये थे वे समस्त शरीरमें मानो अमृतका ही सिंचन करते थे ॥४७७॥ पर आज वे ही सब स्मरणमें आते ही विषके सिंचनके समान मर्मघातक मरण क्यों प्रदान कर रहे हैं अर्थात् जो पहले अमृतके समान सुखदायी थे वे ही आज विषके समान

---

१. किष्कुं प्रमोद, -ख., म. । किष्कुः ज., ग. ।

ततोऽसौ विलपन् भूरि भ्रातृस्नेहातिविक्लवः । सुकेशादिभिरानीतः प्रबोधमिति भाषणात् ॥४७९॥
युक्तमेतत् भीरूणां कर्तुं क्षुद्रविचेष्टितम् । शोको हि पण्डितैर्दृष्टः पिशाचः अन्वर्थाख्यः ॥४८०॥
कर्मणां विनियोगेन वियोगः सह बन्धुना । प्राप्ते तत्रापरं दुःखं शोको यच्छति संततम् ॥४८१॥
[1]प्रेक्षापूर्वंप्रवृत्तेन जन्तुना सप्रयोजनः । व्यापारः सततं कृत्यः शोकश्चायमनर्थकः ॥४८२॥
प्रत्यागमः कृते शोके प्रेतस्य यदि जायते । ततोऽन्यानपि संगृह्य विदधीत जनः शुचम् ॥४८३॥
शोकः प्रत्युत देहस्य शोषीकरणमुत्तमम् । पापानामयमुद्रेको महामोहप्रवेशनः ॥४८४॥
तदेवं वैरिणं शोकं परित्यज्य प्रसन्नधीः । कृत्ये कुरु मतिन्यासं नानुबन्धं त्यजत्यरिः ॥४८५॥
मूढाः शोकमहापङ्के मग्नाः शेषामपि क्रियाम् । नाशयन्ति तदायत्तजीवितैर्वाञ्छिता जनैः ॥४८६॥
बलीयान् वज्रवेगोऽयमस्मन्नाशस्य चिन्तकः । प्रतिकर्तव्यमस्माभिश्चिन्तनीयमिहाधुना ॥४८७॥
बलीयसि रिपौ गुप्तिं प्राप्य कालं नयेद् बुधः । तत्र तावदवाप्नोति न [2]निकारमरातिकम् ॥४८८॥
प्राप्य तत्र स्थितः कालं कुतश्चिद् द्विगुणं रिपुम् । साधयेन्नहि [3]भूरीनामेकस्मिन् सर्वदा रतिः ॥४८९॥
अतः परम्परायातमस्माकं कुलगोचरम् । अलङ्कारपुरं नाम स्थानं मे स्मृतिमागतम् ॥४९०॥
कुलवृद्धास्तदस्माकं शंसन्त्यविदितं परैः । प्राप्य तत् स्वर्गलोकेऽपि न कुर्वीत पदं मनः ॥४९१॥

दुःखदायी क्यों हो गये ? ॥४७८॥ इस प्रकार भाईके स्नेहसे दुःखी हुआ किष्किन्ध बहुत विलाप करता रहा। तदनन्तर सुकेश आदिने उसे इस प्रकार समझाकर प्रबोधको प्राप्त कराया ॥४७९॥ उन्होंने कहा कि धीर-वीर मनुष्योंको क्षुद्र पुरुषोंके समान शोक करना उचित नहीं है। यथार्थमें विद्वज्जनोंने शोकको भिन्न नामवाला पिशाच ही कहा है ॥४८०॥ कर्मोंके अनुसार इष्टजनोंके साथ वियोगका अवसर आनेपर यदि शोक होता है तो वह आगे के लिए और भी दुःख देता है ॥४८१॥ विचारपूर्वक कार्य करनेवाले मनुष्यको सदा वही कार्य करना चाहिए जो प्रयोजनसे सहित हो। यह शोक प्रयोजनरहित है अतः बुद्धिमान् मनुष्यके द्वारा करने योग्य नहीं है ॥४८२॥ यदि शोक करनेसे मृतक व्यक्ति वापस लौट आता हो तो दूसरे लोगोंको भी इकट्ठा कर शोक करना उचित है ॥४८३॥ शोकसे कोई लाभ नहीं होता बल्कि शरीरका उत्कट शोषण ही होता है। यह शोक पापोंका तीव्रोदय करनेवाला और महामोहमें प्रवेश करानेवाला है ॥४८४॥ इसलिए इस वैरी शोकको छोड़कर बुद्धिको स्वच्छ करो और करने योग्य कार्यमें मन लगाओ क्योंकि शत्रु अपना संस्कार छोड़ता नहीं है ॥४८५॥ मोही मनुष्य शोकरूपी महापंकमें निमग्न होकर अपने शेष कार्योंको भी नष्ट कर लेते हैं। मोही मनुष्योंका शोक तब और भी अधिक बढ़ता है जबकि अपने आश्रित मनुष्य उनकी ओर दीनता-भरी दृष्टिसे देखते हैं ॥४८६॥ हमारे नाशका सदा ध्यान रखनेवाला अशनिवेग चूँकि अत्यन्त बलवान् है इसलिए इस समय हम लोगोंको इसके प्रतिकारका विचार अवश्य करना चाहिए ॥४८७॥

यदि शत्रु अधिक बलवान् है तो बुद्धिमान् मनुष्य किसी जगह छिपकर समय बिता देता है। ऐसा करनेसे वह शत्रुसे प्राप्त होनेवाले पराभवसे बच जाता है ॥४८८॥ छिपकर रहनेवाला मनुष्य जब योग्य समय पाता है तब अपनेसे दूनी शक्तिको धारण करनेवाले शत्रुको भी नष्ट कर लेता है सो ठीक ही है क्योंकि सम्पदाओंकी सदा एक ही व्यक्तिमें प्रीति नहीं रहती ॥४८९॥ अतः परम्परासे चला आया हमारे वंशका निवासस्थल अलंकारपुर (पाताल लंका) इस समय मेरे ध्यानमें आया है ॥४९०॥ हमारे कुलके वृद्धजन उसकी बहुत प्रशंसा करते हैं तथा शत्रुओंको भी उसका पता नहीं है। वह इतना सुन्दर है कि उसे पाकर फिर मन स्वर्गलोककी आकांक्षा

१. प्रेक्षापूर्वप्रयत्नेन जन्तुनाशप्रयोजनः-ख. । २. विकार म. । ३. भीरुणा-ख. ।

तस्मादुत्तिष्ठ गच्छामस्तत्पुरं रिपुदुर्गमम् । अनयो हि महानेष यत्कालस्य [1]नो यापनम् ॥४९१॥
एवमभिहिष्य [2]नो शोको यदा तीव्रो निवर्तते । श्रीमालादर्शनात्तस्य ततोऽसौ विनिवर्तितः ॥४९३॥
ततस्तौ परिवर्गेण समस्तेन समन्वितौ । प्रस्थितौ दर्शनं प्राप्तौ विद्युद्वाहनविद्विषः ॥४९४॥
ततोऽसौ दृष्टतो गन्तुं प्रवृत्तो धावतोस्तयोः । भ्रातृघातेन संक्रुद्धः शत्रुनिर्मूलनोद्यतः ॥४९५॥
भग्नाः किलानुसर्तव्याः शत्रवो नेति भाषितम् । नीतिशास्त्रशरीरज्ञैः पुरुषैः शुद्धबुद्धिभिः ॥४९६॥
निहतश्च तव भ्राता येन पापेन वैरिणा । प्रापितोऽसौ महानिद्रां विशिखैरन्धको मया ॥४९७॥
तस्मात्पुत्र निवर्तस्व नैतेऽस्माकं कृतागसः । अनुकम्पा हि कर्तव्या महता दुःखिते जने ॥४९८॥
पृष्ठस्य दर्शनं येन कारितं कातरात्मना । जीवन्मृतस्य तस्यान्यक्रियतां किं मनस्विना ॥४९९॥
यावदेवं सुतं शास्ति वज्रवेगो वशस्थितिम् । अलङ्कारपुरं प्राप्तास्तावद्वानरराक्षसाः ॥५००॥
पातालावस्थिते तत्र रत्नालोकचिते पुरे । तस्थुः शोकं प्रमोदं च वहन्तौ भयवर्जिताः ॥५०१॥
अन्यदाशनिवेगोऽथ दृष्ट्वा शरदि लोयदम् । क्षणाद्विलयमायातं विरक्तो राज्यसंपदि ॥५०२॥
सुखं विषययोगेन विज्ञाय क्षणभङ्गुरम् । मनुष्यजन्म चात्यन्तदुर्लभं भवसंकटे ॥५०३॥
सहस्रारं सुतं राज्ये स्थापयित्वा विधानतः । समं विद्युत्कुमारेण बभूव श्रमणो महान् ॥५०४॥
शशासाग्रान्तरे लङ्कां निर्घातो नाम खेचरः । नियुक्तोऽशनिवेगेन महाविद्यापराक्रमः ॥५०५॥

नहीं करता ॥४९१॥ इसलिए उठो हम लोग शीघ्र ही शत्रुओंके द्वारा अगम्य उस अलंकारपुर नगरमें चलें। इस स्थितिमें यदि वहाँ जाकर संकटका समय नहीं निकाला जाता है तो यह बड़ी अनीति होगी ॥४९२॥ इस प्रकार लंकाके राजा सुकेशने किष्किन्धको बहुत समझाया पर उसका शोक दूर नहीं हुआ। अन्तमें रानी श्रीमालाके देखनेसे उसका शोक दूर हो गया ॥४९३॥ तदनन्तर राजा किष्किन्ध और सुकेश अपने समस्त परिवारके साथ अलंकारपुरकी ओर चले परन्तु विद्युद्वाहन शत्रुने उन्हें देख लिया ॥४९४॥ वह भाई विजयसिंहके घातसे अत्यन्त क्रुद्ध था तथा शत्रुका निर्मूल नाश करनेमें सदा उद्यत रहता था इसलिए भागते हुए सुकेश और किष्किन्धके पीछे लग गया ॥४९५॥ यह देख नीतिशास्त्रके मर्मज्ञ तथा शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाले पुरुषोंने विद्युद्वाहनको समझाया कि भागते हुए शत्रुओंका पीछा नहीं करना चाहिए ॥४९६॥ पिता अशनिवेगने भी उससे कहा कि जिस पापी वैरीने तुम्हारे भाई विजयसिंहको मारा था उस अन्धकको मैंने बाणोंके द्वारा महानिद्रा प्राप्त करा दी है अर्थात् मार डाला है ॥४९७॥ इसलिए हे पुत्र! लौटो, ये हमारे अपराधी नहीं हैं। महापुरुषको दुःखी जनपर दया करनी चाहिए ॥४९८॥ जिस भीरु मनुष्यने अपनी पीठ दिखा दी वह तो जीवित रहनेपर भी मृतकके समान है, तेजस्वी मनुष्य भला उसका और क्या करेंगे ॥४९९॥ इधर इस प्रकार अशनिवेग जबतक पुत्रको अपने अधीन रहनेका उपदेश देता है उधर तबतक वानर और राक्षस अलंकारपुर (पातालंका) में पहुँच गये ॥५००॥ वह नगर पातालमें स्थित था तथा रत्नोंके प्रकाशसे व्याप्त था सो उस नगरमें वे दोनों शोक तथा हर्षको धारण करते हुए रहने लगे ॥५०१॥

अथानन्तर एक दिन अशनिवेग शरद्ऋतुके मेघको क्षणभरमें विलीन होता देख राज्यसम्पदासे विरक्त हो गया ॥५०२॥ विषयोंके संयोगसे जो सुख होता है वह क्षणभंगुर है तथा चौरासी लाख योनियोंके संकटमें मनुष्य जन्म पाना अत्यन्त दुर्लभ है ॥५०३॥ ऐसा जानकर उसने सहस्रार नामक पुत्रको तो विधिपूर्वक राज्य दिया और स्वयं विद्युत्कुमारके साथ वह महाश्रमण अर्थात् निर्ग्रन्थ साधु हो गया ॥५०४॥ इस अन्तरालमें अशनिवेगके द्वारा नियुक्त

---

१. स्यातिपातनम् म.। २. नः ख.।

एकदोत्थाय बलिवत्पातालनगरोदरात् । सचनक्ष्माधरं पश्यन् शनैरवनिमण्डलम् ॥५०६॥
विदित्वोपशमप्राप्तान् शत्रून् मयविवर्जितः । सश्रीमालो गतो मेरुं किष्किन्धो वन्दितुं जिनम् ॥५०७॥
प्रत्यागच्छंस्ततोऽपश्यद्दक्षिणोदन्वतस्तटे । अटवीं सुरकुर्वाभां पृथ्वीकर्णतटाभिधाम् ॥५०८॥
श्रीमालां चाब्रवीद्देवं वीणामिव सुखस्वराम् । वक्षःस्थलस्थितां वामबाहुना कृतधारणाम् ॥५०९॥
देवि पश्याटवीं रम्यां कुसुमाञ्चितपादपाम् । सीमन्तिनीमिव स्वैरुच्छमन्दगत्यापगाम्भसाम् ॥५१०॥
शरज्जलधराकारो राजतेऽयं महीधरः । मध्येऽस्याः शिखरैस्तुङ्गैर्धरणीमौलिसंज्ञितः ॥५११॥
कुन्दशुभ्रसमावर्तफेनमण्डलमण्डितैः । निर्झरैर्हसतावाद्यमट्टहासेन भासुरः ॥५१२॥
पुष्पाञ्जलिं प्रकीर्याद्यं तरुशाखाभिरादरात् । अभ्युत्थानं करोतीव चलत्तरुवनेन नौ[2] ॥५१३॥
पुष्पामोदसमृद्धेन वायुना घ्राणलेपिना । प्रत्युद्गतिं करोतीव नमनं च नमत्तरुः ॥५१४॥
बद्ध्वेव स्तवान् गाढं व्रजन्तं मामयं गुणैः । [1]अतिक्रम्य न शक्नोमि गन्तुमेनं[4] महीधरम् ॥५१५॥
आलयं कल्पयाम्यत्र भूचरैरतिदुर्गमम् । प्रसादं मानसे गच्छत्सूचयत्येव मे शुभम् ॥५१६॥
अलङ्कारपुरावासे पातालोदरवर्तिनि । खिन्नं खिन्नं मम स्वान्तं रतिमत्र प्रयास्यति ॥५१७॥
इत्युक्त्वानुमतालापः प्रियया विस्मयाकुलः । उत्सारयन् घनव्रातमवतीर्णो धराधरम् ॥५१८॥

महाविद्या और महापराक्रमका धारी निर्घात नामका विद्याधर लंकाका शासन करता था ॥५०५॥ एक दिन किष्किन्ध बलिके समान पातालवर्ती अलंकारपुर नगरसे निकलकर वन तथा पर्वतोंसे सुशोभित पृथिवीमण्डलका धीरे-धीरे अवलोकन कर रहा था। इसी अवसरपर उसे पता चला कि शत्रु शान्त हो चुके हैं। यह जानकर वह निर्भय हो अपनी श्रीमाला रानीके साथ जिनेन्द्रदेवकी वन्दना करनेके लिए सुमेरु पर्वतपर गया ॥५०६-५०७॥ वन्दना कर वापस लौटते समय उसने दक्षिणसमुद्रके तटपर पृथिवी-कर्णतटा नामकी अटवी देखी। यह अटवी देवकुरुके समान सुन्दर थी ॥५०८॥ किष्किन्धने, जिसका स्वर वीणाके समान सुखदायी था, जो वक्षःस्थलसे सटकर बैठी थी और बायीं भुजासे अपनेको पकड़े थी ऐसी रानी श्रीमालासे कहा ॥५०९॥ कि हे देवि ! देखो, यह अटवी कितनी सुन्दर है, यहाँके वृक्ष फूलोंसे सुशोभित हैं, तथा नदियोंके जलकी स्वच्छ एवं मन्द गतिसे ऐसी जान पड़ती है मानो इसने सीमन्त—मांग ही निकाल रखी हो ॥५१०॥ इसके बीचमें यह शरद्ऋतुके मेघका आकार धारण करनेवाला तथा ऊँची-ऊँची शिखरोंसे सुशोभित धरणीमौलि नामका पर्वत सुशोभित हो रहा है ॥५११॥ कुन्दके फूलके समान शुक्ल फेनपटलसे मण्डित निर्झरनोंसे यह देदीप्यमान पर्वत ऐसा जान पड़ता है मानो अट्टहास ही कर रहा हो ॥५१२॥ यह वृक्षकी शाखाओंसे आदरपूर्वक पुष्पांजलि बिखेरकर वायुकम्पित वृक्षोंके वनसे हम दोनोंको आता देख आदरसे मानो उठ ही रहा है ॥५१३॥ फूलोंकी सुगन्धिसे समृद्ध तथा नासिकाको लिप्त करनेवाली वायुसे यह पर्वत मानो हमारी अगवानी ही कर रहा है तथा झुकते हुए वृक्षोंसे ऐसा जान पड़ता है मानो हम लोगोंको नमस्कार ही कर रहा है ॥५१४॥ ऐसा जान पड़ता है कि आगे जाते हुए मुझे इस पर्वतने अपने गुणोंसे मजबूत बाँधकर रोक लिया है इसीलिए तो मैं इसे लाँघकर आगे जानेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥५१५॥ मैं यहाँ भूमिगोचरियोंके अगोचर सुन्दर महल बनवाता हूँ। इस समय चूँकि मेरा मन अत्यन्त प्रसन्न हो रहा है इसलिए वह आगामी शुभकी सूचना देता है ॥५१६॥ पातालके बीचमें स्थित अलंकारपुरमें रहते-रहते मेरा मन खिन्न हो गया है सो यहाँ अवश्य ही प्रीतिको प्राप्त होगा ॥५१७॥ प्रिया श्रीमालाने किष्किन्धके इस कथनका समर्थन किया तब आश्चर्यसे भरा किष्किन्ध मेघसमूहको चीरता हुआ पर्वतपर

१. स्वस्थ ख. । २. आवयोः । ३. ख. पुस्तके अत्र 'स्थापयत्येव निश्चान्तः प्रीतिं तद्गतचेतसा' इत्यधिकः पाठः । ४. मेतुं म. ।

सर्वबान्धवयुक्तेन तेन स्वर्गसमं पुरम् । क्षणात्सुरूपमोदेन रचितं गिरिमूर्द्धनि ॥५१९॥
अभिधानं कृतं चास्य निजमेव यशस्विना । यतोऽद्यापि पृथिव्यां तत् किष्किन्धपुरमुच्यते ॥५२०॥
पर्वतोऽपि स किष्किन्धः प्रख्यातस्तस्य संगमात् । पूर्वं तु मधुरित्यासीन्नाम तस्य जगद्गतम् ॥५२१॥
सम्यग्दर्शनयुक्तोऽसौ जिनपूजासमुद्यतः । भुञ्जानः परमान् भोगान् सुखेन न्यवसच्चिरम् ॥५२२॥
तस्माच्च संभवं प्राप श्रीमालायां सुतद्वयम् । ज्येष्ठः सूर्यरजा नाम ख्यातो[1] यक्षरजास्तथा ॥५२३॥
सुता च सूर्यकमला जाता कमलकोमला । यया विद्याधराः सर्वे शोभया विकलीकृताः ॥५२४॥
अथ मेघपुरे राजा मेरुर्नाम नभश्चरः । मधोन्यां तेन संभूतो मृगारिदमनः सुतः ॥५२५॥
तेन पर्यटता दृष्टा किष्किन्धतनयान्यदा । तस्यामुत्कण्ठितो लेभे न स नक्तंदिवा सुखम् ॥५२६॥
अभ्यर्थिता सुहृद्भिः सा तदर्थं सादरैस्ततः । [2]संप्रधार्य समं देव्या दत्ता किष्किन्धभूभृता ॥५२७॥
निर्वृत्तं च विधानेन तयोर्वीवाहमङ्गलम् । किष्किन्धनगरे रम्ये ध्वजादिकृतभूषणे ॥५२८॥
प्रतिगच्छन् स [3]तामूढ्वा न्यवसत्कर्णपर्वते । कर्णकुण्डलमेतेन नगरं तत्र निर्मितम् ॥५२९॥
अलङ्कारपुरेशस्य सुकेशस्याथ सूनवः । इन्द्राण्या जन्म संप्रापुः क्रमेण पुरुविक्रमाः ॥५३०॥
अमीषां प्रथमो माली सुमाली चेति मध्यमः । कनीयान् माल्यवान् ख्यातो विज्ञानगुणभूषणः ॥५३१॥

उतरा ॥५१८॥ समस्त बान्धवोंसे युक्त, भारी हर्षको धारण करनेवाले राजा किष्किन्धने पर्वतके शिखरपर क्षण-भरमें स्वर्गके समान नगरकी रचना की ॥५१९॥ जो अपना नाम था यशस्वी किष्किन्धने वही नाम उस नगरका रखा। यही कारण है कि वह पृथिवीमें आज भी किष्किन्धपुर कहा जाता है ॥५२०॥ पहले उस पर्वतका 'मधु' यह नाम संसारमें प्रसिद्ध था परन्तु अब किष्किन्धपुरके समागमसे उसका नाम भी किष्किन्धगिरि प्रसिद्ध हो गया ॥५२१॥ सम्यग्दर्शनसे सहित तथा जिनपूजामें उद्यत रहनेवाला राजा किष्किन्ध उत्कृष्ट भोगोंको भोगता हुआ चिर काल तक उस पर्वतपर निवास करता रहा ॥५२२॥ तदनन्तर राजा किष्किन्ध और रानी श्रीमालाके दो पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें बड़ेका नाम सूर्यरज और छोटेका नाम यक्षरज था ॥५२३॥ इन दो पुत्रोंके सिवाय उनके कमलके समान कोमल अंगको धारण करनेवाली सूर्यकमला नामकी पुत्री भी उत्पन्न हुई। वह पुत्री इतनी सुन्दरी थी कि उसने अपनी शोभाके द्वारा समस्त विद्याधरोंको बेचैन कर दिया था ॥५२४॥

अथानन्तर मेघपुरनगरमें मेरु नामका विद्याधर राजा राज्य करता था। उसकी मधोनी नामकी रानीसे मृगारिदमन नामका पुत्र उत्पन्न हुआ ॥५२५॥ एक दिन मृगारिदमन अपनी इच्छानुसार भ्रमण कर रहा था कि उसने किष्किन्धकी पुत्री सूर्यकमलाको देखा। उसे देख मृगारिदमन इतना उत्कण्ठित हुआ कि वह न तो रातमें सुख पाता था और न दिनमें ही ॥५२६॥ तदनन्तर मित्रोंने आदरके साथ उसके लिए सूर्यकमलाकी याचना की और राजा किष्किन्धने रानी श्रीमालाके साथ सलाह कर देना स्वीकृत कर लिया ॥५२७॥ ध्वजा-पताका आदिसे विभूषित, महामनोहर किष्किन्ध नगरमें विधिपूर्वक मृगारिदमन और सूर्यकमलाका विवाह-मंगल पूर्ण हुआ ॥५२८॥ मृगारिदमन सूर्यकमलाको विवाहकर जब वापस जा रहा था तब वह कर्ण नामक पर्वत-पर ठहरा। वहाँ उसने कर्णकुण्डल नामका नगर बसाया ॥५२९॥

अलंकारपुरके राजा सुकेशकी इन्द्राणी नामक रानीसे क्रमपूर्वक तीन महाबलवान् पुत्रोंने जन्म प्राप्त किया ॥५३०॥ उनमें-से पहलेका नाम माली, मझलेका नाम सुमाली और सबसे छोटे-का नाम माल्यवान् था। ये तीनों ही पुत्र परमविज्ञानी तथा गुणरूपी आभूषणोंसे सहित थे ॥५३१॥

---

१. ख्यातोऽक्षरजा म. । २. संधार्य क. । ३. तामूढा म. । ४. मध्यगाः म. ।

अहरन्मानसं पित्रोर्बन्धूनां द्विषतां तथा । तेषां क्रीडा कुमाराणां देवानामिव सोद्भुता[1] ॥५३२॥
सिद्धविद्यासमुद्भूतवीर्योद्वृत्तक्रियास्ततः । निवारिताः पितृभ्यां ते यस्मादिति पुनः पुनः ॥५३३॥
रन्तुं चेद्यात किष्किन्धं पुत्राः कौमारचापलात् । मा वाजिष्ट समीपं स्वं जातुचिद्दक्षिणाम्बुधेः ॥५३४॥
ततः प्रणम्य तैः[3] पृष्टौ पितरौ तत्र कारणम् । कुतूहलस्य बाहुल्यात्तौर्यशैशवसंभृतात् ॥५३५॥
अनाख्येयमिदं वत्सा इति तौ विहितोत्तरौ । सुतरामनुबन्धेन सुतैः पृष्टौ सचाद्रिभिः ॥५३६॥
ततस्तेभ्यः सुकेशेन कथितं शृणुतात्मजाः । हेतुना विदितेनाद्य यद्यवश्यं प्रयोजनम् ॥५३७॥
पुर्यामशनिवेगेन लङ्कायां स्थापितः पुरा । निर्घातो नामतः क्रूरः खेचरो बलवानलम् ॥५३८॥
कुलक्रमेण सास्माकमागता नगरी शुभा । रिपोस्तस्माद् भयात्यक्ता निशान्तमसुवत् प्रिया ॥५३९॥
देशे देशे चरास्तेन नियुक्ताः पापकर्मणा । दत्तावधानाः सततमस्मच्छिद्रगवेषणे ॥ ५४० ॥
यन्त्राणि च प्रयुक्तानि यानि कुर्वन्ति मारणम् । विदित्वा रमणासक्तान् भवतो गगनाङ्गणे ॥५४१॥
निघ्नन्ति तानि रन्ध्रेषु कृत्वा रूपेण लोभनम् । प्रमदाचरणानीवाशक्तं तपसि योगिनम् ॥५४२॥
एवं निगदितं श्रुत्वा पितृदुःखानुचिन्तनात् । निःश्वस्य मालिना दीर्घं समुद्भूताश्रुचक्षुषा ॥५४३॥
रोषापूर्णचित्तेन कृत्वा किंचित्सदं शिरः । निर्दिश्य च भुजौ प्रगल्भमिति भाषितम् ॥५४४॥
इयन्तं समयं तात कस्मान्नो[5] न निवेदितम् । अहो स्नेहापदेशेन गुरुणा वञ्चिता वयम् ॥५४५॥
अविधाय नराः कार्यं ये गर्जन्ति निरर्थकम् । महान्तं लाघवं लोके शक्तिमन्तोऽपि यान्ति ते ॥५४६॥

उन कुमारोंकी क्रीड़ा देवोंकी क्रीड़ाके समान अद्भुत थी तथा माता-पिता, बन्धुजन और शत्रुओंके भी मनको हरण करती थी ॥५३२॥ सिद्ध हुई विद्याओंसे समुत्पन्न पराक्रमके कारण जिनकी क्रियाएँ अत्यन्त उद्धत हो रही थीं ऐसे उन कुमारोंको माता-पिता बड़े प्रयत्नसे बार-बार मना करते थे कि हे पुत्रो ! यदि तुम लोग अपनी बालचपलताके कारण क्रीड़ा करनेके लिए किष्किन्ध-गिरि जाओ तो दक्षिण समुद्रके समीप कभी नहीं जाना ॥५३३–५३४॥ पराक्रम तथा बाल्य अवस्थाके कारण समुत्पन्न कुतूहलकी बहुलतासे वे पुत्र प्रणाम कर माता-पितासे इसका कारण पूछते थे तो वे यही उत्तर देते थे कि हे पुत्रो ! यह बात कहनेकी नहीं है। एक बार पुत्रोंने बड़े अनुनय-विनयके साथ आग्रह कर पूछा तो पिता सुकेशने उनसे कहा कि हे पुत्रो ! यदि तुम्हें इसका कारण अवश्य ही जाननेका प्रयोजन है तो सुनो ॥५३५–५३७॥ बहुत पहलेकी बात है कि अशनिवेगने लंकामें शासन करनेके लिए निर्घात नामक अत्यन्त क्रूर एवं बलवान् विद्याधरको नियुक्त किया है। वह लंका नगरी कुल-परम्परासे चली आयी हमारी शुभ नगरी है। वह यद्यपि हमारे लिए प्राणोंके समान प्रिय थी तो भी बलवान् शत्रुके भयसे हमने उसे छोड़ दिया ॥५३८–५३९॥ पाप कर्ममें तत्पर शत्रुने जगह-जगह ऐसे गुप्तचर नियुक्त किये हैं जो सदा हम लोगोंके छिद्र खोजनेमें सावधान रहते हैं ॥५४०॥ उसने जगह-जगह ऐसे यन्त्र बना रखे हैं कि जो आकाशांगणमें क्रीड़ा करते हुए आप लोगोंको जानकर मार देते हैं ॥५४१॥ वे यन्त्र अपने सौन्दर्यसे प्रलोभन देकर दर्शकोंको भीतर बुलाते हैं और फिर उस तरह नष्ट कर देते हैं कि जिस तरह तपश्चरणके समय होनेवाले प्रमाद-पूर्ण आचरण असमर्थ योगीको नष्ट कर देते हैं ॥५४२॥ इस प्रकार पिताका कहा सुन और उनके दुःखका विचारकर माली लम्बी साँस छोड़ने लगा तथा उसकी आँखोंसे आँसू बहने लगे ॥५४३॥ उसका चित्त क्रोधसे भर गया, वह चिरकाल तक गर्वसे मन्द-मन्द हँसता रहा और फिर अपनी भुजाओंका युगल देख इस प्रकार गम्भीर स्वरसे बोला ॥५४४॥ हे पिताजी ! इतने समय तक यह बात तुमने हम लोगोंसे क्यों नहीं कही ? बड़े आश्चर्यकी बात है कि आपने बड़े भारी स्नेहके बहाने हम लोगोंको धोखा दिया ॥५४५॥ जो मनुष्य कार्य न कर केवल निष्प्रयोजन गर्जना करते

१. चाद्भुता म. । २. वीर्योद्धत ख. । वीर्योद्धत ग. । ३. तौ ग. । ४. त्यक्त्वा म. । ५. अस्मभ्यम् ।

आस्तां ततः फलेनैव शमतां तात यास्यसि । तन्मर्यादं कृतं चेदं मया चूडाविमोक्षणम् ॥५४७॥
अथामङ्गलभीताभ्यां वाचा ते न निवारिताः । पितृभ्यां तनया याता स्निग्धदृष्ट्यानुवीक्षिताः ॥५४८॥
पातालादथ निर्गत्य यथा भवनवासिनः । जग्मुः प्रत्यरि सोत्साहा भ्रातरः शस्त्रभासुराः ॥५४९॥
तेषामनुपदं लग्ना ततो राक्षसवाहिनी । चलदायुधधारोर्मिमाला व्याप्य नभस्तलम् ॥५५०॥
निरीक्षिताः पितृभ्यां ते यावल्लोचनगोचरम् । व्रजन्तः स्नेहसंपूर्णमानसाभ्यां समङ्गलम् ॥५५१॥
त्रिकूटशिखरेणासौ ततस्तैरुपलक्षिता । दृष्टयैव [1]प्रौढया ज्ञाता गृहीतेति पुरी वरा ॥५५२॥
व्रजद्भिरेव तैः केचिद्दैत्या मृत्युवशीकृताः । केचित्प्रवणतां नीताः केचित् स्थानाच्च्युतोचिताः ॥५५३॥
विशङ्किः सैन्यमागत्य प्रणतैः शत्रुगोचरैः । ते सामन्तैरलं जाता महान्तः पृथुकीर्तयः ॥५५४॥
शत्रूणामागमं श्रुत्वा निर्घातो निर्ययौ ततः । युद्धौण्डश्चलच्छत्रच्छायाच्छन्नदिवाकरः ॥५५५॥
ततोऽभवन्महायुद्धं सेनयोः सर्वदारुणम् । वाजिभिर्वारणैर्मत्तैर्विमानैः स्यन्दनैस्तथा ॥५५६॥
महीमयमिवोत्पन्नं गगनं दन्तिनां कुलैः । तथा जलात्मकं जातं तेषां गण्डच्युताम्भसा ॥५५७॥
वातात्मकं च तत्कर्णतालसंजातवायुना । तेजोमयं तथान्योऽन्यशस्त्राघातोत्थवह्निना ॥५५८॥
दीनैः किमपरैरत्र निहतैः क्षुद्रखेचरैः । क्वासौ क्वासौ गतः पापो निर्घात इति चोदयन् ॥५५९॥

हैं वे लोकमें शक्तिशाली होनेपर भी महान् अनादरको पाते हैं ॥५४६॥ अथवा रहने दो, यह सब कहनेसे क्या ? हे तात ! आप फल देखकर ही शान्तिको प्राप्त होंगे। जबतक यह कार्य पूरा नहीं हो जाता है तबतकके लिए मैं यह चोटी खोलकर रखूँगा ॥५४७॥ अथानन्तर अमंगलसे भयभीत माता-पिताने उन्हें वचनोंसे मना नहीं किया। केवल स्नेहपूर्ण दृष्टिसे उनकी ओर देखकर कहा कि हे पुत्रो ! जाओ ॥५४८॥ तदनन्तर वे तीनों भाई भवनवासी देवोंके समान पातालसे निकलकर शत्रुकी ओर चले। उस समय वे तीनों भाई उत्साहसे भर रहे थे तथा शस्त्रोंसे देदीप्यमान हो रहे थे ॥५४९॥ तदनन्तर चंचल शस्त्रोंकी धारा ही जिसमें लहरोंका समूह था ऐसी राक्षसोंकी सेनारूपी नदी आकाशतलको व्याप्त कर उनके पीछे लग गयी ॥५५०॥ तीनों पुत्र आगे बढ़े जा रहे थे और जिनके हृदय स्नेहसे परिपूर्ण थे ऐसे माता-पिता उन्हें जब तक वे नेत्रोंसे दिखते रहे तब तक मंगलाचार पूर्वक देखते रहे ॥५५१॥ तदनन्तर त्रिकूटाचलकी शिखरसे उपलक्षित लंकापुरीको उन्होंने गम्भीर दृष्टिसे देखकर ऐसा समझा मानो हमने उसे ले ही लिया है ॥५५२॥ जाते-जाते ही उन्होंने कितने ही दैत्य मौतके घाट उतार दिये, कितने ही वश कर लिये और कितने ही स्थानसे च्युत कर दिये ॥५५३॥ शत्रुपक्षके सामन्त नम्रीभूत होकर सेनामें आकर मिलते जाते थे इससे विशालकीर्तिके धारक तीनों ही कुमार एक बड़ी सेनासे युक्त हो गये थे ॥५५४॥ युद्धमें निपुण तथा चंचल छत्रकी छायासे सूर्यको आच्छादित करनेवाला निर्घात शत्रुओंका आगमन सुन लंकासे बाहर निकला ॥५५५॥ तदनन्तर दोनों सेनाओंमें महायुद्ध हुआ। उनका वह महायुद्ध घोड़ों, मदोन्मत्त हाथियों तथा अपरिमित रथोंसे जीवोंको नष्ट करनेवाला था ॥५५६॥ हाथियोंके समूहसे आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो पृथ्वीमय ही हो, उनके गण्डस्थलसे च्युत जलसे ऐसा जान पड़ता था मानो जलमय ही हो, उनके कर्णरूपी तालपत्रसे उत्पन्न वायुसे ऐसा जान पड़ता था मानो वायुरूप ही हो और परस्परके आघातसे उत्पन्न अग्निसे ऐसा जान पड़ता था मानो अग्निरूप ही हो ॥५५७-५५८॥ युद्धमें दीन-हीन अन्य क्षुद्र विद्याधरोंके मारनेसे क्या लाभ है ? वह पापी निर्घात कहाँ है ? कहाँ है ? इस प्रकार प्रेरणा करता हुआ

---

१. प्रौढ्या म. ।

दृष्ट्वा माली [1]शितैर्बाणैः कृत्वा स्यन्दनवर्जितम् । निर्घातमसिनिर्घाताच्चक्रे संप्राप्तपञ्चत्वम्[2] ॥५६०॥
निर्घातं निहतं ज्ञात्वा दानवा भ्रष्टचेतसः । यथास्वं निलयं याता विजयार्द्धनगाश्रितम् ॥५६१॥
केचित्कण्ठे समास्साद्य कृपाणं कृपणोद्यताः । मालिनं त्वरया याताः शरणं रणकातराः ॥५६२॥
प्रविष्टास्ते ततो लङ्कां भ्रातरो मङ्गलार्चितम् । समागमं च संप्राप्ताः पितृप्रभृतिबान्धवैः ॥५६३॥
ततो हेमपुरेशस्य सुतां हेमखचारिणः । भोगवत्यां समुत्पन्नां नाम्ना चन्द्रवतीं शुभाम् ॥५६४॥
उवाह विधिना माली मानसोत्सवकारिणीम् । स्वभावचपलस्वान्तहृषीकमृगबागुराम् ॥५६५॥
प्रीतिकूटपुरेशस्य [3]प्रीतिकान्तस्य चाऽऽत्मजाम् । प्रीतिमत्युद्भवां लेभे सुमाली प्रीतिसंज्ञिताम् ॥५६६॥
कनकाभपुरेशस्य कनकस्य सुतां यथा । उवाह कनकश्रीजां माल्यवान् कनकावलीम् ॥५६७॥
एतेषां प्रथमा जाया एता हृदयसंश्रयाः । अङ्गनानां सहस्रं तु प्रत्येकमधिकं स्मृतम् ॥५६८॥
श्रेणीद्वयं ततस्तेषां पराक्रमवशीकृतम् । शेषामिव क्षमाराज्ञां शिरसा रचिताञ्जलिम् ॥५६९॥
दृढस्वपदपार्श्वस्थनियुक्तनिजसंपदौ । जातौ सुकेशकिष्किन्धौ निर्ग्रन्थौ शान्तचेतसौ ॥५७०॥

मन्दाक्रान्ताच्छन्दः

भुक्त्वा भुक्त्वा विषयजनितं सौख्यमेवं महान्तो
लब्ध्वा जैनं भवशतमलध्वंसनं मुक्तिमार्गम् ।
याताः प्रायः प्रियजनगुणस्नेहपाशादपेताः
सिद्धिस्थानं निरुपमसुखं राक्षसा वानराश्च ॥५७१॥

माली आगे बढ़ रहा था ॥५५९॥ अन्तमें मालीने निर्घातको देखकर पहले तो उसे तीक्ष्ण बाणोंसे रथरहित किया और फिर तलवारके प्रहारसे उसे समाप्त कर दिया ॥५६०॥ निर्घातको मरा जानकर जिनका चित्त भ्रष्ट हो गया था ऐसे दानव विजयार्ध पर्वतपर स्थित अपने-अपने भवनोंमें चले गये ॥५६१॥ युद्धसे डरनेवाले कितने ही दीन-हीन दानव कण्ठमें तलवार लटकाकर शीघ्र ही मालीकी शरणमें पहुँचे ॥५६२॥ तदनन्तर माली आदि तीनों भाइयोंने मंगलमय पदार्थोंसे सुशोभित लंकानगरीमें प्रवेश किया। वहीं माता-पिता आदि इष्ट जनोंके साथ समागमको प्राप्त हुए ॥५६३॥

तदनन्तर हेमपुरके राजा हेमविद्याधरकी भोगवती रानीसे उत्पन्न चन्द्रवती नामक शुभ पुत्रीको मालीने विधिपूर्वक विवाहा। चन्द्रवती मालीके मनमें आनन्द उत्पन्न करनेवाली थी तथा स्वभावसे ही चपल मन और इन्द्रियरूपी मृगोंको बाँधनेके लिए जालके समान थी ॥५६४–५६५॥ प्रीतिकूटपुरके स्वामी राजा प्रीतिकान्त और रानी प्रीतिमतीकी पुत्री प्रीतिको सुमालीने प्राप्त किया ॥५६६॥ कनकाभनगरके स्वामी राजा कनक और रानी कनकश्रीकी पुत्री कनकावलीको माल्यवान्‌ने विवाहा ॥५६७॥ सदा हृदयमें निवास करनेवाली ये इनकी प्रथम स्त्रियाँ थीं वैसे प्रत्येककी कुछ अधिक एक-एक हजार स्त्रियाँ थीं ॥५६८॥ तदनन्तर विजयार्ध पर्वतकी दोनों श्रेणियाँ उनके पराक्रमसे वशीभूत हो शेषाक्षतके समान उनकी आज्ञाको हाथ जोड़कर शिरसे धारण करने लगीं ॥५६९॥ अन्तमें अपने-अपने पदोंपर अच्छी तरह आरूढ़ पुत्रोंके लिए अपनी-अपनी सम्पदा सौंपकर सुकेश और किष्किन्ध शान्त चित्त हो निर्ग्रन्थ साधु हो गये ॥५७०॥ इस प्रकार प्रायः कितने ही बड़े-बड़े राक्षसवंशी और वानरवंशी राजा विषय सम्बन्धी सुखका उपभोग कर अन्तमें संसारके सैकड़ों दोषोंको नष्ट करनेवाला जिनेन्द्र प्रणीत मोक्ष मार्ग पाकर, प्रियजनोंके गुणोत्पन्न स्नेह रूपी बन्धनसे

---

१. सितै- म. । २. पञ्चताम् म. । ३. प्रीतिका तस्य म. । ४. प्रथमं म. ।

कृत्वाप्येवं सुबहु दुरितं ध्यानयोगेन दग्ध्वा
सिद्धावासे निहितमतयो योगिनस्त्यक्तसंगाः ।
एवं ज्ञात्वा सुचरिततुणं प्राणिनो यात शान्तिं
मोहोच्छेदात् कृतजयरविः प्राप्नुत ज्ञानराज्यम् ॥५७२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्योक्ते पद्मचरिते वानरवंशाभिधानं नाम षष्ठं पर्व ॥६॥

दूर हट अनुपम सुखसे सम्पन्न मोक्ष स्थानको प्राप्त हुए ॥५७१॥ कितने ही लोगोंने यद्यपि गृहस्थ अवस्थामें बहुत भारी पाप किया था तो भी उसे निर्ग्रन्थ साधु हो ध्यानके योगसे भस्म कर दिया था और मोक्षमें अपनी बुद्धि लगायी थी। इस प्रकार सम्यक्चारित्रके प्रभावको जानकर हे भक्त प्राणियो ! शान्तिको प्राप्त होओ, मोहका उच्छेद कर विजयरूपी सूर्यको प्राप्त होओ और अन्तमें ज्ञानका राज्य प्राप्त करो ॥५७२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य प्रोक्त पद्मचरितमें वानरवंशका
कथन करनेवाला छठा पर्व पूर्ण हुआ ॥६॥



---

१. विषधिसपदं म. (?) । २. शान्तं म. ।

सप्तमं पर्व

अत्रान्तरे पुरे राजा रथनूपुरनामनि । सहस्रार इति ख्यातो बभूवात्यन्तमुद्धतः ॥१॥
तस्य भार्या बभूवेष्टा नाम्ना मानससुन्दरी । सुन्दरी मानसेनालं शरीरेण च सद्गुणा ॥२॥
अन्तर्वत्नीं सतीमेतामत्यन्तकृशविग्रहाम् । मर्तापृच्छत् श्लथाशेषभूषणां वीक्ष्य सादरम् ॥३॥
बिभ्रत्यङ्गानि ते कस्मान्निततान्तां तनुतां प्रिये । किं तवाकाङ्क्षितं राज्ये मम जायेत दुर्लभम् ॥४॥
गत्वा प्रगल्भतां ब्रूहि तवार्थैव समीहितम् । संपादयामि निःशेषं देवि प्राणगरीयसि ॥५॥
कर्तुं शक्तोऽस्मि ते कान्ते सुरस्त्रीकुलशासनाम् । शचीमपि कराग्राभ्यां पादसंवाहकारिणीम् ॥६॥
इत्युक्ता सा ततस्तेन वरारोहाङ्कसंश्रिता । जगाद विनयादेवं वचनं लीलयान्वितम् ॥७॥
यस्मादारभ्य मे गर्भे संभवं कोऽप्ययं गतः । ततः प्रभृति वाञ्छामि भोक्तुमिन्द्रस्य संपदम् ॥८॥
ह्रीं त्यक्त्वेदं नाथ परित्यज्य मया त्रपाम् । परायत्ततयात्यन्तं भवती विनिवेदिता ॥९॥
इत्युक्ते कल्पिता भोगसंपत्तस्याः सुरेन्द्रजा । विद्याबलसमृद्धेन सहस्रारेण तत्क्षणात् ॥१०॥
संपूर्णदोहदा जाता सा ततः पूर्णविग्रहा । धारयन्ती दुराख्यानां द्युतिं कान्तिं च भामिनी ॥११॥
व्रजता रविणाप्यूर्ध्वं खेदं जग्राह तेजसा । अभ्यवाञ्छच्च सर्वास्यां दातुमाज्ञां दिशामपि ॥१२॥
काले पूर्णे च संपूर्णलक्षणाङ्गमसूत सा । दारकं बान्धवानन्दसंपदुत्तमकारणम् ॥१३॥
ततो महोत्सवं चक्रे सहस्रारः प्रमोदवान् । शङ्खतूर्यनिनादेन बधिरीकृतदिङ्मुखम् ॥१४॥
रत्नपुररणत्कारचरणन्यासकृद्ध्वनैः । नृत्यन्तीभिः पुरस्त्रीभिः कृतभूतलकम्पनम् ॥१५॥

अथानन्तर रथनूपुर नगरमें अत्यन्त पराक्रमका धारी राजा सहस्रार राज्य करता था ॥१॥ उसकी मानससुन्दरी नामक प्रिय स्त्री थी। मानससुन्दरी मन तथा शरीर दोनोंसे ही सुन्दर थी और अनेक उत्तमोत्तम गुणोंसे युक्त थी ॥२॥ वह गर्भिणी हुई। गर्भके कारण उसका समस्त शरीर कृश हो गया और समस्त आभूषण शिथिल पड़ गये। उसे बड़े आदरके साथ देखकर राजा सहस्रारने पूछा कि हे प्रिये! तेरे अंग अत्यन्त कृशताको क्यों धारण कर रहे हैं? तेरी क्या अभिलाषा है? जो मेरे राज्यमें दुर्लभ हो ॥३-४॥ हे प्राणोंसे अधिक प्यारी देवि! कह तेरी क्या अभिलाषा है? मैं आज ही उसे अच्छी तरह पूर्ण करूँगा ॥५॥ हे कान्ते! देवांगनाओंपर शासन करनेवाली इन्द्राणीको भी मैं ऐसा करनेमें समर्थ हूँ कि वह अपनी हथेलियोंसे तेरे पादमर्दन करे ॥६॥ पतिके ऐसा कहनेपर उसकी सुन्दर गोदमें बैठी मानससुन्दरी, विनयसे लीलापूर्वक इस प्रकार-के वचन बोली ॥७॥ हे नाथ! जबसे यह कोई बालक मेरे गर्भमें आया है तभीसे इन्द्रकी सम्पदा भोगनेकी मेरी इच्छा है ॥८॥ हे स्वामिन्! अत्यन्त विवशताके कारण ही मैंने लज्जा छोड़कर ये मनोरथ आपके लिए प्रकट किये हैं ॥९॥ वल्लभाके ऐसा कहते ही विद्याबलसे समृद्ध सहस्रारने तत्क्षण ही उसके लिए इन्द्र जैसी भोग सम्पदा तैयार कर दी ॥१०॥ इस प्रकार दोहद पूर्ण होनेसे उसका समस्त शरीर पुष्ट हो गया और वह कहनेमें न आवे ऐसी दीप्ति तथा कान्ति धारण करने लगी ॥११॥ उसका इतना तेज बढ़ा कि वह ऊपर आकाशमें जाते हुए सूर्यसे भी खिन्न हो उठती थी तथा समस्त दिशाओंको आज्ञा देनेकी उसकी इच्छा होती थी ॥१२॥ समय पूर्ण होनेपर उसने, जिसका शरीर समस्त लक्षणोंसे युक्त था तथा जो बान्धवजनोंके हर्ष और सम्पदाका उत्तम कारण था ऐसा पुत्र उत्पन्न किया ॥१३॥ तदनन्तर हर्षसे भरे सहस्रारने पुत्र-जन्मका महान् उत्सव किया। उस समय शंख और तुरहीके शब्दोंसे दिशाएँ बहिरी हो गयी थीं ॥१४॥ नगरकी स्त्रियाँ नृत्य करते

१. दोहला ख.।

यथेच्छं द्रविणं दत्तं विचारपरिवर्जितम् । प्रचलोद्ध्वंकरैर्नृत्तं गजैरपि सबृंहितम् ॥१६॥
उत्पाताः शत्रुगेहेषु संजाताः शोकसूचिनः । बन्धुगेहेषु चोत्पन्नाः सूचिका भूरिसंपदः ॥१७॥
अभिलाषो यतस्तस्मिन्मातुर्गर्भस्थितेऽभवत् । इन्द्रभोगे ततः पित्रा कृतं तस्येन्द्रशब्दनम् ॥१८॥
बालक्रीडा बभूवास्य शक्त्यूनोऽपि जिगीषवी । भिदुरा रिपुदर्पाणां [2]सत्वरी चारुकर्मणि ॥१९॥
क्रमात् स यौवनं प्राप्तस्तेजोनिर्जितभास्करम् । कान्तिनिर्जितराज्ञीशं स्थैर्यनिर्जितपर्वतम् ॥२०॥
प्रस्तौ इव दिशस्तेन सुविस्तीर्णेन वक्षसा । दिङ्नागकुम्भसुभगांसस्थयोर्यो वृत्तबाहुना ॥२१॥
ऊरुस्तम्भद्वयं तस्य सुवृत्तं गूढजानुकम् । जगाम परमस्थैर्यं वक्षोभवनधारणात् ॥२२॥
विजयार्द्धगिरौ तेन सर्वे विद्याधराधिपाः । आहिता वैतसीं वृत्तिं महाविद्याबलर्द्धिना ॥२३॥
इन्द्रमन्दिरसंकाशं भवनं तस्य निर्मितम् । चत्वारिंशत्सहस्राभिः सहस्राणि च योषिताम् ॥२४॥
षड्विंशतिसहस्राणि ननृतुर्नाटकानि च । इत्तिनां व्योममार्गाणां वाजिनां च निरन्तता[3] ॥२५॥
शशाङ्कधवलस्तुङ्गो गगनाङ्गणगोचरः । दुर्निवार्यो महावीर्यो दंष्ट्राष्टकविराजितः ॥२६॥
दन्तिराजो महावृत्तकरार्गलितदिङ्मुखः । ऐरावताभिधानेन गुणैश्च प्रथितो भुवि ॥२७॥
शक्त्या परमया युक्तौ लोकपालचतुष्टयम् । शची च महिषी रम्या सुधर्माख्या तथा सभा ॥२८॥
वज्रं प्रहरणं त्रीणि सदांस्यप्सरसां गणाः । नाम्ना हरिणकेशी च सेनावास्तस्य चाधिपः ॥२९॥

समय गर्भ स्थित पुत्रोंकी इच्छाके साथ अपने पैर पृथिवीपर पटकती थी तो पृथिवीतल काँप उठता था ॥१५॥ बिना विचार किये इच्छानुसार धन दानमें दिया गया। मनुष्योंकी बात दूर रही हाथियोंने भी उस समय अपनी चंचल सूँड़ ऊपर उठाकर गर्जना करते हुए नृत्य किया था ॥१६॥ शत्रुओंके घरोंमें शोकसूचक उत्पात होने लगे और बन्धुजनोंके घरोंमें बहुत भारी सम्पदाओंकी सूचना देनेवाले शुभ शकुन होने लगे ॥१७॥ चूँकि बालकके गर्भमें रहते हुए माताको इन्द्रके भोग भोगनेकी इच्छा हुई थी इसलिए पिताने उस बालकका इन्द्र नाम रखा ॥१८॥ वह बालक था फिर भी उसकी क्रीड़ाएँ शक्तिसम्पन्न तरुण मनुष्यको जीतनेवाली थीं, शत्रुओंका मान खण्डित करनेवाली थीं और उत्तम कार्यमें प्रवृत्त थीं ॥१९॥ क्रम-क्रमसे वह उस यौवनको प्राप्त हुआ जिसने तेजसे सूर्यको, कान्तिसे चन्द्रमाको और स्थैर्यसे पर्वतको जीत लिया था ॥२०॥ उसके कन्धे दिग्गजके गण्डस्थलके समान स्थूल और भुजाएँ गोल थीं तथा उसने विशाल वक्षःस्थलसे समस्त दिशाएँ मानो आच्छादित ही कर रखी थीं ॥२१॥ जिनके घुटने मांसपेशियोंमें गूढ़ थे ऐसी उसकी दोनों गोल जाँघें स्तम्भोंकी तरह वक्षःस्थलरूपी भवनको धारण करनेके कारण परम स्थिरताको प्राप्त हुई थीं ॥२२॥ बहुत भारी विद्याबल और ऋद्धिसे सम्पन्न उस तरुण इन्द्रने विजयार्ध पर्वतके समस्त विद्याधर राजाओंको बेंतके समान नम्रवृत्ति धारण करा रखी थी अर्थात् सब उसके आज्ञाकारी थे ॥२३॥ उसने इन्द्रके महलके समान सुन्दर महल बनवाया। अड़तालीस हजार उसकी स्त्रियाँ थीं। छब्बीस हजार नृत्यकार नृत्य करते थे। आकाशमें चलनेवाले हाथियों और घोड़ोंकी तो गिनती ही नहीं थी ॥२४-२५॥ एक हाथी था, जो चन्द्रमाके समान सफेद था, ऊँचा था, आकाशरूपी आँगनमें चलनेवाला था, जिसे कोई रोक नहीं सकता था, महाशक्तिशाली था, आठ दाँतोंसे सुशोभित था, बड़ी मोटी गोल सूँड़से जो दिशाओंमें मानो अर्गल लगा रखता था, तथा गुणोंके द्वारा पृथिवीपर प्रसिद्ध था, उसका उसने ऐरावत नाम रखा था ॥२६-२७॥ चारों दिशाओंमें परम शक्तिसे युक्त चार लोकपाल नियुक्त किये, पट्टरानीका नाम शची और सभाका नाम सुधर्मा रखा ॥२८॥ वज्र नामका शस्त्र, तीन सभाएँ, अप्सराओंके समूह, हरिणकेशी सेनापति,

---

१. शक्त्या म.। शक्ता ख.। २. सत्वरी म.। ३. निरंहसाम् म.। ४. रम्या तथा सभा क.। ५. वज्रं क.।

अश्विनौ वसवश्चाष्टौ चतुर्भेदा दिवौकसः । नारदस्तुम्बुरू विश्वावसुप्रभृतिगायकाः ॥३०॥
उर्वशी मेनका मञ्जुस्वन्याश्चाप्सरसो वराः । मन्त्री बृहस्पतिः सर्वमेवं तस्य सुरेन्द्रवत् ॥३१॥
इत्थोऽसौ नमिजातः सर्वविद्याभृतां पतिः । ऐश्वर्यं सुरनाथस्य बिभ्राणः पुण्यसंभृतम् ॥३२॥
अत्रान्तरे महामानी माली लङ्कापुरीपतिः । पूर्वमेव श्रिया सर्वान् शास्ति खेचरपुङ्गवान् ॥३३॥
निजबाहुबलस्थेषु समस्तेषु पुरेषु सः । लङ्कागतः करोत्यैश्यं स्वभ्रातृबलगर्वितः ॥३४॥
वेश्या यानं विमानं वा कन्या वासांसि भूषणम् । यद्यच्छ्रेणीद्वये सारं वस्तु चारैर्निवेद्यते ॥३५॥
एतत्सर्वं बलाद्वीरः क्षिप्रमानयत्यसौ । पश्यन्नात्मानमेवैकं बलविद्याविभूतिभिः ॥३६॥
इन्द्राश्रयात् खगेशानां भग्नां श्रुत्वास्य चाज्ञया । प्रस्थितो भ्रातृकिष्किन्धसुतैः साकं महाबलः ॥३७॥
विमानैर्विविधच्छायैः संध्यामेघैरिवोन्नतैः । महाप्रासादसंकाशैः स्यन्दनैः काञ्चनाञ्चितैः ॥३८॥
[illegible] । [illegible] ॥३९॥
वाजिभिर्मनसोऽप्युग्रैः सैन्यैश्च वाहनैः । खाङ्गणं छादयन्सर्वं महाभासुरविग्रहैः ॥४०॥
अथ मालिनमित्यूचे सुमाली भ्रातृवत्सलः । प्रदेशेऽत्रैव तिष्ठामो भ्रातरद्य न गम्यते ॥४१॥
कुतो वा प्रतिगच्छामः शृणु कारणमत्र मे । अनिमित्तानि दृश्यन्ते पुनः पुनरितायने[4] ॥४२॥
एवं संकोच्य चरणमत्यन्ताकुलमानसः । स्थितः शुष्कद्रुमस्याग्रे क्षुण्वन् पक्षान् पुनः पुनः ॥४३॥

अश्विनीकुमार वैद्य, आठ वसु, चार प्रकारके देव, नारद, तुम्बुरु, विश्वावसु आदि गायक, उर्वशी, मेनका, मंजुस्वनी आदि अप्सराएँ, और बृहस्पति मन्त्री आदि समस्त वैभव उसने इन्द्रके समान ही विक्रियत किया था ॥२९–३१॥ तदनन्तर यह, नमि विद्याधरके पुण्योदयसे प्राप्त इन्द्रका ऐश्वर्य धारण करता हुआ समस्त विद्याधरोंका अधिपति हुआ ॥३२॥

इसी समय लंकापुरीका स्वामी महामानी माली था सो समस्त विद्याधरोंपर पहले ही के समान शासन करता था ॥३३॥ अपने भाइयोंके बलसे गर्वको धारण करनेवाला माली, लंकामें रहकर ही विजयार्ध पर्वतके समस्त नगरोंमें अपना शासन करता था ॥३४॥ वेश्या, वाहन, विमान, कन्या, वस्त्र तथा आभूषण आदि जो-जो श्रेष्ठ वस्तु, दोनों श्रेणियोंमें गुप्तचरोंसे इसे मालूम होती थी उस सबको धीर-वीर माली जबरदस्ती शीघ्र ही अपने यहाँ बुलवा लेता था। वह बल, विद्या, विभूति आदिसे अपने आपको ही सर्वश्रेष्ठ मानता था ॥३५–३६॥ अब इन्द्रका आश्रय पाकर विद्याधर मालीकी आज्ञा भंग करने लगे सो यह समाचार सुन महाबलवान् माली भाई तथा किष्किन्धके पुत्रोंके साथ विजयार्ध गिरिकी ओर चला ॥३७॥ कोई अनेक प्रकारकी कान्तिको धारण करनेवाले तथा सन्ध्याकालके मेघोंके समान ऊँचे विमानोंपर बैठकर जा रहे थे, कोई बड़े-बड़े महलोंके समान सुवर्णजटित रथोंमें बैठकर चल रहे थे, कोई मेघोंके समान श्यामवर्ण हाथियोंपर बैठे थे, कोई मनके समान शीघ्र गमन करनेवाले घोड़ोंपर सवार थे, कोई शार्दूलोंपर, कोई चीतोंपर, कोई बैलोंपर, कोई सिंहोंपर, कोई ऊँटोंपर, कोई गधोंपर, कोई भैंसोंपर, कोई हंसोंपर, कोई भेड़ियोंपर तथा कोई अन्य वाहनोंपर बैठकर प्रस्थान कर रहे थे। इस प्रकार महादेदीप्यमान शरीरके धारक अन्यान्य वाहनोंसे समस्त आकाशांगणको आच्छादित करता हुआ माली विजयार्ध-के निकट पहुँचा ॥३८-४०॥ अथानन्तर भाईके स्नेहसे भरे सुमालीने मालीसे कहा कि हे भाई ! हम सब आज यहीं ठहरें, आगे न चलें अथवा लंकाको वापस लौट चलें। इसका कारण यह है कि आज मार्गमें बार-बार अपशकुन दिखाई देते हैं ॥४१–४२॥ देखो उधर सूखे वृक्षके अग्रभाग-पर बैठा कौआ एक पैर संकुचित कर बार-बार पंख फड़फड़ा रहा है। उसका मन अत्यन्त व्याकुल दिखाई देता है, सूखा काठ चोंचमें दबाकर सूर्यकी ओर देखता हुआ क्रूर शब्द कर रहा

---

१. तुम्बरो म.। २. अश्वैः। ३. खरैः। ४. मार्गे।

शुष्ककाष्ठं दधच्छ्मश्रु वीक्षमाणो[1] दिवाकरम् । रसन् क्रूरमयं ध्वाङ्क्षो निवारयति नो गतिम् ॥४४॥
ज्वालाराद्रमुखी चेयं शिवा मो भुजदक्षिणे । घोरं घिरीति रोमाणि दृष्टा निष्पतितं मुहुः ॥४५॥
अयं पतङ्गबिम्बे च परिवेषिणि दृश्यते । कबन्धो भीषणो दृष्टकीलालबजालकः[2] ॥४६॥
घोराः पतन्ति निर्यातः कम्पिताखिलपर्वताः । दृश्यन्ते वनिताः कृत्स्ना मुक्तकेश्यो नभस्तले ॥४७॥
खरं खरः खैमुच्छ्रिप्य मुखं मुखरयन्नभः । क्षितिं खनन् खुराग्रेण दक्षिणः कुरुते स्वरम् ॥४८॥
प्रत्युवाच ततो माली सुमालिनमिति स्फुटम् । कृत्वा स्मितं दृढं बाहू केयूराभ्यां[3] निपीडयन् ॥४९॥
अभिप्रेत्य वधं शत्रोरारुह्य जयिनं द्विपम् । प्रस्थितः पौरुषं बिभ्रत्कथं भूयो[4] निवर्तते ॥५०॥
दंष्ट्रयोः प्रेङ्खणं कुर्वन् क्षरदानस्य दन्तिनः । चक्षुर्वित्रासितारातिः पूर्यमाणः[5] शितैः शरैः ॥५१॥
दन्तदष्टाधरो वक्त्रभ्रकुटीकुटिलाननः । विस्मितैरमरैर्दृष्टो भटः किं विनिवर्तते ॥५२॥
कन्दरासु रतं मेरोर्नन्दने चारुनन्दने । चैत्यालया जिनेन्द्राणां कारिता गगनस्पृशः ॥५३॥
दत्तं किमिच्छकं दानं भुक्ता भोगा महागुणाः । यशो धवलिताशेषभुवनं समुपार्जितम् ॥५४॥
जन्मनेत्थं कृतार्थोऽस्मि यदि प्राणान्महाहवे । परित्यजामि कियता कृतमन्येन वस्तुना ॥५५॥
अपौ पलायितो भीतो वराक इति भाषितम् । कथमाकर्णयद्वीरो जनतायाः सुचेतसः ॥५६॥
इति संभाषमाणोऽसौ भ्रातरं भासुराननः । विजयार्द्धस्य मूर्द्धानं क्षणादविदितं ययौ ॥५७॥

है मानो हम लोगोंको आगे जानेसे रोक रहा है ॥४३-४४॥ इधर ज्वालाओंसे जिसका मुख अत्यन्त रुद्र मालूम होता है ऐसी यह शृगाली दक्षिण दिशामें रोमांच धारण करती हुई भयंकर शब्द कर रही है ॥४५॥ देखो, परिवेषसे युक्त सूर्यके बिम्बमें वह भयंकर कबन्ध दिखाई दे रहा है और उससे खूनकी बूँदोंका समूह बरस रहा है ॥४६॥ उधर समस्त पर्वतोंको कम्पित करनेवाले भयंकर वज्र गिर रहे हैं तो इधर आकाशमें खुले केश धारण करनेवाली समस्त स्त्रियाँ दिखाई दे रही हैं ॥४७॥ देखो, दाहिनी ओर वह गर्दभ ऊपरको मुख उठाकर आकाशको बड़ी तीक्ष्णतासे मुखरित कर रहा है तथा खुरके अग्रभागसे पृथिवीको खोदता हुआ भयंकर शब्द कर रहा है ॥४८॥ तदनन्तर बाजूबन्दोंसे दोनों भुजाओंको अच्छी तरह पीड़ित करते हुए मालीने मुसकराकर सुमालीको इस प्रकार स्पष्ट उत्तर दिया कि शत्रुके वधका संकल्प कर तथा विजयी हाथीपर सवार हो जो पुरुषार्थका धारी युद्धके लिए चल पड़ा है वह वापस कैसे लौट सकता है ॥४९-५०॥ जो मदमत्त हाथीकी दाढ़ोंको हिला रहा है, अपनी आँखोंसे ही जिसने शत्रुओंको भयभीत कर दिया है, जो तीक्ष्ण बाणोंसे परिपूर्ण है, दाँतोंसे जिसने अधरोष्ठ चाब रखा है, तनी हुई भ्रकुटियोंसे जिसका मुँह कुटिल हो रहा है तथा देव लोग जिसे आश्चर्यचकित हो देखते हैं ऐसा योद्धा क्या वापस लौटता है ? ॥५१-५२॥ मैंने मेरु पर्वतकी कन्दराओं तथा सुन्दर नन्दन वनमें रमण किया है, गगनचुम्बी जिनमन्दिर बनवाये हैं ॥५३॥ किमिच्छक दान दिया है, उत्तमोत्तम भोग भोगे हैं और समस्त संसारको उज्ज्वल करनेवाला यश उपार्जित किया है ॥५४॥ इस प्रकार जन्म लेनेका जो कार्य था उसे मैं कर चुका हूँ—कृतकृत्य हुआ हूँ, अब युद्धमें मुझे प्राण भी छोड़ना पड़े तो इससे क्या ? मुझे अन्य वस्तुकी आवश्यकता नहीं ॥५५॥ 'वह बेचारा भयभीत हो युद्धसे भाग गया' जनताके ऐसे शब्दोंको धीरवीर मनुष्य कैसे सुन सकता है ॥५६॥ क्रोधसे जिसका मुख तमतमा रहा था ऐसा माली भाईसे इस प्रकार कहता हुआ तत्क्षण बिना जाने ही विजयार्धके शिखरपर चला गया ॥५७॥ तदनन्तर जिन-जिन विद्याधरोंने उसका शासन नहीं माना था

१. वीक्षमाणः म., ख. । २. रसक्रूरमयं म. । ३. दृष्टया म. । ४. पुञ्जकीलाल-म. । ५. आकार्णं । ६. केशराभ्यां म. । ७. भूयो म. । ८. प्रेक्षणं म. । ततो हि प्रेक्षणं क. । ९. तर्यमाणः म. (?) । १०. चारुनन्दिने म. । चारुनन्दनः क. ।

ततोऽपमानितं तैर्यैः शासनं खेचराधिपैः । तत्पुराणि स सामन्तैर्ध्वंसयामास दारुणैः ॥५८॥
उद्यानानां महाध्वंसो जनितः क्रोधिभिः खगैः । यथा कमलखण्डानां मातङ्गैर्मदमन्थरैः ॥५९॥
ततः संबाध्यमाना सा प्रजा गगनचारिणाम् । जगाम शरणं त्रस्ता सहस्रारं सवेपथुः ॥६०॥
पादयोश्च प्रणम्योचे वचो दीनमिदं मृशम् । सुकेशस्य सुतैर्ध्वस्ता समस्ता नाथ पालय ॥६१॥
सहस्रारस्ततोऽवोचत् खगा गच्छत मत्सुतम् । विज्ञापयत युष्माकं सपरित्राणकारणम् ॥६२॥
त्रिविष्टपं यथा शक्रो रक्षत्यूर्जितशासनः । एवं लोकमिमं पाति स सर्वं वृत्रसूदनः ॥६३॥
एवमुक्तास्ततो जग्मुरिन्द्राभ्यासं नभश्चराः । कृत्वाञ्जलिं प्रणेमुश्च वृत्तान्तं च न्यवेदयन् ॥६४॥
इन्द्रस्ततोऽवदत् क्रुद्धो दर्पस्मितसिताननः । पार्श्वे व्यवस्थिते वज्रे दत्त्वा लोहितलोचने ॥६५॥
यत्नेन महतान्विष्य हन्तव्या लोककण्टकाः । किं पुनः स्वयमायाताः समीपं लोकपालिनः ॥६६॥
ततो मत्तद्विपालानस्तम्भभङ्गस्य कारणम् । रणसंज्ञाविधानार्थं विषमं तूर्यमाहतम् ॥६७॥
संनाहभण्डनोपेता निरीयुश्च नभश्चराः । हेतिहस्ताः परं हर्षं बिभ्राणा रणसंभ्रमम् ॥६८॥
रथैरश्वैर्गजैरुष्ट्रैः सिंहैर्व्याघ्रैर्वृकैर्मृगैः । हंसच्छागैर्वृषैर्मेषैर्विमानैर्वर्हणैः खरैः ॥६९॥
लोकपालाश्च निर्जग्मुर्निजवर्गसमन्विताः । नानाहेतिप्रभाश्लिष्टा भ्रूभङ्गविषमाननाः ॥७०॥
ऐरावतं समारुह्य कवचच्छन्नविग्रहः । समुच्छ्रितसितच्छत्रो निरैदिन्द्रः समं सुरैः ॥७१॥

उन सबके नगर उसने क्रूर सामन्तोंके द्वारा नष्ट-भ्रष्ट कर दिये ॥५८॥ जिस प्रकार मदमाते हाथी कमल वनोंको विध्वस्त कर देते हैं उसी प्रकार क्रोधसे भरे विद्याधरोंने वहाँके उद्यान—बाग-बगीचे विध्वस्त कर दिये ॥५९॥ तदनन्तर मालीके सामन्तों द्वारा पीड़ित विद्याधरोंकी प्रजा भयसे काँपती हुई सहस्रारकी शरणमें गयी ॥६०॥ और उसके चरणोंमें नमस्कार कर इस प्रकार दीनता-भरे शब्द कहने लगी—हे नाथ! सुकेशके पुत्रोंने समस्त प्रजाको क्षत-विक्षत कर दिया है सो उसकी रक्षा करो ॥६१॥ तब सहस्रारने विद्याधरोंसे कहा कि आप लोग मेरे पुत्र—इन्द्रके पास जाओ और उससे अपनी रक्षाकी बात कहो ॥६२॥ जिस प्रकार बलिष्ठ शासनको धारण करनेवाला इन्द्र स्वर्गकी रक्षा करता है उसी प्रकार पापको नष्ट करनेवाला मेरा पुत्र इस समस्त लोककी रक्षा करता है ॥६३॥

इस प्रकार सहस्रारका उत्तर पाकर विद्याधर इन्द्रके समीप गये और हाथ जोड़ प्रणाम करनेके बाद सब समाचार उससे कहने लगे ॥६४॥ तदनन्तर गर्वपूर्ण मुसकानसे जिसका मुख सफेद हो रहा था ऐसे क्रुद्ध इन्द्रने पासमें रखे वज्रपर लाल-लाल नेत्र डालकर कहा कि ॥६५॥ जो लोकके कण्टक हैं मैं उन्हें बड़े प्रयत्नसे खोज-खोजकर नष्ट करना चाहता हूँ फिर आप लोग तो स्वयं ही मेरे पास आये हैं और मैं लोकका रक्षक कहलाता हूँ ॥६६॥ तदनन्तर जिसे सुनकर मदोन्मत्त हाथी अपने बन्धनके खम्भोंको तोड़ देते थे ऐसा तुरहीका विषम शब्द उसने युद्धका संकेत करनेके लिए कराया ॥६७॥ उसे सुनते ही जो कवचरूपी आभूषणसे सहित थे, हथियार जिनके हाथमें थे और जो युद्ध सम्बन्धी परम हर्ष धारण कर रहे थे ऐसे विद्याधर अपने-अपने घरोंसे बाहर निकल पड़े ॥६८॥ वे विद्याधर मायामयी रथ, घोड़े, हाथी, ऊँट, सिंह, व्याघ्र, भेड़िया, मृग, हंस, बकरा, बैल, मेढ़ा, विमान, मोर और गर्दभ आदि वाहनोंपर बैठे थे ॥६९॥ इनके सिवाय जो नाना प्रकारके शस्त्रोंकी प्रभासे आलिंगित थे तथा भौंहोंके भंगसे जिनके मुख विषम दिखाई देते थे ऐसे लोकपाल भी अपने-अपने परिकरके साथ बाहर निकल पड़े ॥७०॥ जिसका शरीर कवचसे आच्छादित था, और जिसके ऊपर सफेद छत्र फिर रहा था ऐसा इन्द्र विद्याधर भी ऐरावत हाथीपर आरूढ़ हो देवोंके साथ

---

१. शासवामास क., ख. । २. रक्षस्यूर्जित म. । ३. वृत्रसूदनः म., क. । पापहारकः । ४. निरगच्छत् ।

युगान्तघनसीमानौ ततः प्रववृते रणः । देवानां राक्षसानां च दुःप्रेक्ष्यः क्रूरचेष्टितः ॥७२॥
सप्तिना पात्यते वाजी रथेन क्षोद्यते रथः । भज्यते दन्तिना दन्ती पादातं च पदातिभिः ॥७३॥
प्रासमुद्गरचक्रासिभुषण्डीमुसलेषुभिः । गदाकनकपाशैश्च छन्नं कृत्स्नं नभस्तलम् ॥७४॥
महोत्साहमथो सैन्यं पुरस्सरणदक्षिणम् । दक्षिणं चलितोद्योगं देवानां निबर्हैः कृतम् ॥७५॥
विद्युद्वान् चारुदानश्च चन्द्रो नित्यगतिस्तथा । चलज्योतिःप्रभाढ्यश्च रक्षसामक्षिणोद् बलम् ॥७६॥
अथर्क्षसूर्यरजसावुत्तुङ्गकपिकेतुकौ । सीदतो राक्षसान् वीक्ष्य दुर्धरौ योद्धुमुद्यतौ ॥७७॥
दर्शिताः पृष्ठमेताभ्यां सर्वे ते सुरपुङ्गवाः । क्षणादन्यत्र दृष्टाभ्यां दधद्भ्यां वैगुतं जवम् ॥७८॥
यातुधाना अपि प्राप्य बलं ताभ्यां समुद्यता । योद्धुं शस्त्रसमूहेन कुर्वाणा ध्वान्तमम्बरे ॥७९॥
ध्वंस्यमानं ततः सैन्यं दैवं यातुकपिध्वजैः । दृष्ट्वा क्रुद्धः समुत्तस्थौ स्वयं योद्धुं सुराधिपः ॥८०॥
कपियातुधनैर्व्याप्तस्ततो देवेन्द्रभूधरः । शस्त्रवर्षं विमुञ्चद्भिरुदारगर्जनकारिभिः ॥८१॥
निजगाद ततः शक्रः पालयन् लोकपालिनः । सर्वतो विशिखैर्मुञ्चन्नेवमेव कपीरक्षसान् ॥८२॥
अथ माली समुत्तस्थौ सैन्यं दृष्ट्वा समाकुलम् । तेजसा क्रोधजातेन दीपयन् सकलं नभः ॥८३॥
अभवच्च ततो युद्धं मालीन्द्रमतिदारुणम् । विस्मयव्याप्तचित्ताभ्यां सेनाभ्यां कृतदर्शनम् ॥८४॥
मालिनो मालदेशेऽथ स्वकनामाङ्कितं शरम् । आकर्णाकृष्टनिर्मुक्तं निचखान सुराधिपः ॥८५॥
संस्ताम्भ्य वेदनां क्रोधान्मालिनाप्यमरोत्तमः । ललाटस्य तटे शक्त्या हतो वेगविमुक्तया ॥८६॥

बाहर निकला ॥७१॥ तदनन्तर प्रलयकालके मेघोंके समान भयंकर देवों और राक्षसोंके बीच ऐसा विकट युद्ध हुआ कि जो बड़ी कठिनाईसे देखा जाता था तथा क्रूर चेष्टाओंसे भरा था ॥७२॥ घोड़ा घोड़ाको गिरा रहा था, रथ रथको चूर्ण कर रहा था, हाथी हाथीको भग्न कर रहा था और पैदल सिपाही पैदल सिपाहीको नष्ट कर रहा था ॥७३॥ भाले, मुद्गर, चक्र, तलवार, बन्दूक, मुसल, बाण, गदा, कनक और पाश आदि शस्त्रोंसे समस्त आकाश आच्छादित हो गया था ॥७४॥ तदनन्तर देव कहानेवाले विद्याधरोंने एक ऐसी सेना बनायी जो महान् उत्साहसे युक्त थी, आगे चलनेमें कुशल थी, उदार थी और शत्रुके उद्योगको विचलित करनेवाली थी ॥७५॥ देवोंकी सेनाके प्रधान विद्युत्वान्, चारुदान, चन्द्र, नित्यगति तथा चलज्ज्योति प्रभाढ्य आदि देवोंने राक्षसोंकी सेनाको क्षत-विक्षत बना दिया। तब वानरवंशियोंमें प्रधान दुर्धर पराक्रमके धारी ऋक्षरज और सूर्यरज राक्षसोंको नष्ट होते देख युद्ध करनेके लिए तैयार हुए ॥७६-७७॥ ये दोनों ही वीर विजयी जैसे वेगको धारण करते थे इसलिए क्षण-क्षणमें अन्यत्र दिखाई देते थे। इन दोनोंने देवोंको इतना मारा कि उनसे पीठ दिखाते ही बनी ॥७८॥ इधर राक्षस भी इन दोनोंका बल पाकर शस्त्रोंके समूहसे आकाशमें अन्धकार फैलाते हुए युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥७९॥ उधर जब इन्द्रने देखा कि राक्षसों और वानरवंशियोंके द्वारा देवोंकी सेना नष्ट की जा रही है तब वह क्रुद्ध हो स्वयं युद्ध करनेके लिए उठा ॥८०॥ तदनन्तर शस्त्र वर्षा और गम्भीर गर्जना करनेवाले वानर तथा राक्षसरूपी मेघोंने उस इन्द्ररूपी पर्वतको घेर लिया ॥८१॥ तब लोकपालोंकी रक्षा करते हुए इन्द्रने जोरसे गर्जना की और सब ओर छोड़े हुए बाणोंसे वानर तथा राक्षसोंको नष्ट करना शुरू कर दिया ॥८२॥ तदनन्तर सेनाको व्याकुल देख माली स्वयं उठा। उस समय वह क्रोधसे उत्पन्न तेजसे समस्त आकाशको देदीप्यमान कर रहा था ॥८३॥ तदनन्तर माली और इन्द्रका अत्यन्त भयंकर युद्ध हुआ। आश्चर्यसे जिनके चित्त भर रहे थे ऐसी दोनों ओरकी सेनाएँ उनके उस युद्धको बड़े गौरवसे देख रही थीं ॥८४॥ तदनन्तर इन्द्रने, जो कान तक खींचकर छोड़ा गया था तथा अपने नामसे चिह्नित था ऐसा एक बाण मालीके ललाटपर गाड़ दिया ॥८५॥ इधर मालीने भी उसकी पीड़ा रोककर वेगसे छोड़ी हुई

---

१. जातु कपि म.।

रक्तारुणितदेहश्च माली द्राक् तमुपागतः । क्रोधारुणः सहस्रांशुर्यथास्तधरणीधरम् ॥८७॥
भानुबिम्बसमानेन चक्रेणास्य ततः शिरः । आभिमुख्यमुपेतस्य छित्त्वा पत्या दिवौकसाम् ॥८८॥
भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा नितान्तं दुःखितस्ततः । चिन्तयित्वा महावीर्यं चक्रिणं व्योमगामिनाम् ॥८९॥
परिवारेण सर्वेण निजेन सहितः क्षणात् । रणात् पलायनं चक्रे सुमाली नयपेशलः ॥९०॥
तद्वधार्थं गतं शक्रमनुमार्गेण गत्वरम् । उवाच प्रणतः सोमः स्वामिभक्तिपरायणः ॥९१॥
विद्यमाने प्रभो भृत्ये मादृशे शत्रुमारणे । प्रयत्नं कुरुषे कस्मात् स्वयं मे यच्छ शासनम् ॥९२॥
एवमस्त्विति चोक्तेऽसावनुमार्गं रिपोर्गतः । बाणपुञ्जं विमुञ्चन्य करौघमिव रश्मिमान् ॥९३॥
ततस्तदाहतं सैन्यं विशिखैः कपिरक्षसाम् । धाराहतं गवां यद्वत्कुलमाकुलतां गतम् ॥९४॥
पाप न क्षत्रमर्यादां त्वं जानासि मनागपि । जडवर्गपरिक्षिप्त इत्युक्ता प्रोक्षकारिणा ॥९५॥
निवृत्य क्रोधदीप्तेन ततो माल्यवता शौर्यी । गाढं स्तनान्तरे भिन्नो भिण्डिमालेन मूर्च्छितः ॥९६॥
अयं त्वाश्वास्यते यावन्मूर्च्छामीलितलोचनः । अन्तर्द्धानं गतास्तावद् यातुधानप्लवङ्गमाः ॥९७॥
पुनर्जन्मैव ते प्राप्ता अलंकारोदयं पुरम् । सिंहस्येव विनिःक्रान्ता जठरादागताः सुखम् ॥९८॥
प्रतिबुद्धः शशाङ्कोऽपि दिशो वीक्ष्य रिपुच्छिताः । स्तूयमानो जयेनारेर्ययौ मघवतोऽन्तिकम् ॥९९॥
ध्वस्तबाधुरुच सुश्रामा वन्दिना निवहैः स्तुतः । अन्वितो लोकपालानां चक्रवालेन तोषिणा ॥१००॥

शक्तिके द्वारा इन्द्रके ललाटके समीप ही जमकर चोट पहुँचायी ॥८६॥ खूनसे जिसका शरीर लाल हो रहा था ऐसा क्रोधयुक्त माली शीघ्र ही इन्द्रके पास इस तरह पहुँचा जिस तरह कि सूर्य अस्ताचलके समीप पहुँचता है ॥८७॥ तदनन्तर माली ज्यों ही सामने आया त्यों ही इन्द्रने सूर्य-बिम्बके समान चक्रसे उसका सिर काट डाला ॥८८॥ भाईको मरा देख सुमाली बहुत दुःखी हुआ। उसने विचार किया कि विद्याधरोंका चक्रवर्ती इन्द्र महाशक्तिशाली है अतः इसके सामने हमारा स्थिर रहना असम्भव है। ऐसा विचारकर नीतिकुशल सुमाली अपने समस्त परिवारके साथ उसी समय युद्धसे भाग गया ॥८९-९०॥ उसका वध करनेके लिए इन्द्र उसी मार्गसे जानेको उद्यत हुआ तब स्वामिभक्तिमें तत्पर सोमने नम्र होकर प्रार्थना की कि हे प्रभो ! शत्रुको मारने-वाले मुझ-जैसे भृत्यके रहते हुए आप स्वयं क्यों प्रयत्न करते हैं ? मुझे आज्ञा दीजिए ॥९१-९२॥ 'ऐसा ही हो' इस प्रकार इन्द्रके कहते ही सोम शत्रुके पीछे उसी मार्गसे चल पड़ा। वह शत्रु तक पहुँचनेवाली किरणोंके समूहके समान बाणोंके समूहकी वर्षा करता जाता था ॥९३॥ तदनन्तर जिस प्रकार जलवृष्टिसे पीड़ित गायोंका समूह व्याकुलताको प्राप्त होता है उसी प्रकार सोमके बाणोंसे पीड़ित वानर और राक्षसोंकी सेना व्याकुलताको प्राप्त हुई ॥९४॥ तदनन्तर अवसरके योग्य कार्य करनेवाले, क्रोधसे देदीप्यमान माल्यवान्‌ने मुड़कर सोमसे कहा कि अरे पापी ! तू मूर्ख लोगोंसे घिरा है अतः तू युद्धकी मर्यादाको नहीं जानता। यह कहकर उसने भिण्डिमाल नामक शस्त्रसे सोमके वक्षःस्थलमें इतनी गहरी चोट पहुँचायी कि वह वहीं मूर्च्छित हो गया ॥९५-९६॥ मूर्च्छाके कारण जिसके नेत्र निमीलित थे ऐसा सोम जब तक कुछ विश्राम लेता है तबतक राक्षस और वानर अन्तर्हित हो गये ॥९७॥ जिस प्रकार कोई सिंहके उदरसे सुरक्षित निकल आवे उसी प्रकार वे भी सोमकी चपेटसे सुरक्षित निकलकर अलंकारोदयपुर अर्थात् पाताल लंकामें वापस आ गये। उस समय उन्हें ऐसा लगा मानो पुनर्जन्मको ही प्राप्त हुए हों ॥९८॥ इधर जब सोमकी मूर्च्छा दूर हुई तो उसने दिशाओंको शत्रुसे खाली देखा। निदान, शत्रुकी विजयसे जिसकी स्तुति हो रही थी ऐसा सोम इन्द्रके समीप वापस पहुँचा ॥९९॥ जिसने शत्रुओंको नष्ट कर दिया था

---

१. सत्वरम् ख. । गत्वरा क. । २ शासतम् म. । ३. प्राप्तकारणम् क. । ४. सोमः । ५. अलङ्कारोदयं म. । ६. मुखम् ख. ।

ऐरावतं समारूढश्चामरानिलवीजितः । सितच्छत्रकृतच्छायो नृत्यत्सुरपुरःसरः ॥१०१॥
रत्नांशुकध्वजन्यस्तशोभमुच्छ्रिततोरणम् । आमुक्तपुष्पविस्तीर्णं सिक्तं कुसुमवारिणा ॥१०२॥
गवाक्षन्यस्तसन्नारीनयनालीनिरीक्षितः । युक्तः परमया भूत्या विवेश रथनूपुरम् ॥१०३॥
पित्रोश्च विनयात् पादौ प्रणनाम कृताञ्जलिः । तौ च पस्पृशतुर्गात्रं कम्पिना तस्य पाणिना ॥१०४॥
शत्रूनेवं स निर्जित्य परमानन्दमागतः । आस्वादयन् परं भोगं प्रजापालनतत्परः ॥१०५॥
सुरराट् स ततो लोके प्रसिद्धिं शक्रतां गतः । प्राप्तः स्वर्गप्रसिद्धिं च विजयार्द्धश्च भूधरः ॥१०६॥
उत्पत्तिं लोकपालानां तस्य वक्ष्यामि साम्प्रतम् । एकाग्रं मानसं कृत्वा श्रेणिकैषा निबुध्यताम् ॥१०७॥
स्वर्गलोकाच्च्युतो जातो मकरध्वजखेचरात् । संभूतो जठरेऽदित्या लोकपालोऽमवच्छशी ॥१०८॥
कान्तिमानेष शक्रेण द्योतिःसङ्गे पुरोत्तमे । पूर्वस्यां ककुभि न्यस्तो मुमुदे परमर्द्धिकः ॥१०९॥
जातो मेघरथाभिख्याद्वरुणायां महाबलः । खेचरो वरुणो नाम संप्राप्तो लोकपालताम् ॥११०॥
पुरे मेघपुरे न्यस्तः पश्चिमायामसौ दिशि । पाशं प्रहरणं श्रुत्वा यस्य बिभ्यति शत्रवः ॥१११॥
संभूतः कनकावल्यां किंसूर्येण महात्मना । कुबेराख्यो नभोगामी विभूत्या परयान्वितः ॥११२॥
काञ्चनाख्ये पुरे चायमुदीच्यां दिशि योजितः । संप्राप परमं भोगं प्रख्यातो जगति श्रिया ॥११३॥
संभूतः श्रीप्रभायर्भे कालाग्निस्त्योमचारिणः । चण्डकर्मा यमो नाम तेजस्वी परमोऽभवत् ॥११४॥
दक्षिणोदन्वतो द्वीपे किष्कुनाम्नि पुरोत्तमे । स्थापितोऽसौ स्वपुण्यानां प्राप्नुवन्नूर्जितं फलम् ॥११५॥

तथा वन्दीजनोंके समूह जिसकी स्तुति कर रहे थे ऐसे इन्द्र विद्याधरने सन्तोषसे भरे लोकपालोंके साथ रथनूपुर नगरमें प्रवेश किया। वह ऐरावत हाथीपर सवार था, उसके दोनों ओर चमर ढोले जा रहे थे, सफेद छत्रकी उसपर छाया थी, नृत्य करते हुए देव उसके आगे-आगे चल रहे थे, तथा झरोखोंमें बैठी उत्तम स्त्रियाँ अपने नयनोंसे उसे देख रही थीं। उस समय रत्नमयी ध्वजाओंसे रथनूपुर नगरकी शोभा बढ़ रही थी, उसमें ऊँचे-ऊँचे तोरण खड़े किये गये थे, उसकी गलियोंमें घुटनों तक फूल बिछाये गये थे और केशरके जलसे समस्त नगर सींचा गया था। ऐसे रथनूपुर नगरमें उसने बड़ी विभूतिके साथ प्रवेश किया ॥१००–१०३॥ राजमहलमें पहुँचनेपर उसने हाथ जोड़कर माता-पिताके चरणोंमें नमस्कार किया और माता-पिताने भी काँपते हुए हाथसे उसके शरीरका स्पर्श किया ॥१०४॥ इस प्रकार शत्रुओंको जीतकर वह परम हर्षको प्राप्त हुआ और उत्कृष्ट भोग भोगता हुआ प्रजापालनमें तत्पर रहने लगा ॥१०५॥ तदनन्तर वह लोकमें इन्द्रकी प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ और विजयार्द्ध पर्वत स्वर्ग कहलाने लगा ॥१०६॥

गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! अब लोकपालोंकी उत्पत्ति कहता हूँ सो मनको एकाग्र कर सुनो ॥१०७॥ स्वर्ग लोकसे च्युत होकर मकरध्वज विद्याधरकी अदिति नामा स्त्रीके उदरसे सोम नामका लोकपाल उत्पन्न हुआ था। यह बहुत ही कान्तिमान् था। इन्द्रने इसे द्योतिःसंग नामक नगरकी पूर्व दिशामें लोकपाल स्थापित किया था। इस तरह यह परम ऋद्धिका धारी होता हुआ हर्षसे समय व्यतीत करता था ॥१०८–१०९॥ मेघरथ नामा विद्याधरकी वरुणा नामा स्त्रीसे वरुण नामका लोकपाल विद्याधर उत्पन्न हुआ था। इन्द्रने इसे मेघपुर नगरकी पश्चिम दिशामें स्थापित किया था। इसका शस्त्र पाश था जिसे सुनकर शत्रु दूरसे ही भयभीत हो जाते थे ॥११०–१११॥ महात्मा किंसूर्य विद्याधरकी कनकावली स्त्रीसे कुबेर नामका लोकपाल विद्याधर उत्पन्न हुआ था। यह परम विभूतिसे युक्त था। इन्द्रने इसे कांचनपुर नगरकी उत्तर दिशामें स्थापित किया था। यह संसारमें लक्ष्मीके कारण प्रसिद्ध था तथा उत्कृष्ट भोगोंको प्राप्त था ॥११२–११३॥ कालाग्नि नामा विद्याधरकी श्रीप्रभा स्त्रीके गर्भसे यम नामका लोकपाल विद्याधर उत्पन्न हुआ था। यह रुद्रकर्मा तथा परम तेजस्वी था ॥ ११४ ॥ इन्द्रने इसे दक्षिण

१. विजयार्धोऽस्य ख. । विजयार्धस्य क. ।

पुरस्य यस्य यन्नाम पृथिव्यां ख्यातिमागतम् । तेनैव ख्यापिता नाम्ना पौरास्तत्र सुरेशिना ॥११६॥
असुराख्ये नभोगानां नगरे निवसन्ति ये । असुराख्या इमे जाताः सकले धरणीतले ॥११७॥
यक्षगीते पुरे यक्षाः किन्नराद्रे च किन्नराः । गन्धर्वसंज्ञया ख्याताः पुरे गन्धर्वनामनि ॥११८॥
अश्विनौ वसवो विश्वे वैश्वानरपुरस्सराः । कुर्वन्ति त्रिदशक्रीडां विद्याबलसमन्विताः ॥११९॥
अवाप्य संभवं योनौ प्राप्य श्रीविस्तरं भुवि । प्रणतो भूरिलोकेन मन्यते स्वं सुरेश्वरम् ॥१२०॥
इन्द्रः स्वर्गः सुराश्चान्ये समस्तास्तस्य विस्मृताः । संपन्नी रतिमेतस्य नित्योत्सवविधायिनः ॥१२१॥
स्वामिनं पर्वतं स्वर्गं लोकपालान् खगेश्वरान् । निजांश्च सकलान् देवान् स मेने भूतिगर्वितः ॥१२२॥
मत्तोऽस्ति न महान् कश्चित्पुरुषो भुवनत्रये । अहमेवास्य विश्वस्य प्रणेता विदिताखिलः ॥१२३॥
विद्याभृच्चक्रवर्तित्वमिति प्राप्य स गर्वितः । फलमन्वभवत् पूर्वजन्मोपात्तसुकर्मणः ॥१२४॥
भागोऽयं यो व्यतिक्रान्तस्तं वृत्तान्तमतः शृणु । धनदस्य समुत्पत्तिः श्रेणिक ज्ञायते यथा ॥१२५॥
व्योमबिन्दुरिति ख्यातः पुरे कौतुकमङ्गले । भार्या नन्दवती तस्यामुत्पन्ने दुहितृद्वयम् ॥१२६॥
कौशिकी ज्यायसी तत्र केकसी च कनीयसी । ज्येष्ठा विश्रवसे दत्ता पुरे यक्षविनिर्मिते ॥१२७॥
तस्यां वैश्रवणो जातः शुभलक्षणविग्रहः । शतपत्रेक्षणः श्रीमानङ्गनानयनोत्सवः ॥१२८॥
एवमुक्तः स चाहूय शक्रेण कृतपूजनः । व्रज लङ्कापुरीं शाधि प्रियस्त्वं मम खेचरान् ॥१२९॥
चतुर्णां लोकपालानामद्य प्रभृति पञ्चमः । लोकपालो भव त्वं मे मत्प्रसादान्महाबलः ॥१३०॥

सागरके द्वीपमें विद्यमान किष्कु नामक नगरकी दक्षिण दिशामें स्थापित किया था। इस प्रकार यह अपने पुण्यके प्रबल फलको भोगता हुआ समय व्यतीत करता था ॥११५॥ जिस नगरका जो नाम पृथिवीपर प्रसिद्ध था इन्द्रने उस नगरके निवासियोंको उसी नामसे प्रसिद्ध कराया था ॥११६॥ विद्याधरोंके असुर नामक नगरमें जो विद्याधर रहते थे पृथिवीतलपर वे असुर नामसे प्रसिद्ध हुए ॥११७॥ यक्षगीत नगरके विद्याधर यक्ष कहलाये। किन्नर नामा नगरके निवासी विद्याधर किन्नर कहलाये और गन्धर्वनगरके रहनेवाले विद्याधर गन्धर्व नामसे प्रसिद्ध हुए ॥११८॥ अश्विनीकुमार, विश्ववसु तथा वैश्वानर आदि विद्याधर विद्याबलसे सहित हो देवोंकी क्रीड़ा करते थे ॥११९॥ इन्द्र यद्यपि मनुष्य योनिमें उत्पन्न हुआ था फिर भी वह पृथिवीपर लक्ष्मीका विस्तार पाकर अपने आपको इन्द्र मानने लगा। सब लोग उसे नमस्कार करते थे ॥१२०॥ सम्पदाओंसे परम प्रीतिको प्राप्त तथा निरन्तर उत्सव करनेवाले उस इन्द्र विद्याधरकी समस्त प्रजा यह भूल गयी थी कि यथार्थमें कोई इन्द्र है, स्वर्ग है अथवा देव हैं ॥१२१॥ वैभवके गर्वमें फँसा इन्द्र, अपने आपको इन्द्र, विजयार्द्ध गिरिको स्वर्ग, विद्याधरोंको लोकपाल और अपनी समस्त प्रजाको देव मानता था ॥१२२॥ तीनों ही लोकोंमें मुझसे अधिक महापुरुष और कोई दूसरा नहीं है। मैं ही इस समस्त जगत्का प्रणेता तथा सब पदार्थोंको जाननेवाला हूँ ॥१२३॥ इस प्रकार विद्याधरोंका चक्रवर्तीपना पाकर गर्वसे फूला इन्द्र विद्याधर अपने पूर्व जन्मोपार्जित पुण्य कर्मका फल भोगता था ॥१२४॥ गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! इस भागका जो वृत्तान्त निकल चुका है उसे सुनो जिसमें धनदकी उत्पत्तिका ज्ञान हो सके ॥१२५॥ कौतुकमंगल नामा नगरमें व्योमबिन्दु नामका विद्याधर रहता था। उसकी नन्दवती भार्याके उदरसे दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं ॥१२६॥ उनमें बड़ीका नाम कौशिकी और छोटीका नाम केकसी था। बड़ी पुत्री कौशिकी यक्षपुरके धनी विश्रवसके लिए दी गयी। उससे वैश्रवण नामका पुत्र हुआ। इसका समस्त शरीर शुभ लक्षणोंसे सहित था, कमलके समान उसके नेत्र थे, वह लक्ष्मीसम्पन्न था तथा स्त्रियोंके नेत्रोंको आनन्द देनेवाला था ॥१२७-१२८॥ इन्द्र विद्याधरने वैश्रवणको बुलाकर उसका सत्कार किया और कहा कि तुम मुझे बहुत प्रिय हो इसलिए लंका नगरी जाकर विद्याधरोंपर शासन करो ॥१२९॥ तुम चूँकि महाबलवान् हो अतः मेरे प्रसादके कारण आजसे

यदाज्ञापयसीत्युक्त्वा कृत्वा चरणवन्दनाम् । आपृच्छ्य पितरौ नत्वा [1]निर्गतोऽसौ सुमङ्गलम् ॥१३१॥
अध्यतिष्ठच्च मुदितो लङ्कां शङ्काविवर्जितः । विद्याधरसमूहेन शिरसा धृतशासनः ॥१३२॥
प्रीतिमत्यां समुत्पन्नः सुमालितनयस्तु यः । नाम्ना रत्नश्रवाः शूरस्त्यागी भुवनवत्सलः ॥१३३॥
मित्रोपकरणं यस्य जीवितं शुद्धचेतसः । भृत्यानामुपकाराय प्रभुर्वं भूरितेजसः ॥१३४॥
लब्धवर्णोपकाराय वैदग्ध्यं दग्धदुर्मतेः । बन्धूनामुपकाराय लक्ष्म्याश्च परिपालनम् ॥१३५॥
ईश्वरत्वं दरिद्राणामुपकारार्थमुद्यतम् । साधूनामुपकारार्थं सर्वस्वं सर्वपालिनः ॥१३६॥
सुकृतस्मरणार्थं च मानसं मानशालिनः । धर्मोपकरणं चायुः वीर्योपकृतये वपुः ॥१३७॥
पितेव प्राणिवर्गस्य यो बभूवानुकम्पकः । सुकाल इव चातीतः स्मर्यतेऽद्यापि जन्तुभिः ॥१३८॥
परस्त्री मातृवद् यस्य शीलभूषणधारिणः । परद्रव्यं च तृणवत्परश्च स्वशरीरवत् ॥१३९॥
गुणिनां गणनायां यः प्रथमं गणितो बुधैः । दोषिणां च समुल्लापे स स्मृतो नैव जन्तुभिः ॥१४०॥
अन्यैरिव महाभूतैः शरीरं तस्य निर्मितम् । अन्यथा सा कुतः शोभा बभूवास्य तथाविधा ॥१४१॥
प्रसेकमसृतेनेव चक्रे संभाषणेषु सः । महादानमिवोदात्तचरितो विततार च ॥१४२॥
धर्मार्थकामसाराणां सध्ये लब्ध्वा जन्म जगत्यसौ । [illegible] स्थान् बली जन्मान्तरगतावभूत् ॥१४३॥

लेकर चार लोकपालोंके सिवाय पंचम लोकपाल हो ॥१३०॥ 'जो आपकी आज्ञा है वैसा ही करूँगा' यह कहकर वैश्रवणने उसके चरणोंमें नमस्कार किया। तदनन्तर माता-पितासे पूछकर और उन्हें नमस्कार कर वैश्रवण मंगलाचारपूर्वक अपने नगरसे निकला ॥१३१॥ विद्याधरोंका समूह जिसकी आज्ञा सिरपर धारण करते थे ऐसा वैश्रवण निःशंक हो बड़ी प्रसन्नतासे लंकामें रहने लगा ॥१३२॥

इन्द्रसे हारकर सुमाली अलंकारपुर नगर (पाताललंका) में रहने लगा था। वहाँ उसकी प्रीतिमती रानीसे रत्नश्रवा नामका पुत्र हुआ। वह बहुत ही शूरवीर, त्यागी और लोकवत्सल था ॥१३३॥ उस उदारहृदयका जीवन मित्रोंका उपकार करनेके लिए था, उस तेजस्वीका तेज भृत्योंका उपकार करनेके लिए था ॥१३४॥ दुर्बुद्धिको नष्ट करनेवाले उस रत्नश्रवाका चातुर्य विद्वानोंका उपकार करनेके लिए था, वह लक्ष्मीकी रक्षा बन्धुजनोंका उपकार करनेके लिए करता था ॥१३५॥ उसका बड़ा-चढ़ा ऐश्वर्य दरिद्रोंका उपकार करनेके लिए था। सबकी रक्षा करनेवाले उस रत्नश्रवाका सर्वस्व साधुओंका उपकार करनेके लिए था ॥१३६॥ उस स्वाभिमानीका मन पुण्य कार्योंका स्मरण करनेके लिए था। उसकी आयु धर्मका उपकार करनेवाली थी और उसका शरीर पराक्रमका उपकार करनेके लिए था ॥१३७॥ वह पिताके समान प्राणियोंके समूहपर अनुकम्पा करनेवाला था। बीते हुए सुकालको तरह आज भी प्राणी उसका स्मरण करते हैं ॥१३८॥ शीलरूपी आभूषणको धारण करनेवाले उस रत्नश्रवाके लिए परस्त्री माताके समान थी। पर-द्रव्य तृणके समान था और पर-पुरुष अपने शरीरके समान था अर्थात् जिस प्रकार वह अपने शरीरकी रक्षा करता था उसी प्रकार पर-पुरुषकी भी रक्षा करता था ॥१३९॥ जब गुणी मनुष्योंकी गणना शुरू होती थी तब विद्वान् लोग सबसे पहले इसीको गिनते थे और जब दोषोंकी चर्चा होती थी तब प्राणी इसका स्मरण ही नहीं करते थे ॥१४०॥ उसका शरीर मानो पृथिवी आदिसे अतिरिक्त अन्य महाभूतोंसे रचा गया था अन्यथा उसकी वह अनोखी शोभा कैसे होती ? ॥१४१॥ वह जब वार्तालाप करता था तब ऐसा जान पड़ता था मानो अमृत ही सींच रहा हो। वह इतना उदात्तचरित था कि मानो हमेशा महादान ही देता रहता हो ॥१४२॥ जन्मान्तरमें भी उस

१. निर्गतासौ म.।

यतो विभूषणं तस्य भूषणानां सुभूषणम् । गुणाः कीर्त्या समं तस्मिन् सकुटुम्बा इव स्थिताः ॥१४४॥
स मूर्तिं परमां वाञ्छन् क्रमाद् गोत्रसमागताम् । संत्याजितो निजं स्थानं पश्या स्वर्गनिवासिनाम् ॥१४५॥
परित्यज्य भयं धीरो विद्यां साधयितुं क्षमः । रौद्रं भूतपिशाचादिनादि पुष्पादिकं वनम् ॥१४६॥
विद्यायां विदितां पूर्वमथो[2] तद्भामिनीं सुताम् । व्योमबिन्दुर्ददावस्मै तपसे परिचारिकाम् ॥१४७॥
अस्य सा योगिनः पार्श्वे विनीता समवस्थिता । कृताञ्जलिपुटादेशं वाञ्छन्ती तन्मुखोद्गतम् ॥१४८॥
ततः समाप्तनियमः कृतसिद्धनमस्कृतिः । एकाकिनां [3]सतां बालां दृष्ट्वा सरललोचनाम् ॥१४९॥
नीलोत्पलेक्षणां पद्मवक्त्रां कुन्ददलद्विजाम् । शिरीषमालिकाबाहुं पाटलादन्तवाससम्[4] ॥१५०॥
बकुलामोदनिःश्वासां चम्पकद्युतिसमद्युतिम् । कुसुमैरिव निःशेषां निर्मितां दधतीं तनुम् ॥१५१॥
मुक्तपद्मालयां पद्मां रूपेणैव वशीकृताम् । परमोत्कण्ठयानीतां पादविन्यस्तलोचनाम् ॥१५२॥
अपूर्वपुरुषालोकलज्जितानतविग्रहाम् । ससाध्वसविनिक्षिप्तनिःश्वासोत्कम्पितस्तनीम् ॥१५३॥
लावण्येन [5]विलिम्पन्तीं पल्लवानन्तिकागताम्[6] । निःश्वासाकृष्टमत्तालिकुलव्याकुलितानताम् ॥१५४॥
सौकुमार्यादिवोदासद् विभ्यतानतिनिर्भरम् । यौवनेन कृताश्लेषां संभृतिं योषितः पराम् ॥१५५॥
पृथ्वीवेधाखिलस्त्रैणं लावण्यं त्रिजगद्गतम् । कर्मभिर्निर्मितां कर्तुमद्भुतं सार्वलौकिकम् ॥१५६॥

महाबुद्धिमान्ने धर्म, अर्थ, काममें-से एक धर्ममें ही महान् प्रयत्न किया था ॥१४३॥ सब आभूषणोंका आभूषण यश ही उसका आभूषण था। गुण उसमें कीर्तिके साथ इस प्रकार रह रहे थे मानो उसके कुटुम्बी ही हों ॥१४४॥ वह रत्नश्रवा, अपनी वंश-परम्परासे चली आयी उत्कृष्ट विभूतिको प्राप्त करना चाहता था पर इन्द्र विद्याधरने उसे अपने स्थानसे च्युत कर रखा था ॥१४५॥ निदान, वह धीर-वीर विद्या सिद्ध करनेके लिए, जहाँ भूत-पिशाच आदि शब्द कर रहे थे ऐसे महाभयंकर पुष्प वनमें गया ॥१४६॥ सो रत्नश्रवा तो इधर विद्या सिद्ध कर रहा था उधर विद्याके विषयमें पहलेसे ही परिज्ञान रखनेवाली तथा जो बादमें रत्नश्रवाकी पत्नी होनेवाली थी ऐसी अपनी छोटी कन्या केकसीको व्योमबिन्दुने उसकी तपकालीन परिचर्याके लिए भेजा ॥१४७॥ सो केकसी उस योगीके समीप बड़े विनयसे हाथ जोड़े खड़ी हुई उसके मुखसे निकलनेवाले आदेशकी अपेक्षा कर रही थी॥१४८॥ तदनन्तर जब रत्नश्रवाका नियम समाप्त हुआ तब वह सिद्ध भगवान्को नमस्कार कर उठा। उसी समय उसकी दृष्टि अकेली खड़ी केकसीपर पड़ी। केकसीकी आँखोंसे सरलता टपक रही थी ॥१४९॥ उसके नेत्र नीलकमलके समान थे, मुख कमलके समान था, दाँत कुन्दकी कलीके समान थे, भुजाएँ शिरीषकी मालाके समान थीं, अधरोष्ठ गुलाबके समान था ॥१५०॥ उसकी श्वाससे मौलिश्रीके फूलोंकी सुगन्धि आ रही थी, उसकी कान्ति चम्पेके फूलके समान थी, उसका सारा शरीर मानो फूलोंसे ही बना था ॥१५१॥ रत्नश्रवाके पास खड़ी केकसी ऐसी जान पड़ती थी मानो उसके रूपसे वशीभूत हो लक्ष्मी ही कमलरूपी घरको छोड़कर बड़ी उत्कण्ठासे उसके पास आयी हो और उसके चरणोंमें नेत्र गड़ाकर खड़ी हो ॥१५२॥ अपूर्व पुरुषके देखनेसे उत्पन्न लज्जाके कारण उसका शरीर नीचेकी ओर झुक रहा था तथा भयसहित निकलते हुए श्वासोच्छ्वाससे उसके स्तन कम्पित हो रहे थे ॥१५३॥ वह अपने लावण्यसे समीपमें पड़े पल्लवोंको लिप्त कर रही थी तथा श्वासोच्छ्वासकी सुगन्धिसे आकृष्ट मदोन्मत्त भ्रमरोंके समूह से उसको आकुलित कर रही थी ॥१५४॥ वह अत्यधिक सौकुमार्यके कारण इतनी अधिक नीचे को झुक रही थी कि यौवन डरते-डरते ही उसका आलिंगन कर रहा था। केकसी क्या थी मानो स्त्रीत्वकी परम सृष्टि थी ॥१५५॥ समस्त संसार सम्बन्धी आश्चर्य इकट्ठा करनेके लिए ही मानो

१. पुष्पान्तकं म. । २. मद्योद्योतोद्भाविनीं क, ख. ज. (मन्दोद्योतोद्भाविनीम्) । ३. सुतां म. । ४. वाससाम् म. । ५. विलंपन्तीं म. । ६. -न्तिकीगतान् म. ।

शरीरेणेव संयुक्तां साक्षाद्विद्यामुपागताम् । वशीकृतामुदारेण तपसा कान्तिशालिनीम् ॥१५७॥
पप्रच्छ प्रियया वाचा करुणावान् स्वभावतः । प्रमदासु विशेषेण कन्यकासु ततोऽधिकम् ॥१५८॥
कस्यासि दुहिता बाले किमर्थं वो महावने । एकाकिनी मृगीवास्मिन् यूथाद् भ्रष्टावतिष्ठसे ॥१५९॥
के वा भजन्ति ते वर्णा नाम [2]पुण्यमनोरमे । पक्षपातो भवत्येव योगिनामपि सज्जने ॥१६०॥
तस्मै साकथयद् वाचा गद्गदस्वमुपेतया । दधत्यात्यन्तमाधुर्यं चेतश्चोरणदक्षया ॥१६१॥
उत्पन्ना मन्दवत्यङ्गे व्योमबिन्दोरहं सुता । केकसीति भवत्सेवां कर्तुं पित्रा निरूपिता ॥१६२॥
तत्रैव समये तस्य सिद्धा विद्या महौजसः । मानसस्तम्भिनी नाम्ना क्षणदर्शितविग्रहा ॥१६३॥
ततो विद्याप्रभावेण तस्मिन्नेव महावने । पुरं पुष्पान्तकं नाम क्षणात्तेन निवेशितम् ॥१६४॥
कृत्वा पाणिगृहीतां च केकसीं विधिना ततः । रेमे तत्र पुरे प्राप्य भोगान् मानसकल्पितान् ॥१६५॥
बभूव च तयोः प्रीतिर्जायापत्योरनुत्तरा । क्षणार्द्धमपि नो सेहे वियोगं या सुचेतसोः ॥१६६॥
मृतामिव स तां मेने लोचनागोचरस्थिताम् । निमेषादर्शनाम्लानिं [3]व्रजन्तीं मृदुमानसाम् ॥१६७॥
वक्त्रचन्द्रेऽक्षिणी तस्यास्तस्य नित्यं व्यवस्थिते । सर्वेषां वा हृषीकाणां सा बभूवास्य बन्धनम् ॥१६८॥
[4]अनन्यजेन रूपेण यौवनेन धनश्रिया । विद्याबलेन धर्मेण सत्किरासीत्परं तयोः ॥१६९॥
[5]व्रजन्ती वश्यया युक्ते तिष्ठन्ती स्थितिमागते । छायेव साभवत् पत्यावनुवर्तनकारिणी ॥१७०॥

त्रिभुवनसम्बन्धी समस्त स्त्रियोंका सौन्दर्य एकत्रित कर कर्मोंने उसकी रचना की थी ॥१५६॥ वह केकसी ऐसी जान पड़ती थी मानो रत्नश्रवाके उत्कृष्ट तपसे वशीभूत हुई कान्तिसे सुशोभित साक्षात् विद्या ही शरीर धरकर सामने खड़ी हो ॥१५७॥ रत्नश्रवा स्वभावसे ही दयालु था और विशेषकर स्त्रियोंपर तथा उनसे भी अधिक कन्याओंपर अधिक दयालु था अतः उसने प्रिय वचनोंसे पूछा कि हे बाले ! तू किसकी लड़की है ? और इस महावनमें झुण्डसे बिछुड़ी हरिणीके समान किस लिए खड़ी है ? ॥१५८-१५९॥ हे पुण्य मनोरथे ! कौन-से अक्षर तेरे नामको प्राप्त हैं ? रत्नश्रवाने केकसीसे ऐसा पूछा सो उचित ही था क्योंकि सज्जनके ऊपर साधुओंका भी पक्षपात हो ही जाता है ॥१६०॥ इसके उत्तरमें अनन्त माधुर्यको धारण करनेवाली एवं चित्तके चुरानेमें समर्थ गद्गद वाणीसे केकसीने कहा कि मैं मन्दवतीके शरीरसे उत्पन्न राजा व्योमबिन्दुकी पुत्री हूँ, केकसी मेरा नाम है और पिताकी प्रेरणासे आपकी सेवा करनेके लिए आयी हूँ ॥१६१-१६२॥ उसी समय महातेजस्वी रत्नश्रवाको मानससंस्तम्भिनी नामकी विद्या सिद्ध हो गयी सो उस विद्याने उसी समय अपना शरीर प्रकट कर दिखाया ॥१६३॥

तदनन्तर उस विद्याके प्रभावसे उसने उसी वनमें तत्क्षण ही पुष्पान्तक नामका नगर बसाया ॥१६४॥ और केकसीको विधिपूर्वक अपनी स्त्री बनाकर उसके साथ मनचाहे भोग भोगता हुआ वह उस नगरमें क्रीड़ा करने लगा ॥१६४-१६५॥ शोभनीय हृदयको धारण करनेवाले उन दोनों दम्पतियोंमें ऐसी अनुपम प्रीति उत्पन्न हुई कि वह आधे क्षणके लिए भी उनका वियोग सहन नहीं कर सकती थी ॥१६६॥ यदि केकसी क्षण-भरके लिए भी रत्नश्रवाके नेत्रोंके ओझल होती थी तो वह उसे ऐसा मानने लगता था मानो मर ही गयी हो। और केकसी भी यदि उसे पल-भरके लिए नहीं देखती थी तो म्लानिको प्राप्त हो जाती थी—उसकी मुखकी कान्ति मुरझा जाती थी। कोमल चित्त तो उसका था ही ॥१६७॥ रत्नश्रवाके नेत्र सदा केकसीके मुखचन्द्रपर ही गड़े रहते थे अथवा यों कहना चाहिए कि केकसी, रत्नश्रवाकी समस्त इन्द्रियोंका मानो बन्धन ही थी ॥१६८॥ अनुपम रूप, यौवन, धन-सम्पदा, विद्याबल और पूर्वोपार्जित धर्मके

---

१. त्वमिहावनौ. । २. पुण्यमनोरथैः । ३. दर्शनम्लानिं म. । ४. अनन्यजैकरूपेण म. । ५. व्रजया म., क. ।

अथासौ विपुले कान्ते क्षीराकूपारपाण्डुरे । रत्नदीपकृतालोके दुकूलपटकोमले ॥१७१॥
यथेष्टगद्दके न्यस्तनानावर्णोपधानके । निःश्वासामोदनिर्णिद्रद्विरेफसमुपासिते ॥१७२॥
परितः स्थितस्थामस्त्रीविनिद्रनयनेक्षिते । तनुदन्तविनिर्माणपट्टके शयनोत्तमे ॥१७३॥
चिन्तयन्ती गुणान् पत्युर्मनोबन्धनकारिणः । वाञ्छन्ती च सुतोत्पत्तिं सुखं निद्रामुपागता ॥१७४॥
ईक्षांचक्रे पदान् स्वप्नान् महाविस्मयकारिणः । अव्यक्तचलनाभ्यायिसखीवीक्षितविग्रहा ॥१७५॥
ततः प्रभाततूर्येण शङ्खशब्दानुकारिणा । मागधानां च वाणीभिः सुप्रबोधनमागता ॥१७६॥
कृतमङ्गलकार्यार्घ्यं नेपथ्यं दधती शुभम् । सखीभिरन्वितागच्छन् मनोज्ञा भर्तुरन्तिकम् ॥१७७॥
आसीना चाञ्जलिं कृत्वा पत्युः पार्श्वे सुविभ्रमा । भद्रासनेऽशुकच्छन्ने क्रमात् स्वप्नान्यवेदयत् ॥१७८॥
अद्य रात्रौ मया यामे चरमे नाथ वीक्षिताः । त्रयः स्वप्नाः श्रुतौ तेषां प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥१७९॥
दूरोत्सृन्दं गजेन्द्राणां कवलिकृत् तमोनिभम् । मुखेनाविशतो मे सिंहः प्रविष्टो नभसस्तलात् ॥१८०॥
विद्रावयन् मयूखैश्च ध्वान्तं गजकुलासितम् । स्थितो विहायसो मध्यादर्के कमलबान्धवः ॥१८१॥
कुर्वन्मनोहरां लीलां दूरयन् तिमिरं करैः । अखण्डमण्डलो दृष्टः पुरः कुमुदनन्दनः ॥१८२॥
दृष्टमात्रेषु चैतेषु विस्मयाक्रान्तमानसा । प्रभाततूर्यनादेन गताहं बोधनिद्रताम् ॥१८३॥

कारण उन दोनोंमें परस्पर परम आसक्ति थी ॥१६९॥ जब रत्नश्रवा चलता था तब केकसी भी चलने लगती थी और जब रत्नश्रवा बैठता था तो केकसी भी बैठ जाती थी। इस तरह वह छायाके समान पतिकी अनुगामिनी थी ॥१७०॥

अथानन्तर—एक दिन रानी केकसी रत्नोंके महलमें ऐसी शय्यापर पड़ी थी कि जो विशाल थी, सुन्दर थी, क्षीरसमुद्रके समान सफेद थी, रत्नोंके दीपकोंका जिसपर प्रकाश फैल रहा था, जो रेशमी वस्त्रसे कोमल थी, ॥१७१॥ जिसपर यथेष्ट गद्दा बिछा हुआ था, रंगबिरंगी तकियाँ रखी हुई थीं, जिसके आस-पास श्वासोच्छ्वासकी सुगन्धिसे जागरूक भौंरे मँडरा रहे थे ॥१७२॥ चारों ओर पहरेपर खड़ी स्त्रियाँ जिसे निद्रारहित नेत्रोंसे देख रही थीं, और जिसके समीप ही हाथी-दाँतकी बनी छोटी-सी चौकी रखी हुई थी ऐसी उत्तम शय्यापर केकसी मनका बन्धन करनेवाले पतिके गुणोंका चिन्तवन करती और पुत्रोत्पत्तिकी इच्छा रखती हुई सुखसे सो रही थी ॥१७३-१७४॥ उसी समय स्थिर होकर ध्यान करनेवाली अर्थात् सूक्ष्म देख-रेख रखनेवाली सखियाँ जिसके शरीरका निरीक्षण कर रही थीं ऐसी केकसीने महाआश्चर्य उत्पन्न करनेवाले उत्कृष्ट स्वप्न देखे ॥१७५॥ तदनन्तर शंखोंके शब्दका अनुकरण करनेवाली प्रातःकालीन तुरहीकी मधुर ध्वनि और चारणोंकी रम्य वाणीसे केकसी प्रबोधको प्राप्त हुई ॥१७६॥ सो मंगल कार्य करनेके अनन्तर शुभ तथा श्रेष्ठ नेपथ्यको धारण कर मनको हरण करती हुई, सखियोंके साथ पतिके समीप पहुँची ॥१७७॥ वहाँ हाथ जोड़, हाव-भाव दिखाती हुई, पतिके समीप, उत्तम वस्त्रसे आच्छादित सोफापर बैठकर उसने स्वप्न देखनेकी बात कही ॥१७८॥ उसने कहा कि हे नाथ! आज रात्रिके पिछले पहर मैंने तीन स्वप्न देखे हैं सो उन्हें सुनकर प्रसन्नता कीजिए ॥१७९॥ पहले स्वप्नमें मैंने देखा है कि अपने उत्कृष्ट तेजसे हाथियोंके बड़े भारी झुण्डको विध्वस्त करता हुआ एक सिंह आकाशतलसे नीचे उतरकर मुख-द्वारसे मेरे उदरमें प्रविष्ट हुआ है ॥१८०॥ दूसरे स्वप्नमें देखा है कि किरणोंसे हाथियोंके समूहके समान काले अन्धकारको दूर हटाता हुआ सूर्य आकाशके मध्य भागमें स्थित है ॥१८१॥ और तीसरे स्वप्नमें देखा है कि मनोहर लीलाको करता और किरणोंसे अन्धकारको दूर हटाता हुआ पूर्ण चन्द्रमा हमारे सामने खड़ा है ॥१८२॥ इन स्वप्नोंके दिखते ही मेरा मन

१. यथेष्टदेहविन्यस्त- म. । २. समुपासते म. । ३. यामश्री म. । ४. तत्र दन्त म. । ५. अव्यक्तचलनादायि म. । अव्यक्तचलनाद्यायि क. । ६. सापि प्रबोध म. ।

किमेतदिति नाथ त्वं ज्ञातुमर्हसि साम्प्रतम् । ज्ञातव्येषु हि नारीणां प्रमाणं प्रियमानसम् ॥१८४॥
ततोऽष्टाङ्गनिमित्तज्ञः कुशलो जिनशासने । रत्नश्रवाः प्रमोदेन स्वप्नार्थान् व्यक्तृणोत् क्रमात् ॥१८५॥
उत्पत्स्यन्ते त्रयः पुत्रास्त्रिजगद्गतकीर्तयः । तव देवि महासत्त्वाः कुलबृद्धिविधायिनः ॥१८६॥
भवान्तरनिबद्धेन सुकृतेनोत्तमक्रियाः । वल्लभत्वं प्रपत्स्यन्ते सुरेष्वपि सुरैः समाः ॥१८७॥
कान्त्युत्सारिततारेशा दीप्त्युत्सारितभास्कराः । गाम्भीर्यजिततोयेशाः [1]स्थैर्योत्सारितभूधराः ॥१८८॥
चारुकर्मफलं भुक्त्वा स्वर्गे शेषस्य कर्मणः । परिपाकमवाप्स्यन्ति सुरैरप्यपराजिताः ॥१८९॥
दानेन कामजलदाश्चक्रवर्तिसमर्द्धयः । वरस्त्रीमनितम्बीचेतोलोचनालीमलिम्लुचाः ॥१९०॥
श्रीवत्सलक्षणाभ्यन्तराजितोत्तुङ्गवक्षसः । नाममात्रश्रुतिध्वस्तमहासाधनशत्रवः ॥१९१॥
अवितां प्रथमस्तेषां नितान्तं जगते हितः । साहसैकरसासक्तः शत्रुपद्मक्षपाकरः ॥१९२॥
संग्रामगमनात्तस्य भविष्यति समन्ततः । शरीरं [2]निचितं चारोत्तरोमाञ्चकण्टकैः ॥१९३॥
निधानं कर्मणामेष दारुणानां भविष्यति । वस्तुन्यूरीकृते तस्य न शक्रोऽपि निवर्तकः ॥१९४॥
कृत्वा स्मितं ततो देवी परमप्रमदाञ्चिता । भर्तुराननमालोक्य विनयादित्थमाषत ॥१९५॥
अर्हन्मतामृतास्वादसुचिताभ्यां कथं प्रभो । आवाभ्यां प्राप्य जन्मायं क्रूरकर्मा भविष्यति ॥१९६॥
आवयोर्ननु मज्जापि जिनवाक्येन भाविता । भवेदमृतवल्लीतो विषस्य प्रसवः कथम् ॥१९७॥
प्रत्युवाच [3]स तामेवं प्रिये शृणु वरानने । कर्माणि कारणं तस्य न वयं कृत्यवस्तुनि ॥१९८॥

आश्चर्यसे भर गया और उसी समय प्रातःकालीन तुरहीकी ध्वनिसे मेरी निद्रा टूट गयी ॥१८३॥ हे नाथ ! यह क्या है ? इसे आप ही जाननेके योग्य हैं क्योंकि स्त्रियोंके जानने योग्य कार्योंमें पतिका मन ही प्रमाणभूत है ॥१८४॥ तदनन्तर अष्टांग निमित्तके जानकार एवं जिन-शासनमें कुशल रत्नश्रवाने बड़े हर्षसे क्रमपूर्वक स्वप्नोंका फल कहा ॥१८५॥ उन्होंने कहा कि हे देवि ! तुम्हारे तीन पुत्र होंगे । ऐसे पुत्र कि जिनकी कीर्ति तीनों लोकोंमें व्याप्त होगी, जो महापराक्रमके धारी तथा कुलकी वृद्धि करनेवाले होंगे ॥१८६॥ वे तीनों ही पुत्र पूर्व भवमें संचित पुण्यकर्मसे उत्तम कार्य करनेवाले होंगे, देवोंके समान होंगे और देवोंके भी प्रीतिपात्र होंगे ॥१८७॥ वे अपनी कान्तिसे चन्द्रमाको दूर हटावेंगे, तेजसे सूर्यको दूर भगावेंगे और स्थिरतासे पर्वतको ठुकरावेंगे ॥१८८॥ स्वर्गमें पुण्य कर्मका फल भोगनेके बाद जो कुछ कर्म शेष बचा है अब उसका फल भोगेंगे । वे इतने बलवान् होंगे कि देव भी उन्हें पराजित नहीं कर सकेंगे ॥१८९॥ वे दानके द्वारा मनोरथ-को पूर्ण करनेवाले मेघ होंगे, चक्रवर्तियोंके समान ऋद्धिके धारक होंगे, और श्रेष्ठ स्त्रियोंके मन तथा नेत्रोंको चुरानेवाले होंगे ॥१९०॥ उनका उन्नत वक्षःस्थल श्रीवत्स चिह्नसे अत्यन्त सुशोभित होगा, और उनका नाम सुनते ही बड़ी-बड़ी सेनाओंके अधिपति शत्रु नष्ट हो जावेंगे ॥१९१॥ उन तीनों पुत्रोंमें प्रथम पुत्र जगत्का अत्यन्त हितकारी होगा, साहसके कार्यमें वह बड़े प्रेमसे आसक्त होगा तथा शत्रुरूपी कमलोंको निमीलित करनेके लिए चन्द्रमाके समान होगा ॥१९२॥ वह युद्धका इतना प्रेमी होगा कि युद्धमें जाते ही उसका सारा शरीर खड़े हुए रोमांचरूपी कंटकोंसे व्याप्त हो जावेगा ॥१९३॥ वह घोर भयंकर कार्योंका भाण्डार होगा तथा जिस कार्यको स्वीकृत कर लेगा उससे उसे इन्द्र भी दूर नहीं हटा सकेगा ॥१९४॥ पतिके ऐसे वचन सुन परम प्रमोदको प्राप्त हुई केकसी, मन्द हासकर तथा पतिका मुख देखकर विनयसे इस प्रकार बोली कि हे नाथ ! हम दोनों का चित्त तो जिनमतरूपी अमृतके आस्वादसे अत्यन्त निर्मल है फिर हम लोगोंसे जन्म पाकर यह पुत्र क्रूरकर्मा कैसे होगा ? ॥१९५-१९६॥ निश्चयसे हम दोनोंकी मज्जा भी जिनेन्द्र भगवान्के वचनोंसे संस्कारित है फिर हमसे ऐसे पुत्रका जन्म कैसे होगा ? क्या कहीं अमृतकी वेलसे विषकी भी उत्पत्ति होती है ? ॥१९७॥ इसके उत्तरमें राजा रत्नश्रवाने कहा कि हे प्रिये ! हे उत्कृष्टमुखि !

१. स्थैर्यात्सादित म. । २. निश्चितं म. । ३. च म. ।

मूलं हि कारणं कर्मस्वरूपविनियोजने । निमित्तमात्रमेवास्य जगतः पितरौ स्मृतौ ॥१९९॥
भविष्यतोऽनुजावस्य जिनमार्गविशारदौ । गुणग्रामसमाकीर्णौ सुचेष्टौ शीलसागरौ ॥२००॥
सुदृढं सुकृते लग्नौ भवस्खलनभीतितः । सत्यवाक्यरतौ सर्वसत्त्वकारुण्यकारिणौ ॥२०१॥
तयोरपि पुरोपात्तं सौम्यकर्म मृदुस्वने । कारणं करुणोपेते यतो हेतुसमं फलम् ॥२०२॥
एवमुक्त्वा जिनेन्द्राणां साभ्यां पूजा प्रवर्तिता । मनसापि प्रतीतेन [1]प्रयताभ्यामहर्दिवम् ॥२०३॥
ततो गर्भस्थिते सत्त्वे प्रथमे मातुरीहितम् । बभूव क्रूरमत्यन्तं हठनिर्जितपौरुषम् ॥२०४॥
अभ्यक्ताच्छलसद्दंष्ट्यासं [2]कर्तुं मूर्धसु विद्विषाम् । रक्तकर्दमदिग्धेषु परिस्फुरणकारिषु ॥२०५॥
आज्ञां दातुमभिप्रायः [3]सुरराजेऽप्यजायत । हुङ्कारमुखरं चास्यमन्तरेणापि कारणम् ॥२०६॥
निष्ठुरत्वं शरीरस्य निर्जितश्रमवत्तरा । कठोरा घर्घरा वाणी दृष्टिपाताः परिस्फुटाः ॥२०७॥
दर्पणे वियमानेऽपि सायकेऽपश्यदाननम् । कथमप्यानमन्मूर्धा गुरूणामपि वन्दने ॥२०८॥
प्रतिपक्षासनाकम्पं कुर्वन्नथ विनिर्गतः । संपूर्णे समये तस्याः कुक्षेः प्राणी [4]सदारुणैः ॥२०९॥
प्रभया तस्य जातस्य दिवाकरदुरीक्षया । परिवर्गस्य नेत्राणि [5]सुघनस्थगितानि इव ॥२१०॥
भूतैश्च ताडनाद् भूतो दुन्दुभेरुद्गतो ध्वनिः । कबन्धैः शत्रुगेहेषु कृतमुत्पातनर्तनम् ॥२११॥
ततो जन्मोत्सवस्तस्य महान् पित्रा प्रवर्तितः । उन्मत्तिकेव यत्रासीत् प्रजा स्वेच्छाविधायिनी ॥२१२॥

इस कार्यमें कर्म ही कारण हैं हम नहीं ॥१९८॥ संसारके स्वरूपकी योजनामें कर्म ही मूल कारण हैं माता-पिता तो निमित्त मात्र हैं ॥१९९॥ इसके दोनों छोटे भाई जिनमार्गके पण्डित, गुणोंके समूहसे व्याप्त, उत्तम चेष्टाओंके धारक तथा शीलके सागर होंगे ॥२००॥ संसारमें कहीं मेरा स्खलन न हो जाये इस भयसे वे सदा पुण्य कार्यमें अच्छी तरह संलग्न रहेंगे, सत्य वचन बोलनेमें तत्पर होंगे और सब जीवोंपर दया करनेवाले होंगे ॥२०१॥ हे कोमल शब्दोंवाली तथा दयासे युक्त प्रिये ! उन दोनों पुत्रोंका पूर्वोपार्जित पुण्य कर्म ही उनके इस स्वभावका कारण होगा सो ठीक ही है क्योंकि कारणके समान ही फल होता है ॥२०२॥ ऐसा कहकर रात-दिन सावधान रहनेवाले माता-पिताने प्रसन्न चित्तसे जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा की ॥२०३॥

तदनन्तर जब गर्भमें प्रथम बालक आया तब माताकी चेष्टा अत्यन्त क्रूर हो गयी। वह हठपूर्वक पुरुषोंके समूहको जीतनेकी इच्छा करने लगी। वह चाहने लगी कि मैं खूनकी कीचड़से लिप्त तथा छटपटाते हुए शत्रुओंके मस्तकोंपर पैर रखूँ ॥२०४-२०५॥ देवराज-इन्द्रके ऊपर भी आज्ञा चलानेका उसका अभिप्राय होने लगा। बिना कारण ही इसका मुख हुंकारसे मुखर हो उठता ॥२०६॥ उसका शरीर कठोर हो गया था, शत्रुओंको जीतनेमें वह अधिक श्रम करती थी, उसकी वाणी कर्कश तथा घर्घर स्वरसे युक्त हो गयी थी, उसके दृष्टिपात भी निःशब्द होनेसे स्पष्ट होते थे ॥२०७॥ दर्पण रहते हुए भी वह कृपाणमें मुख देखती थी और गुरुजनोंकी वन्दनामें भी उसका मस्तक किसी तरह बड़ी कठिनाईसे झुकता था ॥२०८॥ तदनन्तर समय पूर्ण होनेपर वह बालक शत्रुओंके आसन कँपाता हुआ माताके उदरसे बाहर निकला अर्थात् उत्पन्न हुआ ॥२०९॥ सूर्यके समान कठिनाईसे देखने योग्य उस बालककी प्रभासे प्रसूति-गृहमें काम करनेवाले परिजनोंके नेत्र ऐसे हो गये जैसे मानो किसी सघन वनसे ही आच्छादित हो गये हों ॥२१०॥ भूतजातिके देवों द्वारा ताडित होनेके कारण दुन्दुभि बाजोंसे बहुत भारी शब्द उत्पन्न होने लगा और शत्रुओंके घरोंमें सिररहित धड़ उत्पातसूचक नृत्य करने लगे ॥२११॥ तदनन्तर पिताने पुत्रका बड़ा भारी जन्मोत्सव किया। ऐसा जन्मोत्सव कि जिसमें प्रजा पागलके समान अपनी-

---

१. प्रयताभ्या- म. । २. पर्दं न्यासं म. । ३. सुरराज्येऽप्यजायत म. । ४. सुदारुणः म. । ५. सघनस्थगिता इव म. । सुघनस्थगिता इव ख. ।

अथ मेरुगुहाकारे तस्मिन् सूतिगृहोदरे । शयने संस्थितस्तिष्ठन् रक्तपादतलश्चलः ॥२१३॥
उत्तानः कम्पयन् भूमिं लीलया शयनान्तिकाम् । सद्यः समुत्थितादित्यमण्डलोपमदर्शनः ॥२१४॥
दत्तं राक्षसनाथेन मेघवाहनरूढये । पुरा नागसहस्रेण रक्षितं प्रस्फुरत्करम् ॥२१५॥
पिनद्धं रक्षसां भीत्या न केनचिदिहान्तरे । आदरेण विना हारं करेणाकर्षदर्भकः ॥२१६॥
हारमुष्टिं ततो बालं दृष्ट्वा माता ससंभ्रमा । चकाराङ्के महास्नेहात् समाजघ्रौ च मूर्धनि ॥२१७॥
दृष्ट्वा पिता च तं बालं सहारं परमाद्भुतम् । महानेष नरः कोऽपि भवितेति व्यचिन्तयत् ॥२१८॥
नागेन्द्ररक्षितस्येह हारेण रमतेऽमुना । कोऽन्यथा यस्य नो शक्तिर्भविष्यति जनातिगा ॥२१९॥
चारणेन समादिष्टं साधुना यद्वचः पुरा । इदं तद्वितथं नैव जायते यतिभाषितम् ॥२२०॥
दृष्ट्वाश्चर्यं स हारोऽस्य जनन्या मोतिमुक्तया । पिनद्धो भासयन्नाशा दश स्वेन रोचिषाम् ॥२२१॥
स्थूलस्वच्छेषु रत्नेषु नवान्यानि मुखानि यत् । हारे दृष्टानि यातोऽसौ तद्दशाननसंज्ञिताम् ॥२२२॥
भानुकर्णस्ततो जातः कालेऽतीते कियत्यपि । यस्य भानुरिव न्यस्तः कर्णयोर्गण्डशोभया ॥२२३॥
ततश्चन्द्रनखा जाता पूर्णचन्द्रसमानना । उद्यदर्द्धेंशशाङ्कामनखभासितदिङ्मुखा ॥२२४॥
ततो विभीषणो जातः कृतं येन विभीषणम् । जातमात्रेण पापानां सौम्याकारेण साधुना ॥२२५॥
देहवत्त्वं जगामासौ साक्षाद्धर्म इवोत्तमः । अद्यापि गुणजा यस्य कीर्तिर्जगति निर्मला ॥२२६॥

अपनी इच्छाके अनुसार विभिन्न प्रकारके कार्य करती थी ॥२१२॥ अथानन्तर जिसके पैरके तलुए लाल-लाल थे ऐसा वह बालक मेरुपर्वतकी गुहाके समान लाल रत्नोंके बनी सूतिकागृहमें शय्याके ऊपर मन्द-मन्द हँसता हुआ पड़ा था। हाथ-पैर हिलानेसे चंचल था, चित्त अर्थात् ऊपरकी ओर मुख कर पड़ा था, अपनी लीलासे शय्याकी समीपवर्ती भूमिको कम्पित कर रहा था, और तत्काल उदित हुए सूर्यमण्डलके समान देदीप्यमान था ॥२१३-२१४॥ बहुत पहले मेघवाहनके लिए राक्षसोंके इन्द्र भीमने जो हार दिया था, हजार नागकुमार जिसकी रक्षा करते थे, जिसकी किरणें सब ओर फैल रही थीं और राक्षसोंके भयसे इस अन्तरालमें जिसे किसीने नहीं पहना था ऐसे हारको उस बालकने अनायास ही हाथसे खींच लिया ॥२१५-२१६॥ बालकको मुट्ठीमें हार लिये देख माता घबड़ा गयी। उसने बड़े स्नेहसे उसे उठाकर गोदमें ले लिया और शीघ्र ही उसका मस्तक सूँघ लिया ॥२१७॥ पिताने भी उस बालकको हार लिये बड़े आश्चर्यसे देखा और विचार किया कि यह अवश्य ही कोई महापुरुष होगा ॥२१८॥ जिसकी शक्ति लोकोत्तर नहीं होगी ऐसा कौन पुरुष नागेन्द्रोंके द्वारा सुरक्षित इस हारके साथ क्रीड़ा कर सकता है ॥२१९॥ चारणऋद्धिधारी मुनिराजने पहले जो वचन कहे थे वे यही थे क्योंकि मुनियोंका भाषण कदापि मिथ्या नहीं होता ॥२२०॥ यह आश्चर्य देख माताने निर्भय होकर वह हार उस बालकको पहना दिया। उस समय वह हार अपनी किरणोंके समूहसे दसों दिशाओंको प्रकाशमान कर रहा था ॥२२१॥ उस हारमें जो बड़े-बड़े स्वच्छ रत्न लगे हुए थे उनमें असली मुखके सिवाय नौ मुख और भी प्रतिबिम्बित हो रहे थे इसलिए उस बालकका दशानन नाम रखा गया ॥२२२॥

दशाननके बाद कितना ही समय बीत जानेपर भानुकर्ण उत्पन्न हुआ। भानुकर्णके कपोल इतने सुन्दर थे कि उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो उसके कानोंमें भानु अर्थात् सूर्य ही पहना रखा हो ॥२२३॥ भानुकर्णके बाद चन्द्रनखा नामा पुत्री उत्पन्न हुई। उसका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान था और उगते हुए अर्धचन्द्रमाके समान सुन्दर नखोंकी कान्तिसे उसने समस्त दिशाओं को प्रकाशित कर दिया था ॥२२४॥ चन्द्रनखाके बाद विभीषण हुआ। उसका आकार सौम्य था तथा वह साधु प्रकृतिका था। उसने उत्पन्न होते ही पापी लोगोंमें भय उत्पन्न कर दिया था ॥२२५॥ विभीषण ऐसा जान पड़ता था मानो साक्षात् उत्कृष्ट धर्म ही शरीरवत्ताको प्राप्त हुआ

बालक्रीडापि भीमाभूद्दशग्रीवस्य भास्वतः । कनीयसोस्तु [1]सानन्दं विदधे विद्विषामपि ॥२२७॥
मुहुर्मे मातृमध्ये सा कन्या सुन्दरविग्रहा । दिवसार्कशशाङ्कानां मध्ये संध्येव सक्रिया ॥२२८॥
मातुरङ्के स्थितोऽसौ धृतचूडः कुमारकः । दशाननो दशाशानां कुर्वन् ज्योत्स्नां द्विजत्विषा ॥२२९॥
मदसा प्रस्थितं क्वापि द्योतयन्तं दिशस्त्विषा । युक्तं खेचरचक्रेण विभूतिबलशालिना ॥२३०॥
कक्षा विद्युत्कृतोद्योतैर्मदधाराविसर्जिभिः । वेष्टितं दन्तिजीमूतैः कर्णशङ्खबलाहकैः ॥२३१॥
महता तूर्यनादेन श्रुतिबाधिर्यकारिणा । कुर्वाणं मुखरं चक्रं [2]दिशामुरुपराक्रमम् ॥२३२॥
ग्रसित्वेव त्रिभुवनं बलेन पुरतो नभः । धीरो वैश्रवणं [3]वीक्ष्याञ्चक्रे दृष्ट्या प्रगल्भया ॥२३३॥
महिमानं च दृष्ट्वास्य पप्रच्छेति स मातरम् । निष्प्रकम्पलभार्यस्य बालभावेन सस्मितः ॥२३४॥
अम्ब कोऽयमितो याति मन्यमानो निजौजसा । जगत्तृणमिवाशेषं बलेन महता वृतः ॥२३५॥
ततः साकथयत्तस्य मातृष्वसीय एष ते । सिद्धविद्यः श्रिया युक्तो महत्या लोककीर्तितः ॥२३६॥
शत्रूणां जनयन् कम्पं पर्यटत्येष विष्टपम् । महाविभवसंपन्नो द्वितीय इव भास्करः ॥२३७॥
भवत्कुलक्रमायातां तवोद्धास्य पितामहम् । अर्थं पाति पुरीं लङ्कां दत्तामिन्द्रेण वैरिणा ॥२३८॥
मनोरथशतानेष जनकस्तव चिन्तयन् । तदर्थं न दिवा निद्रां न च नक्तमवाप्नुते ॥२३९॥
अहमप्यनया पुत्र चिन्तया शोषमागता । अवाप्तं मरणं पुंसां स्वस्थानभ्रंशतो वरम् ॥२४०॥

हो। उसके गुणोंसे उत्पन्न उसकी निर्मल कीर्ति आज भी संसारमें सर्वत्र छायी हुई है ॥२२६॥ तेजस्वी दशाननकी बालक्रीड़ा भी भयंकर होती थी जबकि उसके दोनों छोटे भाइयोंकी बालक्रीड़ा शत्रुओंको भी आनन्द पहुँचाती थी ॥२२७॥ भाइयोंके बीच सुन्दर शरीरको धारण करनेवाली कन्या चन्द्रनखा, ऐसी सुशोभित होती थी मानो दिन सूर्य और चन्द्रमाके बीच उत्तम क्रियाओंसे युक्त सन्ध्या ही हो ॥२२८॥

अथानन्तर चोटीको धारण करनेवाला दशानन एक दिन माताकी गोदमें बैठा हुआ अपने दाँतोंकी किरणोंसे मानो दशों दिशाओंमें चाँदनी फैला रहा था, उसी समय वैश्रवण आकाश-मार्गसे कहीं जा रहा था। वह अपनी कान्तिसे दिशाओंको प्रकाशमान कर रहा था, वैभव और पराक्रमसे सुशोभित विद्याधरोंके समूहसे युक्त था तथा उन हाथीरूपी मेघोंसे घिरा था जो कि मालारूपी बिजलीके द्वारा प्रकाश कर रहे थे, मदरूपी जलकी धाराको छोड़ रहे थे, और जिनके कानोंमें लटकते हुए शंख बलाकाओंके समान जान पड़ते थे। वैश्रवण कानोंको बहरा करनेवाले तुरहीके विशाल शब्दसे दिशाओंके समूहको शब्दायमान कर रहा था। विशाल पराक्रमका धारक था और अपनी बड़ी भारी सेनासे ऐसा जान पड़ता था मानो सामनेके आकाशको ग्रसकर छोड़ ही रहा हो। दशाननने उसे बड़ी गम्भीर दृष्टिसे देखा ॥२२९-२३३॥ दशानन लड़कपनके कारण चंचल तो था ही अतः उसने वैश्रवणकी महिमा देख हँसते-हँसते मातासे पूछा कि हे मा ! अपने प्रतापसे समस्त संसारको तृणके समान समझता हुआ, बड़ी भारी सेनासे घिरा यह कौन यहाँसे जा रहा है ॥२३४-२३५॥ तब माता उससे कहने लगी कि यह तेरी मौसीका लड़का है। इसे अनेक विद्याएँ सिद्ध हुई हैं, यह बहुत भारी लक्ष्मीसे युक्त है, लोकमें प्रसिद्ध है, महावैभवसे सम्पन्न हुआ दूसरे सूर्यके समान शत्रुओंको कँपकँपी उत्पन्न करता हुआ संसारमें घूमता फिरता है ॥२३६-२३७॥ इन्द्र विद्याधरने तेरे बाबाके भाई मालीको युद्धमें मारा और बाबाको तेरी कुल-परम्परासे चली आयी लंकापुरीसे दूर हटाकर इसे दी सो उसी लंकाका पालन करता है ॥२३८॥ इस लंकाके लिए तुम्हारे पिता सैकड़ों मनोरथोंका चिन्तवन करते हुए न दिनमें चैन लेते हैं न रात्रिमें नींद ॥२३९॥ हे पुत्र !

---

१. सा क्रीडा । २. दिशां सुरपराक्रमम् म. । ३. वीक्ष्याञ्चक्रे म. । ४. चपलभावश्च म. ।

पुत्र लक्ष्मीं कदा तु त्वं प्राप्स्यसि स्वकुलोचिताम् । विशल्यमिव यां दृष्ट्वा भविष्यत्यावयोर्मनः ॥२४१॥
कदा नु भ्रातरावेतौ विभूत्या तव संगतौ । द्रक्ष्यामि विहितच्छन्दौ विश्वे क्षीतकण्टके ॥२४२॥
मातुर्दीनवचः श्रुत्वा छुरवा गर्वस्मितं ततः । विभीषणो बभाणेदमुद्यत्क्रोधविषाङ्कुरः ॥२४३॥
धनदो वा भवत्येष देवो वा कोऽस्य वीक्षितः । प्रभावो येन मातस्त्वं करोषि परिदेवनम् ॥२४४॥
वीरप्रसविनी वीरा विज्ञातजनचेष्टिता । एवंविधा सती कस्माद् वदसि त्वं यथेतरा ॥२४५॥
श्रीवत्सलक्ष्मपिण्डितोरस्को [1]ध्यायतातर्कितः । अद्भुतैकरसः[2]सर्वनिरपेक्षो महाबलः ॥२४६॥
भस्मच्छन्नाग्निवद्भस्मीकर्तुं[3] शक्तोऽखिलं जगत् । न मनोगोचरं प्राप्तो दशग्रीवः किमम्ब ते ॥२४७॥
गत्या जयेदयं चित्तमनादरसमुत्थया । तटानि गिरिराजस्य पाटयेच्च चपेटया ॥२४८॥
राजमार्गौ प्रतापस्य स्तम्भौ भुवनवेश्मनः । अङ्कुरौ दर्पवृक्षस्य न ज्ञातावस्य ते भुजौ ॥२४९॥
एवंकृतस्तवोऽथासौ भ्रात्रा गुणकलाविदा । तेजोबहुतरं प्राप सर्पिषेव [4]तनूनपात् ॥२५०॥
जगाद खेति किं मातरात्मनोऽतिविकत्थया । वदामि शृणु यत्सत्यं वाक्यमेतदनुत्तरम् ॥२५१॥
गर्विता अपि विद्याभिः संभूय मम खेचराः । एकस्यापि न पर्याप्ता भुजस्य रणमूर्द्धनि ॥२५२॥
कुलोचितं तथापीदं विद्याराधनसंज्ञकम् । कर्म कर्तव्यमस्माभिस्तत्कुर्वाणैर्न लज्ज्यते ॥२५३॥
कुर्वन्त्याराधनं यत्नात् साधवस्तपसो यथा । आराधनं तथा कृत्यं विद्यायाः खगगोत्रजैः ॥२५४॥

मैं भी इसी चिन्तासे सूख रही हूँ। अपने स्थानसे भ्रष्ट होनेकी अपेक्षा पुरुषोंका मरण हो जाना अच्छा है ॥२४०॥ हे पुत्र ! तू अपने कुलके योग्य लक्ष्मीको कब प्राप्त करेगा ? जिसे देख हम दोनोंका मन शल्यरहित-सा हो सके ॥२४१॥ मैं कब तेरे इन भाइयोंको विभूतिसे युक्त तथा निष्कण्टक विश्वमें स्वच्छन्द विचरते हुए देखूँगी ? ॥२४२॥ माताके दीन वचन सुनकर जिसके क्रोधरूपी विषके अंकुर उत्पन्न हो रहे थे ऐसा विभीषण गर्वसे मुसकराता हुआ बोला ॥२४३॥ कि हे मा ! यह धनद हो चाहे देव हो, तुमने इसका ऐसा कौन-सा प्रभाव देखा कि जिससे तुम इस प्रकार विलाप कर रही हो ॥२४४॥

तुम तो वीरप्रसू हो, स्वयं वीर हो, और मनुष्योंकी समस्त चेष्टाओंको जाननेवाली हो। फिर ऐसी होकर भी अन्य स्त्रीकी तरह ऐसा क्यों कह रही हो ॥२४५॥ जरा ध्यान तो करो कि जिसका वक्षःस्थल श्रीवत्सके चिह्नसे चिह्नित है, विशाल शरीरको धारण करनेवाला है, जिसकी प्रतिदिनकी चेष्टाएँ एक आश्चर्य रससे ही सनी रहती हैं, जो महाबलवान् है और भस्मसे आच्छादित अग्निके समान समस्त संसारको भस्म करनेमें समर्थ है ऐसा दशानन क्या कभी तुम्हारे मनमें नहीं आया ? २४६-२४७॥ यह अनादरसे ही उत्पन्न गतिके द्वारा मनको जीत सकता है और हाथकी चपेटासे सुमेरुके शिखर विदीर्ण कर सकता है ॥२४८॥ तुम्हें पता नहीं कि इसकी भुजाएँ प्रतापकी पक्की सड़क हैं, संसाररूपी घरके खम्भे हैं, और अहंकार रूपी वृक्षके अंकुर हैं ॥२४९॥ इस प्रकार गुण और कलाके जानकार विभीषण भाईके द्वारा जिसकी प्रशंसा की गयी थी ऐसा रावण, घीके द्वारा अग्निके समान बहुत अधिक प्रतापको प्राप्त हुआ ॥२५०॥ उसने कहा कि माता ! अपनी बहुत प्रशंसा करनेसे क्या लाभ है ? परन्तु सच बात तुमसे कहता हूँ सो सुन ॥२५१॥ विद्याओंके अहंकारसे फूले यदि सबके सब विद्याधर मिलकर युद्धके मैदानमें आवें तो मेरी एक भुजाके लिए भी पर्याप्त नहीं हैं ॥२५२॥ फिर भी विद्याओंकी आराधना करना यह हमारे कुलके योग्य कार्य है अतः उसे करते हुए हमें लज्जित नहीं होना चाहिए ॥२५३॥ जिस प्रकार साधु बड़े प्रयत्नसे तपकी आराधना करते हैं उसी प्रकार विद्याधरोंके गोत्रज पुरुषोंको भी बड़े प्रयत्नसे विद्याकी आराधना

---

१. ध्यायितो तत्तविग्रहम् म. । २. रसासिक्त म. । ३. सुमच्छया म. । ४. अग्निः । ५. लज्ज्यते क., ख. ।

इत्युक्त्वा धारयन्मानमनुजाभ्यां समन्वितः । पितृभ्यां चुम्बितौ मूर्ध्नि कृतसिद्धनमस्कृतिः ॥२५५॥
प्राप्तमङ्गलसंस्कारो निश्चयस्थिरमानसः । निर्गत्य मुदितो गेहादुत्पपात नभस्तलम् ॥२५६॥
क्षणात् प्राप्तं प्रविष्टश्च भीमं नाम महावनम् । दंष्ट्राकरालवदनैः क्रूरसत्त्वैर्निनादितम् ॥२५७॥
सुप्ताजगरनिश्वासप्रेङ्खितोदारपादपम् । नृत्यद्व्यन्तरसंघातपादक्षोभितभूतलम् ॥२५८॥
महासह्यरैरास्यै[1] सूच्यभेद्यतमश्चयम् । कालेनैव स्वयं वलससंनिधानं सुभीषणम् ॥२५९॥
यस्योपरि न गच्छन्ति सुराश्चापि भयार्दिताः । यच्च भीमतया प्राप प्रसिद्धिं भुवनत्रये ॥२६०॥
गिरयो दुर्गमा यत्र ध्वान्तव्याप्तगुहाननाः । साराश्च तरवो लोकं ग्रसितुं प्रोद्यता इव ॥२६१॥
अभिलाषैस्तमस्तत्र गृहीत्वा शमसुत्तमम् । दुराशादूरितात्मानो धवलाम्बरधारिणः ॥२६२॥
पूर्णेन्दुसौम्यवदनाः किरीटमणिविराजिताः[2] । तपश्चरितुमारब्धास्त्रयोऽपि भ्रातरो महत् ॥२६३॥
विद्या चाष्टाक्षरी[3] नीता वशं[4] लक्षजपेन सा । सर्वकामान्नदा नाम दिवसार्द्धेन तैस्ततः ॥२६४॥
अन्नं यद्यैप्सितं तेभ्यः सोपनिन्ये यतस्ततः । क्षुधाजनितमेतेषां संबभूव न पीडनम् ॥२६५॥
ततो जपितुमारब्धाः सुचित्ताः षोडशाक्षरम् । मन्त्रं कोटिसहस्राणि यस्यावृत्तिर्दशोदिता[5] ॥२६६॥
जम्बूद्वीपपतिर्यक्षस्तमथ स्त्रीभिरावृतः । अनावृत इति ख्यातः प्रासः क्रीडितुमिच्छया ॥२६७॥
अक्षमाणां ततस्तस्य क्रीडन्तीनां सुविभ्रमम् । ते तपोनिहितात्मानः स्थिता लोचनगोचरे ॥२६८॥

करनी चाहिए ॥२५४॥ इस प्रकार कहकर मानको धारण करता हुआ रावण अपने दोनों छोटे भाइयोंके साथ विद्या सिद्ध करने के लिए घरसे निकलकर आकाशकी ओर चला गया। जाते समय माता-पिताने उसका मस्तक चूमा था, उसने सिद्ध भगवान्‌को नमस्कार किया था, मांगलिक संस्कार उसे प्राप्त हुए थे, उसका मन निश्चयसे स्थिर था तथा प्रसन्नतासे भरा था ॥२५५-२५६॥ क्षण-भरमें ही वह भीम नामक महावनमें जा पहुँचा। जिनके मुख दाढ़ोंसे भयंकर थे ऐसे दुष्ट प्राणी उस वनमें शब्द कर रहे थे ॥२५७॥ सोते हुए अजगरोंके श्वासोच्छ्वाससे वहाँ बड़े-बड़े वृक्ष कम्पित हो रहे थे तथा नृत्य करते हुए व्यन्तरोंके चरण-निक्षेपसे वहाँका पृथिवीतल क्षोभित हो रहा था ॥२५८॥ वहाँ की बड़ी-बड़ी गुफाओंमें सूचीके द्वारा दुर्भेद्य सघन अन्धकारका समूह विद्यमान था। वह वन इतना भयंकर था कि मानो साक्षात् काल ही सदा उसमें विद्यमान रहता था ॥२५९॥ देव भी भयसे पीड़ित होकर उसके ऊपर नहीं जाते थे, तथा अपनी भयंकरताके कारण तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध था ॥२६०॥ जिनकी गुफाओंके अग्रभाग अन्धकारसे व्याप्त थे ऐसे वहाँ के पर्वत अत्यन्त दुर्गम थे और वहाँ के सुदृढ़ वृक्ष ऐसे जान पड़ते थे मानो लोकको ग्रसने के लिए ही खड़े हों ॥२६१॥ जिनके चित्तमें किसी प्रकारका भेदभाव नहीं था, जिनकी आत्माएँ खोटी आशाओंसे दूर थीं, जो शुक्ल वस्त्र धारण कर रहे थे, जिनके मुख पूर्णचन्द्रमाके समान सौम्य थे और जो चूड़ामणिसे सुशोभित थे ऐसे तीनों भाइयोंने उस भीम महावनमें उत्तम शान्ति धारण कर महान् तपश्चरण करना प्रारम्भ किया ॥२६२-२६३॥ उन्होंने एक लाख जप कर सर्वकामान्नदा नामकी आठ अक्षरोंवाली विद्या आधे ही दिनमें सिद्ध कर ली ॥२६४॥ यह विद्या उन्हें जहाँ-तहाँसे मनचाहा अन्न लाकर देती रहती थी जिससे उन्हें क्षुधा सम्बन्धी पीड़ा नहीं होती थी ॥२६५॥ तदनन्तर हृदयको स्वस्थ कर उन्होंने सोलह अक्षरवाला वह मन्त्र जपना शुरू किया कि जिसकी दस हजार करोड़ आवृत्तियाँ शास्त्रोंमें कही गयी हैं ॥२६६॥

तदनन्तर जम्बूद्वीपका अधिपति अनावृत नामका यक्ष अपनी स्त्रियोंसे आवृत हो इच्छानुसार क्रीड़ा करनेके लिए उस वनमें आया ॥२६७॥ जिनकी आत्मा तपश्चरणमें लीन थी ऐसे तीनों भाई, हाव-भाव-पूर्वक क्रीड़ा करनेवाली उस यक्षकी स्त्रियोंके दृष्टिगोचर हुए ॥२६८॥

१. विवारितम् म. । २. देशस्थं म. । ३. चाष्टाक्षरी म. । ४. वशतां म. । ५. -दिताः म. ।

रूपेण तास्ततस्तेषां समाकृष्य कचेष्विव । देव्यः समीपमानीताः कौतुकाकुलचेतसः ॥२६९॥
ऊचुस्तासामिदं काश्चित्कुञ्चितालकलासिना । वदनेन सहिरेफेण पद्मस्य श्रियमाश्रिताः ॥२७०॥
नितान्तं सुकुमाराङ्गा विसर्पत्कान्तितेजसः । तपश्चरत किं कार्यमपरित्यक्तवाससः ॥२७१॥
भोगैर्विना न गात्राणामीदृशी जायते रुचिः । ईदृग्देहतया नापि शक्यते परतो भयम् ॥२७२॥
जटामुकुटभारः क्व क्व चेदं प्रथमं वयः । विरुद्धसंप्रयोगस्य स्रष्टारो यूयमुद्गताः ॥२७३॥
पीनस्तनतटास्फालसुखसंगमनोचितौ । करौ शिलादिसंगेन किमर्थं प्रापितौ व्यथाम् ॥२७४॥
अहो ह्रसीयसी बुद्धिर्युष्माकं रूपशालिनाम् । भोगोचितस्य देहस्य यत्कृतं दुःखयोजनम् ॥२७५॥
उत्तिष्ठत गृहं यामः किमद्यापि गतं बुधाः । सहास्माभिर्महाभोगान् प्राप्नुत प्रियदर्शनान् ॥२७६॥
तामिरित्युदितं तेषां न चक्रे मानसे पदम् । यथा सरोजिनीपत्रे पयसो बिन्दुजालकम् ॥२७७॥
एवमूचुस्ततश्चान्याः सख्यः काष्ठमया इमे । निश्चलत्वं तथा ह्येषां सर्वेष्वङ्गेषु दृश्यते ॥२७८॥
अभिधायेति संक्रुध्य रभसादुपसृत्य च । विशाले हृदये चक्रुरवतंसेन ताडनम् ॥२७९॥
तथापि ते गताः क्षोभं नैव प्रवणचेतसः । यतः कापुरुषा एव स्खलन्ति प्रस्तुताशयात् ॥२८०॥
देवीनिवेदनाद् दृष्ट्वा[3] जम्बूद्वीपेशिना ततः । कृत्वा च स्मितमित्युक्ताः प्राप्तविस्मयचेतसा ॥२८१॥
भो भोः सुपुरुषाः कस्मात्तप्यध्वं दुष्करम् । आराधयत वा देवं कतरं वदताचिरात् ॥२८२॥

तदनन्तर कौतुकसे जिनका चित्त आकुल हो रहा था ऐसी देवियाँ शीघ्र ही उनके पास इस प्रकार आयीं मानो उनके सौन्दर्यने चोटी पकड़कर ही उन्हें खींच लिया हो ॥२६९॥ उन देवियोंमें कुछ देवियां घुँघराले बालोंसे सुशोभित मुखसे भ्रमरसहित कमलकी शोभा धारण कर रही थीं। उन्होंने कहा कि जिनके शरीर अत्यन्त सुकुमार हैं, जिनकी कान्ति और तेज सब ओर फैल रहा है तथा वस्त्रका जिन्होंने त्याग नहीं किया है ऐसे आप लोग किस लिए तपश्चरण कर रहे हैं ॥२७०-२७१॥ शरीरोंकी ऐसी कान्ति भोगोंके बिना नहीं हो सकती। तथा आपके ऐसे शरीर हैं कि जिससे आपको किसी अन्यसे भय भी उत्पन्न नहीं हो सकता ॥२७२॥ कहाँ तो यह जटारूप मुकुटोंका भार और कहाँ यह प्रथम तारुण्य अवस्था ? निश्चित ही आप लोग विरुद्ध पदार्थोंका समागम सृजनेके लिए ही उत्पन्न हुए हैं ॥२७३॥ स्थूल स्तन-तटोंके आस्फालनसे उत्पन्न सुखकी प्राप्तिके योग्य अपने इन हाथोंको आप लोग शिला आदि कर्कश पदार्थोंके समागमसे पीड़ा क्यों पहुँचा रहे हैं ॥२७४॥ अहो आश्चर्य है कि रूपसे सुशोभित आप लोगोंकी बुद्धि बड़ी हलकी है कि जिससे भोगोंके योग्य शरीरको आप लोग इस तरह दुःख दे रहे हैं ॥२७५॥ उठो घर चलें, हे विज्ञ पुरुषो ! अब भी क्या गया है ? प्रिय पदार्थोंका अवलोकन कर हम लोगोंके साथ महाभोग प्राप्त करो ॥२७६॥ उन देवियोंने यह सब कहा अवश्य, पर उनके चित्तमें ठीक उस तरह स्थान नहीं पा सका कि जिस तरह कमलिनीके पत्रपर पानीके बूँदोंका समूह स्थान नहीं पाता है ॥२७७॥ तदनन्तर कुछ दूसरी देवियाँ परस्परमें इस प्रकार कहने लगीं कि हे सखियो ! निश्चय ही ये काष्ठमय हैं—लकड़ीके पुतले हैं इसीलिए तो इनके समस्त अंगोंमें निश्चलता दिखाई देती है ॥२७८॥ ऐसा कहकर तथा कुछ कुपित हो पासमें जाकर उन देवियोंने उनके विशाल हृदयमें अपने कर्णफूलोंसे चोट पहुँचायी ॥२७९॥ फिर भी निपुण चित्तको धारण करनेवाले तीनों भाई क्षोभको प्राप्त नहीं हुए सो ठीक ही है क्योंकि कायर पुरुष ही अपने प्रकृत लक्ष्यसे भ्रष्ट होते हैं ॥२८०॥ तदनन्तर देवियोंके कहनेसे जिसके चित्तमें आश्चर्य उत्पन्न हो रहा था ऐसे जम्बूद्वीपाधिपति अनावृत यक्षने भी हर्षित हो उन तीनों भाइयोंसे मुसकराते हुए कहा ॥२८१॥ कि हे सत्पुरुषो ! आप लोग किस प्रयोजनसे कठिन तपश्चरण कर रहे हो ? अथवा किस देवकी आराधना कर रहे हो ? सो शीघ्र ही कहो

---

१. पीतस्तन -म. । २. नैवं म. । ३. नाद् दृष्ट्वा म. ।

इत्युक्तास्ते यदा तस्थुः पुस्तकर्मगता इव । तदा कोपेन यक्षाणां पतिरेवममाषत ॥२८३॥
किमस्य मामिमे देवं कमन्यं ध्यातुमुद्यताः । अहो चपलतामीषां परमेयममेधसाम् ॥२८४॥
इत्यूहापोहमेतेषां तक्षणं च प्रचण्डवाक् । किङ्कराणामदादाज्ञामाज्ञादानप्रतीक्षिणाम् ॥२८५॥
[illegible] । मायारूपधराश्चक्रुः पुरस्तेषामिति क्रियाः ॥२८६॥
कश्चिदुत्प्लुत्य वेगेन गृहीत्वा पर्वतोन्नतिम् । पुरः पपात निर्घातान् वातयन्निव सर्वतः ॥२८७॥
सर्पेण वेष्टनं कश्चिच्चक्रे सर्वशरीरगम् । भूत्वा च केसरी कश्चिद् व्यादायास्यं समागतः ॥२८८॥
चक्रुरन्ये रवं कर्णे बधिरीकृतदिङ्मुखम् । दंशहस्तिमरुद्दावसमुद्रत्वं गतास्तथा ॥२८९॥
एवंविधैरुपायैस्ते यदा जग्मुर्न विक्रियाम् । ध्यानस्तम्भसमासक्तनिश्चलस्वान्तधारणाः ॥२९०॥
तदा म्लेच्छबलं भीमं चण्डचण्डालसंकुलम् । करालमायुधैरुग्रैर्विकृतं तैस्तमोनिभम् ॥२९१॥
कृत्वा पुष्पान्तकं ध्वस्तं विजित्य च किलाहवे । बद्ध्वा रत्नश्रवास्तेषां दर्शितो बान्धवैः समम् ॥२९२॥
अन्तःपुरं च कुर्वाणं विप्रलापं मनश्छिदम् । युष्मासु सत्सु पुत्रेषु दुःखप्राप्तमिति ध्वनत् ॥२९३॥
पुत्रा रक्षत मां म्लेच्छैर्हन्यमानं महावने । तेषामिति पुरः पित्रा प्रयुक्तो भूरिविप्लवः ॥२९४॥
तर्ज्यमाना च चण्डालैर्माता निगडसंयुता । कचाकृष्टा विमुञ्चन्ती धारा नयनवारिणः ॥२९५॥
अगाद यद्यतावस्थामीदृशीं मे सुता वने । नीताहं शबरैः पल्लीं कथं युष्माकमग्रतः ॥२९६॥
संभूय मम सर्वेऽपि लब्धविद्याबला अपि । एकस्यापि न पर्याप्ता भुजस्य व्योमचारिणः ॥२९७॥

॥२८२॥ यक्षके ऐसा कहनेपर भी जब वे मिट्टीसे निर्मित पुतलोंकी तरह निश्चल बैठे रहे तब वह कुपित हो इस प्रकार बोला कि ॥२८३॥ ये लोग मुझे भुलाकर अन्य किस देवका ध्यान करनेके लिए उद्यत हुए हैं। अहो ! इन मूर्खोंकी यह सबसे बड़ी चपलता है ॥२८४॥ इस तरह कठोर वचन बोलनेवाले उस यक्षेन्द्रने आज्ञा देनेकी प्रतीक्षा करनेवाले अपने सेवकोंको इन तीन भाइयोंपर उपद्रव करनेकी आज्ञा दे दी ॥२८५॥ वे किंकर स्वभावसे ही क्रूर थे फिर उससे भी अधिक स्वामीकी आज्ञा पा चुके थे इसलिए नाना रूप धारण कर उनके सामने तरह-तरहकी क्रियाएँ करने लगे ॥२८६॥ कोई यक्ष वेगसे पर्वतके समान ऊँचा उछलकर उनके सामने ऐसा गिरा मानो सब ओरसे वज्र ही गिर रहा हो ॥२८७॥ किसी यक्षने साँप बनकर उनके समस्त शरीरको लपेट लिया और कोई सिंह बनकर तथा मुँह फाड़कर उनके सामने आ पहुँचा ॥२८८॥ किन्हींने कानोंके पास ऐसा भयंकर शब्द किया कि उससे समस्त दिशाएँ बहरी हो गयीं। तथा कोई दंशमशक बनकर, कोई हाथी बनकर, कोई आँधी बनकर, कोई दावानल बनकर और कोई समुद्र बनकर भिन्न-भिन्न प्रकारके उपद्रव करने लगे ॥२८९॥ ध्यानरूपी खम्भेमें बद्ध रहनेके कारण जिनका चित्त अत्यन्त निश्चल था ऐसे तीनों भाई जब पूर्वोक्त उपायोंसे विकारको प्राप्त नहीं हुए ॥२९०॥ तब उन्होंने विक्रियासे म्लेच्छोंकी एक बड़ी भयंकर सेना बनायी। वह सेना अत्यन्त क्रोधी चाण्डालोंसे युक्त थी, तीक्ष्ण शस्त्रोंसे भयंकर थी और अन्धकारके समूहके समान जान पड़ती थी ॥२९१॥ तब उन्होंने दिखाया कि युद्धमें जीतकर पुष्पान्तक नगरको विध्वस्त कर दिया है तथा तुम्हारे पिता रत्नश्रवाको भाई-बन्धुओं सहित गिरफ्तार कर लिया गया है ॥२९२॥ अन्तःपुर भी हृदयको तोड़ देनेवाला विलाप कर रहा है और साथ ही साथ यह शब्द कर रहा है कि तुम्हारे जैसे पुत्रोंके रहते हुए भी हम दुःखको प्राप्त हुए हैं ॥२९३॥ पिता इस प्रकार चिल्ला-चिल्लाकर उनके सामने बहुत भारी बाधा उत्पन्न कर रहा है कि हे पुत्रो ! इस महावनमें म्लेच्छ मुझे मार रहे हैं सो मेरी रक्षा करो ॥२९४॥ उन्होंने दिखाया कि तुम्हारी माताको चाण्डाल बेड़ीमें डालकर पीट रहे हैं, चोटी पकड़कर घसीट रहे हैं और वह आँसुओंकी धारा छोड़ रही है ॥२९५॥ माता कह रही है कि हे पुत्रो ! देखो, वनमें मैं ऐसी अवस्थाको प्राप्त हो रही हूँ। यही नहीं तुम लोगोंके सामने ही शबर लोग मुझे अपनी पल्ली-बसतिमें लिये जा रहे हैं ॥२९६॥ तुम यह पहले झूठ-मूठ ही कहा करते थे कि विद्याबलको

इत्युक्तं वितथं पूर्वमेकस्यापि यतोऽधुना । यूयं म्लेच्छस्य पर्याप्ता न त्रयोऽपि हतौजसः ॥२९८॥
दशग्रीव वृथा स्तोत्रमकरोत्ते विभीषणः । एकापि नास्ति ते ग्रीवा जननी यो न रक्षति ॥२९९॥
कालेन यावता यासस्त्वं मे मानेन वर्जितः । निष्क्रान्तो जठरादस्मादुचारस्तावता वरम् ॥३००॥
भानुकर्णोऽप्ययं मुक्तः कर्णाभ्यां यो न मे स्वरम् । आर्तं शृणोति कुर्वस्या विगतक्रियविग्रहः ॥३०१॥
विभीषणोऽप्ययं व्यर्थं नाम धत्ते विभीषणः । शक्तो यो नैककस्यापि शबरस्य मृताकृतिः ॥३०२॥
म्लेच्छैर्विधर्म्यमाणायां दयां कुरुत नो कथम् । स्वसरि प्रेम हि प्रायः पितृभ्यां सोदरे परम् ॥३०३॥
विद्या हि साध्यते पुत्रैः स्वजनानां समृद्धये । तेषां च पितरौ श्रेष्ठौ तयोश्चैषा व्यवस्थितिः ॥३०४॥
भ्रूक्षेपमात्रतोऽप्येते शबरा यान्ति भस्मताम् । भवतां वृश्चिकव्यालचक्षुःपातादिव द्रुमाः ॥३०५॥
जठरेण मया यूयं धारिताः सुखलिप्सया । पुत्रा हि गदिताः पित्रोः प्रारोहा इव धारकाः ॥३०६॥
यदैवमपि न ध्यानभङ्गस्तेषामजायत । तदेति तैः समारब्धं मायाकर्मातिदारुणम् ॥३०७॥
छिन्नं पित्रोः शिरस्तेषां पुरः सायकधारया । पुरो दशाननस्यापि मूर्द्धा भ्रात्रोर्निपातितः ॥३०८॥
तयोरपि पुरो मूर्द्धा दशग्रीवस्य पातितः । येन तौ कोपतः प्राप्तावीषद्ध्यानविकल्पनम् ॥३०९॥
दशग्रीवस्तु भावस्य दधानोऽत्यन्तशुद्धताम् । महावीर्यो दधत्स्थैर्यं मन्दरस्य महारुचिः ॥३१०॥
अवभज्य[1] हृषीकाणां प्रसारं निजगोचरे । अचिराच्चलं चित्तं कृत्वा दासमिवाश्रवम् ॥३११॥

प्राप्त सब विद्याधर मिलकर भी मेरी एक भुजाके लिए पर्याप्त नहीं हैं। परन्तु इस समय तो तुम तीनों ही इतने निस्तेज हो रहे हो कि एक ही म्लेच्छके लिए पर्याप्त नहीं हो ॥२९७–२९८॥ हे दशग्रीव, यह विभीषण तेरी व्यर्थ ही स्तुति करता था। जबकि तू माताकी रक्षा नहीं कर पा रहा है तब तो मैं समझती हूँ कि तेरे एक भी ग्रीवा नहीं है ॥२९९॥ मानसे रहित तू जितने समय तक मेरे उदरमें रहकर बाहर निकला है उतने समय तक यदि मैं मलको भी धारण करती तो अच्छा होता ॥३००॥ जान पड़ता है यह भानुकर्ण भी कर्णोंसे रहित है इसलिए तो मैं चिल्ला रही हूँ और यहाँ मेरे दुःख-भरे शब्दको सुन नहीं रहा है। देखो, कैसा निश्चल शरीर धारण किये है ॥३०१॥ यह विभीषण भी इस विभीषण नामको व्यर्थ ही धारण कर रहा है और मुर्दा जैसा इतना अकर्मण्य हो गया है कि एक भी म्लेच्छका निराकरण करनेमें समर्थ नहीं है ॥३०२॥ देखो, ये म्लेच्छ बहुत चन्द्रनखाको धर्महीन बना रहे हैं सो इसपर भी तुम दया क्यों नहीं करते हो? माता-पिताकी अपेक्षा भाईका बहनपर अधिक प्रेम होता है पर इसकी तुम्हें चिन्ता कहाँ है? ॥३०३॥ हे पुत्रो! विद्या सिद्ध की जाती है आत्मीयजनोंकी समृद्धिके लिए सो उन आत्मीयजनोंकी अपेक्षा माता-पिता श्रेष्ठ हैं और माता-पिताकी अपेक्षा बहन श्रेष्ठ है यही सनातन व्यवस्था है ॥३०४॥ जिस प्रकार विषधर सर्पकी दृष्टि पड़ते ही वृक्ष भस्म हो जाते हैं उसी प्रकार तुम्हारी भौंहके संचार मात्रसे म्लेच्छ भस्म हो सकते हैं ॥३०५॥ मैंने तुम लोगोंको सुख पानेकी इच्छासे ही उदरमें धारण किया था क्योंकि पुत्र वही कहलाते हैं जो पायेकी तरह माता-पिताको धारण करते हैं—उनकी रक्षा करते हैं ॥३०६॥ इतना सब कुछ करनेपर भी जब उनका ध्यान भंग नहीं हुआ, तब उन देवोंने अत्यन्त भयंकर मायामयी कार्य करना शुरू किया ॥३०७॥ उन्होंने उन तीनोंके सामने तलवारकी धारसे माता-पिताका सिर काटा तथा रावणके सामने उसके अन्य दो भाइयोंका सिर काटकर गिराया ॥३०८॥ इसी प्रकार उन दो भाइयोंके सामने रावण का सिर काटकर गिराया। इस कार्यसे विभीषण और भानुकर्णके ध्यानमें क्रोधवश कुछ चंचलता आ गयी ॥३०९॥ परन्तु दशानन भावोंकी शुद्धताको धारण करता हुआ मेरुके समान स्थिर बना रहा। वह महाशक्तिशाली तथा दृढ़श्रद्धानी जो था ॥३१०॥ उसने इन्द्रियोंके संचारको अपने आपमें ही रोककर बिजलीके समान चंचल मनको दासके समान आज्ञाकारी बना

१. अवदय ख.]

कण्टकेन कृतत्राणः संवरेण समं ततः । ध्यानवक्तव्यताहीनो दध्यौ मन्त्रं प्रयत्नतः ॥३११॥
यदि नाम तदा ध्यानमाविशेच्छ्रमणोत्तमः । अष्टकर्मसमुच्छेदं ततः कुर्वीत तत्क्षणात् ॥३१३॥
अवान्तरे सवेदाभां कृताञ्जलिपुटस्थिताम् । सहस्रं तस्य विद्यानामनेकं वशतामितम् ॥३१४॥
समाप्तिमेति नो यावत्संख्या मन्त्रविवर्तने । तावदेवास्य ताः सिद्धा निश्चयात् किं न लभ्यते ॥३१५॥
निश्चयोऽपि पुरोपात्तालभ्यते कर्मणः क्षितौ । कर्माण्येव हि यच्छन्ति विघ्नं दुःखानुभाविनः ॥३१६॥
काले दानविधिं पात्रे क्षेमं चायुःस्थितिक्षयम् । सम्यग्बोधिफलां विद्यां नामन्यो लब्धुमर्हति ॥३१७॥
कस्यचिद्दशभिर्वर्षैर्विद्या मासेन कस्यचित् । क्षणेन कस्यचिल्लिद्धिं यान्ति कर्मानुभावतः ॥३१८॥
धरण्यां स्वपितु स्थानं करोतु चिरमन्धसः । मज्जत्वप्सु दिवानक्तं गिरेः पततु मस्तकात् ॥३१९॥
विधत्तां पञ्चतायोग्यां क्रियां विग्रहशोषिणीम् । पुण्यैर्विरहितो जन्तुस्तथापि न कृती भवेत् ॥३२०॥
अङ्गमात्रं क्रियाः पुंसां सिद्धेः सुकृतकर्मणाम् । अकृतोत्तमकर्माणो यान्ति मृत्युं निरर्थकाः ॥३२१॥
सर्वादरान्मनुष्येण तस्मादाचार्यसेवया । पुण्यमेव सदा कार्यं सिद्धिः पुण्यैर्विना कुतः ३२२॥
पश्य श्रेणिक पुण्यानां प्रभावं यद्दशाननः । असंपूर्णे गतः काले विद्यासिद्धिं महामनाः ॥३२३॥
संक्षेपेण करिष्यामि विद्यानां नामकीर्तनम् । अर्थसामर्थ्यतो लब्धं भवाकर्णितमानसः ॥३२४॥
नभःसंचारिणी कामदायिनी कामगामिनी । दुर्निवारा जगत्कम्पा प्रज्ञप्तिर्मानुमालिनी ॥३२५॥

किया था ॥३११॥ शत्रुसे बदला लेनेकी इच्छारूपी कण्टक तथा जितेन्द्रियतारूपी संवर दोनों ही जिसकी रक्षा कर रहे थे ऐसा दशानन ध्यानसम्बन्धी दोषोंसे रहित होकर प्रयत्नपूर्वक मन्त्रका ध्यान करता रहा ॥३१२॥ आचार्य कहते हैं कि यदि ऐसा ध्यान कोई मुनिराज धारण करते तो वह उस ध्यानके प्रभावसे उसी समय अष्टकर्मोंका विच्छेद कर देते ॥३१३॥ इसी बीचमें हाथ जोड़कर सामने खड़ी हुई अनेक हजार शरीरधारिणी विद्याएँ दशाननको सिद्ध हो गयीं ॥३१४॥ मन्त्र जपनेकी संख्या समाप्त नहीं हो पायी कि उसके पहले ही समस्त विद्याएँ उसे सिद्ध हो गयीं, सो ठीक ही है क्योंकि दृढ़ निश्चयसे क्या नहीं मिलता है ? ॥३१५॥ दृढ़ निश्चय भी पूर्वोपार्जित उज्ज्वल कर्मोंसे ही प्राप्त होता है। यथार्थमें कर्म ही दुःखानुभवमें विघ्न उत्पन्न करते हैं ॥३१६॥ योग्य समय पात्रके लिए दान देना, क्षेत्रमें आयुकी स्थिति समाप्त होना तथा रत्नत्रयकी प्राप्तिरूपी फलके सूचक विद्या प्राप्त होना, इन तीन कार्योंको अभव्य जीव कभी नहीं पाता है ॥३१७॥ किसीको दस वर्षमें, किसीको एक माहमें और किसीको एक क्षणमें ही विद्याएँ सिद्ध हो जाती हैं सो यह सब कर्मोंका प्रभाव है ॥३१८॥ भले ही पृथिवीपर सोवे, चिरकाल तक भोजनका त्याग रखे, रात-दिन पानीमें डूबे रहे, पहाड़की चोटीसे गिरे, और जिससे मरण भी हो जावे ऐसी शरीर सुखानेवाली क्रियाएँ करे तो भी पुण्यरहित जीव अपना मनोरथ सिद्ध नहीं कर सकता ॥३१९-३२०॥ जिन्होंने पूर्व भवमें अच्छे कार्य किये हैं उन्हें सिद्धि अनायास ही प्राप्त होती है। तपश्चरण आदि क्रियाएँ तो निमित्त मात्र हैं पर जिन्होंने पूर्वभवमें उत्तम कार्य नहीं किये वे व्यर्थ ही मृत्युको प्राप्त होते हैं—उनका जीवन निरर्थक जाता है ॥३२१॥ इसलिए मनुष्यको पूर्ण आदरसे आचार्यकी सेवा कर सदा पुण्यका ही संचय करना चाहिए क्योंकि पुण्यके बिना सिद्धि कैसे हो सकती है ? ॥३२२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! पुण्यका प्रभाव देखो कि महामनस्वी दशानन, समय पूर्ण न होनेपर भी विद्याओंकी सिद्धिको प्राप्त हो गया ॥३२३॥ अब मैं संक्षेपसे विद्याओंका नामोल्लेख करता हूँ। विद्याओंके ये नाम उनके अर्थ-कार्यकी सामर्थ्यसे ही प्राप्त हुए हैं—प्रचलित हैं। हे श्रेणिक ! सावधान चित्त होकर सुनो ॥३२४॥ संचारिणी, कामदायिनी, कामगामिनी, दुर्निवारा,

---

१. संवरेण म. । २. -माविशच्छ्रम म. । ३. वक्षात् । ४. कामदामिनी म. । ५. कायगामिनी म. ।

अणिमा लघिमा क्षोभ्या मनःस्तम्भनकारिणी । संवाहिनी सुरध्वंसी कौमारी वधकारिणी ॥३२६॥
सुविधाना तपोरूपा दहनी विपुलोदरी । शुभप्रदा रजोरूपा दिनरात्रिविधायिनी ॥३२७॥
वज्रोदरी समाकृष्टिरदर्शन्यजरामरा । अनलस्तम्भनी तोयस्तम्भनी गिरिदारिणी ॥३२८॥
अवलोकन्यरिध्वंसी घोरा धीरा भुजङ्गिनी । वारुणी भुवनाभव्या दारुणा मदनाशिनी ॥३२९॥
भास्करी भयसंभूतिरैशानी विजया जया । बन्धनी मोचनी चान्या वाराही कुटिलाकृतिः ॥३३०॥
चित्तोद्भवकरी शान्तिः कौबेरी वशकारिणी । योगेश्वरी बलोत्सादी चण्डा भीतिः प्रवर्षिणी ॥३३१॥
एवमाद्या महाविद्याः पुरासुकृतकर्मणा । स्वल्पैरेव दिनैः प्राप दशग्रीवः [1]सुनिश्चलः ॥३३२॥
सर्वाहा रतिसंवृद्धिर्जृम्भिणी व्योमगामिनी । निद्राणी चेति पञ्चैता भानुकर्णं समाश्रिताः ॥३३३॥
सिद्धार्था शत्रुदमनी निर्व्याघाता खगामिनी । विद्या विभीषणं प्राप्ताश्चतस्रो दयिता इव ॥३३४॥
ईश्वरत्वं ततः प्राप्ता विद्यायां ते सुविभ्रमाः । जन्मान्यदिवसं प्रापुर्महासंमदकारणम् ॥३३५॥
ततः पस्यापि यक्षाणां दृष्ट्वा विद्याः समागताः । पूजितास्ते महामूल्या दिव्यालंकारभूषिताः ॥३३६॥
स्वयंप्रभमिति ख्यातं नगरं च निवेशितम् । मेरुशृङ्गसमुच्छ्रायैसंपक्तिविराजितम् ॥३३७॥
मुक्ताजालपरिक्षिप्तगवाक्षेन्दूरसुन्नतैः । रत्नजाम्बूनदस्तम्भैरचितं चैत्यवेश्मभिः ॥३३८॥
अन्योन्यकरसंबन्धजनितेन्द्रशरासनैः । रत्नैः कृतसमुद्योतं नित्यविद्युत्समप्रभैः ॥३३९॥
भ्रातृभ्यां सहितस्तत्र प्रासादे गगनस्पृशि । विद्याबलेन संपन्नः सुखं तस्थौ दशाननः ॥३४०॥
जम्बूद्वीपपतिः प्राह तत एवं दशाननम् । विस्मितस्तव वीर्येण प्रसन्नोऽहं महामते ॥३४१॥

जगत्कम्पा, प्रशप्ति, भानुमालिनी, अणिमा, लघिमा, क्षोभ्या, मनःस्तम्भनकारिणी, संवाहिनी, सुरध्वंसी, कौमारी, वधकारिणी, सुविधाना, तपोरूपा, दहनी, विपुलोदरी, शुभप्रदा, रजोरूपा, दिनरात्रिविधायिनी, वज्रोदरी, समाकृष्टि, अदर्शनी, अजरा, अमरा, अनलस्तम्भिनी, तोयस्तम्भिनी, गिरिदारणी, अवलोकिनी, अरिध्वंसी, घोरा, धीरा, भुजंगिनी, वारुणी, भुवना, अवष्या, दारुणा, मदनाशिनी, भास्करी, भयसंभूति, ऐशानी, विजया, जया, बन्धनी, मोचनी, वाराही, कुटिलाकृति, चित्तोद्भवकरी, शान्ति, कौबेरी, वशकारिणी, योगेश्वरी, बलोत्सादी, चण्डा, भीति और प्रवर्षिणी आदि अनेक महाविद्याओंको निश्चल परिणामोंका धारी दशानन पूर्वोपार्जित पुण्य कर्मके उदयसे थोड़े ही दिनोंमें प्राप्त हो गया ॥३२५-३३२॥ सर्वाहा, रतिसंवृद्धि, जृम्भिणी, व्योमगामिनी और निद्राणी ये पाँच विद्याएँ भानुकर्णको प्राप्त हुईं ॥३३३॥ सिद्धार्था, शत्रुदमनी, निर्व्याघाता और आकाशगामिनी ये चार विद्याएँ प्रिय स्त्रियोंके समान विभीषणको प्राप्त हुईं ॥३३४॥ इस प्रकार विद्याओंके ऐश्वर्यको प्राप्त हुए वे तीनों भाई महाहर्षके कारणभूत नूतन जन्मको ही मानो प्राप्त हुए थे ॥३३५॥ तदनन्तर यक्षोंके अधिपति अनावृत यक्षने भी विद्याओंको आया देख महावैभवसे उन तीनों भाइयोंकी पूजा की और उन्हें दिव्य अलंकारोंसे अलंकृत किया ॥३३६॥ दशाननने विद्याके प्रभावसे स्वयंप्रभ नामका नगर बसाया। वह नगर मेरुपर्वतके शिखरके समान ऊँचे-ऊँचे मकानोंकी पंक्तिसे सुशोभित था ॥३३७॥ जिनके झरोखोंमें मोतियोंकी झालर लटक रही थी, जो बहुत ऊँचे थे तथा जिनके खम्भे रत्न और स्वर्णके बने थे ऐसे जिनमन्दिरोंसे अलंकृत था ॥३३८॥ परस्परकी किरणोंके सम्बन्धसे जो इन्द्रधनुष उत्पन्न कर रहे थे, तथा निरन्तर स्थिर रहनेवाली बिजलीके समान जिनकी प्रभा थी ऐसे रत्नोंसे वह नगर सदा प्रकाशमान रहता था ॥३३९॥ उसी नगरके गगनचुम्बी राजमहलमें विद्याबलसे सम्पन्न दशानन अपने दोनों भाइयोंके साथ सुखसे रहने लगा ॥३४०॥ तदनन्तर आश्चर्यसे भरे जम्बूद्वीपके अधिपति अनावृत यक्षने एक दिन दशाननसे कहा कि

---

१. सुनिश्चयः म., क. । २ समुच्छ्रायं म. ।

चतुःसमुद्रपर्यन्ते नागव्यन्तरसंकुले । निष्टत्वत्र यथेच्छन्दं जम्बूद्वीपतले भवान् ॥३४२॥
द्वीपस्यास्य समस्तस्य वसिताहमकण्टकः । यथेप्सितं [1]चरेस्तस्मिन्नुद्धरन् शत्रुसंहतिम् ॥३४३॥
प्रसन्ने मयि ते वत्स स्मृतिमात्रपुरःस्थिते । ईप्सितव्याहतौ शक्रो न शक्तोऽपि कुतोऽपरे ॥३४४॥
प्राप्नुहि जीव कालं त्वं भ्रातृभ्यां सहितः सुखी । वर्द्धन्तां भूतयो दिव्या बन्धुसेव्याः सदा तव ॥३४५॥
इत्याशीर्भिः समानन्द्य सत्याभिस्तान् पुनः पुनः । जगाम स्वालयं यक्षः परिवारसमन्वितः ॥३४६॥
तं रक्षःश्रवसं [2]श्रुत्वा विद्यालिङ्गितविग्रहम् । सर्वतो रक्षसां सङ्घाः प्राप्ताः कृतमहोत्सवाः ॥३४७॥
केचित्तत्र ननृतुः केचिच्चक्रुरास्फोटनं तथा । केचित् प्रमोदसंपूर्णाः संभृता न स्वविग्रहे [3] ॥३४८॥
[4]कदर्थं नदितं कैश्चिच्छत्रुपक्षभयंकरम् । सुधयेव नभः कैश्चिल्लिम्पद्भिर्हसितं चिरम् ॥३४९॥
सुमाली माल्यवान् सूर्यरजा ऋक्षरजास्तथा । आगता नितरां प्रीताः समारुह्योत्तमान् रथान् ॥३५०॥
अन्ये च स्वजनाः सर्वे विमानैर्वाजिभिर्गजैः । स्वदेशेभ्यो विनिष्क्रान्तास्त्रासेन परिवर्जिताः ॥३५१॥
अथ रत्नश्रवाः पुत्रस्नेहसंपूर्णमानसः । वैजयन्तीभिराकाशं शुक्लीकुर्वन्निरन्तरम् ॥३५२॥
विभूत्या परया युक्तो बन्दिवृन्दैरभिष्टुतः । संप्राप्तो रथमारूढो [5]महाप्रासादसंनिभम् ॥३५३॥
एकीभूय व्रजन्तोऽमी पञ्चसंगमपर्वते । दुःखेन रजनीं निन्युरातिमयभीगताः ॥३५४॥
ततो गुरून् प्रणामेन समाश्लेषणतः सखीन् । स्निग्धेन चक्षुषा भृत्यान् जगृहुः कैकसीसुताः ॥३५५॥

हे महाबुद्धिमन् ! मैं तुम्हारे वीर्यसे बहुत प्रसन्न हूँ ॥३४१॥ अतः जिसके अन्तमें पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण इस प्रकार चार समुद्र हैं तथा जो नागकुमार और व्यन्तर देवोंसे व्याप्त है ऐसे इस जम्बूद्वीपमें इच्छानुसार रहो ॥३४२॥ मैं इस समस्त द्वीपका अधिपति हूँ, मेरा कोई भी प्रतिद्वन्द्वी नहीं है अतः तुम्हें वरदान देता हूँ कि तुम शत्रुसमूहको उखाड़ते हुए इस जम्बूद्वीपमें इच्छानुसार निर्भय विचरण करो ॥३४३॥ हे वत्स ! मैं तुझपर प्रसन्न हूँ और तेरे स्मरण मात्रसे सदा तेरे सामने खड़ा रहूँगा। मेरे प्रभावसे तेरे मनोरथमें बाधा पहुँचानेके लिए इन्द्र भी समर्थ नहीं हो सकेगा फिर साधारण मनुष्यकी तो बात ही क्या है ? ॥३४४॥ तू अपने दोनों भाइयोंके साथ सुखी रहता हुआ दीर्घ काल तक जीवित रह। तेरी दिव्य विभूतियाँ सदा बढ़ती रहें और बन्धुजन सदा उनका सेवन करते रहें ॥३४५॥ इस प्रकार यथार्थ आशीर्वादसे उन तीनों भाइयोंको आनन्दित कर वह यक्ष परिवारके साथ अपने स्थानपर चला गया ॥३४६॥

तदनन्तर दशाननको विद्याओंसे आलिंगित सुन चारों ओरसे राक्षसोंके समूह महोत्सव करते हुए उसके समीप आये ॥३४७॥ उनमें कोई तो नृत्य करते थे, कोई ताल बजाते थे, कोई हर्षसे इतने फूल गये थे कि अपने शरीरमें ही नहीं समाते थे ॥३४८॥ कितने ही लोग शत्रुपक्षको भयभीत करनेवाला जोरका सिंहनाद करते थे, कोई आकाशको चूनासे लिप्त करते हुए-की तरह चिरकाल तक हँसते रहते थे ॥३४९॥ प्रीतिसे भरे सुमाली, माल्यवान्, सूर्यरज और ऋक्षरज उत्तमोत्तम रथोंपर सवार हो उसके समीप आये ॥३५०॥ इनके सिवाय अन्य सभी कुटुम्बीजन, कोई विमानोंपर बैठकर, कोई घोड़ोंपर सवार होकर और कोई हाथियोंपर आरूढ़ होकर आये। वे सब भयसे रहित थे ॥३५१॥ अथानन्तर पुत्रके स्नेहसे जिसका मन भर रहा था ऐसा रत्नश्रवा पताकाओंसे आकाशको निरन्तर शुक्ल करता हुआ बड़ी विभूतिके साथ आया। बन्दीजनोंके समूह उसकी स्तुति कर रहे थे, और वह किसी बड़े राजमहलके समान सुन्दर रथपर सवार था ॥३५२-३५३॥ ये सब मिलकर साथ ही साथ आ रहे थे सो मार्गमें पंचसंगम नामक पर्वतपर इन्होंने शत्रुके भयके कारण बहुत ही दुखसे रात्रि बितायी ॥३५४॥ तदनन्तर केकसीके पुत्र दशानन

१. चरं कुर्याः । २. श्रवजं म. । ३. प्रशंसन्ति स्म रावणम् म. । ४. चन्द्रकान्ति तिरस्कुर्वत् म. । ५. महाप्रसाद -म. ।

शरीरक्षेमपृच्छादिसिद्धिवृत्तान्तसंकथा । न तेषामवगीतत्वं [1]प्राप्तारब्धा पुनः पुनः ॥३५६॥
ददृशुर्विस्मयापन्नाः स्वयंप्रभपुरोत्तमम् । देवलोकप्रतिच्छन्दं यातुधानप्लवङ्गमाः ॥३५७॥
सर्वेपथुकरेणैषां गात्रमस्पृशतां चिरम् । पितरौ सप्रणामानामानन्दाश्राकुलेक्षणौ ॥३५८॥
समोमध्ये गते भानौ तेषां स्नानविधिस्ततः । दिव्याभिः कर्तुमारब्धो वनिताभिर्महोत्सवः ॥३५९॥
मुक्ताजालपरीतेषु स्नानपीठेषु ते स्थिताः । नानारत्नसमृद्धेषु जात्याजाम्बूनदात्मसु ॥३६०॥
पादपीठेषु चरणौ निहितौ पल्लवच्छवी । उदयाद्रिशिरोवर्तिदिवाकरसमाकृती ॥३६१॥
ततो रत्नविनिर्माणैः सौवर्णैः राजतात्मकैः । कुम्भैः पल्लवसंछन्नवक्त्रैर्हारोपशोभितैः ॥३६२॥
चन्द्रादित्यप्रतिस्पर्द्धि[2]छायावच्छादितात्मभिः । आमोदवासिताशेषदिक्चक्रजलपूरितैः ॥३६३॥
एकानेकमुखैः प्रान्तभ्रान्तभ्रमरमण्डलैः । गर्जद्भिर्जलपातेन गंभीरजलदैरिव ॥३६४॥
गन्धैरुद्वर्तनैः कान्तिविधानकुशलैस्तथा । अभिषेकः कृतस्तेषां तूर्यनादादिनन्दितः ॥३६५॥
अलंकृतस्ततो देहो दिव्यवस्त्रविभूषणैः । मङ्गलानि प्रयुक्तानि कुलनारीभिरादरात् ॥३६६॥
ततो देवकुमाराभैः स्वजनानन्ददायिभिः । गुरूणां विनयादेतैः कृतं चरणवन्दनम् ॥३६७॥
अथाशिषस्ततो दृष्ट्वा तेषां त्रिदोत्थसंपदः । जीवतातिचिरं कालमिति तान् गुरवोऽब्रुवन् ॥३६८॥

आदिने आगे जाकर उन सबकी अगवानी की। उन्होंने गुरुजनोंको प्रणाम किया, मित्रोंका आलिंगन किया और भृत्योंकी ओर स्नेहपूर्ण दृष्टिसे देखा ॥३५५॥ गुरुजनोंने भी दशानन आदिसे शरीरकी कुशल-क्षेम पूछी, विद्याएँ किस तरह सिद्ध हुईं आदि का वृत्तान्त भी बार-बार पूछा सो ऐसे अवसरपर किसी बातको बार-बार पूछना निन्दनीय नहीं है ॥३५६॥ राक्षस तथा वानर-वंशियोंने देवलोकके समान उस स्वयंप्रभनगरको बड़े आश्चर्यके साथ देखा ॥३५७॥ जिनके नेत्र आनन्दसे व्याप्त थे ऐसे माता-पिताने प्रणाम करते हुए दशानन आदिके शरीरका काँपते हुए हाथोंसे चिरकाल तक स्पर्श किया ॥३५८॥ जब सूर्य आकाशके मध्यभागमें था तब दिव्य वनिताओंने बड़े उत्सवके साथ उन तीनों कुमारोंकी स्नानविधि प्रारम्भ की ॥ ३५९ ॥ जिनके चारों ओर मोतियोंके समूह व्याप्त थे तथा जो नाना प्रकारके रत्नोंसे समृद्ध थे ऐसे उत्कृष्ट स्वर्णनिर्मित स्नानकी चौकियोंपर वे आसीन हुए ॥३६०॥ पल्लवोंके समान लाल-लाल कान्तिके धारक दोनों पैर उन्होंने पादपीठपर रखे थे और उससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो उदयाचलके शिखरपर वर्तमान सूर्य ही हो ॥३६१॥ तदनन्तर रत्नमयी, सुवर्णमयी और रजतमयी उन कलशोंसे उनका अभिषेक शुरू हुआ कि जिनके मुख पल्लवोंसे आच्छादित थे, जो हारोंसे सुशोभित थे, चन्द्रमा तथा सूर्यके साथ स्पर्द्धा करनेवाली कान्तिसे जिनका आत्म-स्वरूप आच्छादित था, जो अपनी सुगन्धसे दिङ्मण्डलको सुवासित करनेवाले जलसे पूर्ण थे, जिनमें एक तो प्रधान मुख था तथा अन्य छोटे-छोटे अनेक मुख थे, जिनके आस-पास भ्रमरोंके समूह मँडरा रहे थे और जो जलपातके कारण गम्भीर मेघके समान गरज रहे थे ॥३६२-३६४॥ तदनन्तर शरीरकी कान्ति बढ़ानेमें कुशल उबटना आदि लगाकर सुगन्धित जलसे उनका अभिषेक किया गया। उस समय तुरही आदि वादित्रोंके मंगलमय शब्दोंसे वहाँका वातावरण आनन्दमय हो रहा था ॥३६५॥ तत्पश्चात् दिव्य वस्त्राभूषणोंसे उनके शरीर अलंकृत किये गये और कुलांगनाओंने बड़े आदरसे अनेक मंगलाचार किये ॥३६६॥ तदनन्तर जो देवकुमारोंके समान जान पड़ते थे और आत्मीयजनोंको आनन्द प्रदान कर रहे थे ऐसे उन तीनों कुमारोंने बड़ी विनयसे गुरुजनोंकी चरणवन्दना की ॥ ३६७ ॥ तदनन्तर गुरुजनोंने देखा कि इन्हें जो विद्याओंसे सम्पदाएँ प्राप्त हुई हैं वे हमारे आशीर्वादसे

१. प्राप्ताख्या म. । २. छायया छादितात्मभिः ख. ।

सुमाली माल्यवान् सूर्यरजा ऋक्षरजास्तथा । रत्नश्रवाश्च तान् स्नेहादालिलिङ्गुः पुनः पुनः ॥३६९॥
ततः स्वाभ्यवलोकेन भृत्यवर्गेण चावृताः । चक्रुरभ्यवहारं ते स्वेच्छाकल्पितसंपदः ॥३७०॥
गुरुषु प्राप्तपूजेषु ततो वस्त्रादिदानतः । यथार्हं भृत्यवर्गे च संप्राप्तप्रतिमानने ॥३७१॥
विश्वस्ता गुरवोऽपृच्छंस्तान् प्रीतिविकचेक्षणाः । दिवसा नियतो वत्साः सुखेन सुस्थिता इति ॥३७२॥
प्रणम्ते मस्तके कृत्वा करयुग्मं प्रणामिनः । ऊचुर्नः कुशलं नित्यं प्रसादाद् भवतामिति ॥३७३॥
वार्तिमां [illegible] कथयन् मरणं हरेः । सुमाली शोकभारेण सद्यो मूर्च्छां समागतः ॥३७४॥
रत्नश्रवःसुतेनाशौ ततः शीतलपाणिना । संस्पृश्य पुनरानीतो ज्येष्ठेन व्यक्तचेतनाम् ॥३७५॥
आनन्दितश्च तद्वाक्यैरूर्जितैर्हिमशीतलैः । समस्तशत्रुसंघातधातबीजाङ्कुरोद्गमैः ॥३७६॥
पुष्करीकेक्षणं पश्यन् सुमाली तं ततोऽर्भकम् । शोकं क्षणात्समुत्सृज्य पुनरानन्दमागतः ॥३७७॥
इति चोवाच तं हृद्यैर्वचोभिर्वितथेतरैः । अहो वत्स तवोदारं सत्त्वं तोषितदैवतम् ॥३७८॥
अहो द्युतिरियं जित्वा स्थिता सद्य दिवाकरम् । अहो गाम्भीर्यमुत्सार्य स्थितमंतरुदीपतिम् ॥३७९॥
अहो पराक्रमः कान्त्या सहितोऽयं जनातिगः । अहो रक्षःकुलस्यासि जातस्तात विशेषकः ॥३८०॥
मन्दरेण यथा जम्बूद्वीपः कृतविभूषणः । नभस्तलं शशाङ्केन यथा तिग्मकरेण च ॥३८१॥
सुपुत्रेण तथा रक्षःकुलमेतद्दशानन । त्वया लोकमहाश्चर्यकारिचेष्टेन भूषितम् ॥३८२॥
आसंस्तोयदवाहाद्या नरास्तत्कुलपूर्वजाः । भुक्त्वा लङ्कापुरीं कृत्वा सुकृतं ये गताः शिवम् ॥३८३॥

भी अधिक है अतः उन्होंने यही कहा कि तुम लोग चिरकाल तक जीवित रहो ॥३६८॥ सुमाली, माल्यवान्, सूर्यरज, ऋक्षरज और रत्नश्रवाने स्नेहवश उनका बार-बार आलिंगन किया था ॥३६९॥ तदनन्तर इच्छानुसार जिन्हें सब सम्पदाएँ प्राप्त थीं ऐसे उन सब लोगोंने बन्धुजनों तथा भृत्यवर्गसे आवृत होकर भोजन किया ॥३७०॥ तदनन्तर दशाननने वस्त्र आदि देकर गुरुजनोंकी पूजा की और यथायोग्य भृत्यवर्गका भी सम्मान किया ॥३७१॥ तत्पश्चात् प्रीतिसे जिनके नेत्र फूल रहे थे ऐसे समस्त गुरुजन निश्चिन्ततासे बैठे थे। प्रकरण पाकर उन्होंने कहा कि हे पुत्रो ! इतने दिन तक तुम सब सुखसे रहे ? ॥३७२॥ तब दशानन आदि कुमारोंने हाथ जोड़ सिरसे लगाकर प्रणाम करते हुए कहा कि आप लोगोंके प्रसादसे हम सबकी कुशल है ॥३७३॥ तदनन्तर प्रकरणवश सुमालीके मरणकी चर्चा करते हुए सुमाली इतने शोकग्रस्त हुए कि उन्हें तत्काल ही मूर्च्छा आ गयी ॥३७४॥ तत्पश्चात् रत्नश्रवाके ज्येष्ठ पुत्र दशाननने अपने शीतल हाथसे स्पर्श कर उन्हें पुनः सचेत किया ॥३७५॥ तथा बर्फके समान ठण्डे और समस्त शत्रुसमूहके घातरूपी बीजके अंकुरोद्गमके समान शक्तिशाली वचनोंसे उन्हें आनन्दित किया ॥३७६॥ तब कमलके समान नेत्रोंसे सुशोभित दशाननको देख, सुमाली तत्काल ही सब शोक छोड़कर पुनः आनन्दको प्राप्त हो गये ॥३७७॥ और दशाननसे हृदयहारी सत्य वचन कहने लगे कि अहो वत्स ! सचमुच ही तुम्हारा उदार बल देवताओंको सन्तुष्ट करनेवाला है ॥३७८॥ अहो ! तुम्हारी यह कान्ति सूर्यको जीतकर स्थित है और तुम्हारा गाम्भीर्य समुद्रको दूर हटाकर विद्यमान है ॥३७९॥ अहो ! तुम्हारा यह कान्तिसहित पराक्रम सर्वजनातिगामी है अर्थात् सब लोगोंसे बढ़कर है। अहो पुत्र ! तुम राक्षसवंशके तिलक-स्वरूप उत्पन्न हुए हो ॥३८०॥ हे दशानन ! जिस प्रकार सुमेरुपर्वतसे जम्बूद्वीप सुशोभित है और चन्द्रमा तथा सूर्यसे आकाश सुशोभित होता है उसी प्रकार लोगोंको महान् आश्चर्यमें डालनेवाली चेष्टाओंसे युक्त तुझ सुपुत्रसे यह राक्षसवंश सुशोभित हो रहा है ॥३८१-३८२॥ मेघवाहन आदि तुम्हारे कुलके पूर्वपुरुष थे जो लंकापुरीका पालन कर तथा अन्तमें तपश्चरण कर मोक्ष गये हैं

---

१. -मालिलिङ्ग म., क. । २. जिनातिगः म. । ३. जातस्त्वत म. ।

अस्मद्व्यसनविच्छेदपुण्यैर्जातोऽसि सांप्रतम्। वक्त्रेणैकेन ते तोषात् कथयामि कथं कथाम् ॥३८४॥
नभश्चरगणैरेभिः प्रत्याशा जीवितं प्रति। मुक्ता सती पुनर्बद्धा त्वदभ्युत्साहपरायणे ॥३८५॥
कैलासमन्दरायातैरस्माभिर्वन्दितुं जिनम्। प्रणम्यातिशयज्ञानः पृष्टः श्रमणसत्तमः ॥३८६॥
भविता पुनरस्माकं कदा नाथ समाश्रयः। लङ्कायामिति सद्वाक्यमेवमाहालुकम्पकः ॥३८७॥
लप्स्यते भवतः पुत्राज्जन्म यः पुरुषोत्तमः। संभूतायां वियद्बिन्दोः स लङ्कायां प्रवेशकः ॥३८८॥
भरतस्य स खण्डांस्त्रीन् भोक्ष्यते बलविक्रमः। सत्त्वप्रतापविनयश्रीकीर्तिरुचिसंश्रयः ॥३८९॥
गृहीतां रिपुणा लक्ष्मीं मोचयिष्यत्यसावपि। नैतच्चित्रं यतस्तस्यां स प्राप्स्यति परां श्रियम् ॥३९०॥
स त्वं महोत्सवो जातः कुलस्य शुभलक्षणः। उपमानविमुक्तेन रूपेण हृतलोचनः ॥३९१॥
इत्युक्तोऽसौ जगादैवमस्त्विति प्रणतानतः। शिरस्यञ्जलिमाधाय कृतसिद्धनमस्कृतिः ॥३९२॥
प्रभावात्तस्य बालस्य बन्धुवर्गस्ततः सुखम्। अध्युवास यथास्थानमरातिभयवर्जितः ॥३९३॥

शार्दूलविक्रीडितम्

एवं पूर्वभवार्जितेन पुरुषाः पुण्येन यान्ति श्रियं
कीर्तिच्छन्नदिगन्तरालभुवना नास्मिन् वयः कारणम्।
अग्नेः किं न कणः क्षणेन विपुलं भस्म करोति कानने
मत्तानां करिणां भिनत्ति निवहं सिंहस्य वा नार्भकः ॥३९४॥
बोधं ह्लादयितुं कुमुद्वतीषु कुरुते शीतांशुरोर्चिर्लवः
संतापं प्रणुदन् दिवाकरकरैरुत्पादितं प्राणिनाम्।

॥३८३॥ अब हमारे दुःखोंको दूर करनेवाले पुण्यसे तू उत्पन्न हुआ है। हे पुत्र! एक तेरे मुखसे मुझे जो सन्तोष हो रहा है उसका वर्णन कैसे कर सकता हूँ ॥३८४॥ इन विद्याधरोंने तो जीवित रहनेकी आशा छोड़ दी थी अब तुझ उत्साहीके उत्पन्न होनेपर फिरसे आशा बाँधी है ॥३८५॥ एक बार हम जिनेन्द्र भगवान्‌की वन्दना करनेके लिए कैलास पर्वतपर गये थे। वहाँ अवधिज्ञानके धारी मुनिराजको प्रणाम कर हमने पूछा था कि हे नाथ! लंकामें हमारा निवास फिर कब होगा? इसके उत्तरमें दयालु मुनिराजने कहा था ॥३८६–३८७॥ कि तुम्हारे पुत्रसे वियद्बिन्दुकी पुत्रीमें जो उत्तम पुरुष जन्म प्राप्त करेगा वही तुम्हारा लंकामें प्रवेश करानेवाला होगा ॥३८८॥ वह पुत्र बल और पराक्रमका धारी तथा सत्त्व, प्रताप, विनय, लक्ष्मी, कीर्ति और कान्तिका अनन्य आश्रय होगा तथा भरतक्षेत्रके तीन खण्डोंका पालन करेगा ॥३८९॥ शत्रुके द्वारा अपने अधीन की हुई लक्ष्मीको यही पुत्र उससे मुक्त करावेगा इसमें आश्चर्यकी भी कोई बात नहीं है क्योंकि वह लंकामें परम लक्ष्मीको प्राप्त होगा ॥३९०॥ सो कुलके महोत्सवस्वरूप तू उत्पन्न हो गया है, तेरे सब लक्षण शुभ हैं तथा अनुपमरूपसे तू सबके नेत्रोंको हरनेवाला है ॥३९१॥ सुमालीके ऐसा कहनेपर दशाननने लज्जासे अपना मस्तक नीचा कर लिया और 'एवमस्तु' कह हाथ जोड़ सिरसे लगाकर सिद्ध भगवान्‌को नमस्कार किया ॥३९२॥ तदनन्तर उस बालकके प्रभावसे सब बन्धुजन शत्रुके भयसे रहित हो यथास्थान सुखसे रहने लगे ॥३९३॥

तदनन्तर गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन्! इस प्रकार पूर्वोपार्जित पुण्यकर्मके प्रभावसे मनुष्य कीर्तिके द्वारा दिग्दिगन्तराल तथा लोकको आच्छादित करते हुए लक्ष्मीको प्राप्त होते हैं। इसमें मनुष्यकी आयु कारण नहीं है। क्या अग्निका एक कण क्षणभरमें विशाल वनको भस्म नहीं कर देता अथवा सिंहका बालक मदोन्मत्त हाथियोंके झुण्डको विदीर्ण नहीं कर देता? ॥३९४॥ चन्द्रमाकी किरणोंका एक अंश, सूर्यकी किरणोंसे उत्पादित प्राणियोंके

१. विच्छेदः म., ख.। २. समाश्रयः म.। ३. -रोर्चिर्लवः म.।

निद्राविद्युतिहेतुनिश्च समये जीमूतमालानिभं
ध्वान्तं दूरमपाकरोति किरणैरुद्योतमात्रो रविः ॥३९५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दशग्रीवाभिधानं नाम सप्तमं पर्व ॥७॥

□

को दूर करता हुआ शीघ्र ही कुमुदिनियोंमें उल्लास पैदा कर देता है और सूर्य उदित होते निद्राको दूर हटानेवाली अपनी किरणोंसे मेघमालाके समान मलिन अन्धकारको दूर कर ॥३९५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्यविरचित पद्मचरितमें दशाननका वर्णन करनेवाला सातवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥७॥

□

अष्टमं पर्व

अथासीद्दक्षिणश्रेण्यां भास्करप्रतिमो द्युतौ । सुवीरोऽसुरसंगीते[1] पुरे मयखगेश्वरः ॥१॥
दैत्यखेत प्रसिद्धस्य [2]समस्ते तस्य भूतले । भास्वा हेमवती भार्या योषिद्गुणसमन्विता ॥२॥
सुता मन्दोदरी नाम सर्वावयवसुन्दरी । तनूदरी विशालाक्षी लावण्यजलवेणिका ॥३॥
नवयौवनसंपूर्णां दृष्ट्वा तामन्यदा पिता । चिन्ताव्याकुलितः प्राह दयितामिति सादरम् ॥४॥
आरूढा नवतारुण्यं वत्सा मन्दोदरी प्रिये । गुणितेवैतदीया मे चिन्तामानसमाश्रिता ॥५॥
कन्यानां यौवनारम्भे संतापाग्निसमुद्भवे । इन्धनत्वं प्रपद्यन्ते पितरौ स्वजनैः समम् ॥६॥
एवमर्थं ददत्यस्या जन्मनोऽनन्तरं बुधाः । लोचनाञ्जलिभिस्तोयं दुःखाकुलितचेतसः ॥७॥
अहो भिनत्ति मर्माणि वियोगो देहनिःसृतैः[3] । अपरैर्जनितो नीतैरागम्या संस्तुतैर्जनैः ॥८॥
तदूयूहि तरुणीं कस्मै ददामेतां प्रिये वयम् । गुणैः कुलेन कान्त्या च क एतस्याः समो भवेत् ॥९॥
इत्युक्ता प्राह तं देवी कन्यानां देहपालने । जनन्य उपयुज्यन्ते पितरो दानकर्मणि ॥१०॥
यत्र ते रुचितं दानं मह्यं तत्रैव रोचते । भर्तुश्छन्दानुवर्तिन्यो भवन्ति कुलबालिकाः ॥११॥
इत्युक्तो मन्त्रिभिः सार्धं चकारासौ प्रधारणम् । केनचिन्मन्त्रिणा कश्चिदुद्दिष्टः खेचरस्ततः ॥१२॥
अन्येनेन्द्रः समुद्दिष्टः सर्वविद्याधराधिपः । तस्मान्हि खेचराः सर्वे विभ्यति प्रतिकूलने ॥१३॥

अथानन्तर विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें असुर-संगीत नामका नगर है। वहाँ कान्तिमें सूर्यकी उपमा धारण करनेवाला प्रबल योद्धा मय नामका विद्याधर रहता था। वह पृथिवी-तलमें दैत्य नामसे प्रसिद्ध था। उसकी हेमवती नामकी स्त्री थी जो स्त्रियोंके समस्त गुणोंसे सहित थी ॥१-२॥ उसकी मन्दोदरी नामकी पुत्री थी। उसके समस्त अवयव सुन्दर थे, उदर कृश था, नेत्र विशाल थे और वह सौन्दर्यरूपी जलकी धाराके समान जान पड़ती थी ॥३॥ एक दिन नवयौवनसे सम्पूर्ण उस पुत्रीको देखकर पिता चिन्तासे व्याकुल हो अपनी स्त्रीसे बड़े आदरके साथ बोला कि हे प्रिये! पुत्री मन्दोदरी नवयौवनको प्राप्त हो चुकी है। इसे देख मेरी इस विषयकी मानसिक चिन्ता कई गुणी बढ़ गयी है ॥४-५॥ किसीने ठीक ही कहा है कि सन्तापरूपी अग्निको उत्पन्न करनेवाले कन्याओंके यौवनारम्भमें माता-पिता अन्य परिजनोंके साथ ही साथ ईन्धनपनेको प्राप्त होते हैं ॥६॥ इसीलिए तो कन्या जन्मके बाद दुःखसे आकुलित है चित्त जिनका ऐसे विद्वज्जन इसके लिए नेत्ररूपी अंजलिके द्वारा जल दिया करते हैं ॥७॥ अहो, जिन्हें अपरिचित जन आकर ले जाते हैं ऐसे अपने शरीरसे समुत्पन्न सन्तान (पुत्री) के साथ जो वियोग होता है वह मर्मको भेदन कर देता है ॥८॥ इसलिए हे प्रिये! कहो, यह तारुण्यवती पुत्री हम किसके लिए देवें। गुण, कुल और कान्तिसे कौन वर इसके अनुरूप होगा ॥९॥ पतिके ऐसा कहनेपर रानी हेमवतीने कहा कि माताएँ तो कन्याओंके शरीरकी रक्षा करनेमें ही उपयुक्त होती हैं और उनके दान करनेमें पिता उपयुक्त होते हैं ॥१०॥ जहाँ आपके लिए कन्या देना रुचता हो वहीं मेरे लिए भी रुचेगा क्योंकि कुलांगनाएँ पतिके अभिप्रायके अनुसार ही चलती हैं ॥ ११ ॥ रानीके ऐसा कहने पर राजाने मन्त्रियोंके साथ सलाह की तो किसी मन्त्रीने किसी विद्याधरका उल्लेख किया ॥ १२ ॥ तदनन्तर किसी दूसरे मन्त्रीने कहा कि इसके लिए इन्द्र विद्याधर ठीक होगा क्यों कि वह समस्त विद्याधरोंका अधिपति है

१. संगीतिपुरे म. । २. समस्ति म. । ३. निःसृते म. ।

ततः स्वयं मयेनोक्तं युष्माकं वेद्मि नो मनः । मह्यं तु रुचितः ख्यातः सिद्धविद्यो दशाननः ॥१४॥
अवितासौ महान् कोऽपि जगतोऽद्भुतकारणम् । अन्यथा जायते सिद्धिर्विद्यानामाशु नाल्पके ॥१५॥
ततोऽनुमेनिरे तस्य तद्वाक्यं प्रमुदान्विताः । मारीचप्रमुखाः सर्वे मन्त्रिणो मन्त्रकोविदाः ॥१६॥
मन्त्रिणो भ्रातरश्चास्य मारीचाद्या महाबलाः । मारीचोऽस्य ततश्चक्रे मानसं त्वरयान्वितम् ॥१७॥
ग्रहेष्वभिमुखस्थेषु सौम्येषु दिवसे शुभे । क्रूरग्रहेष्वपश्यत्सु लग्ने कुशलतावहे ॥१८॥
कृत्यं कालातिपातेन नेति ज्ञात्वा ततो मयः । पुष्पान्तकविमानेन प्रस्थितः कन्यया सह ॥१९॥
ततो मङ्गलगीतेन प्रमदानां नभस्तलम् । तूर्यनादस्य विच्छेदे[2] शब्दात्मकमिवाभवत् ॥२०॥
पुष्पान्तकाद् विनिष्क्रम्य भीमारण्ये स्थिता इति । युवभिः कथितं तस्य निर्वृत्य प्रथमागतैः[3] ॥२१॥
तदेशवेदिभिश्चारैः कथितं तद्वनं ततः । चलितोऽसावपश्यच्च मेघानामिव संचयम् ॥२२॥
चारः कश्चिदुवाचेति पश्येदं देव सद्वनम् । स्निग्धध्वान्तचयाकारं निबिडोत्तुङ्गपादपम् ॥२३॥
अद्रेर्बलाहकाख्यस्य सन्ध्यावर्तस्य चान्तरे[4] । मन्दारुणमिवारण्यं संमेदाष्टापदाग्रयोः ॥२४॥
वनस्य पश्य मध्येऽस्य शङ्खशुभ्रमहागृहम् । नगरं शरदम्भोदमहावृन्दसमद्युति ॥२५॥
समीपे च पुरस्यास्य पश्य प्रासादमुन्नतम् । सौधर्ममिव यः प्रष्टुमीहते शृङ्गकोटिभिः ॥२६॥

और सब विद्याधर उसके विरुद्ध जानेमें भयभीत भी रहेंगे ॥१३॥ तब राजा मयने स्वयं कहा कि मैं आप लोगोंके मनकी बात तो नहीं जानता पर मुझे जिसे समस्त विद्याएँ सिद्ध हुई हैं ऐसा प्रसिद्ध दशानन अच्छा लगता है ॥१४॥ निश्चित ही वह जगत्में कोई अद्भुत कार्य करनेवाला होगा अन्यथा उसे छोटी ही उमरमें शीघ्र ही अनेक विद्याएँ सिद्ध कैसे हो जातीं ॥१५॥ तदनन्तर मन्त्र करनेमें निपुण मारीच आदि समस्त प्रमुख मन्त्रियोंने बड़े हर्षके साथ राजा मय की बातका समर्थन किया ॥१६॥

तदनन्तर महाबलवान् मारीच आदि मन्त्रियों और भाइयोंने राजा मयके मनको शीघ्रतासे युक्त किया अर्थात् प्रेरणा की कि इस कार्यको शीघ्र ही सम्पन्न कर लेना चाहिए ॥१७॥ तब राजा मयने भी विचार किया कि समय बीत जानेसे कार्य सिद्ध नहीं हो पाता है ऐसा विचारकर वह किसी शुभ दिन, जबकि सौम्यग्रह सामने स्थित थे, क्रूर ग्रह विमुख थे और लग्न मंगलकारी थी, कन्याके साथ पुष्पान्तक विमानमें बैठकर चला। प्रस्थान करते समय तुरहीका मधुर शब्द हो रहा था और स्त्रियाँ मंगलगीत गा रही थीं। बीच-बीचमें जब तुरहीका शब्द बन्द होता था तो स्त्रियोंके मंगलगीतोंसे आकाश ऐसा गूँज उठता था मानो शब्दमय ही हो गया हो ॥१८-२०॥ दशानन भीमवनमें है, यह समाचार, पुष्पान्तक विमानसे उतरकर जो जवान आगे गये थे उन्होंने लौटकर राजा मयसे कहा। तब राजा मय उस देशके जानकार गुप्तचरोंसे पता चलाकर भीमवनकी ओर चला। वहाँ जाकर उसने काली घटाके समान वह वन देखा ॥२१-२२॥ दशाननके खास स्थानका पता बताते हुए किसी गुप्तचरने कहा कि हे राजन् ! जिस प्रकार सम्मेदाचल और कैलास पर्वतके बीचमें मन्दारुण नामका वन है उसी प्रकार बलाहक और सन्ध्यावर्त नामक पर्वतोंके बीचमें यह उत्तम वन देखिए। देखिए कि यह वन स्निग्ध अन्धकारकी राशिके समान कितना सुन्दर मालूम होता है और यहाँ कितने ऊँचे तथा सघन वृक्ष लग रहे हैं ॥२३-२४॥ इस वनके मध्यमें शंखके समान सफेद बड़े-बड़े घरोंसे सुशोभित जो वह नगर दिखाई दे रहा है वह शरद् ऋतुके बादलोंके समूहके समान कितना भला जान पड़ता है ? ॥२५॥ उसी नगरके समीप देखो एक बहुत ऊँचा महल दिखाई दे रहा है। ऐसा महल कि जो अपने शिखरोंके अग्रभागसे मानो

---

१. मारीचश्च म. । २. विच्छेदशब्दात्मक-म. । ३. प्रथमा गतिः म. । ४. चान्तरम् म. ।

अवतीर्य ततोऽभ्यागात् समीपे तस्य वेश्मनः । सानोकिनी विश्रश्राम चकार च यथोचितम् ॥२७॥
तूर्यादिडम्बरं त्यक्त्वा दैत्यानामधिपस्ततः । आप्तैः कतिपयैर्युक्तो विनीताकल्पशोभितः ॥२८॥
अभिमानोदयं मुक्त्वा सकन्यः प्राप्तविस्मयः । तं प्रासादं समारुक्षत्प्रतीहारनिवेदितः ॥२९॥
सप्तमं च तलं प्राप्तः क्रमेण निभृतक्रमः । वनदेवीमिवैक्षिष्ट मूर्तामुत्तमकन्यकाम् ॥३०॥
अथेन्दुनखया तस्य कृताभ्यागतसत्क्रिया । प्रपद्यन्ते परिभ्रंशं कुलज्ञा नोपचारतः ॥३१॥
ततः सुखासनासीनः स्थितां कन्योचितासने । अपृच्छत् प्रश्रयादेवं तां मयो विनयान्विताम् ॥३२॥
वत्से कासि कुतो वासि कस्माद्वा कारणादिह । वससि प्रभयेऽरण्ये कस्य चेदं महागृहम् ॥३३॥
एकाकिन्या कथं चास्मिन् धृतिरुत्पद्यते तव । वपुरुत्कृष्टमेतत्ते पीडानां नैव भाजनम् ॥३४॥
एवं पृष्टा सती बाला स्त्रीणां स्वाभाविकी त्रपा । मन्दं वनमृगी मुग्धा जगादेति नताननां ॥३५॥
षष्ठभक्तेन संसाध्य चन्द्रहासमिमं मम । शैलराजं गतो भ्राता वन्दितुं जिनपुङ्गवान् ॥३६॥
दशवक्त्रेण तेनाहं पालनार्थं निरूपिता । आर्य तिष्ठामि चैत्येऽस्मिन् चन्द्रप्रभविराजिते ॥३७॥
यदि च स्युर्भवन्तोऽपि द्रष्टुमेतं समागताः । क्षणमात्रं ततोऽत्रैव स्थानं कुर्वन्तु सज्जनाः ॥३८॥
यावदेवं समालापो वर्तते मधुरस्तयोः । तेजसां मण्डलं तावद् दृश्यते स्म नभस्तले ॥३९॥
उक्तं च कन्यया नूनमागतोऽयं दशाननः । सहस्रकिरणं कुर्वन् प्रभया विगतप्रभम् ॥४०॥

सौधर्म स्वर्गको ही छूना चाहता है ॥२६॥ राजा मयकी सेना आकाशसे उतरकर उसी महलके समीप यथायोग्य विश्राम करने लगी ॥२७॥

तदनन्तर दैत्योंका अधिपति राजा मय तुरही आदि वादित्रोंका आडम्बर छोड़कर तथा विनीत मनुष्योंके योग्य वेष-भूषा धारणकर कुछ आप्तजनोंके साथ उस महलके समीप पहुँचा। कन्या मन्दोदरी उसके साथ थी। महलको देखते ही राजा मयका जहाँ अहंकार छूटा वहाँ उसे आश्चर्य भी कम नहीं हुआ। तदनन्तर द्वारपालके द्वारा समाचार भेजकर वह महलके ऊपर चढ़ा ॥२८-२९॥ सावधानीसे पैर रखता हुआ जब वह क्रमसे सातवें खण्डमें पहुँचा तब वहाँ उसने मूर्तिधारिणी वनदेवीके समान उत्तम कन्या देखी ॥३०॥ वह कन्या दशाननकी बहन चन्द्रनखा थी सो उसने सबका अतिथि-सत्कार किया सो ठीक ही है क्योंकि कुलके जानकार मनुष्य योग्य उपचारसे कभी नहीं चूकते ॥३१॥ तदनन्तर जब मय सुखकारी आसनपर बैठ गया और चन्द्रनखा भी कन्याओंके योग्य आसनपर बैठ चुकी तब विनय दिखाती हुई उस कन्यासे मयने बड़ी नम्रतासे पूछा ॥३२॥ कि हे पुत्रि ! तू कौन है ? और किस कारणसे इस भयावह वनमें रहती है तथा यह बड़ा भारी महल किसका है ? ॥३३॥ इस महलमें अकेली रहते हुए तुझे कैसे धैर्य उत्पन्न होता है। तेरा यह उत्कृष्ट शरीर पीड़ाका पात्र तो किसी तरह नहीं हो सकता ॥३४॥ स्त्रियोंके लज्जा स्वभावसे ही होती है इसलिए मयके इस प्रकार पूछनेपर उस सती कन्याका मुख लज्जासे नत हो गया। साथ ही वनकी हरिणीके समान भोली थी ही अतः धीरे-धीरे इस प्रकार बोली कि मेरा भाई दशानन षष्ठोपवास अर्थात् तेलाके द्वारा इस चन्द्रहास खड्गको सिद्ध कर जिनेन्द्र भगवान्‌को वन्दना करनेके लिए सुमेरु पर्वतपर गया है। दशानन मुझे इस खड्गकी रक्षा करनेके लिए कह गया है सो हे आर्य ! मैं चन्द्रप्रभ भगवान्‌से सुशोभित इस चैत्यालयमें स्थित हूँ। यदि आप लोग दशाननको देखनेके लिए आये हैं तो क्षण मात्र यहींपर विश्राम कीजिए ॥३५-३८॥

जबतक उन दोनोंमें इस प्रकारका मधुर आलाप चल रहा था तबतक आकाशतलमें तेजका मण्डल दिखाई देने लगा ॥३९॥ उसी समय कन्याने कहा कि जान पड़ता है अपनी

---

१. समारुह्य म. । २. -भ्यागम म. । ३. प्रपद्यान्तपरिभ्रंश कुलजातोपचारतः म. । ४. स वासनासीनः म. । ५. -मेवं म. । ६. ददृशाते म. ।

[illegible] सुरं मेघानामिव तं चयम् । अवलोक्य समासन्नमुत्तस्थौ संभ्रमान्मयः ॥४१॥
[illegible] कृतोचिताचारमासनेषु पुनः स्थिताः[1] । मण्डलाग्रप्रभाजालश्यामलीकृतविग्रहाः[2] ॥४२॥
[illegible] वज्रमध्यश्च वज्रनेत्रो नभस्तडित् । उग्रनक्रो मरुद्वक्त्रो मेधावी सारणः शुकः ॥४३॥
[illegible] सभास्तोषं परं दृष्ट्वा दशाननम् । हस्यूचुर्मङ्गलं वाक्यं दैत्यनाथस्य मन्त्रिणः ॥४४॥
[illegible] तव दैत्येश धिषणातिगरीयसी । नराणामुत्तमो येन मनस्येष निवेशितः ॥४५॥
[illegible] बाहुर्दाम्नीवमहो ते रूपमुज्ज्वलम् । अहो प्रश्रयसंभारो वीर्यं चातिशयान्वितम् ॥४६॥
[illegible] स्वामयं श्रेण्यामसुरप्रथिते पुरे । दैत्यानामधिपो नाम्ना मयो भुवनविश्रुतः ॥४७॥
[illegible] समाकृष्टः कुमार तव निर्मलैः । आयातः कं न कुर्वन्ति सज्जना दर्शनोत्सुकम् ॥४८॥
[illegible] तादिकमित्याह ततो रत्नश्रवःसुतः । सतां हि कुलविद्येयं यन्मनोहरभाषणम् ॥४९॥
[illegible] दानुना दैत्यनाथेन प्रेमदर्शनकारिणा । उचितेन नियोगेन जनोऽयमनुगृह्यताम् ॥५०॥
[illegible] सोऽयं ततः प्राह तात युक्तमिदं तव । प्रतिकूलसमाचारा न भवन्त्येव साधवः ॥५१॥
[illegible] सौ सचिवैस्तस्य कौतुकाक्रान्तमानसैः । कृतानन्दश्च सद्वाक्यैः पुनरुक्तैः समाकुलैः ॥५२॥
[illegible] गर्भगृहं रम्यं प्रविष्टोऽयं सुभावनः । चकार महतीं पूजां जिनेन्द्राणां विशेषतः ॥५३॥
[illegible] विधानुक्त्वा रोमहर्षणकारिणः । मस्तकेऽञ्जलिमास्थाय चूडामणिविभूषिते ॥५४॥

सूर्यको निष्प्रभ करता हुआ दशानन आ गया है ॥४०॥ बिजलीके सहित मेघराशिके समान दशाननको निकटवर्ती देख मय हड़बड़ाकर आसनसे उठ खड़ा हुआ ॥४१॥ [illegible] करनेके बाद सब पुनः आसनोंपर आरूढ़ हुए। तलवारकी कान्तिसे जिनके शरीर श्यामल [illegible] वे ऐसे मारीच, वज्रमध्य, वज्रनेत्र, नभस्तडित्, उग्रनक्र, मरुद्वक्त्र, मेधावी, सारस और [illegible] मयके मन्त्री लोग दशाननको देखकर परम सन्तोषको प्राप्त हुए और निम्नलिखित मंगल [illegible] सबसे कहने लगे कि हे दैत्यराज ! आपकी बुद्धि हम सबसे अधिक श्रेष्ठ है क्योंकि आपने ही [illegible] पुरुषोत्तमको हृदयमें स्थान दिया था। अर्थात् हम लोगोंका इसकी ओर ध्यान नहीं गया जब-[illegible] आपने इसका अपने मनमें अच्छी तरह विचार रखा ॥४२-४५॥ मयसे इतना कहकर उन [illegible] दशाननसे कहा कि अहो तुम्हारा उज्ज्वल रूप आश्चर्यकारी है, तुम्हारा विनयका भार [illegible] है और तुम्हारा पराक्रम भी अतिशयसे सहित है ॥४६॥ यह दैत्योंका राजा दक्षिणश्रेणीके [illegible] रसंगीत नामा नगरका रहनेवाला है तथा संसारमें मय नामसे प्रसिद्ध है। यह आपके गुणोंसे [illegible] होकर यहाँ आया है सो ठीक ही है क्योंकि सज्जन पुरुष किसे दर्शनके लिए उत्कण्ठित [illegible] करते ? ॥४७-४८॥ तब रत्नश्रवाके पुत्र दशाननने कहा कि आपका स्वागत है। आचार्य [illegible] हैं कि जो मधुर भाषण है वह सत्पुरुषोंकी कुलविद्या है ॥४९॥ दैत्योंके अधिपति उत्तम पुरुष [illegible] होंने कि हमें प्रेमपूर्वक दर्शन दिये। मैं चाहता हूँ कि ये उचित आदेश देकर इस जनको [illegible] अनुगृहीत करें ॥५०॥ तदनन्तर मयने कहा कि हे तात ! तुम्हें यह कहना उचित है क्योंकि जो [illegible] उत्तम पुरुष हैं वे विरुद्ध आचरण कभी नहीं करते ॥५१॥ जिनका चित्त कौतुकसे व्याप्त था ऐसे [illegible] के मन्त्रियोंने भी दशाननके दर्शन किये और आकुलतासे भरे तथा बार-बार कहे हुए उत्तम [illegible] वचनोंसे उसे आनन्दित किया ॥५२॥

तदनन्तर अच्छी भावनासे युक्त दशाननने चन्द्रप्रभ जिनालयके महामनोहर गर्भगृहमें प्रवेश [illegible] किया। वहाँ उसने प्रधानरूपसे जिनेन्द्र भगवान्‌की बड़ी भारी पूजा की ॥५३॥ रोमांच उत्पन्न [illegible] करनेवाले अनेक प्रकारके स्तवन पढ़े, हाथ जोड़कर चूड़ामणिसे सुशोभित मस्तकपर लगाये, और

---

१. स्थिताः म. । २. विग्रहः म. । ३. दैत्यस्य म. । ४. चाह म. । ५. इदं मयस्ततः ख. । इदं मयसुतः म. । ६. स्वभावतः म. ।

स्पृशँल्ललाटपट्टेन जानुभ्यां च महीतलम् । पावनौ स जिनेन्द्राणां ननाम चरणौ चिरम् ॥५५॥
ततो गेहाज्जिनेन्द्राणां निष्क्रान्तः परमोदयः । सहितो दैत्यनाथेन निविष्टः सुखमासने ॥५६॥
विजयार्धगिरिस्थानां पृच्छन् वार्तां खगामिनाम् । चक्षुषो गोचरीभावं निन्ये मन्दोदरीमसौ ॥५७॥
चारुलक्षणसंपूर्णां सौभाग्यमणिभूमिकाम् । तनुस्निग्धनखोत्सृष्टपृष्ठपादसरोरुहाम् ॥५८॥
रम्भास्तम्भसमालाभ्यां सूनाभ्यां पुष्पधन्वनः । लावण्याम्भःप्रवाहाभ्यामूरुभ्यामतिराजिताम् ॥५९॥
पुष्कविस्तारमुत्तुङ्गं मन्मथास्थानमण्डपम् । नितम्बं दधतीमग्रकुकुन्दरमनोहरम् ॥६०॥
वज्रमध्यामधोवक्त्रां हेमकुम्भनिभस्तनीम् । शिरीषसुमनोमालामृदुबाहुलतायुगाम् ॥६१॥
कम्बुरेखानतग्रीवां पूर्णचन्द्रसमाननाम् । नेत्रकान्तिनदीसेतुबन्धसंनिभनासिकाम् ॥६२॥
रक्तदन्तच्छदच्छायाच्छुरितारुणकपोलकाम् । वीणाभ्रमरसोन्मादपरपुष्टसमस्वनाम् ॥६३॥
इन्दीवरारविन्दानां कुमुदानां च संहतीः । विमुञ्चन्तीमिवाशासु दृष्ट्या दूत्या मनोभुवः ॥६४॥
अष्टमीशर्वरीनाथसमानालिकपट्टिकाम् । संगतश्रवणां स्निग्धनीलसूक्ष्मशिरोरुहाम् ॥६५॥
शोभयारयांघ्रिहस्तानां जङ्घामामिव पद्मिनीम् । जयन्तीं करिणीं हंसीं सिंहीं च गतिविभ्रमैः ॥६६॥
विद्यालिङ्गनजामीर्ष्यां वहन्तीं दशवक्त्रके । पद्मालयं परित्यज्य लक्ष्मीमिव समागताम् ॥६७॥

ललाटतट तथा घुटनोंसे पृथ्वीतलका स्पर्श कर जिनेन्द्र भगवान्‌के पवित्र चरणोंको देर तक नमस्कार किया ॥५४-५५॥ तदनन्तर परम अभ्युदयको धारण करनेवाला दशानन जिनमन्दिरसे बाहर निकलकर दैत्यराज मयके साथ आसनपर सुखसे बैठा ॥५६॥ वार्तालापके प्रकरणमें जब वह विजयार्ध पर्वतपर रहनेवाले विद्याधरोंका समाचार पूछ रहा था तब मन्दोदरी उसके दृष्टिगोचर हुई ॥५७॥ मन्दोदरी सुन्दर लक्षणोंसे पूर्ण थी, सौभाग्यरूपी मणियोंकी मानो भूमि थी, उसके चरणकमलोंका पृष्ठ भाग छोटे किन्तु स्निग्ध नखोंसे ऊपरको उठा हुआ जान पड़ता था ॥५८॥ वह जिन ऊरुओंसे सुशोभित थी वे केलेके स्तम्भके समान थे, कामदेवके तरकसके समान जान पड़ते थे अथवा सौन्दर्य-रूपी जलके प्रवाहके समान मालूम होते थे ॥५९॥ वह जिस नितम्बको धारण कर रही थी वह योग्य विस्तारसे सहित था, ऊँचा उठा था, कामदेवके सभामण्डपके समान जान पड़ता था और कुछ ऊँचे उठे हुए कूल्होंसे मनोहर था ॥६०॥ उसकी कमर वज्रके समान मजबूत अथवा हीराके समान देदीप्यमान थी, लज्जाके कारण उसका मुख नीचेकी ओर था, स्वर्णकलशके समान उसके स्तन थे, और शिरीषके फूलोंकी मालाके समान कोमल उसकी दोनों भुजाएँ थीं ॥६१॥ उसकी गरदन शंख जैसी रेखाओंसे सुशोभित तथा कुछ नीचेकी ओर झुकी थी, मुख पूर्णचन्द्रमाके समान था और नाक तो ऐसी जान पड़ती थी मानो नेत्रोंकी कान्तिरूपी नदीके बीचमें पुल ही बाँध दिया गया हो ॥६२॥ उसके स्वच्छ कपोल ओठोंकी लाल-लाल कान्तिसे व्याप्त थे तथा उसकी आवाज वीणा, भ्रमर और उन्मत्त कोयलकी आवाजके समान थी ॥६३॥ उसकी दृष्टि कामदेवकी दूतीके समान थी और उससे वह दिशाओंमें नीलकमल, लालकमल तथा सफेद कमलोंका समूह ही मानो बिखेरती थी ॥६४॥ उसका ललाट अष्टमीके चन्द्रमाके समान था, कान सुन्दर थे, तथा चिकने, काले और बारीक बाल थे ॥६५॥ वह मुख तथा चरणोंकी शोभासे चलती-फिरती कमलिनीको, हाथोंकी शोभासे हस्तिनीको तथा गति और विभ्रमके द्वारा क्रमशः हंसी और सिंहनीको जीत रही थी ॥६६॥ विद्याओंने दशाननका आलिंगन प्राप्त कर लिया और मैं ऐसी ही रह गयी इस प्रकार ईर्ष्याको धारण करती हुई लक्ष्मी ही मानो कमलरूपी घरको छोड़कर मन्दोदरीके बहाने आ गयी थी ॥६७॥

१. सहितो म. । २. मान ख. । ३. अदृश्यकटीपार्श्वसुन्दरम् इति ख. पुस्तके टिप्पणम् । ४. मालां म. । जङ्घानामिव म. ।

[illegible]विधा सृष्टिमपूर्वामिव कर्मणा । आहृत्य जगतोऽशेषं लावण्यमिव निर्मिताम् ॥६८॥
यामत [illegible]तेजसस्तीव्रमंशुग्रहभीतितः । चन्द्रादिवागतां क्षिप्तिं कान्तिमिवागताम् ॥६९॥
सीमन्तमणिमालोलरचितास्यावगुण्ठनाम् । हारेण वक्त्रलावण्यसेतुनेव विभूषिताम् ॥७०॥
कर्णोत्पलिकालोलाकाम्मुक्ताफलसमुत्थिताम् । सितस्य सिन्दुवारस्य मञ्जरीमिव बिभ्रतीम् ॥७१॥
जघनं दर्पसंक्षोभं सहते जघनं न यत् । इतीव वेष्टितं काञ्च्या मणिचक्रकान्तया ॥७२॥
तामालोक्यापि तां वृद्धां दुःखितोऽभूत् स चिन्तया । धीयन्ते विषयैः प्रायः सत्त्ववन्तोऽपि जन्तवः ॥७३॥
तस्यां माधुर्ययुक्तायां दृष्टिस्तस्य गता सती । अभवन्मधुमत्तेव प्रत्यानीतापि घूर्णिता ॥७४॥
किमियं स्वयता नाम स्यादियं वनितोत्तमा । ह्रीः श्रीर्लक्ष्मीर्धृतिः कीर्तिः प्राप्तमूर्तिः सरस्वती ॥७५॥
किंस्विदेषमुतान्यस्त्री माया वा केनचित्कृता । अहो सृष्टिरियं मूर्ध्नि स्थिता निखिलयोषिताम् ॥७६॥
लप्स्ये चाद् यदि मामैतां कन्यामिन्द्रियहारिणीम् । कृतार्थं नस्ततो जन्म जायते तृणमन्यथा ॥७७॥
चिन्तयन्त्रमिमं चैवं मयोऽभिप्रायकोविदः । उपनीय सुतामाह प्रभुरस्या भवानिति ॥७८॥
तेन वाक्येन सिक्तोऽसावमृतेनेव तत्क्षणात् । तोषस्येवाङ्कुरान् जातान् दधे रोमाञ्चकण्टकान् ॥७९॥
तौ च तयोः क्षणोद्भूतसर्ववस्तुसमागमम् । स्वजनानन्दितं वृत्तं पाणिग्रहणमङ्गलम् ॥८०॥
कृती तत्रा ततो यातः स्वयंप्रभपुरं कृती । मन्यमानः श्रियं प्राप्तां समस्तभुवनाश्रिताम् ॥८१॥

विधाताने संसारके समस्त सौन्दर्यको इकट्ठा कर उसके बहाने स्त्रीविषयक अपूर्व सृष्टि [illegible] रची थी ॥६८॥ वह सूर्यकी किरणोंका स्पर्श तथा राहुग्रहके आक्रमणके भयसे चन्द्रमाको [illegible] पृथ्वीपर आयी हुई कान्तिके समान जान पड़ती थी ॥६९॥ उसने अपने सीमन्त [illegible]) में जो मणि पहन रखा था उसकी कान्तिका समूह उसके मुखपर घूँघटका काम [illegible] था। वह जिस हारसे सुशोभित थी वह मुखके सौन्दर्यके प्रवाहके समान जान पड़ता [illegible] ॥७०॥ उसने अपने कानोंमें मोतीजड़ित बालियाँ पहन रखी थीं सो उनकी प्रभासे ऐसी [illegible] पड़ती थी मानो सफेद सिन्दुवार (निर्गुण्डी) की मंजरी ही धारण कर रही हो ॥७१॥ [illegible] जघनस्थल कामके दर्पजन्य क्षोभको सहन नहीं करता था इसलिए ही मानो उसे मणिसमूहसे [illegible] शोभित कटिसूत्रसे वेष्टित कर रखा था ॥७२॥ वह मन्दोदरी अत्यन्त सुन्दर थी फिर भी [illegible] उसे देख चिन्तासे दुःखी हो गया सो ठीक ही है क्योंकि धैर्यवान् मनुष्य भी प्रायः [illegible] विषयोंके अधीन हो जाते हैं ॥७३॥ मन्दोदरी माधुर्यसे युक्त थी इसलिए उसपर पड़ी दशानन-[illegible] की दृष्टि स्वयं भी मानो मधुसे मत्त हो गयी थी, यही कारण था कि वह उसपर-से हटा लेनेपर [illegible] भी उसमें झूमती थी ॥७४॥ दशानन विचारने लगा कि यह उत्तम स्त्री कौन हो सकती है ? [illegible] ह्री, श्री, लक्ष्मी, धृति, कीर्ति अथवा सरस्वती है ? ॥७५॥ यह विवाहित है या अविवाहित ? [illegible] अथवा किसीके द्वारा की हुई माया है ? अहो, यह तो समस्त स्त्रियोंकी शिरोधार्य सर्वश्रेष्ठ सृष्टि [illegible] ॥७६॥ यदि मैं इन्द्रियोंको हरनेवाली इस कन्याको प्राप्त कर सकूँ तो मेरा जन्म कृतकृत्य [illegible] जावे अन्यथा तृणके समान तुच्छ है ही ॥७७॥ इस प्रकार विचार करते हुए दशाननसे अभिप्राय-[illegible] जाननेवाले मयने पुत्री मन्दोदरीको पास ले जाकर कहा कि इसके स्वामी आप हैं ॥७८॥ मयके [illegible] वचनसे दशाननको इतना आनन्द हुआ मानो तत्क्षण अमृतसे ही सींचा गया हो। उसके सारे [illegible] शरीरमें रोमांच उठ आये मानो सन्तोषके अंकुर ही उत्पन्न हुए हों ॥७९॥

तदनन्तर जहाँ क्षणभरमें ही समस्त वस्तुओंका समागम हो गया था और कुटुम्बीजन [illegible] आनन्दसे फूल रहे थे ऐसा इन दोनोंका पाणिग्रहण-मंगल सम्पन्न हुआ ॥८०॥ तदनन्तर [illegible] कृतकृत्य होता हुआ मन्दोदरीके साथ स्वयंप्रभनगर गया। वह मन्दोदरीको पाकर ऐसा

१. -महर्षी म. । २. जगताशेष म. । ३. लोकां म. । ४. समुत्थिताम् म. । ५. मणिचक्राङ्ककान्तया ख. । ६. भुवनश्रिताम् म. ।

मयोऽपि तनयाचिन्ता[1]शल्योद्धारात्सुसंमदः । तद्वियोगात् सशोकश्च स्थितः स्वोचितधामनि ॥८१॥
प्राप्तदेवीसहस्रस्य प्राधान्यं चारुविभ्रमा । क्रमान्मन्दोदरी सत्त्वगुणैराकृष्टमानसा ॥८३॥
अभिप्रेतेषु देशेषु स रेमे सहितस्तया । पुरन्दर इवेन्द्राण्या सर्वेन्द्रियमनोज्ञया ॥८४॥
प्रभावं वेदितुं वाञ्छन् विद्यायामपि भूरिशः । व्यापारानित्यसौ चक्रे समेतः परया रुचा ॥८५॥
एको भवन्यनेकश्च सर्वस्त्रीकृतसंगमः । वितनोत्यर्कवत्तापं ज्योत्स्नां मुञ्चति चन्द्रवत् ॥८६॥
वह्निवन्मुञ्चति ज्वालां वर्षत्यम्बुधरो यथा । वायुवच्चलयत्यद्रीन् कुरुते सुरनाथताम् ॥८७॥
आपगानाथतां याति पर्वतत्वं प्रपद्यते । मत्तवारणतामेति भवत्यश्वो महाजवः ॥८८॥
क्षणादासन्न क्षणाद्दूरे क्षणाद् दृश्यः क्षणान्न नो । क्षणान्महान् क्षणात्सूक्ष्मः क्षणाद्भीमो न च क्षणात् ॥८९॥
एवं च रममाणोऽसौ नाम्ना मेघरवं गिरिम् । प्राप्तश्च सद्वापीमपश्यद् विमलाम्भसम्[2] ॥९०॥
कुमुदैरुत्पलैः पद्मैः स्वच्छैरन्यैश्च वारिजैः । पर्यन्तसंचरत्क्रौञ्चहंसचक्राह्वसारसाम् ॥९१॥
मृदुशष्पपटच्छन्नतटां सोपानमण्डिताम् । नभसेव विलीनेन पूरितां सवितुः करैः ॥९२॥
अर्जुनादिमहोत्तुङ्गपादपव्याप्तरोधसम्[3] । प्रस्फुरच्छफरीचक्रसमुच्छलितसीकराम् ॥९३॥
भ्रूक्षेपानिव कुर्वाणां तरङ्गैरतिभङ्गुरैः । जल्पन्तीमिव नादेन पक्षिणां श्रोत्रहारिणाम् ॥९४॥

मान रहा था मानो समस्त संसारकी लक्ष्मी ही मेरे हाथ लग गयी है ॥८१॥ पुत्रीकी चिन्ता-रूपी शल्यके निकल जानेसे जिसे हर्ष हो रहा था तथा साथ ही उसके वियोगसे जिसे शोक हो रहा था ऐसा राजा मय भी अपने योग्य स्थानमें जाकर रहने लगा ॥८२॥ जिसके हाव-भाव सुन्दर थे तथा जिसने अपने गुणोंसे पतिका मन आकृष्ट कर लिया था ऐसी मन्दोदरीने क्रमसे हजारों देवियोंमें प्रधानता प्राप्त कर ली ॥८३॥ समस्त इन्द्रियोंको प्रिय लगनेवाली उस रानी मन्दोदरीके साथ दशानन, इच्छित स्थानोंमें इन्द्राणीके साथ इन्द्रके समान क्रीड़ा करने लगा ॥८४॥ उत्कृष्ट कान्तिसे सहित दशानन अपनी विद्याओंका प्रभाव जाननेके लिए निम्नांकित बहुत सारे कार्य करता था ॥८५॥ वह एक होकर भी अनेक रूप धरकर समस्त स्त्रियोंके साथ समागम करता था। कभी सूर्यके समान सन्ताप उत्पन्न करता था तो कभी चन्द्रमाके समान चाँदनी छोड़ने लगता था ॥८६॥ कभी अग्निके समान ज्वालाएँ छोड़ता था तो कभी मेघके समान वर्षा करने लगता था। कभी वायुके समान बड़े-बड़े पहाड़ोंको चला देता था तो कभी इन्द्र-जैसा प्रभाव जमाता था ॥८७॥ कभी समुद्र बन जाता था, कभी पर्वत हो जाता था, कभी मदोन्मत्त हाथी बन जाता था और कभी महावेगशाली घोड़ा हो जाता था ॥८८॥ वह क्षण-भरमें पास आ जाता था, क्षण-भरमें दूर पहुँच जाता था, क्षण-भरमें दृश्य हो जाता था, क्षण-भरमें अदृश्य हो जाता था, क्षण-भरमें महान् हो जाता था, क्षण-भरमें सूक्ष्म हो जाता था, क्षण-भरमें भयंकर दिखाई देने लगता था और क्षण भरमें भयंकर नहीं रहता था ॥८९॥ इस प्रकार रमण करता हुआ वह एक बार मेघरव नामक पर्वतपर गया और वहाँ स्वच्छ जलसे भरी वापिकाके पास पहुँचा ॥९०॥ उस वापिकामें कुमुद, नीलकमल, लालकमल, सफेद कमल तथा अन्यान्य प्रकारके कमल फूल रहे थे और उसके किनारेपर क्रौंच, हंस, चकवा तथा सारस आदि पक्षी घूम रहे थे ॥९१॥ उसके तट हरी-हरी कोमल घास-रूपी वस्त्रसे आच्छादित थे, सीढ़ियाँ उसकी शोभा बढ़ा रही थीं और उसका जल तो ऐसा जान पड़ता था, मानो सूर्यकी किरणोंसे पिघलकर आकाश ही उसमें भर गया हो ॥९२॥ अर्जुन (कोहा) आदि बड़े-बड़े ऊँचे वृक्षोंसे उसका तट व्याप्त था। जब कभी उसमें मछलियोंके समूह ऊपरको उछलते थे तब उनसे जलके छींटे ऊपर उड़ने लगते थे ॥९३॥ अत्यन्त भंगुर अर्थात् जल्दी-जल्दी उत्पन्न होने और मिटनेवाली तरंगोंसे वह ऐसी जान

---

१. शल्योद्गारात् म. । २. विमलाम्भसाम् म. । ३. रोधसाम् म. ।

[illegible] क्रीडासक्तानां दधतीनां परां श्रियम् । षट् सहस्राणि कन्यानामपश्यत् केकसीसुतः ॥९५॥
[illegible]कारजालेन रेमिरे दूरगामिना । [1]पर्यटन्ति स्म सस्कन्या दूरं सख्या कृतागसः ॥९६॥
[illegible] स्वयं काचित्पद्मखण्डे सशैवले । कुर्वन्ती पङ्कजाशङ्कां सखीनां सुचिरं स्थिता ॥९७॥
[illegible]निस्वनं काचिच्चके करतलाहतम् । कुर्वाणा सलिलं मन्दं गायन्ती षट्पदैः समम् ॥९८॥
[illegible] दृष्ट्वा कन्या रत्नश्रवःसुतम् । क्षणं स्वच्छजलक्रीडा बभूवुः स्वस्मिता इव ॥९९॥
[illegible] तासां दशग्रीवो गतो रमणकाङ्क्षया । रन्तुमेतेन साकं ता व्यापारिण्योऽभवन् [2]मुदा ॥१००॥
[illegible]हृतप्राय सर्वा विशिखैः पुष्पधन्वनः । दृष्टिरासामभूदस्मिन् बद्धेवानन्यचारिणी ॥१०१॥
[illegible] काम[illegible]से तासां अपया पूर्वसंगमात् । मनो दोलामिवारूढं बभूवाश्यन्तमाकुलम् ॥१०२॥
[illegible]सुन्दरस्ती जाता नाम्ना पद्मावती शुभा । सर्वश्रीयोषिति स्फीतनीलोत्पलदलेक्षणा ॥१०३॥
[illegible]कलता नाम बुधस्य दुहिता वरा । मनोवेगा समुत्पन्ना नवाशोकलतासमा ॥१०४॥
[illegible] कनकाजाता नाम्ना विद्युत्प्रभा परा । विद्युतं प्रभया लज्जां या नयेद्वारुदर्शना ॥१०५॥
[illegible]कुलसमुद्भूता ज्येष्ठास्तासामिमाः श्रिया । विभूत्या च त्रिलोकस्य मूर्ताः सुन्दरता इव ॥१०६॥
[illegible]कल्पं च संप्राप्तास्तं ययुस्ताः सहेतराः । सह्रेतापत्रपा तावद् दुःसहाः स्मरवेदनाः ॥१०७॥
[illegible]गान्धर्वविधिना सर्वा निराशङ्केन तेन ताः । परिणीताः शशाङ्केन ताराणामिव संहतिः [3] ॥१०८॥

थी मानो भौंहें ही चला रही हो तथा पक्षियोंके मधुर शब्दसे ऐसी मालूम होती थी मानो आलाप ही कर रही हो ॥९४॥ उस वापिकापर परम शोभाको धारण करनेवाली छह हजार कन्याएँ क्रीड़ामें लीन थीं सो दशाननने उन सबको देखा ॥९५॥ उनमें-से कुछ कन्याएँ तो दूर तक जानेवाले जलके फव्वारेसे क्रीड़ा कर रही थीं और कुछ अपराध करनेवाली सखियोंसे दूर हटकर एकी-अकेली ही घूम रही थीं ॥९६॥ कोई एक कन्या शेवालसे सहित कमलोंके समूहमें बैठकर [illegible] दिखा रही थी और उसकी सखियोंके लिए कमलकी आशंका उत्पन्न कर रही थी ॥९७॥ [illegible] एक कन्या पानीको हथेलीपर रख दूसरे हाथकी हथेलीसे उसे पीट रही थी और उससे मृदंग [illegible] शब्द निकल रहा था। इसके सिवाय कोई एक कन्या भ्रमरोंके समान गाना गा रही थी। तदनन्तर वे सबकी सब कन्याएँ एक साथ दशाननको देखकर जलक्रीड़ा भूल गयीं और आश्चर्यसे चकित रह गयीं ॥९८-९९॥ दशानन क्रीड़ा करनेकी इच्छासे उनके बीचमें चला गया तथा वे कन्याएँ भी उसके साथ क्रीड़ा करनेके लिए बड़े हर्षसे तैयार हो गयीं ॥१००॥ क्रीड़ा करते-करते [illegible] सब कन्याएँ एक साथ कामके बाणोंसे आहत (घायल) हो गयीं और दशाननपर उनकी [illegible] ऐसी बँधी कि वह फिर अन्यत्र संचार नहीं कर सकी ॥१०१॥ उस अपूर्व समागमके कारण [illegible] कन्याओंका कामरूपी रस लज्जासे मिश्रित हो रहा था अतः उनका मन दोलापर आरूढ़ [illegible] के समान अत्यन्त आकुल हो रहा था ॥१०२॥ अब उन कन्याओंमें जो मुख्य हैं उनके नाम [illegible] सो। राजा सुरसुन्दरसे सर्वश्री नामकी स्त्रीमें उत्पन्न हुई पद्मावती नामकी शुभ कन्या थी। उसके [illegible] किसी बड़े नीलकमलकी कलिकाके समान थे ॥१०३॥ राजा बुधकी मनोवेगा रानीसे उत्पन्न [illegible]कलता नामकी कन्या थी जो नूतन अशोकलताके समान थी ॥१०४॥ राजा कनकसे संध्या नामक रानीसे उत्पन्न हुई विद्युत्प्रभा नामकी श्रेष्ठ कन्या थी जो इतनी सुन्दरी थी कि अपनी प्रभासे बिजलीको भी लज्जा प्राप्त करा रही थी ॥१०५॥ ये कन्याएँ महाकुलमें उत्पन्न हुई थीं और शोभासे उन सबमें श्रेष्ठ थीं। विभूतिसे तो ऐसी जान पड़ती थीं मानो तीनों लोककी सुन्दरता ही रूप धरकर इकट्ठी हुई हो ॥१०६॥ उक्त तीनों कन्याएँ अन्य समस्त कन्याओंके साथ दशाननके समीप आयीं सो ठीक ही है क्योंकि लज्जा तभी तक सही जाती है जब तक कि कामकी वेदना दुस्सह न हो उठे ॥१०७॥ तदनन्तर किसी प्रकारकी शंकासे रहित दशाननने उन सब कन्याओंको

१. पलायन्ते स्म म. । २. पुनः म. । ३. समुत्पन्ना ख. । ४. संहतीः म., ख. ।

दशग्रीवेण साधं ताः पुनः क्रीडां प्रचक्रिरे । अन्योन्याहंयुतां प्राप्य प्रथमोपगमाकुलाः ॥१०९॥
संप्रत्येव हि सा क्रीडा क्रियते तेन या समम् । शशाङ्केन विमुक्तानां ताराणां काभिरूपता ॥११०॥
ततः कञ्चुकिभिस्तासामाशु गत्वा निवेदितम् । जनकेभ्य इदं वृत्तं रत्नश्रवससंभवम् ॥१११॥
ततस्तैः प्रहिताः क्रूराः पुरुषास्तद्विनाशने । संदष्टौष्टपुटा बद्धभ्रकुटीकोद्विसंकटाः ॥११२॥
विविधानि विमुञ्चन्तस्ते शस्त्राणि समं ततः । भ्रूक्षेपमात्रकेणैव कैकसेयेन निर्जिताः ॥११३॥
भयवेपितसर्वाङ्गास्ततस्तेऽमरसुन्दरम् । व्यज्ञापयन् समागत्य शस्त्रनिर्मुक्तपाणयः ॥११४॥
गृह्यतां जीवनं नाथ हरा वा नः कुलाङ्गनाः । छिन्द्यतां चरणौ पाणी ग्रीवां वा न वयं क्षमाः ॥११५॥
कन्यानिवहमध्यस्थः कोऽपि धीरो विराजते । सुरेन्द्रसुन्दरः कान्त्या समानो रजनीपतेः ॥११६॥
क्रुद्धस्य तस्य नो दृष्टिं देवाः शक्रपुरस्सराः । सहेरन् किमुत क्षुद्रा अस्मत्तुल्याः शरीरिणः ॥११७॥
रथनूपुरनाथेन्द्रप्रभृत्युत्तममानवाः । वीक्षिता बहवोऽस्माभिरयं तु परमादृतः ॥११८॥
एवं श्रुत्वा महाक्रोधरक्तास्योऽमरसुन्दरः । निरैत् संनद्ध संयुक्तो बुधेन कनकेन च ॥११९॥
अन्ये च बहवः शूराः पत्यो व्योमगामिनाम् । निश्चक्रमुर्दिशं दीप्तां कुर्वाणाः शस्त्ररश्मिभिः ॥१२०॥
ततस्तानायतो दृष्ट्वा ता भयाकुलमानसाः । विद्याधरसुता ऊचुरिदं रत्नश्रवःसुतम् ॥१२१॥
अस्मत्प्रयोजनाकाश प्राप्तोऽस्यत्यन्तसंशयम् । पुण्यहीना वयं कष्टं सर्वा अप्यपलक्षणाः ॥१२२॥

गन्धर्व विधिसे उस प्रकार विवाह लिया कि जिस प्रकार चन्द्रमा ताराओंके समूहको विवाह लेता है ॥१०८॥

तदनन्तर 'मैं पहले पहुँचूँ, मैं पहले पहुँचूँ' इस प्रकार परस्परमें होड़ लगाकर वे कन्याएँ दशाननके साथ पुनः क्रीड़ा करने लगीं ॥१०९॥ जो कन्या दशाननके साथ क्रीड़ा करती थी वही भली मालूम होती थी सो ठीक ही है क्योंकि चन्द्रमासे रहित ताराओंकी क्या शोभा है ? ॥११०॥ तदनन्तर जो कंचुकी इन कन्याओंके साथ वापिकापर आये थे उन्होंने शीघ्र ही जाकर कन्याओंके पितासे दशाननका यह वृत्तान्त कह सुनाया ॥१११॥ तब कन्याओंके पिताने दशाननको नष्ट करनेके लिए ऐसे क्रूर पुरुष भेजे कि जो क्रोधवश ओठोंको डँस रहे थे तथा बद्ध भौंहोंके अग्रभागसे भयानक मालूम होते थे ॥११२॥ वे सब एक ही साथ अनेक प्रकारके शस्त्र चला रहे थे पर दशाननने उन्हें भौंह उठाते ही जीत लिया ॥११३॥ तदनन्तर जिनका सारा शरीर भयसे काँप रहा था तथा जिनके हाथसे शस्त्र छूट गये थे ऐसे वे सब पुरुष राजा सुरसुन्दरके पास जाकर कहने लगे ॥११४॥ कि हे नाथ ! चाहे हमारा जीवन हर लो, चाहे हमारे हाथ-पैर तथा गरदन काट लो पर हम उस पुरुषको नष्ट करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥११५॥ इन्द्रके समान सुन्दर तथा कान्तिसे चन्द्रमाकी तुलना करनेवाला कोई एक धीर-वीर मनुष्य कन्याओंके बीचमें बैठा हुआ सुशोभित हो रहा है ॥११६॥ सो जब वह क्रुद्ध होता है तब उसकी दृष्टिको इन्द्र आदि देव भी सहन नहीं कर सकते फिर हमारे जैसे क्षुद्र प्राणियोंकी तो बात ही क्या है ? ॥११७॥ रथनूपुर नगरके राजा इन्द्र आदि बहुत-से उत्तम पुरुष हमने देखे हैं पर यह उन सबमें परम आदरको प्राप्त है ॥११८॥

यह सुनकर, बहुत भारी क्रोधसे जिसका मुँह लाल हो रहा था ऐसा राजा सुरसुन्दर राजा कनक और बुधके साथ तैयार होकर बाहर निकला ॥११९॥ इनके सिवाय और भी बहुत-से शूरवीर विद्याधरोंके अधिपति शस्त्रोंकी किरणोंसे आकाशको देदीप्यमान करते हुए बाहर निकले ॥१२०॥ तदनन्तर उन्हें आता देख, जिनका मन भयसे व्याकुल हो रहा था ऐसी वे विद्याधर कन्याएँ दशाननसे बोलीं कि हे नाथ ! आप हमारे निमित्तसे अत्यन्त संशयको प्राप्त हुए हैं। यथार्थमें हम सब पुण्यहीन तथा शुभलक्षणोंसे रहित हैं ॥१२१-१२२॥

[illegible] शरणं गच्छ [1]कंचिन्नाथ प्रसीद नः । उत्पत्य गगनं क्षिप्रं रक्ष प्राणान् सुदुर्लभान् ॥१२३॥
[illegible] वा भवते यावन्नेतौ भूत्वा प्रच्छन्नविग्रहः । तिष्ठ यावदिमे क्रूरा नेक्षन्ते भवतस्तनुम् ॥१२४॥
[illegible] श्रुत्वेदं दीनं दृष्ट्वा च निकटं बलम् । सिते कुमुदवर्त्तेन नेत्रे पद्मनिभे [2]कृते ॥१२५॥
[illegible] च न मां नूनं विच्छ्यद्वृदयेदृशम् । किमेभिः क्रियते काकैः संभूयापि गरुत्मतः ॥१२६॥
[illegible] पृथुकः सिंहः प्रस्फुरत्सितकेसरः । किं वा नाशयते ध्वंसं यूथं [3]समददन्तिनाम् ॥१२७॥
[illegible] तः पुनरुचुस्तं यद्येवं नाथ मन्यसे । ततोऽस्माकं पितॄन् रक्ष भ्रातॄंश्च स्वजनांस्तथा ॥१२८॥
[illegible] मस्तु प्रिया यूयं मा भैष्टेति स सान्त्वनम् । कुरुते यावदेतासां तावद्बलमुपागतम् ॥१२९॥
[illegible] विमानमारुह्य क्षणाद्विद्याविनिर्मितम् । खमारुह्य दशग्रीवो दन्तदष्टरदच्छदः ॥१३०॥
[illegible] प्यवाप्यवावतस्य प्राप्य युद्धमहोत्सवम् । दुःखेन मानमाकाशे प्राप्ता रोमाञ्चकर्कशाः ॥१३१॥
[illegible] उपरि ततो योधाश्चिक्षिपुः शस्त्रसंहतीः । धारा इव घनस्थूलाः पर्वतस्य घनाघनाः ॥१३२॥
[illegible] सौ शस्त्रसंघातं कांश्चिद् विन्यवारयत् । कांश्चिच्छत्रु रिपुघातं शिलाभिर्भयमानयत् ॥१३३॥
[illegible] निर्हतैरेभिः [4]खेचरैः किं ममेत्यसौ । चिन्तयित्वा [5]प्रधानांस्त्रीन् तांश्चक्रे नेत्रगोचरम् ॥१३४॥
[illegible] तेन ततोऽस्त्रेण मोहयित्वा गतक्रियाः । नागपाशैस्त्रयोऽप्येते बद्ध्वा तासामुपाहृताः ॥१३५॥
[illegible] तास्ते ततस्ताभिः पूजां च परिलम्भिताः । शूरस्वजनसंप्राप्तेः [6]संमदं च समागताः ॥१३६॥

[illegible] ! उठो और किसीको शरणमें जाओ। हम लोगोंपर प्रसन्न होओ और शीघ्र ही आकाशमें [illegible] अपने दुर्लभ प्राणोंकी रक्षा करो ॥१२३॥ अथवा ये क्रूरपुरुष जबतक आपका शरीर [illegible] देख लेते हैं उसके पहले ही इस जिन-मन्दिरमें छिपकर बैठ रहो ॥१२४॥ कन्याओंके [illegible] दीन वचन सुनकर तथा सेनाको निकट देख दशाननने अपने कुमुदके समान सफेद नेत्र [illegible] कमलके समान लाल कर लिये ॥१२५॥ उसने कन्याओंसे कहा कि निश्चय ही आप हमारा [illegible] नहीं जानती हो इसलिए ऐसा कह रही हो। जरा सोचो तो सही, बहुत-से कौए एक [illegible] मिलकर भी गरुड़का क्या कर सकते हैं ? ॥१२६॥ जिसकी सफेद जटाएँ फहरा रही हैं ऐसा [illegible] सिंहका बालक क्या मदोन्मत्त हाथियोंके झुण्डको नष्ट नहीं कर देता ? ॥१२७॥ दशाननके [illegible] मरे वचन सुन उन कन्याओंने फिर कहा कि हे नाथ ! यदि आप ऐसा मानते हैं तो [illegible] पिता, भाई तथा कुटुम्बीजनों की रक्षा कीजिए, अर्थात् युद्धमें उन्हें नहीं मारिए ॥१२८॥ [illegible] प्रिया जनो ! ऐसा ही होगा, तुम सब भयभीत न होओ' इस प्रकार दशानन जबतक उन [illegible] कन्याओंको सान्त्वना देता है कि तबतक वह सेना आ पहुँची ॥१२९॥ तदनन्तर क्षण-भरमें [illegible] विद्या निर्मित विमानपर आरूढ़ होकर रावण आकाशमें जा पहुँचा और दाँतोंसे ओठ चबाने [illegible] ॥१३०॥ दशाननके वे ही सब अवयव थे पर युद्धरूपी महोत्सवको पाकर इतने अधिक [illegible] गये और रोमांचोंसे कर्कश हो गये कि आकाशमें बड़ी कठिनाईसे समा सके ॥१३१॥ तदनन्तर [illegible] प्रकार मेघ किसी पर्वतपर बड़ी मोटी जलकी धाराएँ छोड़ते हैं उसी प्रकार सब योधा [illegible] दशाननके ऊपर शस्त्रोंके समूह छोड़ने लगे ॥१३२॥ तब दशाननने शिलाएँ वर्षाना शुरू किया। [illegible] उसने कितनी ही शिलाओंसे तो शत्रुओंके शस्त्रसमूहको रोका और कितनी ही शिलाओंसे शत्रु-[illegible] समूहको भयभीत किया ॥१३३॥ इन बेचारे दीन-हीन विद्याधरोंको मारनेसे मुझे क्या लाभ है ? [illegible] ऐसा विचारकर उसने सुरसुन्दर, कनक और बुध इन तीन प्रधान विद्याधरोंको अपनी दृष्टिका [illegible] विषय बनाया अर्थात् उनकी ओर देखा ॥१३४॥ तदनन्तर उसने तामस शस्त्रसे मोहित कर उन्हें [illegible] निश्चेष्ट बना दिया और नागपाशमें बाँधकर तीनोंको तीन कन्याओंके सामने रख दिया ॥१३५॥ तब

१. कं च म. । २. ततै म. । ३. संमद-म. । ४. खचरैः म. । सेवकैः क. । ५. प्रधानां स्त्रीं तां चक्रे नेत्रगोचराम् म.(?) । त्रीन् प्रधानान् मत्वा तान् दृष्टिपथमानिनायेत्यर्थः । ६. संप्राप्ते म. ।

ततः पाणिग्रहश्चक्रे तस्य तासां च तैः पुनः । विद्याजनितसर्वस्वनिरतो महोत्सवः ॥१३७॥
गताश्चानुमतास्तेन यथा स्वं निलयाममी । मन्दोदरीगुणाकृष्टः स च यातः स्वयंप्रभम् ॥१३८॥
ततस्तं परया शुभ्या युक्तं दृष्ट्वा सयोषितम् । बान्धवाः परमं हर्षं जग्मुर्विस्तारितेक्षणाः ॥१३९॥
दूरादेव च तं दृष्ट्वा भानुकर्णविभीषणौ । अभिगम्या विनिष्क्रान्तौ सुहृदोऽन्ये च बान्धवाः ॥१४०॥
[1]वेष्टितश्च प्रविष्टस्तैः स्वयंप्रभपुरोत्तमम् । रेमे च स्वेच्छया तेऽत्र प्राप्नुवन् सुखमुत्तमम् ॥१४१॥
अथ कुम्भपुरे राजमहोदरसुतां वराम् । सुरूपाक्षीसमुद्भूतां तडिन्मालाभिधानकाम् ॥१४२॥
भास्करश्रवणो लेभे सुप्रीतः स तया समम् । चारुविभ्रमकारिण्या निमग्नो रतिसागरे ॥१४३॥
तत्र कुम्भपुरे तस्य केनचित् कृतशब्दने । श्वसुरस्नेहतः कर्णौ सततं पेततुर्यतः ॥१४४॥
कुम्भकर्ण इति ख्यातिं ततोऽसौ भुवने गतः । धर्मसक्तमतिर्वीरः कलागुणविशारदः ॥१४५॥
[2]अथं स प्रखलैः ख्यातिमन्यथा गमितो जनैः । मांसासृग्जीवनत्वेन तथा षण्मासनिद्रया ॥१४६॥
आहारोऽस्य शुचिः स्वादुर्यथाकामप्रकल्पितः । सुरभिर्बन्धुयुक्तस्य प्रथमं तर्पितातिथिः ॥१४७॥
संध्यासंवेशनोत्थानमध्यकालप्रवर्तिनी । निद्रास्य शेषकालस्तु धर्मन्यासक्तचेतसः ॥१४८॥
परमार्थावबोधेन वियुक्ताः पापचेतसः । कल्पयन्त्यन्यथा साधून् धिक् तान् दुर्गतिगामिनः ॥१४९॥
अथास्ति दक्षिणश्रेण्यां नाम्ना ज्योतिःप्रभं पुरम् । विशुद्धकमलस्तत्र राजा सत्यमहासुहृत् ॥१५०॥

कन्याओंने उन्हें छुड़वाकर उनका सत्कार कराया और तुम्हें शूरवीर वर प्राप्त हुआ है इस समाचारसे उन्हें हर्षित भी किया ॥१३६॥ तदनन्तर उन्होंने दशानन और उन कन्याओंका विधिपूर्वक पुनः पाणिग्रहण किया। इस उपलक्ष्यमें तीन दिन तक विद्याजनित महोत्सव होते रहे ॥१३७॥ तत्पश्चात् ये सब दशाननकी अनुमति लेकर अपने-अपने घर चले गये और दशानन भी मन्दोदरीके गुणोंसे आकृष्ट हुआ स्वयंप्रभनगर चला गया॥१३८॥ तदनन्तर श्रेष्ठ कान्तिसे युक्त दशाननको अनेक स्त्रियों सहित आया देख, बान्धवजन परम हर्षको प्राप्त हुए। हर्षातिरेकसे उनके नेत्र विस्तृत हो गये ॥१३९॥ भानुकर्ण और विभीषण तथा अन्य मित्र और इष्टजन दूरसे ही उसे देख अगवानी करनेके लिए नगरसे बाहर निकले ॥१४०॥ उन सबसे घिरा दशानन, स्वयंप्रभनगरमें प्रविष्ट हो मनचाही क्रीड़ा करने लगा और भानुकर्ण-विभीषण आदि बन्धुजन भी उत्तम सुखको प्राप्त हुए ॥१४१॥ अथानन्तर कुम्भपुर नगरमें राजा महोदरकी सुरूपाक्षी नामा स्त्रीसे उत्पन्न तडिन्माला नामकी कन्या थी सो भानुकर्णने बड़ी प्रसन्नतासे प्राप्त की। सुन्दर हाव-भाव दिखानेवाली तडिन्मालाके साथ भानुकर्ण रतिरूपी सागरमें निमग्न हो गया ॥१४२-१४३॥ एक बार कुम्भपुर नगरपर किसी प्रबल शत्रुने आक्रमण कर हल्ला मचाया तब श्वसुरके स्नेहसे भानुकर्णके कान कुम्भपुरपर पड़े अर्थात् वहाँके दुःखभरे शब्द इसने सुने तबसे संसारमें इसका कुम्भकर्ण नाम प्रसिद्ध हुआ। इसकी बुद्धि सदा धर्ममें आसक्त रहती थी, यह शूरवीर था तथा कलाओंमें निपुण था ॥१४४-१४५॥ दुष्टजनोंने इसके विषयमें अन्यथा ही निरूपण किया है। वे कहते हैं कि यह मांस और खूनका भोजन कर जीवित रहता था तथा छह माहकी निद्रा लेता था सो इसका आहार तो इच्छानुसार परम पवित्र मधुर और सुगन्धित होता था। प्रथम ही अतिथियोंको सन्तुष्ट कर बन्धुजनोंके साथ आहार करता था ॥१४६-१४७॥ सन्ध्याकाल शयन करनेका और प्रातःकाल उठनेका समय है सो भानुकर्ण इसके बीचमें ही निद्रा लेता था। इसका अन्य समय धार्मिक कार्योंमें ही व्यतीत होता था ॥१४८॥ जो परमार्थज्ञानसे रहित पापी मनुष्य, सत्पुरुषोंका अन्यथा वर्णन करते हैं वे दुर्गतिमें जानेवाले हैं। ऐसे लोगोंको धिक्कार है ॥१४९॥

अथानन्तर दक्षिणश्रेणीमें ज्योतिःप्रभ नामका नगर है। वहाँ विशुद्धकमल राजा राज्य

---

१. वेष्टितश्च प्रविष्टस्ते म.। २. अथ स म.।

तस्य नन्दनमालायामुत्पन्ना वरकन्यका । राजीवसरसी नाम्ना पतिं प्राप्ता विभीषणम् ॥१५१॥
कान्तया कान्तया सार्कं न स प्राप रतिं कृती । देववत् परमाकारः पद्मया पद्ममया तया ॥१५२॥
अथ मन्दोदरी गर्भं कालयोगाददीधरत् । सद्यः कल्पितचित्तस्थदोहदाहारिविभ्रमा ॥१५३॥
नीता च जनकागारं प्रसूता [1]बालकं वरम् । इन्द्रजिज्ञ्यातिमायातो यः समस्तमहीतले ॥१५४॥
[illegible] स तत्रैव [illegible]ङ्कीडां सिंहशाव इवोत्तमाम् ॥१५५॥
ततोऽसौ पुत्रसहिता भर्तुरन्तिकम् । दत्तदुःखा पितुः [2]स्वस्य पुत्रस्य च वियोगतः ॥१५६॥
दशग्रीवोऽथ पुत्रास्यं दृष्ट्वा परममागतः । आनन्दं पुत्रतो नान्यत्प्रीतेरायतनं परम् ॥१५७॥
कालक्रमात् पुनर्गर्भं दधाना पितुरन्तिकम् । नीता [3]सुखं प्रसूता च मेघवाहनबालकम् ॥१५८॥
भर्तुरन्तिकमानीता पुनः सा भोगसागरे । पतिता स्वेच्छयातिष्ठद् [4]गृहीत[5]पतिमानसा ॥१५९॥
दारकौ स्वजनानन्दं कुर्वाणौ चारुविभ्रमौ । तौ युवत्वं परिप्राप्तौ महोक्षविपुलेक्षणौ ॥१६०॥
अथ वैश्रवणो यासां कुरुते स्वामितां पुरात् । व्यध्वंसयदिमा गत्वा कुम्भकर्णः सहस्रशः ॥१६१॥
तासु रत्नानि वस्त्राणि कन्यकाश्च मनोहराः । [6]गणिकाश्चानयद्वीरः स्वयंप्रभपुरोत्तमम् ॥१६२॥
अथ वैश्रवणः क्रुद्धो ज्ञात्वा पृथुकचेष्टितम् । सुमालिनोऽन्तिकं दूतं प्रजिघायातिगर्वितः ॥१६३॥
प्रविवेश ततो दूतः प्रतिहारनिवेदितः । उपचारं च संप्राप्तः कृतर्क लोकमार्गतः ॥१६४॥

करता था जो मयका महामित्र था ॥१५०॥ उसकी नन्दनमाला नामकी स्त्रीसे राजीवसरसी नामकी कन्या उत्पन्न हुई थी वह विभीषणको प्राप्त हुई ॥१५१॥ देवोंके समान उत्कृष्ट आकारको धारण करनेवाला बुद्धिमान् विभीषण, लक्ष्मीके समान सुन्दरी उस राजीवसरसी स्त्रीके साथ क्रीड़ा करता हुआ तृप्तिको प्राप्त नहीं हुआ ॥१५२॥ तदनन्तर समय पाकर मन्दोदरीने गर्भ धारण किया। उस समय उसके चित्तमें जो दोहला उत्पन्न होते थे उनकी पूर्ति तत्काल की जाती थी। उसके हाव-भाव भी मनको हरण करनेवाले थे ॥१५३॥ राजा मय पुत्रीको अपने घर ले आया वहाँ उसने उस उत्तम बालकको जन्म दिया जो समस्त पृथ्वीतलमें इन्द्रजित् नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥१५४॥ लोगोंको आनन्दित करनेवाला इन्द्रजित् अपने नानाके घर ही वृद्धिको प्राप्त हुआ। वहाँ वह सिंहके बालकके समान उत्तम क्रीड़ा करता हुआ सुखसे रहता था ॥१५५॥ तदनन्तर मन्दोदरी पुत्रके साथ अपने भर्ता दशाननके पास लायी गयी सो अपने तथा पुत्रके वियोगसे वह पिताको दुःख पहुँचानेवाली हुई ॥१५६॥ दशानन पुत्रका मुख देख परम आनन्दको प्राप्त हुआ। यथार्थमें पुत्रसे बढ़कर प्रीतिका और दूसरा स्थान नहीं है ॥१५७॥ कालक्रमसे मन्दोदरीने फिर गर्भ धारण किया सो पुनः पिताके समीप भेजी गयी। अबकी बार वहाँ उसने सुखपूर्वक मेघवाहन नामक पुत्रको जन्म दिया ॥१५८॥ तदनन्तर वह पुनः पतिके पास आयी और पतिके मनको वश कर इच्छानुसार भोगरूपी सागरमें निमग्न हो गयी ॥१५९॥ सुन्दर चेष्टाओंके धारी दोनों बालक आत्मीयजनोंका आनन्द बढ़ाते हुए तरुण अवस्थाको प्राप्त हुए। उस समय उनके नेत्र किसी महावृषभके नेत्रोंके समान विशाल हो गये थे ॥१६०॥

अथानन्तर वैश्रवण जिन नगरोंका राज्य करता था, कुम्भकर्ण हजारों बार जा-जाकर उन नगरोंको विध्वस्त कर देता था ॥१६१॥ उन नगरोंमें जो भी मनोहर रत्न, वस्त्र, कन्याएँ अथवा गणिकाएँ होती थीं शूरवीर कुम्भकर्ण उन्हें स्वयंप्रभनगर ले आता था ॥१६२॥ तदनन्तर जब वैश्रवणको कुम्भकर्णकी इस बालचेष्टाका पता चला तब उसने कुपित होकर सुमालीके पास दूत भेजा। वैश्रवण इन्द्रका बल पाकर अत्यन्त गर्वित रहता था ॥१६३॥ तदनन्तर द्वारपालके द्वारा

१. बालकंदलम् म. । २. -स्तस्य ख. । ३. स्वयं म. । ४. तिष्ठन् म. । ५. गृहीता म. । ६. मणिका ख. ।

उवाचेदं तथा दूतो वाक्यालङ्कारसंज्ञितः । समक्षं दशवक्त्रस्य सुमालिनमिति क्रमात् ॥१६५॥
समस्तभुवनव्यापिकीर्तिर्वैश्रवणश्रुतिः[1] । [2]वदतीदं महाराजो भवन्तं कुरु चेतसि ॥१६६॥
पण्डितोऽसि कुलीनोऽसि लोकज्ञोऽसि महानसि । अकार्यसंगभीतोऽसि देशकोऽसि सुवर्त्मसु ॥१६७॥
एवंविधस्य ते युक्तं कुर्वन्तं शिशुचापलम् । प्रमत्तचेतसं पौत्रं निवारयितुमात्मनः ॥१६८॥
तिरश्चां मानुषाणां च प्रायो भेदोऽयमेव हि । कृत्याकृत्यं न जानन्ति तिरश्चोऽन्यत्तु तद्विदः ॥१६९॥
विस्मरन्ति च नो पूर्वं वृत्तान्तं दृढमानसाः । जातायामपि कस्यांचिद्भूतौ विद्युत्समच्युतौ ॥१७०॥
शान्तिर्मालिवधेनैव शेषस्य स्यात् कुलस्य ते । को हि स्वकुलनिर्मूलध्वंसहेतुक्रियां भजेत् ॥१७१॥
समुद्रवीचिसंसक्तः[3] शक्रस्य ध्वस्तविद्विषः । प्रतापो विस्मृतः किं ते यतोऽनुचितमीहसे ॥१७२॥
स त्वं क्रीडसि मण्डूको दंष्ट्राकण्टकसंकटे । वक्त्ररन्ध्रे भुजङ्गस्य विषाग्निकणमोचिनि ॥१७३॥
नियन्तुमथ शक्नोषि नैतं तस्करदारकम् । ततो समर्पयाशैव करोम्यस्य नियन्त्रणम् ॥१७४॥
नैवं चेत् कुरुषे पश्य ततश्चारकवेश्मनि । निगडैः संयुतं पौत्रं यात्यमानमनेकधा ॥१७५॥
अलंकारोदयं त्यक्त्वा चिरं कालमवस्थितः । तदेव बिवरं भूयः प्रवेष्टुमभिवाञ्छसि ॥१७६॥
कुपिते मयि शक्रे वा न तेऽस्ति शरणं भुवि । जलबुद्बुदवद्वातादचिरादेव नश्यसि ॥१७७॥
ततः परुषवाग्वातवेगाहतमनोजलः । क्षोभं परममायातो दशाननमहार्णवः ॥१७८॥

समाचार भेजकर दूतने भीतर प्रवेश किया। दूत लोकाचारके अनुसार योग्य विनयको प्राप्त था ॥१६४॥ दूतका नाम वाक्यालंकार था सो उसने दशाननके समक्ष ही सुमालीसे इस प्रकार क्रमसे कहना शुरू किया ॥१६५॥ जिनकी कीर्ति समस्त संसारमें फैल रही है ऐसे वैश्रवण महाराज-ने आपसे जो कहा है उसे चित्तमें धारण करो ॥१६६॥ उन्होंने कहा है कि तुम पण्डित हो, कुलीन हो, लोक व्यवहारके ज्ञाता हो, महान् हो, अकार्यके समागमसे भयभीत हो और सुमार्गका उपदेश देनेवाले हो ॥१६७॥ सो तुम्हें लड़कों जैसी चपलता करनेवाले अपने प्रमादी पौत्रको मना करना उचित है ॥१६८॥ तिर्यंच और मनुष्योंमें प्रायः यही तो भेद है कि तिर्यंच कृत्य और अकृत्यको नहीं जानते हैं पर मनुष्य जानते हैं ॥१६९॥ जिनका चित्त दृढ़ है ऐसे मनुष्य बिजलीके समान भंगुर किसी विभूतिके प्राप्त होनेपर भी पूर्व वृत्तान्तको नहीं भूलते हैं ॥१७०॥ तुम्हारे कुलका प्रधान माली मारा गया इसीसे समस्त कुलको शान्ति धारण करना चाहिए थी—क्योंकि ऐसा कौन पुरुष होगा जो अपने कुलका निर्मूल नाश करनेवाले काम करेगा ॥१७१॥ शत्रुओंको नष्ट करनेवाले इन्द्रका वह प्रताप जो कि समुद्रकी लहर-लहरमें व्याप्त हो रहा है तुमने क्यों भुला दिया ? जिससे कि अनुचित काम करनेकी चेष्टा करते हो ॥१७२॥ तुम मेंढकके समान हो और इन्द्र भुजंगके समकक्ष है, सो तुम इन्द्ररूपी भुजंगके उस मुखरूपी बिलमें क्रीड़ा कर रहे हो जो दाढ़रूपी कण्टकोंसे व्याप्त है तथा विषरूपी अग्निके तिलगे छोड़ रहा है ॥१७३॥ यदि तुम इस चोर बालकपर नियन्त्रण करनेमें समर्थ नहीं हो तो आज ही मुझे सौंप दो मैं स्वयं इसका नियन्त्रण करूँगा ॥१७४॥ यदि तुम ऐसा नहीं करते हो तो अपने पौत्रको जेलखानेके अन्दर बेड़ियोंसे बद्ध तथा अनेक प्रकारकी यातना सहते हुए देखोगे ॥१७५॥ जान पड़ता है कि तुमने अलंकारोदयपुर (पाताललंका) को छोड़कर बहुत समय तक बाहर रह लिया है अब फिरसे उसी बिलमें प्रवेश करना चाहते हो ॥१७६॥ यह निश्चित समझ लो कि मेरे या इन्द्रके कुपित होनेपर पृथ्वीमें तुम्हारा कोई शरण नहीं है, जिस प्रकार जरा-सी हवा चलनेसे पानीका बबूला नष्ट हो जाता है उसी प्रकार तुम भी नष्ट हो जाओगे ॥१७७॥

तदनन्तर उस दूतके कठोर वचनरूपी वायुके वेगसे जिसका मनरूपी जल आघातको प्राप्त

---

१. विश्रवणश्रुतिः म. । २. चरतीदं म. । ३. संसक्तशक्रस्य-म., ख. ।

...माहवच्चास्य प्रस्फुरत्स्वेदमोचिनः । चक्षुषात्यन्तरक्तेन दिग्धं सकलमम्बरम् ॥१७९॥
...थ परिस्फोटाः स्वरेणाम्बरगामिना । करिणो निर्मदीकुर्वन् बभाण प्रतिनादिना ॥१८०॥
...ी वैश्रवणो नाम को वेन्द्रः परिभाव्यते । अस्मद्गोत्रक्रमायातां नगरीं येन गृह्यते ॥१८१॥
...र्यं हसेनायते काकः शृगालः शरभायते[1] । इन्द्रायते स्वभृत्यानां निस्त्रपः पुरुषाधमः ॥१८२॥
...दूत पुरोऽस्माकं गदतः परुषं वचः । निःशङ्कस्य शिरस्तावत् पातयामि रुषे बलिम् ॥१८३॥
...त्वा कोशतः खड्गमाचकर्ष कृतं वियत् । इन्दीवरवनेनेव येन व्याप्तं महासरः ॥१८४॥
...र्णं स्वपनं वातात्क्षोथादिव सकम्पनम् । [2]नीतं कालमिवासिर्वं हिंसाया इव शावकम् ॥१८५॥
...दशूर्णावमेतेन वेगादागत्य चान्तरम् । विभीषणेन संरुद्धः सान्त्वितश्चेति सादरम् ॥१८६॥
...रस्यास्यापराधः कः क्लीवस्यापहृतात्मनः । विक्रीतनिजदेहस्य शुकस्येवानुभाषिणः ॥१८७॥
...रत्नेन नाथेन पिशाचेनेव चोदिताः । दूता वाचि प्रवर्तन्ते यन्त्रदेहा इवावशाः ॥१८८॥
...दयामार्य कुरु प्राणिनि दुःखिते । अकीर्तिरुद्धवत्युर्वीलोके क्षुद्रवधे कृते ॥१८९॥
...स्तु विद्विषामेव शव खड्गः पतिष्यति । न हि गण्डूपदान् हन्तुं वैनतेयः प्रवर्तते ॥१९०॥
...र्वं कोपानलस्तस्य यावत्सद्वाक्यवारिणा । शममानीयते तेन साधुना न्यायवादिना ॥१९१॥

...का ऐसा दशाननरूपी महासागर परम क्षोभको प्राप्त हुआ ॥१७८॥ दूतके वचन सुनते ही ...की ऐसी दशा हो गयी मानो किसीने उसके अंग पकड़कर झकझोर दिया हो, उसके प्रत्येक ...पसीना छूटने लगा और उसकी अत्यन्त लाल दृष्टिने समस्त आकाशको लिप्त कर दिया ...॥ तदनन्तर आकाशमें गूँजनेवाले स्वरसे दिशाओंको बहरा करता हुआ दशानन, प्रतिध्वनि-...योंको मदरहित करता हुआ बोला ॥१८०॥ कि यह वैश्रवण कौन है ? अथवा इन्द्र कौन ...ता है ? जो कि हमारी वंश-परम्परासे चली आयी नगरीपर अधिकार किये बैठा है ? ...१॥ निर्लज्ज नीचपुरुष अपने भृत्योंके सामने इन्द्र जैसा आचरण करता है सो मानो कौआ ...बन रहा है और शृगाल अष्टापदके समान आचरण कर रहा है ॥१८२॥ अरे कुदूत ! हमारे ...ी निःशंक होकर कठोर वचन बोल रहा है सो मैं अभी क्रोधके लिए तेरे मस्तककी बलि ...ता हूँ ॥१८३॥ यह कहकर उसने म्यानसे तलवार खींची जिससे आकाशरूपी सरोवर ऐसा ...सा मानो नीलकमलरूपी वनसे ही व्याप्त हो गया हो ॥१८४॥ दशाननकी वह तलवार ...बात कर रही थी, क्रोधसे मानो काँप रही थी, ऐसी जान पड़ती थी मानो तलवारका रूप ...कर यमराज ही वहाँ आया हो, अथवा मानो हिंसाका बेटा ही हो ॥१८५॥ दशाननने वह ...कार ऊपरको उठायी ही थी कि विभीषणने बीचमें आकर रोक दिया और बड़े आदरसे इस ...कार समझाया कि ॥१८६॥ जिसने अपना शरीर बेच दिया है और जो तोतेके समान कही बात-...ही दुहराता हो ऐसे इस पापी दीन-हीन भृत्यका अपराध क्या है ? ॥१८७॥ दूत जो कुछ वचन ...ते हैं सो पिशाच की तरह हृदयमें विद्यमान अपने स्वामीसे प्रेरणा पाकर ही बोलते हैं। यथार्थ-...यन्त्रमयी पुरुषके समान पराधीन है ॥१८८॥ इसलिए हे आर्य ! प्रसन्न होओ और दुःखी ...पर दया करो। क्षुद्रका वध करनेसे संसारमें अकीर्ति ही फैलती है ॥१८९॥ आपकी ...वार तो शत्रुओंके ही सिर पर पड़ेगी क्योंकि गरुड़ जलमें रहनेवाले निर्विष साँपोंको मारनेके ...प्रवृत्त नहीं होता ॥१९०॥ इस प्रकार न्याय-नीतिको जाननेवाले सत्पुरुष विभीषण, सदुप-...देशी जलसे जबतक दशाननकी क्रोधाग्निको शान्त करता है तबतक अन्य लोगोंने उस दूतके ...खींचकर उसे सभाभवनसे शीघ्र ही बाहर निकाल दिया। आचार्य कहते हैं कि दुःखके लिए

---

१. करभायते म. । २. नीत-म. ३. -मिवासन्नं म. । ४. यत्र म. ।

पादयोस्तावदाकृष्य दूतोऽन्यैः सुखलीकृतैः । क्षिप्रं निष्कासितो गेहाद् धिग् भृत्यं दुःखनिर्मितम् ॥१९२॥
गत्वा वैश्रवणायेयमवस्था तेन वेदिता । दशग्रीवाद्विनिष्क्रान्ता वाणी चाश्रुतदुःकथा ॥१९३॥
तयेन्धनविभूत्यास्य कोपवह्निः समुत्थितः । अमात्र इव सोऽनेन[1] भृत्यचेतःसु वण्टितः ॥१९४॥
अचीकरच्च संग्रामसंज्ञां परुषतूर्यतः । रणसज्जा यथा सद्यो मणिभद्रादयः कृताः ॥१९५॥
निरैद् वैश्रवणो योद्धुं यक्षयोधैस्ततो वृतः । विलसत्सायकप्रासचक्राद्यायुधपाणिभिः ॥१९६॥
स निर्भराञ्जनश्रोणीधराकारैर्मतङ्गजैः । संध्यारागसमाविष्टमेघाकारैर्महारथैः ॥१९७॥
प्रस्फुरच्चामरैरश्वैर्जयश्रिर्जघतोऽनिलम् । सुरावाससमाकारैर्विमानैर्दुरुत्पतैः ॥१९८॥
लङ्घिताश्वविमानेभस्यन्दनेनोरुतेजसा । पादातेन च संघट्टमीयुषार्णवराविणा ॥१९९॥
पूर्वमेव च निष्क्रान्तो दशग्रीवो महाबलः । भानुकर्णादिभिः सार्धं स्थितो रणमहोत्सवः ॥२००॥
गुञ्जाख्यस्य ततो मूर्ध्नि पर्वतस्य तयोरभूत् । संपातः सेनयोः शस्त्रसंपातोद्गतपावकः ॥२०१॥
क्वणनेन ततोऽसीनां ससीनां हेषितेन च । पदातीनां च नादेन गजानां गर्जितेन च ॥२०२॥
अन्योऽन्यसंगमोद्भूतरथशब्देन चारुणा । तूर्यस्वरेण घोरेण शीत्कारेण च पत्रिणाम् ॥२०३॥
ध्वनिः कोऽपि विमिश्रोऽभूत् प्रतिनादेन बोधितः । व्याप्नुवन् रोदसी कुर्वन् भटानां मदमुत्तमम् ॥२०४॥
कृतान्तवन्दनाकारैश्चक्रैः स्फुरितधारकैः । खड्गैस्तद्रसनाकारै[2] रकलीकरवर्षिभिः ॥२०५॥
सद्रोमसंनिभैः कुन्तैस्तत्तुल्यैर्जन्युपमैः शरैः । परिघैस्तद्भुजाकारै[3]स्तन्मुष्टिसममुद्गरैः ॥२०६॥

ही जिसकी रचना हुई है ऐसे भृत्यको धिक्कार हो ॥१९१-१९२॥ दूतने जाकर अपनी यह सब दशा वैश्रवणको बतला दी और दशाननके मुखसे निकली वह अभद्रवाणी भी सुना दी ॥१९३॥ दूतके वचनरूपी ईंधनसे वैश्रवणकी क्रोधाग्नि भभक उठी। इतनी भभकी कि वैश्रवणके मनमें मानो समा नहीं सकी इसलिए उसने भृत्यजनोंके चित्तमें बाँट दी अर्थात् दूतके वचन सुनकर वैश्रवण कुपित हुआ और साथ ही उसके भृत्य भी बहुत कुपित हुए ॥१९४॥ उसने तुरहीके कठोर शब्दोंसे युद्धकी सूचना करवा दी जिससे मणिभद्र आदि योद्धा शीघ्र ही युद्धके लिए तैयार हो गये ॥१९५॥ तदनन्तर जिनके हाथोंमें कृपाण, भालें तथा चक्र आदि शस्त्र सुशोभित हो रहे थे ऐसे यक्षरूपी योधाओंसे घिरा हुआ वैश्रवण युद्धके लिए निकला ॥१९६॥ इधर अंजनगिरिका आकार धारण करनेवाले—बड़े-बड़े काले हाथियों, सन्ध्याकी लालिमासे युक्त मेघोंके समान दिखनेवाले बड़े-बड़े रथों, जिनके दोनों ओर चमर ढुल रहे थे तथा जो वेगसे वायुको जीत रहे थे ऐसे घोड़ों, देवभवनके समान सुन्दर तथा ऊँची उड़ान भरनेवाले विमानों, तथा जो घोड़े, विमान, हाथी और रथ—सभीको उल्लंघन कर रहे थे अर्थात् इन सबसे आगे बढ़कर चल रहे थे, जिनका प्रताप बहुत भारी था, जो अधिकताके कारण एक दूसरेको धक्का दे रहे थे तथा समुद्रके समान गरज रहे थे ऐसे पैदल सैनिकों और भानुकर्ण आदि भाइयोंके साथ महाबलवान् दशानन, पहलेसे ही बाहर निकलकर बैठा था। युद्धका निमित्त पाकर दशाननके हृदयमें बड़ा उत्सव—उल्लास हो रहा था ॥१९७-२००॥

तदनन्तर गुंज नामक पर्वतके शिखरपर दोनों सेनाओंका समागम हुआ। ऐसा समागम कि जिसमें शस्त्रोंके पड़नेसे अग्नि उत्पन्न हो रही थी ॥२०१॥ तदनन्तर तलवारोंकी खनखनाट, घोड़ोंकी हिनहिनाहट, पैदल सैनिकोंकी आवाज, हाथियोंकी गर्जना, परस्परके समागमसे उत्पन्न रथोंकी सुन्दर चीत्कार, तुरहीकी बुलन्द आवाज और बाणोंकी सनसनाहटसे उस समय कोई मिश्रित-विलक्षण ही शब्द हो रहा था। उसकी प्रतिध्वनि आकाश और पृथिवीके बीच गूँज रही थी तथा योद्धाओंमें उत्तम मद उत्पन्न कर रही थी २०२-२०४॥ इस तरह जिनका आकार यमराजके

१. -मुखलक्षितः म.। २. सोऽनेन म.। ३. तद्दशनाकारैः क.। ४. कुम्भैः म.। ५. तत्तर्जन्योपमैः म.। ६. तनुमुष्टिभिर्मुद्गरैः म.।

[illegible] क्षुरप्रकल्पं [illegible] कातरोत्त्रासिनिस्त्रिंशं सिरःक्रीतयशोधनम् ॥२०७॥
ततो निजं बलं नीतं खेदं यक्षभटैश्चिरात् । [1] स धारयितुमारब्धो दशास्यो रणमस्तकम् ॥२०८॥
[illegible] [2] छत्रं च तं दृष्ट्वा [3] सितातपनिवारणम् । कालमेघमिवोद्भूर्ध्वस्थरजनीकरमण्डलम् ॥२०९॥
[illegible] तमिवासक्तशचीपतिशरासनम् । हेमकण्टकसंवीतं [4] विद्युताक्रमिवाचितम् ॥२१०॥
[illegible] दिव्रतं नानारत्नसङ्गविराजितम् । युक्तं तमिव वज्रेण छादयन्तं नभस्विषा ॥२११॥
विलोक्यामायतं यक्षा विषण्णाक्षाः क्षतौजसः । पराङ्मुखक्रियायुक्ताः क्षणात् क्षीणरणाशयाः ॥२१२॥
त्रासाकुलितचित्तेषु ततो यक्षपदातिषु । आवर्तमिव यातेषु भ्रमत्सु सुमहारवम् ॥२१३॥
[illegible] [5] जग्मुर्यक्षाणां बहवोऽधिपाः । पुनरेभिः कृतं सैन्यं रणस्याभिमुखं तया ॥२१४॥
[illegible] [6] दशाननः । उत्पत्योत्पत्य गगने सिंहो मत्तगजानिव ॥२१५॥
प्रेरितः कोपवातेन दशाननतनूनपात् । शस्त्रज्वालाकुलः शत्रुसैन्यकक्षे व्यजृम्भत ॥२१६॥
न सोऽस्ति पुरुषो भूमौ रथे वाजिनि वारणे । विमाने वा न यश्छिद्रः कृतो दाशाननैः शरैः ॥२१७॥
ततोऽभिमुखमायातं दृष्ट्वा दशमुखं रणे । अभजद्बान्धवस्नेहं परं वैश्रवणः क्षणात् ॥२१८॥
विषादमतुलं त्यागाच्छित्त्वा च नृपश्रियः । यथा बाहुबली पूर्वं शमकर्मणि [7] संगतः ॥२१९॥

[illegible] समान था तथा जिनकी धार पैनी थी, ऐसे चक्रों, यमराजकी जिह्वाके समान दिखनेवाली [illegible] उनकी बूँदें बरसानेवाली तलवारों, उसके रोमके समान दिखनेवाले भाले, यमराजकी [illegible]मी अँगुलीकी उपमा धारण करनेवाले बाणों, यमराजकी भुजाके आकार परिघ नामक शस्त्रों [illegible] उनकी मुट्ठीके समान दिखनेवाले मुद्गरोंसे दोनों सेनाओंमें बड़ा भारी युद्ध हुआ। उस [illegible] जहाँ पराक्रमी मनुष्योंको हर्ष हो रहा था वहाँ कातर मनुष्योंको भय भी उत्पन्न हो रहा था। दोनों ही सेनाओंके शूरवीर अपना सिर दे-देकर यशरूपी महाधन खरीद रहे थे ॥२०५–२०७॥ तदनन्तर चिरकाल तक यक्षरूपी भटोंके द्वारा अपनी सेनाको खेद खिन्न देख दशानन उसे सँभालनेके लिए तत्पर हुआ ॥२०८॥ तदनन्तर जिसके ऊपर सफेद छत्र लग रहा था और उससे जो [illegible] काले मेघके समान दिखाई देता था जिसपर कि चन्द्रमाका मण्डल चमक रहा था, जो धनुषसे [illegible] था और उससे इन्द्रधनुष सहित श्याम मेघके समान जान पड़ता था, सुवर्णमय कवचसे युक्त [illegible] कारण जो बिजलीसे युक्त श्याम मेघके समान दिखाई देता था, जो नाना रत्नोंके समागमसे [illegible]भित मुकुट धारण कर रहा था और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो कान्तिसे आकाशको [illegible]च्छादित करता हुआ वज्रसे युक्त श्याम मेघ ही हो। ऐसे दशाननको आता हुआ देख यक्षोंकी [illegible] चौंधिया गयीं, उनका सब ओज नष्ट हो गया, युद्धसे विमुख हो भागनेकी चेष्टा करने [illegible] और क्षण-भरमें उनका युद्धका अभिप्राय समाप्त हो गया ॥२०९–२१२॥ तदनन्तर जिनके चित्त [illegible]से व्याकुल हो रहे थे ऐसे यक्षोंके पैदल सैनिक महाशब्द करते हुए जब भ्रमरमें पड़ेके समान [illegible]ने लगे तब यक्षोंके बहुत सारे अधिपति अपनी सेनाके सामने आये और उन्होंने सेनाको फिरसे [illegible] सम्मुख किया ॥२१३–२१४॥ तदनन्तर जिस प्रकार सिंह आकाशमें उछल-उछलकर मत्त [illegible]योंको नष्ट करता है उसी प्रकार दशानन यक्षाधिपतियोंको नष्ट करनेके लिए तत्पर हुआ [illegible]॥२१५॥ शस्त्ररूपी ज्वालाओंसे युक्त दशाननरूपी अग्नि, क्रोधरूपी वायुसे प्रेरित होकर शत्रुसेना-[illegible]पी वनमें वृद्धिको प्राप्त हो रही थी ॥२१६॥ उस समय पृथिवी, रथ, घोड़े, हाथी अथवा विमानपर [illegible]ऐसा एक भी आदमी नहीं बचा था जो रावणके बाणोंसे सछिद्र न हुआ हो ॥२१७॥ तदनन्तर युद्धमें [illegible]दशाननको सामने आता देख वैश्रवण, क्षण-भरमें भाईके उत्तम स्नेहको प्राप्त हुआ ॥२१८॥ साथ

---

१. आधारयितु-म. । २. अभ्यायातं म. । ३. सितातपत्रवारणम् म. । ४. विद्युतात-म. । ५. -मायान्तं म. । ६. [illegible]पत्ते ख. म. । ७. संगतः ख. म. ।

धिक्तेति च धिक्कष्टं संसारं दुःखभाजनम् । चक्रवत्परिवर्तन्ते प्राणिनो यत्र योनिषु ॥२१०॥
[1]पश्यैश्वर्यविमूढेन किं वस्तु प्रस्तुतं मया । बन्धुविध्वंसनं यत्र क्रियते गर्ववत्तया ॥२११॥
उदात्तमिति चावोचद् भो भो शृणु दशानन । किमिदं क्रियते पापं क्षणिकश्रीप्रचोदितम् ॥२१२॥
मातृष्वसुः सुतोऽहं ते सोदरप्रीतिसंगतः । ततो बन्धुषु नो युक्तं व्यवहर्तुमसांप्रतम् ॥२१३॥
कृत्वा प्राणिवधं जन्तुर्मनोज्ञविषयाशया । प्रयाति नरकं भीमं सुमहादुःखसंकुलम् ॥२१४॥
यथैकदिवसं राज्यं प्राप्तं संवत्सरं वधम् । प्राप्नोति सदृशं तेन निश्चये विषयैः[2] सुखम् ॥२१५॥
चक्षुःपक्ष्मपुटासङ्गक्षणिकं ननु जीवितम् । न वेत्सि किं यतः कर्म कुरुते भोगकारणम् ॥२१६॥
ततो हसन्नुवाचेदं दशास्यः करुणोज्झितः । धर्मश्रवणकालोऽयं न वैश्रवण वर्तते ॥२१७॥
मत्तस्तम्बेरमारूढैर्मण्डलाग्रकरैर्नरैः । क्रियते मारणं शत्रोर्न तु धर्मनिवेदनम् ॥२१८॥
मार्गे तिष्ठ कृपाणस्य किं व्यर्थं बहु भाषसे । कुरु वा प्रणिपातं मे तृतीयास्ति न ते गतिः ॥२१९॥
अथवा धनपालस्त्वं द्रविणं मम पालय । कुर्वाणो हि निजं कर्म पुरुषो नैव लज्जते ॥२२०॥
ततो वैश्रवणो भूय उवाचेति दशाननम् । नूनमायुस्तव स्वल्पं क्रूरं येनेति भाषसे ॥२२१॥
भूयोऽपि मानसं बिभ्रतो रोषणरूषितम् । अस्ति चेत्तव सामर्थ्यं जहीत्याह दशाननः ॥२२२॥
अगाद् स ततो ज्येष्ठस्त्वं मां प्रथममाजहि । वीर्यमक्षतकायानां शूराणां नहि वर्धते ॥२२३॥

ही अनुपम विषाद और राज्यलक्ष्मीसे उदासीनताको प्राप्त हुआ। जिस प्रकार पहले बाहुबलि अपने भाई भरतसे द्वेष कर पछताये उसी प्रकार वैश्रवण भी भाई दशाननसे विरोध कर पछताया। वह मन ही मन शान्त अवस्थाको प्राप्त होता हुआ विचार करने लगा कि जिस संसारमें प्राणी नाना योनियोंमें चक्रकी भाँति परिवर्तन करते रहते हैं वह संसार दुःखका पात्र है, कष्ट स्वरूप है, अतः उसे धिक्कार हो ॥२१९-२२०॥ देखो, ऐश्वर्यमें मत्त होकर मैंने यह कौन-सा कार्य प्रारम्भ कर रखा है कि जिसमें अहंकारवश अपने भाईका विध्वंस किया जाता है ॥२२१॥ वह इस प्रकार उत्कृष्ट वचन कहने लगा कि हे दशानन ! सुन, क्षणिक राज्यलक्ष्मीसे प्रेरित होकर यह कौन-सा पापकर्म किया जा रहा है ? ॥२२२॥ मैं तेरी मौसीका पुत्र हूँ अतः तुझपर सगे भाई-जैसा स्नेह करता हूँ। भाइयोंके साथ अनुचित व्यवहार करना उचित नहीं है ॥२२३॥ यह प्राणी मनोहर विषयोंकी आशासे प्राणियोंका वध कर बहुत भारी दुःखोंसे युक्त भयंकर नरकमें जाता है ॥२२४॥ जिस प्रकार कोई मनुष्य एक दिनका तो राज्य प्राप्त करे और उसके फलस्वरूप वर्ष-भर मृत्युको प्राप्त हो उसी प्रकार निश्चयसे यह प्राणी विषयोंके द्वारा क्षणस्थायी सुख प्राप्त करता है और उसके फलस्वरूप अपरिमित काल तक दुःख प्राप्त करता है ॥२२५॥ यथार्थमें यह जीवन नेत्रोंकी टिमकारके समान क्षणभंगुर है सो हे दशानन ! क्या तू यह जानता नहीं है जिससे भोगोंके निमित्त यह कार्य कर रहा है ? ॥२२६॥ तब दयाहीन दशाननने हँसते हुए कहा कि हे वैश्रवण ! यह धर्म-श्रवण करनेका समय नहीं है ॥२२७॥ मदोन्मत्त हाथियोंपर चढ़े तथा तलवारको हाथमें धारण करनेवाले मनुष्य तो शत्रुका संहार करते हैं न कि धर्मका उपदेश ॥२२८॥ व्यर्थ ही बहुत क्यों बक रहा है ? या तो तलवारके मार्गमें खड़ा हो या मेरे लिए प्रणाम कर। तेरी तीसरी गति नहीं है ॥२२९॥ अथवा तू धनपाल है सो मेरे धनकी रक्षा कर। क्योंकि जिसका जो अपना कार्य होता है उसे करता हुआ वह लज्जित नहीं होता ॥२३०॥ तब वैश्रवण फिर दशाननसे बोला कि निश्चय ही तेरी आयु अल्प रह गयी है इसीलिए तू इस प्रकार क्रूर वचन बोल रहा है ॥२३१॥ इसके उत्तरमें रोषसे रूषित मनको धारण करनेवाले दशाननने फिर कहा कि यदि तेरी सामर्थ्य है तो मार ॥२३२॥ तब वैश्रवणने कहा कि तू बड़ा है इसलिए प्रथम तू ही मुझे मार क्योंकि जिनके शरीरमें

---

१. पश्यैश्वर्यमूढेन म. । २. विषयी म. ।

[illegible] दशास्यस्य शरान् वैश्रवणोऽमुचत् । करानिवादनेर्मूर्ध्नि मध्याह्ने ज्योतिषां पतिः ॥२३३॥
[illegible]न् तस्य ततो बाणैर्दशाननः । मण्डपं च घनं चक्रे क्षणमात्रादनाकुलः ॥२३५॥
[illegible]नः प्राप्य शशाङ्कार्धेन्दुना ततः । दशास्यस्याच्छिनच्चापं चक्रे चैनं रथच्युतम् ॥२३६॥
[illegible] स्वमास्थाय वेगादम्भोदनिस्वनम् । तथासरवो दशग्रीवो द्रुतौके पुष्पकाह्वयम् ॥२३७॥
[illegible]रैस्ततस्तेन वज्रदण्डैर्घनेरितैः[1] । कणशः कवचं कीर्णं धनदस्य महाहवा ॥२३८॥
[illegible] मुक्तमालेऽथ भिण्डिमालेन वेगिना । जघान कैकसेयस्तं तथा मूर्च्छामितो यतः ॥२३९॥
[illegible] जातो महाक्रन्दः सैन्ये वैश्रवणाश्रिते । तोषाच्च रक्षसां सैन्ये जातः कलकलो महान् ॥२४०॥
[illegible] सुतैः समुद्धृतस्य वीरशय्याप्रतिष्ठितः । क्षिप्रं यक्षपुरं नीतो धनदो भृशदुःखितः ॥२४१॥
[illegible]रावणोऽपि जितं शत्रुं ज्ञात्वा निवर्तते रणात् । वीराणां शत्रुभङ्गेन कृतत्वं न धनादिना ॥२४२॥
[illegible] प्रतिक्रिया चक्रे धनदस्य चिकित्सकैः । प्राप्तश्च पूर्ववद्देहमिति चक्रे स चेतसि ॥२४३॥
[illegible]रस्य पुष्पमुक्तस्य[2] मत्तस्य वृषभस्य[3] च । सरसश्चाप्यपद्मस्य वर्तेऽहं सदृशोऽधुना ॥२४४॥
[illegible]दृशः पुंसो जीवतः संसृतौ सुखम् । तच्च मे साम्प्रतं नास्ति तस्मान्मुक्त्यर्थमार्यते ॥२४५॥
[illegible]र्यं न काङ्क्षन्ति सन्तो विषयजं सुखम् । यदेतदध्रुवं स्तोकं सान्तरायं सदुःखकम् ॥२४६॥
[illegible] कस्यचिदप्यत्र[4] कर्मणामिदमीहितम् । समस्तं प्राणिजातस्य कृतानामन्यजन्मनि ॥२४७॥

[illegible] लगता ऐसे शूर वीरोंका पराक्रम वृद्धिको प्राप्त नहीं होता ॥२३३॥ तदनन्तर मध्याह्नके [illegible] प्रकार सूर्य अपनी किरणें पृथिवीके ऊपर छोड़ता है उसी प्रकार वैश्रवणने दशाननके [illegible] छोड़े ॥२३४॥ तत्पश्चात् दशाननने अपने बाणोंसे उसके बाण छेद डाले और बिना [illegible]ुलताके लगातार छोड़े हुए बाणोंसे उसके ऊपर मण्डप-सा तान दिया ॥२३५॥ तदनन्तर [illegible] पाकर वैश्रवणने अर्धचन्द्र बाणसे दशाननका धनुष तोड़ डाला और उसे रथसे च्युत कर [illegible]॥२३६॥ तत्पश्चात् अद्भुत पराक्रमका धारी दशानन मेघके समान शब्द करनेवाले मेघनाद [illegible] दूसरे रथपर वेगसे चढ़कर वैश्रवणके समीप पहुँचा ॥२३७॥ वहाँ बहुत भारी क्रोधसे उसने [illegible]ोरसे चलाये हुए उल्काके समान आकारवाले वज्रदण्डोंसे वैश्रवण का कवच चूर-चूर कर [illegible]॥२३८॥ और सफेद मालाको धारण करनेवाले उसके हृदयमें वेगशाली भिण्डिमालसे इतने [illegible] प्रहार किया कि वह वहीं मूर्छित हो गया ॥२३९॥ यह देख वैश्रवणकी सेनामें रुदनका [illegible] होने लगा और राक्षसोंकी सेनामें हर्षके कारण बड़ा भारी कल-कल शब्द होने लगा [illegible]॥२४०॥ तब अतिशय दुःखी और वीरशय्यापर पड़े वैश्रवणको उसके भृत्यगण शीघ्र ही यक्षपुर ले [illegible]॥२४१॥ रावण भी शत्रुको पराजित जान युद्धसे विमुख हो गया सो ठीक ही है क्योंकि वीर [illegible] कृतकृत्यपना शत्रुओंके पराजयसे ही हो जाता है । धनादिकी प्राप्तिसे नहीं ॥२४२॥

अथानन्तर वैद्योंने वैश्रवणका उपचार किया सो वह पहलेके समान स्वस्थ शरीरको प्राप्त [illegible]। स्वस्थ होनेपर उसने मनमें विचार किया ॥२४३॥ कि इस समय मैं पुष्परहित वृक्ष, फूटे [illegible] अथवा कमलरहित सरोवरके समान हूँ ॥२४४॥ जबतक मनुष्य मानको धारण करता है [illegible] तबतक संसारमें जीवित रहते हुए उसे सुख होता है । इस समय मेरा वह मान नष्ट हो गया है [illegible]लिए मुक्ति प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न करता हूँ ॥२४५॥ चूँकि यह विषयजन्य सुख अनित्य है, [illegible] है, सान्तराय है और दुःखोंसे सहित है इसलिए सत्पुरुष उसकी चाह नहीं रखते ॥२४६॥ [illegible] किसीका अपराध नहीं है, यह तो प्राणियोंने अन्य जन्ममें जो कर्म कर रखे हैं उन्हींकी

---

१. -ेरितः म. । २. मुक्तपुष्पस्य । ३. घटस्य । ४. आ समन्ताद् यत्नं करोमि । ५. नापराधः ।
[illegible]. कस्यचिदप्यस्य म. ।

निमित्तमात्रतान्येषामसुखस्य सुखस्य वा । बुधास्तेभ्यो न कुप्यन्ति संसारस्थितिवेदिनः ॥२४८॥
कल्याणमित्रतां यातः कैकसीतनयो मम । गृहावासमहापाशाद्येनाहं मोचितोऽमतिः ॥२४९॥
बान्धवो भानुकर्णोऽपि संवृत्तः सांप्रतं मम । संग्रामकारणं येन कृतं परमसंविदे ॥२५०॥
इति संचिन्त्य जग्राह दीक्षां दैगम्बरीमसौ । आराध्य च तपः सम्यक् क्रमाद्धाम परं गतः ॥२५१॥
प्रक्षाल्य दशवक्त्रोऽपि पराभवमलं कुले । सुखासिकामगादुर्व्यां बन्धुभिः शेखरीकृतः ॥२५२॥
अथ प्रवर्तितं तस्य मनोज्ञं धानदाधिपम् । प्रत्युद्गतरत्नशिखरं घातायनविलोचनम् ॥२५३॥
मुक्ताजालप्रमुक्तेन समूहेनामलत्विषाम् । समुत्सृजदिवाजस्रमश्रु स्वामिवियोगतः ॥२५४॥
पद्मरागविनिर्माणमग्रदेशं दधच्छुचा । ताडनादिव संप्राप्तं हृदयं रक्ततां पराम् ॥२५५॥
इन्द्रनीलप्रभाजालकृतप्रावरणं क्वचित् । शोकादिव परिप्राप्तं श्यामलत्वमुदारतः ॥२५६॥
चैत्यकाननवाह्यालीवाप्यन्तर्भवनादिभिः । सहितं नगराकारं नानाशस्त्रकृतक्षतम् ॥२५७॥
भृत्यैरुपाहृतं तुङ्गं सुरप्रासादसंनिभम् । विमानं पुष्पकं नाम विद्यायस्तलमण्डनम् ॥२५८॥
अरातिभङ्गचिह्नत्वादियेषेदं स मानवान् । अन्यथा तस्य किं नास्ति यानं विद्याविनिर्मितम् ॥२५९॥
स तं विमानमारुह्य सामात्यः सहवाहनः । सपौरः सात्मजः सार्धं पितृभ्यां सहबन्धुभिः ॥२६०॥

समस्त लोग हैं ॥२४७॥ दुःख अथवा सुखके दूसरे लोग निमित्त मात्र हैं, इसलिए संसारकी स्थितिके जाननेवाले विद्वान् उनसे कुपित नहीं होते हैं अर्थात् निमित्तके प्रति हर्ष-विषाद नहीं करते हैं ॥२४८॥ वह दशानन मेरा कल्याणकारी मित्र है कि जिसने मुझ दुर्बुद्धिको गृहवासरूपी महाबन्धनसे मुक्त करा दिया ॥२४९॥ भानुकर्ण भी इस समय मेरा परम हितैषी हुआ है कि जिसके द्वारा किया हुआ संग्राम मेरे परम वैराग्यका कारण हुआ है ॥२५०॥ इस प्रकार विचारकर उसने दैगम्बरी दीक्षा धारण कर ली और समीचीन तपकी आराधना कर परम धाम प्राप्त किया ॥२५१॥

इधर दशानन भी अपने कुलके ऊपर जो पराभवरूपी मैल जमा हुआ था उसे धोकर पृथिवीमें सुखसे रहने लगा तथा समस्त बन्धुजनोंने उसे अपना शिरमौर माना ॥२५२॥ अथानन्तर वैश्रवणका जो पुष्पक विमान था उसे रावणके भृत्यजन रावणके समीप ले आये। वह पुष्पक विमान अत्यन्त सुन्दर था, वैश्रवण उसका स्वामी था, उसके शिखरमें नाना प्रकारके रत्न जड़े हुए थे, झरोखे उसके नेत्र थे, उसमें जो मोतियोंकी झालर लगी थी उससे निर्मल कान्तिका समूह निकल रहा था और उससे वह ऐसा जान पड़ता था मानो स्वामीका वियोग हो जानेके कारण निरन्तर आँसू ही छोड़ता रहता हो। उसका अग्रभाग पद्मराग मणियोंसे बना था इसलिए उसे धारण करता हुआ वह ऐसा जान पड़ता था मानो शोकके कारण उसने हृदयको बहुत कुछ पीटा था इसीलिए वह अत्यन्त लालिमाको धारण कर रहा था। कहीं-कहीं इन्द्रनील मणियोंकी प्रभा उसपर आवरण कर रही थी जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो शोकके कारण ही वह अत्यन्त श्यामलताको प्राप्त हुआ हो। चैत्यालय, वन, मकानोंके अग्रभाग, वापिका तथा महल आदिसे सहित होनेके कारण वह किसी नगरके समान जान पड़ता था। नाना शस्त्रोंने उस विमानमें चोटें पहुँचायी थीं, वह बहुत ही ऊँचा था, देवभवनके समान जान पड़ता था और आकाशतलका मानो आभूषण ही था ॥२५३-२५८॥ मानो दशाननने शत्रुकी पराजयका चिह्न समझ उस पुष्पक विमानको अपने पास रखनेकी इच्छा की थी अन्यथा उसके पास विद्यानिर्मित कौन-सा वाहन नहीं था? ॥२५९॥ वह उस विमानपर आरूढ़ होकर मन्त्रियों, वाहनों, नागरिकजनों, पुत्रों, माता-पिताओं

---

१. दुर्व्यां क., ख. । २. अथापवर्तितं म. । ३. परम् म. । ४. कृतं प्रावरणं म. । ५. गर्वयुक्तः ।

[illegible]पुरमहापद्मषण्डमध्यगतः सुखी । अव्याहतगतिः स्वेच्छाकृतविभ्रमभूषणः ॥२६१॥
[illegible]त्रिशूलनिस्त्रिंशप्रासपाशादिपाणिभिः । भूयैरनुगतो [illegible]र्हितासुकर्मभिः ॥२६२॥
[illegible]मूलसमूहान्तैः सामन्तैर्बन्धुमण्डलैः । गुणप्रणयचेतोभिर्महाविभवशोभितैः ॥२६३॥
[illegible]विद्याधरीपाणिगृहीतैश्चारुचामरैः । वीज्यमानो विलिप्ताङ्गो गोशीर्षादिविलेपनैः ॥२६४॥
[illegible]च्युतातपत्रेण रजनीकरशोभिना । [1]यशसेवागतः शोभां लब्धेनारातिभङ्गतः ॥२६५॥
[illegible]दधानः पुण्यजं फलम् । विन्दन् दक्षिणमम्भोधिं ययाविन्द्रसमः श्रिया ॥२६६॥
[illegible]नुगमनं चक्रे कुम्भकर्णो गजस्थितः । विभीषणो रथस्थश्च स्वगर्वविभवान्वितः ॥२६७॥
[illegible]त्यो मयोऽप्येनमन्वियाय सबान्धवः । सामन्तैः सहितः सिंहशरभादियुते रथैः ॥२६८॥
[illegible]रीचोऽम्बरविद्युच्च वज्रो वज्रोदरो बुधः । वज्राक्षः क्रूरनक्रश्च सारणः सुनयः शुकः ॥२६९॥
[illegible]पश्च मन्त्रिणोऽन्ये च बहवः खेचराधिपाः । अनुजग्मुरुदारेण विभवेन समन्विताः ॥२७०॥
[illegible]दक्षिणाशामशेषां स वशीकृत्य ततोऽन्यतः । विजहार महीं पश्यन् सवनाद्रिसमुद्रगाम् ॥२७१॥
[illegible]सावम्बदापृच्छत् सुमालिनमुदद्भुतः । उच्चैर्गगनमारूढो विनयानतविग्रहः ॥२७२॥
[illegible]रसोरहितेऽमुष्मिन् पूज्यपर्वतमूर्द्धनि । घनानि पश्य पद्मानां जातान्येतन्महाद्भुतम् ॥२७३॥
[illegible]स्मिन् निश्चलाः [3]स्वामिन् कथमत्र महीतले । पतिता विविधच्छायाः सुमहान्तः पयोमुचः ॥२७४॥

बन्धुजनोंके साथ चला ॥२६०॥ वह उस विमानके अन्दर अन्तःपुररूपी महाकमलवनके बीच सुखसे बैठा था, उसकी गतिको कोई नहीं रोक सकता था, तथा अपनी इच्छानुसार उसने विभावरूपी आभूषण धारण कर रखे थे ॥२६१॥ चाप, त्रिशूल, तलवार, भाला तथा पाश आदि शस्त्र जिनके हाथमें थे तथा जिन्होंने अनेक आश्चर्यजनक कार्य करके दिखलाये थे ऐसे अनेक भृत्य उसके पीछे-पीछे चल रहे थे ॥२६२॥ जिन्होंने शत्रुओंके समूहका अन्त कर दिया था, जो परिकर मण्डल बनाकर पास खड़े थे, जिनका चित्त गुणोंके आधीन था तथा जो महावैभवसे सुशोभित थे ऐसे अनेक सामन्त उसके साथ जा रहे थे ॥२६३॥ गोशीर्ष आदि विलेपनोंसे उसका समस्त शरीर लिप्त था तथा उत्तमोत्तम विद्याधरियाँ हाथमें लिये हुए सुन्दर चमरोंसे उसे हवा कर रही थीं ॥२६४॥ वह चन्द्रमाके समान सुशोभित ऊपर तने हुए छत्रसे ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो शत्रुकी पराजयसे उत्पन्न यशसे ही सुशोभित हो रहा हो ॥२६५॥ वह सूर्यके समान अतिशय तेजको धारण कर रहा था तथा लक्ष्मीसे इन्द्रके समान जान पड़ता था। इस प्रकार पुण्यसे उत्पन्न फलको प्राप्त होता हुआ वह दक्षिणसमुद्रकी ओर चला ॥२६६॥ हाथीपर बैठा हुआ कुम्भकर्ण और रथपर बैठा तथा स्वाभिमान रूपी वैभवसे युक्त विभीषण इस प्रकार दोनों भाई उसके पीछे-पीछे जा रहे थे ॥२६७॥ भाई-बान्धवों एवं सामन्तोंसे सहित महादैत्य मय भी, जिनमें सिंह-शरभ आदि जन्तु जुते थे ऐसे रथोंपर बैठकर जा रहा था ॥२६८॥ मरीच, अम्बरविद्युत्, वज्र, वज्रोदर, बुध, वज्राक्ष, क्रूरनक्र, सारण और सुनय ये राजा मयके मन्त्री तथा उत्कृष्ट वैभवसे युक्त अन्य अनेक विद्याधरोंके राजा उसके पीछे-पीछे चल रहे थे ॥२६९-२७०॥ इस प्रकार समस्त दक्षिण दिशाको वश कर वह वन, पर्वत तथा समुद्रसे सहित पृथ्वीको देखता हुआ अन्य दिशाकी ओर चला ॥२७१॥

अथानन्तर एक दिन विनयसे जिसका शरीर झुक रहा था, ऐसा दशानन आकाशमें बहुत ऊँचे चढ़कर अपने दादा सुमालीसे आश्चर्यचकित हो पूछता है कि हे पूज्य ! इधर इस पर्वतके शिखरपर सरोवर तो नहीं है पर कमलोंका वन लहलहा रहा है सो इस महाआश्चर्यको आप देखें ॥२७२-२७३॥ हे स्वामिन् ! यहाँ पृथ्वीतलपर पड़े रंगबिरंगे बड़े-बड़े मेघ निश्चल होकर कैसे खड़े

१. यशसा + इव + आगतः । २. उत्कटाश्चर्ययुक्तः । ३. निश्चलाश्चामी म., क. ।

नमः सिद्धेभ्य इत्युक्त्वा सुमाली तमथागदत् । नामूनि शतपत्राणि न चैते वत्स तोयदाः ॥२७५॥
सितकेतुकृतच्छायाः सहस्राकारतोरणाः । शृङ्गेषु पर्वतस्यामी विराजन्ते जिनालयाः ॥२७६॥
कारिता हरिषेणेन सज्जनेन महात्मना । एतान् वत्स नमस्य त्वं सद्य पूतमनाः क्षणात् ॥२७७॥
ततस्तत्रस्थ एवासौ नमस्कृत्य जिनालयान् । उवाच विस्मयापन्नो धनदस्य विमर्दकः ॥२७८॥
आसीत्किं तस्य माहात्म्यं हरिषेणस्य कथ्यताम् । प्रसीदत्येतम येनासौ भवद्भिरिति कीर्तितः ॥२७९॥
सुमाली व्यगदच्चैवं साधु पृष्टं दशानन । चरितं हरिषेणस्य शृणु पापविदारणम् ॥२८०॥
काम्पिल्यनगरे राजा नाम्ना सृगपतिध्वजः । बभूव यशसा व्याप्तसमस्तभुवनो महान् ॥२८१॥
महिषी तस्य वप्राख्या प्रमदागुणशालिनी । अभूत् सौभाग्यतः प्राप्ता पत्नीशतललामताम् ॥२८२॥
हरिषेणः समुत्पन्नः स ताभ्यां परमोदयः । चतुःषष्ट्या शुभैर्युक्तो लक्षणैः कृतदुष्कृतः ॥२८३॥
वप्रया चान्यदा जैने मते भ्रमयितुं रथे । आष्टाह्निकमहानन्दे नगरे धर्मशीलया ॥२८४॥
महालक्ष्मीरिति ख्याता सौभाग्यमदविह्वला । अवृत्तमवदत्तस्याः सपत्नी दुर्विचेष्टिता ॥२८५॥
पूर्वं ब्रह्मरथो यातु मदीयः पुरवर्त्मनि । भ्रमिष्यति ततः पश्चाद्वप्रया कारितो रथः ॥२८६॥
इति श्रुत्वा ततो वप्रा कुलिशेनेव ताडिता । हृदये दुःखसंतप्ता प्रतिज्ञामकरोदिमाम् ॥२८७॥
भ्रमिष्यति रथोऽयं मे प्रथमं नगरे यदि । पूर्ववत्पुनराहारं करिष्येऽतोऽन्यथा तु न ॥२८८॥
इत्युक्त्वा च यत्रन्यासौ प्रतिज्ञालक्ष्मवेणिकाम् । व्यापाररहितावस्थाशोकम्लानास्यपङ्कजा ॥२८९॥

हैं ? ॥२७४॥ तब सुमालीने 'नमः सिद्धेभ्यः' कहकर दशाननसे कहा कि हे वत्स ! न तो ये कमल हैं और न मेघ ही हैं ॥२७५॥ किन्तु सफेद पताकाएँ जिनपर छाया कर रही हैं तथा जिनमें हजारों प्रकारके तोरण बने हुए हैं ऐसे ऐसे ये जिन-मन्दिर पर्वतके शिखरोंपर सुशोभित हो रहे हैं ॥२७६॥ ये सब मन्दिर महापुरुष हरिषेण चक्रवर्तीके द्वारा बनवाये हुए हैं । हे वत्स ! तू इन्हें नमस्कार कर और क्षण-भरमें अपने हृदयको पवित्र कर ॥२७७॥ तदनन्तर वैश्रवणका मानमर्दन करनेवाले दशाननने वहीं खड़े रहकर जिनालयोंको नमस्कार किया और आश्चर्यचकित हो सुमालीसे पूछा कि पूज्यवर ! हरिषेणका ऐसा क्या माहात्म्य था कि जिससे आपने उनका इस तरह कथन किया है ? ॥२७८–२७९॥ तब सुमालीने कहा कि हे दशानन ! तूने बहुत अच्छा प्रश्न किया । अब पापको नष्ट करनेवाला हरिषेणका चरित्र सुन ॥२८०॥ काम्पिल्य नगरमें अपने यशके द्वारा समस्त संसार-को व्याप्त करनेवाला सिंहध्वज नामका एक बड़ा राजा रहता था ॥२८१॥ उसकी वप्रा नामकी पटरानी थी जो स्त्रियोंके योग्य गुणोंसे सुशोभित थी तथा अपने सौभाग्यके कारण सैकड़ों रानियोंमें आभूषणपनाको प्राप्त थी ॥२८२॥ उन दोनोंसे परम अभ्युदयको धारण करनेवाला हरिषेण नामका पुत्र हुआ । वह पुत्र उत्तमोत्तम चौंसठ लक्षणोंसे युक्त था तथा पापोंको नष्ट करनेवाला था ॥२८३॥ किसी एक समय आष्टाह्निक महोत्सव आया सो धर्मशील वप्रा रानीने नगरमें जिनेन्द्र भगवान्का रथ निकलवाना चाहा ॥२८४॥ राजा सिंहध्वजकी महालक्ष्मी नामक दूसरी रानी थी जो कि सौभाग्यके गर्वसे सदा विह्वल रहती थी । अनेक खोटी चेष्टाओंसे भरी महालक्ष्मी वप्राकी सौत थी इसलिए उसने उसके विरुद्ध आवाज उठायी कि पहले मेरा ब्रह्मरथ नगरकी गलियोंमें घूमेगा । उसके पीछे वप्रा रानीके द्वारा बनवाया हुआ जैनरथ घूम सकेगा ॥२८५–२८६॥ यह सुनकर वप्राको इतना दुःख हुआ कि मानो उसके हृदयमें वज्रकी ही चोट लगी हो । दुःखसे सन्तप्त होकर उसने प्रतिज्ञा की कि यदि मेरा यह रथ नगरमें पहले घूमेगा तो मैं पूर्वकी तरह पुनः आहार करूँगी अन्यथा नहीं ॥२८७–२८८॥

---

१. अतिशयेन पूज्य । २. पत्नी सा ललामताम् म. । ३. आभरणताम् । ४. चतुःषष्टिशुभै- म., ख. । ५. रथम् म., वप्रया जैने रथे भ्रमयितुं मते इष्टे सतीत्यर्थः । ६. प्रतिज्ञां लक्ष्य म. ।

मार्गदर्शक

[illegible]वासान् विसृजन्तीमश्रुबिन्दूनवारतम् । हरिषेणः समालोक्य जननीमित्यवोचत ॥२९०॥
[illegible]तस्मादिदं पूर्वं स्वप्नेऽपि न निषेवितम् । त्वया रोदनमारब्धममङ्गलमलं वद ॥२९१॥
[illegible]र्दितं स ततः श्रुत्वा हेतुमेवं व्यचिन्तयत् । किं करोमि गुरोः पीडा प्राप्तेयं कथमीरिता ॥२९२॥
[illegible]जनी पैत्र्या ह्याध्येतौ महागुरू । करोमि कं प्रतिद्वेषमहो मग्नोऽस्मि संकटे ॥२९३॥
[illegible]ततो द्रष्टुं मातरं साश्रुलोचनाम् । निष्क्रम्य भवनाद्यातो वनं व्यालसमाकुलम् ॥२९४॥
[illegible]कादीनि भक्षयन् विजने वने । सरस्सु च पिबन्नम्भो विजहार भयोज्झितः ॥२९५॥
[illegible]स्य तं दृष्ट्वा पशवोऽपि सुनिर्दयाः । क्षणेनोपशमं जग्मुर्भव्याः कस्य न संमतः ॥२९६॥
[illegible]स्मर्यमाणं तत्कृतं मात्रा प्ररोदनम् । बबाधे तं प्रलापश्च कृतो गद्गदकण्ठया ॥२९७॥
[illegible]प्रदेशेषु वने तस्यास्य नो धृतिः । बभूव कुर्वतो नित्यं भ्रमणं मृदुचेतसा ॥२९८॥
[illegible]देव इति भ्रान्तिं कुर्वाणोऽसावनारतम् । दूरविस्तारिताक्षीभिर्मृगीभिः कृतवीक्षणः ॥२९९॥
[illegible]शिष्यशतमन्युवनाश्रमम् । विरोधं दूरमुज्झित्वा वनप्राणिभिराश्रितम् ॥३००॥
[illegible]ख्यातश्चण्ड रुद्रायां कालकल्पाख्यभूभृता । रुद्रेण साधनं भूरि बिभ्रता पुरुतेजसा ॥३०१॥
[illegible]जनमेजयः । पूर्वं रचितया तावत्सुदूरगसुरङ्गया ॥३०२॥

यह कहकर उसने प्रतिज्ञाके चिह्नस्वरूप वेणी बाँध ली और सब काम छोड़ दिया। [illegible] मुखकमल शोकसे मुरझा गया, वह निरन्तर मुखसे उच्छ्वास और नेत्रोंसे आँसू छोड़ रही थी। माताकी ऐसी दशा देख हरिषेणने कहा कि हे मातः ! जिसका पहले कभी स्वप्नमें भी सेवन नहीं किया वह अमांगलिक रुदन तुमने क्यों प्रारम्भ किया ? अब बस करो और [illegible] कारण कहो ॥२८९-२९१॥ तदनन्तर माताका कहा कारण सुनकर हरिषेणने इस प्रकार विचार किया कि अहो ! मैं क्या करूँ ? यह बहुत भारी पीड़ा प्राप्त हुई है सो पितासे इसे कैसे [illegible] ? ॥२९२॥ वह पिता हैं और यह माता हैं। दोनों ही मेरे लिए परम गुरु हैं। मैं किसके प्रति द्वेष करूँ ? आश्चर्य है कि मैं बड़े संकटमें आ पड़ा हूँ ॥२९३॥ कुछ भी हो पर मैं रुदन करती [illegible] देखनेमें असमर्थ हूँ। ऐसा विचारकर वह महलसे निकल पड़ा और हिंसक जन्तुओंसे भरे हुए वनमें चला गया ॥२९४॥ वहाँ वह निर्जन वनमें मूल, फल आदि खाता और सरोवरमें [illegible] पीता हुआ निर्भय हो घूमने लगा ॥२९५॥ हरिषेणका ऐसा रूप था कि उसे देखकर दुष्ट [illegible] भी क्षण-भरमें उपशम भावको प्राप्त हो जाते थे सो ठीक ही है क्योंकि भव्य जीव किसे नहीं प्रिय होता है ? ॥२९६॥ निर्जन वनमें भी जब हरिषेणको माताके द्वारा किये हुए रुदनकी याद आती थी तब वह अत्यन्त दुःखी हो उठता था। माताने गद्गद कण्ठसे जो भी प्रलाप किया [illegible] सब स्मरण आनेपर उसे बहुत कुछ बाधा पहुँचा रहा था ॥२९७॥ कोमल चित्तसे निरन्तर भ्रमण करनेवाले हरिषेणको वनके भीतर एक-से-एक बढ़कर मनोहर स्थान मिलते थे पर उनमें उसे धैर्य प्राप्त नहीं होता था ॥२९८॥ क्या यह वनदेव है ? इस प्रकारकी भ्रान्ति वह निरन्तर करता रहता था और हरिणियाँ उसे दूर तक आँख फाड़-फाड़कर देखती रहती थीं ॥२९९॥ इस प्रकार घूमता हुआ हरिषेण, जहाँ वनमें प्राणी परस्परका वैरभाव दूर छोड़कर शान्तिसे रहते थे ऐसे अंगिरस ऋषिके शिष्य शतमन्युके आश्रममें पहुँचा ॥३००॥

अथानन्तर एक कालकल्प नामका राजा था जो महाभयंकर, महाप्रतापी और बहुत बड़ी सेनाको धारण करनेवाला था सो उसने चारों ओरसे चम्पा नगरीको घेर लिया ॥३०१॥ चम्पाका राजा जनमेजय जबतक उसके साथ युद्ध करता है तबतक पहलेसे बनवायी हुई लम्बी सुरंगसे माता नागवती अपनी पुत्रीके साथ निकलकर शतमन्यु ऋषिके उस आश्रममें पहलेसे

१. बबाधेतं म., क. । २. स इत्याय म. ।

नाम्ना नागवती तस्या माता तनुजया समम् । पूर्वमेव गता देशं शतमन्युपतिश्रितम् ॥३०३॥
नागवत्याः सुता तस्मिन् दृष्ट्वा तं रूपशालिनम् । मन्मथस्य शरैर्विद्धा तनुविक्लवताकरैः ॥३०४॥
ततस्तामन्यथामूतां दृष्ट्वा नागवती जगौ । सुते भव विनीता त्वं स्मर वाक्यं महामुनेः ॥३०५॥
पूर्वं हि मुनिना प्रोक्तं यथा त्वं चक्रवर्तिनः । भविता वनितारत्नमिति संज्ञानचक्षुषा ॥३०६॥
रक्तां च तस्य तां ज्ञात्वा मृशं भीतैरकीर्तितः । आश्रमात्तापसैर्मूढैर्हरिषेणो निराकृतः ॥३०७॥
ततो दग्धोऽपमानेन कन्यामादाय चेतसा । बभ्राम सततं क्लिष्टो भ्रामर्येव स विद्यया ॥३०८॥
नाशने शयनीये न पुष्पपल्लवकल्पिते । फलानां भोजने नैव पाने वा सरसोऽम्भसः ॥३०९॥
न ग्रामे नगरे नोपवने रम्यलतागृहे । धृतिं लेभे समुत्कण्ठभराक्रान्तः स शोकवान् ॥३१०॥
दावाग्निसदृशास्तेन पद्मखण्डा निरीक्षिताः । वज्रसूचीसमास्तस्य बभूवुश्चन्द्ररश्मयः ॥३११॥
विशालपुलिनाश्चास्य स्वच्छतोयाः समुद्गताः । मनो जहन्ति चाकृष्टकन्याजघनसाम्यतः ॥३१२॥
मनोऽस्य केतकीसूची कुन्तयष्टिरिवाभिनत् । चक्रवच्च कदम्बानां पुष्पं सुरभि चिच्छिदे ॥३१३॥
कुटजानां विधूतानि कुसुमानि समस्वता । मर्माणि चिच्छिदुस्तस्य मन्मथस्येव सायकाः ॥३१४॥
इति चाचिन्तयल्लप्स्ये स्त्रीरत्नं यदि नाम तत् । ततः शोकमहं मातुरपनेष्याम्यसंशयम् ॥३१५॥
प्राप्तमेव ततो मन्ये पतित्वं भरतेऽखिले । आकृतिर्न हि सा तस्याः स्तोकभोगविधायिनी ॥३१६॥
नदीकूलेष्वरण्येषु ग्रामेषु नगरेषु च । पर्वतेषु च चैत्यानि कारयिष्याम्यहं ततः ॥३१७॥
मातुः शोकेन संतप्तो मृतः स्यां यदि सामहम् । न पश्येयं धृतिं जीवो मम तत्संगमाशया ॥३१८॥

ही पहुँच गयी थी ॥३०२-३०३॥ वहाँ नागवतीकी पुत्री सुन्दर रूपसे सुशोभित हरिषेणको देखकर शरीरमें बेचैनी उत्पन्न करनेवाले कामदेवके बाणोंसे घायल हो गयी ॥३०४॥ तदनन्तर पुत्रीको अन्यथा देख नागवतीने कहा कि हे पुत्री ! सावधान रह, तू महामुनिके वचन स्मरण कर ॥३०५॥ सम्यग्ज्ञानरूपी चक्षुको धारण करनेवाले मुनिराजने पहले कहा था कि तू चक्रवर्तीका स्त्रीरत्न होगी ॥३०६॥ तपस्वियोंको जब मालूम हुआ कि नागवतीकी पुत्री हरिषेणसे बहुत अनुराग रखती है तो अपकीर्तिसे डरकर उन मूढ़ तपस्वियोंने हरिषेणको आश्रमसे निकाल दिया ॥३०७॥ तब अपमानसे जला हरिषेण हृदयमें कन्याको धारण कर निरन्तर इधर-उधर घूमता रहा । ऐसा जान पड़ता था मानो वह भ्रामरी विद्यासे आलिंगित होकर ही निरन्तर घूमता रहता था ॥३०८॥ उत्कण्ठाके भारसे दबा हरिषेण निरन्तर शोकग्रस्त रहता था । उसे न भोजनमें, न पुष्प और पल्लवोंसे निर्मित शय्यामें, न फलोंके भोजनमें, न सरोवरका जल पीनेमें, न गाँवमें, न नगरमें और न मनोहर निकुंजोंसे युक्त उपवनमें धीरज प्राप्त होता था ॥३०९-३१०॥ कमलोंके समूहको वह दावानलके समान देखता था और चन्द्रमाकी किरणें उसे वज्रकी सुईके समान जान पड़ती थीं ॥३११॥ विशाल तटोंसे सुशोभित एवं स्वच्छ जलको धारण करनेवाली नदियाँ इसके मनको इसलिए आकर्षित करती थीं, क्योंकि उनके तट, इसके प्रति आकर्षित कन्याके नितम्बोंकी समानता रखते थे ॥३१२॥ केतकीकी अनी भालेके समान इसके मनको भेदती रहती थी और कदम्बवृक्षोंके सुगन्धित फूल चक्रके समान छेदते रहते थे ॥३१३॥ वायुके मन्द-मन्द झोंकेसे हिलते हुए कुटज वृक्षोंके फूल कामदेवके बाणोंके समान उसके मर्मस्थल छेदते रहते थे ॥३१४॥ हरिषेण ऐसा विचार करता रहता था कि यदि मैं उस स्त्रीरत्नको पा सका तो निःसन्देह माताका शोक दूर कर दूँगा ॥३१५॥ यदि वह कन्या मिल गयी तो मैं यही समझूँगा कि मुझे समस्त भरत क्षेत्रका स्वामित्व मिल गया है । क्योंकि उसकी जो आकृति है वह अल्पभोगोंको भोगनेवाली नहीं है ॥३१६॥ यदि मैं उसे पा सका तो नदियोंके तटोंपर, वनोंमें, गाँवोंमें, नगरोंमें और पर्वतोंपर जिन-मन्दिर बनवाऊँगा ॥३१७॥ यदि मैं उसे नहीं देखता तो माताके शोकसे सन्तप्त होकर

१. नागमती म. । २. नद्यः । ३. पुष्पाणि च नभस्वता क. । ४. यदि चा -म. । ५. गतो क. ।

मार्गदर्शक

[illegible] चाम्यन्ध बहुदुःखितमानसः । विस्मृतो जननीशोकं स बभ्राम मही यथा ॥३१९॥
[illegible] बहून् देशान् प्राप्तः सिन्धुनदं पुरम् । तदवस्थोऽपि वीर्येण तेजसा [1]चोरुणान्वितः ॥३२०॥
[illegible] [illegible] [illegible] [

कलीबास्ते तापसा येन क्षमा तेषां मया कृता । सारङ्गसमवृत्तीनां निर्वासेन कृतागसाम् ॥३३३॥
वसतां गुरुगेहेषु क्षमात्यन्तवरीयसी । कृता सा हि हितात्यन्तं संजाता परमोदया ॥३३४॥
उक्तमेवं ततस्तेन तारनिष्ठुरया गिरा । भो भो हस्तिपकाम्येन नय देशेन वारणम् ॥३३५॥
ततो हस्तिपकेनोक्तमहो ते धृष्टता परा । यन्मनुष्यं गजं वेत्सि स्वं च वेत्सि मतङ्गजम् ॥३३६॥
नूनं मृत्युसमीपोऽसि यन्मदं वहसे गजे । ग्रहेण[2] वा गृहीतोऽसि व्रजास्मादाशु गोचरात् ॥३३७॥
विहस्य स ततः कोपाल्लीलया कृतनर्तनः । सान्त्वयित्वाङ्गनाः कृत्वा पृष्ठतो गजमभ्यगात् ॥३३८॥
विद्युद्विलसितेनासौ करणेन ततो नभः । उत्पत्य दशने पादं कृत्वाऽरुक्षन्मतङ्गजम् ॥३३९॥
ततः क्रीडितुमारेभे गजेन सह लीलया । दृष्टनष्टैः[3] समस्तेषु गात्रेष्वस्य पुनर्भुवि ॥३४०॥
पारम्पर्यं [illegible] श्रुत्वा कृत्वा कलकलं महत् । विनिष्क्रान्तं पुरं सर्वं द्रष्टुमेतन्महाद्भुतम् ॥३४१॥
वातायनगताश्चेक्षांचक्रिरे तं महाङ्गनाः । चक्रुर्मनोरथान् कन्यास्तत्समागमसंगतान् ॥३४२॥
आस्फालनैर्महाशब्दैर्मुहुर्गात्रविधूननैः । कृतोऽसौ निर्मदस्तेन क्षणमात्रेण वारणः ॥३४३॥
हर्म्यपृष्ठगतो दृष्ट्वा तदाश्चर्यं पुराधिपः । सिन्धुनामाखिलं तस्मै प्रजिघाय परिच्छदम् ॥३४४॥
ततः कृताकृतच्छाये नानावर्णैकभासुरे । आरूढः स गजे तस्मिन् विभूत्या परयान्वितः ॥३४५॥

कोमल प्राणीका ही पराभव करता है, कठोर प्राणीको दुःख पहुँचानेकी वह इच्छा भी नहीं करता ॥३३२॥ वे तपस्वी तो अत्यन्त दीन थे इसलिए मैंने उनपर क्षमा धारण की थी। उन तपस्वियोंने आश्रमसे निकालकर यद्यपि अपराध किया था पर उनकी वृत्ति हरिणोंके समान दीन थी साथ ही वे गुरुओंके घर रहते थे इसलिए उनपर क्षमा धारण करना अत्यन्त श्रेष्ठ था। यथार्थमें मैंने उनपर जो क्षमा की थी वह मेरे लिए अत्यन्त हितावह तथा परमाभ्युदयका कारण हुई है ॥३३३-३३४॥ तदनन्तर हरिषेणने बड़े जोरसे चिल्लाकर कहा कि रे महावत ! तू हाथी दूसरे स्थानसे ले जा ॥३३५॥ 'तब महावतने कहा कि अहो ! तेरी बड़ी धृष्टता है कि जो तू हाथीको मनुष्य समझता है और अपनेको हाथी मानता है ॥३३६॥ जान पड़ता है कि तू मृत्युके समीप पहुँचनेवाला है इसलिए तो हाथीके विषयमें गर्व धारण कर रहा है अथवा तुझे कोई भूत लग रहा है। यदि भला चाहता है तो शीघ्र ही इस स्थानसे चला जा। ॥३३७॥ तदनन्तर क्रोधवश लीलापूर्वक नृत्य करते हुए हरिषेणने जोरसे अट्टहास किया, स्त्रियोंको सान्त्वना दी और स्वयं स्त्रियोंको अपने पीछे कर हाथीके सामने गया ॥३३८॥ तदनन्तर बिजलीकी चमकके समान शीघ्र ही आकाशमें उछलकर और खीशपर पैर रखकर वह हाथीपर सवार हो गया ॥३३९॥ तदनन्तर उसने लीलापूर्वक हाथीके साथ क्रीड़ा करना शुरू किया। क्रीड़ा करते-करते कभी तो वह दिखाई देता था और कभी अदृश्य हो जाता था। इस तरह उसने हाथीके समस्त शरीरपर क्रीड़ा की पश्चात् पृथ्वीपर नीचे उतरकर भी उसके साथ नाना क्रीड़ाएँ कीं ॥३४०॥ तदनन्तर परम्परासे इस महान् कल-कलको सुनकर नगरके सब लोग इस महाआश्चर्यको देखनेके लिए बाहर निकल आये ॥३४१॥ बड़ी-बड़ी स्त्रियोंने झरोखोंमें बैठकर उसे देखा तथा कन्याओंने उसके साथ समागमकी इच्छाएँ कीं ॥३४२॥ आस्फालन अर्थात् पीठपर हाथ फेरनेसे, जोरदार डाँट-डपटके शब्दोंसे और बार-बार शरीरके कम्पनसे हरिषेणने उस हाथीको क्षण-भरमें मदरहित कर दिया ॥३४३॥ नगरका राजा सिन्ध, महलकी छतपर बैठा हुआ यह सब आश्चर्य देख रहा था। वह इतना प्रसन्न हुआ कि उसने हरिषेणको बुलानेके लिए अपना समस्त परिकर भेजा ॥३४४॥ तदनन्तर रंग-बिरंगी झूलसे जिसकी शोभा बढ़ रही थी तथा नाना रंगोंके चित्रोंसे जो शोभायमान था ऐसे उसी हाथीपर वह बड़े वैभवसे

१. -मेवं म. । २. गृहेण म. । ३. दृष्टनष्टसमस्तेषु म. ।

मनांसि पौरनारीणामुच्चिन्वन् रूपपाणिना । प्रविवेश पुरं स्वेदबिन्दुमुक्ताफलान्वितः ॥३४६॥
नराधिपस्य कन्यानां परिणीतं ततः शतम् । तेन सर्वत्र चासक्ता हरिषेणमयी कथा ॥३४७॥
महत्यपि सतां संज्ञाः संगमे तां स नरेश्वरात् । प्रीत्यैव विद्या मेने तां वर्षमिव शर्वरीम् ॥३४८॥
अचिन्तयच्च मूनं सा मया विरहिताधुना । मृगीवाकुलतां प्राप्ता परमां विषमे वने ॥३४९॥
सकृदेषा कथंचिच्चेत् त्रियामा क्षयमेष्यति । गमिष्यामि ततो बालामेतां द्रागनुकम्पितुम्[2] ॥३५०॥
[3]विचिन्तयन्नेवमेतस्मिन् शयनीयेऽतिशोभने । चिरेण निद्रया लब्धं पदमस्यन्तकृच्छ्रतः ॥३५१॥
स्वप्नेऽपि च स तामेव ददर्शाम्भोजलोचनाम् । प्रायो हि मानसस्यास्य सैव गोचरतामगात् ॥३५२॥
अथ वेगवती नाम्ना कलागुणविशारदा । खेचराधिपकन्यायाः सखी तमहरत् क्षणात् ॥३५३॥
ततो निद्राक्षये दृष्ट्वा ह्रियमाणं स्वमम्बरे । पापे हरसि मां कस्मादिति व्याहृत्य कोपतः ॥३५४॥
दृष्टनिःशेषतारात्रः संदष्टरदनच्छदः । मुष्टिं बबन्ध तां हन्तुं वज्रमुद्गरसंनिभाम् ॥३५५॥
ततस्तं कुपितं दृष्ट्वा पुरुषं चारुलक्षणम् । विद्याबलसमृद्धापि शङ्किता सेत्थमाषत ॥३५६॥
आरूढस्तरुशाखायां छिन्ते[4] तस्या यथा नरः । मूलं तथा करोषि त्वं ममायुष्मन् विहिंसनम् ॥३५७॥
यदर्थं नीयसे तात त्वं मया तद्गतो भवान् । सत्यं ज्ञास्यसि मद्वाक्यं वपुषस्तव दुःखिता ॥३५८॥
अचिन्तयच्च भद्रेयं वनिता चारुभाषिणी । आकृतिः कथयत्यस्याः परपीडा निवृत्तताम् ॥३५९॥

आरूढ हुआ ॥३४५॥ जो पसीनेकी बूँदोंके बहाने मानो मोतियोंसे सहित था ऐसा हरिषेण अपने सौन्दर्यरूपी हाथसे नगरकी स्त्रियोंका मन संचित करता हुआ नगरमें प्रविष्ट हुआ ॥३४६॥ तदनन्तर उसने राजाकी सौ कन्याओंके साथ विवाह किया। इस प्रकारसे जहाँ देखो वहीं-सर्वत्र हरिषेणकी चर्चा फैल गयी ॥३४७॥ यद्यपि उसने राजासे बहुत भारी सम्मान प्राप्त किया था तो भी तपस्वियोंके आश्रममें जो स्त्रीरत्न देखा था उसके बिना उसने एक रातको वर्षके समान समझा ॥३४८॥ वह विचार करने लगा कि इस समय निश्चय ही वह कन्या मेरे बिना विषम वनमें हरिणीके समान परम आकुलताको प्राप्त होती होगी ॥३४९॥ यदि यह रात्रि किसी तरह एक बार भी समाप्त हो जाये तो मैं शीघ्र ही उस बालापर दया करनेके लिए दौड़ पड़ूँगा ॥३५०॥ यह अत्यन्त सुशोभित शय्यापर पड़ा हुआ ऐसा विचार करता रहा। विचार करते-करते बड़ी देर बाद बहुत कठिनाईसे उसे नींद आयी ॥३५१॥ स्वप्नमें भी यह उसी कमल-लोचनाको देखता रहा सो ठीक ही है क्योंकि प्रायः करके इसके मनका वही एक विषय रह गयी थी ॥३५२॥

अथानन्तर विद्याधर राजाकी कन्याकी सहेली वेगवती जो कि सर्व प्रकारकी कलाओं और गुणोंमें विशारद थी, सोते हुए हरिषेणको क्षण एकमें हर कर ले गयी ॥३५३॥ जब उसकी निद्रा भग्न हुई तो उसने अपने आपको आकाशमें हरा जाता देख क्रोधपूर्वक वेगवतीसे कहा कि री पापिनि ! तू मुझे किस लिए हर लिये जा रही है ? ॥३५४॥ जिसके नेत्रोंकी समस्त पुतलियाँ दिख रही थीं तथा जिसने ओंठ डँस रखा था ऐसे हरिषेणने उस वेगवतीको मारनेके लिए वज्रमय मुद्गरके समान मुट्ठी बाँधी ॥३५५॥ तदनन्तर सुन्दर लक्षणोंके धारक हरिषेणको कुपित देख वेगवती यद्यपि विद्याबलसे समृद्ध थी तो भी भयभीत हो गयी। उसने उससे कहा कि हे आयुष्मन् ! जिस प्रकार वृक्षकी शाखापर चढ़ा कोई मनुष्य उसीकी जड़को काटता है उसी प्रकार मुझपर आरूढ़ हुए तुम मेरा ही घात कर रहे हो ॥३५६-३५७॥ हे तात ! मैं तुझे जिस लिए ले जा रही हूँ तुम जब उसको प्राप्त होओगे तब मेरे वचनोंकी यथार्थता जान सकोगे। यह निश्चित समझो कि वहाँ जाकर तुम्हारे इस शरीरको रंचमात्र भी दुःख नहीं होगा ॥३५८॥ वेगवतीका कहा सुनकर हरिषेणने विचार किया कि यह स्त्री मन्द्र तथा मधुरभाषिणी है।

---

१. शर्वरी म. । २ द्रागनुचिन्तनम् म. । ३. विचिन्तयन्नेव म. । ४. छिन्ने म. ।

यथेदं स्पन्दते चक्षुर्दक्षिणं मम साम्प्रतम् । तथा च कल्पयाम्येषा प्रियसंगमकारिणी ॥३६०॥
पुनश्चानेन सा पृष्टा भद्रे वेदय कारणम् । ललामसंकथासंगात् कर्णौ तावत्प्रतर्पय ॥३६१॥
जगाद चेति राजास्ति पुरे सूर्योदये वरे । नाम्ना शक्रधनुस्तस्य भार्या धीरिति कीर्तिता ॥३६२॥
गुणरूपमदग्रस्ता जयचन्द्रा तयोः सुता । पुरुषद्वेषिणी जाता पितृवाक्यापकर्णिनी[1] ॥३६३॥
यो यस्तस्या मयालिख्य पट्टके दर्शितः पुरा । सकले भरतक्षेत्रे नासौ तस्या रुचौ स्थितः ॥३६४॥
ततो भवान् मया तस्या दर्शितः पट्टकस्थितः । गाढाकल्पकशल्येन शल्यिता चेदमब्रवीत्[2] ॥३६५॥
कामभोगोपमानेन समं यदि न युज्यते । मृत्युं ततः प्रपत्स्येऽहं न त्वन्यमधमं वरम् ॥३६६॥
प्रतिज्ञा च पुरस्तस्या मयेयं दुष्करा कृता । शोकमायुष्कटं दृष्ट्वा तद्गुणाकृष्टचित्तया[3] ॥३६७॥
यदि तं नानये शीघ्रं त्वन्मानसमलिम्लुचम् । ज्वालाजटालमनिलं प्रविशामि ततः सखि ॥३६८॥
प्रतिज्ञायेति पुण्येन प्राप्तोऽसि महता मया । त्वत्प्रसादात्करिष्यामि प्रतिज्ञां फलसंगताम् ॥३६९॥
सूर्योदयपुरं चैषा प्राप्ता सा च निवेदितः । आनीतः शक्रचापाय कन्यायै च मनोहरः ॥३७०॥
ततः पाणिग्रहश्चक्रे तयोरद्भुतरूपयोः । विस्मयापन्नचेतोभिः स्वजनैरभिनन्दितः ॥३७१॥
संपादितप्रतिज्ञा च प्राप्ता वेगवती परम् । संमानं राजकन्याभ्यां प्रमदं च तथा यशः ॥३७२॥
त्यक्त्वा नौ धरणीवासी गृहीतः पुरुषोऽनया । इति संचिन्त्य कुपितौ तस्यै मैथुनिकौ[5] च तौ ॥३७३॥

इसकी आकृति ही बतला रही है कि यह पर-पीड़ासे निवृत्त है अर्थात् कभी किसीको पीड़ा नहीं पहुँचाती ॥३५९॥ और चूँकि इस समय मेरी दाहिनी आँख फड़क रही है इससे निश्चय होता है कि यह अवश्य ही प्रियजनोंका समागम करावेगी ॥३६०॥ तब हरिषेणने उससे फिर पूछा कि हे भद्रे ! तू ठीक-ठीक कारण बता और मनोहर कथा सुनाकर मेरे कानोंको सन्तुष्ट कर ॥३६१॥ इसके उत्तरमें वेगवतीने कहा कि सूर्योदय नामक श्रेष्ठ नगरमें राजा शक्रधनु रहता है। उसकी स्त्री धी नामसे प्रसिद्ध है। उन दोनोंके जयचन्द्रा नामकी पुत्री है जो कि गुण तथा रूपके अहंकारसे ग्रस्त है, पुरुषोंके साथ द्वेष रखती है और पिताके वचनोंकी अवहेलना करती है ॥३६२-३६३॥ समस्त भरत क्षेत्रमें जो-जो उत्तम पुरुष थे उन सबके चित्रपट बनाकर मैंने पहले उसे दिखलाये हैं पर उसकी रुचिमें एक भी नहीं आया ॥३६४॥ तब मैंने आपका चित्रपट उसे दिखलाया सो उसे देखते ही वह तीव्र उत्कण्ठारूपी शल्यसे विद्ध होकर बोली कि कामदेवके समान इस पुरुषके साथ यदि मेरा समागम न होगा तो मैं मृत्युको भले ही प्राप्त हो जाऊँगी पर अन्य अधम मनुष्यको प्राप्त नहीं होऊँगी ॥३६५-३६६॥ उसके गुणोंसे जिसका चित्त आकृष्ट हो रहा था ऐसी मैंने उसका बहुत भारी शोक देखकर उसके आगे यह कठिन प्रतिज्ञा कर ली कि तुम्हारे मनको चुरानेवाले इस पुरुषको यदि मैं शीघ्र नहीं ले आऊँ तो हे सखि ! ज्वालाओंसे युक्त अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगी ॥३६७-३६८॥ मैंने ऐसी प्रतिज्ञा की ही थी कि बड़े भारी पुण्योदय से आप मिल गये। अब आपके प्रसादसे अपनी प्रतिज्ञाको अवश्य ही सफल बनाऊँगी ॥३६९॥ ऐसा कहती हुई वह सूर्योदयपुर आ पहुँची। वहाँ आकर उसने राजा शक्रधनु और कन्या जयचन्द्राके लिए सूचना दे दी कि तुम्हारे मनको हरण करनेवाला हरिषेण आ गया है ॥३७०॥ तदनन्तर आश्चर्यकारी रूपको धारण करनेवाले दोनों-वरकन्याका पाणिग्रहण किया गया। जिनका चित्त आश्चर्यसे भर रहा था ऐसे सभी आत्मीय जनोंने उनके उस पाणिग्रहणका अभिनन्दन किया था ॥३७१॥ जिसकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो चुकी थी ऐसी वेगवतीने राजा और कन्या—दोनोंकी ओरसे परम सन्मान प्राप्त किया था। उसके हर्ष और सुयशका भी ठिकाना नहीं था ॥३७२॥ 'इस कन्याने हम लोगोंको छोड़कर भूमिगोचरी पुरुष स्वीकृत किया' ऐसा विचारकर

---

१. पितृवाक्यापकर्षिणी म. । २. गाढाकल्पकशिल्पेन म. । ३-४. म. पुस्तकेऽनयोः श्लोकयोः क्रमभेदो वर्तते । ५. मैथुनिकाचितौ म. ।

[illegible] कर्तुं महासाधनसंयुतौ । वृषिसावपमानेन गङ्गाधरमहीधरौ ॥३७४॥
[illegible] सार्कं सुचापाख्येन सूनुना । हरिषेणं जगादैवं करुणासक्तचेतनः ॥३७५॥
[illegible] जामातः [1]संख्यं कर्तुं व्रजाम्यहम् । त्वन्निमित्तं रिपू [2]क्रुद्धावुद्वृत्तौ दुःखधारिणौ ॥३७६॥
[illegible] जगादासौ परकार्येषु यो रतः । कार्ये तस्य कथं [3]स्वस्मिन्नौदासीन्यं भविष्यति ॥३७७॥
[illegible] प्रसादं मे कृत्वा युद्धाय शासनम् । भृत्यं मामनृशं पाप्य स्वयं किमिति युध्यसे ॥३७८॥
[illegible] [4]वाञ्छतापि निवारितः । श्वसुरेण कृतासङ्गमश्वैः पवनगामिभिः ॥३७९॥
[illegible] [5]शूरसारथिनेतृकम् । वेष्टितं योधचक्रेण हरिषेणो रथं ययौ ॥३८०॥
[illegible] शरैरश्वैर्नरांश्च खेचराः । कृत्वा कलकलं तुङ्गं शत्रुमानसदुःसहम् ॥३८१॥
[illegible] संजाते संयुगे शूरधारिते । भग्नं शक्रधनुःसैन्यं [6]दृष्ट्वा वाग्रेय उत्थितः ॥३८२॥
[illegible] [7]तस्यां नाश्वो न मातङ्गो न मनुष्यो रथो न च ॥३८३॥
[illegible] युक्तैरातिबलमाहतम् । जगाम क्वाप्यनालोक्यं पृष्ठं स्खलितजृम्भिकम् ॥३८४॥
[illegible] केचिदित्यूचुरुत्रस्ता भयार्दिताः । कृतं गङ्गाधरेणेदं भूधरेण [8]च दुर्मतम् ॥३८५॥
[illegible] रणे भाति सूर्यवत्पुरुषोत्तमः । करानिव शरान्मुञ्चन् सर्वाशासु समं बहून् ॥३८६॥
[illegible] सैन्यं हतं ततः सैन्यं दृष्ट्वा तेन महात्मना । गतौ क्वापि भयग्रस्तौ गङ्गाधरमहीधरौ ॥३८७॥

[illegible] मामाके लड़के गंगाधर और महीधर बहुत ही कुपित हुए। कुपित ही नहीं हुए अपमानसे [illegible] बड़ी भारी सेना लेकर युद्ध करनेकी भी इच्छा करने लगे ॥३७३-३७४॥ तदनन्तर [illegible] आसक्त है चित्त जिसका ऐसे राजा शक्रधनुने अपने सुचाप नामक पुत्रके साथ हरिषेणसे [illegible] निवेदन किया कि हे जामातः! तुम यहीं ठहरो, मैं युद्ध करनेके लिए जाता हूँ। [illegible] मित्तसे दो उत्कट शत्रु कुपित होकर दुःखका अनुभव कर रहे हैं ॥३७५-३७६॥ तब [illegible] हरिषेणने कहा कि जो परकीय कार्योंमें सदा तत्पर रहता है उसके अपने ही कार्यमें [illegible] कैसे हो सकती है? ॥३७७॥ हे पूज्य! प्रसन्नता करो और मेरे लिए युद्धका आदेश [illegible] जैसा भृत्य पाकर आप इस प्रकार स्वयं क्यों युद्ध करते हो? ॥३७८॥ तदनन्तर अमंगलसे [illegible] श्वसुरने चाहते हुए भी उसे नहीं रोका। फलस्वरूप जिसमें हवाके समान शीघ्रगामी [illegible] थे, जो नाना प्रकारके शस्त्रोंसे पूर्ण था, जिसका सारथि शूरवीर था और जो योद्धाओंके [illegible] घिरा था ऐसे रथको हरिषेण प्राप्त हुआ ॥३७९-३८०॥ उसके पीछे विद्याधर लोग शत्रुके [illegible] असहनीय बहुत भारी कोलाहल कर घोड़ों और हाथियोंपर सवार होकर जा रहे थे ॥३८१॥ [illegible] शूरवीर मनुष्य जिसकी व्यवस्था बनाये हुए थे ऐसा महायुद्ध प्रवृत्त हुआ सो कुछ ही [illegible] शक्रधनुकी सेनाको पराजित देख हरिषेण युद्धके लिए उठा ॥३८२॥ तदनन्तर जिस [illegible] उसका उत्तम रथ निकल जाता था उस दिशामें न घोड़ा बचता था, न हाथी दिखाई [illegible] न मनुष्य शेष रहता था और न रथ ही बाकी बचता था ॥३८३॥ उसने एक साथ डोरी-[illegible] हुए बाणोंसे शत्रुकी सेनाको इस प्रकार मारा कि वह पीछे बिना देखे ही एकदम सरपट [illegible] भाग खड़ी हुई ॥३८४॥ जिनके शरीरमें बहुत भारी कँपकँपी छूट रही थी ऐसे भयसे पीड़ित [illegible] योद्धा कह रहे थे कि गंगाधर और महीधरने यह बड़ा अनिष्ट कार्य किया है ॥३८५॥ [illegible] अद्भुत पुरुष युद्धमें सूर्यकी भाँति सुशोभित हो रहा है। जिस प्रकार सूर्य समस्त दिशाओं-[illegible] छोड़ता है उसी प्रकार यह भी समस्त दिशाओंमें बहुत बाण छोड़ रहा है ॥३८६॥ [illegible] अपनी सेनाको उस महात्माके द्वारा नष्ट होती देख भयसे ग्रस्त हुए गंगाधर और महीधर

[illegible] २. रिपुक्रुद्धौ दुर्वृत्तौ दुःखचारणौ म.। ३. स्वामिन् म.। ४. वाञ्छितोऽप्यनि -ख.। ५. सूरि -म.। [illegible] म.। ७. तस्य म.। ८. महीधरेण।

ततो ज्ञातेषु रत्नेषु तल्लक्षणं सुकृतोदयात् । दशमो हरिषेणोऽभूच्चक्रवर्ती महोदयः ॥३८८॥
तथापि परया युक्तश्चक्रलाञ्छनया श्रिया । रहितं मदनावल्या स्वं स मेने तृणोपमम् ॥३८९॥
ततः संवाहयन् प्राप्तो बलं द्वादशयोजनम् । सतापसवनोद्देशं नमयन् सर्वविद्विषः ॥३९०॥
ततः स तापसैर्भीतैर्विज्ञाय फलपाणिभिः । दत्तार्घः पूजितो वाक्यैराशीर्दानपुरस्सरैः ॥३९१॥
शतमन्योश्च पुत्रेण जनमेजयरूपिणा । तुष्टया नागवत्या च सा कन्यास्मै समर्पिता ॥३९२॥
विधिना च ततो वृत्तं तयोर्वीवाहमङ्गलम् । प्राप्य पैतृं पुनर्जन्म मेने भूपोऽयमः ॥३९३॥
ततः काम्पिल्यमागत्य युक्तश्चक्रधरश्रिया । द्वात्रिंशता नरेन्द्राणां सहस्राणां समन्वितः ॥३९४॥
शिरसा मुकुटन्यस्तमणिप्रकरभासिना । ननाम चरणौ मातुर्विनीतो रचिताञ्जलिः ॥३९५॥
ततस्तं तद्विधं दृष्ट्वा पुत्रं वप्रा दशानन । संभूता न स्वगात्रेषु तोषाश्रुव्याप्तलोचना ॥३९६॥
ततो भ्रामयता सेन सूर्यवर्णान् महारथान् । काम्पिल्यनगरे मातुः कृतं सफलमीप्सितम् ॥३९७॥
श्रमणश्रावकाणां च जातः परमसंमदः । बहवश्च परिप्राप्ताः शासनं जिनदेशितम् ॥३९८॥
तेनामी कारिता भान्ति नानावर्णजिनालयाः । भूपर्वतनदीसङ्गपुरग्रामादिभूकृताः ॥३९९॥
कृत्वा चिरमसौ राज्यं प्रव्रज्य सुमहामनाः । तपः कृत्वा परं प्राप्तस्त्रिलोकशिखरं विभुः ॥४००॥
हरिषेणस्य चरितं श्रुत्वा विस्मयमागतः । कृत्वा जिननमस्कारं दशास्यः प्रस्थितः पुनः ॥४०१॥

दोनों ही कहीं भाग खड़े हुए ॥३८७॥ तदनन्तर उसी समय पुण्योदयसे रत्न प्रकट हो गये जिससे हरिषेण महान् अभ्युदयको धारण करनेवाला दसवाँ चक्रवर्ती प्रसिद्ध हुआ ॥३८८॥ यद्यपि वह चक्ररत्नसे चिह्नित परम लक्ष्मीसे युक्त हो गया था तो भी मदनावलीसे रहित अपने आपको तृणके समान तुच्छ समझता था ॥३८९॥ तदनन्तर बारह योजन लम्बी-चौड़ी सेनाको चलाता और समस्त शत्रुओंको नम्रीभूत करता हुआ वह तपस्वियोंके आश्रममें पहुँचा ॥३९०॥ जब तपस्वियोंको इस बातका पता चला कि यह वही है जिसे हम लोगोंने आश्रमसे निकाल दिया था तो बहुत ही भयभीत हुए। निदान, हाथोंमें फल लेकर उन्होंने हरिषेणको अर्घ दिया और आशीर्वादसे युक्त वचनोंसे उसका सम्मान किया ॥३९१॥ शतमन्युके पुत्र जनमेजय और माता नागवतीने सन्तुष्ट होकर वह कन्या इसके लिए समर्पित कर दी ॥३९२॥ तदनन्तर उन दोनोंका विधिपूर्वक विवाहोत्सव हुआ। इस कन्याको पाकर राजा हरिषेणने अपना पुनर्जन्म माना ॥३९३॥ तदनन्तर चक्रवर्तीकी लक्ष्मीसे युक्त होकर वह काम्पिल्यनगर आया। बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा उसके साथ थे ॥३९४॥ उसने मुकुटमें लगे मणियोंके समूहसे सुशोभित शिर झुकाकर तथा हाथ जोड़कर बड़ी विनयसे माताके चरणोंमें नमस्कार किया ॥३९५॥ सुमाली दशाननसे कहते हैं कि हे दशानन! उस समय उक्त प्रकारके पुत्रको देखकर वप्राके हर्षका पार नहीं रहा। वह अपने अंगोंमें नहीं समा सकी तथा हर्षके आँसुओंसे उसके दोनों नेत्र भर गये ॥३९६॥ तदनन्तर उसने सूर्यके समान तेजस्वी बड़े-बड़े रथ काम्पिल्यनगरमें घुमाये और इस तरह अपनी माताका मनोरथ सफल किया ॥३९७॥ इस कार्यसे मुनि और श्रावकोंको परम हर्ष हुआ तथा बहुत-से लोगोंने जिन-धर्म धारण किया ॥३९८॥ पृथिवी, पर्वत, नदियोंके समागम स्थान, नगर तथा गाँव आदिमें जो नाना रंगके ऊँचे-ऊँचे जिनालय शोभित हो रहे हैं वे सब उसीके बनवाये हैं ॥३९९॥ उदार हृदयको धारण करनेवाले हरिषेणने चिर काल तक राज्य कर दीक्षा ले ली और परम तपश्चरण कर तीन लोकका शिखर अर्थात् सिद्धालय प्राप्त कर लिया ॥४००॥ इस प्रकार हरिषेण चक्रवर्तीका चरित्र सुनकर दशानन आश्चर्यको प्राप्त हुआ। तदनन्तर जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर वह आगे बढ़ा ॥४०१॥

---

१. मदनावल्याः म. । २. वैवाह -म. ।

[illegible] अथैनं दशवक्त्रं दिवाकरः । नेत्रयोर्गोचरीभावं भयादिव समत्यजत् ॥४०२॥
[illegible]तेन चक्रुम्नं समस्तं भुवनान्तरम् । संजातेनानुरागेण कैकसेयादिवोरुणा ॥४०३॥
[illegible] च व्याप्तं ध्वान्तेन क्रमतो नभः । दशास्यस्येव कालेन कर्तुमेतेन सेवनम् ॥४०४॥
[illegible]स्थान्ते ततः संस्थलिभूभृतः । चकार शिबिरं कुक्षावतीयं नभस्तलात् ॥४०५॥
[illegible]दिव निर्यातः प्रावृषेण्यादथ ध्वनिः । येन तत्सकलं सैन्यं कृतं साध्वसपूरितम् ॥४०६॥
[illegible]लानवृक्षाणां चक्रुः स्तम्बेरमोत्तमाः । हेषितं सप्तयश्चोच्चैरुत्कर्णाः स्फुरदस्वधः ॥४०७॥
[illegible]दिति क्षिप्रं जगाद च दशाननः । अपराधनिभेनायं मर्तुं कोऽद्य समुद्यतः ॥४०८॥
[illegible]वणः प्राप्तः सोमो वा रिपुचोदितः । विश्रब्धं वा स्थितं मत्वा ममाग्र्यः शत्रुगोचरः ॥४०९॥
[illegible]दिष्टः प्रहस्तोऽथ तं देशं समुपागतः । अपश्यत्पर्वताकारं क्रीडायुक्तमनेकपम् ॥४१०॥
[illegible]दितं ततस्तेन दशास्याय सविस्मयम् । महाराशिमिवाब्दानां देव पश्य मतङ्गजम् ॥४११॥
[illegible]तः पूर्वमप्येष दन्तिवृन्दारको मया । इन्द्रेणासुदितो मुक्तो [illegible]र्पेण क्षणः ॥४१२॥
[illegible]रस्यापि दुर्ग्रहोऽयं सुदुस्सहः । गजः किमुत तुङ्गौजाः शेषाणां प्राणधारिणाम् ॥४१३॥
[illegible]स्य विश्रब्धं जगाद धनदार्दनः । आत्मनो युज्यते कर्तुं न प्रहस्त प्रशंसनम् ॥४१४॥

अथानन्तर सन्ध्या काल आया और सूर्य डूब गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो सूर्यने [illegible]को विजयी जानकर भयसे ही उसके नेत्रोंका गोचर-स्थान छोड़ दिया था ॥४०२॥ सन्ध्या-[illegible]लिमासे समस्त लोक व्याप्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो दशाननसे उत्पन्न हुए [illegible]यारी अनुरागसे ही व्याप्त हो गया था ॥४०३॥ क्रम-क्रमसे सन्ध्याको नष्ट कर काला अन्धकार [illegible]में व्याप्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो दशाननकी सेवा करनेके लिए ही व्याप्त [illegible] था ॥४०४॥ तदनन्तर दशाननने आकाशसे उतरकर सम्मेदाचलके समीप संस्थलि नामक [illegible]के ऊपर अपना डेरा डाला ॥४०५॥

अथानन्तर—जिस प्रकार वर्षाकालीन मेघोंके समूहसे वज्रका शब्द निकलता है इसी [illegible] कहींसे ऐसा भयंकर शब्द निकला कि जिसने समस्त सेनाको भयभीत कर दिया ॥४०६॥ [illegible] हाथियोंने अपने आलानभूत वृक्ष तोड़ डाले और घोड़े कान खड़े कर फरूरी लेते हुए [illegible]नाने लगे ॥४०७॥ वह शब्द सुनकर दशानन शीघ्रतासे बोला कि यह क्या है ? क्या है ? [illegible]राजके बहाने मरनेके लिए आज कौन उद्यत हुआ है ? ॥४०८॥ जान पड़ता है कि वैश्रवण [illegible]आया है अथवा शत्रुसे प्रेरित हुआ सोम आया है अथवा मुझे निश्चिन्त रूपसे ठहरा जानकर शत्रु [illegible]का कोई दूसरा व्यक्ति यहाँ आया है ॥४०९॥ तदनन्तर दशाननकी आज्ञा पाकर प्रहस्त नामा [illegible] उस स्थानपर गया जहाँसे कि वह शब्द आ रहा था। वहाँ जाकर उसने पर्वतके समान [illegible]कारवाला, क्रीड़ा करता हुआ एक हाथी देखा ॥४१०॥ वहाँसे लौटकर प्रहस्तने बड़े आश्चर्यके [illegible] दशाननको सूचना दी कि हे देव ! मेघोंकी महाराशिके समान इस हाथीको देखो ॥४११॥ ऐसा [illegible] पड़ता है कि इस हाथीको मैंने पहले भी कभी देखा है, इन्द्र विद्याधर भी इसे पकड़नेमें समर्थ [illegible] था इसीलिए उसने इसे छोड़ दिया है, अथवा इन्द्र विद्याधरकी बात जाने दो साक्षात् देवेन्द्र [illegible] इसे पकड़नेमें असमर्थ है, इसे कोई सहन नहीं कर सकता। नहीं जान पड़ता कि यह हाथी है [illegible] समस्त प्राणियोंका एकत्रित तेजका समूह है ? ॥४१२-४१३॥ तब दशाननने हँसकर कहा कि [illegible] प्रहस्त ! यद्यपि अपनी प्रशंसा स्वयं करना ठीक नहीं है फिर भी मैं इतना तो कहता ही हूँ कि [illegible] मैं इस हाथीको क्षण-भरमें न पकड़ लूँ तो बाजूबन्दसे पीड़ित अपनी इन दोनों भुजाओंको काट

१. क्षणा -म.। २. निर्यातः म.। ३. मिषेणायं म.। ४. विद्युत्वं वा क., ख.। ५. कुबेरविजेता।

एतावत्तु प्रवोम्येतौ भुजौ केयूरपीडितौ । छिनद्मि न क्षणादेनं यदि गृह्णान्यनेकपम् ॥४१५॥
ततः कामगमारुह्य विमानं पुष्पकाभिधम् । गत्वा पश्यति तं नागं सल्लक्षणसमन्वितम् ॥४१६॥
स्निग्धेन्द्रनीलसंकाशं राजीवप्रमतालुकम् । दीर्घवृत्तौ सुधाफेनवलक्षौ बिभ्रतं रदौ ॥४१७॥
हस्तानां सप्तकं तुङ्गं दशकं परिणाहतः । आयामतश्च नवकं मधुपिङ्गललोचनम् ॥४१८॥
निमग्नवंशमभागतुङ्गमायतवालधिम् । ह्रस्विष्ठकरमत्यन्तस्निग्धपिङ्गनखाङ्कुरम् ॥४१९॥
वृत्तपीनमहाकुम्भं सुप्रतिष्ठाङ्घ्रिमूर्जितम् । अन्तर्मधुरघीरोरुगर्जितं विनयस्थितम् ॥४२०॥
गलद्गण्डस्थलामोदसमाकृष्टालिवेणिकम् । कुर्वन्तं दुन्दुभिध्वानं कर्णतालान्तताडनैः ॥४२१॥
भग्नावकाशमाकाशं कुर्वाणमिव पार्थवात्[1] । लीलां विदधतं चित्तचक्षुश्चोरणकारिणीम् ॥४२२॥
दृष्ट्वा च तं परां प्रीतिं प्राप रत्नश्रवःसुतः । कृतार्थमिव चात्मानं मेने हृष्टतनूरुहः ॥४२३॥
ततो विमानमुज्झित्वा बद्ध्वा परिकरं दृढम् । शङ्खं तस्य पुरो दध्मौ शब्दपूरितविष्टपम् ॥४२४॥
ततः शङ्खस्वनोद्भूतचित्तक्षोभः सगर्जितः । करी दशमुखोद्देशं चलितो बलगर्वितः ॥४२५॥
वेगादभ्यायतस्यास्य पिण्डीकृत्य सितांशुकम् । उत्तरीयं च चिक्षेप क्षिप्रं विभ्रमदक्षिणः ॥४२६॥
दन्ती जिघ्रति तं यावत्तावदुत्पत्य गण्डयोः । अस्पृशद्यक्षमर्दैस्तं भृङ्गौघध्वनिचण्डयोः ॥४२७॥
करेण वेष्टितुं यावच्चक्रे वाञ्छां मतङ्गजः । तावदंष्टान्तरेणासौ निःसृतो लाघवान्वितः ॥४२८॥
अङ्गेषु च चतुर्वस्य स्पृशन् दन्ततले मुहुः । भ्रान्तिविद्युच्चलच्चक्रे प्रेङ्खणं रदनाग्रयोः ॥४२९॥

डालूँ ॥४१४-४१५॥ तदनन्तर वह इच्छानुसार चलनेवाले पुष्पक विमानपर सवार हो, जाकर उत्तम लक्षणोंसे युक्त उस हाथीको देखता है ॥४१६॥ वह हाथी चिकने इन्द्रनील मणिके समान था, उसका तालु कमलके समान लाल था, वह लम्बे, गोल तथा अमृतके फेनके समान सफेद दाँतोंको धारण कर रहा था ॥४१७॥ वह सात हाथ ऊँचा, दस हाथ चौड़ा और नौ हाथ लम्बा था। उसके नेत्र मधुके समान कुछ पीतवर्णके थे ॥४१८॥ उसकी पीठकी हड्डी मांसपेशियोंमें निमग्न थी, उसके शरीरका अगला भाग ऊँचा था, पूँछ लम्बी थी, सूँड़ विशाल थी, और नखरूपी अंकुर चिकने तथा पीले थे ॥४१९॥ उसका मस्तक गोल तथा स्थूल था, उसके चरण अत्यन्त जमे हुए थे, वह स्वयं बलवान् था, उसकी विशाल गर्जना भीतरसे मधुर तथा गम्भीर थी और वह विनयसे खड़ा था ॥४२०॥ उसके गण्डस्थलसे जो मद चू रहा था उसकी सुगन्धिके कारण भ्रमरोंकी पंक्तियाँ उसके समीप खिची चली आ रही थीं। वह कर्णरूपी तालपत्रोंकी फटकारसे दुन्दुभिके समान विशाल शब्द कर रहा था ॥४२१॥ वह अपनी स्थूलताके कारण आकाशको मानो निरवकाश कर रहा था और चित्त तथा नेत्रोंको चुरानेवाली क्रीड़ा कर रहा था ॥४२२॥ उस हाथीको देख दशानन परम प्रीतिको प्राप्त हुआ। उसने अपने आपको कृतकृत्य-सा माना और उसका रोम-रोम हर्षित हो उठा ॥४२३॥ तदनन्तर दशाननने विमान छोड़कर अपना परिकर मजबूत बाँधा और उसके सामने शब्दसे लोकको व्याप्त करनेवाला शंख फूँका ॥४२४॥ तत्पश्चात् शंखके शब्दसे जिसके चित्तमें क्षोभ उत्पन्न हुआ था तथा जो बलके गर्वसे युक्त था ऐसा हाथी गर्जना करता हुआ दशाननके सम्मुख चला ॥४२५॥ जब हाथी वेगसे दशाननके सामने दौड़ा तो घूमनेमें चतुर दशाननने उसके सामने अपना सफेद चद्दर चरियाकर फेंक दिया ॥४२६॥ हाथी जबतक उस चद्दरको सूँघता है तबतक दशाननने उछलकर भ्रमरसमूहके शब्दोंसे तीक्ष्ण उसके दोनों कपोलोंका स्पर्श कर लिया ॥४२७॥ हाथी जबतक दशाननको सूँड़से लपेटनेकी इच्छा करता है कि तबतक शीघ्रतासे युक्त दशानन उसके दाँतोंके बीचसे बाहर निकल गया ॥४२८॥ घूमनेमें बिजलीके समान चंचल दशानन उसके चारों ओरके अंगोंका स्पर्श करता था। बार-बार दाँतोंपर टक्कर लगाता था और कभी खीसोंपर

---

१. पृथोर्भावः पार्थवं तस्मात् स्थौल्यात्, पार्थवा (?) म. ।

अथास्य पृष्ठमारूढः[1] सविलासं दशाननः । विनीतश्च स्थितो दन्ती सद्भिख्य इव तत्क्षणात् ॥४३०॥
ततः सकुसुमा मुक्ताः साधुवादाः मुहुः सुरैः । सशब्दा च महामोदं प्राप्ता खेचरवाहिनी ॥४३१॥
त्रिलोकमण्डनाभिख्यां प्रापार्थं दशवक्त्रतः । यैर्लोकत्रयं मण्डितं तेन यतो मेने स मोदवान् ॥४३२॥
महोत्सवः कृतस्तस्य लाभे परमदन्तिनः । नृत्यद्भिः पर्वते रम्ये खेचरैः पुष्पसंकुलैः ॥४३३॥
तथैषां जाग्रतामेव मर्यादामात्रकारणम् । कृतः प्रभाततूर्येण नादो गह्वरपेशलः ॥४३४॥
दिवसेन ततो बिम्बं रवेः कलशमङ्गलम् । उपनीतं दशास्याय सेवाकौशलवेदिना ॥४३५॥
ततः सुखासनासीने विहितस्वाङ्गकर्मणि । स्थिते दशमुखे दन्तिकथया खेचरावृते[3] ॥४३६॥
सहसा वियतः प्राप्तः पुरुषः पुरु वेपथुः । स्वेदबिन्दुसमाकीर्णः संभ्रान्तः खेदमुद्वहन् ॥४३७॥
सप्रहारव्रणः साश्रुदर्शयज्जर्जरां तनुम् । व्यज्ञापयच्च कृच्छ्रेण ललाटे धारयन् करौ ॥४३८॥
दशमेऽह्नि दिनादस्माद्विसे कृत्वा भवद्बलम् । अलंकारपुरावासाद्विष्कम्योत्साहसोऽधिकात् ॥४३९॥
निजगोत्रक्रमायातं नगरं किं कुसंज्ञकम् । गृहीतुं भ्रातरौ यातौ सूर्यर्क्षरजसावुभौ ॥४४०॥
महाभिमानसंपन्नौ महाबलसमन्वितौ । विश्रब्धौ भवतो गर्वान्मन्यमानौ तृणं जगत् ॥४४१॥
एताभ्यां चोदितः क्षुब्धो नितान्तं विपुलो जनः । अवस्कन्देन संपत्य प्रचक्रे किष्कुलुण्टनम् ॥४४२॥
कृतान्तस्य ततो योद्धुमुत्थितौ भटसत्तमाः । स्वप्नवशस्पुरोदिष्ट (?) हेतिव्याकृतपाणयः ॥४४३॥

झूला झूलने लगता था ॥४२९॥ तदनन्तर दशानन विलासपूर्वक उसकी पीठपर चढ़ गया और हाथी उसी क्षण उत्तम शिष्यके समान विनीतभावसे खड़ा हो गया ॥४३०॥ उसी समय देवोंने फूलोंकी वर्षा की, बार-बार धन्यवाद दिये, और विद्याधरोंकी सेना कल-कल करती हुई परम हर्षको प्राप्त हुई ॥४३१॥ वह हाथी, दशाननसे 'त्रिलोकमण्डन' इस नामको प्राप्त हुआ। यथार्थमें उस हाथीसे तीनों लोक मण्डित हुए थे इसलिए दशाननने बड़े हर्षसे उसका 'त्रिलोकमण्डन' नाम सार्थक माना था ॥४३२॥ फूलोंसे व्याप्त उस रमणीय पर्वतपर नृत्य करते हुए विद्याधरोंने उस श्रेष्ठ हाथीके मिलनेका महोत्सव किया था ॥४३३॥

इस हाथीके प्रकरणसे यद्यपि सब लोग जाग रहे थे तो भी रात्रि और दिवसकी मर्यादा बतलानेके लिए प्रभातकालीन तुरहीने ऐसा जोरदार शब्द किया कि वह पर्वतकी प्रत्येक गुफामें गूँज उठा ॥४३४॥ तदनन्तर सूर्य बिम्बका उदय हुआ सो ऐसा जान पड़ता था मानो सेवाकी चतुराईको जाननेवाले दिवसने दशाननके लिए मंगल-कलश ही समर्पित किया हो ॥४३५॥

तदनन्तर दशानन शारीरिक क्रियाएँ कर सोफापर बैठा था। साथ ही अन्य विद्याधर भी हाथीकी चर्चा करते हुए उसे घेरकर बैठे थे ॥४३६॥ उसी समय आकाशसे उतरकर एक पुरुष वहाँ आया। वह पुरुष अत्यन्त काँप रहा था, पसीनेकी बूँदोंसे व्याप्त था, खेदको धारण कर रहा था, प्रहारजन्य घावोंसे सहित था, आँसू छोड़ रहा था और अपना जर्जर शरीर दिखला रहा था। उसने हाथ जोड़ मस्तकसे लगा बड़े दुःखके साथ निवेदन किया ॥४३७-४३८॥ कि हे देव! आजसे दस दिन पहले हृदयमें आपके बलका भरोसा कर सूर्यरज और ऋक्षरज दोनों भाई, अपनी वंश-परम्परासे चले आये किष्कु नगरको लेनेके लिए बड़े उत्साहसे अलंकारपुर अर्थात् पाताल लंकासे निकलकर चले थे ॥४३९-४४०॥ दोनों ही भाई महान् अभिमानसे युक्त, बड़ी भारी सेनासे सहित तथा निःशंक थे। वे आपके गर्वसे संसारको तृणके समान तुच्छ मानते थे ॥४४१॥ इन दोनों भाइयोंकी प्रेरणासे अत्यन्त क्षोभको प्राप्त हुए बहुत-से लोग एक साथ आक्रमण कर किष्कुपुरको लूटने लगे ॥४४२॥ तदनन्तर जिनके हाथोंमें नाना प्रकारके शस्त्र चमक रहे थे ऐसे यम नामा दिक्पालके उत्तम योद्धा युद्ध करनेके लिए उठे सो मध्य रात्रिमें उन सबके बीच बड़ा

१. -मारुह्य म. । २. दन्ती म. । ३. खेचरावृतः म. । ४. -मुच्छ्वसता म. । ५. स्वप्नवशत्वरो दृष्टा म. ।

ततस्तेषां महान् जातो मध्येशर्वरि संयुगः । अन्योन्यशस्त्रसंपातकृतभूरिजनक्षयः ॥४४३॥
श्रुत्वा कलकलध्वानं स्वयं योद्धुमथादरात् । यमः क्रोधेन निष्क्रान्तः संक्षुब्धार्णवदारुणः ॥४४५॥
आयातमात्रकेणैव तेन दुस्सहतेजसा । अस्मदीयं बलं भग्नं विविधायुधविक्षतम् ॥४४६॥
अथासौ कथयन्नेवं दूतो मूर्च्छामुपागतः । वीजितश्च पटान्तेन प्रबोधं पुनरागतः ॥४४७॥
किमेतदिति पृष्टश्च हृदयस्थकरोऽवदत् । जानामि देव तत्रैव यत्तेऽहमिति मूर्च्छितः ॥४४८॥
ततस्तत इति प्रोक्ते ततो विस्मयवाहिना । रक्षश्रवःसुतेनासौ विश्रम्य पुनरब्रवीत् ॥४४९॥
ततो नाथ बलं दृष्ट्वा नितान्तार्तरवाकुलम् । निजमृक्षरजा भग्नं वत्सलो योद्धुमुत्थितः ॥४५०॥
चिरं च कृतसंग्रामी यमेनातिबलीयसा । चेतसा भेदमप्राप्तो गृहीतः शत्रुवञ्चितः ॥४५१॥
उत्थितो युध्यमानेऽस्मिन्नथ सूर्यरजा अपि । चिरं कृतरणो गाढप्रहारी मूर्च्छितो भृशम् ॥४५२॥
उद्धृत्य क्षिप्रमास्माभिः सालस्तम्भेखला वनम् । नीत्वा[3] स श्वासमानीतः शीतचन्दनवारिणा ॥४५३॥
यमेन स्वयमात्मानं सत्यमेवावगच्छता । कारितं यातनास्थानं वैतरण्यादि[4] पूर्वहिः ॥४५४॥
ततो ये निर्जितास्तेन संयतीन्द्रेण वा जिताः । प्रेषिताः दुःखमरणं प्राप्यन्ते तत्र ते नराः ॥४५५॥
वृत्तान्तं तमहं दृष्ट्वा कथमप्याकुलाकुलः । संभृतो दयितो भृत्यः क्रमादृक्षरजःकुले ॥४५६॥
नाम्ना शाखावली पुत्रः सुश्रोणीरणदक्षयोः । कृत्वा पलायनं प्राप्तो भवतस्त्रातुरन्तिकम् ॥४५७॥

भारी युद्ध हुआ। उस युद्धमें परस्परके शस्त्र प्रहारसे अनेक पुरुषोंका क्षय हुआ ॥४४३-४४४॥ अथानन्तर बड़ी गौरसे उनका कल-कल शब्द सुनकर यह दिक्पाल स्वयं क्रोधसे युद्ध करनेके लिए निकला। उस समय वह यम क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रके समान भयंकर जान पड़ता था ॥४४५॥ जिसका तेज अत्यन्त दुःसह था ऐसे यमने आते हीके साथ हमारी सेनाको नाना प्रकारके शस्त्रोंसे घायल कर भग्न कर दिया ॥४४६॥ अथानन्तर वह दूत इस प्रकार कहता-कहता बीचमें ही मूर्च्छित हो गया। वस्त्रके छोरसे हवा करनेपर पुनः सचेत हुआ ॥४४७॥ यह क्या है? इस प्रकार पूछे जानेपर उसने हृदयपर हाथ रखकर कहा कि हे देव! मुझे ऐसा जान पड़ा कि मैं वहीं पर हूँ। उसी दृश्यको सामने देख मैं मूर्च्छित हो गया ॥४४८॥

तदनन्तर आश्चर्यको धारण करनेवाले रावणने पूछा कि 'फिर क्या हुआ?' इस प्रश्नके उत्तरमें वह कुछ विश्राम कर फिर कहने लगा ॥४४९॥ कि हे नाथ! जब ऋक्षरजने देखा कि हमारी सेना अत्यन्त दुःखपूर्ण शब्दोंसे व्याकुल होती हुई पराजित हो रही है—नष्ट हुई जा रही है तब स्नेहयुक्त हो वह युद्ध करनेके लिए स्वयं उद्यत हुआ ॥४५०॥ वह अत्यन्त बलवान् यमके साथ चिरकाल तक युद्ध करता रहा। युद्ध करते-करते उसका हृदय नहीं टूटा था फिर भी शत्रुने छलसे उसे पकड़ लिया ॥४५१॥ तदनन्तर जब ऋक्षरज युद्ध कर रहा था उसी समय सूर्यरज भी युद्धके लिए उठा। उसने भी चिरकाल तक युद्ध किया पर अन्तमें वह शस्त्रकी गहरी चोट खाकर मूर्च्छित हो गया ॥४५२॥ आत्मीय लोग उसे उठाकर शीघ्र ही मेखला नामक वनमें ले गये। वहाँ वह चन्दन मिश्रित शीतल जलसे श्वासको प्राप्त हो गया अर्थात् शीतलोपचारसे उसकी मूर्च्छा दूर हुई ॥४५३॥ लोकपाल यमने अपने आपको सचमुच ही यमराज समझकर नगरके बाहर वैतरणी नदी आदि कष्ट देनेके स्थान बनवाये ॥४५४॥ तदनन्तर उसने अथवा इन्द्र विद्याधरने जिन्हें युद्धमें जीता था उन सबको उसने उस कष्टदायी स्थानमें रखा सो वे वहाँ दुःखपूर्वक मरणको प्राप्त हो रहे हैं ॥४५५॥ इस वृत्तान्तको देख मैं बहुत ही व्याकुल हूँ। मैं ऋक्षरजकी वंशपरम्परासे चला आया प्यारा नौकर हूँ। शाखावली मेरा नाम है, मैं सुश्रोणी और रणदक्षका पुत्र हूँ। आप चूँकि रक्षक हो इसलिए किसी तरह भागकर

---

१. -मुच्छ्रितः म.। २. उच्छ्रितः म.। ३. नीत्वा-श्वासन म.। ४. नगराद् बहिः, पूर्वकम् म.।

इति स्वपक्षदौःस्थित्यमवगम्य मयोदितम् । देव प्रमाणमत्रार्थे कृत्योऽहं[1] स्वनिवेदनात् ॥४५८॥
अथमुक्त्वा ततस्तस्य कर्तुमादिश्य सादरम् । उज्जचाल महाक्रोधः स्मितं कृत्वा दशाननः ॥४५९॥
अवादीच्चोदयतान् क्लेशमहार्णवमुपागतान् । वैतरण्यादिनिक्षिप्तान् बान्धवान्यसुधारिणः ॥४६०॥
अग्रसैन्येन योदाराः प्रहस्तप्रमुखा नृपाः । प्रवृत्ताः शस्त्रतेजोभिः कुर्वाणा ज्वलितं नभः ॥४६१॥
विचित्रवाहनारूढाश्छत्रध्वजसमाकुलाः । तूर्यनादसमुद्भूतमहोत्साहा महौजसः ॥४६२॥
[2]आथा गगनयात्राणां क्षितिं प्राप्ताः पुरान्तिकम् । शोभया गृहपङ्क्तीनां परमं विस्मयं गताः ॥४६३॥
दिशि किष्कुपुरस्याथ दक्षिणस्यां दशाननः । ददर्श नरकावासगर्तालीक्षिप्तभूसुतैः ॥४६४॥
कृत्वा नरकपालानां ध्वंसनं दुःखसागरात् । उत्तारितास्ततः सर्वे बन्धुनेवासुना जनाः ॥४६५॥
श्रुत्वा परबलं प्राप्तं साटोपो नाम वीर्यवान् । निर्ययौ सर्वसैन्येन प्रक्षुब्ध इव सागरः ॥४६६॥
द्विपैर्गिरिनिभैर्भीमैर्दानधारान्धकारिभिः । तुरङ्गैश्च चलच्चारुचामरप्राप्तभूषणैः ॥४६७॥
रथैरादित्यसंकाशैर्ध्वजपङ्क्तिविभूषितैः । पिनद्धकवचैः शस्त्रैर्भटैर्वीरैरधिष्ठितैः ॥४६८॥
ततस्तं स्यन्दनारूढो [3]हसन् यममटं क्षणात् । भल्लं विभीषणो निन्ये बाणै रणविशारदः ॥४६९॥
यमस्य किङ्करा दीना[4] कुर्वाणाः स्वमायतम् । बाणैः समाहताश्चक्रुः क्षिप्रं क्वापि पलायनम् ॥४७०॥

आपके पास आया हूँ ॥४५६-४५७॥ इस प्रकार अपने पक्षके लोगोंकी दुर्दशा जानकर मैंने आपसे कही है। इस विषयमें अब आप ही प्रमाण हैं अर्थात् जैसा उचित समझें सो करें। मैं तो आपसे निवेदन कर कृतकृत्य हो चुका ॥४५८॥ तदनन्तर महाक्रोधी रावणने अपने पक्षके लोगोंको बड़े आदरसे आदेश दिया कि इस शाखावलीके घाव ठीक किये जावें। तदनन्तर मुसकराता हुआ वह उठा और साथ ही उठे अन्य लोगोंसे कहने लगा कि मैं कष्टरूपी महासागरमें पड़े तथा वैतरणी आदि कष्टदायी स्थानोंमें डाले गये लोगोंका उद्धार करूँगा ॥४५९-४६०॥ प्रहस्त आदि बड़े-बड़े राजा सेनाके आगे दौड़े। वे शस्त्रोंके तेजसे आकाशको देदीप्यमान कर रहे थे ॥४६१॥ नाना प्रकारके वाहनोंपर सवार थे, छत्र और ध्वजाओंको धारण करनेवाले थे। तुरहीके शब्दोंसे उनका बड़ा भारी उत्साह प्रकट हो रहा था और वे महातेजस्वी थे ही ॥४६२॥ इस प्रकार विद्याधरोंके अधिपति आकाशसे उतरकर पृथिवीपर आये और नगर के समीप महलोंकी पंक्तिकी शोभा देख परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥४६३॥ तदनन्तर रावणने किष्कुपुर नगरकी दक्षिण दिशामें कृत्रिम नरकके गर्तमें पड़े मनुष्योंके समूहको देखा ॥४६४॥ देखते ही उसने नरककी रक्षा करनेवाले लोगोंको नष्ट किया और जिस प्रकार बन्धुजन अपने इष्ट लोगोंको कष्टसे निकालते हैं उसी प्रकार उसने सब लोगोंको नरकसे निकाला ॥४६५॥ तदनन्तर शत्रुसेनाको आया सुनकर बड़े भारी आडम्बरको धारण करनेवाला, शक्तिशाली यम नाम लोकपालका साटोप नामका प्रमुख भट युद्ध करनेके लिए अपनी सब सेनाके साथ बाहर निकला। उस समय वह ऐसा जान पड़ता था मानो क्षोभको प्राप्त हुआ सागर ही हो ॥४६६॥ पहाड़के समान ऊँचे, भयंकर और मदकी धारासे अन्धकार फैलानेवाले हाथी, चलते हुए सुन्दर चामररूपी आभूषणोंको धारण करनेवाले घोड़े, सूर्यके समान देदीप्यमान तथा ध्वजाओंकी पंक्तिसे सुशोभित रथ, और कवच धारण करनेवाले एवं शस्त्रोंसे युक्त शूरवीर योद्धा इस प्रकार चतुरंग सेना उसके साथ थी ॥४६७-४६८॥ तदनन्तर रथपर आरूढ़ एवं रणकलामें निपुण विभीषणने हँसते-हँसते ही बाणोंके द्वारा उस साटोपको क्षण-भरमें मार गिराया ॥४६९॥ यमके जो दीन हीन किंकर थे वे भी बाणोंसे ताड़ित हो आकाशको लम्बा

१. कृती + अहम्, कृत्योऽहं म.। कृत्योऽहं तन्निवेदनात् क., ख.। २. तथा म.। ३. हंसनैः सुभटं म.। ४. दीनं क., ख.।

मोचितान् नरकात् श्रुत्वा साटोपं चावसादितम् । यमो यम इव क्रूरो महाशस्त्रोत्वेगतः[1] ॥४७१॥
रथोत्साहः समारुह्य चापं कोपं च धारयन् । उच्छ्रितेन प्रतापेन ध्वजेन च महाबलः ॥४७२॥
आकुलासितसर्पाभभ्रकुटीकुटिलालकः । दहन्निव जगद्वह्निलोहितैर्दृग्भिरुद्वमन् ॥४७३॥
प्रतिबिम्बैरिवात्मीयैः सामन्तैः कृतवेष्टनः । योद्धुं वेगान्निष्क्राम छादयन् तेजसा नभः ॥४७४॥
ततस्तं निर्गतं दृष्ट्वा विनिवार्य विभीषणम् । दशाननो रणं कर्तुमुत्थितः कोपमुद्वहन् ॥४७५॥
साटोपव्यसनेनातिदीप्तोऽथ यमः समम् । दशास्येन रणं कर्तुमारेभे भीषणाननः ॥४७६॥
दृष्ट्वा च[2] तं ततो भीता जाता राक्षसवाहिनी । दशाननसमीपं सा दुढौके मन्दचेष्टिता ॥४७७॥
रथारूढस्ततस्तस्य दशास्योऽभिमुखं ययौ । विमुञ्चन् शरसंघातं मुञ्चतः शरसंहतीः ॥४७८॥
ततस्तयोः शरैश्छन्नं भीमनिस्वनकारिभिः[3] । नभो घनैरिवाशेषं घनबद्धकदम्बकैः ॥४७९॥
कैकसीनन्दनेनाथ शरेण कृततोदनः । भूमौ ग्रह इवापुण्यः पपात यमसारथिः ॥४८०॥
ताडितस्तीक्ष्णबाणेन कृतान्तोऽप्यरथीकृतः । उत्पपात रवेर्मार्गमन्तर्हिततनुः क्षणात् ॥४८१॥
ततः सान्तःपुरः पुत्रसहितोऽमात्यसंयुतः । कम्पमानतनुर्भीत्या यातोऽसौ रथनूपुरम् ॥४८२॥
नमस्कृत्य च संभ्रान्त इन्द्रमेवममाषत[4] । शृणु विज्ञापनं देव कृतं मे यमलीलया ॥४८३॥
प्रसीद यज वा कोपं हर वा जीवनं विभो । कुरु वा वाञ्छितं यत्ते यमतां न करोम्यहम् ॥४८४॥

करते हुए शीघ्र ही कहीं भाग खड़े हुए ॥४७०॥ जब यम नाम लोकपालको पता चला कि सूर्यरज, ऋक्षरज आदिको नरकसे छुड़ा दिया है तथा साटोप नामक प्रमुख भटको मार डाला है तब यमराजके समान क्रूर तथा महाशस्त्रोंको धारण करनेवाला वह यम लोकपाल बड़े वेगसे रथपर सवार हो युद्ध करने के लिए बाहर निकला। वह धनुष तथा क्रोधको धारण कर रहा था, बड़े हुए प्रताप और ऊँची उठी ध्वजासे युक्त था, महाबलवान् था, काले सर्पके समान भयंकर भौंहोंसे उसका ललाट कुटिल हो रहा था, वह अपने लाल-लाल नेत्रोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो जगत्‌रूपी वनको जला ही रहा हो। अपने ही प्रतिबिम्बके समान दिखनेवाले अन्य सामन्त उसे घेरे हुए थे तथा तेजसे वह आकाशको आच्छादित कर रहा था ॥४७१–४७४॥ तदनन्तर यम लोकपालको बाहर निकला देख दशाननने विभीषणको मना किया और स्वयं ही क्रोधको धारण करता हुआ युद्ध करनेके लिए उठा ॥४७५॥ साटोपके मारे जानेसे जो अत्यन्त देदीप्यमान दिख रहा था ऐसे भयंकर मुखको धारण करनेवाले यमने दशाननके साथ युद्ध करना शुरू किया ॥४७६॥ यमको देख राक्षसोंकी सेना भयभीत हो उठी, उसकी चेष्टाएँ मन्द पड़ गयीं और वह निरुत्साह हो दशाननके समीप भाग खड़ी हुई ॥४७७॥ तदनन्तर रथपर बैठा हुआ दशानन बाणोंकी वर्षा करता हुआ यमके सम्मुख गया। यम भी बाणोंकी वर्षा कर रहा था ॥४७८॥ तदनन्तर सघन मण्डल बाँधनेवाले मेघोंसे जिस प्रकार समस्त आकाश व्याप्त हो जाता है उसी प्रकार उन दोनोंके भयंकर शब्द करनेवाले बाणोंसे समस्त आकाश व्याप्त हो गया ॥४७९॥ अथानन्तर दशाननके बाणकी चोट खाकर यमका सारथि पुण्यहीन ग्रहके समान भूमिपर गिर पड़ा ॥४८०॥ यम लोकपाल भी दशाननके तीक्ष्ण बाणसे ताड़ित हो रथरहित हो गया। इस कार्यसे वह इतना घबड़ाया कि क्षण-भरमें छिपकर आकाशमें जा उड़ा ॥४८१॥ तदनन्तर भयसे जिसका शरीर काँप रहा था ऐसा यम अपने अन्तःपुर, पुत्र और मन्त्रियोंको साथ लेकर रथनूपुर नगरमें पहुँचा ॥४८२॥ और बड़ी घबराहटके साथ इन्द्रको नमस्कार कर इस प्रकार कहने लगा कि हे देव! मेरी बात सुनिए। अब मुझे यमराजकी लीलासे प्रयोजन नहीं है ॥४८३॥ हे नाथ! चाहे आप प्रसन्न हों, चाहे क्रोध करें, चाहे मेरा जीवन हरण करें अथवा चाहे जो आपकी

१. महाशस्त्राटवीं गतः म. (महाशस्त्रोतिवेगतः)। २. दृष्ट्वैवं म.। ३. भीमनिश्चलकारिभिः म.। ४. इदमेवा- म.।

युद्धे वैश्रवणो येन निर्जितः पुरुतेजसा । अहमप्यमुना नीतो भङ्गं कृतरणश्रिरम् ॥४८५॥
सृष्टं वीररसेनेव वपुस्तस्य महात्मनः । दुरीक्ष्यो[1] व्योममध्यस्थसवितेव निदाघजः ॥४८६॥
इति श्रुत्वा सुराधीशः संग्रामाय कृतोद्यतिः । निरुद्धो मन्त्रिवर्गेण नय याथात्म्यवेदिना ॥४८७॥
जगाद च स्मितं श्रुत्वा मातुलं क्व स यास्यति । भयं मुञ्च सुविश्रब्धो मयास्मिन्नासने सुखम् ॥४८८॥
जामातुरथ वाक्येन परित्यज्य रिपोर्भयम् । पुरं सुरवरोद्गीतमध्युवास यमः सुखी ॥४८९॥
विधायान्तकसंमानं सुरेशोऽन्तःपुरं ययौ । कामभोगसमुद्रेऽसौ तत्र मग्नो महामदः ॥४९०॥
दशास्यचरितं तस्मै यत्प्रेतपतिनोदितम् । वनवासी धनपतेर्भङ्गिनो यश्च संयुगे ॥४९१॥
सर्वमैश्वर्यमत्तस्य विस्मृतं तस्य तत्क्षणात् । अभ्यग्रपठितं शास्त्रं यथाभ्यसनवर्जितम् ॥४९२॥
कृतोपलम्भं स्वप्नेऽपि ज्ञायते वस्तुलेशतः । निरन्वयं तु तस्येदं विस्मृतं पूर्वचोदितम् ॥४९३॥
प्राप्य वा सुरसंगीतपुरस्य पतितां यमः । विससार परिप्राप्तं परिभूतिं दशाननात् ॥४९४॥
मेने च मम सर्वश्रीर्दुहिता रूपशालिनी । सा च गीर्वाणनाथस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥४९५॥
अत्यन्तमन्तरङ्गोऽयं संबन्धो महता सह । अतो जन्म कृतार्थं मे प्राप्य शक्रप्रतीक्ष्यताम् ॥४९६॥
ततो महोदयोत्साहः श्रीमानुद्भासितान्तकः । नगरं सूर्यरजसे ददौ किष्किन्धसंज्ञकम् ॥४९७॥
तथार्क्षरजसे किष्कुपुरं परमसंपदम् । प्राप्य शौचक्रमायाते नगरे तौ सुखं स्थितौ ॥४९८॥

इच्छा हो सो करें परन्तु अब मैं यमपना अर्थात् यम नामा लोकपालका कार्य नहीं करूँगा ॥४८४॥ विशाल तेजको धारण करनेवाले जिस योधाने पहले युद्धमें वैश्रवणको जीता था उसी योद्धा दशाननने मुझे भी पराजित किया है। यद्यपि मैं चिरकाल तक उसके साथ युद्ध करता रहा पर स्थिर नहीं रह सका ॥४८५॥ उस महात्माका शरीर ऐसा जान पड़ता है मानो वीर रससे ही बना हो। वह आकाशके मध्यमें स्थित ग्रीष्मकालीन सूर्यके समान दुर्निरीक्ष्य है अर्थात् उसकी ओर कोई आँख उठाकर भी नहीं देख सकता है ॥४८६॥ यह सुनकर इन्द्र युद्धके लिए उद्यत हुआ परन्तु नीतिकी यथार्थताको जाननेवाले मन्त्रिमण्डलने उसे रोक दिया ॥४८७॥ इन्द्र, यमका जामाता था सो यमकी बात सुन मन्द हास्य करते हुए उसने कहा कि हे मातुल! दशानन कहाँ जायेगा? तुम भयको छोड़ो और निश्चिन्त होकर इस आसनपर सुखसे बैठो ॥४८८॥ इस प्रकार जामाताके वचनसे शत्रुका भय छोड़कर यम इन्द्रके द्वारा बतलाये हुए नगरमें सुखसे रहने लगा ॥४८९॥ बहुत भारी गर्वको धारण करनेवाला इन्द्र यमका सन्मानकर अन्तःपुरमें चला गया और वहाँ जाकर कामभोगरूपी समुद्रमें निमग्न हो गया ॥४९०॥ यमने दशाननका जो चरित्र इन्द्रके लिए कहा था तथा युद्धमें दशाननसे पराजित होकर वैश्रवणको जो वनवास करना पड़ा था, ऐश्वर्यके मदमें मस्त रहनेवाले इन्द्रके लिए वह सब क्षण-भरमें उस प्रकार विस्मृत हो गया जिस प्रकार कि पहले पढ़ा शास्त्र अभ्यास न करनेपर विस्मृत हो जाता है ॥४९१-४९२॥ स्वप्नमें उपलब्ध वस्तुका कुछ तो भी स्मरण रहता है परन्तु इन्द्रके लिए पूर्व कथित बातका निर्मूल विस्मरण हो गया ॥४९३॥ इधर इन्द्रका यह हाल हुआ उधर यम सुरसंगीत नामा नगरका स्वामित्व पाकर दशाननसे प्राप्त हुए तिरस्कारको बिलकुल भूल गया ॥४९४॥ वह मानता था कि मेरी पुत्री सर्वश्री अत्यन्त रूपवती है और इन्द्रको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है ॥४९५॥ इस प्रकार एक बड़े पुरुषके साथ मेरा अन्तरंग सम्बन्ध है इसलिए इन्द्रका सम्मान पाकर मेरा जन्म कृत-कृत्य अर्थात् सफल हुआ है ॥४९६॥

तदनन्तर महान् अभ्युदय और उत्साहको धारण करनेवाले दशाननने यमको हटाकर किष्किन्ध नामा नगर सूर्यरजके लिए दिया ॥४९७॥ और ऋक्षरजके लिए परम सम्पत्तिको

---

१. दुरीक्षो म. ।

ते शक्रनगराभिख्ये पुरे काञ्चनसद्मनी[1] । उचितस्वामिसंयुक्ते जग्मतुः परमां श्रियम् ॥४९९॥
सौमालिरपि बिभ्राणः श्रियं कीर्तिं च भूयसीम् । प्रत्यवस्थितसामन्तैः प्रणमद्भिः समुत्तमः ॥५००॥
पूर्यमाणः सदा सेव्यैर्विभवैः प्रतिवासरम् । चन्द्रः कुमुदखण्डानां सितपक्षे करैरिव ॥५०१॥
रत्नदामाकुलं तुङ्गं शृङ्गपङ्क्तिविराजितम् । आरुह्य पुष्पकं चारु विमानं कामगस्वरम् ॥५०२॥
युक्तः परमधैर्येण [illegible] । त्रिकूटशिखरं प्रति परया प्रस्थितः कृती ॥५०३॥
ततो रक्षोगणास्तस्य प्रमोदं परमं श्रिताः । चित्रालंकारसंपन्ना वरीयोवस्त्रधारिणः ॥५०४॥
जय नन्द चिरं जीव वर्धस्वोदेहि संततम् । इति मङ्गलवाक्यानि प्रयुञ्जाना महारवाः ॥५०५॥
सिंहशार्दूलमातङ्गवाजिहंसादिसंश्रिताः । नानाविभ्रमसंयुक्ताः प्रमोदस्फिकचेक्षणाः ॥५०६॥
बिभ्राणास्त्रिदशाकारं तेजोव्याप्तदिगायसः । आलोकितसमस्ताशाः काननाद्रिसमुद्गगाः ॥५०७॥
अदृष्टपारगम्भीरं महाग्राहसमाकुलम् । तमालवनसंकाशं गिरितुङ्गोर्मिसंहतिम् ॥५०८॥
रसातलमिवानेकनागनायकभीषणम् । नानारत्नकरव्रातरञ्जितोद्देशराजितम् ॥५०९॥
पश्यन्तो विस्मयापूर्णाः समुद्रं विविधाद्भुतम् । अनुजग्मुरहो हीति मुहुर्मुखरिताननाः ॥५१०॥

धारण करनेवाला किष्कुपुर नगर दिया। इस प्रकार सूर्यरज और ऋक्षरज दोनों ही अपनी कुलपरम्परासे आगत नगरोंको पाकर सुखसे रहने लगे ॥४९८॥ जिनकी शोभा इन्द्रके नगरके समान थी, और जिनमें सुवर्णमय भवन बने हुए थे ऐसे वे दोनों नगर योग्य स्वामीसे युक्त होकर परम लक्ष्मीको प्राप्त हुए ॥४९९॥ बहुत भारी लक्ष्मी और कीर्तिको धारण करनेवाले दशाननने कृतकृत्य होकर बड़े वैभवके साथ त्रिकूटाचलके शिखरकी ओर प्रस्थान किया। इस समय शत्रु राजा प्रणाम करते हुए उससे मिल रहे थे। वह स्वयं उत्तम था और जिस प्रकार शुक्ल पक्षमें चन्द्रमा किरणोंसे प्रतिदिन पूर्ण होता रहता है उसी प्रकार वह भी प्रतिदिन सेवनीय वैभवसे पूर्ण होता रहता था। रत्नमयी मालाओंसे युक्त, ऊँचे शिखरोंकी पंक्तिसे सुशोभित, सुन्दर और इच्छानुसार गमन करनेवाले पुष्पक विमानपर आरूढ़ होकर वह आ रहा था। वह परम धैर्यसे युक्त था तथा पुण्यके फलस्वरूप अनेक अभ्युदय उसे प्राप्त थे ॥५००–५०३॥

तदनन्तर परम हर्षको प्राप्त, नाना अलंकारोंसे युक्त एवं उत्तमोत्तम वस्त्र धारण करनेवाले राक्षसोंके झुण्डके झुण्ड जोर-जोरसे निम्नांकित मंगल वाक्योंका उच्चारण कर रहे थे कि हे देव! तुम्हारी जय हो, तुम समृद्धिको प्राप्त होओ, चिरकाल तक जीते रहो, बढ़ते रहो और निरन्तर अभ्युदयको प्राप्त होते रहो ॥५०४-५०५॥ वे राक्षस, सिंह, शार्दूल, हाथी, घोड़े तथा हंस आदि वाहनोंपर आरूढ़ थे। नाना प्रकारके विभ्रमोंसे युक्त थे। हर्षसे उनके नेत्र फूल रहे थे। वे देवों-जैसी आकृतियोंको धारण कर रहे थे। अपने तेजसे उन्होंने दिशाओंको व्याप्त कर रखा था। उनकी प्रभासे समस्त दिशाएँ जगमगा रही थीं और वे वन, पर्वत तथा समुद्र आदि सर्व स्थानोंमें चल रहे थे ॥५०६–५०७॥ जिसका किनारा नहीं दीख रहा था, जो अत्यन्त गहरा था, बड़े-बड़े ग्राह—मगर-मच्छोंसे व्याप्त था, तमाल वनके समान श्याम था, पर्वतों-जैसी ऊँची-ऊँची तरंगोंके समूह उठ रहे थे, जो रसातलके समान अनेक बड़े-बड़े नागों—सर्पोंसे भयंकर था, और नाना-प्रकारके रत्नोंकी किरणोंके समूहसे अनुरक्त स्थलोंसे सुशोभित था ऐसे अनेक आश्चर्योंसे युक्त समुद्रको देखते हुए वे राक्षस आश्चर्यसे भर रहे थे। अहो, ही, आदि आश्चर्यव्यंजक शब्दोंसे उनके मुख बार-बार मुखरित हो रहे थे। इस प्रकार अनेक राक्षस दशाननके पीछे-पीछे चल रहे थे ॥५०८–५१०॥

१. सद्मनि म.। २. बन्धः म.।

अथ भास्वन्महाशालां गम्भीरपरिखावृत्तान् । कुन्दशुभ्रैर्महानीलगोलैर्जालककुक्षिषु ॥५११॥
पद्मरागारुणैरुच्चैः क्वचित्पुष्पमणिप्रभैः । गरुत्ममणिसंकाशैरन्यत्र निचितां गृहैः ॥५१२॥
[illegible] दुरात् कृतभूषणम् । रक्षोनाथागमे भक्तैः पौरैरद्भुतसंभ्रमैः ॥५१३॥
अत्यन्तमधिकां कुर्वन् शोभां गिरिनिभैर्गजैः । महाप्रासादसंकाशैः स्यन्दनै रत्नरञ्जितैः ॥५१४॥
अश्वघुर्मैः क्वणद्धेमषण्टकैश्चलचामरैः । विमानैः शिखरारूढदूराकाशैर्बहुप्रभैः ॥५१५॥
छत्रैः शशाङ्कसंकाशैर्ध्वजैरुद्भूतकोटिभिः । वन्दिवृन्दारकौघेन कृतमङ्गलनिस्वनः ॥५१६॥
वीणावेणुविमिश्रेण शङ्खनादानुगामिना । तूर्यनादेन निःशेषं दिङ्मुखोविदितात्मना ॥५१७॥
प्रविवेश निजामीशो लङ्कां शङ्काविवर्जितः । त्रिदशेश इवोदारो दशास्यः शासिता हितः ॥५१८॥
ततो गोत्रक्रमायातनाथदर्शनलालसाः । गृहीत्वार्घं[1] फलैः पुष्पैः पत्रै रत्नैश्च कल्पितम् ॥५१९॥
गृहीतभूषणास्यन्तचारुवस्त्रादिसंपदः । नृत्यद्भिर्गणिकासङ्घैरन्विता नेत्रहारिभिः ॥५२०॥
सर्वे पौराः समागत्य प्रयुक्ताशीर्गिरो मुहुः । [2]आनर्चुः सनमस्कारा यथावृद्धपुरस्सराः ॥५२१॥
विसर्जिताश्च ते तेन संप्राप्तप्रतिमाननाः । यथास्वं निलयं जग्मुस्तद्गुणोत्किर्तानाः ॥५२२॥
अथ तद्भवनं तस्य कौतुकव्याप्तबुद्धिभिः । नारीभिः कृतभूषाभिः पूरितं तद्विदूक्षुभिः ॥५२३॥
गवाक्षाभिमुखाः काश्चिच्चरावित्रस्तवाससः । अन्योऽन्यवाधविच्छिन्नमुक्ताहारविभूषणाः ॥५२४॥

अथानन्तर जिसमें बड़ी-बड़ी शालाएँ देदीप्यमान हो रही थीं, जो गम्भीर परिखासे आवृत थी, जो झरोखोंमें लगे हुए मणियोंसे कहीं तो कुन्दके समान सफेद, कहीं महानील मणियोंके समान नील, कहीं पद्मरागमणिके समान लाल, कहीं पुष्परागमणियोंके समान प्रभास्वर और कहीं गरुड़मणियोंके समान गहरे नील वर्णवाले महलोंसे व्याप्त थी। जो स्वभावसे ही सुशोभित थी फिर राक्षसोंके अधिपति दशाननके शुभागमनके अवसरपर आश्चर्यकारी हर्षसे भरे भक्त नागरिकजनोंके द्वारा और भी अधिक सुशोभित की गयी थी ऐसी अपनी लंका नगरीमें हितकारी उदार शासक दशाननने निःशंक हो इन्द्रके समान प्रवेश किया। प्रवेश करते समय दशानन, पर्वतोंके समान ऊँचे-ऊँचे हाथियों, बड़े-बड़े महलोंके समान रत्नोंसे रंजित रथों, जिनकी लगामके स्वर्णमयी छल्ले शब्द कर रहे थे एवं जिनके आजूबाजू चमर ढोले जा रहे थे ऐसे घोड़ों, जिनके शिखर दूर तक आकाशमें चले गये थे ऐसे रंगबिरंगे विमानों, चन्द्रमाके समान उज्ज्वल छत्रों, और जिनका अंचल आकाशमें दूर-दूर तक फहरा रहा था ऐसी ध्वजाओंसे लंकाकी शोभाको अत्यन्त अधिक बढ़ा रहा था। उत्तमोत्तम चारणोंके झुण्ड मंगल शब्दोंका उच्चारण कर रहे थे। वीणा, बाँसुरी और शंखोंके शब्दसे मिश्रित तुरहीकी विशालध्वनिसे समस्त दिशा और आकाश व्याप्त हो रहे थे ॥५११-५१८॥ तदनन्तर कुलक्रमसे आगत स्वामीके दर्शन करनेकी जिनकी लालसा बढ़ रही थी, जिन्होंने आभूषण तथा अत्यन्त सुन्दर वस्त्रादि सम्पदाएँ धारण कर रखी थीं और जो नृत्य करती हुई नयनाभिराम गणिकाओंके समूहसे युक्त थे, ऐसे समस्त पुरवासी जन, फलों-फूलों, पत्तों और रत्नोंसे निर्मित अर्घ लेकर बार-बार आशीर्वादका उच्चारण करते हुए दशाननके समक्ष आये। उन पुरवासियोंने वृद्धजनोंको अपने आगे कर रखा था। उन्होंने आते ही दशाननको नमस्कार कर उसकी पूजा की ॥५१९-५२१॥ दशाननने सबका सम्मान कर उन्हें विदा किया और सब अपने मुखोंसे उसीका गुणगान करते हुए अपने-अपने घर गये ॥५२२॥ अथानन्तर जिनकी बुद्धि कौतुकसे व्याप्त हो रही थी और जिन्होंने तरह-तरहके आभूषण धारण कर रखे थे ऐसी उसकी दर्शनाभिलाषी स्त्रियोंसे दशाननका घर भर गया ॥५२३॥ उन स्त्रियोंमें कितनी ही स्त्रियाँ झरोखोंके सम्मुख आ रही थीं। शीघ्रताके कारण उनके वस्त्र खुल रहे थे और परस्परकी धक्काधूमीसे उनके

१. गृहीतार्घं म.। २. आनर्तुः म.। ३. प्रतिमानताः म.। ४. स्वरां विस्रस्त -म.।

पीनस्तनतटान्योन्यपीडनाच्चलकुण्डलाः । रणत्कारि[1] सुताकोटिवाचालचरणद्वयाः ॥५२५॥
किं न पश्यसि हा मातः पार्श्वतो भव दुर्भगे । देहि मार्गं व्रजामुष्मादपि नारि न शोभसे ॥५२६॥
निगदन्त्येवमादीनि विकचाम्बुरुहाननाः । मुक्त्वा व्यापारजातानि तमैक्षन्त पुराङ्गनाः ॥५२७॥
पुरचूडामणौ गेहे स्वस्मिन् सत्कृतभूषणे । सुखं सान्तः पुरस्तस्थौ कृतान्तस्य विमर्दकः ॥५२८॥
अन्या अपि यथास्थानं स्थिता विद्याधराधिपाः । प्राप्नुवन्तो महानन्दं सततं त्रिदशा इव ॥५२९॥

द्रुतविलम्बितवृत्तम्

विविधरत्नसमागमसंपदः प्रबलशत्रुसमूलविमर्दनम् ।
सकलविष्टपगामि यशः सितं भवति निर्मितनिर्मलकर्मणाम् ॥५३०॥
रिपव उग्रतरा विषयाह्वया अपनयन्ति[2] भुवस्त्रितये स्मृतिम् ।
बहिरवस्थितशत्रुगणः पुनः सततमानमते[3] पदनन्तरम्[4] ॥५३१॥
इति विचिन्त्य न युक्तमुपासितुं विषयशत्रुगणं पुरचेतसः ।
अवटमेति जनस्तमसा वृतं न तु रवेः किरणैरवभासितम्[5] ॥५३२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दशग्रीवाभिधानं नामाष्टमं पर्व ॥८॥

मोतियोंके हार तथा अन्य आभूषण टूट-टूटकर गिर रहे थे ॥५२४॥ कितनी ही स्त्रियाँ अपने स्थूल स्तनोंसे एक दूसरेको पीड़ा पहुँचा रही थीं और उससे उनके कुण्डल हिल रहे थे। कितनी ही स्त्रियोंके दोनों पैर रुनझुन करते हुए नूपुरोंसे शब्दायमान हो रहे थे ॥५२५॥ कोई स्त्री सामने खड़ी दूसरी स्त्रीसे कह रही थी कि हे माता ! क्या देख नहीं रही हो ? अरी दुर्भगे ! जरा बगलमें हो जा, मुझे भी रास्ता दे दे। कोई कह रही थी कि अरी भली आदमिन ! तू यहाँसे चली जा, तू यहाँ शोभा नहीं देती ॥५२६॥ इत्यादि शब्द वे स्त्रियाँ कर रही थीं। उस समय उनके मुखकमल हर्षसे खिल रहे थे। वे अन्य सब काम छोड़कर एक दशाननको ही देख रही थीं ॥५२७॥ इस प्रकार यमका मानमर्दन करनेवाला दशानन, लंका नगरीमें स्थित चूड़ामणिके समान मनोहर अपने सुसज्जित महलमें अन्तःपुर सहित सुखसे रहने लगा ॥५२८॥ इसके सिवाय अन्य विद्याधर राजा भी देवोंके समान निरन्तर महाआनन्दको प्राप्त हुए यथायोग्य स्थानमें रहने लगे ॥५२९॥

गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जो निर्मल कार्य करते हैं उन्हें नाना प्रकारके रत्नादि सम्पदाओंकी प्राप्ति होती है, उनके प्रबल शत्रुओंका समूह नष्ट होता है और समस्त संसारमें फैलनेवाला उज्ज्वल यश उन्हें प्राप्त होता है ॥५३०॥ पंचेन्द्रियोंके विषय सबसे प्रबल शत्रु हैं सो जो निर्मल कार्य करते हैं उनके ये प्रबल शत्रु भी तीनों लोकोंमें अपनी स्मृति नष्ट कर देते हैं अर्थात् इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं कि उनका स्मरण भी नहीं रहता। इसी प्रकार बाह्यमें स्थित होनेवाला जो शत्रुओंका समूह है वह भी निर्मल कार्य करनेवाले मनुष्योंके चरणोंके समीप निरन्तर नमस्कार करता रहता है। भावार्थ—निर्मल कार्य करनेवाले मनुष्योंके अन्तरंग और बहिरंग दोनों ही शत्रु नष्ट हो जाते हैं ॥५३१॥ ऐसा विचारकर हे श्रेष्ठ चित्तके धारक पुरुषो ! विषयरूपी शत्रुसमूहकी उपासना करना उचित नहीं है। क्योंकि उनकी उपासना करनेवाला मनुष्य अन्धकारसे युक्त नरकरूपी गर्तमें पड़ता है न कि सूर्यकी किरणोंसे प्रकाशमान उत्तम स्थानको प्राप्त होता है ॥५३२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्यनिर्मित पद्मचरित ग्रन्थमें दशाननका कथन करनेवाला अष्टम पर्व समाप्त हुआ ॥८॥

□

१. रणत्करि म. । २. पुरे चूडामणौ म., पुरश्चूडामणौ ब. । ३. शेषाश्चापि म. । ४. सुखस्तुनये म., ब. । ५. मानयते म. । ६. यतते नरम् म., ब. ।

नवमं पर्व

अथ [1]सूर्यरजाः पुत्रं वालिसंज्ञमजीजनत् । [2]इन्दुमालिन्यभिख्यायां गुणसंपूर्णयोदिति ॥१॥
परोपकारिणं नित्यं [3]तथा शीलयुतं बुधम् । दक्षं धीरं श्रिया युक्तं [4]शूरं ज्ञानसमन्वितम् ॥२॥
कलाकलापसंयुक्तं [5]सम्यग्दृष्टिं महाबलम् । राजनीतिविदं वीरं कृपार्द्रीकृतचेतसम् ॥
[6]विद्यासमूहसंपन्नं कान्तिमन्तं सुतेजसम् ॥३॥
विरलस्तादृशो लोके पुरुषाणां [7]समुद्भवः । चन्दनानामिवोदारः प्रभावः प्रथितात्मनाम् ॥४॥
समस्तजिनबिम्बानां [8]वन्दनार्थमुद्यतः । [9]त्रिकालवलीर्गत्वेदेहे भक्त्या पुण्योदयेन यः ॥५॥
चतुःसमुद्रपर्यन्तं जम्बूद्वीपं क्षणेन यः । [10]त्रिःपरिक्षिप्य किष्किन्धं नगरं पुनरागमत् ॥६॥
इन्दुरूपराक्रमाधारः [11]शत्रुपक्षस्य मर्दकः । पौरनेत्रकुमुद्वत्याः पराङ्कः शङ्कयोज्झितः ॥७॥
किष्किन्धनगरे रम्ये चित्रप्रासादतोरणे । विद्वज्जनसमाकीर्णे द्विपवाजिवराकुले ॥८॥
नानासंव्यवहारासिरापणालीभिराकुले । रेमे कल्पे तथैशाने रत्नमालः सुरोत्तमः ॥९॥
अनुक्रमाच्च तस्याभूत् सुग्रीवाभिख्ययानुजः । वीरो धीरो मनोज्ञेन युक्तो रूपेण संनयः ॥१०॥

अथानन्तर सूर्यरजने अपनी चन्द्रमालिनी नामक गुणवती रानीमें बाली नामका पुत्र उत्पन्न किया ॥१॥ वह पुत्र परोपकारी था, निरन्तर शीलव्रतसे युक्त रहता था, विद्वान् था, कुशल था, धीर था, लक्ष्मीसे युक्त था, शूर-वीर था, ज्ञानवान् था, कलाओंके समूहसे युक्त था, सम्यग्दृष्टि था, महाबलवान् था, राजनीतिका जानकार था, वीर था, दयालु था, विद्याओंके समूहसे युक्त था, कान्तिमान् था और उत्तम तेजसे युक्त था ॥२-३॥ जिस प्रकार लोकमें उत्कृष्ट चन्दनकी उत्पत्ति विरल अर्थात् कहीं-कहीं ही होती है उसी प्रकार बाली-जैसे उत्कृष्ट पुरुषोंका जन्म भी विरल अर्थात् कहीं-कहीं होता है ॥४॥ जिसका समस्त सन्देह दूर हो गया था ऐसा बाली उत्कृष्ट भक्तिसे युक्त होकर तीनों ही काल समस्त जिन-प्रतिमाओंकी वन्दना करनेके लिए उद्यत रहता था ॥५॥ जिसकी चारों दिशामें समुद्र घिरा हुआ है ऐसे जम्बूद्वीपको वह क्षण भरमें तीन प्रदक्षिणाएँ देकर अपने किष्किन्ध नगरमें वापस आ जाता था ॥६॥ इस प्रकारके अद्भुत पराक्रमका आधारभूत बाली शत्रुओंके पक्षका मर्दन करनेवाला था, पुरवासी लोगोंके नेत्ररूपी कुमुदिनियोंको विकसित करनेके लिए चन्द्रमाके समान था और निरन्तर शंकासे दूर रहता था ॥७॥ जहाँ रंग-बिरंगे महलोंके तोरणद्वार थे, जो विद्वज्जनोंसे व्याप्त था, एकसे एक बढ़कर हाथियों और घोड़ोंसे युक्त था, और अनेक प्रकारके व्यापारोंसे युक्त बाजारोंसे सहित था ऐसे मनोहर किष्किन्ध नगरमें वह बाली इस प्रकार क्रीड़ा करता था जिस प्रकार कि ऐशान स्वर्गमें रत्नोंकी माला धारण करनेवाला इन्द्र क्रीड़ा किया करता है ॥८-९॥

अनुक्रमसे बालीके सुग्रीव नामका छोटा भाई उत्पन्न हुआ। सुग्रीव भी अत्यन्त धीर वीर,

---

१. सूर्यरजा म.। सूर्यरजः ख.। २. चन्द्रमालिन्य -म.। ३. दयाशील म.। दयाशील -म.। ४. बुधाः क. ५. शूरं ज्ञानसमन्वितम् म.। ६. सम्यग्दृष्टि महाबलम् म.। ७. विद्यासमूहसंपन्नं कान्तिमन्तं सुतेजसम् क., ख., म.। ८. एष श्लोकः षट्पादात्मकः, रामायणमहाभारतादिषु षट्पादात्मका अपि अनुष्टुप्श्लोका दृश्यन्ते। ९. पुरुषाणां च समुद्भवः म.। १०. त्रिकाले क.। ११. त्रिः परीत्य म., म पुस्तके एष श्लोकः 'त्रिकालतीर्णं संदेहं—इत्यारभ्य-पुनरागमत्' पर्यन्तं षट्पादात्मको वर्तते। १२. शत्रुपक्षविमर्दकः ख.।

विज्ञेयौ वालिसुग्रीवौ किष्किन्धकुलभूषणौ । तयोस्तु भूषणीभूता विनयप्रमुखा गुणाः ॥११॥
सुग्रीवानन्तरा कन्या [1]रूपेणाप्रतिमा भुवि । श्रीप्रभेति समुद्भूता [2]क्रमशः श्रीरिव स्वयम् ॥१२॥
किष्कुप्रमोदनगरे हरिकान्ताख्ययोषिति[3] । क्रमादृक्षरजाः पुत्रौ नलनीलावजीजनत् ॥१३॥
वितीर्णस्वजनानन्दौ रिपुशङ्कावितारिणौ । उदात्तगुणसंभारौ भूतौ तौ किष्कुमण्डनौ ॥१४॥
यौवनश्रियमालोक्य सुतस्य स्थितिपालिनीम् । विषमिश्रान्नसदृशान्विदित्वा विषयान् बुधः ॥१५॥
वितीर्य बालये राज्यं धर्मपालनकारणम् । सुग्रीवाय च सच्चेष्टो युवराजपदं कृती ॥१६॥
अवगम्य परं स्वं च जनं साम्येन सज्जनः । चतुर्गति जगज्ज्ञात्वा महादुःखनिपीडितम् ॥१७॥
मुनेः पिहितमोहस्य शिष्यः सूर्यरजा अभूत् । यतीनामाचरणाधारः शरीरेऽपि गतस्पृहः ॥१८॥
नभोवदमलस्वान्तः सङ्गमुक्तः समीरवत् । विजहार स निष्क्रोधो धरण्यां मुक्तिलालसः ॥१९॥
अथ बालेर्ध्रुवा नाम्ना साध्वी पाणिगृहीत्यभूत् । अङ्गनानां शतस्यापि प्राधान्यं या गुणोदयात् ॥२०॥
तया सह महैश्वर्यं सोऽन्वभूद्वानरविभ्रमः । श्रीधानराङ्कमुकुटः पूजिताज्ञः खगाधिपैः ॥२१॥
अत्रान्तरे छलान्वेषी मेघप्रभशरीरजः । हर्तुमिच्छति सां कन्यां लङ्केशस्य [4]सहोदराम् ॥२२॥
यदैव तेन सा दृष्टा सर्वगात्रमनोहरा । तदा प्रभृत्ययं देहमधत्तानङ्गपीडितम् ॥२३॥

नीतिज्ञ एवं मनोहर रूपसे युक्त था ॥१०॥ बाली और सुग्रीव—दोनों ही भाई किष्किन्ध नगरके कुलभूषण थे और विनय आदि गुण उन दोनोंके आभूषण थे ॥११॥ सुग्रीवके बाद श्रीप्रभा नामकी कन्या उत्पन्न हुई जो पृथ्वीमें रूपसे अनुपम थी तथा साक्षात् श्री अर्थात् लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी ॥१२॥

सूर्यरजका छोटा भाई ऋक्षरज किष्कुप्रमोद नामक नगरमें रहता था। सो उसने वहाँ हरिकान्ता नामक रानीमें क्रमसे नल और नील नामक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥१३॥ ये दोनों ही पुत्र आत्मीय जनोंको आनन्द प्रदान करते थे, शत्रुओंको भय उत्पन्न करते थे, उत्कृष्ट गुणोंसे युक्त थे और किष्कुप्रमोद नगरके मानो आभूषण ही थे ॥१४॥ विद्वान्, कुशल एवं समीचीन चेष्टाओंको धारण करनेवाले सूर्यरजने जब देखा कि पुत्रकी यौवन लक्ष्मी कुल-मर्यादाका पालन करनेमें समर्थ हो गयी है, तब उसने पंचेन्द्रियोंके विषयोंको विषमिश्रित अन्नके समान त्याज्य समझकर धर्म रक्षाका कारणभूत राज्य बालीके लिए दे दिया और सुग्रीवको युवराज बना दिया ॥१५-१६॥ सत्पुरुष सूर्यरज स्वजन और परिजनको समान जान तथा चतुर्गति रूप संसारको महादुःखोंसे पीड़ित अनुभव कर पिहितमोह नामक मुनिराजका शिष्य हो गया। जिनेन्द्र भगवान्‌ने मुनियोंका जैसा चारित्र बतलाया है सूर्यरज वैसे ही चारित्रका आधार था। वह शरीरमें भी निःस्पृह था। उसका हृदय आकाशके समान निर्मल था, वह वायुके समान निःसंग था, क्रोधरहित था और केवल मुक्तिकी ही लालसा रखता हुआ पृथिवीमें विहार करता था ॥१७-१९॥

अथानन्तर बालीकी ध्रुवा नामकी शीलवती स्त्री थी। वह ध्रुवा अपने गुणोंके अभ्युदयसे उसकी अन्य सौ स्त्रियोंमें प्रधानताको प्राप्त थी ॥२०॥ जिसके मुकुटमें वानरका चिह्न था, तथा विद्याधर राजा जिसकी आज्ञा बड़े सम्मानके साथ मानते थे ऐसा सुन्दर विभ्रमको धारण करने वाला बाली उस ध्रुवा रानीके साथ महान् ऐश्वर्यका अनुभव करता था ॥ २१ ॥ इसी बीचमें मेघप्रभका पुत्र खरदूषण जो निरन्तर छलका अन्वेषण करता था दशाननकी बहन चन्द्रनखाका अपहरण करना चाहता था ॥२२॥ जिसका सर्व शरीर सुन्दर था ऐसी चन्द्रनखाको जिस समयसे खरदूषणने देखा था उसी समयसे उसका शरीर कामसे पीड़ित हो गया था ॥२३॥

---

१. रूपेण प्रतिमा म. २. समतः क. । ३. योषिता म. । ४. चन्द्रनखाम् ।

आवल्यां प्रवराज्ञातां कन्यां नाम्ना तनूदरीम् । गतः [1]स्तेनयितुं यावद्यमस्य परिमर्दकः ॥२४॥
ज्ञात्वाथ [3]निश्चिभिस्तावल्लङ्कां वीतदशाननाम् । सुखं चन्द्रनखां जह्रे विद्यामायाप्रवीणधीः ॥२५॥
शूरौ किं कुरुतामत्र भानुकर्णविभीषणौ । यत्रारिश्छिद्रमासाद्य कन्यां हरति मायया ॥२६॥
पृष्ठतश्च [4]ततः सैन्यं गच्छत्ताभ्यां निवर्तितम् । जीवग्रहे रणे शक्तो गृहीतुं नेति चेतसा ॥२७॥
शुश्राव चागतो वार्तां तादृशीं कैकसीसुतः । जगाम च [5]दुरीक्ष्यत्वं कोपावेशात् सुभीषणात् ॥२८॥
तत आगमनोद्भूतश्रमप्रस्वेदबिन्दुषु । स्थितेष्वेव पुनर्गन्तुमुद्यतो मानचोदितः ॥२९॥
सहायं खड्गमेकं च जग्राहान्यपराङ्मुखः । अन्तरङ्गः स एवैकः संग्रामे वीर्यशालिनाम् ॥३०॥
तावन्मन्दोदरी श्रुत्वा करद्वयसरोरुहम् । व्यज्ञापयदिति व्यक्तज्ञातलौकिकसंस्थितिः ॥३१॥
कन्या नाम प्रभो देया परस्मायेव निश्चयात् । उत्पत्तिरेव तासां हि तादृशी सार्वलौकिकी ॥३२॥
खेचराणां सहस्राणि सन्ति तस्य चतुर्दश । ये वीर्यकृतसेनाहाः समरादनिवर्तिनः ॥३३॥
बहून्यस्य सहस्राणि विद्यानां दर्पशालिनः । सिद्धानीति न किं लोकाच्छ्रुता श्रवणे कृतम् ॥३४॥
प्रवृत्ते दारुणे युद्धे भवतोः समशौर्ययोः । संदेह एव जायेत जयस्यान्यतरं प्रति ॥३५॥
कथंचिच्च हतेऽप्यस्मिन् कन्याहरणदूषिता । अन्यस्मै नैव विश्राण्या केवलं [7]विधवीभवेत् ॥३६॥
किं च सूर्यरजोमुक्ते स्वपुरे [8]प्रत्यवस्थितम् । अलंकारोदये नाम्ना चन्द्रोदरनभश्चरम् ॥३७॥

एक दिन यमका मान मर्दन करनेवाला दशानन राजा प्रवरकी आवली रानीसे समुत्पन्न तनूदरी नामा कन्याका अपहरण करनेके लिए गया था ॥२४॥ सो विद्या और माया दोनोंमें ही कुशल खरदूषणने लंकाको दशाननसे रहित जानकर चन्द्रनखाका सुखपूर्वक—अनायास ही अपहरण कर लिया ॥२५॥ यद्यपि शूरवीर भानुकर्ण और विभीषण दोनों ही लंकामें विद्यमान थे पर जब शत्रु मायासे छिद्र पाकर कन्याका अपहरण कर रहा था तब वे क्या करते ? ॥२६॥ उसके पीछे जो सेना जा रही थी भानुकर्ण और विभीषणने उसे यह सोचकर लौटा लिया कि यह जिन्दा युद्धमें पकड़ा नहीं जा सकता ॥२७॥ लंकामें वापस आनेपर दशाननने जब यह बात सुनी तो भयंकर क्रोधसे वह दुरीक्ष्य हो गया अर्थात् उसकी ओर देखना कठिन हो गया ॥२८॥ तदनन्तर बाहरसे आनेके कारण उत्पन्न परिश्रमसे उसके शरीरपर पसीनेकी जो बूँदें उत्पन्न हुई थीं वे सूख नहीं पायी थीं, कि अभिमानसे प्रेरित हो वह पुनः जानेके लिए उद्यत हो गया ॥२९॥ उसने अन्य किसीकी अपेक्षा न कर सहायताके लिए सिर्फ एक तलवार अपने साथ ली, सो ठीक ही है क्योंकि युद्धमें शक्तिशाली मनुष्योंका अन्तरंग सहायक वही एक तलवार होती है ॥३०॥ ज्योंही दशानन जानेके लिए उद्यत हुआ त्योंही स्पष्ट रूपसे लोककी स्थितिको जाननेवाली मन्दोदरी दोनों हस्तकमल जोड़कर इस प्रकार निवेदन करने लगी ॥३१॥ कि हे नाथ ! निश्चयसे कन्या दूसरेके लिए ही दी जाती है क्योंकि समस्त संसारमें उनकी उत्पत्ति ही इस प्रकारकी होती है ॥३२॥ खरदूषणके पास चौदह हजार विद्याधर हैं जो अत्यधिक शक्तिशाली तथा युद्धसे कभी पीछे नहीं हटनेवाले हैं ॥३३॥ इसके सिवाय उस अहंकारीको कई हजार विद्याएँ सिद्ध हुई हैं यह क्या आपने लोगोंसे नहीं सुना ? ॥३४॥ आप दोनों ही समान शक्तिके धारक हो अतः दोनोंके बीच भयंकर युद्ध होनेपर एक दूसरेके प्रति विजयका सन्देह ही रहेगा ॥३५॥ यदि किसी तरह वह मारा भी गया तो हरणके दोषसे दूषित कन्या दूसरेके लिए नहीं दी जा सकेगी, उसे तो मात्र विधवा ही रहना पड़ेगा ॥३६॥ इसके सिवाय दूसरी बात यह है कि तुम्हारे

१. चोरयितुम् । गतस्ते नयितुम् म. । २. रावणः । ३. खरदूषणः । ४. गतं म. । ५. गच्छताभ्यां म. । ६. दुरीक्षत्वं ग. । ७. अविधवा विधवा संपद्यमाना भवेदिति विधवीभवेत् । विधवा भवेत् म., ब. विधवीकृता ख. । ८. प्रत्यवस्थितः ब. ।

निर्वास्यासौ स्थितः सार्धं तव स्वस्रा महाबलः । उपकारिस्वमेतस्मात्संप्राप्तः स्वजनः स ते ॥३८॥
ततो दशाननोऽवादीत् प्रिये युद्धाद् बिभेमि न । स्थितस्तवद्वचने किन्तु शेषैरेवास्मि कारणैः ॥३९॥
अथ चन्द्रोदरे कालं प्राप्ते कर्मनियोगतः । वनितास्यानुराधाख्या[1] वराकी शरणोज्झिता ॥४०॥
इतश्चेतश्च विद्याया बलेनाथ विवर्जिता । अम्लवेल्लो वने भीमे बभ्राम हरिणी यथा ॥४१॥
असूत च सुतं कान्तं मणिकान्तमहीधरे । मृदुपल्लवपुष्पौघच्छन्ने समशिलातले ॥४२॥
ततोऽसौ क्रमतो वृद्धिं नीतो विपिनवासया । उद्विग्नचित्तया मात्रा तदाशास्थितजीवया ॥४३॥
[2]यतोऽयं प्रतिपक्षेण गर्भ एव विराधितः । ततो विराधितामिख्यां प्रापितो भोगवर्जितः ॥४४॥
न तस्य गौरवं चक्रे कश्चिदप्यवनौ नरः । प्रच्युतस्य निजस्थानात् केशस्येवोत्तमाङ्गतः ॥४५॥
प्रतिकर्तुमशक्तोऽसौ वैरं चित्ते बिभ्रत् । आचारागतवृत्तिस्थो[3] देशान् पर्यटति स्म इच्छितान् ॥४६॥
रेमे वर्षधराग्रेषु काननेषु च चारुषु । तथातिशयदेशेषु गीर्वाणागमनेषु च ॥४७॥
ध्वजच्छत्रादिरम्येषु संकुलेषु गजादिभिः । वीराणां विभ्रमं पश्यन् संग्रामेषु सुरैः समं ॥४८॥
नगर्यामथ लङ्कायां सुरेशस्येव तिष्ठतः । परान् प्राप्नुवतो भोगान् दशवक्त्रस्य भास्वतः ॥४९॥
प्रतिकूलितवानाज्ञां बालिर्बलसमन्वितः । विद्याभिरद्भुतं कर्म कुर्वतीभिरुपासितः ॥५०॥
दशास्येन ततो दूतः प्रेषितोऽस्मै महामतिः । जगाद वानराधीशं स्वामिनो मानमुद्वहन् ॥५१॥

अलंकारोदय नगरको जब राजा सूर्यरजने छोड़ा था तब चन्द्रोदर नामा विद्याधर तुम्हारी इच्छाके प्रतिकूल उस नगरमें जम गया था सो उसे निकालकर महाबलवान् खरदूषण तुम्हारी बहनके साथ उसमें रह रहा है इस प्रकार तुम्हारे स्वजन उससे उपकारको भी प्राप्त हुए हैं ॥३७-३८॥ यह कहकर जब मन्दोदरी चुप हो रही तब दशाननने कहा कि हे प्रिये ! यद्यपि मैं युद्धसे नहीं डरता हूँ तो भी अन्य कारणों को देखता हुआ मैं तुम्हारे वचनोंमें स्थित हूँ अर्थात् तुम्हारे कहे अनुसार उसका पीछा नहीं करता हूँ ॥३९॥ अथानन्तर कर्मोंके नियोगसे चन्द्रोदर विद्याधर कालको प्राप्त हुआ सो उसकी दीन-हीन अनुराधा नामकी गर्भवती स्त्री शरणरहित हो तथा विद्याके बलसे शून्य हो हरिणीकी नांई भयंकर वनमें इधर-उधर भटकने लगी ॥४०-४१॥ वह भटकती-भटकती मणिकान्त नामक पर्वतपर पहुँची। वहाँ उसने कोमल पल्लव और फूलोंके समूहसे आच्छादित समशिलातलपर एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न किया ॥४२॥ तदनन्तर जिसका चित्त निरन्तर उद्विग्न रहता था, और पुत्रकी आशासे ही जिसका जीवन स्थित था ऐसी उस वनवासिनी माताने क्रम-क्रमसे उस पुत्रको बड़ा किया ॥४३॥ चूँकि शत्रुने उस पुत्रको गर्भमें ही विराधित किया था इसलिए भोगोंसे रहित उस पुत्रका माताने विराधित नाम रखा ॥४४॥ जिस प्रकार अपने स्थान—मस्तकसे च्युत हुए केशका कोई आदर नहीं करता उसी प्रकार उस विराधितका पृथिवीपर कोई भी आदर नहीं करता था ॥४५॥ वह शत्रुसे बदला लेनेमें समर्थ नहीं था इसलिए मनमें ही वैर धारण करता था और कुछ परम्परागत आचारका पालन करता हुआ इच्छित देशोंमें घूमता रहता था ॥४६॥ वह कुलाचलोंके ऊपर, मनोहर वनोंमें तथा जहाँ देवोंका आगमन होता था ऐसे अतिशय-पूर्ण स्थानोंमें क्रीड़ा किया करता था ॥४७॥ वह ध्वजा, छत्र आदिसे सुन्दर तथा हाथियों आदिसे व्याप्त देवोंके साथ होनेवाले युद्धोंमें वीर मनुष्योंकी चेष्टाएँ देखता हुआ घूमता फिरता था ॥४८॥

अथानन्तर उत्कृष्ट भोगोंको प्राप्त करता हुआ देदीप्यमान दशानन लंकानगरीमें इन्द्रके समान रहता था ॥४९॥ सो आश्चर्यजनक कार्य करनेवाली विद्याओंसे सेवित बलवान् बाली उसकी आज्ञाका अतिक्रम करने लगा ॥५०॥ तदनन्तर दशाननने बालीके पास महाबुद्धिमान् दूत भेजा। सो स्वामीके गर्वको धारण करता हुआ दूत बालीके पास जाकर कहने लगा कि दशानन इस

---

१. -नुराधाख्या म. । २. अतोऽयं म. । ३. वृत्तस्थो ख. ।

अनन्यसदृशः[1] क्षेत्रे भरतेऽस्मिन् प्रतापवान् । महाबलो महातेजाः श्रीमान्नयविशारदः ॥५२॥
महासाधनसंपन्न उग्रदण्डो महोदयः । आज्ञापयति देवस्त्वां शत्रुमर्दो दशाननः ॥५३॥
यमारातिं समुद्धास्य भवतोऽर्करजाः पिता । यया किष्किन्धनाथत्वे स्थापितो वानरान्वये ॥५४॥
विस्मृत्य सुकृतं कृत्वं स त्वं जनयितुः परम् । कुरुषे[2] प्रत्ययस्थानमिति साधो[3] न युज्यते ॥५५॥
पितुस्ते सदृशीं प्रीतिमधिकां वा करोम्यहम् । अद्याप्येहि प्रणामं मे कुरु स्थातुं यथासुखम् ॥५६॥
स्वसारं च प्रयच्छेमां श्रीप्रभाख्यां मया सह । संबन्धं प्राप्य ते सर्वं भविष्यति सुखावहम् ॥५७॥
इत्युक्ते विमुखं ज्ञात्वा बलिं प्रणमनं प्रति । आननस्य विकारेण दूतः पुनरुदाहरत् ॥५८॥
किमत्र बहुनोक्तेन कुरु शाखामृग श्रुतौ । मदीयं निश्चितं वाक्यमल्पलक्ष्मीविडम्बितैः[4] ॥५९॥
कुरु सज्जौ करौ दातुमादातुं वायुधं करौ । गृहाण चामरं शीघ्रं ककुभां वा कदम्बकम् ॥६०॥
शिरो नमय चापं वा नयाज्ञां कर्णपूरताम्[5] । मौर्वीं वा दुस्सहारावामारभजीवितदायिनीम् ॥६१॥
मत्पादजं रजो मूर्ध्नि शिरस्त्रमथवा कुरु । बद्ध्वाञ्जलिमुद्वृत्य करिणां वा महाव्रजम् ॥६२॥
विमुञ्चेषुं धरित्रीं वा भजैकं वेत्रकुन्तयोः । पश्य मेऽङ्घ्रिनखे वक्त्रमथवा खड्गदर्पणे ॥६३॥
ततः परुषवाक्येन दूतस्योद्धूतमानसः । नाम्ना व्याघ्रविलम्बीति बभाण भटसत्तमः ॥६४॥
समस्तधरणीव्याप्तिपराक्रममुणोदयः । बालिदेवो न किं यातः कर्णजाहं[6] कुरक्षसः ॥६५॥

भरत क्षेत्रमें अपनी शानी नहीं रखता। वह अतिशय प्रतापी, महाबलवान्, महातेजस्वी, लक्ष्मी-सम्पन्न, नीतिमें निपुण, महासाधन सम्पन्न, उग्रदण्ड देनेवाला, महान् अभ्युदयसे युक्त, और शत्रुओं-का मान मर्दन करनेवाला है। वह तुम्हें आज्ञा देता है कि ॥५१–५३॥ मैंने यमरूपी शत्रुको हटाकर आपके पिता सूर्यरजको वानरवंशमें किष्किन्धपुरके राजपदपर स्थापित किया था ॥५४॥ तुम उस उपकारको भूलकर पिताके विरुद्ध कार्य करते हो। हे सत्पुरुष! तुम्हें ऐसा करना योग्य नहीं है ॥५५॥ मैं तेरे साथ पिताके समान अथवा उससे भी अधिक प्यार करता हूँ। तू आज भी आ और सुखपूर्वक रहनेके लिए मुझे प्रणाम कर ॥५६॥ अथवा अपनी श्रीप्रभा नामक बहन मेरे लिए प्रदान कर। यथार्थमें मेरे साथ सम्बन्ध प्राप्त कर लेनेसे तेरे लिए समस्त पदार्थ सुखदायक हो जायेंगे ॥५७॥ इतना कहनेपर भी बाली दशाननको नमस्कार करनेमें विमुख रहा। तब मुख-की विकृतिसे रोष प्रकट करता हुआ दूत फिर कहने लगा कि अरे वानर! इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ है? तू मेरे निश्चित वचन सुन, तू व्यर्थ ही थोड़ी-सी लक्ष्मी पाकर विडम्बना कर रहा है ॥५८–५९॥ तू अपने दोनों हाथोंको या तो कर देनेके लिए तैयार कर या शस्त्र ग्रहण करनेके लिए तैयार कर। तू या तो शीघ्र ही चामर ग्रहण कर अर्थात् दास बनकर दशाननके लिए चामर ढोल या दिशामण्डलको ग्रहण कर अर्थात् दिशाओंके अन्त तक भाग जा ॥६०॥ तू या तो शिरको नम्र कर या धनुषको नम्रीभूत कर। या तो आज्ञाको कानोंमें पूर्ण कर या असहनीय शब्दोंसे युक्त तथा अपना जीवन प्रदान करनेवाली धनुषकी डोरीको कानोंमें पूर्ण कर अर्थात् कानों तक धनुषकी डोरी खींच ॥६१॥ या तो मेरी चरणरजको मस्तकपर धारण कर अथवा शिरकी रक्षा करनेवाला टोप मस्तकपर धारण कर। या तो क्षमा माँगनेके लिए हाथ जोड़कर अंजलियाँ बाँध या हाथियोंका बड़ा भारी समूह एकत्रित कर ॥६२॥ या तो बाण छोड़ या पृथिवीको प्राप्त कर। या तो वेत्र ग्रहण कर या भाला ग्रहण कर। या तो मेरे चरणोंके नखोंमें अपना मुख देख या तलवाररूपी दर्पणमें मुख देख ॥६३॥ तदनन्तर दूतके कठोर वचनोंसे जिसका मन उद्धत हो रहा था ऐसा व्याघ्रविलम्बी नामक प्रमुख योद्धा कहने लगा ॥६४॥ कि रे दूत! जिसके पराक्रम

१. अनन्यसदृशे म.। सदृश ख.। २. कुरुते म.। ३. साधोर्न म.। ४. -विडम्बित म.। ५ चापरं ब., म.। ६. कर्णयोः समीपमिति कर्णजाहम् 'तस्य मूले कुणब्जाहचौ' इति जाहच् प्रत्ययः।

यद्येवं भाषते[1] व्यक्तं गृहीतो वा ग्रहेण सः । त्वं तु स्वस्थः किमित्येवं वृथाधम विकत्थसे ॥६६॥
क्रोधमूर्च्छित इत्युक्त्वा दुःप्रेक्ष्यः[2] स्पष्टवेपथुः । गृह्णानः[3] सायकं रुद्धो बालिनेति च चोदितः ॥६७॥
किं दूतेन वराकेण हतेन प्रेषकारिणा । कुर्वन्त्येते हि नाथीयवचसः प्रतिशब्दकम् ॥६८॥
दशास्यस्यैव कर्तव्यं यदभिप्रायमाश्रितम् । आयुर्नूनमियत्तस्य कुरुते यत्कुभाषितम् ॥६९॥
ततो भीतो[4] भृशं दूतो गत्वा वृत्तान्तवेदनात् । दशास्यस्य परं[5] क्रोधं चक्रे दुःसहतेजसः ॥७०॥
सैन्यावृतश्च संनद्ध प्रस्थितस्त्वरया पुरम् । परमाणुभिरारब्धः स हि दर्पमयैरिव ॥७१॥
ततः परबलध्वानं श्रुत्वा व्योमविधायिनम् । निर्गन्तुं मानसं चक्रे बालिः संग्रामदक्षिणः ॥७२॥
तावत्सागरवृद्धयादिमन्त्रिभिर्नयशालिभिः । ज्वलत्क्रोधेन नीतोऽसाविति वागम्बुभिः शमम् ॥७३॥
अकारणेन देवालं विग्रहेण क्षमां कुरु । अनेके हि क्षयं याताः स्वच्छन्दं संयुगप्रियाः ॥७४॥
अर्ककीर्तिभुजाधारा रक्ष्यमाणाः सुरैरपि । अष्टचन्द्राः क्षयं प्राप्ता मेघेश्वरशरोत्करैः[6] ॥७५॥
बहुसैन्यं दुरालोकमसिरत्नगदाधरम् । अतुलां संशयतुलां ततो नारोढुमर्हसि ॥७६॥
जगादेति ततो बालिर्युक्तं नात्मप्रशंसनम् । तथापि परमार्थं वो मन्त्रिणः कथयाम्यहम् ॥७७॥
भ्रूलतोत्क्षेपमात्रेण दशवक्त्रं ससैन्यकम् । शक्तोऽस्मि कणशः कर्तुं वामपाणितलाहतम् ॥७८॥

आदि गुणोंका अभ्युदय समस्त पृथिवीमें व्याप्त हो रहा है ऐसा बाली राजा क्या दुष्ट राक्षसके कर्णमूलको प्राप्त नहीं हुआ है ? अर्थात् उसने बालीका नाम क्या अभी तक नहीं सुना है ? ॥६५॥ यदि वह राक्षस ऐसा कहता है तो वह निश्चित ही भूतोंसे आक्रान्त है। अरे अधम दूत ! तू तो स्वस्थ है फिर क्यों इस तरह तारीफ हाँक रहा है ? ॥६६॥ इस प्रकार कहकर व्याघ्रविलम्बी क्रोधसे मूर्च्छित हो गया। उसकी ओर देखना भी कठिन हो गया। उसका शरीर स्पष्ट रूपसे काँपने लगा। इसी दशामें वह दूतको मारनेके लिए बाण उठाने लगा तो बालीने कहा ॥६७॥ कि कथित बातको कहनेवाले बेचारे दूतके मारनेसे क्या लाभ है ? यथार्थमें ये लोग अपने स्वामीके वचनोंकी प्रतिध्वनि ही करते हैं ॥६८॥ जो कुछ मनमें आया हो वह दशाननका ही करना चाहिए। निश्चय ही दशाननकी आयु अल्प रह गयी है इसीलिए तो वह कुवचन कह रहा है ॥६९॥

तदनन्तर अत्यन्त भयभीत दूतने जाकर सब समाचार दशाननको सुनाये और दुःसह तेजके धारक उस दशाननके क्रोधको वृद्धिगत किया ॥७०॥ वह बड़ी शीघ्रतासे तैयार हो सेना साथ ले किष्किन्धपुरकी ओर चला सो ठीक ही है क्योंकि उसकी रचना अहंकारके परमाणुओंसे ही हुई थी ॥७१॥ तदनन्तर आकाशको आच्छादित करनेवाला शत्रुदलका कल-कल शब्द सुनकर युद्ध करनेमें कुशल बालिने महलसे बाहर निकलनेका मन किया ॥७२॥ तब क्रोधसे प्रज्वलित बालिको सागरवृद्धि आदि नीतिज्ञ मन्त्रियोंने वचनरूपी जलके द्वारा इस प्रकार शान्त किया कि हे देव ! अकारण युद्ध रहने दो, क्षमा करो, युद्धके प्रेमी अनेकों राजा अनायास ही क्षयको प्राप्त हो चुके हैं ॥७३-७४॥ जिन्हें अर्ककीर्तिकी भुजाओंका आलम्बन प्राप्त था तथा देव भी जिनकी रक्षा कर रहे थे ऐसे अष्टचन्द्र विद्याधर जयकुमारके बाणोंके समूहसे क्षयको प्राप्त हुए थे ॥७५॥ साथ ही जिसे देखना कठिन था, तथा जो उत्तमोत्तम तलवार और गदाओंको धारण करनेवाली थी ऐसी बहुत भारी सेना भी नष्ट हुई थी इसलिए संशयकी अनुपम तराजूपर आरूढ़ होना उचित नहीं है ॥७६॥ मन्त्रियोंके वचन सुनकर बालीने कहा कि यद्यपि अपनी प्रशंसा करना उचित नहीं है तथापि हे मन्त्रिगणो ! यथार्थ बात आप लोगोंको कहता हूँ ॥७७॥ मैं सेनासहित दशाननको भ्रकुटिरूपी लताके उत्क्षेपमात्रसे बायें हस्ततलकी चपेटसे ही चूर्ण करनेमें समर्थ हूँ ॥७८॥ फिर

१. भाषसे म., ख., क.। २. दुःप्रेक्षः म.। ३. गृह्णान म.। ४. भीती म.। ५. क्रोधः म.। ६. मेघस्वरशरोत्करैः ख., जयकुमारबाणसमूहैः।

किं तर्हि दारुणं कृत्वा क्रोधाग्निज्वलितं मनः । कर्मणा येन लभ्यन्ते भोगाः क्षणविनश्वराः ॥७९॥
प्राप्य तान् कदलीस्तम्भनिस्सारान् मोहवाहिताः । पतन्ति नरके जीवा महादुःखमहाकुले ॥८०॥
हिंसित्वा जन्तुसंघातं नितान्तं प्रियजीवितम् । दुःखं कृतसुखाभिख्यं प्राप्यते तेन को गुणः ॥८१॥
[1]अरघट्टघटीयन्त्रसदृशाः[2] प्राणधारिणः । शश्वद्भवमहाकूपे भ्रमन्त्यत्यन्तदुःखिताः ॥८२॥
पादद्वयं जिनेन्द्राणां भवनिर्गमकारणम् । प्रणम्य कथमन्यस्य क्रियते प्रणतिर्मया ॥८३॥
प्रबुद्धेन सता चैयं [illegible] मया पुरा । अन्यं न प्रणमामीति जिनपादव्रतं मतः ॥८४॥
भङ्गं करोमि नास्थाया न च प्राणिनिपातनम् । गृह्णामि संगनिर्मुक्तां प्रव्रज्यां मुक्तिदायिनीम् ॥८५॥
यौ करौ वरनारीणां कृतौ स्तनतटोचितौ । भुजौ चालिङ्गितौ चारुरत्नकेयूरलक्षणौ ॥८६॥
अरातेर्यः प्रयुङ्क्ते तौ पुरुषोऽञ्जलिबन्धने । ऐश्वर्यं कीदृशं तस्य जीवितं वा हतात्मनः ॥८७॥
इत्युक्त्वाहूय सुग्रीवमुवाच शृणु बालक । कुरु तस्य नमस्कारं मा वो राज्यप्रतिष्ठितः ॥८८॥
स्वसारं यच्छ मा वास्मै न ममानेन कारणम् । एषोऽस्मि निर्गतोऽद्यैव पथ्यं यत्तव तत्कुरु ॥८९॥
इत्युक्त्वा निर्गतो गेहाद् बभूव च निरम्बरः । पार्श्वे गगनचन्द्रस्य गुरोर्गुणगरीयसः ॥९०॥
परमार्थहितस्वान्तःसंप्राप्तपरमोदयः । एकभावरतो वीरः सम्यग्दर्शननिर्मलः ॥९१॥
सम्यग्ज्ञानाभियुक्तात्मा सम्यक्चारित्रतत्परः । अनुप्रेक्षाभिरात्मानं भावयन्मोहवर्जितः ॥९२॥

फिर कठिन मनको क्रोधाग्निसे प्रज्वलित किया जाये तो कहना ही क्या है ? फिर भी मुझे उस कर्मकी आवश्यकता नहीं जिससे कि क्षण-भंगुर भोग प्राप्त होते हैं ॥७९॥ मोही जीव केलाके स्तम्भके समान निःसार भोगोंको प्राप्त कर महादुःखसे भरे नरकमें पड़ते हैं ॥८०॥ जिन्हें अपना जीवन अत्यन्त प्रिय है ऐसे जीवोंके समूहको मारकर सुख नामको धारण करनेवाला दुःख ही प्राप्त होता है, अतः उससे क्या लाभ है ? ॥८१॥ ये प्राणी अरहट (रहट) की घटीके समान अत्यन्त दुःखी होते हुए संसाररूपी कूपमें निरन्तर घूमते रहते हैं ॥८२॥ संसारसे निकलनेमें कारणभूत जिनेन्द्र भगवान्‌के चरण युगलको नमस्कार कर अब मैं अन्य पुरुषके लिए नमस्कार कैसे कर सकता हूँ ? ॥८३॥ जब पहले मुझे सम्यग्ज्ञान प्राप्त हुआ था तब मैंने प्रतिज्ञा की थी कि मैं जिनेन्द्रदेवके चरणकमलोंके सिवाय अन्य किसीको नमस्कार नहीं करूँगा ॥८४॥ मैं न तो इस प्रतिज्ञाका भंग करना चाहता हूँ और न प्राणियोंकी हिंसा ही । मैं तो मोक्ष-प्रदान करनेवाली निर्ग्रन्थ दीक्षा ग्रहण करता हूँ ॥८५॥ जो हाथ उत्तमोत्तम स्त्रियोंके स्तनतटका स्पर्श करनेवाले थे तथा मनोहर रत्नमयी बाजूबन्दोंसे सुशोभित जो भुजाएँ उत्तमोत्तम स्त्रियोंका आलिंगन करनेवाली थीं उन्हें जो मनुष्य शत्रुओंके समक्ष अंजलि बाँधनेमें प्रयुक्त करता है उस अधमका ऐश्वर्य कैसा ? और जीवन कैसा ? ॥८६-८७॥ इस प्रकार कहकर उसने छोटे भाई सुग्रीवको बुलाकर कहा कि हे बालक ! तू राज्यपर प्रतिष्ठित होकर दशाननको नमस्कार कर अथवा न कर और इसके लिए अपनी बहन दे अथवा न दे, मुझे इससे प्रयोजन नहीं । मैं तो आज ही घरसे बाहर निकलता हूँ । जो तुझे हितकर मालूम हो वह कर ॥८८-८९॥ इतना कहकर बाली घरसे निकल गया और गुणोंसे श्रेष्ठ गगनचन्द्र गुरुके समीप दिगम्बर हो गया ॥९०॥ अब तो उसने अपना मन परमार्थमें ही लगा रखा था । उसे अनेक ऋद्धि आदि अभ्युदय प्राप्त हुए थे । वह एक शुद्ध भावमें ही सदा रत रहता था, परीषहोंके सहन करनेमें शूरवीर था, सम्यग्दर्शनसे निर्मल था अर्थात् शुद्ध सम्यग्दृष्टि था, उसकी आत्मा सदा सम्यग्ज्ञानमें लीन रहती थी, वह सम्यक् चारित्रमें तत्पर रहता था और मोहसे रहित हो अनुप्रेक्षाओंके द्वारा आत्माका चिन्तवन करता रहता था ॥९१-९२॥ सूक्ष्म जीवोंसे रहित तथा निर्मल आचारके धारी महामुनियोंसे सेवित धर्माराधनके योग्य भूमियोंमें ही वह विहार करता था ।

१. क्रोधाग्नि ज्वलितं म. । २. अरहट्ट ब. । ३. सदृशं ख., सदृशे म. ।

[1]सूक्ष्मासु मक्षिकायुक्तासु धर्मानुगुणभूमिषु । मुनिभिर्विमलाचारैः सेवितासु महात्मभिः ॥९३॥
विहरन् सर्वजीवानां दयमानः पिता यथा । बाह्येन तपसान्तः[2]स्थं वर्द्धयन् सततं तपः ॥९४॥
आवासतां महर्द्धीनां परिप्राप्तः प्रशान्तधीः । तपःश्रिया परिष्वक्तः परया कान्तदर्शनः ॥९५॥
उच्चैरुच्चैर्गुणस्थानसोपानारोहणोद्यतः । भिन्नाध्यात्माखिलग्रन्थग्रन्थिर्ग्रन्थविवर्जितः ॥९६॥
श्रुतेन सकलं पश्यन् कृत्याकृत्यं महागुणः । महासंवरसंपन्नः शातयन् कर्मसंततिम् ॥९७॥
प्राणधारणमात्रार्थं भुञ्जानः सूत्रदेशितम् । धर्मार्थं धारयन् प्राणान् धर्मं मोक्षार्थमर्जयन् ॥९८॥
आनन्दं भव्यलोकस्य कुर्वन्नुत्तमविक्रमः । चरितेनोपमानत्वं जगामासौ तपस्विनाम् ॥९९॥
दशग्रीवाय सुग्रीवो दत्वा श्रीप्रभां सुखी । चकारानुमतस्तेन राज्यमागतमन्वयात् ॥१००॥
विद्याधरकुमार्यो या धरावाभूमौ मनोहराः । दशाननः समस्तास्ताः परिणिन्ये पराक्रमात्[3] ॥१०१॥
नित्यालोकेऽथ नगरे नित्यालोकस्य देहजाम् । श्रीदेवीलब्धजन्मानं[4] नाम्ना रत्नावलीं सुताम् ॥ १०२ ॥
उपयम्य पुरीं यातो निजां परमसंमदः । नभसा मुकुटन्यस्तरत्ननरश्मिविराजिना[5] ॥१०३॥
सहसा पुष्पकं स्तम्भमारमानसचञ्चलम् । मेरोरिव तटं प्राप्य सुमहद्वायुमण्डलम् ॥१०४॥
तस्योच्छिन्नगतेः शब्दे[6] भग्ने घण्टादिजन्मनि । वैलक्ष्यादिव संजातं मौनं पिण्डिततेजसः ॥१०५॥
स्खलनप्रवृत्तिमालोक्य विमानं कैकसीसुतः । कः कोऽत्र भो इति क्षिप्रं बभाण क्रोधदीपितः ॥१०६॥
मारीचस्तत आचष्टौ सर्ववृत्तान्तकोविदः । शृणु देवैष कैलासे स्थितः प्रतिमया मुनिः ॥१०७॥

वह जीवोंपर पिताके समान दया करता था। बाह्य तपसे अन्तरंग तपको निरन्तर बढ़ाता रहता था ॥९३-९४॥ बड़ी-बड़ी ऋद्धियोंकी आवासताको प्राप्त था अर्थात् उसमें बड़ी-बड़ी ऋद्धियाँ निवास करती थीं, प्रशान्त चित्त था, उत्कृष्ट तपरूपी लक्ष्मीसे आलिंगित था, अत्यन्त सुन्दर था ॥९५॥ ऊँचे-ऊँचे गुणस्थानरूपी सीढ़ियोंके चढ़नेमें उद्यत रहता था, उसने अपने हृदयमें समस्त ग्रन्थोंकी ग्रन्थियाँ अर्थात् कठिन स्थल खोल रखे थे, समस्त प्रकारके परिग्रहसे रहित था ॥९६॥ वह शास्त्रके द्वारा समस्त कृत्य और अकृत्यको समझता था। महागुणवान् था, महासंवरसे युक्त था, और कर्मोंकी सन्ततिको नष्ट करनेवाला था ॥९७॥ वह प्राणोंकी रक्षाके लिए ही आगमोक्त विधिसे आहार ग्रहण करता था, धर्मके लिए ही प्राण धारण करता था और मोक्षके लिए ही धर्मका अर्जन करता था ॥९८॥ वह भव्य जीवोंको सदा आनन्द उत्पन्न करता था, उत्कृष्ट पराक्रमका धारी था और अपने चारित्रसे तपस्वीजनोंका उपमान हो रहा था ॥९९॥

इधर सुग्रीव दशाननके लिए श्रीप्रभा बहन देकर उसकी अनुमतिसे सुखपूर्वक वंशपरम्परागत राज्यका पालन करने लगा ॥१००॥ पृथ्वीपर विद्याधरोंकी जो सुन्दर कुमारियाँ थीं दशाननने अपने पराक्रमसे उन सबके साथ विवाह किया ॥१०१॥ अथानन्तर एक बार दशानन नित्यालोक नगरमें राजा नित्यालोककी श्रीदेवीसे समुत्पन्न रत्नावली नामकी पुत्रीको विवाह कर बड़े हर्षके साथ आकाशमार्गसे अपनी नगरीकी ओर आ रहा था। उस समय उसके मुकुटमें जो रत्न लगे थे उनकी किरणोंसे आकाश सुशोभित हो रहा था ॥१०२-१०३॥ जिस प्रकार बड़ा भारी वायुमण्डल मेरुके तटको पाकर सहसा रुक जाता है उसी प्रकार मनके समान चंचल पुष्पक विमान सहसा रुक गया ॥१०४॥ जब पुष्पक विमानकी गति रुक गयी और घण्टा आदिसे उत्पन्न होनेवाला शब्द भंग हो गया तब ऐसा जान पड़ता था मानो तेजहीन होनेसे लज्जाके कारण उसने मौन ही ले रखा था ॥१०५॥ विमानको रुका देख दशाननने क्रोधसे दमकते हुए कहा कि अरे यहाँ कौन है ? कौन है ? ॥१०६॥ तब सर्व वृत्तान्तको जाननेवाले मारीचने कहा कि हे देव ! सुनो, यहाँ कैलास पर्वत पर

---

१. सूक्ष्मप्राणिरहितासु । २. तपसान्तस्थं म. । ३. परिक्रमात् म. । ४. रम्भावलीं म. । ५. विराजिताम् म. । ६. जगाम । ७. शब्दभग्ने ।

आदित्याभिमुखस्तस्थौ करानात्मकरैः किरन् । समे शिलातले रत्नस्तम्भाकारोऽवतिष्ठते ॥१०८॥
कोऽप्यसौ सुमहान् वीरः सुधीरं धारयंस्तपः । मुक्तिमाकाङ्क्षति क्षिप्रं वृत्तान्तोऽयमतोऽभवत् ॥१०९॥
निवर्तयाम्यतो देशाद्विमानं निर्विलम्बितम् । मुनेरस्य प्रभावेण यावन्नायाति खण्डशः ॥११०॥
श्रुत्वा मारीचवचनमथ कैलासभूधरम् । ईक्षाञ्चक्रे दशग्रीवः स्वपराक्रमगर्वितः ॥१११॥
नानाधातुसमाकीर्णं गणैर्युक्तं[1] सहस्रशः । सुवर्णघटनारम्यं पदपङ्क्तिभिराचितम् ॥११२॥
प्रकृत्यनुगतैर्युक्तं विकारैर्विल[2]संयुतम् । स्वरैर्बहुविधैः पूर्णं लक्ष्मव्याकरणोपमम् ॥११३॥
तीक्ष्णैः शिखरसंघातैः खण्डयन्तमिवाम्बरम् । उत्सर्पच्छीकरैः स्पष्टं हसन्तमिव निर्झरैः ॥११४॥
मकरन्दसुरामत्तमधुव्रतपरै[3]धितम् । कालीवलितलाकाशं नानावृक्षसंकुलम् ॥११५॥
सर्वर्तुसुमनोहारिकुसुमादि[4]समाचितम् । प्रहर्षोद्भासदासन्नसत्त्वसङ्घसमाकुलम् ॥११६॥
औषधत्रासदूरस्थव्यालजालसमाकुलम् । मनोहरेण गन्धेन दधतं यौवनं सदा ॥११७॥
शिलाविस्तीर्णहृदयं स्थूलवृक्षमहाभुजम् । गुहागम्भीरवदनमपूर्वपुरुषाकृतिम् ॥११८॥

एक मुनिराज प्रतिमा योगसे विराजमान हैं ॥१०७॥ ये सूर्यके सम्मुख विद्यमान हैं और अपनी किरणोंसे सूर्यकी किरणोंको इधर-उधर प्रक्षिप्त कर रहे हैं। समान शिलातलपर ये रत्नोंके स्तम्भके समान अवस्थित हैं ॥१०८॥ घोर तपश्चरणको धारण करनेवाले ये कोई महान् वीर पुरुष हैं और शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं। इन्हींसे यह वृत्तान्त हुआ है ॥१०९॥ इन मुनिराजके प्रभावसे जबतक विमान खण्ड-खण्ड नहीं हो जाता है, तबतक शीघ्र ही इस स्थानसे विमानको लौटा लेता हूँ ॥११०॥ अथानन्तर मारीचके वचन सुनकर अपने पराक्रमके गर्वसे गर्वित दशाननने कैलास पर्वतकी ओर देखा ॥१११॥ वह कैलास पर्वत व्याकरणकी उपमा प्राप्त कर रहा था क्योंकि जिस प्रकार व्याकरण भू आदि अनेक धातुओं से युक्त है उसी प्रकार वह पर्वत भी सोना-चाँदी अनेक धातुओंसे युक्त था। जिस प्रकार व्याकरण हजारों गणों—शब्द-समूहोंसे युक्त है उसी प्रकार वह पर्वत भी हजारों गणों अर्थात् साधु-समूहोंसे युक्त था। जिस प्रकार व्याकरण सुवर्ण अर्थात् उत्तमोत्तम वर्णोंकी घटनासे मनोहर है उसी प्रकार वह पर्वत भी सुवर्ण अर्थात् स्वर्णकी घटनासे मनोहर था। जिस प्रकार व्याकरण पदों अर्थात् सुबन्त तिङन्तरूप शब्दसमुदायसे युक्त है उसी प्रकार वह पर्वत भी अनेक पदों अर्थात् स्थानों या प्रत्यन्त पर्वतों अथवा चरणचिह्नोंसे युक्त था ॥११२॥ जिस प्रकार व्याकरण प्रकृति अर्थात् मूल शब्दोंके अनुरूप विकारों अर्थात् प्रत्ययादिजन्य विकारोंसे युक्त है उसी प्रकार वह पर्वत भी प्रकृति अर्थात् स्वाभाविक रचनाके अनुरूप विकारोंसे युक्त था। जिस प्रकार व्याकरण विल अर्थात् मूलसूत्रोंसे युक्त है उसी प्रकार वह पर्वत भी विल अर्थात् ऊषरपृथिवी अथवा गर्त आदिसे युक्त था। और जिस प्रकार व्याकरण उदात्त-अनुदात्त-स्वरित आदि अनेक प्रकारके स्वरोंसे पूर्ण है उसी प्रकार वह पर्वत भी अनेक प्रकारके स्वरों अर्थात् प्राणियोंके शब्दोंसे पूर्ण था ॥११३॥ वह अपने तीक्ष्ण शिखरोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो आकाशके खण्ड ही कर रहा था। और ऊपरकी ओर उछलते हुए छींटोंसे युक्त निर्झरोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो हँस ही रहा हो ॥११४॥ मकरन्दरूपी मदिरासे मत्त भ्रमरोंके समूहसे वह पर्वत कुछ बढ़ता हुआ-सा जान पड़ता था। शालाओंके समूहसे उसने आकाशको व्याप्त कर रखा था। साथ ही नाना प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त था ॥११५॥ वह सर्व ऋतुओंमें उत्पन्न होनेवाले पुष्प आदिसे व्याप्त था तथा उसकी उपत्यकाओंमें हर्षसे भरे हजारों प्राणी चलते-फिरते दिख रहे थे ॥११६॥ वह पर्वत औषधियोंके भयसे दूर स्थित सर्पोंके समूहसे व्याप्त था तथा मनोहर सुगन्धिसे ऐसा जान पड़ता था मानो सदा यौवनको ही धारण कर रहा हो ॥११७॥ बड़ी-बड़ी

---

१. गुणं -ब. । २. विलम्-ऊषरं मूलसूत्रं च (टिप्पणम्) । ३. -मिवाधरम् म. । ४. परिस्थितम् ख. ।

शरत्पयोधराकारतटसंघातसंकटम् । क्षीरेणेव जगत्सर्वं क्षालयन्तं करोत्करैः ॥११९॥
क्वचिद्विश्रब्धसंसुप्तमृगाधिपदरीमुखम् । क्वचित्सुप्तशयुश्वासवातान्दोलितपादपम् ॥१२०॥
क्वचित्परिसरक्रीडत्कुरङ्गकदम्बकम् । क्वचिन्मत्तद्विपप्रातक्रलिताधित्यकावनम् ॥१२१॥
क्वचित्पुलकिताकारं प्रसूनप्रकराचितम् । क्वचिदूर्ध्वजटाभारैरुद्धतैर्भीषणाकृतिम् ॥१२२॥
क्वचित्पद्मवनेनेव युक्तं शाखामृगाननैः । क्वचित्खड्गिक्षतस्यन्दिसालादिसुरभीकृतम् ॥१२३॥
क्वचिद्विद्युल्लताश्लिष्टसंभवद्घनसंततिम् । क्वचिद्दिवाकराकारशिखरोद्द्योतिताम्बरम् ॥१२४॥
पाण्डुकस्येव कुर्वाणं विजिगीषां क्वचिद्वनैः । सुरभिप्रसवोत्तुङ्गविस्तीर्णघनपादपैः ॥१२५॥
अवतीर्णश्च तत्रासावपश्यत्तं महामुनिम् । ध्यानार्णवसमाविष्टं तेजसावद्धमण्डलम् ॥१२६॥
आशाकरिकराकारप्रलम्बितभुजद्वयम् । पन्नगाभ्याभिवाश्लिष्टं महाचन्दनपादपम् ॥१२७॥
आतापनशिलापीठमस्तकस्थं सुनिश्चलम् । कुर्वाणं प्राणिविषयं संशयं प्राणधारिणम् ॥१२८॥
ततो बालिरसावेष इति ज्ञात्वा दशाननः । अतीतं संस्मरन् वैरं जज्वाल क्रोधवह्निना ॥१२९॥
बद्ध्वा च भ्रुकुटीं भीमां दष्टोष्ठः प्रखरस्वरः । बभाण भासुराकारो मुनिमेवं सुनिर्भयः ॥१३०॥
अहो शोभनमारब्धं त्वया कर्तुमिदं तपः । यदद्याप्यभिमानेन विमानं स्तम्भ्यते मम ॥१३१॥

शिलाएँ ही उसका लम्बा-चौड़ा वक्षःस्थल था, बड़े-बड़े वृक्ष ही उसकी महाभुजाएँ थीं और गुफाएँ ही उसका गम्भीर मुख थीं, इस प्रकार वह पर्वत अपूर्व पुरुषकी आकृति धारण कर रहा था ॥११८॥ वह शरद्ऋतुके बादलोंके समान सफेद-सफेद किनारोंके समूहसे व्याप्त था तथा किरणोंके समूहसे ऐसा जान पड़ता था मानो समस्त संसारको दूधसे ही धो रहा हो ॥११९॥ कहीं उसकी गुफाओंमें सिंह निःशंक होकर सो रहे थे और कहीं सोये हुए अजगरोंकी श्वासोच्छ्वासकी वायुसे वृक्ष हिल रहे थे ॥१२०॥ कहीं उसके किनारोंके वनोंमें हरिणोंका समूह क्रीड़ा कर रहा था और कहीं उसकी अधित्यकाके वनोंमें मदोन्मत्त हाथियोंके समूह स्थित थे ॥१२१॥ कहीं फूलोंके समूहसे व्याप्त होनेके कारण ऐसा जान पड़ता था मानो उसके रोमांच ही उठ रहे हों और कहीं उद्धत रीछोंकी लम्बी-लम्बी सटाओंसे उसका आकार भयंकर हो रहा था ॥१२२॥ कहीं बन्दरोंके लाल-लाल मुँहोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो कमलोंके वनसे ही युक्त हो और कहीं गेंडा-हाथियोंके द्वारा खण्डित साल आदि वृक्षोंसे जो पानी झर रहा था उससे सुगन्ध फैल रही थी ॥१२३॥ कहीं बिजलीरूपी लताओंसे आलिंगित मेघोंकी सन्तति उत्पन्न हो रही थी और कहीं सूर्यके समान देदीप्यमान शिखरोंसे आकाश प्रकाशमान हो रहा था ॥१२४॥ जिनके लम्बे-चौड़े सघन वृक्ष सुगन्धित फूलोंसे ऊँचे उठे हुए थे ऐसे वनोंसे वह पर्वत ऐसा जान पड़ता था मानो पाण्डुकवनको जीतना ही चाहता हो ॥१२५॥ दशाननने उस पर्वतपर उतरकर उन महामुनिके दर्शन किये। वे महामुनि ध्यानरूपी समुद्रमें निमग्न थे और तेजके द्वारा चारों ओर मण्डल बाँध रहे थे ॥१२६॥ दिग्गजोंके शुण्डादण्डके समान उनकी दोनों भुजाएँ नीचेकी ओर लटक रही थीं और उनसे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो सर्पोंसे आवेष्टित चन्दनका बड़ा वृक्ष ही हो ॥१२७॥ वे आतापन योगमें शिलापीठके ऊपर निश्चल बैठे थे और प्राणियोंके प्रति ऐसा संशय उत्पन्न कर रहे थे कि ये जीवित हैं भी या नहीं ॥१२८॥ तदनन्तर 'यह बालि है' ऐसा जानकर दशानन पिछले वैरका स्मरण करता हुआ क्रोधाग्निसे प्रज्वलित हो उठा ॥१२९॥ जो ओंठ चबा रहा था, जिसकी आवाज अत्यन्त कर्कश थी, और जो अत्यन्त देदीप्यमान आकारका धारक था ऐसा दशानन भ्रकुटी बाँधकर बड़ी निर्भयताके साथ मुनिराजसे कहने लगा ॥१३०॥ कि अहो ! तुमने यह बड़ा अच्छा तप करना प्रारम्भ किया है कि अब भी अभिमानसे मेरा विमान

---

१. परिसरस् म. । २. वनेनैव म. । ३. खिङ्गकृतस्यन्दि म. । खड्गिकृतस्पर्श ब. । ४. संभवध्वनिसन्तति म. । ५. शिखरद्योतिताम्बरम् म. ।

क्व धर्मः क्व च संक्रोधो वृथा श्राम्यसि दुर्मते । इच्छस्येकत्वमाधातुममृतस्य विषस्य च ॥१३२॥
तस्मादपनयाम्येनं दर्पमस्य तवोद्धतम् । कैलासनगमुन्मूल्य क्षिपाम्यब्धौ समं त्वया ॥१३३॥
ततोऽसौ सर्वविद्याभ्यर्चितैरस्तत्क्षणाद्भूतैः । विकृत्य सुमहद्रूपं सुरेन्द्र इव भीषणम् ॥१३४॥
[1]महाबाहुवनेनान्धं ध्वान्तं कृत्वा समन्ततः । प्रविष्टो धरणीं भित्त्वा पातालं पातकोद्यतः ॥१३५॥
आरेभे च समुद्धर्तुं भुजैर्भूरिपराक्रमः । क्रोधप्रचण्डरक्ताक्षो हुङ्कारमुखराननः ॥१३६॥
ततो विषकणक्षेपिलम्बमानोरगाधरः । केसरिक्रमसंत्रासभ्रश्यन्मत्तमतङ्गजः ॥१३७॥
संभ्रान्तनिश्चलोत्कर्णसारङ्गककदम्बकः । स्फुटितोर्वीशे-निष्पीतत्रुटितास्रिलनिर्झरः ॥१३८॥
पर्यस्यदुद्भटारावमहानोकहसंहतिः । स्फुटीकृतशिलाजालसन्धिशब्दैः[3] सुदुःस्वरः ॥१३९॥
पतद्विकटपाषाणरवापूरितविष्टपः । चलितश्चालयन् क्षोणीं भृशं कैलासपर्वतः ॥१४०॥
स्फुटिताविनिपीताम्बुः प्राप शोषं नदीपतिः । ऊहुः स्वच्छतया मुक्ता[4] विपरीतं समुद्रगाः ॥१४१॥
त्रस्ता व्यलोकयन्नाशाः प्रमथाः पृथुविस्मयाः । किं किमेतदहो हा-हा-हु-हीति प्रसृतस्वराः ॥१४२॥
अद्रुरप्सरसो भीता लताप्रवरमण्डपम्[5] । वयसां निवहाः प्राप्ताः कृतकोलाहला नभः ॥१४३॥
पातालादुत्थितैः क्रूरैरट्टहासैरनन्तरैः । दशवक्त्रैः समं दिग्भिः पुस्फोटे च नभस्तलम् ॥१४४॥

रोका जा रहा है ॥१३१॥ धर्म कहाँ और क्रोध कहाँ ? अरे दुर्बुद्धि ! तू व्यर्थ ही श्रम कर रहा है और अमृत तथा विषको एक करना चाहता है ॥१३२॥ इसलिए मैं तेरे इस उद्धत अहंकार-को आज ही नष्ट किये देता हूँ। तू जिस कैलास पर्वतपर बैठा है उसे उखाड़कर तेरे ही साथ अभी समुद्रमें फेंकता हूँ ॥१३३॥ तदनन्तर उसने समस्त विद्याओंका ध्यान किया जिससे आकर उन्होंने उसे घेर लिया। अब दशाननने इन्द्रके समान महाभयंकर रूप बनाया और महाबाहु-रूपी वनसे सब ओर सघन अन्धकार फैलाता हुआ वह पृथिवीको भेदकर पातालमें प्रविष्ट हुआ। पाप करनेमें वह उद्यत था ही ॥१३४-१३५॥ तदनन्तर क्रोधके कारण जिसके नेत्र अत्यन्त लाल हो रहे थे, और जिसका मुख क्रोधसे मुखरित था ऐसे प्रबल पराक्रमी दशाननने अपनी भुजाओंसे कैलासको उठाना प्रारम्भ किया ॥१३६॥ आखिर, पृथिवीको अत्यन्त चंचल करता हुआ कैलास पर्वत स्वस्थानसे चलित हो गया। उस समय वह कैलास विषकणोंको छोड़नेवाले लम्बे-लम्बे लटकते हुए साँपोंको धारण कर रहा था। सिंहोंकी चपेटमें जो मत्त हाथी आ फँसे थे वे छूटकर अलग हो रहे थे। घबड़ाये हुए हरिणोंके समूह अपने कानोंको ऊपरकी ओर निश्चल खड़ा कर इधर-उधर भटक रहे थे। फटी हुई पृथिवीने झरनोंका समस्त जल पी लिया था इस-लिए उनकी धाराएँ टूट गयी थीं। बड़े-बड़े वृक्षोंका जो समूह टूट-टूटकर चारों ओर गिर रहा था उससे बड़ा भारी शब्द उत्पन्न हो रहा था। शिलाओंके समूह चटककर चट-चट शब्द कर रहे थे इससे वहाँ भयंकर शब्द हो रहा था। और बड़े-बड़े पत्थर टूट-टूटकर नीचे गिर रहे थे तथा उससे उत्पन्न होनेवाले शब्दोंसे समस्त लोक व्याप्त हो रहा था ॥१३७-१४०॥ विदीर्ण पृथिवीने समुद्रका सब जल पी लिया था इसलिए वह सूख गया था। समुद्रकी ओर जानेवाली नदियाँ स्वच्छतासे रहित होकर उलटी बहने लगी थीं ॥१४१॥ प्रमथ लोग भयभीत होकर दिशाओंकी ओर देखने लगे तथा बहुत भारी आश्चर्यमें निमग्न हो 'यह क्या है ? क्या है ? हा-हा-हुँ-ही आदि शब्द करने लगे ॥१४२॥ अप्सराओंने भयभीत होकर उत्तमोत्तम लताओंके मण्डप छोड़ दिये और पक्षियोंके समूह कलकल शब्द करते हुए आकाशमें जा उड़े ॥१४३॥ पातालसे लगातार निकलने-वाले दशाननके दसमुखोंकी अट्टहाससे दिशाओंके साथ-साथ आकाश फट पड़ा ॥१४४॥

१. महावायुवनेनाथ म. । २. निस्फीत ख. । ३. सत्त्वैः सदुश्चरः म. । ४. भुक्त्वा म. । ५. मण्डपात् म. ।

ततः संवर्तकाभिख्यवायुनेवाकुलीकृते । भुवने भगवान् बालिरवधिज्ञातराक्षसः ॥१४५॥
अप्राप्तः पीडनं स्वस्य धीरः कोपविवर्जितः । तथावस्थितसर्वाङ्गश्चेतसीदं व्यचेशयत् ॥१४६॥
कारितं भरतेनेदं जिनायतनमुत्तमम् । सर्वरत्नमयं तुङ्गं बहुरूपविराजितम् ॥१४७॥
प्रत्यहं भक्तिसंयुक्तैः कृतपूजं सुरासुरैः । मा विनाशि चलत्यस्मिन् पर्वते मिलदर्वणि ॥१४८॥
ध्यानेति चरणाङ्गुष्ठपीडितं गिरिमस्तकम् । चकार शोभनध्यानादूरीकृतखेदमः ॥१४९॥
[1]ततो महाभराक्रान्तभग्नबाहुवनो भृशम् । दुःखाकुलश्चलद्रक्तस्पष्टमभ्युल्ललोचनः ॥१५०॥
भग्नमौलिशिरोगाढं[2] निविष्टधरणीधरः । निमज्जद्भूतलन्यस्तजानुर्निर्भुग्नजङ्घकः ॥१५१॥
सद्यः प्रगलितस्वेदधाराधौतरसातलः । बभूव संकुचद्गात्रः कूर्माकारो दशाननः ॥१५२॥
रवं च सर्वयत्नेन कृत्वा राविततान् जगत् । यतस्ततो गतः पश्चाद्रावणाख्यां समस्तगाम् ॥१५३॥
श्रुत्वा तं दीनमारावं स्वामिनः पूर्वमश्रुतम् । विद्याधरमधूलोको विललाप समाकुलः ॥१५४॥
मूढाः [3]संभ्रमदुभारब्धाः संभ्रान्ताः सचिवा वृथा । पुनः पुनः स्खलद्वाचो गृहीतगलदायुधाः ॥१५५॥
मुनिवीर्यप्रभावेण सुरदुन्दुभयोऽमदन् । पपात सुमनोवृष्टिः खमाच्छाद्य [5]सषट्पदा ॥१५६॥
मनृतुर्गगने क्रीडाशीला देवकुमारकाः । गीतध्वनिः सुरस्त्रीणां वंशानुगतमुद्यथौ ॥१५७॥

तदनन्तर जब समस्त संसार संवर्तक नामक वायुसे ही मानो आकुलित हो गया था तब भगवान् बाली मुनिराजने अवधिज्ञानसे दशानन नामक राक्षसको जान लिया ॥१४५॥ यद्यपि उन्हें स्वयं कुछ भी पीड़ा नहीं हुई थी और पहलेकी तरह उनका समस्त शरीर निश्चल रूपसे अवस्थित था तथापि वे धीरवीर और क्रोधसे रहित हो अपने चित्तमें इस प्रकार विचार करने लगे कि ॥१४६॥ चक्रवर्ती भरतने ये नाना प्रकारके सर्वरत्नमयी ऊँचे-ऊँचे जिन-मन्दिर बनवाये हैं। भक्तिसे भरे सुर और असुर प्रतिदिन इनकी पूजा करते हैं सो इस पर्वतके विचलित हो जाने-पर कहीं ये जिन मन्दिर नष्ट न हो जावें ॥१४७॥ ऐसा विचारकर शुभध्यानके निकट ही जिनको चेतना थी ऐसे मुनिराज बालीने पर्वतके मस्तकको अपने पैरके अँगूठेसे दबा दिया ॥१४८-१४९॥ तदनन्तर जिसकी भुजाओंका वन बहुत भारी बोझसे आक्रान्त होनेके कारण अत्यधिक टूट रहा था, जो दुखसे आकुल था, जिसकी लाल-लाल मनोहर आँखें चंचल हो रही थीं ऐसा दशानन अत्यन्त व्याकुल हो गया। उसके सिरका मुकुट टूटकर नीचे गिर गया और उस नंगे सिरपर पर्वतका भार आ पड़ा। नीचे धँसती हुई पृथिवीपर उसने घुटने टेक दिये। स्थूल होनेके कारण उसकी जंघाएँ मांसपेशियोंमें निमग्न हो गयीं ॥१५०-१५१॥ उसके शरीरसे शीघ्र ही पसीनाकी धारा बह निकली और उससे उसने रसातलको धो दिया। उसका सारा शरीर कछुएके समान संकुचित हो गया ॥१५२॥ उस समय चूँकि उसने सर्व प्रयत्नसे चिल्लाकर समस्त संसारको शब्दायमान कर दिया था इसलिए वह पीछे चलकर सर्वत्र प्रचलित 'रावण' इस नामको प्राप्त हुआ ॥१५३॥ रावणकी स्त्रियोंका समूह अपने स्वामीके उस अश्रुतपूर्व दीन-हीन शब्दको सुनकर व्याकुल हो विलाप करने लगा ॥१५४॥ मन्त्री लोग किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। वे युद्धके लिए तैयार हो व्यर्थ ही इधर-उधर फिरने लगे। उनके वचन बार-बार बीचमें ही स्खलित हो जाते थे और हथियार उनके हाथसे छूट जाते थे ॥१५५॥ मुनिराजके वीर्यके प्रभावसे देवोंके दुन्दुभि बजने लगे और भ्रमरसहित फूलोंकी वृष्टि आकाशको आच्छादित कर पड़ने लगी ॥१५६॥ क्रीड़ा करना जिनका स्वभाव था ऐसे देव-कुमार आकाशमें नृत्य करने लगे और देवियोंकी संगीत ध्वनि वंशीकी मधुर ध्वनिके साथ सर्वत्र

---

१. एष श्लोकः म. पुस्तके नास्ति । २. शिरोगाढं ब. । ३. संभ्रम- म. । ४. सुदुन्दुभयो म. । ५. सषट्पदाः म. ।

[1]ततो मन्दोदरी दीना ययाचेति मुनीश्वरम् । प्रणम्य भर्तृभिक्षां मे प्रयच्छाद्भुतविक्रम ॥१५८॥
ततोऽनुकम्पयाङ्गुष्ठं महामुनिरशश्चलत्[2] । रावणोऽपि विमुच्यार्द्रि [3]क्लेशकान्तारतो निरैत् ॥१५९॥
गत्वा च प्रणतिं कृत्वा क्षमयित्वा पुनः पुनः । योगेशं स्तोतुमारब्धः परिज्ञाततपोबलः ॥१६०॥
जिनेन्द्रचरणौ मुक्त्वा करोमि न नमस्कृतिम् । अभ्यस्येति त्वयोक्तं यत्सामर्थ्यस्यास्य तत्फलम् ॥१६१॥
अहो निश्चयसंपन्नं तपस्ते महद्बलम् । भगवन् येन शक्तोऽसि त्रैलोक्यं कर्तुमन्यथा ॥१६२॥
इन्द्राणामपि सामर्थ्यमीदृशं नाथ नेक्ष्यते । यानुक् तपःसमृद्धानां मुनीनामल्पयत्नजम् ॥१६३॥
अहो गुणा अहोरूपमहो कान्तिरहो बलम् । अहो दीप्तिरहो धैर्यमहो शीलमहो तपः ॥१६४॥
त्रैलोक्यादथ निःशेषं वस्त्वाहृत्य मनोहरम् । कर्मभिः सुकृताधारं शरीरं तव निर्मितम् ॥१६५॥
सामर्थ्येनामुना [4]पूतसत्त्वस्यक्तवानसि यन्महितम् । तदमत्वद्भुतं कर्म कृतं सुपुरुष त्वया ॥१६६॥
एवंविधस्य ते कर्तुं यदसाधु मयेप्सितम् । तदशक्तस्य संजातं पापबन्धाय केवलम् ॥१६७॥
धिक्शरीरमिदं चेतो वचश्च मम पापिनः । [5]वृत्तावभिमुखं जातं यदसत्यमलं पुरा ॥१६८॥
भवादृशां नृरत्नानां महिधानां च [6]दुर्विशाम् । अन्तरं विगतद्वेष मेरुसर्षपयोरिव ॥१६९॥
मह्यं विपद्यमानाय दत्ताः प्राणास्त्वया मुने । अपकारिणि यस्येयं मतिस्तस्य किमुच्यताम् ॥१७०॥
शृणोमि वेद्मि पश्यामि संसारं दुःखभावकम् । पापस्तथापि निर्वेदं विषयेभ्यो न याम्यहम् ॥१७१॥
पुण्यवन्तो महासत्त्वा मुक्तिलक्ष्मीसमीपगाः । तारुण्ये विषयोत्सृज्य स्थिसा ये मुक्तिवर्त्मनि ॥१७२॥

उठने लगी ॥१५७॥ तदनन्तर मन्दोदरीने दीन होकर मुनिराजको प्रणाम कर याचना की कि हे अद्भुत पराक्रमके धारी ! मेरे लिए पतिभिक्षा दीजिए ॥१५८॥ तब महामुनिने दयावश पैरका अँगूठा ढीला कर लिया और रावण भी पर्वतको जहाका तहाँ छोड़ क्लेशरूपी अटवीसे बाहर निकला ॥१५९॥ तदनन्तर जिसने तपका बल जान लिया था ऐसे रावणने जाकर मुनिराजको प्रणाम कर बार-बार क्षमा माँगी और इस प्रकार स्तुति करना प्रारम्भ किया ॥१६०॥ कि हे पूज्य ! आपने जो प्रतिज्ञा की थी कि मैं जिनेन्द्रदेवके चरणोंको छोड़कर अन्यके लिए नमस्कार नहीं करूँगा यह उसीकी सामर्थ्यका फल है ॥१६१॥ हे भगवन् ! आपके तपका महाफल निश्चयसे सम्पन्न है इसीलिए तो आप तीन लोकको अन्यथा करनेमें समर्थ हैं ॥१६२॥ तपसे समृद्ध मुनियोंको थोड़े ही प्रयत्नसे उत्पन्न जैसी सामर्थ्य देखी जाती है हे नाथ ! वैसी सामर्थ्य इन्द्रोंकी भी नहीं देखी जाती है ॥१६३॥ आपके गुण, आपका रूप, आपकी कान्ति, आपका बल, आपकी दीप्ति, आपका धैर्य, आपका शील और आपका तप सभी आश्चर्यकारी हैं ॥१६४॥ ऐसा जान पड़ता है मानो कर्मोंने तीनों लोकोंसे समस्त सुन्दर पदार्थ ला-लाकर पुण्यके आधारभूत आपके शरीरकी रचना की है ॥१६५॥ हे सत्पुरुष ! इस लोकोत्तर सामर्थ्यसे युक्त होकर भी जो आपने पृथिवीका त्याग किया है यह अत्यन्त आश्चर्यजनक कार्य है ॥१६६॥ ऐसी सामर्थ्यसे युक्त आपके विषयमें जो मैंने अनुचित कार्य करना चाहा था वह मुझ असमर्थके लिए केवल पाप-बन्धका ही कारण हुआ ॥१६७॥ मुझ पापीके इस शरीरको, हृदयको और वचनको धिक्कार है कि जो अयोग्य कार्य करनेके सम्मुख हुए ॥१६८॥ हे द्वेषरहित ! आप-जैसे नर-रत्नों और मुझ-जैसे दुष्ट पुरुषोंके बीच उतना ही अन्तर है जितना कि मेरु और सरसोंके बीच होता है ॥१६९॥ हे मुनिराज ! मुझ मरते हुएके लिए आपने प्राण प्रदान किये हैं सो अपकार करनेवालेपर जिसकी ऐसी बुद्धि है उसके विषयमें क्या कहा जावे ? ॥१७०॥ मैं सुनता हूँ, जानता हूँ और देखता हूँ कि संसार केवल दुःखका अनुभव करानेवाला है फिर भी मैं इतना पापी हूँ कि विषयोंसे वैराग्यको प्राप्त नहीं होता ॥१७१॥ जो तरुण

१. एष श्लोकः क. ख. पुस्तकयोर्नास्ति । २. भर्तृभिक्षां म. । ३. -रशश्चलयन् म. । ४. दुःखाटवीतः । ५. वृत्तास्त्वाभिमुखं जातं यदसत्यमलं पुरा क. । ६. दुष्टप्रजानाम् ।

इति स्तुत्वा मुनिं भूयः प्रणम्य त्रिःप्रदक्षिणम् । नितान्तं स्वं च निन्दित्वा शूत्कारमुखरानमः ॥१७३॥
उपकण्ठं मुनेश्चैत्यभवनं त्रपयान्वितः । विरक्तो विषयासङ्गे प्रविष्टः कैकसीसुतः ॥१७४॥
अनादरेण विक्षिप्य चन्द्रहासमसिं भुवि । आवृतो निजनारीभिरर्चके जिनवरार्चनम् ॥१७५॥
निष्कृष्य च स्वसासक्तौ भुजे वीणामवीवदत् । भक्तिनिर्भरभावश्च जगौ स्तुतिशतैर्जिनम् ॥१७६॥
नमस्ते देवदेवाय लोकालोकावलोकिने । तेजसातीतलोकाय कृतार्थाय महात्मने ॥१७७॥
त्रिलोककृतपूजाय नष्टमोहमहारये । वाणीगोचरसामुक्तगुणसंघातधारिणे ॥१७८॥
महैश्वर्यसमेताय [1]विमुक्तिपथदेशिने । सुखकाष्ठासमृद्धाय [2]दूरीभूतकुवस्तवे ॥१७९॥
निःश्रेयसस्य भूतानां हेतवेऽभ्युदयस्य च । महाकल्याणमूलाय वेधसे सर्वकर्मणाम् ॥१८०॥
ध्याननिर्दग्धपापाय जन्मविध्वंसकारिणे । गुरवे गुरुमुक्ताय प्रणतायानतात्मने ॥१८१॥
आद्यन्तपरिमुक्ताय संततायन्तयोगिने । [3]अज्ञातपरमार्थाय परमार्थविबोधिने ॥१८२॥
सर्वशून्यप्रतिज्ञाय सर्वास्तित्वोपदेशिने । सर्वक्षणिकपक्षाय कृत्स्ननित्यत्वदर्शिने ॥१८३॥
पृथक्त्वैकत्ववादाय सर्वानेकान्तदेशिने । जिनेश्वराय सर्वस्मा एकस्मै शिवदायिने ॥१८४॥

अवस्थामें ही विषयोंको छोड़कर मोक्ष-मार्गमें स्थित हुए हैं वे पुण्यात्मा हैं, महाशक्तिशाली है और मुक्तिलक्ष्मीके समीपमें विचरनेवाले हैं ॥१७२॥ इस प्रकार स्तुति कर उसने मुनिराजको प्रणाम कर तीन प्रदक्षिणाएँ दीं, अपने आपकी बहुत निन्दा की और दुःखवश मुँहसे सू-सू शब्द कर रुदन किया ॥१७३॥ मुनिराजके समीप जो जिन-मन्दिर था लज्जासे युक्त और विषयोंसे विरक्त रावण उसी-के अन्दर चला गया ॥१७४॥ वहाँ उसने चन्द्रहास नामक खड्गको अनादरसे पृथिवीपर फेंक दिया और अपनी स्त्रियोंसे युक्त होकर जिनेन्द्रदेवकी पूजा की ॥१७५॥ उसके भाव भक्तिमें इतने लीन हो गये थे कि उसने अपनी भुजाकी नाड़ीरूपी तन्त्रीको खींचकर वीणा बजायी और सैकड़ों स्तुतियोंके द्वारा जिनराजका गुणगान किया ॥१७६॥ वह गा रहा था कि नाथ! आप देवोंके देव हो, लोक और अलोकको देखनेवाले हो, आपने अपने तेजसे समस्त लोकको अतिक्रान्त कर दिया है, आप कृतकृत्य हैं, महात्मा हैं। तीनों लोक आपकी पूजा करते हैं, आपने मोह रूपी महा शत्रुको नष्ट कर दिया है, आप वचनागोचर गुणोंके समूहको धारण करनेवाले हैं। आप महान् ऐश्वर्यसे सहित हैं, मोक्षमार्गका उपदेश देनेवाले हैं, सुखकी परम सीमासे समृद्ध हैं, आपने समस्त कुत्सित वस्तुओंको दूर कर दिया है। आप प्राणियोंके लिए मोक्ष तथा स्वर्गके हेतु हैं, महाकल्याणोंके मूल कारण हैं, समस्त कार्योंके विधाता हैं। आपने ध्यानाग्निके द्वारा समस्त पापोंको जला दिया है, आप जन्मका विध्वंस करनेवाले हैं, गुरु हैं, आपका कोई गुरु नहीं है, सब आपको प्रणाम करते हैं और आप स्वयं किसीको प्रणाम नहीं करते। आप आदि तथा अन्तसे रहित हैं, आप निरन्तर आदि तथा अन्तिम योगी हैं, आपके परमार्थको कोई नहीं जानता पर आप समस्त परमार्थको जानते हैं। आत्मा रागादिक विकारोंसे शून्य है ऐसा उपदेश आपने सबके लिए दिया है, 'आत्मा है', 'परलोक है' इत्यादि आस्तिक्यवादका उपदेश भी आपने सबके लिए दिया है, पर्यायार्थिक नयसे संसारके समस्त पदार्थ क्षणिक हैं इस पक्षका निरूपण आपने जहाँ किया है वहाँ द्रव्यार्थिक नयसे समस्त पदार्थोंको नित्य भी आपने दिखलाया है। हमारी आत्मा समस्त परपदार्थोंसे पृथक् अखण्ड एक द्रव्य है ऐसा कथन आपने किया है, आप सबके लिए अनेकान्त धर्मका प्रतिपादन करनेवाले हैं, कर्मरूप शत्रुओंको जीतनेवालोंमें श्रेष्ठ हैं, सर्व पदार्थोंको जाननेवाले होनेसे सर्वरूप हैं, अखण्ड चैतन्य पुंजके धारक होनेसे एकरूप हैं और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं अतः आपको

---

१. विमुक्तपथ -म.। २. दूरीभूत—दूरीहित ब.। ३. न ज्ञातः परमार्थो यस्य स तस्मै। ४. देशिने म.। ५. -मादाय क., ब.। ६. -दर्शिने क.।

ऋषभाय नमो नित्यमजिताय नमो नमः । संभवाय नमोऽजसमभिनन्दनरूढये ॥१८५॥
नमः सुमतये पद्मप्रभाय सततं नमः । सुपार्श्वाय नमः शश्वच्चन्द्रसमस्विषे ॥१८६॥
नमोऽस्तु पुष्पदन्ताय शीतलाय नमो नमः । श्रेयसे वासुपूज्याय नमो लब्धात्मतेजसे ॥१८७॥
विमलाय नमस्त्रेधा नमोऽनन्ताय संततम् । नमो धर्माय सौख्यानां नमो मूलाय शान्तये ॥१८८॥
नमः कुन्थुजिनेन्द्राय नमोऽरस्वामिने सदा । नमो मल्लिमहेशाय नमः सुव्रतदायिने ॥१८९॥
अन्येभ्यश्च भविष्यद्भ्यो भूतेभ्यश्च सुसाधवः । नमोऽस्तु जिननाथेभ्यः श्रमणेभ्यश्च सर्वदा ॥१९०॥
नमः सम्यक्त्वयुक्ताय ज्ञानार्थैकान्तनाशिने । दर्शनाय नमोऽजस्रं सिद्धेभ्योऽनारतं नमः ॥१९१॥
पवित्राण्यक्षराण्येवं[2] लङ्कास्वामिनि गायति । चलितं नागराजस्य विष्टरं धरणश्रुतेः ॥१९२॥
ततोऽवधिकृतालोकस्तोषविस्तारितेक्षणः । स्फुरत्फणामणिच्छायादूरध्वस्ततमश्चयः ॥१९३॥
सकलामलताराशप्रसन्नमुखशोभितः । पातालादुदयौ क्षिप्रं नागराजः सुमानसः ॥१९४॥
विधाय च नमस्कारं जिनेन्द्राणां विधानतः । पूजां च ध्यानसंजातसमस्तद्रव्यसंपदम् ॥१९५॥
जगाद रावणं साधो साधुगीतमिदं त्वया । जिनेन्द्रस्तुतिसंबद्धं रोमहर्षणकारणम् ॥१९६॥
पश्य तोषेण मे जातं पुलकं घनकर्कशम् । पातालस्थस्य यच्छान्तिर्नाद्यापि प्रतिपद्यते ॥१९७॥
राक्षसेश्वर धन्योऽसि यः[3] स्तौषि जिनपुङ्गवान् । बलादाकृष्य भावेन त्वदीयेनाहमाहृतः ॥१९८॥
वरं वृणीष्व तुष्टोऽस्मि तव भक्त्या जिनान्प्रति । ददाम्यभीप्सितं वस्तु सद्यः कुनरदुर्लभम् ॥१९९॥
ततः कैलासकम्पेन[4] प्रोक्तोऽसौ विदितो मम । धरणो नागराजस्त्वं पृष्टस्तावन्निवेदय ॥२००॥

नमस्कार हो ॥१७७-१८४॥ ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, शीतल, श्रेयोनाथ, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, सौख्योंके मूल कारण शान्तिनाथ, कुन्थु जिनेन्द्र, अरनाथ, मल्लि महाराज और मुनिसुव्रत भगवान् इन वर्तमान तीर्थंकरोंको मन-वचन-कायसे नमस्कार हो। इनके सिवाय जो अन्य भूत और भविष्यत् काल सम्बन्धी तीर्थंकर हैं उन्हें नमस्कार हो। साधुओंके लिए सदा नमस्कार हो। सम्यक्त्वसहित ज्ञान और एकान्तवादको नष्ट करनेवाले दर्शनके लिए निरन्तर नमस्कार हो, तथा सिद्ध परमेश्वरके लिए सदा नमस्कार हो ॥१८५-१९१॥ लंकाका स्वामी रावण जब इस प्रकारके पवित्र अक्षर गा रहा था तब नागराज धरणेन्द्रका आसन कम्पायमान हुआ ॥१९२॥ तदनन्तर उत्तम हृदयको धारण करनेवाला नागराज शीघ्र ही पातालसे निकलकर बाहर आया। उस समय अवधिज्ञानरूपी प्रकाशसे उसकी आत्मा प्रकाशमान थी, सन्तोषसे उसके नेत्र विकसित हो रहे थे, ऊपर उठे हुए फणोंमें जो मणि लगे हुए थे उनकी कान्तिसे वह अन्धकारके समूह दूर हटा रहा था और पूर्ण तथा निर्मल चन्द्रमाके समान प्रसन्न मुखसे शोभित था ॥१९३-१९४॥ उसने आकर जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार किया और तदनन्तर ध्यान मात्रसे ही जिसमें समस्त द्रव्यरूपी सम्पदा प्राप्त हो गयी थी ऐसी विधिपूर्वक पूजा की ॥१९५॥ पूजाके बाद उसने रावणसे कहा कि हे सत्पुरुष! तुमने जिनेन्द्रदेवकी स्तुतिसे सम्बन्ध रखनेवाला यह बहुत अच्छा गीत गाया है। तुम्हारा यह गीत रोमांच उत्पन्न होनेका कारण है ॥१९६॥ देखो, सन्तोषके कारण मेरे शरीरमें सघन एवं कठोर रोमांच निकल आये हैं। मैं पातालमें रहता था फिर भी तुझे अब भी शान्ति प्राप्त नहीं हो रही है ॥१९७॥ हे राक्षसेश्वर! तू धन्य है जो जिनेन्द्र भगवान्‌की इस प्रकार स्तुति करता है। तेरी भावनाने मुझे बलपूर्वक खींचकर यहाँ बुलाया है ॥१९८॥ जिनेन्द्रदेवके प्रति जो तेरी भक्ति है उससे मैं बहुत सन्तुष्ट हुआ हूँ। तू वर माँग, मैं तुझे शीघ्र ही कुपुरुषोंको दुर्लभ इच्छित वस्तु देता हूँ ॥१९९॥ तदनन्तर

१. श्रवणेभ्यश्च म.। २. -ण्येव म.। ३. पातालस्य म.। ४. यस्तोषि म.। ५. रावणेन।

जिनवन्दनया तुल्यं किमन्यद्विद्यते शुभम् । वस्तु यत्प्रार्थयिष्येऽहं भवन्तं दातुमुद्यतम् ॥२०१॥
ततो निगदितं नागपतिना शृणु रावण । जिनेन्द्रवन्दनातुल्यं कल्याणं नैव विद्यते ॥२०२॥
ददाति परिनिर्वाणसुखं या सदुपासिता । [1]जिनभक्त्या तया तुल्यं न भूतं न भविष्यति ॥२०३॥
ततो दशमुखेनोक्तं नास्ति चेज्जिनवन्दनात् । अधिकं किंचतः प्राप्ते तस्मिन् याचे महामते ॥२०४॥
उक्तं च नागपतिना सत्यमेतत्सुचेष्टितम् । असाध्यं जिनभक्तेर्यत्स्याद्धु तच्चैव विद्यते ॥२०५॥
त्वादृशा मादृशा ये च वासवाद्यैश्च संमिताः । संपद्यन्ते सुखाधारा सर्वे ते जिनभक्तितः ॥२०६॥
आस्तां तावदिदं स्वल्पं व्याघाति भवजं सुखम् । मोक्षजं लभ्यते भक्त्या जिनानामुत्तमं सुखम् ॥२०७॥
नितान्तं यद्यपि त्यागी महाविनयसंगतः । वीर्यवानुत्तमैश्वर्यो भवान् गुणविभूषितः ॥२०८॥
मद्दर्शनं तथाप्येतत्तव मा भूदमर्थकम् । अमोघमिति याचेऽहं भवन्तं ग्रहणं प्रति ॥२०९॥
अमोघविजया नाम शक्तिं रूपविकारिणीम् । विद्यां गृहाण लङ्केश मा वधोः प्रणयं मम ॥२१०॥
एकया दशया कस्य कालो गच्छति सज्जन[2] । विपदोऽनन्तरा संपत् संपदोऽनन्तरा विपत् ॥२११॥
अतो विपदि जातायामासन्नायां कुतोऽपि ते । कुर्वती परसंबाधं पालिकेयं भविष्यति ॥२१२॥
आसतां मानुषास्तावद्विभ्यत्यस्याः सुरा अपि । वह्निज्वालापरीतायाः शक्तेर्विपुलशक्तयः ॥२१३॥
अशक्नुवंस्ततः कर्तुं[3] प्रणयस्यास्य भंजनम् । गृहीतूलाघवं लेभे कृच्छ्राद् कैलासकम्पन ॥२१४॥
कृत्वाञ्जलिं नमस्यां च संभाषितदशाननः । जगाम धरणः स्थानं निजं प्रकटसंमदः ॥२१५॥

कैलासको कम्पित करनेवाले रावणने कहा कि मुझे मालूम है—आप नागराज धरणेन्द्र हैं। सो मैं आपसे ही पूछता हूँ भला आप ही बतलाइए ॥२००॥ कि जिन-वन्दनाके समान और कौन-सी शुभ वस्तु है जिसे देनेके लिए उद्यत हुए आपसे मैं माँगूं ॥२०१॥ तब नागराजने कहा कि हे रावण! सुन, जिनेन्द्र-वन्दनाके समान और दूसरी वस्तु कल्याणकारी नहीं है ॥२०२॥ जो जिन-भक्ति अच्छी तरह उपासना करनेपर निर्वाण सुख प्रदान करती है उसके तुल्य दूसरी वस्तु न तो हुई है और न होगी ॥२०३॥ यह सुन रावणने कहा कि जब जिनेन्द्र-वन्दनासे बढ़कर और कुछ नहीं है और वह मुझे प्राप्त है तब हे महाबुद्धिमान्! तुम्हीं कहो इससे अधिक और किस वस्तुकी याचना तुमसे करूँ ॥२०४॥ नागराजने फिर कहा कि तुम्हारा यह कहना सच है। वास्तवमें जो वस्तु जिन-भक्तिसे असाध्य हो वह है ही नहीं ॥२०५॥ तुम्हारे समान, हमारे समान और इन्द्र आदिके समान जो भी सुखके आधार हैं वे सब जिन-भक्तिसे ही हुए हैं ॥२०६॥ यह संसार-का सुख तो अत्यन्त अल्प तथा बाधासे सहित है अतः इसे रहने दो, जिन-भक्तिसे तो मोक्ष-का भी उत्तम सुख प्राप्त हो जाता है ॥२०७॥ यद्यपि तू त्यागी है, महाविनयसे युक्त है, वीर्यवान् है, उत्तम ऐश्वर्यसे सहित है और गुणोंसे विभूषित है तथापि तेरे लिए मेरा जो अमोघ दर्शन हुआ है वह व्यर्थ न हो इसलिए मैं तुझसे कुछ ग्रहण करनेकी याचना करता हूँ ॥२०८-२०९॥ हे लंकेश! जिससे मनचाहे रूप बनाये जा सकते हैं ऐसी अमोघविजया शक्ति नामकी विद्या मैं तुझे देता हूँ सो ग्रहण कर, मेरा स्नेह खण्डित मत कर ॥२१०॥ हे भलेमानुष! एक ही दशामें किसका काल बीतता है? विपत्तिके बाद सम्पत्ति और सम्पत्तिके बाद विपत्ति सभीको प्राप्त होती है ॥२११॥ इसलिए यदि कदाचित् किसी कारणवश विपत्ति तेरे समीप आयेगी तो यह विद्या शत्रुको बाधा पहुँचाती हुई तेरी रक्षक होगी ॥२१२॥ मनुष्य तो दूर रहें अग्निकी ज्वालाओंसे व्याप्त इस शक्तिसे विपुल शक्तिके धारक देव भी भयभीत रहते हैं ॥२१३॥ आखिर, रावण नागराजके इस स्नेहको भंग नहीं कर सका और उसने बड़ी कठिनाईसे ग्रहण करनेवालेकी लघुता प्राप्त की ॥२१४॥ तदनन्तर हाथ जोड़कर और पूजा कर रावणसे

---

१. जिनेन्द्राज्ञा ब. । २. सज्जनः म. । ३. भाजनम् म. ।

नाममात्रं दशास्योऽपि स्थित्वा कैलासमूर्धनि । प्रणिपत्य[1] जिनं देशं प्रययावभिवाञ्छितम् ॥२१६॥
विज्ञाय मनसः क्षोभादात्मानं बद्धदुष्कृतम् । प्रायश्चित्तं गुरोर्देशं गत्वा बालिरशिश्रियत् ॥२१७॥
निर्गतस्वान्तशल्यश्च[2] बभूव सुखितः पुनः । बालिर्निर्यमनं कृत्वा यथा विष्णुर्महामुनिः ॥२१८॥
चारित्राद् गुप्तितो धर्मादनुप्रेक्षा[3]णतः सदा । समितिभ्यः पराभूतेः परीषहगणस्य च ॥२१९॥
महासंवरमासाद्य कर्मापूर्वं मनर्जयत्[4] । नाशयंस्तपसा चात्तं प्राप्तः[5] केवलसंगतम् ॥२२०॥
कर्माष्टकविनिर्मुक्तो ययौ त्रैलोक्यमस्तकम् । सुखं निरुपमं यस्मिन्नवसानविवर्जितम् ॥२२१॥
इन्द्रियाणां जये शक्तो यस्तेनास्मि पराजितः । इति विज्ञाय लङ्केशः साधूनां प्रणतोऽभवत् ॥२२२॥
सम्यग्दर्शनसंपन्नो दृढभक्तिर्जिनेश्वरे । अतृप्तः परमैर्भोगैस्तस्थिवत् स यथेप्सितम् ॥२२३॥

रथोद्धतावृत्तम्

बालिचेष्टितमिदं शृणोति यो भावतत्परमतिः शुभो जनः ।
नैव याति परतः पराभवं प्राप्नुते च रविभासुरं पदम् ॥२२४॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते बालिनिर्वाणाभिधानं नाम नवमं पर्व ॥९॥

□

वार्तालाप करता हुआ नागराज बड़े हर्षसे अपने स्थानपर चला गया ॥२१५॥ रावण भी एक माह तक कैलास पर्वतपर रहकर तथा जिनेन्द्रदेवको नमस्कार कर इच्छित स्थलको चला गया ॥२१६॥ मुनिराज बालीने मनमें क्षोभ उत्पन्न होनेसे अपने आपको पाप कर्मका बन्ध करनेवाला समझ गुरुके पास जाकर प्रायश्चित्त ग्रहण किया ॥२१७॥ जिस प्रकार विष्णुकुमार महामुनि प्रायश्चित्त कर सुखी हुए थे उसी प्रकार बाली मुनिराज भी प्रायश्चित्त द्वारा हृदयकी शल्य निकल जानेसे सुखी हुए ॥२१८॥ चारित्र, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, समिति और परीषह सहन करनेसे बाली मुनिराज महासंवरको प्राप्त हुए। नवीन कर्मोंका अर्जन उन्होंने बन्द कर दिया और पहलेके संचित कर्मोंका तपके द्वारा नाश करना शुरू किया। इस तरह संवर और निर्जराके द्वारा वे केवलज्ञानको प्राप्त हुए ॥२१९-२२०॥ अन्तमें आठ कर्मोंको नष्ट कर वे तीन लोकके उस शिखरपर जा पहुँचे जहाँ अनन्त सुख प्राप्त होता है ॥२२१॥ जो इन्द्रियोंको जीतनेमें समर्थ है मैं उससे हारा हूँ यह जानकर अब रावण साधुओंके समक्ष नम्र रहने लगा ॥२२२॥ जो सम्यग्दर्शनसे सम्पन्न था, और जिनेन्द्र देवमें जिसकी दृढ़ भक्ति थी ऐसा रावण परम भोगोंसे तृप्त न होता हुआ इच्छानुसार रहने लगा ॥२२३॥ गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे श्रेणिक! जो उत्तम मनुष्य शुभभावोंमें तत्पर होता हुआ बाली मुनिके इस चरित्रको सुनता है वह कभी परसे पराभवको प्राप्त नहीं होता और सूर्यके समान देदीप्यमान पदको प्राप्त होता है ॥२२४॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरितमें बालि-निर्वाणका कथन करनेवाला नवम पर्व पूर्ण हुआ ॥९॥

□

---

१. प्रतिपत्य म. । २. शल्यस्य म. । ३. -दनुप्रेपणतः म., ख. । ४. -मनिर्जयन् म. । ५. चात्तप्राप्तः केवल-संगमम् म. । चान्तमन्ते केवलसंगमः क. ।

दशमं पर्व

एवं तावदिदं वृत्तं तव श्रेणिक वेदितम् । अतः परं प्रवक्ष्यामि शृणु ते परमीहितम् ॥१॥
हुताशनशिखस्यासीत् सुता [2]ज्योतिःपुरे वरा । ह्रीसंज्ञायां समुत्पन्ना योषिति स्त्रीगुणान्विता ॥२॥
सुतारेति मता ख्याति शोभया सकलावनौ । पद्मवासं परित्यज्य लक्ष्मीरिव समागता ॥३॥
चक्राङ्कतनयोऽपश्यत् पर्यटन् स्वेच्छयान्यदा । तां साहसगतिर्नाम्ना [3]दुष्टोऽनुमतिसंभवः ॥४॥
ततोऽसौ कामशल्येन शल्यितोऽत्यन्तदुःखितः । सुतारां मनसा नित्यमुवाहोन्मत्तविभ्रमः ॥५॥
उपर्युपरि यातैश्च तां स दूतैरयाचत । सुग्रीवोऽपि तथैवैतां याचते स्म मनोहराम् ॥६॥
द्वैधीभावमुपेतेन हुताशनशिखेन च । पृष्टो मुनिर्महाज्ञानी निश्चयव्याकुलात्मना ॥७॥
[4]उक्तं च मुनिचन्द्रेण न साहसगतिश्चिरम् । जीविष्यति चिरायुस्तु सुग्रीवः परमोदयः ॥८॥
चक्राङ्कपक्षसंप्रीत्या हुताशस्तु विनिश्चयः । दीपौ वृषौ गजेन्द्रौ च निमित्तमकरोद् दृढम् ॥९॥
ततो मुनिगिरं श्रुत्वा नियतामृतोपमाम् । सुग्रीवाय सुता दत्तानीय [5]पित्रा समङ्गलम् ॥१०॥
कृत्वा पाणिगृहीतां तां सुग्रीवः पुण्यसंचयः । इयाय कामविषयं सारवत्तं [6]सुसंपदम् ॥११॥
ततः क्रमात्तयोः पुत्रौ जातौ रूपमहोत्सवौ । ज्यायानङ्गोऽनुजस्तस्य प्रथितोऽङ्गदसंज्ञया ॥१२॥

अथानन्तर—गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे श्रेणिक! इस तरह तुमने बालीका वृत्तान्त जाना। अब इसके आगे तेरे लिए सुग्रीव और सुताराका श्रेष्ठ चरित कहता हूँ सो सुन ॥१॥ ज्योतिःपुर नामा नगरमें राजा अग्निशिखकी रानी ह्री देवीके उदरसे उत्पन्न एक सुतारा नामकी कन्या थी। शोभासे समस्त पृथिवीमें प्रसिद्ध थी और ऐसी जान पड़ती थी मानो कमलरूपी आवासको छोड़कर लक्ष्मी ही आ गयी हो ॥२-३॥ एक दिन राजा चक्रांक और अनुमति रानीसे उत्पन्न साहसगति नामक दुष्ट विद्याधर अपनी इच्छासे इधर-उधर भ्रमण कर रहा था सो उसने सुतारा देखी ॥४॥ उसे देखकर वह कामरूपी शल्यसे विद्ध होकर अत्यन्त दुःखी हुआ। वह सुताराको निरन्तर अपने मनमें धारण करता था और उन्मत्त-जैसी उसकी चेष्टा थी ॥५॥ इधर वह एकके बाद एक दूत भेजकर उसकी याचना करता था उधर सुग्रीव भी उस मनोहर कन्याकी याचना करता था ॥६॥ 'अपनी कन्या दो में से किसे दूँ' इस प्रकार द्वैधीभावको प्राप्त हुआ राजा अग्निशिख निश्चय नहीं कर सका इसलिए उसकी आत्मा निरन्तर व्याकुल रहती थी। आखिर महाज्ञानी मुनिराजसे पूछा ॥७॥ तब महाज्ञानी मुनिचन्द्रने कहा कि साहसगति चिरकाल तक जीवित नहीं रहेगा—अल्पायु है और सुग्रीव इसके विपरीत परम अभ्युदयका धारक तथा चिरायु है ॥८॥ राजा अग्निशिख, साहसगतिके पिता चक्रांकका पक्ष प्रबल होनेसे मुनिचन्द्रके वचनोंका निश्चय नहीं कर सका तब मुनिचन्द्रने दो दीपक, दो वृष और गजराजोंको निमित्त बनाकर उसे अपनी बातका दृढ़ निश्चय करा दिया ॥९॥ तदनन्तर मुनिराजके अमृत तुल्य वचनोंका निश्चय कर पिता अग्निशिखने अपनी पुत्री सुतारा लाकर मंगलाचारपूर्वक सुग्रीवके लिए दे दी ॥१०॥ जिसका पुण्यका संचय प्रबल था ऐसा सुग्रीव उस कन्याको विवाह कर बड़ी सम्पदाके साथ श्रेष्ठ कामोपभोगको प्राप्त हुआ ॥११॥ तदनन्तर सुग्रीव और सुताराके क्रमसे दो पुत्र उत्पन्न हुए। दोनों ही अत्यन्त सुन्दर थे। उनमें-से बड़े पुत्रका नाम अंग था और छोटा पुत्र अंगदके नामसे प्रसिद्ध था ॥१२॥

---

१. पर्व म.। २. ज्योतिःपुरे म., ब.। ३. दुष्टानुमति म.। ४. युक्तं च म.। ५. नीत्वा म.। ६. सुसंभवम् म., क., ख.।

अद्यापि नैव निर्लज्जश्चक्राङ्कस्य शरीरजः । परित्यजति तत्राशां धिङ्मनोभवदूषिताम् ॥१३॥
दध्यौ [1]चेति स कामाग्निदग्धो निस्सारमानसः । केनोपायेन तां कन्यां लप्स्ये निर्वृतिदायिनीम् ॥१४॥
कदा नु वदनं तस्याः शोभाजितनिशाकरम् । चुम्बिष्यामि स्फुरच्छोणच्छविच्छन्नरदच्छदम् ॥१५॥
क्रीडिष्यामि कदा सार्धं तया नन्दनवक्षसि । कदा वाप्स्यामि तत्पीनस्तनस्पर्शसुखोत्सवम् ॥१६॥
[2]इत्यभिध्यायतस्तस्य तत्समागमकारणम् । सस्मार शेमुषीविद्यामाकृतेः परिवर्तिनीम् ॥१७॥
हिमवन्तं ततो गत्वा गुहामाश्रित्य दुर्गमाम् । आराधयितुमारेभे दुःखितं प्रियमित्रवत् ॥१८॥
अत्रान्तरे विनिष्क्रान्तो दिशो जेतुं दशाननः । ददर्श धरणीं पश्यन् गिरिकान्तारभूषिताम् ॥१९॥
जित्वा विद्याधराधीशान् द्वीपान्तरगतान् वशी । भूयो न्ययोजयत् स्वेषु राष्ट्रेषु पृथुशासनः ॥२०॥
वशीकृतेषु तस्यासीत् खगसिंहेषु मानसम् । पुत्रेष्विव महेच्छा हि तुष्यत्यानतिमात्रतः ॥२१॥
राक्षसान्वयजे योऽभूद् यो वा शाखामृगान्वये । उद्धतः खेचराधीशः सर्वं तं वशमानयत् ॥२२॥
महासाधनयुक्तस्य व्रजतोऽस्य विहायसा । वेगमारुतमप्यन्ये खेचराः सोढुमक्षमाः ॥२३॥
संध्याकाराः सुवेलाश्च हेमापूर्णाः [3]सुयोधनाः । हंसद्वीपाः परिह्लादा इत्याद्या जनताधिपाः ॥२४॥
गृहीतप्राभृता गत्वा नेमुस्तं मूर्धपाणयः । आश्वासिताः सुवाणीभिस्तथावस्थितसंपदः ॥२५॥

राजा चक्रांकका पुत्र साहसगति इतना निर्लज्ज था कि वह अब भी सुतारकी आशा नहीं छोड़ रहा था सो आचार्य कहते हैं कि इस कामसे दूषित आशाको धिक्कार हो ॥१३॥ जो कामाग्निसे जल रहा था ऐसा, सारहीन मनका धारक साहसगति निरन्तर यही विचार करता रहता था कि मैं सुख देनेवाली उस कन्याको किस उपायसे प्राप्त कर सकूँगा ॥१४॥ जिसने अपनी शोभासे चन्द्रमाको जीत लिया है और जिसका ओंठ स्फुरायमान लाल कान्तिसे आच्छादित है ऐसे उसके मुखका कब चुम्बन करूँगा ? ॥१५॥ नन्दनवनके मध्यमें उसके साथ कब क्रीड़ा करूँगा, और उसके स्थूल स्तनोंके स्पर्शजन्य सुखोत्सवको कब प्राप्त होऊँगा ॥१६॥ इस प्रकार उसके समागमके कारणोंका ध्यान करते हुए उसने रूप बदलनेवाली शेमुषी नामक विद्याका स्मरण किया ॥१७॥ जिस प्रकार प्रिय मित्र अपने दुःखी मित्रकी निरन्तर आराधना करता है उसी प्रकार साहसगति हिमवान् पर्वतपर जाकर उसकी दुर्गम गुहाका आश्रय ले उस विद्याकी आराधना करने लगा ॥१८॥

अथानन्तर इसी बीचमें रावण दिग्विजय करनेके लिए निकला सो पर्वत और वनोंसे विभूषित पृथिवीको देखता हुआ भ्रमण करने लगा ॥१९॥ विशाल आज्ञाको धारण करनेवाले जितेन्द्रिय रावणने दूसरे-दूसरे द्वीपोंमें स्थित विद्याधर राजाओंको जीतकर उन्हें फिरसे अपने-अपने देशोंमें नियुक्त किया ॥२०॥ जिन विद्याधर राजाओंको वह वशमें कर चुका था उन सबपर उसका मन पुत्रोंके समान स्निग्ध था अर्थात् जिस प्रकार पिताका मन पुत्रोंपर स्नेहपूर्ण होता है उसी प्रकार दशाननका मन वशीकृत राजाओंपर स्नेहपूर्ण था। सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुष नमस्कार मात्रसे सन्तुष्ट हो जाते हैं ॥२१॥ राक्षसवंश और वानरवंशमें जो भी उद्धत विद्याधर राजा थे उन सबको उसने वशमें किया था ॥२२॥ बड़ी भारी सेनाके साथ जब रावण आकाशमार्गसे जाता था तब उसकी वेगजन्य वायुको अन्य विद्याधर सहन करनेमें असमर्थ हो जाते थे ॥२३॥ सन्ध्याकार, सुवेल, हेमापूर्ण, सुयोधन, हंसद्वीप और परिह्लाद आदि जो राजा थे वे सब भेंट ले-लेकर तथा हाथ जोड़ मस्तकसे लगा-लगाकर उसे नमस्कार करते थे और रावण भी अच्छे-अच्छे वचनोंसे उन्हें सन्तुष्ट कर उनकी सम्पदाओंको पूर्ववत्

---

१. चेतसि म. । २ नन्दनवनमध्ये । ३. इत्यभिधावतस्तस्य म. । ४. हेमापूर्णाश्च योधनाः क., ब. । ५. तथावस्थितसंपदः म. ।

श्रिता येऽपि सुदुर्गाणि स्थानान्यम्बरगाधिपाः । नमितास्तेऽपि तत्पादौ शोभनैः पूर्वकर्मभिः ॥२६॥
बलानां हि समस्तानां बलं कर्मकृतं परम् । तस्योदये स कं जेतुं न समर्थो [1]नरेश्वरः ॥२७॥
अथेन्द्रजितये गन्तुं प्रवृत्तेनासुना [2]स्मृता । स्वसास्यन्तधनस्नेहात् पारंपर्याच्च तत्पतिः ॥२८॥
प्रस्थितश्च स तं देशं श्रुतः स्वस्रा समुत्कया । प्राप्तः स्थितः समासन्ने देशे प्रीतिसमुत्कटः ॥२९॥
ततश्चरमयामादौ क्षपायाः शयितः सुखम् । कैकसेय्या [3]परप्रीत्या बोधितः खरदूषणः ॥३०॥
ततो निर्गत्य तेनालंकारोदयात् पुरात् । [4]कृतभक्तो महाभक्त्या पूजितः परमोत्सवैः ॥३१॥
रावणोऽपि स्वसुः प्रीत्या चक्रेऽस्य प्रतिपूजनम् । प्रायो हि सोदरस्नेहात् परः स्नेहो न विद्यते ॥३२॥
चतुर्दशसहस्राणि कामरूपाविकारिणाम् । दर्शितानि दशास्याय तेन व्योमविचारिणाम् ॥३३॥
दूषणाख्यश्च सेनायाः पतिरात्मसमः कृती । शूरो गुणसमाकृष्टसर्वसामन्तमानसः ॥३४॥
एतैश्च प्रस्थितः साकं कृतसर्वास्त्रकौशलैः । आवृतोऽसुरसंघातैः पातालाद्वामरो यथा ॥३५॥
हिडम्बो हैहिडो डिम्बो विकटस्त्रिजटो हयः । माकोटः सुजटष्टङ्कः किष्किन्धाधिपतिस्तथा ॥३६॥
त्रिपुरो मलयो हेमपालकोलवसुन्धराः । नानायानसमारूढा नानाशस्त्रविराजिताः ॥३७॥
एवमाद्यैः खगाधीशैरापूपूरे स निर्गतः । विद्युदिन्द्रधनुर्युक्तैर्घनौघैः श्रावणो यथा ॥३८॥
सहस्रमधिकं जातं विहायस्तलचारिणाम् । अक्षौहिणीप्रमाणानां [5]कैलासोल्लासकारिणः ॥३९॥

अवस्थित रखता था ॥२४-२५॥ जो विद्याधर राजा अत्यन्त दुर्गम स्थानोंमें रहते थे उन्होंने भी उत्तमोत्तम शिष्टाचारके साथ रावणके चरणोंमें नमस्कार किया था ॥२६॥ आचार्य कहते हैं कि सब बलोंमें कर्मोंके द्वारा किया हुआ बल ही श्रेष्ठ बल है सो उसका उदय रहते हुए रावण किसे जीतनेके लिए समर्थ नहीं हुआ था ? अर्थात् वह सभीको जीतनेमें समर्थ था ॥२७॥

अथानन्तर—रावण रथनूपुर नगरके राजा इन्द्र विद्याधरको जीतनेके लिए प्रवृत्त हुआ सो उसने इस अवसरपर अपनी बहन चन्द्रनखा और उसके पति खरदूषणका बड़े भारी स्नेहसे स्मरण किया ॥२८॥ प्रस्थान कर पातालल्लंकाके समीप पहुँचा। जब बहनको इस बातका पता चला कि प्रीतिसे भरा हमारा भाई निकट ही आकर स्थित है तब वह उत्कण्ठासे भर गयी ॥२९॥ उस समय रात्रिका पिछला पहर था और खरदूषण सुखसे सो रहा था सो चन्द्रनखाने बड़े प्रेमसे उसे जगाया ॥३०॥ तदनन्तर खरदूषणने अलंकारोदयपुर (पाताललंका) से निकलकर बड़ी भक्ति और बहुत भारी उत्सवसे रावणकी पूजा की ॥३१॥ रावणने भी बदलेमें प्रीतिपूर्वक बहनकी पूजा की सो ठीक ही है क्योंकि संसारमें भाईके स्नेहसे बढ़कर दूसरा स्नेह नहीं है ॥३२॥ खरदूषणने रावणके लिए इच्छानुसार रूप बदलनेवाले चौदह हजार विद्याधर दिखलाये ॥३३॥ जो अत्यन्त कुशल था, शूरवीर था और जिसने अपने गुणोंसे समस्त सामन्तोंके मनको अपनी ओर खींच लिया था ऐसे खरदूषणको रावणने अपने समान सेनापति बनाया ॥३४॥ जिस प्रकार असुरोंके समूहसे आवृत चामरेन्द्र पातालसे निकलकर प्रस्थान करता है उसी प्रकार रावणने सर्वप्रकारके शस्त्रोंमें कौशल प्राप्त करनेवाले खरदूषण आदि विद्याधरोंके साथ पाताललंकासे निकलकर प्रस्थान किया ॥३५॥ हिडम्ब, हैहिड, डिम्ब, विकट, त्रिजट, हय, माकोट, सुजट, टंक, किष्किन्धाधिपति, त्रिपुर, मलय, हेमपाल, कोल और वसुन्धर आदि राजा नाना प्रकारके वाहनोंपर आरूढ़ होकर साथ जा रहे थे। ये सभी राजा नाना प्रकारके शस्त्रोंसे सुशोभित थे ॥३६-३७॥ जिस प्रकार बिजली और इन्द्रधनुषसे युक्त मेघोंके समूहसे सावनका माह भर जाता है उसी प्रकार उन समस्त विद्याधर राजाओंसे दशानन भर गया था ॥३८॥ इस प्रकार कैलासको कम्पित

---

१. नरेश्वर म.। २. स्मृतः म. ख.। ३. चन्द्रनखया। ४. माकोटस्त्रिजटष्टंकः म.। ५. कैलासोल्लासकारिणाम् म.।

अमराणां सहस्रेण प्रत्येकं कृतपालकैः । रत्नैरनुगतो नानागुणसंघातधारिभिः ॥४०॥
चन्द्ररश्मिचयाकारैश्चामरैरुपवीजितः । समुच्छ्रितसितच्छत्रश्चारुरूपमहाभुजः ॥४१॥
पुष्पकाग्रं समारूढो मन्दरस्थरविद्युतिः । तिग्मांशुमालिनो मार्गं छादयन् यानसंपदा ॥४२॥
इन्द्रध्वंसनमाधाय मानसे प्रबलक्रमः । प्रयाणकैरभिप्रेतैः प्रयाति स्म दशाननः ॥४३॥
नानारत्नकृतच्छायं चामरोर्मिसमाकुलम् । तद्दण्डमीनसंघातं छत्रावर्तशतार्चितम् ॥४४॥
वाजिमातङ्गपादातग्रहसंघातभीषणम् । उल्लसच्छस्त्रकल्लोलमकरोत् स खमर्णवम् ॥४५॥
तुङ्गैर्बर्हिणपिच्छौघशिरोभिर्भासुरैर्ध्वजैः । क्वचिन्नैरिव खं व्याप्तं सुत्रामोपायमैनमः ॥४६॥
नानारत्नकृतोद्योतैस्तुङ्गशृङ्गविराजितैः । संचरत्सुरलोकाभं विमानगिवहैः क्वचित् ॥४७॥
पृथ्व्या किं मगधाधीश गिरात्र परिकीर्णया । मन्ये तत्सैन्यमालोक्य विभुयुक्तिदृशा अपि ॥४८॥
इन्द्रजिन्मेघवाहश्च कुम्भकर्णो विभीषणः । खरदूषणनामा च निकुम्भः कुम्भसंज्ञकः ॥४९॥
एते चान्ये च बहवः स्वजना रणकोविदाः । सिद्धविद्यामहाभासः शस्त्रशास्त्रकृतश्रमाः ॥५०॥

करनेवाले रावणके कुछ अधिक एक हजार अक्षौहिणी प्रमाण विद्याधरोंकी सेना इकट्ठी हो गयी थी ॥३९॥ प्रत्येकके हजार-हजार देव जिनकी रक्षा करते थे और जो नाना गुणोंके समूहको धारण करनेवाले थे ऐसे रत्न उसके साथ चलते थे ॥४०॥ चन्द्रमाकी किरणोंके समूहके समान जिनका आकार था ऐसे चमर उसपर ढोले जा रहे थे। उसके सिरपर सफेद छत्र लग रहा था और उसकी लम्बी-लम्बी भुजाएँ सुन्दर रूपको धारण करनेवाली थीं ॥४१॥ वह पुष्पक विमानके अग्रभागपर आरूढ़ था जिससे मेरुपर्वतपर स्थित सूर्यके समान कान्तिको धारण कर रहा था। वह अपनी यानरूपी सम्पत्तिके द्वारा सूर्यका मार्ग अर्थात् आकाशको आच्छादित कर रहा था ॥४२॥ प्रबल पराक्रमका धारी रावण मनमें इन्द्रके विनाशका संकल्प कर इच्छानुकूल प्रयाणकोंसे निरन्तर आगे बढ़ता जाता था ॥४३॥ उस समय वह आकाशको ठीक समुद्रके समान बना रहा था क्योंकि जिस प्रकार समुद्रमें नाना प्रकारके रत्नोंकी कान्ति व्याप्त होती है उसी प्रकार आकाशमें नाना प्रकारके रत्नोंकी कान्ति फैल रही थी। जिस प्रकार समुद्र तरंगोंसे युक्त होता है उसी प्रकार आकाश चामररूपी तरंगोंसे युक्त होता था। जिस प्रकार समुद्रमें मीन अर्थात् मछलियोंका समूह होता है उसी प्रकार आकाशमें दण्डरूपी मछलियोंका समूह था। जिस प्रकार समुद्र सैकड़ों आवर्तों अर्थात् भ्रमरोंसे सहित होता है उसी प्रकार आकाश भी छत्ररूपी सैकड़ों भ्रमरोंसे युक्त था। जिस प्रकार समुद्र मगरमच्छोंके समूहसे भयंकर होता है उसी प्रकार आकाश भी घोड़े, हाथी और पैदल योद्धारूपी मगरमच्छोंसे भयंकर था तथा जिस प्रकार समुद्रमें अनेक कल्लोल अर्थात् तरंग उठते रहते हैं उसी प्रकार आकाशमें भी अनेक शस्त्ररूपी तरंग उठ रहे थे ॥४४-४५॥ जिनके अग्रभागपर मयूरपिच्छोंका समूह विद्यमान था ऐसी चमकीली ऊँची ध्वजाओंसे कहीं आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो इन्द्रनीलमणियोंसे युक्त हीरोंसे ही व्याप्त हो ॥४६॥ जिनमें नाना प्रकारके रत्नोंका प्रकाश फैल रहा था और जो ऊँचे-ऊँचे शिखरोंसे सुशोभित थे ऐसे विमानोंके समूहसे आकाश कहीं चलते-फिरते स्वर्गलोकके समान जान पड़ता था ॥४७॥ गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि मगधेश्वर ! इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? मुझे तो ऐसा लगता है कि रावणकी सेना देखकर देव भी भयभीत हो रहे थे ॥४८॥ जिन्हें विद्यारूपी महाप्रकाश प्राप्त था और शस्त्र तथा शास्त्रमें जिन्होंने परिश्रम किया था ऐसे इन्द्रजित्, मेघवाहन, कुम्भकर्ण, विभीषण, खरदूषण, निकुम्भ और कुम्भ, ये तथा इनके सिवाय युद्धमें कुशल अन्य अनेक आत्मीयजन रावणके पीछे-

---

१. मन्दरस्थिर-विद्युतिः म.। मन्दरस्थितविद्युतिः ख., क.। २. इन्द्रध्वंसं समाधाय ख., क.। ३. तद्दण्डमान म.। ४. सुरलोकाभं म.।

महासाधनसंपन्ना हेपयन्तः सुरश्रियम् । अनुजग्मुरतिप्रीता रावणं पृथुकीर्तयः ॥५१॥
[illegible] दिनाधिपे । रक्तस्य व्योमतलं दिवाकरः । वैलक्ष्यादिव निच्छायो जितो रावणतेजसा ॥५२॥
उत्तमाङ्गे च विन्ध्यस्य तेन सैन्यं निवेशितम् । विद्याबलसमुद्भूतैर्नानाकृतसमाश्रयम् ॥५३॥
प्रदीप इव खानीतः क्षपया तस्य भीतया । करदूरीकृतध्वान्तपटलो रोहिणीपतिः ॥५४॥
तारागणशिरःपुष्पा शशाङ्कवदना निशा । प्राप्ता वराङ्गनेवैसं विमलाम्बरधारिणी ॥५५॥
संकथाभिर्विचित्राभिर्व्यापारैश्च तथोचितैः । सुखेन रजनी नीता निद्रया च नभश्चरैः ॥५६॥
ततः प्रभातसूर्येण मङ्गलैश्च प्रबोधितः । चकार रावणः कर्म सकलं तनुगोचरम् ॥५७॥
भ्रान्त्वेव भुवनं सर्वमदृष्ट्वान्यं समाश्रयम् । पुनः शरणमायातो रावणं पद्मबान्धवः ॥५८॥
ततो नानाशकुन्तौघैः कुर्वद्भिर्मधुरस्वरम् । संभाषणमिव श्रेष्ठमर्थादं कुर्वतीमयम् ॥५९॥
ददर्श नर्मदां फेनपटलैः सस्मितामिव । शुद्धस्फटिकसंकाशसलिलां द्विपभूषिताम् ॥६०॥
तरङ्गभ्रूविलासाढ्यामावर्तोत्तमनाभिकाम् । विस्फुरच्छफरीनेत्रां पुलिनोरुकलत्रिकाम् ॥६१॥
नानापुष्पसमाकीर्णां विमलोदकवाससम् । वराङ्गनामिवालोक्य महाप्रीतिमुपागतः ॥६२॥
उग्रनक्रकुलाक्रान्तां गम्भीरां वेगिनीं क्वचित् । क्वचिच्च प्रस्थितां मन्दं क्वचित्कुण्डलगामिनीम् ॥६३॥
नानाचेष्टितसंपूर्णां कौतुकव्याप्तमानसः । अवतीर्णः स तां भीमां रमणीयां च सादरः ॥६४॥

पीछे चल रहे थे। ये सभी लोग बड़ी-बड़ी सेनाओंसे सहित थे, इन्द्रकी लक्ष्मीको लजाते थे, अत्यन्त प्रीतिसे युक्त थे और विशाल कीर्तिके धारक थे ॥४९–५१॥

तदनन्तर जब रावण विन्ध्याचलके समीप पहुँचा तब सूर्य अस्त हो गया सो रावणके तेजसे पराजित होनेके कारण लज्जासे ही मानो प्रभाहीन हो गया था ॥५२॥ सूर्यास्त होते ही उसने विन्ध्याचलके शिखरपर सेना ठहरा दी। वहाँ विद्याके बलसे सेनाको नाना प्रकारके आश्रय प्राप्त हुए थे ॥५३॥ किरणोंके द्वारा अन्धकारके समूहको दूर करनेवाला चन्द्रमा उदित हुआ सो मानो रावणसे डरी हुई रात्रिने उत्तम दीपक ही लाकर उपस्थित किया था ॥५४॥ तारागण ही जिसके सिरके पुष्प थे, चन्द्रमा ही जिसका मुख था, और जो निर्मल अम्बर (आकाश) रूपी अम्बर (वस्त्र) धारण कर रही थी ऐसी उत्तम नायिकाके समान रात्रि रावणके समीप आयी ॥५५॥ विद्याधरोंने नाना प्रकारकी कथाओंसे, योग्य व्यापारोंसे तथा अनुकूल निद्रासे वह रात्रि व्यतीत की ॥५६॥ तदनन्तर प्रातःकालकी तुरही और वन्दीजनोंके मांगलिक शब्दोंसे जागकर रावणने शरीर सम्बन्धी समस्त कार्य किये ॥५७॥ सूर्योदय हुआ सो मानो सूर्य समस्त जगह भ्रमण कर अन्य आश्रय न देख पुनः रावणकी शरणमें आया ॥५८॥ तदनन्तर रावणने नर्मदा नदी देखी। नर्मदा मधुर शब्द करनेवाले नाना पक्षियोंके समूहके साथ मानो अत्यधिक वार्तालाप ही कर रही थी ॥५९॥ फेनके समूहसे ऐसी जान पड़ती थी मानो हँस ही रही हो। उसका जल शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल था और वह हाथियोंसे सुशोभित थी ॥६०॥ वह नर्मदा तरंगरूपी भ्रुकुटीके विलाससे युक्त थी, आवर्तरूपी नाभिसे सहित थी, तैरती हुई मछलियाँ ही उसके नेत्र थे, दोनों विशाल तट ही स्थूल नितम्ब थे, नाना फूलोंसे वह व्याप्त थी और निर्मल जल ही उसका वस्त्र था। इस प्रकार किसी उत्तम नायिकाके समान नर्मदाको देख रावण महाप्रीतिको प्राप्त हुआ ॥६१–६२॥ वह नर्मदा कहीं तो उग्र मगरमच्छोंके समूहसे व्याप्त होनेके कारण गम्भीर थी, कहीं वेगसे बहती थी, कहीं मन्द गतिसे बहती थी और कहीं कुण्डलकी तरह टेढ़ी-मेढ़ी चालसे बहती थी ॥६३॥ नाना चेष्टाओंसे भरी हुई थी, तथा भयंकर होनेपर भी रमणीय थी। जिसका चित्त कौतुकसे व्याप्त था ऐसे रावणने बड़े आदरके साथ उस नर्मदा नदीमें प्रवेश किया ॥६४॥

---

१. -उत्तमाङ्गेन म.। २. -मिवाभ्रष्टमर्यादां कुर्वतीमसूम् म., ब.।

माहिष्मतीपुरेशोऽथ बलेन प्रथितो भुवि । सहस्ररश्मिरप्येतामवतीर्णोऽन्यया दिशा ॥६५॥
सहस्ररश्मिरेवैष सत्यं परमसुन्दरः । सहस्रं तस्य दाराणां यदत्यन्तसुतेजसाम् ॥६६॥
जलयन्त्राणि चित्राणि कृतानि वरशिल्पिभिः । समाश्रित्य स रेमेऽस्यामद्भुतानां विधायकः ॥६७॥
सागरस्यापि संरोद्धुमम्भः शक्तैर्नरैर्वृतः । यन्त्रसंवाहनाभिज्ञैः स्वेच्छयास्यां चचार सः ॥६८॥
जले यन्त्रप्रयोगेण क्षणेन विधृते सति । [1]भ्रमन्ति पुलिने नार्यो नानाक्रीडनकोविदाः ॥६९॥
कलध्यनिविशाश्लिष्टसुसूक्ष्मविमलांशुकाः । बभूवुः सत्रपा [2]दृष्टा रमणेन वराङ्गनाः ॥७०॥
[3]विगतालेपना काचित् कुचौ नखपदाङ्कितौ । दर्शयन्ती चकारेर्ष्यां प्रतिपक्षस्य कामिनी ॥७१॥
काचिद्दृश्यसमस्ताङ्गा वरयोषित् त्रपावती । अभिप्रियं निचिक्षेप कराभ्यां जलमाकुला ॥७२॥
प्रतिपक्षस्य दृष्ट्वान्या जघने करजक्षतीः । लीलाकमलनालेन जघान प्रमदा प्रियम् ॥७३॥
काचिद् कोपवती मौनं गृहीत्वा निश्चला स्थिता । पत्या पादप्रणामेन दयिता तोषमाहृता ॥७४॥
यावत्प्रसादयत्येकां तावदेत्यपरा रुषम् । यथाकथंचिदानिन्ये तोषं सर्वाः पुमानृपः ॥७५॥
दर्शनात् स्पर्शनात् कोपात् प्रसादाद्विविधोदितात् । प्रणामाद्वारिनिक्षेपादवतंसकताडनात् ॥७६॥
वसनादंशुकाक्षेपान्मेखलादामबन्धनात् । पलायनान्महारावात् संपर्कात् कुचकम्पनात् ॥७७॥
हासाद्भूषणनिक्षेपात् प्रेरणाद् भ्रूविलासतः । अन्तर्धानात् समुद्भूतेरन्यस्माच्च सुविभ्रमात् ॥७८॥
रेमे बहुरसं तस्यां स मनोहरदर्शनः । आवृतो वरनारीभिर्देवीभिरिव वासवः ॥७९॥

अथानन्तर जो अपने बलसे पृथिवीपर प्रसिद्ध था ऐसा माहिष्मतीका राजा सहस्ररश्मि भी उसी समय अन्य दिशासे नर्मदामें प्रविष्ट हुआ ॥६५॥ यह सहस्ररश्मि यथार्थमें परम सुन्दर था क्योंकि उत्कृष्ट कान्तिको धारण करनेवाली हजारों स्त्रियाँ उसके साथ थीं ॥६६॥ उसने उत्कृष्ट कलाकारोंके द्वारा नाना प्रकारके जलयन्त्र बनवाये थे सो उन सबका आश्रय कर आश्चर्यको उत्पन्न करनेवाला सहस्ररश्मि नर्मदामें उतरकर नाना प्रकारकी क्रीड़ा कर रहा था ॥६७॥ उसके साथ यन्त्र निर्माणको जाननेवाले ऐसे अनेक मनुष्य थे जो समुद्रका भी जल रोकनेमें समर्थ थे फिर नदीकी तो बात ही क्या थी। इस प्रकार अपनी इच्छानुसार वह नर्मदामें भ्रमण कर रहा था ॥६८॥ यन्त्रोंके प्रयोगसे नर्मदाका जल क्षण-भरमें रुक गया था इसलिए नाना प्रकारकी क्रीड़ामें निपुण स्त्रियाँ उसके तटपर भ्रमण कर रही थीं ॥६९॥ उन स्त्रियोंके अत्यन्त पतले और उज्ज्वल वस्त्र जलका सम्बन्ध पाकर उनके नितम्ब स्थलोंसे एकदम श्लिष्ट हो गये थे इसलिए जब पति उनकी ओर आँख उठाकर देखता था तब वे लज्जासे गड़ जाती थीं ॥७०॥ शरीरका लेप धुल जानेके कारण जो नखक्षतोंसे चिह्नित स्तन दिखला रही थी ऐसी कोई एक स्त्री अपनी सौतके लिए ईर्ष्या उत्पन्न कर रही थी ॥७१॥ जिसके समस्त अंग दिख रहे थे ऐसी कोई उत्तम स्त्री लजाती हुई दोनों हाथोंसे बड़ी आकुलताके साथ पतिकी ओर पानी उछाल रही थी ॥७२॥ कोई अन्य स्त्री सौतके नितम्ब स्थलपर नखक्षत देखकर क्रीड़ाकमलकी नालसे पतिपर प्रहार कर रही थी ॥७३॥ कोई एक स्वभावकी क्रोधिनी स्त्री मौन लेकर निश्चल खड़ी रह गयी थी तब पतिने चरणोंमें प्रणाम कर उसे किसी तरह सन्तुष्ट किया ॥७४॥ राजा सहस्ररश्मि जबतक एक स्त्रीको प्रसन्न करता था तबतक दूसरी स्त्री रोषको प्राप्त हो जाती थी। इस कारण वह समस्त स्त्रियोंको बड़ी कठिनाईसे सन्तुष्ट कर सका था ॥७५॥ उत्तमोत्तम स्त्रियोंसे घिरा, मनोहर रूपका धारक वह राजा, किसी स्त्रीकी ओर देखकर, किसीका स्पर्श कर, किसीके प्रति कोप प्रकट कर, किसीके प्रति अनेक प्रकारकी प्रसन्नता प्रकट कर, किसीको प्रणाम कर, किसीके ऊपर पानी उछालकर, किसीको कर्ण-

---

१. भवन्ति क., ख. । २. दृष्ट्वा म. । ३. विगतालेखना म. । ४. तावत् + एति + अपरा, तावदेत्य परा रुषम् म. ।

पतितान् सिकतापृष्ठे भालंकारान् पुमः स्त्रियः । आचकाङ्क्षुर्महाचित्ता निर्माल्यस्रग्गुणानिव ॥८०॥
काचिच्चन्दनलेपेन चकार धवलं जलम् । अन्या कुङ्कुमपङ्केन द्रुतचामीकरप्रभम् ॥८१॥
धौतताम्बूकरागाणामधराणां सुयोषिताम् । चक्षुषां च व्यञ्जनानां च लक्ष्मीरमवदुत्तमा ॥८२॥
पुनश्च यन्त्रनिर्मुक्तवारिमध्ये यथेप्सितम् । रेमे समं वरस्त्रीभिर्नरेशः स्मरहेतुभिः ॥८३॥
क्रीडन्तीभिर्जले स्त्रीभिर्भूषणानां वरो रवः । शकुन्तेष्विव विन्यस्तः कूलकीलालचारिषु ॥८४॥
रावणोऽपि सुखं स्नात्वा वसानो धौतवाससी । विधाय प्रयतो मौलिं शुक्लकर्पटसंयुतम् ॥८५॥
नियुक्तैः सर्वदा पुम्भिरुह्यमानां प्रयत्नतः । प्रतिमामर्हतो रत्नहेमनिर्मितविग्रहाम् ॥८६॥
तरङ्गिणीनवे रम्ये पुलिने शुभ्रभासुरे । सिकतारचितोत्तुङ्गपीठबन्धविराजिते ॥८७॥
वैडूर्यदण्डिकासक्तमुक्ताफलवितानके । सर्वोपकरणव्यग्रपरिवर्गसमाकुले ॥८८॥
स्थापयित्वा घनामोदसमाकृष्टमधुव्रतैः । धूपैरालेपनैः पुष्पैर्मनोज्ञैर्बहुभक्तिभिः ॥८९॥
विधाय महतीं पूजां संनिविष्टः पुरोऽवनौ । सगर्भं वदनं चक्रे पूतैः स्तुत्यक्षरैर्निरम् ॥९०॥
स्नानाद्यथ पूरेण इत्थं पूजा समाप्तवः । चेष्टमुद्वहतः कालेन तस्यिना ॥९१॥

भरणसे ताड़ित कर, किसीका धोखेसे वस्त्र खींचकर, किसीको मेखलासे बाँधकर, किसीके पाससे दूर हटकर, किसीको भारी डाँट दिखाकर, किसीके साथ सम्पर्क कर, किसीके स्तनोंमें कम्पन उत्पन्न कर, किसीके साथ हँसकर, किसीके आभूषण गिराकर, किसीको गुदगुदाकर, किसीके प्रति भौंह चलाकर, किसीसे छिपकर, किसीके समक्ष प्रकट होकर तथा किसीके साथ अन्य प्रकारके विभ्रम दिखाकर नर्मदा नदीमें बड़े आनन्दसे उस तरह क्रीड़ा कर रहा था जिस प्रकार कि देवियोंके साथ इन्द्र क्रीड़ा किया करता है ॥७६–७९॥ उदार हृदयको धारण करनेवाली उन स्त्रियोंके जो आभूषण बालूके ऊपर गिर गये थे उन्होंने निर्माल्यकी मालाके समान फिर उन्हें उठानेकी इच्छा नहीं की थी ॥८०॥ किसी स्त्रीने चन्दनके लेपसे पानीको सफेद कर दिया था तो किसीने केशरके द्रवसे उसे सुवर्णके समान पीला बना दिया था ॥८१॥ जिनकी पानकी लालिमा धुल गयी थी ऐसे स्त्रियोंके ओंठ तथा जिनका काजल छूट गया था ऐसे नेत्रोंकी कोई अद्भुत ही शोभा दृष्टि गोचर हो रही थी ॥८२॥ तदनन्तर यन्त्रके द्वारा छोड़े हुए जलके बीचमें वह राजा, काम उत्पन्न करनेवाली अनेक उत्कृष्ट स्त्रियोंके साथ इच्छानुसार क्रीड़ा करने लगा ॥८३॥ उस समय तटके समीपवर्ती जलमें विचरण करनेवाले पक्षी मनोहर शब्द कर रहे थे सो ऐसा जान पड़ता था मानो जलके भीतर क्रीड़ा करनेवाली स्त्रियोंने अपने आभूषणोंका शब्द उनके पास धरोहर ही रख दिया हो ॥८४॥ उधर यह सब चल रहा था इधर रावणने भी सुखपूर्वक स्नान कर धुले हुए उत्तम वस्त्र पहने और अपने मस्तकको बड़ी सावधानीसे सफेद वस्त्रसे युक्त किया ॥८५॥ जिसे नियुक्त मनुष्य सदा बड़ी सावधानीसे साथ लिये रहते थे ऐसी स्वर्ण तथा रत्ननिर्मित अर्हन्त भगवान्‌की प्रतिमाको रावणने नदीके उस तीरपर स्थापित कराया जो कि नदीके बीच नया निकला था, मनोहर था, सफेद तथा देदीप्यमान था, बालूके द्वारा निर्मित ऊँचे चबूतरेसे सुशोभित था, जहाँ वैडूर्यमणिकी छड़ियोंपर चन्दोवा तानकर उसपर मोतियोंकी झालर लटकायी गयी थी, और जो सब प्रकारके उपकरण इकट्ठे करनेमें व्यग्र परिजनोंसे भरा था ॥८६–८८॥ प्रतिमा स्थापित कर उसने भारी सुगन्धिसे भ्रमरोंको आकर्षित करनेवाले धूप, चन्दन, पुष्प तथा मनोहर नैवेद्यके द्वारा बड़ी पूजा की और सामने बैठकर चिरकाल तक स्तुतिके पवित्र अक्षरोंसे अपने मुखको सहित किया ॥८९-९०॥

अथानन्तर रावण पूजामें निमग्न था कि अचानक ही उसकी पूजा सब ओरसे फेन तथा

१. कज्जलरहितानाम् । २. निर्मुक्ति—क., ख. । निर्मुक्तं म. । ३. सुरहेतुभिः क., ख. । स्तरहेतुभिः म., ब. । ४. मूलं म. । ५. तरङ्गिणीजवे म. । ६. सगर्भवदनं म. ।

ततो दशाननः क्षिप्रं गृहीत्वा प्रतियातनाम्[1] । क्रुद्धो जगाद किन्वेतदिति विज्ञायतामरम् ॥९२॥
ततोऽनुसृत्य वेगेन नरैः प्रतिनिवृत्य च । निवेदितमिदं नाथ कोऽप्ययं पुरुषो महान् ॥९३॥
मध्येललाभनारीणां ललामपरमोदयः । दूरस्थेन नृलोकेन वेष्टितः खड्गधारिणा ॥९४॥
नानाकाराणि यन्त्राणि बृहन्ति सुबहूनि च । विद्यन्ते तस्य नूनं तैः कृतमेतद्विचेष्टितम् ॥९५॥
व्यवस्थामात्रकं तस्य पुरुषा इति नो[2] मतिः । अवष्टम्भस्तु यस्तस्य स परान्यस्य दुःसहः ॥९६॥
वार्तया श्रूयते कोऽपि[3] शक्रः स्वर्गे तथा गिरौ । अयं तु वीक्षितोऽस्माभिः शुनासीरः[4] समक्षतः[5] ॥९७॥
श्रुत्वा संकुचितभ्रूश्च रवं मुरजसंभवम् । वीणावंशादिभिर्युक्तं जयशब्दविमिश्रितम् ॥९८॥
गजवाजिनराणां च ध्वानमाज्ञापयन्नृपान्[6] । त्वरितं गृह्यतामेष दुरात्मेति दशाननः ॥९९॥
दत्वा चाज्ञां पुनश्चक्रे पूजां रोधसि सत्तमाम् । रत्नकाञ्चननिर्माणैः पुष्पैर्जिनवराकृतौ ॥१००॥
शेषामिव दशास्याज्ञां कृत्वा शिरसि संभ्रमात् । अभ्यमित्रं ससन्नद्धाः प्रसस्रुर्व्योमगाधिपाः ॥१०१॥
दृष्ट्वा परबलं प्राप्तं सहस्रकिरणः क्षणात् । क्षुब्धो दत्त्वाभयं स्त्रीणां निर्जगाम जलाशयात् ॥१०२॥
ततः कलकलं श्रुत्वा विदित्वा च नरौघतः । संनद्धा निर्ययुर्वीरा माहिष्मत्याः ससंभ्रमम् ॥१०३॥
गजवाजिसमारूढाः पादातेन[7] समावृताः । रथारूढाश्च सामन्ता विविधायुधधारिणः ॥१०४॥
सहस्रकिरणं प्राप्ता नितान्तमनुरागिणः । ऋतवः क्रमनिर्मुक्ताः संमेदमिव पर्वतम् ॥१०५॥
आपतन्तीं ततो दृष्ट्वा विद्याधरवरूथिनीम् । सहस्ररश्मिसामन्तास्त्यक्त्वा जीवितलोभिताम् ॥१०६॥

बबूलोंसे युक्त, मलिन एवं वेगशाली जलके पूरसे नष्ट हो गयी ॥९१॥ तब रावणने शीघ्र ही प्रतिमा ऊपर उठाकर कुपित हो लोगोंसे कहा कि मालूम करो क्या बात है ? ॥९२॥ तदनन्तर लोगोंने वेगसे जाकर और वापस लौटकर निवेदन किया कि हे नाथ ! आभूषणोंसे परम अभ्युदयको प्रकट करनेवाला कोई मनुष्य सुन्दर स्त्रियोंके बीच बैठा है। तलवारको धारण करनेवाले मनुष्य दूर खड़े रहकर उसे घेरे हुए हैं। नाना प्रकारके बड़े-बड़े यन्त्र उसके पास विद्यमान हैं। निश्चय ही यह कार्य उन सब यन्त्रोंका किया है ॥९३–९५॥ हमारा ध्यान है कि उसके पास जो पुरुष हैं वे तो व्यवस्था मात्रके लिए हैं यथार्थमें उसका जो बल है वही दूसरोंके लिए दुःखसे सहन करने योग्य है ॥९६॥ लोक-कथासे सुना जाता है कि स्वर्गमें अथवा सुमेरु पर्वतपर इन्द्र नामका कोई व्यक्ति रहता है पर हमने तो यह साक्षात् ही इन्द्र देखा है ॥९७॥ उसी समय रावणने वीणा, बाँसुरी आदिसे युक्त तथा जय-जय शब्दसे निश्चित मृदंगका शब्द सुना। साथ ही हाथी, घोड़े और मनुष्योंका शब्द भी उसने सुना। सुनते ही उसकी भौंह चढ़ गयी। उसी समय उसने राजाओंको आज्ञा दी कि इस दुष्टको शीघ्र ही पकड़ा जाये ॥९८–९९॥ आज्ञा देकर रावण फिर नदीके किनारे रत्न तथा सुवर्ण निर्मित पुष्पोंसे जिनप्रतिमाकी उत्तम पूजा करने लगा ॥१००॥ विद्याधर राजाओंने रावणकी आज्ञा शेषाक्षतके समान मस्तकपर धारण की और तैयार हो वे शीघ्र ही शत्रुके सम्मुख दौड़ पड़े ॥१०१॥ तदनन्तर शत्रुदलको आया देख सहस्ररश्मि क्षण-भरमें क्षुभित हो गया और स्त्रियोंको अभय देकर शीघ्र ही जलाशयसे बाहर निकला ॥१०२॥ तदनन्तर कल-कल सुनकर और जनसमूहसे सब समाचार जानकर माहिष्मतीके वीर शीघ्र ही तैयार हो बाहर निकल पड़े ॥१०३॥ जिस प्रकार वसन्त आदि ऋतुएँ सम्मेदाचलके पास एक साथ आ पहुँचती हैं उसी प्रकार नाना तरहके शस्त्रोंको धारण करनेवाले बहुत भारी अनुरागसे भरे सामन्त सहस्ररश्मिके पास एक साथ आ पहुँचे। वे सामन्त हाथियों, घोड़ों और रथोंपर सवार थे तथा पैदल चलनेवाले सैनिकोंसे युक्त थे ॥१०४–१०५॥

१. प्रतिमां । २. अस्माकम् । ३. बलम् । ४. शक्तः म. । ५. प्रत्यक्षम् । ६. ध्वनिमाज्ञापयन् म. । ७. पदातीनां समूहस्तेन ।

विरचय्य घनव्यूहमन्योऽन्यं पालनोद्यताः । विनापि मर्तृवाक्येन सोत्साहा योद्धुमुत्थिताः ॥१०७॥
बले च राक्षसेशस्य रणं कर्तुं समुद्यते । विचेरुरम्बरे वाचः सुराणामिति सत्वराः ॥१०८॥
अहो महानयं वीरैरन्यायः कर्तुमीप्सितः । भूगोचरैः समं योद्धुमुद्यता यत्खभश्चराः ॥१०९॥
अमी भूगोचराः स्वल्पा वराका ऋजुचेतसः । विद्यामायाकृतोऽत्यन्तं बहवश्च नभश्चराः ॥११०॥
इति श्रुत्वाथ खे शब्दं पुनरुक्तं समाकुलम् । अपायुक्ता भृशं यातास्खेचराः साधुवृत्तयः ॥१११॥
असिशक्तिगदाप्रासैरथ जघ्नुः परस्परम् । तुल्यप्रतिभटारब्धे रणे राक्षसमानवाः ॥११२॥
रथिनो रथिभिः सार्धं तुरङ्गास्तुरगैरमा । सार्कं गजैर्गजाः सत्रा पादातं च पदातिभिः ॥११३॥
न्यायेन योद्धुमारब्धाः क्रमानीतपराजयाः । शस्त्रसंघातनिर्घोषसमुत्थापितपावकाः ॥११४॥
भङ्गासन्नं ततः सैन्यं निजं वीक्ष्य परैर्बलम् । सहस्ररश्मिरारुह्य रथमुद्दं समागतः ॥११५॥
किरीटी कवची चापि तेजो बिभ्रदनुत्तमम् । विद्याधरबलं दृष्ट्वा स न विभ्ये मनागपि ॥११६॥
स्वामिनाधिष्ठिताः सन्तस्ततः प्रत्यागतौजसः । उद्गूर्णविस्फुरच्छत्रा विस्मृतक्षतवेदनाः ॥११७॥
प्रविष्टा रक्षसां सैन्यं रणशौण्डा महीचराः । स्तम्बेरमा इवोद्भूतमदा गम्भीरमर्णवम् ॥११८॥
ततः सहस्रकिरणो विभ्राणः कोपमुल्बणम् । परानिचिक्षेप बाणौघैर्घनानिव सदागतिः ॥११९॥
प्रतीहारेण चाख्यातमिति कैलासकम्पिने । देव पश्य नरेन्द्रेण केनाप्येतेन ते बलम् ॥१२०॥

परस्पर एक दूसरेकी रक्षा करनेमें तत्पर तथा उत्साहसे भरे सहस्ररश्मिके सामन्तोंने जब विद्याधरोंकी सेना आती देखी तो वे जीवनका लोभ छोड़ मेघव्यूहकी रचना कर स्वामीकी आज्ञाके बिना ही युद्ध करनेके लिए उठ खड़े हुए ॥१०६-१०७॥ इधर जब रावणकी सेना युद्ध करनेके लिए उद्यत हुई तब आकाशमें सहसा देवताओंके निम्नांकित वचन विचरण करने लगे ॥१०८॥ देवताओंने कहा कि अहो! वीर लोग यह बड़ा अन्याय करना चाहते हैं कि भूमिगोचरियोंके साथ विद्याधर युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए हैं ॥१०९॥ ये बेचारे भूमिगोचरी थोड़े तथा सरल चित्त हैं और विद्याधर इनके विपरीत विद्या तथा मायाको करनेवाले एवं संख्यामें बहुत हैं ॥११०॥ इस प्रकार आकाशमें बार-बार कहे हुए इस आकुलतापूर्ण शब्दको सुनकर अच्छी प्रवृत्तिवाले विद्याधर लज्जासे युक्त होते हुए पृथिवीपर आ गये ॥१११॥ तदनन्तर समान योद्धाओंके द्वारा प्रारम्भ किये हुए युद्धमें रावणके पुरुष परस्पर तलवार, बाण, गदा और भाले आदिसे प्रहार करने लगे ॥११२॥ रथोंके सवार रथोंके सवारोंके साथ, घुड़सवार घुड़सवारोंके साथ, हाथियोंके सवार हाथियोंके सवारोंके साथ, और पैदल सैनिक पैदल सैनिकोंके साथ युद्ध करने लगे ॥११३॥ जिन्हें क्रम-क्रमसे पराजय प्राप्त हो रहा था और जिनके शस्त्र-समूहकी टक्करसे अग्नि उत्पन्न हो रही थी ऐसे योद्धाओंने न्यायपूर्वक युद्ध करना शुरू किया ॥११४॥ जब सहस्ररश्मिने अपनी सेनाको शीघ्र ही नष्ट होनेके निकट देखा तब उत्तम रथपर सवार हो तत्काल आ पहुँचा ॥११५॥ उत्तम किरीट और कवचको धारण करनेवाला सहस्ररश्मि उत्कृष्ट तेजको धारण करता था इसलिए विद्याधरोंकी सेना देख वह जरा भी भयभीत नहीं हुआ ॥११६॥ तदनन्तर स्वामीसे सहित होनेके कारण जिनका तेज पुनः वापस आ गया था, जिनके ऊपर खुले हुए छत्र लग रहे थे और जिन्होंने घावोंका कष्ट भुला दिया था ऐसे रणनिपुण भूमिगोचरी राक्षसोंकी सेनामें इस प्रकार घुस गये जिस प्रकार कि मदोन्मत्त हाथी गहरे समुद्रमें घुस जाते हैं ॥११७-११८॥ जिस प्रकार वायु मेघोंको उड़ा देता है उसी प्रकार अत्यधिक क्रोधको धारण करनेवाला सहस्ररश्मि बाणोंके समूहसे शत्रुओंको उड़ाने लगा ॥११९॥ यह देख द्वारपालने रावणसे निवेदन किया कि हे देव! देखो

---

१. वाणि म. । २. सार्धम् । ३. निश्शेष ख., म. । ४. श्रेष्ठम् । रथमुच्चैः समागतः म. । ५. प्रस्फुरच्छत्रा क. ।

धानुष्केण रथस्थेन पश्यता तृणवज्जगत् । योजनं यावदध्वानं शरौघैरपसारितम् ॥१२१॥
ततोऽभिमुखमायातं तमालोक्य त्रिलोकमण्डनमाशु[1] त्रिजगद्भूषनामानं मत्तवारणम् ॥१२२॥
परैरालोकितो भीतैर्विमुक्तशरसंहतिः । सहस्रांकरणं चक्रे विरथं दुःसहद्युतिः[2] ॥१२३॥
ततः सहस्रकिरणः समारुह्य द्विपोत्तमम् । अभीयाय पुनः क्रुद्धस्तरसा रावणं प्रति ॥१२४॥
सहस्ररश्मिना मुक्ता बाणा निर्भिद्य कञ्चुकम् । अङ्गानि दशवक्त्रस्य विभिदुर्निशितत्वतः ॥१२५॥
रक्तश्रवःसुतेनास्तान्बाणानाकृष्य देहतः । सहस्रकिरणो हासं कृत्वेत्थमवदद्बलम् ॥१२६॥
अहो रावण धानुष्को महानसि कुतस्तव । उपदेशोऽयमायातो गुरोः परमकौशलात् ॥१२७॥
वत्स तावद्धनुर्वेदमधीष्व कुरु च श्रमम् । ततो मया समं युद्धं करिष्यसि[3] नयोज्झितः ॥१२८॥
ततः परुषवाक्येन प्राप्तः संरम्भमुत्तमम् । बिभेद यक्षमर्दस्तं कुन्तेनालिकपट्टके[4] ॥१२९॥
गलद्रुधिरधारोऽसौ पूर्णमानविलोचनः । क्रोधं गत्वा[5] ससाध्वसस्तो यावद् गृह्णाति सायकम् ॥१३०॥
तावदुच्छ्रित्य वेगेन तमष्टापदकम्पनः[6] । अनुज्झिततमहाधैर्यं जीवग्राहं गृहीतवान् ॥१३१॥
नीतः स्वनिलयं बद्ध्वा खगैर्दृष्टः सविस्मयैः । यदि नामोत्पतेत् सोऽपि केन गृह्येत जन्तुना ॥१३२॥
सहस्ररश्मिवृत्तान्तादिव नीतिमुपागतः । सहस्ररश्मिरैदस्तं संध्याप्राकारवेष्टितः[7] ॥१३३॥
दशवक्त्रविमुक्तेन कोपेनेव च भूरिणा । तमसा पिहितो लोकः सदसत्समताकृता ॥१३४॥

जगत्को तृणके समान तुच्छ देखनेवाले, रथपर बैठे धनुषधारी इस किसी राजाने बाणोंके समूहसे तुम्हारी सेनाको एक योजन पीछे खदेड़ दिया है ॥१२०-१२१॥ तदनन्तर सहस्ररश्मिको सम्मुख आता देख दशानन त्रिलोकमण्डन नामक हाथीपर सवार हो चला। शत्रु जिसे भयभीत होकर देख रहे थे तथा जिसका तेज अत्यन्त दुःसह था ऐसे रावणने बाणोंका समूह छोड़कर सहस्ररश्मिको रथरहित कर दिया ॥१२२-१२३॥ तब सहस्ररश्मि उत्तम हाथीपर सवार हो क्रुद्ध होता हुआ वेगसे पुनः रावणके सम्मुख आया ॥१२४॥ इधर सहस्ररश्मिके द्वारा छोड़े हुए पैने बाण कवचको भेदकर रावणके अंगोंको विदीर्ण करने लगे ॥१२५॥ उधर रावणने सहस्ररश्मिके प्रति जो बाण छोड़े थे उन्हें वह शरीरसे खींचकर हँसता हुआ जोरसे बोला ॥१२६॥ कि अहो रावण ! तुम तो बड़े धनुर्धारी मालूम होते हो। यह उपदेश तुम्हें किस कुशल गुरुसे प्राप्त हुआ है ? ॥१२७॥ अरे छोकड़े ! पहले धनुर्वेद पढ़ और अभ्यास कर, फिर मेरे साथ युद्ध करना। तू नीतिसे रहित जान पड़ता है ॥१२८॥ तदनन्तर उक्त कठोर वचनोंसे बहुत भारी क्रोधको प्राप्त हुए रावणने एक भाला सहस्ररश्मिके ललाटपर मारा ॥१२९॥ जिससे रुधिरकी धारा बहने लगी तथा आँखें घूमने लगीं। मूर्छित हो पुनः सावधान होकर जबतक वह बाण ग्रहण करता है तबतक रावणने वेगसे उछलकर उस धैर्यशालीको जीवित ही पकड़ लिया ॥१३०-१३१॥ रावण उसे बाँधकर अपने डेरेपर ले गया। विद्याधर उसे बड़े आश्चर्यसे देख रहे थे। वे सोच रहे थे कि यदि यह किसी तरह उछलकर छूटता है तो फिर इसे कौन पकड़ सकेगा ? ॥१३२॥

तदनन्तर सन्ध्यारूपी प्राकारसे वेष्टित होता हुआ सूर्य अस्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो सहस्ररश्मिके इस वृत्तान्तसे उसने कुछ नीतिको प्राप्त किया था अर्थात् शिक्षा ग्रहण की थी ॥१३३॥ अच्छे और बुरेको समान करनेवाले अन्धकारसे लोक आच्छादित हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो रावणके द्वारा छोड़े हुए बहुत भारी क्रोधसे ही आच्छादित हुआ हो ॥१३४॥

---

१. रावणः । २. त्रिलोकमण्डननामधेयम् । ३. श्रुतिः ख. । ४. नयोज्झितः म. । ५. भालतटे । ६. समास्वस्थो म. । ७. कैलासकम्पनो रावणः । ८. महो धैर्यं म., ब., क. । ९. सूर्यः, सहस्ररश्मि + ऐत् + अस्तम् । ऐत् = अगच्छत् ।

ततो रणादिव प्राप्तमत्यन्तविमलं यशः । शशाङ्कबिम्बमुद्यातं[1] तमोहरणपण्डितम् ॥१३५॥
व्रणभङ्गविधानेन भटानां वीर्यवर्णनैः । गवेषणैश्च भिन्नानां निद्रया चाक्षतात्मनाम् ॥१३६॥
गता राक्षससैन्यस्य रजनी सा यथायथम् । विबुद्धश्च दशग्रीवः प्रभातहततूर्यतः ॥१३७॥
ततो वार्तामिव ज्ञातुं दशवक्त्रस्य भास्करः । बिभ्राणः[2] परमं रागं कम्पमानः समागतः ॥१३८॥
शतबाहुरथ श्रुत्वा सुतं बद्धं निरम्बरः । जङ्घाचारणलब्धीशो महाबाहुर्महातपाः ॥१३९॥
रजनीपतिवत्कान्तो दीप्तस्तिग्ममरीचिवत् । मेरुवत् स्थैर्यसंपन्नो धीरो रत्नालयो यथा ॥१४०॥
कृतप्रत्यङ्गकर्माणं सभामध्य[3]सुखस्थितम् । प्रशान्तमानसः प्राप रावणं लोकवत्सलः ॥१४१॥
दूरादेव ततो दृष्ट्वा मुनिं कैलासकम्पनः । अभ्युत्तस्थौ प्रणामं च चक्रे भूमिस्थमस्तकः ॥१४२॥
वरासनोपविष्टे च यतौ भूमावुपाविशत् । करद्वयं समासाद्य विनयानतविग्रहः ॥१४३॥
जगाद चेति भगवन् कृतकृत्यस्य विद्यते । न त्वागमने हेतुर्विहाय भम पावनम् ॥१४४॥
ततः प्रशंसनं कृत्वा कुलवीर्यविभूतिभिः । क्षरन्निवामृतं वाचा जगादेति दिगम्बरः ॥१४५॥
आयुष्मन्निदमस्त्येव शुभसंकल्पतस्तव । नान्तरीयकमेतत्तु वदामि यदिदं शृणु ॥१४६॥
पराभिभवमात्रेण क्षत्रियाणां कृतार्थता । यतः सहस्रकिरणं ततो मुञ्च ममाङ्गजम् ॥१४७॥
संप्रधार्य ततः सार्धमिङ्गितैरेव मन्त्रिभिः । उवाच कैकसीपुत्रः प्रणतो मुनिपुङ्गवम् ॥१४८॥

तदनन्तर अन्धकारके हरनेमें निपुण चन्द्रमाका बिम्ब उदित हुआ सो ऐसा जान पड़ता था मानो युद्धसे उत्पन्न हुआ रावणका अत्यन्त निर्मल यश ही हो ॥१३५॥ उस समय कोई तो घायल सैनिकोंके घावोंपर मरहमपट्टी लगा रहे थे, कोई योद्धाओंके पराक्रमका वर्णन कर रहे थे, कोई गुमे हुए सैनिकोंकी तलाश कर रहे थे और कोई, जिन्हें घाव नहीं लगे थे सो रहे थे। इस प्रकार यथायोग्य कार्योंसे रावणकी सेनाकी रात्रि व्यतीत हुई। प्रभात हुआ तो प्रभात सम्बन्धी तुरहीके शब्दसे रावण जागृत हुआ ॥१३६-१३७॥ तदनन्तर परम रागको धारण करता हुआ सूर्य काँपता-काँपता उदित हुआ सो ऐसा जान पड़ता था मानो रावणका समाचार जाननेके लिए उदित हुआ हो ॥१३८॥

अथानन्तर सहस्ररश्मिके पिता शतबाहु, जो दिगम्बर थे, जिन्हें जंघाचारण ऋद्धि प्राप्त थी, जो महाबाहु, महातपस्वी, चन्द्रमाके समान सुन्दर, सूर्यके समान तेजस्वी, मेरुके समान स्थिर और समुद्रके समान गम्भीर थे, पुत्रको बँधा सुनकर रावणके समीप आये। उस समय रावण अपने शरीरसम्बन्धी कार्योंसे निपटकर सभाके बीचमें सुखसे बैठा था और मुनिराज शतबाहु प्रशान्त-चित्त एवं लोगोंसे स्नेह करनेवाले थे ॥१३९-१४१॥ रावण, मुनिराजको दूरसे ही देखकर खड़ा हो गया। उसने सामने जाकर तथा पृथ्वीपर मस्तक टेककर नमस्कार किया ॥१४२॥ जब मुनिराज उत्कृष्ट प्रासुक आसनपर विराजमान हो गये तब रावण पृथ्वीपर दोनों हाथ जोड़कर बैठ गया। उस समय उसका सारा शरीर विनयसे नम्रीभूत था ॥१४३॥ रावणने कहा कि हे भगवन्! आप कृतकृत्य हैं अतः मुझे पवित्र करनेके सिवाय आपके यहाँ आनेमें दूसरा कारण नहीं है ॥१४४॥ तब कुल, वीर्य और विभूतिके द्वारा रावणकी प्रशंसा कर वचनोंसे अमृत झराते हुए की तरह मुनिराज कहने लगे कि ॥१४५॥ हे आयुष्मन्! तुम्हारे शुभ संकल्पसे यही बात है फिर भी मैं एक बात कहता हूँ सो सुन ॥१४६॥ यतश्च शत्रुओंका पराभव करने मात्रसे क्षत्रियोंके कृतकृत्य-पना हो जाता है अतः तुम मेरे पुत्र सहस्ररश्मिको छोड़ दो ॥१४७॥ तदनन्तर रावणने मन्त्रियोंके साथ इशारोंसे सलाह कर नम्र हो मुनिराजसे कहा कि हे नाथ! मेरा निम्न प्रकार निवेदन है। मैं इस समय राजलक्ष्मीसे उन्मत्त एवं हमारे पूर्वजोंका अपराध करनेवाले विद्याधराधिपति

१. -मुद्योतं म., ख., ब. । २. बिभ्राणं म. । ३. सभामध्ये म. । ४. -रेव ख. । -रिव म. ।

विज्ञापयामि नाथाहं प्रस्थितः खेचराधिपम् । वशीकर्तुं श्रिया मत्तं कृत्तास्मत्पूर्वजागसम् ॥१४९॥
तत्र यातेऽहि रेवायां रम्यायां जिनपूजनम् । मया तटस्थचक्रेण कृतं विमलसैकते ॥१५०॥
सहोपकरणैश्चासौ नीता[2] पूजा सुरंहसा[3] । सहसा पयसा यन्त्ररचितेनास्य भोगिनः ॥१५१॥
ततो मया जिनेन्द्रार्चाध्वंसोद्भूतमहारुषा । कृतं कर्मेदमर्थेन न विना द्वेष्मि मानवान् ॥१५२॥
न चानेनोदितं[4] मह्यं संप्राप्ताय प्रमादिना । यथा ज्ञातं मया नेदं क्षम्यतामिति मानिना ॥१५३॥
भूचरान्मानुषान्जेतुं यो न शक्तः स खेचरान् । कथं जेष्यामि विद्याभिः कृतनानाविचेष्टितान् ॥१५४॥
वशीकरोम्यतस्तावद्भूचरान्मानशालिनः । ततो विद्याधराधीशं सोपानक्रमयोगतः ॥१५५॥
ततो वशीकृतस्यास्य मुक्तिर्न्याय्यैव किं पुनः । भवत्स्वाज्ञां प्रयच्छत्सु[5] पुण्यवद्दृश्यमूर्तिषु ॥१५६॥
अथेन्द्रजिदुवाचेदं साधु देवेन भाषितम् । को वा नयविदं नाथं मुक्त्वा जानाति भाषितुम् ॥१५७॥
ततो दशमुखादिष्टो मारीचोऽधिकृतैर्नरैः । आनाययत्सहस्रांशुं नग्नसायकपाणिभिः ॥१५८॥
तातस्य चरणौ नत्वा भूमौ चासावुपाविशत् । संमान्य च दशास्येन विरोषेणेति भाषितः ॥१५९॥
अद्य प्रभृति मे भ्राता तुरीयस्त्वं महाबलः । जेष्यामि भवता सार्कं कृताखण्डलविभ्रमम् ॥१६०॥
स्वयंप्रभां च ते दास्ये मन्दोदर्याः कनीयसीम् । कृतं यद्भवता तत्र प्रमाणं मे वराकृते ॥१६१॥
सहस्ररश्मिरूचे च धिङ् मे राज्यमशाश्वतम् । आपातमात्ररम्यांश्च विषयान् दुःखभूयसः[6] ॥१६२॥

इन्द्रको वश करनेके लिए प्रयाण कर रहा हूँ ॥१४८-१४९॥ सो इस प्रयाणकालमें मनोहर रेवा नदीके किनारे चक्ररत्न रखकर मैं बालूके निर्मल चबूतरेपर जिनेन्द्र भगवान्की पूजा करनेके लिए बैठा था सो इस भोगी—विलासी सहस्ररश्मिके यन्त्ररचित वेगशाली जलसे उपकरणोंके साथ-साथ मेरी वह सब पूजा अचानक बह गयी ॥१५०-१५१॥ जिनेन्द्र भगवान्की पूजाके नष्ट हो जानेसे मुझे बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ सो इस क्रोधके कारण ही मैंने यह कार्य किया है। प्रयोजनके बिना मैं किसी मनुष्यसे द्वेष नहीं करता ॥१५२॥ जब मैं पहुँचा तब इस मानी एवं प्रमादीने यह भी नहीं कहा कि मुझे ज्ञान नहीं था अतः क्षमा कीजिए ॥१५३॥ जो भूमिगोचरी मनुष्योंको जीतनेके लिए समर्थ नहीं है वह विद्याओंके द्वारा नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करनेवाले विद्याधरोंको कैसे जीत सकेगा ? ॥१५४॥ यही सोचकर मैं पहले अहंकारी भूमिगोचरियोंको वश कर रहा हूँ। उसके बाद श्रेणीके क्रमसे विद्याधराधिपति इन्द्रको वश करूँगा ॥१५५॥ इसे मैं वश कर चुका हूँ अतः इसको छोड़ना न्यायोचित ही है फिर जिनके दर्शन केवल पुण्यवान् मनुष्योंको ही हो सकते हैं ऐसे आप आज्ञा प्रदान कर रहे हैं अतः कहना ही क्या है ? ॥१५६॥ तदनन्तर रावणके पुत्र इन्द्रजित्ने कहा कि आपने बिलकुल ठीक कहा है सो उचित ही है क्योंकि आप जैसे नीतिज्ञ राजाको छोड़कर दूसरा ऐसा कौन कह सकता है ? ॥१५७॥

तदनन्तर रावणका आदेश पाकर मारीच नामा मन्त्रीने हाथमें नंगी तलवार लिये हुए अधिकारी मनुष्योंके द्वारा सहस्ररश्मिको सभामें बुलवाया ॥१५८॥ सहस्ररश्मि पिताके चरणोंमें नमस्कार कर भूमिपर बैठ गया। रावणने क्रोधरहित होकर बड़े सम्मानके साथ उससे कहा ॥१५९॥ कि आजसे तुम मेरे चौथे भाई हो। चूँकि तुम महाबलवान् हो अतः तुम्हारे साथ मैं इन्द्रकी विडम्बना करनेवाले राजा इन्द्रको जीतूँगा ॥१६०॥ मैं तुम्हारे लिए मन्दोदरीकी छोटी बहन स्वयंप्रभा दूँगा। हे सुन्दर आकृतिके धारक ! तुमने जो किया है वह मुझे प्रमाण है ॥१६१॥ सहस्ररश्मि बोला कि मेरे इस क्षणभंगुर राज्यको धिक्कार है। जो प्रारम्भमें रमणीय दिखते

---

१. जाते ख., क. । २. महोपकरणैः ग., घ. । ३. अपहृता । ४. कथितम् । ५. भवत्सु + आज्ञां । ६. आपातरम्यांश्च विषयान्प्रश्चाद्दुःखभूयसः क., ख. ।

स्वर्गं धिक्कृत्य[1] तियोगेन धिक्तेषां दुःखभाजनम् । धिङ् मां वञ्चितमत्यन्तं चिरकालं कुकर्मभिः ॥१६३॥
तत्करोमि पुनर्येन न पतामि भवार्णवे । गतिष्वत्यन्तदुःखासु निर्विण्णः पर्यटन्नहम् ॥१६४॥
उवाचेति दशास्यश्च ननु प्रव्रयसां नृणाम् । [2]प्रव्रज्या शोभते भद्र त्वं च प्रत्यग्रयौवनः ॥१६५॥
सहस्रांशुरुवाचेति नैव मृत्युर्विवेकवान् । शरद्घन इवाकस्माद्देहो नाशं प्रपद्यते ॥१६६॥
यदि नाम भवेत् सारः कश्चिद्भोगेषु रावण । [3]तातेनैव न मे त्यक्तास्ते स्युरुत्तमबुद्धिना ॥१६७॥
इत्युक्त्वा तनये न्यस्य राज्यं परमनिश्चयः । क्षमितो दशवक्त्रेण प्राव्रजत्पितुरन्तिके ॥१६८॥
तेन चाभिहितः पूर्वमयोध्यायाः पतिः सुहृत् । अनरण्योऽनगारत्वं प्रपत्स्येऽहं यदा तदा ॥१६९॥
तुभ्यं वेदयितास्मीति तथायं तेन भाषितः । ज्ञापनार्थमतोऽमेन तस्मै संप्रेषिता नराः ॥१७०॥
ततोऽसौ कथिते पुम्भिः श्रुत्वा बाष्पाकुलेक्षणः । विललाप चिरं स्मृत्वा गुणांस्तस्य महात्मनः ॥१७१॥
विषादे च गते मान्द्यमित्युवाच महाबुधः । बन्धुस्तस्य समायातो रिपुवेषेण रावणः ॥१७२॥
ऐश्वर्यपञ्जरान्तस्थो विषयैर्मोहितश्चिरम् । येनात्यन्तानुकूलेन नरपक्षी विमोचितः ॥१७३॥
माहिष्मतीपतिर्धन्यः सांप्रतं यो भवार्णवम् । तितीर्षति [4]यमध्वंसबोधपोतसमाश्रितः ॥१७४॥
कृतार्थः सांप्रतं जातो यदन्तेऽत्यन्तदुःखदम् । पापं राज्याख्यमुज्झित्वा व्रतं जैनेश्वरं श्रितः ॥१७५॥

हैं और अन्तमें जो दुःखोंसे बहुल होते हैं उन विषयोंको धिक्कार है ॥१६२॥ उस स्वर्गके लिए धिक्कार है जिससे कि च्युति अवश्यम्भावी है। दुःखके पात्रस्वरूप इस शरीरको धिक्कार है और जो चिरकाल तक दुष्ट कर्मोंसे ठगा गया ऐसे मुझे भी धिक्कार है ॥१६३॥ अब तो मैं वह काम करूँगा जिससे कि फिर संसारमें नहीं पड़ूँ। अत्यन्त दुःखदायी गतियोंमें घूमता-घूमता मैं बहुत खिन्न हो चुका हूँ ॥१६४॥ इसके उत्तरमें रावणने कहा कि हे भद्र! दीक्षा तो वृद्ध मनुष्योंके लिए शोभा देती है अभी तो तुम नवयौवनसे सम्पन्न हो ॥१६५॥ सहस्ररश्मिने रावणकी बात काटते हुए बीचमें ही कहा कि मृत्युको ऐसा विवेक थोड़ा ही है कि वह वृद्ध जनको ही ग्रहण करे यौवनवालेको नहीं। अरे! यह शरीर शरद्ऋतुके बादलके समान अकस्मात् ही नष्ट हो जाता है ॥१६६॥ हे रावण! यदि भोगोंमें कुछ सार होता तो उत्तम बुद्धिके धारक पिताजीने ही उनका त्याग नहीं किया होता ॥१६७॥ ऐसा कहकर उसने दृढ़ निश्चयके साथ पुत्रके लिए राज्य सौंपा और दशाननसे क्षमा याचना कर पिता शतबाहुके समीप दीक्षा धारण कर ली ॥१६८॥ सहस्ररश्मिने अपने मित्र अयोध्याके राजा अनरण्यसे पहले कह रखा था कि जब मैं दिगम्बर दीक्षा धारण करूँगा तब तुम्हारे लिए खबर दूँगा और अनरण्यने भी सहस्ररश्मिसे ऐसा ही कह रखा था सो इस कथनके अनुसार सहस्ररश्मिने खबर देनेके लिए अनरण्यके पास आदमी भेजे ॥१६९-१७०॥ गये हुए पुरुषोंने जब अनरण्यसे सहस्ररश्मिके वैराग्यकी वार्ता कही तो उसे सुनकर उसके नेत्र आँसुओंसे भर गये। उस महापुरुषके गुणोंका स्मरणकर वह चिरकाल तक विलाप करता रहा ॥१७१॥ जब विषाद कम हुआ तो महाबुद्धिमान् अनरण्यने कहा कि उसके पास रावण क्या आया मानो शत्रुके वेषमें भाई ही उसके पास आया ॥१७२॥ वह रावण कि जिसने अत्यन्त अनुकूल होकर विषयोंसे मोहित हो चिरकाल तक ऐश्वर्यरूपी पिंजड़ेके अन्दर स्थित रहनेवाले इस मनुष्यरूपी पक्षीको मुक्त किया है ॥१७३॥ माहिष्मतीके राजा सहस्ररश्मिको धन्य है जो रावणके सम्यग्ज्ञानरूपी जहाजका आश्रय ले संसाररूपी सागरको तैरना चाहता है ॥१७४॥ जो अन्तमें अत्यन्त दुःख देनेवाले राज्य नामक पापको छोड़कर जिनेन्द्रप्रणीत व्रतको प्राप्त हुआ है अब उसकी कृतकृत्यताका क्या पूछना ॥१७५॥

---

१. सुवियोगेन ब.। द्युतियोगेन म.। २. प्रव्रज्यां म.। ३. ततो नैव न मे म.। तातेनैव हि मे ख., क.। ४. यमध्वंसं क., ख.। यमध्वंसेन रावणेन निमित्तेन बोधपोतं सम्यग्ज्ञानतरणिं समाश्रितः प्राप्तः इत्यर्थः।

अभिमन्त्येति संविग्नः क्षिप्त्वा लक्ष्मीं शरीरजे[1] । सुतेन ज्यायसा साकमनरण्योऽभवन्मुनिः ॥१७६॥

रथोद्धतावृत्तम्

येन केनचिदुदात्तकर्मणा कारणेन रिपुणेतरेण वा ।
निर्मितेन समवाप्यते मतिः श्रेयसी न तु [2]निकृष्टकर्मणा ॥१७७॥
यः प्रयोजयति मानसं शुभे यस्य तस्य परमः स बान्धवः ।
भोगवस्तुनि तु यस्य मानसं यः करोति परमारिरस्य सः ॥१७८॥
भावयन्निति सहस्ररश्मिकं योऽनरण्यनृपतिं शृणोति च ।
[3]संयुतं [4]श्रमणशीलसंपदा स व्रजत्यमलतां यथा रविः ॥१७९॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दशग्रीवप्रस्थाने सहस्ररश्म्यनरण्य-श्रामण्याभिधानं नाम दशमं पर्व ॥१०॥

□

इस प्रकार सहस्ररश्मिको प्रोत्साहन अनरण्य भी संसारसे भयभीत हो पुत्रके लिए राज्यलक्ष्मी सौंप बड़े पुत्रके साथ मुनि हो गया ॥१७६॥

गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! जब उत्कृष्ट कर्मका निमित्त मिलता है तब शत्रु अथवा मित्र किसीके भी द्वारा इस जीवको कल्याणकारी बुद्धि प्राप्त हो जाती है पर जबतक निकृष्ट कर्मका उदय रहता है तबतक प्राप्त नहीं होती ॥१७७॥ जो जिसके मनको अच्छे कार्यमें लगा देता है यथार्थमें वही उसका बान्धव है और जो जिसके मनको भोगोपभोगकी वस्तुओंमें लगाता है वही उसका वास्तविक शत्रु है ॥१७८॥ इस प्रकार सहस्ररश्मिका ध्यान करता हुआ जो मनुष्य मुनियोंके समान शीलरूपी सम्पदासे युक्त राजा अनरण्यका चरित्र सुनता है वह सूर्यके समान निर्मलताको प्राप्त होता है ॥१७९॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्यके द्वारा कथित पद्मचरितमें दशाननके प्रयाणके समय राजा सहस्ररश्मि और अनरण्यकी दीक्षाका वर्णन करनेवाला दशम पर्व पूर्ण हुआ ॥१०॥

□

---

१. पुत्रे । २. विकृष्ट -म. । ३. संयतं क., ख., म. । ४. श्रवणशीलसंपदा म. ।

एकादश पर्व

अथ कैलाससंक्षोभो यान् यान् मानवतो नृपान् । शृणोति धरणीयातास्तांस्तान्सर्वानमन्नमत् ॥१॥
वशीकृतैश्च संमानं प्राप्तिर्वेष्टितो नृपैः । पश्यन् स्फीतपुरामुर्वीं सुभूमश्चक्रभृद्यथा ॥२॥
नानादेशसमुत्पन्नैर्नानाकारैर्नरैर्वृतः । नानाभूषाधरैर्नानावर्णैर्विविधवाहनैः ॥३॥
कारयन् [1]जीर्णचैत्यानां संस्कारान् परमां तथा । पूजां देवाधिदेवानां जिनेन्द्राणां [2]सुभावितः ॥४॥
ध्वंसयन् जिनविद्वेषकारिणः खलमानवान् । [3]दुर्विधान् करुणायुक्तो धनेन परिपूरयन् ॥५॥
सम्यग्दर्शनसंशुद्धान् वत्सलः पूजयञ्जनान् । प्रणमन् श्रमणान् मक्त्या रूपमात्रश्रितानपि ॥६॥
उदीचीं प्रस्थितः काष्ठां प्रतापं दुस्सहं किरन् । यथोत्तरायणे भानुः पुण्यकर्मानुभावतः ॥७॥
बलवांश्च श्रुतस्तेन राजा राजपुराधिपः । अभिमानं परं बिभ्रत्परप्रणतिवर्जितः ॥८॥
[4]जन्मप्रभृति दुश्चेता लौकिकोन्मार्गमोहितः । प्रविष्टः प्राणिविध्वंसं यज्ञदीक्षाख्यपातकम् ॥९॥
अथ यज्ञध्वनिं श्रुत्वा श्रेणिको गणपालिनम् । इत्यपृच्छद् विभो तावदास्तां रावणकीर्तनम् ॥१०॥
उत्पत्तिं भगवन्नस्य यज्ञस्येच्छामि वेदितुम् । प्रवृत्तो दारुणो यस्मिन् [5]जैनो जन्तुविनाशने ॥११॥
उवाच च गणाधीशः शृणु श्रेणिक शोभनम् । भवता पृष्टमेतेन बहवो मोहिता जनाः ॥१२॥

अथानन्तर रावणने पृथ्वीपर जिन-जिन राजाओंको मानी सुना उन सबको नम्रीभूत किया ॥१॥ जिन राजाओंको इसने वश किया था उनका सम्मान भी किया और ऐसे उन समस्त राजाओंसे वेष्टित होकर उसने बड़े-बड़े ग्रामोंसे सहित पृथ्वीको देखते हुए सुभूमचक्रवर्तीके समान भ्रमण किया ॥२॥ इसके साथ नाना देशोंमें उत्पन्न हुए नाना आकारके मनुष्य थे। वे मनुष्य नाना प्रकारके आभूषण पहने हुए थे, नाना प्रकारकी उनकी चेष्टाएँ थीं और नाना प्रकारके वाहनोंपर वे आरूढ़ थे ॥३॥ वह जीर्ण मन्दिरोंका जीर्णोद्धार कराता जाता था और देवाधिदेव जिनेन्द्रदेवकी बड़े भावसे पूजा करता था ॥४॥ जैनधर्मके साथ द्वेष रखनेवाले दुष्ट मनुष्योंको नष्ट करता था और दरिद्र मनुष्योंको दयासे युक्त हो धनसे परिपूर्ण करता था ॥५॥ सम्यग्-दर्शनसे शुद्ध जनोंकी बड़े स्नेहसे पूजा करता था और जो मात्र जैनमुद्राको धारण करनेवाले थे ऐसे मुनियोंको भी भक्तिपूर्वक प्रणाम करता था ॥६॥ जिस प्रकार उत्तरायणके समय सूर्य दुःसह प्रताप बिखेरता हुआ उत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान करता है उसी प्रकार रावणने भी पुण्य कर्मके उदयसे दुःसह प्रताप बिखेरते हुए उत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान किया ॥७॥

अथानन्तर रावणने सुना कि राजपुरका राजा बहुत बलवान् है। वह बहुत भारी अहंकारको धारण करता हुआ कभी किसीको प्रणाम नहीं करता है ॥८॥ जन्मसे ही लेकर दुष्ट-चित्त है, लौकिक मिथ्या मार्गसे मोहित है, और प्राणियोंका विध्वंस करानेवाले यज्ञ दीक्षा नामक महापापको प्राप्त है अर्थात् यज्ञक्रियामें प्रवृत्त है ॥९॥ तदनन्तर यज्ञका कथन सुन राजा श्रेणिकने गौतम गणधरसे पूछा कि हे विभो ! अभी रावणकी कथा रहने दीजिए। पहले मैं इस यज्ञकी उत्पत्ति जानना चाहता हूँ कि जीवोंका विघात करनेवाले जिस यज्ञमें दुष्टजन प्रवृत्त हुए हैं ॥१०-११॥ तब गणधर बोले कि हे श्रेणिक ! सुन, तूने बहुत अच्छा प्रश्न किया है। इस यज्ञके द्वारा बहुत-से जन मोहित हो रहे हैं ॥१२॥

---

१. चक्रवद्यया म. । २. शीर्ण क., ख., म. । ३. सभावितः क., ख. । सुभावितम् म. । ४. दरिद्रान् । ५. जन्मनः प्रभृति म. । ६. दुश्चेतो -क., ख. । ७. जना म. ।

विनीतायां महानासीदिक्ष्वाकुकुलभूषणः । ययातिर्नाम राजास्य सुरकान्तेति भामिनी ॥१३॥
वसुर्नामाभवत्तस्य पुरोर्योग्यः स चार्पितः । नाम्ना क्षीरकदम्बस्य यस्य स्वस्तिमती प्रिया ॥१४॥
अन्यदारण्यकं शास्त्रं सर्वशास्त्रविशारदैः । अध्यापयत्यसौ शिष्यान्नारदादीन् वनान्तरे ॥१५॥
अथ चारणसाधूनां प्रस्थितानां विहायसा । एकेन यतिना प्रोक्तमेवं कारुण्यकारिणा ॥१६॥
चतुर्णां प्राणिनामेषामेको नरकभागिति । श्रुत्वा क्षीरकदम्बस्तद्वचो भीतोऽभवद् भृशम् ॥१७॥
ततोऽन्तेवासिनस्तेन प्रेषिताः स्वस्वमालयम् । ययुस्तुष्टा यथा वत्सा मुक्ता दामकबन्धनात् ॥१८॥
स्वस्तिमत्यथ पप्रच्छ पुत्रं पर्वतसंज्ञकम् । क्व तवासौ पिता पुत्र येनैकाकी त्वमागतः ॥१९॥
पश्चादेमीति तेनोक्तमिति तस्यै जगाद सः । तदागमं च काङ्क्षन्त्यास्तस्या यातमहःक्षयम् ॥२०॥
नायातः स दिनान्तेऽपि यदा तिमिरगह्वरे । तदा शोकभराक्रान्ता पतितासौ महीतले ॥२१॥
चक्रवाकीव दुःखार्ता विलापं चाकरोदिति । हा हता मन्दभाग्यास्मि प्राणानां स्वामिनोज्झिता ॥२२॥
पापेन केनचिन्मृत्युं किमसौ प्रापितो भवेत् । किं वा देशान्तरं यातः कान्तः केनापि हेतुना ॥२३॥
सर्वशास्त्रार्थकुशलः किं वा वैराग्यमाश्रितः । सर्वसंगान् परित्यज्य प्रव्रज्यां समशिश्रियत् ॥२४॥
विलापमिति कुर्वन्त्यास्तस्याः सा रजनी गता । अन्वेष्टुं पितरं चादावहः पर्वतको गतः ॥२५॥
दृष्ट्वा सरित्तटोद्याने दिनैः कैश्चिद् गुरुं मुनिम् । गुरोः सङ्घसमेतस्य समीपे विनयस्थितम् ॥२६॥
आरादेव निवृत्याख्यन्मातरं च पिता मम । विप्रलब्धोऽनलक्षेण श्रमणैस्तत्परायणैः ॥२७॥

अयोध्यानगरीमें इक्ष्वाकुकुलका आभूषणस्वरूप एक ययाति नामका राजा था और सुरकान्ता नामकी उसकी रानी थी ॥१३॥ उन दोनोंके वसु नामका पुत्र हुआ। जब वह पढ़नेके योग्य हुआ तब क्षीरकदम्बक नामक गुरुके लिए सौंपा गया। क्षीरकदम्बककी स्त्रीका नाम स्वस्तिमती था ॥१४॥ किसी एक दिन सर्वशास्त्रोंमें निपुण क्षीरकदम्बक, वनके मध्यमें नारद आदि शिष्योंको आरण्यकशास्त्र पढ़ा रहा था ॥१५॥ वहीं आकाशमार्गसे विहार करनेवाले चारण मुनियोंका संघ विराजमान था। उनमें-से एक दयालु मुनिने इस प्रकार कहा कि इन चार प्राणियोंमें से एक नरकको प्राप्त होगा। मुनिके वचन सुन क्षीरकदम्बक अत्यन्त भयभीत हो गया ॥१६-१७॥ तदनन्तर उसने नारद, पर्वत और वसु इन तीनों शिष्योंको अपने-अपने घर भेज दिया और वे शिष्य भी बन्धनसे छोड़े गये बछड़ोंके समान सन्तुष्ट होते हुए अपने-अपने घर गये ॥१८॥ जब पर्वत अकेला ही घर पहुँचा तब उसकी माता स्वस्तिमतीने पूछा कि हे पुत्र! तुम्हारे पिता कहाँ हैं? जिससे कि तुम अकेले ही आये हो ॥१९॥ पर्वतने माताको उत्तर दिया कि उन्होंने कहा था कि पीछे आते हैं। पतिके आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए स्वस्तिमतीका दिन समाप्त हो गया ॥२०॥ जब दिनका बिलकुल अन्त हो गया और सघन अन्धकार फैल चुका फिर भी वह नहीं आया तब स्वस्तिमती शोकके भारसे आक्रान्त हो पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥२१॥ वह दुःखसे पीड़ित हो चकवीके समान इस प्रकार विलाप करने लगी कि हाय-हाय मैं बड़ी मन्दभाग्य हूँ जो पतिके द्वारा छोड़ी गयी ॥२२॥ क्या मेरा पति किसी पापी मनुष्यके द्वारा मृत्युको प्राप्त हुआ है अथवा किसी कारण परदेशको चला गया है? ॥२३॥ अथवा समस्त शास्त्रोंमें कुशल होनेसे वैराग्यको प्राप्त हो सर्व परिग्रहका त्याग कर मुनिदीक्षाको प्राप्त हुआ है? ॥२४॥ इस प्रकार विलाप करते-करते स्वस्तिमतीकी रात्रि भी व्यतीत हो गयी। जब प्रातःकाल हुआ तब पर्वत पिताको खोजनेके लिए गया ॥२५॥ लगातार कुछ दिनों तक खोज करनेके बाद पर्वतने देखा कि हमारे पिता नदीके तटवर्ती उद्यानमें मुनि होकर विद्यमान हैं। संघसहित गुरुके समीप विनयसे बैठे हैं ॥२६॥ उसने दूरसे ही लौटकर

---

१. नामा क., ख. । २. विशारदं म., ब. । ३. प्रथितानां म. । ४ दामकबन्धनान् म. । ५. पश्चादागति क., ख. । ६. अन्वेष्टं म. ।

ततो निश्चयविज्ञाततदसङ्गमदुःखिता । कराभ्यां भृशमाघ्नाना स्तनावरुरुदत् स्वनम् ॥२८॥
नारदस्तमथ श्रुत्वा वृत्तान्तं धर्मवत्सलः । द्रष्टुमागादुपाध्यायीं क्षणं शोकसमाकुलः ॥२९॥
तं दृष्ट्वा सुतरां चक्रे स्तनताडनरोदनम् । निसर्गोऽयं यदाप्तस्य पुरः शोको विवर्धते ॥३०॥
जगाद नारदो मातः किं शोकं कुरुषे वृथा । कृते शोकेऽधुना नासावागच्छति विशुद्धधीः ॥३१॥
कृतानुग्रहनिर्भीतो[1]सौ पावना चारुचेष्टितः । जीवितं चञ्चलं ज्ञात्वा यस्तपः कर्तुमुद्यतः ॥३२॥
[2]तनुतां वाच्यमानायाः शोकस्तस्या गतः क्रमात् । [3]द्विषती च स्तुवाना च भर्तारं सा स्थिता गृहे ॥३३॥
एतस्मादेव चोदन्ताद् ययातिस्तत्त्वकोविदः । राज्यभारं वसोर्न्यस्य बभूव श्रमणो महान् ॥३४॥
सुप्रतिष्ठोऽभवद् राजा पृथिव्यां प्रथितो वसुः । नभःस्फटिकविस्तीर्णशिलास्थहरिविष्टरः ॥३५॥
समं पर्वतकेनाथ नारदस्यान्यदाभवत् । कथेयं शास्त्रतत्त्वार्थनिरूपणपरायणा ॥३६॥
जगाद नारदोऽर्हद्भिः[4] सर्वज्ञैः सर्वदर्शिभिः । द्विविधो विहितो धर्मः सूक्ष्मोदारविशेषतः ॥३७॥
हिंसाया अनृतात् स्तेयात्[5] स्मरसंगात् परिग्रहात् । विरतेर्व्रतमुद्दिष्टं भावनाभिः समन्वितम् ॥३८॥
विरतिं सर्वतः कर्तुं ये शक्तास्ते महाव्रतम् । सेवन्तेऽणुव्रतं शेषा जन्तवो गृहमाश्रिताः ॥३९॥
संविभागोऽतिथीनां च तेषामुक्तो जिनाधिपैः । यथाकथावस्थितास्तस्मिन् भेदैः पात्रादिभिर्युतैः ॥४०॥

मातासे कहा कि मेरा पिता नग्नमुनियों और उनके भक्तों द्वारा प्रतारित हो नग्न हो गया है ॥२७॥ तदनन्तर स्वस्तिमतीने जब निश्चयसे यह जान लिया कि अब पतिका समागम मुझे प्राप्त नहीं होनेवाला है तब वह अत्यन्त दुःखी हुई। वह दोनों हाथोंसे स्तनोंको पीटती एवं जोरसे चिल्लाती हुई रुदन करने लगी ॥२८॥ यह वृत्तान्त सुन धर्मस्नेही नारद शोकसे व्याकुल होता हुआ अपनी गुरानीको देखनेके लिए आया ॥२९॥ उसे देख वह और भी अधिक स्तन पीटकर रोने लगी सो ठीक ही है क्योंकि यह स्वाभाविक बात है कि आप्तजनोंके समक्ष शोक बढ़ने लगता है ॥३०॥ नारदने कहा कि हे माताजी ! व्यर्थ ही शोक क्यों करती हो ? क्योंकि इस समय शोक करनेसे निर्मल बुद्धिके धारक गुरुजी वापस नहीं आवेंगे ॥३१॥ सुन्दर चेष्टाओंके धारक गुरुजीपर पुण्यकर्मने बड़ा अनुग्रह किया है कि जिससे वे जीवनको चंचल जानकर तप करनेके लिए उद्यत हुए हैं ॥३२॥ इस प्रकार नारदके समझानेपर उसका शोक क्रम-क्रमसे हलका हो गया। स्वस्तिमती कभी तो पतिकी निन्दा करती थी कि वे एक अबलाको असहाय छोड़कर चल दिये और कभी उनके गुणोंका चिन्तवन कर स्तुति करती थी कि इनकी निर्लेपता कितनी उच्चकोटिकी थी। इस प्रकार निन्दा और स्तुति करती हुई वह घरमें रहने लगी ॥३३॥

इसी घटनासे तत्त्वोंका जानकार ययाति राजा भी वसुके लिए राज्यभार सौंपकर महामुनि हो गया ॥३४॥ नवीन राजा वसुकी पृथिवीपर बड़ी प्रतिष्ठा बढ़ी। आकाशस्फटिककी लम्बी-चौड़ी शिलापर उसका सिंहासन स्थित था सो लोकमें ऐसी प्रसिद्धि हुई कि सत्यके बलपर वसु आकाशमें निराधार स्थित है ॥३५॥ अथानन्तर एक दिन नारदकी पर्वतके साथ शास्त्रका वास्तविक अर्थ प्रकट करनेपर तत्पर निम्नलिखित चर्चा हुई ॥३६॥ नारदने कहा कि सबको जानने-देखनेवाले अर्हन्त भगवान्‌ने अणुव्रत और महाव्रतके भेदसे धर्म दो प्रकारका कहा है ॥३७॥ हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पाँच पापोंसे विरक्त होनेको व्रत कहते हैं। यह व्रत प्रत्येक व्रतकी पाँच-पाँच भावनाओंसे सहित होता है ॥३८॥ जो उक्त पापोंका सर्वदेश त्याग करनेमें समर्थ हैं वे महाव्रत ग्रहण करते हैं और जो घरमें रहते हैं ऐसे शेषजन अणुव्रत धारण करते हैं ॥३९॥ जिनेन्द्र भगवान्‌ने गृहस्थोंका एक व्रत अतिथिसंविभाग बतलाया है जो पात्रादिके भेदसे अनेक प्रकारका

---

१. दृष्टा म. । २. कृशताम् । ३. द्विषतीव क., म., ब. । ४. दृङ्भिः (?) म. । ५. अणुव्रतमहाव्रतविशेषतः । ६. हिंसया म. । ७. स्तेया म. । ८. दारसंगात् म. ।

अजैर्यष्टव्यमित्यस्य वाक्यस्यार्थो दयापरैः । अयं मुनिभिराख्यातो ग्रन्थार्थग्रन्थिभेदिभिः ॥४१॥
अजास्ते जायते येषां नाङ्कुरः सति कारणे । सस्यानां यजनं कार्यमेतैरिति विनिश्चयः ॥४२॥
अजाः पशव उद्दिष्टा होतः पर्वतकोऽवदत् । तेषामालम्भनं कार्यं [1]तत्र यागोऽभिधीयते ॥४३॥
नारदः कुपितोऽवोचत्ततः पर्वतकं खलम् । मैवं वोचः पतस्येवं नरके घोरवेदने ॥४४॥
प्रतिज्ञां चाकरोदेकमावयोर्योऽवसीदति । वसुं प्राश्निकमास्थाय तस्य जिह्वा निकृ[2]त्यते ॥४५॥
अतिक्रान्ता वसुं द्रष्टुं वेलाद्य इवो विनिश्चयः । भवितेत्यभिधायागात् पर्वतो मातुरन्तिकम् ॥४६॥
तस्यै चाकथयन्मूलं कलहस्याभिमानवान् । ततो जगाद सा पुत्र त्वया मिथ्या [3]दृष्टं मृषा ॥४७॥
कुर्वतोऽनेकशो [4]व्याख्यां मया तव पितुः श्रुतम् । अजाः किलाभिधीयन्ते व्रीहयो [5]येऽप्ररोहकाः ॥४८॥
देशान्तरं प्रयातेन मांसभक्षणकारिणा । मानाच्च वितथं प्रोक्तं तवेदं दुःखकारणम् ॥४९॥
रसनाच्छेदनं पुत्र नियतं ते भविष्यति । अपुण्या किं करिष्यामि पतिपुत्रविवर्जिता ॥५०॥
सस्मार[6] सा पुरा प्रोक्ता वसुना गुरुदक्षिणाम् । [7]न्यासभूता मया चास्य वसोरन्तकमाकुला ॥५१॥
उपाध्यायीति चोदारमादरं विदधे वसुः । प्रणम्य च सुखासीनां पप्रच्छ रचिताञ्जलिः ॥५२॥
[8]उपाध्यायि नियच्छाज्ञामायाता येन हेतुना । सर्वं संपादयाम्यद्य दुःखितेव च दृश्यते ॥५३॥
उवाच स्वस्तिमत्येवं नित्यं पुत्रास्मि दुःखिता । प्राणनाथपरित्यक्ता का वा स्त्री सुखमृच्छति ॥५४॥

है । यज्ञका अन्तर्भाव इसी अतिथिसंविभाग व्रतमें होता है ॥४०॥ ग्रन्थोंके अर्थकी गाँठ खोलनेवाले दयालु मुनियोंने 'अजैर्यष्टव्यम्' इस वाक्यका यह अर्थ बतलाया है ॥४१॥ कि अज उस पुराने धानको कहते हैं जिसमें कि कारण मिलनेपर भी अंकुर उत्पन्न नहीं होते। ऐसे धानसे ही यज्ञ करना चाहिए ॥४२॥ नारदकी इस व्याख्याको सुनकर तमककर पर्वत बोला कि नहीं अज नाम पशुका है अतः उनकी हिंसा करनी चाहिए यही यज्ञ कहलाता है ॥४३॥ इसके उत्तरमें नारदने कुपित होकर दुष्ट पर्वतसे कहा कि ऐसा मत कहो क्योंकि ऐसा कहनेसे भयंकर वेदनावाले नरकमें पड़ोगे ॥४४॥ अपने पक्षकी प्रबलता सिद्ध करते हुए नारदने यह प्रतिज्ञा भी की कि हम दोनों राजा वसुके पास चलें, वहाँ जो पराजित होगा उसकी जिह्वा काट ली जावे ॥४५॥ 'आज राजा वसुके मिलनेका समय निकल चुका है इसलिए कल इस बातका निश्चय होगा' इतना कहकर पर्वत अपनी माताके पास गया ॥४६॥ अभिमानी पर्वतने कलहका मूल कारण माताके लिए कह सुनाया। इसके उत्तरमें माताने कहा कि हे पुत्र! तूने मिथ्या बात कही है ॥४७॥ अनेकों बार व्याख्या करते हुए तेरे पितासे मैंने सुना है कि अज उस धानको कहते हैं कि जिसमें अंकुर उत्पन्न नहीं होते ॥४८॥ तू देशान्तरमें जाकर मांस भक्षण करने लगा इसलिए अभिमानसे तूने यह मिथ्या बात कही है। यह बात तुझे दुःखका कारण होगी ॥४९॥ हे पुत्र! निश्चित ही तेरी जिह्वाका छेद होगा। मैं अभागिनी पति और पुत्रसे रहित होकर क्या करूँगी? ॥५०॥ उसी क्षण उसे स्मरण आया कि एक बार राजा वसुने मुझे गुरु दक्षिणा देना कहा था और मैंने उसे धरोहरके रूपमें उन्हींके पास रख दिया था। स्मरण आते ही वह तत्काल घबड़ायी हुई राजा वसुके पास पहुँची ॥५१॥ 'यह हमारी गुरानी है' यह विचारकर राजा वसुने उसका बहुत सत्कार किया, उसे प्रणाम किया और जब वह आसनपर सुखसे बैठ गयी तब हाथ जोड़कर विनयसे पूछा ॥५२॥ कि हे गुरानी! मुझे आज्ञा दीजिए। जिस कारण आप आयी हैं मैं उसे अभी सिद्ध करता हूँ। आप दुःखी-सी क्यों दिखाई देती हैं? ॥५३॥ इसके उत्तरमें स्वस्तिमतीने कहा कि हे पुत्र! मैं तो निरन्तर दुःखी

---

१. स च म.। २. विधीयते म.। ३. छिद्यते। निकृन्त्यते म.। ४. दृष्टं म.। ५. व्याख्या म.। ६. ये प्ररोहकाः म.। ७. सस्मार च क., ख.। सस्मार पुरा ग.। ८. न्याय -म.। ९. उपाध्यायीति म.।

संबन्धो द्विविधो यौनः शास्त्रीयश्च तयोः परम् । शास्त्रीयमेव मन्येऽहमयं मलविवर्जितः ॥५५॥
अतो नाथस्य मे शिष्यः पुत्र एव भवानपि । पश्यन्ती भवतो लक्ष्मीं करोमि धृतिमात्मनः ॥५६॥
[2]दक्षिणां च गृहाणेति पुत्र प्रोक्तं त्वया सुत । मया चोक्तं गृहीष्यामि काले ऽन्यस्मिन्निति स्मर ॥५७॥
सत्यं वदन्ति राजानः पृथिवीपालनोद्यताः । [3]ऋषयस्ते हि मान्यन्ते ये स्थिता जन्तुपालने ॥५८॥
[4]सत्येन श्रावितः स त्वं मह्यं तां यच्छ दक्षिणाम् । इत्युक्तश्चावदद्राजा विनयानतमस्तकः ॥५९॥
अम्ब ते वचनादद्य करोम्यथ जुगुप्सितम् । वद यत्ते स्थितं चित्ते मा कृथा मतिमन्यथा ॥६०॥
तमुदन्तं ततोऽशेषं निवेद्यास्मै जगाद सा । पुत्रस्यानृतमप्येतदनुमान्यं त्वया मम ॥६१॥
जानतापि ततो राज्ञा नीतेन स्थिरतां पुनः । मूढस्तस्यगृहीतेन प्रतिपक्षं तयोदितम् ॥६२॥
पुनरुक्तं प्रियं भूरि भाषित्वाशीःपुरस्सरम् । आनर्च्छ निर्वृतं तुष्टा भूपं स्वस्तिमती ततः ॥६३॥
अथान्यस्य दिनस्यादौ गतौ नारदपर्वतौ । समीपं क्षितिपालस्य [5]कुतूहलिजनावृतौ ॥६४॥
चतुर्विधो जनपदो नाना प्रकृतयस्तथा । सामन्ता मन्त्रिणश्चाशु विविशुर्जल्पमण्डलम् ॥६५॥
ततस्तयोः सतां मध्ये विवादः सुमहानभूत् । व्रीहयोऽजा त्रिबीजा ये पशवश्चेति वस्तुनि ॥६६॥
ससस्ताभ्यां वसुः पृष्टो यदुपाध्याय उक्तवान् । तत्त्वं वद महाराज सत्येन श्रावितो भवान् ॥६७॥
यदेतत्पर्वतेनोक्तं तदुपाध्याय उक्तवान् । इत्युक्ते स्फटिकं यातं वसोः क्षिप्रं महीतले ॥६८॥

रहती हूँ क्योंकि पतिके द्वारा छोड़ी हुई कौन-सी स्त्री सुख पाती है ? ॥५४॥ सम्बन्ध दो प्रकारका है एक योनिसम्बन्धी और दूसरा शास्त्रसम्बन्धी। इन दोनोंमें मैं शास्त्रीय सम्बन्धको ही उत्तम मानती हूँ क्योंकि यह निर्दोष सम्बन्ध है ॥५५॥ चूँकि तुम मेरे पतिके शिष्य हो अतः तुम भी मेरे पुत्र हो। तुम्हारी लक्ष्मीको देखते हुए मुझे सन्तोष होता है ॥५६॥ हे पुत्र ! एक बार तुमने कहा था कि दक्षिणा ले लो तब मैंने कहा था कि फिर किसी समय ले लूँगी। स्मरण करो ॥५७॥ पृथिवीकी रक्षा करनेमें तत्पर राजा लोग सदा सत्य बोलते हैं। यथार्थमें जो जीवोंकी रक्षा करनेमें तत्पर हैं वे ही ऋषि कहलाते हैं ॥५८॥ तुम सत्यके कारण जगत्में प्रसिद्ध हो अतः मेरे लिए वह दक्षिणा दो। गुरानीके ऐसा कहनेपर राजा वसुने विनयसे मस्तक झुकाते हुए कहा ॥५९॥ कि हे माता ! तुम्हारे कहनेसे मैं आज घृणित कार्य भी कर सकता हूँ। जो बात तुम्हारे मनमें हो सो कहो अन्यथा विचार मत करो ॥६०॥ तदनन्तर स्वस्तिमतीने उसके लिए नारद और पर्वतके विवादका सब वृत्तान्त कह सुनाया और साथ ही इस बातकी प्रेरणा की कि यद्यपि मेरे पुत्रका पक्ष मिथ्या ही है तो भी तुम इसका समर्थन करो ॥६१॥ राजा वसु यद्यपि शास्त्रके यथार्थ अर्थको जानता था पर स्वस्तिमतीने उसे बार-बार प्रेरणा देकर अपने पक्षमें स्थिर रखा। इस तरह मूर्ख सत्यके वश हो राजाने उसकी बात स्वीकृत कर ली ॥६२॥ तदनन्तर स्वस्तिमती राजा वसुके लिए बार-बार अनेकों प्रिय आशीर्वाद देकर अत्यन्त सन्तुष्ट होती हुई अपने घर गयी ॥६३॥

अथानन्तर दूसरे दिन प्रातःकाल ही नारद और पर्वत राजा वसुके पास गये। कुतूहलसे भरे अनेकों लोग उनके साथ थे ॥६४॥ चार प्रकारके जनपद, नाना प्रजाजन, सामन्त और मन्त्री लोग शीघ्र ही उस वादस्थलमें आ पहुँचे ॥६५॥ तदनन्तर सज्जनोंके बीच नारद और पर्वतका बड़ा भारी विवाद हुआ। उनमें-से नारद कहता था कि अजका अर्थ बीजरहित धान है और पर्वत कहता था कि अजका अर्थ पशु है ॥६६॥ जब विवाद शान्त नहीं हुआ तब उन्होंने राजा वसुसे पूछा कि हे महाराज ! इस विषयमें गुरु क्षीरकदम्बकने जो कहा था सो आप कहो। आप अपनी सत्यवादितासे प्रसिद्ध हैं ॥६७॥ इसके उत्तरमें राजा वसुने कहा कि पर्वतने

---

१. पश्यन्तो म.। २. दक्षिणां च गृहीष्यामि पुरा प्रोक्तं च या सुत म.। ३. ऋषयस्तेहि (?) म.। ४. सत्येव म.। ५. कुतूहल -म.।

नाऽऽसीत् किल तल्लोकः स्फटिकं गगने ततः । स्थितं सिंहासनं[1] तस्य विवेदेति ततोऽवदत् ॥६९॥
वसो नितथसामर्थ्यात्तव सिंहासनं गतम् । भूमिमद्यापि ते युक्तं परमार्थनिवेदनम् ॥७०॥
ततो मोहमदाविष्टस्तदैव पुनरभ्यधात् । प्रविष्टो धरणीं सद्यः सिंहासनसमन्वितः ॥७१॥
महापापभरक्रान्तो हिंसाधर्मप्रवर्तनात् । गतस्तमस्तमोऽभिख्यां पृथिवीं घोरवेदनाम् ॥७२॥
ततो धिग् धिग् ध्वनिः प्रायो[2] जातः कलकलो महान् । जनानां पापभीतानामुद्दिश्य वसुपर्वतौ ॥७३॥
संप्राप्तो नारदः पूजामहिंसाचारदेशनात् । सूनृतमेव यो लोके यतो धर्मस्ततो जयः ॥७४॥
पापः पर्वतको लोके धिग्धिग्दण्डसमाहतः । दुःखितः शोषयन् देहमकरोत् कुत्सितं तपः ॥७५॥
कालं कृत्वामषत् क्रूरो राक्षसः पुरुविक्रमः । अपमानं च[3] संस्मार धिग्दण्डाधिकमात्मनः ॥७६॥
अचिन्तयच्च लोकेन ममानेन पराभवः । कृतस्ततः करिष्यामि प्रतिकर्मास्य दुःखदम् ॥७७॥
वितानं[4] दम्भरचितं कृत्वा कर्म करोमि तत् । यत्रासक्तो जनो याति तिर्यङ्नरकदुर्गतीः[5] ॥७८॥
ततो मानुषवेषस्थो वामस्कन्धस्थसूत्रकः । कमण्डलुवक्षमालादिनानोपकरणावृतः ॥७९॥
हिंसाकर्मपरं शास्त्रं घोरं क्रूरजनप्रियम् । अधीयानः सुदुष्टात्मा नितान्तामङ्गलस्वरम् ॥८०॥
तापसान् दुर्विधान् कृत्वा सूत्रकण्ठादिकांस्तथा । व्यामोहयितुमुद्युक्तो हिंसाधर्मेण निर्दयः ॥८१॥
तस्य पक्षे ततः पेतुः प्राणिनो मूढमानसाः । भविष्यद्दुःखसंभाराः शलभा इव पावके ॥८२॥

जो कहा है वही गुरुजी ने कहा था। इतना कहते ही राजा वसुका स्फटिक पृथिवीपर गिर पड़ा ॥ ६८ ॥ लोग उस स्फटिकको नहीं जानते थे इसलिए यही समझते थे कि राजा वसुका सिंहासन आकाशमें निराधार स्थित है ॥६९॥ नारदने राजाको सम्बोधते हुए कहा कि वसो ! मिथ्या पक्षका समर्थन करनेसे तुम्हारा सिंहासन पृथिवीपर आ पड़ा है। अतः अब भी सत्य पक्षका समर्थन करना तुम्हें उचित है ॥७०॥ परन्तु राजा वसु तो मोहरूपी मदिराके नशामें इतना निमग्न था कि उसने फिर भी वही बात कही। इस पापके फलस्वरूप राजा वसु शीघ्र ही सिंहासनके साथ ही साथ पृथिवीमें धँस गया ॥७१॥ हिंसाधर्मकी प्रवृत्ति चलानेसे वह बहुत भारी पापके भारसे आक्रान्त हो बहुत भारी वेदनावाली तमस्तमःप्रभा नामक सातवीं पृथिवीमें गया ॥७२॥ तदनन्तर पापसे भयभीत मनुष्य राजा वसु और पर्वतको लक्ष्य कर धिक्-धिक् कहने लगे जिससे बड़ा भारी कोलाहल उत्पन्न हुआ ॥७३॥ अहिंसापूर्ण आचारका उपदेश देनेके कारण नारद सम्मानको प्राप्त हुआ। सब लोगोंके मुखसे यही शब्द निकल रहे थे कि 'यतो धर्मस्ततो जयः' जहाँ धर्म वहाँ विजय ॥७४॥ पापी पर्वत, लोकमें धिक्काररूपी दण्डकी चोट खाकर दुःखी हो शरीरको सुखाता हुआ कुतप करने लगा ॥७५॥ अन्तमें मरण कर प्रबल पराक्रमका धारक दुष्ट राक्षस हुआ। उसे पूर्व पर्यायमें जो अपमान और धिक्काररूपी दण्ड प्राप्त हुआ था उसका स्मरण हो आया ॥७६॥ वह विचार करने लगा कि लोगोंने मेरा पराभव किया था इसलिए मैं इसका दुःखदायी बदला लूँगा ॥७७॥ मैं कपटपूर्ण शास्त्र रचकर ऐसा कार्य करूँगा कि जिसमें आसक्त हुए मनुष्य तिर्यंच अथवा नरक-जैसी दुर्गतियोंमें जावेंगे ॥७८॥ तदनन्तर उस राक्षसने मनुष्यका वेष रखा, बायें कन्धेपर यज्ञोपवीत पहना और हाथसे कमण्डलु तथा अक्षमाला आदि उपकरण लिये ॥७९॥ इस प्रकार हिंसा कार्योंकी प्रवृत्ति करानेमें तत्पर तथा क्रूर मनुष्योंको प्रिय भयावह शास्त्रका अत्यन्त अमांगलिक स्वरमें उच्चारण करता हुआ वह दुष्ट राक्षस पृथिवीपर भ्रमण करने लगा ॥८०॥ वह स्वभावसे निर्दय था तथा बुद्धिहीन तपस्वियों और ब्राह्मणोंको मोहित करनेमें सदा तत्पर रहता था ॥८१॥ तदनन्तर जिन्हें भविष्यमें दुःख प्राप्त होनेवाला था ऐसे मूर्ख प्राणी उसके पक्षमें इस प्रकार पड़ने लगे जिस प्रकार

---

१. सिंहासने म. । २. ध्वनिस्तावज्जातः म. । ३. संस्मार म. । ४. विधानं -दम्भचरितं म, कंडभरतं (?)ख. । ५. यत्रासक्तो म. ।

सेभ्यो जगाद यज्ञस्य विधानार्थमहं स्वयम् । ब्रह्मा लोकमिमं प्राप्तो येन सृष्टं चराचरम् ॥८३॥
यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव मयादरात् । यज्ञो हि भूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ॥८४॥
सौत्रामण्यिविधानेन सुरापानं न दुष्यति । अगम्यागमनं कार्यं यज्ञे गोसवनामनि ॥८५॥
मातृमेधे वधो मातुः पितृमेधे वधः पितुः । अन्तर्वेदि विधातव्यं दोषस्तत्र न विद्यते ॥८६॥
आशुशुक्षणिमाधाव[1] पृष्ठे कूर्मस्य तर्पयेत् । हविषा[2] जुह्वकाख्याय स्वाहेत्युक्त्वा प्रयत्नतः ॥८७॥
यदा न प्राप्नुयात् कूर्मं तदा शुद्धद्विजन्मनः । [3]खलतेः पिङ्गलाभस्य विकलस्य शुचौ जले ॥८८॥
[4]आस्यदघ्नेऽवतीर्णस्य मस्तके कूर्मसंनिभे । प्रज्वाल्य ज्वलनं दीप्तमाहुतिं निक्षिपेद् द्विजः ॥८९॥
सर्वं पुरुष एवेदं यद्भूतं यद्भविष्यति । ईशानो [5]योऽमृतत्वस्य यदन्नेनातिरोहति ॥९०॥
एवमेकत्र पुरुषे [6]किं केनात्र विपाद्यते । [7]कुरुतादो यथाभीष्टं यज्ञे प्राणिनिपातनम् ॥९१॥
मांसस्य भक्षणं तेषां कर्तव्यं यज्ञकर्मणि । [8]यायजूकेन पूतं हि देवोद्देश्येन तत्कृतम् ॥९२॥
एवंप्रकारमत्यन्तपापकर्म प्रदर्शयन् । प्राणिनः प्रवणांश्चक्रे राक्षसो धरणीतले ॥९३॥
श्रद्धधानास्ततो मूर्खा जन्तवः सुखवाञ्छया । हिंसायज्ञस्थलीं भूमिं [9]दीक्षिता [10]प्रविशन्ति ये ॥९४॥
काष्ठभारं यथा सर्वं प्राध्वक्लृप्य स तान् दृढम् । मयोद्भूतमहाकम्पान् चलत्तारकलोचनान् ॥९५॥
पृथुस्कन्धशिरोजङ्घा[11]-पादाग्रस्थान्विधाय खम् । उत्पपात पतद्रक्तधारानिकरदुःखितान् ॥९६॥

कि अग्निपर पतंगे पड़ते हैं ॥८२॥ वह उन लोगोंसे कहता था कि मैं वह ब्रह्मा हूँ जिसने इस चराचर विश्वकी रचना की है। यज्ञकी प्रवृत्ति चलानेके लिए मैं स्वयं इस लोकमें आया हूँ ॥८३॥ मैंने बड़े आदरसे स्वयं ही यज्ञके लिए पशुओंकी रचना की है। यथार्थमें यज्ञ स्वर्गकी विभूति प्राप्त करानेवाला है इसलिए यज्ञमें जो हिंसा होती है वह हिंसा नहीं है ॥८४॥ सौत्रामणि नामक यज्ञमें मदिरा पीना दोषपूर्ण नहीं है और गोसव नामक यज्ञमें अगम्या अर्थात् परस्त्रीका भी सेवन किया जा सकता है ॥८५॥ मातृमेध यज्ञमें माताका और पितृमेध यज्ञमें पिताका वध वेदीके मध्यमें करना चाहिए इसमें दोष नहीं है ॥८६॥ कछुएकी पीठपर अग्नि रखकर जुह्वक नामक देवको बड़े प्रयत्नसे स्वाहा शब्दका उच्चारण करते हुए साकल्यसे सन्तृप्त करना चाहिए ॥८७॥ यदि इस कार्यके लिए कछुआ न मिले तो एक गंजे सिरवाले पीले रंगके शुद्ध ब्राह्मणको पवित्र जलमें मुख प्रमाण नीचे उतारे अर्थात् उसका शरीर मुख तक पानीमें डूबा रहे ऊपर केवल कछुआके आकार-का मस्तक निकला रहे उस मस्तकपर प्रचण्ड अग्नि जलाकर आहुति देना चाहिए ॥८८-८९॥ जो कुछ हो चुका है अथवा जो आगे होगा, जो अमृतत्वका स्वामी है अर्थात् देवपक्षीय है और जो अन्नजीवी है अर्थात् भूचारी है वह सब पुरुष ही है ॥९०॥ इस प्रकार जब सर्वत्र एक ही पुरुष है तब किसके द्वारा कौन मारा जाता है ? अर्थात् कोई किसीको नहीं मारता इसलिए यज्ञमें इच्छा-नुसार प्राणियोंकी हिंसा करो ॥९१॥ यज्ञमें यज्ञ करनेवालेको उन जीवोंका मांस खाना चाहिए क्योंकि देवताके उद्देश्यसे निर्मित होनेके कारण वह मांस पवित्र माना जाता है ॥९२॥ इस प्रकार अत्यन्त पापपूर्ण कार्य दिखाता हुआ वह राक्षस पृथिवी तलपर प्राणियोंको यज्ञादि कार्योंमें निपुण करने लगा ॥९३॥ तदनन्तर उसकी बातोंका विश्वास कर जो लोग सुखकी इच्छासे दीक्षित हो हिंसामयी यज्ञकी भूमिमें प्रवेश करते थे उन सबको वह लकड़ियोंके भारके समान मजबूत बाँधकर आकाशमें उड़ जाता था। उस समय उनके शरीर भयसे काँप उठते थे, उनकी आँखोंकी पुतलियाँ घूमने लगती थीं। उन्हें वह उलटा कर ऐसा झुकाता था कि उनकी जंघाएँ पीठ तथा ग्रीवापर

---

१. -मादाय म.। २. हविष्यजुह्वकाख्याय। ३. खल्वाटस्य म.। ४. मुखप्रमाणे। ५. मृतस्तस्य क., ज.। ६. किं कि नात्र क.। ७. कुरुत + अतो। ८. याजकेन म.। ९. श्रद्दधानस्ततो म.। १०. दीक्षिताः क.। ११. जङ्घान् म.।

ततस्ते [1]विस्वरोदारं क्रोशन्तोऽभिदधुः स्वरम् । किमर्थं देव रुष्टोऽसि येनास्मान् हन्तुमुद्यतः ॥९७॥
प्रसीद मुञ्च निर्दोषानस्मान् देव महाबल । भवदाज्ञां वयं सर्वां कुर्मः प्रणतमूर्तयः ॥९८॥
ततो बभाण तान् रक्षः यथैव पशवो हताः । भवद्भिरियुति[2] स्वर्गं तथा यूयं मया हताः ॥९९॥
इत्युक्त्वा विजने कांश्चिद् द्वीपेऽन्यस्मिन्निरक्षिपत्[3] । महार्णवे परानन्यान्क्रूरप्राणिगणान्तरे ॥१००॥
एकानास्फालयन् क्षोणीधरमूर्ध्नि शिलातले । कुर्वन् बहुविधं शब्दं वासांसि रजको यथा ॥१०१॥
दुःखेन मरणावस्थां प्राप्तास्ते ग्रस्तचेतसः । पितरौ तनयान् भ्रातॄन् स्मरन्तो मृत्युमापिताः ॥१०२॥
तद्व्यापादितशेषा ये मूढाः कुग्रन्थकन्यया । रक्षसा दर्शितो हिंसायज्ञस्तैर्वृद्धिमाहृतः ॥१०३॥
हिंसायज्ञमिमं घोरमाचरन्ति न ये जनाः । दुर्गतिं ते न गच्छन्ति महादुःखविधायिनीम् ॥१०४॥
उदाहृतो[4] मया यस्ते हिंसायज्ञसमुद्भवः । [5]श्रेणिकैनं पुराज्ञासीत् प्राज्ञो रत्नश्रवासुतः ॥१०५॥
अथ राजपुरं प्राप्तो रावणः स्वर्गसंनिभम् । मरुत्वाख्यो यज्ञवाटे[6] स्थितो नृपः ॥१०६॥
हिंसाधर्मप्रवीणश्च संवर्तो नाम विश्रुतः । ऋत्विक् तस्मै ददौ कृत्स्नमुपदेशं यथाविधि ॥१०७॥
सूत्रकण्ठाः पृथिव्यां ये सर्वे तेऽत्र निमन्त्रिताः । पुत्रदारादिभिः सार्धमागता[7] लोभवाहिताः ॥१०८॥
सा तैर्यज्ञमही सर्वा देवमङ्गलनिःस्वनैः । लाभाकाङ्क्षा प्रसन्नास्यैर्पूता क्षुभ्यत्सुभूरिभिः ॥१०९॥

और पैरके पंजे सिरपर आ लगते थे तथा पड़ती हुई खूनकी धाराओंसे वे बहुत दुःखी हो जाते थे ॥९४-९६॥ इस कार्यसे वे सब बहुत भयंकर शब्द करते हुए चिल्लाते थे और कहते थे कि हे देव ! तुम किस लिए रुष्ट हो गये हो जिससे हम सबको मारनेके लिए उद्यत हुए हो ॥९७॥ हे देव ! तुम महाबलवान् हो, प्रसन्न होओ, हम सब निर्दोष हैं अतः हम लोगोंको छोड़ो। हम सब आपके समक्ष नतशरीर हैं और आप जो आज्ञा देंगे उस सबका पालन करेंगे ॥९८॥ तदनन्तर राक्षस उनसे कहता था कि जिस प्रकार तुम्हारे द्वारा मारे हुए पशु स्वर्ग जाते हैं उसी प्रकार मेरे द्वारा मारे गये आप लोग भी स्वर्ग जावेंगे ॥९९॥ ऐसा कहकर उसने कितने ही लोगोंको जहाँ मनुष्योंका सद्भाव नहीं था ऐसे दूसरे द्वीपोंमें डाल दिया। कितने ही लोगोंको समुद्रमें फेंक दिया, कितने ही लोगोंको सिंहादिक दुष्ट जीवोंके मध्य डाल दिया और जिस प्रकार धोबी अनेक प्रकारके शब्द करता हुआ शिलातलपर वस्त्र पछाड़ता है उसी तरह कितने ही लोगोंको घुमा-घुमाकर पर्वतकी चोटीपर पछाड़ दिया ॥१००-१०१॥ दुःखसे वे मरणासन्न अवस्थाको प्राप्त हो गये थे, उन सबके चित्त भयभीत थे, और अन्तमें माता पिता, पुत्र और भाई आदिका स्मरण करते हुए मृत्युको प्राप्त हो गये ॥१०२॥ जो मरनेसे बाकी बचे थे वे मिथ्या शास्त्ररूपी कन्यासे मोहित थे अतः उन्होंने राक्षसके द्वारा दिखलाये हुए हिंसायज्ञकी वृद्धि की ॥१०३॥ गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! जो मनुष्य इस भयंकर हिंसायज्ञको नहीं करते वे महादुःख देनेवाली दुर्गतिमें नहीं जाते हैं ॥१०४॥ हे श्रेणिक ! मैंने यह तेरे लिए हिंसायज्ञकी उत्पत्ति कही। रावण इसे पहलेसे ही जानता था ॥१०५॥ अथानन्तर रावण, स्वर्गकी तुलना करनेवाले उस राजपुर नगरमें पहुँचा जहाँ मरुत्वान् नामका राजा नगरके बाहर यज्ञशालामें बैठा था ॥१०६॥ हिंसाधर्ममें प्रवीण संवर्त नामका प्रसिद्ध ब्राह्मण उस यज्ञका प्रधान याजक था जो राजाके लिए विधिपूर्वक सब उपदेश दे रहा था ॥१०७॥ पृथ्वीमें जो ब्राह्मण थे वे सब इस यज्ञमें निमन्त्रित किये गये थे इसलिए लोभके वशीभूत हो स्त्री-पुत्रादिके साथ वहाँ आये थे ॥१०८॥ लाभकी आशासे जिनके मुख प्रसन्न थे तथा जो वेदका

---

१. विस्वरोदारं म., ब., क., ख.। २. ऋ गतौ इत्यस्य लङ्बहुवचने रूपम्। बहुलं छन्दसीत्येव सिद्धे 'अतिपिपर्त्योश्चेतीत्व-विधानादयं भाषायामपि। 'अभ्यासस्यासवर्णे' इतीयङ् इयर्ति, इयृतः, इयृति। गच्छन्तीत्यर्थः। रियति म.। ३. निरक्षिपेत् म.। ४. मीयुति म.। मीप्रति क., ख.। ५. रक्षिता ख.। ६. पास्त म.। ७. श्रेणिकेन ख.। ८. मरुत्ताख्यो म.। ९. यक्षवाटे क., ख.। १०. लोकवाहिताः म.।

उपनीताश्च तत्रैव पशवो दीनमानसाः । वराकाः शतशो बद्धाः इवसत्कुक्षिपुटा भयात् ॥११०॥
नारदोऽथान्तरे तस्मिन्निच्छया नभसा व्रजन् । [1]अपश्यद् घनपृष्ठस्थो जनं तं तत्र संगतम् ॥१११॥
अचिन्तयच्च वृद्धैर्वं विस्मयाकुलमानसः । कुर्वन् विभ्रममङ्गस्य कुतूहलसमुद्भवम् ॥११२॥
एतत्सुनगरं कस्य कस्य चेयमनीकिनी । इयं च सागराकारा प्रजा[3] कस्मादिह स्थिता[4] ॥११३॥
नगराणि जनौघाश्च बहुशिम्यश्च भूरिशः । मयेक्षाञ्चक्रिरे जातु नेदृग्दृष्टो जनोत्करः ॥११४॥
कुतूहलादिति ध्यात्वाऽवतीर्णोऽसौ विहायसः । [5]कस्मैचिदेव तस्यासीद्यत्कुतूहलदर्शनम् ॥११५॥
पप्रच्छ मागधेशोऽथ भगवन् कः स नारदः । उत्पत्तिर्वा कुतस्तस्य गुणा वा तस्य कीदृशाः ॥११६॥
जगाद च गणाधीशः श्रेणिक ब्राह्मणोऽभवत् । नाम्ना ब्रह्मरुचिस्तस्य कूर्मी नाम कुटुम्बिनी ॥११७॥
तापसेन सता तेन सितेन वनवासिताम् । एतस्यामाहितो गर्भः फलमूलादिभूसिना ॥११८॥
वीतसङ्गास्तमुद्देशमथाजग्मुर्महर्षयः । यान्तो मार्गवशात् क्वापि[6] संयमासक्तमानसाः ॥११९॥
विशश्रमुः क्षणं तस्मिन्नाश्रमे श्रमनोदिनि । [7]अपश्यन् दम्पती तौ च स्वाकारौ कर्मगर्हितौ ॥१२०॥
आ पाण्डुरशरीरां च दृष्ट्वा योषां पृथुस्तनीम् । कृशां गर्भभरम्लानां इवसन्तीं पन्नगीमिव ॥१२१॥
संसारप्रकृतिज्ञानां श्रमणानां महात्मनाम् । कृपया संबभूवैषां[8] धर्मं बोधयितुं मतिः ॥१२२॥
तेषां मध्ये ततो ज्येष्ठो जगाद मधुरं यतिः । कष्टं पश्यत नर्त्यन्ते कर्मभिर्जन्तवः कथम् ॥१२३॥
त्यक्त्वा धर्मधिया बन्धून् संसारोत्तरणाशया । स्वयं खलीकृतोऽरण्ये किमात्मा तापस त्वया ॥१२४॥

मंगलपाठ कर रहे थे ऐसे बहुत सारे ब्राह्मणोंसे यज्ञकी समस्त भूमि आवृत होकर क्षोभको प्राप्त हो रही थी ॥१०९॥ सैकड़ों दीनहीन पशु भी वहाँ लाकर बाँधे गये गये थे। भयसे उन पशुओंके पेट दुःखकी साँसें भर रहे थे ॥११०॥ उसी समय अपनी इच्छासे आकाशमें भ्रमण करते हुए नारदने वहाँ एकत्रित लोगोंका समूह देखा ॥१११॥ उसे देख नारद आश्चर्यसे चकित हो, कुतूहलजनित शरीरकी चेष्टाओंको धारण करता हुआ इस प्रकार विचार करने लगा ॥११२॥ यह उत्तम नगर कौन है ? यह किसकी सेना है ? और यह सागरके आकार किसकी प्रजा यहाँ किस प्रयोजनसे ठहरी हुई है ? ॥११३॥ मैंने बहुतसे नगर, बहुतसे लोगोंके समूह और बहुत सारी सेनाएँ देखीं पर कभी ऐसा जनसमूह नहीं देखा ॥११४॥ ऐसा विचारकर नारद कुतूहलवश आकाशसे नीचे उतरा सो ठीक ही है क्योंकि कुतूहल देखना ही उसका खास काम है ॥११५॥ यह सुनकर राजा श्रेणिकने गौतमस्वामीसे पूछा कि भगवन् ! वह नारद कौन है ? उसकी उत्पत्ति किससे हुई है और उसके कैसे गुण हैं ? ॥११६॥ इसके उत्तरमें गणधर कहने लगे कि श्रेणिक ! ब्रह्मरुचि नामका एक ब्राह्मण था और उसकी कूर्मी नामक स्त्री थी ॥११७॥ ब्राह्मण तापस होकर वनमें रहने लगा और फल तथा कन्दमूल आदि भक्षण करने लगा। ब्राह्मणी भी इसके साथ रहती थी सो ब्राह्मणने इसमें गर्भ धारण किया ॥११८॥ अथानन्तर किसी दिन संयमके धारक निर्ग्रन्थमुनि कहीं जा रहे थे सो मार्गवश उस स्थानपर आये ॥११९॥ और श्रमको दूर करनेवाले उस आश्रममें थोड़ी देरके लिए विश्राम करने लगे। उसी आश्रममें उन मुनियोंने उस ब्राह्मण दम्पतीको देखा जिनका कि आकार तो उत्तम था पर कार्य निन्दनीय था ॥१२०॥ जिसका शरीर पीला था, स्तन स्थूल थे, जो दुर्बल थी, गर्भके भारसे म्लान थी और साँसें भरती हुई सर्पिणीके समान जान पड़ती थी ऐसी स्त्रीको देखकर संसारके स्वभावको जाननेवाले उदार हृदय मुनियोंके मनमें दयावश उक्त दम्पतीको धर्मोपदेश देनेका विचार उत्पन्न हुआ ॥१२१-१२२॥ उन मुनियोंके बीचमें जो बड़े मुनि थे वे मधुर शब्दोंमें उपदेश देने लगे। उन्होंने कहा कि बड़े खेदकी बात है देखो, ये प्राणी कर्मोंके द्वारा कैसे नचाये जाते हैं ? ॥१२३॥ हे तापस ! तूने संसार-सागरसे पार होनेकी आशासे धर्म समझ भाई-

१. चान्तरे यस्मिन्नि -म. । २. अपश्यद्वान -म. । ३. प्रजाः म. । ४. स्थिताः म. । ५. कस्मैचिदेव ख. । ६. केऽपि म. । ७. अपश्यं म. । ८. दम्पती ।

मह प्रव्रजितो जातः कस्ते भेदो गृहस्थतः । चारित्रं प्रतियातस्य केवलं वेषमन्यथा ॥१२५॥
यथा हि छर्दितं नार्श भुज्यते मानुषैः पुनः । तथा त्यक्तेषु कामेषु न कुर्वन्ति मतिं बुधाः ॥१२६॥
त्यक्त्वा लिङ्गी पुनः पापो योषितं यो निषेवते । सुमीमायामरण्यान्यां वृकतां स समश्नुते ॥१२७॥
सर्वारम्भस्थितः कुर्वन्नब्रह्म मदनिर्भरः । दीक्षितोऽस्मीति यो वेत्ति स्वं नितान्तं स मोहवान् ॥१२८॥
ईर्ष्यामन्मथदग्धस्य दुष्टदृष्टेर्दुरात्मनः । आरम्भे वर्तमानस्य प्रव्रज्या वद कीदृशी ॥१२९॥
कुदृष्ट्या गर्वितो लिङ्गी विषयाक्षवशानसः । मुषाहं तपस्वीति मिथ्यावादी कथं भवी ॥१३०॥
सुखासनविहारः सन् सदार्कशिपुसक्तधीः । सिद्धंमन्यो विमूढात्मा जनोऽयं स्वस्य वञ्चकः ॥१३१॥
दह्यमाने यथागारे कथञ्चिदपि निःसृतः । तत्रैव पुनरात्मानं प्रक्षिपेन्मूढमानसः ॥१३२॥
यथा च विवरं प्राप्य निष्क्रान्तः पञ्जरात् खगः । निर्गत्य प्रविशेत् भूयस्तत्रैवाज्ञानचोदितः ॥१३३॥
तथा प्रव्रजितो भूत्वा यो यातीन्द्रियवश्यताम् । निन्दितः स भवेल्लोके न च स्वार्थं समश्नुते ॥१३४॥
ध्येयमेकाग्रचित्तेन सर्वग्रन्थविवर्जिना । मुनिना ध्यायते तत्त्वं सारम्भैर्न भवद्विधैः ॥१३५॥
प्राणिनो ग्रन्थसङ्गेन रागद्वेषसमुद्भवः । रागात् संजायते कामो द्वेषाज्जन्तुविनाशनम् ॥१३६॥
कामक्रोधाभिभूतस्य मोहेनाक्रम्यते मनः । कृत्याकृत्येषु मूढस्य मतिर्न स्याद्विवेकिनी ॥१३७॥

बन्धुओंका त्याग कर स्वयं अपने आपको इस वनके मध्य क्यों कष्टमें डाला है ? ॥१२४॥ अरे भले-मानुष ! तूने प्रव्रज्या धारण की है पर तुझमें गृहस्थसे भेद ही क्या है ? तूने जो चारित्र धारण किया था उसके तू प्रतिकूल चल रहा है । केवल वेष ही तेरा दूसरा है पर चारित्र तो गृहस्थ-जैसा ही है ॥१२५॥ जिस प्रकार मनुष्य वमन किये हुए अन्नको फिर नहीं खाते हैं उसी प्रकार विज्ञजन जिन विषयोंका परित्याग कर चुकते हैं फिर उनकी इच्छा नहीं करते ॥१२६॥ जो लिंगधारी साधु एक बार स्त्रीका त्याग कर पुनः उसका सेवन करता है वह पापी है और मरकर भयंकर अटवीमें भेड़िया होता है ॥१२७॥ जो सब प्रकारके आरम्भमें स्थित रहता हुआ, अब्रह्म सेवन करता हुआ और नशामें निमग्न रहता हुआ भी 'मैं दीक्षित हूँ' ऐसा अपने आपको जानता है वह अत्यन्त मोही है ॥१२८॥ जो ईर्ष्या और कामसे जल रहा है, जिसकी दृष्टि दुष्ट है, जिसकी आत्मा दूषित है, और जो आरम्भमें वर्तमान है अर्थात् जो सब प्रकारके आरम्भ करता है उसकी प्रव्रज्या कैसी ? तुम्हीं कहो ॥१२९॥ जो कुदृष्टिसे गर्वित है, मिथ्यावेशधारी है, और जिसका मन विषयोंके आधीन है फिर भी अपने आपको तपस्वी कहता है वह झूठ बोलनेवाला है वह व्रती कैसे हो सकता है ? ॥१३०॥ जो सुखपूर्वक उठता-बैठता और विहार करता है तथा जो सदा भोजन एवं वस्त्रोंमें बुद्धि लगाये रखता है फिर भी अपने आपको सिद्ध मानता है वह मूर्ख अपने आपको धोखा देता है ॥१३१॥ जिस प्रकार जलते हुए मकानसे कोई किसी तरह बाहर निकले और फिरसे अपने आपको उसी मकानमें फेंक दे तो वह मूर्ख ही समझा जाता है ॥१३२॥ अथवा जिस प्रकार कोई पक्षी छिद्र पाकर पिंजड़ेसे बाहर निकल आवे और अज्ञानसे प्रेरित हो पुनः उसीमें लौट आवे तो यह उसकी मूर्खता ही है ॥१३३॥ उसी प्रकार कोई मनुष्य दीक्षित होकर पुनः इन्द्रियोंकी आधीनताको प्राप्त हो जावे तो वह लोकमें निन्दित होता है और आत्मकल्याणको प्राप्त नहीं होता ॥१३४॥ जिनका चित्त एकाग्र है ऐसे सर्वपरिग्रहका त्याग करनेवाले मुनि ही ध्यान करने योग्य तत्त्वका ध्यान कर सकते हैं तुम्हारे जैसे आरम्भी मनुष्य नहीं ॥१३५॥ परिग्रहकी संगतिसे प्राणीके रागद्वेषकी उत्पत्ति होती है । रागसे काम उत्पन्न होता है और द्वेषसे जीवोंका विघात होता है ॥१३६॥ जो काम

---

१. प्राप्नोति । २. व्यभिचारं । कुर्वन् न ब्रह्म- म. । ३. भोजनाच्छादनमग्नमनाः । ४. दह्यमानो ब. । ५. यथाङ्गारैः ख. । ६. तत्रैव ज्ञान- म. । ७. कृत्यकृत्येषु म. ।

यत्किंचित्कुर्वतस्तस्य कर्मोपार्जयतोऽशुभम् । संसारसागरे घोरे भ्रमणं न निवर्तते ॥१३८॥
एतान् संसर्गजान् दोषान्विदित्वाशु विपश्चितः । वैराग्यमधिगच्छन्ति नियम्यात्मानमात्मना ॥१३९॥
एवं संबोधितो वाक्यैः परमार्थोपदेशनैः । उपेतः श्रामणीं दीक्षां [2]मोहाद् ब्रह्मरुचिश्च्युतः ॥१४०॥
निरक्षेपमतिः कूर्म्या महावैराग्यसंभृतः [3] । विजहार सुखं सार्धं गुरुणा गुरुवत्सलः ॥१४१॥
सापि शुद्धमतिः कूर्मी कर्मणः कृष्णसङ्च्युता । ज्ञात्वा रागवशं जन्तोः संसारपरिवर्तनम् ॥१४२॥
कुमार्गसङ्गमुत्सृज्य जिनभक्तिपरायणा । सिंहीव शोभतेऽरण्ये भर्त्रा विरहिता सती ॥१४३॥
मासे च दशमे धीरा प्रसूता दारकं शुभम् । अचिन्तयच्च वीक्ष्यैनं ज्ञातकर्म विचेष्टिता ॥१४४॥
संपर्कोऽयमनर्थोऽसौ कथितो [4]यन्महर्षिभिः । तस्मान्मुक्त्वाधुना सङ्गं करोमि हितमात्मने ॥१४५॥
अनेनापि भवे [5]स्वस्मिन्यः कर्मविधिरर्जितः । फलं तस्य शिशुर्भोक्ता मनोज्ञमथवेतरत् ॥१४६॥
अरण्यान्यां समुद्रे वा स्थितं वारातिपञ्जरे । स्वयंकृतानि कर्माणि रक्षन्ति न परो जनः ॥१४७॥
यः [6]पुनः प्राप्तकालः स्याज्जीवन्यङ्गतोऽपि सः । ह्रियते मृत्युना जीवः स्वकर्मवशतां गतः ॥१४८॥
एवं विदिततत्त्वा सा बुद्धयातिनिरपेक्षया । बालकं विपिने त्यक्त्वा तापसी वीतमत्सरा ॥१४९॥
आनर्च्छालोकनगरे [9]क्षान्त्यार्यामिन्दुमालिनीम् । शरणं [10]भूरिसंवेगाद् [11]भूतार्या चारुचेष्टिता ॥१५०॥

और क्रोधसे अभिभूत हो रहा है उसका मन मोहसे आक्रान्त हो जाता है और जो करने योग्य तथा न करने योग्य कर्मोंके विषयमें मूढ़ है उसकी बुद्धि विवेकयुक्त नहीं हो सकती ॥१३७॥ जो मनुष्य इच्छानुसार चाहे जो कार्य करता हुआ अशुभ कर्मका उपार्जन करता है इस भयंकर संसार-सागरमें उसका भ्रमण कभी भी बन्द नहीं होता ॥१३८॥ ये सब दोष संसर्गसे ही उत्पन्न होते हैं ऐसा जानकर विद्वान् लोग अपने आपके द्वारा अपने आपका नियन्त्रण कर वैराग्यको धारण करते हैं ॥१३९॥ इस प्रकार परमार्थका उपदेश देनेवाले वचनोंसे सम्बोधा गया ब्रह्मरुचि ब्राह्मण मिथ्यात्वसे च्युत हो दैगम्बरी दीक्षाको प्राप्त हुआ और अपनी कूर्मी नामक स्त्रीसे निःस्पृह हो महावैराग्यसे युक्त होता हुआ गुरुके साथ सुखपूर्वक विहार करने लगा। उसका गुरुस्नेह ऐसा ही था ॥१४०-१४१॥ कूर्मीने भी जान लिया कि जीवका संसारमें जो परिभ्रमण होता है वह रागके वश ही होता है। ऐसा जानकर वह पापकार्यसे विरत हो शुद्धाचारमें निमग्न हो गयी ॥१४२॥ वह मिथ्यामार्गियोंका संसर्ग छोड़कर सदा जिन-भक्तिमें ही तत्पर रहने लगी और पतिसे रहित होनेपर भी निर्जन वनमें सिंहनीके समान सुशोभित होने लगी ॥१४३॥ उस धैर्यशालिनीने दसवें मासमें शुभ पुत्र उत्पन्न किया। पुत्रको देखकर कर्मोंकी चेष्टाको जाननेवाली कूर्मीने विचार किया ॥१४४॥ कि चूँकि महर्षियोंने इस सम्पर्कको अनर्थका कारण कहा था इसलिए मैं इस सम्पर्क अर्थात् पुत्रकी संगतिको छोड़कर आत्माका हित करती हूँ ॥१४५॥ इस शिशुने भी अपने भवान्तरमें जो कर्मोंकी विधि अर्जित की है उसका यह अच्छा या बुरा फल भोगेगा ॥१४६॥ घनघोर अटवी, समुद्र अथवा शत्रुओंके पिंजड़ेमें स्थित जन्तुकी अपने आपके द्वारा किये हुए कर्म ही रक्षा करते हैं अन्य लोग नहीं ॥१४७॥ जिसका काल आ जाता है ऐसा स्वकृत कर्मोंकी आधीनताको प्राप्त हुआ जीव माताकी गोदमें स्थित होता हुआ भी मृत्युके द्वारा हर लिया जाता है ॥१४८॥ इस प्रकार तत्त्वको जाननेवाली तापसीने निरपेक्ष बुद्धिसे उस बालकको वनमें छोड़ दिया। तदनन्तर

१. दैगम्बरीम् । २. क., ख., म. पुस्तकेषु 'मोहाद् ब्रह्मरुचिश्च्युतः' इति पाठ उपलभ्यते, न. पुस्तके तु प्राग् 'मोहाब्रह्मरुचिश्च्युतः' इत्येव पाठः स्वीकृतः पश्चात्केनापि टिप्पणकर्त्रा मोहात्—इति पाठः शोधितः । ३. संपदः म. । ४. यो महर्षिभिः क., ख., ब. । ५. भवेच्चास्मिन् म. । ६. भवेत्तरम् म. । भवेत्तरं क., ख., ब. । ७. स्वयं म. । ८. जन्मन्यङ्गतो- म. । ९. क्षान्त्यार्यामिन्दु क., ख., म. । १०. भूरिसंवेगा म. । ११. चारुचेष्टिता आर्या भूता = बभूवेति भावः ।

सत्कर्मा बालकश्चासौ रोदनादिविवर्जितः । व्रजद्भिर्नभसा दृष्टः सुरैर्जृम्भकसंज्ञकैः ॥१५१॥
गृहीत्वा च कृपायुक्तैरादरात् परिपालितः । अध्यापितश्च शास्त्राणि सरहस्यान्यशेषतः[1] ॥१५२॥
लेभे च लब्धवर्णः सन् विद्यामाकाशगामिनीम् । यौवनं च परं प्राप्तः स्थितिं चाणुव्रतीं[2] दृढाम्[3] ॥१५३॥
दृष्ट्वा च मातरं चिह्नैः प्रत्यभिज्ञानकारिणीम् । तत्प्रीत्योपेत्य निर्ग्रन्थं सम्यग्दर्शनतत्परः ॥१५४॥
प्राप्य क्षुल्लकचारित्रं जटामुकुटमुद्वहन् । अवद्वारसमो[4] जातो न गृहस्थो न संयतः ॥१५५॥
यश्च[5] कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्य्यात्यन्तवत्सलः । कलहप्रेक्षणाकाङ्क्षी गीतचुञ्चुः[6] प्रभाववान् ॥१५६॥
पूजितो राजलोकस्य परैरव्याहतायतिः । चचार रोदसी नित्यं कुतूहलगतेक्षणः ॥१५७॥
देवैः संवर्धितस्वाच्च देवसंनिभविभ्रमः । देवर्षिः प्रथितः सोऽभूद् विद्याविद्योतिताद्भुतः[7] ॥१५८॥
कथंचित्संचरंश्चासाविच्छया तां मखावनीम् । समीपगगनोद्देशस्थितोऽपश्यज्जनाकुलाम् ॥१५९॥
दृष्ट्वा च तान् पशून् बद्धान् समाश्लिष्टोऽनुकम्पया । अवतीर्णो मखक्षोणीं जल्पाकपथपण्डितः ॥१६०॥
उवाचेति मरुत्वन्तं किं प्रारब्धमिदं नृप । हिंसनं प्राणिवर्गस्य द्वारं दुर्गतिगामिनाम् ॥१६१॥
उवाचासावयं वेत्ति सर्वशास्त्रार्थकोविदः । ऋत्विग् मम यदेतेन कर्मणा प्राप्यते फलम् ॥१६२॥

मत्सर भावसे रहित होकर वह बड़ी शान्तिसे आलोक नगरमें इन्द्रमालिनी नामक आर्यिकाकी शरणमें गयी और उनके पास बहुत भारी संवेगसे उत्तम चेष्टाकी धारक आर्यिका हो गयी ॥१४९-१५०॥

अथानन्तर—आकाशमें जृम्भक नामक देव जाते थे सो उन्होंने रोदनादि क्रियासे रहित उस पुण्यात्मा बालकको देखा ॥१५१॥ उन दयालु देवोंने आदरसे ले जाकर उसका पालन किया और उसे रहस्यसहित समस्त शास्त्र पढ़ाये ॥१५२॥ विद्वान् होनेपर उसने आकाशगामिनी विद्या प्राप्त की और परम यौवन प्राप्त कर अत्यन्त दृढ़ अणुव्रत धारण किये ॥१५३॥ उसने चिह्नोंसे पहचाननेवाली माताके दर्शन किये और उसकी प्रीतिसे अपने पिता निर्ग्रन्थ गुरुके भी दर्शन कर सम्यग्दर्शन धारण किया ॥१५४॥ क्षुल्लकका चारित्र प्राप्त कर वह जटारूपी मुकुटको धारण करता हुआ अवद्वारके समान हो गया अर्थात् न गृहस्थ ही रहा और न मुनि ही किन्तु उन दोनोंके मध्यका हो गया ॥१५५॥ वह कन्दर्प कौत्कुच्य और मौखर्य्यसे अधिक स्नेह रखता था, कलह देखनेकी सदा उसे इच्छा बनी रहती थी, वह संगीतका प्रेमी और प्रभावशाली था ॥१५६॥ राजाओंके समूह उसका सम्मान करते थे, उसके आगमनमें कभी कोई रुकावट नहीं करते थे अर्थात् वह राजाओंके अन्तःपुर आदि सुरक्षित स्थानोंमें भी बिना किसी रुकावटके आ-जा सकता था। और निरन्तर कुतूहलोंपर दृष्टि डालता हुआ आकाश तथा पृथिवीमें भ्रमण करता रहता था ॥१५७॥ देवोंने उसका पालन-पोषण किया था इसलिए उसकी सब चेष्टाएँ देवोंके समान थीं। वह देवर्षि नामसे प्रसिद्ध था और विद्याओंसे प्रकाशमान् तथा आश्चर्यकारी था ॥१५८॥

अपनी इच्छासे संचार करता हुआ वह नारद किसी तरह राजपुर नगरकी यज्ञशालाके समीप पहुँचा और वहाँ पास ही आकाशमें खड़ा होकर मनुष्योंसे भरी हुई यज्ञभूमिको देखने लगा ॥१५९॥ वहाँ बँधे हुए पशुओंको देखकर वह दयासे युक्त हो यज्ञभूमिमें उतरा। वाद-विवाद करनेमें वह पण्डित था ही ॥१६०॥ उसने राजा मरुत्वान्से कहा कि हे राजन्! तुमने यह क्या प्रारम्भ कर रखा है? तुम्हारा यह प्राणिसमूहकी हिंसाका कार्य दुर्गतिमें जानेवालोंके लिए द्वारके समान है ॥१६१॥ इसके उत्तरमें राजाने कहा कि इस कार्यसे मुझे जो फल प्राप्त होगा वह समस्त

---

१. सरहस्याण्यशेषतः म., ब.। २. अणुव्रतानामियम् आणुव्रती ताम्। ३. वृढाम् म.। ४. न यतिर्न गृहस्थः किन्तु तयोर्मध्यगतः अवद्वारसमः। ५. कान्दर्प -ख., म.। ६. गीतेन वित्तो गीतचुञ्चुः 'तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ' इति चुञ्चुप्प्रत्ययः। गीतचञ्चुः म., क., ख., ब.। ७. महतञ्च म.।

आर्त्विजीनं ततोऽवादीदहो भाणवक त्वया । किमिदं प्रस्तुतं दृष्टं सर्वज्ञैर्दुःखकारणम् ॥१६३॥
संवर्तः कुपितोऽवोचदहोऽस्यन्तविमूढता । यदस्यन्तमसंबद्धं भाषसे हेतुवर्जितम् ॥१६४॥
भवतो यो मतः कोऽपि सर्वज्ञो रागवर्जितः । वैक्तृत्वाद्युपपत्तिभ्यो नासावेवं तथेतरः ॥१६५॥
अशुद्धैः कर्तृभिः प्रोक्तं वचनं स्यान्मलीमसम् । अतीदृशं च नो कञ्चिदुपपत्तेरभावतः ॥१६६॥
तस्मादकर्तृको वेदः प्रमाणं स्यादतीन्द्रिये । वर्णत्रयस्य यज्ञे च कर्म तेन प्रकीर्तितम् ॥१६७॥
अपूर्वाख्यो ध्रुवो धर्मो यागेन प्रकटीकृतः । प्रयच्छति फलं स्वर्गे मनोज्ञविषयोत्थितम् ॥१६८॥
अन्तर्वेदि पशूनां च प्रत्यवायाय नो वधः । शास्त्रेण चोदितो यस्माद्यथारागादिसेवनम् ॥१६९॥
पशूनां च विनाशार्थं कृता सृष्टिः स्वयंभुवा । तस्मात्तदर्थसर्गाणां को दोषो विनिपातने ॥१७०॥
इत्युक्ते नारदोऽवोचदवेहि निखिलं त्वया । भाषितं शृणु दुर्ग्रन्थभावनादूषितात्मना ॥१७१॥
यदि सर्वप्रकारोऽपि सर्वज्ञो नास्ति स त्रिधा । शब्दार्थबुद्धिभेदेन स्ववाचा स्थापितो हताः ॥१७२॥
अथ शब्दश्च बुद्धिश्च विद्यतेऽर्थस्तु नेष्यते । नैवमेतत्त्रयं दृष्टं यस्मात् सर्वगवादिषु ॥१७३॥
असत्यर्थे नितान्तं च कुरुते क्व पदं मतिः । शब्दो वा स तथाभूतो व्रजेद्वीवाव्यतिक्रमम् ॥१७४॥

शास्त्रोंका अर्थ जाननेमें निपुण यह याजक (पुरोहित) जानता है ॥१६२॥ नारदने याजकसे कहा कि अरे बालक ! तूने यह क्या प्रारम्भ कर रखा है ? सर्वज्ञ भगवान्‌ने तेरे इस कार्यको दुःखका कारण देखा है ॥१६३॥ नारदकी बात सुन संवर्त नामक याजकने कुपित होकर कहा कि अहो, तेरी बड़ी मूर्खता है जो इस तरह बिना किसी हेतुके अत्यन्त असम्बद्ध बात बोलता है ॥१६४॥ तुम्हारा जो यह मत है कि कोई पुरुष सर्वज्ञ वीतराग है सो वह सर्वज्ञ वक्ता आदि होनेसे दूसरे पुरुषके समान सर्वज्ञ वीतराग सिद्ध नहीं होता । क्योंकि जो सर्वज्ञ वीतराग है वह वक्ता नहीं हो सकता और जो वक्ता है वह सर्वज्ञ वीतराग नहीं हो सकता ॥१६५॥ अशुद्ध अर्थात् रागी-द्वेषी मनुष्योंके द्वारा कहे हुए वचन मलिन होते हैं और इनसे विलक्षण कोई सर्वज्ञ है नहीं, क्योंकि उसका साधक कोई प्रमाण नहीं पाया जाता । इसलिए अकर्तृक वेद ही तीन वर्णोंके लिए अतीन्द्रिय पदार्थके विषयमें प्रमाण है । उसीमें यज्ञ कर्मका कथन किया है । यज्ञके द्वारा अपूर्व नामक ध्रुवधर्म प्रकट होता है जो जीवको स्वर्गमें इष्ट विषयोंसे उत्पन्न फल प्रदान करता है ॥१६६-१६८॥ वेदीके मध्य पशुओंका जो वध होता है वह पापका कारण नहीं है क्योंकि उसका निरूपण शास्त्रमें किया गया है इसलिए निश्चिन्त होकर यज्ञ आदि करना चाहिए ॥१६९॥ ब्रह्माने पशुओंकी सृष्टि यज्ञके लिए ही की है इसलिए जो जिस कार्यके लिए रचे गये हैं उस कार्यके लिए उनका विघात करनेमें दोष नहीं है ॥१७०॥ संवर्तके इतना कह चुकनेपर नारदने कहा कि तूने सब मिथ्या कहा है । तेरी आत्मा मिथ्या शास्त्रोंकी भावनासे दूषित हो रही है इसीलिए तूने ऐसा कहा है सुन ॥१७१॥ तू कहता है कि सर्वज्ञ नहीं है सो यदि सर्व प्रकारके सर्वज्ञका अभाव है तो शब्दसर्वज्ञ, अर्थसर्वज्ञ और बुद्धिसर्वज्ञ इस प्रकार सर्वज्ञके तीन भेद तूने स्वयं अपने शब्दों द्वारा क्यों कहे ? स्ववचनसे ही तू बाधित होता है ॥१७२॥ यदि तू कहता है कि शब्दसर्वज्ञ और बुद्धिसर्वज्ञ तो है पर अर्थसर्वज्ञ कोई नहीं है तो यह कहना नहीं बनता क्योंकि गो आदि समस्त पदार्थोंमें शब्द, अर्थ और बुद्धि तीनों साथ ही साथ देखे जाते हैं ॥ ७३॥ यदि पदार्थका बिलकुल अभाव है तो उसके बिना बुद्धि और शब्द कहाँ टिकेंगे अर्थात् किसके आश्रयसे उस प्रकारकी बुद्धि होगी और उस प्रकार शब्द बोला जावेगा । और उस प्रकारका अर्थ बुद्धि और वचनके व्यतिक्रमको प्राप्त हो

---

१. होतारम् । आर्तिजीनं क., ख. । अर्तिजीनं म. । २. होता । संधर्ता म. । ३. यदकृत्वाद्युप (?) । ४. स्यादतीन्द्रियैः म. । ५. यज्ञार्थम् । ६. कुत्सितम् । ७. स्ववाचा स्थानतो हताः म., स्ववाचास्था हतोहता ख. ।

बुद्धेः सर्वज्ञ इत्येष व्यवहारो गुणागतः । मुख्यापेक्षो यथा चैत्रे सिंहशब्दप्रवर्तनम् ॥१७५॥
एतेन चानुमानेन प्रतिज्ञेयं विरोधिनी । अभावश्च समाख्यन्तं प्रसिद्धिं न क्वचिद् गतः ॥१७६॥
सर्वज्ञः सर्वदृक् क्वासौ यस्यैष महिमा भुवि । [1]दिवि ब्रह्मपुरे ह्येष [2]व्योम्नात्मा सुप्रतिष्ठितः ॥१७७॥
आगमेन[3] तवानेन विरोधं याति संगरः । अनेकान्ते च साध्येऽर्थे सर्वेसिद्धप्रसाधकम् ॥१७८॥
वक्तृत्वं सर्वथाऽयुक्तं न परं प्रतिषिध्यति । असिद्धं च भवेत् स्वस्य स्याद्वादेन समागतम् ॥१७९॥
[4]नासावभिमतोऽस्माकं वक्तृत्वाद्देवदत्तवत् । इत्याप्तोऽपि भवेत्सिद्धं विरुद्धं साधनं यतः ॥१८०॥
प्रजापत्यादिभिश्चायमुपदेशो न निश्चयः । [5]तेऽप्येवमिति चैतेभ्यो दोषवानागमो भवेत् ॥१८१॥
एकं यो वेद तेन स्याज्ज्ञातं सत्तात्मनाखिलम् । अतः साध्यविहीनोऽयं दृष्टान्तो गदितस्त्वया ॥१८२॥
अथ चैकान्तयुक्तोक्तिदृष्टान्तो वो यतस्ततः । साध्यसाधनवैकल्यमुदाहार्यं [6]सधर्मणि ॥१८३॥
श्रुत्वा वस्तुन्यदृष्टे च प्रमाणं वेदमागतम् । न समाश्रयणं युक्तं हेतोः सर्वज्ञदूषणे ॥१८४॥

जायेगा ॥१७४॥ बुद्धिमें जो सर्वज्ञका व्यवहार होता है वह गौण है और गौण व्यवहार सदा मुख्यकी अपेक्षा करके प्रवृत्त होता है। जिस प्रकार चैत्रके लिए सिंह कहना मुख्य सिंहकी अपेक्षा रखता है उसी प्रकार बुद्धिसर्वज्ञ वास्तविक सर्वज्ञकी अपेक्षा रखता है ॥१७५॥ इस प्रकार इस अनुमानसे तुम्हारी 'सर्वज्ञ नहीं है' इस प्रतिज्ञामें विरोध आता है तथा हमारे मतमें सर्वथा अभाव माना नहीं गया है ॥१७६॥ 'पृथिवीमें जिसकी महिमा व्याप्त है ऐसा यह सर्वदर्शी सर्वज्ञ कहाँ रहता है' इस प्रश्नके उत्तरमें कहा गया है कि दिव्य ब्रह्मपुरमें आकाशके समान निर्मल आत्मा सुप्रतिष्ठित है ॥१७७॥ तुम्हारे इस आगमसे भी प्रतिज्ञावाक्य विरोधको प्राप्त होता है। यदि सर्वथा सर्वज्ञका अभाव होता तो तुम्हारे आगममें उसके स्थान आदिकी चर्चा क्यों की जाती? और इस प्रकार साध्य अर्थके अनेकान्त हो जानेपर अर्थात् कथंचित् सिद्ध हो जानेपर वह हमारे लिए सिद्धसाधन है क्योंकि यही तो हम कहते हैं ॥१७८॥ सर्वज्ञके अभावमें तुमने जो वक्तृत्व हेतु दिया है सो वक्तृत्व तीन प्रकारका होता है—सर्वथाअयुक्तवक्तृत्व, युक्त वक्तृत्व और सामान्य वक्तृत्व। उनमें-से सर्वथाअयुक्तवक्तृत्व तो बनता नहीं, क्योंकि प्रतिवादीके प्रति वह सिद्ध नहीं है। यदि स्याद्वादसम्मत वक्तृत्व लेते हो तो तुम्हारा हेतु असिद्ध हो जाता है, क्योंकि इससे निर्दोष वक्ताकी सिद्धि हो जाती है। दूसरे आपके जैमिनि आदिक वेदार्थ वक्ता हम लोगोंको भी इष्ट नहीं हैं। वक्तृत्व हेतुसे देवदत्तके समान वे भी सदोष वक्ता सिद्ध होते हैं, इसलिए आपका यह वक्तृत्व हेतु विरुद्ध अर्थको सिद्ध करनेवाला होनेसे विरुद्ध हो जाता है ॥१७९-१८०॥ तथा प्रजापति आदिके द्वारा दिया गया यह उपदेश प्रमाण नहीं हो सकता, क्योंकि वे भी देवदत्तादिके समान रागी-द्वेषी ही हैं और ऐसे रागी-द्वेषी पुरुषोंसे जो आगम कहा जावेगा वह भी सदोष ही होगा अतः निर्दोष आगमका तुम्हारे यहाँ अभाव सिद्ध होता है ॥१८१॥ एकको जिसने जान लिया उसने सद्रूपसे अखिल पदार्थ जान लिये, अतः सर्वज्ञके अभावकी सिद्धिमें जो तुमने दूसरे पुरुषका दृष्टान्त दिया है उसे तुमने ही साध्यविकल कह दिया है, क्योंकि वह चूँकि एकको जानता है इसलिए वह सबको जानता है इसकी सिद्धि हो जाती है ॥१८२॥ दूसरे तुम्हारे मतसे सर्वथा युक्त वचन बोलनेवाला पुरुष दृष्टान्त रूपसे है नहीं, अतः आपको दृष्टान्तमें साध्यके अभावमें साधनका अभाव दिखलाना चाहिए। अर्थात् जिस प्रकार आप अन्वय दृष्टान्तमें अन्वयव्याप्ति करके घटित बतलाते हैं उसी प्रकार व्यतिरेक दृष्टान्तमें व्यतिरेकव्याप्ति भी घटित करके बतलानी चाहिए। तभी साध्यकी सिद्धि हो सकती है, अन्यथा नहीं ॥१८३॥ तथा आपके यहाँ सुनकर अदृष्ट वस्तुके

---

१. दिव्यब्रह्मपुरे म.। २. व्योमात्मा म.। ३. आगमेनानुमानेन ख.। ४. न शोचति ततोऽस्माकं ख.। ५. तथैवमिति ज.। ६. सधर्मिणि म., क., ख.।

वक्तृत्वस्य विरोधो वा सर्वज्ञत्वेन कः समम् । सति सर्वज्ञतायोगे वक्ता हि सुतरां भवेत् ॥१८५॥
यो न वेत्ति स किं ब्रूते वराको मतिदुर्विधः । व्यतिरेकाविनाभावौ भावाच्च स्याच्च साधनम् ॥१८६॥
स्वपक्षोऽयमविद्येयं तथा [1]रागादिकं मलम् । क्षीयतेऽलं क्वचिद्धेतोर्धातुहेममलं यथा ॥१८७॥
अस्मदादिमते [2]धर्मा अपेक्षितविपर्ययाः । धर्मत्वादुत्पलद्रव्ये यथा नीलविशेषणम् ॥१८८॥
कर्त्रभावश्च, वेदस्य युक्त्यभावाच्च युज्यते । कर्तृमत्त्वे तु संसाध्ये दृश्यवद्धेतुसंभवः ॥१८९॥
[3]युक्तिश्च, [4]कर्तृमान् वेदः पदवाक्यादिरूपतः । [5]विधेयप्रतिषेध्यार्थयुक्तत्वान्मैत्रकाव्यवत् ॥१९०॥
ब्रह्मप्रजापतिप्रायः पुरुषेभ्यश्च संभवः । श्रूयते वेदशास्त्रस्य नापनेतुं स शक्यते ॥१९१॥
स्यात्ते मतिर्न कर्तारः प्रवक्तारः श्रुतेः स्मृताः । तथा नाम प्रवक्तारो रागद्वेषादिभिर्युताः ॥१९२॥

विषयमें वेदमें प्रमाणता आती है, अतः वक्तृत्व हेतुके बलसे सर्वज्ञके विषयमें दूषण उपस्थित करनेमें इसका आश्रय करना उचित नहीं है अर्थात् वेदार्थका प्रत्यक्ष ज्ञान न होनेसे उसके बलसे सर्वज्ञके अभावकी सिद्धि नहीं की जा सकती ॥१८४॥ फिर थोड़ा विचार तो करो कि सर्वज्ञताके साथ वक्तृत्वका क्या विरोध है ? मैं तो कहता हूँ कि सर्वज्ञताका सुयोग मिलनेपर यह पुरुष अधिक वक्ता अपने आप हो जाता है ॥१८५॥ जो बेचारा स्वयं नहीं जानता है वह बुद्धिका दरिद्र दूसरोंके लिए क्या कह सकता है ? अर्थात् कुछ नहीं। इस प्रकार व्यतिरेक और अविनाभावका अभाव होनेसे वह साधक नहीं हो सकता ॥१८६॥ हमारा पक्ष तो यह है कि जिस प्रकार कि सुवर्णादिक धातुओंका मल किसीमें बिलकुल ही क्षीण हो जाता है उसी प्रकार यह अविद्या अर्थात् अज्ञान और रागादिक मल कारण पाकर किसी पुरुषमें अत्यन्त क्षीण हो जाते हैं। जिसमें क्षीण हो जाते हैं वही सर्वज्ञ कहलाने लगता है ॥१८७॥ हमारे सिद्धान्तसे पदार्थोंके जो धर्म अर्थात् विशेषण हैं वे अपनेसे विरुद्ध धर्मकी अपेक्षा अवश्य रखते हैं जिस प्रकार कि उत्पल आदिके लिए जो नील विशेषण दिया जाता है उससे यह सिद्ध होता है कि कोई उत्पल ऐसा भी होता है जो कि नील नहीं है। इसी प्रकार पुरुषके लिए जो आपके यहाँ असर्वज्ञ विशेषण है वह सिद्ध करता है कि कोई पुरुष ऐसा भी है जो असर्वज्ञ नहीं है अर्थात् सर्वज्ञ है। यथार्थमें विशेषणकी सार्थकता सम्भव और व्यभिचार रहते ही होती है जैसा कि अन्यत्र कहा है—'सम्भवव्यभिचाराभ्यां स्याद्विशेषणमर्थवत्। न शैत्येन न चौष्ण्येन वह्निः क्वापि विशिष्यते ॥' अर्थात् सम्भव और व्यभिचारके कारण ही विशेषण सार्थक होता है। अग्निके लिए कहीं भी शीत विशेषण नहीं दिया जाता क्योंकि वह सम्भव नहीं है इसी प्रकार कहीं भी उष्ण विशेषण नहीं दिया जाता क्योंकि अग्नि सर्वत्र उष्ण ही होती है। इसी प्रकार तुम्हारे सिद्धान्तानुसार यदि पुरुष असर्वज्ञ ही होता तो उसके लिए असर्वज्ञ विशेषण देना निरर्थक था। उसकी सार्थकता तभी है जब किसी पुरुषको सर्वज्ञ माना जावे ॥१८८॥ 'वेदका कोई कर्ता नहीं है' यह बात युक्तिके अभावमें सिद्ध नहीं होती अर्थात् अकर्तृत्वकी संगति नहीं बैठती जब कि 'वेदका कर्ता है' इस विषयमें अनेक हेतु सम्भव हैं। जिस प्रकार दृश्यमान घट-पटादि पदार्थ सहेतुक होते हैं उसी प्रकार 'वेद सकर्ता है' इस विषयमें भी अनेक हेतु सम्भव हैं ॥१८९॥ चूँकि वेद पद और वाक्यादि रूप है तथा विधेय और प्रतिषेध्य अर्थसे युक्त है अतः कर्तृमान् है, किसीके द्वारा बनाया गया है। जिस प्रकार मैत्रका काव्य पदवाक्य रूप होनेसे सकर्तृक है उसी प्रकार वेद भी पदवाक्य रूप होनेसे सकर्तृक है ॥१९०॥ इसके साथ लोकमें यह सुना जाता है कि वेदकी उत्पत्ति ब्रह्मा तथा प्रजापति आदि पुरुषोंसे हुई है सो इस प्रसिद्धिका दूर किया जाना शक्य नहीं है ॥१९१॥ सम्भवतः तुम्हारा यह विचार हो कि ब्रह्मा आदि वेदके

---

१. रागादिकं म.। २. धर्मा अपेक्षित विपर्ययः म., ख., ब.। ३. युक्तेश्च म.। युक्तश्च ख.। ४. कृत्रिमो ख.। ५. विधेयप्रतिषेधार्थ म.।

सुसर्वज्ञाश्च किं कुर्युरन्यथा ग्रन्थदेशनम्। अर्थस्य [1]वान्यथाख्यानं प्रमाणं [2]तन्मतं यतः ॥१९३॥
चातुर्विध्यं च यज्जात्या [3]तत्र युक्तमहेतुकम्। [4]ज्ञानं देहविशेषस्य [5]न च श्लोकाग्निसंभवात् ॥१९४॥
दृश्यते जातिभेदस्तु यत्र तत्रास्य संभवः। मनुष्यहस्तिवालेयगोवाजिप्रभृतौ यथा ॥१९५॥
न च जात्यन्तरत्वेन पुरुषेण स्त्रियां क्वचित्। क्रियते गर्भसंभूतिर्विप्रादीनां तु जायते ॥१९६॥
अश्वायां रासभेनास्ति संभवोऽस्येति चेन्न सः। नितान्तमन्यजातित्वं [6]शफादितनुसाम्यतः ॥१९७॥
यदि वा तद्वदेव स्याद् द्वयोर्विसदृशः सुतः। नात्र दृष्टं तथा तस्माद् गुणैर्वर्णव्यवस्थितिः ॥१९८॥
मुखादिसंभवश्चापि ब्राह्मणो योऽभिधीयते। निर्हेतुः स्वगृहेऽसौ शोभते नाधमाणकः ॥१९९॥
ऋषिशृङ्गादिकानां च मानवानां प्रकीर्त्यते। ब्राह्मण्यं गुणयोगेन न तु तद्योनिसंभवात् ॥२००॥
बृहत्त्वाद् भगवान् ब्रह्मा [7]नाभेयस्तस्य ये जनाः। भक्ताः सन्तस्तु पश्यन्ति ब्राह्मणास्ते प्रकीर्तिताः ॥२०१॥
क्षत्रियास्तु क्षतत्राणाद् वैश्याः शिल्पप्रवेशनात्। श्रुतात् सदागमाद् ये तु द्रुतास्ते शूद्रसंज्ञिताः ॥२०२॥

कर्ता नहीं हैं किन्तु प्रवक्ता अर्थात् प्रवचन करनेवाले हैं तो वे प्रवचनकर्ता आपके मतसे राग-द्वेषादिसे युक्त ही ठहरेंगे ॥१९२॥ और यदि सर्वज्ञ हैं तो वे ग्रन्थका अन्यथा उपदेश कैसे देंगे और अन्यथा व्याख्यान कैसे करेंगे, क्योंकि सर्वज्ञ होनेसे उनका मत प्रमाण है। इस प्रकार विचार करनेपर सर्वज्ञकी ही सिद्धि होती है ॥१९३॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके भेदसे जो जातिके चार भेद हैं वे बिना हेतुके युक्तिसंगत नहीं हैं। यदि कहो कि वेदवाक्य और अग्निके संस्कारसे दूसरा जन्म होनेके कारण उनके देहविशेषका ज्ञान होता है सो यह कहना भी युक्त नहीं है ॥१९४॥ हाँ, जहाँ-जहाँ जाति-भेद देखा जाता है वहाँ-वहाँ शरीरमें विशेषता अवश्य पायी जाती है जिस प्रकार कि मनुष्य, हाथी, गधा, गाय, घोड़ा आदिमें पायी जाती है ॥१९५॥ इसके सिवाय दूसरी बात यह है कि अन्य जातीय पुरुषके द्वारा अन्य जातीय स्त्रीमें गर्भोत्पत्ति नहीं देखी जाती परन्तु ब्राह्मणादिकमें देखी जाती है। इससे सिद्ध है कि ब्राह्मणादिकमें जातिवैचित्र्य नहीं है ॥१९६॥ इसके उत्तरमें यदि तुम कहो कि गधेके द्वारा घोड़ीमें गर्भोत्पत्ति देखी जाती है, इसलिए उक्त युक्ति ठीक नहीं है ? तो ऐसा कहना उचित नहीं है क्योंकि गधा और घोड़ा दोनों अत्यन्त भिन्न जातीय नहीं है क्योंकि एक खुर आदिकी अपेक्षा उनके शरीरमें समानता पायी जाती है ॥१९७॥ अथवा दोनोंमें भिन्नजातीयता ही है यदि ऐसा पक्ष है तो दोनोंकी जो सन्तान होगी वह विसदृश ही होगी जैसे कि गधा और घोड़ीके समागमसे जो सन्तान होगी वह न घोड़ा ही कहलावेगी और न गधा ही। किन्तु खच्चर नामकी धारक होगी किन्तु इस प्रकार सन्तानकी विसदृशता ब्राह्मणादिमें नहीं देखी जाती इससे सिद्ध होता है कि वर्णव्यवस्था गुणोंके आधीन है जातिके आधीन नहीं है ॥१९८॥ इसके अतिरिक्त जो यह कहा जाता है कि ब्राह्मणकी उत्पत्ति ब्रह्माके मुखसे हुई है, क्षत्रियकी उत्पत्ति भुजासे हुई है, वैश्यकी उत्पत्ति जंघासे हुई है और शूद्रकी उत्पत्ति पैरसे हुई है सो ऐसा हेतुहीन कथन करनेवाला अपने घरमें ही शोभा देता है सर्वत्र नहीं ॥१९९॥ तथा ऋषिशृंग आदि मानवोंमें जो ब्राह्मणता कही जाती है वह गुणोंके संयोगसे कही जाती है ब्राह्मण योनिमें उत्पन्न होनेसे नहीं कही जाती ॥२००॥ वास्तवमें समस्त गुणोंके वृद्धिगत होनेके कारण भगवान् ऋषभदेव ब्रह्मा कहलाते हैं और जो सत्पुरुष उनके भक्त हैं वे ब्राह्मण कहे जाते हैं ॥२०१॥ क्षत अर्थात् विनाशसे त्राण अर्थात् रक्षा करनेके कारण क्षत्रिय कहलाते हैं, शिल्प अर्थात्

---

१. चान्यथाख्यानं ख.। अर्थस्येवान्यथाख्यानं ब.। २. तन्मयं क., ब.। ३. तत्र म.। ४. ज्ञानं देह—म. 'ज' ज्ञानदेहस्य शेषस्य न च—ख.। ५. न श्लोकस्याग्निसंभवात् क.। ६. जातिस्थशफादि म.। ७. वृषभजिनेन्द्रः।

न चातिगर्हितः कश्चिद्गुणाः कल्याणकारणम् । श्वपाकमपि चाचार्यं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥२०३॥
विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि । शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥२०४॥
चातुर्वर्ण्यं यथान्यच्च चाण्डालादिविशेषणम् । सर्वमाचारभेदेन प्रसिद्धिं भुवने गतम् ॥२०५॥
अपूर्वाख्यश्च धर्मो न व्यज्यते यागकर्मणा । नित्यत्वाद् व्योमवद् व्यक्तेरनित्यो वा घटादिवत् ॥२०६॥
फलं रूपपरिच्छेदः प्रदीपव्यक्तयनन्तरम् । दृष्टं यथेह चापूर्वव्यक्तिकालं फलं भवेत् ॥२०७॥
शास्त्रेण चोदितत्वाच्च वेदीमध्ये पशोर्वधः । प्रत्यवायाय नेत्येतदयुक्तं येन तच्छृणु ॥२०८॥
वेदागमस्य शास्त्रत्वमसिद्धं शास्त्रमुच्यते । तद्धि यन्मातृवच्छास्ति सर्वस्मै जगते हितम् ॥२०९॥
प्रायश्चित्तं च निर्दोषे वक्तुं कर्मणि नोचितम् । अत्र तूक्तं ततो दुष्टं तच्चेदम[1]भिधीयते ॥२१०॥
राजानं हन्त्यसौ सोमं वीरं [2]वा नाकवासिनाम् । सोमेन यो यजेत्तस्य दक्षिणा [3]द्वादशं शतम् ॥२११॥
शोधयत्यत्र देवानां शतं वीरं प्रतर्पणम् । प्राणानां दश कुर्वन्ति यैकादश्यात्मनस्तु [4]सा ॥२१२॥
द्वादशी दक्षिणा या तु दक्षिणा सैव केवलम् । इतरासां च दोषाणां व्यापारो विनिवर्तने ॥२१३॥

वस्तुनिर्माण या व्यापारमें प्रवेश करनेसे लोग वैश्य कहे जाते हैं और श्रुत अर्थात् प्रशस्त आगमसे जो दूर रहते हैं वे शूद्र कहलाते हैं ॥२०२॥ कोई भी जाति निन्दनीय नहीं है, गुण ही कल्याण करनेवाले हैं। यही कारण है कि व्रत धारण करनेवाले चाण्डालको भी गणधरादि देव ब्राह्मण कहते हैं ॥२०३॥

विद्या और विनयसे सम्पन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता और चाण्डाल आदिके विषयमें जो समदर्शी हैं वे पण्डित कहलाते हैं अथवा जो पण्डितजन हैं वे इन सबमें समदर्शी होते हैं ॥२०४॥ इस प्रकार ब्राह्मणादिक चार वर्ण और चाण्डाल आदि विशेषणोंका जितना अन्य वर्णन है वह सब आचारके भेदसे ही संसारमें प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ है ॥२०५॥

इसके पूर्व तुमने कहा था कि यज्ञसे अपूर्व अथवा अदृष्ट नामका धर्म व्यक्त होता है सो यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि अपूर्व धर्म तो आकाशके समान नित्य है वह कैसे व्यक्त होगा ? और यदि व्यक्त होता ही है तो फिर वह नित्य न रहकर घटादिके समान अनित्य होगा ॥२०६॥ जिस प्रकार दीपकके व्यक्त होनेके बाद रूपका ज्ञान उसका फल होता है उसी प्रकार स्वर्गादिकी प्राप्ति-रूपी फल भी अपूर्वधर्मके व्यक्त होनेके बाद ही होना चाहिए पर ऐसा नहीं है ॥२०७॥

तुमने कहा है कि वेदीके मध्यमें पशुओंका जो वध होता है वह शास्त्र निरूपित होनेसे पापका कारण नहीं है सो ऐसा कहना अयुक्त है उसका कारण सुनो ॥२०८॥ सर्वप्रथम तो वेद शास्त्र हैं यही बात असिद्ध है क्योंकि शास्त्र वह कहलाता है जो माताके समान समस्त संसारके लिए हितका उपदेश दे ॥२०९॥ जो कार्य निर्दोष होता है उसमें प्रायश्चित्तका निरूपण करना उचित नहीं है परन्तु इस याज्ञिक हिंसामें प्रायश्चित्त कहा गया है इसलिए वह सदोष है। उस प्रायश्चित्तका कुछ वर्णन यहाँ किया जाता है ॥२१०॥ जो सोमयज्ञमें सोम अर्थात् चन्द्रमाके प्रतीक रूप सोम लतासे यज्ञ करता है जिसका तात्पर्य होता है कि वह देवोंके वीर सोम राजाका हनन करता है उसके इस यज्ञकी दक्षिणा एक सौ बारह गौ है ॥२११॥ इन एक सौ बारह दक्षिणाओंमें-से सौ दक्षिणाएँ देवोंके वीर सोमका शोधन करती हैं, दस दक्षिणाएँ प्राणोंका तर्पण करती हैं, ग्यारहवीं दक्षिणा आत्माके लिए है और जो बारहवीं दक्षिणा है वह केवल दक्षिणा ही

---

१. -मविधीयते म. । २. 'अस्माक ् सोमो राजा' इति श्रुत्या विशेषणविशेष्यभावः । ३. द्वादशा क. । 'गवां शतं द्वादशं वाऽतिक्रामति' का. श्रौ. १०।२।१० । 'यथारम्भं द्वादश द्वादशभ्येभ्यः षट् षट् द्वितीयेभ्यश्चतस्रश्चतस्रस्तृतीयेभ्यस्तिस्रस्तिस्र इतरेभ्यः ।' कात्यायनश्रौतसूत्र, १०।२।२४ । ४. शुभा क. ।

[1]तथा च यत्पशुर्मायुं[2]मकृतोरोदवाहना (?) । पादाभ्यामेनसस्तस्माद्विश्वस्मान्मुञ्च[3]त्वमलः[4] ॥२१४॥
एवमादि च यद्भेव गदितं दोषनोदनम् । आगमेन ततोऽन्येन व्यभिचारोऽत्र दृश्यते ॥२१५॥
पशोर्मध्ये वधो यो वः प्रत्यवायाय कल्पते । तस्य दुःखनिमित्तत्वाद् यथा व्याधकृतो वधः ॥२१६॥
स्वयंभुवा च लोकस्य सर्गो नेयति सत्यताम् । विचार्यमाणमेतद्धि पुराणतृणदुर्बलम् ॥२१७॥
कृतार्थो यद्यसौ सृष्टौ तस्यां किं स्यात्प्रयोजनम् । क्रीडेति चेत्कृतार्थोऽसौ न भवत्यभंको यथा ॥२१८॥
साक्षादेव रतिं कस्माच्च सृजेत् स विनेतरैः । सृजतो वास्य के भावा भजेयुः करणादिताम् ॥२१९॥
किंचोपकारिणः केचित् केचिद्वास्योपकारिणः । सुखिनः कुरुते कांश्चिद् येन कांश्चिच्च दुःखिनः ॥२२०॥
अथ [5]नैव कृतार्थोऽसावेवं तर्हि स नेश्वरः । कर्मणां परतन्त्रत्वाद् यथा कश्चिद् भवद्विधः ॥२२१॥
सुबुद्धिनरयत्नोत्थसंस्थानाः कमलादयः । विशिष्टाकारयुक्तत्वाद् रथवेश्मादयो यथा ॥२२२॥
यद्बुद्धिपूर्वका एते भविष्यन्ति स ईश्वरः । इत्येतच्च न सम्यक्त्वं व्रजत्येकान्तवादिनः ॥२२३॥

है। अन्य दक्षिणाओंका व्यापार तो दोषोंके निवारण करनेमें होता है ॥२१२–२१३॥ तथा पशु-यज्ञमें यदि पशु यज्ञके समय शब्द करे या अपने अगले दोनों पैरोंसे छाती पीटे तो हे अनल! तुम मुझे इससे होनेवाले समस्त दोषसे मुक्त करो ॥२१४॥ इत्यादि रूपसे जो दोषोंके बहुत-से प्रायश्चित्त कहे गये हैं उनके विषयमें अन्य आगमसे प्रकृतमें विरोध दिखाई देता है ॥२१५॥

जिस प्रकार व्याधके द्वारा किया हुआ वध दुःखका कारण होनेसे पापबन्धका निमित्त है उसी प्रकार वेदीके बीचमें पशुका जो वध होता है वह भी उसे दुःखका कारण होनेसे पापबन्धका ही निमित्त है ॥२१६॥

'ब्रह्माके द्वारा लोककी सृष्टि हुई है' यह कहना भी सत्य नहीं है क्योंकि विचार करनेपर ऐसा कथन जीर्णतृणके समान निस्सार जान पड़ता है ॥२१७॥ हम पूछते हैं कि जब ब्रह्मा कृतकृत्य है तो उसे सृष्टिकी रचना करनेसे क्या प्रयोजन है? कहो कि क्रीड़ावश वह सृष्टिकी रचना करता है तो फिर कृतकृत्य कहाँ रहा? जिस प्रकार क्रीड़ाका अभिलाषी बालक अकृत-कृत्य है उसी प्रकार क्रीड़ाका अभिलाषी ब्रह्मा भी अकृतकृत्य कहलायेगा ॥२१८॥ फिर ब्रह्मा अन्य पदार्थोंके बिना स्वयं ही रतिको क्यों नहीं प्राप्त हो जाता? जिससे सृष्टि निर्माणकी कल्पना करनी पड़ी। इसके सिवाय एक प्रश्न यह भी उठता है कि जब ब्रह्मा सृष्टिकी रचना करता है तो इसके सहायक करण, अधिकरण आदि कौन-से पदार्थ हैं? ॥२१९॥ फिर संसारमें सब लोग एक सदृश नहीं हैं, कोई सुखी देखे जाते हैं और कोई दुःखी देखे जाते हैं। इससे यह मानना पड़ेगा कि कोई लोग तो ब्रह्माके उपकारी हैं और कोई अपकारी हैं। जो उपकारी हैं उन्हें यह सुखी करता है और कोई अपकारी हैं उन्हें यह दुःखी करता है ॥२२०॥

इस सब विसंवादसे बचनेके लिए यदि यह माना जाये कि ईश्वर कृतकृत्य नहीं है तो वह कर्मोंके परतन्त्र होनेके कारण ईश्वर नहीं कहलावेगा जिस प्रकार कि आप कर्मोंके परतन्त्र होनेके कारण ईश्वर नहीं हैं ॥२२१॥ जिस प्रकार रथ, मकान आदि पदार्थ विशिष्ट आकारसे सहित होनेके कारण किसी बुद्धिमान् मनुष्यके प्रयत्नसे निर्मित माने जाते हैं उसी प्रकार कमल आदि पदार्थ भी विशिष्ट आकारसे युक्त होनेके कारण किसी बुद्धिमान् मनुष्यके प्रयत्नसे रचित होना चाहिए। "जिसकी बुद्धिसे इन सबकी रचना होती है वही ईश्वर है" इस अनुमानसे सृष्टिकर्ता ईश्वरकी सिद्धि होती है सो यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि एकान्तवादीका उक्त अनुमान समीचीनताको प्राप्त

---

१. तथापि ख.। २. माय म.। ३. मुञ्चातनलः म.। ४. नल क.। 'यत्पशुर्मायुमकृतोरो वा पद्भिराहते। अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान् मुञ्चत्व ँहसः। (कात्यायन श्रौतसूत्र २५।९।१३)। ५. च नैव ख.।

सुखद्विभरयत्नोत्थाः सर्वथा न रथादयः । व्यवस्थितं यतस्तत्र द्रव्यं चैवोपजन्यते ॥२२४॥
क्लेशादियुक्तता चास्य व्यश्नुते तक्षकादिवत् । नामकर्म च यैवं स्यादीश्वरो यस्त्वयेष्यते ॥२२५॥
विशिष्टाकारसंबद्धमीश्वरस्य पुनर्वपुः । ईश्वरान्तरयत्नोत्थमिष्यतेऽतो न निश्चयः ॥२२६॥
अपरेश्वरयत्नोत्थमथैतदपि कल्प्यते । सत्येवमनवस्था स्याच्च स्वस्याभिसर्जनम् ॥२२७॥
शरीरमथ नैवास्य विद्यते यैष सर्जकः । अमूर्तत्वाद् यथाकाशं तक्षवद् वा सविग्रहः ॥२२८॥
यजनार्थं च सृष्टानां पशूनां वाहनादिकम् । क्रियमाणं विरुद्ध्येत तद्धि स्तेयं प्रकल्प्यते ॥२२९॥
ततः कर्मभिरेवेदं रागादिभिरुपार्जितैः । वैचित्र्यं व्यश्नुते विश्वमनादौ भवसागरे ॥२३०॥
कर्म किं पूर्वमाहोस्विच्छरीरमिति नेदृशः । युक्तः प्रश्नो भवेऽनादौ बीजपादपयोर्यथा ॥२३१॥
अन्तोऽपि तर्हि न स्याच्चेत्तन्न बीजविनाशतः । दृष्टा हि पादपोद्भूतेरसंभूतिरिदं तथा ॥२३२॥
तस्माद् द्विष्टेन केनापि प्राणिना पापकर्मणा । कुग्रन्थरचनां कृत्वा यज्ञकर्म प्रवर्तितम् ॥२३३॥
संप्राप्तोऽसि कुले जन्म बुद्धिमानसि मानवः । निवर्तस्व ततः पापादेतस्माद् व्याधकर्मणः ॥२३४॥
यदि प्राणिवधः स्वर्गसंप्राप्तौ कारणं भवेत् । ततः क्षुल्लो भवेदेष लोकोऽल्पैरेव वासरैः ॥२३५॥

नहीं है ॥२२२-२२३॥ विचार करनेपर जान पड़ता है कि रथ आदि जितने पदार्थ हैं वे सब एकान्तसे बुद्धिमान् मनुष्यके प्रयत्नसे ही उत्पन्न होते हैं ऐसी बात नहीं है। क्योंकि रथ आदि वस्तुओंमें जो लकड़ी आदि पदार्थ अवस्थित है वही रथादिरूप उत्पन्न होता है ॥२२४॥ जिस प्रकार रथ आदिके बनानेमें बढ़ई आदिको क्लेश उठाना पड़ता है उसी प्रकार ईश्वरको भी सृष्टिके बनानेमें क्लेश उठाना पड़ता होगा। इस तरह उसके सुखी होनेमें बाधा प्रतीत होती है। यथार्थमें तुम जिसे ईश्वर कहते हो वह नाम कर्म है ॥२२५॥ एक प्रश्न यह भी उठता है कि ईश्वर सशरीर है या अशरीर ? यदि अशरीर है तो उससे मूर्तिक पदार्थोंका निर्माण सम्भव नहीं है। यदि सशरीर है तो उसका वह विशिष्टाकारवाला शरीर किसके द्वारा रचा गया है ? यदि स्वयं रचा गया है तो फिर दूसरे पदार्थ स्वयं क्यों नहीं रचे जाते ? यदि यह माना जाय कि वह दूसरे ईश्वरके यत्नसे रचा गया है तो फिर यह प्रश्न उपस्थित होगा कि उस दूसरे ईश्वरका शरीर किसने रचा ? इस तरह अनवस्था दोष उत्पन्न होगा। इस विसंवादसे बचनेके लिए यदि यह माना जाये कि ईश्वरके शरीर है ही नहीं तो फिर अमूर्तिक होनेसे वह सृष्टिका रचयिता कैसे होगा ? जिस प्रकार अमूर्तिक होनेसे आकाश सृष्टिका कर्ता नहीं है उसी प्रकार अमूर्तिक होनेसे ईश्वर भी सृष्टिका कर्ता नहीं हो सकता। यदि बढ़ईके समान ईश्वरको कर्ता माना जाये तो वह सशरीर होगा न कि अशरीर ॥२२६-२२८॥ और तुमने जो कहा कि ब्रह्माने पशुओंकी सृष्टि यज्ञके लिए ही की है सो यदि यह सत्य है तो फिर पशुओंसे बोझा ढोना आदि काम क्यों लिया जाता ? इसमें विरोध आता है विरोध ही नहीं यह तो चोरी कहलावेगी ॥२२९॥ इससे यह सिद्ध होता है कि रागादि भावोंसे उपार्जित कर्मोंके कारण ही समस्त लोग अनादि संसारसागरमें विचित्र दशाका अनुभव करते हैं ॥२३०॥ कर्म पहले होता है कि शरीर पहले होता है ? ऐसा प्रश्न करना ठीक नहीं है क्योंकि इन दोनोंका सम्बन्ध बीज और वृक्षके समान अनादि कालसे चला आ रहा है ॥२३१॥ कर्म और शरीरका सम्बन्ध अनादि है इसलिए इसका कभी अन्त नहीं होगा ऐसा कहना भी उचित नहीं है क्योंकि जिस प्रकार बीजके नष्ट हो जानेसे वृक्षकी उत्पत्तिका अभाव देखा जाता है उसी प्रकार कर्मके नष्ट होनेसे शरीरका अभाव भी देखा जाता है ॥२३२॥ इसलिए पाप कार्य करनेवाले किसी द्वेषी पुरुषने खोटे शास्त्रकी रचना कर इस यज्ञ कार्यको प्रचलित किया है ॥२३३॥ तुम उच्च कुलमें उत्पन्न हुए हो और बुद्धिमान् मनुष्य हो इसलिए शिकारियोंके कार्यके समान इस पाप कार्यसे विरत होओ ॥२३४॥ यदि प्राणियोंका वध स्वर्गप्राप्तिका कारण होता तो थोड़े ही दिनोंमें

शासेन वापि किं तेन च्युतिर्यस्मात् पुनर्भवेत् । दुःखेन च समासक्तं सुखं स्वल्पं च बाह्यजम् ॥२३६॥
यदि प्राणिवधाद् ब्रह्मलोकं गच्छन्ति मानवाः । तस्यानुमननात् कस्मात् पतितो नरके वसुः ॥२३७॥
उत्तिष्ठ भो वसो स्वर्गं व्रजेति कृतनिस्वनैः । सूत्रकण्ठैर्दुराचारैः स्वपराशुभकारिभिः ॥२३८॥
स्वपक्षानुमतिप्रीतैरुद्घुष्याप्यापि यद्द्विजैः । आहुतिः क्षिप्यते वह्नौ नितान्तं क्रूरमानसैः ॥२३९॥
पिष्टेनापि पशुं कृत्वा निघ्नन्तो नरकं गताः । संकल्पादशुभात् कैव कथेतरपशोर्वधे ॥२४०॥
यज्ञकल्पनया नैव किंचिदस्ति प्रयोजनम् । अथापि स्यात्तथाप्येवं न कर्तव्या बुधोत्तमैः ॥२४१॥
यजमानो भवेदात्मा शरीरं तु वितर्दिका । पुरोडाशस्तु संतोषः परित्यागस्तथा हविः ॥२४२॥
मूर्धजा एव दर्भाणि दक्षिणा प्राणिरक्षणम् । प्राणायामः सितध्यानं यस्य सिद्धपदं फलम् ॥२४३॥
सत्यं यूपस्तपो वह्निर्मानसं चपलं पशुः । समिधश्च हृषीकाणि धर्मयज्ञोऽयमुच्यते ॥२४४॥
यज्ञेन क्रियते तृप्तिर्देवानामिति चेन्मतिः । तत्र तेषां यतोऽस्त्येव दिव्यमन्नं यथेप्सितम् ॥२४५॥
स्पर्शतो रसतो रूपाद्गन्धाद्येषां मनोहरम् । अन्नमस्ति किमेतेन तेषां मांसादिवस्तुना ॥२४६॥
शुक्रशोणितसंभूतममेध्यं कृमिसंभवम् । दुर्गन्धदर्शनं मांसं भक्षयन्ति कथं सुराः ॥२४७॥
त्रयोऽग्नयो वपुष्येव ज्ञानदर्शनजाठराः । दक्षिणागन्वादिविज्ञानं कार्यं तेष्वेव सूरिभिः ॥२४८॥

यह संसार शून्य हो जाता ॥२३५॥ और फिर उस स्वर्गके प्राप्त होनेसे भी क्या लाभ है ? जिससे फिर च्युत होना पड़ता है। यथार्थमें बाह्य पदार्थोंसे जो सुख उत्पन्न होता है वह दुःखसे मिला हुआ तथा परिमाणमें थोड़ा होता है ॥२३६॥ यदि प्राणियोंका वध करनेसे मनुष्य स्वर्ग जाते हैं तो फिर प्राणिवधकी अनुमति मात्रसे वसु नरकमें क्यों पड़ा ? ॥२३७॥ वसु नरक गया है इसमें प्रमाण यह है कि दुराचारी, निज और परका अकल्याण करनेवाले दुष्टचेता ब्राह्मण, अपने पक्षके समर्थनसे प्रसन्न हो आज भी 'हे वसो ! उठो, स्वर्ग जाओ' इस प्रकार जोर-जोरसे चिल्लाते हुए अग्निमें आहुति डालते हैं। यदि वसु नरक नहीं गया होता तो उक्त मन्त्र द्वारा आहुति देनेकी क्या आवश्यकता थी ? ॥२३८-२३९॥ चूर्णके द्वारा पशु बनाकर उसका घात करनेवाले लोग भी नरक गये हैं फिर अशुभ संकल्पसे साक्षात् अन्य पशुके वध करनेवाले लोगोंकी तो कथा ही क्या है ? ॥२४०॥

प्रथम तो यज्ञकी कल्पनासे कोई प्रयोजन नहीं है अर्थात् यज्ञकी कल्पना करना ही व्यर्थ है दूसरे यदि कल्पना करना ही है तो विद्वानोंको इस प्रकारके हिंसायज्ञकी कल्पना नहीं करनी चाहिए ॥२४१॥ उन्हें धर्मयज्ञ ही करना चाहिए। आत्मा यजमान है, शरीर वेदी है, सन्तोष साकल्य है, त्याग होम है, मस्तकके बाल कुशा हैं, प्राणियोंकी रक्षा दक्षिणा है, शुक्लध्यान प्राणायाम है, सिद्धपदकी प्राप्ति होना फल है, सत्य बोलना स्तम्भ है, तप अग्नि है, चंचल मन पशु है और इन्द्रियाँ समिधाएँ हैं। इन सबसे यज्ञ करना चाहिए यही धर्मयज्ञ कहलाता है ॥२४२-२४४॥

यज्ञसे देवोंकी तृप्ति होती है यदि ऐसा तुम्हारा ख्याल है तो यह ठीक नहीं है क्योंकि देवोंको तो मनचाहा दिव्य अन्न उपलब्ध है ॥२४५॥ जिन्हें स्पर्श, रस, गन्ध और रूपकी अपेक्षा मनोहर आहार प्राप्त होता है उन्हें इस मांसादि घृणित वस्तुसे क्या प्रयोजन है ? ॥२४६॥ जो रज और वीर्यसे उत्पन्न है, अपवित्र है, कीड़ोंका उत्पत्तिस्थान है तथा जिसकी गन्ध और रूप दोनों ही अत्यन्त कुत्सित हैं ऐसे मांसको देव लोग किस प्रकार खाते हैं अर्थात् किसी प्रकार नहीं खाते ॥२४७॥ ज्ञानाग्नि, दर्शनाग्नि और जठराग्नि इस तरह तीन अग्नियाँ शरीरमें सदा विद्यमान रहती हैं; विद्वानोंको उन्हींमें दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि और आहवनीयाग्नि इन तीन

१. -मतप्रीतै म. । २. शरीरस्तु वितर्दिकः म. । ३. यूपस्तती ब. । ४. तत्र म. । ५. यथेप्सितम् म. ।

सुरा यदि हुतेनाग्नौ तृप्तिं यान्ति बुभुक्षिताः । [1]स्वतो नाम ततो देवास्तृप्तिं किमिति नागताः ॥२४९॥
ब्रह्मलोकात्किलागत्य दुर्गन्धं योनिजं वपुः । चखाद ध्वाङ्क्षगोमायुसारमेयसमो भवेत् ॥२५०॥
लालाक्लिन्ने मुखे भिक्षं कथं कायं द्विजातिभिः । निष्ठ्यूतांकुरिते गर्भे स्वर्गादागिरिवाः ॥२५१॥
एवं ततो वदन्तं तमनेकान्तदिवाकरम् । देवर्षितेजसा दीप्तं शास्त्रार्थज्ञानजन्मना ॥२५२॥
क्रतुक्पराजयोद्भूतक्रोधसंभारकम्पिताः । वेदार्थाभ्यसनात्यन्तदयानिर्मुक्तमानसाः ॥२५३॥
आशीविषसमाशेषदृष्टतारकलोचनाः । आवृत्य सर्वतः क्षुब्धाः कृत्वा कलकलं महत् ॥२५४॥
बद्ध्वा परिकरं पापाः सूत्रकण्ठाः समुद्यताः । हस्तपादादिभिर्हन्तुं वायसा इव कौशिकम् ॥२५५॥
नारदोऽपि ततः कांश्चिन्मुष्टिमुद्गरताडनैः । पार्ष्णिनिर्घातपातैश्च कांश्चिदन्यान् यथागतान् ॥२५६॥
शस्त्रायमाणैर्निःशेषैरंगैरेव सुदुःसहैः । द्विजान् जघान कुर्वाणो रेचकं भ्रमणं बहून् ॥२५७॥
अथ घ्नन् स चिरात्खिन्नः क्रूरैर्बहुभिरावृतः । गृहीतः सर्वगात्रेषु भञ्जन्नाकुलतां पराम् ॥२५८॥
पक्षीव निबिडं बद्धः पाशकैरतिदुःखितः । वियदुत्पतनाशक्तः संप्राप्तः प्राणसंशयम् ॥२५९॥
एतस्मिन्नन्तरे दूतो [2]दशवक्त्रः समागतः । हन्यमानमिमं दृष्ट्वा प्रत्यभिज्ञाय नारदम् ॥२६०॥
निवृत्य त्वरयात्यन्तमेवं रावणमब्रवीत् । यस्यान्तिकं महाराज दूतोऽहं प्रेषितस्त्वया ॥२६१॥

अग्नियोंकी स्थापना करना चाहिए ॥२४८॥ यदि भूखे देव होम किये गये पदार्थसे तृप्तिको प्राप्त होते हैं तो वे स्वयं ही क्यों नहीं तृप्तिको प्राप्त हो जाते, मनुष्योंके होमको माध्यम क्यों बनाते हैं ? ॥२४९॥ जो देव ब्रह्मलोकसे आकर योनिसे उत्पन्न होनेवाले दुर्गन्धयुक्त शरीरको खाता है वह कौए, शृगाल और कुत्तेके समान है ॥२५०॥

इसके सिवाय तुम श्राद्धतर्पण आदिके द्वारा मृत व्यक्तियोंकी तृप्ति मानते हो सो जरा विचार तो करो। ब्राह्मण लोग लारसे भीगे हुए अपने मुखमें जो अन्न रखते हैं वह मलसे भरे पेटमें जाकर पहुँचता है। ऐसा अन्न स्वर्गवासी देवताओंको तृप्त कैसे करता होगा ? ॥२५१॥ इस प्रकार शास्त्रोंके अर्थज्ञानसे उत्पन्न, देवर्षिके तेजसे देदीप्यमान, उक्त कथन करते हुए नारदजी अनेकान्तके सूर्यके समान जान पड़ते थे ॥२५२॥ ब्राह्मणोंने उन्हें सब ओरसे घेर लिया। उस समय वे ब्राह्मण याजककी पराजयसे उत्पन्न क्रोधके भारसे कम्पित थे, वेदार्थका अभ्यास करनेके कारण उनके हृदय दयासे रहित थे ॥२५३॥ सर्पके समान उनकी आँखोंकी पुतलियाँ सबको दिख रही थीं और क्षुभित हो सब ओरसे बड़ा भारी कल-कल कर रहे थे ॥२५४॥ वे सब ब्राह्मण कमर कसकर हस्तपादादिकसे नारदको मारनेके लिए ठीक उसी तरह तैयार हो गये जिस प्रकार कि कौए उल्लूको मारनेके लिए तैयार हो जाते हैं ॥२५५॥ तदनन्तर नारद भी उनमें-से कितने ही लोगोंको मुट्ठियोंरूपी मुद्गरोंकी मारसे और कितने ही लोगोंको एड़ीरूपी वज्रपातसे मारने लगा ॥२५६॥ उस समय नारदके समस्त अवयव अत्यन्त दुःसह शस्त्रोंके समान जान पड़ते थे। उन सबसे उसने घूम-घूमकर बहुत-से ब्राह्मणोंको मारा ॥२५७॥ अथानन्तर चिरकाल तक ब्राह्मणोंको मारता हुआ खेदखिन्न हो गया। उसे बहुत-से दुष्ट ब्राह्मणोंने घेर लिया, वे उसे समस्त शरीरमें मारने लगे जिससे वह परम आकुलताको प्राप्त हुआ ॥२५८॥ जिस प्रकार जालसे कसकर बँधा पक्षी अत्यन्त दुखी हो जाता है और आकाशमें उड़नेमें असमर्थ होता हुआ प्राणोंके संशयको प्राप्त होता है ठीक वही दशा उस समय नारदकी थी ॥२५९॥

इसी बीचमें रावणका दूत आ रहा था सो उसने पिटते हुए नारदको देखकर पहचान लिया ॥२६०॥ उसने शीघ्र ही लौटकर रावणसे इस प्रकार कहा कि हे महाराज ! मुझ दूतको आपने जिसके पास भेजा था वह अकेला ही राजाके देखते हुए बहुत-से दुष्ट ब्राह्मणोंके द्वारा उस

---

१. श्वेतो म. । स्वेनो क. । स्वेतो ब. । २. रावणसम्बन्धी ।

राज्ञः पश्यत[1] एवास्य नारदो बहुभिर्द्विजैः । एकाकी हन्यते क्रूरैः शलभैरिव पन्नगः ॥२६२॥
अशक्तस्तत्र राजानमहं दृष्ट्वा भयार्दितः । निवेदयितुमायातो वृत्तान्तमिति दारुणम् ॥२६३॥
तमुद्यन्तं ततः श्रुत्वा राघणः कोपमागतः । वितानधरणीं[2] गन्तुं प्रवृत्तो जवितवाहनः[3] ॥२६४॥
समीरंरंहसश्चास्य पुरः संप्रस्थिता नराः । परिवारविनिर्मुक्तखड्गाः सूत्कारभासिनः[4] ॥२६५॥
निमेषेण मखक्षोणीं प्राप्ता दर्शनमात्रतः । व्यमोचयन्[5] दयायुक्ता[6] नारदं शत्रुपञ्जरात् ॥२६६॥
निर्घृणैश्चनरवृन्दैश्च रक्षिता पशुसंहतिः । मोचिता[7] तैः सहुंकारं चक्षुर्निक्षेपमात्रतः ॥२६७॥
भज्यमानैस्ततो यूपैस्ताड्यमानैर्द्विजातिभिः । पशुभिर्मुच्यमानैश्च जातं सोरविणं[8] महत् ॥२६८॥
अग्रह्मण्यकृतारावास्ताड्यन्ते तावदेकशः । यावन्निपतिता भूमौ विप्रा[9] निस्पन्दविग्रहाः ॥२६९॥
भटैश्च [10]पर्यपोच्यन्त यया [11]वो दुःखमप्रियम् । सुखं च दयितं [12]तद्वत्पशूनामपि दृश्यताम् ॥२७०॥
यथा हि जीवितं कान्तं त्रैलोक्यस्यापि भावतः । [13]भवतां[14] सर्वजन्तूनामियमेव [15]व्यवस्थितिः ॥२७१॥
भवतां ताड्यमानानां कष्टा तावदियं व्यथा । शस्त्रैर्विशस्यमानानां पशूनां तु किमुच्यताम् ॥२७२॥
दुष्कृतस्याधुना पापाः सहध्वं फलमागतम् । येन नो पुनरप्येवं करुध्वं पुरुषाधमाः ॥२७३॥
सुत्रामापि समं देवैर्यद्यायाति तथापि न । अस्मत्स्वामिनि नः क्रुद्धे जायते परिरक्षणम् ॥२७४॥
अश्वैर्मत्तद्विपैस्तस्थै रथस्थैर्गगनस्थितैः । भूमिस्थैः पुरुषैरस्त्रैराहन्यन्ते द्विजातयः ॥२७५॥

तरह मारा जा रहा है जिस प्रकार कि बहुत-से दुष्ट पतंगे किसी साँपको मारते हैं ॥२६१-२६२॥ मैं शक्तिहीन था और राजाको वहाँ देख भयसे पीड़ित हो गया इसलिए यह दारुण वृत्तान्त आपसे कहनेके लिए दौड़ा आया हूँ ॥२६३॥ यह समाचार सुनते ही रावण क्रोधको प्राप्त हुआ और वेग-शाली वाहनपर सवार हो यज्ञभूमिमें जानेके लिए तत्पर हुआ ॥२६४॥ वायुके समान जिनका वेग था, जो म्यानोंसे निकली हुई नंगी तलवारें हाथमें लिये थे और सू-सू शब्दसे सुशोभित थे ऐसे रावणके सिपाही पहले ही चल दिये थे ॥२६५॥ वे पल-भरमें यज्ञभूमिमें जा पहुँचे। वहाँ जाकर उन दयालु पुरुषोंने दृष्टिमात्रसे नारदको शत्रुरूपी पिंजड़ेसे मुक्त करा दिया ॥२६६॥ क्रूर मनुष्य जिस पशुओंके झुण्डकी रक्षा कर रहे थे उसे उन्होंने आँखके इशारे मात्रसे छुड़वा दिया ॥२६७॥ यज्ञके खम्भे तोड़ डाले, ब्राह्मणोंको पिटाई लगायी और पशुओंको बन्धनसे छोड़ दिया। इन सब कारणोंसे वहाँ बड़ा भारी कोलाहल मच गया ॥२६८॥ 'अग्रह्मण्यं' 'अग्रह्मण्यं' की रट लगानेवाले एक-एक ब्राह्मणको इतना पीटा कि जबतक वे निश्चेष्ट शरीर होकर भूमिपर गिर न पड़े तबतक पीटते ही गये ॥२६९॥ रावणके योद्धाओंने उन ब्राह्मणोंसे पूछा कि जिस प्रकार आप लोगोंको दुःख अप्रिय लगता है और सुख प्रिय जान पड़ता है उसी तरह इन पशुओंको भी लगता होगा ॥२७०॥ जिस प्रकार तीन लोकके समस्त जीवोंको हृदयसे अपना जीवन अच्छा लगता है उसी प्रकार इन समस्त जन्तुओंकी भी व्यवस्था जाननी चाहिए ॥२७१॥ आप लोगोंको जो पिटाई लगी है उससे आप लोगोंको यह कष्टकारी अवस्था हुई है फिर शस्त्रोंसे मारे गये पशुओंकी क्या दशा होती होगी सो आप ही कहो ॥२७२॥ अरे पापी नीच पुरुषो ! इस समय तुम्हारे पापका जो फल प्राप्त हुआ है उसे सहन करो जिससे फिर ऐसा न करोगे ॥२७३॥ देवोंके साथ इन्द्र भी यहाँ आ जाये तो भी हमारे स्वामीके कुपित रहते तुम लोगोंकी रक्षा नहीं हो सकती ॥२७४॥ हाथी, घोड़े, रथ, आकाश और पृथिवीपर जो भी जहाँ स्थित था वह वहींसे शस्त्रों द्वारा ब्राह्मणोंको मार रहा था ॥२७५॥

---

१. पश्यतः सतः । २. यज्ञभूमिम् । ३. कोशवहिर्गतकृपाणाः । ४. .....भासिनः म. । ५. विमोचयन् म. । ६. दयायुक्तो म. । ७. वधाय धृता रक्षिताः पशुसंहतीः म. । ८. मोचितास्तैः म. । ९. कलकलम् । १०. विप्राः म., ब. । ११. पर्यवोच्यन्त क. । १२. युष्माकम् । १३. प्रियम् । १४. भवतां क., ख., ङ. म. । १५. -जन्तूनां नियमे च व्यवस्थितिः ख. ।

अब्रह्मण्यमहो राजन् हा मातर्यज्ञपालये[1] । [2]जीवामि मुञ्च मा नैवं करिष्यामि पुनर्भटाः ॥२७६॥
एवंविधमलं दीनं विलपन्तो विचेष्टितम् । गण्डूपदा इव प्राप्ताः समताड्यन्त ते भटैः ॥२७७॥
हन्यमानं ततो दृष्ट्वा [3]सूत्रकण्ठकदम्बकम् । [4]सहस्रकिरणग्राहमित्यवोचत नारदः ॥२७८॥
कल्याणमस्तु ते राजन् येनाहं मोचितस्त्वया । हन्यमान [5]इमैर्व्याधैः सूत्रकण्ठैर्दुरात्मभिः ॥२७९॥
अवश्यमेवमेतेन भवितव्यं यतस्ततः । [6]कुर्वतेषां दयां क्षुद्रा जीवन्तु प्रियजीविताः ॥२८०॥
ज्ञातं किं न तथोत्पन्नाः कुपाखण्डा यथा नृप । शृण्वस्यामवसर्पिण्यां [7]तुरीयसमयागमे ॥२८१॥
ऋषभो नाम विख्यातो बभूव त्रिजगन्नतः[8] । कृत्वा कृतयुगं येन कलानां कथितं शतम् ॥२८२॥
जातमात्रश्च यो देवैर्नीत्वा [10]मन्दरमस्तकम् । क्षीरोदवारिणा तुष्टैरभिषिक्तो महाद्युतिः ॥२८३॥
ऋषभस्य विभोर्दिव्यं चरितं पापनोदनम् । स्थितं लोकत्रयं व्याप्य पुराणं[11] न श्रुतं त्वया ॥२८४॥
भर्ता बभूव कौमारः स भुवो भूतवत्सलः । गुणांस्तस्य क्षमो वक्तुं न सुरेन्द्रोऽपि विस्तरात् ॥२८५॥
उद्वहन्तीं स्तनौ तुङ्गौ विन्ध्यप्रालेयपर्वतौ । आर्यदेशमुखीं रम्यां [12]नगरीवलयैर्युताम् ॥२८६॥
अधिकाब्धिगुणां नीलसत्काननशिरोरुहाम् । नानारत्नकृतच्छायामत्यन्तप्रवणां सतीम् ॥२८७॥
यः परित्यज्य भूमार्यां मुमुक्षुर्भवसंकटम् । प्रतिपेदे विशुद्धात्मा श्रामण्यं जगते हितम् ॥२८८॥

और ब्राह्मण चिल्ला रहे थे कि 'अब्रह्मण्यम्' बड़ा अनर्थ हुआ। हे राजन्! हे माता यज्ञपालि! हमारी रक्षा करो। हे योद्धाओ! हम जीवित रह सकें इसलिए छोड़ दो, अब ऐसा नहीं करेंगे' ॥२७६॥ इस प्रकार दीनताके साथ अत्यन्त विलाप करते हुए वे ब्राह्मण केंचुए-जैसी दशाको प्राप्त थे फिर भी रावणके योद्धा उन्हें पीटते जाते थे ॥२७७॥ तदनन्तर ब्राह्मणोंके समूहको पिटता देख नारदने रावणसे इस प्रकार कहा ॥२७८॥ कि हे राजन्! तुम्हारा कल्याण हो। मैं इन दुष्ट शिकारी ब्राह्मणोंके द्वारा मारा जा रहा था जो आपने मुझे इनसे छुड़ाया ॥२७९॥ यह कार्य चूँकि ऐसा ही होना था सो हुआ अब इनपर दया करो। ये क्षुद्र जीव जीवित रह सकें ऐसा करो, अपना जीवन इन्हें प्रिय है ॥२८०॥

हे राजन्! इन कुपाखण्डियोंकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई है? यह क्या आप नहीं जानते हैं। अच्छा सुनो मैं कहता हूँ। इस अवसर्पिणी युगका जब चौथा काल आनेवाला था तब भगवान् ऋषभदेव तीर्थंकर हुए। तीनों लोकोंके जीव उन्हें नमस्कार करते थे। उन्होंने कृत-युगकी व्यवस्था कर सैकड़ों कलाओंका प्रचार किया ॥२८१-२८२॥ जिस समय ऋषभदेव उत्पन्न हुए थे उसी समय देवोंने सुमेरु पर्वतके मस्तकपर ले जाकर सन्तुष्ट हो क्षीरसागरके जलसे उनका अभिषेक किया था। वे महाकान्तिके धारक थे ॥२८३॥ भगवान् ऋषभदेवका पापापहारी चरित्र तीनों लोकोंमें व्याप्त होकर स्थित है क्या तुमने उनका पुराण नहीं सुना? ॥२८४॥ प्राणियोंके साथ स्नेह करनेवाले भगवान् ऋषभदेव कुमार-कालके बाद इस पृथ्वीके स्वामी हुए थे। उनके गुण इतने अधिक थे कि इन्द्र भी उनका विस्तारके साथ वर्णन करनेमें समर्थ नहीं था ॥२८५॥ जब उन्हें वैराग्य आया और वे संसाररूपी संकटको छोड़नेकी इच्छा करने लगे तब जो विन्ध्याचल और हिमाचलरूपी उन्नत स्तनोंको धारण कर रही थी, आर्य देश ही जिसका मुख था, जो नगरीरूपी चूड़ियोंसे युक्त होकर बहुत मनोहर जान पड़ती थी, समुद्र ही जिसकी करधनी थी, हरे-भरे वन जिसके सिरके बाल थे, नाना रत्नोंसे जिसकी कान्ति बढ़ रही थी और जो अत्यन्त निपुण थी ऐसी पृथिवीरूपी स्त्रीको छोड़कर उन्होंने विशुद्धात्मा हो जगत्के लिए हितकारी मुनिपद

१. पालये म.। २. जीवं विमुञ्च मा नैवं ख.। ३. विप्रसमूहम्। ४. रावणम्। ५. अपाणिनीय एष प्रयोगः। ६. कुरु + एतेषां। ७. ज्ञानं म.। ८. चतुर्थकालागमे। ९. त्रिजगतोन्नतः (?) म.। १०. मन्दिर -म.। सुमेरुशिखरम्। ११. पुराणं म.। १२. नगरी वलयैं -म.।

स्थितो वर्षसहस्रं च वज्राङ्गो स्थिरयोगभृत् । प्रलम्बितमहाबाहुः प्राप्तभूमिजटाचयः ॥२८९॥
स्वामिनश्चानुरागेण गृहीतोग्रपरीषहैः । कच्छाद्यैर्नग्नता मुक्ता वल्कलादिसमाश्रितम् ॥२९०॥
अज्ञातपरमार्थैस्तैः क्षुधादिपरिपीडितैः । फलाद्याहारसंतुष्टैः प्रणीतास्तापसादयः ॥२९१॥
ऋषभस्य तु संजातं केवलं सर्वभासनम् । महान्यग्रोधवृक्षस्य स्थितस्यासन्नगोचरे ॥२९२॥
तत्प्रदेशे कृता देवैस्तस्मिन् काले विभोर्यतः । पूजा तेनैव मार्गेण लोकोऽद्यापि प्रवर्तते ॥२९३॥
प्रतिमाश्च सुरैस्तस्य तस्मिन्देशे सुमानसैः । स्थापिता रम्यचैत्येषु मनुजैश्च महोत्सवैः ॥२९४॥
भरतेनास्य पुत्रेण सृष्टा ये चक्रवर्तिना । पुरा मरीचिना ये च प्रमादस्मययोगतः ॥२९५॥
विसर्पणमिमे सूत्रकण्ठास्तु भुवने गताः । प्राणिनां दुःखदा यद्वत्सलिले विषबिन्दवः ॥२९६॥
[1]उद्वृत्तकुट्टकाचारैर्बहुदंभैः कलिङ्गकैः[3] । एतैस्तैर्व्याप्तमेतद्धि मोहितं जगत् ॥२९७॥
जातं शश्वत्प्रवृत्तातिक्रूरकर्मतमश्चितम् । प्रनष्टसुकृतालोकं [4]साध्वसत्कारतत्परम् ॥२९८॥
एकविंशतिवारान् ये निधनं प्रापिताः क्षितौ । सुभूमचक्रिणा प्राप्ता न नितान्तमभावताम् ॥२९९॥
ते कथं वद शाम्यन्ते त्वया विप्रा दशानन । [5]उपशाम्यानया किंचिच्च कृत्यं प्राणिहिंसया ॥३००॥
जिनैरपि कृतं नैतत्सर्वज्ञैर्निःकुमार्गकम् । जगत् किमुत [6]शक्येत कर्तुमस्मद्विधैर्जनैः ॥३०१॥

धारण किया था ॥२८६-२८८॥ उनका शरीर वज्रमय था, वे स्थिर योगको धारण कर एक हजार वर्ष तक खड़े रहे। उनकी बड़ी-बड़ी भुजाएँ नीचेकी ओर लटक रही थीं और जटाओंका समूह पृथिवीको छू रहा था ॥२८९॥ स्वामीके अनुरागसे कच्छ आदि चार हजार राजाओंने भी उनके साथ नग्न व्रत धारण किया था परन्तु कठिन परीषहोंसे पीड़ित होकर अन्तमें उन्होंने वह व्रत छोड़ दिया और वल्कल आदि धारण कर लिये ॥२९०॥ परमार्थको नहीं जाननेवाले उन राजाओंने क्षुधा आदिसे पीड़ित होनेपर फल आदिके आहारसे सन्तोष प्राप्त किया। उन्हीं भ्रष्ट लोगोंने तापस आदि लोगोंकी रचना की ॥२९१॥ जब भगवान् ऋषभदेव महा वटवृक्षके समीप विद्यमान थे तब उन्हें समस्त पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाला केवलज्ञान प्रकट हुआ ॥२९२॥ उस समय उस स्थानपर चूँकि देवोंके द्वारा भगवान्‌की पूजा की गयी थी इसलिए उसी पद्धतिसे आज भी लोग पूजा करनेमें प्रवृत्त हैं अर्थात् आज जो वटवृक्षकी पूजा होती है उसका मूल स्रोत भगवान् ऋषभदेवके केवलज्ञानकल्याणकसे है ॥२९३॥ उत्तम हृदयके धारक देवोंने उस स्थानपर उनकी प्रतिमा स्थापित की तथा महान् उत्सवोंसे युक्त मनुष्योंने मनोहर चैत्यालयोंमें उनकी प्रतिमाएँ विराजमान कीं ॥२९४॥ भगवान् ऋषभदेवके पुत्र भरत चक्रवर्तीने तथा इनके पुत्र मरीचिने पहले प्रमाद और अहंकारके योगसे जिन ब्राह्मणोंकी रचना की थी वे पानीमें विषकी बूँदोंके समान प्राणियोंको दुःख देते हुए संसारमें सर्वत्र फैल गये ॥२९५-२९६॥ जिन्होंने कुत्सित आचारकी परम्परा चलायी है, जो अनेक प्रकारके कपटोंसे युक्त हैं, जो नाना प्रकारके खोटे-खोटे वेष धारण करते हैं और प्रचण्ड—अत्यन्त तीक्ष्ण दण्डके धारक हैं ऐसे इन ब्राह्मणोंने इस संसारको मोहित कर रखा है—भ्रममें डाल रखा है ॥२९७॥ यह समस्त संसार निरन्तर प्रवृत्त रहनेवाले अत्यन्त क्रूर कार्यरूपी अन्धकारसे व्याप्त है, इसका पुण्यरूपी प्रकाश नष्ट हो चुका है और साधुजनोंका अनादर करनेमें तत्पर है ॥२९८॥ इस पृथिवीपर सुभूम चक्रवर्तीने इक्कीस बार इन ब्राह्मणोंका सर्वनाश किया फिर भी ये अत्यन्ताभावको प्राप्त नहीं हुए ॥२९९॥ इसलिए हे दशानन ! तुम्हारे द्वारा ये किस तरह शान्त किये जा सकेंगे—सो तुम्हीं कहो। तुम स्वयं उपशान्त होओ। इस प्राणिहिंसासे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥३००॥ जब सर्वज्ञ जिनेन्द्र भी इस संसारको कुमार्गसे रहित नहीं कर सके तब फिर हमारे

१. प्रवृत्तकुत्सिताचारैः । २. बहुडिम्भैः म. । ३. कुलिङ्गिकैः ख. । ४. साधुसत्कार -क., ख., म. । ५. उपशान्तो भव । ६. कृतिम् -ख. । ७. शक्यते म. ।

इति [1]नारदतः श्रुत्वा कथां कैलासकम्पिसंभवः । पुराणकथया प्रीतो ननमस्ते जिनाधिपम् ॥३०१॥
संकथामिश्र रम्याभिर्महापुरुषजन्मभिः । स्थितः क्षणं विचित्राभिर्नारदेन सभं सुखी ॥३०२॥
[2]मरुत्वोऽथाऽऽत्तनीतिः सन्दधृवा क्षितिसक्तशिरोरुहः । प्रणनाम [3]यमोत्साहं नयविच्चैवमब्रवीत् ॥३०४॥
भृत्योऽहं तव लङ्केश ! भज नाथ ! प्रसन्नताम् । अज्ञानेन हि जन्तूनां भवत्येव दुरीहितम् ॥३०५॥
गृह्यतां कन्यका चेयं नाम्ना मे कनकप्रभा । वस्तूनां दर्शनीयानां भवानेव हि भोजनम् ॥३०६॥
प्रणतेषु दयाशीलस्तां [4]प्रतीयेष रावणः । उपयेमे च [5]सातत्यप्रवृत्तपरमोदयः ॥३०७॥
तत्सामन्ताश्च तुष्टेन [6]मरुत्वेन यथोचितम् । भटाश्च पूजिता [7]यानवासोऽलंकरणादिभिः ॥३०८॥
कनकप्रभया सार्धं रममाणस्य चाजनि । सुता संवत्सरस्यान्ते कृतचित्रेति नामतः ॥३०९॥
रूपेण हि कृतं चित्रं तया लोकस्य पश्यतः । मूर्तियुक्तेव सा शोभा चक्रे चित्तस्य चोरणम् ॥३१०॥
जयार्जितसमुत्साहाः [8]शूरास्तेजस्विविग्रहाः । सामन्ता दशवक्त्रस्य रेमिरे धरणीतले ॥३११॥
धत्ते यो भूपतिख्यातिं तान् दृष्ट्वा स बलीयसः । जगामात्यन्तदीनत्वं स्वभोगभ्रंशकातरः ॥३१२॥
मध्यभागं समालोक्य [9]वर्षस्याम्बरगोचराः [10] । कनकाद्रिनदीरम्यं विस्मयं प्रापुरुत्तमम् ॥३१३॥
ऊचुः केचिद्वरं भद्रा अत्रैवावस्थिता वयम् । नूनं स्वर्गोऽपि नैतस्माद्भजते रामणीयकम् ॥३१४॥
अन्येऽवदन्निमं देशं दृष्ट्वा लङ्कानिवर्तने । कुटुम्बदर्शनं शुद्धं कारणं नो भविष्यति ॥३१५॥

जैसे लोग कैसे कर सकते हैं ? ॥३०१॥ इस प्रकार नारदके मुखसे पुराणकी कथा सुनकर रावण बहुत प्रसन्न हुआ और उसने जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार किया ॥३०२॥ इस प्रकार वह नारदके साथ महापुरुषोंसे सम्बन्ध रखनेवाली अनेक प्रकारकी मनोहर और विचित्र कथाएँ करता हुआ क्षण-भर सुख से बैठा ॥३०३॥ अथानन्तर नीतिके जानकार राजा मरुत्वने हाथ जोड़कर तथा सिरके बाल जमीनपर लगाकर रावणको प्रणाम किया और निम्नांकित वचन कहे ॥३०४॥ हे लंकेश ! मैं आपका दास हूँ। आप मुझपर प्रसन्न होइए। अज्ञानवश जीवोंसे खोटे काम बन ही जाते हैं ॥३०५॥ मेरी कनकप्रभा नामकी कन्या है सो इसे आप स्वीकृत कीजिए क्योंकि सुन्दर वस्तुओंके पात्र आप ही हैं ॥३०६॥ नम्र मनुष्योंपर दया करना जिसका स्वभाव था और निरन्तर जिसका अभ्युदय बढ़ रहा था ऐसे रावणने कनकप्रभाको विवाहना स्वीकृत कर विधिपूर्वक उसके साथ विवाह कर लिया ॥३०७॥ राजा मरुत्वने सन्तुष्ट होकर रावणके सामन्तों और योद्धाओंका वाहन, वस्त्र तथा अलंकार आदिसे यथायोग्य सत्कार किया ॥३०८॥ कनकप्रभाके साथ रमण करते हुए रावणके एक वर्ष बाद कृतचित्रा नामकी पुत्री हुई ॥३०९॥ चूँकि उसने देखनेवाले मनुष्योंको अपने रूपसे चित्र अर्थात् आश्चर्य उत्पन्न किया था इसलिए उसका कृतचित्रा नाम सार्थक था। वह मूर्तिमती शोभाके समान सबका चित्त चुराती थी ॥३१०॥ विजयसे जिनका उत्साह बढ़ रहा था तथा जिनका शरीर अत्यन्त तेजःपूर्ण था ऐसे दशाननके शूरवीर सामन्त पृथ्वीतल-पर जहाँ-तहाँ क्रीड़ा करते थे ॥३११॥ जो मनुष्य 'राजा' इस ख्यातिको धारण करता था वह दशाननके उन बलवान् सामन्तोंको देखकर अपने भोगोंके नाशसे कातर होता हुआ अत्यन्त दीनताको प्राप्त हो जाता था ॥३१२॥ विद्याधर लोग सुवर्णमय पर्वत तथा नदियोंसे मनोहर भारतवर्षका मध्यभाग देखकर परम आश्चर्यको प्राप्त हुए थे ॥३१३॥ कितने ही विद्याधर कहने लगे कि यदि हम लोग यहीं रहने लगें तो अच्छा हो। निश्चय ही स्वर्ग भी इस स्थानसे बढ़कर अधिक सौन्दर्यको प्राप्त नहीं है ॥३१४॥ कितने ही लोग कहते थे कि हम लोग इस देशको

---

१. नारदात् । २. एतन्नामा नृपः । मरुतोऽथा म. । ३. यमोन्मादं म. । रावणम् । ४. स्वीचकार । ५. सात्यन्त -म. । ६. मरुतेन म. । ७. कान (?) म. । ८. सूरास् म. । ९. भरतक्षेत्रस्य । १०. विद्याधराः । वर्षस्यान्तर-गोचराः क. ।

एकेऽवोचन् गृहे वासो न मनागपि शोभते । दृश्यतामस्य देशस्य पार्थवं[1] चित्तहारिणः ॥३१६॥
समुद्रविपुलं सैन्यं पश्यतात्र कथं स्थितम् । मरुत्त्वमखभङ्गस्य यथाऽन्योऽन्यं न दृश्यते ॥३१७॥
अहो धैर्यमहोदारं लोकस्येक्षणहारिणः[2] । एतस्य खेचराणां च प्रशस्तोऽयं निरूप्यते ॥३१८॥
मरुत्त्वमखविध्वंसी[3] यं यं देशमुपागतः । रम्यं तस्याकरोल्लोकः पन्थानं तोरणादिभिः ॥३१९॥
वक्त्राङ्गसौम्यचक्त्राभिर्नेत्रे सरसिजोपमे । बिभ्रतीभिः सुलावण्यपूर्णदेहाभिरादरात् ॥३२०॥
महीगोचरनारीभिर्विद्याधरकुतूहलात् । वीक्ष्यमाणा ययुर्भूम्यां खेचरास्तद्दिदृक्षया ॥३२१॥
नगरस्य समीपेन व्रजन्तं कैकसीसुतम् । निर्द्यौतसायकश्यामं पक्वबिम्बफलाधरम् ॥३२२॥
मुकुटन्यस्तमुक्तांशुसलिलक्षालितालिकम्[4] । इन्द्रनीलप्रभोदारस्फुरत्कुन्तलभारकम्[5] ॥३२३॥
सहस्रपत्रनयनं शर्वरीतिलकाननम्[6] । सैन्यचापानुलिप्तस्निग्धनीलभ्रूयुगराजितम् ॥३२४॥
कम्बुग्रीवं हरिस्कन्धं पीनविस्तीर्णवक्षसम्[7] । दिग्गजाग्रनासिकाबाहुं वज्रवन्मध्यदुर्विधम्[8] ॥३२५॥
नागभोगसमाकारसंयुतं [illegible] ॥३२६॥
श्रीवत्सप्रभृतिस्तुत्यद्वात्रिंशल्लक्षणाञ्चितम् । रत्नरश्मिजटाभौलिं विचित्रमणिकुण्डलम् ॥३२७॥
केयूरकर्दीप्तांसं हारराजितवक्षसम् । प्रत्यर्धचक्रभृद्भोगं वीक्षितुत्सुकमानसाः ॥३२८॥
आपूरयन् परित्यक्तसमस्तप्रस्तुतक्रियाः । वातायनानि सद्वेषाः स्त्रियोऽन्योऽन्यविपीडिताः ॥३२९॥

देखकर लंका लौटेंगे इसमें अपने कुटुम्बका दर्शन ही मुख्य कारण होगा ॥३१५॥ कुछ लोग कहते थे कि घरमें रहना तो कुछ भी शोभा नहीं देता। जरा इस मनोहर देशका विस्तार तो देखो ॥३१६॥ देखो, रावणकी समुद्रके समान विशाल सेना यहाँ किस प्रकार ठहर गयी कि परस्परमें दिखाई ही नहीं देती ॥३१७॥ नेत्रोंको हरण करनेवाले इस लोकके धैर्यकी महानता आश्चर्यकारी है। इस लोक तथा विद्याधरोंके लोकका जब विचार करते हैं तो यह लोक ही उत्तम मालूम होता है ॥३१८॥ राजा मरुत्वके यज्ञको नष्ट करनेवाला रावण जिस-जिस देशमें जाता था वहींके निवासीजन तोरण आदिके द्वारा उसके मार्गको मनोहर बना देते थे ॥३१९॥ जिनके मुख चन्द्रमाके समान सुन्दर थे, जो कमलतुल्य नेत्र धारण कर रही थीं और जिनका शरीर सौन्दर्यसे परिपूर्ण था ऐसी भूमिगोचरी स्त्रियाँ विद्याधरोंके कुतूहलसे जिन्हें बड़े आदरसे देख रही थीं ऐसा विद्याधर भी रावणको देखनेकी इच्छासे पृथ्वीपर चल रहे थे ॥३२०-३२१॥ जो अत्यन्त धुले हुए बाणके अग्रभाग अथवा तलवारके समान श्यामवर्ण था, जिसके ओठ पके हुए बिम्ब फलके समान थे, मुकुटमें लगे हुए मोतियोंकी किरणोंरूपी जलसे जिसका ललाट धुला हुआ था, जिसके घुँघराले बालोंका समूह इन्द्रनीलमणिकी प्रभासे भी अधिक चमकीला था, जिसके नेत्र कमलके समान थे, मुख चन्द्रमाके समान था, जो प्रत्यंचा सहित धनुषके समान टेढ़ी, चिकनी एवं नीली-नीली भौंहोंके युगलसे सुशोभित था, जिसकी ग्रीवा शंखके समान थी, कन्धे सिंहके समान थे, जिसका वक्षःस्थल मोटा और चौड़ा था, जिसकी भुजाएँ दिग्गजकी सूँड़के समान मोटी थीं, जिसकी कमर वज्रके समान मजबूत एवं पतली थी, जिसकी जंघाएँ साँपके फणके समान थीं, जिसके घुटने अपनी मांसपेशियोंमें निमग्न थे, पैर कमलके समान थे, जिसका शरीर योग्य ऊँचाईसे सहित था, जो श्रीवत्स आदि उत्तमोत्तम बत्तीस लक्षणोंसे युक्त था, जिसका मुकुट रत्नोंकी किरणोंसे जगमगा रहा था, जिसके कुण्डल चित्रविचित्र मणियोंसे निर्मित थे, जिसके कन्धे बाजूबन्दोंकी किरणोंसे देदीप्यमान थे, जिसका वक्षःस्थल हारसे सुशोभित था और जिसे अर्धचक्रीके भोग प्राप्त थे ऐसा रावण जब नगरके समीपमें गमन करता हुआ आगे जाता था तब उसे देखने के लिए स्त्रियाँ अत्यन्त उत्कण्ठित-

---

१. पृथुत्वं विस्तारम् । पार्थिवं म., ख., ब. । २. लोकस्य क्षणहारिणः म. । ३. रावणः । ४. तारकम् म. । ५. चन्द्रमुखम् । ६. सद्य म., ख. । ७. 'जङ्घा तु प्रसृता समे' इत्यमरः । ८. दीप्तांशं म. ।

निश्चिक्षिपुश्च पुष्पाणि [1]समेतानि मधुव्रतैः । गुञ्जाश्च विविधालापाश्चक्रुस्तद्गुणवर्णनामिति ॥३२०॥
अयं स रावणो येन जितो मातृष्वसुः सुतः । यमश्च यश्च कैलासं समुत्क्षेतुं समुद्यतः ॥३२१॥
नीतः सहस्ररश्मिश्च राज्यभारविमुक्तताम् । मरुत्तस्य च विध्वस्तो वितानः शौर्यशालिना ॥३२२॥
अहो समागमः साधुः कृतोऽयं कर्मभिश्चिरात् । रूपस्य केकसीसूनौ गुणानां च जनोत्सवः ॥३२३॥
योषित्पुण्यवती सोऽयं धृतो गर्भे वयोत्तमः । पितापि सौ कृतार्थत्वं प्राप्तः कृत्वास्य संभवम् ॥३२४॥
श्लाघ्यः स बन्धुलोकोऽपि यस्यायं प्रेमगोचरः । अनेनोपयता[2] यास्तु तासां स्त्रीणां किमुच्यते ॥३२५॥
आलापमिति कुर्वन्त्यस्तावदैक्षन्त[3] ताः स्त्रियः । गोचरत्वमवापायं यावद्विततचक्षुषाम् ॥३२६॥
गते तस्मिन्मनश्चौरे चक्षुर्गोचरतां क्षयम् । मुहूर्तमभवन्नार्यः [4]पुस्तकर्मगता इव ॥३२७॥
[5]तेनापहृतचित्तानां वाञ्छन्तीनां मनोगतम् । कर्तुमन्यदभूत्कर्म कियताचिदनेहसा ॥३२८॥
अभूवेति दशग्रीवे देशे तत्संगमोज्झिते । नारीणां पुरुषाणां च स्यक्ताम्यात्रेषसंकथा ॥३२९॥
विषये नगरे ग्रामे घोषे वा ये प्रधानताम् । भजन्ते पुरुषास्ते तमुपायनभृतोऽगमन् ॥३४०॥
गत्वा जनपदाश्चैवमुपनीय यथोचितम् । रचिताञ्जलयो नत्वा परितुष्टा व्यजिज्ञपन् ॥३४१॥
नन्दनादिषु रम्याणि यानि द्रव्याणि पार्थिव । सुलभत्वं प्रपन्नानि सर्व तान्यपि चिन्तनात् ॥३४२॥
महाविभवपात्रस्य किमपूर्वं भवेत्तव । उपनीय प्रमोदं ते यत्कुर्मो द्रविणं वयम् ॥३४३॥

चित्त हो जाती थीं। उत्तम वेषको धारण करनेवाली स्त्रियाँ परस्पर एक दूसरेको पीड़ा पहुँचाती हुई प्रारब्ध समस्त कार्योंको छोड़कर झरोखोंमें आ डटी थीं ॥३२२-३२९॥ वे सन्तुष्ट होकर भौंरोंसे सहित फूल रावणपर फेंक रही थीं और विविध प्रकारके शब्दोंसे उसका इस प्रकार वर्णन कर रही थीं ॥३३०॥ कोई कह रही थी कि देखो यह वही रावण है जिसने मौसीके लड़के वैश्रवण और यमको जीता था। जो कैलास पर्वतको उठानेके लिए उद्यत हुआ था। जिसने सहस्ररश्मिको राज्यभारसे विमुक्त किया था यह बड़ा पराक्रमी है ॥३३१-३३२॥ अहो, बड़े आश्चर्यकी बात है कि कर्मोंने चिरकाल बाद रावणमें रूप तथा अनेक गुणोंका लोकानन्दकारी समागम किया है। अर्थात् जैसा इसका सुन्दर रूप है वैसे ही इसमें गुण विद्यमान हैं ॥३३३॥ वह स्त्री पुण्यवती है जिसने इस उत्तम पुत्रको गर्भमें धारण किया है और वह पिता भी कृतकृत्यपनाको प्राप्त है जिसने इसे जन्म दिया है ॥३३४॥ वे बन्धुजन प्रशंसनीय हैं जिनका कि यह प्रेमपात्र है, जो स्त्रियाँ इसके साथ विवाहित हैं उनका तो कहना ही क्या है ? ॥३३५॥ वार्तालाप करती हुई स्त्रियाँ उसे तब-तक देखती रहीं जबतक कि वह उनके विस्तृत नेत्रोंका विषय रहा अर्थात् नेत्रोंके ओझल नहीं हो गया ॥३३६॥ मनको चुरानेवाला रावण जब नेत्रोंसे अदृश्य हो गया तब मुहूर्त-भरके लिए स्त्रियाँ चित्रलिखितकी तरह निश्चेष्ट हो गयीं ॥३३७॥ रावणके द्वारा उन स्त्रियोंका चित्त हरा गया था इसलिए कुछ दिन तक तो उनका यह हाल रहा कि उनके मनमें कुछ कार्य था और वे कर बैठती थीं कोई दूसरा ही कार्य ॥३३८॥ रावण जिस देशका समागम छोड़ आगे बढ़ जाता था उस देशके स्त्री-पुरुषोंमें एक रावणकी ही कथा शेष रह जाती थी अन्य सबकी कथा छूट जाती थी ॥३३९॥ देश, नगर, ग्राम अथवा अहीरोंकी बस्तीमें जो पुरुष प्रधानताको प्राप्त थे वे उपहार ले-लेकर रावणके समीप गये ॥३४०॥ जनपदोंमें रहनेवाले लोग यथायोग्य भेंट लेकर रावणके पास गये और हाथ जोड़ नमस्कार कर सन्तुष्ट होते हुए निम्न प्रकार निवेदन करने लगे ॥३४१॥ उन्होंने कहा कि हे राजन् ! नन्दन आदि वनोंमें जो भी मनोहर द्रव्य हैं वे इच्छा करने मात्रसे ही आपको सुलभ हैं अर्थात् अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं ॥३४२॥ चूँकि आप महावैभवके पात्र हैं इसलिए ऐसा

१. समेषानि म. । २. विविधालापाश्चक्रु -म. । ३. वैश्रवणः । ४. मरुत्तस्य म. । ५. परिणीता विवाहिता इत्यर्थः । ६. -दैक्षन्त म. । दैक्यं गताः स्त्रियः क., ख. । ७. दारुनिर्मिता ख. । ८. तेनोपहृत -म. ।

तथापि शून्यहस्तानामस्माकं तव दर्शनम् । न युक्तमिति यत्किंचिदुपादाय समागताः ॥३४३॥
जिनेन्द्रः प्रापितः पूजाममरैः कनकाम्बुजैः । द्रुमपुष्पादिभिः किञ्च पूज्यतेऽस्मद्विधैर्जनैः ॥३४५॥
नानाजनपदैरेवं[1] सामन्तैश्च महर्द्धिभिः । पूजितः प्रतिसंमानं तेषां चक्रे प्रियोदितैः ॥३४६॥
परां प्रीतिमवापासौ पश्यन् रम्यां वसुन्धराम् । कान्तामिव निजां नानारत्नालङ्कारशालिनीम् ॥३४७॥
सङ्गं देशेन येनासौ ययौ मार्गवशाद्विभुः । अकृष्टपच्यसस्याढ्यं तत्रासीद् वसुधातलम् ॥३४८॥
प्रमोदं परमं बिभ्रज्जनोऽस्य धरणीतलम् । अनुरागाम्बुसा कीर्तिमभ्यसिञ्चत् सुनिर्मलाम्[2] ॥३४९॥
कृषीवलजनाश्चैवमूचुः पुण्यवृषो वयम् । येन देशमिमं प्राप्तो देवो रत्नश्रवःसुतः ॥३५०॥
अन्यदा कृषिसक्तानां रूक्षाङ्गानां कुवाससाम् । वहतां कर्कशस्पर्शं पाणिपादं सवेदनम् ॥३५१॥
क्लेशात् कालो गतोऽस्माकं सुखस्वादविवर्जितः । प्रभावादस्य भव्यस्य साम्प्रतं वयमीश्वराः ॥३५२॥
पुण्येनानुगृहीतास्ते देशाः संपत्समाश्रिताः । येषु कल्याणसंभारो विचरत्येष रावणः ॥३५३॥
कृत्यं किं बान्धवैर्यें न समर्था दुःखनोदने । अयमेव महाबन्धुः सर्वेषां प्राणिनामभूत् ॥३५४॥
अनुरागं गुणैरेवं स लोकस्य प्रवर्धयन् । चकार तस्य हेमन्तं निदाघं च सुखप्रदम् ॥३५५॥
आसतां चेतनास्तावच्चेऽपि भावा विचेतनाः । तेऽपि भीता इवासुष्माद् बभूवुर्लोकसौख्यदाः ॥३५६॥
तावच्च व्रजतस्तस्य प्रादुरासीद्घनागमः । अभ्युत्थानं दशास्यस्य कुर्वन्निव ससंभ्रमः ॥३५७॥
बलाकाविद्युदिन्द्रास्त्रकृतभूषा घनाघनाः । महानीलगिरिच्छायाः कुर्वन्तः पटुनिस्वनम् ॥३५८॥

कौन-सा अपूर्व धन है जिसे भेंट देकर हम आपको प्रसन्न कर सकते हैं॥३४३॥ फिर भी हम लोगोंको खाली हाथ आपका दर्शन करना उचित नहीं है इसलिए कुछ तो भी लेकर समीप आये हैं ॥३४४॥ देवोंने जिनेन्द्र भगवान्‌की सुवर्ण कमलोंसे पूजा की थी तो क्या हमारे जैसे लोग उनकी साधारण वृक्षोंके फूलोंसे पूजा नहीं करते ? अर्थात् अवश्य करते हैं ॥३४५॥ इस प्रकार नाना जनपदवासी और बड़ी-बड़ी सम्पदाओंको धारण करनेवाले सामन्तोंने रावणकी पूजा की तथा रावणने भी प्रिय वचन कहकर बदलेमें उनका सम्मान किया ॥३४६॥ नाना रत्नमयी, अलंकारोंसे सुशोभित अपनी स्त्रीके समान सुन्दर पृथिवीको देखता हुआ रावण परम प्रीतिको प्राप्त हुआ ॥३४७॥ रावण मार्गके कारण जिस-जिस देशके साथ समागमको प्राप्त हुआ था वहाँकी पृथिवी अकृष्टपच्य धान्यसे युक्त हो गयी थी ॥३४८॥ परम हर्षको धारण करनेवाले लोग रावणके द्वारा छोड़े हुए पृथिवीतलको तथा उसकी अत्यन्त निर्मल कीर्तिको अनुरागरूपी जलसे सींचते थे ॥३४९॥ किसान लोग इस प्रकार कह रहे थे कि हम लोग बड़े पुण्यात्मा हैं जिससे कि रावण इस देशमें आया ॥३५०॥ हम लोग अब तक खेतीमें लगे रहे, हम लोगोंका सारा शरीर रूखा हो गया। हमें फटे-पुराने वस्त्र पहननेको मिले, हम कठोर स्पर्श और तीव्र वेदनासे युक्त हाथ-पैरोंको धारण करते रहे और आज तक कभी सुखसे अच्छा भोजन हमें प्राप्त नहीं हुआ। इस तरह हम लोगोंका काल बड़े क्लेशसे व्यतीत हुआ परन्तु इस भव्य जीवके प्रभावसे हम लोग इस समय सर्व प्रकारसे सम्पन्न हो गये हैं ॥३५१-३५२॥ जिन देशोंमें यह कल्याणकारी रावण विचरण करता है वे देश पुण्यसे अनुगृहीत तथा सम्पत्तिसे सुशोभित हैं ॥३५३॥ मुझे उन भाइयोंसे क्या प्रयोजन जो कि दुःख दूर करनेमें समर्थ नहीं हैं। यह रावण ही हम सब प्राणियोंका बड़ा भाई है ॥३५४॥ इस प्रकार गुणोंके द्वारा लोगोंके अनुरागको बढ़ाते हुए रावणने हेमन्त और ग्रीष्म ऋतुको भी लोगोंके लिए सुखदायी बना दिया था ॥३५५॥ चेतन पदार्थ तो दूर रहे जो अचेतन पदार्थ थे वे भी मानो रावणसे भयभीत होकर ही लोगोंके लिए सुखदायी हो गये थे ॥३५६॥ रावणका प्रयाण जारी था कि इतनेमें वर्षा ऋतु आ गयी जो ऐसी जान पड़ती थी मानो हर्षके साथ रावणकी अगवानी करनेके लिए ही आयी थी ॥३५७॥ बलाका

---

१. जनपदैरेव म. । २. सुनिर्मलम् ख., ब., म. ।

हेमकक्षाभृतः कम्बुध्वजभूषितविग्रहाः । प्रहिताभा वै शक्रेण रावणस्य गजा इव ॥३५९॥
दिशोऽन्धकारिताः सर्वा जीमूतपटलैस्तथा । रात्रिन्दिवस्य न ज्ञातो भेद एव यथा जवैः ॥३६०॥
अथवा युक्तमेवेदं कर्तुं मलिनताभृताम् । यत्प्रकाशतमोयुक्तान् कुर्वन्ति भुवने समान् ॥३६१॥
भूमिजीमूतसंसक्ताः स्थूला विच्छेदवर्जिताः । नाज्ञायन्त घना धारा ऊर्ध्वयन्ति पतन्ति तु ॥३६२॥
मानसे मानसंभारो मानिनीभिश्चिरं धृतः । एतनो मेघरटितात् क्षणेन ध्वंसमागतः ॥३६३॥
घनध्वनितविस्रस्ता मानिन्यो रभसं भृशम् । आलिङ्गन्ति स्म भुजकैः प्रणयाकुलमानसाः ॥३६४॥
शीतला मृदवो धाराः पथिकानां घनोज्झिताः । द्रष्टृणां समतां जग्मुः कुर्वन्त्यो मर्मदारणम् ॥३६५॥
भिन्नं धाराकदम्बेन हृदयं दूरवर्तिनः । चक्रेणेव सुतीक्ष्णेन पथिकस्याकुलात्मनः ॥३६६॥
नीतो[3] नवेन लोपेन[4] मूढतां पथिको यथा । पुस्तकर्मसमो जातो वराकः क्षणमात्रकम् ॥३६७॥
क्षीरोदपायिनो मेघा प्रविष्टा इव धेनुषु । अन्यथा क्षीरधारास्ताश्चक्षरुः सततं कथम् ॥३६८॥
वर्षाणां समये तस्मिन्न बभूवुः कृषीवलाः । समाकुलाः प्रभावेण रावणस्य महाधनाः ॥३६९॥
अन्नमेकस्य हेतोर्यत्कुटुम्बिन्या प्रसाधितम् । सुज्यमानं[5] कुटुम्बेन न तच्चिक्षामुपागमत् ॥३७०॥
महोत्सवो दशग्रीवो बभूव प्राणधारिणाम् । पुण्यसंपूर्णदेहानां सौभाग्यं केन कथ्यते ॥३७१॥
इन्दीवरचयश्यामः क्षीणामौत्सुक्यमाहरन्[6] । साक्षादिव बभूवासौ वर्षाकालो महाध्वनिः ॥३७२॥

बिजली और इन्द्रधनुषसे शोभित, महानीलगिरिके समान काले-काले मेघ जोरदार गर्जना करते हुए ऐसे जान पड़ते थे मानो सुवर्णमालाओंको धारण करनेवाले शंख और पताकाओंसे सुशोभित हाथी ही इन्द्रने रावणके लिए उपहारमें भेजे हों ॥३५८-३५९॥ मेघोंके समूहसे समस्त दिशाएँ इस प्रकार अन्धकारयुक्त हो गयी थीं कि लोगोंको रात-दिनका भेद ही नहीं मालूम होता था ॥३६०॥ अथवा जो मलिनताको धारण करनेवाले हैं उन्हें ऐसा ही करना उचित है कि वे संसारमें प्रकाश और अन्धकारसे युक्त सभी पदार्थोंको एक समान कर देते हैं ॥३६१॥ पानीकी बड़ी मोटी धाराएँ रुकावटरहित पृथिवी और आकाशके बीचमें इस तरह संलग्न हो रही थीं कि पता ही नहीं चलता था कि ये मोटी धाराएँ ऊपरको जा रही हैं या ऊपरसे नीचे फिर रही हैं ॥३६२॥ मानवती स्त्रियोंने जो मानका समूह चिरकालसे अपने मनमें धारण कर रखा था वह मेघोंकी जोरदार गर्जनासे क्षण-भरमें नष्ट हो गया था ॥३६३॥ जिनकी भुजाएँ रुनझुन करनेवाली चूड़ियोंसे युक्त थीं ऐसी मानवती स्त्रियाँ मेघगर्जनासे डरकर पतिका गाढ़ आलिंगन कर रही थीं ॥३६४॥ मेघोंके द्वारा छोड़ी हुई जलकी धाराएँ यद्यपि शीतल और कोमल थीं तथापि वे पथिक जनोंका मर्म विदारण करती हुई दर्शकोंकी समानताको प्राप्त हो रही थीं ॥३६५॥ जिसकी आत्मा अत्यन्त व्याकुल थी ऐसे दूरवर्ती पथिकका हृदय धाराओंके समूहसे इस प्रकार खण्डित हो गया था मानो अत्यन्त पैने चक्रसे ही खण्डित हुआ हो ॥३६६॥ कदम्बके नये फूलसे बेचारा पथिक इतना अधिक मोहित हो गया कि वह क्षण-भरके लिए मिट्टीके पुतलेके समान निश्चेष्ट हो गया ॥३६७॥ ऐसा जान पड़ता था कि क्षीरसमुद्रसे जल ग्रहण करनेवाले मेघ मानो गायोंके भीतर जा घुसे थे । यदि ऐसा न होता तो वे निरन्तर दूधकी धाराएँ कैसे झराते रहते ? ॥३६८॥ उस समयके किसान रावणके प्रभावसे महाधनवान् हो गये थे इसलिए उस वर्षाके समय भी वे व्याकुल नहीं हुए थे ॥३६९॥ घरकी मालकिन एक व्यक्तिके लिए जो भोजन तैयार करती थी उसे सारा कुटुम्ब खाता था फिर भी वह समाप्त नहीं होता था ॥३७०॥ इस प्रकार रावण समस्त प्राणियोंके लिए महोत्सवस्वरूप था सो ठीक ही है क्योंकि पुण्यात्मा जीवोंका सौभाग्य कौन कह सकता है ? ॥३७१॥ रावण नील कमलोंके समूहके समान श्याम वर्ण था और जोरदार शब्द करता

१. व पादपूर्ती । प्रहिता भान्ति शक्रेण म. । २. मेघरटितान् म. । ३. वनेन पीतेन म. । ४. कदम्बकुसुमेन । ५. कुटुम्बेन तच्चिष्टां समुपागमत् म. । ६. -माहरत् म. ।

जर्जितेन पयोदानां रावणस्येव शासनात् । घोषणेन कृता सर्वैः प्रणतिः पतिमिर्नृणाम् ॥३७३॥
कन्या दृष्टिहराः प्रापुर्दशवक्त्रं स्वयंवराः । भूगोचराः परित्यक्तगगना इव विद्युतः ॥३७४॥
रेमिरे तास्तमासाद्य महीधरणतत्परम् । [1]पयोधरभराक्रान्ता सहर्षा इव भूभृतम् ॥३७५॥
जिगीषोर्यक्षमर्दस्य[2] दृष्ट्वैव परमां द्युतिम् । भास्वान् पलायितः क्वापि अपात्रासससाकुलः ॥३७६॥
दशानन्नस्य यद्वक्त्रं तदेव कुरुते क्रियाम् । मदीयामिति मत्वेव जगाम क्वापि चन्द्रमाः ॥३७७॥
दशवक्त्रस्य वक्त्रेण जितं ज्ञात्वा निजं पतिम् । भयेनेव समाक्रान्तास्तारा: क्वापि पलायिताः ॥३७८॥
भृशकं पाणिचरणौ कैकसेयस्य योषिताम् । विदित्वेव अपायुक्ता तिरोऽभूदृक्षसंहतिः ॥३७९॥
[3]रशनाविद्युता युक्ता रक्तांशुकसुरायुधाः । नार्यः पयोधराक्रान्तास्तस्य वर्षा इवाभवन् ॥३८०॥
आमोदं रावणो जज्ञे केतकीनां न योषिताम् । निःश्वासमरुताकृष्टगुञ्जदभ्रमरपङ्क्तिना ॥३८१॥

मन्दाक्रान्तावृत्तम्

मार्गीरम्यास्तटमतितरां रम्यमासाद्य दूरं
प्रान्तोद्भूतप्रचुरविलसत्कान्तिशैष्पं विशालम् ।
नानापुष्पप्रसवनिविडघ्राणसंरोधिगन्धं
[4]क्षोणीबन्धुर्जलदसमयं सर्वसौख्येन निन्ये ॥३८२॥

था इससे ऐसा जान पड़ता था मानो स्त्रियोंको उत्सुक करता हुआ साक्षात् वर्षाकाल ही हो ॥३७२॥ मेघोंको गर्जनाके बहाने मानो रावणका आदेश पाकर ही समस्त राजाओंने रावणको नमस्कार किया था ॥३७३॥ नेत्रोंको हरण करनेवाली भूमिगोचरियोंकी अनेक कन्याएँ रावणको प्राप्त हुईं सो ऐसी जान पड़ती थीं मानो आकाशको छोड़कर बिजलियाँ ही उसके पास आयी हों ॥३७४॥ जिस प्रकार पयोधरभराक्रान्ता अर्थात् मेघोंके समूहसे युक्त उत्तम वर्षाएँ किसी पर्वतको पाकर क्रीड़ा करती हैं उसी प्रकार पयोधरभराक्रान्ता अर्थात् स्तनोंके भारसे आक्रान्त कन्याएँ पृथिवीका भार धारण करनेमें समर्थ रावणको पाकर क्रीड़ा करती थीं ॥३७५॥ वर्षा ऋतुमें सूर्य छिप गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो विजयाभिलाषी रावणकी उत्कृष्ट कान्ति देख लज्जा और भयसे व्याकुल होता हुआ कहीं भाग गया था ॥३७६॥ चन्द्रमाने देखा कि जो काम मैं करता हूँ वही रावण का मुख करता है ऐसा मानकर ही मानो वह कहीं चला गया था ॥३७७॥ तारा भी अन्तर्हित हो गये थे सो ऐसा जान पड़ता था मानो ताराओंने देखा कि रावणके मुखसे हमारा स्वामी—चन्द्रमा जीत लिया गया है इस भयसे युक्त होकर ही वे कहीं भाग गयी थीं ॥३७८॥ रावणकी स्त्रियोंके हाथ और पैर हमसे कहीं अधिक लाल हैं ऐसा जानकर ही मानो कमलोंका समूह लजाता हुआ कहीं छिप गया था ॥३७९॥ जो मेखलारूपी बिजलीसे युक्त थीं तथा रंग-बिरंगे वस्त्ररूपी इन्द्रधनुषको धारण कर रही थीं और पयोधर अर्थात् स्तनों (पक्षमें मेघों) से आक्रान्त थीं ऐसी रावणकी स्त्रियाँ ठीक वर्षा ऋतुके समान जान पड़ती थीं ॥३८०॥ जिसने गूँजती हुई भ्रमरपंक्तिको आकृष्ट किया था ऐसे श्वासोच्छ्वासकी वायुसे रावण केतकीके फूल और स्त्रियोंकी गन्धको अलग-अलग नहीं पहचान सका था ॥३८१॥ जिसके दूर-दूर तक प्रचुर मात्रामें सुन्दर घास उत्पन्न हुई थी और जहाँ नाना फूलोंसे समुत्पन्न गन्ध घ्राणको व्याप्त कर रही थी ऐसे गंगा नदीके लम्बे-चौड़े सुन्दर तटको पाकर रावणने सुखपूर्वक वर्षा काल व्यतीत किया ॥३८२॥ गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! पुण्यात्मा मनुष्योंका नाम

---

१. स्तनभारावनताः पक्षे मेघसमूहाक्रान्ताः । २. रावणस्य । ३. रसना विद्युता युक्ता म. । ४. क्रान्ता तस्य म. । ५. शिष्यं म. । संस्थं ख. । सेव्यं क. । ६. रावणः ।

नाम श्रुत्वा प्रणमति जनः पुण्यभाजां वराणां
चारुस्त्रीणां निखिलविषयप्रापिसङ्घो[1] भवन्ति ।
उत्पद्यन्ते परमविभवा विस्मयानां निवासाः
शैत्यं [2]यायाद् रविरपि ततः पुण्यबन्धे यतध्वम् ॥३८३॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते मरुत्वयज्ञध्वंसनपद्मानुगाभिधानं नामैकादशं पर्व ॥११॥

सुनकर ही लोग उन्हें प्रणाम करने लगते हैं, अनेक विषयोंको प्राप्त करानेवाले सुन्दर स्त्रियोंके समूह उन्हें प्राप्त होते रहते हैं, आश्चर्यके निवासभूत अनेक ऐश्वर्य उनके घर उत्पन्न होते हैं और कहाँ तक कहा जाये सूर्य भी उनके प्रभावसे शीतल हो जाता है इसलिए सबको पुण्यबन्धके लिए प्रयत्न करना चाहिए ॥३८३॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्यके द्वारा कथित पद्मचरितमें राजा मरुत्वके यज्ञके विध्वंसका वर्णन करनेवाला ग्यारहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥११॥



---

१. सिखिलविषयप्राप्तसङ्घो म. । २. यात्राद् म. ।

द्वादशं पर्व

तत्राथ मन्त्रिभिः सार्धं चक्रेऽसौ संप्रधारणम् । कस्मै तु दीयतामेषा कन्येति रहसि स्थितः ॥१॥
इन्द्रेण सह संग्रामे जीविते नास्ति निश्चयः । अतो वरं कृतं बालापाणिग्रहणमङ्गलम् ॥२॥
तं च चिन्तापरं ज्ञात्वा कन्यावरगवेषणे । हरिवाहनराजेन[1] सूनुराह्वानितोऽन्तिकम्[2] ॥३॥
दृष्ट्वा तं सुन्दराकारं प्रणतं तोषभागतः । दशाननः सुतां चास्मै दातुं चक्रे मनोरथम् ॥४॥
उचिते चासने तस्मिन्नासीने सचिवान्विते । अचिन्तयद्दशग्रीवो नयशास्त्रविशारदः ॥५॥
मथुरानगरीनाथः सुगोत्रो हरिवाहनः । अस्मद्[3]गुणगणोत्कीर्तिसततासक्तमानसः ॥६॥
अस्य च प्राणभूतोऽयं बन्धूनां च मधुः सुतः । श्लाघ्यो विनयसंपन्नो योग्यः प्रीत्यनुवर्तने[4] ॥७॥
ज्ञात्वा चेतोव वृत्तान्तमयं सुन्दरविभ्रमः । प्रख्यातगुणसंघातः परिप्राप्तो मदन्तिकम् ॥८॥
ततो मधोरिदं प्राह मन्त्री देव तवाग्रतः । अस्य दुःखेन वर्ण्यन्ते गुणा विक्रमशालिनः ॥९॥
तथापि भवतु ज्ञाता स्वामिनोऽस्य यथात्मना । इत्याखेदधियं किंचित् क्रियते प्रक्रमो मया ॥१०॥
आमोदं परमं बिभ्रत्सर्वलोकमनोहरः । मधुशब्दमयं धत्ते यथार्थं पृथिवीगतम् ॥११॥
गुणा एतावतैवास्य ननु पर्याप्तवर्णनाः । असुरेन्द्रेण यद्दत्तं शूलरत्नं महागुणम् ॥१२॥
यत्प्रस्थितं शिखमभीवं भासुरं भृशम् । द्विषत्सहस्रं नीत्वान्तं करं प्रतिनिवर्तते ॥१३॥

अथानन्तर—उसी गंगा तटपर रावणने एकान्तमें मन्त्रियोंके साथ सलाह की कि यह कृतचित्रा कन्या किसके लिए दी जाये ? ॥१॥ इन्द्रके साथ संग्राममें जीवित रहनेका निश्चय नहीं है इसलिए कन्याका विवाहरूप मंगल कार्य प्रथम ही कर लेना योग्य है ॥२॥ तब रावणको कन्याके योग्य वर खोजनेमें चिन्तातुर जानकर राजा हरिवाहनने अपना पुत्र निकट बुलाया ॥३॥ सुन्दर आकारके धारक उस विनयवान् पुत्रको देखकर रावणको बड़ा सन्तोष हुआ और उसने उसके लिए पुत्री देनेका विचार किया ॥४॥ जब वह मन्त्रियोंके साथ योग्य आसनपर बैठ गया तब नीतिशास्त्रका विद्वान् रावण इस प्रकार विचार करने लगा कि यह मथुरा नगरीका राजा हरिवाहन उच्चकुलमें उत्पन्न हुआ है, इसका मन सदा हमारे गुण-कथन करनेमें आसक्त रहता है और यह इसका तथा इसके बन्धुजनोंका प्राणभूत मधु नामका पुत्र है। यह अत्यन्त प्रशंसनीय, विनयसम्पन्न और प्रीतिके निर्वाह करनेमें योग्य है ॥५-७॥ यह वृत्तान्त जानकर ही मानो इसकी चेष्टाएँ सुन्दर हो रही हैं। इसके गुणोंका समूह अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह मेरे समीप आया सो बहुत अच्छा हुआ ॥८॥ तदनन्तर राजा मधुका मन्त्री बोला कि हे देव ! आपके आगे इस पराक्रमीके गुण बड़े दुःखसे वर्णन किये जाते हैं अर्थात् उनका वर्णन करना सरल नहीं है ॥९॥ फिर भी आप कुछ जान सकें इसलिए कुछ तो भी वर्णन करनेका प्रयत्न करता हूँ ॥१०॥ सब लोगोंके मनको हरण करनेवाला यह कुमार वास्तविक मधु शब्दको धारण करता है क्योंकि यह सदा मधु-जैसी उत्कृष्ट गन्धको धारण करनेवाला है ॥११॥ इसके गुणोंका वर्णन इतनेसे ही पर्याप्त समझना चाहिए कि असुरेन्द्रने इसके लिए महागुणशाली शूलरत्न प्रदान किया है ॥१२॥ ऐसा शूलरत्न कि जो कभी व्यर्थ नहीं जाता, अत्यन्त देदीप्यमान है और शत्रुसेनाकी ओर फेंका जाये तो हजारों शत्रुओंको

---

१. 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' इति टच् समासान्तः । २. आह्वानं प्रापितः आह्वानितः । ३. अस्मद्गुणगणे कीर्ति- म., ख. । ४. प्रीत्यनुवर्तते म., ब., ख. । प्रीतेरनुवर्तनं तस्मिन् । ५. गुणपर्याप्तवर्णना म. । ६. नीत्वा तं म. ।

क्रियमैव च वेत्तोऽस्य गुणान् ज्ञास्यति वाचिरात् । वाचा हि प्रकटीकारस्तेषां हास्यस्य कारणम् ॥१४॥
तदस्य युक्तये बुद्धिं करोतु परमेश्वरः । संबन्धं भवतो लब्ध्वा कृतार्थोऽयं भविष्यति ॥१५॥
इत्युक्ते निश्चितो बुद्ध्या जामातासौ निरूपितः । समस्तं च यथायोग्यं [1]कृत्यं तस्य प्रकल्पितम् ॥१६॥
चिन्तितप्राप्तनिःशेषकारणश्च तयोरभूत् । विवाहविधिरत्यन्तप्रीतलोकसमाकुलः ॥१७॥
पुष्पलक्ष्मीमिव प्राप्य [2]दुराख्यामां समागतः । आमोदं जगतो हृद्यं मधुस्तां नेत्रहारिणीम् ॥१८॥
इन्द्रभूतिमिहोद्देशे प्रत्युत्पन्नकुतूहलः । अपृच्छन्मगधाधीशः कृत्वामिनवमादरम् ॥१९॥
असुराणामधीशेन मधवे केन हेतुना । शूलरत्नं मुनिश्रेष्ठ ! दत्तं दुर्लभसंगमम् ॥२०॥
इत्युक्तः पुरुणा युक्तस्तेजसा धर्मवत्सलः । शूलरत्नस्य संप्राप्तेः कारणं गौतमोऽवदत् ॥२१॥
धातकीखण्डमणि द्वीपे क्षेत्रे चैरावतश्रुतौ । शतद्वारपुरेऽभूतां मित्रे सुप्रेमबन्धने ॥२२॥
एकः सुमित्रनामासीदपरः प्रभवश्रुतिः । उपाध्यायकुले चैतौ जातावतिविचक्षणौ ॥२३॥
सुमित्रस्यामवद् राज्यं सर्वसामन्तसेवितम् । पुण्योपार्जितसत्कर्मप्रभावात् परमोदयम् ॥२४॥
दरिद्रकुलसंभूतः पूर्वैर्दुष्कृतैः [3]पुरा । सुमित्रेण महास्नेहात्तमकोऽपि कृता प्रभुः ॥२५॥
सुमित्रोऽथान्यदारण्ये हृतो दुष्टेन वाजिना । दृष्टो द्विरददंष्ट्रेण म्लेच्छेन स्वैरचारिणा ॥२६॥
आनीयासौ ततः पल्लीं संप्राप्य समयं दृढम् । पाया म्लेच्छवरूथिन्यास्तनयां परिणायितः ॥२७॥

नष्ट कर हाथमें वापस लौट आता है ॥१३॥ अथवा आप कार्यके द्वारा ही शीघ्र इसके गुण जानने लगेंगे। वचनोंके द्वारा उनका प्रकट करना हास्यका कारण है ॥१४॥ इसलिए आप इसके साथ पुत्रीका सम्बन्ध करनेका विचार कीजिए। आपका सम्बन्ध पाकर यह कृतकृत्य हो जायेगा ॥१५॥ मन्त्रीके ऐसा कहनेपर रावणने उसे बुद्धिपूर्वक अपना जामाता निश्चित कर लिया और जामाताके यथायोग्य सब कार्य कर दिये ॥१६॥ इच्छा करते ही जिसके समस्त कारण अनायास मिल गये थे ऐसा उन दोनोंका विवाह अत्यन्त प्रसन्न लोगोंसे व्याप्त था अर्थात् उनके विवाहोत्सवमें प्रीतिसे भरे अनेक लोग आये थे ॥१७॥ मधु नाम उस राजकुमारका था और वसन्तऋतुका भी। इसी प्रकार आमोदका अर्थ सुगन्धि है और हर्ष भी। सो जिस प्रकार वसन्तऋतु नेत्रोंको हरण करने वाली अकथनीय पुष्पसम्पदाको पाकर जगत्प्रिय सुगन्धिको प्राप्त होती है उसी प्रकार राजकुमार मधु भी नेत्रोंको हरण करनेवाली कृतचित्राको पाकर परम हर्षको प्राप्त हुआ था ॥१८॥

इसी अवसरपर जिसे कुतूहल उत्पन्न हुआ था ऐसे राजा श्रेणिकने फिरसे नमस्कार कर गौतम स्वामीसे पूछा ॥१९॥ कि हे मुनिश्रेष्ठ ! असुरेन्द्रने मधुके लिए दुर्लभ शूलरत्न किस कारण दिया था ? ॥२०॥ श्रेणिकके ऐसा कहनेपर विशाल तेजसे युक्त तथा धर्मसे स्नेह रखनेवाले गौतम स्वामी शूलरत्नकी प्राप्तिका कारण कहने लगे ॥२१॥ उन्होंने कहा कि धातकीखण्ड द्वीपके ऐरावतक्षेत्र सम्बन्धी शतद्वार नामक नगरमें प्रीतिरूपी बन्धनसे बँधे दो मित्र रहते थे ॥२२॥ उनमेंसे एकका नाम सुमित्र था और दूसरेका नाम प्रभव। सो ये दोनों एक गुरुकी चटशालामें पढ़कर बड़े विद्वान् हुए ॥२३॥ कई एक दिनमें पुण्योपार्जित सत्कर्मके प्रभावसे सुमित्रको सर्व सामन्तोंसे सेवित तथा परम अभ्युदयसे युक्त राज्य प्राप्त हुआ ॥२४॥ यद्यपि प्रभव पूर्वोपार्जित पापकर्मके उदयसे दरिद्र कुलमें उत्पन्न हुआ था तथापि महास्नेहके कारण सुमित्रने उसे भी राजा बना दिया ॥२५॥

अथानन्तर एक दिन एक दुष्ट घोड़ा राजा सुमित्रको हरकर जंगलमें ले गया सो वहाँ अपनी इच्छासे भ्रमण करनेवाले द्विरददंष्ट्र नाम म्लेच्छोंके राजाने उसे देखा ॥२६॥ द्विरद-

---

१. कृतान्तस्य म.। २. दुराख्यानां ब.। दुरान्मानं समागतः क., ख.। ३. दुष्कुलै-म.। ४. पल्लिं क., ब., म.। ५. -विरूथिन्या म.।

तां च कन्यां समासाद्य साक्षादिव वनश्रियम् । वनमालाभिधां तत्र स्थितोऽसौ मासमात्रकम् ॥२८॥
अनुज्ञातस्ततस्तेन शतद्वारपुरोत्तमम् । प्रस्थितः कान्तया सार्कं वृतः शबरसेनया ॥२९॥
गवेषणे विनिष्क्रान्तः प्रभवोऽथ तदैक्षत । कान्तया सहितं मित्रं रमारूपेव पताकया ॥३०॥
चक्रे च मित्रभार्यायां मानसं पापकर्मणः । उदयाद्भ्रष्टनिःशेषकृत्याकृत्यविचेतनः ॥३१॥
मनोभवशरैरुग्रैस्ताड्यमानः समन्ततः । अवाप न क्वचित्सौख्यं मनसा भृशमाकुलः ॥३२॥
ज्येष्ठो व्याधिसहस्राणां मदनो मतिसूदनः । येन संप्राप्यते दुःखं नरैरक्षतविग्रहैः ॥३३॥
प्रधानं दिवसाधीशः सर्वेषां ज्योतिषां यथा । तथा समस्तरोगाणां मदनो मूर्ध्नि वर्तते ॥३४॥
विचित्तोऽसि किमित्येवमित्युक्तः सुहृदा च सः । अगाद् सुन्दरीं दृष्ट्वा विक्लवत्वस्य कारणम् ॥३५॥
श्रुत्वा प्राणसमस्यास्य दुःखं स्वस्त्रीनिमित्तकम् । तामाशुप्राहिणोत् प्राज्ञः सुमित्रो मित्रवत्सलः ॥३६॥
प्रेष्य च प्रभवागारं गवाक्षे गूढविग्रहः । स तामैक्षत किं कुर्यादियमस्येति तत्परः ॥३७॥
अचिन्तयच्च यद्येषा भवेन्नास्यानुकूलिका । ततो निग्रहमेतस्याः कर्तास्मि सुविनिश्चितम् ॥३८॥
अथैतस्याश्रयो भूत्वा कामं संपादयिष्यति । ततो ग्रामसहस्रेण पूजयिष्यामि सुन्दरीम् ॥३९॥
समीपं प्रभवस्यापि वनमाला च सोत्सुका । प्रदोषसमये स्पष्टे[3] ताराप्रकरमण्डिते ॥४०॥
आसीनां चासने रम्ये पुरोदोषविवर्जितः । तामपृच्छद्दहो भद्रे का त्वमित्युत्कटादरः ॥४१॥
ततो विवाहपर्यन्तं तस्याः श्रुत्वा विचेष्टितम् । प्रभवो निश्चयो जातो निर्वेदं च गतः परम् ॥४२॥

दंष्ट्र उसे अपनी पल्ली (भीलोंकी बस्ती) में ले गया और एक पक्की शर्त कर उसने अपनी पुत्री राजा सुमित्रको विवाह दी ॥२७॥ जो साक्षात् वनलक्ष्मीके समान जान पड़ती थी ऐसी वनमाला नामा कन्याको पाकर राजा सुमित्र वहाँ एक माह तक रहा ॥२८॥ तदनन्तर द्विरददंष्ट्रकी आज्ञा लेकर वह अपनी कान्ताके साथ शतद्वार नगरकी ओर वापस आ रहा था। भीलोंकी सेना उसके साथ थी ॥२९॥ इधर प्रभव अपने मित्रकी खोजके लिए निकला था सो उसने कामदेवकी पताकाके समान सुशोभित कान्तासे सहित मित्रको देखा ॥३०॥ पापकर्मके उदयसे जिसके समस्त करने और न करने योग्य कार्योंका विचार नष्ट हो गया था ऐसे प्रभवने मित्रकी स्त्रीमें अपना मन किया ॥३१॥ सब ओरसे कामके तीक्ष्ण बाणोंसे ताड़ित होनेके कारण उसका मन अत्यन्त व्याकुल हो रहा था इसलिए वह कहीं भी सुख नहीं पा रहा था ॥३२॥ बुद्धिको नष्ट करनेवाला काम हजारों बीमारियोंमें सबसे बड़ी बीमारी है क्योंकि उससे मनुष्योंका शरीर तो नष्ट होता नहीं है पर वे दुःख पाते रहते हैं ॥३३॥ जिस प्रकार सूर्य समस्त ज्योतिषियोंमें प्रधान है उसी प्रकार काम समस्त रोगोंमें प्रधान है ॥३४॥ 'बेचैन क्यों हो रहे हो' इस तरह जब मित्रने बेचैनीका कारण पूछा तब उसने सुन्दरीको देखना ही अपनी बेचैनीका कारण कहा ॥३५॥ मित्रवत्सल सुमित्रने जब सुना कि मेरे प्राणतुल्य मित्रको जो दुःख हो रहा है उसमें मेरी स्त्री ही निमित्त है तब उस बुद्धिमान्ने उसे प्रभवके घर भेज दिया और आप झरोखेमें छिपकर देखने लगा कि देखें यह वनमाला इसका क्या करती है ॥३६-३७॥ साथ ही वह यह भी सोचता जाता था कि यदि यह वनमाला इसके अनुकूल नहीं हुई तो मैं निश्चित ही इसका निग्रह करूँगा अर्थात् इसे दण्ड दूँगा ॥३८॥ और यदि अनुकूल होकर इसका मनोरथ पूर्ण करेगी तो हजार ग्राम देकर इस सुन्दरीकी पूजा करूँगा ॥३९॥ तदनन्तर जब रात्रिका प्रारम्भ हो गया और आकाशमें ताराओंके समूह छिटक गये तब वनमाला बड़ी उत्कण्ठाके साथ प्रभवके समीप पहुँची ॥४०॥ वनमालाको उसने सुन्दर आसनपर बैठाया और स्वयं निर्दोष भावसे उसके सामने बैठ गया। तदनन्तर उसने बड़े आदरके साथ उससे पूछा कि हे भद्रे ! तू कौन है ? ॥४१॥ वनमालाने विवाह तकका सब समाचार

---

१. सतीमैक्षत म. । २. वशंवदा आज्ञाकारिणीति यावत् । ३. स्पृष्टे म., ख. ।

अचिन्तयच्च हा कष्टं मया मित्रस्य कामिनी । किमपि प्रार्थिता कर्तुं धिङ्मामुच्छिन्नचेतनम् ॥४३॥
पापादस्माच्च मुच्येऽहमृते स्वस्य विपादनात् । किं वा कलङ्कयुक्तेन जीवितेन ममाधुना ॥४४॥
इति संचिन्त्य मूर्धानं स्वं लुलूच्यं चकर्ष सः । कोशतः सायकं सान्द्रच्छायादिग्धदिगन्तरम् ॥४५॥
उपकण्ठं च कण्ठस्य यावदेनं चकार सः । निपत्य सहसा तावत्सुमित्रेण स्वरक्ष्यत[1] ॥४६॥
जगाद च त्वरायुक्तं परिष्वज्य स तं सुहृद् । आत्मघातिसमा दोषं[2] प्राज्ञः किं नाम बुध्यसे ॥४७॥
[3]आमगर्भेषु दुःखानि प्राप्नुवन्ति चिरं जनाः । ये शरीरस्य कुर्वन्ति स्वस्याविधिनिपातनम् ॥४८॥
इत्युक्त्वा सुहृदः खड्गं कराच्चाद्यं[4] सुचेतसा । सान्त्वितश्च चिरं वाक्यैर्मनोहरणकारिभिः ॥४९॥
ईदृशी च तयोः प्रीतिरन्योऽन्यगुणयोजिता । प्राप्स्यत्यन्तमहो कष्टः संसारः सारवर्जितः ॥५०॥
पृथक्-पृथक् प्रपद्यन्ते सुखदुःखकरीं गतिम् । जीवाः स्वकर्मसंपन्नाः कोऽत्र कस्य सुहृज्जनः ॥५१॥
अन्यदाथ विबुद्धात्मा श्रमणत्वं समाश्रितः । ईशानकल्प ईशत्वं सुमित्रः प्राप्तवान् सुखी ॥५२॥
ततश्च्युत्वेह संभूतो द्वीपे जम्बूपदान्तिके । हरिवाहनराजस्य मथुरायां[5] सुतः पुरि ॥५३॥
माधव्यास्तनयो नाम्ना मधुः स मधुमोहितः । नभसो हरिवंशस्य यश्चन्द्रत्वमुपागतः ॥५४॥
मिथ्यादृक् प्रभवो मृत्वा दुःखमासाद्य दुर्गतौ । विश्वावसोरभूत् पुत्रो ज्योतिष्मत्यां शिखिश्रुतिः ॥५५॥
[6]श्रमणत्वधरः कृत्वा तपः कष्टं निदानतः । दैत्यानामधिपो जातश्चमराख्योऽसमामरः ॥५६॥
ततोऽवधिकृतालोकः स्मृत्वा पूर्वभवान् निजान् । गुणान् सुमित्रमित्रस्य चक्रे मनसि निर्मलान् ॥५७॥

कह सुनाया। उसे सुनकर प्रभव प्रभाहीन हो गया और परम निर्वेदको प्राप्त हुआ ॥४२॥ वह विचार करने लगा कि हाय-हाय बड़े कष्टकी बात है कि मैंने मित्रकी स्त्रीसे कुछ तो भी करनेकी इच्छा की। मुझ अविवेकीके लिए धिक्कार है ॥४३॥ आत्मघातके सिवाय अन्य तरह मैं इस पापसे मुक्त नहीं हो सकता। अथवा मुझे अब इस कलंकी जीवनसे प्रयोजन ही क्या है ? ॥४४॥ ऐसा विचारकर उसने अपना मस्तक काटनेके लिए म्यानसे तलवार खींची। उसकी वह तलवार अपनी सघन कान्तिसे दिशाओंके अन्तरालको व्याप्त कर रही थी ॥४५॥ वह इस तलवारको कण्ठके पास ले ही गया था कि सुमित्रने सहसा लपककर उसे रोक दिया ॥४६॥ सुमित्रने शीघ्रतासे मित्रका आलिंगन कर कहा कि तुम तो पण्डित हो, आत्मघातसे जो दोष होता है उसे क्या नहीं जानते हो ? ॥४७॥ जो मनुष्य अपने शरीरका अविधिसे घात करते हैं वे चिरकाल तक कच्चे गर्भमें दुःख प्राप्त करते हैं अर्थात् गर्भ पूर्ण हुए बिना ही असमय में मर जाते हैं ॥४८॥ ऐसा कहकर उसने मित्रके हाथसे तलवार छीनकर नष्ट कर दी और चिरकाल तक उसे मनोहारी वचनोंसे समझाया ॥४९॥ आचार्य कहते हैं कि परस्परके गुणोंसे सम्बन्ध रखनेवाली उन दोनों मित्रोंकी प्रीति इस तरह अन्तको प्राप्त होगी इससे जान पड़ता है कि यह संसार असार है ॥५०॥ अपने-अपने कर्मोंसे युक्त जीव सुख-दुःख उत्पन्न करनेवाली पृथक्-पृथक् गतिको प्राप्त होते हैं इसलिए इस संसारमें कौन किसका मित्र है ? ॥५१॥ तदनन्तर जिसकी आत्मा प्रबुद्ध थी ऐसा राजा सुमित्र मुनि दीक्षा धारण कर अन्तमें ऐशान स्वर्गका अधिपति हो गया ॥५२॥ वहाँसे च्युत होकर जम्बूद्वीपकी मथुरा नगरीमें राजा हरिवाहनकी माधवी रानीसे मधु नामका पुत्र हुआ। यह पुत्र मधुके समान मोह उत्पन्न करनेवाला था और हरिवंशरूपी आकाशमें चन्द्रमाके समान सुशोभित था ॥५३-५४॥ मिथ्यादृष्टि प्रभव मरकर दुर्गतिमें दुःख भोगता रहा और अन्तमें विश्वावसुकी ज्योतिष्मती स्त्रीके शिखी नामा पुत्र हुआ ॥५५॥ सो द्रव्यलिंगी मुनि हो महातप कर निदानके प्रभावसे असुरोंका अधिपति चमरेन्द्र हुआ ॥५६॥ तदनन्तर अवधिज्ञानके द्वारा अपने पूर्व भवोंका स्मरण कर सुमित्र

---

१. मारणात् । २. खड्गम् । ३. निरुध्यते म. । ४. दोषः म. । ५. अपरिपूर्णगर्भेषु । ६. करात्तस्य म. । ७. मथुरायामुरौ पुरि क., ख. । ८. श्रवणस्य -म. ।

सुमित्रराजचरितं स्मर्यमाणं सुपेशलम् । असुरेन्द्रस्य हृदयं चकर्त्त करपत्रवत् ॥५८॥
दध्यौ चेति पुनर्मन्दः सुमित्रोऽसौ महागुणः । आसीन्मम महामित्रः सहायः सर्ववस्तुषु ॥५९॥
तेन सार्धं मया विद्या गृहीता गुरवेश्मनि । दरिद्रकुलसंभूतस्तेनाहं स्वसमः कृतः ॥६०॥
आत्मीया तेन मे[2] पत्नी द्वेषवर्जितचेतसा । प्रेषिता पापचित्तस्य वितृष्णेन दयावता ॥६१॥
ज्ञात्वा वयस्यपत्नीति परमुद्वेगमागतः । शिरः स्वमसिना छिन्दंस्तेनाहं परिरक्षितः ॥६२॥
अश्रद्दधज्जिनेन्द्राणां शासने पञ्चतां गतः । प्राप्तोऽस्मि दुर्गतौ दुःखं स्मरणेनापि दुःसहम् ॥६३॥
निन्दनं साधुवर्गस्य सिद्धिमार्गानुवर्तिनः । यत्कृतं तस्य तत्प्राप्तं फलं दुःखासु योनिषु ॥६४॥
स चापि चरितं कृत्वा[3] निर्मलं सुखमुत्तमम् । ऐशाननिलये भुक्त्वा च्युतोऽयं वर्तते मधुः ॥६५॥
उपकारसमाकृष्टस्ततोऽसौ भवनाद्विजात् । निर्जगाम क्षणोद्भूतपरप्रेमार्द्रमानसः ॥६६॥
दृष्ट्वादरेण कृत्वा च महारत्नादिपूजनम्[5] । शूलरत्नं ददावस्मै सहस्रान्तकसंज्ञितम्[6] ॥६७॥
शूलरत्नं स तत्प्राप्य परां प्रीतिं गतः क्षितौ । अस्त्रविद्याधिराजश्च सिंहवाहनजोऽभवत्[7] ॥६८॥
एतन्मधोरुपाख्यानमधीते यः शृणोति वा । दीप्तिमग्र्यं परं चायुः सोऽधिगच्छति मानवः ॥६९॥
सामन्तानुगतोऽथासौ भैरवमखनाशकृत् । प्रभावं प्रथयँल्लोके प्रवणीकृतविद्विषम् ॥७०॥
संवत्सरान् दशाष्टौ च विहरन्नतिताद्भुतम् । भुवने जनितप्रेम्णि वेवेन्द्रस्त्रिदिवे यथा ॥७१॥

नामक मित्रके निर्मल गुणोंका हृदयमें चिन्तवन करने लगा ॥५७॥ ज्यों ही उसे सुमित्र राजाके मनोहर चरित्रका स्मरण आया त्योंही वह करोंतके समान उसके हृदयको विदीर्ण करने लगा ॥५८॥ वह विचार करने लगा कि सुमित्र बड़ा ही भला और महागुणवान् था। वह समस्त कार्योंमें सहायता करनेवाला मेरा परम मित्र था ॥५९॥ उसने मेरे साथ गुरुके घर विद्या पढ़ी थी। मैं दरिद्रकुल में उत्पन्न हुआ था सो उसने मुझे अपने समान धनवान् बना लिया था ॥६०॥ मेरे चित्तमें पाप समाया सो द्वेषरहित चित्तके धारक उस दयालुने तृष्णारहित होकर मेरे पास अपनी स्त्री भेजी ॥६१॥ 'यह मित्रकी स्त्री है' ऐसा जानकर जब मैं परम उद्वेगको प्राप्त होता हुआ तलवारसे अपना शिर काटनेके लिए उद्यत हुआ तो उसीने मेरी रक्षा की थी ॥६२॥ मैंने जिनशासनकी श्रद्धा बिना मरकर दुर्गतिमें ऐसे दुःख भोगे कि जिनका स्मरण करना भी दुःसह है ॥६३॥ मैंने मोक्षमार्गका अनुवर्तन करनेवाले साधुओंके समूहकी जो निन्दा की थी उसका फल अनेक दुःखदायी योनियोंमें प्राप्त किया ॥६४॥ और वह सुमित्र निर्मल चारित्रका पालन कर ऐशान स्वर्गमें उत्तम सुखका उपभोग करनेवाला इन्द्र हुआ तथा अब वहाँसे च्युत होकर मधु हुआ है ॥६५॥ इस प्रकार क्षणभरमें उत्पन्न हुए परम प्रेमसे जिसका मन आर्द्र हो रहा था ऐसा चमरेन्द्र सुमित्र मित्रके उपकारोंसे आकृष्ट हो अपने भवनसे बाहर निकला ॥६६॥ उसने बड़े आदरके साथ मिलकर महारत्नोंसे मित्रका पूजन किया और उसके लिए सहस्रान्तक नामक शूलरत्न भेंटमें दिया ॥६७॥ हरिवाहनका पुत्र मधु चमरेन्द्रसे शूलरत्न पाकर पृथिवीपर परम प्रीतिको प्राप्त हुआ और अस्त्रविद्याका स्वामी कहलाने लगा ॥६८॥ गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन्! जो मनुष्य मधुके इस चरित्रको पढ़ता अथवा सुनता है वह विशाल दीप्ति, श्रेष्ठ धन और उत्कृष्ट आयुको प्राप्त होता है ॥६९॥

अथानन्तर अनेक सामन्त जिसके पीछे-पीछे चल रहे थे ऐसा रावण लोकमें शत्रुओंको वशीभूत करनेवाला अपना प्रभाव फैलाता और अनेक आश्चर्य उत्पन्न करता हुआ प्रेमसे भरे

---

१. विच्छेद । २. मदर्थम् । ३. श्रुत्वा म. । ४. भुवनान्नि-म. । ५. महारत्नादिपूजनम् म. । ६. सहस्रांसक ख. । सहस्रान्तिक म. । ७. रावणः । ८. प्रलयं म. ।

मुञ्चथारास्समुद्रस्य धरणीं धरणीपतिः । चिरेण जिनचैत्याढ्यं प्रापाष्टापदभूधरम्[1] ॥७२॥
प्रसन्नसलिला तत्र भाति मन्दाकिनी भृशम् । महिषी सिन्धुनाथस्य कनकाब्जरजस्तता[2] ॥७३॥
सन्निवेश्य समीपेऽस्या बाहिनीं बलशालिनाम् । चारीश्चं रमणं चक्रे कैलासस्य स कुक्षिषु ॥७४॥
नुनुदुः खेचराः खेदं भूचराश्च यथाक्रमम् । मन्दाकिन्याः सुखस्पर्शसलिले स्फटिकामले ॥७५॥
न मेरुपल्लवोपास्तलोठनोपात्तपांशवः । स्नपिताः ससयः पीतपयसो[3] विनयस्थिताः[4] ॥७६॥
शीकरार्द्रितदेहत्वाद् ग्राहिताः सुघनं रजः । तटिन्यस्तमहाखेदाः स्नपिताः कुञ्जराश्चिरम्[5] ॥७७॥
स्मृत्वानु बालिकृत्तान्तं नमस्कृतजिनालयः । यमस्वंसः स्थितः कुर्वंश्चेष्टां धर्मानुगामिनीम् ॥७८॥
अथ योऽसौ सुरेन्द्रेण नियुक्तो नलकूबरः । लोकपालतया ख्यातः पुरे दुर्लङ्घ्यसंज्ञके ॥७९॥
उपशल्यं स विज्ञाय रावणं खरवर्गतः । जिगीषया समायातं सैन्यसागरवर्तिनम् ॥८०॥
लेखारोपितवृत्तान्तं प्राहिणोदाशुगामिनम् । खेचरं सुरनाथाय त्रासाध्यासितमानसः ॥८१॥
मन्दरं प्रस्थितायास्मै वन्दितुं जिनपुङ्गवान् । प्रणम्य लेखवाहेन लेखोऽवस्थापितः पुरः ॥८२॥
वाचयित्वा च तं कृत्वा हृदयेऽर्थमशेषतः । आज्ञापयत् सुराधीशो वस्त्विदं लेखदानतः[9] ॥८३॥
यत्तावद्विहास्स्व[10] त्वममोघाक्षस्य पालकः । जिनानां पाण्डुके कृत्वा वन्दनां यावदेम्यहम् ॥८४॥

संसारमें अठारह वर्ष तक इस प्रकार भ्रमण करता रहा जिस प्रकार कि इन्द्र स्वर्गमें भ्रमण करता है ॥७०-७१॥ तदनन्तर रावण क्रम-क्रमसे समुद्रकी निकटवर्तिनी भूमिको छोड़ता हुआ चिरकाल के बाद जिनमन्दिरोंसे युक्त कैलास पर्वतपर पहुँचा ॥७२॥ वहाँ स्वच्छ जलसे भरी समुद्रकी पत्नी एवं सुवर्ण कमलोंकी परागसे व्याप्त गंगानदी अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥७३॥ सो उसके समीप ही अपनी विशाल सेना ठहराकर कैलासकी कन्दराओंमें मनोहर क्रीड़ा करने लगा ॥७४॥ पहले विद्याधर और फिर भूमिगोचरी मनुष्योंने यथाक्रमसे गंगा नदीके स्फटिकके समान स्वच्छ सुखकर स्पर्शवाले जलमें अपना खेद दूर किया था अर्थात् स्नानकर अपनी थकावट दूर की थी ॥७५॥ पृथ्वीपर लोटनेके कारण लगी हुई जिनकी धूलि नमेरुवृक्षके नये-नये पत्तोंसे झाड़कर दूर कर दी गयी थी और पानी पिलानेके बाद जिन्हें खूब नहलाया गया था ऐसे घोड़े विनयसे खड़े थे ॥७६॥ जलके छींटोंसे गीला शरीर होनेके कारण जिनपर बहुत गाढ़ी धूलि जमी हुई थी तथा नदीके द्वारा जिनका बड़ा भारी खेद दूर कर दिया गया था ऐसे हाथियोंको महावतोंने चिरकाल तक नहलाया था ॥७७॥ कैलासपर आते ही रावणको बालिका वृत्तान्त स्मृत हो उठा इसलिए उसने समस्त चैत्यालयोंको बड़ी सावधानीसे नमस्कार किया और धर्मानुकूल क्रियाओंका आचरण किया ॥७८॥ अथानन्तर इन्द्रने दुर्लंघ्यपुर नामा नगरमें नलकूबरको लोकपाल बनाकर स्थापित किया था सो गुप्तचरोंसे जब उसे यह मालूम हुआ कि सेना रूपी सागरके मध्य वर्तमान रहनेवाला रावण जीतनेकी इच्छासे निकट ही आ पहुँचा है तब उसने भयभीतचित्त होकर पत्रमें सब समाचार लिख एक शीघ्रगामी विद्याधर इन्द्रके पास पहुँचाया ॥७९-८१॥ सो इन्द्र जिस समय जिन-प्रतिमाओंकी वन्दना करनेके लिए सुमेरु पर्वतपर जा रहा था उसी समय पत्रवाहक विद्याधरने प्रणामकर नलकूबरका पत्र उसके सामने रख दिया ॥८२॥ इन्द्रने पत्र बाँचकर तथा समस्त अर्थ हृदयमें धारणकर प्रतिलेख द्वारा आज्ञा दी कि मैं जबतक पाण्डुकवनमें स्थित जिन-प्रतिमाओंकी वन्दना कर वापस आता हूँ तबतक तुम बड़े यत्नसे रहना। तुम अमोघ अक्षके धारक

---

१. कैलासगिरिम् । २. रजस्तथा म. । ३. पल्लवायास्त म. । ४. नमिताः म. । ५. विनयास्थिताः म. । ६. तटिन्या नद्या अस्तो महाखेदो येषां ते । तटन्यस्तमहाभेदाः क., ख. । तटन्यस्तमहाखेदाः ब. । ७. समीपं । ८. मेरुम् । मन्दिरं म., ब. । ९. वास्तिवदं म. । १०. इह + आस्स्व । -दिहास्स्व म. । -दिहस्य ब. ।

इति संदिश्य गर्वेण सेनामगणयद् द्विषः । गतोऽसौ पाण्डुकोद्यानं वन्दनासक्तमानसः ॥८५॥
समस्तासन्नसमेतश्च प्रयत्नान्नलकूबरः । पुरस्याचिन्तयद् रक्षामिति कर्तव्यतत्परः ॥८६॥
योजनानां शतं तुङ्गः प्राकारो विद्यया कृतः । वज्रशाल इति ख्यातः परिधित्रिगुणान्वितः ॥८७॥
रावणेन च विज्ञाय नगरं शत्रुगोचरम् । [1]गृहीतुं प्रेषितो दण्डं प्रहस्तोऽनीकिनीपतिः ॥८८॥
निवृत्य रावणायासावाख्यदेव न शक्यते । गृहीतुं तत्पुरं तुङ्गप्राकारकृतवेष्टनम् ॥८९॥
पश्य दृश्यत एवायं दिक्षु सर्वासु दारुणः । शिखरी विवरी दंष्ट्राकरालास्यशयूपमः ॥९०॥
दह्यमानमिवोद्दारं कीचकानां घनं वनम् । स्फुलिङ्गराशिदुष्प्रेक्ष्यज्वालाजालसमाकुलम् ॥९१॥
दंष्ट्राकरालवेतालरूपाण्यस्य नरान् बहून् । हरन्त्युदारयन्त्राणि योजनाभ्यन्तरस्थितान्[2] ॥९२॥
तेषां वक्त्राणि ये प्राप्ता यन्त्राणां प्राणिनां गणाः । तेषां जन्मान्तरे भूयः शरीरेण समागमः ॥९३॥
इति विज्ञाय कर्तव्यस्त्वया कुशलसंगमः । उपायो विजिगीषुत्वं क्रियते दीर्घदर्शिना[3] ॥९४॥
निःसर्पणमरं[4] तावदस्मादेशाद् विराजते । संशयः परमोऽप्यत्र दृश्यते दुर्निराकृतः ॥९५॥
ततः कैलासकुक्षिस्था दशवक्त्रस्य मन्त्रिणः । उपायं चिन्तयाञ्चक्रुर्नयशास्त्रविशारदाः ॥९६॥
अथ रम्भागुणाकारा नलकूबरकामिनी । उपरम्भेति विख्याता शुश्रावान्ते दशाननम् ॥९७॥
पूर्वमेव गुणैः रक्ता सत्रीत्कण्ठां परामसौ । जगाम रजनीनाथे यथा कुमुदसंहतिः ॥९८॥

हो ॥८३-८४॥ ऐसा सन्देश देकर जिसका मन वन्दनामें आसक्त था ऐसा इन्द्र गर्ववश शत्रुकी सेनाको कुछ नहीं गिनता हुआ पाण्डुकवन चला गया ॥८५॥ इधर समयानुसार कार्य करनेमें तत्पर रहनेवाले नलकूबरने समस्त आप्तजनोंके साथ मिलकर बड़े प्रयत्नसे नगरकी रक्षाका उपाय सोचा ॥८६॥ उसने सौ योजन ऊँचा और तिगुनी परिधिसे युक्त वज्रशाल नामा कोट, विद्याके प्रभावसे नगरके चारों ओर खड़ा कर दिया ॥८७॥ यह नगर शत्रुके अधीन है ऐसा जानकर रावणने दण्ड वसूल करनेके लिए प्रहस्त नामा सेनापति भेजा ॥८८॥ सो उसने लौटकर रावणसे कहा कि हे देव ! शत्रुका नगर बहुत ऊँचे प्रकारसे घिरा हुआ है इसलिए वह नहीं लिया जा सकता है ॥८९॥ देखो वह भयंकर प्राकार यहाँ से ही समस्त दिशाओंमें दिखाई दे रहा है। वह बड़ी ऊँची शिखरों और गम्भीर बिलोंसे युक्त है तथा जिसका मुख दाढ़ोंसे भयंकर है ऐसे अजगरके समान जान पड़ता है ॥९०॥ उड़ते हुए तिलगोंसे जिनकी ओर देखना भी कठिन है ऐसी ज्वालाओंके समूहसे वह प्राकार भरा हुआ है तथा बाँसोंके जलते हुए किसी सघन बड़े वनके समान दिखाई देता है ॥९१॥ इस प्राकारमें भयंकर दाढ़ोंको धारण करनेवाले वेतालोंके समान ऐसे-ऐसे विशाल यन्त्र लगे हुए हैं जो एक योजनके भीतर रहनेवाले बहुतसे मनुष्योंको एक साथ पकड़ लेते हैं ॥९२॥ प्राणियोंके जो समूह उन यन्त्रोंके मुखमें पहुँच जाते हैं फिर उसके शरीरका समागम दूसरे जन्ममें ही होता है ॥९३॥ ऐसा जानकर आप नगर लेनेके लिए कोई कुशल उपाय सोचिए। यथार्थमें दीर्घदर्शी मनुष्यके द्वारा ही विजिगीषुपना किया जाता है अर्थात् जो दीर्घदर्शी होता है वही विजिगीषु हो सकता है ॥९४॥ इस स्थानसे तो शीघ्र ही निकल भागना शोभा देता है क्योंकि यहाँ पर जिसका निरावरण नहीं किया जा सकता ऐसा बहुत भारी संशय विद्यमान है ॥९५॥ तदनन्तर कैलासकी गुफाओंमें बैठे रावणके नीतिनिपुण मन्त्री उपायका विचार करने लगे ॥९६॥ अथानन्तर जिसके गुण और आकार रम्भा नामक अप्सराके समान थे ऐसी नलकूबरकी उपरम्भा नामक प्रसिद्ध स्त्री ने सुना कि रावण समीप ही आकर ठहरा हुआ है ॥९७॥ वह रावणके गुणोंसे पहले ही अनुरक्त थी इसलिए जिस प्रकार कुमुदोंकी पंक्ति चन्द्रमाके विषयमें

---

१. गृहीतं प्रेषितो दण्डः प्रहस्तो नाकिनीपतिः म. । २. स्थितं म. । स्थिता ख. । ३. दर्शिता म., दर्शिना ख. ब. । दर्शिनः ज. । ४. शीघ्रम् ।

सखीं विचित्रमालाख्यामेकान्ते चेत्यभाषत । शृणु सुन्दरि काऽस्त्यन्या[1] सखी प्राणसमा मम ॥९९॥
समानं ख्याति येनासौ सखिशब्दः प्रवर्तते । अतो न मे मतेर्भेदं कर्तुमर्हसि शोभने ॥१००॥
नियमात् कुरुषे यस्माद्भद्रे मत्कार्यसाधनम् । ततो ब्रवीमि सख्यो हि जीवितालम्बनं परम् ॥१०१॥
एवमुक्ता जगादासौ किमेवं देवि भाषसे । भृत्याहं विनियोक्तव्या त्वया वाञ्छितकर्मणि ॥१०२॥
न करोमि स्तुतिं स्वस्य सा हि लोकेऽतिनिन्दिता[2] । एतावत्तु ब्रवीम्येषा सिद्धिरेवास्मि रूपिणी ॥१०३॥
वद[3] निश्शङ्किका भूत्वा यत्ते मनसि वर्तते । मयि सत्यां कृथा खेदः स्वामिन्या भार्यते त्वया ॥१०४॥
उपरम्भा ततोऽवादीन्निःश्वस्यायतमन्थरम् । पद्माभं[4] चन्द्रमःकान्तं करे न्यस्य कपोलकम् ॥१०५॥
निष्क्रान्तस्तम्भितान् वर्णान् प्रेरयन्ती पुनः पुनः । आरूढपतितं धार्ष्ट्ये कृच्छ्राच्चिदधती मनः ॥१०६॥
सखि बाल्यत आरभ्य रावणे मन्मनो गतम्[5] । लोकावदातयितस्तस्य गुणाः कान्ता मया श्रुताः[6] ॥१०७॥
अप्रगल्भतया प्राप्तः साहमप्रियसंगमम्[7] । वहामि परमप्रीतेः[8] पश्चात्तापमनारतम् ॥१०८॥
जानामि च तथा नैतत्प्रशस्यमिति रूपिणि । तथापि मरणं सोढुं नास्मि शक्ता सुभाषिते ॥१०९॥
सोऽयमासन्नदेशस्थो वर्तते मे मनोहरः । कथंचिदमुना योगं प्रसीद कुरु मे सखि ॥११०॥
एषा नमामि ते [9]पादनिस्युक्ता [9]पादयुगल[9]। सिद्धे वैक्लवितुं [9]लज्जालक्ष्मा[9] तत्संभ्रमाद्धृतम् ॥१११॥

उत्कण्ठाको प्राप्त रहती है उसी प्रकार वह भी रावणके विषयमें परम उत्कण्ठाको प्राप्त हुई ॥९८॥ उसने एकान्तमें विचित्रमाला नामक सखीसे कहा कि हे सुन्दरि, सुन। तुझे छोड़कर मेरी प्राण तुल्य दूसरी सखी कौन है ? ॥९९॥ जो समान बात कहे वहीं सखी शब्द प्रवृत्त होता है अर्थात् समान बात कहनेवाली ही सखी कहलाती है इसलिए हे शोभने ! तू मेरी मनसाका भेद करनेके योग्य नहीं है ॥१००॥ हे चतुरे ! तू अवश्य ही मेरा कार्य सिद्ध करती है इसलिए तुझसे कहती हूँ। यथार्थमें सखियाँ ही जीवनका बड़ा आलम्बन हैं—सबसे बड़ा सहारा हैं ॥१०१॥ ऐसा कहनेपर विचित्रमालाने कहा कि हे देवि ! आप ऐसा क्यों कहती हैं। मैं तो आपकी दासी हूँ, मुझे आप इच्छित कार्यमें लगाइए ॥१०२॥ मैं अपनी प्रशंसा नहीं करती क्योंकि लोकमें उसे निन्दनीय बताया है पर इतना अवश्य कहती हूँ कि मैं साक्षात् रूपधारिणी सिद्धि ही हूँ ॥१०३॥ जो कुछ तुम्हारे मनमें हो उसे निःशंक होकर कहो मेरे रहते आप खेद व्यर्थ ही उठा रही हैं ॥१०४॥ तदनन्तर उपरम्भा लम्बी और धीमी साँस लेकर तथा कमल तुल्य हथेलीपर चन्द्रमाके समान सुन्दर कपोल रखकर कहने लगी ॥१०५॥ जो अक्षर उपरम्भाके मुखसे निकलते थे वे लज्जाके कारण बीच-बीचमें रुक जाते थे अतः वह उन्हें बार-बार प्रेरित कर रही थी—तथा उसका मन धृष्टताके ऊपर बार-बार चढ़ता और बार-बार गिरता था सो उसे वह बड़े कष्टसे धृष्टताके ऊपर स्थित कर रही थी ॥१०६॥ उसने कहा कि हे सखि ! बाल्य अवस्थासे ही मेरा मन रावणमें लगा हुआ है। यद्यपि मैंने उसके समस्त लोकमें फैलनेवाले मनोहर गुण सुने हैं तो भी मैं उसका समागम प्राप्त नहीं कर सकी। किन्तु उसके विपरीत भाग्यकी मन्दतासे मैं नलकूबरके साथ अप्रिय संगमको प्राप्त हुई हूँ सो अप्रीतिके कारण निरन्तर भारी पश्चात्तापको धारण करती रहती हूँ ॥१०७-१०८॥ हे रूपिणि ! यद्यपि मैं जानती हूँ कि यह कार्य प्रशंसनीय नहीं है तथापि हे सुभाषिते ! मैं मरण सहन करनेके लिए भी समर्थ नहीं हूँ ॥१०९॥ मेरे मनको हरण करनेवाला वह रावण इस समय निकट ही स्थित है इसलिए हे सखि ! मुझपर प्रसन्न हो और इसके साथ किसी तरह मेरा समागम करा ॥११०॥ 'यह मैं तेरे चरणोंमें नमस्कार करती हूँ' इतना कहकर ज्योंही वह शिर झुकानेके

---

१. कास्त्यन्यसखी ख., म. । २. निन्दिताः म. । ३. निश्चिन्ता । ४. चन्द्रवत्सुन्दरं । ५. मे मनो म. । ६. लोकावगामिनः म. । लोकविस्तारिणः । ७. परम् + अप्रीतेः । परमं प्रीतेः ख., ब., म. । ८. समाधितं म. । ९. संभ्रमाद्धृतम् म. ।

वरं स्वामिनि कामं ते साधयामि क्षणादिति । गदित्वा निर्गता गेहाद् दूती ज्ञाताखिलस्थितिः ॥११२॥
साम्भोजीमूतसंकाशसूक्ष्मवस्त्रावगुण्ठिता । खमुत्पत्य क्षणात्प्राप वसतिं रक्षसां प्रभोः ॥११३॥
अन्तःपुरं प्रविष्टा च प्रतीहार्या निवेदिता । कृत्वा प्रणतिमासीना दत्ते सविनयासने ॥११४॥
ततो जगाद देवस्य भुवनं सकलं गुणैः । दोषसंगोज्झितैर्व्याप्तं यत्तत्तुक्तं तवेदृशः ॥११५॥
उदारो विभवो यस्ते याचकांस्तर्पयन् भुवि । कारणेनानुना वेद्मि सर्वेषां त्वां हिते स्थितम् ॥११६॥
आकारस्यास्य जानामि न ते प्रार्थनभञ्जनम् । भूतिर्मैवद्विधानां हि [1]परोपकृतिकारणम् ॥११७॥
स त्वमुत्सारिताशेषपरिवर्गो विभो क्षणम् । अवधानस्य दानेन प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥११८॥
तथा कृते ततः कर्णे दशवक्त्रस्य सा जगौ । सकलं पूर्ववृत्तान्तं सर्ववृत्तान्तवेदिनी ॥११९॥
ततः पिधाय पाणिभ्यां श्रवणौ पुरुषोत्तमः । धुन्वन् शिरश्चिरं चक्षुःसंकोचं [2]परमानयन् ॥१२०॥
विचित्रवनितावाञ्छाचिन्ताखिन्नमतिः क्षणम् । बभूव केकसीसूनुः सदाचारपरायणः ॥१२१॥
जगाद च स्मितं कृत्वा भद्रे चेतसि ते कथम् । स्थितमीदृगिदं वस्तु पापसंगमकारणम् ॥१२२॥
ईदृशे याचितेऽत्यन्तं दरिद्रः किं करोम्यहम् । अभिमानं परित्यज्य तथेदमुदितं त्वया ॥१२३॥
विधवा भर्तृसंयुक्ता प्रमदा कुलबालिका [3]। वेश्या च रूपयुक्तापि परिहार्या प्रयत्नतः ॥१२४॥
विरोधवदिदं कर्म परत्रेह च जन्मनि । लोकद्वयपरिभ्रष्टः कीदृशो वद मानवः ॥१२५॥

लिए उद्यत हुई त्योंही सखीने बड़ी शीघ्रतासे उसका शिर बीचमें पकड़ लिया ॥१११॥ 'हे स्वामिनी ! मैं आपका मनोरथ शीघ्र ही सिद्ध करती हूँ' यह कहकर सब स्थितिको जाननेवाली दूती घरसे बाहर निकली ॥११२॥ सजल मेघके समान सूक्ष्म वस्त्रका घूँघट धारण करनेवाली दूती आकाशमें उड़कर क्षण-भरमें रावणके डेरेमें जा पहुँची ॥११३॥ द्वारपालिनीके द्वारा सूचना देकर वह अन्तःपुरमें प्रविष्ट हुई। वहाँ प्रणाम कर, रावणके द्वारा दिये आसनपर विनयसे बैठी ॥११४॥ तदनन्तर कहने लगी कि हे देव ! आपके निर्दोष गुणोंसे जो समस्त संसार व्याप्त हो रहा है वह आपके समान प्रभावक पुरुषके अनुरूप ही है ॥११५॥ चूँकि आपका उदार वैभव पृथिवीपर याचकोंको सन्तुष्ट कर रहा है इस कारण मैं जानती हूँ कि आप सबका हित करनेमें तत्पर हैं ॥११६॥ मैं खूब समझती हूँ कि इस आकारको धारण करनेवाले आप मेरी प्रार्थनाको भंग नहीं करेंगे। यथार्थमें आप-जैसे लोगोंकी सम्पदा परोपकारका ही कारण है ॥११७॥ हे विभो ! आप क्षण-भरके लिए समस्त परिजनको दूर कर दीजिए और ध्यान देकर मुझपर प्रसन्नता कीजिए ॥११८॥

तदनन्तर जब सर्व परिजन दूर कर दिये गये और बिलकुल एकान्त हो गया तब सब वृत्तान्त जाननेवाली दूतीने रावणके कानमें पहलेका सब समाचार कहा ॥११९॥

तदनन्तर दूतीकी बात सुन रावणने दोनों हाथोंसे दोनों कान ढक लिये। वह चिर काल तक सिर हिलाता रहा और नेत्र सिकोड़ता रहा ॥१२०॥ सदाचारमें तत्पर रहनेवाला रावण परस्त्रीकी वांछा सुन चिन्तासे क्षण-भरमें खिन्न चित्त हो गया ॥१२१॥ उसने हँसते हुए कहा कि हे भद्रे ! पापका संगम करानेवाली यह ऐसी बात तुम्हारे मन आयी ही कैसे ? ॥१२२॥ तूने यह बात अभिमान छोड़कर कही है। ऐसी याचनाके पूर्ण करनेमें मैं अत्यन्त दरिद्र हूँ, क्या करूँ ? ॥१२३॥ चाहे विधवा हो, चाहे पतिसे सहित हो, चाहे कुलवती हो और चाहे रूपसे युक्त वेश्या हो परस्त्री मात्रका प्रयत्न पूर्वक त्याग करना चाहिए ॥१२४॥ यह कार्य इस लोक तथा परलोक दोनों ही जगह विरुद्ध है। तथा जो मनुष्य दोनों लोकोंसे भ्रष्ट हो गया वह मनुष्य ही क्या सो तू

---

१. परोपकृतिकारिणाम् ख. । परोपकृतिकर्मणाम् क. । २. परमानयत् म., ब. । ३. कुलबालिके ख. ।

नरान्तरमुखक्लेदपूर्णेऽन्याङ्गविमर्दिते । उच्छिष्टभोजने भोक्तुं[1] भद्रे वाञ्छति को नरः ॥१२६॥
मिथो विभीषणावेदं प्रीत्यानेनाथ वेदितम् । नयज्ञः स जगादैवं सततं मन्त्रिगणाग्रणीः ॥१२७॥
देव प्रक्रम एवायमीदृशो वर्तते यतः । अलीकमपि वक्तव्यं राज्ञा नयवता सदा ॥१२८॥
तुष्टाभ्युपगमात् किंचिदुपायं कथयिष्यति । उपरम्भा परिप्राप्तौ विश्रब्धं परमागता ॥१२९॥
ततस्तद्वचनादेन दूती छद्मानुगामिना । इत्यभाष्यत तन्नाम भद्रे यदुचितं त्वया ॥१३०॥
वराकी मद्गतप्राणा वर्तते सा सुदुःखिता । रक्षणीया ममोदारा भवन्ति हि दयापराः ॥१३१॥
ततश्चानय तां गत्वा प्राणैर्यावन्न मुच्यते । प्राणिनां रक्षणे धर्मः श्रूयते प्रकटो भुवि ॥१३२॥
[2]इत्युक्त्वा [3]परिसृष्टा सा गत्वा तामानयत् क्षणात् । आदरश्च [4]महानस्याः कृतो यमविमर्दिना ॥१३३॥
ततो मदनसंप्राप्ता[5] सा तेनैवमभाष्यत । दुर्लङ्घ्यनगरे देवि रन्तुं मम परा स्पृहा ॥१३४॥
अटव्यामिह किं सौख्यं किं वा मदनकारणम् । तथा कुरु यथैतस्मिंस्त्वया सह पुरे रमे ॥१३५॥
ततस्तत्तस्य कौटिल्यमविज्ञाय स्मरातुरा । स्त्रीणां स्वभावमुग्धत्वात्पुरस्यागमनाय सा ॥१३६॥
ददावाशालिकां विद्यां प्राकारत्वेन कल्पिताम् । व्यन्तरैः कृतरक्षाणि नानास्त्राणि च सादरा ॥१३७॥
अपयातेऽथ शालोऽसौ विद्यालाभादनन्तरम् । स्थितं प्रकृतिशालेन केवलेनावृतं पुरम् ॥१३८॥
बभूव रावणः सार्कं सैन्येन महतान्तिकैः[6] । पुरस्य [7]निनदं श्रुत्वा क्षुब्धश्च नलकूबरः ॥१३९॥

ही कह ॥१२५॥ हे भद्रे ! दूसरे मनुष्यके मुखकी लारसे पूर्ण तथा अन्य मनुष्यके अंगसे मर्दित जूठा भोजन खानेकी कौन मनुष्य इच्छा करता है ? ॥१२६॥

तदनन्तर रावणने यह बात प्रीतिपूर्वक विभीषणसे भी एकान्तमें कही सो नीतिको जाननेवाले एवं निरन्तर मन्त्रिगणोंमें प्रमुखता धारण करनेवाले विभीषणने इस प्रकार उत्तर दिया ॥१२७॥ कि हे देव ! चूँकि यह कार्य ही ऐसा है अतः सदा नीतिके जाननेवाले राजाको कभी झूठ भी बोलना पड़ता है ॥१२८॥ सम्भव है स्वीकार कर लेनेसे सन्तोषको प्राप्त हुई उपरम्भा उत्कट विश्वास करती हुई, किसी तरह नगर लेनेका कोई उपाय बता दे ॥१२९॥ तदनन्तर विभीषणके कहनेसे कपटका अनुसरण करनेवाले रावणने दूतीसे कहा कि हे भद्रे ! तूने जो कहा है वह ठीक है ॥१३०॥ चूँकि उस बेचारीके प्राण मुझमें अटक रहे हैं और वह अत्यन्त दुःखसे युक्त है अतः मेरे द्वारा रक्षा करनेके योग्य है। यथार्थमें उदार मनुष्य दयालु होते हैं ॥१३१॥ इसलिए जबतक प्राण उसे नहीं छोड़ देते हैं तब तक जाकर उसे ले आ। 'प्राणियोंकी रक्षा करनेमें धर्म है' यह बात पृथिवीपर खूब सुनी जाती है ॥१३२॥ इतना कहकर रावणके द्वारा विदा की हुई दूती क्षणभरमें जाकर उपरम्भाको ले आयी। आनेपर रावणने उसका बहुत आदर किया ॥१३३॥

तदनन्तर कामके वशीभूत हो जब उपरम्भा रावणके समीप पहुँची तब रावणने कहा कि हे देवि ! मेरी उत्कट इच्छा दुर्लंघ्यनगरमें ही रमण करनेकी है ॥१३४॥ तुम्हीं कहो इस अंगलमें क्या सुख है ? और क्या कामवर्धक कारण है ? हे देवि ! ऐसा करो कि जिससे मैं तुम्हारे साथ नगरमें ही रमण करूँ ॥१३५॥ स्त्रियाँ स्वभावसे ही मुग्ध होती हैं इसलिए उपरम्भा रावणकी कुटिलताको नहीं समझ सकी। निदान, उसने कामसे पीड़ित हो उसे नगरमें आनेके लिए आशालिका नामकी वह विद्या जो कि प्राकार बनकर खड़ी हुई थी तथा व्यन्तर देव जिनकी रक्षा किया करते थे ऐसे नाना शस्त्र बड़े आदरके साथ दे दिये ॥१३६-१३७॥ विद्या मिलते ही वह मायामय प्राकार दूर हो गया और उसके अभावमें वह नगर केवल स्वाभाविक प्राकारसे ही आवृत रह गया ॥१३८॥ रावण बड़ी भारी सेना लेकर नगरके निकट पहुँचा सो उसका कलकल

---

१. वक्तुं म. । २. इत्युक्त्वा म., ब., क. । ३. परिदृष्टा क., म., ब. । ४. महा तस्याः म. । ५ मदनसंप्राप्तौ क., ख., म. । ६. निकटस्थः । ७. निन्दनं म. ।

तमदृष्ट्वा ततः शालं लोकपालो विषादवान् । गृहीतमेव नगरं मेने पक्षविमर्दिना ॥१४०॥
तथापि पौरुषं विभ्रद् योद्धुं [1]श्रमभरेण सः । निष्क्रान्तोऽत्यन्तविक्रान्तैसर्वै[2]सामन्तवेष्टितः ॥१४१॥
ततो महति संग्रामे प्रवृत्ते शस्त्रसङ्कुले । अदृश्यरविकीलाथकिरणे क्रूरनिःस्वने ॥१४२॥
विभीषणेन वेगेन [3]निपत्य नलकूबरः । गृहीतः कूबरं भंक्त्वा स्यन्दनस्याङ्घ्रिताडनात् ॥१४३॥
सहस्रकिरणे कर्म दशवक्त्रेण यत्कृतम् । विभीषणेन क्रुद्धेन तत्कृतं नलकूबरे ॥१४४॥
देवासुरभयोत्पादे दक्षं चक्रं न रावणः । त्रिदशाधिपसंबन्धि [4]प्राप नाम्ना सुदर्शनम् ॥१४५॥
उपरम्भा दशास्येन रहसीदमभोदिता । विद्यादानाद् गुरुत्वं मे वर्तते प्रवराङ्गने ! ॥१४६॥
जीवति प्राणनाथे ते न युक्तं कर्तुमीदृशम् । ममापि सुतरामेव न्यायमार्गोपदेशिनः ॥१४७॥
समाश्वास्य ततो नीतो भार्यान्तं नलकूबरः । शस्त्रदारितसंनाहदृष्टविक्षतविग्रहः ॥१४८॥
अनेनैव समं भर्त्रा भुङ्क्ष्व भोगान् यथेप्सितान् । कामवस्तुनि को भेदो मम [5]वास्य च भोजने [6] ॥१४९॥
मलीमसा च मे कीर्तिः कर्मेदं कुर्वतो भवेत् । अपरोऽपि जनः कर्म कुर्वीतेदं मया कृतम् ॥१५०॥
सुताकाशध्वजस्यासि संभूता विमले कुले । संजाता मृदुकान्तायां शीलं रक्षितुमर्हसि ॥१५१॥
उच्यमानेति सा तेन नितान्तं त्रपयान्विता । स्वभर्तरि [7]भृशं चक्रे मानसं प्रतिबोधिनी ॥१५२॥
व्यभिचारमविज्ञाय कान्तायां नलकूबरः । रेमे तया समं प्राप्तः संमानं दशवक्त्रतः ॥१५३॥

सुनकर नलकूबर क्षोभको प्राप्त हुआ ॥१३९॥ तदनन्तर उस मायामय प्राकारको न देखकर लोकपाल नलकूबर बड़ा दुःखी हुआ। यद्यपि उसने समझ लिया था कि अब तो हमारा नगर रावणने ले ही लिया तो भी उसने उद्यम नहीं छोड़ा। वह पुरुषार्थको धारण करता हुआ बड़े श्रमसे युद्ध करनेके लिए बाहर निकला। अत्यन्त पराक्रमी सब सामन्त उसके साथ थे ॥१४०-१४१॥ तदनन्तर जो शस्त्रोंसे व्याप्त था, जिसमें सूर्यकी किरणें नहीं दिख रही थीं और भयंकर कठोर शब्द हो रहा था ऐसे महायुद्धके होनेपर विभीषणने वेगसे उछलकर पैरके आघातसे रथका धुरा तोड़ दिया और नलकूबरको जीवित पकड़ लिया ॥१४२-१४३॥ रावणने राजा सहस्ररश्मिके साथ जो काम किया था वही काम क्रोधसे भरे विभीषणने नलकूबरके साथ किया ॥१४४॥ उसी समय रावणने देव और असुरोंको भय उत्पन्न करनेमें समर्थ इन्द्र सम्बन्धी सुदर्शन नामका चक्ररत्न प्राप्त किया ॥१४५॥

तदनन्तर रावणने एकान्तमें उपरम्भासे कहा कि हे प्रवरांगने ! विद्या देनेसे तुम मेरी गुरु हो ॥१४६॥ पतिके जीवित रहते तुम्हें ऐसा करना योग्य नहीं है और नीतिमार्गका उपदेश देनेवाले मुझे तो बिलकुल ही योग्य नहीं है ॥१४७॥ तत्पश्चात् शस्त्रोंसे विदारित कवचके भीतर जिसका अक्षत शरीर दिख रहा था ऐसे नलकूबरको वह समझाकर स्त्रीके पास ले गया ॥१४८॥ और कहा कि इस भर्तासे साथ मनचाहे भोग भोगो। काम-सेवनके विषयमें मेरे और इसके साथ उपभोगमें विशेषता ही क्या है ? ॥१४९॥ इस कार्यके करनेसे मेरी कीर्ति मलिन हो जायेगी और मैंने यह कार्य किया है इसलिए दूसरे लोग भी यह कार्य करने लग जावेंगे ॥१५०॥ तुम राजा आकाशध्वज और मृदुकान्ताकी पुत्री हो, निर्मल कुलमें तुम्हारा जन्म हुआ है अतः शीलकी रक्षा करना ही योग्य है ॥१५१॥ रावणके ऐसा कहनेपर वह अत्यधिक लज्जित हुई और प्रतिबोधको प्राप्त हो अपने पतिमें ही सन्तुष्ट हो गयी ॥१५२॥ इधर नलकूबरको अपनी स्त्रीके व्यभिचारका पता नहीं चला इसलिए रावणसे सम्मान प्राप्त कर वह पूर्ववत् उसके साथ रमण करने लगा ॥१५३॥

१. समभरेण ख., म., ब. । २. विक्रान्तः क., ब., म. । ३. सामन्तशतवेष्टितः क., ब., म. । ४. निपात्य ख., म. । ५. प्रापन्नाम्ना म., ब. । ६. भार्यां तां ख., म., ब. । ७. दिष्ट ख., म., ब. । ८. चास्य म. । ९. भोगे । १०. समं चक्रे म. ।

रावणः संयुगे लब्ध्वा परध्वंसात्परं यशः । वर्धमानश्रिया प्राप विजयार्धगिरेर्भुवम् ॥१५४॥
अभ्यर्णं रावणं श्रुत्वा शक्रः प्रचलितुं[1] ततः । देवानास्थानसंप्राप्तान् समस्तानिदमब्रवीत् ॥१५५॥
वैस्वश्विप्रमुखा देवाः संनह्यत[2] किमासत[3]म् । विश्रब्धं कुरुत प्राप्तः प्रभुरेष स रक्षसाम् ॥१५६॥
इत्युक्त्वा जैनकोदेशं [4]प्रस्थातुमिति यत्नी । इयविष्टो नमस्कृत्य पितरं विनयान्वितः ॥१५७॥
उवाच च विधातव्यं किमस्मिन्नन्तरे मया । प्रबलोऽयमरिः प्राप्तो बहुशो विजिताहितः ॥१५८॥
आत्मकार्यविरुद्धोऽयं [5]तातात्यन्तं मया कृतः । अनयः स्वल्प एवासौ प्रलयं यन्न लम्भितः ॥१५९॥
उत्थितो मुखं मरुत्कुमधरेणापि शक्यते । कण्टकस्यापि यत्नेन परिणाममुपेयुषः ॥१६०॥
उत्पन्नावेव रोगस्य क्रियते ध्वंसनं सुखम् । व्यापी तु बद्धमूलः स्यादूर्ध्वं स क्षेत्रियोऽथवा[6] ॥१६१॥
अनेकशः कृतोद्योगस्तस्यास्मि विनिपातने । निवारितस्त्वया व्यर्थं येन क्षान्तिर्मया कृता ॥१६२॥
[7]नयमार्गं प्रपन्नेन मयेदं तात भाष्यते । मर्यादैषेति पृष्टोऽसि न त्वशक्तोऽस्मि तद्वधे ॥१६३॥
स्मयरोषविमिश्रं[8] तच्छ्रुत्वा वाक्यं सुतेरितम् । सहस्रारोऽगदत् पुत्र त्वराधानिति मा स्म भूः ॥१६४॥
तावद्विमृश्य कार्याणि प्रथमैर्मन्त्रिभिः सह । जायते विफलं कर्माप्रेक्षापूर्वकारिणाम् ॥१६५॥
भवत्यर्थस्य संसिद्धये केवलं च न पौरुषम् । कर्षकस्य विना [9]वृष्ट्या का सिद्धिः कर्मयोगिनः ॥१६६॥
समानमहिमानानां पठतां च समादरम् । अर्थभाजो भवन्त्येके सापरे कर्मणां वशात् ॥१६७॥

तदनन्तर रावण युद्धमें शत्रुके संहारसे परम यशको प्राप्त करता हुआ बढ़ती हुई लक्ष्मीके साथ विजयार्ध गिरिकी भूमिमें पहुँचा ॥१५४॥ अथानन्तर इन्द्रने रावणको निकट आया सुन सभामण्डपमें स्थित समस्त देवोंसे कहा ॥१५५॥ कि हे वस्वश्वि आदि देव जनो ! युद्धकी तैयारी करो, आप लोग निश्चिन्त क्यों बैठो हो ? यह राक्षसोंका स्वामी रावण यहाँ आ पहुँचा है ॥१५६॥ इतना कहकर इन्द्र पितासे सलाह करनेके लिए उसके स्थानपर गया और नमस्कार कर विनय-पूर्वक पृथिवीपर बैठ गया ॥१५७॥ उसने कहा कि इस अवसरपर मुझे क्या करना चाहिए। जिसे मैंने अनेक बार पराजित किया पुनः स्थापित किया ऐसा यह शत्रु अब प्रबल होकर यहाँ आया है ॥१५८॥ हे तात ! मैंने आत्म कार्यके विरुद्ध यह बड़ी अनीति की है कि जब यह शत्रु छोटा था तभी इसे नष्ट नहीं कर दिया ॥१५९॥ उठते हुए कण्टकका मुख एक साधारण व्यक्ति भी तोड़ सकता है पर जब वही कण्टक परिपक्व हो जाता है तब बड़ा प्रयत्न करना पड़ता है ॥१६०॥ जब रोग उत्पन्न होता है तब उसका सुखसे विनाश किया जाता है पर जब वह रोग जड़ बाँधकर व्याप्त हो जाता है तब मरनेके बाद ही उसका प्रतिकार हो सकता है ॥१६१॥ मैंने अनेक बार उसके नष्ट करनेका उद्योग किया पर आपके द्वारा रोक दिया गया। आपने व्यर्थ ही मुझे क्षमा धारण करायी ॥१६२॥ हे तात ! नीतिमार्गका अनुसरण कर ही मैं यह कह रहा हूँ। बड़ोंसे पूछकर कार्य करना यह कुलकी मर्यादा है और इसलिए ही मैंने आपसे पूछा है। मैं उसके मारनेमें असमर्थ नहीं हूँ ॥१६३॥ अहंकार और क्रोधसे मिश्रित पुत्रके वचन सुनकर सहस्रारने कहा कि हे पुत्र ! इस तरह उतावला मत हो ॥१६४॥ पहले उत्तम मन्त्रियोंके साथ सलाह कर क्योंकि बिना विचारे कार्य करनेवालोंका कार्य निष्फल हो जाता है ॥१६५॥ केवल पुरुषार्थ ही कार्यसिद्धिका कारण नहीं है क्योंकि निरन्तर कार्य करनेवाले—पुरुषार्थी किसानके वर्षाके बिना क्या सिद्ध हो सकता है ? अर्थात् कुछ नहीं ॥१६६॥ एक ही समान पुरुषार्थ करनेवाले और एक ही समान आदरसे

---

१. प्रचलितं म. । २. विश्वाश्च म. । ३. संनह्यन्त किमासनम् म. । ४. जनकादेशं म. । ५. तवात्यन्तं मया कृतः म. । ततोऽत्यन्तं मया कृतः ब. । तातात्यन्तममाकृतः ख. । ६. क्षत्रियोऽथवा क., ख., म., ब. । शरीरान्तरे चिकित्स्यः अप्रतीकार्य इत्यर्थः 'क्षेत्रियच् परक्षेत्रे चिकित्स्यः' । ७. नयमार्गप्रयत्नेन क., नयमार्गप्रयत्नेन ख. । ८. स्मयरोषविमुक्तं म. । ९. कृष्टया म. ।

एवं गतेऽपि संधानं रावणेन समं कुरु । तस्मिन् सति जगत्सर्वं विधत्स्वोद्धृतकण्टकम् ॥१६८॥
रूपिणीं च सुतां तस्मै यच्छ रूपवतीं सुताम् । एवं सति न दोषोऽस्ति तथावस्था च राजताम्[1] ॥१६९॥
विविक्तधिषणेनासाविति पित्रा प्रचोदितः[2] । रोषराशिशशोदारशोणचक्षुः क्षणादभूत्[3] ॥१७०॥
रोषज्वलनसंतापसंजातस्वेदसंततिः । बभाण भासुरः शक्रः स्फोटयन्नेव खं गिरा ॥१७१॥
वध्यस्य दीयते कन्येत्येतत्तात क्व युज्यते । प्रकृष्टवयसां पुंसां धीर्यास्येवाथवा क्षयम् ॥१७२॥
यद् केनाधरस्तस्मादहं जनक वस्तुना । अत्यन्तकातरं वाक्यं येनेदं भाषितं त्वया ॥१७३॥
रवेरपि कृतस्पर्शः पादैर्मूर्ध्नीति[4] खिद्यते । योगे स कथमन्यस्य तुङ्गः प्रणतिमाचरेत् ॥१७४॥
पौरुषेणाधिकस्तावदेतस्माच्छितरामहम् । दैवं तस्यानुकूलं ते कथं बुद्धावधिस्थितम् ॥१७५॥
विजिता बहवोऽनेन विपक्षा इति खेद्यसे । हतानेककुरङ्गं किं शबरो हन्ति नो हरिम् ॥१७६॥
संग्रामे शस्त्रसंपातजातज्वलनजालके । वरं प्राणपरित्यागो न तु प्रतिनरानतिः ॥१७७॥
सोऽयमिन्द्रो दशास्यस्य राक्षसस्यानतिं गतः । इति लोके च हास्यत्वं न दृष्टं मे[5] कथं त्वया ॥१७८॥
नमश्चरत्वसामान्यं न च संधानकारणम् । वनगोचरसामान्यं यथा सिंहशृगालयोः ॥१७९॥
इति ब्रुवत एवास्य शब्दः पूरितविष्टपः । प्रविष्टः श्रोत्रयोः शत्रुबलजो[6] वासरानने ॥१८०॥

पढ़नेवाले छात्रोंमें-से कुछ तो सफल हो जाते हैं और कुछ कर्मोंकी विवशतासे सफल नहीं हो पाते ॥१६७॥ ऐसी स्थिति आनेपर भी तुम रावणके साथ सन्धि कर लो क्योंकि सन्धिके होनेपर तुम समस्त संसारको निष्कण्टक बना सकते हो ॥१६८॥ साथ ही तू रूपवती नामकी अपनी सुन्दरी पुत्री रावणके लिए दे दे। ऐसा करनेमें कुछ भी दोष नहीं है। बल्कि ऐसा करनेसे तेरी यही दशा बनी रहेगी ॥१६९॥ पवित्र बुद्धिके धारक पिताने इस प्रकार इन्द्रको समझाया अवश्य परन्तु क्रोधके समूहके कारण उसके नेत्र क्षण-भरमें लाल-लाल हो गये ॥१७०॥ क्रोधाग्निके सन्तापसे जिसके शरीरमें पसीनेकी परम्परा उत्पन्न हो गयी थी ऐसा देदीप्यमान इन्द्र अपनी वाणीसे मानो आकाशको फोड़ता हुआ बोला कि हे तात! जो वध करने योग्य है उसीके लिए कन्या दी जावे यह कहाँ तक उचित है? अथवा वृद्ध पुरुषोंकी बुद्धि क्षीण हो ही जाती है ॥१७१-१७२॥ हे तात! कहो तो सही मैं किस वस्तुमें उससे हीन हूँ? जिससे आपने यह अत्यन्त दीन वचन कहे हैं ॥१७३॥ जो मस्तकपर सूर्यकी किरणोंका स्पर्श होनेपर भी अत्यन्त खेदखिन्न हो जाता है वह उदार मानव मिलनेपर अन्य पुरुषके लिए प्रणाम किस प्रकार करेगा? ॥१७४॥ मैं पुरुषार्थकी अपेक्षा रावणसे हर एक बातमें अधिक हूँ फिर आपकी बुद्धिमें यह बात कैसे बैठ गयी कि भाग्य उसके अनुकूल है? ॥१७५॥ यदि आपका यह ख्याल है कि इसने अनेक शत्रुओंको जीता है तो अनेक हरिणोंको मारनेवाले सिंहको क्या एक भील नहीं मार देता? ॥१७६॥ शस्त्रोंके प्रहारसे जहाँ ज्वालाओंके समूह उत्पन्न हो रहे हैं ऐसे युद्धमें प्राणत्याग करना भी अच्छा है पर शत्रुके लिए नमस्कार करना अच्छा नहीं है ॥१७७॥ 'वह इन्द्र रावण राक्षसके सामने नम्र हो गया' इस तरह लोकमें जो मेरी हँसी होगी उस ओर भी आपने दृष्टि क्यों नहीं दी? ॥१७८॥' वह विद्याधर है और मैं भी विद्याधर हूँ' इस प्रकार विद्याधरपनाकी समानता सन्धिका कारण नहीं हो सकती। जिस प्रकार सिंह और शृगालमें वनचारित्वकी समानता होनेपर भी एकता नहीं होती है उसी प्रकार विद्याधरपनाकी समानता होनेपर भी हम दोनोंमें एकता नहीं हो सकती ॥१७९॥ इस प्रकार प्रातःकालके समय इन्द्र पिताके समक्ष कह रहा था कि उसी समय समस्त संसारको व्याप्त करनेवाला शत्रुसेनाका जोरदार शब्द उसके कानोंमें प्रविष्ट हुआ ॥१८०॥

---

१. राजते ब.। राज्यतां म.। राजता क.। २. प्रबोधितः म.। ३. दशोद्दार-म.। ४. १७० तमः श्लोकः ख. पुस्तके नास्ति। ५. मूर्ध्नीभि-ख.। ६. यो मेरुः ख., म.। ७. ते कथं मया म.। ८. प्रातःकाले।

[1]ततोऽपकर्णनं कृत्वा पितुः संनाहमण्डपम् । गत्वा संग्रामतूर्यं तूर्यं व्याहारयीयदत् ॥१८१॥
उपाहर गजं शीघ्रं सज्जि पर्याणमाशु हयम् । मण्डलाग्रमितो देहि पटु चाहर [2]कङ्कटम् ॥१८२॥
धनुराहर धावस्व शिरस्त्राणमितः कुरु । [3]यच्छार्धबाहुकां क्षिप्रं देहि सायकपुत्रिकाम् ॥१८३॥
चेट यच्छ [4]सैमायोगं सज्जमाशु रथं कुरु । एवमादि कृतारावैः [5]सुरलोकश्चलोऽभवत् ॥१८४॥
अथ क्षुब्धेषु वीरेषु रटत्सु पटहेषु च । तुङ्गं रणत्सु शङ्खेषु साम्रं गर्जत्सु दन्तिषु ॥१८५॥
मुञ्चत्सु दीर्घहुङ्कारं स्पृष्टवेत्रेषु सत्रिषु । संक्रीडत्सु रथौघेषु ध्वजाले पटु गुञ्जति ॥१८६॥
भटानामट्टहासेन जयशब्देन वादिनाम् । अभूत्तदा जगत्सर्वं शब्देनेव विनिर्मितम् ॥१८७॥
असिभिस्तोमरैः पाशैर्ध्वजैश्छत्रैः शरासनैः । ककुभश्छादिताः सर्वाः प्रभावोऽपहृतो रवेः ॥१८८॥
निष्क्रान्ताश्च सुसंनद्धाः सुरा रमसरागिणः । गोपुरे कृतसंघट्टा घण्टाभिर्वरद्विपिनाम् ॥१८९॥
स्यन्दनं परतो धेहि [6]प्रासोऽयं मत्तवारणः । आधोरय गजं देवावस्मात्सारथ सत्वरम् ॥१९०॥
स्तम्भितोऽसीह किं सादिन्नयाश्वं द्रुतमग्रतः । मुञ्च मुग्धे निवर्तस्व कुरु [7]मां मा समाकुलम् ॥१९१॥
एवमादिसमालापाः सत्वरा मन्दिरात् सुराः । निष्क्रान्ता [8]गर्वनिर्मुक्तकुमारभटगर्जिताः ॥१९२॥
आलीने च यथा [9]जातप्रतिपक्षं चमूमुखे । विघ्नमाहसतूर्येण परमुत्साहमाहृते[10] ॥१९३॥
ततो राक्षससैन्यस्य मुखभङ्गः कृतः सुरैः । मुञ्चद्भिः शस्त्रसंघातमन्तर्हितनभस्तलम् ॥१९४॥
सेनामुखावसादेन कुपिता राक्षसास्ततः । अभ्यूचुः पृतनाग्रस्थं निजमूर्जितविक्रमाः ॥१९५॥

तदनन्तर पिताकी बात अनसुनी कर वह आयुधशालामें गया और वहाँ युद्धकी तैयारीका संकेत करनेके लिए उसने जोरसे तुरही बजवायी ॥१८१॥ 'हाथी शीघ्र लाओ, घोड़ापर शीघ्र ही पलान बाँधो, तलवार यहाँ देओ, अच्छा-सा कवच लाओ, दौड़कर धनुष लाओ, सिरकी रक्षा करनेवाला टोप इधर बढ़ाओ, हाथपर बाँधनेकी पट्टी शीघ्र देओ, छुरी भी जल्दी देओ, अरे चेट, घोड़े जोत और रथको तैयार करो' इत्यादि शब्द करते हुए देव नामधारी विद्याधर इधर-उधर चलने लगे ॥१८२-१८४॥ अथानन्तर—जब वीर सैनिक क्षुभित हो रहे थे, बाजे बज रहे थे, शंख जोरदार शब्द कर रहे थे, हाथी बार-बार चिंघाड़ रहे थे, बेंतके छूते ही घोड़े दीर्घ हुंकार छोड़ रहे थे, रथोंके समूह चल रहे थे और प्रत्यंचाओंके समूह जोरदार गुंजन कर रहे थे, तब योद्धाओंके अट्टहास और चारणोंके जयजयकारसे समस्त संसार ऐसा हो गया था मानो शब्दसे निर्मित हो ॥१८५-१८७॥ तलवारों, तोमरों, पाशों, ध्वजाओं, छत्रों और धनुषोंसे समस्त दिशाएँ आच्छादित हो गयीं और सूर्यका प्रभाव जाता रहा ॥१८८॥ शीघ्रताके प्रेमी देव तैयार हो-हो कर बाहर निकल पड़े और हाथियोंके घण्टाओंके शब्द सुन-सुनकर गोपुरके समीप धक्कम-धक्का करने लगे ॥१८९॥ 'रथको उधर खड़ा करो, इधर यह मदोन्मत्त हाथी आ रहा है। अरे महावत! हाथीको यहाँसे शीघ्र ही हटा। अरे सवार! यहीं क्यों रुक गया? शीघ्र ही घोड़ा आगे ले जा। अरी मुग्धे! मुझे छोड़ तू लौट जा, व्यर्थ ही मुझे व्याकुल मत कर' इत्यादि वार्तालाप करते हुए शीघ्रतासे भरे देव, अपने-अपने मकानोंसे बाहर निकल पड़े। उस समय वे अहंकारके कारण शुभ गर्जना कर रहे थे ॥१९०-१९२॥ कभी धीमी और कभी जोरसे बजायी हुई तुरहीसे जिसका उत्साह बढ़ रहा था ऐसी सेना जब शत्रुके सम्मुख जाकर यथास्थान खड़ी हो गयी तब आकाशको आच्छादित करनेवाले शस्त्रसमूहको छोड़ते हुए देवोंने राक्षसोंकी सेनाका मुख भंग कर दिया अर्थात् उसके अग्र भागपर जोरदार प्रहार किया ॥१९३-१९४॥ सेनाके

---

१. तत्रोपकर्णयन् ख. । ततोपकर्णलं ब. । ततोपकर्णभं म. । २. कवचम् । ३. यच्छार्धबाहुकां म. । ४. अश्वम् । ५. कृतारावं म. ख. । ६. देहि म. । ७. मा मां म. । ८. गर्वनिर्मुक्तसुतारभट- म. । गर्वनिर्मुक्तसुतारभट- ख., ब. । ९. यातप्रतिपक्षं ख. । १०. मादृते म. ।

वज्रवेगः प्रहस्तोऽथ हस्तो मारीच उद्भवः । वज्रवक्त्रः शुको घोरः सारणो गगनोज्ज्वलः ॥१९६॥
महाजठरसंध्याभ्रक्रूरप्रभृतयस्तथा । [1]सुसंबद्धाः [2]सुयानाश्च [3]सुशस्त्राश्च पुरःस्थिताः ॥१९७॥
ततस्तैस्त्यक्तैः सैन्यं सुराणां क्षणमात्रतः । कृतं [4]विहतविस्रस्तशस्त्रसंगतशत्रुकम् ॥१९८॥
भग्यमानं ततः सैन्यवक्त्रं दृष्ट्वा महासुराः । उत्थिता योद्धुमत्युग्रकोपापूरितविग्रहाः ॥१९९॥
मेघमाली तडित्पिङ्गो ज्वलिताक्षोऽरिसंज्वरः । पावकस्यन्दनाद्याश्च सुराः प्रकटतां ययुः ॥२००॥
उत्थाय राक्षसास्तैस्ते [5]मुञ्चद्भिः शस्त्रसंहतिम् । अवष्टब्धाः समुद्भूततीव्रकोपातिभासुरैः ॥२०१॥
ततो भङ्गं [6]परिप्राप्ताश्चिरं कृतमहाहवाः । प्रत्येकं राक्षसा देवैर्बहुभिः कृतवेष्टनाः ॥२०२॥
आवर्तेष्विव निक्षिप्ता राक्षसा वेगशालिषु । भ्रमन्तुर्विगलच्छस्त्रशिथिलस्थितपाणयः ॥२०३॥
पराङ्मुखास्तथाप्यन्ये राक्षसा मानशालिनः । प्राणानभिमुखीभूता मुञ्चन्ति न तु सायकान् ॥२०४॥
ततोऽवसादनाद् [7]भग्नं दृष्ट्वा तद्रक्षसां बलम् । सूनुर्महेन्द्रसेनस्य कपिकेतोर्महाबलः ॥२०५॥
दक्षः प्रसन्नकीर्त्याख्यां धारयन्नर्थसंगताम् । त्रासयन् द्विषतां सैन्यं जन्यस्थं शिरसि स्थितम् ॥२०६॥
रक्षता बलमात्मीयं तेन तत्रेदृशं बलम् । शूरैः पराङ्मुखं चक्रे निष्क्रामद्भिरनन्तरम् ॥२०७॥
अतिमात्रं ततो भूरि विजयार्धनिवासिनाम् । सैन्यं प्रासं महोत्साहं नानाशस्त्रसमुज्ज्वलम् ॥२०८॥
दृष्ट्वैव कपिलक्ष्मास्य ध्वजे [8]छत्रे च भीषणम् । अवाप मानसे भेदं विजयार्धाद्रिजं बलम् ॥२०९॥
ततेन विशिखैः पश्चात्स्फुरत्तेजःशिखैः क्षणात् । भिन्नं कुतीर्थहृदयं यथा मन्मथविभ्रमैः ॥२१०॥

अग्रभागका विनाश देख प्रबल पराक्रमके धारक राक्षस कुपित हो अपनी सेनाके आगे आ डटे ॥१९५॥ वज्रवेग, प्रहस्त, हस्त, मारीच, उद्भव, वज्रमुख, शुक, घोर, सारण, गगनोज्ज्वल, महाजठर, सन्ध्याभ्र और क्रूर आदि राक्षस आ-आकर सेनाके सामने खड़े हो गये। ये सभी राक्षस कवच आदिसे युक्त थे, उत्तमोत्तम सवारियोंपर आरूढ़ थे और अच्छे-अच्छे शस्त्रोंसे युक्त थे ॥१९६-१९७॥ तदनन्तर इन उद्यमी राक्षसोंने देवोंकी सेनाको क्षणमात्रमें मारकर भयभीत कर दिया। उसके छोड़े हुए अस्त्र-शस्त्र शत्रुओंके हाथ लगे ॥१९८॥ तब अपनी सेनाके अग्रभागको नष्ट होता देख बड़े-बड़े देव युद्ध करनेके लिए उठे। उस समय उन सबके शरीर अत्यन्त तीव्र क्रोधसे भर रहे थे ॥१९९॥ मेघमाली, तडित्पिंग, ज्वलिताक्ष, अरिसंज्वर और अग्निरथ आदि देव सामने आये ॥२००॥ जो शस्त्रोंके समूहकी वर्षा कर रहे थे और उत्पन्न हुए तीव्र क्रोधसे अतिशय देदीप्यमान थे ऐसे देवोंने उठकर राक्षसोंको रोका ॥२०१॥ तदनन्तर चिरकाल तक युद्ध करनेके बाद राक्षस भंगको प्राप्त हुए। एक-एक राक्षसको बहुत-से देवोंने घेर लिया ॥२०२॥ वेगशाली भँवरोंमें पड़े हुएके समान राक्षस इधर-उधर घूम रहे थे तथा उनके ढीले हाथोंसे शस्त्र छूट-छूटकर नीचे गिर रहे थे ॥२०३॥ कितने ही राक्षस युद्धसे पराङ्मुख हो गये पर जो अभिमानी राक्षस थे वे सामने आकर प्राण तो छोड़ रहे थे पर उन्होंने शस्त्र नहीं छोड़े ॥२०४॥ तदनन्तर देवोंकी विकट मारसे राक्षसोंकी सेनाको नष्ट होता देख वानरवंशी राजा महेन्द्रका महाबलवान् पुत्र, जो कि अत्यन्त चतुर था और प्रसन्नकीर्ति इस सार्थक नामको धारण करता था, युद्धके अग्रभागमें स्थित शत्रुओंकी सेनाको भयभीत करता हुआ सामने आया ॥२०५-२०६॥ अपनी सेनाकी रक्षा करते हुए उसने निरन्तर निकलनेवाले बाणोंसे शत्रुकी सेनाको पराङ्मुख कर दिया ॥२०७॥ विजयार्ध पर्वतपर रहनेवाले देवोंकी जो सेना नाना प्रकारके शस्त्रोंसे देदीप्यमान थी वह प्रथम तो प्रसन्नकीर्तिसे अत्यधिक महान् उत्साहको प्राप्त हुई ॥२०८॥ पर उसके बाद ही जब उसने उसकी ध्वजा और छत्रमें वानरका चिह्न देखा तो उसका मन टूक-टूक हो गया ॥२०९॥ तदनन्तर

---

१. सुसंबद्धाः म.। २. सुपानाश्च म.। ३. सुशस्त्राश्च म.। ४. विहतविस्रस्तं शस्त्रसंघातशत्रुकम् म.। ५. -स्तैस्ते- ख.। ६. शिथिलास्थितपाणयः म.। ७. भङ्गं म.। ८. छत्रेण म.।

ततोऽन्यदपि संप्राप्तं सैन्यं त्रिदशगोचरम् । कनकासिगदाशक्तिचापमुद्गरसंकुलम् ॥२११॥
ततोऽन्तराल एवासीद्वीरो माल्यवतः सुतः । श्रीमालीति प्रसीतात्मा पुरोऽस्य समवस्थितः ॥२१२॥
तेन ते क्षणमात्रेण सुराः सूर्यसमत्विषा[1] । क्व नीता इति न ज्ञाता मुञ्चता शरसंहतीः ॥२१३॥
वृद्धा[2] तमभ्यमित्रीणमनिवार्यरयं ततः । क्षोभयन्तं द्विषां सैन्यं महाग्राहमिवार्णवम् ॥२१४॥
मत्तद्विपेन्द्रसंवद्धघटितारातिमण्डलम् । करवालकरोदारसटमण्डलमध्यगम् ॥२१५॥
अमी समुत्थिता देवा निजं पालयितुं बलम् । महाक्रोधपरीताङ्गाः समुल्लासितहेतयः ॥२१६॥
शिखिकेशरिदण्डोग्रकनकप्रवरादयः । इन्द्रस्यानीकमाशेषं पूरयन्ति स्म वाम्बुदाः ॥२१७॥
स्वस्रीयाश्च सुरेन्द्रस्य मृगचिह्नादयोऽधिकम् । दीप्यमाना रणोद्भूततेजसा सुमहाबलाः ॥२१८॥
ततः श्रीमालिना तेषां शिरोभिः कमलैरिव । सघौवलैर्मही छन्ना छिन्नैरिन्द्रार्धसायकैः ॥२१९॥
अचिन्तयत्ततः शक्रो येनैते नरपुङ्गवाः । कुमाराः क्षयमानीताः समभेमिर्वरैः[3] सुरैः ॥२२०॥
तस्यास्य को रणे स्थातुं पुरो वाञ्छेद्विधौकसाम् । राक्षसस्य [[4]महातेजो दुरीक्ष्यस्यातिवीर्यवान् ॥२२१॥
तस्मादस्य स्वयं युद्धश्रद्धाध्वंसं करोम्यहम् । अपरानमरान् यावन्नयते नैष[5] पञ्चताम् ॥२२२॥
इति ध्यात्वा समाश्वास्य] बलं स त्रासकम्पितम् । योद्धुं समुद्यतो यावत्त्रिदशानामधीश्वरः ॥२२३॥

जिस प्रकार कामके बाणोंसे कुगुरुका हृदय खण्डित हो जाता है उसी प्रकार जिनसे अग्निकी देदीप्यमान शिखा निकल रही थी ऐसे प्रसन्नकीर्तिके बाणोंसे देवोंकी सेना खण्डित हो गयी ॥२१०॥ तदनन्तर देवोंकी और दूसरी सेना सामने आयी। वह सेना कनक, तलवार, गदा, शक्ति, धनुष और मुद्गर आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे युक्त थी ॥२११॥ तत्पश्चात् माल्यवान्का पुत्र श्रीमाली जो अत्यन्त वीर और निःशंक हृदयवाला था देवोंकी सेनाके आगे खड़ा हो गया ॥२१२॥ जिसकी सूर्यके समान कान्ति थी तथा जो निरन्तर बाणोंका समूह छोड़ रहा था ऐसे श्रीमालीने देवोंको क्षणमात्रमें कहाँ भेज दिया इसका पता नहीं चला ॥२१३॥ तदनन्तर जो शत्रुपक्षकी ओरसे सामने खड़ा था, जिसका वेग अनिवार्य था, जो शत्रुओंकी सेनाको इस तरह क्षोभयुक्त कर रहा था जिस प्रकार कि महाग्राह किसी समुद्रको क्षोभयुक्त करता है, जो अपना मदोन्मत्त हाथी शत्रुओंकी सेनापर हूल रहा था और जो तलवार हाथमें लिये उद्दण्ड योद्धाओंके बीचमें घूम रहा था ऐसे श्रीमालीको देखकर देव लोग अपनी सेनाकी रक्षा करनेके लिए उठे। उस समय उन सबके शरीर बहुत भारी क्रोधसे व्याप्त थे तथा उनके हाथोंमें अनेक शस्त्र चमक रहे थे ॥२१४-२१६॥ शिखी, केशरी, दण्ड, उग्र, कनक, प्रवर आदि इन्द्रके योद्धाओंने आकाशको दूर तक ऐसा आच्छादित कर लिया जैसा कि वर्षाऋतुके मेघ आच्छादित कर लेते हैं ॥२१७॥ इनके सिवाय मृगचिह्न आदि इन्द्रके भानेज भी जो कि रणसे समुत्पन्न तेजके द्वारा अत्यधिक देदीप्यमान और महाबलवान् थे, आकाशको दूर-दूर तक आच्छादित कर रहे थे ॥२१८॥ तदनन्तर श्रीमालीने अपने अर्द्धचन्द्राकार बाणोंसे काटे हुए उनके सिरोंसे पृथिवीको इस प्रकार ढक दिया मानो शेवाल-सहित कमलोंसे ही ढक दिया हो ॥२१९॥

अथानन्तर इन्द्रने विचार किया कि जिसने इन श्रेष्ठ देवोंके साथ-साथ इन नरश्रेष्ठ राज-कुमारोंका क्षय कर दिया है तथा अपने विशाल तेजसे जिसकी ओर आँख उठाना भी कठिन है ऐसे इस राक्षसके आगे युद्धमें देवोंके बीच ऐसा कौन है जो सामने खड़ा होनेकी भी इच्छा कर सके ? इसलिए जब तक यह दूसरे देवोंको नहीं मारता है उसके पहले ही मैं स्वयं इसके युद्धकी श्रद्धाका नाश कर देता हूँ ॥ २२०-२२२ ॥ ऐसा विचारकर देवोंका स्वामी इन्द्र भयसे

१. त्विषः म. । २. तमभ्रमित्रीणं म. । ३. भागिनेयाः । ४. चिन्तयन्नार्धं म. । ५. शरैः ख. । ६. [ ] कोष्ठकान्तर्गतः पाठः क. पुस्तके नास्ति । ७. मृत्युम् ।

निपत्य पादयोस्तावज्जानुस्पृष्टमहीतलः । तमुवाच महावीरो जयन्त इति विश्रुतः ॥२२४॥
सत्येव मयि देवेन्द्र करोषि यदि संयुगम् । ततो मयस्कृतं जन्म त्वया मम निरर्थकम् ॥२२५॥
बालकोऽङ्के भवज्जन्क्रीडां पुत्रप्रीत्या यदीक्षितः । स्नेहस्यानृण्यमेतस्य जनयामि सवाधुना ॥२२६॥
स त्वं निराकुलो भूत्वा तिष्ठ तात यथेप्सितम् । शत्रून् क्षणेन निःशेषानयं व्यापादयाम्यहम् ॥२२७॥
नखेन प्राप्यते छेद्यं वस्तु यत्स्वल्पयत्नतः । व्यापारः परशोस्तत्र ननु तात निरर्थकः ॥२२८॥
वारयित्वेत्यसौ तातं संयुगाय समुद्यतः । कोपावेशाच्छरीरेण प्रसमान इवाम्बरम् ॥२२९॥
प्रतिश्रीमालि चायासीदायःसपरिवर्जितः । गुप्तः पवनवेगेन सैन्येनोज्ज्वलहेतिना ॥२३०॥
श्रीमाली चापि संप्राप्तं चिराद्योग्यं प्रतिद्विपम् । दृष्ट्वा तुष्टो दधावास्य संमुखं सैन्यमध्यगः ॥२३१॥
अमुञ्चतां ततः क्रुद्धौ शरासारं परस्परम् । कुमारौ संततावृष्टदृष्टकोदण्डमण्डलौ ॥२३२॥
तयोः कुमारयोर्युद्धं निश्चलं पृतनाद्वयम् । ददर्श विस्मयप्राप्तमानसं रेखया स्थितम् ॥२३३॥
कनकेन ततो भित्त्वा जयन्तो विरथीकृतः । श्रीमालिना स्वसैन्यस्य कुर्वता संमदं परम् ॥२३४॥
मूर्च्छया पतिते तस्मिन् स्ववर्गस्यापतन्मनः । मूर्च्छायाश्च परित्यागादुत्थिते पुनरुत्थितम् ॥२३५॥
आहत्य भिण्डिमालेन जयन्तेन ततः कृतः । श्रीमाली विरथो रोषाल्प्रहारेणातिवर्द्धितात् ॥२३६॥
ततः परबले तोषनिर्घोषो निर्गतो महान् । निजे च यातुधानस्य समाक्रन्दध्वनिर्बले ॥२३७॥

काँपती हुई सेवाको सान्त्वना देकर ज्योंही युद्धके लिए उठा त्योंही उसका महाबलवान् जयन्त नामका पुत्र चरणोंमें गिरकर तथा पृथिवीपर घुटने टेककर कहने लगा कि हे देवेन्द्र ! यदि मेरे रहते हुए आप युद्ध करते हैं तो आपसे जो मेरा जन्म हुआ है वह निरर्थक है ॥२२३–२२५॥ जब मैं बाल्य अवस्थामें आपकी गोदमें क्रीड़ा करता था और आप पुत्रके स्नेहसे बार-बार मेरी ओर देखते थे आज मैं उस स्नेहका बदला चुकाना चाहता हूँ, उस ऋणसे मुक्त होना चाहता हूँ ॥२२६॥ इसलिए हे तात ! आप निराकुल होकर घरपर रहिए । मैं क्षण-भरमें समस्त शत्रुओंका नाश कर डालता हूँ ॥२२७॥ हे तात ! जो वस्तु थोड़े ही प्रयत्नसे नखके द्वारा छेदी जा सकती है वहाँ परशुका चलाना व्यर्थ ही है ॥२२८॥ इस प्रकार पिताको मनाकर जयन्त युद्धके लिए उद्यत हुआ । उस समय वह क्रोधावेशसे ऐसा जान पड़ता था मानो शरीरके द्वारा आकाशको ही ग्रस रहा हो ॥२२९॥ पवनके समान वेगशाली एवं देदीप्यमान शस्त्रोंको धारण करनेवाली सेना जिसकी रक्षा कर रही थी ऐसा जयन्त बिना किसी खेदके सहज ही श्रीमालीके सम्मुख आया ॥२३०॥ श्रीमाली चिर काल बाद रणके योग्य शत्रुको आया देख बहुत सन्तुष्ट हुआ और सेनाके बीच गमन करता हुआ उसकी ओर दौड़ा ॥२३१॥ तदनन्तर जिनके धनुर्मण्डल निरन्तर खिंचते हुए दिखाई देते थे ऐसे क्रोधसे भरे दोनों कुमारोंने एक दूसरेपर बाणोंकी वर्षा छोड़ी ॥२३२॥ जिनका चित्त आश्चर्यसे भर रहा था और जो अपनी-अपनी रेखाओंपर खड़ी थीं ऐसी दोनों ओरकी सेनाएँ निश्चल होकर उन दोनों कुमारोंका युद्ध देख रही थीं ॥२३३॥ तदनन्तर अपनी सेनाको हर्षित करते हुए श्रीमालीने कनक नामक हथियारसे जयन्तका रथ तोड़कर रथरहित कर दिया ॥२३४॥ जयन्त मूर्च्छासे नीचे गिर पड़ा सो उसे गिरा देख उसकी सेनाका मन भी गिर गया और मूर्च्छा दूर होनेपर *जब वह उठा तो सेनाका मन भी उठ गया ॥२३५॥ तदनन्तर जयन्तने भिण्डिमाल* नामक शस्त्र चलाकर श्रीमालीको रथरहित कर दिया और अत्यन्त बढ़े हुए क्रोधसे ऐसा प्रहार किया कि वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा ॥२३६॥ तब शत्रुसेनामें बड़ा भारी हर्षनाद हुआ और

---

१. अनस्पृष्ट म. । २. अनत्क्रीडां म. । ३. त्वयाहं फलमेतस्य । ४. यथेप्सितम् म. । ५. यसमान क. । ६. दधाव = धावति स्म । ७. स तदाकृष्ट म. । ८. पृतनाद्वयम् म. । ९. शमदं म. । संमतं ख. । १०. श्रीमालिर् म. । ११. वर्धितान् म. । १२. बभौ म. ।

गतमूर्च्छेऽसु संक्रुद्धः श्रीमाली शस्त्रभीषणः । किरन् प्रहरणव्रातं जयन्तामिमुखो ययौ ॥२३८॥
सृजन्तौ हेतिजालं तौ कुमारौ रेजतुस्तराम् । सिंहार्भकाविवोद्धूतदीप्तकेसरसंचयौ ॥२३९॥
ततो माल्यवतः पुत्रः सुरराजस्य सूनुना । स्तनान्तरे हतो गाढं गदया पतितो भुवि ॥२४०॥
वदनेन ततो रक्तं विमुञ्चन् धरणीं गतः । अस्तंगत इवादित्ये कमलाकरबान्धवः ॥२४१॥
हतश्रीमालिकः प्राप्य रथं वासवनन्दनः । दध्मौ शङ्खं मुदा भीता राक्षसाश्च विदुद्रुवुः ॥२४२॥
माल्यवच्चनयं दृष्ट्वा ततो निर्गतजीवितम् । जयन्तं च समभ्यस्तं तोषमुष्कभटस्वनम् ॥२४३॥
आश्वासयन्निजं सैन्यं पलायनपरायणम् । इन्द्रजित्संमुखीभूतो जयन्तस्योल्कटो रुषा ॥२४४॥
ततोऽभिभवगे सक्तं जनानां तं कलिं यथा । जयन्तमिन्द्रजिच्चक्रे जर्जरं वर्मवच्छरैः ॥२४५॥
दृष्ट्वा च छिन्नवर्माणं रुधिरारुणविग्रहम् । जयन्तं शरसंघातैः प्राप्तं शैलालितुल्यताम् ॥२४६॥
अमरेन्द्रः स्वयं योद्धुमुत्थितश्छादयन्नभः । नीरन्ध्रं वाहनैरुग्रैरायुधैश्च चलत्करैः ॥२४७॥
अवादीत् सारथिश्चैवं रावणं संमतिश्रुतिः । अयं स देव संप्राप्तः स्वयं नाथो दिवौकसाम् ॥२४८॥
चक्रेण लोकपालानां परितः कृतपालनः । मत्तैरावतपृष्ठस्थो मौलिरत्नप्रभावृतः ॥२४९॥
पाण्डुरेणोपरिस्थेन छत्रेणावृतभास्करः । क्षुब्धेन सागरेणेव सैन्येन कृतवेष्टनः ॥२५०॥

इधर राक्षसोंकी सेनामें रुदन शब्द सुनाई पड़ने लगा ॥२३७॥ जब मूर्च्छा दूर हुई तब श्रीमाली अत्यन्त कुपित हो शस्त्रसमूहकी वर्षा करता हुआ जयन्तके सम्मुख गया। उस समय वह अत्यन्त भयंकर दिखाई देता था ॥२३८॥ शस्त्रसमूहको छोड़ते हुए दोनों कुमार ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो जिनकी चमकीली सटाओंका समूह उड़ रहा था ऐसे सिंहके दो बालक ही हों ॥२३९॥ तदनन्तर इन्द्रके पुत्र जयन्तने माल्यवान्के पुत्र श्रीमालीके वक्षःस्थलपर गदाका ऐसा प्रहार किया कि वह पृथिवीपर गिर पड़ा ॥२४०॥ मुखसे खूनको छोड़ता पृथिवीपर पड़ा श्रीमाली ऐसा जान पड़ता था मानो अस्त होता हुआ सूर्य ही हो ॥२४१॥ श्रीमालीको मारनेके बाद जयन्तने रथपर सवार हो हर्षसे शंख फूँका जिससे राक्षस भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे ॥२४२॥

तदनन्तर श्रीमालीको निष्प्राण और जिसके योद्धा हर्षनाद कर रहे थे ऐसे जयन्तको आगामी युद्धके लिए तत्पर देख रावणका पुत्र इन्द्रजित् अपनी भागती हुई सेनाको आश्वासन देता हुआ जयन्तके सम्मुख आया। उस समय वह क्रोधसे बड़ा विकट जान पड़ता था ॥२४३-२४४॥ तदनन्तर इन्द्रजित्ने कलिकालकी तरह लोगोंके अनादर करनेमें संलग्न जयन्तको अपने बाणोंसे कवचकी तरह जर्जर कर दिया अर्थात् जिस प्रकार बाणोंसे उसका कवच जर्जर किया था उसी प्रकार उसका शरीर भी जर्जर कर दिया ॥२४५॥ जिसका कवच टूट गया था, जिसका शरीर खूनसे लाल-लाल हो रहा था और जो गड़े हुए बाणोंसे सेहीकी तुलना प्राप्त कर रहा था ऐसे जयन्तको देखकर इन्द्र स्वयं युद्ध करनेके लिए उठा। उस समय इन्द्र अपने वाहनों और चमकते हुए तीक्ष्ण शस्त्रोंसे नीरन्ध्र आकाशको आच्छादित कर रहा था ॥२४६-२४७॥ इन्द्रको युद्धके लिए उद्यत देख सन्मति नामक सारथिने रावणसे कहा कि हे देव! यह देवोंका अधिपति इन्द्र स्वयं ही आया है ॥२४८॥ लोकपालोंका समूह चारों ओरसे इसकी रक्षा कर रहा है, यह मदोन्मत्त ऐरावत हाथीपर सवार है, मुकुटके रत्नोंकी प्रभासे आवृत है, ऊपर लगे हुए सफेद छत्रसे सूर्यको ढक रहा है, तथा क्षोभको प्राप्त हुए महासागरके समान सेनासे घिरा हुआ है ॥२४९-२५०॥

१. विद्योद्भूत म. । २. हतः श्रीमाली येन सः । हतः श्रीमालिकः म., क., ब. । ३. कवचवत् । ४. 'शल्यस्तल्लोम्नि शल्ली शल्लं शल्यम्' इत्यमरः । शल्ली 'सेही' इति हिन्दी । सलिलतुल्यताम् क., ख., म., ब. ।

महाबलोऽयमेतस्य कुमारो नोचितो रणे । [1]उत्तिष्ठ स्वयमेव त्वं जहि शत्रोरहंयुताम्[2] ॥२५१॥
ततोऽभिमुखमायान्तं दृष्ट्वाखण्डलमूर्जितम् । संस्मृत्य मालिमरणं श्रीमालिवधदीपितः ॥२५२॥
दृष्ट्वा च शत्रुभिः पुत्रं वेष्ट्यमानं समन्ततः । दधाव रावणः क्रोधाद् रथेनानिलरंहसा ॥२५३॥
भटानाममबद्धयुद्धमेतयो रोमहर्षणम् । तुमुलं शस्त्रसंघातघनध्वान्तसमावृतम् ॥२५४॥
ततः शस्त्रकृतध्वान्ते रक्तनीहारवर्तिनि । अज्ञायन्त भटाः शूरास्तारारावेण[3] केवलम् ॥२५५॥
प्रेरिता स्वामिनो भक्त्या [4]पूर्वानादरचोदिताः । प्रहारोत्थेन कोपेन भटा युयुधिरे भृशम् ॥२५६॥
गदाभिः शक्तिभिः कुन्तैर्मुसलैरसिभिः शरैः । परिघैः कनकैश्चक्रैः करवालीभिरंघ्रिपैः ॥२५७॥
शूलैः पाशैर्भुशुण्डीभिः कुठारैर्मुद्गरैर्घनैः । प्रावभिर्लाङ्गलैर्दण्डैः कौणैः सायकवेणुभिः ॥२५८॥
अन्यैश्च विविधैः शस्त्रैरन्योन्यच्छेदकारिभिः । करालमभवद् व्योम तदाघातोत्थितानलम् ॥२५९॥
क्वचिद्ग्रसदिति ध्वानो भवत्यन्यत्र शूदिति । क्वचिद्रणरणारावः क्वचित्किंणिकिंणिस्वनः ॥२६०॥
त्रपत्रपायतेऽन्यत्र तथा दमदमायते । छमाछमायतेऽन्यत्र तथा पटपटायते ॥२६१॥
छलछलायतेऽन्यत्र टट्टहायते तथा । तडत्तटायतेऽन्यत्र तथा चटचटायते ॥२६२॥
घग्घमायतेऽन्यत्र इत्थं रक्तोत्थितैः स्वरैः । शब्दात्मकमिवीभूतं तदा स्वजिरमण्डलम् ॥२६३॥
हन्यते वाजिना वाजी वारणेन मतङ्गजः । तत्रस्थेन च तत्रस्थो रथेन ध्वस्यते रथः ॥२६४॥
पदातिभिः समं युद्धं कर्तुं पादातमुद्यतम् । यथा पुरोगतैरेकभटपाटनतत्परम् ॥२६५॥

यह चूँकि महाबलवान् है इसलिए कुमार इन्द्रजित् युद्ध करनेके लिए इसके योग्य नहीं है अतः आप स्वयं ही उठिए और शत्रुका अहंकार नष्ट कीजिए ॥२५१॥

तदनन्तर बलवान् इन्द्रको सामने आता देख रावण वायुके समान वेगशाली रथसे सामने दौड़ा। उस समय रावण मालीके मरणका स्मरण कर रहा था और अभी हालमें जो श्रीमालीका वध हुआ था उससे देदीप्यमान हो रहा था। उस समय इन दोनों योद्धाओंका रोमांचकारी भयंकर युद्ध हो रहा था। वह युद्ध शस्त्र समुदायसे उत्पन्न सघन अन्धकारसे व्याप्त था। रावणने देखा कि उसका पुत्र इन्द्रजित् सब ओरसे शत्रुओं द्वारा घेर लिया गया है अतः वह कुपित हो आगे दौड़ा ॥२५२–२५४॥ तदनन्तर जहाँ शस्त्रोंके द्वारा अन्धकार फैल रहा था और रुधिरका कुहरा छाया हुआ था ऐसे युद्धमें यदि शूरवीर योद्धा पहचाने जाते थे तो केवल अपनी जोरदार आवाज से ही पहचाने जाते थे ॥२५५॥ जिन योद्धाओंने पहले अपेक्षा भावसे युद्ध करना बन्द कर दिया था उनपर भी जब चोटें पड़ने लगीं तब वे स्वामीकी भक्तिसे प्रेरित हो प्रहारजन्य क्रोधसे अत्यधिक युद्ध करने लगे ॥२५६॥ गदा, शक्ति, कुन्त, मुसल, कृपाण, बाण, परिघ, कनक, चक्र, छुरी, अंघ्रिप, शूल, पाश, भुशुण्डी, कुठार, मुद्गर, घन, पत्थर, लांगल, दण्ड, कौण, बाँसके बाण तथा एक दूसरेको काटनेवाले अन्य अनेक शस्त्रोंसे उस समय आकाश भयंकर हो गया था और शस्त्रोंके पारस्परिक आघातसे उसमें अग्नि उत्पन्न हो रही थी ॥२५७–२५९॥ उस समय कहीं तो ग्रसद्-ग्रसद्, कहीं शूद्-शूद्, कहीं रण-रण, कहीं किण-किण, कहीं त्रप-त्रप, कहीं दम-दम, कहीं छम-छम, कहीं पट-पट, कहीं छल-छल, कहीं टट्-टट्, कहीं तड़-तड़, कहीं चट-चट और कहीं घग्घ-घग्घकी आवाज आ रही थी। यथार्थ बात यह थी कि शस्त्रोंसे उत्पन्न स्वरोंसे उस समय रणांगण शब्दमय हो रहा था ॥२६०–२६३॥ घोड़ा घोड़ाको मार रहा था, हाथी हाथीको मार रहा था, घुड़सवार घुड़सवारको, हाथीका सवार हाथीके सवारको और रथ रथको नष्ट कर रहा था ॥२६४॥ जो जिसके सामने आया उसीको चीरनेमें तत्पर रहनेवाला पैदल सिपाहियोंका झुण्ड

---

१. उत्तिष्ठ । २. गर्वम् । ३. तारारावेण-ब. । ४. पूर्वमारव म., पूर्वमारद ब. । ५. करवालिभिरङ्घ्रिपैः म. ।

गजशूत्कृतनिस्सपंच्छीकरासारसंहतिः । शस्त्रपातसमुद्भूतधूमकेतुमशीशमत् ॥२६६॥
प्रतिमागुरवो दन्ता भ्रष्टा अपि गजाननात् । पतन्तः कुर्वते भेदं भटपङ्क्तेरधोमुखाः ॥२६७॥
प्रहारं मुञ्च भो शूर मा भूः पुरुष कातरः । प्रहारं [२]भटसिंहासेः सहस्व मम साम्प्रतम् ॥२६८॥
अयं मृतोऽसि मां प्राप्य गतिस्तव कुतोऽधुना । दुःशिक्षित न जानासि गृहीतुमपि सायकम् ॥२६९॥
रक्षात्मानं व्रजाम्युष्माद् रणकण्डूर्मुधा तव । कण्डूरेव न मे भ्रष्टा क्षतं स्वरूपं त्वया कृतम् ॥२७०॥
मुधैव जीवनं भुक्तं पण्ढकेन प्रभोस्त्वया । किं गर्जसि फले व्यक्तिर्भटतायाः करोम्यहम् ॥२७१॥
किं कम्पसे मुञ्च स्थैर्यं गृहाण त्वरितं शरम् । दृढमुष्टिं कुरु संसास्यद्गोऽयं तव यास्यति ॥२७२॥
एवमादिसमालापाः परमोत्साहवर्तिनाम् । भटानामाहवे जाताः स्वामिषामग्रतो मुहुः ॥२७३॥
अलसः कस्यचिद्बाहुराहतो गदया द्विषा । बभूव विशदोऽत्यन्तं क्षणनर्तनकारिणः ॥२७४॥
प्रयच्छत्प्रतिपक्षस्य साधुकारं मुहुः शिरः । पपात कस्यचिद्वेगनिष्कामद्भूरिशोणितम् ॥२७५॥
अभिद्यत शरैर्वक्षो भटानां न तु मानसम् । शिरः पपात मो मानः कान्तो मृत्युर्न जीवितम् ॥२७६॥
कुर्वाणा यशसो रक्षां दक्षा वीरा महौजसः । भटाः संकटमायाताः प्राणान् शस्त्रभृतोऽमुचन् ॥२७७॥
म्रियमाणो भटः कश्चिच्छत्रुमारणकाङ्क्षया । पपात देहमाक्रम्य रिपोः कोपेन पूरितः ॥२७८॥
च्युते शस्त्रान्तराघाताच्छस्त्रे कश्चिन्नटोत्तमः । मुष्टिमुद्गरघातेन चक्रे शत्रुं गतासुकम् ॥२७९॥

पैदल सिपाहियोंके साथ युद्ध करनेके लिए उद्यत था ॥२६५॥ हाथियोंकी शूत्कारके साथ जो जलके छींटोंका समूह निकल रहा था वह शस्त्रपातसे उत्पन्न अग्निको शान्त कर रहा था ॥२६६॥ प्रतिमाके समान भारी-भारी जो दाँत हाथियोंके मुखसे नीचे गिरते थे वे गिरते-गिरते ही अनेक योद्धाओंकी पंक्तिका कचूमर निकाल देते थे ॥२६७॥ अरे शूर पुरुष ! प्रहार छोड़, कायर क्यों हो रहा है ? हे सैनिकशिरोमणे ! इस समय जरा मेरी तलवारका भी तो वार सहन कर ॥२६८॥ ले अब तू मरता ही है, मेरे पास आकर अब तो जा ही कहाँ सकता है ? अरे दुःशिक्षित ! तलवार पकड़ना भी तो तुझे आता नहीं है, युद्ध करनेके लिए चला है ॥२६९॥ जा यहाँसे भाग जा और अपने आपकी रक्षा कर। तेरी रणकी खाज व्यर्थ है, तूने इतना थोड़ा घाव किया कि उससे मेरी खाज ही नहीं गयी ॥२७०॥ तुझ नपुंसकने स्वामीका वेतन व्यर्थ ही खाया है, चुप रह, क्यों गरज रहा है ? अवसर आनेपर शूरवीरता अपने आप प्रकट हो जायेगी ॥२७१॥ काँप क्यों रहा है ? जरा स्थिरताको प्राप्त हो, शीघ्र ही बाण हाथमें ले, मुट्ठीको मजबूत रख, देख यह तलवार खिसककर नीचे चली जायेगी ॥२७२॥ उस समय युद्धमें अपने-अपने स्वामियोंके आगे परमोत्साहसे युक्त योद्धाओंके बार-बार उल्लिखित वार्तालाप हो रहे थे ॥२७३॥ किसीकी भुजा आलस्यसे भरी थी—उठती ही नहीं थी पर जब शत्रुने उसमें गदाकी चोट जमायी तब वह क्षण-भरमें नाच उठा और उसकी भुजा ठीक हो गयी ॥२७४॥ जिससे बड़े वेगसे अत्यधिक खून निकल रहा था ऐसा किसीका सिर शत्रुके लिए बार-बार धन्यवाद देता हुआ नीचे गिर पड़ा ॥२७५॥ बाणोंसे योद्धाओंका वक्षःस्थल तो खण्डित हो गया पर मन खण्डित नहीं हुआ। इसी प्रकार योद्धाओंका सिर तो गिर गया पर मान नहीं गिरा। उन्हें मृत्यु प्रिय थी पर जीवन प्रिय नहीं था ॥२७६॥ जो महातेजस्वी कुशल वीर थे उन्होंने संकट आनेपर शस्त्र लिये यशकी रक्षा करते-करते अपने प्राण छोड़ दिये थे ॥२७७॥ कोई एक योद्धा मर तो रहा था पर शत्रुको मारनेकी इच्छासे क्रोधयुक्त हो जब गिरने लगा तो शत्रुके शरीरपर आक्रमण कर गिरा ॥२७८॥ शत्रुके शस्त्रकी चोटसे जब किसी

---

१. शीकराकार-म. । २. भटसहासेः म. । ३. बलीवेन, 'तृतीया प्रकृतिः शण्ढः क्लीबः पण्डो नपुंसके' इत्यमरः । पाण्डुकेन म.; पण्डुकेन क., ख., ब. । ४. भव म. । ५. कुरुस्त्रंशं म. (?) । ६. द्विषः म. ।

आलिङ्ग्य मित्रवत्कश्चिद्दोर्भ्यां गाढं महाभटः । चकार विगलद्रक्तधारं शत्रुं विजीवितम् ॥२८०॥
कश्चिच्चकार पन्थानमृजुं निघ्नन् भटावलीम् । समरे पुरुषैरन्यैर्मयादकृतसंगमम् ॥२८१॥
पतन्तोऽपि न पृष्ठस्य दर्शनं भटसत्तमाः । वितेरुः प्रतिपक्षस्य गर्वोन्नमितवक्षसः ॥२८२॥
अहयै रथैर्भटैर्नागैः पतद्भिरतिरंहसा । अहया रथा भटा नागा न्यपात्यन्त सहस्रशः ॥२८३॥
रजोभिः शस्त्रनिक्षेपसमुद्भूतैः सशोणितैः । दानाम्भसा च संच्छन्नं शक्रचापैरभूनभः ॥२८४॥
कश्चित्करेण संरुध्य[1] वामेनान्त्राणि सत्भटः । तरसा खड्गमुद्यम्य ययौ प्रत्यरि भीषणः ॥२८५॥
कश्चिन्निजैः पुरीतद्भिर्बद्ध्वा परिकरं दृढम् । दष्टोष्ठोऽभिययौ शत्रु दृष्टाशेषकनीनिकैः[2] ॥२८६॥
कश्चित्कीलालमादाय निजं रोषपरायणः । करास्यां द्विषतो मूर्ध्नि चिक्षेप गलितायुधः ॥२८७॥
गृहीत्वा कीकसं कश्चिन्निजं[3] छिन्नमरातिना । बुद्धौके तं गलद्रक्तधाराभुक्कविराजितः[4] ॥२८८॥
पाशेन कश्चिदानीय रिपुं युद्धसमुत्सुकः । मुमोच दूरनिर्मुक्तं रणसंभवसंभ्रमः ॥२८९॥
कश्चिच्च्युतायुधं दृष्ट्वा प्रतिपक्षमनिच्छया । बुद्धौके शस्त्रमुज्झित्वा न्याय्यसंग्रामतत्परः ॥२९०॥
पिनाकाननलग्नेन रिपून् कश्चित्प्रतिद्विषा । जघान घनकीलालधारानिकरवर्षिणा ॥२९१॥
कश्चिच्छिरन्धरां प्राप्तः शिरसा स्फुटरंहसा । मुञ्चंस्तं[5] दिशि कीलालं प्रतिपक्षमसाद्धयत् ॥२९२॥

योद्धाका शस्त्र छूटकर नीचे गिर गया तब उसने मुट्ठीरूपी मुद्गरकी मारसे ही शत्रुको प्राणरहित कर दिया ॥२७९॥ किसी महायोद्धाने मित्रकी तरह भुजाओंसे शत्रुका गाढ़ आलिंगन कर उसे निर्जीव कर दिया—आलिंगन करते समय शत्रुके शरीरसे खूनकी धारा बह निकली थी ॥२८०॥ किसी योद्धाने योद्धाओंके समूहको मारकर युद्धमें अपना सीधा मार्ग बना लिया था। भयके कारण अन्य पुरुष उसके उस मार्गमें आड़े नहीं आये थे ॥२८१॥ गर्वसे जिनका वक्षःस्थल तना हुआ था ऐसे उत्तम योद्धाओंने गिरते-गिरते भी शत्रुके लिए अपनी पीठ नहीं दिखलायी थी ॥२८२॥ बड़े वेगसे नीचे गिरनेवाले घोड़ों, रथों, योद्धाओं और हाथियोंने हजारों घोड़ों, रथों, योद्धाओं और हाथियोंको नीचे गिरा दिया था ॥२८३॥ शस्त्रोंके निक्षेपसे उठी हुई रुधिराक्त धूलि और हाथियोंके मदजलसे आकाश ऐसा व्याप्त हो गया था मानो इन्द्रधनुषोंसे ही आच्छादित हो रहा हो ॥२८४॥ कोई एक भयंकर योद्धा अपनी निकलती हुई आँतोंको बायें हाथसे पकड़कर तथा दाहिने हाथसे तलवार उठा बड़े वेगसे शत्रुके सामने जा रहा था ॥२८५॥ जो ओठ चाब रहा था तथा जिसके नेत्रोंकी पूर्ण पुतलियाँ दिख रही थीं ऐसा कोई योद्धा अपनी ही आँतोंसे कमरको मजबूत कसकर शत्रुकी ओर जा रहा था ॥२८६॥ जिसके हथियार गिर गये थे ऐसे किसी योद्धाने क्रोधनिमग्न हो अपना खून दोनों हाथोंमें भरकर शत्रुके सिरपर डाल दिया था ॥२८७॥ जो निकलते हुए खूनकी धारासे लथपथ वक्षोंसे सुशोभित था ऐसा कोई योद्धा शत्रुके द्वारा काटी हुई अपनी हड्डी लेकर शत्रुके सामने जा रहा था ॥२८८॥ जो युद्धमें उत्सुक तथा युद्धकालमें उत्पन्न होनेवाली अनेक चेष्टाओंसे युक्त था ऐसे किसी योद्धाने शत्रुको पाशमें बाँधकर दूर ले जाकर छोड़ दिया ॥२८९॥

जो न्यायपूर्ण युद्ध करनेमें तत्पर था ऐसे किसी योद्धाने जब देखा कि हमारे शत्रुके शस्त्र नीचे गिर गये हैं और वह निरस्त्र हो गया है तब वह स्वयं भी अपना शस्त्र छोड़कर अनिच्छासे शत्रुके सामने गया था ॥२९०॥ कोई योद्धा धनुषके अग्रभागमें लगे एवं खूनकी बड़ी मोटी धाराओंकी वर्षा करनेवाले शत्रुके द्वारा ही दूसरे शत्रुओंको मार रहा था ॥२९१॥ कोई एक योद्धा सिर कट जानेसे यद्यपि कबन्ध दशाको प्राप्त हुआ था तथापि उसने शत्रुकी दिशामें वेगसे

१. संरुद्ध म. । २. कनीनिकाः म. । ३. छिन्न- म. । ४. विराजितं म. । ५. तं दिशि म. ।

[1]कृत्तोऽपि कस्यचिन्मूर्धा गर्वनिर्भरचेतसः । दष्टदन्तच्छदोऽपतद्धुङ्कारमुखरश्चिरम् ॥२९३॥
अन्येनाशीविषेणेव पतताऽत्यन्तभीषणा । दृष्टिरुल्कानिभाक्षेपि प्रतिपक्षस्य विग्रहे ॥२९४॥
अर्धकृत्तं शिरोऽन्येन धृत्वा वामेन पाणिना । पातितं प्रतिपक्षस्य शिरो विक्रमशालिना ॥२९५॥
कश्चिद्विक्षिप्य कोपेन शस्त्रमप्राप्तशत्रुकम् । हन्तुं परिघतुल्येन [3]बाहुनैव समुद्यतः ॥२९६॥
अरातिं मूर्च्छितं कश्चित्सिषेच स्वासृजा शनैः । शीतीकृतेन वस्त्रान्तवायुना संभ्रमान्वितः ॥२९७॥
विश्रान्तं मूर्च्छया शूरैः शस्त्रघातैः सुखायितम् । मरणेन कृतार्थत्वं मेने कोपेन कम्पितैः ॥२९८॥
एवं महति संग्रामे प्रवृत्ते भीतिभीषणे । भटानामुत्तमानन्दसंपादनपरायणे ॥२९९॥
गजनासास[5]माकृष्टवीरक्षिप्ततत्करे । जवनाश्वखुराघातपतत्सरकर्तनोद्यते ॥३००॥
सारथिप्रेरणाकृष्टरथविक्षतवाजिनि । जङ्घाखण्डसंक्रान्तक्षतकुम्भमहागजे ॥३०१॥
परस्परजवाघातदलत्पादातविग्रहे । भटोत्तमकराकृष्टपुच्छनिष्पन्दवाजिनि ॥३०२॥
कराघातदलत्कुम्भिकुम्भनिश्च्युतमौक्तिके । पतन्मातङ्गनिर्भग्नरथाहतपतद्भटे ॥३०३॥

उछलते हुए सिरके द्वारा ही रुधिरकी वर्षा कर शत्रुको मार डाला था ॥२९२॥ जिसका चित्त गर्वसे भर रहा था ऐसे किसी योद्धाका सिर यद्यपि कट गया था तो भी वह ओठोंको डसता रहा और हुंकारसे मुखर होता हुआ चिरकाल बाद नीचे गिरा था ॥२९३॥ जो साँपके समान जान पड़ता था ऐसे किसी योद्धाने गिरते समय उल्काके समान अत्यन्त भयंकर अपनी दृष्टि शत्रुके शरीरपर डाली थी ॥२९४॥ किसी पराक्रमी योद्धाने शत्रुके द्वारा आधे काटे हुए अपने सिरको बायें हाथसे थाम लिया और दाहिने हाथसे शत्रुका सिर काटकर नीचे गिरा दिया ॥२९५॥ किसी योद्धाका शस्त्र शत्रु तक नहीं पहुँच रहा था इसलिए क्रोधमें आकर उसने उसे फेंक दिया और अर्गलके समान लम्बी भुजासे ही शत्रुको मारनेके लिए उद्यत हो गया ॥२९६॥ किसी एक दयालु योद्धाने देखा कि हमारा शत्रु सामने मूर्च्छित पड़ा है जब उसे सचेत करनेके लिए जल आदि अन्य साधन न मिले तब उसने सम्भ्रमसे युक्त हो वस्त्रके छोरकी वायुसे शीतल किये गये अपने ही रुधिरसे उसे बार-बार सींचना शुरू कर दिया ॥२९७॥ क्रोधसे काँपते हुए शूर-वीर मनुष्योंको जब मूर्च्छा आती थी तब वे समझते थे कि विश्राम प्राप्त हुआ है, जब शस्त्रोंकी चोट लगती थी तब समझते थे कि सुख प्राप्त हुआ और जब मरण प्राप्त होता था तब समझते थे कि कृतकृत्यता प्राप्त हुई है ॥२९८॥

इस प्रकार जब योद्धाओंके बीच महायुद्ध हो रहा था, ऐसा महायुद्ध कि जो भयको भी भय उत्पन्न करनेवाला था तथा उत्तम मनुष्योंको आनन्द उत्पन्न करनेमें तत्पर था ॥२९९॥ जहाँ हाथी अपनी सूँड़ोंमें कसकर वीर पुरुषोंको अपनी ओर खींचते थे पर वे वीर पुरुष उनकी सूँड़ें स्वयं काट डालते थे। जहाँ लोग घोड़ोंको काटनेके लिए उद्यत होते अवश्य थे पर वे वेगशाली घोड़े अपने खुरोंके आघातसे उन्हें वहीं गिरा देते थे ॥३००॥ जहाँ घोड़े सारथियोंकी प्रेरणा पाकर रथ खींचते थे पर उनसे उनका शरीर घायल हो जाता था। जहाँ मस्तकरहित बड़े-बड़े हाथी पड़े हुए थे और लोग उनपर पैर रखते हुए चलते थे ॥३०१॥ जहाँ पैदल सिपाहियोंके शरीर एक दूसरेके वेगपूर्ण आघातसे खण्डित हो रहे थे। जहाँ उत्तम योद्धा अपने हाथोंसे घोड़ोंकी पूँछ पकड़कर इतने जोरसे खींचते थे कि वे निश्चल खड़े रह जाते थे ॥३०२॥ जहाँ हाथोंकी चोटसे हाथियोंके गण्डस्थल फट जाते थे तथा उनसे मोती निकलने लगते थे। जहाँ गिरते हुए हाथियोंसे रथ टूट जाते थे और उनकी चपेटमें आकर अनेक योद्धा घायल

---

१. कृत्तोऽपि म.। २. गर्वनिर्भर म.। ३. बाहुनैव म.। ४. प्रेरणात् म.। ५. -क्षिप्त म.।

कीष्टालपटलच्छन्न[1]गलन्नासाकदम्बके । गजकर्णसमुद्भूततीव्राकुलसमीरणे ॥३०४॥
उवाच सारथिं वीरः सुमतिं कैकसीसुतः । न किंचिदिव मन्वानो रणं रणकुतूहली ॥३०५॥
तस्यैव शक्रसंज्ञस्य संमुखो वाह्यतां रथः । असत्प्रायैः किमन्यैः सामन्तैस्तस्य मारितैः ॥३०६॥
तृणसुल्येषु नामीषु मम शस्त्रं प्रवर्तते । मनश्च सुमहावीरग्रासग्रहणतत्परम् ॥३०७॥
आखण्डलत्वमस्याद्य कृतं क्षुद्राभिमानतः । करोमि मृत्युना दूरं स्वविडम्बनकारिणः ॥३०८॥
अयं शक्रो महानेते लोकपालाः प्रकल्पिताः । अन्ये च मानुषा देवा नाकश्च धरणीधरः[2] ॥३०९॥
अहो लोकापहासस्य[3] मत्तस्य क्षुद्रया श्रिया । आत्मा विस्मृत एवास्य भ्रकुंसस्येव दुर्मतेः ॥३१०॥
शुक्रशोणितमांसास्थिमज्जादिघटिते चिरम् । उषित्वा जठरे पापक्षिदशंमन्यतां गतः ॥३११॥
विद्याबलेन यत्किंचित्कुर्वाणो वैयदुर्विधः । एष देवायतो ध्वाङ्क्षो वैनतेयायते यथा ॥३१२॥
एवमुक्ते शक्रस्य बलं सम्मतिना[4] रथः । प्रवेशितो[5] महाशूरसामन्तपरिपालितः ॥३१३॥
पश्यन्निन्द्रस्य सामन्तान्युद्धाशक्तपलायितान् । ऋजुना चक्षुषा राजा कीटकोपमचेष्टितान् ॥३१४॥
अशक्यः शत्रुभिर्धर्त्तुं कूलैः पूरो यथाम्भसः । चेतोवेगश्च सक्रोधो मिथ्यादृष्टिव्रताश्रितैः ॥३१५॥
दृष्टातपत्रमेतस्य क्षीरोदावर्तपाण्डुरम् । नष्टं सुरबलं क्वापि तमश्चन्द्रोदये यथा ॥३१६॥

होकर नीचे गिर जाते थे ॥३०३॥ जहाँ लोगोंकी नासिकाओंके समूह पड़ते हुए खूनके समूहसे आच्छादित हो रहे थे अथवा जहाँ आकाश और दिशाओंके समूह खूनके समूहसे आच्छादित थे और जहाँ हाथियोंके कानोंकी फटकारसे प्रचण्ड वायु उत्पन्न हो रही थी ॥३०४॥ इस प्रकार योद्धाओंके बीच भयंकर युद्ध हो रहा था पर युद्धके कुतूहलसे भरा वीर रावण उस युद्धको ऐसा मान रहा था जैसा कि मानो कुछ हो ही न रहा हो। उसने अपने सुमति नामक सारथिसे कहा कि उस इन्द्रके सामने ही रथ ले जाया जाये क्योंकि जो हमारी समानता नहीं रखते ऐसे उसके अन्य सामन्तोंके मारनेसे क्या लाभ है ? ॥३०५-३०६॥ तृणके समान तुच्छ इन सामन्तोंपर न तो मेरा शस्त्र उठता है और न महाभटरूपी ग्रासके ग्रहण करनेमें तत्पर मेरा मन ही इनकी ओर प्रवृत्त होता है ॥३०७॥ अपने आपकी विडम्बना करानेवाले इस विद्याधरने क्षुद्र अभिमानके वशीभूत हो अपने आपको जो इन्द्र मान रखा है सो इसके उस इन्द्रपनाको आज मृत्युके द्वारा दूर करता हूँ ॥३०८॥ यह बड़ा इन्द्र बना है, ये लोकपाल इसीने बनाये हैं। यह अन्य मनुष्योंको देव मानता है और विजयार्ध पर्वतको स्वर्ग समझता है ॥३०९॥ बड़े आश्चर्यकी बात है कि जिस प्रकार कोई दुर्बुद्धि नट उत्तम पुरुषका वेष धर अपने आपको भुला देता है उसी प्रकार यह दुर्बुद्धि क्षुद्र लक्ष्मीसे मत्त होकर अपने आपको भुला रहा है, तथा लोगोंकी हँसीका पात्र हो रहा है ॥३१०॥ शुक्र, शोणित, मांस, हड्डी और मज्जा आदिसे भरे हुए माताके उदरमें चिरकाल तक निवास कर यह अपने आपको देव मानने लगा है ॥३११॥ विद्याके बलसे कुछ तो भी करता हुआ यह अधोर व्यक्ति अपने आपको देव समझ रहा है जो इसका यह कार्य ऐसा है कि जिस प्रकार कौआ अपने आपको गरुड़ समझने लगता है ॥३१२॥ ऐसा कहते ही सुमति नामक सारथिने महाबलवान् सामन्तोंके द्वारा सुरक्षित रावणके रथको इन्द्रकी सेनामें प्रविष्ट कर दिया ॥३१३॥ वहाँ जाकर रावणने इन्द्रके उन सामन्तों को सरल दृष्टिसे देखा कि जो युद्धमें असमर्थ होकर भाग रहे थे, तथा कीड़ोंके समान जिनकी दयनीय चेष्टाएँ थीं ॥३१४॥ जिस प्रकार किनारे नीरके प्रवाहको नहीं रोक सकते हैं और जिस प्रकार मिथ्यादर्शनके साथ व्रताचरण करनेवाले मनुष्य क्रोधसहित मनके वेगको नहीं रोक पाते हैं उसी प्रकार शत्रु भी रावणको आगे बढ़नेसे नहीं रोक सके थे ॥३१५॥ जिस प्रकार चन्द्रमाका उदय होनेपर अन्धकार नष्ट हो जाता है उसी प्रकार

१. गगनाशा- म. । २. विजयार्धगिरिः । ३. लोकापहासस्य म. । ४. सन्मतिना ब. । ५. महाशूरः सामन्तः म. ।

इन्द्रोऽपि गजमारूढः कैलासगिरिसंनिभम् । शरं समुद्धरँस्तूणादभीयाय दशाननम् ॥३१७॥
शरानाकर्णमाकृष्टान् चिक्षेप च यमद्विषि । महीधर इवाम्भोदः स्थूलधारामहाचयान् ॥३१८॥
दशवक्त्रोऽपि [1]ताम्बाणैराच्छिन्नान्तरवर्तिनः । ततस्तैर्गगनं चक्रे निखिलं मण्डपाकृतिम् ॥३१९॥
आच्छिद्यन्त शरा बाणैरभिद्यन्त च भूरिशः । [3]भीता इव रवेः पादाः क्वापि नष्टा निरन्वयाः ॥३२०॥
अन्तरेऽस्मिन्नवैद्वारगतिर्मिः[5]शरगोचरम् । नर्तं कलहप्रेक्षासंभूतपुरुसंमदः ॥३२१॥
असाध्यं प्रकृतास्त्राणां ततो ज्ञात्वा दशाननम् । निक्षिप्तमखमाग्नेयं माधवेन स्वरैवासिनाम् ॥३२२॥
इन्धनत्वं गतं तस्य खमेव विततात्मनः । धनुरादौ तु किं शक्यं वक्तुं पुद्गलवस्तुनि ॥३२३॥
कीचकानामिवोद्दारो दह्यमाने वने ध्वनिः । ज्वालावलीकरालस्य संभूयाशुशुक्षणेः ॥३२४॥
ततस्तेनाकुलं दृष्ट्वा स्वबलं कैकसीसुतः । चिक्षेप क्षेपनिर्मुक्तमस्त्रं वरुणलक्षितम् ॥३२५॥
तेन क्षणसमुद्भूतमहार्ण[6]स्तूर्यतर्जिना । पर्जन्यस्थूलधारौघवर्षिणा [7]सत्कृतर्क्षिणा ॥३२६॥
रावणस्येव कोपेन विलीनेन विहायसा । क्षणात्तद्धूमलक्ष्मास्त्रं विध्यापितमशेषतः ॥३२७॥
सुरेन्द्रेण ततोऽसर्जि तामसास्त्रं समन्ततः । तेनान्धकारिता चक्रे ककुभौ नभसा समम् ॥३२८॥
ततस्तेन दशास्यस्य विततं सकलं बलम् । स्वदेहमपि नापश्यत्कुतः शत्रोरनीकिनीम् ॥३२९॥
ततो निजबलं मूढं दृष्ट्वा रत्नश्रवःसुतः । प्रभास्वरमुचत्कालवस्तुयोजनकोविदः ॥३३०॥

क्षीरसमुद्रकी आवर्तके समान धवल रावणका छत्र देखकर देवोंकी सेना न जाने कहाँ नष्ट हो गयी ॥३१६॥ कैलास पर्वतके समान ऊँचे हाथीपर सवार हुआ इन्द्र भी तरकससे बाण निकालता हुआ रावणके सम्मुख आया ॥३१७॥ जिस प्रकार मेघ बड़ी मोटी धाराओंके समूहको किसी पर्वतपर छोड़ता है उसी प्रकार इन्द्र भी कान तक खींचे हुए बाण रावणके ऊपर छोड़ने लगा ॥३१८॥ इधर रावणने भी इन्द्रके उन बाणोंको बीचमें ही अपने बाणोंसे छेद डाला और अपने बाणोंसे समस्त आकाशमें मण्डप-सा बना दिया ॥३१९॥ इस प्रकार बाणोंके द्वारा बाण छेदे-भेदे जाने लगे और सूर्यकी किरणें इस तरह निर्मूल नष्ट हो गयीं मानो भयसे कहीं जा छिपी हों ॥३२०॥ इसी समय युद्धके देखनेसे जिसे बहुत भारी हर्ष उत्पन्न हो रहा था ऐसा नारद जहाँ बाण नहीं पहुँच पाते थे वहाँ आनन्दविभोर हो नृत्य कर रहा था ॥३२१॥

अथानन्तर जब इन्द्रने देखा कि रावण सामान्य शस्त्रोंसे साध्य नहीं है तब उसने आग्नेय बाण चलाया ॥३२२॥ वह आग्नेय बाण इतना विशाल था कि स्वयं आकाश ही उसका ईंधन बन गया, धनुष आदि पौद्गलिक वस्तुओंके विषयमें तो कहा ही क्या जा सकता है ? ॥३२३॥ जिस प्रकार बाँसोंके वनके जलनेपर विशाल शब्द होता है उसी प्रकार ज्वालाओंके समूहसे भयंकर दिखनेवाली आग्नेय बाणकी अग्निसे विशाल शब्द हो रहा था ॥३२४॥ तदनन्तर जब रावणने अपनी सेनाको आग्नेय बाणसे आकुल देखा तब उसने शीघ्र ही वरुण अस्त्र चलाया ॥३२५॥ उस बाणके प्रभावसे तत्क्षण ही महामेघोंका समूह उत्पन्न हो गया। वह मेघसमूह पर्वतके समान बड़ी मोटी धाराओंके समूहकी वर्षा कर रहा था, गर्जनासे सुशोभित था और ऐसा जान पड़ता था मानो रावणके क्रोधसे आकाश ही पिघल गया हो। ऐसे मेघसमूहने इन्द्रके उस आग्नेय बाणको उसी क्षण सम्पूर्ण रूपसे बुझा दिया ॥३२६-३२७॥ तदनन्तर इन्द्रने तामस बाण छोड़ा जिससे समस्त दिशाओं और आकाशमें अन्धकार ही अन्धकार छा गया ॥३२८॥ उस बाणने रावणकी सेनाको इस प्रकार व्याप्त कर लिया कि वह अपना शरीर भी देखनेमें असमर्थ हो गयी फिर शत्रुकी सेनाको देखनेकी तो बात ही क्या थी ? ॥३२९॥ तब अवसरके योग्य वस्तुकी योजना

१. तैर्बाणै ख. । तां म., ब., क. । २. राच्छिदन्तरवर्तिनः ख., ब., म. । राच्छादन्तर- क., 'छिदिर द्वैधीकरणे' इत्यस्य लटि आत्मनेपदे रूपम्, आ उपसर्गेण सहितम् । ३. भ्रान्ता इव म. । ४. नारदः । ५. गोचरे ब., निस्सारगोचरं म. । ६. लक्ष्मांसं म. । ७. काल-वस्त्र-म. ।

तेन तत्त्विखिलं ध्वान्तं विध्वस्तं क्षणमात्रतः । जिनशासनतत्त्वेन मतं मिथ्यादृशामिव ॥३३१॥
ततो यमविमर्देन कोपाद्यागास्त्रमुज्झितम् । चित्रेऽने गगनं तेन भोगिभी[1] रत्नभासुरैः ॥३३२॥
कामरूपभृतो बाणास्ते गत्वा कृतविद्विषः । चेष्टया रहितं चक्रुः शरीरं कृतवेष्टनाः ॥३३३॥
महानीलनिभैरेभिर्वलयाकारधारिभिः । जगामाकुलतां शक्रश्चलद्रसनभीषणैः ॥३३४॥
प्रथयावस्वतन्त्रत्वं कुलिशी[2] व्यालवेष्टितः[3] । चेष्टितः कर्मजालेन यथा जन्तुर्भवोदधौ ॥३३५॥
गरुडाख्यं ततो दध्यौ सुरेन्द्रस्तदनन्तरम् । हेमपक्षप्रभाजालैः पिङ्गलं गगनं गतम् ॥३३६॥
पक्षवातेन तस्याभूच्चिताम्तोदारंहसा । दोलारूढमिवाशेषं प्रेङ्खद्[4]पर्णप्रवणं बलम् ॥३३७॥
स्पृष्टा गरुडवातेन न ज्ञाता नागसायकाः । क्व गता इति विस्पष्टबन्धस्थानोपलक्षिताः ॥३३८॥
गरुत्मता कृताश्लेषो बन्धलक्षणवर्जितः । बभूव दारुणः शक्रो निदाघरविसंनिभः ॥३३९॥
विमुक्तं सर्पजालेन दृष्ट्वा शक्रं दशाननः । आरूढत्रिजगद्भूषं क्षरद्दानं जयद्विपम् ॥३४०॥
शक्रोऽऽप्यैरावतं रोषादस्यात्यासत्तमानयत् । ततो महदभूद्युद्धं दन्तिनोः पुरुदर्पयोः[5] ॥३४१॥
क्षरद्दानौ स्फुरद्धेमकक्षाविद्युद्गुणान्वितौ । दधतुस्तौ बलाकारं सान्द्रगर्जितकारिणौ[6] ॥३४२॥
परस्परदशाघातनिर्घातैरिव दारुणैः । पतद्भिर्भुवनं कम्पं प्रयथौ शब्दपूरितम् ॥३४३॥
पिण्डयित्वा स्थवीयांसौ करौ चपलविग्रहौ । पुनः प्रसारयन्तौ च ताडयन्तौ महारथौ ॥३४४॥

करनेमें निपुण रावणने अपनी सेनाको मोहग्रस्त देख प्रभास्त्र अर्थात् प्रकाशबाण छोड़ा ॥३३०॥ सो जिस प्रकार जिन-शासनके तत्त्वसे मिथ्यादृष्टियोंका मत नष्ट हो जाता है उसी प्रकार उस प्रभास्त्रसे क्षण-भरमें ही वह समस्त अन्धकार नष्ट हो गया ॥३३१॥ तदनन्तर रावणने क्रोधवश नागास्त्र छोड़ा जिससे समस्त आकाश रत्नोंसे देदीप्यमान सर्पोंसे व्याप्त हो गया ॥३३२॥ इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले उन बाणोंने जाकर इन्द्रके शरीरको निश्चेष्ट कर दिया तथा सब उससे लिपट गये ॥३३३॥ जो महानीलमणिके समान श्याम थे, वलयका आकार धारण करनेवाले थे और चंचल जिह्वाओंसे भयंकर दिखते थे ऐसे सर्पोंसे इन्द्र बड़ी आकुलताको प्राप्त हुआ ॥३३४॥ जिस प्रकार कर्मजालसे घिरा प्राणी संसाररूपी सागरमें विवश हो जाता है उसी प्रकार व्याल अर्थात् सर्पोंसे घिरा इन्द्र विवशताको प्राप्त हो गया ॥३३५॥ तदनन्तर इन्द्रने गरुडास्त्रका ध्यान किया जिसके प्रभावसे उसी क्षण आकाश सुवर्णमय पंखोंकी कान्तिके समूहसे पीला हो गया ॥३३६॥ जिसका वेग अत्यन्त तीव्र था ऐसी गरुडके पंखोंकी वायुसे रावणकी समस्त सेना ऐसी चंचल हो गयी मानो हिंडोला ही झूल रही हो ॥३३७॥ गरुडकी वायुका स्पर्श होते ही पता नहीं चला कि नागबाण कहाँ चले गये। वे शरीरमें कहाँ-कहाँ बँधे थे उन स्थानोंका पता भी नहीं रहा ॥३३८॥ गरुडका आलिंगन होनेसे जिसके समस्त बन्धन दूर हो गये थे ऐसा इन्द्र ग्रीष्मऋतुके सूर्यके समान भयंकर हो गया ॥३३९॥ जब रावणने देखा कि इन्द्र नागपाशसे छूट गया है तब वह जिससे मद झर रहा था ऐसे त्रिलोकमण्डन नामक विजयी हाथीपर सवार हुआ ॥३४०॥ उधरसे इन्द्र भी क्रोधवश अपना ऐरावत हाथी रावणके निकट ले आया। तदनन्तर बहुत भारी गर्वको धारण करनेवाले दोनों हाथियोंमें महायुद्ध हुआ ॥३४१॥ जिनसे मद झर रहा था, जो चमकती हुई स्वर्णकी मालारूपी बिजलीके सहित थे, तथा जो लगातार विशाल गर्जना कर रहे थे ऐसे दोनों हाथी मेघका आकार धारण कर रहे थे ॥३४२॥ परस्परके दाँतोंके आघातसे ऐसा लगता था मानो भयंकर वज्र गिर रहे हों और उनसे शब्दायमान हो समस्त संसार कम्पित हो रहा

१. भोगिनीरत्न म.। सर्पैः। २. इन्द्रः। ३. व्यालचेष्टितः म.। ४. प्रेक्षणप्रवणं म.। ५. शक्रजालेन (?) म.। ६. जैत्रगजमित्यर्थः। जगद्विषम् म.। ७. पुरुदर्पयोः म.। ८. कारणौ म.।

दन्तिनौ वृष्टविस्पष्टतारकाक्रूरवीक्षणौ । चक्रतुः सुमहद्युद्धं स्तब्धकर्णौ महाबलौ ॥३४५॥
तस्य उत्पत्य विन्यस्य पादमिन्द्रेभमूर्धनि । निताम्तं लाघवोपेतपादनिर्धूतसारथिः ॥३४६॥
बद्ध्वा वाच्छुकेन देवेन्द्रं मुहुराश्वासयन्विभुः । आरोपयद्गजध्वंसी निजं वाहनमूर्जितः ॥३४७॥
राक्षसाधिपपुत्रोऽपि गृहीत्वा वासवात्मजम् । समर्प्य किङ्करीघस्य सुरसैन्यस्य संमुखैः[1] ॥३४८॥
धावमानो जयोद्भूतमहोत्साहः[2] परंतपः । उक्तो द्विषंतपेनैवं मरुत्वन्मखविद्विषा ॥३४९॥
अलं वत्स ! प्रयत्नेन निवर्तस्व रणादरात् । शिरो गृहीतमेतस्याः सेनाया गिरिवासिनाम् ॥३५०॥
गृहीतेऽस्मिन् परिक्ष्वेडमत्र कः कुरुते परः । क्षुद्रा जीवन्तु सामन्ता गच्छन्तु स्थानमीप्सितम् ॥३५१॥
तन्दुलेषु गृहीतेषु ननु शालिकलापतः । त्यागस्तुषपलालस्य क्रियते कारणाद् विना ॥३५२॥
इत्युक्तः समरोत्साहादिन्द्रजिद्विनिवर्तनम् । चक्रे चक्रेण महसा नृपाणां बद्धमण्डलः ॥३५३॥
ततः सुरबलं सर्वं विशीर्णं क्षणमात्रतः । शारदानामिवाब्दानां वृन्दमत्यन्तमायतम् ॥३५४॥
सैन्येन दशवक्त्रस्य जयशब्दो महान् कृतः । पटुभिः पटलैः शङ्खैर्झर्झरैर्वन्दिनां[3] गणैः ॥३५५॥
शब्देन तेन विज्ञाय गृहीतममराधिपम् । सैन्यं राक्षसनाथस्य बभूवाकुलितोज्झितम् ॥३५६॥
ततः परमया युक्तो विभूत्या कैकसीसुतः । प्रतस्थे निर्वृतो लङ्कां साधमाच्छादिताम्बरः ॥३५७॥
आदित्यरथसंकाशैरत्यर्थजनितैः । नानारत्नकरोद्भूतसुचारुरुचिरालयैः ॥३५८॥

हो ॥३४३॥ जिनका शरीर अत्यन्त चंचल था तथा वेग भारी था ऐसे दोनों हाथी अपनी मोटी सूँड़ोंको फैलाते, सिकोड़ते और ताड़ित कर रहे थे ॥३४४॥ साफ-साफ दिखनेवाली पुतलियोंसे जिनके नेत्र अत्यन्त क्रूर जान पड़ते थे, जिनके कान खड़े थे और जो महाबलसे युक्त थे ऐसे दोनों हाथियोंने बहुत भारी युद्ध किया ॥३४५॥

तदनन्तर शक्तिशाली रावणने उछलकर अपना पैर इन्द्रके हाथीके मस्तकपर रखा और बड़ी शीघ्रतासे पैरकी ठोकर देकर सारथिको नीचे गिरा दिया। बार-बार आश्वासन देते हुए रावणने इन्द्रको वस्त्रसे कसकर बाँध अपने हाथीपर चढ़ा लिया ॥३४६-३४७॥ उधर इन्द्रजित्ने भी जयन्तको बाँधकर किंकरोंके लिए सौंप दिया। तदनन्तर विजयसे जिसका उत्साह बढ़ रहा था तथा जो शत्रुओंको सन्तप्त कर रहा था ऐसा इन्द्रजित् देवोंकी सेनाके सम्मुख दौड़ा। उसे दौड़ता देख शत्रुओंको सन्ताप पहुँचानेवाले रावणने कहा कि हे वत्स! अब प्रयत्न करना व्यर्थ है, युद्धके आदरसे निवृत्त होओ, विजयार्धवासी लोगोंकी इस सेनाका सिर अपने हाथ लग चुका है ॥३४८-३५०॥ इसके हाथ लग चुकनेपर दूसरा कौन हलचल कर सकता है? ये क्षुद्र सामन्त जीवित रहें और अपने इच्छित स्थानपर जावें ॥३५१॥ जब धानके समूहसे चावल निकाल लिये जाते हैं तब छिलकोंके समूहको अकारण ही छोड़ देते हैं ॥३५२॥ रावणके इस प्रकार कहनेपर इन्द्रजित् युद्धके उत्साहसे निवृत्त हुआ। उस समय राजाओंका बड़ा भारी समूह इन्द्रजित्को घेरे हुए था ॥३५३॥ तदनन्तर जिस प्रकार शरद्ऋतुके बादलोंका बड़ा लम्बा समूह क्षण-भरमें विशीर्ण हो जाता है उसी प्रकार इन्द्रकी सेना क्षण-भरमें विशीर्ण हो गयी—इधर-उधर बिखर गयी ॥३५४॥ रावणकी सेनामें उत्तमोत्तम पटल, शंख, झर्झर बाजे तथा बन्दीजनोंके समूहके द्वारा बड़ा भारी जयनाद किया गया ॥३५५॥ उस जयनादसे इन्द्रको पकड़ा जानकर रावणकी सेना निराकुल हो गयी ॥३५६॥

तदनन्तर परम विभूतिसे युक्त रावण, सेनासे आकाशको आच्छादित करता हुआ लंकाकी ओर चला। उस समय वह बड़ा सन्तुष्ट था ॥३५७॥ जो सूर्यके रथके समान थे, ध्वजाओंसे सुशोभित थे और नाना रत्नोंकी किरणोंसे जिनपर इन्द्रधनुष उत्पन्न हो रहे थे ऐसे रथ उसके

---

१. संमुखम् म.। २. महोत्साहपरंतपः ख., म.। महोत्साहं क.। ३. वृन्दिनां म.।

तुरङ्गैश्चञ्चलच्चारुचामरालीविभूषितैः । नृत्यद्भिरिव विस्रब्धकृतविभ्रमहारिभिः ॥३५९॥
महानिनदसंघट्टैः प्रवृत्तमदनिर्झरैः । गर्जद्भिर्मधुरं नागैः षट्पदालीनिषेवितैः ॥३६०॥
[1]अनुयानसमारूढैर्महासाधनखेचरैः । उपकण्ठं क्षणात्प्राप लङ्कायाः राक्षसाधिपः ॥३६१॥
ततो दृष्ट्वा समासन्नं गृहीतार्घा विनिर्ययुः । पुरस्य पालकाः पौरा बान्धवाश्च समुत्सुकाः ॥३६२॥
[2]कृतपूजस्ततः कैश्चित्तेषांचित्कृतपूजनः । नम्यमानोऽपरैः कांश्चित्प्रणमन्मदवर्जितः ॥३६३॥
दृष्ट्वा संमानयन् कांश्चिस्स्निग्धया नतवत्सलः । स्मितेन कांश्चिद्वाक्यान्यपरिज्ञातजनान्तरः ॥३६४॥
[4]मनोहरं निसर्गेण [5]विशेषेण विभूषिताम्[6] । समुच्छ्रितसमुत्सृष्टरत्ननिर्मिततोरणाम् ॥३६५॥
मन्दानिलविधूतान्तबहुवर्णध्वजाकुलाम् । कुङ्कुमादिमनोज्ञास्रुसिक्तनिःशेषभूतलाम् ॥३६६॥
सर्वर्तुकुसुमव्याप्तराजमार्गविराजिताम् । अनेकभक्तिभिः पञ्चवर्णैश्चूर्णैरलंकृताम् ॥३६७॥
द्वारदेशसुविन्यस्तपूर्णकुम्भां महाद्युतिम् । सरसैः पल्लवैर्बद्धमालां वस्त्रविभूषिताम् ॥३६८॥
वृत्तौ विद्याधरैर्देवैर्यथेन्द्रोऽत्यन्तभूरिभिः । सुखमासादयन् प्राप्यं पूर्वोपार्जितकर्मणा ॥३६९॥
आरूढः परमेकान्ते पुष्पके कामगामिनि । स्फुरन्मौलिमहारत्नकेयूरधरसद्भुजः ॥३७०॥

साथ थे ॥३५८॥ जो हिलते हुए सुन्दर चमरोंके समूहसे सुशोभित थे, निश्चिन्ततासे किये हुए अनेक विलासोंसे मनोहर थे तथा नृत्य करते हुए-से जान पड़ते थे ऐसे घोड़े उसकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥३५९॥ जिनके गलेमें विशाल शब्द करनेवाले घण्टा बँधे हुए थे, जिनसे मदके निर्झरने झर रहे थे, जो मधुर गर्जना कर रहे थे तथा भ्रमरोंकी पंक्ति जिनकी उपासना कर रही थी ऐसे हाथी उसके साथ थे ॥३६०॥ इनके सिवाय अपनी-अपनी सवारियोंपर बैठे हुए बड़ी-बड़ी सेनाओंके अधिपति विद्याधर उसके साथ चल रहे थे। इन सबके साथ रावण क्षण-भरमें ही लंकाके समीप जा पहुँचा ॥३६१॥ तब रावणको निकट आया जान नगरकी रक्षा करनेवाले लोग पुरवासी और भाई-बान्धव उत्सुक हो अर्घ ले-लेकर बाहर निकले ॥३६२॥ तदनन्तर कितने ही लोगोंने रावणकी पूजा की तथा रावणने भी कितने ही वृद्धजनोंकी पूजा की। कितने ही लोगोंने रावणको नमस्कार किया और रावणने भी कितने ही वृद्धजनोंको मदरहित हो नमस्कार किया ॥३६३॥ लोगोंकी विशेषताको जाननेवाला तथा नम्र मनुष्योंसे स्नेह रखनेवाला रावण कितने ही मनुष्योंको स्नेहपूर्ण दृष्टिसे सम्मानित करता था। कितने ही लोगोंको मन्द मुसकानसे और कितने ही लोगोंको मनोहर वचनोंसे समादृत कर रहा था ॥३६४॥

तदनन्तर जो स्वभावसे ही सुन्दर थी तथा उस समय विशेषकर सजायी गयी थी, जिसमें रत्ननिर्मित बड़े ऊँचे-ऊँचे तोरण खड़े किये गये थे ॥३६५॥ जो मन्द-मन्द वायुसे हिलती हुई रंग-बिरंगी ध्वजाओंसे युक्त थी, केशर आदि मनोज्ञ वस्तुओंसे मिश्रित जलसे जहाँकी समस्त पृथिवी सींची गयी थी ॥३६६॥ जो सब ऋतुओंके फूलोंसे व्याप्त राजमार्गोंसे सुशोभित थी, काले, पीले, नीले, लाल, हरे आदि पंचवर्णीय चूर्णसे निर्मित अनेक बेल-बूटोंसे जो अलंकृत थी ॥३६७॥ जिसके दरवाजोंपर पूर्ण कलश रखे गये थे, जो महाकान्तिसे युक्त थी, सरस पल्लवोंकी जिसमें वन्दनमालाएँ बाँधी गयी थीं, जो उत्तमोत्तम वस्त्रोंसे विभूषित थी तथा जहाँ बहुत भारी उत्सव हो रहा था ऐसी लंकानगरीमें रावणने प्रवेश किया ॥३६८॥ जिस प्रकार अनेक देवोंसे इन्द्र घिरा होता है उसी प्रकार रावण भी अनेक विद्याधरोंसे घिरा था। उस समय वह अपने पूर्वोपार्जित पुण्य कर्मके प्रभावसे उत्तम सुखको प्राप्त हो रहा था ॥३६९॥ अत्यन्त सुन्दर तथा इच्छानुकूल गमन करने-

---

१. अनुयातः समारूढैः म. । २. लङ्कायां म. । ३. कृतपूजनस्ततः म. । ४. मनोहरान् ख., ब. । ५. विशेषण- म. । ६. विभूषितान् ब., ख. ।

दधानो वक्षसा हारं प्रस्फुरद्विमलप्रभम् । वसन्त इव संजातकुसुमौघविराजितः ॥३७१॥
विगतैर्हर्षपूर्णाभिर्वधूभिः कृतवीक्षणः । स्वयं मृदुसमुद्धूतचामरासिः ससंभ्रमम् ॥३७२॥
नानावादित्रशब्देन जयशब्देन चारुणा । आनन्दितः सुवेश्याभिर्नृत्यन्तीभिः समन्वितः॥३७३॥
प्रविष्टो मुदितो लङ्कां समुद्भूतमहोत्सवाम् । भवनं च निजं बन्धुभृत्यवर्गाभिनन्दितः ॥३७४॥

शिखरिणीच्छन्दः

सुसन्नद्धान् जित्वा तृणमिव समस्तानरिगणान्
पुरोपात्तात् पुण्यात् समधिगतसुप्राज्यविभवः ।
क्षयं प्राप्ते तस्मिन् विगलितरुचिर्भ्रष्टविभवो
धिगस्तूच्चैः पात्रं क्षितिचपलं मानुषसुखम् ॥३७५॥
असौ प्राप्तो वृद्धिं दशमुखखगः पूर्वचरिता-
च्छुभान्निर्मूलं प्रबलमहितघातमखिलम् ।
इति ज्ञात्वा भव्या जगति निखिलं कर्मजनितं
विमुक्तान्यासङ्गा रविरुचिकरं यातु सुकृतम् ॥३७६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते इन्द्रपराभवाभिधानं नाम द्वादशं पर्व ॥१२॥

□

वाले पुष्पक विमानपर सवार था। उसके मुकुटमें बड़े-बड़े रत्न देदीप्यमान हो रहे थे तथा उसकी भुजाएँ बाजूबन्दोंसे सुशोभित थीं ॥३७०॥ जिसकी उज्ज्वल प्रभा सब ओर फैल रही थी ऐसे हारको वह वक्षःस्थलपर धारण कर रहा था और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो उत्पन्न हुए फूलोंके समूहसे सुशोभित वसन्त ऋतु ही हो ॥३७१॥ जो अतृप्तिकर हर्षसे पूर्ण थीं तथा धीरे-धीरे चमर ऊपर उठा रही थीं ऐसी स्त्रियाँ हाव-भावपूर्वक उसे देख रही थीं ॥३७२॥ वह नाना प्रकारके बाजोंके शब्द तथा मनोहर जय-जयकारसे आनन्दित हो रहा था और नृत्य करती हुई उत्तमोत्तम वेश्याओंसे सहित था ॥३७३॥ इस प्रकार उसने बड़ी प्रसन्नतासे, अनेक महोत्सवोंसे भरी लंकामें प्रवेश किया और बन्धुजन तथा भृत्यसमूहसे अभिनन्दित हो अपने भवनमें भी पदार्पण किया ॥३७४॥

गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि जिसने पूर्वोपार्जित पुण्य कर्मके प्रभावसे, सब प्रकारकी तैयारीसे युक्त समस्त शत्रुओंको तृणके समान जीतकर उत्तम वैभव प्राप्त किया था ऐसा इन्द्र विद्याधर पुण्यकर्मके क्षीण होनेपर कान्तिहीन तथा विभवसे रहित हो गया सो इस अत्यन्त चंचल मनुष्यके सुखको धिक्कार है ॥३७५॥ तथा विद्याधर रावण अपने पूर्वोपार्जित पुण्य कर्मके प्रभावसे समस्त बलवान् शत्रुओंको निर्मूल नष्ट कर वृद्धिको प्राप्त हुआ। इस प्रकार संसारके समस्त कार्य कर्मजनित हैं ऐसा जानकर हे भव्यजनो! अन्य पदार्थोंमें आसक्ति छोड़कर सूर्यके समान कान्तिको उत्पन्न करनेवाले एक पुण्य कर्मका ही संचय करो ॥३७६॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्यके द्वारा कथित पद्मचरितमें इन्द्र विद्याधरके पराभवका वर्णन करनेवाला बारहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१२॥

□

---

१. आनन्वितसुवेश्याभिः म. । २. विगतरुचिप्रभ्रष्टविभवो म. ।

त्रयोदशं पर्व

ततः सहस्रस्य सामन्ताः स्वामिदुःखपराकुलाः । [1]पुरस्कृतसहस्रारा: प्राप्ता रावणमन्दिरम् ॥१॥
प्रविष्टाश्च प्रतीहारज्ञापिता विनयान्विताः । प्रणम्य च स्थिता दत्तेष्वासनेषु यथोचितम् ॥२॥
दृष्टोऽथ गौरवेणोच्चे सहस्रारो दशाननम् । जितस्तातस्त्वया शक्रो मुञ्चेदानीं गिरा मम ॥३॥
बाह्वोः पुण्यस्य चोदारं सामर्थ्यं दर्शितं त्वया । परगर्वापसादं हि समीहन्ते नराधिपाः ॥४॥
इत्युक्ते लोकपालानां वदनेभ्यः समुत्थितः । शब्दोऽयमेव विस्पष्टः प्रतिनिःस्वनसंनिभः ॥५॥
लोकपालानथोवाच विहस्योद्भासिताम्बकः । समयोऽस्ति विमुञ्चामि येन नार्थं दिवौकसाम् ॥६॥
अद्य प्रभृति मे सर्वे यूयं कर्म यथोचितम् । संमार्जनादि सेवध्वं सर्वमन्तर्बहिःपुरः ॥७॥
पुरीयं साम्प्रतं [2]कृत्या भवद्भिः प्रतिवासरम् । परागाशुचिपाषाणतृणकण्टकवर्जिता ॥८॥
गृहीत्वा कुम्भमिन्द्रोऽपि वारिणा मोदचारुणा । महीं सिञ्चतु कर्मेदमस्य लोके प्रकीर्त्यते ॥९॥
पञ्चवर्णैश्च कुर्वन्तु पुष्पैर्गन्धमनोहरैः । संभ्रान्ताः प्रकरं देव्यः सर्वालंकारभूषिताः ॥१०॥
समयेनामुना युक्ता यदि तिष्ठन्ति सादराः । विमुञ्चामि ततः शक्रं कुतो निर्मुक्तिरन्यथा ॥११॥
इत्युक्त्वा वीक्षमाणोऽसौ लोकपालांस्त्रपानतान् । जहास मुहुराहतानां ताडयन् पाणिना करम् ॥१२॥
ततो विनयनम्रः सन् सहस्रारमथोचत । समाह्लादयहारिण्या क्षरन्निव गिरामृतम् ॥१३॥
यथा तात प्रतीक्ष्यस्त्वं वासवस्य तथा मम । अधिकं वा ततः कुर्यां कथमाज्ञाविलङ्घनम् ॥१४॥

अथानन्तर स्वामीके दुःखसे आकुल इन्द्रके सामन्त, सहस्रारको आगे कर रावणके महलमें पहुँचे ॥१॥ द्वारपालके द्वारा समाचार देकर बड़ी विनयसे सबने भीतर प्रवेश किया और सब प्रणाम कर दिये हुए आसनोंपर यथायोग्य रीतिसे बैठ गये ॥२॥ तदनन्तर रावणने सहस्रारकी ओर बड़े गौरवसे देखा। तब सहस्रार रावणसे बोला कि तूने मेरे पुत्र इन्द्रको जीत लिया है अब मेरे कहनेसे छोड़ दे ॥३॥ तूने अपनी भुजाओं और पुण्यकी उदार महिमा दिखलायी सो ठीक ही है क्योंकि राजा दूसरेके अहंकारको नष्ट करनेकी ही चेष्टा करते हैं ॥४॥ सहस्रारके ऐसा कहने-पर लोकपालोंके मुखसे भी यही शब्द निकला सो मानो उसके शब्द की प्रतिध्वनि ही निकली थी ॥५॥ तदनन्तर रावणने हँसकर लोकपालोंसे कहा कि एक शर्त है उस शर्तसे ही मैं इन्द्रको छोड़ सकता हूँ ॥६॥ वह शर्त यह है कि आजसे लेकर तुम सब, मेरे नगरके भीतर और बाहर बुहारी देना आदि जो भी कार्य हैं उन्हें करो ॥७॥ अब आप सबको प्रतिदिन ही यह नगरी धूलि, अशुचिपदार्थ, पत्थर, तृण तथा कण्टक आदिसे रहित करनी होगी ॥८॥ तथा इन्द्र भी घड़ा लेकर सुगन्धित जलसे पृथिवी सींचें। लोकमें इसका यही कार्य प्रसिद्ध है ॥९॥ और सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित इनकी सम्भ्रान्त देवियाँ पंचवर्णके सुगन्धित फूलोंसे नगरी को सजावें ॥१०॥ यदि आप लोग आदरके साथ इस शर्तसे युक्त होकर रहना चाहते हैं तो इन्द्रको अभी छोड़ देता हूँ। अन्यथा इसका छूटना कैसे हो सकता है ? ॥११॥ इतना कह रावण लज्जासे झुके हुए लोकपालोंकी ओर देखता तथा आप्तजनोंके हाथको अपने हाथमें ताड़ित करता हुआ बार-बार हँसने लगा ॥१२॥

तदनन्तर उसने विनयावनत होकर सहस्रारसे कहा। उस समय रावण सभाके हृदयको हरनेवाली अपनी मधुर वाणीसे मानो अमृत ही झरा रहा था ॥१३॥ उसने कहा कि हे तात ! जिस प्रकार आप इन्द्रके पूज्य हैं उसी प्रकार मेरे भी पूज्य हैं, बल्कि उससे भी अधिक। इसलिए

---

१. पुरस्कृत्य ब. । २. बहोः ख. । ३. कृत्वा म. । ४. महं न ते म. ।

गुरवः परमार्थेन यदि न स्युर्भवादृशाः । अभविष्यत्ततो धरित्रीयं व्रजेन्मुक्ता धरैरिव ॥१५॥
पुण्यवानस्मि यत्पूज्यो ददाति मम शासनम् । भवद्विधनियोगानां न पदं [1]पुण्यवर्जिताः ॥१६॥
तदारभ्य समालोच्य मनोज्ञं क्रियतां तथा । यथा शक्रस्य सौस्थित्यं जायते मम च प्रभो ॥१७॥
अयं शक्रो मम भ्राता तुरीयः सांप्रतं बली । एनं प्राप्य करिष्यामि पृथिवीं गीतकण्टकाम् ॥१८॥
लोकपालास्तथैवास्य तच्च राज्यं यथा पुरा । ततोऽधिकं वा गृह्णातु विवेकेन किमावयोः ॥१९॥
आज्ञा च मम शक्रे वा दातव्या कृत्यवस्तुनि । गुरुभिः सा हि शेषेव [3]रक्षालंकारकारणम् ॥२०॥
आस्यतामिह वा छन्दादथवा रथनूपुरे । यत्र वेच्छत का भूमिर्भृत्ययोरावयोर्मता [4] ॥२१॥
इति प्रियवचोवारिसमार्द्रीकृतमानसः । अवोचत सहस्रारस्ततोऽपि [5]मधुरं वचः ॥२२॥
नूनं भद्र समुत्पत्तिः सज्जनानां भवादृशाम् । सममेव गुणैः सर्वलोकाह्लादनकारिभिः ॥२३॥
आयुष्मन्नस्य शौर्यस्य विनयोऽयं तवोत्तमः । अलंकारसमस्तेऽस्मिन् भुवने श्लाघ्यतां गतः ॥२४॥
भवतो दर्शनेनेदं जन्म मे सार्थकं कृतम् । पितरौ पुण्यवन्तौ तौ त्वया यौ कारणीकृतौ ॥२५॥
क्षमावता समर्थेन कुन्दनिर्मलकीर्तिना । दोषाणां संभवाशङ्का त्वया दूरमपाकृता ॥२६॥
एवमेतत्तथा यक्षिं सर्वं संपद्यते [8] त्वयि । ककुप्करिकराकारौ कुरुतः [10] किं न ते भुजौ ॥२७॥
किंतु मातेव नो शक्या त्यक्तुं जन्मवसुंधरा । सा हि क्षणाद्वियोगेन कुरुते चित्तमाकुलम् ॥२८॥

मैं आपकी आज्ञाका उल्लंघन कैसे कर सकता हूँ ? ॥१४॥ यदि यथार्थमें आप-जैसे गुरुजन न होते तो यह पृथिवी पर्वतोंसे छोड़ी गयी के समान रसातलको चली जाती ॥१५॥ चूँकि आप-जैसे पूज्यपुरुष मुझे आज्ञा दे रहे हैं अतः मैं पुण्यवान् हूँ। यथार्थमें आप-जैसे पुरुषोंकी आज्ञाके पात्र पुण्यहीन मनुष्य नहीं हो सकते ॥१६॥ इसलिए हे प्रभो ! आज आप विचारकर ऐसा उत्तम कार्य कीजिए जिससे इन्द्र और मुझमें सौहार्द उत्पन्न हो जाये। इन्द्र सुखसे रहे और मैं भी सुखसे रह सकूँ ॥१७॥ यह बलवान् इन्द्र मेरा चौथा भाई है, इसे पाकर मैं पृथ्वीको निष्कण्टक कर दूँगा ॥१८॥ इसके लोकपाल पहलेकी तरह ही रहें तथा इसका राज्य भी पहलेकी तरह ही रहे अथवा उससे भी अधिक ले ले ! हम दोनोंमें भेदकी आवश्यकता ही क्या है ? ॥१९॥ आप जिस प्रकार इन्द्रको आज्ञा देते हैं उसी प्रकार मुझमें करने योग्य कार्यकी आज्ञा देते रहें क्योंकि गुरुजनोंकी आज्ञा ही शेषाक्षतकी तरह रक्षा एवं शोभाको करनेवाली है ॥२०॥ आप अपने अभिप्रायके अनुसार यहाँ रहें अथवा रथनूपुर नगरमें रहें अथवा जहाँ इच्छा हो वहाँ रहें। हम दोनों आपके सेवक हैं हमारी भूमि ही कौन है ? ॥२१॥ इस प्रकारके प्रियवचनरूपी जलसे जिसका मन भीग रहा था ऐसा सहस्रार रावणसे भी अधिक मधुर वचन बोला ॥२२॥

उसने कहा कि हे भद्र ! आप-जैसे सज्जनोंकी उत्पत्ति समस्त लोगोंको आनन्दित करनेवाले गुणोंके साथ ही होती है ॥२३॥ हे आयुष्मन् ! तुम्हारी यह उत्तम विनय इस संसारमें प्रशंसाको प्राप्त है तथा तुम्हारी इस शूरवीरताके आभूषणके समान है ॥२४॥ आपके दर्शनने मेरे इस जन्मको सार्थक कर दिया। वे माता-पिता धन्य हैं जिन्हें तूने अपनी उत्पत्तिमें कारण बनाया है ॥२५॥ जो समर्थ होकर भी क्षमावान् है, तथा जिसकी कीर्ति कुन्दके फूलके समान निर्मल है ऐसे तूने दोषोंके उत्पन्न होनेकी आशंका दूर हटा दी है ॥२६॥ तू जैसा कह रहा है वह ऐसा ही है। तुझमें सर्व कार्य सम्भव हैं। दिग्गजोंकी सूँड़के समान स्थूल तेरी भुजाएँ क्या नहीं कर सकती हैं ॥२७॥ किन्तु जिस प्रकार माता नहीं छोड़ी जा सकती उसी प्रकार जन्मभूमि भी नहीं छोड़ी जा सकती

---

१. पुण्यवर्जितः म. । २. भृत्यवस्तुनि म. । ३. रक्ष्यालंकार-म. । ४. सच्छन्दा म. । ५. मते क., ब. । ६. तातोऽपि माधुरं वचः म. । ७. सुजनानां ख. । ८. कथमसि । ९. संपाद्यते म. । १०. किंतु म. ।

अशक्ताः स्वभुवं त्यक्तुं तत्र नो मित्रबान्धवाः । चातका इव सोत्कण्ठास्तिष्ठन्त्यब्दावलोकिनः ॥२९॥
कुलक्रमसमायातां सेवमानो [1]गुणालय । लङ्कां यासि परां प्रीतिं [2]जन्मभूमेः किमुच्यताम् ॥३०॥
तस्मात्तामेव गच्छामो [3]महाभोगोद्भवावनिम् । देवानांप्रिय निर्विघ्नं रक्षताद्भुवनं चिरम् ॥३१॥
इत्युक्त्वानुगतो दूरं कैलासक्षोभकारिणा । सहस्रारो गतः सेन्द्रो लोकपालैः समं गिरिम् ॥३२॥
यथास्वं च स्थिताः सर्वे पूर्वस्थल्लोकपालिनः । भङ्गादसारसां प्राप्ताश्चलयन्त्रमया इव ॥३३॥
विजयार्धजलोकेन दृश्यमाना महाऋषाः । नाज्ञासिषुः क्व गच्छाम इति भोगद्विषः सुराः ॥३४॥
इन्द्रोऽपि न पुरे प्रीतिं लेभे नोद्यानभूमिषु । न दीर्घिकासु राजीवरजःपिञ्जरवारिषु ॥३५॥
न दृष्टिमपि कान्तासु चक्रे प्रगुणवर्तिनीम् । तनौ तु सकला कैव त्रपानिर्भरचेतसः ॥३६॥
[4]अथाप्युद्विजमानस्य तस्य लोकोऽनुवर्तनम् । चकाराम्यकथासङ्गैः कुर्वन् भङ्गस्य विस्मृतिम् ॥३७॥
अथैकस्तम्भमूर्ध्वस्थे स्वसद्मान्तरवर्तिने । गन्धमादनशृङ्गाभे स्थितो जिनगृहे ॥३८॥
बुधैः परिवृतो ध्यायन्निति शक्रो निरादरम् । [5]वहञ्जङ्गं गतच्छायं स्मरन् भङ्गमनारतम् ॥३९॥
धिग्विद्यागोचरैश्वर्यं विलीनं यदिति क्षणात् । शारदानामिवाब्दानां वृन्दमत्यन्तमुन्नतम् ॥४०॥
तानि शस्त्राणि ते नागास्ते भटास्ते तुरङ्गमाः । सर्वं तृणसमं जातं मम पूर्वं कृताद्भुतम् ॥४१॥

क्योंकि वह क्षण-भरके वियोगसे चित्तको आकुल करने लगती है ॥२८॥ हम अपनी भूमिको छोड़नेके लिए असमर्थ हैं क्योंकि वहाँ हमारे मित्र तथा भाई-बान्धव चातककी तरह उत्कण्ठासे युक्त हो मार्ग देखते हुए स्थित होंगे ॥२९॥ हे गुणालय ! आप भी तो अपनी कुल-परम्परासे चली आयी लंकाकी सेवा करते हुए परम प्रीतिको प्राप्त हो रहे हैं सो बात ही ऐसी है जन्मभूमिके विषयमें क्या कहा जाये ? ॥३०॥ इसलिए हम जहाँ महाभोगोंकी उत्पत्ति होती है अपनी उसी भूमिको जाते हैं। हे देवोंके प्रिय ! तुम चिरकाल तक संसारकी रक्षा करो ॥३१॥

इतना कहकर सहस्रार इन्द्र नामा पुत्र तथा लोकपालोंके साथ विजयार्ध पर्वतपर चला गया। रावण भेजनेके लिए कुछ दूर तक उसके साथ गया ॥३२॥ सब लोकपाल पहलेकी तरह ही अपने-अपने स्थानोंपर रहने लगे परन्तु पराजयके कारण निःसार हो गये और चलते-फिरते यन्त्रके समान जान पड़ने लगे ॥३३॥ बहुत भारी लज्जासे भरे देव लोगोंकी ओर जब विजयार्धवासी लोग देखते थे तब वे यह नहीं जान पाते थे कि हम कहाँ जा रहे हैं ? इस तरह देव लोग सदा भोगोंसे उदास रहते थे ॥३४॥ इन्द्र भी न नगरमें, न बाग-बगीचोंमें और न कमलोंको परागसे पीले जलवाली वापिकाओंमें ही प्रीतिको प्राप्त होता था अर्थात् पराजयके कारण उसे कहीं अच्छा नहीं लगता था ॥३५॥ अब वह स्त्रियोंपर भी अपनी सरल दृष्टि नहीं डालता था फिर शरीरकी तो गिनती ही क्या थी ? उसका चित्त सदा लज्जासे भरा रहता था ॥३६॥ यद्यपि लोग अन्यान्य कथाओंके प्रसंग छेड़कर उसके पराजय सम्बन्धी दुःखको भुला देनेके लिए सदा अनुकूल चेष्टा करते थे तो भी उसका चित्त स्वस्थ नहीं होता था ॥३७॥

अथानन्तर एक दिन इन्द्र, अपने महलकी भीतर विद्यमान, एक खम्भेके अग्रभागपर स्थित, गन्धमादन पर्वतके शिखरके समान सुशोभित जिनालयमें बैठा था ॥३८॥ विद्वान् लोग उसे घेरकर बैठे थे। वह निरन्तर पराजयका स्मरण करता हुआ शरीरको निरादर भावसे धारण कर रहा था। बैठे-बैठे ही उसने इस प्रकार विचार किया कि ॥३९॥ विद्याओंसे सम्बन्ध रखनेवाले इस ऐश्वर्यको धिक्कार है जो कि शरद् ऋतुके बादलोंके अत्यन्त उन्नत समूहके समान क्षण-भरमें विलीन हो गया ॥४०॥ वे शस्त्र, वे हाथी, वे योद्धा और वे घोड़े जो कि पहले मुझे आश्चर्य

---

१. गुणालयां ख.। गुणालयः म.। २. जन्मभूमिः म.। ३. महाभागो भवावनिम् म.। ४. अथाप्युद्विग्नमनसस्तस्य ख.। ५. वदङ्गं म.।

अथवा कर्मणामेतद्वैचित्र्यं कोऽन्यथा नरः । कर्तुं शक्नोति तेषां हि सर्वमन्यद्[1]बलाधरम् ॥४२॥
नूनं पुराकृतं कर्म भोगसंपादनक्षमम् । परिक्षयं मम प्राप्तं येनैषा वर्तते दशा ॥४३॥
वरं समर एवास्मिन्मृतः स्याच्छत्रुसंकटे । नाकीर्तिर्यत्र जायेत सर्वविष्टपगामिनी ॥४४॥
चरणं शिरसि न्यस्य शत्रूणां येन जीवितम् । शत्रुणानुमतां सोऽहं सेवे लक्ष्मीं कथं हरिः ॥४५॥
परित्यज्य सुखे तस्मादभिलाषं [2]भवोद्भवे । निश्रेयस[3]पदप्राप्तिकारणानि भजाम्यहम् ॥४६॥
रावणो मे महाबन्धुरागतः शत्रुवेषभृत् । येनासारसुखास्वादसक्तोऽस्मि परिबोधितः ॥४७॥
अत्रान्तरे मुनिः प्राज्ञो नाम्ना निर्वाणसंगमः । विहरन् क्वापि योग्यानि स्थानानि गुणवाससाम् ॥४८॥
सहसा व्रजतस्तस्य गतिः [4]स्तम्ममुपागता । प्रणिधाय ततश्चक्षुरधोऽसौ चैत्यमैक्षत ॥४९॥
प्रत्यक्षज्ञानसंपन्नस्तस्मिंश्च जिनपुङ्गवम् । वन्दितुं नभसः शीघ्रमवतीर्णो महायतिः ॥५०॥
संतोषेण च शक्रेण कृताभ्युत्थानपूजनः । चक्रे जिननमस्कारं विधिना यतिसत्तमः ॥५१॥
आसीनस्य ततो जोषं वन्दित्वा चरणौ मुनेः । पुरः स्थित्वा हरिश्चक्रे चिरमात्मनिगर्हणम् ॥५२॥
सर्वसंसारवृत्तान्तवेदनाप्यन्तकोविदैः । मुनिना परमैर्वाक्यैः [5]परिसाम्त्वनमाहृतः ॥५३॥
अपृच्छत् स मुनिं पूर्वमात्मनो मुनिपुङ्गवम् । स चैत्यकथयत्तस्मै गुणग्रामविभूषितः ॥५४॥
चतुर्गतिगतानेकयोनिदुःखमहावने । भ्राम्यन् शिखापदाभिख्ये नगरे मानुषीं गतिम् ॥५५॥
प्राप्तो जीवः कुले जातो [6]दरिद्रे स्त्रैणसंगतः । [7]कुलवान्तेति विख्याता नामार्येण समागतम् ॥५६॥

उत्पन्न करते थे आज सबके सब तृणके समान तुच्छ जान पड़ते हैं ॥४१॥ अथवा कर्मोंकी इस विचित्रताको अन्यथा करनेके लिए कौन मनुष्य समर्थ है ? यथार्थमें अन्य सब पदार्थ कर्मोंके बलसे ही बल धारण करते हैं ॥४२॥ निश्चय ही मेरा पूर्वसंचित पुण्यकर्म जो कि नाना भोगोंकी प्राप्ति करानेमें समर्थ है परिक्षीण हो चुका है इसीलिए तो यह अवस्था हो रही है ॥४३॥ शत्रुके संकटसे भरे युद्धमें यदि मर ही जाता तो अच्छा होता क्योंकि उससे समस्त लोकमें फैलनेवाली अपकीर्ति तो उत्पन्न नहीं होती ॥४४॥ जिसने शत्रुओंके सिरपर पैर रखकर जीवन बिताया वह मैं अब शत्रु द्वारा अनुमत लक्ष्मीका कैसे उपभोग करूँ ? ॥४५॥ इसलिए अब मैं संसार सम्बन्धी सुखकी अभिलाषा छोड़ मोक्षपदकी प्राप्तिके जो कारण हैं उन्हींकी उपासना करता हूँ ॥४६॥ शत्रुके वेशको धारण करनेवाला रावण मेरा महाबन्धु बनकर आया था जिसने कि इस असार सुखके स्वादमें लीन मुझको जागृत कर दिया ॥४७॥

इसी बीचमें गुणी मनुष्योंके योग्य स्थानोंमें विहार करते हुए निर्वाणसंगम नामा चारण-ऋद्धिधारी मुनि वहाँ आकाशमार्गसे जा रहे थे ॥४८॥ सो चलते-चलते उनकी गति सहसा रुक गयी। तदनन्तर उन्होंने जब नीचे दृष्टि डाली तो मन्दिरके दर्शन हुए ॥४९॥ प्रत्यक्ष ज्ञानके धारी महामुनि मन्दिरमें विराजमान जिन-प्रतिमा को वन्दना करनेके लिए शीघ्र ही आकाशसे नीचे उतरे ॥५०॥ राजा इन्द्रने बड़े सन्तोषसे उठकर जिनकी पूजा की थी ऐसे उन मुनिराजने विधि-पूर्वक जिनप्रतिमाको नमस्कार किया ॥५१॥ तदनन्तर जब मुनिराज जिनेन्द्रदेवकी वन्दना कर चुप बैठ गये तब इन्द्र उनके चरणोंको नमस्कार कर सामने बैठ गया और अपनी निन्दा करने लगा ॥५२॥ मुनिराजने समस्त संसारके वृत्तान्तका अनुभव करानेमें अतिशय निपुण उत्कृष्ट वचनोंसे उसे सन्तोष प्राप्त कराया ॥५३॥

अथानन्तर इन्द्रने मुनिराजसे अपना पूर्वभव पूछा सो गुणोंके समूहसे विभूषित मुनिराज उसके लिए इस प्रकार पूर्वभव कहने लगे ॥५४॥ हे राजन् ! चतुर्गति सम्बन्धी अनेक योनियोंके

---

१. सर्वमन्यद्बलाद्धरम् क. । २. भवेद्भुवि म. । ३. निश्रेयसः म. । ४. गतिस्तम्भ- म. । ५. परिशान्तत्व ख. । ६. जीवं म. । ७. दरिद्रस्त्रैण म. । ८. कुलं कान्तेति म. ।

सा [1]चिल्ला चिपिटा व्याधिशतसंकुलविग्रहा । कथंचित्कर्मसंयोगाल्लोकोच्छिष्टेन जीविता ॥५७॥
दुष्टेक्षा दुर्भगा रूक्षा स्फुटिताङ्गा कुमूर्धजा । उत्त्रास्यमाना लोकेन लेभे सा शर्म न क्वचित् ॥५८॥
मुहूर्तं परिलब्धान्नं शरीरं च सुमानसा । जाता किंपुरुषस्य स्त्री क्षीरधारेति नामतः ॥५९॥
च्युता च रत्ननगरे धरणीगोमुखाख्ययोः । विभ्रत्सहस्रभागाख्यां तनयोऽभूत्कुटुम्बिनोः ॥६०॥
लब्ध्वा परमसम्यक्त्वमणुव्रतसमन्वितः । पञ्चतां प्राप्य शुक्राख्ये जातो विबुधसत्तमः ॥६१॥
च्युतो महाविदेहेऽथ नगरे रत्नसंचये । गुणावल्यां मणेर्जातोऽमात्यात् सामन्तवर्द्धनः ॥६२॥
निष्क्रान्तो विभुना सार्धं महाव्रतधरोऽभवत् । अतितीव्रतया तप्त्वा तत्त्वार्थगतमानसः ॥६३॥
परीषहगणस्यालं सोढा निर्मलदर्शनः । कषायरहितः प्रेत्य परं ग्रैवेयकं गतः ॥६४॥
अहमिन्द्रैः परं सौख्यं तत्र भुक्त्वा चिरं च्युतः । जातो हृदयसुन्दर्यां सहस्राराख्यखेचरात् ॥६५॥
पूर्वाभ्यासेन शक्रस्य सुखे संसक्तमानसः । इन्द्रस्त्वं खेचराधीशो नगरे रथनूपुरे ॥६६॥
स त्वमिन्द्र विषण्णः किं वृथैव परितप्यसे । विद्याधिको जितोऽस्मीति वहन्नात्मन्यनादरम् ॥६७॥
[4]निर्बुद्धे ! कोद्रवानुप्त्वा शालीन् प्रार्थयसे वृथा । कर्मणानुविधं तेषां जायते प्राणिनां फलम् ॥६८॥
क्षीणं पुराहृतं कर्म तव भोगस्य साधनम् । हेतुना न विना कार्यं भवतीति किमद्भुतम् ॥६९॥

दुःखरूपी महावनमें भ्रमण करता हुआ एक जीव शिखापदनामा नगरमें मनुष्य गतिको प्राप्त हो दरिद्र कुलमें उत्पन्न हुआ। वहाँ स्त्री पर्यायसे युक्त हो वह जीव 'कुलवान्ता' इस सार्थक नामको धारण करनेवाला हुआ ॥५५-५६॥ कुलवान्ताके नेत्र सदा कीचरसे युक्त रहते थे, उसकी नाक चपटी थी और उसका शरीर सैकड़ों बीमारियोंसे युक्त था। इतना होनेपर भी उसके भोजनका ठिकाना नहीं था। वह कर्मोदयके कारण जिस किसी तरह लोगोंका जूठन खाकर जीवित रहती थी ॥५७॥ उसके वस्त्र अत्यन्त मलिन थे, दौर्भाग्य उसका पीछा कर रहा था, सारा शरीर अत्यन्त रूक्ष था, हाथ-पैर आदि अंग फटे हुए थे और खोटे केश बिखरे हुए थे। वह जहाँ जाती थी वहीं लोग उसे तंग करते थे। इस तरह वह कहीं भी सुख नहीं प्राप्त कर सकती थी ॥५८॥ अन्त समय शुभमति हो उसने एक मुहूर्तके लिए अन्नका त्याग कर अनशन धारण किया जिससे शरीर त्याग कर किंपुरुषनामा देवकी क्षीरधारा नामकी स्त्री हुई ॥५९॥ वहाँसे च्युत होकर रत्नपुर नगरमें धरणी और गोमुख नामा दम्पतीके सहस्रभाग नामक पुत्र हुआ ॥६०॥ वहाँ उत्कृष्ट सम्यग्दर्शन प्राप्त कर अणुव्रतोंका धारी हुआ और अन्तमें मरकर शुक्र नामा स्वर्गमें उत्तम देव हुआ ॥६१॥ वहाँसे च्युत होकर महाविदेह क्षेत्रके रत्नसंचयनामा नगरमें मणिनामक मन्त्रीकी गुणावली नामक स्त्रीसे सामन्तवर्धन नामक पुत्र हुआ ॥६२॥ सामन्तवर्धन अपने राजाके साथ विरक्त हो महाव्रतका धारक हुआ। वहाँ उसने अत्यन्त कठिन तपश्चरण किया, तत्त्वार्थके चिन्तनमें निरन्तर मन लगाया, अच्छी तरह परीषह सहन किये, निर्मल सम्यग्दर्शन प्राप्त किया और कषायोंपर विजय प्राप्त की। अन्त समय मरकर वह ग्रैवेयक गया सो अहमिन्द्र होकर चिरकाल तक वहाँके सुख भोगता रहा। अन्त समयमें वहाँसे च्युत हो रथनूपुर नगरमें सहस्रार नामक विद्याधरकी हृदयसुन्दरी रानीसे इन्द्र नामको धारण करनेवाला तू विद्याधरोंका राजा हुआ है। पूर्व अभ्यासके कारण ही तेरा मन इन्द्रके सुखमें लीन रहा है ॥६३-६६॥ सो हे इन्द्र ! मैं विद्याओंसे युक्त होता हुआ भी शत्रुसे हार गया हूँ, इस प्रकार अपने आपके विषयमें अनादरको धारण करता हुआ तू विषादयुक्त हो व्यर्थ ही क्यों सन्ताप कर रहा है ॥६७॥ अरे निर्बुद्धि ! तू कोदों बोकर धानकी व्यर्थ ही इच्छा करता है। प्राणियोंको सदा कर्मोंके अनुकूल ही फल प्राप्त होता है ॥६८॥ तुम्हारे भोगोपभोगका साधन

१. चिल्ले चक्षुषी यस्याः सा चिल्ला 'चिल्लस्य चिल् पिल् लश्चास्य चक्षुषी' इति वार्तिकम्। २. नता नासिका यस्याः सा चिपिटा 'इनच् पिटच्चिक चि च' इति सूत्रम्। ३. अहमिन्द्र परं म.। ४. निर्बुद्धि -म.।

निमित्तमात्रमेतस्मिन् रावणस्ते पराभवे । जन्मन्यत्रैव यत्कर्म कृतं तेनैव लम्भितम् ॥७०॥
किं न स्मरसि यत्पूर्वं क्रीडता दुर्नयं कृतम् । ऐश्वर्यजनितो नष्टो मदस्ते स्मर साम्प्रतम् ॥७१॥
चिरभूततया बुद्धौ वृत्तान्तस्ते [1]स्वयं कृतः । नारोहति यतस्तस्माच्छृण्वेकाग्रचेतसा ॥७२॥
अरिंजयपुरे वह्निवेगाख्यः खेचरोऽभवत् । स्वयंवरार्थमाहूस्यां चक्रे वेगवतीसुताम् ॥७३॥
तत्र विद्याधराः सर्वे यथाविभवशोभिताः । समागताः परित्यज्य [3]श्रेण्यावत्यन्तमुत्सुकाः ॥७४॥
भवानपि गतस्तत्र युक्तः परमसंपदा । अन्यश्चानन्दमालाख्यश्चन्द्रावर्तपुराधिपः ॥७५॥
संत्यज्य खेचरान् सर्वान् पूर्वकर्मानुभावतः । कन्ययानन्दमालोऽसौ वृतः सर्वाङ्गकान्तया ॥७६॥
परिणीय स तां भोगान् प्राप चिन्तितसंगतान् । यथामरपतिः स्वर्गे प्रतिदासरवर्द्धितः ॥७७॥
ततः प्रभृति कोपेन [5]स्वमीर्ष्याजेन भूरिणा । गृहीतो वैरितामस्य संप्राप्तोऽतिगरीयसीम् ॥७८॥
ततोऽस्य सहसा बुद्धिरियं जाता स्वकर्मतः । देहोऽयमध्रुवः किंचित्कृत्यमेतेन नो मम ॥७९॥
तपः करोमि संसारदुःखं येन विनश्यति । का वा भोगेषु प्रत्याशा विप्रलम्भनकारिषु ॥८०॥
अवधार्येदमत्यन्तं विबुद्धेनान्तरात्मना । त्यक्त्वा परिग्रहं सर्वं चचार परमं तपः ॥८१॥
हंसावलीनदीतीरे स्थितः प्रतिमयान्यदा । स त्वया प्रत्यभिज्ञातो रथावर्तमहीधरे ॥८२॥
दर्शनेन्धनसंवृद्धपूर्वकोपाग्निना ततः । त्वयासौ [6]कुर्वता नर्म गर्वेण हसितो मुहुः ॥८३॥

जो पूर्वोपार्जित कर्म था वह अब क्षीण हो गया है सो कारणके बिना कार्य नहीं होता है इसमें आश्चर्य ही क्या है ? ॥६९॥ तेरे इस पराभवमें रावण तो निमित्तमात्र है। तूने इसी जन्ममें कर्म किये हैं उन्हींसे यह पराभव प्राप्त हुआ है ॥७०॥ तूने पहले क्रीड़ा करते समय जो अन्याय किया है उसका स्मरण क्यों नहीं करता है ? ऐश्वर्यसे उत्पन्न हुआ तेरा मद चूँकि अब नष्ट हो चुका है इसलिए अब तो पिछली बातका स्मरण कर ॥७१॥ जान पड़ता है कि बहुत समय हो जानेके कारण वह वृत्तान्त स्वयं तेरी बुद्धिमें नहीं आ रहा है इसलिए एकाग्रचित्त होकर सुन, मैं कहता हूँ ॥७२॥

अरिंजयपुर नगरमें वह्निवेग नामा विद्याधर राजा था सो उसने वेगवती रानीसे उत्पन्न अहल्या नामक पुत्रीका स्वयंवर रचा था ॥७३॥ उत्सुकतासे भरे तथा यथायोग्य वैभवसे शोभित समस्त विद्याधर दक्षिण श्रेणी छोड़-छोड़कर उस स्वयंवरमें आये थे ॥७४॥ उत्कृष्ट सम्पदासे युक्त होकर आप भी वहाँ गये थे तथा चन्द्रावर्त नगरका राजा आनन्दमाल भी वहाँ आया था ॥७५॥ सर्वांगसुन्दरी कन्याने पूर्व कर्मके प्रभावसे समस्त विद्याधरोंको छोड़कर आनन्दमालको वरा ॥७६॥ सो आनन्दमाल उसे विवाहकर इच्छा करते ही प्राप्त होनेवाले भोगोंका उस तरह उपभोग करने लगा जिस तरह कि इन्द्र स्वर्गमें प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त होनेवाले भोगोंका उपभोग करता है ॥७७॥ ईर्ष्याजन्य बहुत भारी क्रोधके कारण तू उसी समयसे उसके साथ अत्यधिक शत्रुता करने लगा ॥७८॥ तदनन्तर कर्मोंकी अनुकूलताके कारण आनन्दमालको सहसा यह बुद्धि उत्पन्न हुई कि यह शरीर अनित्य है अतः इससे मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥७९॥ मैं तो तप करता हूँ जिससे संसार सम्बन्धी दुःखका नाश होगा। धोखा देनेवाले भोगोंमें क्या आशा रखना है ? ॥८०॥ प्रबोधको प्राप्त हुई अन्तरात्मासे ऐसा विचारकर उसने सर्व परिग्रहका त्यागकर उत्कृष्ट तप धारण कर लिया ॥८१॥

एक दिन हंसावली नदीके किनारे रथावर्त नामा पर्वतपर वह प्रतिमा योगसे विराजमान था सो तूने पहचान लिया ॥८२॥ दर्शनरूपी ईन्धनसे जिसकी पिछली क्रोधाग्नि भड़क उठी

---

१. स्वया म. । २. साहल्यां ख. । ३. श्रेण्यामत्यन्त म. । ४. संगता म. । ५. स्वमीर्ष्यां येन ख., म., ब. । ६. कुर्वतां म. ।

आहल्यारमणः स त्वं कामभोगातिवत्सलः । अधुना किं स्थितोऽस्येवमिति भाषणकारिणा ॥८४॥
वेष्टितो रज्जुभिः श्लोणीधरनिष्कम्पविग्रहः । तत्त्वार्थचिन्तनासंगनिताप्तस्थिरमानसः ॥८५॥
दृष्ट्वाभिभूयमानं तं त्वयास्य निकटस्थितः । कल्याणसंज्ञको भ्राता साधुः क्रोधेन दुःखितः ॥८६॥
संहृत्य प्रतिमायोगमृद्धिप्राप्तः स ते ददौ । शापमेवमलं दीर्घं निश्वस्योष्णं च दुःखितः ॥८७॥
अयं निरपराधः संस्त्वया यन्मुनिपुङ्गवः । तिरस्कृतस्तदस्यन्तं तिरस्कारमवाप्स्यसि ॥८८॥
निश्वासेनामितेनासीद्दग्धुमेव निरूपितः । सर्वश्रीसंज्ञया किंतु शमितस्तत्र कान्तया ॥८९॥
सम्यग्दृष्टिरलं सा हि साधुपूजनकारिणी । मुनयोऽपि [1]वचस्तस्याः कुर्वते साधुचेतसः ॥९०॥
यदि नाम तया साध्व्या नासौ नीतः शमं भवेत् । ततस्तस्य स कोपाग्निः केन शक्येत वारितुम् ॥९१॥
लोकत्रयेऽपि तत्नास्ति तपसा यन्न साध्यते । बलानां हि समस्तानां स्थितं मूर्ध्नि तपोबलम् ॥९२॥
न सा त्रिदशनाथस्य शक्तिः कान्तिर्द्युतिर्धृतिः । तपोधनस्य या साधोर्यथाभिमतकारिणः ॥९३॥
विधाय साधुलोकस्य तिरस्कारं जना महत् । दुःखमत्र प्रपद्यन्ते तिर्यक्षु नरकेषु च ॥९४॥
मनसापि हि साधूनां पराभूतिं करोति यः । तस्य सा परमं दुःखं परत्रेह च यच्छति ॥९५॥
यस्त्वाक्रोशति निर्ग्रन्थं हन्ति वा क्रूरमानसः । तत्र किं शक्यते वक्तुं जन्तौ दुष्कृतकर्मणि ॥९६॥
कायेन मनसा वाचा यानि कर्माणि मानवाः । कुर्वते तानि यच्छन्ति निकचानि फलं ध्रुवम् ॥९७॥
कर्मणामिति विज्ञाय पुण्यापुण्यात्मिकां गतिम् । दृढां कृत्वा मतिं धर्मे त्वमुत्तारय दुःखतः ॥९८॥

थी ऐसे तूने क्रीड़ा करते हुए अहंकारवश उसकी बार-बार हँसी की थी ॥८३॥ तू कह रहा था कि अरे ! तू तो कामभोगका अतिशय प्रेमी आहल्याका पति है, इस समय यहाँ इस तरह क्यों बैठा है ? ॥८४॥ ऐसा कहकर तूने उन्हें रस्सियोंसे कसकर लपेट लिया फिर भी उनका शरीर पर्वतके समान निष्कम्प बना रहा और उनका मन तत्त्वार्थकी चिन्तनामें लीन होनेसे स्थिर रहा आया ॥८५॥ इस प्रकार आनन्दमग्न मुनि तो निर्विकार रहे पर उन्हींके समीप कल्याण नामक दूसरे मुनि बैठे थे जो कि उनके भाई थे तेरे द्वारा उन्हें अनादृत होता देख क्रोधसे दुःखी हो गये ॥८६॥ वे मुनि ऋद्धिधारी थे तथा प्रतिमायोगसे विराजमान थे सो तेरे कुकृत्यसे दुःखी होकर उन्होंने प्रतिमायोगका संकोचकर तथा लम्बी और गरम श्वास भरकर तेरे लिए इस प्रकार शाप दी ॥८७॥ कि चूँकि तूने इन निरपराध मुनिराजका तिरस्कार किया है इसलिए तू भी बहुत भारी तिरस्कारको प्राप्त होगा ॥८८॥ वे मुनि अपनी अपरिमित श्वाससे तुझे भस्म ही कर देना चाहते थे पर तेरी सर्वश्रीनामक स्त्रीने उन्हें शान्त कर लिया ॥८९॥ वह सर्वश्री सम्यग्दर्शनसे युक्त तथा मुनिजनोंकी पूजा करनेवाली थी इसलिए उत्तम हृदयके धारक मुनि भी उसकी बात मानते थे ॥९०॥ यदि वह साध्वी उन मुनिराजको शान्त नहीं करती तो उनकी क्रोधाग्निको कौन रोक सकता था ? ॥९१॥ तीनों लोकोंमें वह कार्य नहीं है जो तपसे सिद्ध नहीं होता हो। यथार्थमें तपका बल सब बलोंके शिरपर स्थित है अर्थात् सबसे श्रेष्ठ है ॥९२॥ इच्छानुकूल कार्य करनेवाले तपस्वी साधुकी जैसी शक्ति, कान्ति, द्युति, अथवा धृति होती है वैसी इन्द्रको भी सम्भव नहीं है ॥९३॥ जो मनुष्य साधुजनोंका तिरस्कार करते हैं वे तिर्यंच गति और नरक गतिमें महान् दुःख पाते हैं ॥९४॥ जो मनुष्य मनसे भी साधुजनोंका पराभव करता है वह पराभव उसे परलोक तथा इस लोकमें परम दुःख देता है ॥९५॥ जो दुष्ट चित्तका धारी मनुष्य निर्ग्रन्थ मुनिको गाली देता है अथवा मारता है उस पापी मनुष्यके विषयमें क्या कहा जाय ? ॥९६॥ मनुष्य मन वचन कायसे जो कर्म करते हैं वे छूटते नहीं हैं और प्राणियोंको अवश्य ही फल देते हैं ॥९७॥ इस प्रकार कर्मोंके

---

१. वचस्तस्याः म. ।

इत्युक्ते पूर्वजन्मानि स्मरन् विस्मयसंगतः । शक्रः प्रणम्य निर्ग्रन्थमिदमाह महादरः ॥९९॥
भगवंस्त्वत्प्रसादेन लब्ध्वा बोधिमनुत्तमाम् । सांप्रतं दुरितं सर्वं मन्ये त्यक्तमिव क्षणात् ॥१००॥
साधोः संगमनाल्लोके न किंचिद् दुर्लभं भवेत् । बहुजन्मसु न प्राप्ता बोधिर्येनाधिगम्यते ॥१०१॥
इत्युक्त्वा वन्दितस्तेन मुनिर्यातो यथेप्सितम् । शक्रोऽपि परमं प्राप्तो निर्वेदं गृहवासतः ॥१०२॥
पुण्यकर्मोदयाज्ज्ञात्वा रावणं परमोदयम् । स्तुत्वा च वीर्यदंष्ट्राय महाभूभृत्तटस्थितौ ॥१०३॥
जलबुद्बुदनिस्सारामवबुध्य मनुष्यताम् । कृत्वा सुनिश्चलां धर्मे मतिं निन्दन् दुरीहितम् ॥१०४॥
श्रियमिन्द्रः सुते न्यस्य महात्मा रथनूपुरे । ससुतो लोकपालानां समूहेन समन्वितः ॥१०५॥
दीक्षां जैनेश्वरीं प्राप सर्वकर्मविनाशिनीम् । विशुद्धमानसोऽत्यन्तं त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥१०६॥
ततस्तत्तादृशेनापि भोगेनाप्युपलालितम् । वपुस्तस्य तपोभारमुवाहेतरदुर्वहम् ॥१०७॥
प्रायेण महतां शक्तिर्यथा रौद्रकर्मणि । कर्मण्येवं विशुद्धेऽपि परमा चोपजायते ॥१०८॥
दीर्घकालं तपस्तप्त्वा विशुद्धध्यानसंगतः । कर्मणां प्रक्षयं कृत्वा निर्वाणं वासवोऽगमत् ॥१०९॥

दोधकवृत्तम्

पश्यत चित्रमिदं पुरुषाणां चेष्टितमूर्जितवीर्यसमृद्धम् ।
यच्चिरकालमुपार्जितभोगा यान्ति पुनः पदमुत्तमसौख्यम् ॥११०॥

पुण्य पापरूप फलका विचारकर अपनी बुद्धि धर्ममें धारण करो और अपने आपको दुःखोंसे बचाओ ॥९८॥ इस प्रकार मुनिराजके कहनेपर इन्द्रको अपने पूर्व जन्मोंका स्मरण हो आया। उन्हें स्मरण करता हुआ वह आश्चर्यको प्राप्त हुआ। तदनन्तर बहुत भारी आदरसे भरे इन्द्रने निर्ग्रन्थ मुनिराजको नमस्कार कर कहा कि ॥९९॥ हे भगवन् ! आपके प्रसादसे मुझे उत्कृष्ट रत्नत्रय-की प्राप्ति हुई है इसलिए मैं मानता हूँ कि अब मेरे समस्त पाप मानो क्षण भरमें ही छूट जानेवाले हैं ॥१००॥ जो बोधि अनेक जन्मोंमें भी प्राप्त नहीं हुई वह साधु समागमसे प्राप्त हो जाती है इसलिए कहना पड़ता है कि साधुसमागमसे संसारमें कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रह जाती ॥१०१॥ इतना कहकर निर्वाणसंगम मुनिराज तो उधर इन्द्रके द्वारा वन्दित हो यथेच्छ स्थानपर चले गये इधर इन्द्र भी गृहवाससे अत्यन्त निर्वेदको प्राप्त हो गया ॥१०२॥ उसने जान लिया कि रावण पुण्यकर्मके उदयसे परम अभ्युदयको प्राप्त हुआ है। उसने महापर्वतके तटपर विद्यमान वीर्यदंष्ट्रकी बार-बार स्तुति की ॥१०३॥

मनुष्य पर्यायको जलके बबूलाके समान निःसार जानकर उसने धर्ममें अपनी बुद्धि निश्चल की। अपने पाप कार्योंकी बार-बार निन्दा की ॥१०४॥ इस प्रकार महापुरुष इन्द्रने रथनूपुर नगरमें पुत्रके लिए राज्य-सम्पदा सौंपकर अन्य अनेक पुत्रों तथा लोकपालोंके समूहके साथ समस्त कर्मोंको करनेवाली जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली। उस समय उसका मन अत्यन्त विशुद्ध था तथा समस्त परिग्रहका उसने त्याग कर दिया था ॥१०५-१०६॥ यद्यपि उसका शरीर इन्द्रके समान लोकोत्तर भोगोंसे लालित हुआ था तो भी उसने अन्यजन जिसे धारण करनेमें असमर्थ थे ऐसा तपका भार धारण किया था ॥१०७॥ प्रायः करके महापुरुषोंकी रुद्र कार्योंमें जैसी अद्भुत शक्ति होती है वैसी ही शक्ति विशुद्ध कार्योंमें भी उत्पन्न हो जाती है ॥१०८॥ तदनन्तर दीर्घ काल तक तपकर शुक्ल ध्यानके प्रभावसे कर्मोंका क्षय कर इन्द्र निर्वाण धामको प्राप्त हुआ ॥१०९॥

गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि राजन् ! देखो, बड़े पुरुषोंके चरित्र अतिशय शक्तिसे सम्पन्न तथा आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले हैं। ये चिर काल तक भोगोंका उपार्जन करते हैं

स्तोकमपीह न चाद्भुतमस्ति [1]न्यस्य समस्तपरिग्रहसङ्गम् ।
यत्क्षणतो दुरितस्य विनाशं ध्यानबलाज्जनयन्ति बृहन्तः ॥१११॥
अर्जितमत्युरुकालविधानादिन्धनराशिमुदारमशेषम् ।
प्राप्य परं क्षणतो महिमानं किं न दहत्यनिलः [2]कणमात्रः ॥११२॥
इत्थमवगम्य जनाः सुविशुद्धं यत्नपराः करणं वहतान्तः ।
मृत्युदिनस्य न केचिदपेता ज्ञानरवेः कुरुत प्रतिपत्तिम् ॥११३॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्योक्ते पद्मचरिते इन्द्रनिर्वाणाभिधानं नाम त्रयोदशं पर्व ॥१३॥



और अन्तमें उत्तम सुखसे युक्त निर्वाण पदको प्राप्त हो जाते हैं ॥११०॥ इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है कि बड़े पुरुष समस्त परिग्रहका संग छोड़कर ध्यानके बलसे क्षण-भरमें पापोंका नाश कर देते हैं ॥१११॥ क्या बहुत कालसे इकट्ठी की हुई ईन्धनकी बड़ी राशिको कणमात्र अग्नि क्षणभरमें विशाल महिमाको प्राप्त हो भस्म नहीं कर देती ? ॥११२॥ ऐसा जानकर हे भव्य जनो ! यत्नमें तत्पर हो अन्तःकरणको अत्यन्त निर्मल करो । मृत्युका दिन आनेपर कोई भी पीछे नहीं हट सकते अर्थात् मृत्युका अवसर आनेपर सबको मरना पड़ता है । इसलिए सम्यग्ज्ञानरूपी सूर्यकी प्राप्ति करो ॥११३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें इन्द्रके निर्वाणका कथन करनेवाला तेरहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१३॥



१. न्यस्त-ख. । २. क्षणमात्रः म. ।

चतुर्दशं पर्व

अथ [1]नाकाधिपप्रख्यो भोगसंमूढमानसः । यथाभिमतनिर्वृत्तः पदद्वुर्ल्लंघितक्रियः ॥१॥
असौ देवाधिपप्राहो[3] यातो मन्दरमन्यदा । जिनेन्द्रवन्दनां कृत्वा प्रत्यागच्छन्निजेच्छया ॥२॥
विभक्तपर्वतान् पश्यन् [4]वास्यानां विविधांघ्रिपान् । सरितश्चातिचक्षुष्याः स्फटिकादपि निर्मलाः ॥३॥
आदित्यमण्डलाकारविमानस्य विभूषणः । संगतः परया लक्ष्म्या लङ्कासंगमनोत्सुकः ॥४॥
सहसा निनदं तुङ्गं शुश्राव पुरुषेश्वरम् । पप्रच्छ च महाक्षुब्धो मारीचमतिसत्वरः ॥५॥
अयि मारीच मारीच कुतोऽयं निनदो महान् । एताश्च ककुभः कस्मान्महारजतलोहिताः ॥६॥
ततो जगाद मारीचो देव ! देवगमो मुनेः । महाकल्याणसंप्राप्तावेष कस्यापि वर्तते ॥७॥
देवानामेष तुष्टानां नानासंपातकारिणाम् । आकुलो भुवनव्यापी प्रशस्तः श्रूयते ध्वनिः ॥८॥
एताश्च ककुभस्तेषां मुकुटादिमरीचिभिः । निचिता वृषते भासं कौसुम्भीमिव [5]भास्वराम् ॥९॥
सुवर्णपर्वतेऽमुष्मिन्ननन्तबलसंज्ञया । कथितो मुनिरूपस्थं नूनं तस्याद्य केवलम् ॥१०॥
ततस्तद् वचनं श्रुत्वा सम्यग्दर्शनभावितः । परं पुरंदरप्राहः प्रमोदं प्रतिपन्नवान् ॥११॥
अवतीर्णश्च खादेशाद्विभक्तान्महाद्युतिः । द्वितीय इव देवेन्द्रो वन्दनाय महामुनेः ॥१२॥
वन्दित्वा तुष्टुवुः साधुमिन्द्रप्राग्रहरास्ततः । आसीनाश्च यथास्थानं बद्धाञ्जलिपुटाः सुराः ॥१३॥

अथानन्तर जो इन्द्रके समान शोभाका धारक था, जिसका मन भोगोंमें मूढ़ रहता था, जिसे इच्छानुसार कार्योंकी प्राप्ति होती थी तथा जिसकी क्रियाएँ शत्रुओंको प्राप्त होना कठिन था ऐसा रावण एक समय मेरुपर्वतपर गया था। वहाँ जिनेन्द्रदेवकी वन्दना कर वह अपनी इच्छानुसार वापस आ रहा था ॥१-२॥ मार्गमें वह भरतादि क्षेत्रोंका विभाग करनेवाले एवं अनेक प्रकारके वृक्षोंसे सुशोभित हिमवत् आदि पर्वतोंको तथा स्फटिकसे भी अधिक निर्मल एवं अत्यन्त सुन्दर नदियोंको देखता हुआ चला आ रहा था ॥३॥ सूर्यबिम्बके आकार विमानको अलंकृत कर रहा था, उत्कृष्ट लक्ष्मीसे युक्त था तथा लंकाकी प्राप्तिमें अत्यन्त उत्सुक था ॥४॥ अचानक ही उसने जोरदार कोमल शब्द सुना जिसे सुनकर वह अत्यन्त क्षुभित हो गया। उसने शीघ्र ही मारीचसे पूछा भी ॥५॥ अरे मारीच ! मारीच !! यह महाशब्द कहाँसे आ रहा है ? और दिशाएँ सुवर्णके समान लाल-पीली क्यों हो रही हैं ॥६॥ तब मारीचने कहा कि हे देव ! किसी महामुनिके महाकल्याणकमें सम्मिलित होनेके लिए यह देवोंका आगमन हो रहा है ॥७॥ सन्तोषसे भरे एवं नाना प्रकारसे गमन करनेवाले देवोंका यह संसारव्यापी प्रशस्त शब्द सुनाई दे रहा है ॥८॥ ये दिशाएँ उन्हींके मुकुट आदिकी किरणोंसे व्याप्त होकर कुसुम्भ रंगकी देदीप्यमान कान्तिको धारण कर रही हैं ॥९॥ इस सुवर्णगिरिपर अनन्तबल नामक मुनिराज रहते थे जान पड़ता है उन्हें ही आज केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है ॥१०॥

तदनन्तर मारीचके वचन सुनकर सम्यग्दर्शनकी भावनासे युक्त रावण परम हर्षको प्राप्त हुआ ॥११॥ महाकान्तिको धारण करनेवाला रावण उन महामुनिकी वन्दना करनेके लिए दूरवर्ती आकाश प्रदेशसे इस प्रकार नीचे उतरा मानो दूसरा इन्द्र ही उतर रहा हो ॥१२॥ तत्पश्चात् इन्द्र आदि देवोंने हाथ जोड़कर मुनिराजको नमस्कार किया। स्तुति की और फिर सब यथास्थान

---

१. नाकाभिषप्रख्यो-म. । परदुर्लंघितक्रियः क., ख., ब. । ३. रावणः । ४. भरतादिक्षेत्राणाम् । ५. भासुराम् क. ।

रावणोऽपि नमस्कृत्य स्तुत्वा योग्यात्मनोचितः । विद्याधरजनाकीर्णः स्थितः सद्मुचितावनौ ॥१३॥
ततश्चतुर्विधैर्देवैस्तिर्यग्भिर्मनुजैस्तथा । कृतशंसं मुनिश्रेष्ठः शिष्येणैवमपृच्छयत ॥१५॥
भगवन् ज्ञातुमिच्छन्ति धर्माधर्मफलं जनाः । समस्ता मुक्तिहेतुं च तत्सर्वं वक्तुमर्हथ ॥१६॥
ततः सुनिपुणं शुद्धं विपुलार्थं मिताक्षरम् । अप्रदुष्यं जगौ वाक्यं यतिः सर्वहितप्रियम् ॥१७॥
कर्मणाष्टप्रकारेण संततेन निरादिना । बद्धेनान्तर्हितात्मीयशक्तिर्भ्राम्यति चेतनः ॥१८॥
सुभूरिलक्षसंख्यासु योनिष्वनुभवन्सदा । वेदनीयं यथोपात्तं नानाकरणसंभवम् ॥१९॥
रक्तो द्विष्टोऽथवा मूढो मन्दमध्यविपाकतः । कुलालचक्रवत्प्राप्तचतुर्गतिविवर्तनः ॥२०॥
बुध्यते स्वहितं नासौ ज्ञानावरणकर्मणा । मनुष्यतामपि प्राप्तोऽत्यन्तदुर्लभसंगमाम् ॥२१॥
रसस्पर्शपरिग्राहिह्रषीकवशतां गतः । कृत्वातिनिन्दितं कर्म पापभारगुरूकृतः ॥२२॥
अनेकोपायसंभूतमहादुःखविधायिनि । पतन्ति नरके जीवा भावाग इव वारिणि ॥२३॥
मातरं पितरं भ्रातॄन् सुतां पत्नीं सुहृज्जनान् । धनादिचोदिताः केचिद् विश्वैर्निन्दितमानसाः ॥२४॥
गर्भस्थानर्भकान् वृद्धांस्तरुण्यान् योषितो नराः । घ्नन्ति केचिन्महाक्रूरा मानुषान् पक्षिणो मृगान् ॥२५॥
स्थलजान् जलजान् धर्मच्युतचित्ताः कुमेधसः । मीत्वा पतन्ति ते सर्वे नरके पुरुवेदने ॥२६॥
मधुघातकृतश्वण्डाश्वाण्डाला वनदाहिनः । हिंसापरायणाः पापाः कैवर्ताधमलुब्धकाः ॥२७॥

बैठ गये ॥१३॥ विद्याधरोंसे युक्त रावण भी बड़ी भक्तिसे नमस्कार एवं स्तुति कर योग्य भूमिमें बैठ गया ॥१४॥ तदनन्तर विनीत शिष्यके समान रावणने मुनिराजसे इस प्रकार पूछा कि हे भगवन्! समस्त प्राणी धर्म-अधर्मका फल और मोक्षका कारण जानना चाहते हैं सो आप यह सब कहनेके योग्य हैं। रावणके इस प्रश्नकी चारों प्रकारके देवों, मनुष्यों और तिर्यंचोंने भारी प्रशंसा की ॥१५-१६॥ तदनन्तर मुनिराज निम्न प्रकार वचन कहने लगे। उनके वे वचन निपुणतासे युक्त थे, शुद्ध थे, महाअर्थसे भरे थे, परिमित अक्षरोंसे सहित थे, अखण्डनीय थे और सर्वहितकारी तथा प्रिय थे ॥१७॥

उन्होंने कहा कि अनादिकालसे बँधे हुए ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंसे जिसकी आत्मीय शक्ति छिप गयी है ऐसा यह प्राणी निरन्तर भ्रमण कर रहा है ॥१८॥ अनेक लक्ष योनियोंमें नाना इन्द्रियोंसे उत्पन्न होनेवाले सुख-दुःखका सदा अनुभव करता रहता है ॥१९॥ कर्मोंका जब जैसा तीव्र, मन्द या मध्यम उदय आता है वैसा रागी, द्वेषी अथवा मोही होता हुआ कुम्हारके चक्रके समान चतुर्गतिमें घूमता रहता है ॥२०॥ यह जीव अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य पर्यायको भी प्राप्त कर लेता है फिर भी ज्ञानावरण कर्मके कारण आत्महितको नहीं समझ पाता है ॥२१॥ रसना और स्पर्शन इन्द्रियके वशीभूत हुए प्राणी अत्यन्त निन्दित कार्य करके पापके भारसे इतने वजनदार हो जाते हैं कि वे अनेक साधनोंसे उत्पन्न महादुःख देनेवाले नरकोंमें उस प्रकार जा पड़ते हैं जिस प्रकार कि पानीमें पत्थर पड़ जाते हैं—डूब जाते हैं ॥२२-२३॥ जिनके मनकी सभी निन्दा करते हैं ऐसे कितने ही मनुष्य धनादिसे प्रेरित होकर माता, पिता, भाई, पुत्री, पत्नी, मित्रजन, गर्भस्थ बालक, वृद्ध, तरुण एवं स्त्रियोंको मार डालते हैं तथा कितने ही महादुष्ट मनुष्य मनुष्यों, पक्षियों और हरिणोंकी हत्या करते हैं ॥२४-२५॥ जिनका चित्त धर्मसे च्युत है ऐसे कितने ही दुर्बुद्धि मनुष्य स्थलचारी एवं जलचारी जीवोंको मारकर भयंकर वेदनावाले नरकमें पड़ते हैं ॥२६॥ मधु-

१. स भूरि-क. । २. -ष्वनुभवत् ख., म., ब. । ३. स्वहिताम्नासौ ख. । ४. संज्ञकम् म. । ५. गतः म. । ६. कृतः म. । ७. घ्नन्ति निर्दयमानसाः ख. । ८. मानसाः म. । ९. धर्मगतचित्तान् कुचेतसः म. । धर्मगतचित्ताः कुमेधसः ख., क. । १०. मारयित्वा । ११. कृतश्चामी म. ।

वितथव्याहृतासक्ताः परस्वहरणोद्यताः । पतन्ति नरके घोरे प्राणिनः शरणोज्झिताः ॥२८॥
येन येन प्रकारेण कुर्वते मांसभक्षणम् । तेनैव ते विधानेन भक्ष्यन्ते नरके परैः ॥२९॥
महापरिग्रहोपेता महारम्भाश्च ये जनाः । प्रचण्डाध्यवसायास्ते वसन्ति नरके चिरम् ॥३०॥
साधूनां द्वेषकाः पापा मिथ्यादर्शनसंगताः । रौद्रध्यानमृता जीवा गच्छन्ति नरकं ध्रुवम् ॥३१॥
कुठारैरसिभिश्चक्रैः करपत्रैर्विदारिताः । अन्यैश्च विविधैः शस्त्रैस्तीक्ष्णतुण्डैश्च पक्षिभिः ॥३२॥
सिंहैर्व्याघ्रैः श्वभिः सर्पैः शरभैर्वृश्चिकैर्नृकैः । अन्यैश्च प्राणिभिश्चित्रैः प्राप्यन्ते दुःखमुत्तमम् ॥३३॥
नितान्तं ये तु कुर्वन्ति संगं शब्दादिवस्तुनि । मायिनस्ते प्रपद्यन्ते तिर्यक्त्वं प्राणधारिणः ॥३४॥
परस्परवधास्तत्र शस्त्रैश्च विविधैः[1] क्षताः । प्रपद्यन्ते महादुःखं [2]वाहदोहादिभिस्तथा ॥३५॥
सुप्तमेतेन जीवेन स्थलेऽम्भसि गिरौ तरौ । गहनेषु च देशेषु भ्राम्यता भवसंकटे ॥३६॥
एकद्वित्रिचतुःपञ्चहृषीकीकृतसंगतिः । अनादिनिधनो जन्तुः सेवते मृत्युजन्मनी ॥३७॥
तिलमात्रोऽपि देशोऽसौ नास्ति यत्र न जन्तुना । प्राप्तं जन्म विनाशो वा संसारावर्तपातिना ॥३८॥
मार्दवेनान्विताः केचिदार्जवेन च जन्तवः । स्वभावलब्धसंतोषाः प्रपद्यन्ते मनुष्यताम् ॥३९॥
क्षणमात्रसुखस्यार्थे हित्वा पापं प्रकुर्वते । श्रेयः परमसौख्यस्य कारणं मोहसंगताः ॥४०॥
आर्या म्लेच्छाश्च तत्रापि जायन्ते पूर्वकर्मतः । तथा केचिद्धनैर्[3]नाढ्याः केचिदत्यन्तदुर्विधाः ॥४१॥

मक्खियोंका घात करनेवाले तथा वनमें आग लगानेवाले दुष्ट चाण्डाल निरन्तर हिंसामें तत्पर रहनेवाले पापी कहार और नीच शिकारी, झूठ वचन बोलनेमें आसक्त एवं पराया धन हरण करनेमें उद्यत प्राणी शरणरहित हो भयंकर नरकमें पड़ते हैं ॥२७-२८॥ जो मनुष्य जिस-जिस प्रकारसे मांस भक्षण करते हैं नरकमें दूसरे प्राणी उसी-उसी प्रकारसे उनका भक्षण करते हैं ॥२९॥ जो मनुष्य बहुत भारी परिग्रहसे सहित हैं, बहुत बड़े आरम्भ करते हैं और तीव्र संकल्प-विकल्प करते हैं वे चिरकाल तक नरकमें वास करते हैं ॥३०॥ जो साधुओंसे द्वेष रखते हैं, पापी हैं, मिथ्यादर्शनसे सहित हैं एवं रौद्रध्यानसे जिनका मरण होता है वे निश्चय ही नरकमें जाते हैं ॥३१॥ ऐसे जीव नरकोंमें कुल्हाड़ियों, तलवारों, चक्रों, करोंतों तथा अन्य अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे चीरे जाते हैं। तीक्ष्ण चोंचोंवाले पक्षी उन्हें चूँथते हैं ॥३२॥ सिंह, व्याघ्र, कुत्ते, सर्प, अष्टापद, बिच्छू, भेड़िया तथा विक्रियासे बने हुए विविध प्रकारके प्राणी उन्हें बहुत भारी दुःख पहुँचाते हैं ॥३३॥

जो शब्द आदि विषयोंमें अत्यन्त आसक्ति करते हैं ऐसे मायावी जीव तिर्यंच गतिको प्राप्त होते हैं ॥३४॥ उस तिर्यंच गतिमें जीव एक दूसरेको मार डालते हैं। मनुष्य विविध प्रकारके शस्त्रोंसे उनका घात करते हैं तथा स्वयं भार ढोना एवं दोहा जाना आदि कार्योंसे महादुःख पाते हैं ॥३५॥ संसारके संकटमें भ्रमण करता हुआ यह जीव स्थलमें, जलमें, पहाड़पर, वृक्षपर और अन्यान्य सघन स्थानोंमें सोया है ॥३६॥ यह जीव अनादि कालसे एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होता हुआ जन्म-मरण कर रहा है ॥३७॥ ऐसा तिलमात्र भी स्थान बाकी नहीं है जहाँ संसाररूपी भँवरमें पड़े हुए इस जीवने जन्म और मरण प्राप्त न किया हो ॥३८॥

यदि कोई प्राणी मृदुता और सरलतासे सहित होते हैं तथा स्वभावसे ही सन्तोष प्राप्त करते हैं तो वे मनुष्य गतिको प्राप्त होते हैं ॥३९॥ मनुष्य गतिमें भी मोही जीव परम सुखके कारणभूत कल्याण मार्गको छोड़कर क्षणिक सुखके लिए पाप करते हैं ॥४०॥ अपने पूर्वोपार्जित कर्मोंके अनुसार कोई आर्य होते हैं और कोई म्लेच्छ होते हैं। कोई धनाढ्य होते हैं और कोई

---

१. कृताः ख., म., ब. । २. वाहा देहादिभिस्तथा म. । ३. धनैनाढ्याः म. ।

मनोरथशतान्यन्ये कुर्वते कर्मचेष्टिताः । कालं नयन्ति कृच्छ्रेण प्राणिनः परवेश्मसु ॥४२॥
निरूपा धनिनः केचिन्निर्धनाः रूपिणोऽपरे । केचिद्दीर्घायुषः केचिदल्पायुस्तोकजीविनः ॥४३॥
दृष्टा[1] यशस्विनः केचित्केचिदत्यन्तदुर्भगाः । केचिदाज्ञां प्रयच्छन्ति तामन्ये कुर्वते जनाः ॥४४॥
प्रविशन्ति रणं केचित्केचिद्गच्छन्ति वारिणि । यान्ति देशान्तरं केचित्केचित्कृष्यादि कुर्वते ॥४५॥
एवं तत्रापि वैचित्र्यं जायते सुखदुःखयोः । सर्वं तु दुःखमेवात्र सुखं तत्रापि कल्पितम् ॥४६॥
सरागसंयमाः केचित्संयमासंयमास्तथा । अकामनिर्जरातप्ताश्च तपसश्च समीहतः ॥४७॥
देवायं च प्रपद्यन्ते चतुर्भेदसमन्वितम् । तेषु महर्द्धयोऽत्रापि केचिदल्पपरिच्छदाः ॥४८॥
स्थित्या द्युत्या प्रभावेण धिया सौख्येन लेश्यया । अभिमानेन मानेन ते पुनः कर्मसंग्रहम् ॥४९॥
कृत्वा चतुर्गतौ नित्थं भवे भ्राम्यन्ति जन्तवः । अरघट्टघटीयन्त्रसमानत्वमुपागताः[2] ॥५०॥
संकल्पादशुभाद् दुःखं प्राप्नोति शुभतः सुखम् । कर्मणोऽष्टप्रकारस्य जीवो मोक्षमुपक्षयात् ॥५१॥
दानेनापि प्रपद्यन्ते जन्तवो भोगभूमिषु । भोगान् पात्रविशेषेण नैश्वरूप्यमुपागताः[3] ॥५२॥
प्राणातिपातविरतं परिग्रहविवर्जितम् । ऊर्द्धमाचक्षते पात्रं रागद्वेषोज्झितं जिनाः[4] ॥५३॥
सम्यग्दर्शनसंशुद्धं तपसापि विवर्जितम् । पात्रं प्रशस्यते मिथ्यादृष्टेः कायस्य शोधनात् ॥५४॥
आपदभ्यः पाति यस्तस्मात्पात्रमित्यभिधीयते । सम्यग्दर्शनशक्त्या च त्रायन्ते मुनयो जनान् ॥५५॥
दर्शनेन विशुद्धेन ज्ञानेन च यदन्वितम्[5] । चारित्रेण च तत्पात्रं परमं परिकीर्तितम् ॥५६॥

अत्यन्त दरिद्र होते हैं ॥४१॥ कर्मोंसे घिरे कितने ही प्राणी सैकड़ों मनोरथ करते हुए दूसरेके घरोंमें बड़ी कठिनाईसे समय बिताते हैं ॥४२॥ कोई धनाढ्य होकर भी कुरूप होते हैं, कोई रूपवान् होकर भी निर्धन रहते हैं, कोई दीर्घायु होते हैं और कोई अल्पायु होते हैं ॥४३॥ कोई सबको प्रिय तथा यशके धारक होते हैं, कोई अत्यन्त अप्रिय होते हैं, कोई आज्ञा देते हैं और कोई उस आज्ञाका पालन करते हैं ॥४४॥ कोई रणमें प्रवेश करते हैं, कोई पानीमें गोता लगाते हैं, कोई विदेशमें जाते हैं और कोई खेती आदि करते हैं ॥४५॥ इस प्रकार मनुष्य गतिमें भी सुख और दुःखकी विचित्रता देखी जाती है। वास्तवमें तो सब दुःख ही है सुख तो कल्पना मात्र है ॥४६॥

कोई जीव सरागसंयम तथा संयमासंयमके धारक होते हैं, कोई अकाम निर्जरा करते हैं और कोई बालतप करते हैं ऐसे जीव भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक इन चार भेदोंसे युक्त देव गतिमें उत्पन्न होते हैं सो वहाँ भी कितने ही महर्द्धियोंके धारक होते हैं और कितने ही अल्प ऋद्धियोंके धारक ॥४७-४८॥ स्थिति, कान्ति, प्रभाव, बुद्धि, सुख, लेश्या, अभिमान और मानके अनुसार वे पुनः कर्मोंका बन्ध कर चतुर्गति रूप संसारमें निरन्तर भ्रमण करते रहते हैं। जिस प्रकार अरघटकी घड़ी निरन्तर घूमती रहती है इसी प्रकार ये प्राणी भी निरन्तर घूमते रहते हैं ॥४९-५०॥ यह जीव अशुभ संकल्पसे दुःख पाता है, शुभ संकल्पसे सुख पाता है और अष्टकर्मोंके क्षयसे मोक्ष प्राप्त करता है ॥५१॥ पात्रकी विशेषतासे अनेक रूपताको प्राप्त हुए जीव दानके प्रभावसे भोग-भूमियोंमें भोगोंको प्राप्त होते हैं ॥५२॥ जो प्राणिहिंसासे विरत, परिग्रहसे रहित और राग-द्वेषसे शून्य हैं उन्हें जिनेन्द्र भगवान्‌ने उत्तम पात्र कहा है ॥५३॥ जो तपसे रहित होकर भी सम्यग्दर्शनसे शुद्ध है ऐसा पात्र भी प्रशंसनीय है क्योंकि उससे मिथ्यादृष्टि दाताके शरीरकी शुद्धि होती है ॥५४॥ जो आपत्तियोंसे रक्षा करे वह पात्र कहलाता है (पातीति पात्रम्) इस प्रकार पात्र शब्दका निरुक्त्यर्थ है। चूँकि मुनि, सम्यग्दर्शनकी सामर्थ्यसे लोगोंकी रक्षा करते अतः पात्र हैं ॥५५॥ जो निर्मल सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रसे सहित होता

---

१. मनोरथशतानन्ये म. । २. यथास्विनः म. (?) । ३. -मुपागतः म. । ४. प्रशस्तम्, उत्तमाश्चक्षते म. । ५. यदञ्चितम् ख. ।

मानापमानयोस्तुल्यस्तथा यः सुखदुःखयोः । तृणकाञ्चनयोश्चैव साधुः पात्रं प्रशस्यते ॥५७॥
सर्वग्रन्थविनिर्मुक्ता महातपसि ये रताः । श्रमणास्ते परं पात्रं तत्त्वध्यानपरायणाः ॥५८॥
तेभ्यो भावेन यद्दत्तं शक्त्या पानान्नभेषजम् । यथोपयोगमन्यच्च तद्यच्छति महाफलम् ॥५९॥
क्षिप्ते यथैव सत्क्षेत्रे बीजं तत्संपदं पराम् । प्रयच्छति तथा दत्तं सत्पात्रे शुद्धचेतसा ॥६०॥
रागद्वेषादिभिर्युक्तं [1]यत्तु पात्रं न तन्मतम् । प्रयच्छति फलं दूरं तत्र लाभविचिन्तितम् ॥६१॥
क्षिप्तं [2]यथोषरे बीजं न किंचित्तत्र [3]जायते । मिथ्यादर्शनसंयुक्तपापपात्रोद्यतं [4]तथा ॥६२॥
कूपादुद्धृतमेकस्मात्सलिलं प्रतिपद्यते । माधुर्यमिक्षुभिः पीतं निम्बपीतं तु तिक्तताम् ॥६३॥
सरस्यां जलमेकस्यां गवात्तं पन्नगेन च । क्षीरभावमवाप्नोति विषतां च यथा तथा ॥६४॥
विन्यस्तं भावतो दानं सम्यग्दर्शनभाविते । मिथ्यादर्शनयुक्ते तु शुभाशुभफलं भवेत् ॥६५॥
दीनान्धादिजनेभ्यस्तु करुणापरिचोदितम् । दानमुक्तं फलं तस्माद् यद्यपि स्यान्न सत्तमम् ॥६६॥
वदन्ति लिङ्गिनः सर्वे स्वानुकूलं प्रयत्नतः । धर्मं स तु विशेषेण परीक्ष्यः शुभमानसैः ॥६७॥
द्रव्यं यदात्मतुल्येषु गृहस्थेषु विसृज्यते । कामक्रोधादियुक्तेषु तत्र का फलभोगिता ॥६८॥

है वह उत्तम कहलाता है ॥५६॥ जो मान, अपमान, सुख-दुःख और तृण-काँचनमें समान दृष्टि रखता है ऐसा साधु पात्र कहलाता है ॥५७॥ जो सब प्रकारके परिग्रहसे रहित हैं, महातपश्चरणमें लीन हैं और तत्त्वोंके ध्यानमें सदा तत्पर रहते हैं ऐसे श्रमण अर्थात् मुनि उत्तम पात्र कहलाते हैं ॥५८॥ उन मुनियोंके लिए अपनी सामर्थ्यके अनुसार भावपूर्वक जो भी अन्न, पान, औषधि अथवा उपयोगमें आनेवाले पीछी, कमण्डलु आदि अन्य पदार्थ दिये जाते हैं वे महाफल प्रदान करते हैं ॥५९॥ जिस प्रकार उत्तम क्षेत्रमें बोया हुआ बीज अत्यधिक सम्पदा प्रदान करता है उसी प्रकार उत्तम पात्रके लिए शुद्ध हृदयसे दिया हुआ दान अत्यधिक सम्पदा प्रदान करता है ॥६०॥ जो राग-द्वेष आदि दोषोंसे युक्त है वह पात्र नहीं है और न वह इच्छित फल ही देता है अतः उसके फलका विचार करना दूरकी बात है ॥६१॥

जिस प्रकार ऊषर जमीनमें बीज बोया जाय तो उससे कुछ भी उत्पन्न नहीं होता उसी प्रकार मिथ्यादर्शनसे सहित पापी पात्रके लिए दान दिया जाय तो उससे कुछ भी फल प्राप्त नहीं होता ॥६२॥ एक कुएँसे निकाले हुए पानीको यदि ईखके पौधे पीते हैं तो वह माधुर्यको प्राप्त होता है और यदि नीमके पौधे पीते हैं तो कड़ुआ हो जाता है ॥६३॥ अथवा जिस प्रकार एक ही तालाबमें गायने पानी पिया और साँपने भी। गायके द्वारा पिया पानी दूध हो जाता है और साँपके द्वारा पिया पानी विष हो जाता है, उसी प्रकार एक ही गृहस्थसे उत्तम पात्रने दान लिया और नीच पात्रने भी। जो दान उत्तम पात्रको प्राप्त होता है उसका फल उत्तम होता है और जो नीच पात्रको प्राप्त होता है उसका फल नीचा होता है ॥६४॥ कोई-कोई पात्र मिथ्यादर्शनसे युक्त होने पर भी सम्यग्दर्शनकी भावनासे युक्त होते हैं ऐसे पात्रोंके लिए भावसे जो दान दिया जाता है उसका फल शुभ-अशुभ अर्थात् मिश्रित प्रकारका होता है ॥६५॥ दीन तथा अन्धे आदि मनुष्योंके लिए करुणा दान कहा गया है और उससे यद्यपि फलकी भी प्राप्ति होती है पर वह फल उत्तम फल नहीं कहा जाता ॥६६॥ सभी वेषधारी प्रयत्नपूर्वक अपने अनुकूल धर्मका उपदेश देते हैं पर उत्तम हृदयके धारक मनुष्योंको विशेषकर उसकी परीक्षा करनी चाहिए ॥६७॥ काम-क्रोधादिसे युक्त तथा अपनी समानता रखनेवाले गृहस्थोंके लिए जो द्रव्य

---

१. यत्तु पात्रं न तन्मतम् म., ख., ज. । यस्तु पात्रं न तत्समम् ब. । २. तत्र लाभविचिन्तनम् म. । ३. 'क्षिप्तं यदि रणे बीजं' म., ख., क. । ४. न किञ्चिदुपजायते म. । ५. मिथ्यादर्शनसंयुक्तं पापं पात्रोद्यतं तथा न. ।

अहो महानयं मोहः [1]सर्वावस्थेषु यजनाः । स्वापतेयं विमुञ्चन्ति विप्रलब्धाः कुशास्त्रकैः ॥६९॥
धिगस्तु तान् खलानेव जनो यैर्विप्रतारितः । लोभात् कुप्रन्थकन्थाभिर्वराको नेयमानसः ॥७०॥
मृष्टत्वाद् बलकारित्वान्मांसं भक्ष्यमुदाहृतम् । पापैर्दम्भप्रसिद्ध्यर्थं परिसंख्या च कीर्तिता ॥७१॥
क्रूरास्ते दापयित्वा तन्नक्षयित्वा च लोभिनः । गच्छन्ति नरकं सार्धं दातृभिर्घोरवेदनम् ॥७२॥
जीवदानं च यत्प्रोक्तं [3]गर्वाविद्धैर्दुरात्मभिः । ऋषिमन्यैस्तदप्यत्यन्तं निन्दितं तत्त्ववेदिभिः ॥७३॥
तस्मिन् हि दीयमानस्य वहनाङ्कनताडनैः । संपद्यते महादुःखं तेनान्येषां च भूयसाम् ॥७४॥
भूमिदानमपि क्षिप्तं तद्गतप्राणिपीडनात् । प्राणिघातनिमित्तेन पुण्यं पाषाणतः पयः ॥७५॥
सर्वेषाममयं तस्मादेयं प्राणभृतां सदा । [5]ज्ञानं भेषजमन्नं च वस्त्रादि च गतासुकम् ॥७६॥
दानं निन्दितमप्येति प्रशंसां पात्रभेदतः । शुक्तिपोतं यथा वारि [6]मुक्तीभवति निश्चयम् ॥७७॥
पशुभूम्यादिकं दत्तं जिनानुद्दिश्य भावतः । ददाति परमान् भोगानत्यन्तस्थिरकालगान् ॥७८॥
अन्तरङ्गं हि संकल्पः [7]कारणं पुण्यपापयोः । विना तेन बहिर्दानं वर्षः पर्वतमूर्धनि ॥७९॥
वीतरागान् समस्तज्ञानतो ध्यात्वा जिनेश्वरान् । दानं यदीयते तस्य कः शक्तो भाषितुं फलम् ॥८०॥
आयुधग्रहणादन्ये देवा द्वेषसमन्विताः । रागिणः कामिनीसंगाद् भूषणानां च धारणात् ॥८१

दिया जाता है उसका क्या फल भोगनेको मिलता है ? सो कहा नहीं जा सकता ॥६८॥ अहो ! यह कितना प्रबल मोह है कि मिथ्यामतोंसे ठगाये गये लोग सभी अवस्थाओंवाले लोगोंको अपना धन दे देते हैं ॥६९॥ उन दुष्टजनोंको धिक्कार है जिन्होंने कि इस भोले प्राणीको ठग रखा है तथा लोभ दिखाकर मिथ्या शास्त्रोंकी चर्चासे उसके मनको विचलित कर दिया है ॥७०॥ मीठा तथा बलकारी होनेसे पापी मनुष्योंने मांसको भक्ष्य बताया है और अपना कपट बतानेके लिए जिनका मांस खाना चाहिए उनकी संख्या भी निर्धारित की है ॥७१॥ सो ऐसे दुष्ट लोभी जीव दूसरोंको मांस दिलाकर तथा स्वयं खाकर दाताओंके साथ-साथ भयंकर वेदनासे युक्त नरकमें जाते हैं ॥७२॥ लोभके वशीभूत, दुष्ट अभिप्रायसे युक्त तथा झूठ-मूठ ही अपने-आपको ऋषि माननेवाले कितने ही लोगोंने हाथी, घोड़ा, गाय आदि जीवोंका दान भी बतलाया है पर तत्त्वके जानकार मनुष्योंने उसकी अत्यन्त निन्दा की है ॥७३॥ उसका कारण भी यह है कि जीवदानमें जो जीव दिया जाता है उसे बोझा ढोना पड़ता है, नुकीली अरी आदिसे उसके शरीरको आँका जाता है तथा लाठी आदिसे उसे पीटा जाता है इन कारणोंसे उसे महादुःख होता है और उसके निमित्तसे बहुत-से अन्य जीवोंको भी बहुत दुःख उठाना पड़ता है ॥७४॥ इसी प्रकार भूमिदान भी निन्दनीय है क्योंकि उससे भूमिमें रहनेवाले जीवोंको पीड़ा होती है। और प्राणिपीड़ाके निमित्त जुटाकर पुण्यकी इच्छा करना मानो पत्थरसे पानी निकालना है ॥७५॥ इसलिए समस्त प्राणियोंको सदा अभयदान देना चाहिए साथ ही ज्ञान, प्रासुक, औषधि, अन्न और वस्त्रादि भी देना चाहिए ॥७६॥ जो दान निन्दित बताया है वह भी पात्रके भेदसे प्रशंसनीय हो जाता है, जिस प्रकार कि शुक्ति (सीप) के द्वारा पिया हुआ पानी निश्चयसे मोती हो जाता है ॥७७॥ पशु तथा भूमिका दान यद्यपि निन्दित दान है फिर भी यदि वह जिन-प्रतिमा आदिको उद्देश्य कर दिया जाता है तो वह दीर्घ काल तक स्थिर रहनेवाले उत्कृष्ट भोग प्रदान करता है ॥७८॥ भीतरका संकल्प ही पुण्य-पापका कारण है उसके बिना बाह्यमें दान देना पर्वतके शिखरपर वर्षा करनेके समान है ॥७९॥ इसलिए वीतराग सर्वज्ञ जिनेन्द्र देवका ध्यान कर जो दान दिया जाता है उसका फल कहनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥८०॥ जिनेन्द्रके सिवाय जो अन्य देव हैं वे द्वेषी, रागी तथा मोही हैं क्योंकि

---

१. सर्वविधपात्रेषु । २. धनम् । ३. गर्वाविद्धैः ख. । ४. तद्गतं प्राणि- म. । ५. ज्ञानभेषजमन्नं म. ख. । ६. अमुक्ता मुक्ता संपद्यते मुक्तीभवति । ७. संकल्पं क. ।

रागद्वेषानुमेयश्च तेषां मोहोऽपि विद्यते । तयोर्हि कारणं मोहो दोषाः शेषास्तु तन्मयाः ॥८२॥
मनुष्या एव ये [1]केचिद्देवा [2]भोजनभाजनम् । कषायतनवः [3]काले देशकाम्यादिसेविनः ॥८३॥
एवंविधाः कथं देवा दानगोचरतां गताः । अधमा यदि वा मुख्याः फलं कुर्युर्मनोहरम् ॥८४॥
[4]दृष्टोऽपि तावदेतेषां [5]विपाकः शुभकर्मणः । कुत एव शिवस्थानैसंप्राप्तिर्दुःखितात्मनाम् ॥८५॥
तदेतस्सिकतामुष्टिपीडनात्तैलवाञ्छितम् । विनाशनं च तृष्णाया सेवनादाशुशुक्षणेः ॥८६॥
पङ्गुना नीयते पङ्गुर्यदि देशान्तरं ततः । एतेभ्यः क्लिश्यतो जन्तोर्देवेभ्यः जायते फलम् ॥८७॥
एषा तावदियं वार्ता देवानां पापकर्मणाम् । तद्भक्तानां तु दूरेण सत्पात्रत्वं न युज्यते ॥८८॥
लोभेन चोदितः पापी जनो यज्ञे प्रवर्तते । कुर्वतो हि तथा लोको धनं तर्हि प्रयच्छति ॥८९॥
तस्मादुद्दिश्य यद्दानं दीयते जिनपुङ्गवम् । सर्वदोषविनिर्मुक्तं तद्दाति फलं महत् ॥९०॥
वाणिज्यसदृशो धर्मस्तत्रान्वेष्यःक्षयस्थिता । बहुना हि पराभूतिः क्रियतेऽल्पस्य वस्तुनः ॥९१॥
यथा विषकणः प्राप्तः सरसीं नैव दुष्यति । जिनधर्मोद्यतस्यैवं हिंसालेशो वृथोद्भवः ॥९२॥

वे शस्त्र लिये रहते हैं इससे द्वेषी सिद्ध होते हैं और स्त्री साथमें रखते हैं तथा आभूषण धारण करते हैं इससे रागी सिद्ध होते हैं। राग-द्वेषके द्वारा उनके मोहका भी अनुमान हो जाता है क्योंकि मोह राग-द्वेषका कारण है। इस प्रकार राग-द्वेष और मोह ये तीन दोष उनमें सिद्ध हो गये बाकी अन्य दोष इन्हींके कार्य हैं ॥८१-८२॥ लोकमें जो कुछ मनुष्य देवके रूपमें प्रसिद्ध हैं वे साधारण जनके समान ही भोजनके पात्र हैं अर्थात् भोजन करते हैं, कषायसे युक्त हैं और अवसरपर आंशिक कामादिका सेवन करते हैं सो ऐसे देव दानके पात्र कैसे हो सकते हैं ? वे कितनी ही बातोंमें जब कि अपने भक्त जनोंसे गये-गुजरे अथवा उनके समान ही हैं तब उन्हें उत्तम फल कैसे दे सकते हैं ? ॥८३-८४॥ यद्यपि वर्तमानमें उनके शुभ कर्मोंका उदय देखा जाता है तो भी उनसे अन्य दुःखी मनुष्योंको मोक्षकी प्राप्ति कैसे हो सकती है ? ॥८५॥ ऐसे कुदेवोंसे मोक्षकी इच्छा करना बालूकी मुट्ठी पेरकर तेल प्राप्त करनेकी इच्छाके समान है अथवा अग्निकी सेवासे प्यास नष्ट करनेकी इच्छाके तुल्य है ॥८६॥ यदि एक लँगड़ा मनुष्य दूसरे लँगड़े मनुष्यको देशान्तरमें ले जा सकता हो तो इन देवोंसे दूसरे दुःखी जीवोंको भी फलकी प्राप्ति हो सकती है ॥८७॥ जब इन देवोंकी यह बात है तब पाप कार्य करनेवाले उनके भक्तोंकी बात तो दूर ही रही। उनमें सत्पात्रता किसी तरह सिद्ध नहीं हो सकती ॥८८॥ लोभसे प्रेरित हुए पापी जन यज्ञमें प्रवृत्त होते हैं और लोग ऐसा करने वालोंको दक्षिणा आदिके रूपमें धन देते हैं सो यह निर्दोष कैसे हो सकता है ? ॥८९॥ इसलिए जिनेन्द्र देवको उद्देश्य कर जो दान दिया जाता है वही सर्वदोष रहित है और वही महाफल प्रदान करता है ॥९०॥ धर्म तो व्यापारके समान है, जिस प्रकार व्यापारमें सदा हीनाधिकताका विचार किया जाता है उसी प्रकार धर्ममें भी सदा हीनाधिकताका विचार रखना चाहिए अर्थात् हानि-लाभपर दृष्टि रखना चाहिए। जिस धर्ममें पुण्यकी अधिकता हो और पापकी न्यूनता हो गृहस्थ उसे स्वीकृत कर सकता है क्योंकि अधिक वस्तुके द्वारा हीन वस्तुका पराभव हो जाता है ॥९१॥ जिस प्रकार विषका एक कण तालाबमें पहुँचकर पूरे तालाबको दूषित नहीं कर सकता उसी प्रकार जिनधर्मानुकूल आचरण करनेवाले पुरुषसे जो थोड़ी हिंसा होती है वह उसे दूषित नहीं कर सकती। उसकी वह अल्प हिंसा व्यर्थ रहती है ॥९२॥

---

१. केचिदेभ्यः म. । २. भजनभाजनम् ख. । पूजनभाजनम् म., ब. । ३. कालदेशकामादि-म., ख., ब. । ४. दृष्टेऽपि ख., म., ब., ज. । ५. विपाके ख., म., ब., ज. । ६. शिवस्थानं संप्राप्तौ म. । शिवस्थानं प्राप्तौ ख. । शिवस्थानं संप्राप्तौ ब. ।

प्रासादादि ततः कार्यं जिनानां भक्तितत्परैः । माल्यधूपप्रदीपादि सर्वं च कुशलैर्जनैः ॥९३॥
स्वर्गे मनुष्यलोके च भोगानत्यन्तमुत्तमान् । जन्तवः प्रतिपद्यन्ते जिनानुद्दिश्य दानतः ॥९४॥
सन्मार्गप्रस्थितानां च दत्तं दानं यथोचितम् । करोति विपुलान् भोगान् गुणानामिति भाजनम् ॥९५॥
यथाशक्ति ततो भक्त्या सम्यग्दृष्टिषु यच्छतः । दानं तदेकमाम्नास्ति शेषं चौरैर्विलुण्ठितम् ॥९६॥
स्थितं ज्ञानस्य साम्राज्ये केवलं परिकीर्त्यते । निर्वाणं तस्य संप्राप्तावुपैति ध्यानयोगतः ॥९७॥
विमुक्ताशेषकर्माणः सर्वबाधाविवर्जिताः । अनन्तसुखसंपन्ना अनन्तज्ञानदर्शनाः ॥९८॥
अशरीराः स्वभावस्था लोकमूर्ध्नि प्रतिष्ठिताः । प्रत्यापत्तिविनिर्मुक्ताः सिद्धा वक्तव्यवर्जिताः ॥९९॥
गर्द्धापवनसंवृद्धदुःखपावकमध्यगाः । क्लिश्यन्ते पापिनो नित्यं विना सुकृतवारिणा ॥१००॥
पापान्धकारमध्यस्थाः कुदर्शनवशीकृताः । बोधं केचित्प्रपद्यन्ते धर्मादित्यमरीचिभिः ॥१०१॥
अशुभायोमयात्यन्तदृढपञ्जरमध्यगाः । आशापाशवशा जीवा मुच्यन्ते धर्मबन्धुना ॥१०२॥
सिद्धो व्याकरणाद्यो हि बिन्दुसारैकदेशतः । धारणार्थो धृतो धर्मशब्दो वाचि परिस्थितः ॥१०३॥
पतन्तं दुर्गतौ यस्मात्सम्यगाचरितो भवन् । प्राणिनं धारयत्यस्मादुर्म इत्यभिधीयते ॥१०४॥
लभिर्धातुः स्मृतः प्राप्तौ प्राप्तिः संपर्क उच्यते । तस्य धर्मस्य यो लाभो धर्मलाभः स उच्यते ॥१०५॥

इसलिए भक्तिमें तत्पर रहनेवाले कुशल मनुष्योंको जिन-मन्दिर आदि बनवाना चाहिए और माला, धूप, दीप आदि सबकी व्यवस्था करनी चाहिए ॥९३॥ जिनेन्द्र भगवान्‌को उद्देश्य कर जो दान दिया जाता है उसके फलस्वरूप जीव स्वर्ग तथा मनुष्यलोक सम्बन्धी उत्तमोत्तम भोग प्राप्त करते हैं ॥९४॥

सन्मार्गमें प्रयाण करनेवाले मुनि आदिके लिए जो यथायोग्य दान दिया जाता है वह उत्कृष्ट भोग प्रदान करता है। इस प्रकार यही दान गुणोंका पात्र है ॥९५॥ इसलिए सामर्थ्यके अनुसार भक्तिपूर्वक सम्यग्दृष्टि पुरुषोंके लिए जो दान देता है उसीका दान एक दान है बाकी तो चोरोंको धन लुटाना है ॥९६॥ केवलज्ञान ज्ञानके साम्राज्य पदपर स्थित है। ध्यानके प्रभावसे जब केवलज्ञानकी प्राप्ति हो चुकती है तभी यह जीव निर्वाणको प्राप्त होता है ॥९७॥ जिनके समस्त कर्म नष्ट हो चुकते हैं, जो सर्व प्रकारकी बाधाओंसे परे हो जाते हैं, जो अनन्त सुखसे सम्पन्न रहते हैं, अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन जिनकी आत्मामें प्रकाशमान रहते हैं जिनके तीनों प्रकारके शरीर नष्ट हो जाते हैं, निश्चयसे जो अपने स्वभावमें ही स्थित रहते हैं और व्यवहारसे लोक-शिखरपर विराजमान हैं, जो पुनरागमनसे रहित हैं और जिनका स्वरूप शब्दों द्वारा नहीं कहा जा सकता वे सिद्ध भगवान् हैं ॥९८-९९॥ लोभरूपी पवनसे बढ़े दुःख रूपी अग्निके बीचमें पड़े पापी जीव पुण्य रूपी जलके बिना निरन्तर क्लेश भोगते रहते हैं ॥१००॥ पापरूपी अन्धकारके बीचमें रहनेवाले तथा मिथ्यादर्शनके वशीभूत कितने ही जीव धर्मरूपी सूर्यकी किरणोंसे प्रबोधको प्राप्त होते हैं ॥१०१॥ जो अशुभभावरूपी लोहेके मजबूत पिंजरेके मध्यमें रह रहे हैं तथा आशारूपी पाशके अधीन हैं ऐसे जीव धर्मरूपी बन्धुके द्वारा ही मुक्त किये जाते हैं—बन्धनसे छुड़ाये जाते हैं ॥१०२॥ जो लोकबिन्दुसार नामक पूर्वका एक देश है ऐसे व्याकरणसे सिद्ध है कि जो धारण करे सो धर्म है। 'धरतीति धर्मः' इस प्रकार उसका निरुक्त्यर्थ है ॥१०३॥ और यह ठीक भी है क्योंकि अच्छी तरहसे आचरण किया हुआ धर्म दुर्गतिमें पड़ते हुए जीवको धारण कर लेता है—बचा लेता है इसलिए वह धर्म कहलाता है ॥१०४॥ लभ धातुका अर्थ प्राप्ति

१. धूप म. । २. आनन्द -म. । ३. गृद्धा म. । ४. पापतः क., ख., म. । ५. अशुभभावरूप-लोहनिर्मितसुदृढ-पञ्जरमध्यगताः । ६. धर्मपञ्जर म. । ७. धर्मबन्धना म. । ८. धर्मः ख. । ९. भवेत् म. । भवत् ख, ब. ।

जिनैरभिहितं धर्मं कथयामि समासतः । कांश्चित्तत्फलभेदांश्च शृणुतैकाग्रमानसाः ॥१०६॥
हिंसातोऽलीकतः स्तेयान्मैथुनाद् द्रव्यसंगमात् । विरतिर्व्रतमुद्दिष्टं विधेयं तस्य धारणम् ॥१०७॥
ईर्याभाक्यैषणादाननिक्षेपोत्सर्गरूपिका । समितिः पालनं तस्याः कार्यं यत्नेन साधुना ॥१०८॥
वाङ्मनःकायवृत्तीनामभावो [1]ऽदिभावना । गुप्तिराचरणं तस्यां विधेयं परमादरात् ॥१०९॥
क्रोधो मानस्तथा माया लोभश्चेति महाद्विषः । कषाया वैरयं लोकः संसारे [2]पर्यटत्यसौ ॥११०॥
क्षमातो [3]मृदुतासंगादृजुत्वाद्[4]वृत्तियोगतः । विधेयो निग्रहस्तेषां सूत्रनिर्दिष्टकारिणा ॥१११॥
धर्मसंज्ञमिदं सर्वं व्रतादि परिकीर्तितम् । त्यागश्चोदितो धर्मो विशेषोऽस्य निवेदितः ॥११२॥
रसनस्पर्शनघ्राणचक्षुःश्रोत्राभिधानतः [5] । प्रसिद्धानीन्द्रियाण्येषां निर्जयो धर्म उच्यते ॥११३॥
उपवासोऽवमौदर्यं परिसंख्यानवृत्तिता । रसानां च परित्यागो विविक्तं शयनासनम् ॥११४॥
कायक्लेश इति प्रोक्तं बाह्यं षोढा तपः स्थितम् । तपसोऽभ्यन्तरस्यैतद्वृत्तिस्थानीयमिष्यते ॥११५॥
प्रायश्चित्तं विनीतिश्च वैयावृत्यकृतिस्तथा । स्वाध्यायेन च संबन्धो व्युत्सर्गो ध्यानमुत्तमम् ॥११६॥
[6]एतदाभ्यन्तरं षोढा तपश्चरणमिष्यते । तपः समस्तमप्येतद्धर्म इत्यभिधीयते ॥११७॥
धर्मेणानेन कुर्वन्ति भव्याः कर्मवियोजनम् । कर्म चाद्भुतमत्यन्तव्यवस्थापरिवर्तनम् ॥११८॥
शक्नोति बाधितुं सर्वान्मानुषानमरांस्तथा । लोकाकाशं च संरोद्धुं वपुषा विक्रियात्मना ॥११९॥
एकप्रासत्वमानेतुं त्रैलोक्यं च महाबलः । अणुभेदमहैश्वर्यं योगं चाप्नोति दुर्लभम् ॥१२०॥

है और प्राप्ति सम्पर्कको कहते हैं, अतः धर्मकी प्राप्तिको धर्मलाभ कहते हैं ॥१०५॥ अब हम जिन-भगवान्‌के द्वारा कहे हुए धर्मका संक्षेपसे निरूपण करते हैं। साथ ही उसके कुछ भेदों और उनके फलोंका भी निर्देश करेंगे सो तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥१०६॥ हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रहसे विरक्त होना सो व्रत कहलाता है। ऐसा व्रत अवश्य ही धारण करना चाहिए ॥१०७॥ ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेपण और उत्सर्ग ये पाँच समितियाँ हैं। साधुको इनका प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिए ॥१०८॥ वचन, मन और कायकी प्रवृत्तिका सर्वथा अभाव हो जाना अथवा उसमें कोमलता आ जाना गुप्ति है। इसका आचरण बड़े आदरसे करना चाहिए ॥१०९॥ क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषाय महाशत्रु हैं, इन्हींके द्वारा जीव संसारमें परिभ्रमण करता है ॥११०॥ आगमके अनुसार कार्य करनेवाले मनुष्यको क्षमासे क्रोधका, मृदुतासे मानका, सरलतासे मायाका और सन्तोषसे लोभका निग्रह करना चाहिए ॥१११॥ अभी ऊपर जिन व्रत समिति आदिका वर्णन किया है वह सब धर्म कहलाता है। इसके सिवाय त्याग भी विशेषधर्म कहा गया है ॥११२॥ स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ये पाँच इन्द्रियाँ प्रसिद्ध हैं। इनका जीतना धर्म कहलाता है ॥११३॥ उपवास, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और कायक्लेश ये छह बाह्यतप हैं। बाह्यतप अन्तरंग तपकी रक्षाके लिए वृति अर्थात् बाड़ीके समान हैं ॥११४-११५॥ प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान ये छह आभ्यन्तर तप हैं। यह समस्त तप धर्म कहलाता है ॥११६-११७॥ भव्य जीव इस धर्मके द्वारा कर्मोंका वियोजन अर्थात् विनाश तथा अनन्त व्यवसायोंको परिवर्तित करनेवाले अनेक आश्चर्यजनक कार्य करते हैं ॥११८॥ यह जीव धर्मके प्रभावसे ऐसा विक्रियात्मक शरीर प्राप्त करता है कि जिसके द्वारा समस्त मनुष्य और देवोंको बाधा देने तथा लोकाकाशको व्याप्त करनेमें समर्थ होता है ॥११९॥ धर्मके प्रभावसे यह जीव इतना महाबलवान् हो जाता है कि तीनों

---

१. -मभाव इति साधवा क., ख., ब. । २. कषायाद्यैरयं म. । ३. परिवर्तते म., ख. । ४. मृदुतः संगादृजुत्वा-द्वृत्तियोगतः म. । ५. -भिधानतः म. । ६. बाह्यं तपोऽभ्यन्तरतपसो रक्षणाय वृतितुल्यमस्तीति भावः । ७. एतदभ्यन्तरे म. ।

हन्ति तापं सहस्रांशोस्तुषारस्यमुडुप्रभोः । करोति पूरणं वृष्ट्या सर्वस्य जगतः क्षणात् ॥१२१॥
भस्मतां नयते लोकमाशीविषवदीक्षणात् । कुरुते मन्दरोत्क्षेपं विक्षेपणमुदम्बताम् ॥१२२॥
ज्योतिश्चक्रं समुद्धर्तुमिन्द्ररुद्रादिसाध्वसम् । रत्नकाञ्चनवर्षं च प्रावसंघातसर्जनम् ॥१२३॥
व्याधीनामतितीव्राणां शमनं पादपांसुना[1] । नृणामद्भुतहेतूनां विभवानां समुद्भवम् ॥१२४॥
जीवः करोति धर्मेण तथान्यदपि दुष्करम् । नैव किंचिदसाध्यत्वं धर्मस्य प्रतिपद्यते ॥१२५॥
धर्मेण मरणं प्राप्ता ज्योतिश्चक्रतिरस्कृतिम् । कृत्वा कल्पान्यपद्यन्ते सौधर्मादीन् गुणालयान् ॥१२६॥
सामानिकाः सुराः केचिन्नवत्यन्ये सुराधिपाः । अहमिन्द्रास्तथान्ये च कृत्वा धर्मस्य संग्रहम् ॥१२७॥
हेमस्फटिकवैडूर्यस्तम्भसंभारनिर्मितान् । तन्निभासुरभित्तीस्तुङ्गान् प्रासादान्बहुभूमिकान् ॥१२८॥
अम्भोजदधिमध्वादिविचित्रमणिकुट्टिमान् । मुक्ताकलापसंयुक्तान् वातायनविराजितान् ॥१२९॥
रुरुभिश्चमरैः सिंहैर्गजैरन्यैश्च चारुभिः । रूपैर्निचितपार्श्वाभिर्वेदिकाभिरलंकृतान् ॥१३०॥
चन्द्रशालादिभिर्युक्तान्[2] ध्वजमालाविभूषितान् । सोपाश्रयमनोहारिशयनासनसंगतान् ॥१३१॥
आतोद्यवरसंपूर्णानिच्छासंचारकारिणः । युक्तान्स्वपरिवर्गेण पुण्डरीकादिलक्षितान् ॥१३२॥
विमानप्रभृतीन् जीवा निलयान् धर्मकारिणः । प्रपद्यन्तेऽर्कशीतांशुदीप्तिकान्त्यभिमानिनः ॥१३३॥
सुखनिद्राक्षये बुद्ध्वा विमलेन्द्रियम् । अचिरोदितसिम्मांशुदीप्तिं कान्त्या समं विधोः ॥१३४॥

लोकोंको एक ग्रास बना सकता है। अणिमा, महिमा आदि आठ प्रकारके ऐश्वर्य तथा अनेक दुर्लभ योग भी यह धर्मके प्रभावसे प्राप्त करता है ॥१२०॥ यह जीव धर्मके प्रभावसे सूर्यके सन्तापको और चन्द्रमाकी शीतलताको नष्ट कर सकता है तथा वृष्टिके द्वारा समस्त संसारको क्षणभरमें भर सकता है ॥१२१॥ यह धर्मके प्रभावसे आशीविष साँपके समान दृष्टिमात्रसे लोकको भस्म कर सकता है, मेरु पर्वतको उठा सकता है और समुद्रको बिखेर सकता है ॥१२२॥ धर्मके ही प्रभावसे ज्योतिश्चक्रको उठा सकता है, इन्द्र, रुद्र आदि देवोंको भयभीत कर सकता है, रत्न और सुवर्णकी वर्षा कर सकता है तथा पर्वतोंके समूहकी सृष्टि कर सकता है ॥१२३॥ धर्मके ही प्रभावसे अत्यन्त भयंकर बीमारियोंकी शान्ति अपने पैरकी धूलिसे कर सकता है तथा मनुष्योंको अन्य अनेक आश्चर्यकारक वैभवकी प्राप्ति करा सकता है ॥१२४॥ जीव धर्मके प्रभावसे और भी कितने ही कठिन कार्य कर सकता है। यथार्थमें धर्मके लिए कोई भी कार्य असाध्य नहीं है ॥१२५॥ जो जीव धर्मपूर्वक मरण करते हैं वे ज्योतिश्चक्रको उल्लंघन कर गुणोंके निवासभूत सौधर्मादि स्वर्गोंमें उत्पन्न होते हैं ॥१२६॥ धर्मका उपार्जन कर कितने ही सामानिक देव होते हैं, कितने ही इन्द्र होते हैं और कितने ही अहमिन्द्र बनते हैं ॥१२७॥ धर्मके प्रभावसे जीव उन महलोंमें उत्पन्न होते हैं जो कि स्वर्ण, स्फटिक और वैडूर्य मणिमय खम्भोंके समूहसे निर्मित होते हैं जिनकी स्वर्णादिनिर्मित दीवालें सदा देदीप्यमान रहती हैं, जो अत्यन्त ऊँचे और अनेक भूमियों (खण्डों) से युक्त होते हैं। ॥१२८॥ जिनके फर्श पद्मराग, दधिराग तथा मधुराग आदि विचित्र-विचित्र मणियोंसे बने होते हैं, जिनमें मोतियोंकी मालाएँ लटकती रहती हैं, जो झरोखोंसे सुशोभित होते हैं ॥१२९॥ जिनके किनारोंपर हरिण, चमरी गाय, सिंह, हाथी तथा अन्यान्य जीवोंके सुन्दर-सुन्दर चित्र चित्रित रहते हैं ऐसी वेदिकाओंसे जो अलंकृत होते हैं ॥१३०॥ जो चन्द्रशाला आदिसे सहित होते हैं, ध्वजाओं और मालाओंसे अलंकृत रहते हैं तथा जिनकी कक्षाओंमें मनोहारी शय्याएँ और आसन बिछे रहते हैं ॥१३१॥ धर्म धारण करनेवाले लोग ऐसे विमान आदि स्थानोंमें उत्पन्न होते हैं जो वादित्र आदि संगीतके साधनोंसे युक्त रहते हैं, इच्छानुसार जिनमें गमन होता है, जो उत्तम परिकरसे सहित होते हैं, कमल आदि प्रसाधन सामग्रीसे युक्त रहते हैं और अपनी प्रभासे सूर्यकी दीप्ति और चन्द्रमाकी कान्तिको तिरस्कृत करते रहते हैं ॥१३२-१३३॥ धर्मके प्रभावसे प्राणियोंको

---

१. चन्द्रस्य । २. चरणरजसा । ३. ध्वजामाला म. ।

रजःस्वेदरुजामुक्तं [1]स्वामोदममलं मृदु । श्रिया परमया युक्तं चक्षुष्यमुपपादजम् [2][3] ॥१३५॥
शरीरं लभ्यते धर्मात् प्राणिभिः सुरसद्मसु । अलंकाराश्च आचक्राति[4]रोहितदिगन्तराः ॥१३६॥
सरोरुहदलस्पर्शचरणाः कान्तिवत्नखाः । तुलाकोटिकसंदृष्टै[5]रक्तांशुकदशाननाः [6] ॥१३७॥
रम्भास्तम्भसमस्पर्शजङ्घान्तर्गतजानुकाः । काञ्चीगुणाङ्कितोदारनितम्बा द्विरदक्रमाः [7] ॥१३८॥
अनुदारवलीभङ्गतनुमध्यविराजिताः । नवोदितक्षपानाथप्रतिमस्तनमण्डलाः ॥१३९॥
रत्नावलीप्रभाजालनिर्मुक्तघनचन्द्रिकाः । मालतीमार्दवोपेतभुजबाहुलतामृतः ॥१४०॥
महार्घमणिवाचालवलयाकुलपाणयः । अशोकपल्लवस्पर्शकराङ्गुलिगलत्प्रभाः ॥१४१॥
कम्बुकण्ठा रदच्छायापिहितद्विजवाससः । लावण्यलिप्तसर्वांशकपोलामलदर्पणाः ॥१४२॥
लोचनान्तघनच्छायाकृतकर्णावतंसकाः । मुक्तापरीतपद्मरागमणिसीमन्तभूषणाः ॥१४३॥
भ्रमरासितसूक्ष्मातिमृदुकेशकलापिकाः । मृणालकोमलस्पर्शवपुषो मधुरस्वराः ॥१४४॥
अत्यन्तमुपचारज्ञा नितान्तसुभगक्रियाः । नन्दनप्रभवामोदसमनिश्वाससौरभाः ॥१४५॥
इङ्गितज्ञानकुशलाः पञ्चेन्द्रियसुखावहाः । कामरूपधरा धर्मात्प्राप्यन्तेऽप्सरसो दिवि ॥१४६॥

देव-भवनोंमें ऐसा वैक्रियिक शरीर प्राप्त होता है जो कि सुखमय निद्राके दूर होनेपर जागृत हुएके समान जान पड़ता है, जिसकी इन्द्रियाँ अत्यन्त निर्मल होती हैं। जो तत्काल उदित सूर्यके समान देदीप्यमान होता है, जो कान्तिसे चन्द्रमाकी तुलना प्राप्त करता है, रज, पसीना तथा बीमारीसे रहित होता है, अत्यन्त सुगन्धित, निर्मल और कोमल होता है, उत्कृष्ट लक्ष्मीसे युक्त, नयनाभिराम और उपपाद जन्मसे उत्पन्न होता है। इसके सिवाय अपनी कान्तिके समूहसे दिगन्तरालको आच्छादित करनेवाले आभूषण भी प्राप्त होते हैं ॥१३४–१३६॥

धर्मके प्रभावसे स्वर्गमें ऐसी अप्सराएँ प्राप्त होती हैं जिनके कि चरणोंका स्पर्शन कमलदलके समान कोमल होता है, जिनके नख अत्यन्त कान्तिमान् होते हैं, जिनके लाल-लाल वस्त्रोंके अंचल नूपुरोंमें उलझते रहते हैं ॥१३७॥ जिनकी जंघाएँ केलेके स्तम्भके समान स्निग्ध स्पर्शसे युक्त होती हैं, जिनके घुटने मांस-पेशियोंमें अन्तर्निहित रहते हैं, जिनके स्थूल नितम्ब मेखलाओंसे सुशोभित होते हैं, जिनकी चाल हाथीकी चालके समान मस्तीसे भरी रहती है ॥१३८॥ जो सूक्ष्म त्रिवलिसे युक्त मध्यभागसे सुशोभित होती हैं, जिनके स्तनोंके मण्डल नवीन उदित चन्द्रमाके समान होते हैं ॥१३९॥ जिनकी रत्नावलीकी कान्तिसे सदा चाँदनी छिटकती रहती है, जो मालतीके समान कोमल और पतली भुजारूपी लताओंको धारण करती हैं ॥१४०॥ जिनके हाथ महामूल्य मणियोंकी खनकती हुई चूड़ियोंसे सदा युक्त रहते हैं, अशोक पल्लवके समान कोमलता धारण करनेवाली जिनकी अँगुलियोंसे मानो कान्ति चूती रहती है ॥१४१॥ जिनके कण्ठ शंखके समान होते हैं, जिनके ओठ दाँतोंकी कान्तिसे आच्छादित रहते हैं, जिनके कपोलरूपी निर्मल दर्पणोंका समस्त भाग लावण्यसे संलिप्त रहता है ॥१४२॥ जिनके नयनान्तकी सघन कान्ति सदा कर्णाभरणकी शोभा बढ़ाया करती है, मोतियोंसे व्याप्त पद्मराग मणि जिनकी माँगको अलंकृत करते रहते हैं ॥१४३॥ जिनके केशोंके समूह भ्रमरके समान काले, सूक्ष्म और अत्यन्त कोमल हैं, जिनके शरीरका स्पर्श मृणालके समान कोमल है, जिनकी आवाज अत्यन्त मधुर है ॥१४४॥ जो सब प्रकारका उपचार जानती हैं, जिनकी समस्त क्रियाएँ अत्यन्त मनोहर हैं, जिनके श्वासोच्छ्वासकी सुगन्धि नन्दनवनकी सुगन्धिके समान है ॥१४५॥ जो अभिप्रायके

१. सामोद म. । २. नयनाभिरामम् । ३. उपपादजन्मजातम् । ४. दिगन्तरम् म. । ५. संदृष्ट ख. । ६. तुलाकोटिकगृहीतरक्तवस्त्रान्ताः । ७. गजगामिन्यः । ८. दन्तप्रभाच्छादिताधराः ।

संकल्पमात्रसंभूतसर्वोपकरणं पुरः । विषयोत्थं सुखं सामिः प्राप्नुवन्ति समं सुराः ॥१४७॥
सुखं यच्चिरदशावासे यच्च मानुषविष्टपे । फलं तद्गदितं सर्वं धर्मस्य जिनपुङ्गवैः ॥१४८॥
ऊर्ध्वाधोमध्यलोकेषु यो नाम सुखसंज्ञितः । भोक्तृणां जायते भावः स सर्वो धर्मसंभवः ॥१४९॥
दाता भोक्ता स्थितेः कर्ता यो नरः प्रतिवासरम् । रक्ष्यते नृसहस्रौघैः सर्वं तद्धर्मजं फलम् ॥१५०॥
यत्तरसुरसहस्राणां हरिभूषणधारिणाम् । प्रभुत्वं कुरुते शक्रस्तत्फलं धर्मसंभवम् ॥१५१॥
यन्मोहरिपुमुद्गास्य रत्नत्रयसमन्विताः । सिद्धस्थानं प्रपद्यन्ते शुद्धधर्मस्य तत्फलम् ॥१५२॥
अप्राप्य मानुषं जन्म [1]स च धर्मो न लभ्यते । तस्मान्मनुष्यसंप्राप्तिः परमा सर्वजन्मसु ॥१५३॥
राजा श्रेष्ठो मनुष्याणां मृगाणां केसरी यथा । पक्षिणां [2]विनतापुत्रः भवानां मानुषो भवः ॥१५४॥
सारस्त्रिभुवने धर्मः सर्वेन्द्रियसुखप्रदः । क्रियते मानुषे देहे ततो मनुजता परा ॥१५५॥
तृणानां शालयः श्रेष्ठाः पादपानां च चन्दनाः । उपलानां च रत्नानि भवानां मानुषो भवः ॥१५६॥
उत्सर्पिणीसहस्राणि परिभ्रम्य कथंचन । लभ्यते वा न वा जन्म मनुष्याणां शरीरिणा ॥१५७॥
अवाप्य दुर्लभं तत्रः क्लेशनिर्मोक्षकारणम् । जनो न कुरुते धर्मं यास्यसौ दुर्गतीः पुनः ॥१५८॥
पतितं तन्मनुष्यत्वं पुनर्दुर्लभसंगमम् । समुद्रसलिले नष्टं यथा रत्नं महागुणम् ॥१५९॥
इहैव मानुषे लोके कृत्वा धर्मं यथोचितम् । स्वर्गादिषु प्रपद्यन्ते [3]सर्वं प्राणभृतः फलम् ॥१६०॥
सर्वज्ञोक्तमिदं श्रुत्वा भानुकर्णः ससंभ्रमः । भक्त्या प्रणम्य पद्माक्षः पर्यपृच्छत्कृताञ्जलिः ॥१६१॥

समझनेमें कुशल, पंचेन्द्रियोंको सुख पहुँचानेवाली और इच्छानुसार रूपको धारण करनेवाली हैं ॥१४६॥ देव लोग, उन अप्सराओंके साथ जहाँ संकल्पमात्रसे ही समस्त उपकरण उपस्थित हो जाते हैं ऐसा विषयजन्य विशाल सुख भोगते हैं ॥१४७॥ अथवा मनुष्य लोकमें जो सुख प्राप्त होता है जिनेन्द्रदेवने उस सबको धर्मका फल कहा है ॥१४८॥ ऊर्ध्व, मध्य और अधोलोकमें उपभोक्ताओंको जो भी सुख नामका पदार्थ प्राप्त होता है वह सब धर्मसे ही उत्पन्न होता है ॥१४९॥ दान देनेवाले, उपभोग करनेवाले एवं मर्यादा स्थापित करनेवाले मनुष्यको जो हजारों मनुष्योंके झुण्ड रक्षा करते हैं वह सब धर्मसे उत्पन्न हुआ फल समझना चाहिए ॥१५०॥ मनोहर आभूषण धारण करनेवाले हजारों देवोंपर इन्द्र जो शासन करता है वह धर्मसे उत्पन्न हुआ फल है ॥१५१ सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रयसे युक्त जो पुरुष मोहरूपी शत्रुको नष्ट कर मोक्षस्थान प्राप्त करते हैं वह शुद्ध धर्मका फल है ॥१५२॥ मनुष्य-जन्मके बिना अन्यत्र वह धर्म प्राप्त नहीं हो सकता इसलिए मनुष्यभवकी प्राप्ति सब भवोंमें श्रेष्ठ है ॥१५३॥ जिस प्रकार मनुष्योंमें राजा, मृगोंमें सिंह और पक्षियोंमें गरुड़ श्रेष्ठ है उसी प्रकार सब भवोंमें मनुष्यभव श्रेष्ठ है ॥१५४॥ तीनों लोकोंमें श्रेष्ठ एवं समस्त इन्द्रियोंको सुख देनेवाला धर्म मनुष्यशरीरमें ही किया जाता है इसलिए मनुष्यदेह ही सर्वश्रेष्ठ है ॥१५५॥ जिस प्रकार तृणोंमें धान, वृक्षोंमें चन्दन और पत्थरोंमें रत्न श्रेष्ठ है उसी प्रकार सब भवोंमें मनुष्यभव श्रेष्ठ है ॥१५६॥ हजारों उत्सर्पिणियोंमें भ्रमण करनेके बाद यह जीव किसी तरह मनुष्य-जन्म प्राप्त करता है और नहीं भी प्राप्त करता है ॥१५७॥ क्लेशोंसे छुटकारा देनेवाले उस मनुष्य-जन्मको पाकर जो मनुष्य धर्म नहीं करता है वह पुनः दुर्गतियोंको प्राप्त होता है ॥१५८॥ जिस प्रकार समुद्रके पानीमें गिरा महामूल्य रत्न दुर्लभ हो जाता है उसी प्रकार नष्ट हुए मनुष्य-जन्मका पुनः पाना भी दुर्लभ है ॥१५९॥ इसी मनुष्य पर्यायमें यथायोग्य धर्म कर प्राणी स्वर्गादिकमें समस्त फल प्राप्त करते हैं ॥१६०॥

सर्वज्ञ देवके द्वारा कहे हुए इस उपदेशको सुनकर भानुकर्ण बहुत ही हर्षित हुआ। उसके

---

१. सत्त्वधर्मो म. । २. गरुडः । ३. सर्वप्राणभृतः क., ख., म. ।

भगवन्न ममाद्यापि जायते प्राप्ततृप्तिता । अतो विधानतो धर्मं निवेदयितुमर्हसि ॥१६२॥
ततोऽनन्तबलोऽवोचद्विशेषं [1]सौकृतं शृणु । संसाराद्येन मुच्यन्ते प्राणिनो भव्यतास्तुतः ॥१६३॥
द्विविधो गदितो धर्मो महाव्रताणुवास्तथा । आद्योऽगारविमुक्तानामन्यश्च भववर्तिनाम् ॥१६४॥
विसृष्टसर्वसंगानां श्रमणानां महात्मनाम् । कीर्तयामि समाचारं दुरितक्षोदनक्षमम् ॥१६५॥
मते सुव्रतनाथस्य लीना[2] निखिलवेदिनः । सृत्युजन्मसमुद्भूत[3]महात्रासससन्विताः ॥१६६॥
एरण्डसदृशं ज्ञात्वा मनुष्यत्वमसारकम् । संगेन[4] रहिता धन्या [5]श्रमणत्वमुपाश्रिताः ॥१६७॥
रता महाव्रतयुक्तेषु पञ्चसंख्येषु साधवः । व्रतेष्वाविग्रहत्यागात्तत्त्वागमतत्पराः ॥१६८॥
समितिष्वपि तत्संख्यासंगतासु सुचेतसः । अभियुक्ता महासत्त्वास्त्रिसंख्यासु च गुप्तिषु ॥१६९॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं यथोदितम् । येषामस्ति न तेषां स्यात्परिग्रहसमाश्रयः ॥१७०॥
देहेऽपि ये न कुर्वन्ति निजे [6]रागं मनीषिणः । कः स्यात्परिग्रहस्तेषां [7]यत्नास्तमितशायिनाम् ॥१७१॥
अपि बालाग्रमात्रेण पापोपार्जनकारिणा । अन्येन रहिता धीरा मुनयः सिंहविक्रमाः ॥१७२॥
[8]समस्तप्रतिबन्धेन समीरणवदुज्झिताः । खगानामपि संगः स्याच्च तु तेषां मनागपि ॥१७३॥
व्योमवन्मलसंबन्धरहिताः श्लाघ्यचेष्टिताः । रजनीनाथवत्सौम्या दीप्ता दिवसनाथवत् ॥१७४॥
निम्नगानाथगम्भीरा धीरा भूधरनाथवत् । भीतकूर्मवदत्यन्तगुप्तेन्द्रियकदम्बकाः ॥१७५॥

नेत्र कमलके समान विकसित हो गये। उसने भक्तिपूर्वक प्रणाम कर तथा हाथ जोड़कर पूछा कि ॥१६१॥ हे भगवान् ! अभी जो उपदेश प्राप्त हुआ है उससे मुझे तृप्ति नहीं हुई है अतः भेद-प्रभेदके द्वारा धर्मका निरूपण कीजिए ॥१६२॥ तब अनन्तबल केवली कहने लगे कि अच्छा धर्मका विशेष वर्णन सुनो जिसके प्रभावसे भव्य प्राणी संसारसे मुक्त हो जाते हैं ॥१६३॥ महाव्रत और अणुव्रतके भेदसे धर्म दो प्रकारका कहा गया है। उनमें-से पहला अर्थात् महाव्रत गृहत्यागी मुनियोंके होता है और दूसरा अर्थात् अणुव्रत संसारवर्ती गृहस्थोंके होता है ॥१६४॥ अब मैं समस्त परिग्रहोंसे रहित महान् आत्माके धारी मुनियोंका वह चरित्र कहता हूँ जो कि पापोंको नष्ट करनेमें समर्थ है ॥१६५॥ समस्त पदार्थोंको जाननेवाले मुनि सुव्रतनाथ तीर्थंकरके तीर्थमें ऐसे कितने ही महापुरुष हैं जो जन्म-मरण सम्बन्धी महाभयसे युक्त हैं ॥१६६॥ ये मनुष्य पर्यायको एरण्ड वृक्षके समान निःसार जानकर परिग्रहसे रहित हो मुनिपदको प्राप्त हुए हैं ॥१६७॥ वे साधु सदा पंच महाव्रतोंमें लीन रहते हैं और शरीरत्यागपर्यन्त तत्त्वज्ञानके प्राप्त करनेमें तत्पर होते हैं ॥१६८॥ शुद्ध हृदयको धारण करनेवाले ये धैर्यशाली मुनि पाँच समितियों और तीन गुप्तियोंमें सदा लीन रहते हैं ॥१६९॥ अहिंसा, सत्य, अचौर्य और आगमानुमोदित ब्रह्मचर्य उन्हींके होता है जिनके कि परिग्रह-का आलम्बन नहीं होता ॥१७०॥ जो बुद्धिमान् जन अपने शरीरमें भी राग नहीं करते हैं और सूर्यास्त हो जानेपर यत्नपूर्वक विश्राम करते हैं उनके परिग्रह क्या हो सकता है ? अर्थात् कुछ नहीं ॥१७१॥ मुनि पाप उपार्जन करनेवाले बालाग्रमात्र परिग्रहसे रहित होते हैं तथा अत्यन्त धीर-वीर और सिंहके समान पराक्रमी होते हैं ॥१७२॥ ये वायुके समान सब प्रकारके प्रतिबन्धसे रहित होते हैं। पक्षियोंके तो परिग्रह हो सकता है पर मुनियोंके रंचमात्र भी परिग्रह नहीं होता ॥१७३॥ ये आकाशके समान मलके संसर्गसे रहित होते हैं, इनकी चेष्टाएँ अत्यन्त प्रशंसनीय होती हैं, ये चन्द्रमाके समान सौम्य और दिवाकरके समान देदीप्यमान होते हैं ॥१७४॥ ये समुद्रके समान गम्भीर, सुमेरुके समान धीर-वीर और भयभीत कछुएके समान समस्त इन्द्रियोंके समूहको अत्यन्त

---

१. सुकृतस्येदं सौकृतम् । २. लीला- म. । ३. महत्त्रास म. । ४. संज्ञेन म. । ५. श्रवणत्व- म., ब., क. । ६. रागे म. । ७. यत्नास्तमित-म., यशस्तमित-ख. । ८. यत्नेनास्तमिते शैरत इत्येवं शीलानाम् । ९. प्रति-बन्धरहितत्वेन ।

[1]क्षमया क्षमया तुल्याः कषायोद्रेकवर्जिताः । अशीत्या गुणलक्षाणां चतुःसहितयान्विताः ॥१७६॥
अष्टादशलिनोद्दिष्टशीलस्कन्धसमन्विताः । अत्यन्ताध्यात्मतपोभूत्या सिद्धयाकाङ्क्षणतत्पराः ॥१७७॥
जिनोदितार्थसंसक्ता विदितापरशासनाः । श्रुतसागरपारस्था सुनयो यमधारिणः ॥१७८॥
नियमानां विधातारः समुद्दण्डतयोज्झिताः । नानालब्धिकृतासंगा महामङ्गलमूर्तयः ॥१७९॥
एवंगुणाः समस्तस्य जगतः कृतमण्डनाः । श्रमणास्तनुकर्माणः प्रयान्त्युत्तमदेवताम् ॥१८०॥
द्वित्रैर्भवैश्च निःशेषं कलुषं ध्यानवह्निना । निर्दह्य[4] प्रतिपद्यन्ते सुखं सिद्धसमाश्रितम् ॥१८१॥
स्नेहपञ्जररुद्धानां गृहाश्रमनिवासिनाम् । धर्मोपायं प्रवक्ष्यामि शृणु द्वादशधा स्थितम् ॥१८२॥
[5]व्रतान्यणूनि पञ्चैषां [6]शिक्षाः चोक्ता चतुर्विधा । गुणास्त्रयो यथाशक्तिनियमास्तु[7] सहस्रशः ॥१८३॥
प्राणातिपाततः स्थूलाद्विरतिर्वितथात्तथा । ग्रहणात्परवित्तस्य परदारसमागमात् ॥१८४॥
अनन्तायाश्च गर्द्धायाः पञ्चसंख्यमिदं व्रतम् । भावना चेयमेतेषां कथिता जिनपुङ्गवैः ॥१८५॥
इष्टो यथात्मनो देहः सर्वेषां प्राणिनां तथा । एवं ज्ञात्वा सदा कार्या दया[8] सर्वसुधारिणाम् ॥१८६॥
एषैव हि पराकाष्ठा धर्मस्योक्ता जिनाधिपैः । दयारहितचित्तानां धर्मः स्वल्पोऽपि नेष्यते ॥१८७॥
वचनं परपीडायां हेतुर्यत्प्रपद्यते । अलीकमेव तत्प्रोक्तं सत्यमस्माद्विपर्ययं[10] ॥१८८॥
वधादि कुरुते जन्मन्यस्मिंस्तस्तेयमुद्धितम् । कर्तुः परत्र दुःखानि विविधानि कुयोनिषु ॥१८९॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मतिमान् वर्जयेन्नरः । लोकद्वयविरोधस्य निमित्तं क्रियते कथम् ॥१९०॥

गुप्त रखनेवाले होते हैं ॥१७५॥ ये क्षमाधर्मके कारण क्षमा अर्थात् पृथ्वीके तुल्य हैं, कषायोंके उद्रेकसे रहित हैं और चौरासी लाख गुणोंसे सहित हैं ॥१७६॥ जिनेन्द्र प्रतिपादित शीलके अठारह लाख भेदोंसे सहित हैं, तपरूपी विभूतिसे अत्यन्त सम्पन्न हैं तथा मुक्तिकी इच्छा करनेमें सदा तत्पर रहते हैं ॥१७७॥ ये मुनि जिनेन्द्रनिरूपित पदार्थोंमें लीन रहते हैं, अन्य धर्मोंके भी अच्छे जानकार होते हैं, श्रुतरूपी सागरके पारगामी और यमके धारी होते हैं ॥१७८॥ ये मुनि अनेक नियमोंके करनेवाले, उद्दण्डतासे रहित, नाना ऋद्धियोंसे सम्पन्न और महामंगलमय शरीरके धारक होते हैं ॥१७९॥ इस तरह जो पूर्वोक्त गुणोंको धारण करनेवाले हैं, समस्त जगत्के आभरण हैं और जिनके कर्म क्षीण हो गये हैं ऐसे मुनि उत्तम देव पदको प्राप्त होते हैं ॥१८०॥ तदनन्तर दो-तीन भवोंमें ध्यानाग्निके द्वारा समस्त कलुषताको जलाकर निर्वाण-सुखको प्राप्त कर लेते हैं ॥१८१॥ अब स्नेहरूपी पिंजड़ेमें रुके हुए गृहस्थाश्रमवासी लोगोंका बारह प्रकारका धर्म कहता हूँ सो सुनो ॥१८२॥ गृहस्थोंको पाँच अणुव्रत, चार शिक्षाव्रत, तीन गुणव्रत और यथाशक्ति हजारों नियम धारण करने पड़ते हैं ॥१८३॥ स्थूल हिंसा, स्थूल झूठ, स्थूल परद्रव्यग्रहण, परस्त्री समागम और अनन्ततृष्णासे विरत होना ये गृहस्थोंके पाँच अणुव्रत कहलाते हैं। इन व्रतोंकी रक्षाके लिए जिनेन्द्रदेवने निम्नांकित भावनाका निरूपण किया है ॥१८४-१८५॥ जिस प्रकार मुझे अपना शरीर इष्ट है उसी प्रकार समस्त प्राणियोंको भी अपना-अपना शरीर इष्ट होता है ऐसा जानकर गृहस्थको सब प्राणियोंपर दया करनी चाहिए ॥१८६॥ जिनेन्द्रदेवने दयाको ही धर्मकी परम सीमा बतलायी है। यथार्थमें जिनके चित्त दयारहित हैं उनके थोड़ा भी धर्म नहीं होता है ॥१८७॥ जो वचन दूसरोंको पीड़ा पहुँचानेमें निमित्त है वह असत्य ही कहा गया है, क्योंकि सत्य इससे विपरीत होता है ॥१८८॥ की गयी चोरी इस जन्ममें वध, बन्धन आदि कराती है और मरनेके बाद कुयोनियोंमें नाना प्रकारके दुःख देती है ॥१८९॥ इसलिए बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिए कि वह

---

१. क्षान्त्या । २. पृथिव्या । ३. सहस्रशीलयान्विताः ख. । शीलसहस्रधान्विताः ब., म. । ४. निर्दह्यं म. । ५. व्रतान्यमूनि म. । ६. शिक्षा म. । ७. नियमास्तु म. । ८. वितथा म. । ९. सर्वप्राणिनाम् । १०. -मस्माद्विपर्यये म. ।

परिवर्ज्या सुपक्वेव वनिता न्यस्य दूरतः । सा हि लोभवशा पापा पुरुषस्य विनाशिका ॥१९१॥
यथा च जायते दुःखं स्वात्मायामात्मयोषिति । नरान्तरेण सर्वेषामियमेव व्यवस्थितिः ॥१९२॥
[1]उदारश्च तिरस्कारः प्राप्यतेऽत्रैव जन्मनि । तिर्यङ्नरकयोर्दुःखं प्राप्यमेवातिदुस्सहम् ॥१९३॥
प्रमाणं कार्यमिच्छायाः सा हि दद्यादरिष्कुतः । [2]महादुःखनिमित्तायेत्यत्र भद्रककाञ्चनौ ॥१९४॥
विक्रेता वदरादीनां भद्रो दीनारमात्रकम् । ग्रहीष्यामीत्यजानीत दृष्ट्वातो[3] वर्त्मनि च्युतम् ॥१९५॥
[4]प्रसेवकमितोऽगृह्णादीनारं तु कुतूहली । तत्र काञ्चननामा तु सर्वमेव प्रसेवकम् ॥१९६॥
दीनारस्वामिना राजा काञ्चनो वीक्ष्य शासितः । स्वयमर्पितदीनारो भद्रस्तु परिपूजितः ॥१९७॥
विरमोऽनर्थदण्डेभ्यो दिग्विदिक्परिवर्जनम् । भोगोपभोगसंख्यानं त्रयमेतद्गुणव्रतम् ॥१९८॥
सामायिकं [5]प्रयत्नेन प्रोषधाशनं तथा । संविभागोऽतिथीनां च [6]सल्लेखश्चायुषः क्षये ॥१९९॥
संकेतो न तिथौ यस्य कृतो यश्चापरिग्रहः । गृहमेति गुणैर्युक्तैः श्रमणः सोऽतिथिः स्मृतः ॥२००॥
संविभागोऽस्य कर्तव्यो यथाविभवमादरात् । विधिना लोभमुक्तेन भिक्षोपकरणादिभिः ॥२०१॥
मधुनो मद्यतो मांसाद् द्यूततो रात्रिभोजनात् । वेश्यासंगमनाच्चास्य विरतिर्नियमः स्मृतः ॥२०२॥

चोरीका सर्व प्रकारसे त्याग करे। जो कार्य दोनों लोकोंमें विरोधका कारण है वह किया ही कैसे जा सकता है ? ॥१९०॥ परस्त्रीका सर्पिणीके समान दूरसे ही त्याग करना चाहिए क्योंकि वह पापिनी लोभके वशीभूत हो पुरुषका नाश कर देती है ॥१९१॥ जिस प्रकार अपनी स्त्रीको कोई दूसरा मनुष्य छेड़ता है और उससे अपने आपको दुःख होता है उसी प्रकार सभीकी यह व्यवस्था जाननी चाहिए ॥१९२॥ परस्त्री सेवन करनेवाले मनुष्यको इसी जन्ममें बहुत भारी तिरस्कार प्राप्त होता है और मरनेपर तिर्यंच तथा नरकगतिके अत्यन्त दुःसह दुःख प्राप्त करने ही पड़ते हैं ॥१९३॥ अपनी इच्छाका सदा परिमाण करना चाहिए क्योंकि इच्छापर यदि अंकुश नहीं लगाया गया तो वह महादुःख देती है। इस विषयमें भद्र और कांचनका उदाहरण प्रसिद्ध है ॥१९४॥ बेर आदिको बेचनेवाला एक भद्र नामक पुरुष था। उसने प्रतिज्ञा की थी कि मैं एक दीनारका ही परिग्रह रखूँगा। एक बार उसे मार्गमें पड़ा हुआ बटुआ मिला। उस बटुएमें यद्यपि बहुत दीनारें रखी थीं पर भद्रने अपनी प्रतिज्ञाका ध्यान कर कुतूहलवश उनमें-से एक दीनार निकाल ली। शेष बटुआ वहीं छोड़ दिया। वह बटुआ कांचन नामक दूसरे पुरुषने देखा तो वह सबका सब उठा लिया। दीनारोंका स्वामी राजा था। जब उसने जाँच-पड़ताल की तो कांचनको मृत्युकी सजा दी गयी और भद्रने जो एक दीनार ली थी वह स्वयं ही जाकर राजाको वापस कर दी जिससे राजाने उसका सम्मान किया ॥१९५–१९७॥

अनर्थदण्डोंका त्याग करना, दिशाओं और विदिशाओंमें आवागमनकी सीमा निर्धारित करना और भोगोपभोगका परिमाण करना ये तीन गुणव्रत हैं ॥१९८॥ प्रयत्नपूर्वक सामायिक करना, प्रोषधोपवास धारण करना, अतिथिसंविभाग और आयुका क्षय उपस्थित होनेपर सल्लेखना धारण करना ये चार शिक्षाव्रत हैं ॥१९९॥ जिसने अपने आगमनके विषयमें किसी तिथिका संकेत नहीं किया है, जो परिग्रहसे रहित है और सम्यग्दर्शनादि गुणोंसे युक्त होकर घर आता है ऐसा मुनि अतिथि कहलाता है ॥२००॥ ऐसे अतिथिके लिए अपने वैभवके अनुसार आदरपूर्वक लोभरहित हो भिक्षा तथा उपकरण आदि देना चाहिए यही अतिथिसंविभाग है ॥२०१॥ इनके सिवाय गृहस्थ मधु, मद्य, मांस, जुआ, रात्रिभोजन और वेश्यासमागमसे जो

---

१. अधिकः । २. महद्दुःख- म. । ३. दृष्ट्वा तौ ब. । ४. बटुआ इति हिन्दी । ५. प्रयत्नेन म. । ६. संलेख-आयुषः म. । ७. युक्ताः म. । ८. लोभयुक्तेन म. ।

गृहधर्ममिमं कृत्वा समाधिप्राप्तपञ्चतः[1]। प्रपद्यते सुरेन्द्रत्वं च्युत्वा च सुमनुष्यताम् ॥२०३॥
भवानामेवमष्टानामन्तः[2] कृत्वानुवर्तनम्। रत्नत्रयस्य निर्ग्रन्थो भूत्वा सिद्धिं समश्नुते ॥२०४॥
नरत्वं दुर्लभं प्राप्य यथोक्ताचरणाक्षमः। श्रद्धाति जिनोक्तं यः सोऽप्यासन्नशिवालयः ॥२०५॥
सम्यग्दर्शनलाभेन केवलेनापि मानवः। सर्वलाभवरिष्ठेन दुर्गतिभ्रासमुज्झति ॥२०६॥
कुरुते यो जिनेन्द्राणां नमस्कारं स्वभावतः। पुण्याधारः स पापांशैर्लेशेनापि न युज्यते ॥२०७॥
यः स्मरत्यपि भावेन जिनांस्तस्याशुभं क्षयम्। सद्यः समस्तमायाति भवकोटिभिरर्जितम् ॥२०८॥
प्रशस्ताः सततं तस्य ग्रहाः[3] स्वप्नाः शकुन्तयः[4]। त्रैलोक्यसाररत्नं यो दधाति हृदये जिनम्[5] ॥२०९॥
अर्हते नम इत्येतत्प्रयुङ्क्ते यो वचो जनः। भावात्तस्याचिरात् कृत्स्नकर्ममुक्तिरसंशया ॥२१०॥
जिनचन्द्रकथारश्मिसंगमादेति फुल्लताम्। सिद्धियोग्यासुमत्स्वान्तःकुमुदं परमामलम्[6] ॥२११॥
अर्हत्सिद्धमुनिभ्यो यो नमस्यां कुरुते जनः। स परीतभवो ज्ञेयः सुशासनजनप्रियः ॥२१२॥
जिनबिम्बं जिनाकारं जिनपूजां जिनस्तुतिम्। यः करोति जनस्तस्य न किंचिद् दुर्लभं भवेत् ॥२१३॥
नरनाथः कुटुम्बी वा धनाढ्यो दुर्विधोऽथवा। जनो धर्मेण यो युक्तः स पूज्यः सर्वविष्टपे ॥२१४॥
महाविनयसंपन्नाः कृत्याकृत्यविचक्षणाः। जनाः गृहाश्रमस्थानां प्रधाना धर्मसंगमात् ॥२१५॥
मधुमांससुरादीनामुपयोगं न कुर्वते। ये जनास्ते गृहस्थानां लँकामत्वे प्रतिष्ठिताः[7] ॥२१६॥

विरक्त होता है उसे नियम कहा है ॥२०२॥ इस गृहस्थ धर्मका पालन कर जो समाधिपूर्वक मरण करता है, वह उत्तमदेव पर्यायको प्राप्त होता है और वहाँसे च्युत होकर उत्तम मनुष्यत्व प्राप्त करता है ॥२०३॥ ऐसा जीव अधिकसे अधिक आठ भवोंमें रत्नत्रयका पालन कर अन्तमें निर्ग्रन्थ हो सिद्धिपदको प्राप्त होता है ॥२०४॥ जो दुर्लभ मनुष्यपर्याय पाकर यथोक्त आचरण करनेमें असमर्थ है, केवल जिनेन्द्रदेवके द्वारा कथित आचरणकी श्रद्धा करता है वह भी निकट कालमें मोक्ष प्राप्त करता है ॥२०५॥ जिसका लाभ सब लाभोंमें श्रेष्ठ है ऐसे केवल सम्यग्दर्शनके द्वारा भी मनुष्य दुर्गतिके भयसे छूट जाता है ॥२०६॥ जो स्वभावसे ही जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार करता है वह पुण्यका आधार होता है तथा पापके अंशमात्रका भी उससे सम्बन्ध नहीं होता ॥२०७॥ नमस्कार तो दूर रहा जो जिनेन्द्र देवका भावपूर्वक स्मरण भी करता है उसके करोड़ों भवोंके द्वारा संचित पाप कर्म शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥२०८॥ जो मनुष्य तीन लोकमें श्रेष्ठ रत्नस्वरूप जिनेन्द्र देवको हृदयमें धारण करता है उसके सब ग्रह, स्वप्न और शकुनकी सूचना देनेवाले पक्षी सदा शुभ ही रहते हैं ॥२०९॥ जो मनुष्य 'अर्हते नमः' अर्हन्तके लिए नमस्कार हो, इस वचनका भावपूर्वक उच्चारण करता है उसके समस्त कर्म शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं इसमें संशय नहीं है ॥२१०॥ जिनेन्द्र चन्द्रकी कथारूपी किरणोंके समागमसे भव्य जीवका निर्मल हृदयरूपी कुमुद शीघ्र ही प्रफुल्ल अवस्थाको प्राप्त होता है ॥२११॥ जो मनुष्य अर्हन्त सिद्ध और मुनियोंके लिए नमस्कार करता है वह जिनशासनके भक्त जनोंसे स्नेह रखनेवाला अतीतसंसार है अर्थात् शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करनेवाला है ऐसा जानना चाहिए ॥२१२॥ जो पुरुष जिनेन्द्र देवकी प्रतिमा बनवाता है, जिनेन्द्र देवका आकार लिखवाता है, जिनेन्द्र देवकी पूजा करता है अथवा जिनेन्द्रदेवकी स्तुति करता है उसके लिए संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं होता ॥२१३॥ यह मनुष्य चाहे राजा हो चाहे साधारण कुटुम्बी, धनाढ्य हो चाहे दरिद्र, जो भी धर्मसे युक्त होता है वह समस्त संसारमें पूज्य होता है ॥२१४॥ जो महाविनयसे सम्पन्न तथा कार्य और अकार्यके विचारमें निपुण हैं वे धर्मके समागमसे गृहस्थोंमें प्रधान होते हैं ॥२१५॥ जो मनुष्य मधु, मांस और मदिरा आदिका उपयोग नहीं करते हैं वे गृहस्थोंके आभूषण पद

---

१. समाधिप्राप्तमरणः। २. मध्ये। ३. गृहाः सर्वे शकुन्तयः म.। ४. त्रैलोक्यं साररत्नं म.। ५. भव्यप्राणिहृदयकुमुदम्। ६. परमालयम् म.। ७. अलंकारत्वे।

शङ्कया काङ्क्षया युक्ता तथा ये विचिकित्सया । सुदूररहितात्मानः परदृष्टिप्रशंसया ॥२१७॥
अन्यशासनसंबद्धसंस्तवेन विवर्जिताः । जन्तवस्ते गृहस्थानां प्रधानपदमाश्रिताः ॥२१८॥
सुचारुवसनोऽत्यन्तसुरभिः प्रियदर्शनः । शस्यमानः पुरस्त्रीभिर्याति यो वन्दितुं जिनम् ॥२१९॥
[illegible] सुभावितस्वान्तः साधुकृत्यसमुद्यतः पुण्यं तस्यानन्तवर्जितम् ॥२२०॥
तृणोपमं परद्रव्यं पश्यन्ति स्वसमं परम् । परयोषां समां मातुर्ये ते धन्यतमा जनाः ॥२२१॥
प्रतिपद्य कदा दीक्षां विहरिष्यामि मेदिनीम् । क्षपयित्वा कदा कर्म प्रपत्स्ये सिद्धसंश्रयम् ॥२२२॥
एवं प्रतिदिनं यस्य ध्यानं विमलचेतसः । भीतानीव न कुर्वन्ति तेन कर्माणि संगतिम् ॥२२३॥
सप्ताष्टजन्मभिः केचित्सिद्धिं गच्छन्ति जन्तवः । केचिदुग्रतपः कृत्वा द्वित्रैरेव सुचेतसः ॥२२४॥
क्षिप्रं यान्ति महानन्दं मध्यमा भव्यजन्तवः । असमर्थास्तु विश्रम्य मार्गस्य यदि वेदकाः[1] ॥२२५॥
अह्नोऽपि योजनशतमविद्वान् धर्मं यो जनः । भ्राम्यतीष्टमवाप्नोति स पदं न चिरादपि ॥२२६॥
तथोग्रमपि कुर्वाणास्तपो वितथदर्शनाः[2] । प्राप्नुवन्ति पदं नैव जन्ममृत्युविवर्जितम् ॥२२७॥
मोहान्धकारसंछन्ने कषायोरगसंकुले । ते भ्रमन्ति भवारण्ये नष्टमुक्तिपथा जनाः ॥२२८॥
न शीलं न च सम्यक्त्वं न त्यागः साधुगोचरः । यस्य तस्य भवाम्भोधितरणं जायते कथम् ॥२२९॥
विन्ध्यस्य स्रोतसा नागा यत्रोह्यन्ते नगोन्नताः[3] । वराकाः शशकास्तत्र चिरं नीता विसंशयम् ॥२३०॥
मृत्युजन्मजरावर्तभवस्रोतो विवर्तिनः । कुतीर्थ्या यत्र नीयन्ते तद्गतेष्वत्र का कथा ॥२३१॥

पदपर स्थित हैं अर्थात् गृहस्थोंके आभूषण हैं ॥२१६॥ जो शंका, कांक्षा और विचिकित्सासे रहित हैं, जिनकी आत्मा अन्यदृष्टियोंकी प्रशंसासे दूर है और जो अन्य शासन सम्बन्धी स्तवनसे वर्जित हैं वे गृहस्थोंमें प्रधान पदको प्राप्त हैं ॥२१७-२१८॥ जो उत्तम वस्त्रका धारक है, जिसके शरीरसे सुगन्धि निकल रही है, जिसका दर्शन सबको प्रिय लगता है, नगरकी स्त्रियाँ जिसकी प्रशंसा कर रही हैं, जो पृथिवीको देखता हुआ चलता है, जिसने सब विकार छोड़ दिये हैं, जो उत्तम भावनासे युक्त है और अच्छे कार्योंके करनेमें तत्पर है ऐसा होता हुआ जो जिनेन्द्रदेवकी वन्दनाके लिए जाता है उसे अनन्त पुण्य प्राप्त होता है ॥२१९-२२०॥ जो परद्रव्यको तृणके समान, परपुरुषको अपने समान और परस्त्रीको माताके समान देखते हैं वे धन्य हैं ॥२२१॥ 'मैं दीक्षा लेकर पृथिवीपर कब विहार करूँगा ? और कब कर्मोंको नष्ट कर सिद्धालयमें पहुँचूँगा' जो निर्मल चित्तका धारी मनुष्य प्रतिदिन ऐसा विचार करता है कर्म भयभीत होकर ही मानो उसकी संगति नहीं करते ॥२२२-२२३॥ कोई-कोई गृहस्थ प्राणी, सात-आठ भवोंमें मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं और उत्तम हृदयको धारण करनेवाले कितने ही मनुष्य तीक्ष्ण तप कर दो-तीन भवमें ही मुक्त हो जाते हैं ॥२२४॥ मध्यम भव्य प्राणी शीघ्र ही महान् आनन्द अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं पर जो असमर्थ हैं किन्तु मार्गको जानते हैं वे कुछ विश्राम करनेके बाद महाआनन्द प्राप्त कर पाते हैं ॥२२५॥ जो मनुष्य मार्गको न जानकर दिनमें सौ-सौ योजन तक गमन करता है वह भटकता ही रहता है तथा चिरकाल तक भी इष्ट स्थानको नहीं प्राप्त कर सकता है ॥२२६॥ जिनका श्रद्धान मिथ्या है ऐसे लोग उग्र तपश्चरण करते हुए भी जन्म-मरणसे रहित पद नहीं प्राप्त कर पाते हैं ॥२२७॥ जो मोक्षमार्ग अर्थात् रत्नत्रयसे भ्रष्ट हैं वे मोहरूपी अन्ध-कारसे आच्छादित तथा कषायरूपी सर्पोंसे व्याप्त संसाररूपी अटवीमें भटकते रहते हैं ॥२२८॥ जिसके न शील है, न सम्यक्त्व है और न उत्तम त्याग ही है उसका संसार-सागरसे सन्तरण किस प्रकार हो सकता है ? ॥२२९॥ विन्ध्याचलके जिस प्रवाहमें पहाड़के समान ऊँचे-ऊँचे हाथी बह जाते हैं उसमें बेचारे खरगोश तो निःसन्देह ही बह जाते हैं ॥२३०॥ जहाँ कुतीर्थका उपदेश देनेवाले कुगुरु भी जन्म-जरा-मृत्युरूपी

---

१. वेदना ख. । २. मिथ्यादृशः । ३. गिरिवदुन्नताः ।

तत्र तारयितुं शक्ता न शिला शकिते सलिले । तथा परिग्रहासक्ताः कुतीर्थ्याः शरणागतान् ॥२३२॥
तपोनिर्दग्धपापा ये लघवस्तत्त्ववेदिनः[1] । त एव तारणे शक्ता जनानामुपदेशतः ॥२३३॥
संसारसागरे भीमे रत्नद्वीपोऽयमुत्तमः । यदेतन्मानुषं क्षेत्रं[2] तद्धि दुःखेन लभ्यते ॥२३४॥
तस्मिन्नियमरत्नानि गृहीतव्यानि धीमता । अवश्यं देहमुत्सृज्य कर्तव्यो भवसंक्रमः ॥२३५॥
अतो यथात्र सूत्रार्थं कश्चित् संचूर्णयेन्मणीन् । विषयार्थं तथा धर्मरत्नानां चूर्णको जनः ॥२३६॥
अनित्यत्वं शरीरादेरभावं शरणस्य च । अशुचित्वं तथान्यत्वमात्मनो देहपञ्जरात् ॥२३७॥
एकत्वमथ संसारो लोकस्य च विचित्रता । आस्रवः संवरः पूर्वकर्मणां निर्जरा तथा ॥२३८॥
बोधिदुर्लभताधर्मस्वाख्यातत्वं जिनेश्वरैः । द्वादशैवमनुप्रेक्षाः कर्तव्या हृदये सदा ॥२३९॥
आत्मनः शक्तियोगेन धर्मं यो यादृशं भजेत् । स तस्य तादृशं भुङ्क्ते फलं देवादिभूमिषु ॥२४०॥
एवं वदत्तसौ पृष्टो भानुकर्णेन केवली । सभेदं नियमं नाथ ज्ञातुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥२४१॥
ततो जगाद भगवान्भानुकर्णावधारय । नियमश्च तपश्चेति द्वयमेतन्न भिद्यते ॥२४२॥
तेन युक्तो जनः शक्त्या तपस्वीति निगद्यते । तत्र सर्वप्रयत्नेन मतिः कार्या सुमेधसा ॥२४३॥
स्वल्पं स्वल्पमपि प्राज्ञैः कर्तव्यं सुकृतार्जनम् । पतद्भिर्बिन्दुभिर्जाता महानद्यः समुद्रगाः ॥२४४॥
अहो मुहूर्तमात्रं यः कुरुते भुक्तिवर्जनम् । फलं तस्योपवासेन समं मासेन जायते ॥२४५॥

आवर्तोंसे युक्त संसाररूपी प्रवाहमें चक्कर काटते हैं, वहाँ उनके भक्तोंकी कथा ही क्या है ? ॥२३१॥ जिस प्रकार पानीमें पड़ी शिलाको शिला ही तारनेमें समर्थ नहीं है उसी प्रकार परिग्रही साधु शरणागत परिग्रही भक्तोंको तारनेमें समर्थ नहीं हैं ॥२३२॥ जो तपके द्वारा पापोंको जलाकर हलके हो गये हैं ऐसे तत्त्वज्ञ मनुष्य ही अपने उपदेशसे दूसरोंको तारनेमें समर्थ होते हैं ॥२३३॥ जो यह मनुष्य क्षेत्र है सो भयंकर संसार-सागरमें मानो उत्तम रत्नद्वीप है। इसकी प्राप्ति बड़े दुःखसे होती है ॥२३४॥ इस रत्नद्वीपमें आकर बुद्धिमान् मनुष्यको अवश्य ही नियमरूपी रत्न ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि वर्तमान शरीर छोड़कर पर्यायान्तरमें अवश्य ही जाना होगा ॥२३५॥ इस संसारमें जो विषयोंके लिए धर्मरूपी रत्नोंका चूर्ण करता है वह वैसा ही है जैसा कि कोई सूत प्राप्त करनेके लिए मणियोंका चूर्ण करता है ॥२३६॥ शरीरादि अनित्य है, कोई किसीका शरण नहीं है, शरीर अशुचि है, शरीररूपी पिंजड़ेसे आत्मा पृथक् है, यह अकेला ही सुख-दुःख भोगता है, संसारके स्वरूपका चिन्तवन करना, लोक की विचित्रताका विचार करना, आस्रवके दुर्गुणोंका ध्यान करना, संवरकी महिमाका चिन्तवन करना, पूर्वबद्ध कर्मोंकी निर्जराका उपाय सोचना, बोधि अर्थात् रत्नत्रयकी दुर्लभताका विचार करना और धर्मका माहात्म्य सोचना—जिनेन्द्र भगवान्ने ये बारह भावनाएँ कही हैं सो इन्हें सदा हृदयमें धारण करना चाहिए ॥२३७-२३९॥ जो अपनी शक्तिके अनुसार जैसे धर्मका सेवन करता है वह देवादि गतियोंमें उसका वैसा ही फल भोगता है ॥२४०॥

इस प्रकार उपदेश देते हुए अनन्तबल केवलीसे भानुकर्णने पूछा कि हे नाथ ! मैं अब नियम तथा उसके भेदोंको जानना चाहता हूँ ॥२४१॥ इसके उत्तरमें भगवान्ने कहा कि हे भानुकर्ण ! ध्यान देकर अवधारण करो। नियम और तप ये दो पदार्थ पृथक्-पृथक् नहीं हैं ॥२४२॥ जो मनुष्य नियमसे युक्त है वह शक्तिके अनुसार तपस्वी कहलाता है इसलिए बुद्धिमान् मनुष्यको सब प्रकारसे नियम अथवा तपमें प्रवृत्त रहना चाहिए ॥२४३॥ बुद्धिमान् मनुष्योंको थोड़ा-थोड़ा भी पुण्यका संचय करना चाहिए क्योंकि एक-एक बूँदके पड़नेसे समुद्र तक बहनेवाली बड़ी-बड़ी नदियाँ बन जाती हैं ॥२४४॥ जो दिनमें एक मुहूर्तके लिए भी भोजनका त्याग करता है उसे एक महीनेमें

१. स्तोककर्माणः । २. शरीरम् ।

तत्र स्वर्गे सहस्राणि समानां दश कीर्तितम् । भुञ्जानस्य जैनस्योद्भवभोगं चित्तोपपादितम्[2] ॥२४६॥
श्रद्धानो मतं जैनं यः करोति पुरोदितम् । पल्यैस्तस्योपमानो[3] यः कालः स्वर्गे महात्मनः ॥२४७॥
च्युत्वा तत्र मनुष्यत्वे लभते भोगमुत्तमम् । यथोपवनया लब्धं तापसान्वयजातया ॥२४८॥
दुःखिन्युपवनाऽबन्धुर्बदराद्युपजीविनी । आदरादीक्षिता राज्ञा मुहूर्तव्रतसंभवात् ॥२४९॥
कुमारी व्रतकस्यान्ते परया द्रव्यसंपदा । योजिता सुतरां जाता धर्मसंविग्नमानसा ॥२५०॥
जिनेन्द्रवचनं यस्तु कुरुतेऽन्तरवर्जितम् । अनन्तरमसौ सौख्यं परलोके गतोऽश्नुते ॥२५१॥
मुहूर्तद्वितयं यस्तु न भुङ्क्ते प्रतिवासरम् । षष्ठोपवासिता तस्य जन्तोर्मासेन जायते ॥२५२॥
मुहूर्तत्रिंशतं कृत्वा काले यावति तावति । आहारवर्जनं जन्तुरुपवासफलं भजेत् ॥२५३॥
मुहूर्तयोजनं कार्यमेवमेवाष्टमादिषु । अधिकं तु फलं वाच्यं हेतुवद्वचनरूपतः ॥२५४॥
अवाप्यास्य फलं नाके नियमस्य शरीरिणः । मनुष्यतां समासाद्य जायन्तेऽद्भुतचेष्टिताः ॥२५५॥
लावण्यपङ्किलाङ्गानां हृतिविभ्रमकारिणाम् । स्वर्गेभ्यश्च्युतपुण्यानां पतयो धर्मशेषतः ॥२५६॥
स्त्रियोऽपि स्वर्गतश्च्युत्वा मनुष्यभवमागताः । महापुरुषसंसेव्या यान्ति लक्ष्मीसमानताम् ॥२५७॥
आदित्येऽस्तंमनुप्राप्ते कुरुते योऽन्नवर्जनम् । भवेदभ्युदयोऽस्यापि सम्यग्दृष्टेर्विशेषतः ॥२५८॥
अप्सरोमण्डलान्तःस्थो विमाने रत्नभासुरे । बहुपल्योपमं कालं धर्मेणानेन तिष्ठति ॥२५९॥

उपवासके समान फल प्राप्त होता है ॥२४५॥ संकल्प मात्रसे प्राप्त होनेवाले उत्कृष्ट भोगोंका उपभोग करते हुए इस जीवको कमसे कम दसहजार वर्ष तो लगते ही हैं ॥२४६॥ और जो जैनधर्मकी श्रद्धा करता हुआ पूर्वप्रतिपादित व्रतादि धारण करता है उस महात्माका स्वर्गमें कमसे कम एक पल्य प्रमाण काल बीतता है ॥२४७॥ वहाँसे च्युत होकर वह मनुष्य गतिमें उस प्रकार उत्तम भोग प्राप्त करता है जिस प्रकार तापसवंशमें उत्पन्न हुई उपवनाने प्राप्त किये थे ॥२४८॥

एक उपवना नामकी दुःखिनी कन्या थी जो भाई-बन्धुओंसे रहित थी और बेर आदि खाकर अपनी जीविका करती थी। एक बार उसने मुहूर्त-भरके लिए आहारका त्याग किया। उस व्रतके प्रभावसे राजाने उसका बड़ा आदर किया तथा व्रतके अनन्तर उसे उत्कृष्ट धनसम्पदासे युक्त किया। इस घटनासे उसका मन धर्ममें अत्यन्त उत्साहित हो गया ॥२४९-२५०॥ जो मनुष्य निरन्तर जिनेन्द्र भगवान्‌के वचनोंका पालन करता है वह परलोकमें निर्बाध सुखका उपभोग करता है ॥२५१॥ जो प्रतिदिन दो मुहूर्तके लिए आहारका त्याग करता है उसे महीनेमें दो उपवासका फल प्राप्त होता है ॥२५२॥ इस प्रकार जो एक-एक मुहूर्त बढ़ाता हुआ तीस मुहूर्त तकके लिए आहारका त्याग करता है उसे तीन-चार आदि उपवासोंका फल प्राप्त होता है ॥२५३॥ तेला आदि उपवासोंमें भी इसी तरह मुहूर्तकी योजना कर लेनी चाहिए। जो अधिक कालके लिए त्याग होता है उसका कारणके अनुसार अधिक फल कहना चाहिए ॥२५४॥ प्राणी स्वर्गमें इस नियमका फल प्राप्त कर मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं और वहाँ अद्भुत चेष्टाओंके धारक होते हैं ॥२५५॥ स्वर्गमें फल भोगनेसे जो पुण्य शेष बचता है उसके फलस्वरूप वे कुलवती स्त्रियोंके पति होते हैं। जिनका कि शरीर लावण्यरूपी पंकसे लिप्त रहता है तथा जो मनको हरण करनेवाले हाव-भाव विभ्रम किया करती हैं ॥२५६॥ नियमवाली स्त्रियाँ भी स्वर्गसे चयकर मनुष्य भवमें आती हैं और महापुरुषोंके द्वारा सेवनीय होती हुई लक्ष्मीकी समानता प्राप्त करती हैं ॥२५७॥ जो सूर्यास्त होनेपर अन्नका त्याग करता है उस सम्यग्दृष्टिको भी विशेष अभ्युदयकी प्राप्ति होती है ॥२५८॥ यह जीव इस धर्मके कारण रत्नोंसे जगमगाते विमानोंमें अप्सराओंके

---

१. जनस्योर्ध्वं भोगं म. । जनस्योर्द्ध ब., क. । २. इच्छामात्रेण प्राप्तम् । ३. तस्योपमानीयः मः । ४. -ऽस्तमन-प्राप्ते म. ।

मनुष्यत्वं समासाद्य दुर्लभं तत्परायणैः । महेशानस्य कर्तव्यं जिनस्य समुपासनम् ॥२६०॥
यस्य काञ्चननिर्माणा योजनं जायते मही । आसने जायते देवतिर्यग्मानुषसेविता ॥२६१॥
प्रातिहार्याणि यस्याष्टौ चतुस्त्रिंशन्महाद्भुताः । सहस्रभास्कराकारं रूपं लोचनसौख्यदम् ॥२६२॥
भव्यः प्रणाममेतस्य यः करोति विचक्षणः । समुत्तरति कालेन स स्तोकेन भवार्णवम् ॥२६३॥
उपायमेतमुज्झित्वा शान्तिप्राप्तौ शरीरिणाम् । नान्यः कश्चिदुपायोऽस्ति तस्मात्सेव्यः स यत्नतः ॥२६४॥
मार्गा गोदण्डकाकाराः सन्त्यन्येऽपि सहस्रशः । कुतीर्थसंश्रिता येषु विमुह्यन्ति प्रमादिनः ॥२६५॥
न सम्यक्करुणा तेषु मधुमांसादिसेवनात् । जैने तु कणिकाप्यस्ति न दोषस्य प्ररूपणे ॥२६६॥
त्याज्यमेतदहो लोके यत्प्रपोष्य दिवा क्षुधा । आत्मानं रजनीभुक्त्या गमयत्यर्जितं क्षुभम् ॥२६७॥
निशिभुक्तिरधर्मो यैर्धर्मत्वेन प्रकल्पितः । पापकर्मकठोराणां तेषां दुःखं प्रबोधनम् ॥२६८॥
दर्शनागोचरीभूते सूर्ये परमकालसः । भुङ्क्ते पापमना अन्धुर्गतिं नावबुध्यते ॥२६९॥
मक्षिकाकीटकेशादि भक्षयते पापबन्धुना । तमःपटलसंछन्नचक्षुषा पापबुद्धिना ॥२७०॥
डाकिनीप्रेतभूतादिकुत्सितप्राणिभिः समम् । भुंक्ते तेन भवेद्येन क्रियते रात्रिभोजनम् ॥२७१॥
सारमेयाखुमार्जारप्रभृतिप्राणिभिः समम् । मांसाहारैर्भवेद्भुक्तं तेन यो निशि वल्गते ॥२७२॥
अथवा किं प्रपञ्चेन पुलाकेनेह भाष्यते । क्षपायामश्नता सर्वं भवेदशुचि भक्षितम् ॥२७३॥

मध्यमें बैठकर अनेक पल्योपमकाल व्यतीत करता है ॥२५९॥ इसलिए दुर्लभ मनुष्य पर्याय पाकर धर्ममें तत्पर रहनेवाले मनुष्योंको महाप्रभु श्रीजिनेन्द्र देवकी उपासना करनी चाहिए ॥२६०॥ जिनके आसनस्थ होनेपर देव, तिर्यंच और मनुष्योंसे सेवित एक योजनकी पृथ्वी स्वर्णमयी हो जाती है ॥२६१॥ जिनके आठ प्रातिहार्य और चौंतीस महाअतिशय प्रकट होते हैं। तथा जिनका रूप हजार सूर्योंके समान देदीप्यमान एवं नेत्रोंको सुख देनेवाला होता है ॥२६२॥ ऐसे महाप्रभु जिनेन्द्र भगवान्‌को जो बुद्धिमान् भव्य प्रणाम करता है वह थोड़े ही समयमें संसार-सागरसे पार हो जाता है ॥२६३॥ जीवोंको शान्ति प्राप्त करनेके लिए यह उपाय छोड़कर और दूसरा कोई उपाय नहीं है इसलिए यत्नपूर्वक इसकी सेवा करनी चाहिए ॥२६४॥ इनके सिवाय कुतीर्थियोंसे सेवित गोदण्डकके समान जो अन्य हजारों मार्ग हैं उनमें प्रमादी जीव मोहित हो रहे हैं—यथार्थ मार्ग भूल रहे हैं ॥२६५॥ उन मार्गाभासोंमें समीचीन दया तो नाममात्रको नहीं है क्योंकि मधु-मांसादिका सेवन खुलेआम होता है पर जिनेन्द्रदेवकी प्ररूपणामें दोष की कणिका भी दृष्टिगत नहीं होती ॥२६६॥ लोकमें यह कार्य तो बिलकुल ही त्यागने योग्य है कि दिनभर तो भूखसे अपनी आत्माको पीड़ा पहुँचाते हैं और रात्रिको भोजन कर संचित पुण्यको तत्काल नष्ट कर देते हैं ॥२६७॥ रात्रिमें भोजन करना अधर्म है फिर भी इसे जिन लोगोंने धर्म मान रखा है, उनके हृदय पापकर्मसे अत्यन्त कठोर हैं उनका समझना कठिन है ॥२६८॥ सूर्यके अदृश्य हो जानेपर जो लम्पटी-पापी मनुष्य भोजन करता है वह दुर्गतिको नहीं समझता ॥२६९॥ जिसके नेत्र अन्धकारके पटलसे आच्छादित हैं और बुद्धि पापसे लिप्त है ऐसे पापी प्राणी रातके समय मक्खी, कीड़े तथा बाल आदि हानिकारक पदार्थ खा जाते हैं ॥२७०॥ जो रात्रिमें भोजन करता है वह डाकिनी, प्रेत, भूत आदि नीच प्राणियोंके साथ भोजन करता है ॥२७१॥ जो रात्रिमें भोजन करता है वह कुत्ते, चूहे, बिल्ली आदि मांसाहारी जीवोंके साथ भोजन करता है ॥२७२॥ अथवा अधिक कहनेसे क्या ?

१. महातिशयाः । महाद्भुतं म. । २. प्रणामं भावेन ब. । ३. मेन -ब. । ४. संचिता म. । ५. दुःख-प्रबोधनम् म. । ६. प्रबन्धनम् क. । ७. दुर्गतिर्नाविबुध्यते ख. । ८. भक्तं म. । ९. भुङ्क्ते । वल्गन भोजने । वल्गते म. । १०. भाष्यते म., क. ।

विरोचनेऽस्तसंसर्गं गते ये भुञ्जते जनाः । ते मानुषतया बद्धाः पशवो गदिता बुधैः ॥२७४॥
नक्तं दिवा च भुञ्जानो विमुखो जिनशासने । कथं सुखी परत्र स्याद्विरतो नियमोज्झितः ॥२७५॥
दयामुक्तो जिनेन्द्राणां पापः [1]कुत्सामुदाहरन् । अन्यदेहं गतो जन्तुः पूतिगन्धमुखो भवेत् ॥२७६॥
मांसं मद्यं निशाभुक्तिं स्तेयमन्यस्य योषितम् । सेवते यो जनस्तेन भवे जन्मद्वयं हतम् ॥२७७॥
ह्रस्वायुर्विसमुक्तश्च व्याधिपीडितविग्रहः । परत्र सुखहीनः स्याद्भक्तं यः [2]प्रत्यवस्यति ॥२७८॥
प्राप्नोति जन्ममृत्युं च दीर्घकालमनन्तरम् । पच्यते गर्भवासेषु दुःखेन निशि भोजनात् ॥२७९॥
वराहकृकमार्जारगृध्रसंकाकादियोनिषु । जायते सुचिरं कालं रात्रिभोजी कुदर्शनः ॥२८०॥
उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योः सहस्राणि कुयोनिषु । आपनीपद्यते दुःखं कुधीर्यो निशि वल्गते ॥२८१॥
अवाप्य यो मतं जैनं नियमेष्ववतिष्ठते । अशेषं किल्बिषं दग्ध्वा सुस्थानं सोऽधिगच्छति ॥२८२॥
रत्नत्रितयसंपूर्णा अणुव्रतपरायणाः । [3]तरणावुदिते भव्या भुञ्जते दोषवर्जितम् ॥२८३॥
अपापास्तेऽधिगच्छन्ति विमानेशाखिविष्टपाः । परं भोगं न ये रात्रौ भुञ्जते करुणा पराः ॥२८४॥
ततश्च्युत्वा मनुष्यत्वं प्राप्य निन्द्याविवर्जितम् । भुञ्जते चक्रवर्त्यादिविभवोपहृतं सुखम् ॥२८५॥
सौधर्मादिषु कल्पेषु [4]मानसानीतकारणम् । प्राप्नुवन्ति परं भोगं सिद्धिं च शुभचेष्टिताः ॥२८६॥
जगद्धिता महामात्या राजानः पीठमर्दिनः । संमताः सर्वलोकस्य भवन्ति दिनभोजनात् ॥२८७॥
धनवन्तो गुणोदाराः सुरूपा दीर्घजीविताः । जिनबोधिसमायुक्ताः प्रधानपदसंस्थिताः ॥२८८॥

संक्षेपमें यही कहा जा सकता है कि जो रातमें भोजन करता है वह सब अपवित्र पदार्थ खाता है ॥२७३॥ सूर्यके अस्त हो जानेपर जो भोजन करते हैं उन्हें विद्वानोंने मनुष्यतासे बँधे हुए पशु कहा है ॥२७४॥ जो जिनशासनसे विमुख होकर रात-दिन चाहे जब खाता रहता है वह नियमरहित अव्रती मनुष्य परलोकमें सुखी कैसे हो सकता है ? ॥२७५॥ जो पापी मनुष्य दयारहित होकर जिनेन्द्र देवकी निन्दा करता है वह अन्य शरीरमें जाकर दुर्गन्धित मुखवाला होता है अर्थात् परभवमें उसके मुखसे दुर्गन्ध आती है ॥२७६॥ जो मनुष्य मांस, मद्य, रात्रिभोजन, चोरी और परस्त्रीका सेवन करता है वह अपने दोनों भवोंको नष्ट करता है ॥२७७॥ जो मनुष्य रात्रिमें भोजन करता है वह पर-भवमें अल्पायु, निर्धन, रोगी और सुखरहित अर्थात् दुःखी होता है ॥२७८॥ रात्रिमें भोजन करनेसे यह जीव दीर्घ काल तक निरन्तर जन्म-मरण प्राप्त करता रहता है और गर्भवासमें दुःखसे पकता रहता है ॥२७९॥ रात्रिमें भोजन करनेवाला मिथ्यादृष्टि पुरुष शूकर, भेड़िया, बिलाव, हंस तथा कौआ आदि योनियोंमें दीर्घ काल तक उत्पन्न होता रहता है ॥२८०॥ जो दुर्बुद्धि रात्रिमें भोजन करता है वह हजारों उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल तक कुयोनियोंमें दुःख उठाता रहता है ॥२८१॥ जो जैन धर्म पाकर उसके नियमोंमें अटल रहता है वह समस्त पापोंको जलाकर उत्तम स्थानको प्राप्त होता है ॥२८२॥ रत्नत्रयके धारक तथा अणुव्रतोंका पालन करनेमें तत्पर भव्य जीव सूर्योदय होनेपर ही निर्दोष आहार ग्रहण करते हैं ॥२८३॥ जो दयालु मनुष्य रात्रिमें भोजन नहीं करते वे पापहीन मनुष्य स्वर्गमें विमानोंके अधिपति होकर उत्कृष्ट भोग प्राप्त करते हैं ॥२८४॥ वहाँसे च्युत होकर तथा उत्तम मनुष्य पर्याय पाकर चक्रवर्ती आदिके विभवसे प्राप्त होनेवाले सुखका उपभोग करते हैं ॥२८५॥ शुभ चेष्टाओंके धारक पुरुष सौधर्मादि स्वर्गोंमें मनमें विचार आते ही उपस्थित होनेवाले उत्कृष्ट भोगों तथा अणिमा-महिमा आदि आठ सिद्धियों-को प्राप्त होते हैं ॥२८६॥ दिनमें भोजन करनेसे मनुष्य जगत्का हित करनेवाले महामन्त्री, राजा, पीठमर्द तथा सर्व लोकप्रिय व्यक्ति होते हैं ॥२८७॥ धनवान्, गुणवान्, रूपवान्, दीर्घायुष्क, रत्नत्रयसे युक्त तथा प्रधान पदपर आसीन व्यक्ति भी दिनमें भोजन करने से ही होते हैं ॥२८८॥

---

१. निन्दाम् । २. भुङ्क्ते, प्रत्यवस्यति ख. । ३. सूर्ये । ४. मानुषासीतकारणं म., मानुषानीतकारणं ब. ।

असह्यतेजसः संख्ये[1] पुरादीनामधीश्वराः । विचित्रवाहनोपेताः सामन्तकृतपूजनाः ॥२८९॥
भवनेशाः सुरेशाश्च चक्राङ्कविभवाश्रिताः । महालक्षणसंपन्ना भवन्ति दिवभोजनात् ॥२९०॥
आदित्यवत्प्रभावन्तश्चन्द्रवत्सौम्यदर्शनाः । [2]अनस्तमितभोगाढ्यास्ते येऽनस्तमितोद्यताः ॥२९१॥
अनाथा दुर्भगा मातृपितृभ्रातृविवर्जिताः । शोकदारिद्र्यसंपूर्णाः स्त्रियः स्युर्निशि भोजनात् ॥२९२॥
रूक्षस्फुटितहस्तादिस्वाङ्गाश्चिपिटनासिकाः । बीभत्सदर्शनाः क्लिन्नचक्षुषो दुष्टलक्षणाः ॥२९३॥
दुर्गन्धविग्रहा भग्नसुमहादशनच्छदाः । उत्क्वणक्षुतयः पिङ्गस्फुटिताम्रशिरोरुहाः ॥२९४॥
अलाबूबीजसंस्थानदशनाः शुष्कविग्रहाः । काणकुण्ठगतच्छाया विवर्णाः परुषत्वचः ॥२९५॥
अनेकरोगसंपूर्णमलिनाछिन्नवाससः । कुत्सिताशनजीविन्यः परकर्मसमाश्रिताः ॥२९६॥
उत्कृत्तश्रवणं[4] विग्नं धनबन्धुविवर्जितम् । प्राप्नुवन्ति पतिं नार्यो रात्रिभोजनतत्पराः ॥२९७॥
दुःखभारसमाक्रान्ता बालवैधव्यसंगताः । अम्बुकाष्ठादिवाहिन्यो दुःपूरोदरतत्पराः ॥२९८॥
सर्वलोकपराभूता वाग्वासीनष्टचेतसः । अङ्गव्रणशतोदारा भवन्ति निशि भोजनात् ॥२९९॥
उपशान्ताशया यास्तु नार्यः शीलसमन्विताः । साधुवर्गहिता रात्रिभोजनाद्विरताभिके[5]ः ॥३००॥
लभन्ते ता यथाभीष्टं भोगं स्वर्गे समाहृताः । परिवारेण मूर्धस्थपाणिना शासनैषिणा[6] ॥३०१॥
ततश्च्युताः स्फुरन्त्युच्चैः कुले विभवधारिणि । शुभलक्षणसंपूर्णा गुणैः सर्वैः समन्विताः ॥३०२॥
कलाविशारदा नेत्रमानसस्नेहविग्रहाः । विमुञ्चन्त्योऽमृतं वाचा ह्लादयन्त्योऽखिलं जनम् ॥३०३॥

जिनका तेज युद्धमें असह्य है, जो नगर आदिके अधिपति हैं, विचित्र वाहनोंसे सहित हैं तथा सामन्तगण जिनका सत्कार करते हैं ऐसे पुरुष भी दिनमें भोजन करनेसे ही होते हैं ॥२८९॥ इतना ही नहीं, भवनेन्द्र, देवेन्द्र, चक्रवर्ती और महालक्षणोंसे सम्पन्न व्यक्ति भी दिनमें भोजन करने से ही होते हैं ॥२९०॥ जो रात्रिभोजनत्यागव्रतमें उद्यत रहते हैं वे सूर्यके समान प्रभावान्, चन्द्रमाके समान सौम्य और स्थायी भोगोंसे युक्त होते हैं ॥२९१॥ रात्रिमें भोजन करने से स्त्रियाँ अनाथ, दुर्भाग्यशाली, मातापिता भाईसे रहित तथा शोक और दारिद्र्यसे युक्त होती हैं ॥२९२॥ जिनकी नाक चपटी है, जिनका देखना ग्लानि उत्पन्न करता है, जिनके नेत्र कीचड़से युक्त हैं, जो अनेक दुष्टलक्षणोंसे सहित हैं, । जिनके शरीरसे दुर्गन्ध आती रहती है, जिनके ओठ फटे और मोटे हैं, कान खड़े हैं, शिरके बाल पीले तथा चटके हैं, दाँत तूंबड़ीके बीजके समान हैं और शरीर सफेद है, जो कानी, शिथिल तथा कान्तिहीन हैं, रूपरहित हैं, जिनका चर्म कठोर है । जो अनेक रोगोंसे युक्त तथा मलिन हैं, जिनके वस्त्र फटे हैं, जो गन्दा भोजन खाकर जीवित रहती हैं, और जिन्हें दूसरेकी नौकरी करनी पड़ती है, ऐसी स्त्रियाँ रात्रि भोजनके ही पापसे होती हैं ॥२९३–२९६॥ रात्रिभोजनमें तत्पर रहनेवाली स्त्रियाँ बूचे नकटे और धन तथा भाई-बन्धुओंसे रहित पतिको प्राप्त होती हैं ॥२९७॥ जो दुःखके भारसे निरन्तर आक्रान्त रहती हैं, बाल अवस्थामें ही विधवा हो जाती हैं, पानी, लकड़ी आदि ढो-ढो कर पेट भरती हैं, अपना पेट बड़ी कठिनाईसे भर पाती हैं, सब लोग जिनका तिरस्कार करते हैं, जिनका चित्त वचन रूपी बसूलासे नष्ट होता रहता है और जिनके शरीरमें सैकड़ों घाव लगे रहते हैं, ऐसी स्त्रियाँ रात्रि भोजनके कारण ही होती हैं ॥२९८–२९९॥ जो स्त्रियाँ शान्त चित्त, शील सहित, मुनिजनोंका हित करनेवाली और रात्रि भोजनसे विरत रहती हैं वे स्वर्गमें यथेच्छ भोग प्राप्त करती हैं। शिरपर हाथ रखकर आज्ञाकी प्रतीक्षा करनेवाले परिवारके लोग उन्हें सदा घेरे रहते हैं ॥३००–३०१॥ स्वर्गसे च्युत होकर वे वैभवशाली उच्च कुलमें उत्पन्न होती हैं, शुभ लक्षणोंसे युक्त तथा समस्त गुणोंसे सहित होती हैं ॥३०२॥ अनेक कलाओंमें निपुण रहती हैं, उनके शरीर नेत्र और मनमें स्नेह उत्पन्न करनेवाले

१. युद्धे । २. अभङ्गुरभोगयुक्ताः । ३. 'कुण्ठो मन्दः क्रियासु यः' इत्यमरः । ४. छिन्नकर्णम् । उत्कृत्तश्रवणं म., ब. । उत्कृष्टश्रवणं ख. । ५. विरताभिका म. । ६. शासनैषिणः म. ।

भवन्त्युत्कण्ठया युक्तास्तासु विद्याधराधिपाः । हरयो बलदेवाश्च तथा चक्राङ्कितश्रियः ॥३०३॥
त्रिभुवनलोकाक्रान्ताः पुरुषास्तेऽतिदुष्कराः । नरेन्द्रकृतसंबन्धा भवन्ति दिनभोजनात् ॥३०४॥
अन्नं यथेप्सितं तासां जायते भृत्यकल्पितम् । निशासु या न कुर्वन्ति भोजनं करुणापराः ॥३०६॥
श्रीकान्तासुप्रभासुख्याः सुभद्रासदृशस्तथा । लक्ष्मीसमश्रियो योषा भवन्ति दिनभोजनात् ॥३०७॥
तस्मान्नरेण नार्या वा नियमस्थेन चेतसा । वर्जनीया निशाभुक्तिरनेकापायसंगता ॥३०८॥
अत्यल्पेन प्रयासेन शर्मैवमुपलभ्यते । ततो सजत तं नित्यं स्वसुखं को न वाञ्छति ॥३०९॥
धर्मो मूलं सुखोत्पत्तेरधर्मो दुःखकारणम् । इति ज्ञात्वा भजेद्धर्मंमधर्मं च विवर्जयेत् ॥३१०॥
आगोपालाङ्गनं लोके [1]प्रसिद्धिमिदमागतम् । यथा धर्मेण शर्मेति विपरीतेन [4]दुःखितम् ॥३११॥
धर्मस्य पश्य माहात्म्यं येन नाकच्युता नराः । उत्पद्यन्ते महाभोगा मनुष्यत्वे मनोहराः ॥३१२॥
जलस्थलसमुद्भूतरत्नानां ते समाश्रयाः । औदासीन्यमपि प्राप्ता भवन्ति सुखिनः सदा ॥३१३॥
सुवर्णवस्त्रसस्यादिभाण्डागाराणि मानवैः । रक्ष्यन्ते सततं तेषां विचित्रायुधपाणिभिः ॥३१४॥
प्रभूतं गोमहिष्यादिवारणास्तुरगा रथाः । भृत्या जनपदा ग्रामाः प्रासादा नगराणि च ॥३१५॥
दासवर्गो विशाला श्रीर्विष्टरं हरिभिर्धृतम् । मानसस्येन्द्रियाणां च विषयाहरणक्षमाः ॥३१६॥
हंसीविभ्रमगामिन्यो घनलावण्यविग्रहाः । माधुर्ययुक्तनिस्वानाः पीनस्तन्यः सुलक्षणाः ॥३१७॥
चक्षुषां वागुरानुरूपास्तरुण्यो [5]हारिचेष्टिताः । नानालंकारधारिण्यो दास्यः पुण्यफलास्त्रिकाः ॥३१८॥

होते हैं, अपने वचनोंसे मानो वे अमृत छोड़ती हैं, समस्त लोगोंको आनन्दित करती हैं ॥३०३॥ विद्याधरोंके अधिपति, नारायण, बलदेव और चक्रवर्ती भी उनमें उत्कण्ठित रहते हैं—उन्हें प्राप्त करनेके लिए उत्सुक रहते हैं ॥३०४॥ जिनके शरीरकी कान्ति बिजली तथा लाल कमलके समान मनोहारी है, जिनके सुन्दर कुण्डल सदा हिलते रहते हैं, तथा राजाओंके साथ जिनके विवाह सम्बन्ध होते हैं ऐसी स्त्रियाँ दिनमें भोजन करनेसे ही होती हैं ॥३०५॥ जो दयावती स्त्रियाँ रात्रिमें भोजन नहीं करती हैं उन्हें सदा भृत्यजनोंके द्वारा तैयार किया हुआ मनचाहा भोजन प्राप्त होता है ॥३०६॥ दिनमें भोजन करनेसे स्त्रियाँ श्रीकान्ता, सुप्रभा, सुभद्रा और लक्ष्मीके समान कान्ति-युक्त होती हैं ॥३०७॥ इसलिए नर हो चाहे नारी, दोनोंको अपना चित्त नियममें स्थिरकर अनेक दुःखोंसे सहित जो रात्रि भोजन है उसका त्याग करना चाहिए ॥३०८॥ इस प्रकार थोड़े ही प्रयाससे जब सुख मिलता है तो उस प्रयासका निरन्तर सेवन करो। ऐसा कौन है जो अपने लिए सुखकी इच्छा न करता हो ॥३०९॥ 'धर्म सुखोत्पत्तिका कारण है और अधर्म दुःखोत्पत्तिका' ऐसा जानकर धर्मकी सेवा करनी चाहिए और अधर्मका परित्याग ॥३१०॥ यह बात गोपालकों तकमें प्रसिद्ध है कि धर्मसे सुख होता है और अधर्मसे दुःख ॥३११॥ धर्मका माहात्म्य देखो कि जिसके प्रभावसे प्राणी स्वर्गसे च्युत होकर मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं और वहाँ महाभोगोंसे युक्त तथा मनोहर शरीरके धारक होते हैं ॥३१२॥ वे जल तथा स्थलमें उत्पन्न हुए रत्नोंके आधार होते हैं और उदासीन होनेपर भी सदा सुखी रहते हैं ॥३१३॥ ऐसे मनुष्योंके स्वर्ण, वस्त्र तथा धान आदिके भाण्डारोंकी रक्षा हाथोंमें विविध प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले लोग किया करते हैं ॥३१४॥ उन्हें अत्यधिक गाय, भैंस आदि पशु, हाथी, घोड़े, रथ, पयादे, देश, ग्राम, महल, नौकरोंके समूह, विशाल लक्ष्मी और सिंहासन प्राप्त होते हैं। साथ ही जो मन और इन्द्रियोंके विषय उत्पन्न करने-में समर्थ हैं, जिनकी चाल हंसीके समान विलास पूर्ण है, जिनका शरीर अत्यधिक सौन्दर्यसे युक्त है, जिनकी आवाज मीठी है, जिनके स्तन स्थूल हैं, जो अनेक शुभ लक्षणोंसे युक्त हैं, जो नेत्रोंको पराधीन करनेके लिए जालके समान हैं, तथा जिनकी चेष्टाएँ मनोहर हैं ऐसी अनेक तरुण स्त्रियाँ

१. नारायणाः । २. नियमस्तेन म. । ३. प्रसिद्ध -म. । ४. दुःखिता क., ख., म. । ५. मनोरमचेष्टायुक्ताः । हारचेष्टिताः म., ख. ।

उपायं केचिदज्ञात्वा धर्माख्यं सुखसंततेः । मूढा तस्य समारम्भे न यतन्तेऽसुधारिणः ॥३१९॥
पापकर्मवशात्मानः केचिच्छ्रुत्वापि मानवाः । शर्मोपायं न सेवन्ते धर्मं दुष्कृततत्पराः ॥३२०॥
उपशान्ति गते केचित्सच्चेष्टारोधिकर्मणि । अभिगम्य गुरुं धर्मं पृच्छन्त्युद्यतचेतसः ॥३२१॥
उपशान्तेरशुद्धस्य[1] कर्मणस्तद्गुरोर्वचः । अर्थवज्जायते तेषु श्रेष्ठानुष्ठानकारिषु ॥३२२॥
धर्मं ये नियमं प्राज्ञाः कुर्वते मुक्तदुष्कृताः । [2]एके भवन्ति ते नाके द्वितीया वा महागुणाः ॥३२३॥
समयं येऽनगाराणां भुञ्जतेऽतीत्य भक्तितः । तेषां स्वर्गे सुखप्रेक्षामाकाङ्क्षन्ति सुराः सदा ॥३२४॥
इन्द्रत्वं देवसङ्घानां ते प्रयान्ति सुतेजसः । जनाः सामानिकत्वं वा संपादितयथेप्सिताः ॥३२५॥
न्यग्रोधस्य यथा स्वल्पं बीजमुच्चैस्तरुर्भवेत् । तपोऽल्पमपि सद्धस्यान्महाभोगफलावहम् ॥३२६॥
समः कुबेरकान्तस्य नेत्रबन्धनविग्रहः । [3]धर्मसक्तमतिर्नित्यं जायते पूर्वधर्मतः ॥३२७॥
मुनिवेलाव्रतो दत्त्वा मुनेर्भिक्षां समागतः । रत्नवृष्टिं सहस्राख्यः कुबेरदयितोऽभवत्[4] ॥३२८॥
महीमण्डलविख्यातो नामोदारपराक्रमः । धनेन महता युक्तो भृत्यमण्डलमध्यगः ॥३२९॥
पौर्णमास्यां यथा [5]चन्द्रः कान्तदर्शनविग्रहः । भुञ्जानः परमं भोगं सर्वशास्त्रार्थकोविदः ॥३३०॥
पूर्वधर्मानुभावेन परं निर्वेदमागतः । अभीयाय महादीक्षां जिनेन्द्रमुखनिर्गताम् ॥३३१॥

और नाना अलंकार धारण करनेवाली दासियाँ पुण्यके फलस्वरूप प्राप्त होती हैं ॥३१५-३१८॥ कितने ही मूर्ख प्राणी ऐसे हैं कि जो सुख-समूहकी प्राप्तिका कारण धर्म है उसे जानते ही नहीं हैं अतः वे उसके साधनके लिए प्रयत्न ही नहीं करते ॥३१९॥ और जिनकी आत्मा पाप कर्मके वशीभूत है तथा जो पाप कर्मोंमें निरन्तर तत्पर रहते हैं ऐसे भी कितने ही लोग हैं कि जो धर्मको सुख प्राप्तिका साधन सुनकर भी उसका सेवन नहीं करते ॥३२०॥ उत्तम कार्योंके बाधक पापकर्मके उपशान्त हो जानेपर कुछ ही जीव ऐसे होते हैं कि जो उत्सुक चित्त हो गुरुके समीप जाकर धर्मका स्वरूप पूछते हैं ॥३२१॥ तथा पाप कर्मके उपशान्त होनेसे यदि वे जीव उत्तम आचरण करने लगते हैं तो उनमें सद्गुरुके वचन सार्थक हो जाते हैं ॥३२२॥ जो बुद्धिमान् मनुष्य पापका परित्याग कर इस नियमका पालन करते हैं वे स्वर्गमें महागुणोंके धारक होते हुए प्रथम अथवा द्वितीय होते हैं ॥३२३॥ जो मनुष्य भक्ति-पूर्वक मुनियोंके भोजन करनेका समय बिताकर बादमें भोजन करते हैं स्वर्गमें देव लोग सदा उन्हें सुखी देखनेकी इच्छा करते हैं ॥३२४॥ उत्तम तेजको धारण करनेवाले वे पुरुष देवोंके समूहके इन्द्र होते हैं अथवा मनचाहे भोग प्राप्त करनेवाले सामानिक पदको प्राप्त करते हैं ॥३२५॥ जिस प्रकार वट वृक्षका छोटा-सा बीज आगे चलकर ऊँचा वृक्ष हो जाता है उसी प्रकार छोटा-सा तप भी आगे चलकर महाभोग रूपी फलको धारण करता है ॥३२६॥ जिसकी बुद्धि निरन्तर धर्ममें आसक्त रहती है ऐसा मनुष्य अपने पूर्वाचरित धर्मके प्रभावसे कुबेरकान्तके समान नेत्रोंको आकर्षित करनेवाले सुन्दर शरीरका धारक होता है ॥३२७॥ एक सहस्रभट नामका पुरुष था। उसने मुनिवेलाव्रत धारण किया था अर्थात् मुनियोंके भोजन करनेका समय बीत जानेके बाद ही वह भोजन करता था। एक बार उसने मुनिके लिए आहार दिया। उसके प्रभावसे उसके घर रत्नवृष्टि हुई और वह मरकर परभवमें कुबेरकान्त सेठ हुआ ॥३२८॥ जो कि भूमण्डलमें प्रसिद्ध, उत्कृष्ट पराक्रमी, महाधनसे युक्त और सेवक समूहके मध्यमें स्थित रहनेवाला था ॥३२९॥ पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान उसका शरीर अत्यन्त सुन्दर था और वह उत्कृष्ट भोगोंको भोगता हुआ समस्त शास्त्रोंका अर्थ जाननेमें निपुण था ॥३३०॥ पूर्व धर्मके प्रभावसे ही उसने परम

१. रधर्मस्य म.। २. अद्वितीयाः। ३. धर्मे सक्तमति ख.। धर्मशक्तमति म.। ४. भवेत् म., सहस्रभटो मुनेर्दानप्रभावात् कुबेरकान्तनामा श्रेष्ठी अभवत्। ५. चन्द्रकान्तदर्शन म.। चन्द्रः कान्तिदर्शन ख., ब.। ६. सुख म.।

अनगारमहर्षीणां वेलामर्चन्ति ये जनाः । भोगोत्सवं प्रपद्यन्ते परं ते हरिषेणवत् ॥३३२॥
मुनिवेलाप्रतीक्ष्यस्थादुपार्ज्य सुकृतं महत् । हरिषेणः परिप्राप्तो लक्ष्मीमत्यन्तमुन्नताम् ॥३३३॥
मुनेरन्तिकमासाद्य समाधानप्रचोदिताः । एकभक्तं जना ये तु कुर्वते शुद्धदर्शनाः ॥३३४॥
एकभक्तेन ते कालं नीत्वा पञ्चत्वमागताः । उत्पद्यन्ते विमानेषु रत्नभाचक्रवर्तिषु ॥३३५॥
निरथालोकेषु ते तेषु विमानेषु सुचेतसः । रमन्ते सुचिरं कालमप्सरोमध्यवर्तिनः[1] ॥३३६॥
हारिणः कटकाधारप्रकोष्ठाः कटिसूत्रिणः । मौलिमन्तो भवन्त्येते छत्रचामरिणोऽमराः ॥३३७॥
उत्तमव्रतसंसक्ता ये चाणुव्रतधारिणः । शरीरमध्रुवं ज्ञात्वा प्रशान्तहृदया जनाः ॥३३८॥
उपवासं चतुर्दश्यामष्टम्यां च सुमानसाः । सेवन्ते [2]ते निबध्नन्ति चिरमायुस्त्रिविष्टपे ॥३३९॥
सौधर्मादिषु कल्पेषु यान्ति केचित्सुरोत्तमम् । अपरे त्वहमिन्द्रत्वं सुक्षितमन्ये विशुद्धितः ॥३४०॥
विनयेन परिष्वक्ता गुणशीलसमन्विताः । तपःसंयोजितस्वान्ता यान्ति नाकमसंशयम् ॥३४१॥
तत्र कामेन भुक्त्वासौ भोगान्प्राप्तो मनुष्यताम् । भुङ्क्ते राज्यं महज्जैनं मतं च प्रतिपद्यते ॥३४२॥
जिनशासनमासाद्य स क्रमात्साधुचेष्टितः । सर्वकर्मविमुक्तानामालयं प्रतिपद्यते ॥३४३॥
स्तुत्वा कालत्रये यस्तु नमस्यति जिनं त्रिधा । शैलराजवदक्षोभ्यः कुतीर्थमतवायुभिः ॥३४४॥

वैराग्यको प्राप्त हो जिनेन्द्र-प्रतिपादित दीक्षाको धारण किया था ॥३३१॥ जो मनुष्य अनगार महर्षियोंके कालकी प्रतीक्षा करते हैं वे हरिषेण चक्रवर्तीके समान उत्कृष्ट भोगोंको प्राप्त होते हैं ॥३३२॥ हरिषेणने मुनिवेलामें मुनिके आगमनकी प्रतीक्षा कर बहुत भारी पुण्यका संचय किया था इसलिए वह अत्यन्त उन्नत लक्ष्मीको प्राप्त हुआ था ॥३३३॥

शुद्ध सम्यग्दर्शनको धारण करनेवाले जो मनुष्य ध्यानकी भावनासे प्रेरित हो मुनिके समीप जाकर एकभक्त करते हैं अर्थात् एक बार भोजन करनेका नियम लेते हैं और एक भक्तसे ही समय पूरा कर मृत्युको प्राप्त होते हैं वे रत्नोंकी कान्तिसे जगमगाते हुए विमानोंमें उत्पन्न होते हैं ॥३३४-३३५॥ शुद्ध हृदयको धारण करनेवाले वे देव, निरन्तर प्रकाशित रहनेवाले उन विमानोंमें अप्सराओंके बीच बैठकर चिरकाल तक क्रीडा करते हैं ॥३३६॥ जो उत्तम हार धारण किये हुए हैं, जिनकी कलाइयोंमें उत्तम कड़े सुशोभित हैं, जो कमरमें कटिसूत्र और शिरपर मुकुट धारण करते हैं, जिनके ऊपर छत्र फिरता है और पार्श्वमें चमर ढोले जाते हैं ऐसे देव, एक भक्त व्रतके प्रभावसे होते हैं ॥३३७॥

जो महाव्रत धारण करनेकी भावना रखते हुए वर्तमानमें अणुव्रत धारण करते हैं तथा शरीरको अनित्य समझकर जिनके हृदय अत्यन्त शान्त हो चुके हैं ऐसे जो मनुष्य हृदयपूर्वक अष्टमी और चतुर्दशीके दिन उपवास करते हैं वे स्वर्गकी दीर्घायुका बन्ध करते हैं ॥३३८-३३९॥ उनमेंसे कोई तो सौधर्मादि स्वर्गोंमें जन्म लेते हैं, कोई अहमिन्द्र पद प्राप्त करते हैं और कोई विशुद्धताके कारण मोक्ष जाते हैं ॥३४०॥ जो निरन्तर विनयसे युक्त रहते हैं, गुण और शीलव्रतसे सहित होते हैं तथा जिनका चित्त सदा तपमें लगा रहता है ऐसे मनुष्य निःसन्देह स्वर्ग जाते हैं वहाँ इच्छानुसार भोग भोगकर मनुष्य होते हैं, बड़े भारी राज्यका उपभोग करते हैं और जैनमतको प्राप्त होते हैं ॥३४१-३४२॥ जैनमतको पाकर क्रम-क्रमसे मुनियोंका चरित्र धारण करते हैं और उसके प्रभावसे सर्व कर्मरहित सिद्धोंका निकेतन प्राप्त कर लेते हैं ॥३४३॥

जो प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायंकाल इन तीनों कालोंमें मन, वचन, कायसे स्तुति कर जिन देवको नमस्कार करता है अर्थात् त्रिकाल वन्दनाका नियम लेता है वह सुमेरुपर्वतके

---

१. रमन्ते मध्यवर्तिनः म. । २. कटकाधाराः प्रकोष्ठाः म. । ३. ते न विघ्नन्ति ख. । तेन बध्नन्ति म. ।

गुणालङ्कारसंपन्नः सुशीलसुरभीकृतः । सर्वेन्द्रियहरं भोगं भजते त्रिदशालये ॥३४५॥
ततः कतिचिदावृत्तीः कृत्वा शुभगतिद्वये । प्रयाति परमं स्थानं सर्वकर्मविवर्जितः ॥३४६॥
विषया हि समभ्यस्ताश्चिरं सकलजन्तुभिः । ततस्तैर्मोहिताः कर्तुं विरतिं विभवो[1] न ते ॥३४७॥
इदं तत्र परं चित्रं ये तान् दृष्ट्वा विषासवत् । निर्वाणकारणं कर्म सेवन्ते पुरुषोत्तमाः ॥३४८॥
संसारे भ्रमतो जन्तोरेकापि विरतिः कृता । सम्यग्दर्शनयुक्तस्य मुक्तेरायाति बीजताम् ॥३४९॥
एकोऽपि नास्ति येषां तु नियमः प्राणधारिणाम् । पशवस्तेऽथवा भग्नकुम्भा गुणविवर्जिताः ॥३५०॥
गुणव्रतसमृद्धेन[2] नियमस्थेन[3] जन्तुना । भाव्यं प्रमादयुक्तेन संसारतरणैषिणा ॥३५१॥
दुष्कर्म ये न मुञ्चन्ति मानवा मतिदुर्विधाः । भ्रमन्ति भवकान्तारं जात्यन्धा इव ते चिरम् ॥३५२॥
ततस्तेऽनन्तवीर्येन्दुवाक्करीचिसमागमात् । प्रमोदं परमं प्राप्तास्तिर्यङ्मानवनाकजाः ॥३५३॥
सम्यग्दर्शनमायाताः केचित्केचिदणुव्रतम् । महाव्रतधराः केचिज्जाता विक्रमशालिनः ॥३५४॥
अथ धर्मरथाख्येन मुनिनाभाषि रावणः । गृहाण नियमं भव्य कंचिदित्यात्मशक्तितः ॥३५५॥
द्वीपोऽयं धर्मरत्नानामेतन्नाहं[4] परेश्वरः । गृह्यतामेकमप्यस्मात्तत्तं नियमसंज्ञकम् ॥३५६॥
किमर्थमेवमास्से त्वं चिन्ताभारवशीकृतः । महतां हि ननु त्यागो न मतेः खेदकारणम् ॥३५७॥
रत्नद्वीपं प्रविष्टस्य यथा भ्रमति मानसम् । इदं वृत्तं तथैवास्य परमाकुलतां गतम् ॥३५८॥

समान मिथ्यामत रूपी वायुसे सदा अक्षोभ्य रहता है ॥३४४॥ जो गुणरूपी अलंकारोंसे सुशोभित है तथा जिसका शरीर शीलव्रत रूपी चन्दनसे सुगन्धित है ऐसा वह पुरुष स्वर्गमें समस्त इन्द्रियोंको हरनेवाले भोग भोगता है ॥३४५॥ तदनन्तर मनुष्य और देव इन दो शुभगतियोंमें कुछ आवागमन कर सर्वकर्मरहित हो परम धाम (मोक्ष) को प्राप्त हो जाता है ॥३४६॥ चूँकि पंचेन्द्रियोंके विषय सब जीवोंके द्वारा चिरकालसे अभ्यस्त हैं इसलिए इनसे मोहित हुए प्राणी विरति (त्याग—आखड़ी) करनेके लिए समर्थ नहीं हो पाते हैं ॥३४७॥ यहाँ बड़ा आश्चर्य तो यही है कि फिर भी उत्तम पुरुष उन विषयोंको विषमिश्रित अन्नके समान देखकर मोक्ष प्राप्तिके साधक कार्यका सेवन करते हैं ॥३४८॥ संसारमें भ्रमण करनेवाले सम्यग्दृष्टि जीवको यदि एक ही विरति (आखड़ी) प्राप्त हो जाती है तो वह मोक्षका बीज हो जाती है ॥३४९॥ जिन प्राणियोंके एक भी नियम नहीं है वे पशु हैं अथवा रस्सीसे रहित (पक्षमें व्रतशील आदि गुणोंसे रहित) फूटे घड़ेके समान हैं ॥३५०॥ गुण और व्रतसे समृद्ध तथा नियमोंका पालन करनेवाला प्राणी यदि वह संसारसे पार होनेकी इच्छा रखता है तो उसे प्रमादरहित होना चाहिए ॥३५१॥ जो बुद्धिके दरिद्र मनुष्य दुष्कर्म—खोटे कार्य नहीं छोड़ते हैं वे जन्मान्ध मनुष्योंके समान चिरकाल तक संसाररूपी अटवीमें भटकते रहते हैं ॥३५२॥

तदनन्तर वहाँ जो भी तिर्यंच, मनुष्य और देव विद्यमान थे वे उन अनन्तबल केवली रूपी चन्द्रमाके वचन रूपी किरणोंके समागमसे परम हर्षको प्राप्त हुए ॥३५३॥ उनमेंसे कोई तो सम्यग्दर्शनको प्राप्त हुए, कोई अणुव्रती हुए और कोई बलशाली महाव्रतोंके धारक हुए ॥३५४॥ अथानन्तर धर्मरथ नामक मुनिने रावणसे कहा कि हे भव्य! अपनी शक्तिके अनुसार कोई नियम ले ॥३५५॥ ये मुनिराज धर्मरूपी रत्नोंके द्वीप हैं सो इनसे अधिक नहीं तो कमसे कम एक ही नियम रूपी रत्न ग्रहण कर ॥३५६॥ इस प्रकार चिन्ताके वशीभूत होकर क्यों बैठा है? निश्चयसे त्याग महापुरुषोंकी बुद्धिके खेदका कारण नहीं है अर्थात् त्यागसे महापुरुषोंको खिन्नता नहीं होती प्रत्युत प्रसन्नता होती है ॥३५७॥ जिस प्रकार रत्नद्वीपमें प्रविष्ट हुए पुरुषका चित्त 'यह लूँ या यह लूँ' इस तरह चंचल होकर घूमता है उसी प्रकार इस चारित्र रूपी द्वीपमें

---

१. समर्थाः । २. गुणवृत्तसमृद्धेन म. । ३. नियमस्तेन म. । ४. मुनिराजः । ५. -मारेभे म. ।

अथास्य मानसं चिन्ता समारूढेयमुत्कटा । भोगानुरक्तचित्तस्य व्याकुलत्वमुपेयुषः ॥३५९॥
स्वभावेनैव मे शुद्धमन्धो गन्धमनोहरम् । स्वादु वृष्यं परित्यक्तमांसादिमलसंगमम् ॥३६०॥
स्थूलप्राणिवधादिभ्यो विरतिं गृहवासिनाम् । एकामपि न शक्तोऽहं कर्तुं काम्यत्र संकथा ॥३६१॥
मत्तेभसदृशं चेतस्तद्धावस्तत्र वस्तुषु । हस्तेनेवात्मभावेन धर्तुं न प्रभवाम्यहम् ॥३६२॥
हुताशनशिखा पेया वह्नयो वायुरंशुके । उत्क्षेतव्यो धराधीशो निर्ग्रन्थस्वमभीप्सता ॥३६३॥
शूरोऽपि न समर्थोऽहं सेवितुं [1]यत्तपोव्रतम् । अहो चित्रमिदं तद्ये धारयन्ति नरोत्तमाः ॥३६४॥
किमेकमाश्रयाम्येतं नियमं शोभनामपि । अवष्टम्भामि नानिच्छामन्ययोषां बलादिभिः ॥३६५॥
अथवा [2]न मनु क्षुद्रे कुतः शक्तिरियं मयि । स्वस्थाप्यस्य न शक्नोमि वोढुं चित्तस्य निश्चयम् ॥३६६॥
यद्वा लोकत्रये नासौ विद्यते प्रमदोत्तमा । दृष्ट्वा मां विकलत्वं या न व्रजेन्मन्मथार्दिता ॥३६७॥
का वा नरान्तराश्लेषदूषितप्रमदातनौ । ओष्ठचर्मदधानायां परदन्तकृतव्रणम् ॥३६८॥
दुर्गन्धायां स्वभावेन वर्चोराशौ भवेद्धृतिः । नरस्य दधतश्चित्तं मानसंस्कारभाजनम् ॥३६९॥
अवधार्येतिभावेन प्रणम्यानन्तविक्रमम् । देवासुरसमक्षं स प्रकाशमिदमभ्यधात् ॥३७०॥
भगवन् मया नारी परस्येच्छाविवर्जिता । गृहीतव्येति नियमो ममायं कृतनिश्चयः ॥३७१॥
चतुःशरणमाश्रित्य भानुकर्णोऽपि कर्णवान् । इमं नियममातस्थे मन्दरस्थिरमानसः ॥३७२॥

प्रविष्ट हुए पुरुषका भी चित्त 'यह नियम लूँ या यह नियम लूँ' इस तरह परम आकुलताको प्राप्त हो घूमता रहता है ॥३५८॥

अथानन्तर जिसका चित्त सदा भोगोंमें अनुरक्त रहता था और इसी कारण जो व्याकुलताको प्राप्त हो रहा था ऐसे रावणके मनमें यह भारी चिन्ता उत्पन्न हुई कि ॥३५९॥ मेरा भोजन तो स्वभावसे ही शुद्ध है, सुगन्धित है, स्वादिष्ट है, गरिष्ठ है और मांसादिके संसर्गसे रहित है ॥३६०॥ स्थूल हिंसा त्याग आदि जो गृहस्थोंके व्रत हैं उनमेंसे मैं एक भी व्रत धारण करनेमें समर्थ नहीं हूँ फिर अन्य व्रतोंकी चर्चा ही क्या है ? ॥३६१॥ मेरा मन मदोन्मत्त हाथीके समान सर्व वस्तुओंमें दौड़ता रहता है सो उसे मैं हाथके समान अपनी भावनासे रोकनेमें समर्थ नहीं हूँ ॥३६२॥ जो निर्ग्रन्थ व्रत धारण करना चाहता है वह मानो अग्निकी शिखाको पीना चाहता है, वायुको वस्त्रमें बाँधना चाहता है, और सुमेरुको उठाना चाहता है ॥३६३॥ बड़ा आश्चर्य है कि मैं शूर वीर होकर भी जिस तप एवं व्रतको धारण करनेमें समर्थ नहीं हूँ उसी तप एवं व्रतको अन्य पुरुष धारण कर लेते हैं। यथार्थमें वे ही पुरुषोत्तम हैं ॥३६४॥ रावण सोचता है कि क्या मैं एक यह नियम ले लूँ कि परस्त्री कितनी ही सुन्दर क्यों न हो यदि वह मुझे नहीं चाहेगी तो मैं उसे बलपूर्वक नहीं छेड़ूँगा ॥३६५॥ अथवा मुझ क्षुद्र व्यक्तिमें इतनी शक्ति कहाँसे आई ? मैं अपने ही चित्तका निश्चय वहन करनेमें समर्थ नहीं हूँ ॥३६६॥ अथवा तीनों लोकोंमें ऐसी उत्तम स्त्री नहीं है जो मुझे देखकर कामसे पीड़ित होती हुई विकलताको प्राप्त न हो जाय ? ॥३६७॥ अथवा जो मनुष्य मान और संस्कारके पात्र स्वरूप मनको धारण करता है उसे अन्य मनुष्यके संसर्गसे दूषित स्त्रीके उस शरीरमें धैर्य—सन्तोष हो ही कैसे सकता है कि जो अन्य पुरुषके दाँतों द्वारा किये हुए घावसे युक्त ओठको धारण करता है, स्वभावसे ही दुर्गन्धित है और मलकी राशि स्वरूप है ॥३६८-३६९॥ ऐसा विचारकर रावणने पहले तो अनन्तबल केवलीको भाव पूर्वक नमस्कार किया। फिर देवों और असुरोंके समक्ष स्पष्ट रूपसे यह कहा कि ॥३७०॥ हे भगवन् ! 'जो परस्त्री मुझे नहीं चाहेगी मैं उसे ग्रहण नहीं करूँगा' मैंने यह दृढ़ नियम लिया है ॥३७१॥ जो समस्त बातोंको सुन रहा था तथा जिसका मन सुमेरुके समान स्थिर था ऐसे भानुकर्ण (कुम्भकर्ण) ने भी अरहन्त सिद्ध साधु और जिन धर्म इन

---

१. भोजनम् । २. संयतव्रतम् ज. । ३. ननु न म. । नन न क., ख. । ४. भवेद्धृतिः म. ।

करोमि प्रातरुत्थाय साम्प्रतं प्रतिवासरम् । स्तुत्वा पूजां जिनेन्द्राणामभिषेकसमन्विताम् ॥३७३॥
[1]वरिवस्यामि[2]यस्त्राणामकृत्वा विधिनान्वितम् । अद्य प्रभृति नाहारं करोमीति ससंमदः ॥३७४॥
जानुभ्यां भुवमाक्रम्य प्रणम्य मुनिमादरात् । अन्यानपि महाशक्तिनियमान् स समार्जयत् ॥३७५॥
ततो देवा सुरा भक्ताः प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् । यथास्वं निलयं जग्मुर्हर्षविस्तारितेक्षणाः ॥३७६॥
अभि कक्षां दशास्योऽपि प्रतस्थे पृथुविक्रमः । लसद्रूपस्य वधूलीलां सुरनाथसमुद्भवाम् ॥३७७॥
वरस्त्रीजनसंघातैः कृतप्रणतिपूजनः । नगरीं स्वां विवेशासौ वस्त्रादिकृतभूषणाम् ॥३७८॥
प्रविश्य वसतिं स्वां च समस्तविभवार्चिताम् । [3]अनावृत इवातिष्ठद्गंभीरां [4]मान्दरीं गुहाम् ॥३७९॥

वंशस्थवृत्तम्

भवन्ति कर्माणि यदा शरीरिणां प्रशान्तियुक्तानि विमुक्तिभाविनाम् ।
ततोपदेशं परमं गुरोर्मुखादवाप्नुवन्ति प्रभवं शुभस्य ते ॥३८०॥
इति प्रबुद्धोद्यतमानसा जनाः जिनश्रुतौ सज्जत भो पुनः पुनः ।
परेण धर्मं विनयेन शृण्वतां भवत्यमन्दोऽवगमो यथा रविः ॥३८१॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते अनन्तबलधर्माभिधानं नाम चतुर्दशं पर्व ॥१४॥

चारकी शरणमें जाकर यह नियम लिया कि 'मैं प्रतिदिन प्रातः काल उठकर तथा स्तुति कर अभिषेक-पूर्वक जिनेन्द्र देवकी पूजा करूँगा। साथ ही जबतक मैं निर्ग्रन्थ साधुओंकी पूजा नहीं कर लूँगा तबतक आजसे लेकर आहार नहीं करूँगा'। भानुकर्णने यह प्रतिज्ञा बड़े हर्षसे की ॥३७२–३७४॥ इसके सिवाय उसने पृथिवीपर घुटने टेक मुनिराजको आदरपूर्वक नमस्कार कर और भी बड़े-बड़े नियम लिये ॥३७५॥ तदनन्तर हर्षसे जिनके नेत्र फूल रहे थे ऐसे भक्त और असुर मुनिराजको नमस्कार कर अपने-अपने स्थानोंपर चले गये ॥३७६॥ विशाल पराक्रमका धारी रावण भी आकाश-में उड़कर इन्द्रकी लीला धारण करता हुआ लंकाकी ओर चला ॥३७७॥ उत्तमोत्तम स्त्रियोंके समूहने प्रणामपूर्वक जिसकी पूजा की थी ऐसे रावणने वस्त्रादिसे सुसज्जित अपनी नगरीमें प्रवेश किया ॥३७८॥ जिस प्रकार अनावृत देव मेरुपर्वतकी गम्भीर गुहामें रहता है उसी प्रकार रावण भी समस्त वैभवसे युक्त अपने निवासगृहमें प्रवेश कर रहने लगा ॥३७९॥

गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन्! जब भव्य जीवोंके कर्म उपशम भावको प्राप्त होते हैं तब वे सुगुरुके मुखसे कल्याणकारी उत्तम उपदेश प्राप्त करते हैं ॥३८०॥ ऐसा जानकर हे प्रबुद्ध एवं उद्यमशील हृदयके धारक भव्य जनो! तुम लोग बार-बार जिनधर्मके सुननेमें तत्पर होओ क्योंकि जो उत्तम विनयपूर्वक धर्म श्रवण करते हैं उन्हें सूर्यके समान विपुल ज्ञान प्राप्त होता है ॥३८१॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्यके द्वारा कथित पद्मचरितमें अनन्तबल केवलीके द्वारा धर्मोपदेशका निरूपण करनेवाला चौदहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१४॥

---

१. पूजाम् । २. निर्ग्रन्थगुरूणाम् । ३. अनावृतदेव इव । ४. मेरुसंबन्धिनीम् ।

पञ्चदशं पर्व

तस्यैव च मुनेः पार्श्वे हनूमान् गृहिणां व्रतम् । विभीषणश्च जग्राह कृत्वा भावं सुनिश्चितम् ॥१॥
न तथा गिरिराजस्य स्थिरत्वं शस्यते बुधैः । हनूमच्छीलसम्बन्धं यथा परमनिश्चलम् ॥२॥
सौभाग्यादिभिरत्यन्तं हनूमति तेतः स्तुते । इत्यूचे मगधाधीशो रोमाञ्चं बिभ्रदुत्कटम् ॥३॥
हनूमान् को गणाधीश किंविशिष्टः कुतः क्व वा । भगवन्नस्य तत्त्वेन ज्ञातुमिच्छामि चेष्टितम् ॥४॥
ततः सत्पुरुषाभिख्यासंजातपुलकोदयः । वाचाह्लादनकारिण्या गौतमोऽप्रहरोऽवदत् ॥५॥
दक्षिणस्यां नृप श्रेण्यां विजयार्धस्य भूभृतः । दशयोजनमध्वानमतिक्रम्य व्यवस्थितम् ॥६॥
आदित्यनगराभिख्यं पुरमस्ति मनोहरम् । प्रह्लादस्तत्र राजास्य भार्या केतुमती प्रिया ॥७॥
शुभो वायुगतिर्नाम बभूव तनयोऽनयोः । लक्ष्म्या वक्षस्थलं यस्य विपुलं निलयीकृतम् ॥८॥
संपूर्णयौवनं दृष्ट्वा तं सन्तानक्रियां प्रति । चकार जनकश्चिन्तां संतानच्छेदकातरः ॥९॥
आस्तां तावदिदं राजन्निदमन्यन्मनो कुरु । वचनं येन तद्वारसंभवः परिकीर्त्यते ॥१०॥
वासस्य भरतस्यान्ते संनिकृष्टे महोदधेः । पूर्वदक्षिणदिग्भागे दन्तीत्यस्ति महीधरः ॥११॥
विपुलाभ्रंलिहोदारतेजःशिखरसंकटः । नानाद्रुमौषधिव्याप्तः सुनिर्झरमहातटः ॥१२॥
यतः प्रभृति तत्रास्थात्संनिवेश्य वरं पुरम् । विद्याधरो महेन्द्राख्यो महेन्द्रोपमविक्रमः ॥१३॥

अथानन्तर उन्हीं मुनिराजके पास हनुमान् और विभीषणने भी अभिप्रायको सुदृढ़ कर गृहस्थोंके व्रत ग्रहण किये ॥१॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि विद्वान् लोग सुमेरुपर्वतकी स्थिरताकी उस प्रकार प्रशंसा नहीं करते जिस प्रकार कि परमनिश्चलताको प्राप्त हुए हनुमान्के शील और सम्यग्दर्शनकी करते हैं ॥२॥ इस प्रकार जब गौतमस्वामीने सौभाग्य आदिके द्वारा हनुमान्की अत्यधिक प्रशंसा की तब उत्कट रोमांचको धारण करता हुआ श्रेणिक बोला कि ॥३॥ हे गणनाथ ! हनुमान् कौन ? इसकी क्या विशेषता है ? कहाँ किससे इसकी उत्पत्ति हुई है ? हे भगवन् ! मैं इसका चरित्र यथार्थमें जानना चाहता हूँ ॥४॥ तदनन्तर सत्पुरुषका नाम सुननेसे जिन्हें अत्यधिक हर्ष उत्पन्न हो रहा था ऐसे गणधर भगवान् आह्लाद उत्पन्न करनेवाली वाणीमें कहने लगे ॥५॥

हे राजन् ! विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें दश योजनका मार्ग लाँघकर आदित्यपुर नामक एक मनोहर नगर है । वहाँके राजा प्रह्लाद और उनकी रानीका नाम केतुमती था ॥६-७॥ इन दोनोंके पवनगति नामका उत्तम पुत्र हुआ । पवनगतिके विशाल वक्षःस्थलको लक्ष्मीने अपना निवासस्थल बनाया था ॥८॥ उसे पूर्णयौवन देख, सन्तान-विच्छेदका भय रखनेवाले पिताने उसके विवाहकी चिन्ता की ॥९॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! यह कथा तो अब रहने दो । दूसरी कथा हृदयमें धारण करो जिससे कि पवनगतिके विवाहकी चर्चा सम्भव हो सके ॥१०॥

इसी भरत क्षेत्रके अन्तमें महासागरके निकट आग्नेय दिशामें एक दन्ती नामका पर्वत है ॥११॥ जो बड़ी-बड़ी गगनचुम्बी चमकीले शिखरोंसे युक्त है, नाना प्रकारके वृक्ष और औषधियोंसे व्याप्त है तथा जिसके लम्बे-चौड़े किनारे उत्तमोत्तम झरनोंसे युक्त हैं ॥१२॥ महेन्द्रके समान पराक्रमको धारण करनेवाला महेन्द्र विद्याधर उत्तम नगर बसाकर जबसे उस पर्वतपर

---

१. ततस्तुते क , म., ब., अ. । ततोस्तुते ख. । २. गणधरः । ३. गृहीकृतम् । ४. क्षेत्रस्य । ५. तत्रस्थात् म. ।

तत आरभ्य संप्राप महेन्द्राख्यो रसोधरः[1] । महेन्द्रनगरं तच्च पुरं तत्र प्रकीर्तितम् ॥१४॥
तस्यां हृदयवेगायामजनिष्ट महेन्द्रराट्[2] । गुणवन्तः सुतास्तस्यां ततोऽरिंदमादयः ॥१५॥
तदपाद्यनुजा[3] तेषां कीर्तिताऽञ्जनसुन्दरी । त्रैलोक्यसुन्दरीरूपसंदोहेनैव निर्मिता[4] ॥१६॥
नीलनीरजनिर्भासा प्रशस्तकरपल्लवा । पद्मगर्भाभचरणा कुम्भिकुम्भनिभस्तनी ॥१७॥
तनुमध्या पृथुश्रोणी[5] सुजानूरुः[6] सुलक्षणा । प्रफुल्लमालतीमालामृदुबाहुलतायुगा ॥१८॥
कर्णान्तसंगते कान्तिकूटयुक्ते सुदूरगे । इषू ते कामदेवस्य ननु तस्या विलोचने ॥१९॥
गन्धर्वादिकलाभिज्ञा साक्षादिव सरस्वती । लक्ष्मीरिव च रूपेण सा बभूव गुणान्विता ॥२०॥
अन्यदा कन्दुकेनासौ रममाणा[7] सरेचकम् । जलकेलिसमभ्यर्णयौवनाञ्चितविग्रहा ॥२१॥
सुलोचनासुतामर्तुवरश्चिन्तातिदुःखितः[8] । अकम्पननृपस्येव सद्गुणार्पितचेतसः ॥२२॥
तद्वरान्वेषणे तस्य ततः सञ्जाभवन्मतिः । अत्यन्तव्याकुलप्रायः कन्यादुःखं मनस्विनाम् ॥२३॥
गमिष्यति पतिं इलाघ्यं रमयिष्यति सं चिरम् । भविष्यत्युज्झिता दोषैरतिचिन्ता नृणां सुता ॥२४॥
आहूय सुहृदः सर्वांस्ततो विज्ञानभूषणान् । राजा वरविनिश्चित्यै रहोगेहमशिश्रियत् ॥२५॥
जगाद मन्त्रिणश्चैव महो निखिलवेदिनः । सूरयो मम कन्याया वदत प्रवरं वरम् ॥२६॥

रहने लगा था तभीसे उस पर्वतका 'महेन्द्रगिरि' नाम पड़ गया था और उस नगरका महेन्द्रनगर नाम प्रसिद्ध हो गया था ॥१३-१४॥ राजा महेन्द्रकी हृदयवेगा रानीमें अरिंदम आदि सौ गुणवान् पुत्र उत्पन्न हुए ॥१५॥ उनके अंजनासुन्दरी नामसे प्रसिद्ध छोटी बहन उत्पन्न हुई। वह ऐसी जान पड़ती थी मानो तीन लोककी सुन्दर स्त्रियोंका रूप इकट्ठा कर उसके समूहसे ही उसकी रचना हुई थी ॥१६॥

उसकी प्रभा नील कमलके समान सुन्दर थी, हस्तरूप पल्लव अत्यन्त प्रशस्त थे, चरण कमलके भीतरी भागके समान थे, स्तन हाथीके गण्डस्थलके तुल्य थे ॥१७॥ उसकी कमर पतली थी, नितम्ब स्थूल थे, जंघाएँ उत्तम घुटनोंसे युक्त थीं, उसके शरीरमें अनेक शुभ लक्षण थे, उसकी दोनों भुजलताएँ प्रफुल्ल मालतीकी मालाके समान कोमल थीं ॥१८॥ कानों तक लम्बे एवं कान्तिरूपी मूठसे युक्त उसके दोनों नेत्र ऐसे जान पड़ते थे मानो कामदेवके सुदूरगामी बाण ही हों ॥१९॥ वह गन्धर्व आदि कलाओंको जाननेवाली थी इसलिए साक्षात् सरस्वतीके समान जान पड़ती थी और रूपसे लक्ष्मीके तुल्य लगती थी ॥२०॥ इस प्रकार अनेक गुणोंसे सहित वह कन्या किसी समय गोलाकार भ्रमण करती हुई गेंद खेल रही थी कि पिताकी उसपर दृष्टि पड़ी। पिताने देखा कि कन्याका शरीर नव-यौवनसे सुशोभित हो रहा है। उसे देख जिस प्रकार उत्तम गुणोंमें चित्त लगानेवाले राजा अकम्पनको अपनी पुत्री सुलोचनाके योग्य वर ढूँढ़नेकी चिन्ता हुई थी और उससे वह अत्यन्त दुःखी हुआ था उसी प्रकार राजा महेन्द्रको भी पुत्रीके योग्य वर ढूँढ़नेकी चिन्ता हुई सो ठीक ही है क्योंकि स्वाभिमानी मनुष्योंको कन्याका दुःख अत्यन्त व्याकुलता उत्पन्न करनेवाला होता है ॥२१-२३॥ कन्याके पिताको सदा यह चिन्ता लगी रहती है कि कन्या उत्तम पतिको प्राप्त होगी या नहीं, यह उसे चिरकाल तक रमण करा सकेगी या नहीं और निर्दोष रह सकेगी या नहीं। यथार्थमें पुत्री मनुष्यके लिए बड़ी चिन्ता है ॥२४॥

अथानन्तर राजा महेन्द्र ज्ञानरूपी अलंकारसे अलंकृत समस्त मित्रजनोंको बुलाकर वरका निश्चय करनेके लिए एकान्त घरमें गये ॥२५॥ वहाँ उन्होंने मन्त्रियोंसे कहा कि अहो मन्त्रिजनो! आप लोग सब कुछ जानते हैं तथा विद्वान् हैं अतः मेरी कन्याके योग्य उत्तम वर बतलाइए ॥२६॥

---

१. पृथिवीधरः पर्वतः । २. प्रतिषु '-जायत' इति पाठः । ३. उदयाद्यनुजास्तेषां म. । ४. निर्मिताः म. । ५. पृथुश्रेणी म. । ६. सुलक्षणा ख. । ७. स भ्रमणम् । ८. दुःखितः म. । ९. एकान्तगृहम्-स. ।

तत्र मन्त्री जगादैकः कन्येयं भरताधिपे । योज्यतां रक्षसामीशे इति मे [1]निश्चितं मतम् ॥२७॥
रावणं स्वजनं प्राप्य सर्वविद्याधराधिपम् । जगत्यां सागरान्तायां प्रभावस्ते भ्रमिष्यति ॥२८॥
अथवेन्द्रजिते यूने मेघनादाय वा नृप । दीयतामेवमप्येष रावणस्तस्य बान्धवः ॥२९॥
[2]अथैतन्न तवाभीष्टं ततः कन्या स्वयंवरा । विमुच्यतां न वैरी ते तथा सत्युपजायते ॥३०॥
इत्युक्त्वा विरतिं याते[3] मन्त्रिण्यमरसागरे । विद्वान्सुमतिसंज्ञाको जगाद वचनं स्फुटम् ॥३१॥
दशास्योऽनेकपत्नीको महाहङ्कारगोचरः । इमां प्राप्यापि नो तस्य प्रीतिरस्मासु[4] जायते ॥३२॥
षोडशाब्दसमानेऽपि वस्याकारेऽस्य भोगिनः । [5]उत्कृष्टमेव विज्ञेयं नयः परमतेजसः ॥३३॥
इन्द्रजिन्मेघवाहाय रति दाने प्रकुप्यति । मेघवाहस्तथा तस्मै तस्मात्तावपि नो वरौ ॥३४॥
श्रीषेणसुतयोरासीद् गणिकार्थं तदा महत् । पितृदुःखकरं युद्धं स्त्रीहेतोः किं न वेष्यते ॥३५॥
वाक्यं ततोऽनुमन्येदं मत्वा [6]ताराधरायणः । जगाद वचनं [7]चैनं भावेन [8]हृतमानसः ॥३६॥
अयाद्रिदक्षिणं स्थानं कनकं नाम विद्यते । राजा तत्र हिरण्याभः सुमनास्तस्य स्वामिनी ॥३७॥
अभवत्तनयस्तस्य भास्वा सौदामिनीप्रभः । महसा यशसा कान्त्या वयसा चातिशोभनः ॥३८॥
सर्वविद्याकलापारो लोकनेत्रमहोत्सवः । गुणैरनुपमश्चेष्टारञ्जितास्खिलविष्टपः ॥३९॥

तब एक मन्त्रीने कहा कि यह कन्या भरत क्षेत्रके स्वामी राक्षसोंके अधिपति रावणके लिए दी जानी चाहिए ऐसा मेरा निश्चित मत है ॥२७॥ समस्त विद्याधरोंके स्वामी रावण जैसे स्वजनको पाकर आपका प्रभाव समुद्रान्त पृथिवीमें फैल जायेगा ॥२८॥ अथवा हे राजन्! रावणके पुत्र इन्द्रजित् और मेघनाद तरुण हैं सो इन्हें यह कन्या दीजिए क्योंकि उन्हें देनेपर भी रावण स्वजन होगा ॥२९॥ अथवा यह बात भी आपको इष्ट नहीं है तो फिर कन्याको स्वयं पति चुननेके लिए छोड़ दीजिए अर्थात् इसका स्वयंवर कीजिए। ऐसा करनेसे आपका कोई वैरी नहीं बन सकेगा ॥३०॥ इतना कहकर जब अमरसागर मन्त्री चुप हो गया तब सुमति नामका दूसरा विद्वान् मन्त्री स्पष्ट वचन बोला ॥३१॥

उसने कहा कि रावणके अनेक पत्नियाँ हैं, साथ ही वह महाअहंकारी है इसलिए इसे पाकर भी उसकी हम लोगोंमें प्रीति उत्पन्न नहीं होगी ॥३२॥ यद्यपि इस परम प्रतापी भोगी रावणका आकार सोलह वर्षके पुरुषके समान है तो भी उसकी आयु अधिक तो है ही ॥३३॥ अतः इसके लिए कन्या देना मैं उचित नहीं समझता। दूसरा पक्ष इन्द्रजित् और मेघनादका रखा सो यदि मेघनादके लिए कन्या दी जाती है तो इन्द्रजित् कुपित होता है और इन्द्रजित्के लिए देते हैं जो मेघनाद कुपित होता है इसलिए ये दोनों वर भी ठीक नहीं हैं ॥३४॥ पहले राजा श्रीषेणके पुत्रोंमें एक गणिकाके निमित्त पिताको दुःखी करनेवाला बड़ा युद्ध हुआ था यह सुननेमें आता है सो ठीक ही है क्योंकि स्त्रीका निमित्त पाकर क्या नहीं होता है? ॥३५॥

तदनन्तर जिसका हृदय सदभिप्रायसे युक्त था ऐसा ताराधरायण नामका मन्त्री, पूर्व मन्त्रीके वचनोंकी अनुमोदना कर इस प्रकारके वचन बोला ॥३६॥ उसने कहा कि विजयार्ध-पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें एक कनकपुर नामका नगर है। वहाँ राजा हिरण्याभ रहते हैं उनकी रानीका नाम सुमना है ॥३७॥ उन दोनोंके विद्युत्प्रभ नामका पुत्र उत्पन्न हुआ है जो बहुत भारी यश, कान्ति और अवस्थासे अत्यन्त सुन्दर है ॥३८॥ वह समस्त विद्याओं और कलाओंका पारगामी है, लोगोंके नेत्रोंका मानो महोत्सव ही है, गुणोंसे अनुपम है, और अपनी चेष्टाओंसे

१. निश्चयम्-म. । २. अथ तं न क., ख., म., ब., ज. । ३. याति म. । ४. प्रीतिरस्यां सुजायते ख. । ५. अधिकमेव । ६. तारान्धरायणः क., म. । ७. स्वेन क., म., ब., ज. । ८. हृतमानसः ब. । हृतमानसः । क., म., ज ।

सुरविद्याधरैः सर्वैरेकीभूयापि यत्नतः । अजय्यस्त्रिजगच्छक्तिसंग्रहेणेव निर्मितः ॥३९॥
अस्मैयं दीयतां तस्मै भवतां यदि संमतम् । चिरादुपचितां योगी दम्पत्योरनुरूपयोः ॥४१॥
इत्युक्त्वा सुचिरं भूत्वा[2] संमील्य नयने शिरः । जगाद वचनं मन्त्री सान्वा संदेहपारगः ॥४२॥
भव्योऽयं पूर्वजा याता मम क्वेति विचिन्तयन् । संसारप्रकृतिं बुद्ध्वा निर्वेदं परमेष्यति ॥४३॥
विषयेष्वप्रसक्तात्मा वर्षेऽष्टादशसंख्यके । भङ्क्त्वा[3] भोगमहालीनं[4] गृहिता[5] परिहास्यति ॥४४॥
बहिरन्तश्च स सङ्गं परित्यज्य महामनाः । केवलज्ञानमुत्पाद्य किल निर्वाणमेष्यति ॥४५॥
वियुक्तानेन बालेयं अष्टशोभा भविष्यति । शर्वरीव शशाङ्केन जगदालोककारिणा ॥४६॥
[6]शृणुतातोऽस्ति नगरमादित्यपुरसंज्ञकम् । पुरन्दरपुराकारं रत्नैरादित्यभासुरम् ॥४७॥
तत्रेक्ष्वाकुवंशाङ्कोऽत्र प्रह्लादो नाम भोगवान् । तस्य केतुमती पत्नी केतुर्[8]मानसवासिनः ॥४८॥
तयोर्विक्रमसंभारी रूपशीलो गुणाम्बुधिः । पवनञ्जयनामासौ तनयो जयभूषणः ॥४९॥
शुभलक्षणसंच्छन्नविशालोत्तुङ्गविग्रहः[9] । कलानां निलयो वीरो दूरीभूतदुरीहितः ॥५०॥
संवत्सरशतेनापि यस्य वक्तुं न शक्यते । गुणग्रामोऽखिलः[10] प्रायसमस्तजनचेतसः ॥५१॥
अथवा वचनज्ञानमस्पष्टमुपजायते । अतो गत्वैव वीक्षध्वमिमं देवसमद्युतिम् ॥५२॥

उसने समस्त लोकको अनुरंजित कर रखा है ॥३९॥ समस्त देव-विद्याधर एक होकर भी उसे प्रयत्नपूर्वक नहीं जीत सकते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि मानो वह तीनों लोकोंकी शक्ति इकट्ठी कर ही बनाया गया है ॥४०॥ यदि आपकी सम्मति हो तो यह कन्या उसे दी जावे जिससे योग्य दम्पतियोंका चिरकालके लिए संयोग उत्पन्न हो सके ॥४१॥

तदनन्तर सन्देहपारग नामका मन्त्री सिर हिलाकर तथा चिरकाल तक नेत्र बन्द कर निम्नांकित वचन बोला ॥४२॥ उसने कहा कि यह निकट भव्य है तथा निरन्तर ऐसा विचार करता रहता है कि मेरे पूर्वज कहाँ गये ? सो इससे जान पड़ता है कि यह संसारका स्वभाव जानकर परम वैराग्यको प्राप्त हो जायेगा ॥४३॥ जिसकी आत्मा विषयोंमें अनासक्त रहती है ऐसा यह कुमार अठारह वर्षकी अवस्थामें भोगरूपी महाआलानका भंग कर गृहस्थ अवस्था छोड़ देगा ॥४४॥ वह महामना बहिरंग और अन्तरंग परिग्रहका त्याग कर तथा केवलज्ञान उत्पन्न कर निर्वाणको प्राप्त होगा ॥४५॥ सो जिस प्रकार जगत्को प्रकाशित करनेवाले चन्द्रमासे रहित होनेपर रात्रि शोभाहीन हो जाती है उसी प्रकार इससे वियुक्त होनेपर यह बाला शोभाहीन हो जावेगी ॥४६॥ इसलिए मेरी बात सुनो, इन्द्रके नगरके समान सुन्दर तथा रत्नोंसे सूर्यके समान देदीप्यमान एक आदित्यपुर नामका नगर है इसमें प्रह्लाद नामका राजा रहता है जो भोगोंसे युक्त है तथा विद्याधरोंके बीच चन्द्रमाके समान जान पड़ता है। प्रह्लादकी रानी केतुमती है जो कि सौन्दर्यके कारण कामदेवकी पताकाके समान सुशोभित है ॥४७-४८॥ उन दोनोंके एक पवनंजय नामका पुत्र है जो अत्यन्त पराक्रमी, रूपवान्, गुणोंका सागर तथा नयरूपी आभूषणोंसे विभूषित है ॥४९॥ उसका अतिशय ऊँचा शरीर अनेक शुभ लक्षणोंसे व्याप्त है, वह कलाओंका घर, शूरवीर तथा खोटी चेष्टाओंसे दूर रहनेवाला है ॥५०॥ वह सब लोगोंके चित्तमें बसा हुआ है तथा सौ वर्षमें भी उसके समस्त गुणोंका समूह कहा नहीं जा सकता है ॥५१॥ अथवा वचनोंके द्वारा जो किसीका ज्ञान कराया जाता है वह अस्पष्ट ही रहता है इसलिए देवतुल्य कान्तिको धारण करनेवाले इस

---

१ संग्रहेण विनिर्मितः म.। २. कम्पयित्वा। ३. संज्ञके म.। ४. भुक्त्वा म.। ५. महालाभं ज., म.। महालीनां ख.। ६. गृहे तां ख.। ७. शृणुत + अतः + अस्ति। ८. कामस्य। ९. विशालो तुङ्ग म.। १०. खिलप्रायसमस्त म., क., ब.।

ततः केतुमतस्योच्चै[2]र्गुणैः श्रोत्रपथं गतैः । सर्वे ते परमं प्राप्ताः प्रमोदं कृतसंमदाः ॥५३॥
श्रुत्वा कन्यापि तां वार्तां विचकास प्रमोदतः । निशाकरकरालोकमात्रादिव कुमुद्वती ॥५४॥
अत्रान्तरेऽत्यगं प्राप्तः कालो हिमकणान्वितः । कामिनीवदनाम्भोजलावण्यहरणोद्यतः ॥५५॥
नवं पटलमब्जानां नलिनीनामजायत । चिरोत्कण्ठितमैध्वाशसमूहकृतसङ्गमम् ॥५६॥
घनः शाखाभृतां जज्ञे पत्रपुष्पाङ्कुरोद्भवः । मधुलक्ष्मीपरिष्वङ्गसंजातपुलकाकृतिः ॥५७॥
चूतस्य मञ्जरीजालं मधुव्रतकृतस्वनम् । मनोलोकस्य विव्याध पटलं मारसायकम्[3] ॥५८॥
कोकिलानां स्वनश्चक्रे मानिनीमानभञ्जनः । जनस्य व्याकुलीभावं वसन्तालापतां गतः ॥५९॥
रमणद्विजदष्टानामोष्ठानां वेदनाभृताम् । [5]उदपद्यत वैशद्यं चिरेण वरयोषिताम् ॥६०॥
स्नेहो बभूव चात्यन्तमन्योन्यं जगतः परम् । उपकारसमाधानपरेहाप्रकटीकृतः ॥६१॥
भ्रमरीं भ्रमणश्रान्तां रमणः पक्षवायुना । परितो भ्रमणं कुर्वंश्चकार विगतश्रमाम् ॥६२॥
दूर्वाप्रवालमुद्धृत्य[6] सारङ्गः प्रणतो ददौ । तस्यास्तेनामृतेनेव कापि प्रीतिरजायत ॥६३॥
करिकण्डूयनं रेजे [8]वदनभ्रंशिपल्लवम् । करिण्याः[9] सुखसंभारनिमीलितविलोचनम् ॥६४॥
स्तबकस्तननम्राभिश्चलत्पल्लवपाणिभिः । [10]समालिङ्गयन्त वल्लीभिर्भ्रमराक्षीभिरङ्घ्रिपाः ॥६५॥
दक्षिणाशामुखोद्गीर्णः[11] प्रावर्तत समीरणः । प्रेर्यमाण इवानेन रविरासीदुदग्गतिः ॥६६॥

युवाको स्वयं जाकर ही देख लीजिए ॥५२॥ तदनन्तर कर्ण मार्गको प्राप्त हुए पवनंजयके उत्कृष्ट गुणोंसे सब लोग परम हर्षको प्राप्त हो आन्तरिक प्रसन्नता प्रकट करने लगे ॥५३॥ तथा कन्या भी उस वार्ताको सुनकर हर्षसे इस तरह खिल उठी जिस तरह कि चन्द्रमाकी किरणोंको देखने मात्रसे कुमुदिनी खिल उठती है ॥५४॥

अथानन्तर इसी बीचमें वसन्त ऋतु आयी और स्त्रियोंके मुख कमलकी सुन्दरताके अपहरणमें उद्यत शीतकाल समाप्त हुआ ॥५५॥ कमलिनी प्रफुल्लित हुई और नये कमलोंके समूह चिरकालसे उत्कण्ठित भ्रमर-समूहके साथ समागम करने लगे अर्थात् उनपर भ्रमरोंके समूह गूँजने लगे ॥५६॥ वृक्षोंके पत्र, पुष्प, अंकुर आदि घनी मात्रामें उत्पन्न हुए जो ऐसे जान पड़ते थे मानो वसन्त लक्ष्मीके आलिंगनसे उनमें रोमांच ही उत्पन्न हुए हों ॥५७॥ जिनपर भ्रमर गुंजार कर रहे थे ऐसे आमके मौरोंके समूह कामदेवके बाणोंके पटलके समान लोगोंका मन बेधने लगे ॥५८॥ मानवती स्त्रियोंके मानको भंग करनेवाला कोकिलाओंका मधुर शब्द लोगोंको व्याकुलता उत्पन्न करने लगा। वह कोकिलाओंका शब्द ऐसा जान पड़ता था मानो उसके बहाने वसन्त ऋतु ही वार्तालाप कर रही हो ॥५९॥ स्त्रियोंके जो ओठ पतिके दाँतोंसे डँसे जानेके कारण पहले वेदनासे युक्त रहते थे अब चिरकाल बाद उनमें विशदता उत्पन्न हुई ॥६०॥ जगत्के जीवोंमें परस्पर बहुत भारी स्नेह प्रकट होने लगा। उनका यह स्नेह उपकारपरक चेष्टाओंसे स्पष्ट ही प्रकट हो रहा था ॥६१॥ चारों ओर भ्रमण करता हुआ भ्रमर अपने पंखोंकी वायुसे, थकी हुई भ्रमरीको श्रमरहित करने लगा ॥६२॥ उस समय हरिण दूर्वाके प्रवाल उखाड़-उखाड़कर हरिणीके लिए दे रहा था और उससे हरिणीको ऐसा प्रेम उत्पन्न हो रहा था मानो अमृत ही उसे मिल रहा हो ॥६३॥ हाथी हथिनीके लिए खुजला रहा था। इस कार्यमें उसके मुखका पल्लव छूटकर नीचे गिर गया था और हथिनीके नेत्र सुखके भारसे निमीलित हो गये थे ॥६४॥ जो गुच्छेरूपी स्तनोंसे झुक रही थीं, जिनके पल्लवरूपी हाथ हिल रहे थे और ऊपर बैठे हुए भ्रमर ही जिनके नेत्र थे ऐसी लतारूपी स्त्रियाँ वृक्षरूप पुरुषोंका आलिंगन कर रही थीं ॥६५॥ दक्षिण दिशाके मुखसे प्रकट हुआ मलय-

---

१. केतुमत्या अयमिति केतुमतस्तस्य पवनंजयस्य । २. केतुमतस्योच्चै- । ३. भ्रमर । ४. स्मरपत्रिणाम् म. । ५. उपपद्यत म. । ६. -मुद्धृत्य म. । ७. करिकण्डूयितं म. । ८. वदनं भ्रंशि म. । ९. करिण्यां म. । १०. समलिङ्गयन्त म. । ११. मुखोद्गीर्णः म. ।

समीरणकृताकम्पः[1] केसरप्रकरः पतन् । मधुसिंहस्य पान्थेन दवृशे केसरोत्करः[2] ॥६७॥
दंष्ट्रा वसन्तसिंहस्य मानस्तम्बेरमाङ्कुशः । अङ्कोलकेशरं रेजे [3]प्रोषितस्त्रीभयङ्करम् ॥६८॥
बर्न [4]कैरवजं जालं क्वणद्भृङ्गकदम्बकम् । वियोगिनीमनांसीव मधुनाकृष्टुमुज्झितम् ॥६९॥
कुड्मलोद्दीपितोऽशोकः[5] प्रचलन्नवपल्लवः । प्राक्षुर्यान्वनिलोदीर्णरागराशिरिवाबभौ ॥७०॥
किंशुकं घनमत्यन्तं दिदीपे वनराजिषु । वियोगिनीमनःस्थातिरिस्फदुःखानिलोपमम् ॥७१॥
व्याप्तदिक्चक्रवालेन रजसा पुष्पजन्मना । वसन्तः पटवासेन चकारेव महोत्सवम् ॥७२॥
निमेषमपि सेहाते न स्त्रीपुंसावदर्शनम् । कुत एवान्यदेशेन संगमं प्रेमबन्धनौ ॥७३॥
गन्तुमारेभिरे देवा जिनभक्तिप्रचोदिताः । नन्दीश्वरं महामोदाः फाल्गुनाष्टदिनोत्सवे ॥७४॥
जग्मुरष्टापदे तत्र काले विद्याधराधिपाः । पूजोपकरणव्यग्रकरभृत्यगणान्विताः ॥७५॥
पूज्यं नाभेयनिर्वृत्या[6] तमद्रिं भक्तिनिर्भरः । समेतो बन्धुवर्गेण महेन्द्रोऽपि समीयिवान् ॥७६॥
स तत्र जिनमर्चित्वा स्तुत्वा नत्वा च भावतः । रौक्मे[7] शिलातले श्रीमानासाञ्चक्रे यथासुखम् ॥७७॥
प्रह्लादोऽपि तदायासीत्तं गिरिं वन्दितुं जिनम् । कृतामीष्टं भ्रमन्नासीन्महेन्द्रेक्षणगोचरः[8] ॥७८॥
महेन्द्रस्य ततोऽभ्याशं सुतप्रीत्या महादरः । ससर्प विकसन्नेत्रः प्रह्लादः प्रीतिमानसः ॥७९॥
अभ्युत्थाय महेन्द्रोऽपि मुदितः पुरुसंभ्रमः । आलिङ्गन्तं समालिङ्गत् प्रह्लादं ह्लादकारणम् ॥८०॥

समीर बहने लगा और सूर्य उत्तरायण हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो इस मलयसमीरसे प्रेरित होकर ही सूर्य उत्तरायण हो गया था ॥६६॥ वायुसे हिलते हुए मौलश्रीके फूलोंका समूह नीचे गिर रहा था जिसे पथिक लोग ऐसा समझ रहे थे मानो वसन्तरूपी सिंहकी जटाओंका समूह ही हो ॥६७॥ विरहिणी स्त्रियोंको भय उत्पन्न करनेवाली अंकोल वृक्षके पुष्पोंकी केशर ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो वसन्तरूपी सिंहकी दंष्ट्रा अर्थात् जबड़े ही हों अथवा मानरूपी हाथीका अंकुश ही हो ॥६८॥ जिसपर भ्रमर गूँज रहे थे ऐसा कुमुदोंका सघन जाल ऐसा जान पड़ता था मानो वियोगिनी स्त्रियोंके मनको खींचनेके लिए वसन्तने जाल ही छोड़ रखा था ॥६९॥ जिसके नये-नये पत्ते हिल रहे थे ऐसा बोंडियोंसे सुशोभित अशोकका वृक्ष ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो अधिकताके कारण स्त्रियोंके द्वारा उगला हुआ रागका समूह ही हो ॥७०॥ वनश्रेणियोंमें पलाशके सघन वृक्ष ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो विरहिणी स्त्रियोंके मनमें ठहरनेसे बाकी बचे हुए दुःखरूपी अग्निके समूह ही हों ॥७१॥ समस्त दिशाओंको व्याप्त करनेवाला फूलोंका पराग सब ओर फैल रहा था उससे ऐसा जान पड़ता था मानो वसन्त सुगन्धित चूर्णके द्वारा महोत्सव ही मना रहा था ॥७२॥ जब प्रेमरूपी बन्धनसे बँधे स्त्री-पुरुष पल-भरके लिए भी एक दूसरेका अदर्शन नहीं सहन कर पाते थे तब अन्य देशमें गमन किस प्रकार सहन करते ? ॥७३॥ फाल्गुन मासके अन्तिम आठ दिनमें आष्टाह्निक महोत्सव आया सो जिनभक्तिसे प्रेरित तथा महाहर्षसे भरे देव नन्दीश्वर द्वीपको जाने लगे ॥७४॥ उसी समय पूजाके उपकरणोंसे व्यग्र हाथोंवाले सेवकोंसे सहित विद्याधर राजा कैलास पर्वतपर गये ॥७५॥ वह पर्वत भगवान् ऋषभदेवके मोक्ष जानेसे अत्यन्त पूजनीय था इसलिए भक्तिसे भरा राजा महेन्द्र भी बन्धुवर्गके साथ वहाँ गया था ॥७६॥ श्रीमान् वह राजा महेन्द्र वहाँपर जिन भगवान्‌की भावपूर्वक अर्चना, स्तुति एवं नमस्कार करके स्वर्णमय शिलातलपर सुखपूर्वक बैठ गया ॥७७॥ उसी समय राजा प्रह्लाद भी जिनेन्द्र देवकी वन्दना करनेके लिए कैलास पर्वतपर गया था सो पूजाके अनन्तर भ्रमण करता हुआ राजा महेन्द्रको दिखाई दिया ॥७८॥ तदनन्तर जिसके नेत्र विकसित हो रहे थे और मन प्रीतिसे भर रहा था ऐसा प्रह्लाद पुत्रकी प्रीतिसे बड़े आदरके साथ राजा महेन्द्रके पास गया ॥७९॥ सो हर्षसे

१. बकुलकुसुमसमूहः । २. जटासमूहः । ३. प्रेषित-म. । ४. कौरवजहूवालं ज., ख. । कौरवकं जालं म. । ५. कृष्ट-म. । ६. शोकप्रचलन्नव-म. । ७. ऋषभदेवनिर्वाणेन । ८. रौक्म्ये म. । ९. महेन्द्रेण खगोचरः म. ।

उपविष्टौ च विश्रब्धौ तौ मनोज्ञशिलातले । परस्परं शरीरादिकुशलं पर्यपृच्छताम् ॥८१॥
उवाचेति महेन्द्रोऽथ सखे किं कुशलं मम । कन्यानुरूपसंबन्धचिन्ताव्याकुलितात्मनः ॥८२॥
अस्ति मे दुहिता योग्या वरं प्राप्तुं मनोहरा । कस्मै तां प्रददामीति मम भ्राम्यति मानसम् ॥८३॥
रावणो बहुपत्नीकस्तत्सुतौ [1]व्रजतो रुषम् । दानेनान्यतरस्यातो न तेषु रुचिरस्ति मे ॥८४॥
पुरे हेमपुराभिख्ये तनयः कनकद्युतेः । विद्युत्प्रभो दिनैरल्पैर्निर्वाणं प्रतिपत्स्यते ॥८५॥
मयेयं विदिता वार्ता प्रकटा सर्वविष्टपे । केनापि कथितं नूनं संज्ञानेनेति योगिना ॥८६॥
मन्त्रिमण्डलयुक्तस्य ततो मम विनिश्चितः । पुत्रस्तव वरत्वेन निर्वाच्यः पवनञ्जयः ॥८७॥
मनोरथोऽयमायाता [2]त्वया प्रह्लाद पूरितः । समयेनास्मि संजातः क्षणेन परिनिर्वृतः ॥८८॥
ततोऽवोचदलं प्रीतः प्रह्लादो लब्धवाञ्छितः । चिन्ता ममापि पुत्रस्य [3]द्वितीयान्वेषणं प्रति ॥८९॥
ततोऽहमपि वाक्येन त्वदीयेनामुना सुहृत् । शब्दगोचरतायुक्तां परिप्राप्तः सुखासिकाम् ॥९०॥
सरसो मानसाख्यस्य तटेऽधास्यन्तचारुणि । [4]गुरुभ्यां वाञ्छितं कर्तुं [5]तयोर्वैवाहमङ्गलम् ॥९१॥
स्थिते तत्रोभयोः सेने क्षणकल्पितसंश्रये । गजवाजिपदातीनामनुकूलस्वाकुले ॥९२॥
दिनेषु त्रिषु यातेषु तयोः सांवत्सरा जगुः । कल्याणदिवसं ज्ञातनिखिलज्योतिरीहिताः ॥९३॥
श्रुत्वा परिजनादेतां सर्वावयवसुन्दरीम् । दिवसानां त्रयं सेहे न [6]प्राह्लादिः प्रतीक्षितुम् ॥९४॥

भरे महेन्द्रने भी सहसा उठकर उसकी अगवानी की और आनन्दके कारण आलिंगन करते हुए प्रह्लादका आलिंगन किया ॥८०॥ तदनन्तर दोनों ही राजा निश्चित होकर मनोहर शिलातलपर बैठे और परस्पर शरीरादिकी कुशलता पूछने लगे ॥८१॥

अथानन्तर राजा महेन्द्रने कहा कि हे मित्र ! मेरा मन तो निरन्तर कन्याके अनुरूप सम्बन्ध ढूँढ़नेकी चिन्तासे व्याकुल रहता है अतः कुशलता कैसे हो सकती है ? ॥८२॥ मेरी एक कन्या है जो वर प्राप्त करने योग्य अवस्थामें है, किसके लिए उसे दूँ इसी चिन्तामें मन घूमता रहता है ॥८३॥ रावण बहुपत्नीक है अर्थात् अनेक पत्नियोंका स्वामी है और इसके पुत्र इन्द्रजित् तथा मेघनाद किसी एकके लिए देनेसे शेष दोषको प्राप्त होते हैं अतः उन तीनोंमें मेरी रुचि नहीं है ॥८४॥ हेमपुर नगरमें राजा कनकद्युतिके विद्युत्प्रभ नामका पुत्र है सो वह थोड़े ही दिनोंमें निर्वाण प्राप्त करेगा ॥८५॥ यह बात किसी सम्यग्ज्ञानी मुनिने कही है सो समस्त लोकमें प्रसिद्ध है और परम्परावश मुझे भी विदित हुई है ॥८६॥ अतः मन्त्रिमण्डलके साथ बैठकर मैंने निश्चय किया है कि आपके पुत्र पवनंजयको ही कन्याका वर चुनना चाहिए ॥८७॥ सो हे प्रह्लाद ! यहाँ पधारकर तुमने मेरे इस मनोरथको पूर्ण किया है। मैं तुम्हें देखकर क्षण-भरमें ही सन्तुष्ट हो गया हूँ ॥८८॥ तदनन्तर जिसे अभिलषित वस्तुकी प्राप्ति हो रही है ऐसे प्रह्लादने बड़ी प्रसन्नतासे कहा कि पुत्रके अनुरूप वधू ढूँढ़नेकी मुझे भी चिन्ता है ॥८९॥ सो हे मित्र ! आपके इस वचनसे मैं जो शब्दोंसे न कही जाये ऐसी निश्चिन्तताको प्राप्त हुआ हूँ ॥९०॥ अथानन्तर अंजना और पवनंजयके पिताने वहीं मानुषोत्तर पर्वतके अत्यन्त सुन्दर तटपर उनका विवाह-मंगल करनेकी इच्छा की ॥९१॥ इसलिए क्षण-भरमें ही जिनके डेरे-तम्बू तैयार हो गये थे तथा जो हाथी, घोड़े और पैदल सैनिकोंके अनुकूल शब्दोंसे व्याप्त था ऐसी उन दोनोंकी सेनाएँ वहीं ठहर गयीं ॥९२॥ समस्त ज्योतिषियोंकी गतिविधिको जाननेवाले ज्योतिषियोंने तीन दिन बीतनेके बाद विवाहके योग्य दिन बतलाया था ॥९३॥ पवनंजयने परिजनोंके मुखसे सुन रखा था कि अंजनासुन्दरी सर्वांगसुन्दरी है इसलिए उसे देखनेके लिए वह तीन दिनका व्यवधान सहन नहीं

---

१. व्रजतौ म. । २. मायाता ज., ब. । मायातस्त्वया म., क., ख. । ३. भार्यान्वेषणम् । ४. मुक्ता म. । ५. पितृभ्याम् । ६. पवनंजयः ।

संगमोत्कण्ठितः सोऽयमेभिर्मन्मथसंभवैः । पूरितो दशभिर्वेगैर्भटो बाणैरिवाहवे ॥९५॥
आद्ये तद्विषया चिन्ता वेगे समुपजायते । द्वितीये दृष्टुमाकारो बहिः समभिलप्यते ॥९६॥
तृतीये मन्ददीर्घोष्णनिःश्वासानां विनिर्गमः । चतुर्थे संज्वरो दृष्टज्वलनोपमचन्दनः ॥९७॥
विकीर्णः पञ्चमेऽङ्गस्य कुसुमप्रस्तरादिषु । मन्यते विविधं स्वादु षष्ठे भक्तं विषोपमम् ॥९८॥
सप्तमे तत्कथासक्तया विप्रलापसमुद्भवः । जन्मसप्ताष्टमे गीतनृत्यविभ्रमकारिणी ॥९९॥
अदृश्योरगदष्टस्य नवमे मूर्च्छनोद्भवः । दशमे दुःखसंभारः स्वसंवेद्यः प्रवर्तते ॥१००॥
विवेकिनोऽपि तस्येदं सदा जातमनङ्कुशम् । चरितं वायुवेगस्य हताशं धिगनङ्गकम् ॥१०१॥
अथ चेतोमुदो वेगैरसौ धैर्यात्परिच्युतः । उद्वर्तितकरच्छन्ननिश्वासप्रचलाननः ॥१०२॥
करसङ्गाकृणीभूतस्वेदवद्गण्डमण्डलः । उष्णातिदीर्घनिश्वासगलपितासनपल्लवः ॥१०३॥
जृम्भणं कम्पनं जम्भां मन्दं कुर्वन् पुनः पुनः । निःसहं धारयन्काये गाढाकल्पकशस्त्रतः ॥१०४॥
रामाभिध्यानतो मोघं ह्रपीकपटलं दधत् । मनोज्ञेष्वपि देशेषु महतीमधृतिं व्रजन् ॥१०५॥
दधानः धूम्यमानमां परित्यक्तालिसंग्रहः । क्षणात्रपाढ्यां दूरः परिमुञ्चन्नपत्रपाम् ॥१०६॥
तनुभूतसमस्ताङ्गः परिभ्रष्टविभूषणः । दध्याविति सचिन्तेन परिवारेण वीक्षितः ॥१०७॥

कर सका ॥९४॥ निरन्तर समागमकी उत्कण्ठा रखनेवाला यह पवनंजय कामके दस वेगोंसे इस प्रकार पूर्ण हो गया जिस प्रकार कि युद्धमें कोई योद्धा शत्रुके बाणोंसे पूर्ण हो जाता है—भर जाता है ॥९५॥ प्रथम वेगमें उसे अंजनाविषयक चिन्ता होने लगी अर्थात् मनमें अंजनाकी इच्छा उत्पन्न हुई। दूसरे वेगके समय बाह्यमें उसकी आकृति देखनेकी इच्छा हुई ॥९६॥ तीसरे वेगमें मन्द-लम्बी और गरम साँसें निकलने लगीं। चौथे वेगमें ऐसा ज्वर उत्पन्न हो गया कि जिसमें चन्दन अग्निके समान सन्तापकारी जान पड़ने लगा ॥९७॥ पंचम वेगमें उसका शरीर फूलोंकी शय्यापर करवटें बदलने लगा। छठें वेगमें अनेक प्रकारके स्वादिष्ट भोजनको वह विषके समान मानने लगा ॥९८॥ सातवें वेगमें उसीकी चर्चामें आसक्त रहकर विप्रलाप—बकवाद करने लगा। आठवें वेगमें उन्मत्तता प्रकट हो गयी जिससे कभी गाने लगता और कभी नाचने लगता था ॥९९॥ कामरूपी शत्रुके द्वारा डसे हुए उस पवनंजयको नौवें वेगमें मूर्च्छा आने लगी और दसवें वेगमें जिसका स्वयं ही अनुभव होता था ऐसा दुःखका भार प्राप्त होने लगा ॥१००॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि यद्यपि यह पवनंजय विवेकसे युक्त था तो भी उस समय उसका चरित्र स्वच्छन्द हो गया था सो ऐसे दुष्ट कामके लिए धिक्कार हो ॥१०१॥

अथानन्तर कामके उपर्युक्त वेगोंके कारण पवनंजयका धैर्य छूट गया। उसका मुख निरन्तर निकलनेवाले श्वासोच्छ्वासोंसे चंचल हो गया और वह उसे अपनी हथेलियोंसे ढँकने लगा ॥१०२॥ वह स्वेदसे भरे अपने कपोलमण्डलको सदा हथेलीपर रखे रहता था जिससे उसमें लालिमा उत्पन्न हो गयी थी। वह शीतलता प्राप्त करनेके उद्देश्यसे पल्लवोंके आसनपर बैठता था तथा उसे गरम-गरम लम्बी श्वासोंसे म्लान करता रहता था ॥१०३॥ बाणोंके गहरे प्रहारसे असहनीय कामको धारण करनेवाला वह पवनंजय बार-बार जमुहाई लेता था, बार-बार सिहर उठता था और बार-बार अँगड़ाई लेता था ॥१०४॥ निरन्तर स्त्रीका ध्यान रखनेसे उसकी इन्द्रियोंका समूह व्यर्थ हो गया था अर्थात् उसकी कोई भी इन्द्रिय अपना कार्य नहीं करती थी और अच्छे-से-अच्छे स्थानोंमें भी उसे धैर्य प्राप्त नहीं होता था—वह सदा अधीर ही बना रहता था ॥१०५॥ उसने शून्य हृदय होकर सब काम छोड़ दिये थे। क्षण भरके लिए वह लज्जाको धारण करता भी था तो पुनः उसे छोड़ देता था ॥१०६॥ जिसके समस्त अंग दुर्बल हो गये थे और जिसने सब आभूषण

---

१. पवनंजयस्य । २. कृशीभूत ।

कदा नु तामहं कान्तां वीक्षे स्वाङ्कनिवेशिताम् । स्पृशन्[1] कमलतुल्यानि गात्राणि कृतसंकथः ॥१०८॥
श्रुत्वा तावदियं जाता ममावस्थातिदुःखदा । आलोक्य तां तु नो[2] पश्यन् भवेयं पञ्चतां गतः ॥१०९॥
अहो महदिदं चित्रं मनोज्ञापि सखी मम । यदसौ दुःखमारस्य कारणत्वमुपागता ॥११०॥
अयि मद्दे कथं यस्मिन्नुष्यते[3] हृदये त्वया । दग्धुं तदेव संक्तासि[4] पण्डिते दुःखवह्निना ॥१११॥
मृदुचित्ताः स्वभावेन भवन्ति किल योषितः । मद्दुःखदानतो जातं विपरीतमिदं तव ॥११२॥
अनङ्गः सन् व्यधामेतामनङ्ग त्वं करोषि मे । यदि नाम भवेस्साङ्गस्ततः कष्टतमं भवेत् ॥११३॥
क्षतं न चास्ति मे देहे वेदना च गरीयसी । तिष्ठन्नेकत्र योद्देशे भ्रमामि[5] क्वापि संततम् ॥११४॥
दिवसानां त्रयं नैतन्मम क्षेमेण गच्छति । यदि तां विषयीभावमानयामि न चक्षुषः ॥११५॥
अतस्तद्दर्शनोपायः कतरो मे भविष्यति । यस्याधिगमतश्चित्तं प्रशान्तिमधियास्यति ॥११६॥
अथवा सर्वकार्येषु साधनीयेषु विष्टपे । मित्रं परमसुज्झित्वा कारणं नान्यदीक्ष्यते ॥११७॥
इति ध्यात्वा स्थितं पार्श्वे छायाबिम्बमिवापुगम् । विक्रियातः समुत्पन्नं शरीरं स्वमिवापरम् ॥११८॥
नाम्ना प्रहसितं मित्रं सर्वविश्रम्भभाजनम् । मन्दगद्गदया वाचा जगाद पवनञ्जयः ॥११९॥
जानास्येव ममाकूतमतः किं ते निवेद्यते । केवलं मुखरत्वं मे करोत्यत्यन्तदुःखिताम् ॥१२०॥
सखे कस्य वदाम्यस्य दुःखमेतन्निवेद्यते । मुक्त्वा त्वां विदिताशेषजगत्त्रयविचेष्टितम् ॥१२१॥

उतारकर अलग कर दिये थे ऐसा पवनंजय निरन्तर स्त्रीका ही ध्यान करता रहता था। परिवारके लोग बड़ी चिन्तासे उसकी इस दशाको देखते थे ॥१०७॥ वह सोचा करता था कि मैं उस कान्ताको अपनी गोदमें बैठी कब देखूँगा और उसके कमलतुल्य शरीरका स्पर्श करता हुआ उसके साथ कब वार्तालाप करूँगा ॥१०८॥ उसकी चर्चा सुनकर तो हमारी यह अत्यन्त दुःख देनेवाली अवस्था हो गयी है फिर साक्षात् देखकर तो न जाने क्या होगा ? उसे देखकर तो अवश्य ही मृत्युको प्राप्त हो जाऊँगा ॥१०९॥ अहो ! यह बड़ा आश्चर्य है कि वह मेरी सखी मनोहर होकर भी मेरे लिए दुःखका कारण बन रही है ॥११०॥ अरी भली आदमिन ? तू तो बड़ी पण्डिता है फिर जिस हृदयमें निवास कर रही है उसे ही दुःखरूपी अग्निसे जलानेके लिए तैयार क्यों बैठी है ॥१११॥ स्त्रियाँ स्वभावसे ही कोमलचित्त होती हैं पर मेरे लिए दुःख देनेके कारण तुम्हारे विषयमें यह बात विपरीत मालूम होती है ॥११२॥ हे अनंग ! जब तुम शरीररहित होकर भी इतनी पीड़ा उत्पन्न कर सकते हो तब फिर यदि शरीरसहित होते तो बड़ा ही कष्ट होता ॥११३॥ मेरे शरीरमें यद्यपि घाव नहीं है तो भी पीड़ा अत्यधिक हो रही है और यद्यपि एक स्थानपर बैठा हूँ तो भी निरन्तर कहीं घूमता रहता हूँ ॥११४॥ यदि मैं उसे नेत्रोंका विषय नहीं बनाता हूँ—उसे देखता नहीं हूँ तो मेरे ये तीन दिन कुशलतापूर्वक नहीं बीत सकेंगे ॥११५॥ इसलिए उसके दर्शनका उपाय क्या हो सकता है जिसे प्राप्त कर चित्त शान्ति प्राप्त करेगा ॥११६॥ अथवा इस संसारमें करने योग्य समस्त कार्योंमें परममित्रको छोड़कर और दूसरा कारण नहीं दिखाई देता ॥११७॥ ऐसा विचारकर पवनंजयने पास ही बैठे हुए प्रहसित नामक मित्रसे धीमी एवं गद्गद वाणीमें कहा। वह मित्र छायाके समान सदा पवनंजयके साथ रहता था। विक्रियासे उत्पन्न हुए उन्हींके दूसरे शरीरके समान जान पड़ता था और सर्व विश्वासका पात्र था ॥११८-११९॥

उसने कहा कि मित्र ! तुम मेरा अभिप्राय जानते ही हो अतः तुमसे क्या कहा जाये ? मेरी मुखरता केवल तुम्हें दुःखी ही करेगी ॥१२०॥ हे सखे ! तीनों लोकोंकी समस्त चेष्टाओंको

---

१. स्पृशे कमल म. । २. नोऽपश्यद्भवेयं म. । ३. निवासः क्रियते । यस्मिन् तुष्यते म. । ४. दग्धं म. । ५. शक्तासि म. । ६. कृतं न क्वात्र म. । ७. भ्रमसि म. ।

कुटुम्बी क्षितिपालाय गुरवेऽन्तेवसन् प्रिया । पत्यै वैद्याय रोगार्तो मात्रे शैशवसंगतः ॥१२२॥
निवेद्य मुच्यते दुःखाद्यथान्यत्पुरोरपि । मित्रायैवं नरः प्राज्ञस्ततस्ते कथयाम्यहम् ॥१२३॥
श्रुत्वैव तामहं हृद्यां महेन्द्रतनुसंभवाम् । मन्मथस्य शरैर्दूरं विकलत्वमुपागतः ॥१२४॥
तामदृष्ट्वातिचक्षुष्यां प्रियां मानसहारिणीम् । अतिवाहयितुं नाहं प्रभवामि दिनत्रयम् ॥१२५॥
अतो विधत्स्व तं यत्नं येन पश्यामि तामहम् । तद्दर्शनादहं स्वस्थो मयि स्वस्थे भवानपि ॥१२६॥
जीवितं ननु सर्वेस्यादिष्टं सर्वशरीरिणाम् । सति तस्मान्यकार्याणामात्मलाभस्य संभवः ॥१२७॥
एवमुक्तस्ततोऽवोचदाशु प्रहसितो हसन् । लब्धार्थमिव कुर्वाणः सद्यो मित्रस्य मानसम् ॥१२८॥
सखे किं बहुनोक्तेन कृत्यकालातिपातिना । वद किं करवाणीति ननु मान्यत्वमावयोः ॥१२९॥
यावत्तयोः समालापो वर्ततेऽर्थं सुचिस्मयोः । तावत्तदुपकारीव गतोऽस्तं धर्मदीधितिः[1] ॥१३०॥
[2]प्राह्लादेरिव रागेण संध्यालोकेन भानुमान्[3] । प्रेरितो ध्वान्तसंभूतिमिच्छता प्रियकारिणा ॥१३१॥
कान्तया रहितस्यास्य दुःखं दृष्ट्वैव संध्यया । करुणायुक्तया भर्त्रा तेजसामनुवर्तितः ॥१३२॥
ततो मास्करनाथस्य वियोगादिव [4]कृष्णताम् । आशा पौरन्दरी[5] प्राप तमसात्यन्तभूरिणा ॥१३३॥
नीलेनेव च वस्त्रेण क्षणाल्लोकस्तिरस्कृतः । रजो नीलाञ्जनस्येव प्रवृत्तं पतितुं घनम् ॥१३४॥

जाननेवाले एक आपको छोड़कर दूसरा ऐसा कौन उदारचेता है जिसके लिए यह दुःख बताया जाये ? ॥१२१॥ जिस प्रकार गृहस्थ राजाके लिए, विद्यार्थी गुरुके लिए, स्त्री पतिके लिए, रोगी वैद्यके लिए और बालक माताके लिए प्रकटकर बड़े भारी दुःखसे छूट जाता है उसी प्रकार मनुष्य मित्रके लिए प्रकटकर दुःखसे छूट जाता है इसी कारण मैं आपसे कुछ कह रहा हूँ ॥१२२-१२३॥ जबसे मैंने अनवद्य सुन्दरी राजा महेन्द्रकी पुत्रीकी चर्चा सुनी है तभीसे मैं कामके बाणोंसे अत्यधिक विकलता प्राप्त कर रहा हूँ ॥१२४॥

मनको हरनेवाली उस सुन्दरी प्रियाको देखे बिना मैं तीन दिन बितानेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥१२५॥ इसलिए ऐसा प्रयत्न करो कि जिससे मैं उसे देख सकूँ। क्योंकि उसके देखनेसे मैं स्वस्थ हो सकूँगा और मेरे स्वस्थ रहनेसे आप भी स्वस्थ रह सकेंगे ॥१२६॥ निश्चयसे सब प्राणियोंके लिए अन्य समस्त वस्तुओंकी अपेक्षा अपना जीवन ही इष्ट होता है क्योंकि उसके रहते हुए ही अन्य कार्योंका होना सम्भव है ॥१२७॥

तदनन्तर मित्रके मनको मानो कृतकृत्य करता हुआ प्रहसित हँसकर शीघ्र ही बोला ॥१२८॥ कि हे मित्र ! करने योग्य कार्यका उल्लंघन करनेवाले बहुत कहनेसे क्या मतलब है कहो, मैं क्या करूँ ? यथार्थमें हम दोनोंमें पृथक्पना नहीं है ॥१२९॥ उत्तम चित्तके धारक उन मित्रोंके बीच जबतक यह वार्तालाप चलता है तबतक सूर्य अस्त हो गया सो मानो उनका उपकार करनेके लिए ही अस्त हो गया था ॥१३०॥ जो पवनंजयके रागके समान लाल-लाल था, अन्धकारके प्रसारको चाहता था और प्रिय करनेवाला था ऐसे सन्ध्याके आलोकसे प्रेरित होकर ही मानो सूर्य अस्त हुआ था ॥१३१॥

कान्तासे रहित पवनंजयका दुःख देखकर ही मानो जिसे करुणा उत्पन्न हो गयी थी ऐसी सन्ध्या अपना पति जो सूर्य सो उसके पीछे चलने लगी थी—उसके अनुकूल हो गयी थी ॥१३२॥ तदनन्तर पूर्व दिशा अत्यधिक अन्धकारसे कृष्णताको प्राप्त हो गयी सो मानो सूर्यरूप पतिके वियोगसे ही मलिन अवस्थाको प्राप्त हुई थी ॥१३३॥ क्षण-भरमें लोक ऐसा दिखने लगा मानो नील वस्त्रसे ही आच्छादित हो गया हो अथवा नीलांजनकी सघन पराग ही सब ओर उड़-उड़कर गिरने लगी हो ॥१३४॥

---

१. सूर्यः । २. प्राह्लादेरपि म. । प्राह्लादेनेव ख. । ३. भानुना म. । ४. कृष्णता म. । ५. पूर्वा ।

ततः समुचिते काले तस्मिन् [1]प्रस्तुतकर्मणः । इत्यवोचत सोत्साहः सुहृदं पवनंजयः ॥१३५॥
उत्तिष्ठाग्रे सखे सिद्ध कुरु मार्गोपदेशनम् । व्रजावस्तत्र सा यत्र तिष्ठति स्वान्तहारिणी ॥१३६॥
इत्युक्ते प्रस्थितौ गन्तुं पूर्वप्रस्थितमानसौ । मीनाविव महानीलनीलव्योमतलार्णवे ॥१३७॥
क्षणेन च परिप्राप्तौ गृहमाञ्जनसुन्दरम् । सुन्दरं [3]तत्समासाद्य रत्नौघसममन्दरम् ॥१३८॥
सप्तमं स्कन्धमारुह्य तस्य वातायनस्थितौ । मुक्ताजालतिरोधानावङ्गनां तामपश्यताम् ॥१३९॥
[4]संपूर्णवक्त्रचन्द्रांशुविफलीकृतदीपिकाम् । सितासितारुणच्छायचक्षुःशोभितदिङ्मुखाम् ॥१४०॥
आभोगिनौ समुत्तुङ्गौ प्रियार्थं हारिणौ कुचौ । कलशाविव बिभ्राणां [5]शृङ्गाररसपूरितौ ॥१४१॥
नवपल्लवसच्छायं पाणिपादं सुलक्षणम् । समुद्गिरदिवामाति लावण्यं नखरश्मिभिः ॥१४२॥
स्तनभारादिवोदारान्मध्यं भङ्गमिशङ्कया । त्रिवलीदामभिर्बद्धं दधतीं तनुतामृतम् [6] ॥१४३॥
तूणौ मनोभुवः स्तम्भौ बन्धनं मदकामयोः । सुवृत्तौ बिभ्रतीमूरू नदौ लावण्यवाहिनौ ॥१४४॥
इन्दीवरावलीछायां युक्तां मुक्ताफलोडुभिः । आसक्तां प्रियचन्द्रेण मूर्तामिव विभावरीम् ॥१४५॥
आसेचनकदीक्ष्यां तामेकतानस्थितेक्षणः । संप्राप्तः सुखितामुर्वीमैक्षिष्ट पवनंजयः ॥१४६॥

तदनन्तर जब उचित समय आ गया तब उत्साहसे भरे पवनंजयने मित्रसे इस प्रकार कहा ॥१३५॥ हे मित्र! उठो, मार्ग दिखलाओ, हम दोनों वहाँ चलें जहाँ कि वह हृदयको हरनेवाली विद्यमान है ॥१३६॥ इतना कहनेपर दोनों मित्र वहाँके लिए चल पड़े। उनके मन उनके जानेके पूर्व ही प्रस्थान कर चुके थे और वे महानील मणिके समान नील आकाश-तलरूपी समुद्रमें मछलियोंकी तरह जा रहे थे ॥१३७॥ दोनों मित्र क्षण-भरमें ही अंजनासुन्दरीके घर जा पहुँचे। उसका वह घर अंजनासुन्दरीके सन्निधानसे ऐसा सुशोभित हो रहा था जैसा कि रत्नोंके समूहसे सुमेरु पर्वत सुशोभित होता है ॥१३८॥ उस भवनके सातवें खण्डमें चढ़कर दोनों मित्र मोतियोंकी जालीसे छिपकर झरोखेमें बैठ गये और वहींसे अंजनासुन्दरीको देखने लगे ॥१३९॥ वह अंजनासुन्दरी अपने मुखरूपी पूर्ण चन्द्रमाकी किरणोंसे भवनके भीतर जलनेवाले दीपकोंको निष्फल कर रही थी तथा उसके सफेद, काले और लाल-लाल नेत्रोंकी कान्तिसे दिशाएँ रंग-बिरंगी हो रही थीं ॥१४०॥ वह स्थूल, उन्नत एवं सुन्दर स्तनोंको धारण कर रही थी उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो पतिके स्वागतके लिए शृंगार रससे भरे हुए दो कलश ही धारण कर रही थी ॥१४१॥ नवीन पल्लवोंके समान लाल-लाल कान्तिको धारण करनेवाले तथा अनेक शुभ लक्षणोंसे परिपूर्ण उसके हाथ और पैर ऐसे जान पड़ते थे मानो नखरूपी किरणोंसे सौन्दर्यको ही उगल रहे हों ॥१४२॥ उसकी कमर पतली तो थी ही ऊपरसे उसपर स्तनोंका भारी बोझ पड़ रहा है इसलिए वह कहीं टूट न जाये इस भयसे ही मानो उसे त्रिवलिरूपी रस्सियोंसे उसने कसकर बाँध रखा था ॥१४३॥ वह अंजना जिन गोल-गोल जाँघोंको धारण कर रही थी वे कामदेवके तरकसके समान, अथवा मद और कामके बाँधनेके स्तम्भके समान अथवा सौन्दर्यरूपी जलको बहानेवाली नदियोंके समान जान पड़ती थीं ॥१४४॥ उसकी कान्ति इन्दीवर अर्थात् नील कमलोंके समूहके समान थी, वह मुक्ताफल-रूपी नक्षत्रोंसे सहित थी तथा पतिरूपी चन्द्रमा उसके पास ही विद्यमान था इसलिए वह मूर्तिधारिणी रात्रिके समान जान पड़ती थी ॥१४५॥ इस प्रकार जिसके देखनेसे तृप्ति हो नहीं होती थी ऐसी अंजनाको पवनंजय एकटक नेत्रोंसे देखता हुआ परम सुखको प्राप्त हुआ ॥१४६॥

---

१. प्रकृतकार्यस्य । २. अञ्जनसुन्दर्या इदमाञ्जनसुन्दरम् । ३. अञ्जनसुन्दरीसंनिधानेन । तत्समा भक्त्या क., ब., म., ज. । ४. संपूर्णवस्त्र -म. । ५. बिभ्राणा म. । ६. तनुतामृतम् ख. । तनुतां भृशम् म. । ७. मूर्तामिव म. ।

अत्रान्तरे प्रियास्यन्तं वसन्ततिलकाभिधा । समानसा सखी वक्त्रमित्यञ्जनसुन्दरीम् ॥१४७॥
अहो [1]परमधन्या त्वं सुरूपे भर्तृदारिके । पिता वायुकुमाराय यदत्तासि महौजसे ॥१४८॥
गुणैस्तस्य जगत्सर्वं शशाङ्ककिरणामलैः । व्याप्तमन्यगुणख्यातितिरस्करणकारणैः ॥१४९॥
कलशब्दा[2] महारत्नप्रभापटलरञ्जिता । अङ्के स्थास्यति वीरस्य तस्य वेलेव वारिधेः ॥१५०॥
पतिता वसुधारा त्वं तटे रत्नमहीभृतः । [3]श्लाघ्यसंबन्धजस्तोषो वधूनामभवत्परः ॥१५१॥
कीर्तयन्त्यां गुणानेवं तस्य सख्यां सुमानसा । लिलेख लज्जयाकुल्या कन्याङ्घ्रिनखमानता ॥१५२॥
नितान्तं च हतो दूरं पूरेणानन्दवारिणः । विकसन्नयनाम्भोजच्छन्नास्यः पवनंजयः ॥१५३॥
नाम्नाथ मिश्रकेशीति वाक्यं सख्यपराब्रवत् । संकुचत्पूगबिम्बोष्ठं भूतधम्मिल्लपल्लवम् ॥१५४॥
अहो परममज्ञानं त्वया कथितमात्मनः । विद्युत्प्रभं परित्यज्य वायोर्गृह्णासि यद्गुणान् ॥१५५॥
कथा विद्युत्प्रभस्यास्मिन्मया स्वामिगृहे श्रुता । तस्मै देया न देयेयं कन्येति मुहुरुद्गता ॥१५६॥
उदन्वदम्भसो बिन्दुसंख्यानं योऽवगच्छति । तद्गुणानां मतिः पारं व्रजेत्तस्यामलत्विषाम् ॥१५७॥
युवा सौम्यो विनीतात्मा दीप्तो धीरः प्रतापवान् । [4]पारेविद्यं स्थितः सर्वजगद्वाञ्छितदर्शनः ॥१५८॥
विद्युत्प्रभो भवेदस्याः कन्याया यदि पुण्यतः । भर्ता ततोऽनया लब्धं जन्मनोऽस्य फलं भवेत् ॥१५९॥
वसन्तमालिके भेदो वायोर्विद्युत्प्रभस्य च । स गतो जगति ख्यातिं गोष्पदस्याम्बुधेश्च यः ॥१६०॥

इसी बीचमें उसकी वसन्ततिलका नामकी अत्यन्त प्यारी सखीने अंजना सुन्दरीसे यह वचन कहे कि हे सुन्दरी ! राजकुमारी ! तुम बड़ी भाग्यशालिनी हो जो पिताने तुझे महाप्रतापी पवनंजयके लिए समर्पित किया है ॥१४७-१४८॥ चन्द्रमाकी किरणोंके समान निर्मल एवं अन्य मनुष्योंके गुणोंकी ख्यातिको तिरस्कृत करनेवाले उसके गुणोंसे यह समस्त संसार व्याप्त हो रहा है ॥१४९॥ बड़ी प्रसन्नताकी बात है कि तुम समुद्रकी बेलाके समान महारत्नोंकी कान्तिके समूहसे प्रभासित हो, मनोहर शब्द करती हुई उसकी गोदमें बैठोगी ॥१५०॥ तुम्हारा उसके साथ सम्बन्ध होनेवाला है सो मानो रत्नाचलके तटपर रत्नोंकी धारा ही बरसनेवाली है। यथार्थमें स्त्रियोंके प्रशंसनीय सम्बन्धसे उत्पन्न होनेवाला सन्तोष ही सबसे बड़ा सन्तोष होता है ॥१५१॥ इस प्रकार जब सखी वसन्तमाला पवनंजयके गुणोंका वर्णन कर रही थी तब अंजना मन ही मन प्रसन्न हो रही थी और लज्जाके कारण मुख नीचा कर अँगुलीसे पैरका नख कुरेद रही थी ॥१५२॥ और खिले हुए नेत्रकमलोंसे जिसका मुख व्याप्त था ऐसे पवनंजयको आनन्दरूपी जलका प्रवाह बहुत दूर तक बहा ले गया था ॥१५३॥

अथानन्तर मिश्रकेशी नामक दूसरी सखीने निम्नांकित वचन कहे। कहते समय वह अपने लाल-लाल ओठोंको भीतरकी ओर संकुचित कर रही थी तथा सिर हिलानेके कारण उसकी चोटीमें लगा पल्लव नीचे गिर गया था ॥१५४॥ उसने कहा कि चूँकि तू विद्युत्प्रभको छोड़कर पवनंजयके गुण ग्रहण कर रही है इससे तूने अपना बड़ा अज्ञान प्रकट किया है ॥१५५॥ मैंने राजमहलोंमें विद्युत्प्रभकी चर्चा कई बार सुनी है कि उसके लिए यह कन्या दी जाये अथवा नहीं दी जाये ॥१५६॥ जो समुद्रके जलकी बूँदोंकी संख्या जानता है उसीकी बुद्धि उसके निर्मल गुणोंका पार पा सकती है ॥१५७॥ वह युवा है, सौम्य है, नम्र है, कान्तिमान् है, धीर-वीर है, प्रतापी है, विद्याओंका पारगामी है और समस्त संसार उसके दर्शनकी इच्छा करता है ॥१५८॥ यदि पुण्ययोगसे विद्युत्प्रभ इस कन्याका पति होता तो इसे इस जन्मका फल प्राप्त हो जाता ॥१५९॥ हे वसन्तमालिके ! पवनंजय और विद्युत्प्रभके बीच संसारमें वही भेद प्रसिद्ध है जो कि गोष्पद

१. परमधन्यत्वं म. । २. कलशब्दमहारत्न -ख., ज. । ३. श्लाघ्या संबन्धजः म. । ४. पल्लवा ब. ।
५. पारे विद्यास्थितः म. । पारेविद्यां ख. ।

असौ संवत्सरैरल्पैर्मुनिपां यास्यतीति सः । अस्याः पित्रा परित्यक्तस्तन्मे नाभाति शोभनम् ॥१६१॥
वरं विद्युत्प्रभेणास्या क्षणोऽपि सुखकारणम् । सन्नानन्तोऽपि नान्येन कालः क्षुद्रासुधारिणा ॥१६२॥
ततः प्राह्लादिरित्युक्ते क्रोधानलविदीपितः । क्षणाच्छायापरीवर्त[2] संप्राप्तः पुरुवेपथुः ॥१६३॥
दष्टाधरः समाकर्षन् सायकं[3] परिवारतः । निरीक्षणस्फुरच्छोणच्छायाच्छन्नदिगानतः ॥१६४॥
ऊचे प्रहसितावश्यमस्या एवेदमीप्सितम् । कन्याया यद्वदत्येवमियं नारी जुगुप्सितम् ॥१६५॥
लुनाम्यतोऽनयोः पश्य मूर्धानमुभयोरपि । विद्युत्प्रभोऽधुना रक्षां करोतु हृदयप्रियः ॥१६६॥
समाकर्ण्य ततो वाक्यं मैत्रं प्रहसितो रुषा । जगाद भ्रकुटीबन्धभीषणालिकपट्टिकः ॥१६७॥
सखे सखेऽलमेतेन यत्नेनानोचरे तव । मनु ते सायकस्यारिनरनाशः प्रयोजनम् ॥१६८॥
अतः पश्यत वाक्रोशप्रसक्तां दुष्टयोषितम् । इमामेतेन दण्डेन करोमि गतजीविताम् ॥१६९॥
ततो दृष्ट्वास्य संरम्भं महान्तं पवनंजयः । विस्मृतात्मीयसंरम्भः खड्गं कोशे प्रतिक्षिपन् ॥१७०॥
निजप्रकृतिसंप्राप्तिप्रवणाशेषविग्रहः । जगाद सुहृदं क्रूरकर्मनिश्चितमानसम् ॥१७१॥
अयि मित्र शमं गच्छ सवाप्येष न गोचरः । कोपस्यानेकसंग्रामजयोपार्जनशालिनः ॥१७२॥
इतरस्यापि मो युक्तं कर्तुं नारीविपादनम् । किं पुनस्तव मत्तेभकुम्भदारणकारिणः ॥१७३॥
पुंसां कुलप्रसूतानां गुणख्यातिमुपेयुषाम् । यशो मलिनताहेतुं कर्तुमेवमसांप्रतम् ॥१७४॥
तस्मादुत्तिष्ठ गच्छावस्तेनैव पुनरध्वना । विचित्रा चेतसो वृत्तिर्जनस्यात्र न कुप्यते ॥१७५॥

और समुद्रके बीच होता है ॥१६०॥ वह थोड़े ही वर्षोंमें मुनिपद धारण कर लेगा इस कारण इसके पिताने उसकी उपेक्षा की है पर यह बात मुझे अच्छी नहीं मालूम होती ॥१६१॥ विद्युत्प्रभके साथ इसका एक क्षण भी बीतता तो वह सुखका कारण होता और अन्य क्षुद्र प्राणीके साथ अनन्त भी काल बीतेगा तो भी वह सुखका कारण नहीं होगा ॥१६२॥

तदनन्तर मिश्रकेशीके ऐसा कहते ही पवनंजय क्रोधाग्निसे देदीप्यमान हो गया, उसका शरीर काँपने लगा और क्षण-भरमें ही उसकी कान्ति बदल गयी ॥१६३॥ ओठ चाबते हुए उसने म्यानसे तलवार बाहर खींच ली और नेत्रोंसे निकलती हुई लाल-लाल कान्तिसे दिशाओंका अग्र भाग व्याप्त कर दिया ॥१६४॥ उसने मित्रसे कहा कि हे प्रहसित ! यह बात अवश्य ही इस कन्याके लिए इष्ट होगी तभी तो यह स्त्री इसके समक्ष इस घृणित बातको कहे जा रही है ॥१६५॥ इसलिए देखो, मैं अभी इन दोनोंका मस्तक काटता हूँ। हृदयका प्यारा विद्युत्प्रभ इस समय इनकी रक्षा करे ॥१६६॥ तदनन्तर मित्रके वचन सुनकर क्रोधसे जिसका ललाटतट भौंहोंसे भयंकर हो रहा था ऐसा प्रहसित बोला कि मित्र ! मित्र ! अस्थानमें यह प्रयत्न रहने दो। तुम्हारी तलवारका प्रयोजन तो शत्रुजनोंका नाश करना है न कि स्त्रीजनोंका नाश करना ॥१६७-१६८॥ अतः देखो, निन्दामें तत्पर इस दुष्ट स्त्रीको मैं इन दण्डेसे ही निर्जीव किये देता हूँ ॥१६९॥ तदनन्तर पवनंजय, प्रहसितके महाक्रोधको देखकर अपना क्रोध भूल गया, उसने तलवार म्यानमें वापस डाल ली ॥१७०॥ और उसका समस्त शरीर अपने स्वभावको प्राप्तिमें निपुण हो गया अर्थात् उसका क्रोध शान्त हो गया। तदनन्तर उसने क्रूर कार्यमें दृढ़ मित्रसे कहा ॥१७१॥ कि हे मित्र ! शान्तिको प्राप्त होओ। अनेक युद्धोंमें विजय प्राप्त करनेसे सुशोभित रहनेवाले तुम्हारे क्रोधका भी ये स्त्रियाँ विषय नहीं हैं ॥१७२॥ अन्य मनुष्यके लिए भी स्त्रीजनका घात करना योग्य नहीं है फिर तुम तो मदोन्मत्त हाथियोंके गण्डस्थल चीरनेवाले हो अतः तुम्हें युक्त कैसे हो सकता है ? ॥१७३॥ उच्च कुलमें उत्पन्न तथा गुणोंकी ख्यातिको प्राप्त पुरुषोंके लिए इस प्रकार यशकी मलिनता करनेवाला कार्य करना योग्य नहीं है ॥१७४॥ इसलिए उठो उसी मार्गसे पुनः वापस चलें। मनुष्यकी मनोवृत्ति भिन्न प्रकारकी होती है अतः उसपर क्रोध करना उचित नहीं है ॥१७५॥

१. प्राह्लादिमत्यु -म. । २. परावृत्तं म. । ३. सायकः म. ।

नूनमस्याः प्रियोऽसौ नो[1] कन्याया येन पार्श्वगाम् । मज्जुगुप्सनसंसक्तां न मनागप्यवीवदत् ॥१७६॥
ततः समागतौ ज्ञातौ न केनचिदिमौ भृशम् । स्वैरं निःसृत्य [2]निर्व्यूहाद् गतौ वसतिमात्मनः ॥१७७॥
ततः परममापन्नो विरागं पवनंजयः । इति चिन्तनमारेभे प्रशान्तहृदयो भृशम् ॥१७८॥
सन्देहविषमावर्तां दुर्भावग्रहसंकुलाम् । दूरतः परिहर्तव्यां पररक्ताङ्गनापगाम् ॥१७९॥
कुभावग्रहनात्यन्तं हृषीकव्यालजालिनी । बुधेन नार्यरण्यानी सेवनीया न जातुचित् ॥१८०॥
किं राजसेवनं शत्रुसमाश्रयसमागमम् । श्लथं मित्रं स्त्रियं चान्यसक्तां प्राप्य कुतः सुखम् ॥१८१॥
[3]इष्टान् बन्धून् सुतान् दारान् बुधा मुञ्चन्त्यसत्कृताः । पराभवजलाध्माताः क्षुद्राः नश्यन्ति तत्र तु ॥१८२॥
मदिरारागिणं वैद्यं द्विपं शिक्षाविवर्जितम् । अहेतुवैरिणं क्रूरं धर्मं हिंसनसंगतम् ॥१८३॥
मूर्खगोष्ठीं कुमर्यादं देशं चण्डं शिशुं नृपम् । क्रोधिनं च कुलस्त्रीं दूरतो[4]वेन परिवर्जयेत् ॥१८४॥
एवं चिन्तयतस्तस्य कन्याप्रीतिरिवागता । क्षयं विभावरी तूर्यमाहतं च प्रबोधकम् ॥१८५॥
ततः संध्याप्रकाशेन कौशिकीयां[5] दिगावृता । पवनंजयनिर्मुक्तरागेणेव निरन्तरम् ॥१८६॥
उदियाय च तिग्मांशुः स्त्रीकोपादिव लोहितम् । दधानस्तरलं बिम्बं जगच्चेष्टितकारणम् ॥१८७॥
ततो बहन्विरागेण नितान्तमलसां तनुम् । ऊचे प्रहसितं जायाविमुखः पवनंजयः ॥१८८॥
सखेऽत्र न समीपेऽपि युज्यतेऽवस्थितिर्मम । तत्सक्तपवनासंगो माभूदिति ततः शृणु ॥१८९॥

निश्चित ही वह विद्युत्प्रभ इस कन्याके लिए प्यारा होगा तभी तो पास बैठकर मेरी निन्दा करने-वाली इस स्त्रीसे उसने कुछ नहीं कहा ॥१७६॥ तदनन्तर जिनके आनेका किसीको कुछ भी पता नहीं था ऐसे दोनों मित्र झरोखेसे बाहर निकलकर अपने डेरेमें चले गये ॥१७७॥

तदनन्तर जिसका हृदय अत्यन्त शान्त था ऐसा पवनंजय परम वैराग्यको प्राप्त होकर इस प्रकार विचार करने लगा कि ॥१७८॥ जिसमें सन्देहरूपी विषम भँवरें उठ रही हैं और जो दुष्टभावरूपी मगरमच्छोंसे भरी हुई हैं ऐसी पर-पुरुषासक्त स्त्रीरूपी नदीका दूरसे ही परित्याग करना चाहिए ॥१७९॥ जो खोटे भावोंसे अत्यन्त सघन है तथा जिसमें इन्द्रियरूपी दुष्ट जीवोंका समूह व्याप्त है ऐसी यह स्त्री एक बड़ी अटवीके समान है, विद्वज्जनोंको कभी इसकी सेवा नहीं करनी चाहिए ॥१८०॥ जिसका अपने शत्रुके साथ सम्पर्क है ऐसे राजाकी सेवा करनेसे क्या लाभ है ? इसी प्रकार शिथिल मित्र और परपुरुषासक्त स्त्रीको पाकर सुख कहाँसे हो सकता है ? ॥१८१॥ जो विज्ञ पुरुष हैं वे अनादृत होनेपर इष्ट-मित्रों, बन्धुजनों, पुत्रों और स्त्रियोंको छोड़ देते हैं पर जो क्षुद्र मनुष्य हैं वे पराभवरूपी जलमें डूबकर वहीं नष्ट हो जाते हैं ॥१८२॥ मदिरापानमें राग रखनेवाला वैद्य, शिक्षा रहित हाथी, अहेतुक वैरी, हिंसापूर्ण दुष्ट धर्म, मूर्खोंकी गोष्ठी, मर्यादाहीन देश, क्रोधी तथा बालक राजा और परपुरुषासक्त स्त्री—बुद्धिमान् मनुष्य इन सबको दूरसे ही छोड़ देवे ॥१८३-१८४॥ ऐसा विचार करते हुए पवनंजयकी रात्रि कन्याकी प्रीतिके समान क्षयको प्राप्त हो गयी और जगानेवाले बाजे बज उठे ॥१८५॥

तदनन्तर सन्ध्याकी लालीसे पूर्व दिशा आच्छादित हो गयी सो ऐसी जान पड़ती थी मानो पवनंजयके द्वारा छोड़े हुए रागसे ही निरन्तर आच्छादित हो गयी थी ॥१८६॥ और जो स्त्रीके क्रोधके कारण ही मानो लाल-लाल दिख रहा था तथा जो जगत्की चेष्टाओंका कारण था ऐसे चंचल बिम्बको धारण करता हुआ सूर्य उदित हुआ ॥१८७॥ तदनन्तर विरागके कारण अत्यन्त अलस शरीरको धारण करता स्त्रीविमुख पवनंजय प्रहसित मित्रसे बोला कि ॥१८८॥ हे मित्र ! उससे सम्पर्क रखनेवाली वायुका स्पर्श न हो जाये इसलिए यहाँ समीपमें भी मेरा रहना उचित

---

१. पुरुषः । २. निर्मूहाद् क., ख., ग., म., ज. । गवाक्षात् । ३. दृष्टा म. । ४. ऐन्द्री, पूर्वविशेत्यर्थः ।

उत्तिष्ठ स्वपुरं यामो न युक्तमवलम्बनम् । सेना प्रयाणशङ्खेन कार्यतामवबोधिनी ॥१९०॥
तथेति कारिते तेन क्षुब्धसागरसंनिभा । चचाल सा चमूः क्षिप्रं कृतयानोचितक्रिया ॥१९१॥
ततो रथाश्वमातङ्गपादातप्रभवो महान् । शब्दो भेर्यादिजन्मा च कन्यायाः श्रवणेऽविशत् ॥१९२॥
प्रयाणसूचिना तेन नितान्तं दुःखिताभवत् । विशता मुद्गराघातवेगतः शङ्कुनेव सा ॥१९३॥
अचिन्तयच्च हा कष्टं दत्त्वा मे विधिना [1]हृतम् । निधानं किं करोम्यत्र कथमेतद्भविष्यति ॥१९४॥
अङ्केऽस्य पुरुषेन्द्रस्य क्रीडिष्यामीति ये कृताः । तेऽन्यथैव परावृत्ता [2]मन्दाया मे मनोरथाः ॥१९५॥
क्रियमाणमिमं ज्ञात्वा [3]कथंचिद्वेदमेतया । वैरिणीभूतया सख्या मयि स्याद् [4]द्वेषमागतः ॥१९६॥
विवेकरहितामेतां धिक्पापां क्रूरभाषिणीम् । यथा मे दयितोऽवस्थामीदृशीमेष लम्भितः ॥१९७॥
कुर्यान्मह्यं हितं तातो जीवितेशं निवर्तयेत् । अपि नाम भवेदस्य बुद्धिर्व्यावर्तनं प्रति ॥१९८॥
सत्यतो यदि नाथो मे परित्यागं करिष्यति । आहारवर्जनं कृत्वा ततो यास्यामि पञ्चताम् ॥१९९॥
इति संचिन्तयन्ती सा प्राप्ता मूर्च्छां महीतले । पपाताश्वर्यनिर्मुक्ता लूनमूललता यथा ॥२००॥
ततः किमिदमित्युक्त्वा संभ्रमं परमागते । शीतलक्रियया सख्यौ चक्रतुस्ते [5]विमूर्च्छिताम् ॥२०१॥
पृच्छ्यमाना च यत्नेन मूर्च्छाहेतुं स्खलत्कथा । शशाक त्रपया वक्तुं न सा स्तिमितलोचना ॥२०२॥
अथ वायुकुमारस्य सेनायामिति [6]मानवाः । आकुला मानसे चक्रुरहेतुगतिविस्मिताः ॥२०३॥

नहीं है अतः सुनो और उठो-अपने नगरकी ओर चलें, यहाँ विलम्ब करना उचित नहीं है। प्रस्थान कालमें बजनेवाले शंखसे सेनाको सावधान कर दो ॥१८९-१९०॥

तदनन्तर शंखध्वनि होनेपर जो क्षुभित सागरके समान जान पड़ती थी तथा जिसने प्रस्थान कालके योग्य सर्व कार्य कर लिये थे ऐसी सेना शीघ्र ही चल पड़ी ॥१९१॥ तत्पश्चात् रथ, घोड़े, हाथी, पैदल सिपाही और भेरी आदिसे उत्पन्न हुआ शब्द कन्याके कानमें प्रविष्ट हुआ ॥१९२॥ प्रस्थानको सूचित करनेवाले उस शब्दसे कन्या अत्यन्त दुःखी हुई मानो मुद्गर प्रहार सम्बन्धी वेगसे प्रवेश करनेवाली कीलसे पीड़ित ही हुई थी ॥१९३॥ वह विचार करने लगी कि हाय-हाय, बड़े खेदकी बात है कि विधाताने मेरे लिए खजाना देकर छीन लिया। मैं क्या करूँ ? अब कैसा क्या होगा ? ॥१९४॥ इस श्रेष्ठ पुरुषकी गोदमें क्रीड़ा करूँगी इस प्रकारके जो मनोरथ मैंने किये थे मुझ अभागिनीके वे सब मनोरथ अन्यथा हो परिणत हो गये और रूप ही बदल गये ॥१९५॥ इस वैरिन सखीने जो उनकी निन्दा की थी जान पड़ता है कि किसी तरह उन्हें इसका ज्ञान हो गया है इसीलिए वे मुझपर द्वेष करने लगे हैं ॥१९६॥ विवेकरहित, पापिनी तथा क्रूर वचन बोलनेवाली इस सखीको धिक्कार है जिसने कि मेरे प्रियतमको यह अवस्था प्राप्त करा दी ॥१९७॥ पिताजी यदि हृदयवल्लभको लौटा सकें तो मेरा बड़ा हित करेंगे और क्या इनकी भी लौटनेकी बुद्धि होगी ॥१९८॥ यदि सचमुच ही हृदयवल्लभ मेरा परित्याग करेंगे तो मैं आहार त्याग कर मृत्युको प्राप्त हो जाऊँगी ॥१९९॥ इस प्रकार विचार करती हुई अंजना मूर्छित हो छिन्नमूल लताके समान पृथिवीपर गिर पड़ी ॥२००॥ तदनन्तर 'यह क्या है ?' ऐसा कहकर परम उद्वेगको प्राप्त हुई दोनों सखियोंने शीतलोपचारसे उसे मूर्छारहित किया ॥२०१॥ उस समय उसका समस्त शरीर ढीला हो रहा था और नेत्र निश्चल थे। सखियोंने प्रयत्नपूर्वक उससे मूर्छाका कारण पूछा पर वह लज्जाके कारण कुछ कह न सकी ॥२०२॥

अथानन्तर वायुकुमार (पवनंजय) की सेनाके लोग इस अकारण गमनसे चकित हो बड़ी आकुलताके साथ मनमें विचार करने लगे कि यह कुमार इच्छित कार्यको पूरा किये बिना ही

---

१. हृतम् म. । २. निर्भाग्यायाः । ३. कथंचिद्वेदमेतया म. । ४. विद्वेषमागतः म., ब. । ५. विमूर्छताम् म. ६. मानवः म. ।

अविधायेप्सितं कस्मादयं गन्तुं समुद्यतः । कोपोऽस्य जनितः केन केन वा चोदितोऽन्यथा ॥२०४॥
विद्यते सर्वमेवास्य कन्योपादानकारणम् । अतः किमित्ययं कस्मादभूदपगताशयः ॥२०५॥
हसित्वा केचिदित्यूचुर्नामास्येदं सहार्थकम् । पवनंजय इत्येष यस्माज्जेतास्य वेगतः ॥२०६॥
ऊचुरन्येऽयमद्यापि न जानात्यङ्गनारसम् । नूनं येन विहायेमां कन्यां गंतुं समुद्यतः ॥२०७॥
यदि स्यादस्य विज्ञाता रतिः परमुदारजा । बद्धः स्यात्प्रेमबन्धेन ततो वनगजो यथा ॥२०८॥
इत्युपांशुकृतालापसामन्तशतमध्यगः । वेगवद्वाहनो गन्तुं प्रवृत्तः पवनंजयः ॥२०९॥
ततः कन्यापिता ज्ञात्वा प्रयाणं तस्य संभ्रमात् । समस्तैर्बन्धुभिः सार्धमाजगाम समाकुलैः ॥२१०॥
प्रह्लादेन समं तेन ततोऽसावित्थमाख्यत । भद्रेदं गमनं कस्मात्क्रियते शोककारणम् ॥२११॥
ननु केन किमुक्तोऽसि कस्य नेष्टोऽसि शोभन । चिन्तयस्यपि नौ कश्चित्ते बुध न रोचते ॥२१२॥
पितुर्मम च ते वाक्यं दोषे सत्यपि युज्यते । कर्तुं किमुत निःशेषदोषसङ्गविवर्जितम् ॥२१३॥
ततः सूरे निवर्तस्व क्रियतां मेवर्मानसितम् । अवादृशां गुरोराज्ञा सम्वानन्दस्य कारणम् ॥२१४॥
इत्युक्त्वापत्यरागेण वीरो विनतमस्तकः । श्वसुरेण धृतः पाणौ जनकेन च सादरम् ॥२१५॥
ततस्तद्गौरवं भङ्क्तुमसमर्थो न्यवर्तत । दध्याविति च कन्यायाः कोपाद्दुःखस्य कारणम् ॥२१६॥
समुद्वह शतायाम्येनो दुःखेनासङ्गजन्मना । येनान्यतोऽपि नैवेषा प्राप्नोति पुरुषान्सुखम् ॥२१७॥

जानेके लिए उद्यत क्यों हो गया है ? इसे किसने क्रोध उत्पन्न कर दिया ? अथवा किसने इसे विपरीत प्रेरणा दी है ? ॥२०३-२०४॥ इसके कन्या ग्रहण करनेकी समस्त तैयारी है ही फिर यह किस कारण उदासीन हो गया है ? ॥२०५॥ कितने ही लोग हँसकर कहने लगे कि चूँकि इसने वेगसे पवनको जीत लिया है इसलिए इसका 'पवनंजय' यह नाम सार्थक है ॥२०६॥ कुछ लोग कहने लगे कि यह अभी तक स्त्रीका रस जानता नहीं है इसीलिए तो यह इस कन्याको छोड़कर जानेके लिए उद्यत हुआ है ॥२०७॥ यदि इसे उत्तम रतिका ज्ञान होता तो यह जंगली हाथीके समान उसके प्रेमपाशमें सदा बँधा रहता ॥२०८॥ इस प्रकार एकान्तमें वार्तालाप करनेवाले सैकड़ों सामन्तोंके बीच खड़ा हुआ पवनंजय वेगशाली वाहनपर आरूढ हो चलनेके लिए प्रवृत्त हुआ ॥२०९॥

तदनन्तर जब कन्याके पिताको इसके प्रस्थानका पता चला तब वह हड़बड़ाकर घबड़ाये हुए समस्त बन्धुजनोंके साथ वहाँ आया ॥२१०॥ उसने प्रह्लादके साथ मिलकर कुमारसे इस प्रकार कहा कि हे भद्र ! शोकका कारण जो यह गमन है सो किसलिए किया जा रहा है ? आपसे किसने क्या कह दिया ? हे भद्र पुरुष ! आप किसे प्रिय नहीं हैं ? हे विद्वन् ! जो बात आपके लिए नहीं रुचती हो उसका तो यहाँ कोई विचार ही नहीं करता ॥२११-२१२॥ दोष रहते हुए भी आपको मेरे तथा पिताके वचन मानना उचित है फिर यह कार्य तो समस्त दोषोंसे रहित है अतः इसका करना अनुचित कैसे हो सकता है ? ॥२१३॥ इसलिए हे विद्वन् ! लौटो और हम दोनोंका मनोरथ पूर्ण करो। आप जैसे पुरुषोंके लिए पिताकी आज्ञा तो आनन्दका कारण होना चाहिए ॥२१४॥ इतना कहकर श्वसुर तथा पिताने सन्तानके राग वश नतमस्तक वीर पवनंजयका बड़े आदरसे हाथ पकड़ा ॥२१५॥ तत्पश्चात् श्वसुर और पिताके गौरवका भंग करनेके लिए असमर्थ होता हुआ पवनंजय वापिस लौट आया और क्रोधवश कन्याको दुःख पहुँचानेवाले कारणका इस प्रकार विचार करने लगा ॥२१६॥ अब मैं इस कन्याको विवाह कर असमागमसे उत्पन्न दुःखके

---

१. इत्येवं तस्माज्जेतास्य म. । २. किमुक्तोसि । ३. संगव्रातविवर्जितम् ख. । ४. हे विद्वन् । ५. नौ आवयोः । तावदीप्सितम् ख. । नवमोप्सितम् म. । ६. सत्वानन्दस्य म. । ७. भवतु म. ।

चक्रार विदितार्थं च मित्रं तेन[1] च भाषितः । साधु ते विदितं बुद्ध्या मयाप्येतत्किरूपितम् ॥२१८॥
निवृत्तं दयितं श्रुत्वा कन्यायाः संमदोऽभवत् । निरन्तरसमुद्भिन्नरोमाञ्चाशेषविग्रहः ॥२१९॥
ततः समयमासाद्य तयोर्वैवाहमङ्गलम् । [2]प्रस्तुतं बन्धुभिः कर्तुं [3]प्राप्तसर्वसमीहितम् ॥२२०॥
अशोकपल्लवस्पर्शः कान्तायाः स करोऽभवत् । विरक्तचेतसस्तस्य कृशानुरशनोपमः ॥२२१॥
अभिच्छतो गता दृष्टिः कथंचित्तस्य तत्तनौ । क्षणमात्रमपि स्थातुं न सेहे तुल्यविद्युति[4] ॥२२२॥
एष भावं न वेत्तास्या इति विज्ञाय पावकः । स्फुटल्लाजसमूहेन जहासैव कृतस्वनम् ॥२२३॥
ततो विधानयोगेन कृत्वोपयमनं तयोः । परमं प्रमुदं प्राप्ताः सशब्दाः सर्वबान्धवाः ॥२२४॥
नानाद्रुमलताकीर्णे फलपुष्पविराजिते । मासं तत्र वने कृत्वा विभूत्या परमोत्सवम् ॥२२५॥
यथोचितं कृतालापाः कृतपूजाः परस्परम् । यथास्वं ते ययुः सर्वे वियोगाद् दुःखिताः क्षणम् ॥२२६॥

आर्याच्छन्दः

अविदिततत्त्वस्थितयो विदधति यज्जन्तवः परेऽशर्म ।
तत्तत्र मूलहेतौ कर्मरवौ तापके दृष्टम् ॥२२७॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरितेऽञ्जनासुन्दरीविवाहाभिधानं नाम पञ्चदशं पर्व ॥१५॥

द्वारा सदा दुःखी करूँगा । क्योंकि विवाहके बाद यह अन्य पुरुषसे भी सुख प्राप्त नहीं कर सकेगी ॥२१७॥ पवनंजयने अपना यह विचार मित्रके लिए बतलाया और उसने भी उत्तर दिया कि ठीक है यही बात मैं कह रहा था जिसे तुमने अपनी बुद्धिसे स्वयं समझ लिया ॥२१८॥

प्रियतमको लौटा सुनकर कन्याको बहुत हर्ष हुआ । उसके समस्त शरीरमें रोमांच निकल आये ॥२१९॥ तदनन्तर समय पाकर बन्धुजनोंने दोनोंका विवाहरूप मंगल किया जिससे सबके मनोरथ पूर्ण हुए ॥२२०॥ यद्यपि कन्याका हाथ अशोकपल्लवके समान शीत स्पर्शवाला था पर उस विरक्त चित्तके लिए वह अग्निकी मेखलाके समान अत्यन्त उष्ण जान पड़ा ॥२२१॥ बिजलीकी तुलना करनेवाले अंजनाके शरीरपर किसी तरह इच्छाके बिना ही पवनंजयकी दृष्टि गयी तो सही पर वह उसपर क्षण भरके लिए भी नहीं ठहर सकी ॥२२२॥ यह पवनंजय इस कन्याके भावको नहीं समझ रहा है यह जानकर ही मानो चटकती हुई लाईके बहाने अग्नि शब्द करती हुई हँस रही थी ॥२२३॥ इस तरह विधिपूर्वक दोनोंका विवाह कर शब्द करते हुए समस्त बन्धुजन परम हर्षको प्राप्त हुए ॥२२४॥ नाना वृक्ष और लताओंसे व्याप्त तथा फल-फूलोंसे सुशोभित उस वनमें सब लोग बड़े वैभवसे महोत्सव करते रहे ॥२२५॥ तदनन्तर परस्पर वार्तालाप और यथा योग्य सत्कार कर सब लोग यथा स्थान गये । जाते समय सब लोग वियोगके कारण क्षण भरके लिए दुःखी हो उठे थे ॥२२६॥

गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! तत्त्वकी स्थितिको नहीं समझनेवाले प्राणी दूसरेके लिए जो दुःख अथवा सुख पहुँचाते हैं उसमें मूल कारण सन्ताप पहुँचानेवाला कर्म रूपी सूर्य ही है अर्थात् कर्मके अनुकूल या प्रतिकूल रहनेपर ही दूसरे लोग किसीको सुख या दुःख पहुँचा सकते हैं ॥२२७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें अञ्जनासुन्दरीके विवाहका कथन करनेवाला पन्द्रहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१५॥

---

१. तेनेति भाषितः म. । २. प्रारब्धम् । प्रथुतं म., ज., । ३. प्राप्तं सर्वसमीहितम् ख. । ४. विद्युतिः क., ख., ज. म. ।

षोडशं पर्व

ततोऽसंभाषणादस्याश्चक्षुषश्चानिपातनात् । चकार परमं दुःखं वायुरज्ञाततन्मनाः ॥१॥
रात्रावपि न सा लेभे निद्रां विद्राणलोचना । अनारतगलद्बाष्पमलिनौ दधती स्तनौ ॥२॥
वायुमप्यभिनन्दन्ती दयितेनैकनामकम् । तन्नामश्रवणोत्कण्ठाधृष्टधीश्रवणा भृशम् ॥३॥
कुर्वती मानसे रूपं तस्य वेद्यां निरूपितम् । अस्पष्टं क्षणनिश्चेष्टस्थिता स्तिमितलोचना ॥४॥
अन्तर्निरूप्य वाञ्छन्ती बहिरप्यस्य दर्शनम् । कुर्वती लोचने स्पष्टे[2] भूयदृष्टे पुनः शुचम् ॥५॥
सकृदस्पष्टदृष्टस्याचित्रकर्माणि कृच्छ्रतः । लिखन्ती वेपथुग्रस्तहस्तप्रच्युतवर्तिका[3] ॥६॥
संचारयन्ती कृच्छ्रेण वदनं करतः करम् । कृशीभूतसमस्ताङ्गशिथिलाभरणस्वनभूषणा ॥७॥
दीर्घोष्णतरनिश्वासदग्धपाणिकपोलिका । अंशुकस्यापि भारेण खेदमङ्गेषु बिभ्रती ॥८॥
निन्दन्ती भृशमात्मानं स्मरन्ती पितरौ मुहुः । दधाना हृदयं शून्यं क्षणं निष्पन्दविग्रहा ॥९॥
दुःखनिःसृतया वाचा बाष्पसंरुद्धकण्ठतः । उपालम्भं प्रयच्छन्ती दैवायास्यन्तविक्लवा ॥१०॥
करैः शीतकरस्यापि बिभ्रती दाहमुत्तमम्[4] । प्रासादेऽपि विनिर्यान्ती[5] याति मूर्च्छां पुनः पुनः ॥११॥

अथानन्तर पवनंजयने अंजनाको विवाह कर ऐसा छोड़ा कि उससे कभी बात भी नहीं करते थे, बात करना तो दूर रहा आँख उठाकर भी उस ओर नहीं देखते थे। इस तरह वे उसे बहुत दुःख पहुँचा रहे थे। इस घटनासे अंजनाके मनमें कितना दुःख हो रहा था इसका उन्हें बोध नहीं था ॥१॥ उसे रात्रिमें भी नींद नहीं आती थी, सदा उसके नेत्र खुले रहते थे। उसके स्तन निरन्तर अश्रुओंसे मलिन हो गये थे ॥२॥ पतिके समान नामवाले पवन अर्थात् वायुको भी वह अच्छा समझती थी—सदा उसका अभिनन्दन करती थी और पतिका नाम सुननेके लिए सदा अपने कान खड़े रखती थी ॥३॥ उसने विवाहके समय वेदीपर जो पतिका अस्पष्टरूप देखा था उसीका मनमें ध्यान करती रहती थी। वह क्षण-क्षणमें निश्चेष्ट हो जाती थी और उसके नेत्र निश्चल रह जाते थे ॥४॥ वह हृदयमें पतिको देखकर बाहर भी उनका दर्शन करना चाहती थी इसलिए नेत्रोंको पोंछकर ठीक करती थी पर जब बाह्यमें उनका दर्शन नहीं होता था तो पुनः शोकको प्राप्त हो जाती थी ॥५॥ उसने एक ही बार तो पतिका रूप देखा था इसलिए बड़ी कठिनाईसे वह उनका चित्र खींच पाती थी उतने पर भी हाथ बीच-बीचमें काँपने लगता था जिससे तूलिका छूटकर नीचे गिर जाती था ॥६॥ वह इतनी निर्बल हो चुकी थी कि मुखको एक हाथसे दूसरे हाथ पर बड़ी कठिनाईसे ले जा पाती थी। उसके समस्त अंग इतने कृश हो गये थे कि उनसे आभूषण ढीले हो होकर शब्द करते हुए नीचे गिरने लगे थे ॥७॥ उसकी लम्बी और अतिशय गरम साँससे हाथ तथा कपोल दोनों ही जल गये थे। उसके शरीर पर जो महीन वस्त्र था उसीके भारसे वह खेदका अनुभव करने लगी थी ॥८॥ वह अपने आपकी अत्यधिक निन्दा करती हुई बार-बार माता-पिताका स्मरण करती थी तथा शून्य हृदयको धारण करती हुई क्षण-क्षणमें निश्चेष्ट अर्थात् मूर्च्छित हो जाती थी ॥९॥ कण्ठके बाष्पावरुद्ध होनेके कारण दुःखसे निकले हुए वचनोंसे वह सदा अपने भाग्यको उलाहना देती रहती थी। अत्यन्त दुःखी जो वह थी ॥१०॥ वह चन्द्रमाकी किरणोंसे भी अधिक दाहका अनुभव करती थी और महलमें भी चलती थी तो

---

१. पवनञ्जयः । २. स्पृष्टे म., ज. । ३. विग्रहा म. । ४. किरणैः । ५. अधिकम् । ६. चलन्ती । विनिर्याति ख. । विनिर्यन्ती क., ज. ।

अयि नाथ तवाङ्गानि मनोज्ञानि कथं मम । अङ्गानां हृदयस्थानि कुर्वते तापमुत्तमम् ॥१२॥
ननु ते [1]जनितः कश्चिन्नापराधो मया प्रभो । कारणेन विना कस्मात्कोपं यातोऽसि मे परम् ॥१३॥
प्रसीद तव भक्तास्मि कुरु मे चित्तनिर्वृतिम् । बहिर्दर्शनदानेन रचितोऽञ्जलिरेष ते ॥१४॥
[2]द्यौरिवादित्यनिर्मुक्ता चन्द्रहीनेव शर्वरी । त्वया विना न शोभेऽहं विद्येव च गुणोज्झिता ॥१५॥
प्रयच्छन्तीत्युपालम्भं पत्ये मानसवासिने । बिन्दून् मुक्ताफलस्थूलान् मुञ्चन्ती लोचनाम्भसः ॥१६॥
विद्यमानां [3]अदिष्टेषु कुसुमस्तस्तरेष्वपि । गुरुवाक्यानुरोधेन कुर्वती वपुषः स्थितिम् ॥१७॥
चक्रारूढमिवात्यर्थं स्वं [4]दधाना कृतभ्रमम् । संस्कारविरहाद्रूक्षं भ्रमन्ती केशसंचयम् ॥१८॥
तेजोमयीव संतापाज्ज्वलात्मेवाश्रुसंततेः । शून्यत्वाद्गगनात्मेव पार्थिवीवाक्रियामतः ॥१९॥
संततोत्कलिकायोगाद्वायुनेव विनिर्मिता । तिरोऽवस्थितचैतन्यादभूतमात्रोपमात्मिका ॥२०॥
भूमौ निक्षिप्तसर्वाङ्गा नोपवेष्टुमपि क्षमा । उपविष्टा च नोत्थातुं देहं नोढुं[5]मुत्थिता ॥२१॥
सखीजनांसविन्यस्तविगलत्पाणिपल्लवा । [6]भ्राम्यन्ती कुट्टिमाङ्केऽपि प्रस्खलच्चरणा मुहुः ॥२२॥
स्पृहयन्त्यनुयाताभ्यः प्रियैश्चाटुविधायिभिः । वराकी छेकक्रान्ताभ्यस्तद्गतास्पन्दवीक्षणा ॥२३॥
प्रियात्परिभवं प्राप्ता कारणेन विवर्जिता । निन्ये सा दिवसान् कृच्छ्रादीना संवत्सरोपमान् ॥२४॥

बार-बार मूर्च्छित हो जाती थी ॥११॥ हे नाथ ! तुम्हारे मनोहर अंग मेरे हृदयमें विद्यमान हैं फिर वे अत्यधिक सन्ताप क्यों उत्पन्न कर रहे हैं ? ॥१२॥ हे प्रभो ! मैंने आपका कोई अपराध नहीं किया है फिर अकारण अत्यधिक क्रोधको क्यों प्राप्त हुए हो ? ॥१३॥ हे नाथ ! मैं आपकी भक्त हूँ अतः प्रसन्न होओ और बाह्यमें दर्शन देकर मेरा चित्त सन्तुष्ट करो। लो, मैं आपके लिए यह हाथ जोड़ती हूँ ॥१४॥ जिस प्रकार सूर्यसे रहित आकाश, चन्द्रमासे रहित रात्रि और गुणोंसे रहित विद्या शोभा नहीं देती उसी प्रकार आपके बिना मैं भी शोभा नहीं देती ॥१५॥ इस प्रकार वह मनमें निवास करने वाले पतिके लिए उलाहना देती हुई मुक्ताफलके समान स्थूल आसुओंकी बूँदें छोड़ती रहती थी ॥१६॥ वह अत्यन्त कोमल पुष्पशय्या पर भी खेदका अनुभव करती थी और गुरुजनोंका आग्रह देख बड़ी कठिनाईसे भोजन करती थी ॥१७॥ वह चक्रपर चढ़े हुएके समान निरन्तर घूमती रहती थी और तेल कंघी आदि संस्कारके अभावमें जो अत्यन्त रूक्ष हो गये थे ऐसे केशोंके समूहको धारण करती थी ॥१८॥ उसके शरीरमें निरन्तर सन्ताप विद्यमान रहता था इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो तेजःस्वरूप ही है। निरन्तर अश्रु निकलते रहनेसे ऐसी जान पड़ती थी मानो जलरूप ही हो। निरन्तर शून्य मनस्क रहनेसे ऐसी जान पड़ती थी मानो आकाश रूप ही हो और अक्रिय अर्थात् निश्चल होनेके कारण ऐसी जान पड़ती थी मानो पृथिवी रूप ही हो ॥१९॥ उसके हृदयमें निरन्तर उत्कलिकाएँ अर्थात् उत्कण्ठाएँ (पक्षमें तरंगें) उठती रहती थीं इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो वायुके द्वारा रची गयी हो और चेतना शक्तिके तिरोभूत होनेसे ऐसी जान पड़ती थी मानो पृथिवी आदि भूतचतुष्टय रूप ही हो ॥२०॥ वह पृथिवीपर समस्त अवयव फैलाये पड़ी रहती थी, बैठनेके लिए भी समर्थ नहीं थी। यदि बैठ जाती थी तो उठनेके लिए असमर्थ थी और जिस किसी तरह उठती भी तो शरीर सम्भालने की उसमें क्षमता नहीं रह गयी थी ॥२१॥ यदि कभी चलती थी तो सखी जनोंके कन्धों पर हाथ रख कर चलती थी। चलते समय उसके हाथ सखियोंके कन्धोंसे बार बार नीचे गिर जाते थे और मणिमय फर्श पर भी बार बार उसके पैर लड़खड़ा जाते थे ॥२२॥ चापलूसी करनेवाले पति सदा जिनके साथ रहते थे ऐसी चतुर स्त्रियोंको वह बड़ी स्पृहाके साथ देखती थी और उन्हींकी ओर उसके निश्चल नेत्र लगे रहते थे ॥२३॥ जो पतिसे तिरस्कारको प्राप्त थी तथा अकारण ही जिसका

---

१. जानतः म. । २. द्यौरेवा-म. । ३. खिद्यमानाश्च दिष्टेषु म. । ४. अतिशयेन मृदुषु । ५. संदधाना म. । ६. द्रूपमात्रोपमात्मिका म. । ७. नोढुं म. । ८. भ्राम्यन्ति म. ।

तस्यामेतदवस्थायां समोऽस्या दुःखितोऽथवा । अधिकः परिवारोऽभूत्किंकर्तव्याकुलात्मकः ॥२५॥
अचिन्तयच्च किंखेतत्कारणेन विनाभवत् । किं वा जन्मान्तरोपार्जं कर्म स्यात्फलमीदृशम् ॥२६॥
किं वान्तरायकर्म स्याज्जनितं जन्मान्तरे । जातं वायुकुमारस्य फलदानपरायणम् ॥२७॥
येनायमनया सार्द्धं सुन्दर्या वीतदोषया । न भुङ्क्ते परमान्भोगान्सर्वेन्द्रियसुखावहान् ॥२८॥
शृणु दुःखं यथा पूर्वं न प्राप्तं भवने पितुः । सेयं कर्मानुभावेन दुःखभारमिमं श्रिता[1] ॥२९॥
उपायमत्र कं कुर्मो वयं भाग्यविवर्जिताः । अस्मत्प्रयतनासाध्यो गोचरो ह्येष कर्मणाम् ॥३०॥
राजपुत्री भवत्वेषा प्रेमसंभारभाजनम् । भर्तुरस्मत्कृतेनापि पुण्यजातेन सर्वथा ॥३१॥
अथवा विद्यते नैव पुण्यं नोऽत्यन्तमल्पकम् । निमग्ना येन विद्मो बालादुःखमहार्णवे ॥३२॥
भविष्यति कदा श्लाघ्यः[2] स मुहूर्तोऽङ्कवर्तिनीम्[3] । बालामिमां प्रियो नर्मगिरा यत्र कपिष्यति ॥३३॥
अत्रान्तरे विरोधोऽभूत्तस्मिन् विभुना सह । वरुणस्य परं गर्वं केवलं बिभ्रतो बलम् ॥३४॥
कैकसीसूनुना दूतः प्रेषितोऽथेत्यभाषत । वरुणं स्वामिनः शक्त्या दधानः परमां द्युतिम् ॥३५॥
श्रीमान् विद्याधराधीशो वरुण[4] स्वाह रावणः । यथा कुरु प्रणामं मे सज्जीभव रणाय वा ॥३६॥
प्रकृतिस्थिरचित्तोऽथ विहस्य वरुणोऽवदत् । दूत को रावणो नाम क्रियते तेन का क्रिया ॥३७॥
नाहमिन्द्रो जगन्निन्द्यवीर्यो वैश्रवणोऽथवा । सहस्ररश्मिसंज्ञो वा मरुतो वाथवा यमः ॥३८॥
देवताधिष्ठितैः रत्नैर्दर्पोऽस्यामवद्गुरुः । भाषातु सममेभिस्तं नयाम्यद्य विसंज्ञताम् ॥३९॥

त्याग किया गया था ऐसी दीनहीन अंजना दिनोंको वर्षोंके समान बड़ी कठिनाईसे बिताती थी ॥२४॥ उसकी ऐसी अवस्था होनेपर उसका समस्त परिवार उसके समान अथवा उससे भी अधिक दुःखी था तथा 'क्या करना चाहिए' इस विषयमें निरन्तर व्याकुल रहता था ॥२५॥ परिवारके लोग सोचा करते थे कि क्या यह सब कारणके बिना ही हुआ है अथवा जन्मान्तरमें संचित कर्म ऐसा फल दे रहा है ॥२६॥ अथवा वायुकुमारने जन्मान्तरमें जिस अन्तराय कर्मका उपार्जन किया था अब वह फल देनेमें तत्पर हुआ है ॥२७॥ जिससे कि वह इस निर्दोष सुन्दरीके साथ समस्त इन्द्रियोंको सुख देनेवाले उत्कृष्ट भोग नहीं भोग रहा है ॥२८॥ सुनो, जिस अंजनाने पहले पिताके घर कभी रंचमात्र भी दुःख नहीं पाया वही अब कर्मके प्रभावसे इस दुःखके भारको प्राप्त हुई है ॥२९॥ इस विषयमें हम भाग्यहीन क्या उपाय करें सो जान नहीं पड़ता। वास्तवमें यह कर्मोंका विषय हमारे प्रयत्न द्वारा साध्य नहीं है ॥३०॥ हम लोगोंने जो पुण्य किया है उसीके प्रभावसे यह राजपुत्री अपने पतिको प्रेमभाजन हो जाये तो अच्छा हो ॥३१॥ अथवा हम लोगोंके पास अणुमात्र भी तो पुण्य नहीं है क्योंकि हम स्वयं इस बालाके दुःखरूपी महासागरमें डूबे हुए हैं ॥३२॥ वह प्रशंसनीय मुहूर्त कब आवेगा जब इसका पति इसे गोदमें बैठाकर इसके साथ हास्य-भरी वाणीमें वार्तालाप करेगा ॥३३॥

इसी बीचमें बहुत भारी अहंकारको धारण करनेवाले वरुणका रावणके साथ विरोध हो गया ॥३४॥ सो रावणने वरुणके पास दूत भेजा। स्वामीके सामर्थ्यसे परम तेजको धारण करनेवाला दूत वरुणसे कहता है कि ॥३५॥ हे वरुण! विद्याधरोंके अधिपति श्रीमान् रावणने तुमसे कहा है कि या तो तुम मेरे लिए प्रणाम करो या युद्धके लिए तैयार हो जाओ ॥३६॥ तब स्वभावसे ही स्थिर चित्तके धारक वरुणने हँसकर कहा कि हे दूत! रावण कौन है? और क्या काम करता है? ॥३७॥ लोकनिन्द्य वीर्यको धारण करनेवाला मैं इन्द्र नहीं हूँ, अथवा वैश्रवण नहीं हूँ, अथवा सहस्ररश्मि नहीं हूँ, अथवा राजा मरुत्व या यम नहीं हूँ ॥३८॥ देवताधिष्ठित रत्नोंसे इसका गर्व

---

१. श्रिताः म.। २. अस्मत्प्रयत्नतासाध्यो ब.। ३. सुमुहूर्तोऽङ्क म.। ४. त्वा+आह 'त्वामौ द्वितीयामाः' इति त्वादेशः। ५. वीर्यवैश्रवण -म.।

नूनमासन्नमृत्युस्त्वं येनैवं भाषसे स्फुटम् । अभिधायेति तं दूतो गत्वा मर्त्रे न्यवेदयत् ॥४०॥
ततः परमकोपेन परितो वारुणं पुरम् । अरुणद्रावणो युक्तः सेनयोदधिकल्पया ॥४१॥
प्रतिज्ञां च चकारेमां रत्नैरेव मया विना । नेतव्यश्चपलो भद्रं मृत्युं वेति ससंभ्रमः ॥४२॥
राजीवपौण्डरीकाद्याः क्षुब्धा वरुणनन्दनाः । विनिर्ययुः सुसन्नद्धाः श्रुत्वा प्राप्तं बलं द्विषः ॥४३॥
रावणस्य बलेनामा तेषां युद्धमभूत्परम् । अन्योन्यापातसंछिन्नविविधायुधसंहतिः ॥४४॥
गजा गजैः समं सक्ता वाजिनोऽश्वै रथा रथैः । भटा भटैः कृतारावा दष्टोष्ठा रक्तलोचनाः ॥४५॥
[1]पराचीनं ततः सैन्यं [2]त्रैकूटैर्वारुणं कृतम् । चिराय कृतसंग्रामं[3] दत्तसोढायुधोत्करम् ॥४६॥
[4]अलकान्तस्ततः क्रुद्धः कालाग्निरिव दारुणः । अधावद्रक्षसां सैन्यं हेतिपञ्जरमध्यगः ॥४७॥
ततो दुर्वारवेगं तं दृष्ट्वायान्तं रणाङ्गणे । गोपायितः स्वधाहिन्या रावणो दीप्तशस्त्रया ॥४८॥
वरुणेन कृताश्वासास्ततस्तस्य सुताः पुनः । परमं योद्धुमारब्धा विध्वस्तभटकुञ्जराः ॥४९॥
ततो यावद्दशग्रीवः क्रोधदीपितमानसः । गृह्णाति कार्मुकं क्रूरः भ्रकुटीकुटिलालिकः ॥५०॥
दत्तयुद्धश्रियं तावत्खेदवर्जितमानसः । [5]वारुणीनां शतेनाशु गृहीतः खरदूषणः ॥५१॥
ततश्चित्ते दशग्रीवश्चकारात्यन्तमाकुलः । यथा न शोभतेऽस्माकमधुना रणधीरिति ॥५२॥

बहुत बढ़ गया है इसलिए वह इन रत्नोंके साथ आवे मैं आज उसे बिना नामका कर दूँ अर्थात् लोकसे उसका नाम ही मिटा दूँ ॥३९॥ 'निश्चय ही तुम्हारी मृत्यु निकट आ गयी है इसलिए ऐसा स्पष्ट कह रहे हो' इतना कहकर दूत चला गया और जाकर उसने रावणसे सब समाचार कह सुनाया ॥४०॥

तदनन्तर समुद्रके समान भारी सेनासे युक्त रावणने तीव्र क्रोधवश जाकर वरुणके नगरको चारों ओरसे घेर लिया ॥४१॥ और सहसा उसने यह प्रतिज्ञा कर ली कि मैं देवोपनीत रत्नोंके बिना ही इस चपलको पराजित करूँगा अथवा मृत्युको प्राप्त कराऊँगा ॥४२॥ राजीव पौण्डरीक आदि वरुणके लड़के बहुत क्षोभको प्राप्त हुए और शत्रुकी सेना आयी सुन तैयार हो-होकर युद्धके लिए बाहर निकले ॥४३॥ तदनन्तर रावणकी सेनाके साथ उनका घोर युद्ध हुआ। युद्धके समय नाना शस्त्रोंके समूह परस्परकी टक्करसे टूट-टूटकर नीचे गिर रहे थे ॥४४॥ हाथी हाथियोंसे, घोड़े घोड़ोंसे, रथ रथोंसे और योद्धा योद्धाओंके साथ भिड़ गये। उस समय योद्धा बहुत अधिक हल्ला कर रहे थे, ओठ डँस रहे थे तथा क्रोधके कारण उनके नेत्र लाल-लाल हो रहे थे ॥४५॥ तदनन्तर जिसने चिरकाल तक युद्ध किया था और शस्त्रसमूहका प्रहार कर स्वयं भी उसकी चोट खायी थी ऐसी वरुणकी सेना, रावणकी सेनासे पराङ्मुख हो गयी ॥४६॥ तत्पश्चात् जो क्रुद्ध होकर प्रलयकालकी अग्निके समान भयंकर था और शस्त्ररूपी पंजरके बीचमें चल रहा था ऐसा वरुण राक्षसोंकी सेनाकी ओर दौड़ा ॥४७॥ तदनन्तर जिसका वेग बड़ी कठिनाईसे रोका जाता था ऐसे वरुणको रणांगणमें आता देख देदीप्यमान शस्त्रोंकी धारक सेनाने रावणकी रक्षा की ॥४८॥ तत्पश्चात् वरुणका आश्वासन पाकर उसके पुत्र पुनः तेजीके साथ युद्ध करने लगे और उन्होंने अनेक योद्धारूपी हस्तियोंको मार गिराया ॥४९॥ तदनन्तर जिसका चित्त खेदसे देदीप्यमान हो रहा था और ललाट भौंहोंसे कुटिल था ऐसे क्रूर रावणने जबतक धनुष उठाया तबतक वरुणके सौ पुत्रोंने शीघ्र ही खरदूषणको पकड़ लिया। खरदूषण चिरकालसे युद्ध कर रहा था फिर भी उसका चित्त खेदरहित था ॥५०-५१॥ तदनन्तर रावणने अत्यन्त व्याकुल होकर मनमें विचार

---

१ पराङ्मुखम् । २. त्रिकूटाचलवासिभिः रावणीयैरिति यावत् । त्रिकूटै -म. । ३. संग्रामसोढा -म. । ४. वरुणः । ५. वरुणस्यापत्यानि पुमांसो वारुणयस्तेषां वारुणीनाम् ।

खरदूषणभद्रस्य प्रवृत्ते परमाहवे । माभूत्स्मरणसंप्राप्तिस्तस्माच्छान्तिरिहोचिता ॥५३॥
इति निश्चित्य संग्रामशिरसोऽपससार सः । नोदाराणां यतः कृत्ये मुच्यते चेतसा रसः ॥५४॥
ततः स मन्त्रिभिः सार्कं प्रवीणैर्मन्त्रवस्तुनि । संमन्त्र्य निजसामन्तान्स्वदेशसमवस्थितान् ॥५५॥
समग्रबलसंयुक्तान्सर्वान् दीर्घाध्वगामिभिः । आह्वायच्छिरोबद्धलेखमालैरिति द्रुतम् ॥५६॥
प्रह्लादमपि तत्रायाद्रावणप्रेषितो नरः । स्वामिभक्त्या[2] कृतं चास्य करणीयं यथोचितम् ॥५७॥
विद्यावतां प्रभोर्भद्र[3] ! भद्रमित्यथ[4] चोदितः । सादरं भद्रमित्युक्त्वा स लेखं न्यक्षिपत्पुरः ॥५८॥
ततः स्वयं समादाय कृत्वा शिरसि संभ्रमात् । प्रह्लादोऽवाचयल्लेखमस्यार्थस्याभिधायकम् ॥५९॥
स्वस्ति स्थाने पुरस्यादलंकारस्य नामतः । निविष्टपृतनः क्षेमी विद्याभृत्स्वामिनां पतिः ॥६०॥
सौमालिनन्दनो रक्षःसन्तानाम्बरचन्द्रमाः । आदित्यनगरे भद्रं प्रह्लादं न्यायवेदिनम् ॥६१॥
कालदेशविधानज्ञमस्मत्प्रीतिपरायणम् । आज्ञापयति देहादिकुशलप्रश्नपूर्वकम् ॥६२॥
यथा मे प्रणताः सर्वे क्षिप्रं विद्याधराधिपाः । कराङ्गुलिनखच्छायाकपिलीकृतमूर्धजाः ॥६३॥
पातालनगरेऽयं तु पृतनस्थः स्वशक्तितः । वरुणः प्रत्यवस्थानमकरोदिति दुर्मतिः ॥६४॥
हृदयव्यथविद्याभृच्चक्रेण परिवारितः । समुद्रमध्यमासाद्य दुरात्मायं सुखी किल ॥६५॥
ततोऽतिगहने युद्धे प्रवृद्धे खरदूषणः । शतेनैतस्य पुत्राणां कथंचिदपवर्तितः[6] ॥६६॥

किया कि इस समय युद्धकी भावना रखना मेरे लिए शोभा नहीं देती ॥५२॥ यदि परम युद्ध जारी रहता है तो खरदूषणके मरणकी आशंका है इसलिए इस समय शान्ति धारण करना ही उचित है ॥५३॥ ऐसा निश्चय कर रावण युद्धके अग्रभागसे दूर हट गया सो ठीक ही है क्योंकि उदार मनुष्योंका चित्त करने योग्य कार्यमें रसको नहीं छोड़ता अर्थात् करने न करने योग्य कार्यका विचार अवश्य रखता है ॥५४॥

तदनन्तर मन्त्र कार्यमें निपुण मन्त्रियोंके साथ सलाह कर उसने अपने देशमें रहनेवाले समस्त सामन्तोंको सर्व प्रकारकी सेनाके साथ शीघ्र ही बुलवाया। बुलवानेके लिए उसने लम्बा मार्ग तय करनेवाले तथा सिरपर लेख बाँधकर रखनेवाले दूत भेजे ॥५५-५६॥ रावणके द्वारा भेजा हुआ एक आदमी प्रह्लादके पास भी आया सो उसने स्वामीकी भक्तिसे उसका यथायोग्य सत्कार किया ॥५७॥ तथा पूछा कि हे भद्र ! विद्याधरोंके अधिपति रावणकी कुशलता तो है ? तदनन्तर उस आदमीने 'कुशलता है' इस प्रकार कहकर आदरपूर्वक रावणका पत्र प्रह्लादके सामने रख दिया ॥५८॥ तत्पश्चात् प्रह्लादने सहसा स्वयं ही उस पत्रको उठाकर मस्तकसे लगाया और फिर प्रकृत अर्थको कहनेवाला वह पत्र पढ़वाया ॥५९॥ पत्रमें लिखा था कि अलंकारपुर नगरके समीप जिसकी सेना ठहरी है, जो कुशलतासे युक्त है, सौमालीका पुत्र है तथा राक्षस वंशरूपी आकाशका चन्द्रमा है ऐसा विद्याधर राजाओंका स्वामी रावण, आदित्य नगरमें रहनेवाले न्याय-नीतिज्ञ, देश-कालकी विधिके ज्ञाता एवं हमारे साथ प्रेम करनेमें निपुण भद्र प्रकृतिके धारी राजा प्रह्लादको शरीरादिकी कुशल कामनाके अनन्तर आज्ञा देता है कि हाथकी अंगुलियोंके नखोंकी कान्तिसे जिनके केश पीले हो रहे हैं ऐसे समस्त विद्याधर राजा तो शीघ्र ही आकर मेरे लिए नमस्कार कर चुके हैं पर पाताल नगरमें जो दुर्बुद्धि वरुण रहता है वह अपनी शक्तिसे सम्पन्न होनेके कारण प्रतिकूलता कर रहा है—विरोधमें खड़ा है। वह हृदयमें चोट पहुँचानेवाले विद्याधरोंके समूहसे घिरकर समुद्रके मध्यमें सुखसे रहता है। इसी विद्वेषके कारण इसके साथ अत्यन्त भयंकर युद्ध हुआ था सो इसके सौ पुत्रोंने खरदूषणको किसी तरह पकड़ लिया है ॥६०-६६॥

---

१. शिरसोऽसमसाहसः म. । २ स्वामिभक्तिकृतं ख. । ३. भर्तुर्भद्र ब. । भद्रं भद्रमित्यर्थं म., ज. । ४. मित्यर्थ-चोदितः म., ब. । ५. ततो निगूहने म. । ६. वेष्टितः ।

संग्रामे संशयो[1] मास्तूत्प्रमादोऽस्येति निश्चयः । परित्यक्ता[2] महायुद्धविषणा कालवेदिना ॥६७॥
अतस्तत्प्रतिकाराय त्वयावश्यमिहागमः । कर्तव्यो वैव कर्तव्ये प्रस्खलन्ति महादृशाः ॥६८॥
अवधार्यं त्वया सार्धं विधास्यामोऽत्र सांप्रतम् । [3]अर्तापि तेजसो कृत्स्नं कुरुतेऽरुणसङ्गतः [4]॥६९॥
ततो लेखार्थमावेद्य तनयाय निखिलस्थितम् । गमने संमतिं चक्रे कृतमन्त्रः सुमन्त्रिभिः ॥७०॥
अथ तं गमने सक्तं जानुस्पृष्टमहीतलः । वायुर्व्यज्ञापयत्कृत्वा प्रणामं रचिताञ्जलिः ॥७१॥
नाथ ते गमनं युक्तं विद्यमाने कथं मयि । आलिङ्गनफलं कृत्स्नं जनकस्य सुतैर्ननु ॥७२॥
ततो न जात एवास्मि यदि ते न करोमि तत् । गमनाज्ञाप्रदानेन प्रसादं कुरु मे ततः ॥७३॥
ततः पिता जगादैनं कुमारोऽसि रणे भवान् । आगतो न क्वचित्खेदं तस्मादास्स्व व्रजाम्यहम् ॥७४॥
उद्यमस्य ततो वयुः [5]लक्ष्मीसंतोषभद्रः पुलोजेऽर[6] हर्षं जगाद पवनंजयः ॥७५॥
तात मे लक्षणं शक्तेस्त्वयैव जननं मतम् । जगद्दाहे स्फुलिङ्गस्य किं वा वीर्यं परीक्ष्यते ॥७६॥
भवच्छासनशेषातिपवित्रीकृतमस्तकः । मन्ये पुरन्दरस्यापि समर्थोऽस्मि न संशयः ॥७७॥
अभिधायेति कृत्वा च प्रणामं प्रमदी पुनः । उत्थायानुष्ठितस्नानभोजनादिवपुःक्रियः ॥७८॥
सादरं कुलवृद्धाभिर्दत्ताशीः कृतमङ्गलः । प्रणम्य मातरः सिद्धान् दधानः परमां द्युतिम् ॥७९॥

'युद्धमें इसका मरण न हो जाये' इस विचारसे समयकी विधिको जानते हुए मैंने महायुद्धकी भावना छोड़ दी है ॥६७॥ इसलिए उसका प्रतिकार करनेके लिए तुम्हें अवश्य ही यहाँ आना चाहिए क्योंकि आप-जैसे पुरुष करने योग्य कार्यमें कभी भूल नहीं करते ॥६८॥ अब मैं तुम्हारे साथ सलाह कर ही आगेका कार्य करूँगा और यह उचित भी है क्योंकि सूर्य भी तो अरुणके साथ मिलकर ही कार्य करता है ॥६९॥

अथानन्तर प्रह्लादने पवनंजयके लिए पत्रका सब सार बतलाकर तथा उत्तम मन्त्रियोंके साथ सलाहकर शीघ्र ही जानेका विचार किया ॥७०॥ पिताको गमनमें उद्यत देख पवनंजयने पृथिवीपर घुटने टेककर तथा हाथ जोड़ प्रणाम कर निवेदन किया कि ॥७१॥ हे नाथ ! मेरे रहते हुए आपका जाना उचित नहीं है। पिता पुत्रोंका आलिंगन करते हैं सो पुत्रोंको उसका फल अवश्य ही चुकाना चाहिए ॥७२॥ यदि मैं वह फल नहीं चुकाता हूँ तो पुत्र ही नहीं कहला सकता अतः आप जानेकी आज्ञा देकर मुझपर प्रसन्नता कीजिए ॥७३॥ इसके उत्तरमें पिताने कहा कि अभी तुम बालक ही हो, युद्धमें जो खेद होता है उसे तुमने कहीं प्राप्त नहीं किया है इसलिए सुखसे यहीं बैठो मैं जाता हूँ ॥७४॥

तदनन्तर सुमेरुके तटके समान चौड़ा सीना तानकर पवनंजयने निम्नांकित ओजस्वी वचन कहे ॥७५॥ उसने कहा कि हे नाथ ! मेरी शक्तिका सबसे प्रथम लक्षण यही है कि मेरा जन्म आपसे हुआ है। अथवा संसारको भस्म करनेके लिए क्या कभी अग्निके तिलगेकी परीक्षा की जाती है ? ॥७६॥ आपकी आज्ञारूपी शेषाक्षतसे जिसका मस्तक पवित्र हो रहा है ऐसा मैं इन्द्रको भी पराजित करनेमें समर्थ हूँ इसमें संशयकी बात नहीं है ॥७७॥ ऐसा कहकर उसने पिताको प्रणाम किया और फिर बड़ी प्रसन्नतासे उठकर उसने स्नान-भोजन आदि शारीरिक क्रियाएँ कीं ॥७८॥

तदनन्तर कुलकी वृद्धा स्त्रियोंने बड़े आदरसे आशीर्वाद देकर जिसका मंगलाचार किया था, जो उत्कृष्ट कान्तिको धारण कर रहा था और 'मंगलाचारमें बाधा न आ जाये' इस भयसे जिनके नेत्र आँसुओंसे आकुलित थे ऐसे आशीर्वाद देनेमें तत्पर माता-पिताने जिसका मस्तक

---

१. संयमो ब. । मरणमित्यर्थः । २. परित्यक्तं महायुद्धं विषणाकालवेदिना ब. । महायुद्धमित्यत्र 'मया युद्ध'-मित्यपि ब. पुस्तके पाठान्तरम् । ३. सूर्योऽपि । ४. कुरुते रणसंगतः म. । ५. तेजःपूर्णम् । पुना राज्योद्धरं म. ।

बाष्पाकुलितनेत्राभ्यां मङ्गलध्वंसभीतितः । आशीर्दानप्रवृत्ताभ्यां पितृभ्यां मूर्ध्नि चुम्बितः ॥८०॥
आपृच्छ्य बान्धवान् सर्वानभिवाद्य च सस्मितः । संभाष्य प्रणतं भक्त्या परिवर्गमशेषतः ॥८१॥
दक्षिणेनाङ्घ्रिणा पूर्वं कृतोत्थानः स्वभावतः । दक्षिणेन कृतानन्दः स्फुरता बाहुना मुहुः ॥८२॥
सपल्लवमुखे पूर्णकुम्भे निहितलोचनः । क्रामन् (वै) भवनादेष सहसैक्षत गेहिनीम् ॥८३॥
द्वारस्तम्भनिषण्णाङ्गां बाष्पस्थगितलोचनाम् । नितम्बनिहितभ्रंसिनिरादरबलद्भुजाम् ॥८४॥
ताम्बूलरागनिर्मुक्तधूसरद्विजवाससम् । तस्मिन्नेव समुत्कीर्णां मलिनां सालभञ्जिकाम् ॥८५॥
विद्युतीव ततो दृष्टिं तस्यामापतितां क्षणात् । संहृत्य कुपितोऽवादीदिति प्रह्लादनन्दनः ॥८६॥
असुष्मादपसर्पाशु देशादपि दुरीक्षणे । उल्कामिव समर्थोऽहं भवतीं न निरीक्षितुम् ॥८७॥
अहो कुलाङ्गनायास्ते प्रगल्भत्वमिदं परम् । यत्पुरो[1]ऽनिष्यमाणापि तिष्ठसि त्रपयोज्झिते ॥८८॥
ततोऽत्यन्तमपि क्रूरं तद्वाक्यं मर्तृभक्तितः । तृषितेव चिराल्लब्धमसृतं मनसा पपौ ॥८९॥
जपाद् चाञ्जलिं कृत्वा सत्पादगतलोचना । संस्खलन्ती मुहुर्वाचमुद्गिरन्ती प्रयत्नतः ॥९०॥
तिष्ठतापि त्वया नाथ भवनेऽत्र[2] विवर्जिता । त्वत्सामीप्यकृताश्वासा जीवितास्म्यतिकृच्छ्रतः ॥९१॥
जीविष्यास्यधुना स्वामिन्कथं दूरं गते त्वयि । त्वत्सद्वचोऽमृतास्वादस्मरणेन विनातुरा ॥९२॥
कृते लेकगणस्यापि[3] त्वया संभाषणं प्रभो । वियासुना परं देशमतिस्नेहार्द्रचेतसा ॥९३॥

चूमा था ऐसा पवनंजय भावपूर्वक सिद्ध परमेष्ठीको नमस्कार कर, समस्त बन्धुजनोंसे पूछकर, गुरुजनोंका अभिवादन कर तथा भक्तिसे नम्रीभूत समस्त परिजनसे वार्तालाप कर मन्द-मन्द हँसता हुआ घरसे निकला ॥७९–८१॥ उसने स्वभावसे ही सर्वप्रथम दाहिना पैर ऊपर उठाया था। बार-बार फड़कती हुई दाहिनी भुजासे उसका हर्ष बढ़ रहा था ॥८२॥ और जिसके मुखपर पल्लव रखे हुए थे ऐसे पूर्णकलशपर उसके नेत्र पड़ रहे थे। महलसे निकलते ही उसने सहसा अंजनाको देखा ॥८३॥ अंजना द्वारके खम्भेसे टिककर खड़ी थी, उसके नेत्र आँसुओंसे आच्छादित थे, कमरको सहारा देनेके लिए वह अपनी भुजा नितम्बपर रखती भली थी पर दुर्बलताके कारण वह भुजा नितम्बसे नीचे हट जाती थी ॥८४॥ पानकी लालीसे रहित होनेके कारण उसके ओठ अत्यन्त धूसर-वर्ण थे और वह ऐसी जान पड़ती थी मानो उसी खम्भेमें उकेरी हुई एक मैली पुतली ही हो ॥८५॥

तदनन्तर मनुष्य जिस प्रकार बिजलीपर पड़ी दृष्टिको सहसा संकुचित कर लेता है—उससे दूर हटा लेता है उसी प्रकार पवनंजयने अंजनापर पड़ी अपनी दृष्टिको शीघ्र ही संकुचित कर लिया तथा कुपित होकर कहा कि ॥८६॥ हे दुरवलोकने ! तू इस स्थानसे शीघ्र ही हट जा। उल्काकी तरह तुझे देखनेके लिए मैं समर्थ नहीं हूँ ॥८७॥ अहो, कुलांगना होकर भी तेरी यह परम धृष्टता है जो मेरे न चाहनेपर भी सामने खड़ी है। बड़ी निर्लज्ज है ॥८८॥ पवनंजयके उक्त वचन यद्यपि अत्यन्त क्रूर थे तो भी जिस प्रकार चिरकालका प्यासा मनुष्य प्राप्त हुए जलको बड़े मनोयोगसे पीता है उसी प्रकार अंजना स्वामीमें भक्ति होनेके कारण उसके उन क्रूर वचनोंको बड़े मनोयोगसे सुनती रही ॥८९॥ उसने स्वामीके चरणोंमें नेत्र गड़ाकर तथा हाथ जोड़कर कहा। कहते समय वह यद्यपि प्रयत्नपूर्वक वचनोंका उच्चारण करती थी तो भी बार-बार चूक जाती थी, चुप रह जाती थी, अथवा कुछका कुछ कह जाती थी ॥९०॥ उसने कहा कि हे नाथ ! इस महलमें रहते हुए भी मैं आपके द्वारा त्यक्त हूँ फिर भी 'मैं आपके समीप ही रह रही हूँ' इतने मात्रसे ही सन्तोष धारणकर अब तक बड़े कष्टसे जीवित रही हूँ ॥९१॥ पर हे स्वामिन् ! अब जब कि आप दूर जा रहे हैं निरन्तर दुःखी रहनेवाली मैं आपके सद्वचनरूपी अमृतके स्वादके बिना किस प्रकार जीवित रहूँगी ? ॥९२॥ हे प्रभो ! परदेश जाते समय आपने स्नेहसे आर्द्र चित्त होकर

---

१. निष्ठ्यमाणापि म. । २. भुवनेऽत्र म. । ३. सेवकगणस्यापि ।

अनन्यगतचित्तोऽहं त्वदसंगमदुःखिता । कथं[1] नान्यसुखेनापि त्वया संभाषिता विभो ॥९३॥
त्यक्ताथा मे त्वया नाथ समस्तेऽप्यत्र विष्टपे । विद्यते शरणं नान्यदथवा मरणं भवेत् ॥९५॥
ततस्तेन म्रियस्वेति संकोचितमुखेन सा । सती निगदितापह्नविष्णा धरणीतले ॥९६॥
वायुरप्युत्तमामृद्धिं दधानः कृपयोज्झितः । परमं नागमारुह्य सामन्तैः प्रस्थितः समम् ॥९७॥
वासरे प्रथमे यावौ संप्राप्तो मानसं सरः । आवासयत्तटे तस्य सेनामश्राम्यवाहनः ॥९८॥
तस्यावतरतः सेना शुशुभे हि नभस्तलात् । सुरसंततिसन्नानायानशस्त्रविभूषणा ॥९९॥
आत्मनो[2] वाहनानां च चक्रे कार्यं यथोचितम् । स्नानप्रत्यवसानादिविद्याभृद्भिः सुमानसैः ॥१००॥
अथ विद्याबलादाशु रचिते बहुभूमिके । युक्तविस्तारसुश्लक्ष्णे प्रासादे चित्तहारिणि ॥१०१॥
सहोपरितले कुर्वन् स्वैरं मित्रेण संकथाम् । वरासनगतो भाति संग्रामकृतसंमदः ॥१०२॥
गवाक्षजालमार्गेण छिद्रेण तटभूरुहाम्[3] । ईक्षाञ्चक्रे सरो वायुमन्दवायुविधट्टितम् ॥१०३॥
भीमैः कूर्मैर्झषैर्नक्रैर्मकरैर्दर्पधारिभिः । भिन्नवीचिकमन्यैश्च यादोभिरिति भूरिभिः ॥१०४॥
धौतस्फटिकसंतुल्यांभः कमलोत्पलभूषितम् । हंसैः कारण्डवैः क्रौञ्चैः सारसैश्चोपशोभितम् ॥१०५॥
मन्द्रकोलाहलादेषा मनःश्रोत्रमलिम्लुचम्[4] । तदन्तरश्रुतोदात्तभ्रमरीकुलझङ्कृतम्[5] ॥१०६॥

सेवक जनोंसे भी सम्भाषण किया है फिर मेरा चित्त तो एक आपमें ही लग रहा है और आपके ही वियोगसे निरन्तर दुःखी रहती हूँ फिर स्वयं न सही दूसरेके मुखसे भी आपने मुझसे सम्भाषण क्यों नहीं किया ? ॥९३-९४॥ हे नाथ ! आपने मेरा त्याग किया है इसलिए इस समस्त संसारमें दूसरा कोई भी मेरा शरण नहीं है अथवा मरण ही शरण है ॥९५॥

तदनन्तर पवनंजयने मुख सिकोड़कर कहा कि 'मरो' । उनके इतना कहते ही वह खेद-खिन्न हो मूर्छित होकर पृथिवीपर गिर पड़ी ॥९६॥ इधर उत्तम ऋद्धिको धारण करता हुआ निर्दय पवनंजय उत्तम हाथीपर सवार हो सामन्तोंके साथ आगे बढ़ गया ॥९७॥ प्रथम दिन वह मान-सरोवरको प्राप्त हुआ सो यद्यपि उसके वाहन थके नहीं थे तो भी उसने मानसरोवरके तटपर सेना ठहरा दी ॥९८॥

आकाशसे उतरते हुए पवनंजयकी नाना प्रकारके वाहन और शस्त्रोंसे सुशोभित सेना ऐसी जान पड़ती थी मानो देवोंका समूह ही नीचे उतर रहा हो ॥९९॥ प्रसन्नतासे भरे विद्याधरोंने अपने तथा वाहनोंके स्नान-भोजनादि समस्त कार्य यथायोग्य रीतिसे किये ॥१००॥

अथानन्तर विद्याके बलसे शीघ्र ही एक ऐसा मनोहर महल बनाया गया कि जिसमें अनेक खण्ड थे तथा जिसकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई अनुरूप थी, उस महलके ऊपरके खण्डपर मित्रके साथ स्वच्छन्द वार्तालाप करता हुआ पवनंजय उत्कृष्ट आसनपर विराजमान था। युद्धकी बातसे उसका हर्ष बढ़ रहा था ॥१०१-१०२॥

पवनंजय झरोखोंके मार्गसे किनारेके वृक्षोंको तथा मन्द-मन्द वायुसे हिलते हुए मानसरोवरको देख रहा था ॥१०३॥ भयंकर कछुए, मीन, नक्र, गर्वको धारण करनेवाले मगर तथा अन्य अनेक जल-जन्तु उस सरोवरमें लहरें उत्पन्न कर रहे थे ॥१०४॥ धुले हुए स्फटिकके समान स्वच्छ तथा कमलों और नील कमलोंसे सुशोभित उस सरोवरका जल हंस, कारण्डव, क्रौंच और सारस पक्षियोंसे अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥१०५॥ इन सब पक्षियोंके गम्भीर कोलाहलसे वह सरोवर मन और कर्ण—दोनोंको चुरा रहा था। तथा उसके

---

१. नान्यसुखेनापि । २. हेमभूमिके म. । ३. मन्दकोलाहलं देशं म. । ४. भ्रमरीकुलसंकृति ख. ।

तत्र चैकाकिनीमेकामाकुलां चक्रवाकिकाम् । वियोगानलसंतप्तां नानाचेष्टितकारिणीम् ॥१०७॥
अस्ताचलसमासक्तभानुबिम्बगतेक्षणाम् । पद्मिनीदलरन्ध्रेषु मुहुर्न्यस्तनिरीक्षणाम् ॥१०८॥
धुन्वानां पक्षती वेगात्पार्श्वोत्पातकृतश्रमाम् । मृणालशकलस्वादु पश्यन्तीं दुःखितां विषम् ॥१०९॥
प्रतिबिम्बं निजं दृष्ट्वा जले दयितशङ्किनीम् । आह्वयन्तीं तदप्राप्त्या व्रजन्तीं परमां शुचम् ॥११०॥
नानादिग्देशतो श्रुत्वा प्रतिध्वानं सिषासया । क्वेदं चक्रीति वाक्यं कुर्वन्तीं साधुलोचनाम् ॥१११॥
तटपादपमारुह्य न्यस्यन्तीं दिक्षु लोचने । तत्रावृत्त्य पुनः पत्यमाचरन्तीं महाजवम् ॥११२॥
उड्डयन्तीं रजो दूरं पद्मानां पक्षभूतिभिः । चिरं तद्गतया दृष्ट्या ददर्शासौ कृपाहृतः ॥११३॥
इति चाचिन्तयत्कष्टं प्राप्तमस्या इदं परम् । यन्निमेषेण विमुक्तेयं दह्यते शोकवह्निना ॥११४॥
तदेवेदं सरो रम्यं चन्द्रचन्दनशीतलम् । दावकल्पमभूदस्याः प्राप्य नाथवियुक्तताम् ॥११५॥
रमणेन वियुक्तायाः पल्लवोऽप्येति खड्गताम् । चन्द्रांशुरपि वज्रत्वं स्वर्गोऽपि नरकायते ॥११६॥
इति चिन्तयतस्तस्य प्रियायां मानसं गतम् । तत्प्रीत्या चेक्षितोद्देशांस्तद्विवाहे निषेवितान् ॥११७॥
चक्षुषो गोचरीभूतास्तस्य ते शोकहेतवः । बभूवुर्मर्मभेदानां कर्तार इव दुःसहाः ॥११८॥
अध्यासीत्येति हा कष्टं मया सा क्रूरचेतसा । मुक्तेयमिव चक्राह्वा वैक्लव्यं दयितागमत् ॥११९॥
यदि नाम तदा तस्याः सख्यामाप्यस्त निष्ठुरम् । तस्योऽन्यदीयदोषेण कस्मात्सा वर्जिता मया ॥१२०॥

मध्यमें भ्रमरियोंका उत्कृष्ट झंकार सुनाई देता था ॥१०६॥ उसी सरोवरके किनारे पवनंजयने एक चकवी देखी। वह चकवी अकेली होनेसे अत्यन्त व्याकुल थी, वियोगरूपी अग्निसे सन्तप्त थी, नाना प्रकारकी चेष्टाएँ कर रही थी, अस्ताचलके निकटवर्ती सूर्यबिम्बपर उसके नेत्र पड़ रहे थे, वह बार-बार कमलिनीके पत्तोंके विवरोंमें नेत्र डालती थी, वेगसे पंखोंको फड़फड़ाती थी, बार-बार ऊपर उड़कर तथा नीचे उतरकर खेदखिन्न हो रही थी, मृणालके टुकड़ोंसे स्वादिष्ट जलकी ओर देखकर दुःखी हो रही थी, पानीके भीतर अपना प्रतिबिम्ब देखकर पतिकी आशंकासे उसे बुलाती थी और अन्तमें उसके न आनेसे अत्यधिक शोक करती थी, नाना स्थानोंसे जो प्रतिध्वनि आती थी उसे सुनकर 'कहीं पति तो नहीं बोल रहा है' इस आशासे वह चक्कारूढ़की तरह गोल चक्कर लगाती थी, उसके नेत्र सुन्दर थे, वह किनारेके वृक्षपर चढ़कर सब दिशाओंमें नेत्र डालती थी और वहाँ जब पतिको नहीं देखती थी तब बड़े वेगसे पुनः नीचे आ जाती थी, तथा पंखोंकी फड़फड़ाहटसे कमलोंकी परागको दूर तक उड़ा रही थी। पवनंजय दयाके वशीभूत हो उसकी ओर दृष्टि लगाकर देर तक देखता रहा ॥१०७–११३॥ चकवीको जो अत्यधिक दुःख प्राप्त हो रहा था उसीका वह इस प्रकार चिन्तवन करने लगा। वह विचारने लगा कि पतिसे वियुक्त हुई यह चकवी शोकरूपी अग्निसे जल रही है ॥११४॥ यह वही चन्द्रमा और चन्दनके समान शीतल, मनोहर सरोवर है पर पतिका वियोग पाकर इसे दावानलके समान हो रहा है ॥११५॥ पतिसे रहित स्त्रियोंके लिए पल्लव भी तलवारका काम करता है, चन्द्रमाकी किरण भी वज्र बन जाती है और स्वर्ग भी नरक-जैसा हो जाता है ॥११६॥

ऐसा विचार करते हुए उसका मन अपनी प्रिया अंजनासुन्दरीपर गया और उसीमें प्रेम होनेके कारण उसने विवाहके समय सेवित स्थानोंको बड़े गौरसे देखा ॥११७॥ वे सब स्थान उसके नेत्रोंके सामने आनेपर शोकके कारण हो गये और मर्म भेद करनेवालोंके समान दुःसह हो उठे ॥११८॥ वह मन ही मन सोचने लगा कि हाय-हाय बड़े कष्टकी बात है—मुझ दुष्ट चित्तके द्वारा छोड़ी हुई वह प्रिया भी इस चकवीके समान दुःखको प्राप्त हो रही होगी ॥११९॥ यदि उस समय उसकी सखीने कठोर शब्द कहे थे तो दूसरेके दोषसे मैंने उसे क्यों छोड़ दिया ? ॥१२०॥

१. कृपादृतः म. ।

धिगस्मत्सदृशान्मूर्खानप्रेक्षापूर्वकारिणः । जनस्य[1] ये विना हेतुं यत्कुर्वन्त्यसुखासनम् ॥१२१॥
मम वज्रमयं नूनं हृदयं पापचेतसः । प्रत्यवस्थित यत्कालमियन्तं तां प्रियां प्रति ॥१२२॥
किं करोम्यधुना तातमापृच्छ्य निरितो गृहात् । कथं नु विनिवर्तेऽहमहो प्राप्तोऽस्मि संकटम् ॥१२३॥
अजेयं यदि संग्रामं जीवेन्नासौ ततः स्फुटम् । तदभावे ममाभावः स्वयमेव भविष्यति ॥१२४॥
अथवा सर्वसंदेहग्रन्थिभेदनकारणम् । विद्यते मे परं मित्रं तत्रेदं लिख्यते[2] शुभे ॥१२५॥
तस्मात्पृच्छाम्यमुं तावत्सर्वाचारविशारदम् । निश्चिते विहिते कार्ये लभन्ते प्राणिनः सुखम् ॥१२६॥
इति च ध्यातमेतेन दृष्ट्वा चैवं विचेतसम् । मन्दं प्रहसितोऽपृच्छदेवं तद्दुःखदुःखितः ॥१२७॥
सखे ! प्रतिनरोच्छेदकृतये प्रस्थितस्य ते । कस्माद्वदनमप्येवं विषण्णमिव दृश्यते ॥१२८॥
[3]अपत्रपां विमुच्याशु मह्यं सुजन वेदय । निताम्तमाकुलीभावो जातो मे भवतीदृशि ॥१२९॥
ततोऽसावेवमुक्तः सन्[4]कृच्छ्रनिःसृतया गिरा । जगादेति[5] परिभ्रंशं दूरं धैर्यादुपागतः ॥१३०॥
शृणु सुन्दर कस्यान्यत्कथनीयमिदं मया । ननु सर्वरहस्यानां त्वमेव मम भाजनम् ॥१३१॥
स त्वं कथयितुं नैतदन्यस्मै सुहृदर्हसि । अया हि वस्तुनानेन जायते परमा मम ॥१३२॥
ततः प्रहसितोऽवोचत् विश्रब्धस्त्वं निवेदय । त्वया हि वेदितो मेऽर्थस्तप्तायोगतवारिवत् ॥१३३॥
ततो वायुरुवाचेदं शृणु मित्राञ्जना मया । न कदाचित्कृतप्रीतिरिति मे दुःखितं मनः ॥१३४॥

बिना विचारे काम करनेवाले मुझ-जैसे मूर्खोंके लिए धिक्कार है। जो बिना कारण ही लोगोंको दुःखी करते हैं ॥१२१॥ निश्चय ही मुझ पापीका चित्त वज्रका बना है इसीलिए तो वह इतने समय तक प्रियाके विरुद्ध रह सका है ॥१२२॥ अब क्या करूँ ? मैं पितासे पूछकर घरसे बाहर निकला हूँ इसलिए अब लौटकर वापस कैसे जाऊँ ? अहो ! मैं बड़े संकटमें आ पड़ा हूँ ॥१२३॥ यदि मैं युद्धके लिए जाता हूँ तो निश्चित है कि वह जीवित नहीं बचेगी और उसके अभावमें मेरा भी अभाव स्वयमेव हो जायेगा। इसलिए इससे बढ़कर और दूसरा कष्ट नहीं है ॥१२४॥ अथवा समस्त सन्देहकी गाँठको खोलनेवाला मेरा परम मित्र विद्यमान है सो यही इस शुभ कार्यका निर्णायक है ॥१२५॥ इसलिए सब प्रकारके व्यवहारमें निपुण इस मित्रसे पूछता हूँ क्योंकि जो कार्य विचारकर किया जाता है उसीमें प्राणी सुख पाते हैं सर्वत्र नहीं ॥१२६॥

इधर पवनंजय इस प्रकार विचार कर रहा था उधर प्रहसित मित्रने उसे अन्यमनस्क देखा। तब उसके दुःखसे दुःखी होकर उसने स्वयं ही धीरेसे पूछा ॥१२७॥ कि हे सखे ! तुम तो शत्रुका उच्छेद करनेके लिए निकले हो फिर आज इस तरह तुम्हारा मुख खिन्न-सा क्यों दिखाई दे रहा है ? ॥१२८॥ हे सत्पुरुष ! लज्जा छोड़कर शीघ्र ही मेरे लिए इसका कारण बताओ। आपके इस तरह खिन्न रहते हुए मुझे बहुत आकुलता उत्पन्न हो रही है ॥१२९॥ तदनन्तर जो धैर्यसे भ्रष्ट होकर बहुत दूर जा पड़ा ऐसा पवनंजय मित्रके इस प्रकार कहनेपर कठिनाईसे निकलती हुई वाणीसे कहने लगा कि ॥१३०॥ हे सुन्दर ! सुनो, तुम्हें छोड़कर और किससे कहूँगा ? यथार्थमें मेरे समस्त रहस्योंके तुम्हीं एक पात्र हो ॥१३१॥ हे मित्र ! यह बात तुम किसी दूसरेसे कहनेके योग्य नहीं हो क्योंकि इससे मुझे अधिक लज्जा उत्पन्न होती है ॥१३२॥ इसके उत्तरमें प्रहसितने कहा कि तुम निःशंक होकर कहो क्योंकि तुम्हारे द्वारा कहा हुआ पदार्थ मेरे लिए सन्तप्त लोहेपर पड़े पानीके समान है ॥१३३॥

तदनन्तर पवनंजयने कहा कि हे मित्र ! सुनो, मैंने आज तक कभी अंजनासे प्रेम नहीं

---

१. जीविना सुखं ये म. । जनस्योर्जो विना ज. । २. निर्णेतृत्वेनावलम्ब्यते । ३. लज्जाम् । ४. कृच्छ्रनिस्तरपया म. । ५. परं भ्रंशं म., ख. । ६. धैर्यमुपागतः क. ।

क्रूरेऽपि मयि सामीप्यादियन्तं समयं तया । आत्मा [1]संधारितो नित्यं प्रवृत्तनयनाम्भसा ॥१३५॥
आगच्छता मया दृष्टा तस्याश्चेष्टाद्य ना तु या । तया जानामि सा नूनं न प्राणिति वियोगिनी ॥१३६॥
तस्या विनापराधेन मया परिभवः कृतः । हृदयं किंशतिमब्दानां पाषाणसमचेतसा ॥१३७॥
आगच्छता मया दृष्टं तस्यास्तन्मुखपङ्कजम् । शोकप्रालेयसंपर्कान्मुक्तं लावण्यसंपदा ॥१३८॥
तस्यास्ते नयने दीर्घे नीलोत्पलसमप्रभे । इषुवत्स्मृतिमारूढे हृदयं विध्यतेऽधुना ॥१३९॥
तदुपायं कुरु त्वं तमावयोर्येन संगमः । जायेत मरणं माभूदुभयोरपि सज्जन ॥१४०॥
ऊचे [2]प्रहसितोऽथैवं क्षणं[3] निश्चलविग्रहः । उपायचिन्तनासक्तचञ्चलदोलास्थमानसः ॥१४१॥
कृत्वा गुरुजनापृच्छां निर्गतस्य त्वयाधुना । [4]शत्रुं निर्जेतुकामस्य [5]सांप्रतं न निवर्तनम् ॥१४२॥
समक्षं गुरुलोकस्य नानीता प्रथमं च या । लज्ज्यते तामिहानेतुमधुनाञ्जनसुन्दरीम् ॥१४३॥
तस्मादविदितो गत्वा तत्रैवैतां त्वमात्मनः । नेत्रयोर्निर्वृतिं भावं संभाषणसुखस्य च ॥१४४॥
जीवितालम्बनं कृत्वा चिरात्तस्याः समागमम् । ततः क्षिप्रं निवर्तस्व शीतलीभूतमानसः ॥१४५॥
निरपेक्षस्ततो भूत्वा वहन्नुत्साहमुत्तमम् । गमिष्यसि रिपुं जेतुमुपायोऽयं सुनिश्चितः ॥१४६॥
ततः परमिमित्युक्त्वा सेनान्यं मुद्गराभिधम् । नियुज्य बलरक्षायां व्याजतो मेरुवन्दनात् ॥१४७॥
माल्यानुलेपनादीनि गृहीत्वा त्वरयान्वितः । पुरः प्रहसितं कृत्वा वायुर्गगनमुत्पतौ ॥१४८॥
तावच्च भानुरैदस्तं कृपयेव प्रचोदितः । विश्रब्धमेतयोर्योगो निशीथे जायतामिति ॥१४९॥

किया इसलिए मेरा मन दुखी हो रहा है ॥१३४॥ यद्यपि मैं क्रूर हूँ और क्रूरतावश उससे बोलता-चालता नहीं था तो भी मात्र समीपमें रहनेके कारण उसने निरन्तर आँसू डाल-डालकर अपने आपको जीवित रखा है ॥१३५॥ परन्तु उस दिन आते समय मैंने उसकी जो चेष्टा देखी थी उससे जानता हूँ कि वह वियोगिनी अब जीवित नहीं रहेगी ॥१३६॥ मुझ पाषाणचित्तने अपराधके बिना ही उसका बाईस वर्ष तक अनादर किया है ॥१३७॥ आते समय मैंने उसका वह मुख देखा था जो कि शोकरूपी तुषारसे सम्पर्क होनेके कारण सौन्दर्यरूपी सम्पदासे रहित था ॥१३८॥ उसके जब नीलोत्पलके समान नीले एवं दीर्घ नेत्र स्मृतिमें आते हैं तो बाणकी तरह हृदय बिंध जाता है ॥१३९॥ इसलिए हे सज्जन ! ऐसा उपाय करो कि जिससे हम दोनोंका समागम हो जाये और मरण न हो सके ॥१४०॥

अथानन्तर क्षण-भरके लिए जिसका शरीर तो निश्चल था और मन उपायकी चिन्तनामें मानो अत्यन्त चंचल झूलापर ही स्थित था ऐसा प्रहसित बोला कि ॥१४१॥ चूँकि तुम गुरुजनोंसे पूछकर निकले हो और शत्रुको जीतना चाहते हो इसलिए इस समय तुम्हारा लौटना उचित नहीं है ॥१४२॥ इसके सिवाय गुरुजनोंके समक्ष तुम कभी अंजनाको अपने पास नहीं लाये हो इसलिए इस समय उसका यहाँ लाना भी लज्जाकी बात है ॥१४३॥ अतः अच्छा उपाय यही है कि तुम गुप्त रूपसे वहीं जाकर उसे अपने दर्शन तथा सम्भाषणजन्य सुखका पात्र बनाओ ॥१४४॥ तुम्हारा समागम उसके जीवनका आलम्बन है सो उसे चिरकाल तक प्राप्त कराकर तथा अपने मनको ठण्डा कर शीघ्र ही वहाँसे वापस लौट आना ॥१४५॥ और इस तरह तुम उस ओरसे निश्चिन्त हो उत्तम उत्साहको धारण करते हुए शत्रुको जीतनेके लिए जा सकोगे ॥१४६॥

तदनन्तर 'बहुत ठीक है' ऐसा कहकर शीघ्रतासे भरा पवनंजय, मुद्गर नामक सेनापतिको सेनाकी रक्षामें नियुक्त कर माला, अनुलेपन आदि अन्य सुगन्धित पदार्थ लेकर और प्रहसित मित्रको आगे कर मेरुवन्दनाके बहाने आकाशमें जा उड़ा ॥१४७-१४८॥ इतने में ही सूर्य अस्त

१. सन्धारिता म. । २. प्रहसितोऽप्येवं म. । ३. क्षणनिश्चल म. । ४. शत्रुनिर्जेतु, -म. । ५. युक्तम् ।

[1]संध्यालोकपरिध्वंसहेतुना तमसान्वितम्[2] । जगत् स्पर्शनविज्ञेयपदार्थमभवत्ततः ॥१५०॥
प्राप्तश्चाञ्जनसुन्दर्या गृहे [3]प्रग्रीवकोदरे । वायुरस्थाप्रविष्टस्तु तस्याः प्रहसितोऽन्तिकम् ॥१५१॥
ततस्तं सहसा दृष्ट्वा मन्ददीपप्रकाशतः । अञ्जना विभ्यदेऽत्यर्थं कः कोऽयमिति वादिनी ॥१५२॥
सखीं वसन्तमालां च सुप्तां पार्श्वे व्यनिद्रयत् । कुशलोत्थाय सा तस्याश्चकार भयनाशनम् ॥१५३॥
ततः प्रहसितोऽस्मीति गदित्वाऽसौ नमस्कृतिम् । प्रयुज्याकथयत्तस्मै पवनंजयमागतम् ॥१५४॥
ततः स्वप्नसमं श्रुत्वा प्राणनाथस्य सागमम् । ऊचे प्रहसितं दीनमिदं गद्गदया गिरा ॥१५५॥
किं मां प्रहसितापुण्यां हससि प्रियवर्जिताम् । ननु कर्मभिरेवाहं हसितातिमलीमसैः ॥१५६॥
प्रियेण परिभूतेति विदित्वा वद केन नो । परिभूतास्मि निर्भाग्या दुःखावस्थानविग्रहा ॥१५७॥
विशेषतस्त्वया कान्तः प्रोत्साह्य क्रूरचेतसा । एतामारोपितोऽवस्थां मम कृच्छ्रविधायिनीम् ॥१५८॥
अथवा भद्र ते कोऽत्र दोषः कर्मवशीकृतम् । जगत्सर्वमवाप्नोति दुःखं वा यदि वा सुखम् ॥१५९॥
इति साश्रु वदन्तीं तामात्मनिन्दनतत्पराम् । नत्वा प्रहसितोऽवोचद् दुःखार्द्रीकृतमानसः ॥१६०॥
कल्याणि मा भणीरेवं क्षमस्व जनितं मया । आगो विचारशून्येन पापावष्टब्धचेतसा ॥१६१॥
प्राक्तानि विलयं नूनं दुष्कर्माणि तवाधुना । येन प्रेमगुणाकृष्टो जीवितेशः समागतः ॥१६२॥
अधुनास्मिन् प्रसन्ने ते किं न जातं सुखावहम् । ननु चन्द्रेण शर्वर्याः संगमे का न चारुता ॥१६३॥

हो गया सो रात्रिके समय इन दोनोंका निश्चिन्ततासे समागम हो सके इस करुणासे प्रेरित होकर ही मानो अस्त हो गया था ॥१४९॥ तदनन्तर सन्ध्याके प्रकाशको नष्ट करनेका कारण जो अन्धकार उससे युक्त होकर समस्त संसार श्याम वर्ण हो गया और समस्त पदार्थ मात्र स्पर्शन इन्द्रियके द्वारा ही जानने योग्य रह गये ॥१५०॥ अंजनासुन्दरीके घर पहुँचकर पवनंजय तो बाह्य बरण्डामें रह गया और प्रहसित उसके पास गया ॥१५१॥

तदनन्तर दीपकके मन्द प्रकाशमें उसे सहसा देखकर 'यह कौन है कौन है' ऐसा कहती हुई अंजना अत्यधिक भयभीत हुई ॥१५२॥ उसने पासमें सोयी वसन्तमाला सखीको जगाया सो उस चतुरने उठकर उसका भय नष्ट किया ॥१५३॥ तत्पश्चात् 'मैं प्रहसित हूँ' ऐसा कहकर उसने नमस्कार किया और पवनंजयके आनेकी सूचना दी ॥१५४॥ तब वह स्वप्नके समान प्राणनाथके समागमका समाचार सुन गद्गद वाणीमें दीनताके साथ प्रहसितसे कहने लगी कि ॥१५५॥ हे प्रहसित ! मुझ पुण्यहीना तथा पतिपरित्यक्ताकी हँसी क्यों करते हो ? मैं तो अपने मलिन कर्मोंसे स्वयं ही हास्यका पात्र हो रही हूँ ॥१५६॥ यह हृदयवल्लभके द्वारा तिरस्कृत है—पतिके द्वारा ठुकरायी गयी है ऐसा जानकर मुझ अभागिनी एवं दुःखिनीका किसने नहीं तिरस्कार किया है ? ॥१५७॥ खासकर दुष्ट चित्तको धारण करनेवाले तुम्हींने प्राणनाथको प्रोत्साहित कर मुझे अत्यन्त दुःख देनेवाली इस अवस्था तक पहुँचाया है ॥१५८॥ अथवा हे भद्र ! इसमें तुम्हारा क्या दोष है ? क्योंकि कर्मके वशीभूत हुआ समस्त संसार दुःख अथवा सुख प्राप्त कर रहा है ॥१५९॥ इस प्रकार जो अश्रु ढालती हुई कह रही थी तथा अपने आपकी निन्दा करनेमें तत्पर थी ऐसी अंजना सुन्दरीको नमस्कार कर प्रहसित बोला । उस समय प्रहसितका मन दुःखसे द्रवीभूत हो रहा था ॥१६०॥ उसने कहा कि हे कल्याणि ! ऐसा मत कहो, मुझ निर्विचार तथा पापयुक्त चित्तके धारकने जो अपराध किया है उसे क्षमा करो ॥१६१॥ इस समय तुम्हारे दुष्कर्म निश्चय ही नष्ट हो गये हैं क्योंकि प्रेमरूपी गुणसे खिचा हुआ तुम्हारा हृदयवल्लभ स्वयं आया है ॥१६२॥ अब इसके प्रसन्न रहनेपर तुम्हें कौन-सी वस्तु सुखदायक नहीं होगी ? वास्तवमें चन्द्रमाके साथ समागम होनेपर रात्रिमें कौन-सी सुन्दरता नहीं आ जाती ? ॥१६३॥

---

१. संध्यां म. । २. तपसान्विताम् म. । ३. प्रग्रीवो मत्तवारणः । ४. प्रसन्नेति ।

ततः क्षणं[1] स्थिता चेदं जगादाञ्जनसुन्दरी । प्रतिनिस्वनवत्येवं सख्यनूदितया गिरा ॥१६४॥
असंभाव्यमिदं भद्र यथा वर्षं जलोज्झितम् । भवत्यप्यथवा काले कल्याणं कर्मचोदितम् ॥१६५॥
तथास्तु स्वागतं तस्य जीवितस्येशितुर्मम । अद्य मे फलितः पूर्वशुभानुष्ठानपादपः ॥१६६॥
वदन्त्यामेवमेतस्यामानन्दाश्रु[2]सचक्षुषि । तत्सख्येवान्तिकं नीतस्तस्याः करुणया प्रियः ॥१६७॥
त्रस्तसारङ्गकाङ्क्षाक्षी दृष्ट्वा तं परमोत्सवम् । आनुद्रवासकृन्न्यस्तस्रस्तपाणिसरोरुहा ॥१६८॥
स्तम्भवत्प्रसृताकाण्डा[3] वेपथुश्लथविग्रहा । शनैरुत्थातुमारब्धा शयनस्था प्रयासिनी ॥१६९॥
अथालमलमेतेन देवि क्लेशविधायिना । संभ्रमेणेति वचनं विमुञ्चन्नमृतोपमम् ॥१७०॥
समुत्थितां प्रियां कृच्छ्रादञ्जलिं बद्धुमुद्यताम् । गृहीत्वा दयितः पाणौ शयने समुपाविशत् ॥१७१॥
[4]स्वेदी पाणिस्तौ तस्याः पुलकं वहन् । प्रेयस्पर्शामृतेनेव सिक्तो भयानुप्ररुक्षुरान् ॥१७२॥
मत्वा वसन्तमाला तं कृत्वा भाषणमादरात् । साकं प्रहसितेनास्थाद्गम्ये कक्षान्तरे सुखम् ॥१७३॥
अथानादरतः पूर्वं त्रपमाणः स्वयंकृतात् । पवनः कुशलं प्रष्टुं न प्रावर्तत चेतसा ॥१७४॥
विलक्षस्तु प्रिये मूढ्य[5] मया कर्मानुभावतः । निकारं कृतमित्यूचे तत्क्षणाकुलमानसः ॥१७५॥
आयसंभाषणास्यापि वहन्ती नतमाननम् । जगाद मन्दया वाचा निश्चलाखिलविग्रहा ॥१७६॥

तदनन्तर अंजनासुन्दरी क्षण-भरके लिए चुप हो रही। उसके बाद उसने सखीके द्वारा अनूदित वचनोंके द्वारा उत्तर दिया। सखी जो वचन कह रही थी वे अंजनाकी प्रतिध्वनिके समान जान पड़ते थे ॥१६४॥ उसने कहा कि हे भद्र! जिस प्रकार जलसे रहित वर्षाका होना असम्भव है उसी प्रकार उनका आना भी असम्भव है। अथवा इस समय मेरे किसी शुभ-कार्यका उदय हुआ हो जिससे तुम्हारा कहना सम्भव भी हो सकता है ॥१६५॥ अस्तु, यदि प्राणनाथ आये हैं तो मैं उनका स्वागत करती हूँ। मेरा पूर्वोपार्जित पुण्यकर्मरूपी वृक्ष आज फलीभूत हुआ है ॥१६६॥ इस प्रकार नेत्रोंमें हर्षके आँसू भरे हुई अंजनासुन्दरी यह कह ही रही थी कि सखीके समान करुणा प्राणनाथको उसके समीप ले आयी ॥१६७॥ उस समय अंजना शय्यापर बैठी थी। ज्यों ही उसने परम आनन्दके देनेवाले प्राणनाथको समीप आते देखा त्यों ही वह उठनेका प्रयास करने लगी। उसके नेत्र भयभीत हरिणके समान सुन्दर थे, वह खड़ी होनेके लिए अपने घुटनोंपर बार-बार हस्त-कमल रखती थी पर वे दुर्बलताके कारण नीचे खिसक जाते थे। उसकी जाँघें खम्भेके समान अकड़ गयी थीं और सारा शरीर काँपने लगा था ॥१६८-१६९॥ यह देख पवनंजयने अमृततुल्य निम्न वचन कहे कि हे देवि! रहने दो, क्लेश उत्पन्न करनेवाले इस सम्भ्रमसे क्या प्रयोजन है? ॥१७०॥ इतना कहनेपर भी अंजना बड़े कष्टसे खड़ी होकर हाथ जोड़नेका उद्यम करने लगी कि पवनंजयने उसका हाथ पकड़कर उसे शय्यापर बैठा दिया ॥१७१॥ अंजनाका वह हाथ पसीनासे युक्त हो गया और रोमांच धारण करने लगा था जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो पतिके स्पर्शरूपी अमृतसे सींचा जाकर अंकुर ही धारण कर रहा था ॥१७२॥ वसन्तमालाने पवनंजयको नमस्कार कर आदरपूर्वक उसके साथ वार्तालाप किया। तदनन्तर वह प्रहसितके साथ एक दूसरे सुन्दर कमरेमें सुखसे बैठ गयी ॥१७३॥

अथानन्तर चूँकि पवनंजय अपने द्वारा किये हुए अनादरसे लज्जित हो रहा था अतः सर्वप्रथम कुशल समाचार पूछनेके लिए वह हृदयसे प्रवृत्त नहीं हो सका ॥१७४॥ तदनन्तर लज्जित होते हुए उसने कहा कि हे प्रिये! मैंने कर्मोदयके प्रभावसे तुम्हारा जो तिरस्कार किया है उसे क्षमा करो। यह कहते समय पवनंजयका मन अत्यन्त आकुल हो रहा था ॥१७५॥ अंजनाका

---

१. क्षणस्थिता ख.। २. -मानन्दात्प्राप्तचक्षुषि म.। ३. जङ्घाकाण्डा। ४. स्वेदयुक्तः। ५. क्षमस्व।

न कश्चिज्जनितो नाथ त्वया परिभवो मम । अधुना कुर्वता स्नेहं मनोरथसुदुर्लभम् ॥१७७॥
त्वत्स्मृतिप्रतिबद्धं[1] मे यदस्या ननु जीवितम् । त्वदायत्तो तिरोऽपि महानन्दसमोऽभवत् ॥१७८॥
[2]अथैवं भाषमाणाया विभाय चिबुकेऽङ्गुलिम् । उन्नमय्य मुखं पश्यन् जगाद पवनंजयः ॥१७९॥
देवि सर्वापराधानां विस्मृत्यै तव पादयोः । प्रणाममेष यातोऽस्मि प्रसादं परमं व्रज ॥१८०॥
इत्युक्त्वा स्थापितं तेन मूर्द्धानं पादयोः प्रिया । त्वरया करपद्माभ्यामुन्नेतुं व्यापृताभवत् ॥१८१॥
तथावस्थित एवासौ ततोऽवोचत्प्रियं वचः । [3]प्रसन्नास्मीति येनाहमुत्तिष्ठामि शिरः प्रिये ॥१८२॥
क्षान्तमित्युदितोऽथासावुत्तमाङ्गमुत्तमम् । चक्रे प्रियासमाश्लेषे [4]सुखमीलितलोचनः ॥१८३॥
आश्लिष्टा दयितस्यासौ तथा गात्रेष्वलीयत । पुनर्वियोगभीतेव [5]गतान्तर्विग्रहं यथा ॥१८४॥
आलिङ्गनविमुक्तायास्तस्याः स्तिमितलोचनम् । मुखं मुक्तनिमेषाभ्यां लोचनाभ्यां पपौ प्रियः ॥१८५॥
पादयोः करयोर्नाभ्यां स्तनयोश्चिबुकेऽलिके । गण्डयोर्नेत्रयोरास्याश्चुम्बनं मदनातुरः ॥१८६॥
पुनः पुनश्चकारासौ स्वेदिना पाणिना स्पृशन् । आप्तसेवा हि सा नूनं क्रियते वक्त्रचुम्बने ॥१८७॥
ततः प्रबुद्धराजीवगर्भच्छदसमप्रभम् । स पपावधरं तस्या विसुस्रन्तमिवामृतम् ॥१८८॥
नीवीविमोचनव्यग्रपाणिमस्य अपावती । रोद्धुमैच्छत्[6] सा शनकैः पाणिना वेपथुश्रिता ॥१८९॥

पतिके साथ वार्तालाप करनेका प्रथम अवसर था इसलिए वह भी लज्जाके कारण मुख नीचा किये थी। उसका सारा शरीर निश्चल था। इसी दशामें उसने धीरे-धीरे उत्तर दिया ॥१७६॥ कि हे नाथ! चूँकि इस समय आप जिसकी मुझे आशा ही नहीं थी ऐसा दुर्लभ स्नेह कर रहे हैं इसलिए यही समझना चाहिए कि आपने मेरा कुछ भी तिरस्कार नहीं किया है ॥१७७॥ मैंने अब तक जो जीवन धारण किया है वह एक आपकी स्मृतिके आश्रय ही धारण किया है। इसलिए आपके द्वारा किया हुआ तिरस्कार भी मेरे लिए महान् आनन्दस्वरूप ही रहा है ॥१७८॥

अथानन्तर ऐसा कहती हुई अंजनाकी चिबुकपर अँगुली रख उसके मुखको कुछ ऊँचा उठाकर उसीकी ओर देखते हुए पवनंजयने कहा कि ॥१७९॥ हे देवि! समस्त अपराध भूल जाओ इसलिए मैं तुम्हारे चरणोंमें प्रणाम करता हूँ, परम प्रसन्नताको प्राप्त होओ ॥१८०॥ इतना कहकर पवनंजयने अपना मस्तक अंजनाके चरणोंमें रख दिया और अंजना उसे अपने करकमलोंसे शीघ्र ही उठानेका प्रयत्न करने लगी ॥१८१॥ परन्तु पवनंजय उसी दशामें पड़े रहे। उन्होंने कहा कि हे प्रिये! जब तुम यह कहोगी कि 'मैं प्रसन्न हूँ' तभी सिर ऊपर उठाऊँगा ॥१८२॥ तदनन्तर 'क्षमा किया' अंजनाके ऐसा कहते ही पवनंजयने सिर ऊपर उठाकर उसका आलिंगन किया। उस समय उसके दोनों नेत्र सुखसे निमीलित हो रहे थे ॥१८३॥ आलिंगित अंजना पतिके शरीरमें इस प्रकार लीन हो गयी मानो फिरसे वियोग न हो जावे इस भयसे शरीरके भीतर ही प्रविष्ट होना चाहती थी ॥१८४॥ पवनंजयने अंजनाको आलिंगनसे छोड़ा तो निश्चल नेत्रोंसे युक्त उसके मुखको अपने टिमकाररहित नेत्रोंसे देखने लगे ॥१८५॥ तदनन्तर कामसे व्याकुल हो उन्होंने अंजनाके पैरों, हाथों, नाभि, स्तन, दाढ़ी, ललाट, कपोलों और नेत्रोंका चुम्बन किया ॥१८६॥ एक ही बार नहीं, किन्तु पसीनासे युक्त हाथसे स्पर्श करते हुए उन्होंने पुनः-पुनः उन स्थानोंका चुम्बन किया जो ठीक ही है क्योंकि मुखका चुम्बन करनेके लिए वह आप्त सेवा है सो प्रेमीजनोंको करना ही पड़ता है ॥१८७॥ तदनन्तर खिले हुए कमलके भीतरी दलके समान जिसकी कान्ति थी और मानो जो अमृत ही छोड़ रहा था ऐसे उसके अधरोष्ठका पान किया ॥१८८॥ नीवीकी गाँठ खोलने-

---

१. त्वत्स्मृतिबद्धं म. । २. अथैव म. । ३. प्रसन्नोऽस्मीति म०, ब. । ४. मुखमीलित-म. । ५. ज्ञातान्तर्विग्रहं यथा ख. म, ब., ज. । ६. स चाशकता म. ।

ततो नितम्बफलकं दृष्ट्वास्या वसनोज्झितम् । उत्पाद हृदयं वायुर्मनोभूवेगरञ्जितम् ॥१९०॥
अथ केनापि वेगेन परायत्तीकृतात्मना । गृहीता दयिता गाढं पवनेनाब्जकोमला ॥१९१॥
यथा ब्रवीति वैदग्ध्यं यथाज्ञापयति स्मरः । अनुरागो यथा शिक्षां प्रयच्छति महोदयः ॥१९२॥
तथा तयो रतिः प्राप्ता दम्पत्योर्वृद्धिमुत्तमाम् । काले तत्र हि यो भावो नैवाख्यातुं स पार्यते ॥१९३॥
स्तनयोः कुम्भयोरेव जघने चाङ्गनोत्तमाम् । आस्फालयन् समारूढो मनोभवमहागजम् ॥१९४॥
तिष्ठ मुञ्च गृहाणेति नानाशब्दसमाकुलम् । तयोर्युद्धमिवोदारं रतमासीत्सविभ्रमम् ॥१९५॥
अधरग्रहणे तस्याः पुरुसीत्कारपूर्वकम् । प्रविधूतः करो रेजे लताया इव पल्लवः ॥१९६॥
प्रियदत्ता नखास्तस्य नखाङ्का जघने बभुः । वैडूर्यजगतीभागे पद्मरागोद्गमा इव ॥१९७॥
तस्याः [1]सेचनकत्वं तु जगाम जघनस्थलम् । निमेषमुक्ततन्निष्ठमुकुलीभूतचक्षुषः ॥१९८॥
वलयानां रणत्कारः कलालापसमन्वितः । तदा मनोहरो जज्ञे भ्रमरौघरवोपमः ॥१९९॥
तस्यास्ते काम्यमानाया नेत्रकेकरतारके । मुकुले दधतुः शोभां चलालीन्दीवरस्थिताम्[2] ॥२००॥
प्रस्वेदबिन्दुनिकरस्तस्या मुखकुचोद्गतः । स्वच्छमुक्ताफलाकारो रतस्यान्तेऽत्यराजत ॥२०१॥
स्वप्रहारणीभूतं साधरं बिभ्रती बभौ । पलाशवनराजीव समुद्भूतैककिंशुका[3] ॥२०२॥
प्रियभुक्ता तनुस्तस्या ऊहे कान्तिमनुत्तमाम् । कनकाद्रितटाश्लिष्टवनपङ्क्तिकृतोपमाम् ॥२०३॥

के लिए उतावली करनेवाले पवनंजयके हाथको लज्जासे भरी अंजना रोकना तो चाहती थी पर उसका हाथ इतना अधिक कांप रहा था कि उससे वह रोकनेमें समर्थ नहीं हो सकी ॥१८९॥

तदनन्तर वस्त्ररहित अंजनाका नितम्बफलक देखकर पवनंजयका हृदय कामके वेगसे चंचल हो गया ॥१९०॥ तत्पश्चात् किसी अद्भुत वेगसे जिसकी आत्मा विवश हो रही थी ऐसे पवनंजयने कमलके समान कोमल अंजनाको कसकर पकड़ लिया ॥१९१॥ तदनन्तर चतुराई जो बात कहती थी, काम जैसी आज्ञा देता था, और बढ़ा हुआ अनुराग जैसी शिक्षा देता था 'वैसी ही उन दोनों' दम्पतियोंकी रति-क्रिया उत्तम वृद्धिको प्राप्त हुई। उस समय उन दोनोंके मनका जो भाव था वह शब्दों द्वारा नहीं कहा जा सकता ॥१९२-१९३॥ परम सुन्दरी अंजनाके स्तन-रूपी कलश तथा नितम्ब-स्थलका आस्फालन करते हुए पवनंजय कामदेवरूपी मदोन्मत्त हाथीपर आरूढ़ थे ॥१९४॥ 'ठहरो', 'छोड़ो, 'पकड़ो' आदि नाना शब्दोंसे युक्त तथा हाव-भाव विभ्रमसे भरा उनका रत किसी महायुद्धके समान जान पड़ता था ॥१९५॥ अधरोष्ठको ग्रहण करते समय ओरसे सी-सी करती हुई अंजना जो हाथ हिलाती थी वह ऐसा जान पड़ता था मानो किसी लताका पल्लव ही हिल रहा हो ॥१९६॥ अंजनाके नितम्ब-स्थलपर पवनंजयने जो नये-नये नख-क्षत दिये थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो नीलमणिकी भूमिमें पद्मरागमणि ही निकल रहे हों ॥१९७॥ अंजनाका जघन-स्थल देखते-देखते पवनंजयको तृप्ति ही नहीं होती थी। वह अपने टिमकाररहित नेत्र उसीपर गड़ाये बैठे थे ॥१९८॥ मधुर आलापसे सहित उसकी चूड़ियोंकी मनोहर रुनझुन ऐसी जान पड़ती थी मानो भ्रमरोंके समूह ही गुंजार कर रहे हों ॥१९९॥ अंजनाके नेत्रोंके कटाक्ष और पुतलियाँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो चंचल भ्रमरोंसे युक्त नील कमलोंकी शोभा ही धारण कर रही हो ॥२००॥ सम्भोगके अनन्तर अंजनाके मुख तथा स्तनोंके ऊपर जो पसीनोंकी बूँदोंका समूह प्रकट हुआ था वह ऐसा जान पड़ता था मानो स्वच्छ मोतियोंका समूह ही हो ॥२०१॥ दन्ताघातके कारण उसका अधरोष्ठ लाल-लाल हो गया था। उसे धारण करती हुई वह ऐसी जान पड़ती थी मानो जिसमें एक फूल आया है ऐसे टेसूके वनकी पंक्ति ही हो ॥२०२॥ पतिके द्वारा उपभुक्त

१. अतृप्तिकरत्वम् । २. स्थिती म. । ३. किंशुकः म. ।

ततः संप्राप्तकृत्ये तौ समाप्ते सुरतोत्सवे । दम्पती सेवितुं निद्रां खिन्नदेहाववाञ्छताम् ॥२०४॥
परस्परगुणध्यानवशमानसयोस्तु सा । ईर्ष्ययेव तयोर्दूरं कोपाद् क्वापि पलायिता ॥२०५॥
ततः प्रियांसदेशस्थदयितामूर्ध्वदेशकम् । कृतान्योन्यभुजाश्लेषं परमप्रेमकीलितम् ॥२०६॥
महासौरभनिश्वासवासितास्यसरोरुहम् । विकटोरःपरिष्वङ्गचक्रचिह्नितस्तनमण्डलम् ॥२०७॥
नरोर्वन्तरनिक्षिप्तवनितैकोरुमारकम् । यथेष्टदेशविन्यस्तनानाकारोपधानकम् ॥२०८॥
नागीयमिव तत्कान्तं मिथुनं रुचमन्वयात् । निद्रां स्पर्शसुखाम्भोधिनिमग्नालीनविग्रहम् ॥२०९॥
जाते मन्दप्रभातेऽथ शयनीयात्समुत्थिता । पार्श्वासन्नस्थिता कान्तमञ्जना पर्यसेवत ॥२१०॥
दृष्ट्वा परिमलं देहे स्वस्मिन् साभूत् त्रपावती । प्रमदं च परिप्राप्ता चिराल्लब्धमनोरथा ॥२११॥
तयोरज्ञातयोरेवं यथोचितविधायिनोः । अतीयाय निशानेका क्षणादर्शनभीतयोः ॥२१२॥
दोदुन्दुकसुरौपम्यं प्राप्तयोरुभयोस्तदा । इन्द्रियाण्यन्यकार्येभ्यः प्राप्तानि विनिवर्तनम् ॥२१३॥
अन्यदा सौख्यसंभारविस्मृतस्वामिशासनम् । मित्रं प्रमादवद्बुद्ध्वा तद्धितध्यानतत्परः ॥२१४॥
सुधीर्वसन्तमालायां प्रविष्टायां कृतध्वनिः । प्रविश्य वासभवनं मन्दं प्रहसितोऽवदत् ॥२१५॥
सुन्दरोत्तिष्ठ किं शेषे नैन्वेष रजनीपतिः । जितस्तवन्मुखकान्त्येव गतो विच्छायतां पराम् ॥२१६॥

अंजनाका शरीर सुमेरु पर्वतके द्वारा आलिंगित मेघपंक्तिके समान उत्तम कान्तिको धारण कर रहा था ॥२०३॥ तदनन्तर जिसके समस्त कार्य पूर्ण हो चुके थे ऐसे सुरतोत्सवके समाप्त होनेपर खिन्न शरीरसे युक्त दोनों दम्पति निद्रा-सेवनकी इच्छा करने लगे ॥२०४॥ परन्तु उन दोनोंके मन एक दूसरेके गुणोंका ध्यान करनेमें निमग्न थे इसलिए निद्रा ईर्ष्याके कारण ही मानो क्रोधवश कहीं भाग गयी थी ॥२०५॥ तदनन्तर जिसमें पतिके कन्धेपर वल्लभाका सिर रखा था, जिसमें भुजाओंका परस्पर आलिंगन हो रहा था, जो पारस्परिक प्रेमसे मानो कीलित था, महा-सुगन्धित श्वासोच्छ्वासके कारण जिसमें मुख-कमल सुवासित थे, विशाल वक्ष-स्थलकी चपेटसे जिसमें स्तन-मण्डल चक्रके आकार चपटे हो रहे थे, जिसमें पुरुषकी जाँघोंके बीचमें स्त्रीकी एक जाँघका भार अवस्थित था और इच्छित स्थानोंमें जहाँ नाना प्रकारके तकिया लगाये गये थे, ऐसी अवस्थामें नागकुमार देव-देवियोंके युगलके समान वह अंजना और पवनंजयका युगल किसी तरह निद्राको प्राप्त हुआ। उस समय उन दोनोंके शरीर स्पर्श-जन्य सुखरूपी सागरमें निमग्न होनेसे अत्यन्त निश्चल थे ॥२०६-२०९॥

अथानन्तर जब कुछ-कुछ प्रभात हुआ तब अंजना शय्यासे उठकर तथा बगलमें निकट बैठकर पतिकी सेवा करने लगी ॥२१०॥ अपने शरीरमें सम्भोगजन्य सुगन्धि देखकर वह लज्जित हो गयी और साथ ही चूँकि उसके मनोरथ चिरकाल बाद पूर्ण हुए थे इसलिए हर्षको भी प्राप्त हुई ॥२११॥ इस प्रकार जो पहले एक दूसरेके दर्शन-मात्रसे भयभीत रहते थे ऐसे उन दम्पतियोंकी अज्ञातरूपसे यथेच्छ उपभोग करते हुए अनेक रात्रियाँ व्यतीत हो गयीं ॥२१२॥ दोदुन्दुक नामक देवकी उपमाको धारण करनेवाले उन दोनों दम्पतियोंकी इन्द्रियाँ उस समय अन्य कार्योंसे व्यावृत्त होकर परस्पर एक दूसरेकी ओर ही लगी हुई थीं ॥२१३॥

अथानन्तर सुखके सम्भारसे जिसने स्वामीका आदेश भुला दिया था ऐसे मित्रको प्रमादी जान उसके हितका चिन्तन करनेमें तत्पर रहनेवाला बुद्धिमान् प्रहसित मित्र वसन्तमालाके प्रवेश करनेपर आवाज देता हुआ महलके भीतर प्रवेश कर धीरे-धीरे बोला ॥२१४-२१५॥ कि हे सुन्दर ! उठो, क्यों शयन कर रहे हो ? जान पड़ता है कि मानो तुम्हारे मुखकी कान्तिसे पराजित

---

१. वक्रित ख., ज. । २. कुतूहलधारिदेवसदृशम् । ३. न त्वेष म. ।

इति वाचास्य जातोऽसौ प्रबोधं श्लथविग्रहः । कृत्वा विजृम्भणं निद्रासेषारुणनिरीक्षणः ॥२१७॥
श्रवणं वामतर्जन्या कण्डूयन्मुकुलेक्षणः । संकोच्य दक्षिणं बाहुं निक्षिपञ्जनितस्वरम् ॥२१८॥
कान्तायां निद्धदक्षेत्रे त्रपाविनतचक्षुषि । एहीति निगदन्मित्रमुत्तस्थौ पवनंजयः ॥२१९॥
कृत्वा स्मितमथापृच्छच [2]सुखरात्रिं कृतस्मितम् । पृच्छन्तं रात्रिकुशलं तद्वेदी तत्रिवेदनम् ॥२२०॥
निवेश्य तत्प्रियोद्दिष्टे समासन्ने सुखासने । सुहृदेनं जगादैवं नयशास्त्रविशारदः ॥२२१॥
उत्तिष्ठ मित्र गच्छावः सांप्रतं बहवो गताः । दिवसास्ते प्रसक्तस्य प्रियासंमानकर्मणि ॥२२२॥
यावत्कश्चिन्न जानाति प्रत्यागमनमावयोः । गमनं युज्यते तावदन्यथा लज्जनं भवेत् ॥२२३॥
तिष्ठत्युदीक्षमाणश्च रथनूपुरकस्तव । नृपः कैलासगीतश्च विधासुः स्वामिनोऽन्तिकम् ॥२२४॥
मन्त्रिणश्च किलाजस्रं [4]पृच्छत्यादरसंगतः । पवनो वर्तते क्वेति [5]मरुत्वन्मत्तसूदनः ॥२२५॥
उपायो गमनस्यायं मया विरचितस्तव । दयितासंगमस्तस्मादिदानीं तत्र त्यज्यताम् ॥२२६॥
आज्ञेयं करणीया ते स्वामिनो जनकस्य च । क्षेमादागत्य सततं दयितां मानयिष्यति ॥२२७॥
एवं करोमि साधूक्तं सुहृदेत्यभिधाय सः । कृत्वा तनुगतं कर्म संविधापितमङ्गलम् ॥२२८॥
रहस्यालिङ्ग्य दयितां चुम्बित्वा स्फुरिताधरम् । जगाद देवि माकार्षीरुद्वेगं यं व्रजाम्यहम् ॥२२९॥
अचिरेणैव कालेन विधाय स्वामिशासनम् । आगमिष्यामि निर्वृत्या [6]तिष्ठेति मधुरस्वरः ॥२३०॥

होकर ही यह चन्द्रमा अत्यन्त निष्प्रभताको प्राप्त हुआ है ॥ २१६॥ मित्रके यह वचन सुनते ही पवनंजय जाग उठा। उस समय उसका शरीर शिथिल था, निद्राके शेष रहनेसे उसके नेत्र लाल थे तथा जमुहाई आ रही थी ॥२१७॥ उसने नेत्र बन्द किये ही वाम हस्तकी तर्जनी नामा अंगुलीसे कान खुजाया तथा दाहिनी भुजाको पहले संकोचकर फिर जोरसे फैलाया जिससे चटाकका शब्द हुआ ॥२१८॥ तदनन्तर लज्जासे जिसके नेत्र नीचे हो रहे थे ऐसे कान्ताके मुख-पर दृष्टि डालता हुआ पवनंजय 'आओ मित्र' ऐसा कहता हुआ शय्यासे उठ खड़ा हुआ ॥२१९॥ तदनन्तर प्रहसितने हँसकर पूछा कि रात्रि सुखसे व्यतीत हुई ? इसके उत्तरमें पवनंजयने भी हँसते हुए प्रहसितसे पूछा कि तुम्हारी भी रात्रि कुशलतासे बीती ? इस प्रकार वार्तालापके अनन्तर समस्त वृत्तान्तको जाननेवाला एवं नीतिशास्त्रका पण्डित प्रहसित अंजनाके द्वारा बतलाये हुए निकटवर्ती सुखासनपर बैठकर पवनंजयसे इस प्रकार बोला कि हे मित्र ! उठो, अब चलें, प्रियाके सम्मान-कार्यमें लगे हुए आपके बहुत दिन निकल गये ॥२२०-२२२॥ जबतक हम लोगोंका वापस आना कोई जान नहीं पाता है तबतक चला जाना ठीक है अन्यथा लज्जाकी बात हो जायेगी ॥२२३॥ तुम्हारा सेनापति रथनूपुरक तथा स्वामीके समीप जानेका इच्छुक राजा कैलासगीत तुम्हारी प्रतीक्षा करते हुए ठहरे हैं ॥२२४॥ आदरसे भरा रावण निरन्तर मन्त्रियोंसे पूछता रहता है कि पवनंजय कहाँ है ? ॥२२५॥ मैंने तुम्हारे जानेका यह उपाय रचा था सो इस समय वल्लभाका समागम छोड़ दिया जाये ॥२२६॥ तुम्हें स्वामी रावण और पिता प्रह्लादकी यह आज्ञा माननी चाहिए। तदनन्तर कुशलतापूर्वक वापस आकर निरन्तर वल्लभाका सम्मान करते रहना ॥२२७॥ इसके उत्तरमें पवनंजयने कहा कि हे मित्र ! ऐसा ही करता हूँ। तुमने बहुत ठीक कहा है। ऐसा कहकर उसने मंगलाचारपूर्वक शरीरसम्बन्धी क्रियाएँ कीं ॥२२८॥ एकान्तमें वल्लभाका आलिंगन किया, उसके फड़कते हुए अधरोष्ठका चुम्बन किया और कहा कि हे देवि ! तुम उद्वेग नहीं करना, मैं जाता हूँ और शीघ्र ही स्वामीकी आज्ञाका पालन कर वापस आ जाऊँगा।

---

१. प्रबुध्य । सुखरात्रिकृतस्मितम् म. । ३. तन्निवेदिनम् ब. । ४. पृच्छन्त्यादर म. । ५. रावणः । ६. संतोषेण ।

ततो विरहतो भीता सद्गद्यगतलोचना । कृत्वा करयुगाम्भोजं अगादाञ्जनसुन्दरी ॥२२९॥
आर्यपुत्रतुमत्यस्मिं[1] भवता कृतसंगमा । ततस्त्वद्विरहे गर्भो ममावाच्यो[2] भविष्यति ॥२३०॥
तस्माद्विवेद्य गच्छ त्वं गुरुभ्यो गर्भसंभवम् । क्षेमाय दीर्घदर्शित्वं कल्पते[3] प्राणधारिणाम् ॥२३२॥
एवमुक्तो जगादासौ देवि पूर्वं त्वया विना । निष्क्रान्तो निश्चितो मेद्राद् गुरूणां संनिधावहम् ॥२३४॥
अधुना गमनं तेभ्यस्तदयं गदितुं त्रपे । चित्रचेष्टं च विज्ञाय मां जनः स्मेरतां व्रजेत् ॥२३५॥
तस्मावावदयं गर्भस्तव नैति प्रकाशताम् । तावदेवावधिष्यामि मा भाजीर्विमनस्कताम् ॥२३६॥
इमं प्रमादनोदार्थं मन्नामकृतलक्षणम् । गृहाण वलयं भद्रे शान्तिस्तेऽतो भविष्यति ॥२३७॥
इत्युक्त्वा वलयं दत्त्वा सान्त्वयित्वा मुहुः प्रियाम् । उक्त्वा वसन्तमालां च तदर्थं समुपासनम् ॥२३८॥
रतश्रमतिकरच्छिन्नहारमुक्ताफलाचितात् । पुष्पगन्धपरागोरुसौरभाकृष्टषट्पदात् ॥२३९॥
तरङ्गिप्रच्छदपटाद् दुग्धाब्धिद्वीपसंनिभात् । शयनीयात् समुत्तस्थौ प्रियावस्थितमानसः ॥२४०॥
मङ्गलध्वंसभीत्या च प्रियया साश्रुनेत्रया । अदृष्टिगोचरं दृष्टः सस्नेहो विषदुःखयोः ॥२४१॥

पृथिवीच्छन्दः

कदाचिदिह जायते स्वकृतकर्मपाकोदयात्
सुखं अगति संगमादभिमतस्य सद्वस्तुनः ।
कदाचिदपि संभवत्यसुमृतामसौख्यं परं
भवे भवति न स्थितिः समगुणा यतः सर्वदा ॥२४२॥

तुम सुखसे रहो। पवनंजयने यह शब्द बड़ी मधुर आवाजसे कहे थे ॥२२९-२३०॥ तदनन्तर जो विरहसे भयभीत थी तथा जिसके नेत्र पवनंजयके मुखपर लग रहे थे ऐसी अंजनासुन्दरी दोनों हस्तकमल जोड़कर बोली कि हे आर्य पुत्र ! ऋतु कालके बाद ही मैंने आपके साथ समागम किया है इसलिए यदि मेरे गर्भ रह गया तो वह आपके विरह-कालमें निन्दाका पात्र होगा ॥२३१-२३२॥ अतः आप गुरुजनोंको गर्भ सम्भवताकी सूचना देकर जाइए। दीर्घदर्शिता मनुष्योंके कल्याणका कारण है ॥२३३॥ अंजनाके ऐसा कहनेपर पवनंजयने कहा कि हे देवि ! मैं पहले गुरुजनोंके समीप तुम्हारे बिना घरसे निकला था और ऐसा ही सबको निश्चय है। इसलिए इस समय उनके पास जाने और यह सब समाचार कहनेमें मुझे लज्जा आती है। इसकी चेष्टाएँ विचित्र हैं ऐसा जानकर लोग मेरी हँसी करेंगे ॥२३४-२३५॥ अतः जबतक तुम्हारा यह गर्भ प्रकट नहीं हो पाता है तबतक मैं वापस आ जाऊँगा। विषाद मत करो ॥२३६॥ हे भद्रे ! प्रमाद दूर करनेके लिए मेरे नामसे चिह्नित यह कड़ा ले लो इसमें तुम्हें शान्ति रहेगी ॥२३७॥ ऐसा कहकर, कड़ा देकर, बार-बार सान्त्वना देकर और वसन्तमालाको ठीक-ठीक सेवा करनेका आदेश देकर पवनंजय शय्यासे उठा। उस समय उसकी वह शय्या सुरतकालीन सम्मर्दनसे टूटे हुए हारके मोतियोंसे व्याप्त थी, फूलोंकी सुगन्धित पराग सम्बन्धी भारी सुगन्धिसे भौंरे खिचकर उसपर इकट्ठे हो रहे थे, उसके ऊपर बिछा हुआ चद्दर लहरा रहा था, और वह क्षीरसमुद्रके मध्यमें स्थित क्षीर द्वीपके समान जान पड़ती थी। पवनंजय उठा तो सही पर उसका मन अपनी प्रियामें ही लग रहा था ॥२३८-२४०॥ पृथ्वीपर अश्रु गिरनेसे कहीं मंगलाचारमें बाधा न आ जाये इस भयसे अंजनाने अपने अश्रु नेत्रोंमें ही समेटकर रखे थे और इसलिए जाते समय वह पवनंजयको आँख खोलकर नहीं देख सकती थी फिर भी मित्रके साथ वह आकाशकी ओर उड़ गया ॥२४१॥

गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि इस संसारमें प्राणियोंको कभी तो अपने पूर्वो-

---

१. -मत्यस्मिन् म.। २. निन्दनीयः। ३. कल्पते प्राणधारणम् म.।

अथापि जननात्प्रभृत्यविरतं सुखं प्राणिनां
मृतेरविरतो भवेज्जनु तथाप्यमुत्रासुखम् ।
ततो भजत भो जनाः सततभूरिसौख्यावहं
भवासुखतमश्छिदं जिनवरोक्तधर्मं रविम् ॥२४३॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते पवनाञ्जनासंभोगाभिधानं नाम षोडशं पर्व ॥१६॥



पार्जित पुण्य-कर्मके उदयसे इष्ट वस्तुका समागम होनेसे सुख होता है और कभी पाप-कर्मके उदयसे परम दुःख प्राप्त होता है क्योंकि इस संसारमें सदा किसीकी स्थिति एक-सी नहीं रहती ॥२४२॥ फिर भी धर्मके प्रसादसे कितने ही जीवोंको जन्मसे लेकर मरण-पर्यन्त निरन्तर सुख प्राप्त होता रहता है और मरनेके बाद परलोकमें भी उन्हें सुख मिलता रहता है। इसलिए हे भव्य जीवो! निरन्तर अत्यधिक सुख देनेवाले एवं संसारके दुःखरूपी अन्धकारको छेदनेवाले जिनेन्द्रोक्त धर्मरूपी सूर्यकी सेवा करो ॥२४३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरितमें पवनंजय और अंजनाके सम्भोगका वर्णन करनेवाला सोलहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१६॥



---

१. भवेत्तनु म. । २. जनः म. ।

सप्तदशं पर्व

कियत्यपि प्रयातेऽथ काले गर्भस्य सूचकाः । विशेषाः प्रादुरभवन्महेन्द्रतनयातनौ ॥१॥
हयाय पाण्डुतां छाया यशसेव हनूमतः । गतिर्मन्दतरत्वं च मत्तदिग्नागविभ्रमा ॥२॥
स्तनावस्युन्नतिं प्राप्तौ श्यामलीभूतचूचुकौ । आलस्याद् भ्रूसमुत्क्षेपं चकार विषये गिरः ॥३॥
ततस्तां लक्षणैरेभिः स्वश्रूर्विज्ञाय गर्भिणीम् । पप्रच्छ तव केनेदं कृतं कर्मेत्यसूयिका ॥४॥
साञ्जलिः सा प्रणम्योचे निखिलं पूर्ववेष्टितम् । प्रतिषिद्धापि कान्तेन गतिमन्यामविन्दती ॥५॥
ततः केतुमती क्रुद्धा जगादेति सुनिष्ठुरम् । वाणीभिर्गाढवेदाभिस्ताडयन्तीव यष्टिभिः ॥६॥
यो न त्वत्सदृशं पापे द्रष्टुमाकारमिच्छति । शब्दं वा श्रवणे कर्तुमतिद्वेषपरायणः ॥७॥
स कथं स्वजनापृच्छां कृत्वा गेहाद्विनिर्गतः । मत्तैरथा संगमं धीरः कुर्वीत विगतत्रपे ॥८॥
धिक् त्वां पापां शशाङ्कांशुशुभ्रसंतानदूषिणीम् । आचरन्तीं क्रियामेतां लोकद्वितयनिन्दिताम् ॥९॥
सखी वसन्तमाला ते साध्वीमेतां मतिं ददौ । वेश्यायाः कुलटानां किं कुर्वन्ति परिचारिकाः ॥१०॥
दर्शितेऽपि तदा तस्मिन्कटके क्रूरमानसा । प्रतीयाय न सा श्वश्रूश्चुकोपाथ्यन्तमुग्रवाक् ॥११॥

अथानन्तर कितना ही समय बीतनेपर राजा महेन्द्रकी पुत्री अंजनाके शरीरमें गर्भको सूचित करनेवाले विशेष चिह्न प्रकट हुए ॥१॥ उसकी कान्ति सफ़ेदीको प्राप्त हो गयी सो मानो गर्भमें स्थित हनुमान्‌के यशसे ही प्राप्त हुई थी। मदोन्मत्त दिग्गजके समान विभ्रमसे भरी उसकी मन्द चाल और भी अधिक मन्द हो गयी ॥२॥ जिनका अग्रभाग श्यामल पड़ गया था ऐसे स्तन अत्यन्त उन्नत हो गये और आलस्यके कारण वह जहाँ बात करना आवश्यक था वहाँ केवल भौंह ऊपर उठा कर संकेत करने लगी ॥३॥ तदनन्तर इन लक्षणोंसे उसे गर्भवती जान ईर्ष्यासे भरी सासने उससे पूछा कि तेरे साथ यह कार्य किसने किया है ? ॥४॥ इसके उत्तरमें अंजनाने हाथ जोड़ प्रणाम कर पहलेका समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। यद्यपि पवनंजयने यह वृत्तान्त प्रकट करनेके लिए उसे मना कर दिया था तथापि जब उसने कोई दूसरा उपाय नहीं देखा तब विवश हो संकोच छोड़ सब समाचार प्रकट कर दिया ॥५॥

तदनन्तर केतुमतीने कुपित होकर बड़ी निष्ठुरताके साथ पत्थर-जैसी कठोर वाणीमें उससे कहा। जब केतुमती अंजनासे कठोर शब्द बोल रही थी तब ऐसा जान पड़ता था मानो वह लाठियोंसे उसे ताड़ित कर रही थी ॥६॥ उसने कहा कि अरी पापिन ! अत्यन्त द्वेषसे भरा होनेके कारण जो तुझ-जैसा आकार भी नहीं देखना चाहता और तेरा शब्द भी कानमें नहीं पड़ने देना चाहता वह धीर-वीर पवनंजय तो आत्मीय जनोंसे पूछकर घरसे बाहर गया हुआ है। हे निर्लज्जे ! वह तेरे साथ समागम कैसे कर सकता है ? ॥७-८॥ चन्द्रमाकी किरणोंके समान उज्ज्वल सन्तानको दूषित करनेवाली तथा दोनों लोकोंमें निन्दनीय इस क्रियाको करनेवाली तुझ पापिनको धिक्कार है ॥९॥ जान पड़ता है कि सखी वसन्तमालाने ही तेरे लिए यह उत्तम बुद्धि दी है सो ठीक ही है क्योंकि वेश्या और कुलटा स्त्रियोंकी सेविकाएँ इसके सिवाय करती ही क्या हैं ॥१०॥ उस समय अंजनाने यद्यपि पवनंजयका दिया कड़ा भी दिखाया पर उस दुष्ट हृदयाने उसका विश्वास नहीं किया। विश्वास तो दूर रहा तीक्ष्ण शब्द कहती हुई अत्यन्त

---

१. मतिर्मन्द म.। २. मतिदिग्नाग म.। ३. विषयो गिरः म.। ४. भवत्या म.। ५. वेश्या या। ६. परिचारिका म.। ७. श्वश्रूकोपात्यन्त म.।

इत्युक्त्वा क्रूरनामानं क्रूरमाहूय किंकरम् । कृतप्रणाममित्यूचे कोपारुणनिरीक्षणा ॥१२॥
अयि क्रूराशु नीत्वेमां महेन्द्रपुरगोचरम् । यानेन सहितां सख्या निक्षिप्यैहि निरन्तरम् ॥१३॥
ततस्तद्वचनादेतां पृथुवेपथुविग्रहाम् । महापवननिर्भूतां लतामिव निराश्रयाम् ॥१४॥
ध्यायन्तीमाकुलं भूरिदुःखमागामि निष्प्रभाम् । विलीनमिव बिभ्राणां हृदयं दुःखवह्निना ॥१५॥
भीत्या निरुत्तरीभूतां सखीनिहितलोचनाम् । निन्दन्तीमशुभं कर्म मनसा पुनरुद्गतम् ॥१६॥
अश्रुधारां विमुञ्चन्तीं शलाकां स्फटिकीमिव । स्तनमध्ये क्षणं न्यस्तपर्यन्तामनवस्थिताम् ॥१७॥
सख्या समं समारोप्य यानं तत्कर्मदक्षिणः । क्रूरः प्रचक्रमे गन्तुं महेन्द्रनगरं प्रति ॥१८॥
दिनान्ते तत्पुरस्यान्तं संप्राप्योवाच सुन्दरीम् । एवं मधुरया वाचा क्रूरः कृतनमस्कृतिः ॥१९॥
स्वामिनीशासनाद्देवि कृतमेतन्मया तव । दुःखस्य कारणं कर्म ततो न क्रोद्धुमर्हसि ॥२०॥
एवमुक्त्वावतार्यैतां यानाल्लब्धया समन्विताम् । स्वामिन्यै द्रुतमागत्य कृतामाज्ञां न्यवेदयत् ॥२१॥
ततोऽञ्जना[1] दृष्ट्वोक्त्वा दुःखभारादिवोत्तमाः । दीभूतप्रभाचक्रो[3] रविरस्तमुपागमत् ॥२२॥
लोचनच्छायसेवास्या रोदनात्यन्तशोणया । रविं त्राणाय पश्यन्त्याः[5] पश्चिमाशारुणाऽभवत् ॥२३॥
ततस्तद्दुःखतो[6] मुक्तैर्बाष्पैरिव घनैरलम् । दिग्भिर्निरन्तरं चक्रे श्यामलं नभसस्तलम् ॥२४॥

कुपित हो उठी ॥११॥ उसने उस समय क्रूर नामधारी दुष्ट सेवकको बुलाया। सेवकने आकर उसे प्रणाम किया। तदनन्तर क्रोधसे जिसके नेत्र लाल हो रहे थे ऐसी केतुमतीने सेवकसे कहा कि हे क्रूर! तू सखीके साथ इस अंजनाको शीघ्र ही ले जाकर राजा महेन्द्रके नगरके समीप छोड़कर बिना किसी विलम्बके वापस आ जा ॥१२-१३॥

तदनन्तर आज्ञा पालनमें तत्पर रहनेवाला क्रूर केतुमतीके वचन सुन अंजनाको वसन्तमालाके साथ गाड़ीपर सवार कर राजा महेन्द्रके नगरकी ओर चला। उस समय अंजनाका शरीर भयसे अत्यन्त कम्पित हो रहा था, वह प्रचण्ड वायुके द्वारा झकझोरकर नीचे गिरायी हुई निराश्रय लताके समान जान पड़ती थी, आगामी कालमें प्राप्त होनेवाले भारी दुःखका वह बड़ी व्याकुलतासे चिन्तन कर रही थी, उसका हृदय दुःखरूपी अग्निसे मानो पिघल गया था, भयके कारण वह निरुत्तर थी, सखी वसन्तमालापर उसके नेत्र लग रहे थे, वह पुनः उदयमें आये अशुभ कर्मकी मन-ही-मन निन्दा कर रही थी, और जिसका एक छोर स्तनोंके बीचमें रखा हुआ था ऐसी स्फटिककी चंचल शलाकाके समान आँसुओंकी धारा छोड़ रही थी ॥१४-१८॥

तदनन्तर जब दिन समाप्त होनेको आया तब क्रूर राजा महेन्द्रके नगरके समीप पहुँचा। वहाँ पहुँचकर उसने अंजना सुन्दरीको नमस्कार कर निम्नांकित मधुर वचन कहे ॥१९॥ उसने कहा कि हे देवि! मैंने तुम्हारे लिए दुःख देनेवाला यह कार्य स्वामिनीकी आज्ञासे किया है अतः मुझपर क्रोध करना योग्य नहीं है ॥२०॥ ऐसा कहकर उसने सखीसहित अंजनाको गाड़ीसे उतारकर तथा शीघ्र ही वापस आकर स्वामिनीके लिए सूचित कर दिया कि मैं आपकी आज्ञाका पालन कर चुका ॥२१॥ तदनन्तर उत्तम नारी अंजनाको देखकर ही मानो दुःखके भारसे जिसका प्रभामण्डल फीका पड़ गया था ऐसा सूर्य अस्त हो गया ॥२२॥ पश्चिम दिशा लाल हो गयी सो ऐसा जान पड़ता था मानो अंजना सुन्दरी, निरन्तर रोती रहनेके कारण अत्यन्त लाल दिखनेवाले नेत्रोंसे रक्षा करनेके उद्देश्यसे सूर्यकी ओर देख रही थी सो उन्हींकी लालीसे लाल हो गयी थी ॥२३॥ तदनन्तर दिशाओंने आकाशको श्यामल कर दिया सो ऐसा जान पड़ता था मानो अंजनाके दुःखसे दुःखी होकर उन्होंने अत्यधिक वाष्प ही छोड़े थे, उन्हींसे आकाश श्यामल हो गया था ॥२४॥

१. शलाका म.। शिलाङ्कां ख.। २. ततोऽञ्जना म.। ३. प्रभाचक्ररवि म.। ४. रवित्राणाय म.। ५. पश्यन्त्या म.। ६. दुःखितो म.।

तद्दुःखादिव संप्राप्ता [1]दुःखं संघातकारिणः । कुलायेष्वाकुलाश्चक्रुर्वयः कोलाहलं परम् ॥२५॥
ततो दुःखमविज्ञाय सा क्षुदादिसमुद्भवम् । अभ्याख्यानमहादुःखसागरप्लवकारिणी ॥२६॥
भीतान्तर्वदनं साश्रु कुर्वती परिदेवनम् । सख्या विरचिते तस्थौ [2]पल्लवैः संस्तरेऽञ्जना ॥२७॥
न तस्या नयने निद्रा तस्यां रात्रावढौकत । दाहादिव भयं प्राप्ता संततोष्णाश्रुसंभवात् ॥२८॥
पाणिसंवाहनात् सख्या विनिर्धूतपरिश्रमा । [3]सान्त्व्यमाना निशां निन्ये कृच्छ्रेणासौ [4]समंसमम् ॥२९॥
ततो दीर्घोष्णनिश्वासनितान्तम्लानपल्लवम् । प्रभाते शयनं त्यक्त्वा नानासङ्क्लान्तिविक्लवा ॥३०॥
कृतानुगमना सख्या छायेवानुकूलया । [5]ऐत्पितुर्मन्दिरद्वारं सकृपं वीक्षिता जनैः ॥३१॥
ततस्तत्प्रविशन्ती सा निरुद्धा द्वाररक्षिणा । प्राप्ता रूपान्तरं दुःखादविज्ञाता [6]व्यवस्थिता ॥३२॥
ततो निखिलमेतस्याः सख्या कृतनिवेदितम् । विज्ञाय स्थापयित्वान्यं नरं द्वारे ससंभ्रमः ॥३३॥
सत्वा शिलाकवाटाख्यो द्वारपालः कृतानतिः । सुतागमं महीपाणिरुपांश्वीवां व्यजिज्ञपत् ॥३४॥
ततः प्रसन्नकीर्त्याख्यं महेन्द्रः पार्श्वगं सुतम् । आज्ञापयत् महाभूत्या तस्याः शीघ्रं प्रवेशनम् ॥३५॥
पुरस्य क्रियतां शोभा साधनं परिसेज्ज्यताम् । स्वयं प्रवेशयामीति पुनरूचे नराधिपः ॥३६॥
जगादासौ ततस्तस्मै द्वारपालो यथास्थितम् । सुतायाश्चरितं कृत्वा वदने पाणिपल्लवम् ॥३७॥

घोंसलोंमें इकट्ठे होनेवाले पक्षी बड़ी आकुलतासे अत्यधिक कोलाहल करने लगे सो ऐसा मालूम होता था मानो अंजनाके दुःखसे दुःखी होकर ही वे चिल्ला रहे हों ॥२५॥ तदनन्तर वह अंजना भूख-प्यास आदिसे उत्पन्न होनेवाला दुःख तो भूल गयी और अपवादजन्य महादुःखरूपी सागरमें उतराने लगी ॥२६॥ वह भयभीत होनेके कारण जोरसे तो नहीं चिल्लाती थी पर मुखके भीतर-ही-भीतर अश्रु ढालती हुई विलाप कर रही थी। तत्पश्चात् सखीने वृक्षोंके पल्लवोंसे एक आसन बनाया सो वह उसीपर बैठ गयी ॥२७॥ उस रात्रिमें अंजनाके नेत्रोंमें निद्रा नहीं आयी सो ऐसा जान पड़ता था मानो निरन्तर निकलनेवाले उष्ण आँसुओंसे समुत्पन्न दाहसे डरकर ही नहीं आयी थी ॥२८॥ सखीने हाथसे दाबकर जिसकी थकावट दूर कर दी थी तथा जिसे निरन्तर सान्त्वना दी थी ऐसी अंजनाने बड़े कष्टके साथ पूर्ण रात्रि बितायी अथवा 'समा समां निशां कृच्छ्रेण निन्ये' एक वर्षके समान रात्रि बड़े कष्टसे व्यतीत की ॥२९॥

तदनन्तर प्रभात हुआ सो लम्बी और गरम-गरम साँसोंसे जिसके पल्लव अत्यन्त मुरझा गये थे ऐसी शय्या छोड़कर अंजना पिताके महलके द्वारपर पहुँची। छायाकी तरह अनुकूल चलनेवाली सखी उसके पीछे-पीछे चल रही थी और लोग उसे दयाभरी दृष्टिसे देख रहे थे ॥३०-३१॥ दुःखके कारण अंजनाका रूप बदल गया था सो द्वारपालकी पहचानमें नहीं आयी। अतः द्वारमें प्रवेश करते समय उसने उसे रोक दिया। जिससे वह वहीं खड़ी हो गयी ॥३२॥ तदनन्तर सखीने सब समाचार सुनाया सो उसे जानकर शिलाकपाट नामका द्वारपाल द्वारपर किसी दूसरे मनुष्यको खड़ा कर भीतर गया और राजाको नमस्कार कर हाथसे पृथिवीको छूता हुआ एकान्तमें पुत्रीके आनेका समाचार कहने लगा ॥३३-३४॥ तत्पश्चात् राजा महेन्द्रने समीपमें बैठे हुए प्रसन्नकीर्ति नामक पुत्रको आज्ञा दी कि पुत्रीका बड़े वैभवके साथ शीघ्र ही प्रवेश कराओ ॥३५॥ तदनन्तर राजाने फिर कहा कि नगरकी शोभा करायी जाये तथा सेना सजायी जाये मैं स्वयं ही पुत्रीका प्रवेश कराऊँगा ॥३६॥ तत्पश्चात् द्वारपालने पुत्रका जैसा चरित्र सुन रखा था वैसा मुँहपर हाथ लगाकर राजाके लिए कह सुनाया ॥३७॥

१. दुःखसंघात म., ब. । २. पल्लवे म. । ३. सान्त्वमाना म. । ४. समा समम् म., ब., ज. । कृच्छ्रेण सभं साकं समां पूर्णां निशां निन्ये । ५. अगच्छत् । ६. अविज्ञाता व्यवस्थितो ब. । ७. न्यन्तरं म. । ८. प्रसन्नकीर्त्याख्यं म. । ९. परिसज्जातम् म. ।

ततः श्रुत्वा त्रपाहेतुं पिता तस्या विचेष्टितम् । प्रसन्नकीर्तिमित्यूचे परमं कोपमागतः ॥३८॥
निर्वास्यतां पुरादस्मादयं सा पापकारिणी । यस्या मे चरितं श्रुत्वा वज्रेणेवाहते श्रुती ॥३९॥
ततो नाम्ना महोत्साहः सामन्तोऽस्यातिवल्लभः । जगाद नाथ नो कर्तुमेवं कर्तुमिमां प्रति ॥४०॥
वसन्तमालया ख्यातं यथास्मै द्वाररक्षिणे । एवमेव न युक्ता तु विचिकित्सा[1] विकारणी[2] ॥४१॥
श्वश्रूः केतुमती क्रूरा लौकिकश्रुतिभाविता । अत्यन्तमविचारास्या विना दोषात्कृतोज्झिता[3] ॥४२॥
क्रूरयेयं यया त्यक्ता कल्याणाचाररतपरा । भवतापि विनिर्धूता शरणं कं प्रपद्यताम् ॥४३॥
व्याघ्रदृष्टमृगीवेयं मुग्धास्या त्रासमागता । इत्यश्रुतरुवां महाकक्षसमं शरणमागता ॥४४॥
सेयं निदाघसूर्यांशुसंतापादिव दुःखिता । महातरूपमं बाला विदित्वा त्वां समागता ॥४५॥
श्रीवत् स्वर्गात् परिभ्रष्टा वराकी विह्वलात्मिका । अभ्याख्यानतयालीढा कल्पवल्लीव कम्पिनी ॥४६॥
द्वारपालनिरोधेन सुतरामागता त्रपाम् । वैलक्ष्यादंशुकेनाङ्गमवगुण्ठ्य समूर्द्धकम् ॥४७॥
पितृस्नेहान्विता द्वारे सदा दुर्लालितात्मिका । तिष्ठतीत्यमुनाख्यातं द्वारपालेन पार्थिव ॥४८॥
स त्वं कुरु दयामस्यां निर्दोषेयं प्रवेश्यताम् । ननु केतुमती ज्ञाता क्रूरा कस्य न विष्टपे ॥४९॥
तस्य तद्वचनं श्रोत्रे राज्ञश्चक्रे न संश्रयम् । नलिनीदलविन्यस्तं विन्दुजालमिवाम्भसः ॥५०॥
जगाद च सखी स्नेहात् कदाचित् सत्यमप्यदः । अन्यथाकथयत्केन निश्चयोऽत्रावधार्यते ॥५१॥

तदनन्तर पिता पुत्रीकी लज्जाजनक चेष्टा सुनकर परम क्रोधको प्राप्त हुआ और प्रसन्नकीर्ति नामक पुत्रसे बोला ॥३८॥ कि उस पापकारिणीको इस नगरसे शीघ्र ही निकाल दो। उसका चरित्र सुनकर मेरे कान मानो वज्रसे ही ताड़ित हुए हैं ॥३९॥ तदनन्तर महोत्साह नामका सामन्त जो राजा महेन्द्रको अत्यन्त प्यारा था बोला, हे नाथ ! इसके प्रति ऐसा करना योग्य नहीं है ॥४०॥ वसन्तमालाने द्वारपालके लिए जैसी बात कही है कदाचित् वह वैसी ही हो तो अकारण घृणा करना उचित नहीं है ॥४१॥ इसकी सास केतुमती अत्यन्त क्रूर है, लौकिक श्रुतियोंसे प्रभावित होनेवाली है और बिलकुल ही विचाररहित है। उसने बिना दोषके ही इसका परित्याग किया है ॥४२॥ कल्याणरूप आचारका पालन करनेमें तत्पर रहनेवाली इस पुत्रीका जिस प्रकार उस दुष्ट सासने परित्याग किया है उसी प्रकार यदि आप भी तिरस्कार कर त्याग करते हैं तो फिर यह किसकी शरणमें जायेगी ? ॥४३॥ जिस प्रकार व्याघ्रके द्वारा देखी हुई हरिणी भयभीत होकर किसी महावनकी शरणमें पहुँचती है उसी प्रकार यह मुग्ध-वदना सासके भयभीत होकर महावनके समान जो तुम हो सो तुम्हारी शरणमें आयी है ॥४४॥ यह बाला मानो ग्रीष्मऋतुके सूर्यकी किरणोंके सन्तापसे ही दुःखी हो रही है और तुम्हें महावृक्षके समान जानकर तुम्हारे पास आयी है ॥४५॥ यह बेचारी स्वर्गसे परिभ्रष्ट लक्ष्मीके समान अत्यन्त विह्वल हो रही है और अपवादरूपी घामसे युक्त हो कल्पलताके समान काँप रही है ॥४६॥ द्वारपालके रोकनेसे यह अत्यन्त लज्जाको प्राप्त हुई है। इसीलिए इसने लज्जावश मस्तकके साथ-साथ अपना सारा शरीर वस्त्रसे ढँक लिया है ॥४७॥ पिताके स्नेहसे युक्त होकर जो सदा लाड़-प्यारसे भरी रहती थी वह अंजना आज दरवाजेपर रुकी खड़ी है। हे राजन् ! इस द्वारपालने यह समाचार आपसे कहा है ॥४८॥ सो तुम इसपर दया करो, यह निर्दोष है, इसलिए इसका भीतर प्रवेश कराओ। यथार्थमें केतुमती दुष्ट है यह लोकमें कौन नहीं जानता ? ॥४९॥ जिस प्रकार कमलिनीके पत्रपर स्थित पानीके बूँदोंका समूह उसपर स्थान नहीं पाता है उसी प्रकार महोत्साह नामक सामन्तके वचन राजाके कानोंमें स्थान नहीं पा सके ॥५०॥ राजाने कहा कि कदाचित् सखीने स्नेहके कारण इस सत्य

---

१. ग्लानिः । २. अकारणा । विकारिणा म., ज. । ३. कृतोज्झिता म. । ४. अभ्याख्यानतया लीढा म. ।

तस्मात् संदिग्धशीलेयमाशु निर्वास्यतामतः । नगराद्यावदमले कुले नो जायते मलम् ॥५२॥
विशुद्धविनया चार्वी चारुचेष्टाविधायिनी । भवेदभ्यर्हितारण्यं कस्य नो कुलबालिका ॥५३॥
पुण्यवन्तो महासत्त्वा पुरुषास्तेऽतिनिर्मलाः । यैः कृतो दोषमूलानां दाराणां न परिग्रहः ॥५४॥
परिग्रहे तु दाराणां भवत्येवंविधं फलम् । यस्मिन् गते सति ख्यातिं [1]भूप्रदेशोऽभिवाञ्छ्यते ॥५५॥
दुःखप्राप्यायनस्यान्तस्तावल्लोकोऽवतिष्ठताम् । जातमेव ममाप्यत्र मनोऽद्य कृतशङ्कनम् ॥५६॥
एषा भर्तुरचक्षुष्या श्रुता पूर्वं मयाऽसकृत् । ततस्तेन न संभूतिरस्या गर्भस्य निश्चिता ॥५७॥
तस्मादन्योऽपि यस्तस्मै प्रयच्छति समाश्रयम् । वियोज्यः स मया प्राणैरित्येष मम संगरः ॥५८॥
कुपितेनेति सा तेन द्वारादविदिता परैः । निर्वाटिता समं सख्या दुःखपूरितविग्रहा ॥५९॥
यद्यत्स्वजनगेहं सा जगामाश्रयकाङ्क्षया । तत्र तत्रा[2]प्यधीयन्त द्वाराणि नृपशासनात्[3] ॥६०॥
यत्रैव जनक. क्रुद्धो [4]निदधाति निराकृतिम् । तत्र तिरस्कृते कोऽस्या: [5]दास्यद्भकृतचेष्टिते ॥६१॥
एवं निर्वास्यमाना[4] सा सर्वत्राश्रयन्तविक्लवा । सखीं जगाद वाष्पौघसमार्द्रीकृतदेहिका ॥६२॥
[5]अम्बे इहात्र किं भ्रान्ति कुर्वन्त्यावास्वहे सखि । पाषाणहृदयो लोको जातोऽयं नः कुकर्मभिः ॥६३॥
वनं तदेव गच्छावस्तत्रैवास्तु यथोचितम् । अपमानात्ततो दुःखान्मरणं परमं सुखम् ॥६४॥

बातको भी अन्यथा कह दिया हो तो इसका निश्चय कैसे किया जाये ? ॥५१॥ इसलिए यह सन्दिग्धशीला है अर्थात् इसके शीलमें सन्देश है अतः जबतक हमारे निर्मल कुलमें कलंक नहीं लगता है उसके पहले ही इसे नगरसे शीघ्र निकाल दिया जाये ॥५२॥ निर्दोष, विनयको धारण करनेवाली, सुन्दर और उत्तम चेष्टाओंसे युक्त घरकी लड़की किसे अत्यन्त प्रिय नहीं होती ? पर ये सब गुण इसमें कहाँ रहे ? ॥५३॥ वे महान् धैर्यको धारण करनेवाले अत्यन्त निर्मल पुरुष बड़े पुण्यात्मा हैं जिन्होंने दोषोंके मूल कारणभूत स्त्रियोंका परिग्रह ही नहीं किया अर्थात् उन्हें स्वीकृत ही नहीं किया ॥५४॥ स्त्रियोंके स्वीकार करनेमें ऐसा ही फल होता है। यदि कदाचित् स्त्री अपवादको प्राप्त होती है तो पृथिवीमें प्रवेश करनेकी इच्छा होने लगती है ॥५५॥ जिनके हृदयमें बड़े दुःखसे विश्वास उत्पन्न कराया जाता है ऐसे अन्य मनुष्य तो दूर रहें आज मेरा हृदय ही इस विषयमें शंकाशील हो गया है ॥५६॥ यह अपने पतिकी द्वेषपात्र है अर्थात् इसका पति इसे आँखसे भी नहीं देखना चाहता यह मैंने कई बार सुना है। इसलिए यह तो निश्चित है कि इसके गर्भकी उत्पत्ति पतिसे नहीं है ॥५७॥ इस दशामें यदि और कोई भी इसके लिए आश्रय देगा तो मैं उसे प्राणरहित कर दूँगा ऐसी मेरी प्रतिज्ञा है ॥५८॥ इस प्रकार कुपित हुए राजाने जब तक दूसरोंको पता नहीं चल पाया उसके पहले ही अंजनाको सखीके साथ द्वारसे बाहर निकलवा दिया। उस समय अंजनाका शरीर दुःखसे भरा हुआ था ॥५९॥ आश्रय पानेकी इच्छासे वह जिस-जिस आत्मीयजनके घर जाती थी राजाकी आज्ञासे वह वहीं-वहींके द्वार बन्द पाती थी ॥६०॥ जो ठीक ही है क्योंकि जहाँ पिता ही क्रुद्ध होकर तिरस्कार करता है वहाँ उसीके अभिप्रायके अनुसार कार्य करनेवाले दूसरे लोगोंका क्या विश्वास किया जा सकता है ?—उनमें क्या आशा रखी जा सकती है ? ॥६१॥ इस तरह सब जगहसे निकाली गयी अंजना अत्यन्त अधीर हो गयी। अश्रुओंके समूहसे उसका शरीर गीला हो गया। उसने सखीसे कहा कि हे माता ! हम दोनों यहाँ भटकती हुई क्यों पड़ी हैं ? हे सखि ! हमारे पापोदयके कारण यह समस्त संसार पाषाणहृदय हो गया है अर्थात् सबका हृदय पत्थरके समान कड़ा हो गया है ॥६२-६३॥ इसलिए हम लोग उसी वनमें चलें। जो कुछ होना होगा सो वहीं हो लेगा। इस अपमानसे तथा तज्जन्य दुःखसे तो मर

---

१. भूप्रदेशोऽभि -म.। २. तत्राप्यधीयन्त म.। ३. नृपशासनान् म.। ४. निर्वार्यमाणा क., ख., ब., ज.। ५. अम्बाशब्दस्य संबुद्धौ 'अम्ब' इति रूपं भवति। अत्र 'अम्बे' इति प्रयोगश्चिन्त्यः।

इत्युक्त्वासौ समं सख्या तदेव प्राविशद्वनम् । मृगीव सोढसंत्रासा मृगराजविमोषिता ॥६५॥
वातातपपरिश्रान्ता दुःखसंभारपीडिता । उपविश्य वनस्यान्तं सा चक्रे परिदेवनम् ॥६६॥
हा हता मन्दभाग्यास्मि विधिना दुःखदायिना । अहेतुवैरिणा कष्टं कं परित्राणमाश्रये ॥६७॥
दौर्भाग्यसागरस्यान्ते प्रसादं कथमप्यगात् । नाथो मे स गतस्यक्त्वा दुष्कर्मपरिचोदितः ॥६८॥
श्वश्वादिकृतदुःखानां नारीणां पितुरालये । अवस्थानं ममापुण्यैरिदमप्यपसारितम् ॥६९॥
मात्रापि न कृतं किंचित्परित्राणं कथं मम । मतृच्छन्दानुवर्तिन्यो जायन्ते ह कुलाङ्गनाः ॥७०॥
त्वयाविज्ञातगर्भायामेष्यामीति त्वयोदितम् । हा नाथ वचनं कस्मात्स्मर्यते न कृपावता ॥७१॥
अपरीक्ष्य कथं श्वश्रु त्यक्तुं मामुचितं तव । ननु संदिग्धशीलानां सन्त्युपायाः परीक्षणे ॥७२॥
उत्सङ्गलालितो बाल्ये सदा दुर्ललितात्मिकाम् । निष्परीक्ष्य पितस्त्यक्तुं मां कथं तेऽभवन्मतिः ॥७३॥
हा मातः साधु वाक्यं ते न कथं निर्गतं मुखात् । सकृदप्युत्तमा प्रीतिरधुना सा किमुज्झिता ॥७४॥
एकोदरोषितां भ्रातस्त्रातुं ते मां सुदुःखिताम् । कथं न काचिदुद्भूता चेष्टा निष्ठुरचेतसः ॥७५॥
यत्र यूयमिदंचेष्टाः प्रधाना बन्धुसंहतेः । तत्र कुर्वन्तु किं शेषा बराका दूरबान्धवाः ॥७६॥
अथवा कोऽत्र वो[5] दोषः पुण्यतौ मम निष्ठिते । फलितोऽपुण्यवृक्षोऽयं निषेव्योऽवशया मया ॥७७॥
प्रतिशब्दसमं तस्या विलापमकरोत् सखी । सदाक्रन्दविनिर्धूतधैर्यवृत्तिमानसा ॥७८॥

जाना ही परम सुख है ॥६४॥ इतना कहकर अंजना सखीके साथ उसी वनमें प्रविष्ट हो गयी जिसमें केतुमतीका सेवक उसे छोड़ गया था। जिस प्रकार कोई मृगी सिंहसे भयभीत हो वनसे भागे और कुछ समय बाद भ्रान्तिवश उसी वनमें फिर जा पहुँचे उसी प्रकार फिरसे अंजनाका वनमें जाना हुआ ॥६५॥ दुःखके भारसे पीड़ित अंजना जब वायु और घामसे थक गयी तब वनके समीप बैठकर विलाप करने लगी ॥६६॥ हाय-हाय ! मैं बड़ी अभागिनी हूँ, अकारण वैर रखनेवाले दुःखदायी विधाताने मुझे यों ही नष्ट कर डाला। बड़े दुःखकी बात है, मैं किसकी शरण गहूँ ॥६७॥ दौर्भाग्य-रूपी सागरको पार करनेके बाद मेरा नाथ किसी तरह प्रसन्नताको प्राप्त हुआ सो दुष्कर्मसे प्रेरित हो अन्यत्र चला गया ॥६८॥ जिन्हें सास आदि दुःख पहुँचाती हैं ऐसी स्त्रियाँ जाकर पिताके घर रहने लगती हैं पर मेरे दुर्भाग्यने पिताके घर रहना भी छुड़ा दिया ॥६९॥ माताने भी मेरी कुछ भी रक्षा नहीं की सो ठीक ही है क्योंकि कुलवती स्त्रियाँ अपने भर्तारके अभिप्रायानुसार ही चलती हैं ॥७०॥ हे नाथ ! तुमने कहा था कि तुम्हारा गर्भ प्रकट नहीं हो पायेगा और मैं आ जाऊँगा सो वह वचन याद क्यों नहीं रखा ? तुम तो बड़े दयालु थे ॥७१॥ हे सास ! बिना परीक्षा किये ही क्या मेरा त्याग करना तुम्हें उचित था ? जिनके शीलमें संशय होता है उनकी परीक्षा करनेके भी तो बहुत उपाय हैं ॥७२॥ हे पिता ! आपने मुझे बाल्यकालमें गोदमें खिलाया है और सदा बड़े लाड़-प्यारसे रखा है फिर परीक्षा किये बिना ही मेरा परित्याग करनेकी बुद्धि आपको कैसे हो गयी ? ॥७३॥ हाय माता ! इस समय तेरे मुखसे एक बार भी उत्तम वचन क्यों नहीं निकला ? तूने यह अनुपम प्रीति इस समय क्यों छोड़ दी ? ॥७४॥ हे भाई ! मैं तेरी एक ही माताके उदरमें वास करनेवाली अत्यन्त दुःखिनी बहन हूँ सो मेरी रक्षा करनेके लिए तेरी कुछ भी चेष्टा क्यों नहीं हुई ? तू बड़ा निष्ठुर हृदय है ॥७५॥ जब बन्धुजनोंमें प्रधानता रखनेवाले तुम लोगोंकी यह दशा है तब जो बेचारे दूरके बन्धु हैं वे तो कर ही क्या सकते हैं ? ॥७६॥ अथवा इसमें तुम सबका क्या दोष है ? पुण्यरूपी ऋतुके समाप्त होनेपर अब मेरा यह पापरूपी वृक्ष फलीभूत हुआ है सो विवश होकर मुझे इसकी सेवा करनी ही है ॥७७॥ अंजनाका विलाप सुनकर जिसके हृदयका धैर्य दूर हो

---

१. त्वया विज्ञात- म. । २. सन्त्यपायाः म. । ३. उत्सङ्गलालिता म. । ४. बन्धुसंहतिः म. । ५. वा दोषः ब., ज. ।

अत्यन्तदीनमेतस्यां रुदन्त्यां तारनिस्वनम् । मृगीभिरपि निर्मुक्ताः सुस्थूला बाष्पबिन्दवः ॥७९॥
ततश्चिरं रुदित्वैनामरुणीभूतलोचनाम् । सखी दोर्भ्यां समालिङ्ग्य जगादैवं विचक्षणा ॥८०॥
स्वामिन्व्यलं रुदित्वा ते मन्यवश्यं पुराकृतम् । नेत्रे निर्मील्य सोढव्यं कर्म पाकमुपागतम् ॥८१॥
सर्वेषामेव जन्तूनां पृष्ठतः पार्श्वतोऽग्रतः । कर्म तिष्ठति यद्देवि तत्र कोऽवसरः शुचः ॥८२॥
अप्सरःशतनेत्रालीनिलयीभूतविग्रहाः । प्राप्नुवन्ति परं दुःखं सुकृतान्ते सुरा अपि ॥८३॥
चिन्तयत्यन्यथा लोकः प्राप्नोति फलमन्यथा । लोकव्यापारसंकात्मा[1] परमो हि गुरुर्विधिः ॥८४॥
हितंकरमपि प्राप्तं विधिर्नाशयति क्षणात् । कदाचिदन्यदा धत्ते मानसस्याप्यगोचरम् ॥८५॥
गतयः कर्मणां कस्य विचित्रा परिनिश्चिताः । तस्मात्त्वमस्य भा कार्षीर्व्यर्थां गर्भस्य दुःखिता[2] ॥८६॥
आक्रम्य दशनैर्दन्तान्कृत्वा प्रावसमं मनः । कर्म स्वयं कृतं देवि सहस्वाशक्यवर्जनम् ॥८७॥
ननु स्वयं विशुद्धाया मया ते शिक्षणं कृतम् । अधिक्षेप इवामाति वद ज्ञातं न किं तव ॥८८॥
अभिधायेति सा तस्या नयने शोणरोचिषी । न्यमार्ष्टां वेपथुयुतपाणिना सान्त्वतत्परा ॥८९॥
भूयश्चोचे प्रदेशोऽयं देवि संश्रयवर्जितः । तस्मादुत्तिष्ठ गच्छावः पार्श्वमस्य महीभृतः ॥९०॥
गुहायामत्र कस्यांचिदगम्यायां कुजन्तुभिः । सूतिकल्याणसंप्राप्त्यै समर्थं[4] कंचिदास्वहे ॥९१॥
ततस्तयोपदिष्टा सा पदवीं पादचारिणी । गर्भभारात् क्रियाभारमसमर्थां निषेवितुम् ॥९२॥

गया था ऐसी सखी वसन्तमाला भी प्रतिध्वनिके समान विलाप कर रही थी ॥७८॥ यह अंजना बड़ी दीनताके साथ इतने जोर-जोरसे विलाप कर रही थी कि उसे सुनकर वनकी हरिणियोंने भी आँसुओंकी बड़ी-बड़ी बूँदें छोड़ी थीं ॥७९॥

तदनन्तर चिरकाल तक रोनेसे जिसके नेत्र लाल हो गये थे ऐसी अंजनाका दोनों भुजाओंसे आलिंगन कर बुद्धिमती सखीने कहा कि हे स्वामिनि ! रोना व्यर्थ है। पूर्वोपार्जित कर्म उदयमें आया है सो उसे आँख बन्द कर सहन करना ही योग्य है ॥८०-८१॥ हे देवि ! समस्त प्राणियोंके पीछे, आगे तथा बगलमें कर्म विद्यमान हैं इसलिए यहाँ शोकका अवसर ही क्या है ? ॥८२॥ जिनके शरीरपर सैकड़ों अप्सराओंके नेत्र विलीन रहते हैं ऐसे देव भी पुण्यका अन्त होनेपर परम दुःख प्राप्त करते हैं ॥८३॥ लोक अन्यथा सोचते हैं और अन्यथा ही फल प्राप्त करते हैं। यथार्थमें लोगोंके कार्यपर दृष्टि रखनेवाला विधाता ही परम गुरु है ॥८४॥ कभी तो यह विधाता प्राप्त हुई हितकारी वस्तुको क्षण-भरमें नष्ट कर देता है और कभी ऐसी वस्तु लाकर सामने रख देता है जिसकी मनमें कल्पना ही नहीं थी ॥८५॥

कर्मोंकी दशाएँ बड़ी विचित्र हैं। उनका पूर्ण निश्चय कौन कर पाया है ? इसलिए तुम दुःखी होकर गर्भको पीड़ा मत पहुँचाओ ॥८६॥ हे देवि ! दाँतोंसे दाँतोंको दबाकर और मनको पत्थरके समान बनाकर जिसका हटना अशक्य है ऐसा स्वोपार्जित कर्मका फल सहन करो ॥८७॥ वास्तवमें आप स्वयं विशुद्ध हैं अतः आपके लिए मेरा शिक्षा देना निन्दाके समान जान पड़ता है। तुम्हीं कहो कि आप क्या नहीं जानती हैं ? ॥८८॥ इतना कहकर सान्त्वना देनेमें तत्पर रहनेवाली सखीने अपने काँपते हुए हाथोंसे उसके लाल-लाल नेत्र पोंछ दिये ॥८९॥ फिर कहा कि हे देवि ! यह प्रदेश आश्रयसे रहित है अर्थात् यहाँ ठहरने योग्य स्थान नहीं है इसलिए उठो इस पर्वतके पास चलें ॥९०॥ यहाँ किसी ऐसी गुफामें जिसमें दुष्ट जीव नहीं पहुँच सकेंगे, गर्भके कल्याणके लिए कुछ समय तक निवास करेंगी ॥९१॥

तदनन्तर सखीका उपदेश पाकर वह पैदल ही मार्ग चलने लगी। क्योंकि गर्भके भारके कारण

---

१. शक्तात्मा म. । २. दुःखिताः म. । दुःखितः ब. । ३. वेपथोर्युक्ता म. । वेपथुर्युक्ता ब. । ४. किंचिदा- म. ।

अनुयान्ती महारण्यधरणीं समयागिरिम् । व्याकजालसमाकीर्णां तस्मादत्यन्तभीषणाम् ॥९३॥
महानोकहसंरुद्धदिवाकरकरोत्करान् । महीभृत्पादसंकीर्णां दर्भसूचीसुदुश्चराम् ॥९४॥
युक्तां मातङ्गमालाभिर्न्यस्यन्तीं कृच्छ्रतः पदम् । मातङ्गमालिनीं नाम प्राप मानसदुर्गमाम् ॥९५॥
शक्तापि गगने गन्तुं पद्भ्यां तस्याः सखी ययौ । प्रेमबन्धनसंबद्धा छायावृत्तिमुपाश्रिता ॥९६॥
भयानकां ततः प्राप्य तामसीं संकटाटवीम् । वेपमानसमस्ताङ्गा [1]कांदिशीकत्वमागमत् ॥९७॥
ततस्तामाकुलां ज्ञात्वा गृहीत्वा करपल्लवे । आली जगाद मा भैषीः स्वामिन्येहीति सादरात् ॥९८॥
ततः सस्पंसविन्यस्तविस्रंसिकरपल्लवा । दर्भसूचीमुखस्पर्शक्षणितेक्षणकोणिका ॥९९॥
तत्र तत्रैव भूदेशे न्यस्यन्ती चरणौ पुनः । स्तनन्ती दुःखसंभाराद्देहं कृच्छ्रेण बिभ्रती ॥१००॥
उत्तरन्ती प्रयासेन निर्झरान् वेगवाहिनः । स्मरन्ती स्वजनं सर्वं निष्ठुराचारकारिणम् ॥१०१॥
निन्दन्ती स्वमुपालम्भं प्रयच्छन्ती मुहुर्विधेः । कारुण्यादिव वल्लीभिः श्लिष्यमाणाखिलाङ्गिका ॥१०२॥
त्रस्तसारङ्गजायाक्षी श्रमजस्वेदवाहिनी । सक्तं [3]कण्टकिगुच्छेषु मोचयन्त्यंशुकं चिरात् ॥१०३॥
क्षतजेनाचितौ पादौ लाक्षिताविव बिभ्रती । शोकाग्निदाहसंभूतां श्यामतां दधती पराम् ॥१०४॥
तलेऽपि चलिते त्रासं व्रजन्ती चलविग्रहा । संत्रासस्तम्भिताभूरू वहन्ती खेददुर्वहौ ॥१०५॥

वह आकाशमें चलनेके लिए समर्थ नहीं थी ॥९२॥ वह पर्वतकी समीपवर्तिनी महावनकी भूमिमें चलती-चलती मातंगमालिनी नामकी उस भूमिमें पहुँची जो हिंसक जन्तुओंसे व्याप्त थी और उनके शब्दोंसे भय उत्पन्न कर रही थी। बड़े-बड़े वृक्षोंने जहाँ सूर्यकी किरणोंका समूह रोक लिया था, जो छोटी-छोटी पहाड़ियोंसे व्याप्त थी, डाभकी अनियोंके कारण जहाँ चलना कठिन था, जो हाथियोंकी श्रेणियोंसे युक्त थी तथा शरीरकी बात तो दूर रही मनसे भी जहाँ पहुँचना कठिन था। अंजना बड़े कष्टसे एक-एक डग रखकर चल रही थी ॥९३-९५॥ यद्यपि उसकी सखी आकाशमें चलनेमें समर्थ थी तो भी वह प्रेमरूपी बन्धनमें बँधी होनेसे छायाके समान पैदल ही उसके साथ-साथ चल रही थी ॥९६॥ उस भयानक सघन अटवीको देखकर अंजनाका समस्त शरीर काँप उठा। वह अत्यन्त भयभीत हो गयी ॥९७॥

तदनन्तर उसे व्यग्र देख सखीने हाथ पकड़कर बड़े आदरसे कहा कि स्वामिनि ! डरो मत, इधर आओ ॥९८॥ अंजना सहारा पानेकी इच्छासे सखीके कन्धेपर हाथ रखकर चल रही थी पर उसका हाथ सखीके कन्धेसे बार-बार खिसककर नीचे आ जाता था। चलते-चलते जब कभी डाभकी अनी पैरमें चुभ जाती थी तब बेचारी आँख मींचकर खड़ी रह जाती थी ॥९९॥ वह जहाँसे पैर उठाती थी दुःखके भारसे चीखती हुई वहीं फिर पैर रख देती थी। वह अपना शरीर बड़ी कठिनतासे धारण कर रही थी ॥१००॥ वेगसे बहते हुए झरनोंको वह बड़ी कठिनाईसे पार कर पाती थी। उसे निष्ठुर व्यवहार करनेवाले अपने समस्त आत्मीयजनोंका बार-बार स्मरण हो आता था ॥१०१॥ वह कभी अपनी निन्दा करती थी तो कभी भाग्यको बार-बार दोष देती थी। लताएँ उसके शरीरमें लिपट जाती थीं सो ऐसा जान पड़ता था कि दयासे वशीभूत होकर मानो उसका आलिंगन ही करने लगती थीं ॥१०२॥ उसके नेत्र भयभीत हरिणीके समान चंचल थे, थकावटके कारण उसके शरीरमें पसीना निकल आया था, काँटेदार वृक्षोंमें वस्त्र उलझ जाता था तो देर तक उसे ही सुलझाती खड़ी रहती थी ॥१०३॥ उसके पैर रुधिरसे लाल-लाल हो गये थे, सो ऐसे जान पड़ते थे मानो लाखका महावर ही उनमें लगाया गया हो। शोकरूपी अग्निके दाहसे उसका शरीर अत्यन्त साँवला हो गया था ॥१०४॥ पत्ता भी हिलता था तो वह भयभीत हो जाती थी, उसका शरीर काँपने लगता था, भयके कारण उसकी दोनों जाँघें अकड़ जाती थीं और

---

१. कांदिशीत्वमुपागमत् म. । २. क्वणितेक्षण- म । ३. कण्टकगुच्छेषु म. । ४. दग्धतीम् म. ।

मुहुर्विश्रम्यमानात्मा[1] मितास्तप्रियवाक्यया । गिरेः प्रापाञ्जना मूलं शनकैरिति दुःखिता[2] ॥१०६॥
तत्र धारयितुं देहमसक्ता साश्रुलोचना । अपकर्ण्य सखीवाक्यं महाखेदादुपाविशत् ॥१०७॥
जगाद च न शक्नोमि गन्तुं पदमपि क्वचित् । तिष्ठाम्यत्रैव हे सख्यो म्रियेऽहं शरणं वरम् ॥१०८॥
सान्त्वयित्वा ततो वाक्यैः कुशला हृदयंगमैः । विश्रमय्य प्रणम्योचे सख्येवं प्रेमतत्परा ॥१०९॥
पश्य पश्य गुहामेतां देवि नेदीयसीं पराम् । कुरु प्रसादमुत्तिष्ठ स्थास्यावोऽत्र यथासुखम् ॥११०॥
प्रदेशे संचरन्तीह प्राणिनः क्रूरचेष्टिताः । ननु ते रक्षणीयोऽयं गर्भः स्वामिनि मा सुह ॥१११॥
इत्युक्ता[3] सानुरोधेन सख्या वनभयेन च । गमनाय समुत्तस्थौ भूयोऽपि परितापिनी ॥११२॥
महानुभावतायोगादनुज्ञातेरसावतः । ह्रीतश्च नान्तिकं वायोरयासिष्टामिमे तदा ॥११३॥
हस्तावलम्बदानेन ततस्तां विषमां भुवम् । लङ्घयित्वा सखी कृच्छ्राद् गुहाद्वारमुपाहरत् ॥११४॥
प्रवेष्टुं सहसा भीते तत्र ते तस्थतुः क्षणम् । विषमभ्रमसंक्रान्तिसंजातविपुलश्रमे ॥११५॥
विश्रान्ताभ्यां चिराद् दृष्टिस्ताभ्यां न्यासि मन्दगा । म्लानरक्तसितश्वेतनीरजस्रक्समप्रभा ॥११६॥
अपश्यतां ततः शुद्धसमामलशिलातले । पर्यङ्कसुस्थितं साधुं चारणातिशयान्वितम् ॥११७॥
निभृतोच्छ्वासनिश्वासं नासिकाग्राहितेक्षणम् । ऋजुश्लथवपुर्यष्टिं स्थाणुवच्चलनोज्झितम् ॥११८॥

खेदके कारण उनका उठाना कठिन हो जाता था ॥१०५॥ अत्यन्त प्रिय वचन बोलनेवाली सखी उसे बार-बार बैठाकर विश्राम कराती थी। इस प्रकार दुःखसे भरी अंजना धीरे-धीरे पहाड़के समीप पहुँची ॥१०६॥ वहाँ तक पहुँचनेमें वह इतनी अधिक थक गयी कि शरीर सम्भालना भी दूभर हो गया। उसके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे और वह बहुत भारी खेदके कारण सखीकी बात अनसुनी कर बैठ गयी ॥१०७॥ कहने लगी कि अब तो मैं एक डग भी चलनेके लिए समर्थ नहीं हूँ अतः यहीं ठहरी जाती हूँ। यदि यहाँ मरण भी हो जाय तो अच्छा है ॥१०८॥

तदनन्तर प्रेमसे भरी चतुर सखी हृदयको प्रिय लगनेवाले वचनोंसे उसे सान्त्वना देकर तथा कुछ देर विश्राम कराकर प्रणामपूर्वक इस प्रकार बोली ॥१०९॥ हे देवि! देखो-देखो यह पास ही उत्तम गुफा दिखाई दे रही है। प्रसन्न होओ, उठो, हम दोनों उस गुफामें सुखसे ठहरेंगी ॥११०॥ यहाँ क्रूर चेष्टाओंको धारण करनेवाले अनेक जीव विचर रहे हैं और तुम्हें गर्भकी भी रक्षा करनी है। इसलिए हे स्वामिनि! गलती न करो ॥१११॥ ऐसा कहनेपर सन्तापसे भरी अंजना सखीके अनुरोधसे तथा वनके भयसे पुनः चलनेके लिए उठी ॥११२॥ उस समय ये दोनों स्त्रियाँ वनमें कष्ट तो उठाती रहीं पर पवनंजयके पास नहीं गयीं सो इसमें उनकी महानुभावता, आज्ञाका अभाव अथवा लज्जा ही कारण समझना चाहिए ॥११३॥ तदनन्तर सखी वसन्तमाला हाथका सहारा देकर जिस किसी तरह उस ऊँची-नीची भूमिको पार कराकर बड़े कष्टसे अंजनाको गुफाके द्वार तक ले गयी ॥११४॥ ऊँचे-नीचे पत्थरोंमें चलनेके कारण वे दोनों ही बहुत थक गयी थीं और साथ ही उस गुफामें सहसा प्रवेश करनेके लिए डर भी रही थीं इसलिए क्षणभरके लिए बाहर ही बैठ गयीं ॥११५॥ बहुत देर तक विश्राम करनेके बाद उन्होंने अपनी मन्दगामिनी दृष्टि गुफापर डाली। उनकी वह दृष्टि मुरझाये हुए लाल, नीले और सफेद कमलों की मालाके समान जान पड़ती थी ॥११६॥

तदनन्तर उन्होंने शुद्ध सम और निर्मल शिला-तलपर पर्यंकासनसे विराजमान चारण-ऋद्धिके धारक मुनिराजको देखा ॥११७॥ उन मुनिराजका श्वासोच्छ्वास निश्चल अथवा नियमित था। उन्होंने अपने नेत्र नासिकाके अग्रभागपर लगा रखे थे, उनकी शरीरयष्टि शिथिल होनेपर

---

१. विश्रम्यमानात्मा म.। २. दुःखिताः म.। ३. इत्युक्त्वा म.। ४. आज्ञायाः। ५. म्लानरक्तासितश्वेतर-जतस्रक्समप्रभा ख.।

अङ्कस्थवामपाण्यङ्कन्यस्तान्योत्तानपाणिकम् । निष्प्रकम्पं नदीनाथगाम्भीर्यस्थितमानसम् ॥११९॥
ध्यायन्तं वस्तुयाथात्म्यं यथाशासनभावनम् । निःशेषसंगनिर्मुक्तं वायुवद्गगनामलम् ॥१२०॥
शैलकूटगताशङ्कं वीक्ष्य ताभ्यां चिरादसौ । निरूपयि महासत्त्वः सौम्यभासुरविग्रहः ॥१२१॥
ततः पूर्वकृतानेकश्रवणासेवने मुदा । समीपं जग्मतुस्तस्या क्षणात्ते विस्मृतासुखे ॥१२२॥
त्रिःपरीत्य च भावेन नेमतुर्विहिताञ्जली । मुनिं परमिव प्राप्ते बान्धवं विकचेक्षणे ॥१२३॥
काले यदृच्छया तत्र तेन योगः समाप्यते । भवत्येव हि भव्यानां क्रिया प्रस्तावसंगता ॥१२४॥
ते ततोऽवस्थानेऽवभिमुक्तकरद्वये । अगताश्रुविनिर्मुक्तनिरीक्षणलोचने ॥१२५॥
भगवन्नपि ते देहे कुशलं कुशलाशय । मूलमेष हि सर्वेषां साधनानां सुचेष्टित ॥१२६॥
उपबृंहितसंवृद्धं तपः कच्चिद् गुणाम्बुधे । विहारोऽपि दमोद्वाहव्युपसर्गो महाक्षमः ॥१२७॥
आचार इति पृच्छावो भवन्तमिदमीदृशम् । अन्यथा कस्य नो योग्याः कुशलस्य भवद्विधाः ॥१२८॥
भवन्ति क्षेमताभाजो भवद्विधसमाश्रिताः । स्वस्मिंस्तु कैव भावानां कथा साक्षितरात्मनाम् ॥१२९॥
इत्युक्त्वा ते स्थरसिष्टां विनयानतविग्रहे । निःशेषभयनिर्मुक्ते तद् दृष्टे च बभूवतुः ॥१३०॥

भी सीधी थी, और वे स्वयं स्थाणु अर्थात् ठूँठके समान हलन-चलनसे रहित थे ॥११८॥ उन्होंने अपनी गोदमें स्थित वाम हाथकी हथेलीपर दाहिना हाथ उत्तान रूपसे रख छोड़ा था, वे स्वयं निश्चल थे और उनका मन समुद्रके समान गम्भीर था ॥११९॥ वे जिनागमके अनुसार वस्तुके यथार्थ स्वरूपका ध्यान कर रहे थे, वायुके समान सर्व-परिग्रहसे रहित थे और आकाशके समान निर्मल थे ॥१२०॥ उन्हें देखकर किसी पर्वतके शिखरकी आशंका उत्पन्न होती थी। वे महान् धैर्यके धारक थे तथा उनका शरीर सौम्य होनेपर भी देदीप्यमान था। बहुत देर तक देखनेके बाद उन्होंने निश्चय कर लिया कि यह उत्तम मुनिराज हैं ॥१२१॥

तदनन्तर जिन्होंने पहले अनेक बार मुनियोंकी सेवा की थी ऐसी वे दोनों स्त्रियाँ हर्षसे मुनिराजके समीप गयीं और क्षण-भरमें अपना सब दुःख भूल गयीं ॥१२२॥ उन्होंने भावपूर्वक तीन प्रदक्षिणाएँ दीं, हाथ जोड़कर नमस्कार किया और परम बन्धुके समान मुनिराजको पाकर उनके नेत्र खिल उठे ॥१२३॥ जिस समय वे पहुँचीं उसी समय मुनिराजने स्वेच्छासे ध्यान समाप्त किया सो ठीक ही है क्योंकि भव्य जीवोंकी क्रिया अवसरके अनुसार ही होती है ॥१२४॥ तदनन्तर जिनके दोनों हाथ जुड़े हुए थे और जिन्होंने अपने अश्रुरहित निश्चल नेत्र मुनिराजके चरणोंमें लगा रखे थे ऐसी दोनों सखियोंने कहा कि हे भगवन् ! हे कुशल अभिप्रायके धारक ! हे उत्तम चेष्टाओंसे सम्पन्न ! आपके शरीरमें कुशलता तो है ? क्योंकि समस्त साधनोंका मूल कारण यह शरीर ही है ॥१२५-१२६॥ हे गुणोंके सागर ! आपका तप उत्तरोत्तर बढ़ तो रहा है। इसी प्रकार हे इन्द्रियविजयके धारक ! आपका विहार उपसर्गरहित तथा महाक्षमासे युक्त तो है ? ॥१२७॥ हे प्रभो ! हम आपसे जो इस तरह कुशल पूछ रही हैं सो ऐसी पद्धति है यही ध्यान रखकर पूछ रही हैं अन्यथा आप-जैसे मनुष्य किस कुशलके योग्य नहीं हैं ? अर्थात् आप समस्त कुशलताके भण्डार हैं ॥१२८॥ आप-जैसे पुरुषोंकी शरणमें पहुँचे हुए लोग कुशलतासे युक्त हो जाते हैं; किन्तु स्वयं अपने-आपके विषयमें अच्छे और बुरे पदार्थोंकी चर्चा ही क्या है ? ॥१२९॥ इस प्रकार कहकर वे दोनों चुप हो रहीं। उस समय उनके शरीर विनयसे नम्रीभूत थे। मुनिराजने जब उनकी ओर देखा तो वे सर्व प्रकारके भयसे रहित हो गयीं ॥१३०॥

१. सरवायि ब., ज. । २. समाप्यते म., ख., ज. । ३. निरसुस्थिर म. । ४. भगवन्नपि म., ख. । ५. अपिशब्दः प्रश्नार्थः । ६. संबद्धं म. । ७. 'कच्चित्कामप्रवेदने' इत्यमरः ।

अथ प्रशान्तया वाचा श्रमणाऽमृतकल्पया । गम्भीरया जगादैवं पाणिमुत्क्षिप्य दक्षिणम् ॥१३१॥
कल्याणि कुशलं सर्वं मम कर्मानुभावतः । ननु सर्वमिदं बाले नैजकर्मविचेष्टितम् ॥१३२॥
पश्यतां कर्मणां लीलां यदिहागोविवर्जिता । बन्धुनिर्वासितां याता महेन्द्रस्येयमात्मजा ॥१३३॥
ततोऽकथितविज्ञाततद्वृत्तान्तं महामुनिम् । कुतूहलसमाक्रान्तमानसा सुमहादरा ॥१३४॥
नत्वा वसन्तमालोचे स्वामिनीप्रियतत्परा । पादयोर्नेत्रकान्त्यास्य कुर्वंतीवाभिषेचनम् ॥१३५॥
विज्ञापयामि नाथ त्वां कृपया वक्तुमर्हसि । परोपकारभूयस्यो ननु युष्मादृशां क्रियाः ॥१३६॥
हेतुना केन भर्तास्या[1] चिरं कालं व्यरज्यत । अरज्यत पुनर्दुःखं प्राप्ता चैषा महावने ॥१३७॥
[2]को वातिमन्दभाग्योऽयं जीवोऽस्याः कुक्षिमाश्रयत् । सुखोचितेयमानीता येन जीवितसंशयम् ॥१३८॥
ततः सोऽमितगत्याख्यो ज्ञानत्रयविशारदः । यथावृत्तं जगादास्या वृत्तिरेषा हि धीमताम् ॥१३९॥
वत्से शृणु यतः प्राप्ता भव्येयं दुःखमीदृशम् । पूर्वमाचरितात् पापात् स्वंप्राप्तपरिपाकतः ॥१४०॥
इह जम्बूमति द्वीपे वास्ये भरतनामनि । नगरे मन्दरामिख्ये प्रियनन्दीति सद्गृही ॥१४१॥
[3]जाया [4]जायास्य तत्राभूद्दमयन्ताभिधः सुतः । [5]महासौभाग्यसंपन्नः कल्याणगुणभूषणः ॥१४२॥
अथान्यदा मधौ क्रीडा परमा तत्पुरेऽभवत् । नन्दनप्रतिमोद्याने पौरलोकसमाकुले ॥१४३॥

अथानन्तर मुनिराज दाहिना हाथ ऊपर उठाकर अमृतके समान प्रशान्त एवं गम्भीर वाणीमें इस प्रकार कहने लगे कि हे कल्याणि ! कर्मोंके प्रभावसे मेरा सर्वप्रकार कुशल है। हे बाले ! निश्चयसे यह सब अपने-अपने कर्मोंकी चेष्टा है ॥१३१–१३२॥ कर्मोंकी लीला देखो जो राजा महेन्द्रकी यह निरपराधिनी पुत्री भाइयों द्वारा निर्वासितपनाको प्राप्त हुई अर्थात् घरसे निकाली जाकर अत्यन्त अनादरको प्राप्त हुई ॥१३३॥ तदनन्तर बिना कहे ही जिन्होंने सब वृत्तान्त जान लिया था ऐसे महामुनिराजको नमस्कार कर बड़े आदरसे वसन्तमाला बोली। उस समय वसन्तमालाका मन कुतूहलसे भर रहा था, वह स्वामिनीका भला करनेमें तत्पर थी। और अपने नेत्रोंकी कान्तिसे मानो मुनिराजके चरणोंका अभिषेक कर रही थी ॥१३४–१३५॥ उसने कहा कि हे नाथ ! मैं कुछ प्रार्थना कर रही हूँ सो कृपा कर उसका उत्तर कहिए। क्योंकि आप-जैसे पुरुषोंकी क्रियाएँ परोपकार-बहुल ही होती हैं ॥१३६॥ इस अंजनाका भर्ता किस कारणसे चिरकाल तक विरक्त रहा और अब किस कारणसे अनुरक्त हुआ है ? यह अंजना महावनमें किस कारणसे दुःखको प्राप्त हुई है ? और मन्द भाग्यका धारक कौन-सा जीव इसकी कुक्षिमें आया है जिसने कि सुख भोगनेवाली इस बेचारीको प्राणोंके संशयमें डाल दिया है ॥१३७–१३८॥

तदनन्तर मति, श्रुत और अवधि इन तीन ज्ञानोंमें निपुण अमितगति नामक मुनिराज अंजनाका यथावत् वृत्तान्त कहने लगे। सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमानोंकी यह वृत्ति है ॥१३९॥ उन्होंने कहा कि हे बेटी ! सुन, इस अंजनाने अपने पूर्वोपार्जित पापकर्मके उदयसे जिस कारण यह ऐसा दुःख पाया है उसे मैं कहता हूँ ॥१४०॥

इसी जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्रके मन्दर नामक नगरमें एक प्रियनन्दी नामका सद्गृहस्थ रहता था ॥१४१॥ उसकी स्त्रीका नाम जाया था। उस स्त्रीसे प्रियनन्दीके दमयन्त नामका ऐसा पुत्र उत्पन्न हुआ था जो महासौभाग्यसे सम्पन्न तथा कल्याणकारी गुणरूपी आभूषणोंसे विभूषित था ॥१४२॥ तदनन्तर वसन्त ऋतु आनेपर नगरमें बड़ा भारी उत्सव हुआ सो नगरवासी लोगोंसे व्याप्त नन्दनवनके समान सुन्दर उद्यानमें दमयन्त भी अपने मित्रोंके साथ सुखपूर्वक

१. भर्तास्य म. । २. कोवास्य म. । ३. एतन्नाम्नी । ४. स्त्री । ५. महीसौभाग्य ।

चिक्रीड[1] दमयन्तोऽपि तत्र मित्रैः समं सुखम् । पटवासबलक्षाङ्गः कुण्डलादिविभूषितः ॥१४४॥
अथ तेन स्थितेनाराक्रीडता गगनाम्बराः । दृष्टास्तपोधना ध्यानस्वाध्यायादिक्रियोदिताः[2] ॥१४५॥
निस्सृत्य मण्डलान्मित्राद् रश्मिवत् सोऽतिभासुरः । जगाम मुनिसंघातं मेरुशृङ्गौघसंनिभम् ॥१४६॥
ततः साधुं स वन्दित्वा श्रुत्वा धर्मं यथाविधि । सम्यग्दर्शनसंपन्नो बभूव नियमस्थितः ॥१४७॥
दत्त्वा सप्तगुणोपेतामन्यदा पारणामसौ । साधुभ्यः[3] पञ्चतां प्राप्य कल्पवासमशिश्रियत् ॥१४८॥
नियमादानतश्चात्र भोगमन्वभवत् परम् । देवीशतेक्षणच्छायानीलाब्जस्रग्विभूषितः ॥१४९॥
च्युतस्तस्मादिह द्वीपे मृगाङ्कनगरेऽभवत् । प्रियङ्गुलक्ष्मीसंभूतो हरिचन्द्रनृपात्मजः ॥१५०॥
सिंहचन्द्र इति ख्यातः कलागुणविशारदः । स्थितः प्रत्येकमेकोऽपि खेतःसु प्राणधारिणाम् ॥१५१॥
तत्रापि मुक्तसद्भोगः साधुभ्योऽवाप्य सन्मतिम् । कालधर्मेण संयुक्तो जगाम त्रिदशालयम् ॥१५२॥
तत्रोदारं सुखं प्राप संकल्पकृतकल्पनम् । देवीवदनराजीवमहाखण्डदिवाकरः ॥१५३॥
च्युत्वात्रैव ततो वास्ये[4] विजयार्धमहीधरे । नगरेऽरुणसंज्ञाके सुकण्ठस्य नरप्रभोः ॥१५४॥
जायायां कनकोदर्यां सिंहवाहनशब्दितः । उदपादि गुणाकृष्टसमस्तजनमानसः ॥१५५॥
तत्र देव इवोदारसभोगमनुभूतवान् । अप्सरोविभ्रमस्तेन[5] कान्तालिङ्गनलालितः ॥१५६॥
तीर्थे विमलनाथस्य सोऽन्यदा जातसंमतिः । निक्षिप्य तनये लक्ष्मीं घनवाहननामनि ॥१५७॥

क्रीड़ा कर रहा था। उस समय उसका शरीर सुगन्धित चूर्णसे सफेद था तथा कुण्डलादि आभूषण उसकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥१४३–१४४॥

तदनन्तर वहाँ ठहरकर क्रीड़ा करते हुए दमयन्तने समीपमें ही विद्यमान ध्यान, स्वाध्याय आदि क्रियाओंमें तत्पर दिगम्बर मुनिराज देखे ॥१४५॥ उन्हें देखते ही जिस प्रकार सूर्यसे देदीप्यमान किरण निकलती है उसी प्रकार अपनी गोष्ठीसे निकलकर अतिशय देदीप्यमान दमयन्त मुनिसमूहके पास पहुँचा। वह मुनियोंका समूह मेरुके शिखरोंके समूहके समान निश्चल था ॥१४६॥ तदनन्तर दमयन्तने मुनिराजकी वन्दना कर उनसे विधि-पूर्वक धर्मका उपदेश सुना और सम्यग्दर्शनसे सम्पन्न होकर नियम आदि धारण किये ॥१४७॥ किसी एक समय उसने साधुओंके लिए सप्तगुणोंसे युक्त पारणा करायी और अन्तमें मरकर स्वर्गमें देवपर्याय पाया ॥१४८॥ वहाँ वह पूर्वचरित नियम और दानके प्रभावसे उत्तम भोग भोगने लगा। सैकड़ों देवियोंके नेत्रोंके समान कान्तिवाले नील कमलोंकी मालासे वह वहाँ सदा अलंकृत रहता था ॥१४९॥ वहाँसे च्युत होकर वह इसी जम्बूद्वीपके मृगांकनामा नगरमें राजा हरिचन्द्र और प्रियंगुलक्ष्मी नामक रानीसे सिंहचन्द्र नामका कला और गुणोंमें निपुण पुत्र हुआ। सिंहचन्द्र यद्यपि एक था तो भी समस्त प्राणियोंके हृदयोंमें विद्यमान था ॥१५०–१५१॥ उस पर्यायमें भी उसने साधुओंसे सद्बोध पाकर भोगोंका त्याग कर दिया था जिससे आयुके अन्तमें मरकर स्वर्ग गया ॥१५२॥ वहाँ वह देवियोंके मुखरूपी कमल-वनको विकसित करनेके लिए सूर्यके समान था और संकल्प मात्रसे प्राप्त होनेवाले उत्तम सुखका उपभोग करता था ॥१५३॥ वहाँसे च्युत होकर इसी भरतक्षेत्रके विजयार्ध पर्वतपर अरुण नामक नगरमें राजा सुकण्ठकी कनकोदरी नामा रानीसे सिंहवाहन नामका पुत्र हुआ। इस सिंहवाहनने गुणोंके द्वारा समस्त लोगोंका मन अपनी ओर आकर्षित कर लिया था ॥१५४–१५५॥ अप्सराओंके विभ्रमको चुरानेवाली स्त्रियोंके आलिंगनसे परमाह्लादको प्राप्त हुआ सिंहवाहन वहाँ देवोंके समान उदार भोगोंका अनुभव करने लगा ॥१५६॥ किसी एक समय श्रीविमलनाथ भगवान्‌के तीर्थमें उसे सद्बोध प्राप्त हुआ सो मेघवाहन नामक पुत्रके लिए राज्य-लक्ष्मी सौंप संसारसे

---

१. चिक्रीडे म. । २. क्रियोदिता म. । ३. मृत्युम् । ४. वास्थो (?) म. । ५. विभ्रमस्तेनः कान्ता- म. ।

पुरुसंवेगसंपन्नो विदितासारसंसृतिः । लक्ष्मीतिलकसंज्ञस्य मुनेरानच्छ शिष्यताम् ॥१५८॥
अनुपाल्य समीचीनं व्रतं जिनवरोदितम् । अनित्यत्वादिभिः कृत्वा चेतनां भावनामयीम् ॥१५९॥
तपः कापुरुषाचिन्त्यं तप्त्वा तन्वादरोज्झितम्[1] । रत्नत्रितयतो जातां[2] दधानः परमार्थताम् ॥१६०॥
नानालब्धिसमुत्पत्तेः[3] शक्तोऽप्यहितवारणे । परीषहरिपून् घोरानधिसह्य सुमानसः ॥१६१॥
आयुर्विरामामासाद्य ध्यानमास्थाय निर्मलम् । ज्योतिषां पटलं भित्त्वा लान्तवेऽभूत् सुरो महान् ॥१६२॥
इच्छानुरूपमासाद्य तत्र भोगं परस्थितिः[4] । छद्मस्थजनधीवाचां स्थितं संवेद्य [संत्यज्य] गोचरम् ॥१६३॥
च्युत्वा पुण्यावशेषेण प्रेरितः परमोदयः । कुक्षिमस्या विवेशायं जीवः सौख्यस्य भाजनम् ॥१६४॥
एवं तावदयं गर्भः स्वामिन्यास्ते तनुं श्रितः । हेतुं विरहदुःखस्य शृणु कल्याणचेष्टिते ॥१६५॥
सखेऽस्याः कनकोदर्या लक्ष्मीर्नाम सपत्न्यभूत् । सम्यग्दर्शनपूतात्मा साधुपूजनतत्परा ॥१६६॥
प्रतिमा देवदेवानां प्रतीके सद्मनस्तया । स्थापयित्वार्चिता भक्त्या स्तुतिमङ्गलवक्त्रया ॥१६७॥
महादेव्यभिमानेन सपत्न्यै कुद्धया तया । चक्रे बाह्यावकाशेऽसौ जिनेन्द्रप्रतियातना[5] ॥१६८॥
अत्रान्तरेऽविशद् गेहमस्या भिक्षार्थमार्यिका । संयमश्रीरिति ख्याता तपसा विष्टपेऽखिले ॥१६९॥
ततः परिभवं दृष्ट्वा साप्यर्हत्प्रतियातनम् । यथावत्तिपरं दुःखं पारणापेतमानसा ॥१७०॥

विरक्त हो गया। तदनन्तर जो बहुत भारी संवेगसे युक्त था और संसारकी असारताको जिसने अच्छी तरह समझ लिया था ऐसा सिंहवाहन लक्ष्मीतिलक नामक मुनिका शिष्य हो गया अर्थात् उनके पास उसने दीक्षा धारण कर ली ॥१५७-१५८॥ जिनेन्द्र भगवान्‌के द्वारा कहे हुए उत्तम व्रतका अच्छी तरह पालन कर उसने अनित्य आदि भावनाओंके चिन्तवनसे अपनी आत्माको प्रभावित किया ॥१५९॥ शरीरका आदर छोड़कर उसने ऐसा कठिन तपश्चरण किया कि कायर मनुष्य जिसका विचार भी नहीं कर सकते थे। वह सदा रत्नत्रयके प्रभावसे उत्पन्न होनेवाली परमार्थताको धारण करता था ॥१६०॥ नाना प्रकारकी ऋद्धियाँ उत्पन्न होनेसे यद्यपि वह अनिष्ट पदार्थोंका निवारण करनेमें समर्थ था तो भी शान्त हृदयसे उसने परीषहरूपी घोर शत्रुओंका कष्ट सहन किया था ॥१६१॥ आयुका अन्त आनेपर वह निर्मल ध्यानमें लीन हो गया और ज्योतिषी देवोंका पटल भेदन कर अर्थात् उससे ऊपर जाकर लान्तव स्वर्गमें उत्कृष्ट देव हुआ ॥१६२॥ वहाँ वह उत्कृष्ट स्थितिका धारी हुआ और छद्मस्थ जीवोंके ज्ञान तथा वचन दोनोंसे परे रहनेवाले इच्छानुकूल भोगोंका उपभोग करने लगा ॥१६३॥ परम अभ्युदयसे सहित तथा सुखका पात्रभूत, इसी देवका जीव लान्तव स्वर्गसे च्युत होकर बाकी बचे पुण्यसे प्रेरित होता हुआ इस अंजनाके गर्भमें प्रविष्ट हुआ है ॥१६४॥ इस प्रकार जो गर्भ तेरी स्वामिनीके शरीरमें प्रविष्ट हुआ है उसका वर्णन किया। अब हे शुभ चेष्टाकी धारक वसन्तमाले! इसके विरह-जन्य दुःखका कारण कहता हूँ सो सुन ॥१६५॥ जब यह अंजना कनकोदरीके भवमें थी तब इसकी लक्ष्मी नामक सौत थी। उसकी आत्मा सम्यग्दर्शनसे पवित्र थी और वह सदा मुनियोंकी पूजा करनेमें तत्पर रहती थी ॥१६६॥ उसने घरके एक भागमें देवाधिदेव जिनेन्द्र देवकी प्रतिमा स्थापित कराकर भक्तिपूर्वक मुखसे स्तुतियाँ पढ़ती हुई उसकी पूजा की थी ॥१६७॥ कनकोदरी महादेवी थी इसलिए उसने अभिमानवश सौतके प्रति बहुत ही क्रोध प्रकट किया। इतना ही नहीं जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाको घरके बाहरी भागमें फिंकवा दिया ॥१६८॥ इसी बीचमें संयमश्री नामक आर्यिकाने भिक्षाके लिए इसके घरमें प्रवेश किया। संयमश्री अपने तपके कारण समस्त संसारमें प्रसिद्ध थीं ॥१६९॥ तदनन्तर जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाका

---

१. तन्वादरो- क. । तप्त्वा ब, ज. । २. जातं म. । ३. समुत्पन्नः म. । ४. परस्थिति ख., ब. । ५. संवेद्य ज. । उल्लङ्घ्य इति ब. पुस्तके टिप्पणम् । ६. वाप्यावकाशे ।

हसो च मोहिनो[1] दृष्ट्वा परं कारुण्यमागता । साधुवर्गो हि सर्वेभ्यः प्राणिभ्यः शुभमिच्छति ॥१७१॥
अपृष्टोऽपि जनः साधुर्गुरुभक्तिप्रचोदितः । अज्ञप्राणिहितार्थं च धर्मवाक्ये प्रवर्तते ॥१७२॥
अवोचत ततः सैव शीलभूषणधारिणी । [3]तदेमामित्यया वाचा माधुर्यसुपमोज्झितम् ॥१७३॥
भद्रे शृणु मनः कृत्वा परमं परमद्युते । नरेन्द्रकृतसंमाने भोगायतनविग्रहे ॥१७४॥
भवे चतुर्गतौ भ्राम्यन् जीवो दुःखैश्चितः सदा । सुमानुषत्वमायाति शमे कटुककर्मणः ॥१७५॥
मनुष्यजातिमापन्ना सा त्वं पुण्येन शोभने । माभूज्जुगुप्सिताचारा कर्तुं योग्यासि सत्क्रियाम् ॥१७६॥
लब्ध्वा मनुष्यतां कर्म यो नादत्ते जनः शुभम् । रत्नं करगतं तस्य भ्रंशमायाति मोहिनः ॥१७७॥
कायवाक्चेतसां वृत्तिः शुभा हितविधायिनी । सैवेतरेतराधानकारिणी प्राणधारिणाम् ॥१७८॥
स्वस्य ये हितमुद्दिश्य प्रवर्तन्ते सुकर्मणि । उत्तमास्ते जना लोके निन्दिताचारमूयसि ॥१७९॥
कृतार्था अपि ये सन्तो भवदुःखमहार्णवात् । तारयन्ति जनान्[4]भव्यानुपदेशविधानतः ॥१८०॥
उत्तमोत्तमतां तेषां बिभ्रतां[5] धर्मचक्रिणाम् । [6]अर्हतां ये तिरस्कारं प्रतिबिम्बस्य कुर्वते ॥१८१॥
जन्तूनां मोहिनां तेषां यदनेकभवानुगम् । दुःखं संजायते कस्तद्वक्तुं शक्नोति कात्स्न्यतः ॥१८२॥
यद्यप्येषां[7] प्रपन्नेषु प्रसादो नोपजायते । न चापकारिनिष्ठेषु द्वेषो माध्यस्थ्यभोयुषाम् ॥१८३॥
स्वस्मात्तथापि जन्तूनां परिणामाच्छुभाशुभात् । तदुदेशेन संजातात् सुखदुःखसमुद्भवः ॥१८४॥
यथाग्नेः सेवनाच्छीतदुःखं जन्तुरपोहते । [8]क्षुत्तृष्णापरिपीडां च मक्षशीताम्बुसेवनात् ॥१८५॥

अनादर देख उन्हें बहुत दुःख हुआ। पारणा करनेसे उनका मन हटा गया ॥१७०॥ तथा इस अंजनाका जीव जो कनकोदरी था उसे मिथ्यात्वग्रस्त देख उन्हें परम करुणा उत्पन्न हुई सो ठीक ही है क्योंकि साधुवर्ग सभी प्राणियोंका कल्याण चाहता है ॥१७१॥ गुरु-भक्तिसे प्रेरित हुए साधुजन बिना पूछे भी अज्ञानी प्राणियोंका हित करनेके लिए धर्मोपदेश देने लगते हैं ॥१७२॥

तदनन्तर शीलरूप आभूषणको धारण करनेवाली संयमश्री आर्यिका अत्यन्त मधुर वाणीमें कनकोदरीसे बोलीं कि हे भद्रे ! मनको उदार कर सुन। तू परम कान्तिको धारण करनेवाली है, राजा तेरा सम्मान करता है, तथा तेरा शरीर भोगोंका आयतन है ॥१७३–१७४॥ चतुर्गति रूप संसारमें भ्रमण करता हुआ यह जीव सदा दुःखी रहता है। जब अशुभ कर्मका उदय शान्त होता है तभी यह उत्तम मनुष्यपर्यायको प्राप्त होता है ॥१७५॥ हे शोभने ! तू पुण्योदयसे मनुष्य योनिको प्राप्त हुई है अतः घृणित आचार करनेवाली न हो। तू उत्तम क्रिया करने योग्य है अर्थात् अच्छे कार्य करना ही तुझे उचित है ॥१७६॥ जो प्राणी मनुष्यपर्याय पाकर भी शुभ कार्य नहीं करता है उस मोहीके हाथमें आया हुआ रत्न यों ही नष्ट हो जाता है ॥१७७॥ मन, वचन, कायकी शुभ प्रवृत्ति ही प्राणियोंका हित करती है और अशुभ प्रवृत्ति अहित करती है ॥१७८॥ इस संसारमें निन्दित आचारके धारक मनुष्योंकी ही बहुलता है पर जो आत्महितका लक्ष्य कर शुभ कार्यमें प्रवृत्त होते हैं वे उत्तम कहलाते हैं ॥१७९॥ जो स्वयं कृतकृत्य होकर भी उपदेश देकर भव्य प्राणियोंको संसाररूपी महासागरसे तारते हैं, जो सर्वोत्कृष्ट हैं तथा धर्मचक्रके प्रवर्तक हैं ऐसे अरहन्त भगवान्‌की प्रतिमाका जो तिरस्कार करते हैं उन मोही जीवोंको अनेक भवों तक साथ जानेवाला जो दुःख प्राप्त होता है उसे पूर्ण रूपसे कहनेके लिए कौन समर्थ हो सकता है ? ॥१८०–१८२॥ अरहन्त भगवान् तो माध्यस्थ्य भावको प्राप्त हैं इसलिए यद्यपि इन्हें शरणागत जीवोंमें न प्रसन्नता होती है और न अपकार करनेवालोंपर द्वेष ही होता है ॥१८३॥ तो भी जीवोंको उपकार और अपकारके निमित्तसे होनेवाले अपने शुभ-अशुभ परिणामसे सुख-दुःखकी उत्पत्ति होती है ॥१८४॥ जिस प्रकार यह जीव अग्निकी सेवासे अपना शीत-जन्य दुःख

---

१. मोहिनीं ज., ख.। मेहिनीं क.। २. सुख-म.। ३. तदिमां मितया म.। तदा + इमाम् + इतया इतिच्छेदः। ४. विकृतां म.। ५. अर्हतो म.। ६. प्रयत्नेषु क., ख.। ७. क्षुत्तृष्णां परिपीडां च म.।

निसर्गोऽयं तथा येन जिनानामर्चनात्सुखम् । जायते प्राणिनां दुःखं परमं च तिरस्कृतेः ॥१८६॥
यद्धाम दृश्यते लोके दुःखं तत्पापसंभवम् । सुखं च चरितात्पूर्वसुकृतादिति विद्यताम् ॥१८७॥
सा त्वं पुण्यैरिमां वृद्धिं भर्तारं पुरुषाधिपम् । पुत्रं चाद्भुतकर्माणं प्राप्ता श्लाघ्यासुधारिणाम् ॥१८८॥
तथा कुरु यथा भूयो लप्स्यसे सुखमात्मनः । मद्वाक्यादवटे मध्ये ! मा पतः सति भास्करे ॥१८९॥
अभविष्यत्तवावासो नरके घोरवेदने । अहं नाबोधयिष्यं चेत्प्रमादोऽयमहो महान् ॥१९०॥
इत्युक्ता सा परित्रस्ता दुःखतो नरकोद्भवात् । प्रत्ययादिति शुद्धात्मा सम्यग्दर्शनमुत्तमम् ॥१९१॥
अगृह्णाद् गृहिधर्मं च शक्तेश्च सदृशं तपः । जन्मान्यदिव मेने च सांप्रतं धर्मसंगमात् ॥१९२॥
प्रतिमां च प्रवेश्यैनां पूर्वदेशे व्यतिष्ठपत् । आनर्च च विचित्राभिः सुमनोभिः सुगन्धिभिः ॥१९३॥
कृतार्थं मन्यमाना स्वं तस्या धर्मनियोजनात् । जगाम स्वोचितं स्थानं संयमश्रीः प्रमोदिनी ॥१९४॥
कनकोदर्यपि श्रेयः समुपार्ज्य गृहे रता । कृत्वा कालं दिवं गत्वा भुक्त्वा भोगं महागुणम् ॥१९५॥
च्युत्वा महेन्द्रराजस्य महेन्द्रपुटभेदने । मनोवेगासमाख्यायामञ्जनेति सुताभवत् ॥१९६॥
सेयं पुण्यावशेषेण कृतेन जननान्तरे । जातेहाख्यकुले शुद्धे प्राप्ता च वरमुत्तमम् ॥१९७॥
प्रतिमां च जिनेन्द्रस्य त्रिकालार्च्यस्य यद्बहिः । अकार्षीत्समयं कंचित्तेनासौ दुःखमागतम् ॥१९८॥
विद्युत्प्रभगुणस्तोत्रं क्रियमाणं पुरस्तव । मिश्रकेश्याः स्वनिन्दां च समित्रः पवनंजयः ॥१९९॥

दूर कर लेता है और भोजन तथा जलका सेवनकर भूख-प्यासकी पीड़ासे छुट्टी पा जाता है यह स्वाभाविक बात है उसी प्रकार जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा करनेसे प्राणियोंको सुख उत्पन्न होता है और उनका तिरस्कार करनेसे परम दुःख प्राप्त होता है यह भी स्वाभाविक बात है ॥१८५-१८६॥ यह निश्चित जानो कि संसारमें जो भी दुःख दिखाई देता है वह पापसे उत्पन्न हुआ है और जो भी सुख दृष्टिगोचर है वह पूर्वोपार्जित पुण्य कर्मसे उपलब्ध है ॥१८७॥ तूने जो यह वैभव, राजा पति और आश्चर्यजनक कार्य करनेवाला पुत्र पाया है सो पुण्यके द्वारा ही पाया है। तू प्राणियोंमें प्रशंसनीय है ॥१८८॥ इसलिए ऐसा कार्य कर जिससे फिर भी तुझे सुख प्राप्त हो। हे भव्ये ! तू मेरे कहनेसे सूर्यके रहते हुए गड्ढेमें मत गिर ॥१८९॥ इस पापके कारण घोर वेदनासे युक्त नरकमें तेरा निवास हो और मैं तुझे सम्बोधित न करूँ यह मेरा बड़ा प्रमाद कहलायेगा ॥१९०॥

आर्यिकाके ऐसा कहनेपर कनकोदरी नरकोंमें उत्पन्न होनेवाले दुःखसे भयभीत हो गयी। उसने उसी समय शुद्ध हृदयसे उत्तम सम्यग्दर्शन धारण किया ॥१९१॥ गृहस्थका धर्म और शक्ति अनुसार तप भी उसने स्वीकृत किया। उसे ऐसा लगने लगा मानो धर्मका समागम होनेसे मैंने दूसरा ही जन्म पाया हो ॥१९२॥ अर्हन्त भगवान्‌की प्रतिमाको उसने पूर्व स्थानपर विराजमान कराया और नाना प्रकारके सुगन्धित फूलोंसे उसकी पूजा की ॥१९३॥ कनकोदरीको धर्ममें लगाकर अपने आपको कृतकृत्य मानती हुई संयमश्री आर्यिका हर्षित हो अपने योग्य स्थानपर चली गयीं ॥१९४॥ घरमें अनुराग रखनेवाली कनकोदरी भी पुण्योपार्जन कर आयुके अन्तमें स्वर्ग गयी और वहाँ उत्तमोत्तम भोग भोगकर वहाँसे च्युत हो महेन्द्र नगरमें राजा महेन्द्रकी मनोवेगा नामा रानीसे यह अंजना नामक पुत्री हुई है ॥१९५-१९६॥ इसने जन्मान्तरमें जो पुण्य किया था उसके अवशिष्ट अंशसे यह यहाँ सम्पन्न एवं विशुद्ध कुलमें उत्पन्न हुई है तथा उत्तम वरको प्राप्त हुई है ॥१९७॥ इसने त्रिकालमें पूजनीय जिनेन्द्र भगवान्‌की प्रतिमाको कुछ समय तक घरसे बाहर किया था उसीसे इसे यह दुःख प्राप्त हुआ है ॥१९८॥ विवाहके पूर्व जब इसके आगे मिश्रकेशी विद्युत्प्रभके गुणोंकी प्रशंसा और पवनंजयकी निन्दा कर रही थी तब पवनंजय

---

१. जानातु । २. भक्तोर्हं म. । ३. श्लाघ्यासुधारिणम् म. । ४. गर्ते । ५. अभविष्यं म. । ६. प्रविश्येनां म. । ७. एतन्नाम्नी आर्यिका । ८. रताः म. । ९. श्रुत्वा म. ।

श्रुत्वा गवाक्षजालेन त्रियामायां तिरोहितः । द्वेषमस्यै परिप्राप्तो वैधुर्यमकरोत् पुरः ॥१९९॥
युद्धाय प्रस्थितो दृष्ट्वा सोऽन्यदा चक्रवाकिकाम् । विरहादीपितां रम्ये मानसे सरसि द्रुतम् ॥२०१॥
सख्येव कृपया नीतः समये तां मनोहराम् । गतश्च गर्भमादाय कतुं जनकशासनम् ॥२०२॥
इत्युक्त्वा पुनरूचेऽसावञ्जनां मुनिपुङ्गवः । महाकारुण्यसंपन्नः क्षरन्निव गिरामृतम् ॥२०३॥
[1]सा त्वं कर्मानुभावेन बाले दुःखमिदं श्रिता । ततो भूयोऽपि मा कार्षीरीदृशं कर्म निन्दितम् ॥२०४॥
यानि यानि च सौख्यानि जायन्ते चात्र भूतले । तानि तानि हि सर्वाणि जिनभक्ते विशेषतः ॥२०५॥
भक्ता भव जिनेन्द्राणां संसारोत्तारकारिणाम् । गृहाण नियमं शक्त्या[3] कुरु श्रमणपूजनम् ॥२०६॥
दिष्ट्या बोधिं प्रपन्नासि तदा दत्तां तदार्यया । उदहार्षीत् करालम्बात् सा त्वां[4] यान्तीमधोगतिम् ॥२०७॥
अयं च ते महाभाग्यः कुक्षिं गर्भः समाश्रितः । पुरा[5]निकोठते सम्यग्बहुकल्याणभाजनम् ॥२०८॥
परमां भूतिमेतस्मात् सुतात् प्राप्स्यसि शोभने । अखण्डनीयसौर्योऽयं गोवाणैः सकलैरपि ॥२०९॥
अल्पैरेव च तेऽहोभिः प्रियसंगो भविष्यति । ततो भव सुखस्वान्ता [6]प्रमादरहिता शुभे ॥२१०॥
इत्युक्ताभ्यां ततस्ताभ्यां तुष्टाभ्यां मुनिसत्तमः । प्रणतो विकसन्नेत्रराजीवाभ्यां पुनः पुनः ॥२११॥
सोऽपि दत्त्वाशिषं ताभ्यां समुत्पत्य नभस्तलम् । संयमस्योचितं देशं जगामामलमानसः ॥२१२॥
पर्यङ्कासनयोगेन यस्मात्तस्थौ स सन्मुनिः । तस्थौ जगाम पर्यङ्कगुहाख्यां सा ततो भुवि ॥२१३॥
इत्थं निजभवान् श्रुत्वाभवद् विस्मितमानसा । निन्दन्ती दुष्कृतं कर्म पूर्वं यदधमं कृतम् ॥२१४॥

अपने मित्रके साथ रात्रिके समय झरोखेसे छिपा खड़ा था सो यह सब सुनकर इससे रोषको प्राप्त हो गया और उस रोषके कारण ही उसने पहले इसे दुःख उपजाया है ॥१९९–२००॥ जब वह युद्धके लिए गया तो अत्यन्त मनोहर मानसरोवरपर ठहरा। वहाँ विरहसे छटपटाती हुई चकवी-को देखकर अंजनापर दयालु हो गया ॥२०१॥ उसके हृदयमें जो दया उत्पन्न हुई थी वह सखीके समान उसे शीघ्र ही समयपर इस सुन्दरीके पास ले आयी और वह गर्भाधान कराकर पिताकी आज्ञा पूर्ण करनेके लिए चला गया ॥२०२ महादयालु मुनिराज इतना कहकर वाणीसे अमृत झराते हुएके समान अंजनासे फिर कहने लगे कि हे बेटी ! कर्मके प्रभावसे ही तूने यह दुःख पाया है इसलिए फिर कभी ऐसा निन्द्य कार्य नहीं करना ॥२०३–२०४॥ इस पृथ्वीतलपर जो-जो सुख उत्पन्न होते हैं वे सब विशेषकर जिनेन्द्र देवकी भक्तिसे ही उत्पन्न होते हैं ॥२०५॥ इसलिए तू संसारसे पार करनेवाले जिनेन्द्र देवकी भक्त हो, शक्तिके अनुसार नियम ग्रहण कर और मुनियोंकी पूजा कर ॥२०६॥ भाग्यसे तू उस समय संयमश्री आर्याके द्वारा प्रदत्त बोधिको प्राप्त हुई थी। आर्याने तुझे बोधि क्या दी थी मानो अधोगतिमें जाती हुई तुझे हाथका सहारा देकर ऊपर खींच लिया था ॥२०७॥ यह महाभाग्यशाली गर्भ तेरे उदरमें आया है सो आगे चल कर अनेक उत्त-मोत्तम कल्याणोंका पात्र होगा ॥२०८॥ हे शोभने ! तू इस पुत्रसे परम विश्रुतिको प्राप्त होगी। सब देव मिलकर भी इसका पराक्रम खण्डित नहीं कर सकेंगे ॥२०९॥ थोड़े ही दिनोंमें तुम्हारा पतिके साथ समागम होगा। इसलिए हे शुभे ! चित्तको सुखी रखो और प्रमादरहित होओ ॥२१०॥ मुनिराजके ऐसा कहनेपर जो अत्यन्त हर्षित हो रही थीं तथा जिनके नेत्रकमल खिल रहे थे ऐसी दोनों सखियोंने मुनिराजको बार-बार प्रणाम किया ॥२११॥ तदनन्तर निर्मल हृदय-के धारक मुनिराज उन दोनोंके लिए आशीर्वाद देकर आकाश-मार्गसे संयमके योग्य स्थानपर चले गये ॥२१२॥ वे उत्तम मुनिराज उस गुहामें पर्यंकासनसे विराजमान थे। इसलिए आगे चल-कर वह गुहा पृथिवीमें 'पर्यंक गुहा' इस नामको प्राप्त हो गयी ॥२१३॥ इस प्रकार राजा महेन्द्रकी

---

१. इत्युक्ता म. । २. स त्वं म. । ३. भक्त्या म. । ४. त्वा क. । ५. निर्लोठिते म. । ६. प्रमोदरहिता ब. ।

महेन्द्रदुहिता तस्यां सूतिकालव्यपेक्षया । तस्थौ मगधराजेन्द्रपूतायां मुनिसंगमात् ॥२१५॥
वसन्तमालया तस्या विद्याबलसमृद्धया । पानाशनविधिश्चक्रे मनसा विहितोचितः ॥२१६॥
अथ प्रियविमुक्तां तां कारुण्येनेव भूयसा । असमर्थो रविर्द्रष्टुमस्तमैच्छद्विवेषितुम् ॥२१७॥
तद्दुःखादिव मन्दत्वं भास्करस्य करा ययुः । चित्रकर्मार्पितादित्यकरोत्करकृतोपमाः ॥२१८॥
शोकादिव रवेर्बिम्बं सहसा[1] गगनाग्रतः । निरीक्षणासंख्यं[2] झटिति समाहरत्[3] ॥२१९॥
अथागन्तुकसिंहस्य दृष्ट्यैव क्रोधताम्रया । संध्यया[4] पिहितं सर्वं क्षणेन नभसस्तलम् ॥२२०॥
ततो भाव्युपसर्गेण प्रेरितेव[5] त्वरावती । उदियाय तमोलेखा वेतालीव रसातलात् ॥२२१॥
कृतकोलाहलाः पूर्वं दृष्ट्वा तामिव भीतितः । निःशब्दा सहने तस्थुर्वृक्षाग्रेषु पतत्रिणः ॥२२२॥
प्रावर्तन्त शिवारावा महानिर्घातभीषणाः । वादिता उपसर्गेण प्रकटाः पटहा इव ॥२२३॥
अथ धूतेभकीलालशोणकेसरसंचयः । मृत्युपत्राङ्गुलिच्छायां भृकुटिं कुटिलां दधत् ॥२२४॥
विमुञ्चन्विषमच्छेदान्नादान् सप्रतिशब्दकान् । वेगिनः सकलं व्योम कुर्वाण इव खण्डशः ॥२२५॥
प्रलयज्वलनज्वालाविलासाञ्चलयन्मुहुः । महास्यगह्वरे जिह्वां प्रह्वां भूरिजनक्षये ॥२२६॥

पुत्री अंजना अपने भवान्तर सुन आश्चर्यसे चकित हो गयी। उसने पूर्वभवमें जो निन्द्य कार्य किया था उसकी वह बार-बार निन्दा करती रहती थी ॥२१४॥ गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन्! मुनिराजके संगमसे जो अत्यन्त पवित्र हो चुकी थी ऐसी उस गुफामें अंजना प्रसव-कालकी प्रतीक्षा करती हुई रहने लगी ॥२१५॥ विद्या-बलसे समृद्ध वसन्तमाला उसकी इच्छानुसार आहार-पानकी विधि मिलाती रहती थी ॥२१६॥

अथानन्तर सूर्य अस्ताचलके सेवनकी इच्छा करने लगा अर्थात् अस्त होनेके सम्मुख हुआ। सो ऐसा जान पड़ता था मानो अत्यधिक करुणाके कारण भर्तारसे वियुक्त अंजनाको देखनेके लिए असमर्थ हो गया हो ॥२१७॥ सूर्यकी किरणें भी चित्रलिखित सूर्यकी किरणोंके समान मन्दपने-को प्राप्त हो गयी थीं सो ऐसा जान पड़ता था मानो अंजनाका दुःख देखकर ही मन्द पड़ गयी हों ॥२१८॥ पर्वत और वृक्षोंके अग्रभागपर स्थित किरणोंके समूहको समेटता हुआ सूर्यका बिम्ब सहसा पतनको प्राप्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो अंजनाके शोकके कारण ही पतनको प्राप्त हुआ हो ॥२१९॥ तदनन्तर आगे आनेवाले सिंहकी कुपित दृष्टिके समान लालवर्णकी सन्ध्या-से समस्त आकाश क्षण-भरमें व्याप्त हो गया ॥२२०॥ तत्पश्चात् भावी उपसर्गसे प्रेरित होकर ही मानो शीघ्रता करनेवाली अन्धकारकी रेखा उत्पन्न हो गयी। वह अन्धकारकी रेखा ऐसी जान पड़ती थी मानो पातालसे वेताली ही निकल रही हो ॥२२१॥ उस वनमें पक्षी पहले तो कोलाहल कर रहे थे पर उन्होंने जब अन्धकारकी रेखा देखी तो मानो उसके भयसे ही निःशब्द होकर वृक्षोंके अग्रभागपर बैठ रहे ॥२२२॥ महावज्रपातके समान भयंकर शृगालोंके शब्द होने लगे सो ऐसा जान पड़ता था मानो आनेवाले उपसर्गने अपने नगाड़े ही बजाना शुरू कर दिया हो ॥२२३॥

अथानन्तर वहाँ क्षण-भरमें एक ऐसा विकराल सिंह प्रकट हुआ जो हाथियोंके रुधिरसे लाल-लाल दिखनेवाले जटाओंके समूहको बार-बार हिला रहा था, मृत्युके द्वारा भेजे हुए पत्रपर पड़ी अंगुलीकी रेखाके समान कुटिल भौंहको धारण कर रहा था। बीच-बीचमें प्रतिध्वनिसे युक्त वेगशाली भयंकर शब्द छोड़ रहा था और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो समस्त आकाशके खण्ड-खण्ड ही कर रहा हो। जो प्रलयकालीन अग्निकी ज्वालाके समान चंचल एवं अनेक प्राणियोंका क्षय करनेमें निपुण जिह्वाको मुखरूपी महागर्तमें बार-बार चला रहा था। जो जीवको

१. कृतोपमात् ख., क., म.। २. समाहरत् ख., ब.। ३. आच्छादितम् : विहितं म.। ४. शीघ्रतोपेता। ५. शृगालीशब्दाः।

जीवाकर्षां कुशाकारां दंष्ट्रां तीक्ष्णाग्रसंकटाम् । कुटिलां धारयन् रौद्रां मृत्योरपि भयंकराम् ॥२२७॥
उद्यत्प्रलयतीव्रांशुमण्डलप्रतिमे वहन् । क्षुरयन्ती दिशां चक्रं नेत्रे विस्रासकारिणी ॥२२८॥
मस्तकन्यस्तपुच्छाग्रो नखकोटिक्षतक्षितिः[1] । अष्टापदतटोरस्को जघनं घनमुद्वहन् ॥२२९॥
मृत्युर्दैत्यः[2] कृतान्तो नु प्रेतेशो नु कलिः क्षयः । अन्तकस्यान्तको नु स्याद्भास्करो नु तनूनपात् ॥२३०॥
इति[3] संजनिताशङ्कं जन्तुभिर्वीक्षितोऽखिलैः । आविर्बभूव तद्देशे केसरी विकटः क्षणात् ॥२३१॥
तस्य प्रतिनिनादेन पूरितोदारकन्दराः । भीता इवातिगम्भीरं रुरुदुर्[4]धरणीधराः ॥२३२॥
मुद्गरेणेव घोरेण शब्देनास्य तरस्विना । श्रोत्रयोस्ताडिताश्चक्रुरिति चेष्टाः शरीरिणः ॥२३३॥
दीर्घने मुकुलीकुर्वन्नभिदुर्गं महीभृति । शार्दूलो दर्पनिर्मुक्तः संचुकोप सवेपथुः ॥२३४॥
शैरपुष्पसमाकारहृष्टरोमाञ्चसंभ्रमः । बभ्रूतरलगुञ्जाक्षो विवेश विवरं गिरेः ॥२३५॥
सारङ्गासुखविभ्रंसिदूर्वाकोमलपल्लवाः । यथापूर्वक्षयास्तस्थुर्भयस्तम्भितविग्रहाः ॥२३६॥
संभ्रान्तबभ्रुनेत्राणामुत्कर्णानां विचेतसाम् । दानौघा निश्चलाङ्गानां मातङ्गानां विषिच्छिदुः ॥२३७॥
मण्डलस्यान्तरे कृत्वा शावकान् भयवेपितान् । तस्थुः पक्ष्मलसङ्गा यूथपन्यस्तलोचनाः ॥२३८॥
केसरिध्वनिविस्रस्ता कम्पमानशरीरिका । वपुराहारयोस्त्यागं चक्रे सालम्बमञ्जना ॥२३९॥

खींचनेवाली कुशाके समान तीक्ष्ण, नुकीली, सघन, कुटिल, रौद्र और मृत्युको भी भय उत्पन्न करनेवाली डाढ़को धारण कर रखा था। जो उदित होते हुए प्रलयकालीन सूर्य-बिम्बके समान लाल वर्ण एवं दिशाओंको व्याप्त करनेवाले भयंकर नेत्रोंसे युक्त था। जिसकी पूँछका अग्रभाग मस्तकपर रखा हुआ था, जो अपने नखाग्रसे पृथ्वीको खोद रहा था, जिसका वक्षःस्थल कैलासके तटके समान चौड़ा था, जो स्थूल नितम्ब-मण्डलको धारण कर रहा था। और जिसे सब प्राणी ऐसी आशंका करते हुए देखते थे कि क्या यह साक्षात् मृत्यु है? अथवा दैत्य है अथवा कृतान्त है, अथवा प्रेतराज है, अथवा कलिकाल है अथवा प्रलय है? अथवा अन्तक (यमराज) का भी अन्त करनेवाला है? अथवा सूर्य है? अथवा अग्नि है? ॥२२४-२३१॥ उसकी गर्जनाकी प्रतिध्वनिसे जिनकी बड़ी-बड़ी गुफाएँ भर गयी थीं ऐसे पर्वत, ऐसे जान पड़ते थे मानो भयभीत हो अत्यन्त गम्भीर रुदन ही कर रहे हों ॥२३२॥ उसके मुद्गरके समान भयंकर वेगशाली शब्दसे कानोंमें ताड़ित हुए प्राणी नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करने लगते थे ॥२३३॥ जो सामने उड़े हुए दुर्गम पहाड़पर अपने दोनों नेत्र लगाये हुए था तथा अत्यन्त अहंकारसे युक्त था ऐसे उस सिंहने अंगड़ाई लेते हुए बहुत ही कोप प्रकट किया ॥२३४॥ जिसके शरीरमें तृण-पुष्पके समान रोमांच निकल रहे थे तथा जिसके नेत्र गुमचीके समान लाल-पीले एवं चंचल थे ऐसे सिंहने पर्वतकी गुफामें प्रवेश किया ॥२३५॥ उसे देख जिनके मुखसे दूर्वा और कोमल पल्लवोंके ग्रास नीचे गिर गये थे तथा भयसे जिनका शरीर अकड़ गया था ऐसे हरिण ज्यों-के-त्यों खड़े रह गये ॥२३६॥ जिनके पीले-पीले नेत्र घूम रहे थे, कान खड़े हो गये थे, मनकी गति बन्द हो गयी थी और शरीर निश्चल हो गया था ऐसे हाथियोंके मदके प्रवाह रुक गये ॥२३७॥ हरिणी आदि पशु-स्त्रियोंके जो समूह थे वे भयसे काँपते हुए बच्चोंको घेरेके भीतर कर खड़े हो गये। उन सबके नेत्र अपने झुण्डके मुखियापर लगे हुए थे ॥२३८॥ जो सिंहकी गर्जनासे भयभीत हो रही थी तथा जिसका शरीर काँप रहा था ऐसी अंजनाने 'यदि उपसर्गसे जीती बचूँगी तो शरीर और आहार ग्रहण करूँगी अन्यथा नहीं' इस

१. क्षतिः म.। २. दैत्यकृतोऽनुस्यात्प्रेतसोऽनु (?) म.। ३. इतीरां जनिता म.। ४. रुरुधुः म.। ५. शरत्पुष्पं समाकारो म.। ६. बभ्रूतरल म.। ७. दानौघनिश्चला- म.। ८. पुलकगासंघा म.। ९. यूथ-विन्यस्त -ग.।

उत्पत्य त्वरिता व्योम्नि सख्यस्यास्तद्महाक्षमा । बभ्राम पक्षिणीवालं मण्डलेनाकुलात्मिका ॥२४०॥
भूयः समीपमाकाशमेति प्रेमगुणाकृता । पुनश्च तीव्रवित्रासात् प्रयाति नभसः शिरः ॥२४१॥
अथ ते समये दृष्ट्वा विशीर्णहृदये शुभे । गन्धर्वस्तद्गुहावासी कारुण्याश्लेषमीयिवान् ॥२४२॥
तमूचे मणिचूलाख्यं रत्नचूला निजाङ्गना । कारुण्येनोरुणा साध्वी चोदिता द्रुतभाषिणी ॥२४३॥
पश्य पश्य प्रिय ! त्रस्तां तां सृगेन्द्रादिह स्त्रियम् । एतत्प्रति समादिष्टां द्वितीयां च नभोऽङ्गणे ॥२४४॥
कुरु नाथ प्रसादं मे रक्षैतामतिविह्वलाम् । अभिजातां वरां नारीं कुतोऽपि विषमश्रिताम् ॥२४५॥
एवमुक्तोऽथ गन्धर्वो विकृत्य शरभाकृतिम् । त्रैलोक्यभीषणद्रव्यसंभारेणेव निर्मिताम् ॥२४६॥
हस्तत्रितयमात्रस्थामञ्जनामसमागतम् । सिंहं पुरोऽकरोद्देहच्छन्नसानुकदम्बकः ॥२४७॥
तयोस्तत्राभवद्भीमः संघट्टो रवसंकुलः । विद्युद्द्योतितप्रावृड्घनसङ्घं हसन्निव ॥२४८॥
एवंविधेऽपि संप्राप्ते काले घोरभयावहे । अञ्जनासुन्दरी चक्रे हृदये जिनपुङ्गवान् ॥२४९॥
इत्थं वसन्तमालाऽपि च मण्डलेन कृतभ्रमा । विललाप महादुःखा कुररीव नभस्तले ॥२५०॥
हा भर्तृदारिके पूर्वं दौर्भाग्यमसि संगता । तस्मिन्नपि गते कृच्छ्राद् वर्जिता सर्वबन्धुभिः ॥२५१॥
संप्राप्तासि वनं भीमं कथमप्यागतां गुहाम् । मुनिनाश्वासितासन्नप्रियावाप्तिनिवेदनात् ॥२५२॥

आलम्बनके साथ शरीर और आहारका त्याग कर दिया ॥२३९॥ इसकी सखी वसन्तमाला इसे उठानेमें समर्थ नहीं थी इसलिए शीघ्रतासे आकाशमें उड़कर पक्षिणीकी तरह व्याकुल होती हुई मण्डलाकार भ्रमण कर रही थी—चक्कर लगा रही थी ॥२४०॥ वह अंजनाके प्रेम और गुणोंसे आकर्षित होकर बार-बार उसके पास आती थी पर तीव्र भयके कारण पुनः आकाशमें ऊपर चली जाती थी ॥२४१॥ अथानन्तर जिनके हृदय विशीर्ण हो रहे थे ऐसी उन दोनों स्त्रियोंको भयभीत देख उस गुफामें रहनेवाला गन्धर्व दयाके आलिंगनको प्राप्त हुआ अर्थात् उसे दया उत्पन्न हुई ॥२४२॥ उस गन्धर्वकी स्त्रीका नाम रत्नचूला था। सो बहुत भारी दयासे प्रेरित एवं शीघ्रतासे भाषण करनेवाली उस साध्वी रत्नचूलाने अपने पति मणिचूल नामा गन्धर्वसे कहा ॥२४३॥ कि हे प्रिय ! देखो देखो, सिंहसे भयभीत हुई एक स्त्री यहीं स्थित है और उससे सम्बन्ध रखनेवाली दूसरी स्त्री आकाशांगणमें चक्कर काट रही है ॥२४४॥ हे नाथ ! मेरे ऊपर प्रसाद करो और इस अत्यन्त विह्वल स्त्रीकी रक्षा करो। यह कुलवती उत्तम नारी किसी कारण इस विषम स्थानमें आ पड़ी है ॥२४५॥ इस प्रकार कहनेपर गन्धर्व देवने विक्रियासे अष्टापदका रूप बनाया। उसका वह रूप ऐसा जान पड़ता था मानो तीनों लोकोंमें जितने भयंकर पदार्थ हैं उन सबको इकट्ठा कर ही उसकी रचना की गयी हो ॥२४६॥ अंजना और सिंहके बीचमें सिर्फ तीन हाथका अन्तर रह गया था कि इतनेमें ही अपने शरीरसे शिखरोंके समूहको आच्छादित करनेवाला अष्टापद सिंहके सामने आकर खड़ा हो गया ॥२४७॥ तदनन्तर वहाँ सिंह और अष्टापदके बीच भयंकर युद्ध हुआ। उनका वह युद्ध भयंकर गर्जनासे युक्त था और बिजलीसे प्रकाशित वर्षाकालिक मेघोंके समूहकी मानो हँसी ही उड़ा रहा था ॥२४८॥ इस प्रकार वहाँ शूरवीर मनुष्योंको भी भय उत्पन्न करनेवाला समय यद्यपि आया था तो भी अंजना निर्भय रहकर हृदयमें जिनेन्द्र देवका ध्यान करती रही ॥२४९॥ आकाशमें मण्डलाकार भ्रमण करती तथा महादुःखसे भरी वसन्तमाला कुररीकी तरह इस प्रकार विलाप कर रही थी ॥२५०॥ हाय राजपुत्रि ! तुम पहले दौर्भाग्यको प्राप्त रही फिर जिस किसी तरह कष्टसे दौर्भाग्य समाप्त हुआ तो समस्त बन्धुजनोंने तुम्हारा त्याग कर दिया ॥२५१॥ भयंकर

---

१. बालमण्डलेन म.। २. चोदितादद्भुतभाषिणी ब.। ३. एतद्भीतिसमा- म.। ४. आपद्गताम्। विषमाश्रिताम् म.। ५. विक्रियां कृत्वा। ६. -जीव निर्मितम् म.। ७. गताम् म.। ८. सिंहरिपुरकरोद्देहं म.। ९. कुटुम्बकम् क.।

सा एवं केसरिणो वक्त्रमधुना देवि यास्यसि । दंष्ट्राकरालमुद्वृत्तद्विरदक्षयकारणम्[1] ॥२५३॥
हा देवि ते गतः कालो दुर्जनस्य विधेर्वशात् । उपर्युपरिदुःखेन मम [2]दुर्मतिकारणात् ॥२५४॥
परित्रायस्व हा नाथ ! पवनञ्जय ! गेहिनीम् । हा महेन्द्र ! कथं नेमां तनयां परिरक्षसि ॥२५५॥
हा किं केतुमति क्रूरे मुधास्यां त्वयका[3] कृतम् । हा करुणे मनोवेगे तनयां किं न रक्षसि ॥२५६॥
मरणं राजपुत्रीयं प्राप्नोति विजने वने । कुरुत त्राणमेतस्याः कृपया वनदेवताः ॥२५७॥
मुनेरपि तथा तस्य लोकतत्त्वावबोधिनः । शुभार्थसूचनं वाक्यं संभवेदन्यथा किमु ॥२५८॥
आक्रन्दमिति कुर्वाणा दोलारूढेव विह्वला । चक्रे वसन्तमालाशु[4] स्वामिन्यन्तं गतागतम् ॥२५९॥
अथ सैंहं गतः सिंहः शरभेण तलाहतः । अन्तर्दधे कृतार्थश्च शरभो निलये निजे ॥२६०॥
ततः स्वप्नोपमं दृष्ट्वा विरतं युद्धमेतयोः । द्रुतं वसन्तमालागात् स्वेदिगात्रा पुनर्गुहाम् ॥२६१॥
अञ्जःपल्लवकान्ताभ्यां हस्ताभ्यां कृतमार्गणा । क्वासि क्वासीति भीशेषात्कृतगद्गदनिस्वना ॥२६२॥
ज्ञात्वा वसन्तमाला तां स्पर्शेनास्यन्तनिश्चलाम्[5] । तां प्रतिप्राणनाशङ्कासमाकुलितमानसा ॥२६३॥
म्रियसे देवि देवीति चालयन्ती पुनः पुनः । जगाद स्वामिनीवक्षोविन्यस्तकरपल्लवा ॥२६४॥
ततोऽसौ तत्करस्पर्शादागतस्पष्टचेतना । चिरास्सखीयमस्मीति जगादास्पष्टया गिरा ॥२६५॥
ततस्ते संगमात्प्राप्य कियतीमपि निर्वृतिम् । पुनर्जन्मेव मेनाते लब्धसंभाषणोद्यते ॥२६६॥

वनमें आकर किसी तरह इस गुफामें आयी और 'निकट कालमें ही पतिका समागम प्राप्त होगा' यह कहकर मुनिराजने आश्वासन दिया पर अब हे देवि ! तुम सिंहके उस मुखमें जा रही हो जो डाढ़ोंसे भयंकर है तथा उद्दण्ड हाथियोंके क्षयका कारण है ॥२५२-२५३॥ हाय देवि ! दुष्ट विधाताके वश और मेरी दुर्बुद्धिके कारण तुम्हारा समय उत्तरोत्तर दुःखसे ही व्यतीत हुआ ॥२५४॥ हा नाथ पवनंजय ! अपनी गृहिणीकी रक्षा करो । हा महेन्द्र ! तुम इस पुत्रीकी रक्षा क्यों नहीं करते हो ? ॥२५५॥ हा दुष्ट केतुमति ! तूने व्यर्थ ही इसके विषयमें क्या अनर्थ किया ? हा दयावती मनोवेगे ! अपनी पुत्रीकी रक्षा क्यों नहीं कर रही हो ? ॥२५६॥ यह राजपुत्री निर्जन वनमें मरणको प्राप्त हो रही है । हे वनदेवताओ ! कृपा कर इसकी रक्षा करो ॥२५७॥ लोकके यथार्थ स्वरूपको जाननेवाले उन मुनिके शुभसूचक वचन भी क्या अन्यथा हो जावेंगे ? ॥२५८॥ इस प्रकार रुदन करती तथा झूलापर चढ़ी हुई के समान विह्वल वसन्तमाला जल्दी-जल्दी स्वामिनीके समीप गमन तथा आगमन कर रही थी अर्थात् साहस कर समीप आती थी फिर भयकी तीव्रतासे दूर हट जाती थी ॥२५९॥

अथानन्तर अष्टापदकी चपेटसे आहत होकर सिंह नष्ट हो गया और कृतकृत्य होकर अष्टापद अपने स्थानमें अन्तर्हित हो गया ॥२६०॥ तदनन्तर स्वप्नके समान दोनोंका युद्ध समाप्त हुआ देख पसीनासे लथ-पथ वसन्तमाला शीघ्र ही गुहामें आयी ॥२६१॥ गुहाके भीतर पल्लवके समान कोमल हाथोंसे अंजनाको खोजती हुई वसन्तमाला कह रही थी कि कहाँ हो ? कहाँ हो ? उस समय भी उसका पूरा भय नष्ट नहीं हुआ था इसलिए आवाज गद्गद निकल रही थी ॥२६२॥ वसन्तमालाने हाथके स्पर्शसे जाना कि यह बिलकुल निश्चल पड़ी हुई है । इसलिए उसका मन 'यह जीवित है या नहीं' इस आशंकासे व्याकुल हो उठा ॥२६३॥ वह उसके वक्षःस्थलपर हाथ रखकर बार-बार उकसाती हुई कह रही थी कि हे देवि ! देवि ! जिन्दा हो ? ॥२६४॥ तदनन्तर वसन्तमालाके हाथके स्पर्शसे जब अंजनाको चेतना आयी और कुछ देर बाद उसने समझ लिया कि यह सखी है तब अस्पष्ट वाणीमें उसने कहा कि 'मैं हूँ' ॥२६५॥ तत्पश्चात् वे दोनों सखियाँ

१. कारिणम् ब. । २. दुर्गतिकारणात् म. । ३. मुद्वास्या त्वयि का कृता म. । ४. माला तु म. । ५. गतः भङ्ग म., ब. ।

भयशेषेण चाभीरूां सुग्धे तां जग्मतुर्निशाम् । समासमां कृतासेवबन्धुनैष्ठुर्यसंकथे ॥२६७॥
ततो विध्वस्य नागारिं[1] नागारिरिव पक्षगम्[2] । प्रमोदवानसौ मैद्यं[3] पीतवान् सुमहागुणम् ॥२६८॥
गन्धर्वैकान्तयावाचि गन्धर्वो लब्धवर्णया । तदूरौ बाहुमाधाय[4] तरत्तारकनेत्रया ॥२६९॥
स्थानकं[5] यच्छ मे नाथ जिगासाम्यधुनोचितम्[6] । उपदेशो[7] हि गन्तव्यं कादम्बर्यामनुत्तमम् ॥२७०॥
शेषं साध्वसमेते च वनिते परिमुञ्चतः । श्रुत्वा नौ मधुरं गीतं देवीयं हृदयंगमम् ॥२७१॥
अर्धरात्रे ततस्तस्मिन्नन्यशब्दविवर्जिते । संस्कृत्यावीवदद्वीणां गन्धर्वः श्रोत्रहारिणीम् ॥२७२॥
कांसिके वादयन्ती च प्रियवक्त्राहितेक्षणा । रत्नचूला जगौ मन्दं सुनिक्षोभणकारणम् ॥२७३॥
तयोर्घनं कृतं वाद्यं सुषिरं च कृतं ततम् । परिवर्गेण गम्भीरकरतलक्रमोचितम् ॥२७४॥
पाणिघैरेकतानेन मन्द्रध्वनिसमन्वितम् । तथा वैणविकैर्दक्षं प्रवीणैर्भ्रूविलासिभिः[8] ॥२७५॥
प्रवीणामः प्रवालाभां वीणां चारूपमानिकाम् । कोणेनाताडयद्यक्षो गन्धर्वः काकलीबुधः ॥२७६॥
मध्यमर्षभगान्धारषड्जपञ्चमधैवतान् । निषादसप्तमांश्चक्रे स स्वरान्क्रममत्यजन् ॥२७७॥
भेजे वृत्तीर्यथास्थानं द्रुतमध्यविलम्बिताः । एकविंशतिसंख्याश्च मूर्च्छना नर्तितेक्षणाः ॥२७८॥
हाहाहूहूसमानं स गानं चक्रेऽथवाधिकम् । प्रायो गन्धर्वदेवानां प्रसिद्धिमिदमागतम् ॥२७९॥

परस्पर मिलकर अनिर्वचनीय सुखको प्राप्त हुईं और अवसरके अनुसार वार्तालाप करनेमें उद्यत हो ऐसा समझने लगीं मानो हम लोगोंका दूसरा ही जन्म हुआ है ॥२६६॥ भय शेष रहनेसे उन भोलीभाली स्त्रियोंने उस भयावनी रात्रिको वर्षके बराबर भारी समझा। वे सारी रात जागकर समस्त बन्धुजनोंकी निष्ठुरताकी चर्चा करती रहीं ॥२६७॥

तदनन्तर जिस प्रकार गरुड़ सांपको नष्ट कर देता है उसी प्रकार गन्धर्व सिंहको नष्ट कर बड़ा हर्षित हुआ और हर्षित होकर उसने महागुणकारी मद्यका पान किया ॥२६८॥ जिसके नेत्र चंचल हो रहे थे ऐसी गन्धर्वकी विदुषी स्त्रीने उसकी जाँघपर अपनी भुजा रख गन्धर्वसे कहा कि ॥२६९॥ हे नाथ! मुझे अवसर दीजिए मैं इस समय कुछ गाना चाहती हूँ क्योंकि मद्यपानके अनन्तर उत्तम गाना गाना चाहिए ऐसा उपदेश है ॥२७०॥ साथ ही हम दोनोंका मधुर दिव्य एवं हृदयहारी संगीत सुनकर ये दोनों स्त्रियाँ अवशिष्ट भयको भी छोड़ देंगी ॥२७१॥ तदनन्तर जब अर्धरात्रि हो गयी और किसी दूसरेका शब्द भी सुनाई नहीं पड़ने लगा तब गन्धर्वने कानोंको हरनेवाली वीणा ठीक कर बजाना शुरू किया ॥२७२॥ और उसकी स्त्री रत्नचूला पतिके मुखपर नेत्र धारण कर मंजीरा बजाती हुई धीरे-धीरे गाने लगी। उसका वह गाना मुनियोंको भी क्षोभ उत्पन्न करनेका कारण था ॥२७३॥ उस समय उन दोनोंके बीच घन, वाद्य, सुषिर और तत इन चारों प्रकारके बाजोंका प्रयोग चल रहा था और परिजनके अन्य लोग गम्भीर हाथोंसे क्रमानुसार योग्य ताल दे रहे थे ॥२७४॥ तबला बजानेमें निपुण देव एकचित्त होकर गम्भीर ध्वनिके साथ तबला बजा रहे थे तो बाँसुरी बजानेमें चतुर देव भौंह चलाते हुए अच्छी तरह बाँसुरी बजा रहे थे ॥२७५॥ उत्तम आभाको धारण करनेवाला यक्ष प्रवालके समान कान्तिवाली तथा सुन्दर उपमासे युक्त वीणाको तमूरेसे बजा रहा था। तो स्वरोंकी सूक्ष्मताको जाननेवाला गन्धर्व, क्रमको नहीं छोड़ता हुआ, मध्यम, ऋषभ, गान्धार, षड्ज, पंचम, धैवत और निषाद इन सात स्वरोंको निकाल रहा था ॥२७६-२७७॥ गाते समय वह गन्धर्व द्रुता, मध्या और विलम्बिता इन तीन वृत्तियोंका यथास्थान प्रयोग करता था और जिनसे नेत्र नाच उठते हैं, ऐसी इक्कीस मूर्च्छनाओं का भी यथावसर उपयोग करता था ॥२७८॥ वह देवोंके गवैया जो हाहा-हूहू हैं उनके समान

---

१. सिंहम् । २. गरुड इव । ३. सद्यः पीतवान् सुमहागुणम् । ४. -माधाय म. । ५. स्वनकं म. । ६. जिज्ञास्य म. । ७. उपदंशा ब., ज. । उपदंशो ख. । ८. विलासिनः म. ।

स्वनान्येकोनपञ्चाशत्संजगौ परिनिष्ठितम् । जिनेन्द्रगुणसंबद्धैर्वचनैर्ललिताक्षरैः ॥२८०॥

विशुन्मालावृत्तम्

[2]देवातेदैवैर्भक्तिप्रह्वैः पुष्पैरर्घैर्नानागन्धैः । अर्चासुच्चैर्गीतं वन्द्यं देवं भक्त्या स्वामर्हन्तम् ॥२८१॥

आर्यागीतिच्छन्दः

त्रिभुवनकुशलमतिशय-पूतं [निर्घं] नमामि भक्त्या परया ।
मुनिसुव्रतचरणयुगं सुरपतिमुकुटप्रवृत्तनखमणिकिरणम् ॥२८२॥

अनुष्टुप्

ततो वसन्तमाला तद्गेयमत्यन्तशोभनम् । प्रशशंसाश्रुतपूर्वं विस्मयव्याप्तमानसा ॥२८३॥
अहो गीतमहो गीतं केनाप्येतन्मनोहरम् । आर्द्रीकृतमिवानेन हृदयं मे सुधासुचा ॥२८४॥
स्वामिनीं च जगादैवं देवि कोऽप्यनुकम्पकः । देवोऽयं येन नौ रक्षा कृता केसरिणोदनात् ॥२८५॥
मन्येऽस्मद्वृत्तयेऽनेन गीतमेतच्छ्रुतिप्रियम् । [4]श्रुतावलाकलध्वानमन्तरे सकलाङ्गकम् ॥२८६॥
देवि शीलवती कस्य नानुकम्प्यासि शोभने । महारण्येऽपि भव्यानां भवन्ति सुहृदो जनाः ॥२८७॥
उपसर्गस्य विध्वंसादेतस्मात्ते सुनिश्चितः । भविता प्रियसंपर्कः किं वा वक्त्यन्यथा मुनिः ॥२८८॥
तस्मादुत्तमदेवं [5]समाश्रित्य कृतोचितम् । मुनिपर्यङ्कपूतायां गुहायामत्र संशयात् ॥२८९॥
मुनिसुव्रतनाथस्य बिम्बस्य प्रतिपातनाम् । अर्चयन्यौ सुखप्राप्त्यै [6]स्वामोदैः कुसुमैरलम् ॥२९०॥
सुखप्रसूतिमेतस्य गर्भस्याध्यायचेतसि । विस्मृत्य वैरं दुःखं समयं किंचिदास्वहे ॥२९१॥

अथवा उनसे भी अधिक उत्तम गान गा रहा था और प्रायःकर गन्धर्व देवोंमें यही गान प्रसिद्धको प्राप्त है ॥२७९॥ वह उनचास ध्वनियोंमें गा रहा था तथा उसका वह समस्त गान जिनेन्द्र भगवान्‌के गुणोंसे सम्बन्ध रखनेवाले मनोहर अक्षरोंसे युक्त वचनावलीसे निर्मित था ॥२८०॥ वह गा रहा था कि भक्तिसे नम्रीभूत सुर-असुर पुष्प, अर्घ तथा नाना प्रकारकी गन्धसे जिनकी उत्तम पूजा करते हैं ऐसे देवाधिदेव वन्दनीय अरहन्त भगवान्‌को मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥२८१॥ उसने यह भी गाया कि मैं श्री मुनिसुव्रत भगवान्‌के उस चरण युगलको उत्कट भक्तिसे नमस्कार करता हूँ जो त्रिभुवनकी कुशल करनेवाला है, अत्यन्त पवित्र है और इन्द्रके मुकुटका सम्बन्ध पाकर जिसके नखरूपी मणियोंसे किरणें फूट पड़ती हैं ॥२८२॥

तदनन्तर जिसका मन आश्चर्यसे व्याप्त था ऐसी वसन्तमालाने उस अश्रुतपूर्व तथा अत्यन्त सुन्दर संगीतकी बहुत प्रशंसा की ॥२८३॥ वह कहने लगी कि वाह ! वाह ! यह मनोहर गान किसने गाया है। इस अमृतवर्षी गवैयाने तो मेरा हृदय मानो गीला ही कर दिया है ॥२८४॥ उसने स्वामिनीसे कहा कि हे देवि ! यह कोई देव है जिसने सिंह भगाकर हम लोगोंकी रक्षा की है ॥२८५॥ जिसके बीचमें स्त्रीका मधुर शब्द सुनाई देता था तथा जो संगीतके समस्त अंगोंसे सहित था ऐसा यह कर्णप्रिय गाना, जान पड़ता है इसने हम लोगोंके लिए ही गाया है ॥२८६॥ हे देवि ! हे शोभने ! उत्तम शीलको धारण करनेवाली ! तू किसकी दया-पात्र नहीं है ? भव्य जीवोंको महा-अटवीमें भी मित्र मिल जाते हैं ॥२८७॥ इस उपसर्गके दूर होनेसे यह सुनिश्चित है कि तुम्हारा पतिके साथ समागम होगा। अथवा क्या मुनि भी अन्यथा कहते हैं ? ॥२८८॥ इसलिए इस उत्तम देवका यथोचित आश्रय लेकर मुनिराजकी पद्मासनसे पवित्र इस गुफामें श्री मुनिसुव्रत भगवान्‌की प्रतिमा विराजमान कर सुख-प्राप्तिके लिए अत्यन्त सुगन्धित फूलोंसे उसकी पूजा करती हुई हम दोनों कुछ समय तक यहीं रहें। इस गर्भकी सुखसे प्रसूति हो जाये चित्तमें इसी बातका ध्यान रखें

---

१. स जगौ म.। २. सुरासुरैः। ३. -च्छ्रुतप्रियम् म.। ४. कृत्वा कलकलध्वानमन्तरे म.। श्रुतावलाव- ब.। ५. -मघसंशयात् म.। ६. सुष्ठु आमोदो येषां तैः। स्वमोदैः म.।

त्वत्संगमं समासाद्य प्रमोदं परमागतः । नैर्झरैः शीकरैरेष हसतीव महीधरः ॥२९२॥
फलभारविनम्राग्रा लसत्कोमलपल्लवाः । पुष्पहासकृतो वृक्षा इमे तोषमुपागताः ॥२९३॥
मयूरसारिकाकीरकोकिलादिकलस्वनैः । कृतजल्पा इवैतस्य वनाभोगा महीभृतः ॥२९४॥
नानाधातुकृतच्छायास्तरुसंघातवाससः । अस्मिन् गुहा विराजन्ते कुसुमामोदवासिताः ॥२९५॥
जिनपूजनयोग्यानि पङ्कजानि सरस्सु हि । विद्यन्ते तव वक्त्रस्य धारयन्ति समानताम् ॥२९६॥
विधत्स्व धृतिमत्रेशे माभूद्[1] चिन्तावशात्मिका । कल्याणमत्र ते सर्वं जनयिष्यन्ति देवताः ॥२९७॥
अधुना दिनवक्त्रे ते विज्ञायेवानघं वपुः । कोलाहलकृतो[2] जाताः प्रमोदेन पतत्रिणः ॥२९८॥
पलाशाग्रस्थितानेते वृक्षा मन्दानिलेरितान् । मुञ्चन्त्यानन्दवाष्पाभानवश्यायकणान् जडान् ॥२९९॥
संप्रेष्य प्रथमं संध्यां दूतीमिव सरागिकाम् । उदन्तं ते परिज्ञातुमेष भानुः समुद्गतः ॥३००॥
एवमुक्ताञ्जनावोचत्सखि मे सर्वबान्धवाः । त्वमेव त्वयि सत्यां च ममेदं विपिनं पुरम् ॥३०१॥
आपन्मध्योत्सवावस्थाः सेवते यस्य यो जनः । स तस्य बान्धवो बन्धुरपि शत्रुरसौख्यदः ॥३०२॥
इत्युक्त्वा देवदेवस्य विन्यस्य प्रतियातनाम् । पूजयन्त्यौ स्थिते तत्र ते विद्याकृतवर्तने[3] ॥३०३॥
गन्धर्वोऽप्यनयोश्चक्रे सर्वतः परिरक्षणम् । आतोद्यं प्रत्यहं कुर्वन् कारुण्याज्जिनभक्तिमः ॥३०४॥

और विरह-सम्बन्धी सब दुःख भूल जावें ॥२८९–२९१॥ तुम्हारा समागम पाकर परम हर्षको प्राप्त हुआ। यह पर्वत झरनोंके जल-कणोंके बहाने मानो हँस ही रहा है ॥२९२॥ जिनके अग्रभाग फलोंके भारसे झुक रहे हैं, जिनके कोमल पल्लव लहलहा रहे हैं और जो पुष्पोंके बहाने हँसी प्रकट कर रहे हैं ऐसे ये वृक्ष तुम्हारे समागमसे ही मानो परम सन्तोषको प्राप्त हो रहे हैं ॥२९३॥ इस पर्वतके जंगली मैदान मोर, मैना, तोता तथा कोयल आदिकी मधुर ध्वनिसे ऐसे जान पड़ते हैं मानो वार्तालाप ही कर रहे हों ॥२९४॥ जिनमें गेरू आदि नाना धातुओंकी कान्ति छायी हुई है, जिनपर वृक्षोंके समूह वस्त्रके समान आवरण किये हुए हैं और जो फूलोंकी सुगन्धिसे सुवासित हैं ऐसी इस पर्वतकी गुफाएँ स्त्रियोंके समान सुशोभित हो रही हैं ॥२९५॥ तालाबोंमें जिनेन्द्र देवकी पूजा करनेके योग्य जो कमल फूल रहे हैं वे तुम्हारे मुखकी समानता धारण करते हैं ॥२९६॥ हे स्वामिनि ! यहाँ धैर्य धारण करो, चिन्ताकी वशीभूत मत होओ। यहाँ देवता तुम्हारा सब प्रकारका कल्याण करेंगे ॥२९७॥ अब दिनके प्रारम्भमें पक्षी चहक रहे हैं सो ऐसा जान पड़ता है कि तुम्हारे शरीरकी स्वस्थता जानकर हर्षसे मानो कोलाहल ही कर रहे हैं ॥२९८॥ ये वृक्ष पत्तोंके अग्रभागमें स्थित तथा मन्द-मन्द वायुसे प्रेरित शीतल ओसके कणोंको छोड़ रहे हैं सो ऐसे जान पड़ते हैं मानो हर्षके आँसू ही छोड़ रहे हों ॥२९९॥ तुम्हारा वृत्तान्त जाननेके लिए सर्वप्रथम दूतीके समान रागवती (लालिमासे युक्त) सन्ध्याको भेजकर अब पीछेसे यह सूर्य स्वयं उदित हो रहा है ॥३००॥

वसन्तमालाके ऐसा कहनेपर अंजनाने उत्तर दिया कि हे सखि ! मेरे समस्त बान्धव तुम्हीं हो। तेरे रहते हुए मुझे यह वन नगरके समान है ॥३०१॥ जो मनुष्य जिसके आपत्तिकाल, मध्यकाल और उत्सवकाल अर्थात् सभी अवस्थाओंमें सेवा करता है वही उसका बन्धु है तथा जो दुःख देता है वह बन्धु होकर भी शत्रु है ॥३०२॥ इतना कहकर वे दोनों गुफामें देवाधिदेव मुनि सुव्रतनाथकी प्रतिमा विराजमान कर उसकी पूजा करती हुई रहने लगीं। विद्याके बलसे उनके भोजनकी व्यवस्था होती थी ॥३०३॥ जिनेन्द्र भगवान्‌की भक्तिसे प्रतिदिन संगीत करता हुआ गन्धर्वदेव भी करुणा भावसे इन दोनों स्त्रियोंकी सबसे रक्षा करता था ॥३०४॥

---

१. माभूच्चिन्ता म. । २. विबन्तप्रयोगः । ३. विद्याकृतभोजने ।

अथान्यदाऽञ्जनाबोचत् कुक्षिर्मे चलितः सखि । आकुलेव च जातास्मि किमिदं नु भविष्यति ॥३०५॥
ततो वसन्तमालोचे समयः शोभने तव । अवश्यं प्रसवस्यैष प्राप्तो भव सुखस्थिता ॥३०६॥
ततो विरचिते तल्पे तया कोमलपल्लवैः । असूत सा सुतं पूर्वा प्राचीवाशा विरोचनम् ॥३०७॥
जातेन सा गुहा तेन तेजसा गात्रजन्मना । हिरण्मयीव संजाता निर्भूतध्वान्तसंचया ॥३०८॥
ततस्तमङ्कमारोप्य प्रमोदस्यापि गोचरे[1] । स्मृतोभयकुला दैन्यं[2] प्राप्ता प्रारुदितामघत् ॥३०९॥
विललाप महावत्स ! कथं ते जननोत्सवः । क्रियतां मयकैतस्मिन्जनस्य गहने वने ॥३१०॥
स्थानेऽजनिष्यथाश्चेरवं पितुर्मातामहस्य वा । अमविष्यन्महानन्दो जननोन्मत्तकारकः ॥३११॥
मुखचन्द्रमिमं दृष्ट्वा तव चारुविलोचनम् । न भवेद्विस्मयं कस्य भुवने शुभचेतसः ॥३१२॥
करोमि मन्दभाग्याहं किं सर्ववस्तुविवर्जिता । विधिनाहं दशामेतां प्रापिता दुःखदायिनीम् ॥३१३॥
जन्तुना सर्ववस्तुभ्यो वाञ्छ्यते दीर्घजीविता । यस्मात्त्वं जीवितास्तस्माम्मम वत्स परां स्थितिम् ॥३१४॥
ईदृशे पतितारण्ये सद्यः प्राणापनोदिनि । यज्जीवामि तवैवायमनुभावः सुकर्मणः ॥३१५॥
सुबन्धीपिति तां प्राह जगादैवं हिता सखी । देवि कल्याणपूर्णा त्वं या प्राप्तासीदृशं सुतम् ॥३१६॥
चारुलक्षणपूर्णोऽयं दृश्यतेऽस्य शुभा तनुः । अत्यन्तमहतीमृद्धिं वहत्येषा मनोहरा ॥३१७॥
षट्पदैः कृतसंगीताश्चलत्कोमलपल्लवाः । तव पुत्रोत्सवादेता नृत्यन्तीव लताङ्गनाः ॥३१८॥
तवास्य चानुभावेन बालस्याबालतेजसः । भविष्यत्यखिलं भद्रं मोन्मनीभूस्त्वमेकम् ॥३१९॥

अथानन्तर किसी दिन अंजना बोली कि हे सखि ! मेरी कूख चंचल हो रही है और मैं व्याकुल-सी हुई जा रही हूँ, यह क्या होगा ? ॥३०५॥ तब वसन्तमालाने कहा कि हे शोभने ! अवश्य ही तेरे प्रसवका समय आ पहुँचा है इसलिए सुखसे बैठ जाओ ॥३०६॥ तदनन्तर वसन्तमालाने कोमल पल्लवोंसे शय्या बनायी सो उसपर, जिस प्रकार पूर्व दिशा सूर्यको उत्पन्न करती है उसी प्रकार अंजना सुन्दरीने पुत्र उत्पन्न किया ॥३०७॥ पुत्र उत्पन्न होते ही उसके शरीर सम्बन्धी तेजसे गुफाका समस्त अन्धकार नष्ट हो गया और गुफा ऐसी हो गयी मानो सुवर्णकी ही बनी हो ॥३०८॥ यद्यपि वह हर्षका समय था तो भी अंजना दोनों कुलोंका स्मरण कर दीनताको प्राप्त हो रही थी और इसीलिए वह पुत्रको गोदमें ले रोने लगी ॥३०९॥ वह विलाप करने लगी कि हे वत्स ! मनुष्यके लिए भय उत्पन्न करनेवाले इस सघन वनमें मैं तेरा जन्मोत्सव कैसे करूँ ? ॥३१०॥ यदि तू पिता अथवा नानाके घर उत्पन्न हुआ होता तो मनुष्योंको उन्मत्त बना देनेवाला महा-आनन्द मनाया जाता ॥३११॥ सुन्दर नेत्रोंसे सुशोभित तेरे इस मुखचन्द्रको देखकर संसारमें किस सहृदय मनुष्यको आश्चर्य उत्पन्न नहीं होगा ॥३१२॥ क्या करूँ ? मैं मन्दभागिनी सब वस्तुओंसे रहित हूँ। विधाताने मुझे यह सर्वदुःख-दायिनी अवस्था प्राप्त करायी है ॥३१३॥ चूँकि संसारके प्राणी सब वस्तुओंसे पहले दीर्घायुष्यकी ही इच्छा रखते हैं इसलिए हे वत्स ! मेरा आशीर्वाद है कि तू उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त जीवित रहे ॥३१४॥ तत्काल प्राण हरण करनेवाले ऐसे जंगलमें पड़ी रहकर भी जो मैं जीवित हूँ यह तुम्हारे पुण्य कर्मका ही प्रभाव है ॥३१५॥ इस प्रकार वचन बोलती हुई अंजनासे हितकारिणी सखीने कहा कि हे देवि ! चूँकि तुमने ऐसा पुत्र प्राप्त किया है इसलिए तुम कल्याणोंसे परिपूर्ण हो ॥३१६॥ यह पुत्र उत्तम लक्षणोंसे युक्त दिखाई देता है। इसका यह शुभ सुन्दर शरीर अत्यधिक सम्पदाको धारण कर रहा है ॥३१७॥ जिनपर भ्रमर संगीत कर रहे हैं और जिनके कोमल पल्लव हिल रहे हैं ऐसी ये लताएँ तुम्हारे पुत्रके जन्मोत्सवसे मानो नृत्य ही कर रही हैं ॥३१८॥ उत्कट तेजको धारण करनेवाले इस बालकके प्रभावसे सब कुछ ठीक होगा। तुम व्यर्थ ही खेद-खिन्न न हो ॥३१९॥

---

१. गोचरम् म. । २. दैन्यप्राप्ता म., ज., क., ख. । ३. किं मयैतस्मिन् म. ।

पूर्वं तयोः समालापे वर्तमाने नभस्तले । क्षणेनाविरभूत्तुङ्गं विमानं भास्करप्रभम् ॥३२०॥
ततो वसन्तमाला तं दृष्ट्वा देव्यै न्यवेदयत् । विप्रलापं ततो भूयः सैवमाशङ्क्याकरोत् ॥३२१॥
कोऽप्यकारणवैरी मे [1]किमेषोऽपनयेत् सुतम् । उताहो बान्धवः कश्चिदवैदेष समागतः ॥३२२॥
विप्रलापं ततः श्रुत्वा तद्विमानं चिरं स्थितम् । अवातरत्कृपायुक्तो विद्याभृद्दयिदक्षणात् ॥३२३॥
स्थापयित्वा गुहाद्वारि विमानं स ततोऽविशत् । पत्नीभिः सहितः शङ्कां वहमानो महानयम् ॥३२४॥
वसन्तमालया दत्ते स्वागतेऽसौ सुमानसः । उपाविशत्स्वभृत्येन प्रापिते च समासने ॥३२५॥
ततः क्षणमिव स्थित्वा स भारत्या गभीरया । सारङ्गानुत्सुकी[2]कुर्वन् घनगर्जितशङ्किनः ॥३२६॥
ऊचे तां विनयं बिभ्रत्परं स्वागतदायिनीम् । दशनद्योतनया कुर्वन् बालभासं [3]विमिश्रिताम् ॥३२७॥
सुमर्यादे वदेयं का दुहिता कस्य वा शुभा । पत्नी वा कस्य कस्माद्वा महारण्यमिदं श्रिता ॥३२८॥
घटते नाकृतेरस्याः समाचारो विनिन्दितः । ततः कथमियं प्राप्ता विरहं सर्वबन्धुभिः ॥३२९॥
भवन्त्येवाथवा लोके प्रायोऽकारणवैरिणः । माध्यस्थ्येऽपि निष्पन्नानां प्रेरिताः पूर्वकर्मभिः ॥३३०॥
ततो दुःखभरोद्वेलबाष्पसंरुद्धकण्ठिका । कृच्छ्रेणोवाच [4]सा मन्दं भूतलन्यस्तधीक्षणा ॥३३१॥
महानुभाव वाचैव ते विशिष्टं मनः शुभम् । रोगमूलस्य हि च्छाया न स्निग्धा जायते तरोः ॥३३२॥
मादृग्निवेदनस्थानं गुणिनस्त्वादृशा यतः । निवेदयामि ते तेन शृणु जिज्ञासितं पदम् ॥३३३॥
दुःखं हि नाशमायाति सज्जनाय निवेदितम् । महतां ननु शौलीयं यदापन्नार्तितारणम् ॥३३४॥

इस प्रकार उन दोनों सखियोंमें वार्तालाप चल ही रहा था कि उसी क्षण आकाशमें सूर्यके समान प्रभावाला एक ऊँचा विमान प्रकट हुआ ॥३२०॥ तदनन्तर वसन्तमालाने वह विमान देखकर अंजनाको दिखलाया सो अंजना आशंकासे पुनः ऐसा विप्रलाप करने लगी कि ॥३२१॥ क्या यह मेरा कोई अकारण वैरी है जो पुत्रको छीन ले जायेगा ? अथवा कोई मेरा भाई ही आया है ॥३२२॥ तदनन्तर अंजनाका उक्त विप्रलाप सुनकर वह विमान देर तक खड़ा रहा फिर कुछ देर बाद एक दयालु विद्याधर आकाशांगणसे नीचे उतरा ॥३२३॥ गुफाके द्वारपर विमान खड़ा कर वह विद्याधर भीतर घुसा। उसकी पत्नियाँ उसके साथ थीं और वह मन-ही-मन शंकित हो रहा था ॥३२४॥ वसन्तमालाने उसका स्वागत किया। तदनन्तर अपने सेवकके द्वारा दिये हुए सम आसनपर वह सहृदय विद्याधर बैठ गया ॥३२५॥ तत्पश्चात् क्षणभर ठहरकर अपनी गम्भीर वाणी-से मेघगर्जनाकी शंका करनेवाले चातकोंको उत्सुक करता हुआ बड़ी विनयसे स्वागत करनेवाली वसन्तमालासे बोला। बोलते समय वह अपने दाँतोंकी कान्तिसे बालककी कान्तिको मिश्रित कर रहा था ॥३२६-३२७॥ उसने कहा कि हे सुमर्यादे ! बता यह किसकी लड़की है ? किसकी शुभ-पत्नी है और किस कारण इस महावनमें आ पड़ी है ? ॥३२८॥ इसकी आकृतिसे निन्दित आचार-का मेल नहीं घटित होता। फिर यह समस्त बन्धुजनोंके साथ इस विरहको कैसे प्राप्त हो गयी ? ॥३२९॥ अथवा यह संसार है इसमें माध्यस्थ्यभावसे रहनेवाले लोगोंके पूर्व कर्मोंसे प्रेरित अकारण वैरी हुआ ही करते हैं ॥३३०॥

तदनन्तर दुःखके भारसे अत्यधिक निकलते हुए बाष्पोंसे जिसका कण्ठ रुक गया था ऐसी वसन्तमाला पृथ्वीपर दृष्टि डालकर धीरे-धीरे बोली ॥३३१॥ कि हे महानुभाव ! आपके वचनसे ही आपके विशिष्ट शुभ हृदयका पता चलता है क्योंकि जो वृक्ष रोगका कारण होता है उसकी छाया स्निग्ध अथवा आनन्ददायिनी नहीं होती है ॥३३२॥ चूँकि आप-जैसे गुणी मनुष्य अभिप्राय प्रकट करनेके पात्र हैं अतः आपके लिए जिसे आप जानना चाहते हैं वह कहती हूँ, सुनिए ॥३३३॥ यह नीति है कि सज्जनके लिए बताया हुआ दुःख नष्ट हो जाता है क्योंकि

---

१. किमथोपनयेत्सुतम् म. । २. -नुत्सुकीकुर्वन् म. । ३. विमिश्रितम् म. । ४. सानन्दं ख., ज., म., ब. ।

शृण्वेषा विष्टपव्यापियशसो विमलाशयः । सुता महेन्द्रराजस्य नामतः प्रथिताञ्जना ॥३३५॥
प्रह्लादराजपुत्रस्य गुणाकूपारचेतसः । पत्नी पवनवेगस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥३३६॥
सोऽन्यदा स्वैरविज्ञातः कृत्वास्यां गर्भसंभवम् । वासनाज्जनकस्यागाद्रावणस्य सुहृद्युधे ॥३३७॥
दुःस्वभावतया इवश्रूवा ततः कारुण्यमुक्तया । मूढया जानकं गेहं प्रेषितेयं मलोज्झिता ॥३३८॥
ततो मादापितास्यस्याः [1]स्थानं भीतेरकीर्तितः । अलीकादपि हि प्रायो दोषाद्बिभ्यति सज्जनाः ॥३३९॥
सेयमालम्बनैर्मुक्ता सकलैः कुलबालिका । मृगीसामान्य[2]मध्यस्थान्महारण्यं समं मया ॥३४०॥
एतत्कुलक्रमायाता भृत्यास्म्यस्याः सुचेतसः । विश्रम्भपदतां नीता प्रसादपरयानया ॥३४१॥
सेयमद्य प्रसूता तु वने नानोपसर्गके । न जानामि कथं साध्वी भविष्यति सुखाश्रया ॥३४२॥
निवेदितमिदं साधोर्वृत्तमस्याः पुलाकतैः[3] । सकलं तु न शक्नोमि कर्तुं दुःखनिवेदनम् ॥३४३॥
अथैतदीयसंतापै[4]र्विलीनस्नेहपूरितात् । अमान्तीव निरैद्धस्य हृदयात्साधु भारती ॥३४४॥
स्वजीया मम साध्वि त्वं चिरकालवियोगतः । प्रायेण नाभिजानामि रूपान्तरपरिग्रहात् ॥३४५॥
पिता विचित्रभानुर्मे माता सुन्दरमालिनी । नामतः प्रतिसूर्योऽहं द्वीपे हनूरुहाभिधे ॥३४६॥
इत्युक्त्वा वस्तु यद्वृत्तं कौमारे सकलं स तत् । अञ्जनायै पतद्बाष्पनयनस्तमवादयत् ॥३४७॥
निर्ज्ञातमातुलाथासौ पूर्ववृत्तनिवेदनात् । तस्य कण्ठं [5]समासज्य रुरोद [6]चिरमध्वनि ॥३४८॥
तस्यास्तत्सकलं दुःखं बाष्पेण सह निर्गतम् । स्वजनस्य हि संप्राप्तावेषैव जगतः स्थितिः ॥३४९॥

आपत्तिमें पड़े हुएका उद्धार करना यह महापुरुषोंकी शैली है ॥३३४॥ सुनिए, यह लोकव्यापी यशसे युक्त, निर्मल हृदयके धारक राजा महेन्द्रकी पुत्री है, अंजना नामसे प्रसिद्ध है और जिसका चित्त गुणोंका सागर है ऐसे राजा प्रह्लादके पुत्र पवनवेगकी प्राणोंसे अधिक प्यारी पत्नी है ॥३३५-३३६॥ किसी एक समय वह आत्मीयजनोंकी अनजानमें इसके गर्भ धारण कर पिताकी आज्ञासे युद्धके लिए चला गया। वह रावणका मित्र जो था ॥३३७॥ यद्यपि यह अंजना निर्दोष थी तो भी स्वभावकी दुष्टताके कारण दयाशून्य मूर्ख सासने इसे पिताके घर भेज दिया ॥३३८॥ परन्तु अपकीर्तिके भयसे पिताने भी इसके लिए स्थान नहीं दिया सो ठीक ही है क्योंकि प्रायःकर सज्जन पुरुष मिथ्यादोषसे भी डरते रहते हैं ॥३३९॥ अन्तमें इस कुलवती बालाको जब सब सहारोंने छोड़ दिया तब यह निराश्रय हो मेरे साथ हरिणीके समान इस महावनमें रहने लगी ॥३४०॥ इस सुहृदयाकी मैं कुल-परम्परासे चली आयी सेविका हूँ सो सदा प्रसन्न रहनेवाली इसने मुझे अपना विश्वासपात्र बनाया है ॥३४१॥ इसी अंजनाने आज नाना उपसर्गोंसे भरे वनमें पुत्र उत्पन्न किया है। मैं नहीं जानती कि यह साध्वी पतिव्रता सुखका आश्रय कैसे होगी ॥३४२॥ आप सत्पुरुष हैं इसलिए संक्षेपसे मैंने इसका यह वृत्तान्त कहा है। इसने जो दुःख भोगा है उसे सम्पूर्ण रूपमें कहनेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥३४३॥ अथानन्तर उस विद्याधरके हृदयसे वाणी निकली सो ऐसी जान पड़ती थी मानो अंजनाके सन्तापसे पिघले हुए स्नेहसे उसका हृदय पूर्णरूपसे भर गया था अतः वाणीको भीतर ठहरनेके लिए स्थान ही नहीं बचा हो ॥३४४॥ उसने कहा कि हे पतिव्रते ! तू मेरी भानजी है। चिरकालके वियोगसे प्रायः तेरा रूप बदल गया है इसलिए मैं पहचान नहीं सका हूँ ॥३४५॥ मेरे पिता विचित्रभानु और माता सुन्दरमालिनी हैं। मेरा नाम प्रतिसूर्य है और हनुरुह नामक द्वीपका रहनेवाला हूँ ॥३४६॥ इतना कहकर जो-जो घटनाएँ कुमारकालमें हुई थीं वे सब उसने रोते-रोते अंजनासे कहलायीं ॥३४७॥ तदनन्तर जब पूर्ववृत्तान्त कहनेसे अंजनाने मामाको पहचान लिया तब वह उसके गलेमें लगकर चिरकाल तक सिसक-सिसककर रोती रही ॥३४८॥ अंजनाका वह

---

१. जनकस्येदं जानकम् । जनकं म., ब. । २. स्थानभीतेः म. । ३. सामान्यम् + अधि + अस्थात् । ४. भूत्या-स्म्यस्या म. । ५. संक्षेपतः । ६. संतापो म. । ७. समारुह्य म. । ८. मूर्धनि म., ब. ।

तयोः स्नेहभरेणैवं कुर्वतोरथ रोदनम् । वसन्तमालयाप्युच्चैरुदितं पार्श्वयातया ॥३५०॥
रुदत्सु तेषु कारुण्यादरुदंस्तत्रोचितः । कृतरोदास्वथैतासु रुरुवू रुरुयोषितः[1] ॥३५१॥
गुहावदनमुक्तेन प्रतिनादेन भूयसा । पर्वतोऽपि रुरोदैवं संततैर्निर्झराम्बुभिः ॥३५२॥
ततः शब्दमयं सर्वं तद्वयभूत तदा वनम् । शकुन्तैरपि कारुण्यादाकुलैः कृतनिस्वनम् ॥३५३॥
सान्त्वयित्वा ततस्तस्या दत्तेनोदकवाहिना । वारिणाक्षालयद्वक्त्रं स्वस्य च प्रतिभास्करः[2] ॥३५४॥
पारम्पर्येण तेनैव ततस्तत्पुनरप्यभूत् । वनं मुक्तमहाशब्दं श्रोतुं वार्तामिवानयोः ॥३५५॥
ततः क्षणमिव स्थित्वा निष्क्रान्तौ दुःखगह्वरात् । अपृच्छतां मिथो वार्तां कुलेऽकथयतां च तौ ॥३५६॥
संभाषणं ततश्चक्रे तत्स्त्रीणामञ्जना क्रमात् । स्खलन्ति न विधातव्ये वनेऽपि गुणिनो जनाः ॥३५७॥
जगाद मातुलं चैवं पूज्य जातस्य[3] मेऽखिलम् । निवेदय यथावस्थं दिनशीतिःकदम्बकम् ॥३५८॥
इत्युक्ते पार्श्वगं नाम्ना ज्योतिर्गर्भविशारदम् । सांवत्सरमपृच्छत्स जातकर्म यथास्थितम् ॥३५९॥
ततः सांवत्सरोऽवोचत्कल्याणस्य निवेदय । जन्मसंबन्धिनी वेलामित्युक्ते चाऽवदज्जना ॥३६०॥
अर्धयामावशेषायां रजन्यामत्र बालकः । प्रजात इति सख्या च कथितं विप्रमादया ॥३६१॥
मौहूर्तेन ततोऽवादि यथास्य वपुराचितम् । सुलक्षणैस्तथा मन्ये दारकं सिद्धिभाजनम् ॥३६२॥
तथापि यदसंतोषः क्रियेयं लौकिकीति वा । ततः शृणु पुलाकेन कथयाम्यस्य जीवनम् ॥३६३॥
वर्तते तिथिरद्येयं चैत्रस्य बहुलाष्टमी । नक्षत्रं श्रवणः स्वामी वासरस्य विभावसुः ॥३६४॥

समस्त दुःख आँसुओंके साथ निकल गया सो ठीक ही है क्योंकि आत्मीयजनोंके मिलनेपर संसारकी ऐसी ही स्थिति होती है ॥३४९॥ इस तरह स्नेहके भारसे जब दोनों रो रहे थे तब पासमें बैठी वसन्तमाला भी जोरसे रो पड़ी ॥३५०॥ उन सबके रोनेपर विद्याधरकी स्त्रियाँ भी करुणावश रोने लगीं और इन सबको रोते देख हरिणियाँ भी रोने लगीं ॥३५१॥ उस समय गुफारूपी मुखसे जोरकी प्रतिध्वनि निकल रही थी इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो पर्वत भी झरनोंके बहाने बड़े-बड़े आँसू ढालता हुआ रो रहा था ॥३५२॥ और पक्षी भी दयावश आकुल होकर शब्द कर रहे थे इसलिए वह सम्पूर्ण वन उस समय शब्दमय हो गया था ॥३५३॥ तदनन्तर प्रतिसूर्य विद्याधरने सान्त्वना देनेके बाद जल लानेवाले नौकरके द्वारा दिये हुए जलसे अंजनाका और अपना मुँह धोया ॥३५४॥ पहले जिस क्रमसे वन शब्दायमान हो गया था उसी क्रमसे अब पुनः शब्दरहित हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो इन दोनोंकी वार्ता सुननेके लिए ही चुप हो रहा हो ॥३५५॥ तदनन्तर क्षण-भर ठहरकर जब दोनों दुःखरूपी गर्तसे बाहर निकले तब उन्होंने परस्पर कुशल-वार्ता पूछी और अपने-अपने कुलका हाल एक दूसरेको बताया ॥३५६॥ इसके बाद अंजनाने प्रतिसूर्यकी स्त्रियोंके साथ क्रमसे सम्भाषण किया सो ठीक ही है क्योंकि गुणीजन करने योग्य कार्यमें कभी नहीं चूकते हैं ॥३५७॥ अंजनाने मामासे कहा कि पूज्य ! मेरे पुत्रके समस्त ग्रह कैसी दशामें हैं सो बताइए ॥३५८॥ ऐसा कहनेपर मामाने ज्योतिष विद्यामें निपुण पार्श्वग नामक ज्योतिषीसे पुत्रके यथावस्थित जातकर्मको पूछा अर्थात् पुत्रकी ग्रह-स्थिति पूछी ॥३५९॥ तब ज्योतिषीने कहा कि इस कल्याणस्वरूप पुत्रका जन्म-समय बताओ। ज्योतिषीके ऐसा पूछनेपर अंजनाने समय बताया ॥३६०॥ साथ ही प्रमादको दूर करनेवाली सखी वसन्तमालाने भी कहा कि आज रात्रिमें जब अर्धप्रहर बाकी था तब बालक उत्पन्न हुआ था ॥३६१॥ तदनन्तर मुहूर्तके जाननेवाले ज्योतिषीने कहा कि इसका शरीर जैसा शुभलक्षणोंसे युक्त है उससे जान पड़ता है कि बालक सब प्रकारकी सिद्धियोंका भाजन होगा ॥३६२॥ फिर भी यदि सन्तोष नहीं है अथवा ऐसा ख्याल है कि यह क्रिया लौकिकी है तो सुनो मैं संक्षेपसे इसका जीवन कहता हूँ ॥३६३॥ आज

---

१. मुग्धः । २. प्रतिसूर्यः । ३. पुत्रस्य । ४. यथास्य च पुराचितम् म. ।

आदित्यो वर्तते मेषे भवनं तुङ्गमाश्रितः । चन्द्रमा मकरे मध्ये भवने समवस्थितः ॥३६५॥
लोहिताङ्गो वृषमध्ये मध्ये मीने विधोः सुतः । कुलीरे भिषणोऽत्युच्चैरध्यास्य भवनं स्थितः ॥३६६॥
मीने दैत्यगुरुस्तुङ्गस्तस्मिन्नेव शनैश्चरः । मीनस्थैवोदयोऽप्यासीत्तदा नृपतिपुङ्गव ॥३६७॥
अनैश्चरं समग्राक्षस्तिग्मभानुर्निरीक्षते[2] । अर्धदृष्ट्या महीपुत्रो दिवसस्य पतिं तथा ॥३६८॥
[4]गुरुः पादोनया दृष्ट्या पतिमह्नोऽवलोकते । अर्धदृष्ट्या गिरामीशो वासरस्येक्षते विभुः ॥३६९॥
[5]चन्द्रं समस्तया दृष्ट्या [6]वचसां पतिरीक्षते । असावप्येवमेवास्य [7]विदध्यात्यवलोकनम् ॥३७०॥
गुरुः शनैश्चरं पादन्यूनया वीक्षते दृशा । अर्धावलोकनेनासौ भजते बृहतां पतिम् ॥३७१॥
गुरुर्दैत्यगुरुं दृष्ट्वा [8]वीक्षते पादहीनया । दृष्टिं तथाविधामेव पातयत्येष तत्र च ॥३७२॥
ग्रहाणां परिशिष्टानां नास्त्यपेक्षा परस्परम् । उदयक्षेत्रकालानां बलं चास्ति परं तदा ॥३७३॥
[9]राज्यं निवेदयत्यस्य रविर्भौमो गुरुस्तथा । शनैश्चरः सुयोगित्वं निवेदयति सिद्धिदम् ॥३७४॥
एकोऽपि भारतीनाथ[10] स्तुङ्गस्थानस्थितो भवन् । सर्वकल्याणसंप्राप्तौ कारणत्वं प्रपद्यते ॥३७५॥
ब्राह्मो नाम तदा योगो मुहूर्तश्च शुभश्रुतिः । एतौ कथयतो ब्राह्मस्थानसौख्यसमागमम् ॥३७६॥
एवमेतस्य जातस्य ज्योतिश्चक्रमिदं स्थितम् । सूचयत्यखिलं वस्तु सर्वदोषविवर्जितम् ॥३७७॥
[11]रत्नानां सहस्रेण कालज्ञं पूजितं ततः । प्रतिसूर्यो विधायोचे भागिनेयीं ससंमदः ॥३७८॥
एहीदानीं पुरं यामो वत्से हनूरुहं मम । जातकर्मास्य बालस्य तत्र सर्वं भविष्यति ॥३७९॥
एवमुक्त्वा विधायाङ्के [12]पृथुकं जिनवन्दनाम् । कृत्वा स्थानपतिं देवं क्षमयित्वा पुनः पुनः ॥३८०॥

यह चैत्रके कृष्ण पक्षकी अष्टमी तिथि है, श्रवण नक्षत्र है, सूर्य दिनका स्वामी है ॥३६४॥ सूर्य मेषका है सो उच्च स्थानमें बैठा है और चन्द्रमा मकरका है सो मध्यगृहमें स्थित है ॥३६५॥ मंगल वृषका है सो मध्य स्थानमें बैठा है। बुध मीनका है सो भी मध्य स्थानमें स्थित है और बृहस्पति कर्कका है सो भी अत्यन्त उच्च स्थानमें बैठा है ॥३६६॥ शुक्र और शनि दोनों ही मीनके हैं तथा उच्च स्थानमें आरूढ़ हैं। हे राजाधिराज ! उस समय मीनका ही उदय था ॥३६७॥ सूर्य पूर्ण दृष्टिसे शनिको देखता है और मंगल सूर्यको अर्धदृष्टिसे देखता है ॥३६८॥ बृहस्पति पौन दृष्टिसे सूर्यको देखता है और सूर्य बृहस्पतिको अर्धदृष्टिसे देखता है ॥३६९॥ बृहस्पति चन्द्रमाको पूर्ण दृष्टिसे देखता है और चन्द्रमा भी अर्धदृष्टिसे बृहस्पतिको देखता है ॥३७०॥ बृहस्पति शनिको पौन दृष्टिसे देखता है और शनि बृहस्पतिको अर्धदृष्टिसे देखता है ॥३७१॥ बृहस्पति शुक्रको पौन दृष्टिसे देखता है और शुक्र भी बृहस्पतिपर पौन दृष्टि डालता है ॥३७२॥ अवशिष्ट ग्रहोंकी पारस्परिक अपेक्षा नहीं है। उस समय इसके ग्रहोंके उदय-क्षेत्र और कालका अत्यधिक बल है ॥३७३॥ सूर्य, मंगल और बृहस्पति इसके राज्ययोगको सूचित कर रहे हैं और शनि मुक्तिदायी योगको प्रकट कर रहा है ॥३७४॥ यदि एक बृहस्पति ही उच्च स्थानमें स्थित हो तो समस्त कल्याणकी प्राप्तिका कारण होता है फिर इसके तो समस्त शुभग्रह उच्च स्थानमें स्थित हैं ॥३७५॥ उस समय ब्राह्मनामक योग और शुभ नामका मुहूर्त था सो ये दोनों ही ब्राह्मस्थान अर्थात् मोक्ष सम्बन्धी सुखके समागमको सूचित करते हैं ॥३७६॥ इस प्रकार इस पुत्रका यह ज्योतिश्चक्र सर्व वस्तुको सर्व दोषोंसे रहित सूचित करता है ॥३७७॥ तदनन्तर राजाने हजार मुद्रा द्वारा ज्योतिषीका सम्मान कर हर्षित हो अंजनासे कहा कि ॥३७८॥ आओ बेटी ! अब हम लोग हनूरुह नगर चलें। वहीं इस बालकका सब जन्मोत्सव होगा ॥३७९॥ मामाके ऐसा कहनेपर अंजना पुत्रको

---

१. नृपपुङ्गवः म.। २. निरीक्षितः म.। ३. मङ्गलग्रहः। ४. गुरुपादनया म.। ५. चन्द्रसमस्तया म.। ६. बृहस्पतिः। ७. विदधात्यवलोकनम्। ८. वीक्ष्यते म., ज.। ९. राज्यं निवेदयंस्तस्य रविभूमौ गुरुस्तथा म.,ब., क., ज.। १०. गुरुः। ११. धनशतानाम्। १२. विधायाङ्कपृथुकं म.।

निष्क्रान्ता सा गुहावासात् स्वजनौघसमन्विता । वनश्रीरिव जाता च विमानस्यान्तिकं स्थिता ॥३८१॥
ततस्तत्किङ्किणीजालैः[1] प्रक्वणत्पवनेरितैः । सनिर्झरमिवोदारैर्मुक्ताहारैः सुनिर्मलैः ॥३८२॥
लम्बलम्बूषकं काञ्चकदलीवनराजितम् । दिवाकरकरस्पर्शस्फुरत्कनकबुद्बुदम् ॥३८३॥
नानारत्नकरासङ्गजातानेकसुरायुधम् । वैजयन्तीशतैर्नानावर्णैः कल्पतरूपमम् ॥३८४॥
चित्ररत्नविनिर्माणं नानारत्नसमाचितम् । दिव्यं परिवृतं स्वर्गलोकेनेव समन्ततः ॥३८५॥
दृष्ट्वासौ पृथुको मातुरङ्कात् कौतुकसस्मितः । उत्पत्य प्रविविक्षुः सन्नपप्लद्गिरिगह्वरं ॥३८६॥
हाहाकारं ततः कृत्वा लोकस्तस्य समातृकः । स गतोऽनुपदं ज्ञातुमुद्दन्तमिति विह्वलः ॥३८७॥
चकार विप्रलापं च सुदीनमिभभञ्जना । तिरश्चामपि कुर्वाणा करुणाकोमलं मनः ॥३८८॥
हा पुत्र किमिदं वृत्तं दैवेन किमनुष्ठितम् । प्रदर्श्य रत्नसंपूर्णं निधानं हरता पुनः ॥३८९॥
पत्यसङ्गमदुःखेन ग्रस्तायाः मे भवानभूत् । जीवितालम्बनं छिन्नं कथं तदपि कर्मणा ॥३९०॥
ततः सहस्रशः खण्डैर्नीतायां[2] सुमहास्वनम् । शिलायां पातवेगेन तदधीवं मुखस्थितम् ॥३९१॥
अन्तरास्यकृताङ्गुष्ठं क्रीडन्तं स्मितशोभितम् । उत्तानं प्रचलत्पाणिचरणं शुभविग्रहम् ॥३९२॥
मन्दमारुतसंपृक्तरक्तोत्पलवनप्रभम् । कुर्वाणं सकलं पिङ्गं तेजसा गिरिगह्वरम् ॥३९३॥
ततोऽनघशरीरं तं जनस्तौ पृथुविस्मया । गृहीत्वा शिरसि घ्रात्वा चक्रे वक्षःस्थलस्थितम् ॥३९४॥

गोदमें लेकर जिनेन्द्र देवकी वन्दना कर और गुहाके स्वामी गन्धर्वदेवसे बार-बार क्षमा कराकर आत्मीयजनोंके साथ गुहासे बाहर निकली। विमानके पास खड़ी अंजना वनलक्ष्मीके समान जान पड़ती थी ॥३८०-३८१॥

तदनन्तर जो वायुसे प्रेरित क्षुद्रघण्टिकाओंके समूहसे शब्दायमान था, जो लटकते हुए अतिशय निर्मल मोतियोंके उत्तम हारोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो झरनोंसे सहित ही हो, जिसमें गोले फानूस लटक रहे थे, जो काचनिर्मित केलोंके वनोंसे सुशोभित था, जिसमें लगे हुए सुवर्णके गोले सूर्यकी किरणोंका सम्पर्क पाकर चमक रहे थे, नाना रत्नोंकी किरणोंके संगमसे जिसमें इन्द्रधनुष उठ रहा था, रंग-बिरंगी सैकड़ों पताकाओंसे जो कल्पवृक्षके समान जान पड़ता था, चित्र-विचित्र रत्नोंसे जिसकी रचना हुई थी, जो नाना प्रकारके रत्नोंसे खचित था, दिव्य था और ऐसा जान पड़ता था मानो सब ओरसे स्वर्गलोकसे घिरा हुआ ही हो ऐसे विमानको देखकर कौतुकसे मुसकराता हुआ बालक उछलकर स्वयं प्रवेश करनेकी इच्छा करता मानो माताकी गोदसे छूटकर पर्वतकी गुफामें जा पड़ा ॥३८२-३८६ तदनन्तर माता अंजनाके साथ-साथ सब लोग हाहाकार कर उस बालकका समाचार जाननेके लिए शीघ्र ही विह्वल होते हुए वहाँ गये ॥३८७॥ अंजनाने दीनतासे ऐसा विलाप किया कि जिसे सुनकर तिर्यंचोंके भी मन करुणासे कोमल हो गये ॥३८८॥ वह कह रही थी कि हाय पुत्र ! यह क्या हुआ ? रत्नोंसे परिपूर्ण खजाना दिखाकर फिर उसे हरते हुए विधाताने यह क्या किया ? ॥३८९॥ पतिके वियोग दुःखसे ग्रसित जो मैं हूँ सो मेरे जीवनका अवलम्बन एक तू ही था पर दैवने उसे भी छीन लिया ॥३९०॥

तदनन्तर सब लोगोंने देखा कि पतन सम्बन्धी वेगसे हजार टुकड़े हो जानेके कारण जो महाशब्द कर रही थी ऐसी शिलापर बालक सुखसे पड़ा है ॥३९१॥ वह मुखके भीतर अँगूठा देकर खेल रहा है, मन्द मुसकानसे सुशोभित है, चित्त पड़ा है, हाथ पैर हिला रहा है, शुभ शरीरका धारक है, मन्द-मन्द वायुसे हिलते हुए लाल तथा नीले कमलवनके समान उसकी कान्ति है, और अपने तेजसे पर्वतकी समस्त गुफाको पीत वर्ण कर रहा है ॥३९२-३९३॥ तदनन्तर निर्दोष

---

१. जाले म. । २. मुहुस्त-म. । ३. नीयते म. ।

प्रतिसूर्यस्ततोऽवोचद्महो चित्रमिदं परम् । वज्रेणेव पदेनैव शिलाजातं विचूर्णितम् ॥३९५॥
अर्भकस्य सतोऽप्येषा शक्तिः सुरवरातिगा । यौवनस्थस्य किं वाच्यं चरमेयं ध्रुवं तनुः ॥३९६॥
इति ज्ञात्वा परीत्य त्रिः शिरःपाणिसरोरुहः । सहाङ्गनासमूहेन चकारास्या नमस्कृतिम् ॥३९७॥
असौ तस्य वरस्त्रीभिर्नेत्रभाभिः कृतस्मितम् । सिताऽसिताऽरुणाम्भोजमालाभिरिव पूजितम् ॥३९८॥
सपुत्रां यानशालेऽञ्जनिजेदां सोऽगमत् । प्रतिसूर्यो निजं स्थानं ध्वजतोरणभूषितम् ॥३९९॥
ततः प्रत्युद्गतः पौरैर्नानामङ्गलधारिभिः । स विवेश पुरं तूर्यनादव्याप्तनभस्तलम् ॥४००॥
तत्र जन्मोत्सवस्तस्य महान् विद्याधरैः कृतः । आखण्डलसमुत्पत्तौ गीर्वाणैरिव दर्शया ॥४०१॥
जन्म लेभे यतः शैले शैलं चाचूर्णयत्ततः । श्रीशैल इति नामास्य चक्रे मात्रा ससूर्यया ॥४०२॥
पुरे हनूरुहे यस्माज्जातः संस्कारमाप्तवान् । हनूमानिति तेनागात्प्रसिद्धिं स महीतले ॥४०३॥
सर्वलोकमनोनेत्रमहोत्सववपुःक्रियः । तस्मिन् सुरकुमाराभः पुरे रेमे सुकान्तिमान् ॥४०४॥

संभवत्यहह भूधररिपुः पविरपि कुसुमं वक्षिरपीन्दुवादशिशिरं पृथु कमलवनम् ।
खड्गलतापि चारुवनितासुमृदुभुजलता प्राणिषु पूर्वजन्मजनितासुचरितबलतः ॥४०५॥

शरीरके धारक बालकको आश्चर्यसे भरी माताने उठाकर तथा शिरपर सूँघकर छातीसे लगा लिया ॥३९४॥ राजा प्रतिसूर्यने कहा कि अहो ! यह बड़ा आश्चर्य है कि बालकने वज्रकी तरह शिलाओंका समूह चूर्ण कर दिया ॥३९५॥ जब बालक होनेपर भी इसकी यह देवातिशायिनी शक्ति है तब तरुण होनेपर तो कहना ही क्या है ? निश्चित ही इसका यह शरीर अन्तिम शरीर है ॥३९६॥ ऐसा जानकर उसने, हस्त-कमल शिरसे लगा, तथा तीन प्रदक्षिणाएँ देकर अपनी स्त्रियोंके साथ बालकके उस चरम शरीरको नमस्कार किया ॥३९७॥ प्रतिसूर्यकी स्त्रियोंने अपने सफेद, काले तथा लाल नेत्रोंकी कान्तिसे उसे हँसते हुए देखा सो ऐसा जान पड़ता था मानो उन्होंने सफेद, नीले और लाल कमलोंकी मालाओंसे उसकी पूजा ही की हो ॥३९८॥

तदनन्तर प्रतिसूर्य पुत्रसहित अंजनाको विमानमें बैठाकर ध्वजाओं और तोरणोंसे सुशोभित अपने नगरकी ओर चला ॥३९९॥ तत्पश्चात् नाना मंगलद्रव्योंको धारण करनेवाले नगरवासी लोगोंने जिसकी अगवानी की थी ऐसे राजा प्रतिसूर्यने नगरमें प्रवेश किया। उस समय नगरका आकाश तुरही आदि वादित्रोंके शब्दसे व्याप्त हो रहा था ॥४००॥ जिस प्रकार इन्द्रका जन्म होनेपर स्वर्गमें देव लोग महान् उत्सव करते हैं उसी प्रकार हनूरुह नगरमें विद्याधरोंने उस बालकका बहुत भारी जन्मोत्सव किया ॥४०१॥ चूँकि बालकने शैल अर्थात् पर्वतमें जन्म प्राप्त किया था और उसके बाद शैल अर्थात् शिलाओंके समूहको चूर्ण किया था इसलिए माताने मामाके साथ मिलकर उसका 'श्रीशैल' नाम रखा था ॥४०२॥ चूँकि उस बालकने हनूरुह नगरमें जन्म संस्कार प्राप्त किये थे इसलिए वह पृथिवीतलपर 'हनूमान्' इस नामसे भी प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ ॥४०३॥ जिसके शरीरकी क्रियाएँ समस्त मनुष्योंके मन और नेत्रोंको महोत्सव उत्पन्न करनेवाली थीं, तथा जिसकी आभा देवकुमारके समान थी ऐसा वह उत्तम कान्तिका धारी बालक उस नगरमें क्रीड़ा करता था ॥४०४॥

गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! पूर्व जन्ममें संचित पुण्य कर्मके बलसे प्राणियोंके लिए पर्वतोंको चूर्ण करनेवाला वज्र भी फूलके समान कोमल हो जाता है। अग्नि भी चन्द्रमाकी किरणोंके समान शीतल विशाल कमलवन हो जाती है, और खड्गरूपी लता भी सुन्दर

---

१. वज्रेणैव म. ।

इत्यवगम्य दुःखकुशलाद्विरमत दुरितात् सजत सारशर्मचतुरे जिनवरचरिते ।
एष तपत्यहो परिवृतं जगदनवरतं व्याधिसहस्ररश्मिनिकरो ननु जननरविः ॥४०६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते हनूमत्संभवाभिधानं नाम सप्तदशं पर्व ॥१७॥

स्त्रियोंकी सुकोमल भुजलता बन जाती है ॥४०५॥ ऐसा जानकर दुःख देनेमें निपुण जो पापकर्म है उससे विरत होओ और श्रेष्ठ सुख देनेमें चतुर जो जिनेन्द्रदेवका चरित है उसमें लीन होओ। अहो! हजारों रोगरूपी किरणोंसे युक्त यह जन्मरूपी सूर्य समस्त संसारको निरन्तर बड़ी दृढ़ताके साथ सन्तप्त कर रहा है ॥४०६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरितमें हनूमान्‌के जन्मका वर्णन करनेवाला सत्रहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१७॥

अष्टादशं पर्व

इदं ते कथितं जन्म श्रीशैलस्य महात्मनः । शृणु संप्रति वृत्तान्तं वायोर्मगधमण्डन ॥१॥
[1]वायुना वायुनेवाशु गत्वाभ्यर्णं खरोक्षिणेः । लब्धादेशेन संयुध्य नानाशस्त्राकुले रणे ॥२॥
क्लमयुद्धश्चिरं खिन्नो [2]जलकान्तोऽपवर्तितः । आसस्तस्य [3]निमानोऽसौ पुष्कलः खरदूषणः ॥३॥
मुक्तश्च जलकान्तेन निनायं [4]खरदूषणः । कृत्वा [5]सन्धिमहं प्राप्य परमं राक्षसाधिपात् ॥४॥
अनुज्ञातोऽवहत् कान्तां हृदयेन खरान्वितः । जगामाभिजनं स्थानं महासामन्तमध्यगः ॥५॥
प्रविष्टश्च पुरं पौरैरभियातः सुमङ्गलैः । ध्वजतोरणमालाभिर्भासुराभिर्विभूषितम् ॥६॥
जगाम च निजं वेश्म दृष्टो वातायनस्थितैः । मुक्तप्रस्तुतकर्तव्यैः पौरनारीकदम्बकैः ॥७॥
विवेश च कृतार्घादिसंमानो मानिनां वरः । वाग्भिर्मङ्गलसाराभिः स्वजनैरभिनन्दितः ॥८॥
विधाय प्रणतिं तत्र गुरूणामितरैर्जनैः । नमस्कृतः क्षणं तस्थौ वार्ताभिर्वरमण्डपे ॥९॥
ततः प्रासादमारुक्षदञ्जनायाः समुत्सुकः । युक्तः प्रहसितेनैव पूर्वभावसमन्वितः ॥१०॥
रिक्तकं तस्य तं दृष्ट्वा प्राप्तादं प्राणतुल्यया । चेतनामुक्तदेहामं पपातेव मनः क्षणात् ॥११॥
ऊचे प्रहसितं चैव वयस्य किमिदं भवेत् । अञ्जनासुन्दरी नात्र दृश्यते पुष्करेक्षणा ॥१२॥

अथानन्तर गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे मगध देशके मण्डनस्वरूप श्रेणिक ! यह तो मैंने तुम्हारे लिए महात्मा श्रीशैलके जन्मका वृत्तान्त कहा। अब पवनंजयका वृत्तान्त सुनो ॥१॥ पवनंजय वायुके समान शीघ्र ही रावणके पास गया और उसकी आज्ञा पाकर नाना-शस्त्रोंसे व्याप्त युद्ध-क्षेत्रमें वरुणके साथ युद्ध करने लगा ॥२॥ चिरकाल तक युद्ध करनेके बाद वरुण खेद-खिन्न हो गया सो पवनंजयने उसे पकड़ लिया। खर-दूषणको वरुणने पहले पकड़ रखा था सो उसे छुड़ाया और वरुणको रावणके समीप ले जाकर तथा सन्धि कराकर उसका आज्ञाकारी किया। रावणने पवनंजयका बड़ा सम्मान किया ॥३-४॥ तदनन्तर रावणकी आज्ञा लेकर हृदयमें कान्ताको धारण करता हुआ पवनंजय महासामन्तोंके साथ शीघ्र ही अपने नगरमें वापस आ गया ॥५॥ उत्तमोत्तम मंगल द्रव्योंको धारण करनेवाले नगरवासी जनोंने जिसकी अगवानी की थी ऐसा पवनंजय देदीप्यमान ध्वजाओं, तोरणों तथा मालाओंसे अलंकृत नगरमें प्रविष्ट हुआ ॥६॥ तदनन्तर अपना प्रारम्भ किया हुआ कर्म छोड़ झरोखोंमें आकर खड़ी हुई नगरवासिनी स्त्रियोंके समूह जिसे बड़े हर्षसे देख रहे थे ऐसा पवनंजय अपने महलकी ओर चला ॥७॥ तत्पश्चात् जिसका अर्घ आदिके द्वारा सम्मान किया गया था और आत्मीयजनोंने मंगलमय वचनोंसे जिसका अभिनन्दन किया था ऐसे पवनंजयने महलमें प्रवेश किया ॥८॥ वहाँ जाकर इसने गुरुजनोंको नमस्कार किया और अन्य जनोंने इसे नमस्कार किया। फिर कुशलवार्ता करता हुआ क्षणभरके लिए सभामण्डपमें बैठा ॥९॥

तदनन्तर उत्कण्ठित होता हुआ अंजनाके महलमें चढ़ा। उस समय वह पहलेकी भावनासे युक्त था और अकेला प्रहसित मित्र ही उसके साथ था ॥१०॥ वहाँ जाकर जब उसने महलको प्राण-वल्लभासे रहित देखा तो उसका मन क्षण एकमें ही निर्जीव शरीरकी तरह नीचे गिर गया ॥११॥ उसने प्रहसितसे कहा कि मित्र ! यह क्या है ? यहाँ कमल-नयना अंजना सुन्दरी नहीं दिख

---

१. पवनञ्जयेन । २. रावणस्य । ३. वरुणः । ४. गृहीतः । ५. मूल्यभूतः- प्रतिभूः (जमानतदार इति हिन्दी)। ६. निमाय क., ख., ज.। निनाय्य म. । ७. खरदूषणम् ब. । ८. सन्ध्यमहं म. ।

गृहमेतत्तया शून्यं वनं मे प्रतिभासते । आकाशमेव वा क्षिप्रं तस्या वार्ताधिगम्यताम् ॥१३॥
आप्तवर्गात् परिज्ञाय वार्तां प्रहसितोऽवदत् । यथावत् सकलां तस्मै हृदये क्षोदकारिणीम् ॥१४॥
उक्त्वा स्वजनं सोऽथ समं मित्रेण तत्क्षणम् । महेन्द्रनगरं तेन प्रवृत्तो गन्तुमुन्मनाः ॥१५॥
तस्यासन्नभुवं प्राप्य मित्रमेवमभाषत । मन्यमानोऽङ्कसंप्राप्तां दयितां प्रमदान्वितः ॥१६॥
पश्य पश्य पुरस्यास्य वयस्य रमणीयताम् । अञ्जनासुन्दरी यत्र वर्तते चारुविभ्रमा ॥१७॥
कैलासकूटसंकाशा यत्र प्रासादपङ्क्तयः । उद्यानपादपैर्गुप्ताः प्रावृषेण्यघनप्रभैः ॥१८॥
इत्थंभूतं स संप्राप्तः पुरं पुरुषसत्तमः । सुहृदार्द्रीतचित्तेन विहितप्रतिभाषणः ॥१९॥
ततो जनौघतः श्रुत्वा संप्राप्तं पवनंजयम् । । अर्घादिनोपचारेण श्वसुरोऽस्य समागमत् ॥२०॥
पुरस्सरेण तेनासौ प्रीतियुक्तेन चेतसा । निजं प्रवेशितः स्थानं पौरैः सादरमीक्षितः ॥२१॥
विवेश भवनं चास्य कान्तादर्शनलालसः । संकथामिमुहूर्तं च तस्थौ [1]संवर्गणं भजन् ॥२२॥
ततस्तत्राप्यसौ कान्तामपश्यद्विरहातुरः । अपृच्छद् बालिकां कांचिदन्तर्भवनगोचराम्[2] ॥२३॥
अपि बालेऽत्र जानासि मत्प्रिया वर्ततेऽञ्जना । सावोचदेष नास्त्यत्र त्वत्प्रियेत्यसुखावहम् ॥२४॥
वज्रेणेव ततस्तस्य तेन वाक्येन चूर्णितम् । हृदयं पूरितौ कर्णौ तप्तक्षाराम्बुनेव च ॥२५॥
विद्युक्त इव जीवेन क्षणं चासीत् स निश्चलः । शोकप्रालेयसंपर्कविच्छायमुखपङ्कजः ॥२६॥
निर्गत्यासौ ततस्तस्माच्छ्वश्रूया [4]श्वासुरात् पुरात् । चक्राम धरणीं वार्तामधिगन्तुं [5]स्वयोषितः ॥२७॥

रही है ॥१२॥ उसके बिना यह घर मुझे वन अथवा आकाशके समान जान पड़ता है । अतः शीघ्र ही उसका समाचार मालूम किया जाये ॥१३॥ तदनन्तर आप्तवर्गसे सब समाचार जानकर प्रहसितने हृदयको क्षुभित करनेवाला सब समाचार ज्योंका त्यों पवनंजयको सुना दिया ॥१४॥ उसे सुन, पवनंजय आत्मीयजनोंको छोड़ उसी क्षण मित्रके साथ उत्कण्ठित होता हुआ महेन्द्रनगर जानेके लिए उद्यत हुआ ॥१५॥ महेन्द्रनगरके निकट पहुँचकर पवनंजय, प्रियाको गोदमें आयी समझ हर्षित होता हुआ मित्रसे बोला कि हे मित्र ! देखो, इस नगरकी सुन्दरता देखो जहाँ सुन्दर विभ्रमोंको धारण करनेवाली प्रिया विद्यमान है ॥१६-१७॥ और जहाँ वर्षाऋतुके मेघोंके समान कान्तिके धारक उद्यानके वृक्षोंसे घिरी महलोंकी पंक्तियाँ कैलास पर्वतके शिखरोंके समान जान पड़ती है ॥१८॥ इस प्रकार कहता और अभिन्न चित्तके धारक मित्रके साथ वार्तालाप करता हुआ वह महेन्द्रनगरमें पहुँचा ॥१९॥

तदनन्तर लोगोंके समूहसे पवनंजयको आया सुन इसका श्वसुर अर्घादिकी भेंट लेकर आया ॥२०॥ आगे चलते हुए श्वसुरने प्रेमपूर्ण मनसे उसे अपने स्थानमें प्रविष्ट किया और नगरवासी लोगोंने उसे बड़े आदरसे देखा ॥२१॥ प्रियाके दर्शनकी लालसासे इसने श्वसुरके घरमें प्रवेश किया । वहाँ यह परस्पर वार्तालाप करता हुआ मुहूर्त-भर बैठा ॥२२॥ परन्तु वहाँ भी जब इसने कान्ताको नहीं देखा तब विरहसे आतुर होकर इसने महलके भीतर रहनेवाली किसी बालिकासे पूछा कि हे बाले ! क्या तू जानती है कि यहाँ मेरी प्रिया अंजना है ? बालिकाने यही दुःखदायी उत्तर दिया कि यहाँ तुम्हारी प्रिया नहीं है ॥२३-२४॥ तदनन्तर इस उत्तरसे पवनंजयका हृदय मानो वज्रसे ही चूर्ण हो गया, कान तपाये हुए खारे पानीसे मानो भर गये और वह स्वयं निर्जीवकी भाँति निश्चल रह गया । शोकरूपी तुषारके सम्पर्कसे उसका मुखकमल कान्तिरहित हो गया ॥२५-२६॥ तदनन्तर वह किसी छलसे श्वसुरके नगरसे निकलकर अपनी प्रियाका समाचार जाननेके लिए पृथिवीमें भ्रमण करने लगा ॥२७॥

---

१. संभाषणम् । २. गोचरम् म. । ३. सुनिश्चलः म., ब., ख., ज. । ४. श्वसुरात् म. । ५. सुयोषितः म., ख., ज., ब. ।

ज्ञात्वा वायुकुमारं च वायुनेवासुरीकृतम् । ऊचे प्रहसितः [1]सान्त्वं तद्दुःखादभिदुःखितः ॥२८॥
किं वयस्य विषण्णोऽसि कुरु चित्तमनाकुलम् । द्रक्ष्यते दयिता[2] द्राक्षे कियद्वेदं महीतलम् ॥२९॥
सोऽवोचद् गच्छ गच्छ त्वं सखे रविपुरं द्रुतम् । इदं ज्ञापय वृत्तान्तं गुरूणां मदनुष्ठितम् ॥३०॥
अहं पुनरसंप्राप्य दयितां क्षितिसुन्दरीम् । न मन्ये जीवितं तस्मात्पर्यटाम्यखिलां भुवम् ॥३१॥
इत्युक्तस्तेन दुःखेन विमुच्य कथमप्यमुम् । आदित्यनगरीं दीनः क्षिप्रं प्रहसितो ययौ ॥३२॥
पवनोऽपि समारुह्य नागमम्बरगोचरम् । विचरन् धरणीं सर्वामेवं चिन्तामुपागतः ॥३३॥
शोकातपपरिम्लानेपद्मकोमलविग्रहा । क्व गता मे भवेत् कान्ता वहन्ती हृदयेन माम् ॥३४॥
विधुरारण्यमध्यस्था विरहानलदीपिता[4] । वराकी कांदिशीकासौ दिशं स्यात् कामुपाश्रिता ॥३५॥
सत्यार्जवसमेतासौ गर्भगौरवधारिणी । वसन्तमालया त्यक्ता भवेत् किमु महावने ॥३६॥
शोकान्धनयना किं नु व्रजन्ती विषमे पथि । पतिता स्याज्जरत्कूपे क्षुधिताजगरान्विते ॥३७॥
किं नु गर्भपरिक्लिष्टा श्वापदानां च भीषणम् । श्रुत्वा शब्दं परित्रस्ता प्राणान्मुक्तवती भवेत् ॥३८॥
अहो तृष्णार्दिता शुष्कतालुकण्ठा जलोज्झिते । विन्ध्यारण्ये विमुक्ता स्यात् प्राणैः प्राणसमा मम ॥३९॥
किं वा मन्दाकिनीं मुग्धा विविधग्राहसंकुलाम् । अवतीर्णा भवेद् व्यूढा वारिणा तीव्रंहसा ॥४०॥
दर्भसूचीविनिर्भिन्नचरणक्लेशशोणिता । अशक्ता पदमप्येकं गन्तुं किं नु मृता भवेत् ॥४१॥

इधर जब प्रहसित मित्रको मालूम हुआ कि पवनंजय मानो वायुकी बीमारीसे ही दुःखी हो रहा है तब उसके दुःखसे अत्यन्त दुःखी होते हुए उसने सान्त्वनाके साथ कहा कि हे मित्र! खिन्न क्यों होते हो? चित्तको निराकुल करो। तुम्हें शीघ्र ही प्रिया दिखलाई देगी, अथवा यह पृथिवी है ही कितनी-सी? ॥२८-२९॥ पवनंजयने कहा कि हे मित्र! तुम शीघ्र ही सूर्यपुर जाओ और वहाँ गुरुजनोंको मेरा यह समाचार बतला दो ॥३०॥ मैं पृथिवीकी अनन्य सुन्दरी प्रियाको प्राप्त किये बिना अपना जीवन नहीं मानता इसलिए उसे खोजनेके लिए समस्त पृथिवीमें भ्रमण करूँगा ॥३१॥ यह कहनेपर प्रहसित बड़े दुःखसे किसी तरह पवनंजयको छोड़कर दीन होता हुआ सूर्यपुरकी ओर गया ॥३२॥

इधर पवनंजय भी अम्बरगोचर हाथीपर सवार होकर समस्त पृथिवीमें विचरण करता हुआ ऐसा विचार करने लगा कि जिसका कमलके समान कोमल शरीर शोकरूपी आतापसे मुरझा गया होगा ऐसी मेरी प्रिया हृदयसे मुझे धारण करती हुई कहाँ गयी होगी? ॥३३-३४॥ जो विधुरतारूपी अटवीके मध्यमें स्थित थी, विरहाग्निसे जल रही थी और निरन्तर भयभीत रहती थी ऐसी वह बेचारी किस दिशामें गयी होगी? ॥३५॥ वह सती थी, सरलतासे सहित थी तथा गर्भका भार धारण करनेवाली थी। ऐसा न हुआ हो कि वसन्तमालाने उसे महावनमें अकेली छोड़ दी हो ॥३६॥ जिसके नेत्र शोकसे अन्धे हो रहे होंगे ऐसी वह प्रिया विषम मार्गमें जाती हुई कदाचित् किसी पुराने कुएँमें गिर गयी हो अथवा किसी भूखे अजगरके मुँहमें जा पड़ी हो ॥३७॥ अथवा गर्भके भारसे क्लेशित तो थी ही जंगली जानवरोंका भयंकर शब्द सुन भयभीत हो उसने प्राण छोड़ दिये हों ॥३८॥ अथवा विन्ध्याचलके निर्जल वनमें प्याससे पीड़ित होनेके कारण जिसके तालु और कण्ठ सूख रहे होंगे ऐसी मेरी प्राणतुल्य प्रिया प्राणरहित हो गयी होगी ॥३९॥ अथवा वह बड़ी भोली थी कदाचित् अनेक मगरमच्छोंसे भरी गंगामें उतरी हो और तीव्र वेगवाला पानी उसे बहा ले गया हो ॥४०॥ अथवा डाभकी अनियोंसे विदीर्ण हुए जिसके पैरोंसे रुधिर बह रहा होगा ऐसी प्रिया एक डग भी चलनेके लिए असमर्थ हो मर गयी होगी ॥४१॥

१ सख्यम् म. । स्वान्तं ख. । २. दयिता सा सै म., ज., ख. । ३. परिम्लानापद्म- म. । ४. दीपिका म. । ५. श्रुत- म. । ६. तु म. ।

किं वा दुष्टेन केनापि नीता स्यात् खविचारिणा । कष्टं वार्तापि नो तस्याः केनचिन्मे निवेद्यते ॥४१॥
किं वा दुःखान्च्युते गर्भे निर्वेदं परमागता । आर्यिकाणां पदं प्राप्ता भवेद्धर्मानुसेविनी ॥४३॥
चिन्तयन्निति पर्यट्य धरणीं मतिविह्वलः । ददर्श न यदा कान्तां सर्वेन्द्रियमनोहराम् ॥४४॥
तदापश्यज्जगत्कृत्स्नं शून्यं विरहदीपितः । विनिश्चितमसौ चेतश्चकार मरणं प्रति ॥४५॥
न शैलेषु न वृक्षेषु न रम्यासु नदीष्वभूत् । धृतिरस्य वियुक्तस्य तया सर्वस्वभूतया ॥४६॥
तस्या वार्तासु मुग्धेन तेन पृष्टा नगा अपि । विवेकेन हि निर्युक्ता जायन्ते दुःखिनो जनाः ॥४७॥
अथ भूतरवाभिख्यं वनं प्राप्य गजादसौ । अवतीर्य क्षणं स्थित्वा ध्यायन्मुनिरिव स्थिरम् ॥४८॥
अनादरेण निक्षिप्य धरण्यामस्त्रकञ्चुकम् । घनपादपशाखाग्रतिरोहितमहातपः ॥४९॥
जगाद गजनाथं तं विनयेन पुरःस्थितम् । गिरा मधुरचार्यर्थं श्रमेण गुरुणान्वितः ॥५०॥
व्रजेदानीं गजेन्द्र त्वं मम स्वच्छन्दविभ्रमः । तस्या वार्तासु मुग्धेन क्षमस्व च पराभवम् ॥५१॥
तीरेऽस्याः सरितः शष्पं शल्लकीनां च पल्लवान् । चरन् विहर यूथेन करिणीनां समन्वितः ॥५२॥
इत्युक्तः सुकृतज्ञोऽसौ स्वामिवात्सल्यदक्षिणः । न मुमोचास्तिकं तस्य शोकार्तस्य सुबन्धुवत् ॥५३॥
लप्स्ये यदि न तां रामामभिरामामहं ततः । यास्याम्यत्र वने मृत्युमिति धीर्विनिश्चितः ॥५४॥
प्रियागतमनस्कस्य तस्य रात्रिरभूद्वने । शरच्चतुष्टयोदारा नानासंकल्पसंकुला ॥५५॥

अथवा कोई आकाशगामी दुष्ट विद्याधर हर ले गया हो। बड़े खेदकी बात है कि कोई मेरे लिए उसका समाचार भी नहीं बतलाता ॥४२॥ अथवा दुःखके कारण गर्भ-भ्रष्ट हो आर्यिकाओंके स्थानमें चली गयी हो ? धर्मानुगामिनी तो वह थी ही ॥४३॥ इस प्रकार विचार करते हुए बुद्धि-विह्वल पवनंजयने पृथिवीमें विहारकर जब समस्त इन्द्रियों और मनको हरनेवाली प्रियाको नहीं देखा ॥४४॥ तब विरहसे जलते हुए उसने समस्त संसारको सूना देख चित्तमें मरनेका दृढ़ निश्चय किया ॥४५॥ अंजना ही पवनंजयकी सर्वस्वभूत थी अतः उसके बिना उसे न पर्वतोंमें आनन्द आता था, न वृक्षोंमें और न मनोहर नदियोंमें ही ॥४६॥ योंही पवनंजयने उसका समाचार जाननेके लिए वृक्षोंसे भी पूछा सो ठीक ही है क्योंकि दुःखीजन विवेकसे रहित हो ही जाते हैं ॥४७॥

अथानन्तर भूतरव नामक वनमें जाकर वह हाथीसे उतरा और प्रियाका ध्यान करता हुआ क्षण-भरके लिए मुनिके समान स्थिर बैठ गया ॥४८॥ सघन वृक्षोंकी शाखाओंके अग्रभाग उसपर पड़ते हुए घामको रोके हुए थे। वहाँ उसने शस्त्र तथा कवच उतारकर अनादरसे पृथिवीपर फेंक दिये ॥४९॥ अम्बरगोचर नामका हाथी बड़ी विनयसे उसके सामने बैठा था और पवनंजय अत्यधिक थकावटसे युक्त थे। उन्होंने अत्यन्त मधुर वाणीमें हाथीसे कहा कि ॥५०॥ हे गजराज ! अब तुम जाओ, जहाँ तुम्हारी इच्छा चाहे भ्रमण करो, अंजनाका समाचार जाननेके लिए मोहसे युक्त होकर मैंने तुम्हारा जो पराभव किया है उसे क्षमा करो ॥५१॥ इस नदीके किनारे हरी-हरी घास और शल्लकके वृक्षके पल्लवोंको खाते हुए तुम हस्तिनियोंके शुण्डके साथ यथेच्छ भ्रमण करो ॥५२॥ पवनंजयने हाथीसे यह सब कहा अवश्य पर वह किये हुए उपकारको जाननेवाला था और स्वामीके साथ स्नेह करनेमें उदार था इसलिए उसने उत्तम बन्धुकी तरह शोकपीड़ित स्वामीका समीप्य नहीं छोड़ा ॥५३॥ पवनंजयने यह निश्चय कर लिया था कि यदि मैं उस मनोहारिणी प्रियाको नहीं पाऊँगा तो इस वनमें मर जाऊँगा ॥५४॥ जिसका मन प्रियामें लग रहा था ऐसे पवनंजयकी नाना संकल्पोंसे युक्त एक रात्रि वनमें चार वर्षसे भी अधिक बड़ी मालूम हुई

---

१. मे न विद्यते म., ख., ब., ज. । २. दुःखात्च्युते ख. । ३. कृष्णं भ. । ४. विप्रयुक्तस्य म. । ५. 'उरश्छदः कङ्कटकोऽजगरः कवचोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः । -मस्त्रकंटकम् म. । ६. पार्श्वं म. । ७. सार्थेन क. । ८. वर्षचतुष्टयादप्यधिका । 'हायनोऽस्त्री शरत्समा' इत्यमरः ।

एवं तावदिदं वृत्तं शृणु श्रेणिक ते परम् । कथयामि गते तस्मिन् यत् पितृभ्यां विचेष्टितम् ॥५६॥
पवनंजयवृत्तान्ते [1]तन्मित्रेण निवेदिते । समस्ता बान्धवा वार्धेः परमं शोकमागताः ॥५७॥
अथ केतुमतो पुत्रशोकेनाभ्याहृता[2] भृशम् । ऊचे प्रहसितं बाष्पधाराजनितदुर्दिना ॥५८॥
युक्तं प्रहसितेदं ते कर्तुमीदृग्विचेष्टितम् । मम पुत्रं परित्यज्य यदेकाकी समागतः ॥५९॥
सोऽवोचदम्ब तेनैव प्रेषितोऽहं प्रयत्नतः । न मे केनापि भावेन दत्तं स्थातुमुपान्तिके ॥६०॥
उवाच सा गतः क्वासौ सोऽवोचदञ्जनेति सा । काञ्जनेति च पृष्टेन को वेत्तीति निवेदितम् ॥६१॥
अपरीक्षणशीलानां सहसा कार्यकारिणाम् । पश्चात्तापो भवत्येव जनानां प्राणधारिणाम् ॥६२॥
कान्तां यदि न पश्यामि मृत्युमेमि ततो ध्रुवम् । प्रतिज्ञैवं कृतानेन स्वपुत्रेण सुनिश्चिता ॥६३॥
इति श्रुत्वा विलापं सा चकारेति सुदुःखिता[3] । वेष्टिता स्त्रीसमूहेन स्रवल्लोचनवारिणा ॥६४॥
अज्ञातसत्यया कष्टं पापया किं मया कृतम् । येन पुत्रः परिप्राप्तो जीवनस्य तु संशयम् ॥६५॥
[4]क्रूरसंधानधारिण्या वक्रमानसया मया । असमीक्षितकारिण्या मन्दया किमनुष्ठितम् ॥६६॥
मुक्तं वायुकुमारेण पुरमेतन्न शोभते । विजयार्धगिरीशो वा सेना वा रक्षसां विभोः ॥६७॥
दुष्करो रावणस्यापि सन्धिर्येन रणे कृतः । कस्तस्य मम पुत्रस्य सदृशोऽन्य नरो भुवि ॥६८॥
हा वत्स ! विनयाधार ! गुरुपूजनतत्पर ! जगत्सुन्दर ! विख्यातगुण ! क्वासि गतो मम ॥६९॥
स्वदुःखाग्निसंतप्तां मातरं मातृवत्सल ! प्रतिवाक्यप्रदानेन कुरु शोकविवर्जिताम् ॥७०॥

थी ॥५५॥ गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! यह वृत्तान्त तो मैंने तुझसे कहा। अब पवनंजयके घरसे चले जानेपर माता-पिताकी क्या चेष्टा हुई यह कहता हूँ सो सुन ॥५६॥

मित्रने जाकर जब पवनंजयका वृत्तान्त कहा तब उसके समस्त भाई-बन्धु परम शोकको प्राप्त हुए ॥५७॥ अथानन्तर पुत्रके शोकसे पीड़ित केतुमती अश्रुओंकी धारासे दुर्दिन उपजाती हुई प्रहसितसे बोली कि हे प्रहसित ! क्या तुझे ऐसा करना उचित था जो तू मेरे पुत्रको छोड़कर अकेला आ गया ॥५८-५९॥ इसके उत्तरमें प्रहसितने कहा कि हे अम्ब ! उसीने प्रयत्न कर मुझे भेजा है। उसने मुझे किसी भी भावसे वहाँ नहीं ठहरने दिया ॥६०॥ केतुमतीने कहा कि वह कहाँ गया है ? प्रहसितने कहा कि जहाँ अंजना है। अंजना कहाँ है ? ऐसा केतुमतीने पुनः पूछा तो प्रहसितने उत्तर दिया कि मैं नहीं जानता हूँ। जो मनुष्य बिना परीक्षा किये सहसा कार्य कर बैठते हैं उन्हें पश्चात्ताप होता ही है ॥६१-६२॥ प्रहसितने केतुमतीसे यह भी कहा कि तुम्हारे पुत्रने यह निश्चित प्रतिज्ञा की है कि यदि मैं प्रियाको नहीं देखूँगा तो अवश्य ही मृत्युको प्राप्त होऊँगा ॥६३॥ यह सुनकर केतुमती अत्यन्त दुःखी होकर विलाप करने लगी। उस समय जिनके नेत्रोंसे अश्रु झर रहे थे ऐसी स्त्रियोंका समूह उसे घेरकर बैठा था ॥६४॥ वह कहने लगी कि सत्यको जाने बिना मुझ पापिनीने क्या कर डाला जिससे पुत्र जीवनके संशयको प्राप्त हो गया ॥६५॥ क्रूर अभिप्रायको धारण करनेवाली कुटिलचित्त तथा बिना विचारे कार्य करनेवाली मुझ मूर्खने क्या कर डाला ? ॥६६॥ वायुकुमारके द्वारा छोड़ा हुआ यह नगर शोभा नहीं देता। यही नगर क्यों ? विजयार्द्ध पर्वत ही शोभा नहीं देता और न रावणकी सेना ही उसके बिना सुशोभित है ॥६७॥ जो रावणके लिए भी कठिन थी ऐसी सन्धि युद्धमें जिसने करा दी मेरे उस पुत्रके समान पृथ्वीपर दूसरा मनुष्य है ही कौन ? ॥६८॥ हाय बेटा ! तू तो विनयका आधार था, गुरुजनोंकी पूजा करनेमें सदा तत्पर रहता था, जगत्-भरमें अद्वितीय सुन्दर था, और तेरे गुण सर्वत्र प्रसिद्ध थे फिर भी तू कहाँ चला गया ॥६९॥ हे मातृवत्सल ! जो तेरे दुःखरूपी अग्निसे सन्तप्त हो रही

---

१. तद्विप्रेण म. । २. नाभ्याहृता म. । नाभ्याहता ज. । ३. सदुस्सहा म. । ४. क्रूरसाधन -ख., ज., म. । क्रूरयाधान- क. ।

विलापमपि कुर्वाणां ताडयन्तीमुरो[1] मुहुः । सान्त्वयन्त्वनितां कृच्छ्राच्छ्वशुरः साश्रुलोचनः ॥७१॥
सर्वबन्धुजनाकीर्णः कृत्वा प्रहसितं पुरः । निर्गतः स्वपुरात् पुत्रमुपलब्धुं समुत्सुकः ॥७२॥
सर्वे चाह्वायिता तेन खगा द्विश्रेणिवासिनः । प्रीत्या ते तु समाजग्मुः परिवारसमन्विताः ॥७३॥
रवेः[2] पन्थानमाश्रित्य भास्वद्विविधवाहनाः । अम्बेध्वस्ते महीं यत्नाद् गह्वरन्यस्तलोचनाः ॥७४॥
प्रतिसूर्यानुरुद्दूतं[3] तं ज्ञात्वा प्रह्लादवूततः । उद्वहन्मनसा शोकमञ्जनायै न्यवेदयत् ॥७५॥
प्रथमादपि सा दुःखात्ततो दुःखेन भूयसा । अश्रुधौतमुखा चक्रे[4] करुणं परिदेवनम् ॥७६॥
हा नाथ प्राणसर्वस्व मम मानसबन्धन । क्व मां त्यक्त्वा प्रयातोऽसि क्लेशसंततिभागिनीम् ॥७७॥
किं वाद्यापि न तं कोपं विमुञ्चसि पुरातनम् । अदृश्यत्वं यदेतोऽसि[5] सर्वविद्याभृतामपि ॥७८॥
अप्येकं प्रतिवाक्यं मे नाथ यच्छामृतोपमम् । नत्वापन्नहितोद्युक्ता महात्मानो भवन्ति हि ॥७९॥
इयन्तं धारिताः कालं भवद्दर्शनकाङ्क्षया । प्राणा मयाधुना कार्यं किमेतैः पापकर्मभिः ॥८०॥
समागममवाप्स्यामि[6] प्रियेणेति समं कृताः । कथं मनोरथा भग्ना दैवेनाफलिता मम ॥८१॥
कृते मे मन्दभाग्यायाः प्रियोऽवस्थां गतो भवेत् । सामिदं हृदयं क्रूरं यां समाशङ्कते मुहुः ॥८२॥
वसन्तमालिके पश्य किमिदं वर्तते मम । असह्यविरहाङ्गारपल्यङ्कपरिवर्तनम् ॥८३॥
वसन्तमालया चोक्ता देवि मैवममङ्गलम् । व्यरटीः[7] सर्वथासौ ते भर्ता गोचरमेष्यति ॥८४॥

है ऐसी अपनी माताको प्रत्युत्तर देकर शोकरहित कर ॥७०॥ इस प्रकार विलाप करती और अत्यधिक छाती कूटती हुई केतुमतीको राजा प्रह्लाद सान्त्वना दे रहे थे पर शोकके कारण उनके नेत्रोंसे भी टप-टप आँसू गिरते जाते थे ॥७१॥ तदनन्तर पुत्रको पानेके लिए उत्सुक राजा प्रह्लाद समस्त बन्धुजनोंके साथ प्रहसितको आगे कर अपने नगरसे निकले ॥७२॥ उन्होंने दोनों श्रेणियोंमें रहनेवाले समस्त विद्याधरोंको बुलवाया सो अपने-अपने परिवार सहित समस्त विद्याधर प्रेमपूर्वक आ गये ॥७३॥ जिनके नाना प्रकारके वाहन आकाशमें देदीप्यमान हो रहे थे और जिनके नेत्र नीचे गुफाओंमें पड़ रहे थे ऐसे वे समस्त विद्याधर बड़े यत्नसे पृथ्वीकी खोज करने लगे ॥७४॥

इधर प्रह्लादके दूतसे राजा प्रतिसूर्यको जब यह समाचार मालूम हुआ तो हृदयसे शोक धारण करते हुए उसने यह समाचार अंजनासे कहा ॥७५॥ अंजना पहलेसे ही दुःखी थी अब इस भारी दुःखसे और भी अधिक दुःखी होकर वह करुण विलाप करने लगी। विलाप करते समय उसका मुख अश्रुओंसे धुल रहा था ॥७६॥ वह कहने लगी कि हाय नाथ! आप ही तो मेरे हृदयके बन्धन थे फिर निरन्तर क्लेश भोगनेवाली अबलाको छोड़कर आप कहाँ चले गये ? ॥७७॥ क्या आज भी आप उस पुरातन क्रोधको नहीं छोड़ रहे हैं जिससे समस्त विद्याधरोंके लिए अदृश्य हो गये हैं ॥७८॥ हे नाथ! मेरे लिए अमृततुल्य एक भी प्रत्युत्तर दीजिए क्योंकि महापुरुष आपत्तिमें पड़े हुए प्राणियोंका हित करना कभी नहीं छोड़ते ॥७९॥ मैंने अब तक आपके दर्शनकी आकांक्षासे ही प्राण धारण किये हैं। अब मुझे इन पापी प्राणोंसे क्या प्रयोजन है ? ॥८०॥ मैं पतिके साथ समागमको प्राप्त होऊँगी, ऐसे जो मनोरथ मैंने किये थे वे आज दैवके द्वारा निष्फल कर दिये गये ॥८१॥ मुझ मन्दभागिनीके लिए प्रिय उस अवस्थाको प्राप्त हुए होंगे जिसकी कि यह क्रूर हृदय बार-बार आशंका करता रहा है ॥८२॥ वसन्तमाले! देख तो यह क्या हो रहा है? मुझे असह्य विरहके अंगाररूपी शय्यापर कैसे लोटना पड़ रहा है ? ॥८३॥ वसन्तमालाने कहा कि हे देवि! ऐसी अमांगलिक रट मत लगाओ। मैं निश्चित कहती हूँ कि भर्ता तुम्हारे समीप आयेगा

---

१. मुखे म. । २. रवे म. । ३. उद्वृहतं महाशोक- म. । तद्वहंतं महाशोक- क. । ४. करणं म. । ५. यदेतासि ब. । ६. मवाप्स्यामि (?) म. । ७. व्युपसर्गपूर्वकरटधातोर्लुङ्मध्यमपुरुषैकवचने रूपम् । व्यरटीः म., ब. ।

एष कल्याणि ते नाथमानयाम्यचिरादिति । प्रतिसूर्यः समाश्वास्य कृच्छ्रेणाम्बरमास्थितः ॥८५॥
मनोहरं समारुह्य खगयानं मनोजवम् । ययौ भूर्भासुरं पश्यन् वीक्षमाणः क्षितिं यथौ ॥८६॥
प्रतिभानुसमेतास्ते वैजयार्द्धा नभश्चराः । त्रैकूटाश्च प्रयत्नेन निरैक्षन्त महीतलम् ॥८७॥
अथ भूतरवाटव्यां ददृशुस्ते महाद्विपम् । प्रावृषेण्यमनोदारसंघाताकारधारिणम् ॥८८॥
अयं स कालमेघाख्यः पवनद्विप इत्यमी । अञ्जनाद्रिसिताभेन च पूर्वदृष्टेरनेकशः ॥८९॥
अयमेव स हस्तीति जगदुश्च परस्परम् । सर्वे विद्याधराः हृष्टाः समं कृतमहारवाः ॥९०॥
नीलाञ्जनगिरिच्छायः कुन्दराशिसितद्विजः । युक्तप्रमाणहस्तोऽयं हस्ती यत्रावतिष्ठते ॥९१॥
पवनंजयवीरेण देशेऽत्र गतसंशयम् । भवितव्यमयं तस्य मित्रवत्पार्श्वगोचरः ॥९२॥
वदन्त इति ते याताः समीपं तस्य दन्तिनः । निरङ्कुशतया तस्य मनागुद्विग्नमानसाः ॥९३॥
रवेण महता तेषां चुक्षोभ स महागजः । दुर्निवारश्चलद्भीमसमस्ताङ्गो महाध्वनिः ॥९४॥
मदक्लिन्नकपोलोऽसौ स्तब्धकर्णः सुगर्जितः । दिशं पश्यति यामेव तत्र क्षुभ्यन्ति खेचराः ॥९५॥
दृष्ट्वा जनसमूहं तं स्वामिरक्षणतत्परः । पवनंजयसामीप्यं न जहाति स वारणः ॥९६॥
मण्डलेन भ्रमस्यस्य सलीलं भ्रमयन् करम् । दशनेनैव चण्डेन त्रासयन् सर्वखेचरान् ॥९७॥
करिणीभिरथाक्षुण्य द्विपं यत्नेन खेचराः । वशीकृत्य समुद्देशमवतीर्णाः समुत्सुकाः ॥९८॥

॥८४॥ 'हे कल्याणि ! मैं तेरे भर्ताको अभी हाल ले आता हूँ' इस प्रकार अंजनाको बड़े दुःखसे आश्वासन देकर राजा प्रतिसूर्य मनके समान तीव्र वेगवाले सुन्दर विमानमें चढ़कर आकाशमें उड़ गया। वह पृथिवीको अच्छी तरह देखता हुआ जा रहा था ॥८५-८६॥ इस प्रकार विजयार्धवासी विद्याधर और त्रिकूटाचलवासी राक्षस राजा प्रतिसूर्यके साथ मिलकर बड़े प्रयत्नसे पृथिवीका अवलोकन करने लगे ॥८७॥

अथानन्तर उन्होंने भूतरव नामक अटवीमें वर्षा ऋतुके मेघके समान विशाल आकारको धारण करनेवाला एक बड़ा हाथी देखा ॥८८॥ उस हाथीको उन्होंने पहले अनेक बार देखा था इसलिए 'यह पवनकुमारका कालमेघ नामक हाथी है' इस प्रकार पहचान लिया ॥८९॥ 'यह वही हाथी है' इस प्रकार सब विद्याधर हर्षित हो जोरसे हल्ला करते हुए परस्पर एक दूसरेसे कहने लगे ॥९०॥ जो नीलगिरि अथवा अंजनगिरिके समान सफेद है तथा जिसकी सूँड़ योग्य प्रमाणसे सहित है ऐसा यह हाथी जिस स्थानमें है निःसन्देह उसी स्थानमें पवनंजयको होना चाहिए क्योंकि यह हाथी मित्रके समान सदा उसके समीप ही रहता है ॥९१-९२॥ इस प्रकार कहते हुए सब विद्याधर उस हाथीके पास गये। चूँकि वह हाथी निरंकुश था इसलिए विद्याधरोंका मन कुछ-कुछ भयभीत हो रहा था ॥९३॥ उन विद्याधरोंके महाशब्दसे वह महान् हाथी सचमुच ही क्षुभित हो गया। उस समय उसका रोकना कठिन था, उसका समस्त भयंकर शरीर चंचल हो रहा था और वेग अत्यन्त तीव्र था ॥९४॥ उसके दोनों कपोल मदसे भीगे हुए थे, कान खड़े थे और वह जोर-जोरसे गर्जना कर रहा था। वह जिस दिशामें देखता था उसी दिशाके विद्याधर क्षुभित हो जाते थे—भयसे भागने लगते थे ॥९५॥ उस जनसमूहको देखकर स्वामीकी रक्षा करनेमें तत्पर हाथी पवनंजयकी समीपताको नहीं छोड़ रहा था ॥९६॥ वह लीलासहित सूँड़को घुमाता और अपने तीक्ष्ण दशनसे ही समस्त विद्याधरोंको भयभीत करता हुआ पवनंजयके चारों ओर मण्डलाकार भ्रमण कर रहा था ॥९७॥

तदनन्तर विद्याधर यत्नपूर्वक हस्तिनियोंसे उस हाथीको घेरकर तथा वशमें कर उत्सुक

१. समासाद्य म. । २. ददृशे म. । ३. धारिणम् म. । ४. मेघाख्यपवन म. । ५. अञ्जनासिपु म. । ६. महारवः म. । ७. भ्रमयत्करम् म. ।

उपायेभ्यो हि सर्वेभ्यो वशीकरणवस्तुनि । कामिनीसंगमुज्झित्वा नापरं विद्यते परम् ॥९९॥
अथेक्षांचक्रिरे वायुं विस्रस्ताङ्गं नभश्चराः । पुस्तकर्मसमाकारं दार्ढ्यमतया स्थितम् ॥१००॥
यथार्हमुपचारं ते चक्रुरस्य तथाप्यसौ । न प्रयच्छति चिन्तास्थः प्रतिवाक्यं मुनिर्यथा ॥१०१॥
पुत्रप्रीत्या तमाघ्राय पितरौ मस्तके मुहुः । आलिङ्ग्य च प्रमोदेन बाष्पस्थगितलोचनौ ॥१०२॥
ऊचतुर्वत्स संत्यज्य पितरौ कथमीदृशम् । चेष्टितं क्रियते तुभ्यं हि विनीतानां धुरिस्थितः ॥१०३॥
वरशय्योचितः कायस्तवयाद्य विजने वने । संवाहितः कथं भीमे रात्रौ पादपगह्वरे ॥१०४॥
इति संभाष्यमाणोऽपि नासौ वाचमुदाहरत् । मरणे निश्चितोऽस्मीति संज्ञयैव न्यवेदयत् ॥१०५॥
व्रतमेतन्मयोपात्तं यदप्राप्य महेन्द्रजाम् । न भुञ्जे न वदामीति तत्कथं भज्यतेऽधुना ॥१०६॥
आस्तां तावत्प्रिया सत्यव्रतं संरक्षता मया । गुरू[1] प्रश्वासितावेतौ कथमित्याकुलोऽभवत् ॥१०७॥
ततस्तं नतमूर्धानं मौनव्रतसमाश्रितम् । मरणे निश्चितं ज्ञात्वा जग्मुर्विद्याधराः शुचम् ॥१०८॥
समेतास्तत्पितृभ्यां ते विलेपुर्दीनमानसाः । संस्पृशन्तः करैरस्य शरीरं स्वेदधारिभिः ॥१०९॥
ततः स्मितमुखोऽवोचत् प्रतिसूर्यो नभश्चरान् । मा भूत विह्वला वायुमेष वो भाषयाम्यहम् ॥११०॥
पवनं च परिष्वज्य जगादानुक्रमान्वितम् । कुमार शृणु यद्वृत्तं कथयामि तवाखिलम् ॥१११॥
संध्याभ्रपर्वते रम्ये मुनेः कैवल्यमुद्गतम् । अनङ्गवीचिसंज्ञस्य देवेन्द्रक्षोभकारणम् ॥११२॥
वन्दित्वा तं प्रदीपेन रात्रावागच्छता मया । रुदितध्वनिराश्रावि स्त्रैणस्तन्त्रीस्वनोपमः ॥११३॥

होते हुए उस स्थानपर उतरे ॥९८॥ वशीकरणके समस्त उपायोंमें स्त्रीसमागमको छोड़कर और दूसरा उत्तम उपाय नहीं है ॥९९॥ अथानन्तर जिसका समस्त शरीर ढीला हो रहा था, चित्र-लिखितके समान जिसका आकार था और जो मौनसे बैठा था ऐसे पवनंजयको विद्याधरोंने देखा ॥१००॥ यद्यपि सब विद्याधरोंने उसका यथायोग्य उपचार किया तो भी वह मुनिके समान चिन्तामें निमग्न बैठा रहा—किसीसे कुछ नहीं कहा ॥१०१॥ माता-पिताने पुत्रकी प्रीतिसे उसका मस्तक सूँघा, बार-बार आलिंगन किया और इस हर्षसे उनके नेत्र आँसुओंसे आच्छादित हो गये ॥१०२॥ उन्होंने कहा भी कि हे बेटा ! तुम माता-पिताको छोड़कर ऐसी चेष्टा क्यों करते हो ? तुम तो विनीत मनुष्योंमें सबसे आगे थे ॥१०३॥ तुम्हारा शरीर उत्कृष्ट शय्यापर पड़नेके योग्य है पर तुमने आज इसे भयंकर एवं निर्जन वनके बीच वृक्षकी कोटरमें क्यों डाल रखा है ? ॥१०४॥ माता-पिताके इस प्रकार कहने पर भी उसने एक शब्द नहीं कहा। केवल इशारेसे यह बता दिया कि मैं मरनेका निश्चय कर चुका हूँ ॥१०५॥ मैंने यह व्रत कर रखा है कि अंजनाको पाये बिना मैं न भोजन करूँगा और न बोलूँगा। फिर इस समय वह व्रत कैसे तोड़ दूँ ? ॥१०६॥ अथवा प्रियाकी बात जाने दो, सत्य-व्रतकी रक्षा करता हुआ मैं इन माता-पिताको किस प्रकार सन्तुष्ट करूँ यह सोचता हुआ वह कुछ व्याकुल हुआ ॥१०७॥ तदनन्तर जिसका मस्तक नीचेकी ओर झुक रहा था और जो मौनसे चुपचाप बैठा था ऐसे पवनंजयको मरनेके लिए कृतनिश्चय जानकर विद्याधर शोकको प्राप्त हुए ॥१०८॥ जिनके हृदय अत्यन्त दीन थे और जो स्वेदको धारण करनेवाले हाथोंसे पवनंजयके शरीरका स्पर्श कर रहे थे ऐसे सब विद्याधर उसके माता-पिताके साथ विलाप करने लगे॥१०९॥ तदनन्तर हँसते हुए प्रतिसूर्यने सब विद्याधरोंसे कहा कि आप लोग दुःखी न हों। मैं आप लोगोंसे पवन कुमारको बुलवाता हूँ ॥११०॥ तथा पवनंजयका आलिंगन कर क्रमानुसार उससे कहा कि हे कुमार ! सुनो, जो कुछ भी वृत्तान्त हुआ है वह सब मैं कहता हूँ ॥१११॥ सन्ध्याभ्र नामक मनोहर पर्वतपर अनंगवीचि नामक मुनिराजको इन्द्रोंमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाला केवल-ज्ञान उत्पन्न हुआ था॥११२॥ मैं उनकी वन्दना कर दीपकके सहारे रात्रिको चला आ रहा था

---

१. प्रश्वासितावेतौ म. ।

[1]अढौकिषि तमुद्देशं गिरेः प्रस्थं समुन्नतम् । पर्यङ्कनाम्नि दृष्टा च गुहायामञ्जना मया ॥११४॥
निर्वासकारणं चास्या विज्ञाय विनिवेदितम् । मया प्राश्वासिता बाला [2]रुदती शोकविह्वला ॥११५॥
तस्यामसूत सा पुत्रमन्वितं लक्षणैः शुभैः । यस्य भासा गुहा सासीत् सुवर्णेनेव निर्मिता ॥११६॥
[3]स तोषं परमं प्राप्तः श्रुत्वा तां जातपुत्रिकाम् । ततस्तत इति क्षिप्रमपृच्छच्च समीरणः ॥११७॥
अवोचत् स ततस्तस्याः सुतोऽसौ चारुचेष्टितः । विमाने स्थाप्यमानः सन् पतितः शैलगह्वरे ॥११८॥
अत्रान्तरे पुनः प्राप्तो विषादं पवनंजयः । हाकारमुखरः सार्द्धं तया खेचरसेनया ॥११९॥
प्रतिमानुः पुनश्चोचे मा गाः शोकं ततः शृणु । यद्वृत्तं तत्समस्तं ते [4]वायो दुःखं हरिष्यति ॥१२०॥
ततो हाकारशब्देन मुखरीकृतदिङ्मुखाः । अवतीर्यानघं बालमैक्षिष्महि नगान्तरे ॥१२१॥
चूर्णितश्च ततः शैलस्तेनासौ पतनात्तदा । श्रीशैल इति तेनासावस्माभिर्विस्मितैः स्तुतः ॥१२२॥
वसन्तमालया सार्कं ततः पुत्रेण संयुता । विमानमञ्जनारोप्य मया नीता निजं पुरम् ॥१२३॥
ततो हनूरुहाभिख्ये पुरे संवर्द्धितः शिशुः । हनूमानिति तेनास्य द्वितीयं नाम निर्मितम् ॥१२४॥
एषा ते कथिता सार्कं पुत्रेणाद्भुतकर्मणा । मत्पुरे शीलसंपन्ना तिष्ठतीति विबुध्यताम् ॥१२५॥
पुरस्कृत्य ततो वायुं हृष्टा गगनचारिणः । क्षिप्रं हनूरुहं जग्मुरञ्जनादर्शनोत्सुकाः ॥१२६॥
तेषां महोत्सवस्तत्र समागमकृतोऽभवत् । सुसंवेद्यस्तु दम्पत्योर्दुराख्यानो विशेषतः ॥१२७॥
तत्र मासद्वयं नीत्वा खेचराः प्रीतमानसाः । आमन्त्र्य लब्धसंमाना ययुः स्थानं यथायथम् ॥१२८॥

कि मैंने वीणाके शब्दके समान किसी स्त्रीके रोनेका शब्द सुना ॥११३॥ मैं उस शब्दको लक्ष्य कर पर्वतकी ऊँची चोटीपर गया। वहाँ मुझे पर्यंक नामकी गुफामें अंजना दिखी ॥११४॥ इसके निर्वासका कारण जो बताया गया था उसे जानकर शोकसे विह्वल होकर रोती हुई उस बालाको मैंने सान्त्वना दी ॥११५॥ उसी गुफामें उसने शुभ लक्षणोंसे युक्त ऐसा पुत्र उत्पन्न किया कि जिसकी प्रभासे वह गुफा सुवर्णसे बनी हुईके समान हो गयी ॥११६॥ अंजनाके पुत्र हो चुका है यह जानकर पवनंजय परम सन्तोषको प्राप्त हुआ और 'फिर क्या हुआ ? फिर क्या हुआ ?' यह शीघ्रतासे पूछने लगा ॥११७॥ प्रतिसूर्यने कहा कि उसके बाद अंजनाके उस सुन्दर चेष्टाओंके धारक पुत्रको विमानमें बैठाया जा रहा था कि वह पर्वतकी गुफामें गिर गया ॥११८॥ यह सुनकर हाहाकार करता हुआ पवनंजय विद्याधरोंकी सेनाके साथ पुनः विषादको प्राप्त हुआ ॥११९॥ तब प्रतिसूर्यने कहा कि शोकको प्राप्त मत होओ। जो कुछ वृत्तान्त हुआ वह सब सुनो। हे पवन ! पूरा वृत्तान्त तुम्हारे दुःखको दूर कर देगा ॥१२०॥ प्रतिसूर्य कहता जाता है कि तदनन्तर हाहाकारसे दिशाओंको शब्दायमान करते हुए हम लोगोंने नीचे उतरकर पर्वतके बीच उस निर्दोष बालकको देखा ॥१२१॥ चूँकि उस बालकने गिरकर पर्वतको चूर-चूर कर डाला था इसलिए हम लोगोंने विस्मित होकर उसकी 'श्रीशैल' इस नामसे स्तुति की ॥१२२॥ तदनन्तर पुत्रसहित अंजनाको वसन्तमालाके साथ विमानमें बैठाकर मैं अपने नगर ले गया ॥१२३॥ आगे चलकर चूँकि उसका हनूरुह द्वीपमें संवर्धन हुआ है इसलिए हनूमान् यह दूसरा नाम भी रखा गया है ॥१२४॥ इस तरह आपने जिसका कथन किया है वह शीलवती अंजना आश्चर्यजनक कार्य करनेवाले पुत्रके साथ मेरे नगरमें रह रही है सो ज्ञात कीजिए ॥१२५॥ तदनन्तर हर्षसे भरे विद्याधर अंजनाके देखनेके लिए उत्सुक हो पवनंजयको आगे कर शीघ्र ही हनूरुह नगर गये ॥१२६॥ वहाँ अंजना और पवनंजयका समागम हो जानेसे विद्याधरोंको महान् उत्सव हुआ। दोनों दम्पतियोंको जो उत्सव हुआ वह स्वसंवेदनसे ही जाना जा सकता था विशेषकर उसका कहना अशक्य था ॥१२७॥ वहाँ विद्याधरोंने प्रसन्न-

१. अढौकत म. । २. रुदन्ती क. । ३. तोषं च म., ज., ब., क. । ४. वायोर्दुःखं म., क., ज. ।

चिरात्संप्राप्तपत्नीकः पवनोऽपि सुचेष्टितः । तत्र गीर्वाणवद्रेमे सुतचेष्टाभिनन्दितः ॥१२९॥
हनूमांस्तत्र संप्राप्य यौवनश्रियमुत्तमाम् । मेरुकूटसमानाङ्गः स्तेनकः सर्वचेतसाम् ॥१३०॥
सिद्धविद्यः प्रभावाढ्यो विनयज्ञो महाबलः । सर्वशास्त्रार्थकुशलः परोपकृतिदक्षिणः ॥१३१॥
नाकोपभुक्तपाकस्य पुण्यशेषस्य भोजकः[1] । रमते स्म पुरे तत्र गुरुपूजनतत्परः ॥१३२॥

शार्दूलविक्रीडितम्

श्रीशैलस्य समुद्भवेन सहितं वायोः समं कान्तया
यो भावेन शृणोति सङ्गममिमं नानारसैरद्भुतम् ।
जन्तोस्तस्य समस्तसंसृतिविधिज्ञानेन लब्धात्मनो
बुद्धिर्मांशुभकर्मणि प्रभवति प्रस्वप्नसत्कर्मणः ॥१३३॥
आयुर्दीर्घमुदारविभ्रमयुतं कान्तं वपुर्नीरुजं[2]
मेधां सर्वकृतान्तपारविषयां[3] कीर्तिं च चन्द्रामलाम् ।
पुण्यं स्वर्गसुखोपभोगचतुरं लोके च यद्दुर्लभं
तत्सर्वं सकृदश्नुते रविरिव स्फीतप्रभामण्डलम् ॥१३४॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते पवनाञ्जनासमागमाभिधानं नामाष्टादशं पर्व ॥१८॥

□

चित्तसे दो महीने व्यतीत किये। तदनन्तर पूछकर सम्मान प्राप्त करते हुए सब यथास्थान चले गये ॥१२८॥ चिरकालके बाद पत्नीको पाकर पवनंजयकी चेष्टाएँ भी ठीक-हो गयीं और वह पुत्रकी चेष्टाओंसे आनन्दित होता हुआ वहाँ देवकी तरह रमण करने लगा ॥१२९॥ हनूमान् भी वहाँ उत्तम यौवन-लक्ष्मीको पाकर सबके चित्तको चुराने लगा तथा उसका शरीर मेरु पर्वतके शिखरके समान देदीप्यमान हो गया ॥१३०॥ उसे समस्त विद्याएँ सिद्ध हो गयी थीं, प्रभाव उसका निराला ही था, विनयका वह जानकार था, महाबलवान् था, समस्त शास्त्रोंका अर्थ करनेमें कुशल था, परोपकार करनेमें उदार था, स्वर्गमें भोगनेसे बाकी बचे पुण्यका भोगनेवाला था और गुरुजनोंकी पूजा करनेमें तत्पर था। इस तरह वह उस नगरमें बड़े आनन्दसे क्रीड़ा करता था ॥१३१-१३२॥

गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! जो हनूमान्के साथ-साथ नाना रसोंसे आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले इस अंजना और पवनंजयके संगमको भावसे सुनता है उसे संसारकी समस्त विधिका ज्ञान हो जाता है तथा उस ज्ञानके प्रभावसे उसे आत्म-ज्ञान उत्पन्न हो जाता है जिससे वह उत्तम कार्य ही प्रारम्भ करता है और अशुभ कार्यमें उसकी बुद्धि प्रवृत्त नहीं होती ॥१३३॥ वह दीर्घ आयु, उदार विभ्रमोंसे युक्त, सुन्दर नीरोग शरीर, समस्त शास्त्रोंके पारको विषय करनेवाली बुद्धि, चन्द्रमाके समान निर्मल कीर्ति, स्वर्ग-सुखका उपभोग करनेमें चतुर, पुण्य तथा लोकमें जो कुछ भी दुर्लभ पदार्थ हैं उन सबको एक बार उस तरह प्राप्त कर लेता है जिस प्रकार कि सूर्य देदीप्यमान कान्तिके मण्डलको ॥१३४॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरितमें पवनंजय और अंजनाके समागमका वर्णन करनेवाला अठारहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१८॥

□

१. योजकः म. । २. नीरजं म. । ३. सर्वशास्त्रपारविषयाम् ।

एकोनविंशतितमं पर्व

रावणोऽथ वहन् दीर्घं क्रोधमप्राप्तनिर्वृतिः । [1]आहुढौकत् पुनः सर्वान् खेचरान् लेखहारिभिः ॥१॥
किष्किन्धेन्द्रस्तमभ्यागात्तथा दुन्दुभिसंज्ञकः । अलंकाराधिपो यश्च [2]रथनूपुरपस्तथा ॥२॥
विजयार्द्धनगे ये च श्रेण्युभयनिवासिनः । सर्वोद्योगेन ते सर्वे प्राप्ता रत्नश्रवःसुतम् ॥३॥
अथो हनूरुहद्वीपं नरो मस्तकलेखकः । प्राप्तः पवनवेगस्य प्रतिसूर्यस्य चान्तिकम् ॥४॥
लेखार्थमभिगम्यैतौ प्रयाणन्यस्तमानसौ । श्रीशैलस्योद्यतौ कर्तुमभिषेकं नृपास्पदे ॥५॥
कृतस्तदर्थमाटोपस्तूर्यशब्दादिको महान् । नराः कलशहस्ताश्च श्रीशैलस्य पुरः स्थिताः ॥६॥
किमेतदिति तौ तेन पृष्टाविदमबोचताम् । राज्यं हनूरुहद्वीपे वत्स त्वं पालयाधुना ॥७॥
युद्धे सहायतां कर्तुमाधार्मांशेन रक्षसाम् । आहूतौ तस्य कर्तव्यं प्रीत्यावाभ्यां यथोचितम् ॥८॥
रसातलपुरे तस्य वरुणः प्रत्यवस्थितः । दुर्जयोऽसौ महासैन्यः पुत्रदुर्गबलोत्कटः ॥९॥
हनूमानेवमुक्तः सन् विनयेनेदमब्रवीत् । मयि स्थिते न युक्तं वां [3]गन्तुमायोधनं गुरू ॥१०॥
अविज्ञातरणास्वादो वत्स त्वमिति भाषिते । जगाद किं शिवस्थानं कदाचिल्लब्धमाप्यते ॥११॥
यदा निवार्यमाणोऽपि न स्थातुं कुरुते मनः । तदा ताभ्यामनुज्ञातः स युवा गमनं प्रति ॥१२॥
स्नात्वा भुक्त्वा च पूर्वाह्णे मङ्गलार्चितविग्रहः । [4]कृतप्रणामः सिद्धानामर्हतां च प्रयत्नतः ॥१३॥

अथानन्तर रावणको सन्तोष नहीं हुआ सो उसने बहुत भारी क्रोध धारण कर पत्रवाहकोंके द्वारा समस्त विद्याधरोंको फिरसे बुलाया ॥१॥ किष्किन्धाका राजा, दुन्दुभि, अलंकारपुरका अधिपति, रथनूपुरका स्वामी तथा विजयार्द्ध पर्वतकी दोनों श्रेणियोंमें निवास करनेवाले अन्य समस्त विद्याधर सब प्रकारकी तैयारीके साथ रावणके समीप जा पहुँचे ॥२-३॥ तदनन्तर मस्तकपर लेखको धारण करनेवाला एक मनुष्य हनूरुह द्वीपमें पवनंजय और प्रतिसूर्यके पास भी आया ॥४॥ लेखका अर्थ समझकर दोनोंने रावणके पास जानेका विचार किया सो वहाँ जानेके पूर्व वे राज्यपर हनूमान्का अभिषेक करनेके लिए उद्यत हुए ॥५॥ राज्याभिषेककी बड़ी तैयारी की गयी। तुरही आदि वादित्रोंका बड़ा शब्द होने लगा और मनुष्य हाथमें कलश लेकर हनूमान्के सामने खड़े हो गये ॥६॥ हनूमान्ने पवनंजय और प्रतिसूर्यसे पूछा कि यह क्या है ? तब उन्होंने कहा कि हे वत्स ! अब तुम हनूरुह द्वीपके राज्यका पालन करो ॥७॥ हम दोनोंको रावणने युद्धमें सहायता करनेके लिए बुलाया है सो हमें प्रेमपूर्वक यथोचित रूपसे आज्ञा-पालन करना चाहिए ॥८॥ रसातलपुरमें जो वरुण रहता है वही उसके विरुद्ध खड़ा हुआ है। उसकी बहुत बड़ी सेना है तथा वह पुत्र और दुर्गके बलसे उत्कट होनेके कारण दुर्जय है ॥९॥ ऐसा कहनेपर हनूमान्ने विनयसे उत्तर दिया कि मेरे रहते हुए आप गुरुजनोंको युद्धके लिए जाना उचित नहीं है ॥१०॥ 'हे बेटा ! अभी तुमने रणका स्वाद नहीं जाना है' ऐसा जब उससे कहा गया तब उसने उत्तर दिया कि जो मोक्ष प्राप्त होता वह क्या कभी पहले प्राप्त किया हुआ होता है ? जब रोकनेपर भी उसने रुकनेका मन नहीं किया तब उन दोनोंने उस युवाको जानेकी स्वीकृति दे दी ॥११-१२॥

तदनन्तर प्रातःकाल स्नान कर जिसने अरहन्त और सिद्ध भगवान्को प्रयत्नपूर्वक प्रणाम किया था, भोजन कर शरीरपर मंगलद्रव्य धारण किये थे, जो महातेजसे सहित था तथा सब

---

१. अढौकत् म., ब.। २. रथनूपुरकस्तथा ब., म., ज.। ३. सूर्यशब्दादिको म.। ४. युवयोः। ५. लब्धुमाप्यते म.। ६. कृतः प्रणामः म.।

पितरं मातरं मातुर्मातुलं च महाद्युतिः । प्रणम्याशेषधर्मं च संभाष्य विधिकोविदः ॥१४॥
विमानं सूर्यसंकाशं समारुह्य दिशो दश । व्याप्य शङ्खसमूहेन ययौ लङ्कापुरीं प्रति ॥१५॥
त्रिकूटाभिमुखो गच्छन्विमानेऽसावराजत । मन्दराभिमुखो यद्वदैशानस्त्रिदशाधिपः ॥१६॥
जलवीचिगिरौ तस्य रविरस्तमुपागमत् । समुद्रवीचिसंतानचुम्बितोरुनितम्बके ॥१७॥
तत्र रात्रिं सुखं नीत्वा कृतसङ्कटसंकथः । महोत्साहेन संनद्ध ययौ लङ्काहितेक्षणः ॥१८॥
नानाजनपदान् द्वीपान्नगान्नूर्मिसमाहतान् । महांश्च जलधौ पश्यन् रक्षःसैन्यमवाप सः ॥१९॥
दृष्ट्वा हनूमतः सैन्यं पुरुराक्षसपुङ्गवाः । विस्मयं परमं जग्मुः श्रीशैलाहितलोचनाः ॥२०॥
चूर्णितोऽनेन शैलोऽसौ सोऽयं भव्यजनोत्तमः । इति शब्दमसौ शृण्वन् रावणस्य गतोऽन्तिकम् ॥२१॥
[2]मारुतिं रावणो वीक्ष्य कुसुमैरभिपूरितात् । सौरभाकृष्टसंभ्रान्तपुञ्जन्मत्तमधुव्रतात् ॥२२॥
उपरिन्यस्तरत्नांशुच्छुरितोल्लसमण्डपात् । पर्यन्तस्थितसामन्तादभ्युत्तस्थौ शिलातलात् ॥२३॥
परिष्वज्य हनूमन्तं विनयानतविग्रहम् । उपविष्टः समं तेन तत्र प्रीतिस्मितानन: ॥२४॥
अन्योन्यं कुशलं पृष्ट्वा दृष्ट्वान्योन्यस्य संपदम् । रेमाते तौ महाभाग्यौ देवेन्द्राविव संगतौ ॥२५॥
अथाब्रोचद्दशग्रीवः प्रमदान्वितमानसः । हनूमन्तं मुहुः पश्यन्नत्यन्तस्निग्धया दृशा ॥२६॥
अहो संवर्द्धितं प्रेम बालुना मम साधुना । यदयं प्रेषितः पुत्रः प्रख्यातगुणसागरः ॥२७॥
एनं प्राप्य महासत्त्वं [4]तेजोमण्डलभूषितम् । नैव मे दुस्तरं किंचिन्निर्विघ्नस्यत्र विष्टपे ॥२८॥

विधि-विधानके जाननेमें निपुण था ऐसा हनूमान् माता-पिता तथा माताके मामाको प्रणाम कर और समस्त लोगोंसे सम्भाषण कर सूर्यके समान चमकते हुए विमानपर बैठकर शङ्खोंके समूहसे दसों दिशाओंको व्याप्त करता हुआ लंकापुरीकी ओर चला ॥१३-१५॥ विमानमें बैठकर त्रिकूटाचलके सम्मुख जाता हुआ हनूमान् ऐसा सुशोभित हो रहा था जैसा कि मेरुके सम्मुख जाता हुआ ऐशानेन्द्र सुशोभित होता है ॥१६॥ समुद्रकी लहरोंकी सन्तति जिसके विशाल नितम्बको चूम रही थी ऐसे जल-वीचि गिरिपर जब वह पहुँचा तब सूर्य अस्त हो गया ॥१७॥ सो वहाँ उत्तम योद्धाओंके साथ वार्तालाप करते हुए उसने सुखसे रात्रि बितायी और प्रातःकाल होनेपर बड़े उत्साहसे लंकाकी ओर दृष्टि रखकर आगे चला ॥१८॥ इस तरह नाना देशों, द्वीपों, तरंगोंसे आहत, पर्वतों और समुद्रमें किलोलें करते मगर-मच्छोंको देखता हुआ राक्षसोंकी सेनामें जा पहुँचा ॥१९॥ हनूमान्‌की सेना देखकर बड़े-बड़े राक्षसोंके शिरोमणि हनूमान्‌की ओर दृष्टि लगाकर परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥२०॥ जिसने पर्वतको चूर्ण किया था यह वही भव्य जनोत्तम है इस शब्दको सुनता हुआ हनूमान् रावणके समीप गया ॥२१॥ उस समय रावण उस शिलातलपर बैठा था जो कि फूलोंसे व्याप्त था, सुगन्धिके कारण खिंचे हुए मदोन्मत्त भ्रमर जिसपर गुंजार कर रहे थे, जिसके ऊपर रत्नोंकी किरणोंसे व्याप्त कपड़ेका उत्तम मण्डप लगा हुआ था और जिसके चारों ओर सामन्त लोग बैठे थे। रावण हनूमान्‌को देखकर उस शिलातलसे उठकर खड़ा हो गया ॥२२-२३॥ तदनन्तर विनयसे जिसका शरीर झुक रहा था ऐसे हनूमान्‌का आलिंगन कर वह प्रीतिसे हँसता हुआ उसके साथ उसी शिलातलपर बैठ गया ॥२४॥ परस्परकी कुशल पूछकर तथा एक दूसरेकी सम्पदा देखकर दोनों महाभाग्यशाली इस तरह रमण करने लगे मानो दो इन्द्र ही परस्पर मिले हों ॥२५॥

अथानन्तर जो प्रसन्न चित्तका धारक था और अत्यन्त स्नेहभरी दृष्टिसे बार-बार उसीकी ओर देख रहा था ऐसा रावण हनूमान्‌से बोला कि ॥२६॥ अहो, सज्जनोत्तम पवनकुमारने मेरे साथ खूब प्रेम बढ़ाया है जो प्रसिद्ध गुणोंके सागरस्वरूप इस पुत्रको भेजा है ॥२७॥ इस महा-

१. श्रीशैलहितलोचनाः म. । २. हनूमन्तम् । ३. -छुरितावर- म. । ४. तेजोमङ्गल- म. ।

गुणेषु भाष्यमाणेषु श्रीशैलो गतविग्रहः । सव्रीड इव संवृत्तः प्रायो वृत्तिरियं सताम् ॥२९॥
भविष्यतोऽस्य संग्रामाद्भयेनेव दिवाकरः । अस्तं सेवितुमारेभे मन्दारुणकरोत्करः ॥३०॥
संध्यास्य पृष्ठतो यान्ती वहन्ती रागमुत्कटम् । शुशुभे प्राणनाथस्य विनीता रमणी यथा ॥३१॥
ततो निशावधूं रेजे कृतचन्द्रविशेषका । कुर्वाणानुगतिं भर्तुर्वासरस्य निरन्तरम् ॥३२॥
अन्येद्युर्मांशुभिर्भानोरुज्ज्वले भुवने कृते । दशग्रीवः सुसन्नद्धः समस्तबलमध्यगः ॥३३॥
आसन्नस्थहनूमत्कः कृतमङ्गलविग्रहः । विद्यया जलधिं भित्त्वा प्रयातो वारुणं पुरम् ॥३४॥
प्रत्यरिं[2] व्रजतोऽमुष्य दीप्तिरासीदनुत्तमा । कुठारराममुद्दिश्य सुभूमस्येव चक्रिणः ॥३५॥
ज्ञात्वा दशाननं प्राप्तं सैन्यनिस्वनसूचितम् । संक्षुब्धोऽभूत् पुरं सर्वं वरुणस्य महारवम् ॥३६॥
पातालपुण्डरीकाख्यं तत्पुरं प्रबलध्वजम् । सुरत्नतोरणं जातं सन्नाहरवसंकुलम् ॥३७॥
तत्रासुरपुराकारे पुरे सर्वमनोहरे । आसीच्चकितनेत्राणां स्त्रीणामाकुलता परा ॥३८॥
योधास्तत्र निराक्रामन् सेमा भवनवासिनाम् । चमरासुरतुल्यश्च वरुणः शौर्यगर्वितः ॥३९॥
तस्य पुत्रशतं तावदुत्थितं योद्धुमुद्धतम् । नाना प्रहरणव्रातरुद्धभास्करदर्शनम् ॥४०॥
आपातमात्रकेणैव भग्नं तै राक्षसं बलम् । असुराणामिवोदारैः कुमारैः क्षुद्रदैवतम् ॥४१॥

बलवान् तथा तेजोमण्डलके धारक वीरको पाकर मुझे इस संसारमें कोई भी कार्य कठिन नहीं रह जायेगा ॥२८॥ जब रावण हनूमान्के गुणोंका वर्णन कर रहा था तब वह लज्जितके समान नम्र शरीरका धारक हो गया था सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषोंकी यही वृत्ति है ॥२९॥ तदनन्तर जिसकी किरणोंका समूह लाल पड़ गया था ऐसा सूर्य मानो होनेवाले संग्रामके भयसे ही अस्त हो गया था ॥३०॥ उसके पीछे-पीछे जाती और उत्कट राग अर्थात् लालिमा (पक्षमें प्रेम) को धारण करती हुई सन्ध्या ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो अपने प्राणनाथके पीछे-पीछे जाती हुई विनीत स्त्री—कुलवधू ही हो ॥३१॥ जो निरन्तर सूर्यके पीछे-पीछे चला करती थी ऐसी रात्रि-रूपी वधू चन्द्रमारूपी तिलक धारण कर अतिशय सुशोभित होने लगी ॥३२॥ दूसरे दिन जब सूर्यकी किरणोंसे संसार प्रकाशमान हो गया तब रावण तैयार होकर वरुणके नगरकी ओर चला। उस समय रावण अपनी समस्त सेनाके मध्यमें चल रहा था। हनूमान् उसके पास ही स्थित था और मंगलद्रव्य उसने शरीरपर धारण कर रखे थे। वह विद्याके द्वारा समुद्रको भेदन कर वरुणके नगरकी ओर चला ॥३३-३४॥ जिस प्रकार परशुरामको लक्ष्य कर चलनेवाले सुभौम चक्रवर्तीकी अनुपम दीप्ति थी उसी प्रकार शत्रुके सम्मुख जानेवाले रावणकी दीप्ति भी अनुपम थी ॥३५॥ सेनाकी कल-कलसे दशाननको आया जान वरुणका समस्त नगर क्षुभित हो गया उसमें बड़ा कुहराम मच गया ॥३६॥ वरुणका वह नगर पातालपुण्डरीक नामसे प्रसिद्ध था। उसमें मजबूत ध्वजाएँ लगी हुई थीं और रत्नमयी तोरण उसकी शोभा बढ़ा रहे थे, पर रावणके पहुँचनेपर सारा नगर युद्धकी तैयारी सम्बन्धी कल-कलसे व्याप्त हो गया ॥३७॥ असुरोंके नगरके समान सबके मनको हरनेवाले उस नगरमें खासकर स्त्रियोंमें बड़ी आकुलता उत्पन्न हो रही थी। भयसे उनके नेत्र चकित हो गये थे ॥३८॥ वहाँ भवनवासी देवोंके समान जो योद्धा थे वे बाहर निकल आये तथा चमरेन्द्रके समान पराक्रमसे गर्वीला वरुण भी निकलकर बाहर आया ॥३९॥ जिन्होंने नाना प्रकारके शस्त्रोंके समूहसे सूर्यका दिखना रोक दिया था ऐसे वरुणके सौ पराक्रमी पुत्र भी युद्ध करनेके लिए उठ खड़े हुए ॥४०॥ सो जिस प्रकार असुरकुमार अन्य क्षुद्र देवताओंको क्षण एकमें पराजित कर देते हैं उसी प्रकार वरुणके सौ पुत्रोंने क्षण एकमें ही राक्षसोंकी सेनाको परा-

---

१. वरुणं म.। २. प्रत्यरि म., ज., क., ख.। ३. परशुरामम्। ४. प्राप्य म.। ५. -पौण्डरीकाख्यं म.। ६. महाभवन ख., ज.। ७. क्षुद्रदैवतम् म., ब.।

अन्तर्भाद्दशतेनैतद्राक्षसानां बलं क्षतम् । गोयूथवदरं चक्रे भ्रमणं भयसंकुलम् ॥४२॥
चक्रचापघनप्रासशतघ्नीप्रभृतीनि च । शस्त्राणि रक्षसां पेतुः करास्रस्वेदपिच्छलात् ॥४३॥
ततस्तं शरजालेन समालोक्याकुलीकृतम् । स्वसैन्यं वेगवद्वर्षहतोऽरुणकरोपमम् ॥४४॥
विंशत्यर्द्धमुखः क्रुद्धो भित्त्वा रिपुबलं क्षणात् । प्रविष्टः पातयन्वीरान् गजेन्द्र इव पादपान् ॥४५॥
ततोऽसौ युगपत्पुत्रैः वरुणस्य समावृतः । आदित्य इव मर्जद्भिः प्रावृषेण्यबलाहकैः ॥४६॥
तस्येषुभिर्बहुभिश्छिन्नं सर्वदिग्भ्यः समागतैः । तथापि मानसिंहोऽसौ न युद्धाद् व्यरमत् ॥४७॥
भास्करश्रवणः श्रेष्ठो नृणामिन्द्रजितस्तथा । अन्ये च रक्षसो नाथा वरुणेनाग्रतः कृताः ॥४८॥
ततो लक्षीकृतं दृष्ट्वा शराणां वरुणात्मजैः । रावणं शोणितस्रुत्या[2] किंशुकोत्करसंनिभम् ॥४९॥
रथमाशु[3] समारुह्य महापुरुषमध्यगम् । बन्धुवत्प्रीतिचेतस्कः स[4] रराज तमोरिपुः ॥५०॥
मारुतिर्मारुतं वेगाज्जयन्[5] जयकृतादरः । उद्यतः कालवध्वोर्ध्वं रविमण्डलभासुरः ॥५१॥
तेन [6]वारुणयः सर्वे प्रेरिताः प्रपलायिताः । [7]महारथसमीरेण घनसंघा इवोन्नताः ॥५२॥
प्रविष्टः परसैन्यं स दृश्योऽन्यत्र मुहुर्मुहुः । कदलीकाननच्छेदक्रीडां चक्रेऽरिमूर्तिषु ॥५३॥
कंचिल्लाङ्गूलपाशेन विद्यारचितमूर्तिना । आकर्षत्परमं वीरं स्नेहेन सुहृदं यथा ॥५४॥

जित कर दिया ॥४१॥ जिसके अन्दर सौ भाई अपनी कला दिखा रहे थे ऐसी वरुणकी सेनासे खण्डित हुई रावणकी सेना गायोंके झुण्डके समान भयभीत हो तितर-बितर हो गयी ॥४२॥ राक्षसोंके हाथ पसीनेसे गीले हो गये जिससे चक्र, धनुष, घन, प्रास, शतघ्नी आदि शस्त्र उनसे छूट-छूटकर नीचे गिरने लगे ॥४३॥ तदनन्तर रावणने देखा कि हमारी सेना बाणोंके समूहसे व्याकुल होकर प्रातःकालीन सूर्यकी किरणोंके समान लाल-लाल हो रही है तब वह बाणोंकी वेगशाली वर्षासे स्वयं ताडित होता हुआ भी क्रुद्ध हो क्षण एकमें शत्रुदलको भेदकर भीतर घुस गया और जिस प्रकार गजराज वृक्षोंको नीचे गिराता है उसी प्रकार वरुणकी सेनाके वीरोंको मार-मारकर नीचे गिराने लगा ॥४४-४५॥ तदनन्तर वरुणके सौ पुत्रोंने रावणको इस प्रकार घेर लिया जिस प्रकार कि वर्षाऋतुके गरजते हुए बादल सूर्यको घेर लेते हैं ॥४६॥ यद्यपि सब दिशाओंसे आनेवाले बाणोंसे रावणका शरीर खण्डित हो गया तो भी वह अभिमानी युद्धके मैदानको नहीं छोड़ रहा था ॥४७॥ उधर वरुणने भी देदीप्यमान कानोंको धारण करनेवाले नरश्रेष्ठ इन्द्रजित् तथा राक्षसोंके अन्य अनेक राजाओंको अपने सामने किया अर्थात् उनसे युद्ध करने लगा ॥४८॥

तदनन्तर वरुणके पुत्रने जिसे अपने बाणोंका निशाना बनाया था और जो रुधिरके बहनेसे पलाशके फूलोंके समूहके समान जान पड़ता था ऐसे रावणको देखकर हनूमान् शीघ्र ही महापुरुषोंके बीचमें चलनेपर रथपर सवार हुआ। उस समय उसका चित्त रावणके भाईके समान प्रीतिसे युक्त था तथा वह सूर्यके समान सुशोभित हो रहा था ॥४९-५०॥ तत्पश्चात् जो अपने वेगसे पवनको जीत रहा था, विजय प्राप्त करनेमें जिसका आदर था और जो सूर्यमण्डलके समान देदीप्यमान हो रहा था ऐसा हनूमान् यमराजके समान युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ ॥५१॥ सो जिस प्रकार महावेगशाली वायुसे प्रेरित उन्नत मेघोंका समूह इधर-उधर उड़ जाता है उसी प्रकार हनूमान्के द्वारा प्रेरित हुए वरुणके सब पुत्र इधर-उधर भाग खड़े हुए ॥५२॥ वह बार-बार शत्रुओंके शरीरोंके साथ कदली वनको छेदनेकी क्रीड़ा करता था अर्थात् शत्रुओंके शरीरको कदली वनके समान अनायास ही काट रहा था ॥५३॥ जिस प्रकार कोई पुरुष स्नेहके द्वारा अपने मित्रको खींच लेता है उसी प्रकार उसने किसी वीरको विद्यानिर्मित लांगूलरूपी पाशसे खींच लिया था ॥५४॥ और

१. दशाननः । २. शोणितश्रुत्या म. । ३. समासद्य । ४. पराजिततमो रविः म. । ५. -ज्जयं जय- म । ६. वरुणस्यापत्यानि पुमांसः, वारुणयः । ७. महारथसमीरेण म. ।

[1]कंचिदुल्कामिघातेन मस्तकोपर्यताडयत् । हेतुमुद्गरघातेन [2]मिथ्यादृष्टिमिवार्हतः ॥५५॥
क्रीडन्तमिति तं दृष्ट्वा श्रीशैलं वानरध्वजम् । अभ्याजगाम वरुणो कोपारुणनिरीक्षणः ॥५६॥
श्रीशैलाभिमुखं दृष्ट्वा वारुणं राक्षसाधिपः । धावमानं रुरोधारिं गिरिर्विघ्नमिवाजलम् ॥५७॥
वरुणस्याभवद् युद्धं यावन्नाथेन रक्षसाम् । वाजिवारणपादातशस्त्रसंघातसंकुलम् ॥५८॥
तावत्पुत्रशतं तस्य बद्धं पवनसूनुना । [3]चिरं युद्धश्रमोद्भूतखेदं निधनतैनिकम् ॥५९॥
श्रुत्वा पुत्रशतं बद्धं वरुणः शोकविह्वलः । विद्यास्मरणनिर्मुक्तो बभूव श्लथविक्रमः ॥६०॥
प्राप्यास्य रावणश्छिद्रं विद्यामुच्छिद्य योधिनीम् । जीवग्राहमिमं क्षिप्रं जग्राह रणकोविदः ॥६१॥
तदा वरुणचन्द्रस्य [4]भ्रष्टपुत्रकरश्रियः [5]। उदयेन विमुक्तस्य रावणो राहुतामगात् ॥६२॥
शत्रुपञ्जरमध्यस्थो भग्नमानश्च सोऽर्पितः । सादरं कुम्भकर्णस्य रक्षितुं विस्मयेक्षितः ॥६३॥
ततो विश्रमयन् सैन्यं रावणश्चिरनिर्वृतः [6]। उद्याने प्रवरे तस्थौ भवनोन्मादनामनि ॥६४॥
समुद्रासंगशीतेन वायुनास्य व्यनीयत । सैन्यस्य रणजः खेदो वृक्षच्छायानुवर्तिनः ॥६५॥
गृहीतं नायकं ज्ञात्वा वरुणस्याखिलं बलम् । प्रविवेश पुरं भीतं पौण्डरीकं सभाकुलम् ॥६६॥
तदेव साधनं तावत्त एव च महाभटाः । प्रधानस्य वियोगेन प्रापुर्व्यर्थशरीरताम् ॥६७॥
पुण्यस्य पश्यतौदार्यं यदुद्भवति तद्भवि । बहूनामुद्भवः पुंसां पतिते पतनं तथा ॥६८॥

जिस प्रकार कोई जिनभक्त हेतुरूपी मुद्गरके प्रहारसे मिथ्यादृष्टिके मस्तकपर प्रहार करता है उसी प्रकार वह किसीके शिरपर उल्काके प्रहारसे चोट पहुँचा रहा था ॥५५॥ इस प्रकार वानरकी ध्वजासे सुशोभित हनूमान्को क्रीड़ा करते देख क्रोधसे लाल-लाल नेत्र करता हुआ वरुण उसके सामने आया ॥५६॥ ज्योंही रावणने वरुणको हनूमान्के सामने दौड़ता आता देखा त्यों ही उसने शत्रुको बीचमें उस प्रकार रोक लिया जिस प्रकार कि पहाड़ नदीके जलको रोक लेता है ॥५७॥ इधर जबतक वरुणका रावणके साथ घोड़े, हाथी, पैदल सिपाही तथा शस्त्रोंके समूहसे व्याप्त युद्ध हुआ ॥५८॥ तबतक हनूमान्ने वरुणके सौके सौ ही पुत्र बाँध लिये। वे चिरकाल तक युद्ध करते-करते थक गये थे तथा उनके सैनिक मारे गये थे ॥५९॥ सौके सौ ही पुत्रोंको बँधा सुनकर वरुण शोकसे विह्वल हो गया। वह विद्याका स्मरण भूल गया और उसका पराक्रम ढीला पड़ गया ॥६०॥ रण-निपुण रावणने छिद्र पाकर वरुणकी योधिनी नामा विद्या छेद डाली तथा उसे जीवित पकड़ लिया ॥६१॥

उस समय जिसके पुत्ररूपी किरणोंकी शोभा नष्ट हो गयी थी तथा जो उदयसे रहित था ऐसे वरुणरूपी चन्द्रमाके लिए रावणने राहुका काम किया था ॥६२॥ जो शत्रुरूपी पिंजड़ेके मध्यमें स्थित था, जिसका मान नष्ट हो गया था और जिसे लोग बड़े आश्चर्यसे देखते थे ऐसा वरुण रक्षा करनेके लिए आदरके साथ कुम्भकर्णको सौंपा गया ॥६३॥ तदनन्तर बहुत दिन बाद निश्चिन्तताको प्राप्त हुआ रावण सेनाको विश्राम देता हुआ भवनोन्माद नामक उत्कृष्ट उद्यानमें ठहरा रहा ॥६४॥ वृक्षोंकी छायाके नीचे ठहरी हुई इसकी सेनाका युद्धजनित खेद समुद्रके सम्बन्धसे शीतल वायुने दूर कर दिया था ॥६५॥ स्वामीको पकड़ा जानकर वरुणकी समस्त सेना भयभीत हो व्याकुलतासे भरे पुण्डरीक नगरमें घुस गयी ॥६६॥ यद्यपि वही सेना थी, और वे ही महायोद्धा थे तो भी प्रधान पुरुषके बिना सब व्यर्थ हो गये ॥६७॥ अहो! पुण्यका माहात्म्य देखो कि पुण्यवान्के उत्पन्न होते ही अनेक पुरुषोंका उद्भव हो जाता है और उसके नष्ट होनेपर अनेक पुरुषोंका पतन हो जाता है ॥६८॥

१. दुल्कासि -म.। २. मिथ्यादृष्टिरिवार्हतः म.। ३. चिरयुद्ध ख.। ४. वरुणयोधस्य म.। ५. भ्रष्टपुत्रकरः श्रियः म.। ६. -श्चरनिर्वृतः ख., ज, म.।

अथ भास्करकर्णस्तम्भञ्जाति स्म पुरं रिपोः । विह्वलीभूतनिश्शेषजनसंघातसंकुलम् ॥६९॥
लुण्टितं चात्र सकलं धनरत्नादिकं भटैः । अरातिपुरकोपेन न तु [1]लोभवशस्थितैः ॥७०॥
रतिविभ्रमधारिण्यः स्रवदश्राकुलेक्षणाः । विलपन्त्यो वराकाश्च गृह्यन्ते स्म वराङ्गनाः ॥७१॥
स्तनावनम्रदेहास्ताश्चलत्पल्लवपाणयः । क्रूजन्त्यो बान्धवान् सर्वान् गृहीता निष्ठुरैर्नरैः ॥७२॥
विमानाभ्यन्तरन्यस्ता काचिदेवमभाषत । सखीं शोकग्रहग्रस्तसमस्तास्यनिशाकराः ॥७३॥
सखि ! शीलविनाशो मे यदि नाम भवेदिह । उल्लम्ब्यांशुकपट्टेन मरिष्यामि न संशयः ॥७४॥
संदिग्धमरणं काचिन् व्याहरन्ती मुहुः प्रियम् । संस्मृत्य तद्गुणान् मूर्च्छामानष्टं म्लानलोचना ॥७५॥
मातरं पितरं कान्तं भ्रातरं मातुलं सुतम् । आह्वयन्त्यः क्षरत्नेत्रास्ता मुनेरपि दुःखदाः ॥७६॥
काचित्कुम्भकर्णस्य [2]शोभया हृतलोचना । जगादोपांशुविस्रम्भात् सखीं कमललोचना ॥७७॥
सखि कापि [3]मनोज्ञस्य दृष्ट्वैनं नरपुङ्गवम् । प्रतिभाति कृतेवाहं परायत्तशरीरिका ॥७८॥
इति [4]शुद्धा विरुद्धाश्च विकल्पास्तत्र योषिताम् । बभूवुः कर्मवैचित्र्यात्लोकोऽयं चित्रचेष्टितः ॥७९॥
कुबेर इव सद्भूतिः प्रवीरभटसेवितः । जयनिस्वानमुखरः कान्तलीलासमन्वितः ॥८०॥
अवतीर्य विमानाग्र्याद् भास्करश्रवणो मुदा । पुरो राक्षसनाथस्य धूसरौष्ठीरतिष्ठपत् ॥८१॥
ता विषादवतीर्दृष्ट्वा वाष्पपूरितलोचनाः । बन्धुभी रहिता नम्राः सवेपथुशरीरिकाः [5] ॥८२॥

अथानन्तर कुम्भकर्ण घबड़ाये हुए समस्त मनुष्योंके समूहसे व्याप्त शत्रुके उस नगरको नष्ट-भ्रष्ट करने लगा ॥६९॥ योद्धाओंने उस नगरकी धन-रत्न आदिक समस्त कीमती वस्तुएँ लूट लीं। यह लूट शत्रुके नगरपर क्रोध होनेके कारण ही की गयी थी न कि लोभके वशीभूत होकर ॥७०॥ जो रतिके समान विभ्रमको धारण करनेवाली थीं, जिनके नेत्र झरते हुए आँसुओंसे व्याप्त थे तथा जो विलाप कर रही थीं ऐसी बेचारी उत्तमोत्तम स्त्रियाँ पकड़कर लायी गयीं ॥७१॥ जिनके शरीर स्तनोंके भारसे नम्र थे, जिनके पल्लवोंके समान कोमल हाथ हिल रहे थे और जो समस्त बन्धुजनोंको चिल्ला-चिल्लाकर पुकार रही थीं ऐसी उन स्त्रियोंको निष्ठुर मनुष्य पकड़कर ला रहे थे ॥७२॥ जिसका मुखरूपी पूर्ण चन्द्रमा शोकरूपी राहुके द्वारा ग्रसा गया था ऐसी विमानके भीतर डाली गयी कोई स्त्री सखीसे कह रही थी कि हे सखि ! यदि कदाचित् मेरे शीलका भंग होगा तो मैं वस्त्रकी पट्टीसे लटककर मर जाऊँगी इसमें संशय नहीं है ॥७३-७४॥ जिसके मरनेमें सन्देह था ऐसे पतिको बार-बार पुकारती हुई म्लान लोचनोंवाली कोई स्त्री उसके गुणोंका स्मरण कर मूर्च्छाको प्राप्त हो रही थी ॥७५॥ जो माता, पिता, भाई, मामा और पुत्रको बुला रही थीं तथा जिनके नेत्रोंसे आँसू झर रहे थे ऐसी वे स्त्रियाँ मुनिके लिए भी दुःख-दायिनी हो रही थीं अर्थात् उनकी दशा देख मुनिके हृदयमें भी दुःख उत्पन्न हो जाता था ॥७६॥ कुम्भकर्णकी शोभासे जिसके नेत्र हरे गये थे ऐसी कोई एक कमल-लोचना स्त्री एकान्त पाकर विश्वासपूर्वक सखीसे कह रही थी कि हे सखि ! इस श्रेष्ठ नरको देखकर मुझे कोई अद्भुत ही आनन्द उत्पन्न हुआ है और जिस आनन्दसे मानो मेरा समस्त शरीर पराधीन ही हो गया है ॥७७-७८॥ इस प्रकार कर्मोंकी विचित्रतासे उन स्त्रियोंमें शुद्ध तथा विरुद्ध दोनों प्रकारके विकल्प उत्पन्न हो रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि लोगोंकी चेष्टाएँ विचित्र हुआ करती हैं ॥७९॥ तदनन्तर जो कुबेरके समान समीचीन विभूतिका धारक था, अत्यन्त बलवान् योद्धा जिसकी सेवा कर रहे थे, जो जय-जयकी ध्वनिसे मुखर था और सुन्दर लीलासे सहित था ऐसे कुम्भकर्णने विमानसे उतरकर बड़े हर्षके साथ उन धूसर ओठोंवाली अपहृत स्त्रियोंको रावणके सामने खड़ा कर दिया ॥८०-८१॥ वे स्त्रियाँ विषादसे युक्त थीं, उनके नेत्र आँसुओंसे भरे हुए थे,

१. लोभकषास्थितैः म. । २. किरणस्य म. । ३. मुनिपुङ्गवम् म. । ४. शुद्धविरुद्धाश्च म. । ५. विषादवती दृष्ट्वा म. । ६. -शरीरिका म. ।

[1]वदन्तीः करुणं स्वैरं किमपि [2]त्रपयान्विताः । रावणः करुणाविष्टो जगादेति सहोदरम् ॥८३॥
अहोऽत्यन्तमिदं बाल त्वया दुश्चरितं कृतम् । कुलवत्यो यदानीता बन्दीग्रहणपञ्जरम् ॥८४॥
दोषः कोऽत्र वराकीणां नारीणां मुग्धचेतसाम् । खलीकारमिमा येन स्वैरिका प्रापिता मुधा ॥८५॥
पालिका मुग्धलोकस्य शत्रुलोकस्य नाशिका । गुरुशुश्रूषिणी चेष्टा मनु चेष्टा महात्मनाम् ॥८६॥
इत्युक्त्वा मोचितास्तेन क्षिप्रं[4] ता ययुरालयम् । आश्वासिता गिरा साध्व्यः सद्यः शिथिलसाध्वसाः[5]॥८७॥
आनाय्य वरुणोऽवादि रावणेनाथ सव्रपः । भटदर्शनमात्रेण कृतरक्षोननाननः ॥८८॥
प्रवीण मा कृथाः शोकं युद्धग्रहणसंभवम्[6] । ग्रहणं ननु वीराणां रणे सत्कीर्तिकारणम् ॥८९॥
द्वयमेव रणे वीरैः प्राप्यते मानशालिभिः । ग्रहणं मरणं वापि कातरैश्च पलायितुम् ॥९०॥
पुरावदखिलं स त्वं राज्यं रक्ष निजे पदे । मित्रबान्धवसंपन्नः सकलोपद्रवोज्झितम् ॥९१॥

उपजातिवृत्तम्

अथैवमुक्तो वरुणः स वीरं कृत्वाञ्जलिं प्रावददेतमेव ।
विशालपुण्यस्य तवात्र लोके मूढो जनो तिष्ठति वैरभावे ॥९२॥

उपेन्द्रवज्रावृत्तम्

अहो महद्धैर्यमिदं त्वदीयं मुनेरिव स्तोत्रसहस्रयोग्यम् ।
विहाय रत्नानि पराजितोऽहं त्वया यदस्युन्नतशासनेन ॥९३॥

बन्धुजनोंसे रहित थीं, नम्र थीं, उनके शरीर काँप रहे थे, वे इच्छानुसार कुछ दयनीय शब्दोंका उच्चारण कर रही थीं तथा लज्जासे युक्त थीं। उन स्त्रियोंको देखकर रावण करुणायुक्त हो कुम्भकर्णसे इस प्रकार कहने लगा ॥८२-८३॥ कि अहो बालक! जो तू कुलवती स्त्रियोंको बन्दीके समान पकड़कर लाया है यह तूने अत्यन्त दुश्चरितका कार्य किया है ॥८४॥ इन बेचारी भोली-भाली स्त्रियोंका इसमें क्या दोष था जो तूने व्यर्थ ही इन्हें कष्ट पहुँचाया है? ॥८५॥ जो चेष्टा मुग्धजनोंका पालन करनेवाली है, शत्रुओंका नाश करनेवाली है और गुरुजनोंकी शुश्रूषा करनेवाली है यथार्थमें वही महापुरुषोंकी चेष्टा कहलाती है ॥८६॥ ऐसा कहकर उसने उन्हें शीघ्र ही छुड़वा दिया जिससे वे अपने-अपने घर चली गयीं। यही नहीं उसने साध्वी स्त्रियोंको अपनी वाणीसे आश्वासन भी दिया जिससे उन सबका भय शीघ्र ही कम हो गया ॥८७॥

अथानन्तर जो लज्जासे सहित था तथा जिसने सुभटोंके देखने मात्रसे राक्षसोंका मुख नीचा कर दिया था ऐसे वरुणको बुलाकर रावणने कहा कि हे प्रवीण! युद्धमें पकड़े जानेका शोक मत करो क्योंकि युद्धमें वीरोंका पकड़ा जाना तो उनकी उत्तम कीर्तिका कारण है ॥८८-८९॥ मानशाली वीर युद्धमें दो ही वस्तुएँ प्राप्त करते हैं एक तो पकड़ा जाना और दूसरा मारा जाना। इनके सिवाय जो कायर लोग हैं वे भाग जाना प्राप्त करते हैं ॥९०॥ तुम पहलेके समान ही समस्त मित्र और बन्धुजनोंसे सम्पन्न हो सकल उपद्रवोंसे रहित अपने सम्पूर्ण राज्यका अपने ही स्थानमें रहकर पालन करो ॥९१॥ इस प्रकार कहनेपर वरुणने हाथ जोड़कर वीर रावणसे कहा कि इस संसारमें आपका पुण्य विशाल है जो आपके साथ वैर रखता है वह मूर्ख है ॥९२॥ अहो! यह तुम्हारा बड़ा धैर्य है, यह मुनिके धैर्यके समान हजारों स्तवन करनेके योग्य है, कि जो तुमने दिव्य रत्नोंका प्रयोग किये बिना ही मुझे जीत लिया। यथार्थमें तुम्हारा शासन उन्नत है ॥९३॥

---

१. वदन्ती म.। २. त्रपयान्विता म.। ३. स्वयि का म.। ४. क्षिप्रा म.। ५. -साध्वसा म.। ६. -संभव म.।

उपजातिवृत्तम्

वायोः सुतस्यैव कथं प्रभावो निगद्यतामद्भुतकर्मणोऽपि ।
यतस्त्वदीयेन शुभेन साधो [1]समादृतः सोऽपि महानुभावः ॥९४॥
न कस्यचिन्नाम महीयसेतां गोत्रक्रमाद्विक्रमकोशधारिता ।
वीरस्य भोग्येयमसौ भवांश्च तेषां स्थितो मूर्धनि शाधि लोकम् ॥९५॥
स्वामी त्वमस्माकमुदारकीर्ते क्षमस्व दुर्वाग्वियकृतं निकारम् ।
वक्तव्यमित्येव वदामि नाथ क्षमा तु दृष्टैव तवात्युदारा ॥९६॥
तेन त्वया सार्धमहं विधाय संबन्धमत्युद्धतचेष्टितेन ।
कृतार्थसामेमि ततो गृहाण तन्मे सुतां योग्यतमस्त्वमस्याः ॥९७॥
एवं गदित्वा [2]तनुजां विनीतां प्रकीर्तितां सत्यवतीति नाम्ना ।
ललाम रूपां जनितां सुदेव्यां [3]समर्पयत्सोमरसाभवक्त्राम् ॥९८॥
तयोर्महान् संवभूते विवाहे समुत्सवः पूजितसर्वलोकः ।
तयोर्हि निःशेषसमृद्धिभाजोरन्वेषणीयं न समस्ति किंचित् ॥९९॥
संमानितस्तेन च मानितेन कृतानुयानः कपिचोदितानि ।
सुतावियोगव्यथितान्तरात्मा स्वराजधानीं वरुणो विवेश ॥१००॥
कैलासकम्पोऽपि समेत्य लङ्कां विधाय संमानमतिप्रधानम् ।
महाप्रभां चन्द्रनखात्मजां ददौ [4]समीरसूनवाय कन्याम् ॥१०१॥
अनङ्गपुष्पेति समस्तलोके गतां प्रसिद्धिं गुणराजधानीम् ।
अनङ्गपुष्पायुधभूतनेत्रां लब्ध्वा स तां तोषमुदारमार [5] ॥१०२॥

अथवा आश्चर्यकारी कार्य करनेवाले हनूमान्का ही प्रभाव कैसे कहा जाये ? क्योंकि हे सत्पुरुष ! वह महानुभाव भी आपके ही शुभोदयसे यहाँ आया था ॥९४॥ पराक्रमरूपी कोशसे जिसकी रक्षा की गयी ऐसी यह पृथिवी गोत्रकी परिपाटीके अनुसार किसीको प्राप्त नहीं हुई । यह तो वीर मनुष्यके भोगने योग्य है और आप वीर मनुष्योंमें अग्रसर हो अतः आप लोकका पालन करो ॥९५॥ हे उदार यशके धारक ! आप हमारे स्वामी हो । मेरे दुर्वचनोंसे आपको जो दुःख हुआ हो उसे क्षमा करो । हे नाथ ! ऐसा कहना चाहिए, इसीलिए कह रहा हूँ । वैसे आपकी अत्यन्त उदार क्षमा तो देख ही ली है ॥९६॥ आप अत्यन्त चेष्टाके धारक हो इसलिए आपके साथ सम्बन्ध कर मैं कृतकृत्य होना चाहता हूँ । आप मेरी पुत्री स्वीकृत कीजिए क्योंकि इसके योग्य आप ही हैं ॥९७॥ ऐसा कहकर उसने सुन्दर रूपकी धारक, सुदेवी रानीसे उत्पन्न, कमलके समान मुखवाली, सत्यवती नामसे प्रसिद्ध अपनी विनीत कन्या रावणके लिए समर्पित कर दी ॥९८॥ उन दोनोंके विवाहमें ऐसा बड़ा भारी उत्सव हुआ था कि जिसमें सब लोगोंका सम्मान किया गया तो ठीक ही है क्योंकि दोनों ही समस्त समृद्धिको प्राप्त थे, अतः उन्हें कोई भी वस्तु खोजनी नहीं पड़ी थी ॥९९॥ इस प्रकार सम्मानको प्राप्त हुए रावणने जिसका सम्मान किया था तथा रावण स्वयं जिसे भेजनेके लिए पीछे-पीछे गया था ऐसा वरुण अपनी राजधानीमें प्रविष्ट हुआ । वहाँ पुत्रीके वियोगसे कुछ दिन तक उसकी अन्तरात्मा दुःखी रही ॥१००॥ कैलासको कम्पित करनेवाले रावणने भी लंकामें आकर तथा बहुत भारी सम्मान कर हनूमान्के लिए चन्द्रनखाकी कान्तिमती पुत्री समर्पित की । उस कन्याका नाम लोकमें 'अनंगपुष्पा' प्रसिद्ध था । वह गुणोंकी राजधानी थी और उसके नेत्र कामदेवके पुष्परूपी शस्त्र अर्थात् कमलके समान थे । उसे पाकर हनूमान् अत्यधिक सन्तोषको

१. समाहितः म. । २. विदितेश म. । ३. सुदेव्या म. । ४. ताम्ररसाभवक्त्राम् म. । ५. हनूमते । ६. प्राप

वसन्ततिलकावृत्तम्

श्रियं च संगादिनि कर्णकुण्डले पुरेऽस्य चक्रे क्षितिपाभिषेचनम् ।
स्थितः स तत्रोत्तमभोगसंगतो यथोर्ध्वलोके भुवनस्य पालकः ॥१०३॥
तथा नलः किष्कुपुरे शरीरजां प्रसिद्धिमेयां हरिमालिनीं श्रुतिम् ।
श्रियं जयन्तीमपि रूपसंपदा ददौ विभूत्या परया हनूमते ॥१०४॥
पुरे तथा किन्नरगीतसंज्ञके स लब्धवान् किन्नरकन्यकाशतम् ।
इति क्रमेणास्य बभूव योषितां परं सहस्रादधिकं महात्मनः ॥१०५॥

उपजातिवृत्तम्

भ्रमन्नसौ येन महीधरेऽस्थाच्छ्रीशैलसंज्ञोऽत्र समीरसूनुः ।
श्रीशैल इत्यागतवानसौ तत् ख्यातिं पृथिव्यामिति रम्यसानुः ॥१०६॥
तदास्ति किष्किन्धपुरे महात्मा सुग्रीवसंज्ञः पुरखेचरेशः ।
तारेति तारापति[1]कान्तवक्त्रा बभूव रामास्य रते समाना ॥१०७॥
तयोस्तनूजा नवपद्मरागा गुणैः प्रतीता भुवि पद्मरागा ।
पद्मेव रूपेण विशालनेत्रा सामण्डलप्रावृतवक्त्रपद्मा ॥१०८॥

उपेन्द्रवज्रावृत्तम्

महेभकुम्भोन्नतपीवरस्तनी सुरेन्द्रशस्त्रग्रहणोपमोदरी ।
विशाललावण्यसरोगमध्यगा मनोज्ञचा सर्वजनान्तरात्मनाम् ॥१०९॥

उपजातिवृत्तम्

विचिन्तयन्तौ पितरौ च तस्या योग्यं वरं शोभनविभ्रमायाः ।
नक्तं न निद्रां सुखतो लभेतां दिवा तु नैव प्रविकीर्णचित्तौ ॥११०॥

प्राप्त हुआ ॥१०१-१०२॥ कन्या ही नहीं दी किन्तु लक्ष्मीसे भरपूर कर्णकुण्डलनामा नगरमें उसका राज्याभिषेक भी किया सो जिस प्रकार स्वर्गलोकमें इन्द्र रहता है उसी प्रकार वह उस नगरमें उत्तम भोग भोगता हुआ रहने लगा ॥१०३॥ किष्कुपुरके राजा नलने भी रूपसम्पदाके द्वारा लक्ष्मी-को जीतनेवाली अपनी हरिमालिनी नामकी प्रसिद्ध पुत्री बड़े वैभवके साथ हनूमान्‌को दी ॥१०४॥ इसी प्रकार किन्नरगीत नामा नगरमें भी उसने किन्नरजातिके विद्याधरोंकी सौ कन्याएँ प्राप्त कीं। इस तरह उस महात्माके यथाक्रमसे एक हजारसे भी अधिक स्त्रियाँ हो गयीं ॥१०५॥ चूँकि श्रीशैल नामको धारण करनेवाले हनूमान् भ्रमण करते हुए उस पर्वतपर आकर ठहर गये थे इसलिए सुन्दर शिखरोंवाला वह पर्वत पृथिवीमें 'श्रीशैल' इस नामसे ही प्रसिद्ध हो गया ॥१०६॥

अथानन्तर उस समय किष्किन्धपुर नामा नगरमें विद्याधरोंके राजा उदारचेता सुग्रीव रहते थे। उनकी चन्द्रमाके समान मुखवाली तथा सुन्दरतामें रतिकी समानता करनेवाली तारा नामकी स्त्री थी ॥१०७॥ उन दोनोंके एक पद्मरागा नामकी पुत्री थी। उस पुत्रीका रंग नूतन कमलके समान था, गुणोंके द्वारा वह पृथिवीमें अत्यन्त प्रसिद्ध थी, रूपसे लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी, उसके नेत्र विशाल थे, उसका मुखकमल कान्तिके समूहसे आवृत था, उसके स्तन किसी बड़े हाथीके गण्डस्थलके समान उन्नत और स्थूल थे, उसका उदर इन्द्रायुध अर्थात् वज्रके पकड़नेकी जगहके समान कृश था, वह अत्यधिक सौन्दर्यरूपी सरोवरके मध्यमें संचार करनेवाली थी तथा सर्व मनुष्योंकी अन्तरात्माको चुरानेवाली थी ॥१०८-१०९॥ सुन्दर विभ्रमोंसे युक्त उस

---

१. कान्ति म. ।

ततः पटेष्विन्द्रजितप्रधाना विद्याधराः सूचितशीलवंशाः ।
चित्रीकृताश्चित्रगुणा दुहित्रे प्रदर्शिताश्चारुदृशः पितृभ्याम् ॥१११॥
अनुक्रमात्साथ निरीक्षमाणा मुहुर्मुहुः संहृतनेत्रकान्तिः ।
सद्यः समाकृष्टविचेष्टदृष्टिर्बाला हनूमत्प्रतिमां ददर्श ॥११२॥
दृष्ट्वा च सं वायुसुतं पटस्थं सादृश्यनिर्मुक्तसमस्तदेहम् ।
अताडयत्तावदसौ मदनस्य बाणैः सुदुस्सहैः पञ्चभिरेककालम् ॥११३॥
तत्रानुरक्तामधिगम्य वाढमेतामुदाचेति सखी गुणज्ञा ।
अयं स बाले पवनंजयस्य श्रीशैलनामा तनयः प्रतीतः ॥११४॥
गुणास्तवास्य प्रथिता पुरैव शोभा तु दृग्गोचरतां प्रयाता ।
एतेन सार्धं भज कामभोगान् पित्रोः प्रयच्छातिचिरेण निद्राम् ॥११५॥

वंशस्थवृत्तम्

अहो पुनश्चित्रगतेन [1]ते सता मनोविकारो जनितो हनूमता ।
सखीं वदन्तीमिति लज्जया नता जघान लीलाकमलेन कन्यका ॥११६॥

उपजातिवृत्तम्

ततो विदित्वा जनकेन तस्या हृतं मनो मारुतनन्दनेन ।
[3]पटः समारूढसुताशरीरः संप्रेषितो वायुसुताय शीघ्रम् ॥११७॥
दूतो युवा श्रीनगरं समेत्य [4]ज्ञातः प्रविष्टो विहितप्रणामः ।
हनूमते दर्शयति स्म बिम्बं तारात्मजायाः पटमध्यगतम् ॥११८॥

कन्याके योग्य वरकी खोज करते हुए माता-पिता न रातमें सुखसे नींद लेते थे और न दिनमें चैन। उनका चित्त सदा इसी उलझनमें उलझा रहता था ॥११०॥

तदनन्तर जो नाना गुणोंके धारक थे, जिनकी कान्ति अत्यन्त मनोहर थी, और साथ ही जिनके शील तथा वंशका परिचय दिया गया था ऐसे इन्द्रजित् आदि प्रधान विद्याधरोंके चित्रपट लिखाकर माता-पिताने पुत्रीको दिखलाये ॥१११॥ अनुक्रमसे उन चित्रपटोंको देखकर कन्याने बार-बार अपनी दृष्टि संकुचित कर ली। अन्तमें हनूमान्‌का चित्रपट उसे दिखाया गया तो उस ओर उसकी दृष्टि शीघ्र ही आकर्षित होकर निश्चल हो गयी। उसे वह अनुरागसे देखती रही ॥११२॥ तदनन्तर जिसका समस्त शरीर सदृशतासे रहित था ऐसे चित्रपटमें स्थित हनूमान्‌को देखकर वह कन्या एक ही साथ कामदेवके पाँचों दुःसह बाणोंसे ताड़ित हो गयी ॥११३॥ उसे हनूमान्‌में अनुरक्त देख गुणोंको जाननेवाली सखीने कहा कि हे बाले! यह पवनंजयका श्रीशैल नामसे प्रसिद्ध पुत्र है ॥११४॥ इसके गुण तो तुम्हें पहलेसे ही विदित थे और सुन्दरता तुम्हारे नेत्रोंके सामने है इसलिए इसके साथ कामभोगको प्राप्त करो तथा माता-पिताको चिरकाल बाद निद्रा प्रदान करो अर्थात् निश्चिन्त होकर सोने दो ॥११५॥ आश्चर्यकी बात है कि हनूमान्‌ने चित्रगत होकर भी तेरे मनमें विकार उत्पन्न कर दिया ऐसा कहती हुई सखीको कन्याने लज्जावनत हो लीलाकमलसे ताड़ित किया ॥११६॥ तदनन्तर जब पिताको पता चला कि कन्याका मन पवनपुत्र हनूमान्‌के द्वारा हरा गया है तब उसने शीघ्र ही हनूमान्‌के पास कन्याका चित्रपट भेजा ॥११७॥ सो सुग्रीवका भेजा हुआ दूत श्रीनगर पहुँचा। वहाँ जाकर उसने अपना परिचय दिया, प्रणाम किया और उसके बाद हनूमान्‌के लिए ताराकी पुत्री पद्मरागाका चित्रपट दिखलाया ॥११८॥

---

१. निरीक्ष्यमाणा म., ल., ज., ब.। २. तेन म.। ३. परः म.। ४ जातः म.।

सत्यं शराः पञ्च मनोभवस्य स्युर्यद्यमुष्मिन् जगति प्रसिद्धाः ।
कन्या निषुक्तैः कथमेककालं ततः शतैर्वायुसुतं जघान ॥११९॥
अजातपुत्रोऽस्मि न यावदेनां प्राप्नोमि कन्यामिति जातचिन्तः ।
समीरसूनुर्विभवेन युक्तः क्षणेन सुग्रीवपुरं जगाम ॥१२०॥
श्रुत्वा तमासन्नतरं प्रहृष्टः सुग्रीवराजोऽभ्युदियाय सद्यः ।
प्रयुज्यमानोऽर्धशतैर्हनूमान् पुरं प्रविष्टः श्वसुरेण सार्धम् ॥१२१॥
तस्मिंस्तदा राजगृहं प्रयाति प्रासादमालामणिजालकस्थाः ।
तद्दर्शनव्याकुलनेत्रपद्मा मुक्तान्यचेष्टा ललना बभूवुः ॥१२२॥
गवाक्षजालेन निरीक्षमाणा सुग्रीवजा वायुसुतस्य रूपम् ।
कामप्यवस्थां मनसा प्रपद्य स्वसंवेदनीयां सुकुमारदेही ॥१२३॥
अयं स नायं पुरुषोऽपरोऽयं कोऽप्येष सोऽसौ सखि सोऽयमेव ।
इत्यङ्गनाभिः परितर्क्यमाणो विवेश सुग्रीवपुरं हनूमान् ॥१२४॥
तयोर्विवाहः परया विभूत्या विनिर्मितः सकृतसर्वबन्धुः ।
तौ दम्पती योग्यसमागमेन प्राप्तौ प्रमोदं परमं सुरूपौ ॥१२५॥
जगाम कन्यां सहितो हनूमान् स्थानं निजं निर्वृतचित्तवृत्तिः ।
कृत्वा सशोकौ श्वसुरौ सवर्गौ सुतावियोगात्स्ववियोजनाच्च ॥१२६॥
तस्मिंस्तथा श्रीमति वर्तमाने सूनौ समस्तक्षितिगामकीर्तौ ।
महासुखास्वादसमुद्रमध्ये मग्नौ बभूवतुः क्षितिपोऽञ्जना च ॥१२७॥

जैसा कि इस संसारमें प्रसिद्ध है कि कामदेवके पाँच बाण हैं यदि यह बात सत्य है तो कन्याने एक ही समय सौ बाणोंके द्वारा हनूमान्को कैसे घायल किया ॥११९॥ यदि मैं इस कन्याको नहीं प्राप्त करता हूँ तो मेरा जन्म लेना व्यर्थ है ऐसा मनमें विचारकर हनूमान् बड़े वैभवके साथ क्षण एकमें सुग्रीवके नगरकी ओर चल पड़ा ॥१२०॥ उसे अत्यन्त निकटमें आया सुन सुग्रीव राजा हर्षित होता हुआ शीघ्र ही उसकी अगवानीके लिए गया। तत्पश्चात् जिसे सैकड़ों अर्घ दिये गये थे ऐसे हनूमान्ने श्वसुरके साथ नगरमें प्रवेश किया ॥१२१॥ उस समय जब हनूमान् राजमहलकी ओर जा रहा था तब नगरकी स्त्रियाँ अन्य सब काम छोड़कर महलोंके मणिमय झरोखोंमें जा खड़ी हुई थीं और उस समय उनके नेत्रकमल हनूमान्को देखनेके लिए व्याकुल हो रहे थे ॥१२२॥ सुकुमार शरीरकी धारक सुग्रीवकी पुत्री पद्मरागा झरोखेसे हनूमान्का रूप देखकर मन-ही-मन अपने आपके द्वारा अनुभव करने योग्य किसी अद्भुत अवस्थाको प्राप्त हुई ॥१२३॥ सखि ! यह वह पुरुष नहीं है, यह तो कोई दूसरा है, अथवा नहीं सखि ! यह वही है, इस प्रकार स्त्रियाँ जिसके विषयमें तर्कणा कर रहीं थी ऐसे हनूमान्ने नगरमें प्रवेश किया ॥१२४॥ तदनन्तर बड़े वैभवके साथ उन दोनोंका विवाह हुआ। विवाहमें समस्त बन्धुजन सम्मिलित हुए और अत्यन्त सुन्दर रूपके धारक दोनों दम्पति परम-प्रमोदको प्राप्त हुए ॥१२५॥ जिसका चित्त सन्तुष्ट हो रहा था ऐसे हनूमान् पुत्री तथा अपने आपके वियोगसे परिवार सहित सास-श्वसुरको शोकयुक्त करता हुआ नववधूके साथ अपने स्थानपर चला गया ॥१२६॥ इस प्रकार जिसकी कीर्ति समस्त संसारमें फैल रही थी ऐसे शोभा अथवा लक्ष्मी सम्पन्न पुत्रके रहते हुए राजा पवनंजय और अंजना महासुखानुभव रूपी सागरके मध्यमें गोता लगा रहे थे ॥१२७॥

१. कन्यालियुक्तैः म. । २. स्ववर्गौ ।

श्रीशैलतुल्यैरपि खेचरेशैः सम्मान्यमानो बहुमानधारी ।
अभूद्दशास्य क्षतसर्वशत्रुः त्रिखण्डनाथो हरिकण्ठतुल्यः ॥१२८॥
लङ्कानगर्यां स विशालकान्तिः सुखेन रेमे पृथुभोगजेन ।
[illegible] सुरलोकपुर्याम् ॥१२९॥
महानुभावः प्रमदाजनस्य स्तनेष्वसौ लालितरक्तपाणिः ।
विवेद नो दीर्घमपि व्यतीतं कालं प्रियावक्त्रतिगिञ्छभृङ्गः ॥१३०॥
एकापि यस्येह भवेद्विरूपा नरस्य जाया प्रतिकूलचेष्टा ।
रतेः पतित्वं स नरः करोति स्थितः सुखे संसृतिधर्मजाते ॥१३१॥
युक्तः प्रियाणां दशभिः सहस्रैस्तथाष्टभिः श्रीजनितोपमानाम् ।
महाप्रभावः किमुतैष राजा खण्डत्रयस्यानुपमानकान्तिः ॥१३२॥

वसन्ततिलकावृत्तम्

एवं समस्तखगपैरभिनूयमानः संभ्रान्तसंनतपराङ्मुखानुशिष्टिः ।
खण्डत्रयाधिपतिता विहिताभिषेकः साम्राज्यमाप जनताभिनुतं दशास्यः ॥१३३॥
विद्याधराधिपतिपूजितपादपद्मः श्रीकीर्तिकान्तिपरिवारमनोज्ञदेहः ।
सर्वग्रहैः परिवृतो दशवक्त्रराजो[2] जातः शशाङ्क इव कस्य न चित्तहारी ॥१३४॥
चक्रं सुदर्शनममोघमसुष्य दिव्यं मध्याह्नभास्करकरोपममभ्यजालम् ।
उद्दण्डशत्रुनृपवर्गविनाशदक्षं रेजेऽरदृष्टमतिभासुररत्नचित्रम् ॥१३५॥
दण्डश्च मृत्युरिव जातशरीरबन्धो दुष्टात्मनां भयकरः स्फुरितोग्रतेजाः ।
उल्कासमूह इव संगतवान् प्रचण्डो जज्वाल शस्त्रभवने प्रतिपन्नपूजः ॥१३६॥

अथानन्तर हनूमान् जैसे उत्तमोत्तम विद्याधर राजा जिसका सम्मान करते थे, जो अत्यधिक मानको धारण करनेवाला था, तीन खण्डका स्वामी था और हरिकण्ठके समान था ऐसा रावण समस्त शत्रुओंसे रहित हो गया ॥१२८॥ जिस प्रकार इन्द्र स्वर्गलोकमें क्रीड़ा करता है उसी प्रकार समस्त लोकोंको आनन्द प्रदान करता हुआ विशाल कान्तिका धारक रावण विशाल भोगोंसे समुत्पन्न सुखसे लंका नगरीमें क्रीड़ा करने लगा ॥१२९॥ स्त्रियोंके मुखरूपी कमलका भ्रमर रावण स्त्रीजनोंके स्तनोंपर हाथ चलाता हुआ बीते हुए बहुत भारी कालको भी नहीं जान पाया अर्थात् कितना अधिक काल बीत गया इसका उसे पता ही नहीं चला ॥१३०॥ जिस मनुष्यके पास एक ही विरूप तथा निरन्तर झगड़नेवाली स्त्री होती है वह भी सांसारिक सुखमें निमग्न हो अपने आपको रतिपति अर्थात् कामदेव समझता है ॥१३१॥ फिर रावण तो लक्ष्मीकी उपमा धारण करनेवाली अठारह हजार स्त्रियोंसे युक्त था, महाप्रभावशाली था, तीन खण्डका स्वामी था, अनुपम कान्तिका धारी था अतः उसके विषयमें क्या कहना है ? ॥१३२॥ इस प्रकार समस्त विद्याधर जिसकी स्तुति करते थे, सब लोग घबड़ाकर नम्रीभूत मस्तकपर जिसकी आज्ञा धारण करते थे और तीन खण्डके राज्यपर जिसका अभिषेक किया गया था ऐसा रावण जनसमूहके द्वारा स्तुत साम्राज्यको प्राप्त हुआ ॥१३३॥ समस्त विद्याधर राजा जिसके चरणकमलोंकी पूजा करते थे और जिसका शरीर श्री, कीर्ति और कान्तिसे मनोज्ञ था ऐसा रावण सर्वग्रहोंसे परिवृत चन्द्रमाके समान किसका मन हरण नहीं करता था ॥१३४॥ जिसकी मध्यजाली मध्याह्नके सूर्यकी किरणोंके समान थी, जो उद्दण्ड शत्रु राजाओंके नष्ट करनेमें समर्थ था, जिसके अर स्पष्ट दिखाई देते थे, तथा जो अत्यन्त देदीप्यमान रत्नोंसे चित्र-विचित्र जान पड़ता था ऐसा इसका सुदर्शन नामका अमोघ देवोपनीत चक्र अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥१३५॥ जिसका उग्रतेज सब ओर फैल रहा था

---

१. प्रियामुखकमलमकरन्दभ्रमरः । २. राजा क., ख., ग., घ., ङ. । 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' इति टच् समासान्तः ।

सोऽयं स्वकर्मवशतः कुलसंक्रमेण संप्राप्य राक्षसपुरीं[1] पुरुषारकीर्तिः ।
ऐश्वर्यमद्भुततरं च समन्तभद्रं रक्षःपतिः परमसंसृतिसौख्यमेतः ॥१३७॥
सद्दृष्टिबोधचरणप्रतिपत्तिहेतौ दूरं गतेऽथ मुनिसुव्रतनाथतीर्थे[2] ।
अत्यन्तमूढकविभिः परमार्थदूरैर्लोकेऽन्यथैव कथितः पुरुषैः[3] प्रधानः ॥१३८॥

मालिनीच्छन्दः

विषयवशमुपेतैर्नष्टतत्त्वार्थबोधैः
कविभिरतिकुशीलैर्निरयरागातुरैः[4] ।
कुरचितगरहेतुग्रन्थपाशातुरामिः
प्रगुणजनमृगौघो वध्यते मन्दभाग्यः ॥१३९॥
इति विदितयथावद्वृत्तवस्तुप्रपञ्च
क्षपितकुमतजनोक्तग्रन्थपङ्कप्रसङ्ग ।
भज सुरपतिवन्द्यं शास्त्ररत्नं जिनानां
रविसमधिकतेजः श्रेणिक श्रीविशालं[5] ॥१४०॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते रावणसाम्राज्याभिधानं नामैकोनविंशतितमं पर्व ॥१९॥

इति विद्याधरकाण्डं प्रथमं समाप्तम् ।

ऐसा रावण, दुष्टजनोंको तो ऐसा भय उत्पन्न कर रहा था मानो शरीरधारी दण्ड अथवा मृत्यु ही हो। जब वह शस्त्रशालामें शस्त्रोंकी पूजा करता था तब ऐसा जान पड़ता था मानो इकट्ठा हुआ प्रचण्ड उल्काओंका समूह ही हो ॥१३६॥ इस प्रकार विशाल तथा सुन्दर कीर्तिको धारण करनेवाला रावण स्वकीय कर्मोदयसे वंशपरम्परागत लंकापुरीको पाकर सर्वकल्याणयुक्त आश्चर्यकारक ऐश्वर्यको तथा संसार सम्बन्धी श्रेष्ठ सुखको प्राप्त हुआ था ॥१३७॥ गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे श्रेणिक ! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी प्राप्तिका कारण जो मुनिसुव्रत भगवान्का तीर्थ था उसे व्यतीत हुए जब बहुत दिन हो गये तब परमार्थसे दूर रहनेवाले अत्यन्त मूढ़ कवियोंने इस प्रधान पुरुषका लोकमें अन्यथा ही कथन कर डाला ॥१३८॥

जो विषयोंके अधीन हैं, जिनका तत्त्वज्ञान नष्ट हो गया है, जो अत्यन्त कुशील हैं और निरन्तर पापमें अनुरक्त रहते हैं ऐसे कवि लोग स्वरचित पापवर्धक ग्रन्थरूपी जालसे मन्दभाग्य तथा अत्यन्त सरल मनुष्यरूपी मृगोंके समूहको नष्ट करते रहते हैं। इसलिए जिसने वस्तुका यथार्थस्वरूप समझ लिया है, जिसने मिथ्यादृष्टि जनोंके द्वारा रचित कुशास्त्ररूपी कीचड़का प्रसंग नष्ट कर दिया है, जिसका सूर्यके समान विशाल तेज है और जो लक्ष्मीसे विशाल है ऐसे हे श्रेणिक ! तू इन्द्रद्वारा वन्दनीय जिनशास्त्ररूपी रत्नकी उपासना कर—उसीका अध्ययन-मनन कर ॥१३९-१४०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें रावणके साम्राज्यका कथन करनेवाला उन्नीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१९॥

इस प्रकार विद्याधरकाण्ड नामक प्रथम काण्ड समाप्त हुआ ।

---

१. राक्षसपुरं ख. । २. पुरुषप्रधानः क., ख । ३. -पाप- । ४. श्रीविशालः म., ब., ज. ।

विंशतितमं पर्व

अथैवं श्रेणिकः श्रुत्वा विनीतात्मा प्रसन्नधीः । प्रणम्य गणिनः पादौ पुनरूचे सविस्मयः ॥१॥
प्रसादात्तव विज्ञातः प्रतिशत्रोः समुद्भवः । अष्टमस्य तथा भेदः कुलयोः कपिरक्षसाम् ॥२॥
साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि चरितं जिनचक्रिणाम् । नाथ पूर्वभवैर्युक्तं बुद्धिशोधनकारणम् ॥३॥
अष्टमो यश्च विख्यातो हली सकलविष्टपे । वंशे कस्य समुद्भूतः किं वा तस्य विचेष्टितम् ॥४॥
अमीषां जनकादीनां तथा नामानि सन्मुने । जिज्ञासितानि मे नाथ तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ॥५॥
इत्युक्तः स महासत्त्वः परमार्थविशारदः । जगाद गणभृद्वाक्यं चारुप्रश्नाभिनन्दितः ॥६॥
शृणु श्रेणिक वक्ष्यामि जिनानां भवकीर्तनम् । पापविध्वंसकरणं त्रिदशेन्द्रनमस्कृतम् ॥७॥
ऋषभोऽजितनाथश्च संभवश्चाभिनन्दनः । सुमतिः पद्मभासश्च[1] सुपार्श्वः शशभृत्प्रभः[2] ॥८॥
सुविधिः शीतलः श्रेयान् वासुपूज्योऽमलः[3] प्रभुः । अनन्तो धर्मशान्ती च कुन्थुदेवो महानरः[4] ॥९॥
मल्लिः सुव्रतनाथश्च नमिर्नेमिश्च तीर्थकृत् । पार्श्वोऽयं पश्चिमो वीरो शासनं यस्य वर्तते ॥१०॥
नगरी परमोदारा नामतः पुण्डरीकिणी । सुसीमेत्यपरा ख्याता क्षेमेत्यन्यातिशोभना ॥११॥
तथा रत्नचयैर्दीप्ता रत्नसंचयमालिका । चतस्रः परमोदाराः सुव्यवस्था इमाः पुरः ॥१२॥
वासुपूज्यजिनान्तानां जिनानामूर्ध्वमादितः । आसन् पूर्वभवे रम्या राजधान्यः सदोत्सवाः ॥१३॥
सुमहानगरं चारु तथारिष्टपुरं वरम् । सुमाद्रिका च विख्याता तथासौ पुण्डरीकिणी ॥१४॥

अथानन्तर जिसकी आत्मा अत्यन्त नम्र थी और बुद्धि अत्यन्त स्वच्छ थी ऐसा श्रेणिक विद्याधरोंका वर्णन सुन आश्चर्यचकित होता हुआ गणधर भगवान्‌के चरणोंको नमस्कार कर फिर बोला कि ॥१॥ हे भगवन् ! आपके प्रसादसे मैंने अष्टम प्रतिनारायणका जन्म तथा वानर वंश और राक्षस वंशका भेद जाना। अब इस समय हे नाथ ! चौबीस तीर्थंकरों तथा बारह चक्रवर्तियोंका चरित्र उनके पूर्वभवोंके साथ सुनना चाहता हूँ क्योंकि वह बुद्धिको शुद्ध करनेका कारण है ॥२-३॥ इनके सिवाय जो आठवाँ बलभद्र समस्त संसारमें प्रसिद्ध है वह किस वंशमें उत्पन्न हुआ तथा उसकी क्या-क्या चेष्टाएँ हुईं ! ॥४॥ हे उत्तम मुनिराज ! इन सबके पिता आदिके नाम भी मैं जानना चाहता हूँ सो हे नाथ ! यह सब कहनेके योग्य हो ॥५॥ श्रेणिकके इस प्रकार कहनेपर महाधैर्यशाली, परमार्थके विद्वान् गणधर भगवान् उत्तम प्रश्नसे प्रसन्न होते हुए इस प्रकारके वचन बोले कि हे श्रेणिक ! सुन, मैं तीर्थंकरोंका वह भवोपाख्यान कहूँगा जो कि पापको नष्ट करनेवाला है और इन्द्रोंके द्वारा नमस्कृत है ॥६-७॥ ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, सुविधि (पुष्पदन्त), शीतल, श्रेयान्स, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शान्ति, कुन्थु, अर, मल्लि, (मुनि) सुव्रतनाथ, नमि, नेमि, पार्श्व और महावीर ये चौबीस तीर्थंकरोंके नाम हैं। इनमें महावीर अन्तिम तीर्थंकर हैं तथा इस समय इन्हींका शासन चल रहा है ॥८-१०॥ अब इनकी पूर्व भवकी नगरियोंका वर्णन करते हैं—अत्यन्त श्रेष्ठ पुण्डरीकिणी, सुसीमा, अत्यन्त मनोहर क्षेमा, और उत्तमोत्तम रत्नोंसे प्रकाशमान रत्नसंचयपुरी ये चार नगरियाँ अत्यन्त उत्कृष्ट तथा उत्तम व्यवस्थासे युक्त थीं। ऋषभदेवको आदि लेकर वासुपूज्य भगवान् तक क्रमसे तीन-तीन तीर्थंकरोंकी ये पूर्व भवकी राजधानियाँ थीं। इन नगरियोंमें सदा उत्सव होते रहते थे ॥११-१३॥ अवशिष्ट बारह तीर्थंकरोंकी पूर्वभवकी राजधानियाँ निम्न प्रकार थीं—सुमहानगर, अरिष्टपुर, सुमाद्रिका, पुण्डरीकिणी, सुसीमा, क्षेमा, वीतशोका, चम्पा, कौशाम्बी,

---

१. पद्मनाभश्च म. । २. -प्रभः म., क., ज., ब. । ३. विमलनाथः । ४. महान् + अरः ।

सुसीमा सीमसंपन्ना क्षेमा च क्षेमकारिणी । व्यतीतशोकनामा च चम्पा च विदिता भुवि ॥१५॥
कौशाम्बी च महाभोगा तथा नागपुरं पृथु । साकेता कान्तभवना छत्राकारपुरं तथा ॥१६॥
अनुक्रमेण कोषाणां जिनानां पूर्वजन्मनि । राजधान्य इमा ज्ञेयाः पुर्यः स्वर्गपुरीसमाः ॥१७॥
वज्रनाभिरिति ख्यातस्तथा विमलवाहनः । अन्यश्च विपुलख्यातिः श्रीमान् विपुलवाहनः ॥१८॥
महाबलोऽपरः कान्तस्तथातिबलकीर्तनः । अपराजितसंज्ञश्च नन्दिषेणाभिधोऽपरः ॥१९॥
पद्मश्चान्यो महापद्मस्तथा पद्मोत्तरो भुवि । नाथः पङ्कजगुल्माख्यः पङ्कजप्रतिमाननः ॥२०॥
विभुर्नलिनगुल्मश्च तथा पद्मासनः सुखी । स्मृतः पद्मरथो नाथः श्रीमान् दृढरथोऽपरः ॥२१॥
महामेघरथो नाम शूरः सिंहरथाभिधः । स्वामी वैश्रवणो धीमान् श्रीधर्मोऽन्यो महाधनः ॥२२॥
अप्रतिष्टः सुरश्रेष्ठः सिद्धार्थः सिद्धशासनः । आनन्दो नन्दनोयोऽन्यः सुनन्दश्चेति विश्रुतः ॥२३॥
पूर्वजन्मनि नामानि जिनानामिति विष्टपे । प्रख्यातानि मयोक्तानि क्रमेण मगधाधिप ॥२४॥
वज्रसेनो महातेजास्तथा वीरो रिपुंदमः । अन्यः स्वयंप्रभाभिख्यः श्रीमान् विमलवाहनः ॥२५॥
गुरुः सीमन्धरो ज्ञेयो नाथश्च पिहितास्रवः । महातपस्विनावन्यावरिन्दमयुगन्धरौ ॥२६॥
तथा सर्वजनानन्दः सार्थकाभिख्यया न्वितः । अभयानन्दसंज्ञश्च वज्रदन्तोऽपरः प्रभुः ॥२७॥
वज्रनाभिश्च विज्ञेयः सर्वगुप्तिश्च गुप्तिमान् । चिन्तारक्षप्रसिद्धिश्च पुनर्विपुलवाहनः ॥२८॥
मुनिर्घनरवो धीरः संवरः साधुसंवरः । वरधर्मस्त्रिलोकीयः सुनन्दो नन्दनाभवत् ॥२९॥
व्यतीतशोकसंज्ञश्च डामरः प्रोष्ठिलस्तथा । क्रमेण गुरवो ज्ञेया जिनानां पूर्वजन्मनि ॥३०॥
सर्वार्थसिद्धिसंज्ञोऽन्यो वैजयन्तः सुखावहः । ग्रैवेयको महाभासः वैजयन्तः स एव च ॥३१॥
ऊर्ध्वग्रैवेयको ज्ञेयो मध्यमश्च प्रकीर्तितः । वैजयन्तो महातेजा अपराजितसंज्ञकः ॥३२॥
आरणश्च समाख्यातस्तथा पुष्पोत्तराभिधः । कापिष्टः पुष्पगुल्मश्च सहस्रारो मनोहरः ॥३३॥
त्रिपुष्पोत्तरसंज्ञोऽन्यो मुक्तिस्थानधरस्थितः । विजयाख्यस्तथा श्रीमानपराजितसंज्ञकः ॥३४॥

नागपुर, साकेता और छत्राकारपुर। ये सभी राजधानियाँ स्वर्गपुरीके समान सुन्दर, महाविस्तृत तथा उत्तमोत्तम भवनोंसे सुशोभित थीं ॥१४-१७॥ अब इनके पूर्वभवके नाम कहता हूँ— १ वज्रनाभि, २ विमलवाहन, ३ विपुलख्याति, ४ विपुलवाहन, ५ महाबल, ६ अतिबल, ७ अपराजित, ८ नन्दिषेण, ९ पद्म, १० महापद्म, ११ पद्मोत्तर, १२ कमलके समान मुखवाला पंकजगुल्म, १३ नलिनगुल्म, १४ पद्मासन, १५ पद्मरथ, १६ दृढ़रथ, १७ महामेघरथ, १८ सिंहरथ, १९ वैश्रवण, २० श्रीधर्म, २१ उपमारहित सुरश्रेष्ठ, २२ सिद्धार्थ, २३ आनन्द और २४ सुनन्द। हे मगधराज! ये बुद्धिमान् चौबीस तीर्थंकरोंके पूर्वभवके नाम तुझसे कहे हैं। ये सब नाम संसारमें अत्यन्त प्रसिद्ध थे ॥१८-२४॥ अब इनके पूर्वभवके पिताओंके नाम सुन—१ वज्रसेन, २ महातेज, ३ रिपुंदम, ४ स्वयंप्रभ, ५ विमलवाहन, ६ सीमन्धर, ७ पिहितास्रव, ८ अरिन्दम, ९ युगन्धर, १० सार्थक नामके धारक सर्वजनानन्द, ११ अभयानन्द, १२ वज्रदन्त, १३ वज्रनाभि, १४ सर्वगुप्ति, १५ गुप्तिमान्, १६ चिन्तारक्ष, १७ विपुलवाहन, १८ घनरव, १९ धीर, २० उत्तम संवरको धारण करनेवाले संवर, २१ उत्तम धर्मको धारण करनेवाले त्रिलोकीय, २२ सुनन्द, २३ व्यतीतशोक डामर और २४ प्रोष्ठिल। इस प्रकार ये चौबीस तीर्थंकरोंके पूर्वभव सम्बन्धी चौबीस पिताओंके नाम जानना चाहिए ॥२५-३०॥ अब चौबीस तीर्थंकर जिस-जिस स्वर्गलोकसे आये उनके नाम सुन—१ सर्वार्थसिद्धि, २ वैजयन्त, ३ ग्रैवेयक, ४ वैजयन्त, ५ वैजयन्त, ६ ऊर्ध्व ग्रैवेयक, ७ मध्यम ग्रैवेयक, ८ वैजयन्त, ९ अपराजित, १० आरण, ११ पुष्पोत्तर, १२ कापिष्ट, १३ महाशुक्र, १४ सहस्रार, १५ पुष्पोत्तर, १६ पुष्पोत्तर, १७ पुष्पोत्तर, १८ सर्वार्थसिद्धि, १९ विजय, २० अपरा-

---

१. वज्रदत्तः म., ब., ज., क.। २. डामिलः म.।

प्राणतोऽनन्तरातीतो वैजयन्तो महाद्युतिः । पुष्पोत्तर इति ज्ञेयो जिनानाममरालयाः ॥३५॥
जिनानां जन्मनक्षत्रं मातरं पितरं पुरम् । चैत्यवृक्षं तथा मोक्षस्थानं ते कथयाम्यतः ॥३६॥
विनीता नगरी नाभिर्मरुदेव्युत्तरा तथा । आषाढा वटवृक्षश्च कैलाशः प्रथमो जिनः ॥३७॥
साकेता विजयानाथो जितशत्रुर्जिनोत्तमः । रोहिणी सप्तपर्णश्च मङ्गलं श्रेणिकास्तु ते ॥३८॥
सेना जितारिराजश्च श्रावस्तीसंभवो जिनः । ऐन्द्रमूर्क्षं ततः शालः परमं तेऽस्तु मङ्गलम् ॥३९॥
सिद्धार्था संवरोऽयोध्या सरलश्च पुनर्वसुः । अभिनन्दननाथश्च भवन्तु तव मङ्गलम् ॥४०॥
सुमङ्गला प्रियङ्गुश्च मघा मेघप्रभः पुरी । साकेता सुमतिर्नाथो जगदुत्तममङ्गलम् ॥४१॥
सुसीमा वत्सनगरी च चित्रा धरणशन्दितः । पद्मप्रभः प्रियङ्गुश्च भवन्तु तव मङ्गलम् ॥४२॥
सुप्रतिष्ठः पुरी काशी विशाखा पृथिवी तथा । शिरीषश्च सुपार्श्वश्च राजन् परममङ्गलम् ॥४३॥
नागवृक्षोऽनुराधार्क्षं महासेनाश्च लक्ष्मणा । क्याता चन्द्रपुरी चन्द्रप्रभश्च तव मङ्गलम् ॥४४॥
काकन्दी सुविधिर्मूलं रामा सुग्रीवपार्थिवः । साल्लस्तरुश्च ते सन्तु चित्तपावनकारणम् ॥४५॥
प्लक्षो दृढरथो राजा भद्रिका शीतलो जिनः । सुनन्दा प्रथमाषाढा सन्तु ते मङ्गलं परम् ॥४६॥
विष्णुश्रीः श्रवणो विष्णुः सिंहनादं च[1] तिन्दुकः । सततं नु जिनः श्रेयान् श्रेयः कुर्वन्तु ते नृप ॥४७॥
पाटला वसुपूज्यश्च जया शतभिषं सभा । चम्पा च वासुपूज्यश्च लोकपूजां दिशन्तु ते ॥४८॥
काम्पिल्यं कृतवर्मा च शर्मा प्रौष्ठपदोत्तरा । जम्बूर्विमलनाथश्च कुर्वन्तु स्वां मलोज्झितम् ॥४९॥

जित, २१ प्राणत, २२ आनत, २३ वैजयन्त और २४ पुष्पोत्तर। ये चौबीस तीर्थंकरोंके आनेके स्वर्गोंके नाम कहे ॥३१–३५॥ अब आगे चौबीस तीर्थंकरोंकी जन्मनगरी, जन्मनक्षत्र, माता, पिता, वैराग्यका वृक्ष और मोक्षका स्थान कहता हूँ—विनीता(अयोध्या)नगरी, नाभिराजा पिता, मरुदेवी रानी, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र, वट वृक्ष, कैलासपर्वत और प्रथम जिनेन्द्र हे श्रेणिक ! तेरे लिए ये मंगल-स्वरूप हों ॥३६–३७॥ साकेता (अयोध्या) नगरी, जितशत्रु पिता, विजया माता, रोहिणी नक्षत्र, सप्तपर्ण वृक्ष और अजितनाथ जिनेन्द्र, हे श्रेणिक ! ये तेरे लिए मंगलस्वरूप हों ॥३८॥ श्रावस्ती नगरी, जितारि पिता, सेना माता, पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र, शाल वृक्ष और सम्भवनाथ जिनेन्द्र, ये तेरे लिए मंगलस्वरूप हों ॥३९॥ अयोध्या नगरी, संवर पिता, सिद्धार्था माता, पुनर्वसु नक्षत्र, सरल अर्थात् देवदारु वृक्ष और अभिनन्दन जिनेन्द्र, ये तेरे लिए मंगलस्वरूप हों ॥४०॥ साकेता (अयोध्या) नगरी, मेघप्रभ राजा पिता, सुमंगला माता, मघा नक्षत्र, प्रियंगु वृक्ष और सुमतिनाथ जिनेन्द्र, ये जगत्के लिए उत्तम मंगलस्वरूप हों ॥४१॥ वत्सनगरी (कौशाम्बीपुरी), धरणराजा पिता, सुसीमा माता, चित्रा नक्षत्र, प्रियंगु वृक्ष और पद्मप्रभ जिनेन्द्र, ये तेरे लिए मंगलस्वरूप हों ॥४२॥ काशी नगरी, सुप्रतिष्ठ पिता, पृथ्वी माता, विशाखा नक्षत्र, शिरीष वृक्ष और सुपार्श्व जिनेन्द्र, हे राजन् ! ये तेरे लिए मंगलस्वरूप हों ॥४३॥ चन्द्रपुरी नगरी, महासेन पिता, लक्ष्मणा माता, अनुराधा नक्षत्र, नाग वृक्ष और चन्द्रप्रभ भगवान्, ये तेरे लिए मंगलस्वरूप हों ॥४४॥ काकन्दी नगरी, सुग्रीव राजा पिता, रामा माता, मूल नक्षत्र, साल वृक्ष और पुष्पदन्त अथवा सुविधिनाथ जिनेन्द्र, ये तेरे चित्तको पवित्र करनेवाले हों ॥४५॥ भद्रिकापुरी, दृढ़रथ पिता, सुनन्दा माता, पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र, प्लक्ष वृक्ष और शीतलनाथ जिनेन्द्र, ये तेरे लिए परम मंगलस्वरूप हों ॥४६॥ सिंहपुरी नगरी, विष्णुराज पिता, विष्णुश्री माता, श्रवण नक्षत्र, तेंदूका वृक्ष और श्रेयान्सनाथ जिनेन्द्र हे राजन् ! ये तेरे लिए कल्याण करें ॥४७॥ चम्पापुरी, वसुपूज्य राजा पिता, जया माता, शतभिषा नक्षत्र, पाटला वृक्ष, चम्पापुरी सिद्धक्षेत्र और वासुपूज्य जिनेन्द्र, ये तेरे लिए लोकप्रतिष्ठा प्राप्त करावें ॥४८॥ काम्पिल्य नगरी, कृतवर्मा पिता, शर्मा माता, उत्तराभाद्रपद नक्षत्र, जम्बू वृक्ष,

---

१. सिंहनादश्च म. ।

अश्वत्थः सिंहसेनश्च विनीता रेवती तथा । श्रेयाच्या सर्वयशा नाथोऽनन्तश्च तव मङ्गलम् ॥५०॥
धर्मो रत्नपुरी भानुर्दधिपर्णश्च सुव्रता । पुष्यश्च तव पुष्णातु श्रियं श्रेणिक धर्मिणीम् ॥५१॥
भरणी हास्तिनस्थानमैराणी नन्दपादपः । विश्वसेननृपः शान्तिः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥५२॥
सूर्यो राजपुरं कुन्थुस्तिलकः श्रीश्च कृत्तिका । भवन्तु तव राजेन्द्र पापप्रक्षणहेतवः ॥५३॥
मित्रा सुदर्शनश्चूतो नगरं पूर्वकीर्तितम् । रोहिण्यरजिनेन्द्रश्च नाशयन्तु रजस्तव ॥५४॥
रक्षिता मिथिला कुम्भो जिनेशो मल्लिरश्विनी । अशोकश्च तवाशोकं मनः कुर्वन्तु पार्थिव ॥५५॥
पद्मावती कुशाग्रं च सुमित्रः श्रवणस्तथा । चम्पकः सुव्रतेशश्च भजन्तु तव मानसम् ॥५६॥
विजयो मिथिला वप्रा वकुलो नमितीर्थकृत् । अश्विनी च प्रयच्छन्तु तव धर्मसमागमम् ॥५७॥
समुद्रविजयश्चित्रा नेमिः शौरिपुरं शिवा । ऊर्जयन्तश्च ते मेषशृङ्गश्चास्तु सुखप्रदः ॥५८॥
वाराणसी विशाखा च पार्श्वो वर्मा धवोऽङ्घ्रिपः । अश्वसेनश्च ते राजन् दिशन्तु मनसो धृतिम् ॥५९॥
सालः कुण्डपुरं पावा सिद्धार्थः प्रियकारिणी । हस्तोत्तरं महावीरं परमं तव मङ्गलम् ॥६०॥
चम्पैव वासुपूज्यस्य मोक्षस्थानमुदाहृतम् । पूर्वमुक्तं त्रयाणां तु शेषाः संमेदनिर्वृताः ॥६१॥
शान्तिः कुन्थुरश्चेति राजानश्चक्रवर्तिनः । संतस्तीर्थंकरा जाताः शेषाः सामान्यपार्थिवाः ॥६२॥
चन्द्राभश्चन्द्रसंकाशः पुष्पदन्तश्च कीर्तितः । प्रियङ्गुमञ्जरीवर्णः सुपार्श्वो जिनसत्तमः ॥६३॥

विमलनाथ जिनेन्द्र ये तुझे निर्मल करें ॥४९॥ विनीता नगरी, सिंहसेन पिता, सर्वयशा माता, रेवती नक्षत्र, पीपलका वृक्ष और अनन्तनाथ जिनेन्द्र, ये तेरे लिए मंगलस्वरूप हों ॥५०॥ रत्नपुरी नगरी, भानुराजा पिता, सुव्रता माता, पुष्य नक्षत्र, दधिपर्ण वृक्ष और धर्मनाथ जिनेन्द्र, हे श्रेणिक! ये तेरी धर्मयुक्त लक्ष्मीको पुष्ट करें ॥५१॥ हस्तिनागपुर नगर, विश्वसेन राजा पिता, ऐराणी माता, भरणी नक्षत्र, नन्द वृक्ष और शान्तिनाथ जिनेन्द्र, ये तेरे लिए सदा शान्ति प्रदान करें ॥५२॥ हस्तिनागपुर नगर, सूर्य राजा पिता, श्रीदेवी माता, कृत्तिका नक्षत्र, तिलक वृक्ष और कुन्थुनाथ जिनेन्द्र, हे राजन्! ये तेरे पाप दूर करनेमें कारण हो ॥५३॥ हस्तिनागपुर नगर, सुदर्शन पिता, मित्रा माता, रोहिणी नक्षत्र, आम्र वृक्ष और अर जिनेन्द्र, ये तेरे पापको नष्ट करें ॥५४॥ मिथिला नगरी, कुम्भ पिता, रक्षिता माता, अश्विनी नक्षत्र, अशोक वृक्ष और मल्लिनाथ जिनेन्द्र, हे राजन्! ये तेरे मनको शोकरहित करें ॥५५॥ कुशाग्र नगर (राजगृह), सुमित्र पिता, पद्मावती माता, श्रवण नक्षत्र, चम्पक वृक्ष और सुव्रतनाथ जिनेन्द्र, ये तेरे मनको प्राप्त हों अर्थात् तू हृदयसे इनका ध्यान कर ॥५६॥ मिथिला नगरी, विजय पिता, वप्रा माता, अश्विनी नक्षत्र, वकुल वृक्ष और नेमिनाथ तीर्थंकर, ये तेरे लिए धर्मका समागम प्रदान करें ॥५७॥ शौरिपुरनगर, समुद्रविजय पिता, शिवा माता, चित्रा नक्षत्र, मेषशृंग वृक्ष, ऊर्जयन्त (गिरनार) पर्वत और नेमि जिनेन्द्र, ये तेरे लिए सुखदायक हों ॥५८॥ वाराणसी (बनारस) नगरी, अश्वसेन पिता, वर्मादेवी माता, विशाखा नक्षत्र, धव (धौ) वृक्ष और पार्श्वनाथ जिनेन्द्र, ये तेरे मनमें धैर्य उत्पन्न करें ॥५९॥ कुण्डपुर नगर, सिद्धार्थ पिता, प्रियकारिणी माता, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र, साल वृक्ष, पावा नगर और महावीर जिनेन्द्र, ये तेरे लिए परम मंगलस्वरूप हों ॥६०॥ इनमें-से वासुपूज्य भगवान्का मोक्ष-स्थान चम्पापुरी ही है। ऋषभदेव, नेमिनाथ तथा महावीर इनके मोक्षस्थान क्रमसे कैलास, ऊर्जयन्त गिरि तथा पावापुर ये तीन पहले कहे जा चुके हैं और शेष बीस तीर्थंकर सम्मेदाचलसे निर्वाण धामको प्राप्त हुए हैं ॥६१॥ शान्ति, कुन्थु और अर ये तीन राजा चक्रवर्ती होते हुए तीर्थंकर हुए। शेष तीर्थंकर सामान्य राजा हुए ॥६२॥ चन्द्रप्रभ और पुष्पदन्त ये चन्द्रमाके समान श्वेतवर्णके

---

१. -दोधिपर्णश्च म.। २. हास्तिपस्थान- म.। ३. पापविनाशनकारणानि। ४. विजेयो म.।

अपक्वशालिसंकाशः पार्श्वो नागाधिपस्तुतः । पद्मगर्भसमच्छायः पद्मप्रभजिनोत्तमः ॥६४॥
किंशुकोत्करसंकाशो वासुपूज्यः प्रकीर्तितः । नीलाञ्जनगिरिच्छायो मुनिसुव्रततीर्थकृत् ॥६५॥
मयूरकण्ठसंकाशो जिनो यादवपुङ्गवः । सुतप्तकाञ्चनच्छायाः शेषा जिनवराः स्मृताः ॥६६॥
वासुपूज्यो महावीरो मल्लिः पार्श्वो यदूत्तमः । कुमारा निर्गता गेहात्पृथिवीपतयोऽपरे ॥६७॥
एते सुरासुराधीशैः प्रणताः पूजिताः स्तुताः । अभिषेकं परं प्राप्ता[1] नगपार्थिवमूर्धनि ॥६८॥
सर्वकल्याणसंप्राप्तिकारणीभूतसेवनाः । जिनेन्द्राः पान्तु वो नित्यं त्रैलोक्यपरमाद्भुताः ॥६९॥
आयुःप्रमाणबोधार्थं गणेश मम सांप्रतम् । निवेदय परं तत्त्वं मनःपावनकारणम् ॥७०॥
यश्च रामोऽन्तरे यस्य जिनेन्द्रस्योदपद्यत[2] । तत्सर्वं ज्ञातुमिच्छामि प्रतीत्य[3] त्वत्प्रसादतः ॥७१॥
इत्युक्तो गणभृत्सौम्यः श्रेणिकेन महादरात् । निवेदयांबभूवासौ क्षीरोदामलमानसः ॥७२॥
संख्याया गोचरं योऽर्थो व्यतिक्रम्य व्यवस्थितः । बुद्धौ कल्पितदृष्टान्तः कथितोऽसौ महात्मभिः ॥७३॥
योजनप्रतिमं व्योम सर्वतो भित्तिवेष्टितम् । अवेः प्रजातमात्रस्य रोमाग्रैः परिपूरितम् ॥७४॥
दृढन्यस्तश्चितं तावन्मात्रस्य खनितोऽथवा[4] । कल्प्यते[5] कस्येदं कस्य व्यापारोऽयं मृषा भवेत् ॥७५॥
तत्र वर्षशतेऽतीते त्रुटत्येकस्मिन्समुद्धृते । क्षीयते येन कालेन कालपल्यं तदुच्यते ॥७६॥

धारक थे। सुपार्श्व जिनेन्द्र प्रियंगुके फूलके समान हरित वर्णके थे। पार्श्वनाथ भी कच्ची धान्यके समान हरित वर्णके थे। धरणेन्द्रने पार्श्वनाथ भगवान्‌की स्तुति भी की थी। पद्मप्रभ जिनेन्द्र कमलके भीतरी दलके समान लाल कान्तिके धारक थे ॥६३-६४॥ वासुपूज्य भगवान् पलाश पुष्पके समूहके समान लालवर्णके थे। मुनिसुव्रत तीर्थंकर नीलगिरि अथवा अंजनगिरिके समान श्यामवर्णके थे ॥६५॥ यदुवंश शिरोमणि नेमिनाथ भगवान् मयूरके कण्ठके समान नील वर्णके थे और बाकीके समस्त तीर्थंकर तपाये हुए स्वर्णके समान लाल-पीत वर्णके धारक थे ॥६६॥ वासुपूज्य, मल्लि, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर ये पाँच तीर्थंकर कुमार अवस्थामें ही घरसे निकल गये थे, बाकी तीर्थंकरोंने राज्यपाट स्वीकार कर दीक्षा धारण की थी ॥६७॥ इन सभी तीर्थंकरोंको देवेन्द्र तथा धरणेन्द्र नमस्कार करते थे, इनकी पूजा करते थे, इनकी स्तुति करते थे और सुमेरु पर्वतके शिखरपर सभी परम अभिषेकको प्राप्त हुए थे ॥६८॥ जिनकी सेवा समस्त कल्याणोंकी प्राप्तिका कारण है तथा जो तीनों लोकोंके परम आश्चर्यस्वरूप थे, ऐसे ये चौबीसों जिनेन्द्र निरन्तर तुम सबकी रक्षा करें ॥६९॥

अथानन्तर राजा श्रेणिकने गौतमस्वामीसे कहा कि हे गणनाथ! अब मुझे इन चौबीस तीर्थंकरोंकी आयुका प्रमाण जाननेके लिए मनकी पवित्रताका कारण जो परम तत्त्व है वह कहिए ॥७०॥ साथ ही जिस तीर्थंकरके अन्तरालमें रामचन्द्रजी हुए हैं हे पूज्य! वह सब आपके प्रसादसे जानना चाहता हूँ ॥७१॥ राजा श्रेणिकने जब बड़े आदरसे इस प्रकार पूछा तब क्षीरसागरके समान निर्मल चित्तके धारक परम शान्त गणधर स्वामी इस प्रकार कहने लगे ॥७२॥ कि हे श्रेणिक! काल नामा जो पदार्थ है वह संख्याके विषयको उल्लंघन कर स्थित है अर्थात् अनन्त है, इन्द्रियोंके द्वारा उसका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता फिर भी महात्माओंने बुद्धिमें दृष्टान्तकी कल्पना कर उसका निरूपण किया है ॥७३॥ कल्पना करो कि एक योजन प्रमाण आकाश सब ओरसे दीवालोंसे वेष्टित अर्थात् घिरा हुआ है तथा तत्काल उत्पन्न हुए भेड़के बालोंके अग्रभागसे भरा हुआ है ॥७४॥ इसे ठोक-ठोककर बहुत ही कड़ा बना दिया गया है, इस एक योजन लम्बे-चौड़े तथा गहरे गर्तको द्रव्यपल्य कहते हैं। जब यह कह दिया गया है कि यह कल्पित दृष्टान्त है तब यह गर्त किसने खोदा, किसने भरा आदि प्रश्न निरर्थक हैं ॥७५॥ उस भरे हुए रोमगर्तमें-से

---

१. सुमेरुशिखरे। २. पद्यते म., ब.। ३. हे पूज्य! प्रतीत- ख.। ४. कथिते म.। ५. कथिते म.।

कोटीकोट्यो दशैतेषां कालो [1]रत्नाकरोपमः । सागरोपमकोटीनां दशकोट्योऽवसर्पिणी ॥७७॥
उत्सर्पिणी च तावन्त्यस्ते सितासितपक्षवत् । सततं परिवर्तेते राजन् कालस्वभावतः ॥७८॥
प्रत्येकमेतयोर्भेदाः षड्दिष्टा महात्मभिः । [2]संसर्गिवस्तुवीर्यादिभेदसंभवसूचयः ॥७९॥
अत्यन्तः सुषमः कालः प्रथमः परिकीर्तितः । कोटी कोट्यश्चतस्रोऽस्य सामुद्रोन्मानमुच्यते ॥८०॥
कीर्तितः सुषमस्तिस्रो द्वयं सुषमदुःषमः । वक्ष्यमाणद्विकालोऽन्यैरूना दुःषमसन्निभः ॥८१॥
ऊनो वर्षसहस्राणामेकविंशतिमानतः । प्रत्येकं दुःषमोऽस्यन्तदुःषमश्च जिनार्पितैः ॥८२॥
पञ्चाशदब्धिकोटीनां लक्षाः प्रथममुच्यते । त्रिंशद्दशनवैतासां परिपाट्या जिनान्तरम् ॥८३॥
नवतिश्च सहस्राणि नव चासां व्यवस्थितः । शतानि च नवैतासां नवतिस्तास्तथा नव ॥८४॥
[3]शतवार्द्धिखखोपद्विषट्षड्वर्षविच्युता । एका कोटी समुद्राणां शेयं दशममन्तरम् ॥८५॥
चतुर्भिः सहिता शेयाः पञ्चाशत्सागरास्ततः । त्रिंशत्कवाथ चत्वारः सागराः कीर्तितास्ततः ॥८६॥
पल्यमागत्रयन्यूनं तयो रत्नाकरत्रयम् [4] । पल्यार्धं षोडश प्रोक्तं चतुर्भागोऽस्य तत्परम् ॥८७॥
न्यूनः कोटिसहस्रेण वर्षाणां परिकीर्तितैः । समाकोटिसहस्रं च तत्परं गदितं बुधैः ॥८८॥

सौ-सौ वर्षके बाद एक-एक रोमखण्ड निकाला जाय जितने समयमें खाली हो जाय उतना समय एक पल्य कहलाता है। दश कोड़ाकोड़ी पल्योंका एक सागर होता है और दश कोड़ा-कोड़ी सागरोंकी एक अवसर्पिणी होती है ॥७६-७७॥ उतने ही समयकी एक उत्सर्पिणी भी होती है। हे राजन्! जिस प्रकार शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष निरन्तर बदलते रहते हैं उसी प्रकार काल-द्रव्यके स्वभावसे अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल निरन्तर बदलते रहते हैं ॥७८॥ महात्माओंने इन दोनोंमें-से प्रत्येकके छह-छह भेद बतलाये हैं। संसर्गमें आनेवाली वस्तुओंकी वीर्य आदिमें भेद होनेसे इन छह-छह भेदोंकी विशेषता सिद्ध होती है ॥७९॥ अवसर्पिणीका पहला भेद सुषमा-सुषमा काल कहलाता है। इसका चार कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण काल कहा जाता है ॥८०॥ दूसरा भेद सुषमा कहलाता है। इसका प्रमाण तीन कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण है। तीसरा भेद सुषमा-दुःषमा कहा जाता है। इसका प्रमाण दो कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण है। चौथा भेद दुःषमा-सुषमा कहलाता है। इसका प्रमाण बयालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ी-कोड़ी सागर प्रमाण है। पाँचवाँ भेद दुःषमा और छठा भेद दुःषमा-दुःषमा काल कहलाता है इनका प्रत्येकका प्रमाण इक्कीस-इक्कीस हजार वर्षका जिनेन्द्र देवने कहा है ॥८१-८२॥

अब तीर्थंकरोंका अन्तर काल कहते हैं।

भगवान् ऋषभदेवके बाद पचास लाख करोड़ सागरका अन्तर बीतनेपर द्वितीय अजितनाथ तीर्थंकर हुए। उसके बाद तीस लाख करोड़ सागरका अन्तर बीतनेपर तृतीय सम्भवनाथ उत्पन्न हुए। उनके बाद दश लाख करोड़ सागरका अन्तर बीतनेपर चतुर्थ अभिनन्दननाथ उत्पन्न हुए ॥८३॥ उनके बाद नौ लाख करोड़ सागरके बीतनेपर पंचम सुमतिनाथ हुए, उनके बाद नब्बे हजार करोड़ सागर बीतनेपर छठे पद्मप्रभ हुए, उनके बाद नौ हजार करोड़ सागर बीतनेपर सातवें सुपार्श्वनाथ हुए, उनके बाद नौ सौ करोड़ सागर बीतनेपर आठवें चन्द्रप्रभ हुए, उनके बाद नब्बे करोड़ सागर बीतनेपर नवें पुष्पदन्त हुए, उनके बाद नौ करोड़ सागर बीतनेपर दशवें शीतलनाथ हुए, उनके बाद सौ सागर कम एक करोड़ सागर बीतनेपर ग्यारहवें श्रेयांसनाथ हुए, उनके बाद चौवन सागर बीतनेपर बारहवें वासुपूज्य स्वामी हुए, उनके बाद तीस सागर बीतने-

१. सागरोपमः । २. संसर्गि- ख. । ३. म. पुस्तके ८५ तमश्लोकस्थाने 'समुद्रशतहीनैका कोटीवशममन्तरम् । चतुर्भिः सहिता शेयाः पञ्चाशत्सागरास्ततः' इति पाठोऽस्ति । ४. ब. पुस्तके ८६ तमः श्लोकः षड्भिः पादैरत्र समाप्यते । ५. क. पुस्तके ८७ तमः श्लोकः षड्भिः पादैरत्र समाप्यते ।

चतुःपञ्चाशदाख्यातं समा लक्षास्तु तत्परम् । षड्लक्षा उत्तरं तस्मात्ततः पञ्च प्रकाशितम् ॥८९॥
सहस्राणि त्र्यशीतिस्तु सार्धाष्टशतं परम् । शतान्यर्द्धतृतीयानि समानां कीर्तितं ततः ॥९०॥
वर्द्धमानजिनेन्द्रस्य धर्मः संस्पृष्टदुःषमः । निवृते तु महावीरे धर्मचक्रे महेश्वरे ।
सुरेन्द्रमुकुटच्छायापयोधौतक्रमद्वये[1] ॥९१॥
देवागमननिर्मुक्ते कालेऽतिशयवर्जिते । प्रनष्टकेवलोत्पादे हलचक्रधरोज्झिते ॥९२॥
भवद्विधमहाराजगुणसंघातरिक्तके । भविष्यन्ति प्रजा दुष्टा वञ्चनोद्यतमानसाः ॥९३॥
निश्शीला निर्व्रताः प्रायः क्लेशव्याधिसमन्विताः । मिथ्यादृशो महाघोरा भविष्यन्त्यसुधारिणः ॥९४॥
अतिवृष्टिरवृष्टिश्च विषमावृष्टिरीतयः । विविधाश्च भविष्यन्ति दुस्सहाः प्राणधारिणाम् ॥९५॥
मोहकादम्बरीमत्ता रागद्वेषाक्षमूर्तयः । नर्तितभ्रूकराः पापा मुहुर्गर्वस्मिता नराः ॥९६॥
कुवाक्यमुखराः क्रूरा धनलाभपरायणाः । विचरिष्यन्ति खद्योता रात्राविव महीतले ॥९७॥
गोदण्डपथतुल्येषु मूढास्ते पतिताः स्वयम् । कुधर्मेषु जनानन्यान्पातयिष्यन्ति दुर्जनाः ॥९८॥
अपकारे समासक्ताः परस्य स्वस्य चानिशम् । ज्ञास्यन्ति सिद्धमात्मानं नरा दुर्गतिगामिनः ॥९९॥

पर तेरहवें विमलनाथ हुए, उनके बाद नौ सागर बीतने पर चौदहवें अनन्तनाथ हुए, उनके बाद चार सागर बीतनेपर पन्द्रहवें श्रीधर्मनाथ हुए, उनके बाद पौन पल्य कम तीन सागर बीतनेपर सोलहवें शान्तिनाथ हुए, उनके बाद आधा पल्य बीतनेपर सत्रहवें कुन्थुनाथ हुए, उनके बाद हजार वर्ष कम पावपल्य बीतनेपर अठारहवें अरनाथ हुए, उनके बाद पैंसठ लाख चौरासी हजार वर्ष कम हजार करोड़ सागर बीतनेपर उन्नीसवें मल्लिनाथ हुए, उनके बाद चौवन लाख वर्ष बीतनेपर बीसवें मुनिसुव्रतनाथ हुए, उनके बाद छह लाख वर्ष बीतनेपर इक्कीसवें नमिनाथ हुए, उनके बाद पाँच लाख वर्ष बीतनेपर बाईसवें नेमिनाथ हुए, उनके बाद पौने चौरासी हजार वर्ष बीतनेपर तेईसवें श्रीपार्श्वनाथ हुए और उनके बाद ढाई सौ वर्ष बीतनेपर चौबीसवें श्री वर्धमान-स्वामी हुए हैं। भगवान् वर्धमान स्वामीका धर्म ही इस समय पंचम कालमें व्याप्त हो रहा है। इन्द्रोंके मुकुटोंकी कान्तिरूपी जलसे जिनके दोनों चरण धुल रहे हैं, जो धर्म-चक्रका प्रवर्तन करते हैं तथा महान् ऐश्वर्यके धारक थे, ऐसे महावीर स्वामीके मोक्ष चले जानेके बाद जो पंचम काल आवेगा, उसमें देवोंका आगमन बन्द हो जायेगा, सब अतिशय नष्ट हो जावेंगे, केवलज्ञानकी उत्पत्ति समाप्त हो जावेगी। बलभद्र, नारायण तथा चक्रवर्तियोंका उत्पन्न होना भी बन्द हो जायेगा। और आप जैसे महाराजाओंके योग्य गुणोंसे समय शून्य हो जायेगा। तब प्रजा अत्यन्त दुष्ट हो जावेगी, एक दूसरेको धोखा देनेमें ही उसका मन निरन्तर उद्यत रहेगा। उस समयके लोग निःशील तथा निर्व्रत होंगे, नाना प्रकारके क्लेश और व्याधियोंसे सहित होंगे, मिथ्यादृष्टि तथा अत्यन्त भयंकर होंगे ॥८४–९४॥ कहीं अतिवृष्टि होगी, कहीं अवृष्टि होगी और कहीं विषम वृष्टि होगी। साथ ही नाना प्रकारकी दुःसह रीतियाँ प्राणियोंको दुःसह दुःख पहुँचावेंगी ॥९५॥ उस समयके लोग मोहरूपी मदिराके नशामें चूर रहेंगे, उनके शरीर राग-द्वेषके पिण्डके समान जान पड़ेंगे, उनकी भौंहें तथा हाथ सदा चलते रहेंगे, वे अत्यन्त पापी होंगे, बार-बार अहंकारसे मुसकराते रहेंगे, खोटे वचन बोलनेमें तत्पर होंगे, निर्दय होंगे, धनसंचय करनेमें ही निरन्तर लगे रहेंगे और पृथ्वीपर ऐसे विचरेंगे जैसे कि रात्रिमें जुगनू अथवा पटबीजना विचरते हैं अर्थात् अल्प प्रभावके धारक होंगे ॥९६–९७॥ वे स्वयं मूर्ख होंगे और गोदण्ड पथके समान जो नाना कुधर्म हैं उनमें स्वयं पड़कर दूसरे लोगोंको भी ले जायेंगे। दुर्जय प्रकृतिके होंगे, दूसरेके तथा अपने अपकारमें

१. ख. पुस्तके ९१ तमः श्लोकः षड्भिः पादैरत्र समाप्यते। ज. पुस्तके मूलतः म. पुस्तकवत् पाठोऽस्ति किंतु पश्चात्केनापि टिप्पणकर्त्रा उज्झितश्लोकचिह्नं दत्त्वा ८५ तमः श्लोकः मूलेन योजितः।

कुधाकृमुक्कहुंकारैः कर्मम्लेच्छैर्मदोद्धतैः । अनर्थजनितोत्साहैर्मोहसंतमसावृतैः ॥१००॥
छेत्स्यन्ते सततोद्युक्तैर्मन्दैकालानुभावतः । हिंसाशास्त्रकुठारेण भव्येतर[1]जनाङ्घ्रिपाः ॥१०१॥
आदावरत्नयः सप्त जनानां दुःषमे स्मृताः । प्रमाणं क्रमतो हानिस्ततस्तेषां भविष्यति ॥१०२॥
द्विहस्तसंमिता मर्त्या विंशत्यब्दायुषस्ततः । भविष्यन्ति परे हस्तमात्रोत्सेधाः सुदुःषमे ॥१०३॥
आयुः षोडशवर्षाणि तेषां गदितमुत्तमम् । भूत्वा सरीसृपाणां ते जीविष्यन्त्यन्तदुःखिताः ॥१०४॥
ते विरूपसमस्ताङ्गा नित्यं पापक्रियारताः । तिर्यञ्च इव मोहार्ता भविष्यन्ति रुजार्दिताः ॥१०५॥
न व्यवस्था न संबन्धो नेश्वरा न च सेवकाः । न धनं न गृहं नैव सुखमेकान्तदुःषमे ॥१०६॥
कामार्थधर्म[2]संभारहेतुभिः परिचेष्टितैः । शून्याः प्रजा भविष्यन्ति पापपिण्डचिता इव ॥१०७॥
कृष्णपक्षे क्षयं याति यथा शुक्ले च वर्धते । इन्दुस्तथैतयोरायुरादीनां हानिवर्धने ॥१०८॥
उत्सवादिप्रवृत्तीनां रात्रिवासरयोर्यथा । हानिवृद्धी च विज्ञेये कालयोस्तद्वदेतयोः ॥१०९॥
येनावसर्पिणीकाले क्रमेणोदाहृतः क्षयः । उत्सर्पिण्यामनेनैव परिवृद्धिः प्रकीर्तिता ॥११०॥
जिनानामन्तरं प्रोक्तमुत्सेधं शृण्वतः[3] परम् । क्रमतः कीर्तयिष्यामि राजन्नवहितो भव ॥१११॥
शतानि पञ्च चापानां प्रथमस्य महात्मनः । उत्सेधो जिननाथस्य वपुषः परिकीर्तितः ॥११२॥

रात-दिन लगे रहेंगे। उस समयके लोग होंगे तो दुर्गतिमें जानेवाले पर अपने आपको ऐसा समझेंगे जैसे सिद्ध हुए जा रहे हों अर्थात् मोक्ष प्राप्त करनेवाले हों ॥९८–९९॥ जो मिथ्या शास्त्रोंका अध्ययन कर अहंकारवश हुंकार छोड़ रहे हैं, जो कार्य करनेमें म्लेच्छोंके समान हैं, सदा मदसे उद्धत रहते हैं, निरर्थक कार्योंमें जिनका उत्साह उत्पन्न होता है, जो मोहरूपी अन्धकारसे सदा आवृत रहते हैं और सदा दावँ-पेंच लगानेमें ही तत्पर रहते हैं, ऐसे ब्राह्मणादिकके द्वारा उस समयके अभव्य जीवरूपी वृक्ष, हिंसाशास्त्र रूपी कुठारसे सदा छेदे जावेंगे। यह सब हीन कालका प्रभाव ही समझना चाहिए ॥१००–१०१॥ दुःषम नाम पंचम कालके आदिमें मनुष्योंकी ऊँचाई सात हाथ प्रमाण होगी फिर क्रमसे हानि होती जावेगी। इस प्रकार क्रमसे हानि होते-होते अन्तमें दो हाथ ऊँचे रह जावेंगे। बीस वर्षकी उनकी आयु रह जावेगी। उसके बाद जब छठा काल आवेगा तब एक हाथ ऊँचा शरीर और सोलह वर्षकी आयु रह जावेगी। उस समयके मनुष्य सरीसृपोंके समान एक दूसरेको मारकर बड़े कष्टसे जीवन बितावेंगे ॥१०२–१०४॥ उनके समस्त अंग विरूप होंगे, वे निरन्तर पाप-क्रियामें लीन रहेंगे, तिर्यंचोंके समान मोहसे दुःखी तथा रोगसे पीड़ित होंगे ॥१०५॥ छठे कालमें न कोई व्यवस्था रहेगी, न कोई सम्बन्ध रहेंगे, न राजा रहेंगे, न सेवक रहेंगे। लोगोंके पास न धन रहेगा, न घर रहेगा, और न सुख ही रहेगा ॥१०६॥ उस समयकी प्रजा धर्म, अर्थ, काम सम्बन्धी चेष्टाओंसे सदा शून्य रहेगी और ऐसी दिखेगी मानो पापके समूहसे व्याप्त ही हो ॥१०७॥ जिस प्रकार कृष्ण पक्षमें चन्द्रमा ह्रासको प्राप्त होता है और शुक्ल पक्षमें वृद्धिको प्राप्त होता है उसी प्रकार अवसर्पिणी कालमें लोगोंकी आयु आदिमें ह्रास होने लगता है तथा उत्सर्पिणीकालमें वृद्धि होने लगती है ॥१०८॥ अथवा जिस प्रकार रात्रिमें उत्सवादि अच्छे-अच्छे कार्योंकी प्रवृत्तिका ह्रास होने लगता है और दिनमें वृद्धि होने लगती है उसी प्रकार अवसर्पिणी और उत्सर्पिणीकालका हाल जानना चाहिए ॥१०९॥ अवसर्पिणी कालमें जिस क्रमसे क्षयका उल्लेख किया है उत्सर्पिणीकालमें उसी क्रमसे वृद्धिका उल्लेख जानना चाहिए ॥११०॥ गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन्! मैंने चौबीस तीर्थंकरोंका अन्तर तो कहा। अब क्रमसे उनकी ऊँचाई कहूँगा सो सावधान होकर सुन ॥१११॥

पहले ऋषभदेव भगवान्‌के शरीरकी ऊँचाई पाँच सौ धनुष कही गयी है ॥११२॥ उसके

---

१. मन्दाः म., ज.। २. जिनाङ्घ्रिपाः म., ज.। ३. धर्मसंगभार- म.। ४. शृणु + अतः।

पञ्चाशच्चापहान्यासः प्रत्येकं परिकीर्तितम् । शीतलात् प्राग्जिनेन्द्राणां नवतिः शीतलस्य च ॥११३॥
ततो धर्मजिनात् पूर्वं दशचापपरिक्षयः । प्रत्येकं धर्मनाथस्य चत्वारिंशत्सपञ्चिकाः ॥११४॥
ततः पार्श्वजिनात् पूर्वं प्रत्येकं पञ्चभिः क्षयः । नवहस्तमितिः पार्श्वो महावीरो द्विवर्जितः ॥११५॥
पल्योपमस्य दशमो भाग आयुस्य कीर्तितम् । मित्रा कुलकरस्यायुर्लोकालोकावलोकिभिः ॥११६॥
दशमो दशमो भागः पौरस्त्यस्य ततः स्मृतः । प्रमाणमायुषो राजन् शेषाणां कुलकारिणाम् ॥११७॥
चतुर्भिरधिकाशीतिः पूर्वलक्षाः प्रकीर्तिताः । प्रथमस्य जिनेन्द्रस्य द्वितीयस्य द्विसप्ततिः ॥११८॥
षष्टिश्च पञ्चसु ज्ञेयः क्रमेण दशभिः क्षयः । विज्ञेये पूर्वलक्षे द्वे तयैकं परिकीर्तितम् ॥११९॥
चतुर्भिरधिकाशीतिर्वर्षा लक्षा द्विसप्ततिः । षष्टिस्त्रिंशदशैका च सप्त लक्षाः प्रकीर्तिताः ॥१२०॥
नवतिः पञ्चभिः सार्धमशीतिश्चतुरुत्तराः । पञ्चाशत्पञ्चभिर्युक्ताश्चिंशदश च कीर्तिताः ॥१२१॥

बाद शीतलनाथके पहले-पहले तक अर्थात् पुष्पदन्त भगवान् तक प्रत्येककी पचास-पचास धनुष कम होती गयी है। शीतलनाथ भगवान्की ऊँचाई नब्बे धनुष है। उसके आगे धर्मनाथके पहले-पहले तक प्रत्येककी दश-दश धनुष कम होती गयी है। धर्मनाथकी पैंतालीस धनुष प्रमाण है। उनके आगे पार्श्वनाथके पहले-पहले तक प्रत्येककी पाँच-पाँच धनुष कम होती गयी है। पार्श्वनाथकी नौ हाथ और वर्धमान स्वामीके उनसे दो हाथ कम अर्थात् सात हाथकी ऊँचाई है। भावार्थ—१ ऋषभनाथकी ५०० धनुष, २ अजितनाथकी ४५० धनुष, ३ सम्भवनाथकी ४०० धनुष, ४ अभिनन्दननाथकी ३५० धनुष, ५ सुमतिनाथकी ३०० धनुष, ६ पद्मप्रभकी २५० धनुष, ७ सुपार्श्वनाथकी २०० धनुष, ८ चन्द्रप्रभकी १५० धनुष, ९ पुष्पदन्तकी १०० धनुष, १० शीतलनाथको ९० धनुष, ११ श्रेयान्सनाथकी ८० धनुष, १२ वासुपूज्यकी ७० धनुष, १३ विमलनाथकी ६० धनुष, १४ अनन्तनाथकी ५० धनुष, १५ धर्मनाथकी ४५ धनुष, १६ शान्तिनाथकी ४० धनुष, १७ कुन्थुनाथकी ३५ धनुष, १८ अरनाथकी ३० धनुष, १९ मल्लिनाथकी २५ धनुष, २० मुनिसुव्रतनाथकी २० धनुष, २१ नमिनाथकी १५ धनुष, २२ नेमिनाथकी १० धनुष, २३ पार्श्वनाथकी ९ हाथ और २४ वर्धमान स्वामीकी ७ हाथकी ऊँचाई है ॥११३-११५॥

अब कुलकर तथा तीर्थंकरोंकी आयुका वर्णन करता हूँ—हे राजन् ! लोक तथा अलोकके देखनेवाले सर्वज्ञदेवने प्रथम कुलकरकी आयु पल्यके दशवें भाग बतलायी है। उसके आगे प्रत्येक कुलकरकी आयु दशवें-दशवें भाग बतलायी गयी है अर्थात् प्रथम कुलकरकी आयुमें दशका भाग देनेपर जो लब्ध आवे वह द्वितीय कुलकरकी आयु है और उसमें दशका भाग देनेपर जो लब्ध आवे वह तृतीय कुलकरकी आयु है। इस तरह चौदह कुलकरोंकी आयु जानना चाहिए ॥११६-११७॥ प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवान्की चौरासी लाख पूर्व, द्वितीय तीर्थंकर श्री अजितनाथ भगवान्की बहत्तर लाख पूर्व, तृतीय तीर्थंकर श्री सम्भवनाथकी साठ लाख पूर्व, उनके बाद पाँच तीर्थंकरोंमें प्रत्येककी दश-दश लाख पूर्व, कम अर्थात् चतुर्थ अभिनन्दननाथकी पचास लाख पूर्व, पंचम सुमतिनाथकी चालीस लाख पूर्व, षष्ठ पद्मप्रभकी तीस लाख पूर्व, सप्तम सुपार्श्वनाथकी बीस लाख पूर्व, अष्टम चन्द्रप्रभकी दश लाख पूर्व, नवम पुष्पदन्तकी दो लाख पूर्व, दशम शीतलनाथकी एक लाख पूर्व, ग्यारहवें श्रेयान्सनाथकी चौरासी लाख वर्ष, बारहवें वासुपूज्यकी बहत्तर लाख वर्ष, तेरहवें विमलनाथकी साठ लाख वर्ष, चौदहवें अनन्तनाथकी तीस लाख वर्ष, पन्द्रहवें धर्मनाथकी दश लाख वर्ष, सोलहवें शान्तिनाथकी एक लाख वर्ष, सत्रहवें कुन्थुनाथकी पंचानबे हजार वर्ष, अठारहवें

१. सपञ्चिका क., ज. । २. अत्र ख. पुस्तके एवं पाठः—चतुर्भिरधिकाशीतिः पूर्वलक्षाद्विसप्ततिः । षष्टिर्लक्षाणि पूर्वाणि पञ्चाशल्लक्षकं तथा ॥११८॥ चत्वारिंशत्तु लक्षाणि त्रिंशल्लक्षाणि चैव हि । तथा विंशतिलक्षाणि दश द्वे चैकमेव हि ॥११९॥ ३. शीतिरब्दाः लक्षा म. । ४. समा लक्षाः ख. ।

एकं चाब्दं सहस्राणां संख्येयं परिकीर्तिताः । वर्षाणां च शतं द्वाभ्यामधिका सप्ततिस्तथा ॥१२२॥
क्रमेणेति जिनेन्द्राणामायुः श्रेणिक कीर्तितम् । शृणु संप्रति यो यत्र जातश्चक्रधरोऽन्तरे[1] ॥१२३॥
ऋषभेण यशोवत्यां[2] जातो भरतकीर्तितः । यस्य नाम्ना गते ख्यातिमेतद्वास्यं जगत्त्रये ॥१२४॥
अभूद् यः पुण्डरीकिण्यां पीठः पूर्वत्र जन्मनि । सर्वार्थसिद्धिमैश्कृत्वा कुशसेनस्य[3] शिष्यताम् ॥१२५॥
लोचानन्तरमुत्पाद्य महासंवेगयोगतः[4] । सर्वावभासनं ज्ञानं निर्वाणं स समीयिवान् ॥१२६॥
बभूव नगरे राजा पृथिवीपुरनामनि । विजयो नाम शिष्योऽभूद् यशोधरगुरोरसौ ॥१२७॥
स मृतो विजयं गत्वा भुक्त्वा भोगमनुत्तमम् । विनीतायामिह च्युत्वा विजयस्याप्य पुत्रताम् ॥१२८॥
सौमङ्गलो बभूवासौ चक्री सगरसंज्ञितः । भुक्त्वा भोगं महासारं सुरपूजितशासनः ॥१२९॥
प्रबुद्धः पुत्रशोकेन प्रव्रज्य जिनशासने । उत्पाद्य केवलं नाथः सिद्धालयमालयं गतः[5] ॥१३०॥
शशिप्रभः पुण्डरीकिण्यां शिष्योऽभूद् विमले गुरौ । गत्वा ग्रैवेयकं भुक्त्वा संसारसुखमुत्तमम् ॥१३१॥
च्युत्वा सुमित्रराजस्य भद्रवस्यामभूत् सुतः । श्रावस्त्यां मघवा नाम चक्रलक्ष्मीलतातरुः ॥१३२॥
श्रामण्यमतमास्थाय धर्मशान्तिजिनान्तरे । समाधानानुरूपेण गतः सौधर्मवासिताम् ॥१३३॥
सनत्कुमारचक्रेशे स्तुते मगधपुंगवः । अवोचत् केन पुण्येन जातोऽसाविति रूपवान् ॥१३४॥

अरनाथकी चौरासी हजार वर्ष, उन्नीसवें मल्लिनाथकी पचपन हजार वर्ष, बीसवें मुनिसुव्रतनाथकी तीस हजार वर्ष, इक्कीसवें नमिनाथकी दश हजार वर्ष, बाईसवें नेमिनाथकी एक हजार वर्ष, तेईसवें पार्श्वनाथकी सौ वर्ष और चौबीसवें महावीरकी बहत्तर वर्षकी आयु थी ॥११८-१२२॥ हे श्रेणिक ! मैंने इस प्रकार क्रमसे तीर्थंकरोंकी आयुका वर्णन किया । अब जिस अन्तरालमें चक्रवर्ती हुए हैं उनका वर्णन सुन ॥१२३॥

भगवान् ऋषभदेवकी यशस्वती रानीसे भरत नामा प्रथम चक्रवर्ती हुआ । इस चक्रवर्तीके नामसे ही यह क्षेत्र तीनों जगत्में भरत नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥१२४॥ यह भरत पूर्व जन्ममें पुण्डरीकिणी नगरीमें पीठ नामका राजकुमार था । तदनन्तर कुशसेन मुनिका शिष्य होकर सर्वार्थसिद्धि गया । वहाँसे आकर भरत चक्रवर्ती हुआ । इसके परिणाम निरन्तर वैराग्यमय रहते थे जिससे केशलोंचके अनन्तर ही लोकालोकावभासी केवलज्ञान उत्पन्न कर निर्वाण धामको प्राप्त हुआ ॥१२५-१२६॥ फिर पृथ्वीपुर नगरमें राजा विजय था जो यशोधर गुरुका शिष्य होकर मुनि हो गया । अन्तमें सल्लेखनासे मरकर विजय नामका अनुत्तम विमानमें गया । वहाँ उत्तम भोग भोगकर अयोध्या नगरीमें राजा विजय और रानी सुमंगलाके सगर नामका द्वितीय चक्रवर्ती हुआ । वह इतना प्रभावशाली था कि देव भी उसकी आज्ञाका सम्मान करते थे । उसने उत्तमोत्तम भोग भोगकर अन्तमें पुत्रोंके शोकसे प्रवृत्ति हो जिन दीक्षा धारण कर ली और केवलज्ञान उत्पन्न कर सिद्धालय प्राप्त किया ॥१२७-१३०॥ तदनन्तर पुण्डरीकिणी नगरीमें शशिप्रभ नामका राजा था । वह विमल गुरुका शिष्य होकर ग्रैवेयक गया । वहाँ संसारका उत्तम सुख भोगकर वहाँसे च्युत हो श्रावस्ती नगरीमें राजा सुमित्र और रानी भद्रवतीके मघवा नामका तृतीय चक्रवर्ती हुआ । यह चक्रवर्तीकी लक्ष्मीरूपी लताके लिपटनेके लिए मानो वृक्ष ही था । यह धर्मनाथ और शान्तिनाथ तीर्थंकरके बीचमें हुआ था तथा मुनिव्रत धारण कर समाधिके अनुरूप सौधर्म स्वर्गमें उत्पन्न हुआ था ॥१३१-१३३॥

इसके बाद गौतमस्वामी चतुर्थ चक्रवर्ती सनत्कुमारकी बहुत प्रशंसा करने लगे तब राजा श्रेणिकने पूछा कि हे भगवन् ! वह किस पुण्यके कारण इस तरह अत्यन्त रूपवान् हुआ था ॥१३४॥

---

१. चक्रधरान्तरे म. । २. यशस्वत्यामिति भवितव्यम् । ३. कुशसेनस्य म. । ४. लुञ्चानन्तर ज., लोचमान्तर म. । ५. गतं म. ।

तस्मै समासतोऽवोचत् पुराणार्थं महामुनिः । यक्ष वर्षशतेनापि सर्वं कथयितुं क्षमम् ॥१३५॥
तिर्यग्नरकदुःखानि कुमानुषभवांस्तथा । जीवः प्रपद्यते तावद्यावत्कायाति जैनताम् ॥१३६॥
अस्ति गोवर्धनाभिख्यो ग्रामो जनसमाकुलः । जिनदत्ताभिधानोऽत्र बभूव गृहिणां वरः ॥१३७॥
यथा सर्वाम्बुधानानां सागरो मूर्ध्नि स्थितः । भूधराणां च सर्वेषां मन्दरश्चारुकन्दरः ॥१३८॥
ग्रहाणां हरिदश्वश्च[1] तृणानामिक्षुरर्चितः । ताम्बूलाख्या च वल्लीनां तरूणां हरिचन्दनः[2] ॥१३९॥
कुलानामिति सर्वेषां श्रावकाणां कुलं स्तुतम् । आचारेण हि तत्पूतं सुगत्यर्जनतत्परम् ॥१४०॥
स गृही तत्र जातः सन् कृत्वा श्रावकचेष्टितम् । गुणभूषणसंपन्नः प्रशस्तामाश्रितो गतिम् ॥१४१॥
भार्या विनयवत्यस्य तद्वियोगेन दुःखिता । शीलशेखरसद्गन्धा गृहिधर्मपरायणा ॥१४२॥
स्वनिवेशे जिनेन्द्राणां कारयित्वा वरालयम् । प्रव्रज्य सुतरां [illegible] ॥१४३॥
तत्रैवान्योऽभवद् ग्रामे हेमबाहुर्महागृही । आस्तिकः परमोत्साही दुराचारपराङ्मुखः ॥१४४॥
तया विनयवत्यासौ कारितं जैनमालयम् । अनुमोद्य महापूजां यक्षोऽभूदायुषः क्षये ॥१४५॥
चतुर्विधस्य संघस्य निरतः पर्युपासने । सम्यग्दर्शनसंपन्नो जिनवन्दनतत्परः ॥१४६॥
ततः सुमानुषो देव इति त्रिः परिवर्तनम् । कुर्वन्नसौ महापुर्यामासीद्धर्मरुचिर्नृपः ॥१४७॥
[4]अस्य सानत्कुमारस्य पितासीत् सुप्रभाह्वयः । वरस्त्रीगुणमञ्जूषा माता तिलकसुन्दरी ॥१४८॥
कृत्वा सुप्रभशिष्यत्वं महाव्रतधरस्ततः । महासमितिसंपन्नश्चारुगुप्तिसमाकृतः ॥१४९॥

इसके उत्तरमें गणधर भगवान्ने संक्षेपसे ही पुराणका सार वर्णन किया क्योंकि उसका पूरा वर्णन तो सौ वर्षमें भी नहीं कहा जा सकता था ॥१३५॥ उन्होंने कहा कि जबतक यह जीव जैनधर्मको प्राप्त नहीं होता है तबतक तिर्यंच नरक तथा कुमानुष सम्बन्धी दुःख भोगता रहता है ॥१३६॥ पूर्वभवका वर्णन करते हुए उन्होंने कहा कि मनुष्योंसे भरा एक गोवर्धन नामका ग्राम था उसमें जिनदत्त नामका उत्तम गृहस्थ रहता था ॥१३७॥ जिस प्रकार समस्त जलाशयोंमें सागर, समस्त पर्वतोंमें सुन्दर गुफाओंसे युक्त सुमेरु पर्वत, समस्त ग्रहोंमें सूर्य, समस्त तृणोंमें इक्षु, समस्त लताओंमें नागबल्ली और समस्त वृक्षोंमें हरिचन्दन वृक्ष प्रधान है, उसी प्रकार समस्त कुलोंमें श्रावकोंका कुल सर्वप्रधान है क्योंकि वह आचारकी अपेक्षा पवित्र है तथा उत्तम गति प्राप्त करानेमें तत्पर है ॥१३८-१४०॥ वह गृहस्थ श्रावक कुलमें उत्पन्न हो तथा श्रावकाचारका पालनकर गुणरूपी आभूषणोंसे युक्त होता हुआ उत्तम गतिको प्राप्त हुआ ॥१४१॥ उसकी विनयवती नामकी पतिव्रता तथा गृहस्थका धर्म पालन करनेमें तत्पर रहनेवाली स्त्री थी सो पतिके वियोगसे बहुत दुःखी हुई ॥१४२॥ उसने अपने घरमें जिनेन्द्र भगवान्का उत्तम मन्दिर बनवाया तथा अन्तमें आर्यिकाकी दीक्षा ले उत्तम तपश्चरण कर देवगति प्राप्त की ॥१४३॥ उसी नगरमें हेमबाहु नामका एक महागृहस्थ रहता था जो आस्तिक, परमोत्साही और दुराचारसे विमुख था ॥१४४॥ विनयवतीने जो जिनालय बनवाया था तथा उसमें जो भगवान्की महापूजा होती थी उसकी अनुमोदना कर वह आयुके अन्तमें यक्ष जातिका देव हुआ ॥१४५॥ वह यक्ष चतुर्विध संघकी सेवामें सदा तत्पर रहता था। सम्यग्दर्शनसे सहित था और जिनेन्द्रदेवकी वन्दना करनेमें सदा तत्पर रहता था ॥१४६॥ वहाँसे आकर वह उत्तम मनुष्य हुआ, फिर देव हुआ। इस प्रकार तीन बार मनुष्य-देवगतिमें आवागमन कर महापुरी नगरीमें धर्मरुचि नामका राजा हुआ। यह धर्मरुचि सनत्कुमार स्वर्गसे आकर उत्पन्न हुआ था। इसके पिताका नाम सुप्रभ और माताका नाम तिलकसुन्दरी था। तिलकसुन्दरी उत्तम स्त्रियोंके गुणोंकी मानो मंजूषा ही थी ॥१४७-१४८॥ राजा धर्मरुचि सुप्रभ मुनिका शिष्य होकर पाँच महाव्रतों, पाँच समितियों और तीन गुप्तियोंका धारक हो गया ॥१४९॥

---

१. सूर्यः । २. हरिचन्दनम् म. । ३. यक्षीभूदा म. । ४. अस्य म., ज. । ५. पिता चासीत्प्रभाह्वयः ख. ।

आत्मनिन्दापरो धीरः स्वदेहेऽत्यन्तनिःस्पृहः । दयादमपरो धीमान् शीलवैवधिकः परः ॥१५०॥
शङ्कादिदृष्टिदोषाणामतिदूरव्यवस्थितः । साधूनां सततं सक्तो वैयावृत्त्ये यथोचिते ॥१५१॥
संयुक्तः कालधर्मेण माहेन्द्रं कल्पमाश्रितः । अवाप परमान् भोगान् देवीनिवहमध्यगः ॥१५२॥
च्युतो नागपुरे जातः सौहदेवः स वैजयिः । सनत्कुमारशब्देन ख्यातश्चक्राङ्कशासनः ॥१५३॥
संकथानुक्रमाद् यस्य सौधर्मेण कीर्तितम् । रूपं द्रष्टुं समाजग्मुः सुरा विस्मयकारणम् ॥१५४॥
कृतश्रमः स तैर्दृष्टो भूरजोधूसरद्युतिः । गन्धामलकपङ्केन दिग्धमौलिर्महातनुः ॥१५५॥
स्नानैकशाटकः श्रीमान् स्थितः स्नानोचितासने । नानावर्णपयःपूर्णकुम्भमण्डलमध्यगः ॥१५६॥
उक्तः स तैरहो रूपं साधु शुक्रेण वर्णितम् । मानुषस्य सतो देवचित्ताकर्षणकारणम् ॥१५७॥
तेनोक्तास्ते कृतस्नानं भुक्तवन्तं सभूषणम् । सुरा द्रक्ष्यथ मां स्तोकं वेलामत्रैव तिष्ठत ॥१५८॥
एवमित्युदिते कृत्वा यः समस्तं यथोचितम् । स्थितः सिंहासने रत्नशैलकूटसमद्युतिः ॥१५९॥
दृष्ट्वा तस्य पुनारूपं निनिन्दुर्नाकवासिनः । असारा धिगिमा शोभा मर्त्यानां क्षणिकामिति ॥१६०॥
प्रथमे दर्शने याऽस्य यौवनेन समन्विता । सेयं क्षणात् कथं ह्रासं प्राप्ता सौदामिनीत्वरी ॥१६१॥
विज्ञाय क्षणिकां लक्ष्मीं सुरेभ्यो रागवर्जितः । श्रमणत्वं परिप्राप्य महाघोरतपोऽन्वितः ॥१६२॥

वह सदा आत्मनिन्दामें तत्पर रहता था, आगत उपसर्गादिके सहनेमें धीर था, अपने शरीरसे अत्यन्त निःस्पृह रहता था, दया और दमको धारण करनेवाला था, बुद्धिमान् था, शीलरूपी कांवरका धारक था, शंका आदि सम्यग्दर्शनके आठ दोषोंसे बहुत दूर रहता था, और साधुओंकी यथायोग्य वैयावृत्त्यमें सदा लगा रहता था ॥१५०–१५१॥ अन्तमें आयु समाप्त कर वह माहेन्द्र स्वर्गमें उत्पन्न हुआ और वहाँ देवियोंके समूहके मध्यमें स्थित हो परम भोगोंको प्राप्त हुआ ॥१५२॥ तदनन्तर वहाँसे च्युत होकर हस्तिनापुरमें राजा विजय और रानी सहदेवीके सनत्कुमार नामका चतुर्थ चक्रवर्ती हुआ ॥१५३॥

एक बार सौधर्मेन्द्रने अपनी सभामें कथाके अनुक्रमसे सनत्कुमार चक्रवर्तीके रूपकी प्रशंसा की। सो आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले उसके रूपको देखनेके लिए कुछ देव आये ॥१५४॥ जिस समय उन देवोंने छिपकर उसे देखा उस समय वह व्यायाम कर निवृत्त हुआ था, उसके शरीरकी कान्ति अखाड़ेकी धूलिसे धूसरित हो रही थी, शिरमें सुगन्धित आँवलेका पंक लगा हुआ था, शरीर अत्यन्त ऊँचा था, स्नानके समय धारण करने योग्य एक वस्त्र पहने था, स्नानके योग्य आसनपर बैठा था, और नाना वर्णके सुगन्धित जलसे भरे हुए कलशोंके बीचमें स्थित था ॥१५५–१५६॥ उसे देखकर देवोंने कहा कि अहो! इन्द्रने जो इसके रूपकी प्रशंसा की है सो ठीक ही की है। मनुष्य होनेपर भी इसका रूप देवोंके चित्तको आकर्षित करनेका कारण बना हुआ है ॥१५७॥ जब सनत्कुमारको पता चला कि देव लोग हमारा रूप देखना चाहते हैं तब उसने उनसे कहा कि आप लोग थोड़ी देर यहीं ठहरिए। मुझे स्नान और भोजन करनेके बाद आभूषण धारण कर लेने दीजिए फिर आप लोग मुझे देखें ॥१५८॥ 'ऐसा ही हो' इस प्रकार कहनेपर चक्रवर्ती सनत्कुमार सब कार्य यथायोग्य कर सिंहासन पर आ बैठा। उस समय वह ऐसा जान पड़ता था मानो रत्नमय पर्वतका शिखर ही हो ॥१५९॥

तदनन्तर पुनः उसका रूप देखकर देव लोग आपसमें निन्दा करने लगे कि मनुष्योंकी शोभा असार तथा क्षणिक है, अतः इसे धिक्कार है ॥१६०॥ प्रथम दर्शनके समय जो इसकी शोभा यौवनसे सम्पन्न देखी थी वह बिजलीके समान नश्वर होकर क्षण-भरमें ही ह्रासको कैसे प्राप्त हो गयी? ॥१६१॥ लक्ष्मी क्षणिक है ऐसा देवोंसे जानकर चक्रवर्ती सनत्कुमारका राग छूट

१. सहदेवीपुत्रः । २. विजयस्यापत्यं पुमान् वैजयिः । ३. भूसर म. ।

अधिसह्य महारोगान् महालब्धियुतोऽपि सन् । सनत्कुमारमारूढः स्वध्यानस्थितिभोगतः ॥१६३॥
बभूव पुण्डरीकिण्यां नाम्ना मेघरथो नृपः । सर्वार्थसिद्धिमेतोऽसौ शिष्यो घनरथस्य सन् ॥१६४॥
च्युत्वा नागपुरे विश्वसेनस्यैराशरीरजः । तनयः प्रथितो जातः शान्तिः शान्तिकरो नृणाम् ॥१६५॥
जातमात्रोऽभिषेकं यः सुरेभ्यः प्राप्य मन्दिरे । अभूच्चक्राङ्कभोगस्य नाथोऽसाविन्द्रसंस्तुतः ॥१६६॥
विहाय तृणवद्राज्यं प्राव्राज्यं समशिश्रियत् । चक्रिणां पञ्चमो भूत्वा जिनानां षोडशोऽभवत् ॥१६७॥
कुन्थ्वरौ परतस्तस्य संजातौ चक्रवर्तिनौ । जिनेन्द्रत्वं च संप्राप्तौ पूर्वसंचितकारणौ ॥१६८॥
सनत्कुमारराजोऽभूद्धर्मशान्तिजिनान्तरे । निजमेवान्तरं शेयं त्रयाणां जिनचक्रिणाम् ॥१६९॥
कनकाभ इति ख्यातो नाम्ना धान्यपुरे नृपः । विचित्रगुप्तशिष्यः सन् स जयन्तं समाश्रयत् ॥१७०॥
ईशावत्यां नरेन्द्रस्य कार्तवीर्यस्य मामिनी । तारेति तनयस्तस्यामभूत्राकादुपागतः ॥१७१॥
सुभूम इति चाख्यातश्चक्राङ्काया: श्रियः पतिः । येनेयं शोभना भूमिः कृता परमचेष्टिना[1] ॥१७२॥
पितुर्यो वधकं युद्धे जामदग्न्यममीमरत् । भुञ्जानः पायसं पात्र्या चक्ररत्नपरिवृत्तया ॥१७३॥
जामदग्न्याहतक्षात्रदन्ता एतस्य पायसम् । सत्रे किलाश्नतो जाता नैमित्तोक्तं समन्ततः ॥१७४॥

गया। फलस्वरूप वह मुनि-दीक्षा लेकर लम्बा कठिन तप करने लगा ॥१६२॥ यद्यपि उसके शरीरमें अनेक रोग उत्पन्न हो गये थे तो भी वह उन्हें बड़ी शान्तिसे सहन करता रहा। तपके प्रभावसे अनेक ऋद्धियाँ भी उसे प्राप्त हुई थीं। अन्तमें आत्मध्यानके प्रभावसे वह सनत्कुमार स्वर्गमें देव हुआ ॥१६३॥

अब पंचम चक्रवर्तीका वर्णन करते हैं—

पुण्डरीकिणी नगरमें राजा मेघरथ रहते थे। वे अपने पिता घनरथ तीर्थंकरके शिष्य होकर सर्वार्थसिद्धि गये। वहाँसे च्युत होकर हस्तिनागपुरमें राजा विश्वसेन और रानी ऐरादेवीके मनुष्योंको शान्ति उत्पन्न करनेवाले शान्तिनाथ नामक प्रसिद्ध पुत्र हुए ॥१६४-१६५॥ उत्पन्न होते ही देवोंने सुमेरु पर्वतपर इनका अभिषेक किया था। इन्द्रने स्तुति की थी और इस तरह वे चक्रवर्तीके भोगोंके स्वामी हुए ॥१६६॥ ये पंचम चक्रवर्ती तथा सोलहवें तीर्थंकर थे। अन्तमें तृणके समान राज्य छोड़कर इन्होंने दीक्षा धारण की थी ॥१६७॥ इनके बाद क्रमसे कुन्थुनाथ और अरनाथ नामके छठे तथा सातवें चक्रवर्ती हुए। ये पूर्वभवमें सोलह कारण भावनाओंका संचय करनेके कारण तीर्थंकर पदको भी प्राप्त हुए थे ॥१६८॥ सनत्कुमार नामका चौथा चक्रवर्ती धर्मनाथ और शान्तिनाथ तीर्थंकरके बीचमें हुआ था और शान्ति, कुन्थु तथा अर इन तीन तीर्थंकर तथा चक्रवर्तियोंका अन्तर अपना-अपना ही काल जानना चाहिए ॥१६९॥

अब आठवें चक्रवर्तीका वर्णन करते हैं—

धान्यपुर नगरमें राजा कनकाभ रहता था। वह विचित्रगुप्त मुनिका शिष्य होकर जयन्त नामका अनुत्तर विमानमें उत्पन्न हुआ ॥१७०॥ वहाँसे आकर वह ईशावती नगरीमें राजा कार्तवीर्य और रानी ताराके सुभूम नामका आठवाँ चक्रवर्ती हुआ। यह उत्तम चेष्टाओंको धारण करनेवाला था तथा इसने भूमिको उत्तम किया था इसलिए इसका सुभूम नाम सार्थक था ॥१७१-१७२॥ परशुरामने युद्धमें इसके पिताको मारा था सो इसने उसे मारा। परशुरामने क्षत्रियोंको मारकर उनके दन्त इकट्ठे किये थे। किसी निमित्तज्ञानीने उसे बताया था कि जिसके देखनेसे ये दन्त खीर रूपमें परिवर्तित हो जायेंगे उसीके द्वारा तेरी मृत्यु होगी। सुभूम एक यज्ञमें परशुरामके यहाँ गया था। जब वह भोजन करनेको उद्यत हुआ तब परशुरामने वे सब दन्त एक पात्रमें रखकर उसे दिखाये। उसके पुण्य प्रभावसे वे दन्त खीर बन गये और पात्र चक्रके रूपमें बदल गया। सुभूमने उसी

---

१. कृत्वा म. । २. परमचेष्टना ख. ।

सप्तवारान् कृताक्षत्रधारिपूर्णां किल भूमिति । चक्रे त्रिसप्तवारान् यः क्षितिं निष्कण्ठसूत्रिकाम् ॥१७५॥
अत्युग्रशासनात्तस्मात् विद्या प्राप्य महाभयम् । कुलेषु रजकादीनां क्षत्रिया इव लिलियरे ॥१७६॥
अरमल्ल्यन्तरे चक्री भोगादविरतात्मकः । कालधर्मेण संयुक्तः सप्तमीं क्षितिमाश्रितः ॥१७७॥
नगर्यां वीतशोकायां चिन्ताहृः पार्थिवोऽभवत् । भूत्वा सुप्रभशिष्योऽसौ ब्रह्माहं कल्पमाश्रितः ॥१७८॥
च्युतो नागपुरे पद्मरथस्य धरणीपतेः । मयूर्यां समयो जातो महापद्मः प्रकीर्तितः ॥१७९॥
अष्टौ दुहितरस्तस्य सर्वातिशयगर्विताः । नेच्छन्ति स्म पतिं कर्तुं क्वापि जगति स्त्रियः स्वतः सिद्धाः ॥१८०॥
उपलभ्य समानीता निर्वेदिन्यः प्रवव्रजुः । समाराधितकल्याणा देवलोकं समाश्रिताः ॥१८१॥
तेऽप्यष्टौ तद्वियोगेन प्रव्रज्यां व्योमचारिणः । चक्रुर्विचित्रसंसारदर्शनत्रासमागताः ॥१८२॥
हेतुना तेन चक्रेशः प्रतिबुद्धो महागुणः । सुते न्यस्य श्रियं पद्मे निष्क्रान्तो विष्णुना समम् ॥१८३॥
महापद्मस्तपः कृत्वा परं संप्राप्तकेवलः । लोकाग्रमारमारुक्षद्रमल्लिजिनान्तरे ॥१८४॥
महेन्द्रदत्तनामासीत् पुरे विजयनामनि । कृत्वा नन्दनशिष्यत्वं [1]माहेन्द्रं कल्पमुद्ययौ ॥१८५॥
काम्पिल्यनगरे च्युत्वा वप्रायां हरिकेतुतः । हरिषेण इति ख्यातो जज्ञे चक्राङ्कितेशतः ॥१८६॥
स कृत्वा धरणीं सर्वां निजां चैत्यविभूषणाम् । तीर्थे सुव्रतनाथस्य सिद्धानां पदमाश्रितः ॥१८७॥

चक्रके द्वारा परशुरामको मारा था। परशुरामने पृथ्वीको सात बार क्षत्रियोंसे रहित किया था इसलिए उसके बदले इसने इक्कीस बार पृथ्वीको ब्राह्मणरहित किया था ॥१७३-१७५॥ जिस प्रकार पहले परशुरामके भयसे क्षत्रिय धोबी आदिके कुलोंमें छिपते फिरते थे उसी प्रकार अत्यन्त कठिन शासनके धारक सुभूम चक्रवर्तीसे ब्राह्मण लोग भयभीत होकर धोबी आदिके कुलोंमें छिपते फिरते थे ॥१७६॥ यह सुभूम चक्रवर्ती अरनाथ और मल्लिनाथके बीचमें हुआ था तथा भोगोंसे विरक्त न होनेके कारण मरकर सातवें नरक गया था ॥१७७॥

अब नौवें चक्रवर्तीका वर्णन करते हैं—

वीतशोका नगरीमें चिन्त नामका राजा था। वह सुप्रभमुनिका शिष्य होकर ब्रह्मस्वर्ग गया ॥१७८॥ वहाँसे च्युत होकर हस्तिनागपुरमें राजा पद्मरथ और रानी मयूरीके महापद्म नामका नवाँ चक्रवर्ती हुआ ॥१७९॥ इसकी आठ पुत्रियाँ थीं जो सौन्दर्यके अतिशयसे गर्वित थीं तथा पृथ्वीपर किसी भर्ताकी इच्छा नहीं करती थीं। एक समय विद्याधर इन्हें हरकर ले गये। पता चलाकर चक्रवर्तीने उन्हें वापस बुलाया परन्तु विरक्त होकर उन्होंने दीक्षा धारण कर ली तथा आत्म-कल्याण कर स्वर्गलोक प्राप्त किया ॥१८०-१८१॥ जो आठ विद्याधर उन्हें हरकर ले गये थे वे भी उनके वियोगसे तथा संसारकी विचित्र दशाके देखनेसे भयभीत हो दीक्षित हो गये ॥१८२॥ इस घटनासे महागुणोंका धारक चक्रवर्ती प्रतिबोधको प्राप्त हो गया तथा पद्म नामक पुत्रके लिए राज्य दे विष्णु नामक पुत्रके साथ घरसे निकल गया अर्थात् दीक्षित हो गया ॥१८३॥ इस प्रकार महापद्म मुनिने परम तप कर केवलज्ञान प्राप्त किया तथा अन्तमें लोकके शिखरमें जा पहुँचा। यह चक्रवर्ती अरनाथ और मल्लिनाथके बीचमें हुआ था ॥१८४॥

अब दशवें चक्रवर्तीका वर्णन करते हैं—

विजय नामक नगरमें महेन्द्रदत्त नामका राजा रहता था। वह नन्दन मुनिका शिष्य बनकर महेन्द्र स्वर्गमें उत्पन्न हुआ ॥१८५॥ वहाँसे च्युत होकर काम्पिल्यनगरमें राजा हरिकेतु और रानी वप्राके हरिषेण नामका दशवाँ प्रसिद्ध चक्रवर्ती हुआ ॥१८६॥ उसने अपने राज्यकी समस्त पृथिवीको जिन-प्रतिमाओंसे अलंकृत किया था तथा मुनिसुव्रतनाथ भगवान्‌के तीर्थमें सिद्धपद प्राप्त किया था ॥१८७॥

---

१. -माश्रिता म.। २. महेन्द्रं म.।

अमिताङ्कोऽभवद् राजा पुरे राजपुराभिधे । सुधर्ममित्रशिष्यत्वं कृत्वा ब्रह्मालयं ययौ ॥१८८॥
ततश्च्युतो यशोवत्यां जातस्तत्रैव वैजयिः । जयसेन इति ख्यातश्चक्रवर्त्तिसमुद्भवः ॥१८९॥
परित्यज्य महाराज्यं दीक्षां दैगम्बरीमितः । रत्नत्रितयमाराध्य सैद्धं पदमशिश्रियत् ॥१९०॥
स्वतन्त्रलिङ्गसंज्ञस्य संभूतः प्राप्य शिष्यताम् । काश्यां कमलगुल्माख्यं विमानं समुपाश्रितः ॥१९१॥
च्युतो ब्रह्मरथस्याभूत् पुरे काम्पिल्यनामनि । चूलाङ्कासंभवः पुत्रो ब्रह्मदत्तः प्रकीर्तितः ॥१९२॥
चक्रचिह्नामसौ भुक्त्वा श्रियं चिरतिवर्जितः । सप्तमीं क्षितिमश्लिक्षन्नेमिपार्श्वजिनान्तरे ॥१९३॥
एते षट्खण्डभूनाथाः कीर्तिता मगधाधिप । गतिर्न शक्यते येषां रोद्धुं देवासुरैरपि ॥१९४॥
प्रत्यक्षमक्षमुक्तं च फलमेतच्छुभाशुभम् । श्रुत्वानुभूय दृष्ट्वा च युक्तं न क्रियते कथम् ॥१९५॥
न पाथेयमपूपादि गृहीत्वा कश्चिदुच्छति । लोकान्तरं न चायाति किन्तु सत्सुकृतेतरम् ॥१९६॥
कैलासकूटकल्पेषु वरस्त्रीपूर्णकुक्षिषु । यद्वसन्ति स्वगारेषु तत्फलं पुण्यवृक्षजम् ॥१९७॥
शीतोष्णवातयुक्तेषु कुगृहेषु वसन्ति यत् । दारिद्र्यपङ्कनिर्मग्नास्तदधर्मतरोः फलम् ॥१९८॥
विन्ध्यकूटसमाकारैर्वारणेन्द्रैर्व्रजन्ति यत् । नरेन्द्राश्चामरोद्भूताः पुण्यशालेरिदं फलम् ॥१९९॥
तुरङ्गैर्यदलं स्वङ्गैर्गम्यते चलचामरैः । पादातमभ्यगैः पुण्यनृपतेस्तद्विचेष्टितम् ॥२००॥

अब ग्यारहवें चक्रवर्तीका वर्णन करते हैं—

राजपुर नामक नगरमें एक अमिताङ्क नामका राजा रहता था। वह सुधर्म मित्र नामक मुनिराजका शिष्य होकर ब्रह्म स्वर्ग गया ॥१८८॥ वहाँसे च्युत होकर उसी काम्पिल्यनगरमें राजा विजयकी यशोवती रानीसे जयसेन नामका ग्यारहवाँ चक्रवर्ती हुआ ॥१८९॥ वह अन्तमें महाराज्यका परित्याग कर दैगम्बरी दीक्षाको धारण कर रत्नत्रयकी आराधना करता हुआ सिद्धपदको प्राप्त हुआ ॥१९०॥ यह मुनिसुव्रतनाथ और नमिनाथके अन्तरालमें हुआ था।

अब बारहवें चक्रवर्तीका वर्णन करते हैं—

काशी नगरीमें सम्भूत नामका राजा रहता था। वह स्वतन्त्रलिंग नामक मुनिराजका शिष्य हो कमलगुल्म नामक विमानमें उत्पन्न हुआ ॥१९१॥ वहाँसे च्युत होकर काम्पिल्यनगरमें राजा ब्रह्मरथ और रानी चूलाके ब्रह्मदत्त नामका बारहवाँ चक्रवर्ती हुआ ॥१९२॥ यह चक्रवर्ती लक्ष्मीका उपभोगकर उससे विरत नहीं हुआ और उसी अविरत अवस्थामें मरकर सातवें नरक गया। यह नेमिनाथ और पार्श्वनाथ तीर्थंकरके बीचमें हुआ था ॥१९३॥ गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे मगधराज! इस प्रकार मैंने छह खण्डके अधिपति-चक्रवर्तियोंका वर्णन किया। ये इतने प्रतापी थे कि इनकी गतिको देव तथा असुर भी नहीं रोक सकते थे ॥१९४॥ यह मैंने पुण्य-पापका फल प्रत्यक्ष कहा है, उसे सुनकर, अनुभव कर तथा देखकर लोग योग्य कार्य क्यों नहीं करते हैं? ॥१९५॥ जिस प्रकार कोई पथिक अपूप आदि पाथेय (मार्ग हितकारी भोजन) लिये बिना ग्रामान्तरको नहीं जाता है उसी प्रकार यह जीव भी पुण्य-पापरूपी पाथेयके बिना लोकान्तरको नहीं जाता है ॥१९६॥ उत्तमोत्तम स्त्रियोंसे भरे तथा कैलासके समान ऊँचे उत्तम महलोंमें जो मनुष्य निवास करते हैं वह पुण्यरूपी वृक्षका ही फल है ॥१९७॥ और जो दरिद्रतारूपी कीचड़में निमग्न हो सरदी, गरमी तथा हवाकी बाधासे युक्त खोटे घरोंमें रहते हैं वह पापरूपी वृक्षका फल है ॥१९८॥ जिनपर चमर ढुल रहे हैं ऐसे राजा महाराजा जो विन्ध्याचलके शिखरके समान ऊँचे-ऊँचे हाथियोंपर बैठकर गमन करते हैं वह पुण्यरूपी शालि (धान) का फल है ॥१९९॥ जिनके दोनों ओर चमर हिल रहे हैं ऐसे सुन्दर शरीरके धारक घोड़ोंपर बैठकर जो पैदल सेनाओंके

१. अमिताङ्कः म.। २. चमारोद्भूता म.। ३. पादात्त-म.।

कल्पप्रासादसंकाशं रथमारुह्य यान्ति नाः । व्रजन्ति पुण्यशैलेन्द्रात्[1] स्रुतोऽसौ स्वादुनिर्झरः ॥२०१॥
स्फुटिताभ्यां पदाक्रान्त्यां मलग्रस्तपटैर्नरैः । भ्रम्यते पुरुषैः पापविषवृक्षस्य तत्फलम् ॥२०२॥
अमृतं यद्[2]सुतप्रायं हेमपात्रेषु भुज्यते । स प्रभावो मुनिश्रेष्ठैरुक्तो धार्मरसायनः ॥२०३॥
देवाधिपतिता चक्रक्षुम्भिता यच्च[3] राजता । लभ्यते भव्यशात्[4]वैस्तदहिंसालताफलम् ॥२०४॥
रामकेशवयोर्लक्ष्मीर्लभ्यते यच्च पूरुषैः । सम्पूर्णकुम्भलेखो सत्कीर्तनप्रथाधुना ॥२०५॥
हास्तिनं नगरं रम्यं साकेता केतुभूषिता । श्रावस्ती वरविस्तीर्णा कौशाम्बी भासिताम्बरा ॥२०६॥
पोदनं शैलनगरं तथा सिंहपुरं पुरम् । कौशाम्बी हास्तिनं चेति क्रमेण परिकीर्तिता ॥२०७॥
सर्वधनधान्यसंपन्ना भयसंपर्कवर्जिता । नगर्यो वासुदेवानामिमाः पूर्वत्र जन्मनि ॥२०८॥
विश्वनन्दी महातेजास्ततः पर्वतकाभिधः । धनमित्रस्ततो ज्ञेयस्तृतीयश्चक्रधारिणाम् ॥२०९॥
ततः सागरदत्ताख्यः क्षुब्धसागरनिस्वनः । विकटः प्रियमित्रश्च तथा मानसचेष्टितः ॥२१०॥
पुनर्वसुश्च विज्ञातो गङ्गदेवश्च कीर्तितः । उक्तान्यमूनि नामानि कृष्णानां पूर्वजन्मनि ॥२११॥
नैर्विकीयातनं युद्धे[5]विजयाश्रमदाहृतिः । उद्यानारण्यरमणं वनक्रीडाभिकाङ्क्षणम्[6] ॥२१२॥
अत्यन्तविषयासङ्गो विप्रयोगस्तूनपात् । दौर्भाग्यं प्रेत्य हेतुभ्य एतेभ्यो हरयोऽभवन् ॥२१३॥
विरूपा दुर्भगाः सन्तः सनिदानतपोधनाः । तत्त्वविज्ञाननिर्मुक्ताः संभवन्ति बलानुजाः ॥२१४॥
सनिदानं तपस्तस्माद्वर्जनीयं प्रयत्नतः । लब्धि पश्यान्महाघोरदुःखदानसुशिक्षितम् ॥२१५॥

बीचमें चलते हैं वह पुण्यरूपी राजाकी मनोहर चेष्टा है ॥२००॥ जो मनुष्य स्वर्गके भवनके समान सुन्दर रथपर सवार हो गमन करते हैं वह उनके पुण्यरूपी हिमालयसे भरा हुआ स्वादिष्ट झरना है ॥२०१॥ जो पुरुष मलिन वस्त्र पहनकर फटे हुए पैरोंसे पैदल ही भ्रमण करते हैं वह पापरूपी विषवृक्षका फल है ॥२०२॥ जो मनुष्य सुवर्णमयी पात्रोंमें अमृतके समान मधुर भोजन करते हैं उसे श्रेष्ठ मुनियोंने धर्मरूपी रसायनका प्रभाव बतलाया है ॥२०३॥ जो उत्तम भव्य जीव इन्द्रपद, चक्रवर्तीका पद तथा सामान्य राजाका पद प्राप्त करते हैं वह अहिंसारूपी लताका फल है ॥२०४॥ तथा उत्तम मनुष्य जो बलभद्र और नारायणकी लक्ष्मी प्राप्त करते हैं वह भी धर्मका ही फल है। हे श्रेणिक ! अब मैं उन्हीं बलभद्र और नारायणोंका कथन करूँगा ॥२०५॥ प्रथम ही भरत क्षेत्रके नौ नारायणकी पूर्वभव सम्बन्धी नगरियोंके नाम सुनो—१ मनोहर हस्तिनापुर, २ पताकाओंसे सुशोभित अयोध्या, ३ अत्यन्त विस्तृत श्रावस्ती, ४ निर्मल आकाशसे सुशोभित कौशाम्बी, ५ पोदनपुर, ६ शैलनगर, ७ सिंहपुर, ८ कौशाम्बी और, ९ हस्तिनापुर ये क्रमसे नौ नगरियाँ कही गयी हैं। ये सभी नगरियां सर्वप्रकारके धन-धान्यसे परिपूर्ण थीं, भयके सम्पर्कसे रहित थीं, तथा वासुदेव अर्थात् नारायणोंके पूर्वजन्म सम्बन्धी निवाससे सुशोभित थीं ॥२०६-२०८॥ अब इन वासुदेवोंके पूर्वभवके नाम सुनो—१ महाप्रतापी विश्वनन्दी, २ पर्वत, ३ धनमित्र, ४ क्षोभको प्राप्त हुए सागरके समान शब्द करनेवाला सागरदत्त, ५ विकट, ६ प्रियमित्र, ७ मानसचेष्टित, ८ पुनर्वसु और, ९ गंगदेव ये नारायणोंके पूर्व जन्मके नाम कहे ॥२०९-२११॥ ये सभी पूर्वभवमें अत्यन्त विरूप तथा दुर्भाग्यसे युक्त थे। मूलधनका अपहरण १, युद्धमें हार २, स्त्रीका अपहरण ३, उद्यान तथा वनमें क्रीड़ा करना ४, वन क्रीड़ाकी आकाङ्क्षा ५, विषयोंमें अत्यन्त आसक्ति ६, इष्टजनवियोग ७, अग्निबाधा ८ और दौर्भाग्य ९, क्रमशः इन निमित्तोंको पाकर ये मुनि हो गये थे। निदान अर्थात् आगामी भोगोंकी लालसा रखकर तपश्चरण करते थे तथा तत्त्वज्ञानसे रहित थे। इसी अवस्थामें मरकर ये नारायण हुए थे। ये सभी नारायण बलभद्रके छोटे भाई होते हैं ॥२१२-२१४॥ हे श्रेणिक ! निदान-

---

१. शैलेन्द्राच्च्युतोऽसौ म. । २. यदमृतं प्रायं म. । ३. राजिता म. । ४. नारायणानाम् । ५. युद्धं विजया म. । ६. भरणं म. । ७. वनक्रीडाभिकाङ्क्षणः म. ।

संभूतस्तपसो[1] मूर्तिः सुभद्रो वसुदर्शनः । श्रेयान्[2] सुभूतिसंज्ञश्च वसुभूतिश्च कीर्तितः ॥२१६॥
घोषसेनपराम्भोधिनामानौ च महामुनी । द्रुमसेनश्च कृष्णानां गुरवः पूर्वजन्मनि ॥२१७॥
महाशुक्राभिधः कल्पः प्राणतो लान्तवस्तथा । सहस्रारोऽपरो ब्रह्मनामा माहेन्द्रसंज्ञितः ॥२१८॥
सौधर्मश्च समाख्यातः कल्पः सच्चेष्टितालयः । सनत्कुमारनामा च महाशुक्राभिधोऽपरः ॥२१९॥
एतेभ्यः प्रच्युताः सन्तः प्राप्तपुण्यफलोदयाः । पुण्यावशेषतो जाता वासुदेवा नराधिपाः ॥२२०॥
पोदनं द्वापुरी हस्तिनगरं तत्पुनः स्मृतम् । तथा चक्रपुरं रम्यं कुशाग्रं मिथिलापुरी ॥२२१॥
विनीता मथुरा चेति माधवोत्पत्तिभूमयः । समस्तधनसंपूर्णाः सदोत्सवसमाकुलाः ॥२२२॥
आद्यः प्रजापतिर्ज्ञेयो ब्रह्मभूतिस्तोऽपरः । रौद्रनादस्तथा सोमः प्रख्यातश्च शिवाकरः ॥२२३॥
[3]समस्तमूर्द्धाग्निनादश्च ख्यातो दशरथस्तथा । वसुदेवश्च कृष्णानां पितरः परिकीर्तिताः ॥२२४॥
आद्या मृगावती ज्ञेया माधवी पृथिवी तथा । लोलम्बिका च लक्ष्मीश्च केशिनी कैकयी शुभा ॥२२५॥
देवकी चरमा ज्ञेया महासौभाग्यसंयुता । उदारूपसंपन्नाः कृष्णानां मातरः स्मृताः ॥२२६॥
सुप्रभा प्रथमा देवी रूपिणी प्रभवा परा । मनोहरा सुनेत्रा च तथा विमलसुन्दरी ॥२२७॥
तथानन्दवती ज्ञेया कीर्तिता च प्रभावती । रुक्मिणी चेति कृष्णानां महादेव्यः प्रकीर्तिताः ॥२२८॥

सहित तप प्रयत्नपूर्वक छोड़ना चाहिए क्योंकि वह पीछे चलकर महाभयंकर दुःख देनेमें निपुण होता है ॥२१५॥ अब नारायणोंके पूर्वभवके गुरुओंके नाम सुनो—तपकी मूर्तिस्वरूप सम्भूत १, सुभद्र २, वसुदर्शन ३, श्रेयान्स ४, सुभूति ५, वसुभूति ६, घोषसेन ७, पराम्भोधि ८, और द्रुमसेन ९ ये नौ इनके पूर्वभवके गुरु थे अर्थात् इनके पास इन्होंने दीक्षा धारण की थी ॥२१६-२१७॥ अब जिस-जिस स्वर्गसे आकर नारायण हुए, उनके नाम सुनो—महाशुक्र १, प्राणत २, लान्तव ३, सहस्रार ४, ब्रह्म ५, माहेन्द्र ६, सौधर्म ७, सनत्कुमार ८, और महाशुक्र ९। पुण्यके फलस्वरूप नाना अभ्युदयोंको प्राप्त करनेवाले ये देव इन स्वर्गोंसे च्युत होकर अवशिष्ट पुण्यके प्रभावसे नारायण हुए हैं ॥२१८-२२०॥ अब इन नारायणोंकी जन्म-नगरियोंके नाम सुनो—पोदनपुर १, द्वापुरी २, हस्तिनापुर ३, हस्तिनापुर ४, चक्रपुर ५, कुशाग्रपुर ६, मिथिलापुरी ७, अयोध्या ८ और मथुरा ९ ये नगरियाँ क्रमसे नौ नारायणोंकी जन्म नगरियाँ थीं। ये सभी समस्त धनसे परिपूर्ण थीं तथा सदा उत्सवोंसे आकुल रहती थीं ॥२२१-२२२॥ अब इन नारायणोंके पिताके नाम सुनो—प्रजापति १, ब्रह्मभूति २, रौद्रनाद ३, सोम ४, प्रख्यात ५, शिवाकर ६, राममूर्धाग्निनाद ७, दशरथ ८ और वसुदेव ९ ये नौ क्रमसे नारायणोंके पिता कहे गये हैं ॥२२३-२२४॥ अब इनकी माताओंके नाम सुनो—मृगावती १, माधवी २, पृथ्वी ३, सीता ४, अम्बिका ५, लक्ष्मी ६, केशिनी ७, कैकयी ८ और देवकी ९ ये क्रमसे नौ नारायणोंकी मातायें थीं। ये सभी महासौभाग्यसे सम्पन्न तथा उत्कृष्ट रूपसे युक्त थीं ॥२२५-२२६॥* [अब इन नारायणोंके नाम सुनो—त्रिपृष्ठ १, द्विपृष्ठ २, स्वयम्भू ३, पुरुषोत्तम ४, पुरुषसिंह ५, पुण्डरीक ६, दत्त ७, लक्ष्मण ८ और कृष्ण ९ ये नौ नारायण हैं] अब इनकी पट्टरानियोंका नाम सुनो—सुप्रभा १, रूपिणी २, प्रभवा ३, मनोहरा ४, सुनेत्रा ५, विमलसुन्दरी ६, आनन्दवती ७, प्रभावती ८ और रुक्मिणी ९ ये नौ नारायणोंकी क्रमशः नौ पट्टरानियाँ कही गयी है ॥२२७-२२८॥

---

* हस्तलिखित तथा मुद्रित प्रतियोंमें नारायणोंके नाम बतलानेवाले श्लोक उपलब्ध नहीं हैं। परन्तु उनका होना आवश्यक है। पं. दौलतरामजीने भी उनका अनुवाद किया है। अतः प्रकरण संगतिके लिए [ ] कोष्ठकान्तर्गत पाठ अनुवादमें दिया है।

---

१. तापसो मूर्ति ल.। २. श्रेयान्सभूतिसंज्ञश्च म.। ३. समस्तमूर्द्धाग्निनादश्च म.। समस्तर्द्धग्निनादश्च ब.।

प्रकाण्डपाण्डुरागारा नगरी पुण्डरीकिणी । पृथिवीवसुविस्तीर्णा त्रितीया पृथिवीपुरी ॥२२९॥
अन्यानन्दपुरी ज्ञेया तथानन्दपुरी स्मृता । पुरी व्यतीतशोकाख्या पुरं विजयसंज्ञितम् ॥२३०॥
सुसीमा च तथा क्षेमा हास्तिनं च प्रकीर्तितम् । एतानि बलदेवानां पुराणि गतजन्मनि ॥२३१॥
बलो मारुतवेगश्च नन्दिमित्रो महाबलः । पुरुषर्षभसंज्ञश्च तथा षष्ठः सुदर्शनः ॥२३२॥
वसुन्धरश्च विज्ञेयः श्रीचन्द्रः सखिसंज्ञकः । ज्ञेयान्यमूनि नामानि रामाणां पूर्वजन्मनि ॥२३३॥
अमृतारः सुव्रतः ज्ञेयः महासुव्रतसुव्रतौ । वृषभोऽथ प्रजापालस्तथा दमवरामिधः ॥२३४॥
सुधर्मोऽर्णवसंज्ञश्च तथा विद्रुमसंज्ञितः । अमी पूर्वभवे ज्ञेया गुरवः सीरधारिणाम् ॥२३५॥
निवासोऽनुत्तरा ज्ञेयास्त्रयाणां हलधारिणाम् । सहस्रारस्त्रयाणां च द्वयोर्ब्रह्मनिवासिता ॥२३६॥
महाशुक्राभिधानश्च कल्पः परमशोभनः । एभ्यश्च्युत्वा समुत्पन्ना रामाः साधुसुचेष्टिताः ॥२३७॥
भद्राम्भोजा सुभद्रा च सुवेषा च सुदर्शना । सुप्रभा विजया चान्या वैजयन्ती प्रकीर्तिता ॥२३८॥
महाभागा च विज्ञेया महाशीलाऽपराजिता । रोहिणी चेति विज्ञेया जनन्यः सीरधारिणाम् ॥२३९॥
श्रेयॅसं आदीन् जिनान्पञ्च त्रिपृष्ठाद्याबलानुजाः । क्रमेण पञ्च विज्ञेयन्ते तत्परावरतः परौ ॥२४०॥
नमिसुव्रतयोर्मध्ये लक्ष्मणः परिकीर्तितः । वन्दको नेमिनाथस्य कृष्णोऽद्भुतक्रियः ॥२४१॥
अचलं विजयं ज्ञेयं सुभद्रं पृथिवीपुरम् । तथा हरिपुरं सूर्यसिंहशब्दपरे पुरे ॥२४२॥

अथानन्तर अब नौ बलभद्रोंका वर्णन करते हैं। सो सर्वप्रथम इनकी पूर्वजन्म-सम्बन्धी नगरियोंके नाम सुनो—उत्तमोत्तम धवल महलोंसे सहित पुण्डरीकिणी १ पृथ्वीके समान अत्यन्त विस्तृत पृथिवीपुरी २ आनन्दपुरी ३ नन्दपुरी ४ वीतशोका ५ विजयपुर ६ सुसीमा ७ क्षेमा ८ और हस्तिनापुर ९ ये नौ बलभद्रोंके पूर्व जन्मसम्बन्धी नगरोंके नाम हैं ॥२२९–२३१॥ अब बलभद्रोंके पूर्वजन्मके नाम सुनो—बल १ मारुतवेग २ नन्दिमित्र ३ महाबल ४ पुरुषर्षभ ५ सुदर्शन ६ वसुन्धर ७ श्रीचन्द्र ८ और सखिसंज्ञ ९ ये नौ बलभद्रोंके पूर्वनाम जानना चाहिए ॥२३२–२३३॥ अब इनके पूर्वभव सम्बन्धी गुरुओंके नाम सुनो—अमृतार १ महासुव्रत २ सुव्रत ३ वृषभ ४ प्रजापाल ५ दमवर ६ सुधर्म ७ अर्णव ८ और विद्रुम ९ ये नौ बलभद्रोंके पूर्वभवके गुरु हैं अर्थात् इनके पास इन्होंने दीक्षा धारण की थी ॥२३४–२३५॥ अब ये जिस स्वर्गसे आये उसका वर्णन करते हैं—तीन बलभद्रका अनुत्तर विमान, तीनका सहस्रार स्वर्ग, दोका ब्रह्म स्वर्ग और एकका अत्यन्त सुशोभित महाशुक्र स्वर्ग पूर्वभवका निवास था। ये सब यहाँसे च्युत होकर उत्तम चेष्टाओंके धारक बलभद्र हुए थे ॥२३६–२३७॥ अब इनकी माताओंके नाम सुनो—भद्राम्भोजा १ सुभद्रा २ सुवेषा ३ सुदर्शना ४ सुप्रभा ५ विजया ६ वैजयन्ती ७ उदार अभिप्रायको धारण करनेवाली तथा महाशीलवती अपराजिता (कौशिल्या) ८ और रोहिणी ९ ये नौ बलभद्रोंकी क्रमशः माताओंके नाम हैं ॥२३८–२३९॥ इनमें-से त्रिपृष्ठ आदि पाँच नारायण और पाँच बलभद्र श्रेयान्सनाथको आदि लेकर धर्मनाथ स्वामीके समय पर्यन्त हुए। छठे और सातवें नारायण तथा बलभद्र अरनाथ स्वामीके बाद हुए। लक्ष्मण नामके आठवें नारायण और राम नामक आठवें बलभद्र मुनिसुव्रतनाथ और नमिनाथके बीचमें हुए तथा अद्भुत क्रियाओंको करनेवाले श्री कृष्ण नामक नौवें नारायण तथा बल नामक नौवें बलभद्र भगवान् नेमिनाथकी वन्दना करनेवाले हुए ॥२४०–२४१॥ * [अब बलभद्रोंके नाम सुनो—अचल १ विजय २ भद्र ३ सुप्रभ ४ सुदर्शन ५ नन्दिमित्र

*नारायणके नामकी तरह बलभद्रोंके नाम गिनानेवाले श्लोक भी उपलब्ध प्रतियोंमें नहीं मिले हैं पर पं. दौलतरामजीने इनका अनुवाद किया है तथा उपयोगी भी है। अतः [ ] कोष्ठकोंके अन्तर्गत अनुवाद किया है।

१. पाण्डुरागारा म.। २. पृथिवीवत् सुविस्तीर्णा—अतिविस्तृता। ३. विवासो म.। ४. श्रेयोनाथादारभ्य धर्मनाथपर्यन्तं पञ्च बलभद्रा जाताः। ५. वन्दन्ते म.।

लङ्काराजगृहं चान्यक्रमेण प्रतिचक्रिणाम् । स्थानान्यमूनि वेद्यानि दीप्तानि मणिरश्मिभिः ॥२४३॥
अश्वग्रीव इति ख्यातस्तारको मेरकस्तथा । मधुकैटभसंज्ञश्च निशुम्भश्च तथा बलिः ॥२४४॥
प्रह्लादो दशवक्त्रश्च जरासन्धश्च कीर्तितः । क्रमेण वासुदेवानां विज्ञेया प्रतिचक्रिणः ॥२४५॥
सुवर्णकुम्भः सत्कीर्तिः [2]सुधर्मोऽथ महामुनिः । मृगाङ्कः श्रुतिकीर्तिश्च सुमित्रो भवनश्रुतः ॥२४६॥
सुव्रतश्च सुसिद्धार्थो[3] रामाणां गुरवः स्मृताः । तपःसंभारसंजातकीर्तिवेष्टितविष्टपाः ॥२४७॥

स्रग्धराच्छन्दः

दग्ध्वा कर्मोरुकक्षं भ्रमितबहुविधव्याधिसंभ्रान्तसत्त्वं
मृत्युव्याघ्रातिभीमं भवविपुलसमुत्तुङ्गवृक्षोरुखण्डम् ।
याता निर्वाणभूमौ हलधरविभवं प्राप्य संविग्नभावाः
संप्राप ब्रह्मलोकं चरमहलधरः कर्मबन्धावशेषात् ॥२४८॥
आदौ कृत्वा जिनेन्द्रान् भरतजयकृतां[4] केशवानां बलानां-
मेतत्ते पूर्वजन्मप्रभृति निगदितं वृत्तमत्यन्तचित्रम् ।
केचिद् गच्छन्ति मोक्षं कृतपुरुतपसः स्तोकपङ्काश्च केचित्
केचिद् भ्राम्यन्ति[6] भूयो बहुभवसहनां संसृतिं निर्विरामाः ॥२४९॥

६ नन्दिषेण ७ रामचन्द्र (पद्म) और बल] नारायणोंके प्रतिद्वन्द्वी नौ प्रतिनारायण होते हैं। उनके नगरोंके नाम इस प्रकार जानना चाहिए। अलकपुर १ विजयपुर २ नन्दनपुर ३ पृथ्वीपुर ४ हरिपुर ५ सूर्यपुर ६ सिंहपुर ७ लंका ८ और राजगृह ९। ये सभी नगर मणियोंकी किरणोंसे देदीप्यमान थे ॥२४२–२४३॥ अब प्रतिनारायणोंके नाम सुनो—अश्वग्रीव १ तारक २ मेरक ३ मधुकैटभ ४ निशुम्भ ५ बलि ६ प्रह्लाद ७ दशानन ८ और जरासन्ध ९ ये नौ प्रतिनारायणोंके नाम जानना चाहिए ॥२४४–२४५॥ सुवर्णकुम्भ १ सत्कीर्ति २ सुधर्म ३ मृगांक ४ श्रुतिकीर्ति ५ सुमित्र ६ भवनश्रुत ७ सुव्रत ८ और सुसिद्धार्थ ९ बलभद्रोंके गुरुओंके नाम हैं। इन सभीने तपके भारसे उत्पन्न कीर्तिके द्वारा समस्त संसारको व्याप्त कर रखा था ॥२४६–२४७॥ नौ बलभद्रोंमें-से आठ बलभद्र तो बलभद्रका वैभव प्राप्त कर तथा संसारसे उदासीन हो उस कर्मरूपी महावनको भस्म कर निर्वाणको पधारे—जिसमें कि क्षोभको प्राप्त हुए नाना प्रकारके रोगरूपी जन्तु भ्रमण कर रहे थे, जो मृत्युरूपी व्याघ्रसे अत्यन्त भयंकर था तथा जिसमें जन्मरूपी बड़े-बड़े ऊँचे वृक्षोंके खण्ड लग रहे थे। अन्तिम बलभद्र कर्म-बन्धन शेष रहनेके कारण ब्रह्म स्वर्गको प्राप्त हुआ था ॥२४८॥ गौतम गणधर राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! मैंने तीर्थंकरोंको आदि लेकर भरत क्षेत्रको जीतनेवाले चक्रवर्तियों, नारायणों तथा बलभद्रोंका अत्यन्त आश्चर्यसे भरा हुआ पूर्व-जन्म आदिका वृत्तान्त तुझसे कहा। इनमें-से कितने ही तो विशाल तपश्चरण कर उसी भवसे मोक्ष जाते हैं, किन्हींके कुछ पाप कर्म अवशिष्ट रहते हैं तो वे कुछ समय तक संसारमें भ्रमण कर मोक्ष जाते हैं और कुछ कर्मोंकी सत्ता अधिक प्रबल होनेसे दीर्घ काल तक अनेक जन्म-मरणोंसे सघन

१. वेदानि म. । २. सधर्मोऽथ म., ख. । ३. सुसिद्धार्था म. । ४. व्याघ्रादि घ., ब. । ५. कृतान् म. । ६. केचिद्भ्राम्यन्ति म. । ७. परतपसः ख., युजतपसः म. । ८. गच्छन्ति म. ।

एतज्ज्ञात्वा विचित्रं कलिकलुषमहासागरावर्तमग्नं
संसारप्राणिजातं[1] विसृतगतिमहादुःखवह्निप्रतप्तम् ।
कृष्टं नेच्छन्ति केचिस्सुकृतपरिचयं कर्तुमन्ये तु कश्चित्
कृत्वा मोहावसानं रविरिव विमलं केवलज्ञानमेति ॥२५०॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते तीर्थंकरभवानुकीर्तनं नाम विंशतितमं पर्व ॥२०॥

इस संसार-अटवीमें निरन्तर घूमते रहते हैं ॥२४९॥ ये संसारके विविध प्राणी कलिकालरूपी अत्यन्त मलिन महासागरकी भ्रमरमें मग्न हैं तथा नरकादि नीच गतियोंके महादुःखरूपी अग्निमें सन्तप्त हो रहे हैं। ऐसा जानकर कितने ही निकट भव्य तो इस संसारकी इच्छा ही नहीं करते हैं। कुछ लोग पुण्यका परिचय करना चाहते हैं और कुछ लोग सूर्यके समान मोहका अवसान कर निर्मल केवलज्ञानको प्राप्त होते हैं ॥२५०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें तीर्थंकरादिके भवोंका वर्णन करनेवाला बीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२०॥



---

१. प्राणजातं म. ।

एकविंशतितमं पर्व

शृण्वतोऽष्टमरामस्य संबन्धार्थं वदामि ते । वंशानुकीर्तनं किंचिन्महापुरुषसंभवम् ॥१॥
जिनेन्द्रे दशमेऽलोते[1] राजासीत् सुमुखश्रुतिः । कौशाम्ब्यामपरोऽप्येव [2]वाणिजो वीरक[3]श्रुतिः ॥२॥
हृत्वा तद्वनितां राजा श्रित्वा कामं यथेप्सितम् । दत्त्वा दानं विरागाणां सृत्वा रुक्मगिरिं ययौ ॥३॥
तत्रापि दक्षिणश्रेण्यां पुरे हरिपुरसंज्ञके । उत्पन्नौ दम्पती, क्रीडन्[4] भोगभूमिमशिश्रियत्[5] ॥४॥
दयितावियोहाङ्गारदग्धदेहस्तु वीरकः । तपसा देवतां प्राप देवीनिवहसंकुलाम्[6] ॥५॥
विदित्वावधिना देवो वैरिणं हरिसंभवम् । भरतेऽनिष्टपद्यातं दुर्गतिं [7]पापधीरतिः ॥६॥
यतोऽसौ हरितः क्षेत्रादानीतो भार्यया समम् । ततो हरिरिति ख्यातिं गतः सर्वत्र विष्टपे ॥७॥
नाम्ना महागिरिस्तस्य सुतो हिमगिरिस्ततः । ततो वसुगिरिर्जातो बभूवेन्द्रगिरिस्ततः ॥८॥
रत्नमालोऽथ संभूतो भूतदेवो महीधरः । इत्याद्याः शतशोऽतीता राजानो हरिवंशजाः ॥९॥
वंशे तत्र महासत्त्वः सुमित्र इति विश्रुतः । बभूव परमो राजा कुशाग्राख्ये महापुरे ॥१०॥
त्रिदशेन्द्रसमो भोगैः कान्त्या जितनिशाकरः । जितप्रभाकरो दीप्त्या प्रतापानतशात्रवः ॥११॥

अथानन्तर गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन्! अब आठवें बलभद्र श्रीरामका सम्बन्ध बतलानेके लिए कुछ महापुरुषोंसे उत्पन्न वंशोंका कथन करता हूँ सो सुन ॥१॥ दशवें तीर्थंकर श्री शीतलनाथ भगवान्के मोक्ष चले जानेके बाद कौशाम्बी नगरीमें एक सुमुख नामका राजा हुआ। उसी समय उस नगरीमें एक वीरक नामका श्रेष्ठी रहता था। उसकी स्त्रीका नाम वनमाला था। राजा सुमुखने वनमालाका हरणकर उसके साथ इच्छानुसार कामोपभोग किया और अन्तमें वह मुनियोंके लिए दान देकर विजयार्ध पर्वतपर गया। वहाँ विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें एक हरिपुर नामका नगर था। उसमें वे दोनों दम्पती उत्पन्न हुए अर्थात् विद्याधर-विद्याधरी हुए। वहाँ क्रीड़ा करता हुआ राजा सुमुखका जीव विद्याधर भोगभूमि गया। उसके साथ उसकी स्त्री विद्याधरी भी थी। इधर स्त्रीके विरहरूपी अंगारसे जिसका शरीर जल रहा था ऐसा वीरक श्रेष्ठी तपके प्रभावसे अनेक देवियोंके समूहसे युक्त देवपदको प्राप्त हुआ ॥२-५॥ उसने अवधि ज्ञानसे जब यह जाना कि हमारा वैरी राजा सुमुख हरिक्षेत्रमें उत्पन्न हुआ है तो पाप बुद्धिमें प्रेम करनेवाला वह देव उसे वहाँसे भरतक्षेत्रमें रख गया तथा उसकी दुर्दशा की ॥६॥ चूँकि वह अपनी भार्याके साथ हरिक्षेत्रसे हरकर लाया गया था इसलिए समस्त संसारमें वह हरि इस नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ ॥७॥ उसके महागिरि नामका पुत्र हुआ, उसके हिमगिरि, हिमगिरिके वसुगिरि, वसुगिरिके इन्द्रगिरि, इन्द्रगिरिके रत्नमाला, रत्नमालाके सम्भूत और सम्भूतके भूतदेव आदि सैकड़ों राजा क्रमशः उत्पन्न हुए। ये सब हरिवंशज कहलाये ॥८-९॥ आगे चलकर उसी हरिवंशमें कुशाग्र नामक महानगरमें सुमित्र नामक प्रसिद्ध उत्कृष्ट राजा हुआ ॥१०॥ यह राजा भोगोंसे इन्द्रके समान था, कान्तिसे चन्द्रमाको जीतनेवाला था, दीप्तिसे सूर्यको

---

१. नीते म. । २. वणिजो म । ३. वीरकः श्रुतिः ख. । ४. भोगभूमिमशिश्रियत् क. । ५. क. पुस्तके एष श्लोको नास्ति, ज. पुस्तकेऽपि नास्ति किन्तु केनचित्टिप्पणकर्त्रा पुस्तकान्तरादुद्धृत्य योजितः । म. ब. पुस्तकयोः तृतीयश्लोकस्य 'मृत्वा रुक्मगिरिं ययौ' इति स्थाने 'पुरे हरिपुरसंज्ञके' इति पाठो विद्यते । तदनन्तरं चतुर्थश्लोकस्येत्थं क्रमो विद्यते—उत्पन्नौ दम्पती क्रीडां कृत्वा रुक्मगिरिं ययौ । तत्रापि दक्षिणश्रेण्यां भोगभूमिमशिश्रियत् ॥४॥ अत्र तु मूले ख. पुस्तकीयः पाठः स्थापितः । ६. संकुलम् म. । ७. पापधीरिति म. ।

पद्मावतीति जायास्य पद्मनेत्रा महाद्युतिः । शुभलक्षणसंपूर्णा पूर्णसर्वमनोरथा ॥१२॥
सुप्तासौ भवने रम्ये रात्रौ तल्पे सुखावहे । अद्राक्षीत् पश्चिमे यामे स्वप्नान् षोडश पूजितान् ॥१३॥
द्विरदं शाल्वरं सिंहमभिषेकं श्रियस्तथा । दामनी शीतगुं भानुं झषौ कुम्भं सरोऽब्जवत् ॥१४॥
सागरं सिंहसंयुक्तमासनं रत्नचित्रितम् । विमानं भवनं शुभ्रं रत्नराशिं हुताशनम् ॥१५॥
ततो विस्मितचित्ता सा विबुद्धा बुद्धिशालिनी । कृत्वा यथोचितं यात्रा विनीता भर्तुरन्तिकम् ॥१६॥
कृताञ्जलि पप्रच्छ स्वस्वप्नार्थं न्यायवेदिनी । भद्रासने सुखासीना स्फुल्लदनपङ्कजा ॥१७॥
दयितोऽकथयद्यावत्तस्यै स्वप्नफलं शुभम् । अपतद् गगनात्तावद्वृष्टी रत्नप्रसूतिनी ॥१८॥
त्रिसः कोट्योऽर्धकोटी च वसुनोऽस्य दिने दिने । भवने मुदितो यक्षो ववर्ष सुरशासया ॥१९॥
मासान् पञ्चदश स्पष्टं पतन्त्या वसुधारया । तया रत्नसुवर्णादिमयं तन्नगरं कृतम् ॥२०॥
तस्याः कमलवासिन्यो जिनमातुः प्रतिक्रियाम् । समस्तामादृता देव्यश्चक्रुः सपरिवारिकाः ॥२१॥
जातमात्रमथो सन्तं जिनेन्द्रं क्षीरवारिणा । लोकपालैः सभं शक्रो मेरावस्नपयच्छ्रिया ॥२२॥
संपूज्य भक्तितः स्तुत्वा प्रणम्य च सुराधिपः । मातुरङ्के पुनः प्रोत्या जिननाथमतिष्ठिपत् ॥२३॥
आसीद् गर्भस्थिते यस्मिन् सुव्रता जननी यतः । विशेषेण ततः कीर्तिं गतोऽसौ सुव्रताख्यया ॥२४॥
अकलङ्कप्रकाशोऽपि स जिनो वृषभेक्षणः । जिगाय लक्ष्मीं पूर्णनिशाकरनिभाननः ॥२५॥

पराजित कर रहा था और प्रतापसे समस्त शत्रुओंको नम्र करनेवाला था ॥११॥ उसकी पद्मावती नामकी स्त्री थी। पद्मावती बहुत ही सुन्दरी थी। उसके नेत्र कमलके समान थे, वह विशाल कान्तिकी धारक थी, शुभ लक्षणोंसे सम्पूर्ण थी तथा उसके सर्व मनोरथ पूर्ण हुए थे ॥१२॥ एक दिन वह रात्रिके समय सुन्दर महलमें सुखकारी शय्यापर सो रही थी कि उसने पिछले पहरमें निम्नलिखित सोलह उत्तम स्वप्न देखे ॥१३॥ गज १ वृषभ २ सिंह ३ लक्ष्मीका अभिषेक ४ दो मालाएँ ५ चन्द्रमा ६ सूर्य ७ दो मीन ८ कलश ९ कमलकलित सरोवर १० समुद्र ११ रत्नोंसे चित्र-विचित्र सिंहासन १२ विमान १३ उज्ज्वल भवन १४ रत्नराशि १५ और अग्नि १६ ॥१४-१५॥

तदनन्तर जिसका चित्त आश्चर्यसे चकित हो रहा था ऐसी बुद्धिमती रानी पद्मावती जागकर तथा प्रातःकाल सम्बन्धी यथायोग्य कार्य कर बड़ी नम्रतासे पतिके समीप गयी ॥१६॥ वहाँ जाकर जिसका मुखकमल फूल रहा था ऐसी न्याय की जाननेवाली रानी भद्रासनपर सुखसे बैठी। तदनन्तर उसने हाथ जोड़कर पतिसे अपने स्वप्नोंका फल पूछा ॥१७॥ इधर पतिने जबतक उससे स्वप्नोंका फल कहा तबतक उधर आकाशसे रत्नोंकी वृष्टि पड़ने लगी ॥१८॥ इन्द्रकी आज्ञासे प्रसन्न यक्ष प्रतिदिन इसके घरमें साढ़े तीन करोड़ रत्नोंकी वर्षा करता था ॥१९॥ पन्द्रह मास तक लगातार पड़ती हुई घनवृष्टिसे वह समस्त नगर रत्न तथा सुवर्णादिमय हो गया ॥२०॥ पद्म, महापद्म आदि सरोवरोंके कमलोंमें रहनेवाली श्री-ह्री आदि देवियाँ अपने परिवारके साथ मिलकर जिनमाताकी सब प्रकारकी सेवा बड़े आदरभावसे करती थीं ॥२१॥

अथानन्तर भगवान्का जन्म हुआ। सो जन्म होते ही इन्द्रने लोकपालोंके साथ बड़े वैभवसे सुमेरु पर्वतपर भगवान्का क्षीरसागरके जलसे अभिषेक किया ॥२२॥ अभिषेकके बाद इन्द्रने भक्तिपूर्वक जिनेन्द्रदेवकी पूजा की, स्तुति की, प्रणाम किया और तदनन्तर प्रेमपूर्वक माताकी गोदमें लाकर विराजमान कर दिया ॥२३॥ जब भगवान् गर्भमें स्थित थे तभीसे उनकी माता विशेषकर सुव्रता अर्थात् उत्तम व्रतोंको धारण करनेवाली हो गयी थीं इसलिए वे मुनिसुव्रत नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुए ॥२४॥ जिनका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान था ऐसे सुव्रतनाथ भगवान् यद्यपि

---

१. भुवने म. । २. सूर्यम् ।

दधता परमं तेन भोगमिन्द्रेण कल्पितम् । अहमिन्द्रसुखं दूरमधरीकृतमूर्जितम् ॥२६॥
हाहाहूहूश्रुती तस्य तुम्बुरू नारदस्तथा । विश्वावसुश्च गायन्ति किन्नर्योऽप्सरसो वराः ॥२७॥
वीणावेण्वादिवाद्येन[1] तत्कृतेन सुचारुणा । स्नानादिविधिमाप्नोति देवीजनिसवर्तनम्[2] ॥२८॥
स्मितलज्जितदम्भेर्ष्याप्रसादादिसुविभ्रमाः । यौवनेऽमयद्रामाः सोऽभिरामो यथेप्सितम् ॥२९॥
शरदम्भोदविलयं स वृद्धा प्रतिबुद्धवान् । स्तुतो लौकान्तिकैर्देवैः प्रविव्रजिषयान्वितः ॥३०॥
दत्त्वा सुव्रतसंज्ञाय राज्यं पुत्राय निस्पृहः । प्रणताशेषसामन्तमण्डलं सुखपालनम् ॥३१॥
निर्गतः सौरभव्याप्तदशदिक्चक्रवालतः । दिव्यानुलेपनोदारसुकान्तमकरन्दतः ॥३२॥
सौरभाकृष्टसंभ्रान्तभ्रमरीपृथुवृन्दतः । हरिन्मणिविभाचक्रपलाशचयसंकुलात् ॥३३॥
दन्तपङ्क्तिसितच्छायाविसजालसमाकुलात् । नानाविभूषणध्वानविहगारावपूरितात् ॥३४॥
वलीतरङ्गसंयुक्तात्[3] स्तनचक्राङ्कशोभितात् । राजहंसः सितः कीर्त्या दिव्यस्त्रीपद्मखण्डतः ॥३५॥
देवमानवराजोढां शिविकामपराजिताम् । आरुह्य विपुलोद्यानं ययौ चूडामणिर्नृणाम् ॥३६॥
अवतीर्य ततो राज्ञां सहस्रैर्बहुभिः समम् । दधौ जैनेश्वरीं दीक्षां हरिवंशविभूषणः ॥३७॥
षष्ठोपवासयुक्ताय तस्मै राजगृहे ददौ । भक्त्या वृषभदत्ताख्यः परमान्नेन पारणम् ॥३८॥

अंजनागिरिके समान श्यामवर्ण थे तथापि उन्होंने अपने तेजसे सूर्यको जीत लिया था ॥२५॥ इन्द्रके द्वारा कल्पित (रचित) उत्तम भोगोंको धारण करते हुए उन्होंने अहमिन्द्रका भारी सुख दूरसे ही तिरस्कृत कर दिया था ॥२६॥ हा-हा, हू-हू, तुम्बुरु, नारद और विश्वावसु आदि गन्धर्व-देव सदा उनके समीप गाते रहते थे तथा किन्नर देवियाँ और अनेक अप्सराएँ वीणा, बाँसुरी आदि बाजोंके साथ नृत्य करती रहती थीं। अनेक देवियाँ उबटन आदि लगाकर उन्हें स्नान कराती थीं ॥२७-२८॥ सुन्दर शरीरको धारण करनेवाले भगवान्ने यौवन अवस्थामें मन्द मुसकान, लज्जा, दम्भ, ईर्ष्या, प्रसाद आदि सुन्दर विभ्रमोंसे युक्त स्त्रियोंको इच्छानुसार रमण कराया था ॥२९॥

अथानन्तर एक बार शरदृतुके मेघको विलीन होता देख वे प्रतिबोधको प्राप्त हो गये जिससे दीक्षा लेनेकी इच्छा उनके मनमें जाग उठी। उसी समय लौकान्तिक देवोंने आकर उनकी स्तुति की ॥३०॥ तदनन्तर जिसमें समस्त सामन्तोंके समूह नम्रीभूत थे तथा सुखसे जिसका पालन होता था ऐसा राज्य उन्होंने अपने सुव्रत नामक पुत्रके लिए देकर सब प्रकारकी इच्छा छोड़ दी ॥३१॥ तत्पश्चात् जिसने अपनी सुगन्धिसे दशों दिशाओंको व्याप्त कर रखा था, जिसमें शरीरपर लगा हुआ दिव्य विलेपन ही सुन्दर मकरन्द था, जिसने अपनी सुगन्धिसे आतुर भ्रमरियोंके भारी समूहको अपनी ओर खींच रखा था, जो हरे मणियोंकी कान्तिरूपी पत्तोंके समूहसे व्याप्त था, जो दाँतोंकी पंक्तिकी सफेद कान्तिरूपी मृणालके समूहसे युक्त था, जो नाना प्रकारके आभूषणोंकी ध्वनिरूपी पक्षियोंकी कलकूजनसे परिपूर्ण था, बलिरूपी तरंगोंसे युक्त था और जो स्तनरूपी चक्रवाक पक्षियोंसे सुशोभित था ऐसी उत्तम स्त्रियोंरूपी कमल-वनसे वे कीर्ति-धवल राजहंस (श्रेष्ठ राजा भगवान् मुनिसुव्रतनाथ) इस प्रकार बाहर निकले जिस प्रकार कि किसी कमल-वनसे राजहंस (हंस विशेष) निकलता है ॥३२-३५॥ तदनन्तर मनुष्योंके चूड़ा-मणि भगवान् मुनिसुव्रतनाथ, देवों तथा राजाओंके द्वारा उठायी हुई अपराजिता नामकी पालकीमें सवार होकर विपुल नामक उद्यानमें गये ॥३६॥ तदनन्तर पालकीसे उतरकर हरिवंशके आभूषण-स्वरूप भगवान् मुनिसुव्रतनाथने कई हजार राजाओंके साथ जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली ॥३७॥ भगवान्ने दीक्षा लेते समय दो दिनका उपवास किया था। उपवास समाप्त होनेपर राजगृह नगरमें

१. वादेन म., ज. । २. नर्तनम् ब, ज. । तर्जनम् ख., वर्तनः म. । ३. स्तन म. ।

शासनाचारवृत्त्यर्थं भुक्तिश्च विभुना कृता । प्रासो वृषभदत्तश्च पञ्चातिशयपूजनम् ॥३९॥
अधश्चम्पकवृक्षस्य शुक्लध्यानमुपेयुषः । जरपन्नं घातिकर्मान्ते केवलं परमेष्ठिनः ॥४०॥
ततो देवाः समागत्य सेन्द्राः स्तुत्वा प्रणम्य च । संजातगणिनस्तस्माच्छ्रुत्वा धर्मं सुखप्रदम् ॥४१॥
सागारं च निरागारं बहुभेदं यथाविधि । श्रुत्वा ते विमलं धर्मं नत्वा जग्मुर्यथायथम् ॥४२॥
मुनिसुव्रतनाथोऽपि धर्मतीर्थप्रवर्तनम् । कृत्वा सुरासुरैर्नम्रैः स्तूयमानः प्रमोदिभिः ॥४३॥
गणनाथैर्महासत्त्वैर्गणपालनकारिभिः । अन्यैश्च साधुभिर्युक्तो विहृत्य वसुधातलम् ॥४४॥
सम्मेदाद्रिमूर्धानं समारुह्य चतुर्विधम् । विधूय कर्म संप्राप लोकचूडामणिस्थितम् ॥४५॥
मुनिसुव्रतमाहात्म्यमिदं येऽधीयते जनाः । शृण्वन्ति वा सुभावेन तेषां नश्यति दुष्कृतिः ॥४६॥
भूयश्च बोधिमागत्य ततः कृत्वा सुनिर्मलम् । गच्छन्ति परमं स्थानं यतो नागमनं पुनः ॥४७॥
अथासौ सुव्रतः कृत्वा चिरं [2]राज्यं सुनिश्चलम् । [3]दक्षं तत्र विनिक्षिप्य [4]प्रव्रज्याधाप निर्वृतिम् ॥४८॥
दक्षात् समभवत् सूनुरिलावर्द्धनसंज्ञितः । ततः श्रीवर्द्धनो जज्ञे श्रीवृक्षाख्यस्ततोऽभवत् ॥४९॥
सञ्जयन्तो बभूवास्मादुदभूत्कुणिमस्ततः । महारथः पुलोमा चेत्येवमाद्या नरेश्वराः ॥५०॥
सदंशाः समुत्पन्ना हरीणामन्वये शुभे । संप्रापुर्निर्वृतिं केचित् केचिन्नाकनिवासिताम् ॥५१॥
एवं क्रमात् प्रयातेषु पार्थिवेषु च भूरिषु । नृपो वासवकेत्वाख्यः कुलेऽस्मिन्मैथिलो[5]ऽभवत् ॥५२॥

वृषभदत्तने उन्हें परमान्न अर्थात् खीरसे भक्तिपूर्वक पारणा करायी ॥३८॥ जिनशासनमें आचार-की वृत्ति किस तरह है यह बतलानेके लिए ही भगवान्‌ने आहार ग्रहण किया था। आहारदानके प्रभावसे वृषभदत्त पंचातिशयको प्राप्त हुआ ॥३९॥

तदनन्तर चम्पक वृक्षके नीचे शुक्ल-ध्यानसे विराजमान भगवान्‌को घातिया कर्मोंका क्षय होनेके उपरान्त केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ॥४०॥ तदनन्तर इन्द्रों सहित देवोंने आकर स्तुति की, प्रणाम किया तथा उत्तम गणधरोंसे युक्त उन मुनिसुव्रतनाथ भगवान्‌से उत्तम धर्मका उपदेश सुना ॥४१॥ भगवान्‌ने सागार और अनगारके भेदसे अनेक प्रकारके धर्मका निरूपण किया सो उस निर्मल धर्मको विधिपूर्वक सुनकर वे सब यथायोग्य अपने-अपने स्थानपर गये ॥४२॥ हर्षसे भरे नम्रीभूत सुरासुर जिनकी स्तुति करते थे ऐसे भगवान् मुनिसुव्रतनाथने भी धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति कर महाधैर्यके धारक तथा गणकी रक्षा करनेवाले गणधरों एवं अन्यान्य साधुओंके साथ पृथिवी-तलपर विहार किया ॥४३-४४॥ तदनन्तर सम्मेदाचलके शिखरपर आरूढ़ होकर तथा चार अघातिया कर्मोंका क्षय कर वे लोकके चूड़ामणि हो गये अर्थात् सिद्धालयमें जाकर विराजमान हो गये ॥४५॥ जो मनुष्य उत्तम भावसे मुनिसुव्रत भगवान्‌के इस माहात्म्यको पढ़ते अथवा सुनते हैं उनके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं ॥४६॥ वे पुनः आकर रत्नत्रयको निर्मल कर उस परम स्थानको प्राप्त होते हैं जहाँसे कि फिर आना नहीं होता ॥४७॥

तदनन्तर मुनिसुव्रतनाथके पुत्र सुव्रतने भी चिरकाल तक निश्चल राज्य कर अन्तमें अपने पुत्र दक्षके लिए राज्य सौंप दिया और स्वयं दीक्षा लेकर निर्वाण प्राप्त किया ॥४८॥ राजा दक्षके इलावर्धन, इलावर्धनके श्रीवर्धन, श्रीवर्धनके श्रीवृक्ष, श्रीवृक्षके संजयन्त, संजयन्तके कुणिम, कुणिमके महारथ और महारथके पुलोमा इत्यादि हजारों राजा हरिवंशमें उत्पन्न हुए। इनमेंसे कितने ही राजा निर्वाणको प्राप्त हुए और कितने ही स्वर्ग गये ॥४९-५१॥ इस प्रकार क्रमसे अनेक राजाओंके हो चुकनेपर इसी वंशमें मिथिलाका राजा वासवकेतु हुआ ॥५२॥

---

१. असभाचार- म., ब.। २. -राज्यं म.। ३. एतन्नामानं पुत्रम्। ४. प्रव्रज्य प्राप म.। ५. मिथिलाया अधिपो मैथिलः।

विपुलेति महादेवी तस्यासीत् विपुलेक्षणा । परमश्रीरपि प्राप्ता या मध्येन दरिद्रताम् ॥५३॥
तस्य जनकनामाभूत्तनयो नयकोविदः । हितं यः सततं चक्रे प्रजानां जनको यथा ॥५४॥
एवं जनकसंभूतिः कथिता ते नराधिप । शृणु संप्रति यद्वंशे नृपो दशरथोऽभवत् ॥५५॥
इक्ष्वाकूणां कुले रम्ये निर्वृते भामिजे जिने । भरते भास्करे सोमे व्यतीते वंशभूषणे ॥५६॥
संख्यातीतेन कालेन कुले तत्र नराधिपाः । अतिक्रामन्ति कुर्वन्तस्तपः परमदुश्चरम् ॥५७॥
क्रीडन्ति भोगनिर्मग्नाः शुष्यन्त्यकृतपुण्यकाः । लभन्ते कर्मणः स्वस्य विपाकमश्नुवारिणः ॥५८॥
चक्रवत्परिवर्तन्ते व्यसनानि महोत्सवैः । शनैर्मायादयो दोषाः प्रयान्ति परिवर्द्धनम् ॥५९॥
क्लिश्यन्ते द्रव्यनिर्मुक्ता म्रियन्ते बालतासु च । पूर्वोपात्तायुषि क्षीणे हेतुना चोपसंहृते ॥६०॥
नाना भवन्ति तिष्ठन्ति निघ्नते शोचयन्ति च । रुदन्त्यदन्ति बाधन्ते विवदन्ति पठन्ति च ॥६१॥
ध्यायन्ति यान्ति वहन्ति प्रभवन्ति वहन्ति च । गायन्त्युपासतेऽश्नन्ति दरिद्रति नदन्ति च ॥६२॥
जयन्ति रान्ति मुञ्चन्ति राजन्ते विलसन्ति च । तुष्यन्ति शासति क्षान्तिं स्पृहयन्ति हरन्ति च ॥६३॥
[1]व्रपन्ते क्रान्ति सज्जन्ति दूयन्ते क्रूटयन्ति च । मार्गयन्तेऽभिधावन्ते कुहयन्ते सृजन्ति च ॥६४॥

उसकी विपुला नामकी पट्टरानी थी। वह विपुला, विपुल अर्थात् दीर्घ नेत्रोंको धारण करनेवाली थी और उत्कृष्ट लक्ष्मीकी धारक होकर भी मध्यभागसे दरिद्रताको प्राप्त थी अर्थात् उसकी कमर अत्यन्त कृश थी ॥५३॥ उन दोनोंके नीतिनिपुण जनक नामका पुत्र हुआ। वह जनक, जनक अर्थात् पिताके समान ही निरन्तर प्रजाका हित करता था ॥५४॥ गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन्! इस तरह मैंने तेरे लिए राजा जनककी उत्पत्ति कही। अब जिस वंशमें राजा दशरथ हुए उसका कथन करता हूँ सो सुन ॥५५॥

अथानन्तर इक्ष्वाकुओंके रमणीय कुलमें जब भगवान् ऋषभदेव निर्वाणको प्राप्त हो गये और उनके बाद चक्रवर्ती भरत, अर्ककीर्ति तथा वंशके अलंकारभूत सोम आदि राजा व्यतीत हो चुके तब असंख्यात कालके भीतर उस वंशमें अनेक राजा हुए। उनमें कितने ही राजा अत्यन्त कठिन तपश्चरण कर निर्वाणको प्राप्त हुए, कितने ही स्वर्गमें जाकर भोगोंमें निमग्न हो क्रीड़ा करने लगे, और कितने ही पुण्यका संचय नहीं करनेसे शुष्क हो गये अर्थात् नरकादि गतियोंमें जाकर रोते हुए अपने कर्मोंका फल भोगने लगे ॥५६–५८॥ हे श्रेणिक! इस संसारमें जो व्यसन-कष्ट हैं वे चक्रकी नाईं बदलते रहते हैं अर्थात् कभी व्यसन महोत्सवरूप हो जाते हैं और कभी महोत्सव व्यसनरूप हो जाते हैं, कभी इस जीवमें धीरे-धीरे माया आदि दोष वृद्धिको प्राप्त हो जाते हैं ॥५९॥ कभी ये जीव निर्धन होकर क्लेश उठाते हैं और कभी पूर्वबद्ध आयुके क्षीण हो जाने अथवा किसी कारणवश कम हो जानेसे बाल्य अवस्थामें ही मर जाते हैं ॥६०॥ कभी ये जीव नाना रूपताको धारण करते हैं, कभी ज्यों-के-त्यों स्थिर रह जाते हैं, कभी एक दूसरेको मारते हैं, कभी शोक करते हैं, कभी रोते हैं, कभी खाते हैं, कभी बाधा पहुँचाते हैं, कभी विवाद करते हैं, कभी गमन करते हैं, कभी चलते हैं, कभी प्रभावशील होते हैं, अर्थात् स्वामी बनते हैं, कभी भार ढोते हैं, कभी गाते हैं, कभी उपासना करते हैं, कभी भोजन करते हैं, कभी दरिद्रताको प्राप्त करते हैं, कभी शब्द करते हैं ॥६१–६२॥ कभी जीतते हैं, कभी देते हैं, कभी कुछ छोड़ते हैं, कभी विराजमान होते हैं, कभी अनेक विलास धारण करते हैं, कभी सन्तोष धारण करते हैं, कभी शासन करते हैं, कभी क्षान्ति अर्थात् क्षमाकी अभिलाषा करते हैं, कभी शान्तिका हरण करते हैं ॥६३॥ कभी लज्जित होते हैं, कभी कुत्सित चाल चलते हैं, कभी किसीको सताते हैं, कभी सन्तप्त होते हैं, कभी कपट धारण करते हैं, कभी याचना करते हैं, कभी सम्मुख दौड़ते हैं, कभी

---

१. व्रपन्ति ख. ।

क्रीडन्ति स्यन्ति यच्छन्ति शीलयन्ति वसन्ति च । लुप्यन्ति[2] मान्ति सीदन्ति कुप्यन्ति विचलन्ति च ॥
[3]तुष्यन्त्यर्चन्ति वञ्चन्ति सान्त्वयन्ति विदन्ति च । मुह्यन्त्यवन्ति नृत्यन्ति स्निह्यन्ति विनयन्ति च ॥६६॥
नुदन्त्युच्छन्ति कर्षन्ति भृजन्ति विनमन्ति च । दीव्यन्ति दान्ति शृण्वन्ति जुह्वत्यक्रन्ति जाग्रति ॥६७॥
स्वपन्ति विभ्यतीक्षन्ति हयन्ति धन्ति तुदन्ति[4] च । प्रान्ति सुग्वन्ति सिन्वन्ति रुन्धन्ति विरुवन्ति च ॥६८॥
सीव्यन्त्यटन्ति[5] जीर्यन्ति पिबन्ति रचयन्ति च । वृणते परिमृद्नन्ति विस्तृणन्ति गृणन्ति च ॥६९॥
मीमांसन्ते जुगुप्सन्ते कामयन्ते तरन्ति च । चिकित्स्यन्त्यनुमन्यन्ते वारयन्ति गृणन्ति च ॥७०॥
एवमादिक्रियाजालसंततव्याप्तमानसाः । शुभाशुभसमासक्ता व्यतिक्रामन्ति मानवाः ॥७१॥
इति चित्रपटाकारचेष्टिताखिलमानवे । कालेऽवसर्पिणीनाम्नि प्रथाति विलयं शनैः[6] ॥७२॥
जाते विंशतिसंख्याने वर्तमानजिनान्तरे । देवागमनसंयुक्ते विनीतायामुरौ पुरि ॥७३॥
विजयो नाम राजेन्द्रो विजिताखिलशात्रवः । [7]सौर्यप्रतापसंयुक्तः प्रजापालनपण्डितः ॥७४॥
संभूतो हेमचूलिन्यां महादेव्यां सुतेजसि । सुरेन्द्रमन्युनामाभूत्सूनुस्तस्य महागुणः ॥७५॥
तस्य कीर्तिसमाख्यायां जायायां तनयद्वयम् । चन्द्रसूर्यसमच्छायं जातं गुणसमर्चितम् ॥७६॥

मायाचार दिखाते हैं, कभी किसीके द्रव्यादिका हरण करते हैं ॥६४॥ कभी क्रीड़ा करते हैं, कभी किसी वस्तुको नष्ट करते हैं, कभी किसीको कुछ देते हैं, कभी कहीं वास करते हैं, कभी किसीको लोंचते हैं, कभी किसीको नापते हैं, कभी दुःखी होते हैं, कभी क्रोध करते हैं, कभी विचलित होते हैं, ॥६५॥ कभी सन्तुष्ट होते हैं, कभी किसीकी पूजा करते हैं, कभी किसीको छलते हैं, कभी किसीको सान्त्वना देते हैं, कभी कुछ समझाते हैं, कभी मोहित होते हैं, कभी रक्षा करते हैं, कभी नृत्य करते हैं, कभी स्नेह करते हैं, कभी विनय करते हैं, ॥६६॥ कभी किसीको प्रेरणा देते हैं, कभी दाने-दाने बीनकर पेट भरते हैं, कभी खेत जोतते हैं, कभी भाड़ भूँजते हैं, कभी नमस्कार करते हैं, कभी क्रीड़ा करते हैं, कभी लुनते हैं, कभी सुनते हैं, कभी होम करते हैं, कभी चलते हैं, कभी जागते हैं ॥६७॥ कभी सोते हैं, कभी डरते हैं, कभी नाना चेष्टा करते हैं, कभी नष्ट करते हैं, कभी किसीको खण्डित करते हैं, कभी किसीको पीड़ा पहुँचाते हैं, कभी पूर्ण करते हैं, कभी स्नान करते हैं, कभी बाँधते हैं, कभी रोकते हैं, कभी चिल्लाते हैं, ॥६८॥ कभी सोते हैं, कभी घूमते हैं, कभी जीर्ण होते हैं, कभी पीते हैं, कभी रचते हैं, कभी वरण करते हैं, कभी मसलते हैं, कभी फैलाते हैं, कभी तर्पण करते हैं ॥६९॥ कभी मीमांसा करते हैं, कभी घृणा करते हैं, कभी इच्छा करते हैं, कभी तरते हैं, कभी चिकित्सा करते हैं, कभी अनुमोदना करते हैं, कभी रोकते हैं और कभी निगलते हैं ॥७०॥ हे राजन् ! इत्यादि क्रियाओंके जालसे जिनके मन व्याप्त हो रहे थे तथा शुभ-अशुभ कार्योंमें लीन थे ऐसे अनेक मानव उस इक्ष्वाकुवंशमें क्रमसे हुए थे ॥७१॥ इस प्रकार जिसमें समस्त मानवोंकी चेष्टाएँ चित्रपटके समान नाना प्रकारकी हैं ऐसा यह अवसर्पिणी नामका काल धीरे-धीरे समाप्त होता गया ॥७२॥

अथानन्तर जिसमें देवोंका आगमन जारी रहता था ऐसे बीसवें वर्तमान तीर्थंकरका अन्तराल शुरू होनेपर अयोध्यानामक विशाल नगरीमें विजय नामका बड़ा राजा हुआ। उसने समस्त शत्रुओंको जीत लिया था। वह सूर्यके समान प्रतापसे संयुक्त था तथा प्रजाका पालन करनेमें निपुण था ॥७३-७४॥ उसकी हेमचूला नामकी महातेजस्विनी पट्टरानी थी सो उसके सुरेन्द्रमन्यु नामका महागुणवान् पुत्र उत्पन्न हुआ ॥७५॥ सुरेन्द्रमन्युकी कीर्तिसमा स्त्री हुई सो उसके चन्द्रमा और सूर्यके समान कान्तिको धारण करनेवाले दो पुत्र हुए। ये दोनों ही पुत्र गुणोंसे सुशोभित

---

१. शीडन्ति म. । २. भान्ति म. । ३. स्तुत्यस्यर्चन्ति म. । ४. रुदन्ति च म. । ५. सीव्यन्त्यवन्ति म । ६. शतैः म. । ७. शौर्य -ख. ।

वज्रबाहुस्तयोराद्यो द्वितीयश्च पुरंदरः । अन्वर्थनामयुक्तौ तौ रेमाते भुवने सुखम् ॥७७॥
इभवाहननामासीत्तस्मिन् काले नराधिपः । रम्ये नागपुरे तस्य नाम्ना चूडामणिः प्रिया ॥७८॥
तयोर्दुहितरं चार्वीं ख्यातां नाम्ना मनोदयाम् । वज्रबाहुकुमारोऽसौ लेभे श्लाघ्यतमो नृणाम् ॥७९॥
[1]तां कन्यां सोदरो नेतुमागाद्युदयसुन्दरः । सार्धं तेनोच्छ्रितः श्रीमॅंस्सितातपनिवारणः ॥८०॥
कन्यां तां रूपतः ख्यातां सकले वसुधातले । मानसेन वहन् भूत्या प्रतस्थे श्वाशुरं पुरम् ॥८१॥
अथास्य व्रजतो दृष्टिर्वसन्तकुसुमाकुले । गिरौ वसन्तसंज्ञाके[2] निपपात मनोहरे ॥८२॥
यथा यथा समीपत्वं तस्य याति गिरेरसौ । तथा तथा परां लक्ष्मीं पश्यन् हर्षमुपागमत् ॥८३॥
पुष्पधूलीविमिश्रेण वायुना स सुगन्धिना । समालिङ्ग्यन्त मित्रेण संप्राप्तेन चिरादिव ॥८४॥
पुंस्कोकिलकलालापैर्जयशब्दमिवाकरोत् । वातकम्पितवृक्षाग्रो वज्रबाहोर्धराधरः[3] ॥८५॥
वीणाझङ्काररम्याणां भृङ्गाणां[4] मदशालिनाम् । नादेन श्रवणौ तस्य मानसेन समं हृतौ ॥८६॥
चूतोऽयं कर्णिकारोऽयं लोध्रोऽयं कुसुमान्वितः । प्रियालोऽयं पलाशोऽयं ज्वलत्पावकभासुरः ॥८७॥
व्रजन्नीति क्रमेणास्य वृष्टिर्निश्चलपक्ष्मिका । संदिग्धमानुषाकारे पपात मुनिपुङ्गवे ॥८८॥
स्थाणुः स्याच्छ्रमणोऽयं नु शैलकूटमिदं भवेत् । इति राज्ञो वितर्कोऽभूत् कायोत्सर्गस्थिते मुनौ ॥८९॥
[5]नेदीयांस्तं ततो मार्गं प्रयातस्यास्य निश्चयः । उदपादि महायोगिवेदविन्दनतत्परः ॥९०॥
उच्चावचशिलाजालविषमेऽवस्थितं स्थिरम् । दिवाकरकराश्लिष्टम्लानवक्त्रसरोरुहम् ॥९१॥

थे। उनमेंसे बड़े पुत्रका नाम वज्रबाहु और छोटे पुत्रका नाम पुरन्दर था। दोनों ही सार्थक नामको धारण करनेवाले थे और संसारमें सुखसे क्रीड़ा करते थे ॥७६-७७॥ उसी समय अत्यन्त मनोहर हस्तिनापुर नगरमें इभवाहन नामका राजा रहता था। उसकी स्त्रीका नाम चूड़ामणि था। उन दोनोंके मनोदया नामकी अत्यन्त सुन्दरी पुत्री थी सो उसे मनुष्योंमें अत्यन्त प्रशंसनीय वज्रबाहु कुमारने प्राप्त किया ॥७८-७९॥ कदाचित् कन्याका भाई उदयसुन्दर उस कन्याको लेनेके लिए वज्रबाहुके घर गया सो जिसपर अत्यन्त सुशोभित सफेद छत्र लग रहा था ऐसा वज्रबाहु स्वयं भी उसके साथ चलनेके लिए उद्यत हुआ ॥८०॥ वह कन्या अपने सौन्दर्यसे समस्त पृथ्वीमें प्रसिद्ध थी, उसे मनमें धारण करता हुआ वज्रबाहु बड़े वैभवके साथ श्वसुरके नगरकी ओर चला ॥८१॥

अथानन्तर चलते-चलते उसकी दृष्टि वसन्त ऋतुके फूलोंसे व्याप्त वसन्त नामक मनोहर पर्वतपर पड़ी ॥८२॥ वह जैसे-जैसे उस पर्वतके समीप आता जाता वैसे-वैसे ही उसकी परम शोभाको देखता हुआ हर्षको प्राप्त हो रहा था ॥८३॥ फूलोंकी धूलिसे मिली सुगन्धित वायु उसका आलिंगन कर रही थी सो ऐसा जान पड़ता था मानो चिरकालके बाद प्राप्त हुआ मित्र ही आलिंगन कर रहा हो ॥८४॥ जहाँ वृक्षोंके अग्रभाग वायुसे कम्पित हो रहे थे ऐसा वह पर्वत पुंस्कोकिलाओंके शब्दोंके बहाने मानो वज्रबाहुका जय-जयकार ही कर रहा था ॥८५॥ वीणाकी झंकारके समान मनोहर मदशाली भ्रमरोंके शब्दसे उसके श्रवण तथा मन साथ-ही-साथ हरे गये ॥८६॥ 'यह आम है, यह कनेर है, यह फूलोंसे सहित लोध्र है, यह प्रियाल है और यह जलती हुई अग्निके समान सुशोभित पलाश है' इस प्रकार क्रमसे चलती हुई उसकी निश्चल दृष्टि दूरीके कारण जिसमें मनुष्यके आकारका संशय हो रहा था ऐसे मुनिराजपर पड़ी ॥८७-८८॥ कायोत्सर्गसे स्थित मुनिराजके विषयमें वज्रबाहुको वितर्क उत्पन्न हुआ कि क्या यह ठूंठ है ? या साधु हैं, अथवा पर्वतका शिखर है ? ॥८९॥ तदनन्तर जब अत्यन्त समीपवर्ती मार्गमें पहुँचा तब उसे निश्चय हुआ कि ये महायोगी-मुनिराज हैं ॥९०॥ वे मुनिराज ऊँची-नीची

१. तं कन्या ख., ब. । तत्कन्या- म. । २. श्रीमान् सितातपनिवारणः म. । ३. संज्ञाके म. । ४. पर्वतः । ५. मन्दशालिनाम् म. । ६. ततो नेदीयसं मार्गं ग., ब., क., ख., ज. ।

प्रलम्बितमहाभोगिभोगभासुरसद्भुजम् । शैलेन्द्रतटसंकाशपीवरोदारवक्षसम् ॥९२॥
दिग्नागबन्धनस्तम्भस्थिरभास्वद्वरोरुकम् । तपसापि कृशं कान्त्या दृश्यमानं सुपीवरम् ॥९३॥
नासिकाग्रनिविष्टातिसौम्यनिश्चलचक्षुषम् । मुनिं ध्यायन्तमैकाग्र्यं दृष्ट्वा राजेत्यचिन्तयत् ॥९४॥
अहो धन्योऽयमत्यन्तं प्रशान्तो मानवोत्तमः । बहिर्हायाखिलं संगं तपस्यति मुमुक्षया ॥९५॥
विमुक्त्यानुगृहीतोऽयं कल्याणाभिनिविष्टधीः । परपीडानिवृत्तात्मा मुनिर्लक्ष्मीपरिष्कृतः ॥९६॥
समः सुहृदि शत्रौ च रत्नराशौ तृणे तथा । मानमत्सरनिर्मुक्तः सिद्ध्यालिङ्गनलालसः ॥९७॥
वशीकृतहृषीकात्मा निष्प्रकम्पो गिरीन्द्रवत् । श्रेयो ध्यायति नीरागः कुशलस्थितमानसः ॥९८॥
फलं पुष्कलमेतेन लब्धं मानुषजन्मनः । अयं न वञ्चितः क्रूरैः कषायाख्यैर्मलिम्लुचैः ॥९९॥
अहं तु वेष्टितः पापः कर्मपाशैरनन्तरम् । आशीविषैर्महानागैर्यथा चन्दनपादपः ॥१००॥
प्रमत्तचेतसं पापं धिग्मां निश्चेतनोपमम् । शोऽहं निद्रामिमोगाद्रिमहाभूगुशिरस्थितः ॥१०१॥
यदि नाम भजेयेमामवस्थामस्य योगिनः । भवेयं लब्धलब्धव्यस्ततो मानुषजन्मनि ॥१०२॥
इति चिन्तयतस्तस्य राज्ञो निर्ग्रन्थपुङ्गवे । दृष्टिः स्तम्भनिबद्धेव बभूवास्यन्तनिश्चला ॥१०३॥
एवं निश्चलपक्ष्माणं निरीक्ष्योदयसुन्दरः । कुर्वन्मर्म जगादैवं वज्रबाहुं कृतस्मितः ॥१०४॥
चिरं निरीक्षितो देवस्त्वयैष मुनिपुङ्गवः । वृणीषे किमिमां दीक्षां रागवानत्र दृश्यसे ॥१०५॥
वज्रबाहुरथोवोचत् कृतभावनिगूहनः । वर्तते कः पुनर्भावस्तवोदय निवेदय ॥१०६॥

शिलाओंसे विषम धरातलमें स्थिर विराजमान थे, सूर्यकी किरणोंसे आलिंगित होनेके कारण उनका मुखकमल म्लान हो रहा था, किसी बड़े सर्पके समान सुशोभित उनकी दोनों उत्तम भुजाएँ नीचेकी ओर लटक रही थीं, उनका वक्षःस्थल सुमेरुके तटके समान स्थूल तथा चौड़ा था, उनकी देदीप्यमान दोनों उत्कृष्ट जाँघें दिग्गजोंके बाँधनेके खम्भोंके समान स्थिर थीं, यद्यपि वे तपके कारण कृश थे तथापि कान्तिसे अत्यन्त स्थूल जान पड़ते थे, उन्होंने अपने अत्यन्त सौम्य निश्चल नेत्र नासिकाके अग्रभाग पर स्थापित कर रखे थे, इस प्रकार एकाग्र रूपसे ध्यान करते हुए मुनिराजको देखकर राजा वज्रबाहु इस प्रकार विचार करने लगा कि ॥९१-९४॥ अहो! इन अत्यन्त प्रशान्त उत्तम मानवको धन्य है जो समस्त परिग्रहका त्याग कर मोक्षकी इच्छासे तपस्या कर रहे हैं ॥९५॥ इन मुनिराजपर मुक्ति-लक्ष्मीने अनुग्रह किया है, इनकी बुद्धि आत्मकल्याणमें लीन है, इनकी आत्मा परपीड़ासे निवृत्त हो चुकी है, ये अलौकिक लक्ष्मीसे अलंकृत हैं, शत्रु और मित्र, तथा रत्नोंकी राशि और तृणमें समान बुद्धि रखते हैं, मान एवं मत्सरसे रहित हैं, सिद्धिरूपी वधूका आलिंगन करनेमें इनकी लालसा बढ़ रही है, इन्होंने इन्द्रियों और मनको वशमें कर लिया है, ये सुमेरुके समान स्थिर हैं, वीतराग हैं तथा कुशल कार्यमें मन स्थिर कर ध्यान कर रहे हैं ॥९६-९८॥ मनुष्यमें जन्मका पूर्ण-फल इन्होंने प्राप्त किया है, इन्द्रियरूपी दुष्ट चोर इन्हें नहीं ठग सके हैं ॥९९॥ और मैं? मैं तो कर्मरूपी पाशोंसे उस तरह निरन्तर वेष्टित हूँ जिस तरह कि आशीविष जातिके बड़े-बड़े सर्पोंसे चन्दनका वृक्ष वेष्टित होता है ॥१००॥ जिसका चित्त प्रमादसे भरा हुआ है ऐसे जड़तुल्य मुझ पापीके लिए धिक्कार है। मैं भोगरूपी पर्वतकी बड़ी गोल चट्टानके अग्रभाग पर बैठकर सो रहा हूँ ॥१०१॥ यदि मैं इन मुनिराजकी इस अवस्थाको धारण कर सकूँ तो मनुष्य-जन्मका फल मुझे प्राप्त हो जावे ॥१०२॥ इस प्रकार विचार करते हुए राजा वज्रबाहुकी दृष्टि उन निर्ग्रन्थ मुनिराजपर खम्भेमें बँधी हुईके समान अत्यन्त निश्चल हो गयी ॥१०३॥ इस तरह वज्रबाहुको निश्चल दृष्टि देख उदयसुन्दरने मुसकराकर हँसी करते हुए कहा कि आप इन मुनिराजको बड़ी देरसे देख रहे हैं सो क्या इस दीक्षाको ग्रहण कर रहे हो? इसमें आप अनुरक्त दिखाई पड़ते हैं ॥१०४-१०५॥ तदनन्तर अपने भावको छिपाकर वज्रबाहुने कहा कि हे उदय! तुम्हारा क्या

अन्तर्विरक्तमज्ञात्वा[1] तमाहोदयसुन्दरः । परिहासानुरागेण दन्तांशुच्छुरिताधरः ॥१०७॥
दीक्षामिमां वृणीषे चेत्ततोऽहमपि ते सखा । अहो विराजसेऽत्यर्थं कुमार श्रमणश्रिया ॥१०८॥
अस्त्वेवमिति भाषित्वा युक्तो वीवाह[3]भूषणैः । अवारोहदसौ नागादारोहद्धरणीधरम् ॥१०९॥
ततो वराङ्गनास्तारं रुरुदुरुरुलोचनाः । छिन्नमुक्तकलापाभस्थूलनेत्राम्बुबिन्दवः ॥११०॥
व्यजिज्ञपत्स सबाष्पाक्षस्तमथोदयसुन्दरः । प्रसीद देव नर्मेदं कृतं किमनुतिष्ठसि ॥१११॥
उवाच वज्रबाहुस्तं मधुरं परिसान्त्वयन् । कल्याणाशयकूपेऽहं पतन्मुत्तारितस्त्वया ॥११२॥
भवता सदृशं मित्रं नास्ति मे भुवनत्रये । जातस्य सुन्दरावश्यं मृत्युः प्रेतस्य संभवः ॥११३॥
मृत्युजन्मघटीयन्त्रमेतद्भाम्यत्यनारतम् । विद्युत्तरङ्गदुष्टाहिरसनेभ्योऽपि चञ्चलम् ॥११४॥
जगतो दुःखमग्नस्य किं न पश्यसि जीवितम् । स्वप्नभोगोपमा भोगा जीवितं बुद्बुदोपमम् ॥११५॥
सन्ध्यारागोपमः स्नेहस्तारुण्यं कुसुमोपमम् । परिहासोऽपि ते भद्र मम जातोऽमृतोपमः ॥११६॥
परिहासेन किं पीतं[4] नौषधं हरते रुजम्[5] । [6]स त्वमेकोऽद्य मे बन्धुर्यः सुश्रेयःप्रवृत्तये ॥११७॥
संसाराचारसक्तस्य प्रतिपक्षोऽसि हेतुताम् । एकोऽहं प्रव्रजाम्यद्य कुरु स्वं स्वमनीप्सितम् ॥११८॥
गुणसागरनामानं तमुपेत्य तपोधनम् । प्रणम्य [7]चरणावूचे विनीतो रचिताञ्जलिः ॥११९॥
स्वामिन् भवत्प्रसादेन पवित्रीकृतमानसः । अद्य निष्क्रमितुं भीमादिच्छामि [8]भवचारकात् ॥१२०॥

भाव है सो तो कहो ॥१०६॥ उसे अन्तरसे विरक्त न जानकर उदयसुन्दरने परिहासके अनुरागवश दाँतोंकी किरणोंसे ओठोंको व्याप्त करते हुए कहा कि ॥१०७॥ यदि आप इस दीक्षाको स्वीकृत करते हैं तो मैं भी आपका सखा अर्थात् साथी होऊँगा। अहो कुमार! आप इस मुनि दीक्षासे अत्यधिक सुशोभित होओगे ॥१०८॥ 'ऐसा हो' इस प्रकार कहकर विवाहके आभूषणोंसे युक्त वज्रबाहु हाथीसे उतरा और पर्वतपर चढ़ गया ॥१०९॥ तब विशाल नेत्रोंको धारण करनेवाली स्त्रियाँ जोर-जोरसे रोने लगीं। उनके नेत्रोंसे टूटे हुए मोतियोंके हारके समान आँसुओंकी बड़ी-बड़ी बूँदें गिरने लगीं ॥११०॥ उदयसुन्दरने भी आँखोंमें आँसू भरकर कहा कि हे देव! प्रसन्न होओ, यह क्या कर रहे हो? मैंने तो हँसी की थी ॥१११॥ तदनन्तर मधुर शब्दोंमें सान्त्वना देते हुए वज्रबाहुने उदयसुन्दरसे कहा कि हे उत्तम अभिप्रायके धारक! मैं कुएँमें गिर रहा था सो तुमने निकाला है ॥११२॥ तीनों लोकोंमें तुम्हारे समान मेरा दूसरा मित्र नहीं है। हे सुन्दर! संसारमें जो उत्पन्न होता है उसका मरण अवश्य होता है और जो मरता है उसका जन्म अवश्यंभावी है ॥११३॥ यह जन्म-मरणरूपी घटीयन्त्र बिजली, लहर तथा दुष्ट सर्पकी जिह्वासे भी अधिक चंचल है तथा निरन्तर घूमता रहता है ॥११४॥ दुःखमें फँसे हुए संसारके जीवनकी ओर तुम क्यों नहीं देख रहे हो? ये भोग स्वप्नोंके भोगोंके समान हैं, जीवन बुद्बुदके तुल्य है, स्नेह सन्ध्याकी लालिमाके समान है और यौवन फूलके समान है। हे भद्र! तेरी हँसी भी मेरे लिए अमृतके समान हो गयी ॥११५-११६॥ क्या हँसीमें पी गयी औषधि रोगको नहीं हरती? चूँकि तुमने मेरी कल्याणकी ओर प्रवृत्ति करायी है इसलिए आज तुम्हीं एक मेरे बन्धु हो ॥११७॥ मैं संसारके आचारमें लीन था सो आज तुम उससे विरक्तिके कारण हो गये। लो, अब मैं दीक्षा लेता हूँ। तुम अपने अभिप्रायके अनुसार कार्य करो ॥११८॥ इतना कहकर वह गुणसागर नामक मुनिराजके पास गया और उनके चरणोंमें प्रणाम कर बड़ी विनयसे हाथ जोड़ता हुआ बोला कि हे स्वामिन्! आपके प्रसादसे मेरा मन पवित्र हो गया है सो आज मैं इस भयंकर संसाररूपी कारागृहसे निकलना चाहता हूँ ॥११९-१२०॥

---

१. यज्ञत्वात्तमाहो-म., ज.। -मन्यत्वात्त-ब.। २. कुमारः म.। ३. वैवाह-म.। ४. पीतमौषधं म.। ५. विषम् म.। ६. स त्वमेषोऽद्यमे बन्धु -म.। ७. चरणानूचे म.। ८. संसारकारागृहात्। भवतारकात् म.।

ततः समाप्तयोगेन गुरुणेत्यनुमोदितः । महासंवेगसंपन्नस्त्यक्तवस्त्रविभूषणः ॥१२१॥
पर्यङ्कासनमास्थाय रभसान्वितमानसः । केशापचयनं कृत्वा पल्लवारुणपाणिना[1] ॥१२२॥
जातामः प्रलघुं देहमुल्लाघमिव तत्क्षणम् । दीक्षां संचक्ष्य[2] वैवाहीं मोक्षदीक्षामशिक्षियत् ॥१२३॥
त्यक्तरागमदद्वेषा जातसंवेगरंहसः । सुन्दरप्रमुखा वीराः कुमारा मारविभ्रमाः ॥१२४॥
परमोत्साहसंपन्नाः प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् । षड्विंशतिरमा तेन राजपुत्रा प्रवव्रजुः ॥१२५॥
तमुदन्तं परिज्ञाय सोदरस्नेहकातरा । वहन्ती पुरुसंवेगमदीक्षिष्ट मनोदया ॥१२६॥
सितांशुकपरिच्छन्नविशालस्तनमण्डला । अत्यौदरी मलच्छन्ना जाता सातितपस्विनी ॥१२७॥
[3]विजयस्यन्दनो वार्तां विदित्वा वज्रबाहवीम् । शोकार्दितो जगादैवं समामध्यव्यवस्थितः ॥१२८॥
चित्रं पश्यत मे नप्ता वयसि प्रथमे स्थितः । विषयेभ्यो विरक्तात्मा दीक्षां दैगम्बरीमितः ॥१२९॥
मादृशोऽपि सुदुर्मोचैर्वर्षीयान् प्रवणीकृतः । भोगैर्यैस्ते कथं तेन कुमारेण विवर्जिताः ॥१३०॥
अथवानुगृहीतोऽसौ भाग्यवान्मुक्ति[4]लक्ष्म्या । भोगान् तृणमिवोत्सृज्य [5]निराकुलतया स्थितः ॥१३१॥
मन्दभाग्योऽधुना चेष्टां कां व्रजामि जरार्दितः । सुचिरं वञ्चितः पापैर्विषयैर्मुखसुन्दरैः ॥१३२॥
इन्द्रनीलांशुसंघातसंकाशो योऽभवत् कथम् । केशभारः स मे जातः काशराशिसमद्युतिः ॥१३३॥
सितासितारुणच्छाये नेत्रे ये जनहारिणी । जाते संप्रति ते शुभ्रश्मश्रूच्छन्नस्ववर्त्मनी[6] ॥१३४॥

तदनन्तर ध्यान समाप्त होनेपर मुनिराजने उसके इस कार्यकी अनुमोदना की। सो महा-संवेगसे भरा वज्रबाहु वस्त्राभूषण त्याग कर उनके समक्ष शीघ्र ही पद्मासनसे बैठ गया। उसने पल्लवके समान लाल-लाल हाथोंसे केश उखाड़कर फेंक दिये। उसे उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो उसका शरीर रोगरहित होनेसे हलका हो गया हो। इस तरह उसने विवाह-सम्बन्धी दीक्षाका परित्याग कर मोक्ष प्राप्त करानेवाली दीक्षा धारण कर ली ॥१२१–१२३॥ तदनन्तर जिन्होंने राग, द्वेष और मदका परित्याग कर दिया था, संवेगकी ओर जिनका वेग बढ़ रहा था, तथा जो कामके समान सुन्दर विभ्रमको धारण करनेवाले थे, ऐसे उदयसुन्दर आदि छब्बीस राजकुमारोंने भी परमोत्साहसे सम्पन्न हो मुनिराजको प्रणाम कर दीक्षा धारण कर ली ॥१२४–१२५॥ यह समाचार जानकर भाईके स्नेहसे भीरु मनोदयाने भी बहुत भारी संवेगसे युक्त हो दीक्षा ले ली ॥१२६॥ सफेद वस्त्रसे जिसका विशाल स्तनमण्डल आच्छादित था, जिसका उदर अत्यन्त कृश था और जिसके शरीरपर मैल लग रहा था ऐसी मनोदया बड़ी तपस्विनी हो गयी ॥१२७॥ वज्रबाहुके बाबा विजयस्यन्दनको जब उसके इस समाचारका पता चला तब शोकसे पीड़ित होता हुआ वह सभाके बीचमें इस प्रकार बोला कि अहो! आश्चर्यकी बात देखो, प्रथम अवस्थामें स्थित मेरा नाती विषयोंसे विरक्त हो दैगम्बरी दीक्षाको प्राप्त हुआ है ॥१२८–१२९॥ मेरे समान वृद्ध पुरुष भी दुःखसे छोड़ने योग्य जिन विषयोंके अधीन हो रहा है वे विषय उस कुमारने कैसे छोड़ दिये ॥१३०॥ अथवा उस भाग्यशालीपर मुक्तिरूपी लक्ष्मीने बड़ा अनुग्रह किया है जिससे वह भोगोंको तृणके समान छोड़कर निराकुल भावको प्राप्त हुआ है ॥१३१॥ प्रारम्भमें सुन्दर दिखनेवाले पापी विषयोंने जिसे चिरकालसे ठगा है तथा जो वृद्धावस्थासे पीड़ित है ऐसा मैं अभागा इस समय कौन-सी चेष्टाको धारण करूँ ? ॥१३२॥ मेरे जो केश इन्द्रनील मणि-की किरणोंके समान श्याम वर्ण थे वे ही आज कासके फूलोंकी राशिके समान सफ़ेद हो गये हैं ॥१३३॥ सफ़ेद काली और लाल कान्तिको धारण करनेवाले मेरे जो नेत्र मनुष्योंके मनको हरण

---

१. पाणिना म. । २. संवीक्ष्य क. । ३. वज्रबाहुपितामहः । विजयस्यन्दिनो म., ज. । ४. मुक्तसम्पदा म. । ५. शान्तीभावे ब. । ६. श्मश्रूच्छन्नसुवर्त्मनी म., क. ।

प्रभासमुज्ज्वलः कायो योऽयमासीन्महाबलः । जातः संप्रत्यसौ वर्षाहतचित्रसमच्छविः ॥१३५॥
अर्थो धर्मश्च कामश्च त्रयस्ते तरुणोचिताः । जरापरीतकायस्य दुष्कराः प्राणधारिणः ॥१३६॥
धिङ्मामचेतनं पापं दुराचारं प्रमादिनम् । अलीकबान्धवस्नेहसागरावर्तवर्तिनम् ॥१३७॥
इत्युक्त्वा बान्धवान् सर्वानापृच्छ्य विगतस्पृहः । दत्त्वा पुरंदरे राज्यं राजा जर्जरविग्रहः ॥१३८॥
[1]पार्श्वे निर्वाणघोषस्य निर्ग्रन्थस्य महात्मनः । सुरेन्द्रमन्युना सार्धं प्रवव्राज महामनाः ॥१३९॥
पुरंदरस्य तनयमसूत पृथिवीमती । भार्या कीर्तिधरामिख्यं विख्यातगुणसागरम् ॥१४०॥
क्रमेण स परिप्राप्तो यौवनं विनयाधिकः । एधयन् सर्वबन्धूनां प्रसादं चारुचेष्टया ॥१४१॥
कौसलस्थनरेन्द्रस्य वृता तस्मै शरीरजा । सुतमुद्वाह्य तां स्नेहान्निश्चक्राम पुरंदरः ॥१४२॥
क्षेमंकरमुनेः पार्श्वे प्रव्रज्य गुणभूषणः । तपः कर्तुं समारेभे कर्मनिर्जरकारणम् ॥१४३॥
कुलक्रमागतं राज्यं पालयन् जितशात्रवः । रेमे देवोत्तमैर्भोगैः सुखं कीर्तिधरो नृपः ॥१४४॥

वंशस्थवृत्तम्

अथान्यदा कीर्तिधरः क्षितीश्वरः प्रजासुबन्धुः कृतभीररातिषु ।
सुखासनस्थो भवने मनोरमे विराजमानो नलकूबरो यथा ॥१४५॥
निरीक्ष्य राहुक्षयनीलतेजसा तिरोहितं भास्करभासमण्डलम् ।
अचिन्तयत् कष्टमहो न शक्यते विधिर्विनेतुं सकृदीहितोदयः ॥१४६॥

करनेवाले थे, अब उनका मार्ग भृकुटी रूपी लताओंसे आच्छादित हो गया है अर्थात् अब वे लताओंसे आच्छादित गर्तके समान जान पड़ते हैं ॥१३४॥ मेरा जो यह शरीर कान्तिसे उज्ज्वल तथा महाबलसे युक्त था वह अब वर्षासे ताड़ित चित्रके समान निष्प्रभ हो गया ॥१३५॥ अर्थ, धर्म और काम ये तीन पुरुषार्थ तरुण मनुष्यके योग्य हैं। वृद्ध मनुष्यके लिए इनका करना कठिन है ॥१३६॥ चेतनाशून्य, दुराचारी, प्रमादी तथा भाई-बन्धुओंके मिथ्या स्नेहरूपी सागरकी भँवरमें पड़े हुए मुझ पापीको धिक्कार हो ॥१३७॥ इस प्रकार कहकर तथा समस्त बन्धुजनोंसे पूछकर उदारहृदय वृद्ध राजा विजयस्यन्दनने निःस्पृह हो छोटे पोते पुरन्दरके लिए राज्य सौंप दिया और स्वयं निर्वाणघोष नामक निर्ग्रन्थ महात्माके समीप अपने पुत्र सुरेन्द्रमन्युके साथ दीक्षा ले ली ॥१३८-१३९॥

तदनन्तर पुरन्दरकी भार्या पृथिवीमतीने कीर्तिधर नामक पुत्रको उत्पन्न किया। वह पुत्र समस्त प्रसिद्ध गुणोंका मानो सागर ही था ॥१४०॥ अपनी सुन्दर चेष्टासे समस्त बन्धुओंकी प्रसन्नताको बढ़ाता हुआ विनयी कीर्तिधर क्रम-क्रमसे यौवनको प्राप्त हुआ ॥१४१॥ तब राजा पुरन्दरने उसके लिए कौशल देशके राजाकी पुत्री स्वीकृत की। इस तरह पुत्रका विवाहकर राजा पुरन्दर विरक्त हो घरसे निकल पड़ा ॥१४२॥ गुणरूपी आभूषणोंको धारण करनेवाले राजा पुरन्दरने क्षेमंकर मुनिराजके समीप दीक्षा लेकर कर्मोंकी निर्जराका कारण कठिन तप करना प्रारम्भ किया ॥१४३॥ इधर शत्रुओंको जीतनेवाला राजा कीर्तिधर कुल-क्रमागत राज्यका पालन करता हुआ देवोंके समान उत्तम भोगोंके साथ सुखपूर्वक क्रीड़ा करने लगा ॥१४४॥

अथानन्तर किसी दिन शत्रुओंको भयभीत करनेवाला प्रजा-वत्सल राजा कीर्तिधर, अपने सुन्दर भवनके ऊपर नलकूबर विद्याधरके समान सुखसे बैठा हुआ सुशोभित हो रहा था कि उसकी दृष्टि राहु विमानकी नील कान्तिसे आच्छादित सूर्यमण्डल (सूर्यग्रहण) पर पड़ी। उसे देखकर वह विचार करने लगा कि अहो! उदयमें आया कर्म दूर नहीं किया जा सकता ॥१४५-१४६॥ सूर्य

१. पार्श्वनिर्वाण म.।

उपजातिवृत्तम्

उत्सार्य यो भीषणमन्धकारं करोति निष्कान्तिकमिन्दुबिम्बम् ।
असौ रविः पद्मवनप्रबोधः स्वर्भानुमुत्सारयितुं न शक्तः ॥१४७॥
तारुण्यसूर्योऽप्ययमेवमेव प्रणङ्क्ष्यति प्राप्तजरोपरागः ।
अस्तुर्वराको वरपाशबद्धो मृत्योरवश्यं मुखमभ्युपैति ॥१४८॥

उपेन्द्रवज्रावृत्तम्

अनित्यमेतज्जगदेष मत्वा समासमेतानगदीदमाप्तान् ।
ससागरां रक्षत भो धरित्रीमहं प्रयाम्येष विमुक्तिमार्गम् ॥१४९॥

उपजातिवृत्तम्

इत्युक्तमात्रे बुधबन्धुपूर्णा सभा विषादं प्रगता बभूवे ।
राजंस्त्वमस्याः पतिरद्वितीयो विराजसे सर्ववसुंधरायाः ॥१५०॥
स्थिता वशस्था धरणी[1] त्वयेयं न राजते निर्जितशत्रुपक्षा ।
नवे वयस्युन्नतपौरुषाढ्यं कुरुष्व राज्यं सुरराजतुल्यम् ॥१५१॥

वंशस्थवृत्तम्

जगाद राजा भवदुःखसंकटां जरावियोगारतिवह्निदीपिताम् ।
निरीक्ष्य दीर्घां व्यसनाटवीमिमां भयं ममात्यन्तमुरु प्रजायते ॥१५२॥

इन्द्रवज्रावृत्तम्

तस्मिन्निशम्यं मन्त्रिजनोऽवगत्य विध्वातमङ्गारचयं महान्तम् ।
आनाय्य मध्येऽस्य मरीचिरम्यं वैदूर्यमस्थापयदप्युदारम् ॥१५३॥

भीषण अन्धकारको नष्ट कर चन्द्रमण्डलको कान्तिहीन कर देता है तथा कमलोंके वनको विकसित करता है वह सूर्य राहुको दूर करनेमें समर्थ नहीं है ॥१४७॥ जिस प्रकार यह सूर्य नष्ट हो रहा है उसी प्रकार यह यौवनरूपी सूर्य भी जरारूपी ग्रहणको प्राप्त कर नष्ट हो जावेगा। मजबूत पाशसे बँधा हुआ यह बेचारा प्राणी अवश्य ही मृत्युके मुखमें जाता है ॥१४८॥ इस प्रकार समस्त संसारको अनित्य मानकर राजा कीर्तिधरने सभामें बैठे हुए मन्त्रियोंसे कहा कि अहो मन्त्री जनो! इस सागरान्त पृथिवीकी आप लोग रक्षा करो। मैं तो मुक्तिके मार्गमें प्रयाण करता हूँ ॥१४९॥ राजाके ऐसा कहनेपर विद्वानों तथा बन्धुजनोंसे परिपूर्ण सभा विषादको प्राप्त हो उससे इस प्रकार बोली कि हे राजन्! इस समस्त पृथिवीके तुम्हीं एक अद्वितीय पति हो ॥१५०॥ यह पृथिवी आपके आधीन है तथा आपने समस्त शत्रुओंको जीता है, इसलिए आपके छोड़नेपर सुशोभित नहीं होगी। उन्नत पराक्रमके धारक! अभी आपकी नयी अवस्था है इसलिए इन्द्रके समान राज्य करो ॥१५१॥

इसके उत्तरमें राजाने कहा कि जो जन्मरूपी वृक्षोंसे संकुल है, व्याप्त है, बुढ़ापा, वियोग तथा अरतिरूपी अग्निसे प्रज्वलित है, तथा अत्यन्त दीर्घ है ऐसी इस व्यसनरूपी अटवीको देखकर मुझे भारी भय उत्पन्न हो रहा है ॥१५२॥ जब मन्त्रीजनोंको राजाके दृढ़ निश्चयका बोध हो गया तब उन्होंने बहुतसे बुझे हुए अंगारोंका समूह बुझाकर उसमें किरणोंसे सुशोभित उत्तम वैडूर्य-मणि रखा सो उसके प्रभावसे वह बुझे हुए अंगारोंका समूह प्रकाशमान हो गया ॥१५३॥ तदनन्तर

---

१. धरणी च येयं म. ।

उपेन्द्रवज्रावृत्तम्

पुनस्तदुद्धृत्य जगाद राजन् यथामुना रत्नवरेण हीनः ।
न शोभतेऽङ्गारकलाप एष त्वया विनेदं भुवनं तथैव ॥१५४॥

उपजातिवृत्तम्

नाथ त्वयेमा विकला विनाथा प्रजा विनङ्क्ष्यन्त्यखिला वराक्यः ।
प्रजासु नष्टासु तथैव धर्मो धर्मे विनष्टे वद किं न नष्टम् ॥१५५॥
तस्माद्यथा ते जनकः प्रजाभ्यो दत्वा भवन्तं परिपालनाय ।
तपोऽकरोन्निर्वृतिदानदक्षं[1] तथा भवान् रक्षतु गोत्रधर्मम् ॥१५६॥
अथैवमुक्तः कुशलैरमात्यैरवग्रहं[2] कीर्तिधरश्चकार ।
श्रुत्वा प्रजातं तनयं प्रपश्ये[3] ध्रुवं मुनीनां पदमप्युदारम्[4] ॥१५७॥
ततः स शक्रोपमभोगवीर्यः स्फीतां व्यवस्थामहतीं धरित्रीम् ।
सुखं शशासाखिलभीतिमुक्तां स मुक्तिकामः कुलधर्महितात्मा ॥१५८॥

उपेन्द्रवज्रावृत्तम्

चिरं ततः कीर्तिधरेण सार्धं सुखं भजन्ती सहदेववेदी ।
क्रमेण संपूर्णगुणं प्रसूता सुतं धरित्रीधरणे समर्थम् ॥१५९॥

उपजातिवृत्तम्

समुत्सवस्तत्र कृतो न जाते मागाद्धरित्रीपतिकर्णजाहम् ।
वार्तेति कांश्चिद्दिवसान्निगूढः कालः कथंचित्प्रसवस्य जातः ॥१६०॥

वह रत्न उठाकर बोले कि हे राजन् ! जिस प्रकार इस उत्तम रत्नसे रहित अंगारोंका समूह शोभित नहीं होता है उसी प्रकार आपके बिना यह संसार शोभित नहीं होगा ॥१५४॥ हे नाथ ! तुम्हारे बिना यह बेचारी समस्त प्रजा अनाथ तथा विकल होकर नष्ट हो जायेगी। प्रजाके नष्ट होनेपर धर्म नष्ट हो जायेगा और धर्मके नष्ट होनेपर क्या नहीं नष्ट होगा सो तुम्हीं कहो ॥१५५॥ इसलिए जिस प्रकार आपके पिताने प्रजाकी रक्षाके लिए आपको देकर मोक्ष प्रदान करनेमें दक्ष तपश्चरण किया था उसी प्रकार आप भी अपने इस कुलधर्मकी रक्षा कीजिए ॥१५६॥

अथानन्तर कुशल मन्त्रियोंके इस प्रकार कहनेपर राजा कीर्तिधरने नियम किया कि जिस समय मैं पुत्रको उत्पन्न हुआ सुनूँगा उस समय मुनियोंका उत्कृष्ट पद अवश्य धारण कर लूँगा ॥१५७॥ तदनन्तर जिसके भोग और पराक्रम इन्द्रके समान थे तथा जिसकी आत्मा सदा सावधान रहती थी ऐसे राजा कीर्तिधरने सब प्रकारके भयसे रहित तथा व्यवस्थासे युक्त दीर्घ पृथ्वीका चिरकाल तक पालन किया ॥१५८॥ तदनन्तर राजा कीर्तिधरके साथ चिरकाल तक सुखका उपभोग करती हुई रानी सहदेवीने सर्वगुणोंसे परिपूर्ण एवं पृथ्वीके धारण करनेमें समर्थ पुत्रको उत्पन्न किया ॥१५९॥ पुत्र-जन्मका समाचार राजाके कानों तक न पहुँच जावे इस भयसे पुत्र जन्मका उत्सव नहीं किया गया तथा इसी कारण कितने ही दिन तक प्रसवका

---

१. दानदक्षं म. । २. प्रतिज्ञां म. । ३. प्रपश्ये म., ज., ख. । ४. पदमप्युदारं म. । पदमप्युदारः ज. । पदमप्युदाराः ख. ।

वंशस्थवृत्तम्

ततः समुद्यद्दिवसप्रभूपमश्चिरं स शक्यः कथमेव गोपितुम् ।
निवेदितो दुर्विधिनातिदुःखिना नृपाय केनापि नरेण निश्चितः ॥१६१॥

उपजातिवृत्तम्

तस्मै नरेन्द्रो मुकुटादि हृष्टो विभूषणं सर्वमदान्महात्मा ।
घोषाख्यशाखानगरं च रम्यं महाधनग्रामशतेन युक्तम् ॥१६२॥
पुत्रं समानाय्य च पक्षजातं स्थितं महातेजसि मातुरङ्के ।
अतिष्ठिपत्तुङ्गविभूतियुक्तं निजे पदे पूजितसर्वलोकः ॥१६३॥
जाते यतस्तत्र बभूव रम्या पुरी विभूत्या किल कोशलाख्या ।
सुकोशलाख्यां स जगाम तस्माद् बालः समस्ते भुवने सुचेष्टः ॥१६४॥

वंशस्थवृत्तम्

ततो विनिष्क्रम्य निवासचारकादृशिश्रियत् कीर्तिधरस्तपोवनम् ।
तपोभवेनैष रराज तेजसा घनागमोन्मुक्ततनुर्यथा रविः ॥१६५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते सुव्रत-वज्रबाहु-कीर्तिमाहात्म्यवर्णनं नामैकविंशतितमं पर्व ॥२१॥

□

समय गुप्त रक्खा गया ॥१६०॥ तदनन्तर उगते हुए सूर्यके समान वह बालक चिरकाल तक छिपाकर कैसे रक्खा जा सकता था ? फलस्वरूप किसी दरिद्र मनुष्यने पुरस्कार पानेके लोभसे राजाको उसकी खबर दे दी ॥१६१॥ राजाने हर्षित होकर उसके लिए मुकुट आदि दिये तथा विपुल धनसे युक्त सौ गाँवोंके साथ घोष नामका मनोहर शाखानगर दिया ॥१६२॥ और माताको महा तेजपूर्ण गोदमें स्थित उस एक पक्षके बालकको बुलवाकर उसे बड़े वैभवके साथ अपने पदपर बैठाया तथा सब लोगोंका सन्मान किया ॥१६३॥ चूँकि उसके उत्पन्न होनेपर वह कोसला नगरी वैभवसे अत्यन्त मनोहर हो गयी थी इसलिए उत्तम चेष्टाओंको धारण करनेवाला वह बालक 'सुकोसल' इस नामको प्राप्त हुआ ॥१६४॥

तदनन्तर राजा कीर्तिधर भवनरूपी कारागारसे निकलकर तपोवनमें पहुँचा और तप सम्बन्धी तेजसे वर्षाकालसे रहित सूर्यके समान अत्यन्त सुशोभित होने लगा ॥१६५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्यके द्वारा कथित पद्मचरितमें भगवान् मुनिसुव्रतनाथ वज्रबाहु तथा राजा कीर्तिधरके माहात्म्यको कथन करनेवाला इक्कीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२१॥

□

द्वाविंशतितमं पर्व

अथ घोरतपोधारी [1]धरातुल्यक्षमः प्रभुः । मलकञ्चुकसंवीतो[2] घौतमानो महामनाः ॥१॥
तपःशोषितसर्वाङ्गो धीरो लुञ्चविभूषणः । प्रलम्बितमहाबाहुर्युगाध्वन्यस्तलोचनः ॥२॥
स्वभावान्मत्तनागेन्द्र[3]मन्थरागतिभ्रमः । निर्विकारः समाधानी विनीतो लोभवर्जितः ॥३॥
[4]अनुस्रोतसमाचारो दयाविमलमानसः । स्नेहपङ्कविनिर्मुक्तः श्रमणश्रीसमन्वितः ॥४॥
गृहपङ्क्तिक्रमप्राप्तं आत्मीयागारमन्धरं[5] गृहम् । मुनिर्विवेश भिक्षार्थं चिरकालोपवासवान् ॥५॥
निरीक्ष्य [6]सहदेवी तं गवाक्षनिहितेक्षणा । परमं क्रोधमायाता विस्फुरल्लोहितानना ॥६॥
प्रतीहारगणानूचे कुत्सितोष्ठी दुराशया । श्रमणो गृहभङ्गोऽयमाशु निर्वास्यतामिति ॥७॥
मुग्धः सर्वजनप्रीतः स्वभावमृदुमानसः । यावन्निरीक्षते[7] नैनं कुमारः सुकुमारकः ॥८॥
अन्यानपि यदीक्षे तु भवने नग्नमानवान् । निग्रहं वः करिष्यामि प्रतीहारा न संशयः ॥९॥
परित्यज्य दयामुक्तो गतोऽसौ शिशुपुत्रकम् । यतः प्रभृति नामीषु तदारभ्य धृतिर्मम ॥१०॥
[8]राज्यश्रियं द्विषन्त्येते महाशूरनिषेवितां । नयन्त्यत्यन्तनिर्वेदं महोद्योगपरान्नरान् ॥११॥
क्रूरैरित्युदितैः क्षिप्रं दुर्वाक्यं[9] जनितानने[10]ः । दूरं निर्धारितो[11] योगी वेत्रग्राहितपाणिभिः ॥१२॥

अथानन्तर जो घोर तपस्वी थे, पृथ्वीके समान क्षमाके धारक थे, प्रभु थे, जिनका शरीर मैलरूपी कंचुकसे व्याप्त था, जिन्होंने मानको नष्ट कर दिया था, जो उदार हृदय थे, जिनका समस्त शरीर तपसे सूख गया था, जो अत्यन्त धीर थे, केश लोंच करनेको जो आभूषणके समान समझते थे, जिनकी लम्बी भुजाएँ नीचेकी ओर लटक रही थीं, जो युगप्रमाण अर्थात् चार हाथ प्रमाण मार्गमें दृष्टि डालते हुए चलते थे, जो स्वभावसे ही मत्त हाथीके समान मन्दगतिसे चलते थे, विकार-शून्य थे, समाधान अर्थात् चित्तकी एकाग्रतासे सहित थे, विनीत थे, लोभरहित थे, आगमानुकूल आचारका पालन करते थे, जिनका मन दयासे निर्मल था, जो स्नेहरूपी पंकसे रहित थे, मुनिपदरूपी लक्ष्मीसे सहित थे और जिन्होंने चिरकालका उपवास धारण कर रखा था, ऐसे कीर्तिधर मुनिराज भ्रमण करते हुए गृहपंक्तिके क्रमसे प्राप्त अपने पूर्व घरमें भिक्षाके लिए प्रवेश करने लगे ॥१-५॥ उस समय उनकी गृहस्थावस्थाकी स्त्री सहदेवी झरोखेमें दृष्टि लगाये खड़ी थी सो उन्हें आते देख परमक्रोधको प्राप्त हुई। क्रोधसे उसका मुँह लाल हो गया। ओंठ चाबती हुई उस दुष्टाने द्वारपालोंसे कहा कि यह मुनि घरको फोड़नेवाला है इसलिए यहाँसे शीघ्र ही निकाल दिया जाय ॥६-७॥ मुग्ध, सर्वजन प्रिय और स्वभावसे ही कोमल चित्तका धारक, सुकुमार कुमार जबतक इसे नहीं देखता है तबतक शीघ्र ही दूर कर दो। यही नहीं यदि मैं और भी नग्न मनुष्योंको महलके अन्दर देखूँगी तो हे द्वारपालो! याद रखो मैं अवश्य ही तुम्हें दण्डित करूँगी। यह निर्दय जबसे शिशुपुत्रको छोड़कर गया है तभीसे इन लोगोंमें मेरा सन्तोष नहीं रहा ॥८-१०॥ ये लोग महाशूर वीरोंसे सेवित राज्यलक्ष्मीसे द्वेष करते हैं तथा महान् उद्योग करनेमें तत्पर रहनेवाले मनुष्योंको अत्यन्त निर्वेद प्राप्त करा देते हैं ॥११॥ सहदेवीके इस प्रकार कहनेपर जिनके मुखसे दुर्वचन निकल रहे थे तथा जो हाथमें वेत्र धारण कर रहे थे

---

१. धरातुल्यः म. । २. संवीतवीतमानो म., ज. । ३. नागेन्द्र म., ब. । ४. अनुस्नात ब. । ५. आत्मवरं म. । ६. कीर्तिधरपत्नी । ७. निरीक्ष्यते म. । ८. राजश्रियं ब., क. । ९. दुर्वाक्यादालितानमैः म. । दुर्वाक्यं जनितानमैः ब. । १०. निर्धासितो म. । ११. वेत्रग्राहित- म. ।

अन्येऽपि लिङ्गिनः सर्वे पुराग्निर्वासितास्तदा । कुमारो धर्मशब्दं मा श्रौषीदिति नृपास्पदे ॥१३॥
इति संतक्ष्यमाणं तं वाग्वास्या[1] मुनिपुङ्गवम् । श्रुत्वा दृष्ट्वा च संजातप्रत्यग्रौदारशोकिका ॥१४॥
स्वामिनं प्रत्यभिज्ञाय भक्ता कीर्तिधरं चिरात् । धात्री सौकोशली दीर्घमरोदीन्मुक्तकण्ठिका ॥१५॥
श्रुत्वा तां रुदतीमाशु समागत्य सुकोशलः । जगाद मास्वयन्मातः केन तेऽपकृतं वद ॥१६॥
गर्भधारणमात्रेण जनन्या समनुष्ठितम् । स्वन्पयोमयमेतत्तु शरीरं जातमीदृशम् ॥१७॥
सा मे त्वं जननीतोऽपि परं गौरवमाश्रिता । वदापमानिता केन मृत्युवक्त्रं विविक्षुणा ॥१८॥
अद्य मे त्वं जनन्यापि परिभूता भवेद्यदि । करोम्यविनयं तस्या जन्तोरन्यस्य किं पुनः ॥१९॥
ततस्तस्मै समाख्यातं वसन्तलतया तथा । कृच्छ्रेण विरलीकृत्य नेत्राम्बुप्लववसंततिम् ॥२०॥
अभिषिच्य शिशुं राज्ये भवन्तं यस्तपोवनम् । प्रविष्टस्ते पिता भीतो भवद्व्यसनपञ्जरात् ॥२१॥
भिक्षार्थमागतः सोऽद्य प्रविष्टो भवतो गृहम् । जनन्यास्ते नियोगेन प्रतिहारैर्निराकृतः ॥२२॥
दृष्ट्वा निर्धार्यमाणं तं जातशोकोरुवेलया । रुदितं मयका वत्स शोकं धर्तुमशक्तया ॥२३॥
भवद्गौरवदृष्टायाः कुरुते कः पराभवम् । मम कारणमेतत्तु कथितं रुदितस्य ते ॥२४॥
प्रसादस्तेन नाथेन तदास्माकमकारि यः । स्मर्यमाणः शरीरं स दहत्येव निरङ्कुशः ॥२५॥
धृतमेतदघुष्यैर्मे शरीरं दुःखभाजनम् । वियोगे तस्य नाथस्य ध्रियते यदयोमयम्[2] ॥२६॥

ऐसे दुष्ट द्वारपालोंने उन मुनिराजको दूरसे ही शीघ्र निकाल दिया ॥१३॥ इतना ही नहीं, 'राजभवनमें विद्यमान राजकुमार धर्मका शब्द न सुन लें' इस भयसे नगरमें जो और भी मुनि विद्यमान थे उन सबको नगरसे बाहर निकाल दिया ॥१३॥

इस प्रकार वचनरूपी वसूलीके द्वारा छीले हुए मुनिराजको सुनकर तथा देखकर जिसका भारी शोक फिरसे नवीन हो गया था, तथा जो भक्तिसे युक्त थी ऐसी सुकोसल धाय चिरकाल बाद अपने स्वामी कीर्तिधरको पहचानकर गला फाड़-फाड़कर रोने लगी ॥१४-१५॥ उसे रोती सुनकर सुकोशल शीघ्र ही उसके पास आया और सान्त्वना देता हुआ बोला कि हे माता ! कह तेरा अपकार किसने किया है ? ॥१६॥ माताने तो इस शरीरको गर्भमात्रमें ही धारण किया है पर आज यह शरीर तेरे दुग्ध-पानसे ही इस अवस्थाको प्राप्त हुआ है ॥१७॥ तू मेरे लिए मातासे भी अधिक गौरवको धारण करती है। बता, यमराजके मुखमें प्रवेश करनेकी इच्छा करनेवाले किस मनुष्यने तेरा अपमान किया है ? ॥१८॥ यदि आज माताने भी तेरा पराभव किया होगा तो मैं उसकी अविनय करनेको तैयार हूँ फिर दूसरे प्राणीकी तो बात ही क्या है ? ॥१९॥ तदनन्तर वसन्तलता नामक धायने बड़े दुःखसे आँसुओंकी धाराको कमकर सुकोशलसे कहा कि तुम्हारा जो पिता शिशु अवस्थामें ही तुम्हारा राज्याभिषेक कर संसाररूपी दुःखदायी पंजरसे भयभीत हो तपोवनमें चला गया था आज वह भिक्षाके लिए आपके घरमें प्रविष्ट हुआ सो तुम्हारी माताने अपने अधिकारसे उसे द्वारपालोंके द्वारा अपमानित कर बाहर निकलवा दिया ॥२०-२२॥ उसे अपमानित होते देख मुझे बहुत शोक हुआ और उस शोकको मैं रोक नहीं सकी। इसलिए हे वत्स ! मैं रो रही हूँ ॥२३॥ जिसे आप सदा गौरवसे देखते हैं उसका पराभव कौन कर सकता है ? मेरे रोनेका कारण यही है जो मैंने आपसे कहा है ॥२४॥ उस समय स्वामी कीर्तिधरने हमारा जो उपकार किया था वह स्मरणमें आते ही शरीरको स्वतन्त्रतासे जलाने लगता है ॥२५॥ पापके उदयसे दुःखका पात्र बननेके लिए ही मेरा यह शरीर रुका हुआ है। जान पड़ता है कि यह लोहेसे बना है इसलिए तो स्वामीका वियोग होनेपर भी स्थिर है ॥२६॥ निर्ग्रन्थ मुनिको

१. वचनकुठारिकया । २. लोहमयम् ।

निर्ग्रन्थं भवतो वृद्धा मामूनिर्वेदधीरिति । तपस्विनां प्रवेशोऽस्मिन्नगरेऽपि निवारितः ॥२७॥
गोत्रे परम्परायातो धर्मोऽयं भवतां किल । राज्ये यत्तनयं न्यस्य तपोवननिषेवणम् ॥२८॥
किं नास्मादपि जानासि मन्त्रिणां संप्रधारणम् । न कदाचिदतो गेहाल्लभसे यन्निर्गमम् ॥२९॥
एतस्मात् कारणात् सर्वं बाह्यालीभ्रमणादिकम् । अमात्यैः कृतमत्रैव भवने नयशालिभिः ॥३०॥
ततो निशम्य वृत्तान्तं सकलं तन्निवेदितम् । अवतीर्य त्वरायुक्तः प्रासादाग्रात् सुकोशलः ॥३१॥
परिशिष्टातपत्रादिपृथिवीपतिलाञ्छनः । पद्मकोमलकान्तिभ्यां चरणाभ्यां श्रियान्वितः ॥३२॥
इतो वरमुनिर्दृष्टो मयेति नादवान् । परमोत्कण्ठया युक्तः संप्राप[1] पितुरन्तिकम् ॥३३॥
अस्यानुपदवीभूता महासंभ्रमसंगताः । छत्रधारादयः सर्वे व्याकुलीभूतचेतसः ॥३४॥
निविष्टं प्रासुकोदारे भवरेऽमुं शिलातले । वाष्पाकुलविशालाक्षिः परीत्य सुभावनः ॥३५॥
करयुग्मान्तिकं कृत्वा मूर्द्धानं स्नेहनिर्भरः । ननाम पादयोर्जानुमस्तकस्पृष्टभूतलः ॥३६॥
कृताञ्जलिरथोवाच विनयेन पुरस्थितः । व्रीडामिव परिप्राप्तो मुनेर्गेहादपाकृतेः ॥३७॥
अग्निज्वालाकुलागारे सुप्तः कश्चिन्नरो यथा । बोध्यते पटुनादेन समूहेन पयोमुचाम् ॥३८॥
तद्वत्संसारगेहेऽहं मृत्युजन्माग्निदीपिते । मोहनिद्रापरिष्वक्तो बोधितो भवता प्रभो ॥३९॥
प्रसादं कुरु मे दीक्षां प्रयच्छ स्वयमाश्रिताम् । मामप्युत्तारयास्मात्[2] भवव्यसनसंकटात् ॥४०॥
इतीति यावदेतावन्नतवक्त्रः सुकोशलः । तावत्सामन्तलोकोऽस्य समस्तः समुपागतः ॥४१॥

देखकर तुम्हारी बुद्धि वैराग्यमय न हो जावे इस भयसे नगरमें मुनियोंका प्रवेश रोक दिया गया है ॥२७॥ परन्तु तुम्हारे कुलमें परम्परासे यह धर्म चला आया है कि पुत्रको राज्य देकर तपोवनकी सेवा करना ॥२८॥ तुम कभी घरसे बाहर नहीं निकल सकते हो इतनेसे ही क्या मन्त्रियोंके इस निश्चयको नहीं जान पाये हो ॥२९॥ इसी कारण नीतिके जाननेवाले मन्त्रियोंने तुम्हारे भ्रमण आदिकी व्यवस्था इसी भवनमें कर रखी है ॥३०॥

तदनन्तर वसन्तलता धायके द्वारा निरूपित समस्त वृत्तान्त सुनकर सुकोशल शीघ्रतासे महलके अग्रभागसे नीचे उतरा ॥३१॥ और छत्र चमर आदि राज-चिह्नोंको छोड़कर कमलके समान कोमल कान्तिको धारण करनेवाले पैरोंसे पैदल ही चल पड़ा। वह लक्ष्मीसे सुशोभित था तथा मार्गमें लोगोंसे पूछता जाता था कि यहाँ कहीं आप लोगोंने उत्तम मुनिराजको देखा है? इस तरह परम उत्कण्ठासे युक्त सुकोशल राजकुमार पिताके समीप पहुँचा ॥३२-३३॥ इसके जो छत्र धारण करनेवाले आदि सेवक थे वे सब व्याकुल चित्त होते हुए हड़बड़ाकर उसके पीछे दौड़ते आये ॥३४॥ जाते ही उसने प्रासुक विशाल तथा उत्तम शिलातल पर विराजमान अपने पिता कीर्तिधर मुनिराजकी तीन प्रदक्षिणाएँ दीं। उस समय उसके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे, और उसकी भावनाएँ अत्यन्त उत्तम थीं ॥३५॥ उसने दोनों हाथ जोड़कर मस्तकसे लगाये तथा घुटनों और मस्तकसे पृथिवीका स्पर्श कर बड़े स्नेहके साथ उनके चरणोंमें नमस्कार किया ॥३६॥ वह हाथ जोड़कर विनयसे मुनिराजके आगे बैठ गया। अपने घरसे मुनिराजका तिरस्कार होनेके कारण मानो वह लज्जाको प्राप्त हो रहा था ॥३७॥ उसने मुनिराजसे कहा कि जिस प्रकार अग्निकी ज्वालाओंसे व्याप्त घरमें सोते हुए मनुष्योंको तीव्र गर्जनासे युक्त मेघोंका समूह जगा देता है उसी प्रकार जन्म-मरणरूपी अग्निसे प्रज्वलित इस संसाररूपी घरमें मैं मोहरूपी निद्रासे आलिंगित होकर सो रहा था सो हे प्रभो! आपने मुझे जगाया है ॥३८-३९॥ आप प्रसन्न होइए तथा आपने स्वयं जिस दीक्षाको धारण किया है वह मेरे लिए भी दीजिये। हे भगवन्! मुझे भी इस संसारके व्यसनरूपी संकटसे बाहर निकालिए ॥४०॥ नीचेकी ओर मुख किये सुकोशल जबतक मुनिराजसे

---

१. संप्रापयितुरन्तिकम् म.। २. मामप्युत्तरयामुष्माद्- म.।

कृच्छ्रेण दधती गर्भमन्तःपुरसमन्विता । प्राप्ता विचित्रमालाख्या देवी चास्य विषादिनी ॥४२॥
तं दीक्षाभिमुखं ज्ञात्वा भृङ्गझाङ्कारकोमलः । अन्तःपुरात् समुत्तस्थौ समं रुदितनिःस्वनः ॥४३॥
स्याच्चेद्विचित्रमालाया गर्भोऽयं तनयस्ततः । राज्यमस्मै मया दत्तमिति संभाष्य निःस्पृहः ॥४४॥
आशापाशं समुच्छिद्य निर्दह्य स्नेहपञ्जरम् । कलत्रनिगडं भित्त्वा त्यक्त्वा राज्यं तृणं यथा ॥४५॥
अलंकारान् समुत्सृज्य ग्रन्थमन्तर्बहिःस्थितम् । पर्यङ्कासनमास्थाय लुञ्चित्वा केशसंचयम् ॥४६॥
महाव्रतान्युपादाय गुरोर्गुप्तिनिश्चयः । पित्रा सार्कं प्रशान्तात्मा विजहार सुकोशलः ॥४७॥
कुर्वन्निव बलिं पद्मैः पादारुणमरीचिभिः । संभाव्यन् धरणीं योग्यां विस्मितैरीक्षितो जनैः ॥४८॥
आर्तध्यानेन सम्पूर्णा सहदेवी मृता सती । तिर्यग्योनौ समुत्पन्ना दुर्दृष्टिः पापतत्परा ॥४९॥
तयोर्विहरतोर्युक्तं यत्रास्तमितशायिनोः । कृष्णीकुर्वन् दिशां चक्रमुपतस्थौ घनागमः ॥५०॥
नभः पयोमुचां जातैरनुलिप्तमिवासितैः । बलाकाभिः क्वचित्क्वचे कुमुदीवैरिवार्चनम् ॥५१॥
कदम्बस्थूलमुकुलः क्वणद्भृङ्गकदम्बकः । पयोदकालराजस्य यशोगानमिवाहरत् ॥५२॥
नीलाञ्जनचयैर्व्याप्तं जगत्तुङ्गनगैरिव । चन्द्रसूर्यौ गतौ क्वापि तर्जिताविव गर्जितैः ॥५३॥
अच्छिन्नजलधाराभिर्द्रवतीव[2] नभस्तलम् । तोषादिवोत्तमान् मह्यां[3] शष्पकञ्चुकमावृतम् ॥५४॥

यह कह रहा था तब तक उसके समस्त सामन्त वहाँ आ पहुँचे ॥४१॥ सुकोशलकी स्त्री विचित्रमाला भी गर्भके भारको धारण करती, विषादभरी, अन्तःपुरके साथ वहाँ आ पहुँची ॥४२॥ सुकोशलको दीक्षाके सम्मुख जानकर अन्तःपुरसे एक साथ भ्रमरकी झंकारके समान कोमल रोनेकी आवाज उठ पड़ी ॥४३॥

तदनन्तर सुकोशलने कहा कि यदि विचित्रमालाके गर्भमें पुत्र है तो उसके लिए मैंने राज्य दिया' इस प्रकार कहकर उसने निःस्पृह हो, आशारूपी पाशको छेदकर, स्नेहरूपी पंजरको जलाकर, स्त्रीरूपी बेड़ीको तोड़कर, राज्यको तृणके समान छोड़कर, अलंकारोंका त्याग कर अन्तरंग-बहिरंग दोनों प्रकारके परिग्रहका उत्सर्ग कर, पर्यंकासनसे बैठकर, केशोंका लोंचकर पितासे महाव्रत धारण कर लिये। और दृढ़ निश्चय हो शान्त चित्तसे पिताके साथ विहार करने लगा ॥४४-४७॥ जब वह विहारके योग्य पृथिवीपर भ्रमण करता था तब पैरोंकी लाल-लाल किरणोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो कमलोंका उपहार ही पृथिवीपर चढ़ा रहा हो। लोग उसे आश्चर्यभरे नेत्रोंसे देखते थे ॥४८॥

मिथ्यादृष्टि तथा पाप करनेमें तत्पर रहनेवाली सहदेवी आर्तध्यानसे मरकर तिर्यंच योनिमें उत्पन्न हुई ॥४९॥ इस प्रकार पिता-पुत्र आगमानुकूल विहार करते थे। विहार करते-करते जहाँ सूर्य अस्त हो जाता था वे वहीं सो जाते थे। तदनन्तर दिशाओंको मलिन करता हुआ वर्षा काल आ पहुँचा ॥५०॥ काले-काले मेघोंके समूहसे आकाश ऐसा जान पड़ने लगा मानो गोबरसे लीपा गया हो और कहीं-कहीं उड़ती हुई बलाकाओंसे ऐसा जान पड़ता था मानो उसपर कुमुदोंके समूहसे अर्चा ही की गयी हो ॥५१॥ जिनपर भ्रमर गुंजार कर रहे थे ऐसी कदम्बकी बड़ी-बड़ी बोंडियाँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो वर्षाकालरूपी राजाका यशोगान ही कर रही हों ॥५२॥ जगत् ऐसा जान पड़ता था मानो ऊँचे-ऊँचे पर्वतोंके समान नीलांजनके समूहसे ही व्याप्त हो गया हो और चन्द्रमा तथा सूर्य कहीं चले गये थे मानो मेघोंकी गर्जनासे तर्जित होकर ही चले गये थे ॥५३॥ आकाशतलसे अखण्ड जलधारा बरस रही थी सो उससे ऐसा जान पड़ता था मानो आकाशतल पिघल-पिघलकर बह रहा हो और पृथिवीमें हरी-हरी घास उग रही थी उससे ऐसा जान पड़ता था मानो उसने सन्तोषसे घासरूपी कंचुक (चोली) ही पहन रखी हो ॥५४॥

---

१. वसन्तमालाख्या म.। २. द्रवतीव म.। ३. मह्यां शष्पकञ्चुक- म.।

जनितं जलपूरेण समं सर्वं नतोन्नतम् । अतिवेगप्रवृत्तेन [1]प्रस्खलस्येव चेतसा ॥५५॥
भूमौ गर्जन्ति तोयौघा विहायसि घनाघनाः । अन्विष्यन्त इवारातिं निदाघसमयं द्रुतम् ॥५६॥
कन्दलैर्निविडैश्छन्ना [2]धरा निर्झरशोभिनः । अत्यन्तजलभारेण पतिता जलदा इव ॥५७॥
स्थलीदेशेषु दृश्यन्ते स्फुरन्तः शक्रगोपकाः [3] । घनचूर्णितसूर्यस्य खण्डा इव महीं गताः ॥५८॥
चचार वैद्युतं तेजो दिक्षु सर्वासु सत्वरम् । पूरितापूरितं देशं पश्यच्चक्षुरिवाम्बरम् ॥५९॥
मण्डितं शुक्रचापेन गगनं चित्रतेजसा । अत्यन्तोन्नतियुक्तेन तोरणेनेव चारुणा ॥६०॥
कूलद्वयनिपातिन्यो भीमावर्ता महाजवाः । वहन्ति कलुषा नद्यः स्वच्छन्दप्रमदा इव ॥६१॥
घनाघनरवत्रस्ता हरिणीचकितेक्षणा । आलिलिङ्गुर्दृतं स्तम्भान्नार्यः प्रोषितभर्तृकाः ॥६२॥
गर्जितेनातिरौद्रेण जर्जरीकृतचेतनाः । प्रोषिता विह्वलीभूताः [4]प्रमदाशाहितेक्षणाः ॥६३॥
अनुकम्पापराः शान्ता निर्ग्रन्थमुनिपुङ्गवाः । प्रासुकस्थानमासाद्य [5]चातुर्मासीव्रतं श्रिताः ॥६४॥
गृहीतां श्रावकैः शक्त्या नानानियमकारिभिः । दिग्विरामव्रतं [6] साधुसेवातत्परमानसैः ॥६५॥
एवं महति संप्राप्ते समये जलदाकुले । निर्ग्रन्थौ तौ पितापुत्रौ यथोक्ताचारकारिणौ ॥६६॥
वृक्षान्धकारगम्भीरं बहुव्यालसमाकुलम् । गिरिपादमहादुर्गं रौद्राणामपि भीतिदम् ॥६७॥

जिस प्रकार अतिशय दुष्ट मनुष्यका चित्त ऊँच-नीच सबको समान कर देता है उसी प्रकार वेगसे बहनेवाले जलके पूरने ऊँची-नीची समस्त भूमिको समान कर दिया था ॥५५॥ पृथिवीपर जलके समूह गरज रहे थे और आकाशमें मेघोंके समूह गर्जना कर रहे थे उससे ऐसा जान पड़ता था मानो वे भागे हुए ग्रीष्मकालरूपी शत्रुको खोज ही रहे थे ॥५६॥ झरनोंसे सुशोभित पर्वत अत्यन्त सघन कन्दलोंसे आच्छादित हो गये थे। उससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो जलके बहुत भारी भारसे मेघ ही नीचे गिर पड़े हों ॥५७॥ वनकी स्वाभाविक भूमिमें जहाँ-तहाँ चलते-फिरते इन्द्रगोप (वीरबहूटी) नामक कीड़े दिखाई देते थे। जो ऐसे जान पड़ते थे मानो मेघोंके द्वारा चूर्णीभूत सूर्यके टुकड़े ही पृथिवीपर आ पड़े हों ॥५८॥ बिजलीका तेज जल्दी-जल्दी समस्त दिशाओंमें घूम रहा था उससे ऐसा जान पड़ता था मानो आकाशका नेत्र 'कौन देश जलसे भरा गया और कौन देश नहीं भरा गया' इस बातको देख रहा था ॥५९॥ अनेक प्रकारके तेजको धारण करनेवाले इन्द्रधनुषसे आकाश ऐसा सुशोभित हो गया मानो अत्यन्त ऊँचे सुन्दर तोरणसे ही सुशोभित हो गया हो ॥६०॥ जो दोनों तटोंको गिरा रही थीं, जिनमें भयंकर आवर्त उठ रहे थे, और जो बड़े वेगसे बह रही थीं ऐसी कलुषित नदियाँ व्यभिचारिणी स्त्रियोंके समान जान पड़ती थीं ॥६१॥ जो मेघोंकी गर्जनासे भयभीत हो रही थीं, तथा जिनके नेत्र हरिणीके समान चंचल थे ऐसी प्रोषितभर्तृका स्त्रियाँ शीघ्र ही खम्भोंका आलिंगन कर रही थीं ॥६२॥ अत्यन्त भयंकर गर्जनासे जिनकी चेतना जर्जर हो रही थी ऐसे प्रवासी-परदेशी मनुष्य जिस दिशामें स्त्री थी उसी दिशामें नेत्र लगाये हुए विह्वल हो रहे थे ॥६३॥ सदा अनुकम्पा (दया) के पालन करनेमें तत्पर रहनेवाले दिगम्बर मुनिराज प्रासुक स्थान पाकर चातुर्मास व्रतका नियम लिये हुए थे ॥६४॥ जो शक्तिके अनुसार नाना प्रकारके व्रत-नियम आखड़ी आदि धारण करते थे तथा सदा साधुओंकी सेवामें तत्पर रहते थे ऐसे श्रावकोंने दिग्व्रत धारण कर रखा था ॥६५॥ इस प्रकार मेघोंसे युक्त वर्षाकालके उपस्थित होनेपर आगमानुकूल आचारको धारण करनेवाले दोनों पिता-पुत्र निर्ग्रन्थ साधु कीर्तिधर मुनिराज और सुकोशलस्वामी इच्छानुसार विहार करते हुए उस श्मशानभूमिमें आये जो वृक्षोंके अन्धकारसे

---

१. प्रस्खलस्येव म., ख. । २. विच्छन्ना म. । ३. गोपगाः म., ज. । ४. यस्यामाशायां—दिशि प्रमदा तस्यामाशायामाहितेक्षणाः प्रदत्तलोचनाः । ५. चतुर्णां मासानां समाहारश्चातुर्मासी तस्या व्रतम् । ६. दिग्विरामश्रितं म. ।

कङ्कगृध्रशृगोमायुरवपूरितगह्वरम् । अर्धदग्धशवस्थानं भीषणं विषमावनिं[1] ॥६८॥
शिरःकपालसंघातैः क्वचित्पाण्डुरितक्षितिं[2] । वसातिविलगन्धोग्रवेगवाहिसमीरणम् ॥६९॥
साट्टहासभ्रमद्भीमरक्षोवेतालसंकुलम् । तृणगुच्छलताजालपरिणद्धोरुपादपम् ॥७०॥
पृथु प्रेतवनं[3] धीरावाषाढ्यां शुचिमानसौ । यदृच्छया परिप्राप्तौ विहरन्तौ तपोधनौ ॥७१॥
[4]चातुर्मासोपवासं तौ गृहीत्वा तत्र निःस्पृहौ । वृक्षमूले स्थितौ [5]पत्रसंगमासुकिताम्भसि ॥७२॥
पर्यङ्कासनयोगेन कायोत्सर्गेण जातुचित् । वीरासनादियोगेन निन्ये ताभ्यां घनागमः ॥७३॥
ततः शरदृतुः प्राप सोद्योगाखिलमानवः । प्रत्यूष इव निःशेषजगदालोकपण्डितः ॥७४॥
सितच्छाया घनाः क्वापि दृश्यन्ते गगनाङ्गणे । विकासिकाशसंघातसंकाशा मन्दकम्पिताः ॥७५॥
घनागमविनिर्मुक्ते भाति खे पद्मबान्धवः । गते सुदुःषमाकाले भव्यबन्धुर्जिनो यथा ॥७६॥
तारानिकरमध्यस्थो राजते रजनीपतिः । कुमुदाकरमध्यस्थो राजहंसयुवा यथा ॥७७॥
ज्योत्स्नया प्लावितो लोकः क्षीराकूपारकल्पया । रजनीषु निशानाथ प्रणालमुखमुक्तया ॥७८॥
नद्यः प्रसन्नतां प्राप्तास्तरङ्गाङ्कितसैकताः । क्रौञ्चसारसचक्राह्वनादसंभाषणोद्यताः ॥७९॥

गम्भीर था, अनेक प्रकारके सर्प आदि हिंसक जन्तुओंसे व्याप्त था, पहाड़की छोटी-छोटी शाखाओंसे दुर्गम था, भयंकर जीवोंको भी भय उत्पन्न करनेवाला था, काक, गीध, रीछ तथा शृगाल आदिके शब्दोंसे जिसके गर्त भर रहे थे, जहाँ अधजले मुरदे पड़े हुए थे, जो भयंकर था, जहाँकी भूमि ऊँची-नीची थी, जो शिरकी हड्डियोंके समूहसे कहीं-कहीं सफेद हो रहा था, जहाँ चर्बीकी अत्यन्त सड़ी बाससे तीक्ष्ण वायु बड़े वेगसे बह रही थी, जो अट्टहाससे युक्त घूमते हुए भयंकर राक्षस और वेतालोंसे युक्त था तथा जहाँ तृणोंके समूह और लताओंके जालसे बड़े-बड़े वृक्ष परिणद्ध—व्याप्त थे। ऐसे विशाल श्मशानमें एक साथ विहार करते हुए, तपरूपी धनके धारक तथा उज्ज्वल मनसे युक्त धीरवीर पिता-पुत्र—दोनों मुनिराज आषाढ सुदी पूर्णिमाको अनायास ही आ पहुँचे ॥६६-७१॥ सब प्रकारकी स्पृहासे रहित दोनों मुनिराज, जहाँ पत्तोंके पड़नेसे पानी प्रासुक हो गया था ऐसे उस श्मशानमें एक वृक्षके नीचे चार मासका उपवास लेकर विराजमान हो गये ॥७२॥ वे दोनों मुनिराज कभी पर्यंकासनसे विराजमान रहते थे, कभी कायोत्सर्ग धारण करते थे, और कभी वीरासन आदि विविध आसनोंसे अवस्थित रहते थे। इस तरह उन्होंने वर्षाकाल व्यतीत किया ॥७३॥

तदनन्तर जिसमें समस्त मानव उद्योग-धन्धोंसे लग गये थे तथा जो प्रातःकालके समान समस्त संसारको प्रकाशित करनेमें निपुण थी ऐसी शरद् ऋतु आयी ॥७४॥ उस समय आकाशांगणमें कहीं-कहीं ऐसे सफेद मेघ दिखाई देते थे जो फूले हुए काशके फूलोंके समान थे तथा मन्द-मन्द हिल रहे थे ॥७५॥ जिस प्रकार उत्सर्पिणी कालके दुःषमा-काल बीतनेपर भव्य जीवोंके बन्धु श्रीजिनेन्द्रदेव सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार मेघोंके आगमनसे रहित आकाशमें सूर्य सुशोभित होने लगा ॥७६॥ जिस प्रकार कुमुदोंके बीचमें तरुण राजहंस सुशोभित होता है उसी प्रकार ताराओंके समूहके बीचमें चन्द्रमा सुशोभित होने लगा ॥७७॥ रात्रिके समय चन्द्रमारूपी प्रणालीके मुखसे निकली हुई क्षीरसागरके समान सफेद चाँदनीसे समस्त संसार व्याप्त हो गया ॥७८॥ जिनके रेतीले किनारे तरंगोंसे चिह्नित थे, तथा जो क्रौंच सारस चकवा आदि पक्षियोंके शब्दके बहाने मानो परस्परमें बातचीत कर रही थीं ऐसी नदियाँ प्रसन्नताको प्राप्त हो गयी थीं ॥७९॥ जिनपर भ्रमर चल रहे थे ऐसे कमलोंके समूह तालाबोंमें इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानो मिथ्यात्व-

---

१. विषमावनिम् म.। २. -क्षतिः म.। ३. धीरौ + आषाढ्यां आषाढमासपूर्णिमायाम्, धीरावषाढ्यं (?) म.। ४. चतुर्मासो- ज.। ५. पत्र सङ्ग- म.। विकासकाश -म।

उन्मज्जन्ति चलद्भृङ्गाः सरःसु कमलाकराः । भव्यसंघा इवोन्मुक्तमिथ्यात्वमलसंचयाः ॥८०॥
तलेषु तुङ्गहर्म्याणां पुष्पप्रकरचारुषु । रमन्ते भोगसंपन्ना नरा नक्तं प्रियान्विताः ॥८१॥
सन्मानितसुहृद्बन्धुजनसंघा महोत्सवाः । दम्पतीनां वियुक्तानां संजायन्ते समागमाः ॥८२॥
कार्तिक्यामुपजातायां विहरन्ति तपोधनाः । जिनातिशयदेशेषु महिमोद्यतजन्तुषु ॥८३॥
अथ तौ पारणाहेतोः समाप्तनियमौ मुनी । निवेशं गन्तुमारब्धौ गत्या समयवृष्टया ॥८४॥
[1]सहदेवीचरी व्याघ्री दृष्ट्वा तौ क्रोधपूरिता । शोणितारुणसंकीर्णधुतकेसरसंचया ॥८५॥
दंष्ट्राकरालवदना स्फुरत्पिङ्गनिरीक्षणा । मस्तकोर्ध्वबलत्पुच्छा नखक्षतवसुंधरा ॥८६॥
कृतगम्भीरहुंकारा मारीवोपात्तविग्रहा । ललल्लोहितजिह्वाग्रा विस्फुरद्देहधारिणी ॥८७॥
मध्याह्नरविसंकाशा कृत्वा क्रीडां चिरेण सा । उत्पपात महावेगा[5]दीक्षित्वा सुकोशलम् ॥८८॥
उत्पतन्तीं तु तां दृष्ट्वा तौ मुनी चारुविभ्रमौ । सालम्बं[2] मयनिर्मुक्तौ कायोत्सर्गेण तस्थतुः ॥८९॥
सुकोशलमुनेरूर्ध्वं मूर्ध्नः प्रभृति[3] निर्दया । दारयन्ती नखैर्देहं [4]पतिता सा महीतले ॥९०॥
[6]तयासौ दारितो देहे विमुञ्चन्नस्रसंहतीः । बभूव गिरिवद्धातुवारिनिर्झरशैलवत् ॥९१॥
[6]ततस्तस्य पुरः स्थित्वा कृत्वा नानाविचेष्टितम् । पापा खादितुमारब्धा मुनिमारभ्य पादतः ॥९२॥

रूपी मैलके समूहको छोड़ते हुए भव्य जीवोंके समूह ही हों ॥८०॥ भोगी मनुष्य, फूलोंके समूहसे सुन्दर ऊँचे-ऊँचे महलोंके तल्लोंसे रात्रिके समय अपनी वल्लभाओंके साथ रमण करने लगे ॥८१॥ जिनमें मित्र तथा बन्धुजनोंके समूह सम्मानित किये गये थे तथा जिनमें महान् उत्सवकी वृद्धि हो रही थी ऐसे वियुक्त स्त्री-पुरुषोंके समागम होने लगे ॥८२॥ कार्तिक मासकी पूर्णिमा व्यतीत होनेपर तपस्वीजन उन स्थानोंमें विहार करने लगे जिनमें भगवान्‌के गर्भ जन्म आदि कल्याणक हुए थे तथा जहाँ लोग अनेक प्रकारकी प्रभावना करनेमें उद्यत थे ॥८३॥

अथानन्तर जिनका चातुर्मासोपवासका नियम पूर्ण हो गया था ऐसे वे दोनों मुनिराज आगमानुकूल गतिसे गमन करते हुए पारणाके निमित्त नगरमें जानेके लिए उद्यत हुए ॥८४॥ उसी समय एक व्याघ्री जो पूर्वभवमें सुकोशलमुनिकी माता सहदेवी थी उन्हें देखकर क्रोधसे भर गयी, उसकी खूनसे लाल-लाल दिखनेवाली बिखरी जटाएँ काँप रही थीं, उसका मुख दाढ़ोंसे भयंकर था, पीले-पीले नेत्र चमक रहे थे, उसकी गोल पूँछ मस्तकके ऊपर आकर लग रही थी, नखोंके द्वारा वह पृथिवीको खोद रही थी, गम्भीर हुंकार कर रही थी, ऐसी जान पड़ती थी मानो शरीरको धारण करनेवाली मारी ही हो, उसकी लाल-लाल जिह्वाका अग्रभाग लपलपा रहा था, वह देदीप्यमान शरीरको धारण कर रही थी और मध्याह्नके सूर्यके समान जान पड़ती थी। बहुत देर तक क्रीड़ा करनेके बाद उसने सुकोशलस्वामीको लक्ष्य कर ऊँची छलांग भरी ॥८५-८८॥ सुन्दर शोभाको धारण करनेवाले दोनों मुनिराज, उसे छलांग भरती देख 'यदि इस उपसर्गसे बचे तो आहार पानी ग्रहण करेंगे अन्यथा नहीं' इस प्रकारकी सालम्ब प्रतिज्ञा लेकर निर्भय हो कायोत्सर्गसे खड़े हो गये ॥८९॥ वह दयाहीन व्याघ्री सुकोशल मुनिके ऊपर पड़ी और नखोंके द्वारा उनके मस्तक आदि अंगोंको विदारती हुई पृथिवीपर आयी ॥९०॥ उसने उनके समस्त शरीरको चीर डाला जिससे खूनकी धाराओंको छोड़ते हुए वे उस पहाड़के समान जान पड़ते थे जिससे गेरू आदि धातुओंसे मिश्रित पानीके निर्झर झर रहे हों ॥९१॥ तदनन्तर वह पापिन उनके सामने खड़ी होकर तथा नाना प्रकारकी चेष्टाएँ कर उन्हें पैरकी ओरसे खाने लगी ॥९२॥

---

१. भूतपूर्वा सहदेवी, सहदेवीचरी । २. सालम्बमयनिर्मुक्तौ म. । ३. मूर्धप्रभृति म. । ४. दलन्ती तं पदघातत: । ५. एष श्लोकः ख. पुस्तके नास्ति । ६. यतेस्तस्य ख. ।

पश्य श्रेणिक संसारे संमोहस्य विचेष्टितम् । यत्राभीष्टस्य पुत्रस्य माता गात्राणि खादति ॥९३॥
किमतोऽन्यत्परं कष्टं यज्जन्मान्तरमोहिताः । बान्धवा एव गच्छन्ति वैरितां पापकारिणः ॥९४॥
ततो मेरुस्थिरस्यास्य शुक्लध्यानावगाहिनः । उत्पन्नं केवलज्ञानं देहमुक्तेरनन्तरम् ॥९५॥
आगत्य [1]च सहेन्द्रेण प्रमोदेन सुरासुराः । चक्रुर्देहार्चनं तस्य दिव्यपुष्पादिसंपदा ॥९६॥
व्याघ्री कीर्तिधरेणापि सुवाक्यैर्बोधिता सती । संन्यासेन शुभं कालं कृत्वा स्वर्गसुपागता ॥९७॥
ततः कीर्तिधरस्यापि केवलज्ञानमुद्गतम् । यात्रा सैकैव देवानां जाता महिमकारिणाम् ॥९८॥
महिमानं परं कृत्वा केवलस्य सुरासुराः । पादौ केवलिनोर्नत्वा ययुः स्थानं यथायथम् ॥९९॥
सुकोशलस्य माहात्म्यमधीते यः पुमानिति । उपसर्गविनिर्मुक्तः सुखं जीवत्यसौ चिरम् ॥१००॥
देवी विचित्रमालाथ संपूर्णे समये सुतम् । प्रसूता तनयं चारुलक्षणाङ्कितविग्रहम् ॥१०१॥
हिरण्यरुचिरा माता तस्मिन् गर्भस्थितेऽभवत्[2] । ततो हिरण्यगर्भाख्यामतोऽसौ सुन्दरोऽगमत् ॥१०२॥
नाभेयसमयस्तेन गुणैः पुनरिवाहृतः । हरेः स तनयां लेभे नाम्नामृतवतीं शुभाम् ॥१०३॥
सुहृद्बान्धवसंपन्नः सर्वशास्त्रार्थपारगः । अक्षीणद्रविणः श्रीमान् हेमपर्वतसंनिभः ॥१०४॥
परानुभवन् भोगानभ्यदासौ महामनाः । मध्ये मृङ्गामकेशानां पलिताङ्कुरमैक्षत ॥१०५॥
दर्पणस्य स्थितं मध्ये दृष्ट्वा तं पलिताङ्कुरम् । मृत्योर्दूतमसंमाहूतमात्मानं शोकमाप्तवान् ॥१०६॥

गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे श्रेणिक ! मोहकी चेष्टा तो देखो जहाँ माता ही प्रिय पुत्रके शरीरको खाती है ॥९३॥ इससे बढ़कर और क्या कष्टकी बात होगी कि दूसरे जन्मसे मोहित हो बान्धवजन ही अनर्थकारी शत्रुताको प्राप्त हो जाते हैं ॥९४॥

तदनन्तर मेरुके समान स्थिर और शुक्ल ध्यानको धारण करनेवाले सुकोशल मुनिको शरीर छूटनेके पहले ही केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ॥९५॥ सुर और असुरोंने इन्द्रके साथ आकर बड़े हर्षसे दिव्य पुष्पादि सम्पदाके द्वारा उनके शरीरकी पूजा की ॥९६॥ सुकोशलके पिता कीर्तिधर मुनिराजने भी उस व्याघ्रीको मधुर शब्दोंसे सम्बोधा जिससे संन्यास ग्रहण कर वह स्वर्ग गयी ॥९७॥ तदनन्तर उसी समय कीर्तिधर मुनिराजको भी केवलज्ञान उत्पन्न हुआ सो महिमा को करनेवाले देवोंकी वही एक यात्रा पिता और पुत्र दोनोंका केवलज्ञान महोत्सव करनेवाली हुई ॥९८॥ सुर और असुर केवलज्ञानकी परम महिमा फैलाकर तथा दोनों केवलियोंके चरणोंको नमस्कार कर यथायोग्य अपने-अपने स्थानपर गये ॥९९॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि जो पुरुष सुकोशलस्वामीके माहात्म्यको पढ़ता है वह उपसर्गसे रहित हो चिरकाल तक सुखसे जीवित रहता है ॥१००॥

अथानन्तर सुकोशलकी स्त्री विचित्रमालाने गर्भका समय पूर्ण होनेपर सुन्दर लक्षणोंसे चिह्नित शरीरको धारण करनेवाला पुत्र उत्पन्न किया ॥१०१॥ चूँकि उस बालकके गर्भमें स्थित रहनेपर माता सुवर्णके समान सुन्दर हो गयी थी इसलिए वह बालक हिरण्यगर्भ नामको प्राप्त हुआ ॥१०२॥ आगे चलकर हिरण्यगर्भ ऐसा राजा हुआ कि उसने अपने गुणोंके द्वारा भगवान् ऋषभदेवका समय ही मानो पुनः वापस लाया था। उसने राजा हरिकी अमृतवती नामकी शुभ पुत्रीके साथ विवाह किया ॥१०३॥ राजा हिरण्यगर्भ समस्त मित्र तथा बान्धवजनोंसे सहित था, सर्व शास्त्रोंका पारगामी था, अखण्ड धनका स्वामी था, श्रीमान् था, सुमेरु पर्वतके समान सुन्दर था, और उदार हृदय था। वह उत्कृष्ट भोगोंको भोगता हुआ समय बिताता था कि एक दिन उसने अपने भ्रमरके समान काले केशोंके बीच एक सफ़ेद बाल देखा ॥१०४-१०५॥ दर्पणके मध्यमें स्थित उस सफेद बालको देखकर वह ऐसा शोकको प्राप्त हुआ मानो अपने आपको बुलानेके

---

१. चमरेन्द्रेण ख., च महेन्द्रेण ज. । २. भवेत् म. ।

अचिन्तयच्च हा कष्टं बलाद्गलानि मेऽनया[1] । शक्तिकान्तिविनाशिन्या व्याप्यन्ते जरसाधुना ॥१०७॥
चन्दनद्रुमसंकाशः[2] कायोऽयमधुना मम । जराज्वलननिर्दग्धोऽङ्गारकल्पी भविष्यति ॥१०८॥
तर्कयन्ती रुजा छिद्रं या स्थिता समयं चिरम् । पिशाचीवाधुना सा मे शरीरं बाधयिष्यति ॥१०९॥
चिरं बद्धक्रमो योऽस्थाद् व्याघ्रवद्ग्रहणोत्सुकः । मृत्युः स मेऽधुना देहं प्रसभं भक्षयिष्यति ॥११०॥
कर्मभूमिमिमां प्राप्य धन्यास्ते युवपुङ्गवाः[3] । व्रतपोतं समारुह्य तरन्ति[4] भवसागरम् ॥१११॥
इति संचिन्त्य विन्यस्य राज्येऽमृतवतीसुतम् । नघुषाख्यं प्रवव्राज पार्श्वे विमलयोगिनः ॥११२॥
न घोषितं यतस्तस्मिन् गर्भस्थेऽप्यशुभं भुवि । नघुषोऽसौ ततः ख्यातो[5] गुणनामितविष्टपः ॥११३॥
स जायां सिंहिकामिख्यां स्थापयित्वा पुरे ययौ । उत्तरां ककुभं जेतुं सामन्तान् प्रत्यवस्थितान् ॥११४॥
दूरीभूतं नृपं[6] ज्ञात्वा दाक्षिणात्या नराधिपाः । पुरीं गृहीतुमाजग्मुर्विनीतां[7] भूरिसाधनाः ॥११५॥
रणे विजित्य तान् सर्वान् सिंहिकातिप्रतापिनी । स्थापयित्वा दृढं स्थाने रक्षनाम्नतरं नृपम् ॥११६॥
सामन्तैर्निर्जितैः सार्द्धं जेतुं शेषान्नराधिपान् । जगाम दक्षिणामाशां शस्त्रशास्त्रकृतश्रमा[8] ॥११७॥
प्रतापेनैव निर्जित्य सामन्तान् प्रत्यवस्थितान् । आजगाम पुरीं राज्ञी जयनिस्वनपूरिता ॥११८॥
नघुषोऽप्युत्तरामाशां वशीकृत्य समागतः । कोपं परममापन्नः श्रुतदारपराक्रमः ॥११९॥

लिए यमका दूत ही आ पहुँचा हो ॥१०६॥ वह विचार करने लगा कि हाय बड़े कष्टकी बात है कि इस समय शक्ति और कान्तिको नष्ट करनेवाली इस वृद्धावस्थाके द्वारा मेरे अंग बलपूर्वक हरे जा रहे हैं ॥१०७॥ मेरा यह शरीर चन्दनके वृक्षके समान सुन्दर है सो अब वृद्धावस्था-रूपी अग्निसे जलकर अंगारके समान हो जावेगा ॥१०८॥ जो वृद्धावस्था रोगरूपी छिद्रकी प्रतीक्षा करती हुई चिरकालसे स्थित थी अब वह पिशाचीकी नाईं प्रवेश कर मेरे शरीरको बाधा पहुँचावेगी ॥१०९॥ ग्रहण करनेमें उत्सुक जो मृत्यु व्याघ्रकी तरह चिरकालसे बद्धक्रम होकर स्थित था अब वह हठात् मेरे शरीरका भक्षण करेगा ॥११०॥ वे श्रेष्ठ तरुण धन्य हैं जो इस कर्मभूमिको पाकर तथा व्रतरूपी नावपर सवार हो संसाररूपी सागरसे पार हो चुके हैं ॥१११॥ ऐसा विचारकर उसने अमृतवतीके पुत्र नघुषको राज्य-सिंहासनपर बैठाकर विमल योगीके समीप दीक्षा धारण कर ली ॥११२॥ चूँकि उस पुत्रके गर्भमें स्थित रहते समय पृथिवीपर अशुभ-की घोषणा नहीं हुई थी अर्थात् जबसे वह गर्भमें आया था तभीसे अशुभ शब्द नहीं सुनाई पड़ा था इसलिए वह 'नघुष' इस नामसे प्रसिद्ध हुआ था। उसने अपने गुणोंसे समस्त संसारको नम्रीभूत कर दिया था ॥११३॥

अथानन्तर किसी समय राजा नघुष अपनी सिंहिका नामक रानीको नगरमें रखकर प्रतिकूल शत्रुओंको वश करनेके लिए उत्तर दिशाकी ओर गया ॥११४॥ इधर दक्षिण दिशाके राजा नघुषको दूरवर्ती जानकर उसकी अयोध्या नगरीको हथियानेके लिए आ पहुँचे। वे राजा बहुत भारी सेनासे सहित थे ॥११५॥ परन्तु अत्यन्त प्रतापिनी सिंहिका रानीने उन सबको युद्धमें जीत लिया। इतना ही नहीं वह एक विश्वासपात्र राजाको नगरकी रक्षाके लिए नियुक्त कर युद्धमें जीते हुए सामन्तोंके साथ शेष राजाओंको जीतनेके लिए दक्षिण दिशाकी ओर चल पड़ी। शस्त्र और शास्त्र दोनोंमें ही उसने अच्छा परिश्रम किया था ॥११६-११७॥ वह प्रतिकूल सामन्तोंको अपने प्रतापसे ही जीतकर विजयनादसे दिशाओंको पूर्ण करती हुई नगरीमें वापस आ गयी ॥११८॥ उधर जब राजा नघुष उत्तर दिशाको वश कर वापस आया तब स्त्रीके पराक्रम-

---

१. मे तया म. । २. संकाशकायोऽयमधुना म., क., ख. । ३. युगपुङ्गवाः म. । ४. तरयें म. । ५. गुण-नामितविष्टपे म. । गुणानामिति विष्टपे ब. । ६. नरं म. । भृशं ख. । ७. पुरी म. । ८. विनीता म. । अयोध्याम् । ९. श्रमाः म. ।

अखिलखण्डितशीलाया [1]नेदृग्धार्ष्ट्यं कुलस्त्रियाः । भवतीति विनिश्चित्य सिंहिकायां व्यरज्यत ॥११९॥
महादेवीपदात् साथ च्यावितां साधुचेष्टिता । महादरिद्रतां प्राप्ता कालं कंचिदवस्थिता ॥१२१॥
अन्यदाथ महादाहज्वरोऽभूत् पृथिवीपतेः । सर्वैर्वैद्यप्रयुक्तानामौषधानामगोचरः [2]॥१२२॥
सिंहिका तं तथाभूतं ज्ञात्वा शोकसमाकुला । स्वं च शोधयितुं साध्वी क्रियामेतां समाश्रिता ॥१२३॥
समाहूयाखिलान् बन्धून् सामन्तान् प्रकृतीस्तथा । [3]करकोशे समादाय वारि दत्तं पुरोधसा ॥१२४॥
जगाद यदि मे भर्ता नान्यश्चेतस्यपि स्थितः । ततः सिक्तोऽम्बुनानेन राजास्तु विगतज्वरः ॥१२५॥
ततोऽसौ सिक्तमात्रेऽस्मिन् तत्करोदकशीकरे । दन्तवीणाकृतस्वानो [4] हिममग्न इवाभवत् ॥१२६॥
साधु साध्विति शब्देन गगनं परिपूरितम् । अदृष्टजननिर्मुक्तैर्मुष्टं [5] सुमनसां चयैः ॥१२७॥
इति तां शीलसंपन्नां विज्ञाय नरपुङ्गवः । महादेवीपदे [6]भूयः कृतपूजामतिष्ठिपत् ॥१२८॥
अनुभूय चिरं भोगान् तया सार्धमकण्टकः । [7]निःशेषपूर्वजाचारं कृत्वा मनसि निःस्पृहः ॥१२९॥
संभूतं सिंहिकादेव्यां सुतं राज्ये निवाय सः । जगाम पदवीं धीरो जनकेन निषेवितां ॥१३०॥
नघुषस्य सुतो यस्मात् सुदासीकृतविद्विषः । सौदास इति तेनासौ भुवने परिकीर्तितः ॥१३१॥
तस्य गोत्रे दिनान्यष्टौ [8] चतुर्मासीसमासिषु । भुक्तं न केनचिन्मांसमपि [9] मांसैधितात्मना ॥१३२॥

की बात सुनकर वह परम क्रोधको प्राप्त हुआ ॥११९॥ अखण्डशीलको धारण करनेवाली कुलांगना-की ऐसी धृष्टता नहीं हो सकती ऐसा निश्चय कर वह सिंहिकासे विरक्त हो गया ॥१२०॥ वह उत्तम चेष्टाओंसे सहित थी फिर भी राजाने उसे महादेवीके पदसे च्युत कर दिया। इस तरह महादरिद्रता-को प्राप्त हो वह कुछ समय तक बड़े कष्टसे रही ॥१२१॥

अथानन्तर किसी समय राजाको ऐसा महान् दाहज्वर हुआ कि जो समस्त वैद्योंके द्वारा प्रयुक्त ओषधियोंसे भी अच्छा नहीं हो सका ॥१२२॥ जब सिंहिकाको इस बातका पता चला तब वह शोकसे बहुत ही आकुल हुई। उसी समय उसने अपने आपको निर्दोष सिद्ध करनेके लिए यह काम किया ॥१२३॥ कि उसने समस्त बन्धुजनों, सामन्तों और प्रजाको बुलाकर अपने करपुटमें पुरोहितके द्वारा दिया हुआ जल धारण किया और कहा कि यदि मैंने अपने चित्तमें किसी दूसरे भर्ताको स्थान नहीं दिया हो तो इस जलसे सींचा हुआ भर्ता दाहज्वरसे रहित हो जावे ॥१२४-१२५॥ तदनन्तर सिंहिका रानीके हाथमें स्थित जलका एक छींटा ही राजापर सींचा गया था कि वह इतना शीतल हो गया मानो बर्फमें ही डुबा दिया गया हो। शीतके कारण उसकी दन्तावली वीणाके समान शब्द करने लगी ॥१२६॥ उसी समय 'साधु'-'साधु' शब्दसे आकाश भर गया औ अदृष्टजनोंके द्वारा छोड़े हुए फूलोंके समूह बरसने लगे ॥१२७॥ इस प्रकार राजा नघुषने सिंहिका रानीको शीलसम्पन्न जानकर फिरसे उसे महादेवी पदपर अधिष्ठित किया तथा उसकी बहुत भारी पूजा की ॥१२८॥ शत्रुरहित होकर उसने चिरकाल तक उसके साथ भोगोंका अनुभव किया और अपने पूर्वपुरुषोंके द्वारा आचारित समस्त कार्य किये। उसकी यह विशेषता थी कि भोगरत रहनेपर भी वह मनमें सदा भोगोंसे निःस्पृह रहता था ॥१२९॥ अन्तमें वह धीरवीर सिंहिकादेवीसे उत्पन्न पुत्रको राज्य देकर अपने पिताके द्वारा सेवित मार्गका अनुसरण करने लगा अर्थात् पिताके समान उसने जिनदीक्षा धारण कर ली ॥१३०॥

राजा नघुष समस्त शत्रुओंको वश कर लेनेके कारण सुदास कहलाता था। इसलिए उसका पुत्र संसारमें सौदास (सुदासस्यापत्यं पुमान् सौदासः) नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥१३१॥ प्रत्येक चार

१. नेदृग्धीर्ह्यकुलस्त्रियाः म. । २. मोषधीनामगोचरः म. । ३. करे कोशं ख., ब. । ४. कृतस्थानो म. । ५. दृष्टं क., ख., ज. । ६. भूपः म. । ७. निःशेष म. । ८. चतुर्वासी म. । ९. मांसैर्धृतात्मना ब. ।

कर्मणस्त्वशुभस्यास्य कस्यापि समुदीरणात् । अभूच्च खादितुं मांसं तेष्वेव दिवसेषु धीः ॥१३३॥
ततोऽनेन समाहूय सूदः स्वैरमभाषत । भोक्तुमुत्पन्ना मम मद्राद्य धीरिति ॥१३४॥
तेनोक्तं देव जानासि दिनेष्वेतेष्वमारणम् । जिनपूजासमृद्धेषु समस्तायामपि क्षितौ ॥१३५॥
नृपेणोचे पुनः सूदो म्रियेऽद्य यदि नाद्मि तत् । इति निश्चित्य यद्युक्तं तदाचर किमुक्तिभिः ॥१३६॥
तदवस्थं नृपं ज्ञात्वा पुरात् सूदो बहिर्गतः । ददर्श मृतकं बालं तद्विने परिखोज्झितम् ॥१३७॥
तं वस्त्रावृतमानीय संस्कृत्य स्वादुवस्तुभिः । नरेन्द्राय ददावस्तुं मन्यसेऽमुष्य गोचरम् (?) ॥१३८॥
महामांसरसास्वादनिरान्तप्रीतमानसः । भुक्त्वोत्थितो मिथः सूदं स जगाद सविस्मयः ॥१३९॥
भद्र भद्र कुतः प्राप्तं मांसमेतत्त्वयेदृशम् । अनास्वादितपूर्वोऽयं रसो यस्यातिपेशलः ॥१४०॥
सोऽभयं मार्गयित्वास्मै यथावत् विन्यवेदयत् । ततो राजा जगादेदं सर्वदा क्रियतामिति ॥१४१॥
सूदोऽथ दातुमारब्धः शिशुवर्गाय मोदकान् । शिशवस्तत्प्रसङ्गेन प्रत्यहं तं समाययुः ॥१४२॥
गृहीत्वा मोदकान् यातां शिशूनां पश्चिमं ततः । मारयित्वा ददौ सूदो राज्ञे संस्कृत्य संततम् ॥१४३॥
प्रत्यहं क्षीयमाणेषु पौरबालेषु निश्चितः । सूदेन सहितो राजा देशात् पौरैर्निराकृतः ॥१४४॥
कनकाभासमुत्पन्नस्तस्य सिंहरथः सुतः । राज्येऽवस्थापितः पौरैः प्रणतः सर्वपार्थिवैः ॥१४५॥
महामांसरसासक्तः सौदासो जग्धसूदकः । बभ्राम धरणीं दुःखी भक्षयन्नुज्झितान् शवान् ॥१४६॥

मास समाप्त होनेपर जब अष्टाह्निकाके आठ दिन आते थे तब उसके गोत्रमें कोई भी मांस नहीं खाता था भले ही उसका शरीर मांससे ही क्यों न वृद्धिंगत हुआ हो ॥१३२॥ किन्तु इस राजा सौदासको किसी अशुभ कर्मके उदयसे इन्हीं दिनोंमें मांस खानेकी इच्छा उत्पन्न हुई ॥१३३॥ तब उसने रसोइयाको बुलाकर एकान्तमें कहा कि हे भद्र ! आज मेरे मांस खानेकी इच्छा उत्पन्न हुई है ॥१३४॥ रसोइयाने उत्तर दिया कि देव ! आप यह जानते हैं कि इन दिनोंमें समस्त पृथ्वीमें बड़ी समृद्धिके साथ जिनपूजा होती है तथा जीवोंके मारनेकी मनाही है ॥१३५॥ यह सुन राजाने रसोइयासे कहा कि यदि आज मैं मांस नहीं खाता हूँ तो मर जाऊँगा। ऐसा निश्चय कर जो उचित हो सो करो। बात करनेसे क्या लाभ है ? ॥१३६॥ राजाकी ऐसी दशा जानकर रसोइया नगरके बाहर गया। वहाँ उसने उसी दिन परिखामें छोड़ा हुआ एक मृतक बालक देखा ॥१३७॥ उसे वस्त्रसे लपेटकर वह ले आया और स्वादिष्ट वस्तुओंसे पकाकर खानेके लिए राजाको दिया ॥१३८॥ महामांस (नरमांस) के रसास्वादसे जिसका मन अत्यन्त प्रसन्न हो रहा था ऐसा राजा उसे खाकर जब उठा तब उसने आश्चर्यचकित हो रसोइयासे कहा कि भद्र ! जिसके इस अत्यन्त मधुर रसका मैंने पहले कभी स्वाद नहीं लिया ऐसा यह मांस तुमने कहाँसे प्राप्त किया है ? ॥१३९-१४०॥ इसके उत्तरमें रसोइयाने अभयदानकी याचना कर सब बात ज्योंकी-त्यों बतला दी। तब राजाने कहा कि सदा ऐसा ही किया जाये ॥१४१॥

अथानन्तर रसोइयाने छोटे-छोटे बालकोंके लिए लड्डू देना शुरू किया, उसके लोभसे बालक प्रतिदिन उसके पास आने लगे ॥१४२॥ लड्डू लेकर जब बालक जाने लगते तब उनमें जो पीछे रह जाता था उसे मारकर तथा पकाकर वह निरन्तर राजाको देने लगा ॥१४३॥ जब प्रतिदिन नगरके बालक कम होने लगे तब लोगोंने इसका निश्चय किया और रसोइयाके साथ-साथ राजाको नगरसे निकाल दिया ॥१४४॥ सौदासकी कनकाभा स्त्रीसे एक सिंहरथ नामका पुत्र हुआ था। नगरवासियोंने उसे ही राज्यपदपर आरूढ़ किया तथा सब राजाओंने उसे प्रणाम किया ॥१४५॥ राजा सौदास नरमांसमें इतना आसक्त हो गया कि उसने अपने रसोइयाको ही खा

१. तेनोक्तो म., ख., ज., क. । २. वस्त्रावृत्त-म. । ३. मन्यसे मुख्यगोचरम् म., ख., ज. । ४. सर्वथा म. । ५. गच्छताम् । यातान् म. । ६. 'राज्ञे सततं सोऽथ सूदकः' म. ।

सिंहस्येव पलो मांसमाहारोऽस्यामवत्ततः । सिंहसौदासशब्देन भुवने ख्यातिमागतः ॥१४७॥
दक्षिणापथमासाद्य प्राप्यानम्बरसंश्रयम् । श्रुत्वा धर्मं बभूवासावणुव्रतधरो महान् ॥१४८॥
ततो महापुरे राज्ञि मृते पुत्रविवर्जिते । स्कन्धमारोपितः प्राप राज्यं राजद्विपेन सः ॥१४९॥
न्यसर्जयच्च पुत्रस्य नतये दूतमूर्जितः । सोऽलिखत्तव गर्ह्यस्य न नमामीति निर्भयः ॥१५०॥
तस्योपरि ततो याति सौदासे विषयोऽखिलः । प्रपलायितुमारेभे भक्षणत्रासकम्पितः ॥१५१॥
[1]स जित्वा तनयं युद्धे राज्ये न्यस्य पुनः कृती । महासंवेगसंपन्नः प्रविवेश तपोवनम् ॥१५२॥
ततो ब्रह्मरथो जातश्चतुर्वक्त्रस्ततोऽभवत् । तस्माद्धेमरथो जज्ञे जातः शतरथस्ततः ॥१५३॥
उदपादि पृथुस्तस्माद्वजस्तस्मात् पयोरथः । बभूवेन्द्ररथोऽमुष्माद्दिननाथरथस्ततः ॥१५४॥
मान्धाता वीरसेनश्च प्रतिमन्युस्ततः क्रमात् । तस्मा कमलबन्धुश्च दीप्त्या कमलबान्धवः ॥१५५॥
प्रतापेन रवेस्तुल्यः समस्तस्थितिकोविदः । रविमन्युश्च विज्ञेयो वसन्ततिलकस्तथा ॥१५६॥
कुबेरदत्तनामा च कुन्थुभक्तिश्च कीर्तिमान् । शरभद्विरदौ प्रोक्तौ रथशब्दोत्तरश्रुती ॥१५७॥
सृगेशदमनामिख्यो हिरण्यकशिपुस्तथा । [2]पुञ्जस्थलः ककुत्थश्च रघुः परमविक्रमः ॥१५८॥
इतीक्ष्वाकुकुलोद्भूताः कीर्तिता भुवनाधिपाः । भूरिशोऽत्र गता मोक्षं कृत्वा दैगम्बरं व्रतम् ॥१५९॥
आसीत्ततो विनीतायामनरण्यो महानृपः । [3]अनरण्यः कृतो येन देशो वासयता जनम् ॥१६०॥

लिया। अन्तमें वह छोड़े हुए मुर्दोंको खाता हुआ दुःखी हो पृथ्वीपर भ्रमण करने लगा ॥१४६॥ जिस प्रकार सिंहका आहार मांस है उसी प्रकार इसका भी आहार मांस हो गया था। इसलिए यह संसारमें सिंहसौदासके नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ ॥१४७॥

अथानन्तर वह दक्षिण देशमें जाकर एक दिगम्बर मुनिके पास पहुँचा और उनसे धर्म श्रवण कर बड़ा भारी अणुव्रतोंका धारी हो गया ॥१४८॥ तदनन्तर उसी समय महापुर नगरका राजा मर गया था। उसके कोई सन्तान नहीं थी। सो लोगोंने निश्चय किया कि पट्टबन्ध हाथी छोड़ा जावे। वह जिसे कन्धेपर बैठाकर लावे उसे ही राजा बना दिया जाये। निश्चयानुसार पट्टबन्ध हाथी छोड़ा गया और वह सिंहसौदासको कन्धेपर बैठाकर नगरमें ले गया। फलस्वरूप उसे राज्य प्राप्त हो गया ॥१४९॥ कुछ समय बाद जब सौदास बलिष्ठ हो गया तब उसने नमस्कार करनेके लिए पुत्रके पास दूत भेजा। इसके उत्तरमें पुत्रने निर्भय होकर लिख दिया कि चूँकि तुम निन्दित आचरण करनेवाले हो अतः तुम्हें नमस्कार नहीं करूँगा ॥१५०॥ तदनन्तर सौदास पुत्रके ऊपर चढ़ाई करनेके लिए चला सो 'कहीं यह खा न ले' इस भयसे समस्त देशवासी लोगोंने भागना शुरू कर दिया ॥१५१॥ अन्तमें सौदासने युद्धमें पुत्रको जीतकर उसे ही राजा बना दिया और स्वयं कृतकृत्य हो वह महावैराग्यसे युक्त होता हुआ तपोवनमें चला गया ॥१५२॥

तदनन्तर सिंहरथके ब्रह्मरथ, ब्रह्मरथके चतुर्मुख, चतुर्मुखके हेमरथ, हेमरथके शतरथ, शतरथके मान्धाता, मान्धाताके वीरसेन, वीरसेनके प्रतिमन्यु, प्रतिमन्युके दीप्तिसे सूर्यकी तुलना करनेवाला कमलबन्धु, कमलबन्धुके प्रतापसे सूर्यके समान तथा समस्त मर्यादाको जाननेवाला रविमन्यु, रविमन्युके वसन्ततिलक, वसन्ततिलकके कुबेरदत्त, कुबेरदत्तके कीर्तिमान् कुन्थुभक्ति, कुन्थुभक्तिके शरभरथ, शरभरथके द्विरदरथ, द्विरदरथके सिंहदमन, सिंहदमनके हिरण्यकशिपु, हिरण्यकशिपुके पुंजस्थल, पुंजस्थलके ककुत्थ और ककुत्थके अतिशय पराक्रमी रघु पुत्र हुआ ॥१५३-१५८॥ इस प्रकार इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्न हुए राजाओंका वर्णन किया। इनमें-से अनेक राजा दिगम्बर व्रत धारण कर मोक्षको प्राप्त हुए ॥१५९॥ तदनन्तर राजा रघुके अयोध्यामें अनरण्य नामका ऐसा पुत्र हुआ कि जिसने लोगोंको बसाकर देशको अनरण्य अर्थात् वनोंसे रहित कर

---

१. अजित्वा म.। २. पुञ्जस्थलककुत्थश्च म.। ३. वनरहितः।

पृथिवीमत्यभिख्यास्य महादेवी महागुणा । कान्तिमण्डलमध्यस्था सर्वेन्द्रियसुखावहा ॥१६१॥
द्वौ सुतावुदपस्यातां तस्यामुत्तमलक्षणौ । ज्येष्ठोऽनन्तरथो ज्ञेयः ख्यातो दशरथोऽनुजः ॥१६२॥
सहस्ररश्मिसंज्ञस्य राज्ञो माहिष्मतीपतेः । [1]अजर्यमनरण्येन साकमासीदनुत्तमम् ॥१६३॥
अन्योऽन्यगतिसंबुद्धप्रेमाणौ तौ नरोत्तमौ । सौधर्मैशानदेवेन्द्राविवास्यातां स्वधामनि ॥१६४॥
रावणेन जितो युद्धे सहस्रांशुर्विबुद्धवान् । दीक्षां जैनेश्वरीमाप बिभ्रत्संवेगमुन्नतम् ॥१६५॥
कृतात्तप्रेषिताज् ज्ञात्वा तद्वृत्तान्तमशेषतः । [2]मासजाते श्रियं न्यस्य [3]नार्पौ दशरथे भृशम् ॥१६६॥
सकाशेऽभयसेनस्य निर्ग्रन्थस्य महात्मनः । राजानन्तरथेनामा प्रव्रजाजातिनिःस्पृहः ॥१६७॥
अनरण्योऽगमन्मोक्षमनन्तस्यन्दनो महीम् । सर्वसङ्गविनिर्मुक्तो विजहार यथोचितम् ॥१६८॥
अत्यन्तदुस्सहैर्योगी द्वाविंशतिपरीषहैः । न क्षोभितस्ततोऽनन्तवीर्याख्यां स क्षितौ गतः ॥१६९॥
अपुर्दशरथो लेभे नवयौवनभूषितम् । शैलकूटमिवोत्तुङ्गं नानाकुसुमभूषितम् ॥१७०॥
अथामृतप्रभावायामुत्पन्नां [4]वरयोषिति । दर्भस्थलपुरेशस्य चारुविभ्रमधारिणः ॥१७१॥
राज्ञः सुकोशलाख्यस्य तनयामपराजिताम् । उपयेमे स रत्यापि स्त्रीगुणैरपराजिताम् ॥१७२॥
पुरमस्ति महारम्यं नाम्ना कमलसंकुलम् । सुबन्धुतिलकस्तस्य राजा मित्रास्य भामिनी ॥१७३॥
दुहिता कैकयी नाम तयोः कन्या गुणान्विता । मुण्डमाला कृता यस्या नेत्रेन्दीवरमालया ॥१७४॥

दिया ॥१६०॥ राजा अनरण्यकी पृथिवीमती नामकी महादेवी थी जो महागुणोंसे युक्त थी, कान्तिके समूहके मध्यमें स्थित थी और समस्त इन्द्रियोंके सुख धारण करनेवाली थी ॥१६१॥ उसके उत्तम लक्षणोंके धारक दो पुत्र हुए। उनमें ज्येष्ठ पुत्रका नाम अनन्तरथ और छोटे पुत्रका नाम दशरथ था ॥१६२॥ माहिष्मतीके राजा सहस्ररश्मिकी अनरण्यके साथ उत्तम मित्रता थी ॥१६३॥ परस्परके आने-जानेसे जिनका प्रेम वृद्धिको प्राप्त हुआ था ऐसे दोनों राजा अपने-अपने घर सौधर्म और ऐशानेन्द्रके समान रहते थे ॥१६४॥

अथानन्तर रावणसे पराजित होकर राजा सहस्ररश्मि प्रतिबोधको प्राप्त हो गया जिससे उत्तम संवेगको धारण करते हुए उसने जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली ॥१६५॥ दीक्षा धारण करनेके पहले उसने राजा अनरण्यके पास दूत भेजा था सो उससे सब समाचार जानकर राजा अनरण्य, जिसे उत्पन्न हुए एक माह ही हुआ था ऐसे दशरथके लिए राज्यलक्ष्मी सौंपकर अभयसेन नामक निर्ग्रन्थ महात्माके समीप ज्येष्ठ पुत्र अनन्तरथके साथ अत्यन्त निःस्पृह हो दीक्षित हो गया ॥१६६-१६७॥ अनरण्य मुनि तो मोक्ष चले गये और अनन्तरथ मुनि सर्व प्रकारके परिग्रहसे रहित हो यथायोग्य पृथिवीपर विहार करने लगे ॥१६८॥ अनन्तरथ मुनि अत्यन्त दुःसह बाईस परीषहोंसे क्षोभको प्राप्त नहीं हुए थे इसलिए पृथिवीपर 'अनन्तवीर्य' इस नामको प्राप्त हुए ॥१६९॥

अथानन्तर राजा दशरथने नवयौवनसे सुशोभित तथा नाना प्रकारके फूलोंसे सुभूषित पहाड़के शिखरके समान ऊँचा शरीर प्राप्त किया ॥१७०॥ तदनन्तर उसने दर्भस्थल नगरके स्वामी तथा सुन्दर विभ्रमोंको धारण करनेवाले राजा सुकोशलकी अमृतप्रभावा नामकी उत्तम स्त्रीसे उत्पन्न अपराजिता नामकी पुत्रीके साथ विवाह किया। अपराजिता इतनी उत्तम स्त्री थी कि स्त्रियोंके योग्य गुणोंके द्वारा रति भी उसे पराजित नहीं कर सकी थी ॥१७१-१७२॥ तदनन्तर कमलसंकुल नामका एक महासुन्दर नगर था। उसमें सुबन्धुतिलक नामका राजा राज्य करता था। उसकी मित्रा नामकी स्त्री थी। उन दोनोंके कैकयी नामकी गुणवती पुत्री थी। वह इतनी सुन्दरी थी कि उसके नेत्ररूपी नील कमलोंकी मालासे मस्तक मालारूप हो गया

---

१. संगतं, मैत्रीत्यर्थः । २. मासो जातस्य यस्य स तस्मिन् । ३. नृपसम्बन्धिनाम् । ४. -मुत्पन्ना म. ।

मित्राया जनिता यस्मात् सुचेष्टा रूपशालिनी । सुमित्रेति ततः ख्यातिं भुवने समुपागता ॥१७५॥
महाराजसुतामन्यां भार्यासौ सुप्रभाश्रुतिम् । लावण्यसंपदा[1] वाक्यां जनयन्तीं श्रियञ्जपाम् ॥१७६॥
स सम्यग्दर्शनं लेभे राज्यं च परमोदयम् । आद्ये रत्नमतिस्तस्य चरमे तृणशेमुषी ॥१७७॥
अधोगतिर्यतो राज्यात्[2]पालनादुपजायते । सम्यग्दर्शनयोगात्तु गतिरूर्ध्वमसंशया ॥१७८॥
ये भरतार्यनृपतिभिरुद्धाः कारितपूर्वा जिनवरवासाः ।
भग्नमुपेतान् क्वचिदपि रम्यान् सोऽनयदेतानभिनवभावान् ॥१७९॥
इन्द्रनुतानां स्वयमपि रम्यान् सोर्थकराणां परमनिवासान् ।
रत्नसमूहैः स्फुरदुरुभासः संततपूजाभवदभिवेषः ॥१८०॥
अन्यभवेषु प्रथितसुधर्माः प्राप्य सुराणां श्रियमतिरम्याम् ।
ईदृशजीवा पुनरिह लोके यान्ति[3] समृद्धिं रविरुचिभासः ॥१८१॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते सुकोशलमाहात्म्ययुक्त-दशरथोत्पत्त्यभिधानं नाम द्वाविंशतितमं पर्व ॥२२॥

□

था ॥१७३–१७४॥ चूँकि यह मित्रा नामक मातासे उत्पन्न हुई थी, उत्तम चेष्टाओंसे युक्त थी, तथा रूपवती थी इसलिए लोकमें सुमित्रा इस नामसे भी प्रसिद्धिको प्राप्त हुई थी। राजा दशरथने उसके साथ भी विवाह किया था ॥१७५॥ इनके सिवाय लावण्यरूपी सम्पदाके द्वारा लक्ष्मीको भी लज्जा उत्पन्न करनेवाली सुप्रभा नामकी एक अन्य राजपुत्रीके साथ भी उन्होंने विवाह किया था ॥१७६॥ राजा दशरथने सम्यग्दर्शन तथा परम वैभवसे युक्त राज्य इन दोनों वस्तुओंको प्राप्त किया था। सो प्रथम जो सम्यग्दर्शन है उसे वह रत्न समझता था और अन्तिम जो राज्य था उसे तृण मानता था ॥१७७॥ इस प्रकार माननेका कारण यह है कि यदि राज्यका त्याग नहीं किया जाये तो उससे अधोगति होती है और सम्यग्दर्शनके सुयोगसे निःसन्देह ऊर्ध्वगति होती है ॥१७८॥ भरतादि राजाओंने जो पहले जिनेन्द्र भगवान्‌के उत्तम मन्दिर बनवाये थे वे यदि कहीं भग्नावस्थाको प्राप्त हुए थे तो उन रमणीय मन्दिरोंको राजा दशरथने मरम्मत कराकर पुनः नवीनता प्राप्त करायी थी ॥१७९॥ यही नहीं, उसने स्वयं भी ऐसे जिनमन्दिर बनवाये थे जिनकी कि इन्द्र स्वयं स्तुति करता था तथा रत्नोंके समूहसे जिनकी विशाल कान्ति स्फुरायमान हो रही थी ॥१८०॥ गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन्! अन्य भवोंमें जो धर्मका संचय करते हैं वे देवोंकी अत्यन्त रमणीय लक्ष्मी प्राप्त कर संसारमें पुनः राजा दशरथके समान भाग्यशाली जीव होते हैं और सूर्यके समान कान्तिको धारण करते हुए समृद्धिको प्राप्त होते हैं ॥१८१॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित, पद्मचरितमें सुकोशल स्वामीके माहात्म्यसे युक्त राजा दशरथकी उत्पत्तिका कथन करनेवाला बाईसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२२॥

□

१. लावण्यसंपदं म. । २. -रूर्ध्वा म. । ३. समृद्धिरविरंचिता सा (?) म. ।

त्रयोविंशतितमं पर्व

अन्यदाथ सुखासीनं समायां पुरुतेजसम् । जिनराजकथासक्तं सुरेन्द्रसमविभ्रमम् ॥१॥
सहसा जनितालोको गगने देहतेजसा । समायथावबद्धारः[1] शिष्टो दशरथं सुधीः ॥२॥
कृत्वाभ्युत्थानमासीनमासने तं सुखावहे । दत्ताशीर्वचनं राजा पप्रच्छ कुशलं कृती ॥३॥
निवेद्य कुशलं तेन क्षेमं पृष्टो महीपतिः । सकलं क्षेममित्युक्त्वा पुनरेवमभाषत ॥४॥
आगम्यते कुतः स्थानाद्भगवन् विहृतं[*] च च । किमु दृष्टं श्रुतं किंवा न ते देशोऽस्त्यगोचरः ॥५॥
ततो मनःस्थजैनेन्द्रवर्णनोद्भूतसंमदः । उद्भतं पुलकं बिभ्रदित्यभाषत नारदः ॥६॥
विदेहं नृप यातोऽहमासं चारुजनेहितम्[2] । जिनेन्द्रभवनाधारमूरिशैलविभूषितम् ॥७॥
तत्र निष्क्रमणं दृष्टं मया सीमन्धरार्हतः । नगर्यां पुण्डरीकिण्यां नानारत्नोरुतेजसि ॥८॥
विमानैर्विविधच्छायैः केतुच्छत्रविभूषितैः । यानैश्च विविधैर्दृष्टं देवागमनमाकुलम् ॥९॥
मुनिसुव्रतनाथस्य यथेह सुरपैः कृतम् । तथाभिषेचनं मेरौ मया तस्य श्रुतम् ॥१०॥
सुव्रतस्य जिनेन्द्रस्य चाख्यमानं श्रुतं यथा । तथा मे चरितं तस्य तत्र गोचरितं दृशा ॥११॥
नानारत्नप्रभाव्याप्तानि तुङ्गानि विपुलानि च । दृष्टानि तत्र चैत्यानि कृतपूजान्यनारतम् ॥१२॥

अथानन्तर किसी समय विशाल तेजके धारक तथा इन्द्रके समान शोभासे सम्पन्न राजा दशरथ जिनराजकी कथा करते हुए सभामें सुखसे बैठे थे कि सहसा शरीरके तेजसे प्रकाश उत्पन्न करते हुए शिष्ट पुरुष तथा उत्तम बुद्धिके धारक नारदजी वहाँ आ पहुँचे ॥१-२॥ राजाने उठकर उनका सम्मान किया तथा सुखदायक आसनपर बैठाया। नारदने राजाको आशीर्वाद दिया। तदनन्तर बुद्धिमान् राजाने कुशल-समाचार पूछा ॥३॥ जब नारद कुशल-समाचार कह चुके तब राजाने क्षेम अर्थात् कल्याणरूप हो ? यह पूछा। इसके उत्तरमें 'राजन् ! सब कल्याण रूप है' यह उत्तर दिया ॥४॥ इतनी वार्ता हो चुकनेके बाद राजा दशरथने फिर पूछा कि हे भगवन् ! आप किस स्थानसे आ रहे हैं ? और कहाँ आपका विहार हो रहा है ? आपने क्या देखा क्या सुना सो कहिए ? ऐसा कोई देश नहीं जहाँ आप न गये हों ॥५॥

तदनन्तर मनमें स्थित जिनेन्द्रदेव सम्बन्धी वर्णनसे जिन्हें आनन्द उत्पन्न हो रहा था तथा इसी कारण जो उन्नत रोमांच धारण कर रहे थे ऐसे नारदजी कहने लगे कि हे राजन् ! उत्तम जन जिसकी सदा इच्छा करते हैं तथा जो जिनमन्दिरोंके आधारभूत मेरु, गजदन्त, विजयार्द्ध आदि पर्वतोंसे सुशोभित है ऐसे विदेह क्षेत्रमें गया था ॥६-७॥ वहाँ नाना रत्नोंके विशाल तेजसे युक्त पुण्डरीकिणी नगरीमें मैंने सीमन्धर स्वामीका दीक्षा कल्याणक देखा ॥८॥ पताकाओं और छत्रोंसे सुशोभित रंग-बिरंगे विमानों, तथा विविध प्रकारके वाहनोंसे व्याप्त देवोंका आगमन देखा ॥९॥ मैंने वहाँ सुना था कि जिस प्रकार अपने इस भरत क्षेत्रमें इन्होंने मुनिसुव्रतनाथ भगवान्‌का सुमेरु पर्वतपर अभिषेक किया था वैसा ही वहाँ उन भगवान्‌का इन्होंने सुमेरु पर्वतपर अभिषेक किया था ॥१०॥ मुनिसुव्रत भगवान्‌का जैसा बाँचा गया चरित्र यहाँ सुना है वैसा ही वहाँ उनका चरित्र अपनी आँखोंसे देखा है ॥११॥ जो नाना प्रकारके रत्नोंकी प्रभासे व्याप्त हैं, ऊँचे हैं, विशाल हैं तथा जिनमें निरन्तर पूजा होती रहती है ऐसे

---

१. नारदः । २. चारुजिनेहितं म., चारुजनोहितं ख., चारुजने हितं ज., ब., क. ।

विचित्रमणिभक्तीनि हेमपीठानि पार्थिव । दृष्टान्यस्यन्तरम्याणि वनचैत्यानि नन्दने ॥१३॥
चामीकरमहास्तम्भयुक्तेषु स्फुरितांशुषु । भास्करालयतुल्येषु हारितोरणचारुषु ॥१४॥
रत्नदामसमृद्धेषु महावैदिकभूमिषु । द्विपसिंहादिरूपाढ्यवैडूर्योदारभित्तिषु ॥१५॥
कृतसंगीतदिव्यस्त्रीजनपूरितकुक्षिषु । अमरारण्यचैत्येषु जिनार्चाः प्रणता मया ॥१६॥
चैत्यप्रभाविकासाढ्यं कृत्वा मेरुं प्रदक्षिणम् । पयोदपटलं भित्त्वा समुल्लङ्घ्योन्नतं नभः ॥१७॥
वास्यान्तरगिरीन्द्राणां शिखरेषु महाप्रभाः । चैत्यालया जिनेन्द्राणां प्रणता बहवो मया ॥१८॥
सर्वेषु तेषु चैत्येषु जिनानां प्रतियातनाः[1] । अकृत्रिमा महाभासो मया पार्थिव वन्दिते ॥१९॥
इत्युक्ते देवदेवेभ्यो नम इत्युद्गतध्वनिः । प्रणते करयुग्मं च चक्रे दशरथः शिरः ॥२०॥
संज्ञया नारदेनाथ चोदितो जगतीपतिः । जनस्योत्सारणं चक्रे प्रतीहारेण सादरम् ॥२१॥
उपांशु तावतैवास्य कर्णे कोसलभिषक् । [3]शृणु त्वावहितो राजन् सद्भावं कथयामि ते ॥२२॥
गतस्त्रिकूटशिखरं वन्दारुरहमुत्सुकः । वन्दितं शान्तिभवनं मया तत्र मनोरमम् ॥२३॥
भवत्पुण्यानुभावेन मया तत्र प्रधारणम् । श्रुतं विभीषणादीनां लङ्कानाथस्य मन्त्रिणाम् ॥२४॥
नैमित्तेन समादिष्टं तेन सागरबुद्धिना । मविता दशवक्त्रस्य मृत्युर्दाशरथिः किल ॥२५॥
दुहिता जनकस्यापि हेतुत्वमुपयास्यति । इति श्रुत्वा विषण्णात्मा निश्चिचायं[4] विभीषणः ॥२६॥

वहाँके जिन-मन्दिर देखे हैं ॥१२॥ हे राजन् ! वहाँ नन्दनवनमें जो अत्यन्त मनोहर चैत्यालय हैं वे भी देखे हैं। उन मन्दिरोंमें अनेक प्रकारके मणियोंके बेलबूटे निकाले गये हैं तथा उनकी कुर्सियाँ सुवर्णनिर्मित हैं ॥१३॥ सो सुवर्णमय खम्भोंसे युक्त हैं, जिनमें नाना प्रकारकी किरणें देदीप्यमान हो रही हैं, जो सूर्य-विमानके समान जान पड़ते हैं, जो हार तथा तोरणोंसे मनोहर हैं, जो रत्नमयी मालाओंसे समृद्ध हैं, जिनकी भूमियोंमें बड़ी विस्तृत वेदिकाएँ बनी हुई हैं, जिनकी वैदूर्य-मणि निर्मित उत्तम दीवालें हाथी, सिंह आदिके चित्रोंसे अलंकृत हैं और जिनके भीतरी भाग संगीत करनेवाली दिव्य स्त्रियोंसे भरे हुए हैं, ऐसे देवारण्यके चैत्यालयोंमें जो जिनप्रतिमाएँ हैं उन सबके लिए मैंने नमस्कार किया ॥१४-१६॥ अकृत्रिम प्रतिमाओंकी प्रभाके विकाससे युक्त जो मेरु पर्वत है उसकी प्रदक्षिणा देकर तथा मेघ-पटलको भेदन कर बहुत ऊँचे आकाशमें गया ॥१७॥ तथा कुलाचलोंके शिखरोंपर जो महादेदीप्यमान अनेक जिनचैत्यालय हैं उनकी वन्दना की है ॥१८॥ हे राजन् ! उन समस्त चैत्यालयोंमें जिनेन्द्र भगवान्‌की महादेदीप्यमान अकृत्रिम प्रतिमाएँ हैं मैं उन सबको वन्दना करता हूँ ॥१९॥ नारदके इस प्रकार कहनेपर 'देवाधिदेवोंको नमस्कार हो' शब्दोंका उच्चारण करते हुए राजा दशरथने दोनों हाथ जोड़े तथा शिर नम्रीभूत किया ॥२०॥

अथानन्तर संकेत द्वारा नारदकी प्रेरणा पाकर राजा दशरथने प्रतिहारीके द्वारा आदरके साथ सब लोगोंको वहाँसे अलग कर दिया ॥२१॥ तदनन्तर जब एकान्त हो गया तब नारदने कोसलाधिपति राजा दशरथसे कहा कि हे राजन् ! एकाग्रचित्त होकर सुनो मैं तुम्हारे लिए एक उत्तम बात कहता हूँ ॥२२॥ मैं बड़ी उत्सुकताके साथ वन्दना करनेके लिए त्रिकूटाचलके शिखर-पर गया था सो मैंने वहाँ अत्यन्त मनोहर शान्तिनाथ भगवान्‌के जिनालयकी वन्दना की ॥२३॥ तदनन्तर आपके पुण्यके प्रभावसे मैंने लंकापति रावणके विभीषणादि मन्त्रियोंका एक निश्चय सुना है ॥२४॥ वहाँ सागरबुद्धि नामक निमित्तज्ञानीने रावणको बताया है कि राजा दशरथका पुत्र तुम्हारी मृत्युका कारण होगा ॥२५॥ इसी प्रकार राजा जनककी पुत्री भी इसमें कारणपनेको

१. प्रतिमाः । २. अकृत्रिममहाभासो म., ख., ब., क. । ३. शृणुष्वावहितः ख., ब., म., ज. । ४. निश्चित्यात्र म. ।

जायते यावदेवास्य प्रजा[1] दशरथस्य न । जनकस्य च तावत्तौ मारयामीति सादरः ॥२७॥
पर्यटन्न चिरं क्षोणीं तच्चरेण निवेदितौ । भवन्तौ कामरूपेण स्थानरूपादिलक्षणैः ॥२८॥
मुनिविस्रम्भतस्तेन पृष्टोऽहमपि भो यते । क्वचिद्दशरथं वेत्सि जनकं च क्षितावितिं ॥२९॥
अन्विष्य कथयामीति मया चोपात्तमुत्तरम् । आकूतं दारुणं तस्य पश्यामि नरपुङ्गव ॥३०॥
तत्तं यावदयं किंचिन्न करोति विभीषणः । निगूह्य तावदात्मानं क्वचित्तिष्ठ महीपते ॥३१॥
सम्यग्दर्शनयुक्तेषु गुरुपूजनकारिषु । सामान्येनैव मे प्रीतिस्त्वद्विधेषु विशेषतः ॥३२॥
स त्वं युक्तं कुरु स्वस्ति भूयात्तेऽहं गतोऽधुना । इमां वेदयितुं वार्तां क्षिप्रं जनकभूभृतः ॥३३॥
कृतानतिर्नृपेणैवमुक्त्वोत्पत्य[3] नभस्तलम् । [4]अवह्वारयतिर्वेगान्मिथिलाभिमुखं यथौ ॥३४॥
जनकायापि तेनेदमशेषं विनिवेदितम् । भव्यजीवा हि तस्यासन् प्राणेभ्योऽप्यतिवल्लभाः ॥३५॥
अवह्वारयतौ याते मरणाशङ्किमानसः । समुद्रहृदयामात्यमाकारयदिलापतिः ॥३६॥
श्रुत्वा राजमुखान्मन्त्री समभ्यर्णं महाभयम् । जगाद[5] गदतां श्रेष्ठः स्वामिभक्तिपरायणः ॥३७॥
जीवितायाखिलं कृत्यं क्रियते नाथ जन्तुभिः । त्रैलोक्येशत्वलाभोऽपि वद तेनोज्झितस्य कः ॥३८॥
तस्माद्यावदरातीनां व्यसनं रचयाम्यहम् । तावदज्ञातरूपस्त्वं विकृतो[6] विहरावनिम् ॥३९॥
इत्युक्ते तत्र निक्षिप्य कोशं देशं पुरं जनम् । [7]निरक्रामत् पुराद् राजा सद्मस्थ सुपरीक्षितः ॥४०॥

प्राप्त होगी। यह सुनकर जिसकी आत्मा विषादसे भर रही थी ऐसे विभीषणने निश्चय किया कि जबतक राजा दशरथ और जनकके सन्तान होती है उसके पहले ही मैं इन्हे मारे डालता हूँ ॥२६-२७॥ यह निश्चय कर वह तुम लोगोंकी खोजके लिए चिरकाल तक पृथ्वीमें घूमता रहा पर पता नहीं चला सका। तदनन्तर इच्छानुकूल रूप धारण करनेवाले उसके गुप्तचरने स्थान, रूप आदि लक्षणोंसे तुम दोनोंका उसे परिचय कराया है ॥२८॥ मुनि होनेके कारण मेरा विश्वास कर उसने मुझसे पूछा कि हे मुने! पृथ्वीपर कोई दशरथ तथा जनक नामके राजा हैं सो उन्हें तुम जानते हो ॥२९॥ इस प्रश्नके बदले मैंने उत्तर दिया कि खोजकर बतलाता हूँ। हे नरपुंगव! मैं उसके अभिप्रायको अत्यन्त कठोर देखता हूँ ॥३०॥ इसलिए हे राजन्! यह विभीषण जबतक तुम्हारे विषयमें कुछ नहीं कर लेता है तबतक तुम अपने आपको छिपाकर कहीं गुप्तरूपसे रहने लगो ॥३१॥ सम्यग्दर्शनसे युक्त तथा गुरुओंकी पूजा करनेवाले पुरुषोंपर मेरी समान प्रीति रहती है और तुम्हारे जैसे पुरुषोंपर विशेषरूपसे विद्यमान है ॥३२॥ तुम जैसा उचित समझो सो करो। तुम्हारा भला हो। अब मैं यह वार्ता कहनेके लिए शीघ्र ही राजा जनकके पास जाता हूँ ॥३३॥

तदनन्तर जिसे राजा दशरथने नमस्कार किया था ऐसे नारद मुनि इस प्रकार कहकर तथा आकाशमें उड़कर बड़े वेगसे मिथिलाकी ओर चले गये ॥३४॥ वहाँ जाकर राजा जनकके लिए भी उन्होंने यह सब समाचार बतलाया सो ठीक ही है क्योंकि भव्य जीव उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्यारे थे ॥३५॥ नारद मुनिके चले जानेपर जिसके मनमें मरणकी आशंका उत्पन्न हो गयी थी ऐसे राजा दशरथने समुद्रहृदय नामक मन्त्रीको बुलवाया ॥३६॥ वक्ताओंमें श्रेष्ठ तथा स्वामिभक्तिमें तत्पर मन्त्रीने राजाके मुखसे महाभयको निकटस्थ सुन कहा ॥३७॥ कि हे नाथ! प्राणी जितना कुछ कार्य करते हैं वह जीवनके लिए ही करते हैं। आप ही कहिए, जीवनसे रहित प्राणीके लिए यदि तीन लोकका राज्य भी मिल जाये तो किस कामका है ॥३८॥ इसलिए जबतक मैं शत्रुओंके नाशका प्रयत्न करता हूँ तबतक तुम किसीको पहचानमें रूप न आ सके इस प्रकार वेष बदलकर पृथ्वीमें विहार करो ॥३९॥ मन्त्रीके ऐसा कहनेपर राजा दशरथ उसी समुद्रहृदय मन्त्रीके लिए खजाना, देश, नगर तथा प्रजाको सौंपकर नगरसे बाहर निकल गया

१. सन्ततिः । २. क्वचिद्दश -म. । ३. मुक्त्वात्पत्य- म. । ४. नारदर्षिः । ५. जगदे म. । ६. विकृती म. । ७. निरक्रामद् ग. ।

गते राजन्यमात्येन [1]लेप्यं दाशरथं वपुः । कारितं मुख्यवपुषो भिन्नं चेतनयैकया ॥४१॥
लाक्षादिरसयोगेन रुधिरं तत्र निर्मितम् । मार्दवं च कृतं [2]तादृग्यादृक्षस्यासृधारिणः ॥४२॥
वरासननिविष्टं तं वेश्मनः सप्तमे तले । युक्तं पुरैव सर्वेण परिवर्गेण विभ्रकम् ॥४३॥
स मन्त्री लेप्यकारश्च कृत्रिमं [3]जञ्जतुर्[4]पम् । भ्रान्तिर्हि जायते तत्र पश्यतोरुभयोरपि ॥४४॥
अयमेव च वृत्तान्तो जनकस्यापि कल्पितः । उपर्युपरि हि प्रायश्चलन्ति विदुषां धियः ॥४५॥
मध्यां तौ क्षितिपौ नष्टौ भुवनस्थितिकोविदौ । आपत्काले यथेन्द्रार्कौ समये जलदायिनाम् ॥४६॥
यौ पुरा वरनारीभिर्महाप्रासादवर्तिनौ । उदारभोगसंपन्नौ सेवितौ मगधाधिप ॥४७॥
इतरावित्र तौ कौचिदसहायौ नरोत्तमौ । चरणाभ्यां महीं कष्टं भ्रमन्तौ [5]धिग्भवस्थितिम् ॥४८॥
इति निश्चित्य जन्तुभ्यो यो ददात्यभयं नरः । किं न तेन भवेद्दत्तं साधूनां धुरि तिष्ठता ॥४९॥
दृष्टौ तौ तत्र तत्रेति चरवर्गेण वेदितौ । अनुज्ञेन दशास्यस्य प्रेषिता वधका भृशम् ॥५०॥
ते शस्त्रपाणयः क्रूरा दृष्ट्यगोचरविग्रहाः । दिवा नक्तं च नगरीं भ्रमन्ति चलचक्षुषः ॥५१॥
प्रासादं हीनसत्त्वास्ते प्रवेष्टुं न सहा यदा । चिरायन्ते तदायासीत् स्वयमेव विभीषणः ॥५२॥
अन्विष्य गीतशब्देन प्रविश्य गतविभ्रमः । ददर्शान्तःपुरान्तस्थं व्यक्तं दशरथं विभीः ॥५३॥

सो ठीक ही है क्योंकि वह मन्त्री राजाका अच्छी तरह परीक्षा किया हुआ था ॥४०॥ राजाके चले जानेपर मन्त्रीने राजा दशरथके शरीरका एक पुतला बनवाया। वह पुतला मूल शरीरसे इतना मिलता-जुलता था कि केवल एक चेतनाकी अपेक्षा ही भिन्न जान पड़ता था ॥४१॥ उसके भीतर लाख आदिका रस भराकर रुधिरकी रचना की गयी थी तथा सचमुचके प्राणीके शरीरमें जैसी कोमलता होती है वैसी ही कोमलता उस पुतलेमें रची गयी थी ॥४२॥ राजाका वह पुतला पहलेके समान ही समस्त परिकरके साथ महलके सातवें खण्डमें उत्तम आसनपर विराजमान किया गया था ॥४३॥ वह मन्त्री तथा पुतलाको बनानेवाला चित्रकार ये दोनों ही राजाको कृत्रिम राजा समझते थे और बाकी सब लोग उसे सचमुचका ही राजा समझते थे। यही नहीं उन दोनोंको भी देखते हुए जब कभी भ्रान्ति उत्पन्न हो जाती थी ॥४४॥

उधर यही हाल राजा जनकका भी किया गया सो ठीक ही है क्योंकि विद्वानोंकी बुद्धियाँ प्रायः ऊपर-ऊपर ही चलती हैं अर्थात् एक-से-एक बढ़कर होती हैं ॥४५॥ जिस प्रकार वर्षाऋतुके समय चन्द्रमा और सूर्य छिपे-छिपे रहते हैं उसी प्रकार संसारकी स्थितिके जानकार दोनों राजा भी आपत्तिके समय पृथिवीपर छिपे-छिपे रहने लगे ॥४६॥ गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे मगधाधिपते ! जो राजा पहले बड़े-बड़े महलोंमें रहते थे, उदार भोगसे सम्पन्न थे। उत्तमोत्तम स्त्रियाँ जिनकी सेवा करती थीं वे ही राजा अन्य मनुष्योंके समान असहाय हो पृथिवीपर पैरोंसे पैदल भटकते फिरते थे, सो इस संसारकी दशाको धिक्कार हो ॥४७-४८॥ ऐसा निश्चय कर जो प्राणियोंके लिए अभयदान देता है, सत्पुरुषोंके अग्रभागमें स्थित रहनेवाले उस पुरुषने क्या नहीं दिया ? अर्थात् सब कुछ दिया ॥४९॥ गुप्तचरोंके समूहने जहाँ-जहाँ उनका सद्भाव जाना वहाँ-वहाँ विभीषणने उन्हें स्वयं देखा तथा बहुत-से वधक भेजे ॥५०॥ जिनके हाथोंमें शस्त्र विद्यमान थे, जो स्वभावसे क्रूर थे, जिनके शरीर नेत्रोंसे दिखाई नहीं देते थे तथा जिनके नेत्र अत्यन्त चंचल थे, ऐसे वधक रात-दिन नगरीमें घूमने लगे ॥५१॥ हीन शक्तिके धारक वे वधक राजमहलमें प्रवेश करनेके लिए समर्थ नहीं हो सके इसलिए जब उन्हें अपने कार्यमें विलम्ब हुआ तब विभीषण स्वयं ही आया ॥५२॥ संगीतके शब्दसे उसने दशरथका पता लगा लिया, जिससे

---

१. लेप्यं म. । २. तावद्यावत्स्यात्यासृधारिणः म. । ३. सृजतु म. । ४. धिक्तत्रस्थितिम् म. । ५. दृष्ट्वा गोचरविग्रहा म. ।

विद्युद्विलसितो नाम चोदितस्तेन खेचरः । निकृत्य तस्य मूर्धानं स्वामिनेऽदर्शयन्मुदा ॥५४॥
श्रुतान्तःपुरजाक्रन्दो निक्षिप्यैतच्छिरोऽम्बुधौ । जनकेऽपि तथा चक्रे निर्दयं स विचेष्टितम् ॥५५॥
ततः कृतिनमात्मानं कृत्वा सोदरवत्सलः । ययौ विभीषणो लङ्कां प्रमोदपरिपूरितः ॥५६॥
विप्रलापं परं कृत्वा विदित्वा पुत्तकर्म च । धृतिं दाशरथिः प्राप परिवर्गः सविस्मयः ॥५७॥
विभीषणोऽपि संप्राप्य पुरीमशुभशान्तये । दानपूजादिकं चक्रे कर्म सज्जनिलोत्सवम् ॥५८॥
बभूव च मतिस्तस्य कदाचिच्छान्तचेतसः । कर्मणामिति वैचित्र्यात् पश्चात्तापमुपेयुषः ॥५९॥

उपजातिवृत्तम्

असत्यभीत्या क्षितिगोचरौ तौ निरर्थकं प्रेतगतिं प्रणीतौ ।
आशीविषाङ्गप्रभवोऽपि सर्पस्ताक्ष्यस्य शक्नोति किमु प्रहर्तुम् ॥६०॥
[1]सुतेशशौर्यैः क्षितिगोचरः[2] क्व क्व रावणः शक्रसमानशौर्यः ।
क्वेभः सशङ्को मदमन्दगामी क्व केसरी वायुसमानवेगः ॥६१॥

इन्द्रवज्राछन्दः

यत्रैव यावच्च यतश्च येन दुःखं सुखं वा पुरुषेण लभ्यम् ।
तत्तत्र तावच्च ततश्च तेन संप्राप्यते कर्मवशानुगेन ६२॥
सम्यग्निमित्तं यदि वेत्ति कश्चिच्छ्रेयो न कस्मात् कुरुते निजस्य ।
येनेह लोके लभतेऽतिसौख्यं मोक्षे च देहस्यजनात् पुरस्तात् ॥६३॥

निःसन्देह तथा निर्भय हो राजमहलमें प्रवेश किया। वहाँ जाकर उसने अन्तःपुरके बीचमें स्थित राजा दशरथको स्पष्ट रूपसे देखा ॥५३॥ उसी समय उसके द्वारा प्रेरित विद्युद्विलसित नामक विद्याधरने दशरथका शिर काटकर बड़े हर्षसे अपने स्वामी—विभीषणको दिखाया ॥५४॥ तदनन्तर जिसने अन्तःपुरके रुदनका शब्द सुना था ऐसे विभीषणने उस कटे हुए शिरको समुद्रमें गिरा दिया और राजा जनकके विषयमें भी ऐसी ही निर्दय चेष्टा की ॥५५॥ तदनन्तर भाईके स्नेहसे भरा विभीषण अपने आपको कृतकृत्य मानकर हर्षित होता हुआ लंका चला गया ॥५६॥ दशरथका जो परिजन था उसने पहले बहुत ही विलाप किया पर अन्तमें जब उसे यह विदित हुआ कि वह पुतला था तब आश्चर्य करता हुआ धैर्यको प्राप्त हुआ ॥५७॥ विभीषणने भी नगरीमें जाकर अशुभ कर्मकी शान्तिके लिए बड़े उत्सवके साथ दान-पूजा आदि शुभ कर्म किये ॥५८॥

तदनन्तर किसी समय जब उसका चित्त शान्त हुआ तब कर्मोंकी इस विचित्रतासे पश्चात्ताप करता हुआ इस प्रकार विचार करने लगा कि ॥५९॥ मिथ्या भयसे मैंने उन बेचारे भूमिगोचरियोंको व्यर्थ ही मारा क्योंकि सर्प आशीविषके शरीरसे उत्पन्न होनेपर भी क्या गरुड़के ऊपर प्रहार करनेके लिए समर्थ हो सकता है ? अर्थात् नहीं ॥६०॥ अत्यन्त तुच्छ पराक्रमको धारण करनेवाला भूमिगोचरी कहाँ और इन्द्रके समान पराक्रमको धारण करनेवाला रावण कहाँ ? शंकासे सहित तथा मदसे धीरे-धीरे गमन करनेवाला हाथी कहाँ और वायुके समान वेगशाली सिंह कहाँ ? ॥६१॥ जिस पुरुषको जहाँ जिससे जिस प्रकार जितना और जो सुख अथवा दुःख मिलना है कर्मोंके वशीभूत हुए उस पुरुषको उससे उस प्रकार उतना और वह सुख अथवा दुःख अवश्य ही प्राप्त होता है ॥६२॥ यदि कोई अच्छी तरह निमित्तको जानता है तो वह अपनी आत्माका कल्याण क्यों नहीं करता ? जिससे कि इस लोकमें तथा आगे चलकर शरीरका त्याग

---

१. सुलेशशौर्यौ म.। २. क्षितिगोचरौ म.।

उपजातिवृत्तम्

राज्ञोस्तयोः प्राणवियोजनेन नैमित्तमूढत्वमितं विवेकम् ।
दुःशिक्षितार्थैर्मनुजैरकार्ये प्रवर्तते जन्तुरसारबुद्धिः ॥६४॥
अस्याम्बुनाथस्य पुरी स्थितेयं प्रभिन्नपातालतलस्य मध्ये ।
कथं सुराणामपि भीतिदक्षा गम्यत्वमायात् क्षितिगोचराणाम् ॥६५॥

उपेन्द्रवज्रावृत्तम्

कृतं मयाऽत्यन्तमिदं न योग्यं करोमि नैवं पुनरप्रधार्यम् ।
इति प्रधार्योत्तमदीप्तियुक्तो रविर्यथा स्वे निलये स रेमे ॥६६॥
इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते विभीषणव्यसनवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमं पर्व ॥२३॥

[2]इति श्रीजनक-दशरथ-कालनिवर्तनम् ।

□

हो जानेसे मोक्षमें भी उत्तम सुखका प्राप्त होता ॥६३॥ मैंने जो उन दो राजाओंका प्राणघात किया है उससे जान पड़ता है कि मेरा विवेक निमित्तज्ञानीके द्वारा अत्यन्त मूढ़ताको प्राप्त हो गया था। सो ठीक ही है क्योंकि हीन बुद्धि मनुष्य दुःशिक्षित मनुष्योंकी प्रेरणासे अकार्यमें प्रवृत्ति करने ही लगते हैं ॥६४॥ यह लंकानगरी पातालतलको भेदन करनेवाले इस समुद्रके मध्यमें स्थित है तथा देवोंको भी भय उत्पन्न करनेमें समर्थ है फिर भूमिगोचरियोंके गम्य कैसे हो सकती है ? ॥६५॥ 'मैंने जो यह कार्य किया है वह सर्वथा मेरे योग्य नहीं है अब आगे कभी भी ऐसा अविचारपूर्ण कार्य नहीं करूँगा' ऐसा विचारकर सूर्यके समान उत्तम कान्तिसे युक्त विभीषण अपने महलमें क्रीड़ा करने लगा ॥६६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरितमें विभीषणके व्यसनका वर्णन करनेवाला तेईसवाँ पर्व समाप्त हुआ ।

□

---

१. गूढत्व-ख. । २. ख. ब. पुस्तकयोः पाठः ।

चतुर्विंशतितमं पर्व

[1]यदर्थं भ्राम्यतो वृत्तमनरण्यतनूभुवः । तत्ते श्रेणिक वक्ष्यामि शृणु विस्मयकारणम् ॥१॥
इतोऽस्युत्तरकाष्ठायां नाम्ना कौतुकमङ्गलम् । नगरं चास्य शैलाभप्राकारपरिशोभितम् ॥२॥
राजा शुभमतिर्नाम [2]तत्रासीत् सार्थकश्रुतिः । पृथुश्रीर्वनिता तस्य योषिद्गुणविभूषणा ॥३॥
केकया द्रोणमेघश्च पुत्रावभवतां तयोः । गुणैरत्यन्तविमलैः स्थितौ यौ व्याप्य रोदसी ॥४॥
तत्र सुन्दरसर्वाङ्गी चारुलक्षणधारिणी । नितरां केकया रेजे कलानां [3]पारमागता ॥५॥
अङ्गहाराश्रयं नृत्तं तथाभिनयसंश्रयम् । व्यायामिकं च साज्ञासौ तत्प्रभेदैः समन्वितम् ॥६॥
अभिव्यक्तं त्रिभिः स्थानैः कण्ठेन शिरसोरसा[4] । स्वरेषु समवेतं च सप्तस्थानेषु तद्यथा ॥७॥
षड्जर्षभौ तृतीयश्च गान्धारो मध्यमस्तथा । पञ्चमो धैवतश्चापि निषादश्चेत्यमी स्वराः ॥८॥
स्थितं लयैस्त्रिसंख्यानैर्द्रुतमध्यविलम्बितैः । अस्रं च चतुरस्रं च तालयोनिद्वयं दधत् ॥९॥
स्थायिसंचारिभिर्युक्तं [5]तथारोह्यवरोहिभिः । वर्णैरभिश्चतुर्भेदैश्चतुःसंख्यपदै[6]स्थितम् ॥१०॥
नामाख्यातोपसर्गेषु निपातेषु च संस्कृता । प्राकृती शौरसेनी च भाषा यत्र त्रयी स्मृता ॥११॥
धैवत्यथार्षभीषड्जषड्जोदीच्या निषादिनी । गान्धारी चापरा षड्जकैकशी षड्जमध्यमा ॥१२॥
गान्धारोदीच्यसंज्ञाभ्यां तथा मध्यमपञ्चमी । गान्धारपञ्चमी रक्तगान्धारी मध्यमा तथा ॥१३॥

अथानन्तर गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! प्राण-रक्षाके लिए भ्रमण करते समय राजा दशरथका जो आश्चर्यकारी वृत्तान्त हुआ वह मैं तेरे लिए कहता हूँ सो सुन । यहाँसे उत्तर दिशामें पर्वतके समान ऊँचे कोटसे सुशोभित कौतुकमंगल नामका नगर है ॥१-२॥ वहाँ सार्थक नामको धारण करनेवाला शुभमति नामका राजा राज्य करता था । उसकी पृथुश्री नामकी स्त्री थी जो कि स्त्रियोंके योग्य गुणरूपी आभूषणसे विभूषित थी ॥३॥ उन दोनोंके केकया नामकी पुत्री और द्रोणमेघका नामका पुत्र ये दो सन्तानें हुईं । ये दोनों ही अपने अत्यन्त निर्मल गुणोंके द्वारा आकाश तथा पृथिवीके अन्तरालको व्याप्त कर स्थित थे ॥४॥ उनमें जिसके सर्व अंग सुन्दर थे, जो उत्तम लक्षणोंको धारण करनेवाली तथा समस्त कलाओंकी पारगामिनी थी, ऐसी केकया नामकी पुत्री अत्यन्त सुशोभित हो रही थी ॥५॥ अंगहाराश्रय, अभिनयाश्रय और व्यायामिकके भेदसे नृत्यके तीन भेद हैं तथा इनके अन्य अनेक अवान्तर भेद हैं सो वह इन सबको जानती थी ॥६॥ वह उस संगीतको अच्छी तरह जानती थी जो कण्ठ, शिर और उरस्थल इन तीन स्थानोंसे अभिव्यक्त होता था, तथा नीचे लिखे सात स्वरोंमें समवेत रहता था ॥७॥ षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद ये सात स्वर कहलाते हैं ॥८॥ जो द्रुत, मध्य और विलम्बित इन तीन लयोंसे सहित था, तथा अस्र और चतुरस्र इन तालकी दो योनियोंको धारण करता था ॥९॥ स्थायी, संचारी, आरोही और अवरोही इन चार प्रकारके वर्णोंसे सहित होनेके कारण जो चार प्रकारके पदोंसे स्थित था ॥१०॥ प्रातिपदिक, तिङन्त, उपसर्ग और निपातोंमें संस्कारको प्राप्त संस्कृत, प्राकृत और शौरसेनी यह तीन प्रकारकी भाषा जिसमें स्थित थी ॥११॥ धैवती, आर्षभी, षड्ज-षड्जा, उदीच्या, निषादिनी, गान्धारी, षड्जकैकशी और षड्जमध्यमा ये आठ जातियाँ हैं अथवा गान्धारोदीच्या, मध्यमपंचमी, गान्धारपंचमी, रक्तगान्धारी, मध्यमा,

१. यदर्थं ज. । २. यत्रा म. । ३. परमागता म., ख. । ४. शिरसोरुसा म., ज. । ५. तथारोहावरोहिभिः म. । ६. पदास्थितम् म. ।

आन्ध्री च मध्यमोदीच्या स्मृता कर्मारवीति च । प्रोक्ताथ नन्दनी चान्या कैशिकी चेति जातयः ॥१४॥
इत्यभिर्जातिभिर्युक्तमष्टाभिर्दशभिस्तथा । अलंकारैरमीभिश्च त्रयोदशभिरन्वितम्[1] ॥१५॥
प्रसन्नादिः प्रसन्नान्तस्तथा मध्यप्रसादवान् । प्रसन्नाद्यवसानश्च चतुर्धा स्थायिभूषणम् ॥१६॥
निर्वृत्तः प्रस्थितो विन्दुस्तथा प्रेङ्खोलितः स्मृतः । तारो मन्द्रः प्रसन्नश्च षोढा संचारिभूषणम् ॥१७॥
आरोहिणः प्रसन्नादिरेकमेव विभूषणम् । प्रसन्नान्तस्तथा तुल्यः कुहरश्चावरोहिणः ॥१८॥
गदितौ द्वावलङ्कारावित्यलङ्कारयोजनम् । अवागात् साधुगीतं च लक्षणैरेभिरन्वितम् ॥१९॥
ततं तन्त्रीसमुत्थानमवनद्धं मृदङ्गजम् । शुषिरं वंशसंभूतं घनं तालसमुत्थितम् ॥२०॥
चतुर्विधमिदं वाद्यं नानाभेदैः समन्वितम् । जानाति स्म नितान्तं सा यथैवं विरलोऽपरः ॥२१॥
कलानां तिसृणामासां नाट्यमेकीकियोच्यते । शृङ्गारहास्यकरुणवीराद्भुतभयानकाः[2] ॥२२॥
रौद्रबीभत्सशान्ताश्च रसास्तत्र नवोदिताः । वेत्ति स्म तदसौ बाला सप्रभेदमनुत्तमम् ॥२३॥
अनुवृत्तं लिपिज्ञानं यत्स्वदेशे प्रवर्तते । द्वितीयं विकृतं ज्ञेयं कल्पितं यत्स्वसंज्ञया ॥२४॥
प्रत्यङ्गादिषु वर्णेषु तत्त्वं सामयिकं स्मृतम् । नैमित्तिकं च पुष्पादिद्रव्यविन्यासतोऽपरम् ॥२५॥
प्राच्यमध्यमयौधेयसमाद्रादिभिरन्वितम् । लिपिज्ञानमसौ बाला किल ज्ञातवती परम् ॥२६॥
अस्युक्तिरिति कौशलं तस्य भिन्नैस्त्वनादिभिः[7] कृता । स्थानं स्वरः[8] संस्कारो विन्यासः काकुना सह ॥२७॥
समुदायो विरामश्च सामान्याभिहितस्तथा । समानार्थत्वभाषा च जातयश्च प्रकीर्तिताः ॥२८॥
उरः कण्ठः शिरश्चेति स्थानं तत्र त्रिधा स्मृतम् । उक्त एव स्वरः पूर्वं षड्जादिः सप्तभेदकः ॥२९॥

आन्ध्री, मध्यमोदीच्या, कर्मारवी, नन्दिनी और कैशिकी ये दश जातियाँ हैं। सो जो संगीत इन आठ अथवा दश जातियोंसे युक्त था तथा इन्हीं और आगे कहे जानेवाले तेरह अलंकारोंसे सहित था ॥१२-१५॥ प्रसन्नादि, प्रसन्नान्त, मध्यप्रसाद और प्रसन्नाद्यवसान ये चार स्थायी पदके अलंकार हैं ॥१६॥ निर्वृत्त, प्रस्थित, बिन्दु, प्रेंखोलित, तार-मन्द्र और प्रसन्न ये छह संचारी पदके अलंकार हैं ॥१७॥ आरोही पदका प्रसन्नादि नामका एक ही अलंकार है और अवरोही पदके प्रसन्नान्त तथा कुहर ये दो अलंकार हैं। इस प्रकार तेरह अलंकार हैं सो इन सब लक्षणोंसे सहित उत्तम संगीतको वह अच्छी तरह जानती थी ॥१८-१९॥ तन्त्री अर्थात् वीणासे उत्पन्न होनेवाला तत, मृदंगसे उत्पन्न होनेवाला अवनद्ध, बाँसुरीसे उत्पन्न होनेवाला शुषिर और तालसे उत्पन्न होनेवाला घन ये चार प्रकारके वाद्य हैं, ये सभी वाद्य नाना भेदोंसे सहित हैं। वह केकया इन सबको इस तरह जानती थी कि उसकी समानता करनेवाला दूसरा व्यक्ति विरला ही था ॥२०-२१॥ गीत, नृत्य और वादित्र इन तीनोंका एक साथ होना नाट्य कहलाता है। शृंगार, हास्य, करुण, वीर, अद्भुत, भयानक, रौद्र, बीभत्स और शान्त ये नौ रस कहे गये हैं। वह बाला केकया उन्हें अनेक अवान्तर भेदोंके साथ उत्कृष्टतासे जानती थी ॥२२-२३॥ जो लिपि अपने देशमें आमतौरसे चलती है उसे अनुवृत्त कहते हैं। लोग अपने-अपने संकेतानुसार जिसकी कल्पना कर लेते हैं उसे विकृत कहते हैं। प्रत्यंग आदि वर्णोंमें जिसका प्रयोग होता है उसे सामयिक कहते हैं और वर्णोंके बदले पुष्पादि पदार्थ रखकर जो लिपिका ज्ञान किया जाता है उसे नैमित्तिक कहते हैं। इस लिपिके प्राच्य, मध्यम, यौधेय, समाद्र आदि देशोंकी अपेक्षा अनेक अवान्तर भेद होते हैं सो केकया उन सबको अच्छी तरह जानती थी ॥२४-२६॥ जिसके स्थान आदिके अपेक्षा अनेक भेद हैं ऐसी उक्तिकौशल नामकी कला है। स्थान, स्वर, संस्कार, विन्यास, काकु, समुदाय, विराम, सामान्याभिहित, समानार्थत्व, और भाषा ये जातियाँ कही गयी हैं ॥२७-२८॥ इनमें-से

---

१. रन्विता । २. कारुण्य ब., म. । ३. सप्तभेद- म. । ४. अनुवृत्तिलिपि ब. । ५. अत्यङ्गादिषु ग । ६. अस्युक्ति म. । ७. भिन्नं स्थानादिभिः म. ।

संस्कारो द्विविधः प्रोक्तो लक्षणोद्देशतस्तथा । विन्यासस्तु सखण्डाः स्युः पदवाक्यास्तदुत्तराः ॥३०॥
सापेक्षा निरपेक्षा च काकुभेदद्वयान्विता । गद्यः पद्यश्च मिश्रश्च समुदायस्त्रिधोदितः ॥३१॥
संक्षिप्तता विरामस्तु सामान्याभिहितः पुनः । शब्दानामेकवाच्यानां प्रयोगः परिकीर्तितः ॥३२॥
तुल्यार्थैकशब्देन बह्वर्थप्रतिपादनम् । [1]भाषार्यलक्षणम्लेच्छनियमात्त्रिविधा स्मृता ॥३३॥
पद्यव्यवहृतिर्लेख्यं एवमाद्यास्तु जातयः । व्यक्तवाग्लोकवाग्मार्गव्यवहारश्च मातरः ॥३४॥
एतेषामपि भेदानां ये भेदा बुधगोचराः[2] । सर्वैरेभिः समायुक्तं साल्यवैदुष्किकौशलम् ॥३५॥
शुष्कचित्रं द्विधा प्रोक्तं नानाशुष्कं च वर्जितम् । आर्द्रचित्रं पुनर्नाना चन्दनादिद्रवोद्भवम् ॥३६॥
कृत्रिमाकृत्रिमैरङ्गैर्भूजलाम्बरगोचरम् । वर्णक[3]श्लेषसंयुक्तं सा विवेदाखिलं शुभा ॥३७॥
पुस्तकर्म त्रिधा प्रोक्तं क्षयोपचयसंक्रमैः । लक्षणादिक्रमोद्भूतं काष्ठादौ [4]क्षयजं स्मृतम् ॥३८॥
उपचित्या मृदादीनामुपचेयं तु कथ्यते । संक्रान्तं तु तदाकारैस्तत्प्रतिबिम्बं निगद्यते ॥३९॥
यन्त्रनिर्यन्त्रसच्छिद्रनिश्छिद्रादिभिरन्वितम् । सा जज्ञे तथया सद्मा लोकेभ्यो दुर्लभस्तथा ॥४०॥
वृश्चिकं छिन्नमच्छिन्नं पत्रच्छेद्यं त्रिधोदितम् । सूचीदन्तादिभिस्तत्र निर्मितं वृश्चिकं स्मृतम् ॥४१॥

उरस्थल, कण्ठ और मूर्द्धाके भेदसे स्थान तीन प्रकारका माना गया है। स्वरके षड्ज आदि सात भेद पहले कह ही आये हैं ॥२९॥ लक्षण और उद्देश अथवा लक्षणा और अभिधाकी अपेक्षा संस्कार दो प्रकारका कहा गया है। पदवाक्य, महावाक्य आदिके विभागसहित जो कथन है वह विन्यास कहलाता है ॥३०॥ सापेक्षा और निरपेक्षाकी अपेक्षा काकु दो भेदोंसे सहित है। गद्य, पद्य और मिश्र अर्थात् चम्पूकी अपेक्षा समुदाय तीन प्रकारका कहा गया है ॥३१॥ किसी विषयका संक्षेपसे उल्लेख करना विराम कहलाता है। एकार्थक अर्थात् पर्यायवाची शब्दोंका प्रयोग करना सामान्याभिहित कहा गया है ॥३२॥ एक शब्दके द्वारा बहुत अर्थका प्रतिपादन करना समानार्थता है। आर्य, लक्षण और म्लेच्छके नियमसे भाषा तीन प्रकारकी कही गयी है ॥३३॥ इनके सिवाय जिसका पद्यरूप व्यवहार होता है उसे लेख कहते हैं। ये सब जातियाँ कहलाती हैं। व्यक्तवाक्, लोकवाक् और मार्गव्यवहार ये मातृकाएँ कहलाती हैं। इन सब भेदोंके भी अनेक भेद हैं जिन्हें विद्वज्जन जानते हैं। इन सबसे सहित जो भाषण-चातुर्य है उसे उक्ति-कौशल कहते हैं। केकया इस उक्ति-कौशलको अच्छी तरह जानती थी ॥३४-३५॥

नानाशुष्क और वर्जितके भेदसे शुष्कचित्र दो प्रकारका कहा गया है तथा चन्दनादिके द्रवसे उत्पन्न होनेवाला आर्द्रचित्र अनेक प्रकारका है ॥३६॥ कृत्रिम और अकृत्रिम रंगोंके द्वारा पृथ्वी, जल तथा वस्त्र आदिके ऊपर इसकी रचना होती है। यह अनेक रंगोंके सम्बन्धसे संयुक्त होता है। शुभ लक्षणोंवाली केकया इस समस्त चित्रकलाको जानती थी ॥३७॥ क्षय, उपचय और संक्रमके भेदसे पुस्तकर्म तीन प्रकारका कहा गया है। लकड़ी आदिको छील-छालकर जो खिलौना आदि बनाये जाते हैं उसे क्षयजन्य पुस्तकर्म कहते हैं। ऊपरसे मिट्टी आदि लगाकर जो खिलौना आदि बनाये जाते हैं उसे उपचयजन्य पुस्तकर्म कहते हैं तथा जो प्रतिबिम्ब अर्थात् साँचे आदि गढ़ाकर बनाये जाते हैं उसे संक्रमजन्य पुस्तकर्म कहते हैं ॥३८-३९॥ यह पुस्तकर्म, यन्त्र, निर्यन्त्र, सच्छिद्र तथा निश्छिद्र आदिके भेदोंसे सहित है, अर्थात् कोई खिलौना यन्त्रचालित होते हैं, और कोई बिना यन्त्रके होते हैं, कोई छिद्रसहित होते हैं, कोई छिद्ररहित। वह केकया पुस्तकर्मको ऐसा जानती थी जैसा दूसरोंके लिए दुर्लभ था ॥४०॥ पत्रच्छेदके तीन भेद हैं—वृश्चिकम, छिन्न और अच्छिन्न। सुई अथवा दन्त आदिके द्वारा जो बनाया जाता है उसे वृश्चिकम कहते हैं। जो कैंचीसे काटकर बनाया जाता है तथा जो अन्य अवयवोंके सम्बन्धसे युक्त होता है उसे

---

१. भाषालक्षण- म । २. बुद्धगोचराः म. । ३. वर्णकः श्लेष्म- म. । ४. क्षयसंभृतम् म. ।

कर्तरीच्छेदनोद्भूतं छिन्नं संबन्धसंयुतम् । विच्छिन्नं तु तदुद्भूतं संबन्धपरिवर्जितम् ॥४२॥
पत्रवस्त्रसुवर्णादिसंभवं स्थिरचञ्चलम् । निर्णिन्ये सा परं चार्वी संवृतासंवृतादिजम् ॥४३॥
आर्द्रं शुष्कं तदुन्मुक्तं मिश्रं चेति चतुर्विधम् । माल्यं तत्रार्द्रपुष्पादिसंभवं प्रथमं मतम् ॥४४॥
शुष्कपत्रादिसंभूतं शुष्कमुक्तं तदुज्झितम् । सिक्थकादिसमुद्भूतं संकीर्णं तु त्रिसंकरात् ॥४५॥
रणप्रबोधनव्यूहसंयोगादिभिरन्वितम् । तद्विधातुमलं प्राज्ञा साज्ञासीत् पूरणादिजम् ॥४६॥
योनिद्रव्यमधिष्ठानं रसो वीर्यं च कल्पना । परिकर्म गुणा दोषा युक्तिरेषा तु कौशलम् ॥४७॥
योनिर्विशिष्टमूलादिद्रव्यं तु तगरादिकम् । यद्वर्णवर्तिकाद्येतदधिष्ठानं प्रकीर्तितम् ॥४८॥
कषायो मधुरस्तिक्तः कटुकाम्लश्च कीर्तितः । रसः पञ्चविधो यस्य निर्हरणे विनिश्चयः ॥४९॥
द्रव्याणां शीतमुष्णं च वीर्यं तत्र द्विधा स्मृतम् । कल्पनात्र विवादानुवादसंवादयोजनम् ॥५०॥
परिकर्म पुनः स्नेहशोधनक्षालनादिकम् । ज्ञानं च गुणदोषाणां पटवादीतरात्मनाम् ॥५१॥
स्वतन्त्रानुगताख्येन तां भेदेन समन्विताम् । गन्धयुक्तिमसौ सर्वामजानाद्युक्तविक्रमा ॥५२॥
भक्ष्यं भोज्यं च पेयं[1] च लेह्यं चूष्यं च पञ्चधा । आसाद्यं तत्र भक्ष्यं तु कृत्रिमाकृत्रिमं स्मृतम् ॥५३॥
[2]भोज्यं द्विधा यथान्नादिविशेषाश्रौदनादयः । शीतयोगो जलं मद्यमिति पेयं त्रिधोदितम् ॥५४॥
रागखाण्डवलेह्याख्यं लेह्यं त्रिविधमुच्यते । कृत्रिमाकृत्रिमं चूष्यं द्विविधं परिकीर्तितम् ॥५५॥

छिन्न कहते हैं। जो कैंची आदिसे काटकर बनाया जाता है तथा अन्य अवयवोंके सम्बन्धसे रहित होता है उसे अच्छिन्न कहते हैं ॥४१-४२॥ यह पत्रच्छेद्यक्रिया पत्र, वस्त्र तथा सुवर्णादिके ऊपर की जाती है तथा स्थिर और चंचल दोनों प्रकारकी होती है। सुन्दरी केकयाने इस कलाका अच्छी तरह निर्णय किया था ॥४३॥ आर्द्र, शुष्क, तदुन्मुक्त और मिश्रके भेदसे मालानिर्माणकी कला चार प्रकारकी है। इनमेंसे गीले अर्थात् ताजे पुष्पादिसे जो माला बनायी जाती है उसे आर्द्र कहते हैं, सूखे पत्र आदिसे जो बनायी जाती है शुष्क कहते हैं। चावलोंके सीथ अथवा जवा आदिसे जो बनायी जाती है उसे तदुज्झित कहते हैं और जो उक्त तीनों चीजोंके मेलसे बनायी जाती है उसे मिश्र कहते हैं ॥४४-४५॥ यह माल्यकर्म रणप्रबोधन, व्यूहसंयोग आदि भेदोंसे सहित होता है वह बुद्धिमती केकया इस समस्त कार्यको करना अच्छी तरह जानती थी ॥४६॥ योनिद्रव्य, अधिष्ठान, रस, वीर्य, कल्पना, परिकर्म, गुण-दोष विज्ञान तथा कौशल ये गन्धयोजना अर्थात् सुगन्धित पदार्थ निर्माणरूप कलाके अंग हैं। जिनसे सुगन्धित पदार्थोंका निर्माण होता है ऐसे तगर आदि योनिद्रव्य हैं, जो धूपबत्ती आदिका आश्रय है उसे अधिष्ठान कहते हैं, कषायला, मधुर, चिरपरा, कड़ुआ और खट्टा यह पाँच प्रकारका रस कहा गया है जिसका सुगन्धित द्रव्यमें खासकर निश्चय करना पड़ता है ॥४७-४९॥ पदार्थोंकी जो शीतता अथवा उष्णता है वह दो प्रकारका वीर्य है। अनुकूल-प्रतिकूल पदार्थोंका मिलाना कल्पना है ॥५०॥ तेल आदि पदार्थोंका शोधना तथा धोना आदि परिकर्म कहलाता है, गुण अथवा दोषका जानना सो गुण-दोष विज्ञान है और परकीय तथा स्वकीय वस्तुकी विशिष्टता जानना कौशल है ॥५१॥ यह गन्धयोजनाकी कला स्वतन्त्र और अनुगतके भेदसे सहित है। केकया इस सबको अच्छी तरह जानती थी ॥५२॥ भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य और चूष्यके भेदसे भोजन सम्बन्धी पदार्थोंके पाँच भेद हैं। इनमेंसे जो स्वादके लिए खाया जाता है उसे भक्ष्य कहते हैं। यह कृत्रिम तथा अकृत्रिमके भेदसे दो प्रकारका है ॥५३॥ जो क्षुधा-निवृत्तिके लिए खाया जाता है उसे भोज्य कहते हैं, इसके भी मुख्य और साधककी अपेक्षा दो भेद हैं ? ओदन, रोटी आदि मुख्य भोज्य हैं और लप्सी, दाल, शाक आदि साधक भोज्य हैं ॥५४॥ शीतयोग (शर्बत), जल और मद्यके भेदसे पेय तीन प्रकारका कहा

---

१. २. भोग्यं म. ।

पाचनच्छेदनोष्णत्वशीतत्वकरणादिभिः । युक्तमास्वाद्यविज्ञानमासीत्तस्या मनोहरम् ॥५६॥
वज्रमौक्तिकवैडूर्यसुवर्णं रजतायुधम् । वेत्तसंख्यादि चावेदीत् सा रत्नं लक्षणादिभिः ॥५७॥
तन्तुसंतानयोगं च वस्त्रस्य बहुवर्णकम् । रागाधानं च सा चारु विवेदातिशयान्वितम् ॥५८॥
लोहदन्तजतुक्षारशिलासूत्रादिसंभवम् । तथोपकरणं कर्तुं ज्ञातमत्यन्तमुद्रया ॥५९॥
मेयदेशतुलाकालभेदान्मानं चतुर्विधम् । तत्र प्रस्थादिभिर्भिन्नं मेयमानं प्रकीर्तितम् ॥६०॥
देशमानं वितस्त्यादि तुलामानं पलादिकम् । समयादि तु यन्मानं तत्कालस्य प्रकीर्तितम् ॥६१॥
तच्चारोहपरीणाहतिर्यग्गौरवभेदतः । क्रियातश्च समुत्पन्नं साध्यगान्मानमुत्तमम् ॥६२॥
भूतिकर्म निधिज्ञानं रूपज्ञानं वणिग्विधिः । अन्यथा जीवविज्ञानमासीत्तस्या विशेषवत् ॥६३॥
मानुषद्विपगोवाजिप्रभृतीनां चिकित्सितम् । सा निदानादिभिर्भेदयुक्तं ज्ञातवती परम् ॥६४॥
मायाकृतं त्रिधा पीडाशक्रजालं विमोहनम् । मन्त्रौषधादिभिर्जातं तच्च सर्वं विवेद सा ॥६५॥
समयं च समीक्ष्यादि पाखण्डपरिकल्पितम् । चारित्रेण पदार्थैश्च विवेद विविधैर्युतम् ॥६६॥
चेष्टोपकरणं वाणी कलाव्यसनं तथा । क्रीडा चतुर्विधा प्रोक्ता तत्र चेष्टा शरीरजा ॥६७॥
कन्दुकादि तु विज्ञेयं तत्रोपकरणं बहु । वाक्क्रीडनं पुनर्नाना सुभाषितसमुद्भवम् ॥६८॥
नानाबुरोदरन्यासः कलाव्यसनं स्मृतम् । क्रीडायां बहुभेदायामस्यां सा त्यन्तकोविदा ॥६९॥

गया है ॥५५॥ इन सबका ज्ञान होना आस्वाद्यविज्ञान है। यह आस्वाद्यविज्ञान पाचन, छेदन, उष्णत्वकरण तथा शीतत्वकरण आदिसे सहित है, केकयाको इस सबका सुन्दर ज्ञान था ॥५६॥

वह वज्र अर्थात् हीरा, मोती, वैडूर्य (नीलम), सुवर्ण, रजतायुध तथा वस्त्र-शंखादि रत्नोंको उनके लक्षण आदिसे अच्छी तरह जानती थी ॥५७॥ वस्त्रपर धागेसे कढ़ाईका काम करना तथा वस्त्रको अनेक रंगोंमें रँगना इन कार्योंको वह बड़ी सुन्दरता और उत्कृष्टताके साथ जानती थी ॥५८॥ वह लोहा, दन्त, लाख, क्षार, पत्थर तथा सूत आदिसे बननेवाले नाना उपकरणोंको बनाना बहुत अच्छी तरह जानती थी ॥५९॥ मेय, देश, तुला और कालके भेदसे मान चार प्रकारका है। इसमेंसे प्रस्थ आदिके भेदसे जिसके अनेक भेद हैं उसे मेय कहते हैं ॥६०॥ वितस्ति हाथ देशमान कहलाता है, पल, छटाक, सेर आदि तुलामान कहलाता है और समय, घड़ी, घण्टा आदि कालमान कहा गया है ॥६१॥ यह मान आरोह, परीणाह, तिर्यग्गौरव और क्रियासे उत्पन्न होता है। इस सबको वह अच्छी तरह जानती थी ॥६२॥ भूतिकर्म अर्थात् बेलबूटा खींचनेका ज्ञान, निधिज्ञान अर्थात् गड़े हुए धनका ज्ञान, रूपज्ञान, वणिग्विधि अर्थात् व्यापार कला तथा जीवविज्ञान अर्थात् जन्तुविज्ञान इन सबको वह विशेष रूपसे जानती थी ॥६३॥ वह मनुष्य, हाथी, गौ तथा घोड़ा आदिकी चिकित्साको निदान आदिके साथ अच्छी तरह जानती थी ॥६४॥ विमोहन अर्थात् मूर्च्छाके तीन भेद हैं—मायाकृत, पीडा अथवा इन्द्रजाल कृत और मन्त्र तथा ओषधि आदि द्वारा कृत। सो इस सबको वह अच्छी तरह जानती थी ॥६५॥ पाखण्डीजनोंके द्वारा कल्पित सांख्य आदि मतोंको वह उनमें वर्णित चारित्र तथा नाना प्रकारके पदार्थोंके साथ अच्छी तरह जानती थी ॥६६॥

चेष्टा, उपकरण, वाणी और कला व्यासंगके भेदसे क्रीड़ा चार प्रकारकी कही गयी है। उसमें शरीरसे उत्पन्न होनेवाली क्रीड़ाको चेष्टा कहा है ॥६७॥ गेंद आदि खेलना उपकरण है, नाना प्रकारके सुभाषित आदि कहना वाणी-क्रीड़ा है और जुआ आदि खेलना कलाव्यासंग नामक

---

१. वस्त्रं संख्यादिवावेदीत् ब.। २. शिलास्तत्रादि म., ज.। ३. कार १ ४. निधिर्ज्ञानं म., ज.। ५. विधिम् म., ब., ज., ख.। ६. करणा म.। ७. कन्दुकादिति म., ब., ज.।

आश्रिताश्रयतो भिन्नो लोको द्विविध उच्यते । आश्रिता जीवनिर्जीवा पृथिव्यादिस्तदाश्रयाः ॥७०॥
तत्र नानाभवोत्पत्तिः स्थितिर्नाशश्च तथा । ज्ञायते यदिदं प्रोक्तं लोकज्ञत्वं सुदुर्गमम् ॥७१॥
पौर्वापर्याधरोर्व्यद्वीपदेशादिभेदतः । स्वभावावस्थिते लोके बभूवास्यास्तदुत्तमम् ॥७२॥
संवाहनकला द्वेधा तत्रैका कर्मसंश्रया । शय्योपचारिका चान्या प्रथमा तु चतुर्विधा ॥७३॥
त्वङ्मांसास्थिमनःसौख्यादेते स्वासामुपक्रमाः । संस्पृष्टं च गृहीतं च भुक्तितं चलितं तथा ॥७४॥
आहतं भङ्गितं विद्धं पीडितं भिन्नपाटितम् । मृदुमध्यप्रकृष्टत्वात्तत्पुनर्भिद्यते त्रिधा ॥७५॥
त्वक्सुखं सुकुमारं तु मध्यमं मांससौख्यकृत् । उत्कृष्टमस्थिसौख्याय मृदुगीति मनःसुखम् ॥७६॥
दोषास्तस्याः[1] प्रतीपं यल्लोम्नामुद्वर्तनं तथा । निर्मांसपीडितं यत्र केशाकर्षणमद्भुतम् ॥७७॥
भ्रष्टप्राप्तममार्गेण प्रयातमतिभुग्नकम् । आदेशाहतमत्यर्थमवसुप्तप्रतीपकम् ॥७८॥
एभिर्दोषैर्विनिर्मुक्तं सुकुमारमतीव च । योग्यदेशप्रयुक्तं च ज्ञात्वाकूतं च शोभनम् ॥७९॥
करणैर्विविधैर्यत्तु जन्यते चित्तसौख्यदा । संवाहनावगम्या सा शय्योपचरणात्मिका ॥८०॥
संवाहनकलामेतामङ्गप्रत्यङ्गगोचराम् । अवेदसौ यथा कन्या नान्या नारी तथा जनम् ॥८१॥
शरीरवेषसंस्कारकौशलं च कला परा । स्नानमूर्धजवासादि निरसैषीदिमां च सा ॥८२॥

क्रीड़ा है इस प्रकार वह अनेक भेदवाली क्रीड़ामें अत्यन्त निपुण थी ॥६८-६९॥ आश्रित और आश्रयके भेदसे लोक दो प्रकारका कहा गया है। इनमेंसे जीव और अजीव तो आश्रित हैं तथा पृथ्वी आदि उनके आश्रय हैं ॥७०॥ इसी लोकमें जीवकी नाना पर्यायोंमें उत्पत्ति हुई है, उसीमें यह स्थिर रहा है तथा उसीमें इसका नाश होता है यह सब जानना लोकज्ञता है। यह लोकज्ञता प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है ॥७१॥ पूर्वापर पर्वत, पृथ्वी, द्वीप, देश आदि भेदोंमें यह लोक स्वभावसे ही अवस्थित है। केकयाको इसका उत्तम ज्ञान था ॥७२॥

संवाहन कला दो प्रकारकी है—उनमेंसे एक कर्मसंश्रया है और दूसरी शय्योपचारिका। त्वचा, मांस, अस्थि और मन इन चारको सुख पहुँचानेके कारण कर्मसंश्रयाके चार भेद हैं अर्थात् किसी संवाहनसे केवल त्वचाको सुख मिलता है, किसीसे त्वचा और मांसको सुख मिलता है, किसीसे त्वचा, मांस और हड्डीको सुख मिलता है और किसीसे त्वचा, मांस, हड्डी एवं मन इन चारोंको सुख प्राप्त होता है। इसके सिवाय इसके संपृष्ट, गृहीत, भुक्तित, चलित, आहत, भंगित, विद्ध, पीडित और भिन्नपीडित ये भेद भी हैं। ये ही नहीं मृदु, मध्य और प्रकृष्टके भेदसे तीन भेद और भी होते हैं ॥७३-७५॥ जिस संवाहनसे केवल त्वचाको सुख होता है वह मृदु अथवा सुकुमार कहलाता है। जो त्वचा और मांसको सुख पहुँचाता है वह मध्यम कहा जाता है और जो त्वचा, मांस तथा हड्डीको सुख देता है वह प्रकृष्ट कहलाता है। इसके साथ जब कोमल संगीत और होता है तब वह मनःसुखसंवाहन कहलाने लगता है ॥७६॥ इस संवाहन कलाके निम्नलिखित दोष भी हैं—शरीरके रोमोंको उलटा उद्वर्तन करना, जिस स्थानमें मांस नहीं है वहाँ अधिक दबाना, केशाकर्षण, अद्भुत, भ्रष्टप्राप्त, अमार्गप्रयात, अतिभुग्नक, अदेशाहत, अत्यर्थ और अवसुप्तप्रतीपक, जो इन दोषोंसे रहित है, योग्यदेशमें प्रयुक्त है तथा अभिप्रायको जानकर किया गया है ऐसा सुकुमारसंवाहन अत्यन्त शोभास्पद होता है ॥७७-७९॥ जो संवाहन क्रिया अनेक कारण अर्थात् आसनोंसे की जाती है वह चित्तको सुख देनेवाली शय्योपचारिका नामकी क्रिया जाननी चाहिए ॥८०॥ अंग-प्रत्यंगसे सम्बन्ध रखनेवाली इस संवाहनकलाको जिस प्रकार वह कन्या जानती थी उस प्रकार अन्य स्त्री नहीं जानती थी ॥८१॥ स्नान करना, शिरके बाल गूँथना तथा उन्हें सुगन्धित आदि करना यह शरीर संस्कार वेषकौशल नामकी कला है सो

---

१. चासा-ख., वासा ज.। २. दोषास्तस्या म.।

एवमाद्याः कलाश्चारुशीला लोकमनोहराः । अदीधरत्समस्ताः सा विनयोत्तमभूषणा[1] ॥८३॥
कलागुणाभिरूपं च समुद्भूता त्रिविष्टपे । अद्वितीया बभौ तस्याः कीर्तिराकृष्टमानसा ॥८४॥
बहुनात्र किमुक्तेन शृणु राजन् समासतः । तस्या वर्षशतेनापि दुःशक्यं रूपवर्णनम् ॥८५॥
पित्रा प्रधारितं तस्या योग्यः कोऽस्या भवेद् वरः । स्वयं रुचितमेवेयं गृह्णात्विति विसंशयम् ॥८६॥
[2]तदर्थं पार्थिवाः सर्वे वसुमत्यामुपाहृताः । हरिवाहननामाद्याः पुरोविभ्रमभूषिताः ॥८७॥
गतो दशरथोऽप्यस्य जनकेन सह भ्रमन् । स्थितः स तादृशोऽन्येतान् [3]लक्ष्म्या प्रच्छाद्य भूपतीन् ॥८८॥
मञ्चेषु सुप्रपञ्चेषु निविष्टान् वसुधाधिपान् । प्रत्येकमैक्षतोदारान्प्रतीहार्यां निवेदितान् ॥८९॥
भ्राम्यन्ती सा ततः साध्वी नरलक्षणपण्डिता । कण्ठे दाशरथे न्यास दृष्टिनीलोत्पलस्रजम् ॥९०॥
भूपालनिवहस्थं तं सा ययौ चारुविभ्रमा । राजहंसं यथा हंसी बकवृन्दव्यवस्थितम् ॥९१॥
भावमालागृहीतेऽस्मिन् न्यस्ता या द्रव्यमालिका । पौनरुक्त्यं प्रपेदेऽसौ लोकाचारकृतास्पदा ॥९२॥
केचित्तत्र जगुस्तारं प्रसन्नमनसो नृपाः । अहो योग्यो वृतः कोऽपि पुरुषोऽयं सुकन्यया ॥९३॥
केषांचित्त्वतिवैलक्ष्यात् स्वदेशागमनं प्रति । विरसमातिदूरेण मनो वैवर्ण्यमीयुषाम् ॥९४॥
केचिदत्यन्तधृष्टत्वात् परमं कोपमागताः । युद्धं प्रति मनश्चक्रुः कृतकोलाहला भृशम् ॥९५॥
[4]जगुश्च ख्यातसद्वंशान् महाभोगसमन्वितान् । त्यक्त्वा[5] नो गृह्णतीमेतमज्ञातकुलशीलिनम् ॥९६॥

वह कन्या इसे भी अच्छी तरह जानती थी ॥८२॥ इस तरह सुन्दर शीलकी धारक तथा विनय-रूपी उत्तम आभूषणसे सुशोभित वह कन्या इन्हें आदि लेकर लोगोंके मनको हरण करनेवाली समस्त कलाओंको धारण कर रही थी ॥८३॥

कलागुणके अनुरूप उत्पन्न तथा लोगोंके मनको आकृष्ट करनेवाली उसकी कीर्ति तीनों लोकोंमें अद्वितीय अर्थात् अनुपम सुशोभित हो रही थी ॥८४॥ हे राजन् ! अधिक कहनेसे क्या ? संक्षेपमें इतना ही सुनो कि उसके रूपका वर्णन सौ वर्षोंमें भी होना संभव है ॥८५॥ पिताने विचार किया कि इसके योग्य वर कौन हो सकता है ? अच्छा हो कि यह स्वयं ही अपनी इच्छानुसार वरको ग्रहण करे ॥८६॥ ऐसा निश्चय कर उसने स्वयंवरके लिए पृथिवीपरके हरिवाहन आदि समस्त राजा एकत्रित किये । वे राजा स्वयंवरके पूर्व ही नाना प्रकारके विभ्रमों अर्थात् हाव-भावोंसे सुशोभित हो रहे थे ॥८७॥ राजा जनकके साथ घूमते हुए राजा दशरथ वहाँ जा पहुँचे । राजा दशरथ यद्यपि साधारण वेषभूषामें थे तो भी वे अपनी शोभासे उपस्थित अन्य राजाओंको आच्छादित कर वहाँ विराजमान थे ॥८८॥ सुसज्जित मंचोंके ऊपर बैठे हुए उदार राजाओंका परिचय प्रतीहारी दे रही थी और मनुष्योंके लक्षण जाननेमें पण्डित वह साध्वी कन्या घूमती हुई प्रत्येक राजाको देखती जाती थी । अन्तमें उसने अपनी दृष्टिरूपी नीलकमलकी माला दशरथके कण्ठमें डाली ॥८९-९०॥ जिस प्रकार बगलोंके बीचमें स्थित राजहंसके पास हंसी पहुँच जाती है उसी प्रकार सुन्दर हाव-भावको धारण करनेवाली वह कन्या राजसमूहके बीचमें स्थित राजा दशरथके पास जा पहुँची ॥९१॥ उसने दशरथको भावमालासे तो पहले ही ग्रहण कर लिया था फिर लोकाचारके अनुसार जो द्रव्यमाला डाली थी वह पुनरुक्तताको प्राप्त हुई थी ॥९२॥ उस मण्डपमें प्रसन्नचित्तके धारक कितने ही राजा जोर-जोरसे कह रहे थे कि अहो ! इस उत्तम कन्याने योग्य तथा अनुपम पुरुष वरा है ॥९३॥ और कितने ही राजा अत्यन्त धृष्टताके कारण कुपित हो अत्यधिक कोलाहल करने लगे ॥९४॥ वे कहने लगे कि अरे ! प्रसिद्ध वंशमें उत्पन्न तथा महाभोगोंसे सम्पन्न हम लोगोंको छोड़कर इस दुष्ट कन्याने जिसके कुल और शीलका पता नहीं

---

१. भूषणाः म. । २. यदर्थं म. । ३. लक्ष्या म. । ४. -मैक्षितोदारान् म. । ५. जग्मुश्च ख. । ६. त्यक्त्वावतो म. ।

अमुं कमपि वैदेशं वृणभिप्रायकारिणीम् । गृह्णीत मूर्धजाकृष्टां प्रसभं दुष्टकन्यकाम् ॥९७॥
इत्युक्त्वा ते सुसन्नद्धाः समुद्यतमहायुधाः । नृपा दशरथान्तेन चलिताः क्रुद्धचेतसः ॥९८॥
ततः समाकुलीभूतो वरं शुभमतिर्जगौ । भद्र यावन्नृपानेतान् सुक्षुब्धान् वारयाम्यहम् ॥९९॥
रथमारोप्य तावत्त्वं कन्यामन्तर्हितो भव । कालज्ञानं हि सर्वेषां नयानां मूर्धनि स्थितम् ॥१००॥
एवमुक्तो जगादासौ स्मितं कृत्वातिधीरधीः । विश्रब्धो भव मामं त्वं पश्यैतान्कांदिशीकृतान् ॥१०१॥
इत्युक्त्वा रथमास्थाय सांपुलं गौरवान्वितः । रूक्षं संगच्छते सीमः शरन्मध्याह्नभानुभाः ॥१०२॥
उत्तार्य केकया चाशु रथैवाहं रणाङ्गणे । तस्थौ पौरुषमालम्ब्य तीव्रप्रग्रहधारिणी ॥१०३॥
उवाच च प्रयच्छाज्ञां नाथ कस्योपरि द्रुतम् । चोदयामि रथं तस्य मृत्युरत्यातिवत्सलः ॥१०४॥
जगादासौ किमन्यैर्वराकैर्निहतैर्न रैः । मूर्धानमस्य सैन्यस्य पुरुषं पातयाम्यहम् ॥१०५॥
यस्यैतत्पाण्डुरं छत्रं विभाति शशिविभ्रमम् । एतस्याभिमुखं कान्ते रथं चोदय पण्डिते ॥१०६॥
एवमुक्ते तयात्यन्तं धीरया वाहितो रथः । समुच्छ्रितसितच्छत्रस्तरङ्गितमहाध्वजः ॥१०७॥
केतुच्छायामहाज्वाले तत्र दम्पतिदेवते । रथाग्नौ योधशलभाः दृष्ट्वा नष्टाः सहस्रशः ॥१०८॥
दशस्यन्दननिर्मुक्तैर्नाराचैरर्दिता नृपाः । क्षणात्पराङ्मुखीभूताः परस्परविलङ्घिनः ॥१०९॥
ततो हेमप्रभेणैते चोदिता लज्जिता जिताः । निवृत्य पुनरारब्धा हन्तुं दाशरथं रथम् ॥११०॥

ऐसे परदेशी किसी मनुष्यको वरा है सो इसका अभिप्राय दुष्ट है। इसके केश पकड़कर खींचो और इसे जबरदस्ती पकड़ लो ॥९५-९७॥ ऐसा कहकर वे राजा बड़े-बड़े शस्त्र उठाते हुए युद्धके लिए तैयार हो गये तथा क्रुद्धचित्त होकर राजा दशरथकी ओर चल पड़े ॥९८॥

तदनन्तर कन्याके पिता शुभमतिने घबड़ाकर दशरथसे कहा कि हे भद्र! जबतक मैं इन क्षुभित राजाओंको रोकता हूँ तबतक तुम कन्याको रथपर चढ़ाकर कहीं अन्तर्हित हो जाओ—छिप जाओ क्योंकि समयका ज्ञान होना सब नयोंके शिरपर स्थित है अर्थात् सब नीतियोंमें श्रेष्ठ नीति है ॥९९-१००॥ इस प्रकार कहनेपर अत्यन्त धीर-वीर बुद्धिके धारक राजा दशरथने मुसकराकर कहा कि हे माम! निश्चिन्त रहो और अभी इन सबको भयसे भागता हुआ देखो ॥१०१॥ इतना कहकर वे प्रौढ़ घोड़ोंसे जुते रथपर सवार हो शरद्ऋतुके मध्याह्न काल सम्बन्धी सूर्यके समान अत्यन्त भयंकर हो गये ॥१०२॥ केकयाने रथके चालक सारथिको तो उतार दिया और स्वयं शीघ्र ही साहसके साथ चाबुक तथा घोड़ोंकी रास सँभालकर युद्धके मैदानमें जा खड़ी हुई ॥१०३॥ और बोली कि हे नाथ! आज्ञा दीजिए, किसके ऊपर रथ चलाऊँ? आज मृत्यु किसके साथ अधिक स्नेह कर रही है? ॥१०४॥ दशरथने कहा कि यहाँ अन्य क्षुद्र राजाओंके मारनेसे क्या लाभ है? अतः इस सेनाके मस्तकस्वरूप प्रधान पुरुषको ही गिराता हूँ। हे चतुर वल्लभे! जिसके ऊपर यह चन्द्रमाके समान सफेद छत्र सुशोभित हो रहा है इसीके सन्मुख रथ ले चलो ॥१०५-१०६॥ ऐसा कहते ही उस धीर वीराने जिसपर सफेद छत्र लग रहा था तथा बड़ी भारी ध्वजा फहरा रही थी ऐसा रथ आगे बढ़ा दिया ॥१०७॥ जिसमें पताकाकी कान्तिरूपी बड़ी-बड़ी ज्वालाएँ उठ रही थीं तथा दम्पती ही जिसमें देवता थे ऐसे रथरूपी अग्निमें हजारों योधारूपी पतंगे नष्ट होते हुए दिखने लगे ॥१०८॥ दशरथके द्वारा छोड़े बाणोंसे पीड़ित राजा एक दूसरेको लाँघते हुए क्षण-भरमें पराङ्मुख हो गये ॥१०९॥

तदनन्तर पराजित होनेसे लज्जित हुए राजाओंको हेमप्रभने ललकारा, जिससे वे लौटकर

---

१. गृहीतमूर्द्धजा-म.। २. दशरथं तेन म., ज., क., ब.। ३. क्षुद्रचेतसः म.। ४. भानुभम् म.। ५. रथवाहान् क.। ६. पश्य म.। ७. पातयाम्यथ ब.। ८. भृशम् ख.। ९. -रारब्धं म.।

वाजिभिः स्यन्दनैर्नागैः पादातैश्च नृपा वृताः । कृतशूरमहानादा घनसंघातवर्तिनः ॥१११॥
तोमराणि शरान्पाशांश्चक्राणि कनकानि च । तमेकं नृपमुद्दिश्य विक्षिपुश्च समुद्यताः ॥११२॥
चित्रमेकरथो भूत्वा तदा दशरथो नृपः । जातः शतरथः शक्त्या निःसंख्यानरथोऽथवा ॥११३॥
विचिच्छेद स नाराचैः समं शस्त्राणि विद्विषाम् । अदृष्टाकर्षसंधानैश्चक्रीकृतशरासनः ॥११४॥
छिन्नध्वजातपत्रः सन् विह्वलीकृतवाहनः । शरैर्हेमप्रभस्तेन क्षणेन विरथीकृतः ॥११५॥
स रथान्तरमास्थाय भयावततमानसः । द्रुतं पलायनं चक्रे कृष्णीकुर्वन्निजं यशः ॥११६॥
रक्षन् स्वं च जायां च शत्रूनस्त्राणि चाच्छिनत् । एको दशरथः कर्म चक्रेऽनन्तरथोचितम् ॥११७॥
दृष्ट्वा दशरथं सिंहं विधूतशरकेसरम् । दुद्रुवुर्योधसारङ्गाः परिगृह्य दिगष्टकम् ॥११८॥
अहो शक्तिर्नरस्यास्य ह्यो[1] चित्रं कन्यया कृतम् । इति नादः समुत्तस्थौ महान् स्वपरसेनयोः ॥११९॥
वन्दिघोषितशब्देन शक्त्या वानन्यतुल्यया । जनैर्दशरथो ज्ञातः प्रतापं विभ्रदुन्नतम् ॥१२०॥
ततः पाणिग्रहस्तेन कृतः कौतुकमङ्गले । कन्यायाः परलोकेन [3]कृतकौतुकमङ्गले[4] ॥१२१॥
महता भूतिभारेण वृत्तोपयमनोत्सवः । ययौ दशरथोऽयोध्यां मिथिलां जनको [5]यया ॥१२२॥
पुनर्जन्मोत्सवं तस्य तस्यां चक्रेऽतिसंमदः । पुनर्नृपाभिषेकं च परिजनो महर्द्धिभिः ॥१२३॥
अशेषभयनिर्मुक्तो रेमे तत्र स पुण्यवान् । आखण्डल इव स्वर्गे प्रतिमानितशासनः ॥१२४॥

पुनः दशरथके प्राणको नष्ट करनेका प्रयत्न करने लगे ॥११०॥ जो घोड़ों, रथों, हाथियों तथा पैदल सैनिकोंसे घिरे थे, सिंहनाद कर रहे थे तथा बहुत बड़े समूहके साथ वर्तमान थे ऐसे अनेक राजा अकेले राजा दशरथको लक्ष्य कर तोमर, बाण, पाश, चक्र और कनक आदि शस्त्र बड़ी तत्परतासे चला रहे थे ॥१११-११२॥ बड़े आश्चर्यकी बात थी कि राजा दशरथ एकरथ होकर भी दशरथ थे तो और उस समय तो अपने पराक्रमसे शतरथ अथवा असंख्यरथ हो रहे थे ॥११३॥ चक्राकार धनुषके धारक राजा दशरथने जिनके खींचने और रखनेका पता नहीं चलता था ऐसे बाणोंसे एक साथ शत्रुओंके शस्त्र छेद डाले ॥११४॥ जिसकी ध्वजा और छत्र कटकर नीचे गिर गये थे तथा जिसका वाहन थककर अत्यन्त व्याकुल हो गया था ऐसे राजा हेमप्रभको दशरथने क्षणभरमें रथरहित कर दिया ॥११५॥ तदनन्तर जिसका मन भयसे व्याप्त था ऐसा हेमप्रभ दूसरे रथपर सवार हो अपने यशको मलिन करता हुआ शीघ्र ही भाग गया ॥११६॥ राजा दशरथने शत्रुओं तथा शस्त्रोंको छेद डाला और अपनी तथा स्त्रीकी रक्षा की। उस समय एक दशरथने जो काम किया था वह अनन्तरथके योग्य था ॥११७॥ जो बाणरूपी जटाओंको हिला रहा था ऐसे दशरथ-रूपी सिंहको देखकर योद्धारूपी हरिण आठों दिशाएँ पकड़कर भाग गये ॥११८॥ उस समय अपनी तथा शत्रुकी सेनामें यही जोरदार शब्द उठ रहा था कि अहो ! इस मनुष्यकी कैसी अद्भुत शक्ति है ? और इस कन्याने कैसा कमाल किया ? ॥११९॥ उन्नत प्रतापको धारण करनेवाले राजा दशरथको लोग पहचान सके थे तो बन्दीजनोंके द्वारा घोषित जयनाद अथवा उनकी अनुपम शक्तिसे ही पहचान सके थे ॥१२०॥

तदनन्तर अन्य लोगोंने जहाँ कौतुक एवं मंगलाचार किये थे ऐसे कौतुकमंगल नामा नगरमें राजा दशरथने कन्याका पाणिग्रहण किया ॥१२१॥ तत्पश्चात् बड़े भारी वैभवसे जिनका विवाहोत्सव सम्पन्न हुआ था ऐसे राजा दशरथ अयोध्या गये और राजा जनक मिथिलापुरी गये ॥१२२॥ वहाँ हर्षसे भरे परिजनोंने बड़े वैभवसे साथ राजा दशरथका पुनर्जन्मोत्सव और पुनर्राज्याभिषेक किया ॥१२३॥ जो सब प्रकारके भयसे रहित थे तथा जिनकी आज्ञाको सब शिरोधार्य करते थे ऐसे पुण्यवान् राजा दशरथ स्वर्गमें इन्द्रकी तरह अयोध्यामें क्रीड़ा करते थे

---

१. नृपावृताः म. । २. ह्यि म. । ह्या ख. । ३. कृतः म., ब., ज. । ४. मङ्गलम् म. । ५. सया म. ।

तत्र प्रत्यक्षमन्यासां परनीनां भूभृतां तथा । अभ्यधायि नरेन्द्रेण केकयासम्भवर्तिनी ॥१२५॥
पूर्णेन्दुवदने ब्रूहि यत्ते वस्तु मनोगतम् । इह संपादयाम्यद्य प्रसन्नोऽस्मि तव प्रिये ॥१२६॥
चोदयेन्नातिविज्ञानाद्यदि[1] नाम तथा रथम् । कथं कुद्धारिसंघातं विजयेयं[2] सहोत्थितम् ॥१२७॥
अवस्थितं जगद्व्याप्य[3] नुदेदर्कः कथं तमः । सव्येष्टा[4] चेन्नवेदस्य न मूर्तिरुणात्मिका ॥१२८॥
गुणग्रहणसंजातैर्व्रीडाभारनताननां । मुहुः प्रचोदितोवाच कथंचिदिति केकया ॥१२९॥
नाथ न्यासोऽयमास्तां मे त्वयि वाञ्छितयाचनम् । प्रार्थयिष्ये यदा तस्मिन् काले दास्यसि निर्वचाः ॥

भुजङ्गप्रयातम्

इति प्रोक्तमात्रे जगौ भूमिनाथः समग्रेन्दुनाथप्रतिस्पर्द्धिवक्त्रः ।
भवत्येव युद्धे पृथुश्रोणिसौम्ये त्रिवर्णांतिकान्तप्रसन्नोरुनेत्रे ॥१३१॥
अहो बुद्धिरस्या[5] महागोत्रजाया नयाढ्या नितान्तं कलापारगायाः ।
समस्तोपभोगैरलं संगतायाः कृतं न्यासभूतं [6]मतप्रार्थनं यत् ॥१३२॥
समस्तोऽपि तस्यास्तदाभीष्टवर्गः प्रयातः प्रमोदं प्रकृष्टं नितान्तम् ।
विचिन्त्य प्रधानं शुभा कंचिदर्थं शनैर्मार्गयिष्यत्यहो केकयेति ॥१३३॥
मतेर्गोचरत्वं मया तावदेतत्प्रणीतं सुवृत्तं धरित्रीपते ते ।
समुत्पत्तिमस्मान्महामानवानां शृणु श्रोत्रकानामुदाराम्बयस्य ॥१३४॥

॥१२४॥ वहाँ राजा दशरथने अन्य सपत्नियों तथा राजाओंके समक्ष पास बैठी हुई केकयासे कहा कि हे पूर्णचन्द्रमुखि ! प्रिये ! जो वस्तु तुम्हें इष्ट हो वह कहो, मैं उसे पूर्ण कर दूँ । आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ ॥१२५-१२६॥ यदि तुम उस समय बड़ी चतुराईसे उस प्रकार रथ नहीं चलातीं तो मैं एक साथ उठे हुए कुपित शत्रुओंके समूहको किस प्रकार जीतता ? ॥१२७॥ यदि अरुण सारथि नहीं होता तो समस्त जगत्में व्याप्त होकर स्थित अन्धकारको सूर्य किस प्रकार नष्ट कर सकता ? तदनन्तर गुणग्रहणसे उत्पन्न लज्जाके भारसे जिसका मुख नीचा हो रहा था ऐसी केकयाने बार-बार प्रेरित होनेपर भी किसी प्रकार यह उत्तर दिया कि हे नाथ ! मेरी इच्छित वस्तुकी याचना आपके पास धरोहरके रूपमें रहे । जब मैं मागूँगी तब आप बिना कुछ कहे दे देंगे ॥१२८-१३०॥ केकयाके इतना कहते ही पूर्णचन्द्रमाके समान मुखको धारण करनेवाले राजा दशरथने कहा कि हे प्रिये ! हे स्थूलनितम्बे ! हे सौम्यवर्णे ! तीन रंगके अत्यन्त सुन्दर, स्वच्छ एवं विशाल नेत्रोंको धारण करनेवाली ! ऐसा ही हो ॥१३१॥ राजा दशरथने अन्य लोगोंसे कहा कि अहो ! महाकुलमें उत्पन्न, कलाओंकी पारगामिनी तथा महाभोगोंसे सहित इस केकयाकी बुद्धि अत्यधिक नीतिसे सम्पन्न है कि जो इसने अपने वरकी याचना धरोहररूप कर दी ॥१३२॥ यह पुण्यशालिनी धीरे-धीरे विचारकर किसी अभिलषित उत्तम अर्थको मांग लेगी ऐसा विचारकर उसके सभी इष्ट परिजन उस समय अत्यधिक परम आनन्दको प्राप्त हुए थे ॥१३३॥

गौतमस्वामी श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! मैंने बुद्धिके अनुसार तेरे लिए यह राजा

---

१. -न्नादिविज्ञाना -म. । २. विजयेऽहं म. । ३. व्याप्यं म. । ४. संश्रेष्टा म. । सच्चेष्टा ख. 'सव्येष्टा सारथिः' । ५. संघात म. । ६. उच्चकुलसमुत्पन्नायाः इति ब. पुस्तके टिप्पणम् ७. मनःप्रार्थनं म., ब. ।

समासेन सर्वं वदाम्येष तेऽहं त्रिलोकस्य वृत्तं किमत्र प्रपञ्चैः ।
दुराचारयुक्ताः परं यान्ति दुःखं सुखं साधुवृत्ता रविप्रख्यभासः ॥१३५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते केकयावरप्रदानं नाम
चतुर्विंशतितमं पर्व ॥२४॥

□

दशरथका सुवृत्तान्त कहा है। अब इससे अपने उदार वंशको प्रकाशित करनेवाले महामानवोंकी उत्पत्तिका वर्णन सुन ॥१३४॥ तीन लोकका वृत्तान्त जाननेके लिए विस्तारकी आवश्यकता नहीं। अतः मैं संक्षेपसे ही तेरे लिए यह कहता हूँ कि दुराचारी मनुष्य अत्यन्त दुःख प्राप्त करते हैं और सूर्यके समान दीप्तिको धारण करनेवाले सदाचारी मनुष्य सुख प्राप्त करते हैं ॥१३५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें केकयाके
वरदानका वर्णन करनेवाला चौबीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२४॥

□

पञ्चविंशतितमं पर्व

अथापराजिता देवी सुखं सुप्ता वरालये । शयनीये महाकान्ते [1]रत्नोद्योतसरःस्थिते ॥१॥
रजन्याः पश्चिमे यामे महापुरुषसूचिनः । नितान्तं परमान् स्वप्नानेक्षताश्चर्यदायिनः यथा ॥२॥
शुभ्रं स्तम्बेरमं सिंहं पद्मिनीबान्धवं विभुम् । दृष्ट्वा विबोधमायासा तूर्यमङ्गलनिस्वनैः ॥३॥
ततः प्रत्यङ्गकार्याणि कृत्वा विस्मितमानसा । दिवाकरकरालोकमण्डिते भुवने सति ॥४॥
सा विनीतान्तिकं भर्तुर्गत्वात्यन्तसमाकुला । सखीभिरावृता भद्रपीठभूषणकारिणी ॥५॥
कृताञ्जलिर्जगौ स्वप्नान् किंचिन्नितविग्रहा । स्वामिने सावधानाय यथादृष्टान्मनोहरान् ॥६॥
ततो निखिलविज्ञानपारदृश्वा नराधिपः । बुधमण्डलमध्यस्थः स्वप्नानामन्वधात् फलम् ॥७॥
परमाश्चर्यहेतुस्ते कान्ते पुत्रो भविष्यति । अन्तर्बहिश्च शत्रूणां यः करिष्यति शातनम् ॥८॥
एवमुक्ते परं तोषं हस्तस्पृष्टोदरी ययौ । [2][3]स्मितकेसरसंरुद्धमुखपद्मापराजिता ॥९॥
चकार च समं भर्त्रा परं प्रमदमीयुषा । जिनेन्द्रवेश्मसुस्फीतां पूजां पूजितभावना ॥१०॥
ततः प्रभृतिकान्त्यासौ सुतरां स्मावगाह्यते । बभूव चेतसश्चास्याः शान्तिः कापि महौजसः ॥११॥
सुमित्रानन्तरं तस्या ईक्षांचक्रेऽतिसुन्दरी । विस्मिता पुलकोपेता स्वप्नान् साधुमनोरथा ॥१२॥

अथानन्तर उत्तम महलमें रत्नोंके प्रकाशरूपी सरोवरके मध्यमें स्थित अत्यन्त सुन्दर शय्यापर सुखसे सोती हुई अपराजिता रानीने रात्रिके पिछले पहरमें महापुरुषके जन्मको सूचित करनेवाले अत्यन्त आश्चर्यकारक स्वप्न देखे। वे स्वप्न उसने इतनी स्पष्टतासे देखे थे जैसे मानो जाग ही रही थी ॥१-२॥ पहले स्वप्नमें उसने सफेद हाथी, दूसरेमें सिंह, तीसरेमें सूर्य और चौथेमें चन्द्रमा देखा था। इन सबको देखकर वह तुरहीके मांगलिक शब्दसे जाग उठी ॥३॥ तदनन्तर जिसका मन आश्चर्यसे भर रहा था ऐसी अपराजिता प्रातःकाल सम्बन्धी शारीरिक क्रियाएँ कर, जब सूर्यके प्रकाशसे समस्त संसार सुशोभित हो गया तब बड़ी विनयसे पतिके पास गयी। स्वप्नोंका फल जाननेके लिए उसका हृदय अत्यन्त आकुल हो रहा था तथा अनेक सखियाँ उसके साथ गयी थीं। जाकर वह उत्तम सिंहासनको अलंकृत करने लगी ॥४-५॥ जिसका शरीर संकोचवश कुछ नीचेकी ओर झुक रहा था ऐसी अपराजिताने हाथ जोड़कर स्वामीके लिए सब मनोहर स्वप्न जिस क्रमसे देखे थे उसी क्रमसे सुना दिये और स्वामीने भी बड़ी सावधानीसे सुने ॥६॥ तदनन्तर समस्त ज्ञानोंके पारदर्शी एवं विद्वत्समूहके बीचमें स्थित राजा दशरथने स्वप्नोंका फल कहा ॥७॥ उन्होंने कहा कि हे कान्ते! तुम्हारे परम आश्चर्यका कारण ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा जो अन्तरंग और बहिरंग दोनों प्रकारके शत्रुओंका नाश करेगा ॥८॥ पतिके ऐसा कहनेपर अपराजिता परम सन्तोषको प्राप्त हुई। उसने हाथसे उदरका स्पर्श किया तथा उसका मुखरूपी कमल मन्द मुसकानरूपी केशरसे व्याप्त हो गया ॥९॥ प्रशस्त भावनासे युक्त अपराजिताने परम प्रसन्नताको प्राप्त पतिके साथ जिन-मन्दिरोंमें भगवान्‌की महापूजा की ॥१०॥ उस समयसे दिन-प्रति-दिन उसकी कान्ति बढ़ने लगी तथा उसका चित्त यद्यपि महाप्रतापसे युक्त था तो भी उसमें अद्भुत शान्ति उत्पन्न हो गयी थी ॥११॥

तदनन्तर अतिशय सुन्दरी सुमित्रा रानीने स्वप्न देखे। स्वप्न देखते समय वह आश्चर्यसे चकित हो गयी थी, उसके समस्त शरीरमें रोमांच निकल आये थे और उसका अभिप्राय अत्यन्त

---

१. रत्नोद्योतशिरस्थिते म., ब. । २. हस्तस्पृष्टोदरा क. । ३. मुखकेसर-म. ।

सिच्यमानं मृगाधीशं लक्ष्म्या कीर्त्या च सादरम् । कलशैश्चावमानास्यकमलैश्चारुवारिभिः ॥१३॥
आत्मानं चातितुङ्गस्य भूभृतो मूर्धनि स्थितम् । पश्यन्तं मेदिनीं स्फीतां निम्नगापतिमेखलाम् ॥१४॥
स्फुरत्किरणजालं च दिवसाधिपविभ्रमम् । नानारत्नोचितं चक्रं सौम्यं कृतविवर्तनम् ॥१५॥
धीक्ष्य मङ्गलनादेन तथैव कृतबोधना । विनीताकथयत् पत्ये नितान्तं मधुरस्वना ॥१६॥
सूनुर्युगप्रधानस्ते शत्रुचक्रक्षयावहः । भविष्यति महातेजाश्चित्रचेष्टो वरानने ॥१७॥
इत्युक्ता सा सती पत्या संमदाक्रान्तमानसा । ययौ निजास्पदं लोकं पश्यन्तीवाधरस्थितम् ॥१८॥
अथानेहसि संपूर्णे पूर्णेन्दुमिव पूर्वदिक् । असूत तनयं कान्त्या विशालमपराजिता ॥१९॥
दिष्ट्यावर्धनकारिभ्यः प्रयच्छन् वसु पार्थिवः । बभूव चामरच्छत्रपरिधानपरिच्छदः ॥२०॥
जन्मोत्सवो महानस्य चक्रे निःशेषबान्धवैः । महाविभवसंपन्नैरुन्मत्तीभूतविष्टपः ॥२१॥
तरुणादित्यवर्णस्य पद्मालिङ्गितवक्षसः । पद्मनेत्रस्य पद्माख्या पितृभ्यां तस्य निर्मिता ॥२२॥
सुमित्रापि ततः पुत्रमसूत परमद्युतिम् । छायादिगुणयोगेन सद्रत्नं रत्नभूरिव ॥२३॥
पद्मजन्मोत्सवस्यानुसंधानमिव कुर्वता । जनितो बन्धुवर्गेण तस्य जन्मोत्सवः परः ॥२४॥
उत्पाता जज्ञिरेऽरातिनगरेषु सहस्रशः । आपदां सूचका बन्धुनगरेषु च संपदाम् ॥२५॥

निर्मल हो गया था ॥१२॥ उसने देखा कि लक्ष्मी और कीर्ति आदरपूर्वक, जिनके मुखपर कमल रखे हुए थे तथा जिनमें सुन्दर जल भरा हुआ था ऐसे कलशोंसे सिंहका अभिषेक कर रही हैं ॥१३॥ फिर देखा कि मैं स्वयं किसी ऊँचे पर्वतके शिखरपर चढ़कर समुद्ररूपी मेखलासे सुशोभित विस्तृत पृथिवीको देख रही हूँ ॥१४॥ इसके बाद उसने देदीप्यमान किरणोंसे युक्त, सूर्यके समान सुशोभित, नाना रत्नोंसे खचित तथा घूमता हुआ सुन्दर चक्र देखा ॥१५॥ इन सब स्वप्नोंको देखकर वह मंगलमय वादित्रोंके शब्दसे जाग उठी। तदनन्तर उसने बड़ी विनयसे जाकर अत्यन्त मधुर शब्दों द्वारा पतिके लिए स्वप्न-दर्शनका समाचार सुनाया ॥१६॥ इसके उत्तरमें राजा दशरथने बताया कि हे उत्तम मुखको धारण करनेवाली प्रिये ! तुम्हारे ऐसा पुत्र होगा कि जो युगका प्रधान होगा, शत्रुओंके समूहका क्षय करनेवाला होगा, महातेजस्वी तथा अद्भुत चेष्टाओंका धारक होगा ॥१७॥ पतिके इस प्रकार कहनेपर जिसका चित्त आनन्दसे व्याप्त हो रहा था ऐसी सुमित्रा रानी अपने स्थान पर चली गयी। उस समय वह समस्त लोकको ऐसा देख रही थी मानो नीचे ही स्थित हो ॥१८॥

अथानन्तर समय पूर्ण होनेपर, जिस प्रकार पूर्व दिशा पूर्ण चन्द्रमाको उत्पन्न करती है उसी प्रकार अपराजिता रानीने कान्तिमान् पुत्र उत्पन्न किया ॥१९॥ इस भाग्य-वृद्धिकी सूचना करनेवाले लोगोंको जब राजा दशरथ धन देने बैठे तो उनके पास छत्र, चमर तथा वस्त्र ही शेष रह गये बाकी सब वस्तुएँ उन्होंने दानमें दे दीं ॥२०॥ महा विभवसे सम्पन्न समस्त भाई-बान्धवोंने इसका बड़ा भारी जन्मोत्सव किया। ऐसा जन्मोत्सव कि जिसमें सारा संसार उन्मत्त-सा हो गया था ॥२१॥ मध्याह्नके सूर्यके समान जिसका वर्ण था, जिसका वक्षःस्थल लक्ष्मीके द्वारा आलिंगित था तथा जिसके नेत्र कमलोंके समान थे ऐसे उस पुत्रका माता-पिताने पद्म नाम रखा ॥२२॥ तदनन्तर जिस प्रकार रत्नोंकी भूमि अर्थात् खान छाया आदि गुणोंसे सम्पन्न उत्तम रत्नको उत्पन्न करती है उसी प्रकार सुमित्राने श्रेष्ठ कान्तिके धारक पुत्रको उत्पन्न किया ॥२३॥ पद्मके जन्मोत्सवका मानो अनुसन्धान ही करते हुए बन्धु-वर्गने उसका भी बहुत भारी जन्मोत्सव किया था ॥२४॥ शत्रुओंके नगरोंमें आपत्तियोंकी सूचना देनेवाले हजारों उत्पात होने लगे और बन्धुओंके नगरोंमें सम्पत्तियोंकी सूचना देनेवाले हजारों शुभ चिह्न प्रकट

---

१. प्रधानं म. । २. पूर्णेन्दुरिव म. ।

प्रौढेन्दीवरगर्भाभिः कान्तिवारिकृतप्लवः । [1]सुलक्ष्मा लक्ष्मणाख्यायां पितृभ्यामेव योजितः ॥२६॥
बालौ मनोज्ञरूपौ तौ विद्रुमाभरुच्छदौ । रक्तोत्पलसमच्छायपाणिपादौ सुविभ्रमौ ॥२७॥
नवनीतसुखस्पर्शौ जातिसौरभधारिणौ । कुर्वाणौ शैशवीं क्रीडां चेतः कस्य न जह्रतुः ॥२८॥
चन्दनद्रवदिग्धाङ्गौ कुङ्कुमस्थासकाङ्कितौ । सुवर्णरससंपृक्तरजताचलकोपमौ [2]॥२९॥
अनेकजन्मसंवृद्धस्नेहान्योन्यवशानुगौ । अन्तःपुरगतौ सर्वबन्धुभिः कृतपालनौ ॥३०॥
विच्छर्दमिव कुर्वाणावमृतेन कृतस्वनौ । [3]सुखपङ्केन लिम्पन्ताविव लोकं विलोकनात् ॥३१॥
छिन्दन्ताविव दारिद्र्यमाहूतागमकारिणौ । तर्पयन्ताविव स्वान्तं सर्वेषामनुकूलतः ॥३२॥
प्रसादसंमदौ साक्षादिव देहमुपागतौ । रेमाते तौ सुखं पुर्यां कुमारौ कृतरक्षणौ ॥३३॥
विजयश्च त्रिपृष्ठश्च यथापूर्वं बभूवतुः । तत्तुल्यचेष्टितावेवं कुमारौ तावशेषतः ॥३४॥
तनयं केकयासूत दिव्यरूपसमन्वितम् । यो जगाम महाभाग्यो भुवने भरतश्रुतिम् ॥३५॥
सुषुवे सुप्रभा पुत्रं सुन्दरं यस्य विष्टपे । शत्रुघ्नशब्देन सकलेऽद्यापि वर्तते ॥३६॥
बलनामापरं मात्रा पद्मस्येति विनिर्मितम् । सुमित्रया हरिर्नाम तनयस्य महेच्छया ॥३७॥
कृतोऽर्धचक्रिनामायं मात्रेति भरताभिधाम् । दृष्ट्वा चक्रिणि संपूर्णे केकया प्रापयत् सुतम् ॥३८॥
चक्रवर्तिध्वनिं नीतो मात्रायमिति सुप्रभा । तनयस्याहतो नाम शत्रुघ्नमिति निर्ममे ॥३९॥

होने लगे ॥२५॥ प्रौढ़ नील कमलके भीतरी भागके समान जिसकी आभा थी, जो कान्तिरूपी जलमें तैर रहा था और अनेक अच्छे-अच्छे लक्षणोंसे सहित था ऐसे उस पुत्रका माता-पिताने लक्ष्मण नाम रखा ॥२६॥ उन दोनों बालकोंका रूप अत्यन्त मनोहर था, उनके ओंठ मूँगाके समान लाल थे, हाथ और पैर लाल कमलके समान कान्तिवाले थे, उनके विभ्रम अर्थात् हाव-भाव देखते ही बनते थे, उनका स्पर्श मक्खनके समान कोमल था, तथा जन्मसे ही वे उत्तम सुगन्धिको धारण करनेवाले थे। बाल-क्रीड़ा करते हुए वे किसका मन हरण नहीं करते थे ॥२७-२८॥ चन्दनके लेपसे शरीरको लिप्त करनेके बाद जब वे ललाटपर कुंकुमका तिलक लगाते थे तब सुवर्ण रससे संयुक्त रजताचलकी उपमा धारण करते थे ॥२९॥ अनेक जन्मोंके संस्कारसे बढ़े हुए स्नेहसे वे दोनों ही बालक परस्पर एक दूसरेके वंशानुगामी थे, तथा अन्तःपुरमें समस्त बन्धु उनका लालन-पालन करते थे ॥३०॥ जब वे शब्द करते थे तब ऐसे जान पड़ते थे मानो अमृतका वमन ही कर रहे हों और जब किसीकी ओर देखते थे तब ऐसा जान पड़ते थे मानो उस लोकको सुखदायक पंकसे लिप्त ही कर रहे हों ॥३१॥ जब किसीके बुलानेपर वे उसके पास पहुँचते थे तब ऐसे जान पड़ते थे मानो दरिद्रताका छेद ही कर रहे हों। वे अपनी अनुकूलतासे सबके हृदयको मानो तृप्त ही कर रहे थे ॥३२॥ उन्हें देखनेसे ऐसा जान पड़ता था मानो प्रसाद और सम्पद् नामक गुण ही देह रखकर आये हों। जिनकी रक्षक लोग रक्षा कर रहे थे ऐसे दोनों बालक नगरीमें सुखपूर्वक जहाँ-तहाँ क्रीड़ा करते थे ॥३३॥ जिस प्रकार पहले विजय और त्रिपृष्ठ नामक बलभद्र तथा नारायण हुए थे उसी प्रकार ये दोनों बालक भी उन्हींके समान समस्त चेष्टाओंके धारक हुए थे ॥३४॥ तदनन्तर केकया रानीने सुन्दर रूपसे सहित पुत्र उत्पन्न किया जो महाभाग्यवान् था तथा संसारमें 'भरत' इस नामको प्राप्त हुआ था ॥३५॥ तत्पश्चात् सुप्रभा रानीने सुन्दर पुत्र उत्पन्न किया जिसकी समस्त संसारमें आज भी 'शत्रुघ्न' नामसे प्रसिद्धि है ॥३६॥ अपराजिताने पद्मका दूसरा नाम बल रखा था तथा सुमित्राने अपने पुत्रका दूसरा नाम बड़ी इच्छासे हरि घोषित किया था ॥३७॥ केकयाने देखा कि 'भरत' यह नाम सम्पूर्ण चक्रवर्ती भरतमें आया है इसलिए उसने अपने पुत्रका अर्ध-चक्रवर्ती नाम प्रकट किया ॥३८॥ सुप्रभाने विचार किया कि जब

१. सुलक्ष्मा म. । २. रजताञ्चनकोपमौ म. । ३. सुखपङ्केन ख., ज. ।

[illegible] इव जगतः कुमारास्ते चत्वार इव । दिग्विभागा इवोदारा बभूवुर्जगतः प्रियाः ॥४०॥
ततः कुमारकान् दृष्ट्वा विद्यासंग्रहणोचितान् । दध्यौ योग्यमुपाध्यायं पितैषां मनसाकुलः ॥४१॥
अथास्ति नगरं नाम्ना काम्पिल्यमिति सुन्दरम् । भार्गवोऽत्र शिखी ख्यातस्तस्येषुरिति भामिनी ॥४२॥
ऐरस्तयोः सुतो दुर्विनीतोऽतिलालितैः[1] । उपालम्भसहस्राणां कारणीभूतचेष्टितः ॥४३॥
द्रविणोपार्जनं विद्याग्रहणं धर्मसंग्रहः । स्वाधीनमपि तत्प्रायो विदेशे[2] सिद्धिमश्नुते ॥४४॥
पितृभ्यां भवनादेष निर्विण्णाभ्यां निराकृतः । ययौ राजगृहं दुःखी वसानः कर्पटद्वयम् ॥४५॥
तत्र वैवस्वतो नाम धनुर्वेदादिपण्डितः । युक्तो सहस्रमात्रेण शिष्याणामभियोगिनाम् ॥४६॥
यथावत्तस्य पार्श्वेऽसौ धनुर्विद्यामुपागमत् । आप्तः शिष्यसहस्राच्च दूरेणाधिककौशलः ॥४७॥
श्रुतं कुशाग्रराजेन मत्सुतेभ्योऽपि कौशलम् । बैदेशे क्वापि विन्यस्तमिति ज्ञात्वा रुषं गतः ॥४८॥
श्रुत्वा च स्वामिनं क्रुद्धमस्त्राचार्येण शिक्षितः[3] । एवमेरो यथा राज्ञः पुरः कुण्ठो भविष्यति ॥४९॥
स समाहूयितः शिष्यैः सूतोऽसौ विभुना नृणाम् । शिक्षां पश्यामि सर्वेषां क्षात्राणमिति चोदितः ॥५०॥
ततोऽन्तेवासिनस्तेन क्रमेण शरमोक्षणम् । कारिता[4] लक्ष्यपातं च सर्वे चक्रुर्यथायथम् ॥५१॥
तथैरोऽपि स निर्युक्तः शरान् चिक्षेप तादृशान् । दुःशिक्षित इति ज्ञातो विभुना[5] तेन तादृशैः ॥५२॥
विदित्वा वितथां सर्वां राज्ञा संप्रेषितो गतः । अस्त्राचार्यः स्वकं धाम शिष्यमण्डलमध्यगः ॥५३॥

केकयाने अपने पुत्रका नाम चक्रवर्तीके नामपर रखा है तब मैं अपने पुत्रका नाम इससे भी बढ़कर क्यों नहीं रखूँ यह विचारकर उसने अर्हन्त भगवान्‌के नामपर अपने पुत्रका नाम शत्रुघ्न रखा ॥३९॥ जगत्‌के जीवोंको प्रिय लगनेवाले वे चारों कुमार समुद्रके समान गम्भीर थे, सम्यग् नयोंके समान परस्पर अनुकूल थे तथा दिग्विभागोंके समान उदार थे ॥४०॥

तदनन्तर इन कुमारोंको विद्या ग्रहणके योग्य देखकर इनके पिता राजा दशरथने बड़ी व्यग्रतासे योग्य अध्यापकका विचार किया ॥४१॥ अथानन्तर एक काम्पिल्य नामका सुन्दर नगर था उसमें शिखी नामका ब्राह्मण रहता था। उसकी इषु नामकी स्त्री थी ॥४२॥ उन दोनोंके एक ऐर नामका पुत्र था जो अत्यधिक लाड़-प्यारके कारण महाअविनयी हो गया था। उसकी चेष्टाएँ हजारों उलाहनोंका कारण हो रही थीं ॥४३॥ धनका उपार्जन करना, विद्या ग्रहण करना और धर्मसंचय करना ये तीनों कार्य यद्यपि मनुष्यके अपने अधीन हैं फिर भी प्रायःकर विदेशमें ही इनकी सिद्धि होती है ॥४४॥ ऐसा विचारकर माता-पिताने दुःखी होकर उसे घरसे निकाल दिया जिससे केवल दो कपड़ोंको धारण करता हुआ वह दुःखी अवस्थामें राजगृह नगर पहुँचा ॥४५॥ वहाँ एक वैवस्वत नामका विद्वान् था जो धनुर्विद्यामें अत्यन्त निपुण था और विद्याध्ययनमें श्रम करनेवाले एक हजार शिष्योंसे सहित था ॥४६॥ ऐर उसीके पास विधिपूर्वक धनुर्विद्या सीखने लगा और कुछ ही समयमें उसके हजार शिष्योंसे भी अधिक निपुण हो गया ॥४७॥ राजगृहके राजाने जब यह सुना कि वैवस्वतने किसी विदेशी बालकको हमारे पुत्रोंसे भी अधिक कुशल बनाया है तब वह यह जानकर क्रोधको प्राप्त हुआ ॥४८॥ राजाको कुपित सुनकर अस्त्रविद्याके गुरु वैवस्वतने ऐरको ऐसी शिक्षा दी कि तू राजाके सामने मूर्ख बन जाना ॥४९॥ तदनन्तर राजाने, मैं तुम्हारे सब शिष्योंकी शिक्षा देखूँगा, यह कहकर शिष्योंके साथ वैवस्वत गुरुको बुलाया ॥५०॥ तदनन्तर राजाने सब शिष्योंसे क्रमसे बाण छुड़वाये और सबने यथायोग्य निशाने बींध दिये ॥५१॥ इसके बाद ऐरसे भी बाण छुड़वाये तो उसने इस रीतिसे बाण छोड़े कि राजाने उसे मूर्ख समझा ॥५२॥ जब राजाने यह समझ लिया कि लोगोंने इसके विषयमें जो

---

१. विलालितः म. । २. सिद्धिमश्नुते म. । ३. शिष्यतः म. । ४. लक्षपातं च म. । ५. येन तादृशैः क. ।

वैवस्वतसुताभ्यैः स्वीकृत्य गुरुसंभृताम् । रात्रौ पलायनं कृत्वा प्राप दाशरथीं पुरीम् ॥५४॥
ढौकितश्चास्त्रशस्त्रेषु स्वं कौशलं च न्यवेदयत् । राज्ञा समर्पिता तस्मै तुष्टेन तनुसंभवाः ॥५५॥
तेष्वस्त्रकौशलं तस्य [1]संक्रान्तं स्फीततां गतम् । सरःसु सुप्रसन्नेषु चन्द्रबिम्बमिवागतम् ॥५६॥
अन्यानि च गुरुप्राप्त्या विज्ञानानि [2]प्रकाशताम् । यातानि तेषु रत्नानि पिधानापगमादिव ॥५७॥

स्रग्धराच्छन्दः

दृष्ट्वा विज्ञानमेषामतिशयसहितं सर्वशास्त्रेषु राजा
संप्राप्तस्तोषमग्र्यं सुतनयविनयोदारचेष्टाहृतात्मा ।
चक्रे पूजासमेतं गुरुषु गुणगणज्ञानपाण्डित्ययुक्तो
यातं श्रुत्वास्य वाञ्छाविभवमतिशयं दानविख्यातकीर्तिः ॥५८॥
ज्ञानं संप्राप्य किंचिद् व्रजति परमतां तुल्यमन्यत्र यातं
तावत्स्वंतापि नेति स्वयमपि पुरुषे कर्मवैषम्ययोगात् ।
अत्यन्तं स्फीतिमेति स्फटिकगिरितटे तुल्यमन्यत्र देशे
यात्येकान्तेन नाशं तिमिरवति रवेरंशुवृन्दं खगौघैः ॥५९॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते चतुर्भ्रातृसंभवाभिधानं नाम पञ्चविंशतितमं पर्व ॥२५॥

कहा था वह सब झूठ है तब उसने अस्त्राचार्यको सम्मानके साथ विदा किया और वह शिष्य-मण्डलके साथ अपने घर चला गया ॥५३॥ ऐर गुरुकी सम्मतिसे उसकी पुत्रीको विवाह कर रात्रिमें वहाँसे भाग आया और राजा दशरथकी राजधानी अयोध्यापुरीमें आया ॥५४॥ वहाँ उसने राजा दशरथके पास जाकर उन्हें अपना कौशल दिखाया और राजाने सन्तुष्ट होकर उसे अपने सब पुत्र सौंप दिये ॥५५॥ सो जिस प्रकार निर्मल सरोवरोंमें प्रतिबिम्बित चन्द्रमाका बिम्ब विस्तारको प्राप्त होता है उसी प्रकार उन शिष्योंमें ऐरका अस्त्रकौशल प्रतिबिम्बित होकर विस्तारको प्राप्त हो गया ॥५६॥ इसके सिवाय अन्य-अन्य विषयोंके गुरु प्राप्त होनेसे उनके अन्य-अन्य ज्ञान भी उस तरह प्रकाशताको प्राप्त हो गये जिस तरह कि ढक्कनके दूर हो जानेसे छिपे रत्न प्रकाशताको प्राप्त हो जाते हैं ॥५७॥ पुत्रोंके नय, विनय और उदार चेष्टाओंसे जिनका हृदय हरा गया था ऐसे राजा दशरथ उन पुत्रोंका सर्वशास्त्रविषयक अतिशय पूर्णज्ञान देखकर अत्यन्त सन्तोषको प्राप्त हुए । वे गुणसमूहविषयक ज्ञान और पाण्डित्यसे युक्त थे तथा दानमें उनकी कीर्ति अत्यन्त प्रसिद्ध थी, इसलिए उन्होंने समस्त गुरुओंका सम्मान कर उन्हें इच्छासे भी अधिक वैभव प्रदान किया था ॥५८॥

गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! किसी पुरुषको प्राप्तकर थोड़ा ज्ञान भी उत्कृष्टताको प्राप्त हो जाता है, किसीको पाकर उतनाका उतना ही रह जाता है और कर्मोंकी विषमतासे किसीको पाकर उतना भी नहीं रहता । सो ठीक ही है क्योंकि सूर्यकी किरणोंका समूह स्फटिक-गिरिके तटको पाकर अत्यन्त विस्तारको प्राप्त हो जाता है, किसी स्थानमें तुल्यताको प्राप्त होता है अर्थात् उतनाका उतना ही रह जाता है और अन्धकारयुक्त स्थानमें बिलकुल ही नष्ट हो जाता है ॥५९॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें राम आदि चार भाइयोंकी उत्पत्तिका कथन करनेवाला पचीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२५॥

---

१. संभ्रान्तं म. । २. प्रकाशितम् म. ।

श्रीमद्रविषेणाचार्यकृतम्

पद्मचरितापरनामधेयं

पद्मपुराणम्

षड्विंशतितमं पर्व

अतो जनकसम्बन्धं शृणु श्रेणिक ते परम् । निवेदयामि यद्वृत्तं भवावहितमानसः[1] ॥१॥
भामिनी जनकस्यासीद् विदेहा नाम सुन्दरी । गर्भनिर्वेदनं तस्याः प्रत्यैक्षत[2] चिरं सुरः ॥२॥
जगाद श्रेणिको नाथ तं गर्भं केन हेतुना । देवो रराक्ष[3] विज्ञातुमेतदिच्छामि[4] शिष्यताम् ॥३॥
उवाच गौतमो राजा नाम्ना चक्रध्वजोऽभवत् । स्थाने चक्रपुराभिख्ये भार्या तस्य मनस्विनी ॥४॥
तयोश्चित्तोत्सवापत्यं कन्या गुरुगृहे च सा । रराज सितमृल्लेशैर्लेखनी वर्णपूरिका ॥५॥
राज्ञः पुरोहितस्यास्य धूमकेशस्य पिङ्गलः । स्वाहाकुक्षिभवोऽधीते सुतस्तत्रैव पाठके ॥६॥
विद्यालाभस्तयोर्नासीदन्योन्यहृतचेतसोः । विद्याधर्मविगाहश्च जायतेऽवहितात्मनाम् ॥७॥
पुरा संसर्गतः प्रीतिः प्राणिनामुपजायते । प्रीतितोऽभिरतिप्राप्तौ रतेर्विश्रम्भसंभवः ॥८॥
सद्भावात् प्रणयोत्पत्तिः प्रेमैवं पञ्चहेतुकम् । दुर्मोचं बध्यते कर्म पातकैरिव पञ्चभिः ॥९॥

अथानन्तर गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अब राजा जनकका वृत्तान्त कहता हूँ सो तुम सावधान चित्त होकर सुनो ॥१॥ राजा जनककी विदेहा नामकी सुन्दरी स्त्री थी। उसके गर्भ रहा, सो एक देव चिरकालसे उसके गर्भकी प्रतीक्षा करने लगा ॥२॥ यह सुन राजा श्रेणिकने कहा कि नाथ ! वह देव किस कारणसे विदेहाके गर्भकी रक्षा करता था ? यह मैं जानना चाहता हूँ सो कहिए ॥३॥ इसके उत्तरमें गौतमस्वामीने कहा कि चक्रपुरनामा नगरमें एक चक्रध्वज नामका राजा था। उसकी स्त्रीका नाम मनस्विनी था ॥४॥ उन दोनोंके चित्तोत्सवा नामकी कन्या उत्पन्न हुई। वह कन्या गुरुके घर अर्थात् पाठशालामें खड़िया मिट्टीके टुकड़ोंसे वर्णमाला लिखती हुई सुशोभित होती थी ॥५॥ उसी गुरुके घर राजाके पुरोहित धूमकेशकी स्वाहा नामकी स्त्रीसे उत्पन्न पिङ्गल नामका पुत्र भी अध्ययन करता था ॥६॥ चित्तोत्सवा और पिङ्गल इन दोनोंका चित्त परस्परमें हर गया इसलिए उन्हें विद्याकी प्राप्ति नहीं हो पाई। सो ठीक ही है क्योंकि विद्या और धर्मकी प्राप्ति स्थिर-चित्तवालोंको ही होती है ॥७॥ आचार्य कहते हैं कि पहले स्त्री पुरुषका संसर्ग अर्थात् मेल होता है फिर प्रीति उत्पन्न होती है, प्रीतिसे रति उत्पन्न होती है, रतिसे विश्वास उत्पन्न होता है और तदनन्तर विश्याससे प्रणय उत्पन्न होता है। इस तरह प्रेम पूर्वोक्त पाँच कारणोंसे उत्पन्न होता है। जिस प्रकार हिंसादि पाँच पापोंसे जो छूट न सके ऐसे कर्मका बन्ध होता है उसी प्रकार पूर्वोक्त पाँच कारणोंसे प्राणियोंके गाढ़ प्रेम उत्पन्न होता है ॥८-९॥

१. मानस म० । २. प्रत्यैक्षित म० । रक्ष । ३. -मेतमिच्छामि म०, ज०, ख० । ४. राज्ञां म० ।

अथासौ ज्ञातसद्भावा तेन चित्तोत्सवा रहः । ह्रियतेस्म महारूपा कीर्तिर्दुर्यशसा यथा ॥१०॥
दूरं देशं [1]यदानायि तदाज्ञायि सुबन्धुभिः । हृता प्रमाददोषेण मोहेन सुगतिर्यथा ॥११॥
कन्यया मुदितश्चौरः पिङ्गलो धनवर्जितः । न विभाति यथा लोभी तृष्णया धर्मवर्जितः ॥१२॥
विदग्धनगरं चाप दुर्गमं परराष्ट्रिणाम् । बहिः कृत्वा कुटीं तत्र तस्थौ निःस्वकपाटके[2] ॥१३॥
ज्ञानविज्ञानरहितस्तृणकाष्ठादिविक्रियात् । अनुरक्षति तां पत्नीं मग्नो दारिद्र्यसागरे ॥१४॥
पुत्रः प्रकाशसिंहस्य परराष्ट्रभयंकरः । जातोऽत्र प्रवरावल्यां राजा कुण्डलमण्डितः ॥१५॥
तेन दृष्टान्यदा बाला नियतेन कथंचन । हतश्च पञ्चभिर्बाणैर्मारस्याभूत् सुदुःखितः ॥१६॥
प्रच्छन्नं प्रेषिता दूती तया रात्रौ नृपालयम् । यथासीत् कमलामेला सुमुखस्य प्रवेशिता ॥१७॥
तया सह सुखं रेमे प्रीतः कुण्डलमण्डितः । उर्वशया सह श्रीमान् यथासीन्नलकूबरः ॥१८॥
ततः स पिङ्गलोऽप्यन्तः स्वगृहमागमत् । तामपश्यन् विशालाक्षीं मग्नो वैधुर्यसागरे ॥१९॥
विस्तीर्णेन किमुक्तेन सौख्यं विरहदुःखितः । न कचिल्लभते सौख्यं चक्रारूढ इवाकुलः ॥२०॥
हृतभार्यो द्विजो दीनस्तं राजानमुपागमत् । कश्चे चान्विष्य मे राजन् पत्नी केनापि चोरिता ॥२१॥
भीतानां दरिद्राणामार्तानां च विशेषतः । नारीणां पुरुषाणां च सर्वेषां शरणं नृपः ॥२२॥

अथानन्तर जब पिंगलको चित्तोत्सवके अभिप्रायका पूर्ण ज्ञान हो गया तब वह उस रूपवतीको एकान्त पाकर हर ले गया। जिस प्रकार अपयशके द्वारा कीर्तिका अपहरण होता है उसी प्रकार पिंगलके द्वारा चित्तोत्सवका हरण हुआ ॥१०॥ जब वह उसे बहुत दूर देशमें ले गया तब बन्धुजनोंको उसका पता चला। जिस प्रकार मोहके द्वारा उत्तम गतिका हरण होता है उसी प्रकार प्रमादके द्वारा उस कन्याका हरण हुआ था ॥११॥ इधर कन्याको चुरानेवाला पिंगल कन्या पाकर प्रसन्न था, पर निर्धन होनेके कारण वह उससे उस प्रकार सुशोभित नहीं हो रहा था जिस प्रकार कि धर्महीन लोभी मनुष्य तृष्णासे सुशोभित नहीं होता है ॥१२॥ पिंगल कन्याको लेकर जहाँ दूसरे देशके लोगोंका प्रवेश नहीं हो सकता था ऐसे विदग्ध नगरमें पहुँचा और वहाँ नगरके बाहर जहाँ अन्य दरिद्र मनुष्य रहते थे वहीं कुटी बनाकर रहने लगा ॥१३॥ वह ज्ञान-विज्ञानसे रहित था साथ ही दरिद्रतारूपी सागरमें भी निमग्न था इसलिए तृण, काष्ठ आदि बेंचकर अपनी उस पत्नीकी रक्षा करता था ॥१४॥ उसी नगरमें राजा प्रकाशसिंह और प्रवरावली रानीका पुत्र राजा कुण्डलमण्डित रहता था जो कि शत्रुओंके देशको भय उत्पन्न करनेवाला था ॥१५॥ एक दिन वह नगरके बाहर गया था सो वहाँ चित्तोत्सवा उसकी दृष्टिमें आयी। देखते ही वह कामके पाँचों बाणोंसे ताड़ित होकर अत्यन्त दुःखी हो गया ॥१६॥ उसने गुप्तरूपसे चित्तोत्सवाके पास दूती भेजी सो उस दूतीने उसे रात्रिके समय राजमहलमें उस तरह प्रविष्ट करा दिया जिस प्रकार कि पहले राजा सुमुखकी दूतीने कमलामेलाको उसके महलमें प्रविष्ट कराया था ॥१७॥ जिस प्रकार अनुरागसे भरा नलकूबर उर्वशीके साथ रमण करता था उसी प्रकार प्रीतिसे भरा कुण्डलमण्डित उस चित्तोत्सवाके साथ रमण करने लगा ॥१८॥

तदनन्तर जब वह पिंगल थका-माँदा अपने घर आया तो उस विशाललोचनाको न देखकर दुःखरूपी सागरमें निमग्न हो गया ॥१९॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि अधिक कहनेसे क्या ? उसके विरहसे दुःखी हुआ वह चक्रारूढ़की तरह आकुल होता हुआ किसी भी जगह सुख प्राप्त नहीं करता था ॥२०॥ तदनन्तर जिसकी भार्या हरी गयी थी ऐसा वह दीनहीन ब्राह्मण राजाके पास गया और जिस किसी तरह राजाका पता चलाकर बोला कि हे राजन् ! किसीने मेरी स्त्री चुरा ली है ॥२१॥ राजा ही सबका शरण है और खासकर जो स्त्री-पुरुष भयभीत, दरिद्र तथा

---

१. यदानायि म. । २. निस्वकपाटकः म. ।

असाध्यं धूर्तमाहूय समायं[1] पार्थिवोऽब्रवीत् । चिराय मा कृथा माम जायास्यान्विष्यतामिति ॥२३॥
जगादेति च तत्रैकः सविकारेण चक्षुषा । सा दृष्टा पथिकैर्देव पौदनस्थानवर्त्मनि ॥२४॥
क्षान्त्यार्यावृन्दमध्यस्था तपःकर्तुं[2] समुद्यता[3] । विनिवर्तय तां क्षिप्रं किं विरौषि व्रज द्विज ॥२५॥
को वा प्राप्तयकालोऽस्या दधत्यास्तरुणीं तनुम् । वरस्त्रीगुणपूर्णाया हरन्त्यास्तरुणं जनम् ॥२६॥
इत्युक्ते द्विज उत्थाय बद्ध्वा परिकरं दृढम् । दधाव रंहसा विद्धो अश्वाश्वतरको यथा ॥२७॥
पौदने नगरेऽन्विष्य चैत्येषूपवनेषु च । अदृष्ट्वा पुनरागच्छद् विदग्धनगरं द्रुतम् ॥२८॥
नृपाज्ञया नरैः क्रूरैर्गलघातैः स तर्जनैः । यष्टिलोष्टप्रहारैश्च दूरं निर्वासितो भृशम् ॥२९॥
स्थानभ्रंशं परिक्लेशमवमानं वधं तथा । अनुभूय परं दीर्घमध्वानं स प्रपन्नवान् ॥३०॥
रतिं न लभते क्वापि रहितः प्रियया तया । शुष्यत्यहनि रात्रौ च पतितोऽग्नाविवोरगः ॥३१॥
विशालपङ्कजवनं दावाग्निमिव पश्यति । सरोऽपि गाहमानोऽसौ दह्यते विरहाग्निना[4] ॥३२॥
एवं सुदुःखितमनाः पर्यटन् पृथिवीतले । नगरस्य स्थितं द्वारे ददर्श[5] गगनाम्बरम् ॥३३॥
आचार्यमार्यगुप्तं[6] च समेत्य रचिताञ्जलिः । प्रणम्य शिरसा हृष्टो धर्मं शुश्राव तत्त्वतः ॥३४॥
श्रुत्वा धर्मं मुनेः प्राप्तः स वैराग्यमनुत्तमम् । प्रशशंस जिनेन्द्राणां शासनं शान्तमानसः ॥३५॥
अहो परममाहात्म्यो मार्गोऽयं जिनदेशितः । ममान्धकारयातस्य यो भास्कर इवोदितः ॥३६॥

दुःखी होते हैं उनका राजा ही शरण होता है ॥२२॥ यह सुन राजाने एक धूर्त मन्त्रीको बुलाकर मायासहित कहा कि विलम्ब मत करो, शीघ्र ही इसकी स्त्रीका पता चलाओ ॥२३॥ तब एक मन्त्रीने विकारसहित नेत्र चलाकर कहा कि हे राजन् ! उस स्त्रीको तो पथिकोंने पोदनपुरके मार्गमें देखा था ॥२४॥ वह आर्यिकाओंके समूहके बीचमें स्थित थी तथा शान्तिपूर्वक तप करनेके लिए तत्पर जान पड़ती थी। अरे ब्राह्मण ! जल्दी जाकर उसे लौटा ला। इधर क्यों रो रहा है ? ॥२५॥ जब कि वह यौवनपूर्ण शरीरको धारण कर रही है, उत्तम स्त्रियोंके गुणोंसे परिपूर्ण है तथा तरुण जनोंको हरनेवाली है तब उसका यह तप करनेका समय ही कौन-सा है ? ॥२६॥ मन्त्रीके ऐसा कहते ही वह ब्राह्मण उठा और अच्छी तरह कमर कसकर वेगसे इस प्रकार दौड़ा जिस प्रकार कि बन्धनसे छूटा घोड़ा दौड़ता है ॥२७॥ वहाँ जाकर उसने पोदनपुरके मन्दिरों तथा उपवनोंमें अपनी स्त्रीकी बहुत खोज की। जब नहीं दिखी तब वह पुनः शीघ्र ही विदग्धनगरमें वापस आ गया ॥२८॥ राजाकी आज्ञासे दुष्ट मनुष्योंने उसे गलेमें बिच्चा देकर नाना प्रकारकी डाँट दिखाकर तथा लाठी और पत्थरोंसे मारकर बहुत दूर भगा दिया ॥२९॥ स्थानभ्रंश, अत्यन्त क्लेश, अपमान और मारका अनुभव कर उसने लम्बा रास्ता पकड़ लिया अर्थात् वह बहुत दूर चला गया ॥३०॥ स्त्रीके बिना वह कहीं भी रतिको प्राप्त नहीं होता था। वह अग्निमें पड़े हुए साँपके समान रात-दिन सूखता जाता था ॥३१॥ वह कमलोंके विशाल वनको दावानलके समान देखता था और सरोवरमें प्रविष्ट होता हुआ भी विरहाग्निसे जलने लगता था ॥३२॥ इस प्रकार दुःखितहृदय होकर वह पृथिवीपर घूमता रहा। एक दिन उसने नगरके द्वारपर स्थित आर्यगुप्त नामक दिगम्बर आचार्यको देखा। उनके पास जाकर उसने हाथ जोड़कर शिरसे प्रणाम किया तथा हर्षित हो धर्मका यथार्थ स्वरूप सुना ॥३३-३४॥ मुनिराजसे धर्म श्रवणकर वह परम वैराग्यको प्राप्त हुआ तथा शान्त-चित्त होकर इस प्रकार जिनशासनकी प्रशंसा करने लगा ॥३५॥ कि अहो ! जिन-भगवान्‌के द्वारा प्रदर्शित यह मार्ग उत्कृष्ट प्रभावसे सहित है। मैं अन्धकारमें पड़ा था सो यह मार्ग मेरे लिए मानो सूर्यके समान ही उदित हुआ है ॥३६॥

---

१. मायासहितं यथा स्यात्तथा । २. मध्यस्थां म. । ३. समुद्यतां म. । ४. गाहमानोऽसौ दह्यते विरहाग्निना म. । ५. दूरे ज., क ख. । दूरं म. । ६. दिगम्बरमुनिम् । ७. -मर्यगुप्तिं च म. ।

प्रपद्येऽहं जिनेन्द्राणां शासनं पापनाशनम् । देहं निर्वापयाम्यद्य दग्धं विरहवह्निना ॥३७॥
ततः संवेगमापद्य [1]गुरुणाभ्यनुमोदितः । कृत्वा परिग्रहत्यागं दीक्षां दैगम्बरीमितः [2] ॥३८॥
तथापि विहरन् क्षोणीं सर्वसंगविवर्जितः । [3]चित्तोत्सवासमुत्कण्ठां जातुचित्यत्यपश्यत [4] ॥३९॥
सरित्पर्वतदुर्गेषु श्मशानेष्वटवीषु च । वसन् स परमं चक्रे तपो [5]देहसुशोषणम् ॥४०॥
न यस्य [6]जलदध्वान्ते काले खेदं गतं मनः । हेमन्ते हिमपङ्केन वपुर्यस्य न कम्पितम् ॥४१॥
[7]पूष्णो यस्य करैरुग्रैस्तापोऽणुरपि नो कृतः । स्मृत्वासीदत् सतां जातु स्नेहस्य किमु दुष्करम् ॥४२॥
दह्यमानं तथाप्येव शरीरं विरहाग्निना । पुनर्विध्यापयज्जैनवचनोदं [8]कसीकरैः ॥४३॥
अर्धदग्धतरुच्छायं तत्तस्य वपुरागतम् । स्मणीस्मरणेनोग्रतपसा च निरन्तरम् ॥४४॥
आस्तां तावदिदं वक्ष्ये मण्डितस्याधुनेहितम् [9] । कथा ह्यन्तरयोगेन स्थिता रत्नावली यथा ॥४५॥
अनरण्ये च राज्यस्थे वृत्तमेतन्निबुध्यताम् । कथानुक्रमयोगेन कथ्यमानमतः शृणु ॥४६॥
स्थानं दुर्गं समाश्रित्य मण्डितेन वसुन्धरा । [10]विराधितानरण्यस्य कुशीलेन यथा स्थितिः [11] ॥४७॥
देशा उद्वसिता तेन दुर्जनेन गुणा यथा । विरोधिताश्च सामन्ताः कषाया [12] इव योगिना ॥४८॥
नाशक्नोदनरण्यस्तं ग्रहीतुं क्षुद्रमप्यलम् । [13]आखोर्गिरिबिलस्थस्य किं करोतु [14] मृगाधिपः ॥४९॥

मैं पापको नष्ट करनेवाले जिनशासनको प्राप्त होता हूँ और विरहरूपी अग्निसे जले हुए इस शरीरको आज शान्त करता हूँ ॥३७॥ तदनन्तर संवेगको प्राप्त हो तथा गुरुकी आज्ञा लेकर उसने परिग्रहका त्याग कर दिया और दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली ॥३८॥ यद्यपि वह समस्त परिग्रहसे रहित हो पृथिवी पर विहार करता था तथापि जब कभी भी चित्तोत्सवके विषयमें उत्कण्ठित हो जाता था ॥३९॥ नदी, पर्वत, दुर्ग, श्मशान और अटवियोंमें निवास करता हुआ वह शरीरको सुखानेवाला परम तपश्चरण करता था ॥४०॥ मेघोंसे अन्धकारपूर्ण वर्षाकालमें उसका मन खेदको प्राप्त नहीं होता था और न हेमन्त ऋतुमें हिमके पंकसे उसका शरीर कम्पित होता था ॥४१॥ सूर्यकी तीक्ष्ण किरणोंसे उसे थोड़ा भी सन्ताप नहीं होता था। वह सदा सत्पुरुषोंका स्मरण करता रहता था सो ठीक ही है क्योंकि स्नेहके लिए कौन-सा कार्य दुष्कर अर्थात् कठिन है ? ॥४२॥ यह सब था तो भी उसका शरीर विरहाग्नि से जलता रहता था जिसे वह जिनेन्द्र भगवान्के वचनरूपी जलके छींटोंसे पुनः-पुनः शान्त करता था ॥४३॥ इस प्रकार निरन्तर होनेवाले स्त्रीके स्मरण तथा उग्र तपश्चरणसे उसका वह शरीर अधजले वृक्षके समान काला हो गया था ॥४४॥ अथानन्तर गौतमस्वामी कहते हैं कि अब यह कथा रहने दो। इसके बाद कुण्डलमण्डितकी कथा कहता हूँ सो सुनो ! यथार्थमें जिस प्रकार रत्नावली बीच-बीचमें दूसरे रत्नोंके अन्तरसे निर्मित होती है उसी प्रकार कथा भी बीच-बीचमें दूसरी-दूसरी कथाओंके अन्तरसे निर्मित होती है ॥४५॥ जिस समय राजा अनरण्य राज्यमें स्थित थे अर्थात् राज्य करते थे उस समयकी यह कथा है सो कथाके अनुक्रमसे कही जानेवाली इस अवान्तर कथाको सुनो ॥४६॥ कुण्डलमण्डित दुर्गम गढ़का अवलम्बन कर सदा अनरण्यकी भूमिको उस तरह विराधित करता रहता था जिस प्रकार कि कुशील मनुष्य कुलकी मर्यादाको विराधित करता रहता है ॥४७॥ जिस प्रकार दुर्जन गुणोंको उजाड़ देता है उसी प्रकार उसने अनरण्यके बहुत-से देश उजाड़ दिये और जिस प्रकार योगी कषायोंका अवरोध करते हैं उसी प्रकार उसने बहुत-से सामन्तोंका अवरोध कर दिया ॥४८॥ यद्यपि वह क्षुद्र था तो भी अनरण्य उसे पकड़नेके लिए समर्थ नहीं हो सका।

---

१. गुरुणाप्यनुमोदितः म. । २. प्राप्तः । ३. चित्तोत्सवां समुत्कण्ठां म. । ४. प्रतिपद्यत म. । ५. जलधेर्ध्वान्ते म. । ६. पूष्णोर्यस्य म. । ७. वचनोत्कर -म. । ८. कुण्डलमण्डितस्य । ९. हितः ख. । १०. विरोधितानरण्यस्य । ११. स्थितेः म. । १२. कषाय इव म. । १३. मूषकस्य । १४. करोति म. ।

नक्तंदिवमशुष्यत् स [1]तत्पराजयचिन्तया । अनादरेण शारीरमपि कर्म प्रपन्नवान् ॥५०॥
ततोऽसौ बालचन्द्रेण सेनान्या जात्वभाष्यत । उद्विग्न इव कस्मात्त्वं सततं नाथ लक्ष्यसे ॥५१॥
उद्वेगकारणं भद्र मम मण्डितकः परम् । इत्युक्ते बालचन्द्रेण प्रतिज्ञेयं समाश्रिता ॥५२॥
[2]राजन्नसाधयित्वा तं [3]पापं मण्डितकं तव । सकाशं नागमिष्यामि व्रतमेतन्मया कृतम् ॥५३॥
इति राज्ञः पुरः कृत्वा संगरं रोषमुद्वहन् । बलेन चतुरङ्गेण सेनानीर्गन्तुमुद्यतः ॥५४॥
चित्तोत्सवासमायुक्तचित्तो मुक्तान्यचेष्टितः । प्रमादबहुलो भिन्नमूलभृत्यपक्षलायतिः ॥५५॥
अज्ञातलोकवृत्तान्तो मण्डितः खण्डितोद्यमः । हेलया बालचन्द्रेण गत्वा बद्धो मृगो यथा ॥५६॥
गृहीतबलराज्यं तं निर्वास्य [4]विषयात् कृती । बालचन्द्रोऽनरण्यस्य समीपं पुनरागमत् ॥५७॥
ततस्तेन सुभृत्येन कृतसुस्थवसुन्धरः । परं प्रमोदमापन्नोऽनरण्यः सुखमन्वभूत् ॥५८॥
शरीरमात्रधारी तु मण्डितः पादचारकः । पर्यटन् धरणीं दुःखी पश्चात्ताप-समाहतः ॥५९॥
परिप्राप्याश्रमपदं श्रमणानां महात्मनाम् । नत्वा च शिरसाचार्यं धर्मं पप्रच्छ भावतः ॥६०॥
दुःखितानां दरिद्राणां बन्धितानां च बान्धवैः । व्याधिसंपीडितानां च प्रायो भवति धर्मधीः ॥६१॥
प्राव्रज्ये यस्य भगवन् शक्तिर्जन्तोर्न विद्यते । परिग्रहपरस्यास्य धर्मः कश्चिन्न विद्यते ॥६२॥

सो ठीक ही है क्योंकि पहाड़के बिलमें स्थित चूहेका सिंह क्या कर सकता है ? ॥४९॥ वह रात-दिन उसीके पराजयकी चिन्तासे सूखता जाता था। भोजन, पान आदि शरीर-सम्बन्धी कार्य भी वह अनादरसे करता था ॥५०॥

तदनन्तर किसी दिन उसके बालचन्द्र नामा सेनापतिने उससे कहा कि हे नाथ! आप सदा उद्विग्न-से क्यों दिखाई देते हैं ? ॥५१॥ इसके उत्तरमें राजा अनरण्यने कहा कि हे भद्र! मेरे उद्वेगका परम कारण कुण्डलमण्डित है। राजाके यह कहनेपर बालचन्द्र सेनापतिने यह प्रतिज्ञा की कि हे राजन्! 'पापी कुण्डलमण्डितको वश किये बिना मैं आपके समीप नहीं आऊँगा' मैंने यह व्रत लिया है ॥५२-५३॥ इस प्रकार राजाके सामने प्रतिज्ञा कर क्रोध धारण करता हुआ सेनापति चतुरंग सेनाके साथ जानेके लिए उद्यत हुआ ॥५४॥

उधर चित्तोत्सवामें जिसका चित्त लग रहा था ऐसा कुण्डलमण्डित अन्य सब चेष्टाएँ छोड़कर प्रमादसे परिपूर्ण था। उसके मन्त्री आदि मूल पक्षके सभी लोग उससे भिन्न हो चुके थे। लोकमें कहाँ क्या हो रहा है ? इसका उसे कुछ भी पता नहीं था। सब प्रकारका उद्यम छोड़कर वह एक स्त्रीमें ही आसक्त हो रहा था। सो अनरण्यके सेनापति बालचन्द्रने जाकर उसे मृगकी भाँति अनायास ही बाँध लिया ॥५५-५६॥ चतुर बालचन्द्र उसकी सेना और राज्यपर अपना अधिकार कर तथा उसे देशसे निकालकर अनरण्यके समीप वापस आ गया ॥५७॥ इस प्रकार उस उत्तम सेवकके द्वारा जिसकी वसुधामें पुनः सुख-शान्ति स्थापित की गयी थी ऐसा अनरण्य परम हर्षको प्राप्त होता हुआ सुखका अनुभव करने लगा ॥५८॥

कुण्डलमण्डितका सब राज्य छिन गया था, शरीर मात्र ही उसके पास बचा था। ऐसी दशामें वह पैदल ही पृथिवीपर भ्रमण करता था, सदा दुःखी रहता था और पश्चात्ताप करता रहता था ॥५९॥

एक दिन वह भ्रमण करता हुआ दिगम्बर मुनियोंके तपोवनमें पहुँचा। वहाँ आचार्य महाराजको शिरसे नमस्कार कर उसने भावपूर्वक धर्मका स्वरूप पूछा ॥६०॥ सो ठीक ही है क्योंकि दुःखी, दरिद्री, भाई-बन्धुओंसे रहित और रोगसे पीड़ित मनुष्योंकी बुद्धि प्रायः धर्ममें लगती ही है ॥६१॥ उसने पूछा कि हे भगवन्! जिसकी मुनिदीक्षा लेनेकी शक्ति नहीं है उस

---

१. तत्परो जय म.। २. हे राजन् ! असाधयित्वा = तं स्ववशमकृत्वा। ३. पापमहितकं ख.। ४. देशात्।

कथं वा मुच्यते पापैश्चतुःसंज्ञापरायणः । एतदिच्छामि विज्ञातुं प्रसीद व्याकुरुष्व मे ॥६३॥
गुरुः प्रोवाच वचनं धर्मः प्राणिदया स्मृता । मुच्यन्ते देहिनः पापैरात्मनिन्दादिगर्हणैः ॥६४॥
हिंसायाः कारणं घोरं शुक्रशोणितसंभवम् । पिशितं मा भक्षय त्वं शुद्धं चेद्धर्ममिच्छसि[1] ॥६५॥
प्राणिनां मृत्युभीरूणां दारैरर्थैरसेविनाम्[2], मृषिणां मुग्धं याति नरकं पापमानवः ॥६६॥
शिरसो मुण्डनैः स्नानैर्विलिङ्गग्रहणादिभिः[3] । नास्ति संधारणं जन्तोर्मांसभक्षणकारिणः ॥६७॥
तीर्थस्नानानि दानानि सोपवासानि देहिनः । नरकाक्ष परित्राणं कुर्वन्ति पिशिताशिनः ॥६८॥
सर्वजातिगता जीवा बान्धवाः पूर्वजन्मसु । स्युरमी भक्षितास्तेन मांसभक्षणकारिणा ॥६९॥
पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति परिपन्थं च तिष्ठति[4] । यो नरोऽस्मादपि क्रूरां मधुमांसाद् गतिं व्रजेत् ॥७०॥
न वृक्षाज्जायते मांसं नोद्भिद्य धरणीतलम्[5] । नाम्भसः पद्मवच्चापि सद्द्रव्येभ्यो यथौषधम् ॥७१॥
पक्षिमत्स्यमृगान् हत्वा वराकान् प्रियजीवितान् । क्रूरैरुत्पाद्यते मांसं तस्मादनृति दयापराः ॥७२॥
स्तन्येन वर्धितं[6] यस्या शरीरं सा मृता सतीम् । महिषीं मातरं कष्टं भक्षयन्ति नराधमाः ॥७३॥
माता पिता च पुत्रश्च मित्राणि च सहोदराः । भक्षितास्तेन यो मांसं भक्षयत्यधमो नरः ॥७४॥
इतः क्ष्मापटलं मेरोरधस्तात् सप्तकं स्मृतम् । तत्र रत्नप्रभाभिख्ये देवा भवनवासिनः ॥७५॥
सकषायं तपः कृत्वा जायन्ते तत्र देहिनः । देवानामधमास्ते तु दुष्टकर्मसमन्विताः ॥७६॥

परिग्रही मनुष्यके लिए क्या कोई धर्म नहीं है ? ॥६२॥ अथवा चारों संज्ञाओंमें तत्पर रहनेवाला गृहस्थ पापोंसे किस प्रकार छूट सकता है ? मैं यह जानना चाहता हूँ सो आप प्रसन्न होकर मेरे लिए यह सब बताइए ॥६३॥

तदनन्तर मुनिराजने निम्नांकित वचन कहे कि जीवदया धर्म है तथा अपनी निन्दा गर्हा आदि करनेसे मनुष्य पापोंसे छूट जाते हैं ॥६४॥ यदि तू शुद्ध अर्थात् निर्दोष धर्म धारण करना चाहता है तो हिंसाका भयंकर कारण तथा शुक्र और शोणितसे उत्पन्न मांसका कभी भक्षण नहीं कर ॥६५॥ जो पापी पुरुष मृत्युसे डरनेवाले प्राणियोंके मांससे अपना पेट भरता है वह अवश्य ही नरक जाता है ॥६६॥ शिर मुँड़ाना, स्नान करना तथा नाना प्रकारके वेष धारण करना आदि कार्योंसे मांसभक्षी मनुष्यकी रक्षा नहीं हो सकती ॥६७॥ तीर्थक्षेत्रोंमें स्नान करना, दान देना तथा उपवास करना आदि कार्य मांसभोजी मनुष्यको नरकसे बचानेमें समर्थ नहीं हैं ॥६८॥ समस्त जातियोंके जीव इस प्राणीके पूर्वभवोंमें बन्धु रह चुके हैं। अतः मांसभक्षण करनेवाला मनुष्य अपने इन्हीं भाई-बन्धुओंको खाता है यह समझना चाहिए ॥६९॥ जो मनुष्य पक्षी, मत्स्य और मृगोंको मारता है तथा इनके विरुद्ध आचरण करता है वह मधु-मांसभक्षी मनुष्य इन पक्षी आदिसे भी अधिक क्रूर गतिको प्राप्त होता है ॥७०॥ मांस न वृक्षसे उत्पन्न होता है, न पृथिवीतलको भेदन कर निकलता है, न कमलकी तरह पानीसे उत्पन्न होता है और न औषधिके समान किन्हीं उत्तम द्रव्योंसे उत्पन्न होता है। किन्तु जिन्हें अपना जीवन प्यारा है ऐसे पक्षी, मत्स्य, मृग आदि दीन-हीन प्राणियोंको मारकर दुष्ट मनुष्य मांस उत्पन्न करते हैं। इसलिए दयालु मनुष्य उसे कभी नहीं खाते ॥७१-७२॥ जिसके दूधसे शरीर पुष्ट होता है तथा जो माताके समान है ऐसी भैंसके मरनेपर नीच मनुष्य उसे खा जाता है यह कितने कष्टकी बात है ? ॥७३॥ जो नीच मनुष्य मांस खाता है उसने माता, पिता, पुत्र, मित्र और भाइयोंका ही भक्षण किया है ॥७४॥ यहाँसे मेरु पर्वतके नीचे सात पृथिवियाँ हैं उनमें-से रत्नप्रभानामक पृथिवीमें भवनवासी देव रहते हैं। जो मनुष्य कषायसहित तप करते हैं वे उनमें उत्पन्न होते हैं। भवनवासी देव सब देवोंमें नीच देव

---

१. -मृच्छसि म.। २. उदरदरीम्। ३. विविधलिङ्गधारणैः। ४. अमार्गं प्रतिकूलप्रवृत्तिमिति यावत्। ५. ब्रूयान् म.। ६. शून्येन म.। ७. यस्यां म.।

अधस्तस्याः क्षितेरन्या दारुणाः षट् च भूमयः । नारका यासु पापस्य भुञ्जन्ते कर्मणः फलम् ॥७७॥
कुरूपा दारुणाराव्या दुःस्पर्शा ध्वान्तपूरिताः । उपमोज्झितदुःखानां कारणीभूतविग्रहाः ॥७८॥
कुम्भीपाकाख्यमाख्यातं नरकं भीमदर्शनम् । नदी वैतरणी घोरा [1]शाल्मली क्रूरकण्टका ॥७९॥
असिपत्रवनच्छन्नाः क्षुरधाराश्च पर्वताः । ज्वलदग्निनिभास्तीक्ष्णलोहकीला निरन्तराः ॥८०॥
तेषु ते तीव्रदुःखानि प्राप्नुवन्ति निरन्तरम् । प्राणिनो मधुमांसादा[2] घातकाश्चासुधारिणाम् ॥८१॥
नास्त्यर्धाङ्गुलमात्रोऽपि प्रदेशस्तत्र दुःखितैः । क्षिप्यते नारकैर्यत्र निमेषमपि विभ्रमः ॥८२॥
प्रच्छन्नमिह लिप्स्याम इति ध्यात्वा पलायिताः । हन्यन्ते निर्दयैरन्यैर्नारकैरसुरैश्च ते ॥८३॥
ज्वलदङ्गारकुटिले दग्ध्वा मत्स्या इवानिले । विरसं विहिताक्रन्दा विनिःसृत्य कथंचन ॥८४॥
नारकाग्निभयग्रस्ताः प्राप्ता वैतरणीजलम् । [3]चण्डक्षारोर्मिभिर्भूयो दह्यन्ते वह्नितोऽधिकम् ॥८५॥
असिपत्रवनं यातास्छायाप्रत्याशया द्रुतम् । पतद्भिस्तत्र दार्यन्ते चक्रखड्गगदादिभिः ॥८६॥
विच्छिन्ननासिकाकर्णस्कन्धजङ्घादिविग्रहाः । कुम्भीपाके[4] नियुज्यन्ते [5]वान्तशोणितवर्षिणः ॥८७॥
प्रपीड्यन्ते च यन्त्रेषु मूरारावेषु विह्वलाः । पुनः शैलेषु भिद्यन्ते तीक्ष्णेषु विरसस्वराः ॥८८॥
उल्लङ्घ्यन्तेऽतितुङ्गेषु पादपेष्वन्धकारिषु । ताड्यन्ते मुद्गराघातैर्महद्भिर्मस्तके तथा ॥८९॥
जलं प्रार्थयमानानां तृष्णार्तानां प्रदीयते । ताम्रादिकलकं तेन दग्धदेहाः सुदुःखिताः ॥९०॥

कहलाते हैं तथा ये दुष्ट कार्य करनेवाले होते हैं ॥ ७५-७६॥ रत्नप्रभा पृथिवीके नीचे छह भयंकर पृथिवियाँ और हैं जिनमें नारकी जीव पाप कर्मका फल भोगते हैं ॥७७॥ वे नारकी कुरूप होते हैं, उनके शब्द अत्यन्त दारुण होते हैं, वे अन्धकारसे परिपूर्ण रहते हैं तथा उनके शरीर उपमातीत दुःखोंके कारण हैं ॥७८॥ उन पृथिवियोंमें कुम्भीपाक नामका भयंकर नरक है, भय उत्पन्न करनेवाली वैतरणी नदी है, तथा तीक्ष्ण काँटोंसे युक्त शाल्मली वृक्ष है ॥७९॥ असिपत्र वनसे आच्छादित तथा क्षुरोंकी धारके समान तीक्ष्ण पर्वत हैं और जलती हुई अग्निके समान निरन्तर लोहेकी तीक्ष्ण कीलें वहाँ व्याप्त हैं ॥८०॥ मधु मांस खानेवाले तथा प्राणियोंका घात करनेवाले जीव उन नरकोंमें निरन्तर तीव्र दुःख पाते रहते हैं ॥८१॥ वहाँ अर्ध-अंगुल प्रमाण भी ऐसा प्रदेश नहीं है जहाँ दुःखी नारकी निमेषमात्रके लिए भी विश्राम कर सकें ॥८२॥ 'हम यहाँ छिपकर रहेंगे' ऐसा सोचकर नारकी भागकर जाते हैं पर वहींपर दयाहीन अन्य नारकी और दुष्ट देव उनका घात करने लगते हैं ॥८३॥ जिस प्रकार जलते हुए अंगारोंसे कुटिल अग्निमें जलते हुए मच्छ विरस शब्द करते हैं उसी प्रकार नारकी भी अग्निमें पड़कर विरस शब्द करते हैं। यदि अग्निके भयसे भयभीत हो किसी तरह निकलकर वैतरणी नदीके जलमें पहुँचते हैं तो अत्यन्त खारी तरंगोंके द्वारा अग्निसे भी अधिक जलने लगते हैं ॥८४-८५॥ यदि छायाकी इच्छासे शीघ्र ही भागकर असिपत्र वनमें पहुँचते हैं तो वहाँ पड़ते हुए चक्र, खड्ग, गदा आदि शस्त्रोंसे उनके खण्ड-खण्ड हो जाते हैं ॥८६॥ जिनके नाक, कान, स्कन्ध तथा जंघा आदि अवयव काट लिये गये हैं तथा जो निकलते हुए खूनकी मानो वर्षा करते हैं ऐसे उन नारकियोंको कुम्भी-पाकमें डाला जाता है अर्थात् किसी घड़े आदिमें भरकर उन्हें पकाया जाता है ॥८७॥ जिनसे क्रूर शब्द निकल रहा है ऐसे कोल्हुओंमें उन विह्वल नारकियोंको पेल दिया जाता है फिर तीक्ष्ण नुकीले पर्वतों पर गिराकर उनके टुकड़े-टुकड़े किये जाते हैं जिससे वे विरस शब्द करते हैं ॥८८॥ अन्धा कर देनेवाले बहुत ऊँचे वृक्षोंपर उन्हें चढ़ाया जाता है तथा बड़े-बड़े मुद्गरों की चोटसे उनका मस्तक पीटा जाता है ॥८९॥ जो नारकी प्याससे पीड़ित होकर पानी माँगते

१. शाल्मली क्रूरकण्टका क. । २. मांसादिघातका म. । ३. चन्द्र म, । तीव्र ब. । ४. पाकेन युज्यन्ते । ५. वान्त म. । वात ब. ।

ब्रुवते नास्ति तृष्णा न इत्यतोऽपि बलादमी । [1]पाय्यन्ते तदसिक्तैः संदंशव्याकृताननाः[2] ॥९१॥
प्रपात्य[3] भूतले भूयो वक्षस्याक्रम्य[4] दीयते । पादः क्रूरधियोभिस्तैस्तेषां कश्मलकर्मणाम्[5] ॥९२॥
तेषां निर्दग्धकण्ठानां दह्यते हृदयं पुनः । निष्क्रामन्ति पुरीतन्ति[6] निर्भिद्य जठरं सह ॥९३॥
परस्परकृतं दुःखं तथा भवनवासिभिः । नरका यत्प्रयच्छन्ते कस्तद्वर्णयितुं क्षमः ॥९४॥
इति ज्ञात्वा महादुःखं नरके मांससंभवम् । वर्जनीयं प्रयत्नेन विदुषा मांसभक्षणम् ॥९५॥
अत्रान्तरे जगादैवं कुण्डलस्तमानसः । नाथाणुव्रतयुक्तानां का गतिर्दृश्यते वद ॥९६॥
गुरुरूचे न यो मांसं खादत्यतिदृढव्रतः । तस्य वक्ष्यामि यत्पुण्यं सम्यग्दृष्टेर्विशेषतः ॥९७॥
उपवासादिहीनस्य दरिद्रस्यापि धीमतः । मांसभुक्तेर्निवृत्तस्य सुगतिर्हस्तवर्तिनी ॥९८॥
यः पुनः शीलसंपन्नो जिनशासनभावितः । सोऽणुव्रतधरः प्राणी सौधर्मादिषु जायते ॥९९॥
अहिंसा प्रवरं मूलं धर्मस्य परिकीर्तितम् । सा च मांसान्निवृत्तस्य जायतेऽत्यन्तनिर्मला ॥१००॥
दयावान् सङ्गवान् योऽपि म्लेच्छश्चाण्डाल एव वा । मधुमांसान्निवृत्तः सन् सोऽपि पापेन मुच्यते ॥१०१॥
मुक्तमात्रः स पापेन पुण्यं गृह्णाति मानवः । जायते पुण्यबन्धेन सुरः सन्मनुजोऽथवा[7] ॥१०२॥
सम्यग्दृष्टिः पुनर्जन्तुः कृत्वाणुव्रतधारणम् । लभते परमान्भोगान् ध्रुवं[8] स्वर्गनिवासिनाम् ॥१०३॥

हैं उनके लिए तामा आदि धातुओंका कलल (पिघलाया हुआ रस) दिया जाता है जिससे उनका शरीर जल जाता है तथा अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं ॥९०॥ यद्यपि वे कहते हैं कि हमें प्यास नहीं लगी है तो भी जबर्दस्ती संडाशीसे मुँह फाड़कर उन्हें वह कलल पिलाया जाता है ॥९१॥ पाप करनेवाले उन नारकियोंको जमीनपर गिराकर तथा उनकी छातीपर चढ़कर दुष्ट वचन बोलते हुए बलवान् नारकी उन्हें पैरोंसे रूँदते हैं ॥९२॥ पूर्वोक्त कललपानसे उन नारकियोंके कण्ठ जल जाते हैं तथा हृदय जलने लगते हैं। यहीं नहीं पेट फोड़कर उनकी आँते भी बाहर निकल आती हैं ॥९३॥ इसके सिवाय भवनवासी देव उन्हें परस्पर लड़ाकर जो दुःख प्राप्त कराते हैं उसका वर्णन करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥९४॥ इस तरह मांस खानेसे नरकमें महादुःख भोगना पड़ता है ऐसा जानकर समझदार पुरुषको प्रयत्नपूर्वक मांसभक्षणका त्याग करना चाहिए ॥९५॥

इसी बीचमें जिसका मन अत्यन्त भयभीत हो रहा था ऐसे कुण्डलमण्डितने कहा कि हे नाथ ! अणुव्रतसे युक्त मनुष्योंकी क्या गति होती है सो कहिए ॥९६॥ इसके उत्तरमें गुरु महाराजने कहा कि जो मांस नहीं खाता है तथा अत्यन्त दृढ़तासे व्रत पालन करता है उसे तथा खासकर सम्यग्दृष्टि मनुष्यको जो पुण्य होता है उसे कहता हूँ ॥९७॥ जो बुद्धिमान् मनुष्य मांस-भक्षणसे दूर रहता है भले ही वह उपवासादिसे रहित हो तथा दरिद्र हो तो भी उत्तम गति उसके हाथमें रहती है ॥९८॥ और जो शीलसे सम्पन्न तथा जिनशासनकी भावनासे युक्त होता हुआ अणुव्रत धारण करता है वह सौधर्मादि स्वर्गोंमें उत्पन्न होता है ॥९९॥ धर्मका उत्तम मूल कारण अहिंसा कही गयी है। जो मनुष्य मांस-भक्षणसे निवृत्त रहता है उसीके अत्यन्त निर्मल अहिंसा-धर्म पलता है ॥१००॥ जो परिग्रही म्लेच्छ अथवा चाण्डाल भी क्यों न हो यदि दयालु है और मधु-मांस-भक्षणसे दूर रहता है तो वह भी पापसे मुक्त हो जाता है ॥१०१॥ ऐसा जीव पापसे मुक्त होते ही पुण्य-बन्ध करने लगता है और पुण्य-बन्धके प्रभावसे वह देव अथवा उत्तम मनुष्य होता है ॥१०२॥ यदि सम्यग्दृष्टि मनुष्य अणुव्रत धारण करता है तो वह निश्चित ही देवोंके उत्कृष्ट भोग

---

१. अस्माकम् । २. व्यावृताननः म. । ३. प्रपात्य म. । ४. वक्षस्याक्रम म. । ५. ९२-९३ श्लोकयोरयं पाठः 'ब' पुस्तकसंमतः । पुस्तकान्तरेषु त्वित्थं पाठोऽस्ति 'प्रपात्य भूतले भूयो वक्षस्याक्रमदीयते । तेषां निर्दग्धकण्ठानां दह्यते हृदयं पुनः ॥९२॥ निष्क्रामन्ति पुरीतन्ति निर्भिद्य जठरं सह । ज्वलता कललेनाशु तेषां कलुषकर्मणाम् ॥९३॥ ६. अन्त्राणि । ७. यथा म. । ८. विभुः क., ख., ग. ।

इत्याचार्यस्य वचनं श्रुत्वा कुण्डलमण्डितः । मन्दभाग्यतया शक्त्या रहितोऽणुव्रतेष्वपि ॥१०४॥
प्रणिपत्य गुरुं मूर्ध्ना मधुमांसविवर्जनम् । जग्राह शरणोपेतं समीचीनं च दर्शनम् ॥१०५॥
कृत्वा चैत्ये[1] नमस्कारं गुरोर्दिग्वाससां तथा । निष्क्रान्तः स[2] ततो देशादिति चिन्तामुपागतः ॥१०६॥
मातुः सहोदरो भ्राता कृतान्तसमविक्रमः । ध्रुवं मे सीदतः सोऽयं भविष्यत्यबलम्बनम् ॥१०७॥
राजा भूत्वा पुनः शत्रुं जेष्यामीति सुनिश्चितः । आशां वहन् प्रवृत्तोऽसावातुरो दक्षिणापथम् ॥१०८॥
श्रमादिदुःखपूर्णस्य क्रमतोऽस्य शनैः शनैः । उदीयुर्व्याधयो देहे पापैरभ्यर्जितैः ॥१०९॥
सन्धिषु च्छिद्यमानेषु भिद्यमानेषु मर्मसु । सर्वस्य जगतोऽत्राणं[3] मरणं तस्य ढौकितम् ॥११०॥
मुञ्चते समये[4] यस्मिन् जीवं कुण्डलमण्डितः । तस्मिन्नेव च्यवते देवः[5] शेषपुण्याद्दिवश्च्युतः ॥१११॥
गर्भं च[6] तौ विदेहाया विधिना परियोजितौ । [7]पश्य कर्मानुभावस्य विचित्रमिति चेष्टितम् ॥११२॥
एतस्मिञ्जन्तरे साधु कालं कृत्वा स पिङ्गलः । तपोबलान्महातेजा महाकालोऽसुरोऽभवत् ॥११३॥
भवनेऽवधिना स्मृत्वा धर्मस्य च फलोदयम् । दध्यौ चित्तोत्सवा क्वेति तावज्ज्ञे यथाविधि ॥११४॥
दुष्टया किं तया कृत्यं कासौ कुण्डलमण्डितः । येनाहं प्रापितोऽवस्थां विधुरां विरहार्णवे ॥११५॥
पत्न्यां जनकराजस्य गर्भमाश्रित्य मण्डितः । साकमन्येन जीवेन विवेद स्थित इत्यसौ ॥११६॥
सूतां तावदियं देवी युगलं किं ममानया । गर्भद्वितययोगिन्या सुतयास्ति प्रयोजनम् ॥११७॥

प्राप्त करता है ॥१०३॥ इस प्रकार आचार्यके वचन सुनकर कुण्डलमण्डित मन्द भाग्य होनेसे अणुव्रत धारण करनेके लिए भी समर्थ नहीं हो सका ॥१०४॥ अतः उसने शिरसे गुरुको नमस्कार कर मधुमांसका परित्याग किया और शरणभूत सम्यग्दर्शन धारण किया ॥१०५॥

तदनन्तर जिन-प्रतिमा और दिगम्बराचार्यको नमस्कार कर वह ऐसा विचार करता हुआ उस देशसे बाहर निकला कि मेरी माताका सगा भाई यमराजके समान पराक्रमका धारी है सो वह विपत्तिमें पड़े हुए मेरी अवश्य ही सहायता करेगा। मैं फिरसे राजा होकर निश्चित ही शत्रुको जीतूँगा। ऐसी आशा रखता हुआ वह कुण्डलमण्डित दुःखी हो दक्षिण दिशाकी ओर चला ॥१०६-१०८॥ वह थकावट आदि दुःखोंसे परिपूर्ण होनेके कारण धीरे-धीरे चलता था। बीचमें पूर्वभवमें संचित पाप कर्मके उदयसे उसके शरीरमें अनेक रोग प्रकट हो गये ॥१०९॥ उसकी सन्धियाँ छिन्न होने लगीं और मर्म स्थानोंमें भयंकर पीड़ा होने लगी। अन्तमें समस्त संसार जिससे नहीं बचा सकता ऐसा उसका मरण आ पहुँचा ॥११०॥ जिस समय कुण्डलमण्डितने प्राण छोड़े उसी समय चित्तोत्सवाका जीव जो स्वर्गमें देव हुआ था शेष पुण्यके प्रभावसे स्वर्गसे च्युत हुआ ॥१११॥

भाग्यवश वे दोनों ही जीव राजा जनककी रानी विदेहाके गर्भमें उत्पन्न हुए। गौतमस्वामी कहते हैं कि अहो श्रेणिक! कर्मोदयकी यह विचित्र चेष्टा देखो ॥११२॥ इसी बीचमें वह पिंगल ब्राह्मण अच्छी तरह मरण कर तपके प्रभावसे महातेजस्वी महाकाल नामका असुर हुआ ॥११३॥ उसने उत्पन्न होते ही अवधिज्ञानसे धर्मके फलका विचार किया और साथ ही इस बातका ध्यान किया कि चित्तोत्सवा कहाँ उत्पन्न हुई है? वह अपने अवधिज्ञानसे इन सब बातोंको अच्छी तरहसे जान गया ॥११४॥ फिर कुछ देर बाद उसने विचार किया कि मुझे उस दुष्टासे क्या प्रयोजन है? वह कुण्डलमण्डित कहाँ है जिसने मुझे विरहरूपी सागरमें गिराकर दुःखपूर्ण अवस्था प्राप्त करायी थी ॥११५॥ उसने अवधिज्ञानसे यह जान लिया कि कुण्डलमण्डित राजा जनककी पत्नीके गर्भमें चित्तोत्सवाके जीवके साथ विद्यमान है ॥११६॥ उसने विचार किया

---

१. चैत्यनमस्कारं ब.। २. सततं ख.। ३. न विद्यते त्राणं यस्मात्तत्, ब. पुस्तके टिप्पणम्। ४. तस्मिन् म.। ५. देवी शेषपुण्याद्दिवः सती ब.। ६. चित्तौ म.। ७. यस्य म.।

ततो निर्लुठितं सन्तं पापं मण्डितकं ध्रुवम् । नेष्यामि यदहं दुःखं तच्चमेव दुरीहितम् ॥११८॥
इति संचिन्तयन् क्रुद्धः पूर्वकर्मानुबन्धतः । देवो रक्षति तं गर्भं संमृदन्पाणिना करम् ॥११९॥
इति ज्ञात्वा क्षमं कर्तुं दुःखं जन्तोर्न कस्यचित् । कालव्यवहितं तद्धि कृतमात्मन एव हि ॥१२०॥
कालेनाथ सुतं देवी प्रसूता युगलं शुभम् । सुतं दुहितरं चाम्बे जहार [1]पृथुकं सुरः ॥१२१॥
आस्फाल्य मारयाम्येनं शिलायां पूर्वमण्डितम् । इति ध्यातं पुरा तेन पुनरेवमचिन्तयत् ॥१२२॥
धिङ्मया चिन्तितं सर्वं संसारपरिवर्धनम् । जायते कर्मणा येन तत्कुर्वीत कथं बुधः ॥१२३॥
तृणस्यापि पुरा दुःखं [2]श्रामण्ये न कृतं मया । सर्वारम्भनिवृत्तेन [3]तपोवीवधवाहिना ॥१२४॥
गुरोस्तस्य प्रसादेन कृत्वा धर्मं सुनिर्मलम् । ईदृशीं द्युतिमाप्तोऽस्मि करोमि दुरितं कथम् ॥१२५॥
स्वल्पमप्यर्जितं पापं नृजन्त्युपचयं परम् । निमग्नो येन संसारे चिरं दुःखेन दह्यते ॥१२६॥
निर्दोषभावनो यस्तु दयावान् सुसमाहितः । स्थितं करतले तस्य रत्नं सुगतिसंज्ञकम् ॥१२७॥
घृणावान् संप्रधार्येदं तमलंकृत्य बालकम् । कुण्डले कर्णयोरस्य चक्रे दीप्तांशुमण्डले ॥१२८॥
पर्णलघ्वीं ततो विद्यां संक्रमय्य शिशौ सुरः । सुखदेशे विमुच्यैनं गतो धाम मनीषितम् ॥१२९॥

कि यदि गर्भमें ही इसे मारता हूँ तो रानी विदेहा मरणको प्राप्त होगी इसलिए यह युगल सन्तान-को उत्पन्न करे पीछे देखा जायेगा। दो गर्भको धारण करनेवाली इस रानीके मारनेसे मुझे क्या प्रयोजन है ? गर्भसे निकलते ही इस पापी कुण्डलमण्डितको अवश्य ही भारी दुःख प्राप्त कराऊँगा ॥११७-११८॥ ऐसा विचार करता हुआ वह असुर पूर्वकर्मके प्रभावसे अत्यन्त क्रुद्ध रहने लगा तथा हाथसे हाथको मसलता हुआ उस गर्भकी रक्षा करने लगा ॥११९॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि राजन् ! ऐसा जानकर कभी किसीको दुःख पहुँचाना उचित नहीं है क्योंकि कालान्तरमें वह दुःख अपने आपको भी प्राप्त होता है ॥१२०॥

अथानन्तर समय आनेपर रानी विदेहाने एक पुत्र और एक पुत्री इस प्रकार युगल सन्तान उत्पन्न की। सो उत्पन्न होते ही असुरने पुत्रका अपहरण कर लिया ॥१२१॥ उसने पहले तो विचार किया कि इस कुण्डलमण्डितके जीवको मैं शिलापर पछाड़कर मार डालूँ। फिर कुछ देर बाद वह विचार करने लगा ॥१२२॥ कि मैंने जो विचार किया है उसे धिक्कार है। जिस कार्यके करनेसे संसार (जन्म-मरण) की वृद्धि होती है उस कार्यको बुद्धिमान् मनुष्य कैसे कर सकता है ? ॥१२३॥

पूर्वभवमें मुनि अवस्थामें जब मैं सब प्रकारके आरम्भसे रहित था तथा तपरूपी काँवरको धारण करता था तब मैंने तृणको भी दुःख नहीं पहुँचाया था ॥१२४॥ उन गुरुके प्रसादसे अत्यन्त निर्मल धर्म धारण कर मैं ऐसी कान्तिको प्राप्त हुआ हूँ। अतः अब ऐसा पाप कैसे कर सकता हूँ ॥१२५॥ संचित किया हुआ थोड़ा पाप भी परम वृद्धिको प्राप्त हो जाता है जिससे संसार-सागरमें निमग्न हुआ यह जीव चिरकाल तक दुःखसे जलता रहता है ॥१२६॥ परन्तु जिसकी भावना निर्दोष है, जो दयालु है और जो अपने परिणामोंको ठीक रखता है सुगतिरूपी रत्न उसके करतलमें स्थित रहता है ॥१२७॥ ऐसा विचार करके हृदयमें दया उत्पन्न हो गयी जिससे उसने उस बालकको मारनेका विचार छोड़ दिया तथा उसके कानोंमें देदीप्यमान किरणोंके धारक कुण्डल पहनाकर उसे अलंकृत कर दिया ॥१२८॥ तदनन्तर वह देव उस बालकमें पर्णलघ्वी विद्याका प्रवेश कराकर तथा उसे सुखकर स्थानमें छोड़कर इच्छित स्थानपर चला गया ॥१२९॥

---

१. बालकं 'पोतः पाकोऽर्भको डिम्भः पृथुकः शावकः शिशुः' इत्यमरः। २. श्रामण्येन म.। ३. तपो-विविध -म.।

नक्तं शक्त्या स्थितेनासावुद्याने नभसः पतन् । विद्याभृतेन्दुगतिना ददृशे सुखभाजनम् ॥१३०॥
उल्कापातः किमेष स्याद् विद्युत्खण्डोऽथवा च्युतः । वितर्क्येति समुत्पत्य ददृशे पृथुकं शुभम् ॥१३१॥
गृहीत्वा च प्रमोदेन देव्याः पुण्यवतीश्रुतेः । वरशय्याप्रसुप्ताया[1] जङ्घादेशे चकार सः ॥१३२॥
ऊचे [2]चैतां [3]हुतस्त्वान उत्तिष्ठोत्तिष्ठ सुन्दरि । किं शेषे बालकं पश्य संप्रसूतासि शोभनम्[4] ॥१३३॥
ततः कान्तकरस्पर्शसौख्यसंपल्लवोधिता । शय्यातः सहसोत्तस्थौ सा विघूर्णितलोचना ॥१३४॥
अर्भकं च ददर्शातिसुन्दरं सुन्दरानना । तस्यास्तदंशुजालेन निद्राक्लेशो निराकृतः ॥१३५॥
परं च विस्मयं प्राप्ता पप्रच्छ प्रियदर्शना । कथायं जनितो नाथ पुण्यवत्या स्त्रिया शिशुः ॥१३६॥
सोऽवोचद्दयिते जातस्तवायं प्रवरः सुतः । प्रतीहि संशयं मा गास्त्वत्तो धन्या परा तु का ॥१३७॥
सावोचत्प्रिय वन्ध्यास्मि कुतो मे सुतसंभवः । प्रतारितास्मि दैवेन किं मे [5]भूयः प्रतार्यते ॥१३८॥
सोऽवोचद्देवि मा शङ्का कार्षीः कर्मनियोगतः । अप्रच्छन्नोऽपि हि नारीणां जायते गर्भसंभवः ॥१३९॥
सावोचदस्तु नामैवं कुण्डले स्वतिचारणी[6] । ईदृशौ मर्त्यलोकेऽस्मिन् सुरत्ने भवतः कुतः ॥१४०॥
सोऽवोचद्देवि नानेन विचारेण प्रयोजनम् । शृणु तथ्यं पतन्नेष गगनादाहृतो मया ॥१४१॥
[7]मयानुमोदितस्तेऽयं सुतः सुकुलसंभवः । लक्षणानि वदन्त्यस्य महापुरुषभूमिकम् ॥१४२॥
श्रमं कृत्वापि भूयांसं भारमूढ्वा च गर्भजम् । फलं तनयकामोऽत्र लब्धे जातं सुखं प्रिये ॥१४३॥

तदनन्तर चन्द्रगति विद्याधर रात्रिके समय अपने उद्यानमें स्थित था सो उसने आकाशसे पड़ते हुए सुखके पात्रस्वरूप उस बालकको देखा ॥१३०॥ क्या यह नक्षत्रपात हो रहा है? अथवा कोई बिजलीका टुकड़ा नीचे गिर रहा है ऐसा संशय कर वह चन्द्रगति विद्याधर ज्योंही आकाशमें उड़ा त्योंही उसने उस शुभ बालकको देखा ॥१३१॥ देखते ही उसने बड़े हर्षसे उस बालकको बीचमें ही ले लिया और उत्तम शय्यापर शयन करनेवाली पुण्यवती रानीकी जांघोंके बीचमें रख दिया ॥१३२॥ यही नहीं, ऊँची आवाजसे वह रानीसे बोला भी कि हे सुन्दरि! उठो, क्यों सो रही हो? देखो तुमने सुन्दर बालक उत्पन्न किया है ॥१३३॥ तदनन्तर पतिके हस्त-स्पर्शसे उत्पन्न सुखरूपी सम्पत्तिसे जागृत हो रानी शय्यासे सहसा उठ खड़ी हुई और इधर-उधर नेत्र चलाने लगी ॥१३४॥

ज्योंही उस सुन्दरमुखीने अत्यन्त सुन्दर बालक देखा, त्योंही उसकी किरणोंके समूहसे उसकी अवशिष्ट निद्रा दूर हो गयी ॥१३५॥ उस सुन्दरीने परम आश्चर्यको प्राप्त होकर पूछा कि यह बालक किस पुण्यवती स्त्रीने उत्पन्न किया है? ॥१३६॥ इसके उत्तरमें चन्द्रगतिने कहा कि हे प्रिये! यह तुम्हारे ही पुत्र उत्पन्न हुआ है। विश्वास रखो, संशय मत करो, तुमसे बढ़कर और दूसरी धन्य स्त्री कौन हो सकती है? ॥१३७॥ उसने कहा कि हे प्रिय! मैं तो वन्ध्या हूँ, मेरे पुत्र कैसे हो सकता है? मैं दैवके द्वारा ही प्रतारित हूँ—ठगी गयी हूँ अब आप और क्यों प्रतारित कर रहे हैं? ॥१३८॥ उसने कहा कि हे देवि! शंका मत करो, क्योंकि कदाचित् कर्मयोगसे स्त्रियोंके प्रच्छन्न गर्भ भी तो होता है ॥१३९॥ रानीने कहा कि अच्छा ऐसा ही सही पर यह बताओ कि इसके कुण्डल लोकोत्तर क्यों हैं? मनुष्य लोकमें ऐसे उत्तम रत्न कहाँसे आये? ॥१४०॥ इसके उत्तरमें चन्द्रगतिने कहा कि हे देवि! इस विचारसे क्या प्रयोजन है? जो सत्य बात है सो सुनो। यह बालक आकाशसे नीचे गिर रहा था सो बीचमें ही मैंने प्राप्त किया है ॥१४१॥ मैं जिसकी अनुमोदना कर रहा हूँ ऐसा यह तुम्हारा पुत्र उच्चकुलमें उत्पन्न हुआ है क्योंकि इसके लक्षण इसे महापुरुषसे उत्पन्न सूचित करते हैं ॥१४२॥ बहुत भारी श्रम कर तथा गर्भका

---

१. प्रसुप्तायां म.। २. चैतां क. म.। ३. हुतस्वान म.। ४. शोभिनम् म.। ५. भूप म.। ६. स्वति-चारिणो म.। ७. मया तु मोदित म.।

कुक्षिजातोऽपि पुत्रस्य यः कृत्यं कुरुते न नः[1] । अपुत्र एव कान्तेऽसौ जायते रिपुरेव वा ॥१४४॥
तव सोऽयमपुत्रायाः सति पुत्रो भविष्यति । [2]अन्तर्यानेन किं कृत्यमत्र वस्तुनि शोभने ॥१४५॥
एवमस्त्विति संभाष्य देवी सूतिगृहं गता । प्रभाते सुतजन्मास्यास्तुष्टया लोके प्रकाशितम् ॥१४६॥
ततो जन्मोत्सवस्तस्य पुरेऽस्मिन् रथनूपुरे । संप्रवृत्तः समागच्छद् विस्मिताशेषबान्धवः ॥१४७॥
रत्नकुण्डलभानूनां मण्डलेन यतो वृतः । प्रभामण्डलनामास्य पितृभ्यां निर्मितं ततः ॥१४८॥
अर्पितः पोषणायासौ धात्र्या लीलामनोहरः । सर्वान्तःपुरलोकस्य करपद्ममधुव्रतः ॥१४९॥
विदेहा तु हृते पुत्रे कुररीवत् कृतस्वना । बन्धूनपातयत् सर्वान् गम्भीरे शोकसागरे ॥१५०॥
परिदेवनमेवं च चक्रे चक्राहतेव सा । हा वत्स केन नीतोऽसि मम दुष्करकारिणा ॥१५१॥
विघृणस्य कथं तस्य पापस्य प्रसृतौ करौ । अज्ञातं जातमात्रं त्वां ग्रहीतुं [3]ग्रावचेतसः ॥१५२॥
पश्चिमाया इवाशाया संध्येयं सुता मम । स्थिता सा तु परिप्राप्तो मन्दायाः पूर्वजस्सुतः ॥१५३॥
ध्रुवं भवान्तरे कोऽपि मया बालो वियोजितः । तदेव फलितं कर्म न कार्यं बीजवर्जितम् ॥१५४॥
मारितास्मि न किं तेन पुत्रचोरणकारिणा । पुरु प्राप्तास्मि यद्दुःखं समागस्यार्द्धवैशसम्[4] ॥१५५॥
इति सा कुर्वतीमुच्चैर्विह्वलां परिदेवनम् । समाश्वासयदागत्य जनको निगदन्निदम् ॥१५६॥
प्रिये मा गाः परं शोकं जीवत्येव शरीरजः[5] । हृतः केनाप्यसौ जीवन् द्रक्ष्यसे ध्रुवमेव हि ॥१५७॥

भार धारण कर जो फल प्राप्त होता है वह पुत्रलाभ रूप ही होता है। सो हे प्रिये! तुम्हें यह फल अनायास ही प्राप्त हो गया है ॥१४३॥ जो मनुष्य कुक्षिसे उत्पन्न होकर भी पुत्रका कार्य नहीं करता है हे प्रिये! वह अपुत्र ही है अथवा शत्रु ही है ॥१४४॥ हे पतिव्रते! तुम्हारे पुत्र नहीं है अतः यह तुम्हारा पुत्र हो जायेगा। इस उत्तम वस्तुके भीतर जानेसे क्या प्रयोजन है? ॥१४५॥

तदनन्तर ऐसा ही हो इस प्रकार रानी प्रसूतिकागृहमें चली गयी और प्रातःकाल होते ही इसके पुत्र-जन्मका समाचार लोकमें बड़े हर्षसे प्रकाशित कर दिया गया ॥१४६॥ तदनन्तर रथनूपुर नगरमें पुत्रका जन्मोत्सव किया गया। इस उत्सवमें आश्चर्यचकित होते हुए समस्त भाई-बन्धु-रिश्तेदार सम्मिलित हुए ॥१४७॥ चूँकि वह बालक रत्नमय कुण्डलोंकी किरणोंके समूहसे घिरा हुआ था इसलिए माता-पिताने उसका भामण्डल नाम रक्खा ॥१४८॥ अपनी लीलाओंसे मनको हरनेवाला तथा समस्त अन्तःपुरके करकमलोंमें भ्रमरके समान संचार करनेवाला वह बालक पोषण करनेके लिए धायको सौंपा गया ॥१४९॥

इधर पुत्रके हरे जानेपर कुररीके समान विलाप करती हुई रानी विदेहाने समस्त बन्धुओंको शोकरूपी सागरमें गिरा दिया ॥१५०॥ चक्रसे ताड़ित हुईके समान वह इस प्रकार विलाप कर रही थी कि हाय वत्स! कठोर कार्य करनेवाला कौन पुरुष तुझे हर ले गया है? ॥१५१॥ जिसे उत्पन्न होते देर नहीं थी ऐसे तुझ अबोध बालकको उठानेके लिए उस निर्दय पापीके हाथ कैसे पसरे होंगे? जान पड़ता है कि उसका हृदय पत्थरका बना होगा ॥१५२॥ जिस प्रकार पश्चिम दिशामें आकर सूर्य तो अस्त हो जाता है और सन्ध्या रह जाती है उसी प्रकार मुझ अभागिनीका पुत्र तो अस्त हो गया और सन्ध्याकी भाँति यह पुत्री स्थित रह गयी ॥१५३॥ निश्चित ही भवान्तरमें मैंने किसी बालकका वियोग किया होगा सो उसी कर्मने अपना फल दिखाया है क्योंकि बिना बीजके कोई कार्य नहीं होता ॥१५४॥ पुत्रकी चोरी करनेवाले उस दुष्टने मुझे मार ही क्यों नहीं डाला। जब कि अधमरी करके उसने मुझे बहुत भारी दुःख प्राप्त कराया है ॥१५५॥ इस प्रकार विह्वल होकर जोर-जोरसे विलाप करती हुई रानीके पास जाकर राजा जनक यह कहते हुए उसे समझाने लगे कि हे प्रिये! अत्यधिक शोक मत करो, तुम्हारा पुत्र जीवित ही है, कोई उसे हरकर

---

१. जनः ब.। २. अन्तर्यानेन म. ज.। ३. पाषाणहृदयस्य। ४. अर्धमरणम्। ५. शरीरजे म.।

दृश्यते नेक्ष्यते भूयः पुनर्जात्वलोक्यते । पूर्वकर्मानुभावेन जाये रोदिषि किं वृथा ॥१५८॥
व्रज स्वास्थ्यमिमं क्लेशं सुहृदो [1]नाशयाम्यहम् । वार्तां दशरथस्येमां परिवेदयितुं प्रिये ॥१५९॥
स चाहं च सुतस्यास्य करिष्यामि गवेषणम् । प्रच्छाद्य धरणीं सर्वां चरैः कुशलचेष्टितैः ॥१६०॥
तृपितां सान्त्वयित्वैवं क्लेशं मित्राय दत्तवान् । तं प्रवाच्य सशोकेन पूरितोऽतिगरीयसा ॥१६१॥
मद्रामन्वेषितस्ताभ्यां नासौ वृक्षो पदार्भकः । मन्दीकृत्य तदा शोकमस्थुः कृच्छ्रेण बान्धवाः ॥१६२॥
नासावासीज्जनस्तत्र पुरुषः प्रमदाथवा । यो न बाष्पपरीताक्षस्तच्छोकेन वशीकृतः ॥१६३॥
शोकविस्मरणे हेतुर्बभूव सुमनोहरा । जानकी बन्धुलोकस्य शुभशैशवचेष्टिता ॥१६४॥

मालिनीवृत्तम्

प्रमदमुपगतानां योषितामङ्गवेश्मे
पृथुतनुभवकान्त्या लिम्पती दिक्समूहम् ।
विपुलकमलमाला[2] श्रीरिवासौ सुकण्ठा
शुचिहसितसितास्या वर्धतां भोजनेत्रा ॥१६५॥
प्रभवति गुणसस्यं येन तस्यां समृद्धं
सकलदखिलजनानां सौख्यसंभारदानम् ।
तदतिशयमनोज्ञा चारुलक्ष्माश्रिताङ्गा
जगति निगदितासौ भूमिसाम्येन सीता ॥१६६॥
वदनजितशशाङ्का पल्लवच्छायपाणिः
[3]शितिमणिसमतेजः [4]केशसंघातरम्या ।

ले गया है और निश्चित ही तुम उसे जीवित देखोगी ॥१५६-१५७॥ इष्ट वस्तु पूर्व कर्मके प्रभावसे अभी दिखती है फिर नहीं दिखती, तदनन्तर फिर कभी दिखाई देने लगती है। इसलिए हे प्रिये! व्यर्थ ही क्यों रोती हो? ॥१५८॥ तुम स्वस्थताको प्राप्त होओ। हे प्रिये! मैं यह समाचार बतलानेके लिए मित्र राजा दशरथके पास पत्र भेजता हूँ ॥१५९॥ वह और मैं दोनों ही चतुर गुप्तचरोंसे समस्त पृथिवीको आच्छादित कर शीघ्र ही तेरे पुत्रकी खोज करेंगे ॥१६०॥ इस प्रकार स्त्रीको सान्त्वना देकर उसने मित्रके लिए पत्र दिया। उस पत्रको बाँचकर राजा दशरथ अत्यधिक शोकसे व्याप्त हो गये ॥१६१॥ उन दोनोंने पृथिवीपर पुत्रकी खोज की। पर जब कहीं पुत्र नहीं दिखा तब सब बन्धुजन शोकको मन्द कर बड़े कष्टसे चुप बैठ रहे ॥१६२॥ उस समय न कोई ऐसा पुरुष था और न कोई ऐसी स्त्री ही थी जिसके नेत्र पुत्रसम्बन्धी शोकके कारण अश्रुओंसे व्याप्त नहीं हुए हों ॥१६३॥ उस समय बन्धुजनोंका शोक भुलानेका कारण यदि कुछ था तो अत्यन्त मनोहर और शुभ बालचेष्टाओंको धारण करनेवाली जानकी ही थी ॥१६४॥

वह जानकी हर्षको प्राप्त होनेवाली स्त्रियोंकी गोदमें निरन्तर वृद्धिंगत हो रही थी। वह अपने शरीरकी विशाल कान्तिसे दिशाओंके समूहको लिप्त करती थी। वह विपुल कमलोंकी प्राप्त लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी, उसका कण्ठ सुन्दर था, पवित्र हास्यसे उसका मुख शुक्ल हो रहा था और कमलके समान उसके नेत्र थे ॥१६५॥ समस्त भक्तजनोंके लिए सुखका समूह प्रदान करनेवाला गुणरूपी धान्य, चूँकि उस जानकीमें अत्यन्त समृद्धिके साथ उत्पन्न होता था, अतः अत्यन्त मनोहर और उत्तम लक्षणोंसे युक्त उस जानकीको लोग भूमिकी समानता रखनेके कारण सीता भी कहते थे ॥१६६॥ उसने अपने मुखसे चन्द्रमाको जीत लिया था, उसके

---

१. नीयमाम्यहम् म.। २. पाता म.। ३. सितमणि म.। ४. शितमणिसमतेजाः ब.।

जितसमदनहंसस्त्रीगतिः सुन्दरभ्रू-
वंकुलसुरभिवक्त्रामोदबद्धालिवृन्दा ॥१६७॥
अतिमृदुभुजमाला [1]शक्रशञ्जाणुमध्या
प्रवरसरसरम्भास्तम्भसाम्यस्थितोरुः ।
स्थलकमलसमानोत्तुङ्गपृष्ठोज्ज्वलाङ्घ्रिः
प्रभवदतिविशालच्छायवक्षोजयुग्मा ॥१६८॥
प्रवरभवनकुक्षिष्वायुदारेषु कान्त्या
विविधविहितमार्गा लब्धवर्णा परं सा ।
सततमुपगतान्तःसप्तकन्याशतानां-
मतिशयरमणीयं शास्त्रमार्गेण रेमे ॥१६९॥
अपि दिनकरदीप्तिः कौमुदी चन्द्रकान्तिः
सुरपतिमहिषी वा कापि वा सा सुभद्रा ।
यदि भजति तदीयासङ्गशोभां कथंचि-
न्नियतमतिमनोज्ञास्तास्ततो वेदनीयाः ॥१७०॥
विधिरिव रतिदेवीं कामदेवस्य बुद्ध्या
दशरथतनयस्याकल्पयत्पूर्वजस्य ।
जनकनरपतिस्तां सर्वविज्ञानयुक्तां
ननु रविकरसङ्गस्योचिता पद्मलक्ष्मीः ॥१७१॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते सीताभामण्डलोत्पत्त्यभिधानं नाम षड्विंशतितमं पर्व ॥२६॥

□

हाथ पल्लवके समान लाल कान्तिके धारक थे, वह नील मणिके समान कान्तिके धारक केशोंके समूहसे मनोहर थी, उसने कामोन्मत्त हंसिनीकी चालको जीत लिया था, उसकी भौंहें सुन्दर थीं तथा मौलिश्रीके समान सुगन्धित उसके मुखके सुवाससे उसके पास भौंरोंके समूह मँडराते रहते थे ॥१६७॥ उसकी भुजाएँ अत्यन्त सुकुमार थीं, उसकी कमर वज्रके समान पतली थी, उसकी जाँघें उत्तम सरस केलेके स्तम्भके समान सुन्दर थीं, उसके पैर स्थल-कमलके समान उन्नत पृष्ठभागसे सुशोभित थे और उसके उठते हुए स्तनयुगल अत्यधिक कान्तिसे युक्त थे ॥१६८॥ वह विदुषी जानकी उत्तमोत्तम राजमहलोंके विशाल कोष्ठोंमें अपनी कान्तिसे विविध मार्ग बनाती हुई सात सौ कन्याओंके मध्यमें स्थित हो बड़ी सुन्दरताके साथ शास्त्रानुसार क्रीड़ा करती थी ॥१६९॥ यदि सूर्यकी प्रभा, चन्द्रमाकी चाँदनी, इन्द्रकी इन्द्राणी, और चक्रवर्तीकी पट्टरानी सुभद्रा किसी तरह जानकीके शरीरकी शोभा प्राप्त कर सकतीं तो वे निश्चित ही अपने पूर्वरूपकी अपेक्षा अधिक सुन्दर होतीं ॥१७०॥ जिस प्रकार विधाताने रतिको कामदेवकी पत्नी निश्चित किया था, उसी प्रकार राजा जनकने सर्व प्रकारके विज्ञानसे युक्त सीताको राजा दशरथके प्रथम पुत्र रामकी पत्नी निश्चित किया था सो ठीक ही है क्योंकि कमलोंकी लक्ष्मी सूर्यकी किरणोंके साथ सम्पर्क करने योग्य ही है ॥१७१॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्यके द्वारा प्रोक्त पद्मचरितमें सीता और भामण्डलकी उत्पत्तिका कथन करनेवाला छब्बीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२६॥

□

१. वज्रवन्मध्या ।

सप्तविंशतितमं पर्व

ततो मगधराजेन्द्रआश्चर्यवृत्तान्तविस्मितः । पप्रच्छ गणिनामग्र्यं [1]नूतनप्रश्रयान्वितः ॥१॥
किं पुनस्तस्य माहात्म्यं दृष्टं जनकभूभृता । रामस्य येन सा तस्मै तेन बुद्धया निरूपिता ॥२॥
ततः करतलासङ्गद्विगुणीभूतदन्तभाः । जगौ गणधरो वाक्यं चित्तप्रह्लादनावहम् ॥३॥
शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि रामस्याक्लिष्टकर्मणः । यतः प्रकल्पिता कन्या जनकेन सुबुद्धिना ॥४॥
दक्षिणे विजयार्द्धस्य कैलासाद्रेस्तथोत्तरे । अन्तरेऽत्यन्तबहवः सन्ति देशाः सहान्तराः ॥५॥
[2]तत्रार्धबर्बरो देशो निःसंयमनमस्कृतिः । निर्विवेकजनो घोरम्लेच्छलोकसमाकुलः ॥६॥
[3]मयूरमालनगरे कृतान्तनगरोपमे । [4]आन्तरङ्गतमो नामेत्यर्द्धबर्बरचारिणाम् ॥७॥
पूर्वापरायतक्षोण्यां यावन्तो म्लेच्छसंभवाः । कपोतशुककाम्बोजमङ्कनाद्याः सहस्रशः ॥८॥
गृहीता बहुविधैः सैन्यैर्भीषणैर्विविधायुधैः । आन्तरङ्गतमं प्रीत्या परिवार्य ससाधनाः ॥९॥
आर्यानेतान्जनपदान् प्रचण्डान्तररंहसः । उद्वासयन्त आजग्मुरिति कारुण्यवर्जिताः ॥१०॥
देशं जनकराजस्य ततो व्याप्तुं समुद्यताः । शलभा इव निःशेषमुपप्लवविधायिनः ॥११॥
जनकेन च साकेतां युवानः प्रेषिता[5] द्रुतम् । [6]आन्तरङ्गतमं [7]प्राप्तमूचुर्दशरथस्य ते ॥१२॥
विज्ञापयति देव त्वां जनको जनवत्सलः । पौलिन्द्[8]परचक्रेण समाक्रान्तं महीतलम् ॥१३॥

अथानन्तर भामण्डलके सुन्दर वृत्तान्तसे आश्चर्यचकित हुए राजा श्रेणिकने नूतन विनयसे युक्त हो अर्थात् पुनः नमस्कार कर गौतम गणधरसे पूछा कि हे भगवन्! राजा जनकने रामका ऐसा कौन-सा माहात्म्य देखा कि जिससे उसने रामके लिए बुद्धिपूर्वक अपनी कन्या देनेका निश्चय किया? ॥१-२॥ तदनन्तर करतलके आसंगसे जिनके दाँतोंकी कान्ति दूनी हो गयी थी ऐसे गौतम गणधर चित्तको आह्लादित करनेवाले वचन बोले ॥३॥ उन्होंने कहा कि हे राजन्! सुनो, संक्लेशहीन कार्यको करनेवाले रामचन्द्रके लिए अत्यन्त बुद्धिमान् जनकने जिस कारण अपनी कन्या देना निश्चित किया था वह मैं कहता हूँ ॥४॥ विजयार्द्ध पर्वतके दक्षिण और कैलास पर्वतके उत्तरकी ओर बीच-बीचमें अन्तर देकर बहुत-से देश स्थित हैं ॥५॥ उन देशोंमें एक अर्धबर्बर नामका देश है जो असंयमी जनोंके द्वारा मान्य है, धूर्तजनोंका जिसमें निवास है तथा जो अत्यन्त भयंकर म्लेच्छ लोगोंसे व्याप्त है ॥६॥ उस देशमें यमराजके नगरके समान एक मयूरमाल नामका नगर है। उसमें आन्तरंगतम नामका राजा राज्य करता था ॥७॥ पूर्वसे लेकर पश्चिम तककी लम्बी भूमिमें कपोत, शुक, काम्बोज, मंकन आदि जितने हजारों म्लेच्छ रहते थे वे अनेक प्रकारके शस्त्र तथा नाना प्रकारके भीषण अस्त्रोंसे युक्त हो अपने सब साधनोंके साथ प्रीतिपूर्वक आन्तरंगतम राजाकी उपासना करते थे ॥८-९॥ जिनका गमन बीच-बीचमें अत्यन्त वेगसे होता था तथा जो दयासे रहित थे ऐसे वे म्लेच्छ इन आर्य देशोंको उजाड़ते हुए यहाँ आये ॥१०॥ तदनन्तर टिड्डियोंके समान उपद्रव करनेवाले वे म्लेच्छ राजा जनकके देशको व्याप्त करनेके लिए उद्यत हुए ॥११॥ राजा जनकने शीघ्र ही अपने योद्धा अयोध्या भेजे। उन्होंने जाकर राजा दशरथसे आन्तरंगतमके आनेकी खबर दी ॥१२॥ उन्होंने कहा कि हे राजन्! प्रजावत्सल राजा जनक

---

१. नूतनप्रक्रयान्वितः क., ख.। २. तत्रार्धबर्बरोदेशो ब.। ३. मयूरमालानगरे क., ख.। ४. आन्तरङ्गमे क., ख.। ५. मङ्कन्याद्याः ब.। ६. प्रेक्षिता क., ख., ब.। ७. आतासन्तजना तेन दूतस्तेन वदन्त वै (?) क., ख.। ८. प्राप्तु ब.। ९. पौलिन्द्र म.।

आर्यदेशाः परिध्वस्ता म्लेच्छैरुद्भासितं जगत् । एकवर्णां प्रजां सर्वां पापाः कर्तुं समुद्यताः ॥१४॥
प्रजासु विप्रनष्टासु जीवामः किं प्रयोजनाः[1] । चिन्यतामिति किं कुर्मो व्रजामो वा कमाश्रयम् ॥१५॥
किं वा दुर्गं समाश्रित्य तिष्ठामः ससुहृज्जनाः । नन्दीकालिन्दमार्गान् वा गिरिं वा विपुलाह्वयम् ॥१६॥
अथवा सर्वसैन्येन निकुञ्जगिरिमाश्रिताः । संनिरुध्मः[2] समागच्छत् परसैन्यं भयानकम् ॥१७॥
साधुगोश्रावकाकीर्णां प्रजामेतां सुविह्वलाम् । सम्यक् संधारयिष्यामस्त्यक्त्वा जीवं सुदुस्सहम् ॥१८॥
अतो ब्रवीमि राजंस्त्वां[3] यस्त्वया पाल्यते महो । तव राज्यं महाभाग त्वमेव हि जगत्पतिः ॥१९॥
यजन्ते[4] भावतः सन्तो यावन्तः श्रावकादयः । पञ्चयज्ञान् विधानेन[5] प्रोक्ष्याद्यैर्यद्बीजकैः[6] ॥२०॥
मुक्तिक्षान्तिगुणैर्युक्ता यत्र ध्यानपरायणाः । तप्यन्ते सुतपो मोक्षसाधनं ग्रन्थनास्वराः ॥२१॥
महान्तश्च पुरस्कारा यत्सैन्यमथवादिषु । विधीयन्तेऽभिषेकाश्च जिनानां क्षीणकर्मणाम् ॥२२॥
प्रजासु रक्षितास्वेतत्सर्वं भवति रक्षितम्[7] । ततश्च धर्मकामार्थाः प्रेत्य चेह च भूभुताम् ॥२३॥
बहुकोषो नरेशो यः प्रीतः पालयति क्षितिम् । परचक्राभिभूतश्च नावसादं[8] समश्नुते[9] ॥२४॥
हिंसाधर्मविहीनानां यच्छतां यागदक्षिणाम् । कुरुते पालनं यश्च तस्य भोगाः[10] पुनर्भुवः[11] ॥२५॥
धर्मार्थकाममोक्षाणामधिकारा महीतले । जनानां राजगुप्तानां जायन्ते तेऽन्यथा कुतः ॥२६॥
नृपबाहुबलच्छायां समाश्रित्य सुखं प्रजाः । ध्यायन्त्यात्मानमव्यग्रास्तस्माच्छ्रेयोऽभिणो बुधाः ॥२७॥

आपसे निवेदन करते हैं कि समस्त पृथिवीतल म्लेच्छ राजाकी सेनासे आक्रान्त हो चुका है ॥१३॥ उन म्लेच्छोंने आर्य देश नष्ट-भ्रष्ट कर दिये हैं तथा समस्त जगत्को उजाड़ दिया है। वे पापी समस्त प्रजाको एक वर्णकी करनेके लिए उद्यत हुए हैं ॥१४॥ जब प्रजा नष्ट हो रही है तब हम किसलिए जीवित रह रहे हैं ? विचार कीजिए कि इस दशामें हम क्या करें ? अथवा किसकी शरणमें जावें ? ॥१५॥ हम मित्रजनोंके साथ किस दुर्गका आश्रय लेकर रहें अथवा नन्दी, कलिन्द या विपुलगिरि इन पर्वतोंका आश्रय लें ? ॥१६॥ अथवा सब सेनाके साथ निकुंजगिरिमें जाकर शत्रुकी आती हुई भयंकर सेनाको रोकें ॥१७॥ अथवा यह कठिन दिखता है कि हम अपना जीवन देकर भी साधु, गौ तथा श्रावकोंसे व्याप्त इस विह्वल प्रजाकी रक्षा कर सकेंगे ॥१८॥ इसलिए हे राजन् ! मैं आपसे कहता हूँ कि चूँकि आप ही पृथिवीकी रक्षा करते रहे, अतः यह राज्य आपका ही है और हे महाभाग ! आप ही जगत्के स्वामी हैं ॥१९॥ जितने श्रावक आदि सत्पुरुष हैं वे भाव-पूर्वक पूजा करते हैं। अंकुर उत्पन्न होनेकी शक्तिसे रहित पुराने धान आदिके द्वारा विधिपूर्वक पाँच प्रकारके यज्ञ करते हैं ॥२०॥ निर्ग्रन्थ मुनि मुक्ति क्षान्ति आदि गुणोंसे युक्त होकर ध्यानमें तत्पर रहते हैं तथा मोक्षका साधनभूत उत्तम तप तपते हैं ॥२१॥ जिनमन्दिर आदि स्थलोंमें कर्मोंको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्की बड़ी-बड़ी पूजाएँ तथा अभिषेक होते हैं ॥२२॥ प्रजाकी रक्षा रहनेपर ही इन सबकी रक्षा हो सकती है और इन सबकी रक्षा होनेपर ही इस लोक तथा परलोकमें राजाओंके धर्म, अर्थ, कामरूप त्रिवर्ग सिद्ध हो सकते हैं ॥२३॥ बहुत बड़े खजानेका स्वामी होकर जो राजा प्रसन्नतासे पृथिवीकी रक्षा करता है और परचक्रके द्वारा अभिभूत होनेपर भी जो विनाशको प्राप्त नहीं होता तथा हिंसाधर्मसे रहित एवं यज्ञ आदिमें दक्षिणा देनेवाले लोगोंकी जो रक्षा करता है उस राजाको भोग पुनः प्राप्त होते हैं ॥२४-२५॥ पृथिवीतलपर मनुष्योंको धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका अधिकार है सो राजाओंके द्वारा सुरक्षित मनुष्योंको ही ये अधिकार प्राप्त होते हैं अन्यथा किस प्रकार प्राप्त हो सकते हैं ? ॥२६॥ राजाके बाहुबलकी छायाका

---

१. किं प्रयोजनम् म. । २. नदीकालीन्द्रमार्गान्वा म. । ३. सन्निरुद्धाः म. । ४. राजंस्त्वम् म. । ५. जयन्ते क., ख. । ६. प्रधानेन म. । विधानेन ब. । ७. यवबीजकैः ब. । ८. युक्तिः म. । ९. प्रजाः सुरक्षितास्त्वेतत् म. । १०. समश्नुतम् म. । ११. पुनरपि प्राप्या भवन्ति ।

यस्य देशं समाश्रित्य साधवः कुर्वते तपः । षष्ठमंशं नृपस्तस्य लभते परिपालनात् ॥२८॥
अथैवमिति तत्सर्वमुपश्रुत्य[1] नराधिपः । हृतं शमं समाहूय [2]राज्यं दातुं समुद्यतः ॥२९॥
मुदितैः किङ्करैर्भेरीघनानन्दा समाहता[3] । आजग्मुः सचिवाः सर्वे गजवाजिसमाकुलाः ॥३०॥
जाम्बूनदमयान् कुम्भान् गृहीत्वा वारिपूरितान् । बद्ध्वा परिकरं शूरा मासमाजाः समागताः ॥३१॥
चारुनूपुरनिस्वाना दधाना वेषमुत्तमम् । वस्त्रालङ्कारमादाय पटलेष्वागताः[4] स्त्रियः ॥३२॥
आटोपमीदृशं दृष्ट्वा किमेतदिति शङ्कितम् । रामं दशरथोऽवोचत् पालयेमां सुत क्षितिम् ॥३३॥
रिपुचक्रमिहायातं यदैवैरपि दुर्जयम् । विजेष्ये तदहं गत्वा प्रजानां हितकाम्यया ॥३४॥
ततो राजीवनयनो राघवो नृपमब्रवीत् । किमर्थं तात संरम्भमस्थाने प्रतिपद्यसे ॥३५॥
किं कार्यं पशुसंज्ञैस्तैरसंभाषैर्दुरात्मभिः । येषामभिमुखीभावं प्रयासि रणकाङ्क्षया ॥३६॥
न ह्याखूनां विरोधेन क्षुभ्यन्ति वरवारणाः । न चापि तूलदाहार्थं[5] सज्जति विभावसुः ॥३७॥
तत्र प्रयातुमस्माकं युज्यते यच्च शासनम् । इत्युक्ते हर्षिताङ्गस्तं परिष्वज्य पिताब्रवीत् ॥३८॥
त्वं बालः सुकुमाराङ्गः पद्म[6] पत्रनिभेक्षणः । कथं तान् सहसे जेतुं न[7] प्रत्येम्यहमर्भक[8] ॥३९॥
सोऽवोचत् सद्य[9]उत्पन्नो भृशमल्पोऽपि पावकः । कथं दहति विस्तीर्णं महद्भिः किं प्रयोजनम् ॥४०॥
बालः सूर्यस्तमो घोरं हरत्यृक्षगणस्य च । एको नाशयति क्षिप्रं भूतिभिः किं प्रयोजनम् ॥४१॥

आश्रय लेकर प्रजा सुखसे आत्माका ध्यान करती है तथा आश्रमवासी विद्वान् निराकुल रहते हैं ॥२७॥ जिस देशका आश्रय पाकर साधुजन तपश्चरण करते हैं उन सबकी रक्षाके कारण राजा तपका छठवाँ भाग प्राप्त करता है ॥२८॥

अथानन्तर यह सब सुनकर राजा दशरथ शीघ्र ही रामको बुलाकर राज्य देनेके लिए उद्यत हो गये ॥२९॥ किंकरोंने प्रसन्न होकर बहुत भारी आनन्द देनेवाली भेरी बजायी। हाथी और घोड़ोंसे व्याकुल समस्त मन्त्री लोग आ पहुँचे ॥३०॥ देदीप्यमान शूरवीर जलसे भरे हुए सुवर्ण कलश लेकर तथा कमर कसकर आ गये ॥३१॥ जिनके नूपुरोंसे सुन्दर शब्द हो रहा था तथा जो उत्तमोत्तम वेष धारण कर रही थीं ऐसी स्त्रियाँ पिटारोंमें वस्त्रालंकार ले-लेकर आ गयीं ॥३२॥ यह सब तैयारी देखकर रामने पूछा कि यह क्या है ? तब राजा दशरथने कहा कि हे पुत्र ! तुम इस पृथिवीका पालन करो ॥३३॥ यहाँ ऐसा शत्रुदल आ पहुँचा है जो देवोंके द्वारा भी दुर्जेय है। मैं प्रजाके हितकी वांछासे जाकर उसे जीतूँगा ॥३४॥ तदनन्तर कमललोचन रामने राजा दशरथसे कहा कि हे तात ! अस्थानमें क्रोध क्यों करते हो ? ॥३५॥ आप रणकी इच्छासे जिनके सम्मुख जा रहे हैं, उन पशुस्वरूप भाषाहीन दुष्ट मनुष्योंसे क्या कार्य हो सकता है ? ॥३६॥ चूहोंके विरोध करनेसे उत्तम गजराज क्षोभको प्राप्त नहीं होते और न सूर्य रुईको जलानेके लिए तत्पर होता है ॥३७॥

वहाँ जानेके लिए तो मुझे आज्ञा देना उचित है सो दीजिए। ऐसा कहनेपर हर्षित शरीरके धारी पिताने रामका आलिंगन कर कहा ॥३८॥ कि हे पद्म ! अभी तुम बालक हो, तुम्हारा शरीर सुकुमार है तथा नेत्र कमलके समान हैं, इसलिए हे बालक ! तुम उन्हें किस तरह जीत सकोगे इसका मुझे प्रत्यय नहीं है ॥३९॥ रामने उत्तर दिया कि तत्काल उत्पन्न हुई थोड़ी-सी अग्नि बड़े विस्तृत वनको जला देती है इसलिए बड़ोंसे क्या प्रयोजन है ? ॥४०॥ बालसूर्य अकेला ही घोर अन्धकारको तथा नक्षत्र-समूहकी कान्तिको नष्ट कर देता है इसलिए विभूतिसे क्या प्रयोजन है ? ॥४१॥

---

१. -मुपश्रित्य ज., ब., क., ख. । २. दातुं राज्यम् म. । ३. समाहताः म. । ४. पटलेष्वागताः म. । ५. तत्परो भवति । ६. हे राम । ७. प्रत्ययं करोमि । ८. अर्भकः म. । ९. सद्यमुत्पन्नो क., ख., म. ।

ततः सहृष्टरोमाङ्गो नृपो दशरथः पुनः । प्रमोदं परमं प्राप्तो विषादं च सवाष्पवृक् ॥४२॥
सत्त्वत्यागादिवृत्तीनां क्षत्रियाणामियं स्थितिः । उत्सहन्ते प्रयातुं यद्विहातुमपि जीवितम् ॥४३॥
अथवा क्षयमप्राप्ते जन्तुरायुषि नाश्नुते । मरणं गहनं प्राप्तः परं यद्यपि जायते ॥४४॥
इति चिन्तयतस्तस्य कुमारौ रामलक्ष्मणौ । पितुः पादाम्बुयुगलं प्रणम्योपगतौ बहिः ॥४५॥
ततः सर्वास्त्रकुशलौ सर्वशास्त्रविशारदौ । सर्वलक्षणसंपूर्णौ सर्वस्य प्रियदर्शनौ ॥४६॥
चतुरङ्गबलोपेतौ पूर्यमाणौ विभूतिभिः । संप्रयातौ रथारूढौ दीप्यमानौ स्वतेजसा ॥४७॥
पूर्वमेव तु निर्यातो जनकः सोदरान्वितः । अन्तरं योजने द्वे च परसैन्यस्य तस्य च ॥४८॥
शत्रुशब्दमसृष्यन्तो[1] जनकस्य महारथाः । विविशुर्म्लेच्छसंघातं मेघवृन्दमिव ग्रहाः ॥४९॥
प्रवृत्तश्च महाभीमः संग्रामो रोमहर्षणः । बृहत्प्रहरणाटोप आर्यम्लेच्छसटाकुलः ॥५०॥
जनकः कनकं दृष्ट्वा परं गहनमागतम् । अचोदयदतिक्रुद्धो दुर्वारकरिणां घटाम् ॥५१॥
बर्बरैस्तु महासैन्यैर्भग्नैर्भग्नैः पुनः पुनः । भीमैर्जनकराजोऽपि दिक्षु सर्वासु वेष्टितः ॥५२॥
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः पद्मः सौमित्रिणा सह । अपारं गहनं सैन्यमपश्यच्चारुलोचनः ॥५३॥
दृष्ट्वा तस्य सितच्छत्रं विशीर्णा शत्रुवाहिनी । तमसां सन्ततिः स्फीता पौर्णमासीविधुं यथा ॥५४॥
आश्वासितश्च बाणौघैर्जनको [2]ध्वस्तकङ्कटः । तेन जग्मुर्यथा दुःखी धर्मेण जगदायुषा ॥५५॥

तदनन्तर जिनका शरीर रोमांचित हो रहा था ऐसे राजा दशरथ पुनः परम प्रमोद और विषादको प्राप्त हुए। उनके नेत्रोंसे आँसू निकल पड़े ॥४२॥ सत्त्व त्याग आदि करना जिनकी वृत्ति है ऐसे क्षत्रियोंका यही स्वभाव है कि वे युद्धमें प्रस्थान करनेके लिए अथवा जीवनका भी त्याग करनेके लिए सदा उत्साहित रहते हैं ॥४३॥ उन्होंने विचार किया कि जबतक आयु क्षीण नहीं होती है तबतक यह जीव परम कष्टको पाकर भी मरणको प्राप्त नहीं होता ॥४४॥ इस प्रकार राजा दशरथ विचार ही करते रहे और राम-लक्ष्मण दोनों कुमार उनके चरण-कमलको नमस्कार कर बाहर चले गये ॥४५॥

तदनन्तर जो सर्व शस्त्र चलानेमें कुशल थे, सर्व शास्त्रोंमें निपुण थे, सर्व लक्षणोंसे परिपूर्ण थे, जिनका दर्शन सबके लिए प्रिय था, जो चतुरंग सेनासे सहित थे, विभूतियोंसे परिपूर्ण थे तथा आत्मतेजसे देदीप्यमान हो रहे थे ऐसे दोनों कुमार रथपर आरूढ़ होकर चले ॥४६-४७॥ राजा जनक अपने भाईके साथ पहले ही निकल पड़ा था। जनक और शत्रुसेनाके बीचमें दो योजनका ही अन्तर रह गया था ॥४८॥ जिस प्रकार सूर्य-चन्द्रमा आदि ग्रह मेघसमूहके बीच में प्रवेश करते हैं उसी प्रकार राजा जनकके महारथी योद्धा शत्रुके शब्दको सहन नहीं करते हुए म्लेच्छसमूहके भीतर प्रविष्ट हो गये ॥४९॥ दोनों ही सेनाओंके बीच जिसमें बड़े-बड़े शस्त्रों का विस्तार फैला हुआ था, और जो आर्य तथा म्लेच्छ योद्धाओंसे व्याप्त था, ऐसा रोमहर्षित करनेवाला महा-भयंकर युद्ध हुआ ॥५०॥ राजा जनकने देखा कि भाई कनक संकटमें पड़ गया है तब उसने अत्यन्त क्रुद्ध होकर दुर्वार हाथियोंकी घटाको प्रेरित कर आगे बढ़ाया ॥५१॥ म्लेच्छोंकी सेना बहुत बड़ी तथा भयंकर थी इसलिए उसने बार-बार भग्न होनेपर भी राजा जनकको सब दिशाओंमें घेर लिया ॥५२॥ इसी बीचमें सुन्दर नेत्रोंको धारण करनेवाले राम लक्ष्मणके साथ वहाँ जा पहुँचे। पहुँचते ही उन्होंने शत्रुकी अपार तथा भयंकर सेना देखी ॥५३॥ रामके सफेद छत्रको देखकर शत्रुकी सेना इस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट हो गयी जिस प्रकार कि अन्धकारकी सन्तति पूर्णिमाके चन्द्रमाको देखकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है ॥५४॥ बाणोंके समूहसे जिसका कवच टूट गया था ऐसे जनकको रामने उसी तरह आश्वासन दिया—धैर्य बँधाया जिस प्रकार कि जगत्के प्राणस्वरूप धर्मके

---

१. -ममृष्यन्तो म. । २. ध्वस्तकवचः ।

राघवो रथमास्थो युक्तं चपलवाजिभिः । कवचोद्योतितवपुः हारकुण्डलमण्डितः ॥५६॥
धनुरायतमास्थाय शरपाणिर्हरिध्वजः । प्रकीर्णकोल्वणच्छत्रो धरणीधीरमानसः ॥५७॥
प्रविशन् विपुलं सैन्यं लीलया लोकवत्सलः । सुभटैः पूर्यमाणः सन् भास्वर्क इव रश्मिभिः ॥५८॥
संरक्ष्य जनकं प्रीतः कनकं च यथाविधि । बलं व्यध्वंसयच्छत्रोरिभवत् कदलीवनम् ॥५९॥
तथैव लक्ष्मणस्तत्र बाणानाकर्णसंहृतान् । ववर्ष वायुना तुल्यः सागरे जलदो यथा ॥६०॥
निशितानि च चक्राणि शक्तीश्च कनकानि च । शूलक्रकचनिर्घातान्येवमाद्यान्यविक्षिपत् ॥६१॥
सौमित्रिभुजनिर्मुक्तैस्तैः पतद्भिरितस्ततः । म्लेच्छदेहा[2] न्यशकन्त द्रुमाः परशुभिर्यथा ॥६२॥
भटाः शबरसैन्येऽस्मिन् बाणैर्निर्भिन्नवक्षसः । केचिच्छिन्नभुजग्रीवा निपतन्ति[3] सहस्रशः ॥६३॥
ततः पराङ्मुखीभूता लोककण्टकवाहिनी । तथापि लक्ष्मणस्तेषामनुधावति पृष्ठतः ॥६४॥
अनिवार्यं समालोक्य तं सौमित्रिं मृगाधिपम् । अपरे म्लेच्छशार्दूलाः सभयान्तः क्षोभमागताः ॥६५॥
हुहुहादिनिनादैः कुर्वाणा भैरवं रवम् । चापासिचक्रबहुलाः कृतसंघातपङ्क्तयः ॥६६॥
रक्तवस्त्रशिरस्त्राणाः केचिद्वर्वरधारिणः । असिधेनुकराः क्रूरा नानावर्णाङ्गधारिणः ॥६७॥
केचिन्निशाञ्जनच्छायाः[4] शुकपत्रविभोऽपरे । केचित्कर्दमसंकाशाः केचिन्नवसमत्विषः ॥६८॥
कटिसूत्रमणिप्रायाः पत्रचीवरधारिणः । नानाधातुविलिप्ताङ्गा मञ्जरीकृतशेखराः ॥६९॥

द्वारा दुःखी प्राणीको आश्वासन दिया जाता है ॥५५॥ रामचन्द्र चंचल घोड़ोंसे जुते हुए रथपर सवार थे, उनका शरीर कवचसे प्रकाशमान हो रहा था, हार और कुण्डल उनकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥५६॥ वे एक हाथमें लम्बा धनुष और दूसरे हाथमें बाण लिये हुए थे। उनकी ध्वजामें सिंहका चिह्न था, शिरपर विशाल छत्र फिर रहा था तथा उनका मन पृथिवीके समान धीर था ॥५७॥ जिनके साथ अनेक सुभट थे ऐसे लोकवत्सल राम, लीलापूर्वक विशाल सेनाके बीच प्रवेश करते हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो किरणोंसे सहित सूर्य ही हो ॥५८॥ प्रसन्नतासे भरे रामने जनक और कनक दोनों भाइयोंकी विधिपूर्वक रक्षा कर शत्रुसेनाको उस तरह नष्ट कर दिया जिस प्रकार कि हाथी केलाके वनको नष्ट कर देता है ॥५९॥ जिस प्रकार वायुसे प्रेरित मेघ समुद्रपर जल-वर्षा करता है उसी प्रकार लक्ष्मणने शत्रुदलपर कान तक खिचे हुए बाण बरसाये ॥६०॥ वह अत्यन्त तीक्ष्ण चक्र, शक्ति, कनक, शूल, क्रकच और वज्रदण्ड आदि शस्त्रोंकी खूब वर्षा कर रहा था ॥६१॥ जिस प्रकार पड़ते हुए कुल्हाड़ोंसे वृक्ष कट जाते हैं उसी प्रकार लक्ष्मणकी भुजासे छूटकर जहाँ-तहाँ पड़ते हुए पूर्वोक्त शस्त्रोंसे म्लेच्छोंके शरीर कट रहे थे ॥६२॥ म्लेच्छोंकी इस सेनामें बाणोंसे कितने ही योद्धाओंका वक्षःस्थल छिन्न-भिन्न हो गया था, और हजारों योद्धा भुजा तथा गरदन कट जानेसे नीचे गिर गये थे ॥६३॥ यद्यपि लोकके शत्रुओंकी वह सेना लक्ष्मणसे पराङ्मुख हो गयी थी तो भी वह उनके पीछे दौड़ता ही गया ॥६४॥ जिसे कोई रोक नहीं सकता था ऐसे लक्ष्मणरूपी मृगराजको देखकर म्लेच्छरूपी तेन्दुए सब ओरसे क्षोभको प्राप्त हो गये ॥६५॥ उस समय वे म्लेच्छ बड़े भारी बाजोंके शब्दसे भयंकर शब्द कर रहे थे, धनुष, कृपाण तथा चक्र आदि शस्त्र बहुलतासे लिये थे और झुण्डके-झुण्ड बनाकर पंक्तिरूपमें खड़े थे ॥६६॥ कितने ही म्लेच्छ लाल वस्त्रका साफा बाँधे हुए थे, कोई छुरी हाथमें लिये थे और नाना रंगके शरीर धारण कर रहे थे ॥६७॥ कोई मसले हुए अंजनके समान काले थे, कोई सूखे पत्तोंके समान कान्तिवाले थे, कोई कीचड़के समान थे और कोई लाल रंगके थे ॥६८॥ अधिकतर वे कटिसूत्रमें मणि बाँधे हुए थे, पत्तोंके वस्त्र पहने हुए थे, नाना धातुओंसे उनके शरीर लिप्त थे, फूलकी मंजरियोंसे उन्होंने सेहरा बना रखा था ॥६९॥

---

१. शूलं क्रकच म. । २. म्लेच्छदेहानि कृत्यन्ते म. । ३. न्यपत्यन्त । ४. शुष्क म., ब. ।

वराटकासदशना विशालोपचयोदराः । विरेजुः सैन्यमध्ये[1] तु कुटजा इव पुष्पिताः ॥७०॥
अपरे शबरा रेजुर्भीषणायुधपाणयः । पीनजङ्घाभुजस्कन्धा असुरा इव दर्पिताः ॥७१॥
निर्दयाः पशुमांसादा मूढाः प्राणिवधोद्यताः । आरभ्य जन्मनः पापा[2] सहसाकारिणः ॥७२॥
वराहमहिषव्याघ्रवृककङ्कादिकेतवः । नानायानच्छदच्छत्रास्तत्सामन्ताः सुभीषणाः ॥७३॥
नानायुद्धकृतध्वान्ता महावेगपदातयः । सागरोर्मिनिभाक्षण्वा[3] नानाभीषणनिस्वनाः ॥७४॥
लक्ष्मणक्ष्माधरं वव्रुः क्षुब्धाः[4] शत्रुनीरदाः । निजसामन्तवातेन प्रेरिताः पुरुरंहसः ॥७५॥
अथावल्लक्ष्मणस्तेषां निपाताय समुद्यतः । यथानड्वत्समूहानां महावेगो गजाधिपः ॥७६॥
भ्रश्यमाना निपेतुस्ते स्वैरेव वसुधातले । विद्रुद्रुवुरसंख्याश्च भीत्या विक्षतमूर्तयः[5] ॥७७॥
ततः[6] संधारयन् सैन्यमान्तरङ्गतमो नृपः । समं सकलसैन्येन लक्ष्मणाभिमुखं स्थितः ॥७८॥
तेनाभ्यागतमात्रेण प्रवृत्ते भैरवे मृधे । लक्ष्मणस्य धनुश्छिन्नं बाणैः संसक्तवर्षिभिः ॥७९॥
कृपाणं यावदादत्ते लक्ष्मणो विरथीकृतः । समीरणजवं तावत्पद्मो रथमचोदयत् ॥८०॥
लक्ष्मणस्योपनीतश्च रथोऽन्यः क्षेपवर्जितः । अपारमदहत् सैन्यं रामः कक्षमिवानलः ॥८१॥
कांश्चिच्चिच्छेद बाणौघैः कांश्चित्कनकतोमरैः । चक्रैः शिरांसि केषांचित्कुञ्चितौष्ठान्यपातयत् ॥८२॥

कौड़ियोंके समान उनके दाँत थे, बड़े मटकाके समान उनके पेट थे और सेनाके बीच वे फूले हुए कुटज वृक्षके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७०॥ जिनके हाथोंमें भयंकर शस्त्र थे, और जिनकी जाँघें, भुजाएँ और स्कन्ध अत्यन्त स्थूल थे ऐसे कितने ही म्लेच्छ गर्वीले असुरोंके समान जान पड़ते थे ॥७१॥ वे अत्यन्त निर्दय थे, पशुओंका मांस खानेवाले थे, मूढ़ थे, पापी थे और सहसा अर्थात् बिना विचार किये काम करनेवाले थे ॥७२॥ वराह, महिष, व्याघ्र, वृक और कंक आदिके चिह्न उनकी पताकाओंमें थे, उनके सामन्त भी अत्यन्त भयंकर थे तथा नाना प्रकारके वाहन, चद्दर और छत्र आदिसे सहित थे ॥७३॥ नाना युद्धोंमें जिन्होंने अन्धकार उत्पन्न किया था, जो समुद्रकी लहरोंके समान प्रचण्ड थे, और नाना प्रकारका भयंकर शब्द कर रहे थे ऐसे महावेगशाली पैदल योद्धा उनके साथ थे ॥७४॥ अपने सामन्तरूपी वायुसे प्रेरित होनेके कारण जिनका वेग बढ़ रहा था ऐसे उन क्षोभको प्राप्त हुए म्लेच्छरूपी मेघोंने लक्ष्मणरूपी पर्वतको घेर लिया ॥७५॥ जिस प्रकार बैलोंके समूहको नष्ट करनेके लिए महावेगशाली हाथी दौड़ता है उसी प्रकार उन सबको नष्ट करनेके लिए उद्यत लक्ष्मण दौड़ा ॥७६॥ लक्ष्मणके दौड़ते ही उनमें भगदड़ मच गयी जिससे वे अपने ही लोगोंसे कुचले जाकर पृथिवीपर गिर पड़े। तथा भयसे जिनके शरीर खण्डित हो रहे थे ऐसे अनेक योद्धा इधर-उधर भाग गये ॥७७॥

तदनन्तर आन्तरंगतम राजा सेनाको रोकता हुआ सब सेनाके साथ लक्ष्मणके सम्मुख खड़ा हुआ ॥७८॥ उसने आते ही भयंकर युद्ध किया और निरन्तर बरसते हुए बाणोंसे लक्ष्मणका धनुष तोड़ डाला ॥७९॥ लक्ष्मण जबतक तलवार उठाता है तबतक उसने उसे रथरहित कर दिया अर्थात् उसका रथ तोड़ डाला। यह देख रामने वायुके समान वेगवाला अपना रथ आगे बढ़ाया ॥८०॥ लक्ष्मणके लिए शीघ्र ही दूसरा रथ लाया गया और जिस प्रकार अग्नि वनको जलाती है, उसी प्रकार रामने शत्रुकी सेनाको जला दिया ॥८१॥ उन्होंने कितने ही लोगोंको बाणोंके समूहसे छेद डाला, कितने ही लोगोंको कनक और तोमर नामक शस्त्रोंसे काट डाला तथा जिनके ओठ टेढ़े हो रहे थे ऐसे कितने ही लोगोंके शिर चक्ररत्नसे नीचे गिरा दिये ॥८२॥

---

१. सैन्यमध्यं म. । २. सहसाकारिणः म. । ३. चन्द्रा म. । ४. शरदनीरदाः म. । ५. यथा नदत्समूहानां म. । ६. विकृतमूर्तयः म. । ७. साधरयन् म. । ८. आन्तरङ्गतमः एतन्नामा म्लेच्छनृपः । ९. समीरण-जवासावत् म. ।

ननाश भयपूर्णा च [1]यथाशं म्लेच्छवाहिनी । विध्वस्तचामरच्छत्रध्वजचापसमाकुला ॥८३॥
निमिषान्तरमात्रेण रामेणाक्लिष्टकर्मणा । म्लेच्छा निराकृताः सर्वे कषाया इव साधुना ॥८४॥
आगतो यश्च सैन्येन निष्पारेणोदधिर्यथा । सोऽयं म्लेच्छराजो विनिःसृतः[2] ॥८५॥
पराङ्मुखीकृतैः क्लीबैः किमेभिर्निहतैरिति । सौमित्रिणा समं रामः कृती निवृत्ते सुखम् ॥८६॥
अमी भयाकुला म्लेच्छा विहाय त्रिजिगीषुताम् । आश्रित्य सह्यविन्ध्याद्रीन् समयेनावतस्थिरे ॥८७॥
कन्दमूलफलाहारास्तस्यासू रौद्रकर्मसाम् । राघवाद् भयमापन्ना वैनतेयादिवोरगाः ॥८८॥
[3]सानुजः [4]सानुजं पश्चा[5]द्विग्रहे शान्तविग्रहः । विसर्ज्य [6]जनकं हृष्टं [7]जनकाभिमुखोऽगमत् ॥८९॥
प्रजातपरमानन्दा रेमे विस्मितमानसा । रराज पृथिवी सर्वा भूत्या कृतयुगे यथा ॥९०॥
धर्मार्थकामसंसक्तैः पुरुषैर्भूषितं जगत् । व्यक्तीतहिमसंरोधैर्नक्षत्रैरम्बरं यथा ॥९१॥
माहात्म्यादमुतो राजन् दुहिता लोकसुन्दरी । जनकेन प्रसन्नेन राघवस्य प्रकल्पिता ॥९२॥

टूटे-फूटे वाहन, छत्र, ध्वजा और धनुषोंसे आकुल म्लेच्छोंकी वह सेना भयभीत होकर इच्छानुसार नष्ट हो गयी—इधर-उधर भाग गयी ॥८३॥

जिस प्रकार साधु कषायोंको क्षण-भरमें नष्ट कर देते हैं उसी प्रकार क्लेशरहित कार्य करनेवाले रामने निमेष मात्रमें ही समस्त म्लेच्छोंको नष्ट कर दिया ॥८४॥

जो म्लेच्छ राजा समुद्रके समान अपार सेनाके साथ आया था वह भयभीत होकर केवल दस घोड़ोंके साथ बाहर निकला था ॥८५॥

इन विमुख नपुंसकोंको मारनेसे क्या प्रयोजन है ऐसा विचारकर कृतकृत्य राम लक्ष्मणके साथ सुखपूर्वक युद्धसे लौट गये ॥८६॥

भयसे घबड़ाये हुए म्लेच्छ विजयकी इच्छा छोड़ सन्धि कर सह्य और विन्ध्य पर्वतोंपर रहने लगे ॥८७॥

जिस प्रकार सांप गरुड़से भयभीत रहते हैं उसी प्रकार म्लेच्छ भी रामसे भयभीत रहने लगे। वे कन्द-मूल, फल आदि खाकर अपना निर्वाह करने लगे तथा उन्होंने सब दुष्टता छोड़ दी ॥८८॥

तदनन्तर युद्धमें जिनका शरीर शान्त रहा था ऐसे सानुज अर्थात् छोटे भाई लक्ष्मणसहित राम, सानुज अर्थात् छोटे भाई कनकसहित हर्षित जनकको छोड़कर जनक अर्थात् पिताके सम्मुख चले गये ॥८९॥

तदनन्तर जिसे परम आनन्द उत्पन्न हुआ था और जिसका मन आश्चर्यसे विस्मित हो रहा था ऐसी समस्त प्रजा आनन्दसे क्रीड़ा करने लगी और समस्त पृथिवी कृतयुगके समान वैभवसे सुशोभित होने लगी ॥९०॥

जिस प्रकार हिमके आवरणसे रहित नक्षत्रोंसे आकाश सुशोभित होता है उसी प्रकार धर्म-अर्थ-काममें आसक्त पुरुषोंसे संसार सुशोभित होता है ॥९१॥

गौतमस्वामी श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन्! राजा जनकने इसी माहात्म्य से प्रसन्न होकर अपनी लोक-सुन्दरी पुत्री जानकी रामके लिए देना निश्चित की थी ॥९२॥

---

१. यथाशम्लेच्छम् यथासंम्लेच्छ म.। २. विनिःस्मृतः म.। ३. सलक्ष्मणः। ४. अनुजसहितं कनकसहितमिति यावत्। ५. पश्चोऽविग्रहः ब.। ६. मिथिलाधिपम्। ७. पितृभिमुखम्। ८. रोमविस्मित- म.।

उपजातिवृत्तम्

किं वात्र कृत्यं बहुभाषितेन श्रीश्रेणिक त्वं ननु कर्म पुंसाम् ।
[1]समागमे गच्छति हेतुभावं वियोजने वा सुजनेन साकम् ॥९३॥
सोऽहं महात्मा भुवने समस्ते गतः प्रतापं परमं सुभाग्यः ।
गुणैरनन्यप्रमितैरुपेतो रविर्यथोद्भासि[2] परो मयूखैः ॥९४॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते म्लेच्छपराजयसंकीर्तनं नाम सप्तविंशतितमं पर्व ॥२७॥

□

इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ है ? हे श्रेणिक ! यह निश्चित बात है कि मनुष्योंका अपना किया कर्म ही उत्तम पुरुषोंके साथ संयोग अथवा वियोग होनेमें कारणभावको प्राप्त होता है ॥९३॥

परम प्रतापको प्राप्त भाग्यशाली एवं असाधारण गुणोंसे युक्त महात्मा रामचन्द्र समस्त संसारमें इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार कि किरणोंसे युक्त सूर्य सुशोभित होता है ॥९४॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरितमें म्लेच्छोंके पराजयका वर्णन करनेवाला सत्ताईसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२७॥

□

---

१. समागते म. । २. यथोद्भूतपरो म. ।

अष्टाविंशतितमं पर्व

ईदृक्पराक्रमाद्दृष्टो नारदः पुरुविस्मयः । धृतिं न लभते क्वापि रामसंकथया विना ॥१॥
श्रुतश्च तेन वृत्तान्तो रामस्य किल मैथिली । पिता दातुमभीष्टेऽस्ति प्रकटा सर्वविष्टपे ॥२॥
अचिन्तयच्च पश्यामि कन्यां तामथ कीदृशीम् । शोभनैर्लक्षणैर्यैर्न रामस्य परिकल्पिता ॥३॥
पद्मगर्भदलं यस्मिन् कृत्वा स्तनतटे रहः । मत्कान्त्या सदृशं नेदमिति बुद्ध्याऽवलोकते ॥४॥
समये नारदस्तस्मिन् सीतालोकनलालसः । विशुद्धहृदयः प्राप्तदारोह च सद्गृहम् ॥५॥
ततो दर्पणसंक्रान्तं जटामुकुटभीषणम् । नारदीयं वपुर्वीक्ष्य कन्या त्राससमाकुला ॥६॥
हा मातः कोऽयमत्रेति कृत्वा प्रस्खलित[1]स्वनम् । विवेश गर्भभवनं वेपमानशरीरिका ॥७॥
नारदोऽनुपदं तस्या विज्ञातिकुतूहलः । नारीभिर्द्वारपालीभिः सावष्टम्भमरुध्यत ॥८॥
यावत्तस्य च तासां च कलहो वर्तते महान् । तावच्छब्देन संप्राप्तुर्नरा खड्गधनुर्धराः ॥९॥
गृह्यतां गृह्यतां कोऽयं कोऽयमित्युद्धतस्वनाः । कुञ्चितौष्ठाञ्चरान् दृष्ट्वा सशस्त्रान् हन्तुमुद्यतान् ॥१०॥
नारदः परमं विस्रब्धमुत्कटवेपथुः । ऊर्ध्वरोमा खमुत्पत्य विश्रान्तोऽष्टापदाचले ॥११॥
अचिन्तयच्च हा कष्टं प्राप्तोऽस्मि जनमं पुनः । निष्क्रान्तोऽस्मि महादावात् पक्षी ज्वालाहतो यथा ॥१२॥

अथानन्तर जो इस प्रकारके पराक्रमसे आकर्षित था तथा बहुत भारी आश्चर्यसे युक्त था ऐसा नारद युद्धकी चर्चाके बिना कहीं भी सन्तोषको प्राप्त नहीं होता था ॥१॥ उसने समाचार सुना कि समस्त संसारमें प्रसिद्ध अपनी सीता नामकी पुत्री उसके पिता राजा जनकने रामचन्द्रके लिए देनेकी इच्छा की है ॥२॥ समाचार सुनते ही उसने विचार किया कि उस कन्याको देखूँ तो सही कि वह शुभ लक्षणोंसे कैसी है जिससे रामचन्द्रके लिए उसका देना निश्चित किया गया है ॥३॥ ऐसा विचारकर नारद उस समय सीताके महलमें पहुँचा जब कि वह एकान्त स्थानमें कमलकी भीतरी कलिकाको अपने स्तनतटके समीप करके इस बुद्धिसे उसे देख रही थी कि यह मेरी कान्तिके समान है या नहीं ॥४॥ जिसे सीताके देखनेकी लालसा थी तथा जिसका हृदय अत्यन्त शुद्ध अर्थात् निर्विकार था ऐसा नारद उस समय सीताके महलमें ऊपर जा चढ़ा ॥५॥ तदनन्तर जिसका दर्पणमें प्रतिबिम्ब पड़ रहा था और जो जटारूपी मुकुटसे भीषण था ऐसा नारदका शरीर देखकर सीता भयसे व्याकुल हो गयी ॥६॥ हा मातः ! यह यहाँ कौन आ रहा है ? इस प्रकार अर्धोच्चारित शब्द कर वह महलके भीतर घुस गयी। उस समय उसका शरीर कम्पित हो रहा था ॥७॥ अत्यन्त कुतूहलसे भरा नारद भी उसीके पीछे महलमें भीतर प्रवेश करने लगा तो द्वारकी रक्षा करनेवाली स्त्रियोंने उसे बलपूर्वक रोक लिया ॥८॥ जबतक नारद तथा उन स्त्रियोंके बीच बड़ा कलह होता है तबतक उनका शब्द सुनकर तलवार और धनुषको धारण करनेवाले पुरुष वहाँ आ पहुँचे ॥९॥ वे पुरुष पकड़ो-पकड़ो कौन है ? कौन है ? इस प्रकारका जोरदार शब्द कर रहे थे। जो ओठ चाब रहे थे, शस्त्रोंसे युक्त थे तथा मारनेके लिए उद्यत थे ऐसे उन पुरुषोंको देखकर नारद अत्यन्त भयभीत हो उठा। उसके शरीरसे अत्यधिक कँपकँपी छूट रही थी, और रोमांच खड़े हो गये थे। खैर, जिस किसी तरह वह आकाशमें उड़कर कैलास पर्वतपर पहुँचा और वहीं विश्राम करने लगा ॥१०-११॥ वह विचारने लगा कि हाय ! मैं बड़े कष्टमें पड़ गया था। बचकर क्या आया मानो दूसरा जन्म ही मैंने प्राप्त किया है। जिस प्रकार

---

१. प्रस्खलितं स्वनं म.।

शनैः शनैस्ततः कम्पं तद्विन्यस्तेक्षणोऽमुचत् । समाजं च ललाटस्थान् स्वेदबिन्दून् स्थवीयसः ॥१३॥
समादधे स्खलत्पाणिर्जटाश्चाकुलकम् । मुहुः स्मृत्वा च निःश्वासान्मुमुचे दीर्घमीरितः ॥१४॥
ततः स्वैरं भयाद् भ्रष्टो दृष्ट्वावेवं प्रकोपवान् । [1]निश्चलस्थितशेषाङ्गो मूर्धानं कम्पयन् मनाक् ॥१५॥
अदुष्टमानसः पश्यन् वार्तां रूपदिदृक्षया । रामानुरागतः प्राप्तमवस्थां सूक्ष्मगोचराम् ॥१६॥
अहो प्रौढकुमार्यास्तच्चेष्टितं दुष्टविभ्रमम् । गृहीतोऽस्मि नयेनैव कृतान्तसदृशैर्नरैः ॥१७॥
क्व मे पापाधुना याति व्यसने पातयामि ताम् । नृत्याम्यातोद्यमुक्तोऽपि किमुतातोद्यसंयुतः ॥१८॥
विचिन्त्यैवं द्रुतं गत्वा नगरं रथनूपुरम् । सीतारूपं पटे न्यस्य प्रत्यक्षमिव सुन्दरम् ॥१९॥
चकारोपवने चन्द्रगतेः[2] क्रीडनसद्मनि । उत्सृज्य च बहिस्तस्थौ पुरस्याप्रकटात्मकः ॥२०॥
अन्यदाथ समुद्देशं कुमारैर्बहुभिः समम् । भामण्डलकुमारोऽसौ रममाणः समाययौ ॥२१॥
तत्राज्ञानात् समालोक्य स्वसारं चित्रगोचराम् । ह्रीस्मृतिस्मृतिमुक्तात्मा द्राक् प्रमामण्डलोऽभवत् ॥२२॥
ततः शोचति निश्वासान्मुञ्चतेऽत्यन्तमायतान् । शुष्यति क्षिपति स्वस्तं गात्रं यत्र क्वचिद् द्रुतम् ॥२३॥
न रात्रौ न दिवा निद्रां लभते ध्यानतत्परः । उपचारैः[3] कान्तेन न जातु सुखमश्नुते ॥२४॥
पुष्पाणि गन्धमाहारं द्वेष्टि द्वेषं[4] यथा भृशम् । करोति लोठनं भूयः संतापी जलकुट्टिमे ॥२५॥

ज्वालाओंसे झुलसा पक्षी किसी बड़े दावानलसे बाहर निकलता है उसी प्रकार मैं भी उस कष्टसे बाहर निकला हूँ ॥१२॥ उस समय भी उसके नेत्र उसी दिशामें लग रहे थे। तदनन्तर धीरे-धीरे उसने शरीरकी कँपकँपी छोड़ी और ललाटपर स्थित पसीनेकी बड़ी-बड़ी बूँदें पोंछीं ॥१३॥ उसने काँपते हुए हाथसे अपनी बिखरी हुई जटाएँ ठीक कीं। यह करते हुए जब उसे बार-बार पिछली घटनाका स्मरण हो आता था तब वह लम्बी-लम्बी साँसें छोड़ने लगता था ॥१४॥ तदनन्तर जब भय दूर हुआ तो क्रोधमें आकर वह इस प्रकार विचार करने लगा। विचार करते समय उसके समस्त अंग निश्चित रूपसे स्थिर थे केवल वह मस्तकको कुछ-कुछ हिला रहा था ॥१५॥ वह विचारने लगा कि देखो मेरे मनमें कोई दोष नहीं था मैं केवल रामचन्द्रके अनुरागसे सीताका रूप देखनेकी इच्छासे ही वहाँ गया था परन्तु ऐसी दशाको प्राप्त हो गया जिसमें मृत्यु तककी आशंका हो गयी ॥१६॥ आश्चर्य है कि उस प्रौढ़ कुमारीकी वह चेष्टा कितनी दुष्टतासे भरी थी कि जिसके कारण मैं यमराजकी समानता करनेवाले मनुष्योंके द्वारा पकड़ लिया गया ॥१७॥ वह पापिनी अब जायेगी कहाँ ? मैं उसे अवश्य ही संकटमें डालूँगा। मैं तो बाजेके बिना ही नाचता हूँ फिर यदि बाजे मिल जायें तो कहना ही क्या है ? ॥१८॥ ऐसा विचारकर उसने एक पटपर प्रत्यक्षके समान सीताका सुन्दर चित्र बनाया और उसे लेकर वह शीघ्र ही रथनूपुर नगर गया ॥१९॥ वहाँ जाकर उसने उपवनमें जो अत्यन्त उत्तुंग क्रीड़ाभवन था उसमें वह चित्रपट रख दिया और स्वयं अप्रकट रहकर नगरके बाहर रहने लगा ॥२०॥

अथानन्तर किसी दिन अनेक कुमारोंके साथ क्रीड़ा करता हुआ भामण्डल कुमार वहाँ आया ॥२१॥ सो चित्रमें अंकित बहन सीताको देखकर वह अज्ञानवश शीघ्र ही लज्जा, शास्त्र, ज्ञान तथा स्मृतिसे रहित हो गया अर्थात् सीताके चित्रको देखकर इतना कामाकुलित हुआ कि लज्जा, शास्त्र तथा स्मृति आदि सबको भूल गया ॥२२॥ वह निरन्तर शोक करने लगा, अत्यन्त लम्बे श्वासोच्छ्वास छोड़ने लगा, उसका शरीर सूख गया तथा शिथिल शरीरको वह चाहे जहाँ उपेक्षासे डालने लगा अर्थात् चाहे जहाँ उठने-बैठने लगा ॥२३॥ उसे न रात्रिमें नींद आती थी न दिनमें चैन पड़ता था। वह रात-दिन उसीके ध्यानमें निमग्न रहता था। सुन्दर उपचारोंसे उसे कभी भी सुख नहीं मिलता था ॥२४॥ वह पुष्प, सुगन्धित पदार्थ तथा आहारसे ऐसा द्वेष करता था

---

१. निश्चितस्थित म. । २. चन्द्रगतः ज. । ३. रम्येण । ४. विषनिर्मितम् ।

मौनमाचरति स्मित्वा करोति च कथां मुहुः । सहसोत्तिष्ठति व्यर्थं याति भूयो निवर्तते ॥२६॥
ततो ग्रहगृहीतस्य तदुपायैर्विचेष्टितैः । ज्ञातं तदातुरत्वस्य कारणं मतिशालिभिः ॥२७॥
जगदुश्चैवमन्योन्यं कन्येयं केन चित्रिता । पटोऽत्र विहितो गेहे स्याद् वा नारदचेष्टितम् ॥२८॥
ततः श्रुत्वा कुमारं तमाकुलं स्वेन कर्मणा । नारदस्तस्य बन्धूनां विस्रब्धो दर्शनं ददौ ॥२९॥
आदरेण च तैः पृष्टः कृतपूजानमस्कृतिः । मुने कथय कन्येयं दृष्टा क्व भवतेदृशी ॥३०॥
महोरगाङ्गना किं स्याद् भवेत् किं वा विमानजा । मर्त्यलोकं समायाता त्वया दृष्टा कथंचन ॥३१॥
[1]अवद्धारस्ततोऽवोचद् विनयं परमं वहन्[2] । भूयो भूयः स्वयं गच्छन्[3] विस्मयं कम्पयन् शिरः ॥३२॥
अस्त्यत्र मिथिला नाम पुरी परमसुन्दरी । इन्द्रकेतोः सुतस्तत्र जनको नाम पार्थिवः ॥३३॥
विदेहेति प्रिया तस्य मनोबन्धनकारिणी । गोत्रसर्वस्वभूतेयं सीतेति दुहिता तयोः ॥३४॥
निवेद्यैवमसौ तेभ्यः कुमारं पुनरुक्तवान् । बाल मा याः विषादं त्वं लब्धेयं सुलभैव हि ॥३५॥
रूपमात्रेण यातोऽसि विक्रियां यादृगीदृशम् । ये तस्या विभ्रमा मह्र कस्तान् वर्णयितुं क्षमः ॥३६॥
तया चित्तं समाकृष्टं तवेति किमिहाद्भुतम् । धर्मध्याने दृढं बद्धं मुनीनामपि सा हरेत् ॥३७॥
आकारमात्रमन्नैतत्तस्या न्यस्तं मया पटे । लावण्यं यत्तु तत्तस्यास्तस्यामेवेदृशम् ॥३८॥
नवयौवनसंभूतकान्तिसागरवीचिषु । सा लिप्सति तरन्तीव संसक्ता स्तनकुम्भयोः ॥३९॥

मानो उन्हें विषमय ही समझता हो। वह सन्तापसे युक्त होकर बार-बार जलसे सींचे हुए फर्शपर लोटता था ॥२५॥ वह मौन बैठा रहता था, कभी हँसकर बार-बार चर्चा करने लगता था, कभी सहसा उठकर व्यर्थ ही चलने लगता था और फिर लौट आता था ॥२६॥ उसकी समस्त चेष्टाएँ ऐसी हो गयीं मानो उसे भूत लग गया हो। तदनन्तर बुद्धिमान् पुरुषोंने उसकी आतुरताके कारणोंका पता लगाया ॥२७॥ वे परस्परमें इस प्रकार कहने लगे कि यह कन्या किसने चित्रित की है? इस महलमें यह चित्रपट किसने रखा है? जान पड़ता है कि यह सब नारदकी चेष्टा है ॥२८॥

तदनन्तर जब नारदने सुना कि हमारे कार्यसे भामण्डल कुमार अत्यन्त आकुल हो रहा है तब उसने निःशंक होकर उसके बन्धुओंके लिए दर्शन दिया ॥२९॥ उन सबने बड़े आदरसे नारदकी पूजा कर नमस्कार किया तथा पूछा कि हे मुने! कहो आपने यह ऐसी कन्या कहाँ देखी है? ॥३०॥ यह कोई नागकुमार देवकी अंगना है या पृथिवीपर आयी हुई किसी कल्पवासी देवकी स्त्री आपने किसी तरह देखी है? ॥३१॥ तदनन्तर परम विनयको धारण करता तथा स्वयं ही आश्चर्यको प्राप्त हो बार-बार शिर हिलाता हुआ नारद कहने लगा ॥३२॥ कि इसी मध्यमलोकमें अत्यन्त मनोहर मिथिला नामकी नगरी है। उसमें इन्द्रकेतुका पुत्र जनक नामका राजा रहता है ॥३३॥ उसके मनको बाँधनेवाली विदेहा नामकी प्रिया है। उन दोनोंकी ही यह सीता नामकी कन्या है। यह कन्या उन दोनोंके गोत्रका मानो सर्वस्व ही है ॥३४॥ भामण्डलके भाई-बन्धुओंसे ऐसा कहकर उसने भामण्डलसे कहा कि हे बालक! तू विषादको प्राप्त मत हो। यह कन्या तुझे सुलभ ही है ॥३५॥ तू इसके रूपमात्रसे ही ऐसी अवस्थाको प्राप्त हो रहा है फिर इसके जो हाव-भाव विभ्रम हैं उनका वर्णन करनेके लिए कौन समर्थ है? ॥३६॥ उसने तुम्हारा चित्त आकृष्ट कर लिया इसमें आश्चर्य ही क्या है? वह तो धर्मध्यानमें सुदृढ़ रूपसे निबद्ध मुनियोंके चित्तको भी आकृष्ट कर सकती है ॥३७॥ मैंने चित्रपटमें उसका यह केवल आकारमात्र ही अंकित किया है। उसका जो लावण्य है वह तो उसीमें है अन्यत्र सुलभ नहीं है ॥३८॥ वह नवयौवनसे उत्पन्न कान्तिरूपी समुद्रकी तरंगोंमें ऐसी जान पड़ती है मानो स्तनरूपी कलशोंके सहारे तैर ही

---

१. नारदः । अवद्धारः म. । २. महत् म. । ३. गच्छद्विस्मयं म. । ४. इन्द्रकेतोः स्तुतः म. । ५. तां म. ।

तस्याः श्रोणी वरारोहा कान्तिसंप्लावितांशुका । वीक्षितोन्मूलयेत्[1] स्वान्तं समूलमपि योगिनाम् ॥४०॥
मुक्त्वा भवन्तमन्यस्य सेयं कस्योचिता भवेत् । यत्नं वस्तुनि कुर्वंस्त्वं[2] जायतां योग्यसंगमः[3] ॥४१॥
इत्युक्त्वा चरितार्थः सञ्चारदोऽगान्मनीषितम् । दध्यौ भामण्डलोऽप्येवं स्मरसायकताडितः ॥४२॥
क्षेपिष्ठं प्रमदारत्नं न लभेयं यदीदृशम्[4] । न जीवेयं तदावश्यं स्मराकुलितमानसः ॥४३॥
धारयन्ती परां कान्तिमियं मे[5] हृदयस्थिता । कथं न[6] कुरुते तापमग्निज्वालेव सुन्दरी ॥४४॥
दहति त्वचमेवार्को बहिरन्तश्च मन्मथः । अन्तर्विरमति सूर्यस्य मन्मथस्य न विद्यते ॥४५॥
द्वयमेव ध्रुवं मन्ये प्राप्तव्यमधुना मया । तया वा संगमः साकं मरणं वा स्मरेषुभिः ॥४६॥
अनारतमिति[7] ध्यायन्नशने शयने न च । न प्रासादे न चोद्याने धृतिं भामण्डलोऽगमत् ॥४७॥
स्त्रियोऽथ नारदं मत्वा कुमारासुखकारणम् । ससंभ्रमं समुद्विग्नाः[8] पितुरस्य न्यवेदयन्[9] ॥४८॥
नानानर्थसमुद्गेन[10] नारदेनाहृता पटे । चित्रीकृत्यानना कापि[11] रूपातिशययोगिनी ॥४९॥
समालोक्य कुमारस्तां विह्वलीभूतमानसः । धृतिं न लभते क्वापि त्रपया दूरमुज्झितः ॥५०॥
मुहुस्तामीक्षते कन्यां सीताशब्दं समुच्चरन् । करोति विविधां चेष्टां वायुनेव वशीकृतः ॥५१॥
उपायश्चिन्त्यतामाशु तस्योत्पादयितुं धृतिम् । यावन्न मुच्यते प्राणैर्भोजनादिपराङ्मुखः ॥५२॥

रही हो ॥३९॥ कान्तिसे वस्त्रको तिरोहित करनेवाले उसके नितम्ब यदि देखनेमें आ जावें तो निश्चित ही वह योगियोंके मनको भी समूल उखाड़कर फेंक दें ॥४०॥ आपको छोड़कर और यह किसके योग्य हो सकती है ? इस कार्यमें यत्न करो जिससे योग्य समागम प्राप्त हो सके ॥४१॥ इतना कहकर नारद तो कृतकृत्य हो इच्छित स्थानपर चला गया पर इधर भामण्डल कामके बाणोंसे ताड़ित हो इस प्रकार विचार करने लगा कि ॥४२॥ चूँकि मेरा मन कामसे इतना आकुल हो रहा है कि यदि मैं शीघ्र ही इस स्त्रीरत्नको नहीं पाता हूँ तो अवश्य ही जीवित नहीं रह सकूँगा ॥४३॥

परम कान्तिको धारण करनेवाली यह सुन्दरी प्रमदा मेरे हृदयमें स्थित है फिर अग्निकी ज्वालाके समान सन्ताप क्यों कर रही है ॥४४॥ सूर्य सिर्फ बाहरी चमड़ेको जलाता है पर काम भीतरी भागको जलाता है। इतनेपर भी सूर्य अस्त हो जाता है पर काम कभी अस्त नहीं होता ॥४५॥ इस समय तो ऐसा जान पड़ता है कि मेरे द्वारा दो ही वस्तुएँ प्राप्त करने योग्य हैं—एक तो उस स्त्रीरत्नके साथ समागम और दूसरा कामके बाणोंसे मारा जाना ॥४६॥ इस प्रकार निरन्तर उसीका ध्यान करता हुआ भामण्डल न भोजनमें, न शयनमें, न महलमें और न उद्यानमें—कहीं भी धैर्यको प्राप्त हो रहा था ॥४७॥

अथानन्तर जब स्त्रियोंको पता चला कि कुमारके दुःखका कारण नारद है तब उन्होंने उद्विग्न होकर शीघ्र ही कुमारके पितासे यह समाचार कहा ॥४८॥ कि इस समस्त अनर्थका पिटारा नारद ही है। वही कहींकी एक अत्यन्त सुन्दरी स्त्रीको चित्रपटपर अंकित करके लाया था ॥४९॥ उसे देखकर जिसका मन अत्यन्त विह्वल हो गया है ऐसा कुमार किसी भी वस्तुमें धैर्यको प्राप्त नहीं हो रहा है। लज्जाने उसे दूरसे ही छोड़ दिया है ॥५०॥ वह सीता शब्दका उच्चारण करता हुआ बार-बार उसी कन्याको देखता रहता है तथा वायुके वशीभूत हुएके समान नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करता रहता है ॥५१॥ वह भोजनादि समस्त कार्योंसे विमुख हो गया है अर्थात् उसने खाना-पीना सब छोड़ दिया है। इसलिए जबतक प्राण इसे नहीं छोड़ते हैं तबतक

---

१. -न्मूलयत् म.। २. पुमान्। ३. योग्यसमागमसहितः। ४. शीघ्रम्। ५. हृदयं स्थिता म., ज.। ६. च म.। ७. -मतिध्यायन् म.। ८. समुद्विग्ना म.। ९. न्यवेदयत् म.। १०. तथानर्थसमुद्गेन म., नार्यानर्थ- ब.। अनर्थसमुद्गेन = अनर्थकरण्डकेन। ११. क्वापि म.।

ततश्चन्द्रगतिः श्रुत्वा वार्तामेतां समाकुलः । आगत्य कान्तया सार्कं सुतमेवमभाषत ॥५३॥
भज सर्वाः क्रियाः पुत्र सुचेताः भोजनादिकाः । अयं वृणोमि तां कन्यां मनसो मनसि स्थिताम् ॥५४॥
[1]परिसान्त्व्य सुतं कान्तां रहश्चन्द्रायणोऽवदत् । मनोज्ञं च क्रियादं च [2]चित्तजं तं वदिष्यसि ॥५५॥
आर्ये विद्याभृतां कन्याः संत्यज्य प्रतिमोज्झिताः । भूगोचरामिसंबन्धः कथमस्मासु युज्यते ॥५६॥
क्ष्मागोचरस्य निलयं गन्तुं वा युज्यते कथम् । यदा वा तेन नो दत्ता मुखच्छाया तदा तु का ॥५७॥
तस्मात् केनाप्युपायेन कन्यायाः पितरं प्रियम् । इहैव [3]नाययाम्याशु नान्यः पन्था विराजते ॥५८॥
नाथ युक्तमयुक्तं वा त्वमेव ननु [4]मन्यसे । तथापि तावकं वाक्यं ममापि हृदयंगमम् ॥५९॥
ततश्चपलवेगाख्यं भृत्यमाहूय सादरम् । कर्णजापेन विज्ञातवृत्तान्तमकरोन्नृपः ॥६०॥
आज्ञादानेन तुष्टोऽसौ मिथिलां त्वरितो ययौ । हृष्टहंसयुवामोदसूचितामिव पद्मिनीम् ॥६१॥
अवतीर्याम्बराच्चारु [5]सदिवेषमुपाश्रितः । वित्रासयितुमुद्युक्तो गोमहिष्यश्वदारणान् ॥६२॥
[6]देशघाते यथा जातः समाक्रन्दस्तदापरः । शुश्राव च जनौघेभ्यो जनकस्तच्चेष्टितम् ॥६३॥
निर्ययौ च पुराद्युक्तः प्रमोदोद्वेगकौतुकैः । ईक्षांचक्रे च तं सप्तिं नवयौवनसंगतम् ॥६४॥
[7]उदमानं मनोवेगं [8]भास्वत्प्रवरलक्षणम् । प्रदक्षिणमहावर्तं तनुवक्त्रोदरं बलम्[10] ॥६५॥

उसके पहले ही इसे धैर्य उत्पन्न करानेके लिए कोई उपाय सोचा जाये ॥५२॥ तदनन्तर चन्द्रगति विद्याधर इस समाचारको सुनकर घबड़ाया हुआ स्त्रीके साथ आकर पुत्रसे इस प्रकार बोला कि हे पुत्र ! स्वस्थचित्त होकर भोजनादि समस्त क्रियाएँ करो। मैं तुम्हारे मनमें स्थित उस कन्याको वरता हूँ अर्थात् तेरे लिए स्वीकार करता हूँ ॥५३–५४॥ इस प्रकार पुत्रको सान्त्वना देकर चन्द्रगति विद्याधर हर्ष, विषाद और विस्मयको धारण करता हुआ एकान्तमें अपनी स्त्रीसे बोला कि ॥५५॥ हे आर्ये ! विद्याधरोंकी अनुपम कन्याएँ छोड़कर हम लोगोंका भूमिगोचरियोंसे साथ सम्बन्ध करना कैसे ठीक हो सकता है ? ॥५६॥ इसके सिवाय एक बात यह है कि भूमिगोचरीके घर जाना कैसे ठीक हो सकता है ? याचना करनेपर भी यदि उसने कन्या नहीं दी तो उस समय मुखकी क्या कान्ति होगी ? ॥५७॥ इसलिए कन्याके प्रिय पिताको किसी उपायसे शीघ्र ही यहीं बुलाता हूँ। इस विषयमें कोई दूसरा मार्ग शोभा नहीं देता ॥५८॥ स्त्रीने उत्तर दिया कि हे नाथ ! उचित और अनुचित तो आप ही जानते हैं पर इतना अवश्य कहती हूँ कि आपकी बात मुझे भी अच्छी लगती है ॥५९॥

तदनन्तर राजाने चपलवेग नामक भृत्यको आदरपूर्वक बुलाकर उसके कानमें सब वृत्तान्त सूचित कर दिया ॥६०॥ तत्पश्चात् स्वामीकी आज्ञासे सन्तुष्ट हुआ चपलवेग शीघ्र ही उस प्रकार मिथिलाकी ओर चला जिस प्रकार कि हर्षसे भरा तरुण हंस सुगन्धिसे सूचित कमलिनीकी ओर चलता है ॥६१॥ उसने आकाशसे उतरकर सुन्दर घोड़ेका रूप बनाया और वह गाय, भैंसा, अश्व तथा हाथी आदि पशुओंको भयभीत करनेके लिए उद्यत हुआ ॥६२॥ वह जिस देशके घात करनेमें प्रवृत्त होता था उसी ओरसे रोनेका प्रबल शब्द उठ खड़ा होता था। राजा जनकने भी जनसमूहसे उस घोड़ेकी चेष्टाएँ सुनीं ॥६३॥ सुनीं ही नहीं, वह हर्ष, उद्वेग और कौतुकसे युक्त हो उस घोड़ेकी चेष्टाएँ देखनेके लिए नगरसे बाहर भी आया और उसने नवयौवनसे युक्त उस घोड़ेको देखा ॥६४॥ वह घोड़ा अत्यन्त ऊँचा था, मनको अपनी ओर खींचनेवाला था, उसके शरीरमें अच्छे-अच्छे लक्षण देदीप्यमान हो रहे थे, दक्षिण अंगमें महान् आवर्त थी, उसका मुख तथा उदर कृश था, वह अत्यन्त बलवान् था, टापोंके अग्रभागसे वह पृथिवीको ताड़ित कर रहा था।

---

१. परिसान्त्य म.। २. चन्द्रगतिः। ३. नाययाम्याशु म.। ४. मन्यते म.। ५. हयवेषम्। ६. महिषाश्व क. ख.। ७. देशघातो ख.। ८. उदमानं म.। उद्यमानं ज.। ९. मनोयोगं म.। १०. बलम् म., ज.।

सुधाफाम्नैर्मृदङ्गानां कुर्वाणमिव ताडनम् । पृथग्जनैर्दुरारोहं दधतं [1]प्रोथवेपथुम् ॥६५॥
ततः [2]शुद्धप्रमोदः सन् जगाद जनको मुहुः । शायतामेष कस्याश्वः प्रासो निर्दामतामिति ॥६७॥
ततो द्विजगणा ऊचुः प्रियोद्घोषणचेतसः [3] । राजन्नस्य न काकेऽपि तुरङ्गो विद्यते समः ॥६८॥
कैव वार्ता पृथिव्यां भुं राज्ञामीदृग् भवेदिति । अथवा किं न कालेन नृप दृष्टस्त्वयेदृशः ॥६९॥
रथे दिवाकरस्यापि श्रुतिविभ्रमगोचरः । विद्यते नेति जानीमः [4]स्थूरीपृष्ठोऽमुना समः ॥७०॥
नूनं भवन्तमुद्दिश्य कृतवन्तं परं तपः । सृष्टोऽयं विधिना [5]कोऽपि [6]तुरगोऽस्तां प्रभो ॥७१॥
ततोऽसौ [7]विनयी निन्ये प्रग्रहद्वयसंयुतः । [8]मन्दुरां कुङ्कुमार्द्राङ्गः प्रचलच्चारुचामरः ॥७२॥
[9]संवृतो मासमात्रोऽस्य यतौ कालो गृहीतितः [10] । उपचारैरहंयोग्यैः सेव्यमानस्य संततम् ॥७३॥
पार्श्वकोऽन्यान्तरे गत्वा जनकाय न्यवेदयत् । नाथ नागस्य [11]सदेशे ग्रहणं दृश्यतामिति ॥७४॥
ततोऽसौ मुदितस्तुङ्गमास्थाय वरवारणम् । उद्दिष्टपादविन्यासेन विवेश सुमहद्वनम् ॥७५॥
दूरे च सरसो दुर्गे स्थितं दृष्ट्वा वरं द्विपम् । जगादानय तत्क्षिप्रं कंचिदश्वं महाजवम् ॥७६॥
चोदितश्च स मायावी सद्यः स्फुरितविग्रहः । आरुरोह स तं यावत्तस्योत्पत्य तुरगो नभः ॥७७॥
हाहाकारं नृपाः कृत्वा बहवः शोकमुद्गतम् । निर्भृताः सहसा भीता विस्मयव्याप्तमानसाः ॥७८॥

उससे ऐसा जान पड़ता था मानो मृदंग ही बजा रहा हो। साधारण व्यक्ति उसपर चढ़नेमें असमर्थ थे तथा उसका नथना कम्पित हो रहा था ॥६५-६६॥ तदनन्तर विशुद्ध हर्षको धारण करनेवाले राजा जनकने बार-बार उपस्थित लोगोंसे कहा कि मालूम किया जाये कि यह किसका घोड़ा बन्धनमुक्त हो गया है ? ॥६७॥ तत्पश्चात् प्रिय वचन कहनेमें जिनका चित्त उत्कण्ठित हो रहा था ऐसे ब्राह्मणोंने कहा कि हे राजन् ! इस घोड़ेके समान कोई दूसरा घोड़ा नहीं है ॥६८॥ यहाँ की बात जाने दीजिए समस्त पृथिवीमें जितने राजा हैं उनमें किसीके ऐसा घोड़ा नहीं होगा। अथवा हे राजन् ! आपने भी इतने समय तक क्या कभी ऐसा घोड़ा देखा ? ॥६९॥ हम तो समझते हैं कि सूर्यके रथमें भी इस घोड़ेकी समानता करनेवाला घोड़ा नहीं होगा ॥७०॥ ऐसा जान पड़ता है कि परम तपस्या करनेवाले आपको लक्ष्य कर ही विधाताने यह घोड़ा बनाया है सो हे प्रभो ! इसे आप स्वीकार करो ॥७१॥

तदनन्तर उस विनयवान् घोड़ेको दुहरी रस्सीसे बाँधकर घुड़शालमें ले जाया गया। उस समय उसका शरीर केशरके विलेपनसे गीला हो रहा था और उसपर सुन्दर चमर हिल रहे थे ॥७२॥ घुड़शालमें निरन्तर योग्य उपचारोंसे इसकी सेवा होती थी। इस तरह जिस दिनसे घोड़ा पकड़कर लाया गया था उस दिनसे एक मासका समय व्यतीत हो गया ॥७३॥ इस बीचमें वनके एक कर्मचारीने नमस्कार कर राजा जनकसे निवेदन किया कि हे नाथ ! अपने देशमें हाथी कैसे पकड़ा जाता है यह देखिए ? ॥७४॥ तदनन्तर प्रसन्नतासे भरे राजा जनक उत्तुंग गजराज-पर सवार होकर चले। वनका कर्मचारी उन्हें मार्ग बताता जाता था। इस तरह राजा जनक किसी बड़े वनमें प्रविष्ट हुए ॥७५॥ वहाँ उन्होंने सरोवरके दूसरी ओर दुर्गम स्थानमें खड़े हुए उत्तम हाथीको देखकर सारथीसे कहा कि शीघ्र ही किसी वेगशाली घोड़ेको लाओ ॥७६॥ कहनेकी देर थी कि जिसका शरीर फड़क रहा था ऐसा वह मायामय घोड़ा लाकर राजा जनकके समीप खड़ा कर दिया गया। राजा जनक उसपर सवार हुए नहीं कि वह घोड़ा उन्हें लेकर आकाशमें उड़ गया ॥७७॥ यह देख जो सहसा भयभीत हो गये थे तथा जिनमें चित्त आश्चर्यसे व्याप्त

---

१. प्रोषु म. । २. शुद्धः प्रमोदः ज., म. । ३. प्रियभाषणपरमानसाः । ४. न ना कोऽपि म. । ५. षु म. । ६. अश्वः स्थूलीपृष्ठोऽ ज. । ७. विनयैर्निम्ये ब. । ८. मन्दुराकुङ्कुमार्द्राङ्गप्रचलच्चारुचामरः म. । ९. संवृतो म. । १०. गृहीततः ब. । ११. सदेशे म., क. । संदेशे ख. ।

ततो [1]नदीगिरीन् देशानरण्यानि च भूरिशः । प्रयाति लङ्घयन् सद्यः मनोवदनिवारणः ॥७९॥
नातिदूरे ततो दृष्ट्वा [2]प्रासादं शुक्लमुज्ज्वलम् । हियमाणः स शाखायां वृद्धं लग्नो महातरोः ॥८०॥
अवतीर्य ततो वृक्षाद् विश्रम्य च सविस्मयः । चरणाभ्यां परिक्रामन् प्रययौ स्तोकसन्तरम् ॥८१॥
ददर्श च महातुङ्गं शालं चामीकरात्मकम् । गोपुरं च सुरत्नेन तोरणेनातिशोभिनम् ॥८२॥
नानाजातीश्च वृक्षाणां लताजालकयोगिनाम् । फलपुष्पसमृद्धानां नानाविहगशोभिनाम् ॥८३॥
संध्याभ्रकूटसंकाशान् प्रासादान् मण्डलस्थितान् । सेवां प्रासादराजस्य [3]कुर्वाणानिव [4]तत्पराम् ॥८४॥
ततोऽसौ खड्गमालम्ब्य दक्षिणो दक्षिणे करे । केसरीवातिनिःशङ्कः प्रविवेश स गोपुरम् ॥८५॥
अपश्यच्च परिस्फीताः पुष्पजातीर्बहुविधः । मणिकाञ्चनसोपाना वापीश्च [5]स्फटिकाम्बुसः ॥८६॥
रमणांश्च महामोदान् विशालान् कुन्दमण्डपान् । चलत्पल्लवसंघातान् कृतसंगीतषट्पदान् ॥८७॥
ततश्च माधवीपुष्पजालकान्तरयोगिना । विस्फारितप्रसन्नेन चक्षुषा चारुकान्तिना ॥८८॥
रत्नवातायनैर्युक्तं मुक्ताजालकशोभितैः । ज्ञातकौम्भसहस्रसंसहस्रकृतधारणम् ॥८९॥
नानारूपसमाकीर्णं मेरुशृङ्गसमप्रभम् । वज्रबद्धमहापीठं[6]मदाक्षीद् भवनं नृपः ॥९०॥
अचिन्तयच्च [7]किं न्वेतद्विमानं पतितं खतः[8] । वासवस्य हृतं किं वा दैत्यैः क्रीडागृहं भवेत् ॥९१॥

हो रहे थे ऐसे अन्य राजा लोग हाहाकार करके बहुत भारी शोकको धारण करते हुए वापस लौट आये ॥७८॥

अथानन्तर मनके समान जिसका कोई निवारण नहीं कर सकता था ऐसा वह घोड़ा अनेक नदी, पहाड़, देश और पर्वतोंको लाँघता हुआ आगे बढ़ता गया ॥७९॥ तदनन्तर पास ही में एक ऊँचा उज्ज्वल भवन देखकर राजा जनक एक महावृक्षकी शाखामें मजबूतीसे झूम गये ॥८०॥ तदनन्तर वृक्षसे नीचे उतरकर उन्होंने आश्चर्यचकित हो कुछ देर तक विश्राम किया फिर पैरोंसे पैदल चलते हुए कुछ दूर गये ॥८१॥ वहाँ उन्होंने अत्यन्त ऊँचा सुवर्णमय कोट और उत्तमोत्तम रत्नोंसे युक्त तोरणसे समुद्भासित गोपुर देखा ॥८२॥ लताओंके समूहसे युक्त, फल और फूलोंसे समृद्ध तथा नाना प्रकारके पक्षियोंसे सुशोभित वृक्षोंकी नाना जातियाँ देखीं ॥८३॥ जिनके शिखर सन्ध्याके बादलोंके समान सुशोभित थे, जो गोलाकारमें स्थित थे तथा जो भवनोंके राजा अर्थात् राजभवनकी बड़ी तत्परतासे सेवा करते हुए के समान जान पड़ते थे ऐसे महलोंको भी उन्होंने देखा ॥८४॥

तदनन्तर अतिशय चतुर राजा जनकने दाहिने हाथमें तलवार लेकर सिंहके समान निःशंक हो गोपुरमें प्रवेश किया ॥८५॥ वहाँ जाकर उन्होंने जहाँ-तहाँ फैले हुए रंग-बिरंगे अनेक प्रकारके फूल देखे। जिनकी सीढ़ियाँ मणि और स्वर्णकी बनी हुई थीं तथा जिनमें स्फटिकके समान स्वच्छ जल भरा था ऐसी बावड़ियाँ देखीं ॥८६॥ जिन्हें देखकर आनन्द उत्पन्न होता था, जिनकी बहुत भारी सुगन्धि दूर-दूर तक फैल रही थी, जिनके पल्लवोंके समूह हिल रहे थे, और जहाँ भ्रमर संगीत कर रहे थे ऐसे कुन्द पुष्पोंके विशाल मण्डप भी उन्होंने देखे ॥८७॥ तदनन्तर राजा जनकने खुले हुए अत्यन्त सुन्दर स्वच्छ नेत्रसे माधवी लताओंकी ऊँची जालीके बीच झाँककर एक ऐसा सुन्दर मन्दिर देखा जो मोतियोंकी जालीसे सुशोभित रत्नमय झरोखोंसे युक्त था, जो सुवर्णनिर्मित हजारों बड़े-बड़े खम्भे धारण कर रहा था, नाना प्रकारके रूपसे व्याप्त था, मेरुकी शिखरके समान जिसकी प्रभा थी, और जिसकी महापीठ (भूमिका) वज्रनिबद्धके समान अत्यन्त मजबूत थी ॥८८-९०॥ उसे देखकर वे विचार करने

१. नदीगिरेर्देशान् म. । २. प्रासादं शुक्लमुच्चलम् म. । ३. कुर्वाणामिव ब. । ४. तत्परम् ब., ज. । ५. वापी च म. । ६. पीत म. । ७. किंस्वेतद्विमानं म. । ८. आकाशात् ।

पातालादुत्थितः किं वा नागेन्द्रस्यायमालयः । कुतोऽपि कारणात् सूर्यमरीचिकृतखण्डनः ॥९१॥
अहो मे वसुना[1] तेन भद्रेणोपकृतं परम् । अदृष्टपूर्वमेतत् यत् साधु वेश्मावलोकितम् ॥९३॥
विवेश चिन्तयन्नेवं भवनं तन्मनोहरम् । संफुल्लवदनाम्भोजो ददर्श च जिनाधिपम् ॥९४॥
हुताशशिखागौरं पूर्णचन्द्रनिभाननम् । पद्मासनस्थितं तुङ्गं[2] जटामुकुटधारिणम् ॥९५॥
प्रातिहार्यसमायुक्तं हेमसामरसार्चितम्[3] । चित्ररत्नकृतच्छायं तुङ्गसिंहासनस्थितम् ॥९६॥
ततोऽञ्जलिपुटं मूर्ध्नि कृत्वा हृष्टतनूरुहः । प्रणामं प्रथमः कुर्वन् भक्त्या मूर्च्छामुपागतः ॥९७॥
क्षणेन प्राप्य संज्ञां च स्तुतिं कृत्वा सुसंस्कृताम् । विश्रब्धं जनकस्तस्थौ विस्मयं परमुद्वहन् ॥९८॥
कृती चपलवेगश्च मायां संहृत्य सत्वरः । खड्गविद्याधरो भूत्वा संप्राप रथनूपुरम् ॥९९॥
स्वामिने चावदत्कृत्वा तुष्टो जनकमाहृतम् । रम्यकाननसंवीते स्थापितं जिनवेश्मनि ॥१००॥
आगतं जनकं ज्ञात्वा परं हर्षमुपागमत् । आप्तवर्गेण संयुक्तश्चन्द्रयानो महामनाः ॥१०१॥
गृहीत्वा च परां पूजां नानावाहनसंकुलः । मनोरथरथारूढो ययौ जिनवरालयम् ॥१०२॥
दृष्ट्वा तत्सुमहत्सैन्यमागच्छत्परमोद्यतम् । तूर्यशङ्खमहानादमाविग्नो जनकोऽभवत् ॥१०३॥
ततो हरिगजद्वीपिनागहंसादिवाहिनाम् । पुरुषाणामिदं मध्ये विमानं स व्यलोकयत् ॥१०४॥

लगे कि क्या यह आकाशसे गिरा हुआ विमान है अथवा दैत्योंके द्वारा हरण किया हुआ इन्द्रका क्रीड़ागृह है ? ॥९१॥ अथवा किसी कारणवश सूर्यकी किरणोंसे जिसके खण्ड हो गये थे ऐसा पातालसे निकला हुआ नागेन्द्रका भवन है ? ॥९२॥ अहो ! उस भले घोड़ेने मेरा बड़ा उपकार किया जिससे मैं इस अदृष्टपूर्व सुन्दर मन्दिरको देख सका ॥९३॥ ऐसा विचार करते हुए राजा जनकने उस मनोहर मन्दिरमें प्रवेश किया और वहाँ जाकर जिनेन्द्र भगवान्‌के दर्शन किये। जिन-दर्शनके प्रभावसे उनका मुखकमल खिल उठा था ॥९४॥ मन्दिरमें विराजमान जिनेन्द्रदेव अग्निकी शिखाके समान गौर वर्ण थे, उनका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान था, वे पद्मासनसे विराजमान थे, बहुत ऊँचे थे, जटारूपी मुकुटको धारण किये हुए थे, आठ प्रातिहार्योंसे युक्त थे, स्वर्ण कमलोंसे उनकी पूजा की गयी थी, नाना प्रकारके रत्नोंसे उनकी कान्ति बढ़ रही थी, और वे ऊँचे सिंहासन-पर विराजमान थे ॥९५-९६॥

तदनन्तर जिसके शरीरमें रोमांच उठ रहे थे ऐसे राजा जनकने हाथ जोड़कर मस्तकसे लगाये और बड़ी सावधानीसे जिनेन्द्रदेवको नमस्कार किया। नमस्कार करते-करते उसकी भक्ति इतनी अधिक बढ़ी कि वह उसके अतिरेकसे मूर्च्छित हो गया ॥९७॥ क्षण-भरके बाद पुनः चेतना प्राप्त कर उसने सुन्दर सुसंस्कृत स्तुति की। तदनन्तर वह परम आश्चर्यको धारण करता हुआ निःशंक हो वहीं बैठ गया ॥९८॥

इधर चपलवेग नामका विद्याधर जो घोड़ेका रूप धरकर जनकको हर ले गया था अपने कार्यमें सफल हो बड़ा प्रसन्न हुआ तथा शीघ्रतासे सब माया समेटकर तथा खड्गधारी विद्याधर बनकर रथनूपुर नगर पहुँचा ॥९९॥ उसने सन्तुष्ट होकर अपने स्वामीके लिए नमस्कार कर कहा कि राजा जनक यहाँ लाये जा चुके हैं तथा सुन्दर वनसे वेष्टित जिनमन्दिरमें उन्हें ठहरा दिया गया है ॥१००॥ राजा जनकको आया जानकर चन्द्रगति परम हर्षको प्राप्त हुआ। तदनन्तर उदार चित्तको धारण करनेवाला एवं नाना वाहनोंसे युक्त चन्द्रगति आप्तवर्गके साथ पूजाकी उत्तमोत्तम सामग्री लेकर मनोरथरूपी रथपर सवार हो जिनमन्दिर गया ॥१०१-१०२॥ जिसमें तुरही और शंखोंका विशाल शब्द हो रहा था ऐसी उस देदीप्यमान बड़ी भारी सेनाको आती देख जनक कुछ भयभीत हुआ ॥१०३॥ तदनन्तर उसमें सिंह, हाथी, शार्दूल, नाग तथा हंस आदि नाना

---

१. अश्वेन । २. तुङ्गजटा-अ., क., ख.। ३. सुवर्णकमलपूजितम् । ४. मनोहरोद्यानवेष्टिते । ५. सुमहासैन्य ब.।

अविस्तरश्च ते नूनमेते विद्याभृतो[1] जनाः । विजयार्द्धगिरेरूर्ध्वं ये वसन्तीति मे श्रुतम् ॥१०५॥
[2]मध्येऽयमस्य सैन्यस्य स्वविमानकृतस्थितिः । द्योतते परमो दीप्त्या कोऽपि विद्याधराधिपः ॥१०६॥
एवं चिन्तापरे तस्मिन्नृपतौ दैत्यपुङ्गवः । संप्रापच्चैत्यभवनं सम्मदो[3] [4]नतविग्रहः ॥१०७॥
दृष्ट्वा दैत्याधिपं प्राप्तं भीमसौम्यपरिग्रहम् । जनकः किमपि ध्यायंस्तस्थौ सिंहासनान्तरे ॥१०८॥
भक्त्या सशाङ्कयानोऽपि कृत्वा पूजामनुत्तमाम् । प्रणम्य विधिना चक्रे जिनानां परमस्तुतिम् ॥१०९॥
[5]विपञ्चीं च विधायाङ्के सुखरूपां प्रियामिव । महाभावनया युक्तो जगौ जिनगुणात्मकम् ॥११०॥

चतुष्पदिकावृत्तम्

त्रिभुवनवरदमभिष्टुतमतिशयपूजाविधानविनिहितचित्तैः ।
प्रणतं सुरवृषभगणैः प्रणमत नाथं जिनेन्द्रमक्षयसौख्यम् ॥१११॥
ऋषभं सततं परमं वरदं मनसा वचसा शिरसा सुजनाः ।
नमत प्रवरं विलयं प्रगतं विहितं सकलं दुरितं भवति ॥११२॥
अतिशयपरमं विनिहतदुरितं परमगतिगतं नमत जिनवरम् ।
सर्वसुरासुरपूजितपादं क्रोधमहारिपुनिर्मितमङ्गम् ॥११३॥
उत्तमलक्षणलक्षितदेहं नौमि जिनेन्द्रमहं प्रयतात्मा ।
भक्त्या विनमितसर्वजनौघं मतिमात्रविनाशितमक्षमयम् ॥११४॥

वाहनोंपर स्थित पुरुषोंके मध्यमें एक विमान देखा ॥१०४॥ उसे देखकर वह विचार करने लगा कि निश्चय ही वे विद्याधर हैं जो कि विजयार्द्ध पर्वतपर वास करते हैं ॥१०५॥ इस सेनाके बीचमें अपने विमानमें बैठा हुआ जो कान्तिमान् पुरुष शोभित हो रहा है वह विद्याधरोंका राजा है ॥१०६॥ राजा जनक इस प्रकारकी चिन्तामें तत्पर थे ही कि हर्षसे भरा तथा नम्रीभूत शरीरको धारण करनेवाला वह चन्द्रगति जिनमन्दिरमें आ पहुँचा ॥१०७॥ जिसका परिग्रह कुछ तो भीम अर्थात् भय उत्पन्न करनेवाला था और कुछ सौम्य अर्थात् शान्ति उत्पन्न करनेवाला ऐसे दैत्यराजको आया देख कुछ ध्यान करता हुआ राजा जनक जिनराजके सिंहासनके नीचे बैठ गया ॥१०८॥ राजा चन्द्रगतिने भी भक्तिवश उत्तम पूजा कर तथा विधिपूर्वक प्रणाम कर जिनेन्द्रदेवकी उत्तम स्तुति की ॥१०९॥ और प्रियाके समान जिसका स्वर अत्यन्त सुखकारी था ऐसी वीणाको गोदमें रख बड़ी भावनासे युक्त हो जिनराजका गुणगान करने लगा ॥११०॥

गुणगान करते समय उसने कहा कि जो तीनों लोकोंके लिए वर देनेवाले हैं, अतिशयपूर्ण पूजाके करनेमें चित्त धारण करनेवाले मनुष्य जिनकी सदा स्तुति करते हैं, इन्द्रादि श्रेष्ठ देव जिन्हें नमस्कार करते हैं, तथा जो अक्षय—अविनाशी सुखके धारक हैं, ऐसे जिनेन्द्रदेवको हे भव्यजन ! सदा प्रणाम करो ॥१११॥ हे सत्पुरुषो ! तुम उन ऋषभदेव भगवान्‌को मनसे, वचनसे शिर झुकाकर सदा नमस्कार करो जो कि उत्कृष्ट लक्ष्मीसे युक्त हैं, वर देनेवाले हैं, श्रेष्ठ हैं, अविनाशी हैं और उत्तम ज्ञानसे युक्त हैं तथा जिन्हें नमस्कार करनेसे समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥११२॥ तुम उन जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार करो जो कि अतिशयोंसे उत्कृष्ट हैं, जिन्होंने पापको नष्ट कर दिया है, जो परमगति—सिद्ध गतिको प्राप्त हो चुके हैं, समस्त सुर और असुर जिनके चरणोंकी पूजा करते हैं, तथा जिन्होंने क्रोधरूपी महाशत्रुको पराजित कर दिया है ॥११३॥ मैं भक्तिपूर्वक बड़ी सावधानीसे उन जिनेन्द्र भगवान्‌की स्तुति करता हूँ कि जिनका शरीर उत्तम लक्षणोंसे युक्त है, जिन्होंने समस्त मनुष्योंके समूहको नम्रीभूत कर दिया है और जिन्हें नमस्कार

---

१. विद्याधरा म. । २. मध्ये + अयम् + अस्य । ३. हर्षयुक्तः । ४. नम्रशरीरः । ५. वीणाम् ।

अनुपमगुणधरमनुपमकायं विनिहतभवभयसकलकुचेष्टम् ।
कलिमलघनपटविनयनदक्षं प्रणमत जिनवरमतिशयपूतम् ॥११५॥
इति गायति दैत्येन्द्रे जिनसिंहासनान्तरात् । निर्ययौ भयमुत्सृज्य जनको नाम शोभनः[1] ॥११६॥
ततश्चन्द्रायणोऽवोचदीषच्चलितमानसः । को भवान् विजने देशे वसत्यत्र जिनालये ॥११७॥
उरगाणां पतिः किं स्यात् किं वा विद्याधराधिपः । सखे वद कुतः प्राप्तो भवान् किंसंज्ञकोऽपि वा ॥११८॥
मिथिलानगरीशोऽहं प्राप्तो जनकसंज्ञकः । हृतो मायातुरङ्गेण नभश्चरमहीपते ॥११९॥
इत्युक्ते जनकेनैतावन्योन्यं[2] प्रीतमानसौ । इच्छाकाराञ्जलिं[3] कृत्वा सुखासीनौ बभूवतुः ॥१२०॥
क्षणं स्थित्वा च वृत्तान्तैरन्योन्यविनिवेदितैः । जनितान्योन्यसंमानौ तौ विश्रम्भं समीयतुः ॥१२१॥
ततश्चन्द्रायणोऽवोचद्धीमान् कृत्वा कथान्तरम् । पुण्यवानस्मि येन त्वं मिथिलापतिरीक्षितः ॥१२२॥
अस्ति ते दुहिता राजन् लक्षणैरन्विता शुभैः । कर्णगोचरमायाता मम भूरिजनानतात् ॥१२३॥
सा भामण्डलसंज्ञाय मत्पुत्राय प्रदीयताम् । त्वया विहितसंबन्धं मन्ये स्वं परमोदयम् ॥१२४॥
सोऽवोचत् सर्वमेतत्स्यात् कृतं विद्याधराधिप । किंतु [4]दाशरथेर्बाला ज्येष्ठस्य परिकल्पिता ॥१२५॥
सुहृच्चन्द्रगतिरूचे सा कस्मात्तस्य कल्पिता । सोऽवोचत् श्रूयतामेतत् यदि कौतूहलम् ॥१२६॥

करने मात्रसे भक्तोंका भय नष्ट हो जाता है ॥११४॥ हे भव्यजन ! तुम उन जिनेन्द्रदेवको प्रणाम करो कि जो अनुपम गुणोंको धारण करनेवाले हैं, जिनका शरीर उपमारहित है, जिन्होंने संसार-रूपी समस्त कुचेष्टाओंको नष्ट कर दिया है, जो कलिकालके पापरूपी सघन पटको दूर करनेमें समर्थ हैं तथा जो अतिशयोंसे पवित्र हैं अथवा अत्यन्त पवित्र हैं ॥११५॥

तदनन्तर दैत्यराजके इस प्रकार गानेपर सुन्दर शरीरको धारण करनेवाला राजा जनक भय छोड़ जिनेन्द्रदेवके सिंहासनके नीचेसे बाहर निकल आया ॥११६॥ उसे देख जिसका मन कुछ विचलित हो गया था ऐसा चन्द्रगति बोला कि आप कौन हैं ? जो इस निर्जन स्थानमें जिनालयके बीच रहते हैं ॥११७॥ आप नागकुमार देवोंके स्वामी हैं ? या विद्याधरोंके अधिपति हैं ? अथवा किस नामको धारण करनेवाले हैं ? और यहाँ कहाँसे आये हैं ? हे मित्र ! यह सब मुझसे कहो ॥११८॥ इसके उत्तरमें राजाने कहा कि विद्याधरराज ! मैं मिथिला नगरीसे आया हूँ। जनक मेरा नाम है और एक मायामयी घोड़ा मुझे हरकर लाया है ॥११९॥ जनकके इतना कहनेपर दोनोंके हृदय परस्पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और दोनों ही एक दूसरेके लिए हाथ जोड़कर सुखसे बैठ गये ॥१२०॥ क्षण-भर ठहरकर दोनोंने एक दूसरेके लिए अपना वृत्तान्त सुनाया और परस्पर एक दूसरेका सम्मान किया। इस तरह वे परस्पर विश्वासको प्राप्त हुए ॥१२१॥ तदनन्तर बीचमें ही बात काटकर चन्द्रगतिने कहा कि अहो ! मैं बड़ा पुण्यवान् हूँ कि जिसने आप मिथिलाके राजाका दर्शन किया ॥१२२॥

हे राजन् ! मैंने अनेक लोगोंके मुखसे सुना है कि आपके शुभ लक्षणोंसे युक्त कन्या है ॥१२३॥ सो वह कन्या मेरे भामण्डल नामक पुत्रके लिए दीजिए। आपके साथ सम्बन्ध स्थापित कर मैं अपने-आपको परम भाग्यशाली समझूँगा ॥१२४॥ इसके उत्तरमें राजा जनकने कहा कि हे विद्याधरराज ! यह सब हो सकता था परन्तु वह कन्या राजा दशरथके ज्येष्ठ पुत्र रामके लिए निश्चित की जा चुकी है, अतः विवशता है ॥१२५॥ मित्र चन्द्रगतिने कहा कि वह कन्या रामके लिए किस कारण निश्चित की गयी है ? इसके उत्तरमें जनकने कहा कि यदि आपको कौतूहल है तो सुनिए ॥१२६॥

---

१. नागशोभनः ज. । २. प्रीतिमानसौ ज. । प्रतिमानसौ म. । ३. -ञ्जली कृत्वा म. । ४. दशरथसुतस्य रामचन्द्रस्य ।

धनगोरत्नसंपूर्णा मदीया मिथिलापुरी । अर्धवर्बरकैर्म्लेच्छैरवाप्यत सुदारुणैः ॥१२७॥
अपीड्यन्त प्रजाः सर्वाः स्वहियन्त धनोत्कराः । धर्मयज्ञा व्यवर्तन्त श्रावकाणां महात्मनाम् ॥१२८॥
ततो महाहवे जाते रक्षित्वा मां सहानुजम् । [1]रामेण विजिता म्लेच्छा ये सुरैरपि दुर्जयाः ॥१२९॥
लक्ष्मणश्चानुजस्तस्य शक्रोपमपराक्रमः । कुरुते शासनं नित्यं महाविनयसंयुतः ॥१३०॥
यदि नाम न तत्सैन्यं ताभ्यां स्याद् विजितं द्विधा । म्लेच्छलोकेन संपूर्णा ततः स्यादखिला मही ॥१३१॥
विवेकरहितास्ते हि लोकपीडासमा इव । महोत्पाता इवात्यन्तभीषणा विषदारुणाः ॥१३२॥
प्राप्य तौ गुणसंपूर्णौ सुपुत्रौ लोकवत्सलौ । इन्द्रवज्रवने राज्यं सुखं दशरथोऽभजत् ॥१३३॥
तस्य राज्येऽधुना जाते नयशौर्यविलासिनः । वातोऽपि नाहरत् किंचित् प्रजानां [2]पुरुसंपदाम् ॥१३४॥
ततः प्रत्युपकारं कं करोमीति समाकुलः । न रात्रौ न दिवा निद्रां संप्राप्तोऽस्मि विचिन्तयन् ॥१३५॥
रक्षिता येन मे प्राणास्तस्य रामस्य को समः । कश्चित् प्रत्युपकारोऽस्ति किमुताधिक्यगोचरः ॥१३६॥
हतं महोपकारेण प्रतीकारविवर्जितम् । मन्ये तृणमिवात्मानं भोगेभ्यो[3]विपराङ्मुखः ॥१३७॥
नवयौवनसंपूर्णां दृष्ट्वा दुहितरं शुभाम् । गतो विरक्ततां शोकः शोकस्थानेऽपि मे ततः ॥१३८॥
तया कल्पितया तस्य रामस्य पुरुतेजसः । नावेव शोकजलधेस्तारितोऽहं सुजातया ॥१३९॥
ततो नभश्चरा ऊचुरन्धकारीकृताननाः । अहो मानुषमात्रस्य बुद्धिस्तव न शोभना ॥१४०॥

अर्ध-राक्षसोंके समान अत्यन्त दुष्ट म्लेच्छोंने मेरी धन, धान्य, गाय, भैंस तथा अनेक रत्नसे परिपूर्ण मिथिला नगरीको बाधा पहुँचाना शुरू किया ॥१२७॥ समस्त प्रजा पीड़ित होने लगी, धन-धान्यके समूह चुराये जाने लगे, और महानुभाव श्रावकोंके धार्मिक पूजा-विधान आदि अनुष्ठान नष्ट किये जाने लगे ॥१२८॥ तदनन्तर उनके साथ मेरा महायुद्ध हुआ। सो उस महायुद्धमें रामने मेरी तथा मेरे छोटे भाईकी रक्षा कर देवोंसे भी दुर्जेय उन समस्त म्लेच्छोंको पराजित किया ॥१२९॥ रामका छोटा भाई लक्ष्मण भी इन्द्रके समान महापराक्रमी तथा महा विनयसे सहित है। वह सदा रामकी आज्ञाका पालन करता है ॥१३०॥ यदि उन दोनों भाइयोंके द्वारा म्लेच्छोंकी वह सेना नहीं जीती जाती तो निश्चित था कि यह समस्त पृथिवी म्लेच्छोंसे भर जाती ॥१३१॥ वे म्लेच्छ विवेकसे रहित तथा लोगोंको पीड़ा पहुँचानेके लिए रोगोंके समान थे अथवा महा उत्पातके समान अत्यन्त भयंकर और विषके समान दारुण थे ॥१३२॥ गुणोंसे सम्पूर्ण तथा लोगोंसे स्नेह करनेवाले उन दोनों पुत्रोंको पाकर राजा दशरथ अपने भवनमें इन्द्रके समान राज्यसुखका उपभोग करते हैं ॥१३३॥ नय और शूरवीरतासे सुशोभित राजा दशरथके राज्यमें इस समय हवा भी सम्पत्तिशाली प्रजाका कुछ हरण नहीं कर पाती है फिर अन्य मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ? ॥१३४॥

इस उपकारके बदले मैं उनका क्या उपकार करूँ इसी बातकी आकुलतासे चिन्ता करते हुए मुझे न रातमें नींद है न दिनमें ही ॥१३५॥ रामने मेरे प्राणोंकी जो रक्षा की है उस समान भी कोई प्रत्युपकार नहीं है फिर अधिककी तो चर्चा ही क्या है ? ॥१३६॥ जो महान् उपकारसे दबा हुआ है तथा स्वयं कुछ भी प्रत्युपकार करनेमें असमर्थ है, ऐसे अपने आपको मैं तृणके समान तुच्छ समझता हूँ। मैं केवल भोगोंके भयसे पराङ्मुख हो रहा हूँ ॥१३७॥ तदनन्तर जब मेरी दृष्टि नवयौवनसे सम्पूर्ण अपनी शुभ पुत्री पर पड़ी तब शोकके स्थानमें भी मेरा शोक विरलताको प्राप्त हो गया ॥१३८॥ मैंने अतिशय प्रतापी रामचन्द्रजीके लिए उसको देना संकल्पित कर लिया और नावकी भाँति इस पुत्रीने मुझे शोकरूपी सागरसे पार कर दिया ॥१३९॥

तदनन्तर जिनके मुखोंपर अन्धकार छा रहा था ऐसे विद्याधर बोले कि अहो ! तुम एक

---

१. रामेण । २. पुरसम्पदाम् ख. । ३. भोगभीति म. ।

म्लेच्छैः किं ग्रहणं क्षुद्रैर्यदि तेषां पराजये । [1]प्रशंससि परां शक्तिं भूमिगोचरिणो[2] बुध ॥१४१॥
म्लेच्छनिर्घाटनात् स्तोत्रं त्वया पद्मस्य कुर्वता । कृता प्रत्युत निन्देयमहो हास्यमिदं परम् ॥१४२॥
शिशोर्विषफले प्रीतिर्निःस्वस्य[3] बदरादिषु । श्वाङ्क्षस्य पादपे शुष्के स्वभावः खलु दुस्त्यजः ॥१४३॥
कुसंबन्धं परित्यज्य क्षितिगोचरिणां मतम् । कुरु विद्याधरेन्द्रेण संबन्धमधुना सह ॥१४४॥
क्व महासंपदो देवैः सदृशो व्योमचारिणः । क्व भूमिगोचराः क्षुद्राः सर्वथैवातिदुःखिताः ॥१४५॥
जनकोऽवोचदत्यन्तविपुलः[4] क्षारसागरः । न तत्करोति यद्वाप्यः स्तोकस्वादूपयोधृतः ॥१४६॥
अत्यन्तघनबन्धेन तमसा भूयसापि किम् । अल्पेन तु प्रदीपेन जन्यते लोकचेष्टितम् ॥१४७॥
असंख्या अपि मातङ्गा मदिनः कुर्वते न तत् । केशरी यत्किशोरः संश्चन्द्रनिर्मलकेसरः ॥१४८॥
इत्युक्ते[5] कोऽपि नोऽस्त्यर्थं समं कृतमहारवाः । भूमिचेष्टां समारब्धा निन्दितुं गगनायनाः[6] ॥१४९॥
निःसामर्थ्यातिदुःखिताः सिंथं खेदसमन्विताः । शौर्यसंपत्परित्यक्ताः शोचनीया धराचराः ॥१५०॥
वद तेषां पशूनां च को भेदो जनक त्वया । दृष्टो येन त्रपां त्यक्त्वा दुर्बुद्धिस्तान् विकत्थसे ॥१५१॥
उवाच जनको धीरः हा कष्टं किं श्रुतं मया । वसुधाराजरत्नानां निन्दितं पापकर्मणा ॥१५२॥
कथं त्रिभुवनख्यातो वंशो नाभेयसंभवः । कर्णगोचरमेतेषां न प्राप्तो लोकपावनः ॥१५३॥

साधारण मनुष्य हो, तुम्हारी बुद्धि ठीक नहीं है ॥१४०॥ रामने म्लेच्छोंको पकड़ा है इससे क्या हुआ ? उनको परास्त तो क्षुद्र मनुष्य भी कर सकते हैं फिर क्यों तुम बुद्धिमान् होकर भूमिगोचरियोंकी परम शक्तिकी प्रशंसा कर रहे हो ॥१४१॥ म्लेच्छोंको निकालने मात्रसे ही तुम रामकी स्तुति कर रहे हो सो यह उनकी स्तुति नहीं किन्तु निन्दा है। अहो ! यह बड़ी हँसीकी बात है ॥१४२॥

बालकी विषफलमें, दरिद्रकी बेर आदि तुच्छ फलोंमें और कौएकी सूखे वृक्षमें प्रीति होती है। सो कहना पड़ता है कि प्राणीका स्वभाव कठिनाईसे छूटता है ॥१४३॥ इसलिए तुम भूमिगोचरियोंका खोटा सम्बन्ध छोड़कर इस समय विद्याधरोंके राजाके साथ सम्बन्ध करो ॥१४४॥ महासम्पत्तिमान् तथा देवोंके समान आकाशमें चलनेवाले विद्याधर कहाँ ? और सर्वप्रकारसे अत्यन्त दुःखी क्षुद्र भूमिगोचरी कहाँ ? ॥१४५॥

तदनन्तर जनकने उत्तर दिया कि अत्यन्त विस्तृत लवणसमुद्र वह काम नहीं करता जो कि थोड़ेसे मधुर जलको धारण करनेवाली वापिकाएँ कर लेती हैं ॥१४६॥ अत्यन्त सघन अन्धकार बहुत भारी होता है तो भी उससे क्या प्रयोजन सिद्ध होता है जब कि छोटेसे दीपकके द्वारा लोककी चेष्टा उत्पन्न होती है अर्थात् सब काम सिद्ध होते हैं ॥१४७॥ मदको झरानेवाले असंख्य हाथी भी वह काम नहीं कर पाते जो कि चन्द्रबिम्बके समान उज्ज्वल जटाओंको धारण करनेवाला सिंहका एक बच्चा कर लेता है ॥१४८॥ ऐसा कहनेपर कितने ही विद्याधर 'ऐसा नहीं है' इस प्रकार जोरसे एक साथ बड़ा शब्द करते हुए भूमिगोचरियोंकी निन्दा करने लगे ॥१४९॥ वे कहने लगे कि भूमिगोचरी विद्याके माहात्म्यसे रहित हैं, निरन्तर पसीनासे युक्त रहते हैं, शूरवीरता और सम्पत्तिसे रहित हैं तथा अतिशय शोचनीय हैं ॥१५०॥ अरे जनक ! बता तूने उनमें और पशुओंमें क्या भेद देखा है ? जिससे दुर्बुद्धि हो तथा लज्जा छोड़कर उनकी इस तरह प्रशंसा किये जा रहा है ? ॥१५१॥

तदनन्तर धीरवीर जनकने कहा कि हाय ! बड़े कष्टकी बात है कि मुझ पापीको भूमिगोचरी उत्तमोत्तम राजाओंकी निन्दा सुननी पड़ी ॥१५२॥ क्या त्रिजगत्में प्रसिद्ध तथा लोकको

---

१. प्रशंस म. । २. गोचरिणोर्बुधः म., गोचरिणो बुधैः ब. । ३. दरिद्रस्य । निःस्वस्य म. । ४. गोचरिणामतः म. । ५. लवणसागरः । ६. चन्द्रमण्डल- म. । ७. केऽपि नोऽत्यर्थं (?) । ८. विद्याधराः ।

अर्हन्त्वक्ष्विजगत्पूज्याश्चक्रिणो हरयो बलाः । उत्पद्यन्ते नरा यस्यां सा कथं निन्दिता मही ॥१५४॥
पञ्चकल्याणसंप्राप्तिः पुंसां वदत खेचराः । स्वप्नेऽपि जातु किं दृष्टा भवद्भिः खेचरावनौ ॥१५५॥
इक्ष्वाकुवंशसंभूता गोष्पदीकृतविष्टपाः । अनीक्षितपरच्छत्रा महारत्नसमृद्धयः ॥१५६॥
सुरेन्द्रकीर्तितोदारकीर्तयो गुणसागराः । व्यतीता बहवो भूमौ कृतकृत्या नरोत्तमाः ॥१५७॥
पुत्रोऽनरण्यराजस्य तत्र वंशे महात्मनः । जातः सुमङ्गलाकुक्षौ नृपो दशरथोऽभवत् ॥१५८॥
यो लोकहितमुद्दिश्य विरहेदपि जीवितम् । मूर्ध्ना वहति यस्याज्ञां शेषामिव जनोऽखिलः ॥१५९॥
चतस्रो यस्य संपन्नाः सर्वशोभागुणोज्ज्वलाः । आशा इव महादेव्यः सुभगाः सुप्रसाधिताः ॥१६०॥
शतानि वरनारीणां पञ्च यस्य सुचेतसः । वक्त्रनिर्जितचन्द्राणां हरन्ति चरितैर्मनः ॥१६१॥
पद्मो नाम सुतो यस्य पद्मालिङ्गितविग्रहः । दीप्तिनिर्जितसिन्धोशुः कीर्तिनिर्जितशीतगुः ॥१६२॥
स्थैर्यनिर्जितशैलेन्द्रः शोभाजितपुरन्दरः । शौर्येण यो महापद्मं जयेदपि सुविभ्रमः ॥१६३॥
अनुजो लक्ष्मणो यस्य लक्ष्मीनिलयविग्रहः । द्रवन्ति शत्रवो भीता दृष्ट्वा यस्य शरासनम् ॥१६४॥
वायसा अपि गच्छन्ति नमसा तेन किं भवेत् । गुणेष्वत्र मनः कृत्वमिन्द्रजालेन को गुणः ॥१६५॥
भवतां वा भवद्भिः किं यत्र देवाधिपा अपि । क्रियन्ते भूमिसंभूतैर्नमन्तः क्षितिमस्तकाः ॥१६६॥
इत्युक्ते रहसि स्थित्वा संमन्त्र्य गगनायनाः । ऊचुर्वेत्सि कार्याणि [1]जनकैकाग्रमानसाः ॥१६७॥

पवित्र करनेवाला भगवान् ऋषभदेवका वंश इनके कर्णगोचर नहीं हुआ ॥१५३॥ त्रिजगत्के द्वारा पूजनीय तीर्थंकर चक्रवर्ती, नारायण और बलभद्र-जैसे महापुरुष जिसमें उत्पन्न होते हैं वह भूमि निन्दनीय कैसे हो सकती है ? ॥१५४॥ हे विद्याधरो ! कहो, विद्याधरोंकी भूमिमें पुरुषोंको पंच कल्याणकोंकी प्राप्ति होना क्या कभी आप लोगोंने स्वप्नमें भी देखी है ? ॥१५५॥ जिनकी उत्पत्ति इक्ष्वाकु वंशमें हुई थी, जिन्होंने संसारको गोष्पदके समान तुच्छ कर दिखाया, जिन्होंने कभी दूसरेका छत्र नहीं देखा, महारत्नोंकी समृद्धि जिनके पास थी, इन्द्र जिनकी उदार कीर्तिका वर्णन करता था, और जो गुणोंके सागर थे ऐसे अनेक कृतकृत्य राजा पृथिवीपर हो चुके हैं ॥१५६-१५७॥ उसी इक्ष्वाकु वंशमें महानुभाव राजा अनरण्यकी सुमंगला रानीकी कुक्षिसे राजा दशरथ उत्पन्न हुए हैं ॥१५८॥ जो लोकहितके लिए अपना जीवन भी छोड़ सकते हैं, समस्त लोग जिनकी आज्ञाको शेषाक्षतके समान शिरसे धारण करते हैं ॥१५९॥ जिसके सर्व प्रकारकी शोभा और गुणोंसे उज्ज्वल, उत्तम अभिप्रायकी धारक तथा उत्तम अलंकारोंसे युक्त चार दिशाओंके समान चार महादेवियाँ हैं ॥१६०॥ यही नहीं, अपने मुखसे चन्द्रमाको जीतनेवाली पाँच सौ स्त्रियाँ और भी अपनी चेष्टाओंसे जिसके मनको हरती रहती हैं ॥१६१॥ जिसके पद्म (राम) नामका ऐसा पुत्र है कि लक्ष्मी जिसके शरीरका आलिंगन करती है, जिसने अपनी दीप्तिसे सूर्यको, कीर्तिसे चन्द्रमाको, धीरतासे सुमेरुको और शोभासे इन्द्रको जीत लिया है, जो शूरवीरतासे महापद्म नामक चक्रवर्तीको भी जीत सकता है तथा उत्तम विभ्रमको धारण करनेवाला है ॥१६२-१६३॥ जिसका शरीर लक्ष्मीका निवासस्थल है और जिसके धनुषको देखकर शत्रु भयभीत होकर भाग जाते हैं ऐसा लक्ष्मण उस रामका छोटा भाई है ॥१६४॥ विद्याधर आकाशमें चलते हैं यह कहा सो आकाशमें तो कौए भी चलते हैं। इससे उनमें क्या विशेषता हो जाती है ? यहाँ गुणोंमें मन लगाना चाहिए अर्थात् गुणोंका विचार करना चाहिए। इन्द्रजालमें क्या सार है ? ॥१६५॥ अथवा आप लोगोंकी तो बात ही क्या है ? जबकि भूमिमें उत्पन्न हुए मनुष्य इन्द्रोंको भी नम्रीभूत कर देते हैं और नमस्कार करते समय उन्हें अपने मस्तक पृथिवीपर रगड़ने पड़ते हैं ॥१६६॥

अथानन्तर जनकके ऐसा कहनेपर विद्याधरोंने एकान्तमें बैठकर पहले सलाह की फिर

---

१. जनकेषु म. । २. जनकैकाग्रमानसः क., ख. ।

पद्मो लक्ष्मण इत्युच्चैर्गर्जितं वहसे वृथा । अथ विप्रत्ययः कश्चित्ततोऽस्माज्जज निश्चयम् ॥१६८॥
समयं शृणु भूनाथ वज्रावर्तमिदं धनुः । इदं च सागरावर्तममरैः कृतरक्षणम् ॥१६९॥
इमे चापमिमे कर्तुमधिज्ये यदि तौ क्षमौ । अनेनैव तयोः शक्तिं ज्ञास्यामः किं बहूदितैः ॥१७०॥
वज्रावर्तं समारोप्य पद्मो गृह्णातु कन्यकाम् । अस्माभिः प्रसभं पश्य तामानीतामिहान्यथा ॥१७१॥
ततः परमिति[1]युक्त्या धनुषी वीक्ष्य दुर्ग्रहे । मनाक्[2] व्याकुलीभावं जनको मनसागमत् ॥१७२॥
ततः कृत्वा जिनेन्द्राणां पूजां स्तोत्रं तु भावतः । गदासीरादिसंयुक्ते पूजां नीते शरासने ॥१७३॥
उपादाय च ते शूरा जनकं च नभश्चराः । मिथिलाभिमुखं जग्मुश्चन्द्रोऽपि रथनूपुरम् ॥१७४॥
ततः कृतमहाशोभं सगाङ्गलमहाजनम् । विवेश जनको वेश्म पौरलोकावलोकितः ॥१७५॥
निधायायुधशालां च सभाभूता नभश्चराः । बहन्त [illegible] नगरस्य बहिस्तिष्ठन्ति [illegible] ॥१७६॥
जनकस्तु सखेदाङ्गः कृत्वा किंचित्स भोजनम् । चिन्तयाकुलितो भेजे तल्पमुत्साहवर्जितः ॥१७७॥
तत्र चोत्तमनारीभिर्विनीताभिः सुविभ्रमम् । चन्द्रांशुचयसंकाशैश्चामरैरभिवीजितः ॥१७८॥
उष्णदीर्घातिनिःश्वासान् विमुञ्चन् विषमानलम् । दध्यौ विविधं भावममाध्यत विदेहया[3] ॥१७९॥
का ऽऽ कामिंस्त्वया दृष्टा नारी [4]यातेन लक्षिता । तद्वियोगकथामेतामवस्थामसि संश्रितः ॥१८०॥

कहा कि हे जनक ! तुम कार्य करना नहीं जानते, तुम्हारा मन सिर्फ एक ही ओर लग रहा है ॥१६७॥ 'राम और लक्ष्मण उत्कृष्ट हैं' इस गर्जनाको तुम व्यर्थ ही धारण कर रहे हो। यदि मेरे इस कहनेमें कुछ संशय हो तो इससे उसका निश्चय कर लो ॥१६८॥ हे राजन् ! हमारी शर्त सुनो। यह वज्रावर्त्त नामका धनुष है, और यह सागरावर्त्त नामका धनुष है। देव लोग इन दोनोंकी रक्षा करते हैं ॥१६९॥ यदि राम और लक्ष्मण इन धनुषोंको डोरीसहित करनेमें समर्थ हो जावेंगे तो इसीसे हम उनकी शक्ति जान लेंगे। अधिक कहनेसे क्या लाभ है ? ॥१७०॥ राम वज्रावर्त्त धनुषको चढ़ाकर कन्या ग्रहण कर सकते हैं। यदि वे उक्त धनुष नहीं चढ़ा सकेंगे तो आप देखना कि हम लोग उसे यहाँ जबरदस्ती ले आवेंगे ॥१७१॥

तदनन्तर 'ठीक है' ऐसा कहकर जनकने विद्याधरोंकी शर्त स्वीकार तो कर ली परन्तु उन दुर्ग्राह्य धनुषोंको देखकर चित्तमें वह कुछ आकुलताको प्राप्त हुआ ॥१७२॥ तदनन्तर भावपूर्वक जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा और स्तुति कर चुकनेके बाद गदा, हल आदि शस्त्रोंसे युक्त उन दोनों धनुषोंकी भी पूजा की गयी ॥१७३॥ वे शूरवीर विद्याधर उन धनुषों तथा राजा जनकको लेकर मिथिलाकी ओर चल पड़े और चन्द्रगति विद्याधर भी रथनूपुरकी ओर चल दिया ॥१७४॥ तदनन्तर जिसकी बहुत बड़ी सजावट की गयी थी, और जिसमें महाजन लोग मंगलाचारसे सहित थे, ऐसे अपने भवनमें राजा जनकने प्रवेश किया। प्रवेश करते समय नागरिकजनोंने जनकके अच्छी तरह दर्शन किये थे ॥१७५॥

बहुत भारी गर्वको धारण करनेवाले विद्याधर नगरके बाहर आयुधशाला बनाकर तथा उसीको घेरकर ठहर गये ॥१७६॥ जिसका शरीर खेद-खिन्न था ऐसे जनकने कुछ थोड़ा-सा भोजन किया और इसके बाद वह चिन्तासे व्याकुल हो शय्यापर पड़ रहा। उत्साह तो उसे था ही नहीं ॥१७७॥ यद्यपि वहाँ विनयसे भरी उत्तम स्त्रियाँ, हाव-भाव दिखाती हुई, चन्द्रमाकी किरणोंके समान चमरोंसे उसे हवा कर रही थीं तथापि वह अत्यन्त विषम, उष्ण और लम्बे-लम्बे अत्यधिक श्वास छोड़ रहा था। उसकी यह दशा देख विविध प्रकारके भावको धारण करती हुई रानी विदेहाने कहा ॥१७८-१७९॥ कि हे कामिन् ! आप कहाँ गये थे और वहाँ ऐसी कौन-सी कामिनी आपने देखी है जिसके वियोगसे इस अवस्थाको प्राप्त हुए हो ॥१८०॥

---

१. विरोधः । २. मनकाव्याकुली -म. । ३. एतन्नाम्न्या जनकपत्न्या । ४. या तेन लक्षिता: म. ।

आकृता कापि सा नारी कामिनीगुणरिक्तिका । इति या स्मरसंतप्तं भवन्तं नानुकम्पते ॥१८१॥
नाथ वेदय मे स्थानं येन तामानयामि ते । भवद्दुःखेन मे दुःखं जनस्य सकलस्य वा ॥१८२॥
उदारे सति सौभाग्ये कथमिष्टोऽसि नो तया । भावमानसया येन धृतिं न लभसे भृशम् ॥१८३॥
उत्तिष्ठ भज निःशेषाः क्रिया राजजनोचिताः । शरीरे सति कामिन्यो भविष्यन्ति मनोचिताः ॥१८४॥
इत्युक्ते पार्थिवोऽवोचत् कान्तां प्राणगरीयसीम् । अन्यथा खेदितस्यास्य किं मे चित्तस्य खेद्यते ॥१८५॥
शृणु देवि यतोऽवस्थामीदृशीमहमागतः । अपरिज्ञातवृत्तान्ता किमर्थमिति भाषसे ॥१८६॥
तेन मायातुरङ्गेण नीतोऽहं विजयाचलम् । समयेनामुना तत्र मुक्तः पत्या खगामिनाम् ॥१८७॥
वज्रावर्तमधिज्यं चेद्धनुः पद्मः करिष्यति । ततः स्यात्तस्य कन्येयं तनयस्य ममाम्बया ॥१८८॥
कर्मानुभावसंतप्तं मया साध्वसतोऽपि वा । प्रतिपन्नं समभाग्येन बन्धावस्थामुपेयुषा ॥१८९॥
समुद्रावर्तसंज्ञेन तच्चापेन समन्वितम् । आनीतं खेचरैरग्रैर्बहिःस्थानस्य तिष्ठति ॥१९०॥
मन्ये तस्य सुरेशोऽपि न शक्तोऽधिज्यताकृतौ । वज्राज्वलनतुल्यस्य दुर्निरीक्ष्यस्य तेजसा ॥१९१॥
कृतान्तमेव निष्क्रुद्धमनाकृष्टमपि स्वनत् । अनधिज्यमपि स्वैरं भीष्मं सिद्धार्थसारथम् ॥१९२॥
अधिज्ये न कृते तस्मिन् पद्मेन मदियं ध्रुवम् । हरिष्यते खगैः कन्या मांसपेशीव जम्बुकात् ॥१९३॥
विंशतिर्वासराणां च वस्तुन्यत्र कृतोऽवधिः । बलात्नीता वराकीयं भूयोऽस्माभिः क्व वीक्षिता ॥१९४॥

जान पड़ता है कि वह कोई पामरी स्त्री है अथवा स्त्रीके योग्य गुणोंसे रिक्त है जो इस तरह कामसे सन्तप्त हुए आपपर दया नहीं करती है ॥१८१॥ हे नाथ ! आप वह स्थान बतलाइए जिससे मैं उसे ले आऊँ क्योंकि आपके दुःखसे मुझे तथा समस्त लोगोंको दुःख हो रहा है ॥१८२॥ उत्कृष्ट सौभाग्यके रहते हुए भी उस पाषाणहृदयाने आपको क्यों नहीं चाहा है जिससे कि आप अत्यन्त अधीर हो रहे हैं ॥१८३॥ उठिए और राजाओंके योग्य समस्त क्रियाओंका सेवन कीजिए। यदि शरीर है तो अनेक इच्छित स्त्रियाँ हो जावेंगी ॥१८४॥

विदेहाके ऐसा कहनेपर राजाने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय वल्लभासे कहा कि मेरा चित्त दूसरे ही कारणसे खिन्न हो रहा है। उसे इस तरह खेद क्यों पहुँचा रही हो ? ॥१८५॥ हे देवि ! सुनो, मैं जिस कारणसे ऐसी अवस्थाको प्राप्त हुआ हूँ। तुम वृत्तान्तको जाने बिना इस प्रकार क्यों बोल रही हो ? ॥१८६॥ मैं उस मायामय अश्वके द्वारा विजयार्ध पर्वतपर ले जाया गया था। वहाँ विद्याधरोंके राजाने मुझे इस शर्तपर छोड़ा है कि यदि राम वज्रावर्त धनुषको डोरी-सहित कर देंगे तो यह कन्या उनकी होगी अन्यथा मेरे पुत्रकी होगी ॥१८७-१८८॥ कर्मके प्रभावसे समझो अथवा भयसे समझो बन्धन अवस्थाको प्राप्त हुए मुझ मन्दभाग्यने उसकी वह शर्त स्वीकार कर ली ॥१८९॥ समुद्रावर्त नामक दूसरे धनुषके साथ उस धनुषको उग्र विद्याधर ले आये हैं और वह नगरके बाहर स्थित है ॥१९०॥ वह धनुष वज्राग्निके समान है तथा तेजके कारण उसकी ओर देखना भी कठिन है। इसलिए मैं तो समझता हूँ कि उसे डोरी-सहित करनेमें इन्द्र भी समर्थ नहीं हो सकेगा ॥१९१॥ वह ऐसा जान पड़ता है मानो अत्यन्त क्रुद्ध यमराज ही हो। बिना खींचे भी वह शब्द करता है और बिना डोरीके भी वह अत्यन्त भयंकर है ॥१९२॥ यदि राम उस धनुषको डोरीसहित नहीं कर सके तो मेरी इस कन्याको विद्याधर लोग अवश्य ही उसी तरह हरकर ले जावेंगे जिस तरह कि पक्षी किसी शृगालके मुखसे मांसकी डलीको हर ले जाते हैं ॥१९३॥ इस

---

१. पामरी । २. स्मरसंसक्तं म. । ३. पाषाणवत्कठोरचेतसा । ४. इष्टाः । ५. विजयार्धगिरिम् । ६. रामः । ७. स्वीकृतम् । ८. संज्ञेन म. । ९. विज्वालानल- ज., ख., क. । १०. कृतान्तामेव तत्क्रुद्ध- म., ख. । ११. अधिज्येन ऋते यस्मिन् म. । १२. मत् मत्सकाशात् ।

एवमुक्तेऽस्रसंपूर्णलोचना सहसाभवत् । विदेहापहृतं बालमस्मरच्च प्रसङ्गतः ॥१९५॥
अतीतागामिशोकाभ्यामभितः पीडितेव सा । चकार वारिनेत्राभ्यां कुररीव कृतस्वना ॥१९६॥
परिदेवनमेवं च चक्रे विह्वलमानसा । कुर्वती परिवर्गस्य द्रवणं[1] चेतसामलम् ॥१९७॥
कीदृग्वामं मया नाथ दैवस्यापकृतं भवेत् । पुत्रेण यन्न संतुष्टं हर्तुं[2] कन्यां समुद्यतम् ॥१९८॥
स्नेहालम्बनमेकैव बालिकेयं सुचेष्टिता । मम ते बान्धवानां च प्रेमभावो जनस्य च ॥१९९॥
दुःखस्य यावदेकस्य[3] नान्तं गच्छामि पापिनी । द्वितीयं तावदेतन्मे कृतसन्निधि वर्तते ॥२००॥
शोकावर्तानिमग्नां तां करुणं रुदतीमिति । नियम्याश्रु[4] प्रियोऽवोचदतः शोकसमाकुलः ॥२०१॥
अलं क्रान्ते रुदित्वा ते ननु कर्मार्जितं पुरा । नर्तयत्यखिलं लोकं नृत्ताचार्यो ह्यसौ परः ॥२०२॥
अथवा मयि विश्वस्ते हृतो दुष्टेन बालकः । अप्रमत्तस्य बालां तु हर्तुं[5] शक्तोऽस्ति को मम ॥२०३॥
आप्तप्रधारणन्यायमपरित्यजता मया । पृष्टासि दयिते वस्तु जानाम्येतत् सुखावहम् ॥२०४॥
सारैरेवंविधैर्वाक्यैः कान्तेन कृतसान्त्वना[6] । विदेहा विरलीकृत्य शोकं कृच्छ्रादवस्थिता ॥२०५॥
ततो धनुर्गृहप्रान्ते विशाला रचितावनिः । स्वयंवरार्थमाहूताः पार्थिवाः सकलाः क्षितौ ॥२०६॥
प्रेषितः कोशलां दूतः[7] पद्माद्याः समुपागताः । मातापित्रादिसंयुक्ता जनकेनाभिपूजिताः[8] ॥२०७॥

कार्यके लिए बीस दिनकी अवधि निश्चित की गयी है। इसके बाद यह कन्या जबरदस्ती ले जायी जावेगी। फिर इस बेचारीको हम कहाँ देख सकेंगे ? ॥१९४॥

जनकके ऐसा कहते ही विदेहाके नेत्र सहसा आँसुओंसे भर गये और इस प्रसंगसे उसे अपने अपहृत बालकका स्मरण हो आया ॥१९५॥ वह अतीत और आगामी शोकके द्वारा दोनों ओरसे पीड़ित हो रही थी। इसलिए कुररीकी तरह शब्द करती हुई नेत्रोंसे जल बरसाने लगी ॥१९६॥ विह्वल चित्तकी धारक विदेहा परिजनोंके चित्तको अत्यन्त द्रवीभूत करती हुई इस प्रकार विलाप करने लगी कि हे नाथ ! मैंने देवका कैसा उलटा अपकार किया होगा कि जिससे वह पुत्रके द्वारा सन्तुष्ट नहीं हुआ अब कन्याको हरनेके लिए उद्यत हुआ है ॥१९७-१९८॥ उत्तम चेष्टाको धारण करनेवाली यही एक बालिका मेरे और आपके स्नेहका आलम्बन है तथा भाई-बान्धव एवं परिवारके लोगोंका प्रेमभाजन है ॥१९९॥ मैं पापिनी जबतक एक दुःखका अन्त नहीं प्राप्त कर पाती हूँ तबतक दूसरा दुःख आकर उपस्थित हो जाता है ॥२००॥ राजा जनक स्वयं शोकसे आकुल था पर जब उसने देखा कि विदेहा शोकरूपी आवर्तमें फँसकर करुण रोदन कर रही है तब उसने जिस किसी तरह अपने आँसू रोककर कहा कि हे प्रिये ! तुम्हारा रोना व्यर्थ है। निश्चयसे पूर्व जन्ममें अर्जित कर्म ही समस्त लोकको नचा रहा है। यही सबसे बड़ा नर्तकाचार्य है ॥२०१-२०२॥ अथवा मेरे निश्चित असावधान रहनेपर किसी दुष्टके द्वारा बालक हरा गया था पर अब तो मैं सावधान हूँ। देखूँ मेरी कन्याको हरनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥२०३॥ हे प्रिये ! 'आप्तजनोंके साथ कार्यका विचार करना चाहिए' इस न्यायको न छोड़ते हुए ही मैंने तुमसे पूछा था। मैं तो जानता हूँ कि यह वस्तु सुखको धारण करनेवाली ही होगी ॥२०४॥ पतिके इस प्रकार सारपूर्ण वचनोंसे जिसे सान्त्वना दी गयी थी ऐसी विदेहा बड़े कष्टसे शोकको हलका कर चुप हो रही ॥२०५॥

तदनन्तर जहाँ धनुष रखा था उसके समीप ही विशाल भूमि बनायी गयी और उसमें स्वयंवरके लिए समस्त राजा बुलाये गये ॥२०६॥ अयोध्याको भी दूत भेजा गया जिससे राम आदि चारों भाई माता-पिता आदिके साथ आये और राजा जनकने उन सबका सन्मान किया ॥२०७॥

---

१. द्रविणं म. । २. -र्हेतस्य म. । ३. तावदेवन्मे म. । ४. नियम्याशु म. । ५. सान्त्वया ज. । ६. रामाद्याः । ७. मातृपित्रा-ज., क., ख., ङ. ।

ततो हर्म्यतले कान्ते स्थिता परमसुन्दरी । कन्यासप्तशतान्तस्था सीता शूरभटावृता ॥२०८॥
प्रान्तेषु सर्वसामन्ता वेश्मनोऽस्याबतस्थिरे । कुर्वाणा विविधां लीलां महाविभवचर्चिनः ॥२०९॥
ततः स्थित्वा पुरस्तस्य कञ्चुकी सुबहुश्रुतः । जगाद तारशब्देन हेमवेत्रलताकरः ॥२१०॥
राजपुत्रि परीक्षस्व पद्मोऽसौ पद्मलोचनः । अयोध्याधिपतेराद्यः पुत्रो दशरथद्युतेः ॥२११॥
लक्ष्मीमान् लक्ष्मणश्चायमनुजोऽस्य महाद्युतिः । भरतोऽयं महाबाहुः शत्रुघ्नोऽयं सुचेष्टितः ॥२१२॥
सुतैर्दशरथोऽमीभिर्गुणसागरमानसैः । वसुधां शास्ति निर्दग्धसमस्ताङ्कुरसमुद्भवाम् ॥२१३॥
हरिवाहननामायं धीमानेष घनप्रभः । अयं चित्ररथः कान्तो दुर्मुखोऽयं प्रभाववान् ॥२१४॥
श्रीसंजयो जयो भानुः सुप्रभो मन्दरो बुधः । विशालः श्रीधरो वीरो बन्धुर्भद्रबलः शिखी ॥२१५॥
एतेऽन्ये च महासत्त्वा महाशोभासमन्विताः । विशुद्धवंशसंभूताश्चन्द्रनिर्मलकान्तयः ॥२१६॥
कुमाराः परमोत्साहा गुणभूषणधारिणः । महाविभवसंपन्ना भूरिविज्ञानकोविदाः ॥२१७॥
गजोऽयमस्य शैलाभस्तुरङ्गोऽस्यायमुच्चतः । रथोऽस्यायं महाभोगो[1] भटोऽस्यायं कृताद्भुतः ॥२१८॥
साकाश्यपुरनाथोऽयमयं [2]रन्ध्रपुराधिपः । [3]गवीधुमद्धीशोऽयमयं नन्दनिकाधिपः ॥२१९॥
विभुः सूरपुरस्यायमेष कुण्डपुराधिपः । अयं मगधराजेन्द्रः काम्पिल्यविभुरेष च ॥२२०॥
अयमिक्ष्वाकुसंभूतो नृपोऽयं हरिवंशजः । अयं कुरुकुलानन्दो भोजोऽयं वसुधापतिः ॥२२१॥
इत्यादिवर्णनायुक्ता श्रूयन्तेऽमी महागुणाः । इदं त्वदर्थमेतेषां समारब्धं परीक्षणम् ॥२२२॥

तदनन्तर परम सुन्दरी सीता सात सौ अन्य कन्याओंके साथ महलकी सुन्दर छतपर बैठी। शूरवीर योद्धा उसे घेरे हुए थे ॥२०८॥ उस महलके चारों ओर नाना प्रकारकी लीलाको करते हुए समस्त सामन्त बड़े ठाट-बाटसे अवस्थित थे ॥२०९॥

तदनन्तर अनेक शास्त्रोंको जाननेवाला तथा हाथमें सुवर्णकी छड़ी धारण करनेवाला कंचुकी सीताके सामने खड़ा होकर उच्च स्वरसे बोला कि हे राजपुत्रि ! देखो यह कमल-लोचन, अयोध्याके अधिपति राजा दशरथका आद्य पुत्र पद्म (राम) है ॥२१०-२११॥ यह लक्ष्मीवान् तथा विशाल कान्तिको धारण करनेवाला इसका छोटा भाई लक्ष्मण है। यह बड़ी-बड़ी भुजाओंको धारण करनेवाला भरत है और यह सुन्दर चेष्टाओंको धारण करनेवाला शत्रुघ्न है ॥२१२॥ जिनके हृदय गुणोंके सागर हैं ऐसे इन पुत्रोंके द्वारा राजा दशरथ पृथिवीका पालन करते हैं। इनकी पृथिवीमें भयके समस्त अंकुरोंकी उत्पत्ति भस्म कर दी गयी है ॥२१३॥ यह अत्यधिक कान्तिको धारण करनेवाला बुद्धिमान् हरिवाहन है, यह सुन्दर चित्ररथ है, यह प्रभावशाली दुर्मुख है ॥२१४॥ यह श्रीसंजय है, यह जय है, यह भानु है, यह सुप्रभ है, यह मन्दर है, यह बुध है, यह विशाल है, यह श्रीधर है, यह वीर है, यह बन्धु है, यह भद्रबल है और यह शिखी अर्थात् मयूरकुमार है ॥२१५॥ ये तथा इनके सिवाय और भी राजकुमार यहाँ उपस्थित हैं। ये सभी महापराक्रमी, महा शोभासे युक्त, विशुद्ध कुलमें उत्पन्न, चन्द्रमाके समान निर्मल कान्तिके धारक, परमोत्साही, गुणरूपी आभूषणोंके धारक, महा विभवसे सम्पन्न तथा अत्यधिक विज्ञानमें निपुण हैं ॥२१६-२१७॥ यह पर्वतके समान आभावाला इसका हाथी है, यह इसका ऊँचा घोड़ा है, यह इसका विस्तृत रथ है और आश्चर्यजनक कार्य करनेवाला इसका सुभट—योद्धा है ॥२१८॥ यह साकाश्यपुरका स्वामी है, यह रन्ध्रपुरका अधिपति है, यह गवीधुमद् देशका अधीश है, यह नन्दनिकाका नाथ है ॥२१९॥ यह सूरपुरका विभु है। यह कुण्डपुरका अधिप है, यह मगध देशका राजा है, और यह काम्पिल्यपुरका स्वामी है ॥२२०॥ यह राजा इक्ष्वाकु-वंशमें उत्पन्न हुआ है, यह हरिवंशमें उद्भूत हुआ है, यह कुरुकुलका आनन्ददायक है और यह राजा भोज है ॥२२१॥ ये सभी

---

१. महाभागो म. । २. रन्ध्रपुराधिपः म. । ३. गवीकमद ज. । गवाद्रुमद म. ।

वज्रावर्तमिदं चापमारोपयति यो नरः । कुमारि वरणीयोऽसौ भवत्या पुरुषोत्तमः ॥२२३॥
क्रमेण मानिनस्ते च कुर्वाणाः स्वविकत्थनम् । वज्रावर्तधनुस्तेन नीताश्चारुविभ्रमाः[1] ॥२२४॥
आसीदरसु कुमारेषु धनुर्मुञ्चति पावकम् । विद्युत्सटाममाकारं निश्वसन्नीषणोरगम् ॥२२५॥
चक्षुस्तत्र द्रुतं केचिन्नुज्वालासमाहतम् । त्रस्ताः पिधाय पाणिभ्यां पराचीनत्वमाश्रिताः ॥२२६॥
तस्थुर्द्रुत एवान्ये दृष्ट्वा स्फुरितपन्नगान् । कम्पमानसमस्ताङ्गा निमीलितविलोचनाः ॥२२७॥
केचिज्ज्वराकुलाः पेतुः क्षितावन्ये गिरोज्झिताः[4] । द्रुतं पलायिताः केचिदेके मूर्छामुपागताः ॥२२८॥
केचित्पन्नगवातेन क्षिप्ता मर्मरपत्रवत् । अपरे स्तम्भमायाताः स्थिताः शान्तर्द्धयोऽपरे ॥२२९॥
केचिदूचुर्यदि स्थानं गमिष्यामो निजं ततः । जीवदानानि दास्यामश्चरणौ देहि[5] देवते ॥२३०॥
ऊचुरन्येऽन्यनारीभिः सेवां मानसवासिनः[6] । म्रियमाणाः करिष्यामो रूपिण्यापि किमेतया ॥२३१॥
अन्ये जगुरियं नूनं केनापि क्रूरचेतसा । प्रयुक्ता परमा माया वधार्थं पृथिवीक्षिताम् ॥२३२॥
अन्ये जगुः किमस्माकं कामेनास्ति प्रयोजनम् । ब्रह्मचर्येण नेष्यामः समयं साधवो यथा ॥२३३॥
तत पताः समुत्तस्थौ वरकार्मुकलालसः । द्रुतौके च महानागमन्थरां गतिमुद्वहन् ॥२३४॥
आसोदतिशुभे तस्मिन् रूपं भेजे धनुर्निजम् । सुचारुतरमं सौम्यमन्तेवासी[10] गुरावित्र ॥२३५॥

राजा इत्यादि वर्णनासे युक्त तथा महागुणवान् सुने जाते हैं। तुम्हारे लिए इन सबका यह परीक्षण प्रारम्भ किया गया है ॥२२२॥ हे कुमारि! जो पुरुष इस वज्रावर्त धनुषको चढ़ा देगा वही पुरुषोत्तम तुम्हारे द्वारा वरा जाना है ॥२२३॥

तदनन्तर जो मानसे सहित थे, अपनी प्रशंसा अपनेआप कर रहे थे, और सुन्दर विलाससे सहित थे ऐसे उन सब राजाओंको वह कंचुकी वज्रावर्त धनुषके पास ले गया ॥२२४॥ जिसका आकार बिजलीकी छटाके समान था तथा जिसमें भयंकर साँप फुंकार रहे थे ऐसा वह धनुष राजकुमारोंके पास आते ही अग्नि छोड़ने लगा ॥२२५॥ कितने ही राजकुमार भयभीत हो धनुषकी ज्वालाओंसे ताड़ित चक्षुको दोनों हाथोंसे ढँककर शीघ्र ही वापिस लौट गये ॥२२६॥ जिनके समस्त अंग कम्पित हो रहे थे तथा नेत्र बन्द हो गये थे ऐसे कितने ही लोग चलते हुए साँपोंको देखकर दूर ही खड़े रह गये थे ॥२२७॥ कितने ही लोग ज्वरसे आकुल हो पृथ्वीपर गिर पड़े, कितने ही लोगोंकी बोलती बन्द हो गयी, कितने ही शीघ्र भाग गये और कितने ही मूर्छाको प्राप्त हो गये ॥२२८॥

कितने ही लोग साँपोंकी वायुसे सूखे पत्रके समान उड़ गये, कितने ही अकड़ गये और कितने ही लोगोंकी ऋद्धि शान्त हो गयी अर्थात् वे शोभारहित हो गये ॥२२९॥ कितने ही लोग कहने लगे कि यदि हम अपने स्थानपर वापिस जा सकेंगे तो जीवोंको दान देवेंगे। हे देवते! मुझे दो चरण दो अर्थात् वापिस भागनेकी पैरोंमें शक्ति प्रदान करो ॥२३०॥ कितने ही लोग बोले कि यदि हम जीवित रहेंगे तो अन्य स्त्रियोंसे कामकी सेवा कर लेंगे। भले ही यह रूपवती हो पर इससे क्या प्रयोजन है? ॥२३१॥ कुछ लोग कहने लगे कि निश्चित ही किसी दुष्ट चित्तने राजाओंके वधके लिए इस मायाका प्रयोग किया है ॥२३२॥ और कुछ लोग कहने लगे कि हमें कामसे क्या प्रयोजन? हम तो साधुओंके समान ब्रह्मचर्यसे समय बिता देवेंगे ॥२३३॥

तदनन्तर जिन्हें उस उत्कृष्ट धनुषकी लालसा उत्पन्न हो रही थी ऐसे राम मदोन्मत्त गजराजके समान मन्थर गतिको धारण करते हुए उसके पास पहुँचे ॥२३४॥ पुण्यशाली रामके

---

१. चारुविभ्रमा म.। २. शीघ्रम्। ३. पराङ्मुखत्वम्। ४. केचिद्धराकुला म., केचित्खराकुला ज.। ५. वाण्या रहिताः। ६. देवि ज.। ७. ऊचुरन्येन नारीभिः म.। ८. कामस्य। ९. महागजमन्थरां। १०. छात्रः।

ततो विस्रब्धमादाय धनुरुद्वेष्टथ चांशुकम् । समारोपयदभ्युच्चैर्ज्यानितं विपुलस्वनम् ॥२३६॥
महाजलधरध्वानशङ्कितैः शिखिभिः कृतम् । मुक्तकेकारवैर्नृत्यं बद्धविस्तीर्णमण्डलैः ॥२३७॥
अलातचक्रसंकाशः संजातो दिवसाधिपः । सुवर्णरजसाच्छन्ना इवासन् व्योम्नाहवः[1] ॥२३८॥
साधु साध्विति देवानां बभूव नभसि स्वनः । ननृतुश्चाप्सरोमुख्याः केचिन्मुञ्चन्तः पुष्पसंहतीः ॥२३९॥
ततोऽटनिजटङ्कारबधिरीकृतविष्टपम् । आचकर्ष धनुः पद्मः संग्राहं चकतामिव ॥२४०॥
विकलीभूतसर्वाक्षो भ्रान्तो भीतः [illegible] । [illegible]मिव प्राप्तो भ्राम्यति भ्रस्तमानसः ॥२४१॥
प्रवातधूर्णिताम्भोजपलाशाधिककान्तिना । चक्षुषा स्मरचापेन सीता रामं विरैक्षत ॥२४२॥
रोमाञ्चार्चितसर्वाङ्गा दधती परमस्रजम् । प्रीता रामं मुदौकेव सा व्रीडाधिनमिताननाः ॥२४३॥
पार्श्वस्थया तया रेजे स तथा सुन्दरो[2] यथा । यथायमिति दृष्टान्तं यो गच्छेत् स गतत्रपः ॥२४४॥
अवतारितमौर्वीकं स कृत्वा सायकासनम् । तस्थौ विनयसंपन्नः स्वासने सीतया सह ॥२४५॥
सकम्पहृदया सीता रामाननविवृक्षया । सार्वं कमपि संप्राप्ता नवसंगमसाध्वसा ॥२४६॥
क्षुब्धाकूपारनिस्वानं सागरावर्तकार्मुकम् । तावच्च लक्ष्मणोऽधिज्यं कृत्वास्फालयदुच्चकैः ॥२४७॥
शरे निहितदृष्टिं तं समालोक्य नभश्चराः । वदन्तो देव मा मेति मुमुचुः कुसुमोत्करान् ॥२४८॥
आकृष्य कार्मुकं क्रूरं मौर्वीसंरावमूर्जितः[3] । अवतार्यं च पद्मस्य पार्श्वे सुविनयस्थितः ॥२४९॥

समीप आते ही धनुष अपने असली स्वरूपको उसी तरह प्राप्त हो गया जिस तरह कि गुरुके समीप आते ही विद्यार्थी अत्यन्त सुन्दर सौभाग्यरूपको प्राप्त हो जाता है ॥२३५॥ तदनन्तर रामने वस्त्र ऊपर चढ़ाकर निःशंक हो धनुष उठा लिया और उसे चढ़ाकर विपुल गर्जना की ॥२३६॥ मयूर उस गर्जनाको मेघोंकी महागर्जना समझ हर्षसे केकाध्वनि छोड़ने लगे और अपनी पिच्छोंका मण्डल फैलाकर नृत्य करने लगे ॥२३७॥ सूर्य अलातचक्रके समान हो गया और दिशाएँ सुवर्णकी परागसे ही मानो व्याप्त हो गयीं ॥२३८॥ आकाशमें 'साधु' 'साधु'—'ठीक-ठीक' इस प्रकार देवोंका शब्द होने लगा और फूलोंके समूहकी वर्षा करते हुए कितने ही अप्सरा नृत्य करने लगे ॥२३९॥

तदनन्तर अटनीकी टंकारसे जिसने समस्त विश्वको बहिरा कर दिया था तथा जो चक्राकारताको मानो व्याप्त हो रहा था ऐसे धनुषको रामने खींचा ॥२४०॥ जिनकी समस्त इन्द्रियाँ विकल हो गयी थीं तथा मन भयभीत हो रहा था ऐसे सब लोग भँवरमें पड़े हुएके समान घूमने लगे ॥२४१॥ वायुसे हिलते हुए कमलदलसे भी अधिक जिसकी कान्ति थी, तथा जो कामदेवके धनुषके समान जान पड़ता था, ऐसे नेत्रसे सीताने रामको देखा ॥२४२॥ जिसका समस्त शरीर रोमांचोंसे सुशोभित हो रहा था, जो उत्कृष्ट माला धारण कर रही थी, तथा लज्जासे जिसका मुख नीचेकी ओर झुक रहा था ऐसी सीता प्रसन्न हो रामके समीप पहुँची ॥२४३॥ पासमें खड़ी सीतासे सुन्दर राम इस तरह सुशोभित हो रहे थे कि उनको उपमामें 'वे इस तरह सुशोभित थे' ऐसा जो कहता था वह निर्लज्ज जान पड़ता था अर्थात् वे अनुपम थे ॥२४४॥

तदनन्तर धनुषकी डोरी उतार कर वे विनयवान् राम सीताके साथ अपने आसनपर बैठ गये ॥२४५॥ जो नव समागमके कारण भयभीत हो रही थी तथा जिसके हृदयमें कम्पन उत्पन्न हो रहा था ऐसी सीता रामका मुख देखनेकी इच्छासे किसी अद्भुत भावको प्राप्त हो रही थी ॥२४६॥ इतनेमें ही क्षुभित समुद्रके समान जिसका शब्द हो रहा था ऐसे सागरावर्त नामक धनुषको लक्ष्मणने प्रत्यंचासहित कर जोरसे उसकी टंकार छोड़ी ॥२४७॥ तदनन्तर बाणपर दृष्टि लगाये हुए लक्ष्मणको देख 'हे देव नहीं, नहीं' ऐसा कहते हुए विद्याधरोंने फूलोंके समूह छोड़े अर्थात् पुष्प वर्षा की ॥२४८॥ तदनन्तर जिसकी डोरीसे विशाल शब्द हो रहा था ऐसे धनुषको

---

१. दिशः । २. सुन्दरा म. । ३. बलवान् ।

विक्रान्ताय तथा तस्मै विद्याभृच्चन्द्रवर्धनः । अष्टादश ददौ कन्या धियैवाधौद्धिका इति ॥२५०॥
विद्याधरैः समागत्य परमं भयपूरितैः । वृत्तान्ते कथिते तस्मिंश्चन्द्रश्चिन्तापरः स्थितः ॥२५१॥
वृत्तान्तमिममालोक्य भरतः पुरुविस्मयः । अशोचदेवमात्मानं मनसा संप्रबुद्धवान् ॥२५२॥
कुलमेकं पितात्येक एतयोर्मम चेदृशम् । प्राप्तमद्भुतमेताभ्यां न मया मन्दकर्मणा ॥२५३॥
अथवा किं मनो व्यर्थं परलक्ष्म्याभितप्यसे । पुरा चारूणि कर्माणि न कृतानि ध्रुवं त्वया ॥२५४॥
पद्मगर्भदलच्छाया साक्षाल्लक्ष्मीरिवोज्ज्वला । ईदृशी पुरुपुण्यस्य पुंसो भवति भामिनी ॥२५५॥
कलाकलापनिष्णाता विज्ञाना केकया ततः । विज्ञाय तनयाकूतं कर्णे प्रियमभाषत ॥२५६॥
भरतस्य मया नाथ शोकवल्लक्षितं मनः । तथा कुरु यथा नायं निर्वेदं परमृच्छति ॥२५७॥
अस्त्यत्र कनको नाम जनकस्यानुजो नृपः । सुप्रभायां ततो जाता सुकन्या लोकसुन्दरी ॥२५८॥
स्वयंवराभिधं भूयः समुद्घोष्य नियोज्यताम् । तथायं यावदायाति नान्यं तं भावमान्तरम् ॥२५९॥
ततः परमिति श्रुत्वा वार्तां दशरथेन सा । कर्णगोचरमानीता कनकस्य सुचेतसः ॥२६०॥
यदाज्ञापयतीत्युक्त्वा कनकेनान्यवासरे । समाहूता नृपाः क्षिप्रं गता ये निलयं निजम् ॥२६१॥
ततो यथोचितस्थानस्थितभूनाथमध्यगम् । [1]नक्षत्रगणमध्यस्थशर्वरीवर[2]विभ्रमम् ॥२६२॥
उद्वाहसुमनोदामा [3]कानकी कनकप्रभा । सुप्रभा भरतं वव्रे सुभद्रा भरतं यथा ॥२६३॥

खींचकर और फिर उतारकर बलवान् लक्ष्मण रामके समीप ही बड़ी विनयसे आ बैठा ॥२४९॥ इस प्रकार शूरवीरता दिखानेवाले लक्ष्मणके लिए चन्द्रवर्धन विद्याधरने अत्यन्त बुद्धिमती अठारह कन्याएँ दीं ॥२५०॥ भयसे अतिशय भरे हुए विद्याधरोंने वापस आकर जब यह समाचार कहा तब चन्द्रगति विद्याधर चिन्तामें निमग्न हो गया ॥२५१॥

अथानन्तर यह वृत्तान्त देखकर जिसे बड़ा आश्चर्य प्राप्त हो रहा था, जिसे मनमें प्रबोध उत्पन्न हुआ था ऐसा भरत अपने आपके विषयमें इस प्रकार शोक करने लगा ॥२५२॥ कि देखो हम दोनोंका एक कुल है, एक पिता हैं। पर इन दोनों अर्थात् राम-लक्ष्मणने ऐसा आश्चर्य प्राप्त किया और पुण्यकी मन्दतासे मैं ऐसा आश्चर्य प्राप्त नहीं कर सका ॥२५३॥ अथवा दूसरेकी लक्ष्मीसे मनको व्यर्थ ही क्यों सन्तप्त किया जाये ? निश्चित ही तूने पूर्वभवमें अच्छे कार्य नहीं किये ॥२५४॥ कमलके भीतरी दलके समान जिसकी कान्ति है ऐसी साक्षात् लक्ष्मीके समान उज्ज्वल स्त्री अत्यधिक पुण्यके धारक पुरुषको ही प्राप्त हो सकती है ॥२५५॥

तदनन्तर कलाओंके समूहमें निष्णात एवं विशिष्ट ज्ञानको धारण करनेवाली केकयाने पुत्रकी चेष्टा जानकर कानमें हृदयवल्लभ राजा दशरथसे कहा कि हे नाथ ! मुझे भरतका मन शोकयुक्त दिखाई देता है। इसलिए ऐसा करो कि जिससे यह वैराग्यको प्राप्त न हो जाये ॥२५६-२५७॥ यहाँ जनकका छोटा भाई कनक है। उसकी सुप्रभा रानीसे उत्पन्न हुई लोक-सुन्दरी नामा कन्या है ॥२५८॥ सो स्वयंवर विधिकी पुनः घोषणा कर उसे भरतके लिए उसी तरह स्वीकृत कराओ जिस तरह कि वह किसी दूसरी भावनाको प्राप्त नहीं हो सके ॥२५९॥ तदनन्तर 'बहुत ठीक है' ऐसा कहकर राजा दशरथने यह बात विचारवान् राजा कनकके कान तक पहुँचायी ॥२६०॥ राजा कनकने भी 'जो आज्ञा' कहकर दूसरे दिन जो राजा अपने घर चले गये थे उन्हें शीघ्र ही बुलाया ॥२६१॥

तदनन्तर जो यथायोग्य स्थानोंपर बैठे हुए राजाओंके मध्यमें स्थित था और नक्षत्रोंके समूहके मध्यमें स्थित चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहा था ऐसे भरतको पुष्पमाला धारण करनेवाली एवं सुवर्णके समान कान्तिसे संयुक्त, राजा कनककी पुत्री लोकसुन्दरीने उस तरह

---

१. नक्षत्रं गणमध्यस्थं म. । २. चन्द्रः । ३. कनकस्यापत्यं स्त्री कानकी ।

अत्यन्तविषमोभावं पश्य श्रेणिक कर्मणाम् । यतोऽसौ संप्रबुद्धः सन् कन्यया मोहितः पुनः ॥२६४॥
विलक्षाः पार्थिवाः सर्वे जग्मुः स्थानं यथायथम् । अस्थुश्च विकथाशस्त्रा बन्धुवर्गसमागमे ॥२६५॥
यादृक् येन कृतं कर्म भुङ्क्ते तादृक् स तत्फलम् । लभ्यान् कोद्रवान् कश्चिदश्नुते शालिसंपदम् ॥२६६॥
केतुतोरणमालाभिमण्डितायां महाद्युतौ । आगुल्फकुसुमापूर्णविशालापण्यवर्त्मनि ॥२६७॥
सशंखतूर्यनिस्वानपूरिताखिलवेश्मनि । मिथिलायां तयोश्चक्रे विवाहः परमोत्सवः ॥२६८॥
द्रविणेन तथा लोकः सकलो परिपूरितः ।
महाप्रलयमायातं देहीति ध्वनिसं यथा ॥२६९॥
ये विवाहोत्सवं द्रष्टुं स्थिता भूताः सुचेतसः ।
परमं प्राप्य सन्मानं ययुस्ते स्वं स्वमालयम् ॥२७०॥

द्रुतविलम्बितवृत्तम्

सकलविष्टपनिर्गतकीर्तयः परमरूपपयोनिधिवर्तिनः ।
पितृजनार्पितसंमदसंपदः परमरत्नविभूषितविग्रहाः ॥२७१॥
विविधयानसमाकुलसैनिका अखनिधिस्वनतूर्यनिनादिताः ।
विविशुरम्युदयेन सुकोशलां दशरथस्य सुता वधुके तथा ॥२७२॥
समवलोकितुमुत्तमविग्रहे पुरि तदा वधुके सकलो जनः ।
रहितसामिकृतस्वमनःक्रियः अयति राजपथं भृशमाकुलः ॥२७३॥

वरा जिस तरह कि उत्तम कान्तिको धारण करनेवाली सुभद्राने पहले भरत चक्रवर्तीको वरा था ॥२६२-२६३॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! कर्मोंकी अत्यन्त विषमता देखो कि प्रबोध-को प्राप्त हुआ भरत कन्याके द्वारा पुनः मोहित हो गया ॥२६४॥ सब राजा लोग लज्जित होते हुए यथायोग्य स्थानोंपर चले गये और अपने बन्धुवर्गके बीचमें विकथा करते हुए रहने लगे ॥२६५॥ कितने ही कहने लगे कि जिस जीवने जैसा कार्य किया है वह वैसा ही फल भोगता है। क्योंकि जिसने कोदों बोये हैं वह धान्य प्राप्त नहीं कर सकता ॥२६६॥

तदनन्तर जो पताका तोरण और मालाओंसे सजायी गयी थी, जो महाकान्तिको धारण कर रही थी, जिसके बाजारके लम्बे-चौड़े मार्ग घुटनों तक फूलोंसे व्याप्त किये गये थे और जिसके समस्त घर शंख एवं तुरहीके मधुर शब्दोंसे भर रहे थे ऐसी मिथिला नगरीमें दोनोंका बड़े उत्सवके साथ विवाह किया गया ॥२६७-२६८॥ उस समय धनसे सब लोक इस तरह भर दिया गया था कि जिससे 'देहि अर्थात् देओ' यह शब्द महाप्रलयको प्राप्त हो गया था अर्थात् बिलकुल ही नष्ट हो गया था ॥२६९॥ उत्तम चित्तको धारण करनेवाले जो राजा विवाहोत्सव देखनेके लिए रह गये थे वे परम सम्मानको प्राप्त हो अपने-अपने घर गये ॥२७०॥

अथानन्तर जिनकी कीर्ति समस्त संसारमें फैल रही थी, जो परम सौन्दर्यरूपी सागरमें निमग्न थे, जिन्होंने माता-पिताके लिए हर्षरूप सम्पदा समर्पित की थी, जिनके शरीर उत्कृष्ट रत्नोंसे अलंकृत थे, जिनके सैनिक नाना प्रकारकी सवारियोंसे व्यग्र थे, और जिनके आगे समुद्रके समान विशाल शब्द करनेवाली तुरही बज रही थी ऐसे दशरथके पुत्रों तथा बहुओंने बड़े वैभवके साथ अयोध्यामें प्रवेश किया ॥२७१-२७२॥ उस समय उत्तम शरीरको धारण करनेवाली बहुओंको देखनेके लिए समस्त नगरवासी लोग अपना आधा किया कार्य छोड़ बड़ी व्यग्रतासे राजमार्गमें आ गये ॥२७३॥

---

१. अगुल्फकुसुमापूर्णविशालापण्यवर्त्मनि म. । २. धनेन । ३. वध्वौ एव वधूके स्वार्थे कः ।

कृतसमस्तजनप्रतिमानना: पुलगुणस्तवसन्नतमूर्तय: ।
स्वनिलयेषु महासुखभोगिनो दशरथस्य सुता: सुधिय: स्थिता: ॥२७४॥
समवगम्य जना: शुभकर्मण: फलमुदारमशोभनतोऽन्यथा ।
कुरुत कर्म बुधैरभिनन्दितं भवत येन रवेरधिकप्रभा: ॥२७५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते रामलक्ष्मणरत्नमालाभिधानं नामाष्टाविंशतितमं पर्व ॥२८॥

□

जिन्होंने सब लोगोंका सत्कार किया था तथा अपने विशाल गुणोंके स्तवनसे जिनका शरीर विनम्र हो रहा था अर्थात् लज्जाके भारसे झुक रहा था ऐसे दशरथके बुद्धिमान् पुत्र महासुख भोगते हुए अपने महलोंमें रहने लगे ॥२७४॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे भव्यजनो ! 'शुभ कर्मका फल अच्छा होता है और अशुभ कर्मका फल अशुभ होता है' ऐसा जानकर विद्वज्जनोंके द्वारा प्रशंसनीय वह कार्य करो जिससे कि सूर्यसे भी अधिक कान्तिके धारक होओ ॥२७५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्यके द्वारा कथित पद्मचरितमें राम-लक्ष्मणको स्वयंवरमें रत्नमालाकी प्राप्ति होनेका वर्णन करनेवाला अट्ठाईसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२८॥

□

एकोनत्रिंशत्तमं पर्व

आषाढधवलाष्टम्याः प्रभृत्यथ नराधिपः । महिमानं जिनेन्द्राणां प्रयतः कर्तुमुद्यतः ॥१॥
सर्वाः प्रियास्तदा तस्य तनया बान्धवस्तथा । विधातुं जिनबिम्बानामिति कर्तव्यमुद्यताः ॥२॥
पिनष्टि पञ्चवर्णानि कश्चिच्चूर्णानि सादरः । कश्चिद् ग्रथ्नाति माल्यानि [1]लब्धवर्णैः सुमस्रिषु ॥३॥
वासयत्युदकं कश्चिद्द्रव्यस्यपरः क्षितिम् । पिनष्टि परमान् गन्धान् कश्चिद्बहुविधच्छवीन् ॥४॥
द्वारशोभां करोत्यन्यो [2]वासोभिरतिभासुरैः । नानाधातुरसैः कश्चित्कुरुते भित्तिमण्डनम् ॥५॥
एवं जनः परां भक्तिं वहन् प्रमदपूरितः । जिनपूजासमाधानात् पुण्यं [3]मार्जयदुत्तमम् ॥६॥
ततः सर्वमहीनां कृतसंभारसंनिधिः । चकार स्नपनं राजा जिनानां तूर्यनादितम् ॥७॥
अष्टाहोपोषितं कृत्वाभिषेकं परमं नृपः । चकार महतीं पूजां पुष्पैः सहजकृत्रिमैः ॥८॥
यथा नन्दीश्वरे द्वीपे शक्रः सुरसमन्वितः । जिनेन्द्रमहिमानन्दं कुरुते तद्वदेव सः ॥९॥
ततः सदनयातानां महिषीणां नराधिपः । [4]प्रजिघाय महापूतं [5]शान्तिगन्धोदकं कृती ॥१०॥
तिसृणां तरुणीभिर्नीतं शान्त्युदकं द्रुतम् । प्रतीता मस्तके चक्रुस्ततो दुरितनोदनम् ॥११॥
वृद्धकञ्चुकिनो हस्ते दत्तं जिनवरोदकम् । अप्राप्य सुप्रभा कोपं शोकं च परमं गता ॥१२॥
अचिन्तयच्च नो साध्वी बुद्धिरेषा महीभृतः । यदेता मानिता नाहं शान्तिवारिविसर्जनात् ॥१३॥

अथानन्तर आषाढ़ शुक्ल अष्टमीसे आष्टाह्निक महापर्व आया। सो राजा दशरथ जिनेन्द्र भगवान्‌की महिमा करनेके लिए उद्यत हुआ ॥१॥ उस समय उसकी समस्त स्त्रियाँ, पुत्र तथा बान्धवजन जिन-प्रतिमाओंके विषयमें निम्नांकित कार्य करनेके लिए तत्पर हुए ॥२॥ कोई मण्डल बनानेके लिए बड़े आदरसे पाँच रंगके चूर्ण पीसने लगा, तो नाना प्रकारकी रचना करनेमें निपुण कोई मालाएँ गूँथने लगा ॥३॥ कोई जलको सुगन्धित करने लगा, कोई पृथिवीको सींचने लगा, कोई नाना प्रकारके उत्कृष्ट सुगन्धित पदार्थ पीसने लगा ॥४॥ कोई अत्यन्त सुन्दर वस्त्रोंसे जिनमन्दिरके द्वारकी शोभा करने लगा और कोई नाना धातुओंके रससे दीवालोंको अलंकृत करने लगा ॥५॥ इस प्रकार उत्कृष्ट भक्तिको धारण करनेवाले एवं आनन्दसे परिपूर्ण भक्तजनोंने जिनेन्द्र-देवकी पूजा कर उत्तम पुण्यका संचय किया ॥६॥

तदनन्तर सब प्रकारकी उत्तमोत्तम सामग्रियोंको एकत्र कर राजा दशरथने जिसमें तुरही-का विशाल शब्द हो रहा था ऐसा जिनेन्द्र भगवान्‌का अभिषेक किया ॥७॥ आठ दिनका उपवास कर उत्कृष्ट अभिषेक किया तथा सहज अर्थात् स्वाभाविक और कृत्रिम अर्थात् स्वर्ण, रजत आदिसे बनाये हुए पुष्पोंसे महापूजा की ॥८॥ जिस प्रकार इन्द्र देवोंके साथ नन्दीश्वर द्वीपमें जिनेन्द्रपूजा करता है उसी प्रकार राजा दशरथने भी सब परिवारके साथ जिनेन्द्रपूजा की ॥९॥ तदनन्तर जब रानियाँ घर पहुँच गयीं तब बुद्धिमान् राजा दशरथने सबके लिए महापवित्र, शान्तिकारक गन्धोदक पहुँचाया ॥१०॥ सो तीन रानियोंके लिए तो वह गन्धोदक तरुण स्त्रियाँ ले गयीं इसलिए जल्दी पहुँच गया और उन्होंने पापको नष्ट करनेवाला वह गन्धोदक शीघ्र ही बड़ी श्रद्धासे मस्तक-पर धारण कर लिया ॥११॥ परन्तु सुप्रभाके लिए वृद्ध कंचुकीके हाथ भेजा था इसलिए उसे शीघ्र नहीं मिला अतः वह अत्यधिक क्रोध और शोकको प्राप्त हुई ॥१२॥ वह विचार करने लगी कि राजाकी यह बुद्धि ठीक नहीं है जिससे उन्होंने मुझे गन्धोदक भेजकर सम्मानित नहीं किया ॥१३॥

---

१. विचक्षणः, चतुरः इत्यर्थः । २. वस्त्रैः । ३. पुण्यमर्जय म. । ४. प्रेषयामास । ५. शान्त म. ।

को वात्र नृपतेर्दोषः प्रायः पुण्यं पुरा मया । नार्जितं येन संप्राप्ता [1]निकारमिदमीदृशम् ॥१४॥
पुण्यवत्य इमाः श्लाघ्या महासौभाग्यसंयुताः । पूतं यासां जिनेन्द्राम्बु प्रीत्या प्रहितमुत्तमम् ॥१५॥
अपमानेन दग्धस्य हृदयस्यास्य मेऽधुना । मरणं मरणं मन्ये तापः शाम्यति नान्यथा ॥१६॥
[2]विशाखसंज्ञमाहूय भाण्डागारिकमेककम् । अगाद् भद्र नाख्येयं त्वयेदं वस्तु कस्यचित् ॥१७॥
विषेणात्यन्तपरमं मम जातं प्रयोजनम् । तदानय द्रुतं भक्तिर्मयि चेत्तव विद्यते ॥१८॥
गत्वा स यावदन्विष्यंश्चिरयत्यतिशङ्कितः । तावत्सुप्तगृहं गत्वा सातिष्ठत् त्रस्तगात्रिका ॥१९॥
नृपतिश्चागतो वीक्ष्य प्रियास्तिस्रस्तया विना । समन्विष्यागमत्तस्याः समीपं त्वरितक्रमः ॥२०॥
अपहृत्य मनश्चौरीमंशुकच्छन्नविग्रहाम् । अनादरेण सत्तल्पे शक्रचापमिव स्थिताम् ॥२१॥
गृहाण तदिदं[3] देवि इत्येवमिति चावदत् सः । प्रेष्यो दशरथश्चैतं देशं प्राप्याश्रृणोद् ध्वनिम् ॥२२॥
हा देवि किमिदं मुग्धे प्रारब्धमिति च ब्रुवन् । स निराकरोद् [4]भुजिष्यं तं तत्तल्पे चोपविष्टवान् ॥२३॥
राजानमागतं ज्ञात्वा सहसा सम्भ्रमोत्थिता । क्षितावुपविविक्षन्ती कान्तेनाङ्के निवेशिता ॥२४॥
अवाचि च प्रिये कस्मात् कोपं प्राप्ता त्वमीदृशम् । सर्वतो दयिते येन जीवितेऽप्यसि निःस्पृहा ॥२५॥
सर्वतो मरणं दुःखमन्यस्मादुःखतः परम् । प्रतिकारस्तु यद्यस्य तद्दुःखं वद कीदृशम् ॥२६॥
त्वं मे हृदयसर्वस्वं दयिते वद कारणम् । श्रुत्वेमामपनयं[5] यस्य करिष्यामि वरानने ॥२७॥
श्रुतं वेत्सि जिनेन्द्राणां सदसद्गतिकारणम् । तथापि मतमीदृक् ते धिक्कोपं ध्वान्तमुत्तमम् ॥२८॥

अथवा इसमें राजाका क्या दोष है? प्रायःकर मैंने पूर्व भवमें पुण्यका संचय नहीं किया होगा जिससे मैं ऐसे तिरस्कारको प्राप्त हुई हूँ ॥१४॥ ये तीनों पुण्यवती तथा महासौभाग्यसे सम्पन्न हैं जिनके लिए राजाने प्रेमपूर्वक पवित्र एवं उत्तम गन्धोदक भेजा है ॥१५॥ अपमानसे जले हुए मेरे इस हृदयके लिए इस समय मरण ही शरण हो सकता है ऐसा मैं मानती हूँ। अन्य प्रकारसे मेरा सन्ताप शान्त नहीं हो सकता ॥१६॥ यह विचारकर उसने विशाख नामक एक भाण्डारीसे कहा कि हे भद्र! तुम यह बात किसीसे कहना नहीं ॥१७॥ मुझे विषकी अत्यन्त आवश्यकता आ पड़ी है। इसलिए यदि तेरी मुझमें भक्ति है तो शीघ्र ही ला दे ॥१८॥ विषके नामसे अत्यन्त शंकित होता हुआ भाण्डारी उसे खोजता हुआ जबतक कुछ विलम्ब करता है तबतक वह शयनगृहमें जाकर तथा शरीरको शिथिल कर पड़ रही ॥१९॥ इतनेमें ही राजा आ गये और उसके बिना तीन प्रियाओंको देखकर खोज करते हुए शीघ्र ही उसके समीप जा पहुँचे ॥२०॥ उन्होंने देखा कि मनको चुरानेवाली सुप्रभा वस्त्रसे शरीर ढँककर शय्यापर अनादरसे इन्द्रधनुषके समान पड़ी है ॥२१॥

इसी समय उस भाण्डारीने आकर कहा कि हे देवि! यह विष लो। भाण्डारीके इस शब्दको वहाँ जाकर राजाने सुन लिया ॥२२॥ सुनते ही राजाने कहा कि हे देवि! यह क्या है? मूर्खे! यह क्या प्रारम्भ कर रखा है? ऐसा कहते हुए राजाने उस भाण्डारीको वहाँसे दूर हटाया और स्वयं सुप्रभाकी शय्यापर बैठ गये ॥२३॥ राजाको आया जान वह लजाती हुई सहसा उठी और पृथिवीपर बैठना चाहती थी कि उन्होंने उसे गोदमें बैठा लिया ॥२४॥ राजाने कहा कि प्रिये! तुम इस प्रकारके क्रोधको क्यों प्राप्त हुई हो जिससे कि सबसे अधिक प्रिय अपने जीवनसे भी निःस्पृह हो रही हो ॥२५॥ मरणका दुःख सब दुःखोंसे अधिक दुःख है। सो जिस अन्य दुःखसे दुःखी होकर तुमने मरणको उसका प्रतिकार बनाया है वह दुःख कैसा है यह तो बताओ ॥२६॥ हे दयिते! तुम मेरे हृदयकी सर्वस्व हो, अतः हे सुमुखि! शीघ्र ही वह कारण बताओ जिससे मैं उसका प्रतिकार कर सकूँ ॥२७॥ सुगति और दुर्गतिके कारणोंका निरूपण करनेवाले जिनशास्त्रको

---

१. तिरस्कारम् । २. विशार- म. । ३. विषम् । ४. सेवकं तं । ५. दूरीभावं ।

प्रसीद देवि कोऽप्यापि कोपस्यावसरस्तव । प्रसादध्वनिपर्यन्तप्रकोपा हि महास्त्रियः ॥२९॥
तयोक्तं नाथ कः कोपस्त्वयि मे दुःखमीदृशम् । समुत्पन्नं न यद्याति शान्तिं पञ्चतया[1] विना ॥३०॥
देवि तत्कतरद्दुःखमित्युक्तैवमभाषत । शान्त्यम्बुदानमन्यासां मम नेति कुतो वद ॥३१॥
दुष्टेन केन कार्येण हीनाहं विदिता त्वया । यदवञ्चितपूर्वोस्मि वञ्चिता पण्डितापुना ॥३२॥
यावदेवं वदत्येषा तावदायाति कञ्चुकी । देवि जैनाम्बु नाथेन तुभ्यं दत्तमिति ब्रुवन् ॥३३॥
अत्रान्तरे प्रियाः प्राप्ता इतरास्तामिदं जगुः । त्वयि सुन्दरे प्रसादस्य स्थाने स्थासि किं वृथा ॥३४॥
पश्यास्माकं जुगुप्साभिर्दासीभिर्जलमाहृतम् । वरिष्ठेन पवित्रेण तव कञ्चुकिनामुना ॥३५॥
ईदृशी नाम नाथस्य संप्रीतिर्भवतीं प्रति । यतोऽयं जनितो भेदः किमकाण्डे[2] प्रकुप्यसि ॥३६॥
प्रसीद दयितस्यास्य लग्नस्यैव प्रयत्नतः । प्रणयादपराधेऽपि मनु तुष्यन्ति योषितः ॥३७॥
दयिते क्रियते यावत्कोपो दारुणमानसे । तावत्संसारसौख्यस्य विघ्नं जानीहि शोभने ॥३८॥
विपादयितुमस्माकमात्मानमुचितं ननु । किंत्वत्र जिनचन्द्राणां[3] वारिणा नः प्रयोजनम् ॥३९॥
सपत्नीभिरपि प्रीतमिति सान्त्वितया तया । चक्रे शान्त्युदकं मूर्ध्नि रोमाञ्चाञ्चितगात्रया ॥४०॥
ततः प्रकुपितोऽवोचद् राजा कञ्चुकिनं तकम् । व्याक्षेपः क्व नु ते जातो वदापसद[4] कञ्चुकिन् ॥४१॥
ततो भयाद्विशेषेण कम्पिताखिलविग्रहः । कञ्चुकी कथमप्यूचे क्षितिजानुशिरोऽञ्जलिः ॥४२॥

तुम जानती हो फिर भी तुम्हारी ऐसी बुद्धि क्यों हो गयी ? इस प्रगाढ़ अन्धकारस्वरूप क्रोधको धिक्कार हो ॥२८॥ हे देवि ! प्रसन्न होओ। इस समय भी क्या तुम्हारे क्रोधका कोई अवसर है क्योंकि जो महास्त्रियाँ होती हैं उनका क्रोध प्रसाद शब्द सुनने तक ही रहता है ॥२९॥

सुप्रभाने कहा कि हे नाथ ! आपपर मेरा क्या क्रोध हो सकता है ? पर मुझे ऐसा दुःख उत्पन्न हुआ है कि जो मरणके बिना शान्त नहीं हो सकता ॥३०॥ राजाने पूछा कि हे देवि ! वह कौन-सा दुःख है ? इसके उत्तरमें सुप्रभाने कहा कि आपने अन्य रानियोंके लिए तो गन्धोदक भेजा पर मुझे क्यों नहीं भेजा सो कहिए ? ॥३१॥ आपने ऐसा कौन-सा कार्य देखा है जिससे मुझे हीन समझ लिया है। हे सुविज्ञ ! जिसे पहले कभी धोखा नहीं दिया उसे आज क्यों धोखा दिया गया ? ॥३२॥ सुप्रभा जबतक यह सब कह रही थी कि तबतक वृद्ध कंचुकी आकर यह कहने लगा कि हे देवि ! राजाने तुम्हें यह गन्धोदक दिया है ॥३३॥ इसी बीचमें दूसरी रानियाँ आकर उससे कहने लगीं कि अरी भोली ! तू प्रसन्नताके स्थानको प्राप्त है फिर क्या कह रही है ? ॥३४॥ देख, हम लोगोंके लिए तो निन्दनीय दासियाँ गन्धोदक लायी हैं पर तेरे लिए यह श्रेष्ठ एवं पवित्र कंचुकी लाया है ॥३५॥ तेरे प्रति स्वामीकी ऐसी उत्तम प्रीति है इसीसे यह भेद हुआ है फिर असमयमें क्यों कुपित हो रही है ? ॥३६॥ फिर स्वामी तेरे पीछे बड़े प्रयत्नसे लग रहे हैं। अतः इनपर प्रसन्न हो क्योंकि स्नेहके कारण स्त्रियाँ अपराध होनेपर भी सन्तुष्ट ही रहती हैं ॥३७॥ हे कठोरहृदये ! जबतक पतिपर क्रोध किया जाता है तबतक हे शोभने ! सांसारिक सुखमें विघ्न ही जानना चाहिए ॥३८॥ वास्तवमें तो हम लोगोंका मरना उचित था पर हमें तो गन्धोदकसे प्रयोजन था। इसलिए सब अपमान सहन कर लिया ॥३९॥ इस प्रकार सपत्नियोंने भी जब उसे सान्त्वना दी तब उसका शरीर रोमांचसे सुशोभित हो गया और उसने गन्धोदक मस्तकपर धारण किया ॥४०॥

तदनन्तर राजाने कुपित होकर उस कंचुकीसे कहा कि हे नीच कंचुकी ! बता तुझे यह विलम्ब कहाँ हुआ ? ॥४१॥ भयसे जिसका समस्त शरीर विशेषकर काँपने लगा था ऐसा कंचुकी

---

१. पञ्चयता म. । २. अनवसरे । ३. वारिणां म. (?) । ४. अधम ।

[1]हृदये स्थापिताः कृच्छ्रादानीता वक्त्रगोचरम् । ओष्ठे प्रणिहिता वर्णा व्यलीयन्तेऽस्य भूरिशः ॥४३॥
[2]सत्कारं मुहुः कुर्वन् स्फुरयन्नधरौ[3] मुहुः । हृदयं संस्पृशन् कृच्छ्रादुपनीतेन पाणिना ॥४४॥
पश्चान्मस्तकभागत्थश्चन्द्रांशुसितमूर्जवः । मन्दवातावहतश्वेतचामरोपमकूर्चकः ॥४५॥
मक्षिकाच्छदनच्छातस्वस्थिरीहितवैकसः । धवलभ्रूवलिच्छन्नशोणप्रभनिरीक्षणः ॥४६॥
श्लिलक्ष्यशिराजालसंवेष्टितचलत्तनुः । असंपूरितपुस्तामः कृच्छ्रादालोऽपि धारयन् ॥४७॥
हिमाहत इवास्यर्थं कपोलौ कम्पयन् श्लथौ । विवक्षया मुहुर्जिह्वां स्थानानि स्खलितां नयन् ॥४८॥
अव्येकाक्षरनिष्पत्तिं मन्यमानो महोत्सवम् । वर्णान्तराभिसंधानाद् वर्णमन्यं समुच्चरन् ॥४९॥
संधानसर्जितान् वर्णान् परमश्रमकारिणः । कण्टकानिव कृच्छ्रेण मुमोच परिजर्जरान् ॥५०॥
जराधीनस्य मे नाथ किमागो भृत्यवत्सल । संप्राप्तोऽसि यतः कोपं देव विज्ञातभूषण ॥५१॥
पुरा करिकराकारभुजं कर्कशशुभ्रसम् । पीनोत्तुङ्गं महोरस्कमाजानसदृशोरुकम् ॥५२॥
आसीन् मम वपुः शैलराजकूटसमाकृति । कर्मणामिति चित्राणां कारणं परमोदयम् ॥५३॥
असूतां चूर्णने देव शक्तौ [4]हस्तिकपाटयोः । करौ पार्ष्णिप्रहारश्च पर्वतस्यापि भेदकः ॥५४॥
उच्चावचां क्षितिं वेगात् पुराहं परिलङ्घयन् । राजहंस इवाशासं नाथ स्थानमवाप्तवम् ॥५५॥
आसीत् दृष्टिरवष्टम्भस्तादृशो मम पार्थिव । आमन्येऽपि क्षितेरीशं यादृशेन तृणोपमम् ॥५६॥

पृथिवीपर घुटने और शिरपर अंजलि रखकर किसी तरह बोला ॥४२॥ उसके हृदयमें जो अक्षर थे वे मुख तक बड़ी कठिनाईसे आये और जो ओठोंपर रखे गये थे वे बार-बार वहीं के वहीं विलीन हो गये ॥४३॥ वह बार-बार खकारता था, बार-बार ओठ चलाता था, और बड़ी कठिनाईसे उठाकर पास ले जाये गये हाथसे हृदयका स्पर्श करता था ॥४४॥ उसके मस्तकके पिछले भागमें चन्द्रमाकी किरणोंके समान सफेद बाल स्थित थे तथा सफेद चरमके समान उसकी दाढ़ीके बाल मन्द-मन्द वायुसे हिल रहे थे ॥४५॥ मक्खीके पंखके समान पतली त्वचासे उसकी हड्डियाँ ढँकी हुई थीं, उसके लाल-लाल नेत्र सफेद-सफेद भ्रकुटियोंकी वलिसे आच्छादित थे ॥४६॥ उसका चंचल शरीर स्पष्ट दिखाई देनेवाली नसोंके समूहसे वेष्टित था, मिट्टीके अधबने खिलौनेके समान उसकी आभा थी। वह वस्त्र भी बड़ी कठिनाईसे धारण कर रहा था, हिमसे ताड़ित हुएके समान दोनो शिथिल कपोलोंको कम्पित कर रहा था, बोलनेकी इच्छासे लड़खड़ाती जिह्वाको तालु आदि स्थानोंपर बड़ी कठिनाईसे ले जा रहा था, यदि एक अक्षरका भी उच्चारण कर लेता था तो उसे महान् उत्सव मानता था। कुछ वर्ण बोलना चाहता था पर उसके बदले कुछ दूसरे ही वर्ण बोल जाता था, जिनके बोलनेका विचार ही नहीं था ऐसे बहुत भारी श्रमको करनेवाले टूटे-फूटे वर्णोंको वह जीर्ण-शीर्ण काँटेके समान बड़ी कठिनाईसे छोड़ता था अर्थात् उसका उच्चारण करता था ॥४७–५०॥

हे भृत्यवत्सल, स्वामिन् ! मुझ बुड्ढेका क्या अपराध है? जिससे कि विज्ञानरूपी आभूषणको धारण करनेवाले हे देव ! आप क्रोधको प्राप्त हुए हो ॥५१॥ पहले मेरे शरीरकी भुजाएँ हाथीकी सूँड़के समान थीं, शरीर अत्यन्त कठोर और ऊँचा था। सीना विशाल था, जंघाएँ आलान अर्थात् हाथी बाँधनेके खम्भेके समान थीं, मेरा यह शरीर सुमेरुके शिखरके समान आकृतिवाला था, तथा अनेक अद्भुत कार्योंका सशक्त कारण था ॥५२–५३॥ हे देव ! हमारे ये हाथ पहले सुदृढ़ किवाड़ोंके चूर्ण करनेमें समर्थ थे, हमारे पैरकी ठोकर पर्वतके भी टुकड़े कर डालती थी, ऊँची-नीची भूमिको मैं वेगसे लाँघ जाता था, हे स्वामिन् ! मैं राजहंस पक्षीके समान मनचाहे स्थानको शीघ्र ही प्राप्त हो जाता था ॥५४–५५॥ हे राजन् ! मेरी दृष्टिमें इतना

---

१. हृदयस्थापिता म. । २. सत्कुर्वं ख. । ३. -न्नधरं ग. । ४. हस्तकपाटयोः म. ।

अङ्गनाजनदृष्टीनां मनसो स महास्थिरम् । आलानमेतदासीन्मे शरीरं चारुविभ्रमम् ॥५७॥
लालितं परमैर्भोगैः प्रसादेन पितुस्तव । विसंघटितमेतन्मे कुमित्रमिव साम्प्रतम् ॥५८॥
अधस्त यः पुरा शक्ति रिपुदारणकारिणीम् । करेण यष्टिमालम्ब्य तेन भ्राम्यामि साम्प्रतम् ॥५९॥
विक्रान्तपुरुषाकृष्टशरासनसमं मम । पृष्ठास्थिस्थितमाक्रान्ते मूर्ध्नि मृत्योरिवाङ्घ्रिणा ॥६०॥
दन्तस्थानभवा वर्णाश्चिरं क्वापि गता मम । ऊष्मवर्णोष्मणा तापमशक्ता इव सेवितुम् ॥६१॥
आलम्बे यदि नो यष्टिमेतां प्राणगरीयसीम् । क्षितौ पतेत्ततः पक्वमिदं हतशरीरकम् ॥६२॥
वलीनां वर्तते वृद्धिरुत्साहस्य परिक्षयः । राजन् श्वसिमि देहेन यदेतेन तदद्भुतम् ॥६३॥
अद्यश्वीनमसुं कार्यं जरया जर्जरीकृतम् । नाथ धर्तुं न शक्नोमि बाह्ये वस्तुनि का कथा ॥६४॥
नितान्तपटुतामाप्ति हृषीकाणि पुरा मम । संप्रत्युद्देशमात्रेण स्थितानि जडचेतसः ॥६५॥
पदमन्यत्र यच्छामि पतत्यन्यत्र दुर्घटम् । श्यामसेवाखिलं दृष्ट्वा पश्यामि धरणीतलम् ॥६६॥
गोत्रकमस्मदायातमिदं राजकुलं मम । यतः शक्नोमि न त्यक्तुमपि प्राप्येदृशीं दशाम् ॥६७॥
पक्वं फलमिवैतन्मे शरीरं क्वापि वासरे । नेष्यत्याहारतां मृत्युर्मर्मरच्छदनोपमाम् ॥६८॥
न तथासन्नमृत्योर्मे स्वामिन् संजायते भयम् । भयचरणसंसेवाविरहाद् भाविनो यथा ॥६९॥
व्याक्षेपो मे कुतः कश्चिदधस्तस्तनुमीदृशीम् । भवदाज्ञा प्रतीक्ष्यैव यस्य जीवितकारणम् ॥७०॥

बल था कि जिससे मैं राजाको भी तृणके समान तुच्छ समझता था ॥५६॥ अत्यन्त स्थविर और सुन्दर विलाससे युक्त मेरा यह शरीर स्त्रीजनोंकी दृष्टि और मनको बाँधनेके लिए आलानके समान था ॥५७॥ आपके पिताके प्रसादसे मैंने इस शरीरका उत्तमोत्तम भोगोंसे लाड़-प्यार किया था पर इस समय कुमित्रके समान यह विघट गया है ॥५८॥ मेरा जो हाथ पहले शत्रुओंको विदारण करनेकी शक्ति रखता था अब उसी हाथसे लाठी पकड़कर चलता हूँ ॥५९॥ मेरी पीठको हट्टो शूरवीर मनुष्यके द्वारा खींचे हुए धनुषके समान झुक गयी है और मेरा शिर यमराजके पैरसे आक्रान्त हुएके समान नम्र हो गया है ॥६०॥ दांतोंके स्थानसे उच्चरित होनेवाले मेरे वर्ण (ऌ तवर्ग ल और स) कहीं चले गये हैं सो ऐसा जान पड़ता है मानो ऊष्मवर्णों (श ष स ह) की ऊष्मा अर्थात् गरमीसे उत्पन्न सन्तापको सहनेमें असमर्थ होकर ही कहीं चले गये हैं ॥६१॥ यदि मैं प्राणोंसे भी अधिक प्यारी इस लाठीका सहारा न लेऊँ तो यह पका हुआ अधम शरीर पृथ्वीपर गिर जावे ॥६२॥

शरीरमें वलि अर्थात् सिकुड़नोंकी वृद्धि हो रही है और उत्साहका ह्रास हो रहा है। हे राजन् ! इस शरीरसे मैं सांस ले रहा हूँ यही आश्चर्यकी बात है ॥६३॥ हे नाथ ! आज-कलमें नष्ट हो जानेवाले इस जराजर्जरित शरीरको ही धारण करनेके लिए मैं समर्थ नहीं हूँ फिर दूसरी बाह्य वस्तुकी तो कथा ही क्या है ? ॥६४॥ पहले मेरी इन्द्रियां अत्यन्त सामर्थ्यको प्राप्त थीं पर इस समय नाममात्रको ही स्थित हैं। मेरा मन भी जड़रूप हो गया है ॥६५॥ पैर अन्य स्थानपर रखता हूँ पर सँभल नहीं सकनेके कारण अन्य स्थानपर जा पड़ता है। मैं समस्त पृथ्वीतलको अपनी दृष्टिसे काला ही काला देखता हूँ ॥६६॥ चूँकि यह राजकुल मेरी वंश-परम्परासे चला आ रहा है इसलिए ऐसी दशाको प्राप्त होकर भी इसे छोड़नेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥६७॥ मेरा यह शरीर पके हुए फलके समान है सो यमराज सूखे पत्रके समान इसे अपना आहार बना लेगा ॥६८॥ हे स्वामिन् ! मुझे निकटवर्ती मृत्युसे वैसा भय नहीं उत्पन्न होता है जैसा कि भविष्य-में होनेवाली आपके चरणोंकी सेवाके अभावसे हो रहा है ॥६९॥ आपकी सम्माननीय आज्ञा ही जिसके जीवित रहनेका कारण है ऐसे इस शरीरको धारण करते हुए मुझे विलम्ब अथवा कार्या-

---

१. अद्य श्वो भवम् अद्यश्वीनं भङ्गुरमित्यर्थः ।

स त्वं नाथ जराधीनं मम ज्ञात्वा शरीरकम् । कोपमर्हसि नो कर्तुं धीर धारय प्रसन्नताम् ॥७१॥
निशम्य तद्वचो राजा गण्डं कुण्डलमण्डितम् । धामे करतले न्यस्य चिन्तामेवमुपागमत् ॥७२॥
जलबुद्बुदनिस्सारं कष्टमेतच्छरीरकम् । संध्याप्रकाशसंकाशं यौवनं बहुविभ्रमम् ॥७३॥
सौदामिनीत्वरस्यास्य कृते देहस्य मानवाः । आरभन्ते न किं कृत्यं नितान्तं दुःखसाधनम् ॥७४॥
अतिमत्ताङ्गनापाङ्गसङ्गतुल्याः प्रतारकाः । भोगिभोगसमाभोगास्तापोपचयकारिणः ॥७५॥
विषयेषु यदायत्तं दुष्प्रापेषु विनाशिषु । दुःखमेतद्विमूढानां सुखत्वेनावभासते ॥७६॥
आपातरमणीयानि सुखानि विषयादयः । किंपाकफलसुश्यानि चित्रं प्रार्थयते जनः ॥७७॥
पुण्यवन्तो महोत्साहाः प्रबोधं परमं गताः । विषवद् विषयान् दृष्ट्वा ये तपस्यन्ति सज्जनाः ॥७८॥
कदा नु विषयांस्त्यक्त्वा निर्गतः स्नेहचारकात् । [1]आचरिष्यामि जैनेन्द्रं तपो निर्वृतिकारणम् ॥७९॥
सुखेन पालिता क्षोणी सुप्ता भोगा यथोचिताः । विक्रान्ता जनिता पुत्राः किमद्यापि प्रतीक्ष्यते [3] ॥८०॥
अन्वयव्रतमस्माकमिदं यत्सूनवे श्रियम् । दत्त्वा संवेगिनो धीराः प्रविशन्ति तपोवनम् ॥८१॥
चिन्तयित्वाप्यसावेवं राजा कर्मानुभावतः । भोगेषु शिथिलासक्तिर्गृह एव रतिं ययौ ॥८२॥
यस्माद्यत्र यदा येन यत्र यावद्यतोऽपि वा । तत्प्राप्यते तदा तेन तत्र तावत्ततो ध्रुवम् ॥८३॥
कियत्यपि ततोऽतीते काले मगधसुन्दर । पर्यटन् विधिना क्षोणीं सङ्घेन महता श्रुतः ॥८४॥

न्तरमें आलिंगन कैसे हो सकता है ? ॥७०॥ इसलिए हे नाथ ! मेरे शरीरको जराके आधीन जानकर आप क्रोध करनेके योग्य नहीं हैं। हे धीर ! प्रसन्नताको धारण करें ॥७१॥

कंचुकीके वचन सुनकर राजा कुण्डलसे सुशोभित कपोलको वाम करतलपर रखकर इस प्रकार विचार करने लगे ॥७२॥ कि अहो, बड़े कष्टकी बात है कि यह अधम शरीर पानीके बबूलेके समान निःसार है और अनेक विभ्रमों—विलासोंसे भरा यह यौवन सन्ध्याके प्रकाशके समान भंगुर है ॥७३॥ बिजलीके समान नष्ट हो जानेवाले इस शरीरके पीछे मनुष्य न जाने अत्यन्त दुःखके कारणभूत क्या-क्या कार्य प्रारम्भ नहीं करते हैं ? ॥७४॥ ये भोग अत्यन्त मत्त स्त्रीके कटाक्षोंके समान ठगनेवाले हैं, सांपके फनके समान भयंकर हैं और सन्तापकी वृद्धि करनेवाले हैं ॥७५॥ कठिनाईसे प्राप्त होने योग्य विनाशी विषयोंमें जो दुःख प्राप्त होता है वह मूर्ख प्राणियोंके लिए सुख जान पड़ता है ॥७६॥ ये जो विषयादिक हैं वे प्रारम्भमें ही मनोहर सुखरूप जान पड़ते हैं फिर भी आश्चर्य है कि लोग किम्पाक फलके समान इन सुखोंकी चाह रखते हैं ॥७७॥ जो सज्जन इन विषयोंको विषके समान देखकर तपस्या करते हैं वे पुण्यात्मा महोत्साहवान् तथा परम प्रबोधको प्राप्त हैं ऐसा समझना चाहिए ॥७८॥ मैं कब इन विषयोंको छोड़कर तथा स्नेह-रूपी कारागृहसे छूटकर मोक्षके कारणभूत जिनेन्द्र-प्रोक्त तपका आचरण करूँगा ॥७९॥ सुखसे पृथिवीका पालन किया, यथायोग्य भोग भोगे, और शूरवीर पुत्र उत्पन्न किये फिर अब किस बात-की प्रतीक्षा की जा रही है ॥८०॥

यह हमारा वंशपरम्परागत व्रत है कि हमारे धीर-वीर वंशज विरक्त हो पुत्रके लिए राज्यलक्ष्मी सौंपकर तपोवनमें प्रवेश कर जाते हैं ॥८१॥ राजा दशरथने इस प्रकार विचार भी किया और भोगोंमें आसक्ति कुछ शिथिल भी हुई तो भी कर्मोंके प्रभावसे वे घरमें ही प्रीतिको प्राप्त होते रहे अर्थात् गृहत्याग करनेके लिए समर्थ नहीं हो सके ॥८२॥ सो ठीक ही है क्योंकि जिस समय जहाँ जिससे जो और जितना कार्य होना होता है उस समय वहाँ उससे वह और उतना ही कार्य प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं है ॥८३॥

अथानन्तर गौतमस्वामी कहते हैं कि हे मगध देशके आभूषण ! कितना ही काल व्यतीत

---

१. रागकारागृहात् । २. आवरिष्यामि म. । ३. प्रतीक्ष्यसे म. ।

सर्वभूतहितो नाम सर्वभूतहितो मुनिः । नगरीं तां समायासीन्मनःपर्ययबोधकः ॥८५॥
[1]सरय्वाश्च तटे कालं आन्तं सङ्क्रमतिष्ठिपत् । पितेव पालयन् न्यस्तकायवाङ्मानसक्रियः ॥८६॥
प्राग्भागेषु[2] स्थिताः केचिद् गुहास्वन्ये तपस्विनः । केचिद् विधिक्तगेहेषु केचिज्जैनेन्द्रवेश्मसु ॥८७॥
नगानां कोटरेष्वन्ये यथाशक्तिसमुद्यताः । तपांसि चक्रुराचार्यादधिगम्यानुमोदनाम् ॥८८॥
आचार्यस्तु विविक्तैषी पुर्या उत्तरपश्चिमाम् । [3]तपःसमुचितक्षेत्रं विशालमतिसुन्दरम् ॥८९॥
उद्यानं सुमहावृक्षं सयूथ इव वारणः । प्रविवेशारमदशमो महेन्द्रोदयकीर्तनम्[4] ॥९०॥
तस्मिन् शिलातले रम्ये विपुले निर्मले समे । पशूनामङ्गनानां च षण्ढकानां[5] च दुर्गमे ॥९१॥
द्वेषिलोकविमुक्तेऽस्मौ सूक्ष्मप्राणिविवर्जिते । दूरावष्टम्भिशाखस्य स्थितो नागतरोरधः ॥९२॥
मार्तण्डमण्डलोच्छायो[6] गभीरः प्रियदर्शनः । वर्षाः क्षपयितुं तस्थौ कर्माणि च महामनाः ॥९३॥
संप्राप्तश्च महाकालः प्रवासिजनभैरवः । प्रस्फुरद्विद्युदुद्योऽष्ट क्रूरधाराधरध्वनिः[7] ॥९४॥
तर्जयन्निव लोकस्य कृततापं दिवाकरम् । भयात् पलायितं क्वापि स्थूलधारान्धकारतः ॥९५॥
जातपुर्वीतलं सम्यक् कञ्चुकेन कृतावृति । वर्द्धन्ते सुमहानद्यो वीचिपातितरोधसः ॥९६॥
जायते प्रान्तकम्पानां चित्तोद्भ्रान्तिः प्रवासिनाम् । असिधाराव्रतं जैनो जनोऽसक्तं निषेवते ॥९७॥

होनेपर बड़े भारी संघसे आवृत, सर्व प्राणियोंका हित करनेवाले, तथा मनःपर्यय ज्ञानके धारक सर्वभूतहित नामा मुनि, विधिपूर्वक पृथिवीमें विहार करते हुए अयोध्या नगरीमें आये ॥८४–८५॥ जिनके मन-वचन-कायकी चेष्टा समीचीन थी और जो पिताकी तरह संघका पालन करते थे ऐसे उन मुनिराजने अपने थके हुए संघको सरयू नदीके किनारे ठहराया ॥८६॥ संघके कितने ही मुनि, आचार्य महाराजकी आज्ञा प्राप्त कर वनके सघन प्रदेशोंमें, कितने ही गुफाओंमें, कितने ही शून्य गृहोंमें, कितने ही जिनमन्दिरोंमें और कितने ही वृक्षोंकी कोटरोंमें ठहरकर यथाशक्ति तपश्चरण करने लगे ॥८७–८८॥ तथा आचार्य एकान्त स्थानके अभिलाषी थे इसलिए उन्होंने नगरीकी उत्तर पश्चिम दिशा अर्थात् वायव्य कोणमें जो महेन्द्रोदय नामका उद्यान था उसमें यूथसहित गजराजके समान प्रवेश किया। उस महेन्द्रोदय नामा उद्यानमें तपके योग्य अनेक स्थान थे, तथा वह विशाल, अत्यन्त सुन्दर और अनेक बड़े-बड़े वृक्षोंसे सहित था। आचार्यके साथ अधिक भीड़ नहीं थी। अपने आपको मिलाकर कुल दस ही मुनिराज थे। वह उद्यान पशुओं, स्त्रियों और नपुंसकोंके लिए दुर्गम था, द्वेषी मनुष्योंसे रहित था तथा सूक्ष्म जन्तुओंसे शून्य था। ऐसे उस उद्यानमें जिसकी शाखाएँ दूर-दूर तक फैल रही थीं ऐसे एक नाग वृक्षके नीचे सुन्दर, विशाल, निर्मल एवं समान शिलातलपर विराजमान हुए ॥८९–९२॥ आचार्य महाराज सूर्यबिम्बके समान देदीप्यमान, गम्भीर, प्रिय-दर्शन और उदारहृदय थे तथा कर्मोंका क्षय करनेके लिए वर्षायोग लेकर वहाँ विराजमान हुए थे ॥९३॥

तदनन्तर जो विदेशमें जानेवाले मनुष्योंको भय उत्पन्न करनेवाला था, चमकती हुई बिजलीसे उग्र था तथा जिसमें आठों दिशाओंके मेघोंकी कठोर गर्जना हो रही थी ऐसा वर्षाकाल आ पहुँचा। वह वर्षाकाल ऐसा जान पड़ता था मानो लोगोंको सन्ताप पहुँचानेवाले सूर्यको डाँट ही रहा हो और बड़ी मोटी धाराओंके अन्धकारसे भयभीत हो कहीं भाग गया हो ॥९४–९५॥ पृथिवीतल ऐसा दिखाई देने लगा मानो उसने अच्छी तरह कंचुक ही धारण कर रखी हो। तरंगोंसे तटोंको गिरानेवाली बड़ी-बड़ी नदियाँ बढ़ने लगीं ॥९६॥ और जिन्हें कँपकँपी छूट रही थी ऐसे प्रवासी मनुष्योंके चित्तमें भ्रान्ति उत्पन्न होने लगी। ऐसे वर्षाकालमें जैनी लोग निरन्तर

---

१. सरयूनद्याः । सरस्यश्च म. । २. प्राग्भावेषु म. । ३. तपःसमुचितं क्षेत्रं म., क. । ४. कीर्तितं ज. । ५. नपुंसकानाम् । ६. मण्डलोच्छाया गभीरप्रिय ख. । ७. दुर्गोष्ट म. ।

भूरिशोऽवग्रहाश्चक्रुर्मुनयः क्षितिगोचराः । खयानलब्धयश्चैते पान्तु त्वा मगधाधिप ॥९८॥
अथ भेरीनिनादेन शङ्खनिस्वनशोभिना । [1]दोषान्ते कोशलानाथो विबुद्धो[2] भास्करो यथा ॥९९॥
ताम्रचूडाः खरं रेणुर्[3] दम्पतीनां वियोजकाः । सारसाश्चक्रवाकाश्च सरसीषु नदीषु च ॥१००॥
भेरीपणववीणाद्यैर्गीतैश्च सुमनोहरैः । व्याकृतश्चैत्यगेहेषु जायते विपुलो जनः ॥१०१॥
विघूर्णमाननयनः सकलारुणलोचनः । विमुञ्चते जनो निद्रां प्रियामिव ह्रियान्वितः ॥१०२॥
प्रदीपाः पाण्डुरा जाता शशाङ्कश्च गतप्रभः । विकासं याप्ति पद्मानि कुमुदानि निमीलनम् ॥१०३॥
ध्वस्ता ग्रहादयः सर्वे दिवाकरमरीचिभिः । जिनप्रवचनज्ञस्य वचनैर्वादिनो यथा ॥१०४॥
एवं प्रभातसमये संपन्नेऽत्यन्तनिर्मले । कृत्वा प्रत्यङ्गकर्माणि नमस्कृत्यार्चितं जिनम् ॥१०५॥
आरुह्य वारणं मद्रं कृताटविराजितम् । शतैरवनिनाथानां सेव्यमानोऽमरत्विषाम् ॥१०६॥
देशे देशे नमस्कुर्वन् मुनींश्चैत्यालयांस्तथा । महेन्द्रोदयमुद्यानं शक्रोपशोभितः ॥१०७॥
विष्टपानन्दजननी विभूतिस्तस्य भूभृतः । राजन् संवत्सरेणापि शक्यं कथयितुं न सा ॥१०८॥
मुनिरायातमात्रः सन् गुणरत्नपयोनिधिः । श्रोत्रयोर्गोचरं तस्य संप्राप्तस्तत्र मण्डले ॥१०९॥
करेणोरवतीर्यासौ राजामितपरिच्छदः । महाप्रमोदसंपूर्णो विवेशोद्यानमेदिनीम् ॥११०॥
विन्यस्य भक्तिसंपन्नः पादयोः कुसुमाञ्जलिम् । सर्वभूतहिताचार्यं शिरसा स नमोऽकरोत्[5] ॥१११॥

खड्गधाराके समान कठोर व्रत धारण करते हैं ॥९७॥ जो पृथिवीपर विहार करते थे तथा जिन्हें आकाशमें चलनेकी ऋद्धि प्राप्त हुई थी ऐसे मुनिराज उस समय अनेक प्रकारके नियम धारण करते थे। गौतमस्वामी कहते हैं कि हे मगधेश्वर ! ये सब मुनिराज तुम्हारी रक्षा करें ॥९८॥

अथानन्तर प्रातःकाल होनेपर शंखके शब्दसे सुशोभित भेरीके नादसे राजा दशरथ सूर्यके समान जागृत हुए ॥९९॥ स्त्री-पुरुषोंका वियोग करनेवाले मुर्गे तथा सरोवर और नदियोंमें विद्यमान सारस और चक्रवाक पक्षी जोर-जोरसे शब्द करने लगे ॥१००॥ भेरी, पणव तथा वीणा आदिके मनोहर गीतोंसे आकर्षित हो बहुत-से मनुष्य जिनमन्दिरोंमें उपस्थित होने लगे ॥१०१॥ जिस प्रकार लज्जासे युक्त मनुष्य प्रियाको छोड़ता है इसी प्रकार जिसके नेत्र घूम रहे थे तथा समस्त नेत्र लाल-लाल हो रहे थे ऐसा मनुष्य निद्राको छोड़ रहा था ॥१०२॥ दीपक पाण्डुवर्ण हो गये थे और चन्द्रमा फीका पड़ गया। कमल विकासको प्राप्त हुए और कुमुद निमीलित हो गये ॥१०३॥ जिस प्रकार जिनशास्त्रके ज्ञाता मनुष्यसे वादी परास्त हो जाते हैं उसी प्रकार सूर्यकी किरणोंसे समस्त ग्रह परास्त हो गये अर्थात् छिप गये ॥१०४॥ इस प्रकार अत्यन्त निर्मल प्रभात-काल होनेपर राजा दशरथने शरीर-सम्बन्धी कार्य कर पूजनीय जिनेन्द्रभगवान्‌को नमस्कार किया। तदनन्तर मनोहर झूलसे सुशोभित हस्तिनीपर सवार हो वह मुनिराजकी वन्दनाके लिए चला। देवोंके समान कान्तिको धारण करनेवाले हजार राजा उसकी सेवा कर रहे थे ॥१०५-१०६॥ इस प्रकार छत्रसे सुशोभित राजा दशरथ जगह-जगह मुनियों और जिनचैत्यालयोंको नमस्कार करता हुआ महेन्द्रोदय नामा उद्यानमें पहुँचा ॥१०७॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! उस समय राजा दशरथकी लोकको आनन्दित करनेवाली जो विभूति थी वह एक वर्षमें भी नहीं कही जा सकती है ॥१०८॥ गुणरूपी रत्नोंके सागर मुनिराज जब देशमें पधारे थे तभी उसके कानोंमें यह समाचार आ पहुँचा था ॥१०९॥ तदनन्तर हस्तिनीसे उतरकर अपरिमित वैभवके धारक एवं महान् हर्षसे परिपूर्ण राजाने उद्यानकी भूमिमें प्रवेश किया ॥११०॥ तत्पश्चात् भक्तिसे युक्त हो चरणोंमें पुष्पांजलि बिखेरकर उसने सर्वभूत आचार्यको शिरसे नमस्कार किया ॥१११॥

---

१. निशान्ते प्रभाते इत्यर्थः । २. विबुद्धो म. । ३. रराण, रेणतुः, रेणुः—शब्दं चक्रुः । ४. करिणीम् । ५. नमस्करोत् (?) म. ।

ततः सिद्धान्तसंबद्धामशृणोद् गुरुतः कथाम् । अनुयोगाश्रितानीतानागतानां महात्मनाम् ॥११२॥
लोकं द्रव्यानुभावांश्च युगानि च यथाविधि । स्थितिं कुलकराणां च वंशांश्च बहुभागतान् ॥११३॥
पदार्थान् सर्वजीवादीन् पुराणानि च सादरम् । श्रुत्वा प्रणम्य संघेशं नगरं पार्थिवोऽविशत् ॥११४॥

मन्दाक्रान्ताच्छन्दः

दत्त्वा स्थानं क्षणमवनिभृन्मन्त्रिणां स क्षितीशो
कृत्वा जैनीं गुणगणकथां [1]विस्मयेनातिपूर्णः ।
अन्तर्गेहं प्रविशति सदा स्नानादिक्रियाश्च
प्रीतश्चक्रे विपुलविभवः स प्रजापत्यभिख्यः ॥११५॥
संपूर्णानां परमसहसा चन्द्रकान्ताननानां
चक्षुश्चेतोहरणनिपुणैर्विभ्रमैर्मण्डितानाम् ।
श्रीतुल्यानां परमविनयं बिभ्रतीनां प्रियाणां
पद्मालीनां रविरिव रतिं तत्र कुर्वन् स तस्थौ ॥११६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दशरथवैराग्यसर्वभूतहितागमाभिधानं नाम एकोनत्रिंशत्तमं पर्व ॥२९॥

सिद्धान्तसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा सुनी, अतीत अनागत महापुरुषोंके चरित सुने, लोक, द्रव्य, युग, कुलकरोंकी स्थिति, अनेक वंश, जीवादिक समस्त पदार्थ और पुराणोंको बड़े आदरसे सुना। तदनन्तर संघके स्वामी सर्वभूतहित आचार्यको नमस्कार कर राजाने नगरमें वापस प्रवेश किया ॥११२-११४॥

तदनन्तर मन्त्रियों और राजाओंको क्षण भरके लिए स्थान देकर अर्थात् उनके साथ वार्तालाप कर जिनराज सम्बन्धी गुणोंकी कथा कर आश्चर्यसे भरे हुए राजाने अन्तःपुरमें प्रवेश किया। वहाँ विपुल वैभव तथा प्रजापतिकी शोभा धारण करनेवाले राजाने बड़ी प्रसन्नतासे स्नानादि क्रियाएँ कीं ॥११५॥ तदनन्तर जो उत्कृष्ट कान्तिसे युक्त थीं, चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखोंको धारण कर रही थीं, नेत्र और हृदयको हरनेमें निपुण विभ्रमोंसे सुशोभित थीं, लक्ष्मीके तुल्य थीं और परम विनयको धारण कर रही थीं ऐसी स्त्रियोंको, कमलिनियोंको सूर्यकी भाँति आनन्द उपजाता हुआ वह उसी अन्तःपुरमें ठहर गया ॥११६॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरितमें राजा दशरथके वैराग्य और सर्वभूत आचार्यके आगमनका वर्णन करनेवाला उन्तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२९॥



---

१. विस्मयं च तिपूर्णः म. ।

त्रिंशत्तमं पर्व

ततः कालो गत क्वापि घनौघडमरो [1]नृप । प्रोद्यद्यौ पुष्करं धौतमण्डलाग्रसमप्रभम् ॥१॥
पद्मोत्पलादिजलजपुष्पमुन्मादकृद् बभौ । साधूनां हृदयं यद्वद् बभूव विमलं जलम् ॥२॥
शरत्कालः परिप्राप्तः प्रकटं कुमुदैर्हसन् । नष्टमिन्द्रधनुर्जाता धरणी पङ्कवर्जिता ॥३॥
विद्युत्संभावनायोग्यास्तूलराशिसमत्विषः । क्षणमात्रमदृश्यन्त [2]घनलेखा क्वचित्क्वचित् ॥४॥
सन्ध्यालोकललामभृद्[3] ज्योत्स्नाशुचिमहाम्बरा । निशानवबधूर्भाति चन्द्रचूडामणिस्तदा ॥५॥
चक्रवाककृतच्छाया मत्तसारसनादिताः । वाप्यः पद्मवनाभ्यन्तराजहंसैर्विराजिरे ॥६॥
भामण्डलकुमारस्य सीतां चिन्तयतस्तु तत् । ऋतुनार्चितमप्येवं जातमग्निसमं जगत् ॥७॥
अरत्याकर्षिताङ्गोऽसौ परित्यज्यान्यदा त्रपा । पितुः पुरः परं मित्रं वसन्तध्वजमब्रवीत् ॥८॥
[4]दीर्घसूत्री भवानेवं परकार्येषु शीतलः[5] । [6]गणयन्नमिदं दुःखं तस्यां मे गतचेतसः[7] ॥९॥
उद्वेगविपुलावर्ते प्रत्याशाजलधौ मम । निमज्जनः सखे कस्माद्दीयते नावलम्बनम् ॥१०॥
इत्यार्तध्यानयुक्तस्य निशम्य गदितं बुधाः । सर्वे [8]गतप्रभीभूता विषादं परमं ययुः ॥११॥
तान् वीक्ष्य शोकसंतप्तान् वारणानिव शुष्यतः । आवर्जितशिरा व्रीडां क्षणं भामण्डलोऽगमत् ॥१२॥

अथानन्तर मेघोंके आडम्बरसे युक्त वर्षाकाल कहीं चला गया और आकाश माँजे हुए कृपाणके समान निर्मल प्रभाका धारक हो गया ॥१॥ कमल उत्पल आदि जलमें उत्पन्न होनेवाले पुष्प कामीजनोंको उन्माद करते हुए सुशोभित होने लगे तथा जल साधुओंके हृदयके समान निर्मल हो गया ॥२॥ कुमुदोंके सफेद पुष्पोंसे प्रकट रूपसे हँसता हुआ शरद्काल आ पहुँचा, इन्द्रधनुष नष्ट हो गया और पृथ्वी कीचड़से रहित हो गयी ॥३॥ जिनमें बिजली चमकनेकी सम्भावना नहीं थी और जो रूईके समूहके समान सफेद कान्तिके धारक थे ऐसे मेघोंके खण्ड कहीं-कहीं दिखाई देने लगे ॥४॥ सन्ध्याका लाल-लाल प्रकाश जिसका सुन्दर ओंठ था, चाँदनी ही जिसका अत्यन्त उज्ज्वल वस्त्र था और चन्द्रमा ही जिसका चूडामणि था, ऐसी रात्रिरूपी नववधू उस समय अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥५॥ चक्रवाक पक्षी जिनकी शोभा बढ़ा रहे थे, और मदोन्मत्त सारस जहाँ शब्द कर रहे थे ऐसी वापिकाएँ कमलवनमें घूमते हुए राजहंसोंसे सुशोभित हो रही थीं ॥६॥ इस तरह यह जगत् यद्यपि शरद्ऋतुसे सुशोभित था तो भी सीताकी चिन्ता करनेवाले भामण्डलके लिए अग्निके समान जान पड़ता था ॥७॥

अथानन्तर अरतिसे जिसका शरीर आकर्षित हो रहा था ऐसा भामण्डल एक दिन लज्जा छोड़ पिताके आगे अपने परममित्र वसन्तध्वजसे इस प्रकार बोला कि ॥८॥ आप बड़े दीर्घसूत्री हैं—देरसे काम करनेवाले हैं और दूसरेके कार्य करनेमें अत्यन्त मन्द हैं। उस सीतामें जिसका चित्त लग रहा है ऐसे मुझे दुःख उठाते हुए अनेक रात्रियाँ व्यतीत हो गयीं। फिर भी तुझे चिन्ता नहीं है ॥९॥ जिसमें उद्वेगरूपी बड़ी-बड़ी भँवरें उठ रही हैं ऐसे आशारूपी समुद्रमें मैं डूब रहा हूँ। सो हे मित्र! मुझे सहारा क्यों नहीं दिया जा रहा है ॥१०॥ इस प्रकार आर्तध्यानसे युक्त भामण्डलके वचन सुनकर सभी विद्वान् हतप्रभ होते हुए परम विषादको प्राप्त हुए ॥११॥ तदनन्तर उन सबको शोकसे सन्तप्त तथा हाथियोंके समान सूखते हुए देख भामण्डल शिर नीचा कर क्षणभरके लिए

---

१. नृपः म.। २. उज्ज्वलकृपाणतुल्यप्रभम्। ३. मेघलेशाः, घनलेश्याः म., ख., ब.। ४. विलम्बेन कार्यकारी। ५. मन्दः। ६. बहूनां रात्रीणां समूहः। ७. गतवेगतः म.। ८. निसर्गतः म.। ९. गतप्रभाभूताः म.।

बृहत्केतुस्ततोऽवोचत् किमद्याप्युपगुह्यते । निवेद्यतां कुमारस्य निराशो येन जायते ॥१३॥
ततस्ते कथयाञ्चक्रुस्तस्मै सर्वं यथाविधि । [1]चन्द्रयानं पुरस्कृत्य कथमप्युज्झितक्षराः ॥१४॥
जनको बाल कन्यायां [2]हृहैवास्माभिराहृतः । याचितश्चातियत्नेन पद्मस्योचे प्रकल्पिताम् ॥१५॥
उक्तप्रत्युक्तमालाभिरस्माभिस्तेन निर्जितैः । धनूरत्नावधिश्चक्रे कृतसंमन्त्रणैः किल ॥१६॥
धनूरत्नलता तस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः । शादू[3]लस्य क्षुधार्तस्य मांसपेशी यथार्पिता ॥१७॥
कन्या स्वयंवरा साध्वी कथा हृदयहारिणी । नवयौवनलावण्यपरिपूरितविग्रहा ॥१८॥
अपालेन्दुमुखा बाला मदनेन समन्विता । वैदेही रामदेवस्य श्रीसमा वनिताभवत् ॥१९॥
न चापे सागते जाते गदासीरादिसंयुते । अमराधिष्ठिते नापि कन्या त्रैलोक्यसुन्दरी ॥२०॥
अपि द्रष्टुं न ये शक्ये सुपर्णोरगदानवैः । रामलक्ष्मणवीराभ्यामाकृष्टे ते शरासने ॥२१॥
प्रसह्य साधुना हर्तुमशक्या त्रिदशैरपि । किमुतात्यन्तमस्माभिर्निस्सारैर्धनुषी विना ॥२२॥
पूर्वमेव हृता कस्मान्नेति चेन्मन्यसे शिशो । यज्ञमाता दशास्यस्य जनकस्य सुहृन्मधुः ॥२३॥
अनगम्य कुमारैवं विनीतः स्वस्थतां भज । शक्नोति न सुरेन्द्रोऽपि विधातुं विधिमन्यथा ॥२४॥

लज्जाको प्राप्त हुआ ॥१२॥ तब बृहत्केतु नामा विद्याधर बोला कि अबतक इस बातको क्यों छिपाया जाता है प्रकट कर देना चाहिए जिससे कि कुमार इस विषयमें निराश हो जावे ॥१३॥

तदनन्तर उन सबने चन्द्रयानको आगे कर लड़खड़ाते अक्षरोंमें सब समाचार भामण्डलसे कह दिया ॥१४॥ उन्होंने कहा कि हे कुमार ! हम लोग कन्याके पिताको यहाँ ही ले आये थे और उससे यत्नपूर्वक कन्याकी याचना भी की थी पर उसने कहा था कि मैं उस कन्याको रामके लिए देना संकल्पित कर चुका हूँ ॥१५॥

उत्तर-प्रत्युत्तरसे जब उसने हम सबको पराजित कर दिया तब हमने मन्त्रणा कर धनुषरत्नकी अवधि निश्चित की अर्थात् राम और भामण्डलमें-से जो भी धनुष-रत्नको चढ़ा देगा वही कन्याका स्वामी होगा ॥१६॥ हम लोगोंने धनुषकी शर्त इसलिए रखी थी कि राम उसे चढ़ा नहीं सकेगा अतः अगत्या तुम्हें ही कन्याकी प्राप्ति होगी परन्तु वह धनुषरत्नरूपी लता पुण्याधिकारी रामके लिए ऐसी हुई जैसे भूखसे पीड़ित सिंहके लिए मांसकी डली अर्पित की गयी हो अर्थात् रामने धनुष चढ़ा दिया जिससे वह साध्वी कन्या स्वयंवरमें रामकी स्त्री हो गयी। वह कन्या अपने वचनोंसे हृदयको हरनेवाली थी, नवयौवनसे उत्पन्न लावण्यसे उसका शरीर भर रहा था, तरुण चन्द्रके समान उसका मुख था, लक्ष्मीकी तुलना करनेवाली थी और कामसे सहित थी ॥१७-१९॥

वे सागरावर्त और वज्रावर्त नामा धनुष आजकलके धनुष नहीं थे किन्तु बहुत प्राचीन थे, गदा, हल आदि शस्त्रोंसे सहित थे, देवोंसे अधिष्ठित थे तथा सुपर्ण और उरग जातिके दैत्योंके कारण उनकी ओर देखना भी सम्भव नहीं था। फिर भी राम-लक्ष्मणने उन्हें चढ़ा दिया और रामने वह त्रिलोकसुन्दरी कन्या प्राप्त कर ली ॥२०-२१॥ इस समय वह कन्या देवोंके द्वारा भी जबरदस्ती नहीं हरी जा सकती है फिर जो उन धनुषोंके निकल जानेसे अत्यन्त सारहीन हो गये हैं ऐसे हम लोगोंकी तो बात ही क्या है ॥२२॥ हे कुमार ! यदि यह कहो कि रामके स्वयंवरके पहले ही उसे क्यों नहीं हर लिया तो उसका उत्तर यह है कि रावणका जमाई राजा मधु जनकका मित्र है सो उसके रहते हम कैसे हर सकते थे ? ॥२३॥ इसलिए यह सब जानकर हे कुमार ! स्वस्थताको प्राप्त होओ, तुम तो अत्यन्त विनीत हो, जो कार्य जैसा होना होता है उसे इन्द्र भी अन्यथा नहीं कर सकता ॥२४॥

१. चण्डयानं म. । २. विहैव म. । ३. उर्मिपता म. ।

ततः स्वयंवरोदन्तं श्रुत्वा भामण्डलो ह्रिया । विषादेन च संपूर्णः कृच्छ्रं चिन्तान्तरं गतः ॥२५॥
निरर्थकमिदं जन्म विद्याधरतया समम् । यतः प्राकृतवत् कश्चिन्न संप्राप्तोऽस्मि तां प्रियाम् ॥२६॥
ईर्ष्याक्रोधपरीतश्च सभामाह हसन्नसौ । का वः खेचरता[1] भीतिं भजतां भूमिगोचरात् ॥२७॥
आनयाम्येष सत्कन्यां स्वयं निर्जित्य भूचरान् । न्यासापहारिणां कुर्वे यक्षाणां च विनिग्रहम् ॥२८॥
इत्युक्त्वासौ [2]सुसज्जश्च विमानी विषदुद्गतः । पुरकाननसंपूर्णं पृथिवीतलमैक्षत ॥२९॥
ततो दृष्टिर्गता तस्य विदग्धविषये क्रमात् । महीध्रसंकटे रम्ये नगरे चारुसेविते ॥३०॥
दृष्टं मया कदाप्येतदिति चिन्तामुपागतः । जातिस्मरत्वमासाद्य समवाप्य स मूर्छनम् ॥३१॥
पितुरन्ते ततो नीतः सचिवैराकुलात्मकैः । चन्दनद्रवसिक्ताङ्गः प्रमदाभिः प्रबोधितः ॥३२॥
अन्योन्यं दत्तनेत्रं च हसित्वा ताभिरूच्यत । कुमार युक्तमेतत्ते कातरत्वमनुत्तमम् ॥३३॥
अदृष्टाप्तनिचर्यार्थं निश्शेषरहितत्रपः[3] । गुरूणामग्रतो मोहं यत्प्राप्तोऽसि विचक्षण[4] ॥३४॥
भज खेचरनाथानां कन्या देव्यधिकप्रभाः । जनजल्पनकं व्यर्थं मूर्खं सुन्दर मा कृथाः ॥३५॥
ततोऽसावब्रवीदेवं व्रीडाशोकनताननः । धिग्मया बतमोहेन विरुद्धं चिन्तितं महत् ॥३६॥
नीचानामपि नात्यन्तमीदृशं कर्म युज्यते । अहो कर्मभिरत्यर्थमशुभैरभिचेष्टितः ॥३७॥
एकस्मिन्नुषितः कुक्षौ क्वापि साधं मया तया । दुष्कर्मविगमाज्ज्ञाता कथंचित् साधुना मया ॥३८॥
ततस्तं शोकभारेण पीडितं चन्द्रविक्रमः । अङ्कमारोप्य चुम्बित्वा पप्रच्छ पुरुविस्मयः ॥३९॥

तदनन्तर स्वयंवरका वृत्तान्त सुनकर भामण्डल लज्जा और विषादसे युक्त होता हुआ दुःखके साथ यह विचार करने लगा कि ॥२५॥ अहो ! मेरा यह विद्याधर जन्म निरर्थक है कि जिससे मैं साधारण मनुष्यकी तरह उस प्रियाको प्राप्त नहीं कर सका ॥२६॥ ईर्ष्या और क्रोधसे युक्त होकर उसने हँसते हुए सभासे कहा कि जब आप लोग भूमिगोचरीसे भी भय रखते हो तब आपका विद्याधर होना किस कामका ? ॥२७॥ मैं भूमिगोचरियोंको जीतकर स्वयं ही उस उत्तम कन्याको ले आता हूँ तथा धनुषरूपी धरोहरका अपहरण करनेवाले यक्षोंका निग्रह करता हूँ ॥२८॥ ऐसा कहकर वह तैयार हो विमानमें बैठकर आकाशमें जा उड़ा । वहाँसे उसने पुर और वनसे भरा पृथ्वीतल देखा ॥२९॥ तदनन्तर उसकी दृष्टि अनेक पर्वतोंसे युक्त विदग्ध नामक देशमें अपने पूर्वभवके मनोहर नगरपर पड़ी ॥३०॥ यह नगर मैंने कभी देखा है—इस प्रकार चिन्ता करता हुआ वह जातिस्मरणको प्राप्त होकर मूर्च्छित हो गया ॥३१॥ तदनन्तर घबड़ाये हुए मन्त्री उसे पिताके समीप ले आये । वहाँ स्त्रियोंने चन्दनके द्रवसे उसका शरीर सींचकर उसे सचेत किया ॥३२॥ स्त्रियोंने परस्पर नेत्रका इशारा कर तथा हँसकर उससे कहा कि हे कुमार ! तुम्हारी यह कातरता अच्छी नहीं ॥३३॥ जो तुम बुद्धिमान् होकर भी भूचर्याका समस्त प्रयोजन बिना देखे ही गुरुजनोंके आगे इस तरह मोहको प्राप्त हुए हो ॥३४॥ देवियोंसे भी अधिक कान्तिको धारण करनेवाली विद्याधर राजाओंकी अनेक कन्याएँ हैं सो उन्हें तुम प्राप्त होओ । हे सुन्दर ! इस तरह व्यर्थ ही लोकापवाद मत करो ॥३५॥

तदनन्तर लज्जा और शोकसे जिसका मुख नीचा हो रहा था ऐसे भामण्डलने इस प्रकार कहा कि मुझे धिक्कार हो, जो मैंने तीव्र मोहमें पड़कर इस प्रकार विरुद्ध चिन्तवन किया ॥३६॥ ऐसा कार्य तो अत्यन्त नीच कुलवालोंको भी करना उचित नहीं है । अहो, मेरे अत्यन्त अशुभ कर्मोंने कैसी चेष्टा दिखायी ? ॥३७॥ मैंने उसके साथ एक ही उदरमें शयन किया है । आज पापकर्मका उदय मन्द हुआ इसलिए किसी तरह उसे जान सका हूँ ॥३८॥ तदनन्तर शोकके भारसे पीड़ित भामण्डलको गोदमें रखकर बहुत भारी आश्चर्यसे भरा चन्द्रगति चुम्बन कर पूछने लगा

---

१. वाचः खेचरता (?) म. । २. तत्परो भूत्वा । ३. रहितं त्रपः म. । ४. विचक्षणः म. ।

वद पुत्रक किं श्वेतदीदृशं भाषितं त्वया । सोऽवोचत्तात वक्तव्यं चरितं शृणु मामकम् ॥४०॥
पूर्वजन्मनि वास्येऽस्मिन् विदग्धे नगरे नृपः । अभूवं परराष्ट्राणां ध्वंसको मण्डितध्वनिः ॥४१॥
सर्वस्यामवनौ ख्यातः सततं विग्रहप्रियः । पालको निजलोकस्य महाविभवसंयुतः ॥४२॥
हृता तत्र मया जाया विप्रस्याशुभकर्मणा । मायया ऽवाकृतश्चासौ गतः क्वाप्यतिदुःखितः ॥४३॥
ततोऽनरण्यसेनाख्या गमितस्तनुशोषताम्[1] । पर्यटन् धरणीं क्वापि प्राप्तोऽस्मि मुनिसंश्रयम् ॥४४॥
यत्र त्रिलोकपूज्यानां सर्वज्ञानां महात्मनाम् । मतं भगवतां प्राप्तमर्हतां पावनं मया ॥४५॥
तत्र बान्धवभूतस्य गुरोः शासनतो मया । अनामिषं व्रतं क्षुद्रं गृहीतं क्षुद्रशक्तिना ॥४६॥
शासनस्य जिनेन्द्राणामहो माहात्म्यमुत्तमम् । तथापि यन्महापापो नावतीर्णोऽस्मि दुर्गतिम् ॥४७॥
अनन्यशरणत्वेन व्रतेन नियमेन च । समसम्येन जीवेन विदेहाकुक्षिमागमत् ॥४८॥
सुखेन च प्रसूता सा कन्यया सहितं [2]सुतम् । केनाप्यपहृतश्चायं गृध्रेण पिशितं यथा ॥४९॥
नक्षत्रगोचरातीतं तेन नीतोऽस्मि पुष्करम्[3] । असौ नूनं स यस्यासौ हृता जाया मया पुरा ॥५०॥
मारयामीति सेलोक्त्वा भूयः कृत्वानुकम्पनम् । शनैरस्मि विमुक्तः स्यात् कुण्डलाभ्यामलंकृतम् ॥५१॥
[illegible] तदा राजसुतं ते परमे [illegible] गृहीत्वा तात तुष्टोऽस्मि जायायै करुणावता ॥५२॥
सोऽहं भवत्प्रसादेन तदङ्के वृद्धिमागतः । परं विद्याधरत्वं च कृततुर्लंघितक्रियः ॥५३॥
इत्युक्त्वा विरराजासौ विस्मयं च जनो गतः । हाकारबहुलं शब्दं कुर्वन् कम्पितमस्तकः ॥५४॥

॥३९॥ कि हे पुत्र ! कह, तूने ऐसा कथन किसलिए किया ? इसके उत्तरमें उसने कहा कि हे तात ! मेरा कहने योग्य चरित सुनिए ॥४०॥

पूर्वजन्ममें मैं इसी देशके विदग्ध नगरमें दूसरे देशोंको लूटनेवाला, समस्त पृथिवीमें प्रसिद्ध, युद्धका प्रेमी, अपनी प्रजाकी रक्षा करनेवाला तथा महाविभवसे संयुक्त कुण्डलमण्डित नामका राजा था ॥४१-४२॥ वहाँ मैंने अशुभ कर्मके उदयसे एक ब्राह्मणकी स्त्री हरी और ब्राह्मणको मायापूर्वक तिरस्कृत किया जिससे वह अत्यन्त दुःखी होकर कहीं चला गया ॥४३॥ तदनन्तर राजा अनरण्यके सेनापतिने मेरी सब सम्पत्ति हरकर मेरे पास केवल मेरा शरीर ही रहने दिया। अन्तमें अत्यन्त दरिद्र हो पृथिवीपर भटकता हुआ मैं कहीं मुनियोंके आश्रममें पहुँचा ॥४४॥ वहाँ मैंने तीनों लोकोंसे पूज्य, सब पदार्थोंको जाननेवाले तथा महान् आत्माके धारक अरहन्त भगवान्का पवित्र धर्म प्राप्त किया ॥४५॥ और समस्त जीवोंके बान्धवभूत श्री गुरुके उपदेशसे निरतिचार मांसत्याग व्रत धारण किया। मैं अत्यन्त क्षुद्र शक्तिका धारक था इसलिए अधिक व्रत धारण नहीं कर सका ॥४६॥ अहो ! जिन शासनका बड़ा माहात्म्य है जो मैं महापापी होकर भी दुर्गतिको प्राप्त नहीं हुआ ॥४७॥ श्री जिनधर्मकी शरण होनेसे तथा व्रत और नियमके प्रभावसे मेरा जीव किसी अन्य जीवके साथ राजा जनककी विदेहा रानीके उदरमें पहुँचा ॥४८॥ रानी विदेहाने सुखपूर्वक कन्याके साथ एक पुत्र उत्पन्न किया सो जिस प्रकार गीध मांसके टुकड़ेको हर लेता है उसी प्रकार किसीने उस पुत्रको हर लिया ॥४९॥ वह व्यक्ति उस बालकको नक्षत्रोंसे भी अधिक ऊँचे आकाशमें ले गया। यथार्थमें व्यक्ति वही था जिसकी स्त्री पहले मैंने हरी थी ॥५०॥ पहले तो उसने कहा कि मैं इसे मारता हूँ परन्तु फिर दया कर उसने कुण्डलोंसे अलंकृत कर धीरेसे आकाशसे छोड़ दिया ॥५१॥ उस समय तुम परम उपवनमें विद्यमान थे सो रात्रिमें पड़ता देख तुमने मुझे ऊपरसे ही पकड़ लिया और दयालु होकर अपनी रानीके लिए सौंपा ॥५२॥ आपके प्रसादसे रानीकी गोदमें वृद्धि प्राप्त हुआ, उत्कृष्ट विद्याओंका धारक हुआ और बहुत ही लाड़-प्यारसे मेरा पालन हुआ ॥५३॥ यह कहकर भामण्डल चुप हो रहा तथा उपस्थित समस्त लोग

१. गमिस्तुच्छेषतां म. । २. पुत्रं 'सुक् तोकं चात्मजः प्रजा' इत्यमरः । ३. गगनम् ।

इमं चन्द्रगतिः श्रुत्वा वृत्तान्तमतिविस्मितम् । लोकधर्मसं[1]बन्ध्यं विदित्वा भवबन्धनम् ॥५५॥
[2]भूतमात्रमतिं त्यक्त्वा सुनिश्चित्यात्मकर्मणाम् । परं प्रबोधमायातः संवेगं च सुदुर्लभम् ॥५६॥
आत्मीयं राज्यमाधाय तत्र पुत्रे यथाविधि । सर्वभूतहितस्यागात् पादमूलं त्वरान्वितः ॥५७॥
भगवान् स हि सर्वत्र विष्टपे प्रथितात्मकः । गुणरश्मिसमूहेन भव्यानन्दविधायिना ॥५८॥
महेन्द्रोदयसं[3]ज्ञातं तमभ्यर्च्य प्रणिपत्य च । स्तुत्वा च भावतोऽत्यादरेण मूर्धाहितांजलिः ॥५९॥
भगवंस्त्वत्प्रसादेन संप्राप्य जिनदीक्षणम् । तपोविधातुमिच्छामि निर्विण्णो गृहवासतः ॥६०॥
एवमस्विति तेनोक्ते तारं भेर्यः[4] समाहिताः । भामण्डलः परं चक्रे महिमानं च भावतः ॥६१॥
कलं प्रवरनारीभिर्गीतं वंशस्वनानुगम्[5] । जगर्ज तूर्यसङ्घातः करतालसमन्वितः ॥६२॥
श्रीमान् जनकराजस्य तनयो जयतीति च । इत्युच्चैर्वन्दिनां नादः संजज्ञे प्रतिनादवान् ॥६३॥
तेनोद्यानसमुत्थेन नादेन श्रोत्रहारिणा । नक्तं कृतो विनीतायां कृत्तनिद्रोऽखिलो जनः ॥६४॥
ऋषिसंबन्धमुद्घ्यानं श्रुत्वा जैनाः प्रमोदिनः । जाता जना विषण्णाश्च मिथ्यादर्शनपूरिताः ॥६५॥
रोमाञ्चार्चितसर्वाङ्गा विस्फुरद्वामलोचना । सीता सिक्तामृतेनेव बुबुधे ध्वनिनामुना ॥६६॥
अचिन्तयच्च को न्वेष जनको यस्य नन्दनः । जयतीति मुहुर्नादः श्रूयतेऽत्यन्तमुन्नतः ॥६७॥
कनकस्याग्रजो राजा ममापि जनकः पिता । जातमात्रश्च मे भ्राता हृतो यः किं न्वसौ भवेत् ॥६८॥

हाहाकार करते तथा मस्तक हिलाते हुए आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥५४॥ राजा चन्द्रगति यह अत्यन्त आश्चर्यकारी वृत्तान्त सुनकर परम प्रबोध तथा अत्यन्त दुर्लभ संवेगको प्राप्त हुआ। उसने लोक-धर्म अर्थात् स्त्री-सेवनरूपी वृक्षको सुखरूपी फलसे रहित तथा संसारका बन्धन जाना, इन्द्रियोंके विषयोंमें जो बुद्धि लग रही थी उसका परित्याग किया, आत्म-कर्तव्यका ठीक-ठीक निश्चय किया, पुत्रके लिए विधिपूर्वक अपना राज्य दिया और बड़ी शीघ्रतासे सर्वभूतहित नामक मुनिराजके चरणमूलमें प्रस्थान किया ॥५५-५७॥

भगवान् सर्वभूतहित भव्य जीवोंको आनन्द देनेवाले गुणरूपी किरणोंके समूहसे समस्त संसारमें प्रसिद्ध थे ॥५८॥ महेन्द्रोदय नामा उद्यानमें स्थित उन सर्वभूतहित मुनिराजकी पूजा कर नमस्कार कर तथा भावपूर्वक स्तुति कर हाथ जोड़ मस्तकसे लगाकर राजा चन्द्रगतिने इस प्रकार कहा कि हे भगवन्! मैं गृहवाससे विरक्त हो चुका हूँ इसलिए आपके प्रसादसे जिनदीक्षा प्राप्त कर तपश्चरण करना चाहता हूँ ॥५९-६०॥ 'एवमस्तु' ऐसा कहनेपर भामण्डलने भावपूर्वक परम प्रभावना की। जोर-जोरसे भेरियाँ बजने लगीं, उत्तम स्त्रियोंने बाँसुरीकी ध्वनिके साथ मनोहर गीत गाया, करतालके साथ-साथ अनेक वादित्रोंके समूह गर्जना करने लगे। 'राजा जनकका लक्ष्मीशाली पुत्र जयवन्त हो रहा है' बन्दीजनोंका यह जोरदार शब्द प्रतिध्वनि करता हुआ गूँजने लगा ॥६१-६३॥ उद्यानसे उठे हुए इस श्रोत्रहारी शब्दने रात्रिके समय अयोध्यावासी समस्त लोगोंको निद्रारहित कर दिया ॥६४॥ ऋषियोंसे सम्बन्ध रखनेवाली इस हर्षध्वनिको सुनकर जैन लोग परम हर्षको प्राप्त हुए और मिथ्यादृष्टि लोग विषादसे युक्त हो गये ॥६५॥ उस शब्दको सुनकर सीता भी इस प्रकार जाग उठी मानो अमृतसे ही सींची गयी हो, उसके समस्त अंग रोमांचसे व्याप्त हो गये तथा उसका बायाँ नेत्र फड़कने लगा ॥६६॥ वह विचारने लगी कि यह जनक कौन है जिसका कि पुत्र जयवन्त हो रहा है। यह अत्यन्त उन्नत शब्द बार-बार सुनाई दे रहा है ॥६७॥ राजा जनक कनकका बड़ा भाई और मेरा पिता है। मेरा भाई उत्पन्न होते ही हरा गया था सो यह वही तो नहीं है? ॥६८॥

---

१. बध्यं म.। बन्ध्या क.। २. भूतमात्रमति म.। ३. मात्यन्त ब.। ४. उच्चैः। ५. नारंभे स., म.। दुन्दुभयः। ६. वंशस्वसानुगं म.। ७. विपन्नाइव म.।

ध्यात्वेति सोदरस्नेहसुसंप्लावितमानसा । मुक्तकण्ठं रुरोदासौ परिदेवनकारिणी ॥६९॥
ततो रामोऽभिरामाङ्गः प्रोवाच मधुराक्षरम् । कस्माद् रोदिषि वैदेहि भ्रातृशोकेन कर्शिता ॥७०॥
भवत्या यदसौ भ्राता श्वो ज्ञातास्मो न संशयः । अथवान्यः क्वचित् कोऽपि पण्डिते शोचितेन किम् ॥७१॥
कारणं यदतिक्रान्तं मृतमिष्टं च बान्धवम् । हृतं विनिर्गतं नष्टं न शोचन्ति विचक्षणाः ॥७२॥
कातरस्य विषादोऽस्ति दयिते [1]प्राकृतस्य च । न कदाचिद्विषादोऽस्ति विक्रान्तस्य [2]बुधस्य च ॥७३॥
एवं तयोः समालापं दम्पत्योः कुर्वतोः क्षपा । क्षुपयैव गता शीघ्रं जातमङ्गलनिस्वना ॥७४॥
ततो दशरथः कृत्वा प्रस्थाङ्गं वस्तु सादरः । नगरीतो विनिष्क्रान्तः ससुतः साङ्गनाजनः ॥७५॥
हतप्रेतश्च विस्तीर्णां पश्यन् खेचरवाहिनीम् । ययौ स विस्मयापन्नः सामन्तशतपूरितः ॥७६॥
ईक्षांचक्रे च देवेन्द्रपुरतुल्यं विनिर्मितम् । क्षणाद्विद्याधरैः स्थानं तुङ्गप्राकारगोपुरम् ॥७७॥
पताकातोरणैश्चित्रं रत्नैश्च कृतमण्डनम् । प्रविवेश यदुद्यानं साधुलोकसमाकुलम् ॥७८॥
नत्वा स्तुत्वा च तत्रासौ गुरुं गुणगुरुं नृपः । ददर्शोदयने मानोश्चन्द्रयानस्य दीक्षणम् ॥७९॥
नभश्चरैः समं पूजां कृत्वा सुमहतीं गुरोः । एकपार्श्वे निविष्टोऽसौ सर्वबान्धवसङ्गतः ॥८०॥
श्रीयसामण्डलोऽप्येवं सार्धं खेचरादिभिः खेचरैः । समन्तैः सहितस्तस्थौ किंचिच्छोकमिवोद्वहन् ॥८१॥
खेचरा भूचराश्चैते मुनयश्चान्तिकं स्थिताः । शुश्रुवुर्गुरुतो धर्ममनगारं तथेतरम् ॥८२॥
चरितं निरगाराणां शूराणां शान्तमोहितम् । शिवं सुदुर्लभं सिद्धं सारं क्षुद्भयापहम् ॥८३॥

ऐसा विचार कर भाईके स्नेहसे जिसका मन व्याप्त हो रहा था ऐसी सीता विलाप करती हुई गला फाड़कर रोने लगी ॥६९॥

तदनन्तर सुन्दर शरीरके धारी रामने मधुर अक्षरोंमें कहा कि वैदेहि ! भाईके शोकसे विवश हो क्यों रही हो ॥७०॥ यदि यह तुम्हारा भाई है तो कल मालूम करेंगे इसमें संशय नहीं है और यदि कहीं कोई दूसरा है तो हे पण्डिते ! शोक करनेसे क्या लाभ है ? ॥७१॥ क्योंकि जो चतुर जन हैं वे बीते हुए, मरे हुए, हरे हुए, गये हुए अथवा गुमे हुए इष्टजनका शोक नहीं करते हैं ॥७२॥ हे वल्लभे ! विषाद उसका किया जाता है जो कातर होता है अथवा बुद्धि-हीन होता है। इसके विपरीत जो शूरवीर बुद्धिमान् होता है उसका विषाद नहीं किया जाता ॥७३॥ इस प्रकार दम्पतीके वार्तालाप करते-करते रात्रि बीत गयी सो मानो दयासे ही शीघ्र चली गयी और प्रातःकाल सम्बन्धी मंगलमय शब्द होने लगे ॥७४॥

तदनन्तर राजा दशरथ अंगसम्बन्धी कार्य कर आदरसहित पुत्रों और स्त्रीजनोंके साथ नगरीसे बाहर निकले ॥७५॥ सैकड़ों सामन्त उनके साथ थे। वे जहाँ-तहाँ फैली हुई विद्याधरोंकी सेनाको देखते हुए आश्चर्यचकित होते जा रहे थे ॥७६॥ उन्होंने क्षण-भरमें ही विद्याधरोंके द्वारा निर्मित ऊँचे कोट और गोपुरोंसे सहित इन्द्रपुरीके समान स्थान देखा ॥७७॥ तदनन्तर उन्होंने पताकाओं और तोरणोंसे चित्रित, रत्नोंसे अलंकृत एवं मुनिजनोंसे व्याप्त उस महेन्द्रोदय नामा उद्यानमें प्रवेश किया ॥७८॥ वहाँ जाकर राजा दशरथने गुणोंसे श्रेष्ठ सर्वभूतहित नामा गुरुको नमस्कार कर तथा उनकी स्तुति कर सूर्योदयके समय राजा चन्द्रगतिका दीक्षामहोत्सव देखा ॥७९॥ उन्होंने विद्याधरोंके साथ गुरुकी बहुत बड़ी पूजा की और उसके बाद वे समस्त भाई-बन्धुओंके साथ एक ओर बैठ गये ॥८०॥ कुछ शोकको धारण करता हुआ भामण्डल भी समस्त विद्याधरोंके साथ एक ओर आकर बैठ गया ॥८१॥ विद्याधर और भूमिगोचरी गृहस्थ तथा मुनिराज सभी लोग पास-पास बैठकर गुरुदेवसे मुनि तथा गृहस्थ धर्मका व्याख्यान सुन रहे थे ॥८२॥ गुरुदेव कह रहे थे कि मुनियोंका धर्म शूरवीरोंका धर्म है, अत्यन्त शान्त दशारूप है, मंगलरूप है, अत्यन्त

---

१. पामरस्य । २. शूरस्य ।

भव्यजीवा यमासाद्य लभन्ते संशयोज्झितम् । सम्यग्दर्शनसंपन्ना गीर्वाणेन्द्रसुखं महत् ॥८४॥
केचित् केवलमासाद्य लोकालोकप्रकाशनम् । लोकाग्रभारमारुह्य मज्जन्ते मैर्वृतं[1] सुखम् ॥८५॥
तिर्यग्नरकदुःखाग्निज्वालाभिः परिपूरितः । संसारो मुच्यते येन तं पन्थानं महोत्तमम् ॥८६॥
सर्वप्राणिहितोऽवोचन्मन्द्रगर्जितनिस्वनः । प्रह्लादं सर्वचित्तानां जनयन्विदिताखिलः ॥८७॥
संदेहतापविच्छेदि तद्वचोम्बु मुनीन्द्रजम् । कर्णाञ्जलिपुटैः पीतं प्राणिभिः प्रीतमानसैः ॥८८॥
ततो दशरथोऽपृच्छत् संजाते वचनान्तरे । चन्द्रकीर्तेः खगेन्द्रस्य वैराग्यं नाथ किंकृतम् ॥८९॥
सीता तत्र विशुद्धाक्षी भ्रातुमिच्छुः महोदरम् । शुश्रूषया मनश्चक्रे विनीतायन्तनिश्चलम् ॥९०॥
शुद्धात्मा भगवानूचे शृणु राजन् विचित्रताम् । जीवानां निर्मितामेतां[2] कर्मभिः स्वयमर्जितैः ॥९१॥
संसारे सुचिरं भ्रान्त्वा जीवोऽयमतिदुःखितः । कर्मनिर्णेरितः प्राप्तश्चान्द्रेण [3]भूतिमण्डलः ॥९२॥
अर्पितः पुष्पवत्यै च स्त्रीचिन्ताकुलतारकः । स्वसारं च समालोक्य गाढाकल्पकमागतः ॥९३॥
जनकः कृत्रिमाश्वेन हृतश्चापस्वयंवरा । जाता विदेहजा चिन्तां परां भामण्डलोऽगमत् ॥९४॥
अस्मरच्च भवं पूर्वं मूर्च्छितः पुनरन्वसीत् । पृष्टश्चन्द्रेण चावोचदिति पूर्वभवक्रियाम् ॥९५॥
भरतस्थे विदग्धाख्ये पुरे कुण्डलमण्डितः । अधार्मिकोऽहरत् कान्तां पिङ्गलस्य मनःप्रियाम् ॥९६॥

दुर्लभ है, सिद्ध है, साररूप है और क्षुद्रजनोंको भय उत्पन्न करनेवाला है ॥८३॥ इस मुनिधर्मको पाकर सम्यग्दृष्टि भव्यजीव निःसन्देह स्वर्गका महासुख प्राप्त करते हैं ॥८४॥ और कितने ही लोक-अलोकको प्रकाशित करनेवाले केवलज्ञानको प्राप्त कर लोकके अग्रभागपर आरूढ़ हो मोक्षका सुख प्राप्त करते हैं ॥८५॥ तिर्यंच और नरक गतिके दुःखरूपी अग्निकी ज्वालाओंसे भरा हुआ यह संसार जिससे छूटता है वही मार्ग सर्वोत्तम है ॥८६॥ ऐसे मार्गका कथन उन मुनिराजने किया था। वे मुनिराज समस्त प्राणियोंका हित करनेवाले थे, गम्भीर गर्जनाके समान स्वरको धारण करनेवाले थे, समस्त जीवोंके चित्तमें आह्लाद उत्पन्न करनेवाले थे तथा समस्त पदार्थोंको जाननेवाले थे ॥८७॥ जिनके चित्त प्रसन्नतासे भर रहे थे ऐसे समस्त लोगोंने सन्देहरूपी सन्तापको नष्ट करनेवाले मुनिराजके वचनरूपी जलका अपने-अपने कर्णरूपी अंजलिपुटसे खूब पान किया ॥८८॥

तदनन्तर जब वचनोंमें अन्तराल पड़ा तब राजा दशरथने पूछा कि हे नाथ! विद्याधरोंके राजा चन्द्रगतिका वैराग्य किस कारण हुआ है? ॥८९॥ वहीं पासमें बैठी निर्मल दृष्टिकी धारक सीता अपने भाईको जानना चाहती थी इसलिए श्रवण करनेकी इच्छासे नम्र हो उसने मनको अत्यन्त निश्चल कर लिया ॥९०॥ तब विशुद्ध आत्माके धारक भगवान् सर्वभूतहित मुनिराज बोले कि हे राजन्! अपने द्वारा अर्जित कर्मोंके द्वारा निर्मित जीवोंकी इस विचित्रताको सुनो ॥९१॥ कर्मरूपी वायुसे प्रेरित हुआ यह भामण्डलका जीव दीर्घकाल तक संसारमें भ्रमण कर अत्यन्त दुःखी हुआ है। अन्तमें जब भामण्डल पैदा हुआ तब वह राजा चन्द्रगतिको प्राप्त हुआ। चन्द्रगतिने पालन-पोषण करनेके लिए अपनी पुष्पवती भार्याको सौंपा। जब यह तरुण होकर स्त्रीविषयक चिन्ताको प्राप्त हुआ तब अपनी बहन सीताका चित्रपट देख अत्यन्त व्यथाको प्राप्त हुआ ॥९२-९३॥ सीताकी मँगनी करनेके लिए मायामयी अश्वके द्वारा राजा जनकका हरण हुआ अन्तमें सीताका धनुष-स्वयंवर हुआ और उसने स्वयंवरमें राजा दशरथके पुत्र रामको वर लिया। इस घटनासे भामण्डल परम चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥९४॥ अकस्मात् इसे पूर्व भवका स्मरण हुआ, जिससे यह मूर्च्छित हो गया। सचेत होनेपर राजा चन्द्रगतिने इसका कारण पूछा तब वह अपने पूर्व भवकी वार्ता इस प्रकार कहने लगा ॥९५॥ कि मैं भरत क्षेत्रके विदग्धनामा नगरमें कुण्डल-

---

१. निर्वाणसंभवम् । २. निर्जित-ब. । ३. मेकां म. । ४. भामण्डलः । ५. गाढव्यथाम् ।

बालेन्दुहृतसर्वस्वो विषयात् स निराकृतः । श्रमणाश्रममासाद्य प्राप व्रतमनामिषम् ॥९७॥
धर्म्यध्यानगतः कृत्वा कालं कलुषवर्जितः । जनकस्य विदेहायाः ससहायस्तनुं श्रितः ॥९८॥
अरण्यात् पिङ्गलः प्राप्तो दृष्ट्वा शून्यकुटीरकम् । कोटरानलजीर्णाङ्गदाहदुःखं समासवान् ॥९९॥
[1]यद्दृशं दुःखितोऽप्राक्षीत्क्षेत्राम्बुकृतदुर्दिनः । दृष्टा स्यात् पुण्डरीकाक्षी [2]मामेत्युन्मत्तविभ्रमः ॥१००॥
हा कान्ते धृति [3]कूजंश्च विलापमकरोदिति । प्रभावतीं सवित्रीं तां तातं चक्रध्वजं च सम् ॥१०१
विभूतिमतितुङ्गां च बान्धवांश्च [4]सुमानसान् । परित्यज्य मयि प्रीत्या विदेशमसि [5]सङ्गता ॥१०२॥
रूक्षाहारकुवस्त्रत्वं मदर्थं सेवितं त्वया । मामुत्सृज्य क्व यातासि सर्वावयवसुन्दरि ॥१०३॥
खिन्नोऽसौ धरणीं दुःखं भ्रान्त्वा सगिरिकाननाम् । वियोगवह्निना दग्धः सोत्कण्ठस्तपसि स्थितः ॥१०४॥
ततो देवत्वमासाद्य चिन्तामेवमुपागमत् । तिर्यग्योनिं किमेता सा कान्ता सम्यक्त्ववर्जिता ॥१०५॥
स्वभावाऋजुसंपन्ना भूयो वा मानुषी भवेत् । जीवितान्ते जिनं स्मृत्वा किं वा देवत्वमागता ॥१०६॥
इति ध्यायन् विनिश्चित्य स्तब्धदृष्टिः प्रकोपवान् । क्वासौ शत्रुर्दुरात्मेति ज्ञात्वा कुक्षिसमाश्रितम् ॥१०७॥
प्रसूतमेककं कृत्वा शान्तः कर्मनियोगतः । बालं मुमोच जीवेहि वदन् विद्याबलकृतम् ॥१०८॥

मण्डित नामका राजा था, मैं बड़ा अधर्मी था इसलिए मैंने उसी नगरमें रहनेवाले पिंगल नामक ब्राह्मणकी सहधर्मिणी [illegible] हरण किया था ॥९६॥ मैं राजा अनरण्यके राज्यमें उपद्रव किया करता था इसलिए उसके सेनापति बालचन्द्रने मेरी सर्व सम्पदा छीनकर मुझे देशसे निकाल दिया। अन्तमें मैं भटकता हुआ मुनियोंके आश्रममें पहुँचा और वहाँ मैंने अनामिष अर्थात् मांसत्यागका व्रत धारण किया ॥९७॥ उसके फलस्वरूप धर्मध्यानसे सहित हो तथा कलुषतासे रहित होकर मैंने मरण किया और मरकर राजा जनककी रानी विदेहाके गर्भमें जन्म धारण किया। जिस स्त्रीका मैंने हरण किया था भाग्यकी बात कि वह भी उसी विदेहाके गर्भमें उसी समय आकर उत्पन्न हुई ॥९८॥ पिंगलने जब जंगलसे लौटकर कुटिया सूनी देखी तो उसे इतना तीव्र दुःख हुआ कि मानो उसका शरीर कोटरकी अग्निसे झुलस ही गया हो ॥९९॥ वह उसके बिना पागल-जैसा हो गया, उसके नेत्रोंसे लगातार दुर्दिनकी भाँति आँसुओंकी वर्षा होने लगी तथा दुःखी होकर वह जो भी दिखता था उसीसे पूछता था क्या तुमने मेरी कमललोचना प्रिया देखी है? ॥१००॥ वह हा कान्ते! इस प्रकार चिल्लाता हुआ विलाप करने लगा तथा कहने लगा कि तुम मुझमें प्रीति होनेके कारण प्रभावती माता, चक्रध्वज पिता, विशाल विभूति और प्रेमसे भरे भाइयोंको छोड़कर विदेशमें आयी थीं ॥१०१-१०२॥ तुमने मेरे पीछे रूखा-सूखा भोजन और अशोभनीय वस्त्र ग्रहण किये हैं फिर भी हे सर्वावयवसुन्दरि! मुझे छोड़कर तुम कहाँ चली गयी हो? ॥१०३॥ खेदखिन्न तथा वियोगरूपी अग्निसे जला हुआ पिंगल पहाड़ों और वनोंसे सहित पृथिवीमें दुःखी होकर चिर-काल तक भटकता रहा। अन्तमें तप करने लगा परन्तु उस समय भी उसे स्त्रीकी उत्कण्ठा सताती रहती थी ॥१०४॥

तदनन्तर देवपर्यायको पाकर वह इस प्रकार चिन्ता करने लगा कि क्या मेरी वह प्रिया सम्यक्त्वसे रहित होकर तिर्यंचयोनिको प्राप्त हुई है ॥१०५॥ अथवा स्वभावसे सरल होनेके कारण पुनः मानुषी हुई या आयुके अन्त समयमें जिनेन्द्रदेवका स्मरण कर देव पर्यायको प्राप्त हुई है? ॥१०६॥ ऐसा विचार कर तथा सब निश्चय कर उसने अपनी दृष्टि स्थिर की तथा कुपित होकर यह विचार किया कि इसे अपहरण करनेवाला दुष्ट शत्रु कहाँ है? कुछ समयके विचारके बाद उसे मालूम हो गया कि वह शत्रु भी इसीके साथ विदेहा रानीकी कुक्षिमें ही विद्यमान है ॥१०७॥ रानी विदेहाने बालक और बालिकाको जन्म दिया सो वैरका बदला लेनेके

---

१. यदर्थं म. । २. रामेत्युन्मत्त म. । ३. कूटांश्च म. । ४. स्वमानसान् ब. । ५. -मपि म. ।

ज्योत्स्नाकृताट्टहासायां रात्रौ प्राप्तः पतंस्त्वया । तदा स्मरसि किं नैतं पुष्पवत्यै समर्पितः ॥१०९॥
प्राप्तो भवत्प्रसादेन विद्याधरविधिर्मया । नूनं माता विदेहा मे सा च सीता सहोदरी ॥११०॥
इत्युक्ते विस्मयं प्राप्ता सर्वा वैद्याधरी सभा । चन्द्रायणश्च संविग्नो न्यस्य भामण्डले श्रियम् ॥१११॥
माता पिता च ते वत्स दुःखे शोकेन तिष्ठति । तयोर्नेत्रोत्सवं यच्छेत्येवमुक्त्वा समागतः ॥११२॥
जातस्य नियतो मृत्युस्ततो गर्भस्थितिः पुनः । इति भीतो भवादेष चन्द्रः प्राव्रज्यमाप्तवान् ॥११३॥
अत्रान्तरे विदेहाजः[1] संशयं परिपृच्छति । स्नेहश्चन्द्रायणादीनां मयि कस्मात् परः प्रभो ॥११४॥
ततः सर्वहितोऽवोचन्निबोध शृणिमण्डल । यथा पिता च माता च तव पूर्वभवे स्थितौ ॥११५॥
दारुग्रामे तु विप्रोऽभूद् विभुर्विप्रस्य भामिनी । अनुकोशाति-भूतेश्च तनयः सरसा स्नुषा ॥११६॥
ऊर्या मात्रा सहप्राप्तः कयानाख्योऽन्यदा द्विजः । अहरत् सरसां सारं धनमन्तर्गतं च यत् ॥११७॥
अतिभूतिश्च तद्धेतोः शोकी बभ्राम मेदिनीम् । ततो निष्पुरुषे गेहे शेषं स्वमपि लुण्ठितम् ॥११८॥
विभुर्विदक्षिणाकाङ्क्षी देशान्तरगतः पुरा । श्रुत्वा कुलक्रमं नष्टं निकृष्टस्त्वरयान्वितः ॥११९॥
जीर्णवस्त्रावशेषाङ्गामनुकोशां सुविह्वलाम् । सान्त्वयित्वा तया सार्धमुर्वीं चान्वेष्टुमुद्यतः ॥१२०॥
प्रजाभिः पृथिवीपृष्ठे क्रम्यमाणं समन्ततः । अवधिज्ञानकरणैर्जगद् येनावभासितम् ॥१२१॥

लिए वह देव बालकको उठा ले गया परन्तु कर्मोदयसे उसके परिणाम शान्त हो गये जिससे उसने उस बालकको लघुपर्णी विद्यासे लघु कर 'जीते रहो' इन शब्दोंका उच्चारण कर आकाशसे छोड़ा ॥१०८॥ जिसमें चाँदनी अट्टहास कर रही थी ऐसी रात्रिमें आकाशसे पड़ते हुए उस बालकको आपने पकड़ा था और अपनी रानी पुष्पवतीके लिए सौंपा था। क्या यह आपको स्मरण नहीं है ? ॥१०९॥ मैंने आपके प्रसादसे विद्याधरपना प्राप्त किया। यथार्थमें विदेहा मेरी माता है वह सीता मेरी बहन है ॥११०॥ भामण्डलके ऐसा कहनेपर विद्याधरोंकी समस्त सभा आश्चर्यको प्राप्त हुई तथा चन्द्रगति संसारसे भयभीत हो भामण्डलके लिए राज्यलक्ष्मी सौंपकर तथा यह कहकर यहाँ चला आया कि हे वत्स ! तेरे माता-पिता शोकके कारण दुःखसे रह रहे हैं सो उनके नेत्रोंको आनन्द प्रदान कर ॥१११-११२॥ तदनन्तर जो उत्पन्न होता है उसका मरण अवश्य होता है और जिसका मरण होता है वह गर्भमें स्थित होता है, ऐसा विचारकर चन्द्रगति संसारसे भयभीत हो वैराग्यको प्राप्त हुआ ॥११३॥ इसी बीचमें भामण्डलने सर्वभूतहित मुनिराजसे पूछा कि हे प्रभो ! चन्द्रगति आदिका मुझपर बहुत भारी स्नेह किस कारण था ॥११४॥ इनके उत्तरमें मुनिराजने कहा कि हे भामण्डल ! तेरे माता-पिता पूर्व भवमें जिस प्रकार थे सो कहता हूँ सुन ॥११५॥ दारुग्राममें एक विभुचि नामका ब्राह्मण था। उसकी स्त्रीका नाम अनुकोशा था और पुत्रका नाम अतिभूति था। अतिभूतिकी स्त्रीका नाम सरसा था ॥११६॥ किसी समय उसके घर अपनी ऊरी नामक माताके साथ कयान नामका एक ब्राह्मण आया सो उसने अतिभूतिकी स्त्री सरसा तथा घरके भीतरका सारभूत धन दोनोंका हरण किया अर्थात् सरसा और धनको लेकर कहीं भाग गया ॥११७॥ इस निमित्तसे अतिभूति बहुत दुःखी हुआ और स्त्रीकी खोजमें पृथिवीपर भ्रमण करने लगा। इधर उसके चले जानेसे घर पुरुषरहित हो गया सो बाकी बचा धन भी चोर ले गये ॥११८॥ विभुचि ब्राह्मण दक्षिणाकी इच्छा करता हुआ पहले ही देशान्तर चला गया था। वहाँ जब उसने सुना कि हमारा कुल-परम्परासे चला आया घर नष्ट हो गया है तब वह शीघ्र ही लौटकर वापस आया ॥११९॥ आकर उसने देखा कि उसकी स्त्री अनुकोशा अत्यन्त विह्वल हो रही है और उसके शरीरपर जीर्ण-शीर्ण फटे चिथड़े ही शेष रह गये हैं। तब उसने उसे सान्त्वना दी और कयानकी माता ऊरीके साथ पुत्रको ढूँढ़नेके लिए गया ॥१२०॥ उसने पृथिवीतलपर

---

१. भामण्डलः ।

तमाचार्यं परिप्राप्तः पुरे सर्वारिनामनि । प्रष्टुं किल महाशोको नष्टचित्तस्तुषात्मजः ॥१२२॥
दृष्ट्वा गणेश्वरीमृद्धिं श्रुत्वा च विविधां स्थितिम् । तीव्रं संवेगमासाद्य विमुचिर्मुनेर्तां गतः ॥१२३॥
पार्श्वे कमलकान्तायाः आर्यायाः सुसमाहिता । समभूर्यानुकोशापि प्रव्रज्य तपसि स्थिता ॥१२४॥
त्रयोऽपि ते शुभध्यानाः कृत्वा कालमलोलुपाः । लौकान्तिकं गता लोकं नित्यालोकमनाकुलम् ॥१२५॥
अतिभूतिप्रभृतयो हिंसावादस्य शंसकाः । द्वेषकाः संयतानां च कुध्यानाः दुर्गतिं गताः ॥१२६॥
मृगीत्वं सरसा प्राप्ता बलाहकनगोरसि । व्याघ्रभीता च्युता यूथान्मृता दावानलाहता ॥१२७॥
जाता मनस्विनीदेव्याः सुता चित्तोत्सवाह्वया । दुःखदानप्रवीणस्य प्रशमात् पापकर्मणः ॥१२८॥
कयानः क्रमशो भूत्वा वारसीकः क्रमेलकः । मृत्वा पिङ्गलनामाभूद्धूम्रकेशस्य नन्दनः ॥१२९॥
हंसस्ताराक्षसरसि सोऽतिभूतिः क्रमादभूत् । श्येनैर्विलुप्तसर्वाङ्गश्चैत्यस्थ पतितोऽन्तके ॥१३०॥
अध्याप्यमानं गुरुणा यशोमित्रं पुनः पुनः । अशृणोदर्हतां स्तोत्रं मुक्त्वानथ जीवितम् ॥१३१॥
दशवर्षसहस्रायुः किन्नरोऽभून्नगोत्तरे । विदग्धनगरे च्युत्वा जातः कुण्डलमण्डितः ॥१३२॥
अहरत् पिङ्गलः कन्यां तथा कुण्डलमण्डितः । यदत्रायं पुरावृत्तः संबन्धः परिकीर्तितः ॥१३३॥
योऽसौ विमुचिरित्यासीत् सोऽयं चन्द्रगतिर्नृपः । अनुकोशा तु जायास्य जाता पुष्पवती पुनः ॥१३४॥
कयानोऽयं सुरो हर्ता सरसा हृदयोत्सवा । ऊरी जाता विदेहा तु सोऽतिभूतिः प्रभामण्डलः ॥१३५॥

भ्रमण करते हुए लोगोंसे सुना कि सर्वारिपुर नामा नगरमें एक आचार्य है जिन्होंने अपने अवधिज्ञानसे इस जगत्को प्रकाशित कर रखा है सो वह उनसे पुत्रकी वार्ता पूछनेके उद्देश्यसे उनके पास गया। विमुचि महाशोकसे भरा था और पुत्र तथा पुत्रवधूका पता न लगनेसे अत्यन्त दुःखी था ॥१२१-१२२॥ वह आचार्य महाराजकी तपऋद्धि देखकर तथा संसारकी नाना प्रकारकी स्थिति सुनकर तीव्र वैराग्यको प्राप्त हुआ और उन्हींके पास दीक्षा लेकर मुनि हो गया ॥१२३॥ विमुचिकी स्त्री अनुकोशा और कयानकी माता ऊरी इन दोनों ब्राह्मणियोंने भी कमलकान्ता नामक आर्यिकाके पास दीक्षा लेकर तप धारण कर लिया ॥१२४॥ विमुचि, अनुकोशा और ऊरी ये तीनों प्राणी महानिस्पृह, धर्मध्यानसे मरकर निरन्तर प्रकाशसे युक्त तथा आकुलतारहित ब्रह्मलोक नामक स्वर्गमें उत्पन्न हुए ॥१२५॥ अतिभूत तथा कयान दोनों ही हिंसा धर्मके समर्थक तथा मुनियोंसे द्वेष रखनेवाले थे। इसलिए खोटे ध्यानसे मरकर दुर्गतिमें गये ॥१२६॥ अतिभूतिकी स्त्री सरसा बलाहक नामक पर्वतकी तलहटीमें मृगी हुई सो व्याघ्रसे भयभीत हो मृगोंके झुण्डसे बिछुड़कर दावानलमें जल मरी ॥१२७॥ तदनन्तर दुःख देनेमें प्रवीण पापकर्मके शान्त होनेसे मनस्विनी देवीके चित्तोत्सवा हुई ॥१२८॥ और कयान मरकर क्रमसे घोड़ा तथा ऊँट हुआ। फिर मरकर धूम्रकेशका पुत्र पिंगल हुआ ॥१२९॥ अतिभूति भवभ्रमण कर क्रमसे ताराक्ष नामक सरोवरके तीरपर हंस हुआ सो किसी समय श्येन अर्थात् बाज पक्षियोंने इसका समस्त शरीर नोंच डाला जिससे घायल होकर जिनमन्दिरके समीप पड़ा ॥१३०॥ वहाँ गुरु यशोमित्र नामक शिष्यको बार-बार अर्हन्त भगवान्का स्तोत्र पढ़ा रहे थे उसे सुनकर हंसने प्राण छोड़े ॥१३१॥ उसके फलस्वरूप वह नगोत्तर नामक पर्वतपर दश हजार वर्षकी आयुवाला किन्नर देव हुआ और वहाँसे च्युत होकर विदग्धनगरमें राजा कुण्डलमण्डित हुआ ॥१३२॥ पूर्वभवके संस्कारसे चित्तोत्सवा कन्याका पिंगलने अपहरण किया और उसके पाससे कुण्डलमण्डित राजाने अपहरण किया। इन सबका जो पूर्वभवका सम्बन्ध था वह पहले कहा जा चुका है ॥१३३॥ इनमें जो विमुचि ब्राह्मण था वह चन्द्रगति राजा हुआ, उसकी अनुकोशा नामकी जो स्त्री थी वही पुष्पवती नामकी फिरसे स्त्री हुई ॥१३४॥ कयान अपहरण करनेवाला देव हुआ, सरसा चित्तोत्सवा हुई, ऊरी विदेहा और अतिभूति भामण्डल हुआ ॥१३५॥

ततो दशरथः श्रुत्वा तं वृत्तान्तमशेषतः । भामण्डलं समाश्लिष्य बाष्पपूर्णनिरीक्षणः ॥१३६॥
अद्भुतैर्जितमूर्धानो जातरोमोद्गमा भृशम् । आनन्दबाष्पलोलाक्षा सभायामभवज्जनाः ॥१३७॥
उद्गीर्णमाननेनैव प्रीत्या तं वीक्ष्य सोदरम् । मृगीव रुदती स्नेहाद्धावोद्धूतभुजद्वया ॥१३८॥
हा भ्रातः प्रथमं दृष्टो मयाद्यासीतिवादिनी । तमाश्लिष्य चिरं सीता कृत्वा धृतिमागता ॥१३९॥
संभाषितः स रामेण संभ्रमाकिञ्चितश्रिया । लक्ष्मणेन तथान्येन बन्धुलोकेन सादरम् ॥१४०॥
नमस्कृत्य मुनिं श्रेष्ठं ततः खेचरभूचराः । उद्यानात् प्रमदापूर्णा निरीयुः सुविराजिताः ॥१४१॥
भामण्डलेन संमन्त्र्य द्रुतं दशरथो ददौ । लेखं जनकराजस्य नीतं गगनयायिना ॥१४२॥
प्रेषितं भानुमार्गेण तस्य हंसधृतं वरम् । यानं विद्याधरैर्वीरैर्भूरिभिः परिवारितम् ॥१४३॥
प्रभामण्डलमादाय ततो भूत्यातिकान्तया । तुष्टो दशरथोऽयोध्यां [1]सुत्रामसदृशोऽविशत् ॥१४४॥
अक्षीणसर्वकोशोऽसावुपचारं परं नृपः । प्रीतो भामण्डले चक्रे सर्वलोकसमन्वितः ॥१४५॥
रम्ये सुविपुले तुङ्गे वाप्युद्यानविभूषिते । गृहे दशरथोद्दिष्टे तस्थौ भामण्डलः सुखम् ॥१४६॥
दारिद्र्यान्मोचितो लोकः परमोत्सवजन्मना । दानेन वाञ्छिताधिक्यं प्राप्तेन धरणीतले ॥१४७॥
गत्वा पवनवेगेन जनको लेखहारिणा । सहसा वर्द्धितो दिष्ट्या पुत्रागमनजन्मना ॥१४८॥
प्रवाच्य चार्पितं लेखं सुदृढप्रत्ययः[2] परम् । प्रमोदं जनकः प्राप रोमाञ्चार्चितविग्रहः ॥१४९॥
भद्र किं किमयं स्वप्नः स्वाज्जाग्रत्प्रत्ययोऽथवा । एहि ढौकस्व ढौकस्व [3]तावत्त्वाद्य परिष्वजे ॥१५०॥

तदनन्तर इस समस्त वृत्तान्तको सुनकर जिनके नेत्र आँसुओंसे भर गये थे ऐसे राजा दशरथने भामण्डलका आलिंगन किया ॥१३६॥ उस समय सभामें जितने लोग बैठे थे सभीके मस्तक आश्चर्यसे चकित रह गये, सभीके शरीरमें बहुत भारी रोमांच निकल आये और सभीके नेत्र आनन्दके आँसुओंसे चंचल हो उठे ॥१३७॥ मुखकी आकृति ही जिसे प्रकट कर रही थी ऐसे भाईको बड़े प्रेमसे देखकर सीता स्नेहवश मृगीकी तरह रोती हुई, भुजाएँ ऊपर उठा दौड़ी और हे भाई ! मैं तुझे आज पहले ही पहल देख रही हूँ, यह कहकर उससे लिपट गयी और चिरकाल तक रुदन कर धैर्यको प्राप्त हुई ॥१३८–१३९॥ राम, लक्ष्मण तथा अन्य बन्धुओंने भी सहसा उठकर भामण्डलका आलिंगन किया तथा आदरसहित उससे वार्तालाप किया ॥१४०॥

तदनन्तर उन श्रेष्ठ मुनिराजको नमस्कार कर सब विद्याधर और भूमिगोचरी मनुष्य उपवनसे बाहर निकले। उस समय वे हर्षसे परिपूर्ण थे तथा अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे ॥१४१॥ भामण्डलके साथ सलाह कर राजा दशरथने शीघ्र ही आकाशगामी विद्याधरके हाथ राजा जनकके पास पत्र भेजा ॥१४२॥ भामण्डलका उत्तम विमान आकाश-मार्गसे आ रहा था, हंसोंके द्वारा धारण किया गया था तथा बहुत-से विद्याधर वीर उसे घेरे हुए थे ॥१४३॥ तदनन्तर भामण्डलको लेकर राजा दशरथने इन्द्रके समान बड़ी विभूतिसे अयोध्यामें प्रवेश किया ॥१४४॥ अक्षीण कोशके धनी राजा दशरथने भामण्डलके आनेपर प्रसन्न हो सब लोगोंके साथ मिलकर बड़ा उत्सव किया ॥१४५॥ भामण्डल राजा दशरथके द्वारा बसाये हुए रमणीय, विशाल, ऊँचे तथा वापी और बगीचोंसे सुशोभित महलमें सुखसे ठहरा ॥१४६॥ उस परमोत्सवके समय राजा दशरथने इतना अधिक दान दिया कि पृथ्वीतलके दरिद्र मनुष्य इच्छासे अधिक धन पाकर दरिद्रतासे मुक्त हो गये ॥१४७॥ उधर पवनके समान शीघ्रगामी पत्रवाहक विद्याधरने पुत्रके आगमनका समाचार सुनाकर राजा जनकको सहसा हर्षित कर दिया ॥१४८॥ राजा जनक दिये हुए पत्रको बाँचकर तथा उसकी सत्यताका दृढ़ विश्वास कर परम प्रमोदको प्राप्त हुए। उनका सारा शरीर हर्षसे रोमांचित हो गया ॥१४९॥ वे उस विद्याधरसे पूछने लगे कि हे भद्र ! क्या यह स्वप्न है ? अथवा

---

१. इन्द्रतुल्यः । २. सुदृढः प्रत्ययः म. । ३. तावत् + त्वा + अद्य ।

इत्युक्त्वानन्दबाष्पेण [illegible] ॥१५१॥
नग्नतापरिहारेण देहस्थं वस्त्रभूषणम् । ससंभ्रमं ददौ तस्मै मुदा [1]नृत्तमिवाचरन् ॥१५२॥
समेति बन्धुलोकोऽस्य यावद्दिष्ट्यैभिवर्द्धकः । तावत्तद्यानमायातं छादयद्गगनं रुचा ॥१५३॥
अतृप्तस्तस्य वृत्तान्तमतृप्तश्च पुनः पुनः । उक्तं विद्याधरैस्तस्य यथावदतिविस्तरम् ॥१५४॥
ततो यानं समारुह्य समस्तैर्बन्धुभिः समम् । निमेषेण परिप्राप्तो विनीतां तूर्यनादिताम् ॥१५५॥
अवतीर्याम्बरादाशु पुत्रमालिङ्ग्य निर्भरम् । सुखमीलितनेत्रोऽसौ क्षणं मूर्छामुपागतः ॥१५६॥
प्रबुध्य च विशालेन चक्षुषा बाष्पवारिणा । [2]औत्सेचनकमैक्षिष्ट तनयं पाणिना स्पृशन् ॥१५७॥
माता तं मूर्छिता दृष्ट्वा परिष्वज्य प्रबोधिनी । आचक्रन्द सुकारुण्यं तिरश्चामपि कुर्वती ॥१५८॥
परिदेवनमेवं च चक्रे पुत्रक हा कथम् । हृतोऽसि जातमात्रस्त्वं केनाप्युत्तमवैरिणा ॥१५९॥
त्वदीक्षाचिन्तया देहो दग्धोऽयं वह्नितुल्यया । भवद्दर्शनतोयेन चिराच्छिवमुपेतोऽद्य मे ॥१६०॥
धन्या पुण्यवती सुस्त्री या तेऽङ्गानि शैशवे । क्रीडता धूसराण्यङ्के निहितानि सुचुम्बितम् ॥१६१॥
चन्दनेन विलिप्तस्य कुङ्कुमस्थासकाङ्कितम् । दधतः शैशवं दृष्टं कौमारं ते तया वपुः ॥१६२॥
नेत्राभ्यामस्रमुत्सृज्य स्तनाभ्यां च पयश्चिरम् । सुपुत्रसङ्गमानन्दं विदेहा परमं गता ॥१६३॥

जागृत दशामें होनेवाला प्रत्यक्ष ज्ञान है, आओ, आओ मैं तुम्हारा आलिंगन करूँ ॥१५०॥ इतना कहकर आनन्दके आँसुओंसे जिनके नेत्रोंकी पुतलियाँ चंचल हो रही थीं ऐसे राजा जनकने उस पत्रवाहक विद्याधरका ऐसा आलिंगन किया मानो साक्षात् पुत्र ही आ गया हो ॥१५१॥ उन्होंने इस हर्षसे नृत्य करते हुए की तरह उस विद्याधरके लिए अपने शरीरपर स्थित समस्त वस्त्राभूषण दे दिये। शरीरपर केवल उतने ही वस्त्र शेष रहने दिये जिससे कि वे नग्न न दिखें ॥१५२॥ हर्षकी वृद्धि करनेवाले राजा जनकके बन्धुवर्ग जबतक इकट्ठे होते हैं तबतक अपनी कान्तिसे आकाशको आच्छादित करता हुआ भामण्डलका विमान वहाँ आ पहुँचा ॥१५३॥ राजा जनकने अतृप्त हो बार-बार भामण्डलका वृत्तान्त पूछा और विद्याधरोंने सब वृत्तान्त ज्योंका-त्यों बड़े विस्तारसे कहा ॥१५४॥

तदनन्तर राजा जनक समस्त भाई-बन्धुओंके साथ विमानपर आरूढ़ हो निमेष मात्रमें अयोध्या जा पहुँचे। उस समय अयोध्या तुरहीके मधुर शब्दसे शब्दायमान हो रही थी ॥१५५॥ आकाशसे शीघ्र ही उतरकर उन्होंने पुत्रका गाढ़ आलिंगन किया। आलिंगनजन्य सुखसे उनके नेत्र निमीलित हो गये और क्षण भरके लिए वे मूर्च्छाको प्राप्त हो गये ॥१५६॥ सचेत होनेपर उन्होंने जिससे अश्रु-जल झर रहा था ऐसे विशाल लोचनोंसे तृप्तिकर पुत्रका अवलोकन किया तथा हाथसे उसका स्पर्श किया ॥१५७॥ माता विदेहा भी पुत्रको देखकर तथा आलिंगन कर हर्षातिरेकसे मूर्च्छित हो गयी और सचेत होनेपर ऐसा रुदन करने लगी कि जिससे तिर्यंचोंको भी दया उत्पन्न हो रही थी ॥१५८॥ वह विलाप करने लगी कि हाय पुत्र! तू उत्पन्न होते ही किसी विकट वैरीके द्वारा क्यों अपहृत हो गया था? ॥१५९॥ मेरा यह शरीर अग्निके समान तेरे देखनेकी चिन्तासे अब तक जलता रहा है। आज चिरकालके बाद तेरे दर्शनरूपी जलसे शान्त हुआ है ॥१६०॥ पुण्यवती बड़ी ही धन्य और भाग्यशालिनी उत्तम स्त्री है जिसने कि बाल्य अवस्थामें क्रीड़ासे धूल-धूसरित तेरे अंग अपनी गोदमें रखे हैं तथा चन्दनसे लिप्त और केशरके तिलकसे सुशोभित तेरे मुखका चुम्बन किया है एवं शैशव अवस्थाको धारण करनेवाले तेरे कुमारकालीन शरीरको देखा है ॥१६१-१६२॥ माता विदेहाके नेत्रोंसे आँसू और स्तनोंसे चिरकाल तक दूध निकलता रहा।

१. वृत्तमिवा-म.। २. यावद्विद्याभिवर्धकः म.। ३. तूर्यनोदितां ख.। ४. 'तदासेचनकं तृप्तेर्नास्यन्तो

अर्हच्छासनदेवीव जृम्भैरावतनामनि । सा तत्र लोचने कृत्वा तस्थौ मग्ना सुखाम्बुधौ ॥१६३॥
मासमात्रमुषित्वातो बन्धुसङ्गममोदिना । पद्मो भामण्डलेनोचे विनयं बिभ्रता[1] परम् ॥१६५॥
वैदेह्याः शरणं देव त्वमेवोत्तमबान्धवः । छन्देऽस्या वर्तता येन नो यात्युद्वेगमेषका ॥१६६॥
स्वसारं च समालिङ्ग्य स्नेहावेगा[2]त्सुचेष्टिताम् । उपादिशदसौ भूयो भूयः प्रवरमानसः ॥१६७॥
माताङ्गिङ्गचागदत् सीतां सुते श्वसुरयोः प्रिये । परिवर्गे च तत्कुर्याः श्लाघ्यतां येन गच्छसि ॥१६८॥
सर्वानामन्त्र्य विन्यस्य कनके मिथिलेशिताम् । गृहीत्वा पितरौ यातः स्थानं भामण्डलो निजम् ॥१६९॥

इन्द्रवज्रा

वीक्षस्व माहात्म्यमिदं कृतस्य धर्मस्य पूर्वं मगधाधिराज ।
विद्याधरेन्द्रो यदवापि बन्धुः सीता च पत्नी गुणरूपपूर्णा ॥१७०॥

उपजातिः

अधिष्ठिते देवगणैश्च चापे सकंकटे सीरगदादियुक्ते ।
लब्धे सुरैरप्यतिदुर्लभे ये पद्मेन लक्ष्मीनिलयश्च भृत्यः ॥१७१॥

उपेन्द्रवज्रा

इदं जनो यः सुविशुद्धचेताः शृणोति भामण्डलबन्धुयोगम् ।
अभीष्टयोगानरुजश्चिराय रविप्रभोऽसौ लभते शुभात्मा ॥१७२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते भामण्डलसमागमाभिधानं नाम त्रिंशत्तमं पर्व ॥३०॥

वह उत्तम पुत्रका संग पाकर परम आनन्दको प्राप्त हुई ॥१६३॥ जिस प्रकार ऐरावत क्षेत्रमें जृम्भा नामकी जिनशासनकी सेवक देवी रहती है उसी प्रकार वह भामण्डलपर दृष्टि लगाकर अर्थात् उसे देखती हुई सुखरूपी सागरमें निमग्न होकर रहने लगी ॥१६४॥ तदनन्तर एक मास तक अयोध्यामें रहनेके बाद भाई-बन्धुओंके समागमसे प्रसन्न एवं परम विनयको धारण करनेवाले भामण्डलने श्रीरामसे कहा कि ॥१६५॥ हे देव ! सीताके आप ही शरण हो और आप ही इसके सर्वोत्तम बान्धव हो। आप इसके हृदयमें इस प्रकार विद्यमान रहे कि जिससे यह उद्वेगको प्राप्त न हो ॥१६६॥ उत्कृष्ट हृदयके धारक भामण्डलने उत्तम चेष्टाओंसे सुशोभित बहनका स्नेहवश आलिंगन कर उसे बार-बार उपदेश दिया ॥१६७॥ माता विदेहाने भी सीताका आलिंगन कर कहा कि हे बेटी ! तू अपने सास-ससुरको प्रिय हो, तथा परिजनके साथ ऐसा व्यवहार कर कि जिससे प्रशंसाको प्राप्त हो ॥१६८॥ तदनन्तर भामण्डल सब लोगोंसे पूछकर तथा मिथिलाका राज्य कनक-के लिए सौंपकर माता-पिताको साथ ले अपने स्थानपर चला गया ॥१६९॥

गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे मगधेश्वर ! पूर्व भवमें किये हुए धर्मका यह माहात्म्य देखो। धर्मके माहात्म्यसे ही रामने विद्याधरोंका राजा भामण्डल-जैसा बन्धु प्राप्त किया, गुण तथा रूपसे परिपूर्ण सीता जैसी पत्नी प्राप्त की तथा देवोंके समूहसे अधिष्ठित कवच, हल, गदा आदिसे युक्त एवं देवोंके द्वारा दुर्लभ धनुष प्राप्त किये। लक्ष्मीका भाण्डार लक्ष्मण जैसा सेवक प्राप्त किया ॥१७०-१७१॥ जो मनुष्य अत्यन्त विशुद्ध हृदयसे भामण्डलके इस इष्ट समागमको सुनता है सूर्यके समान प्रभाको धारण करनेवाला वह शुभात्मा मनुष्य चिरकाल तक इष्टजनोंके साथ समागम और आरोग्यको प्राप्त होता है ॥१७२॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरितमें भामण्डलके समागमका वर्णन करनेवाला तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३०॥

□

---

१. बिभ्रतं म. । २. सुचेष्टितं म. ।

एकत्रिंशत्तमं पर्व

उवाच श्रेणिको भूपः सबन्धुरनरण्यजः । इमां विभूतिं संप्राप्य चक्रे किं गणनायक ॥१॥
पुरातनं च वृत्तान्तं रामलक्ष्मणयोस्तयोः । तवैव विदितं सर्वं ततो ब्रूहि महायशः ॥२॥
इति पृष्टो महातेजा जगाद मुनिपुङ्गवः । निरवद्यं तथा तत्त्वं यथा सर्वज्ञभाषितम् ॥३॥
स्वसंशयमशेषज्ञं राजा दशरथोऽन्यदा । प्रणम्य साधुमप्राक्षीत् सर्वभूतहितं हितम् ॥४॥
मया जन्मानि भूरीणि परिप्राप्तानि यानि तु । वेद्म्येकमपि नो तेषां तत्सर्वं विदितं[1] त्वया ॥५॥
तान्यहं ज्ञातुमिच्छामि भगवन्नुच्यतामिति । भवत्प्रसादतो मोहं निराकर्तुमहं यजे ॥६॥
श्रोतुं समुद्यतस्यैवं[3] भवान्[4] दशरथस्य तु । सर्वभूतहितः साधुरिदं वचनमब्रवीत् ॥७॥
शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यन्मां पृच्छसि सन्मते । त्वया पर्यटय संसारे मतिरासादिता यथा ॥८॥
न त्वयैकेन संसारो भ्रान्तोऽन्यैरपि संसृतः[5] । चिम्बानैः कर्मभिः कर्म दुःखसंजननो महान् ॥९॥
अस्मिन् जगत्त्रये राजन् जन्तूनां स्वहितैषिणाम् । स्थितयस्तिस्र उद्दिष्टा उत्तमाधममध्यमाः ॥१०॥
[6]अभाव्यी च तथा [7]भाव्यी [8]सैद्धी च गतिरुत्तमा । पुनरावृत्तिनिर्मुक्ता कल्याणी जिनदेशिता ॥११॥
सेयं सिद्धगतिः शुद्धा सनातनसुखावहा । इन्द्रियव्रणरोगार्तैर्मोहेनान्धैर्न दृश्यते ॥१२॥

अथानन्तर राजा श्रेणिकने गौतमस्वामीसे पूछा कि हे गणनायक ! इष्टजनोंसे सहित, राजा अनरण्यके पुत्र राजा दशरथने इस विभूतिको पाकर क्या किया ? ॥१॥ हे महायशके धारक ! राम और लक्ष्मणका पुरातन वृत्तान्त आपको ही विदित है इसलिए वह सब वृत्तान्त मुझसे कहिए ॥२॥ इस प्रकार पूछे गये महातेजस्वी मुनिराजने कहा कि हे राजन् ! इनका जैसा वृत्तान्त सर्वज्ञदेवने कहा है वैसा कहता हूँ तू सुन ॥३॥ वे कहने लगे कि किसी समय राजा दशरथने समस्त पदार्थोंको जाननेवाले सर्वभूतहित नामक हितकारी मुनिराजको प्रणाम कर उनसे अपना संशय पूछा ॥४॥ उन्होंने कहा कि हे स्वामिन् ! मैंने बहुत-से जन्म धारण किये हैं पर मैं उनमें-से एक भी भवको नहीं जानता जब कि आपके द्वारा सब विदित हैं ॥५॥ हे भगवन् ! मैं उन्हें जानना चाहता हूँ सो कहिए। आपके प्रसादसे मोह नष्ट करनेके लिए मैं आपकी पूजा करता हूँ ॥६॥ इस प्रकार भवान्तर सुननेके लिए उद्यत राजा दशरथसे सर्वभूतहित मुनि निम्नांकित वचन कहने लगे ॥७॥

उन्होंने कहा कि हे राजन् ! सुन। हे सद्बुद्धिके धारक ! तुमने जो पूछा है वह सब मैं कहूँगा ! तुमने इस संसारमें समन्तात् भ्रमण कर जिस प्रकार सद्बुद्धि प्राप्त की है वह सब मैं निवेदन करूँगा ॥८॥ दुःख देनेवाले इस महान् संसारमें केवल तुमने ही भ्रमण नहीं किया है किन्तु कर्मोंका संचय करनेवाले अन्य लोगोंने भी कर्मोदयसे इसमें भ्रमण किया है ॥९॥ हे राजन् ! इस जगत्त्रयमें अपना हित चाहनेवाले प्राणियोंकी दशाएँ उत्तम, मध्यम और जघन्यके भेदसे तीन प्रकारकी वर्णित की गयी हैं ॥१०॥ उनमें-से अभव्य जीवकी दशा जघन्य है, भव्यकी मध्यम है और सिद्धोंकी उत्तम है। जिनेन्द्रभगवान्‌ने सिद्धगतिको पुनरागमनसे रहित तथा कल्याणकारिणी बतलाया है ॥११॥ यह सिद्धगति शुद्ध है तथा सनातन सुखको देनेवाली है। इन्द्रियरूपी व्रणरोग-

---

१. दशरथः । २. विहितं म. । ३. समुद्यतस्यैव म. । ४. पूर्वपर्यायान् । ५. संसरणविषयीकृतः । ६. अभव्यस्येयम् अभाव्यी । ७. भव्यस्येयं भावी । ८. सिद्धानामियं सैद्धी ।

अश्रद्धासंगृहीतानां हिंसादिष्वनिवर्तिनाम् । चतुर्गतिकसंवर्ता गतिरुग्रतमोरजाः ॥१३॥
अभव्यानां गतिः क्लिष्टा विनाशपरिवर्जिता । भव्यानां तु परिज्ञेया गतिर्निर्वृतिमाविनी ॥१४॥
धर्माधिद्रव्यपर्यन्तं लोकालोकमशेषतः । पृथिवीप्रमुखान् कायानाश्रिताश्चेतनाभृतः ॥१५॥
जीवराशिरनन्तोऽयं वियते नास्य संक्षयः । दृष्टान्तः सिकताकाशचन्द्रादित्यकरादिकः ॥१६॥
अनाद्यमन्तनिर्मुक्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् । स्वकर्मनिचयोपेतं नानायोनिकृताटनम् ॥१७॥
सिद्धाः सिद्धयन्ति सेत्स्यन्ति कालेऽन्तपरिवर्जिते । जिनदृष्टेन धर्मेण नैवान्येन कथंचन ॥१८॥
यः संदेहकलङ्केन निचितः पापकर्मणा । अभावितस्य धर्मेण का तस्य श्रद्दधानता ॥१९॥
कुतः श्रद्धाविमुक्तस्य धर्मो धर्मफलानि च । अत्यन्तदुःखमज्ञानं सम्यक्त्वरहितात्मनाम् ॥२०॥
अत्युग्रकर्मनिर्मोकैर्वेष्टितानां समन्ततः । मिथ्याधर्मानुरक्तानां स्वाहिताद्दूरवर्तिनाम् ॥२१॥
सेनापुरेऽथ दीपिन्या उपास्तिर्नाम भावनः । सा च मिथ्याभिमानेन परिपूर्णा निरर्गलम् ॥२२॥
अश्रद्दधाना संरंभमत्सरक्ष्वेडधारिणी । दुर्भावा सततं साधुनिन्दनासक्तशब्दिका ॥२३॥
प्रयच्छति स्वयं नार्त्तं यच्छन्तं नानुमन्यते । निवारयति यत्नेन विद्यमानं सुभूर्यपि ॥२४॥

से पीड़ित तथा मोहसे अन्धे मनुष्य इसे नहीं देख सकते हैं ॥१२॥ जो मनुष्य श्रद्धा और संवेगसे रहित हैं तथा हिंसादि पाँच पापोंसे निवृत्त नहीं हैं उनको चतुर्गतिमें भ्रमण करानेवाली गति अर्थात् दशा होती है। उनकी यह गति अत्यन्त उग्र तमोगुण और रजोगुणसे युक्त रहती है ॥१३॥ अभव्य जीवोंकी गति अतिशय दुःखपूर्ण तथा विनाशसे रहित है और भव्य जीवोंकी गति मोक्ष प्राप्त करनेवाली है अर्थात् अभव्य जीव सदा चतुर्गतिमें ही भ्रमण करते हैं और भव्य जीवोंमें किन्हींका निर्वाण भी हो जाता है ॥१४॥ जहां तक धर्माधर्मादि द्रव्य पाये जाते हैं उसे लोक कहते हैं और बाकी समस्त आकाश अलोक कहलाता है। संसारके समस्त प्राणी पृथिवी आदि षट्कायको धारण करनेवाले हैं ॥१५॥ यह जीवराशि अनन्त है। इसका क्षय नहीं होता है। इसके लिए बालूके कण, आकाश अथवा चन्द्रमा, सूर्य आदिकी किरणें दृष्टान्त हैं अर्थात् जिस प्रकार बालूके कणोंका अन्त नहीं है, आकाशका अन्त नहीं है और चन्द्र तथा सूर्यकी किरणोंका अन्त नहीं है उसी प्रकार जीवराशिका भी अन्त नहीं है ॥१६॥ चर-अचर पदार्थों अर्थात् त्रस-स्थावर जीवोंसे सहित ये तीनों लोक अनादि, अनन्त हैं, स्वकीय कर्मोंके समूहसे सहित हैं तथा नाना योनियोंके जीव इनमें भ्रमण करते रहते हैं ॥१७॥ आज तक जितने सिद्ध हुए हैं, जो वर्तमानमें सिद्ध हो रहे हैं और जो अनन्त काल तक सिद्ध होंगे वे जिनेन्द्रदेवके द्वारा देखे हुए धर्मके द्वारा ही होंगे अन्य किसी प्रकारसे नहीं ॥१८॥ जो पापकर्मके कारण संशयरूपी कलंकसे व्याप्त है तथा धर्मकी भावना अर्थात् संस्काररहित है उसके सम्यग्दर्शन कैसे हो सकता है ? ॥१९॥ जो मनुष्य श्रद्धासे रहित है उसके धर्म और धर्मके फल कहाँसे प्राप्त हो सकते हैं ? जिनकी आत्मा सम्यग्दर्शनसे रहित है, जो अत्यन्त उग्र कर्मरूपी काँचलीसे सब ओरसे वेष्टित हैं, जो मिथ्या धर्ममें अनुरक्त हैं और जो आत्महितसे दूर रहते हैं उन प्राणियोंको अत्यन्त दुःख देनेवाला अज्ञान ही प्राप्त होता है ॥२०-२१॥

अथानन्तर हस्तिनापुर नगरमें एक उपास्ति नामका गृहस्थ था। उसकी दीपिनी नामकी स्त्री थी। वह दीपिनी मिथ्या अभिमानसे पूर्ण थी, श्रद्धासे रहित थी, क्रोध तथा मात्सर्यरूपी विषको धारण करनेवाली थी, दुष्ट भावोंसे युक्त थी, उसके शब्द सदा साधुओंकी निन्दा करनेमें तत्पर रहते थे। वह न कभी स्वयं किसीको आहार देती थी और न देते हुए किसी दूसरेकी

---

१. अनादिमन्त- म.। २. असंस्कृतस्य धर्मभावनारहितस्येति भावत्। ३. विज्ञानं म.। ४. निर्मोके वेष्टितानां म.। ५. दुःखवर्तिनां। ६. गृहस्थः इति। ७. अश्रद्धानात् म.।

एवमादिमहादोषा कुतीर्थपरिभाविता । कालमेत्याभ्रमद्धीमे निष्पारे भवसागरे ॥२५॥
उपास्तिर्देहि देहीति समभ्यस्याक्षरद्वयम् । पुण्यकर्मानुभावेन पुरेऽन्द्रकपुराह्वये ॥२६॥
सुतोऽभूद् भद्रधारिण्योर्भाग्यवान् बहुबान्धवः । धारणो नामतस्तस्य पत्नी नयनसुन्दरी ॥२७॥
देशकालोपपन्नेभ्य साधुभ्यः शुद्धमानसः । दत्वासौ पारणां सम्यक्काले संस्थज्य विग्रहम् ॥२८॥
विदेहे धातकीखण्डे मेरोरुत्तरतः कुरौ । भुक्त्वा पल्यत्रयं भोगं समारुढस्त्रिविष्टपम् ॥२९॥
च्युतोऽतः पुष्कलावत्यां नगर्यां नन्दिघोषतः । वसुधायां समुत्पन्नो नामतो नन्दिवर्धनः ॥३०॥
नन्दिघोषोऽन्यदा धर्मं श्रुत्वोद्यानं प्रबुद्धवान् । नन्दिवर्धनमाधाय पृथिवीपरिपालने ॥३१॥
यशोधरमुनेः पार्श्वे प्रव्रज्य सुमहत्तपः । कृत्वा स्वर्गं समारुढस्ततो त्यक्त्वा यथाविधि ॥३२॥
गृहिधर्मसमासक्तो नमस्कारपरायणः । पूर्वकोटीं महाभोगान् भुक्त्वा श्रीनन्दिवर्धनः ॥३३॥
संन्यासेन तनुं त्यक्त्वा प्रयातः पञ्चमं दिवम् । ततश्च्युतो विदेहेऽस्मिन् गिरिराजस्य पश्चिमे ॥३४॥
गते शशिपुरे स्थाने विजयार्द्धनगोत्तमे । सूर्यंजयोऽभवद् विद्युल्लतायां रत्नमालिनः ॥३५॥
अन्यदा सिंहनगरं रत्नमाली महाबलः । प्रस्थितो विग्रहं कर्तुं यत्रासौ वज्रलोचनः ॥३६॥
रथैः प्रभास्वरैर्दिव्यैः पदातिगजवाजिभिः । नानाशस्त्रान्धकारैः सामन्तैः सुमहाबलैः ॥३७॥

अनुमोदना करती थी। यदि कोई दानादि सत्कार्योंमें प्रवृत्त होता था तो उसे वह प्रयत्नपूर्वक मना करती थी। इत्यादि अनेक महादोषोंसे युक्त थी और कुतीर्थकी भावनासे युक्त थी। इस प्रकार समय व्यतीत कर वह भयंकर तथा पाररहित संसार सागरमें भ्रमण करने लगी ॥२२-२५॥ इसके विपरीत उपास्ति 'देहि' 'देहि' अर्थात् 'देओ' 'देओ' इन दो अक्षरोंका अच्छी तरह अभ्यास कर—अत्यधिक दान देकर पुण्य कर्मके प्रभावसे अन्द्रकपुरनामा नगरमें भद्रनामा गृहस्थ और उसकी धारिणीनामा स्त्रीके धारण नामका भाग्यशाली एवं अनेक बन्धुजनोंसे युक्त पुत्र हुआ। उसकी नयनसुन्दरी नामकी स्त्री थी ॥२६-२७॥

वह योग्य देश तथा कालमें प्राप्त हुए साधुओंके लिए शुद्धभावसे आहार देता था। जिसके फलस्वरूप अन्तमें समाधिपूर्वक शरीरका त्याग कर धातकीखण्डद्वीप सम्बन्धी विदेह क्षेत्रमें मेरु पर्वतकी उत्तर दिशामें विद्यमान कुरुक्षेत्रमें आर्य हुआ। वहाँ तीन पल्य तक भोग भोगकर स्वर्गमें उत्पन्न हुआ ॥२८-२९॥ वहाँसे च्युत होकर पुष्कलावती नगरीमें राजा नन्दिघोष और वसुधा रानीके नन्दिवर्धन नामका पुत्र हुआ ॥३०॥ एक दिन राजा नन्दिघोष उत्कृष्ट धर्म श्रवण कर प्रबोधको प्राप्त हुआ और नन्दिवर्धनको पृथिवी-पालनका भार सौंप यशोधर मुनिराजके समीप दीक्षा लेकर महातप करने लगा। तथा अन्तमें विधिपूर्वक शरीर त्याग कर स्वर्गमें उत्पन्न हुआ ॥३१-३२॥

इधर नन्दिवर्धन गृहस्थका धर्म धारण करनेमें लीन एवं पंच-नमस्कार मन्त्रकी आराधना करनेमें तत्पर था। वह एक करोड़ पूर्व तक महाभोगोंको भोग कर तथा संन्याससे शरीर छोड़कर पंचम स्वर्गमें गया। वहाँसे च्युत होकर इसी विदेह क्षेत्रमें सुमेरु पर्वतके पश्चिमकी ओर विजयार्ध पर्वतपर स्थित शशिपुरनामा नगरमें राजा रत्नमाली और रानी विद्युल्लताके सूर्यंजय नामका पुत्र हुआ ॥३३-३५॥

अथानन्तर एक समय महाबलवान् राजा रत्नमाली युद्ध करनेके लिए उस सिंहपुर नगरकी ओर चला जहाँ कि राजा वज्रलोचन रहता था ॥३६॥ वह देदीप्यमान सुन्दर रथ, पैदल सेना, हाथी, घोड़े तथा नाना प्रकारके शस्त्रोंसे अन्धकार उत्पन्न करनेवाले अत्यन्त बलवान्

---

१. चन्द्रपुराह्वये म.। २. भद्रनामा पुरुषः, तस्य धारिणी नाम्नी स्त्री तयोः। ३. प्रयत्नेभ्यो म.। ४. स्वर्गम्। ५. पुष्कलावत्यां ज.। ६. मुमेरोः।

तं दृष्ट्वोष्ठं धनुःपाणिं कवचावृतविग्रहम् । [1]दग्धुकाममरिस्थानं क्रोधादाग्नेयविद्यया ॥३८॥
रथाग्रारूढमायान्तं वेगिनं भीषणाकृतिम् । नभस्थं सहसा कश्चिदमरोऽभिदधाविति ॥३९॥
रत्नमालिन् किमारब्धमिदं संरंभमुत्सृज । विबुध्यस्व वदाम्येष वृत्तान्तं तव पूर्वकम् ॥४०॥
इहासीद् भारते वास्ये भांसादोऽधमकर्मकृत् । गान्धार्यां भूतिरवीभूद्[2]पुरोहितः ॥४१॥
साधोः कमलगर्भस्य श्रुत्वा [3]व्याकरणं च सः । नाचरामि पुनः पापमिति व्रतमुपादधे ॥४२॥
पञ्चपल्योपमं स्वर्गे तेनायुः समुपार्जितम् । उपमन्यूपदेशेन[4] भस्मसाद्भावमाहृतम् ॥४३॥
भुञ्जते सुकृतं यावद्यवस्कन्देन वारिभिः । प्रपद्य हिंसितः साकमुपमन्यु[5]पुरोधसा ॥४४॥
पुरोहितो गजो जातो युद्धेऽसौ जर्जरीकृतः । संप्राप्य [6]जाप्यमप्राप्तमितरैर्दुःखभाजनैः ॥४५॥
पुनस्तत्रैव गान्धार्यां भूतिपुत्रस्य धीमतः । देव्यां योजनगन्धायां पुत्रोऽभूदरिसूदनः ॥४६॥
दृष्ट्वा कमलगर्भं च पूर्वं जन्म समस्मरत् । प्रव्रज्यासौ ततो मृत्वा [7]शतारेऽहं सुरोऽभवम् ॥४७॥
स त्वं [8]भूतिमृगो जातो मन्दारण्ये दुराकृतिः । अकामनिर्जरा तस्य दावदग्धस्य [9]मूकुना [10] ॥४८॥
कम्बोजेन सताकारि यत्त्वया कर्म दारुणम् । [11]किलञ्जालयेन मृतस्त्वासीच्छर्करानरकं गतः ॥४९॥
[12]मया स्नेहानुबन्धेन ततस्त्वं संप्रबोधितः । अयमुद्धृत्य जातोऽसि रत्नमाली खगेश्वरः ॥५०॥

सामन्तोंसे सहित था ॥३७॥ जो क्रोधके कारण ओंठ डँस रहा था, जिसके हाथमें धनुष था, जिसका शरीर कवचसे आच्छादित था, जो आग्नेयविद्यासे शत्रुका स्थान जलाना चाहता था, जो रथके अग्रभागपर आरूढ़ था, जो वेगशाली था एवं भयंकर आकारका धारक था। ऐसे उस रत्नमालीको आकाशमें स्थित देख सहसा किसी देवने इस प्रकार कहा ॥३८-३९॥ कि हे रत्नमालिन्! तूने यह क्या आरम्भ कर रखा है? क्रोधको छोड़ और स्मरण कर, मैं तेरा पूर्व वृत्तान्त कहता हूँ ॥४०॥

'इसी भरत क्षेत्रकी गान्धारीनामा नगरीमें एक भूति नामका राजा था। उपमन्यु उसके पुरोहितका नाम था। राजा और पुरोहित दोनों ही मांसभोजी तथा नीचकार्य करनेवाले थे ॥४१॥ एक बार कमलगर्भनामा मुनिका व्याख्यान सुनकर राजा भूतिने व्रत लिया कि अब मैं ऐसे पापका आचरण फिर कभी नहीं करूँगा ॥४२॥ इस व्रतके प्रभावसे उसने इतने पुण्यका संचय किया कि उससे स्वर्गकी पांच पल्य प्रमाण आयुका बन्ध हो सकता था, परन्तु उपमन्यु पुरोहितके उपदेशसे उसका यह सब पुण्य भस्म-भावको प्राप्त हो गया अर्थात् नष्ट हो गया। उसने उस पुण्यभावको छोड़ दिया। उसी समय शत्रुओंने आक्रमण कर पुरोहितके साथ-साथ उसे मार डाला ॥४३-४४॥ पुरोहितका जीव मरकर हाथी हुआ सो युद्धमें घायल हो अन्य दुःखी जीवोंको जिसका मिलना दुर्लभ था ऐसे पंच नमस्कार मन्त्रको पाकर उसी गान्धारीके राजा भूतिके बुद्धिमान् पुत्रकी योजनगन्धा नामा स्त्रीके अरिसूदन नामका पुत्र हुआ ॥४५-४६॥ कमलगर्भ मुनिराजके दर्शन कर अरिसूदनको पूर्व जन्मका स्मरण हो आया जिससे विरक्त होकर उसने दीक्षा ले ली और मरकर शतार नामक ग्यारहवें स्वर्गमें देव हुआ। इस तरह मैं वही पुरोहितका जीव देव हूँ और तू राजा भूतिका जीव मरकर मन्दारण्यनामा वनमें मृग हुआ सो वहाँ दावानलमें जलकर उसने अकाम-निर्जरा की उसके फलस्वरूप वह किलज नामका नीच पुरुष हुआ। उस पर्यायमें तूने जो दारुण कार्य किये—तीव्र पाप किये उनके फलस्वरूप तू शर्कराप्रभा नामक दूसरे नरक गया ॥४७-४९॥ तदनन्तर स्नेहके संस्कारसे मैंने वहाँ जाकर तुझे सम्बोधा जिसके प्रभावसे निकलकर तू यह

---

१. दग्धुं कामं 'तुं काममनसोरपि' इति मलोपः। दग्धकाम म.। २. जगाद। ३. व्याख्यानम्। ४. उपमन्यूपदेशेन व्रतं त्यक्तम्। ५. उपमन्युः पुरोधसा म.। ६. जप्य म.। ७. शतारस्वर्गे। ८. भूतिनामनृपः। ९. दावदग्धोस्य म., ख.। १०. नीचपुरुषेण। ११. किलञ्जाख्ये वने मृतः सन् शर्करानामनरकं प्राप्तः। १२. महा- म.।

पर्याप्तानि न किं तानि दुःखानीत्युदितश्च सः । सूर्यंजयसुतं राज्ये निधाय कुलनन्दनम् ॥५१॥
वृत्तान्तश्रवणात्तस्मात्परं निर्वेदमीयुषा । सूर्यंजयेन सहितं सत्कर्मोदयचेतसा ॥५२॥
रत्नमाली पुनर्नानादुर्गतिन्यस्तमानसः । ययौ शरणमाचार्यं सौम्यं तिलकसुन्दरम् ॥५३॥
सूर्यंजयस्तपः कृत्वा महाशुक्रसुरोत्तमः । च्युतोऽनरण्यराजर्षेः सुतो दशरथोऽभवत् ॥५४॥
स्वल्पेन सुकृतेन त्वमुपास्तिप्रमुखैर्भवैः । न्यग्रोधबीजवद्वृद्धिं संप्राप्तोऽसि शुभोदयात् ॥५५॥
नन्दिवर्धनकाले ते[1] नन्दिघोषपिता च यः । सोऽहं ग्रैवेयकाद् भ्रष्टः सर्वभूतहितोऽभवम् ॥५६॥
यौ भूतिरुपमन्युश्च [2]तावेतौ तद्वशानुगौ । जनको कनकश्चेति जातौ सुकृतचेतसा ॥५७॥
संसारे न परः कश्चिन्नात्मीयः कश्चिदञ्जसा । सैषा शुभाशुभैर्जन्तोरुद्वर्तपरिवर्तना ॥५८॥
उदाहृतमिदं श्रुत्वा विनीतो वीतसंशयः । अनरण्यसुतो जातः प्रबुद्धः संयमोन्मुखः ॥५९॥
सर्वादरसमेतश्च संपूज्य चरणौ गुरोः । प्रणम्य च विशुद्धात्मा प्रविवेश सुकोशलम् ॥६०॥
एवं च मानसे चक्रे सार्वभूमीश्वरं पदम् । पद्माय सुधिये दत्त्वा [3]साध्वीयां अये गतिम् ॥६१॥
धर्मात्मा सुस्थिरो रामस्त्रिसमुद्रां वसुन्धराम् । अनुपालयितुं शक्तो भ्रातृभिः परिवारितः ॥६२॥
चिन्तयत्येवमेवास्मिन् राज्यमोहपराङ्मुखे । मुक्त्यर्थाहितचेतस्के श्रीमद्दशरथे नृपे ॥६३॥
तिरोधानं गता क्वापि स्वच्छज्योत्स्नापटा शरत् । चन्द्रास्याहिमभीतेव सरीरुहनिरीक्षणा ॥६४॥
प्राप्तः प्रालेयसंपातैर्विच्छायीकृतनीरजः । हेमन्तो जडवातेन व्याकुलीकृतविष्टपः ॥६५॥

रत्नमाली विद्याधर हुआ है ॥५०॥ तूने क्या वे दुःख नहीं पाये हैं ?' इस प्रकार देवके कहते ही रत्नमालीका मन नाना दुर्गतियोंसे भयभीत हो गया। इस वृत्तान्तके सुननेसे रत्नमालीका पुत्र सूर्यंजय भी परम वैराग्यको प्राप्त हो गया इसलिए उस पुण्यात्माके साथ ही साथ राजा रत्नमाली, सूर्यंजयके पुत्र कुलनन्दको राज्य देकर तिलकसुन्दरनामा प्रशान्त आचार्यकी शरणमें पहुँचा ॥५१–५३॥ तदनन्तर सूर्यंजय तपकर महाशुक्र स्वर्गमें गया और वहाँसे च्युत होकर राजर्षि अनरण्यके दशरथ नामका पुत्र हुआ ॥५४॥ सर्वभूतहित मुनि कहते हैं कि तू थोड़े ही पुण्यके द्वारा उपास्ति आदि भवोंमें वटबीजकी तरह शुभोदयसे वृद्धिको प्राप्त हुआ है ॥५५॥ तू राजा दशरथ उपास्तिका जीव है और नन्दिवर्धनकी पर्यायमें जो तेरा पिता नन्दिघोष था वह तप कर ग्रैवेयक गया और वहाँसे च्युत होकर मैं सर्वभूतहित हुआ हूँ ॥५६॥ तथा उसके अनुकूल रहनेवाले जो भूति और उपमन्युके जीव थे वे पुण्यके प्रभावसे क्रमशः राजा जनक एवं कनक हुए हैं ॥५७॥ वास्तवमें इस संसारमें न तो कोई पर है और न अपना है। शुभाशुभ कर्मोंके कारण जीवका यह जन्म-मरणरूप परिवर्तन होता रहता है ॥५८॥ इस प्रकार पूर्वभवका वृत्तान्त सुन अनरण्यका पुत्र राजा दशरथ प्रतिबोधको प्राप्त हुआ तथा सब प्रकारका संशय छोड़ विनीत हो संयम धारण करनेके सम्मुख हुआ ॥५९॥ सम्पूर्ण आदरके साथ उसने गुरुके चरणोंकी पूजा की, उन्हें प्रणाम किया और तदनन्तर निर्मल हृदय हो नगरमें प्रवेश किया ॥६०॥ उसने मनमें विचार किया कि यह महामण्डलेश्वरका पद बुद्धिमान् रामके लिए देकर मैं मुनिव्रत धारण करूँ ॥६१॥ धर्मात्मा तथा स्थिर चित्तका धारक राम अपने भाइयोंके साथ जिसके पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिणमें तीन समुद्र हैं ऐसी इस भरत क्षेत्रकी पृथ्वीका पालन करनेमें समर्थ है ॥६२॥ इस प्रकार राज्यके मोहसे विमुख और मुक्तिके लिए चित्त धारण करनेवाले राजा दशरथ ऐसा विचार कर रहे थे कि उसी समय निर्मल चाँदनी ही जिसका वस्त्र थी, चन्द्रमा ही जिसका मुख था और कमल ही जिसके नेत्र थे ऐसी शरद्ऋतुरूपी स्त्री हिमसे डरकर ही मानो कहीं जा छिपी ॥६३–६४॥ और लगातार हिमके पड़नेसे जिसने कमलोंको कान्तिरहित कर दिया था तथा शीतल वायुसे जिसने समस्त संसारको

---

१. कालेन म. । २. तावन्तौ म. । ३. माधवीया (?) म. । ४. संघातो विच्छायी-म. ।

स्फुटिताधरपादान्ताः पृष्ठन्यस्तपटच्चराः । दन्तवीणाकृतस्वाना रूक्षव्याकुलमूर्धजाः ॥६६॥
तिलिरच्छदनरछायक्रोडजङ्घा विमार्जसोः । सततासेवनात् कुक्षिपूरणाधूनचेतसः ॥६७॥
शरीरच्छायया तुल्याः प्रपक्वप्लुपत्वचः । दुर्गेहिनीवचःशस्त्रैस्त्यक्तं तप्तमानसाः ॥६८॥
[1]काष्ठाद्यानयनासक्ता दिवाभास्करतापिताः । कुठारादिधराः स्कन्धौ दधानाः किणकर्कशौ ॥६९॥
शाकाम्लखलकाद्यन्तपरिपूरितकुक्षयः । दुःखं नयन्ति तत्कालं [2]दुष्कुटीषु धनोज्झिताः ॥७०॥
वरप्रासादयातास्तु शीतसङ्गमहारिभिः । संवीताङ्गा वरैर्वस्त्रैर्धूपामोदानुबन्धिभिः ॥७१॥
षड्रसं स्वादुसंपन्नं हेमरूप्यादिपात्रगम् । भुञ्जानाः सुरभिस्निग्धमाहारं निजलीलया ॥७२॥
कुङ्कुमप्रविलिप्ताङ्गा असितागुरुधूपिताः । अक्षीणधननिश्चिन्ता गवाक्षकृतवीक्षणाः ॥७३॥
गीतनृत्यादिसंप्राप्ता विनोदं परमं सदा । माल्यभूषणसंपन्नाः सुभाषितकथोद्यताः ॥७४॥
विनीताभिः कलाज्ञाभिः सुरूपाभिः सभं नराः । क्रीडन्ति वरनारीभिः तदा पुण्यानुभावतः ॥७५॥
पुण्येन लभ्यते सौख्यमपुण्येन च दुःखिताः[3] । कर्मणानुचितं लोकः सर्वं फलमुपाश्नुते ॥७६॥
तदा दशरथो भीतो भृशं संसारवासतः । निर्वृत्यालिङ्गनाकाङ्क्षी विरक्तो भोगवस्तुषु[4] ॥७७॥
द्वारस्थमाज्ञापयद्भूमिन्यस्तजानुकरं द्रुतम् । भद्राह्वय स्वसामन्तान् मन्त्रिभिः सहितानिति ॥७८॥
निर्युज्यात्मसमं द्वारे शासनं तेन तत्कृतम् । आगतास्ते ममस्कृत्य यथास्थानमवस्थिताः ॥७९॥

व्याकुल बना दिया था ऐसा हेमन्त काल आ पहुँचा ॥६५॥ जिनके ओठ तथा पैरोंके किनारे फट गये थे, जो पीठपर पुराने चिथड़े धारण किये हुए थे, जिनके दन्त वीणाके समान शब्द कर रहे थे, जिनके मस्तकके बाल रूखे तथा बिखरे हुए थे, निरन्तर अग्निके तापनेसे जिनकी गोद तथा जाँघें तीतरके पंखके समान मटमैली हो गयी थीं, जिनका चित्त पेट भरनेकी चिन्तासे दुःखी रहता था, जो शरीरकी कान्तिसे पके हुए अपुषफलके वल्कलके समान श्यामवर्ण थे, दुष्ट भार्याके वचनरूपी शस्त्रोंसे जिनका हृदय छिल गया था, जो लकड़ी आदिके लानेमें लगे रहते थे, जो दिनभर सूर्यके द्वारा तपाये जाते थे, जो कुल्हाड़ी आदि हथियारोंको धारण करते थे तथा जो भट्ट पड़ जानेसे कठोर कन्धोंको धारण करते थे तथा जो शाकभाजी आदिसे पेट भरते थे, ऐसे निर्धन मनुष्य जीर्ण-शीर्ण कुटियोंमें उस हेमन्त कालको बड़े कष्टसे व्यतीत करते थे ॥६६–७०॥ और इनसे विपरीत जो अक्षीण धनके कारण निश्चिन्त थे वे उत्तमोत्तम महलोंमें रहते थे, शीतके समागमको हरनेवाले तथा धूपकी सुगन्धिसे सुवासित उत्कृष्ट वस्त्रोंसे उनके शरीर ढके रहते थे, स्वर्ण तथा चाँदी आदिके पात्रमें रखे हुए, छह रसके स्वादिष्ट, सुगन्धित तथा स्निग्ध आहारको लीलापूर्वक ग्रहण करते थे, उनके शरीर केशरसे लिप्त तथा कालागुरुकी धूपसे सुवासित रहते थे, उनके नेत्र झरोखोंको ओर झाँका करते थे, वे गीत, नृत्य आदि परम विनोदको प्राप्त होते रहते थे, माला तथा आभूषणोंसे युक्त रहते थे, सुभाषितोंके कहनेमें तत्पर रहते थे और विनीत, कलानिपुण तथा सुन्दर रूपकी धारक उत्तम स्त्रियोंके साथ पुण्योदयसे क्रीड़ा करते थे ॥७१–७५॥ आचार्य कहते हैं कि इस संसारमें पुण्यसे सुख प्राप्त होता है और पापसे दुःख मिलता है। प्राणी अपने कर्मोंके अनुरूप ही सब प्रकारका फल प्राप्त करते हैं ॥७६॥

तदनन्तर उस समय संसारवाससे अत्यन्त भयभीत राजा दशरथ, मुक्तिरूपी स्त्रीके आलिंगनकी आकांक्षा करते हुए भोगवस्तुओंसे विरक्त हो गये ॥७७॥ जिसने पृथिवीपर घुटने और हस्त टेककर नमस्कार किया था ऐसे द्वारपालको उन्होंने तत्काल आज्ञा दी कि हे भद्र! मन्त्रियोंसे सहित अपने सामन्तोंको बुला लाओ ॥७८॥ द्वारपालने द्वारपर अपने ही समान दूसरे पुरुषको

---

१. नष्ट-ख. । २. काष्ठादानयताशक्त्या म. । ३. तत्कालं म. । ४. दुःखिनो भावो दुःखिता । ५. मुक्तिकान्तालेषणाभिलाषी । ६. भोगवस्तुन- ख., ज., ब. ।

नाथाज्ञापय किं कृत्यमिति चोक्तेन भूभृता । विनीता जगदे [1]संसत् प्रव्रजामीति निश्चितम् ॥८०॥
ततस्तन्मन्त्रिणोऽवोचन् गण्यमानाश्च पार्थिवाः । नाथ किं कारणं जातं मतावस्यां तवाधुना ॥८१॥
जगादासौ समक्षं भो [2]नन्वेतत्सकलं जगत् । शुष्कं तृणमिवाजस्रं दह्यते मृत्युवह्निना ॥८२॥
अप्राह्यं यदभव्यानां भव्यानां ग्रहणोचितम् । सुरासुरनमस्कार्यं प्रशस्यं शिवसौख्यदम् ॥८३॥
त्रिलोके प्रकटं सूक्ष्मं विशुद्धमुपमोज्झितम् । श्रुतं तन्मुनितो जैनं श्रुतमद्य मयाचिरात् ॥८४॥
परमं सर्वभावानां सम्यक्त्वमतिनिर्मलम् । गुरुपादप्रसादेन प्राप्तोऽहं वर्त्म निर्वृतेः ॥८५॥
नानाजन्ममहावर्तां मोहपङ्कसमाकुलाम् । कुतर्कग्राहसंपूर्णां महादुःखोर्मिसंततिम् ॥८६॥
मिथ्यात्वोदकसंयुक्तां कुदृष्टिसलिलैर्भराद् । रुदन्नाकन्दहाहारवां विधर्मजववाहिनीम् ॥८७॥
भवापगां मम स्मृत्वा नरकाम्भोधिगामिनीम् । पश्यताङ्गानि कम्पन्ते विन्नासेन समन्ततः ॥८८॥
वृथावोचत मा [3]किंचिदास्मानं मोहिता भृशम् । तमसः प्रकटे देशे कुतः स्थानं रवौ सति ॥८९॥
अभिषिञ्चत मे पुत्रं प्रथमं राज्यपालने । त्वरितं येन निर्विण्णं प्रविशामि तपोवनम् ॥९०॥
इत्युक्ते निश्चितं ज्ञात्वा महाराजस्य मन्त्रिणः । सामन्ताश्च परं शोकं प्राप्ता विनतमस्तकाः ॥९१॥
लिखन्तो भूमिमङ्गुल्या वाष्पाकुलनिरीक्षणाः । क्षणेन निष्प्रभीभूतास्तस्थुर्मौनं समाश्रिताः ॥९२॥
प्राणेशं निश्चितं श्रुत्वा [4]निर्ग्रन्थव्रतसंश्रयम् । एकीभूतं शुचं प्राप्तं सर्वमन्तःपुरं परम् ॥९३॥

नियुक्त कर राजाज्ञाका पालन किया । सामन्त और मन्त्रीगण आकर तथा नमस्कार कर यथा-स्थान बैठ गये ॥७९॥ उन्होंने राजासे कहा कि हे नाथ ! आज्ञा दीजिए, क्या कार्य है ? तब राजाने विनयसे भरी सभासे कहा कि मैंने निश्चय किया है कि 'दीक्षा धारण करूँ' ॥८०॥ तदनन्तर मन्त्रियों तथा गण्यमान-प्रमुख राजाओंने कहा कि हे नाथ ! इस समय आपको ऐसी बुद्धिके उत्पन्न होनेमें क्या कारण है ? ॥८१॥ तब राजाने कहा कि अये ! यह समस्त संसार सूखे तृणके समान निरन्तर मृत्युरूपी अग्निसे जल रहा है इस बातको आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं ॥८२॥ आज मैंने अभी-अभी मुनिराजके मुखसे जिनेन्द्रप्रणीत उस शास्त्रका श्रवण किया है कि जिसे अभव्य जीव ग्रहण नहीं कर सकते, जो भव्य जीवोंके ग्रहण करनेके योग्य है, सुर और असुर जिसे नमस्कार करते हैं, जो प्रशस्त है, मोक्षसुखको देनेवाला है, तीन लोकमें प्रकट है, सूक्ष्म है। विशुद्ध है तथा उपमासे रहित है ॥८३-८४॥ समस्त भावोंमें सम्यक्त्व भाव ही उत्कृष्ट तथा निर्मल भाव है, यही मुक्तिका मार्ग है। गुरु चरणोंके प्रसादसे आज मैंने उसे प्राप्त किया है ॥८५॥ जिसमें नाना जन्मरूपी बड़े-बड़े भँवर उठ रहे हैं, जो मोहरूपी कीचड़से भरी है, कुतर्करूपी मगरमच्छोंसे व्याप्त है, महादुःखरूपी तरंगोंसे युक्त है, मृत्युरूपी कल्लोलोंसे सहित है, मिथ्यात्वरूपी जलसे भरी है, जिसमें रुदनरूपी भयंकर शब्द हो रहा है, जो विधर्म अर्थात् मिथ्याधर्मरूपी वेगसे बह रही है तथा नरकरूपी समुद्रके पास जा रही है, ऐसी संसाररूपी नदीका स्मरण कर देखो। भयसे मेरे अंग सब ओरसे कम्पित हो रहे हैं ॥८६-८८॥ आप लोग मोहके वशीभूत हो व्यर्थ ही कुछ मत कहिए अर्थात् मुझे रोकिए नहीं क्योंकि प्रकट स्थानमें सूर्यके विद्यमान रहते अन्धकारका निवास कैसे हो सकता है ? ॥८९॥ आप लोग मेरे प्रथम पुत्रका शीघ्र ही राज्याभिषेक कीजिए जिससे मैं निर्विण्ण हो तपोवनमें प्रवेश कर सकूँ ॥९०॥ ऐसा कहनेपर महाराजका दृढ़ निश्चय जानकर मन्त्री तथा सामन्तवर्ग परम शोकको प्राप्त हुए। सभीके मस्तक नीचे हो रहे ॥९१॥ वे अँगुलीसे भूमिको खोदने लगे, उनके नेत्र आसुओंसे व्याप्त हो गये और सभी क्षणभरमें प्रभाहीन हो चुपचाप बैठ रहे ॥९२॥ 'प्राणनाथ निश्चितरूपसे निर्ग्रन्थ व्रतको धारण करनेवाले हैं' यह सुनकर

---

१. शंसत् म. (?) । २. म स्वेतत् म. । ३. मां म. । ४. ज्ञात्वा म. ।

विनोदान् प्रस्तुतान्मुक्त्वा बाष्पपूरितलोचनाः । भूषणस्वनभूयिष्ठं रुरुदुः प्रमदाजनाः ॥९४॥
पितरं तादृशं दृष्ट्वा भरतः प्रतिबुद्धवान् । अचिन्तयदहो कष्टं दुश्छेद्यं स्नेहबन्धनम् ॥९५॥
अव्यापारेण[1] तातस्य किमेतेन प्रबोधिनः । चिन्ता राज्यगता कास्य प्रव्रज्यां कर्तुमिच्छतः ॥९६॥
आपृच्छया न मे किंचित्कार्यमाशु विशाम्यहम् । तपोवनं महादुःखसंसारक्षयकारणम् ॥९७॥
रोगेणापि शिरोरोगेणेव अनित्येन शरीरेण । भ्रातृभिरपि किं कार्यं स्वकर्मफलभोगिभिः ॥९८॥
जन्तुरेकक एवायं[2] भवपादपसंकुले । मोहान्धो दुःखविपिने कुरुते परिवर्तनम् ॥९९॥
ततः कलाकलापज्ञा भरतस्येङ्गितादिभिः । केकया चिन्तितं ज्ञात्वा दधाना शोकमुत्तमम् ॥१००॥
कथं मे न भवेद् भर्ता न च पुत्रो गुणालयः । मृतयोर्वारणे कुर्वे कमुपायं सुनिश्चितम् ॥१०१॥
एवं चिन्तामुपेतायाः परमं व्याकुलात्मनः । तस्या उरोऽभवच्चित्ते गत्वा च स्वरितं ततः ॥१०२॥
प्रीत्या परमया वृद्धा सावष्टम्भं नराधिपम् । जगादार्धासने स्थित्वा तेजसा पुरुणान्विता ॥१०३॥
सर्वेषां भूभृतां नाथ पत्नीनां च पुरस्त्वया । मनीषितं ददामीति यदुक्ताहं प्रसादिना ॥१०४॥
वरं संप्रति तं यच्छ मह्यं सत्यसमुज्ज्वलं[3] । दानेन तेऽखिलं लोकं कीर्तिर्भ्रमति निर्मला ॥१०५॥
ततो दशरथोऽवोचद्[4] ब्रूहि त्वं दक्षिणां प्रिये । प्रार्थयस्व यदिष्टं ते यच्छाम्येष वराशये ॥१०६॥

समस्त अन्तःपुर एकत्रित हो परम शोकको प्राप्त हुआ ॥९३॥ स्त्रियोंने जो विनोद प्रारम्भ कर रखे थे उन्हें छोड़कर आँसुओंसे नेत्र भर लिये तथा आभूषणोंका अत्यधिक शब्द करती हुई वे रुदन करने लगीं ॥९४॥

पिताको विरक्त देख भरत भी प्रतिबोधको प्राप्त हुआ। वह विचार करने लगा कि अहो! यह स्नेहका बन्धन बड़ा कष्टकारी तथा दुःखसे छेदने योग्य है ॥९५॥ वह सोचने लगा कि सम्यक्-ज्ञानको प्राप्त हुए पिताको इस अव्यापार अर्थात् नहीं करने योग्य चिन्तासे क्या प्रयोजन है? जब ये दीक्षा ही लेना चाहते हैं तब इन्हें राज्यकी चिन्ता क्यों होनी चाहिए? ॥९६॥ मुझे किसीसे पूछनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, मैं तो तीव्र दुःखसे भरे संसारके क्षयका कारण जो तपोवन है उसमें शीघ्र ही प्रवेश करता हूँ ॥९७॥ रोगोंके घरस्वरूप इस नश्वर शरीरसे भी मुझे क्या प्रयोजन है? फिर भाई-बन्धु जो अपने-अपने कर्मोंका फल भोग रहे हैं उनसे क्या प्रयोजन हो सकता है? ॥९८॥ मोहसे अन्धा हुआ यह प्राणी अकेला ही जन्मरूपी वृक्षोंसे व्याप्त इस दुःखदायी अटवीमें भ्रमण करता रहता है ॥९९॥

तदनन्तर कलाओंके कलापको जाननेवाली केकयी चेष्टाओंसे भरतका अभिप्राय जानकर अत्यधिक शोक करने लगी ॥१००॥ वह सोचने लगी कि भर्ता और गुणी पुत्र दोनों ही मेरे नहीं हो रहे हैं अर्थात् दोनों ही दीक्षा धारण करनेके लिए उद्यत हैं। इन दोनोंको रोकनेके लिए मैं किस निश्चित उपायका अवलम्बन करूँ? ॥१०१॥ इस प्रकार चिन्ताको प्राप्त तथा अत्यन्त व्याकुल हृदयको धारण करनेवाली केकयाके मनमें शीघ्र ही स्वीकृत वर माँगनेकी बात याद आ गयी ॥१०२॥ वह अपने विचारोंमें दृढ़ राजा दशरथके पास बड़ी प्रसन्नतासे गयी और बहुत भारी तेजके साथ अर्द्धासनपर बैठकर बोली कि हे नाथ! आपने उस समय प्रसन्न होकर समस्त राजाओं और पत्नियोंके सामने कहा था कि 'जो तू चाहेगी दूँगा'। सो हे नाथ! इस समय वह वर मुझे दीजिए। सत्यधर्मके कारण उज्ज्वल तथा निर्मल जो आपकी कीर्ति है, वह दानके प्रभावसे समस्त संसारमें फैल रही है ॥१०३-१०५॥ तदनन्तर राजा दशरथने कहा कि हे प्रिये! तू अपना अभिप्राय बता। हे उत्कृष्ट अभिप्रायको धारण करनेवाली प्रिये! जो तुझे इष्ट हो सो माँग। अभी देता

---

१. तावस्य म.। २. -रेकका वायं म.। ३. कीर्तिसमुज्ज्वला म.। ४. रक्तवादीक्षणां ज., ख., ब.।

इत्युक्ते मुञ्चती बाष्पमवोचज्ज्ञातनिश्चया । कथं नाथ त्वया चेतः कृतं निष्ठुरमीदृशम् ॥१०७॥
वद किं कृतमस्माभिर्येनासि त्यक्तुमुद्यतः । ननु जीवितमायत्तमस्माकं त्वयि पार्थिव ॥१०८॥
अत्यन्तं दुर्धरोद्दिष्टा प्रव्रज्या जिनसत्तमैः । कथमाश्रयितुं बुद्धिस्तावत्त्वय भवता कृता ॥१०९॥
देवेन्द्रसदृशैर्भोगैरिदं ते लालितं वपुः । कथं वक्ष्यति[1] जीवेश श्रामण्यं विविधं परम् ॥११०॥
एवमुक्तो जगादासौ कान्ते सत्त्वस्य को भरः । वाञ्छितं यद् कर्तव्यं स्वयं यास्यामि सांप्रतम् ॥१११॥
इत्युक्ता लिखन्ती[2] क्षोणीं प्रदेशिन्या नताननाः । जगाद नाथ पुत्राय मम राज्यं प्रदीयताम् ॥११२॥
ततो दशरथोऽवोचत्प्रिये कास्मिन्नपत्रपा । न्यासस्त्वया मयि न्यस्तः सांप्रतं गृह्यतामसौ ॥११३॥
एवमस्तु शुचं मुञ्च निर्ऋणोऽहं त्वया कृतः । किं वा कदाचिदुक्तं ते मया जनितमन्यथा ॥११४॥
पद्मं लक्षणसंयुक्तमाहूय च कृताननिम् । ऊचे विनयसंपन्नं किंचिद्विगतमानसः ॥११५॥
वत्स पूर्वं रणे घोरे कलापारगयानया । कृतं केकयया साधु सारथ्यं मम दक्षया ॥११६॥
तदा तुष्टेन पत्नीनां भूभृतां च पुरो मया । ममीषितं प्रतिज्ञातं मोतं न्यासत्वमेतया ॥११७॥
देहि पुत्रस्य मे राज्यमिति तं याचतेऽधुना । किमप्याकूतमापन्ना निरपेक्षा मनस्विनी ॥११८॥
प्रतिज्ञाय तदेदानीं ददाम्यस्यै न चेन्मतम् । प्रव्रज्यां भरतः कुर्यात् संसारालम्बनोज्झितः ॥११९॥
इयं च पुत्रशोकेन कुर्यात् प्राणविसर्जनम् । अमेध्यं मम लोकेऽस्मिन्नकीर्तिर्विततौज्ज्वला ॥१२०॥

हूँ ॥१०६॥ राजाके इस प्रकार कहनेपर जिसने उसका निश्चय जान लिया था ऐसी केकयी आंसू डालती हुई बोली कि हे नाथ ! आपने ऐसा कठोर चित्त किस कारण किया है ? बताइए, हम लोगोंने ऐसा कौन-सा अपराध किया है कि जिससे आप हम लोगोंको छोड़नेके लिए उद्यत हुए हैं। हे राजन् ! आप तो यह जानते ही हैं कि हमारा जीवन आपके अधीन है ॥१०७-१०८॥ जिनेन्द्र-भगवान्‌के द्वारा कही हुई दीक्षा अत्यन्त कठिन है उसे धारण करनेकी आज आपने बुद्धि क्यों की ? ॥१०९॥ हे प्राणवल्लभ ! आपका यह शरीर इन्द्रके समान भोगोंसे पालित हुआ है सो अत्यन्त कठिन नाना प्रकारका मुनिपना कैसे धारण करेगा ? ॥११०॥

केकयीके इस प्रकार कहनेपर राजा दशरथने कहा कि प्रिये ! समर्थके लिए क्या भार है ? तू तो केवल अपना मनोरथ बता ! जो मुझे करना है उसे मैं अब अवश्य ही प्राप्त होऊँगा ॥१११॥ पतिके इस प्रकार कहनेपर प्रदेशिनीनामा अंगुलिसे पृथिवीको खोदती हुई केकयीने मुख नीचा कर कहा कि हे नाथ ! मेरे पुत्रके लिए राज्य प्रदान कीजिए ॥११२॥ तब दशरथने कहा कि हे प्रिये ! इसमें लज्जाकी क्या बात है ? तुमने अपनी धरोहर मेरे पास रख छोड़ी थी सो इस समय जैसा तुम चाहती हो वैसा ही हो। शोक छोड़ो, आज तुमने मुझे ऋणमुक्त कर दिया। क्या कभी मैंने तुम्हारा कहा अन्यथा किया है ? ॥११३-११४॥ उसी समय उन्होंने उत्तम लक्षणोंसे युक्त नमस्कार करते हुए विनयी रामको बुलाकर कुछ खिन्न चित्तसे कहा ॥११५॥ कि हे वत्स ! कलाकी पार-गामिनी इस चतुर केकयीने पहले भयंकर युद्धमें अच्छी तरह मेरे सारथिका काम किया था ॥११६॥ उस समय सन्तुष्ट होकर मैंने पत्नियों तथा राजाओंके सामने प्रतिज्ञा की थी 'जो यह चाहे सो दूँ'। परन्तु उस समय इसने वह वर मेरे पास न्यासरूपमें रख छोड़ा था ॥११७॥ अब किसीकी अपेक्षा नहीं रखनेवाली यह तेजस्विनी किसी खास अभिप्रायसे उस वरको इस प्रकार माँग रही है कि 'मेरे पुत्रके लिए राज्य दीजिए' ॥११८॥ उस समय प्रतिज्ञा कर इस समय यदि इसके लिए इसकी इच्छानुरूप वर नहीं देता हूँ तो संसारके आलम्बनसे उन्मुक्त होकर भरत दीक्षा ले लेगा ॥११९॥ और यह पुत्रके शोकसे प्राण छोड़ देगी तथा असत्य व्यवहारके कारण उत्पन्न हुई मेरी अपकीर्ति

---

१. मायात म.। २. चक्ष्यति म. (?)। ३. लिखितं म.।

मर्यादा न च नामेयं यद्विहायाग्रजं क्षमम् । राज्यलक्ष्मीवधूसङ्गं कनीयान् प्राप्यते सुतः ॥१२१॥
भरतस्याखिले राज्ये दत्ते स त्वं सलक्ष्मणः । क गच्छेत्परमं तेजो दधानः क्षत्रगोचरम् ॥१२२॥
तदहं वत्स नो वेद्मि किं करोमीति [1]पण्डित । अत्यन्तदुःखवेगोक्तिचिन्ताभार्तान्तरस्थितः ॥१२३॥
ततः पद्मो जगादैवं विभ्रद्विनयमुत्तमम् । [2]सद्भावप्रीतिचेतस्कः पादन्यस्तनिरीक्षणः ॥१२४॥
तात रक्षात्मनः सत्यं त्यजास्मत्परिचिन्तनम् । शक्रस्यापि श्रिया किं मे त्वत्कीर्तिमुपागते ॥१२५॥
जातेन ननु पुत्रेण सत्कर्तव्यं गृहैषिणा । येन नो पितरौ शोकं कनिष्ठमपि गच्छतः ॥१२६॥
पुनाति त्रायते चार्यं पितरं येन शोकतः । एतत्पुत्रस्य पुत्रत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥१२७॥
सभानुरञ्जनी यावत्कथेयं वर्तते तयोः । तावद्भवं निहन्मीति [3]कठोरीकृतमानसः ॥१२८॥
सौधादवतरन्वेगाल्लोकहाहारनादितः । निरुद्धो भरतः पित्रा स्नेहविक्लवचेतसा ॥१२९॥
उपविश्याङ्कमारोप्य परिष्वज्य सचुम्बितम् । इति चाभिदधे भूमौ [4]तिष्ठासुर्वशगः पितुः ॥१३०॥
राज्यं पालय वत्स त्वमहं यामि तपोवनम् । स जगौ न भजे राज्यं प्राग्वयं तु करोम्यहम् ॥१३१॥
भज तावत्सुखं पुत्र सारं मनुजजन्मनः । नवेन वयसा कान्तः वृद्धः संप्रव्रजिष्यसि ॥१३२॥
इत्युक्तेऽभिदधे तात किं मोहयसि मां वृथा । मृत्युः प्रतीक्षते नैव बालं तरुणमेव वा ॥१३३॥
गृहाश्रमे महावत्स श्रूयते धर्मसंचयः । अशक्यः कुनरैः कर्तुं कुरुते राज्यसंगतः ॥१३४॥

इस संसारमें सर्वत्र फैल जावेगी ॥१२०॥ साथ ही यह मर्यादा भी नहीं है कि समर्थ बड़े पुत्रको छोड़कर छोटे पुत्रको राज्य-लक्ष्मीरूपी स्त्रीका समागम प्राप्त कराया जाये ॥१२१॥ जब भरतके लिए समस्त राज्य दे दिया जावेगा तब क्षत्रिय-सम्बन्धी परम तेजको धारण करनेवाले तुम लक्ष्मण-के साथ कहाँ जाओगे ? यह मैं नहीं जानता हूँ। तुम पण्डित-निपुण पुरुष हो। अतः बताओ कि इस दुःखपूर्ण बहुत भारी चिन्ताकी बातके मध्यमें स्थित रहनेवाला मैं क्या करूँ ? ॥१२२-१२३॥

तदनन्तर उत्तम अभिप्रायके कारण जिनका चित्त अतिशय प्रसन्न था और जो अपनी दृष्टि पैरों पर लगाये हुए थे ऐसे रामने उत्तम विनयको धारण करते हुए इस प्रकार कहा कि हे पिता-जी ! आप अपने सत्य-व्रतकी रक्षा कीजिए और मेरी चिन्ता छोड़िए। यदि आप अपकीर्तिको प्राप्त होते हैं तो मुझे इन्द्रकी लक्ष्मीसे भी क्या प्रयोजन है ? ॥१२४-१२५॥ निश्चयसे उत्पन्न हुए तथा घरकी इच्छा रखनेवाले पुत्रको वही कार्य करना चाहिए कि जिससे माता-पिता किंचित् भी शोक-को प्राप्त न हों ॥१२६॥ जो पिताको पवित्र करे अथवा शोकसे उसकी रक्षा करे यही पुत्रका पुत्रपना है, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥१२७॥

इधर जबतक पिता-पुत्रके बीच सभाको अनुरक्त करनेवाली यह कथा चल रही थी तबतक 'मैं संसारको नष्ट करूँ' ऐसा दृढ़ निश्चय कर भरत महलसे नीचे उतर पड़ा। यह देख लोग हाहाकार करने लगे। पिताने स्नेहसे दुःखी चित्त होकर उसे रोका। वह पिताका आज्ञाकारी था अतः रुककर सामने पृथिवीपर खड़ा होना चाहता था; परन्तु पिताने उसे गोदमें बैठाकर उसका आलिंगन किया, चुम्बन किया और इस प्रकार कहा कि 'हे पुत्र ! तू राज्यका पालन कर। मैं तपोवनके लिए जा रहा हूँ'। इसके उत्तरमें भरतने कहा कि मैं राज्यकी सेवा नहीं करूँगा, मैं तो दीक्षा धारण कर रहा हूँ ॥१२८-१३१॥ यह सुनकर पिताने कहा कि हे पुत्र ! अभी तू नवीन वयसे सुन्दर है अतः मनुष्य-जन्मका सारभूत जो सुख है उसकी उपासना कर। पीछे वृद्ध होनेपर दीक्षा धारण करना ॥१३२॥ पिताके इस प्रकार कहनेपर भरतने कहा कि हे पिताजी ! मुझे व्यर्थ ही क्यों मोहित कर रहे हो। मृत्यु बालक अथवा तरुणकी प्रतीक्षा नहीं करती ॥१३३॥ इसके उत्तरमें पिताने कहा कि हे पुत्र ! गृहस्थाश्रममें भी तो धर्मका संचय सुना जाता है।

---

१. पीडितं म.। २. सद्भावः प्रीति -ब.। ३. भवंति हन्मीति म. (?)। ४. स्थातुमिच्छुः।

इत्युक्तेऽभिदधे तात हृषीकवशवर्तिनः । कामक्रोधादिपूर्णस्य का मुक्तिर्गृहसेविनः ॥१३५॥
मुनीनां वत्स केषांचिन्मुक्तिरेकेन जायते । नैव मुक्तिस्ततो धर्मं कुरु सद्मन्यवस्थितः ॥१३६॥
इत्युक्तोऽभिदधे तात यद्यप्येवं तथापि किम् । गृहधर्मेण तस्मिन् हि मुक्तस्याभावः सुनिश्चितः ॥१३७॥
अपि चानुक्रमान्मुक्तिर्न भवान्यस्य सोचिता । गरुडः किं पतङ्गानां वेगेन सदृशो भवेत् ॥१३८॥
कामार्चिषा परं दाहं व्रजन्तः क्षुद्रिता नराः[1] । जिह्वास्पर्शाङ्गकार्याणि कुर्वतेऽन च निर्वृतिः ॥१३९॥
निक्षिप्यते हि कामाग्नौ[2] भोगसर्पिर्यथा यथा । नितरां वृद्धिमायाति तापकृत्स तथा तथा ॥१४०॥
भुक्त्वा भोगान् दुरुत्पादान् दूरक्षान् क्षणभङ्गिनः । नियतं दुर्गतिं याति पापात् परमदुःखदम् ॥१४१॥
अनुमन्यस्व मां तात नितान्तं जन्ममीरुकम् । करोमि विधिनारण्ये तपोनिर्वृत्तिकारणम् ॥१४२॥
अथ गेहेऽपि लभ्येत श्रेयो जनक वैदुषम्[3] । त्वमेव कुरुषे कस्मादस्य त्यागं महामते ॥१४३॥
तार्यते दुःखतो यस्मात्तपश्चाभ्यनुमोद्यते । एतत्तातस्य तातत्वं प्रवदन्ति विचक्षणाः ॥१४४॥
जीवितं वनितामिष्टं पितरं मातरं धनम् । भ्रातरं च परित्यज्य याति जीवोऽयमेककः ॥१४५॥
सुचिरं देवभोगेऽपि यो न तृप्तो हताशकः । स कथं तृप्तिमागच्छेन्मनुष्यभवभोगकैः ॥१४६॥
पिता तद्वचनं श्रुत्वा हृष्टरोमा प्रमोदतः । जगाद वत्स धन्योऽसि विबुद्धो भव्यकेसरी ॥१४७॥

यद्यपि क्षुद्र मनुष्य इसे नहीं कर सकते हैं पर जो उत्तम पुरुष हैं वे तो राज्य पाकर भी करते ही हैं ॥१३४॥ पिताके इस प्रकार कहनेपर भरतने कहा कि हे पिताजी ! जो इन्द्रियोंके वशीभूत है तथा काम-क्रोधादिसे परिपूर्ण है ऐसे गृहसेवी मनुष्यको मुक्ति कैसे हो सकती है ? ॥१३५॥ इसके उत्तरमें पिताने कहा कि हे वत्स ! एक भवमें मुक्ति किन्हीं विरले ही मुनियोंको प्राप्त होती है। अधिकांश मुनियोंको मुक्ति नहीं मिलती। इसलिए घरमें रहकर ही धर्म धारण करो ॥१३६॥ पिताके इस प्रकार कहनेपर भरतने कहा कि हे पिताजी ! यद्यपि ऐसा है तथापि गृहस्थाश्रमसे क्या प्रयोजन है ? क्योंकि उससे मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती यह बिलकुल निश्चित है ॥१३७॥ और दूसरी बात यह है कि मेरी मुक्ति अनुक्रमसे नहीं होगी। मैं तो इसी भवसे प्राप्त करूँगा। अनुक्रमसे होनेवाली मुक्ति दूसरे हीके योग्य है। क्या गरुड़ वेगसे अन्य पक्षियोंके समान होता है ? ॥१३८॥ क्षुद्र मनुष्य कामरूपी ज्वालासे परम दाहको प्राप्त होते हुए जिह्वा और स्पर्शन इन्द्रिय-सम्बन्धी कार्य करते हैं पर उनसे उन्हें सन्तोष प्राप्त नहीं होता ॥१३९॥ कामरूपी अग्निमें ज्यों-ज्यों भोगरूपी घी डाला जाता है त्यों-त्यों वह अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त होती है और सन्तापको उत्पन्न करती है ॥१४०॥ प्रथम तो ये भोग बड़ी कठिनाईसे प्राप्त होते हैं फिर इनकी रक्षा करना कठिन है। ये देखते-देखते क्षण-भरमें नष्ट हो जाते हैं और इनको भोगनेवाला व्यक्ति पापके कारण नियमसे परम दुःख देनेवाली दुर्गतिको प्राप्त होता है ॥१४१॥ हे पिताजी ! मैं संसारसे अत्यन्त भयभीत हो चुका हूँ इसलिए मुझे अनुमति दीजिए। जिससे मैं वनमें जाकर विधिपूर्वक मोक्षका कारण जो तप है उसे कर सकूँ ॥१४२॥ हे पिताजी ! यदि मोक्ष-सम्बन्धी सुख घरमें भी मिल सकता है तो फिर आप ही इसका त्याग क्यों कर रहे हैं ? आप तो महाबुद्धिमान् हैं ॥१४३॥ जो पुत्रको दुःखसे तारे और तपकी अनुमोदना करे यही तातका तातपना है ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥१४४॥ यह जीव आयु, स्त्री, मित्रादि इष्टजन, पिता, माता, धन और भाई आदिको छोड़कर अकेला ही जाता है ॥१४५॥ जो अभागा चिरकाल तक देवोंके भोग भोगनेपर भी सन्तुष्ट नहीं हो सका वह मनुष्य भवके तुच्छ भोगोंसे किस प्रकार सन्तोष प्राप्त करेगा ? ॥१४६॥

पिता दशरथ भरतके उक्त वचन सुनकर गद्गद हो गये। हर्षसे उनके शरीरमें रोमांच

---

१. नराः म. । २. भोगरूपं घृतम् । ३. निर्वाणसंबन्धि ।

तथापि धीर नो भङ्गः कदाचित्प्रणयस्य मे । त्वया कृतो विनीतानां भवान् हि शिरसि स्थितः ॥१४८॥
शृणु सारथ्यतुष्टेन मयाजौ[1] जीवसंशये । प्रतिज्ञातं जनन्यास्ते वाञ्छितं नृपसन्निधौ ॥१४९॥
ऋणतां तच्चिरं नीतमयाहं[2] याचितोऽनया । राज्यं प्रयच्छ पुत्रस्य ममेति बहुमानतः ॥१५०॥
स त्वं निष्कण्टकं तात राज्यं शक्रोपमं कुरु । असत्यसंधा[3] कीर्तिर्मे माभ्रमीत्त्रिखिलं जगत् ॥१५१॥
इयं च तव शोकेन परमेणाभितापिता । माता म्रियेत सौख्येन सततं लालिताङ्गिका ॥१५२॥
न करोति यतः पातं पित्रोः शोकमहोदधौ । अपत्यत्वमपत्यस्य तदुदस्ति सुमेधसः ॥१५३॥
ततः पद्मोऽपि तत्पाणौ गृहीत्वैवमभाषत । प्रेमनिर्भरया पश्यन् दृष्ट्या मधुरनिस्वनः ॥१५४॥
तातेन भ्रातरुक्तं यत्कोऽन्यस्तद्गदितुं क्षमः । नहि सागररत्नानामुपपत्तिः सरसो भवेत् ॥१५५॥
वयस्तपोऽधिकारे ते जायतेऽद्यापि नोचितम् । कुरु राज्यं पितुः कीर्तिरुद्यातु शशिनिर्मला ॥१५६॥
इयं च शोकसन्तप्ता माता यद्यासि पञ्चताम् । न तद्युक्तं महाभागे नन्दने त्वादृशे सति ॥१५७॥
पितुः पालयितुं सत्यं त्यजामोऽपि वयं तनुम् । कथं त्वं तु कृतं प्राज्ञः श्रियं न प्रतिपद्यसे ॥१५८॥
नद्यां गिरावरण्ये वा तत्र वासं करोम्यहम् । तत्र कश्चिन्न जानाति कुरु राज्यं यथेप्सितम् ॥१५९॥
[4]भागं सर्वं परित्यज्य पन्थानमपि संश्रितः । न करोमि पृथिव्यां ते कांचित्पीडां गुणालयः ॥१६०॥
मास्रसीर्दीर्घमुष्णं च मुञ्च तावद्भवाज्जयम् । कुरु वाक्यं पितुः क्षोणीं रक्ष न्यायपरायणः ॥१६१॥

निकल आये। वे बोले कि हे वत्स ! तू धन्य है, सचमुच ही तू प्रतिबोधको प्राप्त हुआ है और तू उत्तम भव्य है ॥१४७॥ फिर भी हे धीर ! तूने कभी भी मेरे स्नेहका भंग नहीं किया। तू विनयी मनुष्योंमें सर्वश्रेष्ठ है ॥१४८॥ सुन, एक बार युद्धमें मेरे प्राणोंका संशय उपस्थित हुआ था। उस समय तेरी माताने सारथिका कार्य कर मेरी रक्षा की थी। उससे सन्तुष्ट होकर मैंने अनेक राजाओं-के समक्ष प्रतिज्ञा की थी कि 'यह जो कुछ चाहेगी वह दूँगा' ॥१४९॥ मेरे ऊपर इसका यह बहुत पुराना ऋण था सो इसने आज मुझसे माँगा है। इसने बड़े सम्मानके साथ कहा है कि मेरे पुत्रके लिए राज्य दीजिए ॥१५०॥ इसलिए हे पुत्र ! तू इन्द्रके समान यह निष्कण्टक राज्य कर जिससे असत्य प्रतिज्ञाके कारण मेरी अकीर्ति समस्त संसारमें भ्रमण नहीं करे ॥१५१॥ और जिसका शरीर सुखसे निरन्तर पालित हुआ है ऐसी यह तेरी माता इस महाशोकसे दुःखी होकर प्राण छोड़ देगी ॥१५२॥ अपत्य अर्थात् पुत्रका अपत्यपना यही है कि जो माता-पिताको शोकरूपी महासागरमें नहीं गिरने देता है ऐसा विद्वज्जन कहते हैं ॥१५३॥

तदनन्तर प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखते हुए रामने भी उसका हाथ पकड़कर मधुर शब्दोंमें इस प्रकार कहा कि हे भाई ! पिताजीने जो कहा है वह दूसरा कौन कह सकता है ? सो ठीक ही है क्योंकि समुद्रके रत्नोंकी उत्पत्ति सरोवरसे नहीं हो सकती ॥१५४-१५५॥ अभी तेरी अवस्था तप करनेके योग्य नहीं है। इसलिए राज्य कर जिससे पिताकी चन्द्रमाके समान निर्मल कीर्ति फैले ॥१५६॥ जिसका शरीर शोकसे सन्तप्त हो रहा है ऐसी यह तेरी माता तेरे समान भाग्यशाली पुत्रके रहते हुए यदि मरणको प्राप्त होती है तो यह ठीक नहीं होगा ॥१५७॥ पिताके सत्यकी रक्षा करनेके लिए हम शरीरको भी छोड़ सकते हैं। फिर तू बुद्धिमान् होकर भी लक्ष्मीको क्यों नहीं प्राप्त हो रहा है ? ॥१५८॥ मैं किसी नदीके किनारे, पर्वत अथवा वनमें वहाँ निवास करूँगा जहाँ कोई जान नहीं सकेगा इसलिए तू इच्छानुसार राज्य कर ॥१५९॥ हे गुणोंके आलय ! मैं अपना सब भाग छोड़ मार्गका ही आश्रय ले रहा हूँ। मैं पृथ्वीपर तुझे कुछ भी पीड़ा नहीं पहुँचाऊँगा ॥१६०॥ इसलिए लम्बी और गरम साँस मत ले, संसारका भय छोड़, पिताकी बात

---

१. युद्धे, ममासौ म.। २. प्रार्थितोऽनया म.। ३. असत्यसंधान- म.। ४. महाभोगे ख. । ५. भोगं म.।

इक्ष्वाकूणां कुलं श्रीमद्भूषयामलविभ्रमम् । अत्यन्तविपुलं भ्रातः शशी ग्रहकुलं यथा ॥१६१॥
भ्राजते त्रायमाणः सन् वाक्यं तत्पितृकस्य यत् । लक्ष्मणैरिदं भ्रातुर्भ्रातृत्वं परिकीर्तितम् ॥१६२॥
इत्युक्त्वा भावतः पादौ शिरसा भूतलस्पृशा । पितुः प्रणम्य तत्पार्श्वान्निर्गतो लक्ष्मणान्वितः ॥१६३॥
अत्रान्तरे नृपो मूर्छां संप्राप्तोऽपि न केनचित् । ज्ञातः स्तम्भसमायुक्तवपुः पुत्तलसमाकृतिः ॥१६४॥
स तूर्णं धनुरादाय गत्वा नत्वा च मातरम् । आपृच्छ्य तां च गच्छामि तावदन्यमहीमिति ॥१६५॥
सखीत्वं मूर्छया तस्या दुःखज्ञाननिवारणात् । क्षणं कृतं परिप्राप्तसंज्ञा चाक्राकुलेक्षणा ॥१६६॥
क्वेऽपराजिता[1] हा एवं वत्स क्व प्रस्थितोऽसि माम् । कस्मात्त्यजसि सत्चेष्ट क्षिप्त्वा शोकमहोदधौ ॥१६७॥
मनोरथशतैः पुत्र त्वं प्राप्तो दुर्लभो मया । आरोह इव शाखाया मातुरालम्बनं सुतः ॥१६८॥
परिदेवनमेवं तां कुर्वन्तीं हृदयङ्गमम् । जगाद प्रणतः पद्मो मातृभक्तिपरायणः ॥१६९॥
अम्ब मा गाः विषादं त्वं दक्षिणस्यामहं दिशि । निरूप्य संश्रयं योग्यं नेष्यामि त्वां विसंशयम् ॥१७०॥
दत्तेन पृथिवी दत्ता जननीवरदानतः । भरतायेति ते [2]कर्णजाहं नूनमुपागतम् ॥१७१॥
अन्ते तस्या महारण्ये विन्ध्याद्रौ मलयेऽथवा । अन्यस्मिन् वार्णवस्यान्ते पश्य मातः कृतं पदम् ॥१७२॥
मयि स्थिते समीपेऽस्मिन् लोके भास्करसंमते । आज्ञैश्वर्यमयी कान्तिर्भरतेन्दोर्न जायते ॥१७३॥
ततः प्ररुदती माता जगादात्यन्तदुःखिता । पुत्रं विनतमाश्लिष्य स्नेहकातरलोचना ॥१७४॥

मान और न्यायमें तत्पर रहकर पृथ्वीकी रक्षा कर ॥१६१॥ हे भाई ! जिस प्रकार चन्द्रमा ग्रहोंके समूहको अलंकृत करता है उसी प्रकार तु इक्ष्वाकुओंके इस लक्ष्मीसम्पन्न, निर्मल एवं अत्यन्त विशाल कुलको अलंकृत कर ॥१६२॥ जो पिताके वचनकी रक्षा करता हुआ देदीप्यमान होता है वही भाईका भाईपन है ऐसा विद्वानोंने कहा है ॥१६३॥ इतना कहकर राम पृथ्वीतलका स्पर्श करनेवाले शिरसे भावपूर्वक पिताके चरणोंमें प्रणाम कर लक्ष्मणके साथ उनके पाससे चले गये ॥१६४॥ इसी बीचमें यद्यपि राजा दशरथ मूर्च्छाको प्राप्त हो गये तो भी किसीको इसका पता नहीं चला क्योंकि वे जिस खम्भासे टिककर बैठे हुए थे मूर्च्छाके समय भी पुतलेके समान उसी खम्भासे टिके बैठे रहे ॥१६५॥ राम शीघ्र ही धनुष उठाकर माताके पास गये और प्रणाम कर पूछने लगे कि मैं अन्य पृथ्वी अर्थात् देशान्तरको जाता हूँ ॥१६६॥ रामकी बात सुनकर माताको मूर्च्छा आ गयी सो मानो दुःखका ज्ञान रोककर उसने सखीका कार्य किया। तदनन्तर क्षणभरके बाद जब मूर्च्छा दूर हुई तथा चैतन्य प्राप्त हुआ तब आँखोंमें आँसू भरकर माता अपराजिता (कौसल्या) बोली कि हाय वत्स ! तू कहाँ जा रहा है ? हे उत्तम चेष्टाके धारक पुत्र ! तू मुझे शोकरूपी महासागरमें डालकर क्यों छोड़ रहा है ? ॥१६७-१६८॥ हे पुत्र ! तू बड़ा दुर्लभ है, सैकड़ों मनोरथोंके बाद मैंने तुझे पाया है। जिस प्रकार शाखाका आलम्बन प्रारोह अर्थात् पाया होता है उसी प्रकार माताका आलम्बन पुत्र होता है ॥१६९॥ इस प्रकार हृदयमें चुभनेवाला विलाप करती हुई माताको प्रणाम कर मातृभक्तिमें तत्पर रहनेवाले रामने कहा कि माता ! तुम विषादको प्राप्त मत होओ। मैं दक्षिण दिशामें योग्य स्थान देखकर तुम्हें ले आऊँगा। इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१७०-१७१॥ 'पिताने, केकयी माताको वरदान देनेके कारण पृथ्वी भरतके लिए दे दी है' यह समाचार निश्चित ही आपके कर्णमूल तक आ गया होगा ॥१७२॥ अब यह पृथिवी जहाँ समाप्त होती है उसके अन्तमें किसी महाअटवीमें, विन्ध्याचलमें, मलयपर्वतपर अथवा समुद्रके निकट किसी अन्य देशमें हे माता ! अपना स्थान बनाऊँगा ॥१७३॥ सूर्यके समान जबतक मैं इस देशके समीप ही रहूँगा तबतक भरतरूपी चन्द्रमाकी आज्ञा ऐश्वर्यसे सम्पन्न नहीं हो सकेगी ॥१७४॥ तदनन्तर जो अत्यन्त दुःखी थी और जिसके नेत्र स्नेहसे कातर हो उठे थे ऐसी माता

---

१. कौसल्या, रामजननी। २. कर्णयोर्मूलमिति कर्णजाहम्।

तनयायैव मे गन्तुमुचितं भवता समम् । कथं त्वामहमपश्यन्ती प्राणान् धारयितुं क्षमा ॥१७६॥
पिता नाथोऽथवा पुत्रः कुलस्त्रीणां त्रयी गतिः । पितातिक्रान्तकालो मे नाथो दीक्षासमुत्सुकः ॥१७७॥
जीवितस्य त्वमेवैकः साम्प्रतं मेऽवलम्बनम् । त्वयापि रहिता साहं वद गच्छामि कां गतिम् ॥१७८॥
सोऽवोचदुपलैरस्र क्षितिरत्यन्तकर्कशा । भवत्या विषमा पद्भ्यां गन्तुं सा शक्यते कथम् ॥१७९॥
तस्मादेकक एवाहं विधाय सुखमाश्रयम् । यानेन केनचिन्नेष्ये भवन्तीं त्वत्समीपतः ॥१८०॥
अथा स्पृशामि ते मातः पादावेष तथा ध्रुवम् । आगमिष्यामि नेतुं [1]त्वां सुब्रु कार्यविचक्षणे ॥१८१॥
एवमुक्ते विमुक्तः सन् [2]परिलाल्यैव सुभाषितैः । पुनश्च पितरं दाशरथिर्भूयः प्रणिपपात सः ॥१८२॥
शेषं मातृजनं [3]नत्वा परिसान्त्व्य सुभाषितैः । अविषण्णमहाचेताः सर्वन्यायविचक्षणः ॥१८३॥
भ्रातृबन्धुपरिष्वङ्गं कृत्वा संभाषणं तथा । [4]सीतायाः सदनं प्राप्तः प्रेमनिर्भरमानसः ॥१८४॥
प्रिये त्वं तिष्ठ चान्यत्र गच्छाम्यहं पुरान्तरम् । ततो जगाद साध्वी सा यत्र त्वं तत्र चाप्यहम् ॥१८५॥
मन्त्रिणो नृपतीन् सर्वान् परिवर्गं च सादरम् । आपृच्छच्चैकवर्गेऽपि [5]भाषणालापताकुलः ॥१८६॥
प्रीत्या संवर्धितं भूयः कृतालिङ्गनमादृतम् [6] । मिन्नवर्गं सवाष्पाक्षं पुनरुक्तं न्यवर्तयत् ॥१८७॥
स्निग्धेन चक्षुषा पश्यन् प्रधानान्वाजिवारणान् । निरगच्छत्पितुर्गेहान्मन्दरस्थिरमानसः ॥१८८॥

रोती हुई, नम्रीभूत पुत्रका आलिंगन कर बोली कि हे पुत्र ! मेरा आज ही तेरे साथ चला जाना उचित है क्योंकि तुझे बिना देखे मैं प्राण धारण करनेके लिए कैसे समर्थ हो सकूँगी ? ॥१७५-१७६॥ पिता, पति अथवा पुत्र ये तीन ही कुलवती स्त्रियोंके आधार हैं। इनमें मेरे पिता तो अपना समय पूरा कर चुके हैं और पति दीक्षा लेनेके लिए उत्सुक हैं इस प्रकार इस समय मेरे जीवनका आधार एक तू ही है सो यदि तू भी मुझे छोड़ रहा है तो बता मैं किस दशाको प्राप्त होऊँ ॥१७७-१७८॥ यह सुन रामने कहा कि हे माता ! पृथ्वी पत्थरोंसे अत्यन्त कठोर है आप इस ऊँची-नीची पृथ्वीपर पैरोंसे किस प्रकार चल सकोगी ? ॥१७९॥ इसलिए मैं अभी अकेला ही जाता हूँ फिर सुखकारी कोई स्थान ठीक कर किसी यानके द्वारा आपको वहाँ ले जाऊँगा अतः आपका छोड़ना कैसे हुआ ? ॥१८०॥ हे माता ! मैं आपके चरणोंका स्पर्श कर कहता हूँ कि मैं आपको ले जानेके लिए अवश्य ही आऊँगा। हे कार्यके समझनेमें निपुण माता ! इस समय मुझे छोड़ दे ॥१८१॥ रामके ऐसा कहनेपर माताने उन्हें छोड़ दिया और अनेक हितकारी वचन कहकर उन्हें सान्त्वना दी। अब तक पिता दशरथ प्रबोधको प्राप्त हो चुके थे इसलिए रामने पुनः पास जाकर उन्हें प्रणाम किया ॥१८२॥ अपराजिताके सिवाय अन्य माताओंको नमस्कार कर अनेक मधुर वचनोंसे उन्हें सान्त्वना दी, भाई-बन्धुओंका आलिंगन कर उनके साथ मधुर सम्भाषण किया और तदनन्तर जिनका उदार हृदय विषादसे रहित था, तथा जो सर्व प्रकारके न्यायमें निपुण थे ऐसे राम हृदयको प्रेमसे भरकर सीताके महलमें पहुँचे ॥१८३-१८४॥ राम बोले कि—'हे प्रिये ! तुम यहीं पर रहो मैं दूसरे नगरको जाता हूँ'। तदनन्तर उस पतिव्रताने एक ही उत्तर दिया कि 'जहाँ आप रहेंगे वहीं मैं भी रहूँगी' ॥१८५॥ इसके पश्चात् रामने समस्त मन्त्रियोंसे, राजाओंसे तथा परिवारके अन्य लोगोंसे बड़े आदरके साथ पूछा। नगरमें जो बुद्धिमान् मनुष्य थे उनके साथ बड़ी तत्परतासे वार्तालाप किया ॥१८६॥ इस समय प्रीतिवश बहुत-से मित्र इकट्ठे हो गये थे जो बार-बार आलिंगन कर रहे थे, आदरसे भरे हुए थे तथा जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे। रामने अनेक बार कहकर उन्हें वापस लौटाया ॥१८७॥ तदनन्तर जिनका मन मेरु पर्वतके

---

१. त्वं म.। २. परिसान्त्वा म.। ३. गत्वा म., ज्ञात्वा क., ख.। ४. जानकीन्यस्तविस्तारिलोचनप्रश्रयान्वितः म., ज., क., ख. एषु पुस्तकेषु इतोऽग्रे 'प्रिये त्वं तिष्ठ' इत्यादिश्लोको नास्त्येव। ५. श्लेषवर्गेऽपि म.। ६. भीषणाल्लाप म.। ७. मारतं म.।

आहुतौकम् हुतं चारु सौमन्ता वाजिवारणम् । पद्मेन न गृहीतास्ते परमन्यायवेदिना ॥१८९॥
विदेशगमनोद्युक्तं दृष्ट्वा तं जानकी भृशम् । श्रीमदंशुकसंवीता विकसत्पद्मलोचना ॥१९०॥
प्रणम्य श्वसुरं श्वश्रूरापृच्छ्य च सुहृज्जनम् । विनीतानुययौ नाथं पौलोमीव सुराधिपम् ॥१९१॥
दृष्ट्वा रामुद्यतं गन्तुं स्नेहनिर्भरमानसः । लक्ष्मणोऽचिन्तयत् क्रोधं वहन्नयनलक्षकम् ॥१९२॥
अन्यायमीदृशं कर्तुं कथं तातेन वाञ्छितम् । स्वार्थसंसक्तनिश्चाशं धिक् स्त्रैणमनपेक्षितम् ॥१९३॥
अहो महानुभावोऽयं ज्यायान् पुरुषसत्तमः । मुनेरपीदृशं स्वान्तं दुष्करं जातु जायते ॥१९४॥
किमद्यैव करोम्यन्यां सृष्टिमुत्सृज्य दुर्जनान् । भरतस्य बलादाहो करोमि विमुखां श्रियम् ॥१९५॥
विधातुरद्य सामर्थ्यं भनज्मि चिरमूर्जितम् । निरुद्धय पादयोर्ज्येष्ठं करोमि श्रीसमुत्सुकम् ॥१९६॥
न युक्तमथवा चित्तं जातक्रोधानुगस्य मे । क्रोधः करोति मोहान्धमपि दीक्षामुपाश्रितम् ॥१९७॥
किमनेन विचारेण कृतेनानुचितेन मे । ज्येष्ठस्तातश्च जानाति सांप्रतासांप्रतं बहु ॥१९८॥
सितकीर्तिसमुत्पत्तिर्विधातव्या हि नः पितुः । तूष्णीमेवानुगच्छामि ज्यायान्सं साधुकारिणम् ॥१९९॥
प्रशाम्य स्वयं कोपमित्यादाय शरासनम् । प्रणम्यापृच्छ्य चाशेषं जनं गुरुपुरस्सरम् ॥२००॥
महाविनयसंपन्नो मार्गयोग्यकृताकृतिः । लक्ष्मीनिलयवक्षस्कः पद्मस्यानुपदं ययौ ॥२०१॥
पितरौ परिवर्गेण सहितौ तनयान्वितौ । वर्षा इव कुर्वाणौ तौ धारामिर्नयनाम्भसा ॥२०२॥

समान स्थिर था ऐसे राम, मुख्य-मुख्य घोड़ों तथा हाथियोंको स्नेहपूर्ण दृष्टिसे देखते हुए पिताके घरसे बाहर निकल पड़े ॥१८८॥ यद्यपि सामन्त लोग शीघ्र ही सुन्दर घोड़े और हाथी ले आये परन्तु परम न्यायके जाननेवाले रामने उन्हें ग्रहण नहीं किया ॥१८९॥ पतिको विदेश-गमनके लिए उद्यत देख, जिसके शरीरपर सुन्दर वस्त्रका आवरण था, जिसके नेत्र फूले हुए कमलके समान थे ऐसी सीता भी, सास-श्वसुरको प्रणाम कर तथा मित्रजनोंसे पूछकर, जिस प्रकार इन्द्राणी इन्द्रके पीछे चलती है उसी प्रकार रामके पीछे चलने लगी ॥१९०–१९१॥

तदनन्तर जिसका चित्त स्नेहसे भरा हुआ था ऐसे लक्ष्मणने जब रामको जाते हुए देखा तो नेत्रोंमें छलकते हुए क्रोधको धारण करता हुआ वह चिन्ता करने लगा कि अहो! पिताजी ऐसा अन्याय क्यों करना चाहते हैं? जिसमें निरन्तर स्वार्थ साधनकी ही आशा लगी रहती है तथा जिसमें दूसरेकी कुछ भी अपेक्षा नहीं की जाती ऐसे स्त्री स्वभावको धिक्कार हो ॥१९२–१९३॥ अहो! बड़े भाई राम महानुभाव हैं तथा पुरुषोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। इनके समान दुर्लभ हृदय तो मुनिके भी जब कभी ही होता है ॥१९४॥ क्या दुर्जनोंको छोड़कर आज ही दूसरी सृष्टि रच डालूँ या बलपूर्वक लक्ष्मीको भरतसे विमुख कर दूँ? ॥१९५॥ मैं आज विधाताकी बलवती सामर्थ्यको नष्ट करता हूँ और चरणोंमें पड़कर बड़े भाईको लक्ष्मीमें उत्सुक करता हूँ ॥१९६॥ अथवा क्रोधके वशीभूत हो मुझे ऐसा विचार करना उचित नहीं है क्योंकि क्रोध दीक्षा धारण करनेवाले मुनिको भी मोहसे अन्धा बना देता है ॥१९७॥ मुझे इस अनुचित विचार करनेसे क्या प्रयोजन है? क्योंकि बड़े भाई राम तथा पिता ही 'यह कार्य उचित है अथवा अनुचित' यह अच्छी तरह जानते हैं ॥१९८॥ हमें पिताकी उज्ज्वल कीर्ति ही उत्पन्न करनी चाहिए अतः मैं चुपचाप उत्तम कार्य करनेवाले बड़े भाईके ही साथ जाता हूँ ॥१९९॥ इस प्रकार लक्ष्मण स्वयं ही क्रोध शान्त कर, धनुष लेकर तथा पिता आदि समस्त जनोंसे पूछकर भी रामके पीछे चलने लगा। उस समय लक्ष्मण महाविनयसे सम्पन्न था, मार्गके योग्य उसकी वेषभूषा थी, तथा उसका वक्षःस्थल लक्ष्मीका घर था ॥२००–२०१॥ उस समयका दृश्य बड़ा ही करुण था। सीताके साथ राम-लक्ष्मण आगे बढ़े जाते थे और माता-पिता परिवार तथा शेष दो पुत्रोंके साथ धारा-प्रवाह आँसुओंसे मानो वर्षा कर

---

१. चारून् म.। २. सामन्तान् म.। ३. नयनलक्षणम् म.। ४. दुर्जनात् म.। ५. मथ म.। ६. प्रशाम्य म.।

परिसान्त्वनसूरिभ्यां प्राप्ताभ्यां निश्चयं परम् । कृच्छ्राभिवर्तितौ ताभ्यां प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥२०३॥
निवर्त्यमानबन्धूनां समूहेनान्वितावुभौ । राजगेहाद्विनिष्क्रान्तौ देवाविव सुरालयात् ॥२०४॥
वर्तते किमिदं मातः कस्येदं [1]मतमीदृशम् । अभाग्येयं पुरी कृत्स्नमथवा सकला मही ॥२०५॥
यामोऽनेन समं दुःखमेताभ्यां सह गम्यते । महाशक्ताविमौ कृच्छ्राद्धरणीधरगह्वरात् ॥२०६॥
पश्य सीता कथं याति [2]नाथेनैषानुमोदिता । अस्याः सुविहितं सर्वं पतिभ्राता करिष्यति ॥२०७॥
अहो परमधन्येयं जानकी रूपशालिनी । विनयांशुकसंवीता भर्तारं यानुगच्छति ॥२०८॥
अस्माकमपि नारीणामेवैव भवताद् गतिः । उदाहरणभूतेयं भर्तृदैवतयोषिताम् ॥२०९॥
पश्य मातरमुज्झित्वा नेत्राम्बुप्लाविताननाम् । एष लक्ष्मीधरो गन्तुमुद्युक्तो ज्यायसा समम् ॥२१०॥
अहो प्रीतिरहो भक्तिरहो शक्तिरहो क्षमा । अहो विनयसंभारः श्लाघतोऽस्य विराजते ॥२११॥
भरतस्य किमाकूतं कृतं दशरथेन किम् । रामलक्ष्मणयोरेषा का मनीषा व्यवस्थिता ॥२१२॥
कालः कर्मेश्वरो दैवं स्वभावः पुरुषः क्रिया । नियतिर्वा करोत्येवं [3]विचित्रं कः समीहितम् ॥२१३॥
वर्ततेऽनुचितं अहं क्व गता स्थानदेवता[4] । [illegible] ॥२१४॥
कुमाराभ्यां समं गन्तुमुत्सुके सकले जने । पुरी शून्यगृहा जाता नष्टाशेषसमुत्सवा ॥२१५॥
पुष्पप्रकरसंपूर्णाः समस्ता द्वारभूमयः । पिच्छलत्वं समानीताः शोकपूर्णैजनाश्रुभिः ॥२१६॥

रहे थे ॥२०२॥ परन्तु दोनों भाई दृढ़ निश्चयको प्राप्त थे और सान्त्वना देनेमें अत्यन्त निपुण थे इसलिए उन्होंने बार-बार चरणोंमें गिरकर माता-पिताको बड़ी कठिनाईसे वापस किया ॥२०३॥ उन्होंने भाई-बन्धुओंको बहुत लौटाया फिर भी वे लौटे नहीं। अन्तमें जिस प्रकार स्वर्गसे देव बाहर निकलते हैं उसी प्रकार दोनों भाई राजमहलसे बाहर निकले ॥२०४॥ 'हे माता! यह क्या हो रहा है? यह ऐसा किसका मत था? अर्थात् किसके कहनेसे यह सब हुआ है? यह नगरी बड़ी अभागिन है अथवा नगरी ही क्यों समस्त पृथिवी अभागिन है ॥२०५॥ अब हम इनके साथ ही चलेंगे, इनके साथ रहनेसे सब दुःख दूर हो जायेगा। ये दोनों ही दुःखरूपी पर्वतकी गुहासे उद्धार करनेमें अत्यन्त समर्थ हैं ॥२०६॥ देखो, यह सीता कैसी जा रही है? पतिने इसे साथ चलनेकी अनुमति दे दी है। देवर इसका सब काम ठीक कर देगा ॥२०७॥ अहो! जो विनयरूपी वस्त्रसे आवृत होकर पतिके पीछे-पीछे जा रही है ऐसी यह रूपवती जानकी अत्यन्त धन्य है—बड़ी भाग्यवती है ॥२०८॥ हमारी स्त्रियोंकी भी ऐसी ही गति हो। यह पतिव्रता स्त्रियोंके लिए उदाहरणस्वरूप है ॥२०९॥ अहो! देखो, जिसका मुख आँसुओंसे भीग रहा है ऐसी माताको छोड़कर यह लक्ष्मण बड़े भाईके साथ जानेके लिए उद्यत हुआ है ॥२१०॥ अहो! इस लक्ष्मणकी प्रीति धन्य है, भक्ति धन्य है, शक्ति धन्य है, क्षमा धन्य है और विनयका समूह धन्य है ॥२११॥ भरतका क्या अभिप्राय था? और राजा दशरथने यह क्या कर दिया? राम-लक्ष्मणके भी यह कौन-सी बुद्धि उत्पन्न हुई है? ॥२१२॥ यह सब काल, कर्म, ईश्वर, दैव, स्वभाव, पुरुष, क्रिया अथवा नियति ही कर सकती है। ऐसी विचित्र चेष्टाको और दूसरा कौन कर सकता है? ॥२१३॥ यह सब बड़ा अनुचित हो रहा है। इस स्थानके देवता कहाँ गये? उस समय लोगोंकी भीड़से इस प्रकारके शब्द निकल रहे थे ॥२१४॥

उस समय समस्त लोग राम-लक्ष्मणके साथ जानेके लिए उत्सुक हो रहे थे इसलिए नगरीके समस्त घर सूने हो गये थे तथा नगरीका समस्त उत्सव नष्ट हो गया था ॥२१५॥ समस्त घरोंके दरवाजोंकी जो भूमियाँ पहले फूलोंके समूहसे व्याप्त रहती थीं वे उस समय शोकसे भरे

---

१. व्रत म.। २. नाथेनानुमोदिता म. (?)। ३. विचित्रकसमीहितम् म.। ४. देवताः म., ख.।

जनस्योत्सारणोद्भूतैः [1]जङ्घाविरलनरोत्करैः । पंक्तयः सागरस्येव विक्षोभ्यन्ते महानिलैः ॥२१७॥
भक्तिभिः पूज्यमानोऽपि संभाषणसमुद्यतः । दाक्षिण्यपरमः पद्मो मेने विघ्नं पदे पदे ॥२१८॥
असक्त इव तं द्रष्टुमसमञ्जसमीदृशम् । मन्दं मन्दांशुसङ्घातो रविरस्तमुपागमत् ॥२१९॥
रविणा दिवसस्यान्ते त्यक्ताः सर्वमरीचयः । [2]ज्येष्ठचक्रधरेणेव संपदो मुक्तिमिच्छता ॥२२०॥
दधाना परमं रागमुचिताम्बरयोगिनी । अभियाय रविं संध्या सीता दाशरथिं यथा ॥२२१॥
ततो विशेषविज्ञानविध्वंसनविधायिना । रामवज्योद्भवेनेव तमसा व्याप्तं जगत् ॥२२२॥
अनुप्रयातुकामस्य कृतं लोकस्य वञ्चनम् । ससीतौ तावरेशस्य [3]स्थानं प्राप्तौ क्षपामुखे ॥२२३॥
भवान्तकस्य भवनं नित्यालंकृतपूजितम् । चन्दनाम्भोऽनुलिप्तक्ष्मं [4]त्रिद्वारं तुङ्गतोरणम् ॥२२४॥
दर्पणादिविभूषं तत्ससीतौ सप्रदक्षिणम् । प्रविष्टावनपेक्षौ तौ यथाविधि विशारदौ ॥२२५॥
तृतीये तु जनो द्वारे प्रतिहारेण रुध्यते । कर्मणा मोहनीयेन शिवमिच्छन् कुदृष्टिवत् ॥२२६॥
स्थापयित्वा धनुर्वर्म पुण्डरीकनिभेक्षणौ । जिनेन्द्रवदनं दृष्ट्वा तौ वरां धृतिमागतौ ॥२२७॥
मणिपीठस्थितं सौम्यं प्रलम्बितभुजद्वयम् । श्रीवत्सभासुरोरस्कं व्यक्तनिश्शेषलक्षणम् ॥२२८॥

मनुष्योंके आंसुओंसे पंकिल अर्थात् कर्दमयुक्त हो गयी थीं ॥२१६॥ जिस प्रकार महापवनसे समुद्रकी लहरें क्षोभको प्राप्त होती हैं उसी प्रकार उत्तम मनुष्योंके द्वारा दूर हटाये गये लोगोंकी पंक्तियाँ क्षोभको प्राप्त हो रही थीं ॥२१७॥ लोग पद-पदपर भक्तिवश रामकी पूजा करते थे और भक्तिवश उनके साथ वार्तालाप करनेके लिए उद्यत होते थे सो अत्यन्त सरल प्रकृतिके धारक राम उसे विघ्न मानते थे ॥२१८॥

तदनन्तर धीरे-धीरे जिसकी किरणें मन्द पड़ गयी थीं ऐसा सूर्य अस्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो वह इस अनुचित कार्यको देखनेके लिए असमर्थ होनेसे ही अस्त हो गया था ॥२१९॥ जिस प्रकार मुक्तिकी इच्छा करनेवाले प्रथम चक्रवर्ती भरतने सब सम्पत्तियाँ छोड़ दी थीं उसी प्रकार दिनके अन्तमें सूर्यने सब किरणें छोड़ दीं ॥२२०॥ जिस प्रकार परम राग अर्थात् उत्कृष्ट प्रेमको धारण करनेवाली तथा उचित-अम्बर अर्थात् योग्य वस्त्रसे सुशोभित सीता रामके पीछे जा रही थी उसी प्रकार परम राग अर्थात् उत्कृष्ट लालिमा और उचित-अम्बर अर्थात् अभ्यस्त आकाशके समागमको प्राप्त सन्ध्या सूर्यके पीछे जा रही थी ॥२२१॥ तदनन्तर वस्तुओंके विशेष ज्ञानको नष्ट करनेवाले अन्धकारसे समस्त जगत् व्याप्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो रामके जानेसे उत्पन्न शोकसे ही व्याप्त हो गया हो ॥२२२॥ तत्पश्चात् पीछे चलनेके लिए उत्सुक मनुष्योंको धोखा देनेके लिए सीता सहित वे दोनों कुमार सायंकालके समय अरहनाथ भगवान्‌के मन्दिरमें पहुँचे ॥२२३॥ संसारको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌का वह मन्दिर सदा अलंकृत रहता था, लोग उसकी निरन्तर पूजा करते थे, चन्दनके जलसे वहाँकी भूमि लिप्त रहती थी, उसमें तीन दरवाजे थे, ऊँचा तोरण था और दर्पणादि मंगल द्रव्योंसे वह विभूषित रहता था। सो अतिशय बुद्धिमान् तथा अन्यकी अपेक्षासे रहित राम-लक्ष्मणने सीताके साथ प्रदक्षिणा देकर उस मन्दिरमें विधिपूर्वक प्रवेश किया ॥२२४-२२५॥ दो दरवाजे तक तो सब मनुष्य चले गये परन्तु तीसरे दरवाजेपर द्वारपालने उन्हें उस प्रकार रोक दिया जिस प्रकारकी मोक्षकी इच्छा करनेवाले मिथ्यादृष्टिको मोहनीय कर्म रोक देता है ॥२२६॥ कमलके समान नेत्रोंको धारण करनेवाले राम-लक्ष्मण, अपने धनुष तथा कवच एक ओर रख भगवान्‌के दर्शन कर परम सन्तोषको प्राप्त हुए ॥२२७॥ तदनन्तर जो मणिमयी चौकीपर विराजमान थे, सौम्य थे, जिनकी दोनों

---

१. पङ्क्तयः । विक्षिप्यो म. । २. प्रथमचक्रवर्तिना भरतेन । ३. तौ + अरेशस्य = अरनाथस्य स्थानं मन्दिरम् । ४. भवनाम्भोजलिप्तक्ष्मं ।

संपूर्णचन्द्रवदनं विकुड्मलकमलेक्षणम् । अस्मर्यमाणनिर्माणबिम्बमष्टादशं जिनम् ॥२२९॥
प्रणम्य सर्वभावेन समभ्यर्च्य च सादरौ । स्थितौ तत्र विभावर्यां चिन्तयन्तौ सुहृज्जनम् ॥२३०॥
तत्र तावुषितौ ज्ञात्वा मातरः पुत्रवत्सलाः । दूरमेव समाकुलाः स्नेहात् परिष्वज्य पुनः पुनः ॥२३१॥
पुत्राभ्यां सह संमन्त्र्य दर्शने तृप्तिवर्जिताः । दोलारूढसमात्मानो[1] जग्मुर्दशरथं पुनः ॥२३२॥
सर्वासामेव शुद्धीनां मनःशुद्धिः प्रशस्यते । अन्यथालिङ्ग्यतेऽपत्यमन्यथालिङ्ग्यते पतिः ॥२३३॥
ततस्ता गुणलावण्यरूपवेषमहोदयाः । जग्मुर्मंथुरवादिन्यः प्रियं मन्दरनिश्चलम् ॥२३४॥
कुलपोतं निमज्जन्तं प्रिय शोकमहार्णवे । संधारय ससौमित्रिं विनिवर्तय राघवम् ॥२३५॥
सोऽवोचन्न ममायत्तं जगद्वात्र विकारिकम् । प्रमाणं चेन्मदीयेच्छा सुखमेवास्तु जन्तुषु ॥२३६॥
जन्ममृत्युजराव्याधैर्मारुम कश्चिद्विबाध्यताम् । नाना कर्मस्थितौ स्वस्थां को नु शोचति कोविदः ॥२३७॥
पर्याप्तिर्नास्ति मृष्टानामिष्टानां दर्शनेषु वा । बान्धवानां सुखानां च जीवितस्य धनस्य च ॥२३८॥
असमाप्तेन्द्रियसुखं कदाचिदस्थितिक्षये । पक्षी वृक्षमिव त्यक्त्वा देहं जन्तुर्गमिष्यति ॥२३९॥
[2]पुत्रवत्स्यो [3]भवत्योऽत्र निवर्तयत सत्सुतौ । [4]उपभुक्ष्वं सुविश्रब्धाः पुत्रभोगोदयद्युतिम् ॥२४०॥
त्यक्तराज्याधिकारोऽहं निवृत्तः पापचेष्टितात् । भवादुग्रं भयं प्राप्तः करोमि चरितं मुनेः ॥२४१॥

भुजाएँ नीचेकी ओर लटक रही थीं, जिनका वक्षःस्थल श्रीवत्सके चिह्नसे सुशोभित था, जिनके समस्त लक्षण स्पष्ट दिखाई देते थे, जिनका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान था, जिनके नेत्र विकसित कमलके समान थे, और जिनके प्रतिबिम्बकी रचना भुलायी नहीं जा सकती थी। ऐसे अठारहवें अरनाथ जिनेन्द्रको सर्व भाव अर्थात् मन-वचन-कायसे प्रणाम कर तथा उनकी पूजा कर आदरसे भरे हुए राम-लक्ष्मण मित्रजनोंकी चिन्ता करते हुए रात्रिके समय उसी मन्दिरमें स्थित रहे ॥२२८–२३०॥ पुत्रवत्सल माताओंको जब पता चला कि राम-लक्ष्मण अर-जिनेन्द्रके मन्दिरमें ठहरे हैं तब वे तत्काल दौड़ी आयीं। उस समय उनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे। उन्होंने बार-बार पुत्रोंका आलिंगन किया और बार-बार उनके साथ मन्त्रणा—सलाह की। उन्हें पुत्रोंको देखते-देखते तृप्ति ही नहीं होती थी और संकल्प-विकल्पके कारण उनकी आत्मा हिंडोले पर चढ़ी हुईके समान चंचल हो रही थी। अन्तमें वे पुनः राजा दशरथके पास चली गयीं ॥२३१–२३२॥ आचार्य कहते हैं कि सब शुद्धियोंमें मनकी शुद्धि ही सबसे प्रशस्त है। स्त्री पुत्र और पति दोनोंका आलिंगन करती है परन्तु परिणाम पृथक्-पृथक् रहते हैं ॥२३३॥

तदनन्तर गुण-लावण्यरूप वेष आदि महाअभ्युदयको धारण करनेवाली चारों मिष्टवादिनी रानियाँ मेरुके समान निश्चल पतिके पास गयीं और बोलीं कि हे वल्लभ ! शोकरूपी समुद्रमें डूबते हुए इस कुलरूपी जहाजको रोको और लक्ष्मण सहित रामको वापस बुलाओ ॥२३४–२३५॥ इसके उत्तरमें राजा दशरथने कहा कि यह विकाररूप जगत् मेरे आधीन नहीं। मेरी इच्छानुसार यदि काम हो तो मैं तो चाहता हूँ कि समस्त प्राणियोंमें सदा सुख ही रहे ॥२३६॥ जन्म, जरा और मरणरूपी व्याधोंके द्वारा किसीका घात नहीं हो परन्तु कर्मोंकी स्थिति नाना प्रकारकी है अतः कौन विवेकी शोक करे ॥२३७॥ बान्धवादिक इष्ट पदार्थोंके देखनेमें किसीको तृप्ति नहीं है सांसारिक सुख, धन और जीवनके विषयमें भी किसीको सन्तोष नहीं है ॥२३८॥ कदाचित् इन्द्रिय-सुखकी पूर्णता न हो और आयु समाप्त हो जावे तो यह प्राणी जिस प्रकार पक्षी एक वृक्षको छोड़कर दूसरे वृक्षपर चला जाता है उसी प्रकार एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरको प्राप्त हो जाता है ॥२३९॥ आप लोग पुत्रवाली हैं अर्थात् आपके पुत्र हैं इसलिए गुणी पुत्रोंको लौटा लो और निश्चिन्त होकर पुत्रभोगका अभ्युदय भोगो ॥२४०॥ मैं तो राज्यका अधिकार छोड़ चुका हूँ, इस

---

१. दोलारूढमिवात्मानो म. । २. पुत्रवत्स्यो म. । ३. भवन्स्थो म. । ४. उपयुक्तं म. ।

आर्यागीतिच्छन्दः

एवं निश्चितचित्तो दशरथनृपतिस्समग्रमौदासीन्यम् ।
भेजे रविसमतेजाः सकलक्षुभावाभिलाषदोषविमुक्तः ॥२४२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दशरथप्रव्रज्याभिधानं नामैकत्रिंशत्तमं पर्वं ॥३१॥

□

पापपूर्ण चेष्टासे निवृत्त हो गया हूँ और संसारसे तीव्र भय प्राप्त कर चुका हूँ इसलिए मुनिव्रत धारण करूँगा ॥२४१॥ इस प्रकार जिन्होंने अपने चित्तमें दृढ़ निश्चय कर लिया था, जो सूर्यके समान तेजस्वी थे और जो समस्त मिथ्याभावोंकी अभिलाषारूपी दोषसे रहित थे ऐसे राजा दशरथने सब प्रकारकी उदासीनता धारण कर ली ॥२४२॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्यके द्वारा कथित
पद्मचरितमें राजा दशरथके वैराग्यका वर्णन करनेवाला
इकतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३१॥

□

द्वात्रिंशत्तमं पर्व

अथ तत्र क्षणं कृत्वा निद्रान्तौ धृतकङ्कटौ । अर्धरात्रे महाध्वान्ते निश्शब्दे शान्तमानवे ॥१॥
विधाय जानकीं मध्ये जिनं नत्वा सकार्मुकौ । सुवेषौ प्रस्थितौ दीपैः पश्यन्तावित्र कामिनः ॥२॥
कश्चित् सुरतखिन्नाङ्गो बाहुपञ्जरवर्तिनीम् । कृत्वा प्राणसमां निद्रामतिगाढां निषेवते ॥३॥
[2]कृत्वापराधकः पूर्वं कोपिनीं कश्चिदङ्गनाम् । प्रत्याययत्यलीकेन शपथेन पुनः पुनः ॥४॥
अपरो मानमुत्सृज्य कान्तया स्मरतप्तया । कृतकं कोपमायातः सुवाग्भिः परिसान्त्व्यते ॥५॥
सुरतायासखिन्नाङ्गा देहे कस्यचिदङ्गना । लीना तत्त्वमिव प्राप्ता गाढां निद्रां निषेवते ॥६॥
नवसङ्गमनां कश्चिज्जायां विमुखवर्तिनीम् । कृच्छ्रात् प्रस्तावमानीय सम्भाषयति संमदी ॥७॥
कस्मैचित्पूर्ववैगुण्यं कथयत्यङ्गनाखिलम् । अपरो वेदयत्यस्मै विच्छायः कृतमानसः ॥८॥
कश्चित् परगृहं प्राप्तो धूर्तः सङ्कुचिताङ्गकः । उद्वासयति मार्जारं वातायनकृतस्थितिम् ॥९॥
अपरः कृतसंकेतां शून्यदेशकुलान्तरे । कुलटामाकुलीभूतो मुहुरुत्थाय वीक्षते ॥१०॥
चिरादुपगतं कश्चिद् घनरोषाभिसारिका । ताडयत्युत्तरीयेण बध्वा मेखलया खलम् ॥११॥
अभिसारिकया साकमन्यः प्राप्य समागमम् । शुनोऽपि पदशब्देन याति त्रासमनुत्तमम् ॥१२॥

अथानन्तर राम-लक्ष्मण उस मन्दिरमें कहीं क्षण एक निद्रा लेकर अर्धरात्रिके समय जब घोर अन्धकार फैल रहा था, लोगोंका शब्द मिट गया था, और मनुष्य शान्त थे तब जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर कवच धारण कर तथा धनुष उठाकर चले। वे सीताको बीचमें करके चल रहे थे। दोनों ही उत्तम वेषके धारक थे तथा दीपक हाथमें लिये थे जिससे ऐसे जान पड़ते थे मानो मण्डपादि स्थानोंमें कामी जनोंको देख ही रहे थे ॥१-२॥ उन्होंने देखा कि जिसका शरीर सम्भोगसे खिन्न हो रहा है ऐसा कोई पुरुष अपनी प्राणवल्लभाको भुजारूप पंजरके मध्य रखकर अत्यन्त गाढ़ निद्राका सेवन कर रहा है ॥३॥ अपराध करनेवाले किसी पुरुषने पहले तो अपनी स्त्रीको कुपित कर दिया और पीछे बार-बार झूठी शपथके द्वारा उसे विश्वास दिला रहा है ॥४॥ कोई एक पुरुष कृत्रिम कोपकर पृथक् बैठा है और उसकी स्त्री कामसे उत्तप्त हो उसे मधुर वचनोंसे शान्त कर रही है ॥५॥ सुरतके श्रमसे जिसका शरीर खिन्न हो रहा था ऐसी कोई स्त्री पतिके शरीरमें इस तरह लीन होकर गाढ़ निद्रा ले रही है जिस तरह कि मानो वह पतिके साथ अभेदको ही प्राप्त हो चुकी हो ॥६॥ कोई एक पुरुष लज्जाके कारण विमुख बैठी नवोढ़ा पत्नीको बड़ी कठिनाईसे अनुकूल कर हर्षपूर्वक उसके साथ वार्तालाप कर रहा है ॥७॥ कोई एक स्त्री अपने पतिके लिए उसके द्वारा पहले किये हुए सब अपराध बता रही है और वह उसे मनाकर निश्चिन्ततासे उसका समाधान कर रहा है ॥८॥ कोई एक धूर्त पुरुष अपने शरीरको संकुचित कर दूसरेके घर पहुँचा है और वहाँ झरोखेमें बैठे बिलावको वहाँसे हटा रहा है ॥९॥ किसी पुरुषने अपनी कुलटा प्रेमिकाको सूने मठमें आनेका संकेत दिया था पर उसने आनेमें विलम्ब किया इसलिए वह व्याकुल हो बार-बार उठकर उसे देख रहा है ॥१०॥ किसी अभिसारिकाका प्रेमी देरसे आया था इसलिए वह अत्यन्त कुपित हो उसे मेखलासे बाँधकर उत्तरीय वस्त्रसे पीट रही है ॥११॥ और कोई एक मनुष्य अभिसारिकाके साथ समागम प्राप्त कर कुत्तेके

---

१. विति कामिनः म. । २. कृतापराधकः ज. ।

इति [1]निर्यूहदेशेषु मण्डपेषु च कामिनाम् । शृण्वन्तौ [2]वीक्षमाणौ च [3]वृत्तान्तं जग्मतुः शनैः ॥१३॥
अवद्वारेण[4] निर्गत्य पुरीतः पश्चिमेन तौ । आश्रितौ मार्गयोगेन दक्षिणां दक्षिणां दिशम् ॥१४॥
त्रियामान्ते ततोऽस्पष्टे सामन्ता वेगवाहिनः । रावचेन समं गन्तुमुत्सुका भक्तिनिर्भराः ॥१५॥
यथाश्रुति परिज्ञाय बन्धुवञ्चनकारिणः । समीपं रामदेवस्य प्रापुर्मन्थरगामिनः ॥१६॥
ते चक्षुर्गोचरीकृत्य समेतौ रामलक्ष्मणौ । महाविनयसंपन्नाः पद्भ्यामेव ह्युदौकिरे ॥१७॥
प्रणिपत्य च भावेन सक्रमं संवभाषिरे । यावत्तावन्महासैन्यं तद्गवेषार्थमाययौ ॥१८॥
प्रशशंसुश्च ते सीतामिति निर्मलचेतसः । वयमस्याः प्रसादेन राजपुत्रौ समागताः ॥१९॥
अथास्यथदि नैताभ्यां सममेषा सुमन्थरा । ततः कथमिव प्राप्स्यामेतौ पवनरंहसौ ॥२०॥
ह्यं नः सुसती माता परमप्रियकारिणी । एतस्याः सदृशी नान्या प्रशस्तास्ति क्षितावि ह ॥२१॥
तौ सीतागतिचिन्तस्थान्मन्दमन्दं नरोत्तमौ । गव्यूतिमात्रमध्वानं सुखयोगेन जग्मतुः ॥२२॥
सस्यानि बहुरूपाणि पश्यन्तौ क्षितिमण्डले । सरांसि कमलाढ्यानि तरूंश्च गगनस्पृशः ॥२३॥
आपूर्यमाणपर्यन्तौ वेगवद्भिर्नराधिपैः[5] । घनागमे[6] नदैर्गङ्गाकालिन्दीप्रवहाविव ॥२४॥
ग्रामखेटमटम्बेषु घोषेषु नगरेषु च । लोकेन पूजितौ वीरौ भोजनादिभिरुत्तमौ ॥२५॥
केचिद्व्रजन्तमेवेयं सामन्ता व्रजतोस्त्वयोः । पश्चादज्ञापयित्वैव निवृत्ता ज्ञातनिश्चयाः ॥२६॥

भी पैरकी आहट सुनकर अत्यधिक भयको प्राप्त हो रहा है ॥१२॥ इस प्रकार बाह्य झरोखों और मण्डपोंमें कामीजनोंको देखते तथा उनके वृत्तान्तको सुनते हुए राम और लक्ष्मण धीरे-धीरे जा रहे थे ॥१३॥ वे अतिशय सरल थे और वे नगरीके पश्चिम द्वारसे बाहर निकलकर आगे मिलनेवाले मार्गसे दक्षिण दिशाकी ओर चले गये ॥१४॥

इधर जब भक्तिसे भरे तथा रामके साथ जानेके लिए उत्सुक सामन्तोंको कानोंकान यह पता चला कि राम तो बन्धुजनोंको धोखा देकर चले गये हैं तब वे प्रातःकाल होनेके पूर्व जब कुछ-कुछ अँधेरा था वेगसे घोड़े दौड़ाकर मन्थर गतिसे चलनेवाले रामके पास जा पहुँचे ॥१५-१६॥ जब उन्हें साथ-साथ चलनेवाले राम-लक्ष्मण नेत्रोंसे दिखने लगे तब वे महाविनयसे युक्त हो पैदल ही चलने लगे ॥१७॥ सामन्त लोग भावपूर्वक प्रणाम कर जबतक उनके साथ यथाक्रमसे वार्तालाप करते हैं तबतक उन्हें खोजनेके लिए बड़ी भारी सेना वहाँ आ पहुँची ॥१८॥ अत्यन्त निर्मल चित्तके धारक सामन्त लोग सीताकी इस प्रकार स्तुति करने लगे कि हम लोग इसके प्रसादसे ही राजपुत्रोंको प्राप्त कर सके हैं ॥१९॥ यदि यह इनके साथ धीरे-धीरे नहीं चलती तो हम पवनके समान वेगशाली राजपुत्रोंको किस तरह प्राप्त कर सकते ? ॥२०॥ यह माता अत्यन्त सती तथा हम सबका बहुत भारी भला करनेवाली है। इस पृथिवीपर इसके समान दूसरी पवित्र स्त्री नहीं है ॥२१॥ मनुष्योंमें उत्तम राम लक्ष्मण सीताकी गतिका ध्यान कर गव्यूति प्रमाण मार्गको ही सुखसे तय कर पाते थे ॥२२॥ वे पृथिवीमण्डलपर नाना प्रकारके धान, कमलोंसे सुशोभित तालाब और गगनचुम्बी वृक्षोंको देखते हुए जा रहे थे ॥२३॥ जिस प्रकार वर्षाऋतुमें गंगा और यमुनाके प्रवाह अनेक नदियोंसे मिलते रहते हैं उसी प्रकार राम-लक्ष्मणके पर्यन्त भाग भी अनेक वेगशाली राजाओंसे मिलते रहते थे ॥२४॥ ग्राम, खेट, मटम्ब, घोष तथा नगरोंमें लोग उन उत्तम वीरोंका भोजनादि सामग्रीके द्वारा सत्कार करते थे ॥२५॥ दोनों ही भाई आगे बढ़ रहे थे, और सामन्त लोग मार्गके खेदसे दुःखी हो रहे थे। जब उन्हें इस बातका दृढ़ ज्ञान हो गया कि राम-लक्ष्मण लौटनेवाले नहीं हैं तब वे उनसे कहे बिना ही लौट गये ॥२६॥ भक्तिमें तत्पर रहनेवाले कितने

---

१. गवाक्षप्रदेशेषु । २. वीक्ष्यमाणौ म. । ३. वृत्तान्तौ म. । ४. लघुना द्वारेण, अपहारेण (?) म. । ५. वेगवद्भिर्नराधिपैः म. । ६. घनागमे नदौ गंगा म. ।

अपरे त्रपया केचिल्लोल्याम्ये भक्तितत्पराः । अव्रजन् विनयात् पद्मपां दत्त्वा दुःखस्य मानसम् ॥२७॥
ततो हरिगजव्रातसङ्कुलारावभैरवाम् । [1]परियात्राटवीं प्राप्तौ लीलया रामलक्ष्मणौ ॥२८॥
तस्यां बहुलशर्वर्या तुल्यध्वान्तां महाननैः । निम्नगां शर्वरीमेतौ शबराश्रितरोधसाम् ॥२९॥
तस्या रोधसि विश्रम्य नानास्वादुफलोचिते । [2]कांश्चिन्न्यवर्तयद्भूपान् पद्मः सुप्रतिबोधमः ॥३०॥
महतापि प्रयत्नेन निवृत्ता नापरे नृपाः । पद्मेन सहितं गन्तुं किल सञ्जातनिश्चयाः ॥३१॥
गतस्ते निम्नगां दृष्ट्वा महानीलावभासिनीम् । खण्डवेगोर्मिसंघातनिर्मितोदरनिश्रिताम् ॥३२॥
उन्मज्जत्प्रबलग्राहशफरीसङ्कुलाम् । दीर्घोभयतटप्रान्तविपतद्भूरुहैरधः ॥३३॥
[3]महाद्रिकन्दरास्फालैः प्रतिसूत्कारनादिनीम् । उद्वर्तमानमीनाक्षस्फुरत्प्रास्करशोचिषम् ॥३४॥
उद्वृत्तनक्रसूत्कारजातदूरगशीकराम् । उड्डीयमाननिश्शेषभयपूर्णपतत्रिणाम् ॥३५॥
संत्रासकम्पमानाङ्गा जगुः रामं सलक्ष्मणम् । समुत्तारय नाथास्मानपि पद्मप्रसादवान् ॥३६॥
भृत्यानां भक्तिपूर्णानां प्रसादं कुरु लक्ष्मण । देवि ते कुरुते वाक्यं जानकि ब्रूहि लक्ष्मणम् ॥३७॥
एवमादि गदन्तस्ते कृपणा बहु तां नदीम् । कुर्वीकिरे प्रसक्तुश्च नानाचेष्टाविधायिनः ॥३८॥
ततस्तान् राघवोऽवोचत्निश्चन्तो रोधसि स्थितः । अधुना विनिवर्तध्वं भद्रा भीममिदं वनम् ॥३९॥
अस्माभिः सह युष्माकमियानेवैष सङ्गमः । वृथा नश्यदधिर्जाता भवतोत्सुकयवर्जिता ॥४०॥

ही सामन्त लज्जासे और कितने ही भयसे अपने मनको दुःखी कर विनयपूर्वक उनके साथ पैदल चल रहे थे ॥२७॥

तदनन्तर राम-लक्ष्मण लीलापूर्वक परियात्रा नामकी उस अटवीमें पहुँचे जो कि सिंह और हस्तिसमूहके उच्च शब्दोंसे भयंकर हो रही थी ॥२८॥ उस अटवीमें बड़े-बड़े वृक्षोंसे कृष्णपक्षकी निशाके समान घोर अन्धकार व्याप्त था। वहीं, जिसके किनारे अनेक शबर अर्थात् भील रहते थे ऐसी एक शर्वरी नामकी नदी थी। राम-लक्ष्मण वहाँ पहुँचे ॥२९॥ नाना प्रकारके मधुर फलोंसे युक्त उस नदीके तटपर विश्राम कर रामने समझा-बुझाकर कितने ही राजाओंको तो वापस लौटा दिया ॥३०॥ पर जिन्होंने रामके साथ जानेका निश्चय ही कर लिया था ऐसे अन्य अनेक राजा बहुत भारी प्रयत्न करनेपर भी नहीं लौटे ॥३१॥

तदनन्तर जो नदी महानील मणिके समान सुशोभित हो रही थी, अत्यन्त वेगशाली लहरोंके समूहसे जिसका मध्य भाग व्याप्त था, जो उछलते हुए बलवान् मगरमच्छोंकी टक्करसे उत्पन्न होनेवाली तरंगोंसे व्याप्त थीं, लहरोंके समूहके आघातपर जिसके कोमल किनारे उसीमें टूट-टूटकर गिर रहे थे, बड़े-बड़े पर्वतोंकी गुफाओंमें टकरानेसे जिसमें 'सू-सू' शब्द हो रहा था, जिसमें ऊपर तैरनेवाली मछलियोंके शरीरमें सूर्यकी किरणें प्रतिबिम्बित हो रही थीं, जिसमें उत्पात करनेवाले नाकोंकी सूत्कारसे जलके छींटे दूर-दूर तक उड़ रहे थे, और जिसके पाससे समस्त पक्षी भयभीत होकर उड़ गये थे ऐसी उस नदीको देखकर सब सामन्तोंके शरीर भयसे काँपने लगे। वे लक्ष्मण सहित रामसे बोले कि 'हे नाथ! हम लोगोंको भी नदीसे पार उतारो। हे पद्म! प्रसन्न होओ, हे लक्ष्मण! भक्तिसे भरे हुए हम सेवकोंपर प्रसन्नता करो। हे देवि! लक्ष्मण तुम्हारी बात मानते हैं इसलिए इनसे कह दो' ॥३२-३७॥ इत्यादि अनेक शब्दोंका उच्चारण करते हुए वे दीन सामन्त उस नदीमें कूद पड़े तथा नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करते हुए बहने लगे ॥३८॥ तब किनारेपर निश्चिन्ततासे खड़े हुए रामने उन सबसे कहा कि हे भले पुरुषो! अब तुम लौट जाओ। यह वन बहुत भयंकर है ॥३९॥ हम लोगोंके साथ तुम्हारा

---

१. एतस्मादटवीं। २. कांश्चित्प्रावर्तयद् म.। ३. महीन्द्र म.। ४. प्राप्ते सूत्कार म.। ५. मियानेवैव म.।

तातेन भरतः स्वामी सर्वेषां वो निवेदितः । विसाध्वसास्तमाकृत्य तिष्ठत क्षितिपालिनः ॥४१॥
त्वरस्ते पुनरित्यूचुर्नाथास्माकं भवान् गतिः । प्रसादं कुरु मा त्याक्षीरस्मान् करुणयकोविद ॥४२॥
निराश्रयाकुलीभूता स्वयेयं रहिता प्रजा । वद कं शरणं यातु सदृशः कस्तवापरः ॥४३॥
व्याघ्रसिंहगजेन्द्रादिदुष्टजालसमाकुले । वसामो भवता सार्धमरण्ये न विना दिवि ॥४४॥
न नो निवर्तते चित्तं प्रतियामः कथं वयम् । महत्तरत्वमेतेन हृषीकेष्वर्जितं ननु ॥४५॥
किं नो गृहेण किं भोगैः किं दारैः किं नु बन्धुभिः । भवता नरत्नेन मुक्तानां पापकर्मणाम् ॥४६॥
क्रीडास्वपि त्वया देव वञ्चिता स्मो न जातुचित् । संभावनेनाधुना कस्माज्जातोऽस्यस्यन्तनिष्ठुरः ॥४७॥
कोऽपराधो वदास्माकं भवच्चरणरेणुना । परमां वृद्धिमेतानो भक्तानां भृत्यवत्सल ॥४८॥
अहो जानकि [2]लक्ष्मीश रक्षितोऽयं शिरोञ्जलिः । प्रसादयतमीशं नः प्रसादी भवतोरयम् ॥४९॥
सीता लक्ष्मीधरश्चैवमुच्यमानौ सुदक्षिणौ । तस्थतुः पद्मपादाग्रन्यस्तनेत्रौ निरुत्तरौ ॥५०॥
ततः पद्मो जगादेदं भवतामुत्तरं स्फुटम् । निवर्तध्वमयं भद्रा यातोऽस्मि सुखमास्यताम् ॥५१॥
इत्युक्त्वा निरपेक्षौ तौ परमोत्साहसङ्गतौ । अवतेरतुरत्यन्तगम्भीरां तां महापगाम् ॥५२॥
उत्तीर्णः सरितं पद्मो जानकीं विकचेक्षणाम् । करेण सुखमादाय पद्मिनीमिव दिग्गजः ॥५३॥
अम्भोविहारविज्ञानबुधयोः सा तयोर्धुनी । नाभिदघ्नी[3] बभूवोद्यो क्रीडामाचरतोश्चिरम् ॥५४॥

इतना ही समागम था। अब हमारे और तुम्हारे बीचमें यह नदी सीमा बन गयी है इसलिए उत्सुकतासे रहित होओ ॥४०॥ पिताने तुम सबके लिए भरतको राजा बनाया है सो तुम सब निर्भय होकर उसीकी शरणमें रहो ॥४१॥

तदनन्तर उन्होंने फिर कहा कि हे नाथ! हमारी गति तो आप ही हैं इसलिए हे दया-निपुण! प्रसाद करो और हम लोगोंको नहीं छोड़ो ॥४२॥ तुम्हारे बिना यह प्रजा निराधार होकर व्याकुल हो रही है। आप ही कहो किसकी शरणमें जावे? आपके समान दूसरा है ही कौन?॥४३॥ हम आपके साथ व्याघ्र, सिंह, गजेन्द्र आदि दुष्ट जीवोंके समूहसे भरे हुए वनमें रह सकते हैं पर आपके बिना स्वर्गमें भी नहीं रहना चाहते ॥४४॥ हमारा चित्त ही नहीं लौटता है फिर हम कैसे लौटें? यह चित्त ही तो इन्द्रियोंमें प्रधान है ॥४५॥ जब आप-जैसे नर-रत्न हमें छोड़ रहे हैं तब हम पापी जीवोंको घरसे क्या प्रयोजन है? भोगोंसे क्या मतलब है? स्त्रियोंसे क्या अर्थ है? और बन्धुओंकी क्या आवश्यकता है? ॥४६॥ हे देव! क्रीड़ाओंमें भी कभी आपने हम लोगोंको सम्मानसे वंचित नहीं किया फिर इस समय अत्यन्त निष्ठुर क्यों हो रहे हो? ॥४७॥ हे भृत्य-वत्सल! हम लोग आपके चरणोंकी धूलिसे ही परम वृद्धिको प्राप्त हुए हैं। बताइए, हमारा क्या अपराध है? ॥४८॥ रामसे इतना कहकर उन्होंने सीता और लक्ष्मणको भी सम्बोधित करते हुए कहा कि हे जानकि! हे लक्ष्मण! मैं आप दोनोंके लिए हाथ जोड़कर मस्तकपर लगाता हूँ, आप हमारे विषयमें स्वामीको प्रसन्न कीजिए क्योंकि ये आप दोनोंपर प्रसन्न हैं—आपकी बात मानते हैं ॥४९॥ लोग सीता तथा लक्ष्मणसे इस प्रकार कह रहे थे और अत्यन्त सरल प्रकृतिके धारक वे दोनों रामके चरणकमलोंके आगे दृष्टि लगाये चुपचाप खड़े थे—'क्या उत्तर दिया जाये' यह उन्हें सूझ नहीं पड़ता था ॥५०॥ तदनन्तर रामने कहा कि हे भद्रपुरुषो! आप लोगोंके लिए यही एक स्पष्ट उत्तर है कि अब आप यहाँसे लौट जाइए, मैं जाता हूँ, आप लोग अपने घर सुखसे रहें ॥५१॥ इतना कहकर किसीकी अपेक्षा नहीं करनेवाले दोनों भाई बड़े भारी उत्साहसे उस अतिशय गहरी महानदीमें उतर पड़े ॥५२॥ जिस प्रकार दिग्गज अपने कर (सूँड़) में कमलिनीको लेकर तैरता है उसी प्रकार राम विकसित नेत्रोंवाली सीताको हाथमें लेकर नदीको पार कर रहे थे ॥५३॥ दोनों ही

---

१. तनोति वर्तते म.। २. लक्ष्मण। ३. नाभिप्रमाणजला।

तदातिशोभते सीता पद्महस्ततलस्थिता । सुधीरा श्रीरिवोत्तुङ्गकमलाग्रगृहस्थिता ॥५५॥
पारगः सीतया सार्धं लक्ष्मणेन च स क्षणात् । वृक्षैरन्तर्धिमायातश्चेतस्तम्भनविग्रहः ॥५६॥
विप्रलापं ततः कृत्वा महान्तं साश्रुलोचनाः । भवनाभिमुखीभूताः केचित्कृच्छ्रेण भूभृतः ॥५७॥
तदाशान्यस्तनेत्रास्तु केचित्पु[1]स्तमया इव । तस्थुः प्राप्यापरे मूर्छां निपेतुर्धरणीतले ॥५८॥
विबोध्य केचिदात्मानं संसारमसारकम् । धिग्भोगान्भोगिभोगाभान् भङ्गुरान्भीतिभाविनः ॥५९॥
ईदृशामपि शूराणां यत्राधस्तेयमीदृशी । तत्र प्रकृतसत्कासु किमेरण्डफलद्रुषु ॥६०॥
वियोगमरणव्याधिजराद्यसनभाजनम् । जलबुद्बुदनिस्सारं कृतघ्नं धिक् शरीरकम् ॥६१॥
भाग्यवन्तो महासत्त्वास्ते नराः श्लाघ्यचेष्टिताः । कपिभ्रूभङ्गुरां लक्ष्मीं ये तिरस्कृत्य दीक्षिताः ॥६२॥
इति निर्वेदमापन्ना बहवो नरसत्तमाः । प्रव्रज्याभिमुखीभूता वभ्रमुस्तत्र रोधसि ॥६३॥
अथेक्षांचक्रिरे तुङ्गं विशालं शुभमालयम् । परिवीतमतिश्यामैर्महानोकहमालया ॥६४॥
अनुरक्तञ्च तं नानापुष्पजातिसमाकुलम् । मकरन्दरसास्वादगुञ्जत्संभ्रान्तषट्पदम् ॥६५॥
ददृशुश्च विविक्तेषु[2] देशेषु समवस्थितान् । साधून् स्वाध्यायसंसक्तमानसान् पुलतेजसः ॥६६॥
क्रमेण लब्धमस्यन्तः शनैर्मस्तकपाणयः । विविशुर्जिननाथस्य भवनं भूशमुज्ज्वलम् ॥६७॥
रम्येष्वद्रिनितम्बेषु काननेषु सरित्सु च । तप्त काले मही तार्क्ष्य भूषितासीज्जिनालयैः ॥६८॥

जल-क्रीड़ाके ज्ञानमें निपुण थे अतः चिरकाल तक उत्तम क्रीड़ा करते हुए जा रहे थे। उनके लिए वह नदी नाभि प्रमाण गहरी हो गयी थी ॥५४॥ उस समय रामकी हथेलीपर स्थित धैर्यशालिनी सीता ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो ऊँचे उठे हुए कमलरूपी घरमें स्थित लक्ष्मी ही हो ॥५५॥ इस प्रकार जिनका शरीर चित्तको रोकनेवाला था ऐसे राम सीता और लक्ष्मणके साथ नदीको पार कर क्षण-भरमें वृक्षोंसे अन्तर्हित हो गये ॥५६॥

तदनन्तर जिनके नेत्रोंसे आँसू झर रहे थे ऐसे कितने ही राजा बहुत भारी विलाप कर अपने भवनकी ओर उन्मुख हुए ॥५७॥ कितने ही लोग उसी दिशामें नेत्र लगाये हुए मिट्टी आदिके पुतलोंके समान खड़े रहे। कितने ही मूर्च्छित होकर पृथिवीपर गिर पड़े ॥५८॥ और कितने ही प्रबोधको प्राप्त होकर कहने लगे कि इस असार संसारको धिक्कार है तथा साँपके शरीरके समान भय उत्पन्न करनेवाले नश्वर भोगोंको धिक्कार है ॥५९॥ जहाँ इन-जैसे शूर वीरोंकी भी यह अवस्था है वहाँ एरण्डके समान निःसार हम लोगोंकी तो गिनती ही क्या है ? ॥६०॥ वियोग, मरण, व्याधि और जरा आदि अनेक कष्टोंके पात्र तथा जलके बबूलेके समान निःसार इस कृतघ्न शरीरको धिक्कार है ॥६१॥ उत्तम चेष्टाके धारक जो मनुष्य वानरकी भौंहके समान चंचल लक्ष्मीको छोड़कर दीक्षित हो गये हैं वे महाशक्तिके धारक भाग्यवान् हैं ॥६२॥ इस प्रकार वैराग्यको प्राप्त हुए अनेक उत्तम मनुष्य दीक्षा लेनेके सम्मुख हो नदीके उसी तटपर घूमने लगे ॥६३॥

तदनन्तर उन्होंने हरे-भरे वृक्षोंकी पंक्तिसे घिरा हुआ एक ऊँचा, विशाल तथा शुभ मन्दिर देखा ॥६४॥ मन्दिरका वह स्थान नाना प्रकारके पुष्पोंकी जातियोंसे व्याप्त था तथा मकरन्द रसके आस्वादसे गूँजते हुए भ्रमर वहाँ भ्रमण कर रहे थे ॥६५॥ उन लोगोंने वहाँ एकान्त स्थानोंमें बैठे हुए, स्वाध्यायमें लीन तथा विशाल तेजके धारक मुनियोंको देखा ॥६६॥ मस्तकपर अंजलि बाँधकर सब लोगोंने उन्हें धीरे-धीरे यथाक्रमसे नमस्कार किया। तदनन्तर अत्यन्त उज्ज्वल जिनमन्दिरमें प्रवेश किया ॥६७॥ उस समय भूमि प्रायःकर पर्वतोंके सुन्दर नितम्बोंपर, वनोंमें तथा नदियोंके तटोंपर बने हुए जिनमन्दिरोंसे विभूषित थी ॥६८॥

---

१. मृदादिनिर्मिता इव । २. सर्पफणासदृशान् । ३. विवेकेषु म. ।

तत्र कृत्वा नमस्कारं जिनानां शुभ्रभावनाः । [1]रत्नसंभवगम्भीरं संयतेन्द्रं ह्युपाकिरे ॥६९॥
प्रणम्य शिरसा तस्य संवेगभरवाहिनः[2] । नाथोत्तारय संसारादस्मादिति बभाषिरे ॥७०॥
सत्यकेतुमुनीशेन तथास्त्विति कृतश्रुती । जग्मुस्ते परमं तोषं निर्गताः स्मो भवादिति ॥७१॥
[3]विदग्धो विजयो मेरुः क्रूरः संग्रामलोलुपः । श्रीनागदमनो धीरः शठः शत्रुदमो धरः ॥७२॥
विनोदः कण्टकः सत्यः कठोरः प्रियवर्धनः । एतन्नाथा तृणा धर्मं [4]निर्ग्रन्थं रूपधारिणम् ॥७३॥
साधनानि मदास्तेषां गृहीत्वा नगरीं गताः । हृतमर्पयितुं दीनाः पुत्रादीनां त्रपान्विताः[5] ॥७४॥
अणुव्रतानि संगृह्य केचिन्निर्ग्रन्थधारिणः । आराधयितुमुद्युक्ता बोधिबुद्धिविभूषणाः ॥७५॥
सम्यग्दर्शनमात्रेण संतोषमपरे गताः । श्रुत्वातिविमलं धर्मं जिनानां जितजन्मनाम् ॥७६॥
सामन्तैर्बहुभिर्गत्वा भरताय निवेदितः । कुशान्तो सुस्थितश्चार्यं ध्यायन् किमपि दुःखितः ॥७७॥
अथानरण्यराजस्य [5]तनयः सुप्रबोधनः । राज्याभिषिञ्चनं कृत्वा भरतस्य सुचेतसः ॥७८॥
किंचित्पद्मवियोगेन संतप्तं चित्तमुद्वहन् । शोकाम्भोधिनिमग्नेन परिवर्गेण वीक्षितः ॥७९॥
कृतसान्त्वनमभ्युच्चैर्विलपत्स समाकुलम् । अन्तःपुरं परित्यज्य नगरीतो विनिर्गतः ॥८०॥
गुरुपूजां परां कृत्वा द्वासप्ततिनृपान्वितः । सर्वभूतहितस्यान्ते शिश्रिये श्रमणश्रियम् ॥८१॥
अथाप्येकविहारस्य शुभं ध्यानमभीप्सतः । मानसं पुत्रशोकेन कलुषं तस्य जन्यते ॥८२॥
अन्यदा योगमाश्रित्य दध्यावेवं विचक्षणः । धिक् स्नेहं भवदुःखानां मूलं बन्धमिमं मम ॥८३॥

वहाँ उज्ज्वल भावनाको धारण करनेवाले सब जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर समुद्रके समान गम्भीर मुनिराजके पास गये ॥६९॥ वहाँ जाकर वैराग्यको धारण करनेवाले सब लोगोंने शिर झुकाकर मुनिराजको नमस्कार किया और तदनन्तर यह कहा कि हे नाथ! हम लोगोंको इस संसार-सागरसे पार कीजिए ॥७०॥ इसके उत्तरमें मुनियोंके अधिपति सत्यकेतु आचार्यने ज्योंही 'तथास्तु' यह शब्द कहा त्योंही 'अब तो हम संसारसे पार हो गये' यह कहते हुए सब लोग परम सन्तोषको प्राप्त हुए ॥७१॥ विदग्ध, विजय, मेरु, क्रूर, संग्रामलोलुप, श्रीनागदमन, धीर, शठ, शत्रुदम, धर, विनोद, कण्टक, सत्य, कठोर और प्रियवर्धन आदि अनेक राजाओंने दिगम्बर दीक्षा धारण की ॥७२-७३॥ इनके जो सेवक थे वे हाथी, घोड़ा आदि सेनाको लेकर उनके पुत्रोंको सौंपनेके लिए शीघ्र ही नगरकी ओर गये। उस समय वे सेवक अत्यन्त दीन तथा लज्जासे युक्त हो रहे थे ॥७४॥ सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानरूपी आभूषणोंको धारण करनेवाले कितने ही लोग अणुव्रत ग्रहण कर निर्ग्रन्थमुद्राके धारकोंकी सेवा करनेके लिए उद्यत हुए ॥७५॥ तथा कितने ही लोग संसारको जीतनेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌का अत्यन्त निर्मल धर्म श्रवण कर मात्र सम्यग्दर्शनसे ही सन्तोषको प्राप्त हुए ॥७६॥ अनेक सामन्तोंने जाकर यह समाचार भरतके लिए सुनाया सो भरत कुछ ध्यान करता हुआ सुखसे बैठा था परंतु यह समाचार सुन दुःखी हुआ ॥७७॥

अथानन्तर सम्यक् प्रबोधको प्राप्त हुए राजा दशरथ स्वस्थ चित्तको धारण करनेवाले भरतका राज्याभिषेक कर रामके वियोगसे कुछ सन्तप्त चित्तको धारण करते हुए, सान्त्वना देनेपर भी जो अत्यन्त विलाप कर रहा था ऐसे व्याकुल अन्तःपुरको छोड़ नगरीसे बाहर निकले। उस समय शोकरूपी सागरमें डूबे हुए परिजन उनकी ओर निहार रहे थे ॥७८-८०॥ नगरीसे निकलकर वे सर्वभूतहित नामक गुरुके समीप गये और वहाँ बहुत भारी गुरुपूजा कर बहत्तर राजाओंके साथ दीक्षित हो गये ॥८१॥ यद्यपि मुनिराज दशरथ एकाकी विहार करते हुए सदा शुभ ध्यानकी इच्छा रखते थे तथापि पुत्रशोकके कारण उनका मन कलुषित हो जाता था ॥८२॥ एक दिन

---

१. सागर इव गंभीरस्तम् । २. वादिनः म. । ३. निदग्धो म. । निर्वग्धो क., ख. । ४. निर्ग्रन्थो क., ख. । ५. त्रपाचिताः म. । ६. दशरथः ।

अन्यजन्मसु ये दारा पितृभ्रातृसुतादयः । क्व गतास्ते ममानादौ संसारे गणनोज्झिताः ॥८४॥
अनेकशो मया प्राप्ता विविधा विषया दिवि । नरकानलदाहाश्च संप्राप्ता भोगहेतवः ॥८५॥
अन्योन्यभक्षणादीनि तिर्यक्त्वे च चिरं मया । प्राप्तानि दुःखशल्यानि बहुरूपासु योनिषु ॥८६॥
श्रुताः सङ्गीतनिस्वामा वंशवीणानुगामिनः[1] । भूयश्च परमाक्रन्दादिचित्तदारणकारिणः ॥८७॥
स्तनेऽप्सरसां पाणिर्लोलितो नेत्रहारिषु । पुनः कुठारघातेन दुर्वृत्तेन पृथक्कृतिः ॥८८॥
आस्वादितं महावीर्यमन्नं सुरभि षड्रसम् । अपुसीसादिकलिलं पुनश्च नरकावनौ ॥८९॥
वीक्षितं परमं रूपं मनोद्भवणकारणम् । पुनश्चान्यविभत्सकारणं दृष्टमेव च ॥९०॥
आघ्रातः स चिरामोदी गन्धो मुदितषट्पदः । पुनश्च पूतिरत्यन्तमुद्वासितमहाजनः ॥९१॥
आलिङ्गिता मनश्चोर्यो नार्यो लीलाविभूषणाः । पुनश्च कूटशाल्मलयः तीक्ष्णकण्टकसङ्कटाः ॥९२॥
किं न स्पृष्टं न किं दृष्टं किं न घ्रातं न किं श्रुतम् । मुहुरास्वादितं किं न भवे दासेन कर्मणाम् ॥९३॥
न सा क्षितिर्न तत्तोयं नासौ वह्निर्न सोऽनिलः । देहतां तो न मे प्राप्तो भवे संक्रामतश्चिरम् ॥९४॥
त्रैलोक्ये स न जीवोऽस्ति यो न पासः सहस्रशः । पित्रादिर्नो मम स्थानं न तत्रोषितोऽस्मि न ॥९५॥
अध्रुवं देहभोगादिशरणं नास्ति विद्यते । संसारोऽयं चतुःस्थान एकोऽहं दुःखभुक्षिषु ॥९६॥

योगारूढ़ होकर बुद्धिमान् दशरथ विचार करने लगे कि संसार सम्बन्धी दुःखोंका मूल कारण तथा मुझे बन्धनमें डालनेवाले स्नेहको धिक्कार है ॥८३॥ अन्य जन्मोंमें जो मेरे स्त्री, पिता, भाई तथा पुत्र आदि सम्बन्धी थे वे सब कहाँ गये ? यथार्थमें इस अनादि संसारमें सभी सम्बन्धी इतने हो चुके हैं कि उनकी गणना नहीं की जा सकती ॥८४॥ मैंने अनेकों बार स्वर्गमें नाना प्रकारके विषय प्राप्त किये हैं और भोगोंके निमित्त नरकाग्निके सन्ताप भी सहन किये हैं ॥८५॥ तिर्यंच पर्यायमें मैंने चिरकाल तक परस्पर एक दूसरेका खाया जाना आदि दुःख उठाये हैं। इस प्रकार नाना योनियोंमें मैंने दुःखरूपी अनेक शल्य प्राप्त किये ॥८६॥ मैंने बाँसुरी, वीणा आदि मधुर बाजोंका अनुगमन करनेवाले संगीतके शब्द सुने हैं और हृदयको विदारण करनेवाले तीव्र रुदनके शब्द भी अनेक बार श्रवण किये हैं ॥८७॥ मैंने अपना हाथ अप्सराओंके सुन्दर स्तनोंपर लड़ाया है और कभी कुठारकी तीक्ष्ण धारासे उसके टुकड़े-टुकड़े भी किये हैं ॥८८॥ मैंने महाशक्ति वर्धक, सुगन्धित छह रसोंसे युक्त आहार ग्रहण किया है और नरककी भूमिमें राँगा, सीसा आदिका कलल भी बार-बार पिया है ॥८९॥ मनको द्रवीभूत करनेवाला अत्यन्त सुन्दर रूप देखा है और अत्यन्त भयका कारण तथा कम्पन उत्पन्न करनेवाला घृणित रूप भी अनेक बार देखा है ॥९०॥ जिसकी सुवास चिरकाल तक स्थित रहती है ऐसा भ्रमरोंको आनन्दित करनेवाला मनोहर गन्ध सूँघा है और जिसे देखते ही महाजन दूर हट जाते हैं ऐसा तीव्र दुर्गन्ध उत्पन्न करनेवाला सड़ा कलेवर भी बार-बार सूँघा है ॥९१॥ मनको चुरानेवाली तथा लीलारूपी आभूषणोंसे सुशोभित स्त्रियोंका आलिंगन किया है और तीक्ष्ण काँटोंसे व्याप्त सेमरके मायामयी वृक्षोंका भी बार-बार आलिंगन किया है ॥९२॥ कर्मोंका दास बनकर मैंने इस संसारमें क्या नहीं किया है ? क्या नहीं देखा है ? क्या नहीं सूँघा है ? क्या नहीं सुना है ? और बार-बार क्या नहीं खाया है ? ॥९३॥ न वह पृथिवी है, न वह जल है, न वह अग्नि है और न वह वायु है जो चिरकालसे संसारमें भ्रमण करते हुए मेरी शरीर-दशाको प्राप्त नहीं हुआ है ॥९४॥ तीनों लोकोंमें वह जीव नहीं है जो हजारों बार मेरा पिता आदि नहीं हुआ हो और वह स्थान भी नहीं है जहाँ मैंने निवास नहीं किया हो ॥९५॥ शरीर भोग आदि अनित्य हैं, कोई किसीका शरण नहीं

---

१. वंशवीणा तु गायिनः (?) म. ।

अशुचेः कायतोऽन्योऽहं द्वारमक्षाणि कर्मणाम् । संवरो वारणं तेषां निर्जरा जायते ततः ॥९७॥
लोको विचित्ररूपोऽयं दुर्लभा बोधिरुत्तमा । स्वाख्यातोऽयं जिनैर्धर्मः कृच्छ्रेणाधिगतो मया ॥९८॥
ध्यानेन मुनिदृष्टेन विशुद्धेनैवमादिना । आर्तध्यानमसौ धीरः क्षणेन विनिहत्य तत् ॥९९॥
येपूच्छ्रितसितच्छत्रो वरस्तम्भेरमाश्रितः । महाजिषु पराजिग्ये शत्रूनत्यन्तमुद्धतान् ॥१००॥
विषयानधिकुर्वाणः परीषहगणान् भृशम् । शान्तस्तेष्वेव देशेषु निर्ग्रन्थो विजहार सः ॥१०१॥
नाथे तथा स्थिते तस्मिन् विदेशे च गतेऽकृते । परं सुमित्रया सत्रा शोकं भेजेऽपराजिता ॥१०२॥
ते दृष्ट्वा दुःखिते बाढमजस्रास्रुतलोचने[1] । [2]भरतामां श्रियं मेने मरतो विषदारुणाम् ॥१०३॥
अथैवं दुःखमापन्ने भृशं ते वीक्ष्य कैकया । पश्चादुत्पन्नकारुण्यात् पुत्रमेवमभाषत ॥१०४॥
पुत्र राज्यं त्वया लब्धं प्रणताखिलराजकम् । पद्मलक्ष्मणनिर्मुक्तमलमेतन्न शोभते ॥१०५॥
विना ताभ्यां विनीताभ्यां किं राज्यं का सुखास्थिका । का वा जनपदे शोभा तव का वा सुवृत्तता ॥१०६॥
राजपुत्र्या समं बालौ क्व तौ यातौ सुखैधितौ । विमुक्तवाहनौ मार्गे पाषाणादिभिरंकुले ॥१०७॥
मातरौ दुःखिते एते तयोर्गुणसमुद्रयोः । विरहे मापतां[3] मृत्युमजस्रपरिदेवते ॥१०८॥
तस्मादानय सौ क्षिप्रं मम ताभ्यां महासुखः । सुचिरं पालय क्षोणीमेवं सर्वं विराजते ॥१०९॥
व्रज तायस्वमारुह्य तुरङ्गं जातरंहसम् । आगच्छाम्यहमप्येषा सुपुत्रानुपदं तव ॥११०॥
इत्युक्तो प्रतिसासाद्य साध्वेवमिति सत्वनः । संभ्रान्तोऽश्वसहस्रेण भरतस्तत्पथं श्रितः ॥१११॥

है, यह संसार चतुर्गति रूप है, मैं अकेला ही दुःख भोगता हूँ, यह शरीर अशुचि है तथा उससे मैं पृथक् हूँ, इन्द्रियाँ कर्मोंके आनेका द्वार हैं, कर्मोंको रोक देना संवर है, संवरके बाद कर्मोंकी निर्जरा होती है, यह लोक विचित्र रूप है, उत्तम रत्नत्रयकी प्राप्ति होना दुर्लभ है, और जिनेन्द्र भगवान्‌के द्वारा कहा हुआ यह धर्म मैंने बड़े कष्टसे पाया है ॥९६–९८॥ इस प्रकार मुनियोंके द्वारा अनुभूत विशुद्ध ध्यानसे धीरवीर दशरथ मुनिने क्षणसे पूर्वोक्त आर्तध्यानको नष्ट कर दिया ॥९९॥ जिनके ऊपर सफेद छत्र फिर रहा था तथा जो उत्तम हाथीपर सवार थे ऐसे राजा दशरथने पहले जिन देशोंमें महायुद्धोंके बीच अत्यन्त उद्धत शत्रुओंको जीता था अब उन्हीं देशोंमें वे अत्यन्त शान्त निर्ग्रन्थ मुनि होकर विषम परिषहोंको सहते हुए विहार कर रहे थे ॥१००-१०१॥

तदनन्तर पतिके मुनि हो जाने और पुत्रके विदेश चले जानेपर अपराजिता (कौशल्या) सुमित्राके साथ परम शोकको प्राप्त हुई ॥१०२॥ जिनके नेत्रोंसे निरन्तर अश्रु झरते थे ऐसी दोनों विमाताओंको दुःखी देखकर भरत, भरत चक्रवर्तीकी लक्ष्मीके समान विशाल राज्यलक्ष्मीको विषके समान दारुण मानता था ॥१०३॥ अथानन्तर इस तरह उन्हें अत्यन्त दुखी देख केकयीके मनमें दया उत्पन्न हुई जिससे प्रेरित होकर उसने अपने पुत्र भरतसे इस प्रकार कहा कि हे पुत्र ! यद्यपि तूने जिसमें समस्त राजा नम्रीभूत हैं ऐसा राज्य प्राप्त किया है तथापि वह राम और लक्ष्मणके बिना शोभा नहीं देता है ॥१०४–१०५॥ नियमसे भरे हुए उन दोनों भाइयोंके बिना राज्य क्या है ? देशकी शोभा क्या है ? और तेरी धर्मज्ञता क्या है ? ॥१०६॥ सुखपूर्वक वृद्धिको प्राप्त हुए दोनों बालक, बिना किसी वाहनके पाषाण आदि विषम मार्गमें राजकुमारी सीताके साथ कहाँ भटकते होंगे ? ॥१०७॥ गुणोंके सागरस्वरूप उन दोनोंकी ये माताएँ अत्यन्त दुःखी हैं, निरन्तर विलाप करती रहती हैं सो उनके विरहमें मृत्युको प्राप्त न हो जावें ॥१०८॥ इसलिए तू शीघ्र ही उन दोनोंको वापस ले आ। उन्हींके साथ सुखपूर्वक चिरकाल तक पृथिवीका पालन कर। ऐसा करनेसे ही सबकी शोभा होगी ॥१०९॥ हे सुपुत्र ! तू वेगशाली घोड़ेपर सवार होकर जा और मैं भी तेरे पीछे ही आती हूँ ॥११०॥ माताके इस प्रकार कहनेपर भरत बहुत प्रसन्न

---

१. -मजस्रास्रुतलोचने म. । २. भरतामिश्रियं म. । ३. मापतां ज. ।

कृत्वा पुरस्सरान् पद्मपार्श्वात् प्रत्यागतान्नरान् । पवनाश्वसमारूढः स ययौ भृशमुत्सुकः ॥११२॥
प्राप्तश्च तामरण्यानीमनेकपकुलाकुलाम् । नानावृक्षावृतादित्यां गिरिगह्वरभीषणाम् ॥११३॥
बन्धयित्वा महावृक्षैरुडुपानां[2] सुसंहतीः[3] । तां[4] धुनीमुत्ततारासौ क्षणेन सहवाहनः ॥११४॥
इतो दृष्टाविमौ दृष्टौ पुरुषौ सह योषिता । इति पृच्छन्स शृण्वंश्च जगामानन्यमानसः ॥११५॥
अथ सौ परमारण्ये विश्राम्यन्तौ सरस्तटे । ससीतौ भरतोऽपश्यत् पार्श्वन्यस्तधरासनौ ॥११६॥
प्रभूतदिवसप्राप्यं ताभ्यां सीताप्यपेक्षया । षड्भिर्दिनैस्तमुद्देशं भरतः प्रतिपेदवान् ॥११७॥
अवतीर्य तुरङ्गाच्च मार्गं लोचनगोचरम् । गत्वा पद्भ्यां[5] समाश्लिष्य पादौ [6]पद्मस्य मूर्छितः ॥११८॥
ततो विबोधितस्तेन कृत्वा संभाषणं क्रमात् । भूत्वाञ्जलिर्जगादैवं पद्मं विनतविग्रहः ॥११९॥
विडम्बनमिदं कस्मान्नाथ मे भवता कृतम् । परं राज्यापदेशेन न्यायसर्वस्व कोविद ॥१२०॥
आस्तां तावदिदं राज्यं जीवितेनापि किं मम । भवता विप्रयुक्तस्य गुरुचेष्टितकारिणा ॥१२१॥
उत्तिष्ठ स्वपुरीं यामः प्रसादं कुरु मे प्रभो । राज्यं पालय निश्शेषं यच्छ मेऽविसुखासिकाम् ॥१२२॥
भवामि छत्रधारस्ते शत्रुघ्नश्चमराश्रितः । लक्ष्मणः परमो मन्त्री सर्वं सुविहितं ननु ॥१२३॥
पश्चात्तापानलेनालं संतप्ता जननी मम । तव लक्ष्मीधरस्यापि वर्तते शोककारिणी ॥१२४॥
इतीत्येवमसौ यावत्कैकया तावदागता । वेगिनं रथमारुह्य सामन्तशतमध्यगा ॥१२५॥

हुआ। वह 'साधु-साधु ठाक-ठाक' इस प्रकारके शब्द कहने लगा तथा शीघ्र ही एक हजार घोड़ोंसे युक्त हो रामके मार्गमें चल पड़ा ॥१११॥ वह रामके पाससे लौटकर आये हुए लोगोंको आगे कर बड़ी उत्कण्ठासे पवनके समान शीघ्रगामी घोड़ेपर सवार होकर चला ॥११२॥ तथा कुछ ही समयमें उस महाअटवीमें जा पहुँचा जो हाथियोंके समूहसे व्याप्त थी, नाना वृक्षोंसे जहाँ सूर्यका प्रवेश रुक गया था तथा जो पर्वत और गर्तोंसे अत्यन्त भयंकर थी ॥११३॥ सामने भयंकर नदी थी सो वृक्षोंके बड़े-बड़े लट्ठोंसे नावोंके समूहको बाँधकर उनका पुल बना वाहनोंके साथ-साथ क्षण-भरमें पार कर गया ॥११४॥ वह मार्गमें मिलनेवाले लोगोंसे पूछता जाता था कि क्या यहाँ आप लोगोंने एक स्त्रीके साथ दो पुरुष देखे हैं और उत्तरको एकाग्र मनसे सुनता हुआ आगे बढ़ता जाता था ॥११५॥ अथानन्तर जो सघन वनमें एक सरोवरके तीरपर विश्राम कर रहे थे तथा जिनके पास ही धनुष रखे हुए थे ऐसे सीता सहित राम-लक्ष्मणको भरतने देखा ॥११६॥ राम-लक्ष्मण, सीताके कारण जिस स्थानपर बहुत दिनमें पहुँच पाये थे भरत उस स्थानपर छह दिनमें ही पहुँच गया ॥११७॥ वह घोड़ेसे उतर पड़ा और जहाँसे राम दिख रहे थे उतने मार्गमें पैदल ही चलकर उनके समीप पहुँचा तथा उनके चरणोंका आलिंगन कर मूर्च्छित हो गया ॥११८॥ तदनन्तर रामने सचेत किया सो क्रमसे वार्तालाप कर नम्रीभूत हो हाथ जोड़ शिरसे लगाकर इस प्रकार कहने लगा कि हे नाथ ! राज्य देकर आपने मेरी यह क्या विडम्बना की है ? आप ही न्यायके जाननेवाले अतिशय निपुण हो ॥११९-१२०॥ उत्तम चेष्टाओंके धारण करनेवाले आपसे पृथक् रहकर मुझे यह राज्य तो दूर रहे जीवनसे भी क्या प्रयोजन है ? ॥१२१॥ हे प्रभो ! उठो, अपनी नगरीको चलें, मुझपर प्रसन्नता करो, समस्त राज्यका पालन करो, और मुझे सुखकी अवस्था देओ ॥१२२॥ मैं आपका छत्रधारक होऊँगा, शत्रुघ्न चमर ढोलेगा और लक्ष्मण उत्कृष्ट मन्त्री होगा, ऐसा करनेसे ही सब ठीक होगा ॥१२३॥ मेरी माता पश्चात्तापरूपी अग्निसे अत्यन्त सन्तप्त हो रही है तथा आपकी और लक्ष्मणकी माता भी निरन्तर शोक कर रही हैं ॥१२४॥ जब-तक भरत इस प्रकार कह रहा था तबतक सैकड़ों सामन्तोंके मध्य गमन करनेवाली कैकयी

---

१. हस्तिसमूहयुक्ताम् । २. नौकानां । ३. समूहान् । ४. नदीम् । ५. पद्मां म. (?) । ६. रामस्य ।

दृष्ट्वा परमशोकेन निर्भरीकृतमानसा । हाकारमुखरा चेतावालिङ्ग्य रुदिता चिरम् ॥१२६॥
ततोऽश्रुसरितश्छेदे विप्रलापैःऽतिखेदिता । क्रमात्संभाषणं कृत्वा केकयैवमभाषत ॥१२७॥
पुत्रोत्तिष्ठ पुरीं याम: कुरु राज्यं सहानुजः । नन्वु त्वया विहीनं मे सकलं विपिनायते[1] ॥१२८॥
भरतः शिक्षणीयोऽयं तवात्यन्तसमनीषिणः । स्त्रैणेन नष्टबुद्धेर्मे क्षमस्व दुरनुष्ठितम् ॥१२९॥
ततः पद्मो जगादैवं किं न वेत्सि त्वमम्बिके । क्षत्रिया ननु कुर्वन्ति सकृत्कार्यमनन्यथा ॥१३०॥
उक्तं तातेन यत्सत्यं तत्कर्तव्यं मया त्वया । भरतेन च दुष्कीर्तिर्माभूदस्य जगत्त्रये ॥१३१॥
पुनश्चोवाच भरतं भ्रातर्मा गा विचित्तताम्[2] । [3]शङ्कसे यद्यनाचाराच्छायं मदनुमोदनात् ॥१३२॥
इत्युक्त्वा पुनरप्यस्य पद्मो राज्याभिषेचनम् । चकार कामले रम्ये समक्षं सर्वभूभृताम् ॥१३३॥
प्रणम्य केकयीं सान्त्वं संभाष्य च पुनः पुनः । भ्रातरं च परिष्वज्य प्राहिणोत् सोऽतिकृच्छ्रतः ॥१३४॥
तौ विधाय यथायोग्यमुपचारं ससीतयोः । रामलक्ष्मणयोर्यातौ मातापुत्रौ यथागतम् ॥१३५॥
परिध्वस्ताखिलद्वेषं सर्वप्रकृतिसौख्यदम् । चकार भरतो राज्यं प्रजासु जनकोपमः ॥१३६॥
राज्ये तथाविधेऽप्यस्य धृतिर्नाभूदपि क्षणम् । दुस्सहं दधतश्शल्यं शोकाख्यं मनस्विनः ॥१३७॥
त्रिकालमरनाथस्य वन्दारुर्भोगमन्दधीः । ययौ श्रोतुं च सद्धर्मं चैत्यमस्थेयती धृतिः ॥१३८॥

वेगशाली रथपर सवार हो वहाँ आ पहुँची ॥१२५॥ राम लक्ष्मणको देखकर इसका हृदय बहुत भारी शोकसे भर गया। हा हा कार करती हुई वह दोनोंका आलिंगन कर चिरकाल तक रोती रही ॥१२६॥

तदनन्तर जो विलाप करती-करती अत्यन्त खिन्न हो गयी थी ऐसी केकयी अश्रुरूपी नदी-की धारा टूटनेपर क्रमसे वार्तालाप कर इस प्रकार बोली कि हे पुत्र ! उठो, नगरीको चलें, छोटे भाइयोंके साथ राज्य करो, तुम्हारे बिना मुझे यह सब राज्य वनके समान जान पड़ता है ॥१२७–१२८॥ तुम अतिशय बुद्धिमान् हो, यह भरत तुम्हारी शिक्षाके योग्य है अर्थात् इसे शिक्षा देकर ठीक करो, स्त्रीपनाके कारण मेरी बुद्धि नष्ट हो गयी थी अतः मेरे इस कुकृत्यको क्षमा करो ॥१२९॥ तदनन्तर रामने कहा कि हे माता ! क्या तुम यह नहीं जानती हो कि क्षत्रिय स्वीकृत कार्यको कभी अन्यथा नहीं करते हैं—एक बार कार्यको जिस प्रकार स्वीकृत कर लेते हैं उसी प्रकार उसे पूर्ण करते हैं ॥१३०॥ 'पिताकी अपकीर्ति जगत्त्रयमें न फैले' इस बातका ध्यान रखना आवश्यक है ॥१३१॥ केकयीसे इतना कहकर उन्होंने भरतसे कहा कि हे भाई ! तू वैचित्त्य अर्थात् द्विविधाको प्राप्त मत हो। यदि तू अनाचारसे डरता है तो यह अनाचार नहीं है क्योंकि मैं स्वयं इस कार्यकी तुझे अनुमति दे रहा हूँ ॥१३२॥ इतना कहकर रामने मनोहर वनमें सब राजाओंके समक्ष भरतका पुनः राज्याभिषेक किया ॥१३३॥ तदनन्तर केकयीको प्रणाम कर सान्त्वना देते हुए बार-बार सम्भाषण कर और भाईका आलिंगन कर बड़े कष्टसे सबको वापस विदा किया ॥१३४॥ इस प्रकार माता और पुत्र अर्थात् केकयी और भरत, सीता सहित राम-लक्ष्मणका यथायोग्य उपचार कर जैसे आये थे वैसे लौट गये ॥१३५॥

अथानन्तर भरत, पिताके समान, प्रजापर राज्य करने लगा। उसका राज्य समस्त शत्रुओंसे रहित तथा समस्त प्रजाको सुख देनेवाला था ॥१३६॥ तेजस्वी भरतने अपने मनमें असहनीय शोकरूपी शल्यको धारण कर रहा था इसलिए ऐसे व्यवस्थित राज्यमें भी उसे क्षणभरके लिए सन्तोष नहीं होता था ॥१३७॥ वह तीनों काल अरनाथ भगवान्‌की वन्दना करता था, भोगोंसे सदा उदास रहता था और समीचीन धर्मका श्रवण करनेके लिए मन्दिर जाता था

---

१. विपिनमिवाचरति । २. विचिन्तितां म. । ३. 'संकासय घनारातीन्नायं मदनुमोदनात्' ब. ।

तत्राचार्यो द्युतिर्नाम [1]स्वपरागमपारगः । महता साधुसंघेन सततं कृतसेवनः ॥१३९॥
अग्रतोऽवग्रहं तस्य चकार भरतः सुधीः । पश्यदर्शनमात्रेण करिष्ये मुनितामिति ॥१४०॥
कृतावग्रहमेवं तमुवाच भगवान् द्युतिः । कुर्वन् मयूरवृन्दानां [2]नृत्यं भीरया गिरा ॥१४१॥
भव्य यो यावदायाति पद्मः पद्मनिरीक्षणः । तावद्गृहस्थधर्मेण [3]भवाप्तपरिकर्मकः ॥१४२॥
अत्यन्तदुस्सहा चेष्टा निर्ग्रन्थानां महात्मनाम् । परिकर्म विभुत्वस्य जायते सुखसाधना ॥१४३॥
उपरिष्टात् करिष्यामि काले तप इति ब्रुवन् । अनेको मृत्युमायाति नरोऽतिजडमानसः ॥१४४॥
अनर्घ्यरत्नसदृशं तपो दिग्वाससामिति । एषमप्यक्षमं वक्तुं परस्तस्योपमा कुतः ॥१४५॥
कनीयांस्तस्य धर्मोऽयमुक्तोऽयं गृहिणां जिनैः । अप्रमादी भवेत्तस्मिंस्तिरसो बोधदायिनि ॥१४६॥
यथा रत्नाकरद्वीपं मानवः कश्चिदागतः । रत्नं यत्किंचिदादत्ते यात्यस्य तदनर्घताम् ॥१४७॥
तथास्मिंश्चियमद्वीपे शासने धर्मचक्रिणाम् । य एव नियमः कश्चिद् ग्रहीतो यात्यनर्घताम् ॥१४८॥
अहिंसारत्नमादाय विपुलं यो जिनाधिपम् । भक्त्यार्चयत्यसौ [4]नाके परमां वृद्धिमश्नुते ॥१४९॥
सत्यव्रतधरः स्रग्भिर्यः करोति जिनार्चनम् । भवत्यादेयवाक्योऽसौ सत्कीर्तिव्याप्तविष्टपः ॥१५०॥
अदत्तादाननिर्मुक्तो जिनेन्द्रान् यो नमस्यति । जायते रत्नपूर्णानां [5]निधीनां स विभुर्नरः ॥१५१॥
यो रतिं परनारीषु न करोति जिनाश्रितः । सोऽत्र गच्छति सौभाग्यं सर्वनेत्रमलिम्लुचः [6] ॥१५२॥
जिनानर्चति यो भक्त्या कृतावधिपरिग्रहः । लभतेऽसावतिस्फीतान् लाभान् लोकस्य पूजितः ॥१५३॥

यही इसका नियम था ॥१३८॥ वहाँ स्व और परशास्त्रोंके पारगामी तथा अनेक मुनियोंका संघ जिनकी निरन्तर सेवा करता था ऐसे द्युति नामके आचार्य रहते थे ॥१३९॥ उनके आगे बुद्धिमान् भरतने प्रतिज्ञा की कि मैं रामके दर्शन मात्रसे मुनिव्रत धारण करूँगा ॥१४०॥ तदनन्तर अपनी गम्भीर वाणीसे मयूरसमूहको नृत्य कराते हुए भगवान् द्युति भट्टारक इस प्रकारकी प्रतिज्ञा करनेवाले भरतसे बोले ॥१४१॥ कि हे भव्य ! कमलके समान नेत्रोंके धारक राम जबतक आते तबतक तू गृहस्थ धर्मके द्वारा अभ्यास कर ले ॥१४२॥ महात्मा निर्ग्रन्थ मुनियोंकी चेष्टा अत्यन्त कठिन है पर जो अभ्यासके द्वारा परिपक्व होते हैं उन्हें उसका साधन करना सरल हो जाता है ॥१४३॥ 'मैं आगे तप करूँगा' ऐसा कहनेवाले अनेक जड़बुद्धि मनुष्य मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं पर तप नहीं कर पाते हैं ॥१४४॥ 'निर्ग्रन्थ मुनियोंका तप अमूल्य रत्नके समान है' ऐसा कहना भी अशक्य है फिर उसकी अन्य उपमा तो हो ही क्या सकती है ? ॥१४५॥ गृहस्थोंके धर्मको जिनेन्द्र भगवान्‌ने मुनिधर्मका छोटा भाई कहा है सो बोधिको प्रदान करनेवाले इस धर्ममें भी प्रमाद-रहित होकर लीन रहना चाहिए ॥१४६॥ जैसे कोई मनुष्य रत्नद्वीपमें गया वहाँ वह जिस किसी भी रत्नको उठाता है वही उसके लिए अमूल्यताको प्राप्त हो जाता है इसी प्रकार धर्मचक्रकी प्रवृत्ति करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌के शासनमें जो कोई इस नियमरूपी द्वीपमें आकर जिस किसी नियमको ग्रहण करता है वही उसके लिए अमूल्य हो जाता है ॥१४७-१४८॥ जो अत्यन्त श्रेष्ठ अहिंसारूपी रत्नको लेकर भक्तिपूर्वक जिनेन्द्रदेवकी पूजा करता है वह स्वर्गमें परम वृद्धिको प्राप्त होता है ॥१४९॥ जो सत्य व्रतका धारी होकर मालाओंसे भगवान्‌की अर्चा करता है उसके वचनोंको सब ग्रहण करते हैं तथा उज्ज्वल कीर्तिसे वह समस्त संसारको व्याप्त करता है ॥१५०॥ जो अदत्तादान अर्थात् चोरीसे दूर रहकर जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा करता है वह रत्नोंसे परिपूर्ण निधियोंका स्वामी होता है ॥१५१॥ जो जिनेन्द्र भगवान्‌की सेवा करता हुआ परस्त्रियोंमें प्रेम नहीं करता है वह सबके नेत्रोंको हरण करनेवाला परम सौभाग्यको प्राप्त होता है ॥१५२॥ जो परि-

---

१. स्वकीयपरकीयशास्त्रपारगामी । २. प्रतिज्ञाम् । ३. प्राप्ताभ्यासः । ४. स्वर्गे । ५. नवीनां म. (?) । ६. सर्वजनमनोहरः ।

आहारदानपुण्येन जायते भोगनिर्भरः । विदेशमपि यातस्य सुखिता तस्य सर्वदा ॥१५४॥
अभीतिदानपुण्येन जायते भयवर्जितः । महासंकटयातोऽपि निरुपद्रवविग्रहः ॥१५५॥
जायते ज्ञानदानेन विशालसुखभाजनम् । कलार्णवामृतं चासौ गण्डूषं कुरुते नरः ॥१५६॥
यः करोति विभावर्यामाहारपरिवर्जनम् । सर्वारम्भप्रवृत्तोऽपि यास्यसौ सुखदां गतिम् ॥१५७॥
वदनं यो जिनेन्द्राणां त्रिकालं कुरुते नरः । तस्य भावविशुद्धस्य सर्वं नश्यति दुष्कृतम् ॥१५८॥
सामोदैर्भूजलोद्भूतैः पुष्पैर्यो जिनमर्चति । विमानं पुष्पकं प्राप्य स क्रीडति यथेप्सितम् ॥१५९॥
भावपुष्पैर्जिनं यस्तु पूजयत्यतिनिर्मलैः । लोकस्य पूजनीयोऽसौ जायतेऽत्यन्तसुन्दरः ॥१६०॥
धूपं यश्चन्दनागुर्वादिप्रभवं सुधीः । जिनानां लौकयस्येष जायते सुरभिः सुरः ॥१६१॥
यो जिनेन्द्रालये दीपं ददाति शुभभावतः । स्वर्यप्रभशरीरोऽसौ जायते सुरसद्मनि ॥१६२॥
छत्रचामरलम्बूषपताकादर्पणादिभिः । भूषयित्वा जिनस्थानं याति विस्मयिनीं श्रियम् ॥१६३॥
समालभ्य जिनान् गन्धैः सौरभ्यव्याप्तदिङ्मुखैः । सुरभिः[1] प्रमदानन्दो जायते दयितः पुमान् ॥१६४॥
अभिषेकं जिनेन्द्राणां कृत्वा सुगन्धवारिणा[2] । अभिषेकमवाप्नोति यत्र यत्रोपजायते ॥१६५॥
अभिषेकं जिनेन्द्राणां विधाय क्षीरधारया । विमाने क्षीरधवले जायते परमद्युतिः ॥१६६॥
दधिकुम्भैर्जिनेन्द्राणां यः करोत्यभिषेचनम् । दध्याभकूटमे स्वर्गे जायते स सुरोत्तमः ॥१६७॥
सर्पिषा जिननाथानां कुरुते योऽभिषेचनम् । कान्तिद्युतिप्रभावाढ्यो विमानेशः स जायते ॥१६८॥

यहकी सीमा नियत कर भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र भगवान्‌की अर्चा करता है वह अतिशय विस्तृत लाभोंको प्राप्त होता है तथा लोग उसकी पूजा करते हैं ॥१५३॥ आहार-दानके पुण्यसे यह जीव भोग-निर्भर होता है अर्थात् सब प्रकारके भोग इसे प्राप्त होते हैं। यदि यह परदेश भी जाता है तो वहाँ भी उसे सदा सुख ही प्राप्त होता है ॥१५४॥ अभयदानके पुण्यसे यह जीव निर्भय होता है और बहुत भारी संकटमें पड़कर भी उसका शरीर उपद्रवसे शून्य रहता है ॥१५५॥ ज्ञानदानसे यह जीव विशाल सुखोंका पात्र होता है और कलारूपी सागरसे निकले हुए अमृतके कुल्ले करता है ॥१५६॥ जो मनुष्य रात्रिमें आहारका त्याग करता है वह सब प्रकारके आरम्भमें प्रवृत्त रहनेपर भी सुखदायी गतिको प्राप्त होता है ॥१५७॥ जो मनुष्य तीनों कालमें जिनेन्द्र-भगवान्‌की वन्दना करता है उसके भाव सदा शुद्ध रहते हैं तथा उसका सब पाप नष्ट हो जाता है ॥१५८॥ जो पृथिवी तथा जलमें उत्पन्न होनेवाले सुगन्धित फूलोंसे जिनेन्द्रभगवान्‌की अर्चा करता है वह पुष्पक विमानको पाकर इच्छानुसार क्रीड़ा करता है ॥१५९॥ जो अतिशय निर्मल भावरूपी फूलोंसे जिनेन्द्रदेवकी पूजा करता है वह लोगोंके द्वारा पूजनीय तथा अत्यन्त सुन्दर होता है ॥१६०॥ जो बुद्धिमान् चन्दन तथा कालागुरु आदिसे उत्पन्न धूप जिनेन्द्रभगवान्‌के लिए चढ़ाता है वह मनोज्ञ देव होता है ॥१६१॥ जो जिनमन्दिरमें शुभ भावसे दीपदान करता है वह स्वर्गमें देदीप्यमान शरीरका धारक होता है ॥१६२॥ जो मनुष्य छत्र, चमर, फन्नूस, पताका तथा दर्पण आदिके द्वारा जिनमन्दिरको विभूषित करता है वह आश्चर्यकारक लक्ष्मीको प्राप्त होता है ॥१६३॥ जो मनुष्य सुगन्धिसे दिशाओंको व्याप्त करनेवाली गन्धसे जिनेन्द्रभगवान्‌का लेपन करता है वह सुगन्धिसे युक्त, स्त्रियोंको आनन्द देनेवाला प्रिय पुरुष होता है ॥१६४॥ जो मनुष्य सुगन्धित जलसे जिनेन्द्रभगवान्‌का अभिषेक करता है वह जहाँ-जहाँ उत्पन्न होता है वहाँ अभिषेकको प्राप्त होता है ॥१६५॥ जो दूधकी धारासे जिनेन्द्रभगवान्‌का अभिषेक करता है वह दूधके समान धवल विमानमें उत्तमकान्तिका धारक होता है ॥१६६॥ जो दहीके कलशोंसे जिनेन्द्र-भगवान्‌का अभिषेक करता है वह दहीके समान फर्शवाले स्वर्गमें उत्तम देव होता है ॥१६७॥ जो

---

१. रत्यं म. । २. सुगन्धियुक्तः ।

अभिषेकप्रभावेण श्रूयन्ते बहवो बुधाः । पुराणेऽनन्तवीर्याद्या [1]युमूलब्धाभिषेचनाः ॥१६९॥
भक्त्या बल्युपहारं यः कुरुते जिनसद्मनि । संप्राप्नोति परां भूतिमारोग्यं स सुमानसः ॥१७०॥
गीतनर्तनवादित्रैर्यः करोति महोत्सवम् । जिनसद्मन्यसौ स्वर्गे लभते परमोत्सवम् ॥१७१॥
भवनं यस्तु जैनेन्द्रं निर्मापयति मानवः । तस्य भोगोत्सवः शक्यः केन वक्तुं सुचेतसः ॥१७२॥
प्रतिमां यो जिनेन्द्राणां कारयत्यचिरादसौ । सुरासुरोत्तमसुखं प्राप्य याति परं पदम् ॥१७३॥
व्रतज्ञानतपोदानैर्यान्युपात्तानि देहिनः । सर्वैस्त्रिष्वपि कालेषु पुण्यानि भुवनत्रये ॥१७४॥
एतस्मादपि जैनेन्द्रबिम्बाद् भक्तेन कारितात् । यत्पुण्यं जायते तस्य न संमान्त्यतिमात्रतः ॥१७५॥
फलं यदेतदुद्दिष्टं स्वर्गे संप्राप्य जन्तवः । चक्रवर्त्यादितां लब्ध्वा यन्मर्त्यत्वेऽपि भुञ्जते ॥१७६॥
धर्ममेवं विधानेन यः कश्चिदाप्य मानवः । संसारार्णवमुत्तीर्य त्रिलोकाग्रेऽवतिष्ठते ॥१७७॥
फलं ध्यानाच्चतुर्थस्य [2]षष्ठस्योद्यानमात्रतः । [3]अष्टमस्य तदारम्भे गमने दशमस्य तु ॥१७८॥
द्वादशस्य ततः किंचिन्मध्ये पक्षोपवासजम् । फलं मासोपवासस्य लभते चैत्यदर्शनात् ॥१७९॥
चैत्याङ्गणं समासाद्य याति षाण्मासिकं फलम् । फलं वर्षोपवासस्य प्रविश्य द्वारमश्नुते ॥१८०॥
फलं प्रदक्षिणीकृत्य भुङ्क्ते वर्षशतस्य तु । दृष्ट्वा जिनास्यमाप्नोति फलं वर्षसहस्रजम् ॥१८१॥
अनन्तफलमाप्नोति स्तुतिं कुर्वन् स्वभावतः । नहि भक्तेर्जिनेन्द्राणां विद्यते परमुत्तमम् ॥१८२॥
कर्म भक्त्या जिनेन्द्राणां क्षयं भरत गच्छति । क्षीणकर्मा पदं याति यस्मिन्ननुपमं सुखम् ॥१८३॥

घीसे जिनदेवका अभिषेक करता है वह कान्ति, द्युति और प्रभावसे युक्त विमानका स्वामी देव होता है ॥१६८॥ पुराणमें सुना जाता है कि अभिषेकके प्रभावसे अनन्तवीर्य आदि अनेक विद्वज्जन, स्वर्गकी भूमिमें अभिषेकको प्राप्त हुए हैं ॥१६९॥ जो मनुष्य भक्तिपूर्वक जिनमन्दिरमें रंगावलि आदिका उपहार चढ़ाता है वह उत्तम हृदयका धारक होकर परम विभूति और आरोग्यको प्राप्त होता है ॥१७०॥ जो जिनमन्दिरमें गीत, नृत्य तथा वादित्रोंसे महोत्सव करता है वह स्वर्गमें परम उत्सवको प्राप्त होता है ॥१७१॥ जो मनुष्य जिनमन्दिर बनवाता है उस सुचेताके भोगोत्सवका वर्णन कौन कर सकता है ? ॥१७२॥ जो मनुष्य जिनेन्द्र भगवान्‌की प्रतिमा बनवाता है वह शीघ्र ही सुर तथा असुरोंके उत्तम सुख प्राप्त कर परम पदको प्राप्त होता है ॥१७३॥ तीनों कालों और तीनों लोकोंमें व्रत, ज्ञान, तप और दानके द्वारा मनुष्यके जो पुण्य-कर्म संचित होते हैं वे भावपूर्वक एक प्रतिमाके बनवानेसे उत्पन्न हुए पुण्यकी बराबरी नहीं कर सकते ॥१७४-१७५॥ इस कहे हुए फलको जीव स्वर्गमें प्राप्त कर जब मनुष्य पर्यायमें उत्पन्न होते हैं तब चक्रवर्ती आदिका पद पाकर वहाँ भी उसका उपभोग करते हैं ॥१७६॥ जो कोई मनुष्य इस विधिसे धर्मका सेवन करता है वह संसार-सागरसे पार होकर तीन लोकके शिखरपर विराजमान होता है ॥१७७॥ जो मनुष्य जिनप्रतिमाके दर्शनका चिन्तवन करता है वह वेलाका, जो उद्यमका अभिलाषी होता है वह तेलाका, जो जानेका आरम्भ करता है वह चौलाका, जो जाने लगता है वह पाँच उपवासका, जो कुछ दूर पहुँच जाता है वह बारह उपवासका, जो बीचमें पहुँच जाता है वह पन्द्रह उपवासका, जो मन्दिरके दर्शन करता है वह मासोपवासका, जो मन्दिरके आँगनमें प्रवेश करता है वह छह मासके उपवासका, जो द्वारमें प्रवेश करता है वह वर्षोपवासका, जो प्रदक्षिणा देता है वह सौ वर्षके उपवासका, जो जिनेन्द्रदेवके मुखका दर्शन करता है वह हजार वर्षके उपवासका और जो स्वभावसे स्तुति करता है वह अनन्त उपवासके फलको प्राप्त करता है। यथार्थमें जिनभक्तिसे बढ़कर उत्तम पुण्य नहीं है ॥१७८-१८२॥ आचार्य द्युति कहते हैं कि हे भरत ! जिनेन्द्रदेवकी भक्तिसे कर्म क्षयको प्राप्त हो जाते हैं और जिसके कर्म क्षीण

---

१. स्वर्गवसुधाप्राप्ताभिषेकाः । २. वेलोपवासस्य । ३. दिनत्रयोपवासस्य । ४. चतुर्दिनोपवासस्य ।

इत्युक्तेऽत्यन्तसद्भक्तिः प्रणम्य चरणौ गुरोः । जग्राह भरतो धर्मं सागारं सुविधानतः ॥१८४॥
बहुश्रुतोऽतिधर्मज्ञो विनीतः श्रद्धयान्वितः । विशेषतो ददौ दानं स साधुषु यथोचितम् ॥१८५॥
सम्यग्दर्शनरत्नं स हृदयेन सदा वहन् । चकार विपुलं राज्यं साधुचेष्टापरायणः ॥१८६॥
प्रतापश्चानुरागश्च समस्तां तस्य मेदिनीम् । अभ्राम प्रतिघातेन रहितौ गुणवारिधेः ॥१८७॥
अभ्यर्द्धं तस्य पत्नीनां शतं देवीसमत्विषाम् । न तत्रासक्तिमायाति [1]शतपत्रं यथाम्भसि ॥१८८॥

उपजातिः

चिन्तास्य नित्यं मगधाधिपासीत् कदा नु लप्स्ये निरगारदीक्षाम् ।
तपः करिष्यामि कदा नु घोरं संगैर्विमुक्तो विहरन् पृथिव्याम् ॥१८९॥

इन्द्रवज्रा

धन्या मनुष्या धरणीतले ते ये सर्वसङ्गान् परिवर्ज्य धीराः ।
दग्ध्वाखिलं कर्म तपोबलेन प्राप्ताः पदं निर्वृतिसौख्यसारम् ॥१९०॥

उपजातिः

तिष्ठामि पापो भवदुःखमग्नः पश्यन्नपीदं क्षणिकं समस्तम् ।
पूर्वाह्णदृष्टोऽत्र जनोऽपराह्णे न दृश्यते कश्चिदहोऽस्मि मूढः ॥१९१॥

इन्द्रवज्रा

व्यालाज्जलाद् वा विषतोऽनलाद् वा वज्राद् विमुक्तादहितेन शस्त्रात् ।
शूलाद् वराद् वा मरणं जनोऽयं प्राप्नोति [2]दीनाननबन्धुमध्ये ॥१९२॥

हो जाते वह अनुपम सुखसे सम्पन्न परम पदको प्राप्त होता है ॥१८३॥ ऐसा कहनेपर अत्यन्त समीचीन भक्तिसे युक्त भरतने गुरुके चरणोंको नमस्कार कर विधिपूर्वक गृहस्थ धर्म ग्रहण किया ॥१८४॥ अनेक शास्त्रोंका ज्ञाता, धर्मके मर्मको जाननेवाला, विनयवान् और श्रद्धा गुणसे युक्त भरत अब साधुओंके लिए विशेष रूपसे यथायोग्य दान देने लगा ॥१८५॥ उत्तम आचरणके पालनमें तत्पर रहनेवाला भरत हृदयमें सम्यग्दर्शनरूपी रत्नको धारण करता हुआ विशाल राज्यका पालन करता था ॥१८६॥ गुणोंके सागरस्वरूप भरतका प्रताप और अनुराग दोनों ही बिना किसी रुकावटके समस्त पृथिवीमें भ्रमण करते थे ॥१८७॥ उसके देवियोंके समान कान्तिको धारण करनेवाली डेढ़ सौ स्त्रियाँ थीं फिर भी वह उनमें आसक्तिको प्राप्त नहीं होता था। जिस प्रकार कमल जलमें रहकर भी उसमें आसक्त नहीं होता है उसी प्रकार वह उन स्त्रियोंके बीच रहता हुआ भी उनमें आसक्त नहीं था ॥१८८॥

गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! भरतके मनमें सदा यही चिन्ता विद्यमान रहती थी कि मैं निर्ग्रन्थ दीक्षा कब धारण करूँगा और परिग्रहसे रहित हो पृथिवीपर विहार करता हुआ घोर तप कब करूँगा ? ॥१८९॥ पृथिवीतलपर वे धीर-वीर मनुष्य धन्य हैं जो सर्व परिग्रहका त्यागकर तथा तपोबलसे समस्त कर्मोंको भस्म कर सन्तोषरूपी सुखसे श्रेष्ठ मोक्ष पदको प्राप्त हो चुके हैं ॥१९०॥ एक मैं पापी हूँ जो समस्त जगत्को क्षणभंगुर देखता हुआ भी संसारके दुःखमें मग्न हूँ। इस संसारमें जो मनुष्य पूर्वाह्ण कालमें देखा गया है वही अपराह्ण कालमें नहीं दिखाई देता फिर भी आश्चर्य है कि मैं मूढ़ बना हूँ ॥१९१॥ दीन हीन मुखको धारण करनेवाले बन्धुजनोंके बीचमें बैठा हुआ यह प्राणी सर्पसे, जलसे, विषसे, अग्निसे, वज्रसे, शत्रुके द्वारा छोड़े हुए शस्त्रसे,

---

१. कमलम् । २. दीनो ननु बन्धुमध्ये म. ।

उपजातिः

बहुप्रकारैर्मरणैर्जनोऽयं प्रतर्क्यते दुःखसहस्रभागी ।
[1]क्षारार्णवस्येव तटे प्रसुप्तो मत्तोऽतिवेगप्रसृतोर्मिजालैः ॥१९३॥
विधाय राज्यं बलपापलिप्तो हा कं प्रपत्स्ये नरकं तु घोरम् [2] ।
शरासिचक्राङ्गनगान्धकारं किं वा नु तिर्यक्त्वमनेकयोनिम् ॥१९४॥
लब्ध्वापि जैनं समयं यदेतन्ममो मदीयं [3] दुरितानुषक्तम् ।
करोति नो निस्पृहतामुपेत्य विमुक्तिदक्षं निरगारधर्मम् ॥१९५॥
एवं च चिन्तां सततं प्रपन्नो दुष्कर्मविध्वंसनहेतुभूताम् ।
पुराणनिर्ग्रन्थकथाप्रसक्तो ददर्श राजा न रविं न चन्द्रम् ॥१९६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दशरथरामभरतानां प्रव्रज्याकानप्रस्थानराज्याभिधानं नाम द्वात्रिंशत्तमं पर्व ॥३२॥

□

अथवा तीक्ष्ण शूलसे मरणको प्राप्त हो जाता है ॥१९२॥ यह प्राणी अनेक प्रकारके मरणोंसे हजारों प्रकारके दुःख भोगता हुआ भी निश्चिन्त बैठा है सो ऐसा जान पड़ता है मानो कोई मत्त मनुष्य वेगसे फैलनेवाली लहरोंके समूहसे निर्भय हो लवणसमुद्रके तटपर सोया है ॥१९३॥ हाय हाय, मैं राज्यकर तीव्र पापसे लिप्त होता हुआ जहाँ बाण, खड्ग, चक्र आदि शस्त्र, तथा शाल्मली आदि वृक्षों और पहाड़ोंके कारण घोर अन्धकार व्याप्त है ऐसे किस भयंकर नरकमें पड़ूँगा अथवा अनेक योनियोंसे युक्त तिर्यंच पर्यायको प्राप्त होऊँगा ? ॥१९४॥ मेरा यह मन जैनधर्मको पाकर भी पापोंसे लिप्त हो रहा है तथा निःस्पृहताको प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करानेमें समर्थ मुनिधर्मको धारण नहीं कर रहा है ॥१९५॥ इस प्रकार जो पापकर्मके नाशमें कारणभूत चिन्ताको निरन्तर प्राप्त था तथा जो प्राचीन मुनियोंकी कथामें सदा लीन रहता था ऐसा राजा भरत न सूर्यकी ओर देखता था न चन्द्रमाकी ओर ॥१९६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरितमें राजा दशरथकी दीक्षा, रामका वनगमन और भरतके राज्याभिषेकका वर्णन करनेवाला बत्तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३२॥

□

१. लवणसमुद्रस्येव, क्षीरार्णव- म. । २. कुघोरं म. । ३. ममदान्मदीयं म. ।

त्रयस्त्रिंशत्तमं पर्व

ततो जनोपभोग्यानां प्रदेशानां समीपतः । रमणीयान् परिप्राप पक्षस्तापससंश्रयान् ॥१॥
तापसा जटिलास्तत्र नानावल्कलधारिणः । सुस्वादुफलसंपूर्णाः पादपा इव भूरयः ॥२॥
विशालपत्रसञ्छन्ना मठकाः [1]सवितर्दिकाः । पलाशोदुम्बरैर्धानां पूलिकाभिर्युताः क्वचित् ॥३॥
[2]अकृष्टपच्यमानेन तुष्यता पुलिनेऽम्भसा । स्वयंप्रवृत्तैः सुस्निग्धैः रोमन्थं राजिता मृगैः ॥४॥
सजटैर्वटुभिर्युक्ता रटद्भिः सततं पदु । ललितोच्छ्रितपुच्छेन तार्णकेन कृताजिराः ॥५॥
पक्षिभिर्विशदं युक्ताः शारिकाशुककौशिकैः । वीरुधां पुष्परम्याणां छायासु समवस्थितैः ॥६॥
कन्याभिर्घटकैः स्वादु वारिणा आहृतेक्षितैः । पूर्णालबालकैर्बालैस्तरुभि[3]: कृतराजनाः[4] ॥७॥
फलैर्बहुविधैः पुष्पैर्वासितैः स्वादुवारिभिः । सादरैः स्वागतस्वानैः सार्घदानैस्तथाशनैः ॥८॥
संभाषणैः कुटीदानैः शयनैर्मृदुपल्लवैः । तापसैरुपचारैस्ते पूजिता श्रमहारिभिः ॥९॥
[5]आतिथेयाः स्वभावेन ते हि सर्वत्र तापसाः । रूपेष्वेवं प्रकारेषु विशेषेण सुवृत्तयः ॥१०॥
उषित्वा गच्छतां तेषां ययुर्मार्गेण तापसाः । पाषाणानपि तद्रूपं द्रवीकुर्यात् किमन्यकैः ॥११॥
शुष्कपत्राशिनस्तत्र तापसा वायुपायिनः । सीतारूपहृतस्वान्ता धृतिं दूरेण तत्यजुः ॥१२॥

अथानन्तर राम मनुष्योंके उपभोगके योग्य स्थानोंसे हटकर तपस्वियोंके सुन्दर आश्रममें पहुँचे। वहाँ वृक्षोंके समान जटिल अर्थात् जटाधारी (पक्षमें जड़ोंसे युक्त), नाना प्रकारके वल्कलोंको धारण करनेवाले और स्वादिष्ट फलोंसे युक्त बहुत-से तापस रहते थे ॥१–२॥ उस आश्रममें अनेक मठ बने हुए थे जो विशाल पत्तोंसे छाये थे। सबके आगे बैठनेके लिए चबूतरे थे, जो एक ओर कहीं रखी हुई पलाश तथा ऊमरकी लकड़ियोंकी गड्डियोंसे सहित थे ॥३॥ बिना जोते बोये अपने-आप उत्पन्न होनेवाले धान उनके आँगनोंमें सूख रहे थे तथा निश्चिन्ततासे रोमन्थ करते हुए हरिणोंसे वे सुशोभित थे ॥४॥ निरन्तर जोर-जोरसे रटनेवाले जटाधारी बालकोंसे युक्त गायोंके बछड़े अपनी सुन्दर पूँछ ऊपर उठाकर उन मठोंके आँगनोंमें चौकड़ियाँ भर रहे थे ॥५॥ फूलोंसे सुन्दर लताओंकी छायामें बैठकर स्पष्ट उच्चारण करनेवाले तोता, मैना तथा उलूक आदि पक्षियोंसे वे मठ सहित थे ॥६॥ कन्याओंने भाई समझकर घड़ों द्वारा मधुर जलसे जिनकी क्यारियाँ भर दी थीं ऐसे छोटे-छोटे वृक्ष उन मठोंकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥७॥ उन तपस्वियोंने नाना प्रकारके मधुर फल, सुगन्धित पुष्प, मीठा जल, आदरसे भरे स्वागतके शब्द, अर्घके साथ दिये गये भोजन, मधुर सम्भाषण, कुटीका दान और कोमल पत्तोंकी शय्या आदि थकावटको दूर करनेवाले उपचारसे उनका बहुत सम्मान किया ॥८–९॥ तापस लोग स्वभावसे ही सर्वत्र अतिथि-सत्कार करनेमें निपुण थे फिर इस प्रकारके सुन्दर पुरुषोंके मिलनेपर तो उनका वह गुण और भी अधिक प्रकट हो गया था ॥१०॥ राम-लक्ष्मण वहाँ बसकर जब आगे जाने लगे तब वे तापस उनके मार्गमें आ गये सो ठीक ही है क्योंकि उनका रूप पाषाणोंको भी द्रवीभूत कर देता था फिर औरों-की तो बात ही क्या थी ? ॥११॥ उस आश्रममें जो तापस रहते थे उन्होंने सुन्दर रूप कहाँ देखा था ? वे सूखे पत्ते खाकर तथा वायुका पान कर जीवन बिताते थे इसलिए सीताका रूप देखते ही

---

१. वितर्दिकासहिताः । २. अकृष्टपच्यमानेन म. । ३. बालस्तरुभिः म. । ४. कृतराजनः म. । ५. अतिथिषु साधवः ।

तानूचुस्तापसा वृद्धाः सान्त्ववाचा पुनः पुनः । विरक्तं यदि नास्माकमाश्रमे शृणुतं ततः ॥१३॥
सर्वातिथ्यसमेतास्वप्यटवीषु विचक्षणौ । विश्रम्भं क्वापि मा गातां नारीष्विव नदीष्विव ॥१४॥
तापसप्रमदा दृष्ट्वा पद्मं पद्मनिरीक्षणम् । लक्ष्मणं च जहुः सर्वं कर्तव्यं शून्यविग्रहाः ॥१५॥
काश्चिदुत्कण्ठया युक्तास्तन्मार्गाहितलोचनाः । व्रजन्त्यन्यापदेशेन सुदूरं विह्वलाश्रिकाः ॥१६॥
मधुरं ब्रुवते काश्चिद्भवन्तोऽस्माकमाश्रमे । किं न तिष्ठन्तु सर्वं नः करिष्यामो यथोचितम् ॥१७॥
अतीत्य त्रीनितः कोशानरण्यानी जनोज्झिता । महानोकहसङ्कीर्णा हरिशार्दूलसंकुला ॥१८॥
समित्फलप्रसूनार्थं तापसा अपि तां भुवम् । न व्रजन्ति महाभीमां दर्भसूचीभिराचिताम् ॥१९॥
चित्रकूटः सुदुर्लङ्घ्यः प्रविशालो महीधरः । भवद्भिः किं न विज्ञातः क्रोधं येन गच्छत ॥२०॥
तापस्योऽवश्यमस्माभिर्गन्तव्यमिति तोदिताः । कृच्छ्रेण ता न्यवर्तन्त कुर्वाणास्तत्कथां चिरम् ॥२१॥
ततस्ते भूमहीप्राग्रप्रावव्रातसुकर्कशम् । महातरुमरुद्धवल्लीजालसमाकुलम् ॥२२॥
क्षुत्क्षिप्तक्रुद्धसारङ्गविदीर्णगजमौक्तिकरिच्छलम् ॥२३॥
उन्मत्तवारणस्कन्धतरुस्कन्धमहातरुम् । केसरिध्वनिविस्रस्तसमुत्कीर्णकुरङ्गकम् ॥२४॥
सुप्ताजगरनिश्वासवायुपूरितगह्वरम् । वराहयूथघोणाग्रविषमीकृतपल्वलम् ॥२५॥
महामहिषशृङ्गाग्रमग्नवल्मीकसानुकम् । ऊर्ध्वीकृतमहाभोगसंवरद्गोगिभीषणम् ॥२६॥

उनका चित्त हरा गया जिससे उन्होंने धीरजको दूर छोड़ दिया ॥१२॥ वृद्ध तपस्वियोंने शान्त वचनोंसे उनसे बार-बार कहा कि यदि आप लोग हमारे आश्रममें नहीं ठहरते हैं तो भी हमारे वचन सुनिए ॥१३॥ यद्यपि ये अटवियाँ सर्व प्रकारके आतिथ्य-सत्कारसे सहित हैं तो भी नारियों और नदियोंके समान इनका विश्वास नहीं कीजिए। आप स्वयं बुद्धिमान् हैं ॥१४॥ तपस्वियोंकी स्त्रियोंने कमलके समान नेत्रोंवाले राम और लक्ष्मणको देखकर अपने सब काम छोड़ दिये। उनका सर्व शरीर शून्य पड़ गया ॥१५॥ उत्कण्ठासे भरी कितनी ही विह्वल स्त्रियाँ उनके मार्गमें नेत्र लगाकर किसी अन्य कार्यके बहाने बहुत दूर तक चली गयीं ॥१६॥ कोई स्त्रियाँ मधुर शब्दोंमें कह रही थीं कि आप लोग हमारे आश्रममें क्यों नहीं रहते हैं? हम आपका सब कार्य यथायोग्य रीतिसे कर देंगी ॥१७॥ यहाँसे तीन कोश आगे चलकर मनुष्योंके संचारसे रहित, बड़े-बड़े वृक्षोंसे भरी तथा सिंह, व्याघ्र आदि जन्तुओंसे व्याप्त एक महाअटवी है ॥१८॥ वह अत्यन्त भयंकर है तथा डाभकी सूचियोंसे व्याप्त है। ईंधन तथा फल-फूल लानेके लिए तपस्वी लोग भी वहाँ नहीं जाते हैं ॥१९॥ आगे अत्यन्त दुर्लंघ्य तथा बहुत भारी चित्रकूट नामका पर्वत है सो क्या आप जानते नहीं हैं जिससे क्रोधको प्राप्त हो रहे हैं ॥२०॥ इसके उत्तरमें राम-लक्ष्मणने कहा कि हे तपस्वियो! हम लोगोंको अवश्य ही जाना है। इस प्रकार कहनेपर वे बड़ी कठिनाईसे लौटीं और लौटती हुई भी चिरकाल तक उन्हींकी कथा करती रहीं ॥२१॥

अथानन्तर उन्होंने ऐसे महावनमें प्रवेश किया कि जो पृथिवी और पर्वतोंके अग्रभागके चट्टानोंके समूहसे अत्यन्त कर्कश था तथा बड़े-बड़े वृक्षोंपर चढ़ी हुई लताओंके समूहसे जो व्याप्त था ॥२२॥ जहाँ भूखसे अत्यन्त क्रुद्ध हुए व्याघ्र नखोंसे वृक्षोंको क्षत-विक्षत कर रहे थे। जो सिंहोंके द्वारा मारे गये हाथियोंके गण्डस्थलसे निकले रुधिर तथा मोतियोंकी कीचसे युक्त था ॥२३॥ जहाँ उन्नत हाथियोंने अपने स्कन्धोंसे बड़े-बड़े वृक्षोंके स्कन्ध छील दिये थे। जहाँ सिंहोंकी गर्जनासे भयभीत हुए मृग इधर-उधर दौड़ रहे थे ॥२४॥ जहाँ सोये हुए अजगरोंकी श्वासोच्छ्वास वायुसे गुफाएँ भरी हुई थीं। तथा सूकर समूहके मुखके अग्रभागके आघातसे छोटे-छोटे जलाशय ऊँचे-नीचे हो रहे थे ॥२५॥ बड़े-बड़े भैंसाओंके सींगोंके अग्रभागसे जहाँ बामियोंके

---

१. महद् अरण्यम् अरण्यानी । २. विकृत- म. । ३. छिन्न । तट- म. ।

तरक्षुक्षतसारङ्गरुधिरभ्रान्तमक्षिकम् । कण्टकालग्नपुच्छाग्रप्रताम्यच्चमरीगणम् ॥२७॥
दर्पसंपूरितश्वाविन्मुक्तसूचीविचित्रितम् । विषपुष्परजोघ्राणघूर्णितानेकजन्तुकम् ॥२८॥
खड्गिखड्गसमुल्लीढतरुस्कन्धच्युतद्रवम् । उद्भ्रान्तगवयव्रातलग्नपल्लवजालकम् ॥२९॥
नानापक्षिकुलक्रूरकूजितप्रतिनादितम् । शाखामृगकुलाक्रान्तचलत्प्राग्भारपादपम् ॥३०॥
तीव्रवेगगिरिस्रोतःशतनिर्दारितक्षितिम् । वृक्षाग्रविस्फुरत्स्फीतदिवाकरकरोत्करम् ॥३१॥
नानापुष्पफलाकीर्णं विचित्रामोदवासितम् । विविधौषधिसंपूर्णं वनसस्यसमाकुलम् ॥३२॥
क्वचिन्नीलं क्वचित्पीतं क्वचिद्रक्तं हरित्क्वचित् । पिङ्गरच्छायमन्यत्र विविधुर्विपिनं महत् ॥३३॥
तत्र ते चित्रकूटस्य निर्झरेष्वतिचारुषु । क्रीडन्तो दर्शयन्तश्च सद्वस्तूनि परस्परम् ॥३४॥कुलकं(द्वादशभिः)
फलानि स्वादुहारीणि स्वदमानाः पदे पदे । गायन्तो मधुरं हारि किन्नरीणां अपाकरम् ॥३५॥
पुष्पैर्जलस्थलोद्भूतैर्भूषयन्तः परस्परम् । सुगन्धिभिर्द्रवैरङ्गं लिम्पन्तस्तत्सलंभवैः ॥३६॥
उद्यानमिव निर्यान्तो विकसत्कान्तिलोचनाः । स्वच्छन्दकृतसंस्काराः सत्वलोचनतस्कराः ॥३७॥
लतागृहेषु विश्रान्ता मुहुर्नयनहारिषु । कृतनानाकथासङ्गाः किंचिद्धर्मविधायिनः ॥३८॥
व्रजन्तो लीलया युक्ता निसर्गादतिरम्यया । पर्यटन्तो वनं चारु त्रिदशा इव नन्दनम् ॥३९॥
पक्षोनैः पञ्चभिर्मासैस्तमुद्देशमतीत्य ते । जनैः समाकुलं प्रापुर्देशमत्यन्तसुन्दरम् ॥४०॥

शिखर खुद गये थे तथा जो बड़े-बड़े फण ऊँचे उठाकर चलनेवाले साँपोंसे भयंकर था ॥२६॥ जहाँ भेड़ियोंके द्वारा मारे गये मृगोंके रुधिरपर मक्खियाँ भिन-भिना रही थीं और कटीली झाड़ियोंमें पूँछके बाल उलझ जानेसे जहाँ चमरी मृगोंके झुण्ड बेचैन हो रहे थे ॥२७॥ जो अहंकारसे भरी सेहियोंके द्वारा छोड़ी हुई सूचियोंसे चित्रविचित्र था तथा विषपुष्पोंकी परागके सूँघनेसे जहाँ अनेक जन्तु इधर-उधर घूम रहे थे ॥२८॥ जहाँ गैंडा, हाथियोंके गण्डस्थलोंके आघातसे खण्डित हुए वृक्षोंके तनोंसे पानी झर रहा था तथा इधर-उधर दौड़ते हुए गवय-समूहने जहाँ वृक्षोंके पल्लव तोड़ डाले थे ॥२९॥ जहाँ नाना पक्षियोंके समूहकी क्रूरध्वनि गूँज रही थी तथा वानर समूहके आक्रमणसे जहाँ वृक्षोंके ऊर्ध्वभाग हिल रहे थे ॥३०॥ तीव्र वेगसे बहनेवाले सैकड़ों पहाड़ी झरनोंसे जहाँ पृथिवी विदीर्ण हो गयी थी तथा वृक्षोंके अग्रभागपर जहाँ सूर्यकी किरणोंका समूह देदीप्यमान होता था ॥३१॥ जो नाना प्रकारके फूलों और फलोंसे व्याप्त था, विचित्र प्रकारकी सुगन्धिसे सुवासित था, नाना ओषधियोंसे परिपूर्ण था, और जंगली धान्योंसे युक्त था ॥३२॥ जो कहीं नीला था, कहीं पीला था, कहीं लाल था, कहीं हरा था, और कहीं पिंगल वर्ण था ॥३३॥ वे तीनों महानुभाव वहाँ चित्रकूटके सुन्दर निर्झरोंमें क्रीड़ा करते, सुन्दर वस्तुएँ परस्पर एक दूसरेको दिखाते, स्वादिष्ट मनोहर फल खाते, पद-पदपर किन्नरियोंको लज्जित करनेवाला हृदयहारी मधुर गान गाते, जल तथा स्थलमें उत्पन्न हुए पुष्पोंसे परस्पर एक दूसरेको भूषित करते और वृक्षोंसे निकले हुए सुगन्धित द्रवसे शरीरको लिप्त करते हुए इस प्रकार भ्रमण कर रहे थे मानो उद्यानकी सैर करनेके लिए ही निकले हों। उनके सुन्दर नेत्र विकसित हो रहे थे, वे इच्छानुसार शरीरकी सजावट करते थे तथा प्राणियोंके नेत्रोंका अपहरण करते थे ॥३४-३७॥ वे बार-बार नेत्रोंको हरण करनेवाले निकुंजोंमें विश्राम करते थे, नाना प्रकारकी कथावार्ता करते थे और तरह-तरहकी क्रीड़ाएँ करते थे ॥३८॥ स्वभावसे ही अत्यन्त सुन्दर लीलाके साथ गमन करते हुए वे उस सुन्दर वनमें इस प्रकार भ्रमण कर रहे थे जिस प्रकार कि नन्दन वनमें देव ॥३९॥ इस प्रकार एक पक्ष कम पाँच मासमें वे उस स्थानको पार कर मनुष्योंसे भरे हुए अत्यन्त सुन्दर अवन्ती देशमें पहुँचे।

---

१. नानापक्षि कुलं क्रूरकूजितं प्रतिनादितं म.। २. निर्दारितक्षयं म.।

गोघण्टारवसंपूर्णं नानासस्योपशोभितम् । व्याप्तग्रामनगरं स्फीतं शालपलमण्डलम् ॥४१॥
मार्गं तत्र कियन्तं चिदतिक्रम्य त्रयोऽप्यमी । विषयैकान्तमापुस्ते पृथुं स्वाकारधारिणः ॥४२॥
छायां न्यग्रोधजां श्रित्वा विश्रान्तास्ते परस्परम् । जगुः कस्मादयं देशो दृश्यते जनवर्जितः ॥४३॥
सस्यानि कृष्टपच्यानि दृश्यन्तेऽत्रातिभूरिशः । उद्यानपादपाश्चैत्ये फलैः पुष्पैश्च शोभिताः ॥४४॥
पुण्ड्रेक्षुवाटसंपन्ना ग्रामास्तुङ्गावनिस्थिताः । सरांस्यच्छिन्नपद्मानि शुष्कानि विविधैः खगैः ॥४५॥
अध्वार्यं घटकैर्मञ्चैः शकटैश्च विशङ्कटः । करण्डैः कुण्डकैर्दण्डैः कुण्डिकाभिः कटासनैः ॥४६॥
विकीर्णास्तण्डुला माषा मुद्गाः सूपादयस्तथा । वृद्धोक्षोऽयं मृतो जीर्णगोण्यस्योपरि तिष्ठति ॥४७॥
देशोऽयमतिविस्तीर्णः शोभते न जनोज्झितः । अत्यन्तविषयासङ्गो यथा दीक्षासमाश्रितः ॥४८॥
ततोऽत्यन्तमृदुस्पर्शे निषण्णं रत्नकम्बले । देशोद्वासकृतालापं राम पार्श्वस्थकार्मुकम् ॥४९॥
पद्मगर्भदलाभाभ्यां पाणिभ्यां पूजितेहिता । श्रान्तिश्रमयितुं सक्ता सीता प्रेमाम्बुदीर्घिका ॥५०॥
उत्साद्यं[1] घोरलग्नां तां सादरक्रमकोविदः । संवाहयितुमासक्तो लक्ष्मणो ज्यायसोदितः ॥५१॥
निरूपय क्वचित्तावद् ग्रामं नगरमेव वा । घोषं वा लक्ष्मण क्षिप्रं श्रान्तेयं हि प्रजावती ॥५२॥
ततोऽन्यस्यातितुङ्गस्य वृक्षस्योर्ध्वसमाश्रितः । दृश्यते किंचिदत्रेति पद्मेनोक्तस्तु लक्ष्मणः ॥५३॥
सोऽवोचद्देव पश्यामि रूपपर्वतसंनिभान् । शारदाभ्रसमुत्तुङ्गैः शृङ्गजालैर्विराजितान् ॥५४॥

वह देश गायोंकी गरदनोंमें बँधे घण्टाओंके शब्दसे परिपूर्ण था, नाना प्रकारके धान्यसे सुशोभित था, विस्तृत था और ग्राम तथा नगरोंसे व्याप्त था ॥४०-४१॥

तदनन्तर सुन्दर आकारको धारण करनेवाले वे तीनों, कितना ही मार्ग उल्लंघकर एक अतिशय विस्तृत ऐसे स्थानमें पहुँचे जिसे मनुष्य छोड़कर भाग गये थे ॥४२॥ एक वट वृक्षकी छायामें बैठकर विश्राम करते हुए वे परस्पर कहने लगे कि यह मनुष्योंसे रहित क्यों दिखाई देता है ? ॥४३॥ यहाँ अनेकों धानके पके खेत दिखाई दे रहे हैं, बगीचोंके ये वृक्ष फलों और फूलोंसे सुशोभित हैं ॥४४॥ ऊँची भूमिपर बसे गाँव पौंडों और ईखोंके बागोंसे युक्त हैं, जिनके कमलोंको किसीने तोड़ा नहीं है ऐसे सरोवर नाना प्रकारके पक्षियोंसे युक्त हैं ॥४५॥ यह मार्ग फूटे घड़ों, गाड़ियों, पिटारों, कूँड़ों, कुण्डिकाओं और चटाई आदि आसनोंसे व्याप्त है ॥४६॥ यहाँ चावल, उड़द, मूँग तथा सूप आदि बिखरे हुए हैं और इधर यह बूढ़ा बैल मरा पड़ा है तथा इसके ऊपर फटी पुरानी गोन लदी हुई है ॥४७॥ यह इतना बड़ा देश मनुष्योंसे रहित हुआ ठीक उस तरह शोभित नहीं होता जिस प्रकार कि कोई दीक्षा लेनेवाला साधु विषयोंकी आसक्तिमें पड़कर शोभित नहीं होता ॥४८॥

तदनन्तर देशके ऊजड़ होनेकी चर्चा करते हुए राम अत्यन्त कोमल स्पर्शवाले रत्नकम्बल-पर बैठ गये और पास ही उन्होंने अपना धनुष रख लिया ॥४९॥ जो प्रशस्त चेष्टाकी धारक और प्रेमरूपी जलकी मानो वापिका ही थी ऐसी सीता कमलके भीतरी दलके समान कोमल हाथोंसे शीघ्र ही रामको विश्राम दिलाने अर्थात् उनके पादमर्दन करनेके लिए तैयार हुई ॥५०॥ तब आदरपूर्ण क्रमको जाननेवाला लक्ष्मण, बड़े भाईकी आज्ञा प्राप्त कर जाँघोंसे लगी सीताको अलग कर स्वयं पादमर्दन करने लगा ॥५१॥ रामने लक्ष्मणसे कहा कि हे भाई ! तेरी यह भावज बहुत थक गयी है इसलिए शीघ्र ही किसी गाँव, नगर अथवा अहीरोंकी बस्तीको देखो ॥५२॥ तब लक्ष्मण एक बड़े वृक्षकी शिखरपर चढ़ा । रामने उससे पूछा कि क्या यहाँ कुछ दिखाई देता है ? ॥५३॥ लक्ष्मणने कहा कि हे देव ! जो चाँदीके पर्वतके समान हैं, शरद् ऋतुके बादलोंके समान ऊँचे

---

१. चारु म. ।

प्राग्भारसिंहकर्णस्थजिनबिम्बोपलक्षितान् । प्रासादान् परमोद्यानान् प्रचलद्ध्वजकध्वजान् ॥५५॥
ग्रामांश्चायतवापीभिः सस्यैश्च कृतवेष्टनान् । नगराणि च गन्धर्वपुरैर्विभ्रन्ति तुल्यताम् ॥५६॥
दृष्टिगोचरमात्रे तु संनिवेशाः सुभूरयः । दृश्यन्ते न पुनः कश्चिदेकोऽप्यालोक्यते जनः ॥५७॥
समं किं परिवर्गेण विनष्टाः स्युरिह प्रजाः । उपानीताः किमु म्लेच्छैर्बन्दित्वं क्रूरकर्मभिः ॥५८॥
एकस्तु पुरुषाकारो दृश्यते चातिदूरतः । स्थाणुर्न पुरुषोऽयं तु ननु चैष चलाकृतिः ॥५९॥
यावन्नैष किमुतायाति पश्याम्यागच्छतीत्यम् । तावदायातु मार्गेण जानाम्येनं विशेषतः ॥६०॥
अयं मृग इवोद्विग्नो दुसमायाति मानवः । रूक्षोर्द्धमूर्धजो दीनो मलोपहतविग्रहः ॥६१॥
कूर्पाच्चादित्तखरको वसानश्चीरखण्डकम् । स्फुटिताङ्घ्रि स्रवत्स्वेदो दर्शयन् पूर्वदुष्कृतम् ॥६२॥
आनयैनमितः क्षिप्रमिति पद्मेन भाषितः । अवतीर्य गतस्तस्य सविस्मय इवान्तिकम् ॥६३॥
दृष्ट्वा तं पुरुषो हृष्टरोमा विस्मयपूरितः । विलम्बितमतिः किंचिदकरोदिति मानसे ॥६४॥
समाकम्पितवृक्षोऽयमवतीर्य समागतः । किमिन्द्रो वरुणो दैत्यः किं नागः किन्नरो नरः ॥६५॥
वैवस्वतः शशाङ्को नु वह्निर्वैश्रवणो नु किम् । भास्करो नु भुवं प्राप्तः कोऽयमुत्तमविग्रहः ॥६६॥
इति ध्यायन् महाभीत्या मुकुलीकृत्य लोचने । निश्चेष्टावयवो भूमौ पपाताव्यक्तचेतनः ॥६७॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्र त्वं मा भैषीरिति भाषितः । प्रत्यागतधृतिर्भीतो लक्ष्मणेनान्तकं गुरोः ॥६८॥

शिखरोंसे सुशोभित हैं, जो उपरितन अग्र भागपर जिन-प्रतिमाओंसे सहित हैं, उत्तमोत्तम बगीचोंसे युक्त हैं तथा जिनपर सफेद ध्वजाएँ फहरा रही हैं ऐसे जिनमन्दिरोंको देख रहा हूँ ॥५४-५५॥ लम्बी-चौड़ी वापिकाओं तथा धानके हरे-भरे खेतोंसे घिरे गाँव और गन्धर्वनगरोंकी तुलना धारण करनेवाले नगर भी दिखाई दे रहे हैं। इस प्रकार बहुत भारी वसतिकाएँ दिखाई दे रही हैं परन्तु उनमें आदमी एक भी नहीं दिखाई देता ॥५६-५७॥ क्या यहाँकी प्रजा अपने समस्त परिवारके साथ नष्ट हो गयी है अथवा क्रूर कर्म करनेवाले म्लेच्छोंने उसे बन्दी बना लिया है ? ॥५८॥ बहुत दूर, एक पुरुष-जैसा आकार दिखाई देता है जो ठूँठ नहीं है पुरुष ही मालूम होता है क्योंकि उसकी प्रकृति चंचल है ॥५९॥ परन्तु यह जा रहा है या आ रहा है इसका पता नहीं चलता। कुछ देर तक गौरसे देखनेके बाद लक्ष्मणने कहा कि 'यह आ रहा है' यही जान पड़ता है, अच्छा, मार्गपर आने दो तभी इसे विशेषतासे जान सकूँगा ॥६०॥ लक्ष्मणने फिर देखकर कहा कि यह पुरुष मृगके समान भयभीत होकर शीघ्र ही आ रहा है, इसके शिरके बाल रूखे तथा खड़े हैं, दीन है, इसका शरीर मैलसे दूषित है, पसीना झर रहा है और पूर्वोपार्जित पाप कर्मको दिखा रहा है ॥६१-६२॥

रामने लक्ष्मणसे कहा कि इसे शीघ्र ही यहाँ बुलाओ। तब लक्ष्मण नीचे उतरकर आश्चर्यके साथ उसके पास गया ॥६३॥ लक्ष्मणको देखकर उस पुरुषको रोमांच उठ आये। वह आश्चर्यसे भर गया और अपनी गति कुछ धीमी कर मनमें इस प्रकार विचार करने लगा ॥६४॥ कि यह जो वृक्षको कम्पित करनेवाला नीचे उतरकर आया है सो क्या इन्द्र है ? या वरुण है ? या दैत्य है ? या नाग है ? या किन्नर है ? या मनुष्य है ? या यम है ? या चन्द्रमा है ? या अग्नि है ? या कुबेर है ? या पृथिवीपर आया सूर्य है ? अथवा उत्तम शरीरका धारी कौन है ? ॥६५-६६॥ इस प्रकार विचार करते-करते उसके नेत्र महाभयसे बन्द हो गये, शरीर निश्चेष्ट पड़ गया और वह मूर्च्छित होकर पृथिवीपर गिर पड़ा ॥६७॥ यह देख लक्ष्मणने कहा कि भद्र ! उठ-उठ, डर मत। कुछ देर बाद जब चैतन्य हुआ तब लक्ष्मण उसे रामके पास ले गया ॥६८॥

---

१. प्रचलध्वजकध्वजान् ब. । २. यमः । ३. ज्येष्ठभ्रातुः ।

ततः सौम्याननं रामममिरामं समन्ततः । दृष्ट्वा कान्तिसमुद्रस्थं चक्षुरुत्सवकारिणम् ॥६९॥
सीतया शोभितं पार्श्ववर्तिन्यातिविनीतया । मुमोच पुरुषः सद्यः क्षुधाद्विजपरिश्रमम् ॥७०॥
ननाम चाञ्जलिं कृत्वा शिरसा स्पृष्टभूतलः । छायायां भद्र विश्रस्त इति चोक्त उपाविशत् ॥७१॥
अपृच्छत्तं ततः पद्मः क्षरन्निव गिरामृतम् । आगतोऽसि कुतो भद्र को वा किंसंज्ञकोऽपि वा ॥७२॥
सोऽवोचद् दूरतः स्थानाच्छीरगुप्तिः[1] कुटुम्बिकः । देशोऽयं विजनः कस्मादिति पृष्टोऽवदत् पुनः ॥७३॥
सिंहोदर इति ख्यातो देवोऽस्त्युज्जयिनीपतिः । प्रतापप्रणतोदारसामन्तः सुरसंनिभः ॥७४॥
दशाङ्गपुरनाथोऽस्य वज्रकर्णश्रुतिर्महान् । अत्यन्तदयितो भृत्यः कृतानेकाद्भुतक्रियः ॥७५॥
मुक्त्वा त्रिभुवनाधीशं भगवन्तं जिनाधिपम् । निर्ग्रन्थांश्च नमस्कारं न करोत्यपरस्य सः ॥७६॥
साधुप्रसादतस्तस्य सम्यग्दर्शनमुत्तमम् । पृथिव्यां ख्यातिमायातं देवेन किमु न श्रुतम् ॥७७॥
प्रसादः साधुना तस्य कृतः कथमितीरितः । लक्ष्मीधरकुमारेण पद्माभिप्रायसूरिणा ॥७८॥
उवाच पथिको देव समासात् कथयाम्यहम् । प्रसादः साधुना तस्य यथायमुपपादितः ॥७९॥
अन्यदा वज्रकर्णोऽयं दशारण्यसमाश्रिताम् । प्राविशत् सरवसंपूर्णामटवीं मृगयोद्यतः ॥८०॥
जन्मनः प्रभृति क्रूरः ख्यातोऽयं विष्टपेऽखिले । इन्द्रीयवशगो मूढः सदाचारपराङ्मुखः ॥८१॥
लोभसंज्ञासमासक्तः सूक्ष्मतत्त्वान्धचेतनः[2] । भोगोद्भवमहागर्वपिशाचग्रहदूषितः ॥८२॥
तेन च भ्रमता तत्र कर्णिकारवनान्तरे । दृष्टः शिलातले साधुर्दधानः शममुत्तमम् ॥८३॥
परित्यक्तावृतिर्ग्रीष्मे समाप्तनियमस्थितिः । विहंग इव निष्वाङ्कः केसरीव मयोज्झितः ॥८४॥

तदनन्तर जिनका मुख सौम्य था, जो सर्व प्रकारसे सुन्दर थे, मानो कान्तिके समुद्रमें ही स्थित थे, नेत्रोंको उत्सव प्रदान करनेवाले थे, और पासमें बैठी हुई अतिशय नम्र सीतासे सुशोभित थे ऐसे रामको देखकर उस पुरुषने क्षुधा आदिसे उत्पन्न हुए श्रमको शीघ्र ही छोड़ दिया ॥६९-७०॥ उसने हाथ जोड़ मस्तकसे भूमिका स्पर्श करते हुए नमस्कार किया तथा 'छायामें विश्राम कर' इस प्रकार कहे जानेपर वह बैठ गया ॥७१॥ तदनन्तर रामने वाणीसे मानो अमृत झराते हुए उससे पूछा कि हे भद्र! तू कहाँसे आ रहा है और तेरा क्या नाम है ? ॥७२॥ उसने कहा कि मैं बहुत दूरसे आ रहा हूँ और सीरगुप्ति मेरा नाम है। 'यह देश मनुष्योंसे रहित क्यों है ?' इस प्रकार रामके पूछनेपर वह पुनः कहने लगा ॥७३॥ कि जिसने अपने प्रतापसे बड़े-बड़े सामन्तोंको नम्रीभूत कर दिया है तथा जो देवोंके समान जान पड़ता है ऐसा सिंहोदर नामसे प्रसिद्ध उज्जयिनी नगरीका राजा है ॥७४॥ दशांगपुरका राजा वज्रकर्ण जिसने कि अनेक आश्चर्य-जनक कार्य किये हैं इसका अत्यन्त प्रिय सेवक है ॥७५॥ वह तीन लोकके अधिपति जिनेन्द्रभगवान् और निर्ग्रन्थ मुनियोंको छोड़कर किसी अन्यको नमस्कार नहीं करता है ॥७६॥ 'साधुके प्रसादसे उसका उत्तम सम्यग्दर्शन पृथिवीमें प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ है' यह क्या आपने नहीं सुना ? ॥७७॥ इसी बीचमें रामका अभिप्राय जाननेवाले लक्ष्मणने उससे पूछा कि हे भाई! साधुने इसपर किस तरह प्रसाद किया है ? सो तो बता ॥७८॥ इसके उत्तरमें उस पथिकने कहा कि हे देव! साधुने जिस तरह इसपर प्रसाद किया यह मैं संक्षेपसे कहता हूँ ॥७९॥ एक समय शिकार खेलनेके लिए उद्यत हुआ वज्रकर्ण दशारण्यपुरके समीपमें स्थित जीवोंसे भरी अटवीमें प्रविष्ट हुआ ॥८०॥ यह वज्रकर्ण जन्मसे ही लेकर समस्त संसारमें अत्यन्त क्रूर प्रसिद्ध था, इन्द्रियोंका वशगामी था, मूर्ख था, सदाचारसे विमुख था, लोभ अर्थात् परिग्रह संज्ञामें आसक्त था, सूक्ष्म तत्त्वके विचारसे शून्य था, और भोगोंसे उत्पन्न महागर्वरूपी पिशाच ग्रहसे दूषित था ॥८१-८२॥ उस अटवीमें घूमते हुए उसने कनेर वनके बीचमें शिलापर विद्यमान उत्तम शान्तिके धारक एक साधु देखे ॥८३॥ उन

---

१. क्षीरगुप्तिः म. । हलवाहकः । २. चेतसः म. ।

स साधुभिः करैर्नीरतितप्तः समन्ततः । अभ्याख्यानशतैस्तीव्रैर्दुर्जनस्येव सज्जनः ॥८५॥
अधिरूढः स तं दृष्ट्वा कृतान्तसमदर्शनः । रत्नप्रभवगम्भीरं परमार्थनिवेशनम् ॥८६॥
पापघातकरं सर्वभूतकारुण्यसङ्गतम् । कृत्तपाणिरुवाचैवं मूर्धितं श्रमणश्रिया ॥८७॥
अत्र किं क्रियते साधो सोऽधोचद्धितमात्मनः । अनाचरितपूर्वं यज्जन्मान्तरशतेष्वपि ॥८८॥
अगाद् विहसन् भूभृदमया खल्ववस्थया । न किंचिदपि ते सौख्यं कीदृशं हितमात्मनः ॥८९॥
मुक्तलावण्यरूपस्य कामार्थरहितस्य च । अचेलस्यासहायस्य कीदृशं हितमात्मनः ॥९०॥
स्नानालंकाररहितैः परपिण्डोपजीविभिः । भवादृशैर्नरैः कीदृक् क्रियते हितमात्मनः ॥९१॥
दृष्ट्वा तं कामभोगार्तं दयावान् संयतोऽवदत् । हितं पृच्छसि किं एवं मां छिन्नाशापाशबन्धनम् ॥९२॥
इन्द्रियैर्वञ्चितान् पृच्छ हितोपायबहिष्कृतान् । [2]मोहेनात्यन्तवृद्धेन भ्राम्यन्ते ये भवाम्बुधौ ॥९३॥
हत्वा सत्त्वसहस्राणामात्मानर्थपरायणः । व्यरंस्येष नरकं घोरमवश्यं नष्टचेतनः ॥९४॥
मूर्ख त्वया न विज्ञाता घोरा नरकभूमयः । उत्थायोत्थाय पापेषु [3]यत्परां कुरुषे रतिम् ॥९५॥
पृथिव्यः सन्ति सप्তाधो नरकाणां सुदारुणाः । सुदुर्गन्धाः सुदुष्प्रेक्षाः सुदुस्पर्शाः सुदुस्तराः ॥९६॥
तीक्ष्णायस्कीलसंकीर्णा नानायन्त्रसमाकुलाः । क्षुरधाराद्रिसंयुक्तास्तप्तलोहतलाधिकाः ॥९७॥
रौरवाग्रवटाक्रान्ता महाध्वान्ता महाभयाः । असिपत्रवनच्छन्ना महाक्षारनदीयुताः ॥९८॥

साधुके ऊपर किसी प्रकारका आवरण नहीं था, वे धामपर बैठकर अपना नियम पूर्ण कर रहे थे, पक्षीके समान निःशंक और सिंहके समान निर्भय थे ॥८४॥ जिस प्रकार दुर्जनके अत्यन्त तीखे सैकड़ों कुवचनोंसे सज्जन सन्तप्त होता है उसी प्रकार वे साधु भी नीचे पत्थरों और ऊपरसे सूर्यकी किरणोंके द्वारा सब ओरसे सन्तप्त हो रहे थे ॥८५॥ जो यमराजके समान दिखाई देता था ऐसे वज्रकर्णने घोड़ेपर चढ़े-चढ़े, समुद्रके समान गम्भीर, परमार्थके ज्ञाता, पापोंका विनाश करनेवाले, समस्त प्राणियोंकी दयासे युक्त एवं श्रमण लक्ष्मीसे विभूषित साधुसे भाला हाथमें लेकर कहा ॥८६-८७॥ कि हे साधो ! यह क्या कर रहे हो ? साधुने उत्तर दिया कि जो पिछले सैकड़ों जन्मोंमें भी नहीं किया जा सका ऐसा आत्माका हित करता हूँ ॥८८॥ राजा वज्रकर्णने हँसते हुए कहा कि इस अवस्थामें तो तुम्हें कुछ भी सुख नहीं है फिर आत्माका हित कैसा ? ॥८९॥ जिसका लावण्य और रूप नष्ट हो गया है, जो काम और अर्थसे रहित है, जिसके शरीरपर एक भी वस्त्र नहीं है तथा जिसका कोई भी सहायक नहीं उसका आत्महित कैसा ? ॥९०॥ स्नान तथा अलंकारसे रहित एवं परके द्वारा प्रदत्त भोजनपर निर्भर रहनेवाले आप-जैसे लोगोंके द्वारा आत्महित किस प्रकार किया जाता है ? ॥९१॥ कामभोगसे पीड़ित राजा वज्रकर्णको देखकर दयालु मुनिराज बोले कि तू आशापाशरूपी बन्धनको तोड़नेवाले मुझसे हित क्या पूछ रहा है ? उससे पूछ कि जो इन्द्रियोंके द्वारा ठगे गये हैं, हितके उपायोंसे दूर हैं और अत्यन्त बढ़े हुए मोहसे जो संसार-सागरमें भ्रमण कर रहे हैं ॥९२-९३॥ यह जो तू हजारों प्राणियोंका घात करनेवाले, आत्माके अनर्थ करनेमें तत्पर एवं सद्-असद्के विचारसे रहित है सो अवश्य ही भयंकर नरकमें पड़ेगा ॥९४॥ जो तू उठ-उठकर पापोंमें परम प्रीति कर रहा है सो जान पड़ता है कि तूने भयंकर नरककी पृथिवियोंको अब तक जाना नहीं है ॥९५॥ इस पृथिवीके नीचे नरकोंकी सात पृथिवियाँ हैं जो अत्यन्त भयंकर हैं, अत्यन्त दुर्गन्धसे युक्त हैं, जिनका देखना अत्यन्त कठिन है, जिनका स्पर्श करना अत्यन्त दुःखदायी है, जिनका पार करना अत्यन्त दुःखकारक है ॥९६॥ लोहेके तीक्ष्ण काँटोंसे व्याप्त हैं, नाना प्रकारके यन्त्रोंसे युक्त हैं, क्षुराकी धाराके समान पैने पर्वतोंसे युक्त हैं, जिनका तल भाग तपे हुए लोहेसे भी अधिक दुःख-दायी है ॥९७॥ जो रौरव

१. अभ्याख्यात म. । २. मोहेना- म. । ३. पापेषु म. ।

पापकर्मपरिक्लिष्टैर्गजैरिव निरङ्कुशैः । तत्र दुःखसहस्राणि प्राप्यन्ते पुरुषाधमैः ॥९९॥
भवन्तमेव पृच्छामि स्वादृशैर्विषयातुरैः । क्रियते पापसंसक्तैः कीदृशं हितमात्मनः ॥१००॥
इन्द्रियप्रभवं सौख्यं किंपाकसदृशं कथम् । अहन्यहन्युपादाय मन्यसे हितमात्मनः ॥१०१॥
हितं करोत्यसौ स्वस्य भूतानां यो दयापरः । दीक्षितो गृहयाती वा बुधो निर्मलमानसः ॥१०२॥
कृतं तैरात्मनः श्रेयो ये महाव्रततत्पराः । अथवाणुव्रतैर्युक्ताः शेषा दुःखस्य भाजनम् ॥१०३॥
परलोकादिहैतस्त्वं कृत्वा सुकृतमुत्तमम् । इहलोकेऽधुना पापं कृत्वा यास्यसि दुर्गतिम् ॥१०४॥
अमी निरागसः क्षुद्रा दयनीयाः शिलिशायिनः । अनाथा लोलनयना निरुद्वेगा वने मृगाः ॥१०५॥
आरण्यतृणपानीयकृतविग्रहधारिणः । अनेकदुःखसंछन्नाः पूर्वदुष्कृतभोगिनः ॥१०६॥
रात्रावपि न विन्दन्ति निद्रां चकितचेतसः । साध्वाचारैर्न युक्तं ते कुलजैर्हिंसितुं नरैः ॥१०७॥
अतो ब्रवीमि राजंस्त्वां यदीच्छस्यात्मनो हितम् । त्रिधा हिंसां परित्यज्य कुर्वहिंसां प्रयत्नतः ॥१०८॥
उद्धरेत्युपदेशोक्तैर्यदासौ प्रतिबोधितः । तदा प्रणतिमायातः फलैरिव महीरुहः ॥१०९॥
ततोऽवतीर्य प्रस्तः संसेर्जानुपीडितभूतलः । प्रणामोत्तमाङ्गेन सुसाधुं रचिताञ्जलिः ॥११०॥
निरीक्ष्य सौम्यया दृष्ट्या तमेवं चाभ्यनन्दयत् । श्लाघ्योऽयं वीक्षितः सिद्धो मुनिरत्यक्तपरिग्रहः ॥१११॥
शकुन्तयो मृगाश्चामी धन्या वननिवासिनः । शिलातलनिषण्णं ये पश्यन्तीमं समाहितम् ॥११२॥
अतिधन्योऽहमप्यद्य मुक्तः पापेन कर्मणा । यदेतं त्रिजगद्वन्द्यं प्राप्तः साधुसमागमम् ॥११३॥

आदि विलोंसे युक्त हैं, महाअन्धकारसे भरी हैं, महाभय उत्पन्न करनेवाली हैं, असिपत्र वनसे आच्छादित हैं और अत्यन्त खारे जलसे भरी नदियोंसे युक्त हैं ॥९८॥ जो पाप कार्योंसे संक्लेशको प्राप्त होते रहते हैं तथा जो हाथियोंके समान निरंकुश अर्थात् स्वच्छन्द रहते हैं ऐसे नीच पुरुष उन पृथिवियोंमें हजारों दुःख प्राप्त करते हैं ॥९९॥ मैं आपसे ही पूछता हूँ कि तुम्हारे समान विषयोंसे पीड़ित तथा पापोंमें लीन मनुष्य आत्माका कैसा हित करते हैं ? ॥१००॥ किंपाक फलके समान जो इन्द्रियजन्य सुख है उसे प्रतिदिन प्राप्त कर तू आत्माका हित मान रहा है ॥१०१॥ अरे ! आत्माका हित तो वह करता है जो प्राणियोंपर दया करनेमें तत्पर रहता हो, विवेकी हो, निर्मल अभिप्रायका धारक हो, मुनि हो अथवा गृहस्थ हो ॥१०२॥ आत्माका कल्याण तो उन्होंने किया है जो महाव्रत धारण करनेमें तत्पर रहते हैं अथवा जो अणुव्रतोंसे युक्त होते हैं, शेष मनुष्य तो दुःखके ही पात्र हैं ॥१०३॥ तू परलोकमें उत्तम पुण्य कर यहाँ आया है और अब इस लोकमें पाप कर दुर्गतिको जायेगा ॥१०४॥ ये वनके निरपराधी, क्षुद्र, दयनीय मृग; जो अनाथ हैं, चंचल नेत्रोंके धारक हैं, निरन्तर उद्विग्न रहते हैं, जंगलके तृण और पानीसे बने शरीरको धारण करते हैं, अनेक दुःखोंसे व्याप्त हैं, पूर्व भवमें किये पापको भोग रहे हैं और भय-भीत होनेके कारण जो रात्रिमें भी निद्राको नहीं प्राप्त होते हैं; उत्तम आचारके धारक कुलीन मनुष्योंके द्वारा मारे जानेके योग्य नहीं हैं ॥१०५–१०७॥ इसलिए हे राजन् ! मैं तुझसे कहता हूँ कि यदि तू अपना हित चाहता है तो मन-वचन-कायसे हिंसा छोड़कर प्रयत्नपूर्वक अहिंसाका पालन कर ॥१०८॥ इस प्रकार हितकारी उपदेशात्मक वचनोंसे जब राजा सम्बोधा गया तब वह फलोंसे वृक्षके समान नम्रताको प्राप्त हो गया ॥१०९॥ वह घोड़ेसे उतरकर पैदल चलने लगा तथा पृथिवीपर घुटने टेक, हाथ जोड़, शिर झुकाकर उसने उन उत्तम मुनिराजको नमस्कार किया ॥११०॥ सौम्य दृष्टिसे दर्शन कर उनका इस प्रकार अभिनन्दन किया कि अहो ! आज मैंने परिग्रह रहित प्रशंसनीय तपस्वी मुनिराजके दर्शन किये ॥१११॥ वनमें निवास करनेवाले ये पक्षी तथा हरिण धन्य हैं जो शिलातलपर विराजमान इन ध्यानस्थ मुनिका दर्शन करते हैं ॥११२॥ आज जो

---

१. परलोकादिहेतुं त्वं । २. अस्मात् ।

बन्धुस्नेहमयं बन्धं छित्वा ज्ञाननखैरयम्। केसरीव विनिष्क्रान्तः प्रभुः संसारपञ्जरात् ॥११४॥
अनेन साधुना पश्य वशीकृतमनोरिपुम्। नाग्न्योपकारयोगेन शीलस्थानं प्रपाल्यते ॥११५॥
अहं पुनरतृप्तात्मा तावदस्मिन् गृहाश्रमे। अणुव्रतविधौ रम्ये करोमि परमां धृतिम् ॥११६॥
इति संचिन्त्य जग्राह तस्मात्साधोर्गृहस्थितिम्। चकारावग्रहं[1] चैवं भावप्लावितमानसः ॥११७॥
देवदेवं जिनं मुक्त्वा परमात्मानमच्युतम्। निर्ग्रन्थांश्च महाभागान्न नमाम्यपरानिति ॥११८॥
प्रीतिवर्धनसंज्ञस्य मुनेस्तस्य महादरः। चकार महतीं पूजामुपवासं समाहितः ॥११९॥
[2]उपासीनस्य चाख्यातं परमं साधुना हितम्। यत्समाराध्य मुच्यन्ते संसाराद् भव्यदेहिनः ॥१२०॥
सागारं निरगारं च द्विधा चारित्रमुत्तमम्। सावलम्बं गृहस्थानां निरपेक्षं [3]खवाससाम् ॥१२१॥
दर्शनस्य विशुद्धिश्च तपोज्ञानसमन्विता। प्रथमानुयोगाश्च प्रसिद्धा जिनशासने ॥१२२॥
सुदुष्करं [4]निर्ग्रन्थानां चारित्रमवधार्य सः। पुनः पुनर्मतिं चक्रेऽणुव्रतेष्वेव पार्थिवः ॥१२३॥
निधानमधनेनेव प्राप्तं बिभ्रदनुत्तमम्। धर्मध्यानमसौ बुद्ध्वा परमां धृतिमागतः ॥१२४॥
नितान्तक्रूरकर्माथप्युपशान्तो महीपतिः। इति प्रमोदमायातः संयतोऽपि विशेषतः ॥१२५॥
गते साधौ तपोयोग्यं स्थानं सुकृतसन्निधिः। विभूत्या परया युक्तः सुलाभः सुखतर्पितः ॥१२६॥
विहितानियतसंमानोऽपरेद्युः कृतपारणः। प्रणम्य चरणौ साधोः स्वस्थानमविशन्नृपः ॥१२७॥

मैं त्रिभुवनके द्वारा वन्दनीय इस साधु समागमको प्राप्त हुआ हूँ सो धन्य हो गया हूँ, पाप कर्मसे छूट गया हूँ ॥११३॥ ये प्रभु सिंहके समान ज्ञानरूपी नखोंके द्वारा बन्धुओंके स्नेहरूपी बन्धनको छोड़कर संसाररूपी पिंजड़ेसे बाहर निकले हैं ॥११४॥ देखो, इन साधुके द्वारा मनरूपी शत्रुको वश कर नग्नताके उपकारसे शील स्थानकी किस प्रकार रक्षा की जा रही है ? ॥११५॥ किन्तु मेरी आत्मा अभी तृप्त नहीं हुई है। अतः मैं इस गृहस्थाश्रममें रहकर रमणीय अणुव्रतके पालनमें ही सन्तोष धारण करता हूँ ॥११६॥ इस प्रकार विचार कर उसने उन मुनिराजसे गृहस्थ धर्म अंगीकार किया और भावसे प्लावित मन होकर इस प्रकार प्रतिज्ञा की कि मैं देवाधिदेव तथा गुणोंसे अच्युत परमात्मा जिनेन्द्रदेव और उदार अभिप्रायके धारक निर्ग्रन्थ मुनियोंको छोड़कर अन्य किसीको नमस्कार नहीं करूँगा ॥११७-११८॥ इस प्रकार उसने बड़े आदरसे उन प्रीतिवर्धन मुनिराजकी बड़ी भारी पूजा की और स्थिरचित्त होकर उस दिनका उपवास किया ॥११९॥ समीपमें बैठे हुए राजा वज्रकर्णको मुनिराजने उस परम हितका उपदेश दिया कि जिसकी आराधना कर भव्य प्राणी संसारसे मुक्त हो जाते हैं ॥१२०॥ उन्होंने कहा कि उत्तम चरित्रके दो भेद हैं—एक सागार और दूसरा अनगार। इनमें-से पहला चारित्र बाह्य वस्तुओंके आलम्बनसे सहित है तथा गृहस्थोंके होता है और दूसरा चारित्र बाह्य वस्तुओंकी अपेक्षासे रहित है तथा आकाशरूपी वस्त्रके धारक मुनियोंके ही होता है ॥१२१॥ उन्होंने यह भी बताया कि तप तथा ज्ञानके संयोगसे दर्शनमें विशुद्धता उत्पन्न होती है। साथ ही साथ उन्होंने जिनशासनमें प्रसिद्ध प्रथमानुयोग आदिका वर्णन भी किया ॥१२२॥ यह सब सुननेके बाद भी राजाने निर्ग्रन्थ मुनियोंका चरित्र अत्यन्त कठिन समझकर अणुव्रत धारण करनेका ही बार-बार विचार किया ॥१२३॥ यह जानकर राजा परम सन्तोषको प्राप्त हुआ कि मुझे उत्कृष्ट धर्म ध्यान क्या प्राप्त हुआ मानो किसी निर्धनको उत्तम खजाना ही मिल गया ॥१२४॥ अत्यन्त क्रूर कार्य करनेवाला यह राजा शान्त हो गया है यह देख मुनिराज भी बहुत हर्षको प्राप्त हुए ॥१२५॥ तदनन्तर पुण्यरूपी यज्ञके धारक मुनिराज तपके योग्य दूसरे स्थानपर चले गये और राजा परम विभूतिसे युक्त हो वहीं रहा आया। उसे उत्तम लाभकी प्राप्ति हुई थी इसलिए सुखसे सन्तृप्त था ॥१२६॥ दूसरे

१. प्रतिज्ञां। २. समीपस्थितस्य। ३. दिगम्बराणाम्। ४. मुनीनाम्।

वहन् परमभावेन वज्रकर्णः सदा गुरुम् । बभूव वीतसंदेहश्चिन्तामेवमुपागतः ॥१२८॥
भृत्यो भूत्वा विपुण्योऽहं सिंहोदरमहीभृतः । अकृत्वा विनयं भोगान् कथं सेवे [1]निकारिणः ॥१२९॥
इति चिन्तयतस्तस्य प्रसन्नेनान्तरात्मना । विधिना प्रेर्यमाणस्य मतिरेवं समुद्गता ॥१३०॥
कारयाम्यूर्मिकां स्वार्णीं मुनिसुव्रतस्वामिविम्बिनीम् । दधामि दक्षिणाकुष्ठे तां नमस्कारभागिनीम् ॥१३१॥
घटिता सा ततस्तेन पाणिभासुरपीठिका । पिनद्धा दक्षिणाकुष्ठे मणिरत्नविराजिता ॥१३२॥
स्थित्वा सिंहोदरस्याग्रे कृत्वाङ्गुष्ठं पुरः कृती । प्रतिमां तां महाभागो नमस्यति स संततम् ॥१३३॥
रन्ध्रान्वेषस्तचित्तेन वैरिणा कथितेऽन्यदा । वृत्तान्तेऽत्र परं कोपं पापः सिंहोदरोऽगमत् ॥१३४॥
मायया ह्वाययच्चैनं दशाङ्गनगरस्थितम् । वधार्थमुद्यतो मानी मत्तो विक्रमसंपदा ॥१३५॥
बृहद्गतितनूजस्तु प्रगुणेनैव चेतसा । प्रचलोऽश्वशतेनास्य विनीतो गन्तुमन्तिकम् ॥१३६॥
दण्डपाणिरुवाचैकः पीवरोदारविग्रहः । कुङ्कुमस्यासकोन्मासो तमागत्यैवमुक्तवान् ॥१३७॥
यदि भोगशरीराभ्यां सुनिर्विण्णोऽसि पार्थिव । तत उज्जयिनीं गच्छ नोचेन्नो गन्तुमर्हसि ॥१३८॥
क्रुद्धः सिंहोदरो यस्ते वधं कर्तुं समुद्यतः । अनमस्कारदोषेण कुरु राजन्नमीप्सितम् ॥१३९॥
एवं स गदितो दध्यौ केनाप्येष दुरात्मना । मात्सर्यदूषितचित्तेन भेदः कर्तुमभीप्सितः ॥१४०॥
तं विसर्पन्मदामोदं किंचित्स्वेदमुपागतम् । सोऽपृच्छत्कोऽसि किंनामा कुतो वासि समागतः ॥१४१॥

दिन अतिथिका सत्कार कर उसने पारणा की और फिर मुनिराजके चरणोंको प्रणाम कर अपने नगरमें प्रवेश किया ॥१२७॥

अथानन्तर जो परम भक्ति-भावसे गुरुको सदा हृदयमें धारण करता था तथा जिसे किसी प्रकारका सन्देह नहीं था ऐसा राजा वज्रकर्ण इस प्रकार चिन्ता करने लगा ॥१२८॥ कि मैं पुण्यहीन, राजा सिंहोदरका सेवक होकर यदि उसकी विनय नहीं करता हूँ तो वह दमन करेगा—दण्ड देवेगा तब इस दशामें भोगोंका सेवन किस प्रकार करूँगा ॥१२९॥ इस प्रकार चिन्ता करते-करते भाग्यसे प्रेरित राजा वज्रकर्णको अपनी स्वच्छ अन्तरात्मासे यह बुद्धि उत्पन्न हुई ॥१३०॥ कि मैं मुनिसुव्रत भगवान्‌की प्रतिमासे युक्त एक स्वर्णकी अँगूठी बनवाकर दाहिने हाथके अँगूठामें धारण करूँ तो मेरा नमस्कार उसीको कहलावेगा ॥१३१॥ इस प्रकार विचारकर उस नीति-निपुण राजाने, जिसकी पीठिका हाथमें सुशोभित थी ऐसी अँगूठी बनवायी और अत्यन्त हर्षित होकर धारण की ॥१३२॥ अब वह बुद्धिमान्, राजा सिंहोदरके आगे खड़ा होकर तथा अँगूठेको आगे कर सदा उस प्रतिमाको नमस्कार करने लगा ॥१३३॥ किसी एक दिन छिद्रान्वेषी वैरीने यह समाचार सिंहोदरसे कह दिया जिससे वह पापी परम कोपको प्राप्त हुआ ॥१३४॥ तदनन्तर पराक्रमरूपी सम्पदासे मत्त मानी सिंहोदर उसका वध करनेके लिए उद्यत हो गया और उसने दशांगपुरमें रहनेवाले वज्रकर्णको छलसे अपने यहाँ बुलाया ॥१३५॥ बृहद्गतिका पुत्र वज्रकर्ण सरल चित्त था इसलिए वह सौ घुड़सवार साथ ले उसके पास जानेके लिए तैयार हो गया। उसी समय जिसके हाथमें लाठी थी, जिसका मोटा तथा ऊँचा शरीर था और जो केशरके तिलकसे सुशोभित हो रहा था ऐसा एक पुरुष आकर उससे इस प्रकार बोला ॥१३६-१३७॥ कि हे राजन्! यदि तुम भोग और शरीरसे उदासीन हो चुके हो तो तुम उज्जयिनी जाओ अन्यथा जाना योग्य नहीं है ॥१३८॥ हे राजन्! तुम सिंहोदरको नमस्कार नहीं करते हो इस अपराधसे वह क्रुद्ध होकर तुम्हारा वध करनेके लिए तैयार हुआ है। अतः जैसी आपकी इच्छा हो वैसा करो ॥१३९॥ उस पुरुषके ऐसा कहनेपर वज्रकर्णने विचार किया कि किसी ईर्ष्यालु दुष्ट मनुष्यने भेद करना चाहा है अर्थात् मुझमें और सिंहोदरमें फूट डालनेका उद्योग किया है। इस प्रकार विचारकर उसने

---

१. वमनकर्तुः ।

कथं वा तव मन्त्रोऽयं विदितोऽत्यन्तदुर्गमः । एतत्त्वं समाचक्ष्व श्रोतुमिच्छाम्यशेषतः ॥१४२॥
सोऽवोचत् कुन्दनगरे धनसंचयपरायणः । समुद्रसङ्गमो नामा यमुना तस्य भामिनी ॥१४३॥
विद्युज्ज्वालाकुले काले प्रसूता जननी च माम् । बन्धुभिर्विद्युदङ्गाख्या मयि तेन नियोजिता ॥१४४॥
क्रमाच्च यौवनं बिभ्रदवन्तीनगरीमिमाम् । आगतोऽस्म्यर्थलाभाय युक्तो वाणिज्यविद्यया ॥१४५॥
वेश्यां कामलतां दृष्ट्वा कामबाणेन ताडितः । न रात्रौ न दिवा यामि निर्वृतिं परमाकुलः ॥१४६॥
एकां रात्रिं वसामीति तथा कृतसमागमः । प्रीत्या दृढतरं बद्धो यथा बागुरया मृगः ॥१४७॥
जनकेन ममासंख्यैर्यद्वर्षैरर्जितं धनम् । तन्मयास्य सुपुत्रेण षड्भिर्मासैर्विनाशितम् ॥१४८॥
पद्मे द्विरेफवत् सक्तः कामतप्ततमानसः । साहसं कुरुते किं न मानवो योषितां कृते ॥१४९॥
अन्यदा सा पुरः सख्या निन्दन्ती कुण्डलं निजम् । श्रुता मयेति भारेण किं कर्णस्यामुना मम ॥१५०॥
धन्या सा श्रीधरा देवी महासौभाग्यभाविनी । यस्यास्तद्राजते कर्णे मनोज्ञं रत्नकुण्डलम् ॥१५१॥
चिन्तितं च मया तच्चेदपहृत्य सकुण्डलम् । आशां न पूरयाम्यस्यास्तदा किं जीवितेन मे ॥१५२॥
ततो जिहीर्षया तस्य दयितं प्रोह्य जीवितम् । गतोऽहं भवनं राज्ञो रजन्या तमसावृतः ॥१५३॥
पृच्छन्ती श्रीधरा तस्य मया सिंहोदरं श्रुता । निद्रां न लभसे कस्मान्नाथोद्विग्न इवाधुना ॥१५४॥
सोऽवोचद्देवि निद्रा मे कुतो व्याकुलचेतसः । न मारितो रिपुर्यावन्नमस्कारपराङ्मुखः ॥१५५॥

जिसे अत्यधिक हर्ष हो रहा था तथा जो किंचित् खेदको प्राप्त था ऐसे उस दूतसे पूछा कि तू कौन है ? कहाँसे आया है ? ॥१४०–१४१॥ और इस दुर्गम मन्त्रका तुझे कैसे पता चला है ? हे भद्र ! यह कह । मैं सब जानना चाहता हूँ ॥१४२॥

वह बोला कि कुन्दनगरमें धनसंचय करनेमें तत्पर एक समुद्रसंगम नामक वैश्य रहता था । उसकी स्त्रीका नाम यमुना था । मैं उन्हींका पुत्र हूँ । चूँकि मेरी माताने मुझे उस समय जन्म दिया जो बिजलीकी ज्वालाओंसे व्याप्त रहता है इसलिए बन्धुजनोंने मेरा विद्युदंग नाम रखा ॥१४३–१४४॥ क्रमसे यौवनको धारण करता हुआ मैं व्यापारकी विद्यासे युक्त हो धनोपार्जन करनेके लिए इस उज्जयिनी नगरीमें आया था ॥१४५॥ सो यहाँ कामलता नामक वेश्याको देखकर कामबाणसे ताड़ित हुआ जिससे व्याकुल होकर न दिनमें चैनको पाता हूँ और न रात्रिमें ॥१४६॥ 'मैं एक रात उसके साथ समागम कर रह लूँ' इस प्रीतिने मुझे इस प्रकार अत्यन्त मजबूत बाँध रखा जिस प्रकार कि जाल किसी हरिणको बाँध रखता है ॥१४७॥ मेरे पिताने अनेक वर्षोंमें जो धन संचित किया था मुझ सुपूतने उसे केवल छह माहमें नष्ट कर दिया ॥१४८॥ जिस प्रकार भ्रमर कमलमें आसक्त रहता है उसी प्रकार मेरा मन कामसे दुःखी हो उस वेश्यामें आसक्त रहता था सो ठीक ही है क्योंकि यह पुरुष स्त्रियोंके लिए कौन-सा साहस नहीं करता है ? ॥१४९॥ एक दिन मैंने सुना कि वह वेश्या सखीके सामने अपने कुण्डलकी निन्दा करती हुई कह रही है कि कानोंके भारस्वरूप इस कुण्डलसे मुझे क्या प्रयोजन है ? वह महासौभाग्यका उपभोग करनेवाली श्रीधरा रानी धन्य है जिसके कानमें वह रत्नमयी मनोहर कुण्डल शोभित होता है ॥१५०–१५१॥ मैंने सुनकर विचार किया कि यदि मैं उस उत्तम कुण्डलको चुराकर इसकी आशा पूर्ण नहीं करता हूँ तो मेरा जीवन किस काम का ? ॥१५२॥ तदनन्तर उस कुण्डलको अपहरण करनेकी इच्छासे मैं अपने प्रिय जीवनकी उपेक्षा कर रात्रिके समय अन्धकारसे आवृत होकर राजाके घर गया ॥१५३॥ वहाँ मैंने रानी श्रीधराको सिंहोदरसे यह पूछती हुई सुना कि हे नाथ ! आज नींदको क्यों नहीं प्राप्त हो रहे हो तथा उद्विग्न-से क्यों मालूम होते हो ? ॥१५४॥ उसने कहा कि हे देवि ! जबतक मैं नमस्कारसे विमुख रहनेवाले शत्रु वज्रकर्णको नहीं मारता हूँ

---

१. वर्षैः । २. भागिनी म. ।

अपमानेन दग्धस्य व्याकुलस्यार्णचिन्तया[1] । अजितप्रत्यनीकस्य विटाक्रान्तास्यस्य च ॥१५६॥
सशल्यस्य दरिद्रस्य भीतेश्च भवदुःखतः[2] । निद्रा कृपापरीतेव सुदूरेण पलायते ॥१५७॥
निहन्तास्मि न चेदेनं नमस्कारपराङ्मुखम् । वज्रकर्णं[3] ततः किं मे जीवितेन हतौजसः ॥१५८॥
ततोऽहं कुलिशेनेव हृदये कृतताडनः । रहस्यरत्नमादाय त्यक्त्वा कुण्डलभावनाम् ॥१५९॥
धर्मोद्यतमनस्कस्य सततं साधुसेविनः । भवतोऽन्तिकमायातो ज्ञात्वा कुरु निवर्तनम् ॥१६०॥
नागैरञ्जनशैलाभैः प्रक्षरद्गण्डमित्तिभिः । सहितैश्च महावेगैर्वाजिभिश्च कवचावृतैः ॥१६१॥
तदाज्ञापनया मार्गो निरुद्धोऽयं पुरोऽखिलः । सामन्तैः परमं क्रूरैर्भवन्तं हन्तुमुद्यतैः ॥१६२॥
प्रसादं कुरु गच्छाशु प्रतीपं धर्मवत्सल । पतामि पादयोरेष तव मद्वचनं कुरु ॥१६३॥
अथ[4] श्रुत्वेति नो राजन् ततः पश्यैतदागतम् । धूलीपटलसंच्छन्नं परचक्रं महारवम् ॥१६४॥
तावत्परागतं दृष्ट्वा साधनं कुलिशश्रवाः[5] । समेतो विद्युदङ्गेन निवृत्तो वेगिवाहनः ॥१६५॥
प्रविश्य च पुरं दुर्गं सुधीरः प्रत्यवस्थितैः[6] । विधाय षष्ठितारोधं सामन्ताश्चावतस्थिरे ॥१६६॥
प्रविष्टं नगरं श्रुत्वा वज्रकर्णं रुषा ज्वलन् । सिंहोदरः समायातः सर्वसाधनसंयुतः ॥१६७॥
पुरस्यात्यन्तदुर्गत्वात् साधनक्षयकातरः । न स तद्ग्रहणे बुद्धिं चकार सहसा नृपः ॥१६८॥
समावास्य समीपं च त्वरितं प्राहिणोन्नरम् । वज्रकर्णं स गत्वेति जगाद[7]त्यन्तनिष्ठुरम् ॥१६९॥

तबतक मेरा चित्त व्याकुल है अतः निद्रा कैसे आ सकती है ? ॥१५५॥ जो अपमानसे जल रहा हो, ऋणकी चिन्तासे व्याकुल हो, जो शत्रुको नहीं जीत सका हो, जिसकी स्त्री विटपुरुषके चक्रमें पड़ गयी हो, जो शल्यसे सहित दरिद्र हो तथा जो संसारके दुःखसे भयभीत हो ऐसे मनुष्यसे दयायुक्त होकर ही मानो निद्रा दूर भाग जाती है ॥१५६-१५७॥ यदि मैं नमस्कारसे विमुख रहनेवाले इस वज्रकर्णको नहीं मारता हूँ तो मुझ निस्तेजको जीवनसे क्या प्रयोजन है ? ॥१५८॥

तदनन्तर यह सुनकर जिसके हृदयमें मानो वज्रकी ही चोट लगी थी ऐसा मैं इस रहस्य-रूपी रत्नको लेकर और कुण्डलकी भावना छोड़कर आपके पास आया हूँ क्योंकि आपका मन सदा धर्ममें तत्पर रहता है तथा आप सदा साधुओंकी सेवा करते हैं। हे नाथ ! यह जानकर आप लौट जाइए, उज्जैन मत जाइए ॥१५९-१६०॥ उसकी आज्ञा पाकर नगरका यह समस्त मार्ग, जिनके गण्डस्थलसे मद झर रहा है ऐसे अंजनगिरिके समान आभावाले हाथियों, महावेगशाली घोड़ों, कवचोंसे आवृत योद्धाओं तथा आपको मारनेके लिए उद्यत क्रूर सामन्तोंसे घिरा हुआ है ॥१६१-१६२॥ अतः हे धर्मवत्सल ! प्रसन्न होओ, शीघ्र ही उलटा वापस जाओ, मैं आपके चरणोंमें पड़ता हूँ। आप मेरा वचन मानो ॥१६३॥ हे राजन् ! यदि आपको विश्वास नहीं हो तो देखो, धूलिके समूहसे व्याप्त तथा महा कल-कल शब्द करता हुआ यह शत्रुका दल आ पहुँचा है ॥१६४॥ इतनेमें शत्रुदलको आया देख वज्रकर्ण विद्युदंगके साथ वेगशाली घोड़ेसे वापस लौटा ॥१६५॥ और अपने दुर्गम नगरमें प्रवेश कर धीरताके साथ युद्धकी तैयारी करता हुआ स्थित हो गया। बड़े-बड़े सामन्त गोपुरोंको रोककर खड़े हो गये ॥१६६॥

तदनन्तर वज्रकर्णको नगरमें प्रविष्ट सुन, क्रोधसे जलता हुआ सिंहोदर अपनी सर्व सेनाके साथ वहाँ आया ॥१६७॥ वज्रकर्णका नगर अत्यन्त दुर्गम था। इसलिए सेनाके क्षयसे भयभीत हो राजा सिंहोदरने उसपर तत्काल ही आक्रमण करनेकी इच्छा नहीं की ॥१६८॥ किन्तु सेनाको समीप ही ठहराकर शीघ्र ही एक दूत भेजा। वह दूत वज्रकर्णके पास जाकर बड़ी निष्ठुरतासे

---

१. ऋणसंबन्धिचिन्तया । २. भवदुःखितः म. । ३. विश्वासं नो करोषि । ४. वज्रकर्णः म. । ५. समवस्थितः म. । ६. प्रतोलीरोधं ।

जिनशासनवर्गेण सदावष्टब्धमानसः । ऐश्वर्यकण्टकस्त्वं मे जातः सद्भाववर्जितः ॥१७०॥
कुटुम्बभेदने दक्षैः श्रमणैर्दुर्विचेष्टितैः । प्रोत्साहितो गतोऽस्येतामवस्थां नयवर्जितः ॥१७१॥
मुक्ष्वे देशं मया दत्तमर्हन्तं च नमस्यति । अहो ते परमा माया जातेयं दुष्टचेतसः ॥१७२॥
आगच्छाशु ममाभ्याशं प्रणामं कुरु संमतिः । अन्यथा पश्य[1] यातोऽसि मृत्युना सह संगतम् ॥१७३॥
ततस्तद्वचनाद्गत्वा कृतोऽवददिदं पुनः । एवं वज्रेण[2]तिर्नाथ प्रणीति कृतनिश्चयः ॥१७४॥
नगरं साधनं कोषं गृहाण विषयं विभो । धर्मद्वारं सभार्यस्य यच्छ मे केवलस्य वा ॥१७५॥
कृता मया प्रतिज्ञेयं मुञ्चाम्येनां मृतोऽपि न । द्रविणस्य भगवान् स्वामी शरीरस्य तु नो मम ॥१७६॥
इत्युक्तोऽप्यपरित्यक्तकोपः सिंहोदरः पुरः । कृत्वा रोधमिमं देशमुदैवासयदुज्ज्वलम् ॥१७७॥
इदं ते कथितं देव देशोद्वासनकारणम् । गच्छामि सांप्रतं शून्यग्रामधानमितोऽन्धिकम् ॥१७८॥
तस्मिन् विमानतुल्येषु दह्यमानेषु सद्मसु । मदीया दुष्कुटी दग्धा तृणकाष्ठविनिर्मिता ॥१७९॥
तत्र गोपायितं सूपं घटं विडरमेव च । आनयामि कुगेहिन्या प्रेरितः क्रूरवाक्यया ॥१८०॥
गृहोपकरणं भूरि शून्यग्रामेषु लभ्यते । आनयस्व त्वमेवेति सा तु मां याचते मुहुः ॥१८१॥
अथवात्यन्तमेवेदं तया मे जनितं हितम् । देव कोऽपि भवान् दृष्टो मया येन सुकर्मणा ॥१८२॥
इत्युक्ते करुणाविष्टः पथिकं वीक्ष्य दुःखितम् । स्वयं दुःखी दयोद्भूतः रामो रत्नयुतं ददौ काञ्चनसूत्रकम् ॥१८३॥
मर्तांतः प्रणिपत्यासौ तदादाय त्वरान्वितम् । प्रतियातो निजं धाम वसूव च नृपोपमः ॥१८४॥

बोला ॥१६९॥ कि जिन शासनके वर्गसे जिसका मन सदा अहंकारपूर्ण रहता है तथा जो समीचीन भावोंसे रहित है ऐसा तू मेरे ऐश्वर्यका कण्टक बन रहा है ॥१७०॥ कुटुम्बोंके भेदन करनेमें चतुर, तथा खोटी चेष्टाओंसे युक्त मुनियोंके द्वारा प्रोत्साहित होकर तू इस अवस्थाको प्राप्त हुआ है, स्वयं नीतिसे रहित है ॥१७१॥ मेरे द्वारा प्रदत्त देशका उपभोग करता है और अरहन्तको नमस्कार करता है। अहो, तुझ दुष्ट हृदयकी यह बड़ी माया ॥१७२॥ तू सुबुद्धि है अतः शीघ्र ही मेरे पास आकर प्रणाम कर अन्यथा देख, अभी मृत्युके साथ समागमको प्राप्त होता है ॥१७३॥

तदनन्तर वज्रकर्णका उत्तर ले दूतने वापस जाकर सिंहोदरसे कहा कि हे नाथ ! निश्चयको धारण करनेवाला वज्रकर्ण इस प्रकार कहता है कि हे विभो ! नगर, सेना, खजाना और देश सब कुछ ले लो पर भार्या सहित केवल मुझे धर्मका द्वार प्रदान कीजिए अर्थात् मेरी धर्माराधनामें बाधा नहीं डालिए ॥१७४-१७५॥ मैंने जो यह प्रतिज्ञा की है कि मैं अरहन्त देव और निर्ग्रन्थ गुरुको छोड़ अन्य किसीको नमस्कार नहीं करूँगा सो मरते-मरते इस प्रतिज्ञाको नहीं छोड़ूँगा। आप मेरे धनके स्वामी हैं शरीरके नहीं ॥१७६॥ इतना कहनेपर भी सिंहोदरने क्रोध नहीं छोड़ा और नगरपर घेरा डालकर तथा आग लगाकर इस देशको उजाड़ दिया ॥१७७॥ इस प्रकार हे देव ! मैंने आपसे इस देशके उजड़ होनेका कारण कहा है अब यहाँ पास ही अपने उजड़े गाँवको जाता हूँ ॥१७८॥ उस गाँवमें विमानके तुल्य जो अच्छे-अच्छे महल थे वे जल गये और उनके साथ तृण तथा काष्ठसे निर्मित मेरी टूटी-फूटी कुटिया भी जल गयी ॥१७९॥ उस कुटियामें एक जगह सूपा घट तथा मटका छिपाकर रखे थे सो दुष्ट वचन बोलनेवाली स्त्रीसे प्रेरित हो उन्हें लेने जा रहा हूँ ॥१८०॥ 'सूने गाँवोंमें घर-गृहस्थीके बहुत-से उपकरण मिल जाते हैं इसलिए तू भी उन्हें ले आ' इस प्रकार वह बार-बार मुझसे कहती रहती है ॥१८१॥ अथवा उसने मेरा यह बहुत भारी हित किया है कि हे देव ! पुण्योदयसे मैं आपके दर्शन कर सका हूँ ॥१८२॥ इस प्रकार उस पथिकको दुःखी देख दयासे स्वयं दुःखी होते हुए रामने उसके लिए अपना रत्नजटित स्वर्णसूत्र दे दिया ॥१८३॥

---

१. पश्य यातोऽसि मृत्युना सहसंगतः ल., ब.। २. वज्रकर्णः। ३. जनरहितमकरोत्।

अथावोचत्ततः पद्मो [1]लक्ष्मणाय दिवाकरः । वैदाघो यावदत्यन्तं दुस्सहत्वं न गच्छति ॥१८५॥
तावदुत्तिष्ठ गच्छावः पुरस्यास्यान्तिकं भुवम् । जानकीयं तृषाक्रान्ता कुर्वाहारविधिं द्रुतम् ॥१८६॥
एवमित्युदिते याता[2] दशाङ्गनगरस्य ते । समीपे चन्द्रभासस्य चैत्यालयमनुत्तमम् ॥१८७॥
तस्मिन् सजानकीरामः प्रणम्यावस्थितः सुखम् । तदाहारोपलब्धाय लक्ष्मणः सधनुर्गतः ॥१८८॥
विशन् सिंहोदरस्यासौ शिबिरं रक्षिमानवैः[3] । निरुद्धः कृतनिस्वानैः समीरण इवाद्रिभिः ॥१८९॥
[4]द्रुमकैर्दुष्कुलीरघ्नैः किं विरोधेन मे समम् । इति सञ्चिन्त्य यातोऽसौ नगरं तेन पण्डितः ॥१९०॥
गोपुरं च समासीददनेकभटरक्षितम् । यस्योपरि स्थितः साक्षाद्वज्रकर्णः प्रयत्नवान् ॥१९१॥
ऊचिरे तस्य भृत्यास्तं कस्त्वमेतः कुतोऽपि वा । किमर्थं वेति सोऽवोचद्दूरादाहोऽन्नलिप्सया ॥१९२॥
ततस्तं बालकं कान्तं दृष्ट्वा विस्मयसंगतः । आगच्छ प्रविश क्षिप्रमिति वज्रश्रवा जगौ ॥१९३॥
ततस्तुष्टः प्रयातोऽसौ समीपं कुलिशश्रुतेः । विनीतवेषसंपन्नो वीक्षितः सादरं नरैः ॥१९४॥
जगाद वज्रकर्णश्च नरमाप्तमयं द्रुतम् । अन्नं प्रसाधितं मह्यं भोज्यतां रक्षितादरः ॥१९५॥
सोऽवोचन्नात्र भुञ्जेऽहमिति मे गुरुरन्तिके । तमादौ भोजयाम्यन्नं पश्चाम्यस्याहमन्तिकम् ॥१९६॥
एवमस्त्विति संभाष्य नृपोऽन्नमतिपुष्कलम् । अदीदपद् वरं तस्मै षाड्गव्यञ्जनपानकम् ॥१९७॥
लक्ष्मीधरस्तदादाय गतो द्विगुणरंहसा । भुक्तं च तैः क्रमेणैतत्तृप्तिं च परमां गताः ॥१९८॥

वह पथिक उसे लेकर तथा विश्वासपूर्वक उन्हें प्रणाम कर अपने घर वापस लौट गया और राजाके समान सम्पन्न हो गया ॥१८४॥

अथानन्तर रामने कहा कि हे लक्ष्मण ! यह ग्रीष्मकालका सूर्य जबतक अत्यन्त दुःसह अवस्थाको प्राप्त नहीं हो जाता है तबतक उठो इस नगरके समीपवर्ती प्रदेशमें चलें। यह जानकी प्यासे पीड़ित है इसलिए शीघ्र ही आहारकी विधि मिलाओ ॥१८५-१८६॥ इस प्रकार कहनेपर वे तीनों दशांगनगरके समीप चन्द्रप्रभ भगवान्‌के उत्तम चैत्यालयमें पहुँचे ॥१८७॥ वहाँ जिनेन्द्र-देवको नमस्कार कर सीता सहित राम तो उसी चैत्यालयमें सुखसे ठहर गये और लक्ष्मण धनुष लेकर आहार प्राप्तिके लिए निकला ॥१८८॥ जब वह राजा सिंहोदरकी छावनीमें प्रवेश करने लगा तब रक्षक पुरुषोंने जोरसे ललकारकर उसे उस तरह रोका जिस तरह कि पर्वत वायुको रोक लेते हैं ॥१८९॥ 'इन नीच कुली लोगोंके साथ विरोध करनेसे मुझे क्या प्रयोजन है' ऐसा विचारकर वह बुद्धिमान् लक्ष्मण नगरकी ओर गया ॥१९०॥ जब वह अनेक योद्धाओंके द्वारा सुरक्षित उस गोपुर द्वारपर पहुँचा जिसपर कि साक्षात् वज्रकर्ण बड़े प्रयत्नसे बैठा था ॥१९१॥ तब उसके भृत्योंने कहा कि तुम कौन हो ? कहाँसे आये हो ? और किसलिए आये हो ? इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि मैं बहुत दूरसे अन्न प्राप्त करनेकी इच्छासे आया हूँ ॥१९२॥ तदनन्तर उस बालकको सुन्दर वेष आश्चर्यचकित हो वज्रकर्णने कहा कि आओ, शीघ्र प्रवेश करो ॥१९३॥ तत्पश्चात् सन्तुष्ट होकर लक्ष्मण विनीत वेषमें वज्रकर्णके पास गया। वहाँ सब लोगोंने उसे बड़े आदरसे देखा ॥१९४॥

वज्रकर्णने एक आप्त पुरुषसे कहा कि जो अन्न मेरे लिए तैयार किया गया है यह इसे शीघ्र ही आदरके साथ खिलाओ ॥१९५॥ यह सुन लक्ष्मणने कहा कि मैं यहाँ भोजन नहीं करूंगा। पास ही में मेरे गुरु अग्रज ठहरे हुए हैं पहले उन्हें भोजन कराऊँगा इसलिए मैं यह अन्न उनके पास ले जाता हूँ ॥१९६॥ 'एवमस्तु-ऐसा ही हो' कहकर राजाने उसे उत्तमोत्तम व्यंजन और पेय पदार्थोंसे युक्त बहुत भारी अन्न दिला दिया ॥१९७॥ लक्ष्मण उसे लेकर दूने वेगसे राम के पास गया। सबने उसे यथाक्रमसे खाया और खाकर परम तृप्तिको प्राप्त हुए ॥१९८॥

१. लक्ष्मणोऽयं म. । २. जाता म. । ३. रक्ष्यमानरैः म. । ४. निरुद्धकुतिनिस्वानैः म. । ५. द्रुमकैः म. ।

ततस्तुष्टोऽवदत् पद्मः पश्य लक्ष्मण भद्रताम् । वज्रकर्णस्य येनेदं कृतं परिचयाद् विना ॥१९९॥
जामात्रेऽपि सुसंपन्नमीदृगन्नं न दीयते । पानकानामहो शैत्यं व्यञ्जनानां च सुष्ठता ॥२००॥
अनेनामृतकल्पेन भुक्तेनान्नेन मार्गजः । नैदाघोऽपहृतः सद्यः श्रमोऽस्माकं समन्ततः ॥२०१॥
चन्द्रबिम्बमिवाचूर्ण्यं शालयोऽमी विनिर्मिताः । धवलत्वेन विश्राणा मार्दवं मिलसिक्थकाः ॥२०२॥
दुग्धेनेव दीधितीन्दोः कृतमेतच्च पानकम् । मिलान्तमच्छतायुक्तं सौरभाकृष्टषट्पदम् ॥२०३॥
घृतक्षीरमिदं जातं कल्पधेनुस्तनादिव । रसानामीदृशी व्यक्तिर्न्यत्रेषु सुदुस्तरा ॥२०४॥
अणुव्रतधरः साधुर्वर्णितः पथिकेन सः । अतिथीनां करोत्यन्यः संविभागं क ईदृशम् ॥२०५॥
दुरितारि श्रुयते नीरदनादाग्रणीः सुधीः । मयाभिवन्द्यं नाथं जिनेन्द्रं यो नमस्यति ॥२०६॥
ईदृक्शीलगुणोपेतो यद्येषोऽस्माकमग्रतः । सिंहव्याघ्रेण रुद्धस्ततो नो[1] जीवितं वृथा ॥२०७॥
अपराधविमुक्तस्य साधुसेवार्पितात्मनः । समस्ताश्चास्य सामन्ता एकनाथाधिरोधिनः ॥२०८॥
तोयमानमिमं नूनं सिंहोदरकुभूभृता । भरतोऽपि न शक्नोति रक्षितुं नृपनेशतः ॥२०९॥
तस्मादन्यपरित्राणरहितस्यास्य संभ्रमैः । क्षिप्रं कुरु परित्राणं व्रज सिंहोदरं वद ॥२१०॥
इदं वाच्यमिदं वाच्यमिति किं शिक्ष्यते भवान् । उत्पन्नः प्रज्ञया सार्कं प्रभयेव महामणिः ॥२११॥
गुणोच्चारणसव्रीडः कृत्वा शिरसि शासनम् । यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा प्रणम्य प्रेमदान्वितः[2] ॥२१२॥

तदनन्तर रामने सन्तुष्ट होकर कहा कि हे लक्ष्मण ! वज्रकर्णकी भद्रता देखो जो इसने परिचयके बिना ही यह किया है ॥१९९॥ ऐसा सुन्दर भोजन तो जमाईके लिए भी नहीं दिया जाता है। अहो ! पेय पदार्थोंकी शीतलता और व्यंजनोंकी मधुरता तो सर्वथा आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली है ॥२००॥ इस अमृत तुल्य अन्नके खानेसे हमारा मार्गसे उत्पन्न हुआ गर्मीका समस्त श्रम एक साथ नष्ट हो गया है ॥२०१॥ जो कोमलताको धारण कर रहे हैं, जिनका एक-एक सीत अलग-अलग है, और जो सफेदीके कारण ऐसे जान पड़ते हैं मानो चन्द्रमाके बिम्बको चूर्ण कर ही बनाये गये हैं ऐसे ये धानके चावल हैं ॥२०२॥ जो अत्यन्त स्वच्छतासे युक्त है तथा जो अपनी सुगन्धिसे भ्रमरोंको आकृष्ट कर रहा है ऐसा यह पानक, जान पड़ता है चन्द्रमाकी किरणोंको दुहकर ही बनाया गया है ॥२०३॥ यह घी और दूध तो मानो कामधेनुके स्तनसे ही उत्पन्न हुआ है अन्यथा व्यंजनोंमें रसोंकी ऐसी व्यक्तता कठिन ही है ॥२०४॥ पथिकने यह ठीक ही कहा था कि वह सत्पुरुष अणुव्रतोंका धारी है अन्यथा अतिथियोंका ऐसा सत्कार दूसरा कौन करता है ? ॥२०५॥ जो संसारकी पीड़ाको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार करता है उनके सिवाय किसी दूसरेको नमस्कार नहीं करता ऐसा वह बुद्धिमान् शुद्ध आत्माका धारक सुना जाता है ॥२०६॥ ऐसे शील और गुणोंसे सहित होनेपर भी यदि यह हम लोगोंके आगे शत्रुसे घिरा रहता है तो हमारा जीवन व्यर्थ है ॥२०७॥ यह अपराधसे रहित है, अपने आपको सदा साधुओंकी सेवामें तत्पर रखता है तथा इसके समस्त सामन्त अपने इस अद्वितीय स्वामीके अनुकूल हैं ॥२०८॥ दुष्ट राजा सिंहोदरके द्वारा पीड़ित हुए इस वज्रकर्णकी रक्षा करनेके लिए भरत भी समर्थ नहीं है क्योंकि वह अभी नवीन राजा है ॥२०९॥ इसलिए अन्य रक्षकोंसे रहित बुद्धिमान्‌की रक्षा शीघ्र ही करो, जाओ और सिंहोदरसे कहो ॥२१०॥ 'यह कहना, यह कहना' यह तुम्हें क्या शिक्षा दी जाये क्योंकि जिस प्रकार महामणि प्रभाके साथ उत्पन्न होता है उसी प्रकार तुम भी प्रज्ञाके साथ ही उत्पन्न हुए हो ॥२११॥

अथानन्तर अपने गुणोंकी प्रशंसा सुन जिसे लज्जा उत्पन्न हो रही थी ऐसा लक्ष्मण रामकी

१. अस्माकम् । २. हर्षान्वितः ।

विनीतं धारयन् वेषमनुपादाय कार्मुकम् । प्रयातो रयसंपन्नो लक्ष्मणः कम्पितक्षितिः ॥२१३॥
दृष्ट्वा संरक्षकैः पृष्टः कतरस्य पुमान् भवान् । सोऽवोचद् भरतस्याहमेतो दूतस्य कर्मणा ॥२१४॥
क्रमेणातीत्य शिबिरं भूरि प्राप्तो नृपास्पदम् । अविशद्वेदितो द्वाःस्थै सदः सिंहोदरस्य सः ॥२१५॥
प्रस्पष्टमिति चोवाच मन्यमानस्तृणं नृपम् । ज्येष्ठभ्रातृवचोवाहं सिंहोदर [1]निबोध माम् ॥२१६॥
आज्ञापयत्यसौ देवो भवन्तमिति सद्गुणः । यथा किल किमेतेन विरोधेन विहेतुना ॥२१७॥
ततः सिंहोदरोऽवादीन्मनः कर्कशमुद्वहन् । दूत मूर्ता विनीतेशमिति मद्वचसाद् ब्रवान् ॥२१८॥
यथा किलाविनीतानां भृत्यानां विनयाहतौ । कुर्वन्ति स्वामिनो यत्नं विरोधः कोऽत्र दृश्यते ॥२१९॥
वज्रकर्णो दुरात्मायं मानी नैकृतिकः [2]परः । पिशुनः क्रोधनः क्षुद्रः सुहृन्निन्दापरायणः ॥२२०॥
आलस्योपहतो मूढो वायुग्रहगृहीतधीः । विनयाचारनिर्मुक्तो दुश्चिद्वग्धो दुरीहितः ॥२२१॥
एतं मुञ्चन्त्वमी दोषा दमेन मरणेन वा । तमुपायं करोम्यस्य स्वैरमत्रास्यतां त्वया ॥२२२॥
ततो लक्ष्मोधरोऽवोचत् किमत्र [3]प्रभुरुत्तरैः । कुरुतेऽयं हितं यस्मात् क्षम्यतां सर्वमस्य तत् ॥२२३॥
इत्युक्तः प्रकटक्रोधः संधिदूरपराङ्मुखः । सिंहोदरोऽवदत्सारं वीक्ष्य सामन्तसंहतिम् ॥२२४॥
न केवलमसौ मानी हतात्मा वज्रकर्णकः । तत्कार्यवाञ्छया प्राप्तो भवानपि तथाविधः ॥२२५॥
पाषाणेनैव ते गात्रमिदं दूत विनिर्मितम् । न [4]नामसीषदप्येति दुर्भृत्यः कोशलापतेः ॥२२६॥

आज्ञा शिरोधार्य कर 'जैसी आपकी आज्ञा' यह कहकर तथा प्रणाम कर हर्षित होता हुआ चला। वह उस समय विनीत वेषको धारण कर रहा था, धनुष साथमें नहीं ले गया था, वेगसे सम्पन्न था और पृथ्वीको कँपाता हुआ जा रहा था ॥२१२-२१३॥ रक्षक पुरुषोंने देखकर उससे पूछा कि आप किसके आदमी हैं ? इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि मैं राजा भरतका आदमी हूँ और दूतके कार्यसे आया हूँ ॥२१४॥ क्रम-क्रमसे बहुत बड़ी छावनीको उलंघ कर वह राजाके निवास-स्थानमें पहुँचा और द्वारपालोंके द्वारा खबर देकर राजा सिंहोदरकी सभामें प्रविष्ट हुआ ॥२१५॥ वहाँ जाकर राजाको तृणके समान तुच्छ समझते हुए उसने स्पष्ट शब्दोंमें इस प्रकार कहा कि हे सिंहोदर ! तू मुझे बड़े भाईका सन्देशवाहक समझ ॥२१६॥ उत्तम गुणोंको धारण करनेवाले राजा भरत आपको इस प्रकार आज्ञा देते हैं कि इस निष्कारण वैरसे क्या लाभ है ? ॥२१७॥

तदनन्तर कठोर मनको धारण करनेवाला सिंहोदर बोला कि हे दूत ! तू मेरी ओरसे अयोध्याके राजा भरतसे इस प्रकार कहो कि अविनीत सेवकोंको विनयमें लानेके लिए स्वामी प्रयत्न करते हैं इसमें क्या विरोध दिखाई देता है ? ॥२१८-२१९॥ यह वज्रकर्ण दुष्ट है, मानी है, मायावी है, अत्यन्त नीच है, क्रोधी है, क्षुद्र है, मित्रकी निन्दा करनेमें तत्पर है, आलस्यसे युक्त है, मूढ़ है, वायु अथवा किसी पिशाचने इसकी बुद्धि हर ली है, यह विनयाचारसे रहित है, पण्डितम्मन्य है, और दुष्ट चेष्टाओंसे युक्त है। ये दोष इसे या तो दमनसे छोड़ सकते हैं या मरणसे; इसलिए इसका उपाय करता हूँ इस विषयमें आप चुप बैठिए ॥२२०-२२२॥ तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि इस विषयमें अधिक उत्तरोंसे क्या प्रयोजन है ? चूँकि यह सबका हित करता है अतः इसका यह सब अपराध क्षमा कर दिया जाये ॥२२३॥ लक्ष्मणके इस प्रकार कहते ही जिसका क्रोध उबल पड़ा था, और जो सन्धिसे विमुख था ऐसा सिंहोदर अपने सामन्तोंकी ओर देख गरजकर बोला कि न केवल यह दुष्ट वज्रकर्ण ही मानी है किन्तु उसके कार्यकी इच्छासे आया हुआ यह दूत भी वैसा ही मानी है ॥२२४-२२५॥ अरे दूत ! जान पड़ता है तेरा यह शरीर पाषाणसे ही बना है अयोध्यापतिका यह दुष्ट भृत्य, रंचमात्र भी नम्रताको प्राप्त नहीं है—अर्थात् इसने बिलकुल भी

---

१. नृपाधम ब. । २. मायी । ३. प्रचुरोत्तरैः । ४. नमनम् नामः तम् ।

तत्र देशे नरा नूनं सर्वे एव भवद्विधाः । स्थालीपुलाकधर्मेण परोक्षं ज्ञायते ननु ॥२२७॥
इत्युक्ते कोपमापातः किंचिल्लक्ष्मीधरोऽवदत् । साम्यहेतोरहं प्राप्तो न ते कर्तुं नमस्कृतिम् ॥२२८॥
बहुनात्र किमुक्तेन हरे संक्षेपतः शृणु । प्रतीच्छ सन्धिमथैव मरणं वा समाश्रय ॥२२९॥
इत्युक्ते परिषत्सर्वा परं क्षोभमुपागता । नानाप्रकारदुर्वाक्या नानाचेष्टाविधायिनी ॥२३०॥
आकृष्य च्छुरिकां केचिल्लिस्त्रिंशानपरे भटाः । वधार्थमुद्यतास्तस्य कोपकम्पितमूर्तयः ॥२३१॥
वेगनिर्मुक्तहुङ्काराः परस्परसमाकुलाः । ते तं समन्ततो बभ्रुर्मशका इव पर्वतम् ॥२३२॥
अप्राप्तानेव धीरोऽसौ क्षिप्रलाघवपण्डितः । चिक्षेप चरणाघातैर्दूरं तान् विह्वलान् समम् ॥२३३॥
जघान जानुना कांश्चित्कूर्परेणापरान् भ्रमन् । कांश्चिन्मुष्टिप्रहारेण चकार शतशर्करान् ॥२३४॥
कचेषु कांश्चिदाकृष्य निपात्य श्रवणीतले । पादेनाचूर्णयत् कांश्चिदंसघातैरपातयत् ॥२३५॥
कांश्चिदन्योन्यघातेन परिपूर्णितमस्तकान् । चकार जङ्घया कांश्चिदूरं प्रासविमूर्छनान् ॥२३६॥
एवमेकाकिना तेन परिषत्सा तथाविधा । महाबलेन विध्वंसं नीता भयसमाकुला ॥२३७॥
एवं विध्वंसयन् यावन्निष्क्रान्तो भवनाजिरम् । तावद्योधशतैरन्यैः लक्ष्मणः परिवेष्टितः ॥२३८॥
सामन्तैरथ सम्बद्धैर्वारणैः रथिभी रयैः । परस्परसमर्देन बभूवाकुलता परा ॥२३९॥
नानाशस्त्रकरेष्वेषु लक्ष्म्यालिङ्गितविग्रहः । चकार चेष्टितं वीरः शृगालेष्विव केसरी ॥२४०॥

नमस्कार नहीं किया ॥२२६॥ सचमुच ही उस देशके सब लोग तेरे ही जैसे हैं जिस प्रकार बटलोई-के दो-चार सीथ जाननेसे सब सीथोंका ज्ञान हो जाता है उसी प्रकार तेरे द्वारा वहांके सब लोगोंका परोक्ष ज्ञान हो रहा है ॥२२७॥

सिंहोदरके इस प्रकार कहनेपर कुछ क्रोधको प्राप्त हुआ लक्ष्मण बोला कि मैं साम्यभाव स्थापित करनेके लिए यहाँ आया हूँ तुझे नमस्कार करनेके लिए नहीं ॥२२८॥ सिंहोदर! इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? संक्षेपसे सुन, या तो तू सन्धि कर या आज ही मरणका आश्रय ले ॥२२९॥ यह कहते ही समस्त सभा परम क्षोभको प्राप्त हो गयी, नाना प्रकारके दुर्वचन बोलने लगी तथा नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करने लगी ॥२३०॥ जिनके शरीर क्रोधसे काँप रहे थे ऐसे कितने ही योधा छुरी खींचकर और कितने ही योधा तलवारें निकालकर उसका वध करनेके लिए उद्यत हो गये ॥२३१॥ जो वेगसे हुंकार छोड़ रहे थे तथा जो परस्पर अत्यन्त व्याकुल थे ऐसे उन योद्धाओंने लक्ष्मणको चारों ओरसे उस प्रकार घेर लिया जिस प्रकार कि मच्छर किसी पर्वतको घेर लेते हैं ॥२३२॥ शीघ्रतासे कार्य करनेमें निपुण धीर-वीर लक्ष्मणने जो पासमें नहीं आ पाये थे ऐसे उन योद्धाओंको चरणोंकी चपेटसे विह्वल कर एक साथ दूर फेंक दिया ॥२३३॥ शीघ्रतासे घूमते हुए लक्ष्मणने कितने ही लोगोंको घुटनोंसे, कितने ही लोगोंको कोहनीसे, और कितने ही लोगोंको मुट्ठियोंके प्रहारसे शतखण्ड कर दिया अर्थात् एक-एकके सौ-सौ टुकड़े कर दिये ॥२३४॥ कितने ही लोगोंके बाल खींचकर तथा पृथिवीपर पटककर उन्हें पैरोंसे चूर्ण कर डाला और कितने ही लोगोंको कन्धेके प्रहारसे गिरा दिया ॥२३५॥ कितने ही लोगोंको परस्पर भिड़ाकर उनके शिर एक दूसरेके शिरकी चोटसे चूर्ण कर डाले और कितने ही लोगोंको जंघाके प्रहारसे मूर्च्छित कर दिया ॥२३६॥ इस प्रकार महाबलवान् एक लक्ष्मणने सिंहोदरकी उस सभाको भयभीत कर विध्वस्त कर दिया ॥२३७॥

इस प्रकार सभाको विध्वस्त करता हुआ लक्ष्मण जब भवनसे बाहर आंगणमें निकला तब सैकड़ों अन्य योद्धाओंने उसे घेर लिया ॥२३८॥ तदनन्तर युद्धके लिए तैयार खड़े हुए सामन्तों, हाथियों, घोड़ों और रथोंके द्वारा उत्पन्न परस्परकी धक्काधूमीसे बहुत भारी आकुलता उत्पन्न हो गयी ॥२३९॥ हाथोंमें नाना प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले उन सामन्तोंके साथ वीर

ततोऽनेकपमारुह्य [1]प्रावृषेण्यघनाकृतिम् । स्वयं सिंहोदरो रोद्धुं लक्ष्मीनिलयमुद्यतः ॥२४१॥
तस्मिन् रणशिरोयाते किंचिद्धैर्यमुपागताः । दूरगाः पुनराजग्मुः सामन्ता लक्ष्मणं प्रति ॥२४२॥
घनानामिव सङ्घास्ते वभुस्तं शशिनं यथा । वातूल इव तानेष तूलराशीनिवाकिरत् ॥२४३॥
उदारमटकाभिन्यो गण्डविन्यस्तपाणयः । जगुराकुलतामाजः प्रविह्वलविलोचनाः ॥२४४॥
पश्यतैनं महाभीमं सख्यः पुरुषमेककम् । वेष्टितं बहुभिः क्रूरैरसाम्प्रतमिदं परम् ॥२४५॥
अन्यास्तत्रोचिरे कोऽपि केनायं परिभूयते । पश्यतानेन विक्रान्ता बहवो विह्वलीकृताः ॥२४६॥
आस्तृणानमथो दृष्ट्वा लक्ष्मणोऽभिमुखं बलम् । विहस्य वारणस्तम्भं महान्तमुदमूलयत् ॥२४७॥
ततः सरभसस्तत्र सान्द्रहुङ्कारभीषणः । जज्ञुम्भे लक्ष्मणः कक्षे यथोच्चैराशुशुक्षणिः ॥२४८॥
विस्मितो गोपुराग्रस्थो दशाङ्गनगराधिपः । पार्श्ववर्तिभिरित्यूचे सामन्तैर्विकचेक्षणैः ॥२४९॥
कोऽप्येष पुरुषो नाथ पश्य सैंहोदरं बलम् । भग्नध्वजरथच्छत्रं करोति परमद्युतिः ॥२५०॥
एष खड्गधनुश्छायामध्यवर्ती सुविह्वलः । आवर्त इव निक्षिप्तो भ्राम्यतीमौहिसोदरः ॥२५१॥
हतश्चेतश्च विस्तीर्णमेतत्सैन्यं पलायते । एतस्मात्त्रासमागत्य सिंहान् मृगकुलं यथा ॥२५२॥
वदन्त्यन्योन्यमन्येते सामन्ता दूरवर्तिनः । अवतार्य सवाहं मण्डलाग्रो विमुच्यताम् ॥२५३॥

लक्ष्मण ऐसी चेष्टा करने लगा जैसी कि शृगालोंके साथ सिंह करता है ॥२४०॥ तदनन्तर वर्षा ऋतुके मेघके समान आकारको धारण करनेवाले हाथीपर सवार होकर सिंहोदर स्वयं लक्ष्मणको रोकनेके लिए उद्यत हुआ ॥२४१॥ जो सामन्त पहले दूर भाग गये थे वे सिंहोदरके रणाग्रमें आते ही कुछ-कुछ धैर्य धारण कर फिरसे वापस आ गये ॥२४२॥ जिस प्रकार मेघोंके झुण्ड चन्द्रमाको घेरते हैं उसी प्रकार उन सामन्तोंने लक्ष्मणको घेरा परन्तु जिस प्रकार तीव्र वायु रुईके ढेरको उड़ा देती है उसी प्रकार उसने उन सामन्तोंको उड़ा दिया—दूर भगा दिया ॥२४३॥ जिन्होंने गालोंपर हाथ लगा रखे थे, जो अत्यन्त आकुलताको प्राप्त थीं, तथा जिनके नेत्र भयसे चंचल हो रहे थे ऐसी उत्तम योद्धाओंकी स्त्रियाँ परस्परमें कह रही थीं कि हे सखियो ! इस महा-भयंकर पुरुषको देखो । इस एकको बहुतसे क्रूर सामन्तोंने घेर रखा है यह अत्यन्त अनुचित बात है ॥२४४-२४५॥ उन्हींमें कुछ स्त्रियाँ इस प्रकार कह रहीं थीं कि यद्यपि यह अकेला है फिर भी इसे कौन परिभूत कर सकता है ? देखो, इसने अनेक योद्धाओंको चपेटकर विह्वल कर दिया है ॥२४६॥

अथानन्तर सामने सेनाको इकट्ठी होती देख लक्ष्मणने हँसकर हाथी बाँधनेका एक बड़ा खम्भा उखाड़ा ॥२४७॥ और जिस प्रकार वनमें जोरदार अग्नि वृद्धिगत होती है उसी प्रकार सघन हुंकारोंसे भयंकरताको प्राप्त करता हुआ लक्ष्मण उस सेनापर वेगसे टूट पड़ा ॥२४८॥ दशाङ्ग-पुरका राजा वज्रकर्ण गोपुरके अग्रभाग पर बैठा-बैठा इस दृश्यको देख आश्चर्यसे चकित हो गया । जिनके नेत्र हर्षसे विकसित हो रहे थे ऐसे समीपवर्ती सामन्तोंने उससे कहा कि हे नाथ ! देखो, परम तेजको धारण करनेवाला यह कोई पुरुष सिंहोदरकी सेनाको नष्ट कर रहा है । उसने उसकी सेनाके ध्वज, रथ तथा छत्र आदि सभी तोड़ डाले हैं ॥२४९-२५०॥ तलवारों और धनुषोंकी छायाके बीच खड़ा हुआ यह सिंहोदर, अत्यन्त विह्वल हो भँवरमें पड़े हुए के समान इधर-उधर घूम रहा है ॥२५१॥ जिस प्रकार सिंहसे भयभीत होकर मृग समूह इधर-उधर भागता फिरता है उसी प्रकार सिंहोदरकी सेना इससे भयभीत होकर इधर-उधर भागती फिरती है ॥२५२॥ ये दूर खड़े हुए सामन्त परस्पर कह रहे हैं कि कवच उतार दो, तलवार छोड़ दो, धनुष फेंक दो,

---

१. प्रावृषेण म. । २. जाते म. । ३. अग्निः । ४. सिंहोदरः ।

कार्मुकं क्षिप मुञ्चाश्वं वारणादवतीर्यताम् । गदां निरस्य गर्तायां माकार्षीरवमुन्नतम् ॥२५४॥
आलोक्य शस्त्रसङ्घातं श्रुत्वा वा रभसान्वितः । कोऽप्येष पुरुषोऽस्माकमापतेदतिदारुणः ॥२५५॥
[1]अपसर्पामुतो देशाद्देहि मार्गमहो भट । वारणं सारयैतस्मात्किमत्र स्तम्भितोऽसि वै ॥२५६॥
अयं प्राप्तोऽयमायातो दुःसूत स्यन्दनं त्यज । तुरङ्गान्मोदय क्षिप्रं घातिता स्मो न संशयम् ॥२५७॥
एवमादिकृतालापाः केचित्सङ्कटमागताः । परित्यज्य [3]भटाकल्पमेते पण्ढ[4]कवत् स्थिताः ॥२५८॥
किमेष रमते युद्धे कोऽपि त्रिदशसंभवः । विद्याधरो तु वान्यस्य कस्येयं शक्तिरीदृशी ॥२५९॥
कालो नाम यमो वायुः कोऽपि लोके प्रकीर्त्यते । सोऽयं किमु भवेच्चण्डो [5]विद्युद्दण्डचलाचलः ॥२६०॥
कृत्वेदं[6]मीदृशं सैन्यं पुनरेष करिष्यति । किमित्येवं मनोऽस्माकं नाथ शङ्कामुपागतम् ॥२६१॥
[7]निरीक्षस्वैनमुत्पत्य संग्रामे रोमहर्षणे । सिंहोदरं समाकृष्य विह्वलं वरवारणात् ॥२६२॥
गले तदंशुकेनैव प्राध्वंकृत्य[8] सुविस्मितः । एष याति पुरःकृत्वा [9]बलीवर्दं यथा वशम् ॥२६३॥
एवमुक्तः स[10] तैरूचे स्वस्था भवत मानवाः । देवाः शान्तिं करिष्यन्ति किमत्र बहुचिन्तया ॥२६४॥
स्थिता [11]मूर्द्धसु हर्म्याणां दशाङ्गनगराङ्गनाः । परं विस्मयमापन्ना जगुरेवं परस्परम् ॥२६५॥
सखि पश्यास्य वीरस्य चेष्टितं परमाद्भुतम् । येनैकेन महेन्द्रोऽयमानीतोऽङ्गकबन्धनम् ॥२६६॥
अहो कान्तिरमुष्येयं द्युतिश्चातिशतान्विता । अहो शक्तिरियं कोऽयं भवेत् पुरुषसत्तमः ॥२६७॥
भूतोऽयं भविता वापि पुण्यवत्याः सुयोषितः । पतिः कस्याः प्रशस्तायाः समस्तजगतीश्वरः ॥२६८॥
सिंहोदरमहिष्योऽथ वृद्धबालसमन्विताः । रुदत्यः पादयोः पेतुर्लक्ष्मणस्यातिविह्वलाः ॥२६९॥

घोड़ा छोड़ दो, हाथीसे नीचे उतर जाओ, गदा गड्ढेमें गिरा दो, ऊँचा शब्द मत करो, शस्त्रोंका समूह देखकर यह अतिशय भयंकर पुरुष वेगसे कहीं हमारे ऊपर न आ पड़े; इस स्थानसे हट जाओ, अरे भट ! रास्ता दे, हाथीको यहाँसे दूर हटा, चुपचाप क्यों खड़ा है ? अरे दुष्ट सारथि ! देख, यह आया, यह आया, रथ छोड़, घोड़े जल्दी बढ़ा, मारे गये इसमें संशय नहीं, इत्यादि वार्तालाप करते हुए, संकटमें पड़े कितने ही योद्धा, योद्धाओंका वेष छोड़कर नपुंसकोंके समान एक ओर स्थित हैं ॥२५३-२५८॥ क्या युद्धमें यह कोई देव क्रीड़ा कर रहा है अथवा विद्याधर, वायु नामका कोई व्यक्ति संसारमें प्रसिद्ध है सो क्या यह वही है ? यह अत्यन्त तीक्ष्ण और बिजलीके समान चंचल है ॥२५९-२६०॥ सेनाको इस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट करके अब यह आगे क्या करेगा ? हे नाथ ! इस प्रकार हमारा मन शंकाको प्राप्त हो रहा है ॥२६१॥ देखो, रोमांचकारी युद्धमें उछलकर भयभीत सिंहोदरको हाथीसे खींचकर उसीके वस्त्रसे गलेमें बाँध लिया है और यह बैलकी तरह वश कर उसे आगे कर आश्चर्यसे चकित होता हुआ आ रहा है ॥२६२-२६३॥ इस प्रकार सामन्तोंके कहनेपर वज्रकर्णने कहा कि हे मानवो ! स्वस्थ होओ, देव शान्ति करेंगे, इस विषयमें बहुत चिन्ता करनेसे क्या लाभ है ? ॥२६४॥ महलोंके शिखरोंपर बैठी दशांगनगरकी स्त्रियाँ परम आश्चर्यको प्राप्त हो परस्पर इस प्रकार कह रही थीं ॥२६५॥ कि हे साथी ! इस वीरकी परम अद्भुत चेष्टा देखो जिसने अकेले ही इस राजाको वस्त्रसे बाँध लिया ॥२६६॥ धन्य इसकी कान्ति, धन्य इसका अतिशय पूर्ण तेज, और धन्य इसकी शक्ति । अहो ! यह उत्तम पुरुष कौन होगा ? ॥२६७॥ यह किस भाग्यशालिनी गुणवती स्त्रीका पति है ? अथवा आगे होगा ? यह समस्त पृथिवीका स्वामी है ॥२६८॥

अथानन्तर वृद्ध और बालकोंसे सहित सिंहोदरकी रानियाँ भयसे अत्यन्त विह्वल हो रोती

---

१. मा पतदतिदारुणः म. । २. अपसर्प्या म. । ३. योधवेषम् । ४. नपुंसकवत् स्थिताः । ५. भवेच्चन्द्रो (?) म. । ६. त्वयेद- म. । ७. निरीक्षस्व + एनम् । ८. बद्ध्वा । ९. परः कृत्वा ज., ल. । १०. वज्रकर्णः । ११. हर्म्याणां प्रासादानां मूर्द्धसु पृष्ठेषु ।

ऊचुश्च देव मुञ्चैनं भर्तृभिक्षां प्रयच्छ नः । अद्य प्रभृतिभृत्योऽयं तवाज्ञाकरणोद्यतः ॥२७०॥
सोऽवोचत् पश्यतोदारं द्रुमखण्डमिमं पुरः । अत्र नीत्वा दुराचारमेतमुल्लम्बयाम्यहम् ॥२७१॥
करुणं बहु कुर्वन्त्यः पुनः साञ्जलयोऽवदन् । रुष्टोऽसि यदि देवास्मान् जहि निर्धार्यतामयम् ॥२७२॥
प्रसादं कुरु मा दुःखं दर्शय प्रियसंभवम्[1] । ननु योषित्सु कारुण्यं कुर्वन्ति पुरुषोत्तमाः ॥२७३॥
पुरो मोक्ष्यामि सेवध्वं स्वस्थतामित्यसौ वदन् । ययौ चैत्यालयं यत्र ससीतो राघवः स्थितः ॥२७४॥
अवोचल्लक्ष्मणः पद्मं सोऽयं वज्रश्रुतेरिः । आनीतोऽस्याधुना देव कृत्यं वदतु यन्मया ॥२७५॥
ततः सिंहोदरः मूर्ध्ना कृतकुड्मलपाणिना[2] । पपात वेपमानाङ्गः पद्मस्य क्रमपद्मयोः ॥२७६॥
जगाद च न देव त्वां वेद्मि कोऽसीति कान्तिमान् । परेण तेजसा युक्तो मेरुधैर्यसमन्वितः ॥२७७॥
मानवो भव देवो वा गम्भीरपुरुषोत्तम । अत्र किं बहुभिः प्रोक्तैरहमाज्ञाकरस्तव ॥२७८॥
गृह्णातु रुचितस्तुभ्यं राज्यमिन्द्रायुधश्रुतिः । अहं तु पादशुश्रूषां करोमि सततं तव ॥२७९॥
[3]पतिभिक्षां प्रयच्छेति योषितोऽस्यस्य पादयोः । रुदत्यः प्रणिपत्योचुः कुर्वन्त्यः करुणं बहु ॥२८०॥
देवि स्त्रैणात्वमस्माकं कारुण्यं कुरु शोभने । इत्युदित्वा च सीतायाः पतितास्ताः क्रमाब्जयोः ॥२८१॥
ततः सिंहोदरं पद्मो जगाद विनतानन[4]म् । कुर्वन् वापीषु हंसानां मेघनादोद्भवं भयम् ॥२८२॥
शक्रायुधश्रुतिर्यत्ते ब्रवीति कुरु तत्सुधीः । एवं ते जीवितं मन्ये प्रकारोऽन्यो न विद्यते ॥२८३॥
आहूतोऽथ हितैः पुंभिः कृतवृद्ध्यादिवर्धनः । वज्रकर्णः परीवारसहितश्चैत्यमागमत् ॥२८४॥
स त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य मूर्धपाणिर्जिनालयम् । स्तुत्वा ननाम चन्द्राभं भक्तिनिष्टप्ततनूरुहः ॥२८५॥

हुई लक्ष्मणके चरणोंमें आ पड़ीं ॥२६९॥ वे बोलीं कि हे देव ! इसे छोड़ो, हमारे लिए पतिकी भिक्षा देओ, आजसे यह आपका आज्ञाकारी भृत्य है ॥२७०॥ लक्ष्मणने कहा कि देखो यह सामने ऊँचा वृक्षखण्ड है वहाँ ले जाकर इस दुराचारीको उसपर लटकाऊँगा ॥२७१॥ तदनन्तर बहुत करुण रुदन करती तथा बार-बार हाथ जोड़ती हुई बोलीं कि हे देव ! यदि रुष्ट हो तो हम लोगोंको मारो और इसे छोड़ दो ॥२७२॥ प्रसन्नता करो, हम लोगोंको पतिका दुःख न दिखाओ। उत्तम पुरुष स्त्रियोंपर दया करते ही हैं ॥२७३॥ तब लक्ष्मणने कहा कि अच्छा आगे चलकर छोड़ देंगे आप लोग स्वस्थताको प्राप्त होओ। इस प्रकार कहता हुआ लक्ष्मण उस चैत्यालयमें गया जहाँ कि सीता सहित राम ठहरे हुए थे ॥२७४॥ वहाँ जाकर लक्ष्मणने रामसे कहा कि यह वज्रकर्णका शत्रु है इसे मैं ले आया हूँ। अब हे देव ! जो करना हो सो आज्ञा करो ॥२७५॥ तब जिसका शरीर काँप रहा था ऐसा सिंहोदर हाथ जोड़ मस्तकसे लगा रामके चरणकमलोंमें गिरा ॥२७६॥ और बोला कि हे देव ! आप कौन हैं ? यह मैं नहीं जानता। आप कान्तिमान् हैं, उत्कृष्ट तेजसे युक्त हैं और सुमेरुके समान स्थिर हैं ॥२७७॥ हे गम्भीर पुरुषोत्तम ! आप मनुष्य रहो चाहे देव ! इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? मैं आपका आज्ञाकारी सेवक हूँ ॥२७८॥ वज्रकर्ण आपको रुचता है सो वह यह राज्य ग्रहण करे मैं तो सदा आपके चरणोंकी शुश्रूषा ही करता रहूँगा ॥२७९॥ सिंहोदरकी स्त्रियाँ भी अत्यन्त करुण विलाप करती हुईं, रामके चरणोंमें प्रणाम कर बोलीं कि हमारे लिए पतिकी भिक्षा दीजिए ॥२८०॥ 'हे देवि ! तुम तो स्त्री हो अतः हे शोभने ! हमपर दया करो' इस प्रकार कहकर वे सीताके चरणकमलोंमें भी पड़ीं ॥२८१॥ तदनन्तर वापिकाओंमें स्थित हंसोंको मेघध्वनिसे होनेवाला भय उत्पन्न करते हुए रामने नीचा मुख कर बैठे हुए सिंहोदरसे कहा ॥२८२॥ कि हे सुधी ! तुझे वज्रकर्ण जो कहे सो कर ! इसी तरह तेरा जीवन रह सकता है और दूसरा उपाय नहीं है ॥२८३॥ तदनन्तर जिसकी भाग्य-वृद्धि हो रही थी ऐसा वज्रकर्ण हितकारी पुरुषोंके द्वारा बुलाया गया जो परिवार सहित उस चैत्यालयमें आया ॥२८४॥ उसने हाथ

---

१. संगमं ग. । २. वज्रकर्णः । ३. पतिभिक्षां । ४. कृतदृष्टाभिवर्धनः म. ।

ततश्च विनयी गत्वा स्तुत्वा तौ भ्रातरौ क्रमात् । अपृच्छद् वपुरारोग्यं सीतां च विधिकोविदः ॥२८६॥
भद्र ते कुशलेनाद्य कुशलं नः समन्ततः । इति तं राघवोऽवोचन्निनदन्तं मधुरध्वनिः ॥२८७॥
सङ्गरेयं तयोर्यावद् वर्तते शुभलीलयोः । तावद्वेषोऽथ सैन्येन विद्युदङ्गः समागतः ॥२८८॥
स तयोः प्रणतिं कृत्वा स्तुत्वा च क्रमपण्डितः । समीपे वज्रकर्णस्य संनिविष्टः प्रतापवान् ॥२८९॥
विद्युदङ्गः सुधी सोऽयं वज्रकर्णसुहृत्स्वरः । इति शब्दः समुत्तस्थौ तदा सदसि मांसलः ॥२९०॥
पुनश्च राघवोऽवोचत् कृत्वा स्मितसितं मुखम् । वज्रकर्ण ! समीचीना तव दृष्टिरियं परा ॥२९१॥
कुमतैस्तव धीरेषा मनागपि न कम्पिता । उत्पातवातसंघातैः[1] मन्दरस्येव चूलिका ॥२९२॥
अमापि सहसा दृष्ट्वा न ते मूर्धायमानतः । अहो परमिदं चारु तव शान्तं विचेष्टितम् ॥२९३॥
अथवा शुद्धतत्त्वस्य किमु पुंसोऽस्ति दुष्करम् । धर्मानुरागचित्तस्य सम्यग्दृष्टेर्विशेषतः ॥२९४॥
प्रणम्य त्रिजगद्वन्द्यं जिनेन्द्रं परमं शिवम् । मुक्तेन शिरसा तेन कथमन्यः प्रणम्यते ॥२९५॥
मकरन्दरसास्वादलोलध्वर्णो[2] मधुव्रतः[3] । रासभस्य पदं पुच्छे प्रमत्तोऽपि करोति किम् ॥२९६॥
बुद्धिमानसि धन्योऽसि दधास्यासन्नभव्यताम् । चन्द्रादपि सिता कीर्तिस्तव भ्राम्यति विष्टपे ॥२९७॥
विद्युदङ्गोऽप्ययं मित्रं परं ते विदितं मया । भव्योऽयमपि यः सेवां तव कर्तुं समुद्यतः ॥२९८॥
सद्भूतगुणसत्कीर्तेरथ लज्जामुपागतः । किंचिन्नताननोऽवोचच्छनाशीरायुधैश्रवाः[4] ॥२९९॥
अत्रावसीदतो देव प्राप्तस्य व्यसनं महत् । सञ्जातोऽसि महाभाग त्वं मे[5] परमबान्धवः ॥३००॥

जोड़ मस्तकसे लगा जिनालयकी तीन प्रदक्षिणाएँ दीं फिर भक्तिसे रोमांचित हो चन्द्रप्रभ भगवान्‌को नमस्कार किया ॥२८५॥ तत्पश्चात् विधि-विधानके जानकार वज्रकर्णने विनयपूर्वक आकर राम-लक्ष्मण दोनों भाइयोंकी क्रमसे स्तुति की और सीतासे शरीर-सम्बन्धी आरोग्य पूछा ॥२८६॥ तदनन्तर रामने अत्यन्त मधुर ध्वनिमें उससे कहा कि हे भद्र ! आज तो तेरी कुशलसे ही हम सबकी कुशल है ॥२८७॥ इस प्रकार शुभलीलाके धारक राम और वज्रकर्णके बीच जबतक यह वार्तालाप चलता है तबतक सुन्दर वेषका धारक विद्युदंग सेनाके साथ वहाँ आ पहुँचा ॥२८८॥ क्रमके जाननेमें पण्डित प्रतापी विद्युदंग राम-लक्ष्मणको प्रणाम कर वज्रकर्णके पास आ बैठा ॥२८९॥ उसी समय सभामें यह जोरदार शब्द गूँजने लगा कि यह बुद्धिमान् विद्युदंग वज्रकर्णका परम मित्र है ॥२९०॥ तदनन्तर रामने मन्द हास्यसे मुखको धवल कर वज्रकर्णसे कहा कि हे वज्रकर्ण ! तेरी यह दृष्टि अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥२९१॥ जिस प्रकार मेरुपर्वतकी चूलिका, प्रलयकालकी वायुके आघातसे कम्पित नहीं होती, उसी प्रकार तेरी यह बुद्धि मिथ्या मतोंसे रंचमात्र भी कम्पित नहीं हुई ॥२९२॥ मुझे देखकर भी तेरा यह मस्तक नम्रीभूत नहीं हुआ सो तेरी यह चेष्टा अत्यन्त मनोहर तथा शान्त है ॥२९३॥ अथवा शुद्ध तत्त्वके जानकार पुरुषको क्या कठिन है ? खासकर धर्मानुरागी सम्यग्दृष्टिके मनुष्यको ॥२९४॥ जिस उन्नत शिरसे तीन लोकके द्वारा वन्दनीय परम कल्याणस्वरूप जिनेन्द्र-भगवान्‌को नमस्कार किया जाता है उसी शिरसे दूसरे लोगोंको कैसे प्रणाम किया जाये ? ॥२९५॥ मकरन्द रसके आस्वादनमें निपुण भौंरा उन्मत्त होनेपर भी क्या गधेकी पूँछपर अपना स्थान जमाता है ? ॥२९६॥ तुम बुद्धिमान् हो, धन्य हो, निकट भव्यपना धारण कर रहे हो और चन्द्रमासे भी अधिक धवल तुम्हारी कीर्ति संसारमें भ्रमण कर रही है ॥२९७॥ मुझे मालूम है कि यह विद्युदंग भी तुम्हारा मित्र है। सो यह भी भव्य है जो कि तुम्हारी सेवा करनेके लिए उद्यत रहता है ॥२९८॥

अथानन्तर यथार्थ गुणोंके कथनसे जो लज्जाको प्राप्त था तथा जिसका मुख कुछ नीचेकी ओर झुक रहा था ऐसा वज्रकर्ण बोला कि हे देव ! यद्यपि आपको यहाँ रहते बहुत कष्ट हुआ है

---

१. सुमेरोः । २. निपुणः । ३. भ्रमरः । ४. वज्रकर्णः । ५. मे त्वं म. ।

नियमस्त्वत्प्रसादेन ममायं जीवतोऽधुना[1] । [2]पालितो मम भाग्येन[3] त्वमानीतो नरोत्तमः ॥२०१॥
वदन्नेवमसौ ऊचे लक्ष्मणेन विचक्षणः । यदाभिलषितं यत्ते क्षिप्रं संपादयाम्यहम् ॥२०२॥
सोऽवोचत् सुहृदं प्राप्य भवन्तमतिदुर्लभम् । न किंचिदस्ति लोकेऽस्मिन्निदं तु प्रवदाम्यहम् ॥२०३॥
तृणस्यापि न वाञ्छामि पीडां जिनमताश्रितः । अतो विमुच्यतामेष मम सिंहोदरप्रभुः ॥२०४॥
इत्युक्ते लोकवक्त्रेभ्यः साधुकारः समुत्थयौ । प्राप्तद्वेषेऽपि पश्यायं मतिं धत्ते शुभामिति ॥२०५॥
अपकारिणि कारुण्यं यः करोति स सज्जनः । मध्यो कृतोपकारे वा प्रीतिः कस्य न जायते ॥२०६॥
एवमस्त्विति भाषित्वा लक्ष्मणेन तयोः कृता । हस्तग्रहणसंपन्ना प्रीतिः समयपूर्विका ॥२०७॥
उज्जयिन्या ददावर्धं वज्रकर्णाय शुद्धधीः । सिंहोदरो हृतं पूर्वं विषयोद्वासने च यत् ॥२०८॥
चतुरङ्गस्य देशस्य गणिकानां धनस्य च । विभागं समभागेन निजस्याप्यकरोदसौ ॥२०९॥
वाहद्गतप्रसादेन तां वेश्यां तच्च कुण्डलम् । लेभे सेनाधिपत्यं च विद्युदङ्गः सुविश्रुतः[4] ॥२१०॥
वज्रकर्णस्ततः कृत्वा रामलक्ष्मणयोः पराम् । पूजामानाययच्छिघ्रमष्टौ दुहितरो वराः ॥२११॥
[5]सजायो दृश्यते ज्यायानिति तास्तेन लौकिताः । लक्ष्मीधरं कृतोदारविभूषाविनयान्विताः ॥२१२॥
नृपाः सिंहोदराद्याश्च ददुः परमकन्यकाः । एवं सन्निहितं तस्य कुमारीणां शतत्रयम् ॥२१३॥
लौकित्वा वज्रकर्णस्ताः समं सिंहोदरादिभिः । जगाद लक्ष्मणं देव तवैता वनिता इति ॥२१४॥

तो भी हे महाभाग ! आप मेरे परम बान्धव हुए हैं ॥२९९–३००॥ इस समय मेरे जीवित रहते हुए मेरे इस नियमका पालन आपके ही प्रसादसे हुआ है और मेरे भाग्यसे ही आप पुरुषोत्तम यहाँ पधारे हैं ॥३०१॥ इस प्रकार कहते हुए बुद्धिमान् वज्रकर्णसे लक्ष्मणने कहा कि जो तेरी अभिलाषा हो वह कह मैं शीघ्र ही पूर्ण कर दूँ ॥३०२॥ यह सुनकर वज्रकर्णने कहा कि आप-जैसे अत्यन्त दुर्लभ मित्रको पाकर इस संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है। अतः मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि मैं जिनमतका धारक होनेसे यह नहीं चाहता हूँ कि तृणको भी पीड़ा हो। इसलिए यह मेरा स्वामी राजा सिंहोदर छोड़ दिया जाये ॥३०३–३०४॥ वज्रकर्णके इतना कहते ही लोगोंके मुखसे 'धन्य-धन्य' शब्द निकल पड़ा। देखो यह भद्र पुरुष शत्रुके ऊपर भी शुभ बुद्धि धारण कर रहा है ॥३०५॥ अपकारीके ऊपर जो दया करता है वही सज्जन है। वैसे मध्यस्थ अथवा उपकार करनेवालेपर किसे प्रेम उत्पन्न नहीं होता ॥३०६॥

तदनन्तर 'एवमस्तु' कह लक्ष्मणने हाथ मिलाकर तथा कभी शत्रुता नहीं करेंगे, इस प्रकार शपथ दिलवाकर दोनोंकी मित्रता करा दी ॥३०७॥ निर्मल बुद्धिके धारक सिंहोदरने उज्जयिनीका आधा भाग तथा देशको उजाड़ करते समय जो कुछ पहले हरा था वह सब वज्रकर्णके लिए दे दिया ॥३०८॥ अपनी चतुरंग सेना, देश, गणिका तथा धनका भी उसने बराबर-बराबर आधा भाग कर दिया ॥३०९॥ जिनभक्तिके प्रसादसे अतिशय प्रसिद्ध विद्युदंगने भी वह वेश्या, वह रत्नमयी कुण्डल और सेनापतिका पद प्राप्त किया ॥३१०॥ तदनन्तर वज्रकर्णने राम-लक्ष्मणकी परम पूजा कर शीघ्र ही अपनी आठ पुत्रियाँ बुलवायीं ॥३११॥ चूँकि बड़े भाई राम स्त्रीसे सहित दिखाई देते थे इसलिए उसने उत्तम आभूषणोंको धारण करनेवाली तथा विनयसे युक्त अपनी पुत्रियाँ लक्ष्मणको ब्याह दीं ॥३१२॥ इनके सिवाय सिंहोदर आदि राजाओंने भी उत्तमोत्तम कन्याएँ दीं। इस तरह सब मिलाकर लक्ष्मणको तीन सौ कन्याएँ प्राप्त हुईं ॥३१३॥ उन सबको खड़ी कर वज्रकर्णने सिंहोदर आदि राजाओंके साथ लक्ष्मणसे कहा कि हे देव ! ये आपकी स्त्रियाँ हैं ॥३१४॥

---

१. जीवितावधुना क., ख., ज.। २. पालिता क.। ३. भागेन म.। ४. शुचिश्रुतः म.। ५. 'तव ज्यायान् ज्येष्ठो भ्राता रामः सजायो सवल्लभो दृश्यते अतस्त्वमपि सजाया भव' इति निर्दिश्य तेन ता दुहितरो लक्ष्मणं प्रापिता इति भावः।

लक्ष्मीधरस्ततोऽवोचद् दारसङ्गं करोम्यहम् । न तावच्च कृतं यावत् पदं भुजबलार्जितम् ॥३१५॥
पद्मश्च तानुवाचैवं नास्माकं वसतिः क्वचित् । भरतस्याधिराज्येऽस्मिन् देशे स्वर्गतलोपमे ॥३१६॥
देशान् सर्वान् समुल्लङ्घ्य करिष्याम्यालयं ततः । आश्रित्य चन्दनगिरिं दक्षिणार्णवमेव वा ॥३१७॥
एकां वेलामिह ततो जनन्यौ नेतुमुत्सुके । आगन्तव्यं मयावश्यं द्वागयोध्यामनेन वा ॥३१८॥
काले तत्रैव नेष्यन्ते कन्यका अपि भो नृपाः । अज्ञातनिलयस्यास्य कीदृशो दारसंग्रहः ॥३१९॥
एकमुक्ते कुमारीणां तद्वृन्दं शुशुभे न च । आकुलं पङ्कजवनं हिमवातादृतं यथा ॥३२०॥
प्रियस्य विरहे प्राणान् त्यक्ष्यामो यदि तत्क्षणः । अवाप्स्यामः कुतोऽनेन समागमरसायनम् ॥३२१॥
प्राणांश्च धारयन्तीनां कैतवं मन्यते जनः । दह्यते च समिद्धेन मनो विरहवह्निना ॥३२२॥
सुमहान् भूगुरेकत्र व्याघ्रोऽन्यत्रातिदारुणः । अहो कष्टं कमाधारं व्रजामोऽत्यन्तदुस्सहाः ॥३२३॥
अथवा विरहव्याघ्रं संगमाशयविद्यया । संस्तम्भ्य धारयिष्यामः शरीरमिति साम्प्रतम् ॥३२४॥
एवं विचिन्तयन्तीभिः सार्धं तासिर्महीभृतः । गत्वा यथागतं कृत्वा रामादीनां यथोचितम् ॥३२५॥
सच्चेष्टाः पूज्यमानास्तां पितृवर्गेण कन्यकाः । नानाविनोदनासक्तास्तस्थुस्तद्गतमानसाः ॥३२६॥
आनायितः पिता भूत्या सबन्धुर्देशमात्मनः । विद्युदङ्गेन चक्रे च परमः सङ्गमोत्सवः ॥३२७॥
परमेऽथ निशीथे ते नत्वा चैत्यालयात्ततः । शनैर्निर्गत्य पादाभ्यां स्वेच्छया सुधियो ययुः ॥३२८॥
चैत्यालयं प्रभाते तं दृष्ट्वा शून्यं जनोऽखिलः । रहिताशेषकर्तव्यो वितानहृदयस्थितः ॥३२९॥

तदनन्तर उसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि मैं जबतक अपने बाहुबलसे अर्जित स्थान प्राप्त नहीं कर लेता हूँ तबतक स्त्री समागम नहीं करूँगा ॥३१५॥ रामने भी उनसे इसी प्रकार कहा कि अभी हमारा कहीं निश्चित निवास नहीं है। स्वर्गके समान भरतके राज्यमें जो देश हैं उन सबको पार कर हम मलयगिरि अथवा दक्षिण समुद्रके पास अपना घर बनवावेंगे। वहाँ उत्कण्ठासे भरी अपनी माताओंको ले जानेसे लिए एक बार हम अथवा लक्ष्मण अवश्य ही अयोध्या आवेंगे। हे राजाओ! उसी समय आपकी इन कन्याओंको ले आवेंगे। तुम्हीं कहो जिसके रहनेका ठिकाना नहीं उसका स्त्री-संग्रह कैसा ?॥३१६-३१९॥ इस प्रकार कहनेपर वह कन्याओंका समूह तुषार वायुसे आहत कमलवनके समान आकुल होता हुआ शोभित हुआ ॥३२०॥ कन्याएँ विचार करने लगीं कि यदि हम पतिके विरहमें प्राण छोड़ देवेंगी तो फिर इसके साथ समागमरूपी रसायनको कैसे प्राप्त कर सकेंगी ? ॥३२१॥ और यदि प्राण धारण करती हैं तो लोग कपट मानते हैं तथा देदीप्यमान विरहानलसे मन जलता है ॥३२२॥ अहो ! एक ओर तो बड़ी भारी ढालू चट्टान है और दूसरी ओर अत्यन्त निर्दय व्याघ्र है। अतः अत्यन्त दुखसे भरी हुई हम किस आधारको प्राप्त हों ? ॥३२३॥ अथवा इस समय हम समागमकी अभिलाषारूपी विद्यासे विरहरूपी व्याघ्रको कीलकर शरीर धारण करेंगी ॥३२४॥ इस प्रकार विचार करती हुई उन कन्याओंके साथ राजा लोग राम आदिका यथोचित सत्कार कर जैसे आये थे वैसे चले गये ॥३२५॥ जिनकी उत्तम चेष्टा थी, पितृवर्ग जिनका निरन्तर सत्कार करता था और जो नाना प्रकारके विनोदमें आसक्त थीं ऐसी कन्याएँ लक्ष्मणमें मन लगाकर रह गयीं ॥३२६॥ तदनन्तर विद्युदंगने भाई-बान्धवोंसे सहित पिताको बड़े ठाट-बाटसे अपने देशमें बुलाया और पहुँचनेपर उनके समागमका बहुत भारी उत्सव किया ॥३२७॥

अथानन्तर बुद्धिमान् राम-लक्ष्मण सीताके साथ-साथ घनघोर आधी रातके समय भगवान्‌को नमस्कार कर चुपके-चुपके चैत्यालयसे निकलकर इच्छानुसार पैदल चले गये ॥३२८॥ प्रभात होनेपर चैत्यालयको शून्य देख सब लोग अपना-अपना कर्तव्य भूलकर शून्य हृदय हो गये ॥३२९॥

---

१. रामादयः । २. शून्यहृदयः ।

समं कुलिशकर्णेन जाता प्रीतिरनुत्तरा । सिंहोदरस्य सन्मानगत्यागमनवर्धिता ॥३३०॥

मन्दाक्रान्तावृत्तम्

स्वैरं स्वैरं जनकतनया सो च संचारयन्तौ स्थाने स्थाने विकटसरसो काननानां तलेषु ।
पानं पानं रसमभिमतं स्वादुभाजां फलानां क्रीडं क्रीडं सुरसवचनैः चारुचेष्टासमेतम् ॥३३१॥
प्राप्तौ नानारचनभवनोत्तुङ्गशृङ्गाभिरामं रम्योद्यानाततवसुधं चैत्यसंघातपूतम् ।
[1]नाकप्रख्यं सततजनितोत्सवोदारपौरं श्रीमत्स्वानं रविसमरुचिकीर्तिमत्कूवराख्यम् [2]॥३३२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते वज्रकर्णोपाख्यानं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमं पर्व ॥३३॥

□

सिंहोदरकी वज्रकर्णके साथ जो उत्तम प्रीति उत्पन्न हुई थी वह पारस्परिक सम्मान तथा आने-जानेसे वृद्धिको प्राप्त हुई ॥३३०॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि राम-लक्ष्मण-सीताको धीरे-धीरे उसकी इच्छानुसार चलाते हुए, विशाल सरोवरोंसे युक्त वनोंके मध्यमें ठहरते हुए, स्वादिष्ट फलोंका इच्छित रस पीते हुए, तथा उत्तम वचन और सुन्दर चेष्टाओंके साथ क्रीड़ा करते हुए, कूवरनामक उस देशमें पहुँचे जो नाना प्रकारके भवनोंके ऊँचे-ऊँचे शिखरोंसे सुन्दर था, जिसकी वसुधा मनोहर उद्यानोंसे व्याप्त थी, जो मन्दिरोंके समूहसे पवित्र था, स्वर्गके समान कान्तिवाला था, जहाँके नगरवासी लोग निरन्तर होनेवाले उत्सवोंसे उत्कृष्ट थे, जो श्रीमानोंके शब्दसे युक्त था तथा सूर्यके समान कान्ति और प्रसिद्धिसे युक्त था ॥३३१-३३२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य रचित पद्मचरितमें वज्रकर्णका वर्णन करनेवाला तैंतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३३॥

□

---

१. स्वर्गमदृशाम् । २. सविख्याति म., ब. ।

चतुस्त्रिंशत्तमं पर्व

परम सुन्दरे तत्र फलपुष्पभरानते । गुञ्जद्भ्रमरसंघाते मत्तकोकिलनादिते ॥१॥
कानने सीतया साकमग्रजन्मा[1] स्थितः सुखम् । अन्तिकां सलिलार्थी तु लक्ष्मणः सरसीं गतः ॥२॥
अत्रान्तरे सुरूपाढ्यो नेत्रतस्करविभ्रमः । एकोऽपि सर्वलोकस्य हृदयेषु समं वसन् ॥३॥
महाविनयसंपन्नः कान्तिनिर्झरपर्वतः । इरावारणसंघाढपादातिप्रियदर्शनः ॥४॥
तामेव सरसीं रम्यां क्रीडनाहितमानसः । प्राप्तः कल्याणमालाख्यो जनस्तन्नगराधिपः ॥५॥
महतः सरसस्तस्य दृष्ट्वा[2] तं तीरवर्तिनम् । नीलोत्पलचयश्यामं लक्ष्मणं चारुलक्षणम् ॥६॥
ताडितः कामबाणेन स जनोऽत्यन्तमाकुलः । मनुष्यमब्रवीदेकमयमानीयतामिति ॥७॥
गत्वा कृत्वाञ्जलीर्दक्षः स तमेवमभाषत । एष वै राजपुत्रस्ते प्रसादात् संगमिच्छति ॥८॥
को दोष इति संचिन्त्य दधानः कौतुकं परम् । जगाम लीलया चार्ष्यां समीपं तस्य लक्ष्मणः ॥९॥
उत्तीर्य स जनो नागात् पद्मतुल्येन पाणिना । करे लक्ष्मणमालम्ब्य प्राविशद् गृहमाम्बरम् ॥१०॥
एकासने च तेनातिप्रतीतः सहितः स्थितः । अपृच्छच्च सखे कस्त्वं कुतो वा समुपागतः ॥११॥
सोऽवोचद् विप्रयोगाग्नेर्ज्येष्ठो दुःखेन तिष्ठति । तावकयामि तस्याहं कथयिष्यामि ते ततः ॥१२॥
ततः शाल्योदनः सूप उपदंशैनवं घृतम्[4]। अपूपा घैनवस्थानि व्यञ्जनानि पयो दधि ॥१३॥

अथानन्तर जो फल और फूलोंके भारसे नत हो रहा था, जहाँ भ्रमरोंके समूह गूँज रहे थे और जहाँ मत्त कोकिलाएँ शब्द कर रही थीं ऐसे अत्यन्त सुन्दर वनमें राम तो सुखसे विराजमान थे और लक्ष्मण पानी लेनेके लिए समीपवर्ती सरोवरमें गये ॥१-२॥ इसी अवसरमें जो अत्यन्त सुन्दर रूपसे सहित था, जिसके विभ्रम नेत्रोंको चुरानेवाले थे, जो एक होनेपर भी सर्व लोगोंके हृदयमें एक साथ निवास करता था, महाविनय सम्पन्न था। कान्तिरूपी निर्झरके उत्पन्न होनेके लिए पर्वतस्वरूप था, उत्तम हाथीपर सवार था। मनोहर पैदल सैनिकोंके बीच चल रहा था, जिसका मन क्रीड़ा करनेमें लीन था। जिसका कल्याणमाला नाम था तथा जो उस नगरका स्वामी था, ऐसा एक पुरुष उसी सरोवरमें क्रीड़ा करनेके लिए आया ॥३-५॥ सो उस महासरोवरके तटपर विद्यमान, नील कमलोंके समूहके समान श्याम और सुन्दर लक्षणोंसे युक्त लक्ष्मणको देख वह मनुष्य कामबाणसे ताड़ित होकर अत्यन्त आकुल हो गया। फलस्वरूप उसने अपने एक आदमीसे कहा कि इस पुरुषको ले आओ ॥६-७॥ वह चतुर मनुष्य जाकर तथा हाथ जोड़कर लक्ष्मणसे इस प्रकार बोला कि 'आइए, यह राजकुमार प्रसन्नतासे आपके साथ मिलना चाहता है' ॥८॥ 'क्या दोष है' इस प्रकार विचारकर परम कौतुकको धारण करते हुए लक्ष्मण सुन्दर लीलासे उसके पास गये ॥९॥ तदनन्तर वह राजकुमार हाथीसे उतरकर तथा कमलके समान कोमल हाथसे लक्ष्मणको पकड़ अपने वस्त्र निर्मित तम्बूमें भीतर चला गया ॥१०॥ वहाँ अत्यन्त विश्वस्त हो एक ही आसनपर लक्ष्मणके साथ सुखसे बैठा। कुछ समय बाद उसने लक्ष्मणसे पूछा कि हे सखे! तुम कौन हो? और कहाँसे आये हो? ॥११॥ लक्ष्मणने कहा कि मेरे वियोगसे मेरे बड़े भाई दुःखी होंगे इसलिए मैं पहले उनके पास भोजन ले जाता हूँ पश्चात् तुम्हारे लिए सब समाचार कहूँगा ॥१२॥ अथानन्तर शालिके चावलोंका भात, दाल, ताजा घृत, पुए, घेवर, नानाप्रकारके व्यंजन, दूध, दही, अनेक प्रकारके पानक, शक्कर और खाँडके लड्डू, पूड़ियाँ, कचौड़ियाँ, साधारण पूड़ियाँ,

---

१. रामः। २. दृष्ट्वा म.। ३. वस्त्रनिर्मितम्। ४. उपदेशनवं म.। ५. 'घेवर' इति प्रसिद्धानि।

पानकानि विचित्राणि शर्करारण्डमोदकाः[1] । शष्कुल्यो घृतपूर्णानि पूरिका गुडपूर्णिकाः ॥१४॥
वस्त्रालंकारमाल्यानि लेपनप्रभृतीनि च । अन्नानि च विचित्राणि हस्तमार्जनकानि च ॥१५॥
सर्वमेतत् समानेन्नपुरुषैः[2] शुभैहाजवैः[3] । भाविनानाविधं तेन जनेनान्तिकमात्मनः ॥१६॥
अन्तरङ्गः प्रतीहारो जनस्य वचनात् ततः । गत्वा सीतान्वितं पद्मं प्रणम्यैवमभाषत ॥१७॥
अस्मिन्[4] वस्त्रमये भ्राता ते देव तिष्ठति । एतज्जनस्वामी च निवेदयति सादरः ॥१८॥
प्रसादं कुरु तच्छाया शीतलेयं मनोहरा । तस्मादिदमतश्चारुं स्वेच्छया गन्तुमर्हथ ॥१९॥
इत्युक्ते सीतया सार्धं ज्योत्स्नयेव निशाकरः । पद्मः समायथौ बिभ्रत् मत्तद्विरदविभ्रमम् ॥२०॥
दूरादेव समालोक्य लक्ष्मणेन सभं ततः । अभ्युत्थानं चकारास्य जनः प्रत्युद्गतिं तथा ॥२१॥
सीतया सहितंस्तस्थौ पद्मोऽत्यन्तवरासने । अर्घदानादिसन्मानं प्राप्तश्च अनकल्पितम् ॥२२॥
ततः कर्मणि निर्वृत्ते स्वैरं स्नानाशनादिके । समुत्सार्यखिलं लोकमात्मा नीतस्तुरीयताम् ॥२३॥
दूतः पितुः सकाशान्मे प्राप्त इत्युपदेशतः[5] । प्रयत्नपरमं कक्ष्यां प्रविश्यान्यगोचराम् ॥२४॥
नानाप्रहरणान् वीरान् नियुज्य द्वारि भूयसः । प्रविष्टो योऽत्र मध्योऽसौ[6] ममेति कृतभाषणः ॥२५॥
सज्ञानज्ञापने लज्जां दूरीकृत्य सुधानसः । व्यपाटयदसौ तेषां समक्षं कञ्चुकं जनः ॥२६॥
स्वर्गादिव तपोऽपसत् काऽप्यसौ वरकन्यका । उषसीव पातालात् किंचिल्लज्जानतानना ॥२७॥
तत्कन्यया भवनं लिप्तं लग्ननलमिवाभवत् । उद्योतमिव चन्द्रेण लज्जास्मितसितांशुभिः ॥२८॥

गुड़मिश्रित पूड़ियाँ, वस्त्र, अलंकार, मालाएँ, लेपन आदिकी सामग्री, नानाप्रकारके बर्तन और हाथ धोनेका सामान, यह सब सामग्री निकटवर्ती शीघ्रगामी पुरुष भेजकर उसने अपने पास मँगवा ली ॥१३–१६॥ तदनन्तर उसकी आज्ञा पाकर अन्तरंग द्वारपाल वहाँ गया जहाँ सीता सहित राम विराजमान थे, सो उन्हें प्रणाम कर वह इस प्रकार बोला ॥१७॥ कि हे देव! उस तम्बूमें आपके भाई विराजमान हैं वहीं इस नगरका राजा भी विद्यमान है सो वह आदरके साथ प्रार्थना करता है कि चूँकि इस तम्बूकी छाया शीतल तथा मनको हरण करनेवाली है इसलिए प्रसन्न होइए और इतना मार्ग स्वेच्छासे चलकर आप यहाँ पधारिए ॥१८–१९॥ प्रतिहारीके इतना कहने पर मत्त हाथीकी शोभाको धारण करते हुए रामचन्द्र सीताके साथ चल पड़े उस समय वे ऐसे जान पड़ते थे मानो चाँदनीके सहित चन्द्रमा ही हों ॥२०॥ रामको दूरसे ही आते देख राजकुमारने लक्ष्मणके साथ खड़े होकर तथा कुछ आगे जाकर उनका स्वागत किया ॥२१॥ राम सीताके साथ अत्यन्त उत्कृष्ट आसन पर विराजमान हुए तथा राजकुमारके द्वारा प्रदत्त अर्घदान आदि सम्मानको प्राप्त हुए ॥२२॥ तदनन्तर इच्छानुसार स्नान, भोजन आदि समस्त कार्य समाप्त होनेपर राजकुमारने अन्य सब लोगोंको दूर कर दिया। वहाँ राम, लक्ष्मण, सीता तीन और चौथा राजकुमार ये ही चार व्यक्ति रह गये ॥२३॥ 'मेरे पिताके पाससे दूत आया है' ऐसा कहता हुआ वह राजकुमार प्रयत्नपूर्वक सजाये हुए एक दूसरे कमरेमें गया। वहाँ उसने नाना प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले अनेक योद्धाओंको द्वारपर नियुक्त कर यह आदेश दिया कि यहाँ जो कोई प्रवेश करेगा वह मेरे द्वारा वध्य होगा ॥२४–२५॥

तदनन्तर यथार्थ भावके प्रकट करनेमें जो लज्जा थी उसे दूर कर उस सुचेताने राम, लक्ष्मण और सीताके सामने बीचका आवरण फाड़ डाला ॥२६॥ तत्पश्चात् आवरणके दूर होते ही ऐसा लगने लगा मानो स्वर्गसे ही कोई उत्तम कन्या नीचे आकर पड़ी है। अथवा पातालसे ही निकली है। उस कन्याका मुख लज्जाके कारण कुछ नम्रीभूत हो रहा था ॥२७॥ उसकी

---

१. मोदकान् म.। २. पात्राणि। ३. समासन्नपुरुषैः क., ख.। समह्वाभैः म.। ५. इत्युपदेशतः क., ख., प्रसन्नः परमो -म.। ६. मध्योऽसौ समेति म., ख.।

लेकहंसाश्चिरं त्रस्ताश्चक्षुषी समचूकुचन् । लक्ष्मीरिव स्थिता साक्षात् श्रीरिवोज्झितपङ्कजा ॥२९॥
गृहं प्लावितुमारब्धामिव लावण्यवारिधौ । उत्कीर्णामिव रत्नानां रजसा काञ्चनस्य वा ॥३०॥
कल्लोला इव निर्जग्मुः स्तनाभ्यां कान्तिवारिणः । तरङ्गा इव संजाता मध्ये त्रिवलिराजिते ॥३१॥
[1]घण्टातर्कं समुल्लिख्य जघनस्य घनं महः । निर्जगामापरं छायं जीमूतं शशिनो यथा ॥३२॥
सुचिरं प्रथितं लोके [2]चञ्चलत्वायशोमलम् । गृहजीमूतवर्त्तिन्या निर्धौतमिव विद्युता ॥३३॥
अत्यन्तस्निग्धया तन्व्या [3]रोमराज्या विराजिता । नितम्बाज्जातया हैमान् महानीलरिवेषा यथा ॥३४॥
ततोऽसौ सहसामुक्तनररूपा सुलोचना । दौकिता जानकीं तेन [4]रतिश्रीरिव लज्जया ॥३५॥
अन्ते लक्ष्मणस्तत्र परिष्वक्तो मनोभुवा । अवस्थां कामपि प्राप्तश्चलमन्थरलोचनः ॥३६॥
ततो विशुद्धया बुद्ध्या पप्रच्छतामित्यभाषत । दधाना विविधं वेषं का त्वं क्रीडसि कन्यके ॥३७॥
ततोऽशुकेन संवीय गात्रं प्रवरभाषिणी । जगाद देव ! वृत्तान्तं शृणु सद्भावबोधिनम् ॥३८॥
बालखिल्य इति ख्यातः पुरस्यास्य पतिः सुधीः । सदाचारपरो नित्यं मुनिवल्लोकवत्सलः ॥३९॥
पृथिवीति प्रिया तस्य गर्भाधानमुपागता । म्लेच्छाधिपतिना चासौ गृहीतः संयुगे नृपः ॥४०॥

कान्तिसे लिप्त हुआ कपड़ेका तम्बू ऐसा दीखने लगा मानो उसमें आग ही लग गयी हो तथा लज्जासे युक्त मन्द मुसकानकी किरणोंसे लिप्त होनेपर ऐसा जान पड़ने लगा मानो उसमें चन्द्रमाका ही प्रकाश फैल गया हो ॥२८॥ उसे देख, चतुर हंसोंने चिरकाल तक भयभीत हो अपने नेत्र संकुचित कर लिये। वह कन्या ऐसी जान पड़ती थी मानो कमलको छोड़कर साक्षात् लक्ष्मी ही वहाँ आ बैठी हो ॥२९॥ उसकी कान्तिसे वह घर ऐसा मालूम होता था मानो सौन्दर्यके सागरमें उसने तैरना ही शुरू किया हो अथवा रत्नों और स्वर्णकी परागसे मानो आच्छादित ही किया गया हो ॥३०॥ उसके स्तनोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो कान्तिरूपी जलके कल्लोल ही निकल रहे हों और त्रिवलिसे शोभित मध्यभागमें ऐसा लगता था मानो तरंगें ही उठ रही हों ॥३१॥ जिस प्रकार मेघके पतले आवरणको लाँघकर चन्द्रमाका प्रकाश बाहर फूट पड़ता है उसी प्रकार लँहगाको भेदकर उसके नितम्बस्थलका सघन तेज बाहर फूट पड़ा था ॥३२॥ वह घर, एक मेघके समान जान पड़ता था और उसमें बैठी हुई वह कन्या बिजलीके समान प्रतिभासित होती थी। ऐसा लगता था कि लोकमें चंचलताके कारण बिजलीके यशमें जो मल चिरकालसे लगा हुआ था उसने उसे बिलकुल ही धो डाला था ॥३३॥ वह स्वर्णनिर्मितकी तरह देदीप्यमान नितम्बस्थलसे उत्पन्न महानीलमणिके समान श्याम, अत्यन्त चिकनी एवं पतली रोमराजिसे सुशोभित थी ॥३४॥ तदनन्तर जिसने सहसा पुरुषका वेष छोड़ दिया था तथा जिसके नेत्र अत्यन्त सुन्दर थे, ऐसी वह कन्या सीताके पास आ बैठी जिससे वह उस प्रकार सुशोभित होने लगी जिस प्रकारकी लज्जासे रतिकी श्री सुशोभित होती है ॥३५॥ लक्ष्मण उसके पास ही बैठे थे, सो कामसे युक्त हो किसी अनिर्वचनीय अवस्थाको प्राप्त हुए। उस समय उनके चंचल नेत्र धीरे-धीरे चल रहे थे ॥३६॥ तदनन्तर निर्मल बुद्धिसे युक्त रामने उससे इस प्रकार कहा कि हे कन्ये! विविध वेषको धारण करनेवाली तू कौन है? जो इस तरह क्रीड़ा करती है? ॥३७॥ उसके उत्तरमें मधुर भाषण करनेवाली कन्याने वस्त्रसे शरीर ढँककर कहा कि हे देव! सद्भावको सूचित करनेवाला मेरा वृत्तान्त सुनिए ॥३८॥

इस नगरका स्वामी 'बालखिल्य' इस नामसे प्रसिद्ध है जो अतिशय बुद्धिमान्, मुनियोंके समान निरन्तर सदाचारका पालन करनेवाला और लोगोंके साथ स्नेह करनेवाला है ॥३९॥ उसकी प्रियाका नाम पृथिवी है। जिस समय पृथिवी गर्भाधानको प्राप्त हुई उसी समय राजा बालखिल्यका

---

१. 'लहँगा' इति प्रसिद्धं स्त्रीवस्त्रम् । २. चञ्चलत्वायसोमलं (?) म. । ३. रुच्या म. । ४. रतिं श्रीरिव म.

उक्तं च स्वामिना तस्य सिंहोदरमहीभृता । पुत्रश्चेद् भविता गर्भे कर्ता राज्यमसाविति ॥४१॥
ततोऽहं पापिनो जाता प्रार्थ्यया दुर्भगत्वतः । सिंहोदराय पौरुषेण कथिता राज्यकाङ्क्षया ॥४२॥
मीता कल्याणमालाख्यां जनन्या रहितार्थिकाम्[2] । प्रायो[3] माङ्गलिके लोको व्यवहारे प्रवर्तते ॥४३॥
मन्त्री माता च मे वेत्ति कन्येयमिति नापरः । दृष्टं काल्यमद्या भवन्तः पुण्यवीक्षिताः ॥४४॥
दुःखं तिष्ठति मे तातः प्राप्तश्चारकवासिताम् । सिंहोदरोऽपि नो सक्तस्तस्य कर्तुं विमोचनम् ॥४५॥
यदत्र द्रविणं किंचिदेशे समुपजायते । तन्म्लेच्छस्वामिने सर्वं प्रेष्यते[4] दुर्गसोयुषे ॥४६॥
वियोगवह्निनात्यन्तं तप्यमाना ममाम्बिका । जाता कलावशेषेव चन्द्रमूर्तिर्गतप्रभा ॥४७॥
इत्युक्त्वा दुःखभारेण पीडिताशेषगात्रिका । सद्यो विच्छायतां प्राप्ता मुक्तकण्ठं ररोद सा ॥४८॥
अत्यन्तमधुरैर्वाक्यैः पद्मेनाश्वासिता ततः । सीतया च निधायाङ्के कुर्वत्या मुखधावनम् ॥४९॥
सुमित्रासूनुना चोक्ता शुचं विसृज सुन्दरि । कुरु राज्यमनेनैव वेषेणोचितकारिणी ॥५०॥
शुभे कांश्चित्प्रतीक्षस्व दिवसान् धैर्यसङ्गतान् । म्लेच्छेन ग्रहणं किं मे पितरं पश्य मोचितम् ॥५१॥
इत्युक्ते परमं तोषं साते मुक्त इवागता । समुच्छ्वसितसर्वाङ्गा कन्यका धृतिपूरिता ॥५२॥
तत्र ते कानने रम्ये विचित्रालापविभ्रमाः । देवा इव सुखं तस्थुः स्वच्छन्दा दिवसत्रयम् ॥५३॥
ततः[5] सुप्तजने काले रजन्यां रामलक्ष्मणौ । ससीतौ रम्यमाश्रित्य निष्क्रान्तौ काननालयात् ॥५४॥

म्लेच्छ राजाके साथ युद्ध हुआ, सो युद्धमें म्लेच्छ राजाने उसे पकड़ लिया ॥४०॥ राजा सिंहोदर बालखिल्यके स्वामी हैं सो उन्होंने कहा कि बालखिल्यकी रानी गर्भवती है यदि उसके गर्भमें पुत्र होगा तो राज्य करेगा ॥४१॥ तदनन्तर दुर्भाग्यसे पुत्र न होकर मैं पापिनी पुत्री उत्पन्न हुई परन्तु वसुबुद्धि मन्त्रीने राज्यकी आकांक्षासे सिंहोदरके लिए पुत्र उत्पन्न होनेकी खबर दी ॥४२॥ माताने मेरा कल्याणमाला यह अर्थहीन नाम रखा, सो ठीक ही है क्योंकि लोग प्रायः मंगलमय व्यवहारमें ही प्रवृत्त होते हैं ॥४३॥ अबतक मन्त्री और मेरी माता ही जानती है कि यह कन्या है दूसरा नहीं। आज पुण्योदयसे आप लोगोंके दर्शन हुए ॥४४॥ बन्दीगृहके निवासको प्राप्त हुए हमारे पिता बहुत कष्टमें हैं। सिंहोदर भी उन्हें छुड़ानेके लिए समर्थ नहीं है ॥४५॥ इस देशमें जो कुछ धन उत्पन्न होता है वह सब दुर्गकी रक्षा करनेवाले म्लेच्छ राजाके लिए भेज दिया जाता है ॥४६॥ वियोगरूपी अग्निसे अत्यन्त सन्तापको प्राप्त हुई मेरी माता सूखकर कला मात्रसे अवशिष्ट चन्द्रमाके समान कान्तिहीन हो गयी है ॥४७॥ इतना कहकर दुःखके समान भारसे जिसका समस्त शरीर पीड़ित हो रहा था ऐसी वह कल्याणमाला शीघ्र ही कान्तिरहित हो गयी तथा गला फाड़कर रोने लगी ॥४८॥

तदनन्तर रामने अत्यन्त मधुर शब्दोंमें उसे सान्त्वना दी; सीताने गोदमें बैठाकर उसका मुँह धोया और लक्ष्मणने कहा कि हे सुन्दरि! शोक छोड़ो, इसी वेषसे राज्य करो, तुम उचित कार्य कर रही हो ॥४९-५०॥ हे शुभे! हे कल्याणरूपिणी! धैर्यके साथ कुछ दिन तक प्रतीक्षा करो। मेरे लिए म्लेच्छराजका पकड़ना कौनसी बात है? तुम शीघ्र ही अपने पिताको छूटा देखोगी ॥५१॥ इस प्रकार कहनेपर उसे इतना सन्तोष हुआ मानो पिता छूट ही गया हो। उस कन्याके समस्त अंग हर्षसे उल्लसित हो उठे और वह कान्तिसे भर गयी ॥५२॥ तदनन्तर उस मनोहर वनमें नाना प्रकारका वार्तालाप करते हुए वे सब तीन दिन तक देवोंके समान स्वतन्त्र हो सुखसे रहे ॥५३॥ तत्पश्चात् रात्रिके समय जब सब लोग सो गये तब सीता सहित

---

१. सुबुद्धिना म.। च सुबुद्धिना क., ख.। २. रहितार्थिकं म.। ३. प्रायो म.। ४. प्रेक्ष्यते म.। ५. सुपूजने म.।

विबुद्धा तामपश्यन्ती कन्या व्याकुलमानसा । हाकारमुखरा शोकं परमं समुपागता ॥५५॥
महापुरुषयुक्तं ते स्तेनयित्वा मनो मम । गन्तुं निद्रासमेताया[1] निर्घृणेति मनस्विनी ॥५६॥
कृच्छ्राच्चियम्य शोकं च वरवारणवर्तिनी । प्रविश्य कूबरं तस्थौ पूर्ववद्दीनमानसा ॥५७॥
ततः कल्याणमालाया रूपेण विनयेन च । कृतचित्ताः क्रमेणैते प्रापुर्मेकलनिम्नगाम्[2] ॥५८॥
उत्तीर्य विहितक्रीडास्तां सुखेन मनोहरान् । बहून् देशानतिक्रम्य प्राप्ता विन्ध्यमहाटवीम् ॥५९॥
स्कन्धावारमहासार्थपरिक्षुण्णेन[3] वर्त्मना । प्रयान्तः पथिकैर्गोपैः कीनाशैश्च निवारिताः ॥६०॥
क्वचित्सरलदिग्भूर्जैर्नागवल्लीतमालकैः[4] । नन्दनं शोभतेऽत्यन्तं स्वामोदं नन्दनं यथा ॥६१॥
क्वचिद्दावेन[5] निर्दग्धप्रान्तस्थितमहीरुहम् । न शोभते यथा गोत्रं दुष्पुत्रेण कलङ्कितम् ॥६२॥
अथानीचत् ततः सीता कर्णिकारवनान्तरे । वामतोऽयं स्थितो ध्वाङ्क्षो मूर्ध्नि कण्टकिनस्तरोः[6] ॥६३॥
वामभागो मुहुः क्रूरं कलहं कथयत्यरम् । अन्योऽपि क्षीरवृक्षस्थो जयं शंसति वायसः ॥६४॥
तस्मात् तावत् प्रतीक्षेतां मुहूर्तं कलहात् परम् । जयोऽपि नैव मे चित्ते प्रतिभात्यतिसुन्दरः ॥६५॥
ततः क्षणं विलम्ब्यैतौ प्रयातौ पुनरुद्यतौ । तदेव च पुनर्जातं निमित्तं निकटेऽन्तरे ॥६६॥
तथ्यापि सीताया अवकर्ण्य वचस्ततः । प्रवृत्तौ गन्तुमग्रे च म्लेच्छानां सैन्यमुद्गतम् ॥६७॥
तौ विलोक्यैव निर्भीतावायान्तौ धनुष्कामुकौ । क्षणेनैकेन तत्सैन्यं कान्दिशीकं पलायितम् ॥६८॥

राम-लक्ष्मण छिद्र पाकर वनके उस तम्बूसे बाहर निकल गये ॥५४॥ जागनेपर जब कन्याने उन्हें नहीं देखा तब उसका मन बहुत ही व्याकुल हुआ। वह हाहाकार करती हुई परम शोकको प्राप्त हुई ॥५५॥ वह मनस्विनी मन ही मन यह कह रही थी कि हे महापुरुष ! मेरा मन चुराकर तथा मुझे सोती छोड़ क्या तुम्हें जाना उचित था ? तुम बड़े निर्दय हो ॥५६॥ अन्तमें बड़े दुःखसे शोकको रोककर तथा उत्तम हाथीपर सवार हो उसने कूबर नगरमें प्रवेश किया और वहाँ पहलेके समान दीन हृदयसे वह निवास करने लगी ॥५७॥

अथानन्तर कल्याणमालाके रूप और विनयसे जिनके चित्त हरे हो गये थे ऐसे राम, सीता तथा लक्ष्मण क्रम-क्रमसे नर्मदा नदीको प्राप्त हुए ॥५८॥ क्रीड़ा करते हुए उस नदीको पार कर तथा अनेक सुन्दर देशोंको उल्लंघन कर वे विन्ध्याचलकी महाअटवीमें पहुँचे ॥५९॥ वे बड़ी भारी सेनाके संचारसे खुदे हुए मार्गसे जा रहे थे, इसलिए मार्गमें चलनेवाले ग्वालों तथा हलवाहकोंने उन्हें रोका कि इस मार्गसे आगे न जाओ पर वे रुके नहीं ॥६०॥ बहुत भारी सुगन्धिसे भरा हुआ यह वन कहीं तो लताओंसे आलिंगित सागौन आदिके वृक्षोंसे नन्दनवनके समान अत्यन्त सुशोभित है और कहीं दावानलके कारण समीप स्थित वृक्षोंके जल जानेसे कुपुत्रके द्वारा कलंकित गोत्रके समान सुशोभित नहीं है, इस प्रकार कहते हुए वे आगे बढ़ रहे थे ॥६१-६२॥ तदनन्तर कुछ आगे बढ़नेपर सीताने कहा कि देखो, कनेर वनके बीचमें बायीं ओर कँटीले वृक्षकी चोटीपर बैठा कौआ बार-बार क्रूर शब्द कर रहा है सो 'शीघ्र ही कलह होनेवाली है' यह कह रहा है और इधर क्षीर वृक्षपर बैठा दूसरा कौआ 'हम लोगोंकी विजय होगी' यह सूचित कर रहा है ॥६३-६४॥ इसलिए आप लोग मुहूर्तमात्र प्रतीक्षा कर लें क्योंकि कलहान्तर जय प्राप्त करना भी मेरे मनमें बहुत अच्छा नहीं जँचता ॥६५॥ तदनन्तर क्षण-भर विलम्ब कर वे पुनः आगे गये तो कुछ ही अन्तर पर वही निमित्त फिर हुआ ॥६६॥ यद्यपि सीता कह रही थी फिर भी उसका कहा अनसुना कर राम-लक्ष्मण आगे बढ़ते गये। कुछ दूरी पर उन्हें म्लेच्छोंकी सेना मिली, सो उत्तम धनुषके धारक तथा निर्भय राम-लक्ष्मणको आते देख वह सेना भयभीत हो क्षण-भरमें भाग

---

१. निद्रा समेतायां म. । २. नर्मदां । ३. परिक्षणेन (?) म. । ४. हलिभिः । ५. निर्दग्धं प्रान्त म. । ६. कण्टकितस्तरौ म. । ७. शब्दं कुर्वन् । ८. परः म. ।

अवगत्य ततस्तस्मात् सज्जाम्ल्ये समागताः । प्रावृड्मेघसमानेन तेऽपि हासेन निर्जिताः ॥६९॥
ततस्तेऽत्यन्तविस्रस्ता म्लेच्छाः पतितकार्मुकाः । कुर्वन्तः परमं रावं गत्वा पत्ये न्यवेदयन् ॥७०॥
सतोऽसौ परमं क्रोधं महंश्चापं च दारुणम् । निर्जगाम महासैन्यः शस्त्रसन्तमसावृतः ॥७१॥
काकोनदा इति ख्याता म्लेच्छास्ते धरणीतले । दारुणाः सर्वमांसादो दुर्जयाः पार्थिवैरपि ॥७२॥
तैरावृतां दिशं प्रेक्ष्य पुरो घनकुलासितैः[1] । धनुरारोपयत् कोपं किंचिल्लक्ष्मीधरो मजन् ॥७३॥
तथा चास्फालितं सर्वं वनमाकम्पितं यथा । ज्वरश्च वनसत्त्वानां जज्ञे प्रकटवेपथुः ॥७४॥
संदधानं शरं वीक्ष्य लक्ष्मणं त्रस्तचेतसः । वज्रमुग्नक्रतां प्राप्ता म्लेच्छा निश्चक्षुषो यथा ॥७५॥
ततः साध्वससंपूर्णो म्लेच्छानामधिपो भृशम् । अवतीर्य रथाद्देवौ प्रणम्य रचिताञ्जलिः ॥७६॥
अस्त्यवीदस्ति कौशाम्बी नगरी प्रथिता प्रभुः । आहिताग्निर्द्विजस्तत्र नाम्ना विश्वानलः शुचिः ॥७७॥
प्रतिसंध्येति तज्जाया जातोऽहं तनयस्तयोः । रौद्रभूतिरिति ख्यातः शठद्यूतकलाविदः ॥७८॥
बाल्यात् प्रभृति दुष्कर्मण्यस्यानुष्ठानकोविदः । प्राप्तश्चौर्ये कदाचिच्च शूले भेत्तुमभीप्सितः ॥७९॥
[3]धनिनैकेन तत्राहं श्रद्धालुना साधुना । मोचितो वेपमानाङ्गः त्यक्त्वा देशमिहागतः ॥८०॥
प्राप्तः कर्मानुभावेन काकोनदजनेशताम् । अष्टसिद्धामि सद्वृत्तात् पशुभिः समतां गतः ॥८१॥
इयन्तं यस्य मे कालं सैन्याढ्या अपि पार्थिवाः । चक्षुषो गोचरीभावमासन् शक्ता न सेदितुम् ॥८२॥
सोऽहं दर्शनमात्रेण कृतो देवेन विक्लवः । धन्योऽस्मि वीक्षितौ येन भवन्तौ पुरुषोत्तमौ ॥८३॥

गयी ॥६७-६८॥ तदनन्तर भागती सेनासे समाचार जानकर दूसरे म्लेच्छ तैयार हो सामने आये परन्तु वर्षाकालीन मेघके समान श्याम लक्ष्मणने उन्हें हँसते-हँसते पराजित कर दिया ॥६९॥ तदनन्तर जो अत्यन्त भयभीत थे, जिन्होंने धनुष छोड़ दिये थे और जो जोरसे चिल्ला रहे थे ऐसे उन म्लेच्छोंने जाकर अपने स्वामीसे निवेदन किया ॥७०॥ तब परम क्रोध और भयंकर धनुषको धारण करता हुआ म्लेच्छोंका स्वामी निकला। बड़ी भारी सेना उसके साथ थी और वह शस्त्ररूपी अन्धकारसे आच्छादित था ॥७१॥ वे म्लेच्छ पृथिवीपर 'काकोनद' इस नामसे प्रसिद्ध थे, अत्यन्त भयंकर थे, सब जन्तुओंका मांस खानेवाले थे और राजाओंके द्वारा भी दुर्जेय थे ॥७२॥ जब लक्ष्मणने देखा कि आगेकी दिशा मेघसमूहके समान श्यामवर्ण म्लेच्छोंसे आच्छादित हो रही है तब उन्होंने कुछ कुपित हो धनुषकी डोरी चढ़ा ली ॥७३॥ और उस प्रकारसे उसका आस्फालन किया कि समस्त वन काँप उठा तथा जंगली जानवरोंको कँपकँपी उत्पन्न करनेवाला ज्वर उत्पन्न हो गया ॥७४॥ लक्ष्मणको डोरीपर बाण चढ़ाते देख जिनका चित्त भयभीत हो गया था ऐसे वे म्लेच्छ नेत्रहीनके समान चक्राकार घूमने लगे ॥७५॥ तदनन्तर अत्यन्त भयसे भरा म्लेच्छोंका स्वामी रथसे उतरकर हाथ जोड़ता हुआ इनके पास आया और प्रणाम कर बोला कि एक कौशाम्बी नामकी प्रसिद्ध नगरी है, निरन्तर अग्निमें होम करनेवाला विश्वानल नामका पवित्र ब्राह्मण उसका स्वामी है। विश्वानलकी स्त्रीका नाम प्रतिसन्ध्या है। मैं उन्हीं दोनोंका पुत्र हूँ, रौद्रभूति नामसे प्रसिद्ध हूँ, शस्त्र तथा जुएके कलाका पारगामी हूँ ॥७६-७८॥ मैं बाल्य अवस्थासे ही निरन्तर खोटे कार्य करनेमें निपुण था। किसी समय चोरीके अपराधमें पकड़ा गया और मुझे शूलीपर चढ़ानेका निश्चय किया गया ॥७९॥ शूलीका नाम सुनते ही मेरा शरीर काँप उठा तब विश्वास रखनेवाले एक भले धनिकने जमानत देकर मुझे छुड़वा दिया। तदनन्तर देश छोड़कर मैं यहाँ आ गया ॥८०॥ कर्मोंके प्रभावसे इन काकोनद म्लेच्छोंकी स्वामिताको प्राप्त हो गया हूँ तथा सदाचारसे भ्रष्ट हो पशुओंके समान यहाँ रहता हूँ ॥८१॥ इतने समय तक बड़ी-बड़ी सेनाओंसे युक्त राजा भी जिसके दृष्टिगोचर होनेके लिए समर्थ नहीं हो सके उस मुझको आपने

१ मेघसमूहवत्कृष्णैः । २. यज्ज्ञाया म. । ३. ध्वनिनैकेन म. ।

शासनं यच्छतां नाथौ किं करोमि यथोचितम् । शिरसा पादुके किं वा वहे पावनपण्डिते ॥८३॥
[1]विन्ध्योऽयं निधिभिः पूर्णो वरयोषिच्छतैस्तथा । भुञ्जिष्यमिच्छतां देवौ मामतो निभृतं परम् ॥८५॥
इत्युदस्वा प्रणतिं कुर्वन् पुनरार्तिं परां गतः । पपात विह्वलो भूमौ छिन्नमूलस्तरुर्यथा ॥८६॥
कष्टावस्थां ततः प्राप्तं तमेवं राघवोऽवदत् । कृपालतापरिष्वक्तवीरकल्पमहातरुः ॥८७॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मा भैषीर्बालिखिल्यं दिवन्धनम् । कृत्वाऽऽनय द्रुतं प्राप्य संमानं परमं सुधीः ॥८८॥
तस्यैवाभिमतो भूत्वा सचिवः सज्जनान्वितः । विहाय संगतिं म्लेच्छैर्विषयस्य [2]हितोऽभवत् ॥८९॥
एतत् चेत् कुरुषे सर्वमन्यथोरश्चविवर्जितम् । ततस्ते विद्यते शान्तिरद्यैव म्रियसेऽन्यथा ॥९०॥
एवं प्रभो करोमीति कृत्वा प्रणतिमादृतः । [3]महारथसुतं गत्वा मुमोच विनयान्वितः ॥९१॥
अभ्यङ्गोद्वर्त्य [4]सुस्नातं भोजयित्वा स्वलंकृतम् । आरोप्य स्यन्दने नेतुमारेभे तं तदन्तिकम् ॥९२॥
स दृष्ट्वा नीयमानः सन् विस्मयं परमं गतः । इतोऽपि गहनावस्था प्रायो मेऽद्य भविष्यति ॥९३॥
क्वायं म्लेच्छो महावैरी क्रूरकर्मात्यन्तनिर्दयः । क्व चायमतिसंमानो न मन्येऽद्यासुधारणम् ॥९४॥
इति दीनमना गच्छन् सहसा पद्मलक्ष्मणौ । दृष्ट्वा परां धृतिं प्राप्तोऽवतीर्य ननमस्कृतिः ॥९५॥
अभ्यधात् तौ युवां नाथावागतावतिसुन्दरौ । मम पुण्यानुभावेन मुक्तो येनास्मि बन्धनात् ॥९६॥
गच्छ क्षिप्रं निजं धाम लब्धस्वाभीष्टसंगमम् । तत्र नौ ज्ञास्यसीत्युक्ते बालिखिल्यः सुधीर्गतः ॥९७॥

दृष्टिमात्रसे ही दीन कर दिया। मैं धन्य हूँ जिससे पुरुषोंमें उत्तम आप महानुभावोंके दर्शन किये ॥८२-८३॥ हे नाथ! आज्ञा दीजिए मैं क्या योग्य सेवा करूँ? क्या पवित्र करनेमें निपुण आपकी पादुकाएँ शिरपर धारण करूँ? ॥८४॥ यह विन्ध्याचल निधियों तथा उत्तमोत्तम सैकड़ों स्त्रियोंसे परिपूर्ण है इसलिए हे देव! मुझसे किसी अच्छे भारी राजस्वकी इच्छा प्रकट करो ॥८५॥ इतना कहकर प्रणाम करता हुआ वह पुनः परम पीड़ाको प्राप्त हुआ और विह्वल हो कटे वृक्षके समान भूमिपर गिर पड़ा ॥८६॥

तदनन्तर जो वीरजनोंके लिए दयारूपी लतासे आलिंगित कल्पवृक्षके समान थे ऐसे राम दुःखमय अवस्थाको प्राप्त हुए म्लेच्छ राजासे इस प्रकार बोले कि हे सुबुद्धि! उठ-उठ, डर मत, बालिखिल्यको बन्धनरहित कर तथा उत्तम सम्मानको प्राप्त कराकर शीघ्र ही यहाँ ला ॥८७-८८॥ उसीका इष्ट मन्त्री हो सज्जनोंकी संगति कर और म्लेच्छोंकी संगति छोड़, देशका हितकारी हो ॥८९॥ यदि तू यह सब काम ठीक-ठीक करता है तो उससे तुझे शान्ति प्राप्त होगी अन्यथा आज ही मारा जायेगा ॥९०॥ 'हे प्रभो! ऐसा ही करता हूँ' इस प्रकार कहकर उसने बड़े आदरसे रामको प्रणाम किया और विनयके साथ जाकर महारथके पुत्र बालिखिल्यको छोड़ दिया ॥९१॥

तदनन्तर जिसे तेल-उबटन लगाकर अच्छी तरह स्नान कराया गया था और भोजन कराकर जिसे अलंकारोंसे अलंकृत किया गया था ऐसे बालिखिल्यको रथपर बैठाकर वह रामके पास ले आनेके लिए उद्यत हुआ ॥९२॥ जो इस तरह आदरके साथ लाया जा रहा था ऐसा बालिखिल्य परम आश्चर्यको प्राप्त हुआ और मन ही मन सोचता जाता था कि प्रायः अब मेरी अवस्था इससे भी गहन होगी ॥९३॥ कहाँ तो यह क्रूरकर्म करनेवाला अत्यन्त निर्दय महावैरी म्लेच्छ? और कहाँ यह भारी सम्मान? जान पड़ता है कि आज प्राण नहीं बचेंगे ॥९४॥ इस प्रकार बालिखिल्य दीन चित्त होकर जा रहा था कि सहसा राम-लक्ष्मणको देखकर वह परम सन्तोषको प्राप्त हुआ। उसने रथसे उतरकर नमस्कार करते हुए कहा कि हे नाथ! मेरे पुण्योदयसे अतिशय सुन्दर रूपको धारण करनेवाले आप दोनों महानुभाव पधारे हैं इसीलिए मैं बन्धनसे मुक्त हुआ हूँ ॥९५-९६॥ राम-लक्ष्मणने उससे कहा कि शीघ्र ही अपने घर जाओ और इष्टजनोंके साथ

---

१. बन्ध्योऽयं ज., ब.। २. हितोऽभवत् (?) म.। ३. बालखिल्यं म.। ४. सुस्नातं म.।

कृत्वा सुनिभृतं भृत्यं तस्य विश्वानलाङ्गजम् । यातौ सीतान्वितौ स्वेष्टं कृतिनौ रामलक्ष्मणौ ॥९८॥
बालिखिल्यस्तु संप्राप्तः समं रौद्रविभूतिना । स्वपुरस्यान्तिकीं क्षोणीं स्मरन् बान्धवचेष्टितम् ॥९९॥
प्रत्यासन्नं ततः कृत्वा विभूत्या परयान्वितम् । पितरं निरगात्तुष्टा पुरात् कल्याणमालिनी ॥१००॥
प्रतीतां सनमस्कारां तां समाघ्राय मस्तके । निजयाने पुनः कृत्वा प्रविष्टः कूवरं नृपः ॥१०१॥
पृथिवी महिषी तोषसञ्जातपुलका क्षणात् । पुरातनीं तनुं भेजे कान्तिसागरवर्तिनीम् ॥१०२॥
सिंहोदरप्रभृतयो नृपा प्रभुतयोऽखिलाः । गुणैः कल्याणमालायाः परमं विस्मयं गताः ॥१०३॥

उपजातिवृत्तम्

यद्दौःप्रभृतिः सुचिरं विधित्सु समाजवंशार्थपरायणः स्वैम् ।
अनेकदेशप्रभवं विशालं तद्बालिखिल्यस्य गृहं विवेश ॥१०४॥
जातेऽस्य वाग्वर्तिनि रौद्रभूतौ वशीकृतैम्लेच्छसुदुर्गभूमौ ।
सिंहोदरोऽपि प्रतिपन्नशङ्कः स्नेहं ससंमानमलंचकार ॥१०५॥
सोऽयं समासाद्य परां विभूतिं प्रसादतो राघवसत्तमस्य ।
महारथी प्राणसमासमेतो रविर्यथैवं शरदा रराज ॥१०६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते बालिखिल्योपाख्यानं नाम चतुस्त्रिंशत्तमं पर्व ॥ ३४॥

समागम प्राप्त करो। वहाँ पहुँचनेपर तुम हम लोगोंको जान सकोगे। इस प्रकार कहनेपर बुद्धिमान् बालिखिल्य अपने घर चला गया ॥९७॥

तदनन्तर विश्वानलके पुत्र रौद्रभूतिको बालिखिल्यका निश्चल मित्र बनाकर अतिशय कुशल राम-लक्ष्मण सीताके साथ अपने इष्ट स्थानको चले गये ॥९८॥ बान्धवजनोंकी चेष्टाका स्मरण करता हुआ बालिखिल्य, रौद्रभूतिके साथ जब अपने नगरकी समीपवर्ती भूमिमें पहुँचा तब निकटवर्ती पिताको परम विभूतिसे युक्तकर पुत्री कल्याणमालिनी सन्तुष्ट हो उसका सत्कार करनेके लिए नगरसे बाहर निकली ॥९९-१००॥ तदनन्तर नमस्कार करती हुई पुत्रीको पहचानकर राजा बालिखिल्यने उसका मस्तक सूँघा फिर अपने रथपर बैठाकर कूबर नगरमें प्रवेश किया ॥१०१॥ बालिखिल्यकी रानी पृथिवीके शरीरमें हर्षातिरेकसे रोमांच निकल आये और वह कान्तिरूपी सागरमें वर्तमान अपने पुराने शरीरको क्षण-भरमें पुनः प्राप्त हो गयी ॥१०२॥ सिंहोदर आदि समस्त राजा कल्याणमालाके गुणोंसे परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥१०३॥ रौद्रभूतिने चिरकाल तक चोरीमें तत्पर रहकर नाना देशोंमें उत्पन्न जो विविध प्रकारका विशाल धन इकट्ठा किया था वह सब बालिखिल्यके घरमें प्रविष्ट हुआ ॥१०४॥ जब म्लेच्छोंकी सुदुर्गम भूमिको वश करनेवाला रौद्रभूति बालिखिल्यका आज्ञाकारी हो गया तब शंकाको प्राप्त हुआ सिंहोदर भी सम्मानसहित उसके साथ बहुत स्नेह करने लगा ॥१०५॥ इस प्रकार महारथी बालिखिल्य राम-लक्ष्मणके प्रसादसे परम विभूतिको पाकर अपनी प्राणप्रियासे इस तरह सुशोभित होने लगा जिस तरह कि शरद्-ऋतुसे सूर्य सुशोभित होता है ॥१०६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरितमें बालिखिल्यका वर्णन करनेवाला चौंतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३४॥

१. आत्मीयं म.। २. धनम्, ३. वशीकृते म्लेच्छ म.।

पञ्चत्रिंशत्तमं पर्व

अथ ते त्रिदशाभिख्याः काननं नन्दनोपमम् । विहरन्तः सुखं प्राप्ता देशमत्यन्तमुज्ज्वलम् ॥१॥
मध्ये यस्य नदी याति प्रसिद्धजलवाहिनी । तापीति विश्रुता नामपक्षिवर्गानुनादिता ॥२॥
अरण्ये तत्र निर्जीये सीताऽत्यन्तश्रमान्विता । जगाद राघवं नाथ कण्ठशोषो ममोत्तमः ॥३॥
यथा भवशतैः खिन्नो भव्यो दर्शनमर्हतः । वाञ्छत्येवमहं तीव्रतृष्णयाऽऽकुलिता जलम् ॥४॥
[1]इत्युक्त्वा वार्यमाणापि निषण्णा सुतरोरधः । रामेण जगदे देवि विषादं मागमः शुभे ॥५॥
आसन्नोऽयं महाग्रामो दृश्यते विकटालयः । उत्तिष्ठाशु प्रयामोऽत्र शिशिरं वारि [2]पास्यति ॥६॥
एवमुक्ते तया स्वैरं स्वैरं प्रस्थितया समम् । प्राप्तौ तावरुणग्रामं महाधनकुटुम्बिकम् ॥७॥
आहिताग्निर्द्विजस्तत्र कपिलो नाम विश्रुतः । गेहे तस्यावतीर्णौ तौ यथाक्रममुपागते ॥८॥
अत्राग्निहोत्रशालायामपनीय श्रमं क्षणम् । तद्ब्राह्मण्या जलं दत्तं पपौ सीता सुशीतलम् ॥९॥
यावत् तिष्ठन्ति ते तत्र द्विजस्तावद्वनात्ततः । विल्वाश्वत्थपलाशौघभारवाही समागतः ॥१०॥
दावानलसमं यस्य मानसं नित्यकोपिनः । कालकूटविषं वाक्यमुलूकसदृशं मुखम् ॥११॥
कमण्डलुशिखाकूर्चबालसूत्रादिभिः परम् । बिभ्राणः कुटिलं वेषमुञ्छवृत्तिं भजन् किल ॥१२॥
दृष्ट्वा तान् कुपितोऽत्यन्तभ्रुकुटीकुटिलाननः । उवाच ब्राह्मणीं वाचा तक्षकिव सुतीक्ष्णया ॥१३॥

अथानन्तर देवोंके समान शोभाको धारण करनेवाले वे तीनों, नन्दन वनके समान सुन्दर वनमें सुखसे विहार करते हुए एक ऐसे अत्यन्त उज्ज्वल देशमें पहुँचे, जिसके मध्यमें प्रसिद्ध जलको बहानेवाली, पक्षी समूहसे शब्दायमान तापी नामकी प्रसिद्ध नदी सुशोभित है ॥१-२॥ वहाँके निर्जन वनमें जब सीता अत्यन्त थक गयी तब रामसे बोली कि नाथ ! मेरा कण्ठ बिलकुल सूख गया है ॥३॥ जिस प्रकार सैकड़ों जन्म धारण करनेसे खेदको प्राप्त हुआ भव्य, अरहन्त भगवान्‌के दर्शन चाहता है उसी प्रकार तीव्र पिपासासे आकुलित हुई मैं जल चाहती हूँ ॥४॥ इतना कहकर वह रोकनेपर भी एक उत्तम वृक्षके नीचे बैठ गयी। रामने कहा कि हे देवि ! हे शुभे ! विषादको प्राप्त मत होओ ॥५॥ यह पास ही बड़े-बड़े महलोंसे युक्त बड़ा भारी ग्राम दिखाई दे रहा है, उठो, शीघ्र ही चलें, वहीं शीतल पानी पीना ॥६॥ इस प्रकार कहनेपर धीरे-धीरे चलती हुई सीताके साथ चलकर वे दोनों, जहाँ अनेक धनिक कुटुम्ब रहते थे, ऐसे अरुण ग्राममें पहुँचे ॥७॥ वहाँ प्रतिदिन होम करनेवाला एक कपिल नामका ब्राह्मण रहता था सो वे दोनों यथा क्रमसे प्राप्त हुए, उसीके घर उतरे ॥८॥ यहाँ यज्ञ-शालामें क्षण-भर विश्राम कर सीताने उसकी ब्राह्मणीके द्वारा दिया शीतल जल पिया ॥९॥ वे सब वहाँ ठहर ही रहे थे कि इतनेमें बेल, पीपल और पलाशकी लकड़ियोंका भार लिये ब्राह्मण जंगलसे वापस आ पहुँचा ॥१०॥ निरन्तर क्रोध करनेवाले उस ब्राह्मणका मन दावानलके समान था, वचन कालकूटके समान थे, और मुख उल्लूके सदृश था ॥११॥ वह हाथमें कमण्डलु लिये था, उसने शिरपर बड़ी चोटी रख छोड़ी थी, मुखपर लम्बी-चौड़ी दाढ़ी बढ़ा ली थी और कन्धेपर यज्ञोपवीतका सूत्र धारण किया था, इन सब चीजोंसे वह अत्यन्त कुटिल वेषको धारण कर रहा था तथा उञ्छ वृत्तिसे अपनी जीविका चलाता था ॥१२॥ उन्हें देखते ही उसका क्रोध उमड़ पड़ा, उसका मुख भौंहोंसे अत्यन्त कुटिल हो गया और वह ब्राह्मणीसे इस प्रकार बोला, मानो तीक्ष्ण वचनोंसे उसे छील ही रहा हो ॥१३॥

---

१. इत्युक्ता म. । २. पश्यति म. ।

अयि पापे किमित्येषामिह दत्तं प्रवेशनम् । प्रयच्छाम्यद्य ते दुष्टे बन्धं गोरपि दुस्सहम् ॥१४॥
पश्येमे निस्त्रपा धृष्टाः केऽपि पांशुलपाण्डुकाः । अग्निहोत्रकुटीं पापा कुर्वन्त्युपहतां मम ॥१५॥
ततः सीताऽब्रवीत् पद्ममार्यपुत्र कुकर्मणः । अस्येदमास्पदं दग्धं परमाक्रोशकारिणः ॥१६॥
वरं पुष्पफलच्छन्नैः पादपैरुपशोभिते । सरोभिश्चासितविमलैः पद्मादिपिहितैर्वने ॥१७॥
सारङ्गैरुषितं सार्धं क्रीडन्निर्निजयेच्छया । श्रूयते नेदृशं तत्र नितान्तं परुषं वचः ॥१८॥
अस्मिन् राघव नाकाभे देशे धनसमुज्ज्वले । समस्तो निष्ठुरो लोको ग्रामवासी विशेषतः ॥१९॥
विप्रस्य रूक्षया वाचा क्षोभितोऽसौ ततोऽखिलः । ग्रामः समागतो दृष्ट्वा तेषां रूपं सुरोपमम् ॥२०॥
अब्रवीद् ब्राह्मणैकान्ते[1] पथिकाः क्षणमेककम् । तिष्ठन्तु किमिमे दोषं कुर्वन्ति विनयान्विताः ॥२१॥
ततो निर्भर्त्स्य सकलं तं लोकं कोपलोहितः[2] । बभाषे तौ द्विजः प्राप सारमेयो गजाविव ॥२२॥
निष्क्रामतं परं गेहान्मदीयादपवित्रकौ । एवमादिवचोघातैर्लक्ष्मीमान् कुपितस्ततः ॥२३॥
ऊर्ध्वपादमधोग्रीवं कृत्वा तं ब्राह्मणाधमम् । अवक्षिप्यं प्रकुर्वन्तं क्षोणितारुणलोचनम् ॥२४॥
भ्रमयित्वा क्षितौ यावदास्फालयितुमुद्यतः । रामेण वारितस्तावदिति कारुण्यधारिणा ॥२५॥
सौमित्रे किमिदं क्लीबे प्रारब्धं भवतेदृशम् । मारितेन किमेतेन जीवत्प्रेतेन ते ननु ॥२६॥
मुञ्चैनं त्वरितं क्षुद्रं यावत्प्राणैर्न मुच्यते । अयशः परमेतस्मिल्लभ्यते केवलं मृते ॥२७॥
श्रमणा ब्राह्मणा गावः पशुस्त्रीबालवृद्धकाः । सदोषा अपि शूराणां नैते वध्याः किलोदिताः ॥२८॥

उसने कहा कि हे पापिनि ! तूने इन्हें यहाँ प्रवेश क्यों दिया है ? अरी दुष्टे ! मैं आज तुझे पशुसे भी अधिक दुःसह बन्धनमें डालता हूँ ॥१४॥ देख, जिनका शरीर धूलिसे धूसर हो रहा है, ऐसे ये निर्लज्ज, पापी, ढीठ व्यक्ति मेरी यज्ञशालाको दूषित कर रहे हैं ॥१५॥

तदनन्तर सीताने रामसे कहा कि हे आर्यपुत्र ! इस कुकर्मा तथा अतिशय अपशब्द कहनेवाले इस ब्राह्मणका यह अधम स्थान छोड़ो ॥१६॥ फूलों और फलोंसे आच्छादित वृक्षों तथा कमल आदिसे युक्त अत्यन्त निर्मल सरोवरोंसे सुशोभित वनमें स्वेच्छासे साथ-साथ क्रीड़ा करनेवाले हरिणोंके साथ निवास करना अच्छा, जहाँ इस प्रकारके अत्यन्त कठोर शब्द सुनाई नहीं पड़ते ॥१७-१८॥ हे राघव ! स्वर्गके समान आभावाले इस अतिशय सुन्दर देशमें समस्त लोग निष्ठुर हैं और खासकर ग्रामवासी तो अत्यन्त निष्ठुर हैं ही ॥१९॥ ब्राह्मणके रूक्ष वचनोंसे क्षोभको प्राप्त हुआ समस्त गाँव उनका देवतुल्य रूप देखकर वहाँ आ गया ॥२०॥ गाँवके लोगोंने कहा कि हे ब्राह्मण ! यदि ये पथिक तेरे मकानमें एक ओर क्षण-भरके लिए ठहर जाते हैं तो क्या दोष उत्पन्न कर देंगे ? ये सब बड़े विनयी जान पड़ते हैं ॥२१॥ उसने क्रोधसे लाल होकर सब लोगोंको डाँटते हुए, राम-लक्ष्मणसे कहा कि तुम लोग अपवित्र हो, अतः मेरे घरसे निकलो। ब्राह्मणका राम-लक्ष्मणके प्रति रोष दिखाना ऐसा ही था जैसा कि कोई एक कुत्ता दो हाथियोंके प्रति रोष दिखाता है—उन्हें देखकर भोंकता है। तदनन्तर उसके इस प्रकारके वचन सम्बन्धी आघातसे लक्ष्मणको क्रोध आ गया। वे रुधिरके समान लाल-लाल नेत्रोंके धारक तथा अमांगलिक अपशब्द बकनेवाले उस नीच ब्राह्मणको ऊर्ध्वपाद और अधोग्रीव कर घुमाकर ज्यों ही पृथिवीपर पछाड़नेके लिए उद्यत हुए त्यों ही करुणाके धारी रामने उन्हें यह कहते हुए रोका ॥२२-२५॥ कि हे लक्ष्मण ! तुम इस बेचारे दीन प्राणीपर यह क्या करने जा रहे हो ? यह तो जीवित रहते हुए भी मृतकके समान है, इसके मारनेसे क्या लाभ है ? ॥२६॥ जबतक यह निष्प्राण नहीं होता है तबतक इस क्षुद्रको शीघ्र ही छोड़ दो। इसके मरनेपर केवल अपयश ही प्राप्त होगा ॥२७॥ मुनि, ब्राह्मण, गाय, पशु, स्त्री, बालक और वृद्ध ये सदोष होनेपर भी शूरवीरोंके द्वारा वध्य

१. ब्राह्मणैकान्तं म. । २. लोललोहितः म. ।

इत्युक्त्वा मोचयित्वा तं कृत्वा लक्ष्मणमग्रतः । सीतयाऽनुगतो रामः कुटीराद्विरगात्ततः ॥२९॥
धिग्-धिग् नीचसमासङ्गं दुर्वचःश्रुतिकारणम् । मनोविकारकरणं महापुरुषवर्जितम् ॥३०॥
वरं तरुतले शीते[1] दुर्गमे विपिने स्थितम् । परित्यज्याखिलं ग्रन्थं विहृतं[2] भुवने वरम् ॥३१॥
वरमाहारमुत्सृज्य मरणं सेवितुं[3] सुखम् । अवज्ञातेन नान्यस्य गृहे क्षणमपि स्थितम् ॥३२॥
कूलेषु सरितामद्रेः कुक्षिष्वल्पान्तहारिषु । स्थास्यामो न पुनर्भूयः प्रवेक्ष्यामः खलालयम् ॥३३॥
[4]निन्दन्नेवं खलासङ्गमभिमानं परं वहन् । निर्गत्य ग्रामतः पद्भ्यो वनस्य पदवीं श्रितः ॥३४॥
घनकालस्ततः प्राप्तो नीलयन्नखिलं नभः । पटुगर्जितसंतानप्रतिनादितगह्वरः ॥३५॥
ग्रहनक्षत्रपटलमुपगुह्य समन्ततः । सरावविद्युदुद्योतं जहासेव नभःस्फुटम् ॥३६॥
ग्रीष्मडामरकं घोरं समुत्सार्य घनाघनः । जगर्ज विद्युदङ्गुल्या[5] प्रोषितानिव तर्जयन् ॥३७॥
नभोऽन्धकारितं कुर्वन् धाराभिर्नीलतोयदः । अभिषेक्तुं समारेभे सीतां गज इव श्रियम् ॥३८॥
तिग्मस्तस्ते ततोऽभ्यर्णं पृथुस्कन्धमुपाश्रितम् । उपसस्रुः पुरो गेहसमानस्कन्धमुन्नतम् ॥३९॥
[6]इभकर्णो गणस्तेषामभिभूतोऽथ[7] तेजसा । गत्वा स्वामिनमित्यूचे नत्वा विन्ध्यवनाश्रितम्[8] ॥४०॥
आगत्य नाकतः केऽपि मदीये नाथ सद्मनि । स्थिता यैस्तेजसैवाहं तस्माद्बहिरसितो द्रुतम् ॥४१॥
श्रुत्वा तद्वचनं स्मित्वा विनायकपतिः समम् । वधूभिः प्रस्थितो गन्तुं न्यग्रोधं वरलीलया ॥४२॥

नहीं हैं, ऐसा कहा गया है ॥२८॥ इतना कहकर रामने उसे छुड़ाया और लक्ष्मणको आगे कर वे सीता सहित उस ब्राह्मणकी कुटियासे बाहर निकल आये ॥२९॥ 'जो दुर्वचन सुननेका कारण है, मनमें विकार उत्पन्न करनेवाला है और महापुरुष जिसे दूरसे ही छोड़ देते हैं ऐसी नीच मनुष्योंकी संगतिको धिक्कार है ॥३०॥ शीत ऋतुके समय दुर्गम वनमें वृक्षके नीचे रहना अच्छा है, समस्त परिग्रह छोड़कर संसारमें भ्रमण करते रहना अच्छा है और आहार छोड़कर सुखपूर्वक मर जाना अच्छा है परन्तु तिरस्कारके साथ दूसरेके घरमें एक क्षण भी रहना अच्छा नहीं है ॥३१-३२॥ 'हम नदियोंके तटों और पर्वतोंकी अतिशय मनोहर गुफाओंमें रहेंगे परन्तु अब फिर दुर्जनोंके घरमें प्रवेश नहीं करेंगे' इस प्रकार दुर्जन संसर्गकी निन्दा करते तथा परम अभिमानको धारण करते हुए रामने गाँवसे निकलकर वनका मार्ग लिया ॥३३-३४॥

तदनन्तर समस्त आकाशको नीला करता और तीव्र गर्जनाके समूहसे गुफाओंको प्रतिध्वनित करता हुआ वर्षा काल आया ॥३५॥ उस समय ग्रह और नक्षत्रोंके पटलको सब ओरसे छिपाकर कड़कती हुई बिजलीके प्रकाशके बहाने आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो हँस ही रहा हो ॥३६॥ ग्रीष्म कालके भयंकर विस्तारको दूर हटाकर मेघ गरज रहा था और बिजलीरूपी अंगुलीके द्वारा ऐसा जान पड़ता था मानो प्रवासी मनुष्योंको डाँट ही दिखा रहा हो ॥३७॥ धाराओंके द्वारा आकाशको अन्धकारयुक्त करता हुआ श्यामल मेघ, सीताका अभिषेक करनेके लिए उस तरह तैयार हुआ जिस तरह हाथी लक्ष्मीका अभिषेक करनेके लिए तैयार होता है ॥३८॥ तदनन्तर वे चलते हुए एक निकटवर्ती ऐसे विशाल वटवृक्षके नीचे पहुँचे कि जिसका स्कन्ध घरके समान सुरक्षित था तथा जो अत्यन्त ऊँचा था ॥३९॥

अथानन्तर उनके तेजसे अभिभूत हुआ इभकर्ण नामका यक्ष, विन्ध्याचलके वनमें रहनेवाले अपने स्वामीके पास जाकर तथा नमस्कार कर इस प्रकार बोला कि हे नाथ! स्वर्गसे आकर कोई ऐसे तीन महानुभाव मेरे घरमें ठहरे हैं जिन्होंने अपने तेजसे अभिभूत कर मुझे शीघ्र ही घरके बाहर कर दिया है ॥४०-४१॥ इभकर्णके वचन सुनकर मन्द हास्य करता हुआ यक्षराज, अपनी

---

१. सीते म., ब. । २. भावे क्तः, विहरणमित्यर्थः । ३. सेवितुं म. । ४. निन्दन्नेव म. । ५. प्रेषितानिव म. । ६. इभकर्णनामधेयो यक्षः । ७. भूतोऽपि ब., म. । ८. विन्ध्यमुपाश्रितम् ।

अधीश्वरः स यक्षाणां महाविभवसंगतः । रम्यकाननसंसक्तः क्रीडन्पूतनसंज्ञकः ॥४३॥
दूरादेव च तौ दृष्ट्वा महारूपौ गणाधिपः । प्रयुज्यावधिमज्ञासीद् बलनारायणाविति ॥४४॥
ततस्तत्प्रभावेन वात्सल्येन च भूयसा । क्षणेन नगरी तेषां तेन रम्या विनिर्मिता ॥४५॥
ततस्ते सुखसंपन्नं सुप्ताः किल सुचारुणा । प्रभाते गीतशब्देन प्रबोधं समुपागताः ॥४६॥
तत्रैवेऽवस्थितमात्मानमपश्यन् रत्नराजिते । प्रासादं च महारम्यं बहुभूमिकमुज्ज्वलम् ॥४७॥
देहोपकारणव्यग्रं परिवर्गं च सादरम् । नगरं च महाशब्दप्राकारगोपुरशोभितम् ॥४८॥
तेषां महानुभावानां दृष्ट्वेऽस्मिन् सहसा पुरे । न मनो विस्मयं प्राप तद्हि क्षुद्रविचेष्टितम् ॥४९॥
अशेषवस्तुसंपन्नास्तत्र ते चारुचेष्टिताः । अवस्थानं सुखं चक्रुरमरा इव भोगिनः ॥५०॥
यथाधिपेन रामस्य पुरी यस्मात् प्रकल्पिता । ततो महीतले ख्यातिं गता रामपुरीति सा ॥५१॥
प्रतीहारा भटाः शूरा अमात्याः [1]सहयो गजाः । पौराश्च विविधास्तस्यामयोध्यायामिवाभवन् ॥५२॥
[2]कुत्साप्रनगरेशोऽथ गणिनं पृष्टवानिति । तयोर्नाथ तथाभूतो स द्विजः किमु चेष्टितः ॥५३॥
उवाच च गणस्वामी शृणु श्रेणिक स द्विजः । प्रयातः प्रातरुत्थाय दात्रहस्तो वनस्थलीम् ॥५४॥
भ्रमंश्च समिदाद्यर्थमकस्माद्भूर्ध्वलोचनः । ददर्श पुरीं पृथ्वीमपश्यद् विस्मिताननः ॥५५॥
असिताभिः सिताभिश्च पताकाभिर्विराजिताम् । शरन्मेघसमानैश्च भवनैरतिभासुरैः ॥५६॥
पुण्डरीकातपत्रेण मध्ये समुपलक्षितम् । महाप्रासादमेकं च कैलासस्येव शावकम् ॥५७॥

स्त्रियोंके साथ लीलापूर्वक उस वटवृक्षके पास जानेके लिए चला ॥४२॥ यक्षोंका वह अधिपति महावैभवसे युक्त था, रम्य वनोंमें क्रीड़ा करता आ रहा था और 'पूतन' नामसे सहित था ॥४३॥ यक्षराजने अत्यन्त सुन्दर रूपके धारक राम-लक्ष्मणको दूरसे ही देख अवधिज्ञान जोड़कर जान लिया कि ये बलभद्र और नारायण हैं ॥४४॥ तदनन्तर उनके प्रभाव एवं बहुत भारी वात्सल्यसे उसने उनके लिए क्षण-भरमें एक सुन्दर नगरीकी रचना कर दी ॥४५॥ तत्पश्चात् वे वहाँ सुखसे सोये और प्रातःकाल अतिशय मनोहर संगीतके शब्दसे प्रबोधको प्राप्त हुए ॥४६॥ उन्होंने अपने आपको रत्नोंसे सुशोभित शय्यापर अवस्थित देखा, अनेक खण्डका अत्यन्त मणीय उज्ज्वल महल देखा, आदरके साथ शरीरकी सेवा करनेमें व्यग्र सेवकोंका समूह देखा और महाशब्द, प्राकार तथा गोपुरोंसे शोभित नगर देखा ॥४७-४८॥ सहसा इस नगरको देखनेपर उन महानुभावोंका मन आश्चर्यको प्राप्त नहीं हुआ सो ठीक ही है क्योंकि यह सब चमत्कार क्षुद्र चेष्टा थी ॥४९॥ सुन्दर चेष्टाओंको धारण करनेवाले राम, सीता और लक्ष्मण समस्त वस्तुओंसे युक्त हो देवोंके समान भोग भोगते हुए उस नगरीमें सुखसे रहने लगे ॥५०॥ चूँकि वह नगरी यक्षराजने रामके लिए बनायी थी इसलिए महीतलपर रामपुरी इसी नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुई ॥५१॥ द्वारपाल, भट, शूरवीर, मन्त्री, घोड़े, हाथी तथा नाना प्रकारके नगरवासी जिस प्रकार अयोध्यामें थे उसी प्रकार इस रामपुरीमें भी थे ॥५२॥ तदनन्तर राजा श्रेणिकने गौतम स्वामीसे पूछा कि हे नाथ ! राम-लक्ष्मणके साथ उस प्रकार व्यवहार करनेवाले उस कपिल ब्राह्मणका क्या हाल हुआ ? सो कहिए ॥५३॥ तब गौतम स्वामी बोले कि हे श्रेणिक ! सुन, वह ब्राह्मण प्रभात काल उठकर तथा हँसिया हाथमें लेकर वनकी ओर चला ॥५४॥ वह इन्धन आदिकी प्राप्तिके लिए इधर-उधर घूम रहा था कि अकस्मात् ही दृष्टि ऊपर उठानेपर उसने एक विशाल नगरी देखी। देखकर उसका मुख आश्चर्यसे चकित हो गया ॥५५॥ वह नगरी सफेद तथा अन्य रंगोंकी अनेक पताकाओं और शरद् ऋतुके मेघोंके समान अतिशय देदीप्यमान भवनोंसे सुशोभित थी ॥५६॥ नगरीके मध्यमें सफेद कमलरूपी छत्रसे सहित एक बड़ा भवन था जो ऐसा जान पड़ता था मानो कैलासका

१. अश्वाः । २. राजगृहनगराधिपः श्रेणिकराजः । ३. समिदाद्यर्थ-म. ।

अचिन्तयच्च धीरेषा अटव्यासीन्मृगाश्रिता । यस्यां समित्कुशार्थं दुःखं पर्यटितं सदा ॥५८॥
अकस्मात् सेयमुत्तुङ्गशृङ्गमालोपशोभितैः । रत्नपर्वतसंकाशैर्विराजति पुरी गृहैः ॥५९॥
सरांस्यमूनि रम्याणि पद्मादिपिहितानि च । दृश्यन्ते यानि नो पूर्वं मया दृष्टानि जातुचित् ॥६०॥
उद्यानानि सुरम्याणि सेवितानि जनैर्भृशम् । दृश्यन्ते देवधामानि लक्षितानि महाध्वजैः ॥६१॥
वारणैः सतिभिर्गोभिर्महिषीभिश्च सङ्कटा । अस्योपकण्ठधरणी घण्टादिस्वनपूरिता ॥६२॥
किमेषा नगरी नाकादवतीर्णा भवेदिह । पातालाद्युद्गतादोस्वित् कस्यापि सुमनर्मणः ॥६३॥
स्वप्नमेवं नु पश्यामि मायेयं मम कस्यचित् । किंवु गन्धर्वनगरं पित्तव्याकुलितोऽस्मि भोः ॥६४॥
[1]उपालिङ्गमिदं किं स्यात् प्रायेणास्यान्तिकस्य मे । इति संचिन्तयन् प्राप्तो विषादं परमं द्विजः ॥६५॥
दृष्ट्वा च प्रमदामेकां नानालंकारधारिणीम् । अपृच्छदुपसृत्येयं भद्रे कस्य पुरीत्यसौ ॥६६॥
सा जगौ जातु पश्यस्य पुरीयं किं न ते श्रुता । यस्य लक्ष्मीधरो भ्राता सीता च प्राणवल्लभा ॥६७॥
एतत् पश्यसि यद् विप्र पुर्या मध्ये महागृहम् । शरदभ्रसमच्छायमत्रासौ पुरुषोत्तमः ॥६८॥
लोको दुर्लभदर्शेन सर्वोनेनातिदुर्विधः[2] । यच्छता वाञ्छितं द्रव्यं अमितः पार्थिवोपमः ॥६९॥
विप्रोऽवोचदुपायेन केन पश्यामि सुन्दरि । पद्मं सद्भावतः पृष्टा निवेदयितुमर्हसि ॥७०॥
इत्युक्त्वा समिधाभारं निक्षिप्य भुवि साञ्जलिः । पपात पादयोस्तस्याः सा कस्य न मनोहरा ॥७१॥

बच्चा ही हो ॥५७॥ यह सब देख, वह ब्राह्मण विचार करने लगा कि क्या यह स्वर्ग है ? अथवा मृगोंसे सेवित वही अटवी है ? जिसमें मैं इन्धन तथा कुशा आदिके लिए निरन्तर दुःखपूर्वक भटकता रहता था ॥५८॥ यह नगरी ऊँचे-ऊँचे शिखरोंकी मालासे शोभायमान, तथा रत्नमयी पर्वतोंके समान दीखनेवाले भवनोंसे अकस्मात् ही सुशोभित हो रही है ॥५९॥ यहाँ कमल आदिसे आच्छादित जो ये मनोहर सरोवर दिखाई दे रहे हैं वे मैंने पहले कभी नहीं देखे ॥६०॥ यहाँ मनुष्योंके द्वारा सेवित सुरम्य उद्यान और बड़ी-बड़ी ध्वजाओंसे युक्त मन्दिर दिखाई पड़ते हैं ॥६१॥ इस नगरकी निकटवर्ती भूमि, हाथियों, घोड़ों, गायों और भैंसोंसे संकीर्ण तथा घण्टा आदिके शब्दोंसे पूर्ण है ॥६२॥

क्या यह नगरी यहाँ स्वर्गसे अवतीर्ण हुई है ? अथवा किसी पुण्यात्माके प्रभावसे पातालसे निकली है ॥६३॥ क्या मैं ऐसा स्वप्न देख रहा हूँ ? अथवा यह किसीकी माया है ? या गन्धर्वका नगर है ? अथवा मैं स्वयं पित्तसे व्याकुलित हो गया हूँ ? ॥६४॥ अथवा क्या मेरा निकट कालमें मरण होनेवाला है सो उसका चिह्न प्रकट हुआ है ? इस प्रकार विचार करता हुआ वह ब्राह्मण अत्यधिक विषादको प्राप्त हुआ ॥६५॥ उसी समय उसे नाना अलंकार धारण करनेवाली एक स्त्री दिखी सो उसके पास जाकर उसने पूछा कि हे भद्रे ! यह किसकी नगरी है ? ॥६६॥ उसने कहा कि यह रामकी नगरी है, क्या तुमने कभी सुना नहीं ? उन रामकी कि लक्ष्मण जिनके भाई हैं और सीता जिनकी प्राणप्रिया है ॥६७॥ हे ब्राह्मण ! नगरीके बीचमें जो यह शरद् ऋतुके मेघके समान कान्तिवाला बड़ा भवन देख रहे हो इसीमें वे पुरुषोत्तम रहते हैं ॥६८॥ जिनका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है, ऐसे इन पुरुषोत्तमने मन वाञ्छित द्रव्य देकर सभी दरिद्र मनुष्योंको राजाके समान बना दिया है ॥६९॥ ब्राह्मणने कहा कि हे सुन्दरि ! मैं किस उपायसे रामके दर्शन कर सकता हूँ ? मैं तुमसे सद्भावसे पूछ रहा हूँ अतः बतलानेके योग्य हो ॥७०॥ इतना कहकर उस ब्राह्मणने ईन्धनका भार पृथिवी पर रख दिया और स्वयं हाथ जोड़कर उस स्त्रीके चरणोंमें गिर पड़ा, सो ठीक ही है क्योंकि वह स्त्री किसका मन नहीं हरती थी ? ॥७१॥

---

१. उपलिङ्ग क. । उपालिङ्गं मरणचिह्नम् इति टिप्पणपुस्तके टिप्पणी । २. अतिदरिद्रः ।

ततोऽसौ कृपयाऽऽकृष्टा सुमाया नाम यक्षिणी । जगाद विप्रं परमं त्वयेदं साहसं कृतम् ॥७२॥
अस्याः पुरः समासन्नां कथं त्वं भुवमागतः । आरक्षकैरलं घोरैर्नूनं नश्यसि वीक्षितः ॥७३॥
अस्या द्वारत्रयं पुर्याः दुष्प्रवेशं सुरैरपि । अशून्यं सर्वदा वीरै रक्षकैः सुनियामकैः ॥७४॥
सिंहकारणवाद्र्लनुरूपवपुर्भिर्महोज्ज्वलैः । एभिर्विभीषिता मृत्युं मानुषा यान्त्यसंशयम् ॥७५॥
पूर्वद्वारमदो यत्तु तस्य पश्यसि यान् बहिः । प्रासादानन्तिकान्तांस्तान् बलाकाच्छादनच्छवीन् ॥७६॥
मणितोरणरम्येषु विविधध्वजराजिषु । अर्हतामिन्द्रवन्द्यानामसमीषु[1] प्रतियातनाः ॥७७॥
सामायिकं पुरस्कृत्य तासां यः स्तवनं नरः । नमोऽर्हत्सिद्धसिस्वागपूर्वं पठति भावतः ॥७८॥
गुरूपदेशयुक्तोऽसौ सम्यग्दर्शनभूषितः । विशतीन्द्रककुद्द्वारं हन्यते स्वनमस्कृतिः ॥७९॥
अणुव्रतधरो यो ना गुणशीलविभूषितः । तं रामः परया प्रीत्या वाञ्छितेन समर्चति ॥८०॥
ततस्तस्या वचः श्रुत्वा द्विजोऽसावमृतोपमम् । जगाम परमं हर्षं लब्ध्वोपायं धनागमे ॥८१॥
नमस्कारं च कृत्वाऽस्या भूयो भूयस्तुतिं तथा । रोमाञ्चाचितसर्वाङ्गः परमाद्भुतभावितः ॥८२॥
मुनेश्चारित्रशूरस्य सकाशं कृतालिः । प्रणम्य शिरसाऽपृच्छदणुव्रतधरक्रियाम् ॥८३॥
ततस्तेन समुद्दिष्टं धर्मं सद्मनिवासिनाम् । स जग्राहानुयोगांश्च शुश्राव चतुरः सुधीः ॥८४॥
धनलोभाभिभूतस्य धर्मं शुश्रूषतोऽस्य सः । ग्रहणे परमार्थस्य परिणामसुपागतः ॥८५॥
अवगम्य ततो धर्मं द्विजोऽवोचत् सुमानसः । नाथ तेऽद्योपदेशेन चक्षुरुन्मीलितं मम ॥८६॥

तदनन्तर दयासे आकृष्ट हुई उस सुमाया नामकी यक्षीने ब्राह्मणसे कहा कि तूने यह बड़ा साहस किया है ॥७२॥ तू इस नगरीकी समीपवर्ती भूमिमें कैसे आ गया ? यदि भयंकर पहरेदार तुझे देख लेते तो तू अवश्य ही नष्ट हो जाता ॥७३॥ इस नगरीके तीन द्वारोंमें तो देवोंको भी प्रवेश करना कठिन है क्योंकि वे सदा सिंह, हाथी और शार्दूलके समान मुखवाले तेजस्वी, वीर तथा कठोर नियन्त्रण रखनेवाले रक्षकोंसे अशून्य रहते हैं। इन रक्षकोंके द्वारा डरवाये हुए मनुष्य निःसन्देह मरणको प्राप्त हो जाते हैं ॥७४-७५॥ इनके सिवाय जो वह पूर्व द्वार तथा उसके बाहर समीप ही बने हुए बगलाके पंखके समान कान्तिवाले सफेद-सफेद भवन तू देख रहा है वे मणिमय तोरणोंसे रमणीय तथा नाना ध्वजाओंकी पंक्तिसे सुशोभित जिन-मन्दिर हैं। उनमें इन्द्रोंके द्वारा वन्दनीय अरहन्त भगवान्‌की प्रतिमाएँ हैं जो मनुष्य सामायिक कर तथा 'अर्हत् सिद्धेभ्यो नमः' अर्थात् 'अरहन्त तथा सिद्धोंको नमस्कार हो' इस प्रकार कहता हुआ भाव पूर्वक उन प्रतिमाओं-का स्तवन पढ़ता है तथा निर्ग्रन्थ गुरुका उपदेश पाकर सम्यग्दर्शन धारण करता है वही उस पूर्व-द्वारमें प्रवेश करता है। इसके विपरीत जो मनुष्य प्रतिमाओंको नमस्कार नहीं करता है वह मारा जाता है ॥७६-७९॥ जो मनुष्य अणुव्रतका धारी तथा गुण और शीलसे अलंकृत होता है, राम उसे बड़ी प्रसन्नतासे इच्छित वस्तु देकर सन्तुष्ट करते हैं ॥८०॥

तदनन्तर उसके अमृत तुल्य वचन सुनकर तथा धन प्राप्तिका उपाय प्राप्तकर वह ब्राह्मण परम हर्षको प्राप्त हुआ ॥८१॥ उसका समस्त शरीर रोमांचोंसे सुशोभित हो गया तथा उसका हृदय अत्यन्त अद्भुत भावोंसे युक्त हो गया। वह उस स्त्रीको नमस्कार कर तथा बार-बार उसकी स्तुति कर चारित्र पालन करनेमें शूर-वीर मुनिराजके पास गया और अंजलि बाँध शिरसे प्रणाम कर उसने उनसे अणुव्रत धारण करनेवालोंकी क्रिया पूछी ॥८२-८३ तदनन्तर उस चतुर बुद्धिमान् ब्राह्मणने मुनिराजके द्वारा उपदिष्ट गृहस्थ धर्म अंगीकृत किया तथा अनुयोगोंका स्वरूप सुना ॥८४॥ पहले तो वह ब्राह्मण धनके लोभसे अभिभूत होकर धर्म श्रवण करना चाहता था पर अब वास्तविक धर्म ग्रहण करनेके भावको प्राप्त हो गया ॥८५॥ मुनिराजसे धर्मका स्वरूप जानकर जिसका हृदय

१. प्रतिबिम्बाः ।

तृषार्तेनेव सत्तोयं छायेवाश्रयकाङ्क्षिणा । क्षुधार्तेनेव मिष्टान्नं रोगिणेव सुभेषजम् ॥८७॥
दुष्टयप्रतिपन्नेन वर्त्मनेप्सितदेशगम् । यानपात्रमिवाम्भोधौ व्याकुलेन निमज्जता ॥८८॥
मयेदं शासनं जैनं सर्वदुःखविनाशनम् । [1]लब्धं भवप्रसादेन दुर्लभं पुरुषाधमैः ॥८९॥
त्रैलोक्येऽपि न मे कश्चिन्नवता विद्यते समः । येनायमीदृशो मार्गो दर्शितो जिनदेशितः ॥९०॥
इत्युक्त्वा शिरसा पादौ वन्दित्वाञ्जलियोगिना[2] । गुरुं प्रदक्षिणीकृत्य द्विजः स भवनं गतः ॥९१॥
जगाद वातिहृष्टस्तां प्रसन्नविकचेक्षणः । दयिते परमाश्चर्यं गुरोरद्य मया श्रुतम् । ॥९२॥
श्रुतं तव न तत्पित्रा जनकेनाथ वा पितुः । किं वाऽत्र बहुभिः प्रोक्तैर्गोत्रेणापि न ते श्रुतम् ॥९३॥
दृष्टं ब्राह्मणि यातेन यदरण्यं मयाद्भुतम् । तद्गुरोरुपदेशेन नेदानीं विस्मयाय मे ॥९४॥
किं किं भो ब्राह्मण ब्रूहि दृष्टं किंवा त्वया श्रुतम् । उक्तोऽवोचत्स नाहं शक्नोमि हर्षात्कथयितुं प्रिये ॥९५॥
आदरेणानुयुक्तश्च कौतुकिन्या पुनः पुनः । विप्रोऽवोचत भव्यार्ये यन्मया श्रुतमद्भुतम् ॥९६॥
समिदर्थं प्रयातेन वनं तस्य समीपतः । दृष्टा पुरी मया रम्या यत्रासीद् गहनं वनम् ॥९७॥
तदासन्ने मया चैका दृष्टा नारी विभूषिता । नूनं सा देवता [3]कापि मनोहरणभाषिता ॥९८॥
पृष्टा च सा मयाख्यातं तया रामपुरीति च । ददाति श्रावकेभ्योऽत्र किल रामो महद्धनम् ॥९९॥

अत्यन्त शुद्ध हो गया था, ऐसा वह ब्राह्मण बोला कि हे नाथ ! आज आपके उपदेशसे तो मेरे नेत्र खुल गये हैं ॥८६॥ जिस प्रकार प्याससे पीड़ित मनुष्यको उत्तम जल मिल जाय, आश्रयकी इच्छा करनेवाले पुरुषको छाया मिल जाय, भूखसे पीड़ित मनुष्यको मिष्टान्न मिल जाय, रोगीके लिए उत्तम औषधि मिल जाय, कुमार्गमें भटके हुएको इच्छित स्थान पर भेजनेवाला मार्ग मिल जाय, और बड़ी व्याकुलतासे समुद्रमें डूबनेवालोंको जहाज मिल जाय, उसी प्रकार आपके प्रसादसे सर्व दुःखोंको नष्ट करनेवाला यह जैन शासन मुझे प्राप्त हुआ है। यह जैन शासन नीच मनुष्योंके लिए सर्वथा दुर्लभ है ॥८७–८९॥ चूँकि आपने यह ऐसा जिन प्रदर्शित मार्ग मुझे दिखलाया है इसलिए तीन लोकमें भी आपके समान मेरा हितकारी नहीं है ॥९०॥ इस प्रकार कहकर तथा अंजलिबद्ध शिरसे मुनिराजके चरणोंमें नमस्कार कर प्रदक्षिणा देता हुआ वह ब्राह्मण अपने घर चला गया ॥९१॥

तदनन्तर जिसके नेत्र कमलके समान विकसित हो रहे थे तथा जो अत्यन्त हर्षसे युक्त था ऐसा वह ब्राह्मण घर जाकर अपनी स्त्रीसे बोला कि हे प्रिये ! आज मैंने गुरुसे परम आश्चर्य सुना है ॥९२॥ ऐसा परम आश्चर्य कि जिसे तेरे पिताने, पिताके पिताने अथवा बहुत कहनेसे क्या तेरे गोत्र भरने नहीं सुना होगा ॥९३॥ हे ब्राह्मणि ! वनमें जाकर जो अद्भुत बात मैंने देखी थी अब वह गुरुके उपदेशसे आश्चर्य करनेवाली नहीं रही ॥९४॥ ब्राह्मणीने कहा कि हे ब्राह्मण ! तुमने क्या-क्या देखा है और क्या-क्या सुना है ? सो कहो। ब्राह्मणीके इस प्रकार कहने पर ब्राह्मण बोला कि हे प्रिये ! मैं हर्षके कारण कहनेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥९५॥ तदनन्तर कौतुकसे भरी ब्राह्मणीने जब आदरके साथ बार-बार पूछा तब वह विप्र बोला कि हे आर्ये ! जो आश्चर्य मैंने सुना है वह सुन ॥९६॥

मैं लकड़ियाँ लानेके लिए जंगल गया था सो उसके समीप ही जहाँ सघन वन था वहाँ एक मनोहर नगरी दिखी ॥९७॥ मैंने उस नगरीके पास एक आभूषणोंसे विभूषित स्त्री देखी। जान पड़ता है कि मनोहर भाषण करनेवाली वह कोई देवी होगी ॥९८॥ मैंने उससे पूछा तो उसने कहा कि यह रामपुरी नामकी नगरी है, यहाँ राजा रामचन्द्र श्रावकोंके लिए बहुत भारी

---

१. लब्धोपायं म. । २. योगिनः म । ३. क्वापि म. ।

ततो गत्वा मया साधोर्जिनेन्द्रवचनं श्रुतम् । आत्मा मे तर्पितस्तेन कुदृष्टिपरितापितः ॥१००॥
मुनयो यं[1] समाश्रित्य तप्यन्ते सुधियस्तपः । त्यक्त्वा परिग्रहं सर्वं मुक्त्यालिङ्गनलालसाः ॥१०१॥
सोऽर्हन्धर्मो मया लब्धस्त्रैलोक्यैकमहानिधिः । अमी यतो बहिर्भूताः क्लिश्यन्ते व्यर्थवादिनः ॥१०२॥
यथाभूतो मुनेर्धर्मः श्रुतो धर्मेण तादृशः । ब्राह्मण्यै कथितः सर्वो मलवर्जितचेतसा ॥१०३॥
ब्राह्मणी विनिशम्यैतं सुशर्मा वाक्यमब्रवीत् । मयापि त्वत्प्रसादेन लब्धो धर्मो जिनोदितः ॥१०४॥
विधेः पश्य गतां योगं मोहाद् विफलकाङ्क्षिणा । वाञ्छतापि त्वया लब्धमर्हन्नामरसायनम्[2] ॥१०५॥
मयासीन्मन्दधीभाजा मणिर्हस्तगतो यथा । निजाङ्गणगतः साधुरपमानमुपाहृतः ॥१०६॥
उपवासपरिश्रान्तश्रमणं तं निरम्बरम् । निराकृत्याव्रवेलायां मार्गोऽन्यस्तेन वीक्षितः ॥१०७॥
अर्हन्तं समतिक्रम्य पाकशासनवन्दितम्[3] । ज्योतिष्कव्यन्तरादीनां शिरसा प्रणतिः कृता ॥१०८॥
अहिंसानिर्मलं सारमर्हद्धर्मरसायनम् । अज्ञानात् समतिक्रम्य विषमं भक्षितं विषम् ॥१०९॥
मानुषद्वीपमासाद्य त्यक्त्वा साधुपरीक्षितम् । धर्मरत्नं कुतः कष्टं विभीतकपरिग्रहः ॥११०॥
सर्वमक्षप्रवर्तेषु दिवारात्रौ च भोजिषु । अव्रतेषु विशीलेषु दत्तं फलविवर्जितम् ॥१११॥
यं किलातिथिवेलायामागतं विभवोचितम् । यो नार्चयति दुर्बुद्धिस्तस्य धर्मो न विद्यते ॥११२॥
परित्यक्तोत्सवतिथिः सर्वस्मैकान्तनिस्पृहः । निकेतरहितः सोऽयमतिथिः श्रमणः स्मृतः ॥११३॥
येषां न भोजनं हस्ते नाप्यासक्तपरिग्रहः । ते स्मरयन्ति निर्ग्रन्थाः पाणिपात्रपुटाशिनः ॥११४॥

धन देते हैं ॥९९॥ तदनन्तर मैंने मुनिराजके पास जाकर जिनेन्द्र भगवान्‌के वचन सुने उससे मेरी आत्मा जो कि मिथ्या दर्शनसे संतप्त थी अत्यन्त सन्तुष्ट हो गयी ॥१००॥ मुक्तिके आलिंगनकी लालसा रखनेवाले बुद्धिमान् मुनि जिस धर्मका आश्रय ले समस्त परिग्रहका त्यागकर तप करते हैं वह अरहन्तका धर्म मैंने प्राप्त कर लिया। वह धर्म तीनों लोकोंकी महानिधि है, इससे बहिर्भूत जो अन्यवादी हैं वे व्यर्थ ही क्लेश उठाते हैं ॥१०१-१०२॥ तदनन्तर उस धर्मात्माने मुनिराजसे जैसा वास्तविक धर्म सुना था वह सब शुद्ध हृदयसे उसने ब्राह्मणीके लिए कह दिया ॥१०३॥ उसे सुन सुशर्मा ब्राह्मणी ब्राह्मणसे बोली कि मैंने भी तुम्हारे प्रसादसे जिनेन्द्र प्रतिपादित धर्म प्राप्त कर लिया है ॥१०४॥ 'मेरा यह भाग्यका योग तो देखो कि जो मोहवश विषफलकी इच्छा कर रहे थे तथा जिसे तद्विषयक रंचमात्र भी इच्छा नहीं थी ऐसे तुमने अर्हन्तका नामरूपी रसायन प्राप्त कर लिया ॥१०५॥ जिस प्रकार किसी मूर्खके हाथमें मणि आ जाय और वह तिरस्कार कर उसे दूर कर दे उसी प्रकार मुझ मूर्खके गृहांगणमें साधु आये और मैंने उनका अपमानकर उन्हें दूर कर दिया ॥१०६॥ उस दिन आहारके समय उपवाससे खिन्न दिगम्बर मुनि घर आये सो उन्हें हटाकर मैंने दूसरे साधुका मार्ग देखा ॥१०७॥ जिन्हें इन्द्र भी नमस्कार करता है ऐसे अर्हन्तको छोड़कर मैंने ज्योतिषी तथा व्यन्तरादिक देवोंको शिर झुका-झुकाकर नमस्कार किया ॥१०८॥ अर्हन्त भगवान्‌का धर्मरूपी रसायन अहिंसासे निर्मल तथा सारभूत है सो उसे छोड़कर मैंने अज्ञान वश विषम विषका भक्षण किया है ॥१०९॥ बड़े खेदकी बात है कि मैंने मनुष्य द्वीपको पाकर साधुओं द्वारा परीक्षित धर्मरूपी रत्न तो छोड़ दिया और उसके बदले बहेड़ा अंगीकार किया ॥११०॥ जो इन्द्रियोंके विषयोंमें प्रवृत्त हैं, रात दिन इच्छानुसार खाते हैं, व्रत रहित हैं तथा शीलसे शून्य हैं, ऐसे साधुओंके लिए मैंने जो कुछ दिया वह सब निष्फल गया ॥१११॥ जो दुर्बुद्धि मनुष्य आहारके समय आये हुए अतिथिका अपनी सामर्थ्यके अनुसार सन्मान नहीं करता है—उसे आहार आदि नहीं देता है उसके धर्म नहीं है ॥११२॥ जिसने उत्सवकी तिथिका परित्याग कर दिया है, जो सर्व प्रकारके परिग्रहसे बिलकुल निःस्पृह है तथा घरसे रहित है ऐसा साधु ही अतिथि कहलाता है ॥११३॥ जिनके

---

१. यत् समाश्रित्य म.। २. विगता इच्छा यस्य स तेन। ३. इन्द्रवन्दितं।

स्वकरीरेऽपि निस्संगा ये क्षुभ्यन्ति न जातुचित् । ते निष्परिग्रहा ज्ञेया मुक्तिलक्षणभूषिताः ॥११५॥
एवमुद्गतसद्बुद्धिः कुदृष्टिमलवर्जिता । सुशर्मा शुशुभे पत्न्या भरण्येव बुधे परम् ॥११६॥
पादमूले ततो नीत्वा गुरोस्तस्यैव सादरम् । अणुव्रतानि सामोदा ब्राह्मणी तेन लम्भिता ॥११७॥
विज्ञाय कपिलं रक्तं परमं जिनशासने । कुलान्याशीर्विषोग्राणि विप्राणां भेजिरे शमम् ॥११८॥
मुनिसुव्रतनाथस्य संप्राप्य सुदृढं मतम् । बभूवुः श्रावकास्तीव्रा ऊचुश्चैव सुबुद्धयः ॥११९॥
कर्मभारगुरुभूता मानोत्तानितमस्तकाः । स्तोकेन नरकं घोरं न याता स्मः प्रमादिनः ॥१२०॥
अज्ञातमिदमप्राप्तं जन्मान्तरशतेष्वपि । जिनेन्द्रशासनं ब्रह्म कृच्छ्राद् प्राप्तं सुनिर्मलम् ॥१२१॥
ध्यानाग्निशुक्षिणाविद्धे मनऋत्विक्समाहिताः । स्वकर्मसमिधो भावसर्पिषा जुहुमोऽधुना ॥१२२॥
इति केचित् समाधाय मनः संवेगनिर्भराः । विरक्ताः सर्वसंगेभ्यो बभूवुः श्रमणोत्तमाः ॥१२३॥
सागारधर्मरक्तस्तु कपिलः परमक्रियः । कदाचिद् ब्राह्मणीमूचे सदभिप्रायवर्तिनीम् ॥१२४॥
कान्ते रामपुरीं किं नो व्रजामोऽद्य समूर्जितम् । विशुद्धचेष्टितं द्रष्टुं रामं[2] राजीवलोचनम् ॥१२५॥
आशापरायणं नित्यमुपायगतमानसम् । दारिद्र्यपथारिभी[3] मग्नमात्मानं कुक्षिपूरणे ॥१२६॥
जनमुत्तारयत्येष किल भव्यानुकम्पकः । इति कीर्तिर्भवत्यस्य निर्मलाह्लादकारिणी ॥१२७॥
उत्तिष्ठैवं गृहाणैवं प्रिये पुष्पकरण्डकम् । करोम्यहमपि स्कन्धे सुकुमारमिमं शिशुम् ॥१२८॥

हाथमें न भोजन है न जो अपरिग्रह परिग्रह रखते हैं तथा जो हस्तरूपी पात्रमें भोजन करते हैं ऐसे निर्ग्रन्थ साधु ही संसार-समुद्रसे पार करते हैं ॥११४॥ जो अपने शरीरमें भी निःस्पृह हैं तथा जो कभी बाह्य विषयोंमें नहीं लुभाते और मुक्तिके लक्षण अर्थात् चिह्न स्वरूप दिगम्बर मुद्रासे विभूषित रहते हैं उन्हें निर्ग्रन्थ जानना चाहिए' ॥११५॥ इस प्रकार जिसे सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ था तथा जो मिथ्या दर्शनरूपी मलसे रहित थी ऐसी सुशर्मा नामकी ब्राह्मणी पतिके साथ बुध ग्रहके साथ भरणी नक्षत्रके समान सुशोभित हो रही थी ॥११६॥

तदनन्तर उस ब्राह्मणने हर्षसे ब्राह्मणीको उन्हीं गुरुके पादमूलमें ले जाकर तथा आदर सहित नमस्कार कर अणुव्रत ग्रहण कराये ॥११७॥ जो पहले आशीविष सांपके समान अत्यन्त उग्र थे ऐसे ब्राह्मणोंके कुल, कपिलको जिनशासनमें अनुरक्त जानकर शान्तिभावको प्राप्त हो गये ॥११८॥ उनमें जो सुबुद्धि थे वे मुनिसुव्रत भगवान्का अत्यन्त सुदृढ़ मत प्राप्त कर श्रावक हो गये तथा इस प्रकार बोले कि हम लोग कर्मोंके भारसे वजनदार थे, अहंकारसे हमारे मस्तक ऊपर उठ रहे थे और हम निरन्तर प्रमादसे युक्त रहते थे परन्तु अब जिनधर्मके प्रसादसे भयंकर नरकमें नहीं जावेंगे ॥११९-१२०॥ इस जिनशासनको हमने सैकड़ों जन्मोंमें भी नहीं जाना, न प्राप्त किया किन्तु आज अतिशय निर्मल यह जिनशासन रूपी ब्रह्म बड़े कष्टसे प्राप्त किया है ॥१२१॥ अब हम मनरूपी होताके साथ मिलकर भावरूपी घीके साथ अपनी कर्मरूपी समिधाओंको ध्यानरूपी देदीप्यमान अग्निमें होमेंगे ॥१२२॥ इस प्रकार मनको स्थिर कर संवेगसे भरे हुए कितने ही ब्राह्मण सर्वपरिग्रहसे विरक्त हो उत्तम मुनि हो गये ॥१२३॥ परन्तु कपिल श्रावकधर्ममें आसक्त रहकर ही उत्तम आचरण करता था। एक दिन वह उत्तम अभिप्राय रखनेवाली ब्राह्मणीसे बोला ॥१२४॥ कि हे प्रिये ! आज हम लोग, अतिशय बलवान्, विशुद्ध चेष्टाके धारक तथा कमलके समान नेत्रोंसे युक्त उन श्रीरामके दर्शन करनेके लिए रामपुरी क्यों नहीं चलें ? ॥१२५॥ वे भव्य जीवोंपर अनुकम्पा करनेवाले हैं तथा जो निरन्तर आशामें तत्पर रहता है, जिसका मन निरन्तर धनोपार्जनके उपाय जुटानेमें ही लगा रहता है, जो दरिद्रतारूपी समुद्रमें मग्न है, और पेट भरना भी जिसे कठिन है ऐसे दरिद्र मनुष्यका वे उद्धार करते हैं, इस प्रकार आनन्ददायिनी

---

१. याताः स्म म., ज. । २. कमललोचनम् । ३. जन्मदरिद्रम् । इतः ज. पुस्तके टिप्पणम् ।

एवमुक्त्वा तथा कृत्वा दम्पती संपदान्वितौ । स्वशक्त्या गन्तुमुद्युक्तौ शुद्धवेषविभूषितौ ॥१२९॥
व्रजतोश्च तयोरग्रा उत्तस्थुः पन्नगाः पथि । दंष्ट्राकरालवक्त्राश्च वेताला स्तारहासिनः ॥१३०॥
एवमादीनि वस्तूनि भीषणान्यवलोक्य तौ । निष्कम्पहृदयौ भूत्वा स्तुतिमेतामुपागतौ ॥१३१॥
नमस्त्रिलोकवन्द्येभ्यो जिनेभ्यः सततं त्रिधा । उत्तीर्णभवपङ्केभ्यो दातृभ्यः परमं शिवम् ॥१३२॥
एतयोः स्तुवतोरेवं विदित्वा जिनभक्तिताम् । नेमिरे प्रशमं यक्षास्तौ च प्राप्तौ जिनालयम् ॥१३३॥
ततो नमो निषद्याया इत्युक्त्वा रचिताञ्जली । कृत्वा प्रदक्षिणं स्तोत्रमुदीचरतामिदम् ॥१३४॥
विहाय लौकिकं मार्गं महादुर्गतिदुःखदम् । भवन्तं शरणं नाथ चिरेण समुपागतः ॥१३५॥
चतुर्भिर्विंशतिं युष्मामक्षराणां महात्मनाम् । उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योर्वन्दे भूतभविष्यताम् ॥१३६॥
पञ्चस्वैरावताख्येषु भरताख्येषु पञ्चसु । जिनानमामि यास्येषु तावतामि जिनौघिधा ॥१३७॥
यैः संसारसमुद्रस्य कृते तरणतारणे । त्रिकालं सर्वतास्येषु तान्नमामि जिनौस्त्रिधा ॥१३८॥
मुनिसुव्रतनाथाय तस्मै भगवते नमः । त्रैलोक्ये शासनं यस्य सुविशुद्धं प्रकाशते ॥१३९॥
इति कृत्वा स्तुतिं भूमुस्तकस्पृष्टभूतलौ । नेमतुस्तौ जिनं भक्त्या परिहृष्टतनूरुहौ ॥१४०॥
ततोऽसौ कृतकर्तव्यो रक्षैः सौम्यैः प्रियंवदैः । अनुज्ञातः समं पत्न्या द्रष्टुं हलिनमुद्ययौ ॥१४१॥
राजमार्गेऽ[1]त्रिसंकाशान् प्रासादान् विमलत्विषः । आक्षिप्यै दर्शयन् याति दिव्यनारीसमाकुलान् ॥१४२॥

उनकी निर्मल कीर्ति सर्वत्र फैल रही है । ॥१२६–१२७॥ हे प्रिये ! उठो, यह फूलोंका पिटारा तुम ले लो और मैं इस सुकुमार बच्चेको कन्धेपर रख लेता हूँ ॥१२८॥ इस प्रकार कहकर तथा वैसा ही कर हर्षसे भरे दोनों दम्पती जानेके लिए तत्पर हुए । अपनी शक्तिके अनुसार वे निर्मल वेषसे विभूषित थे ॥१२९॥ जब वे चले तो उनके मार्गमें उग्र सर्प फणा तानकर खड़े हो गये तथा जिनके मुख डाढ़ोंसे विकराल थे और जो जोर-जोरसे हँस रहे थे ऐसे वेताल मार्गमें आड़े आ गये ॥१३०॥ परन्तु इन सब भयंकर वस्तुओंको देखकर भी उनके हृदय निष्कम्प रहे । वे निश्चल चित्त होकर यही स्तुति पढ़ते जाते थे कि ॥१३१॥ 'जो त्रिलोक द्वारा वन्दनीय हैं, जो भयंकर संसाररूपी कर्दमसे पार हो चुके हैं तथा जो उत्कृष्ट मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं ऐसे जिनेन्द्र भगवान्-को मन, वचन, कायसे सदा नमस्कार हो' ॥१३२॥ इस प्रकार स्तुति करते हुए उन दोनोंकी जिन-भक्तिको जानकर यक्ष शान्त हो गये और वे रामपुरीके जिनालयमें पहुँच गये ॥१३३॥ तदनन्तर 'भगवान्‌की वसतिकाके लिए नमस्कार हो' यह कहकर दोनोंने हाथ जोड़े और प्रदक्षिणा देकर दोनों ही यह स्तुति पढ़ने लगे ॥१३४॥ हे नाथ ! महादुर्गतिके दुःख देनेवाले लौकिक मार्गको छोड़कर हम चिरकालके बाद आपकी शरणमें आये हैं ॥१३५॥ उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीके वर्तमान तथा भूत-भविष्यत् सम्बन्धी तीर्थंकरोंकी चौबीसीको हम नमस्कार करते हैं । पाँच भरत और पाँच ऐरावत क्षेत्रोंमें जो तीर्थंकर हैं, हो चुके हैं अथवा होंगे उन सबको हम मन, वचन, कायसे नमस्कार करते हैं ॥१३६–१३७॥ जो संसार समुद्रसे स्वयं पार हुए हैं तथा जिन्होंने दूसरोंको पार किया है ऐसे समस्त क्षेत्रों सम्बन्धी तीर्थंकरोंको हम त्रिकाल नमस्कार करते हैं ॥१३८॥ उन मुनिसुव्रत भगवान्‌को नमस्कार हो जिनका निर्मल शासन तीनों लोकोंमें प्रकाशमान हो रहा है ॥१३९॥ इस प्रकार स्तुतिकर घुटनों और मस्तकसे पृथिवीतलका स्पर्श करते हुए उन्होंने जिनेन्द्र भगवान्-को नमस्कार किया । उस समय भक्तिके कारण उन दोनोंके शरीरमें रोमांच उठ रहे थे ॥१४०॥

तदनन्तर वन्दनाका कार्य पूर्ण कर चुकनेके बाद शान्त तथा मधुरभाषी रक्षकोंने जिसे आज्ञा दे दी थी ऐसा कपिल ब्राह्मण अपनी स्त्रीके साथ रामके दर्शन करनेके लिए चला ॥१४१॥ वह, राजमार्गमें पर्वतोंके समान ऊँचे, निर्मल कान्तिके धारक, तथा दिव्य स्त्रियोंसे भरे जो

---

१. रामम् । २. त्रिसंकाशान् म. ।

ऊचे च कुन्दसंकाशैः सर्वकामगुणान्वितैः । राजते भवनैर्यस्य पुरीयं स्वर्गसन्निभा ॥१४३॥
तस्यैतद्भवनं भद्रे प्रान्तप्रासादवेष्टितम् । अभिरामस्य रामस्य पुर्या मध्ये विराजते ॥१४४॥
तथेति महाहृष्टः स विवेश च तद्गृहम् । दृष्ट्वा च लक्ष्मणं दूराद्भृशमाकुलतां गतः ॥१४५॥
दध्यौ संजातकम्पश्च सोऽयमिन्दीवरप्रभः । व्यथितो दुर्विदग्धोऽहं चित्रैर्येन तदावधैः ॥१४६॥
कर्णयोरतिदुःखानि भाषितानि महाखले । तानि कृत्वा तदा पापे जिह्वे निस्सर साम्प्रतम् ॥१४७॥
किं करोमि क्व गच्छामि विवरं प्रविशामि किम् । अस्मिन् शरणहीनस्य भवेच्छरणमत्र कः ॥१४८॥
अवस्थितोऽयमत्रेति यदि मे विदितो भवेत् । समुल्लङ्घ्योत्तरामाशां देशत्यागः कृतो भवेत् ॥१४९॥
एवमुद्वेगमापन्नो विहाय ब्राह्मणीं द्विजः । प्रपलायितुमुद्युक्तो लक्ष्मणेन विलोकितः ॥१५०॥
स्मित्वा च स जगादार्यं कुतो विप्रः समागतः । वनसंवर्धितात्मेव किमित्याकुलतान्वितः ॥१५१॥
समाश्वासमिमं नीत्वा द्रुतमानय तं द्विजम् । पश्यामस्तावदेतस्य चेष्टितं किमयं वदेत् ॥१५२॥
न भेतव्यं न भेतव्यं निवर्तस्वेति चोदितः । अधिगम्य समाश्वासं निवृत्तः स्खलितक्रमः ॥१५३॥
उपसृत्य भयं त्यक्त्वा प्रसृतो धवलाम्बरः । पुष्पाञ्जलिस्तयोरग्रे स्थित्वा स्वस्तीत्यशब्दयत् ॥१५४॥
ततो लब्धासनासीनो निकटस्थाङ्गनो द्विजः । ऋग्भिः स्तवनदक्षाभिरस्तौषीद् रामलक्ष्मणौ ॥१५५॥
ततः पद्मो जगादैवं तौ नः कृत्वा विमानताम् । वद साम्प्रतमागत्य कस्मात् पूजयसि द्विजः ॥१५६॥
सोऽब्रवीन्न मया ज्ञातं त्वं प्रच्छन्नमहेश्वरः । मोहाद्विमानितस्तेन मत्समक्षन्न इवानिकः ॥१५७॥

महल मिलते थे उन्हें अपनी स्त्रीके लिए दिखाता जाता था ॥१४२॥ उसने स्त्रीसे कहा कि हे भद्रे ! कुन्दके समान उज्ज्वल तथा सर्व मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले गुणोंसे सहित, भवनोंसे जिनकी यह स्वर्ग तुल्य नगरी सुशोभित हो रही है उन मनोहर रामका यह भवन समीपवर्ती अन्य महलोंसे घिरा कैसा सुन्दर जान पड़ता है ? ॥१४३-१४४॥ इस प्रकार कहते हुए उस अतिशय हर्षित ब्राह्मणने रामके भवनमें प्रवेश किया। वहाँ वह दूरसे ही लक्ष्मणको देखकर अत्यन्त आकुलताको प्राप्त हुआ ॥१४५॥ उसके शरीरमें कँपकँपी छूटने लगी। वह विचार करने लगा कि नील कमलसे समान प्रभावाला यह वही पुरुष है जिसने उस समय मुझ मूर्खको नाना प्रकारके वधसे दुखी किया था ॥१४६॥ उसकी बोलती बन्द हो गयी। वह मन ही मन अपनी जिह्वासे कहने लगा हे महादुष्ट ! हे पापे ! उस समय तो तूने कानोंके लिए अत्यन्त दुःखदायी वचन कहे अब चुप क्यों है ? बाहर निकल ॥१४७॥ वह मन ही मन विचार करने लगा कि क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किस बिलमें घुस जाऊँ ? आज मुझ शरणहीनका यहाँ कौन शरण होगा ? ॥१४८॥ यदि मुझे मालूम होता कि यह यहाँ ठहरा है तो मैं उत्तर दिशाको लाँघकर देश त्याग ही कर देता ॥१४९॥ इस प्रकार उद्वेगको प्राप्त हुआ वह ब्राह्मण, ब्राह्मणीको छोड़ भागनेके लिए तैयार हुआ ही था कि लक्ष्मणने उसे देख लिया ॥१५०॥ हँसकर लक्ष्मणने कहा कि यह ब्राह्मण कहाँसे आया है ? जान पड़ता है कि इसका पोषण वनमें ही हुआ है, यह इस तरह आकुलताको क्यों प्राप्त हुआ है ? ॥१५१॥ सान्त्वना देकर उस ब्राह्मणको शीघ्र ही लाओ हम इसकी चेष्टाको देखेंगे तथा सुनेंगे कि यह क्या कहता है ? ॥१५२॥ 'नहीं डरना चाहिए, नहीं डरना चाहिए, लौटो', इस प्रकार कहनेपर वह सान्त्वनाको प्राप्त कर लड़खड़ाते पैरों वापस लौटा ॥१५३॥

तदनन्तर श्वेत वस्त्रको धारण करनेवाला वह ब्राह्मण पास जाकर निर्भय हो राम-लक्ष्मणके सम्मुख गया तथा अंजलिमें पुष्प रखकर उनके सामने खड़ा हो 'स्वस्ति' शब्दका उच्चारण करने लगा ॥१५४॥ तदनन्तर जो प्राप्त हुए आसनपर बैठा था और पास ही जिसकी स्त्री बैठी थी ऐसा वह ब्राह्मण स्तवन करनेमें समर्थ ऋचाओंके द्वारा राम-लक्ष्मणकी स्तुति करने लगा ॥१५५॥ स्तुतिके बाद रामने कहा कि हे ब्राह्मण ! उस समय हमलोगोंका वैसा तिरस्कार कर अब इस समय आकर पूजा क्यों कर रहे हो सो तो बताओ ॥१५६॥ ब्राह्मणने कहा, हे देव !

स्थितिरेषा जगन्नाथ लोके स्थावरजङ्गमे । धनवान् पूज्यते नित्यं यथादित्यो हिमागमे ॥१५८॥
अधुना त्वं मया ज्ञातः सोऽसि नाम्यः कदाचन । द्रविणानीह पूज्यन्ते न भवान् एव पूज्यते ॥१५९॥
नित्यमर्थयुतं देव मानयन्ति जना जनम् । त्यजन्त्यर्थपरित्यक्तं निष्प्रयोजनसौहृदम् ॥१६०॥
यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः । यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥१६१॥
अर्थेन विप्रहीनस्य न मित्रं न सहोदरः । तस्यैवार्थसमेतस्य परोऽपि स्वजनायते ॥१६२॥
सोऽर्थो धर्मेण यो युक्तः सधर्मो यो दयान्वितः । सा दया निर्मला ज्ञेया मांसं यस्यां न भुज्यते ॥१६३॥
मांसाशनाग्निदुष्टानां सर्वेषां प्राणधारिणाम् । अन्या मूलेन संपन्ना प्रशस्यन्ते निवृत्तयः ॥१६४॥
राजन् विचित्ररूपोऽयं लोको मानुषलक्षितः । मादृशो ज्ञायते नैव यथाभूतोऽत्र यो जनः ॥१६५॥
आस्तां तावज्जवानत्र वन्द्यते ये मवद्विधैः । पराभवं विमूढेभ्यो लभन्ते तेऽपि साधवः ॥१६६॥
पूर्वं सनत्कुमाराख्यः किं ते ज्ञातो न चक्रभृत् । महर्द्धयः सुरा यस्य रूपं द्रष्टुमिहागताः ॥१६७॥
सोऽपि श्रामण्यमासाद्य संप्राप्तः परिभूततास् । पर्यटन्न क्वचिल्लेभे भिक्षामाचारकोविदः ॥१६८॥
वनस्पत्युपजीविन्या सर्पितः सोऽन्यदा मुनिः । [1]पञ्चाश्चर्यगुणैश्वर्यमादधे विजये पुरे ॥१६९॥
सुभूमश्चक्रभृद् भूत्वा करं कटकभास्वरम् । केयूरभूषितभुजो वदरार्थमधौकयत् ॥१७०॥
वदरं नैकमप्यस्मै निःस्वोऽसावददात्ततः । अनभिज्ञो विशेषस्य विशेषं कमवाप्नवान् ॥१७१॥

मैंने नहीं जाना था कि आप प्रच्छन्न महेश्वर हो इसीलिए भस्मसे आच्छादित अग्निके समान मोहवह मुझसे आपका अनादर हो गया ॥१५७॥ हे जगन्नाथ ! चराचर विश्वकी यही रीति है कि शीत ऋतुमें सूर्यके समान धनवान्‌की ही सदा पूजा होती है ॥१५८॥ यद्यपि इस समय मैं जानता हूँ कि आप वही हैं अन्य नहीं फिर भी आपकी पूजा हो रही है सो हे पद्म ! यहाँ यथार्थमें धनकी ही पूजा हो रही है आपकी नहीं ॥१५९॥ हे देव ! लोग निरन्तर धनवान् मनुष्यका ही सन्मान करते हैं और जिसके साथ मित्रताका प्रयोजन जाता रहा है ऐसे धनहीन मनुष्यको छोड़ देते हैं ॥१६०॥ जिसके पास धन है उसके मित्र हैं, जिसके पास धन है उसके बान्धव हैं, जिसके पास धन है लोकमें वह पुरुष है और जिसके पास धन है वह पण्डित है ॥१६१॥ जब मनुष्य धन-रहित हो जाता है तब उसका न कोई मित्र रहता है न भाई। पर वही मनुष्य जन-धनसहित हो जाता है तो अन्य लोग भी उसके आत्मीय बन जाते हैं ॥१६२॥ धन वही है जो धर्मसे सहित है, धर्म वही है जो दयासे सहित है और निर्मल दया वही है जिसमें मांस नहीं खाया जाता ॥१६३॥ मांस भोजनसे दूर रहनेवाले समस्त प्राणियोंके अन्य त्याग चूँकि मूलसे सहित रहते हैं इसलिए ही उनकी प्रशंसा होती है ॥१६४॥ हे राजन् ! यह मनुष्य लोक विचित्र है इसमें मेरे जैसे लोगोंको तो कोई जानता ही नहीं है ॥१६५॥ अथवा आपकी बात जाने दीजिए आप जैसे लोग जिनकी वन्दना करते हैं वे साधु भी मूर्ख पुरुषोंसे पराभव प्राप्त करते हैं ॥१६६॥ क्या आप नहीं जानते कि पहले एक ऐसे सनत्कुमार चक्रवर्ती हो गये हैं जिनका रूप देखनेके लिए बड़ी-बड़ी ऋद्धियोंको धारण करनेवाले देव आये थे परन्तु वे भी मुनिपद धारणकर पराभवको प्राप्त हुए। आचार-शास्त्रके जाननेमें निपुण वे मुनिराज भ्रमण करते रहे परन्तु उन्हें कहीं भिक्षा नहीं मिली ॥१६७-१६८॥ फिर अन्य समय विजयपुर नगरमें वनस्पतिसे आजीविका करनेवाली एक स्त्रीने आहार देकर उन्हें सन्तुष्ट किया और पंचाश्चर्यरूपी गुणोंका ऐश्वर्य प्राप्त किया ॥१६९॥ जिनकी भुजा बाजूबन्दसे विभूषित थी ऐसे सुभूमने चक्रवर्ती होकर अपना वलयविभूषित हाथ बेरके लिए बढ़ाया परन्तु यह दरिद्र है यह समझकर उनके लिए किसीने एक बेर भी नहीं दिया सो ठीक ही है

---

१. पञ्चाश्चर्यं जगुश्चर्यं म. ।

अयमन्यश्च विवशो जनैः स्वकृतभोगिभिः । न योऽवगम्यते तत्र न स तत्र जनोऽर्च्यते ॥१७२॥
न कृता मन्दभागेन कस्मादभ्यागतक्रिया । तदा मयेति भेऽद्यापि तप्यते मानसं भृशम् ॥१७३॥
रूपमेवमलं कान्तं युष्माकमवलोकयन् । भृशं क्रुद्धोऽपि को नाम न यथावतिविस्मयम् ॥१७४॥
एवमुक्त्वा शुचा ग्रस्तं रुदन्तं कपिलं गिरा । शुभयासान्त्वयद् रामः सुशर्माणं च जानकी ॥१७५॥
ततो हेमघटाम्भोभिः किङ्करैः राघवाज्ञया । करिकः श्रावकः प्रीत्या स्नापितः सह भार्यया ॥१७६॥
परमं भोजितश्चान्नं वस्त्रै रत्नैश्च भूषितः । सुभूरिधनमादाय जगाम निजमालयम् ॥१७७॥
जनानां विस्मयकरं सर्वोपकरणान्वितम् । भोगं यद्यपि यातोऽयं[1] तथापि सुविचक्षणः ॥१७८॥
सन्मानविशिखैर्विद्धो दष्टो[2] गुणमहोरगैः । उपचारहतात्मासौ धृतिं न लभते द्विजः ॥१७९॥
दृष्ट्वा चाहं पुरा यत्र स्कन्धन्यस्तैन्धभारकः । क्षुधा शोषितदेहः स भृशितोऽत्यन्तदुर्विधः ॥१८०॥
ग्रामे तत्रैव जातोऽस्मि पश्य यक्षाधिपोपमः । रामदेवप्रसादेन चिन्तादुःखविवर्जितः ॥१८१॥
आसीन्मे शीर्णपतितमनेकच्छिद्रजर्जरम् । काकाद्यशुचिसंलिप्तं गृहं गोमयवर्जितम् ॥१८२॥
अधुना धेनुभिर्व्याप्तं बहुप्रासादसंकुलम् । रामदेवप्रसादेन प्राकारपरिमण्डितम् ॥१८३॥
हा मया पुण्डरीकाक्षौ भ्रातरौ गृहमागतौ । निर्भर्त्सितौ विना दोषं तौ मृगाङ्कनिभाननौ ॥१८४॥

क्योंकि विशेषको नहीं जाननेवाला मनुष्य किसी विशेषको कब प्राप्त हुआ है ? ॥१७०-१७१॥ यह अथवा और कोई सभी लोग, स्वकृत कर्मको भोगनेवाले मनुष्योंसे विवश हैं। जिस मनुष्यका जहाँ ज्ञान नहीं वहाँ उसकी अर्चा नहीं होती ॥१७२॥ मुझ मन्दभाग्यने उस समय आपकी आतिथ्य-क्रिया क्यों नहीं की ? यह विचारकर आज भी मेरा मन अत्यन्त सन्तापको प्राप्त है ॥१७३॥ आपके अतिशय सुन्दर रूपको देखनेवाला मनुष्य ही अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त नहीं होता किन्तु आपके प्रति अत्यन्त क्रोध प्रकट करनेवाला पुरुष भी ऐसा कौन है जो अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त नहीं हुआ हो ॥१७४॥ इस प्रकार कहकर वह कपिल ब्राह्मण शोकाक्रान्त हो रोने लगा, तब रामने शुभ वचनोंसे उसे सान्त्वना दी और सीताने उसकी स्त्री सुशर्माको समझाया ॥१७५॥ तदनन्तर रामकी आज्ञासे किंकरोंने भार्या सहित कपिल श्रावकको सुवर्ण घटोंमें रखे हुए जलसे प्रीतिपूर्वक स्नान कराया ॥१७६॥ उत्कृष्ट भोजन कराया और वस्त्र तथा रत्नोंसे उसे अलंकृत किया। तदनन्तर वह बहुत भारी धन लेकर अपने घर वापस गया ॥१७७॥ यद्यपि वह बुद्धिमान् ब्राह्मण, लोगोंको आश्चर्यमें डालनेवाले तथा सर्व प्रकारके उपकरणोंसे युक्त भोगोपभोगके पदार्थोंको प्राप्त हुआ था, तो भी चूँकि वह सम्मानरूपी बाणोंसे विद्ध था, गुणरूपी महासर्पोंसे डसा गया था और सेवा-शुश्रूषाके कारण उसकी आत्मा दब रही थी, इसलिए वह सन्तोषको प्राप्त नहीं होता था। भावार्थ—रामने तिरस्कारके बदले उसका सत्कार किया था, अपने अनेक गुणोंसे उसे वशीभूत किया था और स्नान, भोजन, पान आदि सेवा-शुश्रूषासे उसे सुखी किया था इसलिए वह रात-दिन इसी शोकमें पड़ा रहता था कि देखो कहाँ तो मैं दुष्ट कि जिसने इन्हें एक रात घर भी नहीं ठहरने दिया और कहाँ ये महापुरुष जिन्होंने इस प्रकार हमारा उपकार किया ? ॥१७८-१७९॥ वह विचार करने लगा कि मैं पहले जिस गाँवमें इतना अधिक दरिद्र था कि कन्धेपर लकड़ियोंका गट्ठा रखकर भूखा-प्यासा दुर्बल शरीर इधर-उधर भटकता था आज उसी गाँवमें मैं रामके प्रसादसे यक्षराजके समान हो गया हूँ तथा सब चिन्ता और दुःखोंसे छूट गया हूँ ॥१८०-१८१॥ पहले मेरा जो घर जीर्ण-शीर्ण होकर गिर गया था, अनेक छिद्रोंसे जर्जर था, काक आदि पक्षियोंकी अशुचिसे लिप्त था तथा जिसमें कभी गोबर भी नहीं लगता था, वही घर आज श्रीरामके प्रसादसे अनेक गायोंसे व्याप्त है, नाना महलोंसे संकीर्ण तथा प्राकार-कोटसे घिरा हुआ है ॥१८२-१८३॥ हाय, बड़े

---

१. जातोऽयं म. । २. दष्टो म. ।

यद्भ्रातृस्नानपत्नाभ्यां समं देव्या विनिर्गतौ । तन्मे प्रतिष्ठितं शल्यं हृदये प्रचलत् सदा ॥१८५॥
तावन्मे नास्ति दुःखस्यान्तो यावदिदं गृहम् । परित्यज्य निरारम्भः प्रव्रजिष्यामसंशयम् ॥१८६॥
उपलभ्यास्य वैराग्यं बन्धुवर्गाः ससंभ्रमाः । धाराभिरुत्ससर्जार्त्तं दीनाः साकं सुशर्मणा ॥१८७॥
निरीक्ष्य स्वजनं विप्रो निमग्नं शोकसागरे । अपेक्षापेतया बुद्ध्या निर्जगाद शिवोत्सुकः ॥१८८॥
विचित्रस्वजनस्नेहैरत्युत्तुङ्गमनोरथैः । मूढोऽयं दह्यते लोकः किं न जानीथ भो जनाः ॥१८९॥
इति संवेगमापन्नः प्रियां दुःखेन मूर्च्छिताम् । विहाय बन्धुलोकं च बहुविफलवकारिणम् ॥१९०॥
अष्टादश सहस्राणि धेनूनां सिततेजसाम् । रत्नपूर्णं च भवनं दासीयोषित्समाकुलम् ॥१९१॥
सुशर्मायां समारोप्य तनयं द्रविणं तथा । बभूव कपिलः साधुर्निरारम्भो निरम्बरः ॥१९२॥
सह्यानन्दमतेः शिष्यः सुप्रतीतस्तपोधनः । चकार गुरुतां तस्य गुणशीलमहार्णवः ॥१९३॥

वियोगिनीवृत्तम्

विजहार महातपास्ततः कपिलश्चारुचरित्रवीवधः[२] ।
परमार्थनिविष्टमानसः श्रमणश्रीपरिवीतविग्रहः ॥१९४॥
य इदं कपिलानुकीर्तनं पठति ब्रह्ममतिः शृणोति वा ।
उपवाससहस्रसंभवं लभतेऽसौ रविभासुरः फलम् ॥१९५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते कपिलोपाख्यानं नाम पञ्चत्रिंशत्तमं पर्व ॥३५॥

खेदकी बात है कि मैंने कमलके समान नेत्रोंके धारक तथा चन्द्रतुल्य मुखसे सुशोभित, घर आये हुए उन दोनों भाइयोंका अपराधके बिना ही तिरस्कार किया ॥१८४॥ ग्रीष्म ऋतुके आतापसे जिनके शरीर सन्तप्त हो रहे थे ऐसे दोनों भाई देवी अर्थात् सीताके साथ घरसे बाहर निकले, वह मेरे हृदयमें सदा शल्यकी तरह गड़ा हुआ चंचल हो उठता है ॥१८५॥ निःसन्देह मेरे दुःखका अन्त तबतक नहीं हो सकता है जबतक कि मैं घर छोड़कर निरारम्भ दीक्षा नहीं ले लेता हूँ ॥१८६॥ तदनन्तर कपिलके वैराग्यका समाचार जानकर इसके घबड़ाये हुए दीन-हीन भाई-बन्धु, सुशर्मा ब्राह्मणीके साथ अश्रुधारा बहाने लगे ॥१८७॥ मोक्ष प्राप्त करनेमें उत्सुक कपिल, अपने परिजनको शोकरूपी सागरमें निमग्न देख निरपेक्ष बुद्धिसे बोला कि हे मानवो ! बड़े-बड़े मनोरथोंसे युक्त कुटुम्बी जनोंके विचित्र स्नेहसे मोहित हुआ यह प्राणी निरन्तर जलता रहता है, यह क्या तुम नहीं जानते ? ॥१८८-१८९॥ इस प्रकार संवेगको प्राप्त हुआ कपिल ब्राह्मण दुःखसे मूर्च्छित स्त्री तथा बहुत दुःखका अनुभव करनेवाले बन्धुजनोंको छोड़कर, अठारह हजार सफेद गायें, रत्नोंसे परिपूर्ण तथा दास-दासियोंसे युक्त भवन, पुत्र और समस्त धन सुशर्मा ब्राह्मणीके लिए सौंपकर आरम्भ रहित दिगम्बर साधु हो गया ॥१९०-१९२॥ सह्यानन्दमतिके शिष्य तथा गुण और शीलके महासागर अतिशय तपस्वी मुनि, उसके गुरु हुए थे अर्थात् उनके पास उसने दीक्षा ली थी ॥१९३॥ तदनन्तर जो निर्मल चारित्ररूपी कवचको धारण करते थे, जिनका मन सदा परमार्थमें लगा रहता था, और जिनका शरीर निर्ग्रन्थ व्रत रूपी लक्ष्मीसे आलिंगित था ऐसे महातपस्वी कपिल मुनिराज पृथिवी पर विहार करने लगे ॥१९४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य अहंकार रहित हो कपिलकी इस कथाको पढ़ता अथवा सुनता है वह सूर्यके समान देदीप्यमान होता हुआ एक हजार उपवासका फल प्राप्त करता है ॥१९५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य रचित पद्मचरितमें कपिलका वर्णन करनेवाला पैंतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३५॥

□

---

१. जानाति भो जनः । २. वीरधीः म., ब. ।

षट्त्रिंशत्तमं पर्व

ततोऽनुक्रमतः [1]काले विकालप्रतिमे गते । घोरान्धकारसंरुद्धे विद्युच्चकितभीषणे ॥१॥
आतायां सुप्रसन्नायां शरदि प्रीतिनिर्भरः । ऊचे यक्षाधिपः पद्मं प्रस्थातुं कृतमानसम् ॥२॥
क्षन्तव्यं देव यत्किंचिदस्माकमिति दुष्कृतम् । विधातुं शक्यते केन योग्यं सर्वं भवादृशाम् ॥३॥
इत्युक्ते रामदेवोऽपि तमूचे गुह्यकाधिपम् । स्वयापि निखिला क्षन्तव्या परतन्त्रता ॥४॥
सुतरां तेन वाक्येन जातः सत्तमभाजनः । यक्षाणामधिपो नत्वा संभाष्य विपुलक्रियम् ॥५॥
हारं स्वयंप्रभाभिख्यं ददौ पद्माय सोऽद्भुतम् । उद्यद्दिनकराकारे [2]हरये मणिकुण्डले ॥६॥
चूडामणिं सुकल्याणं सीतायै विलसत्प्रभम् । महाविनोदयक्षं च वीणामीप्सितनादिनीम् ॥७॥
स्वेच्छया तेषु यातेषु यक्षराजः पुरीकृताम् । मायां समहरत्किंचिद्दधानः शोकितामिव ॥८॥
बलदेवोऽपि कर्तव्यकरणाच्च ससंमदः । अमन्यत परिप्राप्तमुदारं शिवमात्मनः ॥९॥
पर्यटन्तो महीं स्वैरं नानारसफलाशिनः । विचित्रालंकथासक्ताः रममाणाः सुरा इव ॥१०॥
उल्लङ्घ्य सुमहारण्यं द्विपसिंहसमाकुलम् । जनोपभुक्तभूदेशं वैजयन्तपुरं गताः ॥११॥
ततोऽस्तमागते सूर्ये दिक्चक्रे तमसावृते । नक्षत्रमण्डलाकीर्णे संजाते गगनाङ्गणे ॥१२॥
अपरोत्तरदिग्भागे क्षुद्रलोकभयावहे । यथाभिरुचिते देशे ते पुरो निकटे स्थिताः ॥१३॥
अथात्र नगरे राजा प्रसिद्धः पृथिवीधरः । इन्द्राणी महिषी तस्य योषिद्गुणसमन्विता ॥१४॥

तदनन्तर घोर अन्धकारसे व्याप्त और बिजलीकी चमकसे भीषण वर्षा काल, दुष्कालके समान जब क्रम-क्रमसे व्यतीत हो गया तथा स्वच्छ शरद् ऋतु आ गयी तब रामने वहाँसे प्रस्थान करनेका विचार किया। उसी समय यक्षोंका अधिपति आकर रामसे कहता है कि हे देव! हमारी जो कुछ त्रुटि रह गयी हो वह क्षमा कीजिए क्योंकि आप-जैसे महानुभावोंके योग्य समस्त कार्य करनेके लिए कौन समर्थ है? ॥१-३॥ यक्षाधिपतिके ऐसा कहनेपर रामने भी उससे कहा कि आप भी अपनी समस्त परतन्त्रताको क्षमा कीजिए अर्थात् आपको इतने समय तक मेरी इच्छानुसार जो प्रवृत्ति करनी पड़ी है उसके लिए क्षमा कीजिए ॥४॥ रामके इस वचनसे यक्षाधिप अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने बहुत काल तक वार्तालाप कर नमस्कार किया, रामके लिए स्वयंप्रभ नामका अद्भुत हार दिया। लक्ष्मणके लिए उगते सूर्यके समान देदीप्यमान दो मणिमय कुण्डल दिये, और सीताके लिए महामांगलिक देदीप्यमान चूड़ामणि तथा महाविनोद करनेमें समर्थ एवं इच्छानुसार शब्द करनेवाली वीणा दी ॥५-७॥ तदनन्तर जब वे इच्छानुसार वहाँसे चले गये तब यक्षराजने कुछ शोकयुक्त हो अपनी नगरी सम्बन्धी माया समेट ली ॥८॥ इधर राम भी कर्तव्य कार्य करनेसे हर्षित हो ऐसा मान रहे थे कि मानो मुझे उत्कृष्ट मोक्ष ही प्राप्त हो गया है ॥९॥ अथानन्तर स्वेच्छानुसार पृथिवीमें विहार करते, नाना रसके स्वादिष्ट फल खाते, विचित्र कथाएँ करते और देवोंके समान रमण करते हुए वे तीनों, हाथी और सिंहोंसे व्याप्त महावनको पार कर मनुष्योंके द्वारा सेवित वैजयन्तपुरके समीपवर्ती मैदानमें पहुँचे ॥१०-११॥ तदनन्तर जब सूर्य अस्त हो गया, दिशाओंका समूह अन्धकारसे आवृत हो गया और आकाशरूपी आँगन नक्षत्रोंके समूहसे व्याप्त हो गया तब वे क्षुद्र मनुष्योंको भय उत्पन्न करनेवाले पश्चिमोत्तर दिग्भागमें नगरके समीप ही किसी इच्छित स्थानमें ठहर गये ॥१२-१३॥ अथानन्तर इस नगरका

---

१. वर्षाकाले । २. लक्ष्मणाय ।

तनया वनमालेति तयोरत्यन्तसुन्दरी । बाल्यात् प्रभृति सा रक्ता लक्ष्मणस्य गुणश्रुतेः ॥१५॥
श्रुत्वानरण्यपुत्रस्य प्रव्रज्यासमये वचः । [1]रक्षितुं क्वापि [2]निर्यातं रामं लक्ष्मणसंयुतम् ॥१६॥
ख्यातेन्द्रनगरेशस्य बालमित्राय सूनवे । सुन्दरायासितेक्षणाय पितृभ्यां सा निरूपिता ॥१७॥
तं च विज्ञाय वृत्तान्तं हृदयस्थितलक्ष्मणा । विरहाद्भयमापन्ना चिन्तामेवमुपागता ॥१८॥
अंशुकेन वरं कण्ठे वितेष्टासज्य पादपे । मृत्युं प्राप्तास्मि नान्येन पुरुषेण समागमम् ॥१९॥
विधिच्छलेन केनापि सायंकाले दिनक्षये । ध्रुवमद्यैव यास्यामि मृत्युं विघ्नविवर्जितम् ॥२०॥
प्रयाहि भगवन् भानो संप्रेषय निशां द्रुतम् । कृताञ्जलिरियं दीना पादयोः पतामि ते ॥२१॥
शर्वरी भण्यतां यात्वा काङ्क्षन्ती दुःखभागिनी । संवत्सरसमं वेत्ति दिनं द्राग्यास्यतामिति ॥२२॥
इति संचिन्त्य सा बाला गतेऽस्तं तिग्मतेजसि । सोपवासा समासाद्य पितृभ्यामनुमोदनम् ॥२३॥
प्रवरं रथमारुह्य सखीजनसमावृता । जगाम परया लक्ष्म्या वनदेवीं किलार्चितुम् ॥२४॥
यस्यां रात्रौ वनोद्देशे यत्र ते प्रथमं स्थिताः । तस्यामेव तमेवैषा गता दैवनियोगतः ॥२५॥
अरण्यदेवतापूजा तस्मिन् किल विनिर्मिता । सुप्तश्च सकलो लोको निराशङ्कः कृतक्रियः ॥२६॥
[3]निश्शब्दपदनिक्षेपास्ततो वनमृगीव सा । निष्क्रम्य शिबिरात् तस्मात् प्रतस्थे मयवर्जिता ॥२७॥
ततस्तस्याः समाघ्राय गन्धं परमसौरभम् । एवं सूनुः सुमित्राया दध्यौ संमदमुद्वहन् ॥२८॥
ज्योतीरेखेव काप्येषा मूर्तिरत्रोपलक्ष्यते । कुमार्या श्रेष्ठया भाव्यमनया कुलजातया ॥२९॥

राजा पृथिवीधर नामसे प्रसिद्ध था उसकी रानीका नाम इन्द्राणी था जो कि स्त्रियोंके योग्य समस्त गुणोंसे सहित थी ॥१४॥ उन दोनोंके वनमाला नामकी अत्यन्त सुन्दरी पुत्री थी, वनमाला बाल्य अवस्थासे ही लक्ष्मणके गुण श्रवण कर उनमें अनुरक्त थी ॥१५॥ इसके माता-पिताने सुना कि राम अनरण्य राजाके पुत्र दशरथके लोभ उनके समस्त कथित वचनोंका पालन करनेके लिए लक्ष्मणके साथ कहीं चले गये हैं तब उन्होंने इन्द्र नगरके राजाके बालमित्र नामक अत्यन्त योग्य सुन्दर पुत्रके लिए वनमाला देनेका निश्चय किया ॥१६-१७॥ जिसके हृदयमें लक्ष्मण विद्यमान थे ऐसी वनमालाने जब यह समाचार सुना तो वह विरहसे भयभीत हो इस प्रकार चिन्ता करने लगी ॥१८॥ कि वस्त्रसे कण्ठ लपेट वृक्षपर लटककर भले ही मर जाऊँगी परन्तु अन्य पुरुषके साथ समागमको प्राप्त नहीं होऊँगी ॥१९॥ मैं किसी कार्यके बहाने सायंकालके समय वनमें जाकर आज ही निर्विघ्न रूपसे मृत्यु प्राप्त करूँगी ॥२०॥ हे भगवन् सूर्य ! आप जाओ और रात्रिको जल्दी भेजो । मैं अतिशय दीन हो हाथ जोड़कर आपके चरणोंमें पड़ती हूँ । जाकर रात्रिसे कहो कि तुम्हारी आकांक्षा करती हुई यह दुःखिनी दिनको वर्षके समान समझती है इसलिए जल्दी जाओ ॥२१-२२॥ इस प्रकार विचार-कर उपवास धारण करनेवाली वह बाला, सूर्यास्त होनेपर माता-पिताकी आज्ञा प्राप्त कर उत्तम रथपर सवार हो सखी जनोंके साथ वैभवपूर्वक वनदेवीकी पूजा करनेके लिए गयी ॥२३-२४॥

भाग्यकी बात कि जिस रात्रिमें तथा वनके जिस प्रदेशमें राम, सीता और लक्ष्मण पहलेसे जाकर ठहरे थे उसी रात्रिमें उसी स्थानपर वनमाला भी आ पहुँची ॥२५॥ वहाँ उसने वन-देवताकी पूजा की । तदनन्तर जब सब लोग अपना-अपना कार्य पूरा कर निःशंक हो सो गये तब जिसके पैर रखनेका भी शब्द नहीं हो रहा था ऐसी वनमाला वनकी मृगीकी नाईं उस शिविरसे निकल निर्भय हो आगे चली ॥२६-२७॥ तत्पश्चात् वनमालाके शरीरसे निकलनेवाली अत्यन्त मनोहर सुगन्धको सूँघकर हर्षित हो लक्ष्मण इस प्रकार विचार करने लगे ॥२८॥ कि 'यहाँ कोई ज्योतिकी रेखाके समान मूर्ति दिखाई पड़ती है, हो सकता है कि वह कोई उच्च

---

१. रक्षितं क., ख. । २. निर्यातं ज. । ३. निःशब्दवननिक्षेपामतो म. ।

महता शोकभारेण परिपीडितमानसा । अपश्यन्ती परं दुःखवारणोपायमुन्मनाः ॥३०॥
अजातचिन्तिता नूनमेषात्मानं जिघांसति । पश्यामि तावदेतस्याश्चेष्टामन्तर्हितो भवन् ॥३१॥
इति संचिन्त्य निश्शब्दो भूत्वा वटतरोरधः । तस्थौ कल्पद्रुमस्येव त्रिदशः कौतुकान्वितः ॥३२॥
तमेव पादपं सापि प्राप्ता हंसवधूगतिः । नतेव स्तनभारेण चन्द्रवक्त्रा तनूदरी ॥३३॥
लक्ष्मणस्तां तथाभूतां दृष्ट्वाचिन्तयदुक्तिभिः । वेद्मि तावदिमां सम्यक् कुतः कृत्यं भविष्यति ॥३४॥
अंशुकेनाम्बुवर्णेन कृत्वा पाशं तु कन्यका । जगादैवं गिरा योगिमनोहरणयोग्यया ॥३५॥
एतत्तरुनिवासिभ्यः श्रूयतामो सुरेवताः । भवतीभ्यो नमस्येयं प्रसादः क्रियतां मयि ॥३६॥
आर्यो मद्भजनादेवं भवन्तोभिः प्रयत्नतः । कुमारो लक्ष्मणो दृष्ट्वा वनेऽस्मिन् विचरन् ध्रुवम् ॥३७॥
यथा त्वद्विरहे बाला वनमाला सुदुःखिता । त्वयि मानसमारोप्य प्रेतलोकमुपागता ॥३८॥
अंशुकेन समालम्ब्य स्थं सा न्यग्रोधपादपे । त्वन्निमित्तमसून् तन्वी त्यजन्त्यस्माभिरीक्षिता ॥३९॥
एवमुक्त्वा त्वया नाथ यदि मे नात्र जन्मनि । समागमः कृतोऽन्यत्र प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥४०॥
एवं निगद्य शाखायां समर्पयति पाशकम् । [illegible] ॥४१॥
अयि मुग्धे सुकण्ठेऽस्मिन् मद्भुजालिङ्गनोचिते । कस्मादंशुकपाशोऽयं त्वया सुमुखि सज्ज्यते ॥४२॥
अहं स लक्ष्मणो मुग्ध पाशं परमसुन्दरि । मथाभूतं निरीक्षस्व न चेत्प्रत्येषि बालिके ॥४३॥
इत्युक्त्वा पाशमेतस्याः करात् सान्त्वनकोविदः । अहार लक्ष्मणः फेनपुञ्जं हासरसादिव ॥४४॥

कुलीन श्रेष्ठ कुमारी हो ॥२९॥ बहुत भारी शोकके भारसे इसका मन पीड़ित हो रहा है और दुःख दूर करनेका दूसरा उपाय नहीं देखती हुई यह बेचैन हो रही है ॥३०॥ निश्चित ही यह मनचाही वस्तुके न मिलनेसे आत्मघात करना चाहती है अतः छिपकर इसकी चेष्टा देखता हूँ' ॥३१॥ इस प्रकार विचारकर कौतुक-भरे लक्ष्मण चुपचाप वटवृक्षके नीचे उस प्रकार खड़े हो गये जिस प्रकार कि कल्पवृक्षके नीचे कोई देव खड़ा होता है ॥३२॥ तदनन्तर जिसकी चाल हंसोंके समान थी, जो स्तनोंके भारसे झुकी हुई-सी जान पड़ती थी, जिसका मुख चन्द्रमाके समान था तथा जिसका उदर अत्यन्त कृश था ऐसी वनमाला भी उसी वृक्षके नीचे पहुँची ॥३३॥ उसे उस प्रकारकी देख लक्ष्मणने विचार किया कि इसके शब्दोंसे ठीक-ठीक मालूम तो करूँ कि इसे किससे कार्य है ? ॥३४॥ तदनन्तर जलके समान स्वच्छ वर्णवाले वस्त्रसे फाँसी बनाकर वह कन्या योगियोंका भी मन हरण करनेमें समर्थ वाणीसे इस प्रकार कहने लगी कि अहो, इस वृक्षके निवासी देवताओ! सुनिए, मैं आपके लिए नमस्कार करती हूँ, आप मुझपर प्रसन्नता कीजिए ॥३५–३६॥ कुमार लक्ष्मण इस वनमें अवश्य ही विचरण करते होंगे सो उन्हें प्रयत्नपूर्वक देखकर आप लोग मेरी ओरसे उनसे कहें ॥३७॥ कि तुम्हारे विरहमें कुमारी वनमाला अत्यन्त दुखी होकर तथा तुम्हींमें मन लगाकर मृत्युलोकको प्राप्त हुई है ॥३८॥ वटवृक्षपर कपड़ेसे अपने आपको टाँगकर तुम्हारे निमित्त प्राण छोड़ती हुई उस कृशांगीको हमने देखा है ॥३९॥ और यह कह गयी है कि हे नाथ! यद्यपि मेरे इस जन्ममें आपने समागम नहीं किया है तो अन्य जन्ममें प्रसन्नता करनेके योग्य हो ॥४०॥

इतना कहकर वह ज्यों ही शाखापर फाँसी बाँधती है त्योंही घबड़ाये हुए लक्ष्मणने उसका आलिंगन कर यह कहा कि हे मूर्खे! यह कण्ठ तो मेरी भुजाके आलिंगनके योग्य है, हे सुमुखि! तू इसमें यह वस्त्र की फाँसी क्यों सजा रही है ? ॥४१–४२॥ मैं वही लक्ष्मण हूँ, हे परम सुन्दरि! यह फाँसी छोड़ो, हे बालिके! यदि तुझे विश्वास न हो तो जैसा सुन रखा हो वैसा देख लो ॥४३॥ इस प्रकार कहकर सान्त्वना देनेमें निपुण लक्ष्मणने जिस प्रकार कोई

---

१. प्रसादं म. ।

ततोऽसौ त्रपया युक्ता दृष्ट्वा मन्थरचक्षुषा । लक्ष्मणं नेत्रचौरेण रूपेण परिलक्षितम् ॥४५॥
परं विस्मयमापन्ना चिन्तामेवमुपागता । ईषद्वेपथुना युक्ता नवसंगमजन्मना ॥४६॥
किमयं वनदेवीभिः प्रसादो जनितो मम । कारुण्यमुपयाताभिः संदेशवचनैः परम् ॥४७॥
सोऽयं यथाश्रुतो नाथः संप्राप्तो दैवयोगतः । मदेवेन मम प्राणाः प्रयान्तो विनिवारिताः ॥४८॥
इति संचिन्तयन्ती सा किंचित्प्रस्वेदधारिणी । लक्ष्मीधरसमाश्लेषं लब्ध्वात्यन्तमराजत ॥४९॥
ततो मृदुमहामोदकुसुमोदारसंस्तरे । प्रबुद्धो राघवश्चक्षुर्लक्ष्मणार्थमुदीक्ष्यम् ॥५०॥
अदृश्यंश्च समुत्थाय पप्रच्छ जनकात्मजाम् । प्रदेशे लक्ष्मणो देवि नैतस्मिन् दृश्यते कुतः ॥५१॥
प्रदोषे संस्तरं कृत्वा सोऽस्माकं पुष्पपल्लवैः । आसीदनतिदूरस्थः कुमारो ह्यत्र नेक्ष्यते ॥५२॥
नाथ वाह्वायतां तावदिति तस्यां कृतध्वनौ । क्रमादनुचया वाचा वचो व्याहृतवानिति ॥५३॥
एह्यागच्छ क्व यातोऽसि भद्र लक्ष्मण लक्ष्मण । प्रयच्छ वचनं तात त्वरितं बालकानुज ॥५४॥
अयमायामि देवेति दत्वास्मै संभ्रमी वचः । वनमालासमेतोऽसौ ज्येष्ठस्यान्तिकमागतः ॥५५॥
अर्धरात्रे तदा स्पष्टे निशानाथः समुद्ययौ । ववौ कुमुदगर्भेर्द्रो वायुः सामोदशीतलः ॥५६॥
ततः पल्लवकान्ताभ्यां हस्ताभ्यां रचिताञ्जलिः । अंशुकावृतसर्वाङ्गी त्रपाविनमिताननां ॥५७॥
ज्ञातनिःशेषकर्तव्या विभ्राणा विनयं परम् । बालावन्दत रामस्य सीतायाश्च क्रमद्वयम् ॥५८॥
सद्वितीयं ततो दृष्ट्वा सीता लक्ष्मणमब्रवीत् । कुमार सह चन्द्रेण समवायस्त्वया कृतः ॥५९॥
कथं जानासि देवीति पद्मनेत्रा जगाद सा । चेष्टया देव जानामि शृणु तुल्यप्रवृत्तया ॥६०॥

कमलसे फेनको दूर करता है उसी प्रकार उसके हाथसे फाँसी छीन ली ॥४४॥ तदनन्तर नेत्रोंको चुरानेवाले रूपसे सुशोभित लक्ष्मणको मन्थर दृष्टिसे देखकर वह कन्या लज्जासे युक्त हो गयी॥४५॥ नवसमागमके कारण कुछ-कुछ काँपती हुई वनमाला परम आश्चर्यको प्राप्त हो इस प्रकार विचार करने लगी ॥४६॥ कि क्या मेरे सन्देश वचनोंसे परम दयालुताको प्राप्त हुई वनदेवियोंने ही मुझपर यह प्रसन्नता की है ? ॥४७॥ जिन्होंने मेरे निकलते हुए प्राण रोके हैं ऐसे ये प्राणनाथ दैवयोगसे ही यहाँ आ पहुँचे हैं ॥४८॥ इस प्रकार विचार करती और कुछ-कुछ पसीनाको धारण करती हुई वनमाला लक्ष्मणका आलिंगन पाकर अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥४९॥

तदनन्तर इधर कोमल तथा महासुगन्धित फूलोंको उत्कृष्ट शय्यापर पड़े रामकी जब निद्रा हटी तो उन्होंने लक्ष्मणकी ओर दृष्टि डाली। लक्ष्मणको न देखकर वे उठे और सीतासे पूछने लगे कि देवि ! यहाँ लक्ष्मण क्यों नहीं दिखाई देता ? ॥५०-५१॥ सायंकालके समय तो वह फूल तथा पत्तोंसे हमारी शय्या कर यहीं पासमें सोया था पर अब यहाँ दिखाई नहीं दे रहा है ॥५२॥ सीताने उत्तर दिया कि हे नाथ ! आवाज देकर बुलाइए। तब रामने यथाक्रमसे उच्चवाणीमें इस प्रकार शब्द कहे कि हे लक्ष्मण ! तू कहाँ चला गया, आओ-आओ, हे तात ! हे बालक ! हे अनुज ! कहाँ हो, शीघ्र आवाज देओ ॥५३-५४॥ रामकी आवाज सुन लक्ष्मणने हड़बड़ाकर उत्तर दिया कि देव ! यह आता हूँ। इस प्रकार उत्तर देकर वे वनमालाके साथ अग्रजके समीप आ पहुँचे ॥५५॥ उस समय स्पष्ट ही आधी रात थी, चन्द्रमाका उदय हो चुका था और कुमुदोंके गर्भसे मिलकर सुगन्धित तथा शीतल वायु बह रही थी ॥५६॥ तदनन्तर जिसने कमलके समान सुन्दर हाथोंसे अंजलि बाँध रखी थी, वस्त्रसे जिसका सर्व शरीर आवृत था, लज्जासे जिसका मुख नम्रीभूत हो रहा था, जो समस्त कर्तव्यको जानती थी तथा परम विनयको धारण कर रही थी ऐसी वनमालाने आकर राम तथा सीताके चरणयुगलको नमस्कार किया ॥५७-५८॥ तदनन्तर लक्ष्मणको स्त्री सहित देख सीताने कहा कि हे कुमार ! तुमने तो चन्द्रमाके साथ मित्रता कर ली ॥५९॥ रामने सीतासे कहा कि हे देवि ! तुम किस प्रकार जानती हो ? इसके उत्तरमें सीताने कहा कि हे देव !

ज्योत्स्नया सहितश्चन्द्रो यस्मिन् काले समागतः । लक्ष्मीधरोऽपि तत्रैव सहितो बालयानया ॥६१॥
यथा ज्ञापयसि स्पष्टमेवमेतदिति ब्रुवन् । लक्ष्मीधरोऽन्तिके तस्थौ ह्रिया किंचिन्नतानन: ॥६२॥
उत्फुल्लनेत्रराजीवाः प्रमोदार्पितचेतसः । प्रसन्नवक्त्रतारेशाः सुशीला विस्मयान्विताः ॥६३॥
कथाभिः स्मितयुक्ताभिः यातायातिः स्थानयुक्तताम् । ते तत्र निद्राच्छाया नष्टनिद्राः सुखं स्थिताः ॥६४॥
सख्योऽत्र वनमालाया: समये बोधमागताः । शय्यनीयं तथा शून्यं ददृशुस्त्रस्तमानसाः ॥६५॥
ततोऽश्रुपूर्णनेत्राणां गवेषव्याकुलात्मनाम् । तासां हाकारशब्देन प्रबोधं भेजिरे भटाः ॥६६॥
उपलभ्य च वृत्तान्तं सन्नद्धारूढसत्वः । शूराः पदातयश्चान्ये कृतकार्मुकपाणयः ॥६७॥
दिशः सर्वाः समास्तीर्यं दधावुभ्रान्तमानसाः । भीतिप्रीतिसमायुक्ताः समीरस्येव शावकाः ॥६८॥
ततः कैरपि ते दृष्टाः समेता वनमालया । निवेदिताश्च शेषस्य जनस्य जववाहनैः ॥६९॥
ज्ञातनिश्शेषवृत्तान्तैस्तैरलं संमदान्वितैः । पृथिवीधरराजस्य कृतं दिष्ट्यामिवर्धनम् ॥७०॥
उपायारम्भमुक्तस्य तवाद्य नगरे प्रभो । जगाम प्रकटीभावं महारत्ननिधिः स्वयम् ॥७१॥
पपात नभसो वृष्टिर्विना मेघसमुद्भवात् । परिकर्मविनिर्मुक्तं सस्यं क्षेत्रात् समुद्गतम् ॥७२॥
जामाता लक्ष्मणोऽयं ते वर्तते निकटे पुरः । जीवितं हातुमिच्छन्त्या संगतो वनमालया ॥७३॥
पद्मश्च सीतया सार्द्धं परमो भवतः प्रियः । शच्येव सहितो देवेन्द्रोऽयमत्र विराजते ॥७४॥
वदतामिति भृत्यानां वचनैः प्रियशंसिभिः । सुखनिर्झरचेतस्को मुमूर्छ नृपतिः क्षणम् ॥७५॥

मैं समान प्रवृत्त चेष्टासे जानती हूँ सुनिए ॥६०॥ जिस समय चन्द्रमा चन्द्रिका अर्थात् चाँदनीके साथ आया उसी समय लक्ष्मण भी इस बालाके साथ आया है इससे स्पष्ट है कि इसकी चन्द्रमाके साथ मित्रता है ॥६१॥ जैसा आप समझ रही हैं बात स्पष्ट ही ऐसी है इस प्रकार कहते हुए लक्ष्मण लज्जासे कुछ नतानन हो पास ही में बैठ गये ॥६२॥ इस तरह जिनके नेत्रकमल विकसित थे, जो आनन्दसे विभोर थे, जिनके मुखरूपी चन्द्रमा अत्यन्त प्रसन्न थे, जो सुशील थे, आश्चर्यसे सहित थे, देवोंके समान कान्तिके धारक थे तथा जिनकी निद्रा नष्ट हो गयी थी ऐसे वे सब, स्थानकी अनुकूलताको प्राप्त मन्दहास्य युक्त कथाएँ करते हुए वहाँ सुखसे विराजमान थे ॥६३-६४॥ यहाँ समयपर जब वनमालाकी सखियाँ आयीं तो शय्याको सूनी देख भयभीत हो गयीं ॥६५॥ तदनन्तर जिसके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे तथा जो वनमालाकी खोजके लिए छटपटा रही थीं ऐसी उन सखियोंकी हाहाकारसे योद्धा जाग उठे ॥६६॥ तथा सब समाचार जानकर तैयार हो कुछ तो घोड़ोंपर आरूढ़ हुए और कुछ भाले तथा धनुष हाथमें ले पैदल ही चलनेके लिए तैयार हुए ॥६७॥ इस प्रकार जिनके चित्त घबड़ा रहे थे, जो भय और प्रीतिसे युक्त थे तथा जो शीघ्र गतिमें वायुके बच्चोंके समान जान पड़ते थे ऐसे योद्धा समस्त दिशाओंको आच्छादित कर दौड़े ॥६८॥

तदनन्तर कितने ही योद्धाओंने वनमालाके साथ बैठे हुए उन सबको देखा और देखकर शीघ्रगामी वाहनोंसे चलकर शेषजनोंके लिए इसकी खबर दी ॥६९॥ तदनन्तर समस्त समाचारको ठीक-ठीक जानकर जो अत्यधिक हर्षित हो रहे थे ऐसे कुछ योद्धाओंने पृथिवीधर राजाके लिए भाग्यवृद्धिकी सूचना दी ॥७०॥ उन्होंने कहा कि हे प्रभो ! उपायारम्भसे रहित होनेपर भी आज आपके नगरमें स्वयं ही महारत्नोंका खजाना प्रकट हुआ है ॥७१॥ आज आकाशसे बिना मेघके ही वर्षा पड़ी है तथा जोतना, बखेरना आदि क्रियाओंके बिना ही खेतसे धान्य उत्पन्न हुआ है ॥७२॥ आपका जामाता लक्ष्मण नगरके निकट ही वर्तमान है तथा प्राण छोड़नेकी इच्छा करनेवाली वनमालाके साथ उसका मिलाप हो गया है ॥७३॥ सीता सहित राम भी जो कि आपको अत्यन्त प्रिय हैं इन्द्राणी सहित इन्द्रके समान यहीं सुशोभित हो रहे हैं ॥७४॥ इस प्रकार कहनेवाले भृत्योंके प्रिय सूचक वचनोंसे जिसके हृदयमें सुखका झरना फूट पड़ा था ऐसा राजा पृथिवीधर हर्षाति-

ततः प्रबुद्धचित्तेन परं प्रमदमीयुषा । दत्तं बहुधनं तेभ्यः स्मितशुक्लमुखेन्दुना ॥७५॥
अचिन्तयच्च हो साधु संजातं सुहितुर्मम । अनिश्चितगतिः प्रायो यदयं सुमनोरथः ॥७७॥
सर्वेषामेव जीवानां धनमिष्टसमागमः । जायते पुण्ययोगेन यच्चात्मसुखकारणम् ॥७८॥
योजनानां शतेनापि परिच्छिन्ने ऽन्तरान्तरे । इष्टो मुहूर्तमात्रेण लभ्यते पुण्यभागिभिः ॥७९॥
ये पुण्येन विनिर्मुक्ताः प्राणिनो दुःखभागिनः । तेषां हस्तमपि प्राप्तमिष्टवस्तु पलायते ॥८०॥
अरण्यानां गिरेर्मूर्ध्नि विषमे पथि दुस्तरे । प्राप्यते पुण्यपुरुषैर्ऋद्धिमिष्टसंगमाः ॥८१॥
इति संचिन्त्य जायायै तं वृत्तान्तमशेषतः । उत्थाप्याकथयत्तोषाद्वचोभिः कृष्णनिर्गतैः ॥८२॥
पुनः पुनरपृच्छत् सा सुमुखी स्वप्नशङ्कया । संजातनिश्चयादाप स्वसंवेद्यां सुखासिकाम् ॥८३॥
ततो रागाधरच्छाये समुद्यति दिवाकरे । प्रेमसंपूरितो राजा सर्वबान्धवसंगतः ॥८४॥
वरवारणमारुह्य शुभ्रया परमया द्युतः । प्रतस्थे परमं द्रष्टुमुत्सुकः प्रियसंगमम् ॥८५॥
माता च वनमालायाः पुत्रैरष्टाभिरन्विता । आरुह्य शिबिकां रम्यां प्रियस्य पदवीं श्रिता ॥८६॥
अनन्तरं नृपादेशात् कविपुः प्रचुरं हितम् । गन्धमाल्यादिवासोपसनीयत्तं मनोहरम् ॥८७॥
ततो दूरात् समालोक्य संफुल्लेक्षणपङ्कजम् । अवतीर्य गजाद् राजा ययौ के राममादरी ॥८८॥
परिष्वज्य महाप्रीत्या सहितं लक्ष्मणेन तम् । अपृच्छत् कुशलं कृष्टिर्जानकीं च समानसः ॥८९॥

रेकसे क्षण-भरके लिए मूर्च्छित हो गया ॥७५॥ तदनन्तर सचेत होनेपर जो परम हर्षको प्राप्त था तथा जिसका मुखरूपी चन्द्रमा मन्द मुसकानसे धवल हो रहा था ऐसे राजाने उन भृत्योंके लिए बहुत भारी धन दिया ॥७६॥ वह विचार करने लगा कि अहो, मेरी पुत्रीका बड़ा भाग्य है कि जिससे उसका यह अनिश्चित मनोरथ स्वयं ही पूर्ण हो गया ॥७७॥ समस्त जीवोंको धन, इष्टका समागम तथा जो भी आत्म-सुखका कारण है वह सब पुण्य योगसे प्राप्त होता है ॥७८॥ जिसके बीचमें सौ योजनका भी अन्तर प्रसिद्ध है वह इष्ट वस्तु पुण्यात्मा जीवोंको मुहूर्तमात्रमें प्राप्त हो जाती है ॥७९॥ इसके विपरीत जो प्राणी पुण्यसे रहित हैं वे निरन्तर दुखी रहते हैं तथा उनके हाथमें आयी हुई भी इष्ट वस्तु दूर हो जाती है ॥८०॥ अटवियोंके बीचमें, पहाड़की चोटीपर विषम मार्ग तथा समुद्रके मध्यमें भी पुण्यशाली मनुष्योंको इष्ट समागम प्राप्त होते रहते हैं ॥८१॥ इस प्रकार विचारकर उसने स्त्रीको उठाया और उसके लिए हर्षातिरेकके कारण कष्टसे निकलनेवाले वचनोंके द्वारा सब समाचार कहा ॥८२॥ उस सुमुखीने 'कहीं स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ' इस आशंकासे बार-बार पूछा और उत्पन्न हुए निश्चयसे वह स्वसंवेद्य सुखको प्राप्त हुई ॥८३॥

तदनन्तर जब स्त्रीके ओठके समान लाल-लाल कान्तिको धारण करनेवाला सूर्य उदित हो रहा था तब प्रेमसे भरा, सर्व बन्धुजनोंसे सहित, परम कान्तिसे युक्त और परम प्रिय समागम देखनेके लिए उत्सुक राजा पृथिवीधर उत्तम हाथीपर सवार हो चला ॥८४-८५॥ आठों पुत्रोंसे सहित वनमालाकी माता भी मनोहर पालकीपर सवार हो पतिके मार्गमें चली ॥८६॥ इसके पीछे राजाकी आज्ञानुसार सेवकोंके द्वारा अत्यधिक हितकारी वस्त्र तथा गन्ध, माला आदि समस्त मनोहर पदार्थ ले जाये जा रहे थे ॥८७॥

तदनन्तर दूरसे ही विकसित नेत्रकमलोंके धारी रामको देखकर राजा पृथिवीधर हाथीसे उतरकर आदरके साथ उनके पास पहुँचा ॥८८॥ तत्पश्चात् विधि-विधानके वेत्ता तथा शुद्ध-हृदयके धारक राजाने बड़े प्रेमसे राम-लक्ष्मणका आलिंगन कर उनसे तथा सीतासे कुशल समा-

---

१. विधिवेदी ।

[1]तदेभ्यापि तयोः पृष्ट्वा क्षेमं सुस्निग्धलोचना । निखिलाचारनिष्णाता जानकी परिषस्वजे ॥९०॥
उपचारो यथायोग्यं तयोस्तैरपि निर्मितः । आचार्यकं हिते[2] यातो वस्तुन्यत्र प्रविष्ठितम् ॥९१॥
वीणावेणुमृदङ्गादिसहितो गीतनिःस्वनः । क्षुब्धार्णवसमो जज्ञे वन्दिवृन्दानुनादितः ॥९२॥
उत्सवः स महाञ्जातः पूजिताखिलसंगतः । नृत्यल्लोकक्रमन्यासादतिकम्पितभूतलः ॥९३॥
दिशस्तूर्यनिनादेन प्रतिशब्दसमन्विताः । चक्रुः परस्परालापमिव संमदनिर्भराः[3] ॥९४॥
शनैः प्रसन्नतां याते तस्मिन्नथ महोत्सवे । शरीरकर्म तैः सर्वं कृतं स्नानाशनादिकम् ॥९५॥
ततः सन्नद्धिपारूढसामन्तशतवेष्टितौ । सारङ्गोपमपादातमहाचक्रपरिच्छदौ ॥९६॥
पुरःप्रवृत्तसोत्साहराजस्थपृथिवीधरौ । विदग्धसूतलोकेन कृतमङ्गलनिस्वनौ ॥९७॥
हारराजितवक्षस्कावनर्घांशुकधारिणौ । हरिचन्दनदिग्धाङ्गावारूढौ रथमुत्तमम् ॥९८॥
नानारत्नांशुसंपर्कसमुद्भूतेन्द्रकार्मुकौ । सप्ताङ्कभास्कराकारावशक्यगुणवर्णनौ ॥९९॥
सौधमैशानदेवाभौ जानकीसहितौ पुरम् । कुर्वाणौ विस्मयं तुङ्गं प्रविष्टौ रामलक्ष्मणौ ॥१००॥
वरमालाधरौ गन्धवद्धषट्पदमण्डलौ । संपूर्णचन्द्रवदनौ विनीताकारधारिणौ ॥१०१॥
यक्षेणेव कृते तस्मिन्नक्षये पुटभेदने । रेमाते परमं भोगं भुञ्जानौ निजवेच्छया ॥१०२॥

चार पूछा ॥८९॥ जिसके नेत्रोंसे स्नेह टपक रहा था तथा जो सब प्रकारका आचार जाननेमें निपुण थी ऐसी रानीने भी राम-लक्ष्मणसे कुशल पूछकर सीताका आलिंगन किया ॥९०॥ उन सबने भी राजा-रानीका यथायोग्य सत्कार किया सो ठीक ही है क्योंकि वे इस विषयमें अतिशय निपुणताको प्राप्त थे ॥९१॥

तदनन्तर जो वीणा, बाँसुरी, मृदंग आदिके शब्दसे सहित था, जो क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रकी तुलना धारण कर रहा था और जिसमें वन्दीजनोंके द्वारा उच्चारित विरुदावलीका नाद गूँज रहा था ऐसा संगीतका शब्द होने लगा ॥९२॥ जिसमें आये हुए समस्त इष्टजनोंका सत्कार हो रहा था, तथा नृत्य करनेवाले मनुष्योंके चरण निक्षेपसे जिसमें भूतल काँप रहा था ऐसा वह महान् उत्सव सम्पन्न हुआ ॥९३॥ तुरहीके शब्दसे जिनमें प्रतिध्वनि गूँज रही थी ऐसी दिशाएँ हर्षसे ओत-प्रोत हो मानो परस्पर वार्तालाप ही कर रही थीं ॥९४॥ अथानन्तर धीरे-धीरे जब वह महोत्सव शान्त हुआ तब उन्होंने स्नान, भोजन आदि शरीर सम्बन्धी सब कार्य किये ॥९५॥

तदनन्तर जो हाथी-घोड़ोंपर बैठे हुए सैकड़ों-सामन्तोंसे घिरे थे, मृगतुल्य पैदल सिपाहियों-का बड़ा दल जिनके साथ था, उत्साहसे भरा राजा पृथिवीधर जिनके आगे-आगे चल रहा था, चतुर वन्दीजन जिनके आगे मंगल ध्वनि कर रहे थे, जिनके वक्षःस्थल हारोंसे सुशोभित थे, जो अमूल्य वस्त्र धारण किये हुए थे, जिनके शरीर हरिचन्दनसे लिप्त थे, जो उत्तम रथपर सवार थे, जिनके नाना रत्नोंकी किरणोंके सम्पर्कसे इन्द्रधनुष उठ रहे थे, चन्द्र और सूर्यके समान जिनके आकार थे, जिनके गुणोंका वर्णन करना अशक्य था, सौधर्म तथा ऐशानेन्द्रके समान जिनकी कान्ति थी, जो अत्यधिक आश्चर्य उत्पन्न कर रहे थे, जिनके गलेमें वरमालाएँ पड़ी थीं, सुगन्धिके कारण जिनके आस-पास भ्रमरोंने मण्डल बाँध रखे थे, जिनके मुख चन्द्रमाके समान थे तथा जो विनीत आकारको धारण कर रहे थे ऐसे राम-लक्ष्मणने नगरमें प्रवेश किया ॥९६–१०१॥ जिस प्रकार पहले, यक्षके द्वारा निर्मित नगरमें इच्छानुसार भोग भोगते हुए वे रमण करते थे उसी प्रकार राजा पृथिवीधरके नगरमें भी वे इच्छानुसार उत्कृष्ट भोग भोगते हुए रमण करने

---

१. तदेभ्यापि म. । २. हितो याता ज. । ३. नृत्यलोक म. । ४. सम्मदनिर्झराः म. ।

पुष्पितानावृत्तम्

इति वनगहनान्यपि प्रयाताः सुकृतसुसंस्कृतचेतसो मनुष्याः ।
अतिपरमगुणाढ्युपाश्रयन्ते रविरुचयः सहसा पदार्थसार्थान् ॥१०३॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे-पद्मायने वनमालाभिधानं नाम षट्त्रिंशत्तमं पर्व ॥३६॥

□

लगे ॥१०२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जिनके चित्त पुण्यसे सुसंस्कृत हैं तथा जो सूर्यके समान दीप्तिके धारक हैं ऐसे मनुष्य सघन वनोंमें पहुँचकर भी सहसा उत्कृष्ट गुणोंसे युक्त पदार्थोंको प्राप्त कर लेते हैं ॥१०३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें वनमालाका वर्णन करनेवाला छत्तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३६॥

□

सप्तत्रिंशत्तमं पर्व

अन्यदाथ सुखासीनं समुदीरितत्कथम् । रामवालंकृतास्थानं राजानं पृथिवीधरम् ॥१॥
दूराध्वपरिखिन्नाङ्गो लेखवाहः समाययौ । प्रणम्य च समासीनो हृतं लेखं [1]समार्पयत् ॥२॥
गृहीत्वासौ ततो राज्ञा बाह्य[2]नामकलक्षितः । लेखकायार्पितः साधु[3] सन्धिविग्रहवेदिने ॥३॥
स विमुच्यानुवाच्यैनं [4]वाचितो राजचक्षुषा । लिपिषूद्युर्विधौ चारुरित्यवाचयदुच्चकैः ॥४॥
स्वस्तिस्वस्तितलकोदारप्रभावभृतिकर्मणे । श्रीमते नरराजानामतिवीर्याय धर्मणे ॥५॥
श्रीनन्द्यावर्तनगराद्वगराज [5]इवोत्थितः । यशातः पक्षमहाशब्दः शस्त्रशास्त्रविशारदः ॥६॥
राजाधिराजताश्लिष्टः प्रतापवशिताहितः । अनुरञ्जितसर्वक्ष्मः समुद्यन्नास्करद्युतिः ॥७॥
अतिवीर्यः समस्तेषु कर्तव्येषु महामतिः । राजमानगुणः श्रीमानतिवीर्यः क्षितीश्वरः ॥८॥
आज्ञापयति नगरे विजये पृथिवीधरम् । अक्षरैर्लेखसंक्रान्तैः कुशलप्रश्नपूर्वकम् ॥९॥
यथा मे केचिदेतस्मिन् सामन्ता धरणीतले । सकोषवाहनास्ते मे वर्तन्ते पादवर्तिनः ॥१०॥
आयान्यनुविधा म्लेच्छाश्चतुरङ्गसमन्विताः । नागाश्वाश्चकरा वाक्यमर्थन्ति समभूतयः ॥११॥
वराञ्जननगाभानां करिणामष्टभिः शतैः । समीरशवतुष्पानां सहस्रैर्वाजिनां त्रिभिः ॥१२॥
महाभोगो महातेजा मद्गुणाकृष्टमानसः । राजा विजयशार्दूलः सोऽथ प्राप्तो ममान्तिकम् ॥१३॥

अथानन्तर एक दिन राजा पृथ्वीधर सभामण्डपमें सुखसे विराजमान थे, पास ही में राम भी सभाको अलंकृत कर रहे थे तथा उन्हींसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा चल रही थी कि इतनेमें दूर मार्गसे आनेके कारण जिसका शरीर खिन्न हो रहा था ऐसा एक पत्रवाहक आया और राजाको प्रणाम कर बैठनेके बाद उसने शीघ्र ही एक पत्र समर्पित किया ॥१-२॥ वह पत्र जिसे दिया जाना था उसके नामसे अंकित था। राजाने पत्रवाहकसे पत्र लेकर सन्धिविग्रहको अच्छी तरह जाननेवाले लेखक (मुन्शी) के लिए सौंप दिया ॥३॥ वह लेखक सब लिपियोंके जाननेमें निपुण था, राजाके नेत्र द्वारा सम्मान प्राप्त कर उसने वह पत्र खोला। एक बार स्वयं बाँचा और फिर उच्च स्वरसे इस प्रकार बाँचकर सुनाया ॥४॥ उसमें लिखा था कि जो इन्द्रके समान उदार प्रभावका धारक तथा बुद्धिमान् है, लक्ष्मीमान् है तथा नम्रीभूत राजाओंके लिए सुख देनेवाला है ऐसा राजा अतिवीर्य स्वस्तिरूप है, मंगलरूप है ॥५॥ जो नगराज अर्थात् सुमेरुके समान (उदार) है, महायशका धारी है, शस्त्रमें निपुण है, राजाधिराजपनासे आलिंगित है, जिसने अपने प्रतापसे शत्रुओंको वश कर लिया है, जिसने समस्त पृथिवीको अनुरंजित कर लिया है, उगते हुए सूर्यके समान जिसकी कान्ति है, जो अतिशय पराक्रमी है, समस्त कार्योंमें महानीतिज्ञ है, और जिससे अनेक गुण शोभायमान हो रहे हैं ऐसा श्रीमान् अतिवीर्य राजा नन्द्यावर्तपुरसे विजयनगरमें वर्तमान राजा पृथिवीधरको लेखमें लिखित अक्षरोंसे कुशल समाचार पूछता हुआ आज्ञा देता है कि इस पृथिवी-तलपर मेरे जो सामन्त हैं वे खजाना और सेनाके साथ मेरे पास हैं ॥६-१०॥ जिनके हाथमें नाना प्रकारके शस्त्र देदीप्यमान है तथा जो एक सदृश विभूतिके धारक हैं ऐसे म्लेच्छ राजा अपनी-अपनी चतुरंग सेनाके साथ यहाँ आ गये हैं ॥११॥ जो महाभोगी और महाप्रतापी हैं तथा जिसका मन हमारे गुणोंसे आकर्षित है ऐसा राजा विजयशार्दूल भी अंजनगिरिके समान आभावाले आठ सौ

---

१. समर्पयत् म.। २. बाह्यनामाकुलक्षितः म.। ३. साधुः सन्धि म.। ४. वाचितो म., ख.। ५. इव स्थितः ख.।

मृगध्वजो रणोर्मिश्च कलभः केसरी तथा । अङ्गा महीभृतः षड्भिरमी करटिनां शतैः ॥१४॥
प्रत्येकं पञ्चभिः सप्तिसहस्रैश्च समावृताः । प्राप्ताः कृतमहोत्साहा नयपण्डितबुद्धयः ॥१५॥
उत्साहयन् छलोद्भूतं नयशास्त्रविचारदम् । पञ्चालाधिपमारभार्थकारिणं ज्ञातकारणम् ॥१६॥
द्विरदानां सहस्रेण तैर्यग्यूनां च सप्तभिः । पौण्ड्रक्ष्मापतिराक्रीनः प्रतापं परमं वहन् ॥१७॥
साधनेन तदग्रेण संप्राप्तो मगधाधिपः । पूर्यमाणो नृपैर्वाहो रैवो नदसतैरिव ॥१८॥
सहस्रैरागतोऽष्टाभिर्दन्तिनां जलदत्विषाम् । अदृश्यान्तेन सुकेशेन भुज्यमानेन वज्रभृत् ॥१९॥
सुभद्रो मुनिभद्रश्च साधुभद्रश्च नन्दनः । तुल्या वज्रधरस्यैते संप्राप्ता भवनाधिपाः ॥२०॥
अवार्यवीर्यसंपन्नः सिंहवीर्यो महीपतिः । वाङ्गः सिंहरथश्चेतौ मातुलौ बलशालिनौ ॥२१॥
पदातिभी रथैर्नागैः स्फुरितपृष्टैः प्रतिष्ठितैः । वत्सस्वामी समायातो सारिदत्तोत्तिमूरिभिः ॥२२॥
अम्बष्ठः प्रोष्ठिलो राजा सौवीरो वीरमन्दिरः । प्राप्तौ दुर्वेदसंख्येन साधनेनान्विताविमौ ॥२३॥
एतेऽन्ये च महासत्त्वा राजानः श्रुतशासनाः । अक्षौहिणीभिरायाता दशभिस्त्रिदशोपमाः ॥२४॥
अमीभिरनुयातोऽहं प्रस्थितो भरतं प्रति । त्वामुदीक्षे यतो क्षेत्रदर्शनानन्तरं ततः ॥२५॥
आगन्तव्यं त्वया प्रीत्या कार्यप्रेक्षितया तया । पश्यामोऽत्यादरेण त्वां वर्षा वर्षं कृषीवलाः ॥२६॥
एवं च वाचिते लेखे स पार्थिवीधरः । किंचिदूचे सुमित्रायाः सूनुरुत्तावदग्रतः ॥२७॥

सौ हाथियों और वायुके पुत्रके समान चपल तीन हजार घोड़ोंके साथ आज हमारे पास आ गया है ॥१२-१३॥ बहुत भारी उत्साहके देनेवाले तथा नीति-निपुण बुद्धिके धारक जो मृगध्वज, रणोर्मि, कलभ और केसरी नामके अंगदेशके राजा हैं वे भी प्रत्येक छह सौ हाथियों तथा पाँच हजार घोड़ोंसे समावृत हो आ पहुँचे हैं ॥१४-१५॥ जो छलपूर्ण युद्ध करनेमें निपुण है, नीतिशास्त्रका पारगामी है, प्रयोजन सिद्ध करनेवाला है तथा युद्धकी सब गतिविधियोंका जानकार है ऐसे पंचाल देशके राजाको उत्साहित करता हुआ पौण्ड्रदेशका परम प्रतापी राजा, दो हजार हाथियों और सात हजार घोड़ोंके साथ आ गया है ॥१६-१७॥ जिस प्रकार रेवा नदीके प्रवाहमें सैकड़ों नदियाँ आकर मिलती हैं इसी प्रकार जिसमें अन्य अनेक राजा आ-आकर मिल रहे हैं ऐसा मगध देशका राजा भी पौण्ड्राधिपतिसे भी कहीं अधिक सेना लेकर आया है ॥१८॥ वज्रको धारण करनेवाला राजा सुकेश, मेघके समान कान्तिको धारण करनेवाले आठ हजार हाथियों और जिसका अन्त पाना कठिन है ऐसी घोड़ोंकी सेनाके साथ आ पहुँचा है ॥१९॥ जो इन्द्रके समान पराक्रमके धारी हैं, ऐसे सुभद्र, मुनिभद्र, साधुभद्र और नन्दन नामक भवनोंके राजा हैं वे भी आ गये हैं ॥२०॥ जो अवार्य वीर्यसे सम्पन्न है, ऐसा राजा सिंहवीर्य, तथा वंग देशका राजा सिंहरथ ये दोनों मेरे मामा हैं सो बहुत भारी सेनासे सुशोभित होते हुए आये हैं ॥२१॥ वत्स देशका राजा सारिदत्त बहुत भारी पदाति, रथ, हाथी और उत्तमोत्तम घोड़ोंके साथ आया है ॥२२॥ अम्बष्ठ देशका राजा प्रोष्ठिल और सुवीर देशका स्वामी धीरमन्दिर ये दोनों असंख्यात सेनाके साथ आ पहुँचे हैं ॥२३॥ तथा इनके सिवाय जो और भी महापराक्रमी एवं देवोंकी उपमा धारण करनेवाले अन्य राजा हैं वे मेरी आज्ञा श्रवण कर सेनाओंके साथ आ चुके हैं ॥२४॥ इन सब राजाओंको साथ लेकर मैंने अयोध्याके राजा भरतके प्रति प्रस्थान किया है, सो तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है, अतः तुम्हें पत्र देखनेके बाद तुरन्त ही यहाँ आना चाहिए। तुम्हारी मुझमें प्रीति ही ऐसी है कि जिससे आप दूसरे कार्यके प्रति दृष्टि भी नहीं डालेंगे। जिस प्रकार किसान वर्षाको बड़े आदरसे देखते हैं, उसी प्रकार हम भी तुम्हें बड़े आदरसे देखते हैं ॥२५-२६॥ इस प्रकार पत्र बाँचे जानेपर राजा पृथिवीधर

---

१. अश्वानाम् । २. सानुभद्रस्य नन्दन इ., १

अतिवीर्ये तथाबुद्धौ भरतस्य विचेष्टितम् । तव कीदृगिति ज्ञातं [1]भद्रस्य दूतस्य ते ॥२८॥
एवं वायुगतिः पृष्टो जगाद निखिलं मम । विदितं राजचरितमन्तरङ्गो ह्यसौ परः ॥२९॥
इच्छामि विशदं श्रोतुमित्युक्ते पुनरब्रवीत् । शृणु चित्तं समाधाय भवतश्चेत्कुतूहलम् ॥३०॥
श्रुतबुद्धिरिति ख्यातो दूतः श्रुतविशारदः । प्रहितः स्वामिनास्माकं गत्वा भरतमब्रवीत् ॥३१॥
दूतोऽस्मि शक्रतुल्यस्य प्रणताखिलभूभृतः । अतिवीर्यनरेन्द्रस्य नयन्यासमनीषिणः ॥३२॥
संप्राप्य साध्वसं यस्याक्षरकेसरिणः परम् । भजन्ते रिपुसारङ्गा न निद्रां वसतिष्वपि ॥३३॥
विनीता पृथिवी यस्य चतुरम्भोधिमेखला । आज्ञां पाणिगृहीतेव कुरुते परिपालिता ॥३४॥
आज्ञापयत्यसौ देवो भवन्तमिति सक्रियः । वर्णैर्मदास्यविन्यस्तैरुर्जितात्मा समन्ततः ॥३५॥
यथा भज समागत्य भृत्यतां भरत द्रुतम् । अयोध्यां वा परित्यज्य भज पारमुदन्वतः ॥३६॥
ततः क्रोधपरीताङ्गः शत्रुघ्नश्चण्डया गिरा । जगाद निष्प्रतीकारो दावाग्निरिव दारुणः ॥३७॥
भजत्येव तथा देवो भरतस्तस्य भृत्यताम् । यथा संजायते युक्तमिदं तावत्समर्थितम् ॥३८॥
विनीतां च परित्यज्य सचिवेषु प्रभुर्भुवम् । यात्येवोदन्वतः पारं वशीकुर्वन् कुमानवान् ॥३९॥
वचस्त्वां ज्ञापयामीति नितरां तस्य नोचितम् । रासभस्य यथा मत्तवारणविगर्जितम् ॥४०॥
सूचयत्यथवा तस्य मृत्युमेतद्वचः स्फुटम् । उत्पातभूतमेतो वा स नूनं वायुवश्यताम् ॥४१॥

अबतक कुछ नहीं कह पाये कि तबतक उसके पहले ही लक्ष्मण ने कहा कि हे भद्र ! हे समीचीन बुद्धिके धारक दूत ! तुझे मालूम है कि राजा अतिवीर्यके उस तरह रुष्ट होनेमें भरतकी कैसी चेष्टा कारण है अर्थात् अतिवीर्य और भरतमें विरोध होनेका क्या कारण है ? ॥२७-२८॥ इस प्रकार लक्ष्मणके पूछनेपर उस वायुगति नामक दूतने कहा कि मैं चूँकि राजाका अत्यन्त अन्तरंग व्यक्ति हूँ अतः मुझे सब मालूम है ॥२९॥ इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि तो मैं सुनना चाहता हूँ। इस प्रकार कहे जानेपर वायुगति दूत बोला कि यदि आपको कुतूहल है तो चित्त स्थिर कर सुनिए मैं कहता हूँ ॥३०॥ उसने कहा कि एक बार हमारे राजा अतिवीर्यने श्रुतबुद्धि नामका निपुण दूत भरतके पास भेजा, सो उसने जाकर भरतसे कहा कि जो इन्द्रके समान पराक्रमी है। जिसे समस्त राजा नमस्कार करते हैं तथा जो नयके प्रयोग करनेमें अत्यन्त निपुण है ऐसे राजा अतिवीर्यका मैं दूत हूँ ॥३१-३२॥ जो मनुष्योंमें सिंहके समान है तथा जिससे भयभीत होकर शत्रुरूप मृग अपनी वसतिकाओंमें निद्राको प्राप्त नहीं होते ॥३३॥ चार समुद्र ही जिसकी कटिमेखला है, ऐसी समस्त पृथिवी स्त्रीके समान बड़ी विनयसे जिसकी आज्ञाका पालन करती है, जो उत्तम क्रियाओंका आचरण करनेवाला है तथा सब ओरसे जिसकी आत्मा अत्यन्त बलिष्ठ है, ऐसे राजा पृथिवीपर मेरे मुखमें स्थापित किये हुए अक्षरोंसे आपको आज्ञा देते हैं कि हे भरत ! तू शीघ्र ही आकर मेरी दासता स्वीकृत कर अथवा अयोध्या छोड़कर समुद्रके उस पार भाग जा ॥३४-३६॥

तदनन्तर जिसका शरीर क्रोधसे व्याप्त हो रहा था तथा उठी हुई दावानलके समान जिसका प्रतिकार करना कठिन था ऐसा शत्रुघ्न तीक्ष्ण वाणीसे बोला कि अरे दूत ! राजा भरत उसकी भृत्यताको उस तरह अभी हाल स्वीकृत करते हैं कि जिस तरह उसका यह कहना ठीक सिद्ध हो जाय ? अयोध्या छोड़नेकी बात कही सो अभ्युदयको धारण करनेवाले राजा भरत अयोध्याको मन्त्रियोंपर छोड़ क्षुद्र मनुष्योंको वश करनेके लिए अभी हाल समुद्रके पार जाते हैं ॥३७-३९॥ परन्तु मैं तुझसे कह रहा हूँ कि जिस प्रकार मदोन्मत्त हाथीके प्रति गधेकी गर्जना उचित नहीं जान पड़ती, उसी प्रकार भरतके प्रति तेरे स्वामीकी यह गर्जना बिलकुल ही उचित नहीं है ॥४०॥ अथवा उसके यह वचन स्पष्ट ही उसकी मृत्युको सूचित करते हैं। जान पड़ता है कि वह उत्पातरूपी

---

१. भद्रास्य दूत सम्मते ज. । भद्रस्य इतस्य ते म. (?) । २. यात्येवोन्मत्तः म. ।

वैराग्याद्‌थवा तातं तपोवनमुपागते[1] नरेन्द्रेण समाविष्टो ग्रहेण खलवेष्टितः ॥४२॥
यद्यप्युपशमं यातस्तातोऽग्निर्मुक्तिकाम्यया । तथापि निर्गतस्तस्मात्स्फुलिङ्गस्तं दहाम्यहम् ॥४३॥
सिंहे करीन्द्रकीलालपङ्कलोहितकेसरे । शान्तेऽपि शावकस्तस्य कुरुते करिपातनम् ॥४४॥
इत्युक्त्वा दह्यमानोक्षवेणुकान्तारभीषणम् । अहास तेजसास्थानं ग्रसमानः शुचाखिलम् ॥४५॥
जगाद च कुदूतस्य तावदस्य विधीयताम् । खलीकारोऽल्पवीर्यस्य सत्यंकार इव द्रुतम् ॥४६॥
इत्युक्ते पादयोर्दूतो गृहीत्वा कुपितैर्भटैः । सारमेय इवागस्वी[2] हन्यमानः कृतध्वनिः ॥४७॥
आकृष्टो नगरीमध्यं यावन्मुक्तश्च दुःखितः । दग्धो दुर्वचनैर्धूलीधूसरो निरगात्ततः ॥४८॥
ततः सागरगम्भीरः परमार्थविशारदः । अपूर्वं दूतवचः श्रुत्वा किंचित्कोपमुपागतः ॥४९॥
केकयानन्दनः श्रीमान्सुप्रभानन्दनान्वितः । विनिर्ययौ पुरीं पुर्या निर्यातः सचिवान्वितः ॥५०॥
श्रुत्वा तं मिथिलाधीशः कनकः पृतनाघनः । प्राप सिंहोदराद्याश्च राजानो भक्तितत्पराः ॥५१॥
चक्रेण महता युक्तो भरतः प्रस्थितस्ततः । नन्द्यावर्तं प्रजा रक्षन् पितेव न्यायकोविदः ॥५२॥
अतिवीर्योऽपि दूतेन खलीकारमदर्शिना । परमं क्षोभमासीनः क्षुब्धाकूपारभीषणः ॥५३॥
भरताय्यनिरोक्षिष्णुर्गन्तुं संविदधे मतिम् । सामन्तैर्वेष्टितः सर्वैः कृतानेकमहाद्भुतैः ॥५४॥
ततो ललाटमार्गेण युवचन्द्राकृतिं श्रितः । वनमालापितुः संज्ञां कृत्वा स्वैरं बलोऽवदत् ॥५५॥

भूतसे ग्रस्त है अथवा वायुरोगके वशीभूत है ॥४१॥ अथवा वैराग्यके योगसे पिता राजा दशरथके तपोवनके लिए चले जानेपर दुष्टोंसे घिरा तुम्हारा राजा ग्रहसे आक्रान्त हो गया है ॥४२॥ यद्यपि मोक्षकी आकांक्षासे पितारूपी अग्नि शान्त हो चुकी है तथापि मैं उस अग्निसे निकला हुआ एक तिलगा हूँ, सो तेरे राजाको अभी भस्म करता हूँ ॥४३॥ बड़े-बड़े हाथियोंके रुधिररूपी पंकसे जिसको गरदनके बाल लाल हो रहे थे ऐसे सिंहके शान्त हो जानेपर भी उसका बच्चा हाथियोंका विघात करता ही है ॥४४॥ इस प्रकार जलते हुए बाँसोंके बड़े वनके समान भयंकर वचन कहकर तेजसे समस्त सभाको ग्रसता हुआ शत्रुघ्न जोरसे हँसा ॥४५॥ और बोला कि बयानेके समान अल्पवीर्य (अतिवीर्य) के इस कुदूतका तिरस्कार शीघ्र ही किया जाये ॥४६॥ शत्रुके इस प्रकार कहते ही क्रोधसे भरे योद्धाओंने उस दूतके दोनों पैर पकड़कर उसे घसीटना शुरू किया जिससे वह पीटे जानेवाले अपराधी कुत्तेके समान काँय-काँय करने लगा ॥४७॥ इस तरह नगरीके मध्य तक घसीटकर उसे छोड़ दिया। तदनन्तर दुःखी दुर्वचनोंसे जला और धूलिसे धूसर हुआ वह दूत वहाँसे चला गया ॥४८॥

तदनन्तर जो समुद्रके समान गम्भीर थे, परमार्थके जाननेवाले थे तथा जो दूतके पूर्वोक्त अपूर्व वचन सुनकर कुछ क्रोधको प्राप्त हुए थे ऐसे श्रीमान् राजा भरत, शत्रुघ्न भाई और मन्त्रियोंको साथ ले, शत्रुका प्रतिकार करनेके लिए नगरीसे बाहर निकले ॥४९-५०॥ यह सुनकर मिथिलाका राजा कनक बड़ी भारी सेना लेकर भरतसे आ मिला तथा भक्तिमें तत्पर रहनेवाले सिंहोदर आदि राजा भी आ पहुँचे ॥५१॥ इस प्रकार जो पिताके समान प्रजाकी रक्षा करते थे, तथा जो न्याय-नीतिमें निपुण थे ऐसे राजा भरत बड़ी भारी सेनासे युक्त हो नन्द्यावर्त नगरकी ओर चले ॥५२॥

उधर अपने अपमानको दिखानेवाले दूतने जिसे अत्यन्त कुपित कर दिया था, जो क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रके समान भयंकर था, जो अग्निके समान दमक रहा था तथा अनेक बड़े-बड़े आश्चर्यपूर्ण कार्य करनेवाले सामन्त जिसे घेरे थे ऐसे राजा अतिवीर्यने भी भरतके प्रति चढ़ाई करनेका निश्चय किया ॥५३-५४॥ तदनन्तर ललाटसे तरुण चन्द्रमाकी आकृतिके धारण करने-

---

१. नरेन्द्रेशा समाविष्टो नरेन्द्रो स समा म., ज. । २. अपराधी । ३. कृतिः श्रितः म. ।

युक्तमेवातिवीर्यस्य भरते कर्तुमीदृशम् । पितुर्येन समो भ्राता ज्येष्ठोऽसावपमानितः ॥५६॥
आगच्छाम्यहमित्युक्त्वा लेखवाहं महीधरः । प्रतिप्रेष्याकरोन्मन्त्रं रामेण पृथिवीधरः ॥५७॥
अतिवीर्योऽतिदुर्वारश्छद्मना तं व्रजाम्यहम् । एवं महीधरेणोक्ते पद्मो विश्रब्धमब्रवीत् ॥५८॥
अज्ञातैरिदमस्माभिः साधनीयं प्रयोजनम् । ततो न महता कृत्यं संरम्भेण तु पार्थिव ॥५९॥
तिष्ठ त्वमिह कुर्वाणः सुप्रयुक्तमहं तव । पुत्रजामातृभिः सार्धमग्रं तस्य व्रजाम्यरेः ॥६०॥
इत्युक्त्वा रथमारुह्य परं सारबलान्वितैः । महीधरसुतैः सार्धं ससीतो लक्ष्मणान्वितः ॥६१॥
नन्द्यावर्तपुरीं रामो गन्तुं प्रवृत्ते यदा । प्राप्तश्चावस्थितस्तस्य पुरस्य निकटेऽन्तरे ॥६२॥
तनुकृत्ये कृते तत्र संबन्धितनयैः सह । रामलक्ष्मणयोर्मध्यः सीतायाश्चेत्यवर्तत ॥६३॥
जगाद जानकी नाथ भवतः सन्निधौ मम । वक्तुं नैवाधिकारोऽस्ति किं तारा भान्ति भास्करे ॥६४॥
तथापि देव भाषेऽहं प्रेरिता हितकाम्यया । जातो वंशलतातोऽपि मणिः संगृह्यते ननु ॥६५॥
अतिवीर्योऽतिवीर्योऽयं महासाधनसंगतः । क्रूरकर्मा कथं शक्यो जेतुं भरतभूभृता ॥६६॥
अतस्त्वरितं जेये शीघ्रमुपायश्चिन्त्यतां द्रुतम् । सहसारभ्यमाणं हि कार्यं व्रजति संशयम् ॥६७॥
त्रिलोकेऽप्यस्ति नासाध्यं भवतो लक्ष्मणस्य वा । किंतु प्रस्तुतमत्यक्त्वा समारब्धं प्रशस्यते ॥६८॥
ततो लक्ष्मीधरोऽवोचत्किमेवं देवि भाषसे । पश्य श्वो निहितं पापमणुवीर्यं मया रणे ॥६९॥
रामपादरजःपूतशिरसो मे सुरैरपि । न शक्यते पुरः स्थातुं क्षुद्रवीर्ये तु का कथा ॥७०॥

वाले रामने वनमालाके पिता राजा पृथिवीधरको संकेत कर स्वेच्छानुसार कहा कि जिसने पिताके समान बड़े भाईको अपमानित किया है ऐसे भरतपर अतिवीर्यका ऐसा करना उचित ही है ॥५५-५६॥ तदनन्तर 'मैं अभी आता हूँ' इस प्रकार कहकर राजा पृथिवीधरने दूतको तो विदा किया और रामके साथ बैठकर इस प्रकार सलाह की कि 'अतिवीर्यका निराकरण करना सरल नहीं है इसलिए मैं छलसे जाता हूँ'। राजा पृथिवीधरके इस प्रकार कहनेपर रामने विश्वासपूर्वक कहा कि हम लोगोंको यह कार्य अज्ञात रूपसे चुपचाप करना योग्य है अतः हे राजन्! बड़े आडम्बरकी आवश्यकता नहीं है ॥५७-५९॥ आप सुचारु रूपसे अपना काम करते हुए यहीं रहिए मैं आपके पुत्र तथा जँवाईके साथ शत्रुके सम्मुख जाता हूँ ॥६०॥ इस प्रकार कहकर राम, लक्ष्मण और सीताके साथ रथपर सवार हो श्रेष्ठ सेना सहित राजा पृथिवीधरके पुत्रोंको साथ ले नन्द्यावर्तपुरी-की ओर चले तथा वेगसे चलकर नगरीके निकट जाकर ठहर गये ॥६१-६२॥ वहाँ स्नान, भोजन आदि शरीर सम्बन्धी कार्य कर चुकनेके बाद राम, लक्ष्मण तथा सीताकी पृथिवीधरके पुत्रोंके साथ निम्न प्रकार सलाह हुई ॥६३॥ सलाहके बीच सीताने रामसे कहा कि हे नाथ! यद्यपि आपके समीप मुझे कहनेका अधिकार नहीं है क्योंकि सूर्यके रहते हुए क्या तारा शोभा देते हैं? ॥६४॥ तथापि हे देव! हितकी इच्छासे प्रेरित हो कुछ कह रही हूँ सो ठीक ही है क्योंकि वंशकी लतासे उत्पन्न हुआ मणि भी तो ग्राह्य होता है ॥६५॥ सीताने कहा कि यह अतिवीर्य, अत्यन्त बलवान्, बड़ी भारी सेनासे सहित तथा क्रूरतापूर्ण कार्य करनेवाला है सो भरतके द्वारा कैसे जीता जा सकता है? ॥६६॥ अतः शीघ्र ही उसके जीतनेका उपाय सोचिए क्योंकि सहसा प्रारम्भ किया हुआ कार्य संशयमें पड़ जाता है ॥६७॥ यद्यपि तीन लोकमें भी ऐसा कार्य नहीं है जो आप तथा लक्ष्मणके असाध्य हो किन्तु जो कार्य प्रकृत कार्यको न छोड़कर प्रारम्भ किया जाता है वही प्रशंसनीय होता है ॥६८॥ तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि हे देवि! ऐसा क्यों कहती हो, तुम कल ही अणुवीर्य (अतिवीर्य) को रणमें मेरे द्वारा मरा हुआ देख लेना ॥६९॥ रामकी चरण-धूलिसे जिसका शिर पवित्र है ऐसे मेरे सामने देव भी खड़े होनेके लिए समर्थ नहीं हैं फिर अणुवीर्यकी तो

---

१. अतस्तं निर्जये म.।

न यावदेषा याति भानुरस्तं कुतूहली । वीक्ष्यतां तावदेवैव अणुवीर्यस्य पञ्चताम् ॥७१॥
युवराजसमाभ्याता संबन्धितनया अपि । एतदेव वचोऽमुञ्चन्प्रतिशब्दसहोदरम् ॥७२॥
ततः पद्मो निजार्धैर्तां भ्रूभङ्गेन महामनाः । अवधील्लक्ष्मणं धैर्यादधिकं गण्डूषयन्निव ॥७३॥
युक्तमुक्तमलं तात जानक्या वस्तु पुष्कलम् । स्फुटीकृतं तु नात्यन्तमत्यासादनभीतया ॥७४॥
अस्याः शृणु यदाकूतमतिवीर्यो बलोद्धतः । भरतेन स नो शक्यो वशीकर्तुं रणाजिरे ॥७५॥
नागो न भरतस्तस्य दशमोऽपि भवत्यसौ । दृश्य दावानलप्रख्यं किं करोति महागजः ॥७६॥
दन्तिभिश्च समृद्धस्य समृद्धोऽपि तुरङ्गमैः । भरतो नैव [2]शक्तोऽस्य तथा विन्ध्यस्य केसरी ॥७७॥
भरतस्य जये नात्र संशयोऽपि समीक्ष्यते । एकान्तस्तु कुतो वापि स्याज्जन्तुप्रलयस्तथा ॥७८॥
कस्मैककयोर्जाते विरोधे कारणं विना । पक्षद्वयं मनुष्याणां जायते [3]विवशक्षयम् ॥७९॥
दुरात्मनातिवीर्येण भरते च वशीकृते । जायते रघुगोत्रस्य कलङ्कः पश्य कीदृशः ॥८०॥
नेक्ष्यते संधिरप्यत्र शत्रुघ्नेन च मानिना । शैशवेन कृतं दोषं शत्रावत्युद्धते शृणु ॥८१॥
विभावर्यां तमिस्रायां किलावस्कन्ददायिना । रौद्रभूतिसमेतेन शत्रुघ्नेन चरिष्णुना ॥८२॥
निद्रावशीकृतान् वीरान् बहून् कृत्वा मृतक्षतान् । हस्तिनश्च दुरारोहान् प्रगलद्दाननिर्झरान् ॥८३॥
चतुःषष्टिसहस्राणि वाजिनां वातरंहसाम् । शतानि सप्त चैमानामञ्जनाद्रिसमत्विषाम् ॥८४॥
बाह्यस्थानि पुरस्यास्य नीतानि दिवसैस्त्रिभिः । भरतस्यान्तिकं किं ते न श्रुतानि जना[4]त्स्वतः ॥८५॥

बात ही क्या है ? ॥७०॥ अथवा कुतूहलसे भरा सूर्य जबतक अस्त नहीं होता है तबतक आज ही अणुवीर्यको मृत्यु देख लेना ॥७१॥ तरुण लक्ष्मणके गर्वसे फूले राजा पृथिवीधरके पुत्रोंने भी प्रतिध्वनिके समान यही जोरदार शब्द कहे ॥७२॥

तदनन्तर धैर्यसे समुद्रको कुल्लेके समान तुच्छ करनेवाले महामना रामने भ्रकुटिके भंगसे पृथिवीधरके पुत्रोंको रोककर लक्ष्मणसे कहा कि हे तात ! सीताने सब बात बिलकुल ठीक कही है केवल रहस्य खुल न जाये इससे भयभीत हो खुलासा नहीं किया है ॥७३-७४॥ उसका जो अभिप्राय है वह सुनो। यह कह रही है कि चूँकि अतिवीर्य बलसे उद्धत है अतः भरतके द्वारा रणांगणमें वश करनेके योग्य नहीं है ॥७५॥ भरत उसके दशवें भाग भी नहीं है वह दावानलके समान है अतः यह महागज उसका क्या कर सकता है ? ॥७६॥ यद्यपि भरत घोड़ोंसे समृद्ध है पर अतिवीर्य हाथियोंसे समृद्ध है अतः जिस प्रकार सिंह विन्ध्याचलका कुछ नहीं कर सकता उसी प्रकार भरत भी अतिवीर्यका कुछ नहीं कर सकता ॥७७॥ वह भरतको जीत लेगा इसमें कुछ भी संशय नहीं है अथवा दो में से किसीकी जीत होगी पर उससे प्राणियोंका विनाश तो होगा ही ॥७८॥ जब बिना कारण ही दो व्यक्तियोंमें परस्पर विरोध होता है तब दोनों पक्षके मनुष्योंका विवश होकर क्षय होता ही है ॥७९॥ और यदि दुष्ट अतिवीर्यने भरतको वश कर लिया तो फिर देखो रघुवंशका कैसा अपयश उत्पन्न होता है ? ॥८०॥ इस विषयमें सन्धि भी होती नहीं दिखती क्योंकि मानो शत्रुघ्नने लड़कपनके कारण अत्यन्त उद्धत शत्रुके बहुत दोष—अपराध किये हैं सुनो, रौद्रभूतिके साथ मिलकर शत्रुघ्नने अन्धेरी रातमें छापा मार-मारकर उसके बहुत-से निद्रानिमग्न वीरोंको तथा जिनपर चढ़ना कठिन था और जिनसे मदके निर्झर झर रहे थे ऐसे बहुत-से हाथियोंको मारा। पवनके समान वेगशाली चौंसठ हजार घोड़े और अंजनगिरिके समान आभावाले सात सौ हाथी जो कि इसके नगरके बाहर स्थित थे, तीन दिन तक चुराकर भरतके पास ले गया सो क्या लोगोंके मुँहसे तुमने सुना नहीं है ? ॥८१-८५॥

---

१. मृत्युम् । २. शक्योऽस्य । ३. विवशः क्षयम् । ४. लोकमुखात् ।

दृष्ट्वा कलिङ्गराजस्तान् गाढशल्यान् बहून्नृपान् । जीवेन च विनिर्मुक्तान् हृतं ज्ञात्वा च साधनम् ॥८५॥
संप्राप्तः परमं क्रोधमप्रमत्तः समन्ततः । वैरिनिर्यातनं कृत्वा बुद्धौ रणमुदीक्षते ॥८६॥
दण्डोपायं परित्यज्य भरतो मानिनां वरः । हेतुं तत्रिर्जये मान्यं प्रयुङ्क्ते बुद्धिमानपि ॥८८॥
अथ त्वं साधयस्येयं केनैतत्र प्रतीयते । शक्तिस्ते प्रभवेत्तात तीव्रांशोरपि यातने ॥८९॥
किन्त्वयं वर्ततेऽत्रैव प्रदेशे भरतोऽधुना । निर्गत्य च तथायुक्तं प्रकटीकरणं ननु ॥९०॥
अज्ञाता एव ये कार्यं कुर्वन्ति पुरुषोत्तम । तेऽतिश्लाघ्या यथात्यन्तं निशृत्य जलदा गताः ॥९१॥
इति मन्त्रयमाणस्य रामस्य मतिरुद्गता । अतिवीर्यग्रहोपाये ततो मन्त्रः समापितः ॥९२॥
प्रमादरहितस्तत्र कृतप्रवरसंकथः । सुखेन शर्वरीं नीत्वा रामः स्वजनसंगतः ॥९३॥
आवासाद्विर्गतोऽपश्यदार्यिकाजनलक्षितम् । जिनेन्द्रभवनं भक्त्या प्रविवेश च साञ्जलिः ॥९४॥
नमस्कारं जिनेन्द्राणां विधायार्याजनस्य च । सकाशे वरधर्माया गणपाल्याः सशस्त्रिकाम् ॥९५॥
स्थापयित्वा कृती सीतां कृत्वात्मानं च [1]वर्णिनीम् । स्त्रीवेषधारिभिः सार्धं सुरूपैर्लक्ष्मणादिभिः ॥९६॥
कृत्वा पूजां जिनेन्द्राणां बहुमङ्गलभूषिताम् । नरेन्द्रभवनद्वारं प्रतस्थे लीलयान्वितः ॥९७॥
सुरेन्द्रनर्तकीस्तुल्यं वीक्ष्य तं वर्णिनी जनम् । सर्वः पौरजनो लग्नः पश्चाद्गन्तुं सविस्मयः ॥९८॥
सर्वलोकस्य नेत्राणि मनांसि च सुचेष्टिताः । हरन्त्यस्ता नृपागारं प्राप्ता द्वारि सुमण्डनाः ॥९९॥

कलिंगाधिपति अतिवीर्यने जब देखा कि बहुत-से राजाओंको गहरी शल्य लगी हुई है तथा कितने ही राजा निष्प्राण हो गये हैं और साथ ही बहुत-सी सेनाका अपहरण हुआ है तब वह परम क्रोधको प्राप्त हुआ। अब वह सब ओरसे सावधान है और बुद्धिमें वैरीसे बदला लेनेका विचार कर रणकी प्रतीक्षा कर रहा है ॥८६-८७॥ भरत मानियोंमें श्रेष्ठ है तथा बुद्धिमान् भी इसलिए वह उसके जीतनेमें एक युद्धरूपी उपायको छोड़कर अन्य उपाय प्रयोगमें नहीं लाना चाहता ॥८८॥ यद्यपि तुम इसे ठीक कर सकते हो यह किसे प्रतीत नहीं है ? अथवा हे तात ! इसकी बात जाने दो तुममें तो सूर्यको भी गिरानेकी शक्ति है किन्तु भरत इसी प्रदेशमें विद्यमान है अर्थात् यहाँसे बहुत ही निकट है सो इस समय उस तरह अयोध्यासे निकलकर प्रकट होना उचित नहीं है ॥८९-९०॥ जो लोग अज्ञात रहकर मनुष्योंको आश्चर्यमें डाल देनेवाला भारी उपकार करते हैं वे चुपचाप बरसकर गये हुए रात्रिके मेघोंके समान अत्यन्त प्रशंसनीय हैं ॥९१॥ इस प्रकार सलाह करते-करते रामको, अतिवीर्यके वश करनेका उपाय सूझ आया और उसके बाद सलाहका काम समाप्त हो गया ॥९२॥

अथानन्तर आत्मीयजनोंके साथ मिले हुए रामने, प्रमादरहित हो उत्तमोत्तम कथाएँ कहते हुए सुखसे रात्रि व्यतीत की ॥९३॥ दूसरे दिन डेरेसे निकलकर रामने आर्यिकाओंसे सहित जिनमन्दिर देखा सो हाथ जोड़कर बड़ी भक्तिसे उसमें प्रवेश किया ॥९४॥ भीतर प्रवेश कर जिनेन्द्र भगवान् तथा आर्यिकाओंको नमस्कार किया। वहाँ आर्यिकाओंकी जो वरधर्मा नामकी गणिनी थी उसके पास सीताको रखा तथा सीताके पास ही अपने सब शस्त्र छोड़े। तदनन्तर अतिशय चतुर रामने अपने आपका नृत्यकारिणीका वेश बनाया और साथ ही अत्यन्त सुन्दर रूपको धारण करनेवाले लक्ष्मण आदिने भी स्त्रियोंके वेष धारण किये ॥९५-९६॥ तत्पश्चात् जिनेन्द्र भगवान्‌की मंगलमयी पूजा कर सब लोगोंके साथ रामने लीलापूर्वक राजमहलके द्वारकी ओर प्रस्थान किया ॥९७॥ इन्द्रनर्तकीकी तुलना करनेवाली उन नर्तकियोंको देखकर आश्चर्यसे भरे समस्त नगरवासी उनके पीछे लग गये ॥९८॥ तदनन्तर उत्तम चेष्टाओं और सुन्दर आभूषणोंको धारण करनेवाली वे नृत्यकारिणी सब लोगोंके नेत्र और मनको हरती हुईं राजमहलके द्वारपर पहुँचीं ॥९९॥

---

१. नृत्यकारिणीम् । २. तुल्यं वीक्षितुं वर्णिनीं जनः म. ।

ते चतुर्विंशतिर्मत्वा जिनेन्द्रा भक्तितत्परैः । वन्द्यन्तेऽस्माभिरित्येवं तेवातेवा[1] ध्वनिं पुरः ॥१००॥
कृत्वा पुराणवस्तूनि गातुमुत्कुल्ललोचनाः । गम्भीरभारतीतानैःसक्ताश्चारणयोषितः ॥१०१॥
ध्वनिमश्रुतपूर्वं तं श्रुत्वा तासां नराधिपः । आजगाम गुणाकृष्टः काष्ठभार इवोदके ॥१०२॥
ततो रेचकमादाय ललिताङ्गविवर्तनम्[2] । नृपस्याभिमुखीभावं जगाम वरवर्तनी ॥१०३॥
सस्मितालोकितैस्तस्या विगलद्भ्रूसमुद्गमैः । गमकानुगतैः कम्पैस्तनभारस्य हारिणः ॥१०४॥
मन्थरैश्चारुसंचारैर्जघनस्य घनस्य च । तथा बाहुलताहारैः शुक्लोलकरपल्लवैः ॥१०५॥
पादन्यासैर्लघुस्पृष्टविमुक्तधरणीतलैः । आशु संपादितैः स्थानैः केशपाशविवर्तनैः[4] ॥१०६॥
त्रिकस्य वलनैर्भागावतारसंदर्शितात्मभिः । कामबाणैरिमैर्लोकः[5] सकलः समताड्यत ॥१०७॥
मूर्छनाभिः स्वरैर्ग्रामैर्यथास्थानं नियोजितैः । नर्तकी सा जगौ वश्यं परिलीनसखीस्वरम् ॥१०८॥
यत्र तत्र[6] समुद्देशे नर्तकी कुरुते स्थितिम् । तत्र तत्र सभा सर्वा नयनानि प्रयच्छति ॥१०९॥
तस्या रूपेण चक्षूंषि स्वरेण श्रवणेन्द्रियम् । मनांसि तद्द्वयेनापि बद्धानि सदसो वृढम् ॥११०॥
उत्फुल्लमुखराजीवा सामन्ता दानतत्परा । बभूवुर्निरलंकारा संख्यानाम्बरधारिणः[7] ॥१११॥
आतोद्यानुगतं दृष्ट्वं तत्तस्याखिदशानपि । वशीकुर्वीत कैवास्था[8] मुह्यो[9]ध्वन्यजन्तुषु ॥११२॥

तदनन्तर जिनके नेत्रकमल विकसित थे तथा जो भारतीकी गम्भीर तान खींचनेमें आसक्त थीं ऐसी उन नृत्यकारिणी स्त्रियोंने 'भक्तिमें तत्पर रहनेवाली हम सब चौबीस तीर्थंकरोंको भक्ति-पूर्वक नमस्कार करती हैं', यह कहकर सब प्रथम 'तेवा-तेवा' यह अव्यक्त ध्वनि की फिर पुराणोंमें प्रतिपादित वस्तुओंका गाना शुरू किया ॥१००-१०१॥ उन नृत्यकारिणियोंकी अश्रुतपूर्व ध्वनि सुन-कर गुणोंसे खिचा राजा अतिवीर्य उनके पास इस तरह आ गया जिस तरह कि पानीमें गुण अर्थात् रस्सीसे खिचा काष्ठका भार खींचनेवालेके पास आता है ॥१०२॥ तदनन्तर फिरकी लेकर सुन्दर अंगोंको मोड़ती हुए श्रेष्ठ नर्तकी राजाके सम्मुख गयी ॥१०३॥ वहाँ उसका मन्द-मन्द मुसकानके साथ देखना, भौंहोंका चलाना, विज्ञ मनुष्य ही जिसे समझ पाते थे ऐसे सुन्दर स्तनोंका कँपाना, धीमी-धीमी सुन्दर चालसे चलना, स्थूल नितम्बका मटकाना, भुजारूप लताओंका चलाना, उत्तम लीलाके साथ हस्तरूपी पल्लवोंका फिराना, जिनमें शीघ्रतासे स्पर्श कर पृथिवीतल छोड़ दिया जाता था ऐसे पैर रखना, शीघ्रतासे नृत्यकी अनेक मुद्राओंका बदलना, केशपाशका चलाना, कटिकी अस्थिका हिलाना, तथा नाभि आदि शरीरके अवयवोंका दिखलाना आदि कामके बाणोंसे समस्त मनुष्य ताड़े गये थे ॥१०४-१०७॥ वह नर्तकी, जिनका यथास्थान प्रयोग किया गया था ऐसी मूर्च्छनाओं, स्वरों तथा ग्रामों—स्वरोंके समूहसे सखियोंके स्वरको अपने स्वरमें मिलाकर बहुत सुन्दर गा रही थी ॥१०८॥

वह नृत्यकारिणी जिस-जिस स्थानमें ठहरती थी सारी सभा उसी-उसी स्थानमें अपने नेत्र लगा देती थी ॥१०९॥ सारी सभाके नेत्र उसके रूपसे, कान मधुर स्वरसे और मन, रूप तथा स्वर दोनोंसे मजबूत बँध गये थे ॥११०॥ जिनके मुखकमल विकसित थे ऐसे सामन्त लोग उन नर्तकियोंको पुरस्कार देते-देते अलंकाररहित हो गये थे उनके शरीरपर केवल पहननेके वस्त्र ही बाकी रह गये थे ॥१११॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! गायन-वादनसे सहित उस नृत्यकारिणीका वह नृत्य देवोंको भी वश कर सकता था फिर जिनका हरा जाना सरल

---

१. तेवा तेवा इत्यनुकरणशब्दम् । २. नानाशक्त्याश्चारण म. । ३. स्पष्ट म. । ४. विवर्तने म. । ५. इमैः इति छान्दसिकप्रयोगः । ६. च सद्देशे म. । ७. संख्यानां वरधारिणी म. । ८. आतोद्यानुगं (?) म. । ९. समरेष्वन्य ख. ।

विधाय वृषभादीनां चरितस्य प्रकीर्तनम् । संक्षेपेण वशीकृत्य समितिं[1] सकलां भृशम् ॥११३॥
संगीतेन समुद्युक्ता राज्ञानिति नर्तकी । दधाना परमां दीप्तिमुपालब्धुं[2] मुदुस्सहम् ॥११४॥
अतिवीर्य किमेतत्ते दुष्टं व्यवसितं महत् । नयहीनमिदं वस्तु तेनात्र स्वं नियोजितः ॥११५॥
किमिति स्वविनाशाय केकयानन्दनस्त्वया । शान्तचेताः शृगालेन केसरीव प्रकोपितः ॥११६॥
पूर्वं गतेऽपि विश्राणः परमं विनयं द्रुतम् । संप्रसाद्य तं गत्वा यदि ते जीवितं प्रियम् ॥११७॥
जाता विशुद्धवंशेषु वरक्रीडनभूमयः । माभूवन् विधवा भद्र तवैता वरयोषितः ॥११८॥
एतास्त्वया परित्यक्ता विमुक्ताशेषभूषणाः । ध्रुवं पुरा न शोभन्ते ताराश्चन्द्रमसा यथा ॥११९॥
निवर्तय द्रुतं चित्तमशुभध्यानतत्परम् । उत्तिष्ठ व्रज निर्मानो[3] नमस्य भरतं सुधीः ॥१२०॥
एवं कुरु न चेदेवं कुरुषे पुरुषाधम । ततोऽद्यैव विनष्टोऽसि संशयोऽत्र न विद्यते ॥१२१॥
जीवत्येवानरण्यस्य पौत्रे राज्यं समीहसे । चकासति रवौ पापकक्षमीर्दीपाकरस्य का ॥१२२॥
पतितस्याद्य नो रूपे मरणं ते समुद्गतम् । शलभस्येव मूढस्य दुष्पक्षस्य प्रियद्युतेः ॥१२३॥
देवेन भरतेनामा गरुडेन महात्मना । [4]अलगर्दोधमो भूत्वा प्रतिस्पर्धमभिच्छति ॥१२४॥
ततो निर्भर्त्सनं स्वस्य भरतस्य च शंसनम् । निशम्य संसदा सार्कमभूत्ताम्रेक्षणो नृपः ॥१२५॥
विरक्ता च सभाभ्यन्तरं रूक्षितमानसा[5] । भ्रूकुटीर्णववेलेव भूतरङ्गसमाकुला ॥१२६॥

बात थी ऐसे अन्य मनुष्योंकी तो बात ही क्या थी ? ॥११२॥ इस तरह संक्षेपसे ऋषभ आदि तीर्थंकरोंके चरित्रका कीर्तन कर जब उस नर्तकीने समस्त सभाको अत्यन्त वशीभूत कर लिया तब वह संगीतसे परम दीप्तिको धारण करती हुई राजाको इस प्रकारका असह्य उलाहना देनेके लिए तत्पर हुई ॥११३-११४॥ उसने कहा कि हे अतिवीर्य ! यह तेरी अतिशय दुष्ट चेष्टा क्या है ? तेरा यह कार्य नीतिसे रहित है, किसने तुझे इस कार्यमें लगाया है ? ॥११५॥ जिस तरह शृगाल सिंहको कुपित करता है उस तरह तूने शान्त चित्त भरतको अपना नाश करनेके लिए इस तरह क्यों कुपित किया है ? ॥११६॥ इतना सब होनेपर भी यदि तुझे अपना जीवन प्यारा है तो शीघ्र ही परम विनयको धारण करता हुआ जाकर भरतको प्रसन्न कर ॥११७॥ हे भद्र ! विशुद्ध कुलमें उत्पन्न तथा उत्तम क्रीड़ाकी भूमिस्वरूप तेरी ये स्त्रियाँ विधवा न हों ॥११८॥ तुझसे रहित होनेपर जिनने समस्त आभूषण छोड़ दिये हैं ऐसी ये उत्तम स्त्रियाँ चन्द्रमासे रहित ताराओंके समान निश्चित ही शोभित नहीं होंगी ॥११९॥ इसलिए अशुभ ध्यानमें आनेवाले अपने चित्तको शीघ्र ही लौटा, उठ, जा और मानरहित हो भरतको नमस्कार कर। तू बुद्धिमान् है ॥१२०॥ अतः ऐसा कर। हे अधम पुरुष ! यदि तू ऐसा नहीं करता है तो आज ही नष्ट हो जायेगा इसमें संशय नहीं है ॥१२१॥ अनरण्यके पोता भरतके जीवित रहते हीं तू राज्य चाहता है सो सूर्यके देदीप्यमान रहते चन्द्रमाकी क्या शोभा है ? ॥१२२॥ जिस प्रकार कान्तिके लोभी तथा कमजोर पंखोंवाले मूर्ख शलभका मरण आ पहुँचता है उसी प्रकार हम लोगोंके रूपपर आसक्त तथा खोटे सहायकोंसे युक्त तुझ मूढका आज मरण आ पहुँचा है ॥१२३॥ तू जलके साँपके समान तुच्छ होकर भी गरुड़के समान जो महात्मा राजा भरत हैं उनके साथ ईर्ष्या करना चाहता है ॥१२४॥

तदनन्तर नृत्यकारिणीके मुखसे अपना तर्जन और भरतकी प्रशंसा सुनकर राजा अतिवीर्य सभाके साथ लाल-लाल नेत्रोंका धारक हो गया अर्थात् क्रोधवश उसके नेत्र लाल हो गये ॥१२५॥ जिसका मन अत्यन्त रूक्ष हो गया था, जिसका प्रेम समाप्त हो चुका था और जो भ्रकुटिरूपी तरंगोंसे व्याकुल थी ऐसी सारी सभा समुद्रकी वेलाके समान क्षोभको प्राप्त हुई ॥१२६॥

---

१. सम्मतिं म. । २. -मुपलब्धुं म. । ३. मान-रहितः । ४. अलगर्दो जलव्यालः । ५. परुषक्षतमानसा म. ।

अतिवीर्यो रुषा कम्पो यावज्जग्राह सायकम् । तावदुत्पत्य नर्तक्या सविलासकृतभ्रमम् ॥१२७॥
मण्डलाग्रं समाक्षिप्य वीक्षमाणेषु राजसु । जीवग्राहं विषण्णात्मा केशेषु जगृहे दृढम् ॥१२८॥
उद्यम्य नर्तकी खड्गं पश्यन्ती नृपसंहतिम् । जगादाविनयी योऽत्र स मे वध्यो विसंशयम् ॥१२९॥
परित्यज्यातिवीर्यस्य पक्षं विनयमण्डनाः । भरतस्य द्रुतं पादौ नमत प्रियजीविताः ॥१३०॥
भरतो जयति श्रीमान् गुणस्फीतांशुमण्डलः । दशरथेन्दुवंशेन्दुर्लोकानन्दकरः परः ॥१३१॥
लक्ष्मीकुमुद्वती यस्य विकासं भजते पराम् । द्विषत्सपननिर्मुक्ता कुर्वतः परमाद्भुतम् ॥१३२॥
उज्जगाम ततो लोकवक्त्रेभ्य इति निस्वरः । अहो कृतमिदं चित्रमिन्द्रजालोपमं महत् ॥१३३॥
अस्य चारणकन्यानामिदमीदृग्विचेष्टितम् । भरतस्य स्वयं तस्य शक्तिः शक्रं जयेदपि ॥१३४॥
न विद्मः स किमस्माकं क्रुद्धो नाथः करिष्यति । अथवा सप्रणामेषु देवो यास्यति मार्दवम् ॥१३५॥
ततः करिणमारुह्य राघवः सातिवीर्यकः । सहितः परिवर्गेण ययौ जिनवरालयम् ॥१३६॥
अवतीर्य गजात्तत्र प्रविश्य प्रमदान्वितः । चक्रे सुमहतीं पूजां कृतमङ्गलनिस्वनः ॥१३७॥
वरधर्मापि सर्वेण संघेन सहितोपरम् । राघवेण ससीतेन नीता तुष्टेन पूजनम् ॥१३८॥
अतिवीर्योऽत्र पद्मेन लक्ष्मणाय समर्पितः । तस्यासौ वधमुद्युक्तः कर्तुमौच्यत[1] सीतया ॥१३९॥
मावीवधोऽस्य लक्ष्मीमन् कश्चरां निष्ठुराशय । केशेषु मागृहीर्गाढं कुमारं भज सौम्यताम् ॥१४०॥
को दोषः कर्मसामर्थ्याद्यदायास्यापदं नराः । रक्ष्या एव तथाप्येते दधतामतिसाधुताम्[2] ॥१४१॥

क्रोधसे काँपते हुए अतिवीर्यने ज्योंही तलवार उठायी त्योंही नर्तकीने विलासपूर्वक विभ्रम दिखाते हुए उछलकर तलवार छीन ली और सब राजाओंके देखते-देखते अतिवीर्यको जीवित पकड़कर मजबूतीसे उसके केश बाँध लिये ॥१२७-१२८॥ नर्तकीने तलवार उठाकर राजाओंकी ओर देखते हुए कहा कि यहाँ जो भी अविनय करेगा वह निःसन्देह मेरे द्वारा होगा ॥१२९॥ यदि आप लोगोंको अपना जीवन प्यारा है तो अतिवीर्यका पक्ष छोड़कर विनयरूपी आभूषणसे युक्त हो शीघ्र ही भरतके चरणोंमें नमस्कार करो ॥१३०॥ जो लक्ष्मीसे युक्त है, गुण ही जिसकी विस्तृत किरणोंका समूह है, जो लोगोंको परम आनन्दका देनेवाला है, जिसकी लक्ष्मीरूपी कुमुदिनी शत्रुरूपी सूर्यसे निर्मुक्त होकर परम विकासको प्राप्त हो रही है तथा जो अत्यन्त आश्चर्यजनक कार्य कर रहा है ऐसा दशरथके वंशका चन्द्रमा भरत जयवन्त है ॥१३१-१३२॥

तदनन्तर लोगोंके मुखसे इस प्रकारके शब्द निकलने लगे कि अहो ! यह बड़ा आश्चर्य है, यह तो बहुत भारी इन्द्रजालके समान है ॥१३३॥ जिसकी नृत्यकारिणियोंकी यह ऐसी चेष्टा है उस भरतकी शक्तिका क्या ठिकाना ? वह तो इन्द्रको भी जीत लेगा ॥१३४॥ न जाने वह राजा भरत कुपित होकर हमारा क्या करेगा ? अथवा प्रणाम करनेवालोंपर वह अवश्य ही मार्दवभावको प्राप्त होगा ॥१३५॥ तदनन्तर राम अतिवीर्यको पकड़ हाथीपर सवार हो अपने परिजनके साथ जिनमन्दिर गये ॥१३६॥ वहाँ उन्होंने हाथीसे उतरकर बड़े हर्षसे मन्दिरके भीतर प्रवेश किया और मंगलमय शब्दोंका उच्चारण कर बड़ी भारी पूजा की ॥१३७॥ मन्दिरमें सर्वसंघके साथ जो वरधर्मा नामकी गणिनी ठहरी हुई थीं रामने सीताके साथ सन्तुष्ट होकर उनकी भी उत्तम पूजा की ॥१३८॥ यहाँ रामने अतिवीर्यको लक्ष्मणके लिए सौंप दिया और वे उसका वध करनेके लिए उद्यत हुए तब सीताने कहा कि हे लक्ष्मीधर ! निष्ठुर अभिप्रायके धारी हो इसकी ग्रीवा मत छेदो और न जोरसे इसके केश ही पकड़ो । हे कुमार ! सौम्यताको प्राप्त होओ ॥१३९-१४०॥ इस बेचारेका क्या दोष है ? यद्यपि मनुष्य कर्मोंकी सामर्थ्यसे आपत्तिको प्राप्त होते हैं तथापि सज्जनताको धारण करनेवाले मनुष्य उनकी रक्षा ही करते हैं ॥१४१॥

१. सहितः म. । २. भणितं । ३. साधुना म. ।

इतरोऽपि खलीकर्तुं साधूनां नार्हतो जनः । किंपुनायं नरेशानां सहस्राणां प्रपूजितः ॥१४२॥
कुर्वेनं मुक्तकं भद्र मदवायं वशीकृतः । जानानः स्वस्य सामर्थ्यं क्वानुगच्छति सांप्रतम् ॥१४३॥
गृहीत्वा समयेनास्य सन्मानमुपलम्भिताः । विमुच्यन्ते पुनर्मूयो मर्यादेयं चिरन्तनी ॥१४४॥
इत्युक्तो मस्तके कृत्वा करराजीवकुड्मलम् । जगाद लक्ष्मणो देवि यद्भवीषि तथैव तत् ॥१४५॥
आस्तां स्वामिनि ते वाक्यात्तावदस्य विमोचनम् । सुराणामप्यसुं पूज्यं कुर्वीयं खप्रसादतः ॥१४६॥
एवं प्रशान्तसंरम्भे सद्यो लक्ष्मीधरे स्थिते । अतिवीर्यो विबुद्धात्मा स्तुत्वा पद्ममभाषत ॥१४७॥
साधु साधु त्वया वित्रं कृतमीदृग्विचेष्टितम् । कदाचिदप्यनुत्पन्ना ममाद्य मतिरुद्गता ॥१४८॥
विमुक्तहारमुकुटं दृष्ट्वा तं करुणान्वितः । विश्रब्धं राघवोऽवोचत् सौम्याकारपरिग्रहः ॥१४९॥
मा भवीरङ्ग दैन्यं त्वं धरस्व धैर्यं पुरातनम् । महतामेव जायन्ते संपदो विपदन्विताः ॥१५०॥
न चात्र काचिदापत्ते नंद्यावर्ते[1] क्रमागते । भरतस्य वशो भूत्वा कुरु राज्यं यथेप्सितम् ॥१५१॥
अतिवीर्यस्ततोऽवोचन्न मे राज्येऽधुना स्पृहा । राज्येन मे फलं दत्तमधुनान्यत्र सज्ज्यते ॥१५२॥
आसीन्मया कृता वाञ्छा हिमवत्सागरावधि । जेतुं वसुन्धरा येन बिभ्रता मानमुत्तमम् ॥१५३॥
सोऽहं त्वमानमुन्मूल्य भूत्वा सारविवर्जितः । कुर्यां प्रणतिमन्यस्य कथं पुरुषतां दधत् ॥१५४॥
षट्खण्डा यैरपि क्षोणी पालितेयं महानरैः । न तृप्तास्तेऽप्यहं ग्रामैः पञ्चभिस्तु किमेतकैः ॥१५५॥
जन्मान्तरकृतस्यास्य बलिता पश्य कर्मणः । छायाहानिमहं येन राहुणेन्दुरिवाहृतः ॥१५६॥

जो सज्जन पुरुष हैं उन्हें साधारण मनुष्यको भी दुःखी करना उचित नहीं है फिर यह तो हजारों राजाओंका पूज्य है इसकी बात ही क्या है ? ॥१४२॥ हे भद्र ! इसे आपने वश कर ही लिया है अतः इसे छोड़ दो। अपनी सामर्थ्यको जानता हुआ यह अब कहाँ जायेगा ? ॥१४३॥ प्रबल शत्रुओंको पकड़कर तदनन्तर सन्धिके अनुसार सम्मान कर उन्हें छोड़ दिया जाता है यह चिरकालकी मर्यादा है ॥१४४॥

सीताके इस प्रकार कहनेपर लक्ष्मणने हस्तकमल जोड़ मस्तकपर लगाते हुए कहा कि हे देवि ! आप जो कह रही हैं वह वैसा ही है ॥१४५॥ हे स्वामिनि, आपकी आज्ञासे इसका छोड़ना तो दूर रहा इसे आपके प्रसादसे ऐसा कर सकता हूँ कि यह देवताओंका भी पूज्य हो जाये ॥१४६॥

इस प्रकार शीघ्र ही लक्ष्मणके शान्त होनेपर प्रतिबोधको प्राप्त हुआ अतिवीर्य रामकी स्तुति कर कहने लगा ॥१४७॥ कि आपने जो यह अद्भुत चेष्टा की सो बड़ा भला किया। मेरी जो बुद्धि कभी उत्पन्न नहीं हुई वह आज उत्पन्न हो गयी ॥१४८॥ इतना कह उसने हार और मुकुट उतारकर रख दिये। यह देख सौम्य आकारको धारण करनेवाले दयालु रामने विश्वास दिलाते हुए कहा कि हे भद्र ! तू दीनताको प्राप्त मत हो, पहले-जैसा धैर्य धारण कर, विपत्तियोंसे सहित सम्पदाएँ महापुरुषोंको ही प्राप्त होती हैं ॥१४९-१५०॥ अब मुझे कोई आपत्ति नहीं है ! इस क्रमागत नन्द्यावर्तनगरमें भरतका आज्ञाकारी होकर इच्छानुसार राज्य कर ॥१५१॥

तदनन्तर अतिवीर्यने कहा कि अब मुझे राज्यकी इच्छा नहीं है। राज्यने मुझे फल दे दिया है। अब दूसरे ही अवस्थामें लगना चाहता हूँ ॥१५२॥ उत्कट मानको धारण करते हुए मैंने हिमवान्से लेकर समुद्र तककी सारी पृथिवी जीतनेकी इच्छा की थी सो मैं अपने मानको उखाड़कर निःसार हो गया हूँ अब मैं पुरुषत्वको धारण करता हुआ अन्यको नमस्कार कैसे कर सकता हूँ ? ॥१५३-१५४॥ जिन महापुरुषोंने इस छहखण्डकी रक्षा की है वे भी सन्तोषको प्राप्त नहीं हुए फिर मैं इन पाँच गाँवोंसे कैसे सन्तुष्ट हो सकता हूँ ? ॥१५५॥ जन्मान्तरमें किये हुए इस कर्मकी बलवत्ता

---

१. इतरो ये म. । २. नन्द्यावर्ते क्रमागते म., नन्द्यावर्तकमागते ख. ।

मानुष्यकमिदं जातं सारमुक्तं मयाधुना । सुराणामपि चार्तैषा किमन्यन्नाभिधीयताम् ॥१५७॥
सोऽहं पुनर्भवाद्भीरुस्त्वया संप्रतिबोधितः । तथाविधां भजे चेष्टां यथा मुक्तिरवाप्यते ॥१५८॥
इत्युक्त्वा क्षमयित्वा तं परिवर्गसमन्वितम् । गत्वा केसरिविक्रान्तो मुनिं श्रुतिधरं मुनिम् ॥१५९॥
कराब्जकुड्मलाङ्केन विधाय शिरसा नतिम् । जगाद नाथ वाञ्छामि दीक्षां दैगम्बरीमिति ॥१६०॥
आचार्येणैवमित्युक्ते परित्यज्यांशुकादिकम् । केशलुञ्चं विधायासौ महाव्रतधरोऽभवत् ॥१६१॥
आत्मार्थनिरतस्त्यक्तरागद्वेषपरिग्रहः । विजहार क्षितिं धीरो यत्रास्तमितवास्यसौ ॥१६२॥
क्रूरश्वापदयुक्तेषु सघनेषु वनेषु सः । चकार वसतिं निर्भीर्गह्वरेषु च भूभृताम् ॥१६३॥

उपजातिः

विमुक्तनिश्शेषपरिग्रहाशं गृहीतचारित्रभरं सुशीलम् ।
नानातपःशोषितदेहमुद्यं महामुनिं तं नमतातिवीर्यम् ॥१६४॥
रत्नत्रयापादितचारुभूषं दिगम्बरं साधुगुणावतंसम् ।
संप्रस्थितं योग्यवरं विमुक्तेर्महामुनिं तं नमतातिवीर्यम् ॥१६५॥
इदं परं चेष्टितमातिवीर्यं शृणोति यो यश्च सुधीरधीते ।
प्राप्नोति बुद्धिं सदसोऽपि मध्ये रविप्रभोऽसौ व्यसनं न लोकः ॥१६६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरितेऽतिवीर्यनिष्क्रमणाभिधानं नाम सप्तत्रिंशत्तमं पर्व ॥३७॥

तो देखो कि जिस प्रकार राहु चन्द्रमाको कान्तिरहित कर देता है उसी प्रकार इसने मुझे कान्ति-रहित—निस्तेज कर दिया ॥१५६॥ जिस मनुष्य पर्यायके लिए देव भी चर्चा करते हैं औरोंकी तो बात ही क्या है उस मनुष्य पर्यायको मैंने अब तक निःसार खोया ॥१५७॥ अब मैं दूसरा जन्म धारण करनेसे भयभीत हो चुका हूँ इसलिए आपसे प्रतिबोध पाकर यह चेष्टा करता हूँ कि जिससे मुक्ति प्राप्त होती है ॥१५८॥ इस प्रकार कहकर परिजन सहित रामसे क्षमा कराकर सिंहके समान शूरवीरताको धारण करता हुआ अतिवीर्य श्रुतिधर मुनिराजके पास गया और अंजलियुक्त शिरसे नमस्कार कर बोला कि हे नाथ ! मैं दैगम्बरी दीक्षा धारण करना चाहता हूँ ॥१५९-१६०॥ 'एवमस्तु' इस प्रकार आचार्यके कहते ही वह वस्त्रादि त्यागकर तथा केश लोंचकर महाव्रतका धारी हो गया ॥१६१॥ आत्माके अर्थमें तत्पर, तथा राग-द्वेष आदि परिग्रहसे रहित होकर वह धीर-वीर पृथिवीमें विहार करने लगा। विहार करते-करते जहाँ सूर्य अस्त हो जाता था वहीं वह ठहर जाता था ॥१६२॥ सिंह आदि दुष्ट जानवरोंसे युक्त सघन वनों तथा पर्वतोंकी गुफाओंमें वह निर्भय होकर निवास करता था ॥१६३॥ जिसने समस्त परिग्रहकी आशा छोड़ दी थी, जिसने चारित्रका भार धारण किया था, जो उत्तम शीलसे युक्त था, नाना प्रकारके तपसे जिसने अपना शरीर सुखा दिया, तथा जो स्वयं शुभ रूप था उन महामुनि अतिवीर्यको नमस्कार करो ॥१६४॥ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्ररूपी मनोहर आभूषणोंसे जो सहित थे, दिशाएँ ही जिनके अम्बर—वस्त्र थे, मुनियोंके अट्ठाईस मूल गुण ही जिनके आभरण थे, जिन्होंने कर्मरूपी शत्रुओंको हरनेके लिए प्रस्थान किया था, और जो मुक्तिके योग्य वर थे उन महामुनि अतिवीर्यको नमस्कार करो ॥१६५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अतिवीर्य मुनिके इस उत्कृष्ट चरितको जो बुद्धिमान् सुनता है अथवा पढ़ता है वह सभाके बीच बुद्धिको प्राप्त होता है तथा सूर्यके समान प्रभाको धारण करता हुआ कभी कष्ट नहीं पाता ॥१६६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें राजा अतिवीर्यकी दीक्षाका वर्णन करनेवाला सैंतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३७॥

□

अष्टत्रिंशत्तमं पर्व

अथ पद्मोऽतिवीर्यस्य तनयं नयकोविदः । विजयस्यन्दनाभिख्यमभ्यषिञ्चत्पितुः पदे ॥१॥
दर्शिताशेषवित्तोऽस्मा अरविन्दातनूभुवम् । स्वसारं रतिमालाख्यां लक्ष्मणाय न्यवेदयत् ॥२॥
एवमस्त्वित्यमीष्टायां[1] तस्यां पद्मेन लक्ष्मणः । लक्ष्मीमिवाङ्कमायातां ज्ञात्वा[2] सप्रमदोऽभवत् ॥३॥
ततः कृत्वा जिनेन्द्राणां पूजां विस्मयदायिनीम् । ययौ विजयस्थानं लक्ष्मणाद्यन्वितो बलैः[3] ॥४॥
दीक्षां श्रुत्वातिवीर्यस्य नर्तकीग्रहहेतुकाम् । शत्रुघ्नं हाससध्यानं निषिध्य भरतोऽवदत् ॥५॥
अतिवीर्यो महाधन्यस्तस्य किं भद्र हास्यते । त्यक्त्वा यो विषयान् कष्टान्[4] परां शान्तिमुपाश्रितः ॥६॥
प्रभावं तपसः पश्य त्रिदशेष्वपि दुर्लभम् । मुनिर्यो रिपुरासीन्नः संप्राप्तोऽसौ प्रणम्यताम् ॥७॥
श्लाघामित्यतिवीर्यस्य यावत्कुर्वन् स तिष्ठति । विजयस्यन्दनस्तावत्प्राप्तः सामन्तसंयुतः ॥८॥
प्रणम्य भरतायासौ स्थितः संकथया क्षणम् । ज्यायसीं रतिमालाया नाम्ना विजयसुन्दरीम् ॥९॥
उपनिन्ये शुभां कन्यां नानालंकारधारिणीम् । कोशं च विपुलं सारं साधनं च प्रसन्नधीः ॥१०॥
कन्यामेकामुपादाय केकयानन्दनस्ततः । तस्यैवानुमतं सर्वं स्थितिरेषा महात्मनाम् ॥११॥
कौतुकोत्कलिकाकीर्यमाणमानसोऽथ नाग[illegible] : अश्वैः प्रबलैः [illegible] ॥१२॥
क्वासौ महामुनिः क्वासाविति पृच्छन्सुभावनः । पद्मोऽयमित्यमुं भृत्यैः कथ्यमानमियाय सः ॥१३॥

अथानन्तर न्यायके वेत्ता श्रीरामने अतिवीर्यके पुत्र विजयरथका उसके पिताके पदपर अभिषेक किया ॥१॥ उसने अपना सब धन दिखाया और माता अरविन्दाकी पुत्री अपनी रत्नमाला नामक बहन लक्ष्मणके लिए देनी कही सो रामने उसे 'एवमस्तु' कहकर स्वीकृत किया। रत्नमालाको पा, मानो लक्ष्मी ही गोदमें आयी है, यह जानकर लक्ष्मण अधिक प्रसन्न हुए ॥२-३॥ तदनन्तर लक्ष्मण आदिसे सहित राम, जिनेन्द्र भगवान्‌की आश्चर्यदायिनी पूजा कर राजा पृथ्वीधरके विजयपुर नगर वापस आये ॥४॥ नर्तकीके पकड़नेके कारण राजा अतिवीर्यने दीक्षा धारण की है यह सुनकर शत्रुघ्न हास्य करने लगा सो भरतने मना कर कहा ॥५॥ कि हे भद्र ! जो कष्टकारी विषयोंको छोड़कर परम शान्तिको प्राप्त हुआ है ऐसा अतिवीर्य महाधन्य है। उसकी तू क्या हँसी करता है ? ॥६॥ जो देवोंके लिए भी दुर्लभ है ऐसा तपका प्रभाव देख। जो हमारा शत्रु था अब मुनि होनेपर वह हमारे नमस्कार करने योग्य गुरु हो गया ॥७॥ इस प्रकार अतिवीर्यकी प्रशंसा करता हुआ भरत जबतक बैठा था तबतक अनेक सामन्तोंके साथ विजयरथ वहाँ आ पहुँचा ॥८॥ वह भरतको प्रणाम कर उत्तम वार्ता करता हुआ क्षण भर बैठा। तदनन्तर उसने रतिमालाकी बड़ी बहन विजयसुन्दरी नामकी शुभ कन्या जो कि नाना अलंकारोंको धारण कर रही थी भरतके लिए समर्पित की। साथ ही बड़ी प्रसन्न दृष्टिसे बहुत भारी खजाना और उत्तम सेना भी प्रदान की ॥९-१०॥ तदनन्तर उस अद्वितीय कन्याको पाकर भरत बहुत प्रसन्न हुआ। उसने विजयरथको इच्छानुकूल सब कार्य स्वीकृत किया सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषोंकी यही रीति है ॥११॥

अथानन्तर जिसका मन कौतुक और उत्कण्ठासे व्याप्त था ऐसा भरत महावेगशाली घोड़ोंसे अतिवीर्य मुनिराजके दर्शन करनेके लिए चला ॥१२॥ वह उत्तम भावनासे सहित था तथा पूछता जाता था कि वे महामुनि कहाँ हैं ? और सेवक कहते जाते थे कि ये आगे विराजमान हैं ॥१३॥

---

१. स्वीकृतायाम् । २. सहर्षोऽभूत् । ३. रामः । ४. कष्टं क., ख. ।

ततो विषमपाषाणनिचयाध्यन्तदुर्गमम् । नानाद्रुमसमाकीर्णं कुसुमामोदवासितम् ॥१४॥
तज्ज्ञेन कथितं रम्यं पर्वतं श्वापदाकुलम् । आरुरोहावतीर्याश्वाद्विनीताकारमण्डितः ॥१५॥
रोषतोषविनिर्मुक्तं प्रशान्तकरणं विभुम् । शिलातलनिषण्णं तमेकसिंहमिवाभयम् ॥१६॥
अतिवीर्यमुनिं दृष्ट्वा सुघोरतपसि स्थितम् । शुभध्यानगताभोगं ज्वलन्तं श्रमणश्रिया ॥१७॥
उत्फुल्लनयनो लोकः सर्वो हृष्टतनूरुहः । विस्मयं परमं प्राप्तो ननाम रचिताञ्जलिः ॥१८॥
कृत्वास्य महतीं पूजां भरतः श्रमणप्रियः । प्रणम्य पादपोरूचे सक्त्या विनतविग्रहः ॥१९॥
नाथ शूरस्त्वमेवैकः परमार्थविशारदः । येनेयं दुर्धरा दीक्षा धृता जिनवरोदिता ॥२०॥
विशुद्धकुलजातानां पुरुषाणां महात्मनाम् । ज्ञातसंसारसाराणामीदृगेव विचेष्टितम् ॥२१॥
मनुष्यलोकमासाद्य फलं यदभिवाञ्छ्यते । तदुपात्तं त्वया साधो वयमस्यन्तदुःखिनः[2] ॥२२॥
क्षन्तव्यं दुरितं किंचिदस्माभिस्त्वयीहितम् । कृतार्थोऽसि नमस्तुभ्यं भावाभिप्रतीक्ष्यैताम्[3] ॥२३॥
इत्युक्त्वा साञ्जलिं कृत्वा महासाधोः प्रदक्षिणाम् । अवतीर्णः कथां सौनीं[4] कुर्वाणो धरणीधरात् ॥२४॥
स्थूरीपृष्ठं समारुह्य पूर्यमाणः सहस्रशः । सामन्तैः प्रस्थितोऽयोध्यां विभवाम्भोधिमध्यगः ॥२५॥
महति [illegible]मन्तमण्डलाधारे निगतः । जम्बुनेडौ यथा जम्बूद्वीपोऽन्यद्वीपमध्यगः ॥२६॥
क्व गतास्ता नु नर्तक्यः कृतलोकानुरञ्जनाः । स्वजीवितेऽपि विक्लीबा विदधुर्या मयि प्रियम् ॥२७॥

तदनन्तर जो ऊँचे-नीचे पाषाणोंके समूहसे अत्यन्त दुर्गम था, नाना प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त था, फूलोंकी सुगन्धिसे सुवासित था, और जंगली जानवरोंसे युक्त था ऐसे जानकार सेवकोंके द्वारा बताये हुए पर्वतपर भरत चढ़ा और घोड़ेसे उतरकर विनीत वेषसे शोभित होता हुआ अतिवीर्य मुनिराजके दर्शनके लिए चला। ॥१४-१५॥ वे मुनिराज हर्ष-विषादसे रहित थे, शान्त इन्द्रियोंके धारक थे, विभु थे, शिलातलपर विराजमान थे, एक सिंहके समान निर्भय थे, घोर तपमें स्थित थे, शुभ ध्यानमें लीन थे और मुनिपनेकी लक्ष्मीसे देदीप्यमान थे ॥१६-१७॥ मुनिराजके दर्शन कर सब लोगोंके नेत्र विकसित हो गये और सबके शरीरमें हर्षसे रोमांच निकल आये। सभीने परम आश्चर्यको प्राप्त हो अंजलि जोड़कर उन्हें नमस्कार किया ॥१८॥ जिसे मुनि बहुत प्रिय थे ऐसे भरतने उन मुनिराजकी बड़ी भारी पूजा की, चरणोंमें प्रणाम किया और फिर भक्तिसे नतशरीर होकर इस प्रकार कहा कि हे नाथ! जिसने यह जिनेन्द्र-प्रतिपादित कठिन दीक्षा धारण की है ऐसे एक आप ही शूरवीर हो तथा आप ही परमार्थके जाननेवाले हो ॥१९-२०॥ विशुद्ध कुलमें उत्पन्न तथा संसारके सारको जाननेवाले महापुरुषोंकी ऐसी ही चेष्टा होती है ॥२१॥ मनुष्य लोक पाकर जिस फलकी इच्छा की जाती है हे साधो! वह फल आपने पा लिया पर हम अत्यन्त दुखी हैं ॥२२॥ हे नाथ! हम लोगोंसे आपके विषयमें जो कुछ अनिष्ट-पापरूप चेष्टा हुई है उसे क्षमा कीजिए। आप कृतकृत्य हैं, अतिशय पूज्यताको प्राप्त हुए आपके लिए हमारा नमस्कार है ॥२३॥ इस प्रकार महामुनिराज अतिवीर्यसे कहकर तथा अंजलि सहित प्रदक्षिणा देकर उन्हींसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा करता हुआ भरत पर्वतसे नीचे उतरा ॥२४॥ तदनन्तर हजारों सामन्त जिसके साथ थे तथा जो विभवरूपी समुद्रके बीचमें गमन कर रहा था ऐसा भरत हस्तिनीके पृष्ठपर सवार हो अयोध्याके लिए वापस चला ॥२५॥ बड़ी भारी सेना और सामन्तोंके बीचमें स्थित भरत ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो अन्य द्वीपोंके मध्यमें स्थित जम्बूद्वीप ही हो ॥२६॥ भरत प्रसन्न चित्तसे इस प्रकार विचार करता जाता था कि जिन्होंने अपने जीवनका भी लोभ छोड़कर हमारा इष्ट किया ऐसी लोगोंको अनुरंजित करनेवाली वे नर्तकियाँ कहाँ गयी होंगी? ॥२७॥ राजा

१. वस्थितम् म.। २. दुःखिताः म.। ३. अतिपूज्यताम्। ४. मुनिसंबन्धिनीम्। ५. हस्तिनीपृष्ठम्।

पुरः कृत्वातिवीर्यस्य महीयां परमां स्तुतिम् । नर्तकीभिः कृतं कर्म चित्रमेतदहो परम् ॥२८॥
स्त्रीणां कुतोऽथवा शक्तिरीदृशी विश्वपेऽखिले । जिनशासनदेवीभिर्नूनमेतदनुष्ठितम् ॥२९॥
चिन्तयन्नयमित्यादि सुप्रसन्नेन चेतसा । जगाम धरणीं पश्यन्नानासस्यसमाकुलाम् ॥३०॥
व्याप्तत्रयोजगत्कीर्तिः प्रभावं परमं दधत् । सशत्रुघ्नो विवेशासौ विनीतां[1] परमोदयः ॥३१॥
साकं विजयसुन्दर्या तस्थौ तत्र रतिं भजन् । सुलोचनापरिष्वक्तो यथा जलदनिस्वनः[2] ॥३२॥
आनन्दं सर्वलोकस्य कुर्वाणौ रामलक्ष्मणौ । कंचित्कालं पुरे स्थित्वा पृथिवीधरभूभृतः ॥३३॥
जानक्या सह संमन्त्र्य कर्तव्याहितमानसौ । मुहुः प्रस्थातुमुद्युक्तौ समुद्देशमभीप्सितम् ॥३४॥
वनमाला ततोऽवोचल्लक्ष्मणं चारुलक्षणा । सवाष्पे विभ्रती नेत्रे तरलतरतारके ॥३५॥
अवश्यं यदि मोक्तव्या मन्दभाग्याहकं त्वया । पुरैव रक्षिता कस्मान्मुमूर्षन्ती यद् प्रिय ॥३६॥
सौमित्रिरगदद् भद्रे विषादं मा गमः प्रिये । अत्यल्पेनैव कालेन पुनरेमि वरानने ॥३७॥
सम्यग्दर्शनहीना यां गतिं यान्ति सुविभ्रमे । व्रजेयं तां पुनः क्षिप्रं न चेदेमि तवान्तिकम् ॥३८॥
नराणां मानदग्धानां साधुनिन्दनकारिणाम् । प्रिये पापेन लिप्येऽहं यदि नायामि तेऽन्तिकम् ॥३९॥
रक्षितव्यं पितुर्वाक्यमस्माभिः प्राणवल्लभे । दक्षिणोदन्वतः कूलं गन्तव्यं त्रिदिवं चारणम् ॥४०॥
मलयोपत्यकां[3] प्राप्य कृत्वा परममालयम्[4] । नेष्यामि भवतीमेत्य वरोरु धृतिमावज्र्य[5] ॥४१॥
समयैः[6] साम्त्वयित्वेति वनमालां सुभाषितैः । भेजे लाङ्गलिनः पार्श्वं सुमित्राकुक्षिसंभवः ॥४२॥

अतिवीर्यके सामने हमारी परम स्तुति कर उन नर्तकियोंने जो काम किया। अहो! यह बड़े आश्चर्यकी बात है ॥२८॥ अथवा समस्त संसारमें स्त्रियोंकी ऐसी शक्ति कहाँ है? निश्चयसे यह कार्य जिनशासनकी देवियोंने किया है।' तदनन्तर जो नाना प्रकारके धान्यसे युक्त पृथिवीको देख रहा था, जिसकी कीर्ति समस्त संसारमें व्याप्त थी, जो परम प्रभावको धारण कर रहा था और जो उत्कृष्ट अभ्युदयसे युक्त था ऐसे भरतने शत्रुघ्नके साथ अयोध्यामें प्रवेश किया ॥२९-३१॥ वहाँ विजयसुन्दरीके साथ प्रीतिको धारण करता हुआ भरत सुलोचना सहित मेघस्वर (जयकुमार) के समान सुखसे रहने लगा ॥३२॥

अथानन्तर सब लोगोंको आनन्द उत्पन्न करते हुए राम-लक्ष्मण कुछ समय तक तो राजा पृथिवीधरके नगरमें रहे फिर जानकीके साथ सलाह कर आगेका कार्य निश्चित करते हुए इच्छित स्थानपर जानेके लिए उद्यत हुए ॥३३-३४॥ तदनन्तर जो सुन्दर लक्षणोंसे युक्त थी और आँसुओंसे भीगे चंचल कनीनिकाओंवाले नेत्र धारण कर रही थी ऐसी वनमाला लक्ष्मणसे बोली कि हे प्रिय! यदि मुझ मन्दभाग्याको तुम्हें अवश्य ही छोड़ना था तो पहले ही मरनेसे क्यों बचाया था सो कहो ॥३५-३६॥ तब लक्ष्मणने कहा कि हे भद्रे! हे प्रिये! हे वरानने! विषादको प्राप्त मत होओ। मैं बहुत ही थोड़े समय बाद फिर आ जाऊँगा ॥३७॥ हे उत्तम विलासोंको धारण करनेवाली प्रिये! यदि मैं शीघ्र ही तुम्हारे पास वापस न आऊँ तो सम्यग्दर्शनसे हीन मनुष्य जिस गतिको प्राप्त होते हैं उसी गतिको प्राप्त होऊँ ॥३८॥ हे प्रिये! यदि मैं तुम्हारे पास न आऊँ तो साधुओंकी निन्दा करनेवाले अहंकारी मनुष्योंके पापसे लिप्त होऊँ ॥३९॥ हे प्राणवल्लभे! हमें पिताके वचनकी रक्षा करनी है और बिना कुछ विचार किये दक्षिण समुद्रके तट जाना है ॥४०॥ वहाँ मलयाचलकी उपत्यकामें जाकर उत्तम भवन बनाऊँगा और फिर तुम्हें ले जाऊँगा। हे सुन्दर जाँघोंवाली प्रिये! तब तक धैर्य धारण करो ॥४१॥ इस प्रकार उत्तम शब्दोंसे युक्त शपथोंके द्वारा वनमालाको शान्त कर लक्ष्मण रामके पास जा पहुँचे ॥४२॥

१. अयोध्याम् । २. जयकुमारः, मेघस्वर इति तस्यैवापरं नाम । ३. मलयापत्यकां म. । ४. भावनं म. । ५. शपथैः । समग्रैः म. ।

ततः सुप्तजने काले विदितौ तौ न केनचित् । निर्गत्य नगराद्गन्तुं प्रवृत्तौ सह सीतया ॥४३॥
प्रभाते रहितं वृद्ध्वा पुरं दृष्ट्वाखिलो जनः । परमं शोकमापन्नः कृच्छ्रेणाधारयत्तनुम् ॥४४॥
वनमाला गृहं वृद्ध्वा लक्ष्मणेन विवर्जितम् । समयेषु समालम्ब्य जीवितं शोकिनी स्थिता ॥४५॥
विहरन्तौ ततः क्षोणीं लोकविस्मयकारिणौ । मुमुदाते महासत्त्वौ सतीतौ रामलक्ष्मणौ ॥४६॥
युवत्युज्ज्वलवल्लीनां मनोनयनपल्लवान् । सायनङ्गतुषारेण दहन्तावाटतुः शनैः ॥४७॥
कस्य पुण्यवतो गोत्रमेताभ्यां समलंकृतम् । सुजाता जननी सैका लोके यैतावजीजनत् ॥४८॥
धन्येयं वनितैताभ्यां समं या याति क्षितिम् । एतौ यदि देवानां देवास्तत्र सुरेश्वर ॥४९॥
कुतः समागतावेतौ व्रजतो वा क्व सुन्दरौ । वाञ्छतः किमिमौ कर्तुं सृष्टिरीदृगियं कथम् ॥५०॥
सरुषोऽनेन पथा दृष्टौ पुण्डरीकनिरीक्षणौ । व्रजन्तौ सहितौ नार्या क्वचिच्चन्द्रनिभाननौ ॥५१॥
यदिमौ शोभिनौ मुग्धे मनुष्यावथवा सुरौ । तत्किमर्थं त्वया शोको धार्यते गतलज्जया ॥५२॥
अयि मूढे न पुण्येन निःसान्तं भूरिणा विना । लभ्यते सुचिरं द्रष्टुमेवंविधनराकृतिः ॥५३॥
निवर्तस्व भज स्वास्थ्यं स्रस्तं वसनमुद्धर । मा नैर्घृणलोचने खेदमतिमात्रप्रसारिते ॥५४॥
नेत्रमानसचौराभ्यां दृष्टाभ्यामपि बालिके । निष्ठुराभ्यां किमेताभ्यां काभ्यामपि धृतिं भज ॥५५॥
इत्यालापसंसक्तं कुर्वाणावबलाजनम् । रेमाते शुद्धचित्तौ तौ स्वेच्छाविहृतिकारिणौ ॥५६॥
नानाजनपदाकीर्णां पर्यटन्यौ धरित्रीमिमौ । क्षेमाञ्जलिसमाख्यानं संप्राप्तौ परमं पुरम् ॥५७॥
उद्याने निकटे तस्य [1]अलदीकरसंनिभे । अवस्थिताः सुखेनैते यथा सौमनसे सुराः ॥५८॥

तदनन्तर जब सब लोग सो गये तब किसीके बिना जाने ही राम लक्ष्मण और सीताके साथ नगरसे निकलकर आगेके लिए चल पड़े ॥४३॥ जब प्रभात हुआ तब नगरको उनसे रहित देख समस्त जन परम शोकको प्राप्त हुए तथा बड़े कष्टसे शरीरको धारण कर सके ॥४४॥ वनमाला भी घरको लक्ष्मणसे रहित देख बहुत शोकको प्राप्त हुई तथा लक्ष्मणके द्वारा की हुई शपथोंका आश्रय ले जीवित रही ॥४५॥ तदनन्तर महान् धैर्यके धारक राम-लक्ष्मण पृथ्वीपर विहार करते हुए परम आनन्दको प्राप्त हुए। उन्हें देख लोगोंको आश्चर्य उत्पन्न होता था ॥४६॥ वे तरुण स्त्री-रूपी उज्ज्वल लताओंके मन और नेत्ररूपी पल्लवोंको कामरूपी तुषारसे जलाते हुए धीरे-धीरे विहार करते थे ॥४७॥ हे सखि ! इन दोनोंने किस पुण्यात्माका कुल अलंकृत किया है ? वह कौन-सी भाग्यशालिनी माता है जिसने इन दोनोंको जन्म दिया है ? ॥४८॥ यह स्त्री धन्य है जो इनके साथ पृथ्वी पर विहार कर रही है। यदि ऐसा रूप देवोंका होता है तो निश्चित ही ये देव हैं ॥४९॥ ये सुन्दर पुरुष कहाँसे आये हैं ? कहाँ जा रहे हैं ? और क्या करना चाहते हैं इनकी यह ऐसी रचना कैसे हो गयी ? ॥५०॥ जिनके नेत्र कमलके समान तथा मुख चन्द्रमाके तुल्य है ऐसे दो पुरुष एक स्त्रीके साथ इस मार्गसे जा रहे थे सो हे सखियो ! तुमने देखे ॥५१॥ हे मुग्धे ! ये अतिशय सुशोभित व्यक्ति मनुष्य हों अथवा देव, तू निर्लज्ज होकर शोक किस लिए धारण कर रही है ? ॥५२॥ अयि मूर्खे ! ऐसे मनुष्योंका रूप बहुत भारी पुण्यके बिना चिरकाल तक देखनेको प्राप्त नहीं होता ॥५३॥ इसलिए लौट जा, स्वस्थ हो, नीचे खिसके हुए वस्त्रको सँभाल और अत्यधिक पसारे हुए नेत्रोंको खेद मत प्राप्त करा ॥५४॥ अरी बाले ! नेत्र और मनको चुरानेवाले इन कठोर पुरुषोंके देखनेसे क्या प्रयोजन है ? धीरज धर ॥५५॥ इस प्रकार स्त्रीजनोंको वार्तालाप करनेमें तत्पर करते हुए शुद्धचित्तके धारक वे दोनों स्वेच्छासे विहार कर रहे थे ॥५६॥ इस प्रकार नाना देशोंसे व्याप्त पृथिवीमें विहार करते हुए वे क्षेमांजलि नामके परम सुन्दर नगरमें पहुँचे ॥५७॥ उस नगरके निकट ही वे मेघसमूहके समान सुन्दर एक उद्यानमें सुखपूर्वक इस प्रकार ठहर गये

---

१. मेघसमूहसदृशे ।

अन्नं वरगुणं भुक्त्वा लक्ष्मणेनोपसाधितम् । माध्वीकं सीतया सार्धमसेवत हलायुधः ॥५९॥
[1]प्रासादगिरिमालाभिस्ततो हृतनिरीक्षणः । लक्ष्मणः पद्मतोऽनुज्ञां प्राप्य प्रश्रयवाचिताम् ॥६०॥
दधानः प्रवरं माल्यं पीताम्बरधरः शुभः । स्वैरं क्षेमाञ्जलिं द्रष्टुं प्रतस्थे चारुविभ्रमः ॥६१॥
नानालतोपगूढानि काननानि वराण्यसौ । सरितः स्वच्छतोयाश्च शुभ्राभ्रसमसैकताः ॥६२॥
विचित्रधातुरङ्गाश्च परिक्रीडनपर्वतान् । देवधामानि तुङ्गानि कूपान् वापीः सभाः प्रपाः ॥६३॥
लोकं च विविधं पश्यन् कृतालापः सविस्मयम् । विवेश नगरं धीरो नानाव्यापारसंकुलम् ॥६४॥
शृणु शृण्विति तत्रायं प्रधानविशिखागतम् । अश्रौषीत्परुषः शब्दमिति विस्रब्धमाषितम् ॥६५॥
पुरुषः कोऽन्वसौ लोके यो मुक्तां राजपाणिना । शक्तिं प्रसह्य शूरेन्द्रो जितपद्मां[2] गृहीष्यति ॥६६॥
स्वर्गं राज्यं ददामीति राजा चेत्प्रतिपद्यते । तथापि नानया कृत्यं कथया शक्तियातया ॥६७॥
आतङ्क्याभिमुखः शक्तेः प्राणैश्च परिवर्जितः । किं करिष्यति कन्यास्य राज्यं वा त्रिदशालये ॥६८॥
समस्तेभ्यो हि वस्तुभ्यः प्रियं जगति जीवितम् । तदर्थमितरत् सर्वमिति को नावगच्छति ॥६९॥
श्रुत्वैवं कौतुकी कंचिदथ पप्रच्छ मानवम् । भद्र ! का जितपद्येयं यदर्थं भाषते जनः ॥७०॥
सोऽवोचन्मृत्युकन्यासावतिपण्डितमानिनी । किं न ते विदिता सर्वलोकविख्यातकीर्तिका ॥७१॥
एतन्नगरनाथस्य राज्ञः शत्रुदमश्रुतेः । कनकाभासमुत्पन्ना दुहिता गुणशालिनी ॥७२॥
यतोऽनया जितं पद्मं कान्त्या वदनजातया । पद्मा च सर्वगात्रेण जितपद्मोदिता ततः ॥७३॥

जिस प्रकार कि सौमनस वनमें देव ठहर जाते हैं ॥५८॥ वहाँ लक्ष्मणके द्वारा तैयार किया उत्तम भोजन ग्रहण कर रामने सीताके साथ दाखोंका मधुर पेय दिया ॥५९॥

तदनन्तर बड़े-बड़े महलरूपी पर्वतोंकी पंक्तियोंसे जिनके नेत्र हरे गये थे ऐसे लक्ष्मण विनयपूर्वक रामसे आज्ञा प्राप्त कर इच्छानुसार क्षेमांजलि नगर देखनेके लिए चले। उस समय वे उत्तम मालाएँ और पीतवस्त्र धारण किये हुए थे तथा सुन्दर विलाससे सहित थे ॥६०-६१॥ नाना लताओंसे आलिंगित उत्तमोत्तम वनों, स्वच्छ जलसे भरीं तथा शुक्लमेघोंके समान उज्ज्वल तटोंसे शोभित नदियों, नाना प्रकारकी धातुओंसे रंग-बिरंगे क्रीड़ा-पर्वतों, ऊँचे-ऊँचे जिनमन्दिर, कुओं, वापिकाओं, सभाओं, पानीयशालाओं और अनेक प्रकारके मनुष्योंको देखते हुए उन्होंने नाना प्रकारके व्यापार-कार्योंसे युक्त नगरीमें बड़ी धीरतासे प्रवेश किया। लोग उन्हें बड़े आश्चर्यसे देख रहे थे ॥६२-६४॥ जब ये नगरके प्रधान मार्गमें पहुँचे तब उन्होंने किसी नगरवासीसे निश्चिन्ततापूर्वक कहा हुआ यह शब्द सुना ॥६५॥ वह किसीसे कह रहा था कि अरे सुनो-सुनो, संसारमें ऐसा कौन शूरवीर पुरुष है जो राजाके हाथसे छोड़ी हुई शक्तिको सहकर 'जितपद्मा' कन्याको ग्रहण करेगा ? ॥६६॥ यदि राजा यह भी कहे कि मैं स्वर्गका राज्य देता हूँ तो भी शक्तिसे सम्बन्ध रखनेवाली इस कथासे क्या प्रयोजन है ? ॥६७॥ यदि कोई शक्ति झेलनेके लिए सम्मुख हुआ और प्राणोंसे रहित हो गया तो यह कन्या और स्वर्गका राज्य उसका क्या कर लेगा ? ॥६८॥ संसारमें समस्त वस्तुओंसे जीवन ही प्यारा है और उसीके लिए अन्य सब प्रयत्न है यह कौन नहीं जानता है ? ॥६९॥

अथानन्तर इस प्रकारके शब्द सुनकर लक्ष्मणने कौतुकवश किसी मनुष्यसे पूछा कि हे भद्र ! यह जितपद्मा कौन है ! जिसके लिए लोग इस प्रकार वार्ता कर रहे हैं ॥७०॥ इसके उत्तरमें उस मनुष्यने कहा कि जिसकी कीर्ति समस्त संसारमें व्याप्त है तथा जो अपने आपको अति पण्डित मानती है ऐसी इस कालकन्याको क्या तुम नहीं जानते ? ॥७१॥ यह इस नगरके राजा शत्रुदमनकी कनकाभा रानीसे उत्पन्न गुणवती पुत्री है ॥७२॥ चूँकि इसने मुखकी कान्तिसे कमलको

---

१. प्रसाद-ख. । २. एतन्नामधेयां कन्यां ।

नवयौवनसंपन्ना कलालंकारधारिणी । पुंसोऽपि द्विषतान् द्वेष्टि मनुष्येषु कथात्र का ॥७४॥
उच्चारयति नो शब्दमपि पुल्लिङ्गवर्त्मनम् । व्यवहारः समस्तोऽस्याः पुरुषार्थविवर्जितः ॥७५॥
अदः पश्यसि कैलाससदृशं भवनं वरम् । अत्र तिष्ठत्यसौ कन्या शतसेवनलालिता ॥७६॥
शक्तिं यः पाणिना मुक्तां पित्रास्याः सहते नरः । वृणुते तमियं दग्ध-समीहा कृच्छ्रशालिनी ॥७७॥
लक्ष्मीधरः समाकर्ण्य सकोपस्मयविस्मयः । ध्यौ सा कीदृशी नाम कन्या यैवं समीहते ॥७८॥
दुष्टचेष्टामिमां सावलेपां पश्यामि गर्विताम् । अहो पुनरभिप्रायः प्रौढोऽस्यमनया कृतः ॥७९॥
ध्यायन्निति महोक्षेण[1] राजमार्गेण चारुणा । विमानाभान् महाशब्दान् प्रासादान्चिद्युपाण्डुरान् ॥८०॥
दन्तिनो जलदाकारांस्तुरंगांश्चलचामरान् । बलभीनृत्यशालांश्च पश्यन् मन्थरचक्षुषा ॥८१॥
नानानिर्व्यूहसंपन्नं विचित्रध्वजशोभितम् । शुभ्राभ्ररश्मिसंकाशं प्राप शत्रुंदमालयम् ॥८२॥
मास्वन्मणिशताकीर्णं तुङ्गप्राकारशोभितम् । द्वारं तस्य द्रुतौकेऽसौ शक्रचापागतोरणम् ॥८३॥
शस्त्रिवृन्दावृते तस्मिन्नानोपायनसंकुले । निर्गच्छन्निर्विशन्निश्च सामन्तैरतिसंकटे ॥८४॥
द्वाःस्थेन प्रविशन्नेव बभाषे सौम्यया गिरा । कस्त्वमज्ञापितो भद्र विशसि क्षितिपालयम् ॥८५॥
सोऽवोचद्द्रष्टुमिच्छामि राजानं गच्छ वेदय । स्वपदेऽन्यमसौ कृत्वा गत्वा राज्ञे न्यवेदयत् ॥८६॥
दिदृक्षुरस्त्वां महाराज पुमानिन्दीवरप्रभः । राजावलोचनः श्रीमान् सौम्यो द्वारेऽवतिष्ठते ॥८७॥

अथवा सर्व शरीरसे लक्ष्मीको जीत लिया है इसलिए यह जितपद्मा कहलाती है ॥७३॥ नवयौवनसे सम्पन्न तथा कलारूपी अलंकारोंको धारण करनेवाली यह कन्या पुंवेदधारी देवोंसे भी द्वेष करती है फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ? ॥७४॥ जो शब्द व्याकरणकी दृष्टिसे पुंलिंग होता है यह उसका भी उच्चारण नहीं करती है। इसका जितना भी व्यवहार है वह सब पुरुषोंके प्रयोजनसे रहित है ॥७५॥ सामने जो कैलास पर्वतके समान बड़ा भवन देख रहे हो उसीमें यह सैकड़ों प्रकारकी सेवाओंसे लालित होती हुई रहती है ॥७६॥ जो मनुष्य इसके पिताके हाथसे छोड़ी हुई शक्तिको सहन करेगा उसे ही यह वरेगी ऐसी कठिन प्रतिज्ञा इसने ले रखी है ॥७७॥

यह सुनकर लक्ष्मण क्रोध, गर्व और आश्चर्यसे युक्त हो विचार करने लगे कि वह कन्या कैसी होगी जो इस प्रकारकी चेष्टा करती है ॥७८॥ दुष्ट चेष्टासे युक्त तथा गर्वसे भरी इस कन्याको देखूँ तो सही। अहो ! इसने यह बड़ा कठोर अभिप्राय कर रखा है ॥७९॥ इस प्रकार विचार करते हुए लक्ष्मण महावृषभकी नाईं सुन्दर चालसे चलकर मनोहर राजमार्गमें आगे बढ़े। वहाँ वे विमानके समान आभावाले तथा चन्द्रमाके समान धवल उत्तमोत्तम भवनों, मेघोंके समान हाथियों, चंचल चमरोंसे सुशोभित घोड़ों, छपरियों और नृत्यशालाओंको धीमी दृष्टिसे देखते जाते थे ॥८०-८१॥ तदनन्तर जो नाना प्रकारके निर्व्यूहोंसे युक्त था, रंग-बिरंगी ध्वजाओंसे सुशोभित था, तथा जो सफ़ेद मेघावलीके समान था ऐसे राजा शत्रुंदमके महलपर पहुँचे ॥८२॥ महलका द्वार सैकड़ों देदीप्यमान बेलबूटोंसे सहित था, ऊँचे प्राकारसे युक्त था, और इन्द्रधनुषके समान रंग-बिरंगे तोरणोंसे सुशोभित था ॥८३॥ तदनन्तर जो शस्त्रधारी पहरेदारोंके समूहसे आवृत था, नाना प्रकारके उपहारोंसे युक्त था और जहाँ बाहर निकलते तथा भीतर प्रवेश करते हुए सामन्तोंकी बड़ी भीड़ लग रही थी ऐसे द्वारमें लक्ष्मण प्रवेश करने लगे तो द्वारपालने सौम्यवाणीसे कहा कि हे भद्र ! तू कौन है जो बिना आज्ञा ही राजमहलमें प्रवेश कर रहा है ॥८४-८५॥ तब लक्ष्मणने कहा कि मैं राजाके दर्शन करना चाहता हूँ सो राजाको खबर दे दो। यह सुन अपने स्थानपर दूसरेको नियुक्त कर द्वारपालने भीतर जाकर राजासे निवेदन किया कि ॥८६॥ हे महाराज ! जो आपके दर्शन करना चाहता है,

---

१. मोक्षेण न. । महोक्षेति म. । 'महावृषगतिः' इति 'ज' पुस्तके टिप्पणी ।

अमात्यवदनं वीक्ष्य राजावोचद्विशस्विति । ततः सुतः सुमित्रायाः प्रतीहारोदितोऽविशत् ॥८८॥
तं दृष्ट्वा सुन्दराकारं सुगम्भीरापि सा सभा । समुद्रमूर्तिवक्षोभं गता शीतांशुदर्शने ॥८९॥
प्रणामरहितं दृष्ट्वा विकटांसं सुभासुरम् । किंचिद्विकृतचेतस्कस्तमपृच्छदरिंदमः ॥९०॥
कुतः समागतः कस्त्वं किमर्थं क्व कृतश्रमः । ततो जलदगम्भीरोऽवोचत् प्रावृषेण्यघनध्वनिः ॥९१॥
बाह्योऽहं भरतस्यापि महीहिण्डनपण्डितः । विद्वान् सर्वत्र ते भङ्क्तुं दुहितुर्मानमागतः ॥९२॥
अभग्नमानशृङ्गेयं दुष्टकन्यागवी त्वया । पोषिता सर्वलोकस्य वर्तते दुःखदायिनी ॥९३॥
सोऽवोचद् यो मया मुक्तां पाणेः शक्तिं प्रतीक्षितुम् । कोऽसौ नु[1] जितपद्माया मानस्य ध्वंसको भवेत् ॥९४॥
उवाच लक्ष्मणः शक्त्या ग्रहणं मे किमेकया । शक्तीः पञ्च विमुञ्च त्वं मयि शक्त्या समस्तया ॥९५॥
विवादो गर्विणोरेवं प्रवृत्तो यावदेतयोः । गवाक्षा विनिद्रास्तावत्पिहिता वनिताननैः ॥९६॥
परित्यक्तगरुद्वेषा दृष्ट्वा लक्ष्मणपुङ्गवम् । निर्व्यूढस्था जितामोजा संज्ञादानादवारयत् ॥९७॥
दक्षवद्दत्तालिं भीतं सौमित्रिरिति संज्ञया । चकार जातलोभां तां मा भैषीरिति संमदी ॥९८॥
उत्थाय च किमद्यापि कातर त्वं प्रतीक्षसे । विमुञ्चाशिंदमाभिख्य [2]शक्तिं [3]शक्तिं निवेदय ॥९९॥
इत्युक्तः कुपितो राजा बद्ध्वा परिकरं दृढम् । ज्वलत्पावकसंकाशां शक्तिमेकामुपादधौ ॥१००॥
[4]प्रतीच्छेच्छसि मरुं चेदित्युक्त्वा भृकुटीं दधत् । वैशाखं स्थानकं कृत्वा तां मुमोच विधानवित् ॥१०१॥

जिसकी प्रभा पीले कमलके समान है, जिसके नेत्र कमलोंके समान सुशोभित हैं तथा जो अत्यन्त सौम्य है ऐसा एक शोभासम्पन्न पुरुष द्वार पर खड़ा है ॥८७॥ मन्त्रीके मुखकी ओर देख राजाने कहा कि 'प्रवेश करे'। तदनन्तर द्वारपालके कहने पर लक्ष्मणने भीतर प्रवेश किया ॥८८॥ यद्यपि वह सभा गम्भीर थी तो भी जिस प्रकार चन्द्रमाको देखकर समुद्र क्षोभको प्राप्त होता है उसी प्रकार वह सभा भी सुन्दर आकारके धारक लक्ष्मणको देखकर क्षोभको प्राप्त हो गयी ॥८९॥ प्रणामरहित, विशाल कन्धोंके धारक तथा अतिशय देदीप्यमान लक्ष्मणको देखकर जिसका हृदय कुछ-कुछ विकृत हो रहा था ऐसे राजा शत्रुदमने पूछा कि तू कहाँसे आया है ? कौन है ? और किस लिए आया है ? इसके उत्तरमें वर्षा ऋतुके मेघके समान गम्भीर ध्वनिको धारण करनेवाले लक्ष्मणने कहा ॥९०-९१॥ कि मैं राजा भरतका सेवक हूँ, पृथ्वीपर घूमनेमें निपुण हूँ, सब विषयोंका पण्डित हूँ और तुम्हारी पुत्रीका मान भङ्ग करनेके लिए आया हूँ ॥९२॥ जिसके मान-रूपी सींग अभग्न हैं ऐसी जो दुष्ट कन्यारूपी मरकनी गाय तुमने पाल रक्खी है वह सब लोगोंको दुःख देनेवाली है ॥९३॥ राजा शत्रुदमने कहा कि जो मेरे द्वारा छोड़ी हुई शक्तिको सहन करनेमें समर्थ है ऐसा वह कौन पुरुष है जो जितपद्माका मान खण्डित करनेवाला हो ॥९४॥ लक्ष्मणने कहा कि मैं एक शक्तिको क्या ग्रहण करूँ ? तू पूरी सामर्थ्यके साथ मुझपर पाँच शक्तियाँ छोड़ ॥९५॥ यहाँ जब तक दोनों अहंकारियोंके बीच इस प्रकारका विवाद चल रहा था वहाँ तब तक राजमहलके सघन झरोखे स्त्रियोंके मुखोंसे आच्छादित हो गये ॥९६॥ जितपद्मा भी लक्ष्मणको देख मोहित हो गयी और पुरुषोंके साथ द्वेषको छोड़कर छपरी पर आ बैठी तथा इशारा देकर लक्ष्मणको मना करने लगी ॥९७॥ तब हर्षसे भरे लक्ष्मणने भयभीत तथा हाथ जोड़कर बैठी हुई जितपद्माको इशारा देकर जताया कि भय मत करो ॥९८॥ और राजासे कहा कि अरे कातर ! अब भी क्या प्रतीक्षा कर रहा है ? शत्रुदम नाम रखे फिरता है शक्ति छोड़ और पराक्रम दिखा ॥९९॥ इस प्रकार कहने पर राजाने कुपित हो अच्छी तरह कमर कसी और जलती हुई अग्निके समान एक शक्ति उठायी ॥१००॥ तदनन्तर 'यदि मरना ही चाहता है तो ले झेल' यह कहकर भौंहको धारण करनेवाले विधि-विधानके ज्ञाता राजाने आलीढ़ आसनसे खड़ा होकर वह गदा

---

१. न. म., ज. । २. शक्तिनामकशस्त्रम् । ३. पराक्रमम् । ४. प्रतीक्षेच्छसि म. ।

[1]अयत्नेनैव सा तेन धृता दक्षिणपाणिना । वर्तिकाग्रहणे को वा बहुमानो गरुत्मतः ॥१०२॥
द्वितीयेतरहस्तेन कक्षाभ्यां ते सुविभ्रमः । शुशुभे सुभृशं सामिश्चतुर्दन्त इव द्विपः ॥१०३॥
संक्रुद्धभोगिभोगाभां संग्राहामथ पञ्चमीम् । दन्ताग्राभ्यां दधौ शक्तिं पेशीमिव मृगाधिपः ॥१०४॥
ततो देवगणाः स्वस्था ववृषुः पुष्पसंहतिम् । ननृतुस्ताडयांश्चक्रुर्दुन्दुभींश्च कृतस्वनाः ॥१०५॥
[2]प्रैतीष्ठाश्चरिदमेदानीं शक्तिं त्वमिति लक्ष्मणे । कृतशब्दे परं प्राप साध्वसं सकलो जनः ॥१०६॥
तमक्षततनुं दृष्ट्वा लक्ष्मीनिलयवक्षसम् । विस्मितोऽरिंदमो जातस्त्रपावनमिताननः ॥१०७॥
जितपद्मा ततः प्राप स्मितच्छायाननाननाः । लक्ष्मीधरं समाकृष्टा रूपेणाचरितेन च ॥१०८॥
धृतशक्तेः समीपेऽस्य सा तन्वी शुशुभेतराम् । कुलिशायुधपार्श्वस्था शचीर्व विनताननाः ॥१०९॥
नवेन संगमेनास्या हृदयं तस्य कम्पितम् । यन्नासीत् कम्पितं जातु संग्रामेषु महत्स्वपि ॥११०॥
पुरस्तात्तनरेशानां कन्यया लक्ष्मणा धृतः । विभिद्यापत्रपापाशीं तत्क्षणव्यस्तनेत्रया ॥१११॥
सद्यो विनयनम्राङ्गो राजानं लक्ष्मणोऽब्रवीत् । मामकं हंसि मे क्षन्तुं शैशवाद्दुर्विचेष्टितम् ॥११२॥
बालानां प्रतिकूलेन कर्मणा वचसापि वा । भवद्विधा सुगम्भीरा नैव यान्ति विकारिताम् ॥११३॥
ततः शत्रुंदमोऽप्येनं सप्रमोदः ससंभ्रमः । स्तम्बेरमकरामाभ्यां कराभ्यां परिषस्वजे ॥११४॥
उवाच च परिक्लिष्टगण्डांश्चण्डान् गजान् क्षणात् । योऽजैषं भीमयुद्धेषु भद्र सोऽहं त्वया जितः ॥११५॥

छोड़ दी ॥१०१॥ लक्ष्मणने बिना किसी यत्नके ही दाहिने हाथसे वह शक्ति पकड़ ली सो ठीक ही है क्योंकि बटेरके पकड़नेमें गरुडका कौन-सा बड़ा मान होता है ? ॥१०२॥ दूसरी शक्ति दूसरे हाथसे तथा तीसरी चौथी शक्ति दोनों बगलोंमें धारण कर पुलकते हुए लक्ष्मण उनसे चार दाँतोंको धारण करनेवाले ऐरावत हाथीके समान अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥१०३॥ अथानन्तर अत्यन्त कुपित साँपकी फणकी नाईं जो पाँचवीं शक्ति आयी उसे लक्ष्मणने दाँतोंके अग्रभागसे उस प्रकार पकड़ लिया जिस प्रकार कि मृगराज मांसकी डलीको पकड़ रखता है॥१०४॥ तदनन्तर आकाशमें खड़े देवोंके समूह पुष्प बरसाने लगे, नृत्य करने लगे तथा हर्षसे शब्द करते हुए दुन्दुभि बाजे बनाने लगे ॥१०५॥

अथानन्तर 'शत्रुंदम ! अब तू मेरी शक्ति झेल' इस प्रकार लक्ष्मणके कहनेपर सबलोग अत्यन्त भयको प्राप्त हुए ॥१०६॥ राजा शत्रुन्दम लक्ष्मणको अक्षत शरीर देख विस्मयमें पड़ गया और लज्जासे उसका मुख नीचा हो गया ॥१०७॥ तदनन्तर मन्द मुसकानकी छायासे जिसका मुख नीचेकी ओर हो रहा था ऐसी जितपद्मा रूप तथा आचरणसे खिंचकर लक्ष्मणके पास आयी ॥१०८॥ शक्तियोंको धारण करनेवाले लक्ष्मणके पास वह कृशाङ्गी, इस तरह अत्यन्त सुशोभित हो रही थी जिस तरह कि वज्रके धारक इन्द्रके पास खड़ी नतमुखी इन्द्राणी सुशोभित होती है ॥१०९॥ लक्ष्मणका जो हृदय बड़े-बड़े संग्रामोंमें भी कभी कम्पित नहीं हुआ था वह जितपद्माके नूतन समागमसे कम्पित हो गया ॥११०॥ तदनन्तर लज्जाके भारसे जिसके नेत्र नीचे हो रहे थे ऐसी जितपद्माने पिता तथा अन्य अनेक राजाओंके सामने लज्जा छोड़कर लक्ष्मणका वरण किया ॥१११॥ तत्काल ही विनयसे जिसका शरीर नम्रीभूत हो रहा था ऐसे लक्ष्मणने राजासे कहा कि हे मामा ! लड़कपनके कारण मैंने जो खोटी चेष्टा की है उसे आप क्षमा करनेके योग्य हैं ॥११२॥ बालकोंके विपरीत कार्य अथवा विरुद्ध वचनोंसे आप जैसे महागम्भीर पुरुष विकार भावको प्राप्त नहीं होते ॥११३॥

तदनन्तर हर्ष और संभ्रमसे सहित राजा शत्रुंदमने भी हाथीकी सूंडके समान लम्बी तथा सुपुष्ट भुजाओंसे लक्ष्मणका आलिंगन किया ॥११४॥ और कहा कि हे भद्र ! जिस मैंने

---

१. अयत्नेनैव म. । २. प्रतीक्षा म. । ३. शची विनमितानना म. ।

यन्यानपि महानागान् गण्डशैलसमस्विषः । विमदीकृतवानस्मि सोऽयमन्य इवाभवम् ॥११६॥
अहो वीर्यमहो रूपं सदृशाः सन्तु ते गुणाः । अहोद्धतता त्वय्यन्तं प्रश्रयश्च तवाद्भुतः ॥११७॥
भाषमाणे गुणानेवं राज्ञि संसदवस्थिते । लक्ष्मीधरव्यपातोऽभूत् क्षणं पात इव क्षणम् ॥११८॥
अथ लब्धाम्बुदप्रातघोषभेर्यः समाहताः । राजादेशात् समाध्मातः शङ्खाः संशितकारणाः ॥११९॥
यथेष्टं दीयमानेषु धनेषु परमस्ततः । आनन्दोऽवर्तताशेषनगरक्षोमदक्षिणः ॥१२०॥
ततो लक्ष्मीधरोऽवादि राज्ञा पुरुषपुङ्गव । त्वया दुहितुरिच्छामि पाणिग्रहणमीक्षितुम् ॥१२१॥
सोऽवोचन्नगरस्यास्य प्रदेशे निकटे मम । ज्येष्ठस्तिष्ठति तं पृच्छ स जानाति यथोचितम् ॥१२२॥
ततः स्यन्दनमारोप्य जितपद्मां सलक्ष्मणाम् । सदारबन्धुरभ्याशं प्रतस्थे तस्य सादरः ॥१२३॥
ततः श्रुत्वापगानाथनिर्घोषप्रतिमध्वनिम् । श्रुत्वा वीक्ष्य विशालं च धूलीपटलमुद्गतम् ॥१२४॥
जानुन्यस्तसमुद्दुःस्तकरा कृच्छ्रात्समुत्थिता । सीता जगाद संभ्राता गिरा प्रस्खलिता मुहुः ॥१२५॥
कृतं सौमित्रिणा नूनं राघवोद्धतचेष्टितम् । आशेयमाकुलात्यन्तं दृश्यते कृत्यमाश्रयः ॥१२६॥
आश्लिष्य जानकीं देवि मा भैषीरिति शब्दयन् । उत्तस्थौ राघवः क्षिप्रं दृष्टिं धनुषि पातयन् ॥१२७॥
तावच्च नरवृन्दस्य महतः स्थितमग्रतः । सुतारगीतनिस्वानमीक्षांचक्रेऽङ्गनाजनम् ॥१२८॥
क्रमेण गच्छतश्चास्य प्रत्यासत्तिं मनोहराः विभ्रमाः समदृश्यन्त सुरारमयवोत्थिताः ॥१२९॥
नृत्यन्तं च समालोक्य तारनूपुरशिञ्जितम् । विश्रब्धः सीतया सार्कं पद्मः पुनरुपाविशत् ॥१३०॥

भयंकर युद्धोंमें मदस्रावी कुपित हाथियोंको क्षणभरमें जीता था वह मैं आज तुम्हारे द्वारा जीता गया ॥११५॥ जिसने गोल काली चट्टानोंवाले पर्वतके समान कान्तिके धारक बड़े-बड़े जंगली हाथियोंको मदरहित किया था वह मैं आज मानो अन्य ही हो गया हूँ ॥११६॥ धन्य तुम्हारी अनुद्धतता और धन्य तुम्हारी अद्भुत विनय। अहो शोभनीक! तुम्हारे गुण तुम्हारे अनुरूप ही हैं ॥११७॥ इस प्रकार सभामें बैठा राजा शत्रुदम जब लक्ष्मणके गुणोंका वर्णन कर रहा था तब लक्ष्मण लज्जाके कारण ऐसे हो गये मानो क्षणभरके लिए कहीं चले ही गये हों ॥११८॥

अथानन्तर राजाकी आज्ञासे मेघसमूहकी गर्जनाके समान विशाल शब्द करनेवाली भेरियाँ बजायी गयीं और हाथियोंकी चिंघाड़का संशय उत्पन्न करनेवाले शंख फूँके गये ॥११९॥ इच्छानुसार धन दिया जाने लगा और समस्त नगरको क्षोभित करनेमें समर्थ बहुत भारी आनन्द प्रवृत्त हुआ ॥१२०॥ तदनन्तर राजाने लक्ष्मणसे कहा कि हे श्रेष्ठ पुरुष! मैं तुम्हारे साथ पुत्रीका पाणिग्रहण देखना चाहता हूँ ॥१२१॥ इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि इस नगरके निकटवर्ती प्रदेशमें मेरे बड़े भाई विराजमान हैं सो उनसे पूछो वही ठीक जानते हैं ॥१२२॥ तब लक्ष्मण सहित जितपद्माको रथ पर बैठाकर स्त्रियों तथा भाई-बन्धुओंसे सहित राजा शत्रुदम बड़े आदरके साथ रामके समीप चला ॥१२३॥ तदनन्तर क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रकी गर्जनाके समान जोरदार शब्द सुनकर और उठे हुए विशाल धूलिपटलको देखकर घुटनोंपर बार-बार हाथ रखती हुई सीता बड़े कष्टसे उठी और घबड़ाकर स्खलित वाणीमें रामसे बोली कि हे राघव! जान पड़ता है लक्ष्मणने कोई उद्धत चेष्टा की है। यह दिशा अत्यन्त आकुल दिखाई देती है इसलिए सावधान होओ और जो कुछ करना हो सो करो ॥१२४-१२६॥ तब सीताका आलिंगन कर 'हे देवि! भयभीत मत होओ' यह कहते तथा शीघ्र ही धनुषपर दृष्टि डालते हुए राम उठे ॥१२७॥ इतनेमें ही उन्होंने विशाल नर-समूहके आगे उच्चस्वरसे मंगल गीत गानेवाली स्त्रियोंका समूह देखा ॥१२८॥ वह स्त्रियोंका समूह जब क्रम-क्रमसे पास आया तब सुन्दर स्त्रियोंके शरीरसे उत्पन्न होनेवाले मनोहर हाव-भाव दिखाई दिये ॥१२९॥ तदनन्तर जिनके नूपुरोंकी जोरदार झनकार

---

१. शंसित म.।

स्त्रियो मङ्गलहस्तास्ते सर्वालंकारभूषिताः । कुर्वाणाः किरणैर्हारिण्यः समदस्फीतलोचनाः ॥१३१॥
रथादुत्तीर्य रथस्थः सहेतो जितपद्यया । पतिः पपात [1]पद्माया पद्मस्य चरणौ द्रुतम् ॥१३२॥
पद्मस्य प्रणतिं कृत्वा सीताया अपि सत्वरः । निविश्य मानसन्निकटे पद्मस्य विनयी स्थितः ॥१३३॥
नृपाः शत्रुंदमाद्याश्च क्रमात्कृत्वा नमस्कृतिम् । पद्मस्य सहसीतस्य यथास्थानमवस्थिताः ॥१३४॥
तत्र संकथया स्थित्वा कुशलप्रश्नपूर्वया । कृत्वा च पुनरानन्दनर्तने पार्थिवैरपि ॥१३५॥
ऋद्धया परमया युक्तः सम्पदो लक्ष्मणो वृतः । प्रविष्टः स्यन्दनारूढो नगरं प्रमदान्वितः ॥१३६॥
तत्र लावण्यकिञ्जल्कयौवनैकुवलयाकुले । महाप्रासादसरसि स्वनद्भूषणपक्षिणि ॥१३७॥
नरेसकलनौ सत्यव्रतसिंहध्वनेरलम् । त्रासात् संकुचितस्वान्तौ कुमारश्रीसमन्वितौ ॥१३८॥
शत्रुंदमकृतच्छन्दौ किंचित्कालं महासुखौ । स्थितौ सर्वलोकस्य चित्ताह्लादनदायिनौ ॥१३९॥
जितपद्यां ततो भीतो विरहादतिदुःखिताम् । परिसान्त्व्य प्रियैर्वाक्यैर्वनमालामिवादरात् ॥१४०॥
पद्मः सीतानुगो भूत्वा निर्याते स्मैरनिर्गमः । यातो लक्ष्मीधरो दृष्ट्वा पौराणामधृतिं पराम् ॥१४१॥

शार्दूलविक्रीडितम्

ये जन्मान्तरसंचितातिसुकृताः सर्वासुभाजां प्रियाः
यं यं देशमुपव्रजन्ति विविधं कृत्यं भजन्तः परम् ।
तस्मिन्सर्वकृपाकसौख्यचतुरस्तेषां विना चिन्तया
सृष्ट्यादिविधिर्भवस्यनुपमो यो विश्वे दुर्लभः ॥१४२॥

फैल रही थी ऐसी स्त्रियोंके समूहको नृत्य करता देख राम निश्चिन्त हो सीताके साथ पुनः बैठ गये ॥१३०॥

अथानन्तर जिनके हाथोंमें मंगल द्रव्य थे, जो सब प्रकारके अलंकारोंसे अलंकृत थीं, अतिशय मनोहर थीं और जिनके नेत्र मदसे फूल रहे थे ऐसी स्त्रियाँ रामके पास आयीं ॥१३१॥ कमलके समान मुखको धारण करनेवाले लक्ष्मण जितपद्माके साथ रथसे उतरकर शीघ्र ही रामके चरणोंमें जा पड़े ॥१३२॥ तदनन्तर राम और सीताको प्रणाम कर लजाते हुए लक्ष्मण रामसे कुछ दूर हटकर विनयपूर्वक बैठ गये ॥१३३॥ शत्रुन्दम आदि राजा भी क्रम-क्रमसे राम तथा सीताको नमस्कार कर यथा स्थान बैठ गये ॥१३४॥ कुशल समाचार पूछकर सब वार्तालाप करते हुए सुखसे बैठे तथा राजाओंने आनन्द-नृत्य किया ॥१३५॥ तदनन्तर परम सम्पदासे युक्त तथा हर्षसे भरे राम लक्ष्मण और सीताने रथपर सवार हो नगरमें प्रवेश किया ॥१३६॥ वहाँ राजमहलमें पहुँचे। वह राजमहल एक सरोवरके समान जान पड़ता था क्योंकि सौन्दर्य रूपी केशरसे युक्त स्त्रियों रूपी नील कमलोंसे वह व्याप्त था और शब्द करते हुए आभूषण रूपी पक्षियोंसे युक्त था ॥१३७॥ सत्यव्रत रूपी सिंहकी गर्जनाके भयसे जिनके चित्त अत्यन्त संकुचित रहते थे, जो कुमार लक्ष्मीसे सहित थे, राजा शत्रुन्दम जिनकी इच्छानुसार सब सेवा करता था, जो महा सुखसे सहित थे तथा जो समस्त लोगोंके चित्तको आनन्द देनेवाले थे ऐसे नर श्रेष्ठ राम लक्ष्मण उस राजमहलमें कुछ समय तक सुखसे रहे ॥१३८-१३९॥

तदनन्तर राम अर्धरात्रिके समय सीताके साथ इच्छानुसार राजमहलसे बाहर निकल पड़े और लक्ष्मण भी वनमालाके समान विरहसे भयभीत अतिशय दुःखी जितपद्माको प्रिय वचनों द्वारा आदर पूर्वक सान्त्वना दे रामके साथ चले। इन सबके जानेसे नगरवासियोंका धैर्य जाता रहा ॥१४०-१४१॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक! जिन्होंने जन्मान्तरमें बहुत

---

१. पद्मायाः पतिः = लक्ष्मणः । २. स्थित्वा म. । ३. निखिलप्राणिनाम् ।

भोगैर्नास्ति मम प्रयोजनमिमे गच्छन्तु नाशं खला
इत्येषां यदि सर्वदापि कुरुते निन्दामलं द्वेषकः ।
एतैः सर्वगुणोपपत्तिपटुभिर्यातोऽपि शैलं शिरैः
नित्यं [1]याति तथापि निर्जितरविर्दीप्त्या जनः संगमम् ॥१४३॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते जितपद्मोपाख्यानं नामाष्टत्रिंशत्तमं पर्व ॥३८॥

□

भारी पुण्यका संचय किया है ऐसे सर्व प्राणियोंको [illegible] नाना प्रकारके उत्तम कार्य कराते हुए जिस-जिस देशमें जाते हैं उसी-उसी देशमें उन्हें विना किसी चिन्ताके समस्त इन्द्रियोंके सुख देनेमें निपुण मधुर आहार आदिकी सब ऐसी अनुपम विधि मिलती है कि लोकमें जो दूसरोंके लिए दुर्लभ रहती है ॥१४२॥ 'मुझे इन लोगोंसे प्रयोजन नहीं है। ये दुष्ट नाशको प्राप्त हों, इस प्रकार भोगोंसे अतिशय द्वेष रखनेवाला पुरुष यद्यपि सर्वदा इन भोगोंकी निन्दा करता है और इन्हें छोड़कर पर्वतके शिखरपर भी चला जाता है तो भी अपनी कान्तिसे सूर्यको जीतनेवाला पुण्यात्मा पुरुष समस्त गुणोंकी प्राप्ति करानेमें समर्थ इन भोगोंके साथ सदा समागमको प्राप्त होता है अर्थात् पुण्यात्मा मनुष्यको इच्छा न रहते हुए भी सब प्रकारकी सुख सामग्री सर्वत्र मिलती है ॥१४३॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें जितपद्माका
वर्णन करनेवाला अड़तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३८॥

□

---

१. यान्ति म. ।

एकोनचत्वारिंशत्तमं पर्व

अथ नानाद्रुमक्ष्मासु बहुपुष्पसुगन्धिषु । लतामण्डपयुक्तासु सेवितासु सुखं मृगैः ॥१॥
देवोपनीतनिश्शेषशरीरस्थितिसाधनौ । आयातां रममाणौ तौ ससीतौ रामलक्ष्मणौ ॥२॥
क्वचिद्विद्रुमसंकाशं रामः किसलयं लघु । गृहीत्वा कुरुते कर्णे जानक्याः साध्विति ब्रुवन् ॥३॥
सुतरौ [1]संगतां वल्लीं क्वचिदारोप्य जानकीम् । स्वैरं दोलयतः पार्श्ववर्तिनौ रामलक्ष्मणौ ॥४॥
द्रुमखण्डे क्वचिद् स्थित्वा नितान्तघनपल्लवे । कथाभिः सुविदग्धाभिः कुरुतस्तद्विनोदनम् ॥५॥
इयमेतदयं[2] वल्ली पलाशं तरुरीक्ष्यताम् । हारिणी हारि हारीति सीतोचे राघवं क्वचित् ॥६॥
क्वचिद् भ्रमरसंघातैर्मुखसौरभलोलुपैः । कृच्छ्रादरक्षतामेतौ राजपुत्रौ कदर्थिताम् ॥७॥
शुभैर्विहरमाणौ तौ ससीतौ शुभविभ्रमौ । काननेषु विचित्रेषु [3]स्वर्वनेषु सुराविव ॥८॥
नानाजनोपभोग्येषु देशेषु निहितेक्षणौ । [4]धीरौ क्रमेण संप्राप्तौ पुरं वंशस्थलद्युतिम् ॥९॥
सुदीर्घोऽपि तयोः कालो गच्छतोः सह सीतया । पुण्यानुगतयोर्नासीदपि दुःखलवप्रदः ॥१०॥
अपश्यतां च तस्यान्ते वंशजालातिसंकटम् । नगं वंशधराभिख्यं भित्त्वेव भुवमुद्गतम् ॥११॥
छायया तुङ्गशृङ्गाणां यः सन्ध्यामिव संततम् । दधाति निर्झराणां च हसतीव च शीकरैः ॥१२॥
निर्गच्छन्तीं प्रजां दृष्ट्वा पुरादथ स एककाम् । रामः पप्रच्छ भोः कस्मात् त्रासोऽयं सुमहानिति ॥१३॥

अथानन्तर जिनकी शरीर-स्थितिके समस्त साधन देवोपनीत थे, ऐसे सीता सहित राम-लक्ष्मण रमण करते हुए वनकी उन भूमियोंमें आये जो नाना प्रकारके वृक्षोंसे सहित थी, जिनमें नाना फूलोंकी सुगन्धि फैल रही थी, जो लतामण्डपोंसे सहित थीं तथा मृगगण जिनमें सुखसे निवास करते थे ॥१–२॥ कहीं राम, मूंगके समान कान्तिवाले पल्लवको तोड़कर तथा उसका कर्णाभरण बनाकर 'यह ठीक रहेगा' इस प्रकार कहते हुए सीताके कानमें पहिनाते थे, तो कहीं किसी वृक्ष पर लटकती लता पर सीताको बैठाकर बगलमें दोनों ओर खड़े हो राम-लक्ष्मण उसे झूला झुलाते थे ॥३–४॥ कहीं सघन पत्तोंवाले द्रुम-खण्डमें बैठकर मनोहर-मनोहर कथाओंसे उसका मनोविनोद करते थे ॥५॥ कहीं सीता रामसे कहती थी कि यह मनोहर लता देखो, कहीं कहती थी कि यह मनोहर पल्लव देखो और कहीं कहती थी कि यह मनोहर वृक्ष देखो ॥६॥ कहीं मुखकी सुगन्धिके लोभी भ्रमरोंके समूह सीताको पीड़ित करते थे, सो ये दोनों भाई बड़ी कठिनाई-से उसकी रक्षा करते थे ॥७॥ जिस प्रकार देव स्वर्गके वनोंमें विहार करते हैं उसी प्रकार शुभ चेष्टाओंके धारक दोनों भाई सीताको साथ लिये नाना प्रकारके वनोंमें धीरे-धीरे विहार करते थे ॥८॥ नाना मनुष्योंसे उपभोग्य देशोंमें दृष्टि डालते हुए वे धीर-वीर क्रमसे वंशस्थद्युति नामक नगरमें पहुँचे ॥९॥ सीताके साथ भ्रमण करते हुए उन पुण्यानुगामी महापुरुषोंको यद्यपि बहुत काल हो गया था तो भी उतना बड़ा काल उन्हें अंशमात्र भी दुःख देनेवाला नहीं हुआ था ॥१०॥

उस नगरके समीप ही उन्होंने वंशधर नामका पर्वत देखा जो बाँसोंके समूहसे अत्यन्त व्याप्त था, पृथिवीको भेदकर ही मानो ऊपर उठा था, ऊँचे-ऊँचे शिखरोंकी कान्तिसे जो मानो सदा सन्ध्याको धारण कर रहा था और निर्झरनोंके छींटोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो हँस ही रहा हो ॥११–१२॥ उन्होंने यह भी देखा कि प्रजाके लोग नगरसे निकल-निकल कर कहीं अन्यत्र

---

१. संस्तुताम् ब. । २. इयं हारिणी वल्ली, एतत् हारि पलाशं, अयं हारी तरुः । ३. स्ववनेषु म. । ४. धारौ म. ।

सोऽब्रोच्चदद्य दिवसस्तृतीयो वर्तते नरः । मक्तमुच्छ्रितोऽमुष्मिन्नगे नादस्य[1] मस्तके ॥१४॥
ध्वनिरश्रुतपूर्वोऽयं प्रतिनादी भयावहः । कस्येति बहुविज्ञानैर्न वृद्धैरपि वेद्यते ॥१५॥
संक्षुभ्यतीव भूः सर्वा नन्दन्तीव दिशो दश । सरांसि संचरन्तीव निर्मूल्यन्त इवाद्रिपाः ॥१६॥
रौरवारावरौद्रेण घनेन ध्वनिनामुना । श्रवणौ सर्वलोकस्य ताड्यते ऽयोघनैरिव ॥१७॥
निशागमे किमस्माकं वधार्थमयमुद्यतः । करोति क्रीडनं तावत् कोऽपि विघ्नकण्टकः ॥१८॥
भयेन स्वनतस्तस्मादयं लोको निशागमे । पलायते प्रभाते तु पुनरेति यथायथम् ॥१९॥
सार्धं योजनमेतस्मादतीत्यान्योन्यभाषितम्[2] । शृणोत्ययं जनः किंचित् प्राप्नोति च सुखासिकाम् ॥२०॥
निशम्योक्तमिदं सीता वनाधे रामलक्ष्मणौ । वयमप्यत्र गच्छामो यत्र याति महाजनः ॥२१॥
कालं देशं च विज्ञाय नातिशास्त्रविशारदैः । क्रियते पौरुषं तेन न जातु विपदाप्यते ॥२२॥
प्रहस्यावोचतामेतामुद्विग्नां जनकात्मजाम् । गच्छ त्वं यत्र लोकोऽयं व्रजत्यलघुसाध्वसे ॥२३॥
अन्विष्यन्ती प्रभाते नौ लोकेन सहितामुना । अमुष्मिन् गण्डशैलान्ते गतभीरागमिष्यसि ॥२४॥
अस्मिन् महीधरे रम्ये ध्वनिरत्यन्तभीषणः । कस्यायमिति पश्यामो वयमद्येति निश्चयः ॥२५॥
प्रभीष्यते वराकोऽयं लोकः शिशुसमाकुलः । पशुभिः सहितः स्वन्तमस्य को नु करिष्यति ॥२६॥
वैदेही[3] सज्वरेवोचे सततं भवतोरिमम् । हर्तुं मेरुं महं शक्ताः कः कुलीरमहोपमम् ॥२७॥

जा रहे हैं। तब रामने किसी एक मनुष्यसे पूछा कि हे भद्र! यह बहुत भारी भय किस कारणसे है? ॥१३॥ इसके उत्तरमें उस मनुष्यने कहा कि इस पर्वतके शिखर पर रात्रिके समय शब्द उठते हुए आज तीसरा दिन है ॥१४॥ जो शब्द पर्वत पर होता है वह हमने पहले कभी नहीं सुना, उसकी प्रतिध्वनि सर्वत्र गूँज उठती है तथा वह अत्यन्त भयंकर है। किस व्यक्तिका शब्द है? यह बहुविज्ञानी वृद्ध लोग भी नहीं जानते हैं ॥१५॥ इस शब्दसे मानो समस्त पृथिवी हिल उठती है, दशों दिशाएँ मानो शब्द करने लगती हैं, सरोवर मानो इधर-उधर फिरने लगते हैं और वृक्ष मानो उखड़ने लगते हैं ॥१६॥ रौद्रतामें नरकके शब्दकी तुलना करनेवाले इस भारी शब्दसे समस्त लोगोंके कान ऐसे फटे पड़ते हैं मानो लोहेके घनोंसे ही ताड़ित होते हों ॥१७॥ जान पड़ता है कि रात्रिके समय हम लोगोंका वध करनेके लिए उद्यत हुआ यह कोई लोकका कण्टक क्रीड़ा करता फिरता है ॥१८॥ ये लोग उस शब्दके भयसे रात्रि प्रारम्भ होते ही भाग जाते हैं और प्रभात होने पर पुनः वापिस आ जाते हैं ॥१९॥ यहाँसे कुछ अधिक एक योजन चलकर यह शब्द इतना हलका हो जाता है कि लोग परस्परका वार्तालाप सुन सकते हैं तथा कुछ आराम प्राप्त कर सकते हैं' ॥२०॥

यह सुनकर सीताने राम-लक्ष्मणसे कहा कि जहाँ ये सब लोग जा रहे हैं वहाँ हम लोग भी चलें ॥२१॥ नीतिशास्त्रके ज्ञाता पुरुष देश कालको समझकर पुरुषार्थ करते हैं, इसलिए कभी आपत्ति नहीं आती ॥२२॥ राम-लक्ष्मणने घबड़ायी हुई सीतासे हँसकर कहा कि तुझे बहुत भय लग रहा है इसलिए जहाँ ये लोग जाते हैं वहाँ तू भी चली जा ॥२३॥ प्रभात होनेपर इन लोगोंके साथ हम दोनोंको खोजती हुई निर्भय हो इस पर्वतके समीप आ जाना ॥२४॥ 'इस मनोहर पर्वत पर यह अत्यन्त भयंकर शब्द किसका होता है? यह आज हम देखेंगे' ऐसा निश्चय किया है ॥२५॥ ये दीन लोग बाल-बच्चोंसे व्याकुल तथा पशुओंसे सहित हैं, इसलिए ये तो भयभीत होंगे ही इनका भला कौन कर सकता है? ॥२६॥ तब जैसे ज्वर चढ़ रहा हो ऐसी काँपती हुई आवाजमें सीताने कहा कि हमेशा आपलोगोंको हठ केंकड़ेकी पकड़के समान विलक्षण ही है उसे दूर करनेके लिए

---

१. नादोऽस्य म.। २. भाषितः ब.। ३. अतिभययुक्ते। ४. सज्वरा इव ऊचे। सज्वरेवोचे म.।

वदन्ती पुनरेवं सा पद्मनाभस्य पृष्ठतः । लक्ष्मीधरकुमारस्य जगामाग्रे स्थिता पुरः ॥२८॥
आरोहन्ती गिरिं देवी प्रखिन्नक्रमपङ्कजा । रराज शृङ्गमध्यस्थ चन्द्ररेखेव निर्मला ॥२९॥
चन्द्रकान्तेन्द्रनीलान्तःस्थिता पुष्पमणेरसौ । शलाकेवामवत्तस्य पर्वतस्य विभूषणम् ॥३०॥
भृगुपातपरिन्रस्तां क्वचिदुल्लिप्य तामिमौ । नयतोऽन्यत्र विभ्रब्धहस्तालम्बनकोविदौ ॥३१॥
विषमग्रावसंघातं [1]निस्तीर्य श्रमवर्जितौ । विस्तीर्णमगमद्भूमिं ससीतौ तावपापतुः ॥३२॥
अथ सद्ध्यानमारूढौ प्रलम्बितमहाभुजौ । साधयन्तौ सुदुस्साध्यां प्रतिमां चतुरानना ॥३३॥
परेण तेजसा युक्तावब्धिधीरौ नगस्थिरौ । शरीरचेतनान्यत्वभेदिनौ मोहवर्जितौ ॥३४॥
जातरूपधरौ कान्तिसागरौ नवयौवनौ । संयतौ प्रवराकारौ दधतुस्ते यथोदितौ ॥३५॥
दध्युश्च विस्मयं प्राप्ता यथा मुक्त्वाशुभार्जनम् । निस्सारमीहितं सर्वं संसारे दुःखकारणम् ॥३६॥
मित्राणि द्रविणं दाराः पुत्राः सर्वे[2] च बान्धवाः । सुखदुःखमिदं सर्वं धर्म एकः सुखावहः ॥३७॥
ततौकिरे च भक्त्याढ्या मूर्धविन्यस्तपाणयः । दधानाः परमं तोषं विनयानतविग्रहाः ॥३८॥
यावद्ददृशुरत्युग्रैर्विस्फुरद्भिर्महास्वनैः । मिश्राञ्जनसमच्छायैश्चलजिह्वैः [3]पृदाकुभिः ॥३९॥
समुच्छ्रितालकैर्भीमैश्चलद्भिरनिशं घनैः । नानावर्णैरतिस्थूलैर्वेष्टितौ वृश्चिकैश्च [4]तौ ॥४०॥

कौन समर्थ है ? ॥२७॥ ऐसा कहती हुई वह रामके पीछे और लक्ष्मणके आगे खड़ी हो चलने लगी ॥२८॥ जिसके चरणकमल खेदखिन्न हो गये थे, ऐसी सीता पहाड़ पर चढ़ती हुई इस प्रकार सुशोभित हो रही थी मानो मेघके शिखर पर चन्द्रमाकी निर्मल रेखा ही है ॥२९॥ राम और लक्ष्मणके बीचमें खड़ी सीता चन्द्रकान्तमणि और नीलमणिके मध्यमें स्थित स्फटिकमणिकी शलाकाके समान पर्वतका आभूषण हो रही थी ॥३०॥ जहाँ कहीं सीताको गोल चट्टानोंसे नीचे गिरनेका भय होता था वहाँ वे दोनों, उसे ऊपर उठाकर ले जाते थे और जहाँ गिरनेका भय नहीं होता था वहाँ निश्चिन्ततापूर्वक हाथका सहारा देकर ले जाते थे ॥३१॥ इस प्रकार ऊँची-नीची चट्टानोंका समूह पारकर भयसे रहित राम-लक्ष्मण सीताके साथ पर्वतके चौड़े शिखर पर जा पहुँचे ॥३२॥

अथानन्तर उन्होंने ऊपर जाकर ऐसे दो मुनि देखे जो उत्तमध्यानमें आरूढ थे, जिनकी लम्बी भुजाएँ नीचेकी ओर लटक रही थीं, जो अत्यन्त दुःसाध्य चतुर्मुखी प्रतिमाको सिद्ध कर रहे थे, परम तेजसे युक्त थे, समुद्रके समान गम्भीर थे, पर्वतके समान स्थिर थे, शरीर और आत्माकी भिन्नताको जाननेवाले थे, मोहसे रहित थे, दिगम्बर-मुद्राको धारण करनेवाले थे, कान्तिके सागर थे, नूतन तारुण्यसे युक्त थे, उत्तम आकारके धारक थे और आगमोक्त आचरण करनेवाले थे ॥३३-३५॥ आश्चर्यको प्राप्त हुए वे तीनों अशुभ कर्मोंके आश्रयका परित्याग कर इस प्रकार विचार करने लगे कि संसारमें प्राणियोंकी समस्त चेष्टाएँ निःसार तथा दुःखके कारण हैं ॥३६॥ मित्र, धन, स्त्री, पुत्र, और भाई-बन्धु आदि सभी सुख-दुःख रूप हैं, एक धर्म ही सुखका कारण है ॥३७॥ तदनन्तर जो भक्तिसे युक्त थे, जिन्होंने हाथ जोड़कर मस्तक पर लगा रक्खे थे, जो परम सन्तोषको धारण कर रहे थे, और विनयसे जिनके शरीर नम्रीभूत हो रहे थे, ऐसे वे तीनों उक्त मुनिराजोंके पास गये ॥३८॥ दर्शन करते ही उन्होंने, जो अत्यन्त भयंकर थे, इधर-उधर चल रहे थे, विकट शब्द कर रहे थे, मसले हुए अंजनके समान कान्तिवाले थे, तथा जिनकी जीभें लपलपा रही थीं ऐसे साँपोंसे और जिन्होंने अपनी पूँछ ऊपर उठा रक्खी थी, जो अत्यन्त भयंकर थे, रात-दिन एक-दूसरेसे सटकर चल रहे थे, नाना रंगके थे, एवं बहुत मोटे थे, ऐसे बिच्छुओंसे

---

१. विस्तीर्य म. । २. सर्वेऽपि क. । ३. सर्पैः । ४. वेष्टितैर्वृश्चिकैश्च म. ।

तथाविधौ च तौ दृष्ट्वा रामोऽपि सहलक्ष्मणः । सहसा त्रासमायातौ भेजे स्तम्भमिव क्षणम् ॥४१॥
वैदेही भयसंपन्ना भर्तारं परिषस्वजे । मा भैषीरिति तामूचे भयं त्यक्त्वा क्षणेन सः ॥४२॥
उपसृत्य ततः स्वैरं तास्यां पन्नगयूथिकाः । अत्यस्ता कार्मुकाग्रेण मुहुः कृतविचर्तनाः ॥४३॥
अथोद्वृत्यं चिरं पादौ तयोर्निर्झरवारिणा । गन्धेन सीतया लिप्तौ चारुणा पुष्पभावया ॥४४॥
आसन्नानां च वल्लीनां कुसुमैर्वनसौरभैः । लक्ष्मीधरार्पितैः शुक्लैः पूरितान्तरमर्चितौ ॥४५॥
ततस्ते करयुग्माब्जमुकुलभ्रांजितालिकाः[1] । चक्रुर्योगीश्वरीं भक्त्या वन्दनां विधिकोविदाः ॥४६॥
वीणां च संनिधायाङ्के वधूमिव मनोहराम् । पर्यौडवादयदत्युच्चैर्गायन् सुमधुराक्षरम् ॥४७॥
अन्वगायदिमं लक्ष्मीलतालिङ्गितपादपः[2] । बाहुकिसलयः पुत्रः कैरुव्यास्तत्त्वमादरम् ॥४८॥
महायोगेश्वरा धीरा मनसा शिरसा गिरा । वन्द्यास्ते साधवो नित्यं सुरैरपि सुचेष्टिताः ॥४९॥
उपमानविनिर्मुक्तं यैरक्षाहतमुत्तमम् । प्राप्तं त्रिभुवनख्यातं सुभाग्यैरर्हदक्षरम् ॥५०॥
भिन्नं यैर्ध्यानदण्डेन महामोहशिलातलम् । दीनं विदन्ति ये विश्वं धर्मानुष्ठानवर्जितम् ॥५१॥
गायतोरक्षराण्येवं तयोर्गानविधिज्ञयोः । तिरश्चामपि चेतांसि परिप्राप्तानि मार्दवम् ॥५२॥
ततो विदितविश्वेषचारुवर्तनलक्षणा । मनोज्ञाकल्पसंपन्ना हारमाल्यादिभूषिता ॥५३॥
लीलया परया युक्ता दर्शिताभिनयं स्फुटम् । [illegible] हस्तकादिकोविदा ॥५४॥

उन दोनों मुनियोंको विरा देखा ॥३९-४०॥ उक्त प्रकारके मुनियोंको देख, राम भी लक्ष्मणके साथ सहसा भयको प्राप्त हुए तथा क्षण भरके लिए निश्चल रह गये ॥४१॥ सीता भयभीत हो पतिसे लिपट गयी, तब रामने क्षण एकमें भय छोड़कर सीतासे कहा कि डरो मत ॥४२॥ तदनन्तर राम-लक्ष्मणने धीरे-धीरे पास जाकर जो दूर हटानेपर भी बार-बार वहीं लौटकर आते थे ऐसे साँप, बिच्छुओंको धनुषके अग्रभागसे दूर किया ॥४३॥

अथानन्तर भक्तिसे भरी सीताने निर्झरके जलसे देर तक उन मुनियोंके पैर धोकर मनोहर गन्धसे लिप्त किये ॥४४॥ तथा जो वनको सुगन्धित कर रहे थे एवं लक्ष्मणने जो तोड़कर दिये थे, ऐसे निकटवर्ती लताओंके फूलोंसे उनकी खूब पूजा की ॥४५॥ तदनन्तर अंजलिरूपी कमलकी बोड़ियोंसे जिनके ललाट शोभायमान थे तथा जो विधि-विधानके जाननेमें निपुण थे ऐसे उन सबने भक्तिपूर्वक मुनिराजकी वन्दना की ॥४६॥ अत्यन्त उत्तम तथा मधुर अक्षरोंमें गाते हुए रामने मनोहर स्त्रीके समान वीणाको गोदमें रखकर बजाया ॥४७॥ इनके साथ ही लक्ष्मणने भी बड़े आदरसे तत्त्वपूर्ण गान गाया। उस समय लक्ष्मण, लक्ष्मीरूपी लतासे आलिंगित वृक्षके समान जान पड़ते थे और उनका मधुर शब्द कोयलकी मीठी तानके समान मालूम होता था ॥४८॥ वे गा रहे थे कि जो महायोगके स्वामी हैं, धीर-वीर हैं तथा उत्तम चेष्टाओंसे सहित हैं, उत्तम भाग्यके धारक जिन मुनियोंने उपमासे रहित, अखण्डित, तथा तीन लोकमें प्रसिद्ध 'अर्हत्' यह उत्तम अक्षर प्राप्त कर लिया है। जिन्होंने ध्यानरूपी दण्डके द्वारा महामोहरूपी शिलातलको तोड़ दिया है और जो धर्मानुष्ठान-धर्माचरणसे रहित विश्वको दीन समझते हैं ऐसे साधु देवोंके द्वारा भी मनसे, शिरसे तथा वचनसे वन्दनीय हैं ॥४९-५१॥ गानकी विधिको जाननेवाले राम-लक्ष्मण जब इस प्रकारके अक्षर गा रहे थे तब तिर्यंचोंके भी चित्त कोमलताको प्राप्त हो गये थे ॥५२॥

तदनन्तर जो समस्त सुन्दर नृत्योंके लक्षण जानती थी, मनोहर वेषभूषासे युक्त थी, हार माला आदिसे अलंकृत थी, परम लीलासे सहित थी, स्पष्टरूपसे अभिनय दिखला रही थी, जिसकी बाहुरूपी लताओंका भार अत्यन्त सुन्दर था, जो हाव-भाव आदिके दिखलानेमें निपुण थी, लय बदलनेके समय जिसके सुन्दर स्तनोंका मण्डल कुछ ऊपर उठकर कम्पित हो रहा था, जिसके

---

१. आञ्जितललाटाः । २. -माचरन् म. ।

लयान्तरवशोत्कम्पिमनोज्ञस्तनमण्डला । निःशब्दचरणाम्भोजविन्यासा चलितोरुका ॥५५॥
गीतानुगमसंपन्नसमस्ताङ्गविचेष्टिता । मन्दरे[1] श्रीरिवानृत्यज्जानकी भक्तिचोदिता ॥५६॥
उपसर्गादिव त्रस्ते यातेऽस्तं भास्करे ततः । सन्ध्यायां चानुमार्गेण यातायां चलतेजसि ॥५७॥
नक्षत्रमण्डलालोकं निघ्नन् नीलाभ्रसंनिभम् । व्याप्नुवानं दिशः सर्वा गहनं ध्वान्तमुद्गतम् ॥५८॥
अतिरौद्राणि सर्वासु दिक्षु संक्षोभणं परम् । चारादिशं तथा चित्रं[3] भिन्दानमिव पुष्करम्[4] ॥५९॥
विद्युज्ज्वालामुखैर्भैरवैरम्बुदैर्व्याप्तमम्बरम् । क्वापि यात इवाशेषो[5] लोकस्त्रासमाकुलः ॥६०॥
अत्यन्तभयाकारा दंष्ट्रालीकुटिलाननाः । अट्टहासान् महारौद्रान् भूतानां ससृजुर्गणाः ॥६१॥
क्रव्यादा विरसं रेसुः सानलं चाशिवाः[6] शिवाः[7] । सस्वनुर्ननृतुर्भीमं कलेवरशतानि च ॥६२॥
मूर्धोरोभुजजङ्घादीन्यङ्गानि वसृपुर्घनाः । दुर्गन्धिभिः समेतानि स्थूलशोणितबिन्दुभिः ॥६३॥
करवालीकरा क्रूरविग्रहा दोलितस्तनी । लम्बोष्ठी डाकिनी नग्ना दृश्यमानास्थिसंचया ॥६४॥
मांसखण्डाममग्नाक्षी शिरोघटितशेखरा । ललाटप्रसरोज्जिह्वा पेशीशोणितवर्षिणी ॥६५॥
सिंहव्याघ्रमुखैस्तप्तलोहचक्रामलोचनैः । शूलहस्तैर्विदष्टौष्ठैर्भ्रूकुटिकुटिलालकैः ॥६६॥
राक्षसैः परुषारावैर्नृत्यद्भिरतिसंकुलम् । कम्पिताद्रिशिलाजालं क्षुब्धोम वसुधातलम् ॥६७॥

चरण-कमलोंका विन्यास शब्द रहित था; जिसकी एक जाँघ चल रही थी। जिसके शरीरकी समस्त चेष्टाएँ संगीत शास्त्रके अनुरूप थीं, तथा जो भक्तिसे प्रेरित थी, ऐसी सीताने उस प्रकार नृत्य किया जिस प्रकार कि जिनेन्द्रके जन्माभिषेकके समय सुमेरु पर श्री देवीने किया था ॥५३–५६॥ तदनन्तर उपसर्गसे त्रस्त होकर ही मानो जब सूर्य अस्त हो गया और उसीके पीछे चंचल तेजको धारण करनेवाली संध्या भी जब चली गयी तब नक्षत्र मण्डलके प्रकाशको नष्ट करनेवाला तथा नील मेघके समान आभावाला सघन अन्धकार समस्त दिशाओंको व्याप्त करता हुआ उदित हुआ ॥५७–५८॥ उसी समय किसीका ऐसा विचित्र शब्द सुनाई दिया जो दिशाओंमें परम क्षोभ उत्पन्न करनेवाला था तथा जो आकाशको भेदन करता हुआ-सा जान पड़ता था ॥५९॥ जिसके अग्रभागमें बिजलीरूपी ज्वाला प्रकाशमान थी, ऐसी लम्बी घन-घटासे आकाश व्याप्त हो गया और लोक ऐसा जान पड़ने लगा मानो भयसे व्याकुल हो कहीं चला ही गया हो ॥६०॥ जिनके आकार अत्यन्त भय उत्पन्न करनेवाले थे तथा जिनके मुख दाँढ़ोंकी पंक्तिसे कुटिल थे, ऐसे भूतोंके झुण्ड महा भयंकर अट्टहास करने लगे ॥६१॥ राक्षस नीरस शब्द करने लगे, अमंगल रूप शृगालियाँ अग्नि उगलती हुई शब्द करने लगीं, सैकड़ों कलेवर भयंकर नृत्य करने लगे, ॥६२॥ मेघ, दुर्गन्धित खूनकी बड़ी मोटी बूँदोंसे सहित मस्तक, वक्षःस्थल, भुजा तथा जंघा आदि अवयवोंकी वर्षा करने लगे ॥६३॥ जो हाथमें तलवार लिये थी जिसका शरीर अत्यन्त क्रूर था, जिसके स्तन हिल रहे थे, जिसके ओठ अत्यन्त लम्बे थे, जो नग्न थी, जिसकी हड्डियोंका समूह प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा था, जिसकी फूटी आँखें मांसखण्डके समान थीं, जिसने नरमुण्डका सेहरा पहिन रखा था, जिसकी जीभ ऊपरकी ओर उठकर ललाटका स्पर्श कर रही थी तथा जो मांस और रुधिरकी वर्षा कर रही थी ऐसी डाकिनी दिखाई देने लगी ॥६४–६५॥ जिनके मुख सिंह तथा व्याघ्रके समान थे, जिनके नेत्र तपे हुए लोह चक्रके सदृश थे, जिनके हाथमें शूल विद्यमान थे, जो ओंठको डस रहे थे, जिनके ललाट भौंहोंसे कुटिल थे, जिनकी आवाज अत्यन्त कठोर थी, तथा जो नृत्य कर रहे थे ऐसे राक्षसोंसे भरा हुआ वहाँका भूतल

---

१. सुमेरुपर्वते, मन्दिरे ख., ज., म. । २. निघ्नलीलाभ्रसंभ्रमं, म. । ३. भिन्दन्तमिव म. । ४. आकाशम् । ५. इवाशेष आलोकस्त्रासमाकुल म. । ६. अमंगलभूताः । शृगाल्यः ।

विचेष्टितमिदं व्यर्थं नाज्ञासिष्टां महामुनी । तयोर्हि [1]ज्ञानकर्मान्तशुक्लध्यानमयं तदा ॥६८॥
तथाविधं समालोक्य वृत्तान्तं वरभीतिदम् । संहृत्य जानकी नृत्यमाश्लिष्यत्कम्पिनी पतिम् ॥६९॥
पद्मो जगाद तां देवि मा भैषीः शुभमानसे । उपसृज्य मुनेः पादौ तिष्ठ सर्वभयच्छिदौ ॥७०॥
[2]इत्युक्त्वा पादयोः कान्तां मुनेरासाद्य लाङ्गली । लक्ष्मीधरकुमारेण सार्कं सन्नाहमाश्रितः ॥७१॥
सजलाविव जीमूतौ गर्जितौ तौ महाप्रभौ । [3]निर्घातमिव मुञ्चन्तौ समारुत्कालयतां धनुः ॥७२॥
ततस्तौ संभ्रमी ज्ञात्वा रामनारायणाविति । सुरो वह्निप्रभाभिख्यस्तिरोधानमुपेयिवान् ॥७३॥
ज्योतिर्वरे[4] गते तस्मिन् समस्तं तद्विचेष्टितम् । सपदि प्रलयं [5]यातं जातं च विमलं नभः ॥७४॥
प्रातिहार्ये कृते ताभ्यामिच्छद्भ्यां परमं हितम् । उत्पन्नं केवलज्ञानं मुनिपुङ्गवयोः क्षणात् ॥७५॥
चतुर्विधास्ततो देवा नानायानसमाश्रिताः । समाजग्मुः प्रशंसन्तो मुदितास्तपसः फलम् ॥७६॥
प्रणम्य विधिना तत्र कृत्वा केवलपूजनम् । रचिताञ्जलयो देवा यथास्थानमुपाविशन् ॥७७॥
केवलज्ञानसंभूतिसमाकृष्टसुरागमात् । [6]दोषादिनामकौ कालावभूतां भेदवर्जितौ ॥७८॥
भूमिगोचरिणो मर्त्यास्तथा विद्यामहाबलाः । उपविष्टा यथायोग्यं कृत्वा केवलिनो महम्[7] ॥७९॥
प्रसन्नमानसौ सद्यः कृत्वा केवलिपूजनम् । प्रणम्य सीतया सार्कं निविष्टौ रामलक्ष्मणौ ॥८०॥
अथ तत्क्षणसंभूतपरमार्हासनस्थितौ । प्रणम्य साञ्जलिः पद्मः पप्रच्छैवं महामुनी ॥८१॥

क्षोभको प्राप्त हो गया और पर्वतकी चट्टानें हिल उठीं ॥६६-६७॥ यह सब हो रहा था परन्तु उन महामुनियोंको इस व्यर्थकी चेष्टाका कुछ भी भान नहीं था, उस समय उनका ज्ञानोपयोग अन्तरंगमें शुक्लध्यान मय हो रहा था अथवा उन महामुनियोंका ज्ञान कर्मोंका क्षय करनेवाले शुक्लध्यानसे तन्मय हो रहा था ॥६८॥ अच्छे-अच्छे पुरुषोंको भय उत्पन्न करनेवाला ऐसा वृत्तान्त देख सीता नृत्य छोड़ काँपती हुई पतिसे लिपट गयी ॥६९॥ तब रामने कहा कि हे देवि ! हे शुभ मानसे ! भयभीत मत हो ! सब प्रकारका भय दूर करनेवाले मुनियोंके चरणोंका आश्रय ले बैठ जाओ ॥७०॥ यह कहकर रामने सीताको मुनिराजके चरणोंके समीप बैठाया और स्वयं लक्ष्मण कुमारके साथ, युद्धके लिए तैयार हो गये ॥७१॥ तदनन्तर सजल मेघके समान गरजनेवाले एवं महा कान्तिके धारक राम लक्ष्मणने अपने-अपने धनुष टंकोरे सो ऐसा जान पड़ा मानो वज्र ही छोड़ रहे हों ॥७२॥ तदनन्तर 'ये बलभद्र और नारायण हैं' ऐसा जानकर वह अग्निप्रभ देव घबड़ाकर तिरोहित हो गया ॥७३॥ उस ज्योतिषी देवके चले जानेपर उसकी सबकी सब चेष्टाएँ तत्काल विलीन हो गयीं और आकाश निर्मल हो गया ॥७४॥

अथानन्तर परम हितकी इच्छा करनेवाले राम-लक्ष्मणके द्वारा प्रतिहारोंका कार्य सम्पन्न होनेपर अर्थात् उपसर्ग दूर किये जानेपर दोनों मुनियोंको क्षणभरमें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ॥७५॥ तदनन्तर नाना प्रकारके वाहनोंपर बैठे, हर्षसे भरे तथा तपके फलकी प्रशंसा करते हुए चारों निकायके देव आ पहुँचे ॥७६॥ वहाँ विधिपूर्वक प्रणामकर तथा केवलज्ञानकी पूजाकर सब देव लोग हाथ जोड़े हुए यथास्थान बैठ गये ॥७७॥ उस समय केवलज्ञानकी उत्पत्तिसे खिंचे हुए देवोंका समागम होनेसे रात-दिन रूप काल भेदसे रहित हो गया अर्थात् वहाँ रात दिनका व्यवहार समाप्त हो गया ॥७८॥ भूमिगोचरी मनुष्य तथा विद्यारूपी महाबलको धारण करनेवाले विद्याधर—सभी लोग केवलियोंकी पूजाकर यथायोग्य स्थानपर बैठ गये ॥७९॥ प्रसन्न चित्तके धारक राम-लक्ष्मण भी सीताके साथ शीघ्र ही केवलियोंकी पूजाकर यथास्थान बैठ गये ॥८०॥

अथानन्तर तत्क्षण उत्पन्न हुए परमोत्तम सिंहासनोंपर विराजमान केवलज्ञानी महा-

---

१. ज्ञानकर्म = इत्यनौत्पादिका क्रिया, अन्तः आभ्यन्तरे इति टिप्पणीपुस्तके । २. इत्युक्त्वा म. । ३. वज्रम् । ४. ज्योतिर्वासिम् म. । ५. जातं म., क. । ६. रात्रिदिवसरूपौ । ७. पूजाम् ।

भगवन्तौ कृतो नक्तं केनार्यं वोमुपद्रवः । अथवा स्वस्य युवयोरिदं जातं हितं परम् ॥८१॥
त्रिकालगोचरं विश्वं विदन्तावपि तौ समम् । गिरं यांसूचतुः (गिरायासूचतुः) साम्यपरिणामितौ क्रमात् ॥८२॥
मगर्यां पद्मिनीनाम्नि राजा विजयपर्वतः । गुणसस्योत्समक्षेत्रं भामिनी यस्य धारिणी ॥८४॥
अमृतस्वरसंज्ञोऽस्य दूतः शास्त्रविशारदः । राजकर्तव्यकुशलो लोकविद् गुणवत्सलः ॥८५॥
उपयोगेति भार्यास्य द्वौ तस्यां कुक्षिसंभवौ । उदितो मुदितश्चेति व्यवहारविशारदौ ॥८६॥
असौ दूतोऽन्यदा राज्ञा प्रहितो वृत्तकर्मणा । प्रवासं सेवितुं सद्यः स्वामिरक्तमतिर्भृशम् ॥८७॥
वसुभूतिः समं तेन सखा तद्भक्तजीवितः । निर्गतस्तत्प्रियासक्तिनिघ्नो दुष्टेन चेतसा ॥८८॥
सुप्तं तमसिना हत्वा निवृत्तौ नगरीं पुनः । जनायावेदयत्तेन किलाहं विनिवर्तितः ॥८९॥
उपयोगा जगादैवं जहि मे तनयावपि । विश्रब्धं येन सिद्धाव इति श्रुत्वा निवेदितम् ॥९०॥
स्वयितं चोदितायासौ ज्ञातवान्तो विनिश्चेतितः । सा हि तेन समं श्वश्र्वाः संगं ज्ञातवती पुरा ॥९१॥
ब्राह्मण्या वसुभूतेश्च रतिकार्यसमीर्ष्यया । कथितं तत्तथाभूतं परमाकुलचित्तया ॥९२॥
बभूव चोदितस्यापि संदिग्धं विदितं पुरा । मुदितस्य च खड्गस्य दर्शनात् स्फुटतां गतम् ॥९३॥
ततो रोषपरीतेन हतः संचुदितेन सः । कुब्राह्मणो म्लेच्छतां प्राप क्रूरकर्मपरायणः ॥९४॥

मुनियोंको नमस्कारकर रामने हाथ जोड़ इस प्रकार पूछा ॥८१॥ कि हे भगवन् ! रात्रिके समय आप दोनों अथवा अपने ही ऊपर यह उपसर्ग किसने किया था और आप दोनोंमें परस्पर अति स्नेह किस कारण हुआ ? ॥८२॥ यद्यपि दोनों महामुनि त्रिकालविषयक समस्त पदार्थोंको एक साथ जानते थे, तो भी साम्यपरिणामको प्राप्त हुए दोनों महामुनि दिव्य ध्वनिमें क्रमसे बोले ॥८३॥ उन्होंने कहा कि—पद्मिनी नामा नगरीमें राजा विजयपर्वत रहता था। गुणरूपी धान्यकी उत्पत्तिके लिए उत्तम क्षेत्रके समान उसकी धारिणी नामकी स्त्री थी ॥८४॥ राजा विजयपर्वतके एक अमृतस्वर नामका दूत था जो शास्त्रज्ञानमें निपुण था, राजकर्तव्यमें कुशल था, लोकव्यवहारका ज्ञाता तथा गुणोंमें स्नेह करनेवाला था ॥८५॥ उसकी उपयोगा नामकी स्त्री थी और उसके उदरसे उत्पन्न हुए उदित तथा मुदित नामके दो पुत्र थे। ये दोनों ही पुत्र व्यवहारमें अत्यन्त कुशल थे ॥८६॥ किसी समय राजाने अमृतस्वरको दूत सम्बन्धी कार्यसे बाहर भेजा, सो स्वामीके कार्यमें अत्यन्त अनुरक्त बुद्धिको धारण करनेवाला अमृतस्वर प्रवासके लिए गया ॥८७॥ उसके साथ उसीके भोजनसे जीवित रहनेवाला वसुभूति नामका मित्र भी गया। वसुभूति अत्यन्त दुष्ट चित्तका था तथा अमृतस्वरकी स्त्रीमें आसक्त था ॥८८॥ वह सोते हुए अमृतस्वरको तलवारसे मारकर नगरीमें वापिस लौट आया और आकर उसने लोगोंको बताया कि अमृतस्वरने मुझे लौटा दिया है ॥८९॥ अमृतस्वरकी स्त्री उपयोगाने वसुभूतिसे कहा कि हमारे दोनों पुत्रोंको भी मार डालो जिससे फिर हम दोनों निश्चिन्ततासे रह सकेंगे। सासका यह कहना उसकी बहूने जान लिया इसलिए उसने यह सब समाचार शीघ्र ही उदितके लिए बता दिया, यथार्थमें वह बहू 'सासका वसुभूतिके साथ संगम है' यह पहलेसे जानती थी ॥९०-९१॥ वसुभूतिकी खास स्त्री उसकी इस रतिक्रियासे सदा ईर्ष्या रखती थी तथा उसका चित्त अत्यन्त व्याकुल रहता था इसलिए उसने यह समाचार उदितकी स्त्रीसे कहा था ॥९२॥ उदितको भी पहलेसे कुछ-कुछ सन्देह था और मुदित भी इस बातको पहलेसे जानता था फिर वसुभूतिके पास तलवार देखनेसे सब बात स्पष्ट हो गयी ॥९३॥ तदनन्तर क्रोधसे युक्त होकर उदितने उसे मार डाला जिससे क्रूरकर्ममें तत्पर रहनेवाला वह कुब्राह्मण म्लेच्छपर्यायको प्राप्त हुआ ॥९४॥

---

१. युवयोः ज., क. । २. गिरया । ३. उदितमुदितनामधेयौ । ४. छुरिकया । ५. निवृत्तिनगरीं म. । ६. श्वश्र्वा म. । ७. मृत्वा च म. ।

अन्यदा प्रथितः क्षोण्यां गणेशो मतिवर्धनः । विहरन् पद्मिनीं प्राप श्रमणः सुमहातपाः ॥९५॥
अनुद्धरेति विख्याता धर्म्यध्यानपरायणा । महत्तरा तदा चासीदार्यिका गणपालिनी ॥९६॥
वसन्ततिलकाभिख्ये तत्रोद्याने सुसुन्दरे । संघेन सहितस्तस्थौ चतुर्भेदेन सद्मुनिः ॥९७॥
अथोद्यानस्य संभ्रान्ताः पालकाः किङ्करा भृशम् । नृपं व्यज्ञापयन्नेवं भूमिविन्यस्तपाणयः ॥९८॥
अग्रतो भृगुरत्युग्रः शार्दूलः पृष्ठतो नृप । यदं कं शरणं यामो नाशो नः सर्वथोदितः ॥९९॥
भद्रा किं किमिति [1]ब्रूत्येवमुक्ता नृपतिनागदन् । नाथोद्यानभुवं प्राप्य श्रमणानां गणः स्थितः ॥१००॥
यदीनं वारयामोऽतः शापं ध्रुवमवाप्नुमः । न चेत्ते जायते कोप इति नः संकटो महान् ॥१०१॥
कल्पोद्यानसमच्छायमुद्यानं ते प्रसादतः । नरेन्द्रकृतमस्माभिरप्रवेश्यं पृथग्जनैः [2] ॥१०२॥
नैव वारयितुं शक्त्यास्तपस्तेजोऽतिदुर्गमाः । त्रिदशैरपि दिग्वस्त्राः किमुतास्मादृशैर्जनैः ॥१०३॥
मा भैष्ट ततो राजा कृत्वा किङ्करसान्त्वनम् । उद्यानं प्रस्थितो युक्तो विस्मयेनातिभूरिणा ॥१०४॥
ऋद्ध्या च परया युक्तो वन्दिभिः कृतनिस्वनः । उद्यानभुवमासीदत् प्रतापप्रकटः क्षितीट् ॥१०५॥
ददर्श च महाभागान् वनरेणुसमुक्षितान् । मुक्तियोग्यक्रियायुक्तान् प्रशान्तहृदयान् मुनीन् ॥१०६॥
प्रतिमावस्थितान् कांश्चित् प्रलम्बितभुजद्वयान् । षष्ठाष्टमादिभिस्तीव्रैरुपवासैर्विशोषितान् ॥१०७॥

अथानन्तर किसी समय मुनिसंघके स्वामी मतिवर्धन नामक महातपस्वी आचार्य पृथिवीपर विहार करते हुए पद्मिनी नगरी आये ॥९५॥ उसी समय धर्मध्यानमें तत्पर रहनेवाली, अतिशय श्रेष्ठ और आर्यिकाओंके संघकी रक्षा करनेवाली अनुद्धरा नामकी गणिनी भी विद्यमान थीं ॥९६॥ चतुर्विध संघसे सहित मतिवर्धन आचार्य वहाँ आकर उत्तम भूमिसे युक्त वसन्ततिलक नामक उद्यानमें ठहर गये ॥९७॥

तदनन्तर उद्यानकी रक्षा करनेवाले किंकर अत्यन्त व्यग्र हो राजाके पास पहुँचे और पृथ्वीपर हाथ रखकर इस प्रकार प्रार्थना करने लगे कि हे नाथ! आगे तो बड़ी ऊँची ढालू चट्टान है और पीछे व्याघ्र है बताइए हम किसकी शरणमें जावें। हमारा तो सब प्रकारसे विनाश उपस्थित हुआ है ॥९८-९९॥ 'भले आदमियो! क्या? क्या??, क्या कह रहे हो' इस प्रकार राजाके कहनेपर किंकरोंने कहा कि हे नाथ! मुनियोंका एक संघ उद्यानकी भूमिमें आकर ठहर गया है ॥१००॥ यदि इस संघको हम मना करते हैं तो निश्चित ही शापको प्राप्त होते हैं और यदि नहीं मना करते हैं तो आपको क्रोध उत्पन्न होता है, इस प्रकार हम लोगोंपर बड़ा संकट आ पड़ा है ॥१०१॥ हे राजन्! आपके प्रसादसे हम लोगोंने यह उद्यान कल्पवृक्षोंके उद्यानके समान बना रखा है, उसमें साधारण-पामर मनुष्य प्रवेश नहीं कर सकते ॥१०२॥ जो तपके तेजसे अत्यन्त दुर्गम हैं ऐसे निर्ग्रन्थ मुनियोंको देव भी रोकनेमें समर्थ नहीं हैं फिर हमारे-जैसे मनुष्योंकी बात ही क्या है? ॥१०३॥

तदनन्तर 'भयभीत मत होओ' इस प्रकार किंकरोंको सान्त्वना देकर बहुत भारी आश्चर्यसे युक्त हुआ राजा उद्यानकी ओर चला ॥१०४॥ जो बहुत भारी सम्पदासे युक्त था, बन्दीजन जिसकी स्तुति करते जाते थे, तथा जो अतिशय प्रतापी था, ऐसा राजा चलकर उद्यानभूमिमें पहुँचा ॥१०५॥ वहाँ जाकर उसने महाभाग्यवान् मुनियोंके दर्शन किये। वे मुनि वनकी धूलिसे व्याप्त थे, मुक्तिके योग्य क्रियाओंमें तत्पर थे तथा अत्यन्त प्रशान्त चित्त थे ॥१०६॥ उनमें-से कितने ही मुनि दोनों भुजाओंको नीचेकी ओर लटकाकर प्रतिमाके समान अवस्थित थे, तथा वेला-तेला आदि कठिन उपवासोंसे उनके शरीर शुष्क हो रहे थे ॥१०७॥

---

१. ब्रूतेत्युक्त्वा नृपतिनागदं म.। २. पामरजनैः। पृथुस्तनैः (?) म.।

स्वाध्यायनिरतानन्यान् [1]षडङ्घ्रिमधुरध्वनीन् । तत्रिवेशितचेतस्कान् पाणिपादसमाहितान् ॥१०८॥
अवलोक्य मुनीनित्थं भग्नगर्वाङ्कुरोऽभवत् । अवतीर्य गजाद् भावी ननाम जयपर्वतः ॥१०९॥
क्रमेण प्रणमन् साधूनाचार्यं समुपागतः । प्रणम्य पादयोरूचे भोगे सद्बुद्धिमुद्वहन् ॥११०॥
नरप्रधानदीप्तिस्ते यथेयं शुभलक्षणा । तथा कथं न ते भोगा रताः पादतलस्थिताः ॥१११॥
जगाद मुनिमुख्यस्तं का ते मतिरियं तनौ । स्थास्नुतासंगताकीका संसारपरिवर्धिनी ॥११२॥
करिबालककर्णान्तचपलं ननु जीवितम् । मानुष्यकं च कदलीसारसाम्यं बिभर्त्यदः ॥११३॥
स्वप्नप्रतिममैश्वर्यं सख्यं च सह बान्धवैः । इति ज्ञात्वा रतिः कात्र [2]खिन्यमानातिदुःखदे ॥११४॥
नरकप्रतिमे घोरे दुर्गन्धे कृमिसंकुले । रक्तश्लेष्मादिसरसि प्रभूताशुचिकर्दमे ॥११५॥
अवितोऽनेकशो जीवो गर्भवासेऽतिसंकटे । तथा न शङ्कते मोहमहाध्वान्तसमावृतः ॥११६॥
धिगस्यन्ताशुचिं देहं सर्वाशुचिनिधानकम् । क्षणनश्वरमत्राणं कृतघ्नं मोहपूरितम् ॥११७॥
स्नसाजालकसंश्लिष्टमतिच्छातत्वगावृतम् । अनेकरोगविहतं [3]जरागमजुगुप्सितम् ॥११८॥
एवंधर्मिणि देहेऽस्मिन् ये कुर्वन्ति जना धृतिम् । तेभ्यश्चैतन्यमुक्तेभ्यः स्वस्ति संजायते कथम् ॥११९॥
शरीरिवार्थं एतस्मिन् परलोकप्रवासिनि । [4]मुष्णन्तः प्रशमं लोकं तिष्ठन्तीन्द्रियदस्यवः ॥१२०॥
रमते जीवनृपतिः कुमतिप्रमदावृतः । [5]अवस्कन्देन मृत्युस्तं कदर्थयितुमिच्छति ॥१२१॥

कितने ही स्वाध्यायमें तत्पर हो भ्रमरोंके समान मधुरध्वनिसे गुनगुना रहे थे और कितने ही स्वाध्यायमें चित्त लगाकर पद्मासनसे विराजमान थे ॥१०८॥ इस प्रकारके मुनियोंको देखकर राजाका गर्वरूपी अंकुर भग्न हो गया तथा उसने हाथीसे नीचे उतरकर मुनियोंको नमस्कार किया। राजाका नाम विजयपर्वत था ॥१०९॥ भोगोंमें समीचीन बुद्धिको धारण करनेवाला राजा क्रम-क्रमसे सब मुनियोंको नमस्कार करता हुआ आचार्यके पास पहुँचा और उनके चरणोंमें प्रणाम कर इस प्रकार बोला कि हे नरश्रेष्ठ! तुम्हारी शुभ लक्षणोंसे युक्त जैसी दीप्ति है वैसे भोग आपके चरणतलमें स्थित क्यों नहीं हैं?॥११०-१११॥ आचार्यने उत्तर दिया कि तेरे शरीरमें यह क्या बुद्धि है? तेरी यह बुद्धि शरीरको स्थिर समझनेवाली है सो झूठी है और संसारको बढ़ानेवाली है ॥११२॥ निश्चयसे यह जीवन हस्तिशिशुके कानोंके समान चंचल है तथा मनुष्यका यह जीवन केलेके सारकी सदृशता धारण करता है ॥११३॥ यह ऐश्वर्य और बन्धुजनोंका समागम स्वप्नके समान है, ऐसा जानकर इसमें क्या रति करना है? इन ऐश्वर्य आदिका ज्यों-ज्यों विचार करो त्यों-त्यों ये अत्यन्त दुःखदायी ही मालूम होते हैं ॥११४॥ जो नरकके समान है, अत्यन्त भयंकर है, दुर्गन्धिसे भरा है, कीड़ोंसे युक्त है, रक्त तथा कफ आदिका मानो सरोवर है, जहाँ अत्यन्त अशुचि पदार्थोंकी कीच मच रही है तथा जो अत्यन्त संकीर्ण है ऐसे गर्भमें इस जीवने अनेकों बार निवास किया है, फिर भी महामोहरूपी अन्धकारसे आवृत हुआ यह प्राणी उससे भयभीत नहीं होता ॥११५-११६॥ जो सर्व प्रकारके अशुचि पदार्थोंका भाण्डार है, क्षण-भरमें नष्ट हो जानेवाला है, जिसकी कोई रक्षा नहीं कर सकता, जो कृतघ्न है, मोहसे पूरित है, नसोंके समूहसे वेष्टित है, अत्यन्त पतली चर्मसे घिरा है, अनेक रोगोंसे खण्डित है, और बुढ़ापाके आगमनसे निन्दित है, ऐसे इस शरीरको धिक्कार है ॥११७-११८॥ जो मनुष्य ऐसे शरीरमें धैर्य धारण करते हैं, चैतन्य अर्थात् विचार-विचारकी शक्तिसे रहित उन मनुष्योंका कल्याण कैसे हो सकता है? ॥११९॥ यह आत्मारूपी बनजारा परलोकके लिए प्रस्थान कर रहा है, सो लोगोंको जबरदस्ती लूटनेवाले ये इन्द्रियरूपी चोर उसे रोककर बैठे हैं ॥१२०॥ यह जीवरूपी राजा कुबुद्धिरूपी स्त्रीसे घिरकर क्रीड़ा कर रहा

१. भ्रमरमधुरध्वनीन् । स्वनान् ख., म. । २. खल-म. । ३. समुपागतं म. । ४. ऐश्वर्यं म. । ५. क्वात्र म. । ६. सतां शुभ-म. । ७. विहितं म., ख. । ८. मुष्णन्तः म., ज. । ९. अवस्कन्धेन म. ।

मनो विषयमार्गेषु मत्तद्विरदविभ्रमम् । वैराग्यबलिना शक्यं रोद्धुं ज्ञानाङ्कुशश्रिता ॥१२२॥
परस्त्रीरूपसस्येषु बिभ्राणा लोभमुत्तमम् । अमी हृषीकतुरगा धृतमोहमहाजवाः ॥१२३॥
शरीररथमुन्मुक्ताः पातयन्ति कुवर्त्मसु । चित्तप्रग्रहमत्यन्तं योग्यं कुरुत तद्दृढम् ॥१२४॥
नमस्यत जिनं भक्त्या स्मरतानारतं तथा । संसारसागरं येन समुत्तरत निश्चितम् ॥१२५॥
मोहारिकण्टकं हित्वा तपःसंयमहेतिभिः[1] । लोकाग्रनगरं प्राप्य राज्यं कुरुत निर्भयाः ॥१२६॥
जैनं [2]व्याकरणं श्रुत्वा सुधीर्विजयपर्वतः । त्यक्त्वा विपुलमैश्वर्यं बभूव मुनिपुंगवः ॥१२७॥
तावपि भ्रातरौ तस्मिन् श्रुत्वा भक्त्या जिनश्रुतिम् । प्रव्रज्य सुतपोभारौ संगतावाटतुर्महीम् ॥१२८॥
[3]सम्मेदं च व्रजन्तौ तावविज्ञानिर्वाणवन्दनौ । कथंचिन्मार्गतो भ्रष्टावरण्यानीं समाश्रितौ ॥१२९॥
वसुभूतिचरेणाथ रौद्रम्लेच्छेन वीक्षितौ । अतिक्रुद्धेन चाहूतौ गिराक्रोशकठोरया[4] ॥१३०॥
जिघांसन्तं तमालोक्य ज्यायान्मुदितमब्रवीत् । मा भैषीरतिरस्य त्वं समाधानं समाश्रय ॥१३१॥
म्लेच्छोऽयं हन्तुमुद्युक्तो दृश्यते नौ दुराकृतिः । चिराभ्याससमृद्धाया क्षान्तेरद्य विनिश्चयः ॥१३२॥
प्रत्युवाच स तं भीतिः का नौ जिनवचस्थयोः । नूनं मूढतयास्माभिरप्यत्र प्रापितो वधम् ॥१३३॥
एवं तौ विहितालापौ सविचारं समाश्रितौ । प्रत्याख्यानं शरीरादेः प्रतिमायोगमागतौ ॥१३४॥
समीपस्थं च संप्राप्तो म्लेच्छो हन्तुं समुद्यतः । आलोक्य दैवयोगेन सेनेशेन निवारितः ॥१३५॥
रामः पप्रच्छ तेनैतौ व्यापादयितुमीप्सितौ । सेनाधिपेन निर्मुक्तौ रक्षितौ केन हेतुना ॥१३६॥

है और मृत्यु उसे अचानक ही दुःखी करना चाहती है ॥१२१॥ विषयोंके मार्गमें मदोन्मत्त हाथीके समान दौड़ता हुआ यह मन ज्ञानरूपी अंकुशको धारण करनेवाले वैराग्यरूपी बलवान् पुरुषके द्वारा ही रोका जा सकता है ॥१२२॥ जो शरीररूपी धान्यमें उत्तम लोभको धारण कर रहे हैं तथा जो महामोहरूपी वेगको धारण कर लम्बी चौकड़ी भर रहे हैं ऐसे ये इन्द्रियरूपी घोड़े शरीररूपी रथको कुमार्गमें गिरा देते हैं, इसलिए मनरूपी लगामको अत्यन्त दृढ़ करो ॥१२३-१२४॥ भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार करो और निरन्तर उन्हींका स्मरण करो जिससे निश्चयपूर्वक संसार-सागरको पार कर सको ॥१२५॥ तप और संयमरूपी शस्त्रोंके द्वारा मोहशत्रुरूपी कंटकको नष्ट कर मोक्षरूपी नगरको प्राप्त करो तथा निर्भय होकर वहाँका राज्य करो ॥१२६॥ इस प्रकार जैनाचार्यका व्याख्यान सुनकर उत्तम बुद्धिको धारण करनेवाला राजा विजयपर्वत विशाल वैभवका परित्यागकर श्रेष्ठ मुनि हो गया ॥१२७॥ दूतके पुत्र दोनों भाई उदित और मुदित भक्तिपूर्वक जिनवाणी सुनकर दीक्षित हो गये और उत्तम तपको धारण करते हुए एक साथ पृथिवीपर विहार करने लगे ॥१२८॥ निर्वाण क्षेत्रकी वन्दनाकी अभिलाषा रखते हुए वे सम्मेदाचलको जा रहे थे, सो किसी तरह मार्ग भूलकर एक महाअटवीमें जा पहुँचे ॥१२९॥ वसुभूतिका जीव मरकर उसी अटवीमें पुष्टम्लेच्छ हुआ था, सो उसने देखते ही अत्यन्त क्रुद्ध होकर कठोर वाणीसे उन्हें बुलाया ॥१३०॥ उसे मारनेके लिए उत्सुक देख बड़े भाई उदितने मुदितसे कहा कि हे भाई ! भयभीत मत हो, इस समय समाधि धारण करो, चित्त स्थिर करो ॥१३१॥ दुष्ट आकृतिको धारण करनेवाला यह म्लेच्छ हम दोनोंको मारनेके लिए तत्पर दिखाई देता है सो हम लोगोंने चिरकालके अभ्याससे जिस क्षमाको समृद्ध बनाया है आज उसकी परीक्षाका अवसर है ॥१३२॥ मुदितने बड़े भाईको उत्तर दिया कि जिनेन्द्र भगवान्‌के वचनोंमें स्थिर रहनेवाले हम लोगोंको भय किस बातका है ? निश्चयसे हम लोगोंने भी इसका वध किया होगा ॥१३३॥ इस प्रकार वार्तालाप करते हुए दोनों भाई विचारपूर्वक खड़े हो गये और शरीर आदिसे ममता छोड़ प्रतिमा योगको प्राप्त हुए ॥१३४॥ तदनन्तर मारनेकी इच्छा रखता हुआ वह भील उनके पास आया परन्तु दैवयोगसे भीलोंके सेनापतिने उसे देख लिया जिसे मना कर दिया ॥१३५॥ यह सुन, रामने केवलीसे पूछा कि भील इन्हें क्यों मारना

१. हेतुभिः म. । २. व्याख्यानं । ३. सम्मोदं ख. । ४. क्रोशकुठारया म. ।

केवल्या[1] स्यात् समुद्भूता भारतीति भवान्तरे । सुरपः कर्षकश्चास्तां यक्षस्थाने सहोदरौ ॥१३७॥
लुब्धकेनाहतो जीवः शकुन्तिर्ग्राममन्यदा । ताभ्यां कारुण्ययुक्ताभ्यां दत्वा मूल्यं विमोचितः ॥१३८॥
ततोऽसौ शकुनो मृत्वा बभूव म्लेच्छभूपतिः । सुरपः कर्षकश्चैताबुदितो मुदितस्तथा ॥१३९॥
पक्षीभवच्चसौ यस्मादेताभ्यां रक्षितं पुरा । तस्मात् सेनापतिर्भूयो रक्षासाविमौ मुनी ॥१४०॥
[2]लुब्धको जीवमोक्षेण वसुभूतिर्द्विजोत्तमः । संजातो कर्मयोगेन मनुष्यभवमुत्तमम् ॥१४१॥
यद्यया निर्मितं पूर्वं तद्योग्यं जायतेऽधुना । संसारवाससक्तानां जीवानां गतिरीदृशी ॥१४२॥
किमधीतैरिहानर्थं ग्रन्थैरौशनसादिभिः । एकमेव हि कर्तव्यं सुकृतं सुखकारणम् ॥१४३॥
निःसृतावुपसर्गात्तौ मुनी कर्मानुभावतः । निर्वाणसदनं प्राप्तावकार्षीं जिनवन्दनाम् ॥१४४॥
एवं तौ चारुधामानि पर्यट्य समयं चिरम् । रत्नत्रयं समाराध्य मृत्वा स्वर्गमुपागतौ ॥१४५॥
निन्द्ययोनिषु पर्यट्य वसुभूतिः सुकृच्छ्रतः । मनुष्यत्वं समासाद्य तापसव्रतमाश्रितः ॥१४६॥
कृत्वा बालतपः कष्टं कालधर्मेण संगतः । अग्निकेतुरिति ख्यातः क्रूरो ज्योतिःसुरोऽभवत् ॥१४७॥
तथास्ति भरतक्षेत्रे नाम्नारिष्टमहापुरम् । प्रियव्रत इति ख्यातः पुरुभोगोऽत्र पार्थिवः ॥१४८॥
महादेव्यावुभे तस्य योषिद्गुणसमन्विते । काञ्चनाभा प्रसिद्धैका पद्मावत्यपरोदिता ॥१४९॥
च्युतौ तौ सुन्दरौ नाकाज्जातौ पद्मावतीसुतौ । नाम्ना रत्नरथोऽन्यश्च विचित्ररथसंज्ञकः ॥१५०॥
उत्पन्नः कनकाभायां ज्योतिर्देवः परिच्युतः । अनुन्धर इति ख्यातिं गुणैस्ते चावनिं गताः ॥१५१॥
राज्यं पुत्रेषु निक्षिप्य षड्दिनानि जिनालये । कृतसंलेखनः सम्यक् स्वर्गं यातः प्रियव्रतः ॥१५२॥

चाहता था और सेनापतिने किस कारणसे छुड़ाकर इनकी रक्षा की ॥१३६॥ तब केवली भगवान्के मुखसे इस प्रकारकी दिव्यध्वनि प्रकट हुई कि भवान्तरमें यक्षस्थान नामक नगरमें सुरप और कर्षक नामके दो भाई रहते थे ॥१३७॥ एक दिन एक शिकारी किसी पक्षीको पकड़कर उस गाँवमें आया सो दयासे युक्त होकर सुरप और कर्षकने मूल्य देकर उसे छुड़ा दिया ॥१३८॥ तदनन्तर वह पक्षी मरकर म्लेच्छ राजा हुआ और सुरप तथा कर्षक मरकर उदित तथा मुदित हुए ॥१३९॥ चूँकि पक्षी अवस्थामें इन दोनोंने पहले इसकी रक्षा की थी इसलिए पक्षीने भी सेनापति होकर इन दोनों मुनियोंकी रक्षा की ॥१४०॥ शिकारीका जीव मरकर कर्मयोगसे उत्तम मनुष्य पर्याय पाकर वसुभूति नामका ब्राह्मण हुआ ॥१४१॥ यह जीव पूर्व भवमें जैसा करता है इस भवमें उसके अनुरूप ही उत्पन्न होता है। संसारी प्राणियोंकी ऐसी ही दशा है ॥१४२॥ यहाँ निरर्थक शुक्रादि निर्मित शास्त्रोंके पढ़नेसे क्या होता है ? सुखके कारणभूत एक पुण्यका ही संचय करना चाहिए ॥१४३॥ पुण्यके प्रभावसे उपसर्गसे निकले हुए दोनों मुनियोंने निर्वाण क्षेत्र—सम्मेदाचल पहुँचकर जिन-वन्दना की ॥१४४॥ इस प्रकार अनेक उत्तमोत्तम स्थानोंमें भ्रमण कर तथा चिरकाल तक रत्नत्रयकी आराधना कर मरकर दोनों मुनि स्वर्ग गये ॥१४५॥ और वसुभूति अनेक खोटा योनियोंमें भ्रमण कर बड़ी कठिनाईसे मनुष्यभवको प्राप्त हुआ, सो वहाँ उसने तापसके व्रत धारण किये ॥१४६॥ तदनन्तर दुःखदायी बाल तपकर वह मरा और अग्निकेतु नामका दुष्ट ज्योतिषी देव हुआ ॥१४७॥

तदनन्तर इसी भरतक्षेत्रमें एक अरिष्टपुर नामा नगर है जहाँ प्रियव्रत नामका महाभोगवान् राजा राज्य करता था ॥१४८॥ उसकी स्त्रियोंके गुणोंसे सहित दो महादेवियाँ थीं एक कांचनाभा और दूसरी पद्मावती ॥१४९॥ उदित और मुदितके जीव स्वर्गसे चयकर रानी पद्मावतीके रत्नरथ और विचित्ररथ नामके सुन्दर पुत्र हुए ॥१५०॥ वसुभूतिका जीव जो ज्योतिषी देव हुआ था वह प्रियव्रत राजाकी दूसरी महादेवी कांचनाभाके अनुन्धर नामका पुत्र हुआ। पृथिवीपर आये हुए तीनों पुत्र अपने गुणोंसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुए ॥१५१॥ राजा प्रियव्रत पुत्रोंके ऊपर राज्य

---

१. केवलिमुखात् । २. अयं श्लोकः क., ख., ज. प्रतिषु नास्ति ।

राज्ञोऽन्यस्य सुता नाम्ना श्रीप्रभा श्रीप्रभेव सा । लब्धा रत्नरथेनेष्टा कनकाभाङ्गजेन च ॥१५३॥
लब्धा रत्नरथेनैषा ततो द्वेषमुपागतः । अनुन्धरो महीं तस्य विनाशयितुमुद्यतः ॥१५४॥
ततो रत्नरथेनासौ विचित्रस्यन्दनेन च । निर्जित्य समरे पञ्च दण्डान् प्राप्य निराकृतः ॥१५५॥
खलीकाराततः पूर्वजन्मवैराच्च कोपतः । जटावल्कलधारी स तापसोऽभूद् विषाङ्घ्रिवत् ॥१५६॥
भुक्त्वा राज्यं चिरं कालं सोदरौ तु प्रबोधिनौ । प्रव्रज्य सुतपः कृत्वा स्वर्गलोकमुपागतौ ॥१५७॥
तौ महातेजसौ तत्र सुखं प्राप्य सुरोचितम् । च्युतौ सिद्धार्थनगरे क्षेमङ्करमहीभृतः ॥१५८॥
तस्यौ विमलाख्यायां महादेव्यां सुसुन्दरौ । देशभूषण कुलभूषणसंज्ञौ [illegible] ॥१५९॥
विद्यार्जनोचितौ तौ च क्रीडन्तौ तिष्ठतो गृहे । नाम्ना सागरघोषश्च विद्वान् भ्राम्यन्नुपागतः ॥१६०॥
राज्ञा च संगृहीतस्य तस्य पार्श्वेऽखिलाः कलाः । शिक्षितौ तावुदारेण विनयेन समन्वितौ ॥१६१॥
[1]स्वजनं नैव तौ कंचिज्जानीतस्तद्गतात्मकौ । कर्तव्यं हि तयोः सर्वं विद्याशालागतं सदा ॥१६२॥
उपाध्यायेन चानीतौ सुचिरात् पितुरन्तिकम् । दृष्ट्वा योग्यौ नरेन्द्रेण यथाकामं स पूजितः ॥१६३॥
आवयोः किल दारार्थं पित्रा सामन्तकन्यकाः । आनायिता इति श्रोत्रपथं वार्ता तयोर्गता ॥१६४॥
ततस्तौ परया द्युत्या बाह्यालीं गन्तुमुद्यतौ । वातायनस्थितां कन्यां पुरशोभामपश्यताम् ॥१६५॥
तत्संगमार्थमन्योन्यं मानसेऽकुरुतां वधम् । ततश्च वन्दिनो वक्त्रादिति शब्दः समुत्थितः ॥१६६॥

छोड़ जिनालयमें छह दिनकी उत्तम सल्लेखना धारण कर स्वर्ग गया ॥१५२॥ अथानन्तर एक राजाकी पुत्री श्रीप्रभा जो कि यथार्थमें श्रीप्रभा अर्थात् लक्ष्मीके समान प्रभाकी धारक थी, रत्नरथने उससे विवाह कर लिया। इसी पुत्रीको कांचनाभका पुत्र अनुन्धर भी चाहता था। वह द्वेष रखकर उसकी भूमिको उजाड़ करनेके लिए उद्यत हो गया ॥१५३-१५४॥ तब रत्नरथ और विचित्ररथने उसे युद्धमें जीतकर तथा पाँच प्रकारके दण्ड देकर देशसे निकाल दिया ॥१५५॥ अनुन्धर इस अपमानसे तथा पूर्वभव सम्बन्धी बैरसे कुपित होकर जटा और वल्कलको धारण करनेवाला विषवृक्षके समान तापसी हो गया ॥१५६॥

इधर रत्नरथ और विचित्ररथ दोनों भाई चिरकाल तक राज्य भोगकर प्रबोधको प्राप्त हुए सो दीक्षा ले उत्तम तप धारण कर स्वर्ग लोकमें उत्पन्न हुए ॥१५७॥ महातेजको धारण करनेवाले दोनों भाई वहाँ देवोंके योग्य उत्तम सुख भोगकर वहाँसे च्युत हुए और सिद्धार्थ नगरके राजा क्षेमंकरकी विमला नामक महादेवीके दो सुन्दर पुत्र हुए। प्रथम पुत्रका नाम देशभूषण और दूसरे पुत्रका नाम कुलभूषण था ॥१५८-१५९॥ विद्या उपार्जन करनेकी योग्य अवस्थामें वर्तमान दोनों भाई घरपर क्रीड़ा करते रहते थे। एक दिन भ्रमण करता हुआ एक सागरसेन नामका महाविद्वान् वहाँ आया, सो राजाने उसे रख लिया। उत्कृष्ट विनयसे युक्त दोनों भाइयोंने उस विद्वान्के पास समस्त कलाएँ सीखीं ॥१६०-१६१॥ दोनों पुत्रोंका विद्यामें इतना चित्त लगा कि वे अपने परिवारके लोगोंको भी नहीं जानते थे। यथार्थमें उनका सम्पूर्ण चित्त विद्या और विद्यालयमें ही लगा रहता था ॥१६२॥ उपाध्याय चिरकालके बाद पुत्रोंको निपुण बनाकर पिताके पास ले गया सो पिताने पुत्रोंको योग्य देख उपाध्यायका यथायोग्य सम्मान किया ॥१६३॥ तदनन्तर पिताने हम दोनोंके विवाहके लिए राज-कन्याएँ बुलवायी हैं यह समाचार उनके कर्णमार्ग तक पहुँचा ॥१६४॥

तदनन्तर परम कान्तिसे युक्त दोनों भाई एक दिन नगरके बाहर जानेके लिए उद्यत हुए सो उन्होंने झरोखेमें बैठी नगरकी शोभास्वरूप एक कन्या देखी ॥१६५॥ उस कन्याका समागम प्राप्त करनेके लिए दोनों ही भाइयोंने अपने मनमें परस्पर एक दूसरेके वध करनेका विचार किया।

---

१. स्वजनेनैव म. । २. विद्याशीलागतं ब. । विद्याशालगतं म. ।

साकं विमलया देव्या श्रीमान् क्षेमङ्करो नृपः । चिरं जयति यस्यैतौ तनयौ त्रिदशोपमौ ॥१६७॥
वातायनस्थितैषापि कन्यका कमलोत्सवा । जयति भ्रातरावेतौ यस्याश्चारुगुणोत्कटौ ॥१६८॥
ततस्तौ तद्गिरो ज्ञात्वा सोदरैषावयोरिति । वैराग्यं परमं प्राप्ताविति चिन्तामुपागतौ ॥१६९॥
धिग्धिग्धिगिदमत्यन्तं पापमस्माभिरीहितम् । अहो मोहस्य दारुण्यं सोदरा येन काङ्क्षिता ॥१७०॥
चिन्तयित्वा प्रमादेन दुःखमस्माकमीदृशम् । कुर्वन्ति ये सदा कार्यं तेषां त्वत्यन्तसाहसम् ॥१७१॥
असारोऽयमहोऽत्यन्तं संसारो दुःखपूरितः । तत्र नामेदृशा भावा जायन्ते पापकर्मणाम् ॥१७२॥
कुतोऽप्यपुण्यतः क्षिप्रं चेतनो नरकं व्रजेत् । संप्राप्य बोधमस्माभि[1] सद्वृत्तं चित्रमुत्तमम् ॥१७३॥
इति संचिन्त्य सन्त्यज्य मातरं दुःखमूर्च्छिताम् । स्नेहाकुलं च पितरं दीक्षां दैग्वाससीं[2] श्रितौ ॥१७४॥
नभोविहरणीं लब्धिं प्राप्य तौ सुतपोधनौ । ओहिघातां जगन्नाना[3]त्रितीर्थाभिपूजितम् ॥१७५॥
क्षेमङ्करनरेशस्तु तच्छोकानलदीपितः । युगपत्सकलं त्यक्त्वाऽऽहारं[4] पञ्चत्वमागतः[5] ॥१७६॥
भवादारभ्य[6] पूर्वोक्तात् स एव हि पितावयोः । तेन नौ प्रति वात्सल्यं तस्य नित्यमनुत्तमम् ॥१७७॥
गरुडाधिपतिश्चासौ जातः ख्यातो मरुत्वतः । सुन्दरोऽद्भुतविक्रान्तो महालोचनसंज्ञकः ॥१७८॥
क्षुब्धः स्वासनकम्पेन प्रयुज्यावधिमूर्जितः । आगतोऽयं स्थितो भाति व्यन्तरामरसंसदि ॥१७९॥
अनुन्धरस्तु विहरंस्तापसाचारतत्परः । कौमुदीनगरीं यातः शिष्यसंघेन वेष्टितः ॥१८०॥
नरेशः सुमुखस्तत्र रूपलक्ष्म्या भवत्यपि । भार्या एवंविधानार्यं प्राह [7]सुन्दरसुन्दरी ॥१८१॥

तदनन्तर वन्दीके मुखसे उसी समय यह शब्द निकला ॥१६६॥ कि विमला देवीके साथ वह राजा क्षेमंकर सदा जयवन्त रहे जिसके कि देवोंके समान ये दो पुत्र हैं ॥१६७॥ तथा झरोखेमें बैठी यह कमलोत्सवा नामकी कन्या भी धन्य है जिसके कि सुन्दर गुणोंसे उत्कट ये दो भाई हैं ॥१६८॥ तदनन्तर वन्दीके कहनेसे 'यह हमारी बहन है' ऐसा जानकर परम वैराग्यको प्राप्त हुए दोनों भाई इस प्रकार विचार करने लगे कि ॥१६९॥ अहो ! हम लोगोंके द्वारा इच्छित इस भारी पापको धिक्कार है, धिक्कार है, धिक्कार है। अहो ! मोहकी दारुणता देखो कि जिससे हमने बहन ही की इच्छा की ॥१७०॥ हम लोग तो प्रमादसे ही ऐसा विचार कर दुःखी हो रहे हैं फिर जो जान-बूझकर सदा ऐसा कार्य करते हैं उनका तो बहुत भारी साहस ही कहना चाहिए ॥१७१॥ अहो ! दुःखसे भरा यह संसार बिलकुल ही असार है जिसमें पापी मनुष्योंके ऐसे विचार उत्पन्न होते हैं ॥१७२॥ किसी पापके उदयसे सहसा कार्य करनेवाला प्राणी नरक जा सकता है, पर हम लोग तो सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रको पाकर भी नरक जाना चाहते हैं, यह बड़ा आश्चर्य है ॥१७३॥ ऐसा विचारकर दुःखसे मूर्च्छित माता और स्नेहसे आकुल पिताको छोड़कर दोनोंने दैगम्बरी दीक्षा धारण कर ली ॥१७४॥ उत्तम तपरूपी धनको धारण करनेवाले दोनों मुनियोंने आकाशगामिनी ऋद्धि प्राप्त कर जगत्के नाना तीर्थ क्षेत्रोंमें विहार किया ॥१७५॥ राजा क्षेमंकर उस शोकाग्निसे दग्ध होकर एक साथ समस्त आहार छोड़ मृत्युको प्राप्त हुआ ॥१७६॥ राजा क्षेमंकर पहले कहे हुए भवसे ही लेकर हम दोनोंका पिता होता आया है इसलिए हम दोनोंके प्रति उसका निरन्तर भारी स्नेह रहता था ॥१७७॥ अब वह मरकर भवनवासी देवोंमें सुपर्ण कुमार जातिके देवोंका अधिपति, प्रसिद्ध, सुन्दर, अद्भुत-पराक्रमका धारी महालोचन नामका देव हुआ है ॥१७८॥ वह बली अपने आसनके कम्पित होनेसे क्षुभित हो अवधिज्ञानके द्वारा सब जानकर यहाँ आया है तथा व्यन्तर देवोंकी सभामें बैठा है ॥१७९॥ उधर तपस्वियोंका आचार पालन करनेमें तत्पर अनुन्धर, शिष्य समूहके साथ विहार करता हुआ कौमुदी नगरीमें आया ॥१८०॥ वहाँका राजा सुमुख था और

---

१. -भिः सद्वृत्तश्चित्तमुत्तमम् म. । २. दैगम्बरीम् । ३. जगन्मान्याजिनतीर्थाभिपूजितम् म. । ४. हारे म. । ५. मृत्युम् । ६. सर्वदारभ्य म. । ७. सुन्दरी म. ।

अवरुद्धा च सच्चेष्टा मदनेति विलासिनी । पताका मदनेनेव जित्वा लोकमुपार्जिता ॥१८२॥
साधुदत्तमुनेः पार्श्वे सम्यग्दर्शनमैदली । तस्याप्येतत्तृतीर्थानि तृणतुल्यान्यमन्यत ॥१८३॥
तस्याः पुरोऽथ रहसि कदाचिदवदन्नृपः । अहोऽसौ तापसः स्थानं महतां तपसामिति ॥१८४॥
ततो मदनयाऽवादि कीदृग्नाथेदृशां तपः । मिथ्यादृशामविज्ञानलोकदृग्मनकारिणाम् ॥१८५॥
तच्छ्रुत्वा भूपतिस्तस्यै क्रुद्धः सा चागदत् पुनः । मा रुषः पश्य नाथेयं मेऽस्त्विग्वाग्वर्तिनम् ॥१८६॥
इत्युक्त्वा स्वगृहं गत्वा शिक्षयित्वा मनोहरम् । आत्मजां नागदत्ताख्यां प्रैषयत्तापसाश्रमम् ॥१८७॥
तस्मै सैवान्तयातायं योगस्थाय सुविभ्रमा । आस्थितामरकन्येव परमाकल्पधारिणी ॥१८८॥
वातेरितांशुकव्याजादूरुकाण्डमदर्शयत् । मारस्यान्तःपुरस्थानं लावण्यरसनिर्भरम् ॥१८९॥
समाधानोपदेशेन कुङ्कुमद्रवपिञ्जरम् । मारवारणकुम्भाभं तथा वक्षसिजद्वयम् ॥१९०॥
कुसुमग्रहणव्याजात् स्रस्तनीविरतेर्गृहम् । नाभिमण्डलमुत्तेजः कक्षौदेशं च सुन्दरी ॥१९१॥
अज्ञानयोगमेतस्य भित्त्वा लोचनमानसे । अपसर्तां प्रदेशेषु तेषु तस्याः सुबन्धने ॥१९२॥
ताडितः स्मरबाणैश्च [1]समुत्थाय समाकुलः । गत्वा शनैरपृच्छत्तां त्वं बाले कात्र वर्तसे ॥१९३॥
संध्याकालेऽत्र ये केचित् प्राणिनः क्षुद्रका अपि । आलयं स्वं निषेवन्ते ननु त्वं सुकुमारिका ॥१९४॥
सालोचनमधुरैर्वर्णैः भिन्दन्ती हृदयस्थलीम् । लीलया बाहुलतिकामुन्नयन्ती मुखं प्रति ॥१९५॥
चलन्नीलोत्पलच्छाये धारयन्ती विलोचने । किंचिद्दैन्यमिव प्राप्ता बहुविस्फुरिताधरा ॥१९६॥

रत्नवती उसकी स्त्री थी जो सैकड़ों स्त्रियोंमें प्रधान तथा परम सुन्दरी थी ॥१८१॥ उसी राजाके उत्तम चेष्टाको धारण करनेवाली एक मदना नामकी विलासिनी (वेश्या) स्त्री थी, जो ऐसी जान पड़ती थी मानो संसारको जीतकर कामदेवके द्वारा प्राप्त की हुई पताका ही हो ॥१८२॥ उस मदनाने साधुदत्त मुनिके पास सम्यग्दर्शन प्राप्त किया था जिसे पाकर वह अन्य धर्मोंको तृणके समान तुच्छ मानती थी ॥१८३॥ अथानन्तर किसी दिन राजाने मदनाके सामने कहा कि अहो! यह तापस महातपोंका स्थान है ॥१८४॥ यह सुन मदनाने कहा कि हे नाथ! इन मिथ्यादृष्टि, अज्ञानी तथा लोगोंको ठगनेवाले लोगोंका तप कैसा ? ॥१८५॥ यह सुन राजा उसके लिए क्रुद्ध हुआ पर उसने फिर कहा कि हे नाथ! क्रोध मत कीजिए तथा इसे मेरे चरणोंमें वर्तमान देखिए ॥१८६॥ यह कहकर तथा घर जाकर उसने अपनी नागदत्ता नामकी सुन्दरी पुत्रीको सिखाकर उस तापसके आश्रममें भेजा ॥१८७॥

सुन्दर हावभाव और उत्तम वेष-भूषाको धारण करनेवाली नागदत्ता देवकन्याके समान जान पड़ती थी। वह एकान्तमें योग लेकर बैठे हुए उस तापसके पास जाकर खड़ी हो गयी ॥१८८॥ हवासे हिलते हुए वस्त्रके बहाने उसने कामदेवके अन्तःपुरके समान, सौन्दर्य रससे भरे अपने ऊरू दिखाये ॥१८९॥ समाधानके बहाने केशरके द्रवसे पीले तथा कामदेवके गण्डस्थलकी तुलना धारण करनेवाले दोनों स्तन प्रकट किये ॥१९०॥ पुष्प ग्रहणके बहाने नीवी ढीली कर जघन स्थान दिखाया, देदीप्यमान नाभिमण्डल और सुन्दर बगलें भी दिखलायी ॥१९१॥ उस तापसके नेत्र और मन अज्ञानपूर्ण योगका भेदनकर उस नागदत्ताके उन-उन प्रदेशोंपर पड़ने लगे तथा वहीं बन्धनसे युक्त हो गये ॥१९२॥ तदनन्तर कामके बाणोंसे ताड़ित तपस्वी अत्यन्त व्याकुल होता हुआ उठकर उसके पास गया और धीरे-से उससे पूछने लगा कि हे बाले! तू कौन है ? और यहाँ कहाँ आयी है ? ॥१९३॥ इस सन्ध्याके समय छोटे-मोटे प्राणी भी अपने घर रहते हैं फिर तू तो अत्यन्त सुकुमार है ॥१९४॥ नागदत्ता मधुरवर्णोंसे उसका हृदयस्थल भेदती, लीलापूर्वक भुजलताको मुखकी ओर

---

१ समुच्छ्वास्य म. ।

शृणु नाथ ! दयाधार ! शरणागतवत्सल ! । अम्बयाऽहं विना दोषादद्य निर्वासिता गृहात् ॥१९७॥
काषायप्रावृता चाहं भवदीयामिमां स्थितिम् । आचरामि प्रसादं मे कुरु नाथानुमोदनात् ॥१९८॥
शुश्रूषां भवतः कृत्वा दिवा नक्तं च सत्कथा । इह लोको मया लब्धः परलोकश्च जायते ॥१९९॥
किं तद्धर्मार्थकामेषु न यत्तवति लभ्यते । निधानमसि कान्तानां मया पुण्येन वीक्षितः ॥२००॥
इति संभाषिते तस्याः विज्ञाय प्रगुणं मनः । स्मरेण दह्यमानोऽसावब्रवीदिति विह्वलः[1] ॥२०१॥
भद्रे कोऽहं प्रसादस्य प्रसीद त्वं ममोत्तमे । भजस्व भक्तिमेषोऽहं यावज्जीवं करोमि ते ॥२०२॥
इत्युक्त्वालिङ्गितुं क्षिप्रं तं प्रसारितबाहुकम् । अगदीत् पाणिना कन्या वारयन्तीति सादरा[2] ॥२०३॥
न वर्तते इदं कर्तुं कन्याहं विधिवर्जिता । पृच्छ मे[3] मातरं गत्वा गृहेऽस्मिन् दृश्य तोरणे ॥२०४॥
परा कारुण्ययुक्तेयं भवतः कथिता मया । एषा प्रसादयाश्वस्यं तुभ्यमेषा ददाति माम् ॥२०५॥
एवमुक्तस्तया सार्कं स्खलया व्याकुलक्रमः । वेश्माविशद्विलासिन्याः सवितर्यस्तमागते ॥२०६॥
[4]मन्मथाकृष्टनिःशेषहृषीकविषयी ह्यसौ । किंचिद्वेत्ति स्म नोपायं [5]विशन्वारीमिव द्विपः ॥२०७॥
न शृणोति स्मरग्रस्तो न जिघ्रति न पश्यति । न जानात्यपरस्पर्शं न बिभेति न लज्जते ॥२०८॥
आश्चर्यं[6] मोहतः कष्टमनुतापं प्रपद्यते । अन्धो निपतितः कूपे यथा पन्नगसेविते ॥२०९॥
वेश्याचरणयोरासौ कृत्वा विलुठितं शिरः । याचते कन्यकां पूर्वसंज्ञितश्चाविशन्नृपः ॥२१०॥

ऊपर उठाती, चंचल नील कमलके समान कान्तिके धारक नेत्रोंको धारण करती, कुछ-कुछ दीनताको प्राप्त होती तथा अधरोष्ठको बार-बार हिलाती हुई बोली ॥१९५-१९६॥ कि हे नाथ! हे दयाके आधार! हे शरणागत वत्सल! सुनिए, आज मेरी माताने मुझे अपराधके बिना ही घरसे निकाल दिया है ॥१९७॥ सो हे नाथ! अब मैं गेरुआ वस्त्र धारण कर आपकी इस वृत्तिका आचरण करूँगी, आप अनुमति देकर मुझपर प्रसाद कीजिए ॥१९८॥ रात-दिन आपकी सेवा करनेसे मेरा यह लोक तथा परलोक दोनों ही सुधर जावेंगे ॥१९९॥ धर्म, अर्थ और काममें ऐसा कौन पदार्थ है जो आपके पास प्राप्त न हो सके, आप समस्त मनोरथोंके भाण्डार हैं। पुण्यसे ही आपके दर्शन हुए हैं ॥२००॥ इस प्रकार कहनेपर उसका मन वशीभूत जान कामसे जलता हुआ तापस व्याकुल होता हुआ इस प्रकार बोला ॥२०१॥ कि हे भद्रे! प्रसाद करनेके लिए मैं कौन होता हूँ? हे उत्तमे! तुम्हीं मुझपर प्रसाद करो, स्वीकृत करो, मैं जीवन-पर्यन्त तुम्हारी भक्ति करूँगा ॥२०२॥ ऐसा कहकर उसने आलिंगन करनेके लिए शीघ्र ही अपनी भुजा पसारी तब आदरके साथ उसे हाथसे रोकती हुई कन्याने कहा ॥२०३॥ कि यह करना उचित नहीं है, मैं कुमारी कन्या हूँ जिसका तोरण दिखाई दे रहा है, ऐसे इस घरमें जाकर मेरी मातासे पूछो ॥२०४॥ आपकी बुद्धिके समान वह परम दयासे युक्त है, उसे प्रसन्न करो, वह अवश्य ही मुझे तुम्हारे लिए दे देगी ॥२०५॥ इस प्रकार नागदत्ताके कहनेपर वह सूर्यास्तके अनन्तर अटपटे पैर रखता हुआ उसके साथ वेश्याके घर गया ॥२०६॥ जिसके समस्त इन्द्रियोंके विषय कामसे आकृष्ट हो चुके थे, ऐसा वह तापस वारी (बन्धन) में प्रवेश करनेवाले हाथीके समान कुछ भी उपाय नहीं जानता था ॥२०७॥ सो ठीक ही है, क्योंकि कामसे ग्रस्त मनुष्य न सुनता है, न सूँघता है, न देखता है, न दूसरेका स्पर्श जानता है, न डरता है और न लज्जित ही होता है ॥२०८॥ जिस प्रकार अन्धा मनुष्य साँपोंसे भरे कुएँमें गिरकर कष्ट और सन्तापको प्राप्त होता है उसी प्रकार यह कामी मनुष्य मोहवश कष्ट और सन्तापको प्राप्त होता है, यह आश्चर्यकी बात है ॥२०९॥ तदनन्तर वह तापस वेश्याके चरणोंमें शिर झुकाकर कन्याकी याचना करता है और उसी समय पूर्वसंकेतानुसार राजा प्रवेश करता है ॥२१०॥

---

१. विह्वलः म. । २. विशारदा म. । ३. पृच्छाव म. । ४. तत्कथा-म. । ५. विशत्वारीं म. । विशन्वारीं ख. । ६. आचार्यं म, ब. ।

स्थापितो धर्मचिन्ताऽसौ राज्ञा मर्कं सभीक्षणः । खरोष्ट्रारं भ्रमार्तं च प्रकटं प्रापितः परम् ॥२११॥
ततोऽपमाननिर्दग्धः परं दुःखं समुद्वहन् । आस्यन् महीं मृतः क्लेशयोनिषु भ्रमणं स्थितः ॥२१२॥
ततः कर्मानुभावेन मनुष्यभवमागतः । दारिद्र्यपङ्कनिर्मग्नं अनादरविवर्जितम् ॥२१३॥
गर्भस्थ एव चैतस्मिन् विदेशं जनको गतः । उद्वेजितः कुटुम्बिन्या कलहक्रूरवाक्यया ॥२१४॥
कुमारे च हता माता म्लेच्छैन विषयाहतौ । दुःखं च परमं प्राप्तः सर्वबन्धुविवर्जितः ॥२१५॥
ततस्तापसतां प्राप्य कृत्वा बालतपः परम् । ज्योतिर्लोकं समारुह्य नाम्ना वह्निप्रभोऽभवत् ॥२१६॥
अनन्तवीर्यभामाद्य केवली सेवितः सुरैः । इत्यग्रतेदासिना पृष्टो धर्मचिन्तागतात्मना ॥२१७॥
मुनिसुव्रतनाथस्य तीर्थेऽस्मिन् भवता समः । कोऽन्योऽनुभवितः भव्यो लोकस्योत्तरकारणम् ॥२१८॥
सोऽवोचन्मयि निर्वाणं गतेऽत्र श्रमणक्षितौ । देशभूषण इत्येको द्वितीयः कुलभूषणः ॥२१९॥
भविष्यतौ जगत्सारौ केवलज्ञानदर्शिनौ । यौ समाश्रित्य लोकोऽयं तरिष्यति भवार्णवम् ॥२२०॥
सोऽपि वह्निप्रभस्तस्माच्छ्रुत्वा केवलिनो मुखात् । अदस्थानं निजं यातो दध्यौ केवलिभाषितम् ॥२२१॥
अन्यदावधिना ज्ञात्वा योगिनाविह नौ गिरौ । अनन्तवीर्यसर्वज्ञमिथ्यावाक्यं करोम्यहम् ॥२२२॥
एवमुक्त्वानिमानेन परमेणातिमोहितः । आगतः पूर्ववैरेण कर्तुं परमुपद्रवम् ॥२२३॥
चरमाङ्गधरं दृष्ट्वा स भवन्तमतिद्युतम् । सुरेन्द्रकोपभीत्या च तिरोधामनुपागतः ॥२२४॥
नारायणसमेतेन प्रातिहार्यं त्वया कृते । केवलज्ञानमस्माकं जातं घातिपरिक्षये[1] ॥२२५॥

राजाने उसे बँधवाकर रात्रि-भर रखा और सवेरे छान-बीनकर सबके समक्ष उसका परम तिरस्कार किया ॥२११॥ तदनन्तर अपमानसे जला तापस परम दुःखको धारण करता हुआ पृथ्वी-पर भ्रमण करता रहा और अन्तमें मरकर दुःखदायी योनियोंमें भटकता रहा ॥२१२॥ तदनन्तर कर्मोंके प्रभावसे मनुष्य भवको प्राप्त हुआ सो दरिद्रतारूपी कीचड़में निमग्न तथा लोगोंके आदरसे रहित नीच कुलमें उत्पन्न हुआ ॥२१३॥ जब वह गर्भमें था तभी कलहके समय क्रूर वचन कहने-वाली स्त्रीसे उद्विग्न होकर इसका पिता परदेश चला गया था ॥२१४॥ तथा जब वह बालक ही था तभी म्लेच्छोंके द्वारा देशपर आक्रमण होनेसे इसकी माता मर गयी। इस तरह सर्व बन्धुओंसे रहित होकर वह परम दुःखको प्राप्त होता रहा ॥२१५॥ तदनन्तर तापस होकर तथा कठिन बालतप कर ज्योतिष लोकमें अग्निप्रभ नामक देव हुआ ॥२१६॥

अथानन्तर एक समय धर्मकी चिन्तामें जिसका मन लग रहा था ऐसे शिष्यने देवोंके द्वारा सेवित अनन्तवीर्य नामा केवलीसे पूछा कि हे नाथ ! मुनिसुव्रत भगवान्‌के इस तीर्थमें आपके समान ऐसा दूसरा कौन भव्य होगा जो संसार समुद्रसे पार होनेका कारण होगा ॥२१७-२१८॥ तब अनन्तवीर्य केवलीने उत्तर दिया कि मेरे मोक्ष चले जानेके बाद मुनियोंकी इस भूमिमें एक देशभूषण और दूसरा कुलभूषण इस प्रकार दो केवली होंगे। ये जगत्‌के सारभूत तथा केवलज्ञान और दर्शन-के धारक होंगे। इनका आश्रय लेकर भव्यजीव संसार-सागरसे पार होंगे ॥२१९-२२०॥ वह अग्निप्रभदेव केवलीके मुखसे यह सुनकर तथा उन्हींके कथनका ध्यान करता हुआ अपने स्थानपर चला गया ॥२२१॥ एक दिन अवधिज्ञानसे वह हम दोनों मुनियोंको इस पर्वतपर विद्यमान जानकर 'मैं अनन्तवीर्य सर्वज्ञके वचन मिथ्या करता हूँ' इस प्रकार कहकर तीव्र मोहसे मोहित होता हुआ पूर्व वैरके कारण परम उपद्रव करनेके लिए यहाँ आया ॥२२२-२२३॥ सो चरमशरीरी आपको देखकर तथा इन्द्रके क्रोधसे भयभीत हो शीघ्र ही तिरोधानको प्राप्त हुआ अर्थात् भाग गया ॥२२४॥ तुम बलभद्र हो और लक्ष्मण नारायण सो इसके साथ तुमने हमारा उपसर्ग दूर किया अतः घातिया कर्मोंका क्षय होनेपर हमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है ॥२२५॥ इस प्रकार वैर करनेवाले प्राणियोंकी

---

१. देशाघाते सति ।

इति गत्यागतीः श्रुत्वा प्राणिनां वैरकारिणाम् । वैरानुबन्धमुत्सृज्य स्वस्था भवत जन्तवः ॥२२६॥
महापूतमिति श्रुत्वा वचनं केवलीरितम् । सुहृः सुरासुरा नेमुस्तं भीता भवदुःखतः ॥२२७॥
तावच्च गरुडाधीशः परमं संपदं श्रितः । नत्वा केवलिनः पादौ शेषकल्पार्पिताञ्जलिः ॥२२८॥
ऊचे रघुकुलोद्योतं विलसन्मणिकुण्डलम् । स्निग्धां प्रसारयन् दृष्टिं प्रेमसंपूर्णमानसः ॥२२९॥
प्रातिहार्यं कृतं येन त्वया मत्सुतयोः परम् । ततस्तुष्टोऽस्मि यात्वस्व वस्तु यत्तेऽभिरोचते ॥२३०॥
क्षणं चिन्तागतः स्थित्वा जगाद रघुनन्दनः । त्वयासुरप्रसङ्गेन स्मर्तव्या वयमापदि ॥२३१॥
साधुसेवाप्रसादेन फलमेतदुपागतम् । अङ्गीकर्तव्यमस्माभिर्भवद्वारविनिर्गतम् ॥२३२॥
एवमस्विति तेनोक्ते दध्मुः शङ्खान् दिवौकसः । भेर्यश्च[3] मेघनिनदाः सानुवाद्याः समाहताः ॥२३३॥
साधुपूर्वभवं श्रुत्वा संवेगं परमं श्रिताः । प्राबध्नञ्जनाः केचिदन्येऽणुव्रतमाश्रिताः ॥२३४॥

इन्दुवदनावृत्तम्

देशकुलभूषणमुनी नु जगद्दृष्यौ सर्वभवदुःखमलसंगमविमुक्तौ ।
ग्राममपुरपर्वतमटम्बपरिरम्यान् वज्रमतुलोत्तमगुणैरुपचिन्वानान् ॥२३५॥
देशकुलभूषणमहामुनिभवं ये वृत्तमतिपूतमिदमुत्कटशुभावाः ।
[3]श्रोत्रवचसोर्विषयतामुपनयन्ते ते रविनिभा दुरितमाशु विसृजन्ति ॥२३६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते देशकुलभूषणोपाख्यानं नामैकोनचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥३९॥

गति-आगतिको सुनकर हे प्राणियो ! परस्परका वैर छोड़ स्वस्थ होओ अर्थात् आत्मस्वरूपमें लीन होओ ॥२२६॥ इस प्रकार केवली भगवान्‌के द्वारा उच्चरित महापवित्र वचन सुनकर संसारके दुःखोंसे भयभीत हुए सुर और असुरोंने उन्हें बार-बार नमस्कार किया ॥२२७॥

इतनेमें ही परम ऐश्वर्यको प्राप्त सुवर्ण कुमारोंके पतिने हाथ जोड़कर मस्तकसे लगा केवली भगवान्‌के चरणकमलमें नमस्कार कर देदीप्यमान मणिमय कुण्डलोंके धारक रामसे कहा । उस समय वह गरुडेन्द्र रामकी ओर स्नेहपूर्ण दृष्टि डाल रहा था तथा प्रेमसे उसका मन सन्तुष्ट हो रहा था ॥२२८-२२९॥ उसने कहा कि चूँकि तुमने हमारे पुत्रोंकी परम सेवा की है इसलिए मैं तुमपर प्रसन्न हूँ तुम्हें जो वस्तु रुचती हो वह माँग लो ॥२३०॥ राम क्षण-भर चिन्ता करते हुए चुपचाप बैठे रहे । तदनन्तर बोले कि हे देव ! यदि प्रसन्न हो तो आपत्तिके समय हम लोगोंका स्मरण रखना ॥२३१॥ साधुसेवाके प्रसादसे ही यह प्राप्त हुआ कि आप-जैसे सत्पुरुषोंके साथ मिलाप हुआ तथा संसारके द्वारसे निकलनेका मार्ग मिला ॥२३२॥ 'ऐसा ही हो' इस प्रकार गरुडेन्द्रके कहनेपर देवोंने शंख फूंके तथा अनेक प्रकारके वादित्रोंके साथ मेघोंके समान शब्द करनेवाली भेरियाँ बजायीं ॥२३३॥ मुनियोंके पूर्वभव सुनकर परम संवेगको प्राप्त हुए कितने ही लोगोंने दीक्षा धारण कर ली और कितने ही लोग अणुव्रतोंके धारी हुए ॥२३४॥ जगत्‌के द्वारा पूजनीय तथा संसारके समस्त दुःखरूपी मलके समागमसे रहित देशभूषण, कुलभूषण केवली उत्तम गुणोंसे युक्त ग्राम, पुर, पर्वत तथा मटम्ब आदि रमणीय स्थानोंमें विहार कर धर्मका उपदेश देने लगे ॥२३५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जो देशभूषण, कुलभूषण, महामुनियोंके इस अतिशय पवित्र चरित्रको उत्तम भावोंसे युक्त हो सुनते हैं तथा कथन कर दूसरोंको सुनाते हैं वे सूर्यके समान देदीप्यमान होकर शीघ्र ही पापोंका त्याग करते हैं ॥२३६॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें देशभूषण, कुलभूषण केवलीका व्याख्यान करनेवाला उनतालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३९॥

□

---

१. हस्तकमलार्पितभालः । २. भेर्यश्च म. । ३. श्रोतवचसो म. ।

चत्वारिंशत्तमं पर्व

श्रुत्वा केवलिनः पद्ममन्त्यदेहग्रहधारिणम्[1]। स्तुत्वा सजयनिस्वानं प्रणेमुः सर्वपार्थिवाः ॥१॥
वंशस्थलपुरेशश्च महाचित्तः सुरप्रभः। सलक्ष्मणं सपत्नीकं पद्मनाभमपूजयत् ॥२॥
प्रासादशिखरच्छायाधवलीकृतपुष्करम्[2]। नावृणोल्लंगरं गन्तुं रामो राज्ञापि याचितः ॥३॥
वंशाद्रिशिखरं रम्ये हिमवच्छिखरोपमे[4]। समविस्तीर्णसद्वर्णरमणीयशिलातले ॥४॥
नानावृक्षलताकीर्णे नानाशकुनिनादिते। सुगन्धानिलसंपूर्णे नानापुष्पफलाकुले ॥५॥
पद्मोत्पलवनाढ्याभिर्वापीभिरतिशोभिते। सर्वर्तुसहितोशुक्लैवसन्तकृतसेवने ॥६॥
[6]संजिता परमा भूमिः शुद्धादर्शतलोपमा। दशार्धवर्णरजसा कल्पितानेकमण्डिका ॥७॥
कुन्दातिमुक्तकलता वकुलाः कमलानि च। यूथिका मल्लिका नागा अशोकाश्चारुपल्लवाः ॥८॥
एते चान्ये च भूयांसश्चारुभासः सुगन्धयः। भावारम्भविलासाभिः प्रमदाभिः प्रकल्पिताः ॥९॥
कृतः परिकरः कृत्स्नः पुण्यैरतुलसंपदैः। मङ्गलालापसंपन्नैः स्वामिभक्तिपरायणैः ॥१०॥
मेघकाण्डानि सर्वाणि नानाचित्रधराणि च। प्रसारितानि रुद्राणि[7] वैजयन्तीशतानि च ॥११॥
किङ्किणीजालयुक्तानि मुक्तादामशतानि च। व्यजनानि विचित्राणि लम्बूषमणिपट्टिका ॥१२॥
दर्पणा बुद्बुदावस्थो विस्फुरद्भास्करांशवः। न्यस्तान्येतानि तुङ्गेषु तोरणेषु ध्वजेषु च ॥१३॥
अवनौ पूर्णकलशाः स्थापिता विधिसंयुताः। हंसा इव निविष्टास्ते विरेजुर्नलिनीवने ॥१४॥

अथानन्तर केवली भगवान्‌के मुखसे रामको चरमशरीरी जानकर समस्त राजाओंने जयध्वनिके साथ स्तुति कर उन्हें नमस्कार किया ॥१॥ और उदार चित्तके धारक वंशस्थलपुर नगरके राजा सुरप्रभने लक्ष्मण तथा सीता सहित रामकी भक्ति की ॥२॥ जो महलोंके शिखरोंकी कान्तिसे आकाशको धवल कर रहा था ऐसे नगरमें चलनेके लिए राजाने रामसे बहुत याचना की परन्तु उन्होंने स्वीकृत नहीं किया ॥३॥ तब जो अतिशय रमणीय था, हिमगिरिके शिखरके समान था, जहाँ एक समान लम्बे-चौड़े अच्छे रंगके मनोहर शिलातल थे, जो नाना वृक्षों और लताओंसे व्याप्त था, नाना पक्षी जहाँ शब्द कर रहे थे, जो सुगन्धित वायुसे पूर्ण था, नाना प्रकारके पुष्पों और फलोंसे युक्त था, कमल और उत्पलके वनोंसे युक्त वापिकाओंसे जो अत्यन्त शोभित था, तथा सब ऋतुओंके साथ आकर वसन्त ऋतु जिसकी सेवा कर रही थी, ऐसे वंशधर पर्वतके शिखरपर शुद्ध दर्पणतलके समान उत्कृष्ट भूमि तैयार की गयी। उस भूमिपर पाँच वर्णकी धूलिसे अनेक चित्राम बनाये गये थे ॥४-७॥ अनेक प्रकारके भावोंसे रमणीय चेष्टाओंको धारण करनेवाली स्त्रियोंने वहाँ उसी पंचवर्णकी परागसे कुन्द, अतिमुक्तकलता, मौलश्री, कमल, जुही, मालती, नागकेशर और सुन्दर पल्लवोंसे युक्त अशोक वृक्ष, तथा इनके सिवाय सुन्दर कान्ति और सुगन्धिको धारण करनेवाले बहुत-से अन्य वृक्ष बनाये ॥८-९॥ चतुर, उत्तम चेष्टाओंके धारक, मंगलमय वार्तालापमें तत्पर और स्वामिभक्तिमें निपुण मनुष्योंने बड़ी तैयारीके साथ नाना चित्रोंको धारण करनेवाले बादली रंगके वस्त्र फैलाये, सैकड़ों सघन पताकाएँ फहरायीं ॥१०-११॥ छोटी-छोटी घण्टियोंसे युक्त सैकड़ों मोतियोंकी मालाएँ, चित्र-विचित्र चमर, मणिमय फानूस, दर्पण, तथा जिनपर सूर्यकी किरणें प्रकाशमान हो रही थीं ऐसे अनेक छोटे-छोटे गोले ये सब ऊँचे-ऊँचे तोरणों तथा ध्वजाओंमें लगाये ॥१२-१३॥ पृथिवीपर जहाँ-तहाँ विधिपूर्वक पूर्ण कलश रखे गये

---

१. चरमशरीरिणम्। २. गगनम्। ३. आवृणोन्नगरं ख.। ४. हिमवच्छिखरोपमे म.। ५. युक्ते म.। ६. संजिता म.। ७. सघनानि रुद्राणि म.।

यत्र यत्र पदन्यासं करोति रघुनन्दनः । तत्र तत्रैव कमलानि सन्तिष्ठन्ते ॥१५॥
शयनान्यासनैः सार्कं रचितानि यतस्ततः । मणिकाञ्चनचित्राणि सुखस्पर्शधराण्यलम् ॥१६॥
सलवङ्गादिताम्बूलं प्रवराण्यंशुकानि च । महासुगन्धयो गन्धा भास्वन्त्याभरणानि च ॥१७॥
सूदगेहसमेतानि कन्दूशालाशतानि च । बहुभेदान्नपूर्णानि कृतयत्नानि सर्वतः ॥१८॥
गुडेन सर्पिषा दध्ना भूः क्वचिद् भाति पङ्किला । इति कर्तव्यसामाजा जनेनादरिणान्विता ॥१९॥
स्वाहारेण क्वचित्तृप्ताः पथिकाः स्वेच्छया स्थिताः । प्रसादयन्ति विश्रब्धाः संकथाबद्धगुल्फकाः ॥२०॥
क्वचिच्च शेखरी भाति मदिरामत्तलोचनः । क्वचित् सीमन्तिनी गात्रा बकुलामोदवाहिनी ॥२१॥
क्वचिन्नाट्यं क्वचिद् गीतं क्वचित्सुकृतसंकथा । क्वचित् कान्तैः समं नार्यो रमन्ते चारुविभ्रमाः ॥२२॥
दत्तप्रेङ्खाः क्वचित् स्मेरैः सलीलैर्विटपुंगवैः । विलासिन्यो विराजन्ते गीर्वाणगणिकोपमाः ॥२३॥
रामलक्ष्मणयोर्यानि रचितानि ससीतयोः । क्रीडाधामानि कस्तानि नरो वर्णयितुं क्षमः ॥२४॥
नानाभूषणयुक्ताङ्गौ सुमाल्याम्बरधारिणौ । यथेप्सितकृताहारौ स्त्रिया परमया न्वितौ ॥२५॥
सीता चाखिलदुर्भाग्या दुरितासंगवर्जिता । रमते तत्र चेष्टाभिः शास्त्रदृष्टाभिरुज्ज्वलम् ॥२६॥
तत्र वंशगिरौ राजन् रामेण जगदिन्दुना । निर्मापितानि चैत्यानि जिनेशानां सहस्रशः ॥२७॥
महावष्टम्भसुस्तम्भा युक्तविस्तारतुङ्गताः । गवाक्षहर्म्यवलभीप्रभृत्याकारशोभिताः ॥२८॥
सतोरणमहाद्वाराः सशालाः परिखान्विताः । सितचारुपताकाढ्या बृहद्घण्टारवाचिताः ॥२९॥

थे जो कमलिनीके वनमें बैठे हुए हंसोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥१४॥ श्रीराम जहाँ-जहाँ चरण रखते थे वहाँ-वहाँ पृथिवी तलपर बड़े-बड़े कमल रख दिये गये थे ॥१५॥ जहाँ-तहाँ मणियों और सुवर्णसे चित्रित तथा अतिशय सुखदायक स्पर्शको धारण करनेवाले आसन और सोनेके स्थान बनाये गये थे ॥१६॥ लवंग आदिसे सहित ताम्बूल, उत्तम वस्त्र, महासुगन्धित गन्ध और देदीप्यमान आभूषण जहाँ-तहाँ रखे गये थे ॥१७॥ जो सब ओरसे नाना प्रकारकी भोजन-सामग्रीसे युक्त थीं तथा जिनमें रसोई घर अलगसे बनाया गया था ऐसी सैकड़ों भोजनशालाएँ वहाँ निर्मित की गयी थीं ॥१८॥ वहाँकी भूमि कहीं गुड़, घी और दहीसे पंकिल (कीचसे युक्त) होकर सुशोभित हो रही थी तो कहीं कर्तव्य पालन करनेमें तत्पर आदरसे युक्त मनुष्योंसे सहित थी ॥१९॥ कहीं मधुर आहारसे तृप्त हुए पथिक अपनी इच्छासे बैठे थे तो कहीं निश्चिन्तताके साथ गोष्ठी बनाकर एक दूसरेको प्रसन्न कर रहे थे ॥२०॥ कहीं सेहरेको धारण करनेवाला और मदिराके नशामें झूमते हुए नेत्रोंसे युक्त मनुष्य दिखाई देता था तो कहीं मौलश्रीकी सुगन्धिको धारण करनेवाली नशासे भरी स्त्री दृष्टिगत होती थी ॥२१॥ कहीं नाट्य हो रहा था, कहीं संगीत हो रहा था, कहीं पुण्य चर्चा हो रही थी, और कहीं सुन्दर विलासोंसे सहित स्त्रियाँ पतियोंके साथ क्रीड़ा कर रही थीं ॥२२॥ कहीं मुसकराते तथा लीलासे सहित विट पुरुष जिन्हें धक्का दे रहे थे, ऐसी देव नर्तकियोंके समान वेश्याएँ सुशोभित हो रही थीं ॥२३॥ इस प्रकार सीता सहित राम-लक्ष्मणके जो क्रीड़ास्थल बनाये गये थे उनका वर्णन करनेके लिए कौन मनुष्य समर्थ है ? ॥२४॥ जिनके शरीर नाना प्रकारके आभूषणोंसे सहित थे, जो उत्तमोत्तम मालाएँ और वस्त्र धारण करते थे, जो इच्छानुसार क्रीड़ा करते थे ॥२५॥ और अखण्ड सौभाग्यको धारण करनेवाली तथा पापके समागमसे रहित सीता वहाँ शास्त्र निरूपित चेष्टाओंसे उज्ज्वल क्रीड़ा करती थी ॥२६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! उस वंशगिरिपर जगत्के चन्द्र स्वरूप रामने जिनेन्द्र भगवान्की हजारों प्रतिमाएँ बनवायी थीं ॥२७॥ तथा जिनमें महामजबूत खम्भे लगवाये गये थे, जिनकी चौड़ाई तथा ऊँचाई योग्य थी, जो झरोखे, महलों तथा छपरी आदिकी रचनासे शोभित थे, जिनके बड़े-बड़े द्वार तोरणोंसे युक्त थे, जिनमें अनेक शालाएँ निर्मित थीं, जो परिखासे सहित थे, सफेद और सुन्दर पताकाओंसे युक्त थे, बड़े-बड़े

मृदङ्गवंशमुरजसंगीतोत्तमनिस्वनाः । झर्झरैरानकैः शङ्खभेरीभिश्च महारवाः ॥२०॥
सततारब्धनिःशेषरम्यवस्तुमहोत्सवाः । गिरेस्तुस्तत्र रामीया जिनप्रासादपङ्क्तयः ॥२१॥
रेजिरे प्रतिमास्तत्र सर्वलोकनमस्कृताः । पञ्चवर्णा जिनेन्द्राणां सर्वलक्षणभूषिताः ॥२२॥
अन्यदाथ महीपालरामो राजीवलोचनः । लक्ष्मीधरमुवाचेदं क्रियते किमतः परम् ॥२३॥
इह संप्रेरितः कालः सुखेन परमे गिरौ । जिनचैत्यसमुत्थाना स्थापिता कीर्तिरुज्ज्वला ॥२४॥
अनेन भूभृता श्रेष्ठैरुपचारशतैर्हृताः । अत्रैव [1]यदि तिष्ठामस्तदा कार्यं विनश्यति ॥२५॥
इह तावदलं भोगैरिति चिन्तयतोऽपि मे । न मुञ्चति क्षणमपि [2]प्रवरा भोगसन्ततिः ॥२६॥
इह यत् क्रियते कर्म तत्परत्रोपभुज्यते । पुराकृतानां पुण्यानां इह संपद्यते फलम् ॥२७॥
अस्माकमत्र वसतां बिभ्रतां सुखसंपदम् । अमी ये दिवसा यान्ति न तेषां पुनरागमः ॥२८॥
नदीनां चण्डवेगानामायुषो दिवसस्य च । यौवनस्य च सौमित्रे यद्गतं गतमेव तत् ॥२९॥
नद्याः कर्णरवायास्तु परतो रोमहर्षणम् । श्रूयते दण्डकारण्यं दुर्गमं क्षितिचारिभिः ॥३०॥
[3]भारती न विशत्याज्ञा तस्मिन् जनपदोज्झिते । तत्रार्णवतटं [4]श्रित्वा [5]विदध्मः क्वचिदालयम् ॥३१॥
यदाज्ञापयसीत्युक्ते कुमारेण ससंभ्रमम् । सुरेन्द्रसदृशं भोगं भुक्त्वा ते निर्गतालयः ॥३२॥
अनुगम्य सुतूर्णं तौ बलोपेतः सुरप्रभः । कृच्छ्राच्चिवर्तितस्ताभ्यां शोकी पुरमुपागतः ॥३३॥

घण्टाओंके शब्दसे व्याप्त थे, जिनमें मृदंग, बाँसुरी और मुरजका संगीतमय उत्तम शब्द फैल रहा था, जो झांझों, नगाड़ों, शंखों और भेरियोंके शब्दसे अत्यन्त शब्दायमान थे और जिनमें सदा समस्त सुन्दर वस्तुओंके द्वारा महोत्सव होते रहते थे ऐसे रामके बनवाये जिनमन्दिरोंकी पंक्तियाँ उस पर्वतपर जहाँ-तहाँ सुशोभित हो रही थीं ॥२८-३१॥ उन मन्दिरोंमें सब लोगोंके द्वारा नमस्कृत तथा सब प्रकारके लक्षणोंसे युक्त पंचवर्णकी जिनप्रतिमाएँ सुशोभित थीं ॥३२॥

अथानन्तर एक दिन कमललोचन राजा रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा कि अब आगे क्या करना है ? ॥३३॥ इस उत्तम पर्वतपर समय सुखसे व्यतीत किया तथा जिनमन्दिरोंके निर्माणसे उत्पन्न उज्ज्वल कीर्ति स्थापित की ॥३४॥ इस राजाकी सैकड़ों प्रकारकी उत्तमोत्तम सेवाओंके वशीभूत होकर यदि यहीं रहते हैं तो संकल्पित कार्य नष्ट होता है ॥३५॥ यद्यपि मैं सोचता हूँ कि मुझे इन भोगोंसे प्रयोजन नहीं है तो भी यह उत्तम भोगोंकी सन्तति क्षण भरके लिए भी नहीं छोड़ती है ॥३६॥

जो कर्म इस लोकमें किया जाता है उसका उपभोग परलोकमें होता है और पूर्व भवमें किये हुए पुण्य कर्मोंका फल इस भवमें प्राप्त होता है ॥३७॥ यहाँ रहते तथा सुख-सम्पदाको धारण करते हुए हमारे जो ये दिन बीत रहे हैं उनका फिरसे आगमन नहीं हो सकता ॥३८॥ हे लक्ष्मण ! तीव्र वेगसे बहनेवाली नदियों, आयुके दिन और यौवनका जो अंश चला गया वह चला ही गया फिर लौटकर नहीं आता ॥३९॥ कर्णरवा नदीके उस पार रोमांच उत्पन्न करनेवाला तथा भूमिगोचरियोंका जहाँ पहुँचना कठिन है ऐसा दण्डक वन सुना जाता है ॥४०॥ देशोंसे रहित उस वनमें भरतकी आज्ञाका प्रवेश नहीं है इसलिए वहाँ समुद्रका किनारा प्राप्त कर घर बनावेंगे ॥४१॥ 'जो आज्ञा हो' इस प्रकार लक्ष्मणके कहनेपर राम-लक्ष्मण और सीता तीनों ही इन्द्र सदृश भोग छोड़कर वहाँसे निकल गये ॥४२॥ वंशस्थविलपुरका राजा सुरप्रभ अपनी सेनाके साथ बहुत दूर तक उन्हें पहुँचानेके लिए गया। राम-लक्ष्मण उसे बड़ी कठिनाईसे लौटा सके। तदनन्तर शोकको धारण करता हुआ वह अपने नगरमें वापस आया ॥४३॥

---

१. हृदि म. । २. प्रवरो म. । ३. भरत संबन्धिनी । ४. तटं च्युत्वा म. (?) । ५. भुक्त्वा म. ।

उपजातिवृत्तम्

एषोऽपि तुङ्गः परमो महीध्रः श्रीमन्मिसम्बो बहुधातुसानुः ।
विलम्बतीभिः ककुभां समूहं भासाचकाज्जैनगृहावलीभिः ॥४४॥
रामेण यस्मात्परमाणि तस्मिन् जैनानि वेश्मानि विधापितानि ।
निर्नष्टवंशाद्रिवचाः स तस्माद्विभ्रमो रामगिरिः प्रसिद्धः ॥४५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते रामगिर्युपाख्यानं नाम चत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४०॥

□

इधर जिसकी मेखलाएँ शोभासे सम्पन्न थीं, तथा जिसके शिखर अनेक धातुओंसे युक्त थे ऐसा यह ऊँचा उत्तम पर्वत दिशाओंके समूहको लिप्त करनेवाली जिनमन्दिरोंकी पंक्तिसे अतिशय सुशोभित होता था ॥४४॥ चूँकि उस पर्वतपर रामचन्द्रने जिनेन्द्र भगवान्‌के उत्तमोत्तम मन्दिर बनवाये थे इसलिए उसका वंशाद्रि नाम नष्ट हो गया और सूर्यके समान प्रभाको धारण करनेवाला वह पर्वत 'रामगिरि'के नामसे प्रसिद्ध हो गया ॥४५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरितमें रामगिरिका वर्णन करनेवाला चालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४०॥

□

---

१. अचकात् शुशुभे ।

एकचत्वारिंशत्तमं पर्व

अथानरण्यनक्षारौ श्रीमन्तौ सीतयान्वितौ । दिदृक्षू दक्षिणाम्भोधिमायातां [1]सुखमागिनौ ॥१॥
पुरग्रामसमाकीर्णमतीत्य विषयान् बहून् । प्रविष्टौ तौ महारण्यं नानामृगसमाकुलम् ॥२॥
यस्मिन्न विद्यते पन्थाः स्थानं नार्यनिषेवितम् । पुलिन्दानामपि प्रायो दुश्चरं यक्षगाकुलम् ॥३॥
नानावृक्षलताकीर्णं महाविषमगह्वरम् । गुहान्धकारगम्भीरं वहद्भिर्झरनिस्वनम् ॥४॥
क्रोशं क्रोशं शनैस्तत्र गच्छन्तौ जानकीवशात् । निर्भयौ क्रीडनोद्युक्तौ प्राप्तौ कर्णरवां नदीम् ॥५॥
यस्यास्तटानि रम्याणि तृणैर्युक्तानि भूरिभिः । [2]समान्यायतदेशानि स्पर्शं बिभ्रति सौख्यदम् ॥६॥
अनत्युच्चैर्घनच्छायैः फलपुष्पविभूषितैः । रेजुस्तटद्रुमैस्तस्याः समीपधरणीधराः ॥७॥
वनमेतदलं चारु नदी चेति [3]निरूप्य तौ । रम्ये तत्र तरुच्छायेऽवस्थितौ सीतयान्वितौ ॥८॥
क्षणं स्थित्वाऽतिरम्याणि सैकतान्यवगाह्य च । जलावगाहनं चक्रुस्ते रम्यक्रीडयोचितम् ॥९॥
ततो मृष्टानि पक्वानि फलानि कुसुमानि च । यथेच्छमुपभुक्तानि तैः सुखं कृतसंकथैः ॥१०॥
तत्र भाण्डोपकरणं सकलं कर्कशासुतः । [4]मृदाबर्हैः पलाशैश्च विविधैराशु निर्ममे ॥११॥
अमीषु स्वादुचारूणि फलानि सुरभीनि च । वनजानि च सस्यानि राजपुत्री समस्करोत् ॥१२॥
अन्यदातिथिवेलायां गगनाङ्गणचारिणौ । प्रभापटलसंवीतविग्रहौ चारुदर्शनौ ॥१३॥

अथानन्तर जिन्हें दक्षिण समुद्र देखनेकी इच्छा थी तथा जो निरन्तर सुख भोगते आते थे ऐसे श्रीमान् राम-लक्ष्मण सीताके साथ नगर और ग्रामोंसे व्याप्त बहुत देशोंको पार कर नाना प्रकारके मृगोंसे व्याप्त महावनमें प्रविष्ट हुए ॥१-२॥ ऐसे सघन वनमें प्रविष्ट हुए जिसमें मार्ग ही नहीं सूझता था, उत्तम मनुष्योंके द्वारा सेवित एक भी स्थान नहीं था, वनचारी भीलोंके लिए भी जहाँ चलना कठिन था, जो पर्वतोंसे व्याप्त था, नाना प्रकारके वृक्ष और लताओंसे सघन था, जिसमें अत्यन्त विषम गर्त थे, जो गुहाओंके अन्धकारसे गम्भीर जान पड़ता था, और जहाँ झरने तथा अनेक नदियाँ बह रही थीं ॥३-४॥ उस वनमें वे जानकीके कारण धीरे-धीरे एक कोश ही चलते थे। इस तरह भयसे रहित तथा क्रीड़ा करनेमें उद्यत दोनों भाई उस कर्णरवा नदीके पास पहुँचे ॥५॥ जिसके कि किनारे अत्यन्त रमणीय, बहुत भारी तृणोंसे व्याप्त, समान, लम्बे-चौड़े और सुखकारी स्पर्शको धारण करनेवाले थे ॥६॥ उस कर्णरवा नदीके समीपवर्ती पर्वत, किनारेके उन वृक्षोंसे सुशोभित थे जो ज्यादा ऊँचे तो नहीं थे पर जिनकी छाया अत्यन्त घनी थी तथा जो फल और फूलोंसे युक्त थे ॥७॥ यह वन तथा नदी दोनों ही अत्यन्त सुन्दर हैं ऐसा विचारकर वे एक वृक्षकी मनोहर छायामें सीताके साथ बैठ गये ॥८॥ क्षण-भर वहाँ बैठकर तथा मनोहर किनारोंपर अवगाहन कर वे सुन्दर क्रीड़ाके योग्य जलावगाहन करने लगे अर्थात् जलके भीतर प्रवेश कर जलक्रीड़ा करने लगे ॥९॥ तदनन्तर परस्पर सुखकारी कथा करते हुए उन सबने वनके पके मधुर फल तथा फूलोंका इच्छानुसार उपभोग किया ॥१०॥ वहाँ लक्ष्मणने नाना प्रकारकी मिट्टी, बाँस तथा पत्तोंसे सब प्रकारके बरतन तथा उपयोगी सामान शीघ्र ही बना लिया ॥११॥ इन सब बरतनोंमें राजपुत्री सीताने स्वादिष्ट तथा सुन्दर फल और वनकी सुगन्धित धानके भोजन बनाये ॥१२॥

किसी एक दिन अतिथि प्रेक्षणके समय सीताने सहसा सामने आते हुए सुगुप्ति और गुप्ति

---

१. सुखभोगिनौ म. । २. सामान्यायत-म. । ३. चैतौ निरूपितौ म. । ४. मृदाबर्हैः म. ।

ज्ञानत्रितयसंपन्नौ महाव्रतपरिग्रहौ । परेण तपसा युक्तौ दुरुत्सृष्टहासुकमानसौ ॥१४॥
मासोपवासिनौ वीरौ गुण्यौ शुभसमाहितौ । यच्छन्तौ नयनानन्दं[1] बुधचन्द्रमसाविव ॥१५॥
मुनी सुगुप्तिगुप्ताख्यावायान्तौ संमुखं मुदः[2] । यथोक्ताचारसंपन्नौ सहसा सीतयेक्षितौ ॥१६॥
ततः प्रमदसंभारविकसन्नेव[3] शोभया । दयिताय तया ख्यातमिति रोमांचिताङ्गया ॥१७॥
पश्य पश्य नरश्रेष्ठ ! तपसा कृशविग्रहम् । दैगम्बरं परिश्रान्तं मदन्तयुगलं शुभम् ॥१८॥
क्व तत् क्व तत्प्रिये साध्वि पण्डिते चारुदर्शने । निर्ग्रन्थयुगलं दृष्टं भवत्या गुणमण्डने ॥१९॥
यन्निरीक्ष्य वरारोहे सुचिरं पापमर्जितम् । क्षणात् प्रणाशमायाति जनानां भक्तचेतसाम् ॥२०॥
इत्युक्ते रघुचन्द्रेण सीतोवाच ससम्भ्रमा । इमाविमाविति प्रोच्य स तदाभूत् समाकुलः ॥२१॥
ततो युगमितक्षोणीदेशविन्यस्तलोचनौ । मुनी प्रशान्तगमनौ सुसमाहितविग्रहौ ॥२२॥
अभ्युत्थानाभियानाभिस्तुष्टः[4] प्रणमनादिभिः । दम्पतीभ्यां कृतावेतौ पुण्यनिर्झरपर्वतौ ॥२३॥
शुच्यङ्गया च वैदेह्या महाश्रद्धापरीतया । परिविष्टं तयोः[5] भ्रातं रमणेन समेतया ॥२४॥
ग्रामारण्यजातानां महिषीणां च धारणा । हैयङ्गवीनमिश्रेण पयसा तरसमुद्भवैः ॥२५॥
खर्जूरैरिक्षुदैराम्रैर्नालिकेरै रसान्वितैः । बदराम्लातकाद्यैश्च वैदेह्या सुप्रसाधितैः ॥२६॥
आहार्यैर्विविधैः[6] शास्त्रदृष्टिशुद्धिसमन्वितैः । पारणां चक्रतुर्गुप्तासंबन्धोज्झितचेतसौ ॥२७॥

नामके दो मुनि देखे। वे मुनि आकाशांगणमें विहार कर रहे थे, कान्तिके समूहसे उनके शरीर व्याप्त थे, वे बहुत ही सुन्दर थे, मति-श्रुत-अवधि इन तीन ज्ञानोंसे सहित थे, महाव्रतोंके धारक थे, परम तपसे युक्त थे, खोटी इच्छाओंसे उनके मन रहित थे, उन्होंने एक मासका उपवास किया था, वे धीर-वीर थे, गुणोंसे सहित थे, शुभ चेष्टाके धारक थे, बुध और चन्द्रमाके समान नेत्रोंको आनन्द प्रदान करते थे और यथोक्त आचारसे सहित थे ॥१३-१६॥ तदनन्तर हर्षके भारसे जिसके नेत्रोंकी शोभा विकसित हो रही थी तथा जिसके शरीरमें रोमांच उठ रहे थे ऐसी सीताने रामसे कहा कि हे नरश्रेष्ठ ! देखो देखो, तपसे जिनका शरीर कृश हो रहा है तथा जो अतिशय थके हुए मालूम होते हैं, ऐसे दिगम्बर मुनियोंका यह युगल देखो। ॥१७-१८॥ रामने सम्भ्रममें पड़कर कहा कि हे प्रिये ! हे साध्वि ! हे पण्डिते ! हे सुन्दरदर्शने ! हे गुणमण्डने ! तुमने निर्ग्रन्थ मुनियोंका युगल कहाँ देखा ? कहाँ देखा ? ॥१९॥ वह युगल कि जिसके देखनेसे हे सुन्दरि ! भक्त मनुष्योंका चिरसंचित पाप क्षण-भरमें नष्ट हो जाता है ॥२०॥ रामके इस प्रकार कहनेपर सीताने सम्भ्रम पूर्वक कहा कि 'ये हैं, ये हैं' । उस समय राम कुछ आकुलताको प्राप्त हुए ॥२१॥

तदनन्तर युग प्रमाण पृथिवीमें जिनकी दृष्टि पड़ रही थी, जिनका गमन अत्यन्त शान्ति-पूर्ण था और जिनके शरीर प्रमादसे रहित थे, ऐसे दो मुनियोंको देखकर दम्पती अर्थात् राम और सीताने उठकर खड़े होना, सम्मुख जाना, स्तुति करना, और नमस्कार करना आदि क्रियाओंसे उन दोनों मुनियोंको पुण्यरूपी निर्झरके झरानेके लिए पर्वतके समान किया था ॥२२-२३॥ जिसका शरीर पवित्र था, तथा जो अतिशय श्रद्धासे युक्त थी ऐसी सीताने पतिके साथ मिलकर दोनों मुनियोंके लिए भोजन परोसा-आहार प्रदान किया ॥२४॥ वह आहार वनमें उत्पन्न हुई गायों और भैंसोंके ताजे और मनोहर घी, दूध तथा उनसे निर्मित अन्य मावा आदि पदार्थोंसे बना था ॥२५॥ खजूर, ईख, आम, नारियल, रसदार बेर तथा भिलामा आदि फलोंसे निर्मित था ॥२६॥ इस प्रकार शास्त्रोक्त शुद्धिसे सहित नाना प्रकारके खाद्य पदार्थोंसे उन मुनियोंने पारणा की। उन

---

१. नन्दो म. । २. भुवा म., ख. । ३. विकशन्नेव म. । ४. यानाभिस्तुष्टः प्रणयनादिभिः म., यानाभितुष्टि प्रणयनादिभिः ब. । ५. भोजनं । ६. दृष्टिताडिताः म. ।

एवं च पर्युपास्यैतौ मुनी रामः प्रियान्वितः । समस्तभावसंभारकृतनिर्मन्यमानसः ॥२८॥
तावद्दुन्दुभयो मेघुर्गगनेऽदृष्टताडिताः । ववौ समीरणः स्वैरं घ्राणरञ्जनकारणम् ॥२९॥
साधु साध्विति देवानां मधुरो निस्वनोऽभवत् । ववर्ष पञ्चवर्णानि कुसुमानि नभस्तलम्[1] ॥३०॥
पात्रदानानुभावेन दिव्या सकलवर्णिका । पूरयन्ती नभोऽप्यन्तर्सुधारा महाद्युतिः ॥३१॥
अथात्रैव वनोद्देशे गहनस्य महातरोः । निषण्णोऽग्रे महागृध्रः स्वेच्छयावस्थितोऽभवत् ॥३२॥
स दृष्ट्वातिशयोपेतौ मुनी कर्मानुभावतः । अहुगाम्भवान् स्मृत्वा तत्तदैवमचिन्तयत् ॥३३॥
मनुष्यभावसुकरं प्रमत्तेन मया पुरा । विवेकिनापि न कृतं तपो धिग्मामचेतनम् ॥३४॥
भाव प्रतप्यसे किं त्वमधुना पापचेष्टितः । कमुपायं करोम्येतां कुत्सितां योनिमागतः ॥३५॥
अनुकूलारिभिः पापैर्मित्रशब्दनधारिभिः[2] । प्रेरितेन सता त्यक्तं धर्मरत्नं सदा मया ॥३६॥
सुभूरिचरितं पापमपकर्ष्यं गुरूदितम् । मोहध्वान्तपरीतेन दग्धं यदधुना स्मरन् ॥३७॥
न किंचिदत्र बहुना चिन्तितेन प्रयोजनम् । गतिरन्या न मे लोके विद्यते दुःखसंक्षये ॥३८॥
एतौ प्रयामि शरणं साधू सर्वसुखावहौ । इतो मे परमार्थस्य प्राप्तिः संजायते ध्रुवम् ॥३९॥
इति पूर्वभवध्यानात् परमं शोकमागतः । दर्शनाच्च महासाधोः प्रमोदं परमाप्तवान् ॥४०॥
विधूय पक्षयुगलमश्रुसंपूर्णलोचनः । पपात शाखिनो मूर्ध्नः प्रश्रयान्वितविभ्रमः ॥४१॥
नागाः सिंहादयोऽप्यत्र नादेन महतामुना । विद्रुद्रुवुरयं दुष्टः कथं तु न खगाधमः ॥४२॥

मुनियोंके चित्त भोजन विषयक गृद्धताके सम्बन्धसे रहित थे ॥२७॥ इस प्रकार समस्त भावोंसे मुनियोंका सन्मान करनेवाले राम इन दोनों मुनियोंकी सेवा कर सीताके साथ बैठे ही थे कि उसी समय आकाशमें अदृष्टजनोंसे ताडित दुन्दुभि बाजे बजने लगे, घ्राण इन्द्रियको प्रसन्न करनेवाली वायु धीरे-धीरे बहने लगी, 'धन्य, धन्य' इस प्रकार देवोंका मधुर शब्द होने लगा, आकाश पाँच वर्णके फूल बरसाने लगा और पात्रदानके प्रभावसे आकाशको व्याप्त करनेवाली, महाकान्तिकी धारक, सब रंगोंकी दिव्यरत्न वृष्टि होने लगी ॥२८-३१॥

अथानन्तर वनके इसी स्थानमें सघन महावृक्षके अग्रभागपर एक बड़ा भारी गृध्र पक्षी स्वेच्छासे बैठा ॥३२॥ सो अतिशय पूर्ण दोनों मुनिराजोंको देखकर कर्मोदयके प्रभावसे उसे अपने अनेक भव स्मृत हो उठे । वह उस समय इस प्रकार विचार करने लगा ॥३३॥ कि यद्यपि मैं पूर्व पर्यायमें विवेकी था तो भी मैंने प्रमादी बनकर मनुष्य भवमें करने योग्य तपश्चरण नहीं किया अतः मुझ अविवेकीको धिक्कार हो ॥३४॥ हे हृदय ! अब क्यों सन्ताप कर रहा है ? इस समय तो इस कुयोनिमें आकर पाप चेष्टाओंमें निमग्न हूँ अतः क्या उपाय कर सकता हूँ ? ॥३५॥ मित्र संज्ञाको धारण करनेवाले तथा अनुकूलता दिखानेवाले पापी वैरियोंसे प्रेरित हो मैंने सदा धर्मरूपी रत्नका परित्याग किया है ॥३६॥ मोहरूपी अन्धकारसे व्याप्त होकर मैंने गुरुओंका उपदेश न सुन जिस अत्यधिक पापका आचरण किया है उसे आज स्मरण करता हुआ ही जल रहा हूँ ॥३७॥ अथवा इस विषयमें बहुत विचार करनेसे कुछ भी प्रयोजन नहीं है क्योंकि दुःखोंका क्षय करनेके लिए लोकमें मेरी दूसरी गति नहीं है—अन्य उपाय नहीं है । मैं तो सब जीवोंको सुख देनेवाले इन्हीं दोनों मुनियोंकी शरणको प्राप्त होता हूँ । इनसे निश्चित ही मुझे परमार्थकी प्राप्ति होगी ॥३८-३९॥ इस प्रकार पूर्वभवका स्मरण होनेसे जो परम शोकको प्राप्त हुआ था तथा महामुनियों-के दर्शनसे जो अत्यधिक हर्षको प्राप्त था ऐसा शीघ्रतासे सहित, अश्रुपूर्ण नेत्रोंका धारक, एवं विनयपूर्ण चेष्टाओंसे सहित वह गृध्र पक्षी दोनों पंख फड़फड़ाकर वृक्षके शिखरसे नीचे आया

---

१. नभस्तलं म. । २. शब्देन वारिभिः म. । ३. मेव ध्यानात् म. ।

हा मातः पश्यतामुष्य धाष्ट्यं गृध्रस्य पापिनः । चिन्तयित्वेति वैदेह्या कोपाकुलितचित्तया ॥४३॥
वार्यमाणोऽपि यत्नेन कृतनिष्ठुरशब्दया । मुनिपादोदकं पक्षी सोत्साहः पातुमुद्यतः ॥४४॥
पादोदकप्रभावेण शरीरं तस्य तत्क्षणम् । रत्नराशिसमं जातं परीतं चित्रतेजसा ॥४५॥
जातौ हेमप्रभौ पक्षौ पादौ वैडूर्यसन्निभौ । नानारत्नच्छविर्देहश्चञ्चुर्विद्रुमविभ्रमा ॥४६॥
ततः स्वमन्यथाभूतमवलोक्य सुसंमदः । विमुञ्चन्मधुरं नादं नर्तितुं स समुद्यतः ॥४७॥
देवदुन्दुभिनादोऽसावेव तस्यातिसुन्दरम् । आतोद्यत्वं परिप्राप्तः स्वां[2] च वाणीं सुतेजसः ॥४८॥
मुञ्चन्नानन्दनेत्राम्भश्चक्रीकृत्य गुरुद्वयम् । शुशुभे कृतनृत्योऽसौ शिखी मेघागमे यथा ॥४९॥
विधिना पारणां[3] कृत्वा मुनी कृतयथोचितौ । वैडूर्यसदृशे राजन्नुपविष्टौ शिलातले ॥५०॥
पद्मरागाभनेत्रश्च पक्षी संकुचितच्छदः । प्रणम्य पादयोः साधोः सुखं तस्थौ कृताञ्जलिः ॥५१॥
क्षणादग्निमिवालोक्य ज्वलन्तं तेजसा खगम् । पद्मो विकचपद्माक्षो विस्मयं परमं गतः ॥५२॥
प्रणम्य पादयोः साधुं गुणशीलविभूषणम् । अपृच्छदिति विन्यस्य मुहुर्नेत्रे पतत्रिणि ॥५३॥
भगवन्नयमत्यन्तं विरूपावयवः पुरा । कथं क्षणेन संजातो हेमरत्नचयच्छविः ॥५४॥
अशुचिः सर्वमांसादी गृध्रोऽयं दुष्टमानसः । निषद्य पादयोः प्राप्तस्तव कस्मादवस्थितः ॥५५॥
सुगुप्तिश्रमणोऽवोचद् राजन् पूर्वमिहाभवत् । देशो जनपदाकीर्णो विषयः सुन्दरो महान् ॥५६॥

॥४०-४१॥ यहाँ इस अत्यधिक कोलाहलसे हाथी तथा सिंहादिक बड़े-बड़े जन्तु तो भाग गये पर यह दुष्ट नीच पक्षी क्यों नहीं भागा। हा मातः! इस पापी गृध्रकी धृष्टता तो देखो; इस प्रकार विचारकर जिसका चित्त क्रोधसे आकुलित हो रहा था तथा जिसने कठोर शब्दोंका उच्चारण किया था ऐसी सीताने यद्यपि प्रयत्नपूर्वक उस पक्षीको रोका था तथापि वह बड़े उत्साहसे मुनिराजके चरणोदकको पीने लगा ॥४२-४४॥ चरणोदकके प्रभावसे उसका शरीर उसी समय रत्नराशिके समान नाना प्रकारके तेजसे व्याप्त हो गया ॥४५॥ उसके दोनों पंख सुवर्णके समान हो गये, पैर नील मणिके समान दिखने लगे, शरीर नाना रत्नोंकी कान्तिका धारक हो गया और चोंच मूँगाके समान दिखने लगी ॥४६॥ तदनन्तर अपने आपको अन्य रूप देख वह अत्यन्त हर्षित हुआ और मधुर शब्द छोड़ता हुआ नृत्य करनेके लिए उद्यत हुआ ॥४७॥ उस समय जो देव-दुन्दुभिका नाद हो रहा था वही उस तेजस्वीकी अपनी वाणीसे मिलता-जुलता अत्यन्त सुन्दर बाजेका काम दे रहा था ॥४८॥ दोनों मुनियोंकी प्रदक्षिणा देकर हर्षाश्रुको छोड़ता हुआ वह नृत्य करनेवाला गृध्र पक्षी वर्षा ऋतुके मयूरके समान सुशोभित हो रहा था ॥४९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! जिनका यथोचित सत्कार किया गया था ऐसे दोनों मुनिराज विधिपूर्वक पारणा कर वैडूर्यमणिके समान जो शिलातल था उसपर विराजमान हो गये ॥५०॥ और पद्मराग मणिके समान नेत्रोंका धारक गृध्र पक्षी भी अपने पंख संकुचित कर तथा मुनिराजके चरणोंमें प्रणाम कर अंजली बाँध सुखसे बैठ गया ॥५१॥ विकसित कमलके समान नेत्रोंको धारण करनेवाले राम, क्षण-भरमें तेजसे जलती हुई अग्निके समान उस गृध्र पक्षीको देखकर परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥५२॥ उन्होंने पक्षीपर बार-बार नेत्र डालकर तथा गुण और शीलरूपी आभूषणको धारण करनेवाले मुनिराजके चरणोंमें नमस्कार कर उनसे इस प्रकार पूछा कि हे भगवन्! यह पक्षी पहले तो अत्यन्त विरूप शरीरका धारक था पर अब क्षण-भरमें सुवर्ण तथा रत्नराशिके समान कान्तिका धारक कैसे हो गया? ॥५३-५४॥ महाअपवित्र, सब प्रकारका मांस खानेवाला तथा दुष्ट हृदयका धारक यह गृध्र आपके चरणोंमें बैठकर अत्यन्त शान्त कैसे हो गया है? ॥५५॥

तदनन्तर सुगुप्ति नामक मुनिराज बोले कि हे राजन्! पहले यहाँ नाना जनपदोंसे व्याप्त

१. सुन्दरौ म.। २. त्वां म.। ३. पारणं म.।

पत्तनग्रामसंवाहभटम्बपुटभेदनैः । घोषद्रोणमुखाद्यैश्च नानिवेशैर्विराजितः ॥५७॥
कर्णकुण्डलनामात्र पुरमासीन् मनोहरम् । तस्मिन्नयमभूद्राजा प्रतापपरमोदयः ॥५८॥
घण्डविक्रमसंपन्नो भग्नशात्रवकण्टकः । दण्डो मानमयः ख्यातो दण्डको नाम साधनी ॥५९॥
घृतार्थिना जलं तेन मथितं रघुनन्दन । धर्मश्रद्धापरीतेन धृतः पाषागमो धिया ॥६०॥
देवी मस्करिणां तस्य [1]वरिवस्या परामवत् । तेषामसावधीशेन संभोगं समुपागता[2] ॥६१॥
सोऽपि तस्याः परं वश्यस्तामेव दिशमाश्रयत् । स्त्रीचित्तहरणोद्युक्ताः किं न कुर्वन्ति मानवाः ॥६२॥
निष्क्रान्तेनान्यदा तेन नगरात् साधुरीक्षितः । प्रलम्बितभुजः श्रीमान् ध्यानसंरुद्धमानसः ॥६३॥
कृष्णसर्पो मृतस्तस्य [3]दिग्धाङ्गो विषलालया । कण्ठे निधापितस्तेन आवदाख्यचेतसा ॥६४॥
यावदेषोऽपनीतो न प्रदातुर्गम केनचित् । तावच्च संहरेयोगमिति ध्यात्वा मुनिः स्थितः ॥६५॥
अतीते गणरात्रे च पुनस्तेनैव वर्त्मना । निष्क्रामन् पार्थिवोऽपश्यत्तद्वत्स्थं महामुनिम् ॥६६॥
ऋजुनैव च रूपेण गत्वा निकटतां भृशम् । अपृच्छदपनेतारं किमेतदिति सोऽवदत् ॥६७॥
नरेन्द्र पश्य केनापि [4]नरकावासमार्गिणा । योगस्थस्य मुनेरस्य कण्ठे सर्पः समर्पितः ॥६८॥
यस्य सर्पस्य संपर्कात् विग्रहस्य समुद्गतम् । प्रतिबिम्बं शितिच्छिन्नं दुर्दर्शमतिभीषणम् ॥६९॥
मुनिं निःप्रतिकर्माणं दृष्ट्वा राजा तथाविधम् । प्रणम्याक्षमयद्यातस्ते च स्थानं यथोचितम् ॥७०॥
ततः प्रभृति सञ्जोऽसौ कर्तुं भक्तिमनुत्तमाम् । निरम्बरमुनीन्द्राणां वारितोपद्रवक्रियः ॥७१॥

एक बहुत बड़ा सुन्दर देश था ॥५६॥ जो पत्तन, ग्राम, संवाह, भटम्ब, पुटभेदन, घोष और द्रोणमुख आदि रचनाओंसे सुशोभित था ॥५७॥ इसी देशमें एक कर्णकुण्डल नामका मनोहर नगर था जिसमें यह परम प्रतापी राजा था। यह तीव्र पराक्रमसे युक्त, शत्रुरूपी कण्टकोंको भग्न करनेवाला, महामानी एवं साधनसम्पन्न दण्डक नामका धारक था ॥५८-५९॥ हे रघुनन्दन! धर्मकी श्रद्धासे युक्त इस राजाने पापपोषक शास्त्रको समझकर बुद्धिपूर्वक धारण किया सो मानो इसने घृतकी इच्छासे जलका ही मन्थन किया ॥६०॥ राजा दण्डककी जो रानी थी वह परिव्राजकोंकी बड़ी भक्त थी क्योंकि परिव्राजकोंके स्वामीके द्वारा वह उत्तम भोगको प्राप्त हुई थी ॥६१॥ राजा दण्डक रानीके वशीभूत था इसलिए यह भी उसी दिशाका आश्रय लेता था, सो ठीक ही है क्योंकि स्त्रियोंका चित्त हरण करनेमें उद्यत मनुष्य क्या नहीं करते हैं? ॥६२॥ एक दिन राजा नगरसे बाहर निकला वहाँ उसने एक ऐसे साधुको देखा जो अपनी भुजाएँ नीचे लटकाये हुए थे, वीतराग लक्ष्मीसे सहित थे तथा जिनका मन ध्यानमें रुका हुआ था ॥६३॥ पाषाणके समान कठोर चित्तके धारक राजाने उन मुनिके गलेमें, विषमिश्रित लारसे जिसका शरीर व्याप्त था ऐसा एक मरा हुआ काला साँप डलवा दिया ॥६४॥ 'जबतक इस साँपको कोई अलग नहीं करता है तबतक मैं योगको संकुचित नहीं करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा कर वह मुनि उसी स्थानपर खड़े रहे ॥६५॥ तदनन्तर बहुत रात्रियाँ व्यतीत हो जानेके बाद उसी मार्गसे निकले हुए राजाने उन महामुनिको उसी प्रकार ध्यानारूढ़ देखा ॥६६॥ उसी समय कोई मनुष्य मुनिराजके गलेसे साँप अलग कर रहा था। राजा मुनिराजकी सरलतासे आकृष्ट हो उनके पास गया और साँप निकालनेवाले मनुष्यसे पूछता है कि 'यह क्या है?' इसके उत्तरमें वह मनुष्य कहता है कि राजन्! देखो, नरककी खोज करनेवाले किसी मनुष्यने इन ध्यानारूढ़ मुनिराजके गलेमें साँप डाल रखा है ॥६७-६८॥ जिस साँपके सम्पर्कसे इनके शरीरकी आकृति श्याम, खेदखिन्न, दुर्दर्शनीय तथा अत्यन्त भयंकर हो गयी है ॥६९॥ कुछ भी प्रतिकार नहीं करनेवाले मुनिको उसी प्रकार ध्यानारूढ़ देख राजाने प्रणाम कर उनसे क्षमा माँगी और तदनन्तर वह यथास्थान चला गया ॥७०॥ उस समयसे राजा दिगम्बर मुनियोंकी उत्तम भक्ति करनेमें तत्पर हो गया और उसने मुनियोंके सब उपद्रव—कष्ट दूर कर

---

१. वरिवस्या क., ख., ग. । २. समुपागतः म. । ३. लिप्तशरीरः । ४. नगरावास- म. ।

देवीविटपरिव्राजा[1] ज्ञात्वान्यविषयं नृपम्। इदं क्रोधपरीतेन विधातुमभिवाञ्छितम् ॥७२॥
जीवितस्नेहमुत्सृज्य परदुःखाहितात्मकः। निर्ग्रन्थरूपमादेव्याः संपर्कमभजत् पुनः ॥७३॥
ज्ञात्वा तदीदृशं कर्म राज्ञातिक्रोधमीयुषा। अमात्यादुपदेशं च स्मृत्वा निर्ग्रन्थनिन्दनम् ॥७४॥
क्रूरकर्मभिरन्यैश्च प्रेरितः श्रमणाहितैः। आज्ञापयत् महर्षीणां यन्त्रनिष्पीडने नरान् ॥७५॥
गणाधिपसमेतोऽसौ समूहोऽम्बरवाससाम्[2]। यन्त्रनिष्पीडनैर्नीतः पञ्चतां पापकर्मणा ॥७६॥
बाह्यभूमिगतस्तत्र दृष्टिरेकः समाव्रजन्। इत्यवार्यत लोकेन केनचित् करुणावता ॥७७॥
भो भो निर्ग्रन्थ मागास्त्वं पूर्वनैर्ग्रन्थ्यमाश्रयन्। यन्त्रेणापीड्यसे तत्र हुतं कुरु पलायनम् ॥७८॥
यन्त्रेषु श्रमणाः सर्वे राज्ञा क्रुद्धेन पीडिताः। मागास्त्वमप्यवस्थां तां रक्ष धर्माश्रयं वपुः ॥७९॥
ततः क्षणमसौ संघमृत्युदुःखेन शल्यितः। वज्रस्तम्भ इवाकम्पस्तस्थावव्यक्तचेतनः ॥८०॥
अथास्य शान्तदुःखेन प्रेरितः श्रमणाद्रितः। निरगाद्बहिरस्य निरगात् क्रोधकेसरी ॥८१॥
रक्ताशोकप्रकाशेन निखिलं तस्य चक्षुषः। तेजसा विहितं व्योम संध्यासमयमिवाभवत् ॥८२॥
कोपेन तप्यमानस्य मुनेः सर्वत्र विग्रहे। प्रस्वेदबिन्दवो जाताः प्रतिबिम्बितविष्टपाः ॥८३॥
ततः कालानलाकारो बहुलः कुटिलः पृथुः। हाकारेण मुखात्तस्य निरगात् पावकध्वजः[3] ॥८४॥
अनुलग्नश्च तस्याग्निरुज्जगाम निरन्तरम्। कृतं नभस्तलं येन निरिन्धनविदीपितम् ॥८५॥

दिये ॥७१॥ रानीके साथ गुप्त समागम करनेवाले परिव्राजकोंके अधिपतिने जब राजाके इस परिवर्तनको जाना तब क्रोधसे युक्त होकर उसने यह करनेकी इच्छा की ॥७२॥ दूसरे प्राणियोंको दुःख देनेमें जिसका हृदय लग रहा था ऐसे उस परिव्राजकने जीवनका स्नेह छोड़ निर्ग्रन्थ मुनिका रूप धर रानीके साथ सम्पर्क किया ॥७३॥ जब राजाको इस कार्यका पता चला तब वह अत्यन्त क्रोधको प्राप्त हुआ। मन्त्री आदि अपने उपदेशमें निर्ग्रन्थ मुनियोंकी जो निन्दा किया करते थे वह सब इसकी स्मृतिमें झूलने लगा ॥७४॥ उसी समय मुनियोंसे द्वेष रखनेवाले अन्य दुष्ट लोगोंने भी राजाको प्रेरित किया जिससे उसने अपने सेवकोंके लिए समस्त मुनियोंको घानीमें पेलनेकी आज्ञा दे दी ॥७५॥ जिसके फलस्वरूप गणनायकके साथ-साथ जितना मुनियोंका समूह था वह सब, पापी मनुष्योंके द्वारा घानीमें पिलकर मृत्युको प्राप्त हो गया ॥७६॥ उस समय एक मुनि कहीं बाहर गये थे जो लौटकर उसी नगरीकी ओर आ रहे थे। उन्हें किसी दयालु मनुष्यने यह कहकर रोका कि हे निर्ग्रन्थ! हे दिगम्बरमुद्राके धारी! तुम अपने पहलेका निर्ग्रन्थवेष धारण करते हुए नगरीमें मत जाओ, अन्यथा घानीमें पेल दिये जाओगे, शीघ्र ही यहाँसे भाग जाओ ॥७७–७८॥ राजाने क्रुद्ध होकर समस्त निर्ग्रन्थ मुनियोंको घानीमें पिलवा दिया है तुम भी इस अवस्थाको प्राप्त मत होओ, धर्मका आश्रय जो शरीर है उसकी रक्षा करो ॥७९॥

तदनन्तर समस्त संघकी मृत्युके दुःखसे जिन्हें शल्य लग रही थी ऐसे वे मुनि क्षण-भरके लिए व्रजके स्तम्भकी नाईं अकम्प—निश्चल हो गये। उस समय उनकी चेतना अव्यक्त हो गयी थी अर्थात् यह नहीं जान पड़ता था कि जीवित है या मृत? ॥८०॥ अथानन्तर उन निर्ग्रन्थ मुनिरूपी पर्वतकी शान्तिरूपी गुफासे सैकड़ों दुःखोंसे प्रेरित हुआ क्रोधरूपी सिंह बाहर निकला ॥८१॥ उनके नेत्रके अशोकके समान लाल-लाल तेजसे आकाश ऐसा व्याप्त हो गया मानो उसमें सन्ध्या ही व्याप्त हो गयी हो ॥८२॥ क्रोधसे तपे हुए मुनिराजके समस्त शरीरमें स्वेदकी बूँदें निकल आयीं और उनमें लोकका प्रतिबिम्ब पड़ने लगा ॥८३॥ तदनन्तर उन मुनिराजने मुखसे 'हा' शब्दका उच्चारण किया उसीके साथ मुखसे धुआँ निकला जो कालाग्निके समान अत्यधिक कुटिल और विशाल था ॥८४॥ उस धुआँके साथ ऐसी ही निरन्तर अग्नि निकली कि जिसने ईंधनके बिना ही समस्त

---

१. विटपरिव्राजी म.। २. वरवाससाम् म.। ३. अग्निः।

उल्काभिर्नु जगद्व्याप्तं ज्योतिर्देवाः पतन्ति नु । महाप्रलयकालो नु वह्निदेवा नु कोपिताः ॥८६॥
हा हा मातः किमेतन्नु तापोऽयमतिदुस्सहः । चञ्चुत्पाट्यते दीर्घसंदंशैरिव वेगिभिः ॥८७॥
मूर्तिर्निर्मुक्तमेवैतद्गगनं कुरुते ध्वनिम् । वंशारण्यमिवोद्दीप्तं जीवितार्कर्षणोचितम् ॥८८॥
यावदेव ध्वनिर्लोके वर्ततेऽत्यन्तमाकुलः । वह्निस्तावदयं देशमनयद् भस्मशेषताम् ॥८९॥
नान्तःपुरं न देशो न पुराणि न च पर्वताः । न नद्यो नाप्यरण्यानि तदा न प्राणधारिणः ॥९०॥
महासंवेगयुक्तेन मुनिना चिरमर्जितम् । क्रोधाग्निनाखिलं दग्धं तपोऽन्यत् किमु शिष्यताम् ॥९१॥
यतोऽयं दण्डको देशः आसीद्दण्डकपार्थिवः । तेनैव ध्वनिनाद्यापि दण्डकः परिकीर्त्यते ॥९२॥
काले महत्यतिक्रान्ते प्राप्तायां चारुतां भुवि । एतेऽत्र पादपा जाताः पर्वताश्च सनिम्नगाः ॥९३॥
मुनेस्तस्य प्रभावेण सुराणामपि भीतिदम् । वनमेतदभूत् कैव वार्ता विद्याधरांगिनाम् ॥९४॥
पश्चादिदं समाकीर्णं सिंहेन शरभादिभिः । नानाशकुनिसंघैश्च सस्यभक्षैश्च भूरिभिः ॥९५॥
अद्याप्यस्योद्दाहस्य श्रुत्वा शब्दं परं भयम् । व्रजन्ति मानवाः कम्पं वृत्तान्तेऽनुविबोधिनः ॥९६॥
संसारेऽतिचिरं भ्रान्त्वा दण्डको दुःखपूरितः । अयं गृध्रत्वमायातो वनेऽत्र रतिमागतः ॥९७॥
दृष्ट्वा सातिशयावेषौ नौ वनेऽत्र समागतौ । पापस्य कर्मणो हान्या प्राप्तः पूर्वभवस्मृतिम् ॥९८॥
योऽसौ परमया शक्त्या युक्तोऽभूद्दण्डको नृपः । सोऽयं पश्यत संजातः कीदृशः पापकर्मभिः ॥९९॥
इति विज्ञाय विरसं फलं कटुककर्मणः । कथं न[1] सज्यते धर्मे दुरितान्न विरज्यते ॥१००॥

आकाशको देदीप्यमान कर दिया ॥८५॥ क्या यह लोक उल्काओंसे व्याप्त हो रहा है ? या ज्योतिष्क देव नीचे गिर रहे हैं ? या महा प्रलयकाल आ पहुँचा है ? या अग्निदेव कुपित हो रहे हैं ? हाय माता ! यह क्या है ? यह ताप तो अत्यन्त दुःसह है, ऐसा लगता है जैसे बेगशाली बड़े-बड़ी संडासियोंसे नेत्र उखाड़े जा रहे हों, यह अमूर्तिक आकाश ही घोर शब्द कर रहा है, मानो प्राणोंके खींचनेमें उद्यत बाँसोंका वन ही जल रहा है, इस प्रकार अत्यन्त व्याकुलतासे भरा यह शब्द जबतक लोकमें गूँजता है तबतक उस अग्निने समस्त देशको भस्म कर दिया ॥८६–८९॥ उस समय न अन्तःपुर, न देश, न नगर, न पर्वत, न नदियाँ, न जंगल और न प्राणी ही शेष रह गये थे ॥९०॥ महान् संवेगसे युक्त मुनिराजने चिरकालसे जो तप संचित कर रखा था वह सबका सब क्रोधाग्निमें दग्ध हो गया—जल गया फिर दूसरी वस्तुएँ तो बचतीं ही कैसे ? ॥९१॥ यह दण्डक देश था तथा दण्डक ही यहाँका राजा था इसलिए आज भी यह स्थान दण्डक नामसे ही प्रसिद्ध है ॥९२॥ बहुत समय बीत जानेके बाद यहाँकी भूमि कुछ सुन्दरताको प्राप्त हुई है और ये वृक्ष, पर्वत तथा नदियाँ दिखाई देने लगी हैं ॥९३॥ उन मुनिके प्रभावसे यह वन देवोंके लिए भी भय उत्पन्न करनेवाला है फिर विद्याधरोंकी तो बात ही क्या है ? ॥९४॥ आगे चलकर यह वन सिंह-अष्टापद आदि क्रूर जन्तुओं, नाना प्रकारके पक्षि-समूहों तथा अत्यधिक जंगली धान्योंसे युक्त हो गया ॥९५॥ आज भी इस वनकी प्रचण्ड दावानलका शब्द सुनकर मनुष्य पिछली घटनाका स्मरण कर भयभीत होते हुए काँपने लगते हैं ॥९६॥ राजा दण्डक बहुत समय तक संसारमें भ्रमण कर दुःख उठाता रहा अब गृध्रपर्यायको प्राप्त हो इस वनमें प्रीतिको प्राप्त हुआ है ॥९७॥ इस समय इस वनमें आये हुए अतिशय युक्त हम दोनोंको देखकर पापकर्मकी मन्दता होनेसे यह पूर्वभवके स्मरणको प्राप्त हुआ है ॥९८॥ जो दण्डक राजा पहले परम शक्तिसे युक्त था वह देखो, आज पापकर्मोंके कारण कैसा हो गया है ? ॥९९॥ इस प्रकार पापकर्मका नीरस फल जानकर धर्ममें क्यों नहीं लगा जाये और पापसे क्यों नहीं विरक्त हुआ जाये ? ॥१००॥

---

१. श्लिष्यते म. । २. मुच्यते म.

दृष्टान्तः परकीयोऽपि शान्तेर्भवति कारणम् । असमञ्जसमात्मीयं किं पुनः स्मृतिमागतम् ॥१०१॥
पक्षिणं संयतोऽनादीन्मा भैषीरधुना द्विज । मा रोदीर्यद्यथा भाव्यं कः करोति तदन्यथा ॥१०२॥
आश्वासं गच्छ विस्रब्धः स्वस्थं कुरु सुखी भव । पश्य क्वेयमरण्यानी क्व रामः सीतयान्वितः ॥१०३॥
अवग्रहोऽस्मदीयः क्व क्व स्वस्यात्मार्थसंगतः । प्रबुद्धो दुःखसंबोधः कर्मणामिदमीहितम् ॥१०४॥
इदं कर्म विचित्रत्वाद् विचित्रं परमं जगत् । अनुभूतं श्रुतं दृष्टं यथैव प्रवदाम्यहम् ॥१०५॥
पक्षिणः प्रतिबोधार्थं ज्ञात्वाकूतं च सीरिणः[1] । सुगुप्तिरवदत् स्वस्य सुगुप्तेः शमकारणम् ॥१०६॥
अचलो नाम विख्यातो वाराणस्यां[2] महीपतिः । गिरिदेवीति जायास्य गुणरत्नविभूषिता ॥१०७॥
त्रिगुप्त इति विख्यातो गुणनाम्नाभ्यदा मुनिः । पारणार्थं गृहं तस्याः प्रविष्टः शुद्धचेष्टितः ॥१०८॥
स तया परमां श्रद्धां दधत्या विधिपूर्विकाम् । तर्पितः परमान्नेन स्वयं व्यापारमुक्तया ॥१०९॥
समाप्ताशनकृत्यं च पादन्यस्तोत्तमाङ्गया । पप्रच्छान्यापदेशेन स्वस्य पुत्रसमुद्भवम् ॥११०॥
नाथ सातिशयोऽयं मे गृहवासो भविष्यति । किं वा नेति प्रसादोऽयं क्रियतां निश्चयार्पणम्[3] ॥१११॥
यद्योगुप्तिं ततो भित्त्वा राज्ञीभक्त्यनुरोधतः । तस्याश्चारुसमादिष्टं मुनिना तनयद्वयम् ॥११२॥
त्रिगुप्तस्य मुनेस्तस्य समादेशेऽनयत् सुतौ । जातौ सुगुप्तिगुप्ताख्यौ पितृभ्यां तौ ततः कृतौ ॥११३॥
तौ च सर्वकलाभिज्ञौ कुमारश्रीसमन्वितौ । विश्रुतौ विविधैर्भावै रममाणौ जनप्रियौ ॥११४॥
वृत्तान्तोऽयं च संजातो गन्धर्वेस्यां[4] महीपतेः । पुरोहितस्य सोमस्य प्रियायास्तनयद्वयम् ॥११५॥

दूसरेका उदाहरण भी शान्तिका कारण हो जाता है फिर यदि अपनी ही खोटी बात स्मरण आ जावे तो कहना ही क्या है ? ॥१०१॥ रामसे इतना कहकर मुनिराजने गृध्रसे कहा कि हे द्विज ! अब भयभीत मत होओ, रोओ मत, जो बात जैसी होनेवाली है उसे अन्यथा कौन कर सकता है ? ॥१०२॥ धैर्य धरो, निश्चिन्त होकर कँपकँपी छोड़ो, सुखी होओ, देखो यह महा अटवी कहाँ ? और सीता सहित राम कहाँ ? ॥१०३॥ हमारा पडगाहन कहाँ ? और आत्मकल्याणके लिए दुःखका अनुभव करते हुए तुम्हारा प्रबुद्ध होना कहाँ ? कर्मोंकी ऐसी ही चेष्टा है ॥१०४॥ कर्मोंकी विचित्रताके कारण यह संसार अत्यन्त विचित्र है। जैसा मैंने अनुभव किया है, सुना है, अथवा देखा है वैसा ही मैं कह रहा हूँ ॥१०५॥ पक्षीको समझानेके लिए रामका अभिप्राय जान सुगुप्ति मुनिराज अपनी दीक्षा तथा शान्तिका कारण कहने लगे ॥१०६॥

उन्होंने कहा कि वाराणसी नगरीमें एक अचल नामका प्रसिद्ध राजा था। उसकी गुणरूपी रत्नोंसे विभूषित गिरि देवी नामकी स्त्री थी ॥१०७॥ किसी दिन त्रिगुप्त इस सार्थक नामको धारण करनेवाले तथा शुद्ध चेष्टाओंके धारक मुनिराजने आहारके लिए उसके घर प्रवेश किया ॥१०८॥ सो विधिपूर्वक परम श्रद्धाको धारण करनेवाली गिरिदेवीने अन्य सब कार्य छोड़ स्वयं ही उत्तम आहार देकर उन्हें सन्तुष्ट किया ॥१०९॥ जब मुनिराज आहार कर चुके तब उसने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर किसी दूसरेके बहाने अपने पुत्र उत्पन्न होनेकी बात पूछी ॥११०॥ उसने कहा कि हे नाथ ! मेरा यह गृहवास सार्थक होगा या नहीं ? इस बातका निश्चय कराकर प्रसन्नता कीजिए ॥१११॥ तदनन्तर मुनि यद्यपि तीन गुप्तियोंके धारक थे तथापि रानीकी भक्तिके अनुरोधसे वचनगुप्तिको तोड़कर उन्होंने कहा कि तुम्हारे दो सुन्दर पुत्र होंगे ॥११२॥ तदनन्तर उन त्रिगुप्त मुनिराजके कहे अनुसार दो पुत्र उत्पन्न हुए सो माता-पिताने उनके 'सुगुप्ति' और 'गुप्त' इस प्रकार नाम रखे ॥११३॥ वे दोनों ही पुत्र सर्व कलाओंके जानकार, कुमार लक्ष्मीसे सुशोभित, अनेक भावोंसे रमण करते तथा लोगोंके अत्यन्त प्रिय थे ॥११४॥

उसी समय यह दूसरा वृत्तान्त हुआ कि गन्धवती नामकी नगरीके राजाके सोम नामक

---

१. रामस्य । २. वाणारस्यां म. । ३. निश्चयार्पणो म. । ४. गन्धावत्यां म. ।

सुकेतुरग्निकेतुश्च तयोः प्रीतिरनुत्तमा । सुकेतुरन्यदा चासूत कृतदारपरिग्रहः ॥११६॥
आवयोरधुना भ्रात्रोः पृथक् शयनमेतया । क्रियते जायया अवश्यमिति दुःखमुपागतः ॥११७॥
सुकेतुः प्रतिबुद्धः सन् शुभकर्मानुभावतः । अनन्तवीर्यपादान्ते श्रमणत्वं समाश्रितः[1] ॥११८॥
अग्निकेतुर्वियोगेन भ्रातुरत्यन्तदुःखितः । वाराणस्यामभूदुग्रस्तापसो धर्मचिन्तया ॥११९॥
श्रुत्वा चैवंविधं तं च भ्रातरं स्नेहबन्धनः । प्रतिबोधयितुं वाञ्छन् सुकेतुर्गन्तुमुद्यतः ॥१२०॥
स व्रजन् गुरुणावादि सुकेतो कथयिष्यसि । वृत्तान्तं सोदरायेमं येनासावुपशाम्यति ॥१२१॥
कोऽसौ नाथेति तेनोक्ते गुरुरेवमुदाहरत् । करिष्यति त्वया साकं स जल्पं दुष्टभावनः ॥१२२॥
युवयोः कुर्वतोर्जल्पं जाह्नवीमागमिष्यति । चारुकन्या सगौरश्रीर्मिलितसुभिर्गवियोषिद्भिः ॥१२३॥
दिवसस्य गते यामे विचित्रांशुकधारिणी । एभिश्चिह्नैर्विदित्वा तां भाषितव्यमिदं त्वया ॥१२४॥
दृष्ट्वा तां वक्ष्यसीदं त्वं ज्ञानं चेदस्ति ते मते । ततस्तस्याः कुमार्याः किं भविष्यतीति शुभाशुभम् ॥१२५॥
अज्ञानोऽसौ विलक्षः संस्तापसस्त्वां भणिष्यति । भवान् जानातीति त्वं च वक्ष्यस्येवं सुनिश्चितः ॥१२६॥
अस्त्यत्र प्रवरो नाम वणिजः संपदान्वितः । तस्येयं दुहिता नाम्ना रुचिरेति प्रकीर्तिता ॥१२७॥
तृतीयेऽह्नि पशुत्वं वराकीयं प्रपत्स्यते । ततोऽजा कम्बरग्रामे विलासस्य भविष्यति ॥१२८॥
वृकेण मारिता मेषी महिषी च ततः पितुः । मातुलस्य विलासस्य भविष्यति शरीरजा ॥१२९॥
एवमस्त्विति संभाष्य प्रणम्य[3] प्रमदी गुरुम् । सुकेतुः क्रमतः प्राप्तस्तापसानां निकेतनम् ॥१३०॥

पुरोहित था उसके दो लड़के सुकेतु और अग्निकेतु नामके दो पुत्र थे। उन दोनों ही पुत्रोंमें अत्यधिक प्रेम था, उस प्रेमके कारण बड़े होनेपर भी वे एक ही शय्यापर सोते थे। समय पाकर सुकेतुका विवाह हो गया। जब स्त्री घर आयी तब सुकेतु यह विचार कर बहुत दुःखी हुआ कि इस स्त्रीके द्वारा अब हम दोनों भाइयोंकी शय्या पृथक्-पृथक् की जा रही है ॥११५–११७॥ इस प्रकार शुभ कर्मके प्रभावसे प्रतिबोधको प्राप्त हो सुकेतु अनन्तवीर्य मुनिके पास दीक्षित हो गया ॥११८॥ भाईके वियोगसे अग्निकेतु भी बहुत दुःखी हो धर्म संचय करनेकी भावनासे वाराणसीमें उग्र तापस हो गया ॥११९॥ स्नेहके बन्धनमें बँधे सुकेतुने जब भाईके तापस होनेका समाचार सुना तब वह उसे समझानेके अर्थ जानेके लिए उद्यत हुआ ॥१२०॥ जब वह जाने लगा तब गुरुने उससे कहा कि हे सुकेतो! तुम अपने भाईसे यह वृत्तान्त कहना जिससे वह शीघ्र ही उपशान्त हो जायेगा ॥१२१॥ 'हे नाथ! वह कौन सा वृत्तान्त है'? इस प्रकार सुकेतुके कहने पर गुरुने कहा कि दुष्ट भावनाको धारण करनेवाला तेरा भाई तेरे साथ वाद करेगा ॥१२२॥ सो जिस समय तुम दोनों वाद कर रहे होओगे उस समय गौरवर्ण शरीरको धारण करनेवाली एक सुन्दर कन्या तीन स्त्रियोंके साथ गंगा आवेगी। वह दिनके पिछले प्रहरमें आवेगी तथा विचित्र वस्त्रको धारण कर रही होगी। इन चिह्नोंसे उसे जानकर तुम अपने भाईसे कहना कि यदि तुम्हारे धर्ममें कुछ ज्ञान है तो बताओ इस कन्याका क्या शुभ-अशुभ होनेवाला है? ॥१२३–१२५॥ तब वह अज्ञानी तापसी लज्जित होता हुआ तुमसे कहेगा कि अच्छा तुम जानते हो तो कहो। यह सुन तुम निश्चयसे सुदृढ़ हो कहना कि इसी नगरमें एक सम्पत्तिशाली प्रवर नामका वैश्य रहता है यह उसीकी लड़की है तथा रुचिरा नामसे प्रसिद्ध है ॥१२६–१२७॥ यह बेचारी आजसे तीसरे दिन मर जायेगी और कम्बर नामक ग्राममें विलास नामक वैश्यके यहाँ बकरी होगी। भेड़िया उस बकरीको मार डालेगा जिससे गाडर होगी फिर मरकर उसीके घर भैंस होगी और उसके बाद उसी विलासके पुत्री होगी। वह विलास इस कन्याके पिताका मामा होता है ॥१२८–१२९॥ 'ऐसा ही हो' इस प्रकार कहकर तथा गुरुको प्रणाम कर हर्षसे भरा सुकेतु क्रम-क्रमसे तापसोंके आश्रममें पहुँचा ॥१३०॥

१. समाश्रितं म. । २. वणिक्पुत्रः । ३. हर्षयुक्तः ।

गुरुणा च यथादिष्टं तां दृष्ट्वा समुदाहरत् । तथा वृत्तं च तत्सर्वं चरमाग्नेः समक्षताम् ॥१३१॥
ततोऽसौ विधुरा नाम्ना विलासस्य शरीरजा । याचिता श्रेष्ठिना लब्धा प्रवरेण मनोहरा ॥१३२॥
विवाहसमये प्राप्ते प्रवराय न्यवेदयत् । अग्निकेतुर्यथेयं ते दुहितासीद् भवान्तरे ॥१३३॥
विलासायापि ते सर्वे भवास्तेन निवेदिताः । श्रुत्वा तत्कन्यका जाता जातिस्मरणकोविदा ॥१३४॥
ततः प्रव्रजितुं वाञ्छां सा संवेगपराकरोत् । प्रवरश्च विलासेन व्यवहारं दुराशयः ॥१३५॥
सभायां पितुरस्माकं प्रवरे भङ्गतां गते । आर्यिकात्वमिता कन्या श्रमणत्वं च तापसः ॥१३६॥
कृतान्तमीदृशं श्रुत्वा वयं वैराग्यपूरिताः । समीपेऽनन्तवीर्यस्य जैनेन्द्रव्रतमाश्रिताः ॥१३७॥
एवं मोहपरीतानां प्राणिनामतिभूरिशः । जायन्ते कुत्सिताचारा भवसंततिदायिनः ॥१३८॥
मातापितृसुहृन्मित्रभार्यापत्यादिकं जनः । सुखदुःखादिकं चायं लिखितं लभते भवे ॥१३९॥
तच्छ्रुत्वा सुतरां पक्षी भीतोऽभूद् भवदुःखतः । चकार च मुहुःशब्दं धर्मग्रहणवाञ्छया ॥१४०॥
ऊचे च मुनिना भद्र मा भैषीरधुना व्रतम् । गृहाण येन नो भूयः प्राप्यते दुःखसंततिः ॥१४१॥
प्रशान्तो भव मा पीडां[1] कार्षीः सर्वसुधारिणाम् । अनृतं स्तेयतां मायां परकीयां विवर्जय ॥१४२॥
एकान्तब्रह्मचर्यं वा गृहीत्वा सक्षमान्वितः । रात्रिभुक्तिं परित्यज्य भव शोभनचेष्टितः ॥१४३॥
[2]प्रयत्नोऽहि क्षपायां च जिनेन्द्रान् वह चेतसा[3] । उपवासादिकं शक्त्या सुधीर्नियमाचर ॥१४४॥

गुरुने जिस प्रकार कहा था उसी प्रकार उस कन्याको देखकर सुकेतुने अपने भाई अग्निकेतुसे कहा और वह सबका सब वृत्तान्त उसी प्रकार अग्निकेतुके सामने आ गया अर्थात् सच निकला ॥१३१॥

तदनन्तर वह कन्या जब मरकर चौथे भवमें विलासके विधुरा नामकी पुत्री हुई तब प्रवर नामक सेठने उस सुन्दरीकी याचना की और वह उसे प्राप्त भी हो गयी ॥१३२॥ जब विवाहका समय आया तब अग्निकेतुने प्रवरसे कहा कि यह कन्या भवान्तरमें तुम्हारी पुत्री थी ॥१३३॥ यह कहकर उसने कन्याके वर्तमान पिता विलासके लिए भी उसके वे सब भव कह सुनाये। उन भवोंको सुनकर कन्याको जातिस्मरण हो गया ॥१३४॥ जिससे संसारसे भयभीत हो उसने दीक्षा धारण करनेका विचार कर लिया। इधर प्रवरने समझा कि विलास किसी छलके कारण मेरे साथ अपनी कन्याका विवाह नहीं कर रहा है इसलिए दूषित अभिप्रायको धारण करनेवाले प्रवरने हमारे पिताकी सभामें विलासके विरुद्ध अभियोग चलाया परन्तु अन्तमें प्रवरकी हार हुई, कन्या आर्यिका पदको प्राप्त हुई और अग्निकेतु तापस दिगम्बरमुनि बन गया ॥१३५-१३६॥ वृत्तान्तको सुनकर हमने भी विरक्त हो अनन्तवीर्य नामक मुनिराजके समीप जिनेन्द्र दीक्षा धारण कर ली ॥१३७॥ इस प्रकार मोही जीवोंसे संसारकी सन्ततिको बढ़ानेवाले अनेक खोटे आचरण हो जाया करते हैं ॥१३८॥ यह जीव अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार ही माता, पिता, स्नेही मित्र, स्त्री, पुत्र तथा सुख-दुःखादिकको भव-भवमें प्राप्त होता है ॥१३९॥

यह सुनकर वह गृध्र पक्षी संसार सम्बन्धी दुःखोंसे अत्यन्त भयभीत हो गया और धर्म ग्रहण करनेकी इच्छासे बार-बार शब्द करने लगा ॥१४०॥ तब मुनिराजने कहा कि हे भद्र! भय मत करो। इस समय व्रत धारण करो जिससे फिर यह दुःखोंकी सन्तति प्राप्त न हो ॥१४१॥ अत्यन्त शान्त हो जाओ, किसी भी प्राणीको पीड़ा मत पहुँचाओ, असत्य वचन, चोरी और परस्त्रीका त्याग करो अथवा पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण कर उत्तम क्षमासे युक्त हो रात्रि भोजनका त्याग करो, उत्तम चेष्टाओंसे युक्त होओ, बड़े प्रयत्नसे रात-दिन जिनेन्द्र भगवान्‌को हृदयमें धारण करो, शक्त्यनुसार विवेकपूर्वक उपवासादि नियमोंका आचरण करो, प्रमादरहित होकर इन्द्रियोंको

---

१. पीडा ग.। २. प्रयतोऽहि क्षिपायां च (?) म.। ३. वहचेतसा म.।

इन्द्रियाण्यप्रमत्तः सन्नुरसुकात्मगोचरे । कुरु युक्तव्यवस्थानि साधूनां भक्तिसत्परः ॥१४५॥
इत्युक्तः[1] साञ्जलिः पक्षी शिरो विनमयन्मुहुः । कुर्वाणो मधुरं शब्दं जग्राह मुनिभाषितम् ॥१४६॥
श्रावकोऽयं विनीतात्मा जातोऽस्माकं विनोदकृत् । [2]इत्युक्त्वा सस्मिता सीता तं कराभ्यां समस्पृशत् ॥१४७॥
साधुभ्यामुक्तमित्येतं रक्षितुं वोऽधुनोचितम्[3] । तपस्वी शान्तचित्तोऽयं क्व वा गच्छतु पक्षभृत् ॥१४८॥
अस्मिन् सुगहनेऽरण्ये क्रूरप्राणिनिषेविते । सम्यग्दृष्टेः खगस्यास्य रक्षा कार्या त्वया सदा ॥१४९॥
ततो गुरुवचः प्राप्य सुतरां स्नेहपूर्णया । सीतयानुगृहीतोऽसौ परिपालनचिन्तया ॥१५०॥
पल्लवस्पर्शहस्ताभ्यां तं परामृशती सती । जनकस्याङ्गजा रेजे विनता गरुडं यथा ॥१५१॥
निर्ग्रन्थयुक्तवाग्भिः स्तुतिपूर्वं नमस्कृतौ : बहूपकारिसंचारौ यातावात्मोचितं पदम् ॥१५२॥
नभः समुत्पतन्तौ तौ शुशुभाते महामुनी । दानधर्मसमुद्रस्य कल्लोलाविव पुष्कलौ ॥१५३॥
प्रमिश्रं वारणं तावद् वशीकृत्य वनोत्थितम् । आरुह्य लक्ष्मणः श्रुत्वा ध्वनिमागात् समाकुलः ॥१५४॥
रत्नकाञ्चनराशिं च दृष्ट्वा पर्वतसंनिधिम् । नानावर्णप्रभाजालसमुद्गतसुरायुधम् ॥१५५॥
विकसल्लोचनाम्भोजमहाकौतुकपूरितः । कृतो विदितवृत्तान्तः पद्मेन मुदितात्मना ॥१५६॥
प्राप्तबोधिरसौ पक्षी नाप्तासीत्तौ विना क्वचित् । निर्ग्रन्थवचनं सर्वं कुर्वन्नुद्यतमानसः ॥१५७॥
स्मर्यमाणोपदेशेऽसौ सीतयाणुव्रताश्रमे । पद्मलक्ष्मणमार्गेण रममाणोऽभ्रमन्महीम् ॥१५८॥

व्यवस्थित कर आत्मध्यानमें उत्सुक करो और साधुओंकी भक्तिमें तत्पर होओ ॥१४२-१४५॥ मुनिराजके इस प्रकार कहनेपर गृध्र पक्षीने अंजलि बांध बार-बार शिर हिलाकर तथा मधुर शब्दका उच्चारण कर मुनिराजका उपदेश ग्रहण किया ॥१४६॥ 'विनीत आत्माको धारण करनेवाला यह श्रावक हम लोगोंका विनोद करनेवाला हो गया' यह कहकर मन्द हास्य करनेवाली सीताने उस पक्षीका दोनों हाथोंसे स्पर्श किया ॥१४७॥ तदनन्तर दोनों मुनियोंने राम आदिको लक्ष्य कर कहा कि अब आप लोगोंको इसकी रक्षा करना उचित है क्योंकि शान्तचित्तको धारण करनेवाला यह बेचारा पक्षी कहाँ जायेगा ? ॥१४८॥ क्रूर प्राणियोंसे भरे हुए इस सघन वनमें तुम्हें इस सम्यग्दृष्टि पक्षीकी सदा रक्षा करनी चाहिए ॥१४९॥ तदनन्तर गुरुके वचन प्राप्त कर अतिशय स्नेहसे भरी सीताने उसके पालनकी चिन्ता अपने ऊपर ले उसे अनुगृहीत किया अर्थात् अपने पास ही रख लिया ॥१५०॥ पल्लवके समान कोमल स्पर्शवाले हाथोंसे उसका स्पर्श करती हुई सीता ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो गरुड़का स्पर्श करती हुई उसकी माँ विनता ही हो ॥१५१॥

तदनन्तर जिनका भ्रमण अनेक जीवोंका उपकार करनेवाला था ऐसे दोनों निर्ग्रन्थ साधु, राम आदिके द्वारा स्तुतिपूर्वक नमस्कार किये जानेपर अपने योग्य स्थानपर चले गये ॥१५२॥ आकाशमें उड़ते हुए वे दोनों महामुनि ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो दानधर्मरूपी समुद्रकी दो बड़ी लहरें ही हों ॥१५३॥ उसी समय एक मदोन्मत्त हाथीको वश कर तथा उसपर सवार हो लक्ष्मण शब्द सुनकर कुछ व्यग्र होते हुए आ पहुँचे ॥१५४॥ नाना वर्णोंकी प्रभाओंके समूहसे जिसमें इन्द्रधनुष निकल रहा था ऐसी पर्वतके समान बहुत बड़ी रत्न तथा सुवर्णकी राशि देखकर जिनके नेत्रकमल विकसित हो रहे थे तथा जो अत्यधिक कौतुकसे युक्त थे ऐसे लक्ष्मणको प्रसन्न हृदय रामने सब समाचार विदित कराया ॥१५५-१५६॥ जिसे रत्नत्रयकी प्राप्ति हुई थी तथा जो मुनिराजके समस्त वचनोंका बड़ी तत्परतासे पालन करता था ऐसा वह पक्षी राम और सीताके बिना कहीं नहीं जाता था ॥१५७॥ अणुव्रताश्रममें स्थित सीता जिसे बार-बार मुनियोंके उपदेशका स्मरण कराती रहती थी ऐसा वह पक्षी राम-लक्ष्मणके मार्गमें रमण करता हुआ पृथ्वीपर भ्रमण

---

१. इत्युक्त्वा म. । २. इत्युक्ता म. । ३. वाधुनोचितं म. ।

धर्मस्य पश्यतौदार्यं यदस्मिन्नेव जन्मनि । शाकपत्रोपमो गृध्रो जातस्तामरसोपमः ॥१५९॥
पुरा योऽनेकमांसादो दुर्गन्धोऽभूज्जुगुप्सितः । सोऽयं काञ्चनकुम्भाभःसुरभिः सुन्दरोऽभवत् ॥१६०॥
क्वचित् वह्निशिखाकारः क्वचिद् वैदूर्यसंनिभः । क्वचिच्चामीकरच्छायो हरिन्मणिरुचिः क्वचित् ॥१६१॥
रामलक्ष्मणयोरग्रे स्थितोऽसौ बहुधातुकः । बुभुजे साधु संपक्वमकं सीतोपसाधितम् ॥१६२॥
चन्दनेन स दिग्धाङ्गो हेमकिङ्किण्यलंकृतः । बिभ्राणः शकुनी रेजे रत्नांशुजटिलं शिरः ॥१६३॥
यस्मादंशुजटास्तस्य विरेजू रत्नहेमजाः । जटायुरिति तेनासावाहूतस्तैरतिप्रियः ॥१६४॥
जितहंसगतिं कान्तं चारुविभ्रमभूषितम् । तमन्यपक्षिणो दृष्ट्वा भयवन्तो विसिस्मियुः ॥१६५॥
त्रिसंध्यं सीतया सार्कं चन्दनार्कोदसौ । भक्तिप्रह्वो जिनेन्द्राणां सिद्धानां योगिनां तथा ॥१६६॥
तत्र प्रीतिं महाप्राप्तां जानकी करुणापरा । अप्रमत्ता सदा रक्षां कुर्वन्ती धर्मवत्सला ॥१६७॥

उपजातिवृत्तम्

आस्वादमानो निजयेच्छयासौ फलानि शुद्धान्यमृतोपमानि ।
जलं प्रशस्तं च पिबन्नरण्ये बभूव नित्यं सुविधिः पतत्री ॥१६८॥
सतालशब्दं जनकात्मजाया धर्माश्रयोच्चारिसगीतिकायाम् ।
कृतानुगीत्यां पतिदेवराभ्यां ननर्त हृष्टो[1] रविरुग्जटायुः ॥१६९॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते जटायूपाख्यानं नामैकचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४१॥

करता था ॥१५८॥ अहो ! धर्मका माहात्म्य देखो कि जो पक्षी इसी जन्ममें शाकपत्रके समान निष्प्रभ था वही कमलके समान सुन्दर हो गया ॥१५९॥ पहले जो अनेक प्रकारके मांसको खानेवाला, दुर्गन्धित एवं घृणाका पात्र था वही अब सुवर्णकलशमें स्थित जलके समान मनोज्ञ एवं सुन्दर हो गया ॥१६०॥ उसका आकार कहीं तो अग्निकी शिखाके समान था, कहीं नीलमणिके सदृश था, कहीं स्वर्णके समान कान्तिसे युक्त था और कहीं हरे मणिके तुल्य था ॥१६१॥ राम-लक्ष्मणके आगे बैठा तथा अनेक प्रकारके मधुर शब्द कहनेवाला वह पक्षी सीताके द्वारा निर्मित उत्तम भोजन ग्रहण करता था ॥१६२॥ जिसका शरीर चन्दनसे लिप्त था, जो स्वर्णनिर्मित छोटी-छोटी घण्टियोंसे अलंकृत था तथा जो रत्नोंकी किरणोंसे व्याप्त शिरको धारण कर रहा था ऐसा वह पक्षी अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥१६३॥ यतश्च उसके शरीर पर रत्न तथा स्वर्णनिर्मित किरणरूपी जटाएँ सुशोभित हो रही थीं इसलिए राम आदि उसे 'जटायु' इस नामसे बुलाते थे। वह उन्हें अत्यन्त प्यारा था ॥१६४॥ जिसने हंसकी चालको जीत लिया था, जो स्वयं सुन्दर था और सुन्दर विलासोंसे जो युक्त था ऐसे उस जटायुको देखकर अन्य पक्षी भयभीत होते हुए आश्चर्यचकित रह जाते थे ॥१६५॥ वह भक्तिसे नम्रीभूत होकर तीनों सन्ध्याओंमें सीताके साथ अरहन्त, सिद्ध तथा निर्ग्रन्थ साधुओंको नमस्कार करता था ॥१६६॥ धर्मसे स्नेह करनेवाली दयालु सीता बड़ी सावधानीसे उसकी रक्षा करती हुई सदा उसपर बहुत प्रेम रखती थी ॥१६७॥ इस प्रकार वह पक्षी अपनी इच्छानुसार शुद्ध तथा अमृतके समान स्वादिष्ट फलोंको खाता और जंगलमें उत्तम जलको पीता हुआ निरन्तर उत्तम आचरण करता था ॥१६८॥ जब सीता तालका शब्द देती हुई धर्ममय गीतोंका उच्चारण करती थी और पति तथा देवर उसके स्वरमें स्वर मिलाकर साथ-साथ गाते थे तब सूर्यके समान कान्तिको धारण करनेवाला वह जटायु हर्षित हो नृत्य करता था ॥१६९॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें जटायुका वर्णन करनेवाला इकतालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४१॥

□

---

१. सूर्यस्तप्रभाधारकः ।

द्विचत्वारिंशत्तमं पर्व

पात्रदानप्रभावेण ससीतौ रामलक्ष्मणौ । हृष्टैव रत्नहेमादि[1] संपद्युक्तौ बभूवतुः ॥१॥
तदनन्तरं जो स्वर्णमयी अनेक बेल-बूटोंके विन्याससे सुन्दर था, जो उत्तमोत्तम खम्भों, वेदिका तथा गर्भगृहसे सहित था, ऊँचा था, जिसके झरोखे बड़े-बड़े मोतियोंकी मालासे सुशोभित थे, जो छोटे-छोटे गोले, दर्पण, फन्नूस, तथा खण्डचन्द्र आदि सजावटकी सामग्रीसे अलंकृत था, शयन, आसन, वादित्र, वस्त्र तथा गन्ध आदिसे भरा था, जिसमें चार हाथी जुते थे और जो विमानके समान था ऐसे रथपर सवार होकर ये सब बिना किसी बाधाके जटायु पक्षीके साथ-साथ धैर्यशाली मनुष्योंके मनको हरण करनेवाले वनमें विचरण करते थे ॥२-५॥ वे उस मनोहर वनमें इच्छानुसार क्रीड़ा करते हुए कहीं एक दिन, कहीं एक पक्ष और कहीं एक माह ठहरते थे ॥६॥ 'हम यहाँ निवास करेंगे' 'यहाँ ठहरेंगे' इस प्रकार कहते हुए वे किसी बड़े बैलकी नयी घास खानेकी इच्छाके समान वनमें सुखपूर्वक विचरण करते थे ॥७॥ जो बड़े-बड़े निर्झरोंसे गम्भीर थे तथा जिनमें ऊँचे-ऊँचे वृक्ष लग रहे थे ऐसे कितने ही ऊँचे-नीचे प्रदेशोंको पार कर वे धीरे-धीरे जा रहे थे ॥८॥ सिंहोंके समान निर्भय हो स्वेच्छासे घूमते हुए वे, भीरु मनुष्योंको भय देनेवाले दण्डक वनके उस मध्य भागमें प्रविष्ट हुए जहाँ हिमगिरिके समान विचित्र पर्वत थे तथा मोतियोंके हारके समान सुन्दर निर्झर और नदियाँ स्थित थीं ॥९-१०॥ जहाँ-का वन, पीपल, इमली, बेरी, बहेड़े, शिरीष, केले, राल, अक्षरोट, देवदारु, धौ, कदम्ब, तिलक, लोध, अशोक, नील और लाल रंगको धारण करनेवाले जामुन, गुलाब, आम, अंबाड़ा, चम्पा, कनेर, सागौन, ताल, प्रियंगु, सप्तपर्ण, तमाल, नागकेशर, नन्दी, कोहा, बकौली, चन्दन, नीप, भोजपत्र, हिंगुलक, बरगद, सफेद तथा काला अगुरु, कुन्द, रम्भा, इंगुआ, पद्मक, मुचकुन्द, कुटिल,

१. हेमादि ज., ख. । हेमानि म. । २. भयोज्झितौ म. । ३. रकोठैः म. ।

मदनैर्बदरैर्निम्बैः खर्जूरैश्छत्रकैस्तथा । नारिङ्गैर्मातुलिङ्गीभिर्द्राक्षिणीभिस्तथासनैः ॥१६॥
नालिकेरैः कपित्थैश्च रसैरामलकैर्वनैः । शमीहरीतकीभिश्च कोविदारैरगस्तिभिः ॥१७॥
करञ्जकुष्ठकालीयैस्सत्कचैरजमोदकैः । कङ्कोलत्वरलवङ्गीभिर्मरिचाजाजिभिस्तथा ॥१८॥
चविभिर्धातकीभिश्च कुर्षकैरतिमुक्तकैः । पूगैस्ताम्बूलवल्लीभिरेलामी रक्तचन्दनैः ॥१९॥
वेतैः श्यामलताभिश्च मेषशृङ्गैर्हरिद्रुभिः । पलाशैः स्पन्दनैर्बिल्वैश्चिरबिल्वैः समेधिकैः ॥२०॥
चन्दनैररडूकैश्च शाल्मलीबीजकैस्तथा । एभिरन्यैश्च भूरुद्भिस्तद्वनं विराजितम् ॥२१॥
सस्यैर्बहुप्रकारैश्च स्वयंभूतै रसोत्तमैः । पुण्ड्रेक्षुभिश्च विस्तीर्णाः प्रदेशास्तस्य संकुलाः ॥२२॥
चित्रपादपसंघातैर्नानावल्लीसमाकुलैः । अशोभत वनं वाढं द्वितीयमिव नन्दनम् ॥२३॥
मन्दमारुतनिक्षिप्तैः पल्लवैरतिकोमलैः । ननर्तेवाटवी सीतात् पद्मरागमयन्मनः ॥२४॥
वायुना ह्रियमाणेन रजसाभ्युत्थितेव च । आलिलिङ्गे च सद्गन्धवाहिना नित्ययायिना ॥२५॥
अगायदिव भृङ्गाणां झङ्कारेण मनोहरम् । जहासेव सितं रम्यं शैलनिर्झरशीकरैः ॥२६॥
चकोरजीवकभेरुण्डहंससारसकोकिलाः । मयूरश्येनकुररा शुकौलूककसारिकाः ॥२७॥
कपोतभृङ्गराजाश्च भारद्वाजादयस्तथा । अरमन्त द्विजास्तस्मिन् प्रयुक्तकलनिस्वनाः ॥२८॥
कोलाहलेन रम्येण तद्वनं तेन संभ्रमि । जगाद स्वागतमिव प्राप्तकर्तव्यदक्षिणम् ॥२९॥
कुतः किं राजपुत्रीति कस्मिन्नागच्छ साध्विति । इतिकोमलभाराया संजजल्पुरिव द्विजाः ॥३०॥
सितासिताम्बुजाम्भोजसंछन्नैरतिनिर्मलैः । सरोभिर्वीक्षितुमिव प्रवृत्तं सुकुतूहलात् ॥३१॥
फलभारनतैरग्रैर्नमनामेव महादरम् । सुमोचानन्दनिश्वासमिव सद्गन्धवायुना ॥३२॥

पारिजातक, दुपहरिया, केतकी, महुआ, खैर, मैनार, खदिर, नीम, खजूर, छत्रक, नारंगी, बिजौरे, अनार, असन, नारियल, कैंथा, रसोंद, आँवला, शमी, हरड, कचनार, करंज, कुष्ठ, कालीय, सत्कच, अजमोद, कंकोल, दालचीनी, लौंग, मिरच, चमेली, चव्य, आँवला, कुर्षक, अतिमुक्तक, सुपारी पान, इलायची, लालचन्दन, बेंत, श्यामलता, मेढासिंगी, हरिद्रु, पलाश, तेंदू, बेल, चिरोल, मेथी चन्दन, अरडूक, सेंम, बीजसार, इनसे तथा इनके सिवाय अन्य वृक्षोंसे सुशोभित था ॥११–२१॥ उस वनके लम्बे-चौड़े प्रदेश स्वयं उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके धान्यों तथा रसीले पौंडों और ईखोंसे व्याप्त थे ॥२२॥ नाना प्रकारकी लताओंसे युक्त विविध वृक्षोंके समूहसे वह वन ठीक दूसरे नन्दनवनके समान सुशोभित हो रहा था ॥२३॥ मन्द-मन्द वायुसे हिलते हुए अत्यन्त कोमल किसलयोंसे वह अटवी ऐसी जान पड़ती थी मानो राम आदिके आगमनसे उत्पन्न हर्षसे नृत्य ही कर रही हो ॥२४॥ वायुके द्वारा हरण की हुई परागसे वह अटवी ऊपर उठी हुई-सी जान पड़ती थी और उत्तम गन्धको धारण करनेवाली वायु मानो उसका आलिंगन कर रही थी ॥२५॥ वह भ्रमरोंकी झंकारसे ऐसी जान पड़ती थी मानो मनोहर गान ही गा रही हो और पहाड़ी निर्झरोंके उड़ते हुए जलकणोंसे ऐसे विदित होती थी मानो शुक्ल एवं सुन्दर हास्य ही कर रही हो ॥२६॥ चकोर, भेरुण्ड, हंस, सारस, कोकिला, मयूर, बाज, कुरर, तोता, उलूक, मैना, कबूतर, भृङ्गराज, तथा भारद्वाज आदि पक्षी मनोहर शब्द करते हुए उस अटवीमें क्रीड़ा करते थे ॥२७–२८॥ पक्षियोंके उस मधुर कोलाहलसे वह वन ऐसा जान पड़ता था मानो प्राप्त कार्यमें निपुण होनेसे संभ्रमके साथ सबका स्वागत ही कर रहा हो ॥२९॥ कलरव करते हुए पक्षी कोमल वाणीसे मानो यही कह रहे थे कि हे साध्वि ! राजपुत्रि ! तुम कहाँसे आ रही हो और कहाँ आयी हो ॥३०॥ सफेद, नीले तथा लाल कमलोंसे व्याप्त अतिशय निर्मल सरोवरोंसे वह वन ऐसा जान पड़ता था मानो कुतूहलवश देखनेके लिए उद्यत ही हुआ हो ॥३१॥ फलोंके भारसे झुके हुए अग्र भागोंसे वह वन ऐसा

---

१. अटवी ननर्त इव । २. जीवंजीवकभेरुण्डकोरकः । ३. महीधरं म. ।

ततः सौमनसाकारं वनं तद्वीक्ष्य राघवः । जगाद विकचाम्भोजलोचनां जनकात्मजाम् ॥३३॥
वल्लीभिर्गुल्मकैः स्तम्बैः समासक्तैरमी भगाः । सकुटुम्बा इवाभान्ति प्रिये यच्छान्न लोचने ॥३४॥
प्रियङ्गुलतिकां पश्य संगतां वकुलोरसि । कान्तस्येव वरारोहां शङ्के निर्भरसौहृदम् ॥३५॥
चलता पल्लवेनेयं संप्रत्यग्रेण माधवी । परामृशति सौहार्दादिव चूतमनुत्तरात् ॥३६॥

छन्दः (?)

अयं मदालसेक्षणः करी करेणुचोदितः । मधुकरविघटितदलनिचयः प्रविशति सीते कमलवनम् ॥३७॥

उपजातिः

वहत्यसौ दर्पसुदारमुच्चैर्वल्मीकशृङ्गं गवलीसुनीलः ।
लीलान्वितो वज्रसमेन धीरं भिनत्ते विषाणेन लसत्खुराग्रः ॥३८॥

आर्याच्छन्दः

अमुमिन्द्रनीलवर्णं विवराद्विर्यातदूरतनुभागम् ।
पश्य मयूरं दृष्ट्वा प्रविशन्तमहिं मयाकुलितम् ॥३९॥

शार्दूलविक्रीडितम्

पश्यामुष्य महानुभावचरितं सिंहस्य सिंहेक्षणे
रम्येऽस्मिन्नचले गुहामुखगतस्यारादिकासिद्धुते ।
यः श्रुत्वा रथनादमुन्नतमना निद्रां विहाय क्षणं
वीक्ष्यापाङ्गदृशा विजृम्भ्य शनकैर्भूयस्तथैव स्थितः ॥४०॥

जान पड़ता था मानो बड़े आदरसे राम आदिको नमस्कार ही कर रहा हो और सुगन्धित वायुसे ऐसा सुशोभित होता था मानो आनन्दके श्वासोच्छ्वास ही छोड़ रहा हो ॥३२॥

तदनन्तर सौमनस वनके समान सुन्दर वनको देख-देखकर रामने विकसित कमलके समान खिले हुए नेत्रोंको धारण करनेवाली सीतासे कहा कि हे प्रिये ! इधर देखो, ये वृक्ष लताओं तथा निकटवर्ती गुल्मों और झाड़ियोंसे ऐसे जान पड़ते हैं मानो कुटुम्ब सहित ही हों ॥३३–३४॥ वकुल वृक्षके वक्षस्थलसे लिपटी हुई इस प्रियंगु लताको देखो। यह ऐसी जान पड़ती है मानो पतिके वक्षःस्थलसे लिपटी प्रेम भरी सुन्दरी ही हो ॥३५॥ यह माधवीलता हिलते हुए पल्लवसे मानो सौहार्दके कारण ही आमका स्पर्श कर रही है ॥३६॥ हे सीते ! जिसके नेत्र मदसे आलस हैं, हस्तिनी जिसे प्रेरणा दे रही है और जिसने कलिकाओंके समूहको भ्रमरोंसे रहित कर दिया है ऐसा यह हाथी कमल वनमें प्रवेश कर रहा है ॥३७॥ जो अत्यधिक गर्वको धारण कर रहा है, जो लीलासे सहित है, तथा जिसके खुरोंके अग्रभाग सुशोभित हैं ऐसा यह अत्यन्त नील भैंसा वज्रके समान सींगके द्वारा बामीके उच्च शिखरको भेद रहा है ॥३८॥ इधर देखो, इस सांपके शरीरका बहुत कुछ भाग बिलसे बाहर निकल आया था फिर भी यह सामने इन्द्रनील मणिके समान नीलवर्णवाले मयूरको देखकर भयभीत हो फिरसे उसी बिलमें प्रवेश कर रहा है ॥३९॥ हे सिंहके समान नेत्रोंको धारण करनेवाली तथा फैलती हुई कान्तिसे युक्त प्रिये ! इस मनोहर पर्वतपर गुहाके अग्रभागमें स्थित सिंहकी उदात्त चेष्टाको देखो जो इतना दृढ़ चित्त है कि रथका शब्द सुनकर क्षण भरके लिए निद्रा छोड़ता है और कटाक्षसे उसकी ओर देखकर तथा धीरेसे जमुहाई

---

१. मदालसेक्षणः म. । २. महिषः । ३. भिन्ने म. । ४. यच्छ्रुत्वा म. ।

वसन्ततिलकावृत्तम्

नानामृगक्षतजपानसुरक्तवक्त्रो दर्पोद्धुरः कपिलनेत्रमरीचिचक्रैः ।
मूर्धोपनीतलसदुज्ज्वलबालपुच्छो व्याघ्रो नखैः खनति पादपमेष मूले ॥४१॥

मन्दाक्रान्ता

अन्तः कृत्वा शिशुगणमिमे कामिनीभिः समेतं
पूर्णव्यग्रप्रकटितबला भूरिशः सावधानाः ।
किंचिद्दूर्वाग्रहणचतुराः प्रान्तयाताः कुरङ्गाः
पश्यन्ति त्वां विपुलनयनालम्बिनः कौतुकेन ॥४२॥

आर्यावृत्तम्

सुन्दरि पश्य वराहं दंष्ट्रान्तरलग्नमुस्तमुन्नतसत्त्वम् ।
अभिनवगृहीतपङ्कं गच्छन्तं मन्थरं सघोणम् ॥४३॥

वंशस्थवृत्तम्

अयं प्रयत्नादिव चित्रिताङ्गको विनातियत्नैर्बहुभिः सुलोचने ।
भजत्यतिक्रीडनमर्भकैः समं वनैकदेशे तृणभाजि चित्रकः ॥४४॥

दोधकवृत्तम्

श्येनयुवैष लघुभ्रमपक्षो वीक्षत एष निरूप्य समन्तात् ।
स्वापमितस्य परं शरभस्य[1] स्तेनयति[2] क्षुतमाभिषमास्यात्[3] ॥४५॥

द्रुतविलम्बितवृत्तम्

कमलजालकराजितमस्तकः ककुदमुन्नतमाचलितं वहन् ।
अयमुदात्तरवोऽग्र विराजते सुरभिपुत्रपतिर्वरविभ्रमः[4] ॥४६॥

लेकर फिर भी उसी तरह निर्भय बैठा है ॥४०॥ इधर नाना मृगोंका रुधिर पान करनेसे जिसका मुख अत्यन्त लाल हो रहा है, जो अहंकारसे फूल रहा है, जिसका मुख नेत्रोंकी पीली-पीली कान्तिसे युक्त है, तथा चमकीले बालोंसे युक्त जिसकी पूँछ पीछेसे घूमकर मस्तकके समीप आ पहुँची है ऐसा यह व्याघ्र नाखूनोंके द्वारा वृक्षके मूलभागको खोद रहा है ॥४१॥ जिन्होंने स्त्रियोंके साथ-साथ अपने बच्चोंके समूहको बीचमें कर रखा है, जिनके चंचल नेत्र बहुत दूर तक पड़ रहे हैं, जो अत्यधिक सावधान हैं, जो कुछ-कुछ दूर्वाके ग्रहण करनेमें चतुर हैं और कौतुक वश जिनके नेत्र अत्यन्त विशाल हो गये हैं ऐसे ये हरिण समीपमें आकर तुम्हें देख रहे हैं ॥४२॥ हे सुन्दरि! धीरे-धीरे जाते हुए उस वराह को देखो, जिसकी दाँढोंमें मोथा लग रहा है, जिसका बल अत्यन्त उन्नत है, जिसने अभी हाल नयी कीचड़ अपने शरीरमें लगा रखी है, तथा जिसकी नाक बहुत लम्बी है ॥४३॥ हे सुलोचने! प्रयत्नके बिना ही जिसका शरीर नाना प्रकारके वर्णोंसे चित्रित हो रहा है ऐसा यह चीता इस तृणबहुल वनके एकदेशमें अपने बच्चोंके साथ अत्यधिक क्रीड़ा कर रहा है ॥४४॥ इधर जिसके पंख जल्दी घूम रहे हैं ऐसा यह तरुण बाज-पक्षी दूरसे ही सब ओर देखकर सोते हुए शरभके मुखसे बड़ी शीघ्रताके साथ मांसको छीन रहा है ॥४५॥ इधर जिसका मस्तक कमल जैसी आवर्तसे सुशोभित है; जो कुछ-कुछ हिलती हुई ऊँची कांदीरको धारण कर रहा है, जो विशाल शब्द कर रहा है तथा जो उत्तम विभ्रमसे सहित है ऐसा यह बैल सुशोभित

---

१. दक्षः म. । २. ते नयति म. । ३. मत्स्यात् म. । ४. अनड्वान् ।

स्रक्छन्दः

क्वचिदिदमतिघनवरनगकलितं क्वचिदणुबहुविधतृणपरिलिचितम् ।
क्वचिदपगतभयमृगपृथुपटलं क्वचिदतिमदयुतकरुदितगहनम् ॥४७॥

चण्डीछन्दः

क्वचिदुरुमदगजपातितवृक्षं क्वचिदभिनवतरुजालकयुक्तम् ।
क्वचिदलिकुलकृतझंकृतरम्यं क्वचिदतिखररवसंभृतकक्षम् ॥४८॥

प्रमाणिकावृत्तम्

क्वचिद्विभान्तसरवकं क्वचिद्विशुष्कसरवकम् । क्वचिद्विरम्बुगह्वरं क्वचिद्विमुक्तगह्वरम् ॥४९॥

तोटकच्छन्दः

अरुणं धवलं कपिलं हरितं कलितं निभृतं सरवं विरवम् ।
विरलं गहनं सुभगं विरसं, तरुणं पृथुकं विषमं सुसमम् ॥५०॥

इदं तदप्यटकारण्यं प्रसिद्धं दयिते वनम् । पश्यानेकविधं कर्मप्रपञ्चमिव जानकि ॥५१॥
अयोऽयं दण्डको नाम [1]शृङ्गालीढाम्बराङ्गणः । सुवक्त्रे यस्य माग्नेदं दण्डकारण्यमुच्यते ॥५२॥
तुङ्गया शिखरेष्वस्य[2] प्रभया धातुजन्मना । रक्तया पुष्पपुञ्जेव प्रावृतं भाति पुष्करम् ॥५३॥
अस्य गह्वरदेशेषु पश्यौषधिमहाशिखाः । निर्वातस्थप्रदीपाभा दूरध्वस्ततमश्चयाः ॥५४॥

शालिनीछन्दः

अस्मिन्नुच्चैर्निर्झराः संपतन्तस्तारारावा भावसङ्घातसक्ताः ।
मुक्ताकारान् सीकरानुत्सृजन्तो राजन्त्येते स्पष्टभासानुकाराः ॥५५॥

हो रहा है ॥४६॥ कहीं तो यह वन उत्तमोत्तम सघन वृक्षोंसे युक्त है, कहीं छोटे-छोटे अनेक प्रकारके तृणोंसे व्याप्त है, कहीं निर्भय मृगोंके बड़े-बड़े झुण्डोंसे सहित है, कहीं अत्यन्त भयभीत कृष्णमृगोंके लिए सघन झाड़ियोंसे युक्त है ॥४७॥ कहीं अतिशय मदोन्मत्त हाथियोंके द्वारा गिराये हुए वृक्षोंसे सहित है, कहीं नवीन वृक्षोंके समूहसे युक्त है, कहीं भ्रमर-समूहकी मनोहारी झंकारसे सुन्दर है, कहीं अत्यन्त तीक्ष्ण शब्दोंसे भरा हुआ है ॥४८॥ कहीं प्राणी भयसे इधर-उधर घूम रहे हैं, कहीं निश्चिन्त बैठे हैं, कहीं गुफाएँ जलसे रहित हैं, कहीं गुफाओंसे जल बह रहा है ॥४९॥ कहीं यह वन लाल है, कहीं सफेद है, कहीं पीला है, कहीं हरा है, कहीं मोड़ लिये हुए है, कहीं निश्चल है, कहीं शब्दसहित है, कहीं शब्दरहित है, कहीं विरल है, कहीं सघन है, कहीं नीरस—शुष्क है, कहीं तरुण—हराभरा है, कहीं विशाल है, कहीं विषम है, और कहीं अत्यन्त सम है ॥५०॥ हे प्रिये जानकि ! देखो यह प्रसिद्ध दण्डकवन कर्मोंके प्रपंचके समान अनेक प्रकारका हो रहा है ॥५१॥ हे सुमुखि ! शिखरोंके समूहसे आकाशरूपी आँगनको व्याप्त करनेवाला यह दण्डक नामका पर्वत है जिसके नामसे ही यह वन दण्डक वन कहलाता है ॥५२॥ इस पर्वतके शिखरपर गेरू आदि आदि धातुओंसे उत्पन्न हो ऊँची उठनेवाली लाल-लाल कान्तिसे आच्छादित हुआ आकाश ऐसा जान पड़ता है मानो लाल फूलोंके समूहसे ही व्याप्त हो रहा हो ॥५३॥ इधर इस पर्वतकी गुफाओंमें दूरसे ही अन्धकारके समूहको नष्ट करनेवाली देदीप्यमान औषधियोंकी बड़ी-बड़ी शिखाएँ वायुरहित स्थानमें स्थित दीपकोंके समान जान पड़ती हैं ॥५४॥ इधर पाषाण-खण्डोंके बीच अत्यधिक शब्दके साथ बहुत ऊँचेसे पड़नेवाले ये झरने मोतियोंके समान जलकणोंको छोड़ते हुए सूर्यकी किरणोंके

---

१. पर्वतः । २. शृङ्गैरालीढमम्बराङ्गणं येन सः । ३. शिखरेष्वस्य म. ।

विश्वुन्नालावृत्तम्

अस्योद्देशाः शुभ्राः केचित् केचिन्नीला रक्ताः केचित् ।
दृश्यन्तेऽमी वृक्षैर्व्याप्ता प्रान्ते कान्तेऽत्यन्तं कान्ताः ॥५६॥

प्रभाणिकाछन्दः

अमी सघनीरणेरिते वरोहि वृक्षमस्तके । विभान्ति गह्वरे लघा रवेः कराः क्वचित् क्वचित् ॥५७॥

रुचिरावृत्तम्

अयं क्वचित् फलभरनम्रपादपः क्वचित् स्थितैः कुसुमपटैरलंकृतः ।
क्वचित् खगैः कलरवकारिभिश्चितो विभात्यलं वरमुखि दण्डको गिरिः ॥५८॥

कोकिलकच्छन्दः

इह चमरीगणोऽयमतिदुष्टमृगोपगतः प्रियतरवालिधिः प्रियतमैरनुयातपथः ।
अनतिविसृष्टमन्दगतिरिन्दुरुचिः पुरुषं प्रविशति गह्वरं न पृथुकाहितचञ्चलदृक् ॥५९॥

स्रग्धरावृत्तम्

एषा नीला शिला स्यात्तिमिरमुपचितं कन्दराणां मुखेषु
स्यादेतत् किं विहायःस्फटिकमणिशिला किन्तु वृक्षान्तरस्था ।
एष स्याद् गण्डशैलः किमुत गजपतिः सेवते गाढनिद्रां
कान्ते क्षोणीधरेऽस्मिन्नतिसदृशतया दुर्गमा भूविभागाः ॥६०॥
एषा कौञ्चरवा नाम नदी जगति विश्रुता । जलं यस्याः प्रिये [1]बीध्रं स्वदीयमिव चेष्टितम् ॥६१॥

अश्वललितच्छन्दः

मृदुमरुदीरमङ्कुरमलं तटस्थतरुपुष्पसंहितधरम् । मधुपायनीयरूपसुभगं सुकेशि जलमत्र राजतितराम् ॥६२॥

साथ मिलकर सुशोभित हो रहे हैं ॥५५॥ हे कान्ते ! इस पर्वतके कितने ही प्रदेश सफेद हैं, कितने ही नील हैं, कितने ही लाल हैं, और कितने ही वृक्षावलीसे व्याप्त होकर अत्यन्त सुन्दर दिखाई देते हैं ॥५६॥ हे वरोहि ! सघन वनमें वायुसे हिलते हुए वृक्षोंके अग्रभाग पर कहीं-कहीं सूर्यकी किरणें ऐसी सुशोभित होती हैं मानो उसके खण्ड ही हों ॥५७॥ हे सुमुखि ! जो कहीं तो फलोंके भारसे झुके हुए वृक्षोंके समूहसे युक्त है; कहीं पड़े हुए पुष्प रूपी वस्त्रोंसे सुशोभित है, और कहीं कलरव करनेवाले पक्षियोंसे व्याप्त है ऐसा यह दण्डक वन अत्यधिक सुशोभित हो रहा है ॥५८॥ इधर, जिसे अपनी पूँछ अधिक प्यारी है, जिसके वल्लभ पीछे-पीछे दौड़े चले आ रहे हैं, जो चन्द्रमाके समान सफेद कान्तिका धारक है, और जो अपने बच्चोंपर चंचल दृष्टि डाल रहा है ऐसा यह चमरीमृगोंका समूह दुष्ट जीवोंके द्वारा उपद्रुत होनेपर भी अपनी मन्दगतिको नहीं छोड़ रहा है तथा बाल टूट जानेके भयसे कठोर एवं सघन झाड़ीमें प्रवेश नहीं कर रहा है ॥५९॥ हे कान्ते ! इधर इस पर्वतकी गुफाओंके आगे यह क्या नील शिला रखी है ? अथवा अन्धकारका समूह व्याप्त है ? इधर यह वृक्षोंके मध्यमें आकाश स्थित है अथवा स्फटिक मणिकी शिला विद्यमान है ? और इधर यह काली चट्टान है या कोई बड़ा हाथी गाढ़ निद्राका सेवन कर रहा है इस तरह अत्यन्त सादृश्य-के कारण इस पर्वतके भूभागों पर चलना कठिन जान पड़ता है ॥६०॥ हे प्रिये ! यह वह कौंचरवा नामकी जगत्-प्रसिद्ध नदी है कि जिसका जल तुम्हारी चेष्टाके समान अत्यन्त उज्ज्वल है ॥६१॥ हे सुकेशि ! जो मन्द-मन्द वायुसे प्रेरित होकर लहरा रहा है, जो तटपर स्थित वृक्षोंके पुष्प-

---

१. बीध्रं विमलं चोडं म. ।

भद्रकच्छन्दः[1]

हंसकुलाभफेनपटलप्रभिन्नबहुपुष्पपुञ्जकलितम् । भृङ्गनिनादपूरितवना क्वचिद् विकटसंकटोपलचयैः ॥६३॥

(१) छन्दः

ग्राहसहस्रसंचारविषमा क्वचिच्च पुरुवेदसंगतजला ।
घोरतपस्विचेष्टिसमा क्वचिच्च वहति प्रशान्तगुरिषम् ॥६४॥

पुष्पिताग्रावृत्तम्

परमसितिशिलौघरश्मिमिश्रं क्वचिदनुलग्नसितोपलांशुयुक्तम् ।
जलमिह सितदन्ति भाति बाढं हरिहरयोरिव संगतं शरीरम् ॥६५॥

वंशपत्रपतितम्

रक्तशिलौघरश्मिनिचिता क्वचिदियममला भाति समुद्यदर्कसमये दिगिव सुरपतेः ।
भिन्नजला क्वचिच्च हरितैरुपलकरघयैः शैवलशङ्कयागमकृतो विरसयति खगान् ॥६६॥

हरिणीवृत्तम्

कमलनिकरेष्वत्र स्वेच्छंकृतातिकलस्वनं निभृतपवनासंगात् कम्पेष्वभीक्ष्णकृतभ्रमम् ।
परमसुरभेर्गन्धाद् वक्त्रात्तवेव समुद्गतान् मधुकपटलं कान्ते क्षोभं विभाति रजोरुणम् ॥६७॥

शिखरिणीच्छन्दः

विषिक्तं पाताले क्वचिदिह जलं मुक्तवहनं [illegible] वरति दयिते ते मन इव ।
क्वचिन्नीलाम्भोजैरनलिचलितैः षट्पदचितैर्विभर्त्यश्रिच्छायां प्रवरवनितालोकनभवाम्[2] ॥६८॥

समूहको धारण कर रहा है और जो कैलासके समान शुक्लरूपसे सुन्दर है ऐसा इस नदीका जल अत्यन्त सुशोभित हो रहा है ॥६२॥ यह जल कहीं तो हंस समूहके समान उज्ज्वल फेन समूहसे युक्त है, कहीं टूट-टूटकर गिरे हुए फूलोंके समूहसे सहित है, कहीं भ्रमरोंके समूहसे इसका कमल वन पूरित है और कहीं यह बड़े-बड़े सघन पाषाणोंके समूहसे उपलक्षित है ॥६३॥ यह नदी कहीं तो हजारों मगरमच्छोंके संचारसे विषम है, कहीं इसका जल अत्यन्त वेगसे सहित है और कहीं यह घोर तपस्वी-साधुओंकी चेष्टाके समान अत्यन्त प्रशान्त भावसे बहती है ॥६४॥ हे शुक्ल दाँतों-को धारण करनेवाली सीते ! इस नदीका जल एक ओर तो अत्यन्त नील शिला समूहकी किरणोंसे मिश्रित होकर नीला हो रहा है तो दूसरी ओर समीपमें स्थित सफेद पाषाणखण्डोंकी किरणोंसे मिलकर सफेद हो रहा है। इस तरह यह परस्पर मिले हुए हरिहर-नारायण और महादेवके शरीरके समान अत्यन्त सशोभित हो रहा है ॥६५॥ लाल-लाल शिलाखण्डोंकी किरणोंसे व्याप्त यह निर्मल नदी, कहीं तो सूर्योदयकालीन पूर्व दिशाके समान सुशोभित हो रही है और कहीं हरे रंगके पाषाण-खण्डकी किरणोंके समूहसे जलके मिश्रित होनेसे शेवालकी शंकासे आनेवाले पक्षियोंको विरस कर रही है ॥६६॥ हे कान्ते ! इधर निरन्तर चलनेवाली वायुके संगसे हिलते हुए कमल-समूहपर जो इच्छानुसार अत्यन्त मधुर शब्द कर रहा है, निरन्तर भ्रमण कर रहा है और उसकी परागसे जो लाल वर्ण हो रहा है ऐसा भ्रमरोंका समूह तुम्हारे मुखसे निकली सुगन्धिके समान उत्कृष्ट सुगन्धिसे उन्मत्त हुआ अत्यधिक सुशोभित हो रहा है ॥६७॥ हे दयिते ! जो अतिशय स्वच्छ

---

१. ६२ तमे श्लोके अश्वललितच्छन्दसः पादद्वयम् । ६३ तमे च श्लोके भद्रकच्छन्दसः पादद्वयम् । उभयत्राधार्धि एव श्लोको विद्यते । अथवा उभयोर्मेलने उपजातिच्छन्दो भवति । किंतु विभिन्नजातिरूपजाति-वृत्तप्रायो न दृश्यते । २. लोचनभुवम् म. ।

चतुष्पदिकावृत्तम्

अत्र विभाति व्योमगबृन्दं बहुविधजलभववसनकृतचरणम् ।
प्रेमनिबद्धं तारविरावं क्वचिदतिमदवशपरिचितकलहम् ॥६९॥
सैकतमस्या राजति चेदं सवनितखगाकुलकृतपदपदवि ।
त्वज्जघनस्य प्राप्तसुसमत्वं गतघनसुरपथशशाधरवदने ॥७०॥

मत्तमयूरच्छन्दः

एषा यातानेकविलासाकुलितास्तुस्तोयाधीशं वीचिवरभ्रूरतिकान्ता ।
सद्वृत्तोरुस्फीतगुणौघं शुभचेष्टं[1] विष्टपसुन्दरमुत्तमशीला भरतेशम् ॥७१॥

रुचिरावृत्तम्

इमे प्रिये फलकुसुमैरलंकृतास्तटीरुहो विविधविहङ्गसंकुलाः ।
निरन्तराः सजलवनौघसंनिभाः इमागिता रतिमिव कर्तुमावयोः ॥७२॥

अपरवक्त्रच्छन्दः

इति निगदति राघवोत्तमे परमविचित्रपदार्थसंगतम् ।
प्रमदभरवशंगता सती जनकसुता निजगाद सादरम् ॥७३॥

प्रहर्षिणीवृत्तम्

नद्येषा विमलजला तरङ्गरम्या हंसाद्यैः खगनिवहैः कृताभिलाषाः ।
एतस्यां प्रियतम ते मनोगतं चेच्चोयेऽस्याः किमिति रतिक्षणं न कुर्मः ॥७४॥

है तथा बहाव छोड़कर पाताल तक भरा है ऐसा इस नदीका जल कहीं तो तुम्हारे मनके समान परम गाम्भीर्यको धारण कर रहा है और कहीं भ्रमरोंसे व्याप्त तथा कुछ-कुछ हिलते हुए नील कमलोंसे उत्तम स्त्रीके देखनेसे समुत्पन्न नेत्रोंकी शोभा धारण कर रहा है ॥६८॥ इधर कहीं जो नाना प्रकारके कमलवनोंमें विचरण कर रहा है, प्रेमसे युक्त है, उच्च शब्द कर रहा है और तीव्र मदसे विवश हो जो परस्पर कलह कर रहा है ऐसा पक्षियोंका समूह सुशोभित हो रहा है ॥६९॥ मेघरहित आकाशमें विद्यमान चन्द्रमाके समान उज्ज्वल मुखको धारण करनेवाली हे प्रिये ! इधर जिसपर स्त्रियों सहित क्रीड़ा करनेवाले पक्षियोंके समूहने अपने चरण-चिह्न बना रखे हैं ऐसा इस नदीका यह बालुमय तट तुम्हारे नितम्बस्थलकी सदृशता धारण कर रहा है ॥७०॥ जिस प्रकार अनेक उत्तम विलासों—हावभावरूप चेष्टाओंसे सहित तरंगके समान उत्तम भौंहोंसे युक्त एवं उत्तम शीलको धारण करनेवाली सुभद्रा सुन्दर एवं विस्तृत गुणसमूहसे युक्त, शुभ चेष्टाओंके धारक तथा संसारमें सर्वसुन्दर भरत चक्रवर्तीको प्राप्त हुई थी उसी प्रकार अनेक विलासों—पक्षियोंके संचारसे युक्त जलको धारण करनेवाली, भौंहोंके समान उत्तम तरंगोंसे युक्त, अतिशय मनोहर यह नदी, अत्यन्त सुन्दर तथा विस्तृत गुणसमूहसे सहित शुभ चेष्टासे युक्त एवं जगत्सुन्दर लवणसमुद्रको प्राप्त हुई है ॥७१॥ हे प्रिये ! जो फल और फूलोंसे अलंकृत हैं, नाना प्रकारके पक्षियोंसे व्याप्त हैं, निरन्तर हैं तथा जलसे भरे मेघ-समूहके समान जान पड़ते हैं ऐसे ये किनारेके वृक्ष हम दोनोंको प्रीति उत्पन्न करनेके लिए ही मानो इस नदीकूलमें प्राप्त हुए हैं ॥७२॥ इस प्रकार जब रामने अत्यन्त विचित्र शब्द तथा अर्थसे सहित वचन कहे तब हर्षित होती हुई सीताने आदरपूर्वक कहा ॥७३॥ कि हे प्रियतम ! यह नदी विमल जलसे भरी है, लहरोंसे रमणीय है, हंसादि पक्षियोंके समूह इसमें इच्छानुसार क्रीड़ा कर रहे हैं और आपका मन भी इसमें लग रहा है

---

१. अत्र चतुर्थचरणे छन्दोभङ्गः, पाठस्तूपलब्धपुस्तकेष्वेवं विध एव ।

वियोगिनीच्छन्दः

अथ राजसुतासमीरितं तद्वाक्यं राघवगोत्रचन्द्रमाः ।
अनुजानुगतोऽभिनन्दनात् मेजे रम्यभुवं रथालयात् ॥७५॥

(१)

पूर्वं चक्रे लक्ष्मीनाथः स्नपनमभिनवधृतगजपतिवनपथपरिचितश्रमप्रतिनोदनम् ।
तस्मादूर्ध्वं नानास्वादप्रवरकिसलयकुसुमसमुच्चयमुचितां च परिक्रियाम् ॥७६॥

(२)

पश्चात् स्रोतः संसक्ताम्रद्रुमनिवहपरिचलनकरणवरसहितमतुलं विचेष्टितमीप्सितम् ।
रामेणामा स्नातुं सक्तो विविधजलविहृतिविषयपरमविधिसमुपचितं गुणाकरमानसः ॥७७॥

पृथ्वीवृत्तम्

सफेनवलया लसत्प्रकटवीचिमालाकुला विमर्दितसितासितारुणपयोजपत्राचिता ।
समुद्गतकलस्वनातिरहसंगमासेविता समं रघुकुलेन्दुना रतिमिवाकरोदापगा ॥७८॥

वियोगिनीवृत्तम्

विनिमज्ज्य सुदूरयायिना विसिनीखण्डतिरोहितात्मना ।
पुनरुद्धरणमाश्रिता रघुपुरोः स्त्री सुतरामभूत्तदा ॥७९॥

(२)

मुक्त्वा नानाकृत्यासंगं कुसुमवनचरणजरजोविराजिगलद्भृतम् ।
गत्वा क्षिप्रं तीरोद्देशं त्वरितकृतविविधरसिताः पुरोगतयोषितः ॥८०॥
तेषां द्रष्टुं सक्ताः श्रेष्ठामपरविषयगमनरहितं विधाय मनो भृशम् ।
तिर्यञ्चोऽपि ह्येते रम्यं परुषकृतिरहितमनसां विदन्ति समीहितम् ॥८१॥

तो इसके जलमें हम लोग भी क्यों नहीं क्षण-भर क्रीड़ा करें ॥७४॥

तदनन्तर छोटे भाई लक्ष्मणके साथ-साथ रामने सीताके वचनोंका समर्थन किया और सब रथरूपी घरसे उतरकर मनोहर भूमिपर आये ॥७५॥ सर्वप्रथम लक्ष्मणने नवीन पकड़े हुए हाथी-को जंगली मार्गोंके बीच चलनेसे उत्पन्न हुई थकावटको दूर करनेवाला स्नान कराया। उसके बाद उसे नाना प्रकारके स्वादिष्ट उत्तमोत्तम कोमल पत्ते और फूलोंका समूह इकट्ठा किया तथा उसकी योग्य परिचर्या की ॥७६॥ तदनन्तर जिनका मन नाना प्रकारके गुणोंकी खान था ऐसे लक्ष्मणने रामके साथ-साथ नदीमें स्नान करना प्रारम्भ किया। वे कभी जलके प्रवाहमें आगे बढ़े हुए वृक्षोंके समूहपर चढ़कर जलमें कूदते थे, कभी अनुपम चेष्टाएँ करते थे और कभी नाना प्रकारकी जलक्रीड़ा सम्बन्धी उत्तमोत्तम विधियोंका प्रयोग करते थे ॥७७॥ जो फेनके वलय अर्थात् समूह अथवा फेनरूपी चूड़ियोंसे सहित थी, जो प्रकट उठती हुई तरंगरूपी मालाओंसे युक्त थी, जो मसले हुए सफेद-नीले और लाल कमलपत्रोंसे व्याप्त थी, जिसमें मधुर शब्द उत्पन्न हो रहा था और जो एकान्त समागमसे सेवित थी ऐसी वह नदीरूपी स्त्री ऐसी जान पड़ती थी मानो रघुकुलके चन्द्र—रामचन्द्रके साथ उपभोग ही कर रही हो ॥७८॥ रामचन्द्रजी पानीमें गोता मार बहुत दूर लम्बे जाकर कमल वनमें छिप गये तदनन्तर पता चलनेपर शीघ्र ही सीता उनके पास जाकर क्रीड़ा करने लगी ॥७९॥ पहले जो हंसादि पक्षी अपनी स्त्रियोंके साथ जलमें क्रीड़ा कर रहे थे और कमलोंके वनमें विचरण करनेसे उत्पन्न परागसे जिनके पंख सुशोभित हो रहे थे वे अब शीघ्र ही किनारोंपर आकर नाना प्रकारके मधुर शब्द करने लगे तथा नाना कार्यों की आसक्ति छोड़कर तथा मनको विषयान्तरसे रहित कर राम-लक्ष्मण-सीताकी श्रेष्ठ जलक्रीड़ा देखने

पुष्पिताग्रावृत्तम्

अतिमधुरस्वं करामिघातैर्मृदङ्गरवादपि सुन्दरं विचित्रम् ।
अनुगतदयितो रघुप्रधानः सलिलमवाद्यमदम्बितं सुगीत्या ॥८२॥

(?)

परितोऽकरोद्भ्रमणमस्य जलरमणसक्तचेतसोदारचतुरकरणेऽनुगतक्रियस्य [1]हलहृतेर्लक्ष्मणः ।
अतिवेगवान् पुनरपेतजवनिपुणचारतत्परो भ्रातृगुणनिरतधीः परमं समुद्रस्वघोषलक्षितः ॥८३॥

मालिनीवृत्तम्

इति सुविमललीलः स्वेच्छयाम्भोविहारं प्रमदमुपनयन्सं सीरभाजां मृगाणाम् ।
रघुपतिरनुभूय भ्रातृदारानुयातो गजपतिरिव तीरं सेवितुं संप्रवृत्तः ॥८४॥

वंशस्थवृत्तम्

शरीरयात्रं च विधाय वर्तनं महाप्रशस्तैर्वनजन्मवस्तुभिः ।
स्थिता लतामण्डपरुद्धभास्करे सुरा इवामी कृतचित्रसंकथाः ॥८५॥
सीतापतिस्ततोऽवोचदिति विश्रब्धमानसः । जटायुमूर्ध्वकरया सीतयाऽलंकृतान्तिकः ॥८६॥
सन्त्यस्मिन् विविधा भ्रातर्द्रुमाः स्वादुफलान्विताः । सरितः स्वच्छतोयाश्च मण्डपाश्च लतात्मकाः ॥८७॥
अनेकरत्नसंपूर्णो दण्डकोऽयं महागिरिः । प्रदेशैर्विविधैर्युक्तः परकीडनकोचितैः ॥८८॥
उपकण्ठेऽस्य नगरं विदध्मः सुमनोहरम् । नैजिकीर्वनसंभूता गृह्णीमो महिषीस्तथा ॥८९॥
अस्मिन्नगोचरेऽन्येषामरण्येऽत्यन्तसुन्दरे । विधयावासनं कुर्मः परमा धृतिरद्य मे ॥९०॥
[2]स्वस्मिन्निहितचेतस्के नूनं शोकवशीकृते । [3]स्वहितैः स्वजनैः सर्वैः परिवर्गसमन्वितैः ॥९१॥

लगे, सो ठीक ही है क्योंकि ये तिर्यंच भी कोमल चित्तके धारक मनुष्योंकी मनोहर चेष्टाको समझते हैं—जानते हैं ॥८०-८१॥ तदनन्तर रामने सीताके साथ-साथ उत्तम गीत गाते हुए हथेलियोंके आघातसे जलका बाजा बजाया। उस जलवाद्यका शब्द मृदंगके शब्दसे भी अधिक मधुर, सुन्दर और विचित्र था ॥८२॥ उस समय रामका चित्त जलक्रीड़ामें आसक्त था तथा वे स्वयं नाना प्रकारकी उत्तम चतुर चेष्टाओंके करनेमें तत्पर थे। भाईके स्नेहसे भरे एवं समुद्रघोष धनुषसे सहित लक्ष्मण उनके चारों ओर चक्कर लगा रहे थे। यद्यपि लक्ष्मण अत्यन्त वेगसे युक्त थे तो भी उस समय वेगको दूर कर सुन्दर चालके चलनेमें तत्पर थे ॥८३॥ इस प्रकार उज्ज्वल लीलाको धारण करनेवाले राम भाई और स्त्रीके साथ, तटपर स्थित मृगोंको हर्ष उपजानेवाली जलक्रीड़ा इच्छानुसार कर गजराजके समान किनारेपर आनेके लिए उद्यत हुए ॥८४॥ स्नानके बाद वनमें उत्पन्न हुई अतिशय श्रेष्ठ वस्तुओंके द्वारा शरीरवृत्ति अर्थात् भोजन कर वे अनेक प्रकारकी कथाएँ करते हुए जहाँ लताओंके मण्डपसे सूर्यका संचार रुक गया था ऐसे दण्डक वनमें देवोंके समान आनन्दसे बैठ गये ॥८५॥ तदनन्तर जटायुके मस्तकपर हाथ रखे हुई सीता जिनके पास बैठी थी ऐसे राम निश्चिन्त चित्त हो इस प्रकार बोले ॥८६॥ कि हे भाई! यहाँ स्वादिष्ट फलोंसे युक्त नाना प्रकारके वृक्ष हैं, स्वच्छ जलसे भरी नदियाँ हैं और लताओंसे निर्मित नाना मण्डप हैं ॥८७॥ यह दण्डक नामका महापर्वत अनेक रत्नोंसे परिपूर्ण तथा उत्तम क्रीड़ाके योग्य नाना प्रदेशोंसे युक्त है ॥८८॥ हम लोग इस पर्वतके समीप अत्यन्त मनोहर नगर बनायें और वनमें उत्पन्न हुई पोषण करनेवाली अनेक भैंसें रख लें ॥८९॥ जहाँ दूसरोंका आना कठिन है ऐसे इस अत्यन्त सुन्दर वनमें हम लोग देश बसायें क्योंकि यहाँ मुझे बड़ा सन्तोष हो रहा है ॥९०॥ जिनका चित्त हम लोगोंमें लग रहा है और जो निरन्तर शोकके वशीभूत रहती हैं ऐसी अपनी माताओंको, अपना हित करनेवाले समस्त परिकर एवं परिवारके साथ, जाओ शीघ्र ही ले आओ

---

१. रामस्य । २. अस्मिन म. । ३. सहितैः म. ।

व्रजानय जनन्यौ नौ त्वरितं न न नाथवा । तिष्ठ सुन्दर नैवं मे मानसं शुद्धिमश्नुते ॥९२॥
स्वयमेव गमिष्यामि शरत्समयसंगमे । प्रतिजाग्रद्भवान् सीतामिह स्थास्यति यत्नवान् ॥९३॥
ततो लक्ष्मीधरे नम्रे प्रस्थितेऽवस्थिते तथा । प्रेमार्द्रीकृतचेतस्कः पुनः पद्मो जगाविति ॥९४॥
समयेऽस्मिन्नतिक्रान्ते दीप्तभास्करदारुणे । प्राप्तोऽत्यन्तभयं भीमः कालः संप्रति [1]जालदः ॥९५॥
क्षुब्धाक्षुपारनिर्घोषाश्चलाञ्जननगोपमाः । दिशोऽन्धकारयन्त्येते विद्युद्भृतो बलाहकाः ॥९६॥
निरन्तरं तिरोधाय गगनं घनविग्रहाः । मुञ्चन्ति कं यथा देवा रत्नराशिं जिनोद्भवे ॥९७॥

उपजातिवृत्तम्

विधाय तुङ्गानचलान् महान्तो धाराभिरुच्चैर्घनयः पयोदाः ।
नभोऽङ्गणेऽमी निभृतं चरन्तः क्षणप्रभासंगमिनो विभान्ति ॥९८॥

वंशस्थवृत्तम्

पयोमुचः केचिदमी विपाण्डुराः समीरिता वेगवता नभस्वता ।
भ्रमन्ति निष्णातमसंयतात्मनां मनोविशेषा इव यौवनश्रिताः ॥९९॥

अयं सस्यभुवं मुक्त्वा मेघो भूभृति वर्षति । अनिश्चितविशेषः सन् कुपात्रे द्रविणं यथा ॥१००॥

मालिनीवृत्तम्

अतिजवमिह काले सिन्धवः संप्रवृत्ता विषमतमविहारोदारपङ्का धरित्री ।
जलपरिमलशीतो वाति चण्डश्च वायुर्न तव गमनयुक्तं तेन मन्ये सुभद्र ॥१०१॥

अच्छा नहीं-नहीं ठहरो, यह ठीक नहीं है इसमें मेरा मन शुद्धताको प्राप्त नहीं हो रहा है ॥९१-९२॥ ऋतु आनेपर मैं स्वयं जाऊँगा, तुम सीताके प्रति सावधान रहकर यत्न सहित यहीं ठहरना ॥९३॥ तदनन्तर रामकी पहली बात सुनकर लक्ष्मण बड़ी नम्रतासे जाने लगे थे पर दूसरी बात सुनकर रुक गये। उसी समय जिनका चित्त प्रेमसे आर्द्र हो रहा था ऐसे रामने पुनः कहा कि देदीप्यमान सूर्यसे दारुण यह ग्रीष्म काल तो व्यतीत हुआ अब यह अत्यन्त भयंकर वर्षा काल उपस्थित हुआ है ॥९४-९५॥ जो क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रके समान गर्जना कर रहे हैं तथा जो चलते-फिरते अंजनगिरिके समान जान पड़ते हैं ऐसे बिजलीसे युक्त ये मेघ दिशाओंको अन्धकारसे युक्त कर रहे हैं ॥९६॥ जिस प्रकार जिनेन्द्र भगवान्‌के जन्मके समय देव रत्नराशिकी वर्षा करते हैं, उसी प्रकार मेघोंका शरीर धारण करनेवाले देव निरन्तर रूपसे आकाशको आच्छादित कर जल छोड़ रहे हैं—पानी बरसा रहे हैं ॥९७॥ जो स्वयं महान् हैं, अत्यधिक गर्जना करनेवाले हैं, जो अपनी मोटी धाराओंसे पर्वतोंको और भी अधिक उन्नत कर रहे हैं, जो आकाशांगणमें निरन्तर विचरण कर रहे हैं तथा जिनमें बिजली चमक रही है ऐसे ये मेघ अत्यधिक सुशोभित हो रहे हैं ॥९८॥ वेगशाली वायुके द्वारा प्रेरित ये कितने ही सफेद मेघ असंयमी मनुष्योंके तरुण हृदयोंके समान इधर-उधर घूम रहे हैं ॥९९॥ जिस प्रकार विशेषताका निश्चय नहीं करनेवाला धनाढ्य मनुष्य कुपात्रके लिए धन देता है उस प्रकार यह मेघ धान्यकी भूमि छोड़कर पर्वतपर पानी बरसा रहा है ॥१००॥ इस समय बड़े वेगसे नदियाँ बहने लगी हैं, अत्यधिक कीचड़से युक्त हो जानेके कारण पृथिवीपर विहार करना दुर्भर हो गया है और जलके सम्बन्धसे शीतल तीक्ष्ण वायु चलने लगी है इसलिए हे भद्र! तुम्हारा जाना ठीक नहीं है ॥१०१॥

---

१. जलदानामयं जालदः मेघसंबन्धी । २. विद्युत् ।

इति निगदति पद्मे केकयीसूनुरूचे
प्रवदसि यदधीशस्त्वं तथाहं करोमि ।
विविधरसकथाभिः सुन्दरे स्वाश्रये ते
रविपरिचयमुक्तं कालमस्थुः सुखेन ॥१०२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दण्डकारण्यनिवासाभिधानं नाम द्विचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४२॥

इस प्रकार रामके कहनेपर लक्ष्मण बोले कि आप स्वामी हो जैसा कहते हो वैसा ही मैं करता हूँ। इस तरह अपने सुन्दर निवास स्थलमें वे नाना प्रकारकी स्नेहपूर्ण कथाएँ करते हुए सूर्यके परिचयसे रहित वर्षा काल तक सुखसे रहे ॥१०२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरितमें दण्डक वनमें निवासका वर्णन करनेवाला बयालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४२॥

त्रिचत्वारिंशत्तमं पर्व

ततः शरदृतुर्जित्वा शशाङ्ककरपत्रिभिः । वर्षौघं विश्वमुत्रंक्षे[1] राज्यमाक्रान्तविष्टपः ॥१॥
विकसत्पुष्पसंघातान् पादपान् स्निग्धचेतसः । अलंकारोत्तमांस्तस्य जगृहुः ककुभस्त्रियः ॥२॥
जीमूतमलनिर्मुक्तं मिश्राञ्जनसमद्युति । अम्बुनेव चिरं धौतं रराज गगनाङ्गणम् ॥३॥
प्रावृट्कालगजो मेघकलशैर्धरणीश्रियम् । अभिषिच्य गतः क्वापि विद्युत्कक्षाविराजितः ॥४॥
चिरात् कमलिनीगेहं प्राप्य [2]पक्षच्युता गणाः । उद्भूतमधुरालापाः कामप्यापुः सुखासिकाम् ॥५॥
सिन्धवः स्वच्छकीलाला [3]उन्मज्जत्पुलिनाः परम् । कान्तिमीयुः समासाद्य शरत्समयकामुकम् ॥६॥
वर्षाघातविमुक्तानि चिरात्प्राप्य सुखासिकाम् । काननानि व्यराजन्त संगतानीव निद्रया ॥७॥
सरांसि पङ्कजाख्यानि समं [4]रोधस्समुत्थितैः । पादपैः पक्षिनादेन समालापमिवाभजन् ॥८॥
नानापुष्पकृतामोदा रजनीविमलाम्बरा । मृगाङ्कतिलकं भेजे सुकालेशमिवोषधी ॥९॥
केतकीसूतिरजसा पाण्डुरीकृतविग्रहः । ववौ समीरणो मन्दं मदयन् कामिनीजनम् ॥१०॥
इति प्रसन्नतां प्राप्ते काले सोत्साहविष्टपे । मृगेन्द्रगतिराश्लिष्टविक्रमैकमहारसः ॥११॥
[5]लब्ध्वानुमननं ज्येष्ठादाशानिहितवीक्षणः । कदाचिल्लक्ष्मणो भ्राम्यन्नेककस्तन्नगास्तिकम् ॥१२॥
अजिघ्रदमरं गन्धं विनीतपवनाहृतम् । अचिन्तयच्च कस्यैष भवेद्गन्धो मनोहरः ॥१३॥

अथानन्तर उज्ज्वल शरद् ऋतु, चन्द्रमाकी किरणरूपी बाणोंके द्वारा मेघसमूहको जीतकर समस्त विश्वमें व्याप्त होती हुई राज्य करने लगी ॥१॥ जिनका चित्त स्नेहसे भर रहा था ऐसी दिशारूपी स्त्रियोंने उस शरद् ऋतुके स्वागतके लिए ही मानो खिले हुए पुष्पसमूहसे सुशोभित वृक्षरूपी उत्तमोत्तम अलंकार धारण किये थे ॥२॥ मेघरूपी मलसे रहित आकाशरूपी आंगन, मर्दित अंजनके समान श्यामवर्ण हो ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो बहुत देर तक पानीसे धुल जानेके कारण ही स्वच्छ हो गया है ॥३॥ वर्षा कालरूप हाथी, मेघरूपी कलशोंके द्वारा पृथिवी-रूपी लक्ष्मीका अभिषेक कर बिजलीरूपी कक्षाओंमें सुशोभित होता हुआ जान पड़ता है कहीं चला गया था ॥४॥ भ्रमरोंके समूह बहुत समय बाद कमलिनीके घर जाकर मधुरालाप करते हुए सुखसे बैठे थे ॥५॥ जिनके पुलिन धीरे-धीरे उन्मग्न हो रहे हैं ऐसी स्वच्छ जलसे भरी नदियाँ शरत्कालरूपी वल्लभको पाकर परम कान्तिको प्राप्त हो रही थीं ॥६॥ वर्षा कालकी तीक्ष्ण वायुसे रहित वन चिरकाल बाद सुखसे बैठकर ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो निद्रासे संगत ही थे—नींद ही ले रहे थे ॥७॥ कमलोंसे युक्त सरोवर तटोंपर उत्पन्न हुए वृक्षोंके साथ पक्षियोंके शब्दके बहाने मानो वार्तालाप ही कर रहे थे ॥८॥ जिसने नाना प्रकारके फूलोंकी सुगन्धि धारण की थी तथा जो आकाशरूपी स्वच्छ वस्त्रसे सुशोभित थी ऐसी रात्रिरूपी स्त्री उत्तमकालरूपी पतिको पाकर मानो चन्द्रमारूपी तिलकको धारण कर रही थी ॥९॥ केतकीके फूलोंसे उत्पन्न परागके द्वारा शरीर शुक्लवर्ण हो रहा था ऐसी वायु कामिनीजनोंको उन्मत्त करती हुई धीरे-धीरे बह रही थी ॥१०॥ इस प्रकार जिसमें समस्त संसार उत्साहसे युक्त था ऐसे उस शरत्कालके प्रसन्नताको प्राप्त होनेपर सिंहके समान निर्भय विचरनेवाले महापराक्रमी लक्ष्मण बड़े भाई रामसे आज्ञा प्राप्त कर दिशाओंकी ओर दृष्टि डालते हुए किसी समय अकेले ही उस दण्डक वनके समीप घूम रहे थे ॥११-१२॥ उसी समय उन्होंने विनयी पवनके द्वारा लायी हुई दिव्य सुगन्धि सूँघी। उसे सूँघते ही वे विचार करने लगे कि यह मनोहर गन्ध किसकी होनी चाहिए ? ॥१३॥

---

१. विशदं चक्रे म. । २. भ्रमराणाम् । ३. निर्मलजलयुक्ताः । ४. रोधसमुत्थितैः । ५. लब्धानुगमनं म. ।

पादपानां किमेतेषां स्फुटत्कुसुमधारिणाम् । अहोस्विन्मम देहस्य कुसुमोत्करशायिनः ॥१४॥
वैदेह्या संगतो रामः किमुतोपरि तिष्ठति । किंवा कश्चित्समायातो भवेदत्र त्रिविष्टपी[1] ॥१५॥
ततो मगधराजेन्द्रः पप्रच्छ श्रमणोत्तमम् । भगवन् कस्य गन्धोऽसौ चक्रे विस्मयनं हरेः[2] ॥१६॥
ततो गणधरोऽवोचद्वायुरूपो व्यपेक्षितः । सन्देहतिमिरादित्यः पापधूलीसमीरणः ॥१७॥
द्वितीयस्य जिनेन्द्रस्य श्रुनिवाससमागमे । विद्याधराय[3] विघ्नाय यातायं शरणं विभुम् ॥१८॥
राक्षसानामधीशेन महाभीमेन धीमता । अस्मोदवाहनायासीत्कृपयेत्युदितो वरः[4] ॥१९॥
विपुले राक्षसद्वीपे त्रिकूटं नाम पर्वतम् । मेघवाहनविश्रब्धो गच्छ दक्षिणसागरे ॥२०॥
जम्बूद्वीपस्य जगतीमिमामाश्रित्य दक्षिणम् । लङ्केति नगरी तत्र रक्षोभिर्विनिवेशिता ॥२१॥
रहस्यमिदमेकं च विद्याधर परं शृणु । जम्बूभरतवर्षस्य दक्षिणाशां समाश्रयत् ॥२२॥
आश्रयित्वोत्तरं तीरं लवणस्य महोदधेः । वसुन्धरोदरस्थानस्वभावापितमायतम् ॥२३॥
योजनस्याष्टमं भागं दण्डकाद्रौ गुहाश्रयम् । अधोगत्वा महाद्वारं प्रविश्य मणितोरणम् ॥२४॥
अलंकारोदयं नाम स्थितं पुरमनुत्तमम् । स्थानीयशतधर्मैस्थं दिव्यदेशं निरीक्ष्यसे ॥२५॥
नानाप्रकाररत्नांशुसंतानपरिराजितम् । विस्मयोत्पादने शक्रमपि त्रिदिवसद्मनाम् ॥२६॥
अप्रतर्क्यं गगनगैर्दुर्गं[5] विद्याविवर्जितैः । सर्वकामगुणोपेतं विचित्रालयसंकुलम् ॥२७॥
परचक्रसमाक्रान्तो यद्यापत्सु कदाचन । भवेर्दुर्गं समाश्रित्य तिष्ठेस्त्वं निर्भयस्ततः ॥२८॥
इत्युक्तस्तेन यातोऽसौ यो विद्याधरबालकः । लङ्कापुरीमभूत्तस्मात् संतानोऽनेकपुंगवः ॥२९॥

क्या यह गन्ध विकसित फूलोंको धारण करनेवाले इन वृक्षोंकी है अथवा पुष्पसमूहपर शयन करनेवाले मेरे शरीरकी है ? ॥१४॥ अथवा ऊपर सीताके साथ श्रीराम विराजमान हैं ? या कोई देव यहाँ आया है ? ॥१५॥ तदनन्तर मगधदेशके सम्राट् राजा श्रेणिकने गौतम स्वामीसे पूछा कि हे भगवन् ! वह किसकी गन्ध थी जिसने लक्ष्मणको आश्चर्य उत्पन्न किया था ॥१६॥ तदनन्तर लोगोंकी चेष्टाओंको जाननेवाले, सन्देहरूपी अन्धकारको नष्ट करनेके लिए सूर्य एवं पापरूपी धूलिको उड़ानेके लिए वायुस्वरूप गणधर भगवान् बोले ॥१७॥ कि द्वितीय जिनेन्द्र श्री अजितनाथके समवसरणमें मेघवाहन नामका विद्याधर भयभीत होकर प्रभुकी शरणमें आया था। उस समय राक्षसोंके अधिपति बुद्धिमान् महाभीमने करुणावश मेघवाहनके लिए इस प्रकार वर दिया था ॥१८-१९॥ कि हे मेघवाहन ! दक्षिण समुद्रमें एक विशाल राक्षस द्वीप है उसी द्वीपमें त्रिकूट नामका पर्वत है सो तू निश्चिन्त होकर उसी त्रिकूट पर्वतपर चला जा। वहाँ जम्बूद्वीपकी जगती (वेदिका) का आश्रय कर दक्षिण दिशामें राक्षसोंने एक लंका नामकी नगरी बसायी है। वहाँ ही तू निवास कर। हे विद्याधर ! इसके साथ ही एक रहस्य-गुप्त वार्ता और सुन। जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्रकी दक्षिण दिशामें लवण समुद्रके उत्तर तटका आश्रय कर पृथिवीके भीतर एक लम्बा-चौड़ा स्वाभाविक स्थान है जो योजनके आठवें भाग विस्तृत है। दण्डक पर्वतके गुफाद्वारसे नीचे जानेपर मणिमय तोरणोंसे देदीप्यमान एक महाद्वार मिलता है उसमें प्रवेश करनेपर अलंकारोदय नामका एक उत्कृष्ट सुन्दर नगर दिखाई देता है ॥२०-२५॥ वह नगर नाना प्रकारके रत्नोंकी किरणोंके समूहसे सुशोभित है तथा देवोंको भी आश्चर्य उत्पन्न करनेमें समर्थ है। आकाशमें गमन करनेवाले विद्याधर उसका विचार ही नहीं कर सकते तथा विद्यासे रहित मनुष्योंके लिए वह अत्यन्त दुर्गम है। वह सब प्रकारके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले गुणोंसे सहित है तथा विविध प्रकारके भवनोंसे व्याप्त है ॥२६-२७॥ यदि कदाचित् तू आपत्तिके समय परचक्रके द्वारा आक्रान्त हो तो उस दुर्गका आश्रय कर निर्भय निवास करना ॥२८॥ इस प्रकार महाभीम

---

१. देवः । २. लक्ष्मणस्य । ३. भीताय । ४. मेघवाहनाय । ५. दुःखेन गन्तुं शक्यम् ।

यथावस्थितभावानां श्रद्धानं परमं सुखम् । मिथ्याविकल्पितार्थानां ग्रहणं दुःखमुत्तमम् ॥३०॥
विद्याभृतां सुराणां च ज्ञेयो भेदो विचक्षणैः । तिलपर्वतयोस्तुल्यः शक्तिकान्त्यादिभिर्गुणैः ॥३१॥
पङ्कचन्दनयोर्यद्वदश्मोपलरत्नयोः । तद्वत् खेचरलोकस्य देवलोकस्य चान्तरम् ॥३२॥
गर्भवासपरिक्लेशमनुभूय विधेर्वशात् । ततः समुपजायन्ते विद्यामात्रोपजीविनः ॥३३॥
क्षेत्रवंशसमुद्भूताः खे चरन्तीति खेचराः । अमराणां स्वभावस्तु मनोहारीदमुच्यताम् ॥३४॥
सुरूपाशुचिसर्वज्ञा गर्भवासविवर्जिताः । मांसास्थिस्वेदरहिता देवा अनिमिषेक्षणाः ॥३५॥
जरारोगविहीनाश्च सततं यौवनान्विताः । उदारतेजसा युक्ताः सुखसौभाग्यसागराः ॥३६॥
स्वभावविद्यासंपन्ना अवधिज्ञानलोचनाः । कामरूपधरा धीराः स्वच्छन्दगतिधारिणः ॥३७॥
अमी लङ्काश्रिता राजन् न देवा न च राक्षसाः । रक्षन्ति रक्षसां क्षेत्रमाभूतास्तेन राक्षसाः ॥३८॥
तदंशानुक्रमो ह्येषः पुराणास्माभिः सह । पारम्पर्येण संप्राप्तः कालो नैकार्णवोपमः ॥३९॥
रक्षःप्रभृतिषु श्लाघ्येष्वतीतेषु बहुष्वपि । खण्डत्रयाधिपस्तस्य रावणोऽभवदन्वये ॥४०॥
भगिनी दुर्नखा तस्य रूपेणाप्रतिमा भुवि । प्राप्तस्तया महावीर्यो रमणः खरदूषणः ॥४१॥
चतुर्दशसहस्राणि नृणां तस्य महात्मनाम् । प्रतीतो दूषणाख्यश्च सेनाधिपतिरूर्जितः ॥४२॥
दिक्कुमार इवोदारे धरणीजठरे स्थितम् । अलंकारपुरं तस्य स्थानमासीन्महौजसः ॥४३॥
शम्बूको नाम सुन्दश्च सुतौ तस्य बभूवतुः । बन्धुतश्च दशग्रीवात् भुवि गौरवमाप सः ॥४४॥

राक्षसेन्द्रके कहनेपर जो विद्याधर बालक, लंकापुरी गया था उसीसे अनेक उत्तमोत्तम सन्तति उत्पन्न हुई ॥२९॥ जो पदार्थ जिस प्रकार अवस्थित हैं उनका उसी प्रकार श्रद्धान करना सो परम सुख है और मिथ्याकल्पित पदार्थोंका ग्रहण करना सो अत्यधिक दुःख है ॥३०॥ विद्याधरों और देवोंके बीच बुद्धिमान् मनुष्योंको शक्ति, कान्ति आदि गुणोंके कारण तिल तथा पर्वतके समान भारी भेद समझना चाहिए ॥३१॥ जिस प्रकार कीचड़ और चन्दन तथा पाषाण और रत्नमें भेद है उसी प्रकार विद्याधर और देवोंमें भेद है ॥३२॥ विद्याधर तो गर्भवासका दुःख भोगकर बादमें कर्मोदयकी अनुकूलतासे विद्यामात्रके धारक होते हैं। ये विद्याधरोंके क्षेत्र-विजयार्ध पर्वतपर तथा उनके योग्य कुलोंमें उत्पन्न होते हैं तथा आकाशमें चलते हैं इसलिए खेचर कहलाते हैं। परन्तु देवोंका स्वभाव ही मनोहर है ॥३३-३४॥ देव सुन्दर रूप तथा पवित्र शरीरके धारक हैं, गर्भवाससे रहित हैं, मांस-हड्डी तथा स्वेद आदिसे दूर हैं और टिमकार रहित नेत्रोंके धारक हैं ॥३५॥ वे वृद्धावस्था तथा रोगोंसे रहित हैं, सदा यौवनसे सहित रहते हैं, उत्कृष्ट तेजसे युक्त, सुख और सौभाग्यके सागर, स्वाभाविक विद्याओंसे सम्पन्न, अवधिज्ञानरूपी नेत्रोंके धारक, इच्छानुसार रूप रखनेवाले, धीर, वीर और स्वच्छन्द गतिसे विचरण करनेवाले हैं ॥३६-३७॥ हे राजन् ! लंकामें रहनेवाले विद्याधर न देव हैं और न राक्षस हैं किन्तु राक्षस द्वीपकी रक्षा करते हैं इसलिए राक्षस कहलाते हैं ॥३८॥ अनेक युगान्तरोंके साथ उनके वंशका अनुक्रम चला आता है और उसी अनुक्रम-परम्परा-के अनुसार अनेक सागर प्रमाण काल व्यतीत हो चुका है ॥३९॥ राक्षस आदि बहुत-से प्रशंसनीय उत्तमोत्तम विद्याधर राजाओंके व्यतीत हो चुकनेपर उसी वंशमें तीन खण्डका स्वामी रावण उत्पन्न हुआ है ॥४०॥ उसकी एक दुर्नखा नामकी बहन है जो पृथ्वीपर अपने सौन्दर्यकी उपमा नहीं रखती। उसने महाशक्तिशाली खरदूषण नामक पति प्राप्त किया है ॥४१॥ अतिशय बलवान् खरदूषण चौदह हजार प्रमाण मनुष्योंका विश्वासप्राप्त सेनापति है ॥४२॥ वह दिक्कुमार-भवनवासी देवके समान उदार है। पृथ्वीके मध्यमें स्थित अलंकारपुर नामका नगर उस महाप्रतापीका निवास-स्थान है ॥४३॥ उसके शम्बूक और सुन्द नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। साथ ही वह अपने

१. रूपेण प्रतिमा म. ।

गुरुभिर्वार्यमाणोऽपि मृत्युपाशावलोकितः । शम्बूकः सूर्यहासार्थं प्राविशद्भीषणं वनम् ॥४५॥
अथोक्तमाचरन् राजन्नाराधयितुमुद्यतः । एकाग्रमुन्निशुद्धात्मा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥४६॥
असमाप्तोपयोगस्य यो मे दृष्टिपथे स्थितः । वध्योऽसाविति भाषित्वा वंशस्थलमुपाविशत् ॥४७॥
दण्डकारण्यभागान्ते सौ च क्रौञ्चरवां नदीम् । समुद्रस्योत्तरं तीरं तस्यासाववस्थितः ॥४८॥
नीत्वा द्वादशवर्षाणि ततोऽसावसिरुद्गतः । ग्राह्यः सप्तदिनं स्थित्वा हन्यात्साधकमन्यथा ॥४९॥
कैकसेयी[1] सुतस्नेहाद्द्रष्टुमागात् क्षणे क्षणे । अपश्यच्चासिमुद्भूतं काले देवैरधिष्ठितम् ॥५०॥
प्रसन्नवदना भर्तुर्निजगाद यथाविधि । शम्बूकस्य महाराज सिद्धं तद्योगकारणम् ॥५१॥
आगमिष्यति मे पुत्रो मेरुं कृत्वा प्रदक्षिणम् । अहोभिस्त्रिभिरद्यापि नियमो न समाप्यते ॥५२॥
एवं मनोरथं सिद्धं दध्यौ चन्द्रनखा सदा । लक्ष्मणश्च समुद्देशं संप्राप्तः पर्यटन् वने ॥५३॥
सहस्रामरपूज्यस्य सद्गन्धस्य स्वभावतः । अनन्तस्यादिहीनस्य खड्गरत्नस्य तस्य सः ॥५४॥
दिव्यगन्धानुलिप्तस्य दिव्यस्रग्भूषितस्य च । गन्धो भास्करहासस्य लक्ष्मीधरमुपेयिवान् ॥५५॥
लक्ष्मणो विस्मयं प्राप्तः परित्यज्य क्रियान्तरम् । अयासीद् गन्धमार्गेण केसरीव मयोज्झितः ॥५६॥
अपश्यच्च ततश्छन्नं प्रदेशमतिदुर्गमम् । लताजालावलीरुद्धं तुङ्गपाषाणवेष्टितम् ॥५७॥
मध्ये च गहनस्यास्य सुसमं धरणीतलम् । विचित्ररत्ननिर्माणमर्चितं कनकाम्बुजैः ॥५८॥
मध्ये तस्यापि विपुलं वंशास्तम्बं[2] समुत्थितम् । सौधर्मेमिव संद्रष्टुमविज्ञातकुतूहलम् ॥५९॥

सम्बन्धी रावणसे भी पृथ्वीपर गौरवको प्राप्त हुआ था ॥४४॥ जिसे मृत्युका फन्दा देख रहा था ऐसे शम्बूकने गुरुजनोंके द्वारा रोके जानेपर भी सूर्यहास नामा खड्ग प्राप्त करनेके लिए भयंकर वनमें प्रवेश किया ॥४५॥ हे राजन् ! वह यथोक्त आचरण करता हुआ सूर्यहास खड्गको प्राप्त करनेके लिए उद्यत हुआ। वह एक अन्न खाता है, निर्मल आत्माका धारक है, ब्रह्मचारी है और इन्द्रियोंको जीतनेवाला है, ॥४६॥ 'उपयोग पूर्ण हुए बिना जो मेरी दृष्टिके सामने आवेगा वह मेरे द्वारा वध्य होगा' इस प्रकार कहकर वह वंशस्थल पर्वतपर वंशकी एक झाड़ीमें जा बैठा ॥४७॥ वह दण्डक वनके अन्तमें क्रौंचरवा नदी और समुद्रके उत्तर तटके बीच जो स्थान है वहाँ अवस्थित है ॥४८॥ तदनन्तर बारह वर्ष व्यतीत होनेपर वह सूर्यहास नामा खड्ग प्रकट हुआ जो सात दिन ठहरकर ग्रहण करने योग्य होता है अन्यथा सिद्ध करनेवालेको ही मार डालता ॥४९॥ दुर्नखा (चन्द्रनखा) पुत्रके स्नेहसे उसे बार-बार देखनेके लिए उस स्थानपर आती रहती थी सो उसने उसी क्षण उत्पन्न उस देवाधिष्ठित सूर्यहास खड्गको देखा ॥५०॥ जिसका मुख प्रसन्नतासे भर रहा था ऐसी दुर्नखाने अपने पति खरदूषणसे कहा कि हे महाराज ! मेरा पुत्र मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा देकर तीन दिनमें आ जायेगा क्योंकि इसका नियम आज भी समाप्त नहीं हुआ है ॥५१-५२॥ इस प्रकार इधर शम्बूककी माता चन्द्रनखा, सिद्ध हुए मनोरथका सदा ध्यान कर रही थी उधर लक्ष्मण वनमें घूमते हुए उस स्थानपर जा पहुँचे ॥५३॥ एक हजार देव जिसकी पूजा करते थे, जिसकी स्वाभाविक उत्तम गन्ध थी, जिसका न आदि था न अन्त था, जो दिव्यगन्धसे लिप्त था और दिव्यमालाओंसे जो अलंकृत था ऐसे सूर्यहास नामक खड्गरत्नकी गन्ध लक्ष्मण तक पहुँची ॥५४-५५॥ आश्चर्यको प्राप्त हुए लक्ष्मण अन्य कार्य छोड़कर जिस मार्गसे गन्ध आ रही थी उसी मार्गसे सिंहके समान निर्भय हो चल पड़े ॥५६॥ वहाँ जाकर उन्होंने वृक्षोंसे आच्छादित, लताओंके समूहसे घिरा तथा ऊँचे-ऊँचे पाषाणोंसे वेष्टित एक अत्यन्त दुर्गम स्थान देखा ॥५७॥ इसी वनके बीचमें एक समान पृथ्वीतल था जो चित्र-विचित्र रत्नोंसे बना था तथा सुवर्णमय कमलोंसे अर्चित था ॥५८॥ उसी समान धरातलके मध्यमें एक बाँसोंका विस्तृत स्तम्भ (भिड़ा) था जो किसी अज्ञात कुतूहलके कारण सौधर्मस्वर्गको

१. दुर्नखा, चन्द्रनखा । २. वंशस्तं वंशमुत्थितं म. (?) ।

अथान्ते तस्य निस्त्रिंशं विस्फुरत्किरणमण्डलम् । सकोचकवनं येन प्रदीप्तमिव लक्ष्यते ॥६०॥
नष्टशङ्कस्तमादाय लक्ष्मीमाज्ञातविस्मयः । जिज्ञासंस्तीक्ष्णतामस्य तं वेणुस्तम्बमच्छिनत् ॥६१॥
गृहीतसायकं दृष्ट्वा तं सर्वास्तत्र देवताः । अस्माकं स्वाम्यसीत्युक्त्वा सनमस्यमपूजयन् ॥६२॥
अथावोचत सीतेशः किंचिदस्राकुलेक्षणः । सौमित्रिश्चिरयत्यद्य क्व नु यातो भविष्यति ॥६३॥
भद्रोत्तिष्ठ जटायुः खं दूरमुत्पत्य सद्वृतम् । लक्ष्मीधरकुमारस्य निपुणान्वेषणं कुरु ॥६४॥
इत्युक्तः [1]करुणं यावत् करोत्युत्पतितुं खगः । [2]अङ्गुलीं तावदायस्य जनकस्याङ्गनावदत् ॥६५॥
अयं कुङ्कुमपङ्केन लिप्ताङ्गो नाथ लक्ष्मणः । चित्रमाल्याम्बरधरः समायाति स्वलंकृतः ॥६६॥
गृहीतश्चायमेतेन मण्डलाग्रो महाप्रभः । राजतेऽत्यन्तमेतेन शैलः केसरिणा यथा ॥६७॥
दृष्ट्वा तमीदृशं रामो विस्मयव्याप्तमानसः । अतहः प्रमदं रोद्धुमुत्थाय परिषस्वजे ॥६८॥
पृष्टश्च लक्ष्मणः कृत्स्नं स्ववृत्तान्तमवेदयत् । स्थिताश्च ते विचित्राभिः संकथाभिर्यथासुखम् ॥६९॥
दृष्ट्वा प्रतिदिनं खड्गं सुतं च नियमस्थितम् । यायासोत् सा दिने तस्मिन् कैकसेयागतैकका ॥७०॥
अपश्यच्च [3]विसाराणां वनं [4]कृत्तमशेषतः । अचिन्तयच्च यातः क्व पुत्रः स्थित्वाटवीमिमाम् ॥७१॥
स्थितश्च यत्र संसिद्धमसिरत्नमिदं वनम् । छिन्दानेन परीक्षार्थं न युक्तं सुतना कृतम् ॥७२॥
तावच्चास्तस्थिताद्दित्यमण्डलप्रतिमं शिरः । सकुण्डलं कबन्धं च ददर्श स्थाणुमध्यगम् ॥७३॥

देखनेके लिए ही मानो ऊँचा उठा हुआ था ॥५९॥

अथानन्तर उस बाँसोंके स्तम्बमें देदीप्यमान किरणोंके समूहसे सुशोभित एक खड्ग दिखाई दिया जिससे बाँसोंके साथ-साथ समस्त वन प्रज्वलित-सा जान पड़ता था ॥६०॥ आश्चर्यचकित लक्ष्मणने निःशंक हो वह खड्ग ले लिया और उसकी तीक्ष्णताकी परख करनेके लिए उसी वंशस्तम्बको उन्होंने काट डाला ॥६१॥ खड्गधारी लक्ष्मणको देखकर वहाँ सब देवताओंने 'आप हमारे स्वामी हो' यह कहकर नमस्कारके साथ-साथ उनकी पूजा की ॥६२॥

अथानन्तर जिनके नेत्र कुछ-कुछ आँसुओंसे भर रहे थे ऐसे रामने यह कहा कि आज लक्ष्मण बड़ी देर कर रहा है कहाँ गया होगा ? ॥६३॥ हे भद्र जटायु ! उठो और शीघ्र ही आकाशमें दूर तक उड़कर लक्ष्मणकुमारकी अच्छी तरह खोज करो ॥६४॥ इस प्रकार रामके करुणापूर्वक कहनेपर जटायु उड़नेकी तैयारी करता है कि इतनेमें सीता अंगुली ऊपर उठाकर कहती है ॥६५॥ कि जिनका शरीर केशरकी पंकसे लिप्त है, जो नाना प्रकारकी मालाओं और वस्त्रोंको धारण कर रहे हैं तथा जो अलंकारोंसे अलंकृत हैं ऐसे लक्ष्मण यह आ रहे हैं ॥६६॥ इन्होंने यह महादेदीप्यमान खड्ग ले रखा है और इससे ये सिंहसे पर्वतके समान अत्यन्त सुशोभित हो रहे हैं ॥६७॥ लक्ष्मणको वैसा देख रामका मन आश्चर्यसे व्याप्त हो गया तथा वे हर्षको रोकनेके लिए असमर्थ हो गये जिससे उन्होंने उठकर उनका आलिंगन किया ॥६८॥ पूछनेपर लक्ष्मणने अपना सब वृत्तान्त बतलाया। इस तरह राम-लक्ष्मण और सीता—तीनों प्राणी नाना प्रकारकी कथाएँ करते हुए सुखसे वहाँ ठहरे ॥६९॥

अथानन्तर जो चन्द्रनखा प्रतिदिन खड्गको तथा नियममें स्थित पुत्रको देख जाती थी उस दिन वह अकेली ही वहाँ आयी ॥७०॥ आते ही उसने बाँसोंके उस समस्त वनको सब ओरसे कटा देखा। वह विचार करने लगी कि पुत्र इस अटवीमें रहकर अब कहाँ चला गया ? ॥७१॥ जिस वनमें यह रहा तथा जहाँ यह खड्ग रत्न सिद्ध हुआ परीक्षाके लिए उसी वनको काटते हुए पुत्रने अच्छा नहीं किया ॥७२॥ इतनेमें ही उसने अस्ताचलपर स्थित सूर्यमण्डलके समान निष्प्रभ, तथा कुण्डलोंसे युक्त शिर और एक ठूँठके बीच पड़ा हुआ पुत्रका धड़ देखा ॥७३॥

---

१. करुणं म. । २. तावत् अङ्गुलीं आयस्य उत्थानखेदेन युक्तं कृत्वा । ३. वंशानाम् । ४. छिन्नम् ।

उपकारः कृतस्तस्याः परमो मूर्च्छया क्षणम् । पुत्रमृत्युसमुत्थेन यस्य दुःखेन पीडिता[1] ॥७४॥
ततः संज्ञां समासाद्य हाहारमुखरं मुखम् । उत्क्षिप्य कृच्छ्रतो दृष्टिं तत्र मूर्धन्यपातयत् ॥७५॥
विललाप च शोकार्ता गलद्दृगाकुलेक्षणा । कुररीवैकिकारण्ये हृदयाघातकारिणी ॥७६॥
स्थितो द्वादशवर्षाणि दिनानां च चतुष्टयम् । पुत्रो मे हा परं क्षान्तं न विधे[2] दिवसत्रयम् ॥७७॥
कृतान्तापकृतं किं ते मया परमनिष्ठुर । येन[3] दृष्टनिधिः पुत्रः सहसा विनिपातितः ॥७८॥
अनुभूयसा मया नूनमन्यजन्मनि बालकः । कस्या अपहृतो मत्यं तत्रत्यागतभव ते ॥७९॥
मयापि पुत्र जातोऽसि कथंचिदिति स्थितिं गतः । ईदृशोऽपि प्रियश्चैकां वाचमार्तिविनाशिनीम् ॥८०॥
एहि वत्स निजं रूपं प्रविधाय मनोहरम् । अमङ्गलमिदं मायाकीडनं न विराजते ॥८१॥
स्फुटं यातोऽसि हा वत्स परलोकं विधेर्वशात् । अन्यथा चिन्तितं कार्यमिदमन्यथभूदहो ॥८२॥
अकृष्टिं त्वया मातुः प्रतिकूलं च जातुचित् । अधुना कारणोन्मुक्तं किमिदं विनयोज्झितम्[4] ॥८३॥
संसिद्धसूर्यहासश्चेज्जीविष्यस्त्वमत्र ते । अस्थास्यत् कः पुरो लोके चन्द्रहासवृतो यथा ॥८४॥
भ्रातुः चन्द्रहासेन पदं मम सहोदरे । सूर्यहासस्य न क्षान्तं नूनमात्मविरोधिनः ॥८५॥
एकके भीषणेऽरण्ये निर्दोषं नियमस्थितम् । कृतान्तः कस्य हन्तुं त्वां मूढस्य प्रसृतः करः ॥८६॥
अदीर्घेणैव कालेन भवन्तं निष्ठुरोदितः । क्व गमिष्यति पापोऽसौ सांप्रतं हृतचेतनः ॥८७॥
विलापमिति कुर्वाणा कृत्वाङ्के सुतमुत्तमम् । चुचुम्बे विद्रुमच्छायलोचना करसंगतम् ॥८८॥

उसी क्षण मूर्च्छाने उसका परम उपकार किया जिससे पुत्रकी मृत्युसे उत्पन्न दुःखसे वह पीड़ित नहीं हुई। सचेत होनेपर हाहाकारसे मुखर शिर ऊपर उठाकर उसने बड़ी कठिनाईसे पुत्रके शिरपर दृष्टि डाली ॥७४-७५॥ झरते हुए आंसुओंसे जिसके नेत्र आकुलित थे तथा जो अपनी छाती कूट रही थी ऐसी शोकसे पीड़ित चन्द्रनखा, वनमें अकेली कुररीके समान विलाप करने लगी ॥७६॥ मेरा पुत्र बारह वर्ष और चार दिन तक यहाँ रहा। हाय देव! इसके आगे तूने तीन दिन सहन नहीं किये ॥७७॥ हे अतिशय निष्ठुर देव! मैंने तेरा क्या अपकार किया था जिससे पुत्रको निधि दिखाकर सहसा नष्ट कर दिया ॥७८॥ निश्चय ही मुझ पापिनीने अन्य जन्ममें किसीका पुत्र हरा होगा इसीलिए तो मेरा पुत्र मृत्युको प्राप्त हुआ है ॥७९॥ हे पुत्र! तू मुझसे उत्पन्न हुआ था फिर ऐसी दशाको कैसे प्राप्त हो गया? अथवा इसी अवस्थामें तू दुःखको दूर करनेवाला एक वचन तो मुझे दे—एक बार तो मुझसे बोल ॥८०॥ आओ वत्स! अपना मनोहर रूप धरकर आओ। यह तेरी अमंगल रूप छलक्रीड़ा अच्छी नहीं लगती ॥८१॥ हाय वत्स! भाग्यवश तू स्पष्ट ही परलोक चला गया है। यह कार्य अन्य प्रकारसे सोचा था और अन्य प्रकार हो गया ॥८२॥ तूने कभी भी माताके प्रतिकूल कार्य नहीं किया है अब यह अकारण विनयका त्याग क्यों कर रहा है? ॥८३॥ सूर्यहास खड्ग सिद्ध होनेपर यदि तू जीवित रहेगा तो इस संसारमें चन्द्रहाससे आवृतकी तरह ऐसा कौन पुरुष है जो तेरे सामने खड़ा हो सकेगा? ॥८४॥ चन्द्रहास खड्ग मेरे भाईके पास है सो जान पड़ता है उसने अपने विरोधी सूर्यहास खड्गको सहन नहीं किया है ॥८५॥ तू इस भयंकर वनमें अकेला रहकर नियमका पालन करता था किसीका कुछ भी अपराध तूने नहीं किया था फिर भी किस मूर्ख दुष्ट शत्रुका हाथ तुझे मारनेके लिए आगे बढ़ा? ॥८६॥ तुम्हें मारते हुए उस शत्रुने शीघ्र ही प्रकट होनेवाली अपनी उपेक्षा प्रकट की है। अब वह अविचारी पापी कहाँ जावेगा? ॥८७॥ इस प्रकार उत्तम पुत्रको गोदमें रखकर विलाप करते-करते जिसके नेत्र मूँगाके समान लाल हो गये थे ऐसी चन्द्रनखाने हाथमें लेकर पुत्रका चुम्बन किया ॥८८॥

---

१. पुत्रमृत्युसमुत्थेन दुःखेन परिपीडिता म. । २. हे दैव ! । ३. दृष्टिनिधिः म. । ४. विनयोज्झितम् म. ।

ततः क्षणात् परित्यज्य शोकं मद्दाश्रुसंततिः । गृहीत्वा परमं क्रोधमुत्थाय स्फुरिताननः ॥८९॥
संचरन्ती तमुद्देशं स्वैरं मार्गानुलक्षितम् । निरैक्षत युवानौ तौ चित्तबन्धनकारिणौ ॥९०॥
विनाशमगमत्तस्याः क्रोधोऽसौ तादृशोऽपि सन् । [1]आदेश इव तस्याभूत् स्थाने रागरसः परः ॥९१॥
ततोऽचिन्तयदेताभ्यां नराभ्यामभिलाषिणम् । वृणोमि नरमित्युच्चैरूर्मिकं दधती मनः ॥९२॥
इति संचिन्त्य संसाधुकन्याकल्पं समाश्रिता हृदयेनातुरात्मानं भावगह्वरवर्तिना ॥९३॥
हंसीव पद्मिनीखण्डे महिषीव महाह्रदे । सस्ये सारङ्गबालेव तत्राभूत् साभिलाषिणी ॥९४॥
मञ्जनं करशाखानां कुर्वन्ती स्फुटनिस्वनम् । उपविश्य किलोद्विग्ना पुन्नागस्य तलेऽरुदत् ॥९५॥
अतिदीनकृतारावां धूसरां वनरेणुना । दृष्ट्वा तां [2]रामरमणी कृपावष्टब्धमानसा ॥९६॥
उत्थायान्तिकमागत्य करामर्शनतत्परा । मा भैषीरिति भाषित्वा गृहीत्वा पाणिपल्लवे ॥९७॥
किंचित् किल त्रपाभाजं मलिनांशुकधारिणीम् । सान्त्वयन्ती शुभैर्वाक्यैः रमणान्तिकमानयत् ॥९८॥
ततः पद्मो जगादैतां का त्वं श्वापदसेविते । एकाकिनी वने कन्ये चरसीहातिदुःखिता ॥९९॥
ततः संभाषणं प्राप्य स्फुटं तामरसेक्षणा । जगाद भ्रमरौघस्य वाचानुकृतिमेतया ॥१००॥
पुरुषोत्तम मे माता निःसंज्ञायां मृतिं गता । तत्रैव च शोकेन तातोऽपि विनिपातितः ॥१०१॥
साहं पूर्वकृतात् पापाद् बन्धुभिः परिवर्जिता । प्रविष्टा दण्डकारण्यं वैराग्यं दधती परम् ॥१०२॥
पश्य पापस्य माहात्म्यं यद्बान्धवैरपि वर्जिता । अरण्येऽस्मिन् महाभीमे श्वापदैरपि विवर्जिता ॥१०३॥

तदनन्तर क्षण एकमें शोक छोड़कर वह उठी। उसके अश्रुओंकी धारा नष्ट हो गयी और तीव्र क्रोध धारण करनेसे उसका मुख दमकने लगा ॥८९॥ वह मार्गके समीपमें ही स्थित उस स्थानपर इच्छानुसार इधर-उधर घूमने लगी। उसी समय उसने चित्तको बाँधनेवाले दोनों तरुण—राम-लक्ष्मणको देखा ॥९०॥ उन्हें देखते ही उसका वैसा तीव्र क्रोध नष्ट हो गया और आदेशके समान उसके स्थानपर परम रागरूपी रस आ जमा ॥९१॥ इसके बाद उसने ऐसा विचार किया कि इन दोनों पुरुषोंमें-से मैं अपने इच्छुक पुरुषको वरूँगी इस प्रकार उसके मनमें ऊँची तरंगें उठने लगीं ॥९२॥ ऐसा विचार कर वह कन्याभावको प्राप्त हुई। वह उस समय भावरूपी गुफामें वर्तमान हृदयसे अत्यन्त आतुर हो रही थी ॥९३॥ जिस प्रकार हंसी कमलिनीके झुण्डमें, महिषी (भैंस) महासरोवरमें और हरिणी धान्यमें अभिलाषासे युक्त होती है उसी प्रकार वह भी राम-लक्ष्मणमें अभिलाषासे युक्त हो गयी ॥९४॥ वह हाथकी अंगुलियाँ चटखाती हुई भय-भीत मुद्रामें पुन्नाग वृक्षके नीचे बैठकर रोने लगी ॥९५॥ जो अत्यन्त दीन शब्द कर रही थी, तथा वनकी धूलिसे धूसरित थी ऐसी उस कन्याको देख सीताका हृदय दयासे द्रवीभूत हो गया ॥९६॥ वह उठकर उसके पास गयी तथा शरीरपर हाथ फेरने लगी। तदनन्तर 'डरो मत' यह कहकर उसका हाथ पकड़कर पतिके पास ले आयी। उस समय वह कुछ-कुछ लज्जित हो रही थी, तथा मलिन वस्त्रको धारण किये हुई थी। सीता उसे शुभ वचनोंसे सान्त्वना दे रही थी ॥९७–९८॥

तदनन्तर रामने उससे कहा कि हे कन्ये! जंगली जानवरोंसे भरे इस वनमें अतिशय दुःखसे युक्त तू कौन अकेली विचरण कर रही है? ॥९९॥ तदनन्तर सम्भाषण प्राप्त कर जिसके नेत्र कमलके समान खिल रहे थे ऐसी वह कन्या भ्रमरसमूहका अनुकरण करनेवाली वाणीसे बोली ॥१००॥ कि हे पुरुषोत्तम! मूर्च्छा आनेपर मेरी माता मर गयी और उसके उत्पन्न शोकसे पिता भी मर गये ॥१०१॥ इस तरह पूर्वोपार्जित पापके कारण बन्धुजनोंसे रहित हो परम वैराग्य-को धारण करती हुई मैं इस दण्डकवनमें प्रविष्ट हुई थी ॥१०२॥ पापका माहात्म्य तो देखो कि

---

१. मच्छायस्फुरितानना (?) म.। २. यथा व्याकरणे कस्यचित् स्थाने कदाचित् आदेशो भवति तद्वत्। ३. सीता।

चिरान्मानुपनिर्मुक्ते भ्रमन्त्यास्मिन् वने मया । भवन्तः साधवो दृष्टाः क्षयात् पापस्य कर्मणः ॥१०३॥
जनोऽविदितपूर्वो यो जने बध्नाति सौहृदम् । अनाहूतश्च सामीप्यं व्रजति त्रपयोज्झितः ॥१०५॥
अनादृतः प्रभूतं च भाषते शून्यमानसः । उत्पादयति विद्वेषं कस्य नासौ क्रमोज्झितः ॥१०६॥
एवंभूतापि नो [1]यावत्प्राणान् मुञ्चामि[2] सुन्दर । तावदद्यैव मामिच्छ दुःखितायां दयां कुरु ॥१०७॥
न्यायेन संगतां साध्वीं सर्वोपप्लववर्जिताम् । को वा नेच्छति लोकेऽस्मिन् कल्याणप्रकृतिस्त्रियम् ॥१०८॥
श्रुत्वा तद्वचनं तस्याश्चपया परिवर्जितम् । परस्परं समालोक्य स्थितौ तूष्णीं नरोत्तमौ ॥१०९॥
सर्वशास्त्रार्थबोधाम्बुप्रक्षालितं हि तयोर्मनः । कृत्याकृत्यविवेकेषु मलमुक्तं प्रकाशते ॥११०॥
निर्मुक्तदुःखनिश्वासं गच्छामीति तयोदिते । पद्मनाभादिभिः सोक्ता यथेष्टं क्रियतामिति ॥१११॥
तस्यां प्रयातमात्रायां [3]तदाशालीनताहृतौ । सस्मितौ स्मितिमन्तौ वीरौ स्मेरवक्त्रौ बभूवतुः ॥११२॥
अन्तर्हत्य च संक्रुद्धा समुत्पत्य खरावली । याता चन्द्रनखा धाम निजं शोकसमाकुला ॥११३॥
शोभयापहृतस्तस्या लक्ष्मणस्तरलेक्षणः । पुनरालोकनाकाङ्क्षो विरहादाकुलोऽभवत् ॥११४॥
[4]उत्थायान्यापदेशेन रामदेयसकाशतः । अटवीं पादपद्माभ्यां बभ्रामान्वेषणातुरः ॥११५॥
अचिन्तयच्च खिन्नात्मा वाष्पव्याकुललोचनः । आत्मन्यनादृतप्रीतिरिति तत्रेमनिर्भरः ॥११६॥
रूपयौवनलावण्यगुणपूर्णा घनस्तनी । मदनाविष्टनागेन्द्रवनितासमगामिनी ॥११७॥
आयान्त्येव सती कस्माद्दृष्टमात्रा न सा मया । स्तनोपपीडमाश्लेषं परिरब्धा हतात्मना ॥११८॥

मैं यद्यपि मृत्युकी इच्छा करती हूँ फिर भी इस महाभयंकर वनमें दुष्ट जीव भी मुझे छोड़ देते हैं ॥१०३॥ चिरकालसे इस निर्जन वनमें भ्रमण करती हुई मैंने पापकर्मके क्षयसे आज आप सज्जनोंके दर्शन किये हैं ॥१०४॥ जो पहलेका अपरिचित मनुष्य किसी मनुष्यसे मैत्रीभाव प्रकट करता है, बिना बुलाया निर्लज्ज हो उसके पास जाता है तथा बिना आदरके शून्यचित्त हो अधिक भाषण करता है वह क्रमहीन मनुष्य किसे द्वेष नहीं उत्पन्न करता ? ॥१०५-१०६॥ ऐसी होनेपर भी हे सुन्दर ! जबतक मैं प्राण नहीं छोड़ती हूँ तबतक आज ही मुझे चाहो, मेरी इच्छा करो मुझ दुःखिनीपर दया करो ॥१०७॥ जो न्यायसे संगत है, साध्वी है, सर्व प्रकारकी बाधाओंसे रहित है, तथा जिसकी कल्याणरूप प्रकृति है ऐसी कन्याको इस संसारमें कौन नहीं चाहता ? ॥१०८॥ राम-लक्ष्मण उसके लज्जाशून्य वचन सुनकर परस्पर एक दूसरेको देखते हुए चुप रह गये ॥१०९॥ समस्त शास्त्रोंके अर्थज्ञानरूपी जलसे धुला हुआ उनका निर्मल मन करने योग्य तथा नहीं करने योग्य कार्योंमें अत्यन्त प्रकाशित हो रहा था ॥११०॥ दुःख-भरी श्वास छोड़कर जब उसने कहा कि मैं जाती हूँ तब राम आदिने उत्तर दिया कि 'जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो' ॥१११॥ उसके जाते ही उसकी अकुलीनतासे प्रेरित हुए शूरवीर राम-लक्ष्मण सीताके साथ आश्चर्यसे चकित हो हँसने लगे ॥११२॥

तदनन्तर शोकसे व्याकुल चन्द्रनखा मनमार क्रुद्ध हो उड़कर शीघ्र ही अपने घर चली गयी ॥११३॥ लक्ष्मण उसकी सुन्दरतासे हरे गये थे इसलिए उनके नेत्र चंचल हो रहे थे। वे उसे पुनः देखनेकी इच्छा करते हुए विरहसे आकुल हो गये ॥११४॥ वे किसी अन्य कार्यके बहाने रामके पाससे उठकर चन्द्रनखाकी खोजमें व्यग्र होते हुए पैदल ही वनमें भ्रमण करने लगे ॥११५॥ जिनका हृदय अत्यन्त खिन्न था, जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे, जिन्होंने अपने आपके विषयमें प्रकट हुए चन्द्रनखाके प्रेमकी उपेक्षा की थी तथा जो उसके प्रेमसे परिपूर्ण थे ऐसे लक्ष्मण इस प्रकार विचार

---

१. भूतापितो (?) म. । २. मुञ्चति म. । ३. तस्याः अशालीनता अकुलीनता तया हृतौ । ४. उत्थायाज्ञापदेशेन म. । अन्यव्याजेन ।

अयोगमोहितं चेतश्च्युतं कर्तव्यवस्तुनः । साम्प्रतं शोकशिखिना दह्यते मे निरङ्कुशम् ॥११९॥
जाता सा विषये कस्मिन् कस्य वा दुहिता भवेत् । यूथभ्रष्टा मृगीवेयं कुतः प्राप्ता सुलोचना ॥१२०॥
संचिन्त्येति कृतभ्रान्तिस्तामपश्यन् समाकुलः । मेने तद्वनमाकाशपुष्पतुल्यं समन्ततः ॥१२१॥

मालिनीवृत्तम्

अविदितपरमार्थैरेवमर्थेन हीनं न खलु विमलचित्तैः कार्यमारम्भणीयम् ।
अविषयकृतचित्ता[2] तत्समासक्तिमुक्ता दधति परमशोकं बालवद्बुद्धिहीनाः ॥१२२॥
किमिदमिह मनो मे किं नियोज्यं तदिष्टं कथमनुगतकृत्यैः प्राप्यते शं मनुष्यैः ।
इति कृतमतिरुच्चैर्यो विवेकस्य कर्ता रविरिव विमलोऽसौ राजते लोकमार्गे ॥१२३॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते शम्बूकवधाभिधानं नाम त्रिचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४३॥

□

करने लगे कि जो रूप-यौवन-सौन्दर्य तथा अनेक गुणोंसे परिपूर्ण थी, जिसके स्तन अतिशय सघन थे और जो कामोन्मत्त हस्तिनीके समान चलती थी ऐसी उस सतीका मैंने आने तथा दिखनेके साथ ही स्तनोंको पीड़ित करनेवाला आलिंगन क्यों नहीं किया ॥११६-११८॥ उसके वियोगसे मोहित हुआ मेरा चित्त कर्तव्य वस्तु—करने योग्य कार्यसे च्युत होता हुआ इस समय शोकरूपी अग्निके द्वारा निर्बाध रूपसे जल रहा है ॥११९॥ वह किस देशमें उत्पन्न हुई है। किसकी पुत्री है? यह उत्तम नेत्रोंकी धारक झुण्डसे बिछुड़ी हरिणीके समान यहाँ कहाँसे आयी थी?॥१२०॥ इस प्रकार विचारकर जो इधर-उधर भ्रमण कर रहे थे तथा उसे न देखकर जो अत्यन्त व्याकुल थे ऐसे लक्ष्मणने उस वनको सब ओरसे आकाशपुष्पके समान माना था ॥१२१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! निर्मल चित्तके धारक मनुष्योंको इस तरह परमार्थके जाने बिना निरर्थक कार्य प्रारम्भ नहीं करना चाहिए। क्योंकि जो बालकोंके समान निर्बुद्धि मनुष्य अयोग्य विषयमें चित्त लगाते हैं वे उसकी प्राप्तिसे रहित हो परम शोकको धारण करते हैं ॥१२२॥ 'यह क्या है? इसमें मुझे मन क्यों लगाना चाहिए? यह इष्ट क्यों है? और करने योग्य कार्योंका अनुसरण करनेवाले मनुष्य ही सुख-शान्ति प्राप्त कर पाते हैं' इस प्रकार विचारकर जो उत्कृष्ट विवेकका कर्ता होता है वह सूर्यकी तरह निर्मल होता हुआ लोकके मार्गमें सुशोभित होता है ॥१२३॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें शम्बूकके वधका वर्णन करनेवाला तैंतालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४३॥

□

१. अयोगं भे हृतं (?) म. । २. तत्समासक्तिमुक्ता ।

चतुश्चत्वारिंशत्तमं पर्व

अनिच्छयाथ विध्वस्ते [1]खरदूष्या मनोभवे । दुःखपूरः पुनः प्राप्तो भग्नरोधो[2] यथा नदः ॥१॥
चकार व्याकुलीभूता विविधं परिदेवनम् । शोकपावकतप्ताङ्गा धिक्कृता[3] बहुला यथा ॥२॥
वहन्ती चारमानं तं क्रोधदैन्यस्थमानसा । विगलद्बाष्पनेत्राम्बुर्[4]खरेण निरैक्षत ॥३॥
तां विनष्टधृतिं दृष्ट्वा धरणीधूलिधूसराम् । प्रकीर्णकेशसंभारां शिथिलीभूतमेखलाम् ॥४॥
नखविक्षतकक्षोरुकुचश्रोणीं सशोणिताम् । कर्णाभरणनिर्मुक्तां हारलावण्यवर्जिताम् ॥५॥
विच्छिन्नकञ्चुकां भ्रष्टस्वभावतनुतेजसम् । आक्रोडितां गजेनेव नलिनीं [4]मदवाहिना ॥६॥
पप्रच्छ परिसान्त्व्यैव कान्ते शीघ्रं निवेदय । अवस्थामिमकां केन प्रापितासि दुरात्मनः ॥७॥
अद्येन्दुरष्टमः कस्य मृत्युना कोऽवलोकितः । गिरेः स्वपिति कः शृङ्गे मूढः क्रीडति कोऽहिना ॥८॥
कोऽन्धः कूपं समापन्नो दैवं कस्याशुभावहम् । मत्क्रोधाग्नावयं दीप्ते शलभः कः पतिष्यति ॥९॥
धिक् तं पशुसमं पापं विवेकत्यक्तमानसम् । अपवित्रसमाचारं लोकद्वितयदूषितम् ॥१०॥
अलं रुदित्वा नान्येव काचिस्त्रं प्राकृतावला । स्पृष्टा येनासितं शंस वाडवाग्निशिखासमा ॥११॥
अद्यैव तं दुराचारं कृत्वा हस्ततलाहतम् । नेष्ये प्रेतपतिं सिंहो यथा नागं निरंकुशम् ॥१२॥
एवमुक्ता विसृज्यासौ रुदितं कृच्छ्रतः परात् । अस्रक्लिन्नकपोलाक्षश्लक्ष्णगद्गादीत् सगद्गदम् ॥१३॥

अथानन्तर जब अनिच्छासे चन्द्रनखाका काम नष्ट हो गया तब तटको भग्न करनेवाले नदके समान दुःखका पूर उसे पुनः प्राप्त हो गया ॥१॥ जिसका शरीर शोकरूपी अग्निसे सन्तप्त हो रहा था ऐसी चन्द्रनखा, मृतवत्सा गायके समान व्याकुल होकर नाना प्रकारका विलाप करने लगी ॥२॥ जो पूर्वोक्त अपमानको धारण कर रही थी, जिसका मन क्रोध और दीनतामें स्थित था तथा जिसके नेत्रोंसे अश्रु झर रहे थे ऐसी चन्द्रनखाको खरदूषणने देखा ॥३॥ जिसका धैर्य नष्ट हो गया था, जो पृथिवीकी धूलिसे धूसरित थी, जिसके केशोंका समूह बिखरा हुआ था, जिसकी मेखला ढीली हो गयी थी, जिसकी बगलों, जाँघों तथा स्तनोंकी भूमि नखोंसे विक्षत थी, जो रुधिरसे युक्त थी, जिसके कर्णाभरण गिर गये थे, जो हार और लावण्यसे रहित थी, जिसकी चोली फट गयी थी, जिसके शरीरका स्वाभाविक तेज नष्ट हो गया था, और जो मदोन्मत्त हाथीके द्वारा मर्दित कमलिनीके समान जान पड़ती थी ऐसी चन्द्रनखाको सान्त्वना देकर खरदूषणने पूछा कि हे प्रिये ! शीघ्र ही बताओ तुम किस दुष्टके द्वारा इस अवस्थाको प्राप्त करायी गयी हो ? ॥४-७॥ आज किसका आठवाँ चन्द्रमा है ? मृत्युके द्वारा कौन देखा गया है ? पहाड़की चोटीपर कौन सो रहा है और कौन मूर्ख सर्पके साथ क्रीड़ा कर रहा है ? ॥८॥ कौन अन्धा कुएँमें आकर पड़ा है ? किसका दैव अशुभ है ? और मेरी प्रज्वलित क्रोधाग्निमें कौन पतंग बनकर गिरना चाहता है ? ॥९॥ जिसका मन विवेकसे रहित है, जो अपवित्र आचरण करनेवाला है और जिसने दोनों लोकोंको दूषित किया है उस पशुतुल्य पापीको धिक्कार है ॥१०॥ रोना व्यर्थ है तुम अन्य साधारण स्त्रीके समान थोड़े ही हो। वडवानलकी शिखाके समान जिसने तुम्हें छुआ है उसका नाम कहो ॥११॥ निरंकुश हाथीको सिंहके समान मैं आज ही उसे हस्ततलसे पीसकर यमराजके घर भेज दूँगा ॥१२॥ इस प्रकार कहनेपर बड़े कष्टसे रोना छोड़कर वह गद्गद वाणीमें बोली। उस समय उसके कपोल,

---

१. चन्द्रनखायाः । २. भग्नरोधा, भग्नं रोधो यस्यासौ । भग्नरोधो म. । ३. गौरिव । ४. मदवाहिनी म. ।

वनाभ्यन्तरस्थितं पुत्रं द्रष्टुं यातास्मि साम्प्रतम् । अपश्यन्तं च केनापि प्रथमच्छिन्नमूर्धकम् ॥१४॥
ततः शोणितधाराभिर्निःसृताभिर्निरन्तरम् । प्रदीप्तमिव तन्मूले लक्ष्यते वंशकस्थलम् ॥१५॥
प्रशान्ताऽवस्थितं[1] हत्वा मे केनापि सुपुत्रकम् । खड्गरत्नं समुत्पन्नं प्राप्तं पूजासमन्वितम् ॥१६॥
साहं दुःखसहस्राणां भाजनं भाग्यवर्जिता । तन्मूर्धानं निधायाङ्के विप्रलापं प्रसेविता ॥१७॥
तावच्च तेन दुष्टेन शम्बूकवधकारिणा । उपगूढास्मि बाहुभ्यां कर्तुं किमपि वाञ्छिता ॥१८॥
उक्तोऽपि मुञ्च मुञ्चेति घनस्पर्शवशङ्कृतः । न मुञ्चति हतात्मा मां कोऽपि नीचकुलोद्गतः ॥१९॥
नखैर्विलुप्य दन्तैश्च तेनाहं विजने वने । एतिकां प्रापितावस्थां क्वाबला क्व पुमान् बली ॥२०॥
तथापि पुण्यशेषेण केनापि परिरक्षिता । अविखण्डितचारित्रा कृच्छ्राच्च निःसृता ततः ॥२१॥
सर्वविद्याधराधीशत्रिलोकक्षोभकारणः । भ्राता मे रावणः ख्यातः शक्रेणाप्यपराजितः ॥२२॥
खरदूषणनामा त्वं भर्ता कोऽपि विवर्ण्यसे । संप्राप्तास्मि तथाप्येतामवस्थां दैवयोगतः ॥२३॥
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा शोकक्रोधसमाहतः[2] । स्वयं महाजवो गत्वा दृष्ट्वा व्यापादितं सुतम् ॥२४॥
संपूर्णेन्दुसमानोऽपि पूर्वसारङ्गलोचनः । बभूव भीषणाकारो मध्यप्रोष्मार्कसन्निभः ॥२५॥
आगतश्च द्रुतं भूयः प्रविश्य भवनं निजम् । सुहृद्भिः सहितश्चक्रे स्वल्पकालप्रधारणम् ॥२६॥
तत्र केचिद्द्रुतं प्रोचुः सचिवाः कर्कशाशयाः । राजकीयमभिप्रायं बुद्ध्वा सेवापरायणाः ॥२७॥
शम्बूकः साधितो येन खड्गरत्नं च हस्तितम् । असावुपेक्षितो राजन् वद किं न करिष्यति ॥२८॥

आंसुओंसे भीग रहे थे तथा बिखरे हुए बालोंसे आच्छन्न थे ॥१३॥ उसने कहा कि मैं अभी वनके मध्यमें स्थित पुत्रको देखनेके लिए गयी थी सो मैंने देखा कि उसका मस्तक अभी हाल किसीने काट डाला है ॥१४॥ निरन्तर निकली हुई रुधिरकी धाराओंसे वंशस्थलका मूल भाग अग्निसे प्रज्वलितके समान दिखाई देता है ॥१५॥ शान्तिसे बैठे हुए मेरे सुपुत्रको किसीने मारकर पूजाके साथ-साथ प्राप्त हुआ वह खड्गरत्न ले लिया है ॥१६॥ जो हजारों दुःखोंका पात्र तथा भाग्यसे हीन है ऐसी मैं पुत्रके मस्तकको गोदमें रखकर विलाप कर रही थी ॥१७॥ कि शम्बूकका वध करनेवाले उस दुष्टने दोनों भुजाओंसे मेरा आलिंगन किया तथा कुछ अनर्थ करनेकी इच्छा की ॥१८॥ यद्यपि मैंने उससे कहा कि मुझे छोड़-छोड़ तो भी वह कोई नीच कुलोत्पन्न पुरुष था इसलिए गाढ़ स्पर्शके वशीभूत हुए उसने मुझे छोड़ा नहीं ॥१९॥ उसने उस निर्जन वनमें नखों तथा दाँतोंसे छिन्न-भिन्न कर मुझे इस दशाको प्राप्त कराया है सो आप ही सोचिए कि अबला कहाँ और बलवान् पुरुष कहाँ ? ॥२०॥ इतना सब होनेपर भी किसी अवशिष्ट पुण्यने मेरी रक्षा की और मैं चारित्रको अखण्डित रखती हुई बड़े कष्टसे आज उससे बचकर निकल सकी हूँ ॥२१॥ जो समस्त विद्याधरोंका स्वामी है, तीन लोकके क्षोभका कारण है, और इन्द्र भी जिसे पराजित नहीं कर सका ऐसा प्रसिद्ध रावण मेरा भाई है तथा तुम खरदूषण नामधारी अद्भुत पुरुष मेरे भर्ता हो फिर भी दैवयोगसे मैं इस अवस्थाको प्राप्त हुई हूँ ॥२२-२३॥

तदनन्तर चन्द्रनखाके वचन सुनकर शोक और क्रोधसे ताड़ित हुए महावेगशाली खरदूषणने स्वयं जाकर पुत्रको मरा देखा ॥२४॥ यद्यपि वह पहले मृगके समान नेत्रोंको धारण करनेवाला और पूर्ण चन्द्रमाके समान उज्ज्वल था तो भी पुत्रको मरा देख ग्रीष्म ऋतुके मध्याह्नकालीन सूर्यके समान भयंकर हो गया ॥२५॥ उसने शीघ्र ही वापस आकर और अपने भवनमें प्रवेश कर मित्रोंके साथ स्वल्पकालीन मन्त्रणा की ॥२६॥ उनमें-से कठोर अभिप्रायके धारक तथा सेवामें तत्पर रहनेवाले कितने ही मन्त्री राजाका अभिप्राय जानकर शीघ्र ही कहने लगे कि जिसने शम्बुकको

---

१. प्रशान्तोऽवस्थितं म. । २. समाहितः म. ।

ऊचुरन्ये विवेकस्था नाथ नेदं लघुक्रियम्[1] । सामन्तान् लोकयाशेषान् रावणाय च कथ्यताम् ॥२९॥
यस्यासिरत्नमुत्पन्नं सुसाध्यः स कथं भवेत् । तस्मात् संघातकार्योऽस्मिन्त्वरा[2] कर्तुं न युज्यते ॥३०॥
गुरुवाक्यानुरोधेन राक्षसाधिपसंविदे । दूतः संप्रेषितस्तेन युवा लङ्कां महाजवः ॥३१॥
राजधैर्यात् कुतोऽप्येष चिरं यावदवस्थितः । रावणस्यान्तिके दूतः कार्यसाधनतत्परः ॥३२॥
तीव्रक्रोधपरीतात्मा तावच्च खरदूषणः । अभाषत पुनः पुत्रगुणप्रेक्षितमानसः ॥३३॥
मायाविनिर्हृतैः क्षुद्रैर्जन्तुभिर्भूमिगोचरैः । दिव्यसैन्यार्णवः क्षुब्धस्तरितुं नैव शक्यते ॥३४॥
धिगिदं शौर्यमस्माकं सहायान् यदि वाञ्छति । द्वितीयोऽपि कथं बाहुरिष्यते मम बाहुना ॥३५॥
इत्युक्त्वा परमं बिभ्रदभिमानं खरान्वितः । उत्पपात मुखन्मध्यादाकाशं स्फुरितानतः ॥३६॥
तमेकान्तपरं दृष्ट्वा सबद्धानि क्षणान्तरे । चतुर्दशसहस्राणि सुहृदो निर्ययुः पुरात् ॥३७॥
तस्य राक्षससैन्यस्य श्रुत्वा वादित्रनिःस्वनम् । क्षुब्धसागरनिर्घोषं सैविली त्रासमागता ॥३८॥
किं किमेतदहो नाथ प्राहमित्युद्गतस्वरः । आलिङ्गन्निव जानेशं वल्ली कल्पतरुं यथा ॥३९॥
न भेतव्यं न भेतव्यं इति सां परिसान्त्व्य सः । अचिन्तयदयं कस्य भवेच्छब्दः सुदुर्धरः ॥४०॥
स्वः किमेष सिंहस्य अवेर्जलधरस्य वा । आहोस्विदम्बुनाथस्य पूरयत्यखिलं नभः ॥४१॥
उवाच च प्रिये नूनमसौ चतुरगामिनः । नादिनः प्रवलत्पक्षा राजहंसा नभोऽङ्गणे ॥४२॥

मारा है तथा खड्गरत्न हथिया लिया है। हे राजन् ! यदि उसकी उपेक्षा की जायेगी तो वह क्या नहीं करेगा ? ॥२७-२८॥ कुछ विवेकी मन्त्री इस प्रकार बोले कि हे नाथ ! यह कार्य जल्दी करनेका नहीं है इसलिए सब सामन्तोंको बुलाओ और रावणको भी खबर दी जाये ॥२९॥ जिसे खड्गरत्न प्राप्त हुआ है वह सुखपूर्वक वशमें कैसे किया जा सकता है ? इसलिए मिलकर समूहके द्वारा करने योग्य इस कार्यमें उतावली करना ठीक नहीं है ॥३०॥

तदनन्तर उसने गुरुजनोंके वचनोंके अनुरोधसे रावणको खबर देनेके लिए एक तरुण तथा वेगशाली दूत लंकाको भेजा ॥३१॥ उधर कार्य सिद्ध करनेमें तत्पर रहनेवाला वह दूत, किसी राजधैर्यके कारण चिर काल तक रावणके पास बैठा रहा ॥३२॥ इधर तीव्र क्रोधसे जिसकी आत्मा व्याप्त हो रही थी तथा जिसका मन पुत्रके गुणोंमें बार-बार जा रहा था ऐसा खरदूषण पुनः बोला कि मायासे रहित क्षुद्र भूमिगोचरी प्राणियोंके द्वारा, क्षोभको प्राप्त हुआ दिव्य सेनारूपी सागर नहीं तैरा जा सकता ॥३३-३४॥ हमारी इस शूरवीरताको धिक्कार है जो अन्य सहायकोंकी वांछा करती है। मेरी वह भुजा किस कामकी जो अपनी ही दूसरी भुजाकी इच्छा करती है ॥३५॥ इस प्रकार कहकर जो परम अभिमानको धारण कर रहा था तथा क्रोधके कारण जिसका मुख कम्पित हो रहा था ऐसा शीघ्रतासे भरा खरदूषण मित्रोंके बीचसे उठकर आकाशमें जा उड़ा ॥३६॥ उसे हठमें तत्पर देख उसके चौदह हजार मित्र जो पहलेसे तैयार थे क्षण भरमें नगरसे बाहर निकल पड़े ॥३७॥ राक्षसोंकी उस सेनाके, क्षोभको प्राप्त हुए सागरके समान शब्दवाले वादित्रोंका शब्द सुनकर सीता भयको प्राप्त हुई ॥३८॥ हे नाथ ! यह क्या है ? क्या है ? इस प्रकार शब्दोंका उच्चारण करती हुई वह भर्तारसे उस प्रकार लिपट गयी जिस प्रकार कि लता कल्प वृक्षसे लिपट जाती है ॥३९॥ 'नहीं डरना चाहिए, नहीं डरना चाहिए' इस प्रकार उसे सान्त्वना देकर रामने विचार किया कि यह अत्यन्त दुर्धर शब्द किसका होना चाहिए ? ॥४०॥ क्या यह सिंहका शब्द है या मेघकी ध्वनि है अथवा समुद्रकी गर्जना समस्त आकाशको व्याप्त कर रही है ॥४१॥ उन्होंने सीतासे कहा कि हे प्रिये ! जान पड़ता है ये मनोहर गमन करनेवाले तथा पंखोंको

---

१. लघुक्रियः म. । २. त्वया म. ।

किं वा दुष्टद्विजाः केचिदन्ये त्वद्भयकारिणः । समर्पय प्रिये चापं प्रलयं प्रापयाम्यमून् ॥४३॥
अथासन्नत्वमागच्छद् विविधायुधसंकुलम् । वातेरिलाभ्रवृन्दाभं निरीक्ष्य सुमहद्बलम् ॥४४॥
जगाद राघवः किं नु नन्दीश्वरममी सुराः । जिनेन्द्रान् वन्दितुं भक्त्या प्रस्थिताः स्वुमहौजसः ॥४५॥
आहो वंशस्थलं छित्वा हत्वा कमपि मानवम् । असिरत्ने गृहीतेऽस्मिन् प्राप्ता मायाविवैरिणः ॥४६॥
दुश्शीलया तया नूनं स्त्रिया मायाप्रवीणया । निजाः संक्षोभिता एते स्युरस्मद्दुष्कृतिं प्रति ॥४७॥
नात्र युक्तमवज्ञातुं सैन्यमभ्यर्णतामितम् । इत्युक्त्वा कवचे दृष्टिं कार्मुके च व्यपातयत् ॥४८॥
ततस्तमञ्जलिं कृत्वा सुमित्रातनयोऽगदत् । मयि स्थिते न संरम्भस्तव देव विराजते ॥४९॥
संरक्ष राजपुत्रीं त्वं प्रत्यरातिं व्रजाम्यहम् । ज्ञेया च सिंहनादेन मम यथापदुज्झवेत् ॥५०॥
इत्युक्त्वा कङ्कटच्छन्नैः[1] समुपात्तमहायुधः । योद्धुमभ्युद्यतः श्रीमांल्लक्ष्मणः प्रेत्यरिस्थितः[2] ॥५१॥
दृष्ट्वा तमुत्तमाकारं वीरं पुरुषपुंगवम् । पर्वस्तृणान् विहायःस्था जलदा इव पर्वतम् ॥५२॥
शक्तिमुद्गरचक्राणि कुन्तबाणांश्च खेचरैः । परिकीर्णान्यसौ सम्यक् शस्त्रैरेव व्यवारयत् ॥५३॥
निरुध्य सर्वशस्त्राणि खेचरैः प्रहितानि सः । वज्रदण्डान् शरान् लोकुं प्रभुत्वो व्योमगाहिनः ॥५४॥
एकेनैव सा तेन विद्याधरमहाचमूः । रुद्धा बाणैः[3] कदिच्छेव जिनानैः संयतात्मना ॥५५॥
मणिखण्डशकलाङ्कानि राजन्यानानि कुण्डलैः । पेतुः शिरांसि खाद् भूमौ[4] खसरः[5] कमलानि वा ॥५६॥
शैलाभा द्विरदाः पेतुरश्वैः सह महाभटाः । कुर्वंते निनदं भीमं संदष्टरदवाससः[6] ॥५७॥

हिलानेवाले राजहंस पक्षी आकाशरूपी आँगनमें शब्द करते हुए जा रहे हैं ॥४२॥ अथवा तुझे भय उत्पन्न करनेवाले कोई दूसरे दुष्ट पक्षी ही जा रहे हैं। हे प्रिये ! धनुष देओ, जिससे मैं इन्हें प्रलयको प्राप्त करा दूँ ॥४३॥ तदनन्तर नाना प्रकारके शस्त्रोंसे युक्त, वायुसे प्रेरित मेघसमूहके समान दीखनेवाली बड़ी भारी सेनाकी समीपमें आती देख रामने कहा कि क्या ये महातेजके धारक देव भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र देवकी वन्दना करनेके लिए नन्दीश्वर द्वीपको जा रहे हैं ॥४४-४५॥ अथवा बाँसके भिड़ेको छेदकर तथा किसी मनुष्यको मारकर यह खड्गरत्न लक्ष्मणने लिया है सो मायावी शत्रु ही आ पहुँचे हैं ॥४६॥ अथवा जान पड़ता है कि उस दुराचारिणी मायाविनी स्त्रीने हम लोगोंको दुःख देनेके लिए आत्मीय जनोंको क्षोभित किया है ॥४७॥ अब निकटमें आयी हुई सेनाकी उपेक्षा करना उचित नहीं है ऐसा कहकर रामने कवच और धनुष पर दृष्टि डाली ॥४८॥ तब लक्ष्मणने हाथ जोड़कर कहा कि हे देव ! मेरे रहते हुए आपका क्रोध करना शोभा नहीं देता ॥४९॥ आप राजपुत्रीकी रक्षा कीजिए और मैं शत्रुकी ओर जाता हूँ। यदि मुझपर आपत्ति आवेगी तो मेरे सिंहनादसे उसे समझ लेना ॥५०॥ इतना कहकर जो कवचसे आच्छादित हैं तथा जिसने महाशस्त्र धारण किये हैं ऐसे लक्ष्मण युद्धके लिए तत्पर हो शत्रुकी ओर मुख कर खड़े हो गये ॥५१॥ उत्तम आकारके धारक, मनुष्योंमें श्रेष्ठ तथा अतिशय शूरवीर उन लक्ष्मणको देखकर आकाशमें स्थित विद्याधरोंने उन्हें इस प्रकार घेर लिया जिस प्रकार कि मेघ किसी पर्वतको घेर लेते हैं ॥५२॥ विद्याधरोंके द्वारा चलाये हुए शक्ति, मुद्गर, चक्र, भाले और बाणोंका लक्ष्मणने अपने शस्त्रोंसे अच्छी तरह निवारण कर दिया ॥५३॥ तदनन्तर वे विद्याधरोंके द्वारा चलाये हुए समस्त शस्त्रोंको रोककर उनकी ओर वज्रमय बाण छोड़नेको तत्पर हुए ॥५४॥ अकेले लक्ष्मणने विद्याधरोंकी वह बड़ी भारी सेना अपने बाणोंसे उस प्रकार रोक ली जिस प्रकार कि मुनि विशिष्ट ज्ञानके द्वारा खोटी इच्छाको रोक लेते हैं ॥५५॥ मणिखण्डोंसे युक्त तथा कुण्डलोंसे सुशोभित शत्रुओंके शिर आकाशरूपी सरोवरके कमलोंके समान कट-कटकर आकाशसे पृथिवीपर गिरने लगे ॥५६॥ पर्वतोंके समान

१. छन्नसमुपात्त- म. । २. प्रत्यरिं ग. । ३. कुत्सिता इच्छा कदिच्छा 'कोः कत्तत्पुरुषेऽचि' इति कुत्वाने कदादेशः । ४. भूमिः । ५. गगनसरोवरकमलानि इव शिरांसि । ६. संदष्टोष्ठाः इत्यर्थः, संदृष्टरदवाससः म. ।

अयमस्य महान् लाभो निघ्नतस्तस्य तानमून् । [1]यदूर्ध्वगैः शरैर्योधान्[2] विध्याध सहवाहनान् ॥५८॥
अत्रान्तरे प्रतिप्राप्तः पुष्पकस्थो दशाननः । क्रुद्धः कृताशयो हन्तुं शम्बूकवधकारिणम् ॥५९॥
अपश्यच्च महामोहसंप्रवेशनकारिणीम् । रत्यरत्योः [3]समुद्वहीं साक्षाल्लक्ष्मीमिव स्थिताम् ॥६०॥
चन्द्रमःकान्तवदनां बन्धूकाभवराधराम्[4] । तनूदरीं च लक्ष्मीं च जलजच्छदलोचनाम्[5] ॥६१॥
नदेभकुम्भशिखरप्रोत्तुङ्गविपुलस्तनीम् । यौवनोदयसंपन्नां सर्वस्त्रीगुणसङ्गताम् ॥६२॥
संहितामिव कामेन कान्तिज्यां दृष्टिसायकाम् । निजां चापलतां हन्तुं सुखेनैव यथेप्सितम् ॥६३॥
सर्वस्मृतिमहाचारीं रूपातिशयवर्तिनीम् । सीतां मनोभवोदारज्वरग्रहणकारिणीम् ॥६४॥
तस्यामीक्षितमात्रायां क्रोधोऽस्य प्रलयं गतः । अजायतापरो भावश्चित्रा हि मनसो गतिः ॥६५॥
अचिन्तयच्च किं नाम जीवितं मेऽनया विना । अयुक्तस्थानया का वा श्रीर्मदीयस्य वेश्मनः ॥६६॥
श्यामप्रतिमाकारां ललितां नवयौवनाम् । हराम्यद्यैव यावन्नो कश्चिज्ज्ञानात्युपागतम् ॥६७॥
आरब्धुं प्रसभं कार्यं न मे शक्तिर्न विद्यते । किन्त्विदमीदृशं वस्तु यत्कौपीनत्वमर्हति ॥६८॥
निवेदयन् गुणांस्तावल्लोकेऽल्पं याति लाघवम् । ईदृशान् किं पुनर्दोषान् ख्यापयन्नो प्रियो भवेत् ॥६९॥
वितत्य सकलं लोकं शशाङ्ककरनिर्मला । कीर्तिर्म्ममवस्थिता मास्तु सैषं सति मलीमसा ॥७०॥
तस्मादकीर्तिसंभूतिमकुर्वन् स्वार्थतत्परः । रहःप्रयत्नमारेभे लोको हि परमो गुरुः ॥७१॥

बड़े-बड़े हाथी-घोड़ोंके साथ-साथ नीचे गिरने लगे तथा ओठोंको डँसनेवाले बड़े-बड़े योद्धा भयंकर शब्द करने लगे ॥५७॥ उन सबको मारते हुए लक्ष्मणको यह बड़ा लाभ हुआ कि वे ऊपरकी ओर जानेवाले बाणोंसे योद्धाओंको उनके वाहनोंके साथ ही छेद देते थे अर्थात् एक ही प्रहारमें वाहन और उनके ऊपर स्थित योद्धाओंको नष्ट कर देते थे ॥५८॥

तदनन्तर इसी बीचमें शम्बूकके वधकर्ताको मारनेके लिए विचार करनेवाला, क्रोधसे भरा रावण पुष्पक विमानमें बैठकर वहाँ आया ॥५९॥ आते ही उसने महामोहमें प्रवेश करानेवाली तथा रति और अरतिको धारण करनेवाली साक्षात् लक्ष्मीके समान स्थित सीताको देखा ॥६०॥ उस सीताका मुख चन्द्रमाके समान सुन्दर था, वह बन्धूक पुष्पके समान उत्तम ओष्ठोंको धारण करनेवाली थी, कृशांगी थी, लक्ष्मीके समान थी, कमलदलके समान उसके नेत्र थे ॥६१॥ किसी बड़े हाथीके गण्डस्थलके अग्रभागके समान उन्नत तथा स्थूल स्तन थे, वह यौवनके उदयसे सम्पन्न तथा समस्त स्त्री गुणोंसे सहित थी ॥६२॥ वह ऐसी जान पड़ती थी मानो इच्छित पुरुषको अनायास ही मारनेके लिए कामदेवके द्वारा धारण की हुई अपनी धनुषरूपी लता ही हो । कान्ति ही उस धनुष-रूपी लताकी डोरी थी और नेत्र ही उसपर चढ़ाये हुए बाण थे ॥६३॥ वह सबकी स्मृतिको चुरानेवाली थी, अत्यन्त रूपवती थी और कामरूपी महाज्वरको उत्पन्न करनेवाली थी ॥६४॥ उसे देखते ही रावणका क्रोध नष्ट हो गया और दूसरा ही भाव उत्पन्न हो गया सो ठीक ही है क्योंकि मनकी गति विचित्र है ॥६५॥ वह विचार करने लगा कि इसके बिना मेरा जीवन क्या है ? और इसके बिना मेरे घरकी शोभा क्या है ? ॥६६॥ इसलिए जबतक कोई मेरा आना नहीं जान लेता है तब-तक आज ही मैं इस अनुपम, नवयौवना सुन्दरीका अपहरण करता हूँ ॥६७॥ यद्यपि इस कार्यको बलपूर्वक सिद्ध करनेकी शक्ति मुझमें विद्यमान है किन्तु यह कार्य ही ऐसा है कि छिपानेके योग्य है ॥६८॥ लोकमें अपने गुणोंको प्रकट करनेवाला मनुष्य भी अत्यधिक लघुताको प्राप्त होता है फिर जो इस प्रकारके दोषोंको प्रकट करनेवाला है वह प्रिय कैसे हो सकता है ? ॥६९॥ मेरी चन्द्रमाकी किरणोंके समान निर्मल कीर्ति समस्त संसारमें व्याप्त होकर स्थित है सो वह ऐसा काम करनेपर मलिन न हो जाये ॥७०॥ इसलिए अकीर्तिकी उत्पत्तिको बचाता हुआ वह स्वार्थसिद्ध करनेमें

---

१. यदर्धगैः म. । २. योद्धान् म. । ३. समुद्वाहीं म. । ४. धराधरां म. । ५. जलदच्छद- म. ।

इति ध्यात्वावलोकिन्या विद्ययोपायमञ्जसा । विवेद हरणे तस्यास्तेषां नामकुलादि यत् ॥७२॥
अयं स लक्ष्मणः ख्यातो बहुभिः कृतरोधनः । अयं स रामः सीतेयं सा गुणैः परिकीर्तिता ॥७३॥
अमुष्य व्यसनं कृत्वा सिंहनादं स धन्विनः । गरुत्मानिव गृध्रस्य सीतां पेशीमिवाददे ॥७४॥
जायावैरप्रदीप्तोऽयमजय्यः खरदूषणः । शक्त्यादिभिः क्षणादेतौ भ्रातरौ मारयिष्यति ॥७५॥
महाप्रकल्पपूरस्य नदस्योद्दारहंसः[2] । तटयोः पातने शक्तिः केन न प्रतिपद्यते ॥७६॥
इति संचिन्त्य कामार्तः शिशुवत्स्वल्पमानसः । विषवन्मरणोपायं हरणं प्रति निश्चितः ॥७७॥
शस्त्रान्धकारिते जाते तयोरथ महाहवे । कृत्वा सिंहरवं रामरामेति च मुहुर्जगौ ॥७८॥
तं च सिंहरवं श्रुत्वा स्फुटं लक्ष्मणमावितम् । प्रीत्यारतिमैयात्[3] पद्मो व्याकुलीभूतमानसः ॥७९॥
निर्मालियैर्जानकीं सम्यक् प्रच्छाद्यारण्यभूरिभिः । क्षणमेकं प्रिये तिष्ठ मा भैषीरिति संगदन् ॥८०॥
वयस्यवनितां तावज्जटायू रक्ष यत्नतः । किंचिदुपकृतं भद्र स्मरस्युपकृतं यदि ॥८१॥
इत्युक्त्वा वार्यमाणोऽपि शकुनैः क्रन्दनाकुलैः । सतीं मुक्त्वा जनेऽरण्ये वेगवान् प्राविशद् रणम् ॥८२॥
अथान्तरे समागत्य विद्यालोकेन कोविदः । सीतामुत्क्षिप्य बाहुभ्यां नलिनीमिव वारणः ॥८३॥
कामदाहगृहीतात्मा विस्मृताशेषधर्मधीः । आरोपयितुमारेभे पुष्पकं गगनस्थितम् ॥८४॥

तत्पर हो एकान्तमें प्रयत्न करता है सो ठीक ही है क्योंकि लोक परमगुरु है अर्थात् संसारके प्राणी बड़े चतुर हैं ॥७१॥ इस प्रकार विचारकर उसने अवलोकिनी विद्याके द्वारा सीताके हरण करनेका वास्तविक उपाय जान लिया। राम-लक्ष्मण तथा सीताके नाम-कुल आदि सबका उसे ठीक-ठीक ज्ञान हो गया ॥७२॥ जिसे अनेक लोग घेरे हुए हैं ऐसा यह वह लक्ष्मण है, यह राम है, और यह गुणोंसे प्रसिद्ध सीता है ॥७३॥ इसके बाद उस रावणने इस धनुर्धारी रामके लिए आपत्तिस्वरूप सिंहनाद करके सीताको ऐसे पकड़ लिया जैसे गरुडपक्षी गीधके मुखकी मांसपेशीको ले लेता है ॥७४॥ स्त्रीके वैरसे अत्यन्त क्रोधको प्राप्त हुआ यह खरदूषण अजेय है तथा शक्ति आदि शस्त्रोंसे इन दोनों भाइयोंको क्षण-भरमें मार डालेगा ॥७५॥ जिसमें बहुत बड़ा पूर चढ़ रहा है तथा जिसका वेग अत्यन्त तीव्र है ऐसे नदमें दोनों तटोंको गिरानेकी शक्ति है यह कौन नहीं मानता है ? ॥७६॥ ऐसा विचारकर कामसे पीड़ित तथा बालकके समान विवेकशून्य हृदयको धारण करनेवाले रावणने सीताके हरण करनेका उस प्रकार निश्चय किया कि जिस प्रकार कोई मारनेके लिए विषपानका निश्चय करता है ॥७७॥

अथानन्तर जब लक्ष्मण और खरदूषणके बीच शस्त्रोंके अन्धकारसे युक्त महायुद्ध हो रहा था तब रावणने सिंहनाद कर बार-बार राम ! राम !! इस प्रकार उच्चारण किया ॥७८॥ उस सिंहनादको सुनकर रामने समझा कि यह लक्ष्मणने ही किया है ऐसा विचारकर वे प्रीतिवश व्याकुलित चित्त हो अरतिको प्राप्त हुए ॥७९॥ तदनन्तर उन्होंने सीताको अत्यधिक मालाओंसे अच्छी तरह ढक दिया और कहा कि हे प्रिये ! तुम क्षण-भर यहाँ ठहरो, भय मत करो ॥८०॥ सीतासे इतना कहनेके बाद उन्होंने जटायुसे भी कहा कि हे भद्र ! यदि तुम मेरे द्वारा किये हुए उपकारका स्मरण रखते हो तो मित्रकी स्त्रीकी प्रयत्न पूर्वक रक्षा करना ॥८१॥ इतना कहकर यद्यपि क्रन्दन करनेवाले पक्षियोंने उन्हें रोका भी था तो भी वे निर्जन वनमें सीताको छोड़कर वेगसे युद्धमें प्रविष्ट हो गये ॥८२॥

इसी बीचमें विद्याके आलोकसे निपुण रावण, कपालिनीको हाथीके समान दोनों भुजाओंसे सीताको उठाकर आकाशमें स्थित पुष्पक विमानमें चढ़ानेका प्रयत्न करने लगा। उस समय

---

१. जायावीरः ख. । २. नदस्योद्दार-म. । ३. प्रीत्या + अरतिम् + अयात् ।

ह्रियमाणामथ प्रेक्ष्य स्वामिनो वनितां प्रियाम् । संरम्भवह्निदीप्तात्मा सङ्कुपत्य महाजवः ॥८५॥
तीक्ष्णकोटिभिरत्यन्तं जटायुर्नखैलाङ्गलैः । [2]दाशाननमुरःक्षेत्रं चकर्षास्रक्समार्द्रितम् ॥८६॥
परुषैश्छदनान्तैश्च वातसंपादितांशुकैः । जवान जववैभूयः सर्वकायमलं बलः ॥८७॥
हस्तास्तनिष्पेषेण रावणः कोपमानयत् । हत्वा हस्ततलेनैव महीतलमजीगमत् ॥८८॥
ततोऽसौ परुषाघातात् विकलीभूतमानसः । कुर्वन् केकायितं दुःखी खगो मूर्च्छामुपागतः ॥८९॥
ततो निर्विघ्नमारोप्य पुष्पकं जनकात्मजाम् । जानानः संगतं कामं रावणः स्वेच्छया ययौ ॥९०॥
ज्ञात्वापहृतमात्मानं रामरागातिशायनात् । सीता शोकवशीभूता विललापार्तनिस्वनात्[3] ॥९१॥
ततः स्वपुरुषासक्तहृदयां कृतरोदनाम् । दृष्ट्वा सीतामभून् किंचिद् विरागीव दशाननः ॥९२॥
अचिन्तयच्च मे कास्या कृतेऽभ्यस्यैव कस्यचित् । यदियं रौति सत्कान्तुः करुणं विरहाकुला ॥९३॥
कीर्तयन्ती गुणान् भूयः साधूनामभिसंमतान् । पुरुषान्तरसंबन्धानतिशोकपरायणा ॥९४॥
तत्किमेतेन खड्गेन मूढा [4]व्यापादयाम्यमूम् । अथवा न स्त्रियं हन्तुं मम चेतः प्रवर्तते ॥९५॥
न प्रसादयितुं शक्यः क्रुद्धः शीघ्रं नरेश्वरः । [5]अभीष्टं लब्धुमथवा धृतिर्वा कीर्तिरेव वा ॥९६॥
विद्या वाभिमता लब्धुं परलोकक्रियापि वा । प्रिया वा मनसो भार्या यद्वा किंचित् समीहितम् ॥९७॥
साधूनामग्रतः पूर्वं व्रतमेतन्मयार्जितम् । अप्रसह्या न भोक्तव्या परस्य स्त्री-मयेति च ॥९८॥

उसकी आत्मा कामकी दाहसे दग्ध हो रही थी तथा उसने समस्त धर्मबुद्धिको भुला दिया था ॥८३-८४॥ तदनन्तर स्वामीको प्रिय वनिताको हरी जाती देख जिसकी आत्मा क्रोधाग्निसे प्रज्वलित हो रही थी ऐसा जटायु वेगसे आकाशमें उड़कर खूनसे गीले रावणके वक्षःस्थलरूपी खेतको अत्यन्त तीक्ष्ण अग्रभागको धारण करनेवाले नखरूपी हलोंके द्वारा जोतने लगा ॥८५-८६॥ तत्पश्चात् अतिशय बलवान् जटायुने वायुके द्वारा वस्त्रोंको फाड़नेवाले कठोर तथा वेगशाली पंखोंके आघातसे रावणके समस्त शरीरको छिन्न-भिन्न कर डाला ॥८७॥ तदनन्तर इष्ट वस्तुमें बाधा डालनेसे क्रोधको प्राप्त हुए रावणने हस्ततलके प्रहारसे ही जटायुको मारकर पृथ्वीतलपर भेज दिया अर्थात् नीचे गिरा दिया ॥८८॥ तदनन्तर कठोर प्रहारसे जिसका मन अत्यन्त विकल हो रहा था ऐसा दुःखसे भरा जटायु पक्षी कें-कें करता हुआ मूर्च्छित हो गया ॥८९॥ तत्पश्चात् बिना किसी विघ्न-बाधाके सीताको पुष्पक विमानपर चढ़ाकर कामको ठीक जाननेवाला रावण इच्छानुसार चला गया ॥९०॥ सीताका राममें अत्यधिक राग था इसलिए अपने आपको अपहृत जान शोकके वशीभूत हो वह आर्तनाद करती हुई विलाप करने लगी ॥९१॥ तदनन्तर अपने भर्तामें जिसका चित्त आसक्त था ऐसी सीताको रोती देख रावण कुछ विरक्त-सा हो गया ॥९२॥ वह विचार करने लगा कि इसके हृदयमें मेरे लिए आदर ही क्या है यह तो किसी दूसरेके लिए ही करुण रुदन कर रही है उसमें ही इसके प्राण आसक्त हैं तथा उसीके विरहसे आकुल हो रही है ॥९३॥ सत्पुरुषोंको इष्ट हैं ऐसे अन्य पुरुष सम्बन्धी गुणोंका बार-बार कथन करती हुई यह अत्यन्त शोकके धारण करनेमें तत्पर है ॥९४॥ तो क्या इस खड्गसे इस मूर्खको मार डालूँ अथवा नहीं, स्त्रीको मारनेके लिए चित्त प्रवृत्त नहीं होता ॥९५॥ अथवा अधीर होनेकी बात नहीं है क्योंकि जो राजा कुपित होता है उसे शीघ्र ही प्रसन्न नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार इष्ट वस्तुका पाना, कान्ति अथवा कीर्तिका प्राप्त करना अभीष्ट विद्या, पारलौकिकी क्रिया, मनको आनन्द देनेवाली भार्या अथवा और भी जो कुछ अभिलषित पदार्थ हैं वे सहसा प्राप्त नहीं हो जाते—उन्हें प्राप्त करने के लिए समय लगता ही है ॥९६-९७॥ मैंने साधुओंके समक्ष पहले यह नियम लिया था कि

१. नखरूपहलैः । २. दशाननस्येदं दाशाननम् । दशानन-म., ख. । ३. निस्वनात् म. । ४. मूढा म. । ५. अभीष्टालब्ध । अभीष्टलब्ध ज. ।

रक्षन्निदं व्रतं तस्मात् प्रसादं प्रापयाम्यमुम् । भविष्यत्यनुकूलेयं कालेन मम संपदा ॥९९॥
इति संचिन्त्य तामङ्कात्तले स्वस्मिन्नतिष्ठिपत् । प्रतीक्षते हि तत्कालं मृत्युः कर्मप्रचोदितः ॥१००॥
अथेषुवारिधाराभिराकुलं रणमण्डलम् । प्रविष्टं राममालोक्य सुमित्रातनयोऽवदत् ॥१०१॥
हा कष्टं देव कस्मात् त्वं भूमिमेतामुपागतः । एकाकीं मैथिलीं मुक्त्वा विपिने विघ्नसंकुले ॥१०२॥
तेनोक्तस्त्वन्नवं श्रुत्वा माहोऽस्मि त्वरयान्वितः । सोऽवोचद् गम्यतां क्षीघ्रं न साधु भवता कृतम् ॥१०३॥
सर्वथा परमोत्साही जय त्वं बलिनं रिपुम् । इत्युक्त्वा शङ्कया युक्तो जानकीं प्रति चञ्चलः ॥१०४॥
क्षणान्निवर्तते यावत् तावत्तत्र न दृश्यते । सीतेति हतचेतो रामश्च्युतमनस्यत ॥१०५॥
ही सीत इति भाषित्वा मूर्च्छितो धरणीमगात् । [1]भर्त्रा तेन परिष्वक्ता सा बभूव विभूषिता ॥१०६॥
संज्ञां प्राप्य ततो वृक्षैर्निक्षिपन् वृक्षसंकुले । इति प्रेमपरीतात्मा जगादाव्यक्तमाकुलः ॥१०७॥
अयि देवि क्व यातासि प्रयच्छ वचनं द्रुतम् । चिरं किं प्रतिहासेन दृष्टासि सहसाध्वगा ॥१०८॥
एह्यागच्छ-(प्र)-यातोऽस्मि कार्यं कोपेन किं प्रिये । जानास्येव चिरं [2]कोपस्तव देवि न मे सुखम् ॥१०९॥
एवं कृतध्वनिर्भ्रान्यन् प्रदेशं तं सुगह्वरम् । गृध्रं क्षुण्णं क्षितिक्षिप्त कृतकेकास्वनं शनैः ॥११०॥
ततोऽत्यन्तविषण्णात्मा म्रियमाणस्य पक्षिणः । कर्णजापं ददौ प्राप्तस्तस्य नामरकायताम् ॥१११॥
तस्मिन् [3]कालगते पक्षः शोकार्तः केवले वने । वियोगदहनव्याप्तः पुनर्मूर्छामशिश्रियत् ॥११२॥

जो परस्त्री मुझे नहीं चाहेगी, मुझपर प्रसन्न नहीं रहेगी मैं उसका उपभोग नहीं करूँगा ॥९८॥ इसलिए इस व्रतकी रक्षा करता हुआ मैं इसे प्रसन्नताको प्राप्त कराता हूँ, सम्भव है कि यह समय पाकर मेरी सम्पदाके कारण मेरे अनुकूल हो जावेगी ॥९९॥ ऐसा विचार कर रावणने सीताको गोदसे हटाकर अपने समीप ही बैठा दिया सो ठीक ही है क्योंकि कर्मसे प्रेरित मृत्यु उसके योग्य समयकी प्रतीक्षा करती ही है ॥१००॥

अथानन्तर बाणरूपी जलकी धाराओंसे आकुल युद्धके मैदानमें रामको प्रविष्ट देख लक्ष्मण ने कहा ॥१०१॥ कि हाय देव ! बड़े दुःखकी बात है आप विघ्नोंसे व्याप्त वनमें सीताको अकेली छोड़ इस भूमिमें किस लिए आये ? ॥१०२॥ रामने कहा कि मैं तुम्हारा शब्द सुनकर शीघ्रतासे यहाँ आया हूँ । इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि आप शीघ्र ही चल जाइए, आपने अच्छा नहीं किया ॥१०३॥ 'परम उत्साहसे भरे हुए तुम बलवान् शत्रुको सब प्रकारसे जीतो' इस प्रकार कह-कर शंकासे युक्त तथा चंचलचित्तके धारक राम जानकीकी ओर वापस चले गये ॥१०४॥ जब राम क्षण-भरमें वहाँ वापस लौटे तब उन्हें सीता नहीं दिखाई दी । इस घटनासे रामने अपने चित्तको नष्ट हुआ-सा अथवा च्युत हुआ-सा माना ॥१०५॥ हा सीते ! इस प्रकार कहकर राम मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़े और भर्ताके द्वारा आलिंगित भूमि सुशोभित हो उठी ॥१०६॥ तदनन्तर जब संज्ञाको प्राप्त हुए तब वृक्षोंसे व्याप्त वनमें इधर-उधर दृष्टि डालते हुए प्रेमपूर्ण आत्माके धारक राम, अत्यन्त व्याकुल होते हुए इस प्रकार कहने लगे ॥१०७॥ कि हे देवि ! तुम कहाँ चली गयी हो ? शीघ्र ही वचन देओ । चिरकाल तक हँसी करनेसे क्या लाभ है ? मैंने तुम्हें वृक्षोंके मध्य चलती हुई देखा है ॥१०८॥ हे प्रिये ! आओ-आओ, मैं प्रयाण कर रहा हूँ, क्रोध करनेसे क्या प्रयोजन है ? हे देवि ! तुम यह जानती ही हो कि दीर्घकाल तक तुम्हारे क्रोध करनेसे मुझे सुख नहीं होता है ॥१०९॥ इस प्रकार शब्द करने तथा गुफाओंसे युक्त उस स्थानमें भ्रमण करते हुए रामने धीरे-धीरे कें-कें करते हुए मरणोन्मुख जटायुको देखा ॥११०॥ तदनन्तर अत्यन्त दुःखित होकर रामने उस मरणोन्मुख पक्षीके कानमें णमोकार मन्त्रका जाप दिया और उसके प्रभावसे वह पक्षी देवपर्यायको प्राप्त हुआ ॥१११॥ वियोगाग्निसे व्याप्त राम उस पक्षी-

---

१. भर्त्रा म. । २. कोपस्तव म. । ३. काले गते म. ।

समाश्वस्य च सर्वत्र न्यस्य दृष्टिं समाकुलः । दीनं ललाप [1]नैराश्याद् भूतेनेवार्तमानसः ॥११३॥
रन्ध्रं प्राप्य वने भीमे हा केनास्मि दुरात्मना । हरता जानकीं कष्टं हतो दुष्कर्मकारिणा ॥११४॥
दर्शयंस्तामथोत्सृष्टां [2]हरन् शोकमशेषतः । को नाम बान्धवत्वं मे वनेऽस्मिन् परमेष्यति ॥११५॥
भो वृक्षाश्चम्पकच्छाया सरोजदललोचना । सुकुमाराङ्गिका[3] भीरुस्वभावा वरगामिनी ॥११६॥
विस्मोत्सवकरी पद्मरजोगन्धिमुखानिला । अपूर्वा यौवती सृष्टिर्दृष्टा स्यात् काचिदङ्गना ॥११७॥
कथं निरुत्तरा यूयमित्युक्त्वा तद्गुणैर्हृतः । पुनर्मूर्छापरीतात्मा धरणीतलमागमत् ॥११८॥
समाश्वास्य च संक्रुद्धो वज्रावर्तं महाधनुः । आरोप्यास्फालयन्मुक्तं टङ्कारपुरुनिस्वनम् ॥११९॥
सिंहानां भीतिजननं नृसिंहः सिंहनिस्वनम् । मुमोच मुहुरत्युग्रमुत्कर्णद्विरदश्रुतम् ॥१२०॥
भूयो विषादमागत्य त्यक्तचापोत्तरीयकम् । उपविश्य प्रमादं स्वं शुशोच फलितं क्षणात् ॥१२१॥
दुःश्रुत्य दुर्विमर्शेन भजता त्वरितां गतिम् । धर्मधीरिव मूढेन हारिता हा मया प्रिया ॥१२२॥
मानुषत्वं परिभ्रष्टं गहने भवसंकटे । प्राप्तुमत्यद्भुतं भूयः प्राणिनाशुभकर्मणा ॥१२३॥
त्रैलोक्यगुणवद्रत्नं पतितं निम्नगापतौ । लभेत कः पुमांस्तस्यः कालेन महतापि हि ॥१२४॥
वनितामृतमेतन्मे करायत्तं महागुणम् । प्रणष्टं संगतिं भूयः केनोपायेन यास्यति ॥१२५॥
वनेऽस्मिन् जननिर्मुक्ते कस्य दोषः प्रदीयते । नूनं मत्यागकोपेन काप्ि याता तपस्विनी ॥१२६॥

के मरनेपर शोकसे पीड़ित हो निर्जन वनमें पुनः मूर्च्छाको प्राप्त हो गये ॥११२॥ जब सचेत हुए तब सब ओर दृष्टि डालकर निराशताके कारण व्याकुल तथा खिन्न चित्त होकर करुण विलाप करने लगे ॥११३॥ वे कहने लगे कि हाय-हाय भयंकर वनमें छिद्र पाकर कठोर कार्य करनेवाले किसी दुष्टने सीताका हरण कर मुझे नष्ट किया है ॥११४॥ अब बिछुड़ी हुई उस सीताको दिखाकर समस्त शोकको दूर करता हुआ कौन व्यक्ति इस वनमें मेरे परम बान्धवपनेको प्राप्त होगा ॥११५॥ हे वृक्षो ! क्या तुमने कोई ऐसी स्त्री देखी है ? जिसकी चम्पाके फूलके समान कान्ति है, कमलदलके समान जिनके नेत्र हैं, जिसका शरीर अत्यन्त सुकुमार है, जो स्वभावसे भीरु है, उत्तम गतिसे युक्त है, हृदयमें आनन्द उत्पन्न करनेवाली है, जिसके मुखकी वायु कमलकी परागके समान सुगन्धित है तथा जो स्त्रीविषयक अपूर्व सृष्टि है ॥११६-११७॥ अरे तुम लोग निरुत्तर क्यों हो ? इस प्रकार कहकर उसके गुणोंसे आकृष्ट हुए राम पुनः मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़े ॥११८॥ जब सचेत हुए तब कुपित हो वज्रावर्त नामक महाधनुषको चढ़ाकर टंकारका विशाल शब्द करते हुए आस्फालन करने लगे। उसी समय नरश्रेष्ठ रामने बार-बार अत्यन्त तीक्ष्ण सिंहनाद किया। उनका वह सिंहनाद सिंहोंको भय उत्पन्न करनेवाला था तथा हाथियोंने कान खड़े कर उसे डरते-डरते सुना था ॥११९-१२०॥ पुनः विषादको प्राप्त होकर तथा धनुष और उत्तरच्छदको उतारकर बैठ गये और तत्काल ही फल देनेवाले अपने प्रमादके प्रति शोक करने लगे ॥१२१॥ हाय-हाय जिस प्रकार मोही मनुष्य धर्मबुद्धिको हरा देता है उसी प्रकार लक्ष्मणके सिंहनादको अच्छी तरह नहीं श्रवण कर विचारके बिना ही शीघ्रतासे जाते हुए मैंने प्रियाको हरा दिया है ॥१२२॥ जिस प्रकार संसाररूपी वनमें एक बार छूटा हुआ मनुष्य भव, अशुभकार्य करनेवाले प्राणीको पुनः प्राप्त करना कठिन है उसी प्रकार प्रियाका पुनः पाना कठिन है। अथवा समुद्रमें गिरे हुए त्रिलोकी मूल्य रत्नको कौन भाग्यशाली मनुष्य दीर्घकालमें भी पुनः प्राप्त कर सकता है ? ॥१२३-१२४॥ यह महागुणोंसे युक्ता वनितारूपी अमृत मेरे हाथमें स्थित होनेपर भी नष्ट हो गया है सो अब पुनः किस उपायसे प्राप्त हो सकेगा ? ॥१२५॥ इस निर्जन वनमें किसे दोष दिया जाये ? जान पड़ता है कि मैं उसे छोड़कर गया था इसी क्रोधसे वह बेचारी कहीं चली गयी है ॥१२६॥

---

१. नैव स्याद् म. । २. हरं म. । ३. सुकुमाराङ्गिका म. । ४. मुक्तं टङ्कारनिस्वनं म. ।

अरण्ये निर्मनुष्येऽस्मिन्कमुपेत्य प्रसाद्य च । पृच्छामि दुष्कृताचारो यो मे वार्तां निवेदयेत् ॥१२७॥
इयं ते प्राणतुल्येति चेतःश्रवणयोः परम् । कुर्यात्प्रह्लादनं को मे वचसामृतदायिना ॥१२८॥
दयावानीदृशः कोऽस्मिन् लोके पुरुषपुंगवः । यो मे स्मितानना[1] कान्तां दर्शयेदवगर्जितम् ॥१२९॥
हृदयागारमुद्दीप्तं कान्ताविरहवह्निना । उदन्तजलदानेन[2] को मे निर्वापयिष्यति ॥१३०॥
इत्युक्त्वा परमोद्विग्नो महानिहितलोचनः । असकृत् किमपि ध्यायंस्तस्थौ निश्चलविग्रहः ॥१३१॥
अथ नात्यन्तदूरस्थचक्रवाकीस्वनं कलम् । समाकर्ण्य दृशं तस्या श्रवणं च न्यधापयत् ॥१३२॥
अधिन्तयदसुष्यात्रेस्तरसंगे गन्धसूचितम् । किमिदं पङ्कजवनं भवेद्यातां कुतूहलात् ॥१३३॥
दृष्टपूर्वं मनोहारि नानाकुसुमसंकुलम् । स्थानं हरति चेतोऽस्याः कदाचित्क्षणमात्रकम् ॥१३४॥
[illegible] तद्देशं गन्धचक्रेणानुसृतौ । मया विना क्व यातीति पुनरुद्वेगमागमत् ॥१३५॥
भो भो महीधराधीश ! धातुभिर्विविधैश्चित्र ! सूनुर्दशरथस्य त्वां पद्मारूयः परिपृच्छते ॥१३६॥
विपुलस्तननम्राङ्गा बिम्बोष्ठी हंसगामिनी । [3]सन्निहिता भवेद् दृष्टा सीता मे मनसः प्रिया ॥१३७॥
दृष्टादृष्टेति किं वक्षि ब्रूहि ब्रूहि क सा क सः । केवलं निगदस्यैवं प्रतिशब्दोऽयमीदृशः ॥१३८॥
इत्युक्त्वा पुनरभ्यासीत् किमदृष्टेन चोदितः । कृतान्तवशगुणा बाला समासक्ता सती सती ॥१३९॥
चण्डोर्मिमालयाऽत्यन्तं वेगवत्याविवेकया । कान्ता हृता भवेन्नद्या विधेव दुरितेच्छया ॥१४०॥

मैं पापचारी निर्जन वनमें किसके पास जाकर तथा उसे प्रसन्न कर पूछूँ जो मुझे प्रियाका समाचार बता सके ॥१२७॥ "यह तुम्हारी प्राणतुल्य प्रिया है" इस प्रकार अमृतको प्रदान करनेवाले वचनसे कौन पुरुष मेरे मन और कानोंको परम आनन्द प्रदान कर सकता है ? ॥१२८॥ इस संसारमें ऐसा कौन दयालु श्रेष्ठ पुरुष है जो मेरी मुसकुराती हुई निष्पाप कान्ताको मुझे दिखला सकता है ? ॥१२९॥ प्रियाके विरहरूपी अग्निसे जलते हुए मेरे हृदयरूपी घरको कौन मनुष्य समाचाररूपी जल देकर शान्त करेगा ? ॥१३०॥ इस प्रकार कहकर जो परम उद्वेगको प्राप्त थे, पृथ्वीपर जिनके नेत्र लग रहे थे, और जिनका शरीर अत्यन्त निश्चल था ऐसे राम बार-बार कुछ ध्यान करते हुए बैठे थे ॥१३१॥ अथानन्तर कुछ ही दूरीपर उन्होंने चकवीका मनोहर शब्द सुना सो सुनकर उस दिशामें दृष्टि तथा कान दोनों ही लगाये ॥१३२॥ वे विचार करने लगे कि इस पर्वतके समीप ही गन्धसे सूचित होनेवाला कमल वन है सो क्या वह कुतूहलवश उस कमल वनमें गयी होगी ? ॥१३३॥ नाना प्रकारके फूलोंसे व्याप्त तथा मनको हरण करनेवाला वह स्थान उसका पहलेसे देखा हुआ है सो सम्भव है कि वह कदाचित् क्षण-भरके लिए उसके चित्तको हर रहा हो ॥१३४॥ ऐसा विचारकर वे उस स्थानपर गये जहाँ चकवी थी। फिर 'मेरे बिना वह कहाँ जाती है' यह विचारकर वे पुनः उद्वेगको प्राप्त हो गये ॥१३५॥ अब वे पर्वतको लक्ष्य कर कहने लगे कि हे नाना प्रकारकी धातुओंसे व्याप्त पर्वतराज ! राजा दशरथका का पुत्र पद्म (राम) तुमसे पूछता है ॥१३६॥ कि जिसका शरीर स्थूल स्तनोंसे नम्रीभूत है, जिसके ओठ बिम्बके समान हैं। जो हंसके समान चलती है तथा जिसके उत्तम नितम्ब हैं ऐसी मनको आनन्द देनेवाली सीता क्या आपने देखी है ? ॥१३७॥ उसी समय पर्वतसे टकराकर रामके शब्दोंकी प्रतिध्वनि निकली जिसे सुनकर उन्होंने कहा कि क्या तुम यह कह रहे हो कि हाँ देखी है देखी है तो बताओ वह कहाँ है ? कहाँ है ? कुछ समय बाद निश्चय होनेपर उन्होंने कहा कि तुम तो केवल ऐसा ही कहते हो जैसा कि मैं कह रहा हूँ जान पड़ता है यह इस प्रकारकी प्रतिध्वनि ही है ॥१३८॥ इतना कहकर वे पुनः विचार करने लगे कि वह सती बाला दुर्दैवसे प्रेरित होकर कहाँ गयी

---

१. स्मिताननः ब., अ. । २. समाचाररूपसलिलदानेन । ३. साग्रतम्बं म. ।

किंवाऽस्यन्तक्षुधार्तेन नितान्तक्रूरचेतसा । [1]हिंसारिणा भवेद्भुक्ता साधुवत्सलस्य वत्सला ॥१४१॥
पशोर्मांसैककार्यस्य सिंहस्योत्केसरस्य सा । म्रियते दृष्टिमात्रेण नखादिस्पर्शनादिना ॥१४२॥
आता मम मृधे भीमे लक्ष्मणः संशयं श्रितः । सीतया विरहश्चायं तेन जानामि नो रतिम् ॥१४३॥
जीवलोकमिमं वेद्मि सकलं प्राप्तसंशयम् । जानामि च पुनः शून्यमहो दुःखस्य चित्रता ॥१४४॥
दुःखस्य यावदेकस्य नावसानं व्रजाम्यहम् । द्वितीयं तावदायातमहो दुःखार्णवो महान् ॥१४५॥
खञ्जपादस्य खण्डोऽयं हिमदग्धस्य पावकः । स्खलितस्यावटे पातः प्रायोऽनर्था बहुव्रणाः ॥१४६॥
ततः पर्यट्य विपिने पश्यन्मृगगणान्मतः । विवेश स्वाश्रयं भूयः श्रिया शून्यमरण्यकम् ॥१४७॥
अत्यन्तदीनवदनः कृत्वा निर्ज्या[2] धनुर्लताम् । सितश्लक्ष्णपटच्छन्नस्तस्थौ पर्यस्य भूतले ॥१४८॥
भूयो भूयो बहु ध्यायन् क्षणनिश्चलविग्रहः । निराशतां परिप्राप्तः सूत्कारमुखराननः ॥१४९॥

अतिरुचिराच्छन्दः

महानरानिति पुरुदुःखलक्षितान् पुराकृतादसुकृतकर्मजृम्भणात् ।
अहो जना शृणमथ कीर्त्यतां मतिः सदा जिनवरधर्मकर्मणि ॥१५०॥

होगी ? जिस प्रकारकी इच्छा विधाको हर लेती है उसी प्रकार जिसमें बड़ी-बड़ी तीक्ष्ण तरंगें उठ रही हैं। जो अत्यन्त वेगसे बहती है तथा जिसमें विवेक नहीं है ऐसी नदीने कहीं प्रियाको नहीं हर लिया हो ॥१३९-१४०॥ अथवा अत्यन्त भूखसे पीड़ित तथा अतिशय क्रूर चित्तके धारक किसी सिंहने साधुओंके साथ स्नेह करनेवाली उस प्रियाको खा लिया है ॥१४१॥

जिसका कार्य अत्यन्त भयंकर है तथा जिसकी गरदनके बाल खड़े हुए हैं ऐसे सिंहके देखने मात्रसे नखादिके स्पर्शके बिना ही वह मर गयी होगी ॥१४२॥ मेरा भाई लक्ष्मण भयंकर युद्धमें संशयको प्राप्त है और इधर यह सीताके साथ विरह आ पड़ा है इससे मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता ॥१४३॥

मैं इस समस्त संसारको संशयमें पड़ा जानता हूँ अथवा ऐसा जान पड़ता है कि समस्त संसार शून्य दशाको प्राप्त हुआ है सो ठीक ही है क्योंकि दुःखकी बड़ी विचित्रता है ॥१४४॥ जबतक मैं एक दुःखके अन्तको प्राप्त नहीं हो पाता हूँ तबतक दूसरा दुःख आ पड़ता है। अहो ! यह दुःखरूपी सागर बहुत विशाल है ॥१४५॥

प्रायः देखा जाता है कि जो पैर लँगड़ा होता है उसीमें चोट लगती है, जो वृक्ष तुषारसे सूख जाता है उसीमें आग लगती है और जो फिसलता है वही गर्तमें पड़ता है प्रायः करके अनर्थ बहु संख्यामें आते हैं ॥१४६॥ तदनन्तर वनमें भ्रमण कर मृग और पक्षियोंको देखते हुए राम अपने रहनेके स्थानस्वरूप वनमें पुनः प्रविष्ट हुए। वह वन उस समय सीताके बिना शोभासे शून्य जान पड़ता था ॥१४७॥

तदनन्तर जिनका मुख अत्यन्त दीन था तथा जिन्होंने सफेद और महीन वस्त्र ओढ़ रखा था ऐसे राम धनुषको डोरी रहित कर पृथिवीपर पड़ रहे ॥१४८॥ वे बार-बार बहुत देर तक ध्यान करते रहते थे, क्षण-क्षणमें उनका शरीर निश्चल हो जाता था, वे निराशताको प्राप्त थे तथा सूत्कार शब्दसे उनका मुख शब्दायमान हो रहा था ॥१४९॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि अहो जनो ! इस प्रकार पूर्वोपार्जित पाप कर्मके उदयसे बड़े-बड़े पुरुषोंको अतिशय दुःखी देख, जिनेन्द्र कथित धर्ममें सदा बुद्धि लगाओ ॥१५०॥

---

१. सिंहेन । २. नखाहि म. । ३. निर्ज्या म. ।

न ये भवप्रभवविकारसंगतेः पराङ्मुखा जिनवचनान्युपासते ।
वशीकृतान् शरणविवर्जितानमून् तपत्यलं स्वकृतरविः सुदुस्सहः ॥१५१॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते सीताहरणरामविलापाभिधानं
नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४४॥

□

जो मनुष्य संसार सम्बन्धी विकारोंकी संगतिसे दूर रहकर जिनेन्द्र भगवान्‌के वचनोंकी उपासना नहीं करते हैं उन शरणरहित तथा इन्द्रियोंके वशीभूत मनुष्योंको अपना पूर्वोपार्जित कर्मरूपी दुःसह सूर्य सदा सन्तप्त करता रहता है ॥१५१॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें सीताहरण और रामविलापका वर्णन करनेवाला चौवालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४४॥

□

पञ्चचत्वारिंशत्तमं पर्व

एतस्मिन्नन्तरे[1] प्राप्तः पूर्वशिष्टो विराधितः । समेतः सचिवैश्शूरैः[2] संनद्धः शस्त्रसंकुलः ॥१॥
एकाकिनमसौ ज्ञात्वा युद्धयमानं महानरम् । [3]स्वार्थसंसिद्धिसंभूतिं दीप्यमानं महौजसा ॥२॥
जानुं क्षितितले न्यस्य मूर्ध्न्यस्तकरद्वयः । अब्रवीदिति नम्राङ्गः परमं विनयं वहन् ॥३॥
नाथ ! भक्तोऽस्मि ते किंचिद्विज्ञाप्यं श्रूयतां मम । त्वद्विधानां हि संसर्गो निकारक्षयकारणम् ॥४॥
[4]कृतार्धभाषणस्यास्य करं विन्यस्य मस्तके । पृष्ठतस्तिष्ठ माभैषीरित्यवोचत लक्ष्मणः ॥५॥
ततः प्रणम्य भूयोऽसौ महाविस्मयसंगतः । जगाद क्षणसंजातमहातेजाः प्रियं वचः ॥६॥
महाशक्तिमिमं शत्रुं त्वमेकं विनिवारय । रणाजिरे भटान् शेषान् निधनं प्रापयाम्यहम् ॥७॥
इत्युक्त्वा [5]दीप्तं सैन्यं तेन क्षीघ्रं विराधितम्[6] । अधावद् बलसंपन्नः प्रज्वलद्भेतिसंहतिः ॥८॥
उवाच च चिरात् सोऽहं[7] चन्द्रोदरनृपात्मजः । प्राप्तो विराधितः ख्यातो रणातिथ्यसमुत्सुकः ॥९॥
क्वेदानीं गम्यते साधु स्थीयतां युद्धशौण्डिकैः । अद्य तद्वः प्रदास्यामि यत्कृतान्तोऽतिदारुणः ॥१०॥
इत्युक्ते वैरसंपन्नो भटानामतिसंकुलः । बभूव शस्त्रसंपातः सुमहान् जनसंक्षयः ॥११॥
पत्तयः पत्तिभिर्लग्नाः सादिनः सादिभिः समम् । गजिनो गजिभिः सत्रा रथिनो रथिभिः सह ॥१२॥

अथानन्तर इसी बीचमें जिसका पहले उल्लेख किया गया था ऐसा खरदूषणका शत्रु विराधित, मन्त्रियों और शूर-वीरोंसे सहित अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित हो वहाँ आया ॥१॥ उसने महातेजसे देदीप्यमान लक्ष्मणको अकेला युद्ध करते देख महापुरुष समझा और यह निश्चय किया कि इससे हमारे स्वार्थकी सिद्धि होगी ॥२॥ पृथिवीतलपर घुटने टेककर तथा मस्तकपर दोनों हाथ लगाकर परम विनयको धारण करनेवाले विराधितने नम्र होकर इस प्रकार कहा कि हे नाथ! मैं आपका भक्त हूँ। मुझे आपसे कुछ निवेदन करना है सो सुनिए क्योंकि आप-जैसे महापुरुषोंकी संगति दुःखक्षयका कारण है ॥३-४॥ विराधित आधी बात ही कह पाया था कि लक्ष्मणने उसके मस्तकपर हाथ रखकर कहा कि हमारे पीछे खड़े हो जाओ ॥५॥

तदनन्तर जो महाआश्चर्यसे युक्त था और जिसे तत्काल महातेज उत्पन्न हुआ था ऐसा विराधित पुनः प्रणाम कर प्रिय वचन बोला कि इस महाशक्तिशाली एक शत्रु—खरदूषणको तो आप निवारण करो और युद्धके आँगनमें जो अन्य योद्धा हैं मैं उन सबको मृत्यु प्राप्त कराता हूँ ॥६-७॥ इतना कहकर उसने शीघ्र ही खरदूषणकी सेनाको नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया। वह सेनाके साथ लहलहाते शस्त्रोंके समूहसे युक्त हो खरदूषणकी सेनाकी ओर दौड़ा ॥८॥ उसने जाकर कहा कि मैं राजा चन्द्रोदरका पुत्र विराधित युद्धमें आतिथ्य पानेके लिए उत्सुक हुआ चिरकाल बाद आया हूँ ॥९॥ अब कहाँ जाइएगा ? जो युद्धमें शूर-वीर हैं वे अच्छी तरह खड़े हो जावें। आज मैं आप लोगोंको वह फल दूँगा जो कि अत्यन्त दारुण—क्रूर यमराज देता है ॥१०॥ इतना कहते ही दोनों ओरके योद्धाओंमें वैर भरा तथा मनुष्योंका संहार करनेवाला बहुत भारी शस्त्रोंका सम्पात होने लगा—दोनों ओरसे शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी ॥११॥ पैदल पैदलोंसे, घुड़सवार घुड़सवारोंसे, गजसवार गजसवारोंसे और रथसवार रथसवारोंके साथ भिड़

---

१. नगरे म.। २. वचरैः म.। ३. सार्थसंपद्विसम्भूतिं म., ब.। ४. कृतार्थभोषणस्य-म.। ५. दूषणस्येदं दीपणम्। ६. विराधितः क., ख., ज.। ७. सम्प्राप्त म.। ८. प्रज्वलद्भेतिसंततिः। ९. वयः सोत्साहं म.।

परस्परकृताह्वानैरिति[1] संहर्षिभिर्भटैः । संकुलैर्जनिते युद्धे कृत्तान्योन्यमहायुधैः[2] ॥१३॥
रणाजिरे परं तेजो मज्जमानो नवं नवम् । दिव्यकार्मुकमुद्यम्य शरच्छन्नदिगम्बरः ॥१४॥
खरेण सह संग्रामं चक्रे परमभैरवम् । लक्ष्मीधरः शुनासीरः स्वामिनेव सुरद्विषाम् ॥१५॥
ततः क्रोधपरीतेन खरेण खरनिस्वनम् । अवाचि लक्ष्मणः[3] संख्ये स्फुरल्लोहितचक्षुषा ॥१६॥
ममात्मजमुदासीनं हत्वा परमचापल । कान्ताकुचौ च संभृश्य पापाद्यापि क्व गम्यते ॥१७॥
अद्य ते निशितैर्बाणैर्जीवितं नाशयाम्यहम् । कृत्वा तथाविधं कर्म फलं तस्यानुभूयताम् ॥१८॥
अत्यन्तक्षुद्र निर्लज्ज परस्त्रीसंगलोलुप । ममाभिमुखतां गत्वा परलोकं व्रजाधुना ॥१९॥
ततस्तैः परुषैर्वाक्यैः समुद्दीपितमानसः । उवाच लक्ष्मणो वाचं पूरयन् सकलं नभः ॥२०॥
किं वृथा गर्जसि क्षुद्र दुःखेचर[4] शुना समः । अहं नयामि तत्र त्वां यत्र ते तनयो गतः ॥२१॥
इत्युक्त्वावस्थितं व्योम्नि विरथं खरदूषणम् । चकार लक्ष्मणः छिन्नचापकेतुं च निःप्रभम् ॥२२॥
ततोऽसौ पतितः क्षोण्यां नभस्तः क्रोधलोहितः । प्रश्नेणीष्विव पुण्येषु ग्रहस्तरलविग्रहः ॥२३॥
खड्गांशुलीढदेहश्च सौमित्रिं प्रत्यधावत[5] । असिरत्नं समाकृष्य सोऽप्यस्याभिमुखं ययौ ॥२४॥
इत्यासन्नं तयोरासीद्विचित्रं युद्धं[6] भयानकम् । मुमुचुः तत्र देवाः खपुष्पाणि साधुनिस्वनान् ॥२५॥
तावच्छिरसि संक्रुद्धो दूषणस्य न्यपातयत् । सूर्यहासं यथार्थाख्यं लक्ष्मणोऽक्षतविग्रहः ॥२६॥

गये ॥१२॥ तदनन्तर जो परस्पर एक दूसरेको बुला रहे थे, जो अत्यन्त हर्षित हो रहे थे, जो अत्यन्त संकुल–व्यग्र थे और जिन्होंने एक दूसरेके बड़े-बड़े शस्त्र काट दिये थे ऐसे योद्धाओंके द्वारा उधर महायुद्ध हो रहा था इधर रणके मैदानमें नवीन-नवीन परम तेजको धारण करनेवाला लक्ष्मण, दिव्यधनुष उठाकर बाणोंसे दिशाओं और आकाशको व्याप्त करता हुआ खरके साथ उस तरह अत्यन्त भयंकर युद्ध कर रहा था जिस तरह कि इन्द्र दैत्येन्द्रके साथ करता था ॥१३-१५॥ तदनन्तर क्रोधसे व्याप्त एवं चंचल और लाल-लाल नेत्रोंको धारण करनेवाले खरदूषणने कठोर शब्दोंमें लक्ष्मणसे कहा कि हे अतिशय चपल पापी ! मेरे निर्वैर पुत्रको मारकर तथा मेरी स्त्रीके स्तनोंका स्पर्श कर अब तू कहां जाता है ? ॥१६-१७॥ आज तीक्ष्ण बाणोंसे तेरा जीवन नष्ट करता हूँ। तूने जैसा कर्म किया है वैसा फल भोग ॥१८॥ हे अत्यन्त क्षुद्र ! निर्लज्ज ! परस्त्री संगका लोलुप ! अब मेरे सम्मुख आकर परलोकको प्राप्त हो ॥१९॥

तदनन्तर उन कठोर वचनोंसे जिनका मन प्रदीप्त हो रहा था ऐसे लक्ष्मणने समस्त आकाश-को गुँजाते हुए निम्नांकित वचन कहे। उन्होंने कहा कि रे क्षुद्र विद्याधर ! तू कुत्तेके समान व्यर्थ ही क्यों गरज रहा है ? मैं जहाँ तेरा पुत्र गया है वहीं तुझे पहुँचाता हूँ ॥२०-२१॥ इतना कहकर लक्ष्मणने आकाशमें स्थित खरदूषणको रथरहित कर दिया, उसका धनुष और पताका काट डाली तथा उसे निष्प्रभ कर दिया ॥२२॥ तदनन्तर जिस प्रकार पुण्यके क्षीण होनेपर चंचल शरीरको धारण करनेवाला ग्रह पृथिवीपर आ पड़ता है उसी प्रकार क्रोधसे लाल-लाल दीखनेवाला खरदूषण आकाशसे पृथिवीपर नीचे आ पड़ा ॥२३॥ खड्गकी किरणोंसे जिसका शरीर व्याप्त हो रहा था ऐसा खरदूषण लक्ष्मणकी ओर दौड़ा और लक्ष्मण भी सूर्यहास खड्ग खींचकर उसके सामने जा डटे ॥२४॥ इस प्रकार उन दोनोंमें निकटसे नाना प्रकारका भयंकर युद्ध हुआ तथा स्वर्गमें स्थित देवोंने साधु-साधु—धन्य-धन्य शब्दोंके साथ उनपर पुष्पोंकी वर्षा की ॥२५॥ उसी समय अखण्डित शरीरके धारक लक्ष्मणने कुपित हो खरदूषणके सिरपर यथार्थ नामवाला सूर्यहास खड्ग गिराया ॥२६॥

---

१. रिति म. । २. कृताम्योन्य म. । ३. युद्धे । ४. दुष्टः खेचरः दुःखेचरस्तत्सम्बुद्धौ हे दुःखेचर । ५. लीनदेहश्च म. । ६. चित्रयुद्धं म. ।

निर्जीवः पतितः क्षोण्यां बभूव खरदूषणः । आलेख्यरविसंकाशो यद्वत्स्वर्गच्युतोऽमरः ॥२७॥
अथवा दयितो रत्या निश्चेष्टीभूतविग्रहः । रत्नपर्वतखण्डो वा दिग्गजेन निपातितः ॥२८॥
अथ सेनापतिर्म्लिा दूषणः [1]खरदूषणः । विरथं कर्तुमारेभे चन्द्रोदरसुपुत्रजम् ॥२९॥
लक्ष्मणेनेषुणा तावद्गाढं मर्मणि[2] ताडितः । घूर्णमानो गतो भूमिं समाश्वासनमाप्नुत ॥३०॥
दृष्ट्वा विराधितायाथ तद्बलं खरदूषणम् । प्रययौ लक्ष्मणः प्रीतः प्रदेशं पद्मसंश्रितम् ॥३१॥
यावत्पश्यति रामं भुवि सीतावियोजितम् । जगौ चोत्तिष्ठ किं नाथ क्वासौ क्व वद जानकी ॥३२॥
उत्थाय सहसा दृष्ट्वा लक्ष्मणं निर्व्रणाङ्गकम् । किंचित्प्रमोदमापातः परिष्वजनतत्परः ॥३३॥
जगाद भद्र नो वेद्मि देवी केनापि किं हृता । उत सिंहेन निर्भुक्ता न दृष्टान्न गवेषिता ॥३४॥
पातालं किं भवेत्सीता नभःशिखरमेव वा । उद्वेगेन विलीना वा सुकुमारशरीरिका ॥३५॥
ततः कोपपरीताङ्गो विषादी लक्ष्मणोऽगदत् । देवोद्वेगानुबन्धेन न किंचिदपि कारणम् ॥३६॥
नूनं दैत्येन केनापि हृता केनापि जानकी । म्रियमाणामिमां कृत्स्ने कर्तव्योऽत्र न संशयः ॥३७॥
परिसान्त्व्योक्तमैर्वाक्यैर्विविधैः श्रुतिपेशलैः । विमलेनाम्भसा तस्य मुखं प्राक्षालयत् सुधीः ॥३८॥
श्रुत्वा तावद्बलं तारं शब्दमुत्तानिताननः । अपृच्छत्[3] ओधरं रामः संभ्रमं किंचिदुद्वहन् ॥३९॥
किमेषा नर्दति क्षोणी गगनात्किमयं ध्वनिः । किं कृतं भवता पूर्वं शत्रुशेषं भयोज्झितम् ॥४०॥

जिससे वह निर्जीव होकर चित्रलिखित सूर्यके समान उस तरह पृथिवीपर आ पड़ा जिस तरह कि स्वर्गसे च्युत हुआ कोई देव पृथिवीपर आ पड़ता है ॥२७॥ पृथिवीपर पड़ा निर्जीव खरदूषण ऐसा जान पड़ता था मानो निश्चेष्ट शरीरका धारक कामदेव ही हो अथवा दिग्गजके द्वारा गिराया हुआ रत्नगिरिका एक खण्ड ही हो ॥२८॥

तदनन्तर खरदूषणका दूषण नामक सेनापति चन्द्रोदर राजाके पुत्र विराधितको रथरहित करनेके लिए उद्यत हुआ ॥२९॥ उसी समय लक्ष्मणने उसके मर्मस्थलमें बाणसे इतनी गहरी चोट पहुँचायी कि बेचारा घूमता हुआ पृथिवीपर आ गिरा और तत्काल मृत्युको प्राप्त हो गया ॥३०॥ तदनन्तर खरदूषणकी वह समस्त सेना विराधितके लिए देकर प्रीतिसे भरे लक्ष्मण उस स्थानपर गये जहाँ श्रीराम विराजमान थे ॥३१॥ जाते ही लक्ष्मणने सीता रहित रामको पृथिवीपर सोते हुए देखा। देखकर लक्ष्मणने कहा कि हे नाथ! उठो और कहो कि सीता कहाँ गयी है? ॥३२॥ राम सहसा उठ बैठे और लक्ष्मणको घाव रहित शरीरका धारक देख कुछ हर्षित हो उनका आलिंगन करने लगे ॥३३॥ उन्होंने लक्ष्मणसे कहा कि हे भद्र! मैं नहीं जानता हूँ कि देवीको क्या किसीने हर लिया है या सिंहने खा लिया है। मैंने इस वनमें बहुत खोजा पर दीखी नहीं ॥३४॥ उसे कोई पातालमें ले गया है या आकाशके शिखरमें पहुँचा दी गयी है अथवा वह सुकुमारांगी भयके कारण विलीन हो गयी है ॥३५॥ तदनन्तर जिनका शरीर क्रोधसे व्याप्त था ऐसे लक्ष्मणने विषादयुक्त होकर कहा कि हे देव! उद्वेगकी परम्परा बढ़ानेसे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥३६॥ जान पड़ता है कि जानकी किसी दैत्यके द्वारा हरी गयी है सो कोई भी क्यों नहीं इसे धारण किये हो मैं अवश्य ही प्राप्त करूँगा इसमें संशय नहीं करना चाहिए ॥३७॥ इस प्रकार कानोंको प्रिय लगनेवाले विविध प्रकारके वचनोंसे सान्त्वना देकर बुद्धिमान् लक्ष्मणने निर्मल जलसे रामका मुख धुलाया ॥३८॥ तदनन्तर उस समय अतिशय उच्च शब्द सुन कुछ-कुछ सम्भ्रमको धारण करनेवाले रामने ऊपरको ओर मुख कर लक्ष्मणसे पूछा कि क्या यह पृथिवी शब्द कर रही है या आकाशसे यह शब्द आ रहा है? क्या तुमने पहले मेरे द्वारा छोड़े हुए शत्रुको शेष रहने दिया है? ॥३९-४०॥

---

१. खर-दूषणः म., क. । २. कर्मणि म. । ३. लक्ष्मणम् ।

सुमित्राजस्ततोऽवोचद्बाधाऽत्र हि महाहवे । उपकारो महान् काले खेचरेण कृतो मम ॥४१॥
चन्द्रोदरसुतः सोऽयं विराधित इति श्रुतः । प्रेस्ताधे दैवतेनैव हितेन परिढौकितः ॥४२॥
चतुर्विधेन महता बलेनास्य सुचेतसः । आगच्छतो महानेष शब्दः श्रुतिमुपागतः ॥४३॥
विश्रब्धचेतसोर्यावत् कथेयं वर्त्तते तयोः । तावन्महाबलोपेतः [1]परिप्राप विराधितः ॥४४॥
ततो जयजयस्वानं कृत्वा विरचिताञ्जलिः । जगाद खेचरस्वामी प्रणतैः सचिवैः समम् ॥४५॥
स्वामी त्वं परमोऽस्माभिर्धिग्रात् प्राप्तो नरोत्तमः । अतः प्रदीयतामाज्ञा नाथ कर्तव्यवस्तुनि ॥४६॥
इत्युक्तो लक्ष्मणोऽभाणीत् साधो शृणु सुचेतनम् । [3]गुरोः केनापि मे पत्नी हृता दुर्नयवर्तिना ॥४७॥
तया विरहितः सोऽयं पद्मः शोकवशीकृतः । यदि नाम त्यजेत् प्राणांस्तदाग्निं विशाम्यहम् ॥४८॥
एतत्प्राणदृढासक्तात् मत्र प्राणानवेहि मे । ततोऽत्र प्रकृते किंचित्कर्तव्यं कारणं परम् ॥४९॥
ततो नतानन: किंचिल्लज्जाप्रभुरचिन्तयत् । कृत्वापि श्रममेतं मे कष्टमाशा न पूरिता ॥५०॥
सुखं संवसता स्वैरं नानावनविहारिणा । पश्चादमा योजितः कष्टे कथं संशयगह्वरे ॥५१॥
दुःखार्णवतटं प्राप्तो यां यां गृह्णाम्यहं लताम् । दैवेनोन्मूल्यते सा सा क्रूरस्तं विधिवशं जगत् ॥५२॥
तथाप्युत्साहमाश्रित्य कर्तव्यं समुपागतम् । करोमि कुर्वतो मद्रमभद्रं वा स्वकर्मजम् ॥५३॥
इति ध्यात्वावहीरूर्ध [5]मजन्मुत्साहसंस्तुतम् । जगाद सचिवान् धीरो वचसा स्फुटतेजसा ॥५४॥
पत्नी महानरस्यास्य नीता यदि महीतलम् । अथाकाशं गिरिं वारि स्थलं वा विपिनं पुरम् ॥५५॥
[6]गवेषयत यत्नेन सर्वाशासु समन्ततः । यदिच्छत कृतार्थानां तद्दास्यामि महामटाः ॥५६॥

तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि हे नाथ ! इस महायुद्धमें विद्याधरने समयपर मेरा बड़ा उपकार किया है । यह विद्याधर राजा चन्द्रोदरका पुत्र विराधित है जो हितकारी दैवके द्वारा ही मानो अवसरपर मेरे समीप भेजा गया था ॥४१-४२॥ उत्तम हृदयको धारण करनेवाला यह विद्याधर चार प्रकारकी बड़ी भारी सेनाके साथ आपके पास आ रहा है सो यह महान् शब्द उसीका सुनाई दे रहा है ॥४३॥ इधर विश्वस्त चित्तके धारक राम-लक्ष्मणके बीच जबतक यह कथा चलती है तबतक बड़ी भारी सेनाके साथ विराधित वहाँ आ पहुँचा ॥४४॥ तदनन्तर विद्याधरोंके राजा विराधितने नम्रीभूत मन्त्रियोंके साथ-साथ हाथ जोड़कर तथा जय-जय शब्दका उच्चारण कर कहा कि आप मनुष्योंमें उत्तम उत्कृष्ट स्वामी चिरकाल बाद प्राप्त हुए हो सो करने योग्य कार्यके विषयमें मुझे आज्ञा दीजिए ॥४५-४६॥ इस प्रकार कहनेपर लक्ष्मणने कहा कि हे सज्जन ! सुनो, किसी दुराचारीने मेरे अग्रज—रामकी पत्नी हर ली है सो उससे रहित राम, शोकके वशीभूत हो यदि प्राण छोड़ते हैं तो मैं निश्चय ही अग्निमें प्रवेश करूँगा ॥४७-४८॥ क्योंकि हे भद्र ! तुम यह निश्चित जानो कि मेरे प्राण इन्हींके प्राणोंके साथ मजबूत बँधे हुए हैं इसलिए इस विषयमें कुछ उत्तम उपाय करना चाहिए ॥४९॥ तब विद्याधरोंका राजा विराधित नीचा मुख कर कुछ विचार करने लगा कि अहो ! इतना श्रम करनेपर भी मेरी आशा पूर्ण नहीं हुई ॥५०॥ मैं पहले सुखसे इच्छानुसार निवास करता था फिर स्थानभ्रष्ट हो नाना वनोंमें भ्रमण करता रहा । अब मैंने अपने आपको इनकी शरणमें सौंपा सो देखो ये स्वयं कष्टकारी संशयके गर्तमें पड़ रहे हैं ॥५१॥ दुःखरूपी सागरके तटको प्राप्त हुआ मैं जिस-जिस लताको पकड़ता हूँ सो दैवके द्वारा वही-वही लता उखाड़ दी जाती है, वास्तवमें समस्त संसार कर्मोंके आधीन है ॥५२॥ यद्यपि ये अपने कर्मके अनुसार हमारा भला या बुरा कुछ भी करें तो भी मैं उत्साह धारण कर इनके इस उपस्थित कार्यको अवश्य करूँगा ॥५३॥ इस प्रकार अन्तरंगमें विचारकर उत्साहको धारण करते हुए धीर-वीर विराधितने तेजपूर्ण वचनोंमें मन्त्रियोंसे कहा कि इन महामानवकी पत्नी महीतल, आकाश,

१. अवसरे, प्रस्तावे म. । २. परिप्राप्तो म. । ३. अग्रजस्य । ४. -भावृत्य म. । ५. मजमुत्साहमसंस्तुतम् ब. । ६. गवेषयतो म. ।

इत्युक्ताः संमदोपेताः संनद्धाः परमौजसः । नानावेषाः खगा जग्मुर्दिशो दश यशोर्थिनः ॥५७॥
अथार्कजटिनः सूनुर्नाम्ना रत्नजटी खगः । खड्गी द्रागिति शुश्राव दूरतो रुदितध्वनिम् ॥५८॥
आशां च भजमानस्तामाकर्ण्येति निस्वनम्[1] । हा राम हा कुमारेति जल्पधेरूर्ध्वमम्बरे ॥५९॥
[2]परिदेवनसंस्थानं श्रुत्वा तं सपरिस्फुटम् । समुत्पपात तं देशं विमानं यावदीक्षते ॥६०॥
अस्योपरि परिक्रन्दं कुर्वन्तीमतिविह्वलाम्[3] । वैदेहीं स समालोक्य बभाण क्रोधपूरितः ॥६१॥
तिष्ठ तिष्ठ महापाप दुष्ट विद्याधराधम । कृत्वापराधमीदृक्षं क्व त्वया गम्यतेऽधुना ॥६२॥
दयिता रामदेवस्य प्रभामण्डलसोदराम् । मुञ्च शीघ्रमभीष्टं ते जीवितं यदि दुर्मते ॥६३॥
ततो दशाननोऽप्येनमाक्रोश्य परुषरवनम् । युद्धे समुद्यतः क्रुद्धो विह्वलीभूतमानसः ॥६४॥
पुनश्चिन्तयत्युद्धे[4] पतिते सति विह्वला । मयादिकृतिरं सीता कदाचिल्लप्स्यते भजेत् ॥६५॥
आकुलां[5] रक्षता चैतां परमव्याकुलात्मना । न व्यापादयितुं शक्यः क्षुद्रोऽप्येष ममाक्षरः ॥६६॥
इति संचिन्त्य संभ्रान्तस्रस्तमौलियुत्तराम्बरः । [6]स्वस्थस्य रत्नजटिनो वली[7] विद्यामपाहरत् ॥६७॥
अथ रत्नजटी त्रस्तः किंचिन्मन्त्रप्रभावतः । पपात शनकैरुल्कास्फुलिङ्ग इव मेदिनीम् ॥६८॥
समुद्रजलमध्यस्थं कम्बुद्वीपं समाश्रितः । आयुर्वर्तनसामर्थ्यान्नरपोतो यथा वणिक् ॥६९॥
निश्चलश्च क्षणं स्थित्वा समुच्छ्वस्यायतं भृशम् । कम्बुपर्वतमारुह्य दिशश्चक्रं व्यलोकयत् ॥७०॥

पर्वत, जल, स्थल, वन अथवा नगरमें कहीं भी ले जायी गयी हो यत्नपूर्वक समस्त दिशाओंमें सब ओरसे उसकी खोज करो। हे महायोद्धाओ! खोज करनेपर तुम लोग जो चाहोगे वह प्रदान करूँगा ॥५४-५६॥ इस प्रकार कहनेपर हर्षसे युक्त, अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित, परम तेजके धारक, नाना प्रकारकी वेष-भूषासे सुशोभित और यशके इच्छुक विद्याधर दशों दिशाओंमें गये ॥५७॥

अथानन्तर अर्कजटीके पुत्र रत्नजटी नामक खड्गधारी विद्याधरने दूरसे शीघ्र ही रोनेका शब्द सुना ॥५८॥ जिस दिशासे रोनेका शब्द आ रहा था उसी दिशामें जाकर उसने समुद्रके ऊपर आकाशमें 'हा राम! हा कुमार लक्ष्मण!' इस प्रकारका शब्द सुना ॥५९॥ विलापके साथ आते हुए उस अत्यन्त स्पष्ट शब्दको सुनकर जब वह उस स्थानकी ओर उड़ा तब उसने एक विमान देखा ॥६०॥ उस विमानके ऊपर विलाप करती हुई अतिशय विह्वल सीताको देखकर वह क्रोध-युक्त हो बोला कि अरे ठहर-ठहर, महापापी दुष्ट नीच विद्याधर! ऐसा अपराध कर अब तू कहाँ जाता है? ॥६१-६२॥ हे दुर्बुद्धे! यदि तुझे जीवन इष्ट है तो रामदेवकी स्त्री और भामण्डलकी बहनको शीघ्र ही छोड़ ॥६३॥ तदनन्तर कर्कश शब्द कहनेवाले रत्नजटीके प्रति कर्कश शब्दोंका उच्चारण कर क्रोधसे भरा तथा विह्वल चित्तका धारक रावण युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ ॥६४॥ फिर उसने विचार किया कि 'युद्ध होनेपर मैं इस विह्वल सीताको देख नहीं सकूँगा और उस दशामें सम्भव है कि यह कदाचित् मृत्युको प्राप्त हो जाये और यदि इस घबड़ायी हुई सीताकी रक्षा भी करता रहूँगा तो अत्यन्त व्याकुल चित्त होनेके कारण, यद्यपि यह विद्याधर क्षुद्र है तो भी मेरे द्वारा मारा नहीं जा सकेगा' ॥६५-६६॥ इस प्रकार विचारकर हड़बड़ाहटके कारण जिसके मुकुट और उत्तरीय वस्त्र शिथिल हो गये थे ऐसे बलवान् रावणने आकाशमें स्थित रत्नजटी विद्याधरकी विद्या हर ली ॥६७॥

अथानन्तर भयभीत रत्नजटी किसी मन्त्रके प्रभावसे उल्काके समान धीरे-धीरे पृथ्वीपर आ पड़ा ॥६८॥ जिसका जहाज डूब गया है ऐसे वणिक्के समान वह आयुका अस्तित्व शेष रहनेके कारण समुद्र जलके मध्यमें स्थित कम्बुनामक द्वीपमें पहुँचा ॥६९॥ वहाँ वह क्षण-भर निश्चल बैठा

---

१. -यति निस्वनम् म.। २. यदि देवेन म.। ३ मतिविह्वलाम् म.। ४. प्रवर्ते म.। ५. रक्षितां म.। ६. स्वस्थस्य म.। ७. बलवान् रावणः।

ततः समुद्रवातेन शिशिरस्वमुपेयुषा । [1]अपनीतश्रमस्वेदः समाश्वस्त दुःखितः ॥७१॥
[2]येऽप्यन्येऽन्वेषणं कर्तुं गतास्तेऽन्विष्य शक्तितः । रामवस्यान्तिकं प्राप्ताः प्रणष्टवदनौजसः ॥७२॥
तेषां ज्ञात्वा मनः शून्यं महीविन्यस्तचक्षुषाम् । एषो जगाद दीर्घोष्णं निश्वस्य म्लानलोचनः ॥७३॥
निजां शक्तिममुञ्चद्भिर्भवद्भिः साधुलेखराः । अस्मत्कार्ये कृतो यत्नो दैवं तु प्रतिकूलकम् ॥७४॥
तिष्ठत स्वेच्छयेदानीं यात वा स्वं समाश्रयम् । [3]वाडवास्यगतं रत्नं करात् किं पुनरीक्ष्यते ॥७५॥
नूनं सर्वं कृतं कर्म प्राप्तव्यं फलं मया । तत्कर्तुमन्यथा शक्यं न भवद्भिर्मयापि वा ॥७६॥
विमुक्तं बन्धुभिः कष्टं विकृष्टं वनमाश्रितम् । अनुकम्पा न तत्रापि जनिता दैवशत्रुणा ॥७७॥
मन्ये यथानुबन्धेन लग्नोऽयं विधिवद्धतः । तथैतस्मात्परं दुःखं किं नामान्यत्करिष्यति ॥७८॥
परिदेवनमारब्धे कर्तुमेवं नराधिपे । धीरं विराधितोऽवोचत् परिसान्त्वनपण्डितः ॥७९॥
विषादमतुलं देव किमेवमनुसेवसे । स्वल्पैरेव दिनैः पश्य प्रियामनघविग्रहाम् ॥८०॥
शोको हि नाम कोऽप्येष विषभेदो महत्तमः । नाशयत्याश्रितं देहं का कथान्येषु वस्तुषु ॥८१॥
तस्मादवलम्ब्यतां धैर्यं महापुरुषसेवितम् । भवद्विधा विवेकानां भवनं क्षेत्रमुत्तमम् ॥८२॥
जीवन् पश्यति भद्राणि धीरश्चिरतरादपि । अही[4] दुरवमतिर्मन्दं कृच्छ्रादपि न पश्यति ॥८३॥
कालो नैष विषादस्य दीयतां कार्ये मनः । [5]औदासीन्यमिहानर्थं कुरुते परमं पुरा ॥८४॥

फिर बार-बार लम्बी साँस लेकर वह कम्बु पर्वतपर चढ़कर दिशाओंकी ओर देखने लगा ॥७०॥ तदनन्तर समुद्रकी शीतल वायुसे जिसका परिश्रम और पसीना दूर हो गया था ऐसा दुःखी रत्नजटी कुछ सन्तुष्ट हुआ ॥७१॥ जो अन्य विद्याधर सीताकी खोज करनेके लिए गये थे वे शक्ति-भर खोज-कर रामके समीप वापस पहुँचे। उस समय प्रयोजनकी सिद्धि नहीं होनेसे उनके मुखका तेज नष्ट हो गया था ॥७२॥ जिनके नेत्र पृथ्वीपर लग रहे थे ऐसे उन विद्याधरोंका मन शून्य जानकर म्लाननेत्रोंके धारक रामने लम्बी और गरम साँस भरकर कहा कि हे धन्य विद्याधरो ! आप लोगोंने अपनी शक्ति न छोड़ते हुए हमारे कार्यमें प्रयत्न किया है पर मेरा भाग्य ही विपरीत है ॥७३–७४॥ अब आप लोग अपनी इच्छानुसार बैठिए अथवा अपने-अपने घर जाइए। जो रत्न हाथसे छूटकर बड़वानलमें जा गिरता है वह क्या फिर दिखाई देता है ? ॥७५॥ निश्चय ही जो कुछ कर्म मैंने किया है उसका फल प्राप्त करने योग्य है उसे न आप लोग अन्यथा कर सकते हैं और न मैं भी अन्यथा कर सकता हूँ ॥७६॥ मैंने भाई-बन्धुओंसे रहित, कष्टकारी दूरवर्ती वनका आश्रय लिया सो वहाँ भी भाग्यरूपी शत्रुने मुझपर दया नहीं की ॥७७॥ जान पड़ता है कि यह उत्कट दुर्दैव मेरे पीछे लग गया है सो इससे अधिक दुःख और क्या करेगा ? ॥७८॥ इस प्रकार कहकर राम विलाप करने लगे तब सान्त्वना देनेमें निपुण विराधितने बड़ी धीरतासे कहा कि हे देव ! आप इस तरह अनुपम विषाद क्यों करते हैं ? आप थोड़े ही दिनोंमें निष्पाप शरीरकी धारक प्रियाको देखेंगे ॥७९–८०॥ यथार्थमें यह शोक कोई बड़ा भारी विषका भेद है जो आश्रित शरीरको नष्ट कर देता है अन्य वस्तुओंकी तो चर्चा ही क्या है ? ॥८१॥ इसलिए महापुरुषोंके द्वारा सेवित धैर्यका अवलम्बन कीजिए। आप-जैसे उत्तम-पुरुष विवेककी उत्पत्तिके उत्तम क्षेत्र हैं ॥८२॥ धीरवीर मनुष्य यदि जीवित रहता है तो बहुत समय बाद भी कल्याणको देख लेता है और जो तुच्छ बुद्धि-का धारी अधीर मनुष्य है वह कष्ट भोगकर भी कल्याणको नहीं देख पाता है ॥८३॥ यह विषाद करनेका समय नहीं है कार्य करनेमें मन दीजिए क्योंकि उदासीनता बड़ा अनर्थ करनेवाली है ॥८४॥

१. अपरीतश्रमस्वेदसमाश्वासदुःखितः म. । २. यत्नं स्वन्वेषणं म. । ३. वाडवास्यां गतं म., ब. । ४. विदूरं । ५. गृही ब. । ६. उदासीन म. ।

विद्याधरमहाराजे निहते खरदूषणे । अर्थान्तरमनुप्राप्तं दुरन्तमवधार्यताम् ॥८५॥
किष्किन्धेन्द्रेन्द्रजिद्वीरौ भानुकर्णस्तथैव च । त्रिशिराः क्षोभणो भीमः क्रूरकर्मा महोदरः ॥८६॥
एते चान्ये महायोधा नानाविद्यासमन्वयाः । यास्यन्ति संप्रतं क्षोभं मित्रस्वजनदुःखतः ॥८७॥
नानायुद्धसहस्रेषु सर्वे[1] ऽमी लब्धकीर्तयः । विजयार्धेन्द्रगावासखगेन्द्रेणाप्यसाधिताः ॥८८॥
पवनस्यात्मजः ख्यातो यस्य वानरलक्षितम् । केतुं दूरात् समालोक्य विद्रवन्ति[2] द्विषां गणाः[3] ॥८९॥
तस्याभिमुखतां प्राप्य दैवयोगात् सुरा अपि । [4]त्यजन्ति विजये बुद्धिं स हि कोऽपि महाशयः ॥९०॥
तस्मादुत्तिष्ठ तत् स्थानमलंकारपुरमाश्रिताः । भामण्डलस्वसुर्वार्तां स्वस्थीभूता क्षमामहे ॥९१॥
तद्धि नः पुरमायातमन्वयेन रसातले । तत्र दुर्गे स्थिताः कार्यं चिन्तयामो यथोचितम् ॥९२॥
इत्युक्ते चतुरैरश्वैश्चतुर्भिर्युक्तमुत्तमम् । भास्वरं रथमारुह्य प्रस्थितौ रघुनन्दनौ ॥९३॥
शुशुभाते तदाप्यन्तं न तौ पुरुषसत्तमौ । सीतया रहितौ[5] सम्यग्दृष्ट्या बोधक्रमाविव ॥९४॥
चतुर्विधमहासैन्यसागरेण समावृतः । खरावासप्रतस्तस्थौ चन्द्रोदरनृपात्मजः ॥९५॥
तावच्चन्द्रनखासूनुं नगरद्वारनिःसृतम् । कृतयुद्धं पराजित्य प्रविष्टः परमं पुरम् ॥९६॥
तत्र देवनिवासाभे पुरे रत्नसमुज्वले[6] । यथोचितं स्थितं चक्रुः खरदूषणवेश्मनि ॥९७॥
तस्मिन्नमरसद्माभे भवने रघुनन्दनः । सीताया गमनाक्लेभे धृतिं तु न मनागपि ॥९८॥
अरण्यमपि रम्यत्वं याति कान्तासमागमे । कान्ताविरोगदग्धस्य सर्वं विन्ध्यवनायते ॥९९॥

विद्याधरोंके राजा खरदूषणके मारे जानेपर दूसरी बात हो गयी है और जिसका फल अच्छा नहीं होगा ऐसा आप समझ लीजिए ॥८५॥ किष्किन्धापुरीका राजा सुग्रीव, इन्द्रजित्, भानुकर्ण, त्रिशिरा, क्षोभण, भीम, क्रूरकर्मा और महोदर आदि बड़े-बड़े योद्धा जो नाना विद्याओंके धारक तथा महातेजस्वी हैं इस समय अपने मित्र – खरदूषणके कुटुम्बी जनोंके दुःखसे क्षोभको प्राप्त होंगे ॥८६-८७॥ इन सब योद्धाओंने नाना प्रकारके हजारों युद्धोंमें सुयश प्राप्त किया है तथा विजयार्ध पर्वतपर रहनेवाला विद्याधरोंका राजा भी इन्हें वश नहीं कर सकता ॥८८॥ पवनंजयका पुत्र हनुमान् अतिशय प्रसिद्ध है जिसकी वानर चिह्नित ध्वजा देखकर शत्रुओंके झुण्ड दूरसे ही भाग जाते हैं ॥८९॥ दैवयोगसे देव भी उसका सामना कर विजयकी अभिलाषा छोड़ देते हैं यथार्थमें वह कोई अद्भुत महायशस्वी पुरुष है ॥९०॥ इसलिए उठिए, अलंकारपुर नामक सुरक्षित स्थानका आश्रय लें वहीं निश्चिन्ततासे रहकर भामण्डलकी बहनका समाचार प्राप्त करें ॥९१॥ वह अलंकारपुर पृथिवीके नीचे है और हम लोगोंकी वंश-परम्परासे चला आया है उसी दुर्गम स्थानमें स्थित रहकर हम लोग यथायोग्य कार्यकी चिन्ता करेंगे ॥९२॥ इस प्रकार कहनेपर चार चतुर घोड़ोंसे जुते हुए उत्तम देदीप्यमान रथपर सवार होकर राम-लक्ष्मणने प्रस्थान किया ॥९३॥ जिस प्रकार सम्यग्दर्शनसे रहित ज्ञान और चारित्र सुशोभित नहीं होते हैं उसी प्रकार उस समय सीतासे रहित राम और लक्ष्मण सुशोभित नहीं हो रहे थे ॥९४॥ चार प्रकारकी महासेनारूपी सागरसे घिरा विराधित शोभा करता हुआ उनके आगे स्थित था ॥९५॥ जबतक वह पहुँचा तबतक चन्द्रनखाका पुत्र नगरके द्वारसे निकलकर युद्ध करने लगा सो उसे पराजित कर वह परम सुन्दर नगरके भीतर प्रविष्ट हुआ ॥९६॥ वह नगर देवोंके निवास-स्थानके समान रत्नोंसे देदीप्यमान था। वहाँ जाकर विराधित तथा राम-लक्ष्मण खरदूषणके भवनमें यथायोग्य निवास करने लगे ॥९७॥ यद्यपि वह भवन देवभवनके समान था तो भी राम सीताके चले जानेसे वहाँ रंच मात्र भी धैर्यको प्राप्त नहीं होते थे—वहाँ उन्हें सीताके बिना बिलकुल भी अच्छा नहीं लगता था ॥९८॥ स्त्रीके

१. सर्वे संप्राप्तकीर्तयः म. । २. विद्रवति म. । ३. गणः म. । ४. त्यजति विषये म. । ५. सम्यग्दृष्टिर्बोध-म. । ६. समाकुले म. ।

अथकान्ते गृहस्यास्य तरुषण्डविराजिते । प्रासादमतुलं वीक्ष्य [1]ससार रघुनन्दनः ॥१००॥
तत्रार्हत्प्रतिमां दृष्ट्वा रत्नपुष्पकृतार्चनाम् । क्षणविस्मृतसंतापः परमो धृतिमुपागतः ॥१०१॥
इतस्ततश्च तत्रार्चा वीक्षमाणः कृतानतिः । किंचित् प्रशान्तदुःखोर्मिरवतस्थे रघूत्तमः ॥१०२॥
आत्मीयबलगुप्तश्च सुन्दो मात्रा समन्वितः । पितृभ्रातृविनाशेन शोकी लङ्कामुपाविशत् ॥१०३॥

शालिनीच्छन्दः

एवं संगान् सावसानान् विदित्वा नानादुःखैः प्रापणीयानुपायैः ।
विघ्नैर्दुरन्तान् भूरिभिर्दुर्निवारैरिच्छां तेषु प्राणिनो मा कुरुध्वम् ॥१०४॥
यद्यप्याशा पूर्वकर्मानुभावात् संगं कर्तुं जायते प्राणभाजाम् ।
प्राप्य ज्ञानं साधुवर्गोपदेशात्सम्भ्री सा रवेः शार्वरीव ॥१०५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सीताविप्रयोगदाहाभिधानं नाम पञ्चचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४५॥

समागममें वन भी रमणीयताको प्राप्त होता है और स्त्रीके वियोगसे जलते हुए मनुष्यको सब कुछ विन्ध्य वनके समान जान पड़ता है ॥९९॥

अथानन्तर वृक्षोंके समूहसे सुशोभित, उस भवनके एकान्त स्थानमें अनुपम मन्दिर देखकर राम वहाँ गये ॥१००॥ उस मन्दिरमें रत्न तथा पुष्पोंसे जिसकी पूजा की गयी थी ऐसी जिनेन्द्र प्रतिमाके दर्शन कर वे क्षण-भर सब सन्ताप भूलकर परम धैर्यको प्राप्त हुए ॥१०१॥ उस मन्दिरमें इधर-उधर जो और भी प्रतिमाएँ थीं उनके दर्शन करते तथा नमस्कार करते हुए राम वहाँ रहने लगे। जिनेन्द्र प्रतिमाओंके दर्शन करनेसे उनके दुःखकी लहरें कुछ शान्त हो गयी थीं ॥१०२॥ पिता और भाईके मरनेसे जिसे शोक हो रहा था ऐसा सुन्द, अपनी सेनासे सुरक्षित होता हुआ माता चन्द्रनखाके साथ लंकामें चला गया ॥१०३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस प्रकार जो नाना प्रकारके दुःखदायी उपायोंसे प्राप्त करने योग्य हैं तथा अनेक प्रकारके दुर्निवारसे युक्त हैं ऐसे इन परिग्रहोंको नश्वर जानकर हे भव्यजनो ! उनमें अभिलाषा मत करो ॥१०४॥ यद्यपि पूर्व कर्मोदयसे प्राणियोंके परिग्रह संचित करनेकी आशा होती है तो भी मुनि-समूहके उपदेशसे ज्ञान प्राप्त कर वह आशा उस तरह नष्ट हो जाती है जिस तरह कि सूर्यसे प्रकाश पाकर रात्रि नष्ट हो जाती है ॥१०५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें सीताके वियोगजन्य दाहका वर्णन करनेवाला पैंतालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४५॥

---

१. प्रासादमञ्जुलं म. । २. ससीररघु- ज., ससार = जगाम ।

षट्चत्वारिंशत्तमं पर्व

तत्रासाद्योत्तमे शृङ्गे विमानशिखरे स्थितः । स्वैरं स्वैरं व्रजन् रेजे रावणो दिवि भानुवत् ॥१॥
सीतायाः शोकतप्तायाः म्लानं वीक्ष्यास्यपङ्कजम् । रतिरागविमूढात्मा दध्यौ किमपि रावणः ॥२॥
अश्रुदुर्दिनवक्त्रायाः सीतायाः कृपणं परम् । नानाप्रियशतान्यूचे पृष्ठतः पार्श्वतोऽग्रतः ॥३॥
मारस्यात्यन्तमृदुभिर्हतोऽहं कुसुमेषुभिः । म्रिये यदि ततः साध्वि नरहत्या भवेत्तव ॥४॥
वक्त्रारविन्दमेतस्याः सक्रोधमपि सुन्दरि । याति यत्तद्भवानां सर्वेषां हि शोभनता ॥५॥
प्रसीद देवि भृत्यास्ये सकृच्चक्षुर्विधीयताम् । स्वचक्षुःकान्तितोयेन स्नातस्यापैतु मे श्रमः ॥६॥
यदि दृष्टिप्रसादं मे न करोषि वरानने । एतेन पादपद्मेन सकृत् ताडय मस्तके ॥७॥
भवत्या रमणोद्याने किं न जातोऽस्म्यशोककः । सुलभा यस्य ते श्लाघ्या पादपद्मतलाहतिः ॥८॥
कृशोदरि गवाक्षेण विमानशिखरस्थिता । दिशः पश्य प्रयातोऽस्मि विवस्वर्ध्वं खेरपि ॥९॥
कुलपर्वतसंयुक्तां समेरुं सहसागराम् । पश्य क्षोणीमिमां देवि शिल्पिनेव विनिर्मिताम् ॥१०॥
एवमुक्ता सती सीता पराचीनव्यवस्थिता । अन्तरे तृणमाधाय जगादाकूचिताक्षरम् ॥११॥
अपसर्प ममाङ्गानि मा स्पृशः पुरुषाधम । निन्द्याक्षरामिमां वाणीमीदृशीं भाषसे कथम् ॥१२॥

अथानन्तर विमानके ऊँचे शिखरपर बैठा इच्छानुसार गमन करता हुआ रावण आकाशमें सूर्यके समान सुशोभित हो रहा था ॥१॥ रति सम्बन्धी रागसे जिसकी आत्मा विमूढ़ हो रही थी ऐसा रावण शोक-सन्तप्त सीताके मुरझाये हुए मुख-कमलका ध्यान कर रहा था—उसी ओर देख रहा था ॥२॥ जिसके मुखसे निरन्तर अश्रुओंकी वर्षा हो रही थी ऐसी सीताके आगे-पीछे तथा बगलमें खड़ा होकर रावण बड़ी दीनताके साथ नाना प्रकारके सैकड़ों प्रिय वचन बोलता था ॥३॥ वह कहता था कि मैं कामदेवके अतिशय कोमल पुष्पमयी बाणोंसे घायल होकर यदि मर जाऊँगा तो हे साध्वि ! तुझे नरहत्या लगेगी ॥४॥ हे सुन्दरि ! तेरा यह मुखारविन्द क्रोध सहित होनेपर भी सुशोभित हो रहा है सो ठीक ही है क्योंकि जो सुन्दर हैं उनमें सभी प्रकारसे सुन्दरता रहती है ॥५॥

हे देवि ! प्रसन्न होओ और इस दासके मुखपर एक बार चक्षु डालो। तुम्हारे चक्षुकी कान्तिरूपी जलसे नहानेपर मेरा सब श्रम दूर हो जायेगा ॥६॥ हे सुमुखि ! यदि दृष्टिका प्रसाद नहीं करती हो—आँख उठाकर मेरी ओर नहीं देखती हो तो इस चरण-कमलसे ही एक बार मेरे मस्तकपर आघात कर दो ॥७॥ मैं तुम्हारे मनोहर उद्यानमें अशोक वृक्ष क्यों नहीं हो गया ? क्योंकि वहाँ तुम्हारे इस चरण-कमलका प्रशंसनीय तल-प्रहार सुलभ रहता ॥८॥ हे कृशोदरि ! विमानकी छतपर बैठकर झरोखेसे जरा दिशाओंको तो देखो मैं सूर्यसे भी कितने ऊपर आकाशमें चल रहा हूँ ॥९॥ हे देवि ! कुलाचलों, मेरु पर्वत और सागरसे सहित इस पृथिवीको देखो। यह ऐसी जान पड़ती है मानो किसी कारीगरके द्वारा ही बनायी गयी हो ॥१०॥ इस प्रकार कहनेपर पीठ देकर बैठी हुई सीता बीचमें तृण रखकर निम्नांकित अप्रिय वचन बोली ॥११॥

उसने कहा कि हे नीच पुरुष ! हट, मेरे अंग मत छू। तू इस प्रकारकी यह निन्दनीय वाणी

---

१. वस्तु दुर्दिनवक्त्रायाः म. । २. संयुक्तं म. । ३. सहसागरम् म. । ४. विनिर्मितम् म. । ५. व्रण- म. । ६. अपसार्यं म. ।

पापात्मकमनार्युष्यमस्वर्ग्यमयशस्करम् । असदीदृशमेतत्ते विरुद्धं भयकारि च ॥१३॥
परदारान् समाकाङ्क्षन् महादुःखमवाप्स्यसि । पश्चात्तापपरीताङ्गो भस्मच्छन्नानलोपमम् ॥१४॥
महता मोहपङ्केन तवोपचितचेतसः । मृषा धर्मोपदेशोऽयमन्धे नृत्यविकासवत् ॥१५॥
इच्छामात्रादपि क्षुद्र परदृश्या पापमद्भुतम् । नरके वासमासाद्य कष्टं वर्त्तयिताप्स्यसि ॥१६॥
रूक्षाक्षराभिधानाभिः परं वाणीभिरित्यपि । मदनाहतचित्तस्य प्रेमास्य न निवर्त्तते (न्यवर्तत) ॥१७॥
तत्र दूषणसंग्रामे निवृत्ते परमप्रियाः । [1]शुकहस्तप्रहस्ताद्याः सोद्वेगाः स्वाम्यदर्शनात् ॥१८॥
चलत्केतुमहास्वण्डं कुमाराकल्पमग्रगम् । विमानं वीक्ष्य दाशास्यं मुदितास्तं हृदौकिरे ॥१९॥
प्रदानैर्दिव्यवस्तूनां संमानैश्चाद्भुतैः [2]परैः । तामिश्च भृत्यसंपद्भिरक्षुब्धा जनकात्मजा ॥२०॥
[3]शक्नोति सुखधीः पातुं कः शिखामाशुशुक्षणेः । को वा नागवधूमूर्ध्नि स्पृशेद् रत्नशलाकिकाम् ॥२१॥
कृत्वा करपुटं मूर्ध्नि दशाङ्गुलिसमाहितम् । ननाम रावणः सीतां निन्दितोऽपि तृणाग्रवत् ॥२२॥
महेन्द्रसदृशैस्तावद्भिर्मयैः सचिवैर्भृशम् । नानादिग्भ्यः समायातैरावृतो रक्षसां पतिः ॥२३॥
जय वर्धस्व नन्देति शब्दैः श्रवणहारिभिः । उपगीतः परिप्राप्तो लङ्कामालण्डलोपमः ॥२४॥
अचिन्तयच्च रामस्त्री सोऽयं विद्याधराधिपः । यत्राचरत्यमर्यादां तत्र किं शरणं भवेत् ॥२५॥
यावत्प्राप्नोमि नो वार्तां भर्तुः कुशलवर्तिनः । तावदाहारकार्यस्य प्रत्याख्यानमिदं मम ॥२६॥

क्यों बोल रहा है ? ॥१३॥ तेरी यह दुष्ट चेष्टा पापरूप है, आयुको नाश करनेवाली है, नरकका कारण है, अपकीर्तिको करनेवाली है, विरुद्ध है तथा भय उत्पन्न करनेवाली है ॥१३॥ परस्त्रीकी इच्छा करता हुआ तू महादुःखको प्राप्त होगा तथा भस्मसे आच्छादित अग्निके समान पश्चात्तापसे तेरा समस्त शरीर व्याप्त होगा ॥१४॥ अथवा तेरा चित्त पापरूपी महापंकसे व्याप्त है अतः तुझे धर्मका उपदेश देना उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार कि अन्धेके सामने नृत्यके हाव-भाव दिखाना व्यर्थ होता है ॥१५॥ अरे नीच ! परस्त्रीकी इच्छा मात्रसे तू बहुत भारी पाप बाँधकर नरकमें जायेगा और वहाँ कष्टकारी अवस्थाको प्राप्त होगा ॥१६॥ इस प्रकार यद्यपि सीताने कठोर अक्षरोंसे भरी वाणीके द्वारा रावणका तिरस्कार किया तो भी कामसे आहत चित्त होनेके कारण उसका प्रेम दूर नहीं हुआ ॥१७॥

वहाँ खरदूषणका युद्ध समाप्त होनेपर भी स्वामी रावणका दर्शन न होनेसे परम स्नेहके भरे शुक, हस्त, प्रहस्त आदि मन्त्री परम उद्वेगको प्राप्त हो रहे थे सो जब उन्होंने हिलती हुई पताकासे सुशोभित प्रातःकालीन सूर्यके समान रावणका विमान आता देखा तब वे हर्षित होकर उसके पास गये ॥१८-१९॥ उन्होंने दिव्य वस्तुओंकी भेंट देकर सम्मान प्रदर्शित कर तथा अतिशय प्रिय वचन कहकर रावणको अगवानी की तो भी भृत्योंकी उन सम्पदाओंसे सीता वशीभूत नहीं हुई ॥२०॥ संसारमें ऐसा कौन चतुर मनुष्य है जो अग्निशिखाका पान कर सके अथवा नागिनके शिरपर स्थित रत्नमयी शलाकाका स्पर्श कर सके ॥२१॥ यद्यपि सीताने तृणके अग्रभागके समान रावणका तिरस्कार किया था तो भी वह दशों अंगुलियोंसे सहित अंजलि शिरपर धारण कर उसे बार-बार नमस्कार करता था ॥२२॥ नाना दिशाओंसे आये हुए तथा इन्द्रके समान पूर्ण वैभवको धारण करनेवाले मन्त्रियोंने जिसे घेर लिया था और 'जय हो, बढ़ते रहो, समृद्धिमान् होओ' इत्यादि कर्णप्रिय वचनोंसे जिसकी स्तुति हो रही थी ऐसे इन्द्रतुल्य रावणने लंकामें प्रवेश किया ॥२३-२४॥ उस समय सीताने विचार किया कि यह विद्याधरोंका राजा ही जहाँ अमर्यादाका आचरण कर रहा है वहाँ दूसरा कौन शरण हो सकता है ? ॥२५॥ फिर भी मेरा यह नियम है कि जब तक भर्ताका कुशल समाचार नहीं प्राप्त कर लेती हूँ तबतक मेरे आहार कार्यका त्याग

---

१. शुकहस्ताद्याः सोद्वेगाः बभ्रामः म., ब. । २. स्वादुभिः म. । ३. शक्नोतिसुखधीः म. ।

उदीचीनं प्रतीचीनं तत्रास्ति परमोज्ज्वलम् । गीर्वाणरमणं ख्यातमुद्यानं स्वर्गसंनिभम् ॥२७॥
तत्र [1]कल्पतरुच्छायमहापादपसंकुले । स्थापयित्वा रहः सीतां विवेश स्वनिकेतनम् ॥२८॥
तावद्दूषणपञ्चत्वादुद्गतोऽस्य महाशुचा । अष्टादश सहस्राणि विप्रलेपुर्महास्वरम् ॥२९॥
भ्रातुश्चन्द्रनखा पादौ संसृत्योन्मुक्तकण्ठकम् । असाध्वी हा हताऽस्मीति विललापास्तदुर्दिनम् ॥३०॥
रमणात्मजपञ्चत्वविह्निनिर्दग्धमानसाम् । विलपन्तीमिमां भूरि जगादैवं सहोदरः ॥३१॥
अलं वत्से रुदित्वा ते प्रतिकर्तुं किं न शिष्यते । अवश्यप्राप्तिविहितं सर्वं प्राप्नोत्यत्र न संशयः ॥३२॥
अन्यथा क्व महीचारा जनाः क्षुद्रकशक्तयः । क्वायमेवंविधो भर्ता भवत्या व्योमगोचरः ॥३३॥
मयेदमर्जितं [2]पूर्वं व्यक्तं न्यायागतं फलम् । इति ज्ञात्वा शुचं कर्तुं कस्य मर्त्यस्य युज्यते ॥३४॥
नाकाले म्रियते कश्चिद्बाणेनापि सन्नाहतः । मृत्युकालेऽमृतं जन्तोर्विषतां प्रतिपद्यते ॥३५॥
येन व्यापादितो वत्से समरे खरदूषणः । अन्येषां वाहिनेच्छानां मृत्युरेष भवाम्यहम् ॥३६॥
स्वसारमेवमाश्वास्य दत्तादेशो जिनार्चने । दह्यमानमना वासभवनं रावणोऽविशत् ॥३७॥
तत्रादरनिराकाङ्क्षं तल्पविक्षिप्तविग्रहम् । सोन्मादकेसरिच्छायं निःश्वसन्तमिवोरगम् ॥३८॥
भर्तारं दुःखयुक्तेव भूषणादरवर्जिता । महादरमुवाचैवमुपसृत्य मयात्मजा [3] ॥३९॥
किं नाथाकुलतां यासे खरदूषणमृत्युना । न विषादोऽस्ति शूराणामापत्सु महतीष्वपि ॥४०॥

है ॥२६॥ तदनन्तर पश्चिमोत्तर दिशामें विद्यमान अतिशय उज्ज्वल, स्वर्गके समान सुन्दर देवारण्य नामक उद्यान है सो कल्पवृक्षके समान कान्तिवाले बड़े-बड़े वृक्षोंसे व्याप्त उस उद्यानमें एक जगह सीताको ठहराकर रावण अपने महलमें चला गया ॥२७-२८॥ इतनेमें ही खरदूषणके मरणका समाचार पाकर रावणकी अठारह हजार रानियाँ बहुत भारी शोकके कारण महाशब्द करती हुई रावणके सामने विलाप करने लगीं ॥२९॥ चन्द्रनखा भाईके चरणोंमें जाकर तथा गला फाड़-फाड़कर 'हाय-हाय मैं अभागिनी मारी गयी' इस तरह अश्रुवर्षासे दुर्दिनको पराजित करती हुई विलाप करने लगी ॥३०॥ पति और पुत्रकी मृत्युरूपी अग्निसे जिसका मन जल रहा था ऐसी अत्यधिक विलाप करती हुई चन्द्रनखासे भाई—रावणने इस प्रकार कहा ॥३१॥ कि हे वत्से ! तेरा रोना व्यर्थ है। यह क्या प्रसिद्ध नहीं है कि संसारके प्राणी पूर्वभवमें जो कुछ करते हैं उस सबका फल अवश्य ही प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं है ॥३२॥ यदि ऐसा नहीं है तो क्षुद्रशक्तिके धारक भूमिगोचरी मनुष्य कहाँ और तुम्हारा ऐसा आकाशगामी भर्ता कहाँ ? ॥३३॥ 'मैंने यह सब पूर्वमें संचित किया था सो उसीका यह न्यायागत फल प्राप्त हुआ है' ऐसा जानकर किसी मनुष्यको शोक करना उचित नहीं है ॥३४॥ जबतक मृत्यु का समय नहीं आता है तबतक वज्रसे आहत होने पर भी कोई नहीं मरता है और जब मृत्युका समय आ पहुँचता है तब अमृत भी जीवके लिए विष हो जाता है ॥३५॥ हे वत्से ! जिसने युद्धमें खरदूषणको मारा है उसके साथ अन्य सब शत्रुओं-के लिए मैं मृत्युस्वरूप हूँ अर्थात् मैं उन सबको मारूँगा ॥३६॥ इस प्रकार बहनको आश्वासन तथा जिनेन्द्र देवकी अर्चाका उपदेश देकर जिसका मन जल रहा था ऐसा रावण निवासगृहमें चला गया ॥३७॥ वहाँ जाकर रावण आदरकी प्रतीक्षा किये बिना ही शय्यापर जा पड़ा। उस समय वह उन्मत्त सिंहके समान अथवा साँस भरते हुए सर्पके समान जान पड़ता था ॥३८॥ भर्ताको ऐसा देख, दुःखयुक्तकी तरह आभूषणोंके आदरसे रहित मन्दोदरी बड़े आदरसे उसके पास जाकर इस प्रकार बोली ॥३९॥ कि हे नाथ ! क्या खरदूषणकी मृत्युसे आकुलताको धारण कर रहे हो ? परन्तु यह ठीक नहीं है क्योंकि शूर-वीरोंको बड़ी-बड़ी आपत्तियोंमें भी विषाद नहीं होता ॥४०॥

१. तरुतलच्छाये महापादप- म. । २. सर्वं म. । ३. मन्दोदरी ।

पुरानेकत्र संग्रामे सुहृदस्ते क्षयं गताः । न च ते शोचिता जातु दूषणं किंतु शोचसि ॥४१॥
आसन्महेन्द्रसंग्रामे श्रीमालिप्रमुखा नृपाः । बान्धवास्ते क्षयं याताः शोचितास्ते न जातुचित् ॥४२॥
अभूतसर्वशोकस्त्वमासीदपि महापदि । शोकं किं वहसीदानीं जिज्ञासामि विभो वद ॥४३॥
ततो महादरः सद्यो निश्वासोच्छ्वासशोषणः । क्षणं किंचित्परित्यज्य धारितोदीरितोक्षरम् ॥४४॥
शृणु सुन्दरि सद्भावमेकं ते कथयाम्यहम् । स्वामिन्यसि ममासूनां सर्वदा कृतवाञ्छिता ॥४५॥
यदि वाञ्छसि जीवन्तं मां ततो देवि नार्हसि । कोपं कर्तुं मनु प्राणा मूलं सर्वस्य वस्तुनः ॥४६॥
ततस्तथैवमित्युक्ते शपथैर्विनिवर्त्य ताम् । विलक्ष इव किंचित्स रावणः समभाषत ॥४७॥
यदि सा वेधसः सृष्टिरपूर्वा[3] सुखवर्णना । सीता पतिं न मां वष्टि ततो मे नास्ति जीवितम् ॥४८॥
लावण्यं यौवनं रूपं माधुर्यं चारुचेष्टितम् । प्राप्य तां सुन्दरीमेकां[4] कृतार्थत्वमुपागतम् ॥४९॥
ततो मन्दोदरी कष्टां ज्ञात्वा तस्य दशामिमाम् । विहसन्ती जगादैवं विस्फुरद्दन्तचन्द्रिका ॥५०॥
इदं नाथ महाश्चर्यं वरो यत् कुरुतेऽर्थनम् । अपुण्या सावला मूर्खा या त्वां नार्थयते स्वयम् ॥५१॥
अथवा निखिले लोके सैवैका परमोदया । या त्वया मानकूटेन याच्यते परमापदा[5] ॥५२॥
केयूररत्नजटिलैरिभैः करिकरोपमैः । आलिङ्ग्य बाहुभिः कस्माद् बलात् कामयसे न ताम् ॥५३॥
सोऽवोचद्देवि विज्ञाप्यमस्त्यत्र शृणु कारणम् । प्रसभं येन गृह्णामि न तां सर्वाङ्गसुन्दरीम् ॥५४॥

पहले अनेक संग्रामोंमें तुम्हारे मित्र क्षयको प्राप्त हुए हैं उन सबका तुमने शोक नहीं किया किन्तु आज खरदूषणके प्रति शोक कर रहे हो ? ॥४१॥ राजा इन्द्रके संग्राममें श्रीमाली आदि अनेक राजा जो तुम्हारे बन्धुजन थे क्षयको प्राप्त हुए थे पर उन सबका तुमने कभी शोक नहीं किया ॥४२॥ पहले बड़ी-बड़ी आपत्तिमें रहनेपर भी तुम्हें किसीका शोक नहीं हुआ पर इस समय क्यों शोकको धारण करते हो यह मैं जानना चाहती हूँ सो हे स्वामिन्, इसका कारण बतलाइए ॥४३॥

तदनन्तर महान् आदरसे युक्त रावण साँस लेकर तथा कुछ शय्या छोड़कर कहने लगा। उस समय उसके अक्षर कुछ तो मुखके भीतर रह जाते थे और कुछ बाहर प्रकट होते थे ॥४४॥ उसने कहा कि हे सुन्दरि ! सुनो एक सद्भावकी बात तुमसे कहता हूँ। तुम मेरे प्राणोंकी स्वामिनी हो और सदा मैंने तुम्हें चाहा है ॥४५॥ यदि मुझे जीवित रहने देना चाहती हो तो हे देवि ! क्रोध करना योग्य नहीं है, क्योंकि प्राण ही तो सब वस्तुओंके मूल कारण हैं ॥४६॥ तदनन्तर 'ऐसा ही है' इस प्रकार मन्दोदरीके कहनेपर उसे अनेक प्रकारकी शपथोंसे नियममें लाकर कुछ-कुछ लज्जित होते हुए-की तरह रावण कहने लगा ॥४७॥ कि जिसका वर्णन करना कठिन है ऐसी विधाता की अपूर्व सृष्टिस्वरूप वह सीता यदि मुझे पति रूपसे नहीं चाहती है तो मेरा जीवन नहीं रहेगा ॥४८॥ लावण्य, यौवन, रूप, माधुर्य और सुन्दर चेष्टा सभी उस एक सुन्दरीको पाकर कृतकृत्यताको प्राप्त हुए हैं ॥४९॥

तदनन्तर रावणकी इस कष्टकर दशाको जानकर हँसती तथा दाँतोंकी कान्तिरूपी चाँदनी-को फैलाती हुई मन्दोदरी इस प्रकार बोली कि हे नाथ ! यह बड़ा आश्चर्य है कि वर याचना कर रहा है। जान पड़ता है कि वह स्त्री पुण्यहीन है जो स्वयं आपसे प्रार्थना नहीं कर रही है ॥५०-५१॥ अथवा समस्त संसारमें वही एक परम अभ्युदयको धारण करनेवाली है। जिसकी कि तुम्हारे जैसे अभिमानी पुरुष बड़ी दीनतासे याचना करते हैं ॥५२॥ अथवा बाजूबन्दके रत्नोंसे जटिल तथा हाथीकी सूँड़की उपमा धारण करनेवाली इन भुजाओंसे बलपूर्वक आलिंगन कर क्यों नहीं उसे चाह लेते हो ? ॥५३॥ इसके उत्तरमें रावणने कहा कि हे देवि ! मैं जिस कारण उस

---

१. ततः सहोदरः म. । २. धारिता धारितोक्षरम् (?) । ३. -रसर्वा-म. । ४. -मेतां ख. । ५. परमा यथा ख. ।

आसीदनन्तवीर्यस्य मूले भगवतो मया । आत्तमेकं व्रतं साक्षाद्देवि निर्ग्रन्थसंसदि ॥५५॥
तेन देवेन्द्रवन्द्येन व्याख्यातमिदमीदृशम् । त्यजा निवृत्तिरेकापि ददाति परमं फलम् ॥५६॥
जन्तूनां दुःखभूयिष्ठभवसन्ततिसारिणाम् । पापान्निवृत्तिरल्पापि संसारोत्तारकारणम् ॥५७॥
येषां विरतिरेकापि कुतश्चिन्नोपजायते[1] । नरास्ते जर्जरीभूतकलशा इव निर्गुणाः ॥५८॥
मनुष्याणां पशूनां च तेषां यत् किंचिदन्तरम् । येषां न विद्यते कश्चिद्विरामो मोक्षकारणम् ॥५९॥
शक्त्या मुञ्चत पापानि [2]गृह्णीत सुकृतं धनम् । जात्यन्धा इव संसारे न भ्राम्यथ चतस्रिरम् ॥६०॥
एवं भगवतो वक्त्रकमलान्निर्गतं वचः । मधु पीत्वा नराः केचिद्[3]गगनाम्बरतां गताः ॥६१॥
सागारधर्मसंपन्ने स्थिता विकलशक्तयः । कर्मानुभावतः सर्वे न भवन्ति समक्रियाः ॥६२॥
एकेन साधुना तत्र प्रोक्तोऽहं सौम्यचेतसा । दशानन गृहाणैकं नियमं शक्तितः ॥६३॥
धर्मरत्नोज्ज्वलद्वीपं प्राप्तः शून्यमनस्करः । कथं व्रजसि विज्ञानी गुणसंग्रहकोविदः ॥६४॥
इत्युक्तेन मया देवि प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् । देवासुरमहर्षीणां प्रत्यक्षमिति भाषितम् ॥६५॥
यावन्नेच्छति मां नारी परकीया मनस्विनी । प्रसभं सा मया तावन्नाभिगम्यापि दुःखिना ॥६६॥
एतच्चाप्यभिमानेन गृहीतं दयिते व्रतम् । का मां किल समालोक्य साध्वी मानं करिष्यति ॥६७॥
अतो न तां स्वयं देवि गृह्णामि सुमनोहराम् । सकृज्जल्पन्ति राजानः प्रत्ययायोऽन्यथा महान् ॥६८॥
यावन्मुञ्चामि नो प्राणान् तावत् सीता प्रसाद्यताम् । भस्मभावङ्कृते गेहे कूपलानश्रमो वृथा ॥६९॥

सर्वांग सुन्दरीको जबर्दस्ती ग्रहण नहीं करता हूँ इसमें निवेदन करने योग्य कारण है उसे सुनो ॥५४॥ हे देवि ! मैंने अनन्तवीर्य भगवान्के समीप निर्ग्रन्थ मुनियोंकी सभामें साक्षात् एक व्रत लिया था ॥५५॥ इन्द्रोंके द्वारा वन्दनीय अनन्तवीर्य भगवान्ने एक बार ऐसा व्याख्यान किया कि एक वस्तुका त्याग भी परम फल प्रदान करता है ॥५६॥ दुःखोंसे भरी भव-परम्परामें भ्रमण करनेवाले प्राणियोंके पापसे थोड़ी भी निवृत्ति हो जावे तो वह उनके संसारसे पार होनेका कारण हो जाती है ॥५७॥ जिन मनुष्योंके किसी पदार्थके त्यागरूप एक भी नियम नहीं है वे फूटे घटके समान निर्गुण हैं ॥५८॥ उन मनुष्यों और पशुओंमें कुछ भी अन्तर नहीं है जिनके कि मोक्षका कारणभूत एक भी नियम नहीं है ॥५९॥ हे भव्य जीवो ! शक्तिके अनुसार पाप छोड़ो और पुण्यरूपी धनका संचय करो जिससे जन्मान्ध मनुष्योंके समान चिर काल तक संसारमें परिभ्रमण न करना पड़े ॥६०॥ इस प्रकार भगवान्के मुखकमलसे निकले हुए वचनरूपी मकरन्दको पीकर कितने ही मनुष्य निर्ग्रन्थ अवस्थाको प्राप्त हुए और हीनशक्तिको धारण करनेवाले कितने ही लोग गृहस्थधर्मको प्राप्त हुए सो ठीक ही है क्योंकि कर्मोदयके कारण सब एक समान क्रियाके धारक नहीं होते ॥६१-६२॥ उस समय सौम्य चित्तके धारक एक मुनिराजने मुझसे कहा कि हे दशानन ! शक्तिके अनुसार तुम भी एक नियम ग्रहण करो ॥६३॥ तुम धर्मरूपी उज्ज्वल रत्नद्वीपको प्राप्त हुए हो सो विज्ञानी तथा गुणोंके संग्रह करनेमें निपुण होकर भी खाली मन एवं खाली हाथ क्यों जाते हो ॥६४॥ इस प्रकार कहनेपर हे देवि ! मैंने मुनिराजको प्रणाम कर सुर-असुर तथा मुनियोंके समक्ष इस तरह कहा कि जबतक मानवती परस्त्री मुझे स्वयं नहीं चाहेगी तबतक दुखी होनेपर भी मैं बलपूर्वक उसका सेवन नहीं करूँगा ॥६५-६६॥ हे प्रिये ! मैंने यह व्रत भी इस अभिमान से ही लिया था कि मुझे देखकर कौन पतिव्रता मान करेगी ? ॥६७॥ इसलिए हे देवि ! मैं उस मनोहरांगीको स्वयं नहीं ग्रहण करता हूँ क्योंकि राजा एक बार ही कहते हैं अन्यथा बहुत भारी बाधा आ पड़ती है ॥६८॥ अतः जबतक मैं प्राण नहीं छोड़ता हूँ तबतक सीताको प्रसन्न करो

१. कुतश्चित्तूपजायते म. । २. गृहीतं म. । ३. दिगम्बरताम् ।

ततस्तं तादृशं ज्ञात्वा संजातकरुणोदया । बभाण रमणी नाथ स्वल्पमेतत् समीहितम् ॥७०॥
ततः किंचिन्मधुस्वादविलासवशवर्तिनी । सा देवरमणोद्यानं जगाम कमलेक्षणा ॥७१॥
तदाज्ञां प्राप्य संपिण्डिरष्टादशमहौजसाम् । दशाननवरस्त्रीणां सहस्राण्यनुययुर्जुः ॥७२॥
मन्दोदरी क्रमात्प्राप्य सीतादेवीसमीपतः । [illegible] ॥७३॥
अयि सुन्दरि हर्षस्य स्थाने कस्माद्विषीदसि । त्रैलोक्येऽपि हि सा धन्या पतिर्यस्या दशाननः ॥७४॥
सर्वविद्याधराधीशं पराजितसुराधिपम् । त्रैलोक्यसुन्दरं कस्मात्पतिं नेच्छसि रावणम् ॥७५॥
निःस्वःक्ष्मागोचरः कोऽपि तस्यार्थे दुःखितासि किम् ।
सर्वलोकवरिष्ठस्य स्वस्य सौख्यं विधीयताम् ॥७६॥
आत्मार्थं कुर्वतः कर्म सुमहासुखसाधनम् । दोषो न विद्यते कश्चित्सर्वं हि सुखकारणम् ॥७७॥
मयेति गदितं वाक्यं यदि न प्रतिपद्यसे । ततो यद्भविता तत्ते शत्रुभिः प्रतिपद्यताम् ॥७८॥
बलीयान् रावणः स्वामी प्रतिपक्षविवर्जितः । कामेन पीडितः कोपं गच्छेत्प्रार्थनभञ्जनात् ॥७९॥
यौ रामलक्ष्मणौ नाम तव कावपि संमतौ । तयोरपि हि सन्देहः क्रुद्धे सति दशानने ॥८०॥
प्रतिपद्यस्व तत् क्षिप्रं विद्याधरमहेश्वरम् । ऐश्वर्यं परमं प्राप्ता सौरीं लीलां समाश्रय ॥८१॥
इत्युक्ता वाष्पसंभारगद्गदोद्गीर्णवर्णिका । अगाद जानकी जातजललोचनधारिणी ॥८२॥
वनिते सर्वमेतत्ते विरुद्धं वचनं परम् । सतीनामीदृशं वक्त्रात्कथं निर्गन्तुमर्हति ॥८३॥
इदमेव शरीरं मे छिन्द भिन्दाथवा द्रुत । भर्तुः पुरुषमन्यं तु न करोमि मनस्यपि ॥८४॥

क्योंकि घरके भस्म हो जानेपर कूप खुदानेका श्रम व्यर्थ है ॥६९॥

तदनन्तर रावणको वैसा जान जिसे दया उत्पन्न हुई थी ऐसी मन्दोदरी बोली कि हे नाथ! यह तो बहुत छोटी बात है ॥७०॥ तत्पश्चात् कुछ मधुर विलासोंकी वशवर्तिनी कमललोचना मन्दोदरी देवारण्य नामक उद्यानमें गयी ॥७१॥ उसकी आज्ञा पाकर रावणकी अठारह हजार मानवती स्त्रियाँ भी वैभवके साथ उसके पीछे चलीं ॥७२॥ समस्त नय-नीतियोंके विज्ञानसे जिसका मन अलंकृत था ऐसी मन्दोदरीने क्रम-क्रमसे सीताके पास जाकर इस प्रकार कहा ॥७३॥ कि हे सुन्दरि! हर्षके स्थानमें विषाद क्यों कर रही हो? वह स्त्री तीनों लोकोंमें धन्य है जिसका कि रावण पति है ॥७४॥ जो समस्त विद्याधरोंका अधिपति है, जिसने इन्द्रको पराजित कर दिया है, तथा जो तीनों लोकोंमें अद्वितीय सुन्दर है ऐसे रावणको तुम पतिरूपसे क्यों नहीं चाहती हो? ॥७५॥ तुम्हारा पति कोई निर्धन भूमिगोचरी मनुष्य है सो उसके लिए इतना दुखी क्यों हो? सर्व लोकसे श्रेष्ठ अपने आपको सुखी करना चाहिए ॥७६॥ अपने लिए महासुखके साधनभूत कार्यके करनेवालेको कोई दोष नहीं है क्योंकि मनुष्यके सब प्रयत्न सुखके लिए ही होते हैं ॥७७॥ इस प्रकार मेरे द्वारा कहे हुए वचन यदि तुम स्वीकृत नहीं करती हो तो फिर जो दशा होगी वह तुम्हारे शत्रुओंको प्राप्त हो ॥७८॥ रावण अतिशय बलवान् तथा शत्रुसे रहित है प्रार्थना भंग करनेपर वह कामपीड़ित हो क्रोधको प्राप्त हो जायेगा ॥७९॥ जो राम-लक्ष्मण नामक कोई पुरुष तुझे इष्ट हैं सो रावणके कुपित होनेपर उन दोनोंका भी सन्देह ही है ॥८०॥ इसलिए तुम शीघ्र ही विद्याधरोंके अधिपति रावणको स्वीकृत करो और परम ऐश्वर्यको प्राप्त हो देवों सम्बन्धी लीलाको धारण करो ॥८१॥

इस प्रकार कहनेपर जिसके मुखसे वाष्पभारके कारण गद्गद वर्ण निकल रहे थे तथा जो अश्रुपूर्ण नेत्र धारण कर रही थी ऐसी सीता बोली कि हे वनिते! तेरे ये सब वचन अत्यन्त विरुद्ध हैं। पतिव्रता स्त्रियोंके मुखसे ऐसे वचन नहीं निकल सकते हैं? ॥८२-८३॥ मेरे इस शरीर-

---

१. कोऽयं । २. सुराणामियं सौरी तां देवसंबन्धिनीम् ।

सनत्कुमाररूपोऽपि यदि वासवखण्डलोपमः । नरस्तथापि तं भर्तुरन्यं नेच्छामि सर्वथा ॥८५॥
युष्मान्ब्रवीमि संक्षेपाद्वारान् सर्वानिहागताम् । यथा ब्रूत तथा चैतत्करोमि कुरुतेप्सितम् ॥८६॥
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः स्वयमेव दशाननः । सीतां मदनतापार्तो गङ्गावेणीमिव द्विपः ॥८७॥
समीपीभूय चोवाच परं करुणया गिरा । किंचिद्विहसितं कुर्वन्मुखचन्द्रं महादरः ॥८८॥
[2]मा वासीर्देवि संत्रासं भक्तोऽहं तव सुन्दरि । शृणु विज्ञाप्यमेकं मे प्रसीदावहिता भव ॥८९॥
वस्तुना केन हीनोऽहं जगत्त्रितयवर्तिना । न मां वृणोषि यद्योग्यमात्मनः पतिमुत्तमम् ॥९०॥
इत्युक्त्वा स्प्रष्टुकामं तं सीताचोचैस्ससंभ्रमा । [3]अपसर्प ममाङ्गानि मा स्पृशः पापमानसः ॥९१॥
उवाच रावणो देवि त्यज कोपाभिमानताम् । प्रसीद दिव्यभोगानां शचीव स्वामिनी भव ॥९२॥
सीतोवाच कुशीलस्य विभवाः केवलं मलम् । जनस्य साधुशीलस्य दारिद्र्यमपि भूषणम् ॥९३॥
चारुवंशप्रसूतानां जनानां [4]शीलहारतः । लोकद्वयविरोधेन शरणं मरणं वरम् ॥९४॥
परस्त्रीविस्कृताशस्य सर्वेदं जीवितं मृषा । शीलस्य पालनं कुर्वन् यो जीवति स जीवति ॥९५॥
एवं तिरस्कृतो मायां कर्तुं प्रववृते द्रुतम् । नेशुर्देव्यः परित्रस्ताः संजातं सर्वमाकुलम् ॥९६॥
एतस्मिन्नन्तरे याते भानुर्मायाभयादिव । सभं किरणचक्रेण प्रविवेशास्तगह्वरम् ॥९७॥
प्रचण्डैर्विगलद्गण्डैः करिभिर्घनबृंहितैः । भीषितापि गमत्सीता शरणं न दशाननम् ॥९८॥

को तुम लोग चाहे छेद डालो, भेद डालो अथवा नष्ट कर दो परन्तु अपने भर्ताके सिवाय अन्य पुरुषको मनमें भी नहीं ला सकती हूँ ॥८४॥ यद्यपि मनुष्य सनत्कुमारके समान रूपका धारक हो अथवा इन्द्रके तुल्य हो तो भी भर्ताके सिवाय अन्य पुरुषकी मैं किसी तरह इच्छा नहीं कर सकती ॥८५॥ मैं यहाँ आयी हुई तुम सब स्त्रियोंसे संक्षेपमें इतना ही कहती हूँ कि तुम लोग जो कह रही हो वह मैं नहीं करूँगी तुम जो चाहो सो करो ॥८६॥

इसी बीचमें जिस प्रकार हाथी गंगाकी धाराके पास पहुँचता है उसी प्रकार कामके सन्तापसे दुःखी रावण स्वयं सीताके पास पहुँचा ॥८७॥ और पासमें स्थित हो मुखरूपी चन्द्रमाको कुछ-कुछ हास्यसे युक्त करता हुआ बड़े आदरके साथ अत्यन्त दयनीय वाणीमें बोला कि हे देवि ! भयको प्राप्त मत होओ, हे सुन्दरि ! मैं तुम्हारा भक्त हूँ, मेरी एक प्रार्थना सुनो, प्रसन्न होओ और सावधान बनो ॥८८-८९॥ बताओ कि मैं तीनों लोकोंमें वर्तमान किस वस्तुसे हीन हूँ जिससे तुम मुझे अपने योग्य उत्तम पति स्वीकृत नहीं करती हो ॥९०॥ इतना कहकर रावणने स्पर्श करनेकी चेष्टा प्रकट की तब सीताने हड़बड़ाकर कहा कि पापी हृदय ! हट, मेरे अंगोंका स्पर्श मत कर ॥९१॥ इसके उत्तरमें रावणने कहा कि हे देवि ! क्रोध तथा अभिमान छोड़ो, प्रसन्न होओ और इन्द्राणीके समान दिव्य भोगोंकी स्वामिनी बनो ॥९२॥ सीताने कहा कि कुशील मनुष्यको सम्पदाएँ केवल मल हैं और सुशील मनुष्यकी दरिद्रता भी आभूषण है ॥९३॥ उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए मनुष्योंको शीलकी हानि कर दोनों लोकोंके विरुद्ध कार्य करनेसे मरणकी शरणमें जाना ही अच्छा है ॥९४॥ तू परस्त्रीकी आशा रखता है अतः तेरा यह जीवन वृथा है। जो मनुष्य शीलकी रक्षा करता हुआ जीता है वास्तवमें वह जीता है ॥९५॥

इस प्रकार तिरस्कारको प्राप्त हुआ रावण शीघ्र ही माया करनेके लिए प्रवृत्त हुआ। सब देवियाँ भयभीत होकर भाग गयीं और वहाँका सब कुछ आकुलतासे पूर्ण हो गया ॥९६॥ इसी बीच में सूर्य, किरणसमूहके साथ-साथ अस्ताचलकी गुहामें प्रविष्ट हो गया सो मानो रावणकी मायाके भयसे ही प्रविष्ट हो गया था ॥९७॥ जो अत्यन्त क्रोधसे युक्त थे, जिनके गण्डस्थलसे मद चू रहा था तथा जो अत्यधिक गर्जना कर रहे थे ऐसे हाथियोंसे डराये जानेपर भी सीता रावणकी शरणमें

---

१. गङ्गाप्रवाहम् । २. मागासीर्देवि म. । ३. पृष्टुकाम् म. । ४. अपसार्य म. । ५. शीलहारितः म. ।

दंष्ट्राकरालदशनैर्व्याघ्रैर्दुःसहनिःस्वनैः । भीषिताप्यगमत्सीता शरणं न दशाननम् ॥९९॥
चलत्केसरसंघातैः सिंहैरुद्यतखाङ्कुशैः । भीषिताप्यगमत्सीता शरणं न दशाननम् ॥१००॥
ज्वलत्स्फुलिङ्गभीमाक्षैर्लसज्जिह्वैर्महोरगैः । भीषिताप्यगमत्सीता शरणं न दशाननम् ॥१०१॥
व्यात्ताननैः कृतोत्पातरवनैः क्रूरवानरैः । भीषिताप्यगमत्सीता शरणं न दशाननम् ॥१०२॥
तमःपिण्डासितैस्तुङ्गैर्वेतालैः कृतहुङ्कृतैः । भीषिताप्यगमत्सीता शरणं न दशाननम् ॥१०३॥
एवं नानाविधैरुग्रैरुपसर्गैः क्षणोद्यतैः । भीषिताप्यगमत्सीता शरणं न दशाननम् ॥१०४॥
अथ च समतीतायां विभावर्यां मयादिव । जिनेन्द्रवेश्मसूत्तस्थौ शङ्खभेर्यादिनिःस्वनः ॥१०५॥
उद्घाटितकपाटानि द्वाराणि वरवेश्मनाम् । प्रभाते गतनिद्राणि लोचनानीव रेजिरे ॥१०६॥
संध्यया रञ्जिता प्राची दिगत्यन्तमराजत । कुङ्कुमस्येव पङ्केन भानोरागच्छतः कृता ॥१०७॥
नैशं ध्वान्तं समुत्सार्य कृत्वेन्दुं विगतप्रभम् । उदियाय सहस्रांशुः पङ्कजानि न्यबोधयत् ॥१०८॥
ततो विमलतां प्राप्ते प्रभाते चलपक्षिणि[1] । विभीषणादयः प्रापुर्दशास्यं प्रियबान्धवाः ॥१०९॥
खरदूषणशोकेन ते निर्वाक्यमनताननाः । सबाष्पलोचना भूमौ समासीना यथोचितम् ॥११०॥
तावत्पटान्तरस्थाया रुदत्याः शोकनिर्भरम् । शुश्राव योषितः शब्दं मनोभेदं विभीषणः ॥१११॥
जगाद व्याकुलः किंचिदपूर्वेयमिहाङ्गना । का नाम करुणं रौति स्वामिनेव वियोजिता ॥११२॥

नहीं गयी ॥९८॥ जिनके दाँत दाढ़ोंसे अत्यन्त भयंकर दिखाई देते थे और जो दुःसह शब्द कर रहे थे ऐसे व्याघ्रोंके द्वारा डराये जानेपर सीता रावणकी शरणमें नहीं गयी ॥९९॥ जिनकी गरदनके बाल हिल रहे थे तथा जिनके नखरूपी अंकुश अत्यन्त तीक्ष्ण थे ऐसे सिंहोंके द्वारा डराये जानेपर भी सीता रावणकी शरणमें नहीं गयीं ॥१००॥ जिनके नेत्र देदीप्यमान तिलगोंके समान भयंकर थे तथा जिनकी जिह्वाएँ लपलपा रही थीं ऐसे बड़े-बड़े साँपोंके द्वारा डराये जानेपर भी सीता रावणकी शरणमें नहीं गयी ॥१०१॥ जिनके मुख खुले हुए थे, जो बार-बार ऊपरकी ओर उड़ान भरते थे तथा नीचेकी ओर गिरते थे ऐसे वानरोंके द्वारा डराये जानेपर भी सीता रावणकी शरणमें नहीं गयी ॥१०२॥ जो अन्धकारके पिण्डके समान काले थे, ऊँचे थे, तथा हुंकार कर रहे थे ऐसे वेतालोंके द्वारा डराये जानेपर भी सीता रावणके शरणमें नहीं गयी ॥१०३॥ इस प्रकार क्षण-क्षण में किये जानेवाले नाना प्रकारके भयंकर उपसर्गोंके द्वारा डराये जानेपर सीता रावणकी शरणमें नहीं गयी ॥१०४॥

तदनन्तर भयसे ही मानो रात्रि व्यतीत हो गयी और जिन मन्दिरोंमें शंख-भेरी आदिका शब्द होने लगा ॥१०५॥ प्रभात होते ही बड़े-बड़े महलोंके द्वार सम्बन्धी किवाड़ खुल गये सो उनसे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो निद्रा-रहित नेत्र ही उन्होंने खोले हों ॥१०६॥ सन्ध्यासे रँगी हुई पूर्व दिशा अत्यन्त सुशोभित हो रही थी और उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो आनेवाले सूर्यकी अगवानीके लिए कुंकुमके पंकसे ही लिप्त की गयी हो ॥१०७॥ रात्रि सम्बन्धी अन्धकारको नष्ट कर तथा चन्द्रमाको निष्प्रभ बनाकर सूर्य उदित हुआ और कमलोंको विकसित करने लगा ॥१०८॥ तदनन्तर जिसमें पक्षी उड़ रहे थे ऐसे प्रातःकालकी निर्मलताको प्राप्त होनेपर विभीषण आदि प्रिय बान्धव रावणके समीप पहुँचे ॥१०९॥ खरदूषणके शोकसे जिसके मुख चुपचाप नीचेकी ओर झुक रहे थे तथा जिनके नेत्र अश्रुओंसे युक्त थे ऐसे वे सब यथायोग्य भूमिपर बैठ गये ॥११०॥ उसी समय विभीषणने पटके भीतर स्थित शोकके भारसे रोती हुई स्त्रीका हृदय-विदारक शब्द सुना ॥१११॥ सुनकर व्याकुल होते हुए विभीषणने कहा कि यह यहाँ कौन अपूर्व स्त्री करुण शब्द कर

---

१. चलाः पक्षिणो यस्मिन्, तस्मिन् ।

शब्दोऽयं शोकसंभूतमस्याः कम्प सदुत्कटम् । निवेदयते देहस्य दुःखभारवाहिनः ॥११३॥
एवमुक्तं समाकर्ण्य सीता तारतरस्वनम् । रुरोद सज्जनस्याग्रे नूनं शोकः प्रवर्द्धते ॥११४॥
जगौ च वाष्पपूर्णास्याप्रस्खलन्निर्गताक्षरम् । इह को मे देव बन्धुस्त्वं यत्पृच्छसि वत्सलः ॥११५॥
सुता जनकराजस्य स्वसा भामण्डलस्य च । काकुत्स्थस्याहकं पत्नी सीता दशरथस्नुषा ॥११६॥
वार्तान्वेषी गतो यावद्भर्ता मे भ्रातुराहवे । रन्ध्रेऽहं तावदेतेन हृता कुत्सितचेतसा ॥११७॥
यावच्च मुञ्चति प्राणान् रामो विरहितो मया । भ्रातरस्मै हृतं तावत्क्षीत्वा मामर्पयोदितः ॥११८॥
एवमुक्तं समाकर्ण्य क्रुद्धचेता विभीषणः । अगाद् विनयं बिभ्रद् भ्रातरं गुरुवत्सलः ॥११९॥
आशीविषाग्निभूतेयं मोहाद् भ्रातः कुतस्त्वया । परनारी समानीता सर्वथा भयदायिनी ॥१२०॥
बालबुद्धेरपि स्वामिन् विज्ञाप्यं श्रूयतां मम । दत्तो हि मम देवेन प्रसादो वचनं प्रति ॥१२१॥
मदकीर्तिलताजालैर्जटिलं वलयं दिशाम् । मा धाक्षीदयशोदावः प्रसीद स्थितिकोविद ॥१२२॥
परदाराभिलाषोऽयमयुक्तोऽतिभयङ्करः । लज्जनीयो जुगुप्स्यश्च लोकद्वयविमूदनः ॥१२३॥
धिक्शब्दः प्राप्यते योऽयं सज्जनेभ्यः समन्ततः । सोऽयं विदारणे शक्तो हृदयस्य सुचेतसाम् ॥१२४॥
जानन् सकलमर्यादो विद्याधरमहेश्वरः । उवकल्पमुल्मुकं कस्मात्करोषि हृदये निजे ॥१२५॥
यो नरः परकलत्राणि पापबुद्धिर्निषेवते । नरकं स विशत्येव लोहपिण्डो यथा जलम् ॥१२६॥

रही है ऐसा जान पड़ता है मानो यह पतिके साथ वियोगको प्राप्त हुई है ॥११२॥ इसका यह शब्द दुःखके भारको धारण करनेवाले शरीरके शोकोत्पन्न-उत्कट कम्पनको सूचित कर रहा है ॥११३॥ इस प्रकार विभीषणके उक्त शब्द सुनकर सीता और भी अधिक रोने लगी सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनके आगे शोक बढ़ता है ॥११४॥ उसने अश्रुपूर्ण मुखसे टूटे-फूटे अक्षर प्रकट करते हुए कहा कि हे देव ! यहाँ मेरा बन्धु तू कौन है ? जो इस प्रकार स्नेहके साथ पूछ रहा है ॥११५॥ मैं राजा जनककी पुत्री, भामण्डलकी बहन, रामकी पत्नी और दशरथकी पुत्रवधू सीता हूँ ॥११६॥ मेरा भर्ता कुशल वार्ता लेने के लिए जबतक भाईके युद्धमें गया था तबतक छिद्र देख इस दुष्ट-हृदयने मेरा हरण किया है ॥११७॥ मुझसे बिछुड़े राम जबतक प्राण नहीं छोड़ देते हैं हे भाई ! तबतक मुझे शीघ्र ही ले जाकर उन्हें सौंप दें ॥११८॥ इस प्रकार सीताके शब्द सुनकर विभीषण-का चित्त कुपित हो उठा । तदनन्तर विनयको धारण करनेवाले गुरुजन-स्नेही विभीषणने भाईसे कहा कि हे भाई ! आशीविष—सर्पकी विषरूपी अग्निके समान सब प्रकारसे भय उत्पन्न करनेवाली यह पर-नारी तू मोहवश कहाँसे ले आया है ? ॥११९-१२०॥ हे स्वामिन् ! यद्यपि मैं बालबुद्धि हूँ तो भी मेरी प्रार्थना श्रवण कीजिए । वचनके विषयमें आपने मुझपर प्रसन्नता की है अर्थात् मुझे वचन कहने की स्वतन्त्रता दी है ॥१२१॥ हे मर्यादाके जाननेमें निपुण ! यह दिशाओंका समूह आपकी कीर्तिरूपी लताओंके जालसे व्याप्त हो रहा है सो इसे अपयशरूपी दावानल जला न दे अतः प्रसन्न होइए ॥१२२॥ यह परस्त्रीकी अभिलाषा अनुचित है, अत्यन्त भयंकर है, लज्जा उत्पन्न करनेवाली है, घृणित है और दोनों लोकोंको नष्ट करनेवाली है ॥१२३॥ सर्वत्र सज्जनों-से यह धिक् शब्द प्राप्त होता है वही सहृदय मनुष्योंके हृदयके विदारण करनेमें समर्थ है अर्थात् लोकनिन्दा विचारवान् मनुष्योंके हृदयको भेदन करनेवाली है ॥१२४॥ आप तो मर्यादाको जानने-वाले, विद्याधरोंके अधिपति हैं फिर इस जलते हुए उल्मुकको अपने हृदयपर क्यों रख रहे हो ? ॥१२५॥ जो पापबुद्धि मनुष्य परस्त्रियोंका सेवन करता है वह निश्चयसे उस तरह नरकमें प्रवेश करता है जिस तरह कि लोहेका पिण्ड जलमें प्रवेश करता है ॥१२६॥

---

१. पूर्णस्यात्सबलं निर्गताक्षरम् म. । २. अपकीर्तिदवाग्निः 'यमे च वनवह्नौ च दवो दाव इहेष्यते' इत्यमरः । ३. विनाशकः म. । ४. सभं ततः म. ।

तच्छ्रुत्वा राघणोऽवोचत् किं तद्द्रव्यं महीतले । भ्रातर्यस्यास्मि न स्वामी परकीयं कुतो मम ॥१२७॥
इत्युक्त्वा विकथाः कर्तुं परेऽपि विलमानसः । लब्धान्तरश्च मारीचो महानीतिरवोचत ॥१२८॥
जानन्नपि कथं सर्वं लोकवृत्तं दशानन । अकरोदीदृशं कर्म मोहस्यैवं विचेष्टितम् ॥१२९॥
सर्वथा प्रातरुत्थाय पुरुषेण सुचेतसा । कुशलाकुशलं स्वस्य चिन्तनीयं विवेकतः ॥१३०॥
निरपेक्षं प्रवृत्तेऽस्मिन् वक्तुमेवं महामतौ । सभायाः क्षोभनं कुर्वन्नुत्तस्थौ रक्षसां प्रभुः ॥१३१॥
त्रिजगन्मण्डनाभिख्यमारुरोह च वारणम्[1] । महर्द्धिभिश्च सामन्तैर्वाहारूढैः समावृतः ॥१३२॥
पुष्पकाग्रं समारोप्य सीतां शोकसमाकुलाम् । पुरः कृत्वा महाभूत्या प्रययौ नगरीदिशा ॥१३३॥
कुन्तासितोऽमरच्छत्रध्वजाद्यर्पितपाणयः[2] । अग्रतः पुरुषाः सस्रुः कृतसंभ्रमनिस्वनाः ॥१३४॥
चलिताश्चञ्चलग्रीवाः स्थूरीकृताः सहस्रशः । चञ्चत्खुराननक्षुण्णक्षितयश्चारुसादिनः ॥१३५॥
प्रचण्डनिस्वनद्घण्टाः कृतजीमूतगर्जिताः । प्रचेलुर्वेचुभिर्युक्ता गण्डशैलसमा गजाः ॥१३६॥
अट्टहासान् विमुञ्चन्तः कृतनानाविचेष्टिताः । स्फोटयन्त इवाकाशं प्रजग्मुर्मानवाः पुरः ॥१३७॥
सहस्रसंख्यतूर्याणां ध्वनिना पूरयन् दिशः । लङ्कां दशाननोऽविक्षन् मणिकाञ्चनतोरणाम् ॥१३८॥
संपद्भिरेवमाद्याभिर्युक्तोऽप्यस्यन्तसारुभिः । सीता दशाननं मेने तृणादपि जघन्यकम् ॥१३९॥
अकलङ्कं स्वभावेन वैदेहीमानसं नृपः । न शक्तं लोभमानेतुं[3] लेपमम्बु यथाम्बुजम् ॥१४०॥

यह सुनकर रावणने कहा कि हे भाई ! पृथ्वीतलपर वह कौन पदार्थ है जिसका मैं स्वामी न होऊँ ? अतः मेरे लिए यह परकीय वस्तु कैसे हुई ? ॥१२७॥ इस प्रकार कहकर उस भिन्न हृदय-ने विकथाएँ करना प्रारम्भ कर दिया । तदनन्तर अवसर पाकर महानीतिज्ञ मारीच बोला ॥१२८॥ कि हे दशानन ! लोकका सब वृत्तान्त जानते हुए भी तुमने ऐसा कार्य क्यों किया ? यथार्थमें यह मोहकी ही चेष्टा है ॥१२९॥ बुद्धिमान् मनुष्यको सब तरहसे प्रातःकाल उठकर विवेकपूर्वक अपने हिताहितका विचार करना चाहिए ॥१३०॥ इस प्रकार महाबुद्धिमान् मारीच जब निरपेक्ष भावसे यह सब कह रहा था तब बीचमें ही सभाके क्षोभको करता हुआ रावण उठकर खड़ा हो गया ॥१३१॥ तदनन्तर बड़ी-बड़ी ऋद्धियों और अश्वारूढ़ सामन्तोंसे घिरा हुआ रावण त्रिलोकमण्डन नामक हाथीपर सवार हो गया ॥१३२॥ वह शोकसे व्याकुल सीताको पुष्पक विमानपर चढ़ाकर तथा आगे कर बड़े वैभवसे नगरीकी ओर चला ॥१३३॥ भाले, खड्ग, छत्र तथा ध्वजा आदि जिनके हाथमें थे और जो सम्भ्रमपूर्वक जोरदार नारे लगा रहे थे ऐसे पुरुष आगे-आगे चल रहे थे ॥१३४॥ जिनकी ग्रीवाएँ चंचल थीं, जो सुशोभित खुरोंके अग्रभागसे पृथ्वीको खोद रहे थे तथा जिनपर मनोहर सवार बैठे हुए थे ऐसे हजारों घोड़े चल पड़े ॥१३५ जिनके घण्टे प्रचण्ड शब्द कर रहे थे, जो मेघोंके समान गर्जना कर रहे थे, जिन्हें महावत प्रेरित कर रहे थे और गण्डशैल—काली चट्टानोंवाले पर्वतोंके समान जान पड़ते थे ऐसे हाथी चलने लगे ॥१३६॥ जो अट्टहास छोड़ रहे थे अर्थात् ठहाका मारकर हँस रहे थे, नाना प्रकारकी चेष्टाएँ कर रहे थे और आकाशको फोड़ते हुए-से जान पड़ते थे ऐसे मनुष्य उसके आगे-आगे जा रहे थे ॥१३७॥ इस प्रकार हजारों तुरहियोंके शब्दसे दिशाओंको पूर्ण करता हुआ रावण मणि तथा स्वर्णनिर्मित तोरणोंसे अलंकृत लंका नगरीमें प्रविष्ट हुआ ॥१३८॥ यद्यपि रावण इस प्रकारकी अत्यन्त सुन्दर सम्पदाओंसे घिरा हुआ था तो भी सीता उसे तृणसे भी तुच्छ समझती थी ॥१३९॥ स्वभावसे ही निर्मल सीताके मनको रावण उस तरह लोभ प्राप्त करानेके लिए समर्थ नहीं हो सका जिस प्रकारकी पानी कमल-को लेप प्राप्त करानेके लिए समर्थ नहीं होता है ॥१४०॥

---

१. रावणः म. । २. ध्वजादर्पित म., ब. । ३. लोभमानेतुं तु लेपमम्बु यथाम्बुजम् म. ।

समन्तकुसुमं तावन्नानातरुलताकुलम् । प्रमदाख्यं वनं सीता नीता नन्दनसुन्दरम् ॥१४१॥
स्थितं कुसुमनगस्योर्ध्वं दृष्ट्वा यद् दृष्टिबन्धनम् । उन्मादो मनसस्तुङ्गो देवानामपि जायते ॥१४२॥
गिरिः सप्तभिरुद्यानैर्वेष्टितः स्वायतैः स च । रराज भद्रशालाद्यैः सूर्यावर्त्तं इवोज्ज्वलः ॥१४३॥
एकदेशानहं तस्य विविधाद्भुतसंकुलान् । नामतः संप्रवक्ष्यामि तव राजन निबोध्यताम् ॥१४४॥
प्रकीर्णकं जनानन्दं सुखसेव्यं समुच्चयम् । चारणप्रियसंज्ञं च निबोध प्रमदं तथा ॥१४५॥
प्रकीर्णकं महीपृष्ठे जनानन्दं ततः परम् । यत्रानिषिद्धसंचारो जनः क्रीडति नागरः[1] ॥१४६॥
तृतीयेऽलं वने रम्ये मृदुपादपसंकुले । घनस्कन्दप्रतीकाशे सरिद्वापीमनोहरे ॥१४७॥
दशव्यामायता वृक्षा रविमार्गोपरोधिनः । केतकीयूथिकोपेतास्तास्मूलीकृतसंगमाः ॥१४८॥
निरुपद्रवसञ्चारे तथोद्यानसमुच्चये । विलसन्ति विलासिन्यः क्वचिद्देशे च संनराः ॥१४९॥
चारणप्रियमुद्यानं मनोज्ञं पापनाशनम् । स्वाध्यायनिरता यत्र श्रमणा व्योमचारिणः ॥१५०॥
तस्योपरि समारुह्य पयुपृष्ठमनिन्दितम्[2] । सुखारोह्यसोपानं दृश्यते प्रमदाभिधम् ॥१५१॥
स्नानक्रीडोचिता रम्या वाप्योऽस्मिन् पद्मशोभिता । प्रपाः सभाश्च विद्यन्ते रचितानेकभूमयः ॥१५२॥
नारिकेलमातुलिङ्गाद्यैः[3] फलैर्यत्र निरन्तराः । खर्जूरैर्नालिकेरैश्च तालैरन्यैश्च वेष्टिताः ॥१५३॥
तत्र च प्रमदोद्याने सर्वा एवागजातयः । कुसुमस्तवकैश्छन्ना गीयन्ते मत्तषट्पदैः ॥१५४॥

अथानन्तर जिसमें सब ओरसे फूल फूल रहे थे, जो नाना प्रकारके वृक्ष और लताओंसे युक्त था तथा जो नन्दन वनके समान सुन्दर था ऐसे प्रमद नामक वनमें सीता ले जायी गयी ॥१४१॥ फूलोंके पर्वतके ऊपर स्थिति तथा दृष्टिको बाँधनेवाले जिस प्रमदवनको देखकर देवोंके मनमें भी अत्यधिक उन्माद उत्पन्न हो जाता है ॥१४२॥ अत्यन्त लम्बे-लम्बे सात उद्यानोंसे घिरा हुआ वह पर्वत ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो भद्रशाल आदि वनोंसे घिरा अतिशय उज्ज्वल सुमेरु पर्वत ही हो ॥१४३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! अनेक आश्चर्योंसे भरे हुए उसके एक देशरूप जो सघन वन हैं हम उनके नाम कहते हैं सो सुनो ॥१४४॥ उस पर्वतपर जो सात वन हैं उनके नाम इस प्रकार हैं—१ प्रकीर्णक, २ जनानन्द, ३ सुखसेव्य, ४ समुच्चय, ५ चारणप्रिय, ६ निबोध और ७ प्रमद ॥१४५॥ इनमें-से प्रकीर्णक नामका वन पृथ्वीतल है पर उसके आगे जनानन्द नामका वह वन है जिसमें कि वे ही क्रीड़ा करते हैं जिनका कि आना-जाना निषिद्ध नहीं है अन्य लोग नहीं ॥१४६॥ उसके ऊपर चलकर तीसरा सुखसेव्य नामका वन है जो कोमल वृक्षोंसे व्याप्त है, मेघसमूहके समान है, तथा नदियों और वापिकाओंसे मनोहर है। उस वनमें सूर्यके मार्गको रोकनेवाले, केतकी और जूहीसे सहित तथा पानकी लताओंसे लिपटे दशवेमा प्रमाण लम्बे-लम्बे वृक्ष हैं ॥१४७-१४८॥ उसके ऊपर उपद्रव रहित गमनागमनसे युक्त समुच्चय नामका चौथा वन है जिसमें कहीं हाव-भावको धारण करनेवाली स्त्रियाँ सुशोभित हैं तो कहीं उत्तमोत्तम मनुष्य सुशोभित हो रहे हैं ॥१४९॥ उसके ऊपर चारणप्रिय नामक पांचवाँ पापापहारी मनोहर वन है जिसमें चारणऋद्धिधारी मुनिराज स्वाध्यायमें तत्पर रहते हैं ॥१५०॥ [उसके ऊपर छठवाँ निबोध नामका का वन है जो ज्ञानका निवास है] और उसके आगे चढ़कर प्रमद नामका सातवाँ वन है जो घोड़ेके पृष्ठके समान उत्तम प्रथा सुखसे चढ़नेके योग्य सीढ़ियोंसे युक्त दिखलाई देता है ॥१५१॥ इस प्रमद वनमें स्नानक्रीड़ाके योग्य, कमलोंसे सुशोभित मनोहर वापिकाएँ हैं, स्थान-स्थानपर पानीय-शालाएँ और अनेक खण्डोंसे युक्त सभागृह विद्यमान हैं ॥१५२॥ जहाँ खजूर, नारियल, ताल तथा अन्य वृक्षोंसे घिरे एवं फलोंसे लदे नारिंग और बीजपूर आदिके वृक्ष हैं ॥१५३॥ उस प्रमद नामक

---

१. नागरः म. । २. पयुः पृष्ठ-म. । ३. मातुलिङ्गार्द्यैः म. ।

कुर्वन्तीव[1] लतालोलां कोमलैः पल्लवैः करैः । घूर्णिता मन्दवातेन फलपुष्पमनोहरा ॥१५५॥
सारङ्गदयितामिश्र प्रलम्बाम्बुदशोभिनः । समस्तर्तुकृतच्छायाः[2] सेव्यन्ते वनपादपाः ॥१५६॥
विभूतिं तस्य तां वाप्यः सहस्रच्छदनाननाः । आलोकन्त इवातृप्ता असितोत्पललोचनैः ॥१५७॥
गायनान् कोकिलालापान् नृत्यन्त्यो मन्दवायुना । दीर्घिका विहसन्तीव राजहंसकदम्बकैः ॥१५८॥
प्रसदाभिख्यमुद्यानं सर्वभोगोत्सवावहम् । अत्र किं बहुनोक्तेन स्याद्वरं नन्दनादपि ॥१५९॥
अशोकमालिनी नाम पद्मपत्रविराजिता । वापी कनकसोपाना विचित्राकारगोपुरा ॥१६०॥
मनोहरैर्गृहैर्भाति गवाक्षाद्युपशोभितैः । सल्लतालिङ्गितप्रान्तैर्निर्झरैश्च ससीकरैः ॥१६१॥
तत्राशोकतरुच्छन्ने स्थापिता शोकधारिणी । देवेव शक्रालयाद् भ्रष्टा स्वयं श्रीरिव जानकी ॥१६२॥
तस्मिन् दशाननोक्ताभिः स्त्रीभिरन्तरवर्जितम् । सीता प्रसाद्यते वस्त्रगन्धालंकारपाणिभिः ॥१६३॥
दिव्यैः सनर्त्तनैर्गीतैर्वाक्यैश्चामृतहारिभिः । अनुनेतुं न सा शक्या संपदा चामरामया ॥१६४॥
उपर्युपरि संरक्तो दूतौ विद्याधराधिपः । प्राहिणोद्धि स्मरोदारदावज्वालाकुलीकृतः ॥१६५॥
[3]दूति सीतां व्रज ब्रूहि दशास्यमनुरक्तकम् । न सांप्रतमवज्ञातुं प्रसीदेत्यादिभाषते ॥१६६॥
गताऽऽगता च सा तस्मै ब्रवीति विगतप्रभम् । देव त्यक्ताहरसुः एषा स्थिता त्वां शृणुते कथम् ॥१६७॥

उद्यानमें वृक्षोंकी सब जातियाँ विद्यमान हैं जो कि फूलोंसे आच्छादित हैं और मदोन्मत्त भ्रमर जिनपर गुंजार करते हैं ॥१५४॥ वहाँ मन्द-मन्द वायुसे हिलती और फलों तथा फूलोंसे मनोहर लता अपने कोमल पल्लवोंसे ऐसी जान पड़ती है मानो हाथ चलाती हुई नृत्य ही कर रही हो ॥१५५॥ वहाँ नीचे लपकते हुए मेघोंके समान सुशोभित तथा समस्त ऋतुओंमें छाया उत्पन्न करनेवाले सघन वृक्षोंकी हरिणियाँ सदा सेवा करती हैं—उनके नीचे विश्राम लेती हैं ॥१५६॥ कमलरूपी मुखोंसे सहित वहाँकी वापिकाएँ नील कमलरूपी नेत्रोंके द्वारा उस वनकी उस विभूति-को मानो अतृप्त होकर ही सदा देखती रहती हैं ॥१५७॥ जहाँ मन्द-मन्द वायुसे नृत्य करती हुई वापिकाएँ राजहंस पक्षियोंके समूहसे ऐसी जान पड़ती हैं मानो कोकिलाओंके आलापसे युक्त सघन वनोंकी हँसी ही कर रही हों ॥१५८॥ इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या? इतना ही बहुत है कि समस्त भोगों और उत्सवोंको धारण करनेवाला वह प्रमद नामक उद्यान नन्दन वनसे भी अधिक सुन्दर है ॥१५९॥

उस प्रमद वनमें अशोक मालिनी नामकी वापी है जो कि कमल पत्रोंसे सुशोभित है, स्वर्णमय सोपानोंसे युक्त है, और विचित्र आकारवाले गोपुरसे अलंकृत है ॥१६०॥ इसके सिवाय वह प्रमद वन झरोखे आदिसे अलंकृत तथा उत्तमोत्तम लताओंसे आलिंगित मनोहर गृहों और जल कणोंसे युक्त निर्झरोंसे सुशोभित है ॥१६१॥ उस प्रमद वनके अशोक वृक्षसे आच्छादित एक देशमें बैठी शोकवती सीता ऐसी जान पड़ती थी मानो स्वर्गसे गिरी साक्षात् लक्ष्मी हो ॥१६२॥ वहाँ रावणकी आज्ञानुसार वस्त्र, गन्ध तथा अलंकारोंको हाथोंमें धारण करनेवाली स्त्रियाँ निरन्तर सीताको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करती थीं ॥१६३॥ किन्तु नृत्य सहित दिव्य संगीतों, अमृतके समान मनोहर वचनों और देवतुल्य सम्पदाके द्वारा सीता अनुकूल नहीं की जा सकी ॥१६४॥ इतनेपर भी कामरूपी दावानलकी प्रचण्ड ज्वालाओंसे व्याकुल हुआ रागी रावण एकके बाद एक दूती भेजता रहता था ॥१६५॥ वह कहता था कि हे दूति! जाओ और सीतासे कहो कि अब अनुरागसे भरे रावणकी उपेक्षा करना उचित नहीं है अतः प्रसन्न होओ ॥१६६॥ दूती सीताके पास जाती और वापस आकर तेजरहित रावणसे कहती कि हे देव! वह तो आहार छोड़कर बैठी है तुम्हें

---

१. कुर्वन्ती ब., ल. । २. सेवन्ते म. । ३. दूति म. ।

न जल्पति निषण्णाङ्गी नाळं कायेन चेष्टते । न ददादि महाशोका दृष्टिमस्मासु जातकी ॥१६८॥
अमृतादपि सुस्वादैः पयःप्रभृतिभिः श्रितम् । सुगन्धि वृणुते नाङ्गं विचित्रं बहुवर्णकम् ॥१६९॥
ततो मदनदीप्ताग्निज्वालाकीर्णः समन्ततः । आर्तो [1]व्यचिन्तयद् भूरि मग्नोऽसौ व्यसनार्णवे ॥१७०॥
शोचत्युन्मुक्तदीर्घोष्णनिश्वासानिलसन्ततिः । शुष्यन्मुखः पुनः किंचिद्गायत्यविदिताक्षरम् ॥१७१॥
स्मरप्रालेयनिर्दग्धं धुनाति मुखपङ्कजम् । मुहुः किमपि संचिन्त्य स्मयते क्षणनिश्चलः ॥१७२॥
अनुबन्धमहादाहा समस्ता [2]वयवानलम् । क्षिपत्यविरतं भूमौ कुहिमायां विवर्तकः ॥१७३॥
उत्तिष्ठति पुनः शून्यः सेवते निजमासनम् । निःक्रामति पुनर्दृष्ट्वा जनं प्रतिनिवर्तते ॥१७४॥
नागेन्द्र इव हस्तेन सर्वदिङ्मुखगामिना । आस्फालयति निःशङ्कः कुहिमं कम्पमानयन् ॥१७५॥
स्मरन् सीतां मनोयातामात्मानं पौरुषं विधिम् । निरपेक्षमुपालब्धुं [3] साश्रुनेत्रः प्रवर्त्तते ॥१७६॥
किंचिदाह्वयते दत्तहुङ्कारश्चातिकैर्जनैः । तूष्णीमास्ते पुनः किं किमिति शून्यं प्रभाषते ॥१७७॥
सीता सीतेति कृत्वास्यमुत्तानं भाषते मुहुः । तिष्ठत्यवाङ्मुखं भूयो नखेन विलिखन् महीम् ॥१७८॥
करेण हृदयं मार्ष्टि बाहुमूर्द्धनिमीक्षते । पुनर्मुञ्चति हुङ्कारं तत्पं मुञ्चति सेवते ॥१७९॥
दधाति हृदये पद्मं पुनर्दूरं निरस्यति । मुहुः पठति [4]धिक्कारं गगनाङ्गणमीक्षते [5] ॥१८०॥

किस प्रकार स्वीकृत करे ॥१६७॥ वह चुपचाप बैठी है, न कुछ बोलती है, न शरीरसे कुछ चेष्टा करती है और न महाशोकसे युक्त होनेके कारण हम लोगोंपर दृष्टि ही डालती है ॥१६८॥ अमृतसे भी अधिक स्वादिष्ट, दूध आदिसे युक्त सुगन्धित, तथा अनेक वर्णका विचित्र भोजन उसे दिया जाता है पर वह स्वीकृत नहीं करती है ॥१६९॥ दूतीकी बात सुनकर जो सब ओरसे कामरूपी प्रचण्ड अग्निकी ज्वालाओंसे व्याप्त था तथा दुःखरूपी सागरमें निमग्न था ऐसा रावण अत्यधिक दुःखी होता हुआ पुनः चिन्तामें पड़ जाता था ॥१७०॥ वह कभी लम्बी तथा गरम श्वासोच्छ्वास-की वायुको छोड़ता हुआ शोक करता था तो कभी मुख सूख जानेसे अस्पष्ट अक्षरों द्वारा कुछ गाने लगता था ॥१७१॥

वह कामरूपी तुषारसे जले हुए मुखकमलको बार-बार हिलाता था और कभी क्षणभरके लिए निश्चल बैठकर तथा कुछ सोचकर हँसने लगता था ॥१७२॥ वह रत्नखचित फर्शपर लोटता और महादाहसे युक्त समस्त अवयवोंको बार-बार फैलाता था ॥१७३॥ फिर उठकर खड़ा हो जाता, कभी शून्य हृदय हो अपने आसनपर जा बैठता, कभी बाहर निकलता और किसी मनुष्यको देखकर फिर लौट जाता ॥१७४॥ जिस प्रकार हाथी सब दिशाओंमें जानेवाली सूँड़से किसीका आस्फालन करता है उसी प्रकार रावण भी निःशंक हो सब दिशाओंमें घूमनेवाले अपने हाथसे कम्पित करता हुआ फर्शको आस्फालन करता था अर्थात् फर्शपर घुमा-घुमाकर हाथ पटकता था और उससे फर्शको कम्पित करता था ॥१७५॥ वह मनमें आयी हुई सीताका स्मरण करता हुआ अपने पुरुषार्थ, तथा निरपेक्ष भाग्यको उलाहना देनेके लिए प्रवृत्त होता था और उस समय उसके नेत्रोंसे अश्रु निकलने लगते थे ॥१७६॥ वह किसीको बुलाता था और समीपवर्ती लोग जब हुंकार देते थे तब चुप रह जाता था। तदनन्तर बार-बार क्या है ? क्या है ? इस प्रकार बिना किसी लक्ष्यके बकता रहता था ॥१७७॥ वह कभी मुखको ऊपर कर 'सीता सीता' इस प्रकार बार-बार चिल्लाता था और कभी मुख नीचा कर नखसे पृथिवीको खोदता हुआ चुप बैठा रहता था ॥१७८॥ वह कभी हाथसे वक्षःस्थलको साफ करता था, कभी भुजाओंके अग्रभागको देखता, कभी हुंकार छोड़ता, कभी बिस्तरपर जा लेटता था ॥१७९॥ कभी हृदयपर कमल

---

१. विचिन्तयद् म.। २. स्मरतावयवानलम् म.। ३. -मुपालब्धं म.। ४. यतति म.। ५. -मीक्ष्यते म.।

हस्तं हस्तेन संस्पृश्य हन्ति पादेन मेदिनीम् । निश्वासदहनश्याममाकृष्याधरमीक्ष्यते[1] ॥१८१॥
धत्ते कहकहं स्वानं केशान् वर्त्तयति[2] क्षणम् । कोपेन दुस्सहां दृष्टिं क्वचिदेव विमुञ्चति ॥१८२॥
जृम्भोत्तानीकृतोरस्को वाष्पाच्छादितलोचनः । बाहुतोरणमुच्चम्य भिनत्ति स्फुटदङ्गुलिः ॥१८३॥
अंशुकान्तेन हृदय वीजयत्यहितेक्षणम् । कुसुमैः कुरुते रूपं पुनर्नाशयति द्रुतम् ॥१८४॥
चित्रयत्यादरी सीतां प्रवयत्यश्रुभिः पुनः । दीनः क्षिपति हाकारान् न न मामेति जल्पति ॥१८५॥
एवमाद्याः क्रियाः क्लिष्टा मदनग्रहपीडितः । करोति करुणालापं चित्रं हि स्मरचेष्टितम् ॥१८६॥
तस्य स्मराग्निना दीप्तं हृदयेन समं वपुः । अनुबन्धमहाधूमं ज्वलत्याशाकृतेन्धनम् ॥१८७॥
अचिन्तयच्च हा कष्टं कामवस्थामहं गतः । येनेदमपि शक्नोमि न सोढुं त्यक्तुमीश्वरम् ॥१८८॥
दुर्गसागरमध्यस्था बहवो विद्याधरा मया । जिताः सहस्रशो युद्धे किमिदं वर्त्ततेऽधुना ॥१८९॥
सर्वत्र जगति ख्यातलोकपालपरिष्कृतः । बन्दीगृहमुपानीतो महेन्द्रोऽपि पुरा मया ॥१९०॥
अनेकयुद्धनिर्भग्ननराधिपकदम्बकः[3] । सोऽहं संप्रति मोहेन भस्मीकर्तुं प्रवर्तितः ॥१९१॥
चिन्तयन्निदमन्यच्च कामाचार्यवशंगतः । आस्तां तावदसौ राजन्निदमन्यद्विबुध्यताम् ॥१९२॥
आकुलो मन्त्रिभिः सार्द्धं महामन्त्रविशारदः[4] । विभीषणः समारेभे निरूपयितुमीदृशम् ॥१९३॥
स हि रावणराष्ट्रस्य धुरं धत्ते गतश्रमः । समस्तशास्त्रबोधाम्बुधौतनिर्मलमानसः ॥१९४॥

रखता, कभी उसे दूर फेंक देता, कभी बार-बार शृंगारका पाठ करता—शृंगार भरे शब्दोंका उच्चारण करता और कभी आकाशकी ओर देखने लगता था ॥१८०॥ कभी हाथसे हाथका स्पर्श कर पैरसे पृथिवीको ताड़ित करता था, कभी श्वासोच्छ्वासरूपी अग्निसे काले पड़े हुए अधरोष्ठको खींचकर देखता था ॥१८१॥ कभी 'कह-कह' शब्द करता था, कभी केशोंको खोलकर फैलाता था, कभी किसीपर क्रोधसे दुःसह दृष्टि छोड़ता था ॥१८२॥ कभी जिमुहाई लेते समय वक्षःस्थलको फुलाकर आगेको उभार लेता था, कभी नेत्रोंको आँसुओंसे आच्छादित करता था, कभी भुजाओंका तोरण ऊपर उठा अंगुलियाँ चटकाता हुआ उसे तोड़ता था ॥१८३॥ कभी हृदयकी ओर दृष्टि डालकर वस्त्रके अंचलसे हवा करता था, कभी फूलोंसे रूप बनाता और फिर उसे शीघ्र ही नष्ट कर देता था ॥१८४॥ कभी आदरके साथ सीताका चित्र बनाता और फिर उसे आँसुओंसे गीला करता था, कभी दीनताके साथ हाहाकार करता और कभी 'न, न' 'मा, मा' शब्दोंका उच्चारण करता था ॥१८५॥ इस प्रकार कामरूपी ग्रहसे पीड़ित रावण अनेक प्रकारकी चेष्टाएँ करता तथा करुणापूर्ण वार्तालाप करता था सो ठीक ही है क्योंकि कामकी चेष्टा विचित्र होती है ॥१८६॥ जिसमें वासनारूपी महाधूम उठ रहा था, तथा आशा जिसमें ईंधन बन रही थी ऐसा उसका शरीर कामाग्निसे दीप्त हो हृदयके साथ जल रहा था ॥१८७॥ वह कभी विचार करता कि हाय मैं किस अवस्थाको प्राप्त हो गया जिससे अपने इस शरीरको भी धारण करनेके लिए समर्थ नहीं रहा ॥१८८॥ मैंने दुर्गम समुद्रके बीचमें रहनेवाले हजारों बड़े-बड़े विद्याधर युद्धमें जीते हैं पर इस समय यह क्या हो रहा है ? ॥१८९॥ जिसका लोकपालरूपी परिकर समस्त संसारमें प्रसिद्ध था ऐसे राजा इन्द्रको भी मैंने पहले बन्दीगृहमें डाल रखा था तथा अनेक युद्धोंमें जिसने राजाओंके समूहको पराजित किया था ऐसा मैं इस समय मोहके द्वारा भस्मीभूत हो रहा हूँ ॥१९०-१९१॥ गौतम कहते हैं कि हे राजन् ! यह तथा अन्य वस्तुओंका चिन्तवन करता हुआ रावण कामरूपी आचार्यके वशीभूत हो रहा था सो यह रहने दो अब दूसरी बात सुनो ॥१९२॥

अथानन्तर आकुलतासे भरा तथा बड़ी-बड़ी मन्त्रणा करनेमें निपुण विभीषण मन्त्रियोंके साथ बैठकर इस प्रकार निरूपण करनेके लिए तत्पर हुआ ॥१९३॥ यथार्थमें समस्त शास्त्रोंके ज्ञान

---

१. माकृष्णाधर-म., । २. केशाद्वर्तयति म., । ३. कदम्बकम् म., । ४. महामन्त्रिविशारदः ख., ।

रावणस्य हि तत्तुल्यो न हितो विद्यते परः । तस्य सर्वोपयोगेन चिन्तनीये स वर्तते ॥१९५॥
उवाचासावहो वृद्धा राजनीत्यं व्यवस्थिते । उपक्षिप्त कर्तव्यमस्माकमधुनोचितम् ॥१९६॥
विभीषणोदितं श्रुत्वा संभिन्नमतिरब्रवीत् । अतः परं वदामः किं गतं कार्यमकार्यताम् ॥१९७॥
स्वामिनो दशवक्त्रस्य सहसा दैवयोगतः । दक्षिणः पतितो बाहुः खरदूषणसंज्ञकः ॥१९८॥
विराधितोऽपरः कोऽपि कारणं यो न कस्यचित् । सोऽयं गोमायुतां मुक्त्वा केसरित्वं समाश्रितः ॥१९९॥
भव्यतां पश्यतामुष्य साधुकर्मोदयादिमाम् । लक्ष्मणस्याहवे यातो बन्धुतां यत्सुचेष्टितः ॥२००॥
एतेऽपि बलिनः सर्वे मानिनः कपिकेतवः । भवन्त्याक्रान्तितो वश्या निर्भुग्यास्तु न जातुचित् ॥२०१॥
अमीषामन्य आकारो मानसं त्वन्यथा स्थितम् । भुजङ्गानामिवात्यन्तमन्तरे दारुणं विषम् ॥२०२॥
नेता वानरमौलीनामनङ्गकुसुमापतिः । न्यक्षेण भजते पक्षं सुग्रीवस्य मरुत्सुतः ॥२०३॥
ततः पञ्चमुखोऽवोचद्विधायानादरस्मितम् । खरदूषणवृत्तेन गणितेनेह को गुणः ॥२०४॥
मृत्युरेतस्य वृत्तस्य संभ्रमोऽकीर्तिरेव च । भवत्येव हि शूराणामीदृशी समरे गतिः ॥२०५॥
वातेनापहृते सिन्धोः कणे का न्यूनता भवेत् । रावणस्य बलं स्फीतं किं दूषणसमीहया ॥२०६॥
व्रीडां व्रजति मे चेतः कुर्वतः संप्रधारणम् । क्वायं दशाननः स्वामी क्वान्ये केऽपि वनौकसः ॥२०७॥
सूर्यहासधरेऽप्यत्र किमत्र लक्ष्मणेन किम् । विराधितः क नामैव यस्येच्छामनुवर्तते ॥२०८॥

जलसे धुलकर जिसका मन अत्यन्त निर्मल हो गया था तथा जो सब प्रकारके श्रमको सहन करनेवाला था ऐसा विभीषण ही रावणके राष्ट्रका भार धारण करनेवाला था ॥१९४॥ विभीषणके समान रावणका हित करनेवाला दूसरा मनुष्य नहीं था। वह उसके करने योग्य समस्त कार्योंमें सर्व प्रकारका उपयोग लगाकर सदा जागरूक रहता था ॥१९५॥ विभीषणने मन्त्रियोंसे कहा कि अहो वृद्धजनो ! राजाकी ऐसी चेष्टा होनेपर अब हम लोगोंका क्या कर्तव्य है सो कहो ॥१९६॥ विभीषणका कथन सुनकर संभिन्नमति बोला कि इससे अधिक और क्या कहें कि सब कार्य अकार्यताको प्राप्त हो गया है अर्थात् सब कार्य गड़बड़ हो गया है ॥१९७॥ स्वामी दशाननकी दक्षिण भुजाके समान जो खरदूषण था वह देवयोगसे सहसा नष्ट हो गया ॥१९८॥ वह विराधित नामका विद्याधर जो कि किसीके लिए कुछ भी नहीं था वह आज शृगालपना छोड़कर सिंहपनेको प्राप्त हुआ है ॥१९९॥ पुण्य कर्मके उदयसे प्राप्त हुई इसकी इस भव्यताको तो देखो कि उत्तम चेष्टाओंको धारण करनेवाला यह युद्धमें लक्ष्मणकी मित्रताको प्राप्त हो गया ॥२००॥ इधर ये सभी वानरवंशी भी अभिमानी तथा बलवान् हो रहे हैं सो ये आक्रमणसे ही वशमें हो सकते हैं बिना आक्रमणके कभी वशीभूत नहीं हो सकते ॥२०१॥ इनका आकार कुछ दूसरा ही है और मन दूसरे ही प्रकारका स्थित है जिस प्रकार सांपोंके बाह्यमें तो कोमलता रहती है और भीतर दारुण विष रहता है ॥२०२॥ खरदूषणकी पुत्री अनंगकुसुमाका पति हनुमान् इस समय वानर वंशियोंका नेता बन रहा है और वह खासकर सुग्रीवका ही पक्ष लेता है। इस प्रकार संभिन्नमतिके कह चुकनेपर पंचमुख मन्त्री अनादरपूर्वक हँसता हुआ बोला कि यहाँ खरदूषणका वृत्तान्त गिननेसे अर्थात् उसकी मृत्युका सोच करनेसे क्या लाभ है ? ॥२०३-२०४॥ इस वृत्तान्तसे किसे भय तथा किसकी अपकीर्ति है ? अर्थात् किसीकी नहीं क्योंकि युद्धमें शूरवीरोंकी ऐसी गति होती ही है ॥२०५॥ वायुके द्वारा समुद्रकी एक कणिका हर लेनेपर समुद्रमें क्या न्यूनता आ गयी ? अर्थात् कुछ भी नहीं। रावणका बल बहुत है, उसके दोष देखनेसे क्या। ऐसी बात सोचते हुए मेरे मनमें लज्जा आती है। कहाँ यह जगत्का स्वामी रावण और कहाँ अन्य वनवासी ? ॥२०६-२०७॥ लक्ष्मण यद्यपि सूर्यहास खड्गको धारण करनेवाला है तो भी उससे क्या और

---

१. भुक्त्वा म. । २. 'वातेनापहृते सिन्धोः कणिकाभ्यूनता भवेत्' म. ।

मृगेन्द्राधिष्ठितारण्यमानसमपि काननसंगतम् । दन्दह्यते न किं दावो गिरिं परमदुःसहम् ॥२०९॥
सहस्रमतिनामाथ सचिवोऽनन्तरं जगौ । सूचयन् विरसं वाक्यं पूर्वं मस्तककम्पनात् ॥२१०॥
मानोद्धतैरिमैर्वाक्यैरर्थहीनैः किमीरितैः । मन्त्रणीयं हि संबद्धं स्वामिने हितमिच्छता ॥२११॥
स्वरूप इत्यनया बुद्ध्या कार्यावज्ञा न वैरिणि । काले प्राप्य कणो वह्नेर्दहेत् सकलविष्टपम् ॥२१२॥
अश्वग्रीवो महासैन्यः ख्यातः सर्वत्र विष्टपे । स्वल्पेनापि त्रिपृष्ठेन निहतो रणमूर्धनि ॥२१३॥
तस्मात्क्षेपविनिर्मुक्तमियं परमदुर्गमा । नगरी क्रियतां लङ्का मतिसंदोहशालिभिः ॥२१४॥
सुघोराणि प्रसार्यन्तां यन्त्राण्येतानि सर्वतः । तुङ्गप्राकारकूटेषु दृश्यतां च कृताकृतम् ॥२१५॥
सम्मानैर्बहुभिः शश्वत् सेव्यो जनपदोऽखिलः । स्वजनाभ्यतिरेकेण दृश्यतां प्रियवादिभिः ॥२१६॥
सर्वोपायविधानेन[1] रक्ष्यतां प्रियकारिभिः । राजा दशाननो येन [2]सुखतां प्रतिपद्यते ॥२१७॥
प्रसाद्यतां सुविज्ञानैर्मैथिली परमैः प्रियैः । मधुरैर्वचनैर्दानैः [3]क्षीरैरहिवधूरिव ॥२१८॥
सुग्रीवं किष्कुनगरमन्यांश्च भटपुङ्गवान् । बहिः स्थापयतोद्युक्तान्नगर्या रक्षकारिणः ॥२१९॥
एवंकृते न ते भेदं जानन्ति बहिराहिताः । कार्यं नियोगदानाच्च जानन्ति स्वामिनं प्रियम् ॥२२०॥
एवं दुर्गतरे जाते कार्ये सर्वत्र सर्वतः । को जानाति हृता सीता स्थितासन्नापरत्र वा ॥२२१॥
रहिस्तच्छ्रुतया रामो ध्रुवं प्राणान् विमोक्ष्यति । यस्येयमीदृशी कान्ता यस्ते विरहे प्रिया ॥२२२॥
रामे च पञ्चतां प्राप्ते शोकविक्लवमानसः । एकाकी ध्रुवयुक्तो वा सौमित्रिः किं करिष्यति ॥२२३॥

विराधित उसकी इच्छानुकूल प्रवृत्ति करता है—उसका मित्र है इससे भी क्या ? ॥२०८॥ क्योंकि वन सहित एक अत्यन्त दुःसह पर्वत यद्यपि सिंहसे सहित हो तो भी क्या उसे दावानल जला नहीं देता ? ॥२०९॥ तदनन्तर माथा हिलाकर पूर्व कथित वचनोंको नीरस बताता हुआ सहस्रमति मन्त्री बोला कि मानसे भरे इन निरर्थक वचनोंसे कहनेसे क्या लाभ है ? स्वामीका हित चाहनेवाले व्यक्तिको ऐसी मन्त्रणा करनी चाहिए जो प्रकृत बातसे सम्बन्ध रखनेवाली हो ॥२१०-२११॥ 'वह छोटा है' ऐसा समझकर शत्रुकी अवज्ञा नहीं करनी चाहिए क्योंकि समय पाकर अग्निका एक कण समस्त संसारको जला सकता है ॥२१२॥ बड़ी भारी सेनाका स्वामी अश्वग्रीव समस्त संसारमें प्रसिद्ध था तो भी रणके अग्रभागमें छोटे-से त्रिपृष्ठके द्वारा मारा गया था ॥२१३॥ इसलिए बिना किसी विलम्बके इस लंका नगरीको बुद्धिमान् मनुष्योंके द्वारा अत्यन्त दुर्गम बनाया जावे ॥२१४॥ ये महाभयानक यन्त्र सब दिशाओंमें फैला दिये जावें । अत्यन्त उन्नत प्राकारके शिखरों-पर चढ़कर 'क्या किया गया क्या नहीं किया गया' इसकी देख-रेख की जाये ॥२१५॥ अनेक प्रकारके सम्मानोंसे समस्त देशकी निरन्तर सेवा की जाये और मधुर वचन बोलनेवाले राज्या-धिकारी सब लोगोंको अपने कुटुम्बीजनोंसे अभिन्न देखें ॥२१६॥ प्रिय करनेवाले मनुष्य सब प्रकारके उपायोंसे राजा दशाननकी रक्षा करें जिससे वह सुखको प्राप्त हो सके ॥२१७॥ जिस प्रकार दूधके द्वारा सर्पिणीको प्रसन्न किया जाता है उसी प्रकार उत्तम चातुर्य, परम प्रिय मधुर वचनों और इष्ट वस्तुओंके दान द्वारा सीताको प्रसन्न किया जाये ॥२१८॥ किष्कु नगरके स्वामी सुग्रीव तथा नगरीकी रक्षा करनेमें उद्यत अन्य उत्तम योद्धाओंको नगरके बाहर रखा जावे ॥२१९॥ ऐसा करनेपर बाहर रखे हुए सुग्रीवादि अन्तरका भेद नहीं जान सकेंगे और कार्य सौंपा जानेके कारण वे यह समझते रहेंगे कि स्वामी हमपर प्रसन्न है ॥२२०॥ इस तरह जब यहाँका प्रत्येक कार्य सब जगह सब ओरसे अत्यन्त दुर्गम हो जायेगा तब कौन जान सकेगा कि हरी हुई सीता यहाँ है या अन्यत्र है ? ॥२२१॥ सीताके बिना राम निश्चित ही प्राण छोड़ देगा । क्योंकि जिसकी ऐसी प्रिय स्त्री विरहमें रहेगी वह जीवित रह ही कैसे सकेगा ॥२२२॥ जब राम मृत्युको

---

१. विधानेन ख. । २. मुख्यतां ख. । ३. क्षारैरहि-ख. ।

अथवा रामशोकेन मरणं तस्य निश्चितम् । दीपप्रकाशयोर्यद्वदनयोः संगतं परम् ॥२२४॥
अपराधाब्धिमग्नः सन् यास्यति क्व विराधितः । सुग्रीवस्यापि वाऽभ्यर्णं [1]श्रूयते लोकतः परम् ॥२२५॥
मायां सुग्रीवसंदेहकारिणीं यश्च नाशयेत् । दशवक्त्रेश्वरादस्य कोऽसौ लोके भविष्यति ॥२२६॥
तस्मात्तद्दुर्गसंसिद्धौ स नाथं भजतेतराम् । योगश्चार्यं विमोर्वाढं परिणामे शुभावहः ॥२२७॥
प्रकारेणानुना शत्रूनेतानन्यांश्च जेष्यति । दशाननस्ततो यत्नः क्रियतामत्र वस्तुनि ॥२२८॥
एवं विसृज्य विद्वांसः प्रमोदान्वितमानसाः । यथास्वं निलयं जग्मुः कर्तव्यकृतनिश्चयाः ॥२२९॥
विभीषणेन यन्त्राद्यैः शालो दुर्गतरीकृतः । विद्याभिश्च विचित्राभिर्लङ्का गह्वरतारका ॥२३०॥

मन्दाक्रान्ता

कृत्यं किंचिद्विशदमनसामाप्तवाक्यानपेक्षं नाप्तैरुक्तं फलति पुरुषस्योज्झितं पौरुषेण ।
दैवापेतं[2] पुरुषकरणं कारणं नेष्टसंगे तस्मात्तस्याः कुरुत यतनं सर्वहेतुप्रसादे ॥२३१॥
राजन्कर्मण्युदयसमये सेव्यमाने[4] जनानां नानाकारं[5] कुशलवचनं नो विशत्येव चेतः ।
युक्तो तस्मात्स्थितिमनुनयन् कर्म कुर्याप्रशस्तं भूयो येन प्रतपति रविः शोकरूपो न कष्टः ॥२३२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे मायाप्रकाराभिधानं नाम षट्चत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४६॥

□

प्राप्त हो जायेगा तब शोकसे दुःखी अकेला अथवा क्षुद्र सहायकोंसे युक्त लक्ष्मण क्या कर लेगा ? ॥२२३॥ अथवा रामके शोकसे उसका मरण होना निश्चित है क्योंकि इन दोनोंका समागम दीप और प्रकाशके समान अविनाभावी है ॥२२४॥ विराधित अपराधरूपी समुद्रमें मग्न है अतः कहाँ जावेगा ? अथवा जावेगा भी तो सुग्रीवके समीप जावेगा ऐसा लोगोंसे सुना जाता है ॥२२५॥ सुग्रीवका सन्देह उत्पन्न करनेवाली मायाको जो नष्ट कर सके ऐसा पुरुष संसारमें स्वामी दशाननसे बढ़कर दूसरा कौन होगा ? ॥२२६॥ इसलिए उस कठिन कार्यको सिद्ध करनेके लिए सुग्रीव, स्वामी—दशाननकी सेवा करेगा। और सुग्रीवके साथ दशाननका समागम होना फलकाल-में शुभदायक होगा ॥२२७॥ इस विधिसे दशानन इन शत्रुओंको तथा अन्य लोगोंको भी जीत सकेंगे इसलिए इस विषयमें शीघ्र ही यत्न किया जावे ॥२२८॥ इस प्रकार विचारकर बुद्धिमान् मन्त्री, करने योग्य कार्यका निश्चय कर हर्षित चित्त होते हुए अपने-अपने घर गये ॥२२९॥ विभीषणने यन्त्र आदिके द्वारा कोटको अत्यन्त दुर्गम कर दिया तथा नाना प्रकारकी विद्याओंके द्वारा लंकाको गह्वरों एवं पाशोंसे युक्त कर दिया ॥२३०॥

गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! निर्मलचित्तके धारक मनुष्योंका कोई भी कार्य आप्त वचनोंसे निरपेक्ष नहीं होता अर्थात् आप्तके कहे अनुसार ही उनका प्रत्येक कार्य होता है। आप्त भगवान्‌ने मनुष्योंके लिए जो कार्य बतलाये हैं वे पुरुषार्थके बिना सफल नहीं होते और पुरुषार्थ दैवके बिना इष्ट सिद्धिका कारण नहीं होता इसलिए हे भव्यजीवो ! सो सबका कारण है उसके प्रसन्न करनेमें प्रयत्न करो ॥२३१॥ हे राजन् ! जबतक मनुष्योंके कर्मका उदय विद्यमान रहता है तबतक नाना प्रकारके कुशल वचन उनके चित्तमें प्रवेश नहीं करते हैं इसलिए अपनी योग्य स्थितिके अनुसार प्रशस्त—पुण्यकर्म करना चाहिए जिससे कि फिर शोकरूपी कष्टदायी सूर्य सन्ताप उत्पन्न न कर सके ॥२३२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें रावणके माथाके विविध रूपोंका वर्णन करनेवाला छियालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४६॥

□

---

१. श्रयते ब. क. । २. दैवोपेतं । ३. यत्नं म. । ४. सेव्यमाने म. । ५. नानाकारे म. ।

सप्तचत्वारिंशत्तमं पर्व

किष्किन्धेशस्ततो गच्छन् कान्ताविरहदुःखितः । तं प्रदेशमनुप्राप्तो निवृत्तं यत्र संयुगम् ॥१॥
तत्राद्राक्षीद्रथान् भग्नान् गजांश्च गतजीवितान् । सामन्तानश्वसंयुक्तान्निर्भिन्नच्छिन्नविग्रहान् ॥२॥
दह्यमानान् नृपान् कांश्चित् कांश्चिच्छ्वसितांस्तथा । क्रियमाणानुमरणान् कान्ताभिपरान्[1] भटान् ॥३॥
विच्छिन्नार्धभुजान् कांश्चित् कांश्चिद्धोरुवर्जितान् । निःसृतान्त्रचयान् कांश्चित्कांश्चिद्दलितमस्तकान् ॥४॥
गोमायुप्रावृतान् कांश्चित् खगैः कांश्चिन्निषेवितान् । रुदता[2] परिवर्गेण कांश्चिच्छादितविग्रहान् ॥५॥
किमेतदिति पृष्टश्च तस्मै कश्चिदवेदयत् । सीतायाः हरणं ध्वस्तौ जटायुखरदूषणौ ॥६॥
ततोऽभवद् मूर्छा दुःखी खरदूषणमृत्युतः । किष्किन्धाधिपतिश्चिन्तामेतामगमदाकुलः ॥७॥
कष्टं चिन्तितमेतन्मे किलास्मै बलशालिने । निवेद्य दयिताशोकं मोक्ष्यामीति महाशया ॥८॥
विधानदन्तिना सोऽपि कथमाशामहाद्रुमः । भग्नो मम विपुण्यस्य कथं शान्तिर्भविष्यति ॥९॥
किमञ्जनासुतं गत्वा सादरं संश्रयाम्यहम् । मद्रूपधारिणो येन मरणं स करिष्यति ॥१०॥
उद्योगेन विमुक्तानां जनानां सुखिता कुतः । तस्माद् दुःखविनाशाय श्रयाम्युद्योगमुत्तमम् ॥११॥
अथवानेकशो दृष्टोऽनादरं[3] स करिष्यति । नवोऽनुरागवन्द्यो हि चन्द्रो लोकस्य नान्यदा ॥१२॥
तस्मान् महाबलं दीप्तं महाविद्याविशारदम् । रावणं शरणं यामि स मे शान्तिं करिष्यति ॥१३॥

अथानन्तर किष्किन्धापुरका स्वामी सुग्रीव स्त्रीके विरहसे दुःखी हो भ्रमण करता हुआ जहाँ कि खरदूषण तथा लक्ष्मणका युद्ध हुआ था ॥१॥ वहाँ आकर उसने देखा कि कहीं टूटे हुए रथ पड़े हैं, कहीं मरे हुए हाथी पड़े हैं, कहीं जिनके शरीर छिन्न-भिन्न हो गये हैं, ऐसे घोड़ोंके साथ सामन्त पड़े हैं ॥२॥ कहीं कोई राजा जल रहे हैं, कोई साँसें भर रहे हैं, कहीं स्वामीके पीछे मरण करनेवाले स्वामिभक्त सुभट पड़े हैं ॥३॥ किन्हींकी आधी भुजा कट गयी है, किन्हींकी आधी जाँघ टूट चुकी है, किन्हींकी आँतोंका समूह निकल आया है, किन्हींके मस्तक फट गये हैं, किन्हींको शृगाल घेरे हुए हैं, किन्हींको पक्षी खा रहे हैं और किन्हींके मृत शरीरको रोते हुए कुटुम्बीजन आच्छादित कर रहे हैं ॥४-५॥ 'यह क्या है ?' इस प्रकार पूछनेपर किसीने उसे बताया कि सीताका हरण हो चुका है और जटायु तथा खरदूषण मारे गये हैं ॥६॥

तदनन्तर खरदूषणकी मृत्युसे किष्किन्धापति सुग्रीव बहुत दुःखी हुआ, वह आकुल होता हुआ इस प्रकार चिन्ता करने लगा कि हाय मैंने विचार किया था कि 'मैं उस बलशालीके लिए निवेदन कर स्त्री सम्बन्धी शोकसे छूट जाऊँगा' इसी बड़ी आशासे मैं यहाँ आया था पर मेरे भाग्यरूपी हाथीने उस आशारूपी महावृक्षको कैसे गिरा दिया। हाय अब मुझ पापीको किस प्रकार शान्ति होगी ॥७-९॥ क्या अब मैं आदरके साथ हनुमान्का आश्रय लूँ जिससे वह मेरे समान रूपका धारण करनेवाले मायामयी सुग्रीवका मरण कर सके ॥१०॥ उद्योगसे रहित मनुष्योंको सुख कैसे प्राप्त हो सकता है, इसलिए मैं दुःखका नाश करनेके लिए उत्तम उद्योगका आश्रय लेता हूँ ॥११॥ अथवा हनुमान्को अनेक बार देखा है अतः वह अनादर करेगा क्योंकि नवीन चन्द्रमा ही लोगोंके द्वारा अनुरागके साथ वन्दनीय होता है अन्य समय नहीं ॥१२॥ इसलिए महाबलवान्, देदीप्यमान और महाविद्याओंमें निपुण रावणकी शरणमें जाता हूँ वही मुझे शान्ति

---

१. दुःखतः म., क्रियमाणानुमरणाक्रान्ताभिरपरान् म. । २. रुदिता म. । ३. ऽनादरो म. ।

अजानानो विशेषं वा क्रोधचोदितमानसः । दशाननः कदाचिन्नौ[1] हन्तुं वाञ्छेद्विभावपि ॥१४॥
मन्त्रदोषमसत्कारं दानं पुण्यं स्वशूरताम् । दुःशीलत्वं मनोदाहं दुर्मित्रेभ्यो न वेदयेत् ॥१५॥
तस्माच्चैव संग्रामे निहितः खरदूषणः । तमेव शरणं यामि स मे शान्तिं करिष्यति ॥१६॥
तुल्यव्यसनताहेतोः कालोऽयमुपसर्पति[2] । सद्भावं हि प्रपद्यन्ते तुल्यावस्थाः[3] प्रजा भुवि ॥१७॥
एवं विमृश्य संजातचारुबुद्धिः समन्ततः । प्रजिघायादराद् दूतं प्रियं कर्तुं[4] विराधितम् ॥१८॥
सुग्रीवागमने तेन ज्ञापितेऽभूद् विराधितः । सविस्मयः सतोषश्च चकार च मनस्यदः ॥१९॥
चित्रं सुग्रीवराजो मां संसेव्यः सन्निषेवते । अथवाश्रयसामर्थ्यात् पुंसां किं नोपजायते ॥२०॥
ततो दुन्दुभिनिर्घोषं समाकर्ण्य घनोपमम् । पातालनगरं जातं भयाकुलमहाजनम् ॥२१॥
ततो लक्ष्मीधरोऽपृच्छदनुराधाङ्गसंभवम् । वद तूर्यकिनादोऽयं श्रूयते कस्य संहतः ॥२२॥
सोऽवोचच्छ्रूयतां देव महाबलसमन्वितः । नाथोऽयं कपिकेतूनां प्राप्तस्त्वां प्रेमतत्परः ॥२३॥
भ्रातरौ वालिसुग्रीवौ किष्किन्धानगराधिपौ । तिग्मांशुरजसः पुत्रौ प्रख्याताववनौ[5] विमौ ॥२४॥
वालीति योऽत्र विख्यातः शीलशौर्यादिभिर्गुणैः । अभिमानमहाशैलो नामनंसीद् दशवक्त्रकम् ॥२५॥
परं प्राप्य प्रबोधं स कृत्वा सुग्रीवसाच्छ्रियम् । तपोवनमुपाविक्षत्सर्वसंग्रन्थविवर्जितम् ॥२६॥
सुग्रीवोऽप्यभिसक्तात्मा सुतारायां श्रियान्वितः । राज्ये निःकण्टके रेमे शचीयुक्तो यथा हरिः[6] ॥२७॥

प्रदान करेगा ॥१३॥ अथवा जिसका मन क्रोधसे प्रेरित हो रहा है ऐसा रावण, विशेषको न जानता हुआ कदाचित् हम दोनोंको ही मारनेकी इच्छा करे तो उलटा अनर्थ हो जायेगा ॥१४॥ इसके साथ नीति भी यह कहती है कि दुष्ट मित्रोंके लिए, मन्त्रदोष, असत्कार, दान, पुण्य, अपनी शूर-वीरता, दुष्ट स्वभाव और मनकी दाह नहीं बतलानी चाहिए ॥१५॥ इसलिए जिसने युद्धमें खरदूषणको मारा है उसीके शरणमें जाता हूँ, वही मेरे लिए शान्ति उत्पन्न करेगा ॥१६॥ रामको भी स्त्रीका विरह हुआ है और मैं भी स्त्रीके विरहसे दुःखी हूँ इसलिए एक समान दुःख होनेसे यह समय उनके पास जानेके योग्य है क्योंकि पृथिवीपर समान अवस्थावाले मनुष्य सद्भाव—पारस्परिक प्रीतिको प्राप्त होते हैं ॥१७॥ ऐसा विचारकर जिसे सब ओरसे उत्तम बुद्धि प्राप्त हुई थी ऐसे सुग्रीवने विराधितको अनुकूल करनेके लिए उसके पास अपना दूत भेजा ॥१८॥ जब दूतने सुग्रीवके आगमनका समाचार कहा तब विराधित आश्चर्य और सन्तोषसे युक्त होकर मनमें यह विचार करने लगा कि आश्चर्य है सुग्रीव तो हमारे द्वारा सेवा करने योग्य है फिर भी वह हमारी सेवा कर रहा है सो ठीक ही है क्योंकि आश्रयकी सामर्थ्यसे मनुष्योंके क्या नहीं होता है ? ॥१९-२०॥

तदनन्तर मेघके समान दुन्दुभिका शब्द सुनकर पातालनगर, (अलंकारपुर), भयसे व्याकुल हैं महाजन जिसमें ऐसा हो गया ॥२१॥ तत्पश्चात् लक्ष्मणने विराधितसे पूछा कि कहो कि यह किसकी तुरहीका शब्द सुनाई दे रहा है ? ॥२२॥ इसके उत्तरमें विराधितने कहा कि हे देव ! यह महाबलसे सहित, वानरवंशियोंका स्वामी सुग्रीव प्रेमसे युक्त हो आपके पास आया है ॥२३॥ बालि और सुग्रीव ये दोनों भाई किष्किन्धा नगरीके स्वामी हैं, राजा सहस्ररश्मि रजके पुत्र हैं तथा पृथिवीपर अत्यन्त प्रसिद्ध हैं ॥२४॥ इनमें जो बालि नामसे प्रसिद्ध था वह शील, शूर-वीरता आदि गुणोंसे विख्यात था तथा अभिमानके लिए मानो सुमेरु ही था, उसने रावणको नमस्कार नहीं किया था ॥२५॥ अन्तमें परम प्रबोधको प्राप्त हो तथा राज्यलक्ष्मी सुग्रीवके आधीन कर वह सर्वपरिग्रहसे रहित तपोवनमें प्रविष्ट हो गया ॥२६॥ सुग्रीव भी अपनी सुतारा

---

१. बोधित-म. । २. आवाम् । ३. मुपसर्पेण ख., ज. । ४. तुल्यावाञ्छा म. । ५. प्रख्याती + अवनौ = पृथिव्याम्, इमौ । ६. इन्द्रः ।

सुतो यस्याङ्गदाभिख्यः गुणरत्नविभूषितः । किष्किन्धाविषये यस्य संकथान्यविवर्जिता ॥२८॥
तयोरियं कथा यावद्वर्त्ततेऽनन्यचेतसोः । [1]तावत्संप्राप सुग्रीवः श्रीमत्पार्थिवकेतनम् ॥२९॥
ज्ञातश्चानुमतिं प्राप्य विवेशेक्षितमङ्गलम्[2] । राजाधिकृतलोकेन परमं दर्शितादरः ॥३०॥
लक्ष्मीधरकुमाराद्यास्तं राजन् प्राप्ताभिरम्यधाः । परिष्वज्यन्त काम्त्या विकसद्वदनाम्बुजाः ॥३१॥
उपविष्टाश्च विधिना जाम्बूनदमहीतले । योग्यं संभाषणं चक्रुरमृतोपमया गिरा ॥३२॥
निवेदितं ततो वृद्धैरिति पद्ममहीक्षिते[3] । देव किष्किन्धनगरे सुग्रीवाख्योऽवनीश्वरः ॥३३॥
प्रभुर्महाबलो भोगी गुणवानतिसत्प्रियः । केनापि दुष्टमायेन खगेनानर्थमाहृतः ॥३४॥
एतस्याकृतिमाश्रित्य राज्यभोगं पुरं बलम् । सुतारां च गृहीतुं तां कोऽपि वाञ्छति दुर्मतिः ॥३५॥
एतस्य वचनस्यान्ते रामस्तत्संमुखोऽभवत् । अचिन्तयच्च मैत्तोऽपि दुःखितो नाम विद्यते ॥३६॥
मयायं सदृशो मन्ये यदि वाधैरतां[4] व्रजेत् । येनास्य दृश्यमानैकप्रतिपक्षेण बाधनम् ॥३७॥
अर्थोऽयं दुस्तरोऽत्यन्तं कथमेतन्नविष्यति । हानिरेवंविधस्यैषा महिधः किं करिष्यति ॥३८॥
सुमित्रातनयोऽपृच्छत् कृत्स्नं दुःखस्य कारणम् । सुग्रीवस्य मनस्तुल्यं धीरं जाम्बूनदश्रुतिम् ॥३९॥
ततोऽसौ मन्त्रिणां मुख्यो जगाद विनयान्वितः । असत्सुग्रीवरूपस्य सत्सुग्रीवस्य चान्तरम् ॥४०॥

नामक स्त्रीमें अत्यन्त आसक्त हो राज्यलक्ष्मी सहित निष्कण्टक राज्यमें इस प्रकार क्रीड़ा करता था जिस प्रकार कि इन्द्राणी सहित इन्द्र क्रीड़ा करता है ॥२७॥ उस सुग्रीवका गुणरूपी रत्नोंसे विभूषित अंगद नामका ऐसा पुत्र है कि किष्किन्धा देशमें जिसकी कथा अन्य कथाओंसे रहित है अर्थात् अन्य लोगोंकी कथा छोड़कर सम्पूर्ण किष्किन्धा देशमें उसी एककी कथा होती है ॥२८॥ इस प्रकार अनन्यचित्तके धारक लक्ष्मण तथा विराधितके बीच जबतक यह वार्ता चल रही थी कि तबतक सुग्रीव राजभवनमें आ पहुँचा ॥२९॥ राजाके अधिकारी लोगोंने ज्ञात होनेपर उसके प्रति बहुत आदर दिखलाया। तदनन्तर अनुमति पाकर उसने मंगलाचारका अवलोकन करते हुए राजभवनमें प्रवेश किया ॥३०॥ हे राजन्! जिन्हें आश्चर्य प्राप्त हो रहा था तथा जिनके मुखकमल कान्तिसे खिल रहे थे ऐसे लक्ष्मण आदिने उसका आलिंगन किया ॥३१॥ शिष्टाचारके उपरान्त सब विधिपूर्वक स्वर्णमय पृथिवी तलपर बैठे और अमृततुल्य वाणीसे परस्पर वार्तालाप करने लगे ॥३२॥

तदनन्तर वृद्धजनोंने राजा रामचन्द्रके लिए परिचय दिया कि हे देव! यह किष्किन्ध नगरका राजा सुग्रीव है ॥३३॥ यह महाऐश्वर्यशाली, महाबलवान्, भोगी, गुणवान् तथा सज्जनोंको अतिशय प्यारा है। परन्तु किसी दुष्ट मायावी विद्याधरने इसे अनर्थ—आपत्तिमें डाल दिया है ॥३४॥ कोई दुर्बुद्धि विद्याधर इसका रूप धर इसके राज्यभोग, नगर, सेना तथा इसकी प्रिया सुताराको भी ग्रहण करना चाहता है ॥३५॥ तदनन्तर वृद्धजनोंके उक्त वचन पूर्ण होनेके बाद राम, सुग्रीवके सम्मुख उसकी ओर देखने लगे। रामने मनमें विचार किया कि अरे! यह तो मुझसे भी अधिक दुःखी है ॥३६॥ यह मेरे समान है अथवा मैं समझता हूँ कि यह मुझसे भी कहीं अधिक हीनताको प्राप्त है क्योंकि इसका शत्रु तो इसके सामने ही बाधा पहुँचा रहा है ॥३७॥ इसका यह कार्य अत्यन्त कठिन है सो किस प्रकार होगा। इसकी यह बड़ी हानि हो रही है मेरा-जैसा व्यक्ति क्या करेगा? ॥३८॥ लक्ष्मणने सुग्रीवके मनके समान जो जाम्बूनद नामक धीर-वीर मन्त्री था उससे दुःखका समस्त कारण पूछा ॥३९॥

तदनन्तर मन्त्रियोंमें मुख्य जाम्बूनदने बड़ी विनयसे मायामय सुग्रीव और वास्तविक

---

१. संप्राप्तः म. । २. विवेशेक्षितमङ्गलः म. । ३. महीक्षितौ ख. । ४ बाधनः म., ब. । ५. मदपेक्षमपि । ६. अवरतां = हीनतां । ७. लक्ष्मण- म. ।

राजन् दारुणानङ्गलतापाशवशीकृतः । रूपं रूपवशः कोऽपि समं कृत्वास्य मायया ॥४१॥
अज्ञातो मन्त्रिवर्गस्य सर्वस्यात्मजनस्य च । सुग्रीवान्तःपुरं तुष्टः प्राविशत्पापचेतनः ॥४२॥
प्रविशन्तं च तं दृष्ट्वा सुताराख्या परा सती । महादेवी जगादास्य समुद्विग्ना निजं जनम् ॥४३॥
दुष्टविद्याधरः कोऽपि सुग्रीवाकृतिरेषकः । आयाति पापपूर्णात्मा चारुलक्षणवर्जितः ॥४४॥
अभ्युत्थानादिकामस्य क्रिया माकार्ष्ट पूर्ववत् । केनापि तरणीयोऽयमम्युपायेन दुर्णयः ॥४५॥
अथाशङ्काविमुक्तात्मा गम्भीरो लीलयान्वितः । गत्वा सुग्रीववद्भेजे सौग्रीवं स वरासनम् ॥४६॥
एतस्मिन्नन्तरे प्राप वालिराजानुजः[2] क्रमात् । अद्राक्षीच्च जनं दीनमप्राक्षीच्च समाकुलः ॥४७॥
कस्मादयं जनोऽस्माकं म्लानवक्त्रेक्षणो भृशम् । विषादं वहते स्थाने स्थाने कृतसमागमः ॥४८॥
किमङ्गदो गतो मेरुं वन्दनार्थी चिरायति । किं वा[3] प्रमादतो देवी कस्याप्युपगता रुषम् ॥४९॥
जन्ममृत्युजरास्युग्रनानासंसारदुःखतः । [4]बिभ्यद् विभीषणः किं स्यात्तपोवनमुपागतः ॥५०॥
चिन्तयन्निरगात्तिक्रम्य द्वाराणि मणितेजसा । सारमानानि सर्वाणि संयुक्तानि सुतोरणैः ॥५१॥
गीतजल्पितमुक्तानि सुप्तानीव समंततः । शङ्कितद्वारपालानि प्रयातान्यन्यतामिव ॥५२॥
प्रासादप्रवरोत्संगे विक्षिपन् दृष्टिमायताम् । अपश्यत्स्त्रीजनान्तस्थमात्मामं दुष्टखेचरम् ॥५३॥
दिव्यहाराम्बरं दृष्ट्वा तं शोभां दधतं पुरः । चित्रावचूलसंकं कान्त्या विकसदूदनाम्बुजम् ॥५४॥

सुग्रीवका अन्तर बताया ॥४०॥ उसने कहा कि हे राजन् ! अतिशय दारुण कामरूपी लताके पाशसे विवश तथा सुताराके रूपसे मोहित कोई पापी विद्याधर मायासे इसका रूप बनाकर मन्त्रीवर्ग तथा समस्त परिजनोंके बिना जाने, सन्तुष्ट हो सुग्रीवके अन्तःपुरमें प्रविष्ट हुआ ॥४१-४२॥ उसे प्रवेश करते देख सुतारा नामकी परम सती महादेवीने भयभीत होकर अपने परिजनसे कहा कि जिसकी आत्मा पापसे पूर्ण है, तथा जो उत्तम लक्षणोंसे रहित है ऐसा यह कोई दुष्ट विद्याधर सुग्रीवका वेष रखकर आता है अतः पहलेकी तरह तुम लोग इसका सत्कार नहीं करो। यह दुर्नयरूपी सागर किसी उपायसे तिरने योग्य है—पार करने योग्य है ॥४३-४५॥ तदनन्तर जिसकी आत्मा शंकासे रहित थी, जो गम्भीर था और लीलासे सहित था ऐसा वह मायामय विद्याधर सुग्रीवके समान जाकर उसके सिंहासन पर आ बैठा ॥४६॥ इसी बीचमें बालिराजाका अनुज वास्तविक सुग्रीव, यथाक्रमसे वहाँ आया। आते ही उसने अपने परिजनको दीन देखकर व्यग्र हो उनसे पूछा कि ये हमारे परिजन, अत्यन्त म्लानमुख एवं म्लाननेत्र होकर विषाद क्यों धारण कर रहे हैं तथा स्थान-स्थानपर इकट्ठे हो रहे हैं ? ॥४७-४८॥ वन्दनाकी अभिलाषासे अंगद सुमेरु पर्वतपर गया था सो क्या आनेमें विलम्ब कर रहा है अथवा महादेवी प्रमादके कारण किसीपर रोषको प्राप्त हुई है ? ॥४९॥ अथवा जन्म, मृत्यु और जरासे अत्यन्त उग्र संसारके नाना दुःखोंसे भयभीत होकर विभीषण तपोवनको प्राप्त हुआ है ॥५०॥ इस प्रकार चिन्ता करता हुआ सुग्रीव, मणियोंके तेजसे देदीप्यमान तथा उत्तमोत्तम तोरणोंसे संयुक्त उन समस्त द्वारोंको उल्लंघन कर महलके भीतर प्रविष्ट हुआ कि जो संगीतमय वार्तालापसे रहित थे, सब ओर से सन्तप्त हुएके समान जान पड़ते थे, जिनके द्वारपाल शंकासे युक्त थे तथा जो अन्यरूपताको प्राप्त हुएके समान जान पड़ते थे ॥५१-५२॥ जब उसने महलके उत्तम मध्यभागमें अपनी लम्बी दृष्टि डाली तो उसने स्त्री जनोंके पास बैठे हुए अपनी ही समान आभावाले एक दुष्ट विद्याधरको देखा ॥५३॥ जो दिव्य हार और वस्त्रोंको धारण कर रहा था, परम शोभाका धारक था, चित्र-विचित्र आभूषणोंसे युक्त था, तथा कान्तिसे जिसका मुखकमल विकसित हो रहा था ऐसे दुष्ट विद्याधरको सामने

---

१. वरणीयोऽय- ग. । २. सुग्रीव । ३. प्रमादते म. । ४. बिम्बद्विषण्णः म. ।

क्रुद्धो जगर्ज सुग्रीवः प्रावृषेण्यघनोपमम् । दिङ्मुखेषु क्षिपन् भासमक्ष्णोः संध्याघनारुणम् ॥५५॥
ततः सुग्रीवतुल्योऽपि कुर्वन् दनुजगर्जितम् । उत्तस्थौ कोपरक्तास्यः करीव मदविह्वलः ॥५६॥
संदष्टोष्ठौ[1] महासत्त्वौ दृष्ट्वा तौ योद्धुमुद्यतौ । सान्त्वा[2] निरुरुधुः क्षिप्रं श्रीचन्द्राद्याः सुमन्त्रिणः ॥५७॥
सुतारेति ततोऽवोचत् दुष्टोऽयं कोऽपि खेचरः । तुल्यः सर्वेण देहेन बलेन वचसा रुचा ॥५८॥
पत्युर्मम न तुल्यस्तु लक्षणैर्मेनकोऽपि[3] । प्रासादशङ्खकुम्भाद्यैश्चिरसंस्थितलक्षितैः ॥५९॥
मर्तुर्मे भूषिताङ्गस्य महापुरुषलक्षणैः । कस्यापि वार्धमस्यास्य वाजिवालेयतुल्यता ॥६०॥
श्रुत्वापीदं सुतारोक्तं सावृण्यहृतचित्तकैः[4] । मन्त्रिभिस्तदवज्ञातं निःस्वोक्तं धनिभिर्यथा ॥६१॥
एकीभूय च तैः सर्वैर्मन्त्रिभिर्मतिशालिभिः । गदितं संप्रधार्येदं संदेहहृतमानसैः ॥६२॥
मद्यपस्यातिवृद्धस्य वेश्याव्यसनिनः[5] शिशोः । प्रमदानां च वाक्यानि जातु कार्याणि नो बुधैः ॥६३॥
अत्यन्तदुर्लभा लोके गोत्रशुद्धिस्तया विना । नितान्तपरमेणापि न राज्येन प्रयोजनम् ॥६४॥
संप्राप्य निर्मलं गोत्रं सर्व्यं शीलादिभूषितैः । तस्मादन्तःपुरं यत्नादिदं रक्ष्यं सुनिर्मलम् ॥६५॥
अकीर्तिरिति निन्द्येयमस्य नोत्पद्यते यथा । कुरुध्वमतियत्नेन विभज्यैवाखिलमेतयोः ॥६६॥
अङ्गः कृत्रिमसुग्रीवं पितृभ्रान्त्या समाश्रितः । अङ्गदः सत्यसुग्रीवं मातृवाक्यानुरोधतः ॥६७॥

देख सुग्रीव, क्रुद्ध होकर सन्ध्याके मेघ समान लाल नेत्रोंकी कान्तिको दिशाओंमें फैलाता हुआ वर्षा ऋतुके मेघके समान गरजा ॥५४-५५॥ तदनन्तर सुग्रीवके समान रूपको धारण करनेवाला विद्याधर भी क्रोधसे रक्तमुख हो हाथीके समान मदसे विह्वल होता और कठोर गर्जना करता हुआ उठा ॥५६॥

अथानन्तर ओठोंको डँसते हुए उन दोनों बलवानोंको युद्धके लिए उद्यत देख श्रीचन्द्र आदि मन्त्रियोंने शान्तिपूर्वक शीघ्र ही उन्हें रोक दिया ॥५७॥ तत्पश्चात् सुताराने कहा कि यह कोई दुष्ट विद्याधर है। यद्यपि समस्त शरीर, बल, वचन और कान्तिसे तुल्य दिखता है परन्तु प्रासाद, शंख, कलश आदि लक्षणोंसे जो कि मेरे पतिके शरीरमें चिरकालसे स्थित हैं तथा जिन्हें मैंने अनेक बार देखा है किंचित् भी मेरे पतिके समान नहीं है ॥५८-५९॥ महापुरुषोंके लक्षणोंसे जिनका शरीर भूषित है ऐसे मेरे पतिकी तथा इस किसी नीचकी तुल्यता घोड़े और गधेकी तुल्यताके समान है ॥६०॥

तदनन्तर दोनोंकी सदृशताके कारण जिनके चित्त हरे गये थे ऐसे मन्त्रियोंने सुताराके इन शब्दोंको सुनकर भी उनकी उस तरह अवज्ञा कर दी जिस प्रकार कि धनी मनुष्य निर्धन मनुष्यके वचनोंकी अवज्ञा कर देते हैं ॥६१॥ सन्देहने जिनका मन हर लिया था ऐसे उन बुद्धिशाली मन्त्रियोंने एकत्रित हो सलाह कर यह कहा कि मद्यपायी, अत्यन्त वृद्ध, वेश्या व्यसनी, बालक और स्त्रियोंके वचन विद्वज्जनोंको कभी नहीं मानना चाहिए ॥६२-६३॥ लोकमें गोत्रकी शुद्धि अत्यन्त दुर्लभ है इसलिए उसके बिना बहुत भारी राज्यसे भी प्रयोजन नहीं है ॥६४॥ निर्मल गोत्र पाकर ही शीलादि आभूषणोंसे विभूषित हुआ जाता है इसलिए इस निर्मल अन्तःपुरकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए ॥६५॥

जिस तरहसे सुग्रीव निन्दनीय अपकीर्ति न हो उस तरह इन दोनोंका सब विभाग कर अतियत्नपूर्वक काम करना चाहिए ॥६६॥ अंग नामका पुत्र पिताकी भ्रान्तिसे कृत्रिम-बनावटी सुग्रीवके पास गया और अंगद नामका पुत्र माताके वचनोंके अनुरोधसे सत्य सुग्रीवके

१. संदष्टौ म. । २. सान्त्वा म । ३. मनागपि ईषदपि-'अल्पयत्सर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः' इत्यकच् । ४. धाद्यमस्याप्त म. । ५. वित्तकैः म. । ६. व्यसनस्य शिशोः म. । ७. विभिद्या- म. ।

संदिहाना निजे नाथे वयमप्यतिसाम्यतः । सुतारावचनादेनं पुरस्कृत्य व्यवस्थिताः ॥६८॥
अक्षौहिण्यस्ततः सप्त प्रसुमेकमुपाश्रिताः । इतरं चापि तावन्तः संशयस्य वशं गताः ॥६९॥
पुरस्य दक्षिणे भागे सुग्रीवः कृत्रिमः कृतः । उत्तरे तस्य सुग्रीवः स्थापितश्च यथाविधि ॥७०॥
अकरोच्चन्द्ररश्मिश्च प्रतिज्ञामिति संशये । आगच्छुर्यो जनः कुर्यात्सर्वतः प्रतिपालनम् ॥७१॥
सुताराभवनद्वारं यो व्रजेत्कश्चिदस्य सः । प्रौढेन्दीवरशोभस्य वध्यः खड्गस्य मे ध्रुवम् ॥७२॥
ततः कपिध्वजावेवं स्थापितौ तावुभावपि । अपश्यन्तौ सुतारास्यं निमग्नौ व्यसनार्णवे ॥७३॥
ततोऽयं सत्यसुग्रीवो दयितावियोगाकुलः । बहुशः शोकहानार्थमगच्छत् खरदूषणम् ॥७४॥
पुनश्च मारुतेः पार्श्वमभ्यधीच्च पुनः पुनः । परित्रायस्व दुःखार्तं प्रसादं कुरु बान्धव ॥७५॥
मदीयं रूपमासाद्य मायया कोऽपि पापधीः । कुरुते मे परां बाधां स गत्वा सार्यतां द्रुतम् ॥७६॥
सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा तदवस्थस्य शोकिनः । अञ्जनातनयः क्रोधाद्वाडवाग्निसमोऽभवत् ॥७७॥
विमानं परमच्छायमप्रतीघातसंज्ञितम् । नानालंकारभूयिष्ठं त्रिदशावाससन्निभम् ॥७८॥
उत्साहं परमं बिभ्रदारुह्य सचिवैर्वृतः । किष्किन्धनगरं प्राप स्वर्गं सुकृतभागिव ॥७९॥
श्रुत्वा प्राप्तं हनूमन्तमसकौ विगतज्वरः । आरुह्य द्विरदं प्रीतः सुग्रीव इव निर्ययौ ॥८०॥
तं कपिध्वजमालोक्य परं सादृश्यमागतम् । विस्मितो वायुपुत्रोऽपि पतितः संशयार्णवे ॥८१॥
अचिन्तयच्च सुव्यक्तं सुग्रीवौ द्वाविमौ कथम् । एतयोः कतरं हन्मि यद्विशेषो न लभ्यते ॥८२॥

पास गया ॥६७॥ हम लोग भी अत्यन्त सदृशताके कारण अपने स्वामीके विषयमें सन्देहशील हैं परन्तु सुताराके कहनेसे इसीको आगे कर स्थित हैं ॥६८॥ संशयके वशमें पड़ी सात अक्षौहिणी सेनाएँ एक सुग्रीवके आश्रय गयीं और उतनी ही दूसरे सुग्रीवके अधीन हुईं ॥६९॥ नगरके दक्षिण भागमें कृत्रिम सुग्रीव रखा गया और वास्तविक सुग्रीव नगरके उत्तर भागमें विधिपूर्वक स्थापित किया गया ॥७०॥

सब ओरसे रक्षा करनेवाले बालिके पुत्र चन्द्ररश्मिने संशय उपस्थित होनेपर इस प्रकारकी प्रतिज्ञा की कि इन दोनोंमें जो भी सुताराके भवनके द्वारपर जावेगा वह तरुण इन्दीवर—नीलकमलके समान सुशोभित मेरी खड्गके द्वारा अवश्य ही वध्य होगा—मेरी तलवारके द्वारा मारा जायेगा ॥७१-७२॥ तदनन्तर इस प्रकार रखे हुए दोनों सुग्रीव सुताराका मुख न देखते हुए व्यसनरूपी सागरमें निमग्न हो गये ॥७३॥

अथानन्तर स्त्रीके विरहसे आकुल सत्य सुग्रीव, शोक दूर करनेके लिए अनेक बार खरदूषणके पास आया ॥७४॥ फिर हनुमान्‌के पास जाकर उसने बार-बार कहा कि हे बान्धव ! मैं दुःखसे पीड़ित हूँ अतः मेरी रक्षा करो, प्रसन्न होओ ॥७५॥ कोई पापबुद्धि विद्याधर मायासे मेरा रूप रखकर मुझे अत्यन्त बाधा पहुँचा रहा है सो जाकर उसे शीघ्र ही मारो ॥७६॥ उस प्रकारकी अवस्थामें पड़े शोकयुक्त सुग्रीवके वचन सुनकर हनुमान् क्रोधसे बड़वानलके समान हो गया ॥७७॥ वह परम उत्साहको धारण करता हुआ मन्त्रियोंके साथ, अत्यन्त कान्तिमान्, नाना अलंकारोंसे प्रचुर, स्वर्गतुल्य अप्रतीघात नामक विमानमें सवार हो उस तरह किष्किन्ध नगर पहुँचा जिस तरह कि पुण्यात्मा मनुष्य स्वर्गमें पहुँचता है ॥७८-७९॥ हनुमान्‌को आया सुन वह शीघ्र ही हाथीपर सवार हो प्रसन्नताके साथ सुग्रीवकी तरह नगरसे बाहर निकला ॥८०॥ अत्यन्त सादृश्यको प्राप्त हुए उस कपिध्वजको देखकर हनुमान् भी विस्मित हो संशयरूपी सागरमें पड़ गया ॥८१॥ वह विचार करने लगा स्पष्ट ही ये दोनों सुग्रीव हैं जबतक कि विशेषता नहीं जान

१. प्रतिज्ञातमसंशयं ख ।

अविदित्वानयोर्भेदमुभयोर्वानरेन्द्रयोः । कदाचिद् वधिषं माऽहं सुग्रीवं सुहृदां वरम् ॥८३॥
मुहूर्तं मन्त्रिभिः सार्धं विमृश्य च यथाविधि । उदासीनतया देव मारुतिः स्वपुरं गतः ॥८४॥
निवृत्ते मरुतः पुत्रे सुग्रीवोऽभवदाकुलः । असौ च सदृशोऽमुष्य तथैवातिष्ठदाशया ॥८५॥
मायासहस्रसंपन्नो महावीर्यो महोदयः । उल्कायुधोऽपि संदेहं प्राप कष्टमिदं परम् ॥८६॥
निमग्नं संशयाम्भोधौ व्यसनग्राहसंकटे । न जानाम्यधुना देव क इमं तारयिष्यति ॥८७॥
कान्ताविरोगदावेन प्रदीप्तं कपिकेतनम् । कृतज्ञं भज सुग्रीवं प्रसीद रघुनन्दन ॥८८॥
अयं शरणमायातो भवन्तं श्रितवत्सलम् । भवद्विधशरीरं हि परदुःखस्य नाशनम् ॥८९॥
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा विस्मयव्याप्तमानसाः । जाताः पद्मादयः सर्वे धिगहोहीतिभाषिणः ॥९०॥
अचिन्तयच्च पद्मोऽतः सखायं भम दुःखतः । जातोऽयं सदृशेषु प्रायः प्रेमोपजायते ॥९१॥
एष प्रत्युपकारं मे यदि कर्तुं न शक्ष्यति । निर्ग्रन्थश्रमणो भूत्वा साधयिष्यामि निर्वृतिम् ॥९२॥
एवं ध्यात्वानुराधाद्यैः सर्वं संगम्य च क्षणम् । कपिमौलीन्द्रमाहूय पद्मनाभोऽभ्यभाषत ॥९३॥
सत्सुग्रीवो भवान्यो वा सर्वथा त्वं मयेप्सितः । विजित्य भवतस्तुल्यं पदं यच्छामि ते निजम् ॥९४॥
तथाविधं पुरा राज्यं प्राप्य योगं सुतारया । सेवस्व मुदितोऽत्यन्तभग्ननिःशेषकण्टकम् ॥९५॥

पड़ता है तबतक इन दोमें से एकको कैसे मारूँ ? ॥८२॥ इन दोनों वानर राजाओंका अन्तर जाने बिना मैं कदाचित् मित्रोंमें श्रेष्ठ सुग्रीवको ही न मार बैठूँ ॥८३॥

इस प्रकार मुहूर्त भर मन्त्रियोंके साथ विधिपूर्वक विचार कर उदासीन भावसे हनुमान् अपने नगरको वापस चला गया ॥८४॥ हनुमान्के वापस लौट जानेपर सुग्रीव बहुत व्याकुल हुआ। और जो इसके समान दूसरा मायावी सुग्रीव था वह आशा लगाये हुए उसी प्रकार स्थित रहा आया ॥८५॥

यद्यपि सुग्रीव हजारों प्रकारकी मायासे स्वयं सम्पन्न है, महाशक्तिशाली है, महान् अभ्युदयका धारक है, और उल्कारूप अस्त्रोंका धारक है तो भी सन्देहको प्राप्त हो रहा है यह बड़े कष्टकी बात है ॥८६॥ हे देव ! व्यसनरूपी मगरमच्छोंसे भरे हुए संशयरूपी सागरमें निमग्न इस सुग्रीवको कौन तारेगा यह नहीं जान पड़ता ॥८७॥

हे राघव ! स्त्रीवियोगरूपी दावानलसे प्रदीप्त तथा कृत उपकारको माननेवाले इस कपिध्वज सुग्रीवकी सेवा स्वीकृत करो, प्रसन्न होओ ॥८८॥ यह आपको आश्रितवत्सल सुनकर आपकी शरण आया है, यथार्थमें आप-जैसे महापुरुषका शरीर परदुःखका नाश करनेवाला है ॥८९॥

तदनन्तर उसके वचन सुनकर जिनके हृदय आश्चर्यसे व्याप्त हो रहे थे ऐसे राम आदि सभी लोग 'धिक्' 'अहो" ही' आदि शब्दोंका उच्चारण करने लगे ॥९०॥ रामने विचार किया कि अब यह दुःखके कारण मेरा दूसरा मित्र हुआ है क्योंकि प्रायःकर समान मनुष्योंमें ही प्रेम होता है ॥९१॥ यदि यह मेरा प्रत्युपकार करनेमें समर्थ नहीं होगा तो मैं निर्ग्रन्थ साधु होकर मोक्षका साधन करूँगा ॥९२॥

इस प्रकार ध्यान कर तथा विराधित आदिके साथ क्षण-भर मन्त्रणा कर सुग्रीवको बुला रामने उससे कहा ॥९३॥ कि तुम चाहे यथार्थ सुग्रीव होओ और चाहे कृत्रिम सुग्रीव मैं तुम्हें चाहता हूँ और तुम्हारे सदृश जो दूसरा सुग्रीव है उसे मारकर तुम्हारा अपना पद तुम्हें देता हूं ॥९४॥ तुम पहलेकी भाँति अपना राज्य प्राप्त कर समस्त शत्रुओंको निर्मूल करते हुए प्रसन्न हो सुताराके साथ समागमको प्राप्त होओ ॥९५॥

---

१. -द्विद्विषमहं म. । २. शृणु वत्सकम् म. । ३. पद्माभः ख., ज., क. । ४. -नुरोधाद्यैः म. ।

यदि मे निश्चयोपेतः प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् । सीतां तां गुणसंपूर्णां भद्रोपलभसे प्रियाम् ॥९६॥
कपिकेतुरुवाचेदं यदि तां तव न प्रियाम् । सप्ताहाऽभ्यन्तरे वेमि विशामि ज्वलनं तदा ॥९७॥
अमीभिरक्षरैः पद्मः परं प्रह्लादमाश्रितः । शशाङ्करश्मिसदृशैर्दधानः कुमुदोपमाम् ॥९८॥
प्रवाहेणामृतस्येव प्लावितो विकचाननः । रोमाञ्चनिर्भरं देहं बभार च समन्ततः ॥९९॥
अन्योन्यस्य वयं द्रोहरहिताविति चादरात् । [1]समयं चक्रतुर्जैनं तस्मिन्नेव जिनालये ॥१००॥
ततो रथवरारूढौ महासामन्तसेवितौ । किष्किन्धनगरं तेन प्रयातौ रामलक्ष्मणौ ॥१०१॥
समीपीभूय कूटश्च प्रहितः कपिमौलिना । निर्भर्त्सितश्च कूटेन सुग्रीवेणागतः पुनः ॥१०२॥
ततश्चालीकसुग्रीवः संनद्ध स्यन्दनस्थितः । युद्धाय निर्ययौ क्रुद्धः पृथुसैन्यसमावृतः ॥१०३॥
अथ कूटभटाटोपः संकटश्चण्डनिस्वनः । संप्रहारो महानासीद्गजसंलग्नसैनयोः ॥१०४॥
सुग्रीवमेव सुग्रीवो जगामोद्ग्रीवमुद्गरुद् । विद्यायाः करणासक्तो दृढं योद्धुं समुद्यतः ॥१०५॥
संप्रहारो महान् जातस्तयोश्चक्रेषुसाथकैः । अन्धकारीकृताकाशश्चिरमप्रास्तयोः श्रमम् ॥१०६॥
अथ सुग्रीवमाहत्य गदस्यालीकवानरी । विज्ञाय मृत इत्येवं तुष्टः परमुपाविशत् ॥१०७॥
निश्चेष्टविग्रहश्चायं सत्यशाखामृगध्वजः । निजं विविरमानीतः परिवार्य सुहृज्जनैः ॥१०८॥

हे भद्र ! मैंने जो निश्चय किया है उसे प्राप्त करनेके बाद यदि तुम मेरी प्राणाधिका तथा गुणोंसे परिपूर्ण सीताका पता चला सकें तो उत्तम बात है ॥९६॥ यह सुनकर सुग्रीवने कहा कि यदि मैं सात दिनके भीतर आपकी प्रियाका पता न चला दूँ तो अग्निमें प्रवेश करूँ ॥९७॥

चन्द्रमाकी किरणोंके समान सुग्रीवके इन अक्षरोंसे राम कुमुदकी उपमा धारण करते हुए परम आह्लादको प्राप्त हुए ॥९८॥ अमृतके प्रवाहसे तर हुएके समान उनका मुख-कमल खिल उठा तथा शरीर सब ओरसे रोमांचोंसे व्याप्त हो गया ॥९९॥ हम दोनों परस्पर द्रोहसे रहित हैं—एक दूसरेके मित्र हैं इस प्रकार आदरके साथ उन दोनोंने उस जिनालयमें जिन-धर्मानुसार शपथ धारण की ॥१००॥

तदनन्तर महासामन्तोंसे सेवित राम-लक्ष्मण सुग्रीवके साथ उत्तम रथपर आरूढ़ हो किष्किन्ध नगरकी ओर चले ॥१०१॥ नगरके समीप पहुँचकर मुकुटमें वानरका चिह्न धारण करनेवाले सुग्रीवने दूत भेजा सो मायावी सुग्रीवके द्वारा तिरस्कृत होकर पुनः वापस आ गया ॥१०२॥ तदनन्तर क्रोधसे भरा कृत्रिम सुग्रीव तैयार हो रथपर बैठकर बड़ी सेनासे आवृत होता हुआ युद्धके लिए निकला ॥१०३॥

अथानन्तर जिनके आगे सेना लग रही थी ऐसे उन दोनोंमें महायुद्ध प्रारम्भ हुआ। उनका वह महायुद्ध कपटी योद्धाओंके विस्तारसे युक्त था, संकटपूर्ण था तथा तीक्ष्ण शब्दोंसे सहित था ॥१०४॥ जो तीक्ष्ण क्रोधका धारक था, तथा विद्याओंके करनेमें आसक्त था ऐसा सुग्रीव, अहंकारसे ग्रीवाके ऊपर उठानेवाले कृत्रिम सुग्रीवसे दृढ़ युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ ॥१०५॥ चिरकाल तक युद्ध करनेके बाद भी जिनमें थकावटका अंश भी नहीं था ऐसे उन दोनों सुग्रीवोंमें महान् युद्ध हुआ। उनके उस युद्धमें चक्र, बाण तथा खड्ग आदि शस्त्रोंसे आकाशमें अन्धकार फैल रहा था ॥१०६॥

अथानन्तर कृत्रिम सुग्रीव, गदाके द्वारा सुग्रीवको चोट पहुँचाकर तथा 'यह मर गया' ऐसा समझकर सन्तुष्ट होता हुआ नगरमें प्रविष्ट हुआ ॥१०७॥ इधर जिसका शरीर निश्चेष्ट पड़ा था

---

१. शपथं ।

अब्रवीद्धृष्टसंज्ञश्च नाथ हस्तमुपागतः । जीवन्नेव कथं चौरः पुरं मम पुनर्गतः ॥१०९॥
नूनं न भवितव्यं मे दुःखस्यान्तेन राघव । [1]भवन्तमपि संप्राप्य किंतु कष्टमतः परम् ॥११०॥
ततः पद्मप्रभोऽवोचन्नवतोर्युध्यमानयोः । विशेषो न मया ज्ञातो न हतस्तेन ते समः ॥१११॥
अज्ञानदोषतो नाशं मानैषीस्त्वैव जातुचित् । सुहृदं जैनवाक्येन जनितं प्रियसंगमम् ॥११२॥
अथाहूतः पुनः प्राप्तः सुग्रीवप्रतिमो बली । संरम्भवह्निना दीप्तः पक्षेणाभिमुखीकृतः ॥११३॥
अद्रिणेव स रामेण क्षोभितः सागरोपमः । निस्त्रिंशग्राहसंघातसंचारास्यन्तसंकुलः ॥११४॥
लक्ष्मणेनैव सुग्रीवः परिष्वज्य दृढं धृतः । स्त्रीवैरतः समीपं मा शत्रोः कोपेन गादिति ॥११५॥
ततः ससार पद्माभः सुग्रीवाभं समाह्वयन् । ज्वलन् संग्रामसंप्राप्तिजनितेनोरुतेजसा ॥११६॥
अथ पद्मं समालोक्य समापृच्छ्य च साधकम् । वैताली निःसृता विद्या नारीवोद्धतचेष्टिता ॥११७॥
सुग्रीवाकृतिनिर्मुक्तं वानराङ्कविवर्जितम् । सहसा साहसगतिमिन्द्रनीलनगोपमम् ॥११८॥
स्वभावमागतं दृष्ट्वा निःक्रान्तमिव कञ्चुकात् । शाखामृगध्वजाः सर्वे संक्षुभ्यैकत्वमाश्रिताः ॥११९॥
नानायुद्धाश्च संक्रुद्धा बलिनस्तमयूयुधन् । सोऽयं सोऽयमतिस्वानं कुर्वाणाः पश्यतेति च ॥१२०॥
तेन तेजस्विना सैन्यं तद्द्विषामुरुशक्तिना । पुरस्कृतं दिशो भेजे यथा [2]तूलं नभस्वता ॥१२१॥

ऐसे यथार्थ सुग्रीवको उसके मित्र जन घेरकर अपने शिविरमें ले आये ॥१०८॥ जब सचेत हुआ तब रामसे बोला कि नाथ! हाथमें आया चोर जीवित ही पुनः मेरे नगरमें कैसे चला गया ॥१०९॥

जान पड़ता है कि राघव! अब मेरे दुःखका अन्त नहीं होगा और फिर आपको प्राप्त कर भी। इससे बढ़कर कष्ट और क्या होगा? ॥११०॥ तदनन्तर रामने कहा कि मैं युद्ध करते हुए तुम दोनोंकी विशेषता नहीं जान सका था इसीलिए मैंने तुम्हारी सदृशता करनेवाले सुग्रीवको नहीं मारा है ॥१११॥ जिनागमका उच्चारण कर तू मेरा प्रिय मित्र हुआ है सो कहीं अज्ञानरूपी दोषसे तुझे ही नष्ट नहीं कर दूँ इस भयसे मैं चुप रहा ॥११२॥

अथानन्तर उस कृत्रिम सुग्रीवको फिरसे ललकारा सो वह बलवान् क्रोधाग्निसे दीप्त होता हुआ पुनः आया तथा रामने उसका सामना किया ॥११३॥ जिस प्रकार पर्वतके द्वारा समुद्र क्षोभको प्राप्त होता है उसी प्रकार क्रूर योद्धारूपी मगरमच्छोंके संचारसे अतिशय भरा हुआ वह समुद्र तुल्य कृत्रिम सुग्रीव रामके द्वारा क्षोभको प्राप्त हुआ ॥११४॥ इधर लक्ष्मणने वास्तविक सुग्रीवका दृढ़ आलिंगन कर उसे इस अभिप्रायसे रोक लिया कि कहीं यह स्त्रीके वैरके कारण क्रोधसे शत्रुके पास न पहुँच जावे ॥११५॥

तदनन्तर युद्धकी प्राप्तिसे उत्पन्न विशाल तेजसे देदीप्यमान राम, कृत्रिम सुग्रीवको ललकारते हुए आगे बढ़े ॥११६॥ अथानन्तर रामको आया देख सिद्ध करनेवालेसे पूछकर वैताली विद्या उसके शरीरसे इस प्रकार निकल गयी कि जिस प्रकार उद्धत चेष्टाको धारण करनेवाली स्त्री निकल जाती है ॥११७॥ तदनन्तर जो सुग्रीवकी आकृतिसे रहित था, जिसका वानर चिह्न दूर हो चुका, जो इन्द्रनील मणिके समान जान पड़ता था, और जो आवरणसे निकले हुएके समान अपने स्वाभाविक रूपमें स्थित था ऐसे साहसगतिको देखकर सब वानरवंशी क्षुभित हो एकरूपताको प्राप्त हो गये ॥११८-११९॥ नाना शस्त्रोंसे सहित, क्रोध भरे बलवान् वानर 'यह वही है यह वही है देखो देखो' आदि शब्द करते हुए उससे युद्ध करने लगे ॥१२०॥ सो विशाल शक्तिके धारक उस तेजस्वीने शत्रुओंकी उस सेनाको जब आगे कर खदेड़ा तब वह दिशाओंको उस

---

१. भवन्त- ख. । २. किंतु म. । ३. नूनं म. ।

शरवत्ससायकं कृत्वा धनुरुद्धतविक्रमः । अभावत्पद्मभुद्दिश्य घनाघनचयोपमः ॥१२२॥
शरधारां क्षिपत्यस्मिन् भृशत्याग्रहितान्तरम् । विधाय मण्डपं बाणैरस्थात् काकुत्स्थनन्दनः ॥१२३॥
समं साहसयानेन पद्मस्याभूत्परं सुखम् । आनन्दो हि स पद्मस्य चिरं यः कुरुते रणम् ॥१२४॥
ततः कृत्वा रणक्रीडां चिरमूर्जितविक्रमः । क्षुरप्रैरस्य कवचं चिच्छेद रघुनन्दनः ॥१२५॥
तितवाकारदेहोऽथ कृतस्तीक्ष्णैः शिलीमुखैः । गतः सुसाहसो भूमिमालिलिङ्ग गतप्रभः ॥१२६॥
समासाद्य च तैः सर्वैः कुतूहलिभिरीक्षितः । दृष्टः साहसयानोऽसाविति ज्ञातश्च निश्चितम् ॥१२७॥
ततः सम्भ्रातृकं पद्मं सुग्रीवः पर्यपूजयत् । स्तुतिभिश्चारुभिस्तुष्टावोदासंमदः ॥१२८॥
पुरे कारयितुं शोभां परमां हतकण्टके । यातः कान्तासमायोगं समुत्कण्ठां वहन् पराम् ॥१२९॥
भोगसागरमग्नोऽसौ नैवाज्ञासीदहर्निशम् । [1]चिरंदृष्टः सुतारायां न्यस्तनिःशेषचेतनः ॥१३०॥
रात्रिमेकां बहिर्नीत्वा पद्मप्रमुखा नृपाः । ऋद्ध्या प्राविशन्न किष्किन्धं महाबलसमन्विताः ॥१३१॥
आनन्दोद्यानमाश्रित्य नन्दनश्रीविडम्बकम् । स्वेच्छयावस्थितिं चक्रुर्लोकपालसुरश्रियः ॥१३२॥
तस्मा[2] वर्णनमेवातिवर्णनारम्यतापि सु[3] । उद्यानस्यान्यथा कोऽसौ शक्नुयात्तद्गुणवर्णने ॥१३३॥
रम्यं चैत्यगृहं तत्र न्यस्तचन्द्रप्रभार्चनम् । तद्विघ्नघ्नं प्रणम्यैतावासीनौ रामलक्ष्मणौ ॥१३४॥

प्रकार प्राप्त हुई जिस प्रकारकी पवनसे प्रेरित रूई प्राप्त होती है ॥१२१॥ उस समय उद्धत पराक्रम तथा मेघसमूहकी उपमा धारण करनेवाला साहसगति, धनुषपर बाण चढ़ाकर रामकी ओर दौड़ा ॥१२२॥ उधर जब वह लगातार बाणसमूहकी वर्षा कर रहा था तब इधर राम भी बाणोंके द्वारा मण्डप बनाकर स्थित थे—राम भी घनघोर बाणोंकी वर्षा कर रहे थे ॥१२३॥ इस प्रकार रामका साहसगतिके साथ परम युद्ध हुआ सो ठीक ही है क्योंकि जो चिरकाल तक युद्ध करता था वह रामको आनन्ददायी होता था ॥१२४॥ तदनन्तर अत्यधिक पराक्रमके धारक रामचन्द्रने चिरकाल तक रणक्रीड़ा कर बाणोंसे उसका कवच छेद दिया ॥१२५॥ तत्पश्चात् तीक्ष्ण बाणोंसे जिसका शरीर चलनीके समान सछिद्र हो गया था ऐसे साहसगतिने प्रभारहित हो पृथिवीका आलिंगन किया अर्थात् प्राणरहित हो पृथिवीपर गिर पड़ा ॥१२६॥ कुतूहलसे भरे सब विद्याधरोंने आकर उसे देखा तथा निश्चयसे जाना कि यह साहसगति ही है ॥१२७॥

तदनन्तर उत्कट हर्षके धारक सुग्रीवने भाई—लक्ष्मण सहित रामकी पूजा की तथा मनोहर स्तुतियोंसे स्तुति की ॥१२८॥ शत्रुरहित नगरमें परमशोभा करानेके लिए परम उत्कण्ठाको धारण करता हुआ वह स्त्रीके साथ समागमको प्राप्त हुआ ॥१२९॥

वह भोगरूपी सागरमें ऐसा मग्न हुआ कि रात-दिनका भी उसे ज्ञान नहीं रहा। वह चिरकाल बाद दिखा था अतः सुताराके लिए ही उसने अपनी समस्त चेतना समर्पित कर दी ॥१३०॥ महाबलसे सहित राम आदि प्रमुख राजाओंने एक रात्रि नगरसे बाहर बिताकर वैभवके साथ किष्किन्ध नगरमें प्रवेश किया ॥१३१॥ वहाँ लोकपाल देवोंके समान शोभाको धारण करनेवाले राम आदि प्रमुख राजा, नन्दनवनकी शोभाको विडम्बित करनेवाले आनन्द नामक उद्यानमें स्वेच्छासे ठहरे ॥१३२॥

उस उद्यानकी सुन्दरताका वर्णन नहीं करना ही उसकी सबसे बड़ी सुन्दरता थी अन्यथा उसके गुण वर्णन करनेमें कौन समर्थ है ? ॥१३३॥ उस उद्यानमें चन्द्रप्रभ भगवान्‌की प्रतिमासे सुशोभित मनोहर चैत्यालय था सो समस्त विघ्नोंको नष्ट करनेवाले चन्द्रप्रभ भगवान्‌को नमस्कार कर राम-लक्ष्मण वहाँ रहने लगे ॥१३४॥

---

१. चिरं दृष्टः म. । २. स्य वर्णन-म. । ३. पितुः म. ।

बहिश्चैत्यालयस्यास्य चन्द्रोदरसुतादयः । स्वसैन्यावासनं कृत्वा बभूवुर्विगतश्रमाः ॥१३५॥
गुणश्रुत्यनुरागेण स्वयंवरणबुद्धयः । त्रयोदश सुताः पद्मं सुग्रीवस्य ययुर्मुदा ॥१३६॥
चन्द्राभा नाम चन्द्रास्या द्वितीया हृदयावली । अन्या हृदयधर्मेति श्रेयसः [1]संकटोपमा ॥१३७॥
तुरीयानुन्धरी नाम्ना श्रीकान्ता श्रीरिवापरा । सुन्दरी सर्वतश्चित्तसुन्दरीत्यपरोदिता ॥१३८॥
अन्या सुरवती नाम सुरस्त्रीसमविभ्रमा । मनोवाहिन्यभिख्याता मनोवहनकोविदा ॥१३९॥
चारुश्रीरिति विख्याता चारुश्रीः परमार्थतः । मदनोत्सवभूतान्या प्रसिद्धा मदनोत्सवा ॥१४०॥
अन्या गुणवती नाम गुणमालाविभूषिता । एका पद्मावती ख्याता [2]बुद्धपद्मसमानना ॥१४१॥
तथा जिनमतिर्नित्यं जिनपूजनतत्परा । एताः कन्याः समादाय ययौ तासां परिच्छदः ॥१४२॥
प्रणम्य च जगौ रामं नाथैतासां स्वयंवृतम् । शरणं भव लोकेश कन्यानां बन्धुरुत्तमः ॥१४३॥
दुर्विदग्धैः खलैर्भाभूत् विवाहोऽस्माभिरित्यलम् । जातमात्रा मनः श्रुत्वा [illegible] ॥१४४॥
ततो ह्रीभारनम्रास्या वशिताः शोभया विभुम् । पद्मामुपसंप्राप्ताः पद्मामा नवयौवनाः ॥१४५॥
विद्युद्वह्निसुवर्णाब्जगर्भभासो महीयसाम् । देहभासो विकासेन तासां रेजे नभस्तलम् ॥१४६॥
उपविश्य विनीतास्ता लावण्यान्वितविग्रहाः । समीपे पद्मनाभस्य तस्थुः पूजितचेष्टिताः ॥१४७॥

चन्द्रोदरके पुत्र—विराधित आदि उस चैत्यालयके बाहर अपनी सेनाएँ ठहराकर श्रमसे रहित हुए ॥१३५॥

तदनन्तर रामके गुण श्रवण कर अनुरागसे भरी सुग्रीवकी तेरह पुत्रियाँ स्वयंवरणकी इच्छासे हर्षपूर्वक वहाँ आयीं ॥१३६॥ वे तेरह पुत्रियाँ इस प्रकार थीं—पहली चन्द्रमाके समान मुखवाली चन्द्रमा, दूसरी हृदयावली, तीसरी हृदयके लिए संकटकी उपमा धारण करनेवाली हृदयधर्मा, चौथी अनुन्धरी, पाँचवीं द्वितीय लक्ष्मीके समान श्रीकान्ता, छठी सर्वप्रकारसे सुन्दर चित्त सुन्दरी, सातवीं देवांगनाके समान विभ्रमको धारण करनेवाली सुरवती, आठवीं मन के धारण करनेमें निपुण मनोवाहिनी, नौवीं परमार्थमें उत्तम शोभाको धारण करनेवाली चारुश्री, दशवीं मदनके उत्सवस्वरूप मदनोत्सवा, ग्यारहवीं गुणोंकी मालासे विभूषित गुणवती, बारहवीं विकसित कमलके समान मुखको धारण करनेवाली पद्मावती और तेरहवीं निरन्तर जिनपूजनमें तत्पर रहनेवाली जिनमती। इन सब कन्याओंको लेकर उनका परिकर रामके पास आया ॥१३७–१४२॥

रामको प्रणाम कर उसने कहा कि हे नाथ! आप इन सब कन्याओंके स्वयं-वृत शरण होओ। हे लोकेश! इन कन्याओंके उत्तम बन्धु आप ही हैं ॥१४३॥ गोत्रकी रक्षा करनेवाले आपका नाम सुनकर इन कन्याओंका मन स्वभावसे ही ऐसा हुआ कि हमारा विवाह नीच विद्याधरोंके साथ न हो ॥१४४॥

तदनन्तर लज्जाके भारसे जिनके मुख नम्र हो रहे थे, जो शोभासे युक्त थीं, जिनकी आभा कमलके समान थी तथा जो नवयौवनसे परिपूर्ण थीं ऐसी वे सब कन्याएँ राजा रामचन्द्रके पास आयीं ॥१४५॥

बिजली, अग्नि, सुवर्ण तथा कमलके भीतरी दलके समान उनकी शरीरकी विपुल कान्तिके विकाससे आकाश सुशोभित होने लगा ॥१४६॥

विनीत, लावण्ययुक्त शरीरकी धारक एवं प्रशस्त चेष्टाओंसे युक्त वे सब कन्याएँ रामके पास आकर बैठ गईं ॥१४७॥

---

१. कण्टकोपमा म. । २. बुद्धपद्मा समानसा- म. ।

आर्य्याछन्दः

रमते कचिदपि चित्तं पुरुषवरेः पूर्वजन्मसंबन्धात् ।
एषा भवपरिवर्ते सर्वेषां श्रेणिकावस्था ॥१४८॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे विटसुग्रीववधाख्यानं नाम सप्तचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४७॥

□

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! पुरुषोंमें सूर्य समान रामचन्द्रका भी चित्त किन्हींमें रमणको प्राप्त हुआ सो यह दशा समस्त संसारी जीवोंकी है ॥१४८॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें विट सुग्रीवके वधका कथन करनेवाला सैंतालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४७॥

□

अष्टचत्वारिंशत्तमं पर्व

अथोपकारुणं[1] तस्य वाञ्छन्त्यो वरकन्यकाः । बहुभेदाः क्रियाश्चक्रुर्देवलोकादिवागताः ॥१॥
वीणादिवादनैस्तासां गीतैश्चातिमनोहरैः । ललिताभिश्च लीलाभिर्हृतं तस्य न मानसम् ॥२॥
सर्वाकारसमानीतो विभवस्तस्य पुष्कलः । न भोगेषु मनश्चक्रे वैदेहीं प्रति संहृतम् ॥३॥
अनन्यमानसोऽसौ हि मुक्तिनिःशेषचेष्टितः । सीतां मुनिरिव ध्यायन् सिद्धिमास्थान्महादरः[2] ॥४॥
न शृणोति ध्वनिं किंचिद् रूपं पश्यति नापरम् । जानकीमयमेवास्य सर्वं प्रत्यक्षमासते ॥५॥
न करोति कथामन्यां कुरुते जानकीकथाम् । अन्यामपि च पार्श्वस्थां जानकीयमिमाषते ॥६॥
यायसं पृच्छति प्रीत्या गिरैव[3] कलनादया । भ्राम्यता विपुलं देशं दृष्टा स्यात् मैथिली क्वचित् ॥७॥
सरस्युच्छिन्नपद्मादिकिञ्जल्पकालंकृताम्भसि । चक्राह्वमिथुनं दृष्ट्वा किंचित् संचिन्त्य कुप्यति ॥८॥
सीताशरीरसंपर्कशङ्कया बहुमानवत् । निमीलन्नयनो किंचित् समालिङ्गति[4] मारुतम् ॥९॥
एतस्यां सा निषण्णेति वसुधां बहु मन्यते । अनुगृह्णितस्तया[5] नूनमिति चन्द्रमुदीक्षते ॥१०॥
अचिन्तयच्च किं सीता मद्वियोगाग्निदीपिता । सामवस्थां भवेत् प्राप्ता स्यादस्या यापदैहिकीम् ॥११॥
किमियं जानकी नैव किन्तु मन्दाभिलेखिता । किंवृत्तमिदं चित्रमयमत्यद्भुतकम् ॥१२॥

अथानन्तर श्रीरामको प्रसन्न करनेकी इच्छा करती हुई वे उत्तम कन्याएँ नाना प्रकारकी क्रियाएँ करने लगीं। वे कन्याएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो स्वर्गलोकसे ही आयी हों ॥१॥ वे कन्याएँ कभी वीणा आदि वादित्र बजाती थीं, कभी अत्यन्त मनोहर गीत गाती थीं और कभी नृत्यादि ललित क्रीडाएँ करती थीं फिर भी उनकी इन चेष्टाओंसे रामका मन नहीं हरा गया ॥२॥ यद्यपि उन्हें सब प्रकारकी पुष्कल सामग्री प्राप्त थी तो भी सीताकी ओर आकर्षित मनको उन्होंने भोगोंमें नहीं लगाया ॥३॥ जिस प्रकार मुनि मुक्तिका ध्यान करते हैं उसी प्रकार राम अन्य सब चेष्टाओंको छोड़कर अनन्यचित्त हो आदरके साथ सीताका ही ध्यान करते थे ॥४॥ वे न तो उन कन्याओंके शब्दोंको सुनते थे और न उनके रूपको ही देखते थे। उन्हें सब संसार सीतामय ही जान पड़ता था ॥५॥

वे एक सीताकी ही कथा करते थे और दूसरी कथा ही नहीं करते थे। यदि पासमें खड़ी किसी दूसरी स्त्रीसे बोलते भी थे तो उसे सीता समझकर ही बोलते थे ॥६॥ वे कभी मधुरवाणीमें कौएसे इस प्रकार पूछते थे कि हे भाई! तू तो समस्त देशमें भ्रमण करता है अतः तूने कहीं सीताको तो नहीं देखा ॥७॥ खिले हुए कमल आदि पुष्पोंकी परागसे जिसका जल अलंकृत था ऐसे सरोवरमें क्रीड़ा करते चकवा-चकवीके युगलको देखकर वे कुछ सोच-विचारमें पड़ जाते तथा क्रोध करने लगते ॥८॥ कभी नेत्र बन्द कर बड़े सम्मानके साथ वायुका यह विचारकर आलिंगन करते कि सम्भव है कभी इसने सीताका स्पर्श किया हो ॥९॥ इस पृथिवी पर सीता बैठी थी। यह सोचकर उसे धन्य समझते और चन्द्रमाको यह सोचकर ही मानो देखते थे कि यह उसके द्वारा अपनी आभासे तिरस्कृत किया गया था ॥१०॥ वे कभी यह विचार करने लगते कि सीता मेरी वियोगरूपी अग्निसे जलकर कहीं उस अवस्थाको तो प्राप्त नहीं हो गयी होगी जो विपत्तिग्रस्त प्राणियोंकी होती है ॥११॥ क्या यह सीता है? मन्द-मन्द लेखसे लिखी हुई कथा नहीं है? क्या

---

१. °न्तरं क., २. सिद्धिं मास्थान् म., ३. गिरेव म., ४. समालिङ्गत् क., ५. °या म.।

एते किं लोचने तस्या नैते पुष्पे [1]षडंघ्रिके । करोऽयं किं चलस्तस्या नायं प्रत्यग्रपल्लवः ॥१३॥
केशभारं मयूरेषु तस्याः पश्यामि सुन्दरम् । अपर्याप्तशशाङ्के च ललाटीमलिकसंभवाम् ॥१४॥
त्रिवर्णाम्भोजखण्डेषु श्रियं लोचनगोचराम् । शोणपल्लवमध्यस्थसितपुष्पे स्मितश्रियम् ॥१५॥
स्तबकेषु सुजातेषु कान्तिभास्सु [3]स्तनश्रियम् । जिनस्नपनवेदीनां शोभां मध्येषु मध्यमाम् ॥१६॥
तासामेवोर्ध्वभागेषु नितम्बभरसाकृतिम् । ऊरुशोभां सुजातासु कदलीस्तम्भिकासुताम् ॥१७॥
पद्मेषु चरणाभिख्यां [4] स्थलसंप्राप्तजन्मसु । शोभां तु समुदायस्य तस्याः पश्यामि न क्वचित् ॥१८॥
चिरयति कथं सोऽपि सुग्रीवः कारणं नु किम् । [6]दृष्टा नाम भवेत् सीता किं तेन शुभदर्शिना ॥१९॥
मद्वियोगेन तप्ता वा विलीना तां सुशीलकाम् । ज्ञात्वा निवेदनेऽशक्तः किमसौ नैति दर्शनम् ॥२०॥
किं वा कृतार्थतां [7]प्राप्तः प्राप्य [8] राज्यं पुनर्निजम् । स्वस्थीभूतो भवेद् दुःखं मम विस्मृत्य खेचरः ॥२१॥
एवं चिन्तयतस्तस्य बाष्पविप्लुतचक्षुषः । स्खलत्सकलशरीरस्य शिथिलावरजो [9] मनः ॥२२॥
ततः ससंभ्रम[10]स्तान्तःकोपारुणितलोचनः । ययौ सुग्रीवमुद्दिश्य नग्नासिविलसत्करः ॥२३॥
गच्छतस्तस्य वातेन जङ्घास्तम्भसमुद्भवेन । दोलायितमभूत् सर्वं महोत्पाताकुलं पुरम् ॥२४॥
वेगनिक्षिप्तनिःशेषराजाधिकृतमानवैः । प्रविश्य वद्गृहं दृष्ट्वा सुग्रीवोऽभेदभव्यधात् ॥२५॥
आः पाप दयितादुःखनिमग्ने परमेश्वरे । भार्यया सहितः सौख्यं कथं भजसि दुर्मते ॥२६॥

यह उसका वस्त्र है, चंचल पत्रोंका समूह नहीं है ? ॥१२॥ क्या ये उसके नेत्र हैं, भ्रमर सहित पुष्प नहीं हैं ? और क्या यह उसका चंचल हाथ है नूतन पल्लव नहीं है ? ॥१३॥ मैं उसका सुन्दर केशपाश मयूरियोंमें, ललाटकी शोभा अर्धचन्द्रमें, नेत्रोंकी शोभा तीन रंगके कमलोंमें, मन्द मुसकानकी शोभा लाल-लाल पल्लवोंके मध्यमें स्थित पुष्पमें, स्तनोंकी शोभा कान्तिसम्पन्न उत्तम गुच्छोंमें, मध्यभागकी शोभा जिनाभिषेककी वेदिकाओंके मध्यभागमें, नितम्बकी स्थूल आकृति उन्हीं वेदिकाओंके ऊर्ध्वभागमें, ऊरुओंकी अनुपम शोभा केलेके सुन्दर स्तम्भोंमें, और चरणोंकी शोभा स्थलकमलों अर्थात् गुलाबके पुष्पोंमें देखता हूँ परन्तु इन सबके समुदाय स्वरूप सीताकी शोभा किसीमें नहीं देखता हूँ ॥१४–१८॥

वह सुग्रीव भी बिना कारण क्यों देर कर रहा है? शुभ पदार्थोंको देखनेवाले उसने क्या किसीसे सीताका समाचार पूछा होगा? ॥१९॥ अथवा वह शीलवती मेरे वियोगसे सन्तप्त होकर नष्ट हो गयी है ऐसा वह जानता है तो भी कहनेमें असमर्थ होता हुआ ही क्या दिखाई नहीं देता है? ॥२०॥ अथवा वह विद्याधर अपना राज्य पाकर कृतकृत्यताको प्राप्त हो गया है तथा मेरा दुःख भूलकर अपने आनन्दमें निमग्न हो गया है ॥२१॥ इस प्रकार विचार करते-करते जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त हो गये थे तथा जिनका शरीर ढीला और आलस्ययुक्त हो गया था ऐसे रामके अभिप्रायको लक्ष्मण समझ गये ॥२२॥

तदनन्तर जिनका चित्त क्षोभसे युक्त था, नेत्र क्रोधसे लाल थे, और जिनका हाथ नंगी तलवारपर सुशोभित हो रहा था ऐसे लक्ष्मण सुग्रीवको लक्ष्य कर चले ॥२३॥ उस समय जाते हुए लक्ष्मणकी जंघाओंरूपी स्तम्भोंसे उत्पन्न वायुके द्वारा समस्त नगर ऐसा कम्पायमान हो गया मानो महान् उत्पातसे आकुल होकर ही कम्पायमान हो गया हो ॥२४॥ राजाके समस्त अधिकारी मनुष्योंको अपने वेगसे गिराकर वे सुग्रीवके घरमें प्रविष्ट हो सुग्रीवसे इस प्रकार कहने लगे ॥२५॥ अरे पापी ! जब कि परमेश्वर-राम स्त्रीके दुःखमें निमग्न हैं तब रे दुर्बुद्धे ! तू स्त्रीके साथ सुखका

---

१. पुष्पेषु षट्पदाः म. । २. शशाङ्के व म. । ३. नतश्रियम् (?) म. । ४. 'अभिख्या नामशोभयोः' इत्यमरः । ५. रंप्रापनजन्मसु (?) म. । ६. वृष्ट्वा म. । ७. प्राप्ता म. । ८. प्राप्ये म. । ९. अनुजो लक्ष्मणः । १०. ससंभ्रमः स्वान्तः म. । ११. -मानसः म. ।

अहं त्वां खेचरप्वाङ्क्ष भोगे दुर्लक्षितं [illegible] । नयामि यत्र नाकेन कृत्रिमः सङ्गतः [illegible] ॥२७॥
एवमुग्रान् विमुञ्चन्तं वर्णान् क्रोपकणानिव[1] । लक्ष्मीधरं प्रणामेन सुग्रीवः शममानयत् ॥२८॥
उवाच चेदमेकं मे क्षम्यतां देव विस्मृतम् । क्षुद्राणां हि भवत्येव मादृशां दुर्विचेष्टितम् ॥२९॥
तस्यार्घपाणयो दाराः संभ्रान्ताः कम्पमूर्तयः । संप्रणामेन निःशेषं जहुर्लक्ष्मणसंभ्रमम् ॥३०॥
सज्जनाम्भोदवाक्तोयधारानिकरसंगतः । प्रयाति विलयं क्वापि जनारणिभवोऽनलः ॥३१॥
प्रणाममात्रसाध्यो हि महतां चेतसः शमः । महद्भिरपि नो दानैरुपशाम्यन्ति दुर्जनाः ॥३२॥
प्रतिज्ञां स्मारयंस्तस्य चक्रे लक्ष्मीधरः परम् । उपकारं यथा योगी यक्षदत्तस्य मातरम् ॥३३॥
पप्रच्छ मगधाधीशो गणेशतरमिहान्तरे । यक्षदत्तस्य वृत्तान्तं नाथेच्छामि विवेदितुम् ॥३४॥
ततो गणधरोऽवोचच्छृणु श्रेणिकभूपते । चकार यक्षदत्तस्य यथा मातुः स्मृतिं मुनिः ॥३५॥
अस्ति क्रौञ्चपुरं नाम नगरं तत्र पार्थिवः । यक्षसंज्ञः प्रिया तस्य राजिलेति प्रकीर्तिता ॥३६॥
तत्पुत्रो यक्षदत्ताख्यः स बाह्यां विहरन् सुखम् । अपश्यत् परमां नारीं स्थितां दुर्विधपाटके ॥३७॥
स्मरेषुहृतचित्तोऽसौ तामुद्दिश्य व्रजन्निशि । मुनिनावधियुक्तेन मैवमित्यभ्यभाषत ॥३८॥
ततस्तं विद्युदुद्योतद्योतितं वृक्षमूलगम् । ऐक्षतायतनामानं मुनिं सायकपाणिकः ॥३९॥
तमुपेत्य नतिं कृत्वा पप्रच्छ विनयान्वितः । भगवन् किं त्वया मेति निषिद्धं कौतुकं मम ॥४०॥

उपभोग क्यों कर रहा है ? ॥२६॥ अरे दुष्ट ! नीच विद्याधर ! मैं तुझ भोगासक्तको वहाँ पहुँचाता हूँ जहाँ कि रामने तेरी आकृतिको धारण करनेवाले कृत्रिम सुग्रीवको पहुँचाया है ॥२७॥ इस प्रकार क्रोधाग्निके कणोंके समान उग्रवचन छोड़नेवाले लक्ष्मणको सुग्रीवने नमस्कार कर शान्त किया ॥२८॥ और कहा कि हे देव ! मेरी एक भूल क्षमा की जाय क्योंकि मेरे जैसे क्षुद्र मनुष्योंकी खोटी चेष्टा होती ही है ॥२९॥ जिनके शरीर काँप रहे थे ऐसी सुग्रीवकी घबड़ायी हुई स्त्रियाँ हाथमें अर्घ ले-लेकर बाहर निकल आयीं और उन्होंने अच्छी तरह प्रणाम कर लक्ष्मणके समस्त क्रोधको नष्ट कर दिया ॥३०॥ सो ठीक ही है क्योंकि मनुष्यरूपी अरणिसे उत्पन्न हुई क्रोधाग्नि, सज्जनरूपी मेघ सम्बन्धी वचनरूपी जलधाराओंके साथ मिलकर शीघ्र ही कहीं विलीन हो जाती है ॥३१॥ निश्चयसे महापुरुषोंके चित्तकी शान्ति प्रणाममात्रसे सिद्ध हो जाती है जब कि दुर्जन बड़े-बड़े दानोंसे भी शान्त नहीं होते ॥३२॥ लक्ष्मणने प्रतिज्ञाका स्मरण कराते हुए सुग्रीवका उस तरह परम उपकार किया जिस तरह कि योगी अर्थात् मुनिने यक्षदत्तकी माताका किया था ॥३३॥

इसी बीचमें राजा श्रेणिकने गौतमस्वामीसे पूछा कि हे नाथ ! मैं यक्षदत्तका वृत्तान्त जानना चाहता हूँ ॥३४॥ तदनन्तर गणधर भगवान्‌ने कहा कि हे श्रेणिक भूपाल ! मुनिने जिस प्रकार यक्षदत्तकी माताको स्मरण कराया था वह कथा कहता हूँ सो सुनो ॥३५॥ एक क्रौंचपुर नामका नगर है उसमें यक्ष नामका राजा था और राजिला नामसे प्रसिद्ध उसकी स्त्री थी ॥३६॥ उन दोनोंके यक्षदत्त नामका पुत्र था। एक दिन उसने नगरके बाहर सुखपूर्वक भ्रमण करते समय दरिद्रोंकी बस्तीमें स्थित एक परमसुन्दरी स्त्री देखी ॥३७॥ देखते ही कामके बाणोंसे उसका हृदय हरा गया सो वह रात्रिके समय उसके उद्देश्यसे जा रहा था कि अवधिज्ञानसे युक्त मुनिराजने 'मा अर्थात् नहीं' इस प्रकार उच्चारण किया ॥३८॥ तदनन्तर उसी समय बिजली चमकी सो उसके प्रकाशमें हाथमें तलवार धारण करनेवाले यक्षदत्तने एक वृक्षके नीचे बैठे हुए अयन नामक मुनिराजको देखा ॥३९॥ उसने बड़ी विनयसे उनके पास जाकर तथा नमस्कार कर उनसे पूछा कि हे भगवन् ! आपने 'मा' शब्दका उच्चारण कर निषेध किसलिए किया। इसका मुझे बड़ा कौतुक

---

१. कणानि च म. ।

सोऽवोचद् यां समुद्दिश्य प्रस्थितः कामुको भवान् ।
सा ते माता ततस्तां मा यासीः कामीति वारितः ॥४१॥
सोऽवोचत् कथमित्याख्यं ततोऽस्मिन् प्रस्तुतं मुनिः ।
मानसानि मुनीनां हि सुदिग्धान्यनुकम्पया ॥४२॥
श्रूयतामिह मृत्तिकावत्यां कनको नाम वाणिजः ।
पूर्णाग्नि तस्य भार्यायां बन्धुदत्तः सुतोऽभवत् ॥४३॥
भार्या मित्रवती तस्य लताद्तसमुद्भवा । कृत्वास्या गर्भमज्ञातं पोतेन प्रस्थितः पतिः ॥४४॥
श्वसुराभ्यां तती ज्ञात्वा गर्भं दुश्चरितेति सा । निराकृता पुरात् क्षिप्रं दास्योत्पलिकया सह ॥४५॥
प्रस्थिता च पितुर्गेहं सार्थेन महता समम् । सर्पेणोत्पलिका दष्टा मृता च विपिनान्तरे ॥४६॥
ततः सत्त्वेन विमुक्तासौ शीलमात्रसहायिका । इमं कौञ्चपुरं प्राप्ता महाशोकसमाकुला ॥४७॥
स्फीतदेवार्चकारामे प्रसूता सापद्यन्वरम् । आदात् क्षालयितुं याता शिशुस्तावद्धृतः शुना ॥४८॥
सुतं स्वैरं समादाय रत्नकम्बलवेष्टितम् । ददौ यक्षमहीपाय नीत्वा स ह्यस्य वल्लभः ॥४९॥
ततोऽनेन विपुत्राया राज्ञिलायाः समर्पितः । सार्थो च यक्षदत्ताख्यां प्रापितस्सं स वर्तसे ॥५०॥
प्रत्यावृत्य च संभ्रान्तमपश्यन्ती प्रसूतकम् । विप्रलापं चिरं चक्रे दुःखान् मित्रवती परम् ॥५१॥
देवार्चकेन सा दृष्टा कृपया कृतसान्त्वना । त्वं मे स्वसेति भाषित्वा स्वकेऽवस्थापितोटजे ॥५२॥
सहायरहितत्वेन त्रपयाकीर्तिभीतितः । न सा गता पितुर्गेहं तत्रैव निरता ततः ॥५३॥

है ? ॥४०॥ इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा कि आप कामी होकर जिसके उद्देश्यसे जा रहे थे वह आपकी माता है इसलिए 'मत जाओ' यह कहकर मैंने रोका है ॥४१॥ यक्षदत्तने फिर पूछा कि वह मेरी माता कैसे है ? इसके उत्तरमें मुनिराजने प्रकृत वार्ता कही सो ठीक ही है क्योंकि मुनियोंके मन अनुकम्पासे युक्त होते ही हैं ॥४२॥ उन्होंने कहा कि सुनो, मृत्तिकावती नामक नगरीमें एक कनक नामका वणिक् रहता था, उसकी घुर् नामकी स्त्रीमें एक बन्धुदत्त नामका पुत्र हुआ था ॥४३॥ बन्धुदत्तकी स्त्रीका नाम मित्रवती था जो कि लतादत्तकी पुत्री थी। एक बार बन्धुदत्त अज्ञातरूपसे मित्रवतीको गर्भधारण कराकर जहाजसे अन्यत्र चला गया ॥४४॥ तदनन्तर सास-श्वसुरने गर्भका ज्ञान होने पर उसे दुश्चरिता समझकर नगरसे निकाल दिया, सो गर्भवती मित्रवती, उत्पलिका नामक दासीको साथ ले एक बड़े बनजारोंके संघके साथ अपने पिताके घरकी ओर चली। परन्तु जंगलके बीच उत्पलिकाको सांपने डँस लिया जिससे वह मर गयी ॥४५-४६॥ तब वह सत्त्वसे रहित, एक शीलव्रत रूपी सहायिकासे युक्त हो महाशोकसे व्याकुल होती हुई इस क्रौंचपुर नगरीमें आयी ॥४७॥ यहाँ स्फीत नामक देवार्चकके उपवनमें उसने पुत्र उत्पन्न किया। तदनन्तर पुत्रको रत्नकम्बलमें लपेट कर जब तक वह समीपवर्ती सरोवरमें वस्त्र धोनेके लिए गयी तब तक एक कुत्ता उस पुत्रको उठा ले गया ॥४८॥ वह कुत्ता राजाका पालतू प्यारा कुत्ता था इसलिए उसने रत्नकम्बलमें लिपटे हुए उस पुत्रको अच्छी तरह ले जाकर राजा यक्षके लिए दे दिया ॥४९॥ राजाने वह पुत्र अपनी पुत्र रहित राजिला नामकी रानीके लिए दे दिया तथा उसका यक्षदत्त यह सार्थक नाम रखा क्योंकि यक्ष कुत्ताका नाम है और वह पुत्र उसके द्वारा दिया गया था। वही यक्षदत्त तू है ॥५०॥ जब मित्रवती लौटकर आयी और उसने अपना पुत्र नहीं देखा तब वह दुःखसे चिरकाल तक बहुत विलाप करती रही ॥५१॥ तदनन्तर उपवनके स्वामी देवार्चकने उसे देखकर दया पूर्वक सान्त्वना दी और यह कह कर कि 'तू हमारी बहन है' अपनी कुटीमें रक्खी ॥५२॥ सहायक न होनेसे, लज्जासे अथवा अपकीर्तिके भयसे वह फिर पिताके घर नहीं गयी और वहीं

१. रण्ये म. ।

सेयमत्यन्तशीलाढ्या जिनधर्मपरायणा । कुटीरे दुर्विधस्यास्ते भ्रमता या त्वयेक्षिता ॥५४॥
बन्धुदत्तेन यद्दत्तं रत्नकम्बलम् । अस्यास्तक्षमवने तिष्ठत्यद्यापि रक्षितम् ॥५५॥
इत्युक्ते संयतं नत्वा स्तुत्वा च हितकारिणम् । ह्याय खड्गवानेव संभ्रमी यक्षसंनिधिम् ॥५६॥
ऊचे च तेऽसिनानेन छिनद्मि नियतं शिरः । सत्यतो यदि मे जन्म न शास्सि स्फुटकारणम् ॥५७॥
यथावद् वेदितं तेन रत्नकम्बललक्षितम् । अथं जरायुलेपेन लिप्तस्यद्यापि विग्रहः ॥५८॥
प्रथमाभ्यां ततस्तस्य पितृभ्यां सह संगमः । जातो महोत्सवोपेतः महाविभवविस्मितः ॥५९॥
कथितं ते महाराज वृत्तान्तादिदमागतम् । अधुना प्रकृतं वक्ष्ये भवावहितमानसः ॥६०॥
लक्ष्मीधरं पुरस्कृत्य सुग्रीवस्त्वरितं ययौ । समीपं रामदेवस्य स तस्थौ विहितानतिः ॥६१॥
ततो विक्रमगर्वेण सदा प्रकटचेष्टितान् । आहूय किङ्करान् सर्वान् महाकुलसमुद्भवान् ॥६२॥
कांश्चिदद्भुतवृत्तान्तान् महाभोग हतास्मिकान् । वेदयन् विस्मयप्राप्तान् पद्मनिर्मितमद्भुतम् ॥६३॥
कांश्चिद् विज्ञातवृत्तान्तान् प्रभुकार्यपरायणान् । जगौ प्रत्युपकारार्थं वाचा संमानयन्निदम् ॥६४॥
भो भो सुविभ्रमाः सर्वे शृणुत श्रीसमुल्लसाः । सीतामुपलभध्वं द्राक् क्व वर्तत इति स्फुटम् ॥६५॥
महीतले समस्तेऽस्मिन् पाताले खे जले स्थले । जम्बूद्वीपे पयोनाथे द्वीपे वा धातकीमति ॥६६॥
कुलपर्वतकुञ्जेषु कानमान्तेषु मेरुषु । नगरेषु विचित्रेषु रम्येषु व्योमचारिणाम् ॥६७॥
गहनेषु समस्तेषु नानाविद्यापराक्रमाः । जानीत दिक्षु सर्वासु सतीं भूविवरेषु च ॥६८॥

रहने लगी ॥५३॥ वह अत्यन्त शीलवती तथा जिनधर्मके धारण करनेमें तत्पर रहती हुई दरिद्र देवार्चकको कुटीमें बैठी थी सो भ्रमण करते हुए तुमने उसे देखा ॥५४॥ उसके पति बन्धुदत्तने परदेशको जाते समय उसे जो रत्नकम्बल दिया था वह आज भी राजा यक्षके घरमें सुरक्षित रखा है ॥५५॥ इस प्रकार कहनेपर उसने हितकारी मुनिराजको नमस्कार कर उनकी बहुत स्तुति की। तदनन्तर वह तलवार लिये ही शीघ्रतासे राजा यक्षके पास गया ॥५६॥ और बोला कि यदि तू मेरे जन्मका सच-सच कारण स्पष्ट नहीं बताता है तो मैं इसी तलवारसे तेरा मस्तक काट डालूँगा ॥५७॥ इतना कहनेपर राजा यक्षने सब कारण ज्यों-का-त्यों बतला दिया और साथ ही वह रत्नकम्बल दिखलाते हुए कहा कि यह अब भी जरायुके लेपसे लिप्त है ॥५८॥ तदनन्तर उसका अपने पूर्व माता-पिताके साथ समागम हो गया और महावैभवसे आश्चर्यमें डालनेवाला बड़ा उत्सव हुआ ॥५९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! प्रकरण आ जानेसे यह वृत्तान्त मैंने तुझसे कहा अब फिर प्रकृत बात कहता हूँ सो सावधान होकर श्रवण कर ॥६०॥

तदनन्तर सुग्रीव, लक्ष्मणको आगे कर शीघ्र ही रामके समीप आया और नमस्कार कर खड़ा हो गया ॥६१॥ तत्पश्चात् उसने पराक्रमके गर्वसे सदा स्पष्ट चेष्टाओंके करनेवाले एवं उच्च कुलोंमें उत्पन्न समस्त किंकरोंको बुलाकर जिन महाभोगी किंकरोंने यह वृत्तान्त नहीं सुना था उन्हें रामका अद्भुत कार्य बतलाकर आश्चर्यसे चकित किया ॥६२-६३॥ तथा जो इस वृत्तान्तको जानते थे प्रभुका कार्य करनेमें तत्पर रहनेवाले उन किंकरोंका वचन द्वारा सम्मान करते हुए उनसे रामका प्रत्युपकार करनेके लिए यह कहा ॥६४॥ कि हे उत्तम विभ्रमोंको धारण करनेवाले श्रीसम्पन्न समस्त पुरुषो! तुम लोग शीघ्र ही सीताका पता चलाओ कि वह कहाँ है? ॥६५॥ तुम लोग नाना प्रकारकी विद्याओं और पराक्रमसे युक्त हो अतः इस समस्त भूतलमें, पातालमें, आकाशमें, जलमें, थलमें, जम्बूद्वीपमें, समुद्रमें, धातकीखण्ड द्वीपमें, कुलाचलोंके निकुंजोंमें, वनके

---

१. 'सत्यतो यदि मे जन्म नास्ति त्वं स्फुटकारणम्' म.। २. प्राकृते म.। ३. महामोहहतात्मिकान् म.। ४. श्रीमन्तुत्सवाः (?) म.।

शेषामिव ततो मूर्ध्नि ते कृत्वाऽऽज्ञां प्रमोदिनः । उत्पत्य दिक्षु सर्वासु तूर्णं अग्मुरहंयवः ॥६९॥
युवतिर्विद्यासूता लेखं मायविना यथाविधि । ज्ञातनिःशेषवृत्तान्तो भामण्डलमुपाहितः ॥७०॥
ततोऽसौ स्वसृदुःखेन नितान्तोद्विग्नमानसः । सुग्रीव इव रामस्य नितरां निभृतोऽभवत् ॥७१॥
स्वयमेव च सुग्रीवः पर्यटन् मानुषर्क्षभा । ताराभिकरचक्रेण संभृत्तो गवेषणे ॥७२॥
दुष्टविद्याधरानेकपुराम्वेषणतत्परः । ध्वजं दूरात् समालोक्य सभीरुर्विकम्पितम् ॥७३॥
जम्बूद्वीपमहीध्रस्य शिखरेणोपलक्षितम् । [2]नभस्तलं परं प्राप चलदंशुकपल्लवः[3] ॥७४॥
ततोऽवतरद् वीक्ष्य विमानं भानुमासुरम् । उत्पाताशङ्कितो जातो रत्नकेशी समाकुलः ॥७५॥
आसीदनुसमालोक्य तदसौ विविह्वलः । वैनतेयात् परित्रस्तः संकुचोच यथोरगः ॥७६॥
आसन्नं च परिज्ञाय ध्वजेन कपिलक्षणम् । रत्नकेशी गतश्चिन्तामिति मृत्युभयाकुलः ॥७७॥
लङ्काधिपतिना नूनं कुद्धेन अनिलागसा । प्रेषितो मद्विनाशाय सुग्रीवोऽभ्युपागतः ॥७८॥
किं न प्रतिभये शीघ्रं सूतो रत्नाकराम्भसि । हा धिगन्यान्तरे द्वीपे मरणं समुपागतम्[4] ॥७९॥
मनोरथं पुरस्कृत्य विद्यावीर्यविवर्जितः । जीवितस्पृहयाविष्टः प्रापयिष्यामि किंस्वहम् ॥८०॥
इति चिन्तयतस्तस्य संप्राप्तो वानरध्वजः । द्योतयन् सहसा द्वीपं द्वितीय इव भास्करः ॥८१॥
तकं भूसरसर्वाङ्गमालोक्य वनपांसुभिः । वानराङ्कध्वजोऽभ्येत्य छदनुकम्पां[6] समुद्वहन् ॥८२॥

अन्त भागोंमें, सुमेरु पर्वतोंमें, विद्याधरोंके चित्र-विचित्र मनोहर नगरोंमें, समस्त दिशाओंमें और भूमिके विवरों अर्थात् कन्दराओंमें सीताका पता चलाओ ॥६६–६८॥

तदनन्तर हर्षसे भरे अहंकारी वानर शेषाक्षतकी तरह सुग्रीवकी आज्ञाको शिरपर धारण कर शीघ्र ही उड़कर समस्त दिशाओंमें चले गये ॥६९॥ एक तरुण विद्याधरके द्वारा विधिपूर्वक पत्र भेजकर भामण्डलके लिए भी समस्त वृत्तान्तसे अवगत कराया गया ॥७०॥ तदनन्तर बहनके दुःखसे भामण्डल अत्यन्त दुखी हुआ और सुग्रीवके समान रामका अतिशय आज्ञाकारी हुआ ॥७१॥ सुग्रीव, स्वयं भी सीताकी खोज करनेके लिए ताराओंके समूहके साथ आकाशमार्गसे चला ॥७२॥ वह दुष्ट विद्याधरोंके अनेक नगरोंके बीच सीताकी खोज करनेमें तत्पर हुआ भ्रमण कर रहा था। तदनन्तर हवासे हिलती हुई ध्वजाको दूरसे देखकर वह जम्बूद्वीपके एक पर्वतके शिखरसे उपलक्षित आकाशमें पहुँचा। उस समय उसके वस्त्रका अंचल हवासे हिल रहा था ॥७३–७४॥ उस पर्वत-पर रत्नकेशी विद्याधर रहता था, सो वह आकाशसे उतरते हुए सूर्यके समान देदीप्यमान सुग्रीवके विमानको देखकर उत्पातकी आशंकासे युक्त हो गया ॥७५॥ विमान को देखकर वह अत्यन्त विह्वल हो गया और जिस प्रकार गरुड़से भयभीत हो सर्प संकुचित होकर रह जाता है उसी प्रकार रत्नकेशी भी उस विमानसे भयभीत हो संकुचित होकर रह गया ॥७६॥ जब सुग्रीव बिलकुल निकट आ गया तब उसे उसकी ध्वजासे वानरवंशी जानकर रत्नकेशी मृत्युके भयसे व्याकुल होता हुआ इस प्रकारकी चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥७७॥ जान पड़ता है कि मैंने लंकाधिपति–रावणका अपराध किया था अतः कुपित होकर उसके द्वारा मुझे नष्ट करनेके लिए भेजा हुआ यह सुग्रीव आया है ॥७८॥ हाय मैं भय उत्पन्न करनेवाले लवण समुद्रमें गिरकर शीघ्र ही क्यों नहीं मर गया। मुझे धिक्कार है जिसे इस अन्य द्वीपमें मरण प्राप्त हुआ है—मरनेका अवसर प्राप्त हो रहा है ॥७९॥ मैं विद्याबलसे रहित होकर भी इच्छाओंको आगे कर जीवित रहनेकी इच्छासे युक्त हूँ सो देखूँ अब क्या प्राप्त करता हूँ ? ॥८०॥ इस प्रकार रत्नकेशी विचार कर ही रहा था कि इतनेमें द्वितीय सूर्यके समान द्वीपको प्रकाशित करता हुआ सुग्रीव वहाँ शीघ्र ही आ पहुँचा ॥८१॥ वनकी धूलिसे

---

१. अहंकारयुक्ता- । २. जम्बूद्वीपमहोन्द्रस्य म. । जम्बूद्वीपमहेन्द्रस्य क. । ३. पल्लवम् म. । ४. समुपागतः म. । ५. जीवितः स्पृहया म. । ६. -दनुकम्प- म. ।

स त्वं रत्नजटी पूर्वमासीद् विद्यासमुन्नतः । अवस्थामीदृशीं कस्मादधुना भद्र संगतः ॥८३॥
इत्युक्तोऽप्यनुकम्पेन सुग्रीवेण सुखाकरम् । सर्वाङ्गं कम्पयन् भीत्या दीनो रत्नजटी भृशम् ॥८४॥
मा भैषीर्भद्र मा भैषीरित्युक्तश्च पुनः पुनः । जगौ कृतान्तधीरमतिः प्रकटिताञ्जलिः ॥८५॥
प्रतिपक्षी भवन् साधो रावणेन दुरात्मना । सीताहरणसक्तेन छिन्नविद्योऽहमीदृशः ॥८६॥
जीविताशां समालम्ब्य कथंचिद्दैवयोगतः । ध्वजमेतं समुत्सृज्य स्थितोऽस्मि कपिपुंगव ॥८७॥
उपलब्धप्रवृत्तिश्च तोषोद्वेगं वहन् द्रुतम् । गृहीत्वा रत्नजटिनं सुग्रीवः स्वपुरं ययौ ॥८८॥
समक्षं लक्ष्मणस्याथ महतां च खगामिनाम् । जगौ रत्नजटी पद्मं विनयी विहिताञ्जलिः ॥८९॥
देव देवी नृशंसेन सती सीता दुरात्मना । हृता लङ्कापुरीन्द्रेण विद्या च मम कोपिनः ॥९०॥
कुर्वन्ती सा महाक्रन्दं ध्वनिना चित्तहारिणा । मृगीव व्याकुलीभूता नीता तेन बलीयसा ॥९१॥
येनासीत् समरे भीमे निर्जित्य सुमहाबलः । इन्द्रो विद्याभृतामीशो बन्दिग्रहमुपाहृतः ॥९२॥
स्वामी भरतखण्डानां यस्यायाणां निरङ्कुशः । कैलासोद्धरणे येन विशालं संगतं यशः ॥९३॥
सागरान्ता मही यस्य दासीवाज्ञां प्रतीच्छति । सुरासुरैर्न यो जेतुं संहतैरपि शक्यते ॥९४॥
श्रेष्ठेन विदुषां तेन धर्माधर्मविवेकिना । कर्मेदं निर्मितं क्रूरं मोहो अयति पापिनाम् ॥९५॥
तच्छ्रुत्वा विविधं बिभ्रत्स्नेहं काकुत्स्थनन्दनः । अङ्गस्पृशं ददौ सर्वं सादरं रत्नकेशिने ॥९६॥
देवोपगीतसंज्ञे च पुरे गोत्रक्रमागतम् । अन्वजानादधीशत्वं विच्छिन्नमरिभिश्चिरम् ॥९७॥

जिसका समस्त शरीर धूसर हो रहा था ऐसे उस रत्नकेशीको देखकर दया धारण करते हुए सुग्रीवने पूछा ॥८२॥ कि तू रत्नजटी तो पहले विद्याओंसे समुन्नत था। हे भद्र ! अब ऐसी दशाको किस कारण प्राप्त हुआ है ? ॥८३॥ इस प्रकार दयाके धारक सुग्रीवने उससे सुखसमाचार पूछा तो भी भयके कारण उसका समस्त शरीर काँप रहा था तथा वह अत्यन्त दीन जान पड़ता था ॥८४॥ तदनन्तर सुग्रीवने जब उससे बार-बार कहा कि हे भद्र ! भयभीत मत हो, भयभीत मत हो तब कहीं धैर्य धारण कर उसने नमस्कार किया और स्पष्ट अक्षरोंमें कहा कि हे सत्पुरुष ! दुष्ट रावण सीताके हरनेमें तत्पर था उस समय मैंने उसका विरोध किया जिससे उसने मेरी विद्याएँ छीनकर मुझे ऐसा कर दिया ॥८५-८६॥ हे कपिश्रेष्ठ ! दैवयोगसे जीवित रहनेकी आशासे मैं यहाँ इस ध्वजाको ऊपर उठाकर किसी तरह स्थित हूँ—रह रहा हूँ ॥८७॥ तदनन्तर समाचार प्राप्त हो जानेसे जो हर्षजन्य उद्वेगको धारण कर रहा था ऐसा सुग्रीव शीघ्र ही रत्नजटीको लेकर अपने नगरकी ओर गया ॥८८॥

अथानन्तर विनयसे भरे रत्नजटीने हाथ जोड़कर लक्ष्मण तथा अन्य बड़े-बड़े विद्याधरोंके सामने रामसे कहा कि हे देव ! अतिशय दुष्ट, लंकापुरीके राजा क्रूर रावणने पतिव्रता सीतादेवीको तथा क्रोध करनेवाले मुझ रत्नजटीकी विद्याको हरा है ॥८९-९०॥ जो चित्तको हरण करनेवाली ध्वनिसे महारुदन करती हुई मृगीके समान व्याकुल हो रही थी ऐसी सीताको वह बलवान् हरकर ले गया है ॥९१॥ जिसने भयंकर संग्राममें अत्यन्त बलवान्, विद्याधरोंके अधिपति इन्द्रको जीतकर कारागारमें डाला था ॥९२॥ जो भरतक्षेत्रके तीन खण्डोंका अद्वितीय स्वामी है, जिसने कैलास पर्वतके उठानेमें विशाल यश प्राप्त किया है, समुद्रान्त पृथ्वी दासीके समान जिसकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करती है, सुर तथा असुर मिलकर भी जिसे जीतनेके लिए समर्थ नहीं हैं, जो विद्वानोंमें श्रेष्ठ है तथा धर्म-अधर्मके विवेकसे युक्त है, उसी रावणने यह क्रूर कार्य किया है सो कहना पड़ता है कि पापी जीवोंका मोह बड़ा प्रबल है ॥९३-९५॥ यह सुनकर नाना प्रकारके स्नेहको धारण करते हुए रामने आदरके साथ रत्नजटीके लिए अपने शरीरका स्पर्श दिया अर्थात् उसका आलिंगन किया ॥९६॥ और देवोपगीत नामक नगरका स्वामित्व रत्नजटीके वंशपरम्परासे चला आता था पर बीचमें शत्रुओंने छीन लिया था सो उसे उसका स्वामित्व प्रदान किया—वहाँका राजा बनाया ॥९७॥

पुनः पुनरपृच्छच्च वार्तामालिङ्ग्य तं नृपः । पुनः पुनर्जगादासौ प्रमोदस्खलिताक्षरः ॥९८॥
ततः समुत्सुकः पद्मः पर्यपृच्छदतित्वरम् । लङ्कापुरी किय[1]दूरे विवेदयत खेचराः ॥९९॥
इत्युक्तास्ते गता मोहं निश्चलीभूतविग्रहाः । लंघितास्मृता[2] नम्रवक्त्राः प्रभ्रष्टकान्तिवर्जिताः ॥१००॥
अभिप्रायं ततो ज्ञात्वा विशीर्णहृदयास्तके । अवज्ञामन्दधा दृष्ट्वा राघवेण विलोकिताः ॥१०१॥
अथ भीतिपरित्रस्ताः स्मः स्म इति लज्जिताः । कथुधीरं मनः कृत्वा करकुड्मलमस्तकाः ॥१०२॥
यदीयं देव नामापि कथंचित्समुदीरितम् । ज्वरमानयति त्रासाद्वदामस्तत्पुरः कथम् ॥१०३॥
क वयं क्षुद्रसामर्थ्याः क च लङ्कामहेश्वरः । त्यजास्मदभिधमेतस्मिन् ज्ञाते संप्रति वस्तुनि ॥१०४॥
अथावश्यमिदं वस्तु श्रोतव्यं श्रूयतां प्रभो । कोऽत्र दोषः समक्षं ते किंचिद्वक्तुं हि शक्यते ॥१०५॥
अस्त्यत्र लवणाम्भोधौ क्रूरग्राहसमाकुले । प्रख्यातो राक्षसद्वीपः प्रभूताद्भुतसंकुलः ॥१०६॥
शतानि सप्त विस्तीर्णो योजनानां समन्ततः । परिक्षेपेण तान्येव साधिकान्येकविंशतिः ॥१०७॥
मध्ये मन्दरतुल्योऽस्य त्रिकूटो नाम पर्वतः । योजनानि [1]नवोत्तुङ्गपञ्चाशद्विपुलस्ततः ॥१०८॥
हेमनानामणिस्फीतः शिलाजालावलीचितः । आसीत्तस्यैदवाहस्य दत्तो नाथेन रक्षसाम् ॥१०९॥
तस्य कूट[3]द्रुमैश्चित्रैः शिखरे कृतभूषणे । लङ्केति नगरी भाति मणिरत्नमरीचिभिः ॥११०॥
विमानसदृशैः रम्यैः प्रासादैः स्वर्गसंनिभैः । मनोहरैः प्रदेशैश्च क्रीडनादिक्रियोचितैः ॥१११॥
त्रिंशद् योजनमानेन परिक्षिप्ता समन्ततः । महाप्राकारपरिखा द्वितीयेव[4] वसुन्धरा ॥११२॥

राम, बार-बार आलिंगन कर उससे यह समाचार पूछते थे और वह हर्षसे स्खलित होते हुए अक्षरोंमें बार-बार उक्त समाचार सुनाता था ॥९८॥

तदनन्तर अत्यन्त उत्सुकतासे भरे रामने शीघ्र ही पूछा कि हे विद्याधरो ! बतलाओ कि लंका कितनी दूर है ? ॥९९॥ इस प्रकार रामके कहनेपर सब विद्याधर मोहको प्राप्त हो गये। उनके शरीर निश्चल हो रहे तथा वे नम्रमुख, कान्तिहीन और वचनोंसे रहित हो गये ॥१००॥ तदनन्तर जिनके हृदय भयसे विशीर्ण हो रहे थे ऐसे उन विद्याधरोंका अभिप्राय जानकर रामने उनकी ओर अवज्ञापूर्ण दृष्टिसे देखा ॥१०१॥ तत्पश्चात् 'हम श्रीरामकी दृष्टिमें भयभीत जाने गये हैं' इस विचारसे जो लज्जित हो रहे थे ऐसे उन विद्याधरोंने हाथ जोड़ मस्तकसे लगा मनको धीर कर कहा कि ॥१०२॥ हे देव ! किसी तरह उच्चारण किया हुआ जिसका नाम ही भयसे ज्वर उत्पन्न कर देता है उसके विषयमें हम आपके सामने क्या कहें ? ॥१०३॥ क्षुद्र शक्तिके धारक हम लोग कहाँ और लंकाका स्वामी रावण कहाँ ? अतः इस समय आप इस जानी हुई वस्तुको हठ छोड़िए ॥१०४॥ अथवा हे प्रभो ! यह सुनना आवश्यक ही है तो सुनिए कहनेमें क्या दोष है ? आपके समक्ष तो कुछ कहा जा सकता है ॥१०५॥ दुष्ट मगरमच्छोंसे भरे हुए इस लवणसमुद्रमें अनेक आश्चर्यकारी स्थानोंसे युक्त प्रसिद्ध राक्षसद्वीप है ॥१०६॥ जो सब ओरसे सात योजन विस्तृत है तथा कुछ अधिक इक्कीस योजन उसकी परिधि है ॥१०७॥ उसके बीचमें सुमेरु पर्वतके समान त्रिकूट नामका पर्वत है जो नौ योजन ऊँचा और पचास योजन चौड़ा है ॥१०८॥ सुवर्ण तथा नाना प्रकारके मणियोंसे देदीप्यमान एवं शिलाओंके समूहसे व्याप्त है। राक्षसोंके इन्द्र भीमने मेघवाहनके लिए वह दिया था ॥१०९॥ तट पर उत्पन्न हुए नाना प्रकारके चित्र-विचित्र वृक्षोंसे सुशोभित उस त्रिकूटाचलके शिखरपर लंका नामकी नगरी है जो मणि और रत्नोंकी किरणों तथा स्वर्गके विमानोंके समान मनोहर महलों एवं क्रीड़ा आदिके योग्य सुन्दर प्रदेशोंसे अत्यन्त शोभायमान है ॥११०-१११॥ जो सब ओरसे तीस योजन चौड़ी है तथा बहुत बड़े प्राकार और

---

१. नवोत्तुङ्गपञ्च- म. । २. मेघवाहनस्य । ३. कल्पद्रुमैः ख. । ४. द्वितीयेन म. ।

लङ्कायाः परिपार्श्वेषु सन्त्यन्येऽपि मनोहराः । स्वभावावस्थिता रत्नमणिकाञ्चनभूतयः ॥११३॥
प्रदेशा नगरोपेता रक्षसां क्रीडभूमयः । अधिष्ठिता महाभोगैस्ते च सर्वे नभश्चरैः ॥११४॥
सन्ध्याकारः सुवेलश्च काञ्चनो ह्लादनस्तथा । योधनो हंसनामा च हरिसागरनिस्वनः ॥११५॥
अर्द्धस्वर्गोदयप्रख्यान्ये द्वीपाः सर्वर्द्धिभोगदाः । प्रदेशा इव लोकस्य काननादिविभूषिताः ॥११६॥
सुहृद्भिर्ज्ञातिभिः पुत्रैः कलत्रैर्बान्धवैः सह । रमते येषु लङ्केशो भृत्यवर्गसमावृतः ॥११७॥
तं क्रीडन्तं जनो दृष्ट्वा महाविद्याधराधिपम् । देवाधिपोऽपि मन्येऽहं समाशङ्कां प्रपद्यते ॥११८॥
भ्राता विभीषणो यस्य बली लोकसमुत्कटः । परैरपि[1] पैरैराजावजय्यो राजपुंगवः ॥११९॥
त्रिदशस्तत्समो बुद्ध्या नास्ति नास्त्येव मानुषः । तेनैकेनैव पर्याप्तं रावणस्य जगत्प्रभोः ॥१२०॥
अपरोऽप्यनुजस्तस्य विद्यते गुणभूषणः । भानुकर्ण इति ख्यातस्त्रिशूलपरमायुधः ॥१२१॥
भ्रकुटिं कुटिलां यस्य भीष्मां कालकुटीमिव । न शक्नुवन्ति संग्रामे सुरा अप्यवलोकितुम् ॥१२२॥
महेन्द्रजितसंज्ञश्च क्षितौ ख्यातिमुपागतः । तस्यैव तनयो यस्य जगदाभासते करे ॥१२३॥
एवमाद्याः सुबहवः प्रणतास्तस्य किङ्कराः । नानाविद्याद्भुतोपेताः प्रतापप्रणतारयः ॥१२४॥
यस्यातपत्रमालोक्य पूर्णचन्द्रसमप्रभम् । त्यजन्ति रिपवो दर्पं समरे चिरपोषितम् ॥१२५॥
अमुष्य पुस्तकर्मापि चित्रं वा सहसेक्षितम् । नाम चोच्चारितं शक्तमरीणां त्रासकर्मणि ॥१२६॥
एवंविधममुं युद्धे कः शक्तो जेतुमुद्धतः । कथा चैषा न कर्तव्या चिन्त्यस्यामपरा गतिः ॥१२७॥

परिखासे युक्त होनेके कारण दूसरी पृथिवीके समान जान पड़ती है ॥११२॥ लंकाके समीपमें और भी ऐसे स्वाभाविक प्रदेश हैं जो रत्न, मणि तथा स्वर्णसे निर्मित हैं ॥११३॥ वे सब प्रदेश उत्तमोत्तम नगरोंसे युक्त हैं, राक्षसोंकी क्रीड़ा-भूमि हैं तथा महाभोगोंसे युक्त विद्याधरोंसे सहित हैं ॥११४॥ सन्ध्याकार, सुवेल, कांचन, ह्लादन, योधन, हंस, हरिसागर और अर्द्ध स्वर्ग आदि अन्य द्वीप भी वहाँ विद्यमान हैं जो समस्त ऋद्धियों तथा भोगोंको देनेवाले हैं, वन-उपवन आदिसे विभूषित हैं तथा स्वर्ग प्रदेशोंके समान जान पड़ते हैं ॥११५-११६॥ लंकाधिपति रावण भृत्यवर्गसे आवृत हो मित्रों, भाइयों, पुत्रों, स्त्रियों तथा अन्य इष्टजनोंके साथ उन प्रदेशोंमें क्रीड़ा किया करता है ॥११७॥ क्रीड़ा करते हुए उस विद्याधरोंके अधिपतिको देखकर मैं समझता हूँ कि इन्द्र भी आशंकाको प्राप्त हो जाता है ॥११८॥ जिसका भाई विभीषण लोकमें अत्यधिक बलवान् है, युद्धमें बड़े-बड़े लोगोंके द्वारा भी अजेय है और राजाओंमें श्रेष्ठ है ॥११९॥ बुद्धि द्वारा उसकी समानता करनेवाला देव भी नहीं है फिर मनुष्य तो निश्चित ही नहीं है। जगत्प्रभु रावणको उसी एक भाईका संसर्ग प्राप्त होना पर्याप्त है ॥१२०॥ उसका गुणरूपी आभूषणोंसे सहित एक छोटा भाई भी है जो कुम्भकर्ण इस नामसे प्रसिद्ध है तथा त्रिशूल नामक महाशस्त्रसे सहित है ॥१२१॥ युद्धमें यमराजकी कुटीके समान जिसकी भयंकर कुटिल भ्रकुटीको देव भी देखनेके लिए समर्थ नहीं हैं फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ? ॥१२२॥ युद्धमें ख्यातिको प्राप्त होनेवाला इन्द्रजित्, उसीका पुत्र है ऐसा पुत्र कि जिसके हाथमें सारा संसार जान पड़ता है ॥१२३॥ इन सबको आदि लेकर रावणके ऐसे अनेक किंकर हैं जो नाना प्रकारकी विद्याओंके आश्चर्यसे सहित हैं तथा प्रतापसे जिन्होंने शत्रुओंको नम्रीभूत बना दिया है ॥१२४॥ पूर्ण चन्द्रके समान आभावाले जिसके छत्रको देखकर शत्रु युद्धमें अपना चिरसंचित अहंकार छोड़ देते हैं ॥१२५॥ सहसा दृष्टिमें आया इसका पुतला, अथवा चित्र अथवा उच्चारण किया हुआ नाम भी शत्रुओंको भय उत्पन्न करनेमें समर्थ है ॥१२६॥ इस प्रकारके इस रावणको युद्धमें जीतनेके लिए कौन बलवान् समर्थ है ? अर्थात् कोई नहीं। इसलिए यह

---

१. मरुत्पत्यमरोपेते ख. । २. आजौ = संग्रामे, अजय्य इतिच्छेदः । ३. कर्माणि म. ।

ततोऽनादरतस्तेषामेकैकं वीक्ष्य लक्ष्मणः । अभाणीद्बृंहितं वाक्यं घनाघनघनस्वनः ॥१२८॥
सत्यं यदीदृशः ख्यातः शक्तिमान् दशवक्त्रकः । तत् किमश्रोव्यनाम[1] स्वमसौ स्त्रीतस्करो भवेत् ॥१२९॥
दाम्भिकस्यातिभीतस्य मोहिनः पापकर्मणः । रक्षोऽधमस्य तस्यास्ति कुतः स्वल्पापि शूरता ॥१३०॥
अलमीदृग्जनाभश्च किमुक्तेनेह भूरिणा । वार्तागमोऽपि दुःप्रापो दिष्ट्या लब्धो मया स च ॥१३१॥
चिन्त्यमस्त्यपरं नातः क्षोभ्यतां राक्षसाधमः । जायतामुचितं भावि फलं कर्मानिलेरितम् ॥१३२॥
अथैनमूचिरे वृद्धाः क्षणं स्थित्वेव सादराः । शोकं जहीहि पद्माभ भवास्माकमधीश्वरः ॥१३३॥
विद्याधरकुमारीणां गुणैरप्सरसामिव । भव भर्ता भ्रमन् लोके विमुक्ताशेषदुःखधीः ॥१३४॥
पद्मोऽवदन्न मेऽन्याभिः प्रमदाभिः प्रयोजनम् । विजयन्ते महालीलां यदि शक्र्या अपि स्त्रियः ॥१३५॥
प्रीतिश्चेन्मयि युष्माकमस्ति कापि नभश्चराः । अनुकम्पापि वा सीता ततो दर्शयत द्रुतम् ॥१३६॥
जाम्बूनदस्ततोऽवोचत्प्रभो मूढग्रहैरलम् । त्यज्यतां क्षुद्रवन्मा भूर्मयूर इव दुःखितः ॥१३७॥
अस्ति वेणातटे गेही नाम्ना सर्वरुचिः किल । सुतो विनयदत्तोऽस्य गुणपूर्णासमुद्भवः ॥१३८॥
विशालभूतिसंज्ञश्च वयस्योऽस्यातिवल्लभः । लक्ष्म्यार्यायां समासक्तो गृहलक्ष्म्यां दुरात्मकः ॥१३९॥
तस्या एव च वाक्येन विभूतिर्व्यञ्जना वनम् । नीत्वा विनयदत्तं स बबन्धोपरि शाखिनः ॥१४०॥
बध्वा च तं ततो गेहं क्रूरकर्मा हताशयः । विधाय चोत्तरं किंचिदवतस्थे कृतार्थवत् ॥१४१॥

कथा ही छोड़िए, कोई दूसरा उपाय सोचिए ॥१२७॥

तदनन्तर अनादरसे उनमें प्रत्येककी ओर देखकर मेघके समान गम्भीर शब्दको धारण करनेवाले लक्ष्मणने इस प्रकार बलपूर्ण वचन कहे कि यदि रावण सचमुच ही ऐसा प्रसिद्ध बलवान् है तो जिसका नाम भी श्रवण करने योग्य नहीं रहता ऐसा स्त्रीका चोर क्यों होता ? ॥१२८-१२९॥ वह तो कपटी, भीरु, मोही, पापकर्मा नीच राक्षस है उसमें थोड़ी भी शूरवीरता कहाँ है ? ॥१३०॥ रामने भी कहा कि इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या ? जिस समाचारका मिलना भी दुष्कर था वह समाचार दैवकी अनुकूलतासे हमने प्राप्त कर लिया है ॥१३१॥ इसलिए अब दूसरी बात सोचनेकी आवश्यकता नहीं है, अब तो उस नीच राक्षसको क्षोभित किया जाये। कर्मरूपी वायुसे प्रेरित हुआ उचित ही फल होगा ॥१३२॥

अथानन्तर क्षण-भर ठहरकर वृद्ध लोगोंने आदरपूर्वक कहा कि पद्माभ ! शोक छोड़ो, हमारे स्वामी होओ, गुणोंसे अप्सराओंकी समानता करनेवाली विद्याधर कुमारियोंके भर्ता होओ तथा सब दुःख छोड़कर आनन्दसे लोकमें भ्रमण करो ॥१३३-१३४॥ रामने उत्तर दिया कि मुझे अन्य स्त्रियोंसे प्रयोजन नहीं है भले ही वे स्त्रियाँ इन्द्राणीकी महालीलाको जीतती हों ॥१३५॥ हे विद्याधरो ! यदि आप लोगोंकी मुझपर कुछ भी प्रीति अथवा दया है तो शीघ्र ही सीताको दिखाओ ॥१३६॥ तदनन्तर जाम्बूनदने कहा कि हे प्रभो ! इस मूर्ख हठको छोड़ो जिस प्रकार कृत्रिम मयूरके विषयमें क्षुद्रनामा मनुष्य दुःखी हुआ था उस तरह तुम दुःखी मत होओ ॥१३७॥ मैं यह कथा कहता हूँ सो सुनो—

वेणातट नामक नगरमें सर्वरुचि नामका एक गृहस्थ रहता था। उसके गुणपूर्णा नामक स्त्रीसे उत्पन्न विनयदत्त नामका पुत्र था ॥१३८॥ विनयदत्तका एक विशालभूति नामक अत्यन्त प्यारा मित्र था सो वह पापी, विनयदत्तकी स्त्री गृहलक्ष्मीमें आसक्त हो गया ॥१३९॥ एक दिन उसी स्त्रीके कहनेसे विशालभूति विनयदत्तको भ्रमण करनेके छलसे वनमें ले गया और उसे वृक्षके ऊपर बाँध आया ॥१४०॥ दुष्ट अभिप्रायको धारण करनेवाला क्रूरकर्मा विशालभूति घर आकर

---

१. तत्किमश्राव्यं नाम-म. ।

अत्रान्तरे तमुद्देशं दिग्मूढः प्रच्युतः पथः । आजगाम भ्रमन् खिन्नः क्षुद्रोऽपश्यच्च तं तरुम् ॥१४२॥
घनच्छायाकृतश्रद्धस्तस्याधश्च जगाम सः । क्वणितं वाक्षणोन्मन्दमुन्मुखश्च व्यलोकयत् ॥१४३॥
यावत्पश्यति तं वृक्षं निविडं दृढरज्जुभिः । अत्यन्ततुङ्गशाखाग्रे निश्चेष्टीकृतविग्रहम् ॥१४४॥
आरुह्य तेन मुक्तः सोऽनुकम्पासक्तचेतसा । ततो विनयदत्तस्तु स्वं तेनैव समाश्रयत् ॥१४५॥
स्वजनस्योत्सवे [1]जातो महानन्दसमुत्कटः । विशालभूतिरालोक्य तं च दूरात्पलायितः ॥१४६॥
[2]क्षुद्रस्याथ शिखी जातु शिक्षिपत्रमयोऽन्यथा । रमणो बाल्यया नीतः संप्राप्तो राजसूनुना ॥१४७॥
तस्मिन्नितं महाशोकः क्षुद्रो मित्रमभाषत । मां चेदिच्छसि जीवन्तं दत्स्व तन्मे मयूरकम् ॥१४८॥
बद्धस्तथाविधो वृक्षे मया त्वं परिमोचितः । अस्योपकारमुख्यस्य प्रतिदानं प्रयच्छ मे ॥१४९॥
ततो विनयदत्तस्तमुवाचान्यमयूरकम् । गृहाण मणिरत्नं वा कुतस्तं ते ददाम्यहम् ॥१५०॥
सोऽवोचद्दीयतां मह्यं स एवेति पुनः पुनः । मूढस्तथाविधो जातो भवानपि नरोत्तमः ॥१५१॥
राजपुत्रकरं प्राप्ता कृत्रिमासौ मयूरिका । कथं लब्धा वधो यस्माल्लभ्यते यत्र तत्परैः ॥१५२॥
त्रिवर्णाम्भोजनेत्राणां कम्बानां कनकत्विषाम् । पीवरस्तनकुम्भानां विशालजघनश्रियाम् ॥१५३॥
वक्त्रकान्तिजितेन्दूनां पूर्णानां सद्गुणैः । पतिर्भव महाभोग प्रसीद रघुनन्दन ॥१५४॥

कृतकृत्यकी तरह आनन्दसे रहने लगा तथा पूछनेपर विनयदत्तके विषयमें कुछ इधर-उधरका उत्तर देकर चुप हो जाता ॥१४१॥ इसी बीचमें क्षुद्र नामका एक मनुष्य दिशा भूलकर मार्गसे च्युत हो भ्रमण करता हुआ खेदखिन्न हो वहाँसे निकला और उसने उस वृक्षको देखा ॥१४२॥ वृक्षको सघन छाया देखकर विश्राम करनेकी इच्छासे वह वृक्षके नीचे गया। वहाँ उसने विनयदत्तके कराहनेका मन्द-मन्द शब्द सुन ऊपरको मुख उठाकर देखा ॥१४३॥ तो उसे अत्यन्त ऊँची शाखाके अग्रभागपर मजबूत रस्सियोंसे बँधा हुआ निश्चेष्ट शरीरका धारक विनयदत्त दिखा ॥१४४॥ जिसका चित्त दयामें आसक्त था ऐसे क्षुद्र नामक पुरुषने ऊपर चढ़कर उसे बन्धन मुक्त किया। तदनन्तर विनयदत्त नीचे उतर उस क्षुद्रको साथ ले अपने घर चला गया ॥१४५॥ विनयदत्तके लानेसे उसके घरमें महान् आनन्दसे युक्त उत्सव हुआ और विशालभूति उसे देख दूर भाग गया ॥१४६॥ क्षुद्र, विनयदत्तके घर रहने लगा उसके पास मयूरपंखका बना हुआ एक मयूरका खिलौना था सो वह खिलौना एक दिन हवामें उड़ गया और राजाके पुत्रको मिल गया ॥१४७॥ उस कृत्रिम मयूरके निमित्त बहुत भारी शोक करता हुआ क्षुद्र, अपने मित्रसे बोला कि हे मित्र ! यदि मुझे जीवित चाहते हो तो मेरा वह कृत्रिम मयूर मुझे देओ ॥१४८॥ मैंने तुझे उस तरह वृक्षपर बँधा हुआ छोड़ा था सो इस मुख्य उपकारका बदला मेरे लिए देओ ॥१४९॥ तब विनयदत्तने उससे कहा कि तुम उसके बदले दूसरा मयूर ले लो अथवा मणि या रत्न ले लो तुम्हारा वह मयूर कहाँसे दूँ ॥१५०॥ इसके उत्तरमें वह बार-बार यही कहता था कि नहीं, मेरे लिए तो वही मयूर देओ। सो क्षुद्र तो मूर्ख होकर उस प्रकार हठ करता था पर आप तो नरोत्तम होकर भी ऐसा हठ कर रहे हैं ॥१५१॥ आप ही कहो कि राजपुत्रके हाथमें पहुँची कृत्रिम मयूरी कैसे प्राप्त हो सकती थी। राजपुत्रसे तो केवल मांगनेवालोंको मृत्यु ही मिल सकती थी ॥१५२॥ इसलिए हे रघुनन्दन ! सीताकी इच्छा छोड़ो और जिनके नेत्र सफेद, काले तथा लाल रंगके हैं, जिनकी कान्ति सुवर्णके समान है, जिनके स्तनकलश अत्यन्त स्थूल हैं, जिनके जघनकी शोभा विशाल है, जिन्होंने मुखकी कान्तिसे चन्द्रमाको जीत लिया है तथा जो अनेक सुन्दर गुणोंसे युक्त हैं ऐसी कन्याओंके पति होकर महाभोग भोगो, प्रसन्न होओ ॥१५३-१५४॥ इस हास्यजनक दुःखवर्धक हठको छोड़ो और

१. -स्योत्सवे जातौ म. । २. जीवितं म. ।

अनुबन्धमिदं हास्यं त्यज दुःखविवर्धनम् । मयूरशष्पशोकार्तो माभूः क्षुद्रकवद् बुध ॥१५५॥
सर्वदा सुलभाः पुंसः शिखिशष्पोपमाः[1] स्त्रियः । ब्रवीमि राघव त्वाहं प्राज्ञैः शोको न धार्यते ॥१५६॥
ततो लक्ष्मीधरोऽवोचत्परमो वाक्यवर्त्मनि । जाम्बूनदेदृशं नेदमिदमेतादृशं शृणु ॥१५७॥
आसीद्गृहपतिः ख्यातः पुरे कुसुमनामनि । प्रभवाख्यः प्रिया तस्य यमुनेति प्रकीर्तिता ॥१५८॥
धनबन्धुगृहक्षेत्रपशुप्रभृतयः सुताः । पालान्तास्तस्य जैत्रन्ते शब्दानामन्तमागताः ॥१५९॥
अन्वर्थसंज्ञकास्ते च कुटुम्बार्थं सदोद्यताः । कुर्वन्ति कर्म विश्रान्ति[3] क्षणमप्यनुपागताः ॥१६०॥
आत्मश्रेयोभिधानश्च सुतोऽस्यैवाखिलाधरः । पुण्योदयादसौ भोगान् भुङ्क्ते देवकुमारवत् ॥१६१॥
भ्रातृभिः स पितृभ्यां च चिरं[5] कटुभिरक्षरैः । निर्भर्त्सितोऽन्यदा यातो मानी बाह्यां परिभ्रमन् ॥१६२॥
सुकुमारशरीरोऽसौ निर्वेदं परमं गतः । कर्तुमशक्तात्मा मरणं स्वस्य वाञ्छति ॥१६३॥
पूर्वकर्मानुभावेन प्रेरितः पथिकस्तदा । समागत्याभणीदेवं शृणुतामयि मानव ॥१६४॥
पृथुस्थानाधिपस्याहं सुभानुरिति नन्दनः । गोत्रिकाक्रान्तदेशः सन्[7] कुर्वन्नैमित्तभाषितम् ॥१६५॥
पर्यटन् वसुधामेतां दैवात् कूर्मपुरं गतः । आचार्येणाभियोगेन संगं प्राप्तोऽस्मि तत्र च ॥१६६॥
अयोमयमिदं तेन दत्तं मे वलयं शुभम् । मार्गदुःखाभिभूताय कारुण्याकरचेतसा ॥१६७॥
एतच्च सर्वरोगाणां शमनं बुद्धिवर्धनम् । ग्रहोरगपिशाचादिवशीकरणकोविदम् ॥१६८॥

हे विद्वन् ! क्षुद्रके समान मयूररूपी तृणके शोकसे पीड़ित नहीं होओ ॥१५५॥ मयूररूपी तृणके समान स्त्रियाँ पुरुषको सदा सुलभ हैं इसलिए हे राघव ! मैं आपसे कह रहा हूँ। बुद्धिमान् मनुष्य कभी शोक धारण नहीं करते ॥१५६॥

तदनन्तर वचनोंके मार्गमें अतिशय निपुण लक्ष्मणने कहा कि हे जाम्बूनद ! यह बात ऐसी नहीं है किन्तु ऐसी है सो सुनो ॥१५७॥ कुसुमपुर नामक नगरमें एक प्रभव नामका प्रसिद्ध गृहस्थ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम यमुना था ॥१५८॥ उन दोनोंके धनपाल, बन्धुपाल, गृहपाल, क्षेत्रपाल और पशुपाल नामके पाँच पुत्र थे ॥१५९॥ ये सभी पुत्र सार्थक नामवाले थे और कुटुम्बके पालनके लिए सदा तत्पर रहते थे तथा क्षणभरके लिए भी अपने कार्यसे विश्राम नहीं लेते थे ॥१६०॥ इनमें सबसे छोटा आत्मश्रेय नाम कुमार था सो वह पुण्योदयसे देवकुमारके समान भोग भोगता था ॥१६१॥

कुछ करता नहीं था इसलिए भाई तथा माता-पिता निरन्तर कटुक अक्षरों द्वारा उसका तिरस्कार करते रहते थे। एक दिन वह मानी घरसे निकलकर नगरके बाहर चला गया ॥१६२॥ अत्यन्त सुकुमार शरीरका धारक था इसलिए कुछ कर सकनेके लिए समर्थ नहीं था अतः परम निर्वेदको प्राप्त हो आत्मघात करने की इच्छा करने लगा ॥१६३॥ उसी समय पूर्व कर्मोदयसे प्रेरित हुआ एक पथिक उसके पास आकर बोला कि हे मनुष्य ! सुन ॥१६४॥ मैं पृथुस्थान नगरके राजाका पुत्र सुभानु हूँ। निमित्तज्ञानीके आदेशका पालन करता हुआ मैं अब तक अनेक देशोंमें भ्रमण करता रहा हूँ ॥१६५॥

इस पृथ्वीपर भ्रमण करता हुआ मैं दैवयोगसे कूर्मपुर नामा नगरमें पहुँचा। वहाँ एक उत्तम आचार्यके साथ समागमको प्राप्त हुआ ॥१६६॥ मैं मार्गके दुःखसे दुःखी था इसलिए दयालु चित्तके धारक उन आचार्यने मुझे यह लोहेका कड़ा दिया था ॥१६७॥ यह कड़ा समस्त रोगोंको शान्त करनेवाला तथा बुद्धिको बढ़ानेवाला है और ग्रह, उरग, पिशाच आदिका उत्तम वशीकरण

---

१. शिखिशिष्योपमाः म. । २. श्रियः म. । ३. विश्रान्ति लक्षमप्यनु- म. । ४. खिला धरा म. । ५. मातृभिः ६. कटुकैरक्षरैः ग. । ७. निमित्त व. ।

नैमित्तादिष्टकालस्य संप्राप्तश्च ममावधिः । आत्मीयमधुना राज्यं कर्तुं यामि निजं पुरम् ॥१६९॥
राज्यस्थस्य प्रमादाश्च जायन्ते गणनोज्झिताः । एतच्च छिद्रमासाद्य नियतं नाशकारणम् ॥१७०॥
[1]गृहाणैतत्ततस्तुभ्यं यच्छामि वलयं पुरम् । उपसर्गविनिर्मुक्तं यदि वाञ्छसि जीवितम् ॥१७१॥
लब्धस्य च पुनर्दानं शंसन्ति सुमहाफलम् । यशश्च प्राप्यते लोके पूजयन्ति च तं जनाः ॥१७२॥
ततस्तमेवमित्युक्त्वा गृहीत्वाङ्कदमायसम्[2] । आत्मश्रेयो गतो धाम सुभानुश्च निजं निजम् ॥१७३॥
यावत्पत्नी नरेन्द्रस्य दष्टा [3]श्वसनभोगिना । निश्चेष्टा दग्धुमानीता चितोद्देशे[4] स पश्यति ॥१७४॥
कटकस्य प्रसादेन तस्य लोहमयस्य ताम् । जीवयित्वा परं प्रापदसौ पूजां नरेन्द्रतः ॥१७५॥
महान्तस्तस्य संजाता भोगाः परमसौख्यदाः । सर्वबन्धुसमेतस्य पुण्यकर्मानुभावतः ॥१७६॥
उत्तरीयांशुकस्योर्ध्वं निधाय वलयं सरः । प्रविष्टो यावदादाय गोधेरोऽनश्यदुद्धतः[5] ॥१७७॥
महातरोरधस्तावत् प्रविवेश विलं महत् । शिलानिकरसंछन्नं निर्हारं घोरनिस्वनम् ॥१७८॥
तेन गोधेरशब्देन किल नित्यप्रवृत्तिना । बभूव स्थानमप्येतत्प्रलयाशङ्किमानसम् ॥१७९॥
आत्मश्रेयस्ततो वृक्षमुन्मूल्य स शिलाघनम् । गोधेरं नाशयित्वा तं निधानं प्राप्य साङ्कदम् ॥१८०॥
आत्मश्रेयःसमः पद्मः सीता वलयमूर्तिवत् । प्रमादवच्च कौसीद्यं शब्दस्तच्छब्दवद्रिपोः ॥१८१॥
महानिधानसंकल्पा गोधेरो दशवक्त्रकः । अतस्त इव निर्भीता यूयं भवत साम्प्रतम् ॥१८२॥

है ॥१६८॥ निमित्तज्ञानीने मुझे भ्रमण करनेके लिए जो समय बताया था अब उसकी अवधि आ गयी है इसलिए मैं अपना राज्य करनेके लिए अपने नगरको जाता हूँ ॥१६९॥ राज्य कार्यमें स्थिर रहनेवाले पुरुषके अगणित प्रमाद होते रहते हैं और किसी प्रमादको पाकर यह कड़ा निश्चित ही नाशका कारण बन सकता है ॥१७०॥ इसलिए यदि तू उपसर्ग रहित जीवन चाहता है तो इस उत्तम कड़ेको ले ले मैं तुझे देता हूँ ॥१७१॥ अपने लिए प्राप्त हुई वस्तुका दूसरेके लिए दे देना महाफलकारक है, इससे यश प्राप्त होता है और लोग उसकी पूजा करते हैं ॥१७२॥ तदनन्तर इससे 'ऐसा ही हो' इस प्रकार कहकर तथा लोहेका कड़ा लेकर आत्मश्रेय अपने घर चला गया और सुभानु भी अपने नगर चला गया ॥१७३॥ इतनेमें ही राजाकी पत्नीको साँपने डँस लिया था जिससे वह निश्चेष्ट हो गयी थी तथा जलानेके लिए श्मशानमें लायी गयी थी। आत्मश्रेयने उसे देखा ॥१७४॥ और देखते ही उस लोह निर्मित कड़ेके प्रसादसे उसे जिलाकर उसने राजासे बहुत सन्मान प्राप्त किया ॥१७५॥ अब पुण्य कर्मके प्रभावसे उसके लिए समस्त बन्धुओंके साथ-साथ परम सुख देनेवाले बड़े-बड़े भोग प्राप्त हो गये ॥१७६॥ एक बार उसने उस कड़ेको उत्तरीय वस्त्रके ऊपर रखकर जबतक सरोवरमें प्रवेश किया तबतक एक उद्दण्ड गुहेरा उसे लेकर चला गया ॥१७७॥ वह गुहेरा एक महावृक्षके नीचे बने हुए अपने बड़े बिलमें घुस गया। उसका वह बिल शिलाओंके समूहसे आच्छादित, प्रवेश करनेके अयोग्य तथा भयंकर शब्दसे युक्त था ॥१७८॥ वह गुहेरा उस बिलमें बैठकर निरन्तर शब्द करता रहता था जिससे उस बिलको देख मनमें प्रलयकी आशंका होती थी ॥१७९॥ तदनन्तर आत्मश्रेयने शिलाओंसे सघन उस वृक्षके मूलको उखाड़कर तथा गुहेरेको मारकर कड़ेके साथ-साथ उसका सब खजाना ले लिया ॥१८०॥ सो राम तो आत्मश्रेयके समान हैं, सीता कड़ेके समान है, लाभकी इच्छा प्रमादके समान है, शत्रुका शब्द गुहेरेके शब्दके समान है, लंका महानिधानके समान है, रावण गुहेरेके समान है, इसलिए हे विद्याधरो ! तुम सब इस समय निर्भय होओ ॥१८१-१८२॥

---

१. गृहाण तत्त्वतस्तुभ्यं ज. । २. गृहीताङ्गद म. । ३. श्वसनभोगिना म. । नागेनेत्यर्थः । ४. श्मसाने । ५. दूर्वतः म. ।

तच्छ्रुत्वा सक्षुपाख्यानं जितजाम्बूनदोदितम् । बहवो विस्मयापन्ना बभूवुः रिमलकारिणः ॥१८३॥
जाम्बूनदादयः सर्वे ततः कृत्वा प्रचारणम् । इदमूचुः पुनः पद्म शृणु राजन् समाहितः ॥१८४॥
अनन्तवीर्ययोगीन्द्रं संप्रणम्य पुरा मुदा । रावणेनात्मनो मृत्युं परिपृष्टः समादिशत् ॥१८५॥
यो निर्वाणशिलां पुण्यामतुलामर्चितां सुरैः । [1]समुधतां स ते मृत्योः कारणत्वं गमिष्यति ॥१८६॥
सर्वज्ञोक्तं निशम्यैतदचिन्तयदसाविदम् । भविता पुरुषः कोऽसौ तां यश्चालयितुं क्षमः ॥१८७॥
नास्त्येव मरणे हेतुर्ममेत्युक्तं भवत्पदः । वचोयुक्तिर्विचित्रा हि विदुषामर्थदेशने ॥१८८॥
तयो लक्ष्मीधरोऽवोचद्गच्छामो न चिरं हितम् । ईक्षामहे शिलां सैद्धीं सत्यानां रोमहर्षणीम् ॥१८९॥
रहस्यमेतत्सन्मन्त्र्य सुनिश्चित्य समन्ततः । सर्वे ते सन्तुमुद्युक्ताः प्रमादपरिवर्जिताः ॥१९०॥
जाम्बूनदो महाबुद्धिः किष्किन्धाधिपतिस्तथा । विराधितोऽर्कमाली च नलनीलौ विचक्षणौ ॥१९१॥
सपुरस्कारमारोप्य विमाने रामलक्ष्मणौ । संप्रयाता हुतं व्योम्नि रात्रौ तमसि गह्वरे ॥१९२॥
अवतेरुः समीपे च यत्र सा सुमनोहरा । शिला परमगम्भीरा सुरासुरनमस्कृता ॥१९३॥
उपसस्रुश्च ते सर्वे मस्तकन्यस्तपाणयः । [2]आशारक्षानवस्थाप्य प्रयातान् सुसमाहितान् ॥१९४॥
सुगन्धिभिर्महाभोगैः पूर्णेन्दुपरिमण्डलैः । अन्यैश्च कुसुमैश्चित्रैरर्चिता तैरसौ शिला ॥१९५॥
सितचन्दनदिग्धाङ्गा कुङ्कुमांशुकधारिणी । दृताभरणा भाति सा शचीव मनोरमा ॥१९६॥

इस प्रकार जाम्बूनदके कथनको खण्डित करनेवाला लक्ष्मणका उपाख्यान सुन बहुत लोग आश्चर्यको प्राप्त हो मन्दहास्य करने लगे ॥१८३॥ तत्पश्चात् जाम्बूनद आदि सभी विद्याधर परस्परमें विचारकर रामसे यह कहने लगे कि हे राजन् ! एकाग्र चित्त होकर सुनिए ॥१८४॥ पहले एक बार रावणने हर्षपूर्वक अनन्तवीर्यनामा योगीन्द्रको नमस्कार कर उनसे अपनी मृत्युका कारण पूछा था सो उन योगीन्द्रने कहा था कि जो देवोंके द्वारा पूजित, अनुपम, पुण्यमयी निर्वाण शिला--कोटिशिलाको उठावेगा वही तेरी मृत्युका कारण होगा ॥१८५-१८६॥ सर्वज्ञके यह वचन सुन रावणने विचार किया कि ऐसा कौन पुरुष होगा जो उसे चलानेके लिए समर्थ होगा ॥१८७॥ भगवान्के कहनेका तात्पर्य यह है कि मेरे मरणका कोई भी कारण नहीं है सो ठीक ही है क्योंकि अर्थके प्रकट करनेमें विद्वानोंकी वचन योजना विचित्र होती है ॥१८८॥

तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि हम लोग अभी चलते हैं विलम्ब करना हितकारी नहीं है, अन्य जीवोंको आनन्द देनेवाली सिद्धशिलाके अभी दर्शन करेंगे ॥१८९॥ तत्पश्चात् सब लोग परस्परमें मन्त्रणा कर तथा सब ओरसे निश्चय कर प्रमाद छोड़ लक्ष्मणके साथ जानेके लिए उद्यत हुए ॥१९०॥ महाबुद्धिमान् जाम्बूनद, किष्किन्धाका स्वामी—सुग्रीव, विराधित, अर्कमाली, अतिशय विद्वान् नल और नील, सम्मानके साथ राम और लक्ष्मणको विमानपर बैठाकर रात्रिके सघन अन्धकारमें शीघ्र ही आकाशमार्गसे चले ॥१९१-१९२॥ और जहाँ वह अत्यन्त मनोहर परम गम्भीर एवं सुर-असुरोंके द्वारा नमस्कृत सिद्धशिला पासमें थी वहाँ उतरे ॥१९३॥ तदनन्तर सावधान चित्त होकर आगे गये हुए दिशारक्षकोंको नियुक्त कर वे सब हाथ जोड़ मस्तकसे लगा उस सिद्धशिलाके समीप गये ॥१९४॥ वहाँ जाकर उन्होंने अत्यन्त सुगन्धित तथा पूर्ण चन्द्रमाके बिम्बके समान सुशोभित बड़े-बड़े कमलों तथा नाना प्रकारके अन्य पुष्पोंसे उस शिलाकी पूजा की ॥१९५॥

जिसके ऊपर सफेद चन्दनका लेप लगाया गया था, जो केशर रूप वस्त्रको धारण कर रही थी, तथा जो नाना अलंकारोंसे अलंकृत थी ऐसी वह शिला उस समय इन्द्राणीके समान

---

१. विश्रमलात् । २. दिशारक्षान् ।

तस्यां सिद्धान्नमस्कृत्य शिरस्यंकरकुड्मलाः । भक्त्या प्रदक्षिणं चक्रुः क्रमेण विधिपण्डिताः ॥१९७॥
ततः परिकरं बद्ध्वा सौमित्रिर्विनयं वहन् । नमस्कारपरो भक्तः स्तुतिं कर्तुं समुद्यतः ॥१९८॥
जयशब्दं समुद्घोष्य प्रहृष्टा वानरध्वजाः । स्तोत्रं परिपठन्तीदमुत्तमं सिद्धमङ्गलम् ॥१९९॥
स्थितांश्चैलोक्यशिखरे स्वयं परममास्वरे । स्वरूपभूतया स्थित्या पुनर्जन्मविवर्जितान् ॥२००॥
भवार्णवसमुत्तीर्णान्निःश्रेयससमुद्गतान् । आधारान्मुक्तिसौख्यस्य केवलज्ञानदर्शनान् ॥२०१॥
अनन्तवीर्यसंपन्नान् स्वभावसमवस्थितान् । सुसमीचीनतायुक्तान्निःशेषक्षीणकर्मणः ॥२०२॥
अवगाहनपर्योक्तानमूर्तान् सूक्ष्मतायुजः । गुरुत्वलघुतामुक्तानसंख्यातप्रदेशिनः ॥२०३॥
अप्रमेयगुणाधारान् क्रमादिपरिवर्जितान् । साधारणान् स्वरूपेण स्वार्थकाष्ठामुपागतान् ॥२०४॥
सर्वथा शुद्धभावांश्च ज्ञातज्ञेयान्निरंजनान् । दग्धकर्ममहाकक्षान् विशुद्धध्याननेजसा ॥२०५॥
तेजःपटपरीतेन भक्तितो भग्नपाणिना । संस्तुतान् भवभीतेन चक्रवर्त्यादिभिस्तथा ॥२०६॥
संसारधर्मनिर्मुक्तान् सिद्धधर्मसमाश्रितान् । सर्वान् वन्दामहे सिद्धान् सर्वसिद्धिसमावहान् ॥२०७॥
अस्यां च ये गताः सिद्धिं शिलायां शीलधारिणः । उपगीताः पुराणेषु सर्वकर्मविवर्जिताः ॥२०८॥
जिनेन्द्रसमतां याताः कृतकृत्या महौजसः । मङ्गलस्मरणेनैतान् भक्त्या वन्दामहे मुहुः ॥२०९॥

मनोहर जान पड़ती थी ॥१९६॥ उस शिलासे जो सिद्ध हुए थे उन्हें नमस्कार कर जिन्होंने हाथ जोड़ मस्तकसे लगाये थे तथा जो सब प्रकारकी विधि-विधानमें निपुण थे ऐसे उन सब लोगोंने भक्तिपूर्वक क्रमसे उस शिलाकी प्रदक्षिणा दी ॥१९७॥

तदनन्तर विनयको धारण करनेवाले, नमस्कार करनेमें तत्पर एवं भक्तिसे भरे लक्ष्मण कमर कस कर स्तुति करनेके लिए उद्यत हुए ॥१९८॥ हर्षसे भरे वानरध्वज राजा, जय-जय शब्दका उच्चारण कर सिद्ध भगवान्‌के निम्नांकित स्तोत्रको पढ़ने लगे ॥१९९॥ स्तोत्र पढ़ते हुए उन्होंने कहा कि हम उन सिद्ध परमेष्ठियोंको नमस्कार करते हैं कि जो अतिशय देदीप्यमान तीन लोकके शिखरपर स्वयं विराजमान हैं, आत्माकी स्वरूपभूत स्थितिसे युक्त हैं तथा पुनर्जन्मसे रहित हैं ॥२००॥ जो संसार सागरसे पार हो चुके हैं, परमकल्याणसे युक्त हैं, मोक्ष सुखके आधार हैं तथा केवलज्ञान और केवलदर्शनसे सहित हैं ॥२०१॥ जो अनन्त बलसे युक्त हैं, आत्मस्वभावमें स्थित हैं, श्रेष्ठतासे युक्त हैं, और जिनके समस्त कर्म क्षीण हो चुके हैं ॥२०२॥ जो अवगाहन गुणसे युक्त हैं, अमूर्तिक हैं, सूक्ष्मत्व गुणसे सहित हैं, गुरुता और लघुतासे रहित तथा असंख्यात-प्रदेशी हैं ॥२०३॥ जो अपरिमित—अनन्तगुणोंके आधार हैं, क्रम आदिसे रहित हैं, आत्मस्वरूपकी अपेक्षा सब समान हैं और जो आत्म प्रयोजनकी अन्तिम सीमाको प्राप्त हैं—कृतकृत्य हैं ॥२०४॥ जिनके भाव सर्वथा शुद्ध हैं, जिन्होंने जानने योग्य समस्त पदार्थोंको जान लिया है, जो निरंजन—कर्म कालिमासे रहित हैं और निर्मल ध्यान शुक्लध्यानरूपी अग्निके द्वारा जिन्होंने कर्मरूपी महाअटवीको भस्म कर दिया है ॥२०५॥ संसारसे भयभीत तथा तेजरूपी पटसे परिवृत इन्द्र तथा चक्रवर्ती आदि महापुरुष जिनकी स्तुति करते हैं ॥२०६॥ जो संसाररूप धर्मसे रहित हैं, सिद्धरूप धर्मको प्राप्त हैं तथा जो सब प्रकारकी सिद्धियोंको धारण करनेवाले हैं ऐसे समस्त सिद्ध परमेष्ठियोंको हम नमस्कार करते हैं ॥२०७॥ शीलको धारण करनेवाले जो भी पुरुष इस शिलासे सिद्धिको प्राप्त हुए हैं, पुराणोंमें जिनका कथन है, जो सर्व कर्मोंसे रहित हैं, जिनेन्द्र देवकी समानता-को प्राप्त हुए हैं, कृतकृत्य हैं तथा जो महाप्रतापके धारक हैं उन सबको हम भक्तिपूर्वक मंगल स्मरण करते हुए बार-बार वन्दना करते हैं ॥२०८-२०९॥ इस प्रकार चिरकाल तक स्तुति कर

---

१. शिरसि करकुड्मलाः म. । २. निःश्रेयसः समुद्भवान् ।

एवं च सुचिरं [1]स्तुत्वा पुनरेवं वभाषिरे । लक्ष्मीधरं समुद्दिश्य स्थापितैकाग्रमानसाः ॥२१०॥
शिलायामिह ये सिद्धा ये चान्ये हतकिल्बिषाः । ते विघ्नसूदनाः सर्वे भवन्तु तव मङ्गलम् ॥२११॥
अर्हन्तो मङ्गलं सन्तु तव सिद्धाश्च मङ्गलम् । मङ्गलं साधवः सर्वे मङ्गलं जिनशासनम् ॥२१२॥
इति मङ्गलनिस्वानैर्विहायस्तलचारिणाम् । शिलामचालयत् क्षिप्रं लक्ष्मणो विमलद्युतिः ॥२१३॥
सा लक्ष्मणकुमारेण नानालंकारभूषणा । केयूरकान्तबाहुभ्यां धृता कुलवधूरिव ॥२१४॥
अथान्तरिक्षे देवानां महाशब्दो महानभूत् । सुग्रीवाद्याश्च राजेन्द्रा विस्मयं परमं ययुः ॥२१५॥
ततः सिद्धान् प्रमोदाढ्याः प्रणम्य भयवर्जितान् । सम्मेदशिखरस्थं च जिनेन्द्रं मुनिसुव्रतम् ॥२१६॥
[2]निषद्या ऋषभादीनामभ्यर्च्य च यथाविधि । सकलं भरतक्षेत्रं बभ्रमुस्ते प्रदक्षिणम् ॥२१७॥
सायाह्ने सौम्यवपुषो दिव्यैर्यानैर्मनोजवैः । कृताभिवन्दना शब्दैर्जयनन्दादिभिर्वृशम् ॥२१८॥
परिवार्य महावीर्यं रामं लक्ष्मणसंगतम् । किष्किन्धनगरं प्रापुर्विविशुश्च महर्द्धयः ॥२१९॥
शयिताश्च यथास्थानं [illegible] ॥२२०॥
वीक्ष्यध्वं वासरैः स्वल्पैः पृथिव्यां राज्यमेतयोः । निःशेषैः कण्टकैर्मुक्तं शक्तिं धारयतोः पराम् ॥२२१॥
सा निर्वाणशिला येन चालयित्वा समुद्धृता । उत्साद्यस्यं क्षिप्रं रावणं नात्र संशयः ॥२२२॥
तथापरे वचः प्राहुः कैलासो येन भूधरः । तदा समुद्धृतः सोऽयं शिलोद्धारस्य किं समः ॥२२३॥
आहुरन्ये समुद्धारः कैलासस्य कृतो यदि । विद्याबले यतस्तत्र विस्मयः कस्य जायते ॥२२४॥

एकाग्रचित्तके धारण उन विद्याधरोंने लक्ष्मण को लक्ष्यकर कहा कि इस शिलासे जो सिद्ध हुए हैं तथा अन्य जिन पुरुषोंने पापकर्म नष्ट किये हैं वे सब विघ्न विनाशक तुम्हारे लिए मंगलस्वरूप हों ॥२१०-२११॥ अरहन्त भगवान् तुम्हारे लिए मंगलस्वरूप हों, सिद्ध परमेष्ठी मंगलरूप हों। सर्व साधु परमेष्ठी मंगलस्वरूप हों और जिन शासन मंगलरूप हो ॥२१२॥ इस प्रकार विद्याधरोंकी मंगल-ध्वनिके साथ, महातेजको धारण करनेवाले लक्ष्मणने शीघ्र ही उस शिलाको हिला दिया ॥२१३॥ तदनन्तर लक्ष्मण कुमारने कुलवधूके समान नाना अलंकारोंसे सुशोभित उस शिलाको बाजूबन्दोंसे सुशोभित अपनी भुजाओंसे ऊपर उठा लिया ॥२१४॥ उसी समय आकाशमें देवोंका महाशब्द हुआ और सुग्रीव आदि राजा परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥२१५॥

तदनन्तर हर्षसे भरे सब लोग भयसे रहित सिद्ध परमेष्ठियों, सम्मेद शिखरपर विराजमान श्री मुनिसुव्रत नाथ जिनेन्द्रकी तथा ऋषभ आदि तीर्थंकरोंके निर्वाणस्थान कैलास आदिकी विधिपूर्वक पूजा कर समस्त भरत क्षेत्रमें घूमे ॥२१६-२१७॥ तदनन्तर वन्दना करनेके बाद सौम्यशरीरके धारक तथा महावैभवसे सम्पन्न सब लोगोंसे सायंकालके समय मनके समान वेगशाली दिव्य विमानों द्वारा 'जय' 'नन्द' आदि शब्दोंके साथ महापराक्रमी राम-लक्ष्मणको घेर-कर किष्किन्धनगरमें प्रवेश किया ॥२१८-२१९॥ सबने यथास्थान शयन किया। तदनन्तर आश्चर्य-चकित चित्तसे एकत्रित हो सब बड़ी प्रसन्नतासे परस्पर इस प्रकार कहने लगे ॥२२०॥ कि तुम लोग परम शक्तिको धारण करनेवाले इन दोनोंका कुछ ही दिनोंमें पृथिवीपर समस्त कण्टकों अर्थात् शत्रुओंसे रहित राज्य देखोगे ॥२२१॥ जिसने उस निर्वाणशिलाको चलाकर उठा लिया ऐसा यह लक्ष्मण शीघ्र ही रावणको मारेगा इसमें संशय नहीं है ॥२२२॥ कुछ लोग इस प्रकार कहने लगे कि उस समय जिसने कैलास उठाया था ऐसा रावण क्या इस शिला उठानेवालेके समान है ? ॥२२३॥

कुछ अन्य लोग कहने लगे कि यदि रावणने कैलास पर्वत उठाया था तो इससे

---

१. श्रुत्वा म. । २. स्नानानि ।

एके च वचनं प्रोचुः किं विवादैरिमैर्मुधा । जगद्धिताय संध्यर्थं किं नोपायो निरूप्यते ॥२२५॥
तस्मादानीयतां सीता समभ्यर्च्य दशाननम् । राघवायार्पयिष्यामि विग्रहे किं प्रयोजनम् ॥२२६॥
संग्रामे तारको नष्टो मेरुकश्च महाबलः । कृतवीर्यसुताद्याश्च महासैन्यसमन्विताः ॥२२७॥
एते खण्डत्रयाधीशा महाभागा महौजसः । अन्ये हि बहवो नष्टा रणे सामन्ततः परम् ॥२२८॥
अन्योन्यमभिमन्त्र्यैवं विद्याविधिविशारदाः । राघवं विनयोपेताः संभूय ययुरादरात् ॥२२९॥
सुग्रीवाद्याः समासीना नयनानन्दकारिणम् । विरेजुः परितो राममसरेन्द्रमिवामराः ॥२३०॥
पद्मनाभस्ततोऽवोचत् किमद्यापि वलम्ब्यते । मया विनान्तरे द्वीपे दुःखं तिष्ठति मैथिली ॥२३१॥
दीर्घसूत्रत्वमुत्सृज्य क्षिप्रमद्यैव सर्वथा । त्रिकूटगमने सज्जैः क्रियते न किमुद्यमः ॥२३२॥
तमूचुर्मन्त्रिणो वृद्धा नयविस्तरकोविदाः । संशयेनात्र किं देव कथ्यतामेकनिश्चयः ॥२३३॥
किं त्वमिच्छसि वैदेहीं विरोधमथ रक्षसाम् । विजयः प्राप्यते दुःखं नायं सदृशविग्रहः ॥२३४॥
भरतस्य त्रिखण्डस्य प्रतिपक्षोज्झितः प्रभुः । सागरद्वीपविख्यात एक एव दशाननः ॥२३५॥
शङ्कितो धातकीद्वीपो ज्योतिषामपि भीतिदः । जाम्बूद्वीपे परं प्राप्तो महिमानं खगाधिपः ॥२३६॥
शल्यभूतोऽस्य विश्वस्य कृतानेकाद्भुतक्रियः । ईदृशो राक्षसो राम कथं संसाध्यते त्वया ॥२३७॥
तस्मादसुद्धिं रणे त्यक्त्वा यद् वयं संवदामहे । प्रसीद क्रियतां देव तदेवोद्यच्छ शान्तये ॥२३८॥
मा भूत्सिमन् कृतक्रोधे जगदेतन्महाभयम् । विध्वस्तप्राणिसंघातं नष्टनिःशेषसक्रियम्[3] ॥२३९॥

क्या हुआ क्योंकि विद्याबलके रहते हुए उसके इस कार्यमें किसे आश्चर्य हो सकता है ? ॥२२४॥ कुछ लोग यह भी कहने लगे कि इन व्यर्थके विवादोंसे क्या लाभ है ? जगत्का कल्याण करनेके लिए सन्धिका उपाय क्यों नहीं बताया जाता है ? ॥२२५॥ इसलिए रावणकी पूजा कर सीताको लाया जावे उसे हम रामके लिये सौंप देंगे फिर युद्धका क्या प्रयोजन है ? ॥२२६॥ संग्राममें तारक, महाबलवान् मेरुक और बड़ी-बड़ी सेनाओंसे सहित कृतवीर्यके पुत्र आदि मारे गये हैं ॥२२७॥ ये सभी तीन खण्डके स्वामी महाभागवान् तथा महाप्रतापी थे। इनके सिवाय और भी अनेक राजा रणमें सब ओर नष्ट हुए हैं ॥२२८॥ इस प्रकार विद्याओंके प्रयोग करनेमें निपुण सब लोग परस्पर सलाह कर विनय सहित आदरपूर्वक मिलकर रामके पास आये ॥२२९॥ नेत्रोंको आनन्द उत्पन्न करनेवाले रामके चारों ओर बैठे हुए सुग्रीव आदि राजा उस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार कि अमरेन्द्रके चारों ओर देव सुशोभित होते हैं ॥२३०॥ तदनन्तर रामने कहा कि अब और किसकी अपेक्षा की जा रही है ? दूसरे द्वीपमें सीता मेरे बिना दुःखी होती होगी ॥२३१॥ शीघ्र ही दीर्घसूत्रताको छोड़कर आज ही आप लोग त्रिकूटाचलपर चलनेके लिए उद्यम क्यों नहीं करते हैं ?॥२३२॥ तब नीतिके विस्तारमें निपुण वृद्ध मन्त्रियोंने कहा कि हे देव ! इस विषयमें संशयकी क्या बात है ? निश्चय बताइए कि ॥२३३॥ आप सीताको चाहते हैं या राक्षसोंके साथ युद्ध ? यदि युद्ध चाहते हैं तो विजय कठिनाईसे प्राप्त होगी क्योंकि राक्षसोंका और आपका यह युद्ध सदृश युद्ध—बराबरीवालोंका युद्ध नहीं है ॥२३४॥ क्योंकि रावण द्वीप और सागरोंमें प्रसिद्ध, तीन खण्ड भरतका शत्रुरहित एक—अद्वितीय ही प्रभु है ॥२३५॥ धातकीखण्ड नामा दूसरा द्वीप भी उससे शंकित रहता है, वह ज्योतिषी देवोंको भी भय उत्पन्न करनेवाला है तथा जम्बूद्वीपमें परम महिमाको प्राप्त अद्वितीय विद्याधरोंका स्वामी है ॥२३६॥ जो समस्त संसारके लिए शल्य स्वरूप है, तथा जिसने अनेक अद्भुत कार्य किये हैं ऐसा राक्षस हे राम ! तुम्हारे द्वारा कैसे जीता जा सकता है ? ॥२३७॥ इसलिए हे देव ! रणकी भावना छोड़ हम लोग जो कह रहे हैं वही कीजिए, प्रसन्न होइए और शान्तिके लिए उद्योग कीजिए ॥२३८॥ उसके कुपित होनेपर यह संसार महाभयसे युक्त न हो,

---

१. दीर्घस्तत्र त्व म. । २. शिल्पीभूतोऽस्य म. । ३. सक्रियम् म. ।

योऽसौ विभीषणः ख्यातः स्वयं ब्रह्मा स कीर्तितः । क्रूरकर्मनिवृत्तात्मा भावितोऽणुव्रतैर्दृढम् ॥२४०॥
अलङ्घ्यवचनं तस्य कुरुते खेचराधिपः । तयोर्हि परमा प्रीतिरन्तरायविवर्जिता ॥२४१॥
बोधितस्तेन दाक्षिण्याद् यशःपालनतोऽपि वा । लज्जया वा विदेहस्थ तनयां प्रेषयिष्यति ॥२४२॥
विज्ञापनवचोयुक्तिकुशलो नयपेशलः । अन्विष्यतामरं कश्चिद्यत्प्रसादी रावणस्य यः ॥२४३॥
ततो [1]महोदधिर्नाम्ना ख्यातो विद्याधराधिपः । अवदीदेष वृत्तान्तो भवतां [2]नागतः श्रुतिम् ॥२४४॥
अगम्यैर्बहुजनक्षोदैर्लङ्काऽगम्या निरन्तरम् । कृतातिशयदुःप्रेक्षा सुभीमात्यन्तगह्वरा ॥२४५॥
एषां मध्ये न पश्यामि महाविद्यं नभश्चरम् । लङ्कां गत्वा द्रुतं भूयो यः समर्थो निवर्तितुम् ॥२४६॥
पवनंजयराजस्य श्रीशैलः प्रथितः सुतः । विद्यासत्त्वप्रतापाढ्यो [3]बलोत्तुङ्गः स याच्यताम् ॥२४७॥
समं दशाननेनास्य विद्यतेऽत्यर्थमुत्तमम् [4] । युक्तः करोत्यसौ साम्यं निर्विघ्नं पुरुषोत्तमः ॥२४८॥
प्रतिपन्नैस्ततः सर्वैरेवमस्विति सादरैः । मारुतेरन्तिकं दूतः श्रीभूतिः प्रहितो द्रुतम् ॥२४९॥
शक्तिं दधतापि परां प्राप्यापि परं प्रबोधमारभ्येः [5] । भवितव्यं नयरतिना [6] रविरिव काले स याभ्युदयम् ॥२५०॥
इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे कोटिशिलोत्क्षेपणाभिधानं नाम अष्टचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४८॥

प्राणियोंके समूहका विध्वंस न हो तथा समस्त उत्तम क्रियाएँ नष्ट न हों ॥२३९॥ रावणका भाई विभीषण अत्यन्त प्रसिद्ध है, मानो स्वयं ब्रह्मा ही है। वह दुष्टतापूर्ण कार्योंसे सदा दूर रहता है और अणुव्रतोंका दृढ़तासे पालन करता है ॥२४०॥ उसके वचन अलंघ्य हैं वह जो कहता है रावण वही करता है। यथार्थमें उन दोनोंमें निर्बाध परम प्रेम है ॥२४१॥ विभीषण उसे समझावेगा इसलिए, अथवा उदारतासे, अथवा कीर्ति रक्षा के अभिप्रायसे अथवा लज्जाके कारण रावण सीताको भेज देगा ॥२४२॥ इसलिए शीघ्र ही किसी ऐसे पुरुषकी खोज की जाये जो निवेदन करनेवाले वचनोंकी योजनामें कुशल हो, नीतिनिपुण हो और रावणको प्रसन्न करनेवाला हो ॥२४३॥

तदनन्तर महोदधि नामसे प्रसिद्ध विद्याधरोंके राजाने कहा कि क्या यह वृत्तान्त आप लोगोंके श्रवणमें नहीं आया ॥२४४॥ कि लंका अनेक जनोंका विघात करनेवाले यन्त्रोंसे निरन्तर अगम्य कर दी गयी है, उसका देखना भी कठिन है तथा अत्यन्त भयंकर गम्भीर गर्तोंसे युक्त हो गयी है ॥२४५॥ इन सबके बीचमें महाविद्याओंके धारक एक भी ऐसे विद्याधरको नहीं देखता हूँ कि जो लंका जाकर शीघ्र ही पुनः लौटनेके लिए समर्थ हो ॥२४६॥ हाँ, पवनंजय राजाका पुत्र श्रीशैल विद्या, सत्त्व और प्रतापसे सहित है तथा अतिशय बलवान् है सो उससे याचना की जाये ॥२४७॥ इसका दशाननके साथ उत्तम सम्बन्ध भी है इसलिए यदि इसे भेजा जाये तो यह श्रेष्ठ पुरुष निर्विघ्न रूपसे शान्ति स्थापित कर सकता है ॥२४८॥ तदनन्तर सब विद्याधरोंने 'एवमस्तु' कहकर महोदधि विद्याधरका प्रस्ताव स्वीकृत कर श्रीशैल (हनुमान्) के पास शीघ्र ही श्रीभूति नामका दूत भेजा ॥२४९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि परम शक्तिके धारक राजाको भी प्रारम्भ करने योग्य कार्यके विषयमें परम विवेकको प्राप्त कर नीतिज्ञ होना चाहिए क्योंकि ऐसा राजा ही सूर्यके समान समय आनेपर अभ्युदयको प्राप्त होता है ॥२५०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें कोटिशिला उठानेका वर्णन करनेवाला अड़तालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४८॥

---

१. महोदधिनाम्ना म. । २. भवतां श्रुतिं न आगतः । ३. बालोत्तुङ्गः म. । बलात्तुङ्ग ख. । ४. अजयं संगतं । विद्यते नगमुत्तमं ख., म. । ५. बोधमारभ्यः म. । ६. नरपतिना ख. ।

एकोनपञ्चाशत्तमं पर्व

ततो नभः समुत्पत्य जगामासौ[1] मरुज्जवः । अत्युत्तुङ्गैर्गृहैः पूर्णं श्रीपुरं श्रीनिकेतनम् ॥१॥
तत्र हेमद्रवस्यन्दलेप्यतेजःसमुज्ज्वलम् । कुन्दाभवलभीशोभि रत्ननिर्मितशेखरम् ॥२॥
मुक्तादामसमाकीर्णं वातायनविनिर्गतैः । अत्यन्ताकीर्णपर्यन्तं पारिपाट्यान्ततेगृहम् ॥३॥
अपूर्वलोकसंघातं पश्यतस्तस्य साद्भुतम् । मनोगतागतं भूयो गतं कृच्छ्रेण धीरताम् ॥४॥
प्रविष्टे मारुतेर्गेहं तस्मिन् दूते ससंभ्रमे । अनङ्गकुसुमोत्पातं जगामेन्दुखलात्मजा ॥५॥
सस्पन्दं दक्षिणं चक्षुरवधार्य व्यचिन्तयत् । प्राप्तव्यं विधियोगेन कर्म कर्तुं न शक्यते ॥६॥
क्षुद्रशक्तिसमासक्ता मानुषास्तावदासताम् । न सुरैरपि कर्माणि शक्यन्ते कर्तुमन्यथा ॥७॥
वेदितागमनस्तावद् दूतो नर्मदया सभाम् । प्रस्वेदकणसंपूर्णः प्रतीहार्या प्रवेशितः ॥८॥
अगादाथ यथावृत्तं निःशेषं प्रणताननः । दण्डकाद्रिं समायाताः पद्मनाभादयः पुरा ॥९॥
शम्बूकस्य वधं युद्धं विषमं खरदूषणम् । पञ्चतागमनं तस्य मानवैरुत्तमैः सह ॥१०॥
ततो निशम्य तां वार्तां शोकविह्वलविग्रहा । अनङ्गकुसुमा मूर्छामुपेता मुकुलेक्षणा ॥११॥
चान्दनेन द्रवेणैतां सिच्यमानां क्रियोज्झिताम् । विलोक्यान्तःपुराम्भोधिः परमं क्षोभमागतः ॥१२॥
वीणातन्त्रीसहस्राणां प्राप्तानां कोणताडनम् । क्रन्दन्तीनां समं रम्यो ध्वनिः स्त्रीणां समुद्गतः ॥१३॥

तदनन्तर—वायुके समान वेगका धारक श्रीभूति दूत, आकाशमें उड़कर अत्यन्त ऊँचे-ऊँचे महलोंसे परिपूर्ण, लक्ष्मीके घरस्वरूप श्रीपुर नगरमें पहुँचा ॥१॥ वहाँ जाकर उसने श्रीशैलके उस भवनमें प्रवेश किया जो स्वर्णमय पानीके लेपसे उत्पन्न तेजसे अत्यन्त देदीप्यमान था, कुन्दके समान उज्ज्वल अट्टालिकाओंसे सुशोभित था, रत्नमयी शिखरोंसे जगमगा रहा था, मोतियोंकी मालाओंसे व्याप्त था, झरोखोंसे सुशोभित था, और जिसका समीपवर्ती प्रदेश बाग-बगीचोंसे व्याप्त था ॥२-३॥ वहाँ लोगोंकी अपूर्व भीड़ तथा आश्चर्यकारी अत्यधिक यातायात देख श्रीभूतिका मन बड़ी कठिनाईसे धीरताको प्राप्त हुआ ॥४॥ जब आश्चर्यमें पड़े हुए श्रीभूति दूतने हनुमान्‌के घरमें प्रवेश किया तब चन्द्रनखाकी पुत्री अनंगकुसुमा उत्पातको प्राप्त हुई ॥५॥ दक्षिण नेत्रको फड़कते देख उसने विचार किया कि दैवयोगसे जो कार्य जैसा होना होता है उसे अन्यथा नहीं किया जा सकता ॥६॥ हीन शक्तिके धारक मनुष्य तो दूर रहें देवोंके द्वारा भी कर्म अन्यथा नहीं किये जा सकते ॥७॥ तदनन्तर अनंगकुसुमाकी प्रहासिका सखीने जिसके आगमन की सूचना दी थी, और स्वेदके कणोंसे जिसका शरीर व्याप्त हो रहा था ऐसे उस श्रीभूति दूतको प्रतीहारीने सभाके भीतर प्रविष्ट कराया ॥८॥

अथानन्तर नम्र मुख होकर उसने सब वृत्तान्त ज्योंका त्यों इस प्रकार सुनाया कि राम आदि दण्डक वनमें आये, शम्बूकका वध हुआ, खरदूषणके साथ विषम युद्ध हुआ, और उत्तम मनुष्योंके साथ खरदूषण मारा गया ॥९-१०॥ तदनन्तर यह वार्ता सुन अनंगकुसुमा शोकसे विह्वल शरीर हो मूर्च्छित हो गयी तथा उसके नेत्र निमीलित हो गये ॥११॥ उसका हलन-चलन बन्द हो गया तथा चन्दनके द्रवसे उसे सींचा जाने लगा, यह देख समस्त अन्तःपुररूपी सागर परम क्षोभको प्राप्त हुआ ॥१२॥ अन्तःपुरकी समस्त स्त्रियाँ एक साथ रुदन करने लगीं सो उनके

---

१. श्रीभूतिः ।

अनङ्गकुसुमा कृच्छ्रालब्धिमता प्राणसंगमम् । अश्रुसिक्तस्तनी तारं विललापातिदुःखिता ॥१४॥
हा तात क्व प्रयातोऽसि प्रयच्छ वचनं मम । हा भ्रातः किमिदं जातं दीयतां दर्शनं सकृत् ॥१५॥
वनेऽतिभीषणे कष्टं रणाभिमुखतां गतः । भूगोचरैः कथं तात मरणत्वमुपाहृतः ॥१६॥
शोकाकुलजनाकीर्णे जाते श्रीशैलवेश्मनि । नीतो नर्मदया दूतः प्रदेशं वचनोचितम् ॥१७॥
पितृभ्रातृशुचा दुःखैस्तप्ता चन्द्रनखात्मजा । कृच्छ्रेण शमनं नीता सद्भिः प्रशमकोविदैः ॥१८॥
जिनमार्गप्रवीणासौ बुद्ध्वा संसारसंस्थितिम् । लोकाचारानुकूलत्वाच्चक्रे प्रेतक्रियाविधिम् ॥१९॥
अन्येद्युर्दूतमाहूय पवनंजयनन्दनः । अपृच्छच्छोकसंस्पृष्टः सौमलोकसमावृतः ॥२०॥
निःशेषं दूत यद्वृत्तं तन्निवेद्य सांप्रतम् । इत्युक्त्वा कारणं मृत्योः खरदूषणमस्मरत् ॥२१॥
ततोऽस्य कोपसंरुद्धसर्वाङ्गस्य महाद्युतेः । भ्रूलतरङ्गवती रेजे तडिद्रेखेव चञ्चला ॥२२॥
ततस्त्रासपरीताङ्गो मुदुद्युतिः प्रतापवान् । जगाद मधुरं प्राज्ञः कोपविध्वंसकारणम् ॥२३॥
ज्ञातमेव हि देवस्य किष्किन्धाधिपतेः परम् । दयितादुःखमुत्पन्नं तत्समाकारहेतुकम् ॥२४॥
आर्तस्तेन स दुःखेन पद्मं शरणमागमत् । प्रतीक्ष्य सोऽतिविध्वंसं किष्किन्धनगरं गतः ॥२५॥
सुग्रीवाकृतिचौरेण समं तत्र महानभूत् । चिरं क्रान्तमहायोधः संग्रामः श्वसुरस्य ते ॥२६॥
उत्थाय पद्मनाभेन ततो मूर्यो महौजसा । तस्याहूतस्य नष्टासौ वेताली स्तेयकारणम् ॥२७॥
ततः साहसगत्याख्यः स्वस्वभावं समाश्रितः । विज्ञातो रामनिर्मुक्तैर्मूर्ध्नं नीतः शिलीमुखैः ॥२८॥

रुदनका शब्द ऐसा उठा मानो वीणाओंके हजारों तार कोणके ताड़नको प्राप्त हो एक साथ शब्द करने लगे हों ॥१३॥ तदनन्तर अनंगकुसुमा बड़े कष्टसे प्राणोंके समागमको प्राप्त हुई अर्थात् सचेत हुई। सचेत होनेपर अश्रुओंसे स्तनोंको सिक्त करती तथा अतिशय दुःख प्रकट करती हुई वह जोर-जोरसे विलाप करने लगी ॥१४॥ वह कहने लगी कि हाय तात ! तुम कहाँ गये; मुझे वचन देओ—मुझसे वार्तालाप करो। हाय भाई ! यह क्या हुआ ? एक बार तो दर्शन देओ ॥१५॥ हे तात ! अत्यन्त भयंकर वनमें रणके सम्मुख हुए तुम भूमिगोचरियोंके द्वारा मरणको कैसे प्राप्त हो गये ? ॥१६॥ इस प्रकार जब श्रीशैलका भवन शोकाकुल मनुष्योंसे भर गया तब अनंगकुसुमाको नर्मदा—सखी दूतको बात करने योग्य स्थानपर ले गयी ॥१७॥ पिता और भाईके दुःखसे सन्तप्त चन्द्रनखाकी पुत्री अनंगकुसुमा, सान्त्वना देनेमें निपुण सत्पुरुषोंके द्वारा बड़ी कठिनाईसे शान्तिको प्राप्त करायी गयी ॥१८॥ जिनमार्गमें प्रवीण अनंगकुसुमाने संसारकी स्थिति जानकर लोकाचारके अनुकूल पिताकी मरणोत्तर क्रिया की ॥१९॥

अथानन्तर दूसरे दिन शोकसे व्याप्त तथा मन्त्री आदि मौलवर्गसे परिवृत श्रीशैल—हनुमान्‌ने दूतको बुलाकर पूछा कि हे दूत ! खरदूषणकी मृत्युका जो कुछ कारण हुआ है वह सब कहो, यह कहकर हनुमान् खरदूषणका स्मरण करने लगा ॥२०-२१॥ तदनन्तर क्रोधसे जिसका समस्त शरीर व्याप्त था ऐसे महादीप्तिमान् हनुमान्‌की फड़कती हुई भौंह चंचल बिजली की रेखाके समान जान पड़ती थी ॥२२॥ तत्पश्चात् भयसे जिसका समस्त शरीर व्याप्त था ऐसे महाप्रतापी बुद्धिमान्‌ने हनुमान्‌का क्रोध दूर करनेवाले निम्नांकित मधुर वचन कहे ॥२३॥ उसने कहा कि हे देव ! आपको यह तो विदित ही है कि किष्किन्धाके अधिपति सुग्रीवको उसीके समान रूप धारण करनेवाले साहसगति विद्याधरके कारण स्त्रीसम्बन्धी दुःख उपस्थित हुआ था ॥२४॥ उस दुःखसे दुखी हुआ सुग्रीव रामकी शरणमें आया था और राम भी उसका दुःख नष्ट करनेकी प्रतिज्ञा कर किष्किन्धनगर गये थे ॥२५॥ वहाँ आपके श्वसुर—सुग्रीवका, उसकी आकृतिके चोर—कृत्रिम सुग्रीवके साथ बड़े-बड़े योद्धाओंको थका देनेवाला चिरकाल तक महायुद्ध हुआ ॥२६॥ तदनन्तर महातेजस्वी रामने उठकर उसे ललकारा। उन्हें देखते ही चोरीका कारण जो वेताली-विद्या थी वह नष्ट हो गयी ॥२७॥ तब साहसगति अपने असली स्वरूपको प्राप्त हो गया, सबकी

तच्छ्रुत्वा विगतक्रोधो जातः पवननन्दनः । पुनरुक्तं ननौ तुष्टः विकसन्मुखपङ्कजः ॥२९॥
कृतं कृतमहो साधु प्रियं पद्मेन नः परम् । यत्सुग्रीवकुलं मज्जदकीर्तौ क्षिप्रमुद्धृतम् ॥३०॥
हेमकुम्भोपमं गोत्रं अयशःकूपगह्वरे । निमज्जद्गुणहस्तेन तेन सन्मतिनोद्धृतम् ॥३१॥
एवमादिपरं भूरि प्रशंसन् रामलक्ष्मणौ । कस्मिन्नपि ममज्जासौ सारसौख्यमहार्णवे ॥३२॥
श्रुत्वा पद्मरागायाः पितुः शोकपरिक्षयम् । उत्सवः सुमहान् जातो दानपूजादिसंस्तुतः ॥३३॥
उद्वेगानन्दसंपन्नं हतच्छायसमुज्ज्वलम् । श्रीशैलभवनं जातं रसद्वयसमुत्कटम् ॥३४॥
एवं विषमतां प्राप्ते स्वजने पावनंजयिः । किंचित्समरसमाधाय किष्किन्धाभिमुखं ययौ ॥३५॥
कक्ष्याभिगच्छतस्तस्य बलेनात्यर्थभूरिणा । जगदन्यदिवोद्भूतमाकाशपरिवर्जितम् ॥३६॥
विमानं सुमहत्तस्य मणिरत्नसमुज्ज्वलम् । प्रभां[1] दिवसरत्नस्य जहार स्वमरीचिभिः ॥३७॥
गच्छन्तं तं महाभाग्यं शतशो वसुधाधिपाः । अनुजग्मुः सुनासीरं यथा त्रिदशपुंगवाः ॥३८॥
अग्रतः पृष्ठतश्चास्य पार्श्वतश्च जयस्वनैः । गच्छतां खेचरेन्द्राणामासीच्छब्दमयं नभः ॥३९॥
चित्रमासीद्यदश्वानां विहायस्तलगामिनाम् । मनोहारी गजानां च विलासः स्वतनूचितः ॥४०॥
महातुरङ्गसंयुक्तैः रथैरुच्छ्रितकेतुभिः । विहायस्तलं जातं मन्ये कल्पनगाकुलम् ॥४१॥
सितानामातपत्राणां शब्दलेन महीयसा । जातं[3] कुमुदखण्डानामिव पूर्णं वियत्तलम् ॥४२॥

पहचानमें आया और रामके द्वारा छोड़े हुए बाणोंसे मूर्च्छाको प्राप्त हुआ ॥२८॥ यह सुनकर हनुमान् क्रोधरहित हो गया। प्रसन्नतासे उसका मुखकमल खिल उठा और सन्तुष्ट होकर उसने बार-बार कहा कि अहो ! रामने बहुत अच्छा किया, मुझे बहुत अच्छा लगा जो उन्होंने अपकीर्तिमें डूबते हुए सुग्रीवके कुलका शीघ्र ही उद्धार कर लिया ॥२९-३०॥ स्वर्णकलशके समान सुग्रीवका कुल अपयशरूपी कूपके गर्तमें पड़कर डूब रहा था सो उत्तम बुद्धिके धारक रामने गुणरूपी रस्सी हाथमें ले उसे निकाला है ॥३१॥ इस प्रकार रामलक्ष्मणकी अत्यधिक प्रशंसा करता हुआ हनुमान् किसी अद्भुत श्रेष्ठ सुखरूपी सागरमें निमग्न हो गया ॥३२॥

हनुमान्‌की दूसरी स्त्री सुग्रीवकी पुत्री पद्मरागा थी सो पिताके शोकका क्षय सुनकर उसे बड़ा हर्ष हुआ। उसने दान-पूजा आदिके द्वारा महाउत्सव किया ॥३३॥ उस समय हनुमान्‌के भवनमें एक ओर तो शोक मनाया जा रहा था और दूसरी ओर हर्ष प्रकट किया जा रहा था। वह एक ओर तो कान्तिसे शून्य हो रहा था और दूसरी ओर देदीप्यमान हो रहा था। इस प्रकार दो स्त्रियोंके कारण वह दो प्रकारके रससे युक्त था ॥३४॥ इस प्रकार जब कुटुम्बके लोग विषमताको प्राप्त हो रहे थे तब हनुमान् कुछ-कुछ मध्यस्थताको धारण कर किष्किन्धानगरकी ओर चला ॥३५॥ वैभवके साथ जाते हुए हनुमान्‌की बहुत बड़ी सेनासे उस समय संसार आकाशसे रहित होनेके कारण ऐसा जान पड़ता था मानो दूसरा ही उत्पन्न हुआ हो ॥३६॥ मणियों और रत्नोंसे जगमगाता हुआ उसका बड़ा भारी विमान, अपनी किरणोंसे सूर्यकी प्रभाको हर रहा था ॥३७॥ जाते हुए उस महाभाग्यशालीके पीछे सैकड़ों मित्रराजा उस प्रकार चल रहे थे जिस प्रकार कि इन्द्रके पीछे उत्तमोत्तम देव चलते हैं ॥३८॥ उसके आगे-पीछे और दोनों ओर चलनेवाले विद्याधर राजाओंकी जयध्वनिसे आकाश शब्दमय हो गया था ॥३९॥ आकाशतलमें चलनेवाले उसके घोड़ोंसे आश्चर्य उत्पन्न हो रहा था तथा हाथियोंकी अपने शरीरके अनुरूप मनोहारी चेष्टा प्रकट हो रही थी ॥४०॥ जिनमें बड़े-बड़े घोड़े जुते हुए थे तथा जिनपर पताकाएँ फहरा रही थीं ऐसे रथोंसे उस समय आकाशतल ऐसा जान पड़ता था मानो कल्पवृक्षोंसे व्याप्त ही हो ॥४१॥ धवल छत्रोंके विशाल समूहसे आकाशतल ऐसा जान पड़ता था मानो कुमुदोंके समूहसे ही व्याप्त

---

१. सुमहत् तस्य । २. सूर्यस्य । ३. च कुन्द म. ।

गम्भीरो दुन्दुभो धीरो ध्वानो ध्वस्तापरध्वनिः । चक्रवालं दिशां व्याप्य प्रतिध्वनिघनः स्थितः ॥४३॥
संकुलं चलता येन सैन्येन गगनाङ्गणम् । खण्डखण्डैरिवच्छन्नमन्तरेषु व्यलोक्यते ॥४४॥
भासां भूषणजालानां बहुवर्णयुजां चयैः[1] । विशिष्टशिल्पिना रक्तं नभो वस्त्रमिवाभवत् ॥४५॥
ध्वनिं मारुतितूर्यस्य श्रुत्वा संनह्य गह्वरम् । तोषं कपिध्वजाः प्रापुः शिखिनोऽब्दध्वनिं यथा ॥४६॥
कृतापणमहाशोभं ध्वजमालासमाकुलम् । रत्नतोरणसंयुक्तं किष्किन्धनगरं कृतम् ॥४७॥
बहुभिः पूज्यमानोऽसौ विभवैस्त्रिदशोपमैः । विवेश नगरं सद्म सुग्रीवस्य च पुष्कलम् ॥४८॥
सुग्रीवेण प्रतीष्टश्च यथार्हं रचितादरः । कथितं चाखिलं तस्य पद्मनाभादिचेष्टितम् ॥४९॥
अनेनैव ततो युक्ताः सुग्रीवाद्या नरेश्वराः । धारयन्तः परं हर्षं पद्मनाभमुपाययुः ॥५०॥
अपश्यच्च नरश्रेष्ठं तं लक्ष्मीधरपूर्वजम् । नीलकुञ्चितसूक्ष्मालिस्निग्धकेशं मरुत्सुतः ॥५१॥
लक्ष्मीलतापरिष्वक्तं कुमारमिव भास्करम् । शशाङ्कमिव लिम्पन्तं[2] कान्तिपङ्केन पुष्करम्[3] ॥५२॥
नयनानां समानन्दं मनोहरणकोविदम् । अपूर्वकर्मणां सर्गं स्वर्गादिव समागतम् ॥५३॥
ज्वलत्सुविशुद्धरुक्माम्बुरुहगर्भसमप्रभम् । [4]मनोज्ञा गतनासाग्रं संगतश्रवणद्वयम्[5] ॥५४॥
मूर्तिमन्तमिवानङ्गं पुण्डरीकनिभेक्षणम् । चापानतभ्रुवं पूर्णशारदेन्दुनिभाननम् ॥५५॥
बिम्बप्रवालरक्तोष्ठं कुन्दकैरवदन्तिकाम् । कम्बुकण्ठं मृगेन्द्राभवक्षोभाजं महाभुजम् ॥५६॥

हो ॥४२॥ दूसरोंकी ध्वनिको नष्ट करनेवाला उसकी दुन्दुभिका धीर गम्भीर शब्द दिशाओंके मण्डलको व्याप्त कर स्थित था तथा उसकी जोरदार प्रतिध्वनि उठ रही थी ॥४३॥ उसकी चलती हुई सेनासे व्याप्त आकाशांगण ऐसा दिखाई देता था मानो बीच-बीचमें खण्ड-खण्डोंसे आच्छादित हो ॥४४॥ उसके नाना प्रकारके भूषणोंके समूहकी कान्तिसे रँगा हुआ आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो किसी विशिष्ट—कुशल शिल्पीके द्वारा रँगा वस्त्र ही हो ॥४५॥ हनुमान्‌की तुरहीका गम्भीर शब्द श्रवण कर सब वानरवंशी इस प्रकार सन्तोषको प्राप्त हुए जिस प्रकार कि मेघका शब्द सुनकर मयूर सन्तोषको प्राप्त होते हैं ॥४६॥ उस समय किष्किन्धनगरके बाजारोंमें महाशोभा की गयी; ध्वजाओं तथा मालाओंसे नगर सजाया गया और रत्नमयी तोरणोंसे युक्त किया गया ॥४७॥ देवोंके समान अनेक विद्याधरोंने बड़े वैभवसे जिसकी पूजा की थी ऐसा हनुमान् सुग्रीवके विशाल महलमें प्रविष्ट हुआ ॥४८॥ सुग्रीवने यथायोग्य आदर कर उसका सम्मान किया तथा राम आदिकी समस्त चेष्टाएँ उसके समक्ष कहीं ॥४९॥ तदनन्तर हनुमान्‌से युक्त सुग्रीव आदि राजा परम हर्षको धारण करते हुए रामके समीप आये ॥५०॥ तत्पश्चात् हनुमान्‌ने उन श्रीरामको देखा जो मनुष्योंमें श्रेष्ठ थे, लक्ष्मणके अग्रज थे, जिनके केश काले, घुँघराले, सूक्ष्म तथा अत्यन्त स्निग्ध थे ॥५१॥

जिनका शरीर लक्ष्मीरूपी लतासे आलिंगित था, जो बालसूर्यके समान जान पड़ते थे अथवा जो कान्तिरूपी पंकके आकाशको लिप्त करते हुए चन्द्रमाके समान सुशोभित थे ॥५२॥ जो नेत्रोंको आनन्द देनेवाले थे, मनके हरण करनेमें निपुण थे, अपूर्व कर्मोंकी मानो सृष्टि ही थे और स्वर्गसे आये हुए के समान जान पड़ते थे ॥५३॥ देदीप्यमान निर्मल स्वर्ण-कमलके भीतरी भागके समान जिसकी प्रभा थी, जिनकी नासाका अग्रभाग मनोहर था, जिनके दोनों कर्ण उत्तम सुडौल अथवा सज्जनोंको प्रिय थे ॥५४॥ जो मूर्तिधारी कामदेवके समान जान पड़ते थे, जिनके नेत्र कमलके समान थे, जिनकी भौंह चढ़े हुए धनुषके समान नम्रीभूत थी, जिनका मुख शरद् ऋतुके पूर्ण चन्द्रमाके समान था ॥५५॥ जिनका ओंठ बिम्ब अथवा मूँगा या किसलयके समान

---

१. वर्यैः म. । २. कान्तिपङ्केन । ३. पुष्कलम् ख. । ४. मनोज्ञां गतनासाग्रं । ५. सङ्गतं श्रवणद्वयम् म. ।

श्रीवत्सकान्तिसंपूर्णमहाशोभस्तनान्तरम् । गम्भीरनाभिवक्षामममध्यदेशविराजितम् ॥५७॥
प्रशान्तगुणसंपूर्णं नानालक्षणभूषितम् । सुकुमारकरं चारुपीवरोरुद्वयस्तुतम् ॥५८॥
कूर्मपृष्ठमहातेजःसुकुमारकमद्वयम् । चन्द्रांकुरारुणच्छायानखपङ्क्तिसमुज्ज्वलम् ॥५९॥
अक्षोभ्यसत्त्वगम्भीरं वज्रसंघातविग्रहम् । सर्वसुन्दरसन्दोहमिव कृत्स्ना विनिर्मितम् ॥६०॥
महाप्रभावसंपन्नं न्यग्रोधपरिमण्डलम् । प्रियाङ्गनावियोगेन बालसिंहमिवाकुलम् ॥६१॥
शच्येव रहितं शक्रं रोहिण्येव विना विधुम् । रूपसौभाग्यसंपन्नं सर्वशास्त्रविशारदम् ॥६२॥
शौर्यमाहात्म्यसंयुक्तं मेधादिगुणसंयुतम् । एवंविधं समालोक्य मारुतिः क्षोभमागतः ॥६३॥
अचिन्तयच्च संभ्रान्तस्तत्प्रभाववशीकृतः । तच्छरीरप्रभाजालसमाश्लिष्टविग्रहः ॥६४॥
श्रीमानयमसौ राजा रामो दशरथात्मजः । यस्येह लक्ष्मणो भ्राता लोकश्रेष्ठः स्थितो वशे ॥६५॥
यस्यालोक्य तदा संख्ये[1] छत्रं शीतांशुसंनिभम् । सा साहसगतेर्माया वैताली परिनिःसृता ॥६६॥
दृष्ट्वा वज्रधरं [2]पूर्वं हृदयं यन्न कम्पितम् । तदद्य मम दृष्ट्वैनं संक्षोभं परमं गतम् ॥६७॥
इति विस्मयमापन्नः समनुस्मृत्य तान् गुणान् । ससार [3]पावनिः पद्मं श्रीमदम्भोजलोचनम् ॥६८॥
दूरादुत्थाय दृष्ट्वैनं पद्मलक्ष्मीधरादिभिः । अर्थी प्रहृष्टचेतोभिः परिष्वक्तो यथाक्रमम् ॥६९॥
परस्परं समालोक्य संभाष्य विनयोचितम् । उपधानविचित्रेषु [4]स्वासनेष्ववतस्थिरे ॥७०॥

लाल था जिसकी दाँतोंकी पंक्ति कुन्द कुसुमके समान शुक्ल थी, कण्ठ शंखके समान था, जो सिंहके समान विस्तृत वक्षःस्थलके धारक थे, महाभुजाओंसे युक्त थे ॥५६॥ जिनके स्तनोंका मध्यभाग श्रीवत्स चिह्नकी कान्तिसे परिपूर्ण महाशोभाको धारण करनेवाला था, जो गम्भीर नाभिसे युक्त तथा पतली कमरसे सुशोभित थे ॥५७॥ जो प्रशान्त गुणोंसे युक्त थे, नाना लक्षणोंसे विभूषित थे, जिनके हाथ अत्यन्त सुकुमार थे, जिनकी दोनों जाँघे गोल तथा स्थूल थीं ॥५८॥ जिनके दोनों चरण कछुवेके पृष्ठभागके समान महातेजस्वी तथा सुकुमार थे, जो चन्द्रमाकी किरणरूपी अंकुरोंसे लाल-लाल दीखनेवाली नखावलीसे उज्ज्वल थे ॥५९॥ जो अक्षोभ्य धैर्यसे गम्भीर थे, जिनका शरीर मानो वज्रका समूह ही था, अथवा समस्त सुन्दर वस्तुओंको एकत्रित कर ही मानो जिनकी रचना हुई थी ॥६०॥ जो महाप्रभावसे युक्त थे, न्यग्रोध अर्थात् वट-वृक्षके समान जिनका मण्डल था, जो प्रिय स्त्रीके विरहके कारण बालसिंहके समान व्याकुल थे ॥६१॥ जो इन्द्राणीसे रहित इन्द्रके समान, अथवा रोहिणीसे रहित चन्द्रमाके समान जान पड़ते थे, जो रूप तथा सौभाग्य दोनोंसे युक्त थे, समस्त शास्त्रोंमें निपुण थे ॥६२॥ शूर-वीरताके माहात्म्यसे युक्त थे तथा मेधा—सद्बुद्धि आदि गुणोंसे युक्त थे। ऐसे श्रीरामको देखकर हनुमान् क्षोभको प्राप्त हुआ ॥६३॥

तदनन्तर जो रामके प्रभावसे वशीभूत हो गया था और उनके शरीरकी कान्तिके समूहसे जिसका शरीर आलिंगित हो रहा था ऐसा हनुमान् सम्भ्रममें पड़ विचार करने लगा ॥६४॥ कि यह वही दशरथके पुत्र लक्ष्मीमान् राजा रामचन्द्र हैं, लोकश्रेष्ठ लक्ष्मण जैसा भाई जिनका आज्ञाकारी है ॥६५॥ उस समय युद्धमें जिनका चन्द्रतुल्य छत्र देखकर साहसगति की वह वैताली विद्या निकल गयी ॥६६॥ मेरा जो हृदय पहले इन्द्रको देखकर भी कम्पित नहीं हुआ वह आज इन्हें देखकर परम क्षोभको प्राप्त हुआ है ॥६७॥ इस प्रकार आश्चर्यको प्राप्त हुआ हनुमान् इनके गुणोंका अनुसरण कर कमललोचन रामके पास पहुँचा ॥६८॥ जिनका चित्त हर्षित हो रहा था ऐसे राम, लक्ष्मण आदिने इसे देख दूरसे ही उठाकर यथाक्रमसे इसका आलिंगन किया ॥६९॥ परस्पर एक दूसरेको देखकर तथा विनयके योग्य वार्तालाप कर सब नाना प्रकार तकियोंसे

---

१. युद्धे । २. सर्वं म. । ३. पवनस्यापत्यं पुमान् पावनिः हनुमान् । ४. स्वासनेष्ववतस्थिते म. ।

तत्र भद्रासने रम्ये स्थितः काकुत्स्थनन्दनः । केयूरभूषितभुजो ज्वलल्लक्ष्म्या समन्ततः ॥७१॥
[1]स्वच्छनीलाम्बरधरश्चूडामणिरिवोज्ज्वलः । रराज वरहारेण सोडुचन्द्र इवोद्गतः ॥७२॥
दिव्यपीताम्बरधरो हारकेयूरकुण्डली । सुमित्रातनयो रेजे सतडिज्जलदो यथा ॥७३॥
वानराभोगमुकुटः सुरवारणविक्रमः । अमात्सुग्रीवराजोऽपि लोकपाल इवोर्जितः ॥७४॥
विराधितः कुमारोऽपि सौमित्रेः पृष्ठतः स्थितः । अलक्ष्यत मृगेन्द्रस्य चक्ररत्नमिवौजसा[2] ॥७५॥
हनूमानप्यलं रेजे पद्मनाभस्य धीमतः । समीपे पूर्णचन्द्रस्य स्फीतो बुध इवोदितः ॥७६॥
[3]सुगन्धिमाल्यवस्त्राद्यैरलंकारैश्च भूषितौ । अङ्गाङ्गदावभासेतां यमवैश्रवणाविव ॥७७॥
नलनीलप्रभृतयः पार्थिवाश्चापि पार्थिवाः । आसीना रेजुरत्यन्तमावृत्य रघुनन्दनम् ॥७८॥
पञ्चसद्गन्धताम्बूलगन्धसंगतमारुता । विभूषणकृतोद्योता सा सभेन्द्रसभोपमा ॥७९॥
विस्मित्य सुचिरं रामं प्रीतः पवनिरब्रवीत् । समक्षं न गुणा ग्राह्या भवतो रघुनन्दन ॥८०॥
इहापि निखिले लोके दृश्यते स्थितिरीदृशी । किमपि प्रियवक्तॄणां प्रत्यक्षगुणकीर्तनम्[4] ॥८१॥
आसीदस्याधिमाहात्म्यं श्रुतमस्माभिरूर्जितम् । दृष्टः सर्वहितः स त्वं सत्यवान् चक्षुषा स्वयम् ॥८२॥
सर्वसौन्दर्ययुक्तस्य गुणरत्नाकरस्य ते । मुखेन यशसा राजन् जगदेतदलङ्कृतम् ॥८३॥

सुशोभित अपने-अपने आसनोंपर बैठ गये ॥७०॥ वहाँ जो उत्तम आसनपर विराजमान थे, जिनकी भुजा बाजूबन्दसे सुशोभित थी, जो लक्ष्मीके द्वारा सब ओरसे देदीप्यमान थे, जो स्वच्छ नीलवस्त्र धारण किये हुए थे तथा उत्तम हारसे सुशोभित थे ऐसे श्रीराम नक्षत्र सहित उदित हुए चन्द्रमाके समान जान पड़ते थे ॥७१-७२॥ दिव्य पीताम्बरको धारण करनेवाले तथा हार, केयूर और कुण्डलोंसे अलंकृत लक्ष्मण बिजली सहित मेघके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७३॥ जिसका सुविस्तृत मुकुट वानरके चिह्नसे युक्त था, तथा देवगज —ऐरावतके समान जिसका पराक्रम था ऐसा सुग्रीवराजा भी अतिशय बलवान् लोकपालके समान सुशोभित हो रहा था ॥७४॥ लक्ष्मणके पीछे बैठा विराधित कुमार भी अपने तेजसे ऐसा दिखाई देता था मानो नारायणके समीप रखा हुआ चक्ररत्न ही हो ॥७५॥

अतिशय बुद्धिमान् रामचन्द्रके समीप हनुमान् भी ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो पूर्णचन्द्रके समीप उदित हुआ अत्यन्त देदीप्यमान बुधग्रह ही हो ॥७६॥ सुगन्धित माला तथा वस्त्रादि एवं अलंकारोंसे अलंकृत अंग और अंगद यम तथा वैश्रवणके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७७॥ इनके सिवाय रामको घेर कर बैठे हुए नल, नील आदि सैकड़ों अन्य राजा भी उस समय अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥७८॥ नाना प्रकारकी उत्तम गन्धसे युक्त ताम्बूल तथा सुगन्धित अन्य पदार्थोंके समागमसे जहाँ वायु सुगन्धित हो रही थी तथा जहाँ आभूषणोंके द्वारा प्रकाश फैल रहा था ऐसी वह सभा इन्द्रकी सभाके समान जान पड़ती थी ॥७९॥

तदनन्तर चिरकाल तक आश्चर्यमें पड़कर प्रीतियुक्त हनुमान्ने रामसे कहा कि हे राघव ! यद्यपि आपके गुण आपके ही समक्ष नहीं कहना चाहिए क्योंकि इस लोकमें भी ऐसी ही रीति देखी जाती है फिर भी प्रत्यक्ष ही आपके गुण कथन करनेकी उत्कट लालसा है सो ठीक ही है क्योंकि जो प्रिय वक्ता हैं उन्हें प्रत्यक्ष ही गुणोंका कथन करना अद्भुत आह्लादकारी होता है ॥८०-८२॥ जिनका बलपूर्ण लोकोत्तर माहात्म्य हमने पहलेसे सुन रखा था उन प्राणि हितकारी धैर्यशाली आपको मैं स्वयं नेत्रोंसे देख रहा हूँ ॥८३॥ हे राजन् ! आप सम्पूर्ण सौन्दर्यसे युक्त हैं,

---

१. स्वस्थ म. । २. मुकुटमुत्तारण म. । ३. -मिवौजसः म. । ४. सुगन्ध्य म. । ५. वभासन्तौ म. ख., क. । ६. कीर्तिराम ख. ।

धनुर्लाभोदये[1] लब्धः सहस्रामररक्षिते । सीतास्वयंवरेऽस्माभिः श्रुतस्तव पराक्रमः ॥८४॥
पिता दशरथो यस्य यस्य भामण्डलः सुहृत् । भ्राता यस्य च सौमित्रिः स त्वं राम जगत्पतिः ॥८५॥
अहो अद्भुतरहोरूपमेव नारायणः स्वयम् । सम्मुद्रावर्तचापेशो यस्याज्ञाकरणे रतः ॥८६॥
अहो धैर्यमहो त्यागो यत्पितुः पालयन् वचः । महाप्रतिभयाकारं प्रविष्टो दण्डकं वनम् ॥८७॥
एतन्न कुरुते बन्धुस्तुष्टश्च त्रिदशाधिपः । अहो त्वया नाथ कृतं यदस्माकमतिप्रियम् ॥८८॥
सुग्रीवरूपसंपन्नं हत्वा संयति साहसम् । यत्कपिध्वजमर्यादास्य कलङ्को दूरमुद्धृतः ॥८९॥
विद्याबलविधिज्ञैर्यन्नास्य मायामयं वपुः । अस्माभिरपि नो सह्यं दुर्लभं च विशेषतः ॥९०॥
तेन सुग्रीवरूपेण ग्रहीतुं प्लवगं बलम् । दर्शनादेव युष्माकं तद्रूपं तस्य निःसृतम् ॥९१॥
कर्तुं प्रत्युपकारं यो न शक्तोऽत्युपकारिणः । सुलभां भावशुद्धिं स तस्मै न कुरुते कुतः ॥९२॥
का तस्य बुद्धिर्न्यायेषु भवेदेकमपि क्षणम् । यः कृतस्योपकारस्य विशेषं नावबुध्यते ॥९३॥
श्वपाकादपि पापीयान् लुब्धकादपि निर्घृणः । असंभाष्यः सतां नित्यं योऽकृतज्ञो नराधमः ॥९४॥
स्वशरीरमपि त्यक्त्वा सत्यं वयमनन्यगाः । सर्वे समुद्यताः कर्तुमुपकारं तव प्रभो ॥९५॥
गत्वा प्रबोधयिष्यामि त्रिकूटाधिपतिं बुधम् । तव पत्नीं महाबाहो त्वरावानानयाम्यहम् ॥९६॥
सीताया वदनाम्भोजं प्रसन्नेन्दुमिवोदितम् । संदेहेन विनिर्मुक्तं शीघ्रं द्रक्ष्यसि राघव ॥९७॥

तथा गुणरूपी रत्नोंकी आकर अर्थात् खान अथवा समुद्र हैं। आपके शुक्ल यशसे यह संसार अलंकृत हो रहा है ॥८३॥ हे नाथ! वज्रावर्त धनुषकी प्राप्तिसे जिसका अभ्युदय हुआ था तथा एक हजार देव जिसकी रक्षा करते थे ऐसे सीताके स्वयंवरमें आपको जो पराक्रम प्राप्त हुआ था वह सब हमने सुना है ॥८४॥ दशरथ जिनका पिता है, भामण्डल जिनका मित्र है, और लक्ष्मण जिनका भाई है, ऐसे आप जगत्के स्वामी राजा राम हैं ॥८५॥ अहो! आपकी शक्ति अद्भुत है, अहो! आपका रूप आश्चर्यकारी है कि सागरावर्त धनुषका स्वामी नारायण स्वयं ही जिनकी आज्ञा पालन करनेमें तत्पर है ॥८६॥ अहो! आपका धैर्य आश्चर्यकारी है, अहो! आपका त्याग अद्भुत है जो पिताके वचनका पालन करते हुए आप महाभय उत्पन्न करनेवाले दण्डक वनमें प्रविष्ट हुए हैं ॥८७॥ हे नाथ! आपने हम लोगोंका जो उपकार किया है वह न तो भाई ही कर सकता है और न सन्तुष्ट हुआ इन्द्र ही ॥८८॥ आपने सुग्रीवका रूप धारण करनेवाले साहसगतिको युद्धमें मारकर वानरवंशका कलंक दूर किया है ॥८९॥ विद्याबलकी विधिके जाननेवाले हम लोग भी जिसके मायामय शरीरको सहन नहीं कर सकते थे तथा हम लोगोंके लिए भी जिसका जीतना कठिन था उस सुग्रीव रूपधारी साहसगतिने वानर वंशी सेनाको प्राप्त करनेके लिए कितना प्रयत्न किया परन्तु आपके दर्शनमात्रसे उसका वह रूप निकल गया ॥९०-९१॥ जो अत्यन्त उपकारी मनुष्यका प्रत्युपकार करनेके लिए समर्थ नहीं है वह उसके विषयमें भावशुद्धि क्यों नहीं करता अर्थात् उसके प्रति अपने परिणाम निर्मल क्यों नहीं करता जबकि यह भावशुद्धि बिलकुल ही सुलभ है ॥९२॥ जो मनुष्य, किये हुए उपकार की विशेषताको नहीं जानता है उसकी एक अंशके लिए भी न्यायमें बुद्धि कैसे हो सकती है? ॥९३॥ जो नीच मनुष्य अकृतज्ञ है वह चाण्डालसे भी अधिक पापी है, शिकारीसे भी अधिक निर्दय है और सत्पुरुषोंसे निरन्तर बातचीत करनेके लिए भी योग्य नहीं है ॥९४॥ हे प्रभो! हम सब किसी अन्य की शरणमें न जाकर आपकी ही शरणमें आये हैं और सचमुच ही अपना शरीर छोड़कर भी आपका उपकार करनेके लिए उद्यत हैं ॥९५॥ हे महाबाहो! मैं जाकर रावणको समझाऊँगा। वह बुद्धिमान् है अतः अवश्य समझेगा और मैं शीघ्र ही आपकी पत्नीको वापस ले आता हूँ ॥९६॥ हे राघव! इसमें सन्देह नहीं कि तुम उदित हुए

---

१. धनुर्लाभादुदये लब्धे म.।

मन्त्री जाम्बूनदोऽवोचत्ततो वाक्यं परं हितम् । वत्स वत्स महापुत्र त्वमेकोऽस्माकमाश्रयः ॥९८॥
अप्रमत्तेन गन्तव्यं लङ्कां रावणपालिताम् । न विरोधः क्वचित् कार्यः कदाचित् केनचित्सह ॥९९॥
एवमस्त्विति संभाष्य तं संप्रस्थितमुद्यतम् । विलोक्य परमां प्रीतिं पद्मनाभः समागमत् ॥१००॥
पुनः पुनः समाहूय मारुतिं[1] चारुलक्षणम् । सर्वादरं जगादेदं स्फीता[2] राजीवलोचनः ॥१०१॥
मद्वाक्यादुच्यतां सीता त्वद्वियोगात् स राघवः । अधुना विन्दते साध्वि न मनोनिर्वृतिं क्वचित् ॥१०२॥
अत्यन्तं तदहं मन्ये हतं पौरुषमात्मनः । प्रतिरोधं प्रपद्यासि वर्तमानेऽपि मय्यमि ॥१०३॥
त्रेधि निर्मलशीलाढ्या यथा त्वं मद्व्रतव्रता । जीवितं[3] वाञ्छसि त्यक्तुं मद्वियोगेन दुःखिता ॥१०४॥
अलं तथापि लघुभिः दुःखमाजागमैर्मृतैः । अर्हसि मैथिलि[4] प्राणा न जीवं त्यक्तुमर्हसि ॥१०५॥
दुर्लभः संगमो भूयः पूजितः सर्ववस्तुषु । ततोऽपि दुर्लभो धर्मो जिनेन्द्रवदनोद्गतः ॥१०६॥
दुर्लभाद्दुर्लभं तस्माद्धर्मणं सुसमाहितम् । तस्मिन्नसति जन्मेदं तुषनिःसारमीक्षितम् ॥१०७॥
इदं च प्रत्ययोत्पादि प्रियायै मम जीवतः । सततं संस्तुतं देवमङ्गुलीयकमुत्तमम् ॥१०८॥
वायुपुत्र द्रुतं गत्वा सीतायास्तं महाप्रभम् । ममापि प्रत्ययकरं चूडामणिमिहानय ॥१०९॥
यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा रत्नवानरमौलिभृत् । कृताञ्जलिपुटो नत्वा सौमित्रिं च समोऽञ्जलिः ॥११०॥
बहिर्विनिर्ययौ हृष्टः पूर्यमाणो विभूतिभिः । क्षोभयन् तेजसा सर्वं सुग्रीवभवनाजिरम् ॥१११॥

चन्द्रमाके समान निर्मल सीताका मुखकमल शीघ्र ही देखोगे ॥९७॥

तदनन्तर सुग्रीवके मन्त्री जाम्बूनदने परम हितकारी वचन कहे कि हे वत्स हनुमान् ! हम लोगोंका आधार एक तू ही है ॥९८॥ अतः तुझे सावधान होकर रावणके द्वारा पालित लंका जाना चाहिए और कहीं कभी किसीके साथ विरोध नहीं करना चाहिए ॥९९॥ 'एवमस्तु'—'ऐसा ही हो' यह कहकर उदार हनुमान् लंकाकी ओर प्रस्थान करनेके लिए उद्यत हुआ सो उसे देख राम परम प्रीतिको प्राप्त हुए ॥१००॥ विदलित कमललोचन रामने सुन्दर लक्षणोंके धारक हनुमान्को बार-बार बुलाकर बड़े आदरके साथ यह कहा कि तुम मेरी ओरसे सीतासे कहना कि हे साध्वि ! इस समय राम तुम्हारे वियोगसे किसी भी वस्तुमें मानसिक शान्तिको प्राप्त नहीं हो रहे हैं—उनका मन किसी भी पदार्थमें नहीं लगता है ॥१०१-१०२॥ मेरे रहते हुए जो तुम अन्यत्र प्रतिरोध—रुकावटको प्राप्त हो रही हो सो इसे मैं अपने पौरुषका अत्यधिक घात समझता हूँ ॥१०३॥ तुम जिस प्रकार निर्मल शीलव्रतसे सहित हो तथा एक ही व्रत धारण करती हो उससे समझता हूँ कि तुम मेरे वियोगसे दुःखी होकर यद्यपि जीवन छोड़ना चाहती होगी पर हे सुमुखि ! तो भी खोटे परिणामोंसे मरना व्यर्थ है। हे मैथिलि ! प्राण धारण करो। जीवनका त्याग करना उचित नहीं है ॥१०४-१०५॥ सर्व वस्तुओंका पुनः उत्तम समागम प्राप्त होना दुर्लभ है और उससे भी दुर्लभ अरहन्त भगवान्के मुखारविन्दसे प्रकट हुआ धर्म है ॥१०६॥ यद्यपि उक्त धर्म दुर्लभ है तो भी समाधि-मरण उसकी अपेक्षा दुर्लभ है क्योंकि समाधि मरणके बिना यह जीवन तुषके समान साररहित देखा गया है ॥१०७॥ और प्रियाके लिए मेरे जीवित रहनेका प्रत्यय—विश्वास उत्पन्न हो जाये इसलिए यह सदाकी परिचित उत्तम अँगूठी उसे दे देना ॥१०८॥ तथा हे पवनपुत्र ! तुम शीघ्र ही जाकर मुझे विश्वास उत्पन्न करनेवाला सीताका महाकान्तिमान् चूड़ामणि यहाँ ले आना ॥१०९॥ 'जैसी आज्ञा हो' यह कहकर रत्नमय वानरसे चिह्नित मुकुटको धारण करनेवाला हनुमान् राम तथा लक्ष्मणको हाथ जोड़ नमस्कार कर बाहर निकल आया। उस समय वह अत्यन्त हर्षित था, विभूतियोंसे युक्त था और अपने तेजसे सुग्रीवके भवन सम्बन्धी समस्त आँगनको

---

१. चारुतामरसेक्षणम् ज. । २. कमलनेत्रः । स्फीत्या राजीवलोचनः म. । ३. जीवितुं म. । ४. मैथिली म. । ५. कृताञ्जलिः म. ।

संदिदेश च सुग्रीवं यावदागमनं मम । स्थातव्यं तावदत्रैव प्रमादपरिवर्जितैः ॥११२॥
विमानं चारुशिखरमारूढो मारुतिस्ततः । विभाति मस्तके मेरोश्चैत्यालय इवोज्ज्वलः ॥११३॥
प्रययौ परया युक्त्या सितच्छत्रोपशोभितः । विलसद्धंससंकाशैश्चामरैरुपजीवितः ॥११४॥
वायुवेगसमैरश्वैर्जङ्गमाद्रिसमैर्गजैः । सैन्यैस्त्रिदशसंकाशैर्जगाम परितो वृतः ॥११५॥
एवं युक्तो महाभूत्या रामादिभिरवेक्षितः । समाक्रम्य स्वमार्गमयासीत्सुनिरन्तरम् ॥११६॥

उपजातिवृत्तम्

पूर्णं जगत्तिष्ठति जन्तुवर्गैर्नानाविधैरुत्तमभोगयुक्तैः ।
कश्चित्तु तेषां परमार्थकृत्ये नियुज्यते यत्परमं यशस्तत् ॥११७॥
कृतं परेणाप्युपकारयोगं स्मरन्ति नित्यं कृतिनो मनुष्याः ।
तेषां न तुल्यो भुवने शशाङ्को न वा कुबेरो न रविर्न शक्रः ॥११८॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हनुमत्प्रस्थानं नाम एकोनपञ्चाशत्तमं पर्व ॥४९॥

क्षोभयुक्त कर रहा था ॥११०-१११॥ उसने सुग्रीवसे कहा कि जबतक मैं न आ जाऊँ तबतक आपको यहीं सावधान होकर ठहरना चाहिए ॥११२॥

तदनन्तर हनुमान् सुन्दर शिखरसे युक्त विमानपर आरूढ़ हुआ ऐसा सुशोभित हो रहा था जैसा कि सुमेरुके शिखरपर देदीप्यमान चैत्यालय सुशोभित होता है ॥११३॥ तत्पश्चात् उसने परम कान्तिसे युक्त हो प्रयाण किया। उस समय वह सफेद छत्रसे सुशोभित था और उड़ते हुए हंसोंकी समानता करनेवाले चमर उसपर ढोरे जा रहे थे ॥११४॥ वह वायुके समान वेगशाली घोड़ों, चलते-फिरते पर्वतोंके समान हाथियों और देवोंके समान सैनिकोंसे घिरा हुआ जा रहा था ॥११५॥ इस प्रकार जो महाविभूतिसे युक्त था, तथा राम आदि जिसे ऊपरको दृष्टि कर देख रहे थे, ऐसा वह हनुमान् सूर्यके मार्गका उल्लंघन कर निरन्तर आगे बढ़ा जाता था ॥११६॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! यह समस्त संसार नाना प्रकारके उत्तम भोगोंसे युक्त जन्तुओंसे भरा हुआ है। उनमें-से कोई विरला पुरुष ही परमार्थरूप कार्यमें लगता है तथा परम यशको प्राप्त होता है ॥११७॥ जो उत्तम मनुष्य दूसरेके द्वारा किये हुए उपकारका निरन्तर स्मरण रखते हैं इस संसारमें उनके समान न चन्द्रमा है, न कुबेर है, न सूर्य है और न इन्द्र ही है ॥११८॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित, पद्मपुराणमें हनुमान्के प्रस्थानका वर्णन करनेवाला उनचासवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४९॥

१. -द्धंस- म. । २. वायुवेग म. । ३. जगामाद्रि- म. ।

पञ्चाशत्तमं पर्व

अथासावञ्जनो गच्छन्नम्बरे परमोदयः । स्वसारमिव वैदेहीमानेतोदुरराजत[1] ॥१॥
सुहृदाज्ञाप्रवृत्तस्य विनीतस्य महात्मनः । शुद्धभावस्य तस्यासीदुत्सवः कोऽपि चेतसः ॥२॥
पश्यतः प्रौढया दृष्ट्या स्थितस्य रविगोचरे । दिशां मण्डलमस्यासीच्छरीरावयवोपमम् ॥३॥
लङ्कां जिगमिषोरस्य महेन्द्रनगरोपमम् । महेन्द्रनगरं दृष्टेत्यभिमुख्यमुपागतम् ॥४॥
वेदिकापुण्डरीकाभैः प्रासादैः शशिपाण्डुरैः । पर्वतस्य स्थितं मूर्ध्नि तद्दिव्यं प्रकाशते ॥५॥
वज्रपाणेरिवामुष्य[3] तस्मिन् वालिपुरोपमे । न बभूवतरां प्रीतिः तस्मादेवमचिन्तयत् ॥६॥
इदं शिखरिणो मूर्ध्नि तन्महेन्द्रपुरं स्थितम् । महेन्द्रको नृपो यत्र दुर्मतिः सोऽवतिष्ठते ॥७॥
दुःखतापितसर्वाङ्गा माता येनागता मम । निर्वासिता मयि प्राप्ते कुक्षिवासं दुरात्मना ॥८॥
एषाऽसौ विजनेऽरण्ये गुहा यत्र स सन्मुनिः । पर्यङ्कयोगयुक्तात्मा नाम्नामितगतिः[4] स्थितः[5] ॥९॥
अस्यां भगवता तेन साधुवादपरैः कृपा कृता । माता मां जनिताश्वासा प्रसूता बन्धुवर्जिता ॥१०॥
अस्यां केसरिणं दृष्ट्वा क्षुत्वा[6] मातुरुपद्रवम् । लब्धोऽस्मि मैत्रं चैत्यानां गुहा च मे गुहा ॥११॥
मातरं शरणं प्राप्तां मम निर्वास्य यः कृती । व्यसनप्रतिदानेन महेन्द्रं किंनु[7] तं भजेत् ॥१२॥
अहंयुरयमत्यन्तं मां किल द्वेष्टि संततम् । महेन्द्र (महेन्द्रो) गर्वमेतस्य तस्मादपनयाम्यहम् ॥१३॥

अथानन्तर परम अभ्युदयको धारण करनेवाला हनुमान् आकाशमें जाता हुआ ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो बहन सीताको लेनेके लिए भामण्डल ही जा रहा हो ॥१॥ मित्र—श्रीरामकी आज्ञामें प्रवृत्त, विनयवान्, उदाराशय एवं शुद्धभावके धारक हनुमान्के हृदयमें उस समय कोई अद्भुत आनन्द छाया हुआ था ॥२॥ सूर्यके मार्गमें स्थित हनुमान् जब प्रौढ़ दृष्टिसे दिङ्मण्डलकी ओर देखता था तब उसे दिङ्मण्डल शरीरके अवयवोंके समान जान पड़ता था ॥३॥ लंकाकी ओर जानेके लिए इच्छुक हनुमान्की दृष्टिके सामने राजा महेन्द्रका नगर आया जो इन्द्रके नगरके समान जान पड़ता था ॥४॥ वह नगर पर्वतके शिखरपर स्थित था तथा वेदिकापर स्थित सफेद कमलोंके समान आभाको धारण करनेवाले चन्द्रतुल्य धवल भवनोंके द्वारा दूरसे ही प्रकाशित हो रहा था ॥५॥ जिस प्रकार बालिके नगरमें इन्द्रको प्रीति नहीं हुई थी उसी प्रकार राजा महेन्द्रके उस नगरमें हनुमान्को कोई प्रीति उत्पन्न नहीं हुई अपितु उसे देखकर वह विचार करने लगा ॥६॥ कि यह पर्वतके शिखरपर राजा महेन्द्रका नगर स्थित है जिसमें कि वह दुर्बुद्धि राजा महेन्द्र निवास करता है ॥७॥ मेरे गर्भवासके समय दुःखसे भरी मेरी माता इसके नगर आयी पर इस दुष्टने उसे निकाल दिया ॥८॥ तब मेरी माता निर्जन वनकी उस गुफामें—जिनमें कि पर्यंक योगसे अमितगति नामा मुनि विराजमान थे—रहीं ! इसी गुफामें उन दयालु मुनिराजने उत्तम वचनोंके द्वारा उसे सान्त्वना दी और बन्धुजनोंसे रहित अकेली रहकर उसने मुझे जन्म दिया ॥९–१०॥ इसी गुफामें माताको सिंहसे उत्पन्न कष्ट प्राप्त हुआ था और इसी गुफामें उसे मुनिराजका सन्निधान प्राप्त हुआ था इसलिए यह गुफा मुझे अत्यन्त प्रिय है ॥११॥ जो मेरी शरणागत माताको निकालकर कृतकृत्य हुआ था उस महेन्द्रको अब मैं कष्टका बदला देकर क्या उसकी सेवा करूँ ॥१२॥ यह महेन्द्र बड़ा अहंकारी है तथा मुझसे निरन्तर द्वेष रखता है इसलिए इसका गर्व अवश्य ही दूर

---

१. -नभीषुः रराज सः म., ब. । २. लङ्कां म. । ३. मुख्यस् म. । ४. स्थिताः म. । ५. तुरुपप्लम् म. । ६. किंनु न भजेत् म., क. ।

प्रलम्बाम्बुदवृन्दोग्रनादा दुन्दुभयस्ततः । महाकम्पाकभेर्यश्च पटहाश्च समाहताः ॥१४॥
ध्माताः शङ्खा जगत्कम्पा मटैरुत्कटचेष्टितैः । युद्धशौण्डैः समुत्कृष्टं समुल्लासितहेतिभिः ॥१५॥
श्रुत्वा परबलं प्राप्तं महेन्द्रः सर्वसेनया । प्रत्यैक्षत विनिःक्रम्य मेघवृन्दमिवाचलः ॥१६॥
[1]संप्रहारैस्ततो लग्नैर्बुद्ध्वासीद्विह्वलं बलम् । चापमुद्यम्य माहेन्द्रिः प्राप्तश्छत्री रथस्थितः ॥१७॥
हनूमानिषुभिस्तस्य धनुस्तिसृभिरायतम् । चिच्छेद गुप्तिभिर्योगी यथामानं समुत्थितम् ॥१८॥
चापं यावद्द्वितीयं स गृह्णात्याकुलमानसः । शरैस्तावद्रथान्मुक्ताः प्रचण्डास्तस्य वाजिनः ॥१९॥
रथाच्चे विगलाः शीघ्राश्चपला वज्रमुर्भुशम् । इषीकाणीव मनसो[2] मुक्तानि विषयैषिणः ॥२०॥
माहेन्द्रिरथ संभ्रान्तो विमानं वरमाश्रितः । तदप्यस्य शरैर्लुप्तं मतं दुष्टमतेरिव ॥२१॥
माहेन्द्रिर्मुदितो भूयो विद्याबलविकारगः । पतन्निचक्रकनकैर्युयुधेऽलातमासुरैः ॥२२॥
विद्यया ऽनिलपुत्रोऽपि तं शस्त्रौघमवारयत् । यथात्मचिन्तया योगी परीषहकदम्बकम् ॥२३॥
निर्दयोन्मुक्तशस्त्रोऽसावावृणोत्तृणाग्नी महाग्निवत् । गृहीतो वायुपुत्रेण गरुडेनेव पन्नगः ॥२४॥
प्रांशुरोषं सुतं दृष्ट्वा महेन्द्रः क्षोभलोहितः । स्थी मारुतिमभ्यार रामं सुग्रीवरूपवत् ॥२५॥
अर्कांभस्यन्दनः सोऽपि हारिहारी धनुर्धरः । शूराणामग्रणी दीप्तो मातुः पितरमभ्यगात् ॥२६॥

करता हूँ ॥१३॥ तदनन्तर ऐसा विचार कर उसने घूमते हुए मेघसमूहके समान उच्च शब्द करनेवाली दुन्दुभियाँ, महाविकट शब्द करनेवाली भेरियाँ और नगाड़े बजवाये ॥१४॥ उत्कृष्ट चेष्टाओंको धारण करनेवाले योद्धाओंने जगत्को कँपा देनेवाले शंख फूँके तथा शस्त्रोंको चमकानेवाले रणवीर योद्धाओंने जोरसे गर्जना की ॥१५॥ परबलको आया सुन, राजा महेन्द्र सर्व सेनाके साथ बाहर निकला और जिस प्रकार पर्वत, मेघसमूहको रोकता है उसी प्रकार उसने हनुमान्के दलको रोका ॥१६॥ तदनन्तर लगी हुई चोटोंसे अपनी सेनाको नष्ट होती देख, छत्रधारी, तथा रथपर बैठा हुआ राजा महेन्द्रका पुत्र धनुष तानकर सामने आया ॥१७॥ सो हनुमान्ने तीन बाण छोड़कर उसके लम्बे धनुषको उस तरह छेद डाला जिस तरह कि मुनि तीन गुप्तियोंके द्वारा उठते हुए मानको छेद डालते हैं ॥१८॥ वह व्याकुल चित्त होकर जबतक दूसरा धनुष लेता है तबतक हनुमान्ने तीक्ष्ण बाण चलाकर उसके चंचल घोड़े रथसे छुड़ा दिये ॥१९॥ सो रथसे छूटे हुए वे चंचल घोड़े शीघ्र ही इधर-उधर इस प्रकार घूमने लगे जिस प्रकार कि विषयाभिलाषी मनुष्यकी मनसे छूटी हुई इन्द्रियाँ इधर-उधर घूमने लगती हैं ॥२०॥ अथानन्तर महेन्द्रका पुत्र घबड़ाकर उत्तम विमानपर आरूढ़ हुआ सो हनुमान्के बाणोंसे वह विमान भी उस तरह खण्डित हो गया जिस तरह कि किसी दुर्बुद्धिका मत खण्डित हो जाता है ॥२१॥ तदनन्तर विद्याके बलसे विकारको प्राप्त हुआ महेन्द्रपुत्र पुनः हर्षित हो अलातचक्रके समान देदीप्यमान बाण, चक्र तथा कनक नामक शस्त्रोंसे युद्ध करने लगा ॥२२॥ तब हनुमान्ने भी विद्याके द्वारा उस शस्त्रसमूहको उस तरह रोका जिस तरह कि योगी आत्मध्यानके द्वारा परीषहोंके समूहको रोकता है ॥२३॥ तदनन्तर जो निर्दयताके साथ शस्त्र छोड़ रहा था और प्रचण्ड अग्निके समान सब ओरसे आच्छादित कर रहा था ऐसे महेन्द्रपुत्रको हनुमान्ने उस तरह पकड़ लिया जिस तरह कि गरुड़ सर्पको पकड़ लेता है ॥२४॥ पुत्रको पकड़ा देख क्रोधसे लाल होता हुआ महेन्द्र रथपर सवार हो हनुमान्के सम्मुख उस तरह आया जिस तरह कि सुग्रीवका रूप धारण करनेवाला कृत्रिम सुग्रीव रामके सम्मुख आया था ॥२५॥

तदनन्तर जिसका रथ सूर्यके समान देदीप्यमान था, जो सुन्दर हारका धारक था, धनुर्धारी

---

१. जगत्कंपा म. । २. संप्रहारे ततो लग्ने ज. । ३. मुक्ता निर्विषयैषिणः म. । ४. अर्कांभः स्पन्दनः म. ।

तयोरभून्महत्संख्यं ककचासिशिलीमुखैः । परस्परकृताघातं वायुवश्याब्दयोरिव[1] ॥२७॥
सिंहाविव महारोषौ [2]तावुद्धतबलान्वितौ । अवलास्फुलिङ्गरक्ताक्षौ श्वसन्तौ भुजगाधिव ॥२८॥
परस्परकृताक्षेपौ गर्वहासस्फुटस्वनौ । धिक् ते शौर्यमहो युद्धमित्यादिवचनोद्यतौ ॥२९॥
चक्रतुः परमं युद्धं मायाबलसमन्वितौ । हाकारजयकारादि कारयन्तौ मुहुर्निजैः ॥३०॥
महेन्द्रोऽथ महावीर्यो विक्रियाशक्तिसंगतः । क्रोधस्फुरितदेहश्रीर्मुमोचायुधसंहतिम् ॥३१॥
भुषुण्डीः परशून् बाणान् शतघ्नीर्मुद्गरान् गदाः । शिखराणि[3] च शैलानां शाल्मलीश्चोपपादपान् ॥३२॥
एतैरन्यैश्च विविधैरायुधौघैर्मरुत्सुतः । न विव्यथे यथा शैलो महामेघकदम्बकैः ॥३३॥
तद्दिव्यमायया सृष्टं शस्त्रवर्षं महेन्द्रजम् । उल्काविद्याप्रभावेण वायुसूनुरचूर्णयत् ॥३४॥
उत्पत्य च रथे तस्य निपत्य सुमहाजवः । ककुप्करिकराकारकराभ्यां कृतरोधनम् ॥३५॥
मातामहं समादाय बलं बिभ्रदनुत्तमम् । दत्तसाधु[4]स्वनः शूरैः समारोहद्विजं रथम् ॥३६॥
उल्कालाङ्गूलपाणिं तं दौहित्रं परमोदयम् । प्रशंसितुं समारब्धो महेन्द्रः सौम्यया गिरा ॥३७॥
अहो ते वत्स माहात्म्यं परमेतन्मया श्रुतम् । पूर्वमासीदिदानीं तु नियतं प्रत्यक्षगोचरम् ॥३८॥
आसीद्देवेन्द्रयुद्धेऽपि निर्जितो यो न केनचित् । विजयार्धनगस्योर्ध्वं महाविद्यायुधाकुले ॥३९॥

था, शूरोंमें श्रेष्ठ था तथा अतिशय देदीप्यमान था ऐसा हनुमान् भी माताके पिता राजा महेन्द्रके सम्मुख गया ॥२६॥ तदनन्तर वायुके वशीभूत दो मेघोंमें जिस प्रकार परस्पर टक्कर होती है उसी प्रकार उन दोनोंमें करौंत, खड्ग तथा बाणोंके द्वारा परस्पर एक दूसरेका घात करनेवाला महायुद्ध हुआ ॥२७॥ जो सिंहोंके समान महाक्रोधी तथा उत्कट बलसे सहित थे, जिनके नेत्र देदीप्यमान सिलगोंके समान लाल थे, जो सर्पोंके समान साँसें भर रहे थे—फुंकार रहे थे, जो एक दूसरेपर आक्षेप कर रहे थे, जिनके अहंकारपूर्ण हास्यका स्फुट शब्द हो रहा था, 'तेरी शूर-वीरताको धिक्कार है, अहो ! युद्ध करने चला है' जो इस प्रकारके शब्द कह रहे थे, जो मायाबलसे सहित थे और जो अपने पक्षके लोगोंसे कभी हाहाकार कराते थे तो कभी जय-जयकार कराते थे ऐसे हनुमान् तथा राजा महेन्द्र दोनों ही चिरकाल तक परमयुद्ध करते रहे ॥२८-३०॥ तदनन्तर जो महाबलवान् था, विक्रिया शक्तिसे संगत था और क्रोधसे जिसके शरीरकी शोभा देदीप्यमान हो रही थी ऐसा महेन्द्र हनुमान्के ऊपर शस्त्रोंका समूह छोड़ने लगा ॥३१॥ भुषुण्डी, परशु, बाण, शतघ्नी, मुद्गर, गदा, पहाड़ोंके शिखर और सागौन तथा वटके वृक्ष उसने हनुमान्पर छोड़े ॥३२॥ सो इनसे तथा नाना प्रकारके अन्य शस्त्रोंके समूहसे हनुमान् उस तरह विचलित नहीं हुआ जिस प्रकार कि महामेघोंके समूहसे पर्वत विचलित नहीं होता है ॥३३॥ राजा महेन्द्रकी दिव्यमायासे उत्पन्न शस्त्रोंकी उस वर्षाको पवन-पुत्र हनुमान्ने अपनी उल्का-विद्याके प्रभावसे चूर-चूर कर डाला ॥३४॥ और उसी समय वेगसे भरे, दिग्गजोंके शुण्डादण्डके समान विशाल हाथोंसे युक्त तथा उत्तम बलको धारण करनेवाले हनुमान्ने मातामह महेन्द्रके रथपर उछलकर उसे रोकनेपर भी पकड़ लिया। शूरवीरोंने उसे साधुवाद दिया और वह पकड़े हुआ मातामहको लेकर अपने रथपर आरूढ़ हो गया ॥३५-३६॥ वहाँ जिसकी विक्रियाकृत लांगल और हाथोंसे उल्काएँ निकल रही थीं तथा जो परम अभ्युदयको धारण करनेवाला था ऐसे दौहित्र-हनुमान्की वह महेन्द्र सौम्य वाणी द्वारा स्तुति करने लगा ॥३७॥ कि अहो वत्स ! तेरा यह उत्तम माहात्म्य यद्यपि मैंने पहलेसे सुन रखा था पर आज प्रत्यक्ष ही देख लिया ॥३८॥ विजयार्ध पर्वतके ऊपर महाविद्याओं तथा शस्त्रोंसे आकुल इन्द्र विद्याधरके युद्धमें भी जो किसीके द्वारा पराजित नहीं हुआ था तथा जो

---

१. वायुवश्यांगतमेघयोरिव । २. -मुद्धृतबलान्वितौ म. । ३. शिखरिणि च म. । ४. साधुः स्वनः म. ।

असौ प्रसन्नकीर्तिर्मे पुत्रो माहात्म्यसंगतः । त्वया पराजितः प्राप्तो रोद्धुं चित्रमिदं परम् ॥३९॥
अहो पराक्रमो भद्र तव धैर्यमहो परम् । अहो रूपमनौपम्यमहो संग्रामशौण्डता ॥४१॥
प्रजातेन त्वया वत्स महाभिश्रययोगिना । कुलमुद्योतितं सर्वमस्मदीयं सुकर्मणा ॥४२॥
विनयाद्यैर्गुणैर्युक्तो राशिः परमतेजसः । कल्याणमूर्तिरत्यर्थं कल्पवृक्षस्त्वमुद्गतः ॥४३॥
जगतो गुरुभूतस्त्वं बान्धवानां समाश्रयः । दुःखादित्यप्रतप्तानां समस्तानां घनाघनः ॥४४॥
इति प्रशस्य तं स्नेहाद्गुरुबाष्पाक्षशबलकरः । अजिघ्रन्मस्तके नत्रं पुलकी परिषस्वजे ॥४५॥
प्रणम्य वायुपुत्रोऽपि तमार्यं विहिताञ्जलिः । अतितिक्षक्षितीशात्मा क्षणाद्यातोऽन्यतामिव ॥४६॥
मया शिशुतया किंचिदार्यं यत्ते[2] विचेष्टितम् । दोषमेवं समस्तं मे प्रतीक्ष्य[3] क्षन्तुमर्हसि ॥४७॥
समस्तं च समाख्यातं तेनागमनकारणम् । पश्चागमादिकं यावदात्मागमनमादृतम् ॥४८॥
अहमार्यं गमिष्यामि त्रिकूटमतिकारणम् । त्वं किष्किन्धपुरं गच्छ कार्यं दाशरथेः कुरु ॥४९॥
इत्युक्त्वा वायुसंभूतः खमुत्पत्य ययौ सुखम् । त्रिकूटाभिमुखः क्षिप्रं सुरलोकमिवामरः ॥५०॥
गत्वा महेन्द्रकेतुश्च तनयां नयकोविदः । प्रसन्नकीर्तिना सार्द्धं वत्सलः समपूजयत् ॥५१॥
मातापितृसमायोगं सोदरस्य च दर्शनम् । अञ्जनासुन्दरी प्राप्य जगाम परमां धृतिम् ॥५२॥
महेन्द्रं निर्भृतं श्रुत्वा किष्किन्धाभिमुखोऽगमत् । विराधितप्रभृतयस्तोषमाययुरुत्तमम् ॥५३॥

माहात्म्यसे युक्त था ऐसा मेरा पुत्र प्रसन्नकीर्ति तुमसे पराजित हो बन्धनको प्राप्त हुआ, यह बड़ा आश्चर्य है ॥३९-४०॥ अहो भद्र ! तुम्हारा पराक्रम अद्भुत है, तुम्हारा धैर्य परम आश्चर्यकारी है, अहो तुम्हारा रूप अनुपम है और युद्धकी सामर्थ्य भी आश्चर्यकारी है ॥४१॥ हे वत्स ! निश्चयको धारण करनेवाले तुमने हमारे पुण्योदयसे जन्म लेकर हमारा समस्त कुल प्रकाशमान किया है ॥४२॥ तू विनयादि गुणोंसे युक्त है, परम तेजकी राशि है, कल्याणकी मूर्ति है तथा कल्पवृक्षके समान उदयको प्राप्त हुआ है ॥४३॥ तू जगत्का गुरु है, बान्धवजनोंका आधार है और दुःखरूपी सूर्यसे सन्तप्त समस्त मनुष्योंके लिए मेघस्वरूप है ॥४४॥ इस प्रकार प्रशंसा कर स्नेहके कारण जिसके नेत्रोंसे अश्रु छलक रहे थे तथा जिसके हाथ हिल रहे थे, ऐसे मातामह महेन्द्रने उसका मस्तक सूँघा और रोमांचित हो उसका आलिंगन किया ॥४५॥ वायुपुत्र—हनुमान्ने भी हाथ जोड़कर उन आर्य-मातामहको प्रणाम किया तथा क्षमाके प्रभावसे विनीतात्मा होकर वह क्षणभरमें ऐसा हो गया मानो अन्यरूपताको ही प्राप्त हुआ हो ॥४६॥ उसने कहा कि हे आर्य ! मैंने लड़कपनके कारण आपके प्रति जो कुछ चेष्टा की है सो हे पूज्य ! मेरे इस समस्त अपराधको आप क्षमा करनेके योग्य हैं ॥४७॥

उसने रामचन्द्रके आगमनको आदि लेकर अपने आगमन तकका समस्त वृत्तान्त बड़े आदरके साथ प्रकट किया ॥४८॥ उसने यह भी कहा कि हे आर्य ! मैं अत्यावश्यक कारणसे त्रिकूटाचलको जाता हूँ तब तक तुम किष्किन्धपुर जाओ और श्रीरामका काम करो ॥४९॥ इतना कह हनुमान् आकाशमें उड़कर शीघ्र त्रिकूटाचलकी ओर सुखपूर्वक इस प्रकार गया जिस प्रकार कि देव स्वर्गकी ओर जाता है ॥५०॥ नीतिनिपुण तथा स्नेहपूर्ण राजा महेन्द्रकेतुने अपने प्रियपुत्र प्रसन्नकीर्तिके साथ जाकर पुत्री—अंजनाका सम्मान किया ॥५१॥ अंजना सुन्दरी, माता-पिताके साथ समागम तथा भाईका दर्शन प्राप्त कर परम धैर्यको प्राप्त हुई ॥५२॥ राजा महेन्द्रको आया सुनकर किष्किन्धाका पति सुग्रीव उसे लेनेके लिए सम्मुख गया तथा विराधित आदि उत्तम सन्तोषको प्राप्त हुए ॥५३॥

---

१. क्षणाद्यातोऽन्यतामिव म. । २. दत्ते म. । ३. हे पूज्य ।

वंशस्थवृत्तम्

पुरा विशिष्टं चरितं कृतात्मनां सुचेतसामुत्तमचारुतेजसाम् ।
महात्मनामुन्नतगर्वशालिनो भवन्ति वश्याः पुरुषा बलान्विताः ॥५४॥
ततः समन्तादनुपाल्य मानसं जना यतध्वं सततं सुकर्मणि ।
फलं यदीयं समवाप्य पुष्कलं रवेः समानामुपयाथ दीप्तताम् ॥५५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे महेन्द्रदुहितासमागमाभिधानं नाम पञ्चाशत्तमं पर्व ॥५०॥

□

गौतम स्वामी कहते हैं कि कृतकृत्य, सुचेता तथा उत्तम सुन्दर तेजको धारण करनेवाले पुण्यात्मा जीवोंका पूर्वचरित ही ऐसा विशिष्ट होता है कि उन्नत गर्वसे सुशोभित बलशाली मनुष्य उनके आधीन—आज्ञाकारी होते हैं ॥५४॥ इसलिए हे भव्यजनो ! सब ओरसे मनकी रक्षा कर सदा उस शुभ कार्यमें यत्न करो कि जिसका पुष्कल फल पाकर सूर्यके समान दीप्तताको प्राप्त होओ ॥५५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें महेन्द्रका पुत्रीके साथ समागमका वर्णन करनेवाला पचासवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५०॥

□

एकपञ्चाशत्तमं पर्व

श्रीशैलस्य वियत्युच्चैर्विमानस्थस्य गच्छतः । बभूव सुगुणैर्युक्तो द्वीपो दधिमुखोऽन्तरे ॥१॥
यस्मिन् दधिमुखं नाम प्रासादैर्दधिपाण्डुरैः । पुरं परममायामि[1] चारुकाञ्चनतोरणम् ॥२॥
नवमेघप्रतीकाशैरुद्यानैः कुसुमोज्ज्वलैः । प्रदेशा यस्य शोभन्ते सनक्षत्राम्बरोपमाः ॥३॥
स्फटिकस्वच्छकलिला वाप्यः सोपानशोभिताः । पद्मोत्पलादिभिश्छन्ना यत्र भान्ति क्वचित् क्वचित् ॥४॥
तस्मिन् विप्रकृष्टे[2] तु देशे नगरगोचरात् । बृहत्तृणलताबल्लीद्रुमकण्टकसंकटे ॥५॥
शुष्कागलतसंरोधे रौद्रश्वापदनादिते । घोरेऽतिपरुषाकारे प्रचण्डानिलचञ्चले ॥६॥
पतितोदारवृक्षौघे महाभयसमावहे । विशुद्धक्षारसरसि कङ्कगृध्रादिसेविते ॥७॥
दुर्जने[4] विजने राजन्[5] साधुयुग्मं नभश्चरम् । अष्टाहं लम्बितभुजं योगमुग्रमुपाश्रितम् ॥८॥
तस्य क्रोशचतुर्भागमात्रदेशे व्यवस्थिताः । मनोज्ञनयनाः कन्याः सितवस्त्रा जटाधराः ॥९॥
तप्यन्ते विधिवद्घोरं तपस्तिस्रः सुचेतसः । शोभालोकत्रयस्येव नवभूषणतां गताः[6] ॥१०॥
अथासौ साधुयुगलं ग्रस्यमानं महाग्निना । अञ्जनातनयोऽपश्यत् पादपद्वयनिश्चलम् ॥११॥
असमाप्तव्रताः ताश्च कन्याः लावण्ययुक्तिताः । उद्गमद्धूमजालेन स्पृष्टा बहलवर्त्मना[7] ॥१२॥
अथात्मस्थौ सनिर्ग्रन्थौ युक्तयोगौ शिवस्पृहौ । त्यक्तरागादिसंगेच्छौ निरस्तांशुकभूषणौ ॥१३॥

अथानन्तर जब हनुमान् विमानमें बैठकर आकाशमें बहुत ऊँचे जा रहा था तब उत्तम गुणोंसे युक्त दधिमुख नामक द्वीप बीचमें पड़ा ॥१॥ उस दधिमुख द्वीपमें एक दधिमुख नामका नगर था जो दहीके समान सफेद महलोंसे सुशोभित तथा लम्बायमान स्वर्णके सुन्दर तोरणोंसे युक्त था ॥२॥ नवीन मेघके समान श्याम तथा पुष्पोंसे उज्ज्वल उद्यानोंसे उसके प्रदेश ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो नक्षत्रोंसे सहित आकाशके प्रदेश ही हों ॥३॥ उस नगरमें जहाँ-तहाँ स्फटिकके समान स्वच्छ जलसे भरी, सीढ़ियोंसे सुशोभित एवं कमल तथा उत्पल आदिसे आच्छादित वापिकाएँ सुशोभित थीं ॥४॥ नगरसे दूर चलकर एक महाभयंकर वन मिला जो बड़े-बड़े तृणों, लताओं, वेलों, वृक्षों और काँटोंसे व्याप्त था ॥५॥ वह वन सूखे वृक्षोंसे घिरा था, भयंकर जंगली पशुओंके शब्दसे शब्दायमान था, भयंकर था, अत्यन्त कठोर था, प्रचण्ड वायुसे चंचल था, गिरे हुए बड़े-बड़े वृक्षोंके समूहसे युक्त था, महाभय उत्पन्न करनेवाला था, अत्यन्त खारे जलके सरोवरोंसे सहित था, कंक, गृद्ध आदि पक्षियोंसे सेवित था तथा मनुष्योंसे रहित था। गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! उस वनमें दो चारण ऋद्धिधारी मुनि आठ दिनका कठिन योग लेकर विराजमान थे। उनकी भुजाएँ नीचेकी ओर लटक रही थीं ॥६–८॥ उन मुनियोंसे पावकोश दूरी-पर तीन कन्याएँ, जिनके नेत्र अत्यन्त मनोहर थे, जो शुक्लवस्त्रसे सहित थीं, जटाएँ धारण कर रही थीं, शुद्ध हृदयसे युक्त थीं, तीन लोककी मानो शोभा थीं। और नूतन आभूषण स्वरूप थीं, विधिपूर्वक घोर तप कर रही थीं ॥९–१०॥

तदनन्तर हनुमान्ने देखा कि दोनों मुनि महाअग्निसे ग्रस्त हो रहे हैं और वृक्ष युगलके समान निश्चल खड़े हैं ॥११॥ जिनका व्रत समाप्त नहीं हुआ था तथा जो लावण्यसे युक्त थीं ऐसी वे तीनों कन्याएँ भी निकलते हुए अत्यधिक धूमसे स्पृष्ट हो रही थीं ॥१२॥ उन्हें देख

---

१. -मायाति म. । २. विप्रकृष्टेन म. । ३. घोरे पतिरुषाकारे म. । ४. दुर्जने म. । ५. राजन् म. । ६. गतः म. । ७. उद्गमद्धूम- म. ।

प्रलम्बितमहाबाहु प्रशान्तवदनाकृती । [1]युगान्तार्पितसद्दृष्टी प्रतिमास्थानमाश्रितौ ॥१४॥
मृत्युजीवननिःकाङ्क्षावनघौ शान्तमानसौ । समप्रियाप्रियासंगौ समपाषाणकाञ्चनौ ॥१५॥
दावेन[2] महता राजन् तेनाभ्यासव्यवर्तिना । अभिभूतौ समालोक्य वात्सल्यं कर्तुमुद्यतः ॥१६॥
आकृष्य सागरजलं मेघहस्तः ससंभ्रमः । ऊर्ध्वं[3]मुन्नतो व्योम्नि परं अभिसंभृतः ॥१७॥
सुदूरं तेन वह्निः स वारिपूरेण नाशितः । महाक्रोध इवोद्भूतः क्षान्तिभावेन साधुना ॥१८॥
यावच्च कुरुते पूजां भक्त्या पवननन्दनः । तयोर्मनस्त्रयोर्नानापुष्पादिद्रव्यसंपदा ॥१९॥
तावत्ताः सिद्धसंसाध्या मेरुं कृत्वा प्रदक्षिणम् । तत्सकाशमनुप्राप्ताः कुमार्यः सुमनोहराः ॥२०॥
प्रणेमुश्च समं तेन साधू[4] ध्यानपरायणौ । विनयान्वितया बुद्ध्या प्रशशंसुश्च मारुतिम् ॥२१॥
अहो जिनेश्वरे भक्तिर्भवता कापि यद्भुतम् । त्वया तात परित्राता वयं साधुसमाश्रयात् ॥२२॥
अस्मद्व्यतिकरसमायातो महानयमुपप्लवः । स्तोकेनापि न योगिभ्याभहो नो भवितव्यता ॥२३॥
अथाऽनात्मज्ञोऽपृच्छद्देवं संशुद्धमानसः । भवत्य इह निःशून्ये[5]का वनेऽत्यन्तभीषणे ॥२४॥
अवोचज्ज्यायसी तासां पुरे दधिमुखाह्वये । अत्र गन्धर्वराजस्य वयं तिस्रोऽमरासुताः ॥२५॥
प्रथमा चन्द्रलेखाख्या ज्ञेया विद्युत्प्रभा ततः । अन्या तरङ्गमालेति सर्वगोऽस्य वल्लभाः ॥२६॥

हनुमान्‌के हृदयमें उन सबके प्रति बड़ी आस्था उत्पन्न हुई। तदनन्तर जो योग अर्थात् ध्यानसे युक्त थे, मोक्षकी इच्छासे सहित थे, जिन्होंने रागादि परिग्रहकी इच्छा छोड़ दी थी, वस्त्र तथा आभूषण दूर कर दिये थे, भुजाएँ नीचेकी ओर लटका रखी थीं, जिनके मुखकी आकृति अत्यन्त शान्त थी, युगप्रमाण दूरीपर जिनकी दृष्टि पड़ रही थी, जो प्रतिमा योगसे विराजमान थे, जीवन और मरणकी आकांक्षासे रहित थे, निष्पाप थे, शान्तचित्त थे, इष्ट-अनिष्ट समागममें मध्यस्थ थे, तथा पाषाण और कांचनमें जो समभाव रखते थे ऐसे उन दोनों मुनियोंको अत्यन्त निकटवर्ती बड़ी भारी दावानलसे आक्रान्त देख, हे राजन्! हनुमान् वात्सल्यभाव प्रकट करनेके लिए उद्यत हुआ ॥१३-१६॥

भक्तिसे भरे हनुमान्‌ने शीघ्रतासे समुद्रका जल खींच, मेघ हाथमें धारण किया और आकाशमें ऊँचे जाकर अत्यधिक वर्षा की ॥१७॥ उस बरसे हुए जलप्रवाहसे वह दावाग्नि उस प्रकार शान्त हो गयी जिस प्रकार कि उत्पन्न हुआ महाक्रोध, मुनिके क्षमाभावसे शान्त हो जाता है ॥१८॥ भक्तिसे भरा हनुमान् जबतक नाना प्रकारकी पुष्पादि सामग्रीसे उन दोनों मुनियोंकी पूजा करता है तबतक जिनके मनोरथ सिद्ध हो गये थे ऐसी वे तीनों मनोहर कन्याएँ मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देकर उसके पास आ गयीं ॥१९-२०॥

उन्होंने ध्यानमें तत्पर दोनों मुनियोंको हनुमान्‌के साथ-साथ विनयपूर्वक नमस्कार किया तथा हनुमान्‌की इस प्रकार प्रशंसा की कि अहो! तुम्हारी जिनेन्द्रदेवमें बड़ी भक्ति है जो शीघ्रतासे कहीं अन्यत्र जाते हुए तुमने मुनियोंके आश्रयसे हम सबकी रक्षा की ॥२१-२२॥ हमारे निमित्तसे यह महाउपद्रव उत्पन्न हुआ था सो मुनियोंको रंचमात्र भी प्राप्त नहीं हो पाया। अहो! हमारी भवितव्यता धन्य है ॥२३॥

अथानन्तर पवित्र हृदयके धारक हनुमान्‌ने उनसे इस प्रकार पूछा कि इस अत्यन्त भयंकर निर्जन वनमें आप लोग कौन हैं? ॥२४॥ तदनन्तर उन कन्याओंमें जो ज्येष्ठ कन्या थी वह कहने लगी कि हम तीनों दधिमुख नगरके राजा गन्धर्वकी अमरा नामक रानीकी पुत्रियाँ हैं ॥२५॥ इनमें प्रथम कन्या चन्द्रलेखा, दूसरी विद्युत्प्रभा और तीसरी तरंगमाला है। हम सभी

---

१. युगान्तार्पित-म.। २. दानेन म.। ३. साधु म.। ४. कानने ख., म.। कुवने क.।

यावन्तो भुवने केचिद्विजयार्द्धादिसंभवाः । विद्याधरकुमारेभ्यः कुलपद्मविकासकृत् ॥२७॥
तेऽस्मदर्थे शिवं क्वापि न विन्दन्तेऽधिनो भृशम् । दुष्टस्त्वङ्गारको नाम तापं धत्ते विशेषतः ॥२८॥
अन्यदा परिपृष्टश्च तातेनाष्टाङ्गविन्मुनिः । स्थानेषु भगवन् केषु मन्या दुहितरो मम ॥२९॥
सोऽवोचत् साहसगतिं यो हनिष्यति संयुगे । आसां कतिपयाहोभी रमणोऽसौ भविष्यति ॥३०॥
निशम्यामोघवाक्यस्य मुनेस्तद्वचनं ततः । अचिन्तयत् पिताऽस्माकं विधाय स्मेरमाननम् ॥३१॥
कस्त्वसौ भविता लोके नरो वज्रायुधोपमः । विजयार्धोत्तरश्रेणीश्रेष्ठं यो हन्ति साहसम् ॥३२॥
अथवा न मुनेर्वाक्यं कदाचिज्जायतेऽनृतम् । इति विस्मयमापिष्टः पिता माता जनस्तथा ॥३३॥
चिरं प्रार्थयमानोऽपि यदासौ लब्धवाञ्छनः । तदास्मद्दुःखचिन्तास्थः संजातोऽङ्गारकेतुकः ॥३४॥
ततः प्रभृति चास्माकमयमेव मनोरथः । द्रक्ष्यामस्तं कदा वीरमिति साहससूदनम् ॥३५॥
एतच्च वनमायाता दारुणद्रुमसंकटम् । मनोऽनुगामिनीं नाम विद्यां साधयितुं परम् ॥३६॥
दिवसो द्वादशोऽस्माकं वसन्तीनामिहान्तरे । प्राक्तस्य साधुयुगस्य वर्तते दिवसोऽष्टमः ॥३७॥
अङ्गारकेतुना तेन वीक्षिताश्च दुरात्मना । ततस्तेनानुबन्धेन कोपेन पूरितोऽभवत् ॥३८॥
ततोऽस्माकं वधं कर्तुमेता दश दिशः क्षणात् । धूमाङ्गारकवर्षेण वह्निना पिञ्जरीकृताः ॥३९॥
षड्भिः संवत्सरैः साध्यैर्यद्दुःसाध्यं प्रसाध्यते । दत्त्वाऽमुपसर्गस्य तदद्यैव हि साधितम् ॥४०॥
इहापदि महाभाग नाभविष्यद् भवान् यदि । अवश्याम हि योगिभ्यां सहारण्ये ततो ध्रुवम् ॥४१॥

अपने समस्त कुलके लिए अत्यन्त प्यारी हैं ॥२६॥ इस संसारमें अपने कुलरूपी कमलोंको विकसित करनेके लिए सूर्यके समान, विजयार्ध आदि स्थानोंमें उत्पन्न हुए जितने कुछ विद्याधर कुमार हैं वे सब हम लोगोंके अत्यन्त इच्छुक हो कहीं भी सुख नहीं पा रहे हैं। उन कुमारोंमें अंगारक नामका दुष्ट कुमार विशेष रूपसे सन्तापको धारण कर रहा है ॥२७-२८॥ किसी एक दिन हमारे पिताने अष्टांगनिमित्तके ज्ञाता मुनिराजसे पूछा कि हे भगवन् ! मेरी पुत्रियाँ किन स्थानोंमें जावेंगी ॥२९॥ इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा था कि जो युद्धमें साहसगतिको मारेगा वह कुछ ही दिनोंमें इनका भर्ता होगा ॥३०॥ तदनन्तर अमोघ वचनके धारक मुनिराजका वह वचन सुन हमारे पिता मुखको मन्द हास्यसे युक्त करते हुए विचार करने लगे कि ॥३१॥ संसारमें इन्द्रके समान ऐसा कौन पुरुष होगा जो विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें श्रेष्ठ साहसगतिको मार सकेगा ॥३२॥ अथवा मुनिके वचन कभी मिथ्या नहीं होते यह विचारकर माता-पिता आदि आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥३३॥ चिरकाल तक याचना करनेपर भी जब अंगारक हम लोगोंको नहीं पा सका तब वह हम लोगोंको दुःख देनेवाले कारणोंकी चिन्तामें निमग्न हो गया ॥३४॥ उस समयसे लेकर हम लोगोंका यही एक मनोरथ रहता है कि हम साहसगतिको नष्ट करनेवाले उस वीरको कब देखेंगी ॥३५॥ हम तीनों कन्याएँ मनोनुगामिनी नामक उत्तम विद्या सिद्ध करनेके लिए कठोर वृक्षोंसे युक्त इस वनमें आयी थीं ॥३६॥ यहाँ रहते हुए हम लोगोंका यह बारहवाँ दिन है और इन दोनों मुनियोंको आये हुए आज आठवाँ दिवस है ॥३७॥ तदनन्तर उस दुष्ट अंगारकेतुने हम लोगोंको यहाँ देखा और उक्त पूर्वोक्त संस्कारके कारण वह क्रोधसे परिपूर्ण हो गया ॥३८॥ तत्पश्चात् हम लोगोंका वध करनेके लिए उसने उसी क्षण दशों दिशाओंको धूम तथा अंगारकी वर्षा करनेवाली अग्निसे पिंजर वर्ण—पीत वर्ण कर दिया ॥३९॥ जो विद्या छह वर्षसे भी अधिक समयमें बड़ी कठिनाईसे सिद्ध होती है वह विद्या उपसर्गका निमित्त पाकर आज ही सिद्ध हो गयी ॥४०॥ हे महाभाग ! यदि इस आपत्तिके समय आप यहाँ नहीं होते तो निश्चित ही हम सब दोनों मुनियोंके साथ-साथ वनमें जल जातीं ॥४१॥

---

१. भर्ता म. । २. अस्मान् । ३. परम् म. ।

साधु साध्विति संहिमस्य ततो मारुतिरब्रवीत् । [1]भवतीनां श्रमः श्लाघ्यः फलयुक्तश्च निश्चयः ॥४२॥
अहो वो विमला बुद्धिरहो स्थाने मनोरथः । अहो सव्यवसायुक्तं येन विद्या प्रसाधिता ॥४३॥
आख्यातं च क्रमात् सर्वं यथावृत्तं सविस्तरम् । पद्मागमादिकं यावदात्मागमनकारणम् ॥४४॥
तत्तश्च श्रुतवृत्तान्तो गन्धर्वोऽमरया सह । समागतो महातेजास्तमुद्देशं महानुगः ॥४५॥
नभश्चरसमायोगे देवागमनसंनिभे । क्षणेन तद्वनं जातं सर्वं नन्दनसुन्दरम् ॥४६॥
किष्किन्धं च पुरं गत्वा भूत्या बुद्धिनृभिः समम् । शासने पद्मनाभस्य गन्धर्वो रतिमाश्रयत् ॥४७॥
ताश्च निस्सीमसौभाग्या विभूत्या परयान्विताः । उपनिन्ये पराः कन्या रामायाक्लिष्टकर्मणे ॥४८॥
एताभिरपराभिश्च सेव्यमानो विभूतिभिः । अपश्यन् जानकीं पद्मो मेने शून्या दिशो दश ॥४९॥

अतिरुचिरावृत्तम्

गुणान्वितैर्भवति जनैरलंकृता समस्तभूः शुभचकितैः सुसुन्दरैः ।
विना [2]जनं मनसि कृतास्पदं सदा व्रजत्यसौ गहनवनेन तुल्यताम् ॥५०॥
पुराकृतादतिनिचिताद् ससुत्कटाज्जनः परां रतिमनुयाति कर्मणः ।
ततो जगत्सकलमिदं स्वगोचरे प्रवर्तते विधिरविणा प्रकाशते ॥५१॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे पद्मस्य गन्धर्वकन्यालाभाभिधानं नाम एकपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५१॥

तदनन्तर हनुमान्ने 'ठीक है' 'ठीक है' इस तरह मन्दहास पूर्वक कहा कि आप लोगोंका श्रम प्रशंसनीय है तथा निश्चित ही फलसे युक्त है ॥४२॥ अहो ! तुम सबकी बुद्धि निर्मल है। अहो ! तुम सबका मनोरथ योग्य स्थानमें लगा। अहो ! तुम्हारी उत्तम होनहार थी जिससे यह विद्या सिद्ध की ॥४३॥ तत्पश्चात् हनुमान्ने रामके आगमनको आदि लेकर अपने यहाँ आने तकका समस्त वृत्तान्त ज्योंका त्यों विस्तारके साथ क्रमपूर्वक कहा ॥४४॥ तदनन्तर समाचार सुनकर महातेजस्वी गन्धर्व राजा अपनी अमरा नामकी रानी और अनुचरोंके साथ वहाँ आ पहुँचा ॥४५॥ इस प्रकार क्षण-भरमें वह समस्त वन देवागमनके समान विद्याधरोंका समागम होनेसे नन्दन वनके समान हो गया ॥४६॥ तदनन्तर राजा गन्धर्व पुत्रियोंको साथ ले बड़े वैभवसे किष्किन्धपुर गया और वहाँ रामकी आज्ञामें रहकर प्रीतिको प्राप्त हुआ ॥४७॥ उसने असीम सौभाग्यकी धारक तथा परम विभूतिसे युक्त तीनों उत्कृष्ट कन्याएँ शान्त चेष्टाके धारक रामके लिए समर्पित कीं ॥४८॥ सो राम इन कन्याओंसे तथा अन्य विभूतियोंसे यद्यपि सेव्यमान रहते थे तथापि सीताको न देखते हुए वे दशों दिशाओंको शून्य मानते ॥४९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि यद्यपि समस्त भूमि गुणोंसे सहित, शुभ चेष्टाओंके धारक तथा अतिशय सुन्दर मनुष्योंसे अलंकृत रहे तो भी मनमें वास करनेवाले मनुष्यके बिना वह भूमि गहन वन की तुल्यता धारण करती है ॥५०॥ पूर्वोपार्जित तथा तीव्र रूपसे बन्धको प्राप्त हुए उत्कट कर्मसे यह जीव परम रतिको प्राप्त होता है और उस रतिके कारण यह समस्त संसार अपने अधीन रहता है तथा कर्मरूपी सूर्यसे प्रकाशमान होता है ॥५१॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्यकथित पद्मपुराणमें रामको गन्धर्व कन्याओंकी प्राप्तिका वर्णन करनेवाला इक्यावनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५१॥

१. 'भवतीनां श्रमः' इत्यारभ्य 'अहो वो विमला बुद्धिरहो स्थाने मनोरथः' इत्यन्तः पाठः ख. पुस्तके नास्ति । २. जनैः म. ।

द्विपञ्चाशत्तमं पर्व

..सौ पवनपुत्रोऽपि प्रतापाढ्यो महाबलः । त्रिकूटाभिमुखोऽभासीत् सोमवन्मन्दरं प्रति ॥१॥
अथास्य व्रजतो व्योम्नि सुमहाकार्मुकाकृतिम् । [1]चक्रमेघाप्रतीकाशं जातं सैन्यं तिरोभवत्[2] ॥२॥
[3]कुतश्च[4] गतिः केन मम सैन्यस्य विच्छिता[5] । अहो विज्ञायतां क्षिप्रं कस्येदमनुचेष्टितम् ॥३॥
किं स्यादसुरनाथोऽयं [6]समरे सर्वपर्वतः । आहोस्विज्जिनेन्द्रो वा नैष[7]तेजोऽपि युज्यते ॥४॥
प्रतिमा किंनु जैनेन्द्री शिखरेऽस्य महीभृतः । भवेद् वा भगवान् कश्चिन्मुनिश्रेष्ठसमन्वितः[8] ॥५॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वितर्ककृतवर्त्तनम् । मन्त्री पृथुमतिर्नाम वाक्यमेतदुदाहरत् ॥६॥
निवर्त्तस्व[9] महाबुद्धे श्रीशैल ननु किं तव । क्रूरयन्त्रयुतो नायं[10] मायाशालो मतिं गतः ॥७॥
चक्षुरततो नियुज्यासावपश्यत्पद्मलोचनः । दुःप्रवेशं महाशालं विरक्तस्त्रीमनःसमम् ॥८॥
अनेकाकारवक्त्राढ्यं भीममांसादिकात्मकम् । त्रिदशैरपि दुर्दृश्यं सर्वभक्षं[11] प्रभासुरम् ॥९॥
संकटोत्कटतीक्ष्णाग्रकचावलिवेष्टितम् । रुधिरोद्गारचिह्नाग्रसहस्रविलसत्तटम् ॥१०॥
स्फुरद्भुजङ्गविस्फारिफणाशूत्कारशब्दितम् । विषधूमान्धकारान्तज्वलदङ्गारदुःसहम् ॥११॥
यस्तं सर्पति मूढात्मा शौर्यमानसमुद्धतः । निःक्रामति न भूयोऽसौ मण्डूकोऽहिमुखादिव ॥१२॥
लङ्काशालपरिक्षेपं सूर्यमार्गसमुन्नतम् । दुर्लङ्घ्यं दुर्निरीक्ष्यं च सर्वदिक्षु सुयोजितम् ॥१३॥
युगान्तकालमेघौघनिर्घोषसमभीषणम् । हिंसाग्रन्थमिथाख्यन्तपापकर्मविनिर्मितम् ॥१४॥

अथानन्तर प्रतापसे सहित महाबलवान् हनुमान् त्रिकूटाचलके सम्मुख इस प्रकार चला जिस प्रकार कि सुमेरुके सन्मुख सोम चलता है ॥१॥ तदनन्तर आकाशमें चलते हुए हनुमान्की सेना अचानक रुककर किसी बड़े धनुषके समान हो गयी और ऐसी जान पड़ने लगी मानो कुटिल मेघोंका समूह ही हो ॥२॥ यह देख, हनुमान्ने कहा कि मेरी सेनाकी गति किसने रोकी है ? अहो ! शीघ्र ही मालूम करो कि यह किसकी चेष्टा है ? ॥३॥ क्या यहाँ असुरोंका इन्द्र चमर है, अथवा इन्द्र है या शिखण्डी है ? अथवा इनमें-से यहाँ एकका भी होना उचित नहीं जान पड़ता ॥४॥ किन्तु हो सकता है कि इस पर्वतके शिखरपर जिनेन्द्र भगवान्की प्रतिमा हो, अथवा कोई ऐश्वर्यवान् चरम शरीरी मुनिराज विराजमान हों ॥५॥ तदनन्तर हनुमान्के वितर्कपूर्ण वचन सुनकर पृथुमति मन्त्रीने यह वचन कहे कि हे महाबुद्धिमन् श्रीशैल ! तुम शीघ्र ही लौट जाओ, तुम्हें इससे क्या प्रयोजन है ? यह आगे क्रूर यन्त्रोंसे युक्त मायामयी कोट जान पड़ता है ॥६-७॥ तदनन्तर कमल-लोचन हनुमान्ने स्वयं दृष्टि डालकर उक्त मायामयी महाकोटको देखा । वह कोट विरक्त स्त्रीके मनके समान दुष्प्रवेश था ॥८॥ अनेक आकारके मुखोंसे सहित था, भयंकर पुतलियोंसे युक्त था, सबको भक्षण करनेवाला था, देदीप्यमान था और देवोंके द्वारा भी दुर्गम्य था ॥९॥ जिनके अग्रभाग संकटसे उत्कट तथा अत्यन्त तीक्ष्ण थे ऐसी करोंतोंकी श्रेणीसे वह कोट वेष्टित था, तथा उसके तट रुधिरको उगलनेवाली हजारों जिह्वाओंके अग्रभागसे सुशोभित थे ॥१०॥ चंचल सर्पोंके तने हुए फणाओंकी शूत्कारसे शब्दायमान था तथा जिनसे विषैला धूमरूपी अन्धकार उठ रहा था ऐसे जलते हुए अंगारोंसे दुःसह था ॥११॥ शूरवीरताके अहंकारसे उद्धत जो मनुष्य उस कोटके पास जाता है वह फिर उस तरह लौटकर नहीं आता जिस प्रकार कि साँपके मुखसे मेढक ॥१२॥ यह

१. चक्रं मेघा प्रतीकाशं म. । २. तिरोभवत् म. । ३. खगतिः म. । ४. किन्नतो म. । ५. मुनीश्व-मन्वयः (?) म. । ६. महान् युद्धे ख. । ७. युतेनायं म., ब. । ८. जिह्वाग्रं म. ।

तं दृष्ट्वा मारुतिर्ध्यात्वाहो मायेन रक्षसाम् । दाक्षिण्यमुज्झितं पूर्वं मायाप्राकारकारिणा[2] ॥१५॥
उन्मूलयम्निदं यन्त्रं विद्याबलसमूर्जितम् । मानमुन्मूलयाम्यस्य ध्यानी मोहमलं[3] यथा ॥१६॥
युद्धे च मानसं कृत्वा तत्सैन्यं[4] स्वं महास्वनम् । गगने सागराकारं समयेऽतिष्ठिपत् सुधीः ॥१७॥
विद्याकवचयुक्तं च[5] कृत्वात्मानं गदाकरः । विवेश सालिकावक्त्रं राहुवक्त्रं रविर्यथा ॥१८॥
ततः कुक्षिगुहां तस्याः परीतकैकसाकृताम् । विद्यानखैरलं तीक्ष्णैः केसरीव व्यपाटयत् ॥१९॥
निर्दयैश्च गदावातैर्घोरशब्दैरचूर्णयत् । घातिकर्मस्थितिं यद्वद्ध्यानी भावैः सुनिर्मलैः ॥२०॥
अथाशालिकविद्याया यास्या भेदं भयावहम् । समो नीलाम्बुवाहानामभूच्चटचटाध्वनिः ॥२१॥
तेन संभाव्यमानोऽसौ शालो नष्टोऽतिचञ्चलः । स्तोत्रेणेव जिनेन्द्राणां कलुषः कर्मसंचयः ॥२२॥
ततस्तन्निनदं श्रुत्वा युगान्तजलदोन्नतम् । दृष्ट्वा विशीर्यमाणं च यन्त्रप्राकारमण्डलम् ॥२३॥
[6]राजन् वज्रमुखः क्रुद्धः शालरक्षाधिकारवान् । त्वरितं रथमारुह्य सिंहो दावमिवाभ्यगात् ॥२४॥
ततोऽभिमुखमेतस्य वीक्ष्य मारुतनन्दनम् । नानायानयुधा योधाः प्रचण्डा योद्धुमुद्यताः ॥२५॥
बलं[7] वाज्रमुखं दृष्ट्वा प्रबलं योद्धुमुद्यतम् । परमं क्षोभमायातं हनूमत्सैन्यमुत्थितम् ॥२६॥
किमत्र बहुनोक्तेन प्रवृत्तं तत्तथा रणम् । यथा स्वामिकृते पूर्वं[8] सन्माननधिमानने ॥२७॥

लंकाके कोटका घेरा सूर्यके मार्ग तक ऊँचा है, दुर्लंघ्य है, दुर्निरीक्ष्य है, सब दिशाओंमें फैला है, प्रलयकालीन मेघसमूहकी गर्जनाके समान तीक्ष्ण गर्जनासे भयंकर है, तथा हिंसामय शास्त्रके समान अत्यन्त पापकर्मा जनोंके द्वारा निर्मित है ॥१३-१४॥ उसे देखकर हनुमान्ने विचार किया कि अहो ! मायामयी कोटका निर्माण करनेवाले रावणने अपनी पहलेकी सरलता छोड़ दी है ॥१५॥ मैं विद्याबलसे बलिष्ठ इस यन्त्रको उखाड़ता हुआ इसके मानको उस तरह उखाड़ दूँगा, जिस तरह कि ध्यानी मनुष्य मोहको उखाड़ देता है ॥१६॥

तदनन्तर बुद्धिमान् हनुमान्ने युद्धमें मन लगाकर अर्थात् युद्धका विचार कर अपनी गरजती हुई समुद्राकार सेनाको तो संकेत देकर आकाशमें खड़ा कर दिया और अपने स्वयं विद्यामय कवच धारण कर तथा गदा हाथमें ले पुतलीके मुखमें उस तरह घुस गया जिस तरह कि राहुके मुखमें सूर्य प्रवेश करता है ॥१७-१८॥ तत्पश्चात् चारों ओरसे हड्डियोंसे आवृत उस पुतलीकी उदररूपी गुहाको उसने सिंहकी भाँति विद्यामयी तीक्ष्ण नखोंसे अच्छी तरह चीर डाला ॥१९॥ और भयंकर शब्द करनेवाले गदाके निर्दय प्रहारोंसे उसे उस प्रकार चूर-चूर कर डाला जिस प्रकार कि ध्यानी मनुष्य अपने अतिशय निर्मल भावोंसे घातिया कर्मोंकी स्थितिको चूर-चूर कर डालता है ॥२०॥ तदनन्तर भंगको प्राप्त होती हुई आशालिक विद्याका नील मेघोंके समान भयंकर चट-चट शब्द हुआ ॥२१॥ उस शब्दसे यह अतिशय चंचल मायामय कोट इस प्रकार नष्ट हो गया जिस प्रकार कि जिनेन्द्र भगवान्की स्तुतिसे पापकर्मोंका समूह नष्ट हो जाता है ॥२२॥

तदनन्तर प्रलयकालके मेघोंके समान उन्नत उस शब्दको सुनकर तथा यन्त्रमय कोटको नष्ट होता देख, कोटकी रक्षाका अधिकारी वज्रमुख नामका राजा कुपित हो शीघ्र ही रथ पर आरूढ़ हो हनुमान्के सन्मुख उस प्रकार आया जिस प्रकार कि सिंह दावानलके सम्मुख जाता है ॥२३-२४॥ तदनन्तर हनुमान्को उसके सन्मुख देख, नाना प्रकारके वाहनों और शस्त्रोंसे सहित प्रचण्ड योधा युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥२५॥ इधर वज्रमुखकी प्रबल सेनाको युद्धके लिए उद्यत देख परम क्षोभको प्राप्त हुई हनुमान्की सेना भी युद्धके लिए उठी ॥२६॥ आचार्य कहते हैं कि इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? उन दोनों सेनाओंमें उस तरह युद्ध हुआ जिस तरह कि पहले

---

१. -मूर्जितं म. । २. -कारिणा म. । ३. मोहबलं म., ख. । ४. सुमहास्वन म. । ५. कृत्वा मानं म. । ६. राजा म. । ७. वज्रमुखं म. । ८. सस्मावन म., ब. ।

स्वामिनो दृष्टिमार्गस्थाः सुभटाः कृतगर्जिताः । जीवितेष्वपि निःस्नेहा बभूवुः किमिहोच्यताम् ॥२८॥
ततः कपिध्वजैर्योधैश्चिरंकृतमहाहवाः । वज्रायुधस्य निर्भग्नाः क्षणान्नेपुरितस्ततः ॥२९॥
चक्रेणानिलसूनुश्च तेजोऽहरत् त्रिदिवेषाम् । ऋक्षबिम्बमिवाकाशात्पातयदरेः शिरः ॥३०॥
संख्ये पितुर्वधं दृष्ट्वा तं लङ्कासुन्दरी तदा । निरुध्य कृच्छ्रतः शोकमन्यैर्विषदूषिता ॥३१॥
जवनाश्वरथारूढा कुण्डलोद्योतिताननाः । शरासनायतोरस्का कुञ्चितभ्रूलताद्वया ॥३२॥
उल्केव संगतादित्यतेजोमण्डलधारिणी । धूमोद्गारसमायुक्ता घनप्राग्भारवर्त्तिनी ॥३३॥
संरम्भवशसंफुल्लशोणिताम्भोजलोचना । क्रूरसंदृष्टबिम्बोष्ठी क्रुद्धेव श्रीः मधोपतेः ॥३४॥
अधावदिषुमुद्धुस्य [1]कत्थमाना मनोहरा[2] । मया श्रीशैल दृष्टोऽसि तिष्ठ ते शक्तिरस्ति चेत् ॥३५॥
अद्य ते रावणः क्रुद्धो नमक्षरमहेश्वरः । करिष्यति यदेतत्ते करोमि हतचेष्टित [3] ॥३६॥
[4]इयं यमालयं पापं भवन्तं प्रेषयाम्यहम् । दिग्मूढ इव जातस्त्वमनिष्टस्थानगोचरः ॥३७॥
तस्यास्त्वरितमायान्त्या यावच्छत्रमपातयत् । बाणेन तावदेतस्य तया चापं द्विधा कृतम् ॥३८॥
सा यावदगृहीच्छक्तिं तावन्मारुतिना शरैः । नभश्छन्नं समायान्ती भिन्ना शक्तिश्च सान्तरे ॥३९॥
सा विद्याबलगम्भीरा वज्रदण्डसमान् शरान् । परशुकुन्तचक्राणि शतघ्नीमुशलान् [5]शिलाः ॥४०॥
ववर्ष वायुपुत्रस्य रथे हिमवदुन्नते । विकाले वारिणो भेदान् मेघसंघा यथोन्नता ॥४१॥

स्वामीके द्वारा किये हुए सम्मान और तिरस्कारमें होता है ॥२७॥ जो योद्धा स्वामीकी दृष्टिके मार्गमें स्थित थे अर्थात् स्वामी जिनकी ओर दृष्टि उठाकर देखता था वे योद्धा गर्जना करते हुए प्राणोंका भी स्नेह छोड़ देते थे इस विषयमें अधिक क्या कहा जाये ? ॥२८॥ तदनन्तर जिन्होंने चिरकाल तक बड़े-बड़े युद्ध किये थे ऐसे वज्रायुधके योद्धा वानरोंके द्वारा क्षणभरमें पराजित होकर इधर-उधर नष्ट हो गये—भाग गये ॥२९॥ और हनुमान्ने चक्रके द्वारा शत्रुओंका तेज हर लिया तथा नक्षत्र बिम्बके समान शत्रुका शिर काटकर आकाशसे नीचे गिरा दिया ॥३०॥ युद्धमें पिताका वध देख वज्रायुधकी पुत्री लंकासुन्दरी कठिनाईसे शोकको रोककर क्रोधरूपी विषसे दूषित हो हनुमान्की ओर दौड़ी। उस समय वह वेगशाली घोड़ोंके रथपर बैठी थी, कुण्डलोंके प्रकाशसे उसका मुख प्रकाशित हो रहा था, धनुषके समान उसका वक्षःस्थल आयत था, उसकी दोनों भृकुटियाँ टेढ़ी हो रही थीं, वह ऐसी जान पड़ती थी मानो उल्का ही प्रकट हुई हो, वह सूर्यके समान तेजका मण्डल धारण कर रही थी, धूमके उद्गारसे सहित थी, अर्थात् उसके शरीरसे कुछ-कुछ धुआँ-सा निकलता दिखता था और उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो मेघसमूहके बीचमें विद्यमान थी, क्रोधके कारण उसके नेत्र फूले हुए लाल कमलोंके समान जान पड़ते थे, वह क्रोधसे अपना ओठ चाब रही थी, तथा ऐसी जान पड़ती थी मानो क्रोधसे भरी इन्द्रकी लक्ष्मी ही हो ॥३१-३४॥ वह देखनेमें सुन्दर थी तथा अपनी प्रशंसा कर रही थी, इस तरह धनुषपर बाण चढ़ाकर वह दौड़ी और बोली कि अरे श्रीशैल ! मैंने तुझे देख लिया है, यदि तुझमें कुछ शक्ति है तो खड़ा रह ॥३५॥ आज कुपित हुआ विद्याधरोंका राजा रावण तेरा जो कुछ करेगा रे नीच ! वही मैं तेरा करती हूँ ॥३६॥ यह मैं तुझ पापीको यमराजके घर भेजती हूँ, तू दिग्भ्रान्तकी तरह आज इस अनिष्ट स्थानमें आ पड़ा है ॥३७॥ वेगसे आती हुई लंकासुन्दरीका छत्र जबतक हनुमान्ने नीचे गिराया तबतक उसने एक बाण छोड़कर हनुमान्के धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥३८॥ लंकासुन्दरी जबतक शक्ति नामक शस्त्र उठाती है तबतक हनुमान्ने बाणोंसे आकाशको आच्छादित कर दिया और आती हुई उसकी शक्तिको बीचमें ही तोड़ डाला ॥३९॥ विद्याबलसे गम्भीर लंकासुन्दरीने हनुमान्के हिमालयके समान ऊँचे रथपर वज्रदण्डके समान बाण, परशु, कुन्त,

१. कच्छमाना म. । २. मनोहरं ख., ज., क. । ३ हतचेष्टितः म. । ४. इमं म. । ५. शिलान् म. ।

तथा नानायुधाटोपैः सर्ववेगसमीरितैः । आच्छादयत महातेजाः [1]शुचिसूर्यं इवाम्बुदैः ॥४२॥
विश्रान्तः स च शक्रौघमनिर्विण्णोऽन्तरस्थितम् । व्यपोहत निजैः शस्त्रैर्मायाविधिविशारदः ॥४३॥
शराः शरैरलुप्यन्त तोमराद्याः स्वजातिभिः । शक्तयः शक्तिभिर्भुग्ना समोल्का दूरमुत्पतुः ॥४४॥
चक्रकङ्कचसंवर्तकनकाद्योपपिञ्जरम् । बभूव भीषणं व्योम विद्युद्भिरिव संकुलम् ॥४५॥
तं लङ्कासुन्दरी भूयो रूपेणाप्रतिमा । धीरा स्वभावतो [2]राजन् लक्ष्मीः कमललोचना ॥४६॥
ज्ञानध्यानहरैः कान्तैर्दुर्धरैर्गुणसंगतैः । लावण्याहृतसौन्दर्यैर्मनोऽन्तर्भेदकोविदैः ॥४७॥
नेत्रचापविनिर्मुक्तैर्विव्यधे स्मरसायकैः । तयेतरधनुर्मुक्तैः शरैराकर्णसंहतैः ॥४८॥
विस्मये जगतः शक्ता सौभाग्यगुणगर्विता । तस्याललक्षियत्सैवं प्रविष्टा हृदयोदरम् ॥४९॥
शरशक्तिशतघ्नीभिर्न तथा समपीड्यत । यथा मदनबाणौघैर्मर्मदारणकारिभिः ॥५०॥
इयं मनोहराकारा ललितैर्विशिखैरपि । सबाह्याभ्यन्तरं हन्ति मामित्येवमचिन्तयत् ॥५१॥
वरमस्मिन् मृधे मृत्युः पूर्यमाणस्य सायकैः । अनया विप्रयुक्तस्य जीवितं न सुरालये ॥५२॥
चिन्तयन्येवमेतस्मिन् साप्यनङ्गेन चोदिता । त्रिकूटसुन्दरी कन्या करुणासक्तमानसा ॥५३॥
विकस्वरमनोवेद्यं तं पद्मच्छदलोचनम् । अबालेन्दुमुखं बालं किरीटन्यस्तवानरम् ॥५४॥
मूर्तिमुक्तमिवानङ्गं सुन्दरं वायुनन्दनम् । हन्तुं समुद्यता शक्तिं संजहार त्वरावती[3] ॥५५॥

चक्र, शतघ्नी, मुसल तथा शिलाएँ इस प्रकार बरसायीं जिस प्रकार कि उत्पातके समय उच्च मेघावली नाना प्रकारके जल बरसाती है ॥४०-४१॥ उसके पूर्ण वेगसे छोड़े हुए नाना प्रकारके शस्त्रसमूहसे महातेजस्वी हनुमान् उस तरह आच्छादित हो गया जिस प्रकार कि मेघोंसे आषाढ़का सूर्य आच्छादित हो जाता है ॥४२॥ इतना सब होनेपर भी खेदसे रहित, पराक्रमी एवं मायाके विस्तारमें निपुण हनुमान्ने अपने शस्त्रोंके द्वारा उसके शस्त्रसमूहको बीचमें ही दूर कर दिया ॥४३॥ उसके बाण बाणोंसे लुप्त हो गये, तोमर आदि तोमर आदिके द्वारा, तथा शक्तियाँ शक्तियोंके द्वारा खण्डित होकर उल्काओंके समान दूर जा गिरीं ॥४४॥ चक्र, ककच, संवर्तक तथा कनक आदिके विस्तारसे पीतवर्ण आकाश ऐसा भयंकर हो गया मानो बिजलियोंसे ही व्याप्त हो गया हो ॥४५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! तदनन्तर रूपसे अनुपम, स्वभावसे धीर, कमललोचना, लक्ष्मीके समान लंकासुन्दरी, नेत्ररूपी धनुषसे छोड़े हुए कामके बाणों अर्थात् कटाक्षोंसे हनुमान्को उधर पृथक् भेद रही थी और इधर अन्य धनुषसे छोड़े तथा कान तक खींचे हुए बाणोंसे पृथक् भेद रही थी। लंकासुन्दरीके वे कामबाण, ज्ञान-ध्यानके हरनेवाले थे, मनोहर थे, दुर्धर थे, गुणोंसे युक्त थे, लावण्यके द्वारा सौन्दर्यको हरनेवाले थे, और मनके भीतर भेदनेमें निपुण थे ॥४६-४८॥ इस तरह जगत्को आश्चर्य करनेमें समर्थ तथा सौभाग्यरूपी गुणसे गर्वित लंकासुन्दरी हनुमान्के हृदयके भीतर प्रविष्ट हो गयी ॥४९॥ वह हनुमान्, बाण, शक्ति तथा शतघ्नी आदि शस्त्रोंसे उस प्रकार पीड़ित नहीं हुआ था जिस प्रकार कि मर्मको विदारण करनेवाले कामके बाणोंसे पीड़ित हुआ था ॥५०॥ हनुमान् विचार करने लगा कि यह मनोहराकारकी धारक, अपनी ललित चेष्टारूपी बाणोंसे मुझे भीतर और बाहर दोनों ही स्थानोंपर घायल कर रही है ॥५१॥ इस युद्धमें बाणोंसे भरकर मर जाना अच्छा है किन्तु इसके बिना स्वर्गमें भी जीवन बिताना अच्छा नहीं है ॥५२॥ इधर इस प्रकार हनुमान् विचार कर रहा था उधर जिसका मन दयामें आसक्त था तथा जो त्रिकूटाचलकी अद्वितीय सुन्दरी थी ऐसी कन्या लंकासुन्दरीने कामसे प्रेरित हो, देदीप्यमान मन तथा शरीरके धारक, कमलदललोचन, तरुण चन्द्रवदन, मुकुट-पर वानरका चिह्न धारण करनेवाले, नवयौवनसे युक्त एवं मूर्तिधारी कामदेवके समान सुन्दर

१. आषाढमासमूर्य इव । २. राजलक्ष्मीः म. । ३. त्वरावती म. ।

दध्यौ च मारयाम्येतं कथं दोषमपि श्रितम् । रूपेणानुपमानेन छिन्ते मर्माणि यो मम ॥५६॥
यद्यनेन समं सख्या कामभोगोदयद्युतिम्[1] । न निषेवे च लोकेऽस्मिन् ततो मे जन्म निष्फलम् ॥५७॥
अतः सत्पथमुद्दिश्य स्वनामाङ्कं हनूमते । प्रजिघाय शरं मुग्धा विह्वलेमान्तरात्मना ॥५८॥
पराजिता त्वया नाथ साहं मन्मथसायकैः । सुरैरपि न या शक्या जेतुं संघातवर्तिभिः ॥५९॥
[2]प्रवाच्य मारुतिर्बाणमङ्कं स्वैरमुपागतम् । धृतिं परां परिप्राप्तो रथादरमवातरत् ॥६०॥
उपसृत्य च तां कन्यां मृगेन्द्रसमविक्रमः । कृत्वाङ्के गाढमालिङ्गत् कामो रतिमिवापराम् ॥६१॥
अथ[3] प्रशान्तवैरासावश्रुदुर्दिनलोचना । तातप्रयाणशोकार्ता जगादे वायुसूनुना ॥६२॥
मा रोदीः सौम्यवक्त्रे[4] त्वमलं शोकेन भामिनि । विहिता गतिरेषैव क्षात्रधर्मे सनातने ॥६३॥
ननु ते ज्ञातमेवैतत्तथा राज्यविधौ स्थिताः । पित्रादीनपि निघ्नन्ति नराः कर्मबलेरिताः ॥६४॥
वृथा रोदिषि किम्बेतदुत्थानमार्त्तं विवर्जय । अस्मिन् हि सकले लोके विहितं भुज्यते प्रिये ॥६५॥
निहितोऽयमनेनेति द्विधत्र व्याजमात्रकम् । आयुःकर्मानुभावेन प्राप्तकालो विपद्यते ॥६६॥
वचोभिरेभिरन्यैश्च मुक्तशोका व्यराजत । सहिता वातिना[5] यद्वद्दिग्दुना निर्घृणा निशा ॥६७॥
प्रेमनिर्झरपूर्णेन तयोरालिङ्गनेन सः । संग्रामजः श्रमो दूरमपायागतः सुखेतसोः ॥६८॥

हनुमान्को मारनेके लिए उठायी हुई शक्ति शीघ्र ही संहृत कर ली—पीछे हटा ली ॥५३-५५॥ वह विचार करने लगी कि यद्यपि यह पिताके मारनेसे दोषी है तो भी जो अनुपम रूपसे मेरे मर्मस्थान विदार रहा है ऐसे इसे किस प्रकार मारूँ ? ॥५६॥ यदि इसके साथ मिलकर कामभोगरूपी अभ्युदयका सेवन न करूँ तो इस लोकमें मेरा जन्म लेना निष्फल है ॥५७॥ तदनन्तर विह्वल मनसे मुग्ध उस लंकासुन्दरीने समीचीन मार्गके उद्देश्यसे अपने नामसे अंकित एक बाण हनुमान्के पास भेजा ॥५८॥ उस बाणमें उसने यह भी लिखा था कि हे नाथ ! जो मैं इकट्ठे हुए देवोंके द्वारा भी नहीं जीती जा सकती थी वह मैं, आपके द्वारा कामके बाणोंसे पराजित हो गयी ॥५९॥ गोदमें आये हुए उस बाणको अच्छी तरह बाँच कर परम धैर्यको प्राप्त हुआ हनुमान् शीघ्र ही रथसे उतरा ॥६०॥ और उसके पास जाकर सिंहके समान पराक्रमी हनुमान् उसे गोदमें बिठा उसका ऐसा गाढ आलिंगन किया मानो कामदेवने दूसरी रतिका ही आलिंगन किया हो ॥६१॥

तदनन्तर जिसका वैर शान्त हो गया था, जिसके नेत्रोंसे दुर्दिन की भाँति अविरल अश्रुओं-की वर्षा हो रही थी तथा जो पिताके मरण-सम्बन्धी शोकसे पीड़ित थी ऐसी उस लंकासुन्दरीसे हनुमान्ने कहा ॥६२॥ कि हे सौम्यमुखि ! रोओ मत । हे भामिनि ! शोक करना व्यर्थ है । सनातन क्षत्रिय धर्मकी तो यही रीति है ॥६३॥ यह तो तुम्हें विदित ही है कि राजकार्यमें स्थित मनुष्य, कर्मबलसे प्रेरित हो पिता आदिको भी मार डालते हैं ॥६४॥ व्यर्थ ही क्यों रोती हो ? इस आर्तध्यानको छोड़ो । हे प्रिये ! इस समस्त संसारमें अपना किया हुआ ही सब भोगते हैं अर्थात् जो जैसा करता है वैसा भोगता है ॥६५॥ 'यह शत्रु इसके द्वारा मारा गया' यह कहना तो छलमात्र है । यथार्थमें तो आयुकर्मके प्रभावसे समय पाकर यह जीव मरता है ॥६६॥ इस प्रकार इन तथा अन्य वचनोंसे जिसका शोक छूट गया था ऐसी लंकासुन्दरी हनुमान्के साथ इस प्रकार सुशोभित हो रही थी जिस प्रकार कि मेघरहित रात्रि चन्द्रमाके साथ सुशोभित होती है ॥६७॥ तदनन्तर उत्तम हृदयके धारक उन दोनोंका संग्रामसे उत्पन्न हुआ श्रम, प्रेमरूपी निर्झरसे परिपूर्ण आलिंगन-के द्वारा दूर भाग गया ॥६८॥

---

१. द्युतिः म. । कामभोगादय द्युतिम् ज. । २. प्रोवाच म. । ३. प्रशान्तवैरा + असौ + अश्रुदुर्दिन । ४. सौम्यवस्त्रे म. । ५. वातस्यापत्यं पुमान् वातिः, तेन हनूमता ।

ततो यत्र नभोदेशे स्तम्भिन्या विद्यया खगाः । स्तम्भिता बलमत्रैव रचिताधासमाश्रितम् ॥६९॥
संध्यारक्ताभ्रसंकाशं गीर्वाणनगरोपमम् । श्रीशैलस्य तदभ्यर्णं शिविरं पर्यराजत ॥७०॥
गजवाजिविमानस्था रथस्थाश्च महानृपाः । तत्पुरं ध्वजमालाढ्यं विविशुः पृष्टवातथः ॥७१॥
स्थितास्तत्र यथान्यायं लब्धोत्साहसमुत्सवाः । कथाभिरतिचित्राभिः सूरसंग्रामजन्मभिः ॥७२॥
अथ तं त्वरितात्मानं यातुं समुद्यतम् । बाला विश्रब्धमप्राक्षीदिति प्रेमपरायणा ॥७३॥
विविधागोभिरापूर्णः श्रुतदुःसहविक्रमः । कान्त लङ्कां किमर्थं त्वं वद गन्तुं समुद्यतः ॥७४॥
तस्यै जगाद वृत्तान्तमशेषं वायुनन्दनः । कृत्यं प्रत्युपकारस्य बान्धवैरनुमोदितम् ॥७५॥
सीतया सह रामस्य भद्रे भद्रसमागमः । हृतया राक्षसेन्द्रेण कर्तव्यः सर्वथा मया ॥७६॥
साऽब्रवीत् समतिक्रान्तं सौहार्दं तत्पुरातनम् । श्रद्धास्नेहक्षये नष्टा प्रदीपस्य यथा शिखा ॥७७॥
आसीद् रथ्योपशोभाढ्यां ध्वजमालाकुलां पुरीम् । प्राविशद्यातुतो शक्रः स्वर्गं दिग्मिजामरः ॥७८॥
अधुना त्वयि दोषाढ्ये रावणश्चण्डशासनः । प्रकाशं व्रजति क्रोधं गृहीष्यति न संशयः ॥७९॥
यदीपलभ्यते चार्वी विशुद्धिः कालदेशयोः । विशुद्धात्मानमस्यग्रं तदा तं द्रष्टुमर्हसि ॥८०॥
एवमेवेति सोऽवोचद्वेत्सि विद्युषि विचक्षणे । आकूतं तस्य विज्ञातुं गत्वा यास्यामि सुन्दरि ॥८१॥
कीदृशी वा सती सीता रूपेण प्रथिता भवेत् । चालितं मेरुवद्धीरं रावणस्य मनो यया ॥८२॥

तदनन्तर स्तम्भिनी विद्याके द्वारा आकाशके जिस प्रदेशमें विद्याधर रोक दिये गये थे उस प्रदेशमें आवास बनाकर वह सेना ठहरायी गयी ॥६९॥ सन्ध्याके रक्त मेघके समान दिखनेवाला उसी हनुमान्का वह शिविर देवनगरके तुल्य अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥७०॥ उस सेनामें जो बड़े-बड़े राजा थे उन्होंने हनुमान्से पूछकर हाथियों, घोड़ों, विमानों तथा रथोंपर सवार हो ध्वजाओंके समूहसे युक्त उस नगरमें प्रवेश किया ॥७१॥ वे शूर-वीरोंके संग्रामसे उत्पन्न नाना प्रकारकी कथाएँ करते हुए उस नगरमें उत्साह और उल्लासको प्राप्त कर यथायोग्य ठहरे ॥७२॥

अथानन्तर जिसका मन शीघ्रतासे युक्त था ऐसे हनुमान्को जानेके लिए उद्यत देख प्रेमसे भरी लंकासुन्दरीने एकान्तमें उससे पूछा कि ॥७३॥ हे नाथ ! आप रावणके दुःसह पराक्रमकी बात सुन चुके हैं और स्वयं नाना अपराधोंसे परिपूर्ण हैं फिर किसलिए लंका जानेको उद्यत हैं सो तो कहो ॥७४॥ इसके उत्तरमें हनुमान्ने उसे सब वृत्तान्त कहा और यह बताया कि प्रत्युपकारका करना बन्धुजनोंके द्वारा अनुमोदित है ॥७५॥ हे भद्रे ! राक्षसोंका इन्द्र रावण सीताको हर ले गया है सो उसके साथ रामका समागम मुझे अवश्य कराना है ॥७६॥ यह सुन लंकासुन्दरीने कहा कि रावणके साथ आपका जो पुराना सौहार्द था वह नष्ट हो चुका है जिस प्रकार नेत्रके नष्ट हो जानेसे दीपकी शिखा नष्ट हो जाती है उसी प्रकार आपके प्रति श्रद्धाके नष्ट हो जानेसे रावणका सौहार्द नष्ट हो गया है ॥७७॥ एक समय था कि जब आप मार्गोंकी शोभासे युक्त तथा ध्वजाओं-की पंक्तिसे अलंकृत लंकामें बड़े आदरके साथ उस तरह प्रवेश करते थे जिस तरह कि देव स्वर्गमें प्रवेश करता है ॥७८॥ परन्तु आज आप अपराधी होकर यदि लंकामें प्रकट रूपसे जाते हैं तो कठोर शासनको धारण करनेवाला रावण आपपर क्रोध ग्रहण करेगा इसमें संशय नहीं है ॥७९॥ अतः जिस समय देश और कालकी उत्तम शुद्धि—अनुकूलता प्राप्त हो तथा रावणका हृदय शुद्ध एवं व्यग्रता रहित हो उस समय उसका साक्षात्कार करना योग्य है ॥८०॥ इसके उत्तरमें हनुमान्ने कहा कि विदुषि ! तुमने जैसा कहा है यथार्थमें वैसा ही है। किन्तु हे सुन्दरि ! मैं रावणका अभिप्राय जानना चाहता हूँ ॥८१॥ और यह भी देखना चाहता हूँ कि वह सती सीता

---

१. भद्रे म. । २. रम्योपशोभाढ्यां म. ।

एवमुक्त्वा मरुत्पुत्रस्तस्मिन्यस्तमहाबलः । तया मुक्तो विवेकिन्या त्रिकूटाभिमुखं ययौ ॥८३॥

दीपकवृत्तम्

चित्रमिदं परमत्र नृलोके, यत्परिहाय भृशं रसमेकम् ।
तत्क्षणमेव विशुद्धशरीरं जन्तुरुपैति रसान्तरसंगम् ॥८४॥
कर्मविचेष्टितमेतदमुष्मिन् किन्त्वधवाद्भुतमस्ति निसर्गे ।
सर्वमिदं स्वशरीरनिबद्धं दक्षिणमुत्तरतश्च स्वीहा[1] ॥८५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हनूमल्लङ्कासुन्दरीकन्यालाभाभिधानं
नाम द्विपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५२॥

□

कैसी रूपवती है कि जिसने मेरुके समान धीर, वीर रावणका मन विचलित कर दिया है ॥८२॥ इस प्रकार कहकर तथा अपनी सेना उसीके पास छोड़कर हनूमान् उस विवेकवतीसे छूटकर त्रिकूटाचल-की ओर चला ॥८३॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! इस संसारमें यह परम आश्चर्यकी बात है कि प्राणी एक रसको छोड़कर उसी क्षण विशुद्ध रूपको धारण करनेवाले दूसरे रसको प्राप्त हो जाता है ॥८४॥ सो इस संसारमें यह प्राणियोंके कर्मकी ही अद्भुत चेष्टा है। जिस प्रकार सूर्यकी गति कभी दक्षिण दिशाकी ओर होती है और कभी उत्तर दिशाकी ओर। उसी प्रकार प्राणियोंके शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाला यह सब व्यवहार कर्मकी चेष्टानुसार कभी इस रसरूप होता है और कभी उस रसरूप होता है ॥८५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें हनुमान्‌को लंकासुन्दरी कन्याकी प्राप्तिका वर्णन करनेवाला बावनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५२॥

□

---

१. चरती ह्वी म., ब. ।

त्रिपञ्चाशत्तमं पर्व

मगधेन्द्र ततो वातिः प्रभावोदयसंगतः । लङ्कां विवेश निःशंकः स्वल्पानुगसहितः ॥१॥
द्वारे च रचिताभ्यर्चं विभीषणनिकेतनम् । विवेश योग्यमेतेन सम्मानं च समाहृतः ॥२॥
ततः स्थित्वा क्षणं किंचित् संसृष्टाभिः परस्परम् । वार्ताभिरिति सद्वाक्यं व्याजहार मरुत्सुतः ॥३॥
उचितं किमिदं कष्टं[1] यद्वास्माकंपतिः स्वयम् । कुरुते क्षुद्रवत्कश्चिच्चोरणं परयोषितः ॥४॥
मर्यादानां नृपो मूलमापगानां यथा नगः । अनाचारे स्थिते तस्मिन् लोकस्तत्र प्रवर्तते ॥५॥
ईदृशे चरिते कृत्ये सर्वलोकविनिन्दिते । सहनीयं समस्तानां दुःखमेष्यति नो ध्रुवम् ॥६॥
तत् क्षेमंकरमस्माकं हिताय जगतां तथा । उच्यतां रावणः क्षीघ्रं वचो न्यायानुपालकम् ॥७॥
यथा किल द्वये लोके निन्दनीयं विचेष्टितम् । मा कार्षीः जगतो नाथ कीर्तिविध्वंसकारणम् ॥८॥
विमलं चरितं लोके न केवलमिहेष्यते । किन्तु गीर्वाणलोकेऽपि रचिताञ्जलिभिः सुरैः ॥९॥
[2]कैकसीनन्दनोऽवोचद् बहुशोऽभिहितो मया । ततः प्रभृति नैवासौ मया संभाषते समम् ॥१०॥
तथापि भवतो वाक्यान् श्वः समेत्य नरेश्वरम् । वक्ष्यामि किन्तु दुःखेन [3]त्यक्ष्यत्येतदसौ ग्रहम् ॥११॥
अहोऽद्यैकादशं जातं सीताया [4]बल्लभोज्झने । तथापि विरतिः काचिल्लङ्केन्द्रस्य न जायते ॥१२॥
तच्छ्रुत्वा वचनं सद्यः महाकारुण्यसंगतः । प्रमदाह्वयमुद्यानं मारुतिर्गन्तुमुद्यतः ॥१३॥
अपश्यच्च लतालालैस्तत्र [5]वैराकुलीकृतम् । अरुणैः पल्लवैः व्याप्तं वरस्त्रीकरचारुभिः ॥१४॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे मगधराज ! प्रभाव और अभ्युदयसे सहित तथा स्वल्प अनुचरोंसे युक्त हनुमान्ने निःशंक होकर लंकामें प्रवेश किया ॥१॥ वहाँ जिसके द्वारपर सत्कार किया गया था ऐसे विभीषणके महलमें प्रवेश किया और विभीषणने यथायोग्य उनका सम्मान किया ॥२॥ तदनन्तर वहाँ परस्पर इधर-उधरकी कुछ वार्ताएँ करते हुए क्षण भर ठहर कर हनुमान्ने इस प्रकारके सद्वचन कहे कि तीन खण्डका अधिपति किसी क्षुद्र मनुष्यकी तरह पर-स्त्रीकी चोरी करता है सो क्या ऐसा करना उचित है ? ॥३-४॥ जिस प्रकार पर्वत नदियोंका मूल है उसी प्रकार राजा मर्यादाओंका मूल है। यदि राजा स्वयं अनाचारमें स्थित रहता है तो उसकी प्रजा भी अनाचारमें प्रवृत्ति करने लगती है ॥५॥ फिर ऐसा कार्य तो सर्वलोक विनिन्दित है—सब लोगोंकी निन्दाका पात्र है। इसके करने पर सब लोगोंको दुःख सहन करना पड़ता है और हम लोगोंको तो निश्चित ही दुःख प्राप्त होता है ॥६॥ इसलिए हम सबके कल्याणके लिए शीघ्र ही रावणसे ऐसे वचन कहिए जो न्यायकी रक्षा करनेवाले हों ॥७॥ उन्हें बतलाइए कि हे जगत्के नाथ ! दोनों लोकोंमें निन्दनीय तथा कीर्तिको नष्ट करनेवाली चेष्टा मत कीजिए ॥८॥ निर्मल-निर्दोष चरित्रकी न केवल इस लोकमें चाह है अपितु स्वर्गलोकमें देव भी हाथ जोड़कर उसकी चाह करते हैं ॥९॥ तदनन्तर विभीषणने कहा कि मैंने रावणसे अनेक बार कहा है पर वह उस समयसे मेरे साथ बात ही नहीं करता है ॥१०॥ फिर भी आपके कहनेसे मैं कल राजाके पास जाकर कहूँगा किन्तु यह निश्चित है कि वह बड़े दुःखसे ही इस हठको छोड़ेगा ॥११॥ यद्यपि आज सीताको आहार पानी छोड़े ग्यारहवाँ दिन है तथापि लंकाधिपतिको कुछ भी विरति नहीं है—इस कार्यसे रंचमात्र भी विरक्तता नहीं है ॥१२॥ विभीषणके यह वचन सुन महादयाभावसे युक्त हनुमान् प्रमदोद्यानमें जानेके लिए उद्यत हुआ ॥१३॥ जाकर उसने उस प्रमदोद्यानको देखा जो कि

१. त्रिखण्डभरताधिपः । २. विभीषणः । ३. त्यज्यते न ह्यसौ म. । ४. वल्लभोज्झने म. । ५. -स्तत्र वैराकुलीकृतम् म. ।

भ्रमरव्रातसंगुप्तैः सुजातैर्बद्धशेखरम् । फलैरानतशाखाग्रं किंचित् पवनकम्पितम् ॥१५॥
पद्मादिच्छादितैः स्वच्छैः सरोभिः सदलंकृतम् । भासुरं कल्पवल्लीभिः संगताभिर्महातरुम् ॥१६॥
गीर्वाणकुरुदेशाभं प्रसूनरजसावृतम् । नन्दनस्य श्रियासाम्यमनेकाद्भुतसंकुलम् ॥१७॥
ततो लीलां वहन् रम्यां वायू राजीवलोचनः । विवेश परमोद्यानं सीतादर्शनकाङ्क्षया ॥१८॥
प्रजिघ्राय च सर्वासु दिक्षु चक्षुरतित्वरम् । विविधद्रुमदेशेषु गहनेषु दलादिभिः ॥१९॥
दृष्ट्वा च दूरतः सीतामन्यदर्शनवर्जितः । अचिन्तयदसौ सैषा रामदेवस्य सुन्दरी ॥२०॥
स्निग्धज्वलनसंकाशा वाष्पपूरितलोचना । करविन्यस्तवक्त्रेन्दुर्मुक्तकेशी कृशोदरी ॥२१॥
अहो रूपमिदं लोके जिताशेषमनोहरम् । परमां ख्यातिमायातं सत्यवस्तुनिबन्धनम् ॥२२॥
[1]रहिता वासपत्रेण नास्या लक्ष्मीः समा भवेत् । दुःखार्णवं गताप्येषा सदृशी नान्ययोषिता ॥२३॥
निपत्य शिखराद्गत्वा मृत्युमुत्पन्यहम् । विरहे पमनाथस्य धारयामि न जीवितम् ॥२४॥
कृतप्रचिन्तनामेवं वैदेहीं पवनात्मजः । निःशब्दपादसंपातः प्राप्तो रूपान्तरं दधत् ॥२५॥
ततोऽङ्गुलीयकं तस्या विससर्जाङ्कवाससि । सहसा सा तमालोक्य स्मेराऽभूत्पुलकाचिता ॥२६॥
तस्यामेवंमवस्थायां गत्वा तार्यस्त्वरान्विताः । तोषादवर्धयन् दिष्ट्या रावणं तत्परायणम् ॥२७॥

नयी-नयी लताओंके समूहसे व्याप्त था, उत्तम स्त्रियोंके हाथोंके समान सुन्दर लाल-लाल पल्लवोंसे युक्त था, भ्रमरोंसे आच्छादित सुन्दर गुच्छोंके द्वारा जिसपर सेहरा बँध रहा था, जहाँ फलोंके भारसे शाखाओंके अग्रभाग नम्रीभूत हो रहे थे, जो वायुके द्वारा कुछ-कुछ हिल रहा था, कमल आदिसे आच्छादित स्वच्छ सरोवरोंसे जो अलंकृत था, जो बड़े-बड़े वृक्षोंसे लिपटी हुई कल्पलताओंसे देदीप्यमान था, जो देवकुरु प्रदेशके समान जान पड़ता था, फूलोंकी परागसे आवृत था, अनेक आश्चर्योंसे व्याप्त था तथा नन्दनवनकी समानता धारण कर रहा था ॥१४-१७॥ तदनन्तर मनोहर लीलाको धारण करता हुआ कमललोचन हनुमान् सीताके दर्शनकी इच्छासे उस उत्कृष्ट उद्यानमें प्रविष्ट हुआ ॥१८॥

वहाँ जाकर उसने शीघ्र ही समस्त दिशाओंमें तथा पल्लवों आदिसे सघन नाना वृक्षोंके समूहमें दृष्टि डाली ॥१९॥ वहाँ दूरसे ही सीताको देखकर वह अन्य वस्तुओंके दर्शनसे रहित हो गया अर्थात् उसी ओर टकटकी लगाकर देखता रहा। तदनन्तर उसने विचार किया कि वह रामदेवकी सुन्दरी यही है ॥२०॥ यह स्निग्ध अग्निके समान है, इसके नेत्र आँसुओंसे भर रहे हैं, वह हथेलीपर मुखरूपी चन्द्रमाको रखे हुई है, केश इसके खुले हुए हैं तथा उदर इसका अत्यन्त कृश है ॥२१॥ उसे देखकर हनुमान् विचार करने लगा कि अहो! लोकमें इसका रूप समस्त मनोहर पदार्थोंको पराजित करनेवाला है, परम ख्यातिको प्राप्त है तथा सत्य वस्तुओंका कारण है ॥२२॥ कमलसे रहित लक्ष्मी अर्थात् कमलसे निकली हुई साक्षात् लक्ष्मी इसकी बराबरी नहीं कर सकती। अहो! यह दुःखरूपी सागरमें निमग्न है तो भी अन्य स्त्रियोंके समान नहीं है ॥२३॥ वह इस प्रकार विचार कर रही थी कि मैं इस पर्वतके शिखरसे गिरकर मृत्युको प्राप्त कर सकती हूँ परन्तु रामके विरहमें जीवन नहीं धारण करूँगी ॥२४॥ इस प्रकार विचार करती हुई सीताके पास, हनुमान् चुपचाप पैर रखता हुआ दूसरा रूप धारण कर गया ॥२५॥

तदनन्तर हनुमान्ने सीताकी गोदके वस्त्रपर अँगूठी छोड़ी उसे देखकर वह सहसा हँस पड़ी तथा रोमांचोंसे युक्त हो गयी ॥२६॥ सीताकी ऐसी अवस्था होनेपर वहाँ जो स्त्रियाँ थीं उन्होंने शीघ्रतासे जाकर सीताका समाचार जाननेमें तत्पर रहनेवाले रावणको शुभ समाचार सुना हर्षसे

---

१. हरिता ख. । २. तस्यामेवावस्थायां म. ।

संतुष्टोऽङ्गगतं ताभ्यो वस्त्ररत्नादिकं ददौ । श्रुत्वा स्मेराननो सीतां सिद्धं कार्यं विचिन्तयन् ॥२८॥
विधातुं महिमानं च किंचिदादिशदुत्सुकः । सुधापूरमिव प्राप्तः समुल्लासधरे हृदि ॥२९॥
स्वनाथवचनात् साध्वी सर्वान्तःपुरसंयुता । गता मन्दोदरी शीघ्रं यत्रासौ जनकात्मजा ॥३०॥
विकचास्यद्युतिं सीतां दृष्ट्वा मन्दोदरी चिरात् । जगौ बाले त्वयाऽस्माकं परमोऽनुग्रहः कृतः ॥३१॥
अधुना भज लोकेशं रावणं शोकवर्जिता । सुराणां श्रीरिवाधीशं लब्धनिःशेषसंपदम् ॥३२॥
इत्युक्ता कुपितावोचद्दोदं मघवीरिपम् । पद्मः खेचरि जानाति म्रियते ते पतिर्ध्रुवम् ॥३३॥
वार्ता समागता भर्तुरिति तोषमुपागता । अकार्षं वदनं स्मेरं भजन्ती परमां धृतिम् ॥३४॥
इति सा वचनं श्रुत्वा राक्षसेशस्य योषितः । ऊचुः क्षुद्भवातेन लपत्येवेति सस्मिता ॥३५॥
ततः श्रेणिक वैदेही नितान्तं तुङ्गया गिरा । परमं विस्मयं प्राप्ता जगादैवं समुत्सुका ॥३६॥
गतायां श्वसनं घोरमब्धिद्वीपे महाभये । कोऽयं संनिहितः साधुर्बन्धुभूतोऽतिवत्सलः ॥३७॥
ततो नभस्वतः सूनुरेवमर्थितदर्शनः । अभिप्रायमिमं चक्रे साधुतायुक्तमानसः ॥३८॥
परार्थं यः पुरस्कृत्य पुनः स्वं विनिगूहति । सोऽतिभीरुतयात्यन्तं जायते निकृतो नरः ॥३९॥
परमापदि सीदन्तं जनं संधारयन्ति[1] ये । अनुकम्पादयालूनां येषां जन्म सुनिर्मलम् ॥४०॥
हानिः पुरुषकारस्य न चात्मनि निदर्शिते । प्रकाश्ये गुरुता याति जगति श्रीर्यशस्विनी ॥४१॥

वृद्धिगत किया ॥२७॥ रावणने सन्तुष्ट होकर उन स्त्रियोंके लिए अपने शरीरपर स्थित वस्त्र तथा रत्न आदिक दिये और सीताको प्रसन्नमुखी सुन अपना कार्य सिद्ध हुआ समझा ॥२८॥ उसके हृदयमें इतना उल्लास हुआ मानो अमृतके पूरको ही प्राप्त हुआ हो। उसी समय उसने उत्सुक हो अनिर्वचनीय उत्सव करनेका आदेश दिया ॥२९॥ अपने पतिके कहनेसे पतिव्रता मन्दोदरी भी समस्त अन्तःपुरके साथ शीघ्र ही वहाँ गयी जहाँ सीता विद्यमान थी ॥३०॥ बहुत दिन बाद आज जिसके मुखकमलकी कान्ति विकसित हो रही थी ऐसी सीताको देख मन्दोदरीने कहा कि हे बाले ! आज तूने हम सबपर बड़ा अनुग्रह किया है ॥३१॥ जिस प्रकार समस्त सम्पदाओंसे युक्त देवेन्द्रकी लक्ष्मी सेवा करती है उसी प्रकार तू भी अब शोक रहित हो जगत्पति रावणकी सेवा कर ॥३२॥ मन्दोदरीके इस प्रकार कहनेपर सीताने कुपित होकर कहा कि हे विद्याधरि ! यदि तेरा यह कहना राम जान पावें तो तेरा पति निश्चित ही मारा जावे ॥३३॥ आज मेरे भर्ताका समाचार आया है इसलिए सन्तोषको प्राप्त हो परम धैर्यको प्राप्त हुई हूँ और इसीलिए मैंने मुखको मन्दहास्यसे युक्त किया है ॥३४॥ सीताके यह वचन सुनकर स्त्रियाँ कहने लगीं कि क्षुधाके कारण इसे वायुरोग हो गया है इसीलिए यह हँसती हुई ऐसा बक रही है ॥३५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इसके बाद परम आश्चर्यको प्राप्त हुई सीताने अत्यन्त उत्सुक हो अतिशय उच्च वाणीमें इस प्रकार कहा कि जो समुद्रके भीतर विद्यमान महाभयदायक इस द्वीपमें कष्टको प्राप्त हुई है ऐसा मेरा कौन स्नेही उत्तम बन्धु यहाँ निकट आया है ॥३६-३७॥

तदनन्तर जिसके दर्शनकी प्रार्थना की गयी थी तथा जिसका मन सज्जनतासे युक्त था ऐसे हनुमान्‌ने इस प्रकार विचार किया कि ॥३८॥ जो मनुष्य दूसरेका कार्य आगे कर अर्थात् पहलेसे स्वीकृत कर फिर अपने आपको छिपाता है वह अत्यन्त भीरु होनेके कारण नीच मनुष्य होता है ॥३९॥ और जो आपत्तिमें पड़े हुए दूसरे मनुष्यको आलम्बन देते हैं उन दयालु मनुष्योंका जन्म अत्यन्त निर्मल होता है ॥४०॥ इसके सिवाय अपने आपको प्रकट कर देनेमें पुरुषत्वकी कुछ हानि भी तो नहीं मालूम होती अपितु प्रकट कर देनेपर यशस्विनी लक्ष्मी संसारमें गौरवको प्राप्त होती है ॥४१॥ तदनन्तर हनुमान् भामण्डलको नाईं हजारों उत्तम स्त्रियोंके बीच बैठी हुई सीताके समीप

---

१. साधारयन्ति म., ख. ।

उत्तमस्त्रीसहस्राणां ततो मध्यगतामिमाम् । प्रभामण्डलकल्पोऽसौ पद्मपत्नीमुपागमत् ॥४२॥
निःशङ्कद्विपविक्रान्तः संपूर्णेन्दुसमाननः । सहस्रांशुसमो दीप्त्या माल्याम्बरविभूषितः ॥४३॥
रूपेणाप्रतिमो युक्तः कान्त्या निर्मृगचन्द्रमाः । किरीटे वानरं चिह्नदामोदाहृतषट्पदः ॥४४॥
चन्दनार्चितसर्वाङ्गः पीतचर्चाविराजितः । ताम्बूलारक्तबिम्बोष्ठः प्रलम्बांशुकशोभितः ॥४५॥
चलत्कुण्डलविद्योतविहसद्गण्डमण्डलः । परं संहननं बिभ्रद्वीर्येणान्तविवर्जितः ॥४६॥
सर्पन् सीतां समुद्दिश्य हनूमान् गुणभूषणः । महाप्रतापसंयुक्तः शोभामुपययौ पराम् ॥४७॥
कान्तिमालिमुखं दृष्ट्वा तं युतं परया श्रिया । पद्मायतेक्षणा नार्यस्ता बभूवुः समाकुलाः ॥४८॥
दधती हृदये कम्पं मन्दोदर्यासविस्मया । समालोकत सीतायाः समीपे वायुनन्दनम् ॥४९॥
उपगम्य ततः सीतां विनीतः पवनात्मजः । करकुड्मलमाधाय मस्तके नम्रतायुषि ॥५०॥
कुलं गोत्रं च संश्राव्य पितरं जननीं तथा । अवेदयच्च विश्रब्धं पद्मनाथेन चोदितम् ॥५१॥
त्रिविष्टपसमे साध्वि विमाने विभवान्विते । रतिं न लभते रामो भग्नस्त्वद्विरहार्णवे ॥५२॥
त्यक्तनिःशेषकर्तव्यो मौनं प्रायेण धारयन् । स त्वां मुनिरिव ध्यायन्नेकतानोऽवतिष्ठते ॥५३॥
वेणुतन्त्रीसमायुक्तं गीतं प्रवरयोषिताम् । न कर्णजाहमेतस्य कदाचिद्याति पावने ॥५४॥
सदा करोति सर्वस्मै कथां स्वामिंस्तवेति मुदा । दर्शनाशाकृतप्राणो वहन्नास्ते स केवलम् ॥५५॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा पतिजीवनवेदनम् । प्रमोदं परमं प्राप्ता सीता विकसितेक्षणा ॥५६॥
विषादं संगता भूयो जलपूरितलोचना । ऊचे शान्ता हनूमन्तं विनीतं स्थितमग्रतः ॥५७॥

गया ॥४२॥ जो शंका रहित हाथीके समान पराक्रमी था, जिसका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान सुन्दर था, जो दीप्तिसे सूर्यके समान था, माला और वस्त्रोंसे सुशोभित था। रूपसे अनुपम था। कान्तिसे मृग रहित चन्द्रमाके समान जान पड़ता था, मुकुटमें वानरका चिह्न धारण कर रहा था, सुगन्धिसे जो भ्रमरोंको आकर्षित कर रहा था, चन्दनसे जिसका समस्त शरीर चर्चित था, जो पीत विलेपनसे सुशोभित था, जिसका बिम्बोष्ठ ताम्बूलके रससे लाल था, जो नीचे लटकते हुए वस्त्रसे सुशोभित था, चंचल कुण्डलोंके प्रकाशसे जिसका गण्डस्थल सुशोभित हो रहा था, जो उत्कृष्ट संहननको धारण कर रहा था, जिसके पराक्रमकी सीमा नहीं थी, जो गुणरूपी आभूषणोंसे युक्त था, तथा महाप्रतापसे सहित था ऐसा हनुमान् सीताको लक्ष्य कर धीरे-धीरे जाता हुआ परम शोभाको प्राप्त हो रहा था ॥४३-४७॥ जिसका मुख कान्तिसे सुशोभित था, ऐसे उत्कृष्ट लक्ष्मीसे युक्त हनुमान्‌को देखकर वे कमललोचना स्त्रियाँ व्याकुल हो उठीं ॥४८॥ जिसके हृदयमें कँपकँपी छूट रही थी ऐसी मन्दोदरीने सीताके समीप हनुमान्‌को आश्चर्यके साथ देखा ॥४९॥

तदनन्तर सीताके समीप पहुँचकर परम विनीत हनुमान्‌ने झुके हुए मस्तकपर अंजलि बाँध पहले अपने कुल, गोत्र तथा माता-पिताका नाम सुनाया। उसके बाद निश्चिन्त हो रामका सन्देश कहा ॥५०-५१॥ उसने कहा कि हे पतिव्रते ! तुम्हारे विरहरूपी सागरमें डूबे राम, स्वर्गके समान वैभवसे युक्त विमानमें भी रतिको प्राप्त नहीं हो रहे हैं ॥५२॥ अन्य सब कार्य छोड़कर वे प्रायः मौन धारण किये रहते हैं और मुनिकी भाँति एकाग्र चित्त हो तुम्हारा ध्यान करते हुए बैठे रहते हैं ॥५३॥ हे पावने—हे पवित्रकारिणि ! बाँसुरी तथा वीणासे युक्त उत्तम स्त्रियोंका संगीत कभी भी उनके कर्णमूलमें नहीं पहुँचता है ॥५४॥ हे स्वामिनि ! वे सदा सबके सामने बड़े हर्षसे तुम्हारी ही कथा करते रहते हैं और केवल तुम्हारे दर्शनकी अभिलाषासे ही प्राणोंको बाँधकर धारण किये हुए हैं ॥५५॥ इस प्रकार पतिके जीवनको सूचित करनेवाले हनुमान्‌के वचन सुन सीता परम प्रमोदको प्राप्त हुई। उसके नेत्र-कमल खिल उठे ॥५६॥

तदनन्तर विषादको प्राप्त, शान्त सीताने नेत्रमें जल भरकर सामने बैठे हुए विनयी

साहमस्यामवस्थायां निमग्ना कपिलक्षण । तुष्टा किं ते प्रयच्छामि हतेन विधिनान्विता ॥५८॥
ऊचे च वायुपुत्रेण दर्शनेनैव ते शुभे । अद्य मे सुलभं सर्वं जातं जगति पूजिते ॥५९॥
ततो मुक्ताफलस्थूलवाष्पबिन्दुचिताधरा । सीता श्रीरिव दुःखार्ता पप्रच्छ कपिलक्षणम् ॥६०॥
मकरग्राहनक्रादिक्षोभितं भीममर्णवम् । भद्र दुस्तरमुल्लङ्घ्य विस्तीर्णं कथमागतः ॥६१॥
अवस्थां वा गतामेतां कार्यसंसिद्धिमागताम् । किमर्थं मामिहागत्य मयस्याश्वासमुत्तमम् ॥६२॥
लावण्यद्युतिरूपाढ्यः कान्तिसागरसंवृतः । श्रिया कीर्त्या च संयुक्तः प्रियो मे भद्र बान्धवः ॥६३॥
प्रदेशे स त्वया कस्मिन् प्राणनाथो ममेक्षितः । सत्यं जीवति सद्गोत्र क्वचिल्लक्ष्मणसंगतः ॥६४॥
किं नु दुःखेचरैः संख्ये भीमैः व्यापादितोऽनुजः । लक्ष्मणेनैव तुल्यः स्यात्पद्मः पद्मदलेक्षणः ॥६५॥
किं वा मद्विरहादुग्रदुःखं नाथः समाश्रितः । संदिश्य भवतः किंचिद्वने लोकान्तरं गतः ॥६६॥
जिनेन्द्रविहिते मार्गे निःशेषग्रन्थवर्जितः । तपस्थन् किमसावास्ते भवनिर्वेदपण्डितः ॥६७॥
शिथिलीभूतनिःशेषशरीरस्य वियोगतः । अङ्गुलीतश्च्युतं प्राह्यं त्वया स्यादङ्गुलीयकम् ॥६८॥
त्वया सह परिज्ञातिर्नासीदेव मम प्रभोः । कार्येण रहितः प्राप्तः कथं त्वं तस्य मित्रताम् ॥६९॥
न च प्रत्युपकाराय शक्ता तुष्टाप्यहं तव । अङ्गुलीयकमेतच्च समानीतं कृपावता ॥७०॥
एतत्सर्वं मम भ्रातः समाचक्ष्व विशेषतः । सत्येन श्रावितः पित्रोर्दैवस्य च मनोजुषः ॥७१॥
इति पृष्टः समाधानो शाखामृगकिरीटभृत् । शिरस्थकरराजीवो जगाद विकचेक्षणः ॥७२॥

हनुमान्‌से कहा कि हे कपिध्वज ! मैं इस अवस्थामें निमग्न तथा दुर्भाग्यसे युक्त हूँ। सन्तुष्ट होकर तुझे क्या दूँ ? ॥५७-५८॥ इसके उत्तरमें हनुमान्‌ने कहा कि हे शुभे—हे मंगलरूपिणि ! हे पूजिते ! आज आपके दर्शनसे ही मुझे संसारमें सब कुछ सुलभ हो गया है ॥५९॥ तदनन्तर मोतियोंके समान बड़ी-बड़ी अश्रुओंकी बूँदोंसे जिसका ओंठ व्याप्त हो रहा था तथा जो दुःखसे पीड़ित लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी ऐसी सीताने हनुमान्‌से पूछा कि हे भद्र ! मकर—ग्राह तथा नाक आदिसे क्षोभित इस भयंकर दुस्तर तथा लम्बे-चौड़े समुद्रको लाँघकर तू किस प्रकार आया है ? इस अवस्था अथवा कार्यकी सिद्धिको प्राप्त हुई जो मैं हूँ सो मुझे यहाँ आकर तू किस लिए उत्तम धैर्य प्राप्त करा रहा है ॥६०-६२॥ हे भद्र ! तू लावण्य-कान्ति तथा रूपसे सहित, कान्तिरूपी सागरसे घिरा, तथा लक्ष्मी और कीर्तिसे युक्त मेरा प्यारा भाई ही है ॥६३॥ तूने मेरे प्राणनाथको कहाँ देखा था ? हे कुलीन ! क्या सचमुच ही मेरे प्राणनाथ, लक्ष्मणके साथ कहीं जीवित हैं ? ॥६४॥ ऐसा तो नहीं है कि उन भयंकर दुष्ट विद्याधरोंके द्वारा युद्धमें छोटा भाई लक्ष्मण मारा गया हो और उस दुःखसे दुःखी हो कमललोचन राम भी उसीकी तुल्य अवस्थाको प्राप्त हो गये हों ॥६५॥ अथवा तुम्हें सन्देश देनेके बाद मेरे विरहसे अत्यन्त उग्र दुःखको प्राप्त हो नाथ, किसी वनमें लोकान्तरको प्राप्त हो गये हों ? ॥६६॥ अथवा वे संसारसे विरक्त रहनेमें निपुण थे अतः समस्त परिग्रहका त्यागकर जिनेन्द्र प्रणीत मार्गमें दीक्षित हो कहीं तपस्या करते हुए विद्यमान हैं ? ॥६७॥ अथवा वियोगके कारण जिनका समस्त शरीर शिथिल हो गया है ऐसे श्रीरामकी अँगुलीसे यह अँगूठी कहीं गिर गयी होगी सो तुम्हें मिली है ? ॥६८॥ तुम्हारे साथ मेरे स्वामीका परिचय पहले नहीं था फिर बिना कारण तू उनकी मित्रताको कैसे प्राप्त हो गया ? ॥६९॥ तू दयालु होकर यह अँगूठा लाया है सो सन्तुष्ट होकर भी मैं तेरा प्रत्युपकार करनेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥७०॥ हे भाई ! तू अपने माता-पिता अथवा हृदयमें विद्यमान श्रीजिनेन्द्रदेवके कारण सत्य ही कथन करेगा ॥७१॥ इस प्रकार पूछे जानेपर चित्तकी एकाग्रतासे युक्त, वानर-चिह्नित मुकुटको धारण करनेवाला, तथा विकसित नेत्रोंसे सहित हनुमान्, हस्त-कमल जोड़ मस्तकसे लगा इस प्रकार कहने लगा ॥७२॥ कि

---

१. प्राणनाथे म. । २. व्यापादितानुजः क., ख. । ३. ते पश्यन् (?) म. । ४. मनोजुषा ब. धारण-म. ।

सायके रविहासाख्ये लक्ष्मणेन निजीकृते । गत्वा चन्द्रनखानिष्टा रमणं समरोधयत् ॥७३॥
यावदाहूयते स्वामी रक्षसां सुमहाबलः । दूषणस्तावदायातो योद्धुं दाक्षरथिं द्रुतम् ॥७४॥
लक्ष्मणो दूषणेनामा युध्यते यावदुद्धतम् । तावद्दशमुखः प्राप्तस्तमुद्देशं बलान्वितः ॥७५॥
धर्माधर्मविवेकज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः । भवतीं वीक्ष्य स क्षुद्रो बभूव मनसो वशः ॥७६॥
भ्रष्टनिःशेषनीतिश्च निस्सारीभूतचेतनः । मायासिंहस्वनं चक्रे भवतोस्तेनकारणम् ॥७७॥
श्रुत्वा सिंहस्वनं पद्मो ययौ यावद्रणस्थितम् । लक्ष्मणं तावदेतेन पापेन त्वमिहाहृता ॥७८॥
प्रेषितः पद्मनाभश्च लक्ष्मणेन त्वरावता । गत्वा भूयस्तमुद्देशं न त्वामैक्षत सत्तमे ॥७९॥
ततश्चिरं वनं भ्रान्त्वा त्वद्गवेषणकारणम् । ईक्षांचक्रे इलथप्राणं मृत्यवासन्नं जटायुषम् ॥८०॥
तस्मै दत्वा स जैनेन्द्रीं म्रियमाणाय देशनाम् । अवतस्थे वने दुःखी भवतीगतमानसः ॥८१॥
गतश्च लक्ष्मणः पद्मं निहत्य खरदूषणम् । आनीता रत्नजटिना त्वत्प्रवृत्तिः प्रियस्य ते ॥८२॥
सुग्रीवरूपसंयुक्तः पद्मनामेन साहसः । बलं हन्तुं समुद्युक्तो विद्यया वर्जितो हतः ॥८३॥
कृतस्यास्योपकारस्य कुलपावनकारिणः । अहं प्रत्युपकाराय प्रेषितो गुरुबान्धवैः ॥८४॥
प्रीत्या विमोचयामि त्वां विग्रहो निःप्रयोजनः । कार्यसिद्धिरिहाभीष्टा सर्वथा नयशालिभिः ॥८५॥
सोऽयं लङ्कापुरीनाथो घृणावान् विनयान्वितः । धर्मार्थकामवान् धीरो हृदयेन मृदुः परम् ॥८६॥
सौम्यः क्रौर्यविनिर्मुक्तः सत्यव्रतकुलस्थितिः । करिष्यति वचो नूनं मम त्वामर्पयिष्यति ॥८७॥

जब लक्ष्मणने सूर्यहास खड्ग अपने आधीन कर लिया और चन्द्रनखाको जब राम-लक्ष्मणने चाहा नहीं तब उसने अपने पति खरदूषणको रोषयुक्त कर दिया अर्थात् विपरीत भिड़ाकर उसे कुपित कर दिया ॥७३॥ सहायताके लिए जबतक महाबलवान् राक्षसोंके स्वामी—रावणको बुलाया तबतक खरदूषण शीघ्र ही युद्ध करनेके लिए रामके समीप आया ॥७४॥ उधर लक्ष्मण जबतक खरदूषणके साथ विकट युद्ध करता है तबतक इधर अतिशय बलवान् रावण उस स्थानपर आता है ॥७५॥ यद्यपि रावण धर्म-अधर्मके विवेकको जाननेवाला एवं समस्त शास्त्रोंका विशारद था, तो भी वह क्षुद्र आपको देख मनके वशीभूत हो गया ॥७६॥ तदनन्तर जिसकी समस्त नीति भ्रष्ट हो गयी थी और चेतना निःसार हो चुकी थी ऐसे उस रावणने आपको चुरानेके लिए मायामय सिंहनाद किया ॥७७॥ उस सिंहनादको सुन जबतक राम, युद्धमें स्थित लक्ष्मणके पास गये तब-तक यह पापी तुम्हें हरकर यहाँ ले आया ॥७८॥ उधर लक्ष्मणने शीघ्र ही युद्धक्षेत्रसे रामको वापस किया सो वहाँसे आकर जब वे पुनः उस स्थानपर आये तब हे पतिव्रते! उन्होंने तुम्हें नहीं देखा ॥७९॥ तदनन्तर तुम्हें खोजनेके लिए चिरकाल तक वनमें भ्रमण कर उन्होंने शिथिल प्राण एवं मरणासन्न जटायुको देखा ॥८०॥ तदनन्तर उस मरणोन्मुखके लिए जिनेन्द्र धर्मका उपदेश देकर वे दुःखी हो वनमें बैठ गये। उस समय उनका मन एक आपमें ही लग रहा था ॥८१॥

लक्ष्मण, खरदूषणको मारकर रामके पास आये और रत्नजटी तुम्हारे पतिके लिए तुम्हारा वृत्तान्त ले आया ॥८२॥ इसी बीचमें सुग्रीवके रूपसे युक्त साहसगति नामका विद्याधर रामको मारनेके लिए उद्यत हुआ परन्तु रामके प्रभावसे विद्यासे रहित होनेके कारण वह स्वयं मारा गया ॥८३॥ इस प्रकार रामने हमारे कुलको पवित्र करनेवाला यह जो महान् उपकार किया था उसका बदला चुकानेके लिए ही गुरुजनोंने मुझे भेजा है ॥८४॥ मैं तुम्हें प्रीतिपूर्वक छुड़वाता हूँ। युद्ध करना निष्प्रयोजन है क्योंकि नीतिज्ञ मनुष्योंको सब तरहसे कार्यकी सिद्धि करना ही संसारमें इष्ट है ॥८५॥ यह लंकापुरीका राजा रावण दयालु है, विनयी है, धर्म-अर्थ-कामरूप त्रिवर्गसे सहित है, धीर है, हृदयसे अत्यन्त कोमल है ॥८६॥ सौम्य है, क्रूरतासे रहित है और सत्यव्रतका पालनेवाला है, अतः निश्चित ही मेरा कहा करेगा और तुम्हें मेरे लिए सौंप देगा ॥८७॥

कीर्तिरस्य निजा पाल्या धवला लोकविश्रुता । लोकापवादतश्चैव बिभेति मितरां कृती ॥८८॥
ततः परं परिप्राप्ता प्रमोदं जनकात्मजा । हनूमन्तमिदं वाक्यं जगाद विपुलेक्षणा ॥८९॥
पराक्रमेण धैर्येण रूपेण विनयेन च । कपिध्वजास्त्वया तुल्याः कियन्तो मत्प्रियाश्रिताः ॥९०॥
मन्दोदरी ततोऽवोचच्छूराः सत्त्वयशोऽन्विताः । गुणोत्कटा न शंसन्ति धीराः स्वं स्वयमुत्तमाः ॥९१॥
वैदेहि तव न ज्ञातः किमयं येन पृच्छसि । कपिध्वजः समानोऽस्य भरतेऽप्यस्मिन्न विद्यते ॥९२॥
विमानबहुवण्टासंघट्टसंक्षोभणे [illegible] साहाय्यकं परम् ॥९३॥
दशाननसहायत्वं कृतं येन महारणे । स हनूमानिति ख्यातश्चाञ्जनातनयः परः ॥९४॥
महापदि निमग्नस्य दशवक्त्रस्य विद्विषः । खेटा मनोभ्यधामिगया एकेनामेन निर्जिताः ॥९५॥
अनङ्गकुसुमा लब्धा येन चन्द्रनखात्मजा । गम्भीरस्य जनो यस्य सदा वाञ्छति दर्शनम् ॥९६॥
अस्य पौरसमुद्रस्य यः कान्तः शिशिरांशुवत् । सहोदरसमं वेत्ति यं लङ्कापरमेश्वरः ॥९७॥
हनूमानिति विख्यातः सोऽयं सकलविष्टपे । गुणैः समुन्नतो नीतो दूतत्वं क्षितिगोचरैः ॥९८॥
अहो परमिदं चित्रं निन्दनीयं विशेषतः । नीतः प्राकृतवत्कश्चित्भूगैर्यद्भृत्यतामयम् ॥९९॥
इत्युक्ते वचने वातिर्जगाद स्थिरमानसः । अहो परममूर्खत्वं भवत्येदमनुष्ठितम् ॥१००॥
सुखं प्रसादतो यस्य जीव्यते विभवान्वितः । अकार्यं वाञ्छतस्तस्य दीयते न मतिः कथम् ॥१०१॥
आहारं भोक्तुकामस्य विज्ञातं विषमिश्रितम् । मित्रस्य कुर्वतः कार्यं कथं न प्रतिषिध्यते ॥१०२॥

इसे अपनी लोकप्रसिद्ध उज्ज्वल कीर्तिकी भी तो रक्षा करनी है अतः यह विद्वान् लोकापवादसे बहुत डरता है ॥८८॥

तदनन्तर परम हर्षको प्राप्त हुई विशाललोचना सीता हनुमान्से यह वचन बोली कि पराक्रमसे, धैर्यसे, रूपसे और विनयसे तुम्हारी सदृशता धारण करनेवाले कितने वानरध्वज हमारे प्राणनाथके साथ हैं ? ॥८९-९०॥ तब मन्दोदरी बोली कि जो शूरवीर हैं, सत्त्व और यशसे सहित हैं, गुणोंसे उत्कट हैं तथा धीर-वीर हैं ऐसे उत्तम पुरुष स्वयं अपनी प्रशंसा नहीं करते ॥९१॥ हे वैदेहि ! तू इसे क्या जानती नहीं है जिससे पूछ रही है ? इस भरत क्षेत्र-भरमें इसके समान दूसरा वानरध्वज नहीं है ॥९२॥

विमानों तथा नाना प्रकारके वाहनोंके समूहकी जहाँ अत्यधिक भीड़ होती है ऐसे संग्राममें यह रावणकी परम सहायता करता है ॥९३॥ जिसने महायुद्धमें रावणकी सहायता की है ऐसा यह हनुमान् इस नामसे प्रसिद्ध अंजनाका उत्कृष्ट पुत्र है ॥९४॥ एक बार रावण महा-विपत्तिमें फँस गया था तब उसके ऐसे अनेक शत्रु विद्याधरोंको इसने अकेले ही मार भगाया था जिनके कि नाम सुनने मात्रसे मनको पीड़ा होती थी ॥९५॥ जिसने चन्द्रनखाकी पुत्री अनंग-कुसुमा प्राप्त की है । जो इतना गम्भीर है कि मनुष्य सदा जिसके दर्शनकी इच्छा करते हैं ॥९६॥ जो यहाँके नागरिक जनरूपी समुद्रको वृद्धिगत करनेके लिए चन्द्रमाके समान मनोहर है और लंकाका अधिपति रावण जिसे भाईके समान समझता है ॥९७॥ ऐसा यह हनुमान् समस्त संसारमें प्रसिद्ध, उत्कृष्ट गुणोंका धारक है फिर भी भूमिगोचरियोंने इसे दूत बनाया है ॥९८॥ यह बड़े आश्चर्यकी बात है । इससे अधिक निन्दनीय और क्या होगा कि इसे साधारण मनुष्यके समान, भूमिगोचरियों-ने दासता प्राप्त करायी है अर्थात् अपना दास बनाया है ॥९९॥ मन्दोदरीके इस प्रकार कहनेपर दृढ़चित्तके धारक हनुमान्ने इस प्रकार कहा कि अहो ! तुमने जो यह कार्य किया है सो परम मूर्खता की है ॥१००॥

जिसके प्रसादसे वैभवके साथ सुखपूर्वक जीवन बिताया जा रहा है वह यदि अकार्य करना चाहता है तो उसे सद्बुद्धि क्यों नहीं दी जाती है ? ॥१०१॥ इच्छानुसार काम करनेवाला मित्र यदि विषमिश्रित भोजन करना चाहता है तो उसे मना क्यों नहीं किया जाता

भवितव्यं कृतज्ञेन जनेन सुखमीप्सुना । वेत्ति स्वार्थं न यस्तस्य जीवितं पशुना समम् ॥१०३॥
मन्दोदरि परं गर्वं निःसारं वहसे मुधा । यदग्रमहिषी भूत्वा दूतीत्वमसि संश्रिता ॥१०४॥
क्व यातमधुना तत्ते सौभाग्यं रूपमुन्नतम् । अन्यस्त्रीगतचित्तस्य दूतीत्वं संश्रितासि यत् ॥१०५॥
प्राकृता परमा सा त्वं वर्त्तसे रतिवस्तुनि । महिषीत्वं न मन्येऽहं जाता गौरसि दुर्भगे ॥१०६॥
मन्दोदरी ततोऽवोचत् कोपाश्लिष्टितमानसा । अहो तव सदोषस्य प्रगल्भत्वं निरर्थकम् ॥१०७॥
दूतस्त्वेनागतं सीता यदि त्वां वेत्ति रावणः । भवेत्प्रकरणं तत्ते जातं यच्चैव कस्यचित् ॥१०८॥
येनैवेन्दुनखानाथो दैवयोगेन मारितः । पुरस्कृत्य तमेवास्य कथं सुग्रीवकादयः ॥१०९॥
भृत्यत्वं दशवक्त्रस्य विस्मृत्य स्वल्पचेतसः । स्थिताः किमथवा कुर्युर्वराकाः कालचोदिताः ॥११०॥
अतिमूढतरात्मानो निर्लज्जाः क्षुद्रवृत्तयः । अकृतज्ञा वृथोत्सिक्ताः स्थितास्ते मृत्युसंनिधौ ॥१११॥
इत्युक्ते वचनं सीता जगौ कोपसमाश्रिता । मन्दोदरि सुमन्दा त्वमेवं या कत्थसे वृथा ॥११२॥
शूरकोविदगोष्ठीषु कीर्त्यमानो न किं त्वया । प्रियो मे पद्मनाभोऽसौ श्रुतोऽस्यद्भुतविक्रमः ॥११३॥
वज्रावर्तधनुर्घोषं श्रुत्वा यस्य रणागमे । भयज्वरितकम्पाङ्गाः सीदन्ति रणशालिनः ॥११४॥
लक्ष्मीधरोऽनुजो यस्य लक्ष्मीनिलयविग्रहः । शत्रुपक्षक्षयं कर्तुं समर्थो वीक्षणादपि ॥११५॥
किमत्र बहुनोक्तेन समुत्तीर्य महार्णवम् । पतिरेष समायाति लक्ष्मणेन समन्वितः ॥११६॥

है ? ॥१०२॥ सुख प्राप्त करनेवाले मनुष्यको कृतज्ञ होना चाहिए। जो सुखदायकके लाभको नहीं समझता है उसका जीवन पशुके समान है ॥१०३॥ हे मन्दोदरि ! तुम व्यर्थ ही निःसार गर्व धारण करती हो जो पटरानी होकर भी दूतीका कार्य कर रही हो ॥१०४॥ तुम्हारा वह सौभाग्य तथा उन्नत रूप इस समय कहाँ गया जो परस्त्रीके चित्तकी मूर्ति बनकर बैठी हो ? ॥१०५॥ जान पड़ता है कि तुम रतिकार्यके विषयमें अत्यन्त साधारण स्त्री हो गयी हो। अब मैं तुममें महिषीत्व (पट्टरानीपना) नहीं मानता, हे दुर्भगे ! अब तो तुम गौ हो गयी हो ॥१०६॥

तदनन्तर जिसका मन क्रोधसे आलिंगित हो रहा था ऐसी मन्दोदरीने कहा कि अहो ! अपराधी होकर भी तू निरर्थक प्रगल्भता बता रहा है—बढ़-बढ़कर बात कर रहा है ॥१०७॥ तू दूत बनकर सीताके पास आया है यदि यह बात रावण जान पायेगा तो तेरी वह दशा होगी जो किसीकी नहीं हुई होगी ॥१०८॥ जिसने दैव योगसे चन्द्रनखाके पति—खरदूषणको मारा है उसीको आगे कर ये क्षुद्रचेता सुग्रीवादि रावणकी दासता भूल एकत्रित हुए हैं, सो यमके प्रेरे ये नीच कर ही क्या सकते हैं ? ॥१०९-११०॥ जान पड़ता है कि जिनकी आत्मा अत्यन्त मूढ़तासे उपहत है, जो निर्लज्ज हैं, क्षुद्रचेष्टाके धारक हैं, अकृतज्ञ हैं, और व्यर्थ ही अहंकारमें फूल रहे हैं ऐसे वे सब मृत्युके निकट आ पहुँचे हैं ॥१११॥ मन्दोदरीके इस प्रकार कहनेपर सीताने कुपित होकर कहा कि हे मन्दोदरि ! तू अत्यन्त मूर्ख है जो इस तरह व्यर्थ ही अपनी प्रशंसा कर रही है ॥११२॥

शूरवीर तथा विद्वानोंकी गोष्ठीमें जिनकी अत्यन्त प्रशंसा होती है तथा जो अद्भुत पराक्रमके धारक हैं ऐसे मेरे पति रामका नाम क्या तूने नहीं सुना है ? ॥११३॥ रणके प्रारम्भमें जिनके वज्रावर्त धनुषका शब्द सुनकर युद्धमें निपुण मनुष्य ज्वरसे काँपते हुए दुःखी होने लगते हैं ॥११४॥ जिसके शरीरमें लक्ष्मीका निवास है ऐसा लक्ष्मण जिनका छोटा भाई है ऐसा भाई कि जो देखने मात्रसे शत्रुपक्षका क्षय करनेमें समर्थ है ॥११५॥ इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? हमारा पति लक्ष्मणके साथ समुद्रको तैरकर अभी आता है ॥११६॥

१. वज्रावर्तं धनुर्घोषं म. ।

पश्यात्मीयं पतिं युद्धे स्वल्पकैरेव वासरैः । निहतं मम नाथेन जगदुत्कटतेजसा ॥११७॥
एषा[1] गन्तासि वैधव्यं कान्दस्येषा चिरोज्झिता । या त्वं पापरतेर्भर्तुरनुकूलत्वमागता ॥११८॥
मयदैत्यात्मजा तीव्रमेवमुक्तातिकोपगा । परमं क्षोभमायाता कम्पमानाऽधराधरा ॥११९॥
एका नानासपत्नीनां सहस्रैः संभ्रमस्पृशाम्[1] । अष्टादशभिरत्युग्रैः कोपकम्पितमूर्तिभिः ॥१२०॥
सर्वं करतलैर्हन्तुमुद्यता वेगधारिभिः । निर्भर्त्सनमतिक्रूरैराक्रोशैः कुर्वती भृशम् ॥१२१॥
श्रीमांस्तावन्मरुत्पुत्रः समुत्थाय जवान्वितः । अवस्थितोऽन्तरे तासां सरितामिव भूधरः ॥१२२॥
ता दुःखहेतवः सर्वा वैधेयी हन्तुमुद्यताः । वेदना इव वैद्येन श्रीशैलेन निवारिताः ॥१२३॥
पादताडितभूभागा विभूषादरवर्जिताः । ययुः क्रूराशयाः सर्वा वनितास्ता दशाननम् ॥१२४॥
आञ्जनेय ततः सीता प्रणिपत्य महादरम् । विज्ञापिता सुवाक्येन भोजनं प्रति साधुना ॥१२५॥
समर्थितप्रतिज्ञः सौ सुनिर्मलमनोरथः । भोक्तुमन्नमतद्धारं कालदेशज्ञमानसा ॥१२६॥
ससागरा मही देवि रामदेवस्य शासने । वर्त्तते तेन नैवेदमन्नं त्यक्तुमर्हसि ॥१२७॥
एवं हि बोधिता तेन वैदेही करुणावनिः । ऐच्छदन्नं यतः साध्वी सर्वाचारविचक्षणा ॥१२८॥
इरा नाम ततस्तेन चोदिता कुलपालिता । यथान्नं प्रवरं श्लाघ्यं द्रुतमानीयतामिति ॥१२९॥
मुक्ता कन्या स्वशिबिरं श्रीशैलेन क्षपाक्षये । भानावभ्युदिते जातो विभीषणसमागमः ॥१३०॥

तू कुछ ही दिनोंमें लोकोत्तर तेजके धारक मेरे पतिके द्वारा अपने पतिको युद्धमें मरा हुआ देखेगी ॥११७॥ जो तू पापमें प्रीति रखनेवाले पतिकी अनुकूलताको प्राप्त हुई है सो इसके फलस्वरूप वैधव्यको प्राप्त होगी और पतिरहित होकर चिरकाल तक रुदन करेगी ॥११८॥ इस प्रकार कठोर वचन कहनेपर जो अत्यन्त कोपको प्राप्त हो रही थी तथा जो काँपते हुए ओठको धारण कर रही थी ऐसी मन्दोदरी परम क्षोभको प्राप्त हुई ॥११९॥ यद्यपि मन्दोदरी एक थी तो भी वह सम्भ्रमको प्राप्त तथा क्रोधसे कम्पित शरीरको धारण करनेवाली अपनी अठारह हजार सपत्नियोंके साथ सीताको वेगशाली करतलोंसे मारनेके लिए उद्यत हुई। वह उस समय अत्यन्त क्रूर अपशब्दोंसे उसका अत्यधिक तिरस्कार कर रही थी ॥१२०-१२१॥ उसी समय लक्ष्मीसे सुशोभित तथा वेगसे युक्त हनुमान् उठकर उन सबके बीचमें उस प्रकार खड़ा हो गया जिस प्रकार कि नदियोंके बीच कोई पर्वत आ खड़ा होता है ॥१२२॥ दुःखकी कारण, तथा सीताको मारनेके लिए उद्यत उन सब स्त्रियोंको हनुमान्ने उस प्रकार रोक दिया जिस प्रकार कि वैद्य वेदनाओंको रोक देता है ॥१२३॥ तदनन्तर जो पैरोंसे पृथिवीके प्रदेश ताड़ित कर रही थीं तथा जिन्होंने आभूषण धारण करनेका आदर छोड़ दिया था ऐसी दुष्ट अभिप्रायको धारण करनेवाली वे सब स्त्रियाँ रावणके पास गयीं ॥१२४॥

तदनन्तर साधु स्वभावके धारक हनुमान्ने बड़े आदरके साथ सीताको प्रणाम कर उत्तम वचनोंके द्वारा भोजन करनेकी प्रार्थना की ॥१२५॥ सो जिसकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो चुकी थी, जिसका मनोरथ निर्मल था और जिसका मन देश कालका ज्ञाता था ऐसी सीताने आहार ग्रहण करना स्वीकृत कर लिया ॥१२६॥ प्रार्थना करते समय हनुमान्ने इस प्रकार समझाया था कि हे देवि ! यह समुद्र सहित पृथिवी राम देवके शासनमें है इसलिए यहाँका यह अन्न छोड़नेके योग्य नहीं है ॥१२७॥ इस प्रकार समझाये जानेपर दयाकी भूमि सीताने अन्न ग्रहण करनेकी इच्छा की थी, सो ठीक ही है क्योंकि वह पतिव्रता सब प्रकारका आचार जाननेमें निपुण थी ॥१२८॥ तदनन्तर हनुमान्ने इरा नामकी कुलपालितासे कहा कि शीघ्र ही उत्तम तथा प्रशंसनीय अन्न लाओ ॥१२९॥ इस प्रकार कहनेपर कन्या अपने शिविर अर्थात् डेरेमें गयी और रात्रि समाप्त होने तथा सूर्योदय होनेपर हनुमान्का विभीषणके साथ समागम हुआ ॥१३०॥

१. गन्तासि म. । २. स्पृशम् म. ।

आहारो वायुपुत्रेण तत्र भुक्तो मनोहरः । एवं कर्तव्ययोगेन मुहूर्तास्ते त्रयो गताः ॥१३१॥
मुहूर्तेऽथ चतुर्थे तु समानीतमिराक्षिया । आहारं मैथिलीभुक्तमिति जानन्ति कोविदाः ॥१३२॥
चन्दनादिभिरालिप्ते भूतले दर्पणप्रभे । पुष्पोपकारसंपन्ने नलिनीपत्रशोभिनि ॥१३३॥
सद्गन्धं विपुलं स्वच्छं पथ्यं पेयादिपूर्वकम् । स्थाल्यादिभिर्महापात्रैः सौवर्णादिभिराहृतम् ॥१३४॥
घृतसूपादिभिः[1] काश्चित्पात्र्यो राजन्ति पूरिताः । कुन्दपुष्पसमच्छायैः[2] शालीनां काश्चिदोदनैः ॥१३५॥
षड्रसैरुपदंशैश्च काश्चित्रोचनकारिभिः । व्यञ्जनैस्तरलैः काश्चित्पिण्डीबन्धोचितैस्तथा ॥१३६॥
पयसा संस्कृतैः काश्चिदन्याः परमदाधिकैः । लेह्यैः काश्चिन्महास्वादैरन्याः[3] पश्चान्निषेवितैः ॥१३७॥
एवं परममाहारमिरा परिजनान्विता । हनूमन्तं पुरस्कृत्य भ्रातृस्नेहेन वत्सला ॥१३८॥
महाश्रद्धान्वितस्वान्ता प्रणिपत्य जिनेश्वरान् । समाप्य नियमं धीरा ध्यातातिथिसमागमा ॥१३९॥
निधाय हृदये राममभिरामं पतिव्रता । पवित्राङ्गा दिने भुङ्क्ते साधुलोकप्रपूजितम् ॥१४०॥
रविरश्मिकृतोद्योतं सुपवित्रं मनोहरम् । पुण्यवर्धनमारोग्यं दिवाभुक्तं प्रशस्यते ॥१४१॥
निवृत्तभोजनविधिः किंचिद्विश्रब्धतां गता । विज्ञापितेति सूनोऽपि सीता पवनसूनुना ॥१४२॥
आरोह देवि मे स्कन्धे पवित्रे गुणभूषणे । समुल्लङ्घ्य नदीनाथं नेष्यामि भवतीं क्षणात् ॥१४३॥
[4]पश्य तं विभवैर्युक्तं राघवं त्वत्परायणम् । भवद्योगसमानन्दं जनोऽनुभवतु प्रियः ॥१४४॥

हनुमान्ने विभीषणके घर ही मनोहर आहार ग्रहण किया। इस प्रकार कर्तव्य कार्य करते हुए तीन मुहूर्त निकल गये ॥१३१॥ तदनन्तर चतुर्थ मुहूर्तमें हरा, सीताके भोजनके योग्य आहार ले आयी ॥१३२॥ वहाँकी भूमि चन्दनादिसे लीपकर दर्पणके समान स्वच्छ की गयी, फूलोंके उपकारसे सजायी गयी जिससे वह कमलिनी पत्रके समान सुशोभित हो उठी ॥१३३॥ स्वर्ण आदिसे बने हुए स्थाली आदि बड़े-बड़े पात्रोंमें सुगन्धित, अत्यधिक, स्वच्छ और हितकारी पेय आदि पदार्थ लाये गये ॥१३४॥ वहाँ कितनी ही थालियाँ दाल आदिसे भरी हुई सुशोभित हो रही थीं, कितनी ही कुन्दके फूलके समान उज्ज्वल धानके भातसे युक्त थीं ॥१३५॥ कितनी ही थालियाँ रुचि बढ़ानेवाले षट्रसके भोजनोंसे परिपूर्ण थीं, कितनी ही पतली तथा कितनी ही पिण्ड बँधनेके योग्य व्यंजनोंसे युक्त थीं ॥१३६॥ कितनी ही दूधसे निर्मित, कितनी ही दहीसे निर्मित पदार्थोंसे युक्त थीं, कितनी ही चाटनेके योग्य रबड़ी आदिसे, कितनी ही महास्वादिष्ट भोजनोंसे तथा कितनी ही भोजनके बाद सेवन करने योग्य पदार्थोंसे परिपूर्ण थीं ॥१३७॥ इस प्रकार इरा अपने परिजनके साथ उत्तम आहार ले आयी, सो हनुमान्को आगे कर जिसके भाईका स्नेह उमड़ रहा था, ऐसी सीताने हृदयमें महाश्रद्धा धारण कर जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार किया, 'जबतक पतिका समाचार नहीं मिलेगा तबतक आहार नहीं लूँगी' यह जो नियम लिया था उसको बड़ी धीरतासे समाप्त किया। अतिथियोंके समागमका विचार किया, स्नानादिकसे शरीरको पवित्र किया। तदनन्तर अभिराम (मनोहर) रामको हृदयमें धारण कर उस पतिव्रताने दिनके समय साधुजनोंके द्वारा प्रशंसित उत्तम आहार ग्रहण किया, सो ठीक ही है क्योंकि जो सूर्यकी किरणोंसे प्रकाशित है, अतिशय पवित्र है, मनोहर है, पुण्यको बढ़ानेवाला है, आरोग्यदायक है और दिनमें ही ग्रहण किया जाता है ऐसा भोजन ही प्रशंसनीय माना गया है ॥१३८-१४१॥

तदनन्तर भोजन करनेके बाद जब सीता कुछ विश्रामको प्राप्त हो चुकी तब हनुमान्ने जाकर उससे पुनः इस प्रकार निवेदन किया कि हे देवि ! हे पवित्रे ! हे गुणभूषणे ! मेरे कन्धेपर चढ़ो मैं समुद्रको लाँघकर अभी क्षण-भरमें आपको ले चलूँगा ॥१४२-१४३॥ तुम वैभवसे युक्त एवं तुम्हारे ध्यानमें तत्पर रहनेवाले रामके दर्शन करो तथा प्रेमी जन—मित्रगण आप दोनोंके

१. घृतपूपादि म. । २. शालीनैः म. । ३. रन्यैः म. । ४. पश्यन्तं म. ।

ततोऽञ्जलिपुटं बद्ध्वा रुदती जनकात्मजा । जगादादरसंयुक्ता विचिन्तितयथास्थितिः ॥१४५॥
[1]अन्तरेण प्रभोराज्ञां गमनं मे न युज्यते । इत्यवस्थां गता वक्ष्ये तस्मै किमहमुत्तरम् ॥१४६॥
प्रत्येति नाधुना लोकः शुद्धिं मे मृत्युना विना । नाथ एव ततः कृत्यं मम ज्ञास्यति साम्प्रतम् ॥१४७॥
यावन्नोपद्रवः कश्चिज्जायते दशवक्त्रकात् । तावद्व्रज द्रुतं भ्रातर्नात्र लम्बनमिह क्षणम् ॥१४८॥
त्वया सहचरात् वाच्यः सम्यक् प्राणमहेश्वरः । अभिधानैरिमैर्मूर्ध्नि निधाय करकुड्मलम् ॥१४९॥
तस्मिन् देव मया सार्द्धं सुनयो व्योमचारिणः । वन्दिताः परमं भक्त्या त्वया स्तवनकारिणा ॥१५०॥
विमलाम्भसि पद्मिन्या नितरामुपशोभिते । सरसि क्रीडता स्वेच्छमस्माकमतिसुन्दरम् ॥१५१॥
आरण्यकस्तदा हस्ती समायातो भयंकरः । ततो मया समाहूतस्त्वमुन्मग्नो जलान्तरात् ॥१५२॥
[3]उद्दामोऽसौ महानागस्त्वयाकीवनकारिणा । समस्तं त्याजितो दर्पं भवतः निश्चलीकृतः ॥१५३॥
आसीच्च नन्दनच्छाये वने पुष्पभरानते । शाखां पल्लवलोभेन नमयन्ती प्रवासिनी ॥१५४॥
भ्रमद्भिश्चञ्चलैर्मूढैरभिभूता ससंभ्रमा । भुजाभ्यां भवताश्लिष्य जनिताकुलतोज्झिता ॥१५५॥
उद्यन्तमन्यदा भानुं माहेन्द्रीदिग्विभूषणम् । अहमम्भोजषण्डस्य त्वया सह तटे स्थिता ॥१५६॥
अर्हसिद्धं ततः किंचिदीर्ष्यारसमुपेयुषा । कालेनोत्पलनालेन मधुरं ताडिता त्वया ॥१५७॥
अन्यदा रतिशैलस्य प्राग्भारस्य मया प्रिय । पृष्टस्त्वमिति विभ्रत्या कौतुकं परशोभया ॥१५८॥
एतस्मिन् कुसुमैः पूर्णा विपुला स्निग्धताद्रुयः । किंनामानो द्रुमा नाथ मनोहरणकोविदाः ॥१५९॥

समागमसे उत्पन्न होनेवाले हर्षका अनुभव करें ॥१४४॥ तदनन्तर सब स्थितिका यथायोग्य विचार करनेवाली एवं आदरसे संयुक्त सीताने हाथ जोड़कर रोती हुई यह कहा कि स्वामीकी आज्ञाके बिना मेरा जाना योग्य नहीं है। इस अवस्थामें पड़ी हुई मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगी ॥१४५-१४६॥ इस समय लोग मृत्युके बिना मेरी शुद्धिका प्रत्यय नहीं करेंगे, इसलिए प्राणनाथ ही आकर मेरे कार्यको योग्य जानेंगे ॥१४७॥ हे भाई! जबतक रावणकी ओरसे कोई उपद्रव नहीं होता है तबतक तू शीघ्र ही यहाँसे चला जा। यहाँ क्षणभर भी विलम्ब मत कर ॥१४८॥ तू हाथ जोड़ मस्तकसे लगा, इन परिचायक कथानकोंके साथ-साथ मेरे वचनोंमें प्राणनाथसे अच्छी तरह कहना कि हे देव! उस वनमें एक दिन स्तवन करते हुए आपने मेरे साथ बड़ी भक्तिसे आकाशगामी मुनियोंकी वन्दना की थी ॥१४९-१५०॥ एक बार निर्मल जलसे युक्त तथा कमलिनियोंसे सुशोभित सरोवरमें हम लोग इच्छानुसार सुन्दर क्रीड़ा कर रहे थे कि इतनेमें एक भयंकर जंगली हाथी वहाँ आ गया था, उस समय मैंने आपको पुकारा था सो आप जलके मध्यसे तत्काल ऊपर निकल आये थे ॥१५१-१५२॥ और सुन्दर क्रीड़ा करते हुए आपने उस उद्दण्ड महाहस्तीका सब गर्व छुड़ाकर उसे निश्चल कर दिया था ॥१५३॥ एक बार नन्दनवनके समान सुन्दर तथा फूलोंके भारसे झुके हुए वनमें, मैं नूतन पत्तोंके लोभसे प्रयत्नपूर्वक वृक्षकी एक शाखाको झुका रही थी। तब उड़ते हुए चंचल भ्रमरोंने धावा बोलकर मुझे आकुल कर दिया था, उस समय मुझ घबड़ायी हुईको आपने अपनी भुजाओंसे आलिंगन कर छुड़ाया था ॥१५४-१५५॥ एक बार मैं आपके साथ कमलवनके तटपर बैठी थी उसी समय पूर्व दिशाके आभूषणस्वरूप सूर्यको उदित होता देख मैंने उसकी प्रशंसा की थी तब आपने कुछ ईर्ष्यारसको प्राप्त हो मुझे नीलकमलकी एक छोटी-सी दण्डीसे मधुर रीतिसे ताड़ित किया ॥१५६-१५७॥ एक बार रतिगिरिके शिखरपर अत्यधिक शोभाके कारण कौतुकको धारण करती हुई मैंने आपसे पूछा था कि हे प्रिय! इधर फूलोंसे परिपूर्ण, विशाल, स्निग्धताको धारण करनेवाले एवं मनके हरण करनेमें निपुण ये कौन-से वृक्ष हैं? ॥१५८-१५९॥

---

१. विना । २. समाहूतः म. । ३. उद्दामोऽसौ म. । ४. रतिभूता म. ।

तत्स्वयेति पृष्टेन प्रसन्नमुखशोभिना । आख्यातमिति देवेते यथा गणिपुङ्गवा प्रति ॥१६०॥
कर्णकुण्डलनद्याश्च स्थितास्तीरे वयं यदा । तदा संमिहितौ जातौ मध्याह्ने व्योमगौ मुनी ॥१६१॥
त्वया मया च भिक्षार्थं तयोरागतयोस्ततः । अभ्युत्थाय महाभाद्धं रचितं पूजनं महत् ॥१६२॥
अन्नं च परमं तास्यां दत्तं विधिसमन्वितम् । पञ्च चाश्चर्यया जातास्तत्प्रभावेन सुन्दराः ॥१६३॥
पात्रदानमहोदानं महादानमिति ध्वनिः । अन्तरिक्षेऽमरैश्चक्रे साधु सम्यग्ध्वनिश्रितः ॥१६४॥
अदृष्टतनुभिर्देवैर्दुन्दुभिः सध्वनिः कृतः । पपात गगनाद्वृष्टिः कौसुमी भृङ्गनादिता ॥१६५॥
सुखशीतो ववौ वायुः सुगन्धिर्धूलिवर्जितः । मणिरत्नसुवर्णौघा धाराश्रममपूरयत् ॥१६६॥
चूडामणिमिमं चोर्व्वी[1] दृढप्रत्ययकारणम् । दर्शयिष्यसि नाथाय तस्यास्यन्तप्रियं प्रियः ॥१६७॥
जानामि नाथ ते भावं प्रसादिनमलं मयि । तथापि यत्नतः प्राणाः पाल्याः संगमनाशया ॥१६८॥
प्रमादाद्भवतो जातो वियोगोऽयं मया सह । साम्प्रतं त्वयि यत्नस्थे संगमो नौ[2] विसंशयः ॥१६९॥
इत्युक्ते रुदतीं सीतां समाश्वास्य प्रयत्नतः । यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा[3] निरैस्तोताप्रदेशतः ॥१७०॥
पाण्यङ्गुलीयकं सीता तदाशोकशरीरिका । मानसस्य कृताश्वासं मेने पत्युः समागमम् ॥१७१॥
अथोद्यानगता नार्यश्चञ्चत्सारङ्गलोचनाः । वायुनन्दनमालोक्य स्मितविस्मितसंगताः ॥१७२॥
परस्परं समालापमिति कर्तुं समुद्यताः । अस्य पुष्पनगस्योर्ध्वं कोऽप्यहो नरपुङ्गवः ॥१७३॥
अवतीर्णः किमेष स्याद्विग्रही कुसुमायुधः । देवः कोऽपि तु शैलस्य शोभां द्रष्टुं समागतः ॥१७४॥

तब इस प्रकार पूछे जानेपर आपने प्रसन्न मुखमुद्रासे सुशोभित हुए कहा कि हे देवि ! ये नन्दि वृक्ष हैं ॥१६०॥ एक बार हम सब कर्णकुण्डल नदीके तीरपर ठहरे हुए थे, उसी समय मध्याह्न कालमें दो आकाशगामी मुनि निकट आये थे ॥१६१॥ तब आपने और मैंने उठकर, भिक्षाके लिए आये हुए उन मुनियोंकी बड़ी श्रद्धाके साथ विशाल पूजा की थी ॥१६२॥ तथा विधिपूर्वक उन्हें उत्तम आहार दिया था, उसके प्रभावसे वहाँ अत्यन्त सुन्दर पंच आश्चर्य हुए थे ॥१६३॥ आकाशमें देवोंने यह मधुर शब्द किये कि अहो ! पात्रदान ही दान है, यही सबसे बड़ा दान है ॥१६४॥ जिनका शरीर दीख नहीं रहा था ऐसे देवोंने दुन्दुभि बाजे बजाये, आकाशसे जिसपर भ्रमर शब्द कर रहे थे ऐसी पुष्पवृष्टि हुई ॥१६५॥ सुखकारी, शीतल, सुगन्धित एवं धूलि रहित कोमल वायु चली थी और मणि, रत्न तथा सुवर्णकी धाराने उस आश्रमको भर दिया था ॥१६६॥ हे भाई ! इसके बाद दृढ़ विश्वासका कारण यह उत्तम चूड़ामणि प्राणनाथको दिखाना, क्योंकि यह उन्हें अत्यन्त प्रिय था ॥१६७॥ ऊपरसे यह सन्देश कहना कि हे नाथ ! आपका मुझपर अतिशय प्रसन्नतासे भरा जो भाव है उसे मैं यद्यपि जानती हूँ तो भी पुनः समागमकी आशासे प्राण प्रयत्नपूर्वक रक्षा करने योग्य हैं ॥१६८॥ प्रमादके कारण मेरे साथ आपका यह वियोग हुआ है परन्तु इस समय जबकि आप प्रयत्न कर रहे हैं तब हम दोनोंका समागम निःसन्देह होगा ॥१६९॥ इतना कहकर सीता रोने लगी, तदनन्तर उसे प्रयत्नपूर्वक सान्त्वना देकर और 'जैसी आज्ञा हो' यह कहकर हनुमान्, सीताके उस स्थानसे बाहर निकल आया ॥१७०॥ उस समय जिसका शरीर अशक्त हो रहा था ऐसी सीताने अँगूठीको हाथमें पहनकर ऐसा माना था मानो मनको आनन्द देनेवाला पतिका समागम ही प्राप्त हुआ हो ॥१७१॥

अथानन्तर उस उद्यानमें भयभीत मृगके समान नेत्रोंको धारण करनेवाली जो स्त्रियाँ थीं वे हनुमान्‌को देख मन्द मुसकान और आश्चर्यसे युक्त हो परस्पर इस प्रकार वार्तालाप करने लगीं कि अहो ! इस फूलोंके पर्वतके ऊपर यह कोई श्रेष्ठ पुरुष अवतीर्ण हुआ है सो क्या यह शरीर-धारी कामदेव है ? अथवा पर्वतकी शोभा देखनेके लिए कोई देव आया है ? ॥१७२-१७४॥

---

१. चोर्व्वं म., ख. । २. आवयोः । ३. निरगच्छत् ।

तासामाकुलिका काचिन्निधाय शिरसि स्रजम् । उपवीणनमारेभे कर्तुं किन्नरनिस्वना ॥१७५॥
काचिदिन्दुमुखी वामे हस्तेऽवस्थाप्य दर्पणम् । दिदृक्षन्ती समालोक्य तं बभूवान्यथामनाः ॥१७६॥
ईषत्काचिदभिज्ञाय वधूरिदमचिन्तयत् । अलब्धद्वारसंमानः कुतो मारुतिरागतः ॥१७७॥
वरस्त्रीजनमुद्याने कृत्वा संभ्रान्तमानसम् । हारमाल्याम्बरधरो भास्वान् वह्निकुमारवत् ॥१७८॥
निसर्गकान्तया गत्या प्रदेशं किंचिदभ्यगात् । तथाविधं च तं वार्तामशृणोद्राक्षसाधिपः ॥१७९॥
[illegible] । उवाचाकिंकरान् शूरा रावणेनोऽयकिङ्करान् ॥१८०॥
विचारेण न वः कार्यं पुष्पोद्यानान्निरेति यः । मद्द्रोही कोऽप्ययं क्षिप्रं मोघतामन्तमायुषः ॥१८१॥
अमी ततः समागत्य दध्युर्विस्मयमागताः । किमिन्द्रजिन्नरेशः स्याद्भास्करः श्रवणोऽथवा ॥१८२॥
पश्यामस्तावदित्युक्त्वा तैरित्युक्तं समन्ततः । भो भो शृणुत निःशेषा उद्यानस्थामिरक्षकाः ॥१८३॥
किं तिष्ठत सुविश्रब्धाः किङ्कराः कृतिलां श्रिताः । किमिति श्रुतमस्माभिः कथ्यमानमिदं बहिः ॥१८४॥
कोऽप्युद्दामतयोद्यानं प्रविष्टो दुष्टखेचरः । स क्षिप्रं मार्यतामेष गृह्यतां दुर्विनीतकः ॥१८५॥
धावध्वमसकौ कोऽसौ सोऽयमेव यतः कुतः । कस्य कस्तादृशः क्वेति किङ्करध्वनिरुद्गतः ॥१८६॥
ततः कार्मुकिकान् दृष्ट्वा शाक्तिकान् गदिकांश्च तान् । खड्गिकान् कौन्तिकान् बद्धसंघातानायतो बहून् ॥१८७॥
किंचित् संभ्रान्तधीर्वातिर्मृगाधिपपराक्रमः । रत्नशाखामृगच्छायासमुद्दीपितपुष्करः ॥१८८॥
अवरोहंस्ततो वेगात्तैरदृश्यत किङ्करैः । आकुलत्वविनिर्मुक्तः प्रलम्बं बिभ्रदम्बरम् ॥१८९॥

उन स्त्रियोंमें कामसे आकुल होकर कोई स्त्री सिरपर माला रख किन्नरके समान मधुर स्वरसे वीणा बजाने लगी ॥१७५॥ कोई चन्द्रमुखी बायें हाथमें दर्पण रख उसमें हनुमान्‌का प्रतिबिम्ब देखनेकी इच्छा करती हुई अन्यथा चित्त हो गयी ॥१७६॥ कोई स्त्री कुछ-कुछ पहचानकर यह विचार करने लगी कि जिसे द्वारपर सम्मान प्राप्त नहीं हुआ ऐसा यह हनुमान् यहाँ कहाँ आ गया ? ॥१७७॥ इस प्रकार वनमें स्थित उत्तम स्त्रियोंको सम्भ्रान्त चित्त कर हार, माला तथा उत्तम वस्त्रोंको धारण करनेवाला एवं अग्निकुमारके समान देदीप्यमान हनुमान्, अपनी स्वभावसुन्दर चालसे किसी स्थानकी ओर जा रहा था कि रावणने यह सब समाचार सुना ॥१७८–१७९॥ सुनते ही जिसका चित्त बागबबूला हो गया था तथा जो निरपेक्ष भावको प्राप्त हो चुका था—सब प्रकारका स्नेह भुला चुका था ऐसे रावणने उसी समय अपने शूरवीर प्रधान किंकरोंको आज्ञा दी कि तुम लोगोंको विचार करनेसे प्रयोजन नहीं है। पुष्पोद्यानसे जो पुरुष बाहर निकल रहा है वह कोई द्रोही है उसे शीघ्र ही आयुका अन्त कराया जाये—मारा जाये ॥१८०–१८१॥

तदनन्तर किंकर आकर आश्चर्यको प्राप्त हो इस प्रकार विचार करने लगे कि क्या यह इन्द्रको जीतनेवाला कोई राजा है, या सूर्य है अथवा श्रवण नक्षत्र है ? ॥१८२॥ अथवा कुछ भी हो चलकर देखते हैं इस प्रकार कहकर उन्होंने सब ओर आवाज लगायी कि हे उद्यानके समस्त रक्षको ! सुनो, तुम लोग निश्चिन्त होकर क्यों बैठे हो ? हमने उद्यानके बाहर चर्चा सुनी है कि कोई एक दुष्ट विद्याधर अपनी उद्दण्डतासे उद्यानमें प्रविष्ट हुआ है सो यह क्या बात है ? उस दुर्विनीतको शीघ्र ही मारा जाये अथवा पकड़ा जाये ॥१८३–१८५॥ रावणके प्रधान किंकरोंकी बात सुनकर उद्यानके किंकरोंने 'दौड़ो, कौन है वह, यहीं कहीं होगा, वह किसका कौन है ? उसके समान कौन कहाँ ?' इस प्रकारका हल्ला मचाया ॥१८६॥ उन किंकरोंमें कोई धनुष लिये हुए थे, कोई शक्ति धारण कर रहे थे, कोई गदाके धारक थे, कोई तलवारोंसे युक्त थे, कोई भाले सँभाले हुए थे, और कोई झुण्ड-के-झुण्ड बनाकर बहुसंख्यामें आ रहे थे। उन सबको देख हनुमान्‌के मनमें कुछ सम्भ्रम उत्पन्न हुआ परन्तु वह तो सिंहके समान पराक्रमी था उसने रत्नमयी वानर-जैसी कान्तिसे आकाशको देदीप्यमान कर दिया ॥१८७–१८८॥ तदनन्तर आकुलतासे रहित एवं लटकते

१. अलंधदार -म., ख.।

ततस्तमुदयादित्यमण्डलप्रतिमत्विषम् । प्रदहाधरमालोक्य विशीर्णाः किङ्करा गणाः ॥१९०॥
ततः किलाधरैः क्रूरैः प्रख्यातैः किङ्कराधिपैः । तत्किङ्करबलं गच्छदितश्चेतश्च धावितम् ॥१९१॥
सशक्तितोमरचक्रासिगदाकार्मुकपाणयः । सर्वतो वारयन्नेतं मुखराः किङ्करास्ततः ॥१९२॥
मुमुचुश्च घनं शस्त्रं ज्येष्ठवाता यथा तुषम् । अवृष्टभास्करोद्योताः परं संघातवर्षिणः ॥१९३॥
उत्पाट्य वायुपुत्रोऽपि निःशस्त्रो धीरपुङ्गवः । संघातं तुङ्गवृक्षाणां शिलानां वारमक्षिपत् ॥१९४॥
भीमभोगिमहद्भोगभास्वद्भुजजवेरितैः । पादपादिभिराक्षिप्तैः कालमेघ इवोन्नतः ॥१९५॥
अश्वत्थान् शाकन्यग्रोधान्सिन्धुकककेसरान् । नीपाशोककदम्बांश्च पुन्नागानर्जुनान् धवान् ॥१९६॥
आम्रानाम्रातकोल्लोध्रां (स्तूपराजान्) स्थवीयसः । विशालान् पनसाद्यांश्च चिक्षेप क्षेपवर्जितः ॥१९७॥
बभञ्ज त्वरितं कांश्चिदपरानुदमूलयत् । मुष्टिपादप्रहारेण पिपेषान्यान् महाबलः ॥१९८॥
[4]आकूपारसमं तेन सैन्यमेकेन तत्कृतम् । समाकुलं गतं क्वापि क्षणेन प्रियजीवितम् ॥१९९॥
सहायैर्मृगराजस्य कर्त्तव्यो मृगयाक्रमः । कियद्भिरपरैः कृत्यं त्यक्तस्वा सत्त्वं सहोद्भवम् ॥२००॥
पुष्पाद्रेरवतीर्णस्य कैकुम्भकटरोधनम् । भूयो युद्धमभूद्रुद्रं प्रान्तविध्वस्तकिङ्करम् ॥२०१॥

हुए लम्बे वस्त्रको धारण करनेवाला हनुमान् जब उद्यानके उस प्रदेशसे नीचे उतर रहा था तब किंकरोंने उसे देखा ॥१८९॥ उस समय क्रोधके कारण हनुमान्‌की कान्ति उदित होते हुए सूर्यमण्डलके समान देदीप्यमान हो रही थी तथा वह अपना ओठ चबा रहा था। उसे देख किंकरोंके झुण्ड भाग खड़े हुए ॥१९०॥ तदनन्तर जो किंकरोंमें प्रधान क्रूर एवं प्रसिद्ध दूसरे किंकर थे उन्होंने इधर-उधर भागते हुए किंकरोंके दलको इकट्ठा किया ॥१९१॥ तदनन्तर जिनके हाथमें शक्ति, तोमर, चक्र, खड्ग, गदा और धनुष थे ऐसे उन किंकरोंने चिल्लाकर सब ओरसे हनुमान्‌को घेर लिया ॥१९२॥

वे किंकर इतनी अधिक भीड़ इकट्ठी कर विद्यमान थे कि उनके कारण सूर्यका प्रकाश भी अदृष्ट हो रहा था। तदनन्तर जिस प्रकार जेठ मासकी वायु भूसा उड़ाती है उसी प्रकार वे अत्यधिक शस्त्र छोड़ने लगे ॥१९३॥ धीरशिरोमणि पवन-पुत्र हनुमान् यद्यपि शस्त्र रहित था परन्तु तो भी उसने बड़े-बड़े वृक्षों और शिलाओंके समूह उखाड़-उखाड़कर फेंके ॥१९४॥ भयंकर शेषनागके शरीरके समान सुशोभित भुजाओंके वेगसे फेंके हुए वृक्ष आदिसे प्रहार करता हुआ हनुमान् उस समय प्रलयकालके उन्नत मेघके समान जान पड़ता था ॥१९५॥ हनुमान् बिना किसी विलम्बके पीपल, सागौन, वट, नन्दी, चम्पक, बकुल, नीम, अशोक, कदम्ब, नागकेसर, कोहा, धवा, आम, मिलमां, लोध्र, खजूर तथा कटहल आदिके बड़े मोटे तथा ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंको उखाड़कर फेंक रहा था ॥१९६-१९७॥

उस महाबलवान्‌ने ही लोगोंको शीघ्र ही खण्डित कर दिया, कितने ही योधाओंको उखाड़ डाला—पैर पकड़कर पछाड़ दिया और कितने ही किंकरोंको लात तथा घूँसोंके प्रहारसे पीस डाला ॥१९८॥ उस अकेलेने ही समुद्रके समान भारी सेनाकी वह दशा की कि जिससे वह व्याकुल हो क्षण भरमें प्राण बचाकर कहीं भाग गयी ॥१९९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक! मृगोंपर शासन करनेवाले मृगराज—सिंहको अन्य सहायकोंकी क्या आवश्यकता है? और जो स्वाभाविक तेजको छोड़ चुके हैं उन्हें दूसरे सहायकोंसे क्या लाभ है—निस्तेज मनुष्यका अन्य सहायक क्या भला कर सकते हैं? ॥२००॥

तदनन्तर पुष्पगिरिसे नीचे उतरे हुए हनुमान्‌का दिङ्मण्डलको रोकनेवाला तथा जिसमें

---

१. वायुपुत्रेतं म.। २. यथाम्बुदम् म.। ३. अतिस्थूलान्। ४. सागरसदृशम्। ५. कङ्कुभस्यरोधनम् म.।

सभावापीविमानाग्र्यशुभागोत्तमसञ्चयम् । चूर्णितानां तदाघातैर्भूमयः केवलाः स्थिताः ॥२०२॥
पादमार्गप्रवेशेषु ध्वस्तेषु वनवेश्मसु । महारण्यापथा जाताः शुष्कसागरसंनिभाः ॥२०३॥
भग्नोत्तुङ्गापणश्रेणिः पातिताऽनेककिङ्करः । बभूव राजमार्गोऽपि महासंग्रामभूसमः ॥२०४॥
पतद्भिस्तोरणैस्तुङ्गैः कम्पितध्वजपङ्क्तिभिः । बभूवाम्बरमुत्पातादिव भ्रष्टसुरायुधम् ॥२०५॥
जङ्घावेगात्समुद्धूतै रजोभिर्बहुवर्णकैः । इन्द्रायुधसहस्राणि रचितानीव[1] पुष्करे ॥२०६॥
पादावष्टम्भभिन्नेषु भूभागेषु निमज्जताम् । बभूव गृहशैलानां पातालेष्विव निस्वनः ॥२०७॥
दृष्ट्या कंचित्करेणान्यं कंचित्पादेन किङ्करम् । उरसा कंचिदंसेन वातेनान्यं जघान सः ॥२०८॥
आलीयमानमात्राणां किङ्कराणां सहस्रशः । पततामुत्करैः स्थाना आता पूरसमागमाः ॥२०९॥
हाहाहीकारगम्भीरः पौराणामुद्गतो ध्वनिः । क्वचिच्च रत्नकूटानां भङ्गात्कणकणस्वनः ॥२१०॥
वेगेनोत्पततस्तस्य समाकृष्टमहाध्वजाः । क्रोधादिवोद्ययुः पश्चात्कृतघण्टादिनिःस्वनाः ॥२११॥
उन्मूलितमहालाना बभ्रमुः परमा गजाः । वायुमण्डलपर्णानामवास्तुल्यत्वमागताः ॥२१२॥
अधस्तात् स्फुटिता वाप्यः प्राप्ताः पङ्कावशेषताम् । चक्रारूढेव निःशेषा जाता लङ्का समाकुला ॥२१३॥
लङ्काकमलिनीखण्डं ध्वस्तराक्षसमीनकम् । क्षोभयित्वा यथाक्षिप्तो बहिराश्रितः ॥२१४॥

निकटवर्ती किंकर मारे गये थे ऐसा भयंकर युद्ध पुनः हुआ ॥२०१॥ उस समय हनुमान्‌के प्रहारसे जो चूर-चूर किये गये थे ऐसे सभा, वापिका, विमान तथा बाग बगीचोंसे सुशोभित मकानोंमें केवल भूमि ही शेष रह गयी थी ॥२०२॥ उसके पैदल चलनेके मार्गोंमें जो बाग-बगीचे तथा महल थे उन सबको उसने नष्ट कर दिया था, जिससे वे लम्बे-चौड़े मार्ग सूखे समुद्रके समान हो गये थे ॥२०३॥ जहाँ अनेक ऊँची-ऊँची दुकानोंकी पंक्तियाँ तोड़कर गिरा दी गयी थीं, तथा अनेक किंकर मारकर गिरा दिये गये थे ऐसा राजमार्ग भी महायुद्धकी भूमिके समान हो गया था ॥२०४॥

गिरते हुए ऊँचे-ऊँचे तोरणों और काँपती हुई ध्वजाओंकी पंक्तिसे उस समय आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो उत्पातके कारण उससे वज्र ही गिर रहा हो ॥२०५॥ जंघाओंके वेगसे उड़ती हुई रंग बिरंगी धूलियोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो आकाशमें हजारों इन्द्रधनुष ही बनाये गये हों ॥२०६॥ चरणोंके प्रहारसे विदीर्ण हुई भूमिमें महलरूपी पर्वत नीचेको धँस रहे थे जिससे ऐसा भारी शब्द हो रहा था मानो वे महल रूपी पर्वत पातालमें ही धँसे जा रहे हों ॥२०७॥ वह किसी किंकरको दृष्टिसे मार रहा था, किसीको हाथसे पीस रहा था, किसीको पैरसे पीट रहा था, किसीको वक्षःस्थलसे मार रहा था, किसीको कन्धेसे नष्ट कर रहा था और किसीको वायुसे ही उड़ा रहा था ॥२०८॥ आते ही के साथ गिरनेवाले हजारों किंकरोंके समूहसे वह लम्बा-चौड़ा मार्ग ऐसा हो गया था मानो उसमें पूर ही आ गया हो ॥२०९॥ कहीं नागरिक जनोंका हा हा ही आदिका गम्भीर शब्द उठ रहा था तो कहीं रत्नमय शिखरोंके टूटनेसे कण-कण शब्द हो रहा था ॥२१०॥ जब हनुमान् ऊपरको छलांग भरता था तब उसके वेगसे बड़ी-बड़ी ध्वजाएँ खिंचीं चली जाती थीं जिससे वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो घण्टाका शब्द करती हुई क्रोधसे उसके पीछे ही उड़ी जा रही हों ॥२११॥ बड़े-बड़े हाथी खम्भे उखाड़ कर इधर-उधर घूमने लगे और घोड़े वायु मण्डलसे उड़ते हुए पत्तोंकी तुल्यताको प्राप्त हो गये ॥२१२॥ वापिकाएँ नीचेसे फूटकर बह गयीं जिससे उनमें कीचड़ मात्र ही शेष रह गया तथा सम्पूर्ण लंका चक्र पर चढ़ी हुईके समान व्याकुल हो उठी ॥२१३॥

जिसमें राक्षसरूपी मीन मारे गये थे ऐसे लंकारूपी कमलवनको क्षोभित कर ज्योंही

---

१. आकाशे ।

तावत्तीयदवाहेन समं संगम्य वेगतः । पश्चादिन्द्रजितो लग्नो द्विपस्यन्दनमध्यगः ॥२१५॥
हनूमान्यावदेतेन समं योद्धुं समुद्यतः । प्राप्तं तावदितं तस्य बलं यन्मेघपृष्ठगम् ॥२१६॥
बाह्यायां भुवि लङ्कायां महाप्रलिभयं रणम् । जातं हनूमतः खेटैः लक्ष्मणस्येव दूषणम् ॥२१७॥
युक्तं सुचतुरैरश्वै रथमारुह्य वायुनिः । समुत्कृष्य शरं सैन्यं राक्षसानामधावत ॥२१८॥
अथेन्द्रजितवीरेण पाशैर्महोरगोत्सृष्टैः[1] । चिरभाबोचितो भीमः पुरं विद्युद्दिवाचिन्तयन् ॥२१९॥
ततो नगरलोकेन विश्रब्धं स निरीक्षितः । कुर्वन् भञ्जनमासीद्यो विद्युद्दण्डवदीक्षितः ॥२२०॥
प्रवेशितस्य चास्थाम्यां तस्य दोषान् दशाननः । कथ्यमानान् शृणोति स्म तद्विद्भिः पुरुषैर्निजैः ॥२२१॥
दूताहूतः समायातः किष्किन्धं स्वपुरादयम् । महेन्द्रनगरध्वंसं चक्रे तं च वशं रिपोः ॥२२२॥
साधूपसर्गमथने द्वीपे दधिमुखाह्वये । गन्धर्वकन्यकास्तिस्रः पद्मस्याभ्यनुमोदिताः ॥२२३॥
विध्वंसं वज्रशालस्य चक्रे वज्रमुखस्य च । । कन्यामभिलषन्यस्य बहिरस्थापयद् बलम् ॥२२४॥
भग्नं पुष्पगिरोद्यानं तत्पाल्यः[3] विह्वलीकृताः । बहवः किङ्करा ध्वस्ताः प्रपादि च विनाशितम् ॥२२५॥
घटस्तनविमुक्तेन पुत्रस्नेहाभिरम्बरम् । पयसा पोषिताः स्त्रीभिर्वृक्षका ध्वंसमाहृताः ॥२२६॥
वृक्षैर्वियोजिता वल्ल्यस्तरलायितपल्लवाः । धरण्यां पतिता भान्ति विधवा इव योषितः ॥२२७॥
फलपुष्पभरानम्रा विविधास्तरुजातयः । इमशानपादपच्छायाः पूतेन ध्वंसिताः स्थिताः ॥२२८॥

हनुमान्‌रूपी हाथी बाहर आया ॥२१४॥ त्योंही हाथियोंके रथपर सवार इन्द्रजित मेघवाहनके साथ तैयार होकर शीघ्र ही उसके पीछे लग गया ॥२१५॥ हनुमान् जब तक इसके साथ युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ तब तक मेघ-वाहनके पीछे लगी सेना आ पहुँची ॥२१६॥ तदनन्तर लंकाकी बाह्यभूमिमें हनुमान्‌का विद्याधरोंके साथ उस तरह महाभयंकर युद्ध हुआ जिस प्रकार कि लक्ष्मणका खरदूषणके साथ हुआ था॥२१७॥ हनुमान् चार घोड़ोंसे जुते रथ पर सवार हो बाण खींचकर राक्षसोंकी ओर दौड़ा ॥२१८॥ अथानन्तर चिरकाल तक युद्ध करनेके बाद जो वीर इन्द्रजितके द्वारा नागपाशसे बाँध लिया गया था ऐसा हनुमान् कुछ विचार करता हुआ नगरके भीतर ले जाया गया ॥२१९॥ जो पहले तोड़-फोड़ करता हुआ विद्युद्दण्डके समान देखा गया था वही हनुमान् अब नगरवासियोंके द्वारा निश्चिन्ततापूर्वक देखा गया ॥२२०॥ तदनन्तर वह रावणकी सभामें ले जाया गया वहाँ रावणने अपने विज्ञ पुरुषोंके द्वारा कहे हुए उसके अपराध श्रवण किये ॥२२१॥ विज्ञ पुरुषोंने उसके विषयमें बताया कि यह दूतके द्वारा बुलाये जाने पर अपने नगरसे किष्किन्ध नगर गया। वहाँसे लंका आते समय इसने राजा महेन्द्रका नगर ध्वस्त किया तथा उसे शत्रुके आधीन किया ॥२२२॥ दधिमुखनामक द्वीपमें मुनियुगलका उपसर्ग दूर किया और गन्धर्वराजकी तीन कन्याएँ रामको वरनेके लिए उत्सुक थीं सो उनका अनुमोदन किया ॥२२३॥ राजा वज्रमुखके वज्रकोटका विध्वंस किया तथा उसकी कन्या लंकासुन्दरीको स्वीकृत कर उसके नगरके बाहर अपनी सेना रक्खी ॥२२४॥ पुष्पगिरिका उद्यान नष्ट किया, उसकी रक्षक स्त्रियोंको विह्वल किया, बहुतसे किंकर नष्ट किये और प्रपा-पानी पीने आदिके स्थान विनष्ट किये ॥२२५॥ स्त्रियोंने जिन्हें पुत्रके समान स्नेहसे घट रूपी स्तनोंसे छोड़े हुए जलके द्वारा निरन्तर पुष्ट किया था वे छोटे-छोटे वृक्ष इसने नष्ट कर दिये हैं ॥२२६॥ जिनके पल्लव चंचल हो रहे हैं ऐसी लताएँ इसने वृक्षोंसे अलग कर पृथिवीपर गिरा दी हैं जिससे वे विधवा स्त्रियोंके समान जान पड़ती हैं ॥२२७॥ फल और फूलोंके भारसे झुकी हुई नाना वृक्षोंकी जातियाँ इसके द्वारा नष्ट-भ्रष्ट कर दी गयी हैं जिससे वे

---

१. महोरगसम्बन्धिभिः । २. बद्धः । स्मितः ख. । ३. तत्पाल्या विह्वलाः कृताः ब. । प्रपा पानीयशालिका तत्प्रभृति ।

अपराधानिमान् श्रुत्वा रावणः कोपमागतः । अबन्धयत्समाहूय विनागं लोहशृङ्खलैः ॥२२९॥
उपविष्टोऽर्कसंकाशो दशास्यः सिंहनिर्झरे । पूजायोग्यं पुरा यस्मिन्नकोपनिति निर्दयम् ॥२३०॥
उद्वृत्तोऽयमसौ पापः निरपेक्षस्त्रपोज्झितः । अधुनैतस्य का शोभा धिगेतेनेक्षितेन किम् ॥२३१॥
व्यापाद्यते[1] न किं दुष्टः कर्ता नानागसामयम् । कथं न गणितं पूर्वं मम दाक्षिण्यमुन्नतम् ॥२३२॥
ततस्तन्मण्डलप्रान्तस्थिताः प्रवरविभ्रमाः । महाभाग्या विलासिन्यो नवयौवनपूजिताः ॥२३३॥
कोपस्मितसमायुक्ता निमीलितविलोचनाः । विधाय शिरसः कम्पमेवमूचुरनादरात् ॥२३४॥
प्रसादाद्यस्य यातोऽसि प्रभुतां क्षितिमण्डले । पृथिव्यां विचरन् स्वेच्छं समस्तबलवर्जितः ॥२३५॥
एतत्तस्यास्वामिनः प्रीतेर्भवता दर्शितं फलम् । भूमिगोचरदूतत्वं यत्प्राप्तोऽस्यतिनिन्दितम् ॥२३६॥
सुकृतं दशवक्त्रस्य कथमाधाय पृष्ठतः । वसुधाहिण्डनक्लिष्टौ भवता तौ पुरस्कृतौ ॥२३७॥
पवनस्य सुतो न त्वं जातोऽस्यन्येन केनचित् । अदृष्टमकुलीनस्य निवेदयति चेष्टितम् ॥२३८॥
चिह्नानि विटजातस्य सन्ति नाङ्गेषु कानिचित् । अनार्यमाचरन् किंचिज्जायते नीचगोचरः ॥२३९॥
मत्ताः केसरिणोऽरण्ये शृगालानाश्रयन्ति किम् । नहि नीचं समाश्रित्य जीवन्ति कुलजा नराः ॥२४०॥
सर्वस्वेनापि यः पूज्यो बहुश्यसकृदागतः । सुचिरादागतो द्रोही त्वं निग्राह्यस्तु वर्तसे ॥२४१॥
इमैर्निगदितैः क्रोधात् प्रहस्योवाच मारुतिः । को जानाति विना पुण्यैर्निग्राह्यः को विधेरिति ॥२४२॥

श्मशानके वृक्षोंके समान जान पड़ने लगी हैं ॥२२८॥ हनुमान्‌के इन अपराधोंको सुनकर रावण क्रोधको प्राप्त हुआ तथा विशिष्ट प्रकारके नागपाशसे वेष्टित हुए उसे समीपमें बुलाकर लोहेकी साँकलोंसे बँधवा दिया ॥२२९॥

तदनन्तर सिंहासनपर बैठा, सूर्यके समान देदीप्यमान रावण, पहले जिसकी पूजा करता था ऐसे हनुमान्‌के प्रति निर्दयताके साथ इस प्रकार कठोर वचन बकने लगा ॥२३०॥ कि यह दुराचारी है, पापी है, निरपेक्ष है, निर्लज्ज है, अब इसकी क्या शोभा है ? इसे धिक्कार है, इसके देखनेसे क्या लाभ है ? ॥२३१॥ नाना अपराधोंको करनेवाला यह दुष्ट क्यों नहीं मारा जाय ? अरे ! मैंने पहले इसके साथ जो अत्यन्त उदारताका व्यवहार किया इसने उसे कुछ भी नहीं गिना ॥२३२॥ तदनन्तर रावणके समीप ही उत्तम चेष्टाओंसे युक्त महाभाग्यशाली एवं नवयौवनसे सुशोभित जो विलासिनी स्त्रियाँ खड़ी थीं वे क्रोध तथा मन्द हास्यसे युक्त हो नेत्र बन्द करतीं तथा शिर हिलाती हुई अनादरसे इस प्रकार कहने लगीं कि हे हनुमान् ! तू जिसके प्रसादसे पृथिवीमण्डलपर प्रभुताको प्राप्त हुआ है तथा समस्त प्रकारके बलसे रहित होकर भी पृथिवीपर इच्छानुसार सर्वत्र भ्रमण करता है ॥२३३-२३५॥ उस स्वामीकी प्रसन्नताका तूने यह फल दिखाया है कि भूमिगोचरियोंकी अतिशय निन्दनीय दूतताको प्राप्त हुआ है ॥२३६॥ रावणके द्वारा किये हुए उपकारको पीछे कर तुमने पृथिवीपर परिभ्रमण करनेसे खेदको प्राप्त हुए राम-लक्ष्मणको कैसे आगे किया ॥२३७॥ जान पड़ता है कि तू पवनंजयका पुत्र नहीं है, किसी अन्यके द्वारा उत्पन्न हुआ है, क्योंकि अकुलीन मनुष्यकी चेष्टा ही उसके अदृष्ट कार्यको सूचित कर देती है ॥२३८॥ जारसे उत्पन्न हुए मनुष्यके शरीरपर कोई चिह्न नहीं होते, किन्तु जब वह खोटा आचरण करता है तभी नीच जान पड़ता है ॥२३९॥ वनमें क्या मदोन्मत्त सिंह सियारोंकी सेवा करते हैं ? ठीक ही कहा है कि कुलीन मनुष्य नीचका आश्रय लेकर जीवित नहीं रहते ॥२४०॥ तू यद्यपि पहले अनेक बार आया फिर भी सर्वस्वके द्वारा पूज्य रहा परन्तु अबकी बार बहुत काल बाद आया और राजद्रोही बनकर आया अतः निग्रह करनेके योग्य है ॥२४१॥ इन वचनोंसे हनुमान्‌को क्रोध आ गया जिससे वह हँस कर बोला कि कौन जानता है पुण्यके बिना विधाताका निग्राह्य—दण्ड देने योग्य कौन है ॥२४२॥

---

१. व्यापादितेन म. ।

स्वयं दुर्मतिना सार्द्धमनेनासन्नमृत्युना । हतो दिनैः कतिपयैर्द्रक्ष्यामः क्व प्रयास्यथ ॥२४३॥
सौमित्रिः सह पद्मेन बलोत्तुङ्गः समापतत् । न मेघ इव संरोद्धुं नगैः शक्यो नरेन्नृपैः ॥२४४॥
अतृप्तः परमाहारैः कामिकैरमृतोपमैः । याति कश्चिद्यथा नाशमेकेन विषबिन्दुना ॥२४५॥
अतृप्तः स्त्रीसहस्रौघैरिन्धनैरिव पावकः । परस्त्रीतृष्णया सोऽयं विनाशं क्षिप्रमेष्यति ॥२४६॥
या येन भाविता बुद्धिः शुभाशुभगता पुरा । न सा शक्याऽन्यथाकर्तुं पुरन्दरसमैरपि ॥२४७॥
निरर्थकं प्रियशतैर्दुर्मतौ दीयते मतिः । नूनं विहितमस्यैतद्विद्विषेन हतो हतः ॥२४८॥
प्राप्ते विनाशकालेऽपि बुद्धिर्जन्तोर्विनश्यति । विधिना प्रेरितस्तेन कर्मपाकं विचेष्टते ॥२४९॥
[1]मर्त्यधर्मा यथा कश्चित्सुगन्धि मधुरं पयः । प्रमादी विषसम्मिश्रं पीत्वा ध्वंसं प्रपद्यते ॥२५०॥
तथाविधो दशास्य त्वं परस्त्रीसुखलोलुपः । [2]वचनेन विना क्षिप्रं विनाशं प्रतिपत्स्यते ॥२५१॥
गुरून् परिजनं वृद्धान् मित्राणि प्रियबान्धवान् । मात्रादीनपकर्ण्य त्वं[3] प्रवृत्तः पापवस्तुनि ॥२५२॥
कदाचारसमुद्रे त्वं मदनावर्तमध्यगः । प्राप्तो नरकपातालं कष्टं दुःखमवाप्स्यसि ॥२५३॥
त्वया दशास्य जातेन महारत्नश्रवो नृपात् । अन्वयोऽधमपुत्रेण रक्षसां क्षयमाहृतः ॥२५४॥
अनुपालितमर्यादाः क्षितौ पूजितचेष्टिताः । पुरुषा भवतो वंश्यास्त्वं तु तेषां पुलाकवत् ॥२५५॥
इत्युक्तः क्रोधसंरक्तः खड्गमालोक्य रावणः । जगाद दुर्विनीतोऽयं सुदुर्वचननिर्भरः ॥२५६॥
त्यक्तमृत्युभयो बिभ्रत्प्रगल्भत्वं ममाग्रतः । द्राक् खलीक्रियतां मध्ये नगरस्य दुरीहितः ॥२५७॥

जिसकी मृत्यु निकट है ऐसे इस दुर्बुद्धिके साथ स्वयं ही यहाँ कुछ दिनोंमें देखेंगे कहाँ जाओगे ॥२४३॥ प्रचण्ड बलका धारी लक्ष्मण रामके साथ आ रहा है सो जिस प्रकार पर्वत मेघको नहीं रोक सकते उसी प्रकार राजा उसे नहीं रोक सकते ॥२४४॥ जिस प्रकार इच्छानुसार प्राप्त हुए अमृत तुल्य उत्तम आहारोंसे तृप्त नहीं होनेवाला कोई मनुष्य विषकी एक बूँदसे नाशको प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार जो ईंधनोंसे अग्निके समान हजारों स्त्रियोंके समूहसे तृप्त नहीं हुआ ऐसा यह दशानन परस्त्रीकी तृष्णासे शीघ्र ही नाशको प्राप्त होगा ॥२४५-२४६॥ जिसने जो शुभ-अशुभ बुद्धि प्राप्त की है उसे इन्द्रके समान पुरुष भी अन्यथा करनेके लिए समर्थ नहीं है ॥२४७॥ दुर्बुद्धि मनुष्यके लिए सैकड़ों प्रियवचनोंके द्वारा हितका उपदेश व्यर्थ ही दिया जाता है। जान पड़ता है कि इसकी यह होनहार निश्चित ही है अतः वह अपनी होनहारसे ही नष्ट होता है ॥२४८॥ विनाशका अवसर प्राप्त होनेपर जीवकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। सो ठीक है, क्योंकि भवितव्यताके द्वारा प्रेरित हुआ यह जीव कर्मोदयके अनुसार चेष्टा करता है ॥२४९॥ जिस प्रकार कोई प्रमादी मनुष्य विषमिश्रित सुगन्धित मधुर दुग्ध पीकर विनाशको प्राप्त होता है उसी प्रकार हे रावण ! तू परस्त्री सुखका लोभी हुआ बिना कुछ कहे ही शीघ्र ही विनाशको प्राप्त होगा ॥२५०-२५१॥ गुरु, परिजन, वृद्ध, मित्र, प्रियबन्धु तथा माता आदिको अनसुना कर तू पापकर्ममें प्रवृत्त हुआ है ॥२५२॥ तू दुराचाररूप समुद्रमें कामरूपी भ्रमरके बीच फँसकर नीचे नरकमें जावेगा और वहाँ अतिशय दुःख प्राप्त करेगा ॥२५३॥ हे दशानन ! महाराजा रत्नश्रवासे उत्पन्न हुए तुझ अधम पुत्रने राक्षसोंका वंश नष्ट कर दिया ॥२५४॥ तुम्हारे वंशज पृथिवीपर मर्यादाका पालन करनेवाले प्रशस्त चेष्टाके धारक उत्तम पुरुष हुए परन्तु तू उन सबमें छिलकेके समान निःसार हुआ है ॥२५५॥

इस प्रकार कहनेपर रावण क्रोधसे लाल हो गया। वह कृपाणकी ओर देखकर बोला कि यह उद्दण्ड अत्यधिक दुर्वचनोंसे भरा है तथा मृत्युका भय छोड़कर मेरे सामने बड़प्पन धारण कर रहा है अतः नगरके बीच ले जाकर इस दुष्ट की शीघ्र ही दुर्दशा की जाये ॥२५६-२५७॥

---

१. सत्यधर्मो म. । २. वमनेन म. । ३. नपकर्मत्वं म. । ४. तु म. ।

सशब्दैरायतैः स्थूलैर्बद्धो रज्जुभिरायसैः[1] । ग्रीवायां हस्तपादे च रेणुरूक्षितविग्रहः ॥२५८॥
वेष्टितः किङ्करैः क्रूरैर्भ्राम्यतां च गृहे गृहे । हास्यमानः खरैर्वाक्यैः कृतमण्डलपूत्कृतः ॥२५९॥
इमकं वनिता दृष्ट्वा नराश्च पुरवासिनः । शोचन्ति कृतधिक्कारा[2] विकृता कम्पितानसाः ॥२६०॥
क्षितिगोचरदूतोऽयं सोऽयं दूतः प्रपूजितः । पश्यतैनमिति स्वानः पुरे सर्वत्र घोष्यताम् ॥२६१॥
ततस्तैर्विविधाक्रोशैः संप्राप्तः कोपमुत्तमम् । अत्यासीद् बन्धनं छित्वा मोहपाशं यथा यतिः ॥२६२॥
पादविन्यासमात्रेण भङ्क्त्वा गोपुरमुन्नतम् । द्वाराणि च तथान्यानि खमुत्पत्य ययौ मुदा ॥२६३॥
शक्रभावानुसंदीप्तं नष्टं रक्षोगृहं ततः । हनूत्पातहतेनाशु विस्तीर्णं स्तम्भसंकुलम् ॥२६४॥
पतता वेश्मना तेन चलितापि महावनैः । धरणी कम्पमानेव पादवेगानुघाततः ॥२६५॥
भूमिसंप्राप्तसौवर्णप्राकारं रन्ध्रगह्वरम् । वज्रचूर्णितशैलाभं जातं दाशमुखं गृहम् ॥२६६॥
कपिमौलिभृतामीशं श्रुत्वैवंविधविक्रमम् । प्रमोदं जानकी प्राप्ता विषादं च मुहुर्मुहुः ॥२६७॥
वज्रोदरी ततोऽवोचत् किं वृथा देवि रोदिषि । संश्रोत्र शङ्कलं पश्य यातं मारुतिमम्बरम् ॥२६८॥
निशम्य वचनं तस्या विकसन्नेत्रपङ्कजा । गच्छन्तं मारुतिं दृष्ट्वा निजसैन्यसमागतम् ॥२६९॥
अचिन्तयदयं यातो मह्यं नाथस्य मे ध्रुवम् । कथयिष्यति यस्यैष गच्छतः प्रवरो जवः ॥२७०॥
पृष्ठतश्चास्य सानन्दं पुष्पाञ्जलिममुञ्चत । समाधानपरा भूत्वा श्रीरिवेशस्य तेजसाम् ॥२७१॥
उवाच च महा॰ सर्वे भवन्तु सुखदास्तव । हतविघ्नश्चिरंजीव भोगवान् वायुनन्दन ॥२७२॥

शब्द करनेवाली लम्बी मोटी लोहेकी सांकलोंसे इसे गरदन तथा हाथों और पैरोंमें कसकर बांधा जाये, धूलिसे इसकी शरीर धूसर किया जाये, दुष्ट किंकर इसे घेरकर कठोर वचनोंसे इसकी हँसी करें तथा घर-घर घुमावें। इस दुर्दशासे यह रो उठेगा ॥२५८-२५९॥ इसे देख स्त्रियां तथा नगरके लोग धिक्कार देते तथा मुखको विकृत और कम्पित करते हुए इसके प्रति शोक प्रकट करेंगे ॥२६०॥ इसके आगे-आगे नगरमें सर्वत्र यह घोषणा की जाये कि यह वही सम्मानको प्राप्त हुआ भूमिगोचरीका दूत है इसे सब लोग देखें ॥२६१॥

तदनन्तर उन विविध प्रकारके अपशब्दोंसे परम क्रोधको प्राप्त हुआ हनुमान् बन्धनको छेदकर उस प्रकार चला गया जिस प्रकार कि यति मोहरूपी पाशको छेदकर चला जाता है ॥२६२॥ वह पैर रखने मात्रसे उन्नत गोपुर तथा अन्य दरवाजोंको तोड़कर हर्षपूर्वक आकाशमें जा उड़ा ॥२६३॥ रावणका जो भवन इन्द्रभवनके समान था वह हनुमान्‌के पैरकी आघातसे इस प्रकार बिखर गया कि उसमें खाली खम्भे-ही-खम्भे शेष रह गये ॥२६४॥ यद्यपि वहांकी पृथिवी बड़े-बड़े पर्वतोंसे जकड़ी हुई थी तथापि चरणोंके वेगके अनुघातसे गिरते हुए उस भवनके द्वारा हिल उठी ॥२६५॥ जिसका स्वर्णमय कोट भूमिमें मिल गया था तथा जिसमें अनेक गहरे गड्ढे हो गये थे ऐसा रावणका घर वज्रसे चूर-चूर हुए पर्वतके समान हो गया ॥२६६॥ मुकुटमें कपिका चिह्न धारण करनेवाले वानरवंशियोंके राजा हनुमान्‌को इस प्रकारका पराक्रमी सुन सीता हर्षको प्राप्त हुई तथा बन्धनका समाचार सुन बार-बार विषादको प्राप्त हुई ॥२६७॥ तदनन्तर पासमें बैठी हुई वज्रोदरीने कहा कि हे देवि! व्यर्थ ही क्यों रुदन करती हो? देखो, वह हनुमान् बन्धन तोड़कर आकाशमें उड़ा जा रहा है ॥२६८॥ उसके उक्त वचन सुन तथा अपनी सेनाके साथ हनुमान्‌को जाता देख सीताके नयनकमल खिल उठे ॥२६९॥ वह विचार करने लगी कि जिसका जाते समय यह तीव्र वेग है ऐसा यह हनुमान् अवश्य ही मेरे लिए मेरे नाथकी वार्ता कहेगा ॥२७०॥ इस प्रकार विचारकर सावधान चित्तकी धारक सीताने हर्षपूर्वक हनुमान्‌के पीछे उस प्रकार पुष्पांजलि छोड़ी जिस प्रकार कि लक्ष्मी तेजके स्वामीके पीछे छोड़ती है ॥२७१॥ साथ ही उसने

---

१. रायतैः म. । २. कृताधिकारा म. ।

मालिनीवृत्तम्

इति सुविहितवृत्ताः पूर्वजन्मन्युदाराः सकलभुवनरोधि[1]प्राप्यकीर्तिप्रवाहाः ।
अभिसरपरिमुक्ताः कर्म तत्कर्तुमीशाः जनयति परमं यद्विस्मयं दुर्विचिन्त्यम् ॥२७३॥
भजत सुकृतसंगं तेन निर्मुच्य सर्वं विरसफलविधायि क्षुद्रकर्म प्रयत्नात् ।
भवत परमसौख्यास्वादलोभप्रसक्ताः परिजितरविभासो जन्तवः कान्तलीलाः ॥२७४॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हनुमत्प्रत्यभिगमनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५३॥

यह कहा कि हे पवन पुत्र ! समस्त ग्रह तेरे लिए सुखदायक हों तथा तू विघ्नोंको नष्ट कर भोग युक्त होता हुआ चिरकाल तक जीवित रह ॥२७२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! जिन्होंने पूर्वजन्ममें उत्तम आचरण किया है, जो उदार है, तथा जिनकी कीर्तिका समूह समस्त संसारमें व्याप्त है ऐसे मनुष्य परिभ्रमणसे रहित हो वह कर्म करनेके लिए समर्थ होते हैं जो कि बहुत भारी अचिन्तनीय आश्चर्य उत्पन्न करता है ॥२७३॥ इसलिए नीरस फल देनेवाले समस्त क्षुद्र कर्मको प्रयत्न पूर्वक छोड़ कर एक पुण्यका ही समागम प्राप्त करो जिससे परम सुखके आस्वादके लोभी हो, पुरुष अपनी प्रभासे सूर्यकी प्रभाको जीतनेवाला एवं मनोहर लीलाओंका धारक होता है ॥२७४॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्यकथित पद्मपुराणमें हनुमान्‌के लौटने आदिका वर्णन करनेवाला तिरपनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५३॥

---

१. बोधिलाभ्या -म. ।

चतुःपञ्चाशत्तमं पर्व

अथाससाद कैष्किन्धं हनूमान् बलमग्रतः । विधाय [1]पुरि विध्वस्तध्वजछत्रादिचारुताम् ॥१॥
बहिर्निष्क्रान्तकैष्किन्धिजनसागरवीक्षितः । विवेश नगरं धीरो निसर्गोदारविभ्रमः ॥२॥
[2]वीक्षिताङ्गान् महायोधान् द्रष्टुं नगरयोषिताम् । गवाक्षार्पितवक्त्राणां संभ्रमः परमोऽभवत् ॥३॥
प्राप्य च वासमात्मीयं हितो भूत्वा पिता यथा । वाहिनीवासयत्[3] सैन्यं यथायोग्यं समन्ततः ॥४॥
ततः सुग्रीवराजेन संगत्य ज्ञापितक्रियः । अगाम पद्मनाभस्य पादमूलं निवेदितुम् ॥५॥
प्रिया जीवति ते भद्रेत्येवमागत्य मारुतिः । वेदयिष्यति मे साधुरिति चिन्तामुपागतम् ॥६॥
क्षीणमत्यन्तिरामाङ्गं क्षीयमाणं निरङ्कुशम् । वियोगवह्निना नागं दावेनैवाकुलीकृतम् ॥७॥
वर्तमानं महाशोकपाताले द्विष्टविष्टपम् । पार्श्वं वातिरपासर्पन् मूर्धन्यस्तकराम्बुरुट् ॥८॥
प्रथमं वातिना हर्षप्रियमाणोरुचक्षुषा । वक्त्रेण जानकीवार्तां शिष्टाचार्यो ततोऽखिलां ॥९॥
अभिज्ञानादिकं सर्वं निवेद्योक्तं स सीतया । चूडामणिं नरेन्द्राय समर्प्यागात् कृतार्थताम् ॥१०॥
चिन्तयेव हृतच्छायो निष्प्रभः श्रान्तवत्करे[5] । शोकक्लान्त इवासीत्स वेणीबन्धमलीमसः ॥११॥

अथानन्तर—जिसकी ध्वजाओं और छत्रादिकी सुन्दरता नष्ट हो गयी थी ऐसी सेना आगे कर हनुमान् किष्किन्धा नगरीको प्राप्त हुआ ॥१॥ तदनन्तर किष्किन्धा निवासी मनुष्योंकी सागरके समान अपार भीड़ने बाहर निकल कर जिसके दर्शन किये थे, जो धीर था तथा स्वभावसे ही उत्तम चेष्टाओंका धारक था ऐसे हनुमान्ने नगरमें प्रवेश किया ॥२॥ उस समय क्षत-विक्षत शरीरके धारक महायोधाओंको देखनेके लिए जिन्होंने झरोखोंमें मुख लगा रक्खे थे, ऐसी नगर-निवासिनी स्त्रियोंमें बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ ॥३॥ तत्पश्चात् अपने निवास स्थान पर आकर हनुमान्ने पिताकी तरह हितकारी हो सेनाको सब ओर यथायोग्य ठहराया ॥४॥ तदनन्तर राजा सुग्रीवके साथ मिलकर, लंकामें जो कार्य हुआ था वह उसे बतलाया। तत्पश्चात् समाचार देनेके लिए रामके चरणमूलमें गया ॥५॥ उस समय श्रीराम इस प्रकारकी चिन्ता करते हुए बैठे थे कि सत्पुरुष हनुमान् आकर मुझसे कहेगा कि हे भद्र ! तुम्हारी प्रिया जीवित है ॥६॥ अत्यन्त सुन्दर शरीरके धारक राम, क्षीण हो चुके थे तथा उत्तरोत्तर क्षीण होते जा रहे थे। वे वियोगरूपी अग्नि-से उस तरह आकुलित हो रहे थे जिस तरह कि दावानलसे कोई हाथी आकुलित होता है ॥७॥ वे महा शोकरूपी पातालमें विद्यमान थे तथा समस्त संसारसे उन्हें द्वेष उत्पन्न हो रहा था। हनुमान् हस्तकमल जोड़कर तथा मस्तकसे लगाकर उनके पास गया ॥८॥ प्रथम तो हनुमान्ने, जिसके विशाल नेत्र, हर्षसे युक्त थे ऐसे मुखके द्वारा जानकीका समाचार कहा और उसके बाद उत्तम वचनोंके द्वारा सब समाचार प्रकट किया ॥९॥ सीताने जो कुछ अभिज्ञान अर्थात् परिचय कारक वृत्तान्त कहे थे वे सब कह चुकनेके बाद उसने राजा रामचन्द्रके लिए चूडामणि दिया और इस तरह वह कृतकृत्यताको प्राप्त हुआ ॥१०॥ वह चूडामणि कान्ति रहित था, सो ऐसा जान पड़ता मानो चिन्ताके कारण ही उसकी कान्ति जाती रही हो। वह रामके हाथमें इस प्रकार विद्यमान था मानो थककर ही बैठा हो और सीताकी चोटीमें बँधे रहनेसे मलिन हो गया था सो ऐसा जान

१. पुरविध्वस्तध्वज -क. । पुरि विस्रस्त ख. । २. वीक्षिताङ्गान् म. । ३. -राश्वासयत् म. । ४. शिष्टवाचा म । ५. शान्तवत्करकः म. ।

पद्मस्थाञ्जलिर्येनोऽसौ पतद्भाण्डो हतप्रभः । दृशा दृष्टो नु पीतो नु वार्ता पृष्टानु संभ्रमात् ॥१२॥
आसीनमञ्जलावेनं दीर्घस्यविरकाङ्गुली । गलत्किरणधारौघं क्षुब्धोच्च धरणीपतिः ॥१३॥
पूरिताञ्जलिमंशूनामालोकेन तमानने । चक्रे सोऽपि हेदिग्धैव नरेशः सलिलाञ्जलिम् ॥१४॥
प्रियायास्तदभिज्ञानं यत्राप्यङ्गे नियोजितम् । तेन तस्यापि वैदेहीपरिष्वङ्गः इवाभवत् ॥१५॥
सर्वव्यापी समुद्भिन्नो रोमाञ्चः कर्कशो घनः । अङ्गेष्वसंभवस्तस्य प्रमोद इव निर्झरः ॥१६॥
अपृच्छच्च परिष्वज्य मारुतिं कृतसंभ्रमः । अपि सत्यं प्रिया प्राणान् धारयत्यतिकोमला ॥१७॥
जगाद प्रणतो वातिः नाथ जीवति नान्यथा । मया वार्ता समानीता सुखी भव हतातपते ॥१८॥
किंतु त्वद्विरहोदारदावमध्यविवर्तिनी । गुणौघनिम्नगा बाला नेत्राम्बुकृतदुर्दिना ॥१९॥
वेणीबन्धच्युतिश्छायेमूर्द्धजाश्यन्तदुःखिता । मुहुर्निश्वसती दीनं चिन्तासागरवर्तिनी ॥२०॥
तनूदरी स्वभावेन विशेषेण वियोगतः । आराध्यमानिका स्त्रीभिः क्रुद्धाभी रक्षसां विभोः ॥२१॥
सततं चिन्तयन्ती त्वां त्यक्तसर्वतनुस्थितिः । दुःखं जीवति ते कान्ता कुरु देव यथोचितम् ॥२२॥
सामीरणिवचः श्रुत्वा म्लानपद्मेक्षणश्रियम् । चिन्तयाकुलितः पद्मो बभूवात्यन्तदुःखितः ॥२३॥
दीर्घमुष्णं च निश्वस्य लम्बतालसशरीरभृत् । निनिन्द जीवितं स्वस्य जन्म चानेकधा भृशम् ॥२४॥

पड़ता था मानो शोकसे ही दुःखी होकर मलिन गया हो ॥११॥ वह प्रभाहीन चूड़ामणि रामकी अंजलिमें पहुँचकर ऐसा लगने लगा मानो अश्रु ही छोड़ रहा हो। रामने उसे बड़ी उत्सुकताके कारण नेत्रोंसे देखा था, या पिया था, या उससे कुशल समाचार पूछा था सो कहनेमें नहीं आता ॥१२॥ दुर्बलताके कारण जिसकी अंगुलियाँ विरल हो गयी थीं ऐसी अंजलिमें विद्यमान तथा जिससे किरणरूपी धाराओंका समूह झर रहा था ऐसे उस चूड़ामणिके प्रति रामने शोक प्रकट किया ॥१३॥ तदनन्तर किरणोंके प्रकाशसे जिसने अंजलि भर दी थी ऐसे उस चूड़ामणिको रामने मस्तकपर धारण किया। उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो उस चूड़ामणिने स्वयं रोकर ही जलकी अंजलि भर दी हो ॥१४॥ प्रियाके उस अभिज्ञानको रामने अपने जिस अंगपर धारण किया उसीने मानो सीताका आलिंगन प्राप्त कर लिया था ॥१५॥ उस समय उनके समस्त अंगोंमें जिसकी सम्भावना भी नहीं थी ऐसा सर्वव्यापी, कठोर तथा सघन रोमांच निकल आया मानो हर्षका निर्झर ही फूट पड़ा हो ॥१६॥ रामने बड़े सम्भ्रमके साथ हनुमान्‌का आलिंगन कर उससे पूछा कि क्या सचमुच ही मेरी कोमलांगी प्रिया प्राण धारण कर रही है—जीवित है ? ॥१७॥ इसके उत्तरमें हनुमान्‌ने नम्रीभूत होकर कहा कि हे नाथ ! जीवित है। मैं अन्यथा समाचार नहीं लाया हूँ, हे राजन् ! सुखी होइए ॥१८॥ किन्तु इतना अवश्य है कि गुणोंके समूहकी नदी स्वरूप वह बाला तुम्हारे विरहरूपी दावानलके मध्यमें वर्तमान है, अश्रुओंके द्वारा दुर्दिन बना रही है—निरन्तर वर्षा करती रहती है ॥१९॥ वेणीबन्धनके छूट जानेसे उसके केश कान्तिहीन हो गये हैं, वह अत्यन्त दुःखी है, बार-बार दीनतापूर्वक साँसें भरती है और चिन्तारूपी सागरमें डूबी है ॥२०॥ वह कृशोदरी तो स्वभावसे ही थी पर अब आपके वियोगसे और भी अधिक कृशोदरी जान पड़ती है। रावणकी क्रोधभरी स्त्रियाँ उसकी निरन्तर आराधना करती रहती हैं ॥२१॥ वह शरीरकी सर्व चिन्ता छोड़ निरन्तर आपकी ही चिन्ता करती रहती हैं। इस तरह हे देव ! आपकी प्रियवल्लभा दुःखमय जीवन व्यतीत कर रही है अतः यथायोग्य प्रयत्न कीजिए ॥२२॥ हनुमान्‌के उक्त वचन सुनकर रामके नेत्रकमल म्लान हो गये। वे बहुत देर तक चिन्तासे आकुलित हो अत्यन्त दुःखी हो उठे ॥२३॥ शिथिल एवं अलसाये शरीरको धारण करनेवाले राम लम्बी तथा

---

१. जातोऽसौ म. । २. पृष्टानुसंभ्रमात् म. । ३. रुदित्वा च, म. । ४. हे महीपते ! । ५. च्युतच्छाय ख. ।

ततस्तदिङ्गितं ज्ञात्वा सौमित्रिरिदमब्रवीत् । किं शोचसि महाबुद्धे कर्तव्ये दीयतां मनः ॥२५॥
लक्ष्यते दीर्घसूत्रत्वं किष्किन्धनगरप्रभोः । कृताह्वानश्च भूयोऽपि सीताभ्राता चिरायति ॥२६॥
[1]दशास्यकस्य नगरीं श्वो गन्तास्म विसंशयम् । नौभिरर्णवमुत्तीर्य बाहुभ्यामेव वा पुनः ॥२७॥
अथोचे सिंहनादाख्यो मधुरो खेचरो महान् । अभिमानिसमं मैवं भाषिष्ठाः[2] कोविदो भवान् ॥२८॥
भवतो या गतिः सैव जातास्माकमिहाधुना । अतो निरूप्य कर्तव्यं सर्वेभ्यो हितमादरात् ॥२९॥
गत्वा पवनपुत्रेण सप्राकाराट्टि[3]गोपुरा । उपवनदीर्घिकाभिः सा शोभिता लङ्का पुरी ॥३०॥
अधुना रावणे क्रुद्धे महाविद्याधराधिपे । संघातमृत्युरस्माकं संप्राप्तोऽयं विधेर्वशात् ॥३१॥
ऊचे चन्द्रमरीचिश्च परं वचनमूर्जितम् । किं त्वं हरेरिव प्राप्तः संत्रासं सृगवत्परम् ॥३२॥
विभेति दशवक्त्राद्वः[4] को वासौ किं प्रयोजनम् । अन्यायकारिणस्तस्य वर्तते मृत्युरग्रतः ॥३३॥
अस्माकं बहवः सन्ति खेचरेन्द्रा महारथाः । विद्याविभवसंपन्नाः कृताश्चर्याः सहस्रशः ॥३४॥
धनगतिस्तीव्रो भूतनादो गजस्वनः । क्रूरः केली किलो भीमः कुण्डो गोरतिरङ्गदः[5] ॥३५॥
नलो नीलो लडिह्वक्त्रो मन्दरोऽशनिरर्णवः । चन्द्रज्योतिर्मृगेन्द्राक्षो वज्रदंष्ट्रो दिवाकरः ॥३६॥
उल्कालाङ्गूलदिव्यास्त्रप्रत्यूहोद्भिन्नपौरुषः । हनूमान् सुमहाविद्यः प्रभामण्डलसुन्दरः ॥३७॥
महेन्द्रकेतुरत्युग्रसमीरणपराक्रमः । प्रसन्नकीर्तिरद्भूतः सुतास्तस्य महाबलाः ॥३८॥

गरम साँस भरकर अपने जीवनकी अनेक प्रकारसे अत्यधिक निन्दा करने लगे ॥२४॥ तदनन्तर उनकी चेष्टा जानकर हनुमान्ने यह कहा कि हे महाबुद्धिमान्! शोक क्यों करते हो? कर्तव्यमें मन दीजिए ॥२५॥ किष्किन्ध नगरके राजा सुग्रीवकी दीर्घसूत्रता जान पड़ती है और सीताका भाई भामण्डल बार-बार बुलानेपर भी देर कर रहा है ॥२६॥ इसलिए हम लोग नौकाओं अथवा भुजाओंसे ही शीघ्र समुद्रको तैरकर कल ही निःसन्देह नीच रावणकी नगरी लंकाको चलेंगे ॥२७॥

तदनन्तर सिंहनाद नामक महाबुद्धिमान् विद्याधरने कहा कि इस तरह अभिमानीके समान मत कहो। आप विद्वान् पुरुष हैं ॥२८॥ आपकी जो दशा लंकामें हुई है वही इस समय यहाँ हम लोगोंकी होगी इसलिए आदरपूर्वक सब कुछ निश्चय कर हितकारी कार्य करना चाहिए ॥२९॥ पवनपुत्र हनुमान्ने कोट, अट्टालिकाएँ तथा बाग-बगीचोंसे सुशोभित लंका-पुरीको नष्ट किया है ॥३०॥ इसलिए महाविद्याधरोंका अधिपति रावण इस समय क्रुद्ध हो रहा है और उसके क्रुद्ध होनेपर दैववश हम सबको यह सामूहिक मृत्यु प्राप्त हुई है ॥३१॥

तदनन्तर चन्द्रमरीचि नामक विद्याधरने अत्यन्त ओजपूर्ण वचन कहे कि क्या तुम सिंहसे हरिणके समान अत्यन्त भयको प्राप्त हो रहे हो? ॥३२॥ भयभीत तो रावणको होना चाहिए अथवा वह कौन है और उससे क्या प्रयोजन है? उसने अन्याय किया है इसलिए मृत्यु उसके आगे नाच रही है ॥३३॥ हमारे पास ऐसे बहुत विद्याधर राजा हैं जो महावेगशाली हैं तथा जिन्होंने हजारों बार अपने चमत्कार दिखाये हैं ॥३४॥ उनके नाम हैं धनगति, तीव्र, भूतनाद, गजस्वन, क्रूर, केलीकिल, भीम, कुण्ड, गोरति, अंगद, नल, नील, लडिह्वक्त्र, मन्दर, अशनि, अर्णव, चन्द्रज्योति, मृगेन्द्र, वज्रदंष्ट, दिवाकर, उल्का और लांगूल नामक दिव्य अस्त्रोंके समूहमें निर्बाध पौरुषको धारण करनेवाला हनुमान्, महाविद्याओंका स्वामी भामण्डल, तीक्ष्ण पवनके समान पराक्रमका धारक महेन्द्रकेतु, अद्भुत पराक्रमी प्रसन्नकीर्ति और उसके महाबलवान् पुत्र। इनके

---

१. 'दशास्य नगरीं श्वो हि गन्तास्मेति विसंशयम्' म.। २. भाषिष्ट म.। ३. सप्राकाराट्टिगोपुरा म.। ४. वक्त्राद्यः ख.। ५. गोरविरंगदः ज.।

किष्किन्धस्वामिनोऽन्येऽपि सामन्ताः परमौजसः । विधन्तेऽक्षेतकर्माणो निर्भृत्याः शासनैषिणः ॥३९॥
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा खेचराश्चक्षुरानतम् । लक्ष्मीधराग्रजं तेन विनयेन समन्वितम् ॥४०॥
अथेक्षांचक्रिरे तस्य वदनेऽव्यक्तसौम्यके । भ्रकुटीजालकं भीमं मृत्योरिव लतागृहम् ॥४१॥
लङ्कायां तेन विन्यस्तां दृष्टिं शोणस्फुरच्छिखम् । केतुरेखामिवोद्भातां राक्षसक्षयशंसिनीम् ॥४२॥
तामेव च पुनर्न्यस्तां चिरमध्यस्थतां गतं । दृष्ट्वास्मिन् निजे चापे फुल्लाशोकोपमे ॥४३॥
कोपकम्पश्लथं चास्य केशभारं स्फुरद्युतिम् । निधानमिव कालस्य विरोद्धुं तमसा जगत् ॥४४॥
तथाविधं च तद्वक्त्रं ज्योतिर्वलयमध्यगम् । जठरीभवदुत्पातप्रभामास्करसंनिभम् ॥४५॥
गृहीतगमनश्लेष्मं रक्षसां नाशनायतम् । दृष्ट्वा ते गमने सज्जा जाता संभ्रान्तमानसाः ॥४६॥
राघवाकृतनुन्नास्ते संपूज्येमुश्रुतेगिराम् । चलिताः व्योमगाश्चित्रहेतयः संपदान्विताः ॥४७॥
प्रयाणतूर्यसंघातं नादपूरितगह्वरम् । दापयित्वा रणौत्सुक्यौ प्रस्थितौ रघुनन्दनौ ॥४८॥
बहुले मार्गशीर्षस्य पञ्चम्यामुदिते रवौ । सोत्साहैः शकुनैरेभिस्तेषां श्रेयं प्रयाणकम् ॥४९॥
दक्षिणावर्त्तनिर्धूमज्वाला रम्यस्वनः शिखी । परमालंकृता नारी सुरभिप्रेरकोऽनिलः ॥५०॥
निर्ग्रन्थसंयतश्छत्रं गम्भीरं वाजिहेषितम् । घण्टानिस्वनितं कान्तं कलशो दधिपूरितः ॥५१॥

सिवाय किष्किन्धनगरके स्वामी राजा सुग्रीवके और भी अनेक महापराक्रमी सामन्त हैं जो कार्यको प्रारम्भ कर बीचमें नहीं छोड़ते, आज्ञाकारी हैं और आदेशकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥३५-३९॥

तदनन्तर चन्द्रमरीचिके वचन सुनकर विद्याधरोंने अपने नीचे नेत्र विनयपूर्वक रामके ऊपर लगाये अर्थात् उनकी ओर देखा ॥४०॥ तत्पश्चात् जिसका सौम्यभाव अव्यक्त था ऐसे रामके मुखपर उन्होंने वह भयंकर भृकुटीका जाल देखा जो कि यमराजके लतागृह-निकुंजके समान जान पड़ता था ॥४१॥ उन्होंने देखा कि श्रीराम लंकाकी ओर जो लाल-लाल दृष्टि लगाये हुए हैं, वह राक्षसोंका क्षय सूचित करनेके लिए उदित केतुकी रेखाके समान जान पड़ती है ॥४२॥ तदनन्तर उन्होंने देखा कि रामने वही दृष्टि अपने उस सुदृढ़ धनुष पर लगा रक्खी है जो चिरकालसे मध्यस्थताको प्राप्त हुआ है, तथा यमराजकी भृकुटीरूपी लताकी उपमा धारण करनेवाला है ॥४३॥ उनका केशोंका समूह क्रोधसे कम्पित तथा शिथिल होकर बिखर गया था और ऐसा जान पड़ता था मानो अन्धकारके द्वारा जगत्को व्याप्त करनेके लिए यमराजका खजाना ही खुल गया था ॥४४॥ तेजोमण्डलके बीचमें स्थित उनका उस प्रकारका मुख ऐसा जान पड़ता था मानो प्रलय कालका देदीप्यमान तरुण सूर्य ही हो ॥४५॥ इस तरह राक्षसोंका नाश करनेके लिए जो गमन सम्बन्धी सलाह कर रहे थे ऐसे रामको देखकर उन सब विद्याधरोंके मन क्षुभित हो उठे तथा सब शीघ्र ही प्रस्थान करनेके लिए उद्यत हो गये ॥४६॥

अथानन्तर रामकी चेष्टाओंसे प्रेरित हुए समस्त विद्याधर चन्द्रमरीचिकी वाणीका सम्मान कर आकाशमार्गसे चल पड़े। उस समय वे सब विद्याधर नाना प्रकारके शस्त्र धारण किये हुए थे और उत्तमोत्तम सम्पदाओंसे सहित थे ॥४७॥ युद्धकी उत्कण्ठासे युक्त राम और लक्ष्मणने, ध्वनिके द्वारा गुफाओंको पूर्ण करनेवाले प्रयाणकालिक बाजे बजवाकर प्रस्थान किया ॥४८॥ मार्गशीर्ष वदी पंचमीके दिन सूर्योदयके समय उन सबका प्रस्थान हुआ था और प्रस्थान कालमें होनेवाले निम्नांकित शुभ शकुनोंसे उनका उत्साह बढ़ रहा था ॥४९॥ उस समय उन्होंने देखा कि 'निर्धूम अग्निकी ज्वाला दक्षिणावर्तसे प्रज्वलित हो रही है, समीप ही मयूर मनोहर शब्द कर रहा है, उत्तमोत्तम अलंकारोंसे युक्त स्त्री सामने खड़ी है, सुगन्धिको फैलानेवाली वायु बह रही है ॥५०॥

---

१. कृतकर्मणो ज., क. । २. चक्षुरानतं ज. । ३. दृष्ट्वा म. । ४. जठरीभव-म. । ५. गमने ज. । ६. सोत्साहं च दापयित्वा म. ।

उत्किरन्निगरां दृष्टो वामतो गोमयं नवम् । वायसो विस्फुरत्पक्षो निर्मुञ्चमधुरस्वरः ॥५२॥
भेरीशंखरवः सिद्धिर्जय नन्द व्रज द्रुतम् । निर्विघ्नमिति शब्दाश्च तेषां मङ्गलमुद्यवुः ॥५३॥
चतुर्दिग्भ्यः समायातैः पूर्यमाणो नभश्चरैः । सुग्रीवो गन्तुमुद्युक्तः सितपक्षविधूपमः ॥५४॥
नानायानविमानास्ते नानावाहनकेतनाः । व्रजन्तो व्योम्नि वेगेन बभुः खेचरपुंगवाः ॥५५॥
किष्किन्धाधिपतिर्वीरैः शल्यो दुर्मर्षणो नलः । नीलः कालः सुषेणश्च कुमुदाद्यास्तथा नृपाः ॥५६॥
एते ध्वजोपरिन्यस्तमहाभासुरवानराः । ग्रसमाना इवाकाशं प्रवृत्ताः सुमहाबलाः ॥५७॥
रेजे विराधितस्यापि हारो निर्झरसन्निभः । जाम्बवस्य महावृक्षो व्याघ्रो सिंहरवस्य च ॥५८॥
वारणो मेघकान्तस्य शेषाणामन्वयागताः । ध्वजेषु चिह्नतां याता भावाश्छत्रेषु चोज्ज्वलाः ॥५९॥
तेषां बभूव तेजस्वी भूतनादः पुरस्सरः । लोकपालोपमस्तस्य स्थितः पश्चान्महत्सुतः ॥६०॥
वृताः सामन्तचक्रेण यथास्वं परमौजसः । लङ्कां प्रति व्रजन्तस्ते रेजुः संजातसंमदाः ॥६१॥
सुकेशतनयाः पूर्वं लङ्कां माल्यादयो यथा । विमानशिखरारूढाश्चेलुः पद्मादयो नृपाः ॥६२॥
पार्श्वस्थः पद्मनाभस्य विराधितमभीश्वरः । पृष्ठतो जाम्बवस्तस्थौ सचिवैरन्वितो निजैः ॥६३॥
वामे भुजे सुषेणश्च सुग्रीवो दक्षिणे स्थितः । निमेषेण च संप्राप्ता वेलंधरमहीधरम् ॥६४॥
वेलंधरपुरस्वामी समुद्रो नाम तत्र च । बलस्य परमं युद्धमादिश्यं समुपानयत् ॥६५॥

निर्ग्रन्थ मुनिराज सामनेसे आ रहे हैं, आकाशमें छत्र फिर रहा है, घोड़ोंकी गम्भीर हिनहिनाहट फैल रही है, घण्टाका मधुर शब्द हो रहा है, दहीसे भरा कलश सामनेसे आ रहा है ॥५१॥ बायीं ओर नवीन गोबरको बार-बार बिखेरता तथा पंखोंको फैलाता हुआ काक मधुर शब्द कर रहा है ॥५२॥ भेरी और शंखका शब्द हो रहा है, सिद्धि हो, जय हो, समृद्धिमान् होओ, तथा किसी विघ्न-बाधाके बिना ही शीघ्र प्रस्थान करो। इत्यादि मंगल शब्द हो रहे हैं ॥५३॥ इन मंगलरूप शुभशकुनोंसे उन सबका उत्साह वृद्धिगत हो रहा था। चारों दिशाओंसे आये हुए विद्याधरोंसे जिसकी सेना बढ़ रही थी और इसलिए जो शुक्ल पक्षके चन्द्रमाकी उपमा धारण कर रहा था ऐसा सुग्रीव चलनेके लिए उद्यत हुआ ॥५४॥ जो नाना प्रकारके यान और विमानोंसे सहित थे तथा जिनका वाहनोंपर नाना प्रकारकी पताकाएँ फहरा रही थीं ऐसे वे सब विद्याधर राजा वेगसे आकाशमें जाते हुए अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥५५॥ किष्किन्ध नगरके राजा सुग्रीव, हनुमान्, शल्य, दुर्मर्षण, नल, नील, काल, सुषेण तथा कुमुद आदि राजा आकाशमें उड़े जा रहे थे, सो जिनकी ध्वजाओंमें अत्यन्त देदीप्यमान वानरके चिह्न थे ऐसे ये महाबलवान् विद्याधर ऐसे जान पड़ते थे मानो आकाशको ग्रसनेके लिए ही उद्यत हुए हों ॥५६-५७॥ विराधितकी ध्वजामें निर्झरके समान हार, जाम्बवकी ध्वजामें महावृक्ष, सिंहरवकी ध्वजामें व्याघ्र, मेघकान्तकी ध्वजामें हाथी तथा अन्य विद्याधरोंकी ध्वजाओंमें वंश-परम्परासे चले आये अनेक चिह्न सुशोभित थे। ये सभी उज्ज्वल छत्रोंके धारक थे ॥५८-५९॥ अत्यन्त तेजस्वी भूतनाद उनके आगे चल रहा था और लोकपालके समान हनुमान् उसके पीछे स्थित था ॥६०॥ यथायोग्य सामन्तोंके समूहसे घिरे, परम तेजस्वी तथा हर्षसे भरे वे सब विद्याधर लंका जाते हुए अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥६१॥ जिस प्रकार पहले सुकेशके पुत्र माल्य आदिने लंकाकी ओर प्रयाण किया था उसी प्रकार राम आदि राजाओंने विमानोंके अग्रभागपर आरूढ़ हो लंकाकी ओर प्रयाण किया ॥६२॥ विराधित विद्याधर रामको बगलमें स्थित था और अपने मन्त्रियोंसे सहित जाम्बव उनके पीछे चल रहा था ॥६३॥ बायें हाथकी ओर सुषेण और दाहिने हाथकी ओर सुग्रीव स्थित था। इस प्रकार व्यवस्थासे चलते हुए वे सब निमेष मात्रमें वेलन्धर नामक पर्वतपर जा पहुँचे ॥६४॥ वेलन्धर नगरका स्वामी समुद्र नामका विद्याधर था सो उसने परम युद्धके द्वारा

ततो नलेन सस्पर्द्धं जित्वा निहतसैनिकः । बद्धो बाहुबलाख्येन समुद्रः खेचरः परः ॥६६॥
संपूज्य च पुमर्मुक्तः पद्मनाभस्य शासने । स्थापितोऽवस्थिताग्रेते पुरे तत्र यथोचितम् ॥६७॥
सत्यश्रीः कमला चैव गुणमाला तथापराः । रत्नचूला तथा कन्या समुद्रेण प्रमोदिना ॥६८॥
कल्पिताः [1]पुरुशोभाढ्याः योषिद्गुणविभूषिताः । लक्ष्मीधरकुमाराय सुरस्त्रीसमविभ्रमाः ॥६९॥
तत्रैकां रजनीं स्थित्वा सुवेलमचलं गताः । सुवेलनगरे तत्र सुवेलो नाम खेचरः ॥७०॥
जित्वा तमपि संग्रामे हेलामात्रेण खेचराः । चिक्रीडुर्मुदितास्तत्र त्रिदशा इव नन्दने ॥७१॥
तत्राक्षयवने रम्ये [2]सुखेनाक्षेपितक्षपाः । अन्येद्युरुद्यता गन्तुं लङ्कां तेन सुविभ्रमाः ॥७२॥
तुङ्गप्राकारयुक्तां तां हेमसद्मसमाकुलाम् । कैलासशिखराकारैः पुण्डरीकैर्विराजिताम् ॥७३॥
विचित्रैः कुट्टिमतलैरालोकेनावभासतीम् । पद्मोद्यानसमायुक्तां प्रपादिकृतिभूषणाम् ॥७४॥
चैत्यालयैरलंतुङ्गैर्नानावर्णसुदृश्यकैः । विभूषितां [illegible] ॥७५॥
लङ्कां दृष्ट्वा समासन्नां सर्वे खेचरपुंगवाः । हंसद्वीपकृतावासा बभूवुः परमोदयाः ॥७६॥
युद्धे हंसरथं तत्र विजित्य सुमहाबलम् । रम्ये हंसपुरे क्रीडां चक्रुरिच्छानुगामिनीम् ॥७७॥
मुहुः प्रेषितदूतोऽयमद्य श्वो वा विसंशयम् । भामण्डलः समायातीत्येवमाकाङ्क्षयास्थिताः ॥७८॥

मन्दाक्रान्ता

यं यं देशं विहितसुकृताः प्राणभाजः श्रयन्ते तस्मिंस्तस्मिन् विजितरिपवो भोगसंगं भजन्ते ।
मद्धोतेषां परजनमतं किंचिदाप्तुवानां सर्वं तेषां भवति मनसि स्थापितं हस्तसक्तम् ॥७९॥

नलका आतिथ्य किया ॥६५॥ तदनन्तर बाहुबलसे युक्त नलने स्पर्द्धाके साथ उसके सैनिक मार डाले और उसे बाँध लिया ॥६६॥ तदनन्तर रामका आज्ञाकारी होनेपर उसे सम्मानित कर छोड़ दिया तथा उसी नगरका राजा बना दिया। राम आदि सन्त लोग भी उसके नगरमें यथायोग्य ठहरे ॥६७॥ राजा समुद्रकी सत्यश्री, कमला, गुणमाला और रत्नचूला नामकी कन्याएँ थीं जो उत्तम शोभासे युक्त थीं, स्त्रियोंके गुणोंसे विभूषित थीं तथा देवांगनाओंके समान जान पड़ती थीं। हर्षसे भरे राजा समुद्रने वे सब कन्याएँ लक्ष्मणके लिए समर्पित कीं ॥६८-६९॥ उस नगरमें एक रात्रि ठहरकर सब लोग सुवेलगिरिको चले गये। वहाँ सुवेल नगरमें सुवेल नामका विद्याधर राज्य करता था ॥७०॥ सो उसे भी युद्धमें अनायास जीतकर विद्याधरोंने हर्षित हो वहाँ उस प्रकार क्रीड़ा की जिस प्रकार कि देव नन्दन वनमें रहते हैं ॥७१॥ वहाँ अक्षय नामक मनोहर वनमें कुशलतापूर्वक रात्रि व्यतीत कर दूसरे दिन उत्तम शोभाको धारण करनेवाले विद्याधर लंका जानेके लिए उद्यत हुए ॥७२॥

तदनन्तर जो ऊँचे प्राकारसे युक्त थी, सुवर्णमय भवनोंसे व्याप्त थी, कैलासके शिखरके समान सफेद कमलोंसे सुशोभित थी, नाना प्रकारके फर्शों और प्रकाशसे देदीप्यमान थी, कमल वनोंसे युक्त थी, प्याऊ आदिकी रचनाओंसे अलंकृत थी, नाना रंगोंसे उज्ज्वल ऊँचे-ऊँचे जिन-मन्दिरोंसे अलंकृत तथा पवित्र थी और महेन्द्रकी नगरीके समान जान पड़ती थी ऐसी लंकाको निकटवर्तिनी देख परम वैभवके धारक विद्याधर हंसद्वीपमें ठहर गये ॥७३-७६॥ वहाँके हंसपुर नामा नगरमें महाबलवान् राजा हंसरथको जीतकर सबने इच्छानुसार क्रीड़ा की ॥७७॥ जिसके पास बार-बार दूत भेजा गया है ऐसा भामण्डल आज या कल अवश्य आ जावेगा इस प्रकार प्रतीक्षा करते हुए सब वहाँ ठहरे थे ॥७८॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि पुण्यात्मा प्राणी जिस-जिस देशमें जाते हैं उसी-उसी देशमें वे

---

१. पुर-म. । २. सुक्षेपाक्षेपितक्षमाः म. ।

तस्माद् भोगं भुवनविकटं भोक्तुकामेन कृत्यः । श्लाघ्यो धर्मो जिनवरमुखाम्भोरुहोद्गतः सर्वसारः ।
भास्वां तावच्छ्रयपरिचितो भोगसंगोऽपि मोक्षम् । धर्मादस्माद् व्रजति रवितोऽप्युज्ज्वलं भव्यलोकः ॥८०॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे लङ्काप्रस्थानं नाम चतुःपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५४॥

□

शत्रुओंको जीतकर भोगोंका समागम प्राप्त करते हैं। उद्यमशील पुण्यात्मा जीवोंके लिए कोई भी वस्तु परके हाथमें नहीं रहती। समस्त मनचाही वस्तुएँ उनके हाथमें आ जाती हैं ॥७९॥ इसलिए जो भव्य संसारमें उत्तम भोग भोगना चाहता है उसे जिनेन्द्रदेवके मुखारविन्दसे उदित सर्वश्रेष्ठ प्रशंसनीय धर्मका पालन करना चाहिए। क्योंकि भोगोंका नश्वर संगम तो दूर रहा वह इस धर्मके प्रभावसे सूर्यसे भी अधिक उज्ज्वल मोक्षको प्राप्त कर लेता है ॥८०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें लंकाके लिए प्रस्थानका वर्णन करनेवाला चौवनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५४॥

□

पञ्चपञ्चाशत्तमं पर्व

अथाभ्यर्णस्थितं ज्ञात्वा प्रतिसैन्यबलं पुरः । युगान्ताम्भोधिवेलेव लङ्का क्षोभमुपागतम् ॥१॥
संभ्रान्तमानसः किंचित्क्षोभमाप दशाननः । चक्रे रणकथां लोको वृन्दबन्धव्यवस्थितः ॥२॥
महार्णवरवा भेर्यस्ताडिताः सुभयावहाः । तूर्यशङ्खस्वनश्चक्षुब्धो बभ्राम गगनाङ्गणे ॥३॥
रणभेरीनिनादेन परं प्रमुदिता भटाः । संनद्धा रावणं तेन प्राप्ताः स्वामिहितैषिणः ॥४॥
मारीचोऽमलचन्द्रश्च भास्करः स्यन्दनो विभुः । तथा हस्तप्रहस्ताद्याः संनद्धाः स्वामिनं श्रिताः ॥५॥
अथ लङ्केश्वरं वीरं संग्रामाय समुद्यतम् । विभीषणोऽभ्युपागम्य प्रणम्य रचिताञ्जलिः ॥६॥
शास्त्रानुगतमत्युग्रं शिष्टानामतिसंमतम् । आयत्यां च तदात्वे च हितं स्वस्य जनस्य च ॥७॥
शिवं सौम्याननो वाक्यं पदवाक्यविशारदः । प्रमाणकोविदो धीरः प्रशान्तमिदमब्रवीत् ॥८॥
विस्तीर्णा प्रवरा संपन्महेन्द्रस्येव ते प्रभोः । स्थिता च रोदसी व्याप्य कीर्तिः कुन्ददलामला ॥९॥
क्षीहेतोः क्षणमात्रेण सेयं मलात् परिक्षयम् । स्वामिन् संध्याभ्ररेखेव प्रसीद परमेश्वर ॥१०॥
क्षिप्रं समर्प्यतां सीता तव किं कार्यमेतया । दृश्यते न च दोषोऽत्र प्रस्पष्टः केवलो गुणः ॥११॥
सुखोदधौ निमग्नस्त्वं स्वस्थस्तिष्ठ विचक्षण । अनवद्यो महाभोगस्तवास्तीर्थं समन्ततः ॥१२॥

अथानन्तर शत्रुकी बड़ी भारी सेनाको निकटमें स्थित जानकर लंका, प्रलयकालीन समुद्रकी वेलाके समान क्षोभको प्राप्त हुई ॥१॥ जिसका चित्त सम्भ्रान्त हो रहा था ऐसा रावण कुछ क्षोभको प्राप्त हुआ और गोलाकार झुण्डोंके बीच बैठे हुए लोग रणकी चर्चा करने लगे ॥२॥ जिनका शब्द महासागरकी गर्जनाके समान था ऐसी भय उत्पन्न करनेवाली भेरियाँ बजायी गयीं तथा तुरही और शंखोंका विशाल शब्द आकाशरूपी अंगणमें घूमने लगा ॥३॥ उस रणभेरीके शब्दसे परम प्रमोदको प्राप्त हुए, स्वामीके हितचिन्तक योद्धा तैयार होकर रावणके समीप आने लगे ॥४॥ मारीच, अमलचन्द्र, भास्कर, स्यन्दन, हस्त, प्रहस्त आदि अनेक योद्धा कवच धारण कर स्वामीके पास आये ॥५॥

अथानन्तर लंकाके अधिपति वीर रावणको युद्धके लिए उद्यत देख विभीषण उसके समीप गया और हाथ जोड़ प्रणाम कर शास्त्रानुकूल, अत्यन्त श्रेष्ठ, शिष्ट मनुष्योंके लिए अत्यन्त इष्ट, आगामी तथा वर्तमान कालमें हितकारी, आनन्दरूप एवं शान्तिपूर्ण निम्नांकित वचन कहने लगा। विभीषण, सौम्यमुखका धारी, पदवाक्यका विद्वान्, प्रमाणशास्त्रमें निपुण एवं अत्यन्त धीर था ॥६-८॥ उसने कहा कि हे प्रभो ! आपकी सम्पदा इन्द्रकी सम्पदाके समान अत्यन्त विस्तृत तथा उत्कृष्ट है और आपकी कुन्दकलीके समान निर्मल कीर्ति आकाश एवं पृथिवीको व्याप्त कर स्थित है ॥९॥

हे स्वामिन् ! हे परमेश्वर ! परस्त्रीके कारण आपकी यह निर्मल कीर्ति सन्ध्याकालीन मेघकी रेखाके समान क्षणभरमें नष्ट न हो जाये अतः प्रसन्न होओ ॥१०॥ इसलिए शीघ्र ही सीता रामके लिए सौंप दी जाये। इससे आपको क्या कार्य ही है ? सौंप देनेमें दोष नहीं दिखाई देता है ॥११॥ हे बुद्धिमन् ! तुम तो सुखरूपी सागरमें निमग्न हो सुखसे बैठो। तुम्हारे अपने सब महाभोग सब ओरसे निर्दोष हैं ॥१२॥

---

१. -मत्यन्तं म. ।

समाने आगतो तस्मिन् पद्मनाभे नियुज्यताम् । निजः प्रकृतिसंबन्धः सर्वथैव प्रशस्यते ॥१३॥
श्रुत्वा तदिन्द्रजिद्वाक्यं जगाद पितृचित्तवित् । स्वभावात्यन्तमानाढ्यमागमप्रतिकूलनम् ॥१४॥
साधो केनासि पृष्टस्त्वं कोऽधिकारोऽपि वा तव । येनैवं भाषसे वाक्यमुन्मत्तवदितोपमम् ॥१५॥
अत्यन्तं यदधीरस्त्वं भीरुश्च बलोद्यमानसः । स्वबेश्मबिलरे स्वस्थस्तिष्ठ किं तव भाषितैः ॥१६॥
[1]यदर्थं मत्तमातङ्गमहावृन्दान्ध्यकारिणि । पतद्विविधशस्त्रौघे संग्रामेऽत्यन्तभीषणे ॥१७॥
हत्वा शत्रून् समुद्वृत्तांस्तीक्ष्णया खड्गधारया । भुजेनोपार्ज्यते लक्ष्मीः सुकृच्छ्राद् वीरसुन्दरी[2] ॥१८॥
तुर्वुलंभमिदं प्राप्य तत्स्त्रीरत्नमनुत्तमम् । मूढवन्मुच्यते[3] कस्मात् त्वया व्यर्थमुदाहृतम् ॥१९॥
ततो विभीषणोऽवोचद्दिति निर्भर्त्सनोद्यतः । पुत्रनामासि शत्रुस्त्वमस्य दुःस्थितचेतसः ॥२०॥
महाशीतपरीतस्त्वमजानन् हितमात्मनः । अन्यचित्तानुरोधेन हिमवारिणि मज्जसि ॥२१॥
उद्वर्तं भवने वह्निं शुष्कैः पूरयसीन्धनैः । अहो मोहग्रहार्तस्य विपरीतं तवेहितम् ॥२२॥
जाम्बूनदमयी यावत्सप्राकारविमानिका । लक्ष्मणेन शरैस्तीक्ष्णैर्लङ्का न परिचूर्ण्यते ॥२३॥
तावन्नृपसुतां साध्वीं पद्माय स्थिरचेतसे । क्षेमाय सर्वलोकस्य युक्तमर्पयितुं द्रुतम् ॥२४॥
नैषा सीता त्वयानीता पित्रा तव कुबुद्धिना । रक्षोभोगिबिलं लङ्कामेषानीता विषौषधिः ॥२५॥
सुमित्रानन्दनं क्रुद्धं तं कक्ष्मीधरपुंगवम् । सिंहं रणमुखे कर्तुं न यूयं व्यूहितुं गजाः[4] ॥२६॥

श्रीराम यहाँ पधारे हैं सो उनका सम्मान कर सीता उन्हें सौंप दी जाये क्योंकि अपने स्वभावका सम्बन्ध ही सर्व प्रकारसे प्रशंसनीय है ॥१३॥

तदनन्तर पिताके चित्तको जाननेवाला इन्द्रजित् विभीषणके उक्त वचन सुन, स्वभावसे ही अत्यन्त मानपूर्ण तथा आगमके विरुद्ध निम्नांकित वचन बोला ॥१४॥ उसने कहा कि हे भले पुरुष ! तुमसे किसने पूछा है ? तथा तुम्हें क्या अधिकार है ? जिससे इस तरह उन्मत्तके वचनोंके समान वचन बोले जा रहे हो ? ॥१५॥ यदि तुम अत्यन्त अधीर-डरपोक या नपुंसक-जैसे दोनहृदय-के धारक हो तो अपने घरके बिलमें आरामसे बैठो । तुम्हें इस प्रकारके शब्द कहनेसे क्या प्रयोजन है ? ॥१६॥ जिसके लिए मदोन्मत्त हाथियोंके झुण्डसे अन्धकार युक्त, पड़ते हुए अनेक शस्त्रोंके समूहसे सहित एवं अत्यन्त भयदायक संग्राममें तलवारकी पैनी धारासे उद्दण्ड शत्रुओंको मारकर अपनी भुजाओं द्वारा बड़े कष्टसे वीर सुन्दरी लक्ष्मीका उपार्जन किया जाता है ऐसे उस सर्वोत्कृष्ट अत्यन्त दुर्लभ स्त्री-रत्नको पाकर मूर्ख पुरुषकी तरह क्यों छोड़ दिया जाये ? इसलिए तुम्हारा यह कहना व्यर्थ है ॥१७–१९॥

तदनन्तर डाँट दिखानेमें तत्पर विभीषणने इस प्रकार कहा कि तू मलिनचित्तको धारण करनेवाले इस रावणका पुत्र नामधारी शत्रु है ॥२०॥ तू अपना हित नहीं जानता हुआ महाशीत-की बाधासे युक्त हो दूसरेको इच्छानुसार शीतल जलमें डूब रहा है—गोता लगा रहा है ॥२१॥ तू गृहमें लगी अग्निको सूखे ईंधनसे पूर्ण कर रहा है, अहो ! मोहरूपी पिशाचसे पीड़ित होनेके कारण तेरी विपरीत चेष्टा हो रही है ॥२२॥ इसलिए यह कोट तथा उत्तम भवनोंसे युक्त सुवर्णमयी लंका जबतक लक्ष्मणके बाणोंसे चूर नहीं की जाती है तबतक गम्भीर चित्तके धारक रामके लिए शीघ्र ही पतिव्रता राजपुत्री—सीताका सौंप देना सब लोगोंके कल्याणके लिए उचित है ॥२३–२४॥ तेरा दुर्बुद्धि पिता यह सीता नहीं लाया है किन्तु राक्षसरूपी सर्पोंके रहनेके लिए बिलस्वरूप इस लंका नगरीमें विषकी औषधि लाया है ॥२५॥ लक्ष्मीधरोंमें श्रेष्ठ एवं क्रोधसे युक्त लक्ष्मण सिंहके समान है और तुम लोग हाथियोंके तुल्य हो अतः रणके अग्रभागमें उसे घेरनेके लिए तुम समर्थ नहीं

१. यदर्थं म. । २. सुकृताद्वीरसुन्दरीः म. । ३. मुञ्चसे म. । ४. गताः म. ।

अर्णवावर्तं धनुर्यस्य यस्यादित्यमुखाः शराः । पक्षे भामण्डलो यस्य स कथं जीयते जनैः ॥२७॥
ये तस्य प्रणतास्तुङ्गाः खेचराणां महाधिपाः । महेन्द्रा मलयास्तीराः श्रीपर्वततनूरुहाः ॥२८॥
किष्किन्धात्रिपुरा रत्नद्वीपवेलन्धरालकाः । केलीकिला खतिलका संध्याङ्गाः हैहयास्तथा ॥२९॥
प्राग्भारदधिवक्त्राश्च तथान्ये सुमहाबलाः । विद्याविभवसंपन्नास्ते तु विद्याधरा न किम् ॥३०॥
एवं प्रवदमानं तं क्रोधप्रेरितमानसः । उत्थाय रावणः खड्गमुद्गतो हन्तुमुद्यतः ॥३१॥
तेनापि कोपवश्येन दृष्टान्तेनोपदेशने । उन्मूलितः प्रचण्डेन स्तम्भो वज्रमयो महान् ॥३२॥
युद्धार्थमुद्गतावेतौ भ्रातरावुग्रतेजसौ । सचिवैर्वारितौ कृच्छ्रादुगतौ स्वं स्वं निवेशनम् ॥३३॥
कुम्भकर्णेन्द्रजिन्मुख्यैरैतैः प्रत्यायितस्ततः । जगाद रावणो विभ्रन्मानसं पौरुषाश्रयम् ॥३४॥
आश्रयाशं[1] इव स्वस्य स्थानस्थाहितत्परः । दुरात्मा मत्पुरीलोऽयं परिनिःक्रामतु द्रुतम् ॥३५॥
अनर्थोद्यतचित्तेन स्थितेन किमिहामुना । स्वाङ्गेनापि न मे कृत्यं प्रतिकूलप्रवृत्तिना ॥३६॥
तिष्ठन्तमिह मृत्युं चेदेतकं न मयाम्यहम् । ततो रावण एवाहं न भवामि विसंशयम् ॥३७॥
श्रीरत्नश्रवसः पुत्रः सोऽप्यहं न भवामि किम् । इत्युक्त्वा निर्ययौ मानी लङ्कातोऽयं विभीषणः ॥३८॥
सायुधैश्चारुशस्त्राभिः[2] त्रिंशद्भिः परिवारितः । अक्षौहिणीभिरुद्युक्तो गन्तुं पद्मस्य संश्रयम् ॥३९॥
विद्युद्घनेभवज्रेन्द्रप्रचण्डचपलाभिधाः । उद्गताशनिसंघाताः कालाद्याश्च महाबलाः ॥४०॥
शूराः परमसामन्ता विभीषणसमाश्रयाः । सान्तःपुराः ससर्वस्वा नानाशस्त्रविराजिताः ॥४१॥

हो ॥२६॥ जिसके पास सागरावर्त धनुष और आदित्यमुख बाण हैं तथा भामण्डल जिसके पक्षमें है वह तुम्हारे द्वारा कैसे जीता जा सकता है ? ॥२७॥ जो महेन्द्र, मलय, तीर, श्रीपर्वत, किष्किन्धा, त्रिपुर, रत्नद्वीप, वेलन्धर, अलका, केलीकिल, गगनतिलक, सन्ध्या, हैहय, प्राग्भार तथा दधिमुख आदिके बड़े-बड़े अभिमानी राजा तथा विद्याविभवसे सम्पन्न अतिशय बलैवान् अन्य नृपति उन्हें प्रणाम कर रहे हैं—उनसे जा मिले हैं, सो क्या वे विद्याधर नहीं हैं ॥२८-३०॥ इस प्रकार उच्च स्वरसे कहनेवाले विभीषणको मारनेके लिए उधर क्रोधसे भरा रावण तलवार उभारकर खड़ा हो गया ॥३१॥ और इधर उपदेश देनेके लिए जिसका दृष्टान्त दिया जाता था ऐसे महाबलवान् विभीषणने भी क्रोधके वशीभूत हो एक वज्रमयी बड़ा खम्भा उखाड़ लिया ॥३२॥ युद्धके लिए उद्यत, उग्र तेजके धारक इन दोनों भाइयोंको मन्त्रियोंने बड़ी कठिनाईसे रोका। तदनन्तर रोके जानेपर वे अपने-अपने स्थानपर चले गये ॥३३॥

तत्पश्चात् कुम्भकर्ण, इन्द्रजित् आदि मुख्य-मुख्य आप्त जनोंने जिसे विश्वास दिलाया था ऐसा रावण कठोर चित्तको धारण करता हुआ बोला कि जो अग्निके समान अपने ही आश्रयका अहित करनेमें तत्पर है ऐसा यह दुष्ट शीघ्र ही मेरे नगरसे निकल जावे ॥३४-३५॥ जिसका चित्त अनर्थ करनेमें उद्यत रहता है ऐसे इसके यहाँ रहनेसे क्या लाभ है ? मुझे तो विपरीत प्रवृत्ति करनेवाले अपने अंगसे भी कार्य नहीं है ॥३६॥ यहाँ रहते हुए इसे यदि मैं मृत्युको प्राप्त न कराऊँ तो मैं रावण ही नहीं कहलाऊँ ॥३७॥

अथानन्तर 'क्या मैं भी रत्नश्रवाका पुत्र नहीं हूँ' यह कहकर मानो विभीषण लंकासे निकल गया ॥३८॥ वह सुन्दर शस्त्रोंको धारण करनेवाली कुछ अधिक तीस अक्षौहिणी सेनाओंसे परिवृत हो रामके समीप जानेके लिए उद्यत हुआ ॥३९॥ विद्युद्घन, इभवज्र, इन्द्रप्रचण्ड, चपल, काल, महाकाल आदि जो बड़े-बड़े शूरवीर सामन्त विभीषणके आश्रयमें रहनेवाले थे वे वज्रमय शस्त्र उभारकर अपने-अपने अन्तःपुर और सारभूत श्रेष्ठ धन लेकर नाना शस्त्रोंसे

---

१. अग्निरिव, आश्रयस्य ख., म. । २. शस्त्रोभिः ख. ।

व्रजन्तो वाहनैश्चित्रैश्छादयित्वा नभस्तलम्[1] । परिच्छदसमायुक्ताः हंसद्वीपं समागताः ॥४२॥
द्वीपस्य तस्य पर्यन्ते सुमनोज्ञे ततस्तटे । ते सरिद्भिर्वृते तस्थुः सुरा नन्दीश्वरे यथा ॥४३॥
विभीषणागमे जाते जाती वानरिणां महान् । हिमागमे दरिद्राणामिवाकम्पः समन्ततः ॥४४॥
समुद्रावर्तमभ्यस्यूर्यहासं लक्ष्मीभृदैक्षत । वज्रावर्तं धनुः पद्मः परामृशदुदादरः ॥४५॥
अमन्त्रयन्त सभूय मन्त्रिणः स्वैरमाकुलाः । सिंहाद्वैभमिव त्रस्तं यूथ्यबन्धमगाद् बलम् ॥४६॥
युक्तो विभीषणेनाथ दण्डपाणिर्विचक्षणः । प्रेषितः पद्मनाथस्य सकाशं मधुराक्षरः ॥४७॥
समायामुपविष्टोऽसौ कृतप्रणतिराहृतः । निजगादानुपूर्वेण विरोधं भ्रातृसंभवम् ॥४८॥
इति चावेदयन्नाथ तव पद्म विभीषणः । पादौ विज्ञापयत्येवं धर्मकार्यसमुद्यतः ॥४९॥
भवन्तं शरणं भक्तः प्राप्तोऽहं श्रितवत्सल । आज्ञादानेन मे तस्मात्प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥५०॥
प्रदेशान्तरमेतस्मिन् प्रतीहारेण भाषिते । [2]संमन्त्री मन्त्रिभिः सार्द्धं पद्मस्यैवमजायत ॥५१॥
मतिकान्तोऽब्रवीत्पद्मं कदाचिच्छद्मनैषकः । प्रेषितः स्याद्दशास्येन विचित्रं हि नृपेहितम् ॥५२॥
परस्पराभिघाताद्वा कलुषत्वमुपागतम् । प्रसादं पुनरप्येति कुलं जलमिव ध्रुवम् ॥५३॥
ततो मतिसमुद्रेण जगदे मतिशालिना । विरोधो हि तयोर्जातः श्रूयते जनवक्त्रतः ॥५४॥
धर्मपक्षो महानीतिः शास्त्राम्बुक्षालिताशयः । अनुग्रहपरो नित्यं श्रूयते हि विभीषणः ॥५५॥
सौदर्यकारणं नात्र कर्महेतुः पृथक् पृथक् । सततं तत्स्वभावेन स्थिता जगति चित्रता ॥५६॥

सुशोभित होते हुए चल पड़े ॥४०-४१॥ नाना प्रकारके वाहनोंसे आकाशको आच्छादित कर अपने परिवारके साथ जाते हुए वे हंसद्वीपमें पहुँचे ॥४२॥ और नदियोंसे सुशोभित उस द्वीपके सुन्दर तटपर इस प्रकार ठहर गये जिस प्रकार कि देव नन्दीश्वर द्वीपमें ठहरते हैं ॥४३॥ जिस प्रकार शीतकालके आनेपर दरिद्रोंके शरीरमें सब ओरसे कँपकँपी छूटने लगती है उसी प्रकार विभीषणका आगमन होते ही वानरोंके शरीरमें सब ओरसे कँपकँपी छूटने लगी ॥४४॥ सागरावर्त धनुषको धारण करनेवाले लक्ष्मणने सूर्यहास खड्गकी ओर देखा तथा उत्कृष्ट आदर धारण करनेवाले रामने वज्रावर्त धनुषका स्पर्श किया ॥४५॥ घबड़ाये हुए मन्त्री एकत्रित हो इच्छानुसार मन्त्रणा करने लगे तथा जिस प्रकार सिंहसे भयभीत होकर हाथियोंकी सेना झुण्डके रूपमें एकत्रित हो जाती है उसी प्रकार वानरोंकी समस्त सेना भयभीत हो झुण्डके रूपमें एकत्रित होने लगी ॥४६॥

तदनन्तर विभीषणने अपना बुद्धिमान् एवं मधुरभाषी द्वारपाल रामके पास भेजा ॥४७॥ बुलाये जानेपर वह सभामें गया और प्रणाम कर बैठ गया। तदनन्तर उसने यथाक्रमसे दोनों भाइयोंके विरोधकी बात कही ॥४८॥ तत्पश्चात् यह कहा कि हे नाथ! हे पद्म! सदा धर्म कार्यमें उद्यत रहनेवाला विभीषण आपके चरणोंमें इस प्रकार निवेदन करता है कि हे आश्रितवत्सल! मैं भक्तिसे युक्त हो आपकी शरणमें आया हूँ, सो आप आज्ञा देकर मुझे कृतकृत्य कीजिए ॥४९-५०॥ इस प्रकार जब द्वारपालने कहा तब रामके निकटस्थ मन्त्रियोंके साथ इस तरह उत्तम सलाह हुई ॥५१॥ मतिकान्त मन्त्रीने कहा कि कदाचित् रावणने छलसे इसे भेजा हो क्योंकि राजाओंकी चेष्टा विचित्र होती है ॥५२॥ अथवा परस्परके विरोधसे कलुषताको प्राप्त हुआ कुल, जलकी तरह निश्चित ही फिरसे प्रसाद (पक्षमें स्वच्छता) को प्राप्त हो जाता है ॥५३॥ तदनन्तर बुद्धिशाली मतिसागर नामक मन्त्रीने कहा कि लोगोंके मुखसे यह तो सुना है कि इन दोनों भाइयोंमें विरोध हो गया है ॥५४॥ सुना जाता है कि विभीषण धर्मका पक्ष ग्रहण करनेवाला है, महानीतिमान् है, शास्त्ररूपी जलसे उसका अभिप्राय धुला हुआ है और निरन्तर अनुग्रह—उपकार करनेमें तत्पर रहता है ॥५५॥ इसमें भाईपना कारण नहीं है किन्तु अपना पृथक्-पृथक् कर्म ही कारण है। कर्मके

---

१. नभस्थलम् म.। २. समन्त्री ज. ख. क.।

प्रकृतेऽस्मिन् त्वमाख्यानं शृणु कुरुत वैषिके[1] । गिरिगोभूतिनामानावभूतां बटुकौ किल ॥५७॥
तस्मिंश्च सूर्यदेवस्य राज्ञो नाम्ना मतिप्रिया । अददात् व्रतकं ताभ्यामिदं सुकृतवाञ्छया ॥५८॥
[2]ओदनच्छादिते हेमपूर्णे पृथुकपालिके । गिरिः सुवर्णमालोक्य लोभादितरमक्षिणोत् ॥५९॥
अन्यच्च खलु कौशाम्ब्यां वणिग्नाम्ना बृहद्धनः । तत्रार्या कुरुविन्दाख्या तस्य पुत्रौ बभूवतुः ॥६०॥
अहिदेवमहीदेवौ तौ सूते जनके गते । सुधनौ यानपात्रेण विभवच्छेदभीरुकौ ॥६१॥
सर्वभाण्डेन तौ रत्नमेकमानयतां परम् । यस्य राजायते हस्ते स जिघांसति हीतरम् ॥६२॥
परस्परं च दुश्चिन्तां तौ विवेद समं गतौ । मात्रे चानीय तद्रत्नं विरागाभ्यां समर्पितम् ॥६३॥
माता विषेण तौ हन्तुमैच्छद्बोधमिता पुनः । [3]कौलिन्या तैर्विरक्तैस्तद्रत्नं क्षिप्तं क्षणेऽगिलत् ॥६४॥
आगाधिकगृहीतोऽसौ विक्रीतस्तद्गृहे पुनः । तस्तत्यौ स्वसा मत्स्यं छिन्दाना रत्नमैक्षत ॥६५॥
मातरं भ्रातरौ वैषा विघ्यान्कर्तुं ततोऽलघत् । लोभमोहप्रभावेण स्नेहाच्च शममागता[4] ॥६६॥
ज्ञात्वा निश्चूर्ण्य तद्रत्नं ज्ञाताकूतैः[5] परस्परम् । संसारभावनिर्विण्णाः समस्तास्ते प्रवव्रजुः ॥६७॥
तस्माद्द्रव्यादिलोभेन भ्रात्रादीनामपि स्फुटम् । संसारे जायते वैरं योनिबन्धो न कारणम् ॥६८॥
दृश्यते वैरमेतस्मिन् दैवयोगात् पुनः शमः । गोभूतिः सोदरो लोभाद्गिरिणा हत एव सः ॥६९॥
तस्मात्प्रेषितदूतोऽयं महाबुद्धिर्विभीषणः । आनीयतां न योनीयदृष्टान्तोऽत्र परिस्फुटः ॥७०॥

प्रभावसे ही संसारमें यह विचित्रता स्थित है ॥५६॥ इस प्रकरणमें तुम एक कथा सुनो—वैषिक नामक ग्राममें गिरि और गोभूति नामक दो ब्राह्मणोंके बालक थे ॥५७॥ उसी ग्राममें राजा सूर्यदेवकी रानी मतिप्रियाने पुण्यकी इच्छासे एक व्रतके रूपमें उन दोनों बालकोंके लिए मिट्टीके बड़े-बड़े कपालोंमें स्वर्ण रखकर तथा ऊपरसे भात ढककर दान दिया। उन दोनों बालकोंमें से गिरि नामक बालकने देख लिया कि इन कपालोंमें स्वर्ण है तब उसने स्वर्णके लोभसे दूसरे बालकको मार डाला और उसका स्वर्ण ले लिया ॥५८-५९॥ दूसरी कथा यह है कि कौशाम्बी नामा नगरीमें एक बृहद्धन नामका वणिक् रहता था। कुरुविन्दा उसकी स्त्रीका नाम था और उससे उसके अहिदेव और महीदेव नामके दो पुत्र हुए थे। जब उन पुत्रोंका पिता मर गया तब वे जहाजमें बैठकर कहीं गये। 'सूनेमें कोई धन चुरा न ले' इस भयसे वे अपना सारभूत धन साथ ले गये थे। वहाँ सब बर्तन आदि बेचकर वे एक उत्तम रत्न लाये। वह रत्न दोनों भाइयोंमेंसे जिसके हाथमें जाता था वह दूसरे भाईको मारनेकी इच्छा करने लगता था ॥६०-६२॥ दोनों भाई अपने खोटे विचार एक दूसरेको बताकर साथ-ही-साथ घर आये और दोनोंने विरक्त होकर वह रत्न माताके लिए दे दिया ॥६३॥ माताने भी विष देकर पहले उन दोनों पुत्रोंको मारनेकी इच्छा की परन्तु पीछे चलकर वह ज्ञानको प्राप्त हो गयी। तदनन्तर माता और दोनों पुत्रोंने विरक्त होकर वह रत्न यमुना नदीमें फेंक दिया जिसे एक मच्छने निगल लिया ॥६४॥ उस मच्छको एक धीवर पकड़ लाया जो इन्हीं तीनोंके घर बेचा गया। तदनन्तर इनकी बहनने मच्छको काटते समय वह रत्न देखा ॥६५॥ सो लोभ और मोहके प्रभावसे वह माता तथा दोनों भाइयोंको विष देकर मारनेकी इच्छा करने लगी, परन्तु स्नेहवश पीछे शान्त हो गयी ॥६६॥ तदनन्तर परस्पर एक दूसरेका अभिप्राय जानकर उन्होंने उस रत्नको पत्थरसे चूर-चूरकर फेंक दिया और उसके बाद संसारकी दशासे विरक्त हो सभी ने दीक्षा धारण कर ली ॥६७॥ इस कथासे यह स्पष्ट सिद्ध है कि द्रव्य आदिके लोभसे भाई आदिके बीच भी संसारमें वैर होता है इसमें योनि सम्बन्ध कारण नहीं है ॥६८॥ इस कथामें वैर दिखाई तो दिया है परन्तु दैवयोगसे पुनः शान्त होता गया है और पूर्व कथामें गिरिने अपने सगे भाई गोभूतिको मार ही डाला है ॥६९॥ इसलिए दूत भेजनेवाले इस

---

१. नैमिषे म. । २. उदन ज., ख. । ३. यमुनायां । ४. शममागतः म. । ५. ज्ञाताहूताः म. ।

ततो दण्डिनमाहूय जगुरेवमिति तेन च । गत्वा निवेदिते प्राप्तो पद्मं रत्नश्रवःसुतः ॥७१॥
ऊचे विभीषणो नत्वा प्रभुं स्वामी ह जन्मनि । परत्र जिनभावश्च ममायं निश्चयः प्रभो ॥७२॥
समये हि कृते तेन प्रोचे रामो विसंशयम् । योजयामि त्वकं लङ्कां भव संदेहवर्जितः ॥७३॥
विभीषणसमायोगी वर्त्तते यावदुत्सवः । तावत्सिद्धमहाविद्यः प्राप्तः पुष्पवतीसुतः ॥७४॥
प्रभामण्डलमायातं विजयार्द्धखगाधिपम् । पद्मादयः परं दृष्ट्वा समानर्चुः प्रभाविणम् ॥७५॥
निर्वाह्य दिवसानष्टौ नगरे हंसनामनि । सम्यग्निश्चितकर्तव्या लङ्काभिमुखमाययुः ॥७६॥
स्यन्दनैर्विविधैर्यानैः स्थूरीपृष्ठैर्मरुज्जवैः । प्रावृषेण्यघनच्छायैरनेकपकदन्तकैः ॥७७॥
अनुरागोत्कटैर्भृत्यैः वीरैः सन्नाहभूषणैः । ययुः खेचरसामन्ताः समन्ताच्छन्नपुष्करा: ॥७८॥
अग्रप्रयाणकन्यस्ताः प्रवीराः कपिकेतवः । संग्रामधरणीं प्रापुस्तथौग्यत्वमुदाहृतम् ॥७९॥
विंशतिर्योजनान्यस्या रुन्द्रतापरिकीर्तिता । आयामस्य तु नैवास्ति परिच्छेदो रणक्षितेः ॥८०॥
नानायुधैर्विचिह्नानां सहस्रैरुपलक्षिता । मृत्युचक्रक्रमणक्षमेव समवर्त्तत युद्धभूः ॥८१॥
ततो नागाश्वसिंहानां दुन्दुभीनां च निःस्वनम् । श्रुत्वा हर्षं दशास्योऽगाच्चिरागतरणोत्सवः ॥८२॥
आज्ञादानेन चाक्षेपान् सामन्तान्समबीभवत् । नहि ते वञ्चितास्तेन युद्धानन्देन जातुचित् ॥८३॥
सास्करामाः पयोदाङ्काः काञ्चना व्योमवल्लभाः । गन्धर्वगीतनगराः कम्पनाः शिवमन्दिराः ॥८४॥

महाबुद्धिमान् विभीषणको बुलाया जाय। इसके विषयमें योनि सम्बन्धी दृष्टान्त स्पष्ट नहीं होता अर्थात् एक योनिसे उत्पन्न होनेके कारण जिस प्रकार रावण दुष्ट है उसी प्रकार विभीषणको भी दुष्ट होना चाहिए यह बात नहीं है ॥७०॥

तदनन्तर द्वारपालको बुलाकर सबने कहा कि विभीषण आवे। तत्पश्चात् द्वारपालके द्वारा जाकर खबर दी जानेपर विभीषण रामके पास आया ॥७१॥ उसने आते ही प्रणामकर कहा कि हे प्रभो ! मेरा यह निश्चय है कि इस जन्ममें आप मेरे स्वामी हैं और पर जन्ममें भी श्री जिनेन्द्र देव ॥७२॥ जब विभीषण निश्छलताकी शपथ कर चुका तब रामने संशय रहित होकर कहा कि तुम्हें लंकाका राजा बनाऊँगा, सन्देह रहित होओ ॥७३॥ इधर विभीषणका समागम होनेसे जब तक उत्सव मनाया जा रहा था तब तक उधर अनेक महाविद्याओंको सिद्ध करनेवाला पुष्पवतीका पुत्र भामण्डल आ पहुँचा ॥७४॥ विजयार्धके अधिपति, परम प्रभावशाली भामण्डल को आया देख राम आदिने उसका अत्यधिक सन्मान किया ॥७५॥ तदनन्तर उस हंस नामक नगरमें आठ दिन बिताकर और अपने कर्तव्यका अच्छी तरह निश्चितकर सबने लंकाकी ओर प्रयाण किया ॥७६॥

अथानन्तर रथों, नाना प्रकारके वाहनों, वायुके समान वेगशाली घोड़ों, वर्षाकालीन मेघोंके समान कान्तिवाले हाथियोंके समूहों, अनुरागसे भरे भृत्यों और कवचरूपी आभूषणोंसे विभूषित वीर योद्धाओंके द्वारा जिन्होंने आकाशको सब ओरसे आच्छादित कर लिया था ऐसे विद्याधर राजा बड़े उत्साहसे आ रहे थे ॥७७-७८॥ वे सबके आगे चलनेवाले अत्यन्त वीर वानरवंशी राजा युद्धकी भूमिमें सबसे पहले जा पहुँचे सो यह उनके लिए उचित ही था ॥७९॥ इस रणभूमिकी चौड़ाई बीस योजन थी और लम्बाईका कुछ परिमाण ही नहीं था ॥८०॥ नाना प्रकार शस्त्र और विविध चिह्नोंको धारण करनेवाले हजारों योद्धाओंसे सहित वह युद्धकी भूमि मृत्युकी संसार भूमिके समान जान पड़ती थी ॥८१॥ तदनन्तर जिसे चिरकाल बाद उत्सव प्राप्त हुआ था ऐसा रावण हाथी, घोड़े, सिंह और दुन्दुभियोंका शब्द सुन परम हर्षको प्राप्त हुआ ॥८२॥ उसने आज्ञा देकर समस्त सामन्तोंका आदर किया सो ठीक ही है क्योंकि उसने उन्हें युद्धके आनन्दसे कभी वंचित नहीं किया था ॥८३॥ सूर्याभपुर, मेघपुर, कांचनपुर, गगनवल्लभपुर

१. नानायुद्ध—अ. । २. चिरागतरणोत्सवः म. । ३. समवाभवन् म., समनीनयत् ज. ।

सूर्योदयामृतामिख्याः शोभासिंहपुराभिधाः । नृत्यगीतपुरालक्ष्मीकिन्नरस्वनसंज्ञकाः ॥८५॥
बहुनादा महाशैलाश्चक्राह्वाः सुरनूपुराः । श्रीमन्तो मलयानन्दाः श्रीगृहा श्रीमनोहराः ॥८६॥
रिपुंजयाः शशिस्थानाः मार्तण्डाभविशालकाः । ज्योतिर्दण्डाः परिक्षोदा अश्वरत्नपराजयाः ॥८७॥
एवमाद्याः पुराभिख्याः महाखेचरपार्थिवाः । सचिवैरन्विताः प्रीता दशाननमुपागताः ॥८८॥
अस्त्रवाहनसंनाहप्रभृतिप्रतिपत्तिभिः । रावणोऽपूजयद्भूपान्[1] सुग्रामा त्रिदशानिव ॥८९॥
अक्षौहिणीसहस्राणि चत्वारि त्रिकुकुप् प्रभोः । स्वशक्तिजनितं प्रोक्तं बलस्य प्रमितं बुधैः ॥९०॥
एकमक्षौहिणीनां तु किष्किन्धनगरप्रभोः । सहस्रं सामभेकं तु भामण्डलविभोरपि ॥९१॥
सुग्रीवः सचिवैः सार्कं तथा पुष्पवतीसुतः । आवृत्य परमोद्युक्तौ तस्थतुः[2] पद्मलक्ष्मणौ ॥९२॥
अनेकगोत्रचरणा नानाजात्युपलक्षणाः । नानागुणक्रियाख्याता नानाशब्दा नमश्चराः ॥९३॥

पुण्यानुभावेन महानराणां मज्जन्ति शत्रोरपि पार्थिवाः स्वाः ।
कुपुण्यभाजां तु चिरं सुहृत्का[3] विनाशकाले परतो भजन्ते ॥९४॥
भ्राता ममार्थं सुहृदेष वश्यो ममैष बन्धुः सुखदः सदेति ।
संसारवैचित्र्यविदा नरेण जैनप्रमीधारविणा विचिन्त्या ॥९५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे विभीषणसमागमाभिधानं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५५॥

गन्धर्वगीतनगर, कम्पनपुर, शिवमन्दिरपुर, सूर्योदयपुर, अमृत, शोभापुर, सिंहपुर, नृत्यगीतपुर, लक्ष्मीगीतपुर, किन्नरगीतपुर, बहुनादपुर, महाशैलपुर, चक्रपुर, सुरनूपुर, श्रीमन्तपुर, मलयानन्दपुर, श्रीगृहापुर, श्रीमनोहरपुर, रिपुंजयपुर, शशिस्थानपुर, मार्तण्डाभपुर, विशालपुर, ज्योतिर्दण्डपुर, परिक्षोदपुर, अश्वपुर, रत्नपुर और पराजयपुर आदि अनेक नगरोंके बड़े-बड़े विद्याधर राजा, प्रसन्न हो, अपने-अपने मन्त्रियोंके साथ रावणके समीप आ गये ॥८४-८८॥ रावणने अस्त्र, वाहन तथा कवच आदि देकर उन सब राजाओंका उस तरह सम्मान किया जिस तरह कि इन्द्र देवोंका सम्मान करता है ॥८९॥ विद्वानोंने रावणकी सेनाका प्रमाण चार हजार अक्षौहिणी दल बतलाया है। उनका यह दल अपनी सामर्थ्यसे परिपूर्ण था ॥९०॥ किष्किन्धनगरके राजा सुग्रीवकी सेनाका प्रमाण एक हजार अक्षौहिणी और भामण्डलकी सेनाका प्रमाण कुछ अधिक एक हजार अक्षौहिणी दल था ॥९१॥ परम उद्योगी सदा सावधान रहनेवाले सुग्रीव और भामण्डल, अपने-अपने मन्त्रियोंके साथ सदा राम-लक्ष्मणके समीप रहते थे ॥९२॥ उस समय युद्ध-भूमिमें नानावंश, नानाजातियाँ, नानागुण तथा नानाक्रियाओंसे प्रसिद्ध एवं नानाप्रकारके शब्दोंका उच्चारण करनेवाले विद्याधर एकत्रित हुए थे ॥९३॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! पुण्यके प्रभावसे महापुरुषोंके शत्रु राजा भी आत्मीय हो जाते हैं और पुण्यहीन मनुष्योंके चिरकालीन मित्र भी विनाशके समय पर हो जाते हैं ॥९४॥ यह मेरा भाई है, यह मेरा मित्र है, यह मेरे आधीन है, यह मेरा बन्धु है और यह मेरा सदा सुख देनेवाला है, इस प्रकार बुद्धिरूपी सूर्यसे सहित तथा संसारकी विचित्रताको जाननेवाले मनुष्यको कभी नहीं विचारना चाहिए ॥९५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें विभीषणके समागमका वर्णन करनेवाला पचपनवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥५५॥

---

१. भूयः म. । २ परमोद्युक्तैस्तस्थतुः म. । ३. स्वशक्ताः म. ।

षट्पञ्चाशत्तमं पर्व

मगधेन्द्रस्ततोऽपृच्छत् पुनरेवं गणेश्वरम् । अक्षौहिण्याः प्रमाणं मे वक्तुमर्हसि संमुने ॥१॥
शक्रभूतिरथागादीच्छृणु श्रेणिक पार्थिव । अक्षौहिण्याः प्रमाणं ते संक्षेपेण वदाम्यहम् ॥२॥
अष्टाविमे गताः ख्यातिं प्रकारा गणनाकृताः । चतुर्णां भेदमङ्गानां कीर्त्यमानं विबोध्यताम् ॥३॥
पत्तिः प्रथमभेदोऽत्र तथा सेना प्रकीर्तिता । सेनामुखं ततो गुल्मं वाहिनी पृतना चमूः ॥४॥
अष्टमोऽनीकिनीसंज्ञस्तत्र भेदो बुधैः स्मृतः । यथा भवन्त्यमी भेदास्तथेदानीं वदामि ते ॥५॥
एको रथो गजश्चैकस्तथा पञ्च पदातयः । त्रयस्तुरङ्गमाः सैषा पत्तिरित्यभिधीयते ॥६॥
पत्तित्रिगुणिता सेना तिस्रः सेनामुखं च ताः । सेनामुखानि च त्रीणि गुल्ममित्यनुकीर्त्यते ॥७॥
त्रिगुणानि त्रीणि गुल्मानि वाहिनीत्यभिधीयते । पञ्चैवं पृतना ज्ञेया चमूस्त्रयमनीकिनी ॥८॥
अनीकिन्यो दश प्रोक्ता भाग्यैरक्षौहिणीति सा । तत्राङ्गानां पृथक् संख्यां चतुर्णां कथयामि ते ॥९॥
अक्षौहिण्यां प्रकीर्त्यानि रथानां सूर्यवर्चसाम् । एकविंशतिसंख्यानि सहस्राणि विचक्षणैः ॥१०॥
अष्टौ शतानि ससप्त्या सहितान्यपराणि च । गजानां कथितं ज्ञेयं संख्यानं रथसंख्यया ॥११॥
एकलक्षं सहस्राणि नव, पञ्चाशदन्वितम् । शतत्रयं च विज्ञेयमक्षौहिण्याः पदातयः ॥१२॥
पञ्चषष्टिसहस्राणि षट्शती च दशोत्तरा । अक्षौहिण्यामिमं संख्यां वाजिनां परिकीर्तिता ॥१३॥
एवं संख्यबलोपेतं विज्ञायापि दशाननम् । बलं कैष्किन्धमभ्यागं तं भयेन विवर्जितम् ॥१४॥
तस्मिन्नासन्नतां प्राप्ते पद्मनाभबलार्णवे । जनानामित्यभूद्वाणी[1] नानापक्षगतात्मनाम् ॥१५॥

अथानन्तर मगधपति राजा श्रेणिकने गौतम गणधरसे इस प्रकार पूछा कि हे सन्मुने ! मेरे लिए अक्षौहिणीका प्रमाण कहिए ॥१॥ इसके उत्तरमें इन्द्रभूति—गौतम गणधरने कहा कि हे राजन् श्रेणिक ! सुन, मैं तेरे लिए संक्षेपसे अक्षौहिणी प्रमाण कहता हूँ ॥२॥ हाथी, घोड़ा, रथ और पयादे ये सेनाके चार अंग कहे गये हैं। इनकी गणना करनेके लिए नीचे लिखे आठ भेद प्रसिद्ध हैं ॥३॥ प्रथम भेद पत्ति, दूसरा सेना, तीसरा सेनामुख, चौथा गुल्म, पाँचवाँ वाहिनी, छठा पृतना, सातवाँ चमू और आठवाँ अनीकिनी। अब उक्त चार अंगोंमें ये जिस प्रकार होते हैं उनका कथन करता हूँ ॥४-५॥ जिसमें एक रथ, एक हाथी, पाँच पयादे और तीन घोड़े होते हैं वह पत्ति कहलाता है ॥६॥ तीन पत्तिकी एक सेना होती है, तीन सेनाओंका एक सेनामुख होता है, तीन सेनामुखोंका एक गुल्म कहलाता है ॥७॥ तीन गुल्मोंकी एक वाहिनी होती है, तीन वाहिनियोंकी एक पृतना होती है, तीन पृतनाओंकी एक चमू होती है और तीन चमूकी एक अनीकिनी होती है ॥८॥ विद्वानोंने दस अनीकिनीकी एक अक्षौहिणी कही है। हे श्रेणिक ! अब मैं तेरे लिए अक्षौहिणीके चारों अंगोंकी पृथक्-पृथक् संख्या कहता हूँ ॥९॥ विद्वानोंने एक अक्षौहिणीमें सूर्यके समान देदीप्यमान रथों की संख्या इक्कीस हजार आठ सौ सत्तर बतलायी है। हाथियोंकी संख्या रथोंकी संख्याके समान जानना चाहिए ॥१०-११॥ पदाति एक लाख नौ हजार तीन सौ पचास होते हैं और घोड़ोंकी संख्या पैंसठ हजार छह सौ दस कही गयी है ॥१२-१३॥ इस प्रकार चार हजार अक्षौहिणी रावणके पास थीं। सो इस प्रकारकी सेना से सहित रावणको अतिशय बलवान् जानकर भी किष्किन्धपति—सुग्रीवकी सेना निर्भय होकर रावणके सम्मुख चली ॥१४॥ जब रामकी सेना निकट आयी तब नाना पक्षमें विभक्त लोगोंमें इस प्रकारकी चर्चा होने लगी ॥१५॥

---

१. नानापक्षगतात्मनां म. ।

पश्यतास्य रथानीकगणेशः शास्त्रधीकरः । दशास्यचन्द्रमाश्छन्नः परस्त्रीच्छाबलाहकैः ॥१६॥
अष्टादश सहस्राणि पत्नीनां यस्य [1]सुस्त्रियाम् । सीतायाः पश्यतैकस्याः कृते तं शोकशल्यितम्[2] ॥१७॥
रक्षसां वानराणां च कस्य नाम क्षयो भवेत् । एवं बभूव संदेहः सैन्यद्वितयवर्तिनाम् ॥१८॥
बलेऽस्मिन्मारदेवीयो मारुतिर्नाम भीषणः । विस्फुरच्छौर्यदिग्भाभुः सूर्यतुल्योऽत्र शक्रजित् ॥१९॥
सागरोदारमत्युग्रं साक्षादितिबलोपमम्[3] । साधनं रावणस्येति नराः केचिद् बभाषिरे ॥२०॥
अन्तरं वित्थ शूरस्याशूरस्य च न जातुचित् । न तज्ज्ञातमतिक्रान्तं किं न वो[4] धीरवीक्षणम् ॥२१॥
यद्वृत्तं दण्डकारण्यस्य वनस्य महतोऽन्तरे । अत्यन्तदारुणं युद्धं लक्ष्मणस्य महात्मनः ॥२२॥
चन्द्रोदरसुतं प्राप्य तुल्यं स्वाङ्गेन केवलम् । मृत्योरातिथ्यमानीतो येनासौ खरदूषणः ॥२३॥
अतिप्रकटवीर्यस्य लक्ष्मीनिलयवक्षसः । भवतां तस्य न ज्ञातं किं वा बलमनुत्तमम् ॥२४॥
एकेन वायुपुत्रेण निर्भर्त्स्यं मयसंभवाम् । रामपत्नीं समाश्वास्य परार्थासक्तवृत्तिना ॥२५॥
रावणस्य महासैन्यं विक्षिप्यात्यन्तदारुणम् । लङ्कापुरी परिध्वस्ता भग्नप्राकारतोरणा ॥२६॥
एवं विदिततत्त्वानां स्फुटं वर्त्मनि नेर्गते । जगाद प्रहसन् वाक्यं सुवक्त्रो गर्वनिर्भरः ॥२७॥
गोष्पदप्रमितं क्वैतत्क्वलं वानरलक्ष्मणाम् । क्व चैतत्सागरोदारं सैन्यं त्रैकूटमुद्धतम् ॥२८॥
इन्द्रेण साधितो यो न पतिर्विद्याधृतामयम् । एकस्य चापिनः साध्यो रावणः किं नु जायते ॥२९॥
सर्वतेजस्विमूर्धानं विभोरस्याधितिष्ठतः । श्रोतुं नामापि कः शक्तश्चक्रवर्तिनः ॥३०॥

कोई कहता था कि देखो जो विद्याधररूपी नक्षत्रोंके समूहका स्वामी है और जो शास्त्र-ज्ञानरूपी किरणोंसे सहित है ऐसा यह रावणरूपी चन्द्रमा परनारीकी इच्छारूपी मेघोंसे आच्छादित हो रहा है ॥१६॥ जिसकी उत्तम कान्तिको धारण करनेवाली अठारह हजार स्त्रियाँ हैं वह एक सीताके लिए देखो शोकसे शल्ययुक्त हो रहा है ॥१७॥ देखें राक्षसों और वानरोंमें-से किसका क्षय होता है ? इस प्रकार दोनों सेनाओंके लोगोंको सन्देह हो रहा था ॥१८॥ उधर वानरोंकी सेनामें कामदेवके समान जो हनुमान् है वह अत्यन्त भयंकर है, उसका शौर्यरूपी सूर्य अतिशय देदीप्यमान हो रहा है और इधर राक्षसोंकी सेनामें इन्द्रजित् सूर्यके समान है ॥१९॥ कोई कह रहे थे कि रावणकी यह सेना समुद्रके समान विशाल, अत्यन्त उग्र तथा साक्षात् दैत्योंकी सेनाके समान है ॥२०॥ क्या तुम कभी शूर-वीर और अशूर-वीरका अन्तर नहीं जानते ? क्या तुम्हें पिछली बात याद नहीं है ? और क्या तुम सबको धीर-वीर मनुष्यकी पहचान नहीं है ? ॥२१॥ कोई कह रहे थे कि विशाल दण्डकवनके मध्यमें महाबलवान् लक्ष्मणका जो युद्ध हुआ था और उसमें केवल अपने शरीरके तुल्य चन्द्रोदरके पुत्र—विराधितको पाकर उसने खरदूषणको यमका अतिथि बना दिया था। इस प्रकार अत्यन्त प्रकट पराक्रमके धारक लक्ष्मणका उत्कृष्ट बल क्या आप लोगोंको विदित नहीं है ? ॥२२-२४॥ कोई कह रहा था कि उस समय परहितमें लगे हुए अकेले हनुमान्ने मन्दोदरीको डाँटकर तथा सीताको सान्त्वना देकर रावणकी अत्यन्त उग्र सेना जीत ली थी तथा जिसके कोट और तोरण तोड़ दिये गये थे ऐसी लंकाको क्षत-विक्षत कर दिया था ॥२५-२६॥

इस प्रकार तत्त्वज्ञ मनुष्योंके स्पष्ट वचन निकलनेपर गर्वसे भरा सुमुख राक्षस हँसता हुआ निम्न प्रकारके वचन बोला ॥२७॥ वह कहने लगा कि वानर चिह्नको धारण करनेवाले वानर-वंशियोंकी यह गोखुरके समान तुच्छ सेना कहाँ ? और यह त्रिकूटवासियोंकी समुद्रके समान विशाल एवं उत्कट सेना कहाँ ? ॥२८॥ जो विद्याधरोंका अधिपति रावण इन्द्रके द्वारा भी वशमें नहीं किया जा सका वह एक धनुर्धारीके वश कैसे हो सकता है ? ॥२९॥ जो समस्त तेजस्वी मनुष्योंके मस्तकपर अधिष्ठित है अर्थात् समस्त प्रतापी मनुष्योंमें श्रेष्ठ है ऐसे (अर्ध) चक्रवर्ती रावणका नाम

---

१. सुकान्तियुक्तानां । २. शोकसंचितम् म. । ३. साक्षादितिबलोपमम् (इति भवेत्) । ४. युष्माकम् ।

सुपीवरभुजो वीरो दुर्धरैरपि दुर्धरैः । भुवने कस्य न ज्ञातः कुम्भकर्णो महाबलः ॥३१॥
यश्शिशूलधरः संख्ये कालाग्निरिव दीप्यते । सोऽद्यं विजीयते केन जगदुत्कटविक्रमः ॥३२॥
यस्यातपत्रमालोक्य शरदिन्दुमिवोद्गतम् । शत्रुसैन्यतमोध्वंससमुपयाति समन्ततः ॥३३॥
उदात्ततेजसस्तस्य स्थातुं यस्याग्रतोऽपि कः । समर्थः[1] पुरुषो लोके निजजीवितनिस्पृहः ॥३४॥

इति बहुविधवाचो द्वेषरागाश्रितानां प्रकटितनिजचित्तप्रार्थनासंकटानाम् ।
द्वितयबलजनानां दृष्टनानाक्रियाणाम् अजनि जनितशङ्को मार्गो विचित्रः ॥३५॥
चरितजननकालाऽभ्यस्तरागेतराणां[3] भवमपरमिलानामप्यहो चित्तमार्गः[4] ।
भवति खलु तथैव व्यक्तमेतं हि लोकं स्वचरितरविरेव प्रेरयत्यात्मकार्ये ॥३६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे उभयबलप्रमाणविधानं नाम षट्पञ्चाशत्तमं पर्व ॥५६॥

भी सुननेके लिए कौन समर्थ है ? ॥३०॥ जिसकी भुजाएँ अत्यन्त स्थूल हैं एवं जो देवोंके द्वारा भी दुर्धर है—रोका नहीं जा सकता ऐसे महाबलवान् कुम्भकर्णको कौन नहीं जानता ?॥३१॥ जो त्रिशूलका धारक, युद्धमें प्रलयकालकी अग्निके समान देदीप्यमान होता है तथा जिसका पराक्रम संसारमें सबसे अधिक है ऐसा यह कुम्भकर्ण किसके द्वारा जीता जा सकता है ? ॥३२॥ उदित हुए शरत्कालीन चन्द्रमाके समान जिसका छत्र देखकर शत्रुओंकी सेनारूपी अन्धकार सब ओरसे नष्ट हो जाता है उस प्रबल पराक्रमी कुम्भकर्णके सामने संसारमें ऐसा कौन समर्थ मनुष्य है जो अपने जीवनसे निःस्पृह हो खड़ा होनेके लिए भी समर्थ हो ॥३३-३४॥ इस प्रकार जो नाना भाँतिके वचन बोल रहे थे, जो राग और द्वेषके आधार थे, जिन्होंने अपने मनोगत विचारोंके संकट प्रकट किये थे, तथा जिनकी नाना प्रकारकी क्रियाएँ देखी गयी थीं ऐसे उभयपक्षके लोगोंकी विचारधारा विचित्र एवं शंकाको उत्पन्न करनेवाली हुई थी ॥३५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य संयम उत्पत्तिके योग्य समयमें भी रागी, द्वेषी बने रहते हैं अन्य भवमें पहुँच जानेपर भी उनका मनोमार्ग वास्तवमें वैसा ही रहा आता है—राग-द्वेषका अभ्यासी बना रहता है सो उचित ही है क्योंकि मनुष्यका अपना चारित्ररूपी सूर्य ही उसे आत्म-कार्यमें प्रेरित करता रहता है ॥३६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें राम और रावणकी सेनाओंके प्रमाणका कथन करनेवाला छप्पनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५६॥

---

१. समर्थपुरुषः म. । २. विरतिजनन- ख. । ३. कालोऽभ्यस्त- ज. । ४. मपरिजिनानां ज. ।

सप्तपञ्चाशत्तमं पर्व

परसैन्यसमाक्लेशमसहन्तोऽथ मानवाः । उद्गरद्दर्पसंक्षोभा हृष्टाः संनद्धुमुद्यताः ॥१॥
उद्वेष्ट्य दयिताबाहुपाशं कृच्छ्रेण केचन । संक्षुभ्य सिंहसंकाशा लङ्कातो निर्ययुर्भटाः ॥२॥
वीरपत्नी प्रियं काचिदालिङ्ग्यैवमभाषत । श्रुतानेकमहायोधपराक्रमविभ्रमा ॥३॥
संग्रामे विव्रणः पृष्ठे यदि नाथागमिष्यसि । दुर्यशस्तदहं प्राणान् मोक्ष्यामि क्षतिमाकुलः ॥४॥
किङ्करीणामसः पत्न्यो वीराणामतिगर्विताः । धिक्शब्दं मे प्रदास्यन्ति किं नु कष्टमतः परम् ॥५॥
रणप्रत्यागतं धीरमुरोव्रणविभूषणम् । विशीर्णकवचं प्राप्तजयलब्धमटस्तवम् ॥६॥
द्रक्ष्यामि यदि धन्याहं भवन्तमविकत्थनम् । जिनेन्द्रानर्चयिष्यामि ततो जाम्बूनदाम्बुजैः ॥७॥
आभिमुख्यागतं मृत्युं वरं प्राप्ता महाभटाः । पराङ्मुखा न जीवन्तो धिक्शब्दमलिनीकृताः ॥८॥
स्तनद्वयसमुत्पीडं काचिदालिङ्ग्य मानवम् । जगाद पुनरेवं सा ग्रहीष्यामि जयान्वितम् ॥९॥
भवद्वक्षस्थलस्थानरक्तचन्दनचर्चया । परां स्तनद्वयं शोभां मम यास्यति सर्वथा ॥१०॥
प्रातिवेश्मिकयोधानामपि पत्नीं जितप्रियाम् । न सहे कुत एवेश सहिष्ये त्वां विनिर्जितम् ॥११॥
काचिज्जगाद ते नाथ हतार्कं व्रणभूषणम् । पुराणं रूढकं जातं ततो नैवातिशोभसे ॥१२॥
अतो नवव्रणन्यस्तस्तनमण्डलसौख्यदम् । द्रक्ष्येऽहं वीरपत्नीभिर्धिक्कासिमुखपङ्कजा ॥१३॥

अथानन्तर परचक्रके आक्रमणको नहीं सहन करनेवाले मनुष्य उठते हुए अहंकारसे क्षुभित हो हर्षपूर्वक कवच आदिक धारण करनेके लिए उद्यत हुए ॥१॥ सिंहकी समानता करनेवाले कितने ही शूर-वीर योद्धा गलेमें पड़े हुए प्राणवल्लभाके बाहुपाशको बड़ी कठिनाईसे दूर कर क्षुभित हो लंकासे बाहर निकल आये ॥२॥ जिसने महायुद्धमें अनेक बड़े-बड़े योद्धाओंकी चेष्टाओंका वर्णन सुन रखा था, ऐसी किसी वीरपत्नीने पतिका आलिंगन कर इस प्रकार कहा कि ॥३॥ हे नाथ! यदि संग्रामसे घायल होकर पीछे आओगे तो बड़ा अपयश होगा और उसके सुनने मात्रसे ही मैं प्राण छोड़ दूँगी ॥४॥ क्योंकि ऐसा होनेसे वीर किंकरोंकी गर्वीली पत्नियाँ मुझे धिक्कार देंगी। इससे बढ़कर कष्टकी बात और क्या होगी? ॥५॥ जिनके वक्षस्थलमें घाव आभूषणके समान सुशोभित हैं, जिनका कवच टूट गया है, प्राप्त हुई विजयसे योद्धागण जिनकी स्तुति कर रहे हैं, जो अतिशय धीर हैं तथा गम्भीरताके कारण जो अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं कर रहे हैं ऐसे आपको युद्धसे लौटा हुआ यदि देखूँगी तो मैं सुवर्णमय कमलोंसे जिनेन्द्रदेवकी पूजा करूँगी ॥६-७॥ महा-योद्धाओंका सम्मुखागत मृत्युको प्राप्त हो जाना अच्छा है किन्तु पराङ्मुखको धिक्कार शब्दसे मलिन जीवन बिताना अच्छा नहीं है ॥८॥ कोई स्त्री दोनों स्तनोंसे पतिका आलिंगन कर बोली कि जब आप विजयी हो लौटकर आवेंगे तब फिर ऐसा ही आलिंगन करूँगी ॥९॥ आपके वक्षस्थल-के गाढ़े-गाढ़े रक्तरूपी चन्दनोंकी चर्चासे मेरे दोनों स्तन सब प्रकारसे परम शोभाको प्राप्त होंगे ॥१०॥ हे स्वामिन्! जिसका पति हार जाता है ऐसी पड़ोसी योद्धाओंकी पत्नीको भी मैं सहन नहीं करती फिर हारे हुए आपको किस प्रकार सहन करूँगी? ॥११॥ कोई स्त्री बोली कि हे नाथ! आपका यह अभागा पुराना घावरूपी आभूषण रूढ़ हो गया है—पुरकर सूख गया है, इसलिए आप अधिक सुशोभित नहीं हो रहे हैं ॥१२॥ अब नूतन घावपर रखे हुए स्तनमण्डलको सुख

---

१. उद्वेजय म. । २. योधं म. । ३. विभ्रमं म. । ४. संगते । ५. मपि म. । ६. हतसंक्षणभूषणम् -म. ।

काचिदूचे यथैतत्ते वदनं चुम्बितं मया । यथा[1] वक्षसि संजातं चुम्बिष्यामि व्रणाननम् ॥१४॥
अनतिप्रौढिका काचिद्वधूरभिनवोढिका । संग्रामे प्रोद्यते नाथे प्रौढत्वं समुपागता ॥१५॥
चिराय रक्षितं मानं काचिन्नाथे रणोन्मुखे । तत्याजैकपदे कान्ता कान्तसंश्लेषतत्परा ॥१६॥
[2]अतितृप्तं भटी काचिन्नतृप्तवक्त्रासवं पपौ । तथापि मदनप्राप्ता[3] रणयोग्यमशिक्षयत् ॥१७॥
काचिदुत्तानितं[4] भर्तुर्वदनं वनजेक्षणा । नैमिषोज्झितमद्राक्षीत् सुचिरं कृतचुम्बना ॥१८॥
काचिन्नखक्षतं भर्तुः करजग्रणमुज्ज्वलम् । भविष्यच्छस्त्रपातस्य सत्यंकारमिवार्पयत् ॥१९॥
इति संजातचेष्टासु दयितासु यथायथम् । भटानामित्थमभूत्वाणी महासंग्रामशालिनाम् ॥२०॥
नरास्ते दयिते श्लाघ्या ये गता रणमस्तकम् । त्यजन्त्यभिमुखा जीवं शत्रूणां लब्धकीर्तयः ॥२१॥
उद्भिन्नदन्तिदन्ताग्रदोलाहुर्ललितं भटाः । कुर्वन्ति न विना पुण्यैः शत्रुभिर्घोषितस्तवाः ॥२२॥
गजदन्ताग्रभिन्नस्य कुम्भदारणकारिणः । वासुरं नरसिंहस्य तत् कः कथयितुं क्षमः ॥२३॥
त्रस्तं शरणमायातं दत्तपृष्ठं च्युतायुधम् । परित्यज्य पतिष्यामो दयिते शत्रुमस्तके ॥२४॥
भवत्या वाञ्छितं कृत्वा प्रत्यागत्य रणाजिरात् । [5]प्रार्थयिष्ये समाश्लेषं भवन्तीं तोषधारिणीम्[6] ॥२५॥
एवमादिभिरालापैः परिसान्त्व्य निजप्रियाः । वीरा विनिर्गमुत्सुक्ताः [7]संश्लेषसौख्यसमुत्सुकाः ॥२६॥

पहुँचानेवाले आपको जब देखूँगी तो मेरा मुखकमल खिल उठेगा और वीर पत्नियाँ मुझे बड़े गौरवसे देखेंगी ॥१३॥ कोई स्त्री बोली कि मैंने जिस प्रकार आपके इस मुखका चुम्बन किया है उसी प्रकार वक्षस्थलपर उत्पन्न हुए घावके मुखका चुम्बन करूँगी ॥१४॥ कोई नवविवाहिता स्त्री यद्यपि प्रौढ़ नहीं थी तथापि पतिके युद्धके लिए उद्यत होनेपर प्रौढ़ताको प्राप्त हो गयी ॥१५॥ कोई स्त्री चिरकालसे मानकी रक्षा करती बैठी थी परन्तु जब पति युद्धके सम्मुख हो गया तब उसने सब मान एक साथ छोड़ दिया और पतिका आलिंगन करनेमें तत्पर हो गयी ॥१६॥ यद्यपि किसी योद्धाकी स्त्री पतिके मुखकी मदिरा पीती-पीती तृप्त नहीं हुई थी तथापि कामाकुलित हो उसने पतिके लिए रणके योग्य शिक्षा दी थी ॥१७॥ कोई कमललोचना स्त्री पतिके ऊपर उठाये हुए मुखको टिमकाररहित नेत्रोंसे चिरकाल तक देखती रही और उसका चुम्बन करती रही ॥१८॥ किसी स्त्रीने पतिके वक्षःस्थलपर नखका उज्ज्वल घाव बना दिया मानो आगे चलकर जो शस्त्रपात होगा उसका बयाना ही दे दिया था ॥१९॥

इस प्रकार जब स्त्रियोंमें नाना प्रकारकी चेष्टाएँ हो रही थीं तब महायुद्धसे सुशोभित योद्धाओंकी इस प्रकार वाणी प्रकट हुई ॥२०॥ कोई बोला कि हे प्रिये ! वे मनुष्य प्रशंसनीय हैं जो रणाग्रभागमें जाकर शत्रुओंके समुख प्राण छोड़ते हैं तथा सुयश प्राप्त करते हैं ॥२१॥ शत्रु भी जिनका विरद बखान रहे हैं, ऐसे योद्धा पुण्यके बिना मदोन्मत्त हाथियोंके दाँतोंके अग्रभागसे झूला नहीं झूल सकते ॥२२॥ हाथीदाँतके अग्रभागसे विदीर्ण तथा हाथीके गण्डस्थलको विदीर्ण करनेवाले श्रेष्ठ मनुष्यको जो सुख होता है उसे कहनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥२३॥ कोई कहने लगा कि हे प्रिये ! मैं भयभीत, शरणागत, पीठ दिखानेवाले एवं शस्त्र डाल देनेवाले पुरुषको छोड़ शत्रुके मस्तकपर टूट पड़ूँगा ॥२४॥ कोई कहने लगा कि मैं आपकी अभिलाषा पूर्ण कर तथा रणांगणसे लौटकर जब आपको सन्तुष्ट कर दूँगा तभी आपसे आलिंगनकी प्रार्थना करूँगा ॥२५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस प्रकारके वार्तालापोंसे अपनी प्राण-वल्लभाओंको सान्त्वना देकर युद्धसम्बन्धी सुख प्राप्त करनेमें उत्सुक वीर मनुष्य घरोंसे बाहर

---

१. यथा म. । २. अतितृप्तभटी म. । ३. मदनं प्राप्ता म. । ४. दुत्तानितुं म. । ५. प्रार्थयिष्ये म. । ६. तोषकारिणीम् ज. । ७. संश्लेषे ज. ।

वियासोः शस्त्रहस्तस्य कण्ठार्पितभुजद्वया । काचिद्दोलायितं चक्रे गजेन्द्रस्येव पद्मिनी ॥२७॥
काचित्संनाहरुद्धस्य पत्युर्देहस्य संगमम् । अप्राप्य परमं प्राप्ता पीडामङ्कमपि श्रिता ॥२८॥
[1]अर्द्धबाहुलिकां दृष्ट्वा काचित्कान्तस्य वक्षसि । ईर्ष्यारोषेण संपूर्णा किंचिदाकुञ्चितेक्षणा ॥२९॥
अर्द्धसंनाहनामार्थं मया परिहिता प्रिये । इति पुंशब्दयोगेन पुनस्तोषमुपागता ॥३०॥
ताम्बूलप्रार्थनव्याजात् काचित् प्राप्य प्रियाधरम् । अमुञ्चत् सुखिनी कृच्छ्रात् कृत्वा व्रणविभूषितम्॥३१॥
काचिन्निवर्त्यमानापि प्रियेण रणकाङ्क्षिणा । संनाहकण्ठसूत्रस्य बन्धव्याजेन गच्छति ॥३२॥
एकतो दयितादृष्टिरन्यतः तूर्यनिस्वनः । इति हेतुद्वयादोलामारूढं भटमानसम् ॥३३॥
स्त्रीणां परिहरन्तीनां बाष्पपातममङ्गलम् । सत्यामपि विभूक्षायां निमेषो नाभवत् दृशाम् ॥३४॥
अगृहीतैव संनाहं केचित् त्वरितमानसाः । बभासिरे बाहुयुधं योधा निर्युयुर्दर्पशालिनः ॥३५॥
रणसंजाततोषेण शरीरे पुष्टिमागते । कस्यचिद् रणशौण्डस्य वर्म मात्रि स्म नो निजम् ॥३६॥
श्रुत्वा परचमूतूर्यस्वनं कश्चिद् भटोत्तमः । चिरव्रणैर्मुखं रक्तं मुमोचोच्छ्वासविग्रहः ॥३७॥
पिनद्धं कस्यचिद् वर्म सुदृढं तोषधारिणः । वर्द्धमानं ततः [2]क्षीणं पुराणकटकायितम् ॥३८॥
विश्रब्धं कस्यचिज्जाया समाधानपरायणा । सारयन्ती मुहुस्तस्थौ शिरस्त्राणं सुभाषितैः ॥३९॥
प्रियापरिमलं कश्चिदीयमानैः स्वपक्षकैः । [3]कङ्कटं प्रति नो चक्रे मनः संग्रामलालसः ॥४०॥
एवं विनिर्ययुर्योधाः कृच्छ्रतः सान्त्वितप्रियाः । आकुलीभूतचित्ताश्च शयनीयेषु ताः स्थिताः ॥४१॥

निकलनेके लिए उद्यत हुए ॥२६॥ किसीका पति हाथमें शस्त्र लेकर जब जाने लगा तब वह उसके गलेमें दोनों भुजाएँ डालकर ऐसी झूल गयी मानो किसी गजराजके गलेमें कमलिनी ही झूल रही हो ॥२७॥ किसी स्त्रीके पतिने कवच पहन रखा था इसलिए उसके शरीरका संगम न प्राप्त होनेसे वह गोदमें स्थित होनेपर भी परम पीड़ाको प्राप्त हो रही थी ॥२८॥ कोई एक स्त्री पतिके वक्षःस्थल-पर अर्द्धबाहुलिका देख ईर्ष्यासे भर गयी तथा उसके नेत्र कुछ-कुछ संकुचित हो गये ॥२९॥ उसे अप्रसन्न जान पतिने कहा कि हे प्रिये ! यह आधा कवच मैंने पहना है । इस प्रकार पतिके कहनेसे पुनः सन्तोषको प्राप्त हो गयी ॥३०॥ किसी सुखिया स्त्रीने ताम्बूल याचनाके बहाने पतिका अधरोष्ठ पाकर उसे दन्ताघातसे विभूषित कर बड़ी कठिनाईसे छोड़ा ॥३१॥ रणके अभिलाषी किसी पुरुषने यद्यपि अपनी स्त्रीको लौटा दिया था तथापि वह कवचके कण्ठका सूत्र बाँधनेके बहाने चली आ रही थी ॥३२॥ एक ओर तो वल्लभाकी दृष्टि और दूसरी ओर तुरहीका शब्द, इस प्रकार योद्धाका मन दो कारणरूपी दोलाके ऊपर आरूढ़ हो रहा था ॥३३॥ अमांगलिक अश्रुपातको बचानेवाली स्त्रियोंके यद्यपि पतिको देखनेकी इच्छा थी तो भी वे नेत्रोंका पलक नहीं झपाती थीं ॥३४॥ जिनके मन उतावलीसे भर रहे थे ऐसे कितने ही अहंकारी योद्धा, कवच पहने बिना ही जो शस्त्र मिला उसे ही लेकर निकल पड़े ॥३५॥ किसी रणवीरका शरीर रणसे उत्पन्न सन्तोषके कारण इतना पुष्ट हो गया कि उसका निजका कवच भी शरीरमें नहीं माता था ॥३६॥ किसी उत्तम योद्धाका शरीर पर-चक्रकी तुरहीका शब्द सुनकर इतना फूल गया कि वह चिरकालके भरे घावोंसे रक्त छोड़ने लगा ॥३७॥ किसी योद्धाने नया मजबूत कवच पहना था परन्तु हर्षित होनेके कारण उसका शरीर इतना बढ़ गया कि कवच फटकर पुराने कवचके समान जान पड़ने लगा ॥३८॥ किसीका टोप ठीक नहीं बैठ रहा था सो उसे ठीक करनेमें तत्पर उसकी स्त्री निश्चिन्ततापूर्वक मधुर शब्द कहती हुई बार-बार टोपको चला रही थी ॥३९॥ किसीकी स्त्रीने पतिके वक्षःस्थलपर सुगन्धिका लेप लगा दिया था सो उसकी रक्षा करते हुए उसने युद्धकी अभिलाषा होते हुए भी कवच धारण करनेकी ओर मन नहीं किया था—कवच धारण करनेका विचार नहीं किया था ॥४०॥ इस प्रकार जो

---

१. संनद्धनीं(टि.) । २. कृत्वा म. । ३. क्षीघ्रं पुराणं कंटकायितम् म. । ४. धीयमानः म. । ५. कंटकं म., ख. ।

अथाग्रकीर्तिमाध्वीकरसास्वादनलालसौ । द्विरदस्यन्दनारूढावसोढारिबलस्वनौ ॥४२॥
प्रथमं निर्गतौ दीप्तप्रहस्तौ सौम्यमालिनौ । हस्तप्रहस्तनामानौ सङ्गतौ निर्गतौ नृपौ ॥४३॥
अनापृच्छ्यापि तत्काले स्वामिनो राजते तयोः । दोषोऽपि हि गुणीभावं प्रस्तावे प्रतिपद्यते ॥४४॥
मारीचः सिंहजघनः स्वयंभूः शम्भुरुत्तमः । पृथुः पृथुबलोपेतश्चन्द्रार्कौ शुकसारणौ ॥४५॥
गजवीभत्सनामानौ वज्राक्षो[4] वज्रसन्निभः । गंभीरनिनदो नक्तो मकरः कुलिशस्वनः ॥४६॥
उग्रनादस्तथा सुन्दः निकुम्भकुम्भसन्निभः । संध्याक्षो[5] विभ्रमक्रूरो माल्यवान् खरनिस्वनः ॥४७॥
जम्बूमाली शिखावीरो दुर्द्धर्षश्च महाबलः । एते केसरिभिर्युक्तैः सामन्ता निर्ययू रथैः ॥४८॥
वज्रोदरोऽथ शक्राभः कृतान्तो विघटोदरः । महावज्ररवश्चन्द्रनखो मृत्युः सुभीषणः ॥४९॥
कुलिशोदरनामा च धूम्राक्षो मुदितस्तथा । विद्युज्जिह्वो महामाली कनकः क्रोधनध्वनिः ॥५०॥
क्षोभणो घुन्घुरुद्दामा डिण्डिडिण्डिमडम्बराः । प्रचण्डो डमरश्चण्डकुण्डहालाहलादयः ॥५१॥
व्याघ्रयुक्तैरिमैस्तुङ्गै रथैरुद्भासिताम्बरैः । अहंयवो विनिर्यातः शत्रुविध्वंसबृंहितैः ॥५२॥
विद्याकौशिकविख्याति: सर्पबाहुर्महाद्युतिः । शंखप्रशंखनामानौ रागो भिन्नाञ्जनप्रभः[6] ॥५३॥
पुष्पचूडो महारक्तो घटास्त्रः पुष्पखेचरः । अनङ्गकुसुमः कामः कामावर्तस्मरायणौ ॥५४॥
कामाग्निः कामराशिश्च कनकाभः शिलीमुखः । सौम्यवक्त्रो महाकामो हेमगौरादयस्तथा ॥५५॥
एतेऽपि वातरंहोभी रथैर्युक्तैस्तुरङ्गमैः । यथायथं विनिर्जग्मुरालयेभ्यो रवत्बलाः ॥५६॥
कदम्बविटपौ भीमो भीमनादो भयानकः । शार्दूलक्रीडितः हिंसबलाङ्को विद्युदम्बुकः ॥५७॥

बड़ी कठिनाईसे प्रियाओंको समझा-बुझा सके थे ऐसे योधा तो बाहर निकले और उनकी स्त्रियाँ व्याकुलचित्त होती हुई शय्याओंपर पड़ रहीं ॥४१॥ अथानन्तर उत्तम कीर्तिरूपी मधुरसके आस्वादनमें जिनका मन लग रहा था, जो हाथियोंके रथपर आरूढ़ थे, जिन्होंने शत्रु सेनाका शब्द सहन नहीं किया था, जिनका उत्कट प्रताप पहले ही निकल चुका था, और जो शूरवीरतासे सुशोभित थे, ऐसे हस्त और प्रहस्त नामके दो राजा लंकासे सर्वप्रथम निकले ॥४२-४३॥ यद्यपि वे दोनों स्वामीसे पूछकर नहीं निकले थे तथापि उस समय उनका स्वामीसे नहीं पूछना शोभा देता था क्योंकि अवसरपर दोष भी गुणरूपताको प्राप्त हो जाता है ॥४४॥ मारीच, सिंहजघन, स्वयम्भू, शम्भु, उत्तम, विशाल सेनासे सुशोभित पृथु, चन्द्र, सूर्य, शुक, सारण, गज, बीभत्स इन्द्रके समान कान्तिको धारण करनेवाला वज्राक्ष, गम्भीर-नाद, नक्त, वज्रनाद, उग्रनाथ, सुन्द, निकुम्भ, सन्ध्याक्ष, विभ्रम, क्रूर, माल्यवान्, खरनाद, जम्बूमाली, शिखीवीर और महाबलवान् दुर्द्धर्ष ये सब सामन्त सिंहोंसे जुते हुए रथोंपर सवार हो बाहर निकले ॥४५-४८॥ उनके पीछे वज्रोदर, शक्राभ, कृतान्त, विघटोदर, महावज्ररव, चन्द्रनख, मृत्यु, सुभीषण, वज्रोदर, धूम्राक्ष, मुदित, विद्युज्जिह्व, महामाली, कनक, क्रोधनध्वनि, क्षोभण, घुन्घु, उद्दामा, डिण्ड, डिण्डिम, डम्बर, प्रचण्ड, डमर, चण्ड, कुण्ड और हालाहल आदि सामन्त, जिनमें व्याघ्र जुते थे, जो ऊँचे थे तथा आकाशको देदीप्यमान करनेवाले थे ऐसे रथोंपर सवार हो बाहर निकले। ये सभी सामन्त महा अहंकारी तथा शत्रुनाशकी भावना रखनेवाले थे॥४९-५२॥ उनके पीछे विद्याकौशिक, सर्पबाहु, महाद्युति, शंख, प्रशंख, राग, भिन्नांजनप्रभ, पुष्पचूड, महारक्त, घटास्त्र, पुष्पखेचर, अनंगकुसुम, काम, कामावर्त, स्मरायण, कामाग्नि, कामराशि, कनकाभ, शिलीमुख, सौम्यवक्त्र, महाकाम तथा हेमगौर आदि सामन्त, वायुके समान वेगशाली घोड़ोंके रथोंमें सवार हो यथायोग्य अपने-अपने घरोंसे निकले। इन सबकी सेनाएँ प्रचण्ड शब्द कर रही थीं ॥५३-५६॥ तदनन्तर

१. -वसोढो विरलस्वनौ म. । २. प्रयाणे म. । ३. सिंहजघनः ज., ख. । ४. वज्राक्यो मे. । ५. गंभीरो निनदो म. । ६ विभ्रमः क्रूरो म., ख. । ७. -प्रभौ म. ।

ह्लादनश्चपलश्चोलश्चलश्चञ्चल आदयः । गजादिभिरिमैर्युक्तैर्निर्ययुर्भास्वरैः रथैः ॥५८॥
कियन्तः कथयिष्यन्ते नाम्ना प्राग्रहराः नराः । अभ्यर्द्धचतुरक्षौहिण्यः कुमाराणां स्मृता बुधैः ॥५९॥
विशुद्धराक्षसज्ञातीनां कुमारास्तुल्यविक्रमाः । प्रख्यातयशसः सर्वे विज्ञेया गुणमण्डनाः ॥६०॥
आवृतास्ते समुद्युक्तैः कुमारैर्मारविभ्रमाः । बलिनो मेघवाहाद्याः कुमारेन्द्रा विनिर्ययुः ॥६१॥
अर्ककीर्तिसमो भूत्या दशाननमहाप्रियः । इन्द्रजिन्निर्ययौ कान्तो जयन्त इव धीरधीः ॥६२॥
विमानमर्कसंकाशं नाम्ना ज्योतिःप्रभं महत् । कुम्भकर्णः समारूढस्त्रिशूलास्त्रो विनिर्गतः ॥६३॥
मेरुशृङ्गप्रतीकाशं लोकत्रितयविश्रुतम् । विमानं पुष्पकाभिख्यामारूढः शक्रविक्रमः ॥६४॥
संछाद्य रोदसी सैन्यैर्नानास्वरायुधपाणिभिः । निष्क्रान्तो रावणस्तिग्मकिरणप्रतिमद्युतिः ॥६५॥
स्यन्दनैर्वारणैः सिंहैर्वराहैः रुरुभिर्मृगैः । सूमरैर्विहगैश्चित्रैः सौरभेयैः क्रमेलकैः ॥६६॥
ययुर्भिन्नहिदैरन्यैर्जलस्थलसमुद्भवैः । सामन्ता निर्ययुः शीघ्रं वाहनैर्बहुरूपकैः ॥६७॥
भामण्डलं प्रतिक्रुद्धाः किष्किन्धाधिपतिं तथा । हिता राक्षसनाथाय निर्ययुः खेचराधिपाः ॥६८॥
अथ दक्षिणतो दृष्टा भयानकमहास्वनाः । प्रयाणवारणोद्युक्ता मण्डलका बद्धमण्डलाः ॥६९॥
बद्धान्धतमसा पक्षैर्गृध्रा विकृतनिस्वनाः । भ्राम्यन्ति गगने भीमाः कथयन्तो महाक्षयम् ॥७०॥
अन्येऽपि शकुनाः क्रूरं क्रन्दन्तो भयशंसिनः । बभूवुराकुलीभूता भीमा वैहायसास्तथा ॥७१॥
शौर्यातिगर्वसंमूढा विदन्तोऽप्यशुभानिमान् । महासैन्योद्धता योद्धुं रक्षोवर्गा विनिर्ययुः ॥७२॥

कदम्ब, विटप, भीम, भीमनाद, भयानक, शार्दूलविक्रीडित, सिंह, चलांग, विद्युदम्बुक, ह्लादन, चपल, चोल, चल और चंचल आदि सामन्त हाथियों आदिसे जुते हुए देदीप्यमान रथोंपर आरूढ़ होकर निकले ॥५७-५८॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! नाम ले-लेकर कितने प्रधान पुरुष कहे जावेंगे ? उस समय सब मिलाकर साढ़े चार करोड़ कुमार बाहर निकले थे ऐसा विद्वज्जन कहते हैं ॥५९॥ ये सभी कुमार विशुद्ध राक्षसवंशी, समान पराक्रमके धारी, प्रसिद्ध यशसे सुशोभित एवं गुणरूपी आभूषणोंको धारण करनेवाले थे ॥६०॥ युद्धके लिए उद्यत इन सब कुमारोंसे घिरे, कामके समान सुन्दर, महाबलवान् मेघवाहन आदि श्रेष्ठ राजकुमार भी बाहर निकले ॥६१॥ तदनन्तर जो विभूतिसे सूर्यके समान था और रावणको अतिशय प्यारा था, ऐसा धीर-वीर बुद्धिका धारक सुन्दर इन्द्रजित्, जयन्तके समान बाहर निकला ॥६२॥ त्रिशूल शस्त्रका धारी कुम्भकर्ण, सूर्यके समान देदीप्यमान ज्योतिःप्रभ नामक विशाल विमानपर आरूढ़ होकर निकला ॥६३॥ तदनन्तर जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध मेरुके शिखरके समान सुशोभित पुष्पक विमानपर आरूढ़ था, इन्द्रके समान पराक्रमी था और सूर्यके समान कान्तिका धारक था ऐसा रावण हाथोंमें नाना प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले सैनिकोंसे आकाश और पृथ्वीके अन्तरालको आच्छादित कर निकला ॥६४-६५॥ तत्पश्चात् रथ, हाथी, सिंह, सूकर, कृष्णमृग, सामान्यमृग, सांभर, नाना प्रकारके पक्षी, बैल, ऊँट, घोड़े, भैंसे आदि जलथलमें उत्पन्न हुए नाना प्रकारके वाहनोंपर सवार होकर सामन्त लोग बाहर निकले ॥६६-६७॥ जो भामण्डल और सुग्रीवके प्रति क्रुद्ध थे तथा रावणके हितकारी थे ऐसा विद्याधर राजा बाहर निकले ॥६८॥ अथानन्तर जो महाभयंकर शब्द कर रहे थे, जो प्रयाणके रोकनेमें तत्पर थे तथा जो मण्डल बाँधकर खड़े हुए थे ऐसे गीध दक्षिणकी ओर दिखाई दिये ॥६९॥ जिन्होंने अपने पंखोंसे गाढ़ अन्धकार उत्पन्न कर रखा था, जिनका शब्द अत्यन्त विकृत था तथा जो महाविनाशकी सूचना दे रहे थे ऐसे भयंकर गीध आकाशमें उड़ रहे थे ॥७०॥ इस प्रकार क्रूर शब्द करते तथा भयकी सूचना देते हुए पृथ्वी तथा आकाशमें चलनेवाले अन्य अनेक पक्षी व्याकुल हो रहे थे ॥७१॥ शूरवीरताके बहुत

---

१. ह्लादन- म. । २. राक्षसनाशाय म. ।

[illegible] तत्फलं निश्चयाप्यम् ।
शक्तो रोद्धुं नैव शक्रोऽपि लोके वार्तान्येषां केव वाङ्मात्रभाजाम् ॥७३॥
वीरा योद्धुं दत्तचित्ता महान्तो वाहारूढाः शस्त्रभाराभिहस्ताः ।
कृत्वावज्ञां वारकाणां समेषां[1] यान्त्यप्युद्ग्राही रविं प्रत्यभीताः ॥७४॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रावणबलनिर्गमनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५७॥

□

भारी गर्वसे मूढ तथा बड़ी-बड़ी सेनाओंसे उद्धत राक्षसोंके समूह यद्यपि इन अशुभ स्वप्नको जानते थे तो भी युद्ध करनेके लिए बराबर नगरीसे बाहर निकल रहे थे ॥७२॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि जब कर्मोंकी अनुकूलताका समय आता है तब देनेके योग्य समस्त पर्यायकी प्राप्ति निश्चयसे होती है उसे रोकनेके लिए लोकमें इन्द्र भी समर्थ नहीं है। फिर दूसरे प्राणियोंकी तो वार्ता ही क्या है ॥७३॥ जिनका चित्त युद्धमें लग रहा था, जो स्वयं महान् थे, वाहनोंपर सवार थे और शस्त्रोंकी कान्तिका समूह जिनके हाथमें था अथवा जिनके हाथ शस्त्रोंकी कान्तिसे सुशोभित थे ऐसे शूरवीर मनुष्य निर्भीक हो निषेध करनेवाले इन समस्त अशकुनोंकी उपेक्षा करते हुए उस प्रकार आगे बढ़े जाते थे जिस प्रकार राहु सूर्यमण्डलके प्रति बढ़ता जाता है ॥७४॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें रावणकी सेना लंकासे बाहर निकली इस बातका वर्णन करनेवाला सत्तावनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५७॥

[ ]

१. समेतं क. ।

अष्टपञ्चाशत्तमं पर्व

आस्तृण्वद्वीक्ष्य तत्सैन्यमुद्वेलमिव सागरम् । नलनीलमरुत्पुत्रजाम्बवाद्याः सुखेचराः ॥१॥
रामकार्यसमुद्युक्ताः परमोदारचेष्टिताः । महाद्विपयुतैर्दीप्तैः स्यन्दनैर्निर्ययुर्वरैः ॥२॥
सम्मानो जयमित्रश्च चन्द्राभो रतिवर्द्धनः । कुमुदावर्तसंज्ञश्च महेन्द्रो भानुमण्डलः ॥३॥
अनुद्धरो दृढरथः प्रीतिकण्ठो[1] महाबलः । समुन्नतबलः[2] सूर्यज्योतिः सर्वप्रियो बलः ॥४॥
सर्वसारश्च दुर्बुद्धिः सर्वदः सरभो भरः । अमृष्टो निर्विनष्टश्च संत्रासो विघ्नसूदनः ॥५॥
नादो वर्वरकः पापो लोलपाटनमण्डली । संग्रामचपलाद्याश्च परमा खेचराधिपाः ॥६॥
शार्दूलसंगतैस्तुङ्गै रथैः परमसुन्दरैः । नानायुधशतोपेता निर्जग्मुः पृथुतेजसः ॥७॥
प्रस्तरो हिमवान् भङ्गः प्रियरूपादयस्तथा । एते द्विपयुतैर्योद्धुं निर्ययुः सुमहारथैः[3] ॥८॥
दुःप्रेक्षः पूर्णचन्द्रश्च विधिः सागरनिःस्वनः । प्रियविग्रहनामा च स्कन्दश्चन्दनपादपः ॥९॥
चन्द्रांशुरप्रतीघातो महाभैरवकीर्तनः । दुष्टसिंहकटिः क्रुष्टः समाधिबहुलो हलः ॥१०॥
इन्द्रायुधो गतत्रासः संकटप्रहरादयः । एते हरियुतैस्तूर्णं सामन्ता निर्ययू रथैः ॥११॥
विद्युत्कर्णो बलः शीलः स्वपक्षरचनो घनः । सम्मेदो विचलः सालः कालः क्षितिवरोऽङ्गदः ॥१२॥
विकालो लोलकः कालिर्भङ्गश्चण्डोर्मिरूर्जितः । तरङ्गस्तिलकः कीलः सुषेणस्तरलो बलिः ॥१३॥
भीमो भीमरथो धर्मो मनोहरमुखः सुखः । प्रमत्तो मर्दको मत्तः सारो रत्नजटी शिवः ॥१४॥
दूषणो भीषणः कोणः विघटाख्यो विराधितः । मेरू रणखनिः क्षेमः वेलाक्षेपी महाधरः ॥१५॥
नक्षत्रलुब्धसंज्ञश्च संग्रामो विजयो जयः । नक्षत्रमालकः क्षोदः तथाऽतिविजयादयः ॥१६॥

अथानन्तर लहराते हुए सागरके समान व्याप्त होती हुई रावणकी उस सेनाको देख, श्रीरामके कार्य करनेमें उद्यत परम उदार चेष्टाओंके धारक नल, नील, हनुमान्, जाम्बव आदि विद्याधर, महागजोंसे जुते देदीप्यमान उत्तम हाथियोंसे युक्त रथोंपर सवार हो कटकसे निकले ॥१-२॥ सम्मान, जयमित्र, चन्द्राभ, रतिवर्धन, कुमुदावर्त, महेन्द्र, भानुमण्डल, अनुद्धर, दृढरथ, प्रीतिकण्ठ, महाबल, समुन्नतबल, सूर्यज्योति, सर्वप्रिय, बल, सर्वसार, दुर्बुद्धि, सर्वद, सरभ, भर, अमृष्ट, निर्विनष्ट, सन्त्रास, विघ्नसूदन, नाद, वर्वरक, पाप, लोल, पाटनमण्डल और संग्रामचपल आदि उत्तमोत्तम विद्याधर राजा व्याघ्रोंसे जुते हुए परम सुन्दर ऊँचे रथोंपर सवार हो बाहर निकले। ये सभी विद्याधर नाना प्रकार के शस्त्रोंके समूहको धारण कर रहे थे तथा विशाल तेजके धारक थे ॥३-७॥ प्रस्तर, हिमवान्, भंग तथा प्रियरूप आदि ये सब हाथियोंसे जुते उत्तम रथोंपर सवार हो युद्धके लिए निकले ॥८॥ दुष्प्रेक्ष, पूर्णचन्द्र, विधि, सागरनिःस्वन, प्रियविग्रह, स्कन्द, चन्दनपादप, चन्द्रांशु, अप्रतीघात, महाभैरव, दुष्ट, सिंहकटि, क्रुष्ट, समाधिबहुल, हल, इन्द्रायुध, गतत्रास और संकटप्रहार आदि, ये सब सामन्त सिंहोंसे जुते रथोंपर सवार हो शीघ्र ही निकले ॥९-११॥ विद्युत्कर्ण, बल, शील, स्वपक्षरचन, घन, सम्मेद, विचल, साल, काल, क्षितिवर, अंगद, विकाल, लोलक, कालि, भंग, चण्डोर्मि, ऊर्जित, तरंग, तिलक, कील, सुषेण, तरल, बलि, भीम, भीमरथ, धर्म, मनोहरमुख, सुख, प्रमत्त, मर्दक, मत्त, सार, रत्नजटी, शिव, दूषण, भीषण, कोण, विघट, विराधित, मेरु, रणखनि, क्षेम, वेलाक्षेपी, महाधर, नक्षत्रलुब्ध, संग्राम, विजय, रथ,

१. आस्तृणं ख. । २. प्रीतिकण्ठमहाबलौ ज. । ३. सूर्यः द्योतिः ज. । ४. सुमहारथाः म., ज. ।

एते वायियुतैः कान्तैर्मनोरथजवै रथैः । महासैनिकमध्यस्थैरध्यासत रणाजिरम् ॥१७॥
विद्युद्वाहो मरुद्वाहुः सानुर्जलदवाहनः । रवियानः प्रचण्डालिरिमेऽपि घनसंनिभैः ॥१८॥
महारथवरैर्नानावाहनोद्भासिताम्बरैः । युद्धश्रद्धासमायुक्ता दधावुर्मरुतैः समाः ॥१९॥
विमानमुत्तमाकारं लाभ्वा रत्नप्रभं महत् । आरूढो यत्नवानस्थात् पद्मपक्षो विभीषणः ॥२०॥
युद्धावर्तो वसन्तश्च कान्तः [1]कौमुदिनन्दनः । भूरिः कोलाहलो हेडो भावितः साधुवत्सलः ॥२१॥
अर्द्धचन्द्रो जिनप्रेमा सागरः सागरोपमः । मनोज्ञो जिनसंज्ञश्च तथा जिनमतादयः ॥२२॥
नानावर्णविमानाग्रभूमिकास्थितमूर्तयः । दुर्द्धरा निर्ययुर्योद्धुं वज्रसंनाहविग्रहाः ॥२३॥
पद्मनाभः सुमित्राजः सुग्रीवो जनकात्मजः । एते हंसविमानस्था विरेजुर्गगनान्तरे ॥२४॥
महाम्बुदप्रतीकाशा नानायानसमन्विताः । रक्षाभिमुखमुद्युक्ता गन्तुं खेचरपार्थिवाः ॥२५॥
[2]संघातलम्बिताम्भोदकृन्दनिर्घोषभैरवाः । शङ्खकोटिस्वनोन्मिश्रास्तूर्याणामुदयुः स्वनाः ॥२६॥
मम्भाभेर्यो मृदङ्गाश्च लम्पाका धुन्धुमण्डुकाः । झम्लाम्लातकहक्काश्च हुङ्कारा दुन्दुकाणकाः ॥२७॥
झर्झरा हेतुगुञ्जाश्च काहला दर्दुरादयः । समाहता महानादं मुमुचुः कर्णघूर्णकम्[3] ॥२८॥
वेणुनादाट्टहासाश्च तारा हलहलारवाः । ययुः सिंहद्विपस्वाना महिषस्यन्दनस्वनाः ॥२९॥
क्रमेलकमहारावा निनादा मृगपक्षिणाम् । उत्तस्थुः पिहिताशेषाशेषविश्वनिःस्वनाः ॥३०॥
तयोरन्योन्यमासंगे जाते परमसैन्ययोः । लोकः संशयमारूढः समस्तो जीवितं प्रति ॥३१॥
क्षोणी क्षोभं परं प्राप्ता विकम्पितमहीधरा । प्रक्षोभं गन्तुमारब्धः प्रक्षुब्धः [4]क्षारसागरः ॥३२॥

नक्षत्रमालक, क्षोद तथा अतिविजय आदि घोड़ोंसे जुते मनोहर, इच्छानुसार वेगवाले, तथा महासैनिकोंके मध्य स्थित रथोंपर सवार हो रणांगणमें पहुँचे ॥१२-१७॥ विद्युद्वाह, मरुद्वाह, सानु, मेघवाहन, रवियान और प्रचण्डालि ये सब सामन्त भी मेघोंके समान नाना प्रकारके वाहनोंसे आकाशको देदीप्यमान करनेवाले उत्तमोत्तम रथोंपर सवार हो युद्धकी अभिलाषासे दौड़े। ये सब वायुके समान तीव्र वेगवाले थे ॥१८-१९॥ जिसे रामकी पक्ष थी ऐसा यत्नवान् विभीषण रत्नप्रभ नामक उत्तम विमानपर आरूढ़ हुआ ॥२०॥ युद्धावर्त, वसन्त, कान्त, कौमुदि-नन्दन, भूरि, कोलाहल, हेड, भावित, साधुवत्सल, अर्द्धचन्द्र, जिनप्रेमा, सागर, सागरोपम, मनोज, जिनसंज्ञ तथा जिनमत आदि योद्धा युद्ध करनेके लिए बाहर निकले। ये सब नाना वर्णोंवाले विमानोंकी अग्रभूमिमें स्थित थे, दुर्धर थे और सबके शरीर कवचोंसे कसे हुए थे ॥२१-२३॥ पद्मनाभ—राम, लक्ष्मण, सुग्रीव और भामण्डल ये सब हंसोंके विमानोंमें बैठे हुए आकाशके बीचमें अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥२४॥ जो महामेघके समान जान पड़ते थे तथा नाना प्रकारके वाहनोंपर आरूढ़ थे, ऐसे विद्याधर राजा लंकाकी ओर जानेके लिए तत्पर हुए ॥२५॥ प्रलयकालीन घनघटाकी गर्जनाके समान जिनके भयंकर शब्द थे, तथा जो करोड़ों शंखोंके शब्दसे मिले हुए थे ऐसे तुरही वादित्रोंके शब्द उत्पन्न होने लगे ॥२६॥ भंभा, भेरी, मृदंग, लम्पाक, धुन्धु, मण्डुक, झम्ला, अम्लातक, हक्का, हुंकार, दुन्दुकाणक, झर्झर, हेतुगुंजा, काहल और दर्दुर आदि बाजे ताड़ित होकर कानोंको घुमानेवाले महाशब्द छोड़ने लगे ॥२७-२८॥ बाँसोंके शब्द, अट्टहासकी ध्वनि, तारा तथा हलहलाके शब्द, सिंहों और हाथियोंके शब्द, भैंसाओं और रथोंके शब्द, ऊँटोंके विशाल शब्द तथा मृग और पक्षियोंके शब्द उठने लगे। इन सबके शब्दोंने शेष समस्त संसारके शब्दोंको आच्छादित कर दिया ॥२९-३०॥ जब उन दोनों विशाल सेनाओंका परस्परमें समागम हुआ तब समस्त लोक अपने जीवनके प्रति संशयमें पड़ गये ॥३१॥ पृथिवी अत्यन्त क्षोभको प्राप्त हुई, पर्वत हिलने लगे और क्षुभित हुआ लवण समुद्र

---

१. कौमुदनन्दनः म. । २. प्रलय- म. । ३. घूर्णनम् म. । ४. लवणसमुद्रः ।

सदर्पैर्निर्गतैर्योधैरसहैर्निजवर्गतः । दन्तुरीभूतसर्वाङ्गं बलद्वयमलक्ष्यत ॥३३॥
चक्रकक्षकुन्तासिगदाशक्तिशिलीमुखैः । भिण्डिमालादिभिश्चोग्रं प्रवृत्तं युद्धमेतयोः ॥३४॥
आह्वयन्तः सुसंनद्धाः शस्त्रज्वलितबाहवः । समुत्पेतुर्भटाः शूराः परसैन्यं विवक्षवः ॥३५॥
अतिवेगसमुत्पाताः प्रविष्टाः शात्रवं बलम् । शस्त्रसंचारमार्गार्थमपसस्रुः पुनर्मनाक् ॥३६॥
लङ्कानिवासिभिर्योधैरुद्गतैरतिभूरिभिः । सिंहैरिव गजा भङ्गं नीता वानरपक्षिणः ॥३७॥
पुनरन्यैर्भटैः शीघ्रमसोढव्याः समुज्ज्वलाः । रक्षोयोधान् विनिर्जघ्नुर्भासुरा वानरध्वजाः ॥३८॥
भज्यमानं बलं दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रस्य सर्वतः । स्वामिरागसमाकृष्टौ महाबलसमावृतौ ॥३९॥
गजध्वजसमालक्ष्यौ गजस्यन्दनवर्तिनौ । मा भैष्टेति कृतस्वानौ परमोत्कटविग्रहौ ॥४०॥
हस्तप्रहस्तसामन्तावुत्थाय सुमहाजवौ । निन्यतुः परमं भङ्गं बलं वानरलक्ष्मणाम् ॥४१॥
शार्दूलमृगध्वजौ तावरक्षतार्थं बिभ्रतौ परम् । क्रोडवारणसंवृत्तवाहव्यूहमहारथौ ॥४२॥
शौर्यगर्वाधिवायुष्कशरीरौ परमद्युती । नलनीलौ परिक्रुद्धौ भीषणौ योद्धुमुद्यतौ ॥४३॥
ततो बहुविधैः शस्त्रैश्चिरं जाते महाहवे । क्रमात्प्रसाधुनिस्वाने निपतद्भटसंकटे ॥४४॥
नलेनोत्प्लुत्य हस्तो वा विह्वलो विरथीकृतः । प्रहस्त इव नीलेन कृतश्च गतजीवितः ॥४५॥
तावालोक्य ततो राजन् विपर्यस्तौ महीतले । विनायका बभूवैतद्वाहिनीयं पराङ्मुखा ॥४६॥

शोषणको प्राप्त होने लगा ॥३२॥ अपने-अपने वर्गसे निकलकर बाहर आये हुए, असहनशील, अहंकारी योद्धाओंसे व्याप्त हुई दोनों सेनाएँ अत्यन्त भयंकर दिखने लगीं ॥३३॥ कुछ ही समय बाद दोनों सेनाओंमें चक्र, कवच, कुन्त, खड्ग, गदा, शक्ति, बाण और भिण्डिमाल आदि शस्त्रोंसे भयंकर युद्ध होने लगा ॥३४॥ जो एक दूसरेको बुला रहे थे, जो कवचोंसे युक्त थे, जिनकी भुजाएँ शस्त्रोंसे देदीप्यमान हो रही थीं और जो पर-चक्रमें प्रवेश करना चाहते थे ऐसे शूरवीर योद्धा उछल रहे थे ॥३५॥ ये योद्धा अत्यन्त वेगसे उछलकर पहले तो शत्रुओंके दलमें जा चुके अनन्तर शस्त्र चलानेके योग्य मार्ग प्राप्त करनेकी इच्छासे पुनः कुछ पीछे हट गये ॥३६॥ लंका निवासी योद्धा अधिक संख्या में थे तथा अत्यधिक शक्तिशाली थे इसलिए उन्होंने वानर-पक्षके योद्धाओंको उस तरह पराजित कर दिया जिस तरह कि सिंह हाथियोंको पराजित कर देते हैं ॥३७॥ तदनन्तर शीघ्र ही जो अन्य योद्धाओंके द्वारा नहीं दबाये जा सकते थे ऐसे प्रतापी तथा देदीप्यमान वानर राजाओंने राक्षस योद्धाओंको मारना शुरू किया ॥३८॥ तत्पश्चात् रावणकी सेनाको सब ओरसे नष्ट होती देख स्वामीके प्रेमसे खिंचे तथा बड़ी भारी सेनासे घिरे हस्त और प्रहस्त नामक सामन्त उठकर आगे आये। ये हाथीके चिह्नसे सुशोभित ध्वजासे पृथक् ही जान पड़ते थे, हाथियोंके रथपर आरूढ़ थे, 'डरो मत, डरो मत' यह शब्द कर रहे थे, अत्यन्त उत्कृष्ट शरीरके धारक थे और महावेगशाली थे। इन्होंने आते ही वानरोंकी सेनामें तीव्र मार-काट मचा दी ॥३९-४१॥ यह देख जो परम प्रतापको धारण कर रहे थे, सूकर, हाथी तथा घोड़े जिनके बड़े-बड़े रथ खींच रहे थे, जो शरीरधारी शूरवीरता और गर्वके समान जान पड़ते थे, परमदीप्तिके धारक थे, अत्यन्त क्रुद्ध एवं भयंकर थे, ऐसे वानरवंशी नल और नील युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥४२-४३॥

तदनन्तर जिसमें क्रम-क्रमसे साधु-साधु बहुत अच्छा बहुत अच्छाका शब्द हो रहा था तथा जो गिरते हुए योद्धाओंसे व्याप्त था ऐसा महायुद्ध जब चिरकाल तक नाना प्रकारके शस्त्रोंसे हो चुका तब नलने उछलकर हस्तको रथ रहित तथा विह्वल कर दिया और नीलने प्रहस्तको निर्जीव बना दिया ॥४४-४५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! तदनन्तर हस्त और प्रहस्तको

१. आह्वयन्तः (?) म. ।

वंशस्थवृत्तम्

बिभर्ति तावद् दृढनिश्चयं जनः प्रभोर्मुखं पश्यति यावदुन्नतम् ।
[1]गते विनाशं स्वपतौ विशीर्यते यथारचक्रं परिशीर्णतुम्बकम् ॥४७॥

उपेन्द्रवज्रावृत्तम्

सुनिश्चितानामपि संनराणां विना प्रधानेन न कार्ययोगः ।
शिरस्यपेते हि शरीरबन्धः प्रपद्यते सर्वत एव नाशम् ॥४८॥
प्रधानसंबन्धमिदं हि सर्वं जगद्यथेष्टं फलमभ्युपैति ।
राहूपसृष्टस्य रवेर्विनाशं प्रयाति मन्दो निकरः कराणाम् ॥४९॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हस्तप्रहस्तवधाभिधानं नामाष्टपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५८॥

□

पृथ्वीपर पड़ा देख रावणकी सेना, नायकसे रहित होनेके कारण विमुख हो गयी—भाग खड़ी हुई ॥४६॥ सो ठीक ही है क्योंकि जबतक यह मनुष्य, स्वामीके ऊँचे उठे मुखको देखता रहता है तभी तक निश्चयको धारण करता है और जब अपना स्वामी नष्ट हो जाता है तब समस्त सेना जिसका पुट्ठा बिखर गया है ऐसी गाड़ीके पहियेके समान बिखर जाती है ॥४७॥ आचार्य कहते हैं कि यद्यपि निश्चित किये हुए मनुष्योंका कार्य किसी प्रधान पुरुष के बिना नहीं होता है क्योंकि शिर नष्ट हो जानेपर शरीर सब ओर से नाश ही को प्राप्त होता है ॥४८॥ प्रधानके साथ सम्बन्ध रखनेवाला यह समस्त जगत् यथेष्ट फलको प्राप्त होता है, सो ठीक ही है क्योंकि राहुके द्वारा आक्रान्त सूर्यकी किरणोंका समूह मन्द होता हुआ विनाशको ही प्राप्त होता है ॥४९॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य विरचित पद्मपुराणमें हस्त-प्रहस्तके वधका कथन करनेवाला अट्ठावनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५८॥

एकोनषष्टितमं पर्व

उवाच श्रेणिकोऽप्येवं विद्याविधिविशारदौ । हस्तप्रहस्तसामन्तौ जितपूर्वौ न केनचित् ॥१॥
महदाश्चर्यमेतन्मे साम्प्रतं तौ निहतौ कथम् । अत्र मे कारणं नाथ गणधृग्वक्तुमर्हसि ॥२॥
ततो गणधरोऽवोचच्छ्रुत[1] तत्त्वविशारदः । राजन् कर्माभिनुन्नानां जन्तूनां गतिरीदृशी ॥३॥
पूर्वकर्मानुभावेन स्थितिर्दुःकृतिनामियम् । असौ मारयिता तस्य यो येन निहितः पुरा ॥४॥
असौ मोचयिता तस्य बन्धनव्यसनादिषु । यो येन मोचितं पूर्वमनर्थे पतितो नरः ॥५॥
आसँल्लौकिकमर्यादाः प्रान्तिवेशिमकवासिनः । निःस्वाः कुटुम्बिनः स्थाने कुशस्थलकनामनि ॥६॥
इन्धकः पल्लवश्चैव तत्रैकोदरसंभवौ । [2]पुत्रदारपरिक्लिष्टौ [3]विप्रौ लाङ्गलकर्मकौ ॥७॥
सानुकम्पौ स्वभावेन साधुनिन्दापराङ्मुखौ । जैनमित्रपरिष्वङ्गाद् भिक्षादानादिसेविनौ ॥८॥
द्वितीयं निःस्वयुगलं प्रतिवेश्मोषितं तयोः । स्वभावनिर्दयं क्रूरं लौकिकोन्मार्गमोहितम् ॥९॥
[4]वण्टने राजदानस्य सजातौ कलहे सति । तावन्योन्यापराद्धार्थौ जघानान्यकुटुम्बकौ ॥१०॥
साधुदानाद्धरिक्षेत्रे जातौ सद्भोगभोजिनौ । पल्यद्वयक्षये जातौ देवलोकनिवेशिनौ ॥११॥
अधर्मपरिणामेन क्रूरौ तु प्राप्तपञ्चतौ । शशौ कालेऽरारण्ये जातौ दुःखातिसंकटे ॥१२॥
मिथ्यादर्शनयुक्तानां साधुनिन्दनकारिणाम् । प्राणिनां पापकूटानां भवत्येवेदृशी गतिः ॥१३॥

अथानन्तर राजा श्रेणिकने गौतमस्वामीसे इस प्रकार कहा कि हे भगवन् ! विद्याओंकी विधिमें निपुण जो हस्त और प्रहस्त नामक सामन्त पहले किसीके द्वारा नहीं जीते जा सके वे बड़ा आश्चर्य है कि नल और नीलके द्वारा कैसे मारे गये ? हे नाथ ! आप मेरे लिए इसका कारण कहिए ॥१-२॥ तदनन्तर श्रुत रहस्यके ज्ञाता गौतम गणधरने कहा कि हे राजन् ! कर्मोंसे प्रेरित प्राणियोंकी ऐसी ही गति होती है ॥३॥ पूर्वकर्मके प्रभावसे पापी जीवोंकी यह दशा है कि पहले जो जिसके द्वारा मारा जाता है वह उसे मारता है ॥४॥ पहले जिसने विपत्तिमें पड़े हुए जिस मनुष्यको उस विपत्तिसे छुड़ाया है वह उसे भी बन्धन तथा व्यसन-संकट आदिके समय छुड़ाता है ॥५॥ इनकी कथा इस प्रकार है कि कुशस्थल नामक नगरमें लौकिक मर्यादाको पालनेवाले कुछ दरिद्र कुटुम्बी पास-पासमें रहते थे ॥६॥ उनमें इन्धक और पल्लवक नामक दो भाई थे जो एक ही माताके उदरसे उत्पन्न थे, पुत्रों तथा स्त्रियोंके कारण क्लेशको प्राप्त रहते थे, जातिके ब्राह्मण थे, हल चलानेका काम करते थे, स्वभावसे दयालु थे, साधुओंकी निन्दासे विमुख थे, तथा अपने एक जैन-मित्रकी संगतिसे आहारदान आदि कार्योंमें तत्पर रहते थे ॥७-८॥ उन दोनोंके पड़ोसमें ही एक दूसरा दरिद्र कुटुम्बियोंका युगल रहता था जो स्वभावसे निर्दय था, दुष्ट था और लौकिक मिथ्या प्रवृत्तियोंसे मोहित रहता था ॥९॥ एक बार राजाकी ओरसे जो दान बँटता था उसमें कलह हो गयी जिससे अत्यन्त क्रूर परिणामोंके धारक उन दरिद्र कुटुम्बियोंके द्वारा इन्धक और पल्लवक मारे गये ॥१०॥ मुनिदानके प्रभावसे दोनों, हरिक्षेत्रमें उत्तम भोगोंको भोगनेवाले आर्य हुए। वहाँ दो पल्यकी उनकी आयु थी। उसके पूर्ण होनेपर दोनों ही देवलोकमें उत्पन्न हुए ॥११॥ दूसरे जो क्रूर दरिद्र कुटुम्बी थे वे अधर्मरूप परिणामसे मरकर दुःखोंसे परिपूर्ण कालंजर नामक वनमें खरगोश हुए ॥१२॥ सो ठीक ही है क्योंकि मिथ्यादर्शनसे युक्त तथा साधुओंकी निन्दा

---

१. श्रुण तत्त्वविशारदः म. । २. पुत्रादर- म. । ३. विद्धौ म. । ४. विभागकरणे, बन्धने म. । ५. काले जरारण्ये म. ।

ततस्तिर्यक्षु सुचिरं भ्रान्त्वा विविधयोनिषु । कृच्छ्रान्मनुष्यतां प्राप्तौ तापसत्वमुपागतौ ॥१४॥
बृहज्जटौ बृहत्कायौ फलपर्णादिभोजिनौ । तपोभिः कर्शितौ तीव्रैः कुज्ञाने द्वौ मृतौ च तौ ॥१५॥
क्रमादस्मिंजये जातावश्विन्याः कुक्षिसंभवौ । पुत्रौ वह्निकुमारस्य विजयार्द्धस्य दक्षिणे ॥१६॥
आशुकाराऽसुराकाराविमौ जगति विश्रुतौ । हस्तप्रहस्तनामानौ सचिवौ रक्षसां विभोः ॥१७॥
पूर्वौ तु प्रच्युतौ नाकात् सुमनुष्यत्वमागतौ । गृहाश्रमे तपः कृत्वा पुनर्जातौ सुरोत्तमौ ॥१८॥
पुण्यक्षयात् परिभ्रष्टौ स्वर्गादिन्धकपल्लवौ । किष्कुसंज्ञे पुरे जातौ नलनीलौ महाबलौ ॥१९॥
यत्तद्धस्तप्रहस्ताभ्यां नलनीलौ भवान्तरे । निहतौ फलमेतस्य परावृत्य तदागतम् ॥२०॥
हतवान् हन्यते पूर्वं पालकः पाल्यतेऽधुना । [2]औदासीन्यमुदासीने जायते प्राणधारिणाम् ॥२१॥
यं वीक्ष्य जायते कोपो दुष्टकारणवर्जितः । निःसंदिग्धं परिज्ञेयः स रिपुः पारलौकिकः ॥२२॥
यं वीक्ष्य जायते चित्तं प्रह्लादि सह चक्षुषा[3] । असंदिग्धं सुविज्ञेयो मित्रमन्यत्र जन्मनि ॥२३॥
क्षुब्धोर्मिणि जले सिन्धोः [4]शीर्णपोतं क्षपादयः । स्थले म्लेच्छाश्च बाधन्ते पापदुःकृतजं फलम् ॥२४॥
मत्तैर्गिरिनिभैर्नागैर्यंबैर्बहुविधायुधैः । सुवेगैर्वाजिभिर्दृप्तैर्भृत्यैश्च कवचावृतैः ॥२५॥
विग्रहेऽविग्रहे वापि निःप्रमादस्य संततम् । जन्तोः स्वपुण्यहीनस्य रक्षा नैवोपजायते ॥२६॥
निस्तमपि [5]निर्यन्तं यत्र तत्र [6]स्थितं परम् । तपोदानानि रक्षन्ति न वेदा न च बान्धवः ॥२७॥

करनेवाले पापी प्राणियों की ऐसी ही गति होती है ॥१३॥ तदनन्तर तिर्यंचोंकी नाना योनियोंमें चिरकाल तक भ्रमण कर दोनों बड़ी कठिनतासे मनुष्य पर्याय प्राप्त कर तापस हुए ॥१४॥ वहाँ वे बड़ी-बड़ी जटाएँ रखाये हुए थे, डील-डौलके विशाल थे, फल तथा पत्ते आदिका भोजन करते थे और तीव्र तपस्यासे दुर्बल हो रहे थे। मिथ्याज्ञानके समय ही दोनोंकी मृत्यु हुई ॥१५॥ दोनों ही मरकर विजयार्ध पर्वतके दक्षिणमें वह्निकुमार विद्याधरकी अश्विनी नामा स्त्रीकी कुक्षिसे दो पुत्र हुए ॥१६॥ ये दोनों ही शीघ्रतासे कार्य करनेवाले असुरोंके समान आकारके धारक थे, जगत्में अतिशय प्रसिद्ध थे तथा आगे चलकर रावणके हस्त, प्रहस्त नामक मन्त्री हुए थे ॥१७॥ पहले जिनका कथन कर आये हैं ऐसे इन्धक और पल्लवक स्वर्गसे च्युत होकर उत्तम मनुष्य पर्यायको प्राप्त हुए। तदनन्तर गृहस्थाश्रममें ही तपकर दोनों उत्तम देव हुए ॥१८॥ फिर पुण्यका क्षय होनेसे स्वर्गसे च्युत हो किष्कु नामक नगरमें महाबलके धारक नल और नील हुए ॥१९॥ हस्त और प्रहस्तने भवान्तरमें जो नल और नीलको मारा था इसका फल लौटकर इस भवमें उन्हींको प्राप्त हुआ अर्थात् उनके द्वारा वे मारे गये ॥२०॥ पूर्वभवमें जो जिसे मारता है वह इस भवमें उसके द्वारा मारा जाता है, पूर्वभवमें जो जिसकी रक्षा करता है वह इस भवमें उसके द्वारा रक्षित होता है तथा पूर्वभवमें जो जिसके प्रति उदासीन रहता है वह इस भवमें उसके प्रति उदासीन रहता है ॥२१॥ जिसे देखकर अकारण क्रोध उत्पन्न होता है उसे निःसन्देह परलोक सम्बन्धी शत्रु जानना चाहिए ॥२२॥ और जिसे देखकर नेत्रोंके साथ-साथ मन आह्लादित हो जाता है उसे निःसन्देह पूर्वभवका मित्र जानना चाहिए ॥२३॥ समुद्रके लहराते जलमें जर्जर नाववाले मनुष्यको जो मगर, मच्छ आदि बाधा पहुँचाते हैं तथा स्थलमें म्लेच्छ पीड़ा पहुँचाते हैं वह सब पापकर्मका फल है ॥२४॥ पर्वतोंके समान मदोन्मत्त हाथियों, नाना प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले योद्धाओं, तीव्र वेगके धारक घोड़ों एवं कवच धारण करनेवाले अहंकारी भृत्योंके साथ युद्ध हो अथवा नहीं हो और आप स्वयं सदा प्रमादरहित सावधान रहे तो भी पुण्यहीन मनुष्यकी रक्षा नहीं होती ॥२५-२६॥ इसके विपरीत पुण्यात्मा मनुष्य जहाँसे हटता है, जहाँसे बाहर निकलता है

१. आशुकारशराकाशौ अ. स., आशुकारसुराकारौ क. । २. उदासीन- म. । ३. चक्षुषाम् म. । ४. शीर्णं पोतं म. । ५. नियतं म. । ६. स्थिरं म. ।

दृश्यते बन्धुमध्यस्थ पित्राप्यालिङ्गितो धनी । म्रियमाणोऽतिशूरश्च कोऽन्यः शक्तोऽभिरक्षितुम् ॥२८॥
पात्रदानैः व्रतैः शीलैः सम्यक्त्वपरिशोषितैः । विग्रहेऽविग्रहे वापि रक्ष्यते रक्षितैर्नरः ॥२९॥
दयादानादिना येन धर्मो नोपार्जितः पुरा[1] । जीवितं चेष्यते दीर्घं वाञ्छा तस्यातिनिःफला ॥३०॥
न विनश्यन्ति कर्माणि जनानां तपसा विना ।
इति ज्ञात्वा क्षमा कार्या विपश्चिच्छिरसिष्वपि ॥३१॥

दोधकवृत्तम्

एष ममोपकरोति सुचेताः दुष्टतरोऽपकरोति ममायम् ।
बुद्धिरियं निपुणा न जनानां कारणमत्र निजार्जितकर्म ॥३२॥
इत्यधिगम्य विचक्षणमुख्यैर्बाह्यसुखासुखगौणनिमित्तैः ।
रागतरं कलुषं च निमित्तं कृत्स्नमपोज्झितकुत्सितचेष्टैः ॥३३॥
भूविवरेषु निपातसुपैति ग्रावणि सज्जति गच्छति सर्पम् ।
संतमसा पिहिते पथि नेत्री नो रविणा जनितप्रकटत्वे ॥३४॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हस्तप्रहस्तनलनीलपूर्वभवानुकीर्तनं नामैकोनषष्टितमं पर्व ॥५९॥

❑

अथवा जहाँ स्थिर रहता है वहाँ तप तथा दान ही उसकी रक्षा करते हैं, यथार्थमें न देव रक्षा करते हैं और न भाई-बन्धु ही ॥२७॥ देखा जाता है कि जो भाई-बन्धुओंके मध्यमें स्थित है, पिता जिसका आलिंगन कर रहा है, जो धनी और अत्यन्त शूरवीर है वह भी मृत्युको प्राप्त होता है, कोई दूसरा पुरुष उसकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होता है ॥२८॥ युद्ध हो चाहे न हो सम्यग्दर्शनके साथ-साथ अच्छी तरह पाले हुए पात्रदान, व्रत तथा शील ही इस मनुष्यकी रक्षा करते हैं ॥२९॥ जिसने पूर्व पर्यायमें दया, दान आदि के द्वारा धर्मका उपार्जन नहीं किया है और फिर भी दीर्घ जीवनकी इच्छा करता है सो उसकी वह इच्छा अत्यन्त निष्फल है ॥३०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि 'तपके बिना मनुष्योंके कर्म नष्ट नहीं होते' यह जानकर विज्ञ पुरुषोंको शत्रुओंपर भी क्षमा करनी चाहिए ॥३१॥ यह उत्तम हृदयका धारक पुरुष मेरा उपकार करता है और यह अतिशय दुष्ट मनुष्य मेरा अपकार करता है। लोगोंको ऐसा विचार करना अच्छा नहीं है क्योंकि इसमें अपने ही द्वारा अर्जित कर्म कारण हैं ॥३२॥ ऐसा जानकर जिन्होंने सुख-दुःखके बाह्य निमित्तोंको गौण कर खोटी चेष्टाओंका परित्याग कर दिया है ऐसे श्रेष्ठ विद्वानोंको निमित्त कारणोंमें तीव्र राग अथवा दोष नहीं करना चाहिए ॥३३॥ गाढ़ अन्धकारके द्वारा आच्छादित मार्ग जब सूर्यके द्वारा प्रकाशित हो जाता है तब नेत्रवान् मनुष्य न तो पृथ्वीके गड्ढोंमें गिरता है, न पत्थर-पर टकराता है और न सर्प ही को प्राप्त होता है ॥३४॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्यकथित पद्मपुराणमें हस्त-प्रहस्त और नल-नीलके पूर्वभवोंका वर्णन करनेवाला उनसठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५९॥

❑

---

१. पुरः म. ।

षष्टितमं पर्व

हस्तप्रहस्तसद्वीरौ विज्ञाय निहतौ ततः । अन्येद्युरुद्धुरक्रोधा बहवो योद्धुमुद्यताः ॥१॥
मारीचः सिंहजघनः स्वयंभुः शम्भुरूर्जितः । शुकसारणचन्द्रार्कजगद्वीभत्सनिःस्वनाः ॥२॥
ज्वरोग्रनक्रमकरा वज्राक्षोद्याम[1]निष्ठुराः । गंभीरनिनदाश्चाश्च संनद्धा रभसान्विताः ॥३॥
सिंहसंवृद्ध[2]वाहोद्यस्यन्दनार्पितमूर्तयः । क्षोभयन्तः परिप्राप्ताः कपिकेतुबलस्थिनीम् ॥४॥
तान् समापततो दृष्ट्वा राक्षसान् पार्थिवाग्रान् । इमे वानरवंशाग्राः पार्थिवा योद्धुमुद्यताः ॥५॥
मदनाङ्कुरसंतापप्रस्थिताक्रोशनन्दनाः । दुरितानघपुष्पास्त्रविघ्नप्रीतिकरादयः ॥६॥
अन्योन्याहूतमेतेषाममवत् परमं रणम् । कुर्वद्भिर्जटिलं व्योम शस्त्रैर्बहुविधैर्घनम् ॥७॥
अभिलष्यति संतापो मारीचं समरे तदा । प्रथितः सिंहजघनमुद्यानं विघ्नसंज्ञकः ॥८॥
आक्रोशः सारणं पापः शुकार्क[4] नन्दनो ज्वरम् । नेत्रैः स्पर्द्धावतामेवं युद्धं जातं नियन्त्रितम् ॥९॥
ततः क्लिष्टेन संतापो मारीचेन निपातितः । नन्दनेन हतः कृच्छ्राज्ज्वरः कुन्तेन वक्षसि ॥१०॥
प्रथितः सिंहकटिना विघ्नश्चोद्दामकीर्तिना । हतोऽथ युद्धसंहारः सवितास्तं समागमत् ॥११॥
श्रुत्वा स्वं स्वं हतं नाथं निमग्नाः शोकसागरे । स्त्रियो विभावरीमेतामनन्तामिव मेनिरे ॥१२॥
अन्येद्युः संततक्रोधाः सामन्ता योद्धुमुद्यताः । वज्राख्यः[5] क्षपितारिश्च मृगेन्द्रदमनो विधिः ॥१३॥
शम्भुः स्वयंभुश्चन्द्रार्कास्तथा वज्रोदरादयः । राक्षसाधिपवर्गीयास्तेभ्योऽन्ये वानरध्वजाः ॥१४॥

अथानन्तर हस्त और प्रहस्त वीरोंको मरा सुन दूसरे दिन उत्कट क्रोधसे भरे बहुत-से योद्धा युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥१॥ जिनके कुछ नाम इस प्रकार हैं—मारीच, सिंहजघन, स्वयम्भू, शम्भु, अजित, शुक, सारण, चन्द्र, अर्क, जगद्वीभत्स, निःस्वन, ज्वर, उग्र, नक्र, मकर, वज्राख्य, उद्याम, निष्ठुर और गम्भीर, निनद आदि। ये सभी योद्धा कवच धारण कर युद्धके लिए तैयार थे, वेगसे सहित थे, सिंहों और परिपुष्ट घोड़ोंसे जुते हुए रथोंपर आरूढ़ थे तथा वानर-वंशियोंकी सेनाको क्षोभित करते हुए आ पहुँचे ॥२-४॥ उन राक्षसवंशी उत्तमोत्तम राजाओंको आते देख वानरवंशके प्रधान राजा युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥५॥ इनमें-से कुछके नाम इस प्रकार हैं—मदन, अंकुर, सन्ताप, प्रस्थित, आक्रोश, नन्दन, दुरित, अनघ, पुष्पास्त्र, विघ्न और प्रीतिकर आदि ॥६॥ आकाशको अत्यन्त जटिल करनेवाले नाना प्रकारके शस्त्रोंसे दोनों पक्षके लोगोंका एक दूसरेको ललकार-ललकारकर भयंकर युद्ध हुआ ॥७॥

उस समय युद्धमें सन्ताप, मारीचको चाह रहा था; प्रथित, सिंहजघनको; विघ्न, उद्यामको; आक्रोश, सारणको; पाप, शुकको और नन्दन, ज्वरको; देख रहा था। इस प्रकार स्पर्धासे भरे हुए इन सब योद्धाओंका विकट युद्ध हुआ ॥८-९॥ तदनन्तर क्लेशसे भरे हुए मारीचने सन्तापको गिरा दिया। नन्दनने वक्षःस्थलमें भालेका प्रहार कर बड़े कष्टसे ज्वरको मार डाला ॥१०॥ सिंह-जघनने प्रथितको और उद्यामने विघ्नको मार गिराया। तदनन्तर सूर्य अस्त हुआ और उस दिनके युद्धका उपसंहार हुआ ॥११॥ अपने-अपने पतिको मरा सुन स्त्रियाँ शोकरूपी सागरमें निमग्न हुईं और उस रात्रिको अनन्त—बहुत भारी मानने लगीं ॥१२॥

तदनन्तर दूसरे दिन तीव्र क्रोधसे भरे वज्राख्य, क्षपितारि, मृगेन्द्रदमन, विधि, शम्भु, स्वयम्भु, चन्द्र, अर्क तथा वज्रोदर आदि राक्षस पक्षके और उनसे भिन्न दूसरे वानर पक्षके योद्धा

१. वज्राक्षो द्याति निष्ठुराः म., क.; वज्राक्षोद्यानिष्ठुराः ज., क.। २. संवृत्त- ज.। ३. क्रोध- ज.। ४. शुकार्कौ म.। ५. वज्राक्षः म.।

जन्मान्तरार्जितक्रोधकर्मबन्धोदयेन ते । योद्धुं परममासक्ता निजजीवितनिस्पृहाः ॥१५॥
क्षपितारिः समाहूतः संक्रोधेन महाभुजः । मृगारिदमनो बलिना संहूतो बाहुशालिना ॥१६॥
विधिर्वितापिनाऽन्योन्यमेवं जाते महाहवे । भटेष्वज्ञातसंख्येषु निपतत्सूपलेष्विव ॥१७॥
शार्दूलस्ताडितः पूर्वं वज्रोदरमताडयत् । सक्रोधं सुचिरं युद्धं क्षपितारिमारयत् ॥१८॥
विशालद्युतिनामा च शम्भुना विनिपातितः । मृत्युं स्वयंभुवः नीतो विजयो यष्टिताडितः ॥१९॥
वितापिर्विधिना भस्त्रो गदाघातेन कृच्छ्रतः । सामन्तैरिति हन्यन्ते सामन्ताः शतशस्तदा ॥२०॥
अवसीदत्ततो दृष्ट्वा स्वं किष्किन्धपतिर्बलम् । परमक्रोधसंभारो यावत्संनद्धुमुद्यतः[1] ॥२१॥
अञ्जनातनयस्तावत्तस्यसैन्येन युग्महीम् । व्याप्तो रथं हेममारुहो योद्धुमुद्यतौ ॥२२॥
रक्षःसामन्तसंघातो दृष्ट्वैव पवनात्मजम् । गवामिव गणो भ्रान्तस्त्रस्तः केशरिदर्शनात् ॥२३॥
ऊचुश्च राक्षसाः सोऽयं हनूमान् वानरध्वजः । अद्यैव विधवा योषाः परं कर्त्तुः करिष्यति ॥२४॥
माली तस्याग्रतो भूतो युद्धार्थी राक्षसोत्तमः । समुद्धृत्य शरं तस्य पुरो घातिरजायत ॥२५॥
तयोरभूत्महद्युद्धं शरैराकर्णसंहितैः । उपास्तसाधुनिस्वानं क्रमेण परमोद्धतम् ॥२६॥
सचिवाः सचिवैः सार्धं रथिनो रथिभिस्तथा । सादिनो सादिभिः सत्रा लग्ना युक्तरणोद्यताः ॥२७॥
मालिनं नष्टमालोक्य शक्त्या पवनजन्मनः । वज्रोदरोऽभवत्तस्य पुरः परमविक्रमः ॥२८॥
चिरंकृतरणोऽप्यायं घातिना विरथीकृतः । रथमन्यं समारुह्य मारुतिं समधावत ॥२९॥
कृत्वा तं विरथं भूयो मारुतिः परमोदयः । उपर्यवाहयत्तस्य रथं मातरिश्वसम् ॥३०॥

युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥१३-१४॥ जन्मान्तरोंमें संचित क्रोध कर्मके तीव्र उदयसे वे अपने जीवनसे निःस्पृह हो भयंकर युद्ध करनेमें जुट पड़े ॥१५॥ महाक्रोधसे भरे संक्रोधने क्षपितारिको ललकारा, भुजाओंसे सुशोभित बलीने सिंहदमनको बुलाया और वितापिने विधिको पुकारा। इस प्रकार परस्पर महायुद्ध होनेपर जिनके नामोंका पता नहीं था ऐसे अनेक योद्धा मर-मरकर ऐसे गिरने लगे मानो पत्थर ही बरस रहे हों ॥१६-१७॥ जिसपर पहले प्रहार किया गया था ऐसे शार्दूलने वज्रोदरको मारा। दीर्घकाल तक युद्ध करनेवाले संक्रोधको क्षपितारिने मार डाला ॥१८॥ शम्भुने विशालद्युतिको मार गिराया, स्वयम्भूने यष्टिकी चोटसे विजयको मृत्यु प्राप्त करा दी और विधिने गदाके प्रहारसे वितापिको बड़ी कठिनाईसे मारा था। इस प्रकार उस समय सामन्तोंके द्वारा सैकड़ों सामन्त मारे गये थे ॥१९-२०॥ तदनन्तर अपनी सेनाको नष्ट होती देख परमक्रोधसे भरा सुग्रीव जबतक कवच धारण करनेके लिए उद्यत हुआ तबतक अपनी सेनासे पृथिवीको व्याप्त करनेवाला हनुमान् हाथियोंसे जुते स्वर्णमय रथपर सवार हो युद्ध करनेके लिए उठ खड़ा हुआ ॥२१-२२॥ जिस प्रकार सिंहको देखकर गायोंका समूह भयभीत हो इधर-उधर भागने लगता है, उसी प्रकार हनुमान्‌को देख राक्षस-सामन्तोंका समूह भयभीत हो इधर-उधर भागने लगा ॥२३॥ राक्षस परस्पर कहने लगे कि यह हनुमान् आज ही अनेक स्त्रियोंको विधवाएँ कर देगा ॥२४॥ तदनन्तर युद्धका अभिलाषी राक्षसोंका शिरोमणि, माली हनुमान्‌के आगे आया सो हनुमान् भी बाण निकालकर उसके सामने जा पहुँचा ॥२५॥ कानों तक खींच-खींचकर चढ़ाये हुए बाणोंसे उन दोनोंका ऐसा महायुद्ध हुआ कि जिसमें क्रम-क्रमसे ठीक-ठीक शब्दका उच्चारण हो रहा था, तथा जो परम उद्धततासे युक्त था ॥२६॥ योग्य युद्ध करनेमें तत्पर सचिव सचिवोंके साथ, रथी रथियोंके साथ और घुड़सवार घुड़सवारोंके साथ जूझ पड़े ॥२७॥ हनुमान्‌की शक्तिसे मालीको नष्ट हुआ देख परम पराक्रमी वज्रोदर उसके सामने आया ॥२८॥ चिरकाल तक युद्ध करनेके बाद हनुमान् ने जब उसे रथरहित कर दिया तब वह दूसरे रथपर सवार हो हनुमान्‌की ओर दौड़ा ॥२९॥ परम

---

१. संनद्ध ज.।

स्यन्दनोद्वाहिनागांहिचूर्णितः स रणाजिरे । असुमत्त्वं हुतं प्राणान् हुङ्कारेणापि वर्जितः ॥३१॥
ततोऽस्यामिमुखं तस्थौ स्वपक्षक्षयकोपितः । जम्बूमालीति विख्यातो रावणस्य सुतो बली ॥३२॥
असावुत्थितमात्रश्च ध्वजं वानरलाञ्छनम् । चिच्छेद वायुपुत्रस्य चन्द्रार्द्धसदृशेषुणा ॥३३॥
केतुकल्पनहृष्टेन तस्य मारुतिना धनुः । कवचं च ततो नीतं पुराणतृणशीर्णताम् ॥३४॥
[1]ततस्तन्दरीसूनुर्वध्वाम्यं कवचं दृढम् । अताडयन्मरुत्सूनुं [2]तीक्ष्णैर्बाणैरसि सायकैः ॥३५॥
बालनीलोत्पलम्लाननालस्पर्शसमुद्भवैः । असेवत [3]स तैः सौख्यं धरणीधरधीरधीः ॥३६॥
अथास्य वायुपुत्रेण रथयुक्तं महोद्धतम् । मुक्तं सिंहशतं षष्ठीचन्द्रवक्त्रेण पत्रिणा ॥३७॥
दंष्ट्राकरालवदनैः स्फुरल्लोहितलोचनैः । तैरुत्प्लुत्य निजं सैन्यं सकलं विह्वलीकृतम् ॥३८॥
महाकल्लोलसंकाशास्तस्य सैन्यार्णवस्य ते । क्रूरनक्रसमाना वा जाताः प्रबलमूर्तयः ॥३९॥
चण्डसौदामिनीदण्डमण्डलाकारहारिणः । सैन्यमेघसमूहं ते परमं क्षोभमानयन् ॥४०॥
रणसंसारचक्रेऽसौ सैन्यलोकः समन्ततः । सिंहकर्मभिरत्यर्थंमहादुःखवशीकृतः ॥४१॥
वाजिनो वारणा मत्ता रथारोहाश्च विह्वलाः । रणव्यापारनिर्मुक्तानेकुर्दश दिशस्ततः ॥४२॥
ततो नष्टेषु सर्वेषु सामन्तेषु यथायथम् । अपश्यद्रावणं वातिदूरेऽवस्थितमग्रतः ॥४३॥
आरुह्य च रथं सिंहैर्युक्तं परमभासुरैः । अधावत्प्राणमुद्भृत्य विंशत्यर्द्धमुखं प्रति ॥४४॥

अभ्युदयके धारक हनुमान्‌ने उसे पुनः रथरहित कर दिया और उसके ऊपर वायुके समान वेगशाली अपना रथ भेज दिया ॥३०॥ जिसके लम्बी सींगवाले हाथियोंके पैरोंसे चूर-चूर होकर उसने रणांगणमें शीघ्र ही प्राण छोड़ दिये। अब हुँकारसे भी रहित हो गया ॥३१॥

तदनन्तर रावणका जम्बूमाली नामका प्रसिद्ध बलवान् पुत्र, अपने पक्षके लोगोंकी मृत्युसे कुपित हो हनुमान्‌के सामने खड़ा हुआ ॥३२॥ इसने खड़े होते ही, अर्धचन्द्र सदृश बाणके द्वारा हनुमान् की वानरचिह्नित ध्वजा छेद डाली ॥३३॥ तदनन्तर ध्वजाके छेदसे हर्षित हुए हनुमान्‌ने उसके धनुष और कवचको जीर्ण तृणके समान जर्जरताको प्राप्त करा दी अर्थात् उसका धनुष और कवच दोनों ही तोड़ दिये ॥३४॥ तदनन्तर मन्दोदरीके पुत्र जम्बूमालीने तत्काल ही दूसरा मजबूत कवच धारण कर तीक्ष्ण बाणों द्वारा हनुमान्‌के वक्षःस्थलपर प्रहार किया ॥३५॥ सो पहाड़के समान अत्यन्त धीर बुद्धिको धारण करनेवाले हनुमान्‌ने उन बाणोंसे ऐसे सुखका अनुभव किया मानो बाल नीलकमलके मुरझाये हुए नालोंके स्पर्शसे उत्पन्न हुए सुखका ही अनुभव कर रहा हो ॥३६॥ तदनन्तर हनुमान्‌ने षष्ठीके चन्द्रमाके समान कुटिल बाणके द्वारा जम्बूमालीके रथमें जुते हुए महा उद्धत सौ सिंह छोड़ दिये अर्थात् एक ऐसा बाण चलाया कि उससे जम्बूमालीके रथमें जुते सौ सिंह छूट गये ॥३७॥ जिनके मुख दाढ़ोंसे भयंकर थे तथा लाल-लाल आँखें चमक रही थीं ऐसे उन सिंहोंने उछलकर अपनी समस्त सेनाको विह्वल कर दिया ॥३८॥ उस सेनारूपी सागरके मध्यमें वे सिंह बड़ी-बड़ी तरंगोंके समान जान पड़ते थे अथवा अतिशय बलवान् क्रूर मगर-मच्छोंके समान दिखाई देते थे ॥३९॥ चमकते हुए विद्युद्दण्डके समूहका आकार धारण करनेवाले उन सिंहोंने सेनारूपी मेघोंके समूहको अत्यन्त क्षोभ प्राप्त कराया था ॥४०॥ युद्धरूपी संसारचक्रके बीचमें सैनिकरूपी प्राणी, सिंहरूपी कर्मोंके द्वारा सब ओरसे अत्यन्त दुःखी किये गये थे ॥४१॥ घोड़े, मदोन्मत्त हाथी और रथोंके सवार—सभी लोग विह्वल हो युद्ध सम्बन्धी कार्य छोड़ दशों दिशाओंमें भागने लगे ॥४२॥ तदनन्तर यथायोग्य रीतिसे सब सामन्तोंके भाग जानेपर हनुमान्‌ने कुछ दूर सामने स्थित रावणको देखा ॥४३॥

तदनन्तर वह अत्यन्त देदीप्यमान सिंहोंसे युक्त रथपर सवार हो बाण खींचकर रावणकी

---

१. मन्दोदरीपुत्रः । २. तीक्ष्णं म. । ३. शतैः म. । ४. इत्यर्थमहादुःख—म. ।

दशास्यत्रासितं वीक्ष्य निजं केसरिभिर्बलम् । समीपं वाञ्जनासूनुं कृतान्तमिव दुर्धरम् ॥४५॥
चक्रे योद्धुमभिप्रायं यावत्संनाहतत्परः । तावन्महोदरोऽभ्यान्ते संरम्भेण[1] समुत्थितौ ॥४६॥
महोदरस्य च वातेश्च वर्त्तते यावदाहवः । तावत्ते हरयः प्राज्ञैर्गृहीताः स्वामिभिः शनैः ॥४७॥
वशीभूतेषु सिंहेषु जाता संतो महारुषः । वायुपुत्रं समुत्पेतुः समस्ता राक्षसध्वजाः ॥४८॥
[2]तथाप्यनिलसूनुस्तान् मुञ्चतः शरसंहतीः । दधार मण्डलीभूतान् पतत्रिसचिवैः कृती ॥४९॥
ते शिलीमुखसंघाताः प्रहितास्तस्य राक्षसैः । संयतस्य यथाऽऽक्रोशा मानवस्कम्पकारिणः ॥५०॥
रक्षोभिर्वेष्टितं दृष्ट्वा तैस्तमतिमूरिभिः । इमे वानरवर्गीणाः समराय समुत्थयुः ॥५१॥
सुषेणो नलनीलौ च प्रीतिंकरो विराधितः । संत्रासकी[3] हरिकटिः सूर्यज्योतिर्महाबलः ॥५२॥
जाम्बूनदसुताद्याश्च सिंहेभाश्वयुतैः रथैः । कृच्छ्राद्रावणसैन्यस्य निवारयितुमुद्यताः ॥५३॥
तैः समापतितैः सैन्यं दशग्रीवस्य सर्वतः । परीषहैरिव ध्वस्तं महातुच्छस्य संयमम् ॥५४॥
आरभीयानाकुलान् दृष्ट्वा युयुत्सुं च दशाननम् । आदित्यश्रवणो योद्धुमुद्गतो सुमहाबलः ॥५५॥
दृष्ट्वा समुद्गतं वीरं ज्वलन्तं रणतेजसा । सुषेणादीनिमे प्रापुः साधारयितुमाकुलाः ॥५६॥
[4]चन्द्ररश्मिर्जयस्कन्दश्चन्द्राभो रतिवर्धनः । अंगोऽङ्गदश्च संमेदः कुमुदः शशिमण्डलः ॥५७॥
बलिश्चण्डतरङ्गश्च सारो रत्नजटी जयः । वेलाक्षेपी वसन्तश्च तथा कोलाहलादयः ॥५८॥
ततस्ते बहुबलत्वेन प्रवीराः पद्मपक्षिणः । लग्ना महाहवं कर्तुं शत्रुसामन्तदुःसहम् ॥५९॥

ओर दौड़ा ॥४४॥ अपनी सेनाको सिंहोंके द्वारा त्रासित तथा यमराजके समान दुर्धर हनुमान्‌को पास आया देख, कवच आदि धारण करनेमें तत्पर रावणने ज्योंही युद्धका विचार किया त्योंही उसके पास बैठा महोदर क्रोधपूर्वक उठ खड़ा हुआ ॥४५-४६॥ इधर जबतक महोदर और हनुमान्‌का युद्ध होता है तबतक वे छूटे हुए सिंह धीरे-धीरे बुद्धिमान् स्वामियोंके द्वारा पकड़ लिये गये ॥४७॥ सिंहोंके वशीभूत होनेपर जिनका तीव्र क्रोध बढ़ रहा था ऐसे समस्त राक्षस यद्यपि पवनपुत्रपर टूट पड़े ॥४८॥ तथापि अतिशय कुशल हनुमान्‌ने, बाणसमूहको छोड़नेवाले उन समस्त राक्षसोंको बाणरूपी मन्त्रियोंके द्वारा रोक लिया ॥४९॥ जिस प्रकार दुर्जन मनुष्योंके द्वारा कहे हुए दुर्वचन संयमी मनुष्यके कम्पन उत्पन्न करनेवाले नहीं होते उसी प्रकार राक्षसोंके द्वारा छोड़े हुए बाणोंके समूह हनुमान्‌के कम्पन उत्पन्न करनेवाले नहीं हुए अर्थात् धीरवीर हनुमान्, राक्षसोंके बाणोंसे कुछ भी विचलित नहीं हुआ ॥५०॥

तदनन्तर हनुमान्‌को बहुत-से राक्षसोंके द्वारा घिरा देख वानर पक्षके ये योद्धा युद्धके लिए उद्यत हुए ॥५१॥ सुषेण, नल, नील, प्रीतिंकर, विराधित, सन्त्रासक, हरिकटि, सूर्यज्योति, महाबल और जाम्बूनदके पुत्र आदि। ये सब सिंह, हाथी और घोड़ोंसे जुते हुए रथोंपर सवार हो बड़ी कठिनाईसे रावणकी सेनाको रोकनेके लिए उद्यत हुए ॥५२-५३॥ जिस प्रकार किसी अत्यन्त तुच्छ पुरुषके द्वारा धारण किया हुआ व्रत परिषहोंके द्वारा ध्वस्त—नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है उसी प्रकार सब ओरसे आते हुए वानरपक्षके योद्धाओंसे रावणकी सेना ध्वस्त हो गयी ॥५४॥ अपने पक्षके लोगोंको व्याकुल देख रावण युद्ध करनेका अभिलाषी हुआ, सो उसे देख महाबलवान् भानुकर्ण (कुम्भकर्ण) युद्ध करनेके लिए उठा ॥५५॥ रणके तेजसे देदीप्यमान वीर भानुकर्णको उठा देख, ये लोग सुषेण आदिको सहारा देनेके लिए पहुँचे ॥५६॥ चन्द्ररश्मि, जयस्कन्द, चन्द्राभ, रतिवर्धन, अंग, अंगद, सम्मेद, कुमुद, चन्द्रमण्डल, बलि, चण्डतरंग, सार, रत्नजटी, जय, वेलाक्षेपी, वसन्त, तथा कोलाहल आदि ॥५७-५८॥ ये सब राम पक्षके अत्यन्त बलवान् योद्धा, ऐसा महायुद्ध करने

१. सक्रोधेन म.। २. सूनोश्च म.। ३. संत्राहको हरिकोटिः म.। ४. इन्द्ररश्मि म, क.। ५. शत्रुणामतिदुःसहम् म.।

क्षुब्धेन कुम्भकर्णेन ततस्ते रणपामनाः । विद्यया स्वापिताः सर्वे दर्शनावरणीजया ॥६०॥
निद्राघूर्णितनेत्राणां तेषां शस्त्रावसंगिनाम् । करेभ्यः सायकाः पेतुः शिथिलेभ्यः समन्ततः ॥६१॥
निद्राविद्राणसंग्रामानेतान्व्यक्तचेतनान् । दृष्ट्वाऽमुञ्चत सुग्रीवो विद्यां द्राक्प्रतिबोधिनीम् ॥६२॥
प्रतिबुद्धास्तया तेऽथ सुतरां जातते जसः । हनूमदादयो योद्धुं प्रवृत्ताः संकुलं परम् ॥६३॥
शालाकेसरिचिह्नानां बलमत्यर्थपुष्कलम् । छत्रासिपत्रसंकीर्णमच्छिन्नरणलालसम् ॥६४॥
स्पर्द्धमानं समालोक्य क्षुब्धसागरसंनिभम् । अवस्थां च [1]स्वबाहिन्याः परिम्लानामसुन्दरीम् ॥६५॥
[3]उत्सेहे रावणो योद्धुं प्रणम्य च समिन्द्रजित् । कृताञ्जलिरिदं वाक्यमभाषत महाधृतिः ॥६६॥
तात तात न ते युक्तं संग्रामं मयि तिष्ठति । निष्फलत्वं हि मे जन्म सत्येवं प्रतिपद्यते ॥६७॥
नखच्छेद्ये तृणे किं वा परशोरुचिता गतिः । ततो मम सुविश्रब्धः करोम्येष तवेप्सितम् ॥६८॥
इत्युक्त्वा मुदितोऽत्यन्तमारुह्य गिरिसंनिभम् । त्रैलोक्यकण्टकाभिख्यं गजेन्द्रं [4]परमप्रियम् ॥६९॥
गृहीतादरसर्वस्वो महामन्त्रिसंगतः । ऋद्ध्याखण्डलसंकाशः प्रवीरो योद्धुमुद्यतः ॥७०॥
कपिध्वजबलं तेन विविधायुधसंकटम् । प्रस्तमुत्थितमात्रेण महाधीर्येण मानिना ॥७१॥
किष्किन्धाधिपतेः सैन्ये न सोऽस्ति कपिकेतनः । यो न शक्रजिता विद्धः शरैराकर्णसंहितैः ॥७२॥
किमयं शक्रजिन्नायं शक्रो वह्निरयं नु किम् । उतायमपरो भानुरिति वाचः समुद्ययुः ॥७३॥

लगे कि जो शत्रु-सामन्तोंको अत्यन्त दुःसह था ॥५९॥ तदनन्तर रणकी खाजसे युक्त उन सब वीरोंको क्रोधसे भरे भानुकर्णने निद्रा नामा विद्याके द्वारा सुला दिया ॥६०॥ तत्पश्चात् निद्रासे जिनके नेत्र घूम रहे थे ऐसे शस्त्रोंको धारण करनेवाले उन वीरोंके हाथ सब ओरसे शिथिल पड़ गये तथा उनसे अस्त्र-शस्त्र नीचे गिरने लगे ॥६१॥ निद्राके कारण जिनका युद्ध बन्द हो गया था तथा जिनकी चेतना अव्यक्त हो चुकी थी ऐसे उन सबको देख सुग्रीवने शीघ्र ही प्रतिबोधिनी नामकी विद्या छोड़ी ॥६२॥ तदनन्तर उस विद्याके प्रभावसे प्रतिबुद्ध होनेके कारण जिनका तेज अत्यन्त बढ़ गया था ऐसे हनुमान् आदि वीर अत्यन्त भयंकर युद्ध करनेके लिए प्रवृत्त हुए ॥६३॥ वानरवंशियोंकी वह सेना बहुत बड़ी थी, छत्र, खड्ग तथा वाहनोंसे व्याप्त थी, उसकी युद्धकी लालसा समाप्त नहीं हुई थी, उत्तरोत्तर स्पर्धा करनेवाली थी, और क्षोभको प्राप्त हुए सागरके समान जान पड़ती थी। इसके विपरीत रावणकी सेनाकी दशा अत्यन्त अशोभनीय हो रही थी सो वानरवंशियोंकी सेना तथा अपनी सेनाकी दशा देख रावण युद्धके लिए उत्साही हुआ सो महादीप्तिका धारक इन्द्रजित् प्रणाम कर तथा हाथ जोड़कर यह कहने लगा कि ॥६४-६६॥ हे तात ! हे तात ! मेरे रहते हुए इस समय आपका युद्धके लिए तत्पर होना उचित नहीं है क्योंकि ऐसा होनेपर मेरा जन्म निष्फलताको प्राप्त होता है ॥६७॥ अरे ! जो तृण नखके द्वारा छेदा जा सकता है वहाँ परशुका प्रयोग करना क्या उचित है ? इसलिए आप निश्चिन्त रहिए आपका मनोरथ मैं पूर्ण करता हूँ ॥६८॥ इतना कहकर अत्यधिक प्रसन्नतासे भरा इन्द्रजित् पर्वतके समान त्रैलोक्यकण्टक नामक अपने परम प्रिय गजेन्द्रपर सवार होकर युद्धके लिए उद्यत हुआ। उस समय जिसने आदररूपी सर्वस्व ग्रहण किया था, ऐसा वह इन्द्रजित् महामन्त्रियोंसे सहित था, सम्पदासे इन्द्रके समान जान पड़ता था तथा अतिशय धीर-वीर था ॥६९-७०॥ उस महाबलवान् मानी इन्द्रजित्ने उठते ही नाना शस्त्रोंसे भरी वानरोंकी सेना क्षणमात्रमें ग्रस ली—दबा दी ॥७१॥ सुग्रीवकी सेनामें ऐसा एक भी वानर नहीं था जिसे इन्द्रजित्ने कान तक खिचे हुए बाणोंसे घायल नहीं किया हो ॥७२॥ उस समय लोगोंके मुखसे

---

१. मया म., क., ज.। २. स वाहिन्याः म.। ३. उत्सहे म.। ४. परमं प्रियः म.। ५. मस्थित-म.। ६. वह्निरियं म.।

प्रस्थमानं निजं सैन्यं वीक्ष्य शक्रजिता ततः । सुग्रीवः स्वयमुत्थातः प्रभामण्डल एव च ॥७४॥
तत्सटानामभूद्युद्धमन्योन्याह्वानसंकुलम् । शस्त्रान्धकारिताकाशमनपेक्षितजीवितम् ॥७५॥
[1]अश्वैरश्वाः समं लग्नाः मागा नागै रथा रथैः । निजनाथानुरागेण महोत्साहा[2] भटा भटैः ॥७६॥
जगादेन्द्रजितः क्रुद्धः किष्किन्धेशं पुरः स्थितम् । अपूर्वशस्त्रभूतेन स्वरेण गगनस्पृशा ॥७७॥
दशास्यकासनं त्यक्त्वा शाखामृगपशो त्वया । क्वाधुना गम्यते पाप मयि कोपमुपागते ॥७८॥
इन्दीवरनिभेनाद्य सायकेन तवासुना । शिरश्छिनद्मि संरक्षां कुर्वतां क्षितिगोचरी ॥७९॥
किष्किन्धेशस्ततोऽवोचत् किमेभिर्गर्जितैर्मुधा । मानस्यङ्गमिदं भग्नं तत्तु पश्य मयाधुना ॥८०॥
इत्युक्ते कोपसंभारं वहन्निन्द्रजितोऽद्भुतम् । चापमास्फालयन्नस्य समीपस्थमुपागतः ॥८१॥
शशिमण्डलसंकाशच्छत्रच्छायानुसेवितः । मुमोच शरसंघातं किष्किन्धाधिपतिं प्रति ॥८२॥
सोऽप्याकर्णसमाकृष्टान्[3] बाणान्नादोपलक्षितान् । [4]निजरक्षामहादक्षश्चिक्षेपेन्द्रजितं प्रति ॥८३॥
तेन बाणसमूहेन संततेन निरन्तरम् । जातं नभस्तलं सर्वं मूर्तियुक्तमिवापरम् ॥८४॥
मेघवाहनवीरेण प्रभामण्डलसुन्दरः । आहूतो वज्रनक्रश्च विराधितमहीभृता ॥८५॥
विराधितनरेन्द्रेण वज्रनक्रनरोत्तमः । [5]राजन् वक्षसि चक्रेण भासुरेणाभिपातितः ॥८६॥
ताडितो वज्रनक्रेण सोऽपि चक्रेण वक्षसि । विना हि प्रतिदानेन महती जायते त्रपा ॥८७॥
चक्रसंनाहनिष्पेषजन्मवह्निकणोत्करैः । चञ्चत्फुल्किास्फुलिङ्गौघपिङ्गतां गगनं गतम् ॥८८॥

इस प्रकारके वचन निकल रहे थे कि—यह इन्द्रजित् नहीं है ? किन्तु इन्द्र है ? अथवा अग्निकुमार देव है, अथवा कोई दूसरा सूर्य ही उदित हुआ है ॥७३॥ तदनन्तर अपनी सेनाको इन्द्रजित्के द्वारा दबी देख स्वयं सुग्रीव और भामण्डल युद्धके लिए उठे ॥७४॥ तत्पश्चात् उनके योद्धाओंमें ऐसा युद्ध हुआ कि जो परस्परके बुलानेके शब्दसे व्याप्त था, शस्त्रोंके द्वारा जिसमें आकाश अन्धकारयुक्त हो रहा था और जिसमें प्राणोंकी अपेक्षा नहीं थी ॥७५॥ घोड़े घोड़ोंसे, हाथी हाथियोंसे, रथ रथोंसे और अपने स्वामीके अनुरागके कारण महोत्साहसे युक्त पैदल सैनिक पैदल सैनिकोंसे भिड़ गये ॥७६॥

अथानन्तर क्रोधसे भरा इन्द्रजित् सामने खड़े हुए सुग्रीवको लक्ष्य कर अपूर्व शस्त्रभूत गगनस्पर्शी स्वरसे बोला ॥७७॥ कि अरे ! पशुतुल्य नीच वानर ! पापी ! रावणकी आज्ञा छोड़कर अब तू मेरे कुपित रहते हुए कहाँ जाता है ? ॥७८॥ आज मैं इस नील कमलके समान श्याम तलवारसे तेरा मस्तक काटता हूँ, भूमिगोचरी राम-लक्ष्मण तेरी रक्षा करें ॥७९॥ तदनन्तर सुग्रीवने कहा कि इन व्यर्थकी गर्जनाओंसे क्या लाभ है ? देख तेरा मानरूपी शिखर मैं अभी ही भग्न करता हूँ ॥८०॥ इतना कहते ही क्रोधके भारको धारण करनेवाला इन्द्रजित् अद्भुत रूपसे धनुषका आस्फालन करता हुआ सुग्रीवके समीप पहुँचा ॥८१॥ तत्पश्चात् इधर चन्द्रमण्डलके समान छत्रकी छायासे सेवित इन्द्रजित्ने सुग्रीवको लक्ष्य कर बाणोंका समूह छोड़ा ॥८२॥ उधर अपनी रक्षा करनेमें अत्यन्त चतुर सुग्रीवने भी कान तक खिंचे तथा शब्दसे युक्त बाण इन्द्रजित्की ओर छोड़े ॥८३॥ उन विस्तृत बाणोंके समूहसे निरन्तर व्याप्त हुआ समस्त आकाश ऐसा हो गया मानो मूर्तिधारी दूसरा ही आकाश हो ॥८४॥ उधरसे वीर मेघवाहनने भामण्डलको ललकारा और इधरसे राजा विराधितने वज्रनक्रको पुकारा ॥८५॥ गौतम स्वामी श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! राजा विराधितने वज्रनक्र राजाकी छातीपर देदीप्यमान चक्रकी चोट देकर उसे गिरा दिया ॥८६॥ इसके बदले वज्रनक्रने भी सँभलकर विराधितकी छातीपर चक्रका प्रहार किया सो ठीक ही है क्योंकि बदला चुकाये बिना बड़ी लज्जा उत्पन्न होती है ॥८७॥ उस समय चक्र और

१. अश्वैरश्वैः म. । २. महोत्साहभटाः म. । ३. समाकृष्यान् म. । ४. निजरक्षमहारक्ष -म. । ५. राजवक्षसि म. ।

लङ्कानाथस्य पुत्रेण निरस्त्रः सूर्यनन्दनः । कृतः संग्रामशौण्डेन संग्रामादनिवर्तकः ॥८९॥
तेनापि तस्य वज्रेण सर्वशस्त्रं निराकृतम् । पुण्यानुकूलितानां हि नैरन्तर्यं न जायते ॥९०॥
अवतीर्य ततः क्रुद्धो नागादिन्द्रजितो द्रुतम् । सिंहस्यन्दनमास्थाय पिञ्जरीकृतपुष्करम् ॥९१॥
समाहितमतिर्नानाविद्यास्त्रगतिपण्डितः । योद्धुमभ्युद्यतो बिभ्रद्रसमन्यवमिवाहवे ॥९२॥
अस्त्रं घनौघनिर्घोषं संप्रयुज्य सवारुणम् । दिशः[1] किङ्किन्धराजस्य चकारालोकवर्जिताः[2] ॥९३॥
तेनापि पवनास्त्रेण कृसकृत्यध्वजादिना । तदस्त्रं वारुणं क्वापि नीतं तूलोत्करोपमम् ॥९४॥
घनवाहनवीरोऽपि प्रभामण्डलभूभृतः । आग्नेयास्त्रनियोगेन चकार धनुरिन्धनम् ॥९५॥
तस्य स्फुलिङ्गसंसर्गादन्येषामपि चापिनाम् । धूमोद्गारानमुञ्चन्त धनूंषि भयवीक्षितम् ॥९६॥
नितान्तबहुयोद्धृणां ग्रसितप्रसनादिव । प्राणानां परमाजीर्णं धनुषां ते तदाभवन् ॥९७॥
वारुणेन ततोऽस्त्रेण स्वरितं जनकात्मजः । आग्नेयास्त्रं निराचक्रे स्वचक्रे कृतपालनः ॥९८॥
ततो मन्दोदरीसूनुश्चक्रे तं रथवर्जितम् । तथाविधमहासत्त्वमाकुलत्वविवर्जितम् ॥९९॥
प्रयोगकुशलश्चारुतमस्त्रं तामसमक्षिपत् । तेनान्धकारितं सैन्यं सर्वं जनकजन्मनः ॥१००॥
[3]स नाजानाद् द्विषं न क्ष्मां नात्मीयं न च शात्रवम् । अन्धध्वान्तपरिच्छन्नो मूर्च्छामिव समागतः ॥१०१॥

कवचकी टक्करसे जो अग्निके कण उत्पन्न हुए थे, उनके समूहसे आकाश इस प्रकार पीला हो गया मानो चमकती हुई उल्काओंके तिलगोंके समूहसे ही पीला हो रहा हो ॥८८॥ युद्ध-निपुण लंकानाथके पुत्र इन्द्रजित्ने सुग्रीवको निःशस्त्र कर दिया फिर भी वह संग्रामसे पीछे नहीं हटा ॥८९॥ प्रत्युत इसके विपरीत सुग्रीवने भी वज्रके द्वारा इन्द्रजित्के सर्वशस्त्र दूर कर दिये सो ठीक ही है क्योंकि पुण्यात्मा जीवोंके किसी कार्यमें अन्तर नहीं पड़ता ॥९०॥ तदनन्तर क्रोध से भरा इन्द्रजित् शीघ्र ही हाथीसे उतरकर आकाशको पीला करनेवाले सिंहोंके रथपर आरूढ़ हुआ ॥९१॥ तत्पश्चात् जिसकी बुद्धि स्थिर थी, जो नाना विद्यामय अस्त्र-शस्त्रोंके चलानेमें निपुण था और जो युद्धमें मानो नवीन रस धारण कर रहा था ऐसा इन्द्रजित् मायामय युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ ॥९२॥ प्रथम ही उसने मेघ-समूहके समान गर्जना करनेवाला वारुण अस्त्र छोड़कर सुग्रीवकी दिशाओंको प्रकाशसे रहित कर दिया ॥९३॥ इसके बदले सुग्रीवने भी छत्र तथा ध्वजा आदिको छेदनेवाला पवन बाण चलाया जिससे इन्द्रजित्का वारुण अस्त्र रुईके समूहके समान कहीं चला गया ॥९४॥

उधर वीर मेघवाहनने भी आग्नेय बाण चलाकर राजा भामण्डलके धनुषको ईन्धन बना दिया अर्थात् जला दिया ॥९५॥ उस धनुषके तिलगोंके सम्बन्धसे अन्य धनुषधारियोंके धनुष भी धूम छोड़ने लगे जिसे सब सेनाने बड़े भयसे देखा ॥९६॥ उन धनुषोंने अनेक योद्धाओंके प्राण ग्रसित किये थे इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो उन्हें अत्यधिक अजीर्ण हो हो गया हो ॥९७॥ तदनन्तर अपने चक्र—सेनाकी रक्षा करते हुए भामण्डलने शीघ्र ही वारुण अस्त्र छोड़कर आग्नेय अस्त्रका निराकरण कर दिया ॥९८॥ तत्पश्चात् मन्दोदरीके पुत्र मेघवाहनने उस प्रकारके महापराक्रमी एवं आकुलतासे रहित भामण्डलको रथरहित कर दिया अर्थात् उसका रथ तोड़ डाला ॥९९॥ यही नहीं प्रयोग करनेमें कुशल मेघवाहनने सुन्दर तामस बाण भी चलाया जिससे भामण्डलकी समस्त सेना अन्धकारसे युक्त हो गयी ॥१००॥ वह उस समय अन्धकारके कारण न अपने हाथी तथा पृथिवीको जान पाता था, न शत्रु सम्बन्धी हाथी तथा पृथिवी हो को जान पाता था। गाढ़ अन्धकारसे आच्छादित हुआ वह मानो मूर्च्छाको ही प्राप्त हो रहा था ॥१०१॥

---

१. दिशा म. । २. वर्जिता म. । ३. स नो जनो द्विषो न क्ष्मा म. ।

अन्धीभूतो दशास्यस्य सुतेन जनकात्मजः । विमुक्तविषधूमौघैः वेष्टितो नागसायकैः ॥१०२॥
तैरसौ व्याप्तसर्वाङ्गो विस्फुरद्भोगभासुरैः । चन्दनद्रुमसंकाशः पपात वसुधातले ॥१०३॥
एवमिन्द्रजितेनापि कृता किष्किन्धभूभृतः । अवस्थाध्वान्तनागास्त्रद्वयव्यापारकारिणा ॥१०४॥
ततो विभीषणो विद्वान् विद्यास्त्रकरणक्षमः । कृत्वा करपुटं मूर्ध्नि बभाषे पद्मलक्ष्मणौ ॥१०५॥
पद्म पद्म महाबाहो वीर लक्ष्मण लक्ष्मण । एताः पश्य दिशश्छन्नाः शरैरिन्द्रजितेरितैः ॥१०६॥
वियत्तलं धरित्री च तस्य बाणैर्निरन्तरैः । उत्पातभूतमार्गाभैरातेनेऽत्यन्तदुःखदैः ॥१०७॥
कृतौ सुग्रीवचैदेहौ निरस्त्रौ[2] नागसायकैः । बद्धौ निपातितौ भूमौ[3] मयजासुतनिःसृतैः ॥१०८॥
उदारे विजिते देवं[4] श्रीमामण्डलपण्डिते । वीरे सुग्रीवराजे च बहुविद्याधराधिपे ॥१०९॥
संघातमृत्युरस्माकमासन्नं विद्धि राघव । एतौ हि नायकावग्रावस्मत्पक्षस्य केवली ॥११०॥
एतामनायकीभूतां विद्याधरबलस्थिनीम् । पलायनोद्यतां पश्य समाश्रित्य दिशो दश ॥१११॥
आदित्यश्रवणेनासौ पश्य मारुतनन्दनः । विजित्य सुमहायुद्धे कराभ्यां बद्धविग्रहः ॥११२॥
शरजर्जरितच्छत्रकेतुकार्मुककङ्कटः । गृहीतः प्रसभं वीरः प्लवङ्गध्वजपुंगवः ॥११३॥
यावत्सुग्रीवमाचैक्यौ[5] पतितौ धरणीतले । न संभावयते क्षिप्रं रावणी रणकोविदः ॥११४॥
तावदेतौ स्वयं गत्वा निश्चेष्टावानयाम्यहम् । त्वं साधारय निर्नाथामिमां खेचरवाहिनीम् ॥११५॥
यावदेवमसौ पद्मं लक्ष्मणं चाभिभाषते । सुतातनयस्तावद् गत्वा स्वैरमलक्षितः ॥११६॥

जब भामण्डल उस तामसबाणसे अन्धा हो रहा था तब मेघवाहनने उसे विषरूपी धूमका समूह छोड़नेवाले नागबाणोंसे वेष्टित कर लिया ॥१०२॥ उठते हुए फनोंसे सुशोभित उन नागोंसे जिसका समस्त शरीर व्याप्त था और इसलिए जो चन्दन वृक्षके समान जान पड़ता था ऐसा भामण्डल पृथिवीपर गिर पड़ा ॥१०३॥ इसी प्रकार तामस और नागपाश इन दो अस्त्रोंको चलानेवाले इन्द्रजित्ने भी सुग्रीवकी दशा की अर्थात् उसे तामसास्त्रसे अन्धा कर नागपाशसे बाँध लिया ॥१०४॥

तदनन्तर विद्यामय शस्त्रोंसे युद्ध करनेमें कुशल विभीषणने हाथ जोड़ मस्तकसे लगा राम-लक्ष्मणसे कहा कि हे महाबाहो ! राम ! राम ! हे वीर ! लक्ष्मण ! लक्ष्मण ! देखो, ये दिशाएँ इन्द्रजित्के द्वारा छोड़े हुए बाणोंसे आच्छादित हो रही हैं ॥१०५-१०६॥ उत्पातकारी नागोंके समान आभावाले, अत्यन्त दुःखदायी उसके निरन्तर बाणोंसे आकाश और पृथिवी व्याप्त हो रही है ॥१०७॥ मन्दोदरीके पुत्रोंने सुग्रीव और भामण्डलको अस्त्ररहित कर दिया है, तथा अपने द्वारा छोड़े हुए नाग बाणोंसे उन्हें बाँधकर पृथिवीपर गिरा दिया है ॥१०८॥ हे देव ! अतिशय चतुर भामण्डल और अनेक विद्याधरोंके राजा वीर सुग्रीवके पराजित होनेपर हे राघव ! समझ लीजिए कि हम लोगोंकी सामूहिक मृत्यु निकटवर्ती है, क्योंकि ये दोनों ही हमारे पक्षके प्रमुख नायक हैं ॥१०९-११०॥ इधर देखो, यह विद्याधरोंकी सेना नायकसे रहित होनेके कारण दशों दिशाओंमें भागनेके लिए उद्यत हो रही है ॥१११॥ उधर देखो, कुम्भकर्णने महायुद्धमें हनुमान्को जीतकर अपने हाथोंसे उसे कैद कर रखा है ॥११२॥ जिसका छत्र, ध्वज, धनुष और कवच बाणोंसे जर्जर कर दिया गया है, ऐसा यह वीर हनुमान् बलात् कैद किया गया है ॥११३॥ रणविशारद रावणका पुत्र, जबतक पृथिवीपर पड़े हुए सुग्रीव और भामण्डलके समीप शीघ्रतासे नहीं पहुँचता है तबतक निश्चेष्ट पड़े हुए इन दोनोंको मैं स्वयं जाकर ले आता हूँ, तुम नायक-रहित इस विद्याधर सेनाको आश्रय दो ॥११४-११५॥ इस तरह जबतक विभीषण राम और लक्ष्मणसे कहता है

१. म पुस्तके त्वेवं पाठः 'सर्वाङ्गे विस्फुरद्भोगभासुरैश्चन्दनद्रुमः । यथा तथायं तैर्युक्तः पपात वसुधातले ।' २. निरस्तौ म. । ३. मन्दोदरीपुत्र । ४. देवे म. । ५. भामण्डलौ ।

अम्बरं भानुकर्णस्य परिधानमशुश्चत । ह्रीभाराकुलितो जातः स तद्धरणविह्वलः ॥११७॥
यावद्वासःसमाधानपरोऽसौ राक्षसोऽभवत् । भुजपाशोदरादस्य निःसृतस्तावदानिलिः ॥११८॥
नवो बद्धो यथा पक्षी निर्गतः पञ्जरोदरात् । आसीत्सुचकितो वातिः प्रत्युग्रद्युतिसंगतः ॥११९॥
ततो मुदितसंप्रीतौ विमानशिखरस्थितौ । हनूमदङ्गदौ वीरौ रेजतुः सुरसंनिभौ ॥१२०॥
ताभ्यामङ्गकुमारेण चन्द्रोदरसुतेन च । समं लक्ष्मीधरः सेनां समाश्वासयितुं स्थितः ॥१२१॥
मन्दोदरीसुतं तावदभियाय विभीषणः । स वितृव्यं समालोक्य चिन्तामेतामुपागतः ॥१२२॥
तातस्यास्य च को भेदो न्यायो यदि निरीक्ष्यते । ततोऽभिमुखमेतस्य नावस्थातुं प्रशस्यते ॥१२३॥
नागपाशैरिमौ बद्धौ मृत्युं यातौ विसंशयम् । एतावच्चेह कर्तव्यं युक्तं तदवसर्पणम् ॥१२४॥
इति संचिन्त्य निर्यातविन्द्रजिन्मेघवाहनौ । गहनाहवभेदिन्याः कृतार्थंम्मानिनौ ॥१२५॥
अन्तर्द्धौ सेविते ताभ्यां संभ्रान्तात्मा विभीषणः । त्रिशूलहेतिरामुक्तकङ्कटस्तरलेक्षणः ॥१२६॥
उत्तीर्य स्वरथाद्वीरस्तयोर्निष्कम्पयोर्हयोः । अवस्थान्तरमप्राक्षीन्नागसायकनिर्मितम् ॥१२७॥
ततो लक्ष्मीधरोऽवोचत् पद्मनाभं विचक्षणः । श्रूयतां नाथ यत्रेमौ महाविद्याधराधिपौ ॥१२८॥
अस्यूर्जितौ महासैन्यौ महाशक्तिसमन्वितौ । भीमामण्डलसुग्रीवौ नीतावस्त्रविमुक्तताम् ॥१२९॥
रावणस्य कुमाराभ्यां स्खलाधुरगमार्गणैः । तत्र त्वया मया वापि साध्यते किं दशाननः ॥१३०॥
ततः पुण्योदयात्पद्मः स्मृत्वा लक्ष्मणमब्रवीत् । तदः स्मर वरं लब्धं योगयुपद्रवनाशने ॥१३१॥

तबतक सुताराके पुत्र अंगदने छिपे-छिपे जाकर कुम्भकर्णका अधोवस्त्र खोल दिया जिससे वह लज्जासे व्याकुल हो वस्त्रके सँभालनेमें लग गया ॥११६-११७॥ जबतक कुम्भकर्ण वस्त्रके सँभालनेमें लगता है तबतक हनुमान् उसके भुजापाशके मध्यसे निकल भागा ॥११८॥ जिस प्रकार नया बँधा पक्षी पिंजड़ेके मध्यसे निकलनेपर चकित हो जाता है, उसी प्रकार हनुमान् भी कुम्भकर्णके भुजबन्धनसे निकलनेपर चकित तथा उग्र तेजसे युक्त हो गया ॥११९॥ तदनन्तर प्रसन्नता और सन्तोषसे युक्त वीर हनुमान् और अंगद विमानके अग्रभागपर बैठ देवोंके समान सुशोभित होने लगे ॥१२०॥ उधर अंगदके भाई अंग और चन्द्रोदरके पुत्र विराधितके साथ लक्ष्मण, विद्याधरोंकी सेनाको धैर्य बँधानेके लिए जा डटे ॥१२१॥ अब विभीषण, मन्दोदरी के पुत्र इन्द्रजित्-के सामने गया सो वह काकाको देख इस चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥१२२॥ कि यदि न्यायसे देखा जाये तो पितामें और इसमें क्या भेद है ? इसलिए इसके सम्मुख खड़ा रहना अच्छा नहीं है ॥१२३॥ ये सुग्रीव और विभीषण नागपाशसे बँधे हैं सो निःसन्देह मृत्युको प्राप्त हो चुके हैं, इसलिए इस समय यहाँसे चला जाना ही उचित है ॥१२४॥ ऐसा विचारकर कृतकृत्यताके अहंकारसे भरे इन्द्रजित् और मेघवाहन दोनों ही युद्धभूमिसे बाहर निकल गये ॥१२५॥ उन दोनोंके अन्तर्हित हो जानेपर जिसकी आत्मा घबड़ा रही थी, जो त्रिशूल नामक शस्त्र धारण कर रहा था, जिसने कवच पहन रखा था, तथा जिसके नेत्र अत्यन्त चंचल थे ऐसा वीर विभीषण अपने रथसे उतरकर वहाँ गया जहाँ सुग्रीव और भामण्डल निश्चेष्ट पड़े हुए थे। वहाँ जाकर उसने नागपाशसे निर्मित दोनोंकी चिन्तनीय दशा देखी ॥१२६-१२७॥

तदनन्तर बुद्धिमान् लक्ष्मणने रामसे कहा कि हे नाथ ! सुनिए, जहाँ ये महाविद्याधरोंके स्वामी, अतिशय बलवान्, बड़ी-बड़ी सेनाओंसे सहित और महाशक्तिसे सम्पन्न ये भामण्डल और सुग्रीव भी रावणके पुत्रों द्वारा अस्त्र रहित अवस्थाको प्राप्त हो नागपाशसे बाँध लिये गये हैं वहाँ क्या तुम्हारे या हमारे द्वारा रावण जीता जा सकता है ? ॥१२८-१३०॥ तब पुण्योदयसे स्मरण कर रामने लक्ष्मणसे कहा कि भाई ! उस समय देशभूषण-कुलभूषण मुनियोंका उपसर्ग दूर करनेपर

---

१. क्षरद्धरण- म. । २. स्फुतावुरुमार्गणैः म. ।

महालोचनदेवस्य तदभिध्यानमात्रतः । सुखावस्थस्य सहसा सिंहासनमकम्पत ॥१३२॥
आलोक्यावधिनेत्रेण ततो विज्ञाय संभ्रमी । विद्याभ्यां प्राहिणोद्युक्तं चिन्तावेगं निजं सुरम् ॥१३३॥
[1]गत्वा कथितः क्षेमः संदेशः सादरं सुरः । ताभ्यामुद्दे ददौ विद्ये परिवारसमन्विते ॥१३४॥
[2]सिंहं पद्माचदातस्य यानमर्पयदद्भुतम् । समुद्घोषितदिक्चक्रं सौमित्राय च गारुडम् ॥१३५॥
[3]विद्ये संप्राप्य संमान्य धीरौ [4]चिन्तागतिं मुदा । पृष्टवार्तौ जिनेन्द्राणां पूजां तौ चक्रतुः परम् ॥१३६॥
परं साधुप्रसादं च प्रस्तावे संगतोदयम् । सशंसतुर्मुदोदारगुणग्रहणतत्परौ ॥१३७॥
[5]अदृष्टां च सुराद्यानि भासुराणि सहस्रशः । वारुणाग्नेयकस्मृष्टिप्रभृतीनि सुविभ्रमौ ॥१३८॥
चन्द्रादित्यसमे छत्रे चारुचामरमण्डिते । रत्नानि च प्रदत्तानि निहितानि निजौजसा ॥१३९॥
गदाप्रहरणं विद्युद्वक्त्रा लक्ष्मीधरं श्रिता । हलं समुसलं पद्मं दैत्यानां भयकारणम् ॥१४०॥
महिमानं परं प्राप्य ताभ्यां संमदसंगतः । आशीःशतानि दत्त्वासौ गतो देवस्त्रिविष्टपम् ॥१४१॥

मन्दाक्रान्तावृत्तम्

धर्मस्यैतद्विधियुतकृतस्यानवद्यस्य धीरैर्ज्ञेयं स्तुत्यं फलमनुपमं युक्तकालोपजातम् ।
यत्संप्राप्य प्रमदकलिताः दूरमुत्सर्पसर्गाः संजायन्ते स्वपरकुशलं कर्तुमुद्भूतवीर्याः ॥१४२॥

हम लोगोंको जो वर प्राप्त हुआ था उसका स्मरण करो ॥१३१॥ उसी समय रामके स्मरण मात्रसे सुखसे बैठे हुए महालोचन नामक गरुडेन्द्रका सिंहासन सहसा कम्पायमान हुआ ॥१३२॥ तदनन्तर अवधिज्ञानरूपी नेत्रके द्वारा सब समाचार जानकर गरुडेन्द्रने शीघ्र ही दो विद्याओंके साथ अपना चिन्तावेग नामक देव भेजा ॥१३३॥ वहाँ जाकर जिसने आदरके साथ कुशल सन्देश सुनाया था ऐसे उस देवने राम-लक्ष्मणके लिए परिवारसे सहित दो प्रशस्त विद्याएँ दीं ॥१३४॥ रामके लिए तो आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली सिंहवाहिनी विद्या और लक्ष्मणके लिए दिक्समूहको देदीप्यमान करनेवाली गरुड़वाहिनी विद्या दी ॥१३५॥ धीरवीर राम-लक्ष्मणने, दोनों विद्याएँ प्राप्त कर चिन्तागति देवका बड़ा सम्मान किया, उससे कुशल समाचार पूछा और तदनन्तर जिनेन्द्रदेवकी उत्तम पूजा की ॥१३६॥ उत्तम गुणोंके ग्रहण करनेमें तत्पर रहनेवाले राम-लक्ष्मणने योग्य अवसरपर प्राप्त हुए गरुड़ेन्द्रके उस उत्तम प्रसादकी बड़े हर्षसे स्तुतिकी प्रशंसा की ॥१३७॥ उत्तम शोभाको धारण करनेवाले राम-लक्ष्मणने उसी समय वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र तथा वायव्यास्त्र आदि हजारों देवोपनीत देदीप्यमान शस्त्र सामने खड़े देखे अर्थात् उस देवने वे सब शस्त्र उन्हें दिये ॥१३८॥

सुन्दर चमरोंसे सुशोभित चन्द्रमा और सूर्यके समान छत्र तथा अपनी कान्तिसे आच्छादित अनेक रत्न भी उस देवने प्रदान किये ॥१३९॥ विद्युद्वक्त्र नामक गदा लक्ष्मणको प्राप्त हुई और दैत्योंको भय उत्पन्न करनेवाले हल तथा मुसल नामक शस्त्र रामको प्राप्त हुए ॥१४०॥ इस प्रकार वह देव राम-लक्ष्मणके साथ हर्षपूर्वक मिलकर तथा परम महिमाको प्राप्त कर उन्हें सैकड़ों आशीर्वाद देता हुआ अपने स्थानको चला गया है ॥१४१॥

गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! जो योग्य समयपर प्रशंसनीय एवं अनुपम फलकी प्राप्ति होती है वह विधिपूर्वक किये हुए निर्दोष धर्मका ही फल है ऐसा धीरवीर मनुष्योंको जानना चाहिए । धर्मसे वह फल प्राप्त होता है जिसे पाकर मनुष्य उत्तम हर्षसे युक्त होते हैं, उनके उपसर्ग दूरसे ही छूट जाते हैं और वे महाशक्तिसे सम्पन्न हो स्वपरका कल्याण

---

१. गत्वा कथितः क्षेमः संदेशः म. । २. त्रयोः म. । ३. विद्येशं प्राप्य । ४. चित्तगतिं म. । ५. आदत्तां म. ।

आस्तां तावन्मनुजजनिताः[1] संपदः काङ्क्षितानां यच्छन्तीष्टादधिकमतुलं वस्तु नाकश्रितोऽपि ।
तस्मात्पुण्यं कुरुत सततं हे जनाः सौख्यकाङ्क्षाः येनानेकं रविसमरुचः प्राप्नुताश्चर्ययोगम् ॥१४३॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे विद्यालाभो नाम षष्टितमं पर्व ॥६०॥

करनेमें समर्थ होते हैं ॥१४२॥ अथवा मनुष्य पर्यायमें उत्पन्न होनेवाली सम्पदाओंकी बात दूर रहे, स्वर्ग सम्बन्धी सम्पदाएँ भी इसे इच्छासे भी अधिक अनुपम सामग्री प्रदान करती हैं। इसलिए सुखकी इच्छा रखनेवाले हे भव्यजनो ! निरन्तर पुण्य करो जिससे सूर्यके समान कान्तिके धारक होते हुए तुम अनेक आश्चर्यकारी वस्तुओंके संयोगको प्राप्त हो सको ॥१४३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें राम-लक्ष्मणको विद्याओंकी प्राप्तिका वर्णन करनेवाला साठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६०॥

१. मनुजजनितं म. ।

एकषष्टितमं पर्व

एतस्मिन्नन्तरे दिव्यकवचच्छन्नविग्रहौ । लक्ष्मीश्रीवत्सलक्ष्माणौ तेजोमण्डलमध्यगौ ॥१॥
नागारिवाहनारूढौ सुकान्तौ पद्मलक्ष्मणौ । सैन्यसागरमध्यस्थौ सिंहगरुडकेतनौ ॥२॥
परपक्षक्षयं कर्तुमुद्यतौ परमेश्वरौ । संग्रामधरणीमध्यं तेन सप्रतुरुत्कटौ ॥३॥
अग्रतस्त्वरितो जातः सौमित्रिर्मित्रवत्सलः । दिव्यातपत्रविक्षिप्तदूरभास्करदीधितिः ॥४॥
श्रीशैलप्रमुखैर्वीरैर्वृतः प्लवगकेतनैः । दधानस्त्रैदशं रूपमशक्यपरिवर्णनम् ॥५॥
अग्रतः प्रस्थिते तस्मिन् द्वादशादित्यभास्वरम् । दृष्टं विभीषणेनेदं जगद्विस्मिततेजसा ॥६॥
गरुत्मत्केतने तस्मिन् संप्राप्ते तत्तथाविधम् । अस्त्रं सान्तमसं क्वापि गतं गरुडतेजसा ॥७॥
गरुत्मत्पक्षघातेन क्षोभितक्षारसिन्धुना । नीता विषधरा नाशं कुभावा इव साधुना ॥८॥
तार्क्ष्यपक्षविनिर्मुक्तमयूखालोकसंगतम् । जाम्बूनदरसेनेव जगदासीद्विनिर्मितम् ॥९॥
ततो नमश्चराधीशौ गतपन्नगबन्धनौ । प्रभामण्डलसुग्रीवौ समाश्वासनमापतुः ॥१०॥
सुखेन प्राप्य निद्रां च रत्नांशुकसमावृतौ । अक्षगर्दलतारेखासमलंकृतविग्रहौ ॥११॥
अधिकं भासमानाङ्गौ व्यक्तोच्छ्वासविनिर्गमौ । निद्राक्षये परं कान्तौ स्वैरस्वप्नादिवोत्थितौ ॥१२॥
ततो विस्मयमापन्नाः श्रीवृक्षप्रथितादयः । विद्याधरगणाधीशाः पप्रच्छुः कृतपूजनाः ॥१३॥
नाथावापत्सु कामेषा दृष्टपूर्वा न जातुचित् । विभूतिरद्भुता जाता कुतश्चिदिति कथ्यताम् ॥१४॥

अथानन्तर इसी बीचमें जिनके शरीर दिव्य कवचोंसे आच्छादित थे, जो लक्ष्मी और श्रीवत्स चिह्नके धारक थे, तेजोमण्डलके मध्यमें गमन कर रहे थे, सिंह तथा गरुड़ वाहनपर आरूढ़ थे, अत्यन्त सुन्दर थे, सेनारूपी सागरके मध्यमें स्थित थे, सिंह तथा गरुड़ चिह्नसे चिह्नित पताकाओंसे युक्त थे, पर-पक्षका क्षय करनेके लिए उद्यत थे और उत्कट बलके धारक थे, ऐसे परममहिमा सम्पन्न राम और लक्ष्मण विभीषणके साथ रणभूमिके मध्यमें आये ॥१–३॥ जिन्होंने दिव्यछत्रके द्वारा सूर्यकी किरणें दूर हटा दी थीं तथा जो मित्रोंके साथ स्नेह करनेवाले थे ऐसे शीघ्रतासे भरे लक्ष्मण आगे हुए ॥४॥ उस समय लक्ष्मण हनुमान् आदि प्रमुख वानरवंशी वीरोंसे घिरे थे तथा जिसका वर्णन करना अशक्य था ऐसे देवसदृश रूपको धारण कर रहे थे ॥५॥ लक्ष्मणके आगे प्रस्थान करनेपर आश्चर्यजनक तेजके धारक विभीषणने देखा कि यह संसार एक साथ उदित हुए बारह सूर्योंसे ही मानो देदीप्यमान हो रहा है ॥६॥ लक्ष्मणके आते ही वह उस प्रकारका सघन तामस अस्त्र गरुड़के तेजसे न जाने कहाँ चला गया ॥७॥ लवण समुद्रके जलको क्षोभित करनेवाली गरुड़के पंखोंकी वायुसे सब नाग इस प्रकार नष्ट हो गये जिस प्रकार कि साधुके द्वारा खोटे भाव नष्ट हो जाते हैं ॥८॥ गरुड़के पंखोंसे छोड़ी हुई किरणोंके प्रकाशसे युक्त संसार ऐसा जान पड़ने लगा मानो स्वर्णरससे ही बना हो ॥९॥

तदनन्तर जिनके नागपाशके बन्धन दूर हो गये थे ऐसे विद्याधरोंके अधिपति सुग्रीव और भामण्डल धैर्यको प्राप्त हुए ॥१०॥ जो सुखसे निद्रा प्राप्तकर रत्नमयी कम्बलोंसे आवृत थे, सर्परूपी लताओंकी रेखाओंसे जिनके शरीर अलंकृत थे अर्थात् जिनके शरीरमें नागपाशके गड्ढा पड़ गये थे, जो पहलेसे कहीं अधिक सुशोभित थे, और जिनके श्वासोच्छ्वासका निकलना अब स्पष्ट हो गया था, ऐसे दोनों ही राजा इस प्रकार उठ बैठे, जिस प्रकार कि सुखसे सोये पुरुष निद्राक्षय होनेपर उठ बैठते हैं ॥११–१२॥ तदनन्तर आश्चर्यको प्राप्त हुए

१. सुकेतौ म. । २. दुष्ट -म. । ३. स्वच्छ म. ।

वाहनावस्त्रसंपत्तिरातपत्रे परा द्युतिः । ध्वजौ रत्नानि चित्राणि श्रूयते दिव्यमीदृशम् ॥१५॥
एतनाभस्ततोऽगादीत्तेभ्यो हितमात्मनः । उपसर्गं च शैलाग्रे देशभूषणयोर्मुनेः ॥१६॥
चतुरानन[1]योगेन स्थितयोर्दैवनिर्मितम् । प्रातिहार्यं समुद्भूतं केवलं च सुरागमम् ॥१७॥
गरुडेन्द्रस्य तोषं च परिप्राप्तिं वरस्य च । अनुध्यानप्रयोगेन महाविद्यासमागमम् ॥१८॥
ततस्तेऽवहिताः श्रुत्वा परमां योगिसंकथाम् । हृदमूषुः परिप्राप्ताः प्रमोदं विकचाननाः ॥१९॥

वंशस्थवृत्तम्

इहैव लोके त्रिकटं परं यशो मतिप्रगल्भत्वमुदारचेष्टितम् ।
अवाप्यते पुण्यविधिश्च निर्मलो नरेण भक्त्यार्पितसाधुसेवया ॥२०॥
तथा न माता न पिता न वा सुहृत् सहोदरो वा कुरुते नृणां प्रियम् ।
प्रदाय धर्मे मतिमुत्तमां यथा हितं परं साधुजनः शुभोदयाम् ॥२१॥
इतिप्रशंसार्पितभावितास्थिरं जिनेन्द्रमार्गोन्नतिविस्मिताः परम् ।
बलं सनारायणमाश्रिता बभुर्महाविभूत्या समुपाश्रिता नृपाः ॥२२॥

शार्दूलविक्रीडितम्

भव्याम्भोजमहासमुल्लसकरीं श्रुत्वा पवित्रां कथां[2]
सर्वे हर्षमहारसोदधिगताः प्रीतिं दधानाः पराम् ।
तौ निद्रोन्मिषितपुण्डरीकनयनौ संप्राप्तदेवार्चनौ
ते विद्याधरपुंगवाः सुरसमाः सर्वादरेणापूजयन् ॥२३॥

श्रीवृक्ष आदि विद्याधर राजाओंने पूजा कर राम लक्ष्मणसे पूछा कि हे नाथ! आप दोनोंकी विपत्तिके समय जो पहले कभी देखनेमें नहीं आयी ऐसी यह अद्भुत विभूति किस कारण प्राप्त हुई है सो कहिए ॥१३-१४॥ वाहन, अस्त्ररूपी सम्पत्ति, छत्र, परम कान्ति, ध्वजाएँ और नाना प्रकारके रत्न जो कुछ आपको प्राप्त हुए हैं वे सब दिव्य हैं, देवोपनीत हैं ऐसा सुना जाता है ॥१५॥ तदनन्तर रामने उन सबके लिए कहा कि एक बार वंशस्थविल पर्वतके अग्रभागपर देशभूषण और कुलभूषण मुनियोंको उपसर्ग हो रहा था सो मैं वहाँ पहुँच गया ॥१६॥ मैंने उपसर्ग दूर किया, उसी समय दोनों मुनिराजोंको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, चतुर्मुखाकार होकर दोनों विराजमान हुए, देवनिर्मित प्रातिहार्य उत्पन्न हुए, देवोंका आगमन हुआ, गरुडेन्द्र हमसे सन्तुष्ट हुआ और उससे हमें घरकी प्राप्ति हुई। इस समय उसी गरुडेन्द्रके ध्यानसे इन महाविद्याओंकी प्राप्ति हुई ॥१७-१८॥ तदनन्तर सावधान हो मुनियोंकी उत्तम कथा श्रवण कर, जो परम प्रमोदको प्राप्त हो रहे थे और जिनके मुखकमल हर्षसे विकसित हो रहे थे ऐसे उन सब विद्याधर राजाओंने कहा कि ॥१९॥ भक्तिपूर्वक की हुई साधुसेवाके प्रभावसे मनुष्य इसी भवमें विशाल उत्तम यश, बुद्धिकी प्रगल्भता, उदार चेष्टा और निर्मल पुण्य विधिको प्राप्त होता है ॥२०॥ मुनिजन उत्तम बुद्धिको धर्ममें लगाकर मनुष्योंका जैसा शुभोदयसे सम्पन्न परम प्रिय हित करते हैं वैसा हित न माता करती है, न पिता करता है, न मित्र करता है और न सगा भाई ही करता है ॥२१॥ इस प्रकार चिरकाल तक प्रशंसा कर जिन्होंने अपनी भावनाएँ समर्पित की थीं और जिनेन्द्रमार्गकी उन्नतिसे जो परम आश्चर्यको प्राप्त हो रहे थे, ऐसे महावैभवसे युक्त राजा, राम और लक्ष्मणका आश्रय पाकर अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे ॥२२॥ इस तरह भव्य जीवरूपी कमलोंके उत्सवको करनेवाली

---

१. देशभूषण-कुलभूषणयोः । २. भव्याम्भोजमहान्त- म. ।

वंशस्थवृत्तम्

उपात्तपुण्यो जनमान्तरे जनः करोति योगं परमैरिहोत्सवैः ।
न केवलं स्वस्य परस्य[1] सूयसा रविर्यथा सर्वपदार्थदर्शनात् ॥२४॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सुग्रीवभामण्डलसमाश्वासनं नामैकषष्टितमं पर्व ॥६१॥

□

पवित्र कथा सुनकर जो हर्षरूपी महारसके सागरमें निमग्न हो परम प्रीतिको धारण कर रहे थे, ऐसे देवोंके समान समस्त विद्याधर राजाओंने, विकसित कमलोंके समान नेत्रोंको धारण करनेवाले उन देवपूजित राम-लक्ष्मणकी सब प्रकारसे पूजा की ॥२३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जन्मान्तरमें पुण्यका संचय करनेवाला मनुष्य, इस संसारमें न केवल अपने आपका ही उत्तम उत्सवोंसे संयोग करता है किन्तु सूर्यके समान समस्त पदार्थोंको दिखाकर अन्य लोगोंका भी अत्यधिक वैभवके साथ संयोग करता है अर्थात् पुण्यात्मा मनुष्य स्वयं वैभवको प्राप्त होता है और दूसरोंको भी वैभव प्राप्त कराता है ॥२४॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्यकथित पद्मपुराणमें सुग्रीव और भामण्डलका नागपाश-से मुक्त हो आश्वासन प्राप्तिका वर्णन करनेवाला इकसठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६१॥

□

१. परेण म. ।

द्वापष्टितमं पर्व

अपरेद्युर्महोद्भूतविक्रमौक्रमकोविदाः । युद्धार्थोपात्तसंभारा रणशौण्डाः समुद्ययुः ॥१॥
वानरीयैः खमालोक्य सैन्यैर्व्याप्तं निरन्तरम् । शङ्खदुन्दुभिसंमिश्रं श्रुत्वेभाश्वध्वनिं तथा ॥२॥
अभ्यूर्जितमतिर्मानी सादरोऽमरविभ्रमः । सत्त्वप्रतापसंयुक्तः सैन्यार्णवसमावृतः ॥३॥
तेजसा शस्त्रजातेन ज्वलत्यखिल विष्टपम् । कैलासोद्धारवीरोऽपि निरैक्षीत्रादिभिः समम् ॥४॥
उद्यता बद्धकवचाः संग्रामाप्यर्थलालसाः । नानायानसमारूढा नानाविधमहायुधाः ॥५॥
पूर्वानुबन्धसंक्रोधमहारौरवसंनिभाः । परस्परं भटा धीराः कर्मास्ताडनकर्मणि ॥६॥
चक्रकर्तरिकाशासिषष्ट्यर्ष्टिघनमुद्गरैः । कनकैः परिघाद्यैश्च गगनं गहनीकृतम् ॥७॥
[1]तुरगैरश्वसंघैस्तु[2] सङ्घात्यगात् । रथिनश्च महाधीरा उद्यता रथिभिः समम् ॥८॥
[3]सैंहं सैंहेन पादातं[4] पादातेन च चञ्चलम् । समं महाहवं कर्तुमुद्यतं समविक्रमम् ॥९॥
ततः [5]कापिध्वजं सैन्यं रक्षोयोधैः पराजितम् । नीलादिभिः पुनर्नीतं शस्त्रसंपातयोग्यताम् ॥१०॥
भूयोजलधिकल्लोलचलच्चेन्द्रपार्थिवाः । इमं समुद्यतं दृष्ट्वा निजसैन्यपराभवम् ॥११॥
[6]विद्युद्वदनमारीचचन्द्रार्कशुकसारणाः । कृतान्तमृत्युजीमूतनादसंक्रोधनादयः ॥१२॥

अथानन्तर दूसरे दिन जिन्हें महापराक्रम उत्पन्न हुआ था, जो क्रमको जाननेमें निपुण थे, एवं युद्धके लिए जिन्होंने सब सामग्री ग्रहण की थी ऐसे रणबाँकुरे वीर युद्धके लिए उद्यत हुए ॥१॥ वानरोंकी सेनासे समस्त आकाशको निरन्तर व्याप्त देख तथा शंखों और दुन्दुभियोंके शब्दोंसे मिली हाथियों और घोड़ोंकी आवाज सुन कैलासको उठानेवाला वीर रावण भी भाइयों आदिके साथ निकला। रावण अत्यन्त बलवती बुद्धिका धारक था, मानी था, आदरसे युक्त था, देवोंके समान शोभासे सहित था, सत्त्व और प्रतापसे युक्त था, सेनारूपी सागरसे घिरा हुआ था, और शस्त्रसे उत्पन्न तेजके द्वारा संसारको जलाता हुआ-सा जान पड़ता था ॥२-४॥ तदनन्तर जिन्होंने उठकर कवच बाँध रखे थे, जिन्हें संग्रामकी उत्कट लालसा भरी हुई थी, जो नाना प्रकारके वाहनोंपर आरूढ़ थे, नाना प्रकारके बड़े-बड़े शस्त्र जिन्होंने धारण कर रखे थे और जो पूर्वानुबद्ध क्रोधके कारण महानारकीके समान जान पड़ते थे, ऐसे धीर-वीर योद्धा परस्पर मार-काट करनेमें लग गये ॥५-६॥ चक्र, कर्तरिका, पाश, खड्ग, यष्टि, वज्र, घन, मुद्गर, कनक तथा परिघ आदि शस्त्रोंसे आकाश सघन हो गया ॥७॥ घोड़ोंका समूह घोड़ोंके साथ जुट पड़ा, हाथियोंका समूह हाथियोंके समूहके सम्मुख गया, महाधीर-वीर रथोंके सवार रथसवारोंके साथ खड़े हो गये ॥८॥ सिंहोंके सवार सिंहोंके सवारोंके साथ और चंचल तथा समान पराक्रमको धारण करनेवाला पैदल सैनिकोंका समूह पैदल सैनिकोंके साथ महायुद्ध करनेके लिए उद्यत हो गया ॥९॥

तदनन्तर प्रथम तो राक्षस योद्धाओंने वानरोंकी सेनाको पराजित कर दी, परन्तु उसके बाद नील आदि वानरोंने उसे पुनः शस्त्रवर्षा करनेकी योग्यता प्राप्त करा दी अर्थात् वानरोंकी सेना पहले तो कुछ पीछे हटी, परन्तु ज्योंही नील आदि वानर आगे आये कि वह पुनः राक्षसोंपर शस्त्र वर्षा करने लगी ॥१०॥ पश्चात् अपनी सेनाका पराभव देख, समुद्रकी तरंगोंके समान चंचल लंकाके निम्नांकित राजा पुनः युद्धके लिए उद्यत हुए ॥११॥ विद्युद्वक्त्र, मारीच, चन्द्र, अर्क, शुक,

१. तुरगैरश्वसंघैस्तु म. । २. सङ्घात्यगात् । ३. गजानां समूहः । ४. सोद्योगं म. । ५. कपिध्वजसैन्यं म. । ६. विद्युद्वचन म. ।

भज्यमानं निजं सैन्यं वीक्ष्य तैः राक्षसोत्तमैः । कपिध्वजमहायोधाः परिप्रापुः सहस्रशः ॥१३॥
प्रस्ता राक्षससैन्यास्तैरुच्छ्रितैर्विविधायुधैः । महाप्रतिभयैर्वीरैरत्युदात्तविचेष्टितैः ॥१४॥
निजसैन्यार्णवं वृद्ध्वा पीयमानं समन्ततः । शस्त्रज्वालाविलासेन कपिप्रलयवह्निना ॥१५॥
लङ्केशः कोपनो योद्धुं बलवान् स्वयमुत्थितः । शुष्कपत्रोपमान्[1] दूरं विक्षिपन् शत्रुसैनिकान् ॥१६॥
ततः पलायनोद्युक्तान् परिपाल्य तदा द्रुतम् । स्थितो विभीषणो योद्धुं महायोधविभीषणः ॥१७॥
आहवेऽभिमुखीभूतं भ्रातरं वीक्ष्य रावणः । वभाण पृथुकक्रोधो वाक्यमादरवर्जितः ॥१८॥
कनीयानसि स त्वं मे भ्राता हन्तुं न युज्यते । अपसर्पाग्रतो मास्थाः न त्वां शक्तोऽस्मि वीक्षितुम् ॥१९॥
विभीषणकुमारेण जगदे पूर्वजस्ततः । कालेन गोचरत्वं मे नीतः किमवसर्प्यते ॥२०॥
ततः कुमारकोपस्तं पुनरप्याह रावणः । क्लीव क्लिष्ट धिगस्तु त्वां नरकाक कुचेष्टितम् ॥२१॥
त्वया व्यापादितेनापि मैव मे लक्ष्यते यशः । मनुष्येण हि को लोके[2] कर्तुं हर्षं न दीनताम् ॥२२॥
यद्विद्याधरसंतानं त्यक्त्वा मूढोऽन्यमाश्रितः । कर्मणामतिदौरात्म्याज्जैनं त्यक्त्वेव शासनम् ॥२३॥
ततो विभीषणोऽवोचत् किमत्र बहुभाषितैः । शृणु रावण कल्याणं भण्यमानमनुत्तमम् ॥२४॥
एवं गतोऽपि चेत् कर्तुं स्वस्य श्रेयः समिच्छसि । राघवेण समं प्रीतिं कुरु सीतां समर्पय ॥२५॥
अभिमानोन्नतिं त्यक्त्वा प्रसादय रघूत्तमम् । मा कलङ्कं स्ववंशस्य कार्षीर्योषिन्निमित्तकम् ॥२६॥
अथवा मर्तुमिष्टं ते कुरुषे यन्न मद्वचः । मोहस्य दुस्तरं किं वा बलिनो बलिनामपि ॥२७॥

सारण, कृतान्त, मृत्यु, मेघनाद और संक्रोधन आदि ॥१२॥ इन राक्षस योद्धाओंके द्वारा अपनी सेनाको नष्ट होते देख वानर पक्षके हजारों महायोद्धा आ पहुँचे ॥१३॥ और आते ही उन्नत, नाना प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले, महाभयंकर, वीर और अत्यन्त उदात्त चेष्टाओंके धारक उन वानर योद्धाओंने राक्षसोंकी सेनाको धर दबाया ॥१४॥ तदनन्तर शस्त्ररूपी ज्वालाओंसे सुशोभित वानररूपी प्रलयाग्निके द्वारा अपनी सेनारूपी सागरको सब ओरसे पिया जाता देख क्रोधसे भरा बलवान् रावण, शत्रु सैनिकोंको सूखे पत्तोंके समान दूर फेंकता हुआ युद्ध करनेके लिए स्वयं उद्यत हुआ ॥१५-१६॥ तदनन्तर महायोद्धाओंको भयभीत करनेवाला विभीषण भागनेमें तत्पर वानरोंकी शीघ्र ही रक्षा कर युद्ध करनेके लिए खड़ा हुआ ॥१७॥ युद्धमें भाईको सम्मुख खड़ा देख जिसका क्रोध भड़क उठा था ऐसा रावण निरादरताके साथ यह वचन बोला कि तू छोटा भाई है अतः मुझे तेरा मारना योग्य नहीं है, तू सामनेसे हट जा, खड़ा मत रह, मैं तुझे देखनेके लिए भी समर्थ नहीं हूँ ॥१८-१९॥ तदनन्तर विभीषणने बड़े भाई—रावणसे कहा कि तू यमके द्वारा मेरे सामने भेजा गया है अतः अब पीछे क्यों हटता है ? ॥२०॥ पश्चात् विभीषणकुमारपर क्रोध प्रकट करते हुए रावणने उससे पुनः कहा कि रे नपुंसक ! संक्लिष्ट ! नरकाक ! तुझ कुचेष्टीको धिक्कार है ॥२१॥ तुझे मार डालनेपर भी मेरा यश नहीं होगा, क्योंकि तेरे समान तुच्छ मनुष्य न मुझे हर्ष उत्पन्न कर सकते हैं और न दीनता ही उत्पन्न करनेके योग्य हैं ॥२२॥ जिस प्रकार कोई, कर्मोंका अत्यन्त अशुभ उदय होनेसे जिनशासनको छोड़ अन्य शासनको ग्रहण करता है, उसी प्रकार तुझ मूर्खने भी विद्याधरकी सन्तानको छोड़ अन्य भूमिगोचरीको ग्रहण किया है ॥२३॥

तदनन्तर विभीषणने कहा कि इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? हे रावण ! तेरे कल्याणके लिए जो उत्तम वचन कहे जा रहे हैं उन्हें सुन ॥२४॥ इस स्थितिमें आनेपर भी यदि तू अपना भला करना चाहता है तो रामके साथ मित्रता कर और सीताको समर्पित कर दे ॥२५॥ अहंकार छोड़कर रामको प्रसन्न कर स्त्रीके निमित्त अपने वंशको कलंकित मत कर ॥२६॥ अथवा तुझे मरना ही इष्ट है इसीलिए मेरी बात नहीं मान रहा है सो ठीक ही है क्योंकि बलवान् मनुष्योंको

---

१. पत्रोपमं म. । २. -कम् म. ।

विनिशम्य वचस्तस्य तरुणक्रोधसंगतः । निशातं बाणमुद्धृत्य समधावत रावणः ॥२८॥
रथाश्वद्विपारूढाः स्वामिलोपे हि तत्पराः । अन्येऽपि पार्थिवा लग्ना रणे सुभटदारुणे ॥२९॥
आयातोऽभिमुखं तस्य राक्षसेन्द्रस्य रंहसा । अष्टमीचन्द्रवक्रेण ध्वजं आन्तेषुणाऽच्छिनत् ॥३०॥
तेनापि तस्य [1]संरम्भसंभाराक्रान्तचेतसा । धनुर्द्विधाकृतं क्षिप्त्वा सायकं निशितानन्म् ॥३१॥
ततोऽपरमुपादाय चापमाशु विभीषणः । द्विधाकरोद्धनुस्तस्य प्रतिकारविचक्षणः ॥३२॥
एवं तयोर्महायुद्धे प्रवृत्ते वीरसंक्षये । जनकस्य परं भक्तः शक्रजिद्योद्धुमुद्यतौ ॥३३॥
लक्ष्मीधरेण रुद्धोऽसौ पर्वतेनेव सागरः । पद्मनेत्रेण पद्मेन भानुकर्णोऽग्रतः कृतः ॥३४॥
यथौ सिंहकटिं नीलो युद्धशम्भुं तथा नलः । स्वयंभुं दुर्मतिः क्रुद्धो दुर्मर्षोऽपि घटोदरम् ॥३५॥
दुष्टः शक्राशनिं कान्तिस्तथा चन्द्रनखं नृपम् । स्कन्दो भिन्नाञ्जनं विघ्नं विराधितनराधिपः ॥३६॥
ख्यातं भयमहादैत्यमङ्गदो भासुराङ्गदः । कुम्भकर्णसुतं कुम्भं समीरणसमुद्भवः ॥३७॥
[2]किंकिन्धेशः समाख्याख्यं केतुं जनकनन्दनः । कामं दृढरथः क्षुब्धः क्षोभणाभिख्यमूर्जितम् ॥३८॥
अन्येऽप्येवं महायोधा यथायोग्यं परस्परम् । आरेभिरे रणं कर्तुं माङ्गल्यमुखरानना: ॥३९॥
गृहाण प्रहरागच्छ जहि व्यापादयोद्धिरः । छिन्धि भिन्धि क्षिपोत्तिष्ठ तिष्ठ दारय धारय ॥४०॥
बध्नान स्फोटयाकर्षं मुञ्च चूर्णय नाशय । सहस्व दत्स्व निःसर्पं संधत्स्वोच्छ्रय कल्पय ॥४१॥
किं भीतोऽसि न हन्म्येनं धिक्त्वां कातरकं भवान् । कस्त्वं बिभेषि नष्टोऽसि मा कस्मिंश्चा क्व गम्यते॥४२॥

भी इस बलवान् मोहका तिरना अत्यन्त कठिन है ॥२७॥ तदनन्तर विभीषणके वचन सुन तीव्र क्रोधसे युक्त हुआ रावण तीक्ष्ण बाण चढ़ाकर दौड़ा ॥२८॥ स्वामीको सन्तुष्ट करनेमें तत्पर रहनेवाले, रथों, घोड़ों और हाथियोंपर बैठे हुए अन्य राजा लोग भी योद्धाओंको भय उत्पन्न करनेवाले युद्धमें लग गये ॥२९॥ तदनन्तर बड़े वेगसे सम्मुख जाकर विभीषणने अष्टमी के चन्द्रके समान कुटिल घूमनेवाले बाणसे रावणकी ध्वजा छेद डाली ॥३०॥ और क्रोधके भारसे जिसका चित्त व्याप्त था ऐसे रावणने भी एक तीक्ष्णमुख बाण चलाकर विभीषणके धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥३१॥ पश्चात् प्रतिकार करनेमें निपुण विभीषणने शीघ्र ही दूसरा धनुष लेकर रावणके धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥३२॥ इस प्रकार जब रावण और विभीषणके बीच अनेक वीरोंका क्षय करनेवाला महायुद्ध चल रहा था तब पिताका परमभक्त इन्द्रजित् युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ ॥३३॥ सो जिस प्रकार पर्वत समुद्रको रोकता है उसी प्रकार लक्ष्मणने उसे रोका और कमललोचन रामने भानुकर्णको अपने आगे किया अर्थात् उससे युद्ध करना प्रारम्भ किया ॥३४॥ नील, सिंहकटि (सिंहजघन) के सम्मुख गया, नलने युद्ध शम्भुका, दुर्मतिने स्वयम्भुका, क्रोधसे भरे दुर्मर्षने कुम्भोदरका, दुष्टने इन्द्रवज्रका, कान्तिने चन्द्रनखका, स्कन्धने भिन्नांजनका, विराधित राजाने विघ्नका, देदीप्यमान केयूरके धारक अंगदने प्रसिद्ध भय नामक महादैत्यका, हनुमान्ने कुम्भकर्णके पुत्र कुम्भका, सुग्रीवने सुमालीका, भामण्डलने केतुका, दृढ़रथने कामका और क्षुब्धने क्षोभण नामक बलवान् सामन्तका सामना किया ॥३५-३८॥ इनके सिवाय बुलानेके शब्दसे जिनके मुख शब्दायमान हो रहे थे ऐसे अन्य महायोधाओंने भी परस्पर यथायोग्य युद्ध करना प्रारम्भ किया ॥३९॥ उस समय योद्धाओंमें परस्पर इस प्रकारके शब्द हो रहे थे कोई किसीसे कहता था कि लो, इसके उत्तरमें दूसरा कहता था कि मारो, आओ, मारो, जानसे मार डालो, छेदो, भेदो, फेंक दो, उठो, बैठो, खड़े रहो, विदारण करो और धारण करो ॥४०॥ बाँधो, फोड़ डालो, घसीटो, छोड़ो, चूर-चूर कर डालो, छोड़ो, नष्ट करो, सहन करो, देओ, पीछे हटो, सन्धि करो, उन्नत होओ, समर्थ बनो। तू क्यों डर रहा है ? मैं तुझे नहीं मारता, तुझे धिक्कार है, तू बड़ा कातर है, तुझे

१. संरम्भं संभारा- म. । २. किंकिन्धेशं म. ।

अयं स वर्तते कालः शूराशूरविचारकः । भुञ्जतेऽन्नं यथा मृष्टं न तथा युध्यते रणे ॥४३॥
गर्जितैरिति वीराणां तूर्यनादैस्तथोन्नतैः । नर्दन्तीव दिशो भयाः श्रवज्जातान्धकारिताः ॥४४॥
चक्रशक्तिगदायष्टिकनकार्ष्टिघनादिभिः । दंष्ट्राकरालमिव संजातं गगनं भीषणं परम् ॥४५॥
रक्ताशोकवनं किं तत् किं वा किंशुककाननम् । परिभद्रद्रुमारण्यमुत जातं श्रुतं बलम् ॥४६॥
कश्चिद्विघटितं दृष्ट्वा कवचं छिन्नबन्धनम् । संधत्ते त्वरितं भूयः स्नेहं साधुजनो यथा ॥४७॥
कश्चित्संधाय दन्ताग्रैः खड्गं परिकरं दृढम् । बध्वा दोर्भ्यः पुनर्योद्धुं श्रममुक्तः प्रवर्तते ॥४८॥
मत्तवारणदन्ताग्रक्षतवक्षस्थलोऽपरः । चलत्कर्णसमुद्धूतैर्वीजितः कर्णचामरैः ॥४९॥
उत्तीर्णस्वामिकर्तव्यो निराकुलमतिः परम् । दन्तोत्संगे ततः शिश्ये संप्रसार्य भुजद्वयम् ॥५०॥
धातुपर्वतसंकाशाः केचित् श्रुतजलनिर्झराः । मुमुचुः शीकरासारसेकबोधितमूर्च्छिताम् ॥५१॥
पर्यस्ता भूतले केचिद्दंष्ट्राः शस्त्रपाणयः । कुञ्चितभ्रूदुरीक्ष्यास्या वीरा मुञ्चन्ति जीवितम् ॥५२॥
उपसंहृत्य संरम्भं त्यक्तशस्त्रास्तथापरे । मुञ्चन्ति जीवितं धीरा ध्यायन्तः परमाक्षरम् ॥५३॥
विषाणकोटिसंसक्तपाणयः केचिदुत्कटाः । आन्दोलनं गजेन्द्राणामग्रतः समुपासिरे ॥५४॥
रक्तच्छटा विमुञ्चन्तश्चञ्चलाः शस्त्रपाणयः । कबन्धा नर्त्तनं चक्रुः शतशोऽतिभयानकम् ॥५५॥
केचिदस्त्रविनिर्मुक्ता जर्जरीभूतकञ्चटाः । प्रक्षिप्ताः सलिलं क्लिन्ना जीविताशापराङ्मुखाः ॥५६॥

धिक्कार है, तू क्यों कम्पित हुआ जा रहा है ? क्या तू भूल गया है ? कम्पित मत हो, तू अकेला कहाँ जायेगा ? ॥४१-४२॥ यह वह समय है जिसमें शूर और कायरका विचार किया जाता है। जैसा मोठा अन्न खाया है वैसा रणमें युद्ध नहीं कर रहे हो ॥४३॥

इस प्रकार धीर-वीरोंकी गर्जना और तुरहीके उन्नत शब्दोंसे दिशाएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो रुधिरकी वर्षासे अन्धकारयुक्त हुआ पाताल ही निकला ही रही हों ॥४४॥ चक्र, शक्ति, गदा, यष्टि, कनक, अष्टि और घन आदि शस्त्रोंसे आकाश उस प्रकार अत्यन्त भयंकर हो गया मानो सबको निगलनेके लिए दाँढ़े ही धारण कर रहा हो ॥४५॥ खूनसे लथपथ घायल सेनाको देखकर ऐसा सन्देह होता था कि क्या यह अशोकका लाल वन है ? या पलाशका कानन है, या पारिभद्र वृक्षोंका वन है ? ॥४६॥ किसीका कवच टूट गया तथा उसके बन्धन खुल गये, इसलिए उसने शीघ्र ही दूसरा कवच उस प्रकार धारण किया जिस प्रकार कि साधु पुरुष एक बार स्नेहके टूट जानेपर उसे शीघ्र ही पुनः धारण कर लेते हैं ॥४७॥ कोई तेजस्वी योद्धा दाँतोंके अग्रभागसे तलवार दबा तथा हाथोंसे कमर कसकर श्रमरहित हो फिरसे युद्ध करनेके लिए तैयार हो गया ॥४८॥ मदोन्मत्त हाथीके दन्ताग्रसे जिसका वक्षःस्थल घायल हो गया था ऐसा कोई योद्धा हाथीके चंचल कानोंसे ऊपर उठे हुए कर्णचामरोंसे वीजित हो रहा था ॥४९॥ जिसने स्वामीका कर्तव्य पूरा किया था ऐसा कोई एक योद्धा निराकुल चित्त हो दोनों हाथ पसारकर हाथीके दांतोंके बीच सो रहा था ॥५०॥ जिनसे खूनके निर्झर झर रहे थे तथा जो गेरूके पर्वतके समान जान पड़ते थे ऐसे कितने ही योद्धाओंने जलकणोंकी वर्षाके सिंचनसे सचेत हो मूर्च्छा छोड़ी थी ॥५१॥ जो ओठ डँस रहे थे, हाथोंमें शस्त्र लिये थे और टेढ़ी भौंहोंसे जिनके मुख भयंकर दिख रहे थे ऐसे कितने ही योद्धा पृथिवीपर पड़कर प्राण छोड़ रहे थे ॥५२॥ कितने ही धीर-वीर योद्धा ऐसे भी थे जो क्रोधका संकोच तथा शस्त्रोंका त्याग कर परब्रह्मका ध्यान करते हुए प्राण छोड़ रहे थे ॥५३॥ कितने ही प्रचण्ड वीर दाँतोंके अग्रभागको हाथोंसे पकड़कर हाथियोंके आगे झूला झूल रहे थे ॥५४॥ जो रक्तकी छटा छोड़ रहे थे तथा हाथोंमें शस्त्र धारण किये हुए थे, ऐसे सैकड़ों उछलते कबन्ध—शिररहित धड़ अत्यन्त भयंकर नृत्य कर रहे थे ॥५५॥ जिनके कवच जर्जर हो

१. भुञ्जतेऽन्नं म. । २. तदुन्नतैः म. । ३. पारिभद्रकुमाराणां म. । ४. समुद्भूतैः म. । ५. विमुञ्चन्ति म. ।

ईदृशे समरे जाते लोकसंत्रासकारिणि । परस्परसमुद्भूतमहामटपरिक्षये ॥५७॥
महेन्द्रजिदसौ बाणैर्लक्ष्मीमन्तं सितानगैः । लग्नश्छादयितुं वीरस्तथा तमपि लक्ष्मणः ॥५८॥
महातामसशस्त्रं च भीमं शक्रजिदक्षिपत् । विनाशं मानवीयेन तदस्त्रेणानयद्रिपुः ॥५९॥
तमुग्रैः शक्रजिद्भूयः शरैराशीविषात्मकैः । आरब्धो वेष्टितुं क्रुद्धः सरथं शस्त्रवाहनम् ॥६०॥
[illegible] । दूरीकृतं यथा पापजालं योगी महातपाः ॥६१॥
ततोऽमात्यगणान्तस्थं हस्तिवृन्दस्थलावृतम् । विरथं लक्ष्मणश्चक्रे दशवक्त्रसमुद्भवम् ॥६२॥
पालयन् स निजं सैन्यं वचसा कर्मणा तथा । प्रायुङ्क्तास्त्रं महाध्वान्तपिहितारिदिशास्यकम् ॥६३॥
विद्यया तपनास्त्रं च हत्वा[2] तस्य विचिन्तितम् । चिक्षेपेच्छाकृताकारानाशीमुखशिखीमुखान् ॥६४॥
संग्रामाभिमुखो नागैः कुटिलं व्याप्तविग्रहः । इन्द्रजित्पतितो भूमौ पुरा भामण्डलो यथा ॥६५॥
पद्मेनाऽऽदित्यकर्णोऽपि सुयुद्धे[3] विरथीकृतः । आदित्यास्त्रं शनैर्हत्वा नागास्त्रं संप्रयुज्य च ॥६६॥
संवेष्टय सर्वतो नागैः पतितो धरणीतले । पुरैव बाहुबलिना श्रीकण्ठो नमिनन्दनः ॥६७॥
[4]चित्रं श्रेणिक ते बाणाः भवन्ति धनुराश्रिताः । उल्कामुखास्तु गच्छन्तः शरीरे नागमूर्तयः ॥६८॥
क्षणं बाणाः क्षणं दण्डाः क्षणं पाशत्वमागताः । अमरा अस्त्रभेदास्ते यथा चिन्तितरूपगाः ॥६९॥
कर्मपाशैर्यथा जीवो नागपाशैः स वेष्टितः । भामण्डलेन पद्माज्ञां प्राप्याऽऽस्मीये रथे कृतः ॥७०॥

गये थे ऐसे कितने ही दुःखी योद्धा, जीवनकी आशासे विमुख हो शस्त्र छोड़ पानीमें घुस गये ॥५६॥ इस तरह जब परस्पर महायोद्धाओंका क्षय करनेवाला, लोकसन्त्रासकारी महायुद्ध हो रहा था तब इन्द्रजित् तीक्ष्ण बाणोंसे लक्ष्मणको और लक्ष्मण इन्द्रजित्को आच्छादित करनेमें लीन थे॥५७-५८॥ इन्द्रजित्ने अत्यन्त भयंकर महातामस नामक शस्त्र छोड़ा जिसे लक्ष्मणने सूर्यास्त्रके द्वारा नष्ट कर दिया ॥५९॥ तदनन्तर क्रोधसे भरे इन्द्रजित्ने नाग बाणोंके द्वारा रथ, शस्त्र तथा वाहनके साथ लक्ष्मणको वेष्टित करना प्रारम्भ किया। तब लक्ष्मणने गरुडास्त्रके द्वारा उस नागास्त्रको उस तरह दूर कर दिया जिस प्रकार कि महातपस्वी योगी पूर्वोपार्जित पापोंके समूहको दूर कर देता है ॥६०-६१॥तदनन्तर मन्त्रिसमूहके मध्यमें स्थित तथा हाथियोंके समूहसे वेष्टित इन्द्रजित्को लक्ष्मणने रथरहित कर दिया ॥६२॥ तब वचन तथा क्रियासे अपनी सेनाकी रक्षा करते हुए इन्द्रजित्ने ऐसा तामसास्त्र छोड़ा कि जिसने महाअन्धकारसे रावणको छिपा लिया ॥६३॥ इसके बदले लक्ष्मणने सूर्यास्त्र छोड़कर इन्द्रजित्का मनोरथ नष्ट कर दिया और इच्छानुसार आकृतिको धारण करनेवाले नागबाण छोड़े ॥६४॥ इनके फलस्वरूप संग्रामके लिए आते हुए इन्द्रजित्का समस्त शरीर नागोंके द्वारा व्याप्त हो गया और उनके कारण जिस प्रकार पहले भामण्डल पृथिवीपर गिर पड़ा था उसी प्रकार वह भी पृथिवीपर गिर पड़ा ॥६५॥ उधर रामने भी धीरेसे सूर्यास्त्रको नष्ट कर तथा नागास्त्रको चलाकर युद्धमें भानुकर्णको रथरहित कर दिया ॥६६॥ पहले जिस प्रकार बाहुबलीने नमिके पुत्र श्रीकण्ठको जीतकर नागपाशसे बाँध लिया था, उसी प्रकार रामने भी भानुकर्णको सब ओरसे नागपाशसे वेष्टित कर लिया जिससे वह पृथिवीतलपर गिर पड़ा ॥६७॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! वे बाण बड़े ही विचित्र थे। जब वे धनुषपर चढ़ाये जाते थे तब बाणरूप रहते थे, चलते समय उल्काके समान मुखवाले हो जाते थे और शरीरपर जाकर नागरूप हो जाते थे ॥६८॥ वे बाण क्षण भरके लिए बाण हो जाते थे, क्षण-भरमें दण्डरूप हो जाते थे और क्षण-भरमें नागपाशरूप हो जाते थे, यथार्थमें ये सब शस्त्रोंके भेद देवोपनीत थे तथा मनचाहे रूपको धारण करनेवाले थे ॥६९॥ आचार्य कहते हैं कि जिस प्रकार संसारी प्राणी कर्मरूपी

---

१. रिपुम् म.। २. हृत्वा म.। ३. सुमुद्धो म.। ४. म. पुस्तके ६८-६९ तमश्लोकयोर्मध्ये 'निजसैन्यार्णवं दृष्ट्वा पीयमानं समन्ततः। शस्त्रज्वालाविलासेन कपिप्रलयवह्निना ॥' एष श्लोकोऽधिको वर्तते।

मन्दोदरीसुतोऽप्येष बद्धो नागवशाश्रया । विराधितेन याने स्वे स्थापितः क्लान्तविग्रहः ॥७१॥
तावद्रणमुखेऽमाणीद् दशवक्त्रो विभीषणम् । संकुद्धोऽभिमुखीभूतं चिरं सोढारणक्रियम् ॥७२॥
प्रहारमिममेकं मे प्रतीच्छ यदि मन्यसे । सत्यं पुरुषमात्मानं रणकण्डूप्रचण्डकम् ॥७३॥
इत्युक्त्वा विस्फुरत्पिङ्गस्फुलिङ्गाकिङ्किताम्बरम् । शूलं चिक्षेप लुलोऽसौ लक्ष्मणेनान्तरे कृतैः ॥७४॥
तं भस्मीकृतमालोक्य शूलमत्युग्रदुःसहम् । रुषितो रावणः शक्तिं जग्राह दारुणाम् ॥७५॥
यावत्पश्यति संजातमग्रतो गरुडध्वजम् । प्रौढेन्दीवरसंकाशं भासुरं पुरुषोत्तमम् ॥७६॥
प्रलयाम्भोदसंभारगंभीरोदारनिस्वनः । विंशत्यक्षमुखोऽवोचत् तमेवं ताडयन्निव ॥७७॥
अन्यस्यैव मया शस्त्रमुद्यतं वधकारणम् । यदि तत्कोऽधिकारस्ते स्थातुमासन्नतो मम ॥७८॥
अभिवाञ्छसि मर्तुं वा यदि दुर्मर्त लक्ष्मण । प्रतीच्छेमं प्रहारं मे तिष्ठ प्रगुणविग्रहः ॥७९॥
विभीषणं समुत्सार्य सोऽपि कृच्छ्रेण मानवान् । दशास्यमभिदुद्राव चिरं संग्रामखेदितम् ॥८०॥
निःसर्पत्तारकाकारस्फुलिङ्गनिकरां ततः । चिक्षेप रावणः शक्तिं कोपसंभारसंगतः ॥८१॥
वक्षस्तस्य तया भिन्नं महाशैलतटोपमम् । अमोघक्षेपया शक्त्या दिव्यया स्वभ्रदीप्तया ॥८२॥
लक्ष्मणोरसि सा सक्ता भासुराङ्गमनोहरा । परमप्रेमसंबद्धा शोभते स्म वधूरिव ॥८३॥
गाढप्रहारदुःखार्तः स परायत्तविग्रहः । महीतलं परिप्राप्तो गिरिर्वज्राहतो यथा ॥८४॥

पाशसे वेष्टित रहता है, उसी प्रकार भानुकर्ण भी नागपाशसे वेष्टित हो गया। तदनन्तर रामकी आज्ञा पाकर भामण्डलने उसे अपने रथपर डाल लिया ॥७०॥ उधर जिसका शरीर बेचैन हो रहा था ऐसे नागपाशसे बँधे हुए इन्द्रजित्को भी लक्ष्मणकी आज्ञासे विराधितने अपने रथपर रख लिया ॥७१॥

उसी समय रणके मैदानमें क्रोधसे भरे रावणने, चिरकाल तक रणक्रियाको सहन करनेवाले विभीषणसे कहा कि ॥७२॥ यदि तू अपने आपको सचमुच ही रणकी खाजसे प्रचण्ड पुरुष मानता है तो मेरे इस एक प्रहारको झेल ॥७३॥ इतना कहकर उसने निकलते हुए पीले तिलगोंसे आकाशको व्याप्त करनेवाला शूल चलाया, सो लक्ष्मणने उसे अपने बाणोंसे बीचमें ही समाप्त कर दिया ॥७४॥ उस अत्यन्त भयंकर शूल नामक शस्त्रको भस्मीकृत देख रावणने अत्यन्त कुपित हो भयानक शक्ति उठायी ॥७५॥ रावण शक्ति उठाकर ज्यों ही सामने देखता है तो उसे आगे खड़े हुए, तरुण नील कमलके समान श्याम, देदीप्यमान पुरुषोत्तम, लक्ष्मण दिखाई दिये ॥७६॥ लक्ष्मणको देख प्रलयकालीन मेघसमूहके समान गम्भीर शब्द करनेवाला रावण ताड़न करते हुए के समान इस प्रकार बोला ॥७७॥ कि जब मैंने दूसरेका ही वध करनेके लिए शस्त्र उठाया है तब तुझे मेरे निकट खड़े होनेका क्या अधिकार है ? ॥७८॥ अथवा रे मूर्ख लक्ष्मण ! यदि तू मरना ही चाहता है तो सीधा खड़ा हो और मेरा यह प्रहार झेल ॥७९॥ यह सुन मानी लक्ष्मण भी कठिनाईसे विभीषणको अलग कर जो चिरकाल तक युद्ध करनेसे खेदखिन्न हो गया था ऐसे रावणके सम्मुख दौड़ा ॥८०॥

तदनन्तर क्रोधके भारसे भरे रावणने जिससे ताराओंके समान तिलगोंका समूह निकल रहा था ऐसी शक्ति चलायी और जिसका चलाना कभी व्यर्थ नहीं जाता तथा जो अत्यन्त देदीप्यमान थी ऐसी उस शक्तिसे महापर्वतके तटके समान लक्ष्मणका वक्षःस्थल खण्डित हो गया ॥८१-८२॥ लक्ष्मणके वक्षस्थलपर लगी देदीप्यमान आकृतिसे मनोहर वह शक्ति, परम प्रेमसे लिपटी स्त्रीके समान सुशोभित हो रही थी ॥८३॥ जो गाढ़ प्रहारजन्य दुःखसे दुःखी थे तथा

१. सोढा रणक्रियम् म. ।

दृष्ट्वा तं पतितं भूमौ पद्मः पद्माभलोचनः । विनियम्य परं शोकं शत्रुघातार्थमुद्यतः ॥८५॥
सिंहयुक्तं[1] समारूढः स्यन्दनं क्रोधपूरितः । शत्रुमायातमात्रेण चकार विरथं बली ॥८६॥
रथान्तरं समारूढश्छिन्नपूर्वशरासनः । बाणवर्षं समादत्ते भूयोऽथ विरथीकृतः ॥८७॥
पद्माभस्य शरैर्ग्रस्तो दशास्यो विह्वलीकृतः । न समर्थो धनुर्वेत्तुं ग्रहीतुं न च कार्मुकम् ॥८८॥
क्षोतितोऽपि शरैस्तीव्रैस्तथापि धरणीतले । रये विलोक्यते भूयो रावणः खेदसंगतः ॥८९॥
विच्छिन्नचापकवचः षड्वारं विरथीकृतः । तथापि शक्यते नैव स साधयितुमच्युतः ॥९०॥
प्रोक्तश्च पद्मनाभेन परं प्राप्तेन विस्मयम् । नाल्पायुष्को भवानेव यो न प्राप्तोऽसि पञ्चताम् ॥९१॥
मद्बाहुप्रेरितैर्बाणैर्वेगवद्भिः शिताननैः । महीभृतोऽपि शीर्यन्ते मन्येऽन्यत्र किमुच्यताम् ॥९२॥
तथापि रक्षितः पुण्यैर्जन्मान्तरसमर्जितैः । शृणु ब्रवीमि किंचित्ते वचनं खेचराधिप ॥९३॥
संग्रामेऽभिमुखो भ्राता यो मे शक्त्या त्वया[2] हतः । प्रेतस्यामिमुखं तस्य वीक्षे यद्यनुमन्यसे[3] ॥९४॥
एवमस्त्विति संमाल्य प्रार्थनाभङ्गदुर्विधः । ययौ दशाननो लङ्कामृद्ध्याऽऽखण्डलसंनिभः ॥९५॥
एकस्तावदयं ध्वस्तो मया शत्रुर्महोत्कटः । इति किंचिद्धृतिं प्राप्तो विवेश भवनं निजम् ॥९६॥
अन्विष्य विक्षतांस्तत्र योधान् विक्रान्तवत्सलः । विवेशान्तःपुरं धीरो दर्शनश्रमनोदनः ॥९७॥
निरुद्धं भ्रातरं श्रुत्वा पुत्राचरणकारिणौ । शोचन् प्रियजनं पश्यन्नाशां चक्रे दशाननः ॥९८॥

जिनका शरीर विवश हो गया था ऐसे लक्ष्मण वज्रसे ताड़ित पर्वतके समान पृथिवीपर गिर पड़े ॥८४॥ उन्हें भूमिपर पड़े देख कमल लोचन राम, तीव्र शोकको रोककर शत्रुका घात करनेके लिए उद्यत हुए ॥८५॥ सिंहजुते रथपर बैठे एवं क्रोधसे भरे बलवान् रामने सामने जाते ही शत्रुको रथरहित कर दिया ॥८६॥ जबतक वह दूसरे रथपर चढ़ता है तबतक रामने उसका धनुष तोड़ दिया। तदनन्तर वह जबतक दूसरा धनुष उठाता है तबतक उसे पुनः रथरहित कर दिया ॥८७॥ रामके बाणोंसे ग्रस्त हुआ रावण इतना विह्वल हो गया कि वह न तो बाण ग्रहण करनेके लिए समर्थ था और न धनुष ही ॥८८॥ यद्यपि रामने तीव्र बाणोंके द्वारा रावणको पृथिवीपर लिटा दिया था तथापि वह खेद-खिन्न हो पुनः दूसरे रथपर आरूढ़ हो गया ॥८९॥ इस प्रकार यद्यपि रामने छह बार उसका धनुष तोड़ा तथा छह बार उसे रथरहित किया तथापि आश्चर्यसे भरा रावण जीता नहीं जा सका ॥९०॥ तब परम आश्चर्यको प्राप्त हुए रामने उससे कहा कि आप जब इस तरह मृत्युको प्राप्त नहीं हुए तब अल्पायुष्क नहीं हो, यह निश्चित है ॥९१॥ मैं समझता हूँ कि मेरी भुजाओंसे छोड़े हुए वेगशाली तीक्ष्णमुख बाणोंसे पहाड़ भी ढह जाते हैं फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है ॥९२॥ इतना होनेपर भी जन्मान्तरमें संचित पुण्य कर्मने तेरी रक्षा की है। अब हे विद्याधरराज! सुन, मैं तुझसे कुछ वचन कहता हूँ ॥९३॥ संग्राममें सामने आये हुए मेरे जिस भाईको तूने शक्तिके द्वारा घायल किया है वह मरनेके सम्मुख है, यदि तू अनुमति दे तो उसका मुख देख लूँ ॥९४॥ तदनन्तर जो प्रार्थना भंग करनेमें दरिद्र था और इन्द्रके समान जिसकी शोभा बढ़ रही थी ऐसा रावण 'एवमस्तु' कहकर वैभवके साथ लंकाकी ओर चला गया ॥९५॥ 'यह एक महाबलवान् शत्रु तो मेरे द्वारा मारा गया' इस प्रकार हृदयमें कुछ धैर्यको प्राप्त हुए रावणने अपने भवनमें प्रवेश किया ॥९६॥ पराक्रमी मनुष्योंके साथ स्नेह रखनेवाले धीर-वीर रावणने घायल योद्धाओंकी खोज कराकर उनकी ओर प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखा तथा इस तरह उनका खेद दूर कर अन्तःपुरमें प्रवेश किया ॥९७॥ भाई कुम्भकर्ण और युद्ध करनेवाले इन्द्रजित् तथा मेघवाहन नामक दो पुत्रोंको शत्रुके पास रुका सुन रावण शोक करने लगा परन्तु प्रियजनोंकी

---

१. समारूढं म. । २. यतः म. । ३. यद्यनुगम्यसे म. ।

मालिनीवृत्तम्

इति निजचरितस्यानेकरूपस्य हेतोर्यदिगतमवजस्याक्षयलाभोदयस्य ।
इह जनयु विचित्रं कर्मणो लभ्यते फलमविरतयोगाज्जन्तवो भूरिभावाः[1] ॥९९॥
व्रजति विधिनियोगात्कश्चिदेवेह नाशं हतरिपुरपरश्च स्वं पदं याति धीरः ।
विफलितपृथुशक्तिर्बन्धनं सेवतेऽन्यो रविरुचितपदार्थोद्भासने हि प्रवीणः ॥१००॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे शक्तिसंतापाभिधानं नाम द्वाषष्टितमं पर्व ॥६२॥

□

ओर देखते हुए उसने उन्हें शीघ्र ही छुड़ानेकी आशा की ॥९८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! नाना प्रकारके भावोंको धारण करनेवाले जीव, अपने विविध आचरणोंके अनुरूप पूर्वभवोंमें जो कर्मका संचय करते हैं उन्हें उसका उदय अवश्य ही भोगना पड़ता है और उसके उदयके अनुरूप ही वे इस जन्ममें निरन्तर नाना प्रकारका फल भोगते हैं ॥९९॥ इस संसारमें कर्मयोगसे कोई नाशको प्राप्त होता है, कोई धीर-वीर शत्रुको नष्ट कर अपने पदको प्राप्त होता है, कोई अपनी विशाल शक्तिके निष्फल हो जानेसे बन्धनको प्राप्त होता है और कोई सूर्यके समान योग्य पदार्थोंको प्रकाशित करनेमें समर्थ होता है ॥१००॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें लक्ष्मणके शक्ति लगनेके दुःखका वर्णन करनेवाला बासठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६२॥

□

---

१. भूतिभावाः म. ।

त्रिषष्टितमं पर्व

ततः समाकुलस्वान्तः पद्मः शोकेन ताडितः । [1]परिप्राप तमुद्देशं यत्र तिष्ठति लक्ष्मणः ॥१॥
निर्विचेष्टं समालोक्य क्षितिमण्डलमण्डनम् । शक्त्याऽऽलिङ्गितवक्षस्कं पद्मो मूर्च्छामुपागतः ॥२॥
संप्राप्य च चिरात् संज्ञां महाशोकसमन्वितः । दुःखाग्निदीपितोऽत्यन्तं विप्रलापमसेवत ॥३॥
हा वत्स विधियोगेन महादुर्लङ्घ्यमर्णवम् । उत्तीर्य संगतोऽस्येतामवस्थामतिदारुणाम् ॥४॥
अयि मद्भक्तिसच्चेष्टो मदर्थं सततोद्यतः । क्षिप्रं प्रयच्छ मे वाचं किं मौनेनावलिप्तसे ॥५॥
जानास्येव वियोगं ते मुहूर्त्तमपि नो सहे । कुरु आलिङ्गनमुच्चिष्ट क्व गतोऽयौ तवादरः ॥६॥
अथ केयूरदष्टौ मे भुजावेतौ महाबलौ । शोभनाश्रयदौ जातौ निष्क्रियौ विफलौ तव ॥७॥
निक्षेपो गुरुभिस्त्वं मे प्रयत्नेन समर्पितः । गत्वा किमुत्तरं तेभ्यो दास्यामि त्रपयोज्झितः ॥८॥
क्व सौमित्रिः क्व सौमित्रिरिति गाढं समुत्सुकः । लोकोऽपि हि समस्तो मे प्रक्ष्यति प्रेमनिर्भरः ॥९॥
रत्नं पुरुषवीराणां हारयित्वा स्वकामहम् । मन्ये जीवितमात्मीयं हतं निहतपौरुषः ॥१०॥
दुष्कृतस्योदयप्राप्तस्य संचितस्य भवान्तरे । फलमेतन्मया प्राप्तं सीतया मे किमन्यया ॥११॥
यस्याः कृते [2]क्षतोरस्कं शक्त्या निर्दयनुन्नया । भवन्तं भूतले सुप्तं पश्यामि दृढमानसः ॥१२॥
कामार्थाः सुलभाः सर्वे पुरुषस्यागमास्तथा । [3]विविधाश्चैव संबन्धा विष्टपेऽस्मिन् यथा तथा ॥१३॥
पर्यटन्नपि पृथिवीं सर्वां स्थानं पश्यामि तत्तनु । यस्मिन्नवाप्यते भ्राता जननी जनकोऽपि वा ॥१४॥

अथानन्तर जिनका चित्त अत्यन्त व्याकुल हो रहा था तथा जो शोकसे पीड़ित हो रहे थे ऐसे श्रीराम उस स्थानपर पहुँचे जहाँ लक्ष्मण पड़े थे ॥१॥ जिनका वक्षःस्थल शक्तिसे आलिंगित था ऐसे पृथिवीतलके अलंकारस्वरूप लक्ष्मणको निश्चेष्ट देख राम मूर्च्छाको प्राप्त हो गये ॥२॥ चिरकाल बाद जब सचेत हुए तब महाशोकसे युक्त एवं दुःखरूपी अग्निसे जलते हुए अत्यन्त विलाप करने लगे ॥३॥ वे कहने लगे कि हाय वत्स ! तू कर्मयोगसे इस दुर्लंघ्य सागर को उल्लंघ कर अब इस अत्यन्त कठिन दशाको प्राप्त हुआ है ॥४॥ अये वत्स ! तू सदा मेरी भक्तिमें सचेष्ट रहता था और मेरे कार्यके लिए सदा तत्पर रहता था, अतः शीघ्र ही मुझे वचन दे—मुझसे वार्तालाप कर, मौनसे क्यों बैठा है ? ॥५॥ तू यह तो जानता ही है कि मैं तेरा वियोग मुहूर्त-भरके लिए भी सहन नहीं कर सकता हूँ अतः उठ आलिंगन कर, तेरा वह आदर कहाँ गया ? ॥६॥ आज बाजूबन्दसे सुशोभित मेरी ये लम्बी भुजाएँ नाममात्रकी रह गयीं, तेरे बिना सर्वथा निष्फल और निष्क्रिय हो गयीं ॥७॥ माता-पिता आदि गुरुजनोंने तुझे धरोहरके रूपमें प्रयत्नपूर्वक मेरे लिए सौंपा था, अब मैं लज्जारहित हुआ जाकर उन्हें क्या उत्तर दूँगा ? ॥८॥ प्रेमसे भरे समस्त लोग अत्यन्त उत्सुक हो मुझसे पूछेंगे कि लक्ष्मण कहाँ है ? लक्ष्मण कहाँ है ? ॥९॥ तू वीर पुरुषोंमें रत्नके समान था सो तुझे हराकर मैं पुरुषार्थहीन वृथा अपने जीवनको नष्ट हुआ समझता हूँ ॥१०॥ भवान्तरमें जो मैंने दुष्कृत—पाप कर्म किया था वह इस समय उदयमें आ रहा है। और उसीका फल मुझे प्राप्त हुआ है, हे भाई ! मुझे तेरे बिना सीतासे क्या प्रयोजन है ? ॥११॥ मुझे उस सीतासे क्या प्रयोजन है जिसके लिए निर्दय—रावणके द्वारा चलायी हुई शक्तिसे तेरा वक्षःस्थल विदीर्ण हुआ है तथा मैं कठोर हृदय हो तुझे पृथिवीपर सोया हुआ देख रहा हूँ ॥१२॥ इस संसारमें पुरुषको काम और अर्थ तथा नाना प्रकारके सम्बन्ध सर्वत्र सुलभ हैं ॥१३॥ समस्त पृथिवीमें घूम-कर मैं वह स्थान नहीं देख सका जिसमें भाई, माता तथा पिता पुनः प्राप्त हो सकते हों ॥१४॥

---

१. परिप्राप्तस्तमुद्देशं म. । २. -क्षितौ रक्तं म. । ३. द्विविधा- म. ।

हे सुग्रीव सुहृत्त्वं ते दर्शितं खेचराधिप । व्रजाऽधुना निजं देशं भामण्डल भवानपि ॥१५॥
जीविताशां परित्यज्य दयितां जानकीमिव । ज्वलनं त्वः प्रवेष्टास्मि समं भ्रात्रा विसंशयम् ॥१६॥
विभीषण न मे शोकस्तथा सीताऽनुजोद्भवः । यथा निरुपकारित्वं मम संबाधते त्वयि ॥१७॥
उत्तमा उपकुर्वन्ति पूर्वं पश्चात्तु मध्यमाः । पश्चादपि न ये तेषामधमत्वं हतात्मनाम् ॥१८॥
कृतपूर्वोपकारस्य साधोर्बन्धुविरोधिनः । यस्ते नोपकृतं किंचित्तेन दह्येतरामहम् ॥१९॥
भो भामण्डलसुग्रीवौ चितां रचयतं द्रुतम् । परलोकं गमिष्यामि कुरुतं युक्तमात्मनः ॥२०॥
ततो लक्ष्मीधरं स्प्रष्टुमिच्छन्तं रघुनन्दनम् । अवारयन्महाबुद्धिर्जाम्बूनदमहत्तरः ॥२१॥
मा स्प्राक्षीर्लक्ष्मणं देव दिव्यास्त्रपरिमूर्च्छितम् । प्रमादो जायते ह्येवं प्रायो हि स्थितिरीदृशी ॥२२॥
प्रपद्यस्व च धीरत्वं कातरत्वं परित्यज । भवन्तीह प्रतीकाराः प्रायो विपदमीयुषाम् ॥२३॥
प्रतीकारो विलापोऽत्र नानुद्दामजनोचितः । परमार्थानुसारेण क्रियतां धीरमानसम् ॥२४॥
उपायः सर्वथा कश्चिदिह देव भविष्यति । जीविष्यति तव भ्राता ननु नारायणो ह्ययम् ॥२५॥
ततो विषादिनः सर्वे परं विद्याधराधिपाः । उपायचिन्तनासक्ताश्चक्रुरित्यन्तरात्मनि ॥२६॥
दिव्या शक्तिरियं शक्या न निराकर्तुमौषधैः । उद्गते[1] ज्योतिषामीशे दुःखं जीवसि लक्ष्मणः ॥२७॥
अथोत्सार्यं कबन्धादीन्निमिषार्द्धेन सा मही । किङ्करैर्विहितोत्सृष्टद्रव्यप्राकारमण्डपा ॥२८॥

हे विद्याधरोंके राजा सुग्रीव ! तुमने अपनी मित्रता दिखायी । अब अपने देश जाओ । इसी तरह हे भामण्डल ! तुम भी अपने देश जाओ ॥१५॥ इसमें संशय नहीं कि मैं प्रिया जानकीके समान जीवनकी आशा छोड़ कल भाईके साथ अग्निमें प्रवेश करूँगा ॥१६॥ हे विभीषण ! मुझे सीता तथा छोटे भाईके वियोगसे उत्पन्न हुआ शोक उस प्रकार पीड़ा नहीं पहुँचा रहा है जिस प्रकार कि तुम्हारा कुछ उपकार नहीं कर सकना ॥१७॥ उत्तम मनुष्य कार्यके पूर्व तथा मध्यम मनुष्य कार्यके पश्चात् उपकार करते हैं परन्तु जो कार्यके पीछे भी उपकार नहीं करते हैं उन दुष्टोंमें नीचताका ही निवास समझना चाहिए ॥१८॥ हे विभीषण ! तू साधु पुरुष है । तूने मेरा पहले उपकार किया और मेरे पीछे बन्धुसे विरोध किया है फिर भी मैं तेरा कुछ भी उपकार नहीं कर सका इससे मन ही मन जल रहा हूँ ॥१९॥ हे भामण्डल और सुग्रीव ! शीघ्र ही चिता बनाओ । मैं परलोक जाऊँगा, आप दोनों अपने योग्य कार्य करो । जिसमें तुम्हारा कल्याण हो सो करो ॥२०॥

तदनन्तर रामने लक्ष्मणके स्पर्श करनेकी इच्छा की सो उन्हें महाबुद्धिमान् जाम्बूनदने मना किया ॥२१॥ उसने कहा कि हे देव ! दिव्य अस्त्रसे मूर्च्छित लक्ष्मणको मत छुओ क्योंकि ऐसा करनेसे प्रायः प्रमाद हो जाता है । इन दिव्य अस्त्रोंकी ऐसी ही स्थिति है ॥२२॥ आप धीरताको प्राप्त होओ, कातरता छोड़ो, विपत्तिमें पड़े हुए लोगोंके प्रतीकार इस संसारमें अधिकांश विद्यमान हैं ॥२३॥ क्षुद्र मनुष्योंके योग्य विलाप करना इसका प्रतीकार नहीं है, हृदयको यथार्थमें धैर्ययुक्त किया जाये ॥२४॥ हे देव ! इसका कोई न कोई उपाय अवश्य होगा और तुम्हारा भाई जीवित होगा क्योंकि यह नारायण है, नारायणका असमयमें मरण नहीं होता ॥२५॥ तदनन्तर विषादसे भरे सब विद्याधर राजा उपायके चिन्तनमें तत्पर हो मनमें इस प्रकार विचार करने लगे कि यह दिव्य शक्ति औषधियोंके द्वारा दूर नहीं की जा सकती और सूर्योदय होनेपर लक्ष्मण बड़ी कठिनाईसे जीवित रह सकेंगे अर्थात् सूर्योदयके पूर्व इसका प्रतीकार नहीं किया गया तो जीवित रहना कठिन हो जायेगा ॥२६-२७॥

तदनन्तर किंकरोंने आधे निमेषमें ही शिररहित धड़ आदिको हटाकर उस युद्धभूमिको शुद्ध किया और वहाँ कपड़ेके ऊँचे-ऊँचे डेरे-कनातें तथा मण्डप आदि खड़े कर दिये ॥२८॥

---

१. सूर्ये । २. दृश्य म. ।

सप्तकक्ष्याइसंपन्ना कृतदिक्चक्रनिर्गमा[2] । बहिः कवचितैर्योधैर्गुप्ता कार्मुकधारिभिः ॥२९॥
प्रथमे गोपुरे नीलश्चापपाणिः प्रतिष्ठितः । द्वितीये तु नलस्तस्थौ गदाहस्तो घनोपमः ॥३०॥
विभीषणस्तृतीये तु शूलपाणिर्महाप्रभाः । रत्नमालाचित्ररत्नांशुरीशानवदशोभत ॥३१॥
संनद्धबद्धतूणीरस्तुरीये कुमुदः स्थितः । सुषेणः पञ्चमे ज्ञेयः कुन्तहस्तः प्रतापवान् ॥३२॥
सुपीवरभुजो वीरः सुग्रीवः स्वयमेव च । रराज भिण्डिमालेन षष्ठे वज्रधरोपमः ॥३३॥
प्रवेशे सप्तमे राजन्महारिपुबलान्तकः । भामण्डलश्चमाकृष्य स्वयं भामण्डलः स्थितः ॥३४॥
पूर्वद्वारेण संचारे शरभः शरभध्वजः । रराज पश्चिमे द्वारे कुमारो जाम्बवो यथा ॥३५॥
प्रदेशमौत्तरद्वारं व्याप्यामात्यौघसंकुलम् । स्थितश्चन्द्ररीचिश्च बालिपुत्रो महाबलः ॥३६॥
एवं विरचिता श्रोणी खेचरेशैः प्रयत्निभिः । रराज भारिवारार्थं निर्मलैरुडुमण्डलैः ॥३७॥
यावन्तः केचिदन्ये तु समरादनिवर्तिनः । ते स्थिता दक्षिणामाशां व्याप्य वानरकेतवः ॥३८॥

उपजातिवृत्तम्

एवं प्रयत्नाः कृतयोग्यरक्षाः संदेहिनो लक्ष्मणजीवयोगे ।
सविस्मयाः सोरुशुचः समग्राः स्थिताः समस्ता गगनायनेशाः ॥३९॥
न तन्नरा नो यवयो न नागा न चापि देवा विनिवारयन्ति ।
यदात्मना संजनितस्य लभ्य-फलं नृणां कर्मरवेः प्रकाशम् ॥४०॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे शक्तिभेदरामविलापाभिधानं नाम त्रिषष्टितमं पर्व ॥६३॥

उस भूमिको सात चौकियोंसे युक्त किया, दिशाओंमें आवागमन बन्द किया और कवच तथा धनुषको धारण करनेवाले योद्धाओंने बाहर खड़े रह उसकी रक्षा की ॥२९॥ पहले गोपुरपर धनुष हाथमें लेकर नील बैठा, दूसरे गोपुरमें गदा हाथमें धारण करनेवाला मेघतुल्य नल खड़ा हुआ, तीसरे गोपुरमें हाथमें शूल धारण करनेवाला उदारचेता विभीषण खड़ा हुआ। वहाँ जिसकी मालाओंमें लगे नाना प्रकारके रत्नोंकी किरणें सब ओर फैल रही थीं ऐसा विभीषण ऐशानेन्द्रके समान सुशोभित हो रहा था ॥३०-३१॥ कवच और तरकसको धारण करनेवाला कुमुद चौथे गोपुरपर खड़ा हुआ। पाँचवें गोपुरमें भाला हाथमें लिये प्रतापी सुषेण खड़ा हुआ ॥३२॥ जिसकी भुजाएँ अत्यन्त स्थूल थीं और भिण्डिमाल नामक शस्त्रसे इन्द्रके समान जान पड़ता था ऐसा वीर सुग्रीव स्वयं छठवें गोपुरमें सुशोभित हो रहा था। तथा सातवें गोपुरमें बड़े-बड़े शत्रुराजाओंकी सेनाको मौतके घाट उतारनेवाला भामण्डल स्वयं तलवार खींचकर खड़ा था ॥३३-३४॥ पूर्व द्वारके मार्गमें शरभ चिह्नसे चिह्नित ध्वजाको धारण करनेवाला शरभ पहरा दे रहा था, पश्चिम द्वारमें जाम्बव कुमार सुशोभित हो रहा था और मन्त्रिसमूहसे युक्त उत्तर द्वारको घेरकर चन्द्ररश्मि नामका बालिका महाबलवान् पुत्र खड़ा हुआ था ॥३५-३६॥ इस प्रकार प्रयत्नशील विद्याधर राजाओंके द्वारा रची हुई वह भूमि, निर्मल नक्षत्रोंके समूहसे आकाशके समान अत्यन्त सुशोभित हो रही थी ॥३७॥ इनके सिवाय युद्धसे नहीं लौटनेवाले जो अन्य वानरध्वज राजा थे वे सब दक्षिण दिशाको व्याप्त कर खड़े हो गये ॥३८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिन्होंने इस प्रकार प्रयत्न कर योग्य रक्षा की थी, जिन्हें लक्ष्मणके जीवित होनेमें सन्देह था, जो आश्चर्यसे युक्त थे, बहुत भारी शोकसे सहित थे एवं मानो थे ऐसे सब विद्याधर राजा यथास्थान खड़े हो गये ॥३९॥ अपने ही द्वारा अर्जित कर्मरूपी सूर्यके प्रकाशस्वरूप जो फल मनुष्योंको प्राप्त होनेवाला है उसे न मनुष्य दूर कर सकते हैं, न घोड़े, न हाथी, और न देव भी ॥४०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें शक्तिभेद एवं रामविलापका वर्णन करनेवाला तिरसठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६३॥

१. कक्ष्याद्रि -म. । २. दिक्चक्र-म. ।

चतुःषष्टितमं पर्व

नियतं मरणं ज्ञात्वा लक्ष्मणस्य दशाननः । पुत्रभ्रातृवधं बुद्ध्वा चकारात्यन्तदुःखितः ॥१॥
हा भ्रातः परमोदार ममात्यन्तहितोद्यतः । कथमेतामवाप्तोऽसि बन्धावस्थामसंगताम् ॥२॥
हा पुत्रौ समहाबाहौ भुजाविव दृढौ मम । विधेर्नियोगतः प्राप्तौ भवन्तौ बन्धनं नवम् ॥३॥
किं करिष्यति वः शत्रुरित्याकुलितमानसः । न वेद्मि दुरितात्माहं किरसं वा करिष्यति ॥४॥
भवद्भिरुत्तमैः प्रीतैर्बन्धदुःखं समाधीः । प्राप्येऽहं निरतं कष्टं किमिदं दह गर्हते ॥५॥
एवं गजेन्द्रवद्बद्धनिजयूथमहागजः । अप्रकाशं परं शोकमसेवत स संततम् ॥६॥
शक्त्या हतं गतं भूमिं श्रुत्वा लक्ष्मीधरं परम् । संप्राप्ता जानकी शोकमकरोत्परिदेवनम् ॥७॥
हा भद्र लक्ष्मण प्राप्तस्त्वमवस्थामिमां हताम् । कृते मे मन्दभाग्याथा विनीत गुणभूषण ॥८॥
ईदृशमपि चाक्छामि भवन्तमहमीक्षितुम् । विमुक्ता हतदैवेन न लभे पापकारिणी ॥९॥
भवन्तं तादृशं वीरं घ्नता पापेन शत्रुणा । क मे कृतो न संदेहः प्रवीरे मरणं प्रति ॥१०॥
वियुक्तो बन्धुभिः भ्रातुरिष्टे संसक्तमानसः । अवस्थामागतोऽस्येतां कृच्छ्रादुत्तीर्य सागरम् ॥११॥
अपि नाम पुनः क्रीडाकोविदं विनयान्वितम् । पश्येयं चारुवाक्यं त्वा परमाद्भुतकारिणम् ॥१२॥

अथानन्तर रावण लक्ष्मणका मरण निश्चित जान अत्यन्त दुखी होता हुआ मनमें पुत्रों और भाईके वधका विचार करने लगा। भावार्थ—रावणको यह निश्चय हो गया कि शक्तिके प्रहारसे लक्ष्मण अवश्य मर गया होगा और उसके प्रतिकारस्वरूप रामपक्षके लोगोंने कैद किये हुए इन्द्रजित् तथा मेघवाहन इन दो पुत्रों और कुम्भकर्ण भाईको अवश्य मार डाला होगा। इस विचारसे वह मन ही मन बहुत दुःखी हुआ ॥१॥ वह विलाप करने लगा कि हाय भाई! तू अत्यन्त उदार था और मेरा हित करनेमें सदा उद्यत रहता था सो इस अयुक्त बन्धनकी अवस्थाको कैसे प्राप्त हो गया? ॥२॥ हाय पुत्रो! तुम तो महाबलवान् और मेरी भुजाओंके समान दृढ़ थे। कर्मके नियोगसे ही तुम इस नूतन बन्धनको प्राप्त हुए हो ॥३॥ शत्रु तुम लोगोंका क्या करेगा? यह सोचकर मेरा मन अत्यन्त व्याकुल हो रहा है। मैं पापी शत्रुके कर्तव्यको नहीं जानता हूँ अथवा निश्चित ही है कि वह अनिष्ट ही करेगा अर्थात् तुम्हें मारेगा ही ॥४॥ आप-जैसे उत्तम, प्रीतिके पात्र पुरुष बन्धनके दुःखको प्राप्त हुए हैं इसलिए मैं अत्यधिक पीड़ाको प्राप्त हो रहा हूँ। हाय, यह कष्ट मुझे क्यों रहा है? ॥५॥ इस प्रकार जिसके यूथ—झुण्डका महागज पकड़ लिया गया है ऐसे अन्य गजराजकी तरह वह रावण निरन्तर अप्रकट रूपसे मन ही मन शोकका अनुभव करने लगा ॥६॥

तदनन्तर जब सीताने सुना कि लक्ष्मण शक्तिसे घायल हो पृथिवीपर गिर पड़े हैं तब वह शोकको प्राप्त हो विलाप करने लगी ॥७॥ वह कहने लगी कि हाय भाई लक्ष्मण! हाय विनीत! हाय गुण रूपी आभूषणसे सहित! तुम मुझ अभागिनीके लिए इस अवस्थाको प्राप्त हुए हो ॥८॥ यद्यपि मैं इस तरह संकटमें पड़ी हुई भी तुम्हारा दर्शन करना चाहती हूँ तथापि मैं अभागिनी पापिनी आपका दर्शन नहीं पा रही हूँ ॥९॥ आप-जैसे वीरको मारते हुए पापी शत्रुने किस वीरके मारनेका सन्देह मुझे उत्पन्न नहीं किया है? अर्थात् जब उसने आप-जैसे वीरको मार डाला है तब वह प्रत्येक वीरको मार सकता है ॥१०॥ तुम भाईका भला करनेमें चिन्ता लगा पहले बन्धुजनोंसे बिछोहको प्राप्त हुए और अब बड़ी कठिनाईसे समुद्रको पार कर इस अवस्थाको प्राप्त हुए हो ॥११॥ क्या मैं क्रीड़ा करनेमें निपुण विनयी, सुन्दर वचन बोलनेवाले एवं परम

कुर्वन्तु सर्वतो देवास्तव जीवितपालनम् । विशल्यस्त्वं द्रुतं गच्छ सर्वलोकमनोहर ॥१३॥
एवं विलापिनी कृच्छ्राच्छोकिनी जनकात्मजा । भावप्रीतिभिरानीता खेचरीभिः प्रसान्त्वनम् ॥१४॥
ज्ञायते देवि नाद्यापि निश्चयो देवरस्य ते । अतो न वर्तते कर्तुमेतस्मिन् परिदेवनम् ॥१५॥
भव धीरा प्रवीराणां भवत्येवेदृशी गतिः । भवन्ति च प्रतीकाराश्चित्रं हि जगतीहितम् ॥१६॥
इति विद्याधरीवाक्यात्किंचित्स्वाऽभूदनाकुला । श्रृण्विदानीं यदेतस्मिन्नासं लक्ष्मणपर्वणि ॥१७॥
प्राप्तो[1] दूष्यगृहद्वारं पुरुषश्चारुदर्शनः । प्रभामण्डलवीरेण प्रविशन्निति नोदितः ॥१८॥
कस्त्वं कस्य कुतो वाऽसि किमर्थं वा[2] विविक्षसि । तिष्ठ तिष्ठ[3] समाचक्ष्व नात्राविदितसंगमः ॥१९॥
सोऽवोचद्वच मे मासः साग्रः प्राप्तस्य वर्तते । पद्मं समाश्रयामीति प्रस्तावो [4]न त्वलभ्यत ॥२०॥
अधुना दर्शये शीघ्रं जीवन्तं यदि लक्ष्मणम् । द्रष्टुं मनीषा वस्तर्हि तदुपायं ददाम्यहम् ॥२१॥
इत्युक्ते परितुष्टेन भामण्डलमहीभृता । दत्वा प्रतिनिधिं द्वारे नीतोऽसौ पद्मगोचरम् ॥२२॥
संप्रयुज्य प्रणामं च स जगाद महादरः । मा[5] खिन्नस्थास्त्वं महाराज कुमारो जीवते ध्रुवम् ॥२३॥
सुप्रभा नाम मे माता जनकः शशिमण्डलः । देवगीते पुरेऽहं च चन्द्रप्रतिमसंज्ञकः ॥२४॥
जातुचिद्विचरन् व्योम्नि वेलाध्यक्षस्य सूनुना । सहस्रविजयाख्येन वैरिणाऽहं निरीक्षितः ॥२५॥
ततो मैथुनिकावैरं स्मृत्वा क्रोधं समीयुषः । तस्य जातं मया सार्द्धं रणं[6] सुभटदारुणम् ॥२६॥

आश्चर्यके कार्य करनेवाले तुम्हें फिर भी देख सकूँगी ? ॥१२॥ देव सब प्रकारसे तुम्हारे जीवनकी रक्षा करें और सब लोगोंके मनको हरण करनेवाले तुम शीघ्र ही शल्यरहित अवस्थाको प्राप्त होओ ॥१३॥ इस प्रकार विलाप करनेवाली शोकवती सीताको भावसे स्नेह रखनेवाली विद्याधरियोंने सान्त्वना प्राप्त करायी ॥१४॥ उन्होंने समझाते हुए कहा कि हे देवि ! तुम्हारे देवरका अभी तक निश्चय नहीं जान पड़ा है इसलिए इसके विषयमें विलाप करना उचित नहीं है ॥१५॥ धैर्य धारण करो, वीरोंकी तो ऐसी गति होती ही है। जो हो चुकता है उसके प्रतीकार होते हैं यथार्थमें पृथिवीकी चेष्टा विचित्र है ॥१६॥ इस प्रकार विद्याधरियोंके कहनेसे सीता कुछ निराकुल हुई। गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अब इस लक्ष्मण पर्वमें जो कुछ हुआ उसे श्रवण कर ॥१७॥

अथानन्तर इसी बीचमें एक सुन्दर मनुष्य डेरेके द्वारपर आकर भीतर प्रवेश करने लगा तब भामण्डलने उसे रोकते हुए कहा कि तू कौन है ? किसका आदमी है ? कहाँसे आया है ? और किस लिए प्रवेश करना चाहता है ? खड़ा रह, खड़ा रह, सब बात ठीक-ठीक बता, यहाँ अपरिचित लोगोंका आगमन निषिद्ध है ॥१८-१९॥ इसके उत्तरमें उस पुरुषने कहा कि मुझे यहाँ आये कुछ अधिक एक मास हो गया। मैं रामका दर्शन करना चाहता हूँ परन्तु अब तक अवसर ही प्राप्त नहीं हुआ ॥२०॥ इस समय उनका दर्शन करता हूँ। यदि आप लोगोंको लक्ष्मणको शीघ्र ही जीवित देखनेकी इच्छा है तो मैं आपको इसका उपाय बताता हूँ ॥२१॥ उसके इतना कहते ही राजा भामण्डल बहुत सन्तुष्ट हुआ। वह द्वार पर अपना प्रतिनिधि बैठाकर उसे रामके समीप ले गया ॥२२॥ उस पुरुषने बड़े आदरसे रामको प्रणाम कर कहा कि हे महाराज ! खेद मत कीजिए, कुमार निश्चित ही जीवित हैं ॥२३॥ मेरी माताका नाम सुप्रभा तथा पिताका नाम चन्द्रमण्डल है। मैं देवगीतपुरका रहनेवाला हूँ तथा चन्द्रप्रतिम मेरा नाम है ॥२४॥ किसी समय मैं आकाशमें घूम रहा था उसी समय राजा वेलाध्यक्षके पुत्र सहस्रविजयने जो कि हमारा शत्रु था मुझे देख लिया ॥२५॥ तदनन्तर स्त्री सम्बन्धी वैरका स्मरण कर वह क्रोधको प्राप्त हो गया जिससे उसका

---

१. दुःखग्रहद्वारं म. । २. विवक्षसि म. । ३. समन्वश्च (?) म. । ४. ननु लभ्यते म. । न तु लभ्यते । ५. विद्यास्त्वं ख. । ६. रणे म. ।

ततोऽहं चण्डरवया अरुण्या तेन रात्रौ हतः । खान्महेन्द्रोदयोद्याने वर्षं निपतितो घने ॥२७॥
एतन्तं मां समालोक्य तारकाबिम्बसंनिभम् । साकेताधिपतिस्तर्की[1] भरतः समदौकत ॥२८॥
शक्तिशल्यितवक्षाश्च सिक्तश्चन्दनवारिणा । तेनाहं करुणार्तेन साधुना जीवदायिना ॥२९॥
शक्तिः पलायिता क्वापि[2] जातं रूपं च पूर्वकम् । अधिकं च सुखं जातं तेन मे गन्धवारिणा ॥३०॥
तेन मे पुरुषेन्द्रेण भरतेन महात्मना । जन्मान्तरमिदं दत्तं फलं यस्य स्वदीक्षणम्[3] ॥३१॥
अथान्तरे स संभ्रान्तः सुरूपो रघुनन्दनः । पप्रच्छ[4] भद्र जानासि तद्गन्धोदकसंभवम् ॥३२॥
सोऽवीत्यहं देव जानामि श्रूयतां वेदयामि ते । पृष्टो हि स मया राजा तेन चेति निवेदितम् ॥३३॥
यथा किल समस्तोऽयं देशः पुरसमन्वितः । अभिभूतो महारोगैरासीदप्रतिकारकैः ॥३४॥
उरोघातमहादाहज्वरलालापरिस्रवाः । सर्वशूलारुचिच्छर्दिश्वयथुस्फोटकादयः ॥३५॥
क्रुद्धा इव परं तीव्राः सर्वे रोगास्तदाऽभवन् । वैरत्र विषये प्राणी नैकोऽप्यस्ति न पातितः ॥३६॥
केवलो द्रोणमेघाख्यः सामात्यपशुबान्धवः । नृपो देव इवारोगः श्रुतो निजपुरे मया ॥३७॥
आहूय स मयाऽवादि माम त्वं नीरुजो यथा । कालक्षेपविनिर्मुक्तं तथा मां कर्तुमर्हसि ॥३८॥
ततः सौरभसंरुद्धदूरदिग्वलयं जलम् । तेन सिक्तोऽहमाख्य प्राप्तश्लोघावतां पराम् ॥३९॥

मेरे साथ योद्धाओंको भय उत्पन्न करनेवाला—कठिन युद्ध हुआ ॥२६॥ तत्पश्चात् उसने मुझे चण्डरवा नामक शक्तिसे मारा जिससे मैं रात्रिके समय आकाशसे अयोध्याके महेन्द्रोदय नामक सघन वनमें गिरा ॥२७॥ आकाशसे पड़ते हुए ताराबिम्बके समान मुझे देख अयोध्याके राजा भरत तर्क करते हुए मेरे समीप आये ॥२८॥ शक्ति लगनेसे जिसका वक्षःस्थल शल्ययुक्त था ऐसे मुझको देख राजा भरत दयासे दुखी हो उठे। तदनन्तर जीवन दान देनेवाले उन सत्पुरुषने मुझे चन्दनके जलसे सींचा ॥२९॥ उसी समय शक्ति कहीं भाग गयी और मेरा रूप पहलेके समान हो गया तथा उस सुगन्धित जलसे मुझे अत्यधिक सुख उत्पन्न हुआ ॥३०॥ पुरुषोंमें इन्द्रके समान श्रेष्ठ उन महात्मा भरतने मुझे यह दूसरा जन्म दिया है जिसका कि फल आपका दर्शन करना है। भावार्थ—शक्ति निकालकर उन्होंने मुझे जीवित किया उसीके फलस्वरूप आपके दर्शन पा सका हूँ ॥३१॥ इसी बीचमें परम हर्षको प्राप्त हुए, सुन्दर रूपके धारक रामने उससे पूछा कि हे भद्र! उस गन्धोदककी उत्पत्ति भी जानते हो? ॥३२॥ इसके उत्तरमें उसने कहा कि हे देव! जानता हूँ सुनिए, मैं आपके लिए बताता हूँ। मैंने राजा भरतसे पूछा था तब उन्होंने इस प्रकार कहा था ॥३३॥ कि नगर-ग्रामादिसे सहित यह देश एक बार जिनका प्रतिकार नहीं किया जा सकता था ऐसे अनेक महारोगोंसे आक्रान्त हो गया ॥३४॥ उरोघात—जिसमें वक्षःस्थल-पसली आदिमें दर्द होने लगता है, महादाहज्वर—जिसमें महादाह उत्पन्न होता है, लालापरिस्राव—जिसमें मुँहसे लार बहने लगती है, सर्व-शूल—जिसमें सर्वांगमें पीड़ा होती है, अरुचि—जिसमें भोजनादिकी रुचि नष्ट हो जाती है, छर्दि—जिसमें वमन होने लगते हैं, श्वयथु—जिसमें शरीर-पर सूजन आ जाता है, और स्फोटक—जिसमें शरीरपर फोड़े निकल आते हैं, इत्यादि समस्त रोग उस समय मानो परम क्रुद्ध हो रहे थे। इस देशमें ऐसा एक भी प्राणी नहीं बचा था जो कि इन रोगों द्वारा गिराया न गया हो ॥३५-३६॥ केवल द्रोणमेघ नामका राजा मन्त्रियों, पशुओं तथा बन्धु आदि परिवारके साथ अपने नगरमें देवके समान नीरोग बचा था ऐसा मेरे सुननेमें आया ॥३७॥ मैंने उसे बुलाकर कहा कि हे माम! जिस प्रकार तुम नीरोग हो उसी प्रकार मुझे भी अविलम्ब नीरोग करनेके योग्य हो ॥३८॥ तदनन्तर उसने बुलाकर अपनी सुगन्धिसे दूर-दूर तकके दिङ्मण्डलको व्याप्त करनेवाला जल मुझपर सींचा और मुझे परम नीरोगता प्राप्त करा

---

१. तार्की म. । २. क्वापि म. । ३. स्वदीक्षणे म. । ४. प्रयच्छ म. ।

न केवलमहं तेन वारिणाऽन्तःपुरं मम । पुरं देशश्च संजातं सर्वरोगविवर्जितम् ॥४०॥
कर्त्री रोगसहस्राणां वायुरत्यन्तदुःसहः । प्रणष्टो दूषिणा तेन मर्मसंभेदकोविदः ॥४१॥
मयैवं बहुशः पृष्टो मामेतदुदकं कुतः । येनाऽऽश्चर्यमिदं शीघ्रं कृतं रोगविनाशनम् ॥४२॥
सोऽवोचच्छ्रूयतां राजन्नस्ति मे गुणशालिनी । विशल्या नाम दुहिता सर्वविज्ञानकोविदा ॥४३॥
यस्यां गर्भमुपन्नायामनेकव्याधिपीडिता । देवी ममोपकाराऽभूत्सर्वरोगविवर्जिता ॥४४॥
जिनेन्द्रशासनासक्ता नित्यं पूजासमुद्यता । शेषेव सर्वबन्धूनां पूजनीया मनोहरा ॥४५॥
स्नानोदकमिदं तस्या महासौरभ्यसंगतम् । कुरुते सर्वरोगाणां तत्क्षणेन विनाशनम् ॥४६॥
तदुक्तादहमाकर्ण्य द्रोणमेघस्य भाषितम् । परं विस्मयमापन्नः संपदा तामपूजयम् ॥४७॥
नगरीतश्च निष्क्रम्य नाम्ना सत्यहितं मुनिम् । गणेश्वरं समप्राक्षं प्रणम्य विनयान्वितः ॥४८॥
ततः खेचरपृष्ठोऽसौ समारुष्यासीन्महायतिः । वैशल्यं चरितं दिव्यं चतुर्ज्ञानी सुवत्सलः ॥४९॥
विदेहे पौण्डरीकाख्ये विषये स्वर्गसंनिभे । चक्री त्रिभुवनानन्दः पुरे चक्रधरेऽभवत् ॥५०॥
नाम्नाऽनङ्गशरा तस्य तनया गुणमण्डना । अपूर्वा कर्मणां सृष्टिर्लावण्यप्लवकारिणी ॥५१॥
तां प्रतिष्ठपुराधीशः सामन्तोऽस्य पुनर्वसुः । दुर्धीराहरदारोप्य विमानं स्मरचोदितः ॥५२॥
क्रुद्धाच्चक्रधरादाज्ञां संप्राप्यामुष्य किङ्करैः । चिरं कृतबलो युद्धं विमानं चूर्णितं भृशम् ॥५३॥
चूर्ण्यमानविमानेन मुक्ता तेनाकुलात्मना । पपात गगनः कान्तिरिव चन्द्रस्य शारदी ॥५४॥

दी ॥३९॥ उस जलसे न केवल मैं ही नीरोग हुआ किन्तु मेरा अन्तःपुर, नगर और समस्त देश रोगरहित हो गया ॥४०॥ हजारों रोगोंको उत्पन्न करनेवाली, अत्यन्त दुःसह, एवं मर्मघात करनेमें निपुण दूषित वायु ही उस जलसे नष्ट हो गयी ॥४१॥ मैंने राजा द्रोणमेघसे बार-बार पूछा कि हे भाम ! यह जल कहाँसे प्राप्त हुआ है जिसने शीघ्र ही रोगोंको नष्ट करनेवाला यह आश्चर्य उत्पन्न किया है ॥४२॥ इसके उत्तरमें द्रोणमेघने कहा कि हे राजन् ! सुनिए, मेरी गुणोंसे सुशोभित तथा सब प्रकारके विज्ञानमें निपुण विशल्या नामकी पुत्री है ॥४३॥ जिसके गर्भमें आते ही अनेक रोगोंसे पीड़ित मेरी स्त्री सर्व रोगोंसे रहित हो मेरा उपकार करनेवाली हुई थी ॥४४॥ वह जिन-शासनमें आसक्त है, निरन्तर पूजा करनेमें तत्पर रहती है, मनोहारिणी है और शेषाक्षतके समान सर्व बन्धु जनोंकी पूज्या है ॥४५॥ यह महासुगन्धिसे सहित उसीका स्नान-जल है जो कि क्षण-भरमें सब रोगोंको नाश कर देता है ॥४६॥ तदनन्तर द्रोणमेघके वह वचन सुन मैं परम आश्चर्यको प्राप्त हुआ और बड़े वैभवसे मैंने उस पुत्रीकी पूजा की ॥४७॥ नगरीसे निकलकर जब वापस आ रहा था तब सत्यहित नामक मुनिराज जो कि मुनिसंघके स्वामी थे वे मिले। मैंने विनयपूर्वक प्रणाम कर उनसे विशल्याका चरित्र पूछा ॥४८॥ राजा भरत विद्याधरसे कहते हैं कि हे विद्याधर ! तदनन्तर मेरे पूछनेपर चार ज्ञानके धारी, महास्नेही मुनिराज विशल्याका दिव्य चरित्र इस प्रकार कहने लगे कि—॥४९॥

विदेह क्षेत्रमें स्वर्गके समान पुण्डरीक नामक देश है। उसके चक्रधर नामक नगरमें त्रिभुवनानन्द नामका चक्रवर्ती रहता था ॥५०॥ उसकी अनंगशरा नामकी एक कन्या थी जो गुणरूपी आभूषणोंसे सहित थी, कर्मोंकी अपूर्व सृष्टि थी और सौन्दर्यका प्रवाह बहानेवाली थी ॥५१॥ चक्रवर्ती त्रिभुवनानन्दका एक पुनर्वसु नामका सामन्त था जो कि प्रतिष्ठपुर नगरका स्वामी था। कामसे प्रेरित हो उस दुर्बुद्धिने विमानपर चढ़ाकर उस कन्याका अपहरण किया ॥५२॥ क्रोधसे भरे चक्रवर्तीकी आज्ञा पाकर सेवकोंने उसका पीछा किया और बहुत काल तक युद्ध कर उसके विमानको अत्यधिक चूर कर डाला ॥५३॥ तदनन्तर जिसका विमान चूर-चूर किया जा रहा था

१. भापन्नाः म. । २. विजये म., ज. । ३. चक्रधरोऽभवत् म. । ४. गुणमण्डला म. ।

विद्यया पर्णलघ्व्याऽसौ पुनर्वसुनियुक्तया । अटवीमागता स्वैरं नाम्ना श्वापदसंज्ञिकाम् ॥५५॥
महाप्रतिभयाकारां महाविद्याभृतामपि । दुःप्रवेशां कृतध्वान्तां महाविटपसंकटैः ॥५६॥
नानालतालीसमाश्लिष्टविविधोत्तुङ्गपादपाम् । पल्लवोद्भासितैर्मुक्तां भीतैरिव स्वैः करैः ॥५७॥
तरक्षुशरभद्वीपिव्याघ्रसिंहादिसेवितम् । उच्चावचखरक्ष्मोणीं महाविवरसंगताम् ॥५८॥
अरण्यानीं गता सेयं महाभयसमागता । कम्पते शिखेव दीपस्य सीदति स्म बराकिका ॥५९॥
नदीतीरं समागम्य कृत्वा दिगवलोकनम् । महाखेदसमायुक्ता स्मृतबन्धुः स्म रोदिति ॥६०॥
तेनाहं लोकपालेन देवेन्द्रप्रतिभासिना । सुचक्रवर्तिना जाता महादुर्लक्षितात्मिका ॥६१॥
विधिना वारणेनेमामवस्थामनुसारिता । किं करोमि परिप्राप्ता वनं दुःखनिरीक्षणम् ॥६२॥
हा मात सकलं लोकं त्वं पालयसि चिक्रमी । कथं मामपरित्राणां विपिने नानुकम्पसे ॥६३॥
हा मातस्तादृशं दुःखं कुक्षिधारणपूर्वकम् । विषह्य सांप्रतं कस्मात् कुरुषे नानुकम्पनम् ॥६४॥
हा मेऽन्तःकरणच्छायपरिवर्गगुणोत्तम । अमुक्ता क्षणमप्येकं कथं त्यजसि सांप्रतम् ॥६५॥
जातमात्रा मृता नाऽहं कस्माद्दुःखस्य भूमिका । अथवा न विना पुण्यैरभिवाञ्छितमाप्यते ॥६६॥
किं करोमि क्व गच्छामि दुःखिनी संश्रयामि कम् । कं परत्रेति व्याहरन्ती सार्थं विलपामि पापिनी ॥६७॥
स्वप्नः किमेष संप्राप्तं जन्मेदं नरके मया । सैव किं स्यादहं कोऽयं प्रकारः सहसोद्गतः ॥६८॥
एवमादि चिरं कृत्वा विप्रलापं सुविह्वला । पशूनामपि तीव्राणां मनोद्रवणकारणम् ॥६९॥

ऐसे उस पुनर्वसुने कन्याको विमानसे छोड़ दिया जिससे वह चन्द्रमाकी शरद्कालीन कान्तिके समान आकाशसे नीचे गिरी ॥५४॥ पुनर्वसुके द्वारा नियुक्त की हुई पर्णलघ्वी नामक विद्याके सहारे स्वच्छासे उतरती हुई वह श्वापद नामक अटवीमें आयी ॥५५॥

तदनन्तर जो बड़े-बड़े विद्याधरोंके लिए भी भय उत्पन्न करनेवाली थी, जिसमें प्रवेश करना कठिन था, बड़े-बड़े वृक्षोंकी सघन झाड़ियोंसे जिसमें अन्धकार फैल रहा था, जहाँ विविध प्रकारके ऊँचे वृक्ष नाना लताओंसे आलिंगित थे, पल्लवोंकी सघन छायासे दूर की हुई सूर्यके किरणोंने भयभीत होकर ही मानो जिसे छोड़ दिया था, जो भेड़िये, शरभ, चीते, तेंदुए तथा सिंहों आदिसे सेवित थी, जहांकी कठोर भूमि ऊँची-नीची थी, और जो बड़े-बड़े बिलोंसे सहित थी ऐसी उस महाअटवीमें जाकर महाभयको प्राप्त हुई बेचारी अनंगसेना दीपककी शिखाके समान कांपने लगी ॥५६-५९॥ नदीके तीर आकर और सब दिशाओंकी ओर देख महाखेदसे युक्त होती हुई वह कुटुम्बीजनोंको विचार-विचारकर रोने लगी ॥६०॥ वह कहती थी कि हाय मैं लोककी रक्षा करनेवाले, इन्द्रके समान सुशोभित उन चक्रवर्ती पितासे उत्पन्न हुई और महास्नेहसे लालित हुई। आज प्रतिकूल दैवसे—भाग्यकी विपरीततासे इस अवस्थाको प्राप्त हुई हूँ। हाय, जिसका देखना भी कठिन है ऐसे इस वनमें आ पड़ी हूँ क्या करूँ ? ॥६१-६२॥ हाय पिता ! तुम तो महापराक्रमी, सब लोककी रक्षा करते हो फिर वनमें असहाय पड़ी हुई मुझपर दया क्यों नहीं करते हो ? ॥६३॥ हाय माता ! गर्भ धारणका वैसा दुःख सहकर इस समय दया क्यों नहीं कर रही हो ? ॥६४॥ हाय मेरे अन्तःकरणके समान प्रवृत्ति करनेवाले तथा उत्तम गुणोंसे युक्त परिजन ! तुमने तो मुझे एक क्षणके लिए भी कभी नहीं छोड़ा फिर इस समय क्यों छोड़ रहे हो ? ॥६५॥ मैं दुखिया क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किसका आश्रय लूँ ? किसे देखूँ और इस महावनमें मैं पापिनी कैसे रहूँ ? ॥६६॥ क्या यह स्वप्न है ? अथवा नरकमें मेरा जन्म हुआ है ? क्या मैं वही हूँ अथवा यह कौन-सी दशा सहसा प्रकट हुई है ? ॥६७-६८॥ इस प्रकार चिरकाल तक विलापकर वह अत्यन्त विह्वल हो गयी। उसका वह विलाप क्रूर पशुओंके भी मनको विचला देनेवाला

---

१. हा मातः करणच्छायपरिवर्गं गुणोत्तमाम् म. ।

क्षुत्तृष्णापरिदग्धाङ्गा शोकसागरवर्तिनी । फलपर्णादिभिर्वृत्तिमकरोद्दीनमानसा ॥७०॥
अरण्याम्बुजखण्डानां शोभासर्वस्वमर्दनः । हिमकालस्तया निन्ये भुवं कर्मानुभावतः ॥७१॥
श्वसत्पशुगणस्तीव्रः शोषितानेकपादपः । सोढस्तयैव रूक्षाङ्गो ग्रीष्मसूर्यातपस्तया ॥७२॥
स्फुरच्चण्डाशिरज्योतिः शीतधारान्धकारितः । घनकालोऽपि निस्तीर्णः प्रवृत्तौघो यथा तथा ॥७३॥
निश्छायं स्फुटितं क्षामं शीर्णकेशं मलाकुलम् । वर्षोपहतचित्राभं स्थितं तस्याः शरीरकम् ॥७४॥
सूर्यालोकहतच्छाया क्षीणेव शशिनः कला । जाता सम्वी तनुस्तस्या लावण्यपरिवर्जिता ॥७५॥
कपित्थवनमानम्रं फलैः पाकाभिधूसरैः । श्रित्वा तातमनुध्याय करुणं सा स्म रोदिति ॥७६॥
जाता चक्रधरेणाऽहं प्रासादस्थामिमां वने । ध्रुवं कर्मानुभावेन सुपापेनान्यजन्मनः ॥७७॥
इत्यश्रुदुर्दिनीभूतवदना वीक्षितक्षितिः । फलान्यादाय सा शान्ता पतितानि स्वपाकतः ॥७८॥
उपवासैः कृशीभूता परं षष्ठाष्टमादिभिः । अम्बुना वाकरोत् बाला पारणामेकवेलिकाम् ॥७९॥
शयनीयगतैः पुष्पैर्या स्वकेशच्युतैरपि । अग्रहीत् खेदमेवासौ स्थण्डिलेऽशेत केवले ॥८०॥
पितुः संगीतकं श्रुत्वा या प्रबोधमसेवत । सेवां शिवादिनिर्मुक्तैरधुना भीषणैः स्वनैः ॥८१॥
एवं वर्षसहस्राणि त्रीणि दुःखमहासहा । अकरोत्सा तपो बाह्यं प्रासुकाहारपारणा ॥८२॥
ततो निर्वेदमापन्ना त्यक्ताहारं चतुर्विधम् । निराशतां गता धीरा श्रिता सल्लेखनामसौ ॥८३॥

था ॥६९॥ तदनन्तर भूख-प्यासकी बाधासे जिसका शरीर झुलस गया था, जो निरन्तर शोकरूपी सागरमें निमग्न रहती थी और जिसका मन अत्यन्त दीन हो गया था ऐसी अनंगसेना फल तथा पत्तोंसे निर्वाह करने लगी ॥७०॥ वनके कमलसमूहकी शोभाका सर्वस्व हरनेवाला शीत काल आया सो उसने कर्मोंका फल भोगते हुए व्यतीत किया ॥७१॥ जिसमें पशुओंके समूह साँसें भरते थे, अनेक वृक्ष सूख गये थे, तथा जिससे शरीर अत्यन्त रूक्ष पड़ गया था ऐसे ग्रीष्म ऋतुके सूर्यका आतप उसने उसी प्रकार सहन किया ॥७२॥ जिसमें तीक्ष्ण बिजली कौंध रही थी, शीतल जलधारासे अन्धकार फैल रहा था, और नदियोंके प्रवाह बढ़ रहे थे ऐसा वर्षा काल भी उसने जिस किसी तरह पूर्ण किया ॥७३॥ कान्तिहीन, फटा, दुबला, बिखरे बालोंसे युक्त एवं मलसे आवृत उसका शरीर वर्षासे भीगे चित्रके समान निष्प्रभ हो गया था ॥७४॥ जिस प्रकार चन्द्रमाकी क्षीण कला सूर्यके प्रकाशसे निष्प्रभ हो जाती है उसी प्रकार उसका दुर्बल शरीर लावण्यसे रहित हो गया ॥७५॥ परिपाकके कारण धूसर वर्णसे युक्त फलोंसे झुके हुए कैथाओंके वनमें जाकर वह बार-बार पिताका स्मरण कर रोने लगती थी ॥७६॥ मैं चक्रवर्तीसे उत्पन्न हो वनमें इस दशाको प्राप्त हो रही हूँ सो निश्चित ही जन्मान्तरमें किये हुए पापकर्मके उदयसे मेरी यह दशा हुई है ॥७७॥ इस प्रकार अविरल अश्रुवर्षासे जिसका मुख दुर्दिनके समान हो गया था ऐसी वह अनंगसेना नीची दृष्टिसे पृथिवीकी ओर देख पक जानेके कारण अपने आप गिरे हुए फल लेकर शान्त हो जाती थी ॥७८॥ बेला-तेला आदि उपवासोंसे जिसका शरीर अत्यन्त कृश हो गया था ऐसी वह बाला जब कभी केवल पानीसे ही पारणा करती थी सो भी एक ही बार ॥७९॥ जो अनंगसेना पहले अपने केशोंसे च्युत हो शय्या पर पड़े फूलोंसे भी खेदको प्राप्त होती थी आज वह मात्र पृथिवीपर शयन करती थी ॥८०॥ जो पहले पिताका संगीत सुन जागती थी वह आज शृगाल आदिके द्वारा छोड़े हुए भयंकर शब्द सुनकर जागती थी ॥८१॥ इस प्रकार महादुःख सहन करती तथा बीच-बीचमें प्रासुक आहारकी पारणा करती हुई उस अनंगसेनाने तीन हजार वर्ष तक बाह्य तप किया ॥८२॥ तदनन्तर जब वह निराशताको प्राप्त हो गयी तब विरक्त हो उस धीर-वीराने चारों प्रकारका आहार त्यागकर सल्लेखना धारण कर ली ॥८३॥

१. एष श्लोको म. पुस्तके नास्ति । २. श्वेतकेवले । ३. त्यक्ताहारं ।

बाह्यं हस्तशताद्भूमिं न गन्तव्यं मयेति च । जग्राह नियमं पूर्वं श्रुतं जैनेन्द्रशासने ॥८४॥
नियमावधितोऽतीते षड्रात्रेऽथ नभश्चरः । लब्धिदास इति ख्यातो वन्दित्वा मेरुमाव्रजत् ॥८५॥
तामपश्यत्ततो नेतुमारेभे तां समुद्यतः । पितुः स्थानं निषिद्धश्च तया सल्लेखनोद्यतः ॥८६॥
लब्धिदासो लघु प्राप्तः सकाशं चक्रवर्त्तिनः । समं तेन समायातस्तमुद्देशमसौ गतः ॥८७॥
अथ तामतिरौद्रेण घोरुनाऽतिस्थवीयसा[1] । भक्ष्यमाणामसौ दृष्ट्वा समाधानप्रदोऽभवत् ॥८८॥
प्राप्तसल्लेखनां क्षीणां संवृत्तामपरामिव । तादृशीं तां सुतां दृष्ट्वा चक्री निर्वेदमागतः ॥८९॥
समं पुत्रसहस्राणां द्वाविंशत्या गतस्पृहः । महावैराग्यसंपन्नः श्रमणत्वमुपागतः ॥९०॥
कन्या स्वर्धुं क्षुधार्त्तेन प्राक्तनातिस्थवीयसा[2] । भक्षिताऽजगरेणागात्सती सानत्कुमारताम् ॥९१॥
जानत्याऽपि तया मृत्युं न समुत्सारितः शनैः । माभूत्स्वल्पापि पीडाऽस्य काचिदित्यनुकम्पया ॥९२॥
उत्साद्यं खेचरान् संख्ये समस्तांश्च पुनर्वसुः । सदानङ्गशरामिद्धामपश्यन्विरहावनौ ॥९३॥
द्रुमसेनमुनेः पार्श्वे गृहीतं श्रमणव्रतम् । अत्यन्तदुःखितस्तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ॥९४॥
कृत्वा निदानमेतस्याः कृतेऽयं प्राप्तपञ्चतः[3] । सुरो जातश्च्युतश्चार्थ जातो लक्ष्मणसुन्दरः ॥९५॥
प्रभवा सुरलोकाच्च जाताऽनङ्गशराचरी । सुतेयं द्रोणमेघस्य विशल्येति प्रकीर्त्तिता ॥९६॥
सैतस्मिन्नगरे देशे भरते वा महागुणा । पूर्वकर्मानुभावेन संजाताऽत्यन्तमुत्तमा ॥९७॥
परमं स्नानवारादं तेन तस्या महागुणम् । सोपसर्गं कृतं पूर्वं तया येन महातपः ॥९८॥

उसने जिन-शासनमें पहले जैसा सुन रखा था वैसा नियम ग्रहण किया कि मैं सौ हाथसे बाहरकी भूमिमें नहीं जाऊँगी ॥८४॥

अथानन्तर उसे सल्लेखनाका नियम लिये हुए जब छह रात्रियाँ व्यतीत हो चुकीं तब लब्धिदास नामक एक पुरुष मेरु पर्वतकी वन्दना कर लौट रहा था सो उसने उस कन्याको देखा। तदनन्तर जब लब्धिदास उसे पिताके घर ले जानेके लिए उद्यत हुआ तब उसने यह कहकर मना कर दिया कि मैं सल्लेखना धारण कर चुकी हूँ ॥८५-८६॥ तत्पश्चात् लब्धिदास शीघ्र ही चक्रवर्तीके पास गया और उसके साथ पुनः उस स्थानपर आया ॥८७॥ जब वह आया तब अत्यन्त भयंकर एक बड़ा मोटा अजगर उसे खा रहा था यह देख उसे समाधान करनेमें तत्पर हुआ ॥८८॥ तदनन्तर जिसने सल्लेखना धारण की थी, और दुर्बलताके कारण जो ऐसी जान पड़ती थी मानो दूसरी ही हो ऐसी उस पुत्रीको देख चक्रवर्ती वैराग्यको प्राप्त हो गया ॥८९॥ जिससे उसने सब प्रकारकी इच्छा छोड़ महावैराग्यसे युक्त हो बाईस हजार पुत्रोंके साथ दीक्षा धारण कर ली ॥९०॥ भूखसे पीड़ित होनेके कारण सामने आये हुए उस अत्यन्त स्थूल अजगरके द्वारा खायी हुई वह कन्या मरकर ईशान स्वर्गमें गयी ॥९१॥ यद्यपि वह जानती थी कि इस अजगरसे मेरी मृत्यु होगी तथापि उसने उसे इस दया भावसे कि इसे थोड़ी भी पीड़ा नहीं हो दूर नहीं हटाया था ॥९२॥

तदनन्तर जब पुनर्वसु युद्धमें समस्त विद्याधरोंको परास्त कर आया तब वह अपनी प्रेमपात्र अनंगशराको नहीं देख विरहकी भूमिमें पड़ बहुत दुखी हुआ। अन्तमें उसने द्रुमसेन नामक मुनिराजके समीप दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली और अत्यन्त कठिन तप तप कर इसीका निदान करता हुआ मरा जिससे स्वर्गमें देव हुआ और वहाँसे च्युत हो यह अत्यन्त सुन्दर लक्ष्मण हुआ है ॥९३-९५॥ पहलेकी अनंगशरा देवलोकसे च्युत हो राजा द्रोणमेघकी यह विशल्या नामकी पुत्री हुई है ॥९६॥ महागुणोंको धारण करनेवाली विशल्या इस नगर-देश अथवा भरत क्षेत्रमें पूर्वकर्मोंके प्रभावसे अत्यन्त उत्तम हुई ॥९७॥ यतश्च उसने पूर्व भवमें उत्सर्ग सहित महातप किया था

---

१. अजगरेण । २. चाथ म. । ३. प्राप्तमरणः ।

अनेन वारिणाऽमुस्मिन्देशेऽयं विषमोऽनिलः । महारोगकरो यातः क्षयं शासितविष्टपः ॥९९॥
कुतोऽयमीदृशो वायुरिति पृष्टेन भाषितम् । मुनिना भरतायैवं तदा कौतुकयोगिने ॥१००॥
गजाह्वान्नगरादेत्य विन्ध्यो नामा महाधनः । अयोध्यां सार्थवाहेशः खरोष्ट्रमहिषादिभिः ॥१०१॥
मासानेकादशामुष्यां स्थित्वैगर्यामसौ स्थितः । तस्यैकमहिषस्तीव्ररोगभारेण पीडितः ॥१०२॥
पुरमध्ये महादुःखं कृत्वा कालं व्रणान्वितः । अकामनिर्जरायोगाद्देवमूयमशिश्रियत् ॥१०३॥
जातो वायुकुमारोऽसावश्वकेतुर्महाबलः । [1]वाय्वावर्त्त इति ख्यातो वायुदेवमहेश्वरः ॥१०४॥
श्रेयस्करपुरस्वामी रसातलगतो महान् । असुरो भासुरः क्रूरो मनोयातक्रियासहः ॥१०५॥
अज्ञासीत्सावधिज्ञानः प्राक्तपूर्वपराभवम् । सोऽहं महिषकोऽभूवं प्राक्षोऽयोध्यां तदा गणे ॥१०६॥
क्षुत्तृष्णापरिदिग्धाङ्गो महारोगनिपीडितः । रथ्याकर्दमनिर्मग्नस्ताडितो जनसंपदा ॥१०७॥
कृत्वा मे मस्तके पादं तदाऽयासीज्जनोऽखिलः । पतितस्य विचेष्टस्य निर्व्यथो विद्मलाञ्छितम् ॥१०८॥
अचिरान्निग्रहं घोरं तस्य चेन्न करोम्यहम् । अनर्थकं सुरत्वं मे तदेवं जायते महत् ॥१०९॥
इति ध्यात्वा पुरेऽमुष्मिन् स्वदेशे क्रोधपूरितः । प्रावर्त्त[2]यदसौ वायुं नानारोगसमावहम् ॥११०॥
सोऽयं [3]नीतो विशल्याया वारिणा प्रलयं क्षणात् । भवन्ति हि बलीयांसो बलिनामपि विष्टपे ॥१११॥
यथा सत्त्वहितेनेदं भरताय निवेदितम् । भरतेनापि मे तद्वन्मया ते पद्म वेदितम् ॥११२॥

इसलिए उसका स्नानजल महागुणोंसे सहित है ॥९८॥ इस देशमें जिसने सब लोगोंपर शासन जमा रखा था तथा जो महारोग उत्पन्न करनेवाली थी ऐसी विषम वायु इस जलसे क्षयको प्राप्त हो गयी है ॥९९॥ 'यह वायु ऐसी क्यों हो गयी ?' इस प्रकार पूछनेपर उस समय मुनिराजने कौतूहलको धारण करनेवाले भरतके लिए इस प्रकार कहा कि ॥१००॥

विन्ध्या नामका एक महा धनवान् व्यापारी गजे, ऊँट तथा भैंसे आदि जानवर लदाकर गजपुर नगरसे आया और तुम्हारी उस अयोध्यानगरीमें ग्यारह माह तक रहा। अनेक वर्णोंसे सहित उसका एक भैंसा तीव्र रोगके भारसे पीड़ित हो नगरके बीच मरा और अकाम निर्जराके योगसे देव हुआ ॥१०१-१०३॥ वह अश्वचिह्नसे चिह्नित महाबलवान् वायुकुमार जातिका देव हुआ। वाय्वावर्त उसका नाम था, वह वायुकुमार देवोंका स्वामी था, श्रेयस्करपुर नगरका स्वामी, रसातलमें निवास करनेवाला देदीप्यमान, क्रूर और इच्छानुसार क्रियाओंको करनेवाला वह बहुत बड़ा भवनवासी देव था ॥१०४-१०५॥

अवधिज्ञानसे सहित होनेके कारण उसने पूर्वभवमें प्राप्त हुए पराभवको जान लिया। उसे विदित हो गया कि मैं पहले भैंसा था और अयोध्यामें आकर रहा था। उस समय मेरे शरीरपर अनेक घाव थे। भूख-प्यास आदिसे मेरा शरीर लिप्त था, अनेक रोगोंसे पीड़ित हुआ मैं मार्गकी कीचड़में पड़ा था, लोग मुझे पीटते थे। उस समय मैं गोबर आदि मलसे व्याप्त हुआ निश्चेष्ट पड़ा था और सब लोग मेरे मस्तकपर पैर रखकर जाते थे ॥१०६-१०८॥ अब यदि मैं शीघ्र ही उसका भयंकर निग्रह नहीं करता हूँ—बदला नहीं चुकाता हूँ तो मेरा यह इस प्रकारका बड़प्पनयुक्त देवपर्याय पाना व्यर्थ है ॥१०९॥ इस प्रकार विचारकर उसने क्रोधसे पूरित हो उस देशमें नाना रोगोंको उत्पन्न करनेवाली वायु चलायी ॥११०॥ यह वही देव विशल्याके स्नान-जलके द्वारा क्षण-भरमें विनाशको प्राप्त कराया गया है सो ठीक ही है क्योंकि लोकमें बलवानोंके लिए भी उनसे अधिक बलवान् होते हैं ॥१११॥ चन्द्रप्रतिम विद्याधर, रामसे कहता है कि यह कथा सत्त्वहित नामा मुनिने राजा भरतसे जिस प्रकार कही और भरतने जिस प्रकार मुझसे कही उसी

---

१. सन्नगर्यां म. । २. वाह्यावर्त म. । ३. भीतो म. ।

अभिषेकजलं तस्या तदा नेतुमतित्वरम् । यतं कुरुत नास्त्यन्या गतिर्लक्ष्मणजीविते ॥११३॥

उपेन्द्रवज्रा

इति स्थितानामपि मृत्युमार्गे जनैरशेषैरपि निश्चितानाम् ।
महात्मनां पुण्यफलोदयेन भवेत्युपायो विदितोऽसुदायी ॥११४॥

उपजातिः

अहो महान्तः परमा जनास्ते येषां महापत्तिसमागतानाम् ।
जनो वदत्युज्ज्वलनाम्युपायं रवेः समस्तत्त्वनिवेदनेन ॥११५॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे विशल्यापूर्वभवाभिधानं नाम चतुःषष्टितमं पर्व ॥६४॥

❑

प्रकार हे राम ! मैंने आपसे कही है ॥११२॥ इसलिए शीघ्र ही विशल्याका स्नान जल लानेका यत्न करो । लक्ष्मणके जीवित होनेका और दूसरा उपाय नहीं है ॥११३॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि जो इस तरह मृत्युके मार्गमें स्थित हैं तथा समस्त लोग जिनके मरणका निश्चय कर चुके हैं ऐसे महापुरुषोंके पुण्यकर्मके उदयसे जीवन प्रदान करनेवाला कोई न कोई उपाय विदित हो ही जाता है ॥११४॥ अहो ! वे पुरुष अत्यन्त महान् तथा उत्कृष्ट हैं कि महाविपत्तिमें पड़े हुए जिनके लिए सूर्यके समान उज्ज्वल पुरुष यथार्थ तत्त्वका निवेदन कर विपत्तिसे निकलनेका उपाय बतलाते हैं—प्रकट करते हैं ॥११५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें विशल्याके
पूर्वभवका वर्णन करनेवाला चौंसठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६४॥

❑

---

१. भवत्युपायो म. । २. विहितोऽ -म. ।

पञ्चषष्टितमं पर्व

प्रतीन्दोर्वचनं श्रुत्वा राघवोऽत्यन्तसंमदः । समं विद्याधराधीशैर्विस्मितस्तमपूजयत् ॥१॥
अञ्जनाजविदेहाजसुताराजास्ततः कृताः । अयोध्यां गमिनः कृत्वा संमन्त्रं निश्चितं द्रुतम् ॥२॥
ततश्चिन्तितमात्रेण ते ययुर्यत्र पार्थिवः । भरतः प्रवरः कीर्त्या प्रतापी गुणसंगतः ॥३॥
सुप्तस्योत्थाप्यमानस्य सहसास्यासुखासिका । मा भूदिति सुखं गीतं वैदेहादिभिराश्रितम् ॥४॥
ततः संगीतमाकर्ण्य दिव्यं श्रुतिमनोहरम् । शनैर्भावसमारूढमुत्तस्थौ कोशलेश्वरः ॥५॥
ज्ञापिताः सेवितद्वारास्ततस्तस्मै समागताः । वैदेह्या हरणं प्रोचुर्निपातं लक्ष्मणस्य च ॥६॥
अथ शोकरसादुग्रात् क्षणमात्रमुवः परम् । राजा क्रोधरसं भेजे परमं भरतश्रुतिः ॥७॥
महाभेरीध्वनिं चाशु रणप्रीतिमकारयत् । सकला येन साकेता संप्राप्ताऽऽकुलतां परम् ॥८॥
लोको जगाद किं ह्येतद्भवंते राजसद्मनि । महान् कलकलः शब्दः श्रूयतेऽत्यन्तभीषणः ॥९॥
किंधु[1] रात्रौ निशीथेऽस्मिन् काले दुष्टमतिः परः । अतिवीर्यसुतः प्राप्तो भवेदापातपण्डितः ॥१०॥
कश्चिदङ्कगतां कान्तां त्यक्त्वा सन्नद्धुमुद्यतः । सन्नाहनिरपेक्षोऽन्यः सायके करमर्पयत् ॥११॥
मुग्धबालकमादाय काचिदङ्के मृगेक्षणा । हर्म्ये स्तनतटे न्यस्य चक्रे दिगवलोकनम् ॥१२॥
काचिदीर्ष्याकृतं त्यक्त्वा निद्रारहितलोचना । सुप्तमाश्रयते कान्तं शयनीयैकपार्श्वगम् ॥१३॥

अथानन्तर प्रतिचन्द्र विद्याधरके वचन सुन जिन्हें अत्यन्त हर्ष हो रहा था ऐसे श्रीरामने आश्चर्यचकित हो विद्याधर राजाओंके साथ-साथ उसका बहुत आदर किया ॥१॥ और शीघ्र ही निश्चित मन्त्रणाकर हनुमान् भामण्डल तथा अंगदको अयोध्याकी ओर रवाना किया ॥२॥ तदनन्तर इच्छा करते ही वे सब वहाँ पहुँच गये जहाँ उत्तम कीर्तिके धारक प्रतापी एवं गुणवान् राजा भरत विराजमान थे ॥३॥ उस समय भरत सोये हुए थे इसलिए सहसा उठानेसे उन्हें दुःख न हो ऐसा विचार कर भामण्डल आदिने सुखदायी संगीत प्रारम्भ किया ॥४॥ तदनन्तर कर्ण और मनको हरण करनेवाले उस भावपूर्ण दिव्य संगीतको सुनकर भरत महाराज धीरे-धीरे जाग उठे ॥५॥ हनुमान आदि द्वारके पास तो खड़े ही थे इसलिए जागते ही खबर देकर उनके पास जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने सीताका हरा जाना तथा शक्ति लगनेसे लक्ष्मणका गिर जाना यह समाचार कहा ॥६॥ अथानन्तर क्षणमात्रमें उत्पन्न हुए, अतिशय उग्र शोकरससे राजा भरत परम क्रोधको प्राप्त हुए ॥७॥ उन्होंने उसी समय रणमें प्रीति उत्पन्न करानेवाली रणभेरीका महाशब्द कराया जिसे सुनकर समस्त अयोध्या परम आकुलताको प्राप्त हो गयी ॥८॥ लोग कहने लगे कि राजभवनमें अत्यन्त भय उत्पन्न करनेवाला महान् कल-कल शब्द सुनाई पड़ रहा है सो यह क्या कारण है ? ॥९॥ क्या इस अर्धरात्रिके समय दुष्ट बुद्धिका धारक तथा आक्रमण करनेमें निपुण अतिवीर्यका पुत्र आ पहुँचा है ? ॥१०॥ कोई एक योद्धा अंकमें स्थित कान्ताको छोड़ कवच धारण करनेके लिए उद्यत हुआ और कोई दूसरा योद्धा कवचसे निरपेक्ष हो तलवार पर हाथ रखने लगा ॥११॥ कोई मृगनयनी स्त्री, सुन्दर बालकको गोदमें ले तथा स्तन तट पर हाथ रखकर दिशाओंका अवलोकन करने लगी अर्थात् भयसे इधर-उधर देखने लगी ॥१२॥ कोई एक स्त्री ईर्ष्या वश पतिसे हटकर पड़ी हुई थी और उसके नेत्रोंमें नींद नहीं आ रही थी। रणभेरीका शब्द सुन वह इतनी भयभीत हुई कि ईर्ष्याभाव छोड़ शय्याके एक ओर पड़े हुए निद्रातिमग्न पतिसे जा मिली—उससे

---

१. किन्तु म. ।

पार्थिवादिभिः[1] परिवृतो बाणासुदासात्[2] । कान्ते बुद्ध्यस्व किं शेषे किमपीदमशोभनम् ॥१४॥
राजालये समुद्योतो लक्ष्यते जात्वलक्षितः । सन्नद्धा रथिनो मत्ता करिणोऽमी च संहिताः ॥१५॥
नीतिज्ञैः सततं भाव्यमप्रमत्तैः सुपण्डितैः[3] । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोपाय स्वापतेयं प्रयत्नतः ॥१६॥
शातकौम्भानिमान्कुम्भान् कलधौतमयांस्तथा । मणिरत्नकरण्डांश्च कुरु भूमिगृहान्तरे ॥१७॥
पट्टवस्त्रादिसंपूर्णानिमान् गर्भालयान् द्रुतम् । तालयान्यदपि द्रव्यं दुःस्थितं सुस्थितं कुरु ॥१८॥
शत्रुघ्नोऽपि सुसंभ्रान्तो निद्रारुणितलोचनः । आरुह्य द्विरदं शीघ्रं घण्टाटङ्कारनादिनम् ॥१९॥
सचिवैः परमैर्युक्तः शस्त्राधिष्ठितपाणिभिः । विमुञ्चन् बकुलामोदं चलदम्बरपल्लवः ॥२०॥
भरतस्यालयं प्राप्तस्तथाऽन्ये नरपुङ्गवाः । शस्त्रहस्ताः सुसंनद्धा नरेन्द्रहिततत्पराः ॥२१॥
यच्छन्नाज्ञां नरेशानां युद्धाय स्वयमुद्यतः । विनीताधिपतिः प्रोक्तो नत्वा भामण्डलादिभिः ॥२२॥
दूरे लङ्कापुरी देव गन्तुं नार्हसि सां विभुः । क्षुब्धोर्मिजलजो घोरो वर्त्तते सागरोऽन्तरे[4] ॥२३॥
मया किं सह कर्त्तव्यमिति राज्ञि कृतस्वने । उद्धारितं विशल्यायाश्चरितं तैर्मनोहरम् ॥२४॥
अघप्रमथनं नाथ पुण्यं जीवितपालनम् । द्रोणमेघसुतास्नानवारिदानं द्रुतं भज ॥२५॥
प्रसादं कुरु यास्यामो यावन्नोदेति भास्करः । हतोऽरिमथनः शक्त्या दुःखं तिष्ठति लक्ष्मणः ॥२६॥
भरतेन ततोऽवादि किं वा ग्रहणमम्भसा । स्वयं सा सुभगा तत्र यातु द्रोणघनात्मजा ॥२७॥
मुनीशेन समादिष्टा तस्यैवासौ सुभामिनी । स्त्रीरत्नमुत्तमं सा हि कस्य वाऽन्यस्य युज्यते ॥२८॥

सटकर पड़ रही ॥१३॥ राजाकी तुलना प्राप्त करनेवाला कोई धनी मनुष्य अपनी स्त्रीसे कहने लगा कि हे प्रिये ! जागो, क्यों सो रही हो ? यह कोई अशोभनीय बात है ॥१४॥ राजभवनमें जो कभी दिखाई नहीं दिया ऐसा प्रकाश दिखाई दे रहा है। रथोंके सवार तैयार खड़े हैं और ये मदोन्मत्त हाथी भी एकत्रित हैं ॥१५॥ नीतिके जानकार पण्डित जनोंको सदा सावधान रहना चाहिए। उठो उठो धनको प्रयत्नपूर्वक छिपा दो ॥१६॥ ये सुवर्ण और चाँदीके घट तथा मणि और रत्नोंके पिटारे तलगृहके भीतर कर दो ॥१७॥ रेशमी वस्त्र आदिसे भरे हुए इन गर्भगृहोंको शीघ्र ही बन्द कर दो तथा और जो दूसरा सामान अस्त-व्यस्त पड़ा है उसे ठीक तरहसे रख दो ॥१८॥ जिसके नेत्र निद्रासे लाल-लाल हो रहे थे ऐसा घबड़ाया हुआ शत्रुघ्न भी घंटाका शब्द करनेवाले हाथी पर शीघ्र ही सवार हो भरतके महलमें जा पहुँचा। शत्रुघ्न, हाथोंमें शस्त्र धारण करनेवाले उत्तमोत्तम मन्त्रियोंसे सहित था, बकुलकी सुगन्धिको छोड़ रहा था तथा उसका वस्त्र चंचल-चंचल हो रहा था। शत्रुघ्नके सिवाय दूसरे अन्य राजा भी जो हाथोंमें शस्त्र धारण किये हुए थे, कवचोंसे युक्त थे तथा राजाका हित करनेमें तत्पर थे भरतके महलमें जा पहुँचे ॥१९-२१॥ अयोध्याके स्वामी भरत, राजाओंको आज्ञा देते हुए स्वयं युद्धके लिए उद्यत हो गये तब भामण्डल आदिने नमस्कार कर कहा कि ॥२२॥ हे देव ! लंकापुरी दूर है, वहाँ जानेके लिए आप समर्थ नहीं हैं, जिसकी लहरें और शंख क्षोभको प्राप्त हो रहे हैं ऐसा भयंकर समुद्र बीचमें पड़ा है ॥२३॥ तो मुझे क्या करना चाहिए, इस प्रकार राजा भरतके कहने पर उन सबने विशल्याका मनोहर चरित कहा ॥२४॥ उन्होंने कहा कि हे नाथ ! द्रोणमेघकी पुत्रीका स्नानजल पापको नष्ट करनेवाला, पवित्र और जीवनकी रक्षा करनेवाला है सो उसे शीघ्र ही दिलाओ ॥२५॥ प्रसाद करो, जब तक सूर्य उदित नहीं होता है उसके पहले ही हम चले जायेंगे। शत्रुओंका संहार करनेवाले लक्ष्मण शक्तिसे घायल हो दुःखमें पड़े हैं ॥२६॥ तब भरतने कहा कि जलका क्या ले जाना, वह द्रोणमेघकी सुन्दरी पुत्री स्वयं ही वहाँ जावे अर्थात् उसे ही ले जाओ ॥२७॥ मुनिराजने कहा है कि यह उन्हींकी वल्लभा होगी। यथार्थमें वह उत्तम स्त्रीरत्न है सो अन्य किसके योग्य हो सकती है ? ॥२८॥

---

१. पार्थिवं प्रथमः म.। २. -मुदाहरत् म.। ३. सपण्डितैः ङ.। ४. सागरोत्तरे म.।

ततो द्रोणघनाह्वस्य सकाशं प्रेषितो निजः । स चापि कुपितो योद्धुं मानस्तम्भसमुद्यतः ॥२९॥
संक्षुब्धास्तनयास्तस्य सन्नद्धाः सचिवैः सह । परमाकुलतां प्राप्ता महादुर्ललितक्रियाः ॥३०॥
भरतस्य ततो माता स्वयं गत्वा महादरम् । प्रतिबोधमुपानीतः स[1] तेन तनयामदात् ॥३१॥
सा भामण्डलचन्द्रेण विमानशिखरं निजम् । आरोपिता महारथ्यं कान्तिपूरितदिङ्मुखा ॥३२॥
सहस्रमधिकं चान्याकन्यानां सुमनोहरम् । राजगोत्रप्रसूतानां कृतं गामि समं तया ॥३३॥
ततो निमेषमात्रेण प्राप्ता संग्राममेदिनीम् । अर्घ्यादिभिः कृतार्घ्यर्हा सर्वैः खेचरपुङ्गवैः ॥३४॥
अवतीर्णा विमानाग्रात्ततः कन्याभिरावृता । चारुचामरसंघातैः वीज्यमाना शनैः सुखम् ॥३५॥
पश्यन्ती तुरगान् द्वारे मत्तांश्च वरवारणान् । महत्तरैः कृतानुज्ञा पुण्डरीकनिभानना[3] ॥३६॥
यथा यथा महाभाग्या विशल्या सोपसर्पति । तथा तथामलत्सौम्यं सुमित्रातनयोऽद्भुतम् ॥३७॥
प्रभापरिकरा[4] शक्तिस्ततो लक्ष्मणवक्षसः । चकिता दुष्टयोषेव कामुकात् परिनिःसृता ॥३८॥
स्फुरत्स्फुलिङ्गज्वाला च लङ्घयन्ती द्रुतं नभः । उत्पत्य वायुपुत्रेण गृहीता वेगशालिना ॥३९॥
दिव्यस्त्रीरूपसंपन्ना ततः संगतपाणिका । सा जगाद हनूमन्तं संभ्रान्ता वद्धवेपथुः ॥४०॥
प्रसीद नाथ मुञ्चस्व न मे दोषोऽस्ति कश्चन । कुत्सितास्मद्विधानां हि प्रेष्याणां स्थितिरीदृशी ॥४१॥
अमोघविजया नाम प्रज्ञप्तेरहकं स्वसा । विद्या लोकत्रये ख्याता रावणेन प्रसाधिता ॥४२॥
कैलासपर्वते पूर्वं बाली प्रतिमया स्थिते । सन्निधौ जिनबिम्बानां गायता भावितात्मना ॥४३॥

तदनन्तर भरतने द्रोणमेघके पास अपना आदमी भेजा सो मान दमन करनेमें उद्यत वह द्रोणमेघ भी युद्ध करनेके लिए कुपित हुआ ॥२९॥ प्रचण्ड बलको धारण करनेवाले उसके जो पुत्र थे वे भी परम आकुलताको प्राप्त हो क्षुभित हो उठे तथा युद्ध करनेके लिए मन्त्रियोंके साथ साथ तैयार हो गये ॥३०॥ तब भरतकी माता कैकयीने स्वयं जाकर उसे बड़े आदरसे समझाया जिससे उसने अपनी पुत्री दे दी ॥३१॥ कान्तिसे दिशाओंको पूर्ण करनेवाली उस कन्याको भामण्डलने अपने शीघ्रगामी विमानके अग्रभाग पर बैठाया ॥३२॥ इसके सिवाय राजकुलमें उत्पन्न हुई एक हजारसे भी अधिक दूसरी मनोहर कन्याएँ विशल्याके साथ भेजीं ॥३३॥ तदनन्तर निमेष मात्रमें वह युद्धभूमिमें पहुँच गयी सो समस्त विद्याधरोंने अर्घ्य आदिसे उसका योग्य सन्मान किया ॥३४॥ तत्पश्चात् जो कन्याओंसे घिरी थी और जिसपर सुन्दर चमरोंके समूह धीरे-धीरे सुख पूर्वक झेले जा रहे थे ऐसी विशल्या विमानके अग्रभागसे नीचे उतरी ॥३५॥ द्वार पर खड़े घोड़ों और मदोन्मत्त हाथियोंको देखती हुई वह आगे बढ़ी। बड़े-बड़े लोग उसकी आज्ञा पालन करनेमें तत्पर थे तथा कमलके समान उसका मुख था ॥३६॥ महाभाग्यशालिनी विशल्या जैसे-जैसे पास आती जाती थी वैसे-वैसे लक्ष्मण आश्चर्यकारी सुखदशाको प्राप्त होते जाते थे ॥३७॥

तदनन्तर जिस प्रकार दुष्ट स्त्री चकित हो पतिके घरसे निकल जाती है उसी प्रकार कान्तिके मण्डलको धारण करनेवाली शक्ति लक्ष्मणके वक्षःस्थलसे बाहर निकल गयी ॥३८॥ जिससे तिलगे और ज्वालाएँ निकल रही थीं ऐसी वह शक्ति, शीघ्र ही आकाशको लांघती हुई जाने लगी सो वेगशाली हनुमान्‌ने उछलकर उसे पकड़ लिया ॥३९॥ तब वह दिव्यस्त्रीके रूपमें परिणत हो हाथ जोड़कर हनुमान्‌से बोली। उस समय वह घबड़ायी हुई थी तथा उसके शरीरसे कँपकँपी छूट रही थी ॥४०॥ उसने कहा कि हे नाथ! प्रसन्न होओ, मुझे छोड़ो, इसमें मेरा दोष नहीं है, हमारे जैसे सेवकोंकी ऐसी ही निन्द्य दशा है ॥४१॥ मैं तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध अमोघ-विजया नामकी विद्या हूँ, प्रज्ञप्तिकी बहन हूँ और रावणने मुझे सिद्ध किया है ॥४२॥ कैलास पर्वत पर पहले जब

---

१. सा तेन ज. । २. कृतार्घ्यर्हा म. । ३. निभाननं ज. । ४. प्रभाकरकरा म. ।

निजे भुजे समुत्कृत्य शिरावन्त्रीं मनोहराम् । उपवीणयता दिव्यं जिनेन्द्रचरितं शुभम् ॥४४॥
लब्धाऽहं दशवक्त्रेण धरणाम्भोगराजतः । कम्पितासनतः[1] प्राप्ताभ्यमोदं बिभ्रतः[2] परम् ॥४५॥
अनिच्छन्नप्यलौ तेन रक्षसां परमेश्वरः । मां परिग्राहितः कृच्छ्रात् स हि ग्रहणदुर्विधः ॥४६॥
साहं न कस्यचिच्छक्या हृदोऽन्यत्र व्यपरोपितुम् । विशल्यामुज्झितत्वेनं मुक्त्वा दुःसहतेजसम्[3] ॥४७॥
सम्ये पराजये देवान् बलिनो नितरामपि । अनया तु विकीर्णाहं महत्या दूरगोचरा ॥४८॥
अनुष्णं भास्करं कुर्यादशीतं शशलक्ष्मणम् । अनया हि तपोऽत्युग्रं चरितं पूर्वजन्मनि ॥४९॥
शिरीषकुसुमासारं शरीरमनया पुरा । नियुक्तं तपसि प्रायो मुनीनामपि दुःसहे ॥५०॥
एतावतैव संसारः सुसारः प्रतिभाति मे । ईदृशानि प्रसाध्यन्ते यत्तपांसीह जन्तुभिः ॥५१॥
वर्षाशीतातपैर्घोरैर्महावातसुदुःसहैः । एषा न कम्पिता तन्वी मन्दरस्येव चूलिका ॥५२॥
अहो रूपमहो सत्त्वमहो धैर्यदृढं मनः । अक्षमस्य ध्यातुमप्यस्याः सुतपोऽन्याङ्गनाजनैः ॥५३॥
सर्वथा जिनचन्द्राणां मतेनोद्वहते तपः । लोकत्रये जयत्येकं यस्येदं फलमीदृशम् ॥५४॥
अथवा नैव विज्ञेयमाश्चर्यमिदमीदृशम् । प्राप्यते येन निर्वाणं किमन्यत्तस्य दुष्करम् ॥५५॥
पराधीनक्रिया साहं तपसा निर्जितानया । व्रजामि स्वं पदं साधो[4] क्षम्यतां दुश्चिकेष्टितम् ॥५६॥
एवं कृतसमालापां तत्त्वज्ञः शक्तिदेवताम् । विसृज्यावस्थितो वीतिः स्वसैन्येऽद्भुतचेष्टितः ॥५७॥

बालिमुनि प्रतिमा योगसे विराजमान थे तब रावणने जिन-प्रतिमाओंके समीप भुजाकी नाड़ी रूपी मनोहर तन्त्री निकाल कर जिनेन्द्र भगवान्‌का दिव्य एवं शुभचरित वीणाद्वारा गाया था। रावणकी भक्तिके प्रभावसे धरणेन्द्रका आसन कम्पायमान हुआ था जिससे परम प्रमोदको धारण करते हुए उसने वहाँ आकर रावणके लिए मुझे दिया था। यद्यपि राक्षसोंका इन्द्र रावण मुझे नहीं चाहता था तथापि धरणेन्द्रने प्रेरणाकर बड़ी कठिनाईसे मुझे स्वीकृत कराया था। यथार्थमें रावण किसीसे वस्तुग्रहण करनेमें सदा संकुचित रहता था ॥४३-४६॥ वह मैं, इस संसारमें दुःसह तेजकी धारक एक विशल्याको छोड़ और किसीकी पकड़में नहीं आ सकती ॥४७॥ मैं अतिशय बलवान् देवोंको भी पराजित कर देती हूँ किन्तु इस विशल्याने दूर रहने पर भी मुझे पृथक् कर दिया ॥४८॥ यह सूर्यको ठण्डा और चन्द्रमाको गरम कर सकती है क्योंकि इसने पूर्वभवमें ऐसा ही अत्यन्त कठिन तपश्चरण किया है ॥४९॥ इसने पूर्वभवमें अपना शिरीषके फूलके समान सुकुमार शरीर ऐसे तपमें लगाया था कि जो प्रायः मुनियोंके लिए भी कठिन था ॥५०॥ मुझे इतने ही कार्यसे संसार सारभूत जान पड़ता है कि इसमें जीवों द्वारा ऐसे-ऐसे कठिन तप सिद्ध किये जाते हैं ॥५१॥ तीव्र वायुसे जिनका सहन करना कठिन था ऐसे भयंकर वर्षा शीत और घामसे यह कृशांगी सुमेरुकी चूलिकाके समान रंचमात्र भी कम्पित नहीं हुई ॥५२॥ अहो इसका रूप धन्य है, अहो इसका धैर्य धन्य है और अहो धर्ममें दृढ़ रहनेवाला इसका मन धन्य है। इसने जो तप किया है अन्य स्त्रियाँ उसका ध्यान भी नहीं कर सकतीं ॥५३॥ सर्वथा जिनेन्द्र भगवान्‌के मतमें ही ऐसा विशाल तप धारण किया जाता है कि जिसका इस प्रकारका फल तीनों लोकोंमें एक जुदा ही जयवन्त रहता है ॥५४॥ अथवा इसे कोई आश्चर्य नहीं मानना चाहिए क्योंकि जिससे मोक्ष प्राप्त हो सकता है उसके लिए और दूसरा कौन कार्य कठिन है ? ॥५५॥ मेरा काम तो पराधीन है देखिए न, इसने मुझे तपसे जीत लिया। हे सत्पुरुष ! अब मैं अपने स्थान पर जाती हूँ—मेरी दुश्चेष्टा क्षमा की जाय ॥५६॥ इस प्रकार वार्तालाप करनेवाली उस शक्तिरूपी देवताको छोड़कर तत्त्वका जानकार तथा अद्भुत चेष्टाका धारक हनुमान् अपनी सेनामें स्थित हो गया ॥५७॥

---

१. कम्पितासनकं म. । २. बिभ्रता म. । ३. तेजसाम् म. । ४. साध्वे म. । ५. हनुमान् ।

सुता तु द्रोणमेघस्य ह्रियालंकृतदेहिका । पादपद्मद्वयं पार्श्वे प्रणम्य विहिताञ्जलिः ॥५८॥
विद्याधरमहामन्त्रिवचोभिः कृतशंसना । वन्दिता खेचरैरन्यैराशीभिरभिनन्दिता ॥५९॥
शक्रस्येव शची पार्श्वे लक्ष्मणस्य सुलक्ष्मणा । अवस्थिता महाभाग्या सखीवचनकारिणी ॥६०॥
मुग्धा मुग्धमृगीनेत्रा पूर्णचन्द्रनिभानना । महानुरागसंभारप्रेरितोदारमानसा ॥६१॥
परिष्वज्य रहो नाथं सुखसुप्तं महीतले । सुकुमारकराम्भोजसंवाहनसुचारुणा ॥६२॥
गोशीर्षचन्दनेनैवमन्वलिम्पत सर्वतः । तथा पद्ममपि व्रीडाकिंचित्कम्पितपाणिका ॥६३॥
शेषाः कन्या यथायोग्यं शेषाणां खेचरैशिनाम् । चन्देनास्पृशन्गात्रं विशल्याहस्तसंगिना ॥६४॥
विशल्याहस्तसंस्पृष्टं चन्दनं पद्मवाक्यतः । कान्तमिन्द्रजितादीनामुपनीतं यथाक्रमम् ॥६५॥
शीतलं तं समाघ्राय कृत्वाङ्गेषु च सादरम् । निर्वृतिं परमां प्राप्ताः शुद्धात्मानो गतज्वराः ॥६६॥

उपजातिवृत्तम्

अन्ये च योधाः क्षतविक्षताङ्गा द्विपास्तुरङ्गाः पदचारिणश्च[1] ।
अभ्युक्षितास्तत्सलिलेन जाता प्रणष्टशल्या नवभास्कराङ्गाः ॥६७॥
जन्मान्तरं प्राप्त इवाथ कान्तः स्वभावनिद्रामिव सेवमानः ।
उत्थाप्यते स्म प्रवरैर्निताम्तं संगीतकैर्वेणुनिनादगीतैः ॥६८॥
ततः शनैरुच्छ्वसितोरुवक्षा नेत्रे समुन्मील्य सिताब्जताम्रे ।
विक्षिप्तबाहुः शनकैर्निकुञ्च्य लक्ष्मीधरोऽमुञ्चत मोहशय्याम् ॥६९॥

अथानन्तर जिसका शरीर लज्जासे अलंकृत था, जिसने श्रीरामके चरण-कमलोंमें प्रणाम कर हाथ जोड़े थे, विद्याधर महामन्त्रियोंके वचनोंसे जिसकी प्रशंसा की गयी थी, अन्य विद्याधरों ने जिसे वन्दना कर शुभाशीर्वादसे अभिनन्दित किया था, जो उत्तम लक्षणोंको धारण करनेवाली थी; महाभाग्यवती थी, और सखियोंकी आज्ञाकारिणी थी ऐसी द्रोणमेघकी पुत्री विशल्या लक्ष्मणके पास जाकर उस प्रकार खड़ी हो गयी जिस प्रकार मानो इन्द्रके पास इन्द्राणी ही खड़ी हो ॥५८-६०॥ जो अत्यन्त सुन्दरी थी, भोली मृगीके समान जिसके नेत्र थे, पूर्णचन्द्रके समान जिसका मुख था, और महा अनुरागके भारसे जिसका उदार हृदय प्रेरित था ऐसी विशल्याने एकान्तमें पृथिवी तल पर सुखसे सोये हुए प्राणनाथ लक्ष्मणका आलिंगन कर उन्हें सुकोमल हस्त-कमलमें स्थित होनेसे अत्यन्त सुन्दर दिखनेवाले गोशीर्ष चन्दनसे खूब अनुलिप्त किया तथा लज्जासे कुछ-कुछ काँपते हुए हाथसे श्रीरामको भी चन्दनका लेप लगाया ॥६१-६३॥ शेष कन्याओंने विशल्याके हाथमें स्थित चन्दनके द्वारा अन्य विद्याधरोंके शरीरका स्पर्श किया ॥६४॥ श्रीरामके आज्ञानुसार विशल्याके हाथका छुआ सुन्दर चन्दन यथाक्रमसे इन्द्रजित आदिके पास भी भेजा गया ॥६५॥ सो उस शीतल चन्दनको सूँघकर तथा आदरके साथ शरीर पर लगाकर वे सब परम सुखको प्राप्त हुए। सबकी आत्माएँ शुद्ध हो गयीं तथा सबका ज्वर जाता रहा ॥६६॥

इन सबके सिवाय क्षत-विक्षत शरीरके धारक जो अन्य योधा, हाथी, घोड़े और पैदल सैनिक थे वे सब उसके जलसे सींचे जाकर शल्यरहित तथा नूतन सूर्य—प्रातःकालीन सूर्यके समान देदीप्यमान शरीरसे युक्त हो गये ॥६७॥ अथानन्तर जो दूसरे जन्मको प्राप्त हुए के समान सुन्दर थे और मानो स्वाभाविक निद्राका ही सेवन कर रहे थे ऐसे लक्ष्मणको बाँसुरीकी मधुर तानसे मिश्रित उत्तम संगीतके द्वारा उठाया गया ॥६८॥ तदनन्तर जिनका विशाल वक्षःस्थल धीरे-धीरे उच्छ्वसित हो रहा था और जिनकी भुजाएँ फैली हुई थीं ऐसे लक्ष्मणने कमलके समान लाल नेत्र खोलकर तथा भुजाओंको संकोचित कर मोहरूपी शय्याका परित्याग किया ॥६९॥ जिस

---

१. पद्मस्येदं पाद्मं रामसम्बन्धि, पद्मं म., ब. । २. पदकारिणश्च म., ज. ।

[1]त्यक्त्वोपपादाङ्कशिलामिवासौ रणक्षितिं देव इवोरुकायः ।
उत्थाय रुष्टः ककुभो निरीक्ष्य क्वासौ गतो रावण इत्युवाच ॥७०॥
ततः प्रफुल्लाम्बुजलोचनेन महाभिनन्दं भजताऽग्रजेन ।
उदाररोमाञ्चसुकर्कशेन प्रोक्तः परिष्वज्य लसद्भुजेन ॥७१॥
कृतार्थवत्तात दशाननोऽसौ हत्वा भवन्तं विजहार शक्त्या ।
त्वमप्यमुष्याश्चरितेन जीवं भूयोऽभजेः संस्तुतकन्यकायाः ॥७२॥
निःशेषतश्चास्य निवेदितं तच्छल्यस्याहृतिप्रेरणवस्तुवृत्तम् ।
अपूर्वगाढाद्भुतसम्भ्रमं सुविस्मितैर्जाम्बवसुन्दराद्यैः ॥७३॥
तावत् त्रिवर्णाब्जविलासिनेत्रां शरत्समृगेन्दुसमानवक्त्राम् ।
आतोदरीं दिग्गजकुम्भशोभिस्तनद्वयां नूतनयौवनस्थाम् ॥७४॥
शरीरबद्धामिव मन्मथस्य क्रीडां विशालालससंस्थितस्थाम् ।
संगृह्य शोभामिव सार्वलोकीं विनिर्मितां कर्मभिरेकतानैः ॥७५॥
तां वीक्ष्य लक्ष्मीनिलयोऽन्तिकस्थामचिन्तयद् विस्मयरुद्धचित्तः ।
लक्ष्मीरियं किन्नु सुरेश्वरस्य कान्तिर्नु चन्द्रस्य नु भानुदीप्तिः ॥७६॥
ध्यायन्तमेवं परिगम्य योषास्तमेचमूचुः कुशलप्रधानाः ।
स्वामिन् विवाहोत्सवमेतया ते द्रष्टुं जनो वाञ्छति संगतोऽयम् ॥७७॥
कृतस्मितोऽसावगदत् समीपे सशल्यके युक्तमिदं कथं नु ।
ऊचुः पुनस्ते ननु सूक्ष्म एव स्पर्शोऽनया ते प्रकटस्तु नासीत् ॥७८॥

प्रकार उपपाद शय्याको छोड़कर उत्तम शरीरका धारक देव उठकर खड़ा होता है उसी प्रकार लक्ष्मण भी रणभूमिको छोड़ खड़े हो गये और दिशाओंकी ओर देख रुष्ट होते हुए बोले कि वह रावण कहाँ गया ? ॥७०॥ तदनन्तर जिनके नेत्रकमल विकसित हो रहे थे जो महान् आनन्दको प्राप्त थे, उत्कट रोमांचोंसे जिनका शरीर कर्कश हो रहा था और जिनकी भुजाएँ अतिशय शोभायमान थीं ऐसे बड़े भाई श्रीरामने आलिंगन कर कहा कि हे तात ! रावण तो शक्तिके द्वारा आपको मार कृतकृत्यकी तरह चला गया है और तुम भी इस प्रशस्त कन्याके चरित्रसे पुनर्जन्मको प्राप्त हुए हो ॥७१-७२॥ तत्पश्चात् अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त हुए जाम्बव और सुन्दर आदिने शक्ति लगनेसे लेकर समस्त वृत्तान्त लक्ष्मणके लिए निवेदन किया—सुनाया तथा उदार भावनासे युक्त अपूर्व आश्चर्य प्रकट किया ॥७३॥

तदनन्तर जिसके नेत्र लाल सफेद और नीले इन तीन रंगके कमलोंके समान सुशोभित थे, जिसका मुख शरद्ऋतुके पूर्णचन्द्रमाके समान था, जिसका उदर कृश था, जिसके दोनों स्तन दिग्गजके गण्डस्थलके समान सुशोभित थे, जो नूतन यौवन अवस्थामें स्थित थी जो, मानो शरीर-धारिणी कामकी क्रीड़ा ही थी, जिसके उत्तम नितम्ब विशाल तथा अलसाये हुए थे, और जिसे कर्मोंने एकाग्र चित्त हो सर्व संसारकी शोभा ग्रहण कर ही मानो बनाया था ॥७४-७५॥ ऐसी समीपमें स्थित उस विशल्याको देख लक्ष्मणने आश्चर्यसे अवरुद्ध चित्त हो विचार किया कि क्या यह इन्द्रकी लक्ष्मी है ? या चन्द्रमाकी कान्ति है ? अथवा सूर्यकी प्रभा है ? ॥७६॥ इस प्रकार चिन्ता करते हुए लक्ष्मणको देख, मंगलाचार करनेमें निपुण स्त्रियाँ उनसे बोलीं कि हे स्वामिन् ! यहाँ इकट्ठे हुए सब लोग इसके साथ आपका विवाहोत्सव देखना चाहते हैं ॥७७॥ यह सुन

---

१. त्यक्तोप-म. । २. भुजः म. ।

भवप्रभावक्षतसर्वविघ्नं पाणिग्रहं नाथ मम त्वमस्याः ।
इत्यर्थनाद्गौरवतश्च काम्यादियेष लक्ष्मीनिलयो विवाहम् ॥७९॥

मालिनीवृत्तम्

क्षणविरचितसर्वश्लाघ्यकर्तव्ययोगः पवनपथविहारिस्फीतभूतिप्रपञ्चः ।
समकदमरसंपत्कल्पितानन्दतुल्यः प्रथनभुवि विशल्याकक्ष्मणोद्वाहकल्पः ॥८०॥
इति विहितसुचेष्टाः पूर्वजन्मन्युदाराः परमपि परिजित्य प्राप्तमार्षुर्विनाशम् ।
द्रुतमुपगतवाञ्छद्रव्यसंबन्धभाजो विधुरविगुणतुल्यां स्वामवस्थां भजन्ते ॥८१॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते श्रीपद्मचरिते विशल्यासमागमाभिधानं नाम पञ्चषष्टितमं पर्व ॥६५॥

□

लक्ष्मणने मुसकराते हुए कहा कि जहाँ प्राणोंका संशय विद्यमान है ऐसे युद्ध क्षेत्रमें यह किस प्रकार उचित हो सकता है ? इसके उत्तरमें सबने पुनः कहा कि इसके द्वारा आपका स्पर्श तो हो ही चुका है परन्तु आपको प्रकट नहीं हुआ है ॥७८॥ हे नाथ ! आपके प्रभावसे जिसके समस्त विघ्न नष्ट हो चुके हैं ऐसा इसका पाणिग्रहण आप स्वीकृत करो। इस प्रकार लोगोंकी प्रार्थना तथा गौरव-पूर्ण वचनोंसे लक्ष्मणने विवाह करनेकी इच्छा की ॥७९॥ तदनन्तर जिसमें क्षणभरमें समस्त प्रशंसनीय कार्योंका योग किया गया था, विद्याधरोंने जिसमें विशाल वैभवका विस्तार प्रदर्शित किया था, और जो देव-सम्पदासे कल्पित आनन्दके समान था ऐसा विशल्या और लक्ष्मणका विवाहोत्सव युद्धभूमिमें ही सम्पन्न हुआ ॥८०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिन्होंने पूर्वजन्ममें उत्तम आचरण किया है ऐसे उदार पुरुष प्राप्त हुए मरणको भी जीतकर शीघ्र ही उत्तम पदार्थोंके समागमको प्राप्त होते हैं और चन्द्रमा तथा सूर्यके गुणोंके समान अपनी अवस्था को प्राप्त करते हैं ॥८१॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरितमें विशल्याके समागमका वर्णन करनेवाला पैंसठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६५॥

द्वितीयो भागः समाप्तः ।

□

श्रीमद्रविषेणाचार्यप्रणीतं

पद्मचरितापरनामधेयं

पद्मपुराणम्

षट्षष्टितमं पर्व

अथ [1]लक्ष्मीधरं स्वस्थं विशल्याचरितोचितम् । चारेभ्यो रावणः श्रुत्वा जज्ञे विस्मयमत्सरी ॥१॥
जगाद च स्मितं कृत्वा को दोष इति मन्दगीः । ततोऽगादि मृगाङ्काद्यैर्मन्त्रिभिर्मन्त्रकोविदैः ॥२॥
यथार्थं भाष्यसे देव ! सुपथ्यं कृत्य तुष्य वा । परमार्थो हि निर्भीकैरुपदेशोऽनुजीविभिः ॥३॥
सैंहगारुडविद्ये तु रामलक्ष्मणयोस्त्वया । दृष्टे यत्नाद्विना लब्धे पुण्यकर्मानुभावतः ॥४॥
बन्धनं कुम्भकर्णस्य दृष्टमात्मजयोस्तथा । शक्तेरनर्थकत्वं च दिव्यायाः परमौजसः ॥५॥
सम्भाव्य सम्भवं शत्रुस्त्वया जीयेत यद्यपि । तथापि भ्रातृपुत्राणां विनाशस्तव निश्चितः ॥६॥
इति ज्ञात्वा प्रसादं नः कुरु नाथाभियाचितः । अस्मदीयं हितं वाक्यं भग्नं पूर्वं न जातुचित् ॥७॥
त्यज सीतां भजात्मीयां धर्मबुद्धिं पुरातनीम् । कुशलं जायतां लोकः सकलः पालितस्त्वया ॥८॥
रामेण समं सन्धिं कुरु सुन्दरभाषितम् । एवं कृते न दोषोऽस्ति दृश्यते तु महागुणः ॥९॥
भवता परिपाल्यन्ते मर्यादाः सर्वविष्टपे । धर्माणां प्रभवस्त्वं हि रत्नानामिव सागरः ॥१०॥

अथानन्तर रावण, गुप्तचरोंके द्वारा विशल्याके चरितके अनुरूप लक्ष्मणका स्वस्थ होना आदि समाचार सुन आश्चर्य और ईर्ष्या दोनोंसे सहित हुआ तथा मन्द हास्य कर धीमी आवाज से बोला कि क्या हानि है ? तदनन्तर मन्त्र करनेमें निपुण मृगाङ्क आदि मन्त्रियोंने उससे कहा ॥१-२॥ कि हे देव ! यथार्थ एवं हितकारी बात आपसे कहता हूँ आप कुपित हों चाहे संतुष्ट । यथार्थमें सेवकोंको निर्भीक हो कर हितकारी उपदेश देना चाहिए ॥३॥ हे देव ! आप देख चुके हैं कि राम-लक्ष्मणको पुण्य कर्मके प्रभावसे यत्नके विना ही सिंहवाहिनी और गरुड़वाहिनी विद्याएँ प्राप्त हो चुकी हैं ॥४॥ आपने यह भी देखा है कि उनके यहाँ भाई कुम्भकर्ण तथा दो पुत्र बन्धनमें पड़े हैं तथा परम तेजकी धारक दिव्य शक्ति व्यर्थ हो गई है ॥५॥ संभव है कि यद्यपि आप शत्रुको जीत लें तथापि यह निश्चित समझिए कि आपके भाई तथा पुत्रोंका विनाश अवश्य हो जायगा ॥६॥ हे नाथ ! हम सब याचना करते हैं कि आप यह जान कर हम पर प्रसाद करो—हम सब पर प्रसन्न हूजिए । आपने हमारे हितकारी वचनको पहले कभी भग्न नहीं किया ॥७॥ सीताको छोड़ो और अपनी पहले जैसी धर्मबुद्धिको धारण करो । तुम्हारे द्वारा पालित समस्त लोग कुशल-मंगलसे युक्त हों ॥८॥ रामके साथ सन्धि तथा मधुर वार्तालाप करो क्योंकि ऐसा करनेमें कोई हानि नहीं दिखाई देती अपितु बहुत लाभ ही दिखाई देता है ॥९॥ समस्त संसारकी मर्यादाएँ आपके ही द्वारा सुरक्षित हैं—आप ही सब मर्यादाओंका पालन

---

१. लक्ष्मीधरस्वन्तं म० ।

इत्युक्त्वा प्रणता वृद्धाः शिरःस्थकरकुड्मलाः । उत्थाप्य सम्भ्रमात्तांस्तथेत्यूचे दशाननः ॥११॥
मन्त्रविद्भिस्ततस्तुष्टैः सन्दिष्टोऽत्यन्तशोभनः । द्रुतं गर्भीकृतो दूतः सामन्तो नयकोविदः ॥१२॥
तं निमेषेङ्गिताकूतपरिबोधविचक्षणम् । रावणः संज्ञया स्वस्मै रुचितं द्रागजिग्रहत् ॥१३॥
दूतस्य मन्त्रिसन्दिष्टं नितान्तमपि सुन्दरम् । महौषधं विषेणेव रावणार्थेन दूषितम् ॥१४॥
अथ शुक्रसमो बुद्ध्या महौजस्कः प्रतापवान् । कृतवाक्यो नृपैर्भूयः श्रुतिपेशलभाषणः ॥१५॥
प्रणम्य स्वामिनं तुष्टः सामन्तो गन्तुमुद्यतः । बुद्धयवष्टम्भतः पश्यन् लोकं गोष्पदसन्निभम् ॥१६॥
गच्छतोऽस्य बलं भीमं नानाशस्त्रसमुज्ज्वलम् । बुद्धेरेव निर्मितं तस्य बभूव भयवर्जितम् ॥१७॥
तस्य तूर्यरवं श्रुत्वा क्षुब्धा वानरसैनिकाः । समीक्षाञ्चक्रिरे भीता रावणागमशङ्किनः ॥१८॥
तस्मिन्नासन्नतां प्राप्ते पुरुषान्तरवेदिते । विश्रब्धतां पुनर्भेजे बलं प्लवगलक्षणम् ॥१९॥
दूतः प्राप्तो विदेहाजप्रतीहारनिवेदितः । आप्तैः कतिपयैः सार्कं बाह्यावासितसैनिकः ॥२०॥
दृष्ट्वा पद्मं प्रणम्यासौ कृतनूतनोचितक्रियः । जगौ क्षणमिव स्थित्वा वचनं क्रमसङ्गतम् ॥२१॥
पद्म ! मद्वचनैः स्वामी भवन्तमिति भाषते । श्रोत्रावधानदानेन प्रयत्नः क्रियतां क्षणम् ॥२२॥
यथा किल न युद्धेन किञ्चिदत्र प्रयोजनम् । बहवो हि स्वयं प्राप्ता नरा युद्धाभिमानिनः ॥२३॥

करते हैं। यथार्थमें जिस प्रकार समुद्र रत्नोंकी उत्पत्तिका कारण है उसी प्रकार आप धर्मोंकी उत्पत्तिके कारण हैं ॥१०॥ इतना कह वृद्ध मन्त्रीजनोंने शिरपर अञ्जलि बाँधकर रावणको नमस्कार किया और रावणने शीघ्रतासे उन्हें उठाकर कहा कि आप लोग जैसा कहते हैं वैसा ही करूँगा ॥११॥

तदनन्तर मन्त्रके जाननेवाले मन्त्रियोंने सन्तुष्ट होकर अत्यन्त शोभायमान एवं नीति-निपुण सामन्तको सन्देश देकर शीघ्र ही दूतके रूपमें भेजनेका निश्चय किया ॥१२॥ वह दूत दृष्टिके संकेतसे अभिप्रायके समझनेमें निपुण था इसलिए रावणने उसे संकेत द्वारा अपना रुचिकर सन्देश शीघ्र ही ग्रहण करा दिया—अपना सब भाव समझा दिया ॥१३॥ मन्त्रियोंने दूतके लिए जो सन्देश दिया था वह यद्यपि बहुत सुन्दर था तथापि रावणके अभिप्रायने उसे इस प्रकार दूषित कर दिया जिस प्रकार कि विष किसी महौषधिको दूषित कर देता है ॥१४॥ तदनन्तर जो बुद्धिके द्वारा शुक्राचार्यके समान था, महा ओजस्वी था, प्रतापी था, राजा लोग जिसकी बात मानते थे और जो कर्णप्रिय भाषण करनेमें निपुण था, ऐसा सामन्त सन्तुष्ट हो स्वामीको प्रणाम कर जानेके लिए उद्यत हुआ। वह सामन्त अपनी बुद्धिके बलसे समस्त लोकको गोष्पदके समान तुच्छ देखता था ॥१५-१६॥ जब वह जाने लगा तब नाना शस्त्रोंसे देदीप्यमान एक भयङ्कर सेना जो उसकी बुद्धिसे ही मानो निर्मित थी, निर्भय हो उसके साथ हो गई ॥१७॥

तदनन्तर दूतकी तुरहीका शब्द सुनकर वानर पक्षके सैनिक क्षुभित हो गये और रावणके आनेकी शङ्का करते हुए भयभीत हो आकाशकी ओर देखने लगे ॥१८॥ तदनन्तर वह दूत जब निकट आ गया और यह रावण नहीं किन्तु दूसरा पुरुष है, इसप्रकार समझमें आ गया तब वानरोंकी सेना पुनः निश्चिन्तताको प्राप्त हुई ॥१९॥ तदनन्तर भामण्डलरूपी द्वारपालने जिसकी खबर दी थी तथा डेरेके बाहर जिसने अपने सैनिक ठहरा दिये थे, ऐसा वह दूत कुछ आप्तजनोंके साथ भीतर पहुँचा ॥२०॥ वहाँ उसने रामके दर्शनकर उन्हें प्रणाम किया। दूतके योग्य सब कार्य किये। तदनन्तर क्षणभर ठहर कर क्रमपूर्ण निम्नाङ्कित वचन कहे ॥२१॥ उसने कहा कि हे पद्म ! मेरे वचनों द्वारा स्वामी रावण, आपसे इस प्रकार कहते हैं सो आप कर्णोंको एकाग्रकर क्षणभर श्रवण करनेका प्रयत्न कीजिए ॥२२॥ वे कहते हैं कि मुझे इस विषयमें युद्धसे कुछ भी प्रयोजन

---

१. विदेहाजः म०, ज०।

प्रीत्यैव शोभना सिद्धिर्युद्धतस्तु जनक्षयः । असिद्धिश्च महान् दोषः सापवादाश्च सिद्धयः ॥२४॥
दुर्वृत्तो नरकः शङ्खो धवलाङ्कोऽसुरस्तथा । निधनं[1] शम्बराद्याश्च सङ्ग्रामश्रद्धया गताः ॥२५॥
प्रीतिरेव मया सार्द्धं भवते नितरां हिता । मनु सिंहो गुहां प्राप्य महाद्रेर्जायते सुखी ॥२६॥
महेन्द्रदमनो येन समरेऽमरभीषणः । सुन्दरीजनसामान्यं बन्दीगृहमुपाहृतः ॥२७॥
पाताले भूतले व्योम्नि गतिर्यस्येच्छया कृता । सुरासुरैरपि क्रुद्धैः प्रतिहन्तुं न शक्यते ॥२८॥
नानामेकमहायुद्धवीरलक्ष्मीस्वयंग्रही । सोऽहं दशानना जातु भवता किं तु न श्रुतः ॥२९॥
सागरान्तां महीमेतां विद्याधरसमन्विताम् । लङ्कां भागद्वयोपेतां राजन्नेव ददामि ते ॥३०॥
अद्य मे सोदरं प्रेष्य[2] तनयौ च सुमानसः । अनुमन्यस्व[3] सीतां च ततः क्षेमं भविष्यति ॥३१॥
न चेदेवं[4] करोषि त्वं ततस्ते कुशलं कुतः । एतांश्च समरे बद्धानानेष्यामि बलादहम् ॥३२॥
पद्मनाभस्ततोऽवोचन्न मे राज्येन कारणम् । न चान्यप्रमदाजेन भोगेन महताऽपि हि ॥३३॥
एष प्रेष्यामि ते पुत्री भ्रातरं च दशानन । सम्प्राप्य परमां पूजां सीतां प्रेष्यसि मे यदि ॥३४॥
एतया सहितोऽप्यत्र मृगसामान्यगोचरे । यथासुखं भ्रमिष्यामि महीं त्वं भुङ्क्ष्व पुष्कलाम् ॥३५॥
गत्वैवं ब्रूहि दूत त्वं तं लङ्कापरमेश्वरम् । एतदेव हि पथ्यं ते कर्तव्यं नान्यथाधिपम् ॥३६॥
सर्वैः प्रपूजितं श्रुत्वा पद्मनाभस्य तद्वचः । सौधर्मेण समायुक्तं सामन्तो वचनं जगौ ॥३७॥
न वेत्सि नृपते[5] कार्यं बहुकल्याणकारणम् । उल्लङ्घ्याम्बुधिं भीममागतोऽसि भयोज्झितः ॥३८॥

नहीं है क्योंकि युद्धका अभिमान करनेवाले बहुतसे मनुष्य क्षयको प्राप्त हो चुके हैं ॥२३॥ कार्यकी उत्तम सिद्धि प्रीतिसे ही होती है, युद्धसे तो केवल नरसंहार ही होता है, युद्धमें यदि सफलता नहीं मिली तो यह सबसे बड़ा दोष है और यदि सफलता मिलती भी है तो अनेक अपवादोंसे सहित मिलती है ॥२४॥ पहले युद्धकी श्रद्धासे दुर्वृत्त, नरक, शङ्ख, धवलाङ्क तथा शम्बर आदि राजा विनाशको प्राप्त हो चुके हैं ॥२५॥ हमारे साथ प्रीति करना ही आपके लिए अत्यन्त हितकारी है, यथार्थमें सिंह महापर्वतकी गुफा पाकर ही सुखी होता है ॥२६॥ युद्धमें देवोंको भय उत्पन्न करने वाले राजा इन्द्रको जिसने सामान्य स्त्रियोंके योग्य बन्दीगृहमें भेजा था ॥२७॥ पाताल, पृथिवीतल तथा आकाशमें स्वेच्छासे की हुई जिसकी गतिको, कुपित हुए सुर और असुर भी खण्डित करनेके लिए समर्थ नहीं हैं ॥२८॥ नाना प्रकारके अनेक महायुद्धोंमें वीर लक्ष्मीको स्वयं ग्रहण करने वाला मैं रावण क्या कभी आपके सुननेमें नहीं आया ॥२९॥ हे राजन् ! मैं विद्याधरोंसे सहित यह समुद्र पर्यन्तकी समस्त पृथिवी और लङ्काके दो भाग कर एक भाग तुम्हारे लिए देता हूँ ॥३०॥ तुम आज अच्छे हृदयसे मेरे भाई तथा पुत्रोंको भेजकर सीता देना स्वीकृत करो, उसीसे तुम्हारा कल्याण होगा ॥३१॥ यदि तुम ऐसा नहीं करते हो तो तुम्हारी कुशलता कैसे हो सकती है ? क्योंकि सीता तो हमारे पास है ही और युद्धमें बाँधे हुए भाई तथा पुत्रोंको हम बलपूर्वक छीन लावेंगे ॥३२॥

तदनन्तर श्रीरामने कहा कि मुझे राज्यसे प्रयोजन नहीं है और न अन्य स्त्रियों तथा बड़े-बड़े भोगों से मतलब है ॥३३॥ यदि तुम परम सत्कारके साथ सीताको भेजते हो तो हे दशानन ! मैं तुम्हारे भाई और दोनों पुत्रोंको अभी भेज देता हूँ ॥३४॥ मैं इस सीताके साथ मृगादि जन्तुओंके स्थानभूत वनमें सुखपूर्वक भ्रमण करूँगा और तुम समग्र पृथिवीका उपभोग करो ॥३५॥ हे दूत ! तू जाकर लङ्काके धनीसे इस प्रकार कह दे कि यही कार्य तेरे लिए हितकारी है, अन्य कार्य नहीं ॥३६॥ सबके द्वारा पूजित तथा सुन्दरतासे युक्त रामके वे वचन सुन सामन्त दूत इस प्रकार बोला कि ॥३७॥ हे राजन् ! यतश्च तुम भयङ्कर समुद्रको लाँघ कर निर्भय हो यहाँ

---

१. निधानं म० । २. प्रेष्य म० । ३. अनुमन्यस्य म० । ४. न चेदं म० । ५. नृपतेः म० ।

न शोभना नितान्तं ते प्रत्याशा जानकीं प्रति । [1]लङ्केन्द्रे सङ्गते कोपं त्यजाऽऽशामपि जीविते ॥३९॥
नरेण सर्वथा स्वस्य कर्त्तव्यं बुद्धिशालिना । रक्षणं सततं यत्नाद्दारैरपि धनैरपि ॥४०॥
प्रेषितं तार्क्ष्यनाथेन यदि वाहनयुग्मकम् । यदि वा छिद्रतो बद्धा मम पुत्रसहोदराः ॥४१॥
तथाऽपि नाम कोऽमुष्मिन् गर्वस्तव समुद्गतः । नैतावता कृतित्वं ते मयि जीवति जायते ॥४२॥
विग्रहे कुर्वतो यत्नं न ते सीता न जीवितम् । मा भूरुभयतो भ्रष्टस्त्यज सीतानुबन्धिताम् ॥४३॥
[2]लब्धवर्णाः समस्तेषु शास्त्रेषु परमेश्वराः । सुरेन्द्रप्रतिमा नीताः खेचरा निधनं मया ॥४४॥
पश्याष्टापदकूटाभानिमान् कैकससञ्चयान् । उपेयुषां क्षयं राज्ञां मदीयभुजवीर्यतः ॥४५॥
इति प्रभाषिते दूते क्रोधतो जनकात्मजः । जज्वाद विस्फुरद्वक्त्रज्योतिर्ज्वलितपुष्करः ॥४६॥
आः पाप दूत गोमायो ! वाक्यसंस्कारदूषक । दुर्बुद्धे भाषसे व्यर्थं किमित्येवमशङ्कितः ॥४७॥
सीतां प्रति कथा कैव पद्माधिक्षेपमेव वा । को नाम रावणो रक्षः पशुः कुत्सितचेष्टितः ॥४८॥
इत्युक्त्वा सायकं यावज्जग्राह जनकात्मजः । कैकयीसूनुना तावन्निरुद्धो नयचक्षुषा ॥४९॥
रक्तोत्पलदलच्छाये नेत्रे जनकजन्मनः । क्रोधेन दूषिते जाते सन्ध्याकारानुहारिणी ॥५०॥
स्वैरं स मन्त्रिभिर्नीतः [3]शमं साधूपदेशतः । मन्त्रेणेव महासर्पः स्फुरद्विषकणद्युतिः ॥५१॥
नरेन्द्र ! त्यज संरम्भं समुद्भूतमगोचरे । अनेन [4]मारितेनापि कोऽर्थः प्रेषणकारिणा ॥५२॥

आये हो इससे जान पड़ता है कि तुम कहुकल्याणकारी कार्यको नहीं जानते हो ॥३८॥ सीताके प्रति तुम्हारी आशा बिलकुल ही अच्छी नहीं है । अथवा सीताकी बात दूर रही, रावणके कुपित होनेपर अपने जीवनकी भी आशा छोड़ो ॥३९॥ बुद्धिमान् मनुष्यको अपने आपकी रक्षा सदा स्त्रियों और धनके द्वारा भी सब प्रकारसे करना चाहिए ॥४०॥ यदि गरुडेन्द्रने तुम्हें दो वाहन भेज दिये हैं अथवा छल पूर्वक तुमने मेरे पुत्रों और भाईको बाँध लिया है तो इतनेसे तुम्हारा यह कौन-सा बढ़ा-चढ़ा अहंकार है ? क्योंकि मेरे जीवित रहते हुए इतने मात्रसे तुम्हारी कृत-कृत्यता नहीं हो जाती ॥४१-४२॥ युद्धमें यत्न करने पर न सीता तुम्हारे हाथ लगेगी और न तुम्हारा जीवन ही शेष रह जायगा । इसलिए दोनों ओरसे भ्रष्ट न होओ सीता सम्बन्धी हठ छोड़ो ॥४३॥ समस्त शास्त्रोंमें निपुण इन्द्र जैसे बड़े-बड़े विद्याधर राजाओंको मैंने मृत्यु प्राप्त करा दी है ॥४४॥ मेरी भुजाओंके बलसे क्षयको प्राप्त हुए राजाओंके जो ये कैलासके शिखरके समान हड्डियोंके ढेर लगे हुए हैं इन्हें देखो ॥४५॥

इस प्रकार दूतके कहने पर, मुखकी देदीप्यमान ज्योतिसे आकाशको प्रज्वलित करता हुआ भामण्डल क्रोधसे बोला कि अरे पापी ! दूत ! शृगाल ! बातें बनानेमें निपुण ! दुर्बुद्ध ! इस तरह व्यर्थ ही निःशंक हो, क्यों बके जा रहा है ॥४६-४७॥ सीताकी तो चर्चा ही क्या है ? रामकी निन्दा करनेके विषयमें नीच चेष्टाका धारी पशुके समान नीच राक्षस रावण है ही कौन ? ॥४८॥ इतना कहकर ज्योंही भामण्डलने तलवार उठाई त्योंही नीति रूपी नेत्रके धारक लक्ष्मणने उसे रोक लिया ॥४९॥ भामण्डलके जो नेत्र लाल कमलदलके समान थे वे क्रोधसे दूषित हो सन्ध्याका आकार धारण करते हुए दूषित हो गये—सन्ध्याके समान लाल-लाल दिखने लगे ॥५०॥ तदनन्तर जिस प्रकार विषकणोंकी कान्तिको प्रकट करनेवाला महासर्प मन्त्रके द्वारा शान्त किया जाता है उसी प्रकार वह भामण्डल मन्त्रियोंके द्वारा उत्तम उपदेशसे धीरे-धीरे शान्तिको प्राप्त कराया गया ॥५१॥ मन्त्रियोंने कहा कि हे राजन् ! अयोग्य विषयमें प्रकट हुए क्रोधको छोड़ो । इस दूतको यदि मार भी डाला तो इससे कौनसा प्रयोजन

१. लङ्केन्द्रसंगते म० । २. लब्धवर्णाः म० । ३. शक्र म० । ४. समं म० । ५. महितेनापि म० ।

प्रावृषेण्यघनाकारगजमर्दनपण्डितः । [1]नासौ संक्षोभमायाति सिंहः प्रचलकेसरः ॥५३॥
प्रतिशब्देषु कः कोपः छायापुरुषकेऽपि वा । तिर्यक्षु वा शुकाद्येषु यन्त्रबिम्बेषु वा सताम् ॥५४॥
लक्ष्मणेनैवमुक्तोऽसौ शान्तोऽभूज्जनकात्मजः । अभयश्च पुनर्दूतः पद्मं साध्वसवर्जितः ॥५५॥
सचिवापसदैर्मूर्खैः सम्प्रमूढैस्त्वमीदृशैः । संयोज्यसे दुरुद्योगैः संशये दुर्विदग्धकैः ॥५६॥
[2]प्रतार्यमाणमात्मानं प्रबुध्यस्व स्वमेलकैः । निरूपय हितं स्वस्य स्वयं कुशलया धिषणया ॥५७॥
त्यज सीतासमासङ्गं भवेन्द्रः सर्वविष्टपे । भ्रम पुष्पकमारूढो यथेष्टं विभवान्वितः ॥५८॥
मिथ्याग्रहं विमुञ्चस्व मा श्रौषीः क्षुद्रभाषितम् । करणीये मनो दत्स्व भूशमेधि महासुखम् ॥५९॥
क्षुद्रस्योत्तरमेतस्य को ददातीति जानके[3] । तूष्णीं स्थितेऽथ दूतोऽसावन्यैर्निर्भर्त्सितः परम् ॥६०॥
स विद्धो वाक्शरैस्तीक्ष्णैरसत्कारमलं श्रितः । जगाम स्वामिनः पार्श्वे मनस्यत्यन्तपीडितः ॥६१॥
स उवाच तवाऽऽदेशाद्राघ रामो मयोदितः । क्रमेण नयविन्यासकारिणा स्वप्रभावतः ॥६२॥
नानाजनपदाकीर्णामाकरैरपरिवारिताम् । बहुरत्नाकरां क्षोणीं[4] विद्याभृत्समसन्वितां[5] ॥६३॥
ददामि ते महानागांस्तुरगांश्च रथांस्तथा । कामगं पुष्पकं यानमप्रधृष्यं सुरैरपि ॥६४॥

सिद्ध होनेवाला है ? ॥५२॥ वर्षाऋतुके मेघके समान विशाल हाथियोंके नष्ट करनेमें निपुण चञ्चल केसरोंवाला सिंह चूहे पर क्षोभको प्राप्त नहीं होता ॥५३॥ प्रतिध्वनियों पर, लकड़ी आदिके बने पुरुषाकार पुतलों पर, सुआ आदि तिर्यञ्चों पर और यन्त्रसे चलनेवाली मनुष्याकार पुतलियों पर सत्पुरुषोंका क्या क्रोध करना है ? अर्थात् इस दूतके शब्द निजके शब्द नहीं हैं ये तो रावणके शब्दोंकी मानो प्रतिध्वनि ही हैं। यह दीन पुरुष नहीं है, पुरुष तो रावण है और यह उसका आकार मात्र पुतला है, जिस प्रकार सुआ आदि पक्षियोंको जैसा पढ़ा दो वैसा पढ़ने लगता है। इसी प्रकार इस दूतको रावणने जैसा पढ़ा दिया वैसा पढ़ रहा है और कठ-पुतली जिस प्रकार स्वयं चेष्टा नहीं करती उसी प्रकार यह भी स्वयं चेष्टा नहीं करता—मालिककी इच्छानुसार चेष्टा कर रहा है अतः इसके ऊपर क्या क्रोध करना है ? ॥५४॥ इस प्रकार लक्ष्मणके कहनेपर भामण्डल शान्त हो गया। तदनन्तर निर्भय हो उस दूतने रामसे पुनः कहा कि ॥५५॥ तुम इस प्रकार मूर्ख नीच मन्त्रियोंके द्वारा अविवेकपूर्ण दुष्प्रवृत्तियोंसे संशयमें डाले जा रहे हो अर्थात् खेद है कि तुम इन मन्त्रियोंकी प्रेरणासे व्यर्थ ही अविचारित रम्य प्रवृत्ति कर अपने आपको संशयमें डाल रहे हो ॥५६॥ तुम इनके द्वारा छले जानेवाले अपने आपको समझो और स्वयं अपनी निपुण बुद्धिसे अपने हितका विचार करो ॥५७॥ सीताका समागम छोड़ो, समस्त लोकके स्वामी होओ, और वैभवके साथ पुष्पक विमानमें आरूढ़ हो इच्छानुसार भ्रमण करो ॥५८॥ मिथ्या हठको छोड़ो, क्षुद्र मनुष्योंका कथन मत सुनो, करने योग्य कार्यमें मन लगाओ और इस तरह महा सुखी होओ ॥५९॥ तदनन्तर इस क्षुद्रका उत्तर कौन देता है ? यह सोचकर भामण्डल तो चुप बैठा रहा परन्तु अन्य लोगोंने उस दूतका अत्यधिक तिरस्कार किया—उसे खूब धौंस दिखायी ॥६०॥

अथानन्तर वचन रूपी तीक्ष्ण बाणोंसे विंधा और परम असत्कारको प्राप्त हुआ वह दूत मनमें अत्यन्त पीड़ित होता हुआ स्वामीके समीप गया ॥६१॥ वहाँ जाकर उसने कहा कि हे नाथ ! आपका आदेश पा आपके प्रभावसे नय-विन्याससे युक्त पद्धतिसे मैंने रामसे कहा कि मैं नाना देशोंसे युक्त, अनेक रत्नोंकी खानोंसे सहित तथा विद्याधरोंसे समन्वित समुद्रान्त पृथिवी, बड़े-बड़े हाथी, घोड़े, रथ, देव भी जिसका तिरस्कार नहीं कर सकते ऐसा पुष्पक विमान, अपने-

---

१. नासौ म०, नखौ ज० । २. प्रतार्यमाण-म० । ३. जनकस्यापत्यं पुमान् जानकः तस्मिन् भामण्डले इत्यर्थः । ४. क्षोणां म० । ५. विद्याभृत्सुतनान्विताम् म० ।

सहस्रत्रितयं चारुकन्यानां परिवर्तवत् । सिंहासनं रविच्छायं छत्रं च शशिसन्निभम् ॥६५॥
अत्र निष्कण्टकं राज्यं सीता यदि तवाऽऽज्ञया । मां वृणोति किमन्येन भाषितेनेह भूरिणा ॥६६॥
वयं वेत्रासनेनैव सन्तुष्टाः स्वस्वपक्षयोः । भविष्यामो मदुक्तं चेत् करोषि सुविचक्षण ॥६७॥
एवमादीनि वाक्यानि प्रोक्तोऽपि स मया मुहुः । सीताग्राहं न तिष्ठो मुञ्चते रघुनन्दनः ॥६८॥
साधोरिवातिशान्तस्य चर्या सा तस्य भाषिता । अशक्यमोचना दासात् त्रैलोक्यस्यापि सुन्दरी ॥६९॥
अर्थान्येवं च रामस्त्वां यथा तव दशानन । न युक्तमीदृशं वक्तुं सर्वलोकविगर्हितम् ॥७०॥
तवैवं भाषमाणस्य नृणामधमजन्मनः । रसज्ञं न कथं यातं शतधा पापचेतसः ॥७१॥
अपि देवेन्द्रभोगैर्मे न कृत्यं सीतया विना । भुंक्ष्व त्वं पृथिवीं सर्वामाश्रयिष्याम्यहं वनम् ॥७२॥
परस्त्रियं समुद्दिश्य यदि त्वं मर्तुमुद्यतः । अहं पुनः कथं स्वस्याः प्रियाया न कृते तथा ॥७३॥
सर्वलोकगताः कन्यास्त्वमेव भज सुन्दर । फलपर्णादिभोजी तु सीतयाऽहं भ्रमाम्यहम् ॥७४॥
शाखामृगाधिनाथोऽसौ प्रहस्याभणदित्यदम् । यथा किल ग्रहेणाऽसौ भवत्स्वामी वशीकृतः ॥७५॥
वायुना वाऽतिचण्डेन विप्रलापादिहेतुना । येनेदं विपरीतत्वं वराकः समुपागतः ॥७६॥
नूनं न सन्ति लङ्कायां कुशला मन्त्रवादिनः[1] । पक्वतैलादिवायेन[2] क्रियते तच्चिकित्सितम् ॥७७॥
आवेशं सायकैः कृत्वा क्षिप्रं सङ्ग्राममण्डले । लक्ष्मीधरनरेन्द्रोऽस्य रुजः सर्वा हरिष्यति ॥७८॥
ततो मया तदाक्रोशवह्निज्वलितचेतसा । श्रुत्वा द्विप इवाकुष्टो वानरध्वजचन्द्रमाः ॥७९॥

अपने परिकरोंसे सहित तीन हजार सुन्दर कन्याएँ, सूर्यके समान कान्तिवाला सिंहासन और चन्द्रतुल्य छत्र देता हूँ। अथवा इस विषयमें अन्य अधिक कहनेसे क्या ? यदि तुम्हारी आज्ञासे मुझे सीता स्वीकृत कर लेती है तो इस समस्त निष्कण्टक राज्यका सेवन करो ॥६२–६६॥ हे विद्वान् ! यदि हमारा कहा करते हो तो हम थोड़ी-सी आजीविका लेकर एक बेंतके आसनसे ही संतुष्ट हो जावेंगे ॥६७॥ इत्यादि वचन मैंने यद्यपि उससे बार-बार कहे तथापि वह सीताकी हठ नहीं छोड़ता है उसी एकमें उसकी निष्ठा लग रही है ॥६८॥ जिस प्रकार अत्यन्त शान्त साधुकी अपनी चर्या प्रिय होती है उसी प्रकार वह सीता भी रामको अत्यन्त प्रिय है। हे स्वामिन् ! आपका राज्य तो दूर रहा, तीन लोक भी देकर उस सुन्दरीको उससे कोई नहीं छुड़ा सकता ॥६९॥ और रामने आपसे इस प्रकार कहा है कि हे दशानन ! तुम्हें ऐसा सर्वजन निन्दित कार्य करना योग्य नहीं है ॥७०॥ इस प्रकार कहते हुए तुझ पापी नीच मनुष्यकी जिह्वाके सौ टुकड़े क्यों नहीं हो गये ॥७१॥ मुझे सीताके बिना इन्द्रके भोगोंकी भी आवश्यकता नहीं है। तू समस्त पृथिवीका उपभोग कर और मैं वनमें निवास करूँगा ॥७२॥ यदि तू पर-स्त्रीके उद्देश्यसे मरनेके लिए उद्यत हुआ है तो मैं अपनी निजकी स्त्रीके लिए क्यों नहीं प्रयत्न करूँ ? ॥७३॥ हे सुन्दर ! समस्त लोकमें जितनी कन्याएँ हैं उन सबका उपभोग तुम्हीं करो, मैं तो फल तथा पत्तों आदिका खानेवाला हूँ, केवल सीताके साथ ही घूमता रहता हूँ ॥७४॥ दूत रावणसे कहता जाता है कि हे नाथ ! वानरोंके अधिपति सुग्रीवने तुम्हारी हँसी उड़ा कर यह कहा था कि जान पड़ता है तुम्हारा वह स्वामी किसी पिशाचके वशीभूत हो गया है ॥७५॥ अथवा बकवादका कारण जो अत्यन्त तीव्र वायु है उससे तुम्हारा स्वामी ग्रस्त है। यही कारण है कि वह बेचारा इस प्रकार विपरीतताको प्राप्त हो रहा है ॥७६॥ जान पड़ता है कि लंकामें कुशल वैद्य अथवा मन्त्रवादी नहीं हैं अन्यथा पक्व तैलादि वायुहर पदार्थोंके द्वारा उसकी चिकित्सा अवश्य की जाती ॥७७॥ अथवा लक्ष्मणरूपी विषवैद्य संग्रामरूपी मण्डलमें शीघ्र ही बाणों द्वारा आवेश कर इसके सब रोगोंको हरेगा ॥७८॥ तदनन्तर उसके कुवचन रूपी अग्निसे जिसका चित्त प्रज्वलित हो रहा

---

१. मन्त्रिवादिनः म० । २. पक्वतैलादिना येन म० ।

सुग्रीव ! पन्नगर्क्षेण नूनं त्वं मर्तुमिच्छसि । अधिक्षिपसि यत् क्षुद्रं[1] विद्याधरमहेश्वरम् ॥८०॥
उक्तो विराधितश्च त्वां यथा ते शक्तिरस्ति चेत् । आगच्छतु ममैकस्य युद्धं यच्छ किमास्यते ॥८१॥
उक्तो दाशरथिर्भूयो मया राम ! रणाजिरे । रावणस्य न किं दृष्टस्त्वया परमविक्रमः ॥८२॥
यतः क्षमान्वितं वीरं राजखद्योतभास्करम् । सामप्रयोगमिच्छन्तं भवत्पुण्यानुभावतः ॥८३॥
बदान्यं त्रिजगत्ख्यातप्रतापं प्रणतप्रियम् । नेतुमिच्छसि संक्षोभं कैलासक्षोभकारिणम् ॥८४॥
चण्डसैन्योर्मिमालाढ्यं शस्त्रपाद्योगणाकुलम् । तर्तुमिच्छसि किं दोर्भ्यां दशग्रीवमहार्णवम् ॥८५॥
यमुद्विपमहाव्यालं पदातिद्रुमसङ्कटाम् । विवक्षसि कथं दुर्गां दशग्रीवमहाटवीम् ॥८६॥

वंशस्थवृत्तम्

न पद्मवातेन सुमेरुरह्यते न सागरः शुष्यति सूर्यरश्मिभिः ।
गवेन्द्रशृङ्गैर्धरणी न कम्पते न साध्यते खलसदृशैर्दशाननः ॥८७॥

उपजातिः

इति प्रचण्डं मयि भाषमाणे भामण्डलः क्रोधकषायनेत्रः ।
यावत् समाकर्षति दीप्ततां तावत् सुमित्रातनयेन रुद्धः ॥८८॥
प्रसीद वैदेह ! किमुज्झ कोपं न जम्बुके कोपमुपैति सिंहः ।
गजेन्द्रकुम्भस्थलदारणेन क्रीडां स मुक्तानिकरैः करोति ॥८९॥
नरेश्वरा ऊर्जितशौर्यचेष्टा न भीतिभाजां प्रहरन्ति जातु ।
न ब्राह्मणं न श्रमणं न शून्यं स्त्रियं न बालं न पशुं न वृत्तम् ॥९०॥

था, ऐसे मैंने उस सुग्रीवको इस प्रकार धौंसा जिस प्रकार कि श्वान हाथीको धौंसता है ॥७९॥ मैंने कहा कि अरे सुग्रीव ! जान पड़ता है कि तू रामके गर्वसे मरना चाहता है, जो कुपित हुए विद्याधरोंके अधिपतिकी निन्दा कर रहा है ॥८०॥ हे नाथ ! विराधितने भी आपसे कहा है कि यदि तेरी शक्ति है तो आ, मुझ एकके लिए ही युद्ध प्रदान कर । बैठा क्यों है ? ॥८१॥ मैंने रामसे पुनः कहा कि हे राम ! क्या तुमने रणाङ्गणमें रावणका परम पराक्रम नहीं देखा है ? ॥८२॥ जिससे कि तुम उसे क्षोभको प्राप्त कराना चाहते हो । जो राजा रूपी जुगनुओंको हटानेके लिए सूर्यके समान है, वीर है और तीनों जगत्में जिसका प्रताप प्रख्यात है, ऐसा रावण, इस समय आपके पुण्य प्रभावसे क्षमा युक्त है । साम—शान्तिका प्रयोग करनेका इच्छुक है, उदार-त्यागी है, एवं नम्र मनुष्योंसे प्रेम करनेवाला है ॥८३–८४॥ जो बलवान् सेना रूपी तरङ्गोंकी मालासे युक्त है तथा शस्त्र रूपी जल-जन्तुओंके समूहसे सहित है ऐसे रावण रूपी समुद्रको तुम क्या दो भुजाओंसे तैरना चाहते हो ? ॥८५॥ घोड़े और हाथी ही जिसमें हिंसक जानवर हैं तथा जो पैदल सैनिक रूपी वृक्षोंसे संकीर्ण हैं ऐसी दुर्गम रावण रूपी अटवीमें तुम क्यों घुसना चाहते हो ? ॥८६॥ मैंने कहा कि हे पद्म ! वायु के द्वारा सुमेरु नहीं उठाया जाता, सूर्यकी किरणोंसे समुद्र नहीं सूखता, बैलकी सींगोंसे पृथिवी नहीं काँपती और तुम्हारे जैसे लोगोंसे दशानन नहीं जीता जाता ॥८७॥ इस प्रकार क्रोधपूर्वक मेरे कहनेपर क्रोधसे लाल-लाल नेत्र दिखाता हुआ भामण्डल जबतक चमकती तलवार खींचता है तबतक लक्ष्मणने उसे मना कर दिया ॥८८॥ लक्ष्मणने भामण्डलसे कहा कि हे विदेहासुत ! क्रोध छोड़ो, सिंह सियार पर कोध नहीं करता, वह तो हाथीका गण्डस्थल चीरकर मोतियोंके समूहसे क्रीड़ा करता है ॥८९॥ जो राजा अतिशय बलिष्ठ शूरवीरोंकी चेष्टाको धारण करनेवाले हैं वे कभी न भयभीत पर, न ब्राह्मण पर, न मुनि पर, न निहत्थे पर, न स्त्रीपर, न बालकपर, न पशुपर

---

१. क्षुद्र म०, । २. मुक्ता निकरैः म० ।

इत्यादिभिर्वाङ्निवहैः सुयुक्तैर्यथा स लक्ष्मीधरपण्डितेन ।
नीतः प्रबोधं शनकैरमुष्मात् क्रोधं तथा दुःसहदीप्तिचक्रः ॥६१॥
निर्भर्त्सितः क्रूरकुमारचक्रैः वाक्यैरलं वज्रनिघाततुल्यैः ।
अपूर्वहेतुप्रकटीकृतात्मा स्वं मन्यमानः तृणतोऽप्यसारम् ॥६२॥
नभः समुत्पत्य भयार्दितोऽहं त्वत्पादमूलं पुनरागतोऽयम् ।
लक्ष्मीधरोऽसौ यदि नाऽभविष्यद्वैदेहतो देव ! ततोऽमरिष्यम् ॥६३॥

पुष्पिताग्रावृत्तम्

इति गदितमिदं यथाऽनुभूतं रिपुचरितं तव देव ! निर्विशङ्कम् ।
कुरु यदुचितमत्र साम्प्रतं वचनकरा हि भवन्ति मद्विधास्तु ॥६४॥
बहु विदितमलं सुशास्त्रजालं नयविषयेषु सुमन्त्रिणोऽभियुक्ताः ।
अखिलमिदमुपैति मोहभावं पुरुषरवौ घनमोहमेघरुद्धे ॥६५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रावणदूतागमागमाभिधानं नाम षट्षष्टितमं पर्व ॥६६॥

और न दूतपर प्रहार करते हैं ॥६०॥ इस प्रकार युक्तियुक्त वचनोंसे जब लक्ष्मण रूपी पण्डितने उसे समझाया तब कहीं दुःसह दीप्तिचक्रको धारण करनेवाले भामण्डलने धीरे-धीरे क्रोध छोड़ा ॥६१॥ तदनन्तर दुष्टता भरे अन्य कुमारोंने वज्र प्रहारके समान क्रूर वचनोंसे जिसका अत्यधिक तिरस्कार किया तथा अपूर्व कारणोंसे जिसकी आत्मा अत्यन्त लघु हो रही थी, ऐसा मैं अपने आपको तृणसे अधिक निःसार मानता हुआ भयसे दुःखी हो आकाशमें उड़कर आपके पादमूलमें पुनः आया हूँ। हे देव ! यदि लक्ष्मण नहीं होता तो मैं आज अवश्य ही भामण्डलसे मारा जाता ॥६२-६३॥ हे देव ! इस प्रकार मैंने शत्रुके चरित्रका जैसा कुछ अनुभव किया है यह निःशङ्क होकर आपसे निवेदन किया है। अब इस विषयमें जो कुछ उचित हो सो करो क्योंकि हमारे जैसे पुरुष तो केवल आज्ञा पालन करनेवाले होते हैं ॥६४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिन्हें अनेक शास्त्रोंके समूह अच्छी तरह विदित हैं, जो नीतिके विषयमें सदा उद्यत रहते हैं तथा जिनके समीप अच्छे-अच्छे मन्त्री विद्यमान रहते हैं ऐसे मनुष्य भी पुरुष रूपी सूर्यके मोह रूपी सघन मेघसे आच्छादित हो जाने पर मोह भावको प्राप्त हो जाते हैं ॥६५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें रावणके दूतका रामके पास जाने और वहाँसे आनेका वर्णन करने वाला छयासठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६६॥

---

१. स्वमन्यमानः म० । २. शृणुतो- म० ।

सप्तषष्टितमं पर्व

स्वदूतवचनं श्रुत्वा राक्षसानामधीश्वरः । क्षणं सन्मन्त्रणं कृत्वा मन्त्रज्ञैः सह मन्त्रिभिः ॥१॥
कृत्वा पाणितले गण्डं कुण्डलालोकभासुरम् । अधोमुखः स्थितः किञ्चिदिति चिन्तामुपागतः ॥२॥
नातोन्द्रवृन्दसङ्घट्टे युद्धे शत्रुं जयामि चेत् । तथा सति कुमाराणां प्रमादः परिदृश्यते ॥३॥
सुप्ते शत्रुबले दत्त्वा समास्कन्दमवेदितः । आनयामि कुमारान् किं किं करोमि कथं शिवम् ॥४॥
इति चिन्तयतस्तस्य मागधेश्वरशेसुषा । इयं समुद्गता जातो यया सुखितमानसः ॥५॥
साधयामि महाविद्यां बहुरूपामिति श्रुताम् । प्रतिघ्नुहितुमुद्युक्तैरशक्यां त्रिदशैरपि ॥६॥
इति ध्यात्वा समाहूय किङ्करानशिषद् द्रुतम् । कुरुध्वं शान्तिगेहस्य शोभां सत्तोरणादिभिः ॥७॥
पूजां च सर्वचैत्येषु सर्वसंस्कारयोगिषु । सर्वश्चायं भरो न्यस्तो मन्दोदर्यां सुचेतसि ॥८॥
विंशस्य नेत्रदेवस्य वन्दितस्य सुरासुरैः । मुनिसुव्रतनाथस्य तस्मिन् काले महोदये ॥९॥
सर्वत्र भरतक्षेत्रे सुविस्तीर्णे महायते । अर्हच्चैत्यैरियं पृथ्वी सुधाऽऽसीदलङ्कृता ॥१०॥
राष्ट्राधिपतिभिर्भूपैः श्रेष्ठिभिर्ग्रामभोगिभिः । उत्थापितास्तदा जैनाः प्रासादाः पृथुतेजसः ॥११॥
अधिष्ठिता भृशं भक्तियुक्तैः शासनदेवतैः । सद्धर्मपक्षसंरक्षाप्रवणैः शुभकारिभिः ॥१२॥
सदा जनपदैः स्फीतैः कृताभिषवपूजनाः । रेजुः स्वर्गविमानाभा भव्यलोकनिषेविताः ॥१३॥
पर्वते पर्वते चारौ ग्रामे ग्रामे वने वने । पत्तने पत्तने राजन् हर्म्ये हर्म्ये पुरे पुरे ॥१४॥

अथानन्तर राक्षसोंका अधीश्वर रावण अपने दूतके वचन सुनकर क्षणभर मन्त्रके जानकार मन्त्रियोंके साथ मन्त्रणा करता रहा। तदनन्तर कुण्डलोंके आलोकसे देदीप्यमान गण्डस्थलको हथेली पर रख अधोमुख बैठ इस प्रकार चिन्ता करने लगा कि ॥१-२॥ यदि हस्तिसमूहके संघट्टसे युक्त युद्धमें शत्रुओंको जीतता हूँ तो ऐसा करनेसे कुमारोंकी हानि दिखाई देती है ॥३॥ इसलिए जब शत्रुसमूह सो जावे तब अज्ञात रूपसे धावा देकर कुमारोंको वापिस ले आऊँ ? अथवा क्या करूँ ? क्या करनेसे कल्याण होगा ? ॥४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे मगधेश्वर ! इस प्रकार विचार करते हुए उसे यह बुद्धि उत्पन्न हुई कि उसका हृदय प्रसन्न हो गया ॥५॥ उसने विचार किया कि मैं बहुरूपिणी नामसे प्रसिद्ध वह विद्या सिद्ध करता हूँ कि जिसमें सदा तत्पर रहनेवाले देव भी विघ्न उत्पन्न नहीं कर सकते ॥६॥ ऐसा विचार कर उसने शीघ्र ही किंकरोंको बुला आदेश दिया कि शान्तिजिनालयकी उत्तम तोरण आदिसे सजावट करो ॥७॥ तथा सब प्रकारके उपकरणोंसे युक्त सर्वमन्दिरोंमें जिनभगवान्‌की पूजा करो। किङ्करोंको ऐसा आदेश दे उसने पूजाकी व्यवस्थाका सब भार उत्तमचित्तकी धारक मन्दोदरीके ऊपर रक्खा ॥८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि वह सुर और असुरों द्वारा वन्दित बीसवें मुनिसुव्रत भगवान्‌का महाभ्युदयकारी समय था। उस समय लम्बे-चौड़े समस्त भरत क्षेत्रमें यह पृथ्वी अर्हन्तभगवान्‌की पवित्र प्रतिमाओंसे अलंकृत थी ॥९-१०॥ देशके अधिपति राजाओं तथा गाँवोंका उपभोग करनेवाले सेठोंके द्वारा जगह-जगह देदीप्यमान जिन-मन्दिर खड़े किये गये थे ॥११॥ वे मन्दिर, समीचीन धर्मके पक्षकी रक्षा करनेमें निपुण, कल्याणकारी, भक्तियुक्त शासन-देवोंसे अधिष्ठित थे ॥१२॥ देशवासी लोग सदा वैभवके साथ जिनमें अभिषेक तथा पूजन करते थे और भव्य जीव सदा जिनकी आराधना करते थे, ऐसे वे जिनालय स्वर्गके विमानोंके समान सुशोभित होते थे ॥१३॥ हे राजन् ! उस समय पर्वत पर्वतपर, अतिशय सुन्दर गाँव

---

१. वृद्ध म० । २. स्वचेतसि म० ।

सङ्गमे सङ्गमे रम्ये चत्वरे चत्वरे पृथौ । बभूवुश्चैत्यसङ्घाता महाशोभासमन्विताः ॥१५॥
शरच्चन्द्रसितच्छायाः सङ्गीतध्वनिहारिणः । नानातूर्यस्वनोद्भूतक्षुब्धसिन्धुसमस्वनाः ॥१६॥
त्रिसन्ध्यं वन्दनोद्युक्तैः साधुसङ्घैः समाकुलाः । गम्भीरा विविधाश्चर्यैश्चित्रपुष्पोपशोभिताः ॥१७॥
विभूत्या परया युक्ता नानावर्णमणिच्छिपः । सुविस्तीर्णाः समुत्तुङ्गा महाध्वजविराजिताः ॥१८॥
जिनेन्द्रप्रतिमास्तेषु हेमरूप्यादिमूर्तयः । पञ्चवर्णा सुशं रेजुः परिवारसमन्विताः ॥१९॥
पुरे च खेचराणां च स्थाने स्थानेऽतिचारुभिः । जिनप्रासादसङ्कूटैर्विजयार्द्धगिरिर्वरः ॥२०॥
नानारत्नमयैः कान्तैरुद्यानादिविभूषितैः । व्याप्तं जगदिदं रेजे जिनेन्द्रभवनैः शुभैः ॥२१॥
महेन्द्रनगराकारा लङ्काऽभ्येवं मनोहरा । अन्तर्बहिश्च जैनेन्द्रैर्भवनैः पापहारिभिः ॥२२॥
यथाष्टादशसङ्ख्यानां सहस्राणां सुयोषिताम् । पद्मिनीनां सहस्रांशुः स चिक्रीड दशाननः ॥२३॥
प्रावृड्मेघबलच्छायो नागनासो महाभुजः । पूर्णेन्दुवदनः कान्तोऽबन्धूकच्छदनाधरः ॥२४॥
विशालनयनो नारीमनःकर्षणविभ्रमः । लक्ष्मीधरसमाकारो दिव्यरूपसमन्वितः ॥२५॥

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्

तस्मिन्नाश्रितसर्वलोकनयने प्रासादमालावृते
नानारत्नमये दशाननगृहे चैत्यालयोद्भासिते ।
हेमस्तम्भसहस्रशोभि विपुलं मध्ये स्थितं भासुरं
तुङ्गं शान्तिगृहं स यत्र भगवान् शान्तिजिनः स्थापितः ॥२६॥

गाँवमें, वन वनमें पत्तन पत्तनमें, महल महलमें, नगर नगरमें, संगम संगममें, तथा मनोहर और सुन्दर चौराहे चौराहे पर महाशोभासे युक्त जिनमन्दिर बने हुए थे ॥१४–१५॥ वे मन्दिर शरद्ऋतुके चन्द्रमाके समान कान्तिसे युक्त थे, संगीतकी ध्वनिसे मनोहर थे, तथा नाना वादित्रोंके शब्दसे उनमें क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रके समान शब्द हो रहे थे ॥१६॥ वे मन्दिर तीनों संध्याओंमें वन्दनाके लिए उद्यत साधुओंके समूहसे व्याप्त रहते थे, गम्भीर थे, नाना आश्चर्योंसे सहित थे और विविध प्रकारके पुष्पोंके उपहारसे सुशोभित थे ॥१७॥ परम विभूतिसे युक्त थे, नाना रङ्गके मणियोंकी कान्तिसे जगमगा रहे थे, अत्यन्त विस्तृत थे, ऊँचे थे और बड़ी-बड़ी ध्वजाओंसे सहित थे ॥१८॥ उन मन्दिरोंमें सुवर्ण, चाँदी आदिकी बनी छत्रत्रय चमरादि परिवारसे सहित पाँच वर्णकी जिनप्रतिमाएँ अत्यन्त सुशोभित थीं ॥१९॥ विद्याधरोंके नगरमें स्थान-स्थानपर बने हुए अत्यन्त सुन्दर जिनमन्दिरोंके शिखरोंसे विजयार्ध पर्वत उत्कृष्ट हो रहा था ॥२०॥ इस प्रकार यह समस्त संसार बाग-बगीचोंसे सुशोभित, नानारत्नमयी, शुभ और सुन्दर जिनमन्दिरोंसे व्याप्त हुआ अत्यधिक सुशोभित था ॥२१॥ इन्द्रके नगरके समान यह लङ्का भी भीतर और बाहर बने हुए पापापहारी जिनमन्दिरोंसे अत्यन्त मनोहर थी ॥२२॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि वर्षाऋतुके मेघसमूहके समान जिसकी कान्ति थी, हाथीकी सूँड़के समान जिसकी लम्बी-लम्बी भुजाएँ थीं, पूर्णचन्द्रके समान जिसका मुख था, दुपहरियाके फूलके समान जिसके लाल-लाल ओंठ थे, जो स्वयं सुन्दर था, जिसके बड़े-बड़े नेत्र थे, जिसकी चेष्टाएँ स्त्रियोंके मनको आकृष्ट करनेवाली थीं, लक्ष्मीधर-लक्ष्मणके समान जिसका आकार था और जो दिव्यरूपसे सहित था, ऐसा दशानन, कमलिनियोंके साथ सूर्यके समान अपनी अठारह हजार स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करता था ॥२३–२५॥ जिसपर सब लोगोंके नेत्र लग रहे थे, जो अन्य महलोंकी पंक्तिसे घिरा था, नानारत्नोंसे निर्मित था और चैत्यालयोंसे सुशोभित था, ऐसे दशाननके घरमें सुवर्णमयी हजारों खम्भोंसे सुशोभित, विस्तृत, मध्यमें स्थित, देदीप्यमान और

१. समाकुलः म० ।

वन्द्यानां त्रिदशेन्द्रमौलिशिखरप्रोद्युत्सरत्नस्फुरत्-
स्फीतांशुप्रकरोपसारिचरणप्रोत्सर्पिनख्यैत्विषाम्
ज्ञात्वा सर्वमशाश्वतं परिहृतामाधाय धर्मे मतिं
धन्याः सन्तुति कारयन्ति परमं लोके जिनानां गृहम् ॥२७॥

उपजातिवृत्तम्

वित्तस्य जातस्य फलं विशालं वदन्ति सुज्ञाः सुकृतोपलम्भम् ।
धर्मश्च जैनः परमोऽखिलेऽस्मिन्नगस्थभीष्टस्य रविप्रकाशे ॥२८॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते शान्तिगृहकीर्तनं नाम सप्तषष्टितमं पर्व ॥६७॥

अतिशय ऊँचा वह शान्तिजिनालय था कि जिसमें शान्तिजिनेन्द्र विराजमान थे ॥२६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि उत्तम भाग्यशाली मनुष्य, धर्ममें दृढ़ बुद्धि लगाकर तथा संसारके सब पदार्थोंको अस्थिर जानकर जगत्में उन जिनेन्द्र भगवानके कान्तिसम्पन्न, उत्तम मन्दिर बनवाते हैं जो सबके द्वारा वन्दनीय हैं तथा इन्द्रके मुकुटोंके शिखरमें लगे रत्नोंकी देदीप्यमान किरणोंके समूहसे जिनके चरणनखोंकी कान्ति अत्यधिक वृद्धिगत होती रहती है ॥२७॥ बुद्धिमान् मनुष्य कहते हैं कि प्राप्त हुए विशाल धनका फल पुण्यकी प्राप्ति करना है और इस समस्त संसारमें एक जैनधर्म ही उत्कृष्ट पदार्थ है, यही इष्ट पदार्थको सूर्यके समान प्रकाशित करनेवाला है ॥२८॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें शान्ति जिनालयका वर्णन करने वाला सड़सठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६७॥

---

१. नक्षत्रविषाम् म० ।

अष्टषष्टितमं पर्व

अथ फाल्गुनिके मासे गृहीत्वा धवलाष्टमीम् । पौर्णमासीं तिथिं यावन्नन्दीश्वरो महः ॥१॥
नन्दीश्वरमहे तस्मिन् प्राप्ते परमसम्मदः[1] । बलद्वयेऽपि लोकोऽभून्नियमग्रहणोद्यतः ॥२॥
एवं च मानसे चक्रुः सर्वे सैनिकपुङ्गवाः । सुपुण्यानि दिनान्यष्टावेतानि सुत्रयत्रये ॥३॥
नैतेषु विग्रहं कुर्मो न चान्यदपि हिंसनम् । यजामहे यथाशक्ति स्वश्रेयसि परायणाः ॥४॥
भवन्ति दिवसेष्वेषु भोगादिपरिवर्जिताः । सुरा अपि जिनेन्द्राणां सेन्द्राः पूजनतत्पराः ॥५॥
क्षीरोदवारि सम्पूर्णैः कुम्भैरम्भोजशोभिभिः । [2]शातकुम्भैरलं भक्ताः स्नपयन्ति जिनान् सुराः ॥६॥
अन्यैरपि जिनेन्द्राणां प्रतिमाः प्रतिमोज्झिताः । भावितैरभिषेक्तव्याः फलाशादिपुटैरपि ॥७॥
गत्वा नन्दीश्वरं भक्त्या पूजयन्ति जिनेश्वरान् । देवेश्वरा न ते पूज्याः क्षुद्रकैः किमिहस्थितैः ॥८॥
अर्चयन्ति सुराः पद्मै रत्नजाम्बूनदोद्भवैः । जिनास्ते भुवि निर्वित्तैः पूज्याश्चित्तदलैरपि ॥९॥
इति ध्यानमुपायाता लङ्काद्वीपे मनोरमे । जनाश्चैत्यानि सोत्साहाः पताकाद्यैरभूषयन् ॥१०॥
सभाः प्रपाश्च मञ्चाश्च पट्टशाला मनोहराः । नाट्यशाला विशालाश्च वाप्यश्च रचिताः शुभाः ॥११॥
सरांसि पद्मरम्याणि भान्ति सोपानकैर्वरैः । [3]तटोल्लासितवज्रादिचैत्यकूटानि भूरिशः ॥१२॥
अलकाद्रिरजोभिःसम्पन्नजादिविराजितैः । वेश्मचैत्यानि सद्द्वारैर्वज्रस्तम्भादिभूषितैः ॥१३॥
घृतक्षीरादिभिः पूर्णाः कलशाः कमलाननाः । मुक्तादामादिसत्कण्ठा रत्नरश्मिविराजिताः ॥१४॥

अथानन्तर फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमीसे लेकर पौर्णमासी पर्यन्त नन्दीश्वर-अष्टाह्निक महोत्सव आया ॥१॥ उस नन्दीश्वर महोत्सव के आने पर दोनों पक्षकी सेनाओंके लोग परम हर्षसे युक्त होते हुए नियम ग्रहण करनेमें तत्पर हुए ॥२॥ सब सैनिक मनमें ऐसा विचार करने लगे कि ये आठ दिन तीनों लोकोंमें अत्यन्त पवित्र हैं ॥३॥ इन दिनोंमें हम न युद्ध करेंगे और न कोई दूसरी प्रकारकी हिंसा करेंगे, किन्तु आत्म-कल्याणमें तत्पर रहते हुए यथा-शक्ति भगवान् जिनेन्द्र की पूजा करेंगे ॥४॥ इन दिनोंमें देव भी भोगादिसे रहित हो जाते हैं तथा इन्द्रोंके साथ जिनेन्द्र देवकी पूजा करनेमें तत्पर रहते हैं ॥५॥ भक्त देव, क्षीर समुद्रके जलसे भरे तथा कमलोंसे सुशोभित स्वर्णमयी कलशोंसे श्रीजिनेन्द्रका अभिषेक करते हैं ॥६॥ अन्य लोगोंको भी चाहिए कि वे भक्तिभावसे युक्त हो कलश न हों तो पत्तों आदिके बने दोनोंसे भी जिनेन्द्र देवकी अनुपम प्रतिमाओंका अभिषेक करें ॥७॥ इन्द्र नन्दीश्वर द्वीप जाकर भक्ति पूर्वक जिनेन्द्र देवकी पूजा करते हैं, तो क्या यहाँ रहनेवाले क्षुद्र मनुष्योंके द्वारा जिनेन्द्र पूजनीय नहीं हैं ? ॥८॥ देव रत्न तथा स्वर्णमय कमलोंसे जिनेन्द्र देवकी पूजा करते हैं तो पृथ्वी पर स्थित निर्धन मनुष्योंको अन्य कुछ न हो तो मनरूपी कलिका द्वारा भी उनकी पूजा करना चाहिए ॥९॥ इस प्रकार ध्यानको प्राप्त हुए मनुष्योंने बड़े उत्साहके साथ मनोहर लङ्का द्वीपमें जो मन्दिर थे उन्हें पताका आदि से अलंकृत किया ॥१०॥ एकसे एक बढ़कर सभाएँ, प्याऊ, मञ्च, पट्टशालाएँ, मनोहर नाट्य शालाएँ तथा बड़ी-बड़ी वापिकाएँ बनाई गईं ॥११॥ जो उत्तमोत्तम सीढ़ियोंसे सहित थे तथा जिनके तटों पर वज्रादिसे निर्मित जिनमन्दिर शोभा पा रहे थे, ऐसे कमलोंसे मनोहर अनेक सरोवर सुशोभित हो रहे थे ॥१२॥ जिनालय, स्वर्णादिकी परागसे निर्मित नाना प्रकारके मण्डलादिसे अलंकृत एवं वस्त्र तथा कदली आदिसे सुशोभित उत्तम द्वारोंसे शोभा पा रहे थे ॥१३॥ जो घी, दूध आदिसे भरे हुए थे, जिनके मुख पर कमल ढके हुए थे,

---

१. सम्पदः म० । २. सौवर्णैः । ३. तटैर्भासित म० ।

जनबिम्बाभिषेकार्थमाहृता भक्तिभासुराः । दृश्यन्ते भोगिगेहेषु शतशोऽथ सहस्रशः ॥१५॥
नन्दनप्रभवैः फुल्लैः कर्णिकारातिमुक्तकैः । कदम्बैः सहकारैश्च चम्पकैः पारिजातकैः ॥१६॥
मन्दारैः सौरभाकृष्टमधुव्रतकदम्बकैः । स्रजो विरचिता रेजुश्चैत्येषु[1] परमोज्ज्वलाः ॥१७॥
[2]जातरूपमयैः पद्मै रजतादिमयैस्तथा । मणिरत्नशरीरैश्च पूजा विरचिता परा ॥१८॥
पटुभिः पटहैस्तूर्यैर्मृदङ्गैः काहलादिभिः । शङ्खैश्चाशु महानादैश्चैत्येषु समजायत ॥१९॥
प्रशान्तवैरसम्बद्धैर्महानन्दसमागतैः । जिनानां महिमा चक्रे लङ्कातुरनिवासिभिः ॥२०॥
ते विभूतिं परां चक्रुर्विद्येशा भक्तितत्पराः । नन्दीश्वरे यथा देवा जिनबिम्बार्चनोद्यताः ॥२१॥

आर्याच्छन्दः

अयमपि राक्षसवृषभः पृथुप्रतापः सुशान्तिगृहमभिगम्य ।
पूजां करोति भक्त्या बलिरिव पूर्वं मनोहरां शुचिर्भूत्वा ॥२२॥
समुचितविभवयुतानां जिनेन्द्रचन्द्रान् सुभक्तिभारधराणाम् ।
पूजयतां पुरुषाणां कः शक्तः पुण्यसञ्चयान् प्रचोदयितुम् ॥२३॥
सुरत्वा देवविभूतिं लब्ध्वा चक्राङ्गभोगसंयोगम् ।
रविसोऽपि तपस्तीव्रं कृत्वा जैनं व्रजन्ति मुक्तिं परमाम् ॥२४॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे फाल्गुनाष्टाह्निकामहिमविधानं नामाष्टषष्टितमं पर्व ॥६८॥

जिनके कण्ठमें मोतियोंकी मालाएँ लटक रही थीं, जो रत्नोंकी किरणोंसे सुशोभित थे, जो नाना प्रकारके बेलबूटोंसे देदीप्यमान थे तथा जो जिन-प्रतिमाओंके अभिषेकके लिए इकट्ठे किये गये थे ऐसे सैकड़ों हजारों कलश गृहस्थोंके घरोंमें दिखायी देते थे ॥१४-१५॥ मन्दिरोंमें सुगन्धिके कारण जिन पर भ्रमरोंके समूह मँडरा रहे थे, ऐसे नन्दन-वनमें उत्पन्न हुए कर्णिकार, अतिमुक्तक, कदम्ब, सहकार, चम्पक, पारिजातक, तथा मन्दार आदिके फूलोंसे निर्मित अत्यन्त उज्ज्वल मालाएँ सुशोभित हो रही थीं ॥१६-१७॥ स्वर्ण चाँदी तथा मणिरत्न आदिसे निर्मित कमलोंके द्वारा श्री जिनेन्द्र देवकी उत्कृष्ट पूजा की गई थी ॥१८॥ उत्तमोत्तम नगाड़े, तुरही, मृदङ्ग, शङ्ख तथा काहल आदि वादित्रोंसे मन्दिरोंमें शीघ्र ही विशाल शब्द होने लगा ॥१९॥ जिनका पारस्परिक वैरभाव शान्त हो गया था और जो महान् आनन्दसे मिल रहे थे, ऐसे लङ्कानिवासियोंने जिनेन्द्र देवकी परम महिमा प्रकट की ॥२०॥ जिस प्रकार नन्दीश्वर द्वीपमें जिन-बिम्बकी अर्चा करनेमें उद्यत देव बड़ी विभूति प्रकट करते हैं उसी प्रकार भक्तिमें तत्पर विद्याधर राजाओंने बड़ी विभूति प्रकट की थी ॥२१॥ विशाल प्रतापके धारक रावणने भी श्री शान्ति-जिनालयमें जाकर पवित्र हो पहले जिस प्रकार बलि राजाने की थी, उस प्रकार भक्तीसे श्री जिनेन्द्र देवकी मनोहर अर्चा की ॥२२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो योग्य वैभवसे युक्त हैं तथा उत्तम भक्तिके भारको धारण करने वाले हैं ऐसे श्री जिनेन्द्र देवकी पूजा करने वाले पुरुषोंके पुण्य-समूहका निरूपण करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥२३॥ ऐसे जीव देवोंकी सम्पदाका उपभोग कर तथा चक्रवर्तीके भोगोंका सुयोग पा कर और अन्तमें सूर्यसे भी अधिक जिनेन्द्र प्रणीत तपश्चरण कर श्रेष्ठ मुक्तिको प्राप्त होते हैं ॥२४॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें फाल्गुनमासकी अष्टाह्निकाओंकी महिमाका निरूपण करने वाला अड़सठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६८॥

---

१. चैत्यादि ब० । २. स्वर्णमयैः । ३. महानादै-ब० ।

एकोनसप्ततितमं पर्व

अथ शान्तिजिनेन्द्रस्य भवनं शान्तिकारणम् । कैलासकूटसङ्काशं शरदभ्रचयोपमम् ॥१॥
स्वयम्प्रभासुरं दिव्यं प्रासादालीसमावृतम् । जम्बूद्वीपस्य मध्यस्थं महामेरुमिवोत्थितम् ॥२॥
विद्यासाधनसंयुक्तमाविशत् स्थिरनिश्चयः । प्रविश्य रावणः पूजामकरोत् परमाद्भुताम् ॥३॥
अभिषेकैः सवादित्रैर्माल्यैरतिमनोहरैः । धूपैर्वस्तुपहारैश्च सद्वर्णैरनुलेपनैः ॥४॥
चक्रे शान्तिजिनेन्द्रस्य शान्तचेता दशाननः । पूजां परमया युक्त्या शुभार्णव इवोद्यतः ॥५॥
चूडामणिहसद्बद्धकेशमौलिर्महाद्युतिः । शुक्लांशुकधरः पीनकेयूराचितसद्भुजः ॥६॥
कृताञ्जलिपुटः कोणीं पीडयन् जानुसङ्गमात् । प्रणामं शान्तिनाथस्य चकार त्रिविधेन सः ॥७॥
शान्तैरभिमुखः स्थित्वा निर्मले धरणीतले । पद्मरागनियुक्ताङ्गः पुष्परागणि कुट्टिमे ॥८॥
बिभ्रत्स्फटिकनिर्माणमक्षमालां करोदरे । बलाकापङ्क्तिसंयुक्तनीलाम्भोदचयोपमः ॥९॥
एकाग्रध्यानसम्पन्नो नासाग्रस्थितलोचनः । विद्यायाः साधनं धीरः प्रारेभे राक्षसाधिपः ॥१०॥
दत्ताज्ञा पूर्वमेवाथ नाथेन प्रियवर्तिनी । अमात्यं यमदण्डाख्यमादिदेश मयात्मजा ॥११॥
दाप्यतां घोषणा स्थाने यथा लोकः समस्तः । नियमेषु नियुक्तात्मा जायतां सुदयापरः ॥१२॥
जिनचन्द्राः प्रपूज्यन्तां शेषव्यापारवर्जितैः । दीयतां धनमर्थिभ्यो यथेष्टं हृतमत्सरैः ॥१३॥
यावत्समाप्यते योगो नार्यं भुवनभोगिनः । तावत् श्रद्धापरो भूत्वा जगत्तिष्ठतु संयमी ॥१४॥

अथानन्तर जो शान्तिका कारण था, कैलासके शिखरके समान जान पड़ता था, शरद्-ऋतुके मेघमण्डलकी उपमा धारण करता था, स्वयं देदीप्यमान था, दिव्य अर्थात् मनोहर था, महलोंकी पंक्तिसे घिरा था और जम्बूद्वीपके मध्यमें स्थित महामेरुके समान खड़ा था—ऐसा श्रीशान्तिजिनेन्द्रके मन्दिरमें, विद्या साधनकी इच्छासे युक्त रावणने दृढ़ निश्चयके साथ प्रवेश कर श्रीजिनेन्द्रदेवकी परम अद्भुत पूजा की ॥१-३॥ जो उत्कृष्ट कान्तिसे खड़े हुए इन्द्रके समान जान पड़ता था ऐसे शान्तचित्त दशाननने वादित्र सहित अभिषेकों, अत्यन्त मनोहर मालाओं, धूपों, नैवेद्यके उपहारों और उत्तमवर्णके विलेपनोंसे श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्रकी पूजा की ॥४-५॥ जिसके बँधे हुए केश चूड़ामणिसे सुशोभित थे तथा उनपर मुकुट लगा हुआ था, जो महाकान्तिमान् था, शुक्ल वस्त्रको धारण कर रहा था, जिसकी मोटी मोटी उत्तम भुजाएँ बाजूबन्दोंसे अलंकृत थीं, जो हाथ जोड़े हुए था, और घुटनोंके समागमसे जो पृथ्वीको पीड़ा पहुँचा रहा था ऐसे दशाननने मन, वचन, कायसे श्रीशान्तिनाथ भगवान्‌को प्रणाम किया ॥६-७॥

तदनन्तर जो निर्मल पृथ्वीतलमें पुष्परागमणिसे निर्मित फर्शपर श्रीशान्तिनाथ भगवानके सामने बैठा था, जो हाथोंके मध्यमें स्फटिकमणिसे निर्मित अक्षमालाको धारण कर रहा था, और इसीलिए बलाकाओंकी पंक्तिसे युक्त नीलमेघोंके समूहके समान जान पड़ता था, जो एकाग्र ध्यानसे युक्त था, जिसने अपने नेत्र नासाके अग्रभाग पर लगा रक्खे थे, तथा जो अत्यन्त धीर था ऐसे रावणने विद्याका सिद्ध करना प्रारम्भ किया ॥८-१०॥ अथानन्तर जिसे स्वामीने पहले ही आज्ञा दे रक्खी थी ऐसी प्रियकारिणी मन्दोदरीने यमदण्डनामक मन्त्रीको आदेश दिया कि जगह-जगह ऐसी घोषणा दिलाई जावे कि जिससे लोग सब ओर नियम—आखड़ियोंमें तत्पर और उत्तम दयासे युक्त होवें ॥११-१२॥ अन्य सब कार्य छोड़कर जिनचन्द्रकी पूजा की जावे और मत्सरभावको दूर कर याचकोंके लिए इच्छानुसार धन दिया जावे ॥१३॥ जबतक जगत्के

१. हंसद्वंध-म० ।

निकारो बन्धुदारोऽपि कुतश्चिल्लोचतो भवेत् । निश्चितं सोऽपि सोढव्यो महाबलयुतैरपि ॥१५॥
क्रोधाद्विकुरुते किञ्चिद्विषसेव्येषु यो जनः । पिताऽपि किं पुनः शेषः स मे वध्यो भविष्यति ॥१६॥
युक्तो [1]बोधिसमाधिभ्यां संसारं सोऽन्तवर्जितम् । प्रतिपद्येत यो न स्यात् समादिष्टस्य कारकः ॥१७॥

वंशस्थवृत्तम्

ततो यथाऽऽज्ञापयसीति सम्भ्रमी मुदा तदाज्ञां शिरसा प्रतीत्य सः ।
चकार सर्वं गदितं जनैश्च तथा कृतं संशयसङ्गवर्जितैः ॥१८॥
जिनेन्द्रपूजाकरणप्रसक्ता प्रजा बभूवापरकार्यमुक्ता ।
रविप्रभाणां परमालयानामन्तर्गता निर्मलतुङ्गभावा ॥१९॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते लोकनियमकरणाभिधानं नामैकोनसप्ततितमं पर्व ॥६९॥

स्वामी—दशाननका यह योग समाप्त नहीं होता है तबतक सब लोग श्रद्धामें तत्पर एवं संयमी होकर रहें ॥१४॥ यदि किसी नीच मनुष्यकी ओरसे अत्यधिक तिरस्कार भी होवे तो भी महाबलवान् पुरुषोंको उसे निश्चित रूपसे सह लेना चाहिये ॥१५॥ इन दिनोंमें जो भी पुरुष क्रोधसे विकार दिखावेगा वह पिता भी हो, फिर शेषकी तो बात ही क्या है ? मेरा वध्य होगा ॥१६॥ जो मनुष्य इस आदेशका पालन नहीं करेगा वह बोधि और समाधिसे युक्त होने पर भी अनन्त संसारको ही प्राप्त होगा—उससे छूटकर मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकेगा ॥१७॥

तदनन्तर 'जैसी आपकी आज्ञा हो' इस प्रकार शीघ्रतासे कहकर तथा हर्ष पूर्वक मन्दोदरीकी आज्ञा शिरोधार्यकर यमदण्ड मन्त्रीने घोषणा कराई और सब लोगोंने संशयसे रहित हो घोषणाके अनुसार ही सब कार्य किये ॥१८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि सूर्यके समान कान्तिवाले उत्तमोत्तम महलोंके भीतर विद्यमान तथा निर्मल और उन्नत भावोंको धारण करने वाली लङ्काकी समस्त प्रजा, अन्य सब कार्य छोड़ जिनेन्द्र देवकी पूजा करनेमें ही लीन हो गई ॥१९॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें लोगोंके नियम करनेका वर्णन करने वाला उनहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६९॥

---

१. रोधिसमाधिभ्याम् म० ।

सप्ततितमं पर्व

[1]स वृत्तान्तश्चरास्येभ्यस्तत्र परबले श्रुतः । ऊचुश्च खेचराधीशा जयप्राप्तिपरायणाः ॥१॥
किल शान्तिजिनेन्द्रस्य प्रविश्य [2]शरणं सुधीः । विद्यां साधयितुं लग्नः स लङ्कापरमेश्वरः ॥२॥
चतुर्विंशतिभिः सिद्धिं वासरैः प्रतिपद्यते । बहुरूपेति सा विद्या सुराणामपि भञ्जनी ॥३॥
यावद्भगवती तस्य सा सिद्धिं न प्रपद्यते । तावत् कोपयत क्षिप्रं तं गत्वा नियमस्थितम् ॥४॥
तस्यां सिद्धिमुपेतायां देवेन्द्रैरपि शक्यते । न स साधयितुं कैव क्षुद्रेष्वस्मासु सङ्गता ॥५॥
ततो विभीषणेनोक्तं कर्त्तव्यं चेदिदं ध्रुवम् । द्रुतं प्रारभ्यतां कस्माद्वञ्चिरवलम्ब्यते ॥६॥
सम्प्रधार्य समस्तैस्तैः पद्मनाभाय वेदितम् । गदितं च यथा लङ्कापस्तावे गृह्यतामिति ॥७॥
बाध्यतां रावणः कृत्वं क्रियतां च यथेप्सितम् । इत्युक्तः स जगौ धीरो महापुरुषचेष्टितः ॥८॥
भीतादिष्वपि नो तावत् कर्तुं युक्तं विहिंसनम् । किं पुनर्नियमावस्थे जने जिनगृहस्थिते ॥९॥
नैषा कुलसमुत्थानां क्षत्रियाणां प्रशस्यते । प्रवृत्तिर्गर्वतुङ्गानां शिक्षानां शस्त्रकर्मणि ॥१०॥
महानुभावधीर्देवो विधर्मे न प्रवर्त्तते । इति प्रधार्य ते चक्रुः कुमारान् गामिनो रहः ॥११॥
श्वो [3]गन्तास्म इति प्राप्ता अपि बुद्धिं नभश्चराः । अष्टमात्रदिनं कालं सम्प्रधारणया स्थिताः ॥१२॥
पूर्णमास्यां ततः पूर्णशशाङ्कसदृशाननाः । पद्मायतेक्षणा नानालक्षणध्वजशोभिनः ॥१३॥

अथानन्तर 'रावण बहुरूपिणी विद्या साध रहा है।' यह समाचार गुप्तचरोंके मुखसे रामकी सेनामें सुनाई पड़ा सो विजय प्राप्त करनेमें तत्पर विद्याधर राजा कहने लगे कि ऐसा सुननेमें आया है कि लङ्काका स्वामी रावण श्री शान्ति-जिनेन्द्रके मन्दिरमें प्रवेश कर विद्या सिद्ध करनेमें लगा हुआ है ॥१-२॥ वह बहुरूपिणी विद्या चौबीस दिनमें सिद्धिको प्राप्त होती है तथा देवोंका भी मद भञ्जन करनेवाली है ॥३॥ इसलिए वह भगवती विद्या जब तक उसे सिद्ध नहीं होती है तब तक शीघ्र ही जाकर नियममें बैठे रावणको क्रोध उत्पन्न करो ॥४॥ बहुरूपिणी विद्या सिद्ध हो जाने पर वह इन्द्रोंके द्वारा भी नहीं जीता जा सकेगा फिर हमारे जैसे क्षुद्र पुरुषोंकी तो कथा ही क्या है ? ॥५॥ तब विभीषणने कहा कि यदि निश्चित ही यह कार्य करना है तो शीघ्र ही प्रारम्भ किया जाय। आप लोग विलम्ब किसलिए कर रहे हैं ॥६॥ तदनन्तर इस प्रकार सलाह कर सब विद्याधरोंने श्रीरामसे कहा कि 'इस अवसर पर लङ्का ग्रहण की जाय' ॥७॥ रावणको मारा जाय और इच्छानुसार कार्य किया जाय। इस प्रकार कहे जाने पर महापुरुषोंकी चेष्टासे युक्त धीर वीर रामने कहा कि जो मनुष्य अत्यन्त भयभीत हैं उन आदिके ऊपर भी जब हिंसापूर्ण कार्य करना योग्य नहीं है तब जो नियम लेकर जिन-मन्दिरमें बैठा है उस पर यह कुकृत्य करना कैसे योग्य हो सकता है ? ॥८-९॥ जो उच्चकुलमें उत्पन्न हैं, अहङ्कारसे उन्नत हैं तथा शस्त्र चलानेके कार्यमें जिन्होंने श्रम किया है ऐसे क्षत्रियोंकी यह प्रवृत्ति प्रशंसनीय नहीं है ॥१०॥

तदनन्तर 'हमारे स्वामी राम महापुरुष हैं, ये अधर्ममें प्रवृत्ति नहीं करेंगे' ऐसा निश्चय कर उन्होंने एकान्तमें अपने-अपने कुमार लङ्काकी ओर रवाना किये ॥११॥ 'तत्पश्चात् कल चलेंगे' इस प्रकार निश्चय कर लेने पर भी विद्याधर आठ दिन तक सलाह ही करते रहे ॥१२॥ अथानन्तर पूर्णिमाका दिन आया तब पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखके धारक, कमलके समान दीर्घ नेत्रोंसे

---

१. सद्वृत्तान्तश्चरा-ब० । २. गृहम् । ३. गताः स्म म० ।

सिंहव्याघ्रवराहेभशरभादिसुलान् रथान् । विमानानि तथाऽऽरूढा गृहीतवरमायुधाः ॥१४॥
कुमाराः प्रस्थिता लङ्कां शङ्कामुत्सृज्य सादराः । रावणक्षोभणाकूता भवनामरभासुराः ॥१५॥
मकरध्वजसाटोपचन्द्राभरतिवर्द्धनाः । वातायनो गुरुभरः सूर्यज्योतिर्महारथः[1] ॥१६॥
प्रीतिङ्करो दृढरथः समुन्नतबलस्तथा । नन्दनः सर्वदो दुष्टः सिंहः सर्वप्रियो नलः ॥१७॥
नीलः सागरनिस्वानः ससुतः पूर्णचन्द्रमाः । स्कन्दश्चन्द्ररीचिश्च जाम्बवः सङ्कटस्तथा ॥१८॥
समाधिबहुलः [2]सिंहकटिरिन्द्राशनिर्बलः । तुरङ्गशतमेतेषां प्रत्येकं योजितं रथे ॥१९॥
शेषाः सिंहवराहेभव्याघ्रयानैर्मनोजवैः । पदातिपटलोपेताः प्रस्थिताः परमौजसः ॥२०॥
नानाचिह्नाम्बरास्ते नानातोरणलाञ्छनाः । खिन्नाभिर्वैजयन्तीभिर्लक्षिता गगनाङ्गणे ॥२१॥
सैन्यार्णवसमुज्जृम्भमहागम्भीरनिःस्वनाः । आस्फुणाना दिशो मानमुद्वहन्तः समुन्नताः ॥२२॥
प्राप्ता लङ्कापुरीबाह्योद्देशमेवमचिन्तयन् । आश्चर्यं किमिदं लङ्का निश्चिन्तेयमवस्थिता ॥२३॥
स्वस्थो जनपदोऽमुष्यां सुचेताः परिलक्ष्यते । अभूतपूर्वसङ्ग्रामा इव चास्यां भटाः स्थिताः ॥२४॥
अहो लङ्केश्वरस्येदं धैर्यमत्यन्तमुन्नतम् । गम्भीरत्वं तथा सत्त्वं श्लाघ्यं प्रतापसमुन्नतम् ॥२५॥
बन्दिग्रहणमानीतः कुम्भकर्णो महाबलः । इन्द्रजिन्मेघनादश्च दुर्धरैरपि दुर्धराः ॥२६॥
अन्ये च बहवः शूरा नीता निधनमाहवे । न तथापि विभोः शङ्का काचिदस्योपजायते ॥२७॥
इति सञ्चिन्त्य कृत्वा च समालापं परस्परम् । विस्मयं परमं प्राप्ताः कुमाराः शङ्किता इव ॥२८॥

युक्त एवं नाना लक्षणोंकी ध्वजाओंसे सुशोभित विद्याधर कुमार सिंह, व्याघ्र, वाराह, हाथी और शरभ आदिसे युक्त रथों तथा विमानों पर आरूढ़ हो निशङ्क होते हुए आदरके साथ लङ्काकी ओर चले। उस समय उत्तमोत्तम शस्त्रोंको धारण करने वाले तथा रावणको कुपित करनेकी भावनासे युक्त वे वानर कुमार भवनवासी देवोंके समान देदीप्यमान हो रहे थे ॥१३-१५॥ उन कुमारोंसे कुछके नाम इस प्रकार हैं। मकरध्वज, साटोप, चन्द्राभ, वातायन, गुरुभर, सूर्यज्योति, महारथ, प्रीतिङ्कर, दृढ़रथ, समुन्नतबल, नन्दन, सर्वद, दुष्ट, सिंह, सर्वप्रिय, नल, नील, समुद्रघोष, पुत्र सहित पूर्णचन्द्र, स्कन्द, चन्द्ररश्मि, जाम्बव, सङ्कट, समाधिबहुल, सिंहजघन, इन्द्रवज्र और बल। इनमेंसे प्रत्येकके रथ में सौ-सौ घोड़े जुते हुए थे ॥१६-१९॥ पदातियोंके मध्यमें स्थित, परम तेजस्वी शेषकुमार मनके समान वेगशाली सिंह वराह हाथी और व्याघ रूपी वाहनोंके द्वारा लङ्काकी ओर चले ॥२०॥ जिनके ऊपर नाना चिह्नोंको धारण करने वाले छत्र फिर रहे थे, जो नाना तोरणोंसे चिह्नित थे, आकाशाङ्गणमें जो रङ्ग-विरङ्गी ध्वजाओंसे सहित थे, जिनकी सेनारूपी सागरसे अत्यन्त गम्भीर शब्द उठ रहा था, जो मानको धारण कर रहे थे, तथा अतिशय उन्नत थे ऐसे वे सब कुमार दिशाओंको आच्छादित करते हुए लङ्कापुरीके बाह्य मैदानमें पहुँचकर इस प्रकार विचार करने लगे कि यह क्या आश्चर्य है ? जो यह लङ्का निश्चिन्त स्थित है ॥२१-२३॥ इस लङ्काके निवासी स्वस्थ तथा शान्तचित्त दिखाई पड़ते हैं और यहाँके योद्धा भी ऐसे स्थित हैं मानो इनके यहाँ पहले युद्ध हुआ ही नहीं हो ॥२४॥ अहो लङ्कापतिका यह विशाल धैर्य, यह उन्नत गाम्भीर्य, और यह लक्ष्मी तथा प्रतापसे उन्नत सत्त्व-बल धन्य है ॥२५॥ यद्यपि महाबलवान् कुम्भकर्ण, इन्द्रजित् तथा मेघनाद बन्दीगृहमें पड़े हुए हैं, तथा प्रचण्ड बलशाली भी जिन्हें पकड़ नहीं सकते थे ऐसे अन्य आदि अनेक शूर वीर युद्धमें मारे गये हैं तथापि इस धनी को कोई शङ्का उत्पन्न नहीं हो रही है ॥२६-२७॥ इस प्रकार विचार कर तथा परस्पर वार्तालाप कर परम आश्चर्यको प्राप्त हुए कुमार कुछ शङ्कितसे हो गये ॥२८॥

---

१. द्योतिर्महारथः ज० । सूर्यो ज्योतिर्महारथः म० । २ सिंहः कटि म० ।

अथ वैभीषणिर्वाक्यं ख्यातो नाम्ना सुभूषणः । जगाद धैर्यसम्पन्नं निर्भ्रान्तं मारुतायनम् ॥२९॥
भयासङ्गं समुत्सृज्य क्षिप्रं लङ्कां प्रविश्य ताम् । क्षोलयामि त्रिमान् सर्वान् परित्यज्य कुलाङ्गनाः ॥३०॥
वचनं तस्य सम्पूज्य ते विद्याधरदारकाः । महाशौर्यसमुद्भद्धा दुर्दान्ताः कलहप्रियाः ॥३१॥
आशीविषसमाश्चण्डा उद्धताश्चपलाश्चलाः । भोगतुलिता नानासङ्ग्रामोद्भूतकीर्तयः ॥३२॥
प्रसभाता इवाशेषां नगरीं तां समास्तृणन् । महासैन्यसमायुक्ताः शस्त्ररश्मिविराजिताः ॥३३॥
सिंहेभादिरवोन्मिश्रभेरीदुन्दुभिनिस्वनम् ॥ श्रुत्वातिभीषणं लङ्का परमं कम्पमागता ॥३४॥
सहसा चकितत्रस्ता विलोलनयनाः स्त्रियः । स्वनद्गलदलङ्काराः प्रियाणामङ्कमाश्रिताः ॥३५॥
विद्याभून्मिथुमान्युच्चैर्विह्वलानि नभोऽङ्गणे । वस्त्रमुञ्चक्रवद्भान्त्या चलद्वासांसि सस्वनम् ॥३६॥
भवने राक्षसेन्द्रस्य महारत्नांशुभासुरे । स्वनन्मङ्गलगम्भीरवीरतूर्यमृदङ्गके ॥३७॥
अभ्युत्थितसुसङ्गीतनृत्यनिष्णातयोषिति । जिनपूजासमुद्युक्तकन्याजनसमाकुले ॥३८॥
विलासैः परमस्त्रीणामप्युन्मादितमन्मथे । क्रूरतूर्यस्वनं श्रुत्वा क्षुब्धेऽन्तःपुरसागरे ॥३९॥
[illegible] समन्तादाकुलो मन्द्रो वसुधाकीनामिवायतः ॥४०॥
विह्वलाऽचिन्तयत् काचित् कष्टं किमिदमागतम् । सत्यभ्यमद्य किं क्रूरे कृते कर्मणि शत्रुभिः ॥४१॥
अन्या बद्ध्वा भवेत्पापैः[2] किं नु बन्दिग्रहे मम । किंवा विवसनीभूता क्षिप्ये लवणसागरे ॥४२॥
एवमाकुलतां प्राप्ते समस्ते नगरीजने । विह्वलेषु प्रवृत्तेषु निःस्वनेषु समन्ततः ॥४३॥

तदनन्तर सुभूषण नामसे प्रसिद्ध विभीषणके पुत्रने, धैर्यशाली, भ्रान्तिरहित वातायनसे इस प्रकार कहा कि ॥२९॥ भय छोड़ शीघ्र ही लङ्कामें प्रवेश कर कुलाङ्गनाओंको छोड़ इस समस्त लोगोंको अभी हिलाता हूँ ॥३०॥ उसके वचन सुन विद्याधरोंके कुमार समस्त नगरीको ग्रसते हुए के समान सर्वत्र छा गये। वे कुमार महाशूरवीरतासे अत्यन्त उद्दण्ड थे, कठिनतासे वशमें करने योग्य थे, कलह-प्रिय थे, आशीविष-सर्पके समान थे, अत्यन्त क्रोधी थे, गर्वीले थे, बिजलीके समान चञ्चल थे, भोगोंसे लालित हुए थे, अनेक संग्रामोंमें कीर्तिको उपार्जित करनेवाले थे, बहुत भारी सेनासे युक्त थे तथा शस्त्रोंकी किरणोंसे सुशोभित थे ॥३१-३३॥ सिंह तथा हाथी आदिके शब्दोंसे मिश्रित भेरी एवं दुन्दुभी आदिके अत्यन्त भयङ्कर शब्दको सुन लङ्का परम कम्पनको प्राप्त हुई—सारी लङ्का काँप उठी ॥३४॥ जो आश्चर्यचकित हो भयभीत हो गई थीं, जिनके नेत्र अत्यन्त चञ्चल थे और जिनके आभूषण गिर-गिरकर शब्द कर रहे थे ऐसी स्त्रियाँ सहसा पतियोंकी गोदमें जा छिपीं ॥३५॥ जो अत्यन्त विह्वल थे तथा जिनके वस्त्र वायुसे इधर-उधर उड़ रहे थे ऐसे विद्याधरोंके युगल आकाशमें बहुत ऊँचाई पर शब्द करते हुए चक्राकार भ्रमण करने लगे ॥३६॥ रावणका जो भवन महारत्नोंकी किरणोंसे देदीप्यमान था, जिसमें मङ्गलमय तुरही तथा मृदङ्गोंका गम्भीर शब्द हो रहा था, जिसमें रहनेवाली स्त्रियाँ अविरल उत्तम संगीत तथा नृत्यमें निपुण थीं, जो जिनपूजामें तत्पर कन्याजनोंसे व्याप्त थी और जिसमें उत्तम स्त्रियोंके विलासोंसे भी काम उन्मादको प्राप्त नहीं हो रहा था ऐसे रावणके भवनमें जो अन्तःपुररूपी सागर विद्यमान था वह तुरहीके कठोर शब्दको सुन क्षोभको प्राप्त हो गया ॥३७-३९॥ सब ओरसे आकुलतासे भरा भूषणोंके शब्दसे मिश्रित ऐसा मनोहर एवं गम्भीर शब्द उठा जो मानो वीणाका ही विशाल शब्द था ॥४०॥ कोई स्त्री विह्वल होती हुई विचार करने लगी कि हाय हाय यह क्या कष्ट आ पड़ा। शत्रुओंके द्वारा किये हुए इस क्रूरतापूर्ण कार्यमें क्या आज मरना पड़ेगा ? ॥४१॥ कोई स्त्री सोचने लगी कि न जाने मुझे पापी लोग बन्दीगृहमें डालते हैं या वस्त्ररहित कर लवणसमुद्रमें फेंकते हैं ॥४२॥ इस प्रकार जब नगरीके समस्त लोग आकुलताको

---

१. चपलाश्चलाः म० । २. पापः म०, ज० ।

क्रुद्धो मयमहादैत्यः पिनद्धकवचो द्रुतम् । सन्नद्धैः सचिवैः सार्द्धं समुन्नतपराक्रमः ॥४४॥
युद्धार्थमुद्यतो दीप्तः प्राप लङ्केशमन्दिरम् । श्रीमान् हरिणकेशीव सुधाशीरनिकेतनम् ॥४५॥
ऊचे मन्दोदरी तं च कृत्वा निर्भर्त्सनं परम् । कर्त्तव्यं तात नैतत्ते दोषार्णवनिमज्जनम् ॥४६॥
समयो घोष्यमाणोऽसौ जैनः किं न त्वया श्रुतः । प्रसादं कुरु वाञ्छा चेदस्ति स्वश्रेयसं प्रति ॥४७॥
दुहितुः स्वहितं वाक्यं श्रुत्वा दैत्यपतिर्मयः । प्रशान्तः सञ्जहारास्त्रं रश्मिचक्रं यथा रविः ॥४८॥
दुर्भेद्यकवचच्छन्नो मणिकुण्डलमण्डितः । हारराजितवक्षस्को विवेश स्वं जिनालयम् ॥४९॥
उद्वेलसागराकाराः कुमारास्तावदागताः । प्राकारं वेगवातेन कुर्वन्तः शिखरोज्झितम् ॥५०॥
भग्नवज्रकपाटं च कृत्वा गोपुरमायतम्[1] । प्रविष्टा नगरीं धीरा महोपद्रवलालसाः ॥५१॥
इमे प्राप्ता द्रुतं नश्यं[2] क यान्ति प्रविशालयम् । हा मातः किमिदं प्राप्तं तात तात निरीक्ष्यताम् ॥५२॥
भ्रातस्त्वं भद्र हा भ्रातः किं किं ही ही कथं कथम् । आर्यपुत्र निवर्त्तस्व तिष्ठ हा हा महद्भयम् ॥५३॥
एवं प्रवृत्तनिस्त्रामैराकुलैर्नगरीजनैः । सम्प्लुतैर्दशवक्त्रस्य भवनं [3]परिपूर्यते ॥५४॥
काचिद्विगलितां काञ्चीमाक्रम्यात्यन्तमाकुला । स्वेनैव चरणेनान्ते जानुखण्डं गता भुवि ॥५५॥
हस्तालम्बितविस्रंस्तवसनाप्यतिविह्वला । गृहीत्वपृथुका तन्वी चकम्पे गन्तुमुद्यता ॥५६॥
सम्भ्रमत्रुटितस्थूलमुक्तानिकरवर्षिणी । मेखरेखेव काचित्तु प्रस्थिता वेगधारिणी ॥५७॥

प्राप्त थे तथा सब ओरसे घबड़ाहटके शब्द सुनाई पड़ रहे थे तब क्रोधसे भरा एवं उन्नत पराक्रमका धारी, मन्दोदरीका पिता मयनामक महादैत्य कवच पहिनकर, कवच धारण करनेवाले मन्त्रियोंके साथ युद्धके लिए उद्यत हो देदीप्यमान हुआ रावणके भवनमें उस प्रकार पहुँचा जिस प्रकार कि श्रीसम्पन्न हरिणकेशी इन्द्रके भवन आता है, ॥४३-४५॥ तब मन्दोदरीने पिताको बड़ी डाँट दिखाकर कहा कि हे तात ! इस तरह आपको दोषरूपी सागरमें निमज्जन नहीं करना चाहिए ॥४६॥ जिसकी घोषणा की गई थी ऐसा जैनाचार क्या तुमने सुना नहीं था। इसलिए यदि अपनी भलाई चाहते हो तो प्रसाद करो-शान्त होओ ॥४७॥ पुत्रीके स्वहितकारी वचन सुनकर दैत्यपति मयने शान्त हो अपना शस्त्र उस तरह संकोच लिया जिस तरह कि सूर्य अपनी किरणोंके समूहको संकोच लेता है ॥४८॥ तदनन्तर जो दुर्भेद्य कवचसे आच्छादित था, मणिमय कुण्डलोंसे अलंकृत था और जिसका वक्षःस्थल हारसे सुशोभित था ऐसे मयने अपने जिनालयमें प्रवेश किया ॥४९॥

इतनेमें ही उद्वेलसागरके समान आकारको धारण करनेवाले कुमार, वेग सम्बन्धी वायुसे प्राकारको शिखर रहित करते हुए आ पहुँचे ॥५०॥ महान् उपद्रव करनेमें जिनकी लालसा थी ऐसे वे धीर वीर कुमार, लम्बे-चौड़े गोपुरके वज्रमय किवाड़ तोड़कर नगरीके भीतर घुस गये ॥५१॥ उनके पहुँचते ही नगरीमें इस प्रकारका हल्ला मच गया कि 'ये आ गए', 'जल्दी भागो' 'कहाँ जाऊँ ?' 'घरमें घुस जाओ' 'हाय मातः यह क्या आ पड़ा है ?' 'हे तात ! तात ! देखो तो सही' 'अरे भले आदमी बचाओ' हे भाई ! 'क्या क्या' 'ही हो' क्यों क्यों' हे आर्य पुत्र ! लौटो, ठहरो, हाय हाय बड़ा भय है' इस प्रकार भयसे व्याकुल हो चिल्लाते हुए नगर-वासियोंसे रावणका भवन भर गया ॥५२-५४॥ कोई एक स्त्री इतनी अधिक घबड़ा गई थी कि वह अपनी गिरी हुई मेखलाको अपने ही पैरसे लाँघती हुई आगे बढ़ गई और अन्तमें पृथ्वीपर ऐसी गिरी कि उसके घुटने टूट गये ॥५५॥ खिसकते हुए वस्त्रको जिसने हाथसे पकड़ रक्खा था, जो अत्यन्त घबड़ाई हुई थी, जिसने बच्चेको उठा रक्खा था और जो कहीं जानेके लिए तैयार थी ऐसी कोई दुबली-पतली स्त्री भयसे काँप रही थी ॥५६॥ हड़बड़ाहटके कारण हारके टूट

१. गोपनम् म० । २. नश्यत् म० । ३. परिपूर्यतां म० । ४. चित्रस्त-म० ।

सन्त्रस्तहरिणीनेत्रा लम्बकेशकलापिका । वक्षः प्राप्य प्रियस्यान्या बभूवोत्कम्पितोत्थिता ॥५८॥
एतस्मिन्नन्तरे दृष्ट्वा लोकं भयपरायणम् । शासनान्तर्गता देवाः शान्तिप्रासादसंश्रिताः ॥५९॥
स्वपक्षपालनोद्युक्ता करुणासक्तमानसाः । प्रातिहार्यं द्रुतं कर्तुं प्रवृत्ता भावतत्पराः ॥६०॥
उत्पत्य भैरवाकाराः शान्तिचैत्यालयादमी । गृहीतविविधा कल्पा दंष्ट्रालीढमुखाननाः ॥६१॥
मध्याह्नार्कदुरीक्षाक्षाः क्षुब्धाः क्रोधोद्गमद्विषः । दष्टाधरा महाकाया नानावर्णमहारवाः ॥६२॥
देहदर्शनमात्रेण विकारैर्विषमैर्युताः । वानराङ्कबलं भङ्क्त्वा निन्युरत्यन्तविह्वलम् ॥६३॥
क्षणं सिंहाः क्षणं वह्निः क्षणं मेघाः क्षणं द्विपाः । क्षणं सर्पाः क्षणं वायुस्ते भवन्ति क्षणं नगाः ॥६४॥
अभिभूतानिमान् ज्ञात्वा देवैः शान्तिगृहाश्रयैः । जिनालयकृतावासास्तेषामपि हिते रताः ॥६५॥
देवाः समागता योद्धुं विकृताकारवर्त्तिनः । निजस्थानेषु तेषां हि ते वसन्त्यनुपालकाः ॥६६॥
प्रवृत्ते तुमुले क्रूरे गीर्वाणानां परस्परम् । आसीद्भाव[1]स्वभावेऽपि सन्देहो विकृतिं प्रति ॥६७॥
सीदतः स्वान् सुरान् दृष्ट्वा बलिनश्च परामरान् । कपिकेतूंश्च संदष्टान्पुनर्लङ्कामुखं स्थितान् ॥६८॥
महान्तं क्रोधमापन्नः प्रभावपरमः सुधीः । यक्षेशः पूर्णभद्राख्यो मणिभद्रमिदं जगौ ॥६९॥
एतान्पश्य कृपाभुक्तान् शास्त्रार्केस्तरिकेतनान् । जानन्तोऽपि समस्तानि शास्त्राणि विकृतिं गता ॥७०॥
स्थित्याचारविनिर्मुक्तान् त्यक्ताहारं दशाननम् । योगसंयोजितात्मानं देहेऽपि रहितस्पृहम् ॥७१॥

जानेसे जो मोतियोंके समूहकी वर्षा कर रही थी ऐसी कोई एक स्त्री मेघकी रेखाके समान बड़े वेगसे कहीं भागी जा रही थी ॥५७॥ भयभीत हरिणीके समान जिसके नेत्र थे, तथा जिसके बालोंका समूह बिखर गया था ऐसी कोई एक स्त्री पतिके वक्षःस्थलसे जब लिपट गई तभी उसकी कँपकँपी छूटी ॥५८॥

तदनन्तर इसी बीचमें लोगोंको भयभीत देख शान्ति जिनालयके आश्रयमें रहने वाले शासन देव, अपने पक्षकी रक्षा करनेमें उद्यत तथा दयालु चित्त हो भाव पूर्ण मनसे शीघ्र ही द्वार-पालपना करनेके लिए प्रवृत्त हुए अर्थात् उन्होंने किसीको अन्दर नहीं आने दिया ॥५९॥ जिनके आकार अत्यन्त भयङ्कर थे, जिन्होंने नाना प्रकारके वेष धारण कर रक्खे थे, जिनके मुख दाँढ़ोंकी पङ्क्तिसे व्याप्त थे, जिनके नेत्र मध्याह्नके सूर्यके समान दुर्निरीक्ष्य थे, जो क्षुभित थे, क्रोधसे विष उगल रहे थे, ओंठ चाप रहे थे, डील-डौलके बड़े थे, नाना वर्णके महाशब्द कर रहे थे—और जो शरीरके देखने मात्रसे विषम विकारोंसे युक्त थे ऐसे वे शासन देव शान्ति जिनालयसे निकलकर वानरोंकी सेना पर ऐसे झपटे कि उसे अत्यन्त विह्वल कर क्षण भरमें खदेड़ दिया ॥६०–६३॥ वे शासन देव क्षण भरमें सिंह, क्षण भरमें अग्नि, क्षण भर में मेघ, क्षण भरमें हाथी, क्षण भरमें सर्प, क्षण भरमें वायु और क्षण भरमें पर्वत बन जाते थे ॥६४॥ शान्ति जिनालयके आश्रयमें रहने वाले देवोंके द्वारा इन वानरकुमारोंको पराभूत देख; वानरोंके हितमें तत्पर रहने वाले जो देव शिविरके जिनालयोंमें रहते थे वे भी विक्रियासे आकार बदल कर युद्ध करनेके लिए आ पहुँचे सो ठीक ही है क्योंकि जो अपने स्थानों में निवास करते हैं देव लोग उनके रक्षक होते हैं ॥६५–६६॥ तदनन्तर देवोंका परस्पर भयङ्कर युद्ध प्रवृत्त होने पर उनकी विकृति देख परमार्थ स्वभावमें भी सन्देह होने लगा था ॥६७॥

अथानन्तर अपने देवोंको पराजित होते, दूसरे देवोंको बलवान् होते और अहङ्कारी वानरोंको लङ्काके सन्मुख प्रस्थान करते देख महाक्रोधको प्राप्त हुआ परमप्रभावी बुद्धिमान पूर्णभद्र नामका यक्षेन्द्र मणिभद्र नामक यक्षसे इस प्रकार बोला ॥६८–६९॥ कि इन दया हीन वानरोंको तो देखो जो सब शास्त्रोंको जानते हुए भी विकारको प्राप्त हुए हैं ॥७०॥ ये लोक मर्यादा

---

१. भावः स्वभावेऽपि म०, ज०, ख० ।

प्रशान्तहृदयं हन्तुमुद्यतान्पापचेष्टितान् । रन्ध्रप्रहारिणः क्षुद्रान् त्यक्तवीरविचेष्टितान् ॥७२॥
मणिभद्रस्ततोऽब्रीत्पूर्णभद्रसमस्तदा । सम्यक्त्वभावनायुक्तं वीरं जिनेन्द्रपादसेविनम् ॥७३॥
चारुलक्षणसम्पूर्णं शान्तात्मानं महाद्युतिम् । रावणं न सुरेन्द्रोऽपि नेतुं शक्तः पराभवम् ॥७४॥
ततस्तथाऽस्त्विति प्रोक्ते पूर्णभद्रेण तेजसा । गुह्यकाधिपयुग्मं तज्जातं विघ्नस्य नाशकम् ॥७५॥
यक्षेश्वरौ परिक्रुद्धौ दृष्ट्वा योद्धुं समुद्यतौ । लज्जान्वितास्तु भीताश्च गताः स्वं स्वं परामराः ॥७६॥
यक्षेश्वरौ महावायुप्रेरितोपलवर्षिणौ । युगान्तमेघसङ्काशौ जातौ घोरोरुगर्जितौ ॥७७॥
तयोर्जङ्घासमीरेण सा नभश्चरवाहिनी । प्रेरितोदारवेगेन शुष्कपर्णचयोपमा ॥७८॥
तेषां पलायमानानां भूत्वानुपदिकाविमौ । उपालम्भकृताकूतावेकस्थौ पद्ममागतौ ॥७९॥
अभिनन्द्य च तं सम्यक् पूर्णभद्रः सुधार्जवौ । राज्ञो दशरथस्य त्वं श्रीमतस्तस्य नन्दनः ॥८०॥
अशस्तेभ्यः सदा दूरः शस्तेषु कृतसत्वरः । तीर्णः शास्त्रसमुद्रस्य पारं शुद्धगुणोन्नतः ॥८१॥
ईदृशस्य सतो भद्र किमेतत्सदृशं विभोः । तव सेनाश्रितैः पौरजनो ध्वंसमुपाकृतः ॥८२॥
यो यस्य हरते द्रव्यं प्रयत्नेन समार्जितम् । स तस्य हरते प्राणान् बाह्यमेतद्धि जीवितम् ॥८३॥
अनर्घवज्रवैडूर्यविद्रुमादिभिराचिता । लङ्कापुरी परिध्वस्ता त्वदीयैराकुलाङ्गना ॥८४॥
प्रौढेन्दीवरसंकाशस्ततो गरुडकेतनः । जगाद तेजसा युक्तं वचनं विधिकोविदः ॥८५॥
एतस्य रघुचन्द्रस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयसी । महागुणधरी पत्नी शीलालङ्कारधारिणी ॥८६॥
दुरात्मना छलं प्राप्य हृता सा येन रक्षसा । अनुकम्पा त्वया तस्य रावणस्य कथं कृता ॥८७॥

और आचारसे रहित हैं। देखो, रावण तो आहार छोड़ ध्यानमें आत्माको लगा शरीरमें भी निस्पृह हो रहा है तथा अत्यन्त शान्तचित्त है फिर भी ये उसे मारनेके लिए उद्यत हैं, पाप पूर्ण चेष्टा युक्त हैं, छिद्र देख प्रहार करने वाले हैं, क्षुद्र हैं और वीरोंकी चेष्टासे रहित हैं ॥७१-७२॥ तदनन्तर जो दूसरे पूर्णभद्रके समान था ऐसा मणिभद्र बोला कि जो सम्यक्त्वकी भावनासे सहित है, वीर है, जिनेन्द्र भगवान्के चरणोंका सेवक है, उत्तम लक्षणोंसे पूर्ण है, शान्त चित्त है और महा दीप्तिका धारक है ऐसे रावणको पराभव प्राप्त करानेके लिए इन्द्र भी समर्थ नहीं है फिर इनकी तो बात ही क्या है ? ॥७३-७४॥ तदनन्तर तेजस्वी पूर्णभद्रके 'तथास्तु' इस प्रकार कहने पर दोनों यक्षेन्द्र विघ्नका नाश करने वाले हुए ॥८४॥ तत्पश्चात् क्रोधसे भरे दोनों यक्षेन्द्रोंको युद्धके लिए उद्यत देख दूसरे देव लज्जासे युक्त तथा भयभीत होते हुए अपने-अपने स्थान पर चले गये ॥७६॥ दोनों यक्षेन्द्र तीव्र आँधीसे प्रेरित पाषाणोंकी वर्षा करने लगे तथा अत्यन्त भयंकर विशाल गर्जना करते हुए प्रलय कालके मेघके समान हो गये ॥७७॥ उन यक्षेन्द्रोंकी अत्यन्त वेग-शाली जंघाओंकी वायुसे प्रेरित हुई विद्याधरोंकी सेना सूखे पत्तोंके ढेरके समान हो गई अर्थात् भयसे इधर-उधर भागने लगी ॥७८॥ उन भागते हुए वानरोंका पीछा करते हुए दोनों यक्षेन्द्र, उलाहना देनेके अभिप्रायसे भी रामके पास आये ॥७९॥ उनमेंसे बुद्धिमान् पूर्णभद्र रामकी अच्छी तरह प्रशंसाकर बोला कि तुम श्रीमान् राजा दशरथके पुत्र हो ॥८०॥ अप्रशस्त कार्योंसे तुम सदा दूर रहते और शुभ कार्योंमें सदा उद्यत रहते हो। शास्त्रों रूपी समुद्रके पारको प्राप्त हो तथा शुद्ध गुणोंसे उन्नत हो ॥८१॥ हे भद्र ! इस तरह सामर्थ्यवान् होने पर भी क्या यह कार्य उचित है कि आपकी सेनाके लोगोंने नगरवासी जनोंको नष्ट-भ्रष्ट किया है ॥८२॥ जो जिसके प्रयत्न पूर्वक कमाये हुए धनका हरण करता है वह उसके प्राणोंको हरता है क्योंकि धन बाह्य प्राण कहा गया ॥८३॥ आपके लोगोंने अमूल्य हीरा वैडूर्य मणि तथा मूंगा आदिसे व्याप्त लंका पुरीको विध्वस्त कर दिया है तथा उसकी स्त्रियोंको व्याकुल किया है ॥८४॥

तदनन्तर सब प्रकारकी विधियोंके जाननेमें निपुण, प्रौढ़ नीलकमलके समान कान्तिको धारण करने वाले लक्ष्मणने ओज पूर्ण वचन कहे ॥८५॥ उन्होंने कहा कि जिस दुष्ट राक्षसने इन

किं तेऽपकृतमस्माभिः किं वा तेन प्रियं कृतम् । कथ्यतां गुह्यकाधीश किञ्चिदल्पमणुमात्रकम् ॥८८॥
कुटिलां भृकुटीं कृत्वा भीमां सन्ध्यारुणेऽलिके[1] । क्रुद्धोऽसि येन यक्षेन्द्र विना कार्यं समागतः ॥८९॥
अर्घं काञ्चनपात्रेण तस्य दत्वातिसाध्वसः । कपिध्वजाधिपोऽवोचत् कोपो यक्षेन्द्र ! मुच्यताम् ॥९०॥
परस्य त्वं समभावेन महतस्य निजां स्थितिम् । लङ्कार्णवस्यापि साक्षादीतित्वमीयुषः ॥९१॥
तथाप्येष प्रयत्नोऽस्य वर्तते रक्षसां विभोः । केनायं पूर्वकः साध्यः किं पुनर्बहुरूपया ॥९२॥
संक्रुद्धस्य मृधे तस्य स्खलन्त्यभिमुखा नृपाः । जैनोक्तिलब्धवर्णस्य प्रवादे वादिनो यथा ॥९३॥
तस्मात्त्वमार्पितात्मानं क्षोभयिष्यामि रावणम् । यत्साधयति नो विद्यां यया सिद्धिं कुदर्शनः ॥९४॥
तत्तुल्यविभवा भूत्वा येन सार्धेन रक्षसाम् । समं युद्धं करिष्यामो विषमं जायतेऽन्यथा ॥९५॥
पूर्णभद्रस्ततोऽवोचदस्त्वेवं किं[2] तु पीडनम् । कृत्यं मनागपि[3] लङ्कायां साधो जीर्णतृणेष्वपि ॥९६॥
खेदेन रावणाङ्गस्य वेदनाद्यविधानतः । क्षोभं कुरुत मन्ये तु दुःखं क्षुभ्यति रावणः ॥९७॥
[4]इत्युक्त्वा रक्षसां तौ तं पद्मजलदस्थलौ । प्रकृतौ श्रमणसङ्घस्य वैयावृत्यसमुद्यतौ ॥९८॥
शशाङ्कवदनौ राजन् यक्षाणां परमेश्वरौ । अभिनन्दितपद्माद्यावन्तर्द्वीपं सानुगौ गतौ ॥९९॥

रामचन्द्रकी प्राणों की अधिक, महागुणोंकी धारक एवं शीलव्रत रूपी अलंकारको धारण करने वाली प्रियाको छलसे हरा है उस रावणके ऊपर तुम दया क्यों कर रहे हो ? ॥८६-८७॥ हम लोगोंने तुम्हारा क्या अपकार किया है और उसने क्या उपकार किया है सो हे यक्षराज ! कुछ थोड़ा भी हो तो कहो ॥८८॥ जिससे संध्याके समान लाल लाल ललाट पर कुटिल तथा भयंकर भृकुटि कर कुपित हुए हो तथा बिना कार्य ही यहाँ पधारे हो ॥८९॥ तदनन्तर अत्यन्त भयभीत सुग्रीवने सुवर्णमय पात्रसे उसे अर्घ देकर कहा कि हे यक्षराज ! क्रोध छोड़िए ॥९०॥ आप समभावसे हमारी सेना तथा साक्षात् ईतिपनाको प्राप्त हुए लंकाके सैन्य सागरकी भी स्थिति देखिए। देखिए दोनोंमें क्या अन्तर है ॥९१॥

इतना सब होने पर भी राक्षसोंके अधिपति रावणका यह प्रयत्न जारी है। यह रावण पहले भी किसके द्वारा साध्य था ? और फिर बहुरूपिणी विद्याके सिद्ध होने पर तो कहना ही क्या है ? ॥९२॥ जिस प्रकार जिनागमके निपुण विद्वान्के सामने प्रवादी लोग लड़खड़ा जाते हैं उसी प्रकार युद्धमें कुपित हुए रावणके सामने अन्य राजा लड़खड़ा जाते हैं ॥९३॥ इसलिए इस समय मैं समभावसे बैठे हुए रावणको क्षोभयुक्त करूंगा क्योंकि जिस प्रकार मिथ्यादृष्टि मनुष्य सिद्धिको प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार क्षोभयुक्त साधारण पुरुष भी विद्याको सिद्ध नहीं कर पाता ॥९४॥ रावणको क्षोभित करनेका हमारा उद्देश्य यह है कि हम तुल्य विभवके धारक हो उसके साथ युद्ध करेंगे अन्यथा हमारा और उसका युद्ध विषम युद्ध होगा ॥९५॥

तदनन्तर पूर्णभद्रने कहा कि ऐसा हो सकता है किन्तु हे सत्पुरुष ! लङ्कामें जीर्णतृणको भी अणुमात्र भी पीड़ा नहीं करना चाहिए ॥९६॥ खेदना आदिक न पहुँचा कर रावणके शरीरकी कुशलता रखते हुए उसे क्षोभ उत्पन्न करो। परन्तु मैं समझता हूँ कि रावण बड़ी कठिनाईसे क्षोभको प्राप्त होगा ॥९७॥ इस प्रकार कह कर जिनके नेत्र प्रसन्न थे, जो भव्य जनोंपर स्नेह करने वाले थे, भक्त थे, मुनि संघकी वैयावृत्य करनेमें सदा तत्पर रहते थे, और चन्द्रमाके समान उज्ज्वल मुखके धारक थे ऐसे यक्षोंके दोनों अधिपति रामकी प्रशंसा करते हुए

---

१. आलिके = भाले । २. किं नु म० । ३. नाद्यापि म० । ४. एवमुक्तौ म० ।

आर्याच्छन्दः

सम्प्राप्योपालम्भं लक्ष्मणवचनात् सुलज्जितौ तौ हि ।
सज्ञासौ समचित्तौ निर्व्यापारौ स्थितौ येन ॥१००॥
तावद्भवति जनानामधिका प्रीतिः समाश्रयासन्ना ।
यावन्निर्दोषत्वं रविमिच्छति कः सहोत्पातम् ॥१०१॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सम्यग्दृष्टिदेवप्रातिहार्यकीर्तनं नाम सप्ततितमं पर्व ॥७०॥

सेवकोंके साथ अन्तर्हित हो गये ॥९८-९९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि देखो, जो यक्षेन्द्र उलाहना देने आये थे वे लक्ष्मणके कहनेसे अत्यन्त लज्जित होते हुए समचित्त होकर चुपचाप बैठ रहे ॥१००॥ जब तक निर्दोषता है तभी तक निकटवर्ती पुरुषोंमें अधिक प्रीति रहती है सो ठीक ही है क्यों कि उत्पात सहित सूर्यकी कौन इच्छा करता है ? अर्थात् कोई नहीं। भावार्थ—जिस प्रकार लोग उत्पात रहित सूर्यको चाहते हैं उसी प्रकार दोष रहित निकटवर्ती मनुष्यको चाहते हैं ॥१०१॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें सम्यग्दृष्टि देवोंके प्रातिहार्य-पनेका वर्णन करने वाला सत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७०॥

एकसप्ततितमं पर्व

शान्तं यक्षाधिपं श्रुत्वा सुतारात्मजसुन्दरः । दशाननपुरीं द्रष्टुमुद्यतः परमोर्जितः ॥१॥
उदारान्कुदसृन्दाभं [1]मुक्तामाल्यविभूषितम् । धवलैश्चामरैर्दीप्तं महाघण्टानिनादितम् ॥२॥
किष्किन्धकाण्डनामानमारूढो वरवारणम् । रराज मेघपृष्ठस्थ[2]पौर्णमासीशशाङ्कवत् ॥३॥
तथा स्कन्देन्द्रनीलाद्या महर्द्धिपरिराजिताः । तुरङ्गादिसमारूढाः कुमारा गन्तुमुद्यताः ॥४॥
पदातयो महासंख्याश्चन्दनार्चितविग्रहाः । ताम्बूलरागिणो नानामुण्डमालामनोहराः ॥५॥
कटकोद्भासिबाहुन्ताः स्कन्धन्यस्तासिखेटकाः । चलावर्तसकाक्षिप्तपरमांशुकधारिणः ॥६॥
हेमसूत्रपरिक्षिप्तमौलयश्चारुविभ्रमाः । अग्रतः प्रसृता गर्वकृतालापाः सुतेजसः ॥७॥
वेणुर्धाणामृदङ्गादिवाद्यिश्रसदृशं वरम् । पुरो जनः प्रवीणोऽस्य चक्रे शृङ्गारनर्तनम् ॥८॥
मन्द्रस्तूर्यस्वनश्लिष्टो मनोहरणपण्डितः । शङ्खलिःस्वनसंयुक्तः [4]काहलावत् समुच्चयौ ॥९॥
विविशुश्च कुमारेशाः सविलासविभूषणाः । लङ्कां देवपुरीतुल्यामसुरा इव चञ्चलाः ॥१०॥
महिम्ना पुरुणा [5]युक्तंदशास्यनगरीं ततः । प्रविष्टमङ्गदं वीक्ष्य जगादित्यङ्गनाजनः ॥११॥
अस्यैषा ललिता कर्णे विमला वृन्तनिर्मिता । विराजते महाकान्तिकोमला [6]तलपत्रिका ॥१२॥
ग्रहाणामिव सर्वेषां समवायो महाप्रभः । द्वितीयेश्रवणे चायं चपलो मणिकुण्डलः ॥१३॥

अथानन्तर यक्षराजको शान्त सुन अतिशय बलवान अङ्गद, लंका देखनेके लिए उद्यत हुआ। महामेघ मण्डलके समान जिसकी आभा थी, जो मोतियोंकी मालाओंसे अलंकृत था, सफेद चामरोंसे देदीप्यमान था और महाघण्टाके शब्दसे शब्दायमान था, ऐसे किष्किन्धकाण्ड नामक हाथी पर सवार हुआ अङ्गद मेघपृष्ठ पर स्थित पौर्णमासीके चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहा था ॥१-३॥ इसके सिवाय जो बड़ी सम्पदासे सुशोभित थे ऐसे स्कन्द तथा नील आदि कुमार भी घोड़े आदि पर आरूढ़ हो जानेके लिए उद्यत हुए ॥४॥ जिनके शरीर चन्दनसे अर्चित थे, जिनके ओंठ ताम्बूलके रङ्गसे लाल थे, जो नाना प्रकारके मस्तकोंके समूहसे मनोहर थे, जिनकी भुजाओंके अन्त प्रदेश अर्थात् मणिबन्ध कटकोंसे देदीप्यमान थे, जिन्होंने अपने कन्धों पर तलवारें रख छोड़ी थीं, जिनके कर्णाभरण चञ्चल थे, जो चित्र-विचित्र उत्तम वस्त्र धारण किये हुए थे, जिनके मुकुट सुवर्ण-सूत्रोंसे वेष्टित थे, जो सुन्दर चेष्टाओंके धारक थे, जो दर्प पूर्ण वार्तालाप करते जाते थे, तथा जो उत्तम तेजके धारक थे ऐसे पदाति उन कुमारोंके आगे-आगे जा रहे थे ॥५-७॥ चतुर मनुष्य इनके आगे बाँसुरी वीणा मृदङ्ग आदि बाजोंके अनुरूप शृङ्गार पूर्ण उत्तम नृत्य करते जाते थे ॥८॥ जो मनके हरण करनेमें निपुण था तथा शङ्खके शब्दोंसे संयुक्त था, ऐसा तुरहियोंका नाना प्रकारका गम्भीर शब्द काहला—रण तूर्यके शब्दके समान जोर-शोरसे उठ रहा था ॥९॥

तदनन्तर विलास और विभूषणोंसे युक्त उन चपल कुमारोंने स्वर्ग सदृश लंकामें असुर कुमारोंके समान प्रवेश किया ॥१०॥ तत्पश्चात् महा महिमासे युक्त अङ्गदको लंका नगरीमें प्रविष्ट देख वहाँकी स्त्रियाँ परस्पर इस प्रकार कहने लगीं ॥११॥ हे सखि ! देख, जिसके एक कानमें दन्त निर्मित महाकान्तिसे कोमल निर्मल तालपत्रिका सुशोभित हो रही है और दूसरे कानमें समस्त ग्रहोंके समूहके समान महाप्रभासे युक्त यह चञ्चल मणिमय कुण्डल शोभा पा रहा है तथा जो

१. मुक्तमाल ख० । २. पृष्ठस्थः पौर्णमासी-म०, ज० । ३. मन्द्रस्तूर्य-म० । ४. काहलादिः ख० । ५. युक्तो म० । ६. तले पत्रिका म० । ७. द्वितीयः श्रवणे म० ।

अपूर्वकौमुदीसर्गप्रवीणः सोऽयमुद्यतः । अङ्गदेन्दुर्दशास्यस्य नगर्यां परय निर्भयः ॥१४॥
किमनेनेदमारब्धं कथमेतद्विधास्यति । क्रीडेयं [1]ललिताऽमुष्य [2]निरर्था किन्नु सेत्स्यति ॥१५॥
राक्षसालयबाह्यक्ष्मामणिकुट्टिमसङ्गताः । प्राहवत्सरसोऽभिज्ञाः प्रासर्पीयुः पदातयः ॥१६॥
रूपनिश्चलतां दृष्ट्वा निर्ज्ञातमणिकुट्टिमाः । पुनः प्रसरणं चक्रुर्भटाः विस्मयपूरिताः ॥१७॥
पर्वतेन्द्रगुहाकारे महारत्नविनिर्मिते । गम्भीरे भवनद्वारे मणिसोरणभासुरे ॥१८॥
अञ्जनाद्रिप्रतीकाशान्निन्द्रनीलमयान् गजान् । स्निग्धगण्डस्थलान् स्थूलदन्तान्यन्तभासुरान् ॥१९॥
सिंहबालांश्च तन्मूर्ध्न्यस्ताङ्घ्रीनूर्ध्वं बालधीन् । दंष्ट्राकरालवदनान् भीषणाक्षान् सुकेसरान् ॥२०॥
दृष्ट्वा पादचराश्चस्ताः सद्यस्त्यालाभिशङ्किताः । पलायितुं समारब्धाः प्राप्ता विह्वलतां पराम् ॥२१॥
ततोऽङ्गदकुमारेण तदभिज्ञेन कृच्छ्रतः । प्रबोधिता [3]प्रतीपं ते पदानि निदधुश्चिरात् ॥२२॥
प्रविष्टाश्च चलत्नेत्रा भटाः शङ्कासमन्विताः । रावणस्य गृहं सिंहं पशुं मृगगणा इव ॥२३॥
द्वाराण्युल्लङ्घ्य भूरीणि परतो यन्तुमक्षमाः । गहने गृहविन्यासे जात्यन्धा इव बभ्रमुः ॥२४॥
इन्द्रनीलात्मिका[4] भित्तीः पश्यन्तो द्वारमोहिनः । आकाशाशङ्कयोपेतुं [5]स्फटिकच्छन्नसद्मसु ॥२५॥
शिलासाडितमूर्धानः पतिता रभसात्पुनः । परमाकुलतां प्राप्ता वेदनाकूणितेक्षणाः ॥२६॥
कथञ्चिज्जातसञ्चाराः कक्षान्तरमुपाश्रिताः । व्रजन्तो रभसा सक्ता नभःस्फटिकभित्तिषु ॥२७॥
क्षुण्णाङ्घ्रिव्रजानवस्तोयललाटस्फोटदुःखिताः । निवर्त्तिंवोऽप्येते न ययुर्निर्गमं पुनः ॥२८॥

अपूर्व चाँदनीकी सृष्टि करनेमें निपुण है ऐसा यह अङ्गद रूपी चन्द्रमा रावणकी नगरीमें निर्भय हो उदित हुआ है ॥१२-१४॥ देख, इसने यह क्या प्रारम्भ कर रक्खा है ? यह कैसे होगा ? क्या इसकी यह सुन्दर क्रीड़ा निर्दोष सिद्ध होगी ? ॥१५॥

तदनन्तर जब अङ्गदके पदाति रावणके भवनकी मणिमय बाह्यभूमिमें पहुँचे तो उसे मगर-मच्छसे युक्त सरोवर समझकर भयको प्राप्त हुए ॥१६॥ पश्चात् उस भूमिके रूपकी निश्चलता देख जब उन्हें निश्चय हो गया कि यह तो मणिमय फर्श है तब कहीं वे आश्चर्यसे चकित होते हुए आगे बढ़े ॥१७॥ सुमेरुकी गुहाके आकार, बड़े-बड़े रत्नोंसे निर्मित तथा मणिमय तोरणोंसे देदीप्यमान जब भवनके विशाल द्वार पर पहुँचे तो वहाँ, जो अंजनगिरिके समान थे, जिनके गण्डस्थल अत्यन्त चिकने थे, जिनके बड़े-बड़े दाँत थे, तथा जो अत्यन्त देदीप्यमान थे ऐसे इन्द्र-नीलमणि निर्मित हाथियोंको और उनके मस्तकपर जिन्होंने पैर जमा रक्खे थे, जिनकी पूँछ ऊँपरको उठी हुई थी, जिनके मुख दाँढ़ोंसे अत्यन्त भयंकर थे, जिनके नेत्रोंसे भय टपक रहा था तथा जिनकी मनोहर जटाएँ थीं ऐसे सिंहके बच्चोंको देख सचमुचके हाथी तथा सिंह समझ पैदल सैनिक भयभीत हो गये और परम विह्वलताको प्राप्त होते हुए भागने लगे ॥१८-२१॥ तदनन्तर उनके यथार्थ रूपके जानने वाले अङ्गदने जब उन्हें समझाया तब कहीं बड़ी कठिनाईसे बहुत देर बाद उन्होंने उल्टे पैर रक्खे अर्थात् वापिस लौटे ॥२२॥ जिनके नेत्र चञ्चल हो रहे थे ऐसे योद्धाओंने रावणके भवनमें डरते-डरते इस प्रकार प्रवेश किया जिस प्रकार कि मृगोंके झुण्ड सिंहके स्थानमें प्रवेश करते हैं ॥२३॥ बहुतसे द्वारोंको उल्लंघकर जब वे आगे जानेके लिए असमर्थ हो गये तब सघन भवनोंकी रचनामें जन्मान्धके समान इधर-उधर भटकने लगे ॥२४॥ वे इन्द्र-नीलमणि निर्मित दीवालोंको देखकर उन्हें द्वार समझने लगते थे और स्फटिक मणियोंसे खचित भवनोंको आकाश समझ उनके पास जाते थे जिसके फल स्वरूप दोनों ही स्थानोंमें शिलाओंसे मस्तक टकरा जानेके कारण वे वेगसे गिर जाते थे, अत्यधिक आकुलताको प्राप्त होते थे और वेदनाके कारण उनके नेत्र बन्द हो जाते थे ॥२५-२६॥ किसी तरह उठकर आगे बढ़ते थे तो दूसरी कक्षमें पहुँच कर फिर आकाशस्फटिककी दीवालोंमें वेगसे टकरा जाते थे ॥२७॥ जिनके

१. ललिता म० । २. निरर्था म० । ३. प्रतीयन्ते म० । ४. नीलालिका म० । ५. शंकया पेतुं म० । ३-४

इन्द्रनीलमयीं भूमिं स्मृत्वा कश्चित्समानधा । वृत्तया प्रसारितः सन्तः पेतुर्भूतलवेश्मसु ॥२६॥
तत उद्गतभूच्छेदशङ्कया शरणान्तरे । भूमिष्वथैन्द्रनीलीषु ज्ञात्वा ज्ञात्वा पदं ददुः ॥२७॥
नारीं स्फटिकसोपानागमप्रगमनोद्यताम् । व्योम्नीति विविदुः पादन्यासान् तु पुनरन्यथा ॥२८॥
तां पिपृच्छिषवो यान्तः शङ्किताः पुनरन्तरा । भित्तिष्वापतितास्तस्थुः स्फाटिकीषु सुविह्वलाः ॥२९॥
परमस्ति शिखरं शान्तिभवनस्य समुन्नतम् । गन्तुं पुनर्न ते शक्ता भित्तिभिः स्फटिकात्मभिः ॥३०॥
विलासिनि यदाध्वानमिति कश्चित्त्वरान्वितः । करे स्तम्भसमासक्तामगृह्णाल्लघुशिल्पिकाम् ॥३१॥
दृष्टं कश्चित्प्रतीहारं हेमवेत्रलताकरम् । अगाद् शान्तिगेहस्य पन्थानं देशयाऽऽशिति ॥३२॥
कथं न किञ्चिदुत्सिक्तो सर्वास्येव विसम्भ्रमः । इति ध्वनन् पाणिना वेगादवापाङ्गुलिचूर्णनम् ॥३३॥
कृत्रिमोऽयमिति ज्ञात्वा हस्तस्पर्शमपूर्वकम् । किञ्चित् कक्षान्तरं जग्मुर्द्वारं विज्ञाय कृच्छ्रतः ॥३४॥
द्वारमेतत् कुड्यं तु महानीलमयं भवेत् । इति ते संशयं प्राप्ताः करं पूर्वमसारयन् ॥३५॥
स्वयमप्यागतं मार्गं पुनर्निर्गन्तुमक्षमाः । भ्रान्त्यालयगतौ बुद्धिं कुटिलभ्रान्तयो दधुः ॥३६॥
ततः कञ्चिन्नरं दृष्ट्वा वाचा विज्ञाय सत्वकम् । कञ्चिज्जगाद केनेदं जगाद च सुनिष्ठुरम् ॥४०॥
गच्छ गच्छाग्रतो मार्गं शान्तिहर्म्यस्य दर्शय । इति तस्मिन् पुरो याति ते बभूवुर्निराकुलाः ॥४१॥

पैर और घुटने टूट रहे थे तथा जो ललाटकी तीव्र चोटसे तिलमिला रहे थे, ऐसे वे पदाति यद्यपि लौटना चाहते थे पर उन्हें निकलनेका मार्ग ही नहीं मिलता था ॥२८॥ जिस किसी तरह इन्द्रनील-मणिमय भूमिका स्मरणकर वे लौटे तो उसीके समान दूसरी भूमि देख उससे छकाये गये और पृथिवीके नीचे जो घर बने हुए थे उनमें जा गिरे ॥२९॥ तदनन्तर कहीं पृथिवी तो नहीं फट रही है, इस शङ्कासे दूसरे स्थानों पर और वहाँ इन्द्रनीलमणिमय जो भूमियाँ थीं उनमें जान-जानकर धीरे-धीरे डग देने लगे ॥३०॥ कोई एक स्त्री स्फटिककी सीढ़ियोंसे ऊपर जानेके लिए उद्यत थी उसे देखकर पहले तो उन्होंने समझा कि यह स्त्री अधर आकाशमें स्थित है परन्तु बादमें पैरोंके रखने उठानेकी क्रियासे निश्चय कर सके कि यह नीचे ही है ॥३१॥ उस स्त्रीसे पूछनेकी इच्छासे भीतरकी दीवालोंमें टकराकर रह गये तथा विह्वल होने लगे ॥३२॥ वे शान्ति-जिनालयके ऊँचे शिखर देख तो रहे थे परन्तु स्फटिककी दीवालोंके कारण वहाँ तक जानेमें समर्थ नहीं थे ॥३३॥ हे विलासिनि ! मुझे मार्ग बताओ इस प्रकार पूछनेके लिए शीघ्रतासे भरे किसी सुभटने खम्भेमें लगी हुई पुतलीका हाथ पकड़ लिया ॥३४॥ आगे चलकर हाथमें स्वर्णमयी वेत्रलताको धारण करने वाला एक कृत्रिम द्वारपाल दिखा उससे किसी सुभटने पूछा कि शीघ्र ही शान्ति-जिनालयका मार्ग कहो ॥३५॥ परन्तु वह कृत्रिम द्वारपाल क्या उत्तर देता ? जब कुछ उत्तर नहीं मिला तो अरे यह अहंकारी तो कुछ कहता ही नहीं है यह कहकर किसी सुभटने उसे वेगसे एक थप्पड़ मार दी पर इससे उसीकी अंगुलियाँ चूर-चूर हो गईं ॥३६॥ तदनन्तर हाथसे स्पर्शकर उन्होंने जाना कि यह सचमुचका द्वारपाल नहीं किन्तु कृत्रिम द्वारपाल है—पत्थरका पुतला है। इसके पश्चात् बड़ी कठिनाईसे द्वार मालूमकर वे दूसरी कक्षामें गये ॥३७॥ ऐसा तो नहीं है कि कहीं यह द्वार न हो किन्तु महानीलमणियोंसे निर्मित दीवाल हो' इस प्रकारके संशयको प्राप्त हो उन्होंने पहले हाथ पसारकर देख लिया ॥३८॥ उन सबकी भ्रान्ति इतनी कुटिल हो गई कि वे स्वयं जिस मार्गसे आये थे उसी मार्गसे निकलनेमें असमर्थ हो गये अतः निरुपाय हो उन्होंने शान्ति-जिनालयमें पहुँचनेका ही विचार स्थिर किया ॥३९॥ तदनन्तर किसी मनुष्यको देख और उसकी बोलीसे उसे सचमुचका मनुष्य जान किसी सुभटने उसके केश पकड़कर कठोर शब्दोंमें कहा कि चल आगे चल शान्ति-जिनालयका मार्ग दिखा। इसप्रकार कहनेपर जब वह आगे चलने लगा तब कहीं वे निराकुल हुए ॥४०-४१॥

---

१. क्षत्रियोऽय-म० (?)

प्राप्तारश्च शान्तिनाथस्य भवनं मदमुद्वहत् । कुसुमाञ्जलिभिः साकं विमुञ्चन्तो जयस्वनम् ॥४३॥
दृतानि स्फटिकस्तम्भै रम्यदेशेषु केषुचित् । पुराणि दहशुर्व्योम्नि स्थितानीव सुविस्मयाः ॥४४॥
इदं चित्रमिदं चित्रमिदमन्यन्महाद्भुतम् । इति ते दर्शयांचक्रुः सत्रवस्तु परस्परम् ॥४५॥
पूर्वमेव परित्यक्तवाहनोऽङ्गदसुन्दरः । श्लाघितात्भुतजैनेन्द्रवास्तुयातपरिच्छदः ॥४५॥
ललाटोपरिविन्यस्तकरराजीवकुड्मलः । कृतप्रदक्षिणः स्तोत्रमुखरं मुखमुद्वहन् ॥४६॥
अन्तरङ्गैर्वृतो बाह्यकृतस्थापितसैन्यकः । विलासिनीमनःक्षोभदक्षो विकसितेक्षणः ॥४७॥
सुसचित्रार्पितं पश्यन् चरितं जैनपुङ्गवम् । भावेन च नमस्कुर्वन्नाद्यमण्डपभित्तिषु ॥४८॥
धीरो भगवतः शान्तेर्विवेश परमालयम् । वन्दनां च विधानेन चकार पुलकम्मदः ॥४९॥
तत्रेन्द्रनीलसङ्काशमयूखनिकरप्रभम् । सम्मुखं शान्तिनाथस्य स्वर्भानुमिव भास्वतः ॥५०॥
अपश्यच्च दशास्यं स सामिपर्यङ्कसंस्थितम् । ध्यायन् विद्यां समाधानीं प्रव्रज्यां भरतो यथा ॥५१॥
जगाद चाटुना वार्त्तां का ते रावण कथ्यताम् । तथा करोमि यत् कर्त्तुं क्रुद्धोऽपि न यमः क्षमः ॥५२॥
कोऽयं प्रवर्तितो दम्भः जिनेन्द्राणां पुरस्तया । धिङ् त्वां दुर्दितमणिं कृत्वा सत्क्रियासत्क्रियम् ॥५३॥
एवमुक्त्वोत्तरीयान्तखण्डेन समताडयत् । कृत्वा कहकहाशब्दं निर्भरं गर्वनिर्भरम् ॥५४॥
अग्रतोऽवस्थितान्यस्य पुष्पाण्यादाय तीव्रगीः । अताडयदधो वक्त्रे निभृतं प्रमदाजनम् ॥५५॥

तदनन्तर कुसुमाञ्जलियोंके साथ-साथ जय-जय ध्वनिको छोड़ते हुए वे सब हर्ष उत्पन्न करने वाले श्री शान्ति-जिनालयमें पहुँचे ॥४३॥ वहाँ उन्होंने कितने ही सुन्दर प्रदेशोंमें स्फटिक मणिके खम्भों द्वारा धारण किये हुए नगर आश्चर्य चकित हो इस प्रकार देखे मानो आकाशमें ही स्थित हों ॥४४॥ यह आश्चर्य देखो, यह आश्चर्य देखो और यह सबसे बड़ा आश्चर्य देखो इस प्रकार वे सब परस्पर एक दूसरेको जिनालयकी उत्तम वस्तुएँ दिखला रहे थे ॥४५॥ अथानन्तर जिसने वाहनका पहलेसे ही त्याग कर दिया था, जो मन्दिरके आश्चर्यकारी उपकरणोंकी प्रशंसा कर रहा था, जिसने हस्त रूपी कमलकी बोड़ियाँ ललाटपर धारण कर रक्खी थीं, जिसने प्रदक्षिणाएँ दी थीं, जो स्तोत्र पाठ से मुखर मुखको धारण कर रहा था, जिसने समस्त सैनिकोंको बाह्य कक्षमें ही खड़ा कर दिया था जो प्रमुख-प्रमुख निकटके लोगोंसे घिरा था, जो विलासिनी जनोंका मन चञ्चल करनेमें समर्थ था; जिसके नेत्र-कमल खिल रहे थे जो आद्य मण्डपकी दीवालों पर मूक चित्रों द्वारा प्रस्तुत जिनेन्द्र भगवानके चरितको देखता हुआ उन्हें भाव नमस्कार कर रहा था, अत्यन्त धीर था और विशाल आनन्दसे युक्त था, ऐसे अंगदकुमारने शान्तिनाथ भगवान्‌के उत्तम जिनालयमें प्रवेश किया तथा विधिपूर्वक वन्दना की ॥४५-४९॥ तदनन्तर वहाँ उसने श्री शान्तिनाथ भगवान्‌के सम्मुख अर्धपर्यङ्कासन बैठे हुए रावणको देखा। यह रावण, इन्द्रनीलमणियोंके किरण-समूहके समान कान्ति वाला था और भगवान्‌के सामने ऐसा बैठा था मानो सूर्यके सामने राहु ही बैठा हो। वह एकाग्र चित्त हो विद्याका उस प्रकार ध्यान कर रहा था जिस प्रकार कि भरत दीक्षा लेनेका विचार करता रहता था ॥५०-५१॥

उसने रावणसे कहा कि रे रावण! इस समय तेरा क्या हाल है? सो कह। अब मैं तेरी वह दशा करता हूँ जिसे क्रुद्ध हुआ यम भी करनेके लिए समर्थ नहीं है ॥५२॥ तूने जिनेन्द्रदेवके सामने यह क्या कपट फैला रक्खा है? तुझ पापीको धिक्कार है। तूने व्यर्थ ही सत्क्रियाका प्रारम्भ किया है ॥५३॥ ऐसा कह कर उसने उसीके उत्तरीय वस्त्रके एक खण्डसे उसे पीटना शुरू किया तथा मुँह बना कर गर्वके साथ कहकहा शब्द किया अर्थात् जोरका अट्टहास किया ॥५४॥ वह रावणके सामने रखे हुए पुष्पोंको उठा कठोर शब्द करता हुआ नीचे स्थित स्त्री जनों

१. स्वप्न म० ।

आकृष्य दशपाणिभ्यां निष्ठुरं कुञ्चितेक्षणः । तापनीयानि पद्मानि चकार जिनपूजनम् ॥५६॥
पुनरागम्य दुःखाभिर्वाग्भिः सञ्जोदयन्मुहुः । अक्षमालां करादस्य गृहीत्वा चपलोऽक्षिपत् ॥५७॥
विकीर्णां तां पुरस्तस्य पुनरादाय सर्वतः । शनैरघटयद् भूयः करे चास्य समर्पयत् ॥५८॥
करे चाकृष्य चिच्छेद पुनश्चाघट्टयच्चलः । चकार गलके भूयो निदधे मस्तके पुनः ॥५९॥
ततोऽन्तःपुरराजीवखण्डमभ्यमुपागतः । चक्रे ग्रीष्माभितप्तस्य क्रीडां वन्यस्य दन्तिनः ॥६०॥
प्रभग्नदुष्टदुर्दान्तस्थूरीपृष्ठकचञ्चलः । प्रवृत्तः शङ्कया मुक्तः सोऽन्तःपुरविलोलने ॥६१॥
कृतग्रन्थिकमाधाय कण्ठे कस्याश्चिदंशुकम् । गुर्वीरोपयति द्रव्यं किञ्चिन्मितपरायणः ॥६२॥
उत्तरीयेण कण्ठेऽन्यां संयम्यालम्बयत्पुरः । स्तम्भेऽमुञ्चत्पुनः शीघ्रं कृतदुःखविचेष्टिताम् ॥६३॥
दीनारैः पञ्चभिः काञ्चित् काञ्चीगुणसमन्विताम् । हस्ते निजमनुष्यस्य [1]व्यक्रीणात्क्रीडनोद्यतः ॥६४॥
नूपुरौ कर्णयोश्चक्रे केशपाशे च मेखलाम् । कस्याश्चिन्मूर्द्धनि रत्नं च चकार चरणस्थितम् ॥६५॥
अन्योन्यं मूर्द्धजैरन्या बबन्ध कृतवेपनाः [2]। चकार मस्तकेऽन्यस्यास्तेकं कूजन्मयूरकम् ॥६६॥
एवं महायूथेनेव गोकुलं परमाकुलम् । कृतमन्तःपुरं तेन सन्निधौ रक्षसां विभोः ॥६७॥
अभ्याधावं क्रुधं[3]स्तस्या रे राक्षसाधम । मायया सत्त्वहीनेन राजपुत्री तदा हृता ॥६८॥
अधुना पश्यतस्तेऽहं सर्वमेव प्रियाजनम् । हराभि यदि शक्तोऽपि प्रतीकारं ततः कुरु ॥६९॥

के मुख पर कठोर प्रहार करने लगा ॥५५॥ उसने नेत्रोंको कुछ संकुचित कर दुष्टतापूर्वक स्त्रीके दोनों हाथोंसे स्वर्णमय कमल छीन लिये तथा उनसे जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा की ॥५६॥ फिर आकर दुःखदायी वचनोंसे उसे बार-बार खिझाकर उस चपल अंगदने रावणके हाथसे अक्षमाला लेकर तोड़ डाली ॥५७॥ जिससे वह माला उसके सामने बिखर गई। थोड़ी देर बाद सब जगह से बिखरी हुई उसी मालाको उठा धीरे-धीरे पिरोया और फिर उसके हाथमें दे दी ॥५८॥ तदनन्तर उस चपल अंगदने रावणका हाथ खींच वह माला पुनः तोड़ डाली और फिर पिरो कर उसके गले में डाली। फिर निकाल कर मस्तक पर रक्खी ॥५९॥ तत्पश्चात् वह अन्तःपुर रूपी कमल वनके बीचमें जाकर गरमीके कारण संतप्त जंगली हाथीकी क्रीड़ा करने लगा अर्थात् जिस प्रकार गरमीसे संतप्त हाथी कमलवनमें जाकर उपद्रव करता है उसी प्रकार अंगद भी अन्तःपुरमें जाकर उपद्रव करने लगा ॥६०॥ बन्धनसे छुटे दुष्ट दुर्दान्त घोड़ेके समान चञ्चल अङ्गद निःशङ्क हो अन्तःपुरके विलोड़न करनेमें प्रवृत्त हुआ ॥६१॥ उसने किसी स्त्रीका वस्त्र छीन उसकी रस्सी बना उसीके कण्ठमें बांधी और उस पर बहुत वजनदार पदार्थ रखवाये। यह सब करता हुआ वह कुछ-कुछ हँसता जाता था ॥६२॥ किसी स्त्रीके कण्ठमें उत्तरीय वस्त्र बाँधकर उसे खम्भेसे लटका दिया फिर जब वह दुःखसे छटपटाने लगी तब उसे शीघ्र ही छोड़ दिया ॥६३॥ क्रीड़ा करनेमें उद्यत अङ्गदने मेखला सूत्रसे सहित किसी स्त्रीको अपने ही आदमीके हाथमें पाँच दीनारमें बेंच दिया ॥६४॥ उसने किसी स्त्रीके नूपुर कानोंमें, और मेखला केशपाशमें पहिना दी तथा मस्तकका मणि चरणोंमें बाँध दिया ॥६५॥ उसने भयसे काँपती हुई कितनी ही अन्य स्त्रियोंको परस्पर एक दूसरेके शिरके बालोंसे बाँध दिया तथा किसी अन्य स्त्रीके मस्तक पर शब्द करता हुआ चतुर मयूर बैठा दिया ॥६६॥ इस प्रकार जिस तरह कोई सांड़ गायोंके समूहको अत्यन्त व्याकुल कर देता है। उसी तरह उसने रावणके समीप ही उसके अन्तःपुरको अत्यन्त व्याकुल कर दिया था ॥६७॥ उसने क्रुद्ध होकर रावणसे कहा कि अरे नीच राक्षस! तूने उस समय पराक्रमसे रहित होनेके कारण मायासे राजपुत्रीका अपहरण किया था परन्तु इस समय मैं तेरे देखते देखते तेरी सब स्त्रियोंका अपहरण करता हूँ। यदि तेरी शक्ति हो तो

१. दुर्व्यक्तिः म० । २. विकीर्णान् म०, ज० । ३. कृतवेपभा म० । ४. कुद्धिसत्त्वया म० ।

एवमुक्त्वा समुत्पत्य पुरोऽस्य मृगराजवत् । महिषीं सर्वलोकीशां प्राहसत्प्रणयेक्षुभम् ॥७०॥
विलोलनयनां वेणीं गृहीत्वाऽत्यन्तकातराम् । आचकर्ष यथा राजलक्ष्मीं भरतपार्थिवः ॥७१॥
जगौ च शूर सेयं ते वल्लभा जीवितादपि । मन्दोदरी महादेवी ह्रियते गुणमेदिनी ॥७२॥
इयं विद्याधरेन्द्रस्य सभामण्डपवर्त्तिनः । चामरग्राहिणी चार्वी सुग्रीवस्य भविष्यति ॥७३॥
ततोऽसौ कम्पविस्रंसिस्तनकुम्भतटांशुकम् । समाहितं मुहुस्तन्वी कुर्वती चलपाणिना ॥७४॥
वाष्यमानाधरा नेत्रवारिणानन्तरं स्रुता । चलद्भूषणनिःस्वानमुखरीकृतविग्रहा ॥७५॥
सज्जन्ती पादयोर्भूयः प्रविशन्ती भुजान्तरम् । दैन्यं परममापन्ना भर्तारमिदमब्रवीत् ॥७६॥
त्रायस्व नाथ किन्वेनामवस्थां मे न पश्यसि । किमन्य एव जातोऽसि नासि सः स्याद्दशानन ॥
अहो ते वीतरागत्वं निर्ग्रन्थानां समाश्रितम् । ईदृशे सङ्कटे दुःखे किमनेन भविष्यति ॥७८॥
धिगस्तु तव वीर्येण किमपि ध्यानमायुषः । यदस्य पापचेष्टस्य छिनत्सि न शिरोऽसिना ॥७९॥
चन्द्रादित्यसमानेभ्यः पुरुषेभ्यः पराभवम् । नासि सोढाऽधुना कस्मात्सहसे क्षुद्रतोऽमुतः ॥८०॥
लङ्केश्वरस्तु सङ्गाढध्यानसङ्गतमानसः । न किञ्चिदश्रणोदापि पश्यतिस्म सुनिश्चयः ॥८१॥
अर्धपर्यङ्कसंविष्टो दूरस्थापितमत्सरः । मन्दरैकगुहालब्धमहाकान्तिरिवाहतः ॥८२॥
सर्वेन्द्रियक्रियामुक्तो विद्याराधनतत्परः । निष्कम्पविग्रहो धीरः स आसीत्पुस्तकायवत् ॥८३॥
वैदेहीं विचिन्तयन्नेष मैथिलीमिव राघवः । जगाम मन्दरस्याद्रेः स्थिरत्वेन समानताम् ॥८४॥

प्रतीकार कर ॥६८–६९॥ इस प्रकार कह वह सिंहके समान रावणके सामने उछला और जो उसे सबसे अधिक प्रिय थी, जो भयसे काँप रही थी, जिसके नेत्र अत्यन्त चञ्चल थे और जो अत्यन्त कातर थी ऐसी पटरानी मन्दोदरीकी चोटी पकड़कर उस तरह खींच लाया जिस तरह कि राजा भरत राजलक्ष्मीको खींच लाये थे ॥७०–७१॥ तदनन्तर उसने रावणसे कहा कि हे शूर ! जो तुझे प्राणोंसे अधिक प्यारी है तथा जो गुणोंकी भूमि है, ऐसी यह वही मन्दोदरी महारानी हरी जा रही है ॥७२॥ यह सभामण्डपमें वर्तमान विद्याधरोंके राजा सुग्रीवकी उत्तम चमर ढोलनेवाली होगी ॥७३॥ तदनन्तर जो कँपकँपीके कारण खिसकते हुए स्ननतटके वस्त्रको अपने चञ्चल हाथसे बार-बार ठीक कर रही थी, निरन्तर झरते हुए अश्रुजलसे जिसका अधरोष्ठ बाधित हो रहा था और हिलते हुए आभूषणोंके शब्दसे जिसका समस्त शरीर शब्दायमान हो रहा था ऐसी कृशाङ्गी मन्दोदरी परमदीनताको प्राप्त हो कभी भर्तारके चरणोंमें पड़ती और कभी भुजाओंके मध्य प्रवेश करती हुई भर्तारसे इस प्रकार बोली कि ॥७४–७६॥ हे नाथ ! मेरी रक्षा करो, क्या मेरी इस दशाको नहीं देख रहे हो ? क्या तुम और ही हो गए हो ? क्या अब तुम वह दशानन नहीं रहे ? ॥७७॥ अहो ! तुमने तो निर्ग्रन्थ मुनियों जैसी वीतरागता धारण कर ली पर इस प्रकारके दुःख उपस्थित होने पर इस वीतरागतासे क्या होगा ? ॥७८॥ क्षुद्र भी ध्यान करनेवाले तुम्हारे इस पराक्रमको धिक्कार हो जो खड्गसे इस पापीका शिर नहीं काटते हो ॥७९॥ जिसे तुमने पहले कभी चन्द्र और सूर्यके समान तेजस्वी मनुष्योंसे प्राप्त होनेवाला पराभव नहीं सहा सो इस समय इस क्षुद्रसे क्यों सह रहे हो ? ॥८०॥ यह सब हो रहा था परन्तु रावण निश्चयके साथ प्रगाढ़ ध्यानमें अपना चित्त लगाये हुआ था वह मानो कुछ सुन ही नहीं रहा था। वह अर्धपर्यङ्कासनसे बैठा था, मत्सरभावको उसने दूर कर दिया था, मन्दरगिरिकी विशाल गुफाओंसे प्राप्त हुई रत्नराशिके समान उसकी महाकान्ति थी, वह समस्त इन्द्रियों की क्रियासे रहित था, विद्याकी आराधनामें तत्पर था, निष्कम्प शरीरका धारक था, अत्यन्त धीर था और ऐसा जान पड़ता था मानो मिट्टीका पुतला ही हो ॥८१–८३॥ जिस प्रकार राम सीताका ध्यान

---

१. विलोभन-ल० ।

ततोऽथ गदतः स्पष्टं द्योतयन्ती दिशो दश । जयेति जनितालापा तस्य विद्या पुरः स्थिता ॥८५॥
जगौ च देव सिद्धाऽहं तवाज्ञाकरणोद्यता । नियोगो दीयतां नाथ साध्यः सकलविष्टपे ॥८६॥
एकं चक्रधरं मुक्त्वा प्रतिकूलमवस्थितम् । वशीकरोमि ते लोकं भवदिच्छानुवर्तिनी ॥८७॥
करे च चक्ररत्नं च तवैवोत्तम वर्तते । पद्मलक्ष्मीधरार्थं मे ग्रहणं किमिवापरैः ॥८८॥
मद्विधानां निसर्गोऽयं यत्र चक्रिणि शक्नुमः । किञ्चिदपराभवं कर्तुं मन्यत्र तु किमुच्यते ॥८९॥
मुञ्चाद्य सर्वदैत्यानां करोमि किमु संक्षयम् । मय्यप्रियचित्तानां किं वा स्वर्गौकसामपि ॥९०॥
क्षुद्रविद्याभृगर्वेषु नभस्त्वत्पथगामिषु । आदरो नैव मे कश्चिद्दूरादेषु तृणेष्विव ॥९१॥

उपजातिवृत्तम्

प्रणम्य विद्या समुपासितोऽसौ समाप्तयोगः परमद्युतिस्थः ।
दशाननो यावदुदारचेष्टः प्रदक्षिणं शान्तिगृहं करोति ॥९२॥
तावत्परित्यज्य मनोभिरामां मन्दोदरीं खेदपरीतदेहाम् ।
उत्पत्य खं पद्मसमागमेन गतोऽङ्गदोऽसौ रविवत्सुतेजाः ॥९३॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे पद्मायने बहुरूपविद्यासन्निधानाभिधानं नामैकसप्ततितमं पर्व ॥७१॥

करते थे उसी प्रकार वह विद्याका ध्यान कर रहा था। इस तरह वह अपनी स्थिरतासे मन्दर-गिरिकी समानताको प्राप्त हो रहा था ॥८४॥

अथानन्तर जिस समय मन्दोदरी रावणसे उस प्रकार कह रही थी उसी समय दशों दिशाओंको प्रकाशित करती एवं जय-जय शब्दका उच्चारण करती बहुरूपिणी विद्या उसके सामने खड़ी हो गई ॥८५॥ उसने कहा भी कि हे देव ! मैं सिद्ध हो गई हूँ, आपकी आज्ञा पालन करनेमें उद्यत हूँ, हे नाथ ! आज्ञा दी जाय, समस्त संसारमें मुझे सब साध्य है ॥८६॥ प्रतिकूल खड़े हुए एक चक्रधरको छोड़ मैं आपकी इच्छानुसार प्रवृत्ति करती हुई समस्त लोकको आपके आधीन कर सकती हूँ ॥८७॥ हे उत्तम पुरुष ! चक्ररत्न तो तुम्हारे ही हाथमें है। राम लक्ष्मण आदि अन्य पुरुष मेरा क्या ग्रहण करेंगे अर्थात् उनमें मेरे ग्रहण करनेकी शक्ति ही क्या है ? ॥८८॥ हमारी जैसी विद्याओंका यही स्वभाव है कि हम चक्रवर्तीका कुछ भी पराभव करनेके लिए समर्थ नहीं हैं और इसके अतिरिक्त दूसरेका तो कहना ही क्या है ? ॥८९॥ कहो आज, आपसे अप्रसन्न रहनेवाले समस्त दैत्योंका संहार करूँ या समस्त देवोंका ? ॥९०॥ क्षुद्र विद्याओंसे गर्वीले, तृणके समान तुच्छ दयनीय विद्याधरोंमें मेरा कुछ भी आदर नहीं है अर्थात् उन्हें कुछ भी नहीं समझती हूँ ॥९१॥ इस तरह प्रणाम कर विद्या जिसकी उपासना कर रही थी, जिसका ध्यान पूर्ण हो चुका था, जो परमदीप्तिके मध्य स्थित था तथा जो उदार चेष्टाका धारक था ऐसा दशानन जब तक शान्ति-जिनालयकी प्रदक्षिणा करता है तब तक सूर्यके समान तेजस्वी अङ्गद, खेदखिन्न शरीरकी धारक सुन्दरी मन्दोदरीको छोड़ आकाशमें उड़कर रामसे जा मिला ॥९२-९३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण नामक पद्मायनमें रावणके बहुरूपिणी विद्याकी सिद्धिका वर्णन करनेवाला इकहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७१॥

१. विद्यासमुपस्थितासौ म० ।

द्वासप्ततितमं पर्व

ततः क्षीणां सहस्राणि समस्तान्यस्य पादयोः । रुदन्त्यः प्रणिपत्योचुः युगपद्धारुनिःस्वनम् ॥१॥
सर्वविद्याधराधीशे वर्तमाने त्वयि प्रभो । बालकेनाङ्गदेनैव वयमद्य खलीकृताः ॥२॥
त्वयि ध्यानमुपासीने परमे तेजसास्पदे । विद्याधरकलङ्कोऽयं विकारं सोऽपि संश्रितः ॥३॥
परपैतकामवस्थां नो विहितां हृतचेतसा । सौम्राविणा विशङ्केन शिशुना भवतः पुरः ॥४॥
श्रुत्वा सदृचनं तासां समाश्वासनतत्परः । त्रिकूटाधिपतिः कुद्धो जगाद विमलेक्षणः ॥५॥
यदि विचेष्टते [1] सुग्रीवः दुष्टः [2]भवद्भिः पेक्षणे । देव्यो विमुच्यतां दुःखं [3]भवत प्रकृतिस्थिताः ॥६॥
कान्ताः ! कस्मिन् सुग्रीवं निर्ग्रीवं श्वो रणाजिरे । तमोमण्डलकं तं च प्रभामण्डलनामकम् ॥७॥
तयोस्तु कीदृशः कोपो भूमिगोचरकीटयोः । दुष्टविद्याधरान् सर्वान् निहन्तास्मि न संशयः ॥८॥
भ्रूक्षेपमात्रकस्यापि वर्तिता मम शत्रवः । साध्याः किमु महारूपविद्यया स्युस्तया न ते ॥९॥
पुनः ताः सान्त्वयित्वा बहुधा निहतशात्रवः । ततो [4]देहस्थितौ राजा निष्क्रम्य जिनसद्मनः ॥१०॥
नानावाद्यैकृतानन्दश्चित्रनाट्यसमायुतः । जज्ञे स्नानविधिस्तस्य पुष्पायुधसमाकृतेः ॥११॥
राजतैः कलशैः कैश्चित् सम्पूर्णशशिसन्निभैः । श्यामाभिः स्नाप्यते कान्तिज्योत्स्नासम्प्लावितात्मभिः [5] ॥१२॥

अथानन्तर रावणकी अठारह हजार स्त्रियाँ एक साथ रुदन करती उसके चरणोंमें पड़कर निम्नप्रकार मधुर शब्द कहने लगीं ॥१॥ उन्होंने कहा हे नाथ ! समस्त विद्याधरोंके अधिपति जो आप सो आपके विद्यमान रहते हुए भी बालक अङ्गदने आकर आज हम सबको अपमानित किया है ॥२॥ तेजके उत्तम स्थानस्वरूप आपके ध्यानारूढ रहने पर वह नीच विद्याधररूपी जुगनू विकारभावको प्राप्त हुआ ॥३॥ आपके सामने सुग्रीवके दुष्ट बालकने निशङ्क हो हम लोगोंकी जो दशा की है उसे आप देखो ॥४॥ उन स्त्रियोंके वचन सुनकर जो उन्हें सान्त्वना देनेमें तत्पर था तथा जिसकी दृष्टि निर्मल थी ऐसा रावण कुपित होता हुआ बोला कि हे देवियो ! दुःख छोड़ो और प्रकृतिस्थ होओ—शान्ति धारण करो। वह जो ऐसी चेष्टा करता है सो निश्चित जानो कि वह मृत्युके पाशमें बद्ध हो चुका है ॥५-६॥ हे वल्लभाओ ! मैं कल ही रणाङ्गणमें सुग्रीवको निर्ग्रीव—ग्रीवारहित और प्रभामण्डलको तमोमण्डलरूप कर दूँगा ॥७॥ कीटके समान तुच्छ उन भूमिगोचरियों राम लक्ष्मणके ऊपर क्या क्रोध करना है ? किन्तु उनके पक्षपर एकत्रित हुए जो समस्त विद्याधर हैं उन्हें अवश्य मारूँगा ॥८॥ हे प्रिय स्त्रियो ! शत्रु तो मेरी भौंहके इशारे मात्रसे साध्य हैं फिर अब तो बहुरूपिणी विद्या सिद्ध हुई अतः उससे वशीभूत क्यों न होंगे ? ॥९॥ इस प्रकार उन स्त्रियोंको सान्त्वना देकर रावणने मनमें सोचा कि अब तो मैंने शत्रुओंको मार लिया। तदनन्तर जिनमन्दिरसे निकलकर वह स्नान आदि शरीर सम्बन्धी कार्य करनेमें लीन हुआ ॥१०॥

अथानन्तर जिसमें नानाप्रकारके वादित्रोंसे आनन्द मनाया जा रहा था तथा जो नाना-प्रकारके अद्भुत नृत्योंसे सहित था ऐसा, कामदेवके समान सुन्दर रावणका स्नान-समारोह सम्पन्न हुआ ॥११॥ जो कान्तिरूपी चाँदनीमें निमग्न होनेके कारण श्यामा अर्थात् रात्रिके समान जान पड़ती थी ऐसी कितनी ही श्यामा अर्थात् नवयौवनवती स्त्रियोंने पूर्णचन्द्रके समान चाँदीके

---

१. यदि विचेष्टते । २. भवत्यः म० । ३. देहं स्थितौ म० । ४. वाद्य म० । ५. 'क्षणदा रजनी भक्तं दोषा श्यामा क्षपाकरः' इति धनञ्जयः । ६. स्नाप्यते म०, ज० ।

पद्मकान्तिभिरन्याभिः सन्ध्याभिरिव सादरम् । बालभास्वरसङ्काशैः कलशैर्हाटकोद्भवैः ॥१३॥
गरुन्मणिनिर्माणैः कुम्भैरन्याभिरुत्तमैः । स्नापिताः साऽऽदिव श्रीभिः पद्मपत्रपुटैरिव ॥१४॥
कैश्चिद्बालातपच्छायैः कदलीगर्भपाण्डुभिः । अन्यैर्गन्धसमाकृष्टमधुव्रतकदम्बकैः ॥१५॥
उद्वर्त्तनैः सुलीलाभिः स्नानं नानामणिस्फोतप्रभाभाजि वरासने ॥१६॥
सुस्नातोऽलंकृतः कान्तः प्रयतो भावपूरितः । पुनः शान्तिजिनेन्द्रस्य विवेश भवनं नृपः ॥१७॥
कृत्वा तत्र परां पूजामर्हतां स्तुतितत्परः । चिरं [1]त्रिभिः प्रणामं च भेजे भोजनमण्डपम् ॥१८॥
चतुर्विधोसमाहारविधिं निर्माय पार्थिवः । विद्यापरीक्षणं कर्तुमार क्रीडनभूमिकाम् ॥१९॥
अनेकरूपनिर्माणं जनितं तेन विद्यया । विविधं चाद्भुतं कर्म विद्याधरजनातिगम् ॥२०॥
तत् कराहतभूकम्पसमाघूर्णितविग्रहम् । जातं परबलं भीतं जगौ निधनशङ्कितम् ॥२१॥
ततस्तं सचिवाः प्रोचुः कृतविद्यापरीक्षणम् । अधुना नाथ मुक्त्वा त्वां नास्ति राघवसूदनः ॥२२॥
भवतो नापरः कश्चित् पश्यन्य क्रोधसङ्गिनः । [2]इत्यासस्य पुरः स्थातुं समर्थः समराजिरे ॥२३॥
विद्यया याथ महर्द्धिस्थो विकृत्य परमं बलम् । सम्प्रति प्रमदोद्यानं प्रतस्थे प्रतिचक्रभृत् ॥२४॥
सचिवैराकृतो धीरैः सुरैराखण्डलो यथा । अप्रधृष्यः समायच्छन् स रेजे भास्करोपमः ॥२५॥

कलशोंसे उसे स्नान कराया ॥१२॥ कमलके समान कान्तिवाली होनेसे जो प्रातःसंध्याके समान जान पड़ती थी ऐसी कितनी ही स्त्रियोंने बालसूर्यके समान देदीप्यमान स्वर्णमय कलशोंसे आदरपूर्वक उसे नहलाया था ॥१३॥ कुछ अन्य स्त्रियोंने नीलमणिसे निर्मित उत्तम कलशोंसे उसे स्नान कराया था जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो कमलके पत्रपुटोंसे लक्ष्मीनामक देवियोंने ही स्नान कराया हो ॥१४॥ कितनी ही स्त्रियोंने प्रातःकालीन घामके समान लालवर्णके कलशोंसे, कितनी ही स्त्रियोंने कदली वृक्षके भीतरी भागके समान सफेद रङ्गके कलशोंसे तथा कितनी ही स्त्रियोंने सुगन्धिके द्वारा भ्रमरसमूहको आकर्षित करनेवाले अन्य कलशोंसे उसे नहलाया था ॥१५॥ स्नानके पूर्व उत्तम लीलावती स्त्रियोंने उससे नानाप्रकारके सुगन्धित उबटनोंसे उबटन लगाया था और उसके बाद उसने नाना प्रकारके मणियोंकी फैलती हुई कान्तिसे युक्त उत्तम आसन पर बैठकर स्नान किया था ॥१६॥ स्नान करनेके बाद उसने अलंकार धारण किये और तदनन्तर उत्तम भावोंसे युक्त हो श्रीशान्ति-जिनालयमें पुनः प्रवेश किया ॥१७॥ वहाँ उसने स्तुतिमें तत्पर रहकर चिरकाल तक अर्हन्तभगवान्‌की उत्तम पूजा की, मन, वचन, कायसे प्रणाम किया और उसके बाद भोजन गृहमें प्रवेश किया ॥१८॥ वहाँ चार प्रकारका उत्तम आहार कर वह विद्याकी परीक्षा करनेके लिए क्रीडाभूमिमें गया ॥१९॥ वहाँ उसने विद्याके प्रभावसे अनेक रूप बनाये तथा नानाप्रकारके ऐसे आश्चर्यजनक कार्य किये जो अन्य विद्याधरोंको दुर्लभ थे ॥२०॥ उसने पृथ्वीपर इतने जोरसे हाथ पटका कि पृथ्वी काँप उठी और उसपर स्थित शत्रुओंके शरीर घूमने लगे तथा शत्रुसेना भयभीत हो मरणकी शंकासे चिल्लाने लगी ॥२१॥ तदनन्तर विद्याकी परीक्षा कर चुकनेवाले रावणसे मन्त्रियोंने कहा कि हे नाथ ! इस समय आपको छोड़ और कोई दूसरा रामको मारनेवाला नहीं है ॥२२॥ रणाङ्गणमें कुपित हो बाण छोड़नेवाले रामके सामने खड़ा होनेके लिए आपके सिवाय और कोई दूसरा समर्थ नहीं है ॥२३॥

अथानन्तर बड़ी-बड़ी ऋद्धियोंसे सम्पन्न रावण, विद्याके प्रभावसे एक बड़ी सेना बना, चक्ररत्नको धारण करता हुआ उस प्रमदनामक उद्यानकी ओर चला जहाँ सीताका निवास था ॥२४॥ उस समय धीर वीर मन्त्रियोंसे घिरा हुआ रावण ऐसा जान पड़ता था मानो देवोंसे घिरा हुआ इन्द्र ही हो । अथवा जो बिना किसी रोक-टोकके चला आ रहा था ऐसा रावण सूर्यके

---

१. भूमिः म० । त्रिभिः मनोवाक्यायैरित्यर्थः । २. बाणान् मोचयितुः ।

समालोक्य समायान्तं विद्याधर्यो बभाषिरे । पश्य पश्य शुभे सीते रावणस्य महाद्युतिम् ॥२५॥
पुष्पकाद्यादयं श्रीमान् अवतीर्य महाबलः । नानाधातुविचित्राङ्गान् महीभृद्गुहरादिव ॥२७॥
गजेन्द्र इव सर्वीवः सूर्यांशुपरितापितः । स्मरानलपरीताङ्गः पूर्णचन्द्रनिभाननः ॥२८॥
पुष्पशोभापरिष्वङ्गमुपगीतं षडङ्घ्रिभिः । विशति प्रमदोद्यानं दृष्टिरत्र निधीयताम् ॥२९॥
निकृष्टापि पतत्यस्मिन् रूपं निरुपमं श्रिते । सफला जायतां ते दृग् रूपं चास्येदमुत्तमम् ॥३०॥
ततो विमलया दृष्ट्या तया बाह्यान्तरात्मनः । चापान्धकारितं वीक्ष्य बलमेवमचिन्तयत् ॥३१॥
अदृष्टपारमुद्वृत्तं बलमीदृङ् महाप्रभम् । रामो लक्ष्मीधरो वाऽपि दुःखं जयति संयुगे ॥३२॥
अथवा किं नु पश्यामि किं वा लक्ष्माणसुन्दरम् । इदं श्रोष्यामि सङ्ग्रामे किं वा पापा सहोदरम् ॥३३॥
एवं चिन्तामुपायातां परमाकुलितात्मिकाम् । कम्पमानां परित्रस्तां सीतामागत्य रावणः ॥३४॥
जगाद देवि ! पापेन त्वं मया छद्मना हृता । क्षात्रगोत्रप्रसूतानां किमिदं साध्वसं सताम् ॥३५॥
अवश्यम्भाविनो नूनं कर्मणो गतिरीदृशी । स्नेहस्य परमस्येयं मोहस्य बलिनोऽथ वा ॥३६॥
साधूनां सन्निधौ पूर्वं व्रतं भगवतो मया । बन्धस्यानन्तवीर्यस्य पादमूले समाश्रितम् ॥३७॥
या वृणोति न मां नारी रमयामि न तामहम् । यद्यप्युर्वशी स्वयं रम्भा यदि वाऽन्या मनोरमा ॥३८॥
इति पालयता सत्यं प्रसादापेक्षिणा मया । प्रसभं[1] रमिता नासि जगदुत्तमसुन्दरि ॥३९॥
अधुनाऽऽलम्बने छिन्ने मद्भुजप्रेरितैः शरैः । वैदेहि ! पुष्पकारूढा विहर स्वेच्छया जगत् ॥४०॥

समान सुशोभित हो रहा था ॥२५॥ उसे आता देख विद्याधरियोंने कहा कि हे शुभे ! सीते ! देख, रावणकी महाकान्ति देख ॥२६॥ जो नाना धातुओंसे चित्र-विचित्र हो रहा है ऐसे पुष्पक विमानसे उतरकर यह श्रीमान् महाबलवान् ऐसा चला आ रहा है मानो पर्वतकी गुफासे निकलकर सूर्यकी किरणोंसे सन्तप्त हुआ उन्मत्त गजराज ही आ रहा हो । इसका समस्त शरीर कामाग्निसे व्याप्त है तथा यह पूर्णचन्द्रके समान मुखको धारण कर रहा है ॥२७-२८॥ यह फूलोंकी शोभासे व्याप्त तथा भ्रमरोंके संगीतसे मुखरित प्रमद उद्यानमें प्रवेश कर रहा है । अरा, इसपर दृष्टि तो डालो ॥२९॥ अनुपम रूपको धारण करनेवाले इस रावणको देखकर तेरी दृष्टि सफल हो जावेगी । यथार्थमें इसका रूप ही उत्तम है ॥३०॥ तदनन्तर सीताने निर्मल दृष्टिसे बाहर और भीतर धनुषके द्वारा अन्धकार उत्पन्न करनेवाले रावणका बल देख इस प्रकार विचार किया कि इसके इस प्रचण्ड बलका पार नहीं है । राम और लक्ष्मण भी इसे युद्धमें बड़ी कठिनाईसे जीत सकेंगे ॥३१-३२॥ मैं बड़ी अभागिनी हूँ, बड़ी पापिनी हूँ जो युद्धमें राम लक्ष्मण अथवा भाई भामण्डलके मरनेका समाचार सुनूँगी ॥३३॥ इस प्रकार चिन्ताको प्राप्त होनेसे जिसकी आत्मा अत्यन्त विह्वल हो रही थी, तथा जो भयसे काँप रही थी ऐसी सीताके पास आकर रावण बोला कि हे देवि ! मुझ पापीने तुम्हें छलसे हरा था सो क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हुए सत्पुरुषोंके लिए क्या यह उचित है ? ॥३४-३५॥ जान पड़ता है कि किसी अवश्य भावी कर्मकी यह दशा है अथवा परम स्नेह और सातिशय बलवान् मोहका यह परिणाम है ॥३६॥ मैंने पहले अनेक मुनियोंके सन्निधानमें वन्दनीय श्रीभगवान् अनन्तवीर्य केवलीके पादमूलमें यह व्रत लिया था कि जो स्त्री मुझे नहीं वरेगी मैं उसके साथ रमण नहीं करूँगा भले ही वह उर्वशी, रम्भा अथवा और कोई मनोहारिणी स्त्री हो ॥३७-३८॥ हे जगत्की सर्वोत्तम सुन्दरि ! इस सत्यव्रतका पालन करता हुआ मैं तुम्हारे प्रसादकी प्रतीक्षा करता रहा हूँ और बलपूर्वक मैंने तुम्हारा रमण नहीं किया है ॥३९॥ हे वैदेहि ! अब मेरी भुजाओंसे प्रेरित बाणोंसे तुम्हारा आलम्बन जो राम था सो छिन्न होनेवाला है इसलिए पुष्पक विमानमें आरूढ़

१. बलात् ।

शिखराण्यगराजस्य चैत्यकूटानि सागरम् । महानदीश्च पश्यन्ती जनयात्मसुखावहाम् ॥४१॥
कृत्वा करपुटं सीता ततः करुणमब्रवीत् । बाष्पसम्भारसंरुद्धकण्ठा कृच्छ्रेण सादरम् ॥४२॥
दशानन ! यदि प्रीतिर्विद्यते तव मां प्रति । प्रसादो वा ततः कर्तुं ममेदं वाक्यमर्हसि ॥४३॥
क्रुद्धेनापि त्वया संख्ये प्राप्तोऽभिमुखसामसौ । अनिवेदितसन्देशो न हन्तव्यः प्रियो मम ॥४४॥
एष भामण्डलस्वस्रा तव सन्दिष्टमीदृशम् । यथा श्रुत्वाऽन्यथा त्वाहं विधियोगेन संयुगे ॥४५॥
महता शोकभारेण समाक्रान्ता सती प्रभो । वाय्वाहतमदीपस्य शिखेव क्षणमात्रतः ॥४६॥
राजर्षेर्जनकस्य[1] रोच्या दुहितरं महात्मनः । मामनेना न मुञ्चासि स्वप्नसमाममनोरथम् ॥४७॥
इत्युक्त्वा मूर्च्छिता भूमौ पपात मुकुलेक्षणा । हैमकल्पलता यद्वन्मत्तेन द्विपेन ॥४८॥
तदवस्थामिमां दृष्ट्वा रावणो मृदुमानसः । बभूव परमं दुःखी चिन्ता चैतामुपागतः ॥४९॥
अहो [2]निकाचितस्नेहः कर्मबन्धोदयादयम्[3] । अवसानविनिर्मुक्तः कोऽपि संसारगह्वरे ॥५०॥
धिक् धिक् किमिदमश्लाघ्यं कृतं सुविकृतं मया । यदन्योन्यरतं भीरुमिथुनं सद्वियोजितम् ॥५१॥
पापातुरो विना कार्यं गृध्रजनसमो महत् । अयशोमलमाप्तोऽस्मि सद्भिरत्यन्तनिन्दितम् ॥५२॥
शुद्धाम्भोजसमं गोत्रं विपुलं मलिनीकृतम् । दुरात्मना मया कष्टं कथमेतदनुष्ठितम् ॥५३॥
धिङ्नारीं पुरुषेन्द्राणां सहसा मारणात्मिकाम् । किम्पाकफलदेशीयां क्लेशोत्पत्तिसुभूमिकाम् ॥५४॥
भोगिमूर्द्धमणिच्छायासदृशी मोहकारिणी । सामान्येनाङ्गना तावत् परस्त्री तु विशेषतः ॥५५॥

हो अपनी इच्छानुसार जगत्में विहार करो ॥४०॥ सुमेरुके शिखर, अकृत्रिम चैत्यालय, समुद्र और महानदियोंको देखती हुई अपने आपको सुखी करो ॥४१॥

तदनन्तर अश्रुओंके भारसे जिसका कण्ठ रुँध गया था ऐसी सीता बड़े कष्टसे आदर-पूर्वक हाथ जोड़ करुण स्वरमें रावणसे बोली ॥४२॥ कि हे दशानन ! यदि मेरी प्रति तुम्हारी प्रीति है अथवा मुझ पर तुम्हारी प्रसन्नता है तो मेरा यह वचन पूर्ण करनेके योग्य हो ॥४३॥ युद्धमें राम तुम्हारे सामने आवें तो कुपित होने पर भी तुम मेरा सन्देश कहे बिना उन्हें नहीं मारना ॥४४॥ उनसे कहना कि हे राम ! भामण्डलकी बहिनने तुम्हारे लिए ऐसा सन्देश दिया है कि कर्मयोगसे तुम्हारे विषयकी युद्धमें अन्यथा बात सुन महात्मा राजर्षि जनककी पुत्री सीता, अत्यधिक शोकके भारसे आक्रान्त होती हुई आँधीसे ताड़ित दीपककी शिखाके समान क्षणभर में शोचनीय दशाको प्राप्त हुई है। हे प्रभो ! मैंने जो अभीतक प्राण नहीं छोड़े हैं सो आपके समागमकी उत्कण्ठासे ही नहीं छोड़े हैं ॥४५-४७॥ इतना कह यह मूर्छित हो नेत्र बन्द करती हुई उस तरह पृथिवी पर गिर पड़ी जिस तरह कि मदोन्मत्त हाथीके द्वारा खण्डित सुवर्णमयी कल्पलता गिर पड़ती है ॥४८॥

तदनन्तर सीताकी वैसी दशा देख कोमल चित्तका धारी रावण परम दुखी हुआ तथा इस प्रकार विचार करने लगा कि अहो ! कर्मबन्धके कारण इनका यह स्नेह निकाचित स्नेह है—कभी छूटनेवाला नहीं है। जान पड़ता है कि इसका संसार रूपी गर्तमें रहते कभी अवसान नहीं होगा ॥४९-५०॥ मुझे बार-बार धिक्कार है मैंने यह क्या निन्दनीय कार्य किया जो परस्पर प्रेमसे युक्त इस मिथुनका विछोह कराया ॥५१॥ मैं अत्यन्त पापी हूँ बिना प्रयोजन ही मैंने साधारण मनुष्यके समान सत् पुरुषोंसे अत्यन्त निन्दनीय अपयश रूपी मल प्राप्त किया है ॥५२॥ मुझ दुष्टने कमलके समान शुद्ध विशाल कुलको मलिन किया है। हाय हाय मैंने यह अकार्य कैसे किया ? ॥५३॥ जो बड़े-बड़े पुरुषोंको सहसा मार डालती है, जो किंपाक फलके समान है तथा दुःखोंकी उत्पत्तिकी भूमि है ऐसी स्त्रीको धिक्कार है ॥५४॥ सामान्य रूपसे स्त्री मात्र,

१. सीतया । २. निकाङ्क्षितस्नेहः म० । ३. -दहम् म० ।

नदीव कुटिला भीमा धर्मार्थपरिनाशिनी । वर्जनीया सतां यस्मात्सर्वाशुभमहाखनिः ॥५५॥
अमृतेनेव या दृष्टा मामसिञ्चन्मनोहरा । अमरीभ्योऽपि दयिता सर्वाभ्यः पूर्वमुत्तमा ॥५७॥
अद्यैव सा परासक्तहृदया जनकात्मजा । विषकुम्भीसमाख्यन्तं सञ्जातोद्वेजनी मम ॥५८॥
अनिच्छन्त्यपि मे पूर्वमशून्यं याकरोन्मनः । सैवेयमधुना जीर्णतृणानादरमागता ॥५९॥
अधुनाऽन्याहितस्वान्ता यद्यपीच्छेदियं तु माम् । तथापि कातरया प्रीतिः सद्भावपरिमुक्तया ॥६०॥
आसीन्मदनुकूलो मे विद्वान् भ्राता विभीषणः । उपदेष्टा तदा नैवं शमं दग्धं[1] मनो गतम् ॥६१॥
प्रमादाद्विकृतिं प्राप्तं मनः समुपदेशतः । प्रायः पुण्यवतां पुंसां वशीभावेऽवतिष्ठते ॥६२॥
शैः संग्रामकृतौ सार्द्धं सचिवैर्मन्त्रणं कृतम् । अधुना कीदृशी मैत्री वीरलोकविगर्हिता ॥६३॥
योद्धव्यं करुणा चेति द्वयमेतद्विरुध्यते । अहो सङ्कटमापन्नः प्राकृतोऽहमिव महत् ॥६४॥
यद्यर्पयामि पद्माय जानकीं कृपयाऽधुना । लोको दुर्मनचित्तोऽयं ततो मां वेत्स्यशक्तकम् ॥६५॥
यत् किञ्चित्करणोन्मुक्तः सुखं जीवति निर्घृणः । जीवत्यरमद्विधो दुःखं करुणामृदुमानसः ॥६६॥
हरितार्क्षसमुद्युक्तौ तौ हत्वाऽऽजौ निरङ्कुशौ । जीवग्राहं गृहीत्वा च पश्चात्कृष्णसंज्ञकौ ॥६७॥
पश्चाद्विभवसंयुक्तो पद्मनाभाय मैथिलीम् । अर्पयामि न मे पापं तथा सत्युपजायते ॥६८॥
महाँल्लोकापवादश्च भयान्यायसमुद्भवः । न जायते करोम्येवं ततो निश्चिन्तमानसः ॥६९॥

नागराजके फणपर स्थित मणिकी कान्तिके समान मोह उत्पन्न करनेवाली है और परस्त्री विशेष रूपसे मोह उत्पन्न करनेवाली है ॥५५॥ यह नदीके समान कुटिल है, भयंकर है, धर्म अर्थको नष्ट करनेवाली है, और समस्त अशुभोंकी खानि है। यह सत्पुरुषोंके द्वारा प्रयत्नपूर्वक छोड़नेके योग्य है ॥५६॥ जो सीता पहले इतनी मनोहर थी कि दिखनेपर मानो अमृतसे ही मुझे सींचती थी और समस्त देवियोंसे भी अधिक प्रिय जान पड़ती थी आज वही परासक्तहृदया होनेसे विषभृत कलशीके समान मुझे अत्यन्त उद्वेग उत्पन्न कर रही है ॥५७-५८॥ नहीं चाहने पर भी जो पहले मेरे मनको अशून्य करती थी अर्थात् जो मुझे नहीं चाहती थी फिर भी मैं मनमें निरन्तर जिसका ध्यान किया करता था वही आज जीर्ण तृणके समान अनादरको प्राप्त हुई है ॥५९॥ अन्य पुरुषमें जिसका चित्त लग रहा है ऐसी यह सीता यदि मुझे चाहती भी है तो सद्भावसे रहित इससे मुझे क्या प्रीति हो सकती है ? ॥६०॥ जिस समय मेरा विद्वान भाई विभीषण, मेरे अनुकूल था तथा उसने हितका उपदेश दिया था उस समय यह दुष्ट मन इस प्रकार शान्तिको प्राप्त नहीं हुआ ॥६१॥ अपितु उसके उपदेशसे प्रमादके वशीभूत हो उल्टा विकार भावको प्राप्त हुआ सो ठीक ही है क्योंकि प्रायःकर पुण्यात्मा पुरुषों का ही मन वशमें रहता है ॥६२॥ यह विचार करनेके अनन्तर रावणने पुनः विचार किया कि कल संग्राम करनेके विषयमें मन्त्रियोंके साथ मन्त्रणा की थी फिर इस समय वीर लोगोंके द्वारा निन्दित मित्रता की चर्चा कैसी ? ॥६३॥ युद्ध करना और करुणा प्रकट करना ये दो काम विरुद्ध हैं। अहो ! मैं एक साधारण पुरुषकी तरह इस महान संकटको प्राप्त हुआ हूँ ॥६४॥ यदि मैं इस समय दया वश रामके लिए सीताको सौंपता हूँ तो लोग मुझे असमर्थ समझेंगे क्योंकि सबके चित्तको समझना कठिन है ॥६५॥ जो चाहे जो करनेमें स्वतन्त्र है ऐसा निर्दय मनुष्य सुखसे जीवन बिताता और जिसका मन दयासे कोमल है ऐसा मेरे समान पुरुष दुःखसे जीवन काटता है ॥६६॥ यदि मैं सिंहवाहिनी और गरुडवाहिनी विद्याओंसे युक्त राम-लक्ष्मणको युद्धमें निरस्त्र कर जीवित पकड़ लूँ और पश्चात् वैभवके साथ रामके लिए सीताको वापिस सौंपूँ तो ऐसा करनेसे मुझे सन्ताप नहीं होगा ॥६७-६८॥ साथ ही भय और अन्यायसे उत्पन्न हुआ बहुत भारी लोकापवाद

---

१. दग्धं नीचं मनः शमं नैव गतम् । २. स्वसंग्रामकृतौ ब० । ३. निश्चिन्तमानसः ब० ।

मनसा सम्प्रधार्यैवं महाविभवसङ्गतः । ययावन्तःपुराम्भोजखण्डं रावणवारणः ॥७०॥
ततः परिभवं स्मृत्वा महान्तं शत्रुसम्भवम् । क्रोधारुणेक्षणो भीमः संवृत्तोऽन्तकसन्निभः ॥७१॥
बभाण दशवक्त्रस्तद्वचनं स्फुरिताधरः । स्त्रीणां मध्ये ज्वरो येन समुद्दीप्तः सुदुःसहः ॥७२॥
गृहीत्वा समरे पापं तं दुर्मतिं सहाङ्गदम् । भागद्वयं करोम्येष खड्गेन द्युतिहासिना ॥७३॥
तमोमण्डलकं तं च गृहीत्वा दृढसंयतम् । लोहमुद्गरनिर्घातैस्त्याजयिष्यामि जीवितम् ॥७४॥
करालतीक्ष्णधारेण ककचेन मरुत्सुतम् । यन्त्रितं काष्ठयुग्मेन पाटयिष्यामि दुर्णयम् ॥७५॥
मुक्त्वा राघवमुद्वृत्तानखिलानाहवे परान् । अस्त्रौघैश्चूर्णयिष्यामि दुराचारान् हतात्मनः ॥७६॥
इति निश्चयमापन्ने वर्तमाने दशानने । वाचो नैमित्तिकस्येषु चरन्ति मगधेश्वर ॥७७॥
उत्पाताः शतशो भीमाः सम्प्रत्येते समुद्गताः । आयुधप्रतिमो रूक्षः परिवेषः खरत्विषः ॥७८॥
समस्तां रजनीं चन्द्रो नष्टः क्वापि भयादिव । निपेतुर्घोरनिर्घाता भूकम्पः सुमहानभूत् ॥७९॥
वेपमाना दिशि प्राच्यां [1]मुक्ताशोणितसन्निभा । पपात विरसं रेवुरुत्तरेण तथा शिवाः ॥८०॥
हेषन्ति कम्पितग्रीवास्तुरङ्गाः प्रखरस्वनाः । हस्तिनो रूक्षनिःस्वाना घ्नन्ति हस्तेन मेदिनीम् ॥८१॥
दैवतप्रतिमा जाता लोचनोदकदुर्दिनाः । निपतन्ति महावृक्षा [2]विना दृष्टेन हेतुना ॥८२॥
आदित्याभिमुखीभूताः काकाः खरतरस्वनाः । सङ्घातवर्जिनो जाताः खस्तपक्षा महाकुलाः ॥८३॥
सरांसि सहसा शोषं प्राप्तानि विपुलान्यपि । निपेतुर्गिरिशृङ्गाणि नभो वर्षति शोणितम् ॥८४॥

भी नहीं होगा अतः मैं निश्चिन्त चित्त होकर ऐसा ही करता हूँ ॥६९॥ मनसे इस प्रकार निश्चय कर महा वैभवसे युक्त रावण रूपी हाथी अन्तःपुर रूपी कमल वनमें चला गया ॥७०॥

तदनन्तर शत्रु की ओरसे उत्पन्न महान् परिभवका स्मरण कर रावणके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और वह स्वयं यमराजके समान भयंकर हो गया ॥७१॥ जिसका ओठ काँप रहा था ऐसा रावण वह वचन बोला कि जिससे स्त्रियोंके बीचमें अत्यन्त दुःसह ज्वर उत्पन्न हो आया ॥७२॥ उसने कहा कि मैं युद्धमें अङ्गद सहित उस पापी दुर्मतिको पकड़ कर किरणोंसे हँसनेवाला तलवारसे उसके दो टुकड़े अभी हाल करता हूँ ॥७३॥ उस भामण्डलको पकड़ कर तथा अच्छी तरह बाँध कर लोहके मुद्गरोंकी मारसे उसके प्राण छुटाऊँगा ॥७४॥ और अन्यायी हनूमान्को दो लकड़ियोंके सिकंजेमें कस कर अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाली करोंतसे चीरूँगा ॥७५॥ एक रामको छोड़ कर मर्यादाका उल्लङ्घन करनेवाले जितने अन्य दुराचारी दुष्ट शत्रु हैं उन सबको युद्धमें शस्त्र-समूहसे चूर-चूर कर डालूँगा ॥७६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे मगधेश्वर ! जब रावण उक्त प्रकारका निश्चय कर रहा था तब निमित्तज्ञानियोंके मुखोंमें निम्न प्रकारके वचन विचरण कर रहे थे अर्थात् वे परस्पर इस प्रकार की चर्चा कर रहे थे कि ॥७७॥ देखो, ये सैकड़ों प्रकारके उत्पात हो रहे हैं। सूर्यके चारों ओर शस्त्रके समान अत्यन्त रूक्ष परिवेष—परिमण्डल रहता है ॥७८॥ पूरी की पूरी रात्रि भर चन्द्रमा भयसे ही मानों कहीं छिपा रहता है, भयंकर वज्रपात होते हैं, अत्यधिक भूकम्प होता है ॥७९॥ पूर्व दिशामें काँपती हुई रुधिरके समान लाल उल्का गिरी थी और उत्तर दिशामें शृगाल नीरस शब्द कर रहे थे ॥८०॥ घोड़े ग्रीवाको कँपाते तथा प्रखर शब्द करते हुए हींसते हैं और हाथी कठोर शब्द करते हुए सूंड़से पृथिवीको ताड़ित करते हैं अर्थात् पृथिवी पर सूंड़ पटकते हैं ॥८१॥ देवताओंकी प्रतिमाएँ अश्रुजलकी वर्षाके लिए दुर्दिन स्वरूप बन गई हैं। बड़े बड़े वृक्ष बिना किसी दृष्ट कारणके गिर रहे हैं ॥८२॥ सूर्यके सन्मुख हुए कौए अत्यन्त तीक्ष्ण शब्द कर रहे हैं, अपने झुण्डको छोड़ अलग-अलग जाकर बैठे हैं, उनके पङ्ख ढीले पड़ गये हैं तथा वे अत्यन्त व्याकुल दिखाई देते हैं ॥८३॥ बड़े से बड़े तालाब भी अचानक

१. मुक्ता म० । २. महावृक्षाः म० । ३. कर कर स्वनाः ज० ।

स्खलैरेव दिनैः प्रायः प्रभोराचष्टने मृतिम् । विकाराः खलु भावानां जायन्ते नान्यथेदृशाः[1] ॥८५॥
क्षीणेष्वात्मीयपुण्येषु याति शक्रोऽपि विच्युतिम् । जनता कर्मतन्त्रेयं गुणभूतं हि पौरुषम् ॥८६॥
लभ्यते खलु लब्धव्यं नातः शक्यं पलायितुम् । न काचिच्छूरता दैवे प्राणिनां स्वकृतात्मिनाम् ॥८७॥
सर्वेषु नयशास्त्रेषु कुशलो लोकतन्त्रवित् । जैनव्याकरणाभिज्ञो महागुणविभूषितः ॥८८॥
एवंविधो भवन् सोऽयं दशवक्त्रः स्वकर्मभिः । वाहितः प्रस्थितः कष्टमुन्मार्गेण विमूढधीः ॥८९॥
मरणात्परमं दुःखं न लोके विद्यते परम् । न चिन्तयत्ययं पश्य तदप्यत्यन्तगर्वितः ॥९०॥
नक्षत्रबलनिर्मुक्तो ग्रहैः सुकुटिलैः स्थितैः । पीड्यमानो रणक्षोणीमाकाङ्क्षत्येष दुर्मनाः ॥९१॥
प्रतापभङ्गभीतोऽयं वीररसभावितः । कृतखेदोऽपि शास्त्रेषु युक्तायुक्तं न वीक्षते ॥९२॥
अतः परं महाराज[2] दशग्रीवस्य मानिनः । मनसि स्थितमर्थं ते वदामि शृणु तत्त्वतः ॥९३॥
जित्वा सर्वजनं सर्वान् मुक्त्वा पुत्रसहोदरान् । प्रविशामि पुनर्लङ्कामिदं पश्चात्करोमि च ॥९४॥
उद्वासयामि सर्वस्मिन्नेतस्मिन्वसुधातले । क्षुद्रान् भूगोचरान् श्लाघ्यान् स्थापयामि नभश्चरान् ॥९५॥

उपजातिवृत्तम्

येनाऽत्र वंशे सुरवर्मणानां त्रिलोकनाथाभिनुता जिनेन्द्राः ।
चक्रायुधा रामजनार्दनाश्च जन्म ग्रहीष्यन्ति तथाऽऽस्मदाद्याः ॥९६॥

गये हैं। पहाड़ोंकी चोटियाँ नीचे गिरती हैं, आकाश रुधिर की वर्षा करता है ॥८४॥ प्रायः ये सब उत्पात थोड़े ही दिनोंमें स्वामीके मरणकी सूचना दे रहे हैं क्योंकि पदार्थोंमें इस प्रकारके अन्यथा विकार होते नहीं हैं ॥८५॥ अपने पुण्यके क्षीण हो जाने पर इन्द्र भी तो च्युत हो जाता है। यथार्थमें जन-समूह कर्मोंके आधीन है और पुरुषार्थ गुणीभूत है—अप्रधान है ॥८६॥ जो वस्तु प्राप्त होनेवाली है वह प्राप्त होती ही है उससे दूर नहीं भागा जा सकता। दैवके रहते प्राणियोंकी कोई शूरवीरता नहीं चलती उन्हें अपने कियेका फल भोगना ही पड़ता है ॥८७॥ देखो, जो समस्त नीति शास्त्रमें कुशल है, लोकतन्त्रको जानने वाला है, जैन व्याख्यानका जानकार है और महागुणोंसे विभूषित है ऐसा रावण इस प्रकारका होता हुआ भी स्वकृत कर्मोंके द्वारा कैसा चक्रमें डाला गया कि हाय, बेचारा विमूढ़ बुद्धि हो उन्मार्गमें चला गया ॥८८-८९॥ संसारमें मरणसे बढ़कर कोई दुःख नहीं है पर देखो, अत्यन्त गर्वसे भरा रावण उस मरणकी भी चिन्ता नहीं कर रहा है ॥९०॥ यह यद्यपि नक्षत्र बलसे रहित है तथा कुटिल-पाप ग्रहोंसे पीड़ित है तथापि मूर्ख हुआ रणभूमिमें जाना चाहता है ॥९१॥ यह प्रतापके भङ्गसे भयभीत है, एक वीर रसकी ही भावनासे युक्त है तथा शास्त्रोंका अभ्यास यद्यपि इसने किया है तथापि युक्त-अयुक्तको नहीं देखता है ॥९२॥ अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे महाराज! अब मैं मानी रावणके मनमें जो बात थी उसे कहता हूँ तू यथार्थमें सुन ॥९३॥ रावणके मनमें था कि सब लोगोंको जीतकर तथा पुत्र और भाईको छुड़ा कर मैं पुनः लंकामें प्रवेश करूँ? और यह सब पीछे करता रहूँ ॥९४॥ इस पृथिवीतलमें जितने क्षुद्रभूमि गोचरी हैं मैं उन सबको यहाँसे हटाऊँगा और प्रशंसनीय जो विद्याधर हैं, उन्हें ही यहाँ बसाऊँगा ॥९५॥ जिससे कि तीनों लोकोंके नाथके द्वारा स्तुत तीर्थङ्कर जिनेन्द्र, चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण तथा

१. नान्यथेदृशः म० । २. महाराजन् ! म०, ज० ।

निकाचितं कर्म नरेण येन यस्तस्य भुंक्ते सफलं नियोगात् ।
कस्यान्यथा शास्त्ररवौ सुदीप्ते तमो भवेन्मानुषकौशिकस्य ॥६७॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे युद्धनिश्चयकीर्तनाभिधानं नाम द्वासप्ततितमं पर्व ॥७२॥

हमारे जैसे पुरुष इसी वंशमें जन्म ग्रहण करेंगे ॥६६॥ जिस मनुष्यने निकाचित कर्म बाँधा है वह उसका फल नियमसे भोगता है । अन्यथा शास्त्र रूपी सूर्यके देदीप्यमान रहते हुए किस मनुष्य रूपी उल्लूकके अन्धकार रह सकता है ॥६७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें रावणके युद्ध सम्बन्धी निश्चयका कथन करने वाला बहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७२॥

त्रिसप्ततितमं पर्व

ततो दशाननोऽन्यस्मिन् दिने परमभासुरः । आस्थानमण्डपे तस्थावुदिते दिवसाधिपे ॥१॥
कुबेरवरुणेशानयमसोमसमैर्नृपैः । रराज सेवितस्तत्र त्रिदशानामिवाधिपः ॥२॥
[1]वृतः कुलोद्गतैर्वीरैः स्थितः केसरिविष्टरे । स बभार परां कान्तिं निशाकर इव ग्रहैः ॥३॥
अत्यन्तसुरभिर्दिव्यस्रक्स्रगनुलेपनः । [2]हारावतिहारिवक्षस्कः सुभगः सौम्यदर्शनः ॥४॥
सदोऽवलोकमानोऽग्रादिति चिन्तां महामनाः । मेघवाहनवीरोऽत्र स्वप्रदेशे न दृश्यते ॥५॥
महेन्द्रविभवी नेतः शक्रजिन्नयनाभिरामः । इहो भानुसमो भानुकर्णोऽसौ न निरीक्ष्यते ॥६॥
नेदं सदःसरः शोभां धारयत्यधुना पराम् । निर्महापुरुषाम्भोजं शेषपुंस्कुमुदाञ्चितम् ॥७॥
उत्फुल्लपुण्डरीकाक्षः स मनोज्ञोऽपि तादृशः । चिन्तादुःखविकारेण कृतो दुःसहदर्शनः ॥८॥
कुटिलभ्रूकुटीबन्धघनच्छाम्ललिकाङ्गणम् । सरोषाशीविषच्छायं कृतान्तमिव भीषणम् ॥९॥
[3]गाढदष्टाधरं स्वांशुचक्रमग्नं समीक्ष्य तम् । सचिवेशा भृशं भीताः किङ्कर्तव्यव्यग्रहाराः ॥१०॥
ममायं कुपितोऽमुष्य तस्येत्याकुलमानसाः । स्थिताः प्राञ्जलयः सर्वे धरणीगतमस्तकाः ॥११॥
मयोग्रशुकलोकाक्षसारणाद्याः सलज्जिताः । परस्परं विलिक्षन्तः क्षितिं च विनताननाः ॥१२॥

अथानन्तर दूसरे दिन दिनकरका उदय होनेपर परम देदीप्यमान रावण सभामण्डपमें विराजमान हुआ ॥१॥ कुबेर, वरुण, ईशान, यम और सोमके समान अनेक राजा उसकी सेवा कर रहे थे जिससे वह ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो इन्द्र ही हो ॥२॥ कुलमें उत्पन्न हुए वीर मनुष्योंसे घिरा तथा सिंहासनपर विराजमान रावण ग्रहोंसे घिरे हुए चन्द्रमाके समान परम कान्तिको धारण कर रहा था ॥३॥ वह अत्यन्त सुगन्धिसे युक्त था, उसके वस्त्र, मालाएँ तथा अनुलेपन सभी दिव्य थे, हारसे उसका वक्षःस्थल अत्यन्त सुशोभित हो रहा था, वह सुन्दर था और सौम्य दृष्टिसे युक्त था ॥४॥ वह उदारचेता सभाकी ओर देखता हुआ इस प्रकार चिन्ता करने लगा कि यहाँ वीर मेघवाहन अपने स्थानपर नहीं दिख रहा है ॥५॥ इधर महेन्द्रके समान शोभाको धारण करनेवाला नयनाभिरामी इन्द्रजित् नहीं है और उधर सूर्यके समान प्रभाको धारण करनेवाला भानुकर्ण (कुम्भकर्ण) भी नहीं दिख रहा है ॥६॥ यद्यपि यह सभा रूपी सरोवर शेष पुरुष रूपी कुमुदोंसे सुशोभित है तथापि उक्त महापुरुष रूपी कमलोंसे रहित होनेके कारण इस समय उत्कृष्ट शोभाको प्राप्त नहीं हो रहा है ॥७॥ यद्यपि उस रावणके नेत्र कमलके समान फूल रहे थे और वह स्वयं अनुपम मनोहर था तथापि चिन्ताजन्य दुःखके विकारसे उसकी ओर देखना कठिन जान पड़ता था ॥८॥

तदनन्तर टेढ़ी भौंहोंके बन्धनसे जिसके ललाट रूपी आँगनमें सघन अन्धकार फैल रहा था, जो कुपित नागके समान कान्तिको धारण करनेवाला था, जो यमराजके समान भयङ्कर था, जो बड़े जोरसे अपना ओठ डश रहा था, जो अपनी किरणोंके समूहमें निमग्न था ऐसे उस रावणको देख, बड़े-बड़े मन्त्री अत्यन्त भयभीत हो 'क्या करना चाहिये, इस विचारमें गम्भीर थे ॥९–१०॥ 'यह मुझपर कुपित है या उसपर' इस प्रकार जिनके मन व्याकुल हो रहे थे तथा जो हाथ जोड़े हुए पृथिवीकी ओर देखते बैठे थे ॥११॥ ऐसे मय, उग्र, शुक, लोकाक्ष और सारण आदि मन्त्री परस्पर एक दूसरेसे लज्जित होते हुए नीचेको मुख कर बैठे थे तथा ऐसे जान

---

१. तृतीयचतुर्थयोः श्लोकयोः ब पुस्तके क्रमभेदो वर्तते । २. मुक्तासङ्गननोहारोरस्कः । ३. गाढदष्टाधरं म० ।

प्रचलत्कुण्डला राजन् ते भटाः पार्श्ववर्तिनः । मुहुर्देव प्रसीदेति त्वरावन्तो बभाषिरे ॥१३॥
कैलासकूटकल्पासु रत्नभासुरभित्तिषु । स्थिताः प्रासादमालासु त्रस्तास्तं ददृशुः स्त्रियः ॥१४॥
मणिजालगवाक्षान्तन्यस्तसम्भ्रान्तलोचना । मन्दोदरी वदद्दीनं समालोडितमानसा ॥१५॥
लोहिताक्षः प्रतापाढ्यः समुत्थाय दशाननः । अमोघरत्नशस्त्राढ्यमायुधालयमुज्ज्वलम् ॥१६॥
वज्रालयमिवेशानः सुराणां गन्तुमुद्यतः । विशतश्च [2]समेतस्य दुर्निमित्तानि जज्ञिरे ॥१७॥
पृष्ठतः श्रुसमग्रे च छिन्नो मार्गो महाहिना । हाहो [3]धिङ्ग्यां क यासीति वचांसि समिवावदन् ॥१८॥
वायुप्रेरितं छत्रं भग्नं वैडूर्यदण्डकम् । निपपातोत्तरीयं च बलिमुग्दक्षिणोऽरटत् ॥१९॥
अन्येऽपि बहवः क्रूरास्तं दुष्टाः न्यवारयन् । वचसा कर्मणा ते हि न कायेनानुमोदकाः ॥२०॥
नानाशकुनविज्ञानप्रवीणधिषणा ततः । दृष्ट्वा पापान्महोत्पातानत्यन्ताकुलमानसाः ॥२१॥
मन्दोदरी समाहूय शुकाद्यान् सारमन्त्रिणः । जगाद मोच्यते कस्माद्भवद्भिः स्वहितं नृपः ॥२२॥
किमेतच्चेष्टयतेऽद्यापि विज्ञातस्वपरक्रियैः । अशक्ताः कुम्भकर्णाद्याः किमद्यापि बन्धनमागताः ॥२३॥
लोकपालौजसो वीराः कृतानेकमहाद्भुताः । शत्रुरोधमिमे प्राप्ताः किं नु कुर्वन्ति वः शमम् ॥२४॥

पड़ते थे मानो पृथिवीमें ही प्रवेश करना चाहते हों ॥१२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! जिनके कुण्डल हिल रहे थे ऐसे वे समीपवर्ती सुभट 'हे देव प्रसन्न होओ प्रसन्न होओ' इस तरह शीघ्रतासे बार-बार कह रहे थे ॥१३॥ कैलासके शिखरके समान ऊँचे तथा रत्नोंसे देदीप्यमान दीवालोंसे युक्त महलोंमें रहनेवाली स्त्रियाँ भयभीत हो उसे देख रही थीं ॥१४॥ मणिमय झरोखों के अन्तमें जिसने अपने घबड़ाये हुए नेत्र लगा रक्खे थे, तथा जिसका मन अत्यन्त विह्वल था ऐसी मन्दोदरीने भी उसे देखा ॥१५॥

अथानन्तर लाल लाल नेत्रोंको धारण करनेवाला प्रतापी रावण उठकर अमोघ शस्त्ररूपी रत्नोंसे युक्त उज्वल शस्त्रागारमें जानेके लिए उस प्रकार उद्यत हुआ जिस प्रकार कि वज्रालयमें जानेके लिए इन्द्र उद्यत होता है। जब वह शस्त्रागारमें प्रवेश करने लगा तब निम्नाङ्कित अपशकुन हुए ॥१६-१७॥ पीछेकी ओर छींक हुई[1], आगे महानागने मार्ग काट दिया, ऐसा लगने लगा जैसे लोग उससे यह शब्द कह रहे हों कि हा, ही, तुझे धिक्कार है कहाँ जा रहा है ॥१८॥ नील मणिमय दण्डसे युक्त उसका छत्र वायुसे प्रेरित हो टूट गया, उसका उत्तरीय वस्त्र नीचे गिर गया और दाहिनी ओर कौआ काँव काँव करने लगा ॥१९॥ इनके सिवाय और भी क्रूर अपशकुनोंने उसे युद्धके लिए मना किया। यथार्थमें वे सब अपशकुन उसे युद्धके लिए न वचनसे अनुमति देते थे न क्रियासे और न कायसे ही ॥२०॥ तदनन्तर नाना शकुनोंके ज्ञानमें जिनकी बुद्धि निपुण थी ऐसे लोग उन पाप पूर्ण महा उत्पातोंको देख अत्यन्त व्यग्रचित्त हो गए ॥२१॥

तदनन्तर मन्दोदरीने शुक आदि श्रेष्ठ मन्त्रियोंको बुलाकर कहा कि आप लोग राजासे हितकारी बात क्यों नहीं कहते हैं ॥२२॥ निज और परकी क्रियाओंको जानने वाले होकर भी आप अभी तक यह क्या चेष्टा कर रहे हैं ? कुम्भकर्णादिक अशक्त हो कितने दिनसे बन्धनमें पड़े हैं ? ॥२३॥ लोकपालोंके समान जिनका तेज है तथा जिन्होंने अनेक आश्चर्यके काम किये हैं ऐसे ये वीर, शत्रुके यहाँ बन्धनको प्राप्त होकर क्या आप लोगोंको शक्ति उत्पन्न कर रहे हैं ? ॥२४॥

---

१. सस्तास्तं म० । २. समेतस्य म० । ३. धिङ्मां म० । ४. चेष्टते म०, ज० ।

१ शकुन शास्त्रमें छींकका फल इस प्रकार बताया है कि पूर्व दिशामें हो तो मृत्यु, अग्निकोणमें हो तो शोक, दक्षिणमें हानि, नैऋत्यमें शुभ, पश्चिममें मिष्ट आहार, वायुकोणमें सम्पदा, उत्तरमें कलह, ईशानमें धनागम, आकाशमें सर्वसंहार और पातालमें सर्वसम्पदाकी प्राप्ति हो। रावणको मृत्युकी छींक हुई।

प्रणिपत्य ततो देवीमित्याहुर्मुख्यमन्त्रिणः । कृतान्तशासनो मानी स्वप्रधानो दशाननः ॥२५॥
वचनं कुरुते यस्य नरस्य परमं हितम् । न स स्वामिनि ! लोकेऽस्मिन् समस्तेऽप्युपलभ्यते ॥२६॥
या काचिद्भविता बुद्धिर्नृणां कर्मानुवर्तिनाम् । अशक्या साऽन्यथाकर्तुं सेन्द्रैः सुरगणैरपि ॥२७॥
अर्थसाराणि शास्त्राणि नय शौशनसं परम् । जानन्नपि त्रिकूटेन्द्रः परय मोहेन बाध्यते ॥२८॥
उक्तः स बहुशोऽस्माभिः प्रकारेण न केन सः । तथापि तस्य नो चित्तमभिप्रेताच्निवर्तते ॥२९॥
महापूरकृतोत्पीडः पयोवाहसमागमे । दुष्करो हि नदो धर्तुं जवो वा कर्मचोदितः ॥३०॥
ईदृशे तथापि को दोषः स्वयं वक्तुं त्वमर्हसि । कदाचित्ते मतिं कुर्यादुपेक्षणमसाम्प्रतम् ॥३१॥
इत्युदाहृतमाधाय निश्चित्तस्वान्तधारिणी । परिवेपवती लक्ष्मीरिव सम्भ्रमवर्तिनी ॥३२॥
स्वच्छायतविचित्रेण पयःसादृश्यधारिणा । अंशुकेनावृता देवी गन्तुं रावणमुद्यता ॥३३॥
मन्मथस्यान्तिकं गन्तुं तां प्रवृत्तां रतिं यथा । परिवर्गः समालोक्य तत्परस्वमुपागतः ॥३४॥
छत्रचामरधारीभिरङ्गनाभिः समन्ततः । आपूर्यत शचीवेन्द्रं व्रजन्ती प्रवरानना ॥३५॥
[illegible] । निरन्तरकृता नित्यमनुरागमहानदी ॥३६॥
आयान्ती तेन सा दृष्टा लीलावर्तेन चक्षुषा । स्पृशता कवचं मुख्यं शस्त्रजातं च सादरम् ॥३७॥
उक्ता मनोहरे हंसवधूललितगामिनि । रभसेन किमायास्यास्तव देवि प्रयोजनम् ॥३८॥

तदनन्तर मुख्य मन्त्रियोंने प्रणाम कर मन्दोदरी से इस प्रकार कहा कि हे देवि ! दशाननका शासन यमराजके शासनके समान है, वे अत्यन्त मानी और अपने आपको ही प्रधान मानने वाले हैं ॥२५॥ जिस मनुष्यके परम हितकारी वचनको वे स्वीकृत कर सकें हे स्वामिनि ! समस्त लोकमें ऐसा मनुष्य नहीं दिखाई देता ॥२६॥ कर्मानुकूल प्रवृत्ति करनेवाले मनुष्योंकी जो बुद्धि होनेवाली है उसे इन्द्र तथा देवोंके समूह भी अन्यथा नहीं कर सकते ॥२७॥ देखो, रावण समस्त अर्थ शास्त्र और सम्पूर्ण नीतिशास्त्रको जानते हैं तो भी मोहके द्वारा पीड़ित हो रहे हैं ॥२८॥ हम लोगोंने उन्हें अनेकों बार किस प्रकार नहीं समझाया है ? अर्थात् ऐसा प्रकार शेष नहीं रहा जिससे हमने उन्हें न समझाया हो फिर भी उनका चित्त इष्ट वस्तु—सीतासे पीछे नहीं हट रहा है ॥२९॥ वर्षा ऋतुके समय जिसमें जलका महा प्रवाह उल्लंघ कर बह रहा है ऐसे महानदको अथवा कर्मसे प्रेरित मनुष्यको रोक रखना कठिन काम है ॥३०॥ हे स्वामिनि ! यद्यपि हम लोग कह कर हार चुके हैं तथापि आप स्वयं कहिये इसमें क्या दोष है ? संभव है कि कदाचित् आपका कहना उन्हें सुबुद्धि उत्पन्न कर सके। उपेक्षा करना अनुचित है ॥३१॥ इस प्रकार मन्त्रियोंका कहा श्रवण कर जिसने रावणके पास जाने का निश्चित विचार किया था, जो भय से काँप रही थी तथा घबड़ाई हुई लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी, जो स्वच्छ, लम्बे, विचित्र और जल की सदृशताको धारण करनेवाले वस्त्रसे आवृत्त थी ऐसी मन्दोदरी रावणके पास जानेके लिए उद्यत हुई ॥३२-३३॥ कामदेवके समीप जानेके लिए उद्यत रतिके समान, रावणके समीप जाती हुई मन्दोदरीको देख परिवारके समस्त लोगोंका ध्यान उसीकी ओर जा लगा ॥३४॥ छत्र तथा चमरोंको धारण करनेवाली स्त्रियाँ जिसे सब ओरसे घेरे हुई थीं ऐसी सुमुखी मन्दोदरी ऐसी जान पड़ती थी मानो इन्द्रके पास जाती हुई शची ही हो—इन्द्राणी ही हो ॥३५॥ जो लम्बी साँस भर रही थी, जो चलती-चलती बीचमें स्खलित हो जाती थी, जिसकी करधनी कुछ-कुछ ढीली हो रही थी, जो निरन्तर पतिका कार्य करनेमें तत्पर थी और जो अनुरागकी मानो महानदी ही थी ऐसी आती हुई मन्दोदरीको रावण ने लीलापूर्ण चक्षुसे देखा। उस समय रावण अपने कवच तथा मुख्य-मुख्य शस्त्रोंके समूहका आदरपूर्वक स्पर्श कर रहा था ॥३६-३७॥ रावणने कहा कि हे मनोहरे ! हे हंसीके समान सुन्दर चालसे चलनेवाली

लिखते हृदयं कलाङ्कशबलच्छाय मौलिनि । सन्निधानमिव स्वप्ने प्रत्यापत्तिरिवर्जितम् ॥३९॥
ततो निर्मलसम्पूर्णशशाङ्कप्रतिमानना । सम्फुल्लाम्भोजनयना निसर्गोत्तमविभ्रमा ॥४०॥
मनोहरकटाक्षेषु विसर्जनविचक्षणा । मदनावासभूताङ्गा मधुरस्खलितस्वना ॥४१॥
दन्ताधरविचित्रोरुच्छायापिञ्जरविग्रहा । स्तनहेममहाकुम्भभारसन्नमितोदरी ॥४२॥
स्खलद्वलित्रयाभ्यन्तसुकुमाराऽतिसुन्दरी । जगाद प्रणता नाथप्रसादस्यातिभूमिका ॥४३॥
प्रयच्छ देव मे भर्तृभिक्षामेहि प्रसन्नताम् । प्रेम्णा परेण धर्मेण कारुण्येन च सङ्गतः ॥४४॥
वियोगनिम्नगादुःखजले सङ्कल्पवीचिके । महाराज निमज्जन्तीं मकामुत्तम धारय ॥४५॥
कुलपद्मवनं गच्छत्प्रलयं विपुलं परम् । मो [1]पेक्षिष्ठा महाबुद्धे बान्धवव्योमभास्करः ॥४६॥
किञ्चिदाकर्णय स्वामिन् वचः परुषमप्यदः । क्षन्तुमर्हसि मे यस्माद्दत्तमेव त्वया पदम् ॥४७॥
अविरुद्धं स्वभावस्थं परिणामसुखावहम् । वचोऽप्रियमपि ग्राह्यं सुहृदामौषधं यथा ॥४८॥
किमर्थं संशयतुलामारूढोऽस्य तुलामिमाम् । सन्तापयसि कस्मात्त्वमस्मांश्च निरवग्रहः ॥४९॥
अद्यापि किमतीतं ते सैव भूमिः पुरातनी । उन्मार्गप्रस्थितं चित्तं केवलं देव वारय ॥५०॥
मनोरथः प्रवृत्तोऽयं नितान्तं तव सङ्कटे । इन्द्रियाश्वान्नियच्छाऽऽशु विवेकवरदृंहितम् ॥५१॥

प्रिये ! हे देवि ! बड़े वेगसे तुम्हारे यहाँ आनेका प्रयोजन क्या है ? ॥३८॥ हे भामिनि ! स्वप्नमें अकस्मात् प्राप्त हुए सन्निधानके समान तुम्हारा आगमन रावणके हृदयको क्यों हर रहा है ? ॥३९॥

तदनन्तर जिसका मुख निर्मल पूर्णचन्द्रकी तुलनाको प्राप्त था, जिसके नेत्र खिले हुए कमलके समान थे, जो स्वभावसे ही उत्तम हाव-भावको धारण करनेवाली थी, जो मनोहर कटाक्षोंके छोड़नेमें चतुर थी, जिसका शरीर मानो कामदेवके रहनेका स्थान था, जिसके मधुर शब्द बीच-बीचमें स्खलित हो रहे थे, जिसका शरीर दाँत तथा ओठोंकी रक्त-विरक्त विशाल कान्तिसे पिञ्जरवर्ण हो रहा था, जिसका उदर स्तनरूपी स्वर्णमय महाकलशोंसे झुक रहा था, जिसकी त्रिवलिरूपी रेखाएँ स्खलित हो रही थीं, जो अत्यन्त सुकुमार थी, अत्यधिक सुन्दरी थी, और जो पतिके प्रसादकी उत्तम भूमि थी ऐसी मन्दोदरी प्रणाम कर बोली कि ॥४०-४३॥ हे देव ! आप परमप्रेम और दया-धर्मसे सहित हो अतः मेरे लिए पतिकी भीख देओ प्रसन्नताको प्राप्त होओ ॥४४॥ हे महाराज ! हे उत्तम संकल्परूपी तरङ्गोंसे युक्त ! वियोगरूपी नदीके दुःखरूपी जलमें डूबती हुई मुझको आलम्बन देकर रोको-मेरी रक्षा करो ॥४५॥ हे महाबुद्धिमन् ! तुम अपने परिजन रूपी आकाशमें सूर्यके समान हो इसलिए प्रलयको प्राप्त होते हुए इस विशाल कुलरूपी कमल वन की अत्यन्त उपेक्षा न करो ॥४६॥ हे स्वामिन् ! यद्यपि मेरे वचन कठोर हैं तथापि कुछ श्रवण कीजिये । यतश्च यह पद मुझे आपने ही दिया है अतः आप मेरा अपराध क्षमा करनेके योग्य हैं ॥४७॥ मित्रोंके जो वचन विरोध रहित हैं, स्वभावमें स्थित हैं और फलकालमें सुख देने वाले हैं वे अप्रिय होने पर भी औषधिके समान ग्रहण करनेके योग्य हैं ॥४८॥ आप इस उपमा रहित संशयकी तुला पर किसलिए आरूढ़ हो रहे हैं ? और किसलिए किसी रुकावटके बिना ही अपने आपको तथा हम लोगोंको सन्ताप पहुँचा रहे हो ॥४९॥ आज भी आपका क्या चला गया ? वही आपकी पुरातनी अर्थात् पहलेकी भूमि है केवल हे देव ! उन्मार्गमें गए हुए चित्तको रोक लीजिए ॥५०॥ आपका यह मनोरथ अत्यन्त संकटमें प्रवृत्त हुआ है इसलिए इन इन्द्रियरूपी घोड़ोंको शीघ्र ही रोक लीजिए । आप तो विवेकरूपी मजबूत लगामको धारण

---

१. मा पेक्षिष्ठा म० ।

उत्कृष्टधैर्यत्वं गभीरत्वं परिज्ञातं च तत्कृते । गतं येन कुमार्गेण नाथ केनापि नीयसे ॥५२॥
दृष्ट्वा शरभवच्छायामात्मीयां कूपवारिणि । किं प्रवृत्तोऽसि परमामापदामासदायिनि ॥५३॥
अयशः शालमुत्तुङ्गं भित्त्वा क्लेशकरं परम् । कदलीस्तम्भनिःसारं फलं किमभिवाञ्छसि ॥५४॥
श्लाघ्यं जलधिगम्भीरं कुलं भूयो विभूषय । शिरोऽर्तिं कुलजातानां मुञ्च भूगोचरस्त्रियम् ॥५५॥
विरोधः क्रियते स्वामिन् वीरैः स्वाभिप्रयोजनः । मृत्युं च मानसे कृत्वा परेषामात्मनोऽपि वा ॥५६॥
पराजित्यापि संघातं नाथ सम्बन्धिनां तव । कोऽर्थः सम्पद्यते तस्मात्त्यज सीतामयं ग्रहम् ॥५७॥
अन्यदास्तां व्रतं तावत्परस्त्रीमुक्तिमात्रतः । पुमान् जन्मद्वये श्लाघां सुशीलः प्रतिपद्यते ॥५८॥
कज्जलोपमकारासु परनारीषु लोलुपः । मेरुगौरवयुक्तोऽपि तृणलाघवमेति सः ॥५९॥
देवैरनुगृहीतोऽपि चक्रवर्तिसुतोऽपि वा । परस्त्रीसङ्गपङ्केन दिग्धोऽकीर्तिं व्रजेत्परम् ॥६०॥
योऽन्यप्रमदया साकं कुरुते मूढको रतिम् । आशीविषभुजङ्ग्याऽसौ रमते पापमानसः ॥६१॥
निर्मलं कुलमत्यन्तं मायशोमलिनं कुरु । आत्मानं च करोषि स्वं तस्मादुज्झय दुर्मतिम् ॥६२॥
धैर्यवान्तरावलेपास्ताः प्राप्ताः नाशं महाबलाः । सुषुप्ताशनिघोषाद्यास्ते न किं ते श्रुताः श्रुतिम् ॥६३॥
सितचन्दनदिग्धाङ्गो नवजीमूतसन्निभः । मन्दोदर्यामथावोचद्रावणः कमलेक्षणः ॥६४॥

करनेवाले हैं ॥५१॥ आपकी उत्कृष्ट धीरता, गम्भीरता और विचारकता उस सीताके लिए जिस कुमार्गसे गई है हे नाथ ! जान पड़ता है कि आप भी किसीके द्वारा उसी कुमार्गसे ले आये जा रहे हैं ॥५२॥ जिस प्रकार अष्टापद कुएँके जलमें अपनी परिछाईं देख दुःखको प्राप्त हुआ उसी प्रकार अत्यन्त दुःख देनेवाली आपत्तियोंमें तुम किसलिए प्रवृत्त हो रहे हो ॥५३॥ अत्यधिक क्लेश उत्पन्न करनेवाले अपयशरूपी ऊँचे वृक्षको भेदन कर सुखसे रहिये । आप केलेके स्तम्भके समान किस निःसार फलकी इच्छा रखते हैं ॥५४॥ हे समुद्रके समान गम्भीर ! अपने प्रशस्त कुलको फिरसे अलंकृत कीजिए और कुलीन मनुष्योंके शिर दर्दके समान भूमिगोचरीकी स्त्री-सीताको शीघ्र ही छोड़िए ॥५५॥ हे स्वामिन् ! वीर सामन्त जो एक दूसरेका विरोध करते हैं सो धनकी प्राप्तिके प्रयोजनसे करते हैं अथवा मनमें ऐसा विचारकर करते हैं कि या तो पर को मारूँ या मैं स्वयं मरूँ । सो यहाँ धनकी प्राप्ति तो आपके विरोधका प्रयोजन हो नहीं सकती क्योंकि आपको धनकी क्या कमी है ? और दूसरा प्रयोजन अपना पराया मरना है सो किसलिए मरना ? पराई स्त्रीके लिए मरना यह तो हास्यकर बात है ॥५६॥ अथवा माना कि शत्रुओंके समूहका पराजित करना विरोधका प्रयोजन है सो शत्रु समूहको पराजित करने पर आपका कौनसा प्रयोजन सम्पन्न होता है ? अतः हे स्वामिन् ! सीतारूपी हठ छोड़िए ॥५७॥ और दूसरा व्रत रहने दीजिए एक परस्त्रीत्याग व्रत के द्वारा ही उत्तम शीलको धारण करनेवाला पुरुष दोनों जन्मोंमें प्रशंसाको प्राप्त होता है ॥५८॥ कज्जलकी उपमा धारण करनेवाली परस्त्रियोंका लोभी मनुष्य, मेरुके समान गौरवसे युक्त होने पर भी तृणके समान तुच्छताको प्राप्त हो जाता है ॥५९॥ देव जिस पर अनुग्रह करते हैं अथवा जो चक्रवर्तीका पुत्र है वह भी परस्त्रीकी आसक्तिरूपी कर्दमसे लिप्त होता हुआ परम अकीर्तिको प्राप्त होता है, जो मूर्ख परस्त्रीके साथ प्रेम करता है मानो वह पापी आशीविष नामक सर्पिणीके साथ रमण करता है ॥६०-६१॥ अत्यन्त निर्मल कुलको अपकीर्तिसे मलिन मत कीजिए । अथवा आप स्वयं अपने आपको मलिन कर रहे हैं सो इस दुर्बुद्धिको छोड़िए ॥६२॥ सुमुख तथा वज्रघोष आदि महाबलवान् पुरुष, परस्त्रीकी इच्छा मात्रसे नाशको प्राप्त हो चुके सो क्या वे आपके सुननेमें नहीं आये ? ॥६३॥

अथानन्तर जिसका समस्त शरीर सफेद चन्दनसे लिप्त था तथा जो स्वयं नूतन मेघके

१. चक्रवर्तिनमोऽपि वा क० । २. अन्यो धवो धवान्तरः परपुरुषस्तथाबला तस्य इच्छा तस्याः परपुरुषवनितायाः इच्छामात्रत इति भावः ।

अयि कान्ते किमर्थं त्वमेवं कातरतां गता । भीरुत्वाद्भीरुभावासि नाम हीदं सहार्थकम् ॥६४॥
सूर्यकीर्तिरहं नासौ न चान्यशनिघोषकः । न चेतरो नरः कश्चित्किमर्थमिति भाषसे ॥६५॥
मृत्युदावानलः सोऽहं शत्रुपादपसंहतेः । समर्पयामि नो सीतां मा भैर्मामन्दमानसे ॥६६॥
अनया कथया किं ते रक्षायां त्वं नियोजिता । शक्नोषि रक्षितुं नाथ मह्यमर्पय तां द्रुतम् ॥६७॥
ऊचे मन्दोदरीं सार्द्धं तया रतिसुखं भवान् । वाञ्छत्यर्पय मे तामित्येवं च वदतेऽत्रपः ॥६८॥
इत्युक्त्वेर्ष्याभवं क्रोधं वहन्ती विपुलेक्षणा । कर्णोत्पलेन सौभाग्यमतिरेनमताडयत् ॥७०॥
पुनरीर्ष्यां निरुध्यान्तर्जगाद वद सुन्दर । किं माहात्म्यं त्वया तस्या दृष्टं तां यदभीच्छसि ॥७१॥
न सा गुणवती ज्ञाता ललामा न च रूपतः । कलासु च न निष्णाता न च चित्तानुवर्तिनी ॥७२॥
ईदृश्याऽपि तया सार्धं कान्त का ते रतौ मतिः । आत्मनो लाघवं शुद्धं भवत्वं नानुबुद्ध्यसे ॥७३॥
न कश्चित्स्वयमात्मानं शंसन्नाप्नोति गौरवम् । गुणा हि गुणतां यांति गुण्यमानाः परानने ॥७४॥
तदहं नो वदाम्येवं किं नु वेत्सि त्वमेव हि । वराक्या सीतया किं वा न श्रीरपि समेति मे ॥७५॥
विजहीहि विभोऽत्यन्तं सीतासङ्गेप्सितोत्सवम् । माऽनुपशमनीये तीव्रे प्राप्तो निःपरिहारके ॥७६॥
मदयशाकरो वाञ्छन् भूमिगोचरिणीमिमाम् । शिशुर्वैदूर्यमुत्सृज्य काचमिच्छसि मन्दकः ॥७७॥

समान श्यामल वर्ण था ऐसा कमल-लोचन रावण मन्दोदरीसे बोला कि ॥६४॥ हे प्रिये ! तू क्यों इस तरह अत्यन्त कातरताको प्राप्त हो रही है ? भीरु अर्थात् स्त्री होनेके कारण ही तू भीरु अर्थात् कातर भावको धारण कर रही है। अहो ! स्त्रीका भीरु यह नाम सार्थक ही है ॥६५॥ मैं न अर्ककीर्ति हूँ, न वज्रघोष हूँ और न कोई दूसरा ही मनुष्य हूँ फिर इस तरह क्यों कह रही है ? ॥६६॥ मैं शत्रुरूप वृक्षोंके समूहको भस्म करनेवाला वह मृत्युरूपी दावानल हूँ इसलिए सीताको वापिस नहीं लौटाऊँगा। हे मन्दमते ! भय मत कर ॥६७॥ अथवा इस चर्चा से तुम्हें क्या प्रयोजन है ? तू तो सीताकी रक्षा करनेके लिए नियुक्त की गई है सो यदि रक्षा करनेमें समर्थ नहीं है तो मुझे शीघ्र ही वापिस सौंप दे ॥६८॥ यह सुन मन्दोदरीने कहा कि आप उसके साथ रति-सुख चाहते हैं इसीलिए निर्लज्ज हो इस प्रकार कह रहे हैं कि उसे मुझे सौंप दो ॥६९॥ इतना कह ईर्ष्या सम्बन्धी क्रोधको धारण करनेवाली उस दीर्घलोचना मन्दोदरीने सौभाग्यकी इच्छासे कर्णोत्पलके द्वारा रावणको ताड़ा ॥७०॥ पुनः मन ही मन ईर्ष्याको रोककर उसने कहा कि हे सुन्दर ! बताओ तो सही कि तुमने उसका क्या माहात्म्य देखा है ? जिससे उसे इस तरह चाहते हो ॥७१॥ न तो वह गुणवती जान पड़ी है, न रूपमें सुन्दर है, न कलाओं में निपुण है और न आपके मनके अनुसार प्रवृत्ति करनेवाली है ॥७२॥ फिर भी ऐसी सीताके साथ रमण करने की हे वल्लभ ! तुम्हारी कौन बुद्धि है। मेरी दृष्टिमें तो केवल अपनी लघुता ही प्रकट हो रही है जिसे आप समझ नहीं रहे हैं ॥७३॥ कोई भी पुरुष स्वयं अपने आपकी प्रशंसा करता हुआ गौरवको प्राप्त नहीं होता यथार्थमें जो गुण दूसरोंके मुखोंसे प्रशंसित होते हैं वे ही गुणपनेको प्राप्त होते हैं ॥७४॥ इसीलिए मैं ऐसा कुछ नहीं कहती हूँ किन्तु आप स्वयं जानते हैं कि बेचारी सीताकी तो बात ही क्या, लक्ष्मी भी मेरे समान नहीं है ॥७५॥ इसलिए हे विभो ! सीताके साथ समागम की जो अत्यधिक लालसा है उसे छोड़िये, जिसका परिहार नहीं ऐसी अपयशरूपी तीव्र अग्निमें मत पड़िये ॥७६॥ आप मेरा अनादर कर इस भूमिगोचरीको चाह रहे हैं सो ऐसा जान पड़ता है मानो कोई मूर्ख बालक वैदूर्यमणिको

१. 'भामिनी भीरुरङ्गना' इति धनंजयः । २. महार्थकम् म० । ३. शक्तोऽपि म० । ४. न + अथ इति पदच्छेदः । ५. इत्युक्ते–म० । ६. यदिच्छसि म० । ७. 'प्रप्तो' इति स्यात्, प्रोपसर्गपूर्वकवृत्लृ धातोर्लुङ्मध्यमैकवचने रूपम् । मायोगे अडागमनिषेधः ।

न दिव्यं रूपमेतस्या जायते मनसि स्थितम् । हृत्वा ग्रामेयकाकारां नाथ कामयसे कथम् ॥७८॥
यथासर्वाहिताकल्पकल्पनाऽतिविचक्षणा । भवामि कीदृशी ब्रूहि जाये स्वचित्तहारिणी ॥७९॥
पद्मालयारतिः सद्यः श्रीर्भवामि किमीश्वर । शक्रलोचनविश्रान्तभूमिः किं वा शची प्रभो ॥८०॥
मकरध्वजचित्तस्य बन्धनी रतिरेव वा । साक्षान्नवामि किं देव भवदिच्छानुवर्तिनी ॥८१॥
ततः किंचिदधोवक्त्रो रावणोर्द्धाक्षवीक्षणः । सव्रीडः स्वैरमूचेऽहं परस्त्रीहसवयोदितः ॥८२॥
किं मयोपचितं पश्य परमाकीर्तिसंगिना । आत्मा लघूकृतो मूढः परस्त्रीसक्तचेतसा ॥८३॥
विषयाऽऽमिषसक्तात्मन् पापभाजनचञ्चल[1] । धिगस्तु हृदयत्वं ते हृदयक्षुद्वचेष्टित ॥८४॥
तिलक इव कोत्सर्पिमुखेन्दुस्मितचन्द्रिकः । मुद्राधिकुमुदः कान्तामेवमूचे दशाननः ॥८५॥
देवि वैक्रियरूपेण विनैव प्रकृतिस्थिता । अत्यन्तदयिता त्वं मे किमन्यस्त्रीभिरुत्तमे ॥८६॥
लब्धप्रसादया देव्या ततो मुदितचित्तया । भाषितं देव किं भानोर्दीपोद्योताय युज्यते ॥८७॥
दशानन सुहृन्मध्ये यन्मयोक्तमिदं हितम् । अन्यानपि बुधान् पृच्छ वेत्ति नेयमबला सती ॥८८॥
जानन्नपि नयं सर्वं प्रमादं दैवयोगतः । जन्तुना हितकामेन बोधनीयो न किं प्रभुः ॥८९॥
आत्मविष्णुकुमारौ साधुर्वैक्रियाविस्मृतात्मकः । सिद्धान्तगीतिकाभिः किं न प्रबोधमुपाहृतः ॥९०॥

छोड़कर अन्यकी इच्छा करता है ।' इसने आपका मनचाहा दिव्य रूप भी नहीं हो सकता अर्थात् यह विक्रियासे आपकी इच्छानुसार रूप नहीं परिवर्तित कर सकती फिर हे नाथ ! आप इस ग्रामीण स्त्रीको क्यों चाहते हैं ? ॥७८॥ मैं आपकी इच्छानुसार रूपको धरनेमें अतिशय निपुण हूँ सो मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं कैसी हो जाऊँ । हे स्वामिन् ! क्या शीघ्र ही तुम्हारे चित्तको हरण करनेवाली एवं कमलरूपी घरमें प्रीति धारण करनेवाली लक्ष्मी बन जाऊँ ? अथवा हे प्रभो ! इन्द्रके नेत्रोंकी विश्रामभूमिस्वरूप इन्द्राणी हो जाऊँ ? ॥७९-८०॥ अथवा कामदेवके चित्तको रोकनेवाली साक्षात् रति ही बन जाऊँ ? अथवा हे देव ! आपकी इच्छानुसार प्रवृत्ति करनेवाली क्या हो जाऊँ ? ॥८१॥

तदनन्तर जिसका मुख नीचे की ओर था, जिसके नेत्र आधे खुले थे, तथा जो लज्जासे सहित था ऐसा रावण धीरे-धीरे बोला कि हे प्रिये ! तुमने मुझे परस्त्रीसेवी कहा सो ठीक है ॥८२॥ देखो मैंने यह क्या किया ? परस्त्रीमें चित्तसे आसक्त होनेसे परम अकीर्तिको प्राप्त होते हुए मैंने इस मूर्ख आत्माको अत्यन्त लघु कर दिया है ॥८२-८३॥ जो विषयरूपी मांसमें आसक्त है, पापका भाजन है तथा चञ्चल है ऐसे इस हृदयको धिक्कार है । रे हृदय ! तेरी यह अत्यन्त नीच चेष्टा है ॥८४॥ इतना कह जिसके मुखचन्द्रकी मुसकान रूपी चाँदनी ऊपर की ओर फैल रही थी, तथा जिसके नेत्ररूपी कुमुद विकसित हो रहे थे ऐसे दशाननने मन्दोदरीसे पुनः इस प्रकार कहा कि ॥८५॥ हे देवि ! विक्रिया निर्मित रूपके बिना स्वभावमें स्थित रहने पर भी तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो । हे उत्तमे ! मुझे अन्य स्त्रियोंसे क्या प्रयोजन है ? ॥८६॥ तदनन्तर स्वामीकी प्रसन्नता प्राप्त होनेसे जिसका चित्त खिल उठा था ऐसी मन्दोदरीने पुनः कहा कि हे देव ! सूर्यके लिए दीपकका प्रकाश दिखाना क्या उचित है ? अर्थात् आपसे मेरा कुछ निवेदन करना उसी तरह व्यर्थ है जिस तरह कि सूर्यको दीपक दिखाना ॥८७॥ हे दशानन ! मैंने मित्रोंके बीच जो यह हितकारी बात कही है सो उसे अन्य विद्वानोंसे भी पूछ लीजिये । मैं अबला होनेसे कुछ समझती नहीं हूँ ॥८८॥ अथवा समस्त शास्त्रोंको जाननेवाला भी प्रभु यदि कदाचित् दैवयोगसे प्रमाद करता है तो क्या हित की इच्छा रखनेवाले प्राणीको उसे समझाना चाहिए ॥८९॥ जैसे कि विष्णुकुमार मुनि विक्रिया द्वारा आत्माको भूल गये थे सो क्या उन्हें सिद्धान्तके

१. चञ्चला म० ।

अयं पुमानियं स्त्रीति विकल्पोऽयममेधसाम् । सर्वतो वचनं साधु समीहन्ते सुमेधसः ॥६१॥
स्वल्पोऽपि यदि कश्चित्ते प्रसादो मयि विद्यते । ततो वदामि ते मुञ्च परस्त्रीरतमार्गणम् ॥६२॥
गृहीत्वा जानकीं कृत्वा स्वामेव च समाश्रयम् । प्रस्थापयामि रामाऽहं रामं भवदनुज्ञया ॥६३॥
उपगृह्य सुतौ तेऽहं शम्बुजिन्मेघवाहनौ । भ्रातरं चोपनेष्यामि किं भूरिजनहिंसया ॥६४॥
एवमुक्तो भृशं क्रुद्धो रक्षसामधिपोऽवदत् । गच्छ गच्छ द्रुतं यत्र न पश्यामि मुखं तव ॥६५॥
अहो त्वं पण्डितम्मन्या अद्विहायोन्नतिं निजाम् । परपक्षप्रशंसायां प्रसृता दीनचेष्टिता ॥६६॥
त्वं वीरजननी भूत्वा ममाग्रमहिषी सती । या वदेि कर्कशमेवं तत्कातरास्ति न ते परा ॥६७॥
एवमुक्ता जगौ देवी शृणु यद्गदितं बुधैः । हलिनां चक्रिणां जन्म तथा च प्रतिचक्रिणाम् ॥६८॥
[1]विजयोऽथ त्रिपृष्ठश्च द्विपृष्ठोऽचल एव च । स्वयम्भूरिति च ख्यातस्तथा च पुरुषोत्तमः ॥६९॥
नरसिंह प्रतीतिश्च पुण्डरीकश्च विश्रुतः । दत्तश्चेति जगद्धीरा हरयोऽस्मिन् युगे स्मृताः ॥१००॥
समये तु महावीर्यौ पद्मनारायणौ स्मृतौ । यौ तौ भुवमिमौ जातौ दशानन समागतौ ॥१०१॥
प्रत्यर्धाका ययुर्नाशतारकाद्या यथा गताः । नाशमेभ्यस्तथा नूनं त्वमस्मादुद्गन्तुमिच्छसि ॥१०२॥

उपदेश द्वारा प्रबोधको प्राप्त नहीं कराया गया था ॥६०॥ 'यह पुरुष है और यह स्त्री है' इस प्रकारका विकल्प निर्बुद्धि पुरुषोंको ही होता है यथार्थमें जो बुद्धिमान हैं वे स्त्री-पुरुष सभीसे हितकारी वचनोंकी अपेक्षा रखते हैं ॥६१॥ हे नाथ ! यदि आपकी मेरे ऊपर कुछ थोड़ी भी प्रसन्नता है तो मैं कहती हूँ कि परस्त्रीसे रतिकी याचना छोड़ो अथवा परस्त्रीमें रत पुरुषका मार्ग तजो ॥६२॥ यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं जानकीको ले जाकर रामको आपकी शरणमें ले आती हूँ तथा तुम्हारे इन्द्रजित् और मेघवाहन नामक दोनों पुत्रों तथा भाई कुम्भकर्णको वापिस लिये आती हूँ। अधिक जनोंकी हिंसासे क्या प्रयोजन है ? ॥६३-६४॥

मन्दोदरीके इस प्रकार कहने पर रावण अत्यधिक कुपित होता हुआ बोला कि जा जा जल्दी जा, वहाँ जा जहाँ कि मैं तेरा मुख नहीं देखूँ ॥६५॥ अहो ! तू अपने आपको बड़ी पण्डिता मानती है जो अपनी उन्नतिको छोड़ दीन चेष्टा की धारक हो शत्रु पक्षकी प्रशंसा करनेमें तत्पर हुई है ॥६६॥ तू वीरकी माता और मेरी पट्टरानी होकर भी जो इस प्रकार दीन वचन कह रही है तो जान पड़ता है कि तुमसे बढ़ कर कोई दूसरी कायर स्त्री नहीं है ॥६७॥ इस प्रकार रावणके कहने पर मन्दोदरीने कहा कि हे नाथ ! विद्वानोंने बलभद्रों, नारायणों तथा प्रतिनारायणोंका जन्म जिस प्रकार कहा है उसे सुनिये ॥६८॥ हे देव ! इस युगमें अबतक क्रमविजय तथा अचल आदि सात बलभद्र और त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयम्भू, पुरुषोत्तम, नृसिंह, पुण्डरीक और दत्त ये सात नारायण हो चुके हैं। ये सभी जगत्में अत्यन्त धीरवीर तथा प्रसिद्ध पुरुष हुए हैं। इस समय पद्म और लक्ष्मण नामक बलभद्र तथा नारायण होंगे। सो हे दशानन जान पड़ता है कि ये दोनों ही यहाँ आ पहुँचे हैं। जिसप्रकार अश्वग्रीव और तारक आदि प्रतिनारायण इनसे नाशको प्राप्त हुए हैं उसी प्रकार जान पड़ता है कि तुम भी इनसे नाशको प्राप्त होना चाहते

---

१. विनयोऽथ म० ।

नौ बलभद्र—१ विजय २ अचल ३ भद्र ४ सुप्रभ ५ सुदर्शन ६ आनन्द ७ नन्दन नन्द, ८ पद्म—राम और ९ बलराम ।

नौ नारायण—१ त्रिपृष्ठ २ द्विपृष्ठ ३ स्वयम्भू, ४ पुरुषोत्तम ५ नृसिंह ६ पुण्डरीक ७ दत्त ८ लक्ष्मण और कृष्ण ।

नौ प्रतिनारायण—१ अश्वग्रीव २ तारक ३ मेरुक ४ द्विशम्भु ५ मधु ६ बलि ७ प्रह्लाद ८ रावण और जरासंध ।

तावताशङ्क्यते नाथ वक्तुं तत्त्वं हिते रतम् । यावत्प्रज्ञापनीयस्य निश्चयान्तो न दृश्यते ॥१०३॥
तत्कार्यं बुद्धियुक्तेन परत्रेह च यत्सुखम् । न तु[1] दुःखाङ्कुरोत्पत्तिकारणं कुत्सनास्पदम् ॥१०४॥
विषयैः सुचिरं भुक्तैः पुमांस्तृप्तिमागतः । त्रैलोक्येऽपि यदैकं तं पापमोहित रावण ॥१०५॥
भुक्त्वापि सकलं भोगं मुनित्वं चेन्न सेवसे । गृहिधर्मरतो भूत्वा कुरु दुःखविनाशनम् ॥१०६॥
अणुव्रतासिरत्नाढ्यो नियमच्छत्रशोभितः । सम्यग्दर्शनसन्नाहः शीलकेतनलक्षितः ॥१०७॥
भावनाचन्दनार्द्राङ्गः सुधीबोधशरासनः । वशेन्द्रियबलोपेतः शुभध्यानप्रतापवान् ॥१०८॥
मर्यादाङ्कुशसंयुक्तो निश्चयानेकपस्थितः । जिनभक्तिमहाशक्तिर्जय दुर्गतिवाहिनीम् ॥१०९॥
इयं हि कुटिला पापा[2] महावेगा सुदुःसहा । सुखेन जीयते जित्वा तामेतां सुखितो भव ॥११०॥
हिमवन्मन्दराद्येषु पर्वतेषु जिनालयान् । पूजयन् वशया सार्द्धं जम्बूद्वीपं मया चर ॥१११॥
अष्टादशसहस्रस्त्रीपाणिपल्लवलालितः । क्रीड मन्दरकुञ्जेषु मन्दाकिन्यास्तटेषु च ॥११२॥
ईप्सितेषु प्रदेशेषु रमणीयेषु सुन्दर । विद्याधरयुगं स्वेच्छं करोति विहृतिं सुखम् ॥११३॥
लब्धयशं न युद्धेन किञ्चिदस्ति प्रयोजनम् । प्रसीद कुरु मे वाक्यं सर्वथैव सुखावहम् ॥११४॥
वधेऽवद्यदुर्जनं निंद्यं परमानर्थकारणम् । जनवादमिमं मुञ्च किं मज्जस्यपयशोऽब्धौ ॥११५॥
इति प्रसादयन्ती सा बाहुपाण्यब्जकुड्मला । पपात पादयोस्तस्य वाञ्छन्ती परमं हितम् ॥११६॥

हो ॥९९-१०२॥ हे नाथ ! हित करनेमें तत्पर तत्त्वका निरूपण करनेके लिए तभी तक आशंका की जाती है जब तक कि निरूपणादि तत्त्वका पूर्ण निश्चय नहीं दिखाई पड़ता है ॥१०३॥ बुद्धिमान् मनुष्यको यह कार्य करना चाहिए जो इस लोक तथा परलोकमें सुखका देनेवाला हो। दुःखरूपी अङ्कुरकी उत्पत्तिका कारण तथा निन्दाका स्थान न हो ॥१०४॥ चिरकाल तक भोगे हुए भोगोंसे जो तृप्तिको प्राप्त हुआ हो ऐसा तीन लोकमें भी यदि कोई एक पुरुष हो सो हे पापसे मोहित रावण ! उसका नाम कहो ॥१०५॥ यदि समस्त भोगोंको भोगनेके बाद भी तुम मुनि पदको धारण नहीं कर सकते हो तो कमसे कम गृहस्थ धर्ममें तत्पर होकर भी दुःखका नाश करो ॥१०६॥ हे नाथ ! अणुव्रत रूपी तलवारसे जिसका शरीर देदीप्यमान है, जो नियमरूपी छत्रसे सुशोभित है, जिसने सम्यग्दर्शन रूपी कवच धारण किया है, जो शीलव्रत रूपी पताकासे युक्त है, जिसका शरीर भावनारूपी चन्दनसे आर्द्र है। सम्यग्ज्ञान ही जिसका धनुष है, जो जितेन्द्रियता रूपी बलसे सहित है, शुभध्यान रूपी प्रतापसे युक्त है, मर्यादा रूपी अङ्कुशसे सहित है, जो निश्चय रूपी हाथी पर सवार है, और जिनेन्द्र भक्ति ही जिसकी महाशक्ति है ऐसे होकर तुम दुर्गति रूपी सेनाको जीतो। यथार्थमें यह दुर्गति रूपी सेना अत्यन्त कुटिल, पापरूपिणी, और अत्यन्त दुःसह है सो इसे जीतकर तुम सुखी होओ ॥१०७-११०॥ हिमवन् तथा मेरु आदि पर्वतों पर जो अकृत्रिम जिनालय हैं उनकी मेरे साथ पूजा करते हुए जम्बू द्वीपमें विचरण करो ॥१११॥ अठारह हजार स्त्रियोंके हस्तरूपी पल्लवोंसे ललित होते हुए तुम मन्दरगिरिके निकुञ्जों और गङ्गा नदीके तटों में क्रीड़ा करो ॥११२॥ हे सुन्दर ! विद्याधर दम्पति अपने अभिलषित मनोहर स्थानोंमें इच्छानुसार सुख पूर्वक विहार करते हैं ॥११३॥ हे विद्वन् ! अथवा हे यशस्विन् ! युद्ध से कुछ प्रयोजन नहीं है। प्रसन्न होओ और सब प्रकारसे सुख उत्पन्न करने वाले मेरे वचन अङ्गीकृत करो ॥११४॥ विषके समान दुष्ट, निन्दनीय, तथा परम अनर्थका कारण जो यह लोकापवाद है सो इसे छोड़ो। व्यर्थ ही अपयश रूप सागरमें क्यों डूबते हो ? ॥११५॥ इस प्रकार प्रसन्न करती तथा उसका परम हित चाहती हुई मन्दोदरी हस्तकमल जोड़कर रावणके चरणोंमें गिर पड़ी ॥११६॥

१. ननु म० । २. पाप म० ।

विहसन्नथ तामूचे भीतां भयविवर्जितः । उत्थाप्य भीतिमेवं किं गता त्वं कारणं विना ॥११७॥
मत्तोऽन्यः पुरुषः कश्चिदुत्तमो हि वरोत्तमः । अलीका भीरुता केयं स्त्रैणादालंब्यते त्वया ॥११८॥
यदितं यत्त्वयाऽन्यस्य पक्षस्योदयसूचकम् । नारायण इति स्पष्टं तत्र देवि निरूप्यते ॥११९॥
नामनारायणाः सन्ति बलदेवाश्च भूरिशः । नामोपलब्धिमात्रेण कार्यसिद्धिः किमिष्यते ॥१२०॥
तिर्यक् कश्चिन्मनुष्यो वा कृतसिद्धाभिधानकः । वाङ्मात्रतः स किं सैद्धं सुखमाप्नोति कातरे ॥१२१॥
रथनूपुरधामेशो यथेंद्रोऽनिन्द्रतां मया । नीतस्तथेममप्योहि त्वं नारायणं कृतम् ॥१२२॥
इत्यूर्जितमुदाहृत्य प्रतिश्रुतः प्रतापवान् । स्वप्रभापटलच्छन्नशरीरः परमेश्वरः ॥१२३॥
क्रीडागृहमुपाविशन्मन्दोदर्या समन्वितः । श्रियेव सहितः शक्रो यथा कालाश्रितक्रियः ॥१२४॥
सायाह्नसमये तावत्सन्ध्यामिर्गतमण्डलः । सविता संहरत्यंशून्कषायानिव संयतः ॥१२५॥
सन्ध्याबलिविदष्टौष्ठपुरुसंरंभलोहितः । निर्भर्त्सयन्निव दिनं गतः क्वापि दिवाकरः ॥१२६॥
बद्धपद्माञ्जलिपुटा नलिन्योऽस्तं गतं रविम् । विरुतैश्चक्रवाकानां दीनमाकारयन्निव ॥१२७॥
अनुमार्गेण च प्राप्ता ग्रहनक्षत्रवाहिनी । विश्रंभेणेव सरितुं मृगांकेन विसर्जिता ॥१२८॥
प्रदोषे तत्र संवृत्ते दीपिकारत्नदीपिते[1] । प्रभाभिर्नगरी लङ्का रेजे मेरोः शिखा यथा ॥१२९॥

अथानन्तर निर्भय रावण ने हँसते हुए उस भयभीत मन्दोदरीको उठाकर कहा कि तू इस तरह कारणके बिना ही भय को क्यों प्राप्त हो रही है ? ॥११७॥ हे सुन्दरि ! मुझसे बढ़कर कोई दूसरा उत्तम मनुष्य नहीं है। तू स्त्रीपनाके कारण इस किस मिथ्या भीरुताका आलम्बन ले रही है ? अर्थात् स्त्री होनेके कारण व्यर्थ ही क्यों भयभीत हो रही है ? ॥११८॥ 'वे नारायण हैं' इस प्रकार दूसरे पक्षके अभ्युदयको सूचित करनेवाली जो बात तूने कही है सो हे देवि ! तुझे स्पष्ट बात बताऊँ कि नारायण और बलदेव इस नामको धारण करनेवाले पुरुष बहुतसे हैं क्या नामकी उपलब्धिमात्रसे कार्यकी सिद्धि हो जाती है ॥११९–१२०॥ हे भीरु ! यदि किसी तिर्यञ्च या मनुष्यका सिद्ध नाम रख लिया जाय तो क्या नाममात्रसे वह सिद्ध सम्बन्धी सुखको प्राप्त हो सकता है ? ॥१२१॥ जिस प्रकार रथनूपुर नगरके अधिपति इन्द्रको मैंने अनिन्द्रपना प्राप्त करा दिया था उसी प्रकार तुम देखना कि मैंने इस नारायणको अनारायण बना दिया है ॥१२२॥ इस प्रकार अपनी कान्तिके समूहसे जिसका शरीर व्याप्त हो रहा था तथा जिसकी क्रियाएँ यमराजके आश्रित थीं ऐसा प्रतापी परमेश्वर रावण, अपनी सबलताका निरूपण कर मन्दोदरीके साथ क्रीड़ा गृहमें उस तरह प्रविष्ट हुआ जिस तरह कि लक्ष्मीके साथ इन्द्र प्रवेश करता है ॥१२३–१२४॥

अथानन्तर सायंकालका समय आया तो संन्ध्याके कारण जिसका मण्डल अस्तोन्मुख हो गया था ऐसे सूर्यने किरणोंको उस तरह संकोच लिया जिस तरह कि मुनि अपनी कषायोंको संकोच लेता है ॥१२५॥ सूर्य लाल-लाल होकर अस्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो संन्ध्यावलि रूप ओष्ठ जिसमें डसा जा रहा था ऐसे बहुत भारी क्रोधसे लाल-लाल हो दिनको डाँट दिखाता हुआ कहीं चला गया था ॥१२६॥ कमलिनियोंके कमल बन्द हो गये थे सो ऐसा जान पड़ता था मानो कमल रूपी अंजलिको बाँधने वाली कमलिनियाँ चकवाक पक्षियोंके शब्दके द्वारा अस्त हुए सूर्यको दीनता पूर्वक बुला ही रही थीं ॥१२७॥ सूर्यके अस्त होते ही उसी मार्गसे ग्रह और नक्षत्रोंकी सेना आ पहुँची सो ऐसी जान पड़ती थी मानो चन्द्रमाने उसे स्वच्छन्दता-पूर्वक घूमनेके लिए छोड़ ही दिया था—उसे आज्ञा ही दे रक्खी थी ॥१२८॥ तदनन्तर दीपिका रूपी रत्नोंसे प्रकाशित प्रदोष कालके प्रकट होने पर प्रभासे जगमगाती हुई लंका मेरुकी शिखाके

१. दीपिता म० ।

प्रियं प्रणयिनी काचिदालिंग्योचै सवेपथुः । अप्येकां शर्वरीमेतां मानयामि त्वया सह ॥१३०॥
उद्गन्धिकाऽऽमोदमधुमत्ता विधूर्णिता । पर्यस्ता काचिदंशाङ्के पुष्पवृष्टिः सुकोमला ॥१३१॥
अम्बुजतुल्यक्रमा काचित् पीवरोरुपयोधरा । चतुष्मतीं वपुष्मन्तं दयिता दयितं ययौ ॥१३२॥
जग्राह भूषणं काचिन्स्वभावेनैव सुन्दरी । कुर्वन्ती हेमरत्नानां चारुभावा कृतार्थताम् ॥१३३॥
सुविद्याधरयुग्मानि प्रचिक्रीडुर्यथेप्सितम् । भवने भवने भान्ति[1] सदृशं भोगभूमिषु ॥१३४॥
गीतानङ्गैडवालापैर्वीणावंशादिनिःस्वनैः । जल्पतीव तदा लङ्का मुदिता खगदाऽऽगमे ॥१३५॥
ताम्बूलगन्धमाल्याद्यैरुपभोगैः सुरोपमैः । पिबन्तो मदिरामन्ये रमन्ते दयिताश्रिताः ॥१३६॥
काचित्स्ववदनं दृष्ट्वा चषकप्रतिबिम्बितम् । ईर्ष्ययेन्दीवरेणेशं प्राप्ता मदमताडयत् ॥१३७॥
मदिरायां परित्यस्तं नारीभिर्मुखसौरभम् । लोचनेषु निजो रागस्तासां मदिरया कृतः ॥१३८॥
तदेव वस्तु संसर्गादुत्ते परमचारुताम् । सुधाहि दयितापीतशेषं स्वादुभवन्मधु ॥१३९॥
मदिरापतितां काचिदात्मीयां लोचनद्युतिम् । गृह्णन्तीन्दीवरभ्रान्त्या कान्तेन हसिता चिरम् ॥१४०॥
अप्रौढापि सती काचिच्छनकैः पायिता सुराम् । जगाम प्रौढतां बाला मन्मथोचितवस्तुनि ॥१४१॥
लज्जासखीमपाकृत्य तासामत्यन्तमीप्सितम् । कृतं कादम्बरीसख्या प्रियेषु क्रीडितं परम् ॥१४२॥
घूर्णमानेक्षणं भूयः [2]कलस्खलितजल्पितम् । चेष्टितं विकटं स्त्रीणां पुंसां जातं मनोहरम् ॥१४३॥

समान सुशोभित हो उठी ॥१२९॥ उस समय कोई स्त्री पतिका आलिङ्गन कर काँपती हुई बोली कि तुम्हारे साथ यह एक रात तो आनन्दसे बिता लूँ कल जो होगा सो होगा ॥१३०॥ जिसकी चोटीमें गुँथी हुई जुहीकी मालासे सुगन्धि निकल रही थी तथा जो मधुके नशामें मत्त हो झूम रही थी ऐसी कोई एक स्त्री पतिकी गोदमें उस तरह लोट गई मानो अत्यन्त कोमल पुष्प वृष्टि ही बिखेर दी गई हो ॥१३१॥ जिसके चरण कमलके समान थे तथा जिसकी जाँघें और स्तन अत्यन्त स्थूल थे ऐसी सुन्दर शरीरकी धारक कोई स्त्री सुन्दर शरीरके धारक वल्लभके पास गई ॥१३२॥ जो स्वभावसे ही सुन्दरी थी तथा सुन्दर हाव-भावको धारण करनेवाली थी ऐसी किसी स्त्रीने सुवर्ण और रत्नोंको कृत-कृत्य करनेके लिए ही मानो उसने आभूषण धारण किये थे ॥१३३॥ विद्याधर और विद्याधरियोंके युगल इच्छानुसार क्रीड़ा कर रहे थे और वे घर-घरमें ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो भोगभूमियोंमें ही हों ॥१३४॥ संगीतके कामोत्तेजक आलापों और वीणा बाँसुरी आदिके शब्दोंसे उस समय लंका ऐसी जान पड़ती थी मानो रात्रिका आगमन होने पर हर्षित हो वार्तालाप ही कर रही हो ॥१३५॥ कितने ही अन्य लोग ताम्बूल गन्धमाला आदि देवोपम उपभोगोंसे मदिरा पीते हुए अपनी वल्लभाओंके साथ क्रीड़ा करते थे ॥१३६॥ नशामें निमग्न हुई कोई एक स्त्री मदिराके प्यालेमें प्रतिबिम्बित अपना ही मुख देख ईर्ष्यावश नील-कमलसे पतिको पीट रही थी ॥१३७॥ स्त्रियोंने मदिरामें अपने मुखकी सुगन्धि छोड़ी थी और मदिराने उसके बदले स्त्रियोंके नेत्रोंमें अपनी लालिमा छोड़ रक्खी थी ॥१३८॥ यही वस्तु इष्ट-जनोंके संसर्गसे परम सुन्दरताको धारण करने लगती है इसी लिए तो स्त्रीके पीनेसे शेष रहा मधु स्वादिष्ट हो गया था ॥१३९॥ कोई एक स्त्री मदिरामें पड़ी हुई अपने नेत्रोंकी कान्तिको नीलकमल समझ ग्रहण कर रही थी सो पतिने उसकी चिरकाल तक हँसी की ॥१४०॥ कोई एक स्त्री यद्यपि प्रौढ़ नहीं थी तथापि धीरे-धीरे उसे इतनी अधिक मदिरा पिला दी गई कि वह कामके योग्य कार्यमें प्रौढ़ताको प्राप्त हो गई अर्थात् प्रौढ़ा स्त्रीके समान कामभोगके योग्य हो गई ॥१४१॥ उस मदिरारूपी सखीने लज्जारूपी सखीको दूर कर उन स्त्रियोंको पतियोंके विषयमें ऐसी क्रीड़ा कराई जो उन्हें अत्यन्त इष्ट थी अर्थात् स्त्रियाँ मदिराके कारण लज्जा छोड़ पतियोंके साथ इच्छानुकूल क्रीड़ा करने लगीं ॥१४२॥ जिसमें नेत्र घूम रहे थे तथा बार-बार मधुर अधकटे

१. भांति ज० । २. इवालापै म० । ३. पीतं शेष म० । ४. कलै स्खलित म० ।

दम्पती मधु वाञ्छन्तौ पीतशेषं परस्परम् । चक्रतुः प्रसृतोल्लापौ चषकस्य गतागतम् ॥१४४॥
[1]चषके विगतप्रीतिः कान्तामालिङ्ग्य सुन्दरः । गण्डूषमदिरां कश्चित्पपौ मुकुलितेक्षणः ॥१४५॥
आसीद्विद्रुमकल्पानां किञ्चित्स्फुरणसेविनाम् । मधुक्षालितरागाणामधराणां परा द्युतिः ॥१४६॥
[2]दन्ताधरेक्षणच्छायासंसर्गिचषके मधु । शुक्लारुणासिताम्भोजयुक्तं सर इवाभवत् ॥१४७॥
गोपनीयानदर्श्यन्त प्रदेशान् सुरया स्त्रियः । वाक्यान्यभाषणीयान्यभाषन्त च गतत्रपाः ॥१४८॥
चन्द्रोदयेन मधुना यौवनेन च भूमिकाम् । आरूढो मदनस्तेषां तासां चात्यन्तमुन्नताम् ॥१४९॥
कृतचुतं ससीत्कारं गृहीतौष्ठं[5] समाकुलम् । सुरतं भावियुद्धस्य मङ्गलग्रहणोपमम् ॥१५०॥
एवोऽपि रक्षसामिन्द्रश्चारुचेष्टितसङ्गतः । संमानयद्युद्धभरान्तःपुरमशेषतः ॥१५१॥
मुहुर्मुहुः समालिङ्ग्य स्नेहान्मन्दोदरी विभोः । अपश्यदूदनं तृप्तिमगच्छन्ती सुलोचना ॥१५२॥
इतः समरसंवृत्तात्परिप्राप्तजयस्य ते । आगतस्य सदा कान्त करिष्याम्यवगूहनम् ॥१५३॥
मोक्ष्यामि क्षणमप्येकं न त्वां भूयो मनोहर । लतेव बाहुबलिनं सर्वाङ्गकृतसङ्गतिः ॥१५४॥
वदन्त्यामेवमेतस्यां प्रेमकातरचेतसि । रुतं [6]ताम्रशिखश्चक्रे समाप्तिं च निशा गता ॥१५५॥
नक्षत्रदीधितिध्वंसी प्राप्ते संध्यारुणागमे । गीतध्वनिरभूद्रम्यो भवने भवनेऽर्हताम् ॥१५६॥

शब्दोंका उच्चारण हो रहा था ऐसी स्त्रियों और पुरुषोंको मनको हरण करनेवाली विकट चेष्टा होने लगी ॥१४३॥ पीते-पीते जो मदिरा शेष बच रही थी उसे भी दम्पती पी लेना चाहते थे इसलिए 'तुम पियो तुम पियो' इस प्रकार जोरसे शब्द करते हुए प्यालेको एक दूसरेकी ओर बढ़ा रहे थे ॥१४४॥ किसी सुन्दर पुरुषको प्रीति प्यालेमें समाप्त हो गई थी इसलिए वह वल्लभाका आलिङ्गनकर नेत्र बन्द करता हुआ उसके मुखके भीतर स्थित कुरलेकी मदिराका पान कर रहा था ॥१४५॥ जो मूँगाके समान थे, जो कुछ-कुछ फड़क रहे थे तथा मदिराके द्वारा जिनकी कृत्रिम लाली धुल गई थी ऐसे अधरोष्ठोंकी अत्यधिक शोभा बढ़ रही थी ॥१४६॥ दाँत, ओष्ठ और नेत्रों की कान्तिसे युक्त प्यालेमें जो मधु रक्खा था वह सफेद लाल और नील कमलोंसे युक्त सरोवरके समान जान पड़ता था ॥१४७॥ उस समय मदिराके कारण जिनकी लज्जा दूर हो गई थी ऐसी स्त्रियाँ अपने गुप्त प्रदेशोंको दिखा रही थीं तथा जिनका उच्चारण नहीं करना चाहिये ऐसे शब्दोंका उच्चारण कर रही थीं ॥१४८॥ चन्द्रोदय, मदिरा और यौवनके कारण उस समय उन स्त्री-पुरुषोंका काम अत्यन्त उन्नत अवस्थाको प्राप्त हो चुका था ॥१४९॥ जिसमें नखक्षत किये गये थे, जो सीत्कारसे सहित था, जिसमें ओष्ठ डँसा गया था तथा जो आकुलतासे युक्त था ऐसा स्त्री-पुरुषोंका संभोग आगे होनेवाले युद्धका मानो मङ्गलाचार ही था ॥१५०॥ इधर सुन्दर चेष्टासे युक्त रावणने भी समस्त अन्तःपुरको एक साथ उत्तम शोभा प्राप्त कराई अर्थात् अन्तःपुरकी समस्त स्त्रियोंको प्रसन्न किया ॥१५१॥ उत्तम नेत्रोंसे युक्त मन्दोदरी बार-बार आलिङ्गनकर बड़े स्नेहसे पतिका मुख देखती थी तो भी तृप्त नहीं होती थी ॥१५२॥ वह कह रही थी कि हे कान्त ! जब तुम विजयी हो यहाँ लौटकर आओगे तब मैं सदा तुम्हारा आलिङ्गन करूँगी ॥१५३॥ हे मनोहर ! मैं तुम्हें एक क्षणके लिए भी न छोड़ूँगी और जिस प्रकार लताएँ बाहुबली स्वामीके समस्त शरीरमें समा गई थीं उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे समस्त शरीरमें समा जाऊँगी ॥१५४॥ इधर प्रेमसे कातर चित्तको धारण करनेवाली मन्दोदरी इस प्रकार कह रही थी उधर मुर्गा बोलने लगा और रात्रि समाप्त हो गई ॥१५५॥

अथानन्तर नक्षत्रोंकी कान्तिको नष्ट करनेवाली सन्ध्याकी लाली आकाशमें आ पहुँची

---

१. चषकेऽपि गत- म० । २. दन्ताधरक्षणच्छाया- म० । ३. शुक्लारुणासित म० । ४. नदर्शन्त म० । ५. गृहीत्वौष्ठं म० । ६. कुक्कुटः ।

कालाग्निमण्डलाकारो रश्मिभिश्छादयन् दिशः । अगामोदयसम्बन्धं भास्करो लोकलोचनः ॥१५७॥
प्रभातसमये देव्यो व्यग्राः कृच्छ्रेण सान्त्विताः । दयितेन मनस्यूहुः किं किमित्यतिदुःसहम् ॥१५८॥
गम्भीरास्ताडिता भेर्यः शङ्खशब्दपुरःसराः । रावणस्याऽऽज्ञया युद्धसंज्ञादानविचक्षणाः ॥१५९॥
परस्परमहंकारं वहन्तः परमोद्धताः । प्रहृष्टा निर्ययुर्योधा यथिद्विपरथस्थिताः ॥१६०॥
असिचापगदाकुन्तभासुराटोपसङ्कटाः । प्रचलच्चामरच्छत्रच्छायामण्डलशोभिनः ॥१६१॥
आशुकारसमुद्युक्ताः सुराकाराः प्रसापिनः । विद्याधराधिपा योद्धुं निर्ययुः प्रवरद्युतः ॥१६२॥
तत्र पङ्कजनेत्राणां कारुण्यं पुरयोषिताम् । निरीक्ष्य दुर्जनस्यापि चित्तमासीत्सुदुःखितम् ॥१६३॥
निर्गतो दयितो कश्चिदनुव्रज्यापरायणाम् । अयि मुग्धे निवर्तस्व व्रजामि [1]संख्ये सत्यवाक् ॥१६४॥
अलीकं भो मृगाक्षीति व्याजादभिमुखं प्रियम् । चक्रे काचिन्मृगीनेत्रा वक्त्रदर्शनलालसा ॥१६५॥
दृष्टिगोचरतोऽतीते प्रिये काचिदराङ्गना । पतन्ती सह वाष्पेण सखीभिर्मूर्च्छिता कृता ॥१६६॥
निवृत्य काचिदाश्लिष्य शयनीयस्य पट्टिकाम् । तस्थौ मौनमुपादाय [2]पुस्तोपमशरीरिका ॥१६७॥
सम्यग्दर्शनसम्पन्नः शूरः कश्चिदणुव्रती । दृष्टो वीक्षयते परया पुरस्थिदशकन्यया ॥१६८॥
पूर्वं [3]पूर्णेन्दुवत्सौम्या बभूवुस्तुमुलागमे । शूराः कवचितोरस्काः कृतान्ताकारभासुराः ॥१६९॥
चतुरङ्गेन सैन्येन चापछत्रादिसंकुलः । संप्रास्थत्तत्र मारीचो नैगमे क्षितेजसा ॥१७०॥
असौ विमलचन्द्रश्च धनुष्मान् विमलाम्बुदः । सुनन्दानन्दसन्दाद्याः शतशोऽथ सहस्रशः ॥१७१॥

और अरहन्त भगवान्‌के मन्दिर-मन्दिरमें संगीतका मधुर शब्द होने लगा ॥१५६॥ प्रलयकालीन अग्निसमूहके समान जिसका आकार था ऐसा लोकलोचन सूर्य, किरणोंसे दिशाओंको आच्छादित करता हुआ उदयाचलके साथ सम्बन्धको प्राप्त हुआ ॥१५७॥ प्रातःकालके समय पति जिन्हें बड़ी कठिनाईसे सान्त्वना दे रहा था ऐसी स्त्रियाँ व्यग्र होती हुई मनमें न जाने क्या-क्या दुःसह विचार धारण कर रही थीं ॥१५८॥ तदनन्तर रावणकी आज्ञासे युद्धका संकेत देनेमें निपुण शङ्ख फूँके गये और गम्भीर भेरियाँ बजाई गईं ॥१५९॥ जो परस्पर अहंकार धारण कर रहे थे तथा अत्यन्त उद्धत थे ऐसे योद्धा घोड़े हाथी और रथोंपर सवार हो हर्षित होते हुए बाहर निकले ॥१६०॥ जो खड्ग, धनुष, गदा, भाले आदि चमकते हुए शस्त्र समूहको धारण कर रहे थे, जो हिलते हुए चमर और छत्रोंकी छायासे सुशोभित थे, जो शीघ्रता करनेमें तत्पर थे, देवोंके समान थे और अतिशय प्रतापी थे ऐसे विद्याधर राजा बड़े ठाट-बाटसे युद्ध करनेके लिए निकले ॥१६१-१६२॥ उस समय निरन्तर रुदन करनेसे जिनके नेत्र कमलके समान लाल हो गये थे ऐसी नगरकी स्त्रियोंकी दीनदशा देख दुष्ट पुरुषका भी चित्त अत्यन्त दुःखी हो उठता था ॥१६३॥ कोई एक योद्धा पीछे-पीछे आनेवाली स्त्रीसे यह कहकर कि 'अरी पगली ! लौट जा मैं सचमुच ही युद्धमें जा रहा हूँ' बाहर निकल आया ॥१६४॥ किसी मृगनयनी स्त्रीको पतिका मुख देखनेकी लालसा थी इसलिए उसने इस बहाने कि अरे शिरका टोप तो लेते जाओ, पतिको अपने सम्मुख किया था ॥१६५॥ जब पति दृष्टिके ओझल हो गया तब अश्रुओंके साथ-साथ कोई स्त्री मूर्च्छित हो नीचे गिर पड़ी और सखियोंने उसे घेर लिया ॥१६६॥ कोई एक स्त्री वापिस लौट, शय्याकी पाटी पकड़, मौन लेकर मिट्टीकी पुतलीकी तरह चुपचाप बैठ गई ॥१६७॥ कोई एक शूरवीर सम्यग्दृष्टि तथा अणुव्रतोंका धारक था इसलिए उसे पीछेसे तो उसकी पत्नी देख रही थी और आगेसे देवकन्या देख रही थी ॥१६८॥ जो योद्धा पहले पूर्ण चन्द्रके समान सौम्य थे वे ही युद्ध उपस्थित होनेपर कवच धारण कर यमराजके समान चमकने लगे ॥१६९॥ जो धनुष तथा छत्र आदिसे सहित था ऐसा मारीच चतुरङ्गिणी सेना ले बड़े तेजके साथ नगरके बाहर आया ॥१७०॥ धनुषको धारण करनेवाले विमलचन्द्र, विमलमेघ, सुनन्द, आनन्द तथा नन्दको आदि

१. सुखमित्यवाक् म० । २. प्रस्तोपम म० । ३. कर्णेन्दु म० ।

विद्याविनिर्मितैर्दिव्यै रथैर्हुतवहप्रभैः । रेजुरग्निकुमाराभा भासयन्तो दशो दिश ॥१७२॥
केचिद्दीप्तासिसम्पूर्णैर्हिमवत्संनिभैरिभैः । ककुभश्छादयन्ति स्म सविद्युद्भिरिवांबुदैः ॥१७३॥
केचिद्धरतुरंगौघैर्दंशार्थायुधसङ्कटाः । सहसा ज्योतिषां चक्रं चूर्णयन्तीव वेगिनः ॥१७४॥
बृहद्विविधवादित्रैर्हयानां हेषितैस्तथा । गजानां गर्जितारावैः पदात्याकारितैरपि ॥१७५॥
योधानां सिंहनादैश्च जयशब्दैश्च बन्दिनाम् । गीतैः कुशीलवानां च समुत्साहनकोविदैः ॥१७६॥
इत्यन्यैश्च महानादैरेकीभूतैः समंततः । विननर्देव गगनं युगान्तजलदाकुलम् ॥१७७॥

रुचिरावृत्तम्

जनेशिनोऽखरथपदातिसंकुलाः परस्परातिशयविभूतिभासुराः ।
वृहद्भुजाः कवचिरलुंबनक्षतस्तिदृक्षवः प्रभुतिरे जयैषिणः ॥१७८॥
पदातयोऽपि हि करवालचञ्चलाः पुरो ययुः प्रभुपरितोषणैषिणः ।
समैश्च तैर्विविधसमूहिभिः कृतं निरर्गलं गगनतलं दिशस्तथा ॥१७९॥
इति स्थिते विगतभवाभिसञ्चिते शुभाशुभे त्रिभुवनभाजि कर्मणि ।
जनः करोत्यतिबहुधाचेष्टितं न तं क्षमो रविरपि कर्तुमन्यथा ॥१८०॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे उद्योगाभिधानं नाम त्रिसप्ततितमं पर्व ॥७३॥

लेकर सैकड़ों हजारों योद्धा युद्धस्थलमें आये सो वे विद्या निर्मित, अग्निके समान देदीप्यमान रथोंसे दशों दिशाओंको देदीप्यमान करते हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो अग्निकुमार देव ही हों ॥१७१-१७२॥ कितने ही सुभट देदीप्यमान शस्त्रोंसे युक्त तथा हिमालयके समान भारी-भारी हाथियोंसे दिशाओंको इस प्रकार आच्छादित कर रहे थे मानो बिजली सहित मेघोंसे ही आच्छादित कर रहे हों ॥१७३॥ पाँचों प्रकारके शस्त्रोंसे युक्त कितने ही वेगशाली सुभट उत्तम घोड़ोंके समूहसे ऐसे जान पड़ते थे मानो नक्षत्र मण्डलको सहसा चूर-चूर ही कर रहे हों ॥१७४॥ नाना प्रकारके बड़े-बड़े वादित्रों, घोड़ोंकी हिनहिनाहट, हाथियोंकी गर्जना, पैदल सैनिकोंके बुलानेके शब्द, योद्धाओंकी सिंहनाद, चारणोंकी जयजय ध्वनि, नटोंके गीत तथा उत्साह बढ़ाने में निपुण अन्य प्रकारके महाशब्द सब ओरसे मिलकर एक हो रहे थे इसलिए उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो आकाश प्रलयकालीन मेघोंसे व्याप्त हो। दुःखसे चिल्ला ही रहा हो ॥१७५-१७७॥ उस समय जो घोड़े रथ तथा पैदल सैनिकोंसे युक्त थे, जो परस्पर—एक दूसरेसे बढ़ी-चढ़ी विभूतिसे देदीप्यमान थे, जिनकी भुजाएँ बड़ी-बड़ी थीं तथा जिन्होंने अपने उन्नत वक्षःस्थलोंपर कवच धारण कर रक्खे थे ऐसे विजयके अभिलाषी अनेक राजा बिजलीके समान जान पड़ते थे ॥१७८॥ जिनके हाथोंमें तलवारें लपलपा रही थीं तथा जो स्वामीके संतोषकी इच्छा कर रहे थे ऐसे पैदल सैनिक भी उन राजाओंके आगे-आगे जा रहे थे, विविध झुण्डोंको धारण करनेवाले उन सब सैनिकोंसे आकाश तथा दिशाएँ ठसाठस भर गई थीं ॥१७९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इस प्रकार पिछले पूर्वभवोंमें संचित त्रिभुवन सम्बन्धी, शुभ-अशुभ कर्मके विद्यमान रहते हुए यह प्राणी यद्यपि नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करता है तथापि सूर्य भी उसे अन्यथा करनेमें समर्थ नहीं है ॥१८०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें युद्धके उद्योगका वर्णन करने वाला तेहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७३॥

---

१. युत म० ।

चतुःसप्ततितमं पर्व

विधिक्रमेण पूर्वेण सादरो मुदमुद्वहन् । आपृच्छत त्रिकूटेशो वयितामित्यपि प्रियाम् ॥१॥
[1]को जानाति प्रिये भूयो दर्शनं चारुदर्शने । महाप्रतिभये युद्धे किं भवेच्च भवेदिति ॥२॥
उत्सुस्तं वयिता नाथ नन्द नन्द रिपूञ्जय । द्रक्ष्यामः सर्वथा भूयः संरब्धस्त्वां समागतम् ॥३॥
इत्युक्तो दयितानेत्रसहस्रैरभिवीक्षितः । निर्जगाम बहिर्नाथो रक्षसां विकटप्रभः[2] ॥४॥
अपश्यच्च शरज्जानुभास्वरं बहुरूपया । विद्यया कृतनिर्माणमैन्द्रं नाम महारथम् ॥५॥
युक्तं दन्तिसहस्रेण प्रावृषेण्यघनत्विषा । प्रभापरिकरं मेरुं जिगीषन्तमिव स्थितम् ॥६॥
मत्तास्ते करिणो गण्डप्रगलद्दाननिर्झराः । सितपीनचतुर्दंष्ट्राः शङ्खचामरशोभिनः ॥७॥
मुक्तादामसमाकीर्णा महाघण्टानिनादिताः । ऐरावतसमा नानाधातुरागविभूषिताः ॥८॥
दुर्दान्ता विनयाधानभूमयो घनगर्जिताः । बिरेजुः कालमेघौघसन्निभाश्चाहविभ्रमाः ॥९॥
मनोहराभकेयूरविराजद्भुजमस्तकः । तमसौ रथमारूढः शुनासीरसमद्युतिः ॥१०॥
विशालनयनस्तत्र स्थितो निरुपमाकृतिः । ओजसा सकलं लोकमग्रसिष्टेव रावणः[5] ॥११॥
सहस्रैर्दशभिः स्वस्य सदृशैः खेचराधिपैः । विद्युत्प्रभनगाद्यैः स्वहितैः कृतमण्डलः ॥१२॥
महाबलैः [6]सुरच्छायैरभिप्रायानुवेदिभिः । कृतः सुग्रीववैदेही प्रत्यभीयाय रावणः ॥१३॥

अथानन्तर पूर्वकृत पुण्योदयसे हर्षको धारण करता हुआ रावण आदरके साथ अपनी प्रिय स्त्री मन्दोदरीसे इस प्रकार पूछता है कि हे प्रिये ! चारुदर्शने ! महा भयकारी युद्ध होना है अतः कौन जाने फिर तुम्हारा दर्शन हो या न हो ॥१-२॥ यह सुन सब स्त्रियोंने कहा कि हे नाथ ! सदा वृद्धिको प्राप्त होओ, शत्रुओंको जीतो। तुम्हें हम सब शीघ्र ही युद्धसे लौटा हुआ देखेंगी ॥३॥ ऐसा कहकर जिसे हजारों स्त्रियाँ अपने नेत्रोंसे देख रही थीं तथा जिसकी प्रभा अत्यन्त विशाल थी ऐसा राक्षसोंका राजा रावण नगरके बाहर निकला ॥४॥ बाहर निकलते ही उसने बहुरूपिणी विद्याके द्वारा निर्मित तथा शरद् ऋतुके सूर्यके समान देदीप्यमान ऐन्द्र नामका महारथ देखा ॥५॥ वह महारथ वर्षाकालीन मेघोंके समान कान्तिवाले एक हजार हाथियोंसे जुता था, कान्तिके मण्डलसे सहित था, ऐसा जान पड़ता था मानो मेरु पर्वतको ही जीतना चाहता हो ॥६॥ उसमें जुते हुए हाथी मदोन्मत्त थे, इनके गण्डस्थलोंसे झरने झर रहे थे, उनके सफेद पीले रंगके चार चार बड़े बड़े दाँत थे, वे शङ्खों तथा चमरोंसे सुशोभित थे, मोतियों की मालाओंसे युक्त थे, उनके गलेमें बँधे बड़े-बड़े घण्टा शब्द कर रहे थे, वे ऐरावत हाथीके समान थे, नाना धातुओंके रंगसे सुशोभित थे, उनका जीतना अशक्य था, वे विनयकी भूमि थे, मेघोंके समान गर्जनासे युक्त थे, कृष्ण मेघोंके समूहके समान थे तथा सुन्दर विभ्रमको धारण करते हुए शोभायमान थे ॥७-९॥ जिसकी भुजाके अग्रभागपर मनोहर बाजूबन्द बँधा हुआ था तथा जिसकी कान्ति इन्द्रके समान थी, ऐसा रावण उस विद्या निर्मित रथपर आरूढ हुआ ॥१०॥ विशाल नयन तथा अनुपम आकृतिको धारण करनेवाला रावण उस रथपर आरूढ हुआ अपने तेजसे मानो समस्त लोकको ग्रस ही रहा था ॥११॥ जो अपने समान थे, अपना हित करनेवाले थे, महा बलवान थे, देवोंके समान कान्तिसे युक्त थे और अभिप्रायको जाननेवाले थे ऐसे गगनवल्लभनगरके स्वामीको आदि लेकर दश हजार विद्याधर राजाओंसे घिरा रावण सुग्रीव और

१. का जानाति म० । २. युद्धतः । ३. विकटप्रभुः म० । ४. घनवर्जिताः म० । ५. -मग्रसदेव म०, ज० । ६. सुदच्छायै -(१) म० ।

दृष्ट्वा दक्षिणतोऽभ्यन्तभीमनिःस्वानकारिणः । भल्लुका गगने गृध्रा भ्रमन्ति छन्नभास्कराः ॥१३॥
जानन्तोऽपि निमित्तानि कथयन्ति महाक्षयम् । शौर्यमानोत्कटाः क्रुद्धा ययुरेव महानराः ॥१५॥
पद्मोऽपि स्वसैन्यस्थः पर्यपृच्छत् सविस्मयः । भो भो मध्येममेतस्या नगर्यास्तेजसा ज्वलन् ॥१६॥
जाम्बूनदमयैः कूटैः सुविशालैरलङ्कृतः । सतडिन्मेघसंघातच्छायः किंनामको गिरिः ॥१७॥
पृच्छतेऽस्मै सुषेणाद्या सम्मोहं समुपागताः । न शेकुः सहसा वक्तुमपृच्छच्च स ताम्मुहुः ॥१८॥
ब्रूत किं नामधेयोऽयं गिरिरत्र निरीक्ष्यते । अगदक्षाम्बवाद्यास्तमथो वेपथुमन्थराः ॥१९॥
दृश्यते [1]पद्मनाभायं रथोऽयं बहुरूपया । विद्यया कल्पितोऽस्माकं मृत्युसंज्वरकोविदः ॥२०॥
किष्किन्धराजपुत्रेण योऽसौ गत्वाभिरोषसः । रावणोऽवस्थितः सोऽत्र महामायामयोदयः ॥२१॥
श्रुत्वा तद्वचनं तेषां लक्ष्मणः सारथिं ब्रुवौ । रथं समानय क्षिप्रमित्युक्तः स तथाऽकरोत् ॥२२॥
ततः क्षुब्धार्णवस्वाना भीमा भेर्यः समाहताः । शङ्खकोटिस्वनोन्मिश्राः शेषवाद्यसङ्गताः ॥२३॥
श्रुत्वा तं निनदं हृष्टा भटा विकटचेष्टिताः । सबद्ध्वा बद्धतूणीरा लक्ष्मणस्यान्तिके स्थिताः ॥२४॥
मा भैषीर्देयिते शिष्ट निवर्तस्व शुचं त्यज । अहं लङ्केश्वरं जित्वा प्रत्येष्यञ्च तवान्तिकम् ॥२५॥
इति गर्वोत्कटा वीराः समाभाष्य वराङ्गनाः । अन्तःपुरात् सुसन्नद्धा निर्जग्मुर्यथायथम् ॥२६॥
परस्परप्रतिस्पर्द्धाविगलोदितवाहनाः । रथादिभिर्ययुर्योधाः शस्त्रावेक्षणचञ्चलाः ॥२७॥
रथं मद्देभसंयुक्तं गम्भीरोदारनिस्वनम् । भूतस्वनः समारूढो विरेजे खेचराधिपः ॥२८॥

भामण्डलको देख कुपित होता हुआ उनके सन्मुख गया। रावणकी दक्षिण दिशामें भालू अत्यन्त भयङ्कर शब्द कर रहे थे और आकाशमें सूर्यको आच्छादित करते हुए गीध मँडरा रहे थे ॥१२-१४॥ शूरवीरताके अहंकारसे भरे महासुभट यद्यपि यह जानते थे कि ये अपशकुन मरणको सूचित कर रहे हैं तथापि वे कुपित हो आगे बढ़े जाते थे ॥१५॥

अपनी सेनाके मध्यमें स्थित रामने भी आश्चर्य चकित हो सैनिकोंसे पूछा कि हे भद्रपुरुषो ! इस नगरीके बीचमें तेजसे देदीप्यमान, सुवर्णमयी बड़े-बड़े शिखरोंसे अलंकृत, तथा बिजलीसे सहित मेघ समूहके समान कान्तिको धारण करनेवाला यह कौन सा पर्वत है ? ॥१६-१७॥ सुषेण आदि विद्याधर स्वयं भ्रान्तिमें पड़ गये इसलिए वे पूछनेवाले रामके लिए सहसा उत्तर देनेके लिए समर्थ नहीं हो सके। फिर भी राम उनसे बार बार पूछे जा रहे थे कि कहो यह यहाँ कौन सा पर्वत दिखाई दे रहा है ? तदनन्तर भयसे काँपते हुए जाम्बव आदिने धीमे स्वरमें कहा कि हे राम ! यह बहुरूपिणी विद्याके द्वारा निर्मित वह रथ है जो हम लोगोंको कालज्वर उत्पन्न करनेमें निपुण है ॥१८-२०॥ सुग्रीवके पुत्र अङ्गदने जाकर जिसे कुपित किया था ऐसा वह महामायामय अभ्युदयको धारण करनेवाला रावण इस पर सवार है ॥२१॥ जाम्बव आदिके उक्त वचन सुन लक्ष्मणने सारथिसे कहा कि शीघ्र ही रथ लाओ। सुनते ही सारथिने आज्ञा पालन किया अर्थात् रथ लाकर उपस्थित कर दिया ॥२२॥ तदनन्तर जिनके शब्द क्षुभित समुद्रके शब्दके समान थे, जिनके शब्दोंके साथ करोड़ों शङ्खोंके शब्द मिल रहे थे ऐसी भयंकर भेरियाँ बजाई गईं ॥२३॥ उस शब्दको सुनकर विकट चेष्टाओंके धारक योद्धा, कवच पहिन तथा तरकस बाँध लक्ष्मणके पास आ खड़े हुए ॥२४॥ 'हे प्रिये ! डर मत, यहीं ठहर, लौट जा, शोक तज, मैं लङ्केश्वरको जीतकर आज ही तेरे समीप वापिस आ जाऊँगा' इस प्रकार गर्वीले वीर, अपनी उत्तम स्त्रियोंको सान्त्वना दे कवच आदिसे तैयार हो यथायोग्य रीतिसे बाहर निकले ॥२५-२६॥ जो परस्परकी प्रतिस्पर्धा वश वेगसे अपने वाहनोंको प्रेरित कर रहे थे, तथा जो शस्त्रोंकी ओर देख देख कर चञ्चल हो रहे थे ऐसे योधा रथ आदि वाहनोंपर आरूढ हो चले ॥२७॥ महागज

१. पद्मनाभोऽयं म० । २. मृत्युः स ज्वरकोविदः म० ।

तेनैव विधिनाऽन्येऽपि विद्याधरजनाधिपाः । सहर्षाः प्रस्थिता योद्धुं कृत्वा लङ्केश्वरं प्रति ॥२६॥
तं प्रति प्रस्थिता वीराः क्षुब्धाम्भोधिसमाकृतिम् । संवहं परमं प्रापुर्गंगानुस्रोतसिसन्निभाः ॥३०॥
ततः [1]सितयशोव्याप्तभुवनौ परमाकृती । स्वावासतो विनिष्क्रान्तौ युद्धार्थौ रामलक्ष्मणौ ॥३१॥
रथे खिहयुते चारौ सम्बद्धकवचौ बली । नवोदित इवादित्यः पद्मरागो व्यराजत ॥३२॥
गरुडं रथकेतुस्थो वैकक्षेयप्रभाभवः । सन्ध्यारक्तांशुकाकीर्णशैलाभ्यामलितास्बरः ॥३३॥
मुकुटी कुण्डली धन्वी कवची सायकी कृती । सन्ध्यासक्ताञ्जनागाभः सुमित्राजो व्यराजत ॥३४॥
महाविद्याधराश्चान्ये भालङ्कारपुरःसराः । योद्धुं श्रेणिक निर्यांता नानायानविमानगाः ॥३५॥
गमने शकुनास्तेषां कृतकोमलनिस्वनाः । आनन्दयन् यथापूर्वमिष्टदेशनिवेशिनः ॥३६॥
तेषामभिमुखः क्रुद्धो महाबलसमन्वितः । प्रययौ रावणो वेगी महादावसमाकृतिः ॥३७॥
गन्धर्वाप्सरसस्तेषां बलद्वितयवर्तिनाम् । नभःस्थिता शूरवीराणां पुष्पाणि मुमुचुर्मुहुः ॥३८॥
पादातैः परितो गुप्ता निपुणाधोरणेरिताः । अञ्जनाद्रिसमाकाराः प्रसस्रुर्मत्तदन्तिनः ॥३९॥
दिवाकररथाकारा रथाः प्रचलवाजिनः । युक्ताः सारथिभिः साग्रनादाः परमरंहसः ॥४०॥
धवणुः परमं हृष्टाः समुल्लासितहेतयः । पदातयो रणक्षोण्यां सगर्वा मत्तमण्डलाः ॥४१॥

से जुते तथा गम्भीर और उदार शब्द करनेवाले रथ पर सवार हुआ विद्याधरोंका राजा भूतस्वन अलग ही सुशोभित हो रहा था ॥२८॥ इसी विधिसे दूसरे विद्याधर राजाओंने भी हर्षके साथ क्रुद्ध हो युद्ध करनेके लिए लङ्केश्वरके प्रति प्रस्थान किया ॥२९॥ क्षुभित समुद्रके समान आकृति को धारण करनेवाले रावणके प्रति बड़े वेगसे दौड़ते हुए योद्धा, गङ्गानदीकी बड़ी ऊँची तरङ्गोंकी भाँति अत्यधिक धक्काधूमीको प्राप्त हो रहे थे ॥३०॥

तदनन्तर जिन्होंने धवल यशसे संसारको व्याप्त कर रक्खा था तथा जो उत्तम आकृति को धारण करनेवाले थे ऐसे राम लक्ष्मण युद्धके लिए अपने निवास स्थानसे बाहर निकले ॥३१॥ जो गरुड़के रथपर आरूढ़ थे, जिनकी ध्वजामें गरुड़का चिह्न था, जिनके शरीरकी कान्ति उन्नत मेघके समान थी, जिन्होंने अपनी कान्तिसे आकाशको श्याम कर दिया था, जो मुकुट, कुण्डल, धनुष, कवच, बाण और तरकससे युक्त थे, तथा जो सन्ध्याकी लालीसे युक्त अञ्जनगिरिके समान आभाके धारक थे ऐसे लक्ष्मण अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥३२-३४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! कान्तिरूपी अलंकारोंसे सुशोभित तथा नाना प्रकारके यान और विमानोंसे गमन करनेवाले अनेक बड़े-बड़े विद्याधर भी युद्ध करनेके लिए निकले ॥३५॥ जब राम लक्ष्मणका गमन हुआ तब पहलेकी भाँति इष्ट स्थानोंपर बैठकर कोमल शब्द करनेवाले पक्षियोंने उन्हें आनन्दयुक्त किया ॥३६॥

अथानन्तर क्रोधसे युक्त, महाबलसे सहित, वेगवान् एवं महादावानलके समान प्रचण्ड आकृतिको धारण करनेवाला रावण उनके सामने चला ॥३७॥ आकाशमें स्थित गन्धर्वों और अप्सराओंने दोनों सेनाओंमें रहनेवाले सुभटोंके ऊपर बार-बार फूलोंकी वर्षा की ॥३८॥ पैदल सैनिकोंके समूह जिनकी चारों ओरसे रक्षा कर रहे थे, चतुर महावत जिन्हें चला रहे थे तथा जो अञ्जनगिरिके समान विशाल आकारसे युक्त थे ऐसे मदोन्मत्त हाथी मद झरा रहे थे ॥३९॥ सूर्यके रथके समान जिनके आकार थे, जिनमें चञ्चल घोड़े जुते हुए थे, जो सारथियोंसे सहित थे, जिनसे विशाल शब्द निकल रहा था तथा जो तीव्र वेगसे सहित थे ऐसे रथ आगे बढ़े जा रहे थे ॥४०॥ जो अत्यधिक हर्षसे युक्त थे, जिनके शस्त्र चमक रहे थे, तथा जिन्होंने अपने झुण्डके झुण्ड बना रक्खे थे ऐसे गर्वीले पैदल सैनिक रणभूमिमें उछलते जा रहे थे ॥४१॥

---

१. शैत-म० । २. संध्यासक्तां जनांगाभसुमित्राजो म० ।

स्थूरीपृष्ठसमारूढाः खड्गशक्तिप्रासपाणयः । खेटकाच्छादितोरस्काः संख्यधर्मा विविशुर्भटाः ॥४२॥
आस्तृणंत्यभिधावन्ति स्पर्द्धन्ते निर्जयन्ति च । जीयन्ते घ्नन्ति हन्यन्ते कुर्वन्ति भटगर्जितम् ॥४३॥
तुरगाः क्वचिदुद्दीप्ता भ्रमन्त्याकुलमूर्त्तयः । कचमुष्टिगदायुद्धं प्रवृत्तं गहनं क्वचित् ॥४४॥
केचित्खड्गक्षतोरस्काः केचिद्विशिखताडिताः । केचित्कुंताहताः शत्रुं ताडयन्ति पुनस्तथा ॥४५॥
सततं लालितैः केचिदभीष्टार्थानुसेवनैः । इन्द्रियैः परिमुच्यन्ते कुमित्रैरिव भूमिगाः ॥४६॥
गलदन्त्रचयाः केचिदनादृत्योरुवेदनाम् । पतन्ति शत्रुणा सार्धं दन्तनिष्पीडिताधराः ॥४७॥
प्रासादशिखरे देवकुमारप्रतिमौजसः । प्रक्रीडितुमहाभोगा ये कान्तातनुलालिताः ॥४८॥
ते चक्रकनकच्छिन्नाः संग्रामक्षितिशायिनः । भक्ष्यन्ते विकृताकारा गृध्रगोमायुपंक्तिभिः ॥४९॥
नखक्षतकृताकूता कामिनीव शिवा भटम् । वहन्ती सङ्गमप्रीतिं प्रसुप्तमुपसर्पति ॥५०॥
स्फुरणेन पुनर्ज्ञात्वा जीवतीति ससम्भ्रमा । निवर्तते यथा भीता डाकिनी मन्त्रवादिनः ॥५१॥
शूरं विज्ञाय जीवन्तं बिभ्यती विहगी शनैः । दुष्टनारीव साशङ्का चलनेत्रापसर्पति ॥५२॥
शुभाशुभा च जन्तूनां प्रकृतिस्तत्र लक्ष्यते । प्रत्यक्षादविशिष्टैव भंगेन विजयेन च ॥५३॥
केचित् सुकृतसामर्थ्यात्[illegible] । [illegible]पापाः प्रपद्यन्ते बहवोऽपि पराजयम् ॥५४॥
मिश्रितं मत्सरेणापि तयोर्यैरर्जितं पुरा । ते जयन्ति विजीयन्ते तत्र प्रलयमागते ॥५५॥

जो घोड़ोंके पीठपर सवार थे, हाथोंमें तलवार बरछी तथा भाले लिये हुए थे और कवचसे जिनके वक्षःस्थल आच्छादित थे ऐसे योद्धाओंने रणभूमिमें प्रवेश किया ॥४२॥ वे योद्धा परस्पर एक दूसरेको आच्छादित कर लेते थे, एक दूसरेके सामने दौड़ते थे, एक दूसरेसे स्पर्धा करते थे, एक दूसरेको जीतते थे, उनसे जीते जाते थे, उन्हें मारते थे, उनसे मारे जाते थे और वीरगर्जना करते थे ॥४३॥ कहीं व्यग्रमुद्राके धारक तेजस्वी घोड़े घूम रहे थे तो कहीं केश मुट्ठी और गदाका भयंकर युद्ध हो रहा था ॥४४॥ कितने ही वीरोंके वक्षःस्थलमें तलवारसे घाव हो गये थे, कोई बाणोंसे घायल हो गये थे और कोई भालोंकी चोट खाये हुए थे तथा बदला चुकानेके लिए वे वीर भी शत्रुओंको उसी प्रकार ताड़ित कर रहे थे ॥४५॥ अभीष्ट पदार्थोंके सेवनसे जिन्हें निरन्तर लालित किया था ऐसी इन्द्रियाँ कितने ही सुभटोंको इस प्रकार छोड़ रही थीं, जिस प्रकार कि खोटे मित्र काम निकलनेपर छोड़ देते हैं ॥४६॥ जिनकी आँतोंका समूह बाहर निकल आया था ऐसे कितने ही सुभट अपनी बहुत भारी वेदनाको प्रकट नहीं कर रहे थे किन्तु उसे छिपाकर दाँतोंसे ओठ काटते हुए शत्रुपर प्रहार करते थे और उसीके साथ नीचे गिरते थे ॥४७॥ देवकुमारोंके समान तेजस्वी, महाभोगोंके भोगनेवाले और स्त्रियोंके शरीरसे लड़ाये हुए जो सुभट पहले महलोंके शिखरोंपर क्रीड़ा करते थे वे ही उस समय चक्र तथा कनक आदि शस्त्रोंसे खण्डित हो रणभूमिमें सो रहे थे, उनके शरीर विकृत हो गये थे तथा गीध और शियारोंके समूह उन्हें खा रहे थे ॥४८-४९॥ जिस प्रकार समागमकी इच्छा रखनेवाली स्त्री, नख क्षत देनेके अभिप्रायसे सोते हुए पतिके पास पहुँचती है उसी प्रकार नाखूनोंसे लोंचका अभिप्राय रखनेवाली शृगाली रणभूमिमें पड़े हुए किसी सुभटके पास पहुँच रही थी ॥५०॥ पास पहुँचनेपर उसके हलन-चलनको देख जब शृगालीको यह जान पड़ा कि यह तो जीवित है तब वह हड़बड़ाती हुई डरकर इस प्रकार भागी जिस प्रकार कि मन्त्रवादीके पाससे डाकिनी भागती है ॥५१॥ कोई एक यक्षिणी किसी शूरवीरको जीवित जानकर भयभीत हो धीरे-धीरे इस प्रकार भागी जिस प्रकार कि कोई व्यभिचारिणी पतिको जीवित जान शंकासे युक्त हो नेत्र चलाती हुई भाग जाती है ॥५२॥ युद्धभूमिमें किसीकी पराजय होती थी और किसीकी हार। इससे जीवोंके शुभ अशुभ कर्मोंका उदय वहाँ समान रूपसे प्रत्यक्ष ही दिखाई दे रहा था ॥५३॥ कितने ही सुभट पुण्य कर्मके सामर्थ्यसे अनेक शत्रुओंपर विजय प्राप्त करते थे और पूर्वभवमें पाप करनेवाले बहुतसे योद्धा पराजयको प्राप्त हो रहे थे ॥५४॥ जिन्होंने पूर्वपर्यायमें मत्सर भावसे पुण्य और

धर्मो रक्षति मर्माणि धर्मो जयति दुर्जयम् । धर्मः सहायते पथ्यः धर्मः पश्यति सर्वतः ॥५६॥
रथैरच्युतैर्दिव्यैरिभैर्भूधरसन्निभैः । अश्वैः पवनरंहोभिर्भूयैरसुरभासुरैः ॥५७॥
न शक्यो रक्षितुं [1]पूर्वसुकृतेनोज्झितो नरः । एको विजयते शत्रुं पुण्येन परिपालितः ॥५८॥
एवं संयति संवृत्ते प्रवीरभटसङ्कटे । योधा व्यवहिता योधैरवकाशं न लेभिरे ॥५९॥
उत्पतद्भिः पतद्भिश्च भटैरायुधभासुरैः । उत्पातघनसंक्षुब्धमिव जातं नभस्तलम् ॥६०॥
मारीचचन्द्रनिकरवज्राक्षशुकसारणैः । अन्यैश्च राक्षसाधीशैर्बलमुत्सारितं द्विषाम् ॥६१॥
श्रीशैलेन्दुमरीचिभ्यां नीलेन कुमुदेन च । तथा भूतस्वनाद्यैश्च विध्वस्तं रक्षसां बलम् ॥६२॥
कुन्दः कुम्भो निकुम्भश्च विक्रमः क्रमणस्तथा । श्रीजम्बुमालिवीरश्च सूर्यारी मकरध्वजः ॥६३॥
तथाऽशनिरथाद्याश्च राक्षसीया महानृपाः । उत्थिता हेतिनो योद्धुमेतेषां साधकाश्च ते ॥६४॥
भूधराचलसम्मेदविकालकुटिलाङ्गदाः । सुषेणकालचक्रोर्मितरङ्गाद्याः कपिध्वजाः ॥६५॥
तेषामभिमुखीभूता निजसाधारणोद्यताः । नालक्ष्यत भटः कश्चित्तदा प्रतिभटोज्झितः ॥६६॥
अञ्जनायाः सुतस्तस्मिन्नारूढो द्विपयोजितम् । रथं क्रीडति पद्माढ्ये सरसीव महागजः ॥६७॥
तेन श्रेणिक शूरेण रक्षसां सुमहद्बलम् । कृतमुन्मत्तकीभूतं यथोचितकारिणा ॥६८॥
एतस्मिन्नन्तरे क्रोधसङ्कदूषितलोचनः । प्राप्तो मयमहादैत्यः प्रजहार मरुत्सुतम् ॥६९॥
उद्धृत्य विशिखं सोऽपि पुण्डरीकनिभेक्षणः । शरवृष्टिभिरुग्राभिरकरोद्विरथं मयम् ॥७०॥

पाप दोनोंका मिश्रित रूपसे संचय किया था वे युद्धभूमिमें दूसरोंको जीतते थे और मृत्यु निकट आनेपर दूसरोंके द्वारा जीते भी जाते थे ॥५५॥ इससे जान पड़ता है कि धर्म ही मर्मस्थानोंकी रक्षा करता है, धर्म ही दुर्जेय शत्रुको जीतता है, धर्म ही सहायक होता है और धर्म ही सब ओरसे देख-रेख रखता है ॥५६॥ जो मनुष्य पूर्वभवके पुण्यसे रहित है। उसकी घोड़ोंसे जुते हुए दिव्य रथ, पर्वतके समान हाथी, पवनके समान वेगशाली घोड़े और असुरोंके समान देदीप्यमान पैदल सैनिक भी रक्षा नहीं कर सकते और जो पूर्वपुण्यसे रक्षित है वह अकेला ही शत्रुको जीत लेता है ॥५७-५८॥ इस प्रकार प्रचण्ड बलशाली योद्धाओंसे परिपूर्ण युद्धके होनेपर योद्धा, दूसरे योद्धाओंसे इतने पिछल जाते थे कि उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता था ॥५९॥ शस्त्रोंसे चमकते हुए कितने ही योद्धा ऊपरको उछल रहे थे और कितने ही मर-मर कर नीचे गिर रहे थे उनसे आकाश ऐसा हो गया था मानो उत्पातके मेघोंसे ही घिर गया हो ॥६०॥

अथानन्तर मारीच, चन्द्रनिकर, वज्राक्ष, शुक, सारण तथा अन्य राक्षस राजाओंने शत्रुओं की सेनाको पीछे हटा दिया ॥६१॥ तब हनूमान्, चन्द्ररश्मि, नील, कुमुद तथा भूतस्वन आदि वानरवंशीय राजाओंने राक्षसोंकी सेनाको नष्ट कर दिया ॥६२॥ तत्पश्चात् कुन्द, कुम्भ, निकुम्भ, विक्रम, श्रीजम्बूमाली, सूर्यारि, मकरध्वज तथा वज्ररथ आदि राक्षस पक्ष के बड़े-बड़े राजा तथा वेगशाली योद्धा उन्हें सहायता देनेके लिए खड़े हुए ॥६३-६४॥ तदनन्तर भूधर, अचल, संमेद, विकाल, कुटिल, अंगद, सुषेण, कालचक्र और ऊर्मितरङ्ग आदि वानर पक्षीय योद्धा, अपने पक्षके लोगोंको आलम्बन देनेके लिए उद्यत हो उनके सामने आये। उस समय ऐसा कोई योद्धा नहीं दिखाई देता था जो किसी प्रतिद्वन्दीसे रहित हो ॥६५-६६॥ जिस प्रकार कमलोंसे सहित सरोवरमें महागज क्रीड़ा करता है उसी प्रकार अंजनाका पुत्र हनूमान् हाथियोंसे जुते रथपर सवार हो उस युद्धभूमिमें क्रीड़ा कर रहा था ॥६७॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इच्छानुसार काम करनेवाले उस एक शूरवीरने राक्षसोंकी बड़ी भारी सेनाको उन्मत्त जैसा कर दिया—उसका होश गायब कर दिया ॥६८॥ इसी बीचमें क्रोधके कारण जिसके नेत्र दूषित हो रहे थे ऐसे महादैत्य मयने आकर हनूमान्पर प्रहार किया ॥६९॥ सो पुण्डरीकके समान नेत्रोंको धारण

---

१. पूर्वं सुकृतेनो म० ।

स रथान्तरमारुह्य पुनर्योद्धुं समुद्यतः । शीघ्रेण पुनस्तस्य मायकैर्दलितो रथः ॥७१॥
मयं विह्वलमालोक्य विद्यया बहुरूपया । रथं दशमुखः सृष्टं प्रहिणोतिस्म सत्वरम् ॥७२॥
स तं रथं समारुह्य नाम्ना प्रज्वलितोत्तमम् । सम्बाध्य विरथं चक्रे हनूमन्तं महाद्युतिः ॥७३॥
धावमानां समालोक्य वानरध्वजिनीं भटाः । जगुः प्राप्तमिदं नाम कृतास्यन्तविपर्ययम् ॥७४॥
[1]वार्तिं व्यस्त्रकृतं दृष्ट्वा वैरेहः समधावत । कृतो विस्यन्दनः सोऽपि मयेन शरवर्षिणा ॥७५॥
ततः किष्किन्धराजोऽस्य कुपितोऽवस्थितः पुरः । निरस्त्रोऽसावपि क्षोणीं तेन दैत्येन लम्भितः ॥७६॥
ततो मयं पुरस्कृत्य सुसंरब्धो विभीषणः । सयोरभूत् परं युद्धमन्योन्यशरतादितम् ॥७७॥
विभिन्नकवचं दृष्ट्वा कैकसीनन्दनं ततः । रक्ताशोकद्रुमच्छायं प्रसस्रुरुधिरस्रुतिम् ॥७८॥
निरीक्ष्योन्मत्तभूतं च परित्रस्तं पराङ्मुखम् । कपिध्वजबलं शीर्णं रामो योद्धुं समुद्यतः ॥७९॥
विद्याकेसरियुक्तं च रथमारुह्य सत्वरम् । मा भैर्येति सस्वानो दधाव विहसन्स्मितः ॥८०॥
सतडित्प्रावृडम्भोदघनसङ्घट्टसन्निभम् । विवेश परसैन्यं स बालार्कप्रतिमद्युतिः ॥८१॥
तस्मिन् परबलध्वंसं नरेन्द्रे कर्तुमुद्यते । वालिनैदेहसुग्रीवकैकसेया धृतिं ययुः ॥८२॥
शाखामृगबलं भूयः कर्तुं युद्धं समुद्यतम् । रामतो बलमासाद्य व्यक्तनिःशेषसाध्वसम् ॥८३॥
प्रहसे शस्त्रसम्पाते सुराणां रोमहर्षणे । लोकोऽन्य इव सम्प्राप्तस्तत्कालोकविवर्जितः ॥८४॥
ततः पद्मो मयं बाणैर्लग्नरङ्गादवितुं भृशम् । स्वल्पेनैव प्रयासेन वज्रीव चमरासुरम् ॥८५॥
मयं विह्वलितं दृष्ट्वा नितान्तं रामसायकैः । दधाव रावणः क्रुद्धः कृतान्त इव तेजसा ॥८६॥

करनेवाले हनूमान् ने भी बाण निकालकर तीक्ष्ण बाणवर्षासे मयको रथरहित कर दिया ॥७०॥ मयको विह्वल देख रावणने शीघ्र ही बहुरूपिणी विद्याके द्वारा निर्मित रथ उसके पास भेजा ॥७१॥ महाकान्तिके धारक मयने प्रज्वलितोत्तम नामक उस रथपर आरूढ़ हो हनूमान्के साथ युद्ध कर उसे रथरहित कर दिया ॥७२-७३॥ तब वानरोंकी सेना भाग खड़ी हुई। उसे भागती देख राक्षस पक्षके सुभट कहने लगे कि इसने जैसा किया ठीक उसके विपरीत फल प्राप्त कर लिया अर्थात् करनीका फल इसे प्राप्त हो गया ॥७४॥ तदनन्तर हनूमान्को शस्त्ररहित देख भामण्डल दौड़ा सो बाणवर्षा करनेवाले मयने उसे भी रथरहित कर दिया ॥७५॥ तदनन्तर किष्किन्धनगर का राजा सुग्रीव कुपित हो मयके सामने खड़ा हुआ सो मयने उसे भी शस्त्ररहित कर पृथिवीपर पहुँचा दिया ॥७६॥ तदनन्तर क्रोधसे भरे विभीषणने मयको आगे किया सो दोनोंमें परस्पर एक दूसरेके बाणोंको काटनेवाला महायुद्ध हुआ ॥७७॥ युद्ध करते-करते विभीषणका कवच टूट गया जिससे रुधिरकी धारा बहने लगी और वह फूले हुए अशोक वृक्षके समान लाल दिखने लगा ॥७८॥ सो विभीषणको ऐसा देख तथा वानरोंकी सेनाको विह्वल, भयभीत पराङ्मुख और बिखरी हुई देखकर राम युद्धके लिए उद्यत हुए ॥७९॥ वे विद्यामयी सिंहोंसे युक्त रथपर सवार हो 'डरो मत' यह शब्द करते तथा मुसकराते हुए शीघ्र ही दौड़े ॥८०॥ रावणकी सेना बिजली सहित वर्षाकालीन मेघोंकी सघन घटाके समान थी और राम प्रातःकालके सूर्यके समान कान्तिके धारक थे सो इन्होंने रावणकी सेनामें प्रवेश किया ॥८१॥ जब राम, शत्रु सेनाका संहार करनेके लिए उद्यत हुए तब हनूमान् भामण्डल, सुग्रीव और विभीषण भी धैर्यको प्राप्त हुए ॥८२॥ रामसे बल पाकर जिसका समस्त भय छूट गया था ऐसी वानरोंकी सेना पुनः युद्ध करनेके लिए प्रवृत्त हुई ॥८३॥ उस समय देवोंके रोमाञ्च उत्पन्न करनेवाले शस्त्रोंकी वर्षा होनेपर लोकमें अन्धकार छा गया और वह ऐसा लगने लगा मानो दूसरा ही लोक हो ॥८४॥ तदनन्तर राम, थोड़े ही प्रयाससे मयको बाणोंसे आच्छादित करनेके लिए उस तरह अत्यधिक तल्लीन हो गये जिस तरह कि चमरेन्द्रको बाणाच्छादित करनेके लिए इन्द्र तल्लीन हुआ था ॥८५॥ तदनन्तर रामके

१. हनुमन्तम् ।

अथ लक्ष्मणवीरेण भाषितः परमौजसा । प्रस्थितः क्व मया दृष्टो भवानद्यापि भो खग ॥८७॥
तिष्ठ तिष्ठ रणं यच्छ क्षुद्र तस्कर पापक । परस्त्रीदीपशलभ पुरुषाधम दुष्किय ॥८८॥
अद्य प्रकरणं तस्ते करोमि कृतसाहसम् । कुर्यान्नवापि यत्कुद्धः कृतान्तोऽपि कुमानसः ॥८९॥
अयं राघवदेवोऽद्य समस्तवसुधापतिः । चौरस्य ते वधं कर्तुं समादिशति धर्मधीः ॥९०॥
अवोचद्दशवदनः कोपी विंशत्यर्धाननस्ततः । मूढ ते किं न विज्ञातं लोके प्रख्यातमीदृशम् ॥९१॥
यद्वारु भूतले सारं किञ्चिद्द्रव्यं सुखावहम् । अर्हामि तद्दृढं राजा तत्रापि मयि शोभते ॥९२॥
न गजस्योचिता घण्टा सारमेयस्य शोभते । तदत्र का कथाऽद्यापि योग्यद्रव्यसमागमे ॥९३॥
रङ्कः भानुधमात्रेण चकितेक्षणविप्लवः । विधातुमसमानेन युद्धं दीनेन लज्ज्यते ॥९४॥
विप्रलब्धस्तथाप्येतैर्युद्धं चेत्कर्तुमर्हसि । प्रत्यक्षं काकलब्धोऽसि निर्वेदीवासि जीविते ॥९५॥
ततो लक्ष्मीधरोऽवोचद्वेत्सि त्वं यादृशः प्रभुः । अद्य ते गर्जितं पाप हरामि किमिहोदितैः ॥९६॥
इत्युक्तो रावणो बाणैः [1]सुबाणैः कैकेयीसुतम् । प्रावृषेण्यघनाकारो गिरिकल्पं निरुद्धवान् ॥९७॥
वज्रदण्डैः शरैस्तस्य विशल्यारमणः शरान् । अदृष्टचापसम्बन्धैरन्तराले व्यधारयत् ॥९८॥
छिन्नविपाटितैः घोरं गतैश्च विशिखोत्करैः । द्यौश्च भूमिश्च सञ्छन्ना विवेकपरिवर्जिता ॥९९॥
कैकयीसूनुना व्यक्तः कैकसीमन्युमः कृतः । माहेन्द्रमस्त्रमुत्सृष्टं चकार गगनासनम् ॥१००॥

बाणोंसे भयको विह्वल देख तेजसे यमकी तुलना करनेवाला रावण कुपित हो दौड़ा ॥८६॥ तब परम प्रतापी वीर लक्ष्मणने उससे कहा कि ओ विद्याधर ! कहाँ जा रहे हो ? मैं आज तुम्हें देख पाया हूँ ॥८७॥ रे क्षुद्र ! चोर ! पापी ! परस्त्रीरूपी दीपकपर भर मिटनेवाले शलभ ! नीच पुरुष ! दुश्चेष्ट ! खड़ा रह खड़ा रह मुझसे युद्धकर ॥८८॥ आज साहसपूर्वक तेरी वह दशा करता हूँ जिसे कुपित दुष्ट यम भी नहीं करेगा ? ॥८९॥ यह भी राघव देव समस्त पृथिवीके अधिपति हैं। धर्ममय बुद्धिको धारण करनेवाले इन्होंने तुझ चोरका वध करनेके लिए मुझे आज्ञा दी है ॥९०॥

तदनन्तर क्रोधसे भरे रावणने लक्ष्मणसे कहा कि अरे मूर्ख ! क्या तुझे यह ऐसी लोकप्रसिद्ध बात विदित नहीं है कि पृथिवीतलपर जो कुछ सुन्दर श्रेष्ठ और सुखदायक वस्तु है मैं ही उसके योग्य हूँ। यतश्च मैं राजा हूँ अतएव वह मुझमें ही शोभा पाती है अन्यत्र नहीं ॥९१-९२॥ हाथीके योग्य घण्टा कुत्ताके लिए शोभा नहीं देता। इसलिए योग्य द्रव्यका योग्य द्रव्यके साथ समागम हुआ इसकी आज भी क्या चर्चा करनी है ॥९३॥ तू एक साधारण मनुष्य है, चाहे जो बकनेवाला है, मेरी समानता नहीं रखता तथा अत्यन्त दीन है अतः तेरे साथ युद्ध करनेमें यद्यपि मुझे लज्जा आती है ॥९४॥ तथापि इन सबके द्वारा बहकाया जाकर यदि युद्ध करना चाहता है तो स्पष्ट है कि तेरे मरनेका काल आ पहुँचा है अथवा तू अपने जीवनसे मानो उदास हो चुका है ॥९५॥ तब लक्ष्मणने कहा कि तू जैसा प्रभु है मैं जानता हूँ। अरे पापी ! इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या ? मैं तेरी सब गर्जना अभी हरता हूँ ॥९६॥ इतना कहनेपर रावणने सनसनाते हुए बाणोंसे लक्ष्मणको इस प्रकार रोका जिस प्रकार कि वर्षाऋतुका मेघ किसी पर्वतको आ रोकता है ॥९७॥ इधरसे जिनका वज्रमयी दण्ड था तथा शीघ्रताके कारण जिन्होंने मानो धनुषका सम्बन्ध देखा ही नहीं था ऐसे बाणोंसे लक्ष्मणने उसके बाणोंको बीचमें ही नष्ट कर दिया ॥९८॥ उस समय टूटे-फूटे और चूर-चूर हुए बाणोंके समूहसे आकाश और भूमि भेदरहित हो गई थी ॥९९॥

तदनन्तर जब लक्ष्मणने रावणको शस्त्ररहित कर दिया तब उसने आकाशको व्याप्त करने-

---

१. लज्जते म० । २. स बाणैः म० । सुबाणैः सुशब्दैः इत्यर्थः ।

सम्प्रयुज्य समीरास्त्रमस्त्रक्रमविपश्चितः । सौमित्रिणा परिध्वंसं तत्कृतं क्षणमात्रतः ॥१०१॥
भूयः क्रोधेन संक्षुभ्यत्कुटिलाननतेजसा । रावणेनाग्नेयमस्त्रं क्षिप्तं ज्वलितसर्वदिक् ॥१०२॥
लक्ष्मीधरेण तत्रापि वारुणास्त्रप्रयोगतः । निर्वापितं निमेषेण स्थितं कार्यविवर्जितम् ॥१०३॥
कैकयेयस्ततः पापमस्त्रं क्षिप्तं रक्षसि । रक्षसा तच्च धर्मास्त्रप्रयोगेण निवारितम् ॥१०४॥
ततोऽस्त्रमिन्धनं नाम लक्ष्मणेन प्रयुज्यते । इन्धनेनैव तन्नीतं रावणेन हतार्थताम् ॥१०५॥
फलासारं विमुञ्चद्भिः प्रसूनपल्लवान्वितम् । गगनं वृक्षसंघातैरत्यन्तगहनीकृतम् ॥१०६॥
भूयस्तामसबाणौघैरन्धकारीकृतास्वरैः । लक्ष्मीधरकुमारेण छादितो राक्षसाधिपः ॥१०७॥
सहस्रकिरणास्त्रेण तामसास्त्रमपोह्य सः । प्रायुङ्क्त दन्दशूकास्त्रं विस्फुरत्फणमण्डलम् ॥१०८॥
ततस्ताार्क्ष्यसमाख्येन लक्ष्मणेन निराकृतम् । पन्नगास्त्रं नभश्चाभूद्धेमभासेव पूरितम् ॥१०९॥
संहाराम्बुदनिर्घोषमुरगास्त्रमथो पुनः । पद्मनाभानुजोऽमुञ्चद् विषाग्निकणदुःसहम् ॥११०॥
बर्हणास्त्रेण तद्धीरश्चिक्षेपेन्दुरसास्त्रवत् । प्रायोऽशक्यं दुरुत्सारमस्त्रं विघ्नविनायकम् ॥१११॥
विसृष्टे तत्र विघ्नास्त्रे वाञ्छितच्छेदकारिणि । प्रयोगे त्रिदशास्त्राणां लक्ष्मणो मोहमागमत् ॥११२॥
वज्रदण्डान् शरानेव विससर्ज स भूरिशः । रावणोऽपि शरैरेव स्वभावस्थैरयुध्यत ॥११३॥
आकर्णसंहतैर्बाणैरासीद्युद्धं तयोः समम् । लक्ष्मीभूत्रक्षसोर्घोरं त्रिपृष्ठयश्विकण्ठयोः ॥११४॥

वाला माहेन्द्र शस्त्र छोड़ा ॥१००॥ इधरसे शस्त्रोंका क्रम जाननेमें निपुण लक्ष्मणने पवन बाणका प्रयोगकर उसके उस माहेन्द्र शस्त्रको क्षणभरमें नष्ट कर दिया ॥१०१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! क्रोधसे जिसके मुखका तेज दमक रहा था ऐसे रावणने फिर आग्नेय बाण चलाया जिससे समस्त दिशाएँ देदीप्यमान हो उठीं ॥१०२॥ इधरसे लक्ष्मणने वारुणास्त्र चलाकर उस आग्नेय बाणको, वह कार्य प्रारम्भ करे कि उसके पूर्व ही निमेष मात्रमें, बुझा दिया ॥१०३॥ तदनन्तर लक्ष्मणने रावणपर पाप नामका शस्त्र छोड़ा सो उधरसे रावणने धर्म नामक शस्त्रके प्रयोगसे उसका निवारण कर दिया ॥१०४॥ तत्पश्चात् लक्ष्मणने इन्धन नामक शस्त्रका प्रयोग किया जिसे रावणने इन्धन नामक शस्त्रसे निरर्थक कर दिया ॥१०५॥ तदनन्तर रावणने फल और फूलोंकी वर्षा करनेवाले वृक्षोंके समूहसे आकाशको अत्यन्त व्याप्त कर दिया ॥१०६॥ तब लक्ष्मणने आकाशको अन्धकार युक्त करनेवाले तामसबाणोंके समूहसे रावणको आच्छादित कर दिया ॥१०७॥ तदनन्तर रावणने सहस्रकिरण अस्त्रके द्वारा तामस अस्त्रको नष्ट कर जिसमें फनोंका समूह उठ रहा था ऐसा दन्दशूक अस्त्र चलाया ॥१०८॥ तत्पश्चात् इधरसे लक्ष्मणने गरुड़बाण चलाकर उस दन्दशूक अस्त्रका निराकरण कर दिया जिससे आकाश ऐसा हो गया मानो स्वर्णकी कान्तिसे ही भर गया हो ॥१०९॥ तदनन्तर लक्ष्मणने प्रलयकालके मेघके समान शब्द करनेवाला तथा विषरूपी अग्निके कणोंसे दुःसह उरगास्त्र छोड़ा ॥११०॥ जिसे धीर वीर रावणने बर्हणास्त्रके प्रयोगसे दूर कर दिया और उसके बदले जिसका दूर करना अशक्य था ऐसा विघ्नविनाशक नामका शस्त्र छोड़ा ॥१११॥ तदनन्तर इच्छित वस्तुओंमें विघ्न डालनेवाले उस विघ्नविनाशक शस्त्रके छोड़नेपर लक्ष्मण देवोपनीत शस्त्रोंके प्रयोग करनेमें मोहको प्राप्त हो गये अर्थात् उसे निवारण करनेके लिए कौन शस्त्र चलाना चाहिये इसका निर्णय नहीं कर सके ॥११२॥ तब वे केवल वज्रमय दण्डोंसे युक्त बाणोंको ही अधिक मात्रामें चलाते रहे और रावण भी उस दशामें स्वाभाविक बाणोंसे ही युद्ध करता रहा ॥११३॥ उस समय लक्ष्मण और रावणके बीच कान तक खिंचे बाणोंसे ऐसा भयंकर युद्ध हुआ जैसा कि पहले त्रिपृष्ठ और अश्वग्रीवमें हुआ था ॥११४॥

---

१. विघ्नमनायकम् म० ।

उपजातिवृत्तम्

कर्मण्युपेतेऽभ्युदयं पुराणे संप्रेरके सत्यतिदारुणार्द्धे ।
तस्योचितं प्राप्तफलं मनुष्याः क्रियापवर्गप्रकृतं भजन्ते ॥११५॥
उदारसंरम्भवशंप्रपन्नाः प्रारब्धकार्यार्थनियुक्तचित्ताः ।
नरा न तीव्रं गणयन्ति शस्त्रं न पावकं नैव रविं न वायुम् ॥११६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रावण-लक्ष्मणयुद्धवर्णनाभिधानं नाम चतुःसप्ततितमं पर्व ॥७४॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि जब प्रेरणा देनेवाले पूर्वोपार्जित पुण्य-पापकर्म उदयको प्राप्त होते हैं तब मनुष्य उन्हींके अनुरूप कार्यको सिद्ध अथवा असिद्ध करनेवाले फलको प्राप्त होते हैं ॥११५॥ जो अत्यधिक क्रोधकी अधीनताको प्राप्त हैं और जिन्होंने अपना चित्त प्रारम्भ किये हुए कार्यकी सिद्धिमें लगा दिया है ऐसे मनुष्य न तीव्र शस्त्रको गिनते हैं, न अग्निको गिनते हैं, न सूर्यको गिनते हैं और न वायुको ही गिनते हैं ॥११६॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें रावण और लक्ष्मणके युद्धका वर्णन करनेवाला चौहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७४॥

पंचसप्ततितमं पर्व

खिन्नाभ्यां दीयते स्वादु जलं ताभ्यां सुशीतलम् । महातर्षाभिभूताभ्यामयं हि समरे विधिः ॥१॥
अमृतोपममन्नं च क्षुधाक्लपनमोयुषोः । गोशीर्षचन्दनं स्वेदसंगिनोर्ह्लादकारणम् ॥२॥
तालवृन्तादिवातश्च हिमवारिकणो रणे । क्रियते तत्परैः कार्यं तथान्यदपि पार्श्वगैः ॥३॥
तथा तयोस्तथाऽन्येषामपि स्वपरवर्गतः । इति कर्तव्यतासिद्धिः सकला प्रतिपद्यते ॥४॥
दशाहोऽतिगतस्तीव्रमेतयोर्युध्यमानयोः । बलिनोर्भङ्गनिर्मुक्तचित्तयोरतिवीर्ययोः ॥५॥
रावणेन समं युद्धं लक्ष्मणस्य बभूव यत् । लक्ष्मणेन समं युद्धं रावणस्य बभूव यत् ॥६॥
यक्षकिन्नरगन्धर्वाप्सरसो विस्मयं गताः । साधुशब्दविमिश्राणि पुष्पवर्षाणि चिक्षिपुः ॥७॥
चन्द्रवर्धननाम्नोऽथ विद्याधरजनप्रभोः । अष्टौ दुहितरो व्योम्नि विमानशिखरस्थिताः ॥८॥
अप्रमत्तैर्महाशङ्कैः कृतैरक्षामहत्तरैः । पृष्टाः संगतिमेताभिरप्सरोभिः कुतूहलात् ॥९॥
का यूयं देवताकारा भक्तिं लक्ष्मणसुन्दरे । दर्शना इव वर्तध्वे सुकुमारशरीरिकाः ॥१०॥
सलज्जा इव ता ऊचुः श्रूयतां यदि कौतुकम् । नैदेहीवरणे पूर्वमस्माभिः सहितः पिता ॥११॥
आसीद्धृतः तदास्थानं राज्ञां कौतुकचोदितः । दृष्ट्वा च लक्ष्मणं तत्र ददावस्मै धियैव नः ॥१२॥
ततोऽधिगम्य मात्रातो वृत्तमेतन्निवेदितम् । दर्शनादेव चाऽऽलम्ब्य मनस्येव व्यवस्थितः ॥१३॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! युद्धकी यह विधि है कि दोनों पक्षके खेदखिन्न तथा महाश्वाससे पीड़ित मनुष्योंके लिए मधुर तथा शीतल जल दिया जाता है। क्षुधासे दुखी मनुष्योंके लिए अमृततुल्य भोजन दिया जाता है। पसीनासे युक्त मनुष्योंके लिए आह्लादका कारण गोशीर्ष चन्दन दिया जाता है। पङ्खे आदिसे हवाकी जाती है। बर्फके जलके छींटे दिये जाते हैं तथा इनके सिवाय जिसके लिए जो कार्य आवश्यक हो उसकी पूर्ति समीपमें रहनेवाले मनुष्य तत्परताके साथ करते हैं। युद्धकी यह विधि जिस प्रकार अपने पक्षके लोगोंके लिए है उसी प्रकार दूसरे पक्षके लोगोंके लिए भी है। युद्धमें निज और परका भेद नहीं होता। ऐसा करनेसे ही कर्तव्यकी समग्र सिद्धि होती है ॥१-४॥

तदनन्तर जिनके चित्तमें हारका नाम भी नहीं था तथा जो अतिशय बलवान् थे ऐसे प्रचण्ड वीर लक्ष्मण और रावणको युद्ध करते हुए दश दिन बीत गये ॥५॥ लक्ष्मणका जो युद्ध रावणके साथ हुआ था वही युद्ध रावणका लक्ष्मणके साथ हुआ था अर्थात् उनका युद्ध उन्हींके समान था ॥६॥ उनका युद्ध देख यक्ष किन्नर गन्धर्व तथा अप्सराएँ आदि आश्चर्यको प्राप्त हो धन्यवाद देते और उनपर पुष्पवृष्टि छोड़ते थे ॥७॥ तदनन्तर चन्द्रवर्धन नामक विद्याधर राजाकी आठ कन्याएँ आकाशमें विमानकी शिखरपर बैठी थीं ॥८॥ महती आशंकासे युक्त बड़े-बड़े प्रतीहारी सावधान रहकर जिनकी रक्षा कर रहे थे ऐसी उन कन्याओंसे समागमको प्राप्त हुई अप्सराओंने कुतूहलवश पूछा कि आपलोग देवताओंके समान आकारको धारण करनेवाली तथा सुकुमार शरीरसे युक्त कौन हैं ? ऐसा जान पड़ता है मानो लक्ष्मणमें आपलोग अधिक भक्ति धारण कर रही हैं ॥९-१०॥ तब वे कन्याएँ लज्जित होती हुई बोलीं कि यदि आपको कौतुक है तो सुनिये। पहले जब सीताका स्वयंवर हो रहा था तब हमारे पिता हमलोगोंके साथ कौतुकसे प्रेरित हो सभामण्डपमें गये थे वहाँ लक्ष्मणको देखकर उन्होंने हमलोगोंको उन्हें देनेका संकल्प किया था ॥११-१२॥ वहाँसे आकर यह वृत्तान्त पिताने माताके लिए कहा और

१. हृदि म० । २. कृतरक्षमहत्तरैः म० ।

सोऽयं महति संग्रामे वर्त्तते संशयावहे । भविष्यति कथं खेतदिति विद्मो न दुःखिताः ॥१४॥
अस्य मानवचन्द्रस्य हृदयेशस्य या गतिः । लक्ष्मीधरकुमारस्य सैवास्माभिर्विनिश्चिता ॥१५॥
मनोहरमिदं सासां श्रुत्वा तद्वचनं ततः । चक्षुरूर्ध्वं नियुञ्जानो लक्ष्मणस्ता व्यलोकत ॥१६॥
तद्दर्शनात्परं प्राप्ताः प्रमोदं ताः सुकन्यकाः । सिद्धार्थः सर्वथा नाथ भवेत्युच्चिरन् स्वनम् ॥१७॥
सिद्धार्थशब्दनाश्चरमात् स्मृत्वा विहसिताननः । अस्त्रं सिद्धार्थनामानं लक्ष्मणः कृतिनां गतः ॥१८॥
स सिद्धार्थमहास्त्रेण क्षिप्रं विघ्नविनायकम् । अस्त्रमस्तगतं कृत्वा सुदीप्तं योद्धुमुद्यतः ॥१९॥
गृह्णाति रावणो यद्यदस्त्रं शस्त्रविशारदः । छिनत्ति लक्ष्मणस्तत्तत्परमास्त्रविशारदः ॥२०॥
ततः पतत्रिसंघातैरस्य पत्रीन्द्रकेतुना । सर्वा दिशः परिच्छन्ना जीमूतैरिव भूभृतः ॥२१॥
ततो भगवतीं विद्यां बहुरूपविधायिनीम् । प्रविश्य रक्षसामीशः समरक्रीडनं श्रितः ॥२२॥
लक्ष्मीधरशरैस्तीक्ष्णैः शिरो लङ्केशपुरीप्रभोः । छिन्नं छिन्नमभूद्भूयः श्रीमत्कुण्डलमण्डितम् ॥२३॥
एकस्मिन् शिरसिच्छिन्ने शिरोद्वयमजायत । तयोरुत्कृत्तयोर्वृद्धिं शिरांसि द्विगुणां ययुः ॥२४॥
निकृत्ते बाहुयुग्मे च जज्ञे बाहुचतुष्टयम् । तस्मिन् छिन्ने ययौ वृद्धिं द्विगुणा बाहुसन्ततिः ॥२५॥
सहस्रैरुत्तमाङ्गानां[1] भुजानां चातिभूरिभिः । पद्मखण्डैरगण्यैश्च ज्ञायते रावणो वृतः ॥२६॥
मदकरिकराकारैः करैः केयूरभूषितैः । शिरोभिश्चाभवत्पूर्णं शस्त्ररश्मिपिञ्जरम् ॥२७॥

उससे हमलोगोंको विदित हुआ। साथ ही स्वयंवरमें जबसे हमलोगोंने इसे देखा था तभीसे यह हमारे मनमें स्थित था ॥१३॥ यही लक्ष्मण इस समय जीवन-मरणके संशयको धारण करनेवाले इस महासंग्राममें विद्यमान है। सो संग्राममें क्या कैसा होगा यह हमलोग नहीं जानतीं इसीलिए दुःखी हो रही हैं ॥१४॥ मनुष्योंमें चन्द्रमाके समान इस हृदयवल्लभ लक्ष्मणकी जो दशा होगी वही हमारी होगी ऐसा हम सबने निश्चित किया है ॥१५॥

तदनन्तर उन कन्याओंके मनोहर वचन सुन लक्ष्मणने ऊपरकी ओर नेत्र उठाकर उन्हें देखा ॥१६॥ लक्ष्मणके देखनेसे वे उत्तम कन्याएँ परम प्रमोदको प्राप्त हो इस प्रकारके शब्द बोलीं कि हे नाथ ! तुम सब प्रकारसे सिद्धार्थ होओ—तुम्हारी भावना सब तरह सिद्ध हो ॥१७॥ उन कन्याओंके मुखसे सिद्धार्थ शब्द सुनकर लक्ष्मणको सिद्धार्थ नामक अस्त्रका स्मरण आ गया जिससे उनका मुख खिल उठा तथा वे कृतकृत्यताको प्राप्त हो गये ॥१८॥ फिर क्या था, शीघ्र ही सिद्धार्थ महास्त्रके द्वारा रावणके विघ्नविनाशक अस्त्रको नष्टकर लक्ष्मण बड़ी तेजीसे युद्ध करनेके लिए उद्यत हो गये ॥१९॥ शस्त्रोंके चलानेमें निपुण रावण जिस-जिस शस्त्रको ग्रहण करता था परमास्त्रोंके चलानेमें निपुण लक्ष्मण उसी-उसी शस्त्रको काट डालता था॥२०॥ तदनन्तर ध्वजामें पक्षिराज—गरुडका चिह्न धारण करनेवाले लक्ष्मणके बाणसमूहसे सब दिशाएँ इस प्रकार व्याप्त हो गईं जिस प्रकार कि मेघोंसे पर्वत व्याप्त हो जाते हैं ॥२१॥

तदनन्तर रावण भगवती बहुरूपिणी विद्यामें प्रवेश कर युद्ध-क्रीड़ा करने लगा ॥२२॥ यही कारण था कि उसका शिर यद्यपि लक्ष्मण के तीक्ष्ण बाणों से बार-बार कट जाता था तथापि वह बार-बार देदीप्यमान कुण्डलोंसे सुशोभित हो उठता था॥२३॥एक शिर कटता था तो दो शिर उत्पन्न हो जाते थे और दो कटते थे तो उससे दुगुनी वृद्धिको प्राप्त हो जाते थे ॥२४॥ दो भुजाएँ कटती थीं तो चार हो जाती थीं और चार कटती थीं उससे दूनी हो जाती थीं ॥२५॥ हजारों शिरों और अत्यधिक भुजाओंसे घिरा हुआ रावण ऐसा जान पड़ता था मानो अगणित कमलोंके समूहसे घिरा हो ॥२६॥ हाथीकी सूँडके समान आकारसे युक्त तथा बाजूबन्दसे सुशोभित भुजाओं और शिरोंसे भरा आकाश शस्त्र तथा रत्नोंकी किरणोंसे पिञ्जर वर्ण हो गया ॥२७॥

१. शिरसाम् ।

शिरोग्राहसहस्रोग्रस्तुंगबाहुतरंगभृत् । अवर्द्धत महाभीमो राक्षसाधिपसागरः ॥२८॥
बाहुसंदाभिनादण्डप्रचण्डो घोरनिस्वनः । शिरःशिखरसंघातैर्वर्द्धते रावणाम्बुदः ॥२९॥
बाहुमस्तकसंघट्टनिःस्वनच्छत्रभूषणः । महासैन्यसमानोऽभूदेकोऽपि त्रिकुकुप्पतिः ॥३०॥
पुराऽनेकेन युद्धोऽहमधुनैकाकिनाऽमुना । युद्धे कथमितीवायं लक्ष्मणेन बहूकृतः ॥३१॥
रत्नशस्त्रांशुसंघातकरजालप्रदीपितः । सज्वालो राक्षसार्धीशो दह्यमानवनोपमः ॥३२॥
चक्रेषुशक्तिकुन्तादिशस्त्रवर्षेण रावणः । सस्मरच्छादयितुं बाहुसहस्रैरपि लक्ष्मणम् ॥३३॥
लक्ष्मणोऽपि परं क्रुद्धो विषादपरिवर्जितः । अर्कतुण्डैः शरैः शत्रुं प्रच्छादयितुमुद्यतः ॥३४॥
एकं द्वे त्रीणि चत्वारि पञ्च षड् दश विंशतिः । शतं सहस्रमयुतं चिच्छेदारिशिरांसि सः ॥३५॥
शिरःसहस्रसंछन्नं पतद्भिः सह बाहुभिः । सोल्कादण्डं पतज्ज्योतिश्चक्रमासीद्विहायसम् ॥३६॥
सबाहुमस्तकच्छन्ना रणक्षोणी निरन्तरम् । सनागभोगराजीवखण्डशोभामधारयत् ॥३७॥
समुत्पन्नं समुत्पन्नं शिरोबाहुकदम्बकम् । रक्षसो लक्ष्मणोच्छित्तकर्मेव मुनिपुङ्गवः ॥३८॥
गलद्रुधिरधाराभिः सन्ततासिः समाकुलम् । वियत्सन्ध्याविनिर्माणं समुद्भूतमिवापरम् ॥३९॥
असंख्यातभुजः शत्रुर्लक्ष्मणेन द्विबाहुना । महानुभावयुक्तेन कृतो निष्फलविग्रहः ॥४०॥
निरुच्छ्वासाननः स्वेदबिन्दुजालचिताननः । सत्वघातोकुलस्वांगः संभूतो रावणः क्षणम् ॥४१॥
तावच्छ्रेणिक निर्वृत्ते तस्मिन्संखेदतीव्रके । स्वभावात्स्थितो भूत्वा रावणः क्रोधदीपितः ॥४२॥

जो शिररूपी हजारों मगरमच्छोंसे भयंकर था तथा भुजाओं रूपी ऊँची-ऊँची तरङ्गोंको धारण करता था ऐसा रावणरूपी महाभयंकर सागर उत्तरोत्तर बढ़ता जाता था ॥२८॥ अथवा जो भुजारूपी विशाल दण्डोंसे प्रचण्ड था और भयंकर शब्द कर रहा था ऐसा रावणरूपी मेघ शिररूपी शिखरोंके समूहसे बढ़ता जाता था ॥२९॥ भुजाओं और मस्तकोंके संघटनसे जिसके छत्र तथा आभूषण शब्द कर रहे थे ऐसा रावण एक होने पर भी महासेनाके समान जान पड़ता था ॥३०॥ 'मैंने पहले अनेकोंके साथ युद्ध किया है अब इस अकेलेके साथ क्या करूँ' यह सोच कर ही मानो लक्ष्मणने उसे अनेक रूप कर लिया था ॥३१॥ आभूषणोंके रत्न तथा शस्त्र समूह की किरणोंको देदीप्यमान रावण जलते हुए वनके समान हो गया था ॥३२॥ रावण अपनी हजारों भुजाओंके द्वारा चक्र, बाण, शक्ति तथा भाले आदि शस्त्रोंकी वर्षासे लक्ष्मणको आच्छादित करनेमें लगा था ॥३३॥ और क्रोधसे भरे तथा विषादसे रहित लक्ष्मण भी सूर्यमुखी बाणोंसे शत्रुको आच्छादित करनेमें झुके हुए थे ॥३४॥ उन्होंने शत्रुके एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, दश, बीस, सौ, हजार तथा दश हजार शिर काट डाले ॥३५॥ हजारों शिरोंसे व्याप्त तथा पड़ती हुई भुजाओंसे युक्त आकाश, उस समय ऐसा हो गया था मानो उल्कादण्डोंसे युक्त तथा जिसमें तारा मण्डल गिर रहा है ऐसा हो गया था ॥३६॥ उस समय भुजाओं और मस्तकसे निरन्तर आच्छादित युद्धभूमि सर्पोंके फणासे युक्त कमल समूहकी शोभा धारण कर रही थी ॥३७॥ उसके शिर और भुजाओंका समूह जैसा जैसा उत्पन्न होता जाता था लक्ष्मण वैसा वैसा ही उसे उस प्रकार काटता जाता था जिस प्रकार कि मुनिराज नये नये बँधते हुए कर्मोंको काटते जाते हैं ॥३८॥ निकलते हुए रुधिरकी लम्बी चौड़ी धाराओंसे व्याप्त आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो जिसमें संध्याका निर्माण हुआ है ऐसा दूसरा ही आकाश उत्पन्न हुआ हो ॥३९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि देखो, महानुभावसे युक्त द्विबाहु लक्ष्मणने असंख्यात भुजाओंके धारक रावण को निष्फल शरीरका धारक कर दिया ॥४०॥ देखो, पराक्रमी रावण क्षण भरमें क्यासे क्या हो गया ? उसके मुखसे श्वास निकलना बंद हो गया, उसका मुख पसीनाकी बूंदोंके समूहसे व्याप्त हो गया और उसका समस्त शरीर आकुल-व्याकुल हो गया ॥४१॥ हे श्रेणिक ! जब तक वह

१. शक्त म० । २. सत्वघाताकुलस्वाङ्गः म० ।

युगावसानमध्याह्नसहस्रकिरणप्रभम् । परपक्षक्षयोद्वेशैकरसमचिन्तयत् ॥४३॥
अप्रमेयप्रभाजालं मुक्ताजालपरिष्कृतम् । स्वयंप्रभास्वरं दिव्यं वज्रतुण्डं महाद्भुतम् ॥४४॥
नानारत्नपरीताङ्गं दिव्यमालानुलेपनम् । अग्निप्राकारसङ्काशैनाराभण्डलदीधितिं ॥४५॥
वैडूर्यारसहस्रेण युक्तं दुर्दर्शनदुःसहम् । सदा यक्षसहस्रेण कृतरक्षं प्रयत्नसः ॥४६॥
महासंरंभसंबद्धकृतान्तानन्तसन्निभम् । चिन्तानन्तरमेतस्य चक्रं सन्निहितं करे ॥४७॥
कृतस्तत्र प्रभास्त्रेण निष्प्रभो ज्योतिषां पतिः । चित्रार्पितरविच्छायमात्रशेषो व्यवस्थितः ॥४८॥
गन्धर्वाऽप्सरसो विश्वावसुतुम्बुरुनारदाः । परित्यज्य रणप्रेक्षां गताः क्वापि विमोहिकाः ॥४९॥
मर्तव्यमिति निश्चित्य तथाप्यत्यन्तधीरधीः । शत्रुं तथाविधं वीक्ष्य पद्मनाभानुजोऽवदत् ॥५०॥
सङ्कटेनामुना किं त्वं स्थितोऽस्येवं कदर्थवत् । शक्तिश्चेदस्ति ते काचित्प्रहरस्व नराधम ॥५१॥
इत्युक्तः परमं कुद्धो दन्तदष्टरदच्छदः । मण्डलीकृतविस्फारिप्रभापटललोचनः ॥५२॥
क्षुब्धमेवकुलस्वान्तं प्रभञ्जन सुमहाजवम् । चिक्षेप रावणश्चक्रं जनसंशयकारणम् ॥५३॥
दृष्ट्वाऽभिमुखमायच्छत्प्रलयार्कसंनिभम् । निवारयितुमुद्युक्तो वज्रावर्तेन कार्मुकम् शरैः ॥५४॥
वज्रावर्तेन पद्माभो धनुषा वेगशालिना । हलेन भीमरोषेण भ्रामितेनान्यबाहुना ॥५५॥

अत्यन्त भयंकर युद्ध होता है तब तक क्रोधसे प्रदीप्त रावणने कुछ क्षोभायमान हो कर उस चक्र रत्नका चिन्तवन किया जो कि प्रलयकालीन मध्याह्नके सूर्यके समान प्रभापूर्ण था तथा शत्रु पक्षका क्षय करनेमें उन्मत्त था ॥४२-४३॥

तदनन्तर-जो अपरिमित कान्तिके समूहका धारक था, मोतियोंकी झालरसे युक्त था, स्वयं देदीप्यमान था, दिव्य था, वज्रमय मुखसे सहित था, महा अद्भुत था, नाना रत्नोंसे जिसका शरीर व्याप्त था, दिव्य मालाओं और विलेपनसे सहित था, जिसकी धारोंकी मण्डलाकार किरणें अग्निके कोटके समान जान पड़ती थीं, जो वैडूर्यमणिनिर्मित हजार आरोंसे सहित था, जिसका देखना कठिन था, हजार यक्ष जिसकी सदा प्रयत्न पूर्वक रक्षा करते थे, और जो प्रलय काल सम्बद्ध यमराजके मुखके समान था ऐसा चक्र, चिन्ता करते ही उसके हाथमें आ गया ॥४४-४७॥ उस प्रभापूर्ण दिव्य अस्त्रके द्वारा सूर्य प्रभा हीन कर दिया गया जिससे वह चित्रलिखित सूर्य के समान कान्ति मात्र है शेष जिसमें ऐसा रह गया ॥४८॥ गन्धर्व, अप्सराएं, विश्वावसु, तुम्बुरु, और नारद युद्धका देखना छोड़ गायन भूल कर कहीं चले गये ॥४९॥ 'अब तो मरना ही होगा' ऐसा निश्चय यद्यपि लक्ष्मणने कर लिया था तथापि वे अत्यन्त धीर बुद्धिके धारक हो उस प्रकारके शत्रुकी ओर देख जोरसे बोले कि रे नराधम ! इस चक्रको पाकर भी कृपणके समान इस तरह क्यों खड़ा है यदि कोई शक्ति है तो प्रहार कर ॥५०-५१॥ इतना कहते ही जो अत्यन्त कुपित हो गया था, जो दांतोंसे ओठको डश रहा था, तथा जिसके नेत्रोंसे मण्डलाकार विशाल कान्तिका समूह निकल रहा था ऐसे रावणने घुमा कर चक्ररत्न छोड़ा। वह चक्ररत्न क्षोभको प्राप्त हुए मेघमण्डलके समान भयंकर शब्द कर रहा था, महावेगशाली था, और मनुष्योंके संशयका कारण था ॥५२-५३॥

तदनन्तर प्रलय कालके सूर्यके समान सामने आते हुए उस चक्ररत्नको देख कर लक्ष्मण वज्रमुखी बाणोंसे उसे रोकनेके लिए उद्यत हुए ॥५४॥ रामचन्द्रजी एक हाथसे वेगशाली वज्रावर्त नामक धनुषसे और दूसरे हाथ से घुमाये हुए तीक्ष्णमुख हलसे, अत्यधिक क्षोभको धारण करने वाला सुग्रीव गदासे, भामण्डल तीक्ष्ण तलवारसे, विभीषण शत्रुका विघात करने वाले

१. किरणप्रभः म०, क० । २. छविश् म०, क० । ३. संकाशं धारामण्डलदीधितिं म० । ४. संबंध म० । ५. प्रभास्त्रेण ज०, क० । ६. ऽस्यैवं म० । ७. क्षोभयोत्रेण क० । ८. भ्राम्यते नान्यबाहुना म० ।

संभ्रमं परमं विभ्रत्सुग्रीवो गदया तदा । मण्डलाग्रेण तीक्ष्णेन प्रभामण्डलसुन्दरः ॥५६॥
अरातिप्रतिकूलेन शूलेनासौ विभीषणः । उल्कामुद्गरलांगूलकनकाद्यैर्मरुत्सुतः ॥५७॥
अंगदः परिघेनाङ्गः कुठारेणोरुतेजसा । शेषा अपि तथा शेषैः शस्त्रैः खेचरपुङ्गवाः ॥५८॥
एकीभूय समुद्युक्ता अपि जीवितनिःस्पृहाः । ते निवारयितुं शेकुर्न तच्चिदशपालितम् ॥५९॥
तेनाऽऽगत्य परीत्य त्रिर्विनयस्थैः सरक्षकम् । सुखं शान्तवपुः स्वैरं लक्ष्मणस्य करे स्थितम् ॥६०॥

उपजातिवृत्तम्

माहात्म्यमेतत्सुसमासतस्ते निवेदितं कर्तृ सुविस्मयस्य ।
रामस्य नारायणसङ्गतस्य महर्द्धिकं श्रेणिक ! लोकतुङ्गम् ॥६१॥
एकस्य पुण्योदयकालभाजः सञ्जायते नुः परमा विभूतिः ।
पुण्यक्षयेऽन्यस्य विनाशयोगश्चन्द्रोऽभ्युदेत्येति रविर्यथाऽस्तम् ॥६२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे चक्ररत्नोत्पत्तिवर्णनं नाम पञ्चसप्ततितमं पर्व ॥७५॥

त्रिशूलसे, हनूमान् उल्का, मुद्गर, लाङ्गूल तथा कनक आदिसे, अङ्गद परिघसे, अङ्ग अत्यन्त तीक्ष्ण कुठारसे और अन्य विद्याधर राजा भी शेष अस्त्र-शस्त्रोंसे एक साथ मिल कर जीवनकी आशा छोड़ उसे रोकनेके लिए उद्यत हुए पर वे सब मिलकर भी इन्द्रके द्वारा रक्षित उस चक्ररत्नको रोकनेमें समर्थ नहीं हो सके ॥५४-५९॥ इधर रामकी सेनामें व्यग्रता बढ़ी जा रही थी पर भाग्य की बात देखो कि उसने आकर लक्ष्मणकी तीन प्रदक्षिणाएं दीं, उसके सब रक्षक विनयसे खड़े हो गये, उसका आकार सुखकारी तथा शान्त हो गया और वह स्वेच्छासे लक्ष्मणके हाथमें आकर रुक गया ॥६०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! मैंने तुझे राम-लक्ष्मणका यह अत्यन्त आश्चर्यको करने वाला महा विभूतिसे सम्पन्न एवं लोकश्रेष्ठ माहात्म्य संक्षेपसे कहा है ॥६१॥ पुण्योदयके कालको प्राप्त हुए एक मनुष्यके परम विभूति प्रकट होती है तो पुण्यका क्षय होने पर दूसरे मनुष्यके विनाशका योग उपस्थित होता है । जिस प्रकार कि चन्द्रमा उदित होता है और सूर्य अस्तको प्राप्त होता है ॥६२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें लक्ष्मणके चक्ररत्नकी उत्पत्तिका वर्णन करने वाला पचहत्तरवां पर्व पूर्ण हुआ ॥७५॥

---

१. पारदेनांगः म० । २. स्थितिरक्षकम् म० । ३. करस्थितम् म० । ४. पुरुषस्य ।

षट्सप्ततितमं पर्व

उत्पन्नचक्ररत्नं तं वीक्ष्य लक्ष्मणसुन्दरम् । हृष्टा विद्याधराधीशाश्चक्रुरित्यभिनन्दनम् ॥१॥
ऊचुश्चासीत् समादिष्टः पुरा भगवता तदा । नाथेनानन्तवीर्येण योऽष्टमः कृष्णतायुजाम् ॥२॥
जातो नारायणः सोऽयं चक्रपाणिर्महाद्युतिः । अत्युत्तमवपुः श्रीमान् न शक्यो बलवर्णने ॥३॥
अयं च बलदेवोऽसौ रथं यस्य वहन्त्यमी । उद्वृत्तकेसरसटाः सिंहा भास्करभासुराः ॥४॥
नीतो मयमहादैत्यो येन बन्दिगृहं रणे । हलरत्नं करे यस्य भृशमेतद्विराजते ॥५॥
रामनारायणावेतौ तौ जातौ पुरुषोत्तमौ । पुण्यानुभावयोगेन परमप्रेमसङ्गतौ ॥६॥
लक्ष्मणस्य स्थितं पाणौ समालोक्य सुदर्शनम् । रक्षसामधिपश्चिन्तायोगमेवमुपागतः ॥७॥
वन्द्येनानन्तवीर्येण दिव्यं यद्वापितं तदा । ध्रुवं तदिदमायातं कर्मानिलसमीरितम् ॥८॥
यस्यातपत्रमालोक्य सन्त्रस्ताः खेचराधिपाः । भङ्गं प्रापुर्महासैन्याः पर्वस्तच्चक्रकेतनाः ॥९॥
आकूपारपयोवासा हिमवद्विन्ध्यसुस्तना । दासीवाज्ञाकरी यस्य त्रिखण्डवसुधाभवत् ॥१०॥
सोऽहं भूगोचरेणाजौ जेतुमालोचितः कथम् । कष्टेयं वर्त्ततेऽवस्था पश्यताद्भुतमीदृशम् ॥११॥
धिगिमां नृपतेर्लक्ष्मीं कुलटासमचेष्टिताम् । भक्तुमेकपदे पापान् त्यजन्तीं चिरसंस्तुताम् ॥१२॥
किम्पाकफलवद्भोगा विपाकविरसा भृशम् । अनन्तदुःखसम्बन्धकारिणः साधुगर्हिताः ॥१३॥

अथानन्तर जिन्हें चक्ररत्न उत्पन्न हुआ था ऐसे लक्ष्मण सुन्दरको देख कर विद्याधर राजाओंने हर्षित हो उनका इस प्रकार अभिनन्दन किया ॥१॥ वे कहने लगे कि पहले भगवान् अनन्तवीर्य स्वामीने जिस आठवें नारायणका कथन किया था यह वही उत्पन्न हुआ है। चक्ररत्न इसके हाथमें आया है। यह महाकान्तिमान्, अत्युत्तम शरीरका धारक और श्रीमान् है तथा इसके बलका वर्णन करना अशक्य है ॥२-३॥ और यह राम, आठवां बलभद्र है जिसके रथको खड़ी जटाओंको धारण करने वाले तथा सूर्यके समान देदीप्यमान सिंह खींचते हैं ॥४॥ जिसने रणमें मय नामक महादैत्यको बन्दीगृहमें भेजा था तथा जिसके हाथमें यह हल रूपी रत्न अत्यन्त शोभा देता है ॥५॥ ये दोनों ही पुरुषोत्तम पुण्यके प्रभावसे बलभद्र और नारायण हुए हैं तथा परम प्रीतिसे युक्त हैं ॥६॥

तदनन्तर सुदर्शन चक्रको लक्ष्मणके हाथमें स्थित देख, राक्षसाधिपति रावण इस प्रकारकी चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥७॥ वह विचार करने लगा कि उस समय वन्दनीय अनन्तवीर्य केवलीने जो दिव्यध्वनिमें कहा था जान पड़ता है कि वही यह कर्म रूपी वायुसे प्रेरित हो आया है ॥८॥ जिसका छत्र देख विद्याधर राजा भयभीत हो जाते थे, बड़ी बड़ी सेनाएं छत्र तथा पताकाएं फेंक विनाशको प्राप्त हो जाती थीं तथा समुद्रका जल ही जिसका वस्त्र है और हिमालय तथा विन्ध्याचल जिसके स्तन हैं ऐसी तीन खण्डकी वसुधा दासीके समान जिसकी आज्ञाकारिणी थी ॥९-१०॥ वही मैं आज युद्धमें एक भूमिगोचरीके द्वारा पराजित होनेके लिए किस प्रकार देखा गया हूँ ? अहो ! यह बड़ी कष्टकर अवस्था है ? यह आश्चर्य भी देखो ॥११॥ कुलटाके समान चेष्टाको धारण करने वाली इस राजलक्ष्मीको धिक्कार हो यह पापी मनुष्योंका सेवन करनेके लिए चिर परिचित पुरुषोंको एक साथ छोड़ देती है ॥१२॥ ये पञ्चेन्द्रियोंके भोग किंपाक फलके समान परिपाक कालमें अत्यन्त विरस हैं, अनन्त दुःखोंका संसर्ग कराने वाले हैं और साधुजनोंके द्वारा

---

१. नारायणतोऽपेतानां नारायणाना मिति यावत् । कृष्णातायुजान् म०, ज० । २. ह्यणे म० ।

भरताद्याः सधन्यास्ते पुरुषा भुवनोत्तमाः । चक्राङ्कं ये परित्यक्तं राज्यं कण्टकवर्जितम् ॥१४॥
विषमिश्रान्नवत्त्यक्त्वा जैनेन्द्रं व्रतमाश्रिताः । रत्नत्रयं समाराध्य प्रापुश्च परमं पदम् ॥१५॥
मोहेन बलिनाऽत्यन्तं संसारैकातिकारिणा । पराजितो वराकोऽहं धिङ्मामीदृशचेष्टितम् ॥१६॥
उत्पन्नचक्ररत्नेन लक्ष्मणेनाथ रावणः । विभीषणास्यमालोक्य जगदे पुरुतेजसा ॥१७॥
अद्यापि जगतां पूज्य समर्प्य जनकात्मजाम् । रामदेवप्रसादेन जीवामीति वचो वद ॥१८॥
तवास्तथाविधैवेयं तव लक्ष्मीरवस्थिता । विधाय मानभङ्गं हि सन्तो यान्ति कृतार्थताम् ॥१९॥
रावणेन ततोऽवोचि लक्ष्मणः स्मितकारिणा । अहो कारणनिर्मुक्तो गर्वः क्षुद्रस्य ते मुधा ॥२०॥
दर्शयाम्यद्य तेऽवस्थां यां त्वमनुभवाधम । अहं रावण एवाऽसौ स त्वं धरणीचरः[2] ॥२१॥
लक्ष्मणेन ततोऽभाणि किमत्र बहुभाषितैः । सर्वथाऽहं समुत्पन्नो हन्ता नारायणस्तव ॥२२॥
उक्तं तेन निजाकूताद्यदि नारायणायसे । इच्छामात्रात् सुरेन्द्रत्वं कस्मान्न प्रतिपद्यसे ॥२३॥
निर्वासितस्य ते पित्रा दुःखिनो वनचारिणः । अपत्रपाविहीनस्य ज्ञाता केशवता मया ॥२४॥
नारायणो भवाऽन्यो वा यत्ते मनसि वर्त्तते । विस्फूर्जितं करोम्येष[3] तव भग्नं[4] मनोरथम् ॥२५॥
अनेनालातचक्रेण किल त्वं कृतिनां गतः । अथवा क्षुद्रजन्तूनां खलेनाऽपि महोत्सवम् ॥२६॥
सहामीभिः खगैः पापैः सचक्रं सहवाहनम् । पाताले त्वां नयाम्यद्य कथितेनापरेण किम् ॥२७॥
एवमुक्तं समाकर्ण्य नवनारायणो रुषा । प्रभ्राम्य चक्रमुद्यम्य क्षिप्तवान् प्रति रावणम् ॥२८॥
वज्रप्रभवमेघौघघोरनिर्घोषभीषणम् । प्रलयार्कसमच्छायं तच्चक्रमभवत्तदा ॥२९॥

निन्दित हैं ॥१३॥ वे संसार श्रेष्ठ भरतादि पुरुष धन्य हैं जो चक्ररत्नसे सहित निष्कण्टक विशाल राज्यको विष मिश्रित अन्नके समान छोड़कर जिनेन्द्र सम्बन्धी व्रतको प्राप्त हुए तथा रत्नत्रयकी आराधना कर परम पदको प्राप्त हुए ॥१४-१५॥ मैं दीन पुरुष संसार वृद्धिका अतिशय कारण जो बलवान् मोह कर्म है उसके द्वारा पराजित हुआ हूँ। ऐसी चेष्टाको धारण करने वाले मुझको धिक्कार है ॥१६॥

अथानन्तर जिन्हें चक्ररत्न उत्पन्न हुआ था ऐसे विशाल तेजके धारक लक्ष्मणने विभीषण का मुख देख कर कहा कि हे विद्याधरोंके पूज्य ! यदि अब भी तुम सीताको सौंप कर यह वचन कहो कि मैं भी रामदेवके प्रसादसे जीवित हूँ तो तुम्हारी यह लक्ष्मी ज्यों की त्यों अवस्थित है क्यों कि सत्पुरुष मान भङ्ग करके ही कृतकृत्यताको प्राप्त हो जाते हैं ॥१७-१९॥ तब मन्द हास्य करने वाले रावणने लक्ष्मणसे कहा कि अहो ! तुझ क्षुद्रका यह अकारण गर्व करना व्यर्थ है ॥२०॥ अरे नीच ! मैं आज तुझे जो दशा दिखाता हूँ उसका अनुभव कर। मैं वह रावण ही हूँ और तू वही भूमिगोचरी है ॥२१॥ तब लक्ष्मणने कहा कि इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ है ? मैं सब तरहसे तुम्हें मारने वाला नारायण उत्पन्न हुआ हूँ ॥२२॥ तदनन्तर रावणने व्यङ्ग पूर्ण चेष्टा बनाते हुए कहा कि यदि इच्छा मात्रसे नारायण बन रहा है तो फिर इच्छा मात्रसे इन्द्रपना क्यों नहीं प्राप्त कर लेता ॥२३॥ पिताने तुझे घरसे निकाला जिससे दुखी होता हुआ वन वनमें भटकता रहा अब निर्लज्ज हो नारायण बनने चला है सो तेरा नारायणपना मैं खूब जानता हूँ ॥२४॥ अथवा तू नारायण रह अथवा जो कुछ तेरे मनमें हो सो बन जा परन्तु मैं लगे हाथ तेरे मनोरथको भङ्ग करता हूँ ॥२५॥ तू इस अलातचक्रसे कृत-कृत्यताको प्राप्त हुआ है सो ठीक ही है क्यों कि क्षुद्र जन्तुओंको दुष्ट वस्तुसे भी महान् उत्सव होता है ॥२६॥ अथवा अधिक कहने से क्या ? मैं आज तुझे इन पापी विद्याधरोंके साथ चक्रके साथ और वाहनके साथ सीधा पाताल भेजता हूँ ॥२७॥ यह वचन सुन नूतन नारायण-लक्ष्मणने क्रोध वश घुमाकर रावणकी ओर चक्ररत्न फेंका ॥२८॥ उस समय वह चक्र वज्रको जन्म देने वाले मेघ समूहकी घोर गर्जनाके समान

---

१. स्फीति म० । २. धरणीधरः म० । ३. करोम्येष म० । ४. भग्नमनोरथं म० ।

हिरण्यकशिपुः क्षिप्तं हरिणेव तदायुधम् । निवारयितुमुद्युक्तः संरब्धो रावणः शरैः ॥३०॥
भूयश्चण्डेन दण्डेन जविना पविना पुनः । तथाऽपि कौकते चक्रं वक्रं पुण्यपरिक्षये ॥३१॥
चन्द्रहासं समाकृष्य ततोऽभ्यर्णत्वमागतम् । जघान राहनोत्सर्पिस्फुलिंगांचितपुष्करम् ॥३२॥
स्थितस्याभिमुखस्यास्य राक्षसेन्द्रस्य शोभिनः । तेन चक्रेण निर्भिन्नं वक्षसारमुरःस्थलम् ॥३३॥
उत्पातवातसन्नुन्नमहाञ्जनगिरिप्रभः । पपात रावणः क्षोण्यां पतिते पुण्यकर्मणि ॥३४॥
रतेरिव पतिः सुप्तश्च्युतः स्वर्गादिवामरः । महीस्थितो रराजासौ संदष्टदशनच्छदः ॥३५॥
स्वामिनं पतितं दृष्ट्वा सैन्यं सागरनिस्वनम् । शीर्णं वितानतप्तं प्राप्तं पर्यस्तच्छत्रकेतुकम् ॥३६॥
उत्सार्यतां रथं देहि मार्गमश्वमितो नय । प्राप्तोऽयं पृष्ठतो हस्ती विमानं कुरु पार्श्वतः ॥३७॥
पतितोऽयमहो नाथः कष्टं जातमनुत्तमम् । इत्यालापमलं भ्रान्तं बलं सर्वत्र विह्वलम् ॥३८॥
अन्योन्यापूरणासंक्रान्तमहाभयविकम्पितान् । दृष्ट्वा निःशरणानेतान्जनान् पतितमस्तकान् ॥३९॥
किष्किन्ध्यपतिवैदेहसमीरणसुतादयः । न भेतव्यं न भेतव्यमिति साधारमानयन् ॥४०॥
[1]भ्रमितोपरिविस्रान्तपल्लवानां समन्ततः । सैन्यमाश्वासितं तेषां वाक्यैः कर्णरसायनैः ॥४१॥

रुचिरावृत्तम्

तथाविधां श्रियमनुभूय भूयसीं कृताद्भुतां जगति समुद्वहारिते ।
परिक्षये सति सुकृतस्य कर्मणः खलामिमां प्रकृतिमितो दशाननः ॥४२॥

भयंकर तथा प्रलयकालीन सूर्यके समान कान्तिका धारक था ॥२९॥ जिसतरह पूर्वमें, नारायण के द्वारा चलाये हुए चक्रको रोकनेके लिए हिरण्यकशिपु उद्यत हुआ था उसी प्रकार क्रोधसे भरा रावण बाणोंके द्वारा उस चक्रको रोकनेके लिए उद्यत हुआ ॥३०॥ यद्यपि उसने तीक्ष्ण दण्ड और वेगशाली वज्रके द्वारा भी उसे रोकनेका प्रयत्न किया तथापि पुण्य क्षीण हो जानेसे वह कुटिल चक्र रुका नहीं किन्तु उसके विपरीत समीप ही आता गया ॥३१॥

तदनन्तर रावणने चन्द्रहास खड्ग खींचकर समीप आये हुए चक्ररत्न पर प्रहार किया सो उसकी टक्करसे प्रचुर मात्रामें निकलने वाले तिलगोंसे आकाश व्याप्त हो गया ॥३२॥ तत्पश्चात् उस चक्ररत्नने सन्मुख खड़े हुए शोभाशाली रावणका वज्रके समान वक्षःस्थल विदीर्ण कर दिया ॥३३॥ जिससे पुण्य कर्म क्षीण होने पर प्रलय कालकी वायुसे प्रेरित विशाल अञ्जनगिरिके समान रावण पृथिवी पर गिर पड़ा ॥३४॥ ओंठोंको डशने वाला रावण पृथिवी पर पड़ा ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो कामदेव ही सो रहा हो अथवा स्वर्गसे कोई देव ही आकर च्युत हुआ हो ॥३५॥ स्वामीको पड़ा देख समुद्रके समान शब्द करने वाली जीर्ण शीर्ण सेना छत्र तथा पताकाएँ फेंक चौड़ी हो गई अर्थात् भाग गई ॥३६॥ 'रथ हटाओ, मार्ग देओ, घोड़ा इधर ले जाओ, यह पीछेसे हाथी आ रहा है, विमानको बगलमें करो, अहो ! यह स्वामी गिर पड़ा है, बड़ा कष्ट हुआ' इस प्रकार वार्तालाप करती हुई यह सेना विह्वल हो भाग खड़ी हुई ॥३७–३८॥

तदनन्तर जो परस्पर एक दूसरे पर पड़ रहे थे, जो महाभयसे कंपायमान थे, और जिनके मस्तक पृथिवी पर पड़ रहे थे ऐसे इन शरण हीन मनुष्योंको देख कर सुग्रीव भामण्डल तथा हनूमान् आदिने 'नहीं डरना चाहिए' 'नहीं डरना चाहिए' आदि शब्द कह कर सान्त्वना प्राप्त कराई ॥३९–४०॥ जिन्होंने सब ओर ऊपर वस्त्रका छोर घुमाया था ऐसे उन सुग्रीव आदि महा पुरुषोंके, कानोंके लिए रसायनके समान मधुर वचनोंसे सेना सान्त्वनाको प्राप्त हुई ॥४१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! समुद्रान्त पृथिवीमें अनेक आश्चर्यके कार्य करने वाली उस प्रकारकी

---

१. हिरण्यकशिपुक्षिप्तं म० । २. शक्तान् म०, क० । ३. भ्रमितोपरिविस्रान्तःपल्लवानां म०, ज० ।

धिगिदमीं श्रियमतिचञ्चलात्मिकां विवर्जितां सुकृतसमागमाशया ।
इति स्फुटं मनसि निधाय भो जनास्तपोधना भवत रवेर्जितौजसः ॥४३॥

इत्यार्षे *रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे दशग्रीववधाभिधानं नाम*
षट्सप्ततितमं पर्व ॥७६॥

लक्ष्मीका उपभोग कर रावण, पुण्य कर्मका क्षय होने पर इस दुर्दशाको प्राप्त हुआ ॥४२॥ इसलिए अत्यन्त चञ्चल एवं पुण्यप्राप्तिकी आशासे रहित इस लक्ष्मीको धिक्कार है। हे भव्य जनो! ऐसा मनमें विचार कर सूर्यके तेजको जीतने वाले तपोधन होओ—तपके धारक बनो ॥४३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें रावणके
वधका कथन करने वाला छिहत्तरवां पर्व
समाप्त हुआ ॥७६॥

सप्तसप्ततितमं पर्व

सोदरं पतितं दृष्ट्वा महादुःखसमन्वितः । छुरिकायां करं चक्रे स्ववधाय विभीषणः ॥१॥
आत्यन्तीं तस्य कृत्वा निश्चेष्टीकृतविग्रहा[1] मूर्च्छा चक्रे कियन्तं चिच्चकारोपकृतिं पराम् ॥२॥
लब्धसंज्ञो जिघांसुः स्वं तापं दुःसहमुद्वहन् । रामेण विधुतः[2] कृच्छ्रादुत्तीर्य निजतो रथात् ॥३॥
त्यक्ताङ्गकवचो भूम्यां पुनर्मूर्च्छामुपागतः । प्रतिबुद्धः पुनश्चक्रे विलापं करुणाकरम् ॥४॥
हा भ्रातः करुणोदार शूर संश्रितवत्सल । मनोहर कथं प्राप्तोऽस्यवस्थामिति पापिकाम् ॥५॥
किं तन्मद्वचनं नाथ गदमानं हितं परम् । न मानितं यतो युद्धे वीक्षे[3] त्वां चक्रताडितम् ॥६॥
कष्टं भूमितले देव विद्याधरमहेश्वर । कथं सुप्तोऽसि लङ्केश भोगदुर्ललितात्मकः ॥७॥
उत्तिष्ठ देहि मे वाक्यं चारुवाक्यं गुणाकर । साधारय कृपाधार मग्नं मां शोकसागरे ॥८॥
एतस्मिन्नन्तरे [4]ज्ञातदशाननविपात्तनम् । क्षुब्धमन्तःपुरं शोकमहाकल्लोलसङ्कुलम् ॥९॥
सर्वाश्च वनिता बाष्पधारासिक्तमहीतलाः । रणक्षोणीं समाजग्मुर्मुहुःप्रस्खलितक्रमाः ॥१०॥
तं चूडामणिसङ्काशं क्षितेरालोक्य सुन्दरम् । निश्चेतनं पतिं नार्यो निपेतुरतिवेगतः ॥११॥
रम्भा चन्द्राननी चन्द्रमण्डला[5] प्रवरोर्वशी । मन्दोदरी महादेवी सुन्दरी कमलानना ॥१२॥
रूपिणी रुक्मिणी शीला रत्नमाला तनूदरी । श्रीकान्ता श्रीमती भद्रा कनकाभा मृगावती ॥१३॥
श्रीमाला मानवी लक्ष्मीरानन्दानङ्गसुन्दरी । वसुन्धरा तडिन्माला पद्मा पद्मावती सुखा ॥१४॥

अथानन्तर भाईको पड़ा देख महादुःखसे युक्त विभीषणने अपना वध करनेके लिए छुरीपर हाथ रक्खा ॥१॥ सो उसके इस वधको रोकती तथा शरीरको निश्चेष्ट करती मूर्च्छाने कुछ काल तक उसका बड़ा उपकार किया ॥२॥ जब सचेत हुआ तब पुनः आत्मघातकी इच्छा करने लगा सो राम ने अपने रथसे उतर कर उसे बड़ी कठिनाईसे पकड़ कर रक्खा ॥३॥ जिसने अस्त्र और कवच छोड़ दिये थे ऐसा विभीषण पुनः मूर्च्छित हो पृथिवी पर पड़ा रहा । तत्पश्चात् जब पुनः सचेत हुआ तब करुणा उत्पन्न करने वाला विलाप करने लगा ॥४॥ वह कह रहा था कि हे भाई ! हे उदार करुणाके धारी । हे शूर वीर ! हे आश्रितजनवत्सल ! हे मनोहर ! तुम इस पाप पूर्ण दशाको कैसे प्राप्त हो गये ? ॥५॥ हे नाथ । क्या उस समय तुमने मेरे कहे हुए हितकारी वचन नहीं माने इसीलिए युद्धमें तुम्हें चक्र से ताड़ित देख रहा हूँ ॥६॥ हे देव ! हे विद्याधरों के अधिपति ! हे लंकाके स्वामी ! तुम तो भोगोंसे लालित हुए थे फिर आज पृथिवीतल पर क्यों सो रहे हो ? ॥७॥ हे सुन्दर वचन बोलने वाले ! हे गुणोंके खानि ! उठो मुझे वचन देओ-मुझसे वार्तालाप करो । हे कृपाके आधार ! शोक रूपी सागरमें डूबे हुए मुझे सान्त्वना देओ ॥८॥

तदनन्तर इसी बीचमें जिसे रावणके गिरनेका समाचार विदित हो गया था ऐसा अन्तःपुर शोककी बड़ी बड़ी लहरोंसे व्याप्त होता हुआ क्षुभित हो उठा ॥९॥ जिन्होंने अश्रुधारासे पृथिवी तलको सींचा था तथा जिनके पैर बारबार लड़खड़ा रहे थे ऐसी समस्त स्त्रियां रणभूमि में आ गईं ॥१०॥ और पृथिवीके चूड़ामणिके समान सुन्दर पतिको निश्चेतन देख अत्यन्त वेगसे भूमिपर गिर पड़ीं ॥११॥ रम्भा, चन्द्रानना, चन्द्रमण्डला, प्रवरा, उर्वशी, मन्दोदरी, महादेवी, सुन्दरी, कमलानना, रूपिणी, रुक्मिणी, शीला, रत्नमाला, तनूदरी, श्रीकान्ता, श्रीमती, भद्रा, कनकाभा, मृगावती, श्रीमाला, मानवी, लक्ष्मी, आनन्दा, अनङ्गसुन्दरी, वसुन्धरा, तडिन्माला,

---

१. क्रियन्तं च चकारोप- म० । २. विधूतः म० । ३. वीक्ष्ये ज० । ४. ज्ञातं दशानन- म० । ५. मण्डलाव्ज म० ।

देवी पद्मावती कान्तिः प्रीतिः सन्ध्यावली शुभा । प्रभावती मनोवेगा रतिकान्ता मनोवती ॥१५॥
अष्टादशैवमार्यानां सहस्राणि सुयोषिताम् । परिवार्य पतिं चक्रुराक्रन्दं सुमहाशुचा ॥१६॥
काश्चिन्मोहं गताः सद्यः सिक्ताश्चन्दनवारिणा । समुत्खातमृणालानां पद्मिनीनां श्रियं दधुः ॥१७॥
आश्लिष्टदयिताः काश्चिद्गाढं मूर्च्छामुपागताः । अञ्जनाद्रिसमासक्तसन्ध्यारेखामुरो दधुः ॥१८॥
विद्युन्मालाकृतिं काश्चिदुरस्ताडनचञ्चलाः । घनाघनसमासक्तविद्युन्मालाकृतिं श्रिताः ॥१९॥
विधाय वदनाम्भोजं काचिदङ्के सुविह्वला । वक्षःस्थलपरामर्शकारिणी मूर्छिता मुहुः ॥२०॥
हा हा नाथ गतः कासि त्यक्त्वा मामतिकातराम् । कथं नाऽपेक्षसे दुःखनिमग्नं जनमात्मनः ॥२१॥
स त्वं सत्त्वगुतः कान्तिमण्डनः परमकृतिः । विभूत्या शक्रसङ्काशो मानी भरतभूपतिः ॥२२॥
प्रधानपुरुषो भूत्वा महाराज मनोरमः । किमर्थं स्वपिषि क्षोण्यां विद्याधरमहेश्वरः ॥२३॥
उत्तिष्ठ कान्त कारुण्य—पर स्वजनवत्सल । अमृतप्रतिमं वाक्यं यच्छैकमपि सुन्दरम् ॥२४॥
अपराधविमुक्तानामस्माकं सक्तचेतसाम् । प्राणेश्वर किमित्येवं स्थितस्त्वं कोपसङ्गतः ॥२५॥
परिहासकथासक्तं दन्तज्योत्स्नामनोहरम् । वदनेन्दुमिमं नाथ सकृद्धारय[1] पूर्ववत् ॥२६॥
वराङ्गनापरिक्रीडास्थानेऽस्मिन्नपि सुन्दरे । वक्षःस्थले कथं न्यस्तं पदं ते चक्रधारया ॥२७॥
बन्धूकपुष्पसङ्काशस्त्वायं दशनच्छदः । नार्मोत्तरप्रदानाय कथं स्फुरति नाधुना ॥२८॥
प्रसीद न चिरं कोपः सेवितो जातुचित्त्वया । प्रत्युतास्माकमेव त्वमकरोः सान्त्वनं पुरा ॥२९॥

पद्मा, पद्मावती, सुखा, देवी, पद्मावती, कान्ति, प्रीति, सन्ध्यावली, शुभा, प्रभावती, मनोवेगा, रतिकान्ता और मनोवती, आदि अठारह हजार स्त्रियाँ पतिको घेर कर महाशोक से रुदन करने लगीं ॥१२–१६॥ जिनके ऊपर चन्दनका जल सींचा गया था ऐसी मूर्च्छाको प्राप्त हुई कितनी ही स्त्रियाँ, जिनके मृणाल उखाड़ लिये गये हैं ऐसी कमलिनियोंकी शोभा धारण कर रही थीं ॥१७॥ पतिका आलिङ्गन कर गाढ़ मूर्च्छाको प्राप्त हुई कितनी ही स्त्रियां अञ्जनगिरिसे संसक्त संध्याकी कान्तिको धारण कर रही थीं ॥१८॥ जिनकी मूर्च्छा दूर हो गई थी तथा जो छातीके पीटनेमें चञ्चल थीं ऐसी कितनी ही स्त्रियां मेघ बाँधती हुई विद्युन्मालाकी आकृतिको धारण कर रही थीं ॥१९॥ कोई एक स्त्री पतिका मुखकमल अपनी गोदमें रख अत्यन्त विह्वल हो रही थी तथा वक्षःस्थलको स्पर्श करती हुई बारबार मूर्च्छित हो रही थी ॥२०॥

वे कह रही थीं कि हाय हाय हे नाथ! तुम मुझ अतिशय भीरुको छोड़ कहाँ चले गये हो? दुःखमें डूबे हुए अपने लोगोंकी ओर क्यों नहीं देखते हो? ॥२१॥ हे महाराज! तुम तो धैर्य गुणसे सहित हो, कान्ति रूपी आभूषणसे विभूषित हो, परम कीर्तिके धारक हो, विभूतिमें इन्द्रके समान हो, मानी हो, भरत क्षेत्रके स्वामी हो, प्रधान पुरुष हो, मनको रमण करने वाले हो, और विद्याधरोंके राजा हो फिर इसतरह पृथिवी पर क्यों सो रहे हो? ॥२२–२३॥ हे कान्त! हे दयातत्पर, हे स्वजनवत्सल! उठो एक बार तो अमृत तुल्य सुन्दर वचन देओ ॥२४॥ हे प्राणनाथ! हम लोग अपराधसे रहित हैं तथा हम लोगोंका चित्त एक आप ही में आसक्त है फिर क्यों इसतरह कोपको प्राप्त हुए हो? ॥२५॥ हे नाथ! परिहासकी कथामें तत्पर और दांतोंकी कान्ति रूपी चांदनीसे मनोहर इस मुख रूपी चन्द्रमाको एक बार तो पहलेके समान धारण करो ॥२६॥ तुम्हारा यह सुन्दर वक्षःस्थल उत्तम स्त्रियोंका क्रीड़ा स्थल है फिर भी इसपर चक्र धारने कैसे स्थान जमा लिया? ॥२७॥ हे नाथ! दुपहरियाके फूलके समान लाल लाल यह तुम्हारा ओंठ क्रीड़ा पूर्ण उत्तर देनेके लिए इस समय क्यों नहीं फड़क रहा है? ॥२८॥ प्रसन्न होओ, तुमने कभी इतना लम्बा

---

१. सकृद्धारय म० ।

उद्दपाक्षेण यस्त्वत्तः कल्पलोकात् परिच्युतः । बन्धने मेघवाहोऽसौ दुःखमास्ते सयेन्द्रजित् ॥२०॥
विधाय सुकृतज्ञेन वीरेण गुणशालिना । पद्माभेन सह प्रीतिं भ्रातृपुत्रौ विमोचय ॥२१॥
जीवितेश समुत्तिष्ठ प्रयच्छ वचनं प्रियम् । सुचिरं देव किं शेषे विधत्स्व नृपतेः क्रियाम् ॥२२॥
विरहाग्निप्रदीप्तानि भृशं सुन्दरविभ्रम । कान्त विध्यापयाङ्गानि प्रसीद प्रणयिप्रिय ॥२३॥
अवस्थामेतकां प्राप्तमिदं वदनपङ्कजम् । प्रियस्य हृदयालोक्य दीर्यते शतधा न किम् ॥२४॥
वज्रसारमिदं नूनं हृदयं दुःखभाजनम् । ज्ञात्वापि यत्तवावस्थामिमां तिष्ठति विदीर्यम् ॥२५॥
विधे किं कृतमस्माभिर्भवतः सुन्दरेतरम् । विहितं येन कर्मेदं त्वया निर्दयदुष्करम् ॥२६॥
समालिङ्गनमात्रेण दूरं निर्धूय मानकम् । परस्परार्पणस्वादु नाथ यन्मधुसेवितम् ॥२७॥
अन्यास्त्रीनामदागोत्रग्रहणस्खलिते सति । काञ्चीगुणेन नीतोऽसि बहुशो बन्धनं प्रिय[1] ॥२८॥
वर्तसेन्दीवराघातात् कोपप्रस्फुरिताधरम् । प्रापितोऽसि प्रभो यच्च किञ्चल्कोन्मुसितालिकम् ॥२९॥
प्रेमकोपविनाशाय यच्चालिप्रियवादिना । कृतं पदार्पणं मूर्ध्नि हृदयद्रवकारणम् ॥३०॥
यानि चान्यन्तरम्याणि रतानि परमेश्वर । कान्त सादुसमेतानि सेवितानि यथेप्सितम् ॥३१॥
परमानन्दकारीणि तदेतानि मनोहर । अधुना स्मर्यमाणानि दहन्ति हृदये भृशम् ॥३२॥
कुरु प्रसादमुत्तिष्ठ पादाधेहा नमामि ते । न हि प्रियजने कोपः सुचिरं नाथ शोभते ॥३३॥
एवं रावणपत्नीनां श्रुत्वापि परिदेवनम्[2] । कस्य न प्राणिनः प्राप्तं हृदयं द्रवतामलम्[3] ॥३४॥

शोक नहीं किया अपितु दूसरी ओरोंको दुःख पहुँचे इसका उपाय देते रहे हो ॥२९॥ जिसने स्वर्ग लोकसे च्युत हो कर आपसे जन्म ग्रहण किया था ऐसा यह मेघवाहन और इन्द्रजित् शत्रुके बन्धनमें दुःख भोग रहा है ॥३०॥ सो सुकृतको जानने वाले गुणशाली वीर रामके साथ प्रीति कर अपने भाई कुम्भकर्ण तथा पुत्रोंको बन्धनसे छुड़ाओ ॥३१॥ हे प्राणनाथ ! उठो, प्रिय वचन प्रदान करो। हे देव ! चिरकाल तक क्यों सो रहे हो ? उठो राजकार्य करो ॥३२॥ हे सुन्दर चेष्टाओंके धारक ! हे कान्त ! हे प्रेमियोंसे प्रेम करने वाले ! प्रसन्न होओ और विरह रूपी अग्निसे जलते हुए हमारे अंगोंको शान्त करो ॥३३॥ रे हृदय ! इस अवस्थाको प्राप्त हुए पतिके मुख कमलको देखकर तू सौ टूक क्यों नहीं हो जाता है ? ॥३४॥ जान पड़ता है कि हमारा यह दुःखका भाजन हृदय वज्रका बना हुआ है इसीलिए तो तुम्हारी इस अवस्थाको जानकर भी निर्दय हुआ स्थित है ॥३५॥ हे विधातः ! हम लोगोंने तुम्हारा कौन सा अशोभनीक कार्य किया था जिससे तुमने यह ऐसा कार्य किया जो निर्दय मनुष्योंके लिए भी दुष्कर है—कठिन है ॥३६॥ हे नाथ ! आलिङ्गन-मात्रसे मानको दूरकर परस्पर—एक दूसरेके आदान-प्रदानसे मनोहर जो मधुका पान किया था ॥३७॥ हे प्रिय ! अन्य स्त्रीका नाम लेनेरूप अपराध होने पर जो मैंने तुम्हें अनेकों बार मेखला-सूत्रसे बन्धनमें डाला था ॥३८॥ हे प्रभो ! मैंने क्रोधसे ओंठको कम्पित करते हुए जो उस समय तुम्हें कर्णाभरणके नील कमलसे ताड़ित किया था और उस कमलकी केशर तुम्हारे ललाटमें जा लगी थी ॥३९॥ प्रणय कोपको नष्ट करनेके लिए मधुर वचन कहते हुए जो तुमने हमारे पैर उठा कर अपने मस्तक पर रख लिये थे और उससे हमारा हृदय तत्काल द्रवीभूत हो गया था, और हे परमेश्वर ! हे कान्त ! मधुर वचनोंसे सहित अत्यन्त रमणीय जो रत इच्छानुसार आपके साथ सेवन किये गये थे। हे मनोहर ! परम आनन्दको करने वाले वे सब कार्य इस समय एक-एककर स्मृति-पथमें आते हुए हृदयमें तीव्र दाह उत्पन्न कर रहे हैं ॥४०-४१॥ हे नाथ ! प्रसन्न होओ, उठो, मैं आपके चरणोंमें नमस्कार करती हूँ। क्योंकि प्रियजनों पर चिरकालतक रहने वाला क्रोध शोभा नहीं देता ॥४३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इस तरह रावणकी स्त्रियोंका विलाप सुनकर किस प्राणीका हृदय अत्यन्त द्रवताको प्राप्त नहीं हुआ था ? ॥४४॥

१. प्रियम् म० । २. विलापम् । ३. द्रवताम् + अलम् ।

अथ पद्माभसौमित्री साकं खेचरपुङ्गवैः । स्नेहगर्भं परिष्वज्य बाष्पापूरितलोचनौ ॥४५॥
ऊचतुः करुणोद्युक्तौ परिसान्त्वनकोविदौ । विभीषणमिदं वाक्यं लोकवृत्तान्तपण्डितौ ॥४६॥
राजन्नलं रुदित्वैवं विषादमधुना त्यज । जानास्येव ननु व्यक्तं कर्मणामिति चेष्टितम् ॥४७॥
पूर्वकर्मानुभावेन प्रमादं भजतां नृणाम् । प्राप्तव्यं जायतेऽवश्यं तत्र शोकस्य कः क्रमः ॥४८॥
प्रवर्तते यदाऽकार्ये जनो ननु तदैव सः । मृतश्चिरमृते[1] तस्मिन् किं शोकः क्रियतेऽधुना ॥४९॥
यः सदा परमप्रीत्या हिताय जगतो रतः । समाहितसमस्तिर्वाढं प्रजाकर्मणि पण्डितः ॥५०॥
सर्वशास्त्रार्थसम्बोधक्षालितात्मापि रावणः । मोहेन बलिना नीतोऽवस्थामेतां सुदारुणाम् ॥५१॥
असौ विनाशमेतेन प्रकारेणानुभूतवान् । नूनं विनाशकाले हि नृणां ध्वान्तायते मतिः ॥५२॥
रामीयवचनस्यान्ते प्रभामण्डलपण्डितः । जगाद् वचनं विस्रब्धमाधुर्यं परमोत्कटम् ॥५३॥
विभीषण रणे भीमे युध्यमानो महामनाः । मृत्युना वीरयोग्येन[2] राक्षसः स्वस्थितिं श्रितः ॥५४॥
किं तस्य पतितं यस्य मानो[3] न पतितः प्रभोः । नन्वत्यन्तमसौ धन्यो योऽमून्प्रत्यर्थमुज्झत ॥५५॥
महासत्त्वस्य वीरस्य शोच्यं तस्य न विद्यते । शक्रद्रुमसमा लोके शोच्याः पार्थिवपोत्रजाः ॥५६॥
लक्ष्मीहरिध्वजोद्भूतो बभूवाद्रपुरे नृपः । अरिन्दम इति ख्यातः पुरन्दरसमश्रिया ॥५७॥
स जित्वा शत्रुसङ्घातं नानादेशव्यवस्थितम् । दारलाभच्छलिप्तं स्वानं देवीदर्शनकोतुका ॥५८॥

अथानन्तर जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे, जो करुणा प्रकट करनेमें उद्यत थे, सान्त्वना देनेमें निपुण थे, तथा लोक व्यवहारके पण्डित थे ऐसे राम-लक्ष्मण श्रेष्ठ विद्याधरोंके साथ विभीषणका स्नेहपूर्ण आलिङ्गन कर यह वचन बोले ॥४५-४६॥ कि हे राजन् ! इस तरह रोना व्यर्थ है, अब विषाद छोड़ो, आप जानते हैं कि यह कर्मोंकी चेष्टा है ॥४७॥ पूर्व कर्मके प्रभावसे प्रमाद करनेवाले मनुष्योंको जो वस्तु प्राप्त होने योग्य है वह अवश्य ही प्राप्त होती है इसमें शोकका क्या अवसर है ? ॥४८॥ मनुष्य जब अकार्यमें प्रवृत्त होता है वह तभी मर जाता है फिर रावण तो चिरकाल बाद मरा है अतः अब शोक क्यों किया जाता है ? ॥४९॥ जो सदा परम प्रीतिपूर्वक जगत्का हित करनेमें तत्पर रहता था, जिसकी बुद्धि सदा सावधान रूप रहती थी, जो प्रजाके कार्यमें पण्डित था, और समस्त शास्त्रों के अर्थ ज्ञानसे जिसकी आत्मा धुली हुई थी ऐसा रावण बलवान् मोहके द्वारा इस अवस्था को प्राप्त हुआ है ॥५०-५१॥ इस रावणने इस अपराधसे विनाशका अनुभव किया है सो ठीक ही है क्योंकि विनाशके समय मनुष्योंकी बुद्धि अन्धकारके समान हो जाती है ॥५२॥

तदनन्तर रामके कहनेके बाद अतिशय चतुर भामण्डलने परमोत्कट माधुर्यको धारण करनेवाले निम्नांकित वचन कहे ॥५३॥ उसने कहा कि हे विभीषण ! भयंकर रणमें युद्ध करता हुआ महामनस्वी रावण वीरोंके योग्य मृत्युसे मर कर आत्मस्थिति अथवा स्वर्गस्थितिको प्राप्त हुआ है ॥५४॥ जिस प्रभुका मान नष्ट नहीं हुआ उसका क्या नष्ट हुआ ? अर्थात् कुछ नहीं। यथार्थमें रावण अत्यन्त धन्य है जिसने शत्रुके सम्मुख प्राण छोड़े ॥५५॥ वह तो महा धैर्यशाली वीर रहा अतः उसके विषयमें शोक करने योग्य बात ही नहीं है। लोक में जो क्षत्रिय अरिंदमके समान हैं वे ही शोक करने योग्य हैं ॥५६॥ इसकी कथा इस प्रकार है कि अद्रपुर नामा नगरमें लक्ष्मी और हरिध्वजसे उत्पन्न हुआ अरिंदम नामका एक राजा था जो इन्द्रके समान सम्पत्तिसे प्रसिद्ध था ॥५७॥ वह एक बार नाना देशोंमें स्थित शत्रु समूहको जीत कर अपनी स्त्रीको देखने

१. चिरं मृते म० । २. वीरयोगेन म० । ३. मनः ज० । ४. प्रति + अरि + अगुज्झत । ५. ध्वजो दूतः म० ।

६. स्वस्मिन् स्थितिः स्वस्थितिः ताम् । अथवा स्वः स्वर्गे स्थितिः स्वस्थितिः ताम् 'खपरे खरि वा विसर्जनीयः' इत्यनेन विकल्पेन विसर्गलोपात् । 'रणे निहताः स्वर्गं यान्ति' इति प्रसिद्धिः ।

परमोत्कण्ठया युक्तः केतुतोरणमण्डितम् । पुरं विवेश सोऽकस्मादश्वैर्मनसगरवरैः ॥५८॥
स्वं गृहं संस्कृतं दृष्ट्वा भूषितां च स्वसुन्दरीम् । अपृच्छद्विदितोऽहं ते कथमेतीत्यवेदितम् ॥५९॥
सा जगौ मुनिमुख्येन नाथ कीर्तिधरेण मे । अवधिज्ञानिना शिष्टं पृष्टेनैतेन पारणम् ॥६१॥
अवोचद्दीर्घया युक्तो गत्वाऽसौ मुनिपुङ्गवम् । यदि त्वं वेत्सि तच्चिन्त्यं मदीया मम बोधय ॥६२॥
मुनिना गदितं चित्ते त्वयेदं विनिवेशितम् । यथा किल कथं मृत्युः कदा वा मे भविष्यति ॥६३॥
स त्वमस्माद्दिनादद्धि सप्तमे वज्रताडितः । मृत्वा भविष्यसि स्वस्मिन् कीटो विड्भवने महान् ॥६४॥
ततः प्रीतिङ्करोऽभिख्यमागत्य तनयं जगौ । त्वयाऽहं विड्गृहे जातो [1]हन्तव्यः स्थूलकीटकः ॥६५॥
तथाभूतं स दृष्ट्वा तं तनयं हन्तुमुद्यतम् । विड्मध्यमविशद्दूरं मृत्युभीतिपरिप्लुतः ॥६६॥
मुनिं प्रीतिङ्करो गत्वा पप्रच्छ भगवन् कुतः । संदिश्य मार्यमाणोऽसौ कीटो दूरं पलायते ॥६७॥
उवाच वचनं साधुर्विषादमिह मा कृथाः । योनिं यामश्नुते जन्तुस्तत्रैव रतिमेति सः ॥६८॥
आत्मनस्तत्कुरु श्रेयो मुच्यसे येन किल्बिषात् । नन्वु स्वकृतसम्प्राप्तिप्रवणाः सर्वदेहिनः ॥६९॥
एवं भवस्थितिं ज्ञात्वा परमासुखकारिणीम् । प्रीतिङ्करो महायोगी बभूव विगतस्पृहः ॥७०॥

शार्दूलविक्रीडितम्

एवं ते विविधा विभीषण न किं ज्ञाता जगत्संस्थिति-
र्यच्छूरं कृतनिश्चयं विधिवशाद्वारायणेनाहतम् ।
सङ्ग्रामेऽभिमुखं प्रधानपुरुषं शोचस्यहो रावणं
स्वार्थे सन्यसि यच्च चित्तममुना शोकेन किं कारणम् ॥७१॥

की इच्छासे अपने घरकी ओर लौट रहा था ॥५८॥ तीव्र उत्कंठासे युक्त होनेके कारण उसने मनके समान शीघ्रगामी घोड़ोंसे अकस्मात् ही पताकाओं और तोरणोंसे अलंकृत नगरमें प्रवेश किया ॥५९॥ अपने घरको सजा हुआ तथा स्त्रीको आभूषणादिसे अलंकृत देख उसने पूछा कि बिना कहे तुमने कैसे जान लिया कि ये आ रहे हैं ॥६०॥ स्त्रीने कहा कि हे नाथ ! आज मुनियोंमें मुख्य अवधिज्ञानी कीर्तिधर मुनि पारणाके लिए आये थे मैंने उनसे आपके आनेका समय पूछा था तो उन्होंने कहा कि राजा आज ही अकस्मात् आवेंगे ॥६१॥ राजा अरिंदमको मुनिके भविष्य-ज्ञान पर कुछ ईर्ष्या हुई अतः वह उनके पास जाकर बोला कि यदि तुम जानते हो तो मेरे मन की बात बताओ ॥६२॥ मुनिने कहा कि तुमने मनमें यह बात रख छोड़ी है कि मेरी कब और किस प्रकार मृत्यु होगी ? ॥६३॥ सो तुम आजसे सातवें दिन वज्रपातसे मर कर अपने विष्ठा-गृहमें महान् कीड़ा होओगे ॥६४॥ वहाँसे आकर राजा अरिंदमने अपने पुत्र प्रीतिंकरसे कहा कि मैं विष्ठागृहमें एक बड़ा कीड़ा होऊँगा सो तुम मुझे मार डालना ॥६५॥

तदनन्तर जब पुत्र विष्ठागृहमें स्थूल कीड़ाको देखकर मारनेके लिए उद्यत हुआ तब वह कीड़ा मृत्युके भयसे भागकर बहुत दूर विष्ठाके भीतर घुस गया ॥६६॥ प्रीतिङ्करने मुनिराजके पास जाकर पूछा कि हे भगवन् ! कहे अनुसार जब मैं उस कीड़ेको मारता हूँ तब वह दूर क्यों भाग जाता है ? ॥६७॥ मुनिराजने कहा कि इस विषयमें विषाद मत करो। यह प्राणी जिस योनिमें जाता है उसीमें प्रीतिको प्राप्त हो जाता है ॥६८॥ इसीलिए आत्माका कल्याण करनेवाला यह कार्य करो जिससे कि आत्मा पापसे छूट जाय। यह निश्चित है कि सब प्राणी अपने द्वारा किये हुए कर्मका फल प्राप्त करनेमें ही लीन हैं ॥६९॥ इस प्रकार अत्यन्त दुःखको उत्पन्न करनेवाली संसार दशाको जानकर प्रीतिङ्कर निःस्पृह हो महामुनि हो गया ॥७०॥ इस प्रकार भामण्डल विभीषणसे कहता है कि हे विभीषण ! क्या तुझे यह संसारकी विविध दशा ज्ञात नहीं है जो

---

१. हन्तव्यं म० ।

श्रुत्वेमां प्रतिबोधदानकुशलां चित्रस्वभावान्वितां
सत्प्रीतिङ्करसंयतस्य चरितप्रोत्कीर्तनीयां कथाम् ।
सर्वैः खेचरपुङ्गवैरभिहितं साधूदितं साधितं
अष्टः [1]शुक्तिमिराद्विभीषणरविर्लोकोत्तराचारवित् ॥७२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे पद्मायने प्रीतिङ्करोपाख्यानं नाम सप्तसप्ततितमं पर्व ॥७७॥

शूरवीर, दृढ़ निश्चयी एवं कर्मोदयके कारण युद्धमें नारायणके द्वारा सम्मुख मारे हुए प्रधान पुरुष रावणके प्रति शोक कर रहा है । अब तो अपने कार्यमें चित्त देओ इस शोकसे क्या प्रयोजन है ? इस प्रकार प्रतिबोधके देनेमें कुशल, नाना स्वभावसे सहित, एवं प्रीतिङ्कर मुनिराजके चरितको निरूपण करनेवाली कथा सुनकर सब विद्याधर राजाओंने ठीक ठीक यह शब्द कहे और लोकोत्तर—सर्वश्रेष्ठ आचारको जाननेवाला विभीषण रूपी सूर्य शोकरूपी अन्धकारसे छूट गया अर्थात् विभीषणका शोक दूर हो गया ॥७१–७२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण या पद्मायन नामक ग्रन्थमें प्रीतिङ्करका उपाख्यान करनेवाला सतहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७७॥

---

१. शोकरूपतिमिरात् ।

अष्टसप्ततितमं पर्व

ततो हलधरोऽवोचत् कर्त्तव्यं किमतः परम् । मरणान्तानि वैराणि जायन्ते हि विपश्चिताम् ॥१॥
परलोके गतस्यातो लङ्केशस्योत्तमं वपुः । महादरस्य संस्कारं प्रापयामः सुखैधितम् ॥२॥
तत्राभिनन्दिते वाक्ये विभीषणसमन्विते । बलनारायणौ जग्मतुः शोकैस्तं कुर्वतं स्त्रियौ ॥३॥
यत्र मन्दोदरी शोकविह्वला कुररीसमम् । योषित्सहस्रमध्यस्था विरौति करुणावहम् ॥४॥
अवतीर्य महानागात् सादरं बलकेशवौ । मन्दोदरीमुपायातौ सार्कं खेचरपुङ्गवैः ॥५॥
दृष्ट्वा तौ सुतरां नार्यो रुरुदुर्मुक्तकण्ठकम् । विरुग्णरत्नवलया वसुधापांसुधूसराः ॥६॥
मन्दोदर्या समं सर्वमङ्गनालिबहं बलः । वाग्भिश्चित्राभिरानिन्ये समाश्वासं विचक्षणः ॥७॥
कर्पूरागुरुगोशीर्षचन्दनादिभिरुत्तमैः । संस्कार्यं रावणं याताः सर्वे पद्मसरो महत् ॥८॥
उपविश्य सरस्तीरे पद्मोक्तं सुचेतसा । कुम्भादयो विमुच्यन्तां सामन्तैः सहिता इति ॥९॥
खेचरैस्तैस्ततः कैश्चिदुक्तं ते क्रूरमानसाः । हन्यन्तां वैरिणो यद्वन्म्रियन्तां बन्धने स्वयम् ॥१०॥
बलदेवो जगौ भूयः क्षात्रं नेदं विचेष्टितम् । प्रसिद्धा या न विज्ञाता भवद्भिः किमियं स्थितिः ॥११॥
सुप्तबद्धनतत्रस्तदन्तदृष्टादयो भटाः । न हन्तव्या इति क्षात्रो धर्मो जगति राजते ॥१२॥
एवमस्त्विति सबद्धास्तमानेतुं महाभटाः । नानाऽऽयुधधरा जग्मुः स्वाम्यादेशपरायणाः ॥१३॥
इन्द्रजित्कुम्भकर्णश्च मारीचो घनवाहनः । तथा मयमहादैत्यप्रमुखाः खेचरोत्तमाः ॥१४॥
पूरिता निगडैः स्थूलैस्मी स्खणस्खणायितैः । प्रमादरहितैः शूरैरानीयन्ते समाहितैः ॥१५॥

तदनन्तर श्रीरामने कहा कि अब क्या करना चाहिए ? क्योंकि विद्वानोंके वैर तो मरण पर्यन्त ही होते हैं ॥१॥ अच्छा हो कि हम लोग परलोकको प्राप्त हुए महामानव लङ्केश्वरको सुखसे बढ़ाये हुए उत्तम शरीरका दाह संस्कार करावें ॥२॥ रामके उक्त वचनकी सबने प्रशंसा की । तब विभीषण सहित राम लक्ष्मण अन्य सब विद्याधर राजाओंके साथ उस दिशामें पहुँचे जहाँ हजारों स्त्रियोंके बीच बैठी मन्दोदरी शोकसे विह्वल हो कुररीके समान करुण विलाप कर रही थी ॥३-४॥ राम और लक्ष्मण महागजसे उतर कर प्रमुख विद्याधरोंके साथ मन्दोदरीके पास गये ॥५॥ जिन्होंने रत्नोंकी चूड़ियाँ तोड़कर फेंक दी थीं तथा जो पृथिवीकी धूलिसे धूसर शरीर हो रही थीं ऐसी सब स्त्रियाँ राम लक्ष्मणको देख गला फाड़ फाड़कर अत्यधिक रोने लगीं ॥६॥ बुद्धिमान् रामने मन्दोदरीके साथ साथ समस्त स्त्रियोंके समूहको नाना प्रकारके वचनोंसे सान्त्वना प्राप्त कराई ॥७॥ तदनन्तर कपूर, अगुरु, गोशीर्ष और चन्दन आदि उत्तम पदार्थोंसे रावणका संस्कार कर सब पद्म नामक महासरोवर पर गये ॥८॥ उत्तम चित्तके धारक रामने सरोवरके तीरपर बैठकर कहा कि सब सामन्तोंके साथ कुम्भकर्णादि छोड़ दिये जावें ॥९॥ यह सुन कुछ विद्याधर राजाओंने कहा कि वे बड़े क्रूर हृदय हैं अतः उन्हें शत्रुओंके समान मारा जाय अथवा वे स्वयं ही बन्धनमें पड़े पड़े मर जावें ॥१०॥ तब रामने कहा कि यह क्षत्रियोंकी चेष्टा नहीं । क्या आप लोग क्षत्रियोंकी इस प्रसिद्ध नीतिको नहीं जानते कि सोते हुए, बन्धनमें बँधे हुए, नम्रीभूत, भयभीत तथा दाँतोंमें तृण दबाये हुए आदि योधा मारने योग्य नहीं हैं । यह क्षत्रियोंका धर्म जगत्में सर्वत्र सुशोभित है ॥११-१२॥ तब 'एवमस्तु' कहकर स्वामीकी आज्ञा पालन करनेमें तत्पर, नाना प्रकारके शस्त्रोंके धारक महायोद्धा कवचादिसे युक्त हो उन्हें लानेके लिये गये ॥१३॥

तदनन्तर इन्द्रजित्, कुम्भकर्ण, मारीच, मेघवाहन तथा मय महादैत्यको आदि लेकर

विलोक्यानीयमानांस्तान्दिङ्मतङ्गजसन्निभान् । जजल्पुः कपयः स्वैरं संहतिस्थाः परस्परम् ॥१६॥
प्रज्वलन्तीं चितां वीक्ष्य रावणीयां रुषं यदि । प्रयातीन्द्रजितो जातु[1] कुम्भकर्णनृपोऽपि वा ॥१७॥
अनयोरेकतस्यापि ततो विकृतिमीयुषः । कः समर्थः पुरः स्थातुं कपिध्वजबले नृपः ॥१८॥
यो यत्रावस्थितस्तस्मात् स्थानादुत्थाति नैव सः । अनयोर्हि बलं दृष्टमेतैः सङ्ग्राममूर्द्धनि ॥१९॥
भामण्डलेन चात्मीया गदिता भटपुङ्गवाः । यथा नाद्यापि विश्रम्भो विधातव्यो विभीषणे ॥२०॥
कदाचित् स्वजनानेतान् प्राप्य निर्भूतबन्धनान् । भ्रातृदुःखानुतप्तस्य जायतेऽस्य विकारिता ॥२१॥
इत्युद्भूतसमाशङ्कैर्वैदेहादिभिरावृताः । नीयन्ते कुम्भकर्णाद्या बलनारायणान्तिकम् ॥२२॥
रागद्वेषविनिर्मुक्ता मनसा मुनितां गताः । धरणीं सौम्यया दृष्ट्या वीक्षमाणाः शुभाननाः ॥२३॥
संसारे सारगन्धोऽपि न कश्चिदिह विद्यते । धर्म एको महाबन्धुः सारः सर्वशरीरिणाम् ॥२४॥
विमोक्षं यदि नामास्मात्[2] प्राप्स्यामो बन्धनाद् वयम् । पारणां पाणिपात्रेण करिष्यामो निरम्बराः ॥२५॥
प्रतिज्ञामेवमारूढा रामस्यान्तिकमाश्रिताः । विभीषणं समाजग्मुः कुम्भकर्णादयो नृपाः ॥२६॥
सुखे यथायथं तत्र दुःखसम्भाषणेऽगदन् । प्रशान्ताः कुम्भकर्णाद्या बलनारायणाविति ॥२७॥
अहो वः परमं धैर्यं गाम्भीर्यं चेष्टितं बलम् । सुरैरप्यजयो नीतो मृत्युं यद्राक्षसाधिपः[4] ॥२८॥
परं कृतापकारोऽपि मानी निर्भूतभाषितः । आयुक्ततगुणः शत्रुः श्लाघनीयो विपश्चिताम् ॥२९॥

अनेक उत्तम विद्याधर जो रामके कटकमें कैद थे तथा खन खन करनेवाली बड़ी मोटी बेड़ियोंसे जो सहित थे वे प्रमाद रहित सावधान चित्तके धारक शूरवीरों द्वारा लाये गये ॥१४-१५॥ दिग्गजोंके समान उन सबको लाये जाते देख, समूहके बीच बैठे हुए विद्याधर इच्छानुसार परस्पर इस प्रकार वार्तालाप करने लगे कि यदि कहीं रावणकी जलती चिताको देखकर इन्द्रजित् अथवा कुम्भकर्ण क्रोधको प्राप्त होता है अथवा इन दोमें से एक भी बिगड़ उठता है तो उसके सामने खड़ा होनेके लिए वानरोंकी सेनामें कौन राजा समर्थ है ? ॥१६-१८॥ उस समय जो जहाँ बैठा था उस स्थानसे नहीं उठा सो ठीक ही है क्योंकि ये सब रणके अग्रभागमें उनका बल देख चुके थे ॥१९॥ भामण्डलने अपने प्रधान योद्धाओंसे कह दिया कि विभीषणका अब भी विश्वास नहीं करना चाहिये ॥२०॥ क्योंकि कदाचित् बन्धनसे छूटे हुए इन आत्मीय जनोंको पाकर भाईके दुःखसे संतप्त रहनेवाले इसके विकार उत्पन्न हो सकता है ॥२१॥ इस प्रकार जिन्हें नाना प्रकारकी शङ्काएँ उत्पन्न हो रही थीं ऐसे भामण्डल आदिके द्वारा घिरे हुए कुम्भकर्णादि राम लक्ष्मणके समीप लाये गये ॥२२॥

वे कुम्भकर्णादि सभी पुरुष राग-द्वेषसे रहित हो हृदयसे मुनिपनाको प्राप्त हो चुके थे, सौम्य दृष्टिसे पृथिवीको देखते हुए आ रहे थे, सबके मुख अत्यन्त शुभ-शान्त थे ॥२३॥ वे अपने मनमें यह प्रतिज्ञा कर चुके थे कि इस संसारमें कुछ भी सार नहीं है एक धर्म ही सार है जो सब प्राणियोंका महाबन्धु है। यदि हम इस बन्धनसे छुटकारा प्राप्त करेंगे तो निर्ग्रन्थ साधु हो पाणि-मात्र से ही आहार ग्रहण करेंगे। इस प्रकारकी प्रतिज्ञाको प्राप्त हुए वे सब रामके समीप आये। कुम्भकर्ण आदि राजा विभीषणके भी सम्मुख गये ॥२४-२६॥ तदनन्तर जब दुःखके समयका वार्तालाप धीरे-धीरे समाप्त हो गया तब परम शान्तिको धारण करनेवाले कुम्भकर्णादि ने राम-लक्ष्मणसे इस प्रकार कहा कि अहो ! आप लोगोंका धैर्य, गाम्भीर्य, चेष्टा तथा बल आदि सभी उत्कृष्ट है क्योंकि जो देवों के द्वारा भी अजेय था ऐसे रावणको आपने मृत्यु प्राप्त करा दी ॥२७-२८॥ अत्यन्त अपकारी, मानी और कटुभाषी होनेपर भी यदि शत्रुमें उत्कृष्ट गुण हैं तो वह विद्वानोंका प्रशंसनीय ही होता है ॥२९॥

१. वातु म० । २. ष्वातुं म० । ३. नामेति सम्भावनायाम् । ४. महाराक्षसाधिपः म० ।

परिसान्त्व्य ततश्चक्री वचनैर्हृदयङ्गमैः । जगाद पूर्ववद्यूयं भोगैस्तिष्ठत सङ्गताः ॥३०॥
मतिरेतैरलं भोगैरस्माकं विषदारुणैः । महामोहावहैर्भीमैः सुमहादुःखदायिभिः ॥३१॥
उपायाः सन्ति ते नैव यैर्न ते कृतसान्त्वनाः । तथापि भोगसम्बन्धं प्रतीयुर्न मनस्विनः ॥३२॥
नारायणे तथालग्ने स्वयं हलधरेऽपि च । दृष्टिर्भोगे परावीना तेषामासीद्रवाविव ॥३३॥
भिन्नाञ्जनत्वलच्छाये तस्मिन् सुसरसो जले । अबन्धनैरिभैः साकं स्नाताः सर्वे सगन्धिनि ॥३४॥
राजीवसरसस्तस्मादुत्तीर्यानुक्रमेण च । यथा स्वं निलयं जग्मुः कपयो राक्षसास्तथा ॥३५॥
सरसोऽस्य तटे रम्ये खेचरा बद्धमण्डलाः । केचिच्छूरकथां चक्रुर्विस्मयव्याप्तमानसाः ॥३६॥
ददुः केचिदुपालम्भं दैवस्य क्रूरकर्मणः । मुमुचुः केचिदश्राणि सम्ततानि स्वभोक्तिकम् ॥३७॥
आपूर्यमाणचेतस्का गुणैः स्मृतिपथं गतैः । रावणीयैर्जनाः केचिद्रुरुदुर्मुक्तकण्ठकम् ॥३८॥
चित्रतां कर्मणां केचिदवोचन्नतिसङ्कटाम् । अन्ये संसारकान्तारं निनिन्दुरतिदुस्तरम् ॥३९॥
केचिद्भोगेषु विद्वेषं परमं समुपागताः । राजलक्ष्मीं गलत्केचिदमन्यन्त निरर्थकाम् ॥४०॥
गतिरेषैव वीराणामिति केचिद् बभाषिरे । अकार्यगर्हणं केचिच्चक्रुरुत्तमबुद्धयः ॥४१॥
रावणस्य कथां केचिदभजन् गर्वशालिनीम् । केचिद्रामगुणान्प्रोचुः शक्तिं केचिच्च लाक्ष्मणीम् ॥४२॥
केचिद् बलमसृण्यन्तो मन्दकम्पितमस्तकाः । सुकृतस्य फलं धीराः शशंसुः स्वच्छचेतसः ॥४३॥
गृहे गृहे तदा सर्वाः क्रियाः प्राप्ताः परिक्षयम् । प्रावर्तन्त कथा एव शिशूनामपि केवलाः ॥४४॥

तदनन्तर लक्ष्मणने मनोहर वचनों द्वारा सान्त्वना देकर कहा कि आप सब पहले की तरह भोगोपभोग करते हुए आनन्दसे रहिये ॥३०॥ यह सुन उन्होंने कहा कि विषके समान दारुण, महामोहको उत्पन्न करनेवाले, भयङ्कर तथा महादुःख देनेवाले भोगोंकी हमें आवश्यकता नहीं है ॥३१॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! उस समय वे उपाय शेष नहीं रह गये थे जिनसे उन्हें सान्त्वना न दी गई हो परन्तु फिर भी उन मनस्वी मनुष्योंने भोगोंका सम्बन्ध स्वीकृत नहीं किया ॥३२॥ यद्यपि नारायण और बलभद्र स्वयं उस तरह उनके पीछे लगे हुए थे अर्थात् उन्हें भोग स्वीकृत करानेके लिए बार-बार समझा रहे थे तथापि उनकी दृष्टि भोगोंसे उस तरह विमुख ही रही जिस तरह कि सूर्यसे लगी दृष्टि अन्धकारसे विमुख रहती है ॥३३॥ मसले हुए अञ्जनके कणोंके समान कान्तिवाले उस सरोवरके सुगन्धित जलमें बन्धनमुक्त कुम्भ-कर्णादिके साथ सबने स्नान किया ॥३४॥ तदनन्तर उस पद्मसरोवरसे निकलकर सब वानर और राक्षस, यथायोग्य अपने-अपने स्थान पर चले गये ॥३५॥ कितने ही विद्याधर इस सरोवरके मनोहर तटपर मण्डल बाँधकर बैठ गये और आश्चर्यसे चकितचित्त होते हुए शूरवीरोंकी कथा करने लगे ॥३६॥ कितने ही विद्याधर क्रूरकर्मा दैवके लिए उपालम्भ देने लगे और कितने ही शब्दरहित—चुपचाप अत्यधिक अश्रु छोड़ने लगे ॥३७॥ स्मृतिमें आये हुए रावणके गुणोंसे जिनके चित्त भर रहे थे ऐसे कितने ही लोग गला फाड़-फाड़कर रो रहे थे ॥३८॥ कितने ही लोग कर्मोंकी अत्यन्त संकटपूर्ण विचित्रताका निरूपण कर रहे थे और कितने ही अत्यन्त दुस्तर संसाररूपी अटवीकी निन्दा कर रहे थे ॥३९॥ कितने ही लोग भोगोंमें परम विद्वेषको प्राप्त होते हुए राज्य-लक्ष्मीको चञ्चल एवं निरर्थक मान रहे थे ॥४०॥ कोई यह कह रहे थे कि वीरोंकी ऐसी ही गति होती है और कोई उत्तम बुद्धिके धारक अकार्य—खोटे कार्यकी निन्दा कर रहे थे ॥४१॥ कोई रावणकी गर्वभरी कथा कर रहे थे, कोई रामके गुण गा रहे थे और कोई लक्ष्मणकी शक्तिकी चर्चा कर रहे थे ॥४२॥ जिनका मस्तक धीरे-धीरे हिल रहा था तथा जिनका चित्त अत्यन्त स्वच्छ था ऐसे कितने ही वीर, रामकी प्रशंसा न कर पुण्यके फलकी प्रशंसा कर रहे थे ॥४३॥ उस समय घर-घरमें सब कार्य समाप्त हो गये थे केवल बालकोंमें कथाएँ चल रही थीं ॥४४॥ उस

१. -दश्रुणि ।

लङ्कायां सर्वलोकस्य वाष्पदुर्दिनकारिणः । शोकेनैव व्यलीयन्त महता कुहिमान्यपि ॥४५॥
शोषभूतत्र्यपोहेन जलात्मकमिवाभवत् । नयनेभ्यः प्रवृत्तेन वारिणा भुवनं तदा ॥४६॥
हृदयेषु पदं चक्रुस्तापाः परमदुःसहाः । नेत्रवारिप्रवाहेभ्यो भीता इव समन्ततः ॥४७॥
धिक्धिक्कष्टमहो हा ही किमिदं जातमद्भुतम् । एवं निर्जग्मुरालापा जनेभ्यो वाष्पसङ्गताः ॥४८॥
भूमिशय्यासु मौनेन केचिन्नियमिताननाः । निष्कम्पविग्रहास्तस्थुः पुस्तकर्मगता इव ॥४९॥
बभञ्जुः केचिदस्त्राणि चिक्षिपुर्भूषणानि च । रमणीवदनाम्भोजदृष्टिद्वेषमुपागताः ॥५०॥
उष्णैर्निश्वासवातूलैर्दीर्घाविष्टैः कलुषैरलम् । अमुञ्चदिव तद्दुःखं प्ररोहान्विरलेतरान् ॥५१॥
केचित् संसारभावेभ्यो निर्वेदं परमागताः । चक्रुर्दिगम्बरीं दीक्षां मानसे जिनभाषिताम् ॥५२॥
अथ तस्य दिनस्यान्ते महासङ्घसमन्वितः । [1]अप्रमेयबलः ख्यातो लङ्कां प्राप्तो मुनीश्वरः ॥५३॥
रावणे जीवति प्राप्तो यदि स्यात् स महामुनिः । लक्ष्मणेन समं प्रीतिर्जायते स्यात्तस्य पुष्कला ॥५४॥
तिष्ठन्ति मुनयो यस्मिन् देशे परमलब्धयः । तथा केवलिनस्तत्र योजनानां शतद्वयम् ॥५५॥
पृथिवी स्वर्गसङ्काशा जायते निरुपद्रवा । वैरानुबन्धमुक्ताश्च भवन्ति निकटे नृपाः ॥५६॥
अमूर्त्तत्वं यथा व्योम्नश्चलत्वमनिलस्य च । महामुनेर्तिसर्गेण लोकस्याह्लादनं तथा ॥५७॥
अनेकाद्भुतसम्पन्नैर्मुनिभिः स समावृतः । यथाऽऽगतस्तथा वक्तुं केन श्रेणिक शक्यते ॥५८॥
सुवर्णकुम्भसङ्काशैः संयतद्वर्या[2] स सङ्गतः । आगत्याऽऽवासितो धीमानुद्याने कुसुमायुधे ॥५९॥

समय लङ्कामें जब कि सब लोग दुर्दिनकी भाँति लगातार अश्रुओंकी वर्षा कर रहे थे तब ऐसा जान पड़ता था मानो वहाँके फर्श भी बहुत भारी शोकके कारण पिघल गये हों ॥४५॥ उस समय लङ्कामें जहाँ देखो वहाँ नेत्रोंसे पानी ही पानी झर रहा था इससे ऐसा जान पड़ता था मानो संसार अन्य तीन भूतोंको दूर कर केवल जल रूप ही हो गया था ॥४६॥ सब ओर बहनेवाले नेत्र-जलके प्रवाहोंसे भयभीत होकर ही मानो अत्यन्त दुःसह सन्तापोंने हृदयोंमें स्थान जमा रक्खा था ॥४७॥ धिक्कार हो, धिक्कार हो, हाय-हाय बड़े कष्टकी बात है, अहो हा-ही यह क्या अद्भुत कार्य हो गया, उस समय लोगोंके मुखसे अश्रुओंके साथ-साथ ऐसे ही शब्द निकल रहे थे ॥४८॥ कितने ही लोग मौनसे मुँह बन्दकर पृथ्वीरूपी शय्यापर निश्चल शरीर होकर इस प्रकार बैठे थे मानो मिट्टीके पुतले ही हों ॥४९॥ कितने ही लोगोंने शस्त्र तोड़ डाले, आभूषण फेंक दिये और स्त्रियोंके मुख कमलसे दृष्टि हटा ली ॥५०॥ कितने ही लोगोंके मुखसे गरम लम्बे और कलुषित श्वासके बवण्डर निकल रहे थे जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो उनका दुःख अविरल अंकुर ही छोड़ रहा हो ॥५१॥ कितने ही लोग संसारसे परम निर्वेदको प्राप्त हो मनमें जिन-कथित दिगम्बर दीक्षाको धारण कर रहे थे ॥५२॥

अथानन्तर उस दिनके अन्तिम पहरमें अनन्तवीर्य नामक मुनिराज महासंघके साथ लङ्का नगरीमें आये ॥५३॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि यदि रावणके जीवित रहते वे महामुनि लङ्कामें आये होते तो लक्ष्मणके साथ रावणकी घनी प्रीति होती ॥५४॥ क्योंकि जिस देशमें ऋद्धिधारी मुनिराज और केवली विद्यमान रहते हैं वहाँ दो सौ योजनतककी पृथ्वी स्वर्गके सदृश सर्वप्रकारके उपद्रवोंसे रहित होती है और उनके निकट रहनेवाले राजा निर्वैर हो जाते हैं ॥५५-५६॥ जिस प्रकार आकाशमें अमूर्तिकपना और वायुमें चञ्चलता स्वभावसे है उसी प्रकार महामुनिमें लोगोंको आह्लादित करनेकी क्षमता स्वभावसे ही होती है ॥५७॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अनेक आश्चर्योंसे युक्त मुनियोंसे घिरे हुए वे अनन्तवीर्य मुनिराज लङ्कामें जिस प्रकार आये थे उसका कथन कौन कर सकता है ? ॥५८॥ जो अनेक ऋद्धियोंसे सहित होनेके

---

१. अनन्तवीर्यः । २. संकाशसंगतद्वर्या म० ।

षट्पञ्चाशत्सहस्रैस्तु खेचरैर्मुनिभिः परैः । रेजे तत्र समासीनो ग्रहैर्विधुरिवाऽऽवृतः ॥६०॥
शुक्लध्यानमुपारूढ तस्मिन्नेव तु शिलातले । तस्यानेन तमुत्पन्नं सर्वं तस्य ब्रवीमि तत् ॥६१॥
तस्यातिशयसम्बन्धं कीर्त्यमानं मनोहरम् । शृणु श्रेणिक ! पापस्य नोदनं परमाद्भुतम् ॥६२॥

अथ[1] मुनिवृषभं तथाऽनन्तसत्त्वं मृगेन्द्रासने सन्निविष्टं भुवोऽधोनिवासाः भवनागविद्युत्सुपर्णाग्नो विंशतेरर्धभेदाः । तथा षोडशार्द्धप्रकाराः स्मृता व्यन्तराः किन्नराद्याः सहस्रांशुचन्द्रग्रहाद्याश्च पञ्चप्रकारान्विता ज्योतिरालया, द्विरष्टप्रकाराश्च कल्पालयाः ख्यातसौधर्मनामादयो घातकीखण्डवास्ये समुद्भूतकालोत्सवे स्फीतपूजां सुमेरोः शिरस्युत्तमे देवदेवं जिनेन्द्रं शुभै रत्नधात्रीन्द्रकुम्भैः सुभक्त्याभिषिच्य प्रशस्य, प्रणामैः पुनर्मातुरङ्के सुखं स्थापयित्वा प्रभुं बालकं बालकर्मप्रमुक्तं प्रणम्य प्रहृष्टा विधायोचितं वस्तुकृत्यं परावर्तमानाः, समालोक्य तस्याभिजग्मुः समीपं, प्रभावानुकृष्टाः प्रवरविमानानि केचित्समानानि रत्नोद्दामानि दीप्तांशुबिम्बप्रकाशानि देवाः समारूढवन्तोऽन्ये केचिच्च शङ्खप्रतीकाशसद्राजहंसाश्रिताः केचिदुद्दामदानप्रसेकातिसुगन्धसुगन्धसम्भ्रान्तगुञ्जल्लघुभृङ्ग-प्रहृष्टोरुकालिनीलप्रभाजालकोच्छ्वासिगण्डस्थलानेकपार्श्वाश्रयूढाधिरूढास्तथा बालचन्द्राभदंष्ट्राकरालाननव्याघ्रसिंहादिवाहाधिरूढा भुवेरन्तिकं प्रस्थिताश्चारुचित्ताः पटुपटहसदृक्षगम्भीर-

---

कारण सुवर्णकलशके समान जान पड़ते थे, ऐसे वे मुनि लङ्कामें आकर कुसुमायुधनामक उद्यानमें ठहरे ॥५६॥ वे छप्पन हजार आकाशगामी उत्तम मुनियोंके साथ उस उद्यानमें बैठे हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो नक्षत्रोंसे घिरा हुआ चन्द्रमा ही हो ॥६०॥ निर्मल शिलातलपर शुक्लध्यानमें आरूढ हुए उन मुनिराजको उसी रात्रिमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ॥६१॥ हे श्रेणिक ! मैं पापको दूर करनेवाला परमआश्चर्यसे युक्त उनके मनोहर अतिशयोंका वर्णन करता हूँ सो सुन ॥६२॥

अथानन्तर केवलज्ञान उत्पन्न होते ही वे मुनिराज वीर्यान्तराय कर्मका क्षय हो जानेसे अनन्तबलके स्वामी हो गये तथा देवनिर्मित सिंहासन पर आरूढ हुए। पृथ्वीके नीचे पाताललोकमें निवास करनेवाले वायुकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार तथा सुपर्णकुमार आदि दश प्रकारके भवनवासी, किन्नरोंको आदि लेकर आठ प्रकारके व्यन्तर, सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह आदि पाँच प्रकारके ज्योतिषी और सौधर्म आदि सोलह प्रकारके कल्पवासी इस तरह चारों निकायके देव घातकी खण्डद्वीपमें उत्पन्न हुए किसी तीर्थङ्करके जन्मकल्याणक सम्बन्धी उत्सवमें गये हुए थे, वहाँ विशाल पूजा तथा सुमेरु पर्वतके उत्तम शिखर पर विराजमान देवाधिदेव जिनेन्द्र बालकका शुभ रत्नमयी एवं सुवर्णमयी कलशों द्वारा अभिषेक कर उन्होंने उत्तम शब्दोंसे उनकी स्तुति की। तदनन्तर वहाँसे लौटकर जिन बालकको माताकी गोदमें सुखसे विराजमान किया। जो बालक अवस्था होने पर भी बालकों जैसी चपलतासे रहित थे ऐसे जिन बालकको नमस्कार कर उन देवोंने हर्षित हो, मेरुसे लौटनेके बाद तीर्थङ्करके घर पर होनेवाले ताण्डवनृत्य आदि कार्य यथायोग्य रीतिसे किये। तदनन्तर वहाँसे लौटकर लङ्कामें अनन्तवीर्य मुनिका केवलज्ञान महोत्सव देख उनके समीप आये। मुनिराजके प्रभावसे खिंचे हुए उन देवोंमें कितने ही देव रत्नोंकी बड़ी-बड़ी मालाओंसे युक्त, सूर्यबिम्बके समान प्रकाशमान एवं योग्य प्रमाणसे सहित उत्तम विमानोंमें आरूढ थे, कितने ही शङ्खके समान सफेद उत्तमराज हँसोंपर सवार थे, कितने ही उन हाथियोंकी पीठपर आरूढ थे, जिनके कि गण्डस्थल अत्यधिक मद सम्बन्धी श्रेष्ठ सुगन्धिके सम्बन्धसे गूँजते हुए भ्रमरसमूहकी श्यामकांतिके कारण कुछ बढ़े हुए-से दिखायी देते थे और कितने ही बालचंद्रमाके समान दाढ़ोंसे भयङ्कर मुखवाले व्याघ्र-सिंह आदि वाहनों पर आरूढ थे। वे सब देव प्रसन्न चित्तके धारक हो उन मुनिराजके समीप आ रहे थे। उस समय जोर-जोरसे बजनेवाले पटह,

---

१. वृत्तगन्धिपद्ययुक्तोऽयं भागः। अत्र सर्वत्र भागे भुजङ्गप्रयातच्छन्दसः आभासो दृश्यते।

भेरीनिनादैः क्वणद्वंशवीणासुसुन्दैर्झर्झरीकैः, स्वनद्भूरिशब्दैर्महामेघसङ्घातनिर्घोषमन्द्रध्वनिदुन्दुभिभ्राजद्रम्यैर्मनोहारिदेवाङ्गनागीतकान्तैर्नभोमण्डलं व्याप्तमासीत्तदा प्रतिभयतमसि प्रभक्तकमालोक्य तत्रार्द्धरात्रे विमानस्यरत्नादिजातं निशम्य ध्वनिं दुन्दुभीनां च तारसमुद्भिन्नचित्तोऽभवद्राघवो लक्ष्मणश्च क्षणं तद् विदित्वा यथावत्पुनस्तुष्टिमेतौ। उदधिरिव कपिध्वजानां बलं क्षुभ्यते राक्षसानां तथैवोज्जितं भक्तितस्ते च विद्याधराः पद्मनारायणाद्याश्च सन्मानवाः सद्वृषेन्द्राधिरूढास्तथा भानुकर्णेन्द्रजिन्मेघवाहादयो गन्तुमभ्युद्यताः रथवरतुरगान् समास्थाय शुभ्रातपत्रध्वजप्रौढहंसावलीशोभनप्रोल्लसच्चामरोपयुक्ता नभश्छादयन्तस्समीपीयभूभुः। प्रसूनायुधोद्यानमिन्द्रा इवोदारसम्मोदगन्धर्वयक्षाप्सरःसङ्घसंसेविता वाहनेभ्योऽवतीर्याधिनिर्मुक्तकैर्ध्वातपत्रादियोगाः समागत्य योगीन्द्रमभ्यर्च्य पादारविन्दद्वयं संविधाय प्रणामं प्रभक्त्या परिष्टुत्य सत्स्तोत्रमन्त्रप्रगाढैर्वचोभिर्यथार्हं क्षितौ सन्निविश्य स्थिता धर्मशुश्रूषया युक्तचित्ताः सुखं शुश्रुवुर्धर्ममेत्र मुनीन्द्रास्यतो निर्गतम्। गतय इह चतस्रो भवे यासु नानामहादुःखचक्राधिरूढाः सदा देहिनः पर्यटन्त्यष्टकर्मावनद्धाः शुभं चाशुभं च स्वयं कर्म कुर्वन्ति रौद्रार्तयुक्ताः महामोहनीयेन तस्मिन्नरा बुद्धियुक्ताः कृता ये सदा प्राणिघातैरसत्यैः परद्रव्यहारैः परस्त्रोपरिष्वङ्गरागैः प्रमाणप्रहीणार्थसङ्गैर्महालोभसंवर्द्धितैर्यान्ति लोभं कुकर्माभिलुप्तास्तके मृत्युमाप्य

मृदङ्ग, गम्भीर और भेरियोंके नादसे, बजती हुई वासुरियों और वीणाओंकी उत्तम झनकारसे, झन-झन करनेवाली झाँझोंसे शब्द करनेवाले अनेक शङ्खोंसे, महा मेघमण्डलकी गर्जनाके समान गम्भीर ध्वनिसे युक्त दुन्दुभि-समूहके रमणीय शब्दोंसे और मनको हरण करने वाली देवाङ्गनाओंके सुन्दर सङ्गीतसे आकाशमण्डल व्याप्त हो गया था। उस अर्ध रात्रिके समय सहसा अन्धकार विलीन हो गया और विमानोंमें लगे हुए रत्नों आदिका प्रकाश फैल गया, सो उसे देख तथा दुन्दुभियोंकी गम्भीर गर्जना सुनकर राम-लक्ष्मण पहले तो कुछ उद्विग्नचित्त हुए फिर क्षण-एकमें ही यथार्थ समाचार जानकर सन्तोषको प्राप्त हुए। वानरों और राक्षसोंकी सेनामें ऐसी हलचल मच गई मानो समुद्र ही लहराने लगा हो। तदनन्तर भक्तिसे प्रेरित विद्याधर, राम-लक्ष्मण आदि सत्पुरुष और भानुकर्ण, इन्द्रजित्, मेघवाहन आदि राक्षस, कोई उत्तम हाथियों पर आरूढ होकर और कोई रथ तथा उत्तम घोड़ों पर सवार हो केवल भगवान्के समीप चले। उस समय वे अपने सफेद छत्रों, ध्वजाओं और तरुण हंसावलीके समान शोभायमान चमरोंसे युक्त थे तथा आकाशको आच्छादित करते हुए जा रहे थे।

जिस प्रकार अत्यधिक हर्षसे युक्त गन्धर्व, यक्ष और अप्सराओंके समूहसे सेवित इन्द्र अपने कामोद्यानमें प्रवेश करता है, उसी प्रकार सब लोगोंने अपने-अपने वाहनोंसे उतरकर तथा ध्वजा छत्रादिके संयोगका त्यागकर, लङ्काके उस कुसुमायुध उद्यानमें प्रवेश किया। समीपमें जाकर सबने मुनिराजकी पूजा की, उनके चरण कमल युगलमें प्रणाम किया और उत्तम स्तोत्र तथा मन्त्रोंसे परिपूर्ण वचनोंसे भक्ति पूर्वक स्तुति की। तदनन्तर धर्मश्रवण करनेकी इच्छासे सब यथायोग्य पृथिवी पर बैठ गये और सावधान चित्त होकर मुनिराजके मुखसे निकले हुए धर्मका इस प्रकार श्रवण करने लगे—

उन्होंने कहा कि इस संसारमें नरक तिर्यञ्च मनुष्य और देवके भेदसे चार गतियाँ हैं जिनमें नाना प्रकारके महादुःखरूपी चक्र पर चढ़े हुए समस्त प्राणी निरन्तर घूमते रहते हैं तथा अष्टकर्मोंसे बद्ध हो स्वयं शुभ अशुभ कर्म करते हैं। सदा आर्त्तरौद्र ध्यानसे युक्त रहते हैं तथा मोहनीय कर्म उन्हें बुद्धिरहित कर देता है। ये प्राणी सदा प्राणिघात, असत्य भाषण, परद्रव्यापहरण, परस्त्री समालिङ्गन और अपरिमित धनका समागम, महालोभ कषायके साथ

---

१. ध्वनिं म०। २. तारां म०। ३. फेत्यादित्र म० ज०। ४. इव न०। ५. युक्ताः म० ज०।

प्रपद्यन्ते ततोऽमीभिः पापैः सङ्गं प्रयान्ति ते। अधोऽधो भुवस्तासां रत्नशर्कराबालुकापङ्कधूमतमोमहातमःप्रभाख्यास्तमोतिप्रकृष्टान्धकाराभिधास्ताश्च नित्यं महान्धकार-युक्ताः सुदुर्गन्धबीभत्सदुःप्रेक्ष्यदुःस्पर्शरूपा महादारुणास्तप्तलोहोपमभूमितलाः क्रन्दनाक्रोशनत्रासनैराकुला यत्र ते नारकाः पापबन्धेन दुष्कर्मणा सर्वकालं महातीव्रदुःखमनेकसागरोपमबन्धस्थितिं प्राप्नुवन्तीदमेवं विदित्वा बुधाः पापबन्धादतिद्विष्टचित्ता रमध्वं सुधर्मे व्रतनियमविनाकृताश्च स्वभावार्जवादिगुणैरन्विताः केचिदायान्ति मनुष्यजन्मनि तपोभिर्विविधैः पुराणा निवासं ततश्च्युताः प्राप्य भूयो मनुष्यत्वमुत्सृष्टधर्माभिलाषा जना ये भवन्त्येतके श्रेयसा विप्रमुक्ताः पुनर्जन्ममृत्युद्रुमोदारकान्तारमध्ये भ्रमन्त्युग्रदुःखाहताशाः। अथातोऽपरे भव्यधर्मस्थिताः प्राणिनो देवदेवस्य वाग्भिर्मृशं भाविताः सिद्धिमार्गानुसारेण शीलेन सत्येन शौचेन सम्यक्-तपोदर्शनज्ञानचारित्रयोगेन चात्युत्कटाः यैर्न ये भावदृष्टप्रकारस्य कुर्वन्ति निर्णाशनं कर्मणस्तावदुच्चैर्भूत्वस्थिताः स्वर्भवानां भवन्त्युत्तमाः स्वामिनस्तत्र चाम्भोधिसुख्यान् प्रभूतानने कप्रभेदान् समासाद्य सौख्यं ततः प्रच्युता धर्मशेषस्य लब्ध्वा फलं स्फीतभोगान् श्रियं प्राप्य बोधिं परित्यज्य राज्यादिकं जैनलिङ्गं समादाय कृत्वा तपोऽत्यन्तघोरं समुत्पाद्य शुक्लध्यानिनः केवलज्ञानमायुःक्षये कृत्स्नकर्मप्रमुक्ता भवन्तस्त्रिलोकाग्रमारुह्य सिद्धा अनन्तं शिवं सौख्यमात्मस्वभावं परिप्राप्नुवन्त्युत्तमम्।

उपजातिवृत्तम्

अथेन्द्रजिद्भारिदवाहनाभ्यां पृष्टः स्वपूर्वं जननं मुनीन्द्रः।
उवाच कौशाम्ब्यभिधानपुर्यां भ्रातृद्वयं निःस्वकुलीनमासीत् ॥९३॥

वृद्धिको प्राप्त हुए इन पाँच पापोंके साथ संसर्गको प्राप्त होते हैं। अन्तमें खोटे कर्मोंसे प्रेरित हुए मानव, मृत्युको प्राप्त हो नीचे पाताललोकमें जन्म लेते हैं। नीचेकी पृथिवीके नाम इस प्रकार हैं—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा और महातमःप्रभा। ये पृथिवियाँ निरन्तर महा अन्धकारसे युक्त, अत्यन्त दुर्गन्धित, घृणित दुर्दृश्य एवं दुःखदायी स्पर्श रूप हैं। महादारुण हैं, वहाँ की पृथिवी तपे हुए लोहे के समान है। सबकी सब तीव्र आक्रन्दन, आक्रोशन और भयसे आकुल हैं। जिन पृथिवियोंमें नारकी जीव पापसे बँधे हुए दुष्कर्मके कारण सदा महा तीव्र दुःख अनेक सागरोंकी स्थिति पर्यन्त प्राप्त होते रहते हैं। ऐसा जान कर हे विद्वज्जन हो पापबन्धसे चित्तको द्वेष युक्त कर उत्तम धर्ममें रमण करो। जो प्राणी व्रत-नियम आदिसे तो रहित हैं परन्तु स्वाभाविक सरलता आदि गुणोंसे सहित हैं ऐसे कितने ही प्राणी मनुष्य गतिको प्राप्त होते हैं और कितने ही नाना प्रकारके तपश्चरण कर देवगतिको प्राप्त होते हैं। वहाँसे च्युत हो पुनः मनुष्य पर्याय पाकर जो धर्म की अभिलाषा छोड़ देते हैं वे कल्याणसे रहित हो पुनः उग्र दुःखसे दुःखी होते हुए जन्म-मरणरूपी वृक्षोंसे युक्त विशाल संसार वनमें भ्रमण करते रहते हैं।

अथानन्तर जो भव्य प्राणी देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान्के वचनोंसे अत्यन्त प्रभावित हो मोक्षमार्गके अनुरूप शील, सत्य, शौच, सम्यक् तप, दर्शन, ज्ञान और चारित्रके युक्त होते हुए अष्ट कर्मोंके नाशका प्रयत्न करते हैं, वे उत्कृष्ट वैभवसे युक्त हो देवोंके उत्तम स्वामी होते हैं और वहाँ अनेक सागर पर्यन्त नाना प्रकारका सुख प्राप्त करते रहते हैं। तदनन्तर वहाँसे च्युत हो अवशिष्ट धर्मके फल स्वरूप बहुत भारी भोग और लक्ष्मीको प्राप्त होते हैं और अन्तमें रत्नत्रयको प्राप्त कर राज्यादि वैभवका त्याग कर जैनलिङ्ग—निर्ग्रन्थ मुद्रा धारण करते हैं तथा अत्यन्त तीव्र तपश्चरण कर शुक्लध्यानके धारी हो केवलज्ञान प्राप्त करते हैं और आयुःका क्षय होनेपर समस्त कर्मोंसे रहित होते हुए तीन लोकके अग्र भाग पर आरूढ़ हो सिद्ध बनते हैं एवं अन्तरहित आत्मस्व-भावमय आह्लाद-रूप अनन्त सुख प्राप्त करते हैं।

अथानन्तर इन्द्रजित् और मेघवाहनने अनन्तवीर्य मुनिराजसे अपने पूर्वभव पूछे। सो इसके उत्तरमें उन्होंने कहा कि कौशाम्बी नगरीमें दरिद्रकुलमें उत्पन्न हुए दो भाई रहते थे।

आद्योऽत्र नाम्ना 'प्रथमो' द्वितीयः प्रकीर्तितः 'पश्चिम' नामधेयः ।
अथाऽन्यदा तौ भवदत्तनामा पुरीं प्रयातो विहरन् भदन्तः ॥६३॥
श्रुत्वाऽन्तिके धर्मं तौ भ्रातरौ क्षुल्लकरूपमेतौ ।
मुनिं च तं द्रष्टुमितो नगर्यास्तस्याः पतिः सद्युतिरिन्दुनामा ॥६५॥
उपेक्षयैवाऽऽदरकार्यमुक्तः स्थितः समालोक्य मुनिर्मनीषी ।
मिथ्या यतो दर्शनमस्य राज्ञो विज्ञातमेतेन तदानुपायम् ॥६६॥
श्रेष्ठीति नन्दीति जिनेन्द्रभक्तस्ततः पुरो द्रष्टुमितो भदन्तम् ।
तस्याऽऽदरो राजसमस्य भूत्या कृतोऽनगारेण यथाभिधानम् ॥६७॥
समाहृतं वीक्ष्य मुनीश्वरेण निदानमाबाध्य स पश्चिमेन ।
भवाम्यहं नन्दिसुतो यथेति धर्मं तदर्थं च कुधीरकार्षीत् ॥६८॥
स बोध्यमानोऽप्यनिवृत्तचित्तो मृतो निदानग्रहदूषितात्मा ।
सुतोऽभवन्नन्दिन इन्दुमुख्यां सुयोषिति श्लाघ्यगुणान्वितायाम् ॥६९॥
गर्भस्थ एवाऽत्र महीपतीनां स्थानेषु लिङ्गानि बहून्यभूवन् ।
एतस्य राज्योद्भवसूचनानि प्राकारपातप्रभृतीनि सद्यः ॥७०॥
ज्ञात्वा नृपास्तं विविधैर्निमित्तैर्महान्तरं भाविनमुग्रसूतिम् ।
जन्मप्रभृत्याऽऽदरसम्प्रयुक्तैर्द्रव्यैरसेवन्त सुदूतमीतैः ॥७१॥
रतेरसौ वर्द्धनमादधानः समस्तलोकस्य यथार्थशब्दः ।
यद्भूपतिः कौशलिकेन्दुरस्यैत्यागतस्तान् प्रणामम् ॥७२॥

पहलेका नाम 'प्रथम' था और दूसरा 'पश्चिम' कहलाता था। किसी एक दिन विहार करते हुए भवदत्त मुनि उस नगरीमें आये ॥६३-६४॥ उनके पास धर्म श्रवणकर दोनों भाई क्षुल्लक हो गये। किसी दिन उस नगरीका कान्तिमान इन्दु नामका राजा उन मुनिराजके दर्शन करने आया, सो उसे देख मुनिराज उपेक्षा भावसे बैठे रहे। उन्होंने राजाके प्रति कुछ भी आदर भाव प्रकट नहीं किया। इसका कारण यह था कि बुद्धिमान् मुनिराजने यह जान लिया था कि राजाका मिथ्या दर्शन अनुपाय है—दूर नहीं किया जा सकता ॥६५-६६॥ तदनन्तर राजाके चले जानेके बाद नगरका नन्दी नामक जिनेन्द्र भक्त सेठ मुनिके दर्शन करनेके लिये आया। वह सेठ विभूति में राजाके ही समान था और मुनिने उसके प्रति यथायोग्य सम्मान प्रकट किया ॥६७॥ नन्दी सेठको मुनिराजके द्वारा आदृत देख पश्चिम नामक क्षुल्लकने निदान बाँधा कि मैं नन्दी सेठके पुत्र होऊँ। यथार्थमें वह दुर्बुद्धि इसके लिए ही धर्म कर रहा था ॥६८॥ यद्यपि उसे बहुत समझाया गया तथापि उसका चित्त उस ओरसे नहीं हटा, अन्तमें वह निदान बन्धसे दूषित चित्त होता हुआ मरा और मरकर नन्दी सेठकी प्रशंसनीय गुणोंसे युक्त इन्दुमुखी नामक स्त्रीके पुत्र हुआ ॥६९॥ जब यह गर्भमें स्थित था तभी इसकी राज्य प्राप्तिकी सूचना देनेवाले, कोटका गिरना आदि बहुतसे चिह्न राजाओंके स्थानोंमें होने लगे थे ॥७०॥ नाना प्रकारके निमित्तोंसे यह जानकर कि यह आगे चलकर महापुरुष होगा। राजा लोग जन्मसे ही लेकर उत्तम दूतोंके द्वारा आदर पूर्वक भेजे हुए पदार्थोंसे उसकी सेवा करने लगे थे ॥७१॥ वह सब लोगोंकी रति अर्थात् प्रीतिकी वृद्धि करता था, इसलिए सार्थक नामको धारण करने वाला रतिवर्द्धन नामका राजा हुआ। ऐसा राजा कि कौशाम्बीका अधिपति इन्दु भी जिसे प्रणाम करता था ॥७२॥

---

१. रिन्द्रनामा म० । २. गर्भस्थ म० ।

एवं स तावत्सुमहाविभूत्या मत्तोऽभवद् यः पुनरस्य पूर्वम् ।
व्यायान्मुहुर्मर्मसौ विधाय मृत्वा गतः कल्पनिवासिनाकम् ॥७३॥
स पूर्वमेव प्रतिबोधकार्ये कनीयसा याचित उद्धदेवः ।
समाश्रितः क्षुल्लकरूपमेतं प्रबोधमानेतुमभूत्कृताशः ॥७४॥
गृहं च तस्य प्रविशन्नियुक्तैर्दूरे नरैर्दूरनिराकृतः सन् ।
रूपं [illegible] रतिवर्द्धनस्य देवः क्षणेनोपजहार सद्यः ॥७५॥
कृत्वा च तं तन्नगरप्रभावितोन्मत्तकाकारमरण्यमध्यात् ।
निर्वास्य गत्वा [1]गदति स्म का ते वार्त्ताऽधुना मत्परिभूतिभाजः ॥७६॥
जगौ च पूर्वं जननं यथावत्ततः प्रबोधं समुपागतोऽसौ ।
सम्यक्त्वयुक्तो रतिवर्द्धनोऽभूत्तदादयश्चापि नृपा विशेषात् ॥७७॥
प्रव्रज्य राजा प्रथमामरस्य गतः सकाशं कृतकालधर्मः ।
ततश्च्युतौ तौ विजयेऽभिजातौ उर्वर्वसाख्यौ नगरे नरेन्द्रात् ॥७८॥
सहोदरौ तौ पुनरेव धर्मं विधाय जैनं त्रिदशावभूताम् ।
ततश्च्युतावित्थमिहेन्द्रजिद्भवाहौ जातौ भवन्तावहह खेचरेशौ ॥७९॥
या नन्दिनश्चेन्दुमुखी द्वितीया भवान्तराप्तहितजन्मिका सा ।
मन्दोदरी स्नेहवशेन सेयं माताऽभवद्वा जिनधर्मसक्ता ॥८०॥

आर्याच्छन्दः

श्रुत्वा भवमिति विविधं त्यक्त्वा संसारवस्तुनि प्रीतिम् ।
पुरुसंवेगसमेतौ जगृहतुरुग्रामिमौ दीक्षाम् ॥८१॥

इस प्रकार प्रथम और पश्चिम इन दो भाइयोंमें पश्चिम तो महाविभूति पाकर मत्त हो गया उसके मदमें भूल गया और पूर्वभवमें जो उसका बड़ा भाई प्रथम था वह मरकर स्वर्गमें देव पर्यायको प्राप्त हुआ ॥७३॥ पश्चिमने प्रथमसे उस पर्यायमें याचना की थी कि यदि तुम देवताओं और मैं मनुष्य होऊँ तो तुम मुझे सम्बोधन करना। इस याचनाकी स्मृतिमें रखता हुआ प्रथमका जीव देव रतिवर्धनको सम्बोधनेके लिए क्षुल्लकका रूपधर कर उसके घरमें प्रवेश कर रहा था कि द्वार पर नियुक्त पुरुषों द्वारा उसने उसे दूर हटा दिया। तदनन्तर उस देवने क्षणभरमें रतिवर्धनका रूप रख लिया और असली रतिवर्धनको पागल जैसा बनाकर जङ्गलमें दूर खदेड़ दिया। तदनन्तर उसके पास जाकर बोला कि तुमने मेरा अनादर किया था, अब कहो तुम्हारा क्या हाल है ? ॥७४-७६॥ इतना कहकर उस देवने रतिवर्धनके लिए अपने पूर्व जन्मका यथार्थ निरूपण किया जिससे वह शीघ्र ही प्रबोधको प्राप्त हो सम्यग्दृष्टि हो गया। साथ ही नन्दी सेठ आदि भी सम्यग्दृष्टि हो गये ॥७७॥ तदनन्तर राजा रतिवर्धन दीक्षा धारण कर कालधर्म (मृत्यु) को प्राप्त होता हुआ बड़े भाई प्रथमका जीव जहाँ देव था वहीं जाकर उत्पन्न हुआ। तदनन्तर दोनों देव वहाँसे च्युत हो विजय नामक नगरमें वहाँके राजाके उर्व और उर्वस् नामक पुत्र हुए ॥७८॥ तत्पश्चात् जिनेन्द्र प्रणीत धर्म धारण कर दोनों भाई फिरसे देव हुए और वहाँसे च्युत हो आप दोनों यहाँ इन्द्रजित् और मेघवाहन नामक विद्याधराधिपति हुए हो ॥७९॥ और जो नन्दी सेठकी इन्द्रमुखी नामकी भार्या थी वह भवान्तरमें एक जन्मका अन्तर ले स्नेहके कारण जिनधर्ममें लीन तुम्हारी माता मन्दोदरी हुई है ॥८०॥

इस प्रकार अपने अनेक भव सुन संसार सम्बन्धी वस्तुओंमें प्रीति छोड़ परम संवेगसे

---

१. गदितस्य म०, गदितस्स ख० । २. मत्परिभूतभाजः म० ।

कुम्भश्रुतिमारीचाद्यन्येऽत्र महाविशालसंवेगाः ।
अपगतकषायरागाः श्रामण्येऽवस्थिताः परमे ॥८२॥
तृणमिव खेचरविभवं विहाय विधिना सुधर्मचरणस्थाः ।
बहुविधलब्धिसमेताः पर्याटुरिमे महीं मुनयः ॥८३॥
मुनिसुव्रततीर्थकृतस्तीर्थे तपसा परेण संबद्धाः ।
ज्ञेयास्ते वरमुनयो वन्द्या [1]भव्यासुवाहानाम् ॥८४॥
पतिपुत्रविरहदुःखज्वलनेन विदीपिता सती जाता ।
मन्दोदरी नितान्तं विह्वलहृदया महाशोका ॥८५॥
मूर्च्छामेत्य विबोधं प्राप्य पुनः कुररकामिनी करुणम् ।
कुरुते स्म समाक्रन्दं पतिता दुःखाम्बुधावुग्रे ॥८६॥
हा पुत्रेन्द्रजितेदं व्यवसितमीदृक् कथं त्वया क्रूरम् ।
हा मेघवाहन कथं जननी नापेक्षिता दीना ॥८७॥
युक्तमिदं किं भवतोरनपेक्ष्य गुरुप्रदुःखसन्तप्ताम् ।
मातरमेतद्विहितं किञ्चित्कार्यं सुदुःखेन ॥८८॥
विरहितविद्याविभवौ सुकृतनू क्षितितले कथं पुत्रौ ।
स्थातास्थो मे वत्सौ देवोपमभोगदुर्ललितौ ॥८९॥
हा तात कृतं किमिदं भवताऽपि विमुच्य भोगमुत्तमं रूपम् ।
एकपदे कथय कथं [2]त्यक्तः स्नेहस्त्वया त्वपत्यासक्तः ॥९०॥
जनको भर्ता पुत्रः स्त्रीणामेतावदेव रक्षानिमित्तम् ।
मुक्ता सर्वैरेभिः कं शरणं संश्रयामि पुण्यविहीना ॥९१॥

युक्त हुए इन्द्रजित् और मेघनादने कठिन दीक्षा धारण कर ली। इनके सिवाय जो कुम्भकर्ण तथा मारीच आदि अन्य विद्याधर थे वे भी अत्यधिक संवेगसे युक्त हो कषाय तथा रागभाव छोड़कर उत्तम मुनि पदमें स्थित हो गये ॥८१-८२॥ जिन्होंने विद्याधरोंके विभवको तृणके समान छोड़ दिया था, जो विधिपूर्वक उत्तम धर्मका आचरण करते थे, तथा जो नानाप्रकारकी ऋद्धियोंसे सहित थे, ऐसे ये मुनिराज पृथिवीमें सर्वत्र भ्रमण करने लगे ॥८३॥ मुनिसुव्रत तीर्थङ्करके तीर्थमें ये परम तपसे युक्त तथा भव्य जीवोंके वन्दना करने योग्य उत्तम मुनि हुए हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥८४॥

जो पति और पुत्रोंके विरहजन्य दुःखाग्निसे जल रही थी ऐसी मन्दोदरी महाशोकसे युक्त हो अत्यन्त विह्वल हृदय हो गई ॥८५॥ दुःखरूपी भयङ्कर समुद्रमें पड़ी मन्दोदरी पहले तो मूर्छित हो गई फिर सचेत हो कुररीके समान करुण विलाप करने लगी ॥८६॥ वह कहने लगी कि हाय पुत्र इन्द्रजित् ! तूने यह ऐसा कार्य क्यों किया ? हाय मेघवाहन ! तूने दुःखिनी माताकी अपेक्षा क्यों नहीं की ? ॥८७॥ तीव्र दुःखसे सन्तप्त माताकी उपेक्षा कर अतिशय दुःखसे दुःखी हो तुम लोगोंने यह जो कुछ कार्य किया है सो क्या ऐसा करना तुम्हें उचित था ? ॥८८॥ हे पुत्रो ! तुम देवतुल्य भोगोंसे लड़ाये हुए हो। अब विद्याके विभवसे रहित हो, शरीरसे स्नेह छोड़ कठोर पृथ्वीतल पर कैसे पड़ोगे ? ॥८९॥ तदनन्तर मन्दोदरी भयको लक्ष्य कर बोली कि हाय पिता ! तुमने भी उत्तम भोग छोड़कर यह क्या किया ? कहो तुमने अपनी सन्तानका स्नेह एक साथ कैसे छोड़ दिया ? ॥९०॥ पिता, भर्ता और पुत्र इतने ही तो स्त्रियोंकी रक्षाके निमित्त हैं,

---

१. भव्यप्राणिनाम् इत्यर्थः, भव्याः सुवाहानाम् म० ज० ख० । २. त्यक्तस्नेहस् म० च० ।

परिदेवनमिति करुणं भजमाना वाष्पदुर्दिनं जनयन्ती ।
शशिकान्तयाऽऽर्यया सो प्रतिबोधं वाग्भिरुत्तमाभिरानीता ॥६२॥

शार्दूलविक्रीडितम्

मूढे ! रोदिषि किं त्वनादिसमये संसारचक्रे त्वया
तिर्यङ्मानुषभूरियोनिनिवहे सम्भूतिमायातया ।
नानाबन्धुवियोगविह्वलधिया भूयः कृतं रोदनम्
किं दुःखं पुनरभ्युपैषि पदवीं स्वास्थ्यं भजस्वाधुना ॥६३॥
संसारप्रकृतिप्रबोधनपरैर्वाक्यैर्मनोहारिभि—
स्तस्याः प्राप्य विबोधमुत्तमगुणा संवेगसुमं श्रिता ।
त्यक्ताशेषगृहस्थवेषरचना मन्दोदरी संयता
जाताऽत्यन्तविशुद्धधर्मनिरता शुक्लैकवस्त्रावृता ॥६४॥
लब्ध्वा बोधिमनुत्तमां शशिनखाऽप्यार्यामिमामाश्रिता
संभूतप्रभया रवेरिव रुचा नित्योद्यतोद्यद्युतिः ।
चत्वारिंशदथाष्टकं सुमनसां श्रेयं सहस्राणि हि
क्षीणां संयममाश्रितानि परमं तुल्यानि भासा रवेः ॥६५॥

[1]इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे इन्द्रजितादिनिष्क्रमणाभिधाने नामाष्टसप्ततितमं पर्व ॥७८॥

सो मैं पापिनी इन सबके द्वारा छोड़ी गई हूँ, अब किसकी शरणमें जाऊँ ? ॥६१॥ इस तरह जो करुण विलापको प्राप्त होती हुई आँसुओंकी अविरल वर्षा कर रही थी ऐसी मन्दोदरीको शशिकान्ता नामक आर्यिकाने उत्तम वचनोंके द्वारा प्रतिबोध प्राप्त कराया ॥६२॥ आर्यिकाने समझाया कि अरी मूर्खे ! व्यर्थ ही क्यों रो रही है ? इस अनादि कालीन संसारचक्रमें भ्रमण करती हुई तू तिर्यञ्च और मनुष्योंकी नाना योनियोंमें उत्पन्न हुई है, वहाँ तूने नाना बन्धुजनोंके वियोगसे विह्वल बुद्धि हो अत्यधिक रुदन किया है। अब फिर क्यों दुःखको प्राप्त हो रही है आत्मपदमें लीन हो स्वस्थताको प्राप्त हो ॥६३॥

तदनन्तर जो संसार दशाका निरूपण करनेमें तत्पर शशिकान्ता आर्यिकाके मनोहारी वचनोंसे प्रबोधको प्राप्त हो उत्कृष्ट संवेगको प्राप्त हुई थी ऐसी उत्तम गुणोंकी धारक मन्दोदरी गृहस्थ सम्बन्धी समस्त वेष रचनाको छोड़ अत्यन्त विशुद्ध धर्ममें लीन होती हुई एक सफेद वस्त्रसे आवृत आर्यिका हो गई ॥६४॥ रावणकी बहिन चन्द्रनखा भी इन्हीं आर्याके पास उत्तम रत्नत्रयको पाकर व्रतरूपी विशाल-सम्पदाको धारण करने वाली उत्तम साध्वी हुई। गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिस दिन मन्दोदरी आदिने दीक्षा ली उस दिन उत्तम हृदयको धारण करने वाली एवं सूर्यकी दीप्तिके समान देदीप्यमान अड़तालीस हजार स्त्रियोंने संयम धारण किया ॥६५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें इन्द्रजित् आदिकी दीक्षाका वर्णन करने वाला अठहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७८॥

१. इति पद्मचरिते इन्द्रजितादि ज० ।

एकोनाशीतितमं पर्व

ततश्च पद्मनाभस्य लक्ष्मणस्य च पार्थिव । लङ्कायां सुमहाभूतिः कथा सम्प्रवेशने ॥१॥
महाविमानसङ्घातैर्घण्टाभिश्च सुदन्तिनाम् । परमैरश्वसङ्घैश्च रथैश्च भवनोपमैः ॥२॥
निकुञ्जप्रतिस्वानबधिरीकृतविद्रुमैः । वादित्रमिश्रस्वनैः रम्यैः शङ्खस्वनविमिश्रितैः ॥३॥
विद्याधरमहाचक्रसमेतौ परमद्युती । बलनारायणौ लङ्कां प्रविष्टाविन्द्रसन्निभौ ॥४॥
दृष्ट्वा तौ परमं हर्षं जनता समुपागता । मेने जन्मान्तरोपात्तधर्मस्य विपुलं फलम् ॥५॥
तस्मिन् राजपथे प्राप्ते बलदेवे सचक्रिणि । व्यापाराः पौरलोकस्य प्रयाताः क्वापि पूर्वकाः ॥६॥
विकचार्द्रमुखैः स्त्रीणां जालमार्गास्तिरोहिताः । सनीलोत्पलराजीवैरिव रेजुर्निरन्तरम् ॥७॥
महाकौतुकयुक्तानामाकुलानां निरीक्षणे । तासां मुखेषु निश्चेरुरिति वाचो मनोहराः ॥८॥
सखि पश्यैष रामोऽसौ राजा दशरथात्मजः । राजन्युत्तमया योऽयं रत्नराशिरिव श्रिया ॥९॥
सम्पूर्णचन्द्रसङ्काशः पुण्डरीकायतेक्षणः । अपूर्वकर्मणां सर्गः कोऽपि स्तुत्यधिकाकृतिः ॥१०॥
इमं या लभते कन्या धन्या रमणमुत्तमम् । कीर्तिस्तम्भस्तया लोके स्थापितोऽयं स्वरूपया ॥११॥
परमश्चरितो धर्मश्चिरं जन्मान्तरे यया । ईदृशं लभते नाथं सा सुनारी कुतोऽपरा ॥१२॥
सहायतां निशास्वस्य या नारी प्रतिपद्यते । सैवैका योषितां मूर्ध्नि वर्त्तते परया तु किम् ॥१३॥
स्वर्गतः प्रच्युता नूनं कल्याणी जनकात्मजा । इमं रमयति श्लाघ्यं पतिमिन्द्रं शचीव या ॥१४॥

अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! अब राम और लक्ष्मण का महावैभवके साथ लङ्कामें प्रवेश हुआ, सो उसकी कथा करना चाहिए ॥१॥ महाविमानोंके समूह, उत्तम हाथियोंके घण्टा, उत्कृष्ट घोड़ोंके समूह, मन्दिर तुल्य रथ, लतागृहोंमें गूंजने वाली प्रतिध्वनिसे जिनने दिशाएँ बहरी कर दी थीं तथा जो शङ्खके शब्दोंसे मिले थे ऐसे वादित्रोंके मनोहर शब्दोंसे तथा विद्याधरोंके महा चक्रसे सहित, उत्कृष्ट कान्तिके धारक, इन्द्र समान राम और लक्ष्मणने लङ्कामें प्रवेश किया ॥२-४॥ उन्हें देख जनता परम हर्षको प्राप्त हुई और जन्मान्तर में संचित धर्मका महा फल मानती हुई ॥५॥ जब चक्रवर्ती-लक्ष्मणके साथ बलभद्र—श्री राम राज पथमें आये तब नगरवासी जनोंके पूर्व व्यापार मानों कहीं चले गये अर्थात् जे अन्य सब कार्य छोड़ इन्हें देखने लगे ॥६॥ जिनके नेत्र फूल रहे थे, ऐसे स्त्रियोंके मुखोंसे आच्छादित झरोखे निरन्तर इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानो नीलकमल और लाल कमलोंसे ही युक्त हों ॥७॥ जो राम-लक्ष्मणके देखनेमें आकुल हो महा कौतुकसे युक्त थीं ऐसी उन स्त्रियोंके मुखसे इस प्रकार के मनोहर वचन निकलने लगे ॥८॥ कोई कह रही थी कि सखि ! देख, ये दशरथके पुत्र राजा रामचन्द्र हैं जो अपनी उत्तम शोभासे रत्न राशिके समान सुशोभित हो रहे हैं ॥९॥ जो पूर्ण चन्द्रमाके समान हैं, जिनके नेत्र पुण्डरीकके समान विशाल हैं तथा जिनकी आकृति स्तुतिसे अधिक है ऐसे ये राम मानों अपूर्व कर्मोंकी कोई अद्भुत सृष्टि ही हैं ॥१०॥ जो कन्या इस उत्तम पतिको प्राप्त होती है वही धन्या है तथा उसी सुन्दरीने लोकमें अपनी कीर्तिका स्तम्भ स्थापित किया है ॥११॥ जिसने जन्मान्तरमें चिर काल तक परम धर्मका आचरण किया है वही ऐसे पतिको प्राप्त होती है। उस स्त्रीसे बढ़कर और दूसरी उत्तम स्त्री कौन होगी ? ॥१२॥ जो स्त्री रात्रिमें इसकी सहायताको प्राप्त होती है वही एक मानों स्त्रियोंके मस्तक पर विद्यमान है अन्य स्त्रीसे क्या प्रयोजन है ? ॥१३॥ कल्याणवती जानकी निश्चित ही स्वर्गसे च्युत हुई है जो इन्द्राणीके समान इस प्रशंसनीय पतिको रमण कराती है ॥१४॥

असुरेन्द्रसमो येन रावणो रणमस्तके । साधितो लक्ष्मणः सोऽयं चक्रपाणिर्विराजते ॥१५॥
भिन्नाञ्जनदलश्यामा कान्तिरस्य बलत्विषा[1] । भिन्ना प्रयागतीर्थस्य धत्ते शोभां विसारिणीम् ॥१६॥
चन्द्रोदरसुतः सोऽयं विराधितनरेश्वरः । नययोगेन येनेयं विपुला श्रीरवाप्यते ॥१७॥
असौ किष्किन्धराजोऽयं सुग्रीवः सत्त्वसङ्गतः । परमं रामदेवेन प्रेम यत्र नियोजितम् ॥१८॥
अयं स जानकीभ्राता प्रभामण्डलमण्डितः । इन्दुना खेचरेन्द्रेण यो नीतः पदमीदृशम् ॥१९॥
वीरोऽङ्गदकुमारोऽसौ दुर्ललितः परम् । यस्तस्य राक्षसेन्द्रस्य विघ्नं कर्तुं[2] समुद्यतः ॥२०॥
पश्य पश्येमसुत्तुङ्गं स्यन्दनं सखि सुन्दरम् । वातोद्धूतमहाभीमवनाभा यत्र दन्तिनः ॥२१॥
रणाङ्गणे विपक्षाणां यस्य त्रासकलक्षमणा[3] । ध्वजयष्टिरलं भीष्मा श्रीशैलोऽयं स मारुतिः ॥२२॥
एवं वाग्भिर्विचित्राभिः पूज्यमाना महौजसः । राजमार्गं व्यगाहन्त पद्मनाभादयः सुखम् ॥२३॥
अथान्तिकस्थितामुख्या पद्मश्रामरधारिणीम् । पप्रच्छ सादरं प्रेमरसार्द्रहृदयः परम् ॥२४॥
या सा मद्विरहे दुःखं परिप्राप्ता सुदुःसहम् । भामण्डलस्वसा क्वासाविह देशेऽवतिष्ठते ॥२५॥
ततोऽसौ रत्नवलयप्रभाजटिलबाहुका । करशाखां प्रसार्योचे स्वामितोषणतत्परा ॥२६॥
अट्टहासान्विमुञ्चन्तमिमं निर्झरवारिभिः । पुष्पप्रकीर्णनामानं राजन् पश्यति यं गिरिम् ॥२७॥
नन्दनप्रतिमेऽमुष्मिन्नुद्याने जनकात्मजा । कीर्तिशीलपरीवारा रमणी तव तिष्ठति ॥२८॥
तस्या अपि समीपस्था सखी सुप्रियकारिणी । अङ्गुलीमूर्मिकारम्यां प्रसार्यैवमभाषत ॥२९॥

कोई कह रही थी कि जिसने रणके अग्रभागमें असुरेन्द्रके समान रावणको जीता है ऐसे ये चक्र हाथमें लिये लक्ष्मण सुशोभित हो रहे हैं ॥१५॥ श्री रामकी धवल कान्तिसे मिली तथा मसले हुए अंजन कणकी समानता रखने वाली इनकी श्यामल कान्ति प्रयाग तीर्थकी विस्तृत शोभा धारण कर रही है ॥१६॥ कोई कह रही था कि यह चन्दोदरका पुत्र राजा विराधित है जिसने नीतिके संयोगसे यह विपुल लक्ष्मी प्राप्त की है ॥१७॥ कोई कह रही थी कि किष्किन्धका राजा बकशाली सुग्रीव है जिस पर श्री रामने अपना परम प्रेम स्थापित किया है ॥१८॥ कोई कह रही थी कि यह जानकीका भाई भामण्डल है जो चन्द्रगति विद्याधरके द्वारा ऐसे पदको प्राप्त हुआ है ॥१९॥ कोई कह रही थी कि यह अत्यन्त लड़ाया हुआ वीर अंगद कुमार है जो उस समय रावणके विघ्न करनेके लिए उद्यत हुआ था ॥२०॥ कोई कह रही थी कि हे सखि ! देख-देख इस ऊँचे सुन्दर रथको देख, जिसमें वायुसे कम्पित गरजते मेघके समान हाथी जुते हैं ॥२१॥ कोई कह रही थी कि जिसकी वानर चिह्नित ध्वजा रणाङ्गणमें शत्रुओंके लिए अत्यन्त भय उपजाने वाली थी ऐसा यह पवनञ्जयका पुत्र श्री शैल-हनूमान है ॥२२॥ इस तरह नाना प्रकारके वचनोंसे जिनकी पूजा हो रही थी तथा जो उत्तम प्रतापसे युक्त थे ऐसे राम आदिने सुखसे राजमार्गमें प्रवेश किया ॥२३॥

अथानन्तर प्रेम रूपी रससे जिनका हृदय आर्द्र हो रहा था ऐसे श्री रामने अपने समीप में स्थित चमर ढोलने वाली स्त्रीसे परम आदरके साथ पूछा कि जो हमारे विरहमें अत्यन्त दुःसह दुःखको प्राप्त हुई है ऐसी भामण्डलकी बहिन यहाँ किस स्थानमें विद्यमान है ? ॥२४-२५॥ तदनन्तर रत्नमयी चूड़ियोंकी प्रभासे जिसकी भुजाएँ व्याप्त थीं एवं जो स्वामीको संतुष्ट करनेमें तत्पर थी ऐसी चमर ग्राहिणी स्त्री अङ्गुली पसार कर बोली कि यह जो सामने नीझरनोंके जलसे अट्टहासको छोड़ते हुए पुष्प-प्रकीर्णक नामा पर्वत देख रहे हो इसीके नन्दन वनके समान उद्यान में कीर्ति और शील रूपी परिवारसे सहित आपकी प्रिया विद्यमान है ॥२६-२८॥

उधर सीताके समीपमें भी जो सुप्रिय कारिणी सखी थी वह अंगूठीसे सुशोभित अङ्गुली

---

१. बलत्विषः म० । २. लक्ष्मणम् म० । ३. मूर्मिकां रम्यां म० ।

आतपत्रमिदं यस्य चन्द्रमण्डलविभ्रमम् । चन्द्रादित्यतनूभासौ यस्यैव कुण्डले ॥२०॥
शरन्निर्झरसंकाशो हारो यस्य विराजते । सोऽयं मनोहरो देवि महाभूतिर्नरोत्तमः ॥२१॥
परमं त्वद्वियोगेन सुवक्त्रे खेदमुद्वहन् । दिग्गजेन्द्र इवाऽऽयाति पद्मः पद्मनिरीक्षणे ॥२२॥
मुखारविन्दमालोक्य प्राणनाथस्य जानकी । चिरात्स्वप्नमिव प्राप्तं मेने भूयो विषादिनी ॥२३॥
उत्तीर्य[1] द्विरदाधीशात्पद्मनाभः ससम्भ्रमः । प्रमोदमुद्वहन्सीतां ससार विकचेक्षणः ॥२४॥
घनवृन्दादिवोत्तीर्य चन्द्रवल्लाङ्गलायुधः । रोहिण्या इव वैदेह्यास्तुष्टिं चक्रे समाव्रजन् ॥२५॥
प्रत्यासन्नक्षमायातं ज्ञात्वा नाथं ससम्भ्रमा[2] । मृगीवदाकुला सीता समुत्तस्थौ महाद्युतिः ॥२६॥
भूरेणुधूसरीभूतकेशीं मलिनदेहिकाम् । कालनिर्गलितच्छायबन्धूकसदृशाधराम् ॥२७॥
स्वभावेनैव तन्वङ्गीं विरहेण विशोषतः । तथापि किञ्चिदुच्छ्वासं दर्शनेन समागताम् ॥२८॥
आलिङ्गन्तीमिव स्निग्धैर्मयूखैः करजोद्भवैः । स्नपयन्तीमिवोल्लोलविलोचलनभरीचिभिः ॥२९॥
लिम्पन्तीमिव लावण्यसम्पदा क्षणवृद्धया । वीजयन्तीमिवोच्छ्वासैर्हर्षनिर्भरनिर्गतैः ॥४०॥
पृथुलारोहवच्छ्रोणीं नेत्रविश्रामभूमिकाम् । पाणिपल्लवसौन्दर्यजितश्रीपाणिपङ्कजाम् ॥४१॥
सौभाग्यरत्नसम्भूतिधारिणीं धर्मरक्षिताम् । सम्पूर्णचन्द्रवदनां कलङ्कपरिवर्जिताम् ॥४२॥
सौदामिनीसदृच्छायामतिधीरत्वयोगिनीम् । मुखचन्द्रान्तरोद्भूतस्फीतनेत्रसरोरुहाम् ॥४३॥
कलुषत्वविनिर्मुक्तां समुन्नतपयोधराम् । चापयष्टिमनङ्गस्य वक्त्रापरिवर्जिताम् ॥४४॥

पसार कर इस प्रकार बोली कि जिनके ऊपर यह चन्द्रमण्डलके समान छत्र फिर रहा है, जो चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रकाशमान कुण्डलोंको धारण कर रहे हैं तथा जिनके वक्षःस्थलमें शरद्ऋतुके निर्झरके समान हार शोभा दे रहा है, हे कमल लोचने देवि ! वही ये महा वैभवके धारी नरोत्तम श्री राम तुम्हारे वियोगसे परम खेदको धारण करते हुए दिग्गजेन्द्रके समान आ रहे हैं ॥२९–३२॥ अत्यधिक विषादसे युक्त सीताने चिरकाल बाद प्राणनाथका मुखकमल देख ऐसा माना, मानो स्वप्न ही प्राप्त हुआ हो ॥३३॥ जिनके नेत्र विकसित हो रहे थे ऐसे राम शीघ्र ही गजराजसे उतर कर हर्ष धारण करते हुए सीताके समीप चले ॥३४॥ जिसप्रकार मेघमण्डल से उतर कर आता हुआ चन्द्रमा रोहिणीको संतोष उत्पन्न करता है उसी प्रकार हाथीसे उतर कर आते हुए श्री रामने सीताको संतोष उत्पन्न किया ॥३५॥ तदनन्तर रामको निकट आया देख महा संतोषको धारण करने वाली सीता संभ्रमके साथ मृगीके समान आकुल होती हुई उठ कर खड़ी हो गई ॥३६॥

अथानन्तर जिसके केश पृथिवीकी धूलिसे धूसरित थे, जिसका शरीर मलिन था, जिसके ओठ मुरझाये हुए बन्धूकके फूलके समान निष्प्रभ थे, जो स्वभावसे ही दुबली थी और उस समय विरहके कारण जो और भी अधिक दुबली हो गई थी, यद्यपि दुबली थी तथापि पतिके दर्शनसे जो कुछ-कुछ उल्लासको धारण कर रही थी, जो नखोंसे उत्पन्न हुई सचिक्कण किरणोंसे मानो आलिङ्गन कर रही थी, खिले हुए नेत्रोंकी किरणोंसे मानो अभिषेक कर रही थी, क्षण-क्षणमें बढ़ती हुई लावण्य रूप सम्पत्तिके द्वारा मानो लिप्त कर रही थी और हर्षके भारसे निकले हुए उच्छ्वासोंसे मानों पङ्खा ही चल रही थी, जिसके नितम्ब स्थूल थी, जो नेत्रोंके विश्राम करनेकी भूमि थी, जिसने कर-किसलयके सौन्दर्यसे लक्ष्मीके हस्त-कमलको जीत लिया था, जो सौभाग्यरूपी रत्न-संपदाको धारण कर रही थी, धर्मने ही जिसकी रक्षा की थी, जिसका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान था, अत्यन्त धैर्यगुणसे सहित थी, जिसके मुखरूपी चन्द्रमाके भीतर विशाल नेत्ररूपी कमल उत्पन्न हुए थे, जो कलुषतासे रहित थी, जिसके स्तन अत्यन्त उन्नत थे, और जो कामदेवकी

---

१. उत्तीर्ण म० । २. ससंभ्रमात् म० । ३. निर्मद- म० ।

आयान्तीमन्तिकं किञ्चिद्वैदेहीमापरोजितः । विलोक्य निरुपाख्यानं भावं कमपि सङ्गतः ॥४५॥
विनयेन समासाद्य रमणं रतिसुन्दरी । वाष्पाकुलेक्षणा तस्थौ पुरः सङ्गममाकुला ॥४६॥
शचीव सङ्गता शक्रं रतिर्वा कुसुमायुधम् । निजधर्ममहिंसा तु सुभद्रा भरतेश्वरम् ॥४७॥
चिरस्यालोक्य तां पद्मः सङ्गमं नूतनं विदन् । मनोरथशतैर्लब्धो फलभारप्रणामिभिः ॥४८॥
हृदयेन वहन् कम्पं चिरासङ्गस्वभावजम् । महाद्युतिधरः कान्तः सम्भ्रान्ततरलेक्षणः ॥४९॥
केयूरदृष्टमूलाभ्यां भुजाभ्यां क्षणमात्रतः । सञ्जातपीवरत्वाभ्यामालिलिङ्ग रसाधिकम् ॥५०॥
तामालिङ्गन्विलीनो नु मग्नो नु सुखसागरे । हृदयं सम्प्रविष्टो नु पुनर्विरहतो भयात् ॥५१॥
प्रियकण्ठसमासक्तबाहुपाशा सुमानसा । कल्पपादपसंसक्तहेमवल्लीव सा बभौ ॥५२॥
उद्भूतसुखसम्भारसङ्गमैकाग्रचेतसः । मिथुनस्यौपमां तादृं नान्यत्र मिथुनं परम् ॥५३॥
दृष्ट्वा सुविहितं सीतारामदेवसमागमम् । तमन्वरगता देवा सुमुचुः कुसुमाञ्जलिम् ॥५४॥
गन्धोदकं च संगुञ्जद् भ्रान्तभ्रमरभीरुकम् । विमुच्य मेघपृष्ठस्थाः सस्मुर्भीरतीदिति ॥५५॥
अहो निरुपमं धैर्यं सीतायाः साधुचेतसः । अहो गाम्भीर्यमक्षोभमहो शीलमनोज्ञता ॥५६॥
अहो नु व्रतनैष्कम्प्यमहो सत्त्वं समुन्नतम् । मनसाऽपि यया नेष्टो रावणः शुद्धवृत्तया ॥५७॥
सम्भ्रान्तौ लक्ष्मणस्तावद् वैदेह्याश्चरणद्वयम् । अभिवाद्य पुरस्तस्थौ विनयानतविग्रहः ॥५८॥

मानो कुटिलतासे रहित-सीधी धनुषयष्टि हो ऐसी सीताको कुछ समीप आती देख श्रीराम किसी अनिर्वचनीयभावको प्राप्त हुए ॥३८-४५॥ रतिके समान सुन्दरी सीता विनय पूर्वक पतिके समीप जाकर मिलनेकी इच्छासे आकुल होती हुई सामने खड़ी हो गई। उस समय उसके नेत्र हर्षके अश्रुओंसे व्याप्त हो रहे थे ॥४६॥ उस समय रामके समीप खड़ी सीता ऐसी जान पड़ती थी मानो इन्द्रके समीप इन्द्राणी ही आई हो, कामके समीप मानो रति ही आई हो, जिन धर्मके समीप मानो अहिंसा ही आई हो और भरत चक्रवर्तीके समीप मानो सुभद्रा ही आई हो ॥४७॥ जो फलके भारसे नम्रीभूत हो रहे थे ऐसे सैकड़ों मनोरथोंसे प्राप्त सीताको चिरकाल-बाद देखकर रामने ऐसा समझा मानो नवीन समागम ही प्राप्त हुआ हो ॥४८॥

अथानन्तर जो चिरकाल बाद होने वाले समागमके स्वभावसे उत्पन्न हुए कम्पनको हृदयमें धारण कर रहे थे, जो महा दीप्तिके धारक थे, सुन्दर थे और जिनके चञ्चल नेत्र घूम रहे थे ऐसे श्रीरामने अपनी उन भुजाओंसे रसनिमग्न हो सीताका आलिङ्गन किया, जिनके कि मूल भाग बाजूबन्दोंसे अलंकृत थे तथा क्षणमात्रमें ही जो स्थूल हो गई थीं ॥४९-५०॥ सीताका आलिङ्गन करते हुए राम क्या विलीन हो गये थे, या सुख रूपी सागरमें निमग्न हो गये थे या पुनः विरहके भयसे मानो हृदयमें प्रविष्ट हो गये थे ॥५१॥ पतिके गलेमें जिसके भुजपाश पड़े थे, ऐसी प्रसन्न चित्तको धारक सीता उस समय कल्पवृक्षसे लिपटी सुवर्णलताके समान सुशोभित हो रही थी ॥५२॥ समागमके कारण बहुत भारी सुखसे जिसे रोमाञ्च उठ आये थे ऐसे इस दम्पतीकी उपमा उस समय उसी दम्पतीको प्राप्त थी ॥५३॥ सीता और श्रीरामदेवका सुखसमागम देख आकाशमें स्थित देवोंने उनपर पुष्पाञ्जलियाँ छोड़ीं ॥५४॥ मेघोंके ऊपर स्थित देवोंने, गुञ्जारके साथ घूमते हुए भ्रमरोंको भय देनेवाला गन्धोदक वर्षा कर निम्नलिखित वचन कहे ॥५५॥ वे कहने लगे कि अहो! पवित्र चित्तकी धारक सीताका धैर्य अनुपम है। अहो! इसका गाम्भीर्य क्षोभ रहित है, अहो! इसका शीलव्रत कितना मनोज्ञ है? अहो! इसकी व्रत सम्बन्धी दृढ़ता कैसी अद्भुत है? अहो! इसका धैर्य कितना उन्नत है कि शुद्ध आचारको धारण करने वाली इसने रावणको मनसे भी नहीं चाहा ॥५६-५७॥

तदनन्तर जो हड़बड़ाये हुए थे और विनयसे जिनका शरीर नम्रीभूत हो रहा था ऐसे

१. रामः । २. अहोणुव्रतनैष्कम्प्य -ख० ज० ।

पुरन्दरसमच्छायं दृष्ट्वा चक्रधरं तदा । अश्रान्वितेक्षणा साध्वी जानकी परिषस्वजे ॥५८॥
उवाच च यथा भद्र गदितं श्रमणोत्तमैः । महाज्ञानधरैः प्राप्तं पदमुच्चैस्तथा त्वया ॥५९॥
स त्वं चक्राङ्कराज्यस्य भाजनत्वमुपागतः । न हि निर्ग्रन्थसम्भूतं वचनं जायतेऽन्यथा ॥६१॥
एषोऽसौ बलदेवत्वं सद्य ज्येष्ठः समागतः । विरहानलमग्नाया येन मे जनिता कृपा ॥६२॥
कुङ्कुमार्द्रांशुविशदद्युतिस्तावदुपायथौ । स्वसुःसमीपधरणीं श्रीभामण्डलमण्डितः ॥६३॥
दृष्ट्वा तं मुदितं सीता सौदर्यस्नेहनिर्भरा । रणप्रत्यागतं वीरं विनीतं परिषस्वजे ॥६४॥
सुग्रीवो वायुतनयो नलो [1]नीलोऽङ्गदस्तथा । विराधितोऽथ चन्द्राभः सुषेणो जाम्बवो बली ॥६५॥
जीमूतशल्यदेवाद्यास्तथा परमखेचराः । संश्राव्य निजनामानि मूर्ध्ना कृत्वाभिवादनम् ॥६६॥
विलेपनानि चारूणि वस्त्राण्याभरणानि च । पारिजातादिजातानि सत्पुष्पाणि सुरभीणि च ॥६७॥
सीताचरणराजीवयुगलान्तिकभूतले । अतिष्ठिपन् सुवर्णादिपात्रस्थानि प्रमोदिनः ॥६८॥

उपजातिवृत्तम्

ऊचुश्च देवि त्वमुदारभावा सर्वत्र लोके प्रथितप्रभावा ।
श्रिया महत्या गुणसम्पदा च प्राप्ता पदं तुङ्गतमं मनोज्ञम् ॥६९॥
देवस्तुताचारविभूतिधात्री प्रसाद्यसे मङ्गलभूतदेहा ।
जीया[2] जयश्रीर्बलदेवयुक्ता प्रभास्वरेयं द्युतुवत्सलीला ॥७०॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्तं पद्मपुराणे सीतासमागमाभिधानं नामैकोनाशीतितमं पर्व ॥७९॥

लक्ष्मण सीताके चरण युगलको नमस्कार कर सामने खड़े हो गये ॥५८॥ उस समय इन्द्रके समान कान्तिके धारक चक्रधरको देख साध्वी सीताके नेत्रोंमें वात्सल्यके अश्रु निकल आये और उसने बड़े स्नेहसे उनका आलिङ्गन किया ॥५९॥ साथ ही उसने कहा कि हे भद्र ! महाज्ञानके धारक मुनियोंने जैसा कहा था वैसा ही तुमने उच्च पद प्राप्त किया है ॥६०॥ अब तुम चक्र चिह्नित राज्य—नारायण पदकी पात्रताको प्राप्त हुए हो। सच है कि निर्ग्रन्थ मुनियोंसे उत्पन्न वचन कभी अन्यथा नहीं होते ॥६१॥ यह तुम्हारे बड़े भाई बलदेव पदको प्राप्त हुए हैं जिन्होंने विरहाग्निमें डूबी हुई मेरे ऊपर बड़ी कृपा की है ॥६२॥ इतनेमें ही चन्द्रमाकी किरणोंके समान कान्तिको धारण करनेवाला भामण्डल बहिनकी समीपवर्ती भूमिमें आया ॥६३॥ प्रसन्नतासे भरे, रणसे लौटे उस विजयी वीरको देख, भाईके स्नेहसे युक्त सीताने उसका आलिङ्गन किया ॥६४॥ सुग्रीव, हनूमान्, नल, नील, अङ्गद, विराधित, चन्द्राभ, सुषेण, बलवान् जाम्बव, जीमूत और शल्यदेव आदि उत्तमोत्तम विद्याधरोंने अपने-अपने नाम सुनाकर सीताको शिरसे अभिवादन किया ॥६५-६६॥ उन सबने हर्षसे युक्त हो सीताके चरणयुगलकी समीपवर्ती भूमिमें सुवर्णादिके पात्रमें स्थित सुन्दर विलेपन, वस्त्र, आभरण और पारिजात आदि वृक्षोंकी सुगन्धित मालाएँ भेंट कीं ॥६७-६८॥ तदनन्तर सबने कहा कि हे देवि ! तुम उत्कृष्ट भावको धारण करने वाली हो, तुम्हारा प्रभाव समस्त लोकमें प्रसिद्ध है तथा तुम बहुत भारी लक्ष्मी और गुणरूप सम्पदाके द्वारा अत्यन्त श्रेष्ठ मनोहर पदको प्राप्त हुई हो ॥६९॥ तुम देवोंके द्वारा स्तुत आचाररूपी विभूतिको धारण करनेवाली हो, प्रसन्न हो, तुम्हारा शरीर मङ्गल रूप है, तुम विजय लक्ष्मी स्वरूप हो, उत्कृष्ट लीलाकी धारक हो, ऐसी हे देवि ! तुम सूर्यकी प्रभाके समान बलदेवके साथ चिरकाल तक जयवन्त रहो ॥७०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें सीताके समागमका वर्णन करने वाला उन्यासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७९॥

---

१. नीलाङ्गदस्तथा म० । २. यैषा म०, जेयं क० ।

अशीतितमं पर्व

ततस्तां सङ्गमादित्यप्रबोधितमुखाम्बुजाम् । पाणावादाय हस्तेन समुत्तस्थौ हलायुधः ॥१॥
ऐरावतोपमं नागमारोप्य स्ववशानुगम् । आरोपयन् महातेजाः समग्रां कान्तिमुद्वहन् ॥२॥
चलद्घण्टाभिरामस्य नागमेघस्य पृष्ठतः । जानकीरोहिणीयुक्तः शुशुभे पद्मचन्द्रमाः ॥३॥
समाहितमतिः प्रीतिं दधानोऽत्यर्थमुन्नताम् । पूर्यमाणो जनौघेन महद्धर्या परितो वृतः ॥४॥
महद्भिरनुयातेन खेचरैरनुरागिभिः । अन्वितश्चक्रहस्तेन लक्ष्मणेनोत्तमश्रिया ॥५॥
रावणस्य विमानाभं भवनं सुरभर्तुतेः[1] । ददर्शाभ्यन्तरं प्रविश्य विचक्षणः ॥६॥
अपश्यच्च गृहस्यास्य मध्ये परमसुन्दरम् । भवनं शान्तिनाथस्य युक्तविस्तारतुङ्गतम् ॥७॥
हेमस्तम्भसहस्रेण रचितं विकटद्युति । नानारत्नसमाकीर्णभित्तिभागं मनोरमम् ॥८॥
विदेहमध्यवेशस्थमन्दराकारशोभितम् । क्षीरोदफेन[2]पटलच्छायं नयनबन्धनम् ॥९॥
क्वणत्किङ्किणिकाजालमहाध्वजविराजितम् । मनोज्ञरूपसङ्कीर्णमशक्यपरिवर्णनम् ॥१०॥
ततीर्य नागतो मत्तनागेन्द्रसमविक्रमः । प्रसन्ननयनः श्रीमान् तद्विवेश सहाङ्गनः ॥११॥
कायोत्सर्गविधानेन प्रलम्बितभुजद्वयः । प्रशान्तहृदयः कृत्वा सामायिकपरिग्रहम् ॥१२॥
बद्ध्वा करद्वयाम्भोजकुड्मलं सह सीतया । अघप्रमथनं पुण्यं रामः स्तोत्रमुदाहरत् ॥१३॥

अथानन्तर समागमरूपी सूर्यसे जिसका मुखकमल खिल उठा था ऐसी सीताका हाथ अपने हाथसे पकड़ श्रीराम उठे और इच्छानुकूल चलनेवाले ऐरावतके समान हाथी पर बैठाकर स्वयं उसपर आरूढ़ हुए। महातेजस्वी तथा सम्पूर्ण कान्तिको धारण करनेवाले श्रीराम हिलते हुए घंटोंसे मनोहर हाथीरूपी मेघपर सीतारूपी रोहिणीके साथ बैठे हुए चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहे थे ॥१-३॥ जिनकी बुद्धि स्थिर थी, जो अत्यधिक उन्नत प्रीतिको धारण कर रहे थे, बहुत भारी जनसमूह जिनके साथ था, जो चारों ओरसे बहुत बड़ी सम्पदासे घिरे थे, बड़े-बड़े अनुरागी विद्याधरोंसे अनुगत, उत्तम कान्तियुक्त चक्रपाणि लक्ष्मणसे जो सहित थे तथा अतिशय निपुण थे ऐसे श्रीराम, सूर्यके विमान समान जो रावणका भवन था उसमें जाकर प्रविष्ट हुए ॥४-६॥ वहाँ उन्होंने भवनके मध्यमें स्थित श्रीशान्तिनाथ भगवान्का परमसुन्दर मन्दिर देखा। वह मन्दिर योग्य विस्तार और ऊँचाईसे सहित था, स्वर्णके हजार खम्भोंसे निर्मित था, विशाल कान्तिका धारक था, उसकी दीवालोंके प्रदेश नानाप्रकारके रत्नोंसे युक्त थे, वह मनको आनन्द देनेवाला था, विदेह क्षेत्रके मध्यमें स्थित मेरुपर्वतके समान था, क्षीर समुद्रके फेनपटलके समान कान्तिवाला था, नेत्रोंको बाँधनेवाला था, रुणझुण करनेवाली किङ्किणियोंके समूह एवं बड़ी-बड़ी ध्वजाओंसे सुशोभित था, मनोज्ञरूपसे युक्त था तथा उसका वर्णन करना अशक्य था ॥७-१०॥

तदनन्तर जो मत्तगजराजके समान पराक्रमी थे, निर्मल नेत्रोंके धारक थे तथा श्रेष्ठ लक्ष्मीसे सहित थे, ऐसे श्रीरामने हाथीसे उतरकर सीताके साथ उस मन्दिरमें प्रवेश किया ॥११॥ तत्पश्चात् कायोत्सर्ग करनेके लिए जिन्होंने अपने दोनों हाथ नीचे लटका लिये थे और जिनका हृदय अत्यन्त शान्त था, ऐसे श्रीरामने सामायिकका परिग्रह कर सीताके साथ दोनों करकमलरूपी कुड्मलोंको जोड़कर श्रीशान्तिनाथ भगवान्का पापभञ्जक पुण्यवर्धक स्तोत्र पढ़ा ॥१२-१३॥

---

१. भवनद्युतेः म० । २. क्षीरोदकेन पटल -म० ।

यस्यावतरणे शान्तिर्जाता सर्वत्र विष्टपे । प्रक्षयं सर्वरोगाणां कुर्वती धृतिकारिणी ॥१४॥
चलिताऽऽसनकैरिन्द्रैरागत्योत्तमभूतिभिः । यो मेरुशिखरे हृष्टैरभिषिक्तः सुभक्तिभिः ॥१५॥
[1]चक्रेणारिगणं जित्वा बाह्यं बाह्येन यो नृपः । आन्तरं ध्यानचक्रेण जिगाय मुनिपुङ्गवः ॥१६॥
मृत्युजन्मजराभीतिखड्गाद्यायुधचञ्चलम् । [2]भवासुरं परिध्वस्य योऽगात्सिद्धिपुरं शिवम् ॥१७॥
उपमारहितं नित्यं शुद्धमात्माश्रयं परम् । प्राप्तं निर्वाणसाम्राज्यं [3]येनात्यन्तदुरासदम् ॥१८॥
तस्मै ते शान्तिनाथाय त्रिजगच्छान्तिहेतवे । नमस्त्रिधा महेशाय प्राप्तात्यन्तिकशान्तये ॥१९॥
चराचरस्य सर्वस्य नाथ त्वमतिवत्सलः[4] । शरण्यः परमत्राता समाधिद्युतिबोधिदः ॥२०॥
गुरुर्बन्धुः प्रणेता च त्वमेकः परमेश्वरः । चतुर्णिकायदेवानां सशक्राणां समर्चितः ॥२१॥
त्वं कर्ता धर्मतीर्थस्य येन भव्यजनः सुखम् । प्राप्नोति परमं स्थानं सर्वदुःखविमोक्षदम् ॥२२॥
नमस्ते देवदेवाय नमस्ते स्वस्तिकर्मणे । नमस्ते कृतकृत्याय लब्धलभ्याय ते नमः ॥२३॥
महाशान्तिस्वभावस्थं सर्वदोषविवर्जितम् । प्रसीद अमलन्तुभ्यं पदं नित्यं विदेहिनः ॥२४॥
एवमादि पठन् स्तोत्रं पद्मः पद्मायतेक्षणः । चैत्यं प्रदक्षिणं चक्रे दक्षिणः पुण्यकर्मणि ॥२५॥
प्रह्वाङ्गा पृष्ठतस्तस्य जानकी स्तुतितत्परा । समाहितकराम्भोजकुड्मला भाविनी स्थिता ॥२६॥

स्तोत्र पाठ करते हुए उन्होंने कहा कि जिनके जन्म लेते ही संसारमें सर्वत्र ऐसी शान्ति छा गई कि जो सब रोगोंका नाश करनेवाली थी तथा दीप्तिको बढ़ानेवाली थी ॥१४॥ जिनके आसन कम्पायमान हुए थे तथा जो उत्तम विभूतिसे युक्त थे ऐसे हर्षसे भरे भक्तिमन्त इन्द्रोंने आकर जिनका मेरुके शिखर पर अभिषेक किया था ॥१५॥ जिन्होंने राज्यअवस्थामें बाह्यचक्रके द्वारा बाह्यशत्रुओंके समूहको जीता था और मुनि होने पर ध्यानरूपी चक्रके द्वारा अन्तरङ्ग शत्रु-समूहको जीता था ॥१६॥ जो जन्म, जरा, मृत्यु, भयरूपी खड्ग आदि शस्त्रोंसे चञ्चल संसाररूपी असुरको नष्ट कर कल्याणकारी सिद्धिपुर मोक्षको प्राप्त हुए थे ॥१७॥ जिन्होंने उपमा रहित, नित्य, शुद्ध, आत्माश्रय, उत्कृष्ट और अत्यन्त दुरासद निर्वाणका साम्राज्य प्राप्त किया था, जो तीनों लोकोंकी शान्तिके कारण थे, जो महा ऐश्वर्यसे सहित थे तथा जिन्होंने अनन्त शान्ति प्राप्त की थी ऐसे श्रीशान्तिनाथ भगवान्‌के लिए मन, वचन, कायसे नमस्कार हो ॥१८-१९॥ हे नाथ ! आप समस्त चराचर विश्वसे अत्यन्त स्नेह करनेवाले हैं, शरणदाता हैं, परम रक्षक हैं, समाधिरूप तेज तथा रत्नत्रयरूपी बोधिको देनेवाले हैं ॥२०॥ तुम्हीं एक गुरु हो, बन्धु हो, प्रणेता हो, परमेश्वर हो, इन्द्र सहित चारों निकायोंके देवोंसे पूजित हो ॥२१॥ हे भगवन् ! आप उस धर्मरूपी तीर्थके कर्ता हो जिससे भव्य जीव अनायास ही समस्त दुःखोंसे छुटकारा देनेवाला परम स्थान-मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं ॥२२॥ हे नाथ ! आप देवोंके देव हो इसलिये आपको नमस्कार हो, आप कल्याणरूप कार्यके करनेवाले हो इसलिये आपको नमस्कार हो, आप कृतकृत्य हैं अतः आपको नमस्कार हो और आप प्राप्त करने योग्य समस्त पदार्थोंको प्राप्त कर चुके हैं इसलिये आपको नमस्कार हो ॥२३॥ हे भगवन् ! प्रसन्न हूजिये और हमलोगोंके लिये महाशान्तिरूप स्वभावमें स्थित, सर्वदोष रहित, उत्कृष्ट तथा नित्यपद-मोक्षपद प्रदान कीजिये ॥२४॥ इसप्रकार स्तोत्र पाठ पढ़ते हुए कमलायतलोचन तथा पुण्य कर्ममें दक्ष श्रीरामने शान्तिजिनेन्द्रकी तीन प्रदक्षिणाएँ दी ॥२५॥ जिसका शरीर नम्र था, जो स्तुति पाठ करनेमें तत्पर थी तथा जिसने हस्तकमल जोड़ रक्खे थे ऐसी भाव भीनी सीता श्रीरामके पीछे खड़ी थी ॥२६॥

---

१. 'चक्रेण यः शत्रुभयङ्करेण जित्वा नृपः सर्वनरेन्द्रचक्रम् ।
समाधिचक्रेण पुनर्जिगाय महोदयो दुर्जयमोहचक्रम् ॥' बृहत्स्वयंभूस्तोत्रे स्वामिसमन्तभद्रस्य ।
२. भावासुरं म० । ३. यो नात्यन्त- म० । ४. नः = अस्मभ्यम् ।

महादुन्दुभिनिर्घोषप्रतिमे रामनिस्वने । जानकीस्वनितं जज्ञे वीणानिःक्वणकोमलम् ॥२७॥
सविशल्यस्ततश्चक्री सुग्रीवो रश्मिमण्डलः । तथा वायुसुताद्याश्च मङ्गलस्तोत्रतत्पराः ॥२८॥
बद्धपाणिपुटा धन्या भाविता जिनपुङ्गवे । गृहीतमुकुलाम्भोजा इव राजन्ति ते तदा ॥२९॥
विमुञ्चत्सु स्वनं तेषु मुरजस्वनसुन्दरम् । मेघध्वनिकृताशङ्का ननृतुश्चेकवर्हिणः ॥३०॥
कृत्वा स्तुतिं प्रणामं च भूयो भूयः सुचेतसः । यथासुखं समासीना प्राङ्गणे जिनवेश्मनः ॥३१॥
यावत्ते वन्दनां चक्रुस्तावद्राजा विभीषणः । सुमालिमाल्यवद्रत्नश्रवःप्रभृतिबान्धवान् ॥३२॥
संसारानित्यताभावदेशनाद्यन्तकोविदः । परिसान्त्वनमातिन्ये महादुःखनिपीडितान् ॥३३॥
आर्यौ तात स्वकर्मोत्थफलभोक्तिषु जन्तुषु । विधीयते मुधा शोकः क्रियतां स्वहिते मनः ॥३४॥
दृष्टागमा महाचित्ता यूयमेवं विचक्षणाः । वित्थ जातो यदि प्राणी मृत्युं न प्रतिपद्यते ॥३५॥
पुष्पसौन्दर्यसङ्काशं यौवनं दुर्व्यतिक्रमम् । पल्लवश्रीसमालक्ष्मीर्जीवितं विद्युदध्रुवम् ॥३६॥
जलबुद्बुदसंयोगप्रतिमा[1] बन्धुसङ्गमाः । सन्ध्यारागसमा भोगाः क्रियाः स्वप्नक्रियोपमाः ॥३७॥
यदि नाम प्रपद्येरन् जन्तवो नैव [2]पञ्चताम् । कथं [3]स भवतां गोत्रमागतः [4]स्यात्भवान्तरात् ॥३८॥
आत्मनोऽपि यदा नाम नियमाद्विशराहता । तदा कथमिवान्यत्र क्रियते शोकमूढता ॥३९॥
एवमेतदिति ध्यानं संसाराचारगोचरम् । सतां शोकविनाशाय पर्याप्तं क्षणमात्रकम् ॥४०॥
भाषितान्यनुभूतानि दृष्टानि च सुबन्धुभिः । समं वृत्तानि साधूनां तापयन्ति मनः क्षणम् ॥४१॥

रामका स्वर महादुन्दुभिके स्वरके समान अत्यन्त परुष था तो सीताका स्वर वीणाके स्वरके समान अत्यन्त कोमल था ॥२७॥ तदनन्तर विशल्या सहित लक्ष्मण, सुग्रीव, भामण्डल तथा हनूमान् आदि सभी लोग मङ्गलमय स्तोत्र पढ़नेमें तत्पर थे ॥२८॥ जिन्होंने हाथ जोड़ रक्खे थे तथा जो जिनेन्द्र भगवान्‌में अपनी भावना लगाये हुए थे, ऐसे वे सब धन्यभाग विद्याधर उस समय ऐसे जान पड़ते थे मानो कमलकी बोंड़ियाँ ही धारण कर रहे हों ॥२९॥ जब वे मृदङ्ग ध्वनिके समान सुन्दर शब्द छोड़ रहे थे तब चतुर मयूर मेघगर्जनाकी शङ्का करते हुए नृत्य कर रहे थे ॥३०॥ इसप्रकार बार-बार स्तुति तथा प्रणाम कर शुद्ध हृदयको धारण करनेवाले वे सब जिन मन्दिरके चौकमें यथायोग्य सुखसे बैठ गये ॥३१॥

जब तक इन सबने वन्दनाकी तब तक राजा विभीषणने सुमाली, माल्यवान् तथा रत्नश्रवा आदि परिवारके लोगोंको जो कि महादुःखसे पीड़ित हो रहे थे सान्त्वना दी। विभीषण संसारकी अनित्यताका भाव बतलानेमें अत्यन्त निपुण था ॥३२-३३॥ उसने सान्त्वना देते हुए कहा कि हे आर्यो ! हे तात ! संसारके प्राणी अपने-अपने कर्मोंके अनुसार फलको भोगते ही हैं अतः शोक करना व्यर्थ है आत्महितमें मन लगाइए ॥३४॥ आप लोग तो आगमके दृष्टा, विशाल हृदय और विद्वत्पुरुष हैं अतः जानते हैं कि उत्पन्न हुआ प्राणी मृत्युको प्राप्त होता है या नहीं ॥३५॥ जिसका वर्णन करना बड़ा कठिन है ऐसा यौवन फूलके सौन्दर्यके समान है, लक्ष्मी पल्लवकी शोभाके समान है, जीवन बिजलीके समान अनित्य है ॥३६॥ बन्धु जनोंके समागम जलके बबूलेके समान हैं, भोग सन्ध्याकी लालीके तुल्य है, और क्रियाएँ स्वप्नकी क्रियाओंके समान हैं ॥३७॥ यदि ये प्राणी मृत्युको प्राप्त नहीं होते तो यह रावण भवान्तरसे आपके गोत्रमें कैसे आता ? ॥३८॥ अरे ! जब हम लोगोंको भी एक दिन नियमसे नष्ट हो जाना है तब यह शोक विषयक मूर्खता किस लिए की जाती है ? ॥३९॥ 'यह ऐसा है' अर्थात् नष्ट होना इसका स्वभाव ही है इस प्रकार संसारके स्वभावका ध्यान करना सत्पुरुषोंके शोकको क्षणमात्रमें नष्ट करनेके लिए पर्याप्त है। भावार्थ—जो ऐसा विचार करते हैं कि संसारके पदार्थ नश्वर ही हैं उनका शोक क्षण मात्रमें नष्ट हो जाता है ॥४०॥ बन्धुजनोंके साथ कथित,

१. प्रतिमां म० । २. मृत्युम् । ३. सम्भवतां म० । ४. मागतं ख० ।

भवत्येव हि शोकेन सङ्गो बन्धुवियोगिनः । बलादिव विशालेन स्मृतिविभ्रंशकारिणा ॥४२॥
तथाऽनादिकेऽमुष्मिन्संसारे भ्रमतो मम । केन वा बान्धवता प्राप्ता इति ज्ञात्वा सुगूहताम् ॥४३॥
यथा शक्त्या जिनेन्द्राणां भवध्वंसविधायिनाम् । विधाय शासने चित्तमात्मा स्वार्थे नियुज्यताम् ॥४४॥
एवमादिभिरालापैर्मधुरैर्हृदयङ्गमैः । परिसान्त्व्य समाधाय बन्धून् कृत्ये गृहं गतः ॥४५॥
अग्रां देवीसहस्रस्य व्यवहारविचक्षणाम् । [1]प्रतिघात विदग्धाख्यां महिषीं प्रहिणोऽन्तिकम् ॥४६॥
आगत्य साभिजातेन प्रणामेन कृतार्थताम् । ससीतौ भ्रातरौ वाक्यमिदं क्रमविदब्रवीत् ॥४७॥
अस्मत्स्वामिगृहं देव स्वगृहाशयलक्षितम् । कर्तुं पादतलासङ्गान्महानुग्रहमर्हसि ॥४८॥
वर्तते सङ्कथा यावत्तेषां वार्तासमुज्झिता । स्वयं विभीषणस्तावत्प्राप्तोऽत्यन्तमहादरः ॥४९॥
उत्तिष्ठत गृहं यामः प्रसादः क्रियतामिति । तेनोक्तः सानुगाः पद्मस्तद्गृहं गन्तुमुद्यतः ॥५०॥
यानैर्नानाविधैस्तुङ्गैर्गजैरम्बुदसन्निभैः । तरङ्गचञ्चलैरश्वैः रथैः प्रासादशोभिभिः ॥५१॥
विधाय कृतसंस्कारं राजमार्गं निरन्तरम् । विभीषणगृहं तेन प्रस्थितास्ते यथाक्रमम् ॥५२॥
[2]प्रलयाम्बुदनिर्घोषाभूर्यशब्दाः समुद्गताः । शङ्खकोटिरवोन्मिश्रा गह्वरप्रतिनादिनः [3] ॥५३॥
भम्भाभेरीमृदङ्गानां पटहानां सहस्रशः । लम्पाककाहलाधुन्धुदुन्दुभीनां च निःस्वनैः ॥५४॥
अल्लाम्लातकढक्कानां हैकानां च निरन्तरम् । गुञ्जाहुङ्कारसुन्दानां तथा पूरितमम्बरम् ॥५५॥
स्फीतैर्हलहलाशब्दैरट्टहासैश्च सन्ततैः । नानावाहनजातैश्च दिगन्ता बधिरीकृताः ॥५६॥

अनुभूत और दृष्ट पदार्थ सत् पुरुषोंके मनको एक क्षण ही सन्ताप देते हैं अधिक नहीं ॥४१॥ जिसका बन्धु-जनोंके साथ वियोग होता है यद्यपि उसका स्मृतिको नष्ट करनेवाले विशाल शोकके साथ समागम मानो बल पूर्वक ही होता है तथापि इस अनादि संसारमें भ्रमण करते हुए मेरे कौन-कौन लोग बन्धु नहीं हुए हैं ऐसा विचार कर उस शोकको छिपाना चाहिए ॥४२-४३॥ इसलिए संसारको नष्ट करनेवाले श्री जिनेन्द्रदेवके शासनमें यथाशक्ति मन लगाकर आत्माको आत्माके हितमें लगाइए ॥४४॥ इत्यादि हृदयको लगने वाले मधुर वचनोंसे सबको काममें लगाकर विभीषण अपने घर गया ॥४५॥

घर आकर उसने एक हजार स्त्रियोंमें प्रधान तथा सब व्यवहारमें विचक्षण विदग्धा नामक रानीको श्री रामके समीप भेजा ॥४६॥ तदनन्तर क्रमको जानने वाली विदग्धाने आकर प्रथम ही सीता सहित राम-लक्ष्मणको कुलके योग्य प्रणाम किया। तत्पश्चात् यह वचन कहे कि हे देव! हमारे स्वामीके घरको अपना घर समझ चरण-तलके संसर्गसे पवित्र कीजिए ॥४७-४८॥ जब तक उन सबके बीचमें यह वार्ता हो रही थी तब तक महा आदरसे भरा विभीषण स्वयं आ पहुँचा ॥४९॥ आते ही उसने कहा कि उठिए, घर चलें प्रसन्नता कीजिए। इस प्रकार विभीषणके कहने पर राम, अपने अनुगामियोंके साथ उसके घर जानेके लिए उद्यत हो गये ॥५०॥ राज मार्ग की अविरल सजावट की गई और उससे वे नाना प्रकारके वाहनों, मेघ समान ऊँचे हाथियों, लहरों के समान चञ्चल घोड़ों और महलोंके समान सुशोभित रथों पर यथाक्रमसे सवार हो विभीषणके घरकी ओर चले ॥५१-५२॥ प्रलय कालीन मेघोंकी गर्जनाके समान जिनका विशाल शब्द था जिनमें करोड़ों शङ्खोंका शब्द मिल रहा था तथा गुफाओंमें जिनकी प्रतिध्वनि पड़ रही थी ऐसे तुरहीके विशाल शब्द उत्पन्न हुए ॥५३॥ भंभा, भेरी, मृदङ्ग, हजारों पटह, लंपाक, काहला, धुन्धु, दुन्दुभि, झांझ, अम्लातक, ढक्का, हैका, गुंजा, हुंकार और सुन्द नामक वादित्रोंके शब्दसे आकाश भर गया ॥५४-५५॥ अत्यन्त विस्तारको प्राप्त हुआ हल हला शब्द, बहुत भारी अट्टहास और नाना वाहनोंके शब्दोंसे दिशाएँ बहिरी हो गईं ॥५६॥ कितने ही विद्याधर व्याघ्रोंकी पीठ

---

१. प्रतिघाय म० । २. प्रलम्बाम्बुद -ख० । ३. प्रतिघातिनः म० ।

केचिच्छार्दूलपृष्ठस्थाः केचित् केसरिपृष्ठगाः । केचिद् रथादिभिर्वीराः प्रस्थिताः खेचरेश्वराः ॥५७॥
नर्तकीनटभण्डाद्यैर्नृत्यद्भिरतिसुन्दरम् । वन्दिवृन्दैश्च ते जग्मुः स्तूयमाना महास्वनैः ॥५८॥
अकाण्डकौमुदीसर्गमण्डितैश्छत्रमण्डलैः । नानायुधदलैश्चासन् भानुभासस्तिरोहिताः ॥५९॥
दिव्यस्त्रीवदनाम्भोजखण्डनन्दनसुत्तमम् । कुर्वन्तस्ते परिप्राप्ता विभीषणनृपालयम् ॥६०॥
विभूतिर्या तदा तेषां बभूव शुभलक्षणा । सा परं द्युनिवासानां विस्मयते जनितादभुता ॥६१॥
अवतीर्याथ नागेन्द्राद् रत्नार्घादिपुरस्कृतौ । रम्यं विवशतुः सर्व ससीतौ रामलक्ष्मणौ ॥६२॥
मध्ये महालयस्यास्य रत्नतोरणसङ्गतम् । पद्मप्रभजिनेन्द्रस्य भवनं हेमसन्निभम् ॥६३॥
प्रान्तावस्थितहर्म्यालीपरिवारमनोहरम् । शैलपर्वतमध्यस्थं मन्दरीपम्यमागतम् ॥६४॥
हेमस्तम्भसहस्रेण धृतमुत्तमभासुरम् । पूजितायामविस्तारं नानामणिगणार्चितम् ॥६५॥
बहुरूपधरैर्युक्तं चन्द्राभैर्वलभीपुटैः । गवाक्षप्रान्तसंसक्तैर्मुक्ताजालैर्विराजितम् ॥६६॥
अनेकाद्भुतसङ्कीर्णैर्युक्तैः प्रतिसरादिभिः । प्रदेशैर्विविधैः कान्तं पापप्रमथनं परम् ॥६७॥
एवंविधे गृहे तस्मिन् पद्मरागमयी प्रभोः । पद्मप्रभजिनेन्द्रस्य प्रतिमां [1]प्रतिमोज्झिताम् ॥६८॥
भासमम्भोजखण्डानां दिशन्तीं मणिभूमिषु । स्तुत्वा च परिवन्दित्वा यथाऽर्हं समवस्थिताः ॥६९॥
यथास्थं ततो याता खेचरेन्द्रा निरूपितम् । समाश्रयं बलं चित्ते विभ्राणाश्चक्रिणां तथा ॥७०॥
अथ त्रिंशत्सहस्राभिः पद्मलक्ष्मणयोः पृथक् । सीतायाश्च शरीरस्य क्रियायोगः प्रवर्तितः ॥७१॥

पर बैठ कर जा रहे थे, कितने ही सिंहोंकी पीठ पर सवार हो कर चल रहे थे और कितने ही रथ आदि वाहनोंसे प्रस्थान कर रहे थे ॥५७॥ उनके आगे आगे नर्तकियाँ नट तथा भांड आदि सुन्दर नृत्य करते जाते थे तथा चारणोंके समूह बड़ी उच्च ध्वनिमें उनका विरद बखानते जा रहे थे ॥५८॥ असमयमें प्रकट हुई चाँदनीके समान मनोहर छत्रोंके समूहसे तथा नाना शस्त्रोंके समूहसे सूर्यकी किरणें आच्छादित हो गई थीं ॥५९॥ इस प्रकार सुन्दरी स्त्रियोंके मुख-कमलोंको विकसित करते हुए वे सब विभीषणके राजभवनमें पहुँचे ॥६०॥ उस समय राम लक्ष्मण आदिको शुभ-लक्षणोंसे युक्त जो विभूति थी वह देवोंके लिए भी आश्चर्य उत्पन्न करने वाली थी ॥६१॥

अथानन्तर हाथीसे उतरकर, जिनका रत्नोंके अर्घ आदिसे सत्कार किया गया था ऐसे सीता सहित राम लक्ष्मणने विभीषणके सुन्दर भवनमें प्रवेश किया ॥६२॥ विभीषणके विशाल भवनके मध्यमें श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्रका वह मन्दिर था जो रत्नमयी तोरणोंसे सहित था, स्वर्णके समान देदीप्यमान था, समीपमें स्थित महलोंके समूहसे मनोहर था, शेष नामक पर्वतके मध्यमें स्थित था, मेरुकी उपमाको प्राप्त था, स्वर्णमयी हजार खम्भोंसे युक्त था, उत्तम देदीप्यमान था, योग्य लम्बाई और विस्तारसे सहित था, नाना मणियोंके समूहसे शोभित था, चन्द्रमाके समान चमकती हुई नाना प्रकारकी वलभियोंसे युक्त था, झरोखोंके समीप लटकती हुई मोतियोंकी जालीसे सुशोभित था, अनेक अद्भुत रचनाओंसे युक्त प्रतिसर आदि विविध प्रदेशोंसे सुन्दर था, और पापको नष्ट करने वाला था ॥६३-६७॥ इस प्रकारके उस मन्दिरमें श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र की पद्मराग मणि निर्मित वह अनुपम प्रतिमा विराजमान थी। जो अपनी प्रभासे मणिमय भूमिमें कमल-समूह की शोभा प्रकट कर रही थी। सबलोग उस प्रतिमाकी स्तुति-वन्दना कर यथा योग्य बैठ गये ॥६८-६९॥ तदनन्तर विद्याधर राजा, हृदयमें राम और लक्ष्मणको धारण करते हुए जहाँ जिसके लिए जो स्थान बनाया गया था वहाँ यथा योग्य रीतिसे चले गये ॥७०॥

यथानन्तर विद्याधर स्त्रियोंने राम-लक्ष्मण और सीताके स्नानकी पृथक् पृथक् विधि

१. उपमारहिताम् ।

अक्तः सुगन्धिभिः पथ्यैः स्नेहैः वर्णमनोहरैः । घ्राणदेहानुकूलैश्च शुभैरुद्वर्तनैः कृतः ॥७२॥
स्थितानां स्नानपीठेषु प्राङ्मुखानां सुमङ्गलैः । क्रमेण स्नानविधिस्तेषां क्रमयुक्तः प्रवर्तितः ॥७३॥
वपुःकषणपानीयविसर्जनलयान्वितम् । हारि[1] प्रवृत्तमातोद्यं सर्वोपकरणाश्रितम् ॥७४॥
हैमैर्मारकतैर्वाद्धैः स्फाटिकैरिन्द्रनीलजैः । कुम्भैर्गन्धोदकापूर्णैः स्नानं तेषां समापितम् ॥७५॥
पवित्रवस्त्रसंवीताः सुस्नाताः सदलंकृताः । प्रविश्य चैत्यभवनं पद्माभं ते ववन्दिरे ॥७६॥
तेषां प्रस्तावसानार्थां कार्यां विस्तारिणीं कथाम् । घृतार्द्रैः पूरिता वाप्यः सद्भक्ष्यैः पर्वताः कृताः[2] ॥७७॥
वनेषु नन्दनादेषु वस्तुजातं यदुद्भवम् । मनोघ्राणेक्षणार्भीष्टं तत्कृतं भोजनावनौ ॥७८॥
सुरसत्वं स्वभावेन जानक्या तु समन्ततः । कथं वर्णयितुं शक्यं पद्मनाभस्य चेतसः ॥७९॥
पञ्चानामक्षयुक्त्वमिन्द्रियाणां तदैव हि । यदार्थीष्टसमायोगे जायते कृतनिर्वृतिः ॥८०॥
तदा भुक्तं तदा घ्रातं तदा स्पृष्टं सदेक्षितम् । तदा श्रुतं यदा जन्तोर्जायते प्रियसङ्गमः ॥८१॥
विषयः स्वर्गतुल्योऽपि विरहे नरकायते । स्वर्गायते महारण्यमपि प्रियसमागमे ॥८२॥
रसायनरसैः कान्तैरद्भुतैर्बहुवर्णकैः । भक्ष्यैश्च विविधैस्तेषां निर्वृता भोजनक्रिया ॥८३॥
खेचरेन्द्रा यथायोग्यं कृतभूमिनिवेशनाः । भोजिता कृतसन्मानाः परिवारसमन्विताः ॥८४॥

प्रस्तुत की ॥७१॥ सर्व प्रथम उन्हें सुगन्धित हितकारी तथा मनोहर वर्ण वाले तेलका मर्दन किया गया, फिर घ्राण और शरीरके अनुकूल पदार्थोंका उपटन किया गया ॥७२॥ तदनन्तर स्नानकी चौकीपर पूर्व दिशाकी ओर मुख कर बैठे हुए उनका बड़े वैभवसे क्रमपूर्वक मङ्गल मय स्नान कराया गया ॥७३॥ उस समय शरीरको घिसना पानी छोड़ना आदि की लयसे सहित मनको हरण करने वाले तथा सब प्रकारकी साज-सामग्रीसे युक्त बाजे बज रहे थे ॥७४॥ गन्धोदकसे परिपूर्ण सुवर्ण, मरकत मणि, हीरा, स्फटिक मणि तथा इन्द्रनीलमणि निर्मित कलशोंसे उनका अभिषेक पूर्ण हुआ ॥७५॥ तदनन्तर अच्छी तरह स्नान करनेके बाद उन्होंने पवित्र वस्त्र धारण किये, उत्तम अलंकारोंसे शरीर अलंकृत किया और तदनन्तर मन्दिरमें प्रवेश कर श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्रकी वन्दना की ॥७६॥

अथानन्तर उन सबके लिए जो भोजन तैयार किया गया था, उसकी कथा बहुत विस्तृत है। उस समय घी दूध दही आदिकी बावड़ियाँ भरी गई थीं और खाने योग्य उत्तमोत्तम पदार्थोंके मानो पर्वत बनाये गये थे अर्थात् पर्वतोंके समान बड़ी-बड़ी राशियाँ लगाई गई थीं ॥७७॥ मन घ्राण और नेत्रोंके लिए अभीष्ट जो भी वस्तुएँ चन्दन आदि वनोंमें उत्पन्न हुई थीं वे लाकर भोजन-भूमिमें एकत्रित की गई थीं ॥७८॥ वह भोजन स्वभावसे ही मधुर था फिर जानकीके समीप रहते हुए तो कहना ही क्या था ? उस समय श्रीरामके मनकी जो दशा थी उसका वर्णन कैसे किया जा सकता है ! ॥७९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! पाँचो इन्द्रियोंकी सार्थकता तभी है जब इष्ट पदार्थोंका संयोग होने पर उन्हें संतोष उत्पन्न होता है ॥८०॥ इस जन्तुने उसी समय भोजन किया है, उसी समय सूँघा है, उसी समय स्पर्श किया है, उसी समय देखा है और उसी समय सुना है जब कि उसे प्रियजनका समागम प्राप्त होता है। भावार्थ—प्रियजनके विरहमें भोजन आदि कार्य निःसार जान पड़ते हैं ॥८१॥ विरह कालमें स्वर्ग तुल्य भी देश नरकके समान जान पड़ता है और प्रियजनके समागम रहते हुए महावन भी स्वर्गके समान जान पड़ता है ॥८२॥ सुन्दर अद्भुत और बहुत प्रकारके रसायन सम्बन्धी रसों की तथा नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंसे उन सब की भोजन-क्रिया पूर्ण हुई ॥८३॥ जो यथा योग्य भूमि पर बैठाये गये थे, जिनका सम्मान किया गया था तथा जो अपने अपने परिवार

१. पूर्णेमनोहरैः म० । २. मनोहरम् । ३. पर्वताकृता न०, ज० । ४. तदेव म० ।

चन्दनाद्यैः कृताः सर्वैर्गन्धैराबद्धषट्पदैः । भद्रशालाद्यरण्योत्थैः कुसुमैश्च विभूषिताः ॥८५॥
स्पर्शानुकूललघुभिर्वर्णैर्युक्ता महाधनैः । नानारत्नप्रभाजालकरालितदिगाननाः ॥८६॥
सर्वे सम्भाविताः सर्वे फलयुक्तमनोरथाः । दिवा रात्रौ च विद्वद्भिः कथाभी रतिमागताः ॥८७॥
अहो राक्षसवंशस्य भूषणोऽयं विभीषणः । अनुवृत्तिरियं येन कृतेदृग्यद्यचक्रिणोः ॥८८॥
श्लाघ्यो महानुभावोऽयं जगत्यत्युत्तमां गतः । कृतार्थो भवने यस्य स्थितः पद्मः सलक्ष्मणः ॥८९॥
एवं विभीषणाधारगुणग्रहणतत्परः । विद्याधरजनस्तस्थौ सुखं मत्सरवर्जितः ॥९०॥
पद्मलक्ष्मणवैदेहीविभीषणकथागतः । पौरलोकः समस्तोऽभूत् परित्यक्तान्यसङ्कथः ॥९१॥
सम्प्राप्तबलदेवत्वं पद्मं लाङ्गललक्षणम् । नारायणं च सम्प्राप्तचक्ररत्नं नरेश्वरम् ॥९२॥
अभिषेक्तुं समासन्ना विभीषणपुरःसराः । सर्वविद्याधराधीशा विनयेन हृदौकिरे ॥९३॥
तचतुस्तौ गुरोः पूर्वं भिदेवस्मद्गतानु । अनुभोक्ता नृपोऽस्तेऽयोध्यायां यः स एव नौ ॥९४॥
उक्तं तैरेवमेवैतत्तथाप्यभिषवेऽत्र कः । मङ्गले दृश्यते दोषो महापुरुषसेविते ॥९५॥
क्रियमाणामसौ पूजां भवतोरनुमन्यते । श्रुतेऽप्यन्तर्धिरोऽसौ मनसो नैति विक्रियाम् ॥९६॥
वस्तुतो बलदेवत्वचक्रित्वप्राप्तिकारणात् । सम्प्रतिष्ठा तयोरासीत् पूजासम्भारसङ्कुला ॥९७॥
एवमत्युत्सवां लक्ष्मीं सम्प्राप्तौ रामलक्ष्मणौ । लङ्कायामूषतुः स्वर्गनगर्यां त्रिदशाविव ॥९८॥

इष्ट जनोंसे सहित थे ऐसे समस्त विद्याधर राजाओंको भोजन कराया गया ॥८४॥ जिनपर भ्रमरोंने मण्डल बाँध रक्खे थे ऐसे चन्दन आदि सब प्रकारकी गन्धोंसे तथा भद्रशाल आदि वनोंमें उत्पन्न हुए पुष्पोंसे सब विभूषित किये गये ॥८५॥ जो स्पर्शके अनुकूल, हल्के और अत्यन्त सघन बुने हुए वस्त्रोंसे युक्त थे तथा नाना प्रकारके रत्नोंकी किरणोंसे जिन्होंने दिशाओंको व्याप्त कर रक्खा था ऐसे उन सब लोगोंका सम्मान किया गया था, उनके सब मनोरथ सफल किये थे, और रात दिन नाना प्रकार की कथाओंसे सबको प्रसन्न किया गया था ॥८६-८७॥ अहो ! यह विभीषण राक्षसवंशका आभूषण है, जिसने कि इस प्रकार राम-लक्ष्मणकी अनुवृत्ति की—उनके अनुकूल आचरण किया ॥८८॥ यह महानुभाव प्रशंसनीय है तथा जगत्में अत्यन्त उत्तम अवस्थाको प्राप्त हुआ है । जिसके घरमें कृतकृत्य हो राम-लक्ष्मणने निवास किया उसकी महिमाका क्या कहना है ? ॥८९॥ इस प्रकार विभीषणमें पाये जाने वाले गुणोंके ग्रहण करनेमें जो तत्पर थे तथा मात्सर्य भावसे रहित थे ऐसे सब विद्याधर भी विभीषणके घर सुखसे रहे ॥९०॥ उस समय नगरीके समस्त लोक राम, लक्ष्मण, सीता और विभीषणकी ही कथामें संलग्न रहते थे—अन्य सब कथाएँ उन्होंने छोड़ दी थीं ॥९१॥

अथानन्तर विभीषण आदि समस्त विद्याधर राजा जिन्हें बलदेव पद प्राप्त हुआ था ऐसे हल लक्षणधारी राम और जिन्हें नारायण पद प्राप्त हुआ था ऐसे चक्ररत्नके धारी राजा लक्ष्मण का अभिषेक करनेके लिए उद्यत हो विनयपूर्वक आये ॥९२-९३॥ तब राम लक्ष्मणने कहा कि पहले, पिता दशरथसे जिसे राज्याभिषेक प्राप्त हुआ है ऐसा राजा भरत अयोध्यामें विद्यमान है वही तुम्हारा और हम दोनोंका स्वामी है ॥९४॥ इसके उत्तरमें विभीषणादिने कहा कि जैसा आप कह रहे हैं यद्यपि वैसा ही है तथापि महापुरुषोंके द्वारा सेवित इस मङ्गलमय अभिषेकमें क्या दोष दिखाई देता है ? अर्थात् कुछ नहीं ? ॥९५॥ आप दोनोंके इस किये जाने वाले सत्कारको राजा भरत अवश्य ही स्वीकृत करेंगे क्योंकि वे अत्यन्त धीर-गम्भीर सुने जाते हैं । वे मनसे रञ्च मात्र भी विकारको प्राप्त नहीं होते ॥९६॥ यथार्थमें बलदेवत्व और चक्रवर्तित्व की प्राप्तिके कारण उनके अनेक प्रकारकी पूजासे युक्त प्रतिष्ठा हुई थी ॥९७॥ इस प्रकार अत्यन्त

१. भद्रशोभा- म० । २. -मूनतुः म० ।

पुरे तत्रेन्द्रनगरप्रतिमे स्फीतभोगदे । नरोत्तरस्तटाद्येषु देशेष्वस्खुनभश्चराः ॥९९॥
दिव्यालंकारताम्बूलवस्त्रहारविलेपनाः । चिक्रीडुस्तत्र ते स्वेच्छं सस्त्रीकाः स्वर्गिणो यथा ॥१००॥
दिनरत्नकरालीढसितपद्मान्तरद्युति । वैदेहीवदनं पश्यन् पद्मस्तृप्तिमियाय न ॥१०१॥
विरामरहितं रामस्तयाभ्यन्ताभिरामया । रामया सहितो रेमे रमणीयासु भूमिषु ॥१०२॥
विशल्यासुन्दरीयुक्तस्तथा नारायणो रतिम् । जगाम चिन्तितप्राप्तसर्ववस्तुसमागमः ॥१०३॥
यास्यामः शत्रु हति स्वान्तं कृत्वापि पुनरुत्तमाम् । सम्प्राप्य रतिमेतेषां गमनं स्मृतिरस्पृशत् ॥१०४॥
तयोर्बहूनि वर्षाणि रतिभोगोपयुक्तयोः । गतान्येकदिनौपम्यं भजमानानि सौख्यतः ॥१०५॥
कदाचिदथ संस्मृत्य लक्ष्मणश्चारुलक्षणः । पुराणि कूबरादीनि प्रजिघाय विराधितम् ॥१०६॥
सामिज्ञानानसौ लेखानुपादाय महर्द्धिकः । कन्याभ्योऽदर्शयद् गत्वा क्रमेण विधिकोविदः ॥१०७॥
संवादजनितानन्दाः पितृभ्यामनुमोदिताः । आजग्मुरनुरूपेण परिवारेण सङ्गताः ॥१०८॥
दशाङ्गभोगनगरस्वामिनः कुलिशश्रुतेः[1] । प्राप्ता रूपवती नाम कन्या रूपवती परा ॥१०९॥
कूबरस्थाननाथस्य वालिखिल्यस्य देहजा । सर्वकल्याणमालाख्या प्राप्ता परमसुन्दरी ॥११०॥
पृथिवीपुरनाथस्य पृथिवीधरभूभृतः । प्रथिता वनमालेति दुहिता समुपागता ॥१११॥
क्षेमाञ्जलिपुरेशस्य जितशत्रोर्महीक्षितः । जितपद्मेति विख्याता तनया समुपागमत् ॥११२॥
उज्जयिन्यादितोऽप्येता नगराद् राजकन्यकाः । जन्मान्तरकृतात् पुण्यात् परमापतिमीहशम् ॥११३॥

उन्नत लक्ष्मीको प्राप्त हुए राम लक्ष्मण लङ्कामें इस प्रकार रहे जिस प्रकार कि स्वर्गकी नगरीमें दो देव रहते हैं ॥९८॥ इन्द्रके नगरके समान अत्यधिक भोगोंको देनेवाले उस नगरमें विद्याधर लोग, नदियों और तालाबों आदिके तटोंपर आनन्दसे बैठते थे ॥९९॥ दिव्य अलंकार, पान, वस्त्र, हार और विलेपन आदिसे सहित वे सब विद्याधर अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ उस लङ्कामें इच्छानुसार देवोंके समान क्रीड़ा करते थे ॥१००॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! सीताका मुख सूर्यकी किरणोंसे व्याप्त सफेद कमलके भीतरी भागके समान कान्तियुक्त था, उसे देखते हुए श्री राम तृप्तिको प्राप्त नहीं हो रहे थे ॥१०१॥ उस अत्यन्त सुन्दरी स्त्रीके साथ राम, निरन्तर मनोहर भूमियोंमें क्रीड़ा करते थे ॥१०२॥ जिन्हें इच्छा करते ही सर्व वस्तुओंका समागम प्राप्त हो रहा था ऐसे राम लक्ष्मण विशल्या सुन्दरीके साथ अलग ही प्रीतिको प्राप्त हो रहे थे ॥१०३॥ वे यद्यपि हम कल चले जावेंगे, ऐसा मनमें सङ्कल्प करते थे तथापि विभीषणादिका उत्तम प्रेम पाकर 'जाना' इनकी स्मृतिसे छूट जाता था ॥१०४॥ इस प्रकार रति और भोगोपभोगकी सामग्रीसे युक्त राम लक्ष्मणके सुखसे भोगे जाने वाले अनेक वर्ष एक दिनके समान व्यतीत हो गये ॥१०५॥

अथानन्तर किसी दिन सुन्दर लक्षणोंके धारक लक्ष्मणने स्मरण कर विराधितको कूबरादि नगर भेजा ॥१०६॥ सो महाविभूतिके धारक, एवं सब प्रकारकी विधि मिलानेमें निपुण विराधितने क्रम-क्रमसे जाकर कन्याओंके लिए परिचायक चिह्नोंके साथ लक्ष्मणके पत्र दिखाये ॥१०७॥ तदनन्तर शुभ-समाचारसे जिन्हें हर्ष उत्पन्न हुआ था और माता-पिताने जिन्हें अनुमति दे रक्खी थी ऐसी वे कन्याएँ अनुकूल परिवारके साथ वहाँ आईं ॥१०८॥ कहाँ कहाँसे कौन-कौन कन्याएँ आईं थीं इसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है । दशपुर नगरके स्वामी राजा वज्रकर्णकी रूपवती नामकी अत्यन्त सुन्दरी कन्या आई थी ॥१०९॥ कूबर स्थान नगरके राजा वालिखिल्यकी सर्व-कल्याणमाला नामकी सुन्दरी पुत्री आई ॥११०॥ पृथिवीपुर नगरके राजा पृथिवीधरकी प्रसिद्ध पुत्री वनमाला आई ॥१११॥ क्षेमाञ्जलिपुरके राजा जितशत्रुकी प्रसिद्ध पुत्री जितपद्मा आई ॥११२॥ इनके सिवाय उज्जयिनी आदि नगरोंसे आई हुईं राजकन्याओंने जन्मान्तरमें किये हुए

---

१. विद्या- म० । २. देशांग- म० । ३. श्रुते म० ।

दमदानदयायुक्तं शीलाढ्यं गुरुसाक्षिकम् । नह्युत्तमं तपोऽकृत्वा प्राप्यते पतिरीदृशः ॥११४॥
नूनं नास्तमिते भानौ युक्तं साध्वी न दूषिता । विमानिता न दिग्वस्त्रा जातोऽयं पतिरीदृशः ॥११५॥
योग्यो नारायणस्तासां योग्या नारायणस्य ताः । अन्योऽन्यं तेन ताभिश्च गृहीतं सुरनामृतम् ॥११६॥
न सा सम्पत्तसा[1] शोभा न सा लीला न सा कला । तस्य तासां च या नाऽऽसीत् तत्र श्रेणिक का कथा ॥
कथं पद्मं कथं चन्द्रः कथं लक्ष्मीः कथं रतिः । भण्यतां[2] सुन्दरत्वेन श्रुत्वा तं किल तास्तथा ॥११८॥
रामलक्ष्मणयोर्दृष्ट्वा सम्पदं तां तथाविधाम् । विद्याधरजनौघानां विस्मयः परमोऽभवत् ॥११९॥
चन्द्रवर्द्धनजातानामपि सङ्गमनी कथा । कर्तव्या सुमहानन्दा विवाहस्य च सूचनी ॥१२०॥
पद्मनाभस्य कन्यानां सर्वासां सङ्गमस्तथा । स विवाहोऽभवत्सर्वलोकानन्दकरः परः ॥१२१॥
यथेप्सितमहाभोगसम्बन्धसुखभागिनौ । तावित्थाविव लङ्कायां रेमाते प्रमदान्वितौ ॥१२२॥
वैदेहीदेहविन्यस्तसमस्तेन्द्रियसम्पदः । वर्षाणि षडतीतानि लङ्कायां सीरचक्रिणः[3] ॥१२३॥
सुखार्णवे निमग्नस्य चारुचेष्टाविधायिनः । काकुत्स्थस्य तदा सर्वमन्यत्स्मृतिपथाच्च्युतम् ॥१२४॥
एवं तावदिदं वृत्तं कथान्तरमिदं पुनः । पापक्षयकरं भूप शृणु त्वत्परमानसः ॥१२५॥
अथाविघ्नजितो योगी भगवान् सर्वपापहा । विद्यालब्धिसमग्रश्रीर्विजहार महीतलम् ॥१२६॥
[4]वैराग्यानिलयुक्तेन सम्यक्त्वावरणिजन्मना । कर्मकक्षं महाघोरमदहद्ध्यानवह्निना ॥१२७॥

परम पुण्यसे ऐसा पति प्राप्त किया ॥११३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! दम, दान और दयासे युक्त, शीलसे सहित एवं गुरुको साक्षी पूर्वक लिये हुए उत्तम तपके किये बिना ऐसा पति नहीं प्राप्त हो सकता ॥११४॥ सूर्यास्त होने पर जिसने भोजन नहीं किया है, जिसने कभी आर्यिकाको दोष नहीं लगाया है और दिगम्बर मुनि जिसके द्वारा अपमानित नहीं हुए, उसी स्त्रीको ऐसा पति होता है ॥११५॥ नारायण उन सबके योग्य थे और वे सब नारायणके योग्य थीं, इसी-लिए नारायण और उन स्त्रियोंने परस्पर संभोग रूपी अमृत ग्रहण किया था ॥११६॥ हे श्रेणिक ! न तो वह सम्पत्ति थी, न वह शोभा थी, न वह लीला थी और न वह कला थी जो लक्ष्मण और उनकी उन स्त्रियोंमें न पाई जाती फिर औरकी क्या कथा की जाय ? ॥११७॥ सौन्दर्यकी अपेक्षा उनके मुखको देख कर कहा जाय कि कमल क्या है ? चन्द्रमा क्या है ? और उन स्त्रियोंको देख कर कहा जाय कि लक्ष्मी क्या है ? और रति क्या है ? ॥११८॥ राम-लक्ष्मणकी उस-उस प्रकारकी संपदाको देख कर विद्याधरजनोंको बड़ा आश्चर्य हो रहा था ॥११९॥ यहाँ चन्द्रवर्धनकी पुत्रियोंका समागम कराने तथा उनके विवाहकी आनन्दमयी सूचना देने वाली कथाका निरूपण करना भी उचित जान पड़ता है ॥१२०॥ उस समय श्री राम तथा चन्द्रवर्धनकी समस्त कन्याओंका समागम कराने वाला वह विवाहोत्सव हुआ जो समस्त लोगोंको परम आनन्दका करने वाला था ॥१२१॥ इच्छानुसार महाभोगोंके सम्बन्धसे सुखको प्राप्त होने वाले वे राम लक्ष्मण, अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ लङ्कामें इन्द्र-प्रतीन्द्रके समान क्रीड़ा करते थे ॥१२२॥ जिनकी समस्त इन्द्रियोंकी सम्पदा सीताके शरीरके आधीन थी, ऐसे श्री रामको लङ्कामें रहते हुए छह वर्ष व्यतीत हो गये ॥१२३॥ उस समय उत्तम चेष्टाओंके धारक रामचन्द्र, सुखके सागरमें ऐसे निमग्न हुए कि अन्य सब कुछ उनकी स्मृतिके मार्गसे च्युत हो गया ॥१२४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इस प्रकारकी यह कथा तो रहने दो अब एकाग्र चित्त हो पापका क्षय करने वाली दूसरी कथा सुनो ॥१२५॥

अथानन्तर समस्त पापोंको नष्ट करने वाले भगवान् इन्द्र जित् मुनिराज, अनेक ऋद्धियोंकी प्राप्तिसे युक्त हो पृथिवीतल पर विहार करने लगे ॥१२६॥ उन्होंने वैराग्य रूपी पवनसे युक्त तथा सम्यग्दर्शन रूपी बाससे उत्पन्न ध्यान रूपी अग्निके द्वारा कर्म रूपी भयंकर वनको भस्म कर दिया

१. संपन्नता म० । २. रम्यताम् म० । ३. रामस्य । ४. वैराग्यानलयुक्तेन ब० ।

[1]मेघवाहोऽनगारोऽपि विषयेन्धनपावकः । केवलज्ञानतः प्राप्तः स्वभावं जीवगोचरम् ॥१२८॥
तयोरनन्तरं सम्यग्दर्शनज्ञानवेष्टितः । शुक्ललेश्याविशुद्धात्मा [2]कलशध्वजगो मुनिः ॥१२९॥
पश्यंल्लोकमलोकं च केवलेन तथाविधम् । विरजस्कः परिप्राप्तः परमं पदमव्ययम् ॥१३०॥
सुरासुरजनाधीशैरुद्गीतोत्तमकीर्तयः । शुद्धशीलधरा दीप्ताः प्रणष्टाश्च महर्द्धयः ॥१३१॥
गोष्पदीकृतनिःशेषगहनज्ञेयतेजसः । संसारक्लेशदुर्भेद्यजालबन्धनिर्गताः ॥१३२॥
अपुनःपतनस्थानलब्धिस्वार्थसङ्गताः । उपमानविनिर्मुक्तनिर्व्याबाधसुखात्मकाः ॥१३३॥
एतेऽन्ये च महात्मानः सिद्धा निर्भूतशत्रवः । दिशन्तु बोधिमारोग्यं श्रीतृणां जिनशासने ॥१३४॥
यशसा परिवीतान्यल्वेऽपि परमात्मनाम् । स्थानानि तानि दृश्यन्ते दृश्यन्ते साधवो न ते ॥१३५॥
विन्ध्याख्यमहास्थल्यां सार्द्धमिन्द्रजिता[3] यतः । मेघनादः स्थितस्तेन तीर्थं मेघरवं स्मृतम् ॥१३६॥
तूणीगतिमहाशैले नानाद्रुमलताकुले । नानापक्षिगणाकीर्णे नानाश्वापदसेविते ॥१३७॥
परिप्राप्तोऽहमिन्द्रत्वं जम्बुमाली महाबलः । अहिंसादिगुणाढ्यस्य किमु धर्मस्य दुष्करम् ॥१३८॥
ऐरावतेऽयमर्थात्मा महाव्रतविभूषणः । कैवल्यतेजसा युक्तः सिद्धस्थानं गमिष्यति ॥१३९॥
अरजा निस्तमो योगी कुम्भकर्णो महामुनिः । निर्वृत्तो नर्मदातीरे तत्तीर्थं पिठरक्षतम् ॥१४०॥
नभोविचारिणीं पूर्वं लब्धिं प्राप्य महाद्युतिः । मयो विहरणं चक्रे स्वेच्छं निर्वाणभूमिषु ॥१४१॥
प्रदेशानृषभादीनां देवागमनसेवितान् । महाभूतिपरोऽपश्यद्रत्नत्रितयमण्डनः ॥१४२॥

था ॥१२७॥ विषय रूपी ईन्धनको जलानेके लिए अग्निके समान जो मेघ वाहन मुनिराज थे वे केवलज्ञान प्राप्त कर आत्म स्वभावको प्राप्त हुए । १२८॥ उन दोनोंके बाद सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रको धारण करने वाले कुम्भकर्ण मुनिराज भी शुक्ल लेश्याके प्रभावसे अत्यन्त विशुद्धात्मा हो केवलज्ञानके द्वारा लोक और अलोकको ज्योंका त्यों देखते हुए कर्मधूलिको दूर कर अविनाशी परम पदको प्राप्त हुए ॥१२९-१३०॥ इनके सिवाय सुरेन्द्र, असुरेन्द्र तथा चक्रवर्ती जिनकी उत्तम कीर्तिका गान करते थे, जो शुद्ध शीलके धारक थे, देदीप्यमान थे, गर्व रहित थे, जो समस्त पदार्थ रूपी सघन ज्ञेयको गोष्पदके समान तुच्छ करने वाले तेजसे सहित थे, जो संसारके क्लेश रूपी कठिन बन्धनके जालसे निकल चुके थे, जहाँसे पुनः लौटकर नहीं आना पड़ता ऐसे मोक्ष स्थानकी प्राप्ति रूपी स्वार्थसे जो सहित थे, अनुपम तथा निर्विघ्न सुख ही जिनका स्वरूप था, जिनकी आत्मा महान् थी, जो सिद्ध थे तथा शत्रुओंको नष्ट करने वाले थे, ऐसे ये तथा अन्य जो महर्षि थे वे जिनशासनके श्रोता मनुष्योंके लिए रत्नत्रय रूपी आरोग्य प्रदान करें ॥१३१-१३४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन ! उनपर महात्माओंका प्रभाव तो देखो कि आज भी उन परमात्माओंके यशसे व्याप्त वे दिखाई देते हैं पर वे साधु नहीं दिखाई देते ॥१३५॥ विन्ध्यवन की महाभूमिमें जहाँ इन्द्रजित्के साथ मेघवाहन मुनिराज विराजमान रहे वहाँ आज मेघरव नामका तीर्थ प्रसिद्ध हुआ है ॥१३६॥ अनेक वृक्षों और लताओंसे व्याप्त, नानापक्षियोंके समूहसे युक्त एवं नाना जानवरोंसे सेवित तूणीगति नामक महाशैल पर महा बलवान् जम्बुमाली नामक मुनि अहमिन्द्र अवस्थाको, प्राप्त हुआ सो ठीक ही है क्योंकि अहिंसादि गुणोंसे युक्त धर्मके लिए क्या कठिन है ? ॥१३७-१३८॥ यह जम्बुमालीका जीव ऐरावत क्षेत्रमें अवतार ले महाव्रत रूपी विभूषणसे अलंकृत तथा केवल ज्ञान रूपी तेजसे युक्त हो मुक्ति स्थानको प्राप्त होगा ॥१३९॥ रजोगुण तथा तमोगुणसे रहित महामुनि कुम्भकर्ण योगी नर्मदाके जिस तीर पर निर्वाणको प्राप्त हुए थे वहाँ पिठरक्षत नामका तीर्थ प्रसिद्ध हुआ ॥१४०॥ महा दीप्तिके धारक मय मुनिने आकाश-गामिनी ऋद्धि पाकर इच्छानुसार निर्वाण-भूमियोंमें विहार किया ॥१४१॥ रत्नत्रय रूपी मण्डनको

१. मेघवाहनगारोऽपि म० । २. कुम्भकर्णः । ३. मिन्द्रजितो म० ।

मारीचः कल्पवासित्वं प्राप्याऽन्ये च महर्षयः । सर्वं यथाविधं यस्य फलं तस्य तथाविधम् ॥१४३॥
वैदेह्याः पश्य माहात्म्यं दृढव्रतसमुद्भवम् । यथा सम्पालितं शीलं द्विषन्तश्च विवर्जिताः ॥१४४॥
सीताया अतुलं धैर्यं रूपं सुभगता मतिः । कल्याणगुणपूर्णायाः स्नेहबन्धश्च भर्तरि ॥१४५॥
शीलतः स्वर्गगामिन्या स्वभर्तृपरितुष्टया । चरितं रामदेवस्य सीतया साधु भूषितम् ॥१४६॥
एकेन व्रतरत्नेन पुरुषान्तरवर्जिना । स्वर्गारोहणसामर्थ्यं योषितामपि विद्यते ॥१४७॥
मयोऽपि मायया तीव्रः कृत्वा प्राणिवधान् बहून् । प्रपद्य वीतरागत्वं पापलब्धीः[1] सुसंवृतः ॥१४८॥
उवाच श्रेणिको नाथ ! श्रुतमिन्द्रजितादिजम् । माहात्म्यमधुना श्रोतुं वाञ्छामि मयसम्भवम् ॥१४९॥
सन्त्यन्याः शीलवत्यश्च नृणां वसुमतीतले । स्वभर्तृनिरतात्मानस्ता नु किं स्वर्गभाविताः ॥१५०॥
गणभृत्वे यदि सीताया निश्चयेन व्रतेन च । तुल्याः पतिव्रताः स्वर्गं व्रजन्त्येव गुणान्विताः ॥१५१॥
सुकृतासुकृतास्वादनिस्पन्दीकृतवृत्तयः । शीलवत्यः समा राजन् ननु सर्वा विशेषितैः ॥१५२॥
वीरुद्वृश्वैभलोहानामुपलद्रुमवाससाम् । योषितां पुरुषाणां च विशेषोऽस्ति[2] महान् नृप ॥१५३॥
न हि चित्रभृतं[3] वल्ल्यां वल्ल्यां कूष्माण्डमेव वा । एवं न सर्वनारीषु सद्वृत्तं नृप विद्यते ॥१५४॥
पतिव्रताभिमाना[4]ऽभूतिवंशसमुद्भवा । शीलाङ्कुशादिनिर्याता प्राप्ता दुर्मतवारणम् ॥१५५॥

धारण करने वाले तथा महान् धैर्यके धारक उन सब मुनियों देवागमनसे सेवित ऋषभादि तीर्थंकरोंके कल्याणक प्रदेशोंके दर्शन किये ॥१४२॥ मारीच मुनि कल्पवासी देव हुए तथा अन्य महर्षियोंने जिसका जैसा तपोबल था उसने वैसा ही फल प्राप्त किया ॥१४३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! शीलव्रतकी दृढ़तासे उत्पन्न सीताका माहात्म्य तो देखो कि उसने शीलव्रतका पालन किया तथा शत्रुओंको नष्ट कर दिखाया ॥१४४॥ कल्याणकारी गुणोंसे परिपूर्ण सीताका धैर्य, रूप, सौभाग्य, बुद्धि और पति विषयक स्नेहका बन्धन—सभी अनुपम था ॥१४५॥ जो शीलव्रतके प्रभावसे स्वर्गगामिनी थी तथा अपने पतिमें ही सन्तुष्ट रहती थी ऐसी सीताने श्रीराम देवके चरितको अच्छी तरह अलंकृत किया था ॥१४६॥ पर-पुरुषका त्याग करने वाले एक व्रत रूपी रत्नके द्वारा स्त्रियोंमें भी स्वर्ग प्राप्त करनेकी सामर्थ्य विद्यमान है ॥१४७॥ जिस विकट मायावी मयने पहले अनेक जीवोंका वध किया था, अब उसने भी वीत राग भावको धारण कर उत्तम मुनि हो अनेक ऋद्धियाँ प्राप्त की थीं ॥१४८॥

तदनन्तर राजा श्रेणिकने कहा कि हे नाथ ! मैंने इन्द्रजित् आदिका माहात्म्य तो सुन लिया है अब मयका माहात्म्य सुनना चाहता हूँ ॥१४९॥ हे भगवन् ! इस पृथिवी तल पर मनुष्योंकी और भी शीलवती ऐसी स्त्रियाँ हुई हैं जो कि अपने पतिमें ही लीन रही हैं सो क्या वे सब भी स्वर्गको प्राप्त हुई हैं ? ॥१५०॥ इसके उत्तरमें गणधर बोले कि यदि वे निश्चय और व्रतकी अपेक्षा सीताके समान हैं, पातिव्रत्य धर्मसे सहित एवं अनेक गुणोंसे युक्त हैं तो नियमसे स्वर्गको ही जाती हैं ॥१५१॥ हे राजन् ! पुण्य, पापका फल भोगनेमें जिनकी आत्मा निश्चल है अर्थात् जो समता भावसे पूर्वकृत पुण्य, पापका फल भोगती हैं ऐसी सभी शीलवती स्त्रियाँ अपनी चेष्टाओंसे समान ही होती हैं ॥१५२॥ वैसे हे राजन् ! लता, घोड़ा, हाथी, लोहा, पाषाण, वृक्ष, वस्त्र, स्त्री और पुरुष इनमें परस्पर बड़ा अन्तर होता है ॥१५३॥ जिस प्रकार हरएक लतामें न ककड़ी फलती है और न कुम्हड़ा ही, इसी प्रकार हे राजन् ! सब स्त्रियोंमें सदाचार नहीं पाया जाता ॥१५४॥ पहले अनि-वंशमें उत्पन्न हुई एक अभिमाना नामकी स्त्री हो गई है जो अपने आपको पतिव्रता प्रकट करती थी किन्तु यथार्थमें शील रूपी अंकुशसे रहित हो दुर्मत रूपी वारणको प्राप्त हुई थी । भावार्थ—

---

१. प्राप लब्धीः म० । २. महान्नृपः म० । ३. चित्रभृतं ख०, कर्कटिका (श्रीचन्द्रमुनिकृत-टिप्पण्याम्) । ४. च प्रति- म० ।

लोकशास्त्रानिभिःसारगृणिना नैव शक्यते । वशीकर्तुं मनोहस्ती कुगतिं नयते ततः ॥१५६॥
सर्वज्ञोक्त्यङ्कुशेनैव[1] दयासौख्यान्वितेन धि । शक्यो योजयितुं युक्तमतिना भव्यजन्तुना ॥१५७॥
शृणु संक्षेपतो वक्ष्येऽभिमानाशीलवर्णनम् । परम्परासमायातमाख्यानकं विपश्चिताम् ॥१५८॥
आसीज्जनपदो यस्मिन् काले रोगानिलाहतः । धान्यग्रामात्तदा पत्न्या सहैको निर्गतो द्विजः ॥१५९॥
आसीन्नोदननामासावभिमानाभिधाङ्गना । अग्निनाम्ना समुत्पन्ना मानिन्यामभिमानिनी ॥१६०॥
नोदनेनाभिमानासौ क्षुद्बाधाविह्वलात्मना । त्यक्ता[2] गजवने प्राप्ता पतिं करुहं नृपम् ॥१६१॥
पुष्पप्रकीर्णनगरस्वामी लब्धप्रसादया । पादेन मस्तके जातु तयाऽसौ ताडितो रतौ ॥१६२॥
आस्थानस्थः प्रभातेऽसौ पर्यपृच्छद् बहुश्रुतान् । पादेनाऽऽहन्ति यो राज्ञश्शिरस्तस्य किमिष्यते ॥१६३॥
तस्मिन् ब्रह्मः प्रोचुः सभ्याः पण्डितमानिनः । यथाऽस्य छिद्यते पादः प्राणैर्वा स वियोज्यताम् ॥१६४॥
हेमाङ्कस्तत्र नामैको विप्रोऽभिप्रायकोविदः । जगाद तस्य पादोऽसौ पूजां सम्माप्यतां पराम् ॥१६५॥
कोविदः कथमीदृक् त्वमिति पृष्टः स भूभृता । इष्टस्त्रीदन्तशस्त्रीयं क्षतमिष्टं स्वमैक्षयत्[3] ॥१६६॥
अभिप्रायविदित्येव हेमाङ्कस्तेन भूभृता । प्रापितः परमामृद्धिं सर्वेभ्यश्चान्तरं[4] गतम् ॥१६७॥
हेमाङ्कस्य गृहे तस्य नाम्ना मित्रयशाः सती । अमोघशरसञ्ज्ञस्य भार्गवस्य प्रियाऽवसत् ॥१६८॥

इस प्रकार झूठ-मूठ ही पतिव्रताका अभिमान रखने वाली स्त्री पति-व्रता नहीं है ॥१५५॥ यह मन दुर्जन होनेसे तीक्ष्ण शास्त्ररूपी निपुण अंकुशके द्वारा वश नहीं किया जा सकता इसलिए वह इस जीवको कुमतिमें ले जाता है ॥१५६॥ उत्तम बुद्धिको धारण करने वाला भव्यजीव, जिनवाणी रूपी अङ्कुशके द्वारा ही मनरूपी हाथीको दया और सुखसे सहित समीचीनमार्गमें ले जा सकता है ॥१५७॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अब मैं विद्वानोंके बीच परम्परासे आगत अभिमानाके शील वर्णनकी कथा संक्षेपमें कहता हूँ सो सुन ॥१५८॥

वे कहने लगे कि जिस समय समस्त देश रोगरूपी वायुसे पीड़ित था उस समय धान्यग्राम का रहने वाला एक ब्राह्मण अपनी स्त्रीके साथ उस ग्रामसे बाहर निकला ॥१५९॥ उस ब्राह्मणका नाम नोदन था और उसकी स्त्रीका नाम अभिमाना था। अभिमाना अग्निनामक पितासे मानिनी नामक स्त्रीमें उत्पन्न हुई थी तथा अत्यधिक अभिमानको धारण करने वाली थी ॥१६०॥ तदनन्तर भूख की बाधासे जिसकी आत्मा विह्वल हो रही थी ऐसे नोदनने अभिमानाको छोड़ दिया। धीरे धीरे अभिमाना हाथियोंके वनमें पहुँची वहाँ उसने राजा करुहको अपना पति बना लिया ॥१६१॥ राजा करुह पुष्पप्रकीर्ण नगरका स्वामी था। तदनन्तर जिसे पतिकी प्रसन्नता प्राप्त थी ऐसी उस अभिमानाने किसी समय रतिकालमें राजा करुहके शिरमें अपने पैरसे आघात किया अर्थात् उसके शिरमें लात मारी ॥१६२॥ दूसरे दिन प्रभात होने पर जब राजा सभामें बैठा तब उसने बहुश्रुत विद्वानोंसे पूछा कि जो राजाके शिरको पैरके आघातसे पीड़ित करे उसका क्या करना चाहिए ॥१६३॥ राजाका प्रश्न सुन, सभामें अपने आपको पण्डित माननेवाले जो बहुतसे सभासद बैठे थे उन्होंने कहा कि उसका पैर काट दिया जाय अथवा उसे प्राणोंसे वियुक्त किया जाय ? ॥१६४॥ उसी सभामें राजाके अभिप्रायको जाननेवाला एक हेमाङ्क नामका ब्राह्मण भी बैठा था सो उसने कहा कि राजन्, उसके पैरकी अत्यधिक पूजा की जाय अर्थात् अलंकार आदिसे अलंकृत कर उसका सत्कार किया जाय ॥१६५॥ राजाने उससे पूछा कि तुम इस प्रकार विद्वान् कैसे हुए अर्थात् तुमने यथार्थ बात कैसे जान ली ? तब उसने कहा कि इष्टस्त्रीके इस दन्तरूपी शस्त्रने अपने इष्टको अपने द्वारा घायल दिखलाया है अर्थात् आपके ओठमें स्त्रीका दन्ताघात देख कर मैंने सब रहस्य जाना है ॥१६६॥ यह सुन राजाने 'यह अभिप्रायका जानने वाला है' ऐसा समझ हेमाङ्क को बहुत सम्पदा दी तथा अपनी निकटता प्राप्त कराई ॥१६७॥ हेमाङ्कके घरमें अमोघशर

१. अंकुशेन म० । २. त्यक्त्वा म० । ३. इष्टस्त्रीदन्तशस्त्री ज०, म० । ४. गता म० ।

विधवा दुःखिनी तस्मिन् वसन्ती भवने सुतम् । अशिक्षयदसावेवं स्मृतभर्तृगुणोत्करा ॥१६६॥
सुनिश्चितात्मना येन बाल्ये विद्यागमः कृतः । हेमाङ्कस्य श्रुतिं तस्य विद्युः पश्य पुत्रक ॥१७०॥
शरविज्ञाननिर्धूतसर्वभार्गवसम्पदः । पितुस्तथाविधस्य त्वं तनयो वाक्षिशोऽभवः ॥१७१॥
बाष्पविप्लुतनेत्रायाः श्रुत्वा मातुर्वचस्तदा । प्रशाम्यतां गतो विद्यां शिक्षितुं सोऽभिमानवान् ॥१७२॥
ततो व्याघ्रपुरे सर्वाः कलाः प्राप्य गुरोर्गृहे । तत्प्रदेशसुकान्तस्य सुतां कृत्वा विनिर्गतः ॥१७३॥
तस्याः शीलाभिधानायाः कन्यकाया सहोदरः । सिंहेन्दुरिति[1]नियातो युद्धार्थी गुरुविक्रमः ॥१७४॥
एककी बलसम्पन्नं जित्वा सिंहेन्दुमाहवे । श्रीवर्द्धितोऽन्वितो मात्रा सम्प्रापः परमां धृतिम् ॥१७५॥
महाविज्ञानयुक्तेन तेन प्रख्यातकीर्त्तिना । लब्धं कररुहाद्राज्यं नगरे पोदनाह्वये ॥१७६॥
सुकान्ते पञ्चतां प्राप्ते सिंहेन्दुर्युतिशत्रुणा । अभिभूतः समं देव्या निरैद्गोहात् सुरङ्गया ॥१७७॥
सम्भ्रान्तः शरणं गच्छन् भगिनीं खेदवान् भृशम् । प्राप्तस्ताम्बूलिकैर्भारं वाहितः सह भार्यया ॥१७८॥
भानावस्तङ्गतेऽभ्याशं[2] पोदनस्य स सङ्गतः । मुक्तो राजभटैः[3] रात्रौ त्रासितो गहनं श्रितः ॥१७९॥
महोरगेण सन्दष्टस्तं देवी परिदेविनी[4] । कृत्वा स्कन्धे परिप्राप्ता देशं यत्र मयः स्थितः ॥१८०॥
वज्रस्तम्भसमानस्य प्रतिमास्थानमीयुषः । महाऋद्धेः समीपस्थ पादयोस्तमतिष्ठिपत् ॥१८१॥

नामक ब्राह्मणकी मित्रयशा नामकी पतिव्रता पत्नी रहती थी। वह बेचारी विधवा तथा दुःखिनी होकर उसी घरमें निवास करती और अपने पतिके गुणोंका स्मरण कर पुत्रको ऐसी शिक्षा देती थी ॥१६८-१६९॥ कि हे पुत्र! जिसने बाल्य अवस्थामें निश्चिन्तचित्त होकर विद्याभ्यास किया था उस विद्वान् हेमाङ्कका प्रभाव देख ॥१७०॥ जिसने बाणविद्याके द्वारा समस्त ब्राह्मणों अथवा परशुरामकी समस्त सम्पदाको तिरस्कृत कर दिया था उस पिताके तू ऐसा मूर्ख पुत्र हुआ है ॥१७१॥ आँसुओंसे जिसके नेत्र भर रहे थे ऐसी माताके वचन सुन उसका श्रीवर्धित नामका अभिमानी बालक माताको सान्त्वना देकर उसी समय विद्या सीखनेके लिए चला गया ॥१७२॥

तदनन्तर व्याघ्रपुर नगरमें गुरुके घर समस्त कलाओंको सीख विद्वान् हुआ और वहाँके राजा सुकान्तकी पुत्रीका हरणकर वहाँसे निकल भागा ॥१७३॥ पुत्रीका नाम शीला था और उसके भाईका नाम सिंहेन्दु था, सो प्रबल पराक्रमका धारक सिंहेन्दु बहिनको वापिस लानेके लिए युद्धकी इच्छा करता हुआ निकला ॥१७४॥ परन्तु श्रीवर्धित अस्त्र-शस्त्रमें इतना निपुण हो गया था कि उसने अकेले ही सेनासे युक्त सिंहेन्दुको युद्धमें जीत लिया और वह घर आकर तथा मातासे मिलकर परम सन्तोषको प्राप्त हुआ ॥१७५॥ श्रीवर्धित महाविद्वानी तो था ही धीरे-धीरे उसका यश भी प्रसिद्ध हो गया, अतः उसे राजा कररुहसे पोदनपुर नगरका राज्य मिल गया ॥१७६॥ कालक्रमसे जब व्याघ्रपुरका राजा सुकान्त मृत्युको प्राप्त हो गया तब द्युतिनामक शत्रुने उसके पुत्र सिंहेन्दुपर आक्रमण किया जिससे भयभीत हो वह अपनी स्त्रीके साथ एक सुरंग द्वारा घरसे बाहर निकल गया ॥१७७॥ वह अत्यन्त घबड़ा गया था तथा बहुत खिन्न होता हुआ बहिनकी शरणमें जा रहा था। मार्गमें तंबोलियोंका साथ हो गया सो उनका भार शिर-पर रखते हुए वह अपनी स्त्री सहित सूर्यास्त होनेके बाद पोदनपुरके समीप पहुँचा। वहाँ राजाके योद्धाओंने उसे पकड़कर धमकाया सो जिस-किसी तरह छूटकर भयभीत होता हुआ वनमें पहुँचा ॥१७८-१७९॥ सो वहाँ एक महासर्पने उसे डँस लिया जिससे विलाप करती हुई उसकी स्त्री उसे कन्धेपर रखकर उस स्थानपर पहुँची जहाँ मयमुनि विराजमान थे ॥१८०॥ महा-ऋद्धियोंके धारक मयमुनि प्रतिमा योग धारण कर वज्र स्तम्भके समान निश्चल खड़े थे, सो रानीने

१. पुरविक्रमः म० । २. ऽभ्यासं म० । ३. राजन् म० । ४. परिदेवनी म० ।

पादौ मुनेः परामृश्य पत्युर्गात्रं [1]समास्पृशत् । देवी ततः परिप्राप्तः सिंहेन्दुर्जीवितं पुनः ॥१८२॥
चैत्यस्य वन्दनां कृत्वा भक्त्या केसरिचन्द्रमाः । प्रणनाम मुनिं भूयो भूयो दयितया समम् ॥१८३॥
उद्गते भास्करे साधुः समाप्तनियमोऽभवत् । प्राप्तो विनयदत्तस्तं वन्दनार्थमुपासकः ॥१८४॥
सन्देशाच्छ्रावको गत्वा पुरं श्रीवर्द्धिताय तम् । सिंहेन्दुं प्राप्तमाचख्यौ श्रुत्वा सन्नद्धयुद्धयतः ॥१८५॥
ततो यथावदाख्याते प्रीतिसङ्कुलमानसः । महोपचारशोभिन्या श्यालं श्रीवर्द्धितोऽगमत् ॥१८६॥
ततो बन्धुसमायोगं प्राप्तः परमसम्मदः । श्रीवर्द्धितः सुखासीनं पप्रच्छेति मयं नतः ॥१८७॥
भगवन् ज्ञातुमिच्छामि पूर्वं जननमात्मनः । स्वजनानां च सत्साधुस्ततो वचनमब्रवीत् ॥१८८॥
आसीच्छोभपुरे नाम्ना भद्राचार्यो दिगम्बरः । अमलाख्यः पुरस्यास्य स्वामी गुणसमुत्करः ॥१८९॥
स तं प्रत्यहमाचार्यं सेवितुं याति सन्मनाः । अन्यदा गन्धमाजघ्रौ देशे तत्र सुदुःसहम् ॥१९०॥
स तं गन्धं समाघ्राय कुष्टिन्यङ्गसमुद्गतम् । पद्भ्यामेव निजं गेहं ययोऽसहनको द्रुतम् ॥१९१॥
अन्यतः कुष्टिनी सा तु प्राप्ता चैत्यान्तिके तदा । विश्रान्ताऽऽसीद्व्रणेभ्योऽस्या दुर्गन्धोऽसौ विनिर्ययौ ॥१९२॥
अणुव्रतानि सा प्राप्य भद्राचार्यसकाशतः । देवलोकं गता च्युत्वाऽसौ कान्ता शीलवत्यभूत् ॥१९३॥
यस्त्वसावमलो राजा पुत्रन्यस्तनृपक्रियः । सन्तुष्टः सोऽष्टभिर्भावैः श्रावकत्वमुपाचरत् ॥१९४॥

सिंहेन्दुको उनके चरणोंके समीप लिटा दिया ॥१८१॥ सिंहेन्दुकी स्त्रीने मुनिराजके चरणोंका स्पर्श कर पतिके शरीरका स्पर्श किया जिससे वह पुनः जीवित हो गया ॥१८२॥ तदनन्तर सिंहेन्दुने भक्तिपूर्वक प्रतिमाकी वन्दना की और उसके बाद आकर अपनी स्त्रीके साथ बार-बार मुनिराजको प्रणाम किया ॥१८३॥

अथानन्तर सूर्योदय होनेपर मुनिराजका नियम समाप्त हुआ, उसी समय वन्दनाके लिए विनयदत्त नामका श्रावक उनके समीप आया ॥१८४॥ सिंहेन्दुके संदेशसे श्रावकने नगरमें जाकर श्रीवर्धितके लिए बताया कि राजा सिंहेन्दु आया है। यह सुन श्रीवर्धित युद्धके लिए तैयार हो गया ॥१८५॥ तदनन्तर जब यथार्थ बात मालूम हुई तब प्रीतियुक्त चित्त होता हुआ श्रीवर्धित सन्मान करनेकी भावनासे अपने सालेके पास गया ॥१८६॥ तत्पश्चात् इष्टजनोंका समागम प्राप्त कर हर्षित होते हुए श्रीवर्धितने सुखसे बैठे हुए मय मुनिराजसे विनयपूर्वक पूछा कि हे भगवन्! मैं अपने तथा अपने परिवारके लोगोंके पूर्वभव जानना चाहता हूँ। तदनन्तर उत्तम मुनिराज इस प्रकार वचन बोले कि ॥१८७-१८८॥

शोभपुर नगरमें एक भद्राचार्य नामक दिगम्बर मुनिराज थे। उस नगरका राजा अमल था जो कि गुणोंके समूहसे सुशोभित था ॥१८९॥ उत्तम हृदयको धारण करनेवाला अमल प्रतिदिन उन आचार्यकी सेवा करनेके लिए आता था। एक दिन आनेपर उसे उस स्थानपर अत्यन्त दुःसह दुर्गन्ध आई ॥१९०॥ कोढ़िनीके शरीरसे उत्पन्न हुई वह दुर्गन्ध इतनी भयंकर थी कि राजा उसे सहन नहीं कर सका और पैदल ही शीघ्र अपने घर चला गया ॥१९१॥ वह कोढ़िनी स्त्री किसी अन्य स्थानसे आकर उस मन्दिरके समीप ठहरी थी, उसीके घावोंसे वह दुर्गन्ध निकल रही थी ॥१९२॥ उस स्त्रीने भद्राचार्यके पास अणुव्रत धारण किये जिसके फलस्वरूप वह मरकर स्वर्ग गई और वहाँसे च्युत होकर यह शीला नामक तुम्हारी स्त्री हुई है ॥१९३॥ यहाँ जो अमल नामका राजा था उसने सब राज्यकार्य पुत्रके लिए सौंप दिया और स्वयं

---

१. समास्पृशत् म० ।

देवलोकमसौ गत्वा च्युतः श्रीवर्द्धितोऽभवत् । अधुना पूर्वकं जन्म मातुस्तव वदाम्यहम् ॥१९५॥
एको विदेशिको भ्राम्यन् ग्रामं क्षुद्व्याधितोऽविशत् । स भोजनगृहे भुक्तिमलब्ध्वा कोपसङ्गतः ॥१९६॥
सर्वं ग्रामं दहामीति निगद्य [1]कटुकस्वरम् । निष्क्रान्तः सृष्टितोऽसौ च ग्रामः प्राप्तः प्रदीपनम् ॥१९७॥
ग्राम्यैरानीय सङ्क्रुद्धैः [2]क्षिप्तोऽसौ तत्र पावके । मृतो दुःखेन सम्भूतः सूपकारो नृपालये ॥१९८॥
ततो मृत्वा परिप्राप्ता नरकं घोरवेदनम् । तस्मादुत्तीर्य माताऽभूत्तव मित्रयशोऽभिधा ॥१९९॥
बभूव पोदनस्थाने नाम्ना गोवाणिजो महान् । भुजपत्रेति तत्कान्ता [3]द्वीपान्तरनिवासिनः सोऽभान्मुतः ॥२००॥
भुजपत्रापि जातास्य कामिनी रतिवर्द्धनी । पौढनाद्गर्दभादीनां पुरा भारं च वाहितौ ॥२०१॥
एवमुक्त्वा मयो व्योम भासयन् स्वेप्सितं ययौ । श्रीवर्द्धितोऽपि नगरं प्राप्तबन्धुसमागमः ॥२०२॥
पूर्वभाग्योदयाद्राजन् संसारे चित्रकर्मणि । राज्यं कश्चिदवाप्नोति प्राप्तं नश्यति कस्यचित् ॥२०३॥
अप्येकस्माद्गुरोः प्राप्य जन्तूनां धर्मसङ्गतिम्[4] । निदानानिदानाख्यां मरणाभ्यां पृथग्गतिः ॥२०४॥
उत्तरन्त्यूर्मिं केचिद्रत्नपूर्णाः सुखान्विताः । मध्ये केचिद्विशीर्यन्ते तटे केचिद्वनाधिपाः ॥२०५॥
इति ज्ञात्वाऽऽत्मनः श्रेयः सदा कार्यं मनीषिभिः । दयादमतपःशुद्ध्या[5] विनयेनागमेन वा ॥२०६॥
सकलं पोदनं नूनं तदा मयवचःश्रुतेः । उपशान्तमभूद्धर्मगतचित्तं[6] नराधिप ॥२०७॥

वह आठ गाँवोंसे संतुष्ट हो श्रावक हो गया ॥१९४॥ आयुके अन्तमें वह स्वर्ग गया और वहाँसे च्युत हो श्रीवर्धित हुआ। इतना कहकर मय मुनिराजने कहा कि अब मैं तुम्हारी माताका पूर्व भव कहता हूँ ॥१९५॥

एक बार एक विदेशी मनुष्य भूखसे पीड़ित हो घूमता हुआ नगरमें प्रविष्ट हुआ। नगरकी भोजनशालामें भोजन न पाकर वह कुपित होता हुआ कटुक शब्दोंमें यह कहकर बाहर निकल गया कि 'मैं समस्त गाँवको अभी जलाता हूँ'। भाग्यकी बात कि उसी समय गाँवमें आग लग गई ॥१९६-१९७॥ तब क्रोधसे भरे ग्रामवासियोंने उसे लाकर उसी अग्निमें डाल दिया, जिससे दुःखपूर्वक मरकर वह राजाके घर रसोइन हुआ ॥१९८॥ तदनन्तर मरकर घोर वेदनासे युक्त नरक पहुँची और वहाँसे निकलकर तुम्हारी माता मित्रयशा हुई है ॥१९९॥ पोदनपुरमें एक गोवाणिज नामका बड़ा गृहस्थ था, भुजपत्रा उसकी स्त्रीका नाम था। गोवाणिज मरकर सिंहेन्दु हुआ और भुजपत्रा उसकी रतिवर्धनी नामकी स्त्री हुई। इन दोनोंने पूर्वभवमें गर्दभ आदि पशुओंपर अधिक बोझ लाद-लाद उन्हें पीड़ा पहुँचाई थी इसलिए उन्हें भी तंबोलियोंका भार उठाना पड़ा ॥२००-२०१॥ इस प्रकार कहकर मय मुनिराज आकाशको देदीप्यमान करते हुए अपने इच्छित स्थानपर चले गये और श्रीवर्धित भी इष्टजनोंका समागम प्राप्त कर नगरमें चला गया ॥२०२॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! इस विचित्र संसारमें पूर्वकृत भाग्यका उदय होनेपर कोई राज्यको प्राप्त होता है और किसीका प्राप्त हुआ राज्य नष्ट हो जाता है ॥२०३॥ एक ही गुरुसे धर्मकी संगति पाकर निदान अथवा निदानरहित मरणसे जीवोंकी गति भिन्न-भिन्न होती है ॥२०४॥ रत्नोंसे पूर्णताको प्राप्त हुए कितने ही धनेश्वरी मनुष्य सुखपूर्वक समुद्रको पार करते हैं, कितने ही बीचमें डूब जाते हैं और कितने ही तटपर डूब मरते हैं ॥२०५॥ ऐसा जानकर बुद्धिमान् मनुष्योंको सदा दया, दम, तपश्चरणकी शुद्धि, विनय तथा आगमके अभ्याससे आत्माका कल्याण करना चाहिए ॥२०६॥ हे राजन्! उस समय मय मुनिराजके वचन सुनकर समस्त

१. कटुकः स्वरम् म०। २. संक्रुद्धः। ३. धर्मसंगतिः म०, ख०, ज०। ४. तपस्तुष्ट्या ज०। ५. चित्तं म०।

आर्यच्छन्दः

ईदृग्गुणो विधिज्ञः प्रासुविहारी मयः प्रशान्तात्मा ।
पण्डितमरणं प्राप्तोऽभूदीशाने सुरश्रेष्ठः ॥२०८॥
एतन्मयस्य साधोर्माहात्म्यं ये पठन्ति सचिवाः ।
अरयः क्रव्यादा वा हिंसन्ति न तान् कदाचिदपि ॥२०९॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे मयोपाख्यानं नामाऽशीतितमं पर्व ॥८०॥

पोदनपुर अत्यन्त शान्त हो गया तथा धर्ममें उसका चित्त लग गया ॥२०७॥ इस प्रकारके गुणोंसे युक्त, धर्मकी विधिको जाननेवाले, प्रशान्त चित्त तथा प्रासुक स्थानमें विहार करनेवाले मय मुनिराज, पण्डित मरणको प्राप्त हो श्रेष्ठ देव हुए ॥२०८॥ इस तरह जो उत्तम चित्त होकर मय मुनिराजके इस माहात्म्यको पढ़ते हैं, शत्रु अथवा मांसभोजी सिंहादि उनकी कभी भी हिंसा नहीं करते ॥२०९॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें मय मुनिराजका वर्णन करनेवाला अस्सीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥८०॥

एकाशीतितमं पर्व

ब्रह्मलोकभवाकारां लक्ष्मीं लक्ष्मणपूर्वजः । [1]चन्द्राङ्कचूडदेवेन्द्रप्रतिमोऽनुभवन्नसौ ॥१॥
भर्तृपुत्रवियोगाग्निज्वालाशोषितविग्रहाम् । विस्मृतः कथमेकान्तं जननीमपराजिताम्[2] ॥२॥
सप्तमं तलमारूढा प्रासादस्य सखीवृता । उद्विग्नाऽश्रुप्रपूर्णाक्षा नवधेनुरिवाकुला[3] ॥३॥
[4]वीक्षते सा दिशः सर्वाः पुत्रस्नेहपरायणा । कांक्षन्ती दर्शनं तीव्रशोकसागरवर्त्तिनी ॥४॥
पताकाशिखरे तिष्ठन्नुत्पतोत्पतवायस[5] । पद्मः पुत्रो ममाऽऽयातु तव दास्यामि पायसम् ॥५॥
इत्युक्त्वा चेष्टितं तस्य ध्यात्वा ध्यानं मनोहरम् । विलापं कुरुते [6]नेत्रवाष्पदुर्दिनकारिणी ॥६॥
हा वत्सक क्व यातोऽसि सततं सुखलालितः । विदेशभ्रमणे प्रीतिस्तव केयं समुद्गता ॥७॥
परपल्लवयोः पीडां प्राप्नोषि परुषे पथि । विश्रमिष्यसि कस्याऽधो गहनस्थोत्कटश्रमः ॥८॥
मन्दभाग्यां परित्यज्य मकामार्त्यर्थदुःखिताम् । यातोऽसि कतमामाशां [7]भ्रात्रा पुत्रकसङ्गतः ॥९॥
[8]परिदेवनमारेभे सा कर्तुं [9]चैवमादिकम् । देवर्षिश्च परिप्राप्तो गगनाङ्गणगोचरः ॥१०॥
जटाकूर्चधरः शुक्लवस्त्रप्रावृतविग्रहः । अवद्वारगुणाभिख्यो नारदः क्षितिविश्रुतः ॥११॥
तं [10]समीपत्वमायातमभ्युत्थायापराजिता । आसनादिपचारेण सादरं सममानयत् ॥१२॥

अथानन्तर जो स्वर्ग लोककी लक्ष्मीके समान राजलक्ष्मीका उपभोग कर रहे थे ऐसे चन्द्रार्कचूड इन्द्रके तुल्य श्रीराम, पति और पुत्रके वियोगरूपी अग्निकी ज्वालासे जिनका शरीर सूख गया था ऐसी माता कौसल्याको एकदम क्यों भूल गये थे ? ॥१-२॥ जो निरन्तर उद्विग्न रहती थी, जिसके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त रहते थे, जो नवप्रसूता गायके समान अपने पुत्रसे मिलनेके लिए अत्यन्त व्याकुल थी, पुत्रके प्रति स्नेह प्रकट करनेमें तत्पर थी, तीव्र शोकरूपी सागरमें विद्यमान थी और पुत्रके दर्शनकी इच्छा रखती थी, ऐसी कौसल्या सखियोंके साथ महलके सातवें खण्डपर चढ़ कर सब दिशाओंकी ओर देखती रहती थी ॥३-४॥ वह पागलकी भाँति पताकाके शिखरपर बैठे हुए काकसे कहती थी कि रे वायस ! उड़-उड़ । यदि मेरा पुत्र राम आ जायगा तो मैं तुझे खीरका भोजन दूँगी ॥५॥ ऐसा कहकर उसकी मनोहर चेष्टाओंका ध्यान करती और जब उसकी ओरसे कुछ उत्तर नहीं मिलता तब नेत्रोंसे आँसुओंकी घनघोर वर्षा करती हुई विलाप करने लगती ॥६॥ वह कहती कि हाय पुत्र ! तू कहाँ चला गया ? तू निरन्तर सुखसे लड़ाया गया था। तुझे विदेश भ्रमणकी यह कौन-सी प्रीति उत्पन्न हुई है ? ॥७॥ तू कठोर मार्गमें चरण-किसलयोंकी पीड़ाको प्राप्त हो रहा होगा। अर्थात् कंकरीले पथरीले मार्गमें चलते-चलते तेरे कोमल पैर दुखने लगते होंगे तब तू अत्यन्त थक कर किस वनके नीचे विश्राम करता होगा ? ॥८॥ हाय बेटा ! अत्यन्त दुःखिनी मुझ मन्दभागिनीको छोड़ तू भाई लक्ष्मणके साथ किस दिशामें चला गया है ? ॥९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! वह कौसल्या जिस समय इस प्रकारका विलाप कर रही थी उसी समय आकाशमार्गमें विहार करनेवाले देवर्षि नारद वहाँ आये ॥१०॥ वे नारद जटारूपी कूर्चको धारण किये हुए थे, सफेद वस्त्रसे उनका शरीर आवृत था, अवद्वार नामके धारक थे और पृथिवीमें सर्वत्र प्रसिद्ध थे ॥११॥ उन्हें समीपमें आया देख कौसल्याने उठकर तथा आसन आदि देकर उनका

१. चन्द्रार्क म० । २. कौशल्याम् । ३. रिवावृता. म० । ४. जननी ब० । ५. वायसः म० । ६. नेत्रवास्य म० । ७. भ्रातृ म० । ८. परिवेदन- म० । ९. समीपस्थ म० ।

सिद्धयोगमुनिर्दृष्ट्वा तामश्रुतरलेक्षणाम् । आकारसूचितोदारशोकां सम्परिपृष्टवान् ॥१३॥
कुतः प्राप्तोऽसि कल्याणि विमानमिदं यतः । रुद्यते न तु सम्भाव्यं तव दुःखस्य कारणम् ॥१४॥
सुकोशलमहाराजदुहिता लोकविश्रुता । श्लाघ्याऽपराजिताभिख्या पत्नी दशरथश्रुतेः ॥१५॥
पद्मनाभसुरत्नस्य प्रसवित्री सुलक्षणा । येन त्वं कोपिता मान्या देवतेव हतात्मना ॥१६॥
अद्यैव कुरुते तस्य प्रतापाक्रान्तविष्टपः । नृपो दशरथः श्रीमान्निग्रहं प्राणहारिणम् ॥१७॥
उवाच नारदं देवी स त्वं चिरतरागतः । देवर्षे वेत्सि वृत्तान्तं नेमं येनेति भाषसे ॥१८॥
अन्य एवासि संवृत्तो वात्सल्यं सत्पुरातनम् । कुतो विशिथिलीभूतं लक्ष्यते निष्ठुरस्य ते ॥१९॥
कथं वार्तामपीदानीं त्वं नोपलभसे गुरुः । अतिदूरादिवायातः कुतोऽपि श्रमणप्रियः ॥२०॥
तेनोक्तं धातकीखण्डे सुरेन्द्ररमणे पुरे । विदेहेऽजनि पूर्वस्मिन्नैलोक्यपरमेश्वरः ॥२१॥
मन्दरे तस्य देवेन्द्रैः सुरासुरसमन्वितैः । दिव्यया ऋद्धिसया मुख्या जननाभिषवः कृतः ॥२२॥
तस्य देवाधिदेवस्य सर्वपापप्रणाशनः । अभिषेको मया दृष्टः पुण्यकर्मप्रवर्द्धकः ॥२३॥
आनन्दं ननृतुस्तत्र देवाः प्रमुदिताः परम् । विद्याधराश्च बिभ्राणा विभूतिमतिशोभनाम् ॥२४॥
जिनेन्द्रदर्शनासक्तस्तस्मिन्नतिमनोहरे । वयोविंशतिवर्षाणि द्वीपेऽहमुषितः सुखम् ॥२५॥
तथापि चिरनीतस्यां संस्मृत्य भरतक्षितिम् । महाधृतिकरीमेत्य प्राप्तोऽहं चिरसेवितम् ॥२६॥
जम्बूभरतमागत्य प्रजातस्यापि न क्वचित् । भवतीं द्रष्टुमायातो वार्तां ज्ञानपिपासितः ॥२७॥

आदर किया ॥१२॥ जिसके नेत्र आँसुओंसे तरल थे तथा जिसकी आकृतिसे ही बहुत भारी शोक प्रकट हो रहा था ऐसी कौसल्याको देख नारदने पूछा कि हे कल्याणि ! तुमने किससे अनादर प्राप्त किया है, जिससे रो रही हो ? तुम्हारे दुःखका कारण तो सम्भव नहीं जान पड़ता ? ॥१३-१४॥ तुम सुकोशल महाराजकी लोकप्रसिद्ध पुत्री हो, प्रशंसनीय हो तथा राजा दशरथकी अपराजिता नामकी पत्नी हो ॥१५॥ मनुष्योंमें रत्नस्वरूप श्रीरामकी माता हो, उत्तम लक्षणोंसे युक्त हो तथा देवताके समान माननीय हो। जिस दुष्टने तुम्हें क्रोध उत्पन्न कराया है, प्रतापसे समस्त संसारको व्याप्त करनेवाले श्रीमान् राजा दशरथ आज ही उसका प्राणापहारी निग्रह करेंगे अर्थात् उसे प्राणदण्ड देंगे ॥१६-१७॥

इसके उत्तरमें देवी कौसल्याने कहा कि हे देवर्षे ! तुम बहुत समय बाद आये हो इसलिए इस समाचारको नहीं जानते और इसीलिए ऐसा कह रहे हो ॥१८॥ जान पड़ता है कि अब तुम दूसरे ही हो गये हो और तुम्हारी निष्ठुरता बढ़ गई है अन्यथा तुम्हारा वह पुराना वात्सल्य शिथिल क्यों दिखाई देता ? ॥१९॥ आज तक भी तुम इस वार्ताको क्यों नहीं प्राप्त हो सके ? जान पड़ता है कि तुम भ्रमणप्रिय हो और अभी कहीं बहुत दूरसे आ रहे हो ॥२०॥ नारदने कहा कि धातकी खण्ड-द्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें एक सुरेन्द्ररमण नामका नगर है वहाँ श्रीतीर्थंकर भगवान्का जन्म हुआ था ॥२१॥ सुरासुरसहित इन्द्रोंने सुमेरु पर्वतपर आश्चर्यकारी दिव्य वैभवके साथ उनका जन्माभिषेक किया था ॥२२॥ सो समस्त पापोंको नष्ट करने एवं पुण्यकर्मको बढ़ानेवाला तीर्थंकर भगवान्का वह अभिषेक मैंने देखा है ॥२३॥ उस उत्सवमें आनन्दसे भरे देवोंने तथा अत्यन्त शोभायमान विभूतिको धारण करनेवाले विद्याधरोंने आनन्दसे नृत्य किया था ॥२४॥ जिनेन्द्र भगवान्के दर्शनोंमें आसक्त हो मैं उस अतिशय मनोहारी द्वीपमें यद्यपि तेईस वर्ष तक सुखसे निवास करता रहा ॥२५॥ तथापि चिरकालसे सेवित तथा महान् धैर्य उत्पन्न करनेवाली माताके तुल्य इस भरत-क्षेत्रकी भूमिका स्मरण कर यहाँ पुनः आ पहुँचा हूँ ॥२६॥ जम्बूद्वीपके भरत-क्षेत्रमें आकर मैं अभीतक कहीं अन्यत्र नहीं गया हूँ, सीधा समाचार, जाननेकी प्यास लेकर तुम्हारा दर्शन करनेके लिए आया हूँ ॥२७॥

ततोऽपराजिताऽवादीद् यथावृत्तमरौपतः । सर्वप्राणिहिताचार्यस्यागतिं गणवारिणः ॥२८॥
वैदेहस्य समायोगं महाविद्याधरप्रभोः । दशरथेनृपराजस्य प्रव्रज्यां पार्थिवैः समम् ॥२९॥
सीतालक्ष्मणयुक्तस्य पद्मनाभस्य निर्गमम् । वियोगं सीतया सार्कं सुग्रीवादिसमागमम् ॥३०॥
लक्ष्मणं समरे शक्त्या लङ्कानाथेन ताडितम् । द्रोणमेघस्य कन्याया नयनं त्वरयान्वितम् ॥३१॥
इत्युक्त्वाऽनुस्मृतात्यन्ततीव्रदुःखपरायणा । अश्रुधारां विमुञ्चन्ती सा पुनः पर्यदेवत ॥३२॥
हा हा पुत्र गतः क्वासि चिरमेहि प्रयच्छ मे । वचनं कुरु साधारं मग्नायाः शोकसागरे ॥३३॥
पुण्यौज्झिताः स्वदीयास्यमपश्यन्ती सुजातक । तीव्रदुःखानलालीढा हतं मन्ये स्वजीवितम् ॥३४॥
वन्दीगृहं समासीना राजपुत्री सुखैधिता । बाला वनमृगीमुग्धा सीता दुःखेन तिष्ठति ॥३५॥
निर्घृणेन दशास्येन शक्त्या लक्ष्मणसुन्दरः । ताडितो जीवितं धत्ते नेति वार्ता न विद्यते ॥३६॥
हा सुदुर्लभकौ पुत्रौ हा जीते सति मादृशे । अनाहतिं प्रपद्येथे कथं दुःखमिदं परम् ॥३७॥
तं वृत्तान्तं ततो ज्ञात्वा वीणां क्षिप्त्वा महीतले । उद्विग्नो नारदस्तस्थौ हस्तावाधाय मस्तके ॥३८॥
क्षणनिष्कम्पदेहश्च विमृश्य बहुधोचितः । अवदद् देवि नो सम्यगवृत्तमेतद्विभाति मे ॥३९॥
त्रिखण्डाधिपतिश्चण्डो विद्याधरमहेश्वरः । वैदेहकपिनाथाभ्यां राक्षसः किं प्रकोपितः ॥४०॥
तथापि कौशले शोकं मा कृथाः परमं शुभे । अचिरादेव ते वार्तामानयामि न संशयः ॥४१॥
कृत्यं विधातुमेतावदेवि सामर्थ्यमस्ति मे । शक्तः स एव शेषस्य कार्यस्य तव नन्दनः ॥४२॥
प्रतिज्ञामेवमादाय नारदः खं समुद्गतः । वीणां कक्षान्तरे कृत्वा सखीमिव परां प्रियाम् ॥४३॥

तदनन्तर अपराजिता (कौसल्या) ने जो वृत्तान्त जैसा हुआ था वह सब नारदसे कहा। उसने कहा कि सङ्घसहित सर्वभूतहित आचार्यका आगमन हुआ। महा विद्याधरोंके राजा भामण्डलका संयोग हुआ। राजा दशरथने अनेक राजाओंके साथ दीक्षा धारण की, सीता और लक्ष्मणके साथ राम वनको गये, वहाँ सीताके साथ उनका वियोग हुआ, सुग्रीवादिके साथ समागम हुआ, युद्धमें लङ्काके धनी-रावणने लक्ष्मणको शक्तिसे ताड़ित किया और द्रोणमेघकी कन्या विशल्या शीघ्रतासे वहाँ ले जाई गई ॥२८–३१॥ इतना कहते ही जिसे तीव्र दुःखका स्मरण हो आया था ऐसी कौसल्या अश्रुधारा छोड़ती हुई पुनः विलाप करने लगी ॥३२॥ हाय हाय पुत्र! तू कहाँ गया? कहाँ है? बहुत समय हो गया, शीघ्र ही आ, मेरे लिए वचन दे—मुझसे वार्तालाप कर और शोकसागरमें डूबी हुई मेरे लिए सान्त्वना दे ॥३३॥ हे सत्पुत्र! मैं पुण्यहीना तुम्हारे मुखको न देखती तथा तीव्र दुःखाग्निसे व्याप्त हुई अपने जीवनको निरर्थक मानती हूँ ॥३४॥ सुखसे जिसका लालन-पालन हुआ तथा जो वनकी हरिणीके समान भोली है ऐसी राजपुत्री बेटी सीता शत्रुके बन्दीगृहमें पड़ी दुःखसे समय काट रही होगी ॥३५॥ निर्दय रावणने लक्ष्मणको शक्तिसे घायल किया सो जीवित है या नहीं इसकी कोई खबर नहीं है ॥३६॥ हाय मेरे अत्यन्त दुर्लभ पुत्रो! और हाय मेरी पतिव्रते बेटी सीते! तुम समुद्रके मध्य इस भयङ्कर दुःखको कैसे प्राप्त हो गई ॥३७॥

तदनन्तर यह वृत्तान्त जानकर नारदने वीणा पृथ्वीपर फेंक दी और स्वयं उद्विग्न हो दोनों हाथ मस्तकसे लगा चुपचाप बैठ गये ॥३८॥ उनका शरीर क्षणमात्रमें निश्चल पड़ गया। जब विचारकर उनकी ओर अनेक बार देखा तब वे बोले कि हे देवि! मुझे यह बात अच्छी नहीं जान पड़ती ॥३९॥ रावण तीन खण्डका स्वामी है, अत्यन्त क्रोधी तथा समस्त विद्याधरोंका स्वामी है सो उसे भामण्डल तथा सुग्रीवने क्यों कुपित कर दिया? ॥४०॥ फिर भी हे कौसल्ये! हे शुभे! अत्यधिक शोक मत करो। यह मैं शीघ्र ही जाकर तुम्हारे लिए समाचार लाता हूँ इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥४१॥ हे देवि! इतना ही कार्य करनेकी मेरी सामर्थ्य है। शेष कार्यके करनेमें तुम्हारा पुत्र ही समर्थ है ॥४२॥ इस प्रकार प्रतिज्ञा कर तथा परमप्यारी सखीके समान वीणाको बगलमें दबाकर नारद आकाशमें उड़ गये ॥४३॥

ततो वातगतिः घोणीं पश्यन् दुर्लङ्घ्यपर्वताम् । लङ्कां प्रतिकृताशङ्को नारदश्चकितं ययौ ॥४४॥
समीपीभूय लङ्कायाश्चिन्तामेवमुपागतः । कथं वार्तापरिज्ञानं करोमि निरुपायकम् ॥४५॥
पद्मलक्ष्मणवार्तायाः प्रश्ने दोषोऽभिलक्ष्यते । पृच्छतो दशवक्त्रं तु स्फोटमार्गो न दृश्यते ॥४६॥
अनेनैवानुपूर्व्येण वार्तां ज्ञास्ये समीहिताम् । इति ध्यात्वा सुविश्रब्धो गतः पद्मसरो यतः ॥४७॥
तस्यां च तत्र वेलायामन्तःपुरसमन्वितः । तारायास्तनयः क्रीडां कुरुते चारुविभ्रमः ॥४८॥
तटस्थं पुरुषं तस्य कृतपूर्वप्रियोदितः । कुशलं रावणस्येति पप्रच्छावस्थितः क्षणम् ॥४९॥
श्रुत्वा तद्वचनं क्रुद्धाः किङ्कराः स्फुरिताधराः । जगदुः कथमेव त्वं दुष्टं तापस भाषसे ॥५०॥
कुतो रावणवर्गीणो मुनिनिष्टप्रदागतः । इत्युक्त्वा परिवार्यासावङ्गदस्यान्तिकीकृतः ॥५१॥
कुशलं रावणस्यायं पृच्छतीत्युदिते भटैः । न कार्यं दशवक्त्रेण ममेति मुनिरभ्यधात् ॥५२॥
तैरुक्तं यद्यदः सत्यं तस्य कस्मात्प्रमोदवान् । कुशलोदन्तसम्प्रश्ने[1] वर्त्तसे परमादरः ॥५३॥
ततोऽङ्गदः प्रहस्योचे व्रजतैनं कुतापसम् । दुरीहं पद्मनाभाय मूढं दर्शयत द्रुतम् ॥५४॥
पृष्ठतः प्रेर्यमाणोऽसौ बाहूत्कर्षणतत्परैः । सुकष्टं नीयमानस्तैरिति चिन्तामुपागतः ॥५५॥
बहवः पद्मनाभाख्याः सन्त्यत्र वसुधातले । न जाने कतमः स स्यादीये यस्याहमन्तिकम् ॥५६॥
अर्हच्छासनवात्सल्या देवता मम तायनम् । काचित् कुर्वीत किं नाम पतितोऽस्म्यतिसंशये ॥५७॥

तदनन्तर वायुके समान तीव्र गतिसे जाते और दुर्लंघ्य पर्वतोंसे युक्त पृथिवीको देखते हुए नारद लंकाकी ओर चले। उस समय उनके मनमें कुछ शङ्का तथा कुछ आश्चर्य—दोनों ही उत्पन्न हो रहे थे ॥४४॥ चलते-चलते नारद जब लंकाके समीप पहुँचे तब ऐसा विचार करने लगे कि मैं उपायके बिना राम-लक्ष्मणका समाचार किस प्रकार ज्ञात करूँ ? ॥४५॥ यदि साक्षात् रावणसे राम-लक्ष्मणकी वार्ता पूछता हूँ तो इसमें दोष दिखायी देता है। क्या करूँ ? कुछ स्पष्ट मार्ग दिखायी नहीं देता ॥४६॥ अथवा मैं इसी क्रमसे इच्छित वार्ताको जानूँगा। इस प्रकार मनमें ध्यान कर निश्चिन्त हो पद्मसरोवरकी ओर गये ॥४७॥ उस समय उस पद्मसरोवरमें उत्तम शोभाको धारण करनेवाला अङ्गद अपने अन्तःपुरके साथ क्रीड़ा कर रहा था ॥४८॥ वहाँ जाकर नारद मधुर वार्ता द्वारा तटपर स्थित किसी पुरुषसे रावणकी कुशलता पूछते हुए क्षणभर खड़े रहे ॥४९॥ उनके वचन सुन, जिनके ओंठ काँप रहे थे ऐसे सेवक कुपित हो बोले कि रे तापस ! तू इस तरह दुष्टतापूर्ण वार्ता क्यों कर रहा है ? ॥५०॥ 'रावणके वर्गका तू दुष्ट तापस यहाँ कहाँसे आ गया ?' इस प्रकार कहकर तथा घेरकर किङ्कर लोग उन्हें अङ्गदके समीप ले गये ॥५१॥ 'यह तापस रावणकी कुशल पूछता है' इस प्रकार जब किङ्करोंने अंगदसे कहा तब नारदने उत्तर दिया कि मुझे रावणसे कार्य नहीं है ॥५२॥ तब किङ्करोंने कहा कि यदि यह सत्य है तो फिर तू हर्षित हो रावणका कुशल पूछनेमें परमआदरसे युक्त क्यों है ? ॥५३॥ तदनन्तर अङ्गदने हँसकर कहा कि जाओ इस खोटी चेष्टाके धारक मूर्ख तापसको शीघ्र ही पद्मनाभके दर्शन कराओ अर्थात् उनके पास ले जाओ ॥५४॥ अङ्गदके इतना कहते ही कितने ही किङ्कर नारदकी भुजा खींचकर आगे ले जाने लगे और कितने ही पीछेसे प्रेरणा देने लगे। इस प्रकार किङ्करों द्वारा कष्टपूर्वक ले जाये गये नारदने मनमें विचार किया कि इस पृथ्वीतलपर पद्मनाभ नामको धारण करनेवाले बहुतसे पुरुष हैं। न जाने यह पद्मनाभ कौन है जिसके कि पास मैं ले जाया जा रहा हूँ ? ॥५५-५६॥ जिनशासनसे स्नेह रखनेवाली कोई देवी मेरी रक्षा करे, मैं अत्यन्त संशयमें पड़ गया हूँ ॥५७॥

---

१. संप्रश्नो म० ।

शिखान्तिकगतप्राणो नारदः पुरुषेश्वरः । विभीषणगृहद्वारं प्रविष्टः सद्गुहाकृतिम् ॥५८॥
पद्माभं दूरतो दृष्ट्वा सहसोद्भ्रान्तमानसः । अन्याय्यमिति स्फीतं प्रस्वेदी मुमुचे स्वरम् ॥५९॥
श्रुत्वा तस्य रवं दृष्ट्वा दृष्टिं लक्ष्मणपूर्वजः । अवद्वारं परिज्ञाय स्वयमाहादरान्वितः ॥६०॥
मुञ्चध्वमाशु मुञ्चध्वमेतमित्युज्झितश्च सः । पद्माभस्यान्तिकं गत्वा प्रहृष्टोऽवस्थितः पुरः ॥६१॥
स्वस्त्याशीर्भिः समानन्द्य पद्मनारायणावृषिः । परित्यक्तपरित्रासः स्थितो दत्ते सुखासने ॥६२॥
पद्माभस्तत्तलोऽवोचत् सोऽवद्वारगतिर्भवान् । क्षुल्लकोऽन्यागतः कस्मादुक्तश्च स जगौ क्रमात् ॥६३॥
व्यसनार्णवमग्नाया जनन्या भवतोऽन्तिकात् । प्राप्तोऽस्मि वेदितुं वार्तां स्वपादकमलान्तिकम् ॥६४॥
मान्यापराजिता देवी भव्या भगवती तव । मातोऽश्रुधौतवदना दुःखमास्ते त्वया विना ॥६५॥
सिंही किशोररूपेण रहितेव समाकुला । विकीर्णकेशसम्भारा कृतकुट्टिमलोटना ॥६६॥
विलापं कुरुते देव तादृशं येन तत्क्षणम् । मन्ये सञ्जायते व्यक्तं दृषदामपि मार्दवम् ॥६७॥
तिष्ठति त्वयि सत्पुत्रे कथं तनयवत्सला । महागुणधरी स्तुत्या कृच्छ्रं सा परमं गता ॥६८॥
अद्यस्तनमिदं मन्ये तस्याः प्राणविवर्जनम् । यदि तां नेक्षसे शुष्कां त्वद्वियोगोरुभानुना ॥६९॥
प्रसादं कुरुतां पश्य व्रजोत्तिष्ठ किमास्यते । यतस्मिन्नतु संसारे बन्धुर्माता प्रधानतः ॥७०॥
यादृशेयमेव कैकय्या अपि दुःखेन वर्त्तते । तया हि कुट्टिमतलं कृतमश्रुणा पल्वलम् ॥७१॥
नाहारे शयने रात्रौ न दिवास्ति मनागपि । तस्याः स्वस्थतया योगो भवतोविप्रयोगतः ॥७२॥

अथानन्तर चोटीतक जिनके प्राण पहुँच गये थे, तथा जिन्हें अत्यधिक कँपकँपी छूट रही थी ऐसे नारद उत्तम गुहाका आकार धारण करनेवाले विभीषणके घरके द्वारमें प्रविष्ट हुए ॥५८॥ वहाँ दूरसे ही रामको देख, जिनका चित्त सहसा हर्षको प्राप्त हो रहा था ऐसे पसीनेसे लथपथ नारदने 'अहो अन्याय हो रहा है' इस प्रकार जोरसे आवाज लगाई ॥५९॥ रामने नारदका शब्द सुन उनकी ओर दृष्टि डालकर पहिचान लिया कि ये तो अवद्वार नामक नारद हैं। उसी समय उन्होंने आदरके साथ सेवकोंसे कहा कि इन्हें छोड़ो, शीघ्र छोड़ो। तदनन्तर सेवकोंने जिन्हें तत्काल छोड़ दिया था ऐसे नारद श्रीरामके पास जाकर हर्षित हो सामने खड़े हो गये ॥६०-६१॥ जिनका भय छूट गया था ऐसे ऋद्धि मङ्गलमय आशीर्वादोंसे राम-लक्ष्मणका अभिनन्दन कर दिये हुए सुखासनपर बैठ गये ॥६२॥

तदनन्तर श्रीरामने कहा कि आप तो अवद्वारगति नामक क्षुल्लक हैं। इस समय कहाँसे आ रहे हैं ? इस प्रकार श्रीरामके कहनेपर नारदने क्रम-क्रमसे कहा कि ॥६३॥ मैं दुःखरूपी सागरमें निमग्न हुए आपकी माताके पाससे उनका समाचार जतानेके लिए आपके चरणकमलोंके समीप आया हूँ ॥६४॥ इस समय आपकी माता माननीय भगवती अपराजितादेवी आपके बिना बड़े कष्टमें हैं, वे रात-दिन आँसुओंसे मुख प्रक्षालित करती रहती हैं ॥६५॥ जिस प्रकार अपने बालकके बिना सिंही व्याकुल रहती है उसी प्रकार आपके बिना वे व्याकुल रहती हैं। उनके बाल बिखरे हुए हैं तथा वे पृथ्वीपर लोटती रहती हैं ॥६६॥ हे देव ! वे ऐसा विलाप करती हैं कि उस समय स्पष्ट ही पत्थर भी कोमल हो जाता है ॥६७॥ तुम सत्पुत्रके रहते हुए भी वह पुत्रवत्सला, महागुणधारिणी स्तुतिके योग्य उत्तम माता कष्ट क्यों उठा रही है ? ॥६८॥ यदि अपने वियोगरूपी सूर्यसे सूखी हुई उस माताके आप शीघ्र ही दर्शन नहीं करते हैं तो मैं समझता हूँ कि आजकलमें ही उसके प्राण छूट जावेंगे ॥६९॥ अतः प्रसन्न होओ, चलो, उठो, माताके दर्शन करो। क्यों बैठे हो ? यथार्थमें इस संसारमें माता ही सर्वश्रेष्ठ बन्धु है ॥७०॥ जो बात आपकी माताकी है ठीक यही बात दुःखसे कैकेयी सुमित्राकी हो रही है। उसने अश्रु बहा-बहाकर महलके फर्शको मानो छोटा-मोटा तालाब ही बना दिया है ॥७१॥ आप दोनोंके

१. सद्गुहाकृतिम् ज०, ख० । २. -मश्रेण म० ।

कुररीव कृताक्रन्दा शावकेन वियोगिनी । उरः शिरश्च सा हन्ति करान्यां विह्वला भृशम् ॥७३॥
हा लक्ष्मीधर सञ्जात जननीमेहि जीवय । द्रुतं वाक्यं प्रयच्छेति विलापं सा निषेवते ॥७४॥
तनयायोगतीव्राग्निज्वालालीढशरीरके । दर्शनामृतधाराभिर्मातरौ नय तं शमम् ॥७५॥
एवमुक्तं निशम्यैतौ सञ्जातौ दुःखितौ भृशम् । विमुक्तालौ समाश्वासं खेचरैरुपाहृतौ ॥७६॥
उवाच वचनं पद्मः कथञ्चिद्धैर्यमागतः । अहो महोपकारोऽयमस्माकं भवता कृतः ॥७७॥
विकर्मणा[1] स्मृतेरेव जननी नः परिच्युता । स्मारिता भवता साऽहं किमतोऽन्यन्महत्प्रियम् ॥७८॥
पुण्यवान् स नरो लोके यो मातुर्विनये[2] स्थितः । कुरुते परिशुश्रूषां किङ्करत्वमुपागतः ॥७९॥
एवं मातृमहास्नेहरसव्याप्तितमानसः । अपूजयद्ववद्वारं लक्ष्मणेन समं नृपः ॥८०॥
अतिसम्भ्रान्तचित्तश्च समाहूय विभीषणम् । प्रभामण्डलसुग्रीवसन्निधाविदमब्रवीत् ॥८१॥
महेन्द्रभवनाकारे भवनेऽस्मिन् विभीषण । तव नो विदितोऽस्माभिर्यातः कालो महानपि ॥८२॥
ग्रैष्मादित्यांशुसन्तानतापितस्यैव सत्सरः[3] । चिराद्यवस्थितं चित्ते मातृदर्शनमद्य मे ॥८३॥
स्मृतमात्रवियोगाग्नितापितान्यतिमात्रकम् । तद्दर्शनाम्बुनाङ्गानि प्रापयाम्यतिनिर्वृतिम् ॥८४॥
अयोध्यानगरीं द्रष्टुं मनो मेऽद्युत्सुकं स्थितम् । सा हि माता द्वितीयेव स्मरयत्यधिकं[4] वरा ॥८५॥
ततो विभीषणोऽवोचत् स्वामिन्नेवं विधीयताम् । यथाज्ञापयसि स्वान्तं देवस्योपैतु शान्तताम् ॥८६॥

वियोगसे उसे न आहारमें, न शयनमें, न दिनमें और न रात्रिमें थोड़ा भी आनन्द प्राप्त होता है ॥७२॥ वह पुत्र-वियोगसे कुररीके समान रुदन करती रहती है तथा अत्यन्त विह्वल हो दोनों हाथोंसे छाती और शिर पीटती रहती है ॥७३॥ 'हाय लक्ष्मण बेटा ! आओ माताको जीवित करो, शीघ्र ही वचन बोलो' इस प्रकार वह निरन्तर विलाप करती रहती है ॥७४॥ पुत्रोंके वियोगरूपी तीव्र अग्निकी ज्वालाओंसे जिनके शरीर व्याप्त हैं ऐसी दोनों माताओंको दर्शनरूपी अमृतकी धाराओंसे शान्ति प्राप्त कराओ ॥७५॥ यह सुनकर राम, लक्ष्मण दोनों भाई अत्यन्त दुःखी हो उठे, उनके नेत्रोंसे आँसू निकलने लगे। तब विद्याधरोंने उन्हें सान्त्वना प्राप्त कराई ॥७६॥

तदनन्तर किसी तरह धैर्यको प्राप्त हुए रामने कहा कि अहो ऋषे ! आपने हमारा बड़ा उपकार किया ॥७७॥ खोटे कर्मके उदयसे माता हम लोगोंकी स्मृतिसे ही छूट गई थी सो आपने उसका हमें स्मरण करा दिया। इससे प्रिय बात और क्या हो सकती है ? ॥७८॥ संसारमें वह मनुष्य बड़ा पुण्यात्मा है जो माताकी विनयमें तत्पर रहता है तथा किङ्करभावको प्राप्त हो उसकी सेवा करता है ॥७९॥ इस प्रकार माताके महास्नेहरूपी रससे जिनका मन आर्द्र हो रहा था ऐसे राजा रामचन्द्रने लक्ष्मणके साथ नारदकी बहुत पूजा की ॥८०॥ और अत्यन्त संभ्रान्त-चित्त हो विभीषणको बुलाकर भामण्डल तथा सुग्रीवके समीप इस प्रकार कहा कि हे विभीषण ! इन्द्रभवनके समान आपके इस भवनमें हम लोगोंका बिना जाने ही बहुत भारी काल व्यतीत हो गया है ॥८१-८२॥ जिस प्रकार ग्रीष्मकालीन सूर्यकी किरणोंके समूहसे सन्तापित मनुष्यके हृदयमें सदा उत्तम सरोवर विद्यमान रहता है उसी प्रकार हमारे हृदयमें यद्यपि चिरकालसे माताके दर्शनकी लालसा विद्यमान थी तथापि आज उस वियोगाग्निके स्मरण मात्रसे मेरे अङ्ग-अङ्ग अत्यन्त सन्तप्त हो उठे हैं सो मैं माताके दर्शन रूपी जलके द्वारा उन्हें अत्यन्त शान्ति प्राप्त कराना चाहता हूँ ॥८३-८४॥ आज अयोध्यानगरीको देखनेके लिए मेरा मन अत्यन्त उत्सुक हो रहा है क्योंकि वह दूसरी माताके समान मुझे अधिक स्मरण दिला रही है ॥८५॥

तदनन्तर विभीषणने कहा कि हे स्वामिन् ! जैसी आज्ञा हो वैसा कीजिये । आपका हृदय

१. विकर्मणः म० । २. विनयस्थितः क० । ३. वत्सरः म०, मत्सरः ग०, क०, ख० । ४. कां वरा क०, ख० ।

प्रेष्यन्ते नगरीं दूता वार्तां ज्ञापयितुं शुभाम् । भवतोऽागमं येन जनन्यौ व्रजतः सुखम् ॥८७॥
त्वया तु षोडशाहानि स्थातुमत्र पुरे विभो । प्रसादो मम कर्तव्यः समाश्रितसुवत्सल[1] ॥८८॥
इत्युक्त्वा मस्तकं न्यस्य समणिं रामपादयोः । तावद् विभीषणस्तस्थौ यावत्स्व प्रतिपन्नवान् ॥८९॥
अथ प्रासादमूर्धस्था निरयद्दक्षिणदिङ्मुखी । दूरतः खेचरान् वीक्ष्य जगादेत्यपराजिता ॥९०॥
पश्य पश्य सुदूरस्यानेतान् कैकयि खेचरान् । आयातोऽभिमुखानाशु वातेरितघनोपमान् ॥९१॥
अद्यैते श्राविकेऽवश्यं कथयिष्यन्ति शोभनाम् । वार्तां सम्प्रेषितां नूनं सानुजेन सुतेन मे ॥९२॥
सर्वथैवं भवत्वेतदिति यावत् कथा तयोः । वर्त्तते तावदायाताः समीपं दूतखेचराः ॥९३॥
उत्सृजन्तश्च पुष्पाणि समुत्पत्यं नभस्तलात् । प्रविश्य भवनं ज्ञाताः प्रहृष्टा भरतं ययुः ॥९४॥
राज्ञा प्रमोदिना तेन सन्मानं समुपाहृताः । आशीर्वादप्रसक्तास्ते योग्यासनसमाश्रिताः ॥९५॥
यथावद्वृत्तमाचख्युरतिसुन्दरचेतसः । पद्माभं बलदेवत्वं प्राप्तं लाङ्गललक्ष्मणम् ॥९६॥
उत्पन्नचक्ररत्नं च लक्ष्मणं हरितामिसम्[2] । तयोर्भरतवास्यस्य[3] स्वामित्वं परमोत्तमम् ॥९७॥
रावणः पञ्चतां प्राप्तो लक्ष्मणेन हते रणे । दीक्षामिन्द्रजितादीनां वन्दिगृहमुपेयुषाम् ॥९८॥
तार्क्ष्यकेसरिसद्विद्याप्राप्तिं साधुप्रसादतः । विभीषणमहाप्रीतिं भोगं लङ्काप्रवेशनम् ॥९९॥
एवं पद्माभलक्ष्मीभूद्युदयस्तुतिसम्मदी । रक्ताम्बूलसुगन्धाद्यैर्दूतानभ्यर्हयन्नृपः ॥१००॥

शान्तिको प्राप्त हो यही हमारी भावना है ॥८६॥ हम माताओंको यह शुभ वार्ता सूचित करने के लिए अयोध्यानगरीके प्रति दूत भेजते हैं जिससे आपका आगमन जान कर माताएँ सुखको प्राप्त होंगी ॥८७॥ हे विभो ! हे आश्रितजनवत्सल ! आप सोलह दिन तक इस नगरमें ठहरनेके लिए मेरे ऊपर प्रसन्नता कीजिये ॥८८॥ इतना कह कर विभीषणने अपना मणि सहित मस्तक रामके चरणोंमें रख दिया और तब तक रखे रहा तब तक कि उन्होंने स्वीकृत नहीं कर लिया ॥८९॥

अथानन्तर महलके शिखर पर खड़ी अपराजिता (कौशल्या) निरन्तर दक्षिण दिशाकी ओर देखती रहती थी । एक दिन उसने दूरसे विद्याधरोंको आते देख समीपमें खड़ी कैकयी (सुमित्रा) से कहा कि हे कैकयि ! देख देख वे बहुत दूरी पर वायुसे प्रेरित मेघोंके समान विद्याधर शीघ्रतासे इसी ओर आ रहे हैं ॥९०-९१॥ हे श्राविके ! जान पड़ता है कि ये छोटे भाई सहित मेरे पुत्रके द्वारा भेजे हुए हैं और आज अवश्य ही शुभ वार्ता कहेंगे ॥९२॥ कैकयीने कहा कि जैसा आप कहती हैं सर्वथा ऐसा ही हो । इस तरह जब तक उन दोनोंमें वार्ता चल रही थी तब तक वे विद्याधर दूत समीपमें आ गये ॥९३॥ पुष्पवर्षा करते हुए उन्होंने आकाशसे उतर कर भवनमें प्रवेश किया और अपना परिचय दे हर्षित होते हुए वे भरतके पास गये ॥९४॥ राजा भरतने हर्षित हो उनका सन्मान किया और आशीर्वाद देते हुए वे योग्य आसनोंपर आरूढ़ हुए ॥९५॥ सुन्दर चित्तको धारण करनेवाले उन विद्याधर दूतोंने सब समाचार यथायोग्य कहे । उन्होंने कहा कि रामको बलदेव पद प्राप्त हुआ है । लक्ष्मणके चक्ररत्न प्रकट हुआ है तथा उन्हें नारायण पद मिला है । राम-लक्ष्मण दोनोंको भरत क्षेत्रका उत्कृष्ट स्वामित्व प्राप्त हुआ है । युद्धमें लक्ष्मणके द्वारा घायल हो रावण मृत्युको प्राप्त हुआ है, बन्दीगृहमें रहनेवाले इन्द्रजित् आदिने जिन दीक्षा धारण कर ली है, देशभूषण और कुलभूषण मुनिका उपसर्ग दूर करनेसे गरुडेन्द्र प्रसन्न हुआ था सो उसके द्वारा राम-लक्ष्मणको सिंहवाहिनी तथा गरुडवाहिनी विद्याएँ प्राप्त हुई हैं । विभीषणके साथ महाप्रेम उत्पन्न हुआ है, उत्तमोत्तम भोग-सम्पदाएँ प्राप्त हुई हैं तथा लंकामें उनका प्रवेश हुआ है ॥९६-९९॥ इस प्रकार राम-लक्ष्मणके अभ्युदयसूचक समाचारोंसे प्रसन्न हुए राजा भरतने उन दूतोंको माला पान तथा सुगन्ध आदिके द्वारा सन्मान किया ॥१००॥

१. सुवत्सलः म० । २. हरेर्भावो हरिता तां नारायणतां इतम्-प्राप्तम् म० । ३. वास्तस्य म० ।

गृहीत्वा तांस्ततो मातॄंः सकाशं भरतो ययौ । शोकिन्यौ बाष्पपूर्णाक्ष्यौ ते समानन्दिते च तैः ॥१०१॥
पद्माभवक्त्रभूम्नाश्रोर्दूतानां च सुसंकथा । मनःप्रह्लादिनी यावद् वर्त्तते भूतिशंसिनी ॥१०२॥
रवेरावृत्य पन्थानं तावत्तत्र सहस्रशः । हेमरत्नादिसम्पूर्णैर्वाहनैरतिगर्वरैः ॥१०३॥
विचित्रजलदाकाराः प्रापुर्विद्याधरा गणाः । जिनावतरणे काले देवा इव महौजसः ॥१०४॥
ततस्ते व्योमसंस्था नानारत्नमयीं पुरि । वृष्टिं मुमुचुरुद्योतपूरिताशां समन्ततः ॥१०५॥
पूरितायामयोध्यायामेकैकस्य कुटुम्बिनः । गृहेषु भूधराकाराः कृता हेमादिराशयः ॥१०६॥
जन्मान्तरकृतश्लाघ्यकर्मा स्वर्गच्युतोऽथवा । लोकोऽयोध्यानिवासी यो येन प्राप्तस्तथा श्रियम् ॥१०७॥
तस्मिन्नेव पुरे दत्ता घोषणाऽनेन वस्तुना । मणिचामीकराद्येन यो न तृप्तिमुपागतः ॥१०८॥
प्रविश्य स नरः स्त्री वा निर्भयं पार्थिवालयम् । द्रव्येण पूरयत्वाऽऽत्मभवनं निजयेच्छया ॥१०९॥
श्रुत्वा तां घोषणां सर्वस्तस्थौ जनपदोऽगदत् । अस्माकं भवने शून्यं स्थानमेव न विद्यते ॥११०॥
विस्मयादित्यसम्पर्कविकचाननपङ्कजाः । शशंसुर्वनिताः पद्मं कृतदारिद्र्यनाशनाः ॥१११॥
आगत्य बहुभिस्तावद्भूरैः खेचरशिल्पिभिः । रूप्यहेमादिभिर्लेपैर्लिप्ता भवनभूमयः ॥११२॥
हैम्यागाराणि दिव्यानि जनितान्यखिलैर्जनैः । महाप्रासादशृङ्गाग्रैर्विन्ध्यकूटावलीसमाः ॥११३॥
सहस्रस्तम्भसम्पन्ना मुक्तादामविराजिताः । रचिताः मण्डपाश्चित्राश्चित्रपुत्तोपशोभिताः ॥११४॥
खचितानि महारत्नैर्द्वाराणि करभास्वरैः । पताकाकलितायुक्तास्तोरणौघाः समुच्छ्रिताः ॥११५॥
अनेकाश्चर्यसम्पूर्णा प्रवृत्तसुमहोत्सवा । साऽयोध्या नगरी जाता लक्ष्मीविजयकारिणी ॥११६॥

तदनन्तर भरत उन विद्याधरोंको लेकर उन माताओंके पास गया और विद्याधरोंने निरन्तर शोक करने तथा अश्रुपूर्ण नेत्रोंको धारण करनेवाली उन माताओंको आनन्दित किया ॥१०१॥ राम-लक्ष्मणकी माताओं और उन विद्याधर दूतोंके बीच मनको प्रसन्न करने तथा उनकी विभूतिको सूचित करनेवाली यह मनोहर कथा जबतक चलती है तबतक सुवर्ण और रत्नादिसे परिपूर्ण हजारों शीघ्रगामी वाहनोंसे सूर्यका मार्ग रोककर रङ्ग-बिरङ्गे मेघोंका आकार धारण करनेवाले हजारों विद्याधरोंके झुण्ड उस तरह आ पहुँचे जिस तरह कि जिनेन्द्रावतारके समय महातेजस्वी देव आ पहुँचते हैं ॥१०२–१०४॥ तदनन्तर आकाशमें स्थित उन विद्याधरोंने सब ओरसे दिशाओंको प्रकाशके द्वारा परिपूर्ण करनेवाली नानारत्नमयी वृष्टि छोड़ी ॥१०५॥ अयोध्याके भर जाने पर हर एक कुटुम्बके घरमें पर्वतोंके समान सुवर्णादिकी राशियाँ लग गईं ॥१०६॥ जान पड़ता था कि अयोध्यानिवासी लोगोंने जन्मान्तरमें पुण्य कर्म किये थे अथवा स्वर्गसे चयकर वहाँ आये थे इसीलिए तो उन्हें उस समय उस प्रकारकी लक्ष्मी प्राप्त हुई थी ॥१०७॥ उसी समय भरतने नगरमें यह घोषणा दिलवाई कि जो रत्न तथा स्वर्णादि वस्तुओंसे सन्तोषको प्राप्त नहीं हुआ हो वह पुरुष अथवा स्त्री निर्भय हो राजमहलमें प्रवेश कर अपनी इच्छानुसार द्रव्यसे अपने घरको भर ले ॥१०८–१०९॥ उस घोषणाको सुनकर अयोध्यावासी लोगोंने आकर कहा कि हमारे घरमें खाली स्थान ही नहीं है ॥११०॥ विस्मयरूपी सूर्यके संपर्कसे जिनके मुख कमल खिल रहे थे तथा जिनकी दरिद्रता नष्ट हो चुकी थी ऐसी स्त्रियाँ रामकी स्तुति कर रही थीं ॥१११॥ उसी समय बहुतसे चतुर विद्याधर कारीगरोंने आकर चाँदी तथा सुवर्णादिके लेपसे भवनकी भूमियोंको लिप्त किया ॥११२॥ अच्छे-अच्छे बहुतसे जिन-मन्दिर तथा विन्ध्याचलके शिखरोंके समान अत्यन्त उन्नत बड़े-बड़े महलोंके समूहकी रचना की ॥११३॥ जो हजारों खम्भोंसे सहित थे, मोतियोंकी मालाओंसे सुशोभित थे, तथा नाना प्रकारके पुतलोंसे युक्त थे ऐसे विविध प्रकारके मण्डप बनाये ॥११४॥ दरवाजे किरणोंसे चमकते हुए बड़े-बड़े रत्नोंसे खचित किये तथा पताकाओंकी पंक्तिसे युक्त तोरणोंके समूह खड़े किये ॥११५॥ इस तरह जो अनेक

१. पूरयित्वा म०, ज० । २. करभास्वरैः म० ।

महेन्द्रशिखराभेषु चैत्यगेहेषु सन्ततः । अभिषेकोत्सवा लग्नाः सङ्गीतध्वनिनादिताः ॥११७॥
अमरैरुपगीतानि समानि सजलैर्घनैः । उद्यानानि सपुष्पाणि[1] जातानि सफलानि च ॥११८॥
बहिराशास्वशेषासु वनैर्नन्दितजन्तुभिः । नन्दनप्रतिमैर्जाता नगरी सुमनोहरा ॥११९॥
नवयोजनविस्तारा द्वादशायामसङ्गता[2] । सुपरिक्षेपिका सु षट्त्रिंशत्परिक्षेपेण पूरसौ ॥१२०॥
दिनैः षोडशभिश्चाकृनभोगोचरशिल्पिभिः । निर्मिता शंसितुं शक्या न सा वर्षशतैरपि ॥१२१॥
वाप्यः काञ्चनसोपाना दीर्घिकाश्च सुरोधसः । पद्मादिभिः समाकीर्णा जाता ग्रीष्मेऽप्यशोषिताः ॥१२२॥
स्नानक्रीडनसिद्धयोग्यास्तटस्थजिनवेश्मकाः । दधुस्ताः परमां शोभां वृक्षपालीसमावृताः ॥१२३॥
कृतां स्वर्गपुरीतुल्यां ज्ञात्वा तां नगरीं हली । स्थेयोभणंसिनीं स्थाने घोषणां समदापयत् ॥१२४॥

वंशस्थवृत्तम्

यदैव वार्तां गगनाङ्गणायनो मुनिस्तयोर्मातृसमुद्भवां जगौ ।
ततः प्रभृत्येव हि सीरिचक्रिणौ सदा सविभ्रौ हृदयेन बभ्रतुः ॥१२५॥
अचिन्तितं कृत्स्नमुपैति चारुतां कृतेन पुण्येन पुराऽसुधारिणाम् ।
ततो जनः पुण्यपरोऽस्तु सन्ततं न येन चिन्तारवितापमश्नुते ॥१२६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे साकेतनगरीवर्णनं नामैकाशीतितमं पर्व ॥८१॥

आश्चर्योंसे परिपूर्ण थी तथा जिसमें निरन्तर महोत्सव होते रहते थे ऐसी वह अयोध्यानगरी लंका आदिको जीतनेवाली हो रही थी ॥११६॥ महेन्द्र गिरिके शिखरोंके समान आभावाले जिन मन्दिरोंमें निरन्तर संगीतध्वनिके साथ अभिषेकोत्सव होते रहते थे ॥११७॥ जो जलभृत मेघोंके समान श्यामवर्ण थे तथा जिनपर भ्रमर गुञ्जार करते रहते थे ऐसे बाग-बगीचे उत्तमोत्तम फूलों और फलोंसे युक्त हो गये थे ॥११८॥ बाहरकी समस्त दिशाओंमें अर्थात् चारों ओर प्रमुदित जन्तुओंसे युक्त नन्दन वनके समान सुन्दर वनोंसे वह नगरी अत्यन्त मनोहर जान पड़ती थी ॥११९॥ वह नगरी नौ योजन चौड़ी बारह योजन लम्बी और अड़तीस योजन परिधिसे सहित थी ॥१२०॥ सोलह दिनोंमें चतुर विद्याधर कारीगरोंने अयोध्याको ऐसा बना दिया कि सौ वर्षोंमें भी उसकी स्तुति नहीं हो सकती थी ॥१२१॥ जिनमें सुवर्णकी सीढ़ियाँ लगी थीं ऐसी वापिकाएँ तथा जिनके सुन्दर-सुन्दर तट थे ऐसी परिखाएँ कमल आदिके फूलोंसे आच्छादित हो गईं और उनमें इतना पानी भर गया कि ग्रीष्म ऋतुमें भी नहीं सूख सकती थी ॥१२२॥ जो स्नान सम्बन्धी क्रीड़ासे उपभोग करने योग्य थीं, जिनके तटोंपर उत्तमोत्तम जिनालय स्थित थे तथा जो हरेभरे वृक्षोंकी कतारोंसे सुशोभित थीं ऐसी परिखाएँ उत्तम शोभा धारण करती थीं ॥१२३॥ अयोध्यापुरीको स्वर्गपुरीके समानकी हुई जानकर हलके धारक श्रीरामने स्थान-स्थान पर आगामी दिन प्रस्थानको सूचित करनेवाली घोषणा दिलवाई ॥१२४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! आकाशरूपी आँगनमें विहार करनेवाले नारद ऋषिने जबसे माताओं सम्बन्धी समाचार सुनाया था तभीसे राम-लक्ष्मण अपनी-अपनी माताओंको हृदयमें धारण कर रहे थे ॥१२५॥ पूर्वभवमें किये हुए पुण्यकर्मके प्रभावसे प्राणियोंके समस्त अचिन्तित कार्य सुन्दरताको प्राप्त होते हैं इसलिए समस्तलोग सदा पुण्य संचय करनेमें तत्पर रहें जिससे कि उन्हें चिन्ता रूपी सूर्यका संताप न भोगना पड़े ॥१२६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें अयोध्याका वर्णन करनेवाला इक्यासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥८१॥

---

१. सुपुष्पाणि म० । २. दशयोजन ज० ।

द्व्यशीतितमं पर्व

अथोदयमिते भानौ पद्मनारायणौ तदा[1]। यातं पुष्पकमारुह्य साकेतां प्रस्थितौ शुभौ ॥१॥
परिवारसमायुक्ता विविधैर्यानवाहनैः । विद्याधरेश्वरा गन्तुं [1]सक्तास्तत्सेवनोद्यताः ॥२॥
छत्रध्वजनिरुद्धार्ककिरणं वायुगोचरम् । समाश्रिता[2] महीं दूरं पश्यन्तो गिरिभूषिताम् ॥३॥
विलसद्विविधप्राणिसङ्घातं [3]क्षारसागरम् । व्यतीत्य खेचरा लीलां वहन्तो यान्ति हर्षिणः ॥४॥
पद्मस्याङ्कगता सीता सती गुणसमुत्कटा । लक्ष्मीरिव महाशोभा पुरी स्यस्तेक्षणा जगौ ॥५॥
जम्बूद्वीपतलस्यैदं मध्ये नाथ किमीक्ष्यते । अत्यन्तमुज्ज्वलं पद्मस्ततोऽभाषत सुन्दरीम्[4] ॥६॥
देवि यत्र पुरा देवैर्मुनिसुव्रततीर्थकृत् । देवदेवप्रभुर्बाल्ये हर्षनीतोऽभिषेचनम् ॥७॥
सोऽयं रत्नमयैस्तुङ्गैः शिखरैश्चित्तहारिभिः । विराजते नगाधीशो मन्दरो नाम विश्रुतः ॥८॥
अहो वेगादतिक्रान्तं विमानं पदवीं पराम् । एहि भूयो बलं याम इति गत्वा पुनर्जगौ ॥९॥
एतत्तु दण्डकारण्यमिभाभोगमहातमः । शून्यानाथेन यत्रस्था हृता त्वं स्वोपघातिना ॥१०॥
चारणश्रमणौ यत्र त्वया सार्द्धं मया तदा । पारणं लम्भितौ सैषा सुनदी दृश्यते नदी ॥११॥
सोऽयं सुलोचने भूभृद्वंशोऽभिख्योऽभिलक्ष्यते । दृष्टौ यत्र मुनी युक्तौ देशभूतकुलभूषणौ ॥१२॥
कृतं मया तयोरार्ते भवत्या लक्ष्मणेन च । प्रातिहार्यं तयो र्यातं केवलं शिवसौख्यदम् ॥१३॥
वालिखिल्यपुरं भद्रे तदेतद् यत्र लक्ष्मणः । प्राप कल्याणमालाख्यां कन्यां काञ्चित्स्वयं समाम् ॥१४॥

अथानन्तर सूर्योदय होने पर शुभ चेष्टाओंके धारक राम और लक्ष्मण पुष्पक विमानमें आरूढ हो अयोध्याकी ओर चले ॥१॥ उनकी सेवामें तत्पर रहनेवाले अनेक विद्याधरोंके अधिपति अपने-अपने परिवारके साथ नाना प्रकारके यानों और वाहनों पर सवार हो साथ चले ॥२॥ छत्रों और ध्वजाओंसे जहाँ सूर्यकी किरणें रुक गई थीं ऐसे आकाश में स्थित सब लोग पर्वतोंसे भूषित पृथिवीको दूरसे देख रहे थे ॥३॥ जिसमें नाना प्रकारके प्राणियोंके समूह क्रीड़ा कर रहे थे ऐसे लवण-समुद्रको लाँघ कर हर्षसे भरे वे विद्याधर लीला धारण करते हुए जा रहे थे ॥४॥ रामके समीप बैठी गुणगणको धारण करनेवाली सती सीता लक्ष्मीके समान महाशोभाको धारण कर रही थी। वह सामनेकी ओर दृष्टि डालती हुई रामसे बोली कि हे नाथ ! जम्बूद्वीपके मध्यमें यह अत्यन्त उज्ज्वल वस्तु क्या दिख रही है ? तब रामने सुन्दरी सीतासे कहा कि हे देवि ! जहाँ पहले बाल्यावस्थामें देवाधिदेव भगवान् मुनिसुव्रतनाथका हर्षसे भरे देवोंने अभिषेक किया था ॥५-७॥ यह वही रत्नमय ऊँचे मनोहारी शिखरोंसे युक्त मन्दर नामका प्रसिद्ध पर्वतराज सुशोभित हो रहा है ॥८॥ 'अहो ! वेगके कारण विमान दूसरे मार्गमें आ गया है, आओ अब पुनः सेनाके पास चलें' यह कह तथा सेना के पास जाकर राम बोले कि हे प्रिये ! यह वही दण्डक वन है जहाँ काले-काले हाथियोंकी घटासे महाअन्धकार फैल रहा है तथा जहाँ पर बैठी हुई तुम्हें अपना घात करनेवाला रावण हर कर ले गया था ॥९-१०॥ हे सुन्दरि ! यह वही नदी दिखाई देती है जहाँ मेरे साथ तुमने दो चारण ऋद्धिधारी मुनियोंके लिए पारणा कराई थी ॥११॥ हे सुलोचने ! यह वही वंशस्थविल नामका पर्वत दिखाई देता है जहाँ एक साथ विराजमान देशभूषण और कुलभूषण मुनियोंके दर्शन किये थे ॥१२॥ जिन मुनियोंकी मैंने, तुमने तथा लक्ष्मणने उपसर्ग दूर कर सेवा की थी और जिन्हें मोक्ष सुखका देनेवाला केवलज्ञान प्राप्त हुआ था ॥१३॥ हे भद्रे ! यह वालिखिल्य

१. शक्ता म० । २. समाश्रितां म० । ३. क्षीरसागरम् । ४. सुन्दरी म० । ५. दृष्टौ म० ।

दशाङ्गभोगनगरमदस्तद् दृश्यते प्रिये । रूपवत्याः पिता वज्रश्रवा यच्छ्रावकः [1]परः ॥१५॥
पुनरालोक्य धरणीं पुनः पप्रच्छ जानकी । कान्तेयं नगरी कस्य खेचरेशस्य दृश्यते ॥१६॥
विमानसदृशैर्गेहैरियमात्यन्तसुत्कटा । न जातुचिन्मया दृष्टा त्रिविष्टपविडम्बिनी ॥१७॥
जानकीवचनं श्रुत्वा दिशश्चालोक्य मन्थरम् । क्षणं विभ्रान्तचेतस्को ज्ञात्वा पश्चः स्मितो जगौ ॥
पूरयोध्या प्रिये सेयं नूनं खेचरशिल्पिभिः । अन्येव रचिता भाति जितलङ्का परद्युतिः ॥१९॥
ततोऽद्युग्रं विहायःस्थं विमानं सहसा परम् । द्वितीयादित्यसङ्काशं वीक्ष्य क्षुब्धा नगर्यसौ ॥२०॥
आरुह्य च महानागं भरतः प्राप्तसम्भ्रमः । त्रिभूत्या परया युक्तः शक्रवन्निरगात् पुरः ॥२१॥
तावदैक्षत सर्वाशाः स्थगिता गगनायनैः । नानायानविमानस्थैर्विचित्रर्द्धिसमन्वितैः ॥२२॥
दृष्ट्वा भरतमायान्तं भूमिस्थापितपुष्पकौ । पद्मलक्ष्मणावरौ यातौ समीपत्वं सुसम्मदौ ॥२३॥
समीपौ तावितौ दृष्ट्वा गजादुत्तीर्य कैकयः । पूजामर्घशतैश्चक्रे तयोः स्नेहादिपूरितैः ॥२४॥
विमानशिखरात्तौ तं निष्क्रम्य प्रीतिनिर्भरम् । केयूरभूषितभुजावग्रजावालिलिङ्गतुः ॥२५॥
दृष्ट्वा पृष्टौ च कुशलं कृतशंसनसत्कथौ । भरतेन समेतौ तावारूढौ पुष्पकं पुनः ॥२६॥
प्रविशन्ति ततः सर्वे क्रमेण कृतसज्जिकाम् । अयोध्यानगरीं चित्रपताकाशबलीकृताम् ॥२७॥
सङ्कटसङ्कतैर्यानैर्विमानैर्यायिभी[3] रथैः । अनेकपथटाभिश्च मार्गोऽभूद् व्यपकाशकः[4] ॥२८॥

का नगर है जहाँ लक्ष्मणने तुम्हारे समान कल्याणमाला नामकी अनुपम कन्या प्राप्त की थी ॥१४॥ हे प्रिये ! यह दशाङ्गभोग नामका नगर दिखाई देता है जहाँ रूपवतीका पिता वज्रकर्ण नामका उत्कृष्ट श्रावक रहता था ॥१५॥ तदनन्तर पृथिवीकी ओर देख कर सीताने पुनः पूछा कि हे कान्त ! यह नगरी किस विद्याधर राजाकी दिखाई देती है ॥१६॥ यह नगरी विमानोंके समान उत्तम भवनोंसे अत्यन्त व्याप्त है तथा स्वर्गकी विडम्बना करनेवाली ऐसी नगरी मैंने कभी नहीं देखी ॥१७॥

सीताके वचन सुन तथा धीरे-धीरे दिशाओंकी ओर देख रामका चित्त स्वयं क्षणभरके लिए विभ्रममें पड़ गया। परन्तु बादमें सब समाचार जान कर मन्द हास्य करते हुए बोले कि हे प्रिये ! यह अयोध्या नगरी है। जान पड़ता है कि विद्याधर कारीगरोंने इसकी ऐसी रचना की है कि यह अन्य नगरीके समान जान पड़ने लगी है, इसने लंकाको जीत लिया है तथा उत्कृष्ट कान्तिसे युक्त है ॥१८-१९॥ तदनन्तर द्वितीय सूर्यके समान देदीप्यमान तथा आकाशके मध्यमें स्थित विमानको सहसा देख नगरी क्षोभको प्राप्त हो गई ॥२०॥ क्षोभको प्राप्त हुआ भरत महागजपर सवार हो महाविभूतियुक्त होता हुआ इन्द्रके समान नगरीसे बाहर निकला ॥२१॥ उसी समय उसने नाना यानों और विमानोंमें स्थित तथा विचित्र ऋद्धियोंसे युक्त विद्याधरोंसे समस्त दिशाओंको आच्छादित देखा ॥२२॥ भरतको आता हुआ देख जिन्होंने पुष्पकविमानको पृथिवी पर खड़ा कर दिया था ऐसे राम और लक्ष्मण हर्षित हो समीपमें आये ॥२३॥ तदनन्तर उन दोनोंको समीपमें आया देख भरतने हाथीसे उतर कर स्नेहादिसे पूरित सैकड़ों अर्घोंसे उनकी पूजा की ॥२४॥ तत्पश्चात् विमानके शिखरसे निकल कर बाजूबंदोंसे सुशोभित भुजाओंको धारण करनेवाले दोनों अग्रजोंने बड़े प्रेमसे भरतका आलिङ्गन किया ॥२५॥ एक दूसरेको देख कर तथा कुशल समाचार पूछ कर राम-लक्ष्मण पुनः भरतके साथ पुष्पकविमान पर आरूढ हुए ॥२६॥

तदनन्तर जिसकी सजावट की गई थी और जो नाना प्रकारकी पताकाओंसे चित्रित थी ऐसी अयोध्या नगरीमें क्रमसे सबने प्रवेश किया ॥२७॥ धक्का धूमीके साथ चलनेवाले यानों,

---

१. पुरः म० । २. भरतः । ३. अश्वैः । ४. विगतावकाशः ।

प्रलम्बजलभृत्तुल्यास्तूर्यघोषाः समुत्थयुः । शङ्खकोटिरवोन्मिश्रा भम्भाभेरीमहारवाः ॥२९॥
पटहानां पटीयांसो मन्द्राणां मन्द्रता ययुः । लम्पानां कम्पशम्पानां[2] धुन्धूनां मधुरा भृशम् ॥३०॥
झल्लाम्लातकहक्कानां हैकहुङ्कारसङ्गिनाम् । गुञ्जारटितनाम्नां च वादित्राणां महास्वनाः ॥३१॥
सुकलाः काहला मादा घना हलहलारवाः । [3]अट्टहासास्तुरङ्गेभसिंहव्याघ्रादिनिस्वनाः ॥३२॥
वंशस्वनानुगामीनि गीतानि विविधानि च । विनर्दितानि भाण्डानां बन्दिनां पठितानि च ॥३३॥
सङ्कीर्तितानि रम्याणि रथानां सूर्यतेजसाम् । वसुधाक्षोभघोषाश्च प्रतिशब्दाश्च कोटिशः ॥३४॥
एवं विद्याधराधीशैर्विभ्राजिः परमां श्रियम् । वृतौ विविशतः कान्तौ पुरं पद्माभचक्रिणौ ॥३५॥
आसन् विद्याधरा देवा इन्द्रौ पद्माभचक्रिणौ । अयोध्यानगरी स्वर्गो वर्णना तत्र कीदृशी ॥३६॥
पद्माननविधानार्थं वीक्ष्य लोकमहोदधिः । कलध्वनिर्ययौ वृद्धिमत्यावर्त्तनवेलया ॥३७॥
विज्ञायमानपुरुषैः पूज्यमानौ पदे पदे । जय वर्द्धस्व जीवेति नन्देति च कृताशिषौ ॥३८॥
अत्युत्तुङ्गविमानाभभवनानां शिरः स्थिताः । सुन्दर्यस्तौ विलोकन्त्यो विकचाम्भोजलोचनाः ॥३९॥
सम्पूर्णचन्द्रसङ्काशं पद्मं पद्मनिभेक्षणम् । प्रावृषेण्यघनच्छायं लक्ष्मणं च सुलक्षणम् ॥४०॥
नार्यो निरीक्षितुं सक्ता[4] मुक्ताशेषापरक्रियाः । रामादीन् वदनैश्चक्रुर्व्योमाम्भोजवनोपमान् ॥४१॥
राजन्नन्योन्यसम्पर्के निर्भरे सति योषिताम् । सुट्टाऽपूर्वा तदा वृष्टिश्छिन्नहारैः पयोधरैः ॥४२॥

विमानों, घोड़ों, रथों और हाथियोंकी घटाओंसे अयोध्याके मार्ग अवकाशरहित हो गये ॥२८॥ लुप्त होते हुए मेघोंकी गर्जनाके समान तुरहीके शब्द तथा करोड़ों शङ्खोंके शब्दोंसे मिश्रित भंभा और भेरियोंके शब्द होने लगे ॥२९॥ बड़े-बड़े नगाड़ोंके जोरदार शब्द तथा बिजलीके समान चञ्चल लंप और धुन्धुओंके मधुर शब्द गम्भीरताको प्राप्त हो रहे थे ॥३०॥ हैक नामक वादियोंको हुँकारसे सहित झालर, अम्लातक, हक्का, और गुञ्जा रटित नामक वादित्रोंके महाशब्द, काहलोंके अस्फुट एवं मधुर शब्द, निबिडताको प्राप्त हुए हलहलाके शब्द, अट्टहासके शब्द, घोड़े, हाथी, सिंह और व्याघ्रादिके शब्द, बाँसुरीके स्वरसे मिले हुए नाना प्रकारके संगीतके शब्द, भाँड़ोंके विशाल शब्द, बंदीजनोंके विरद पाठ, सूर्यके समान तेजस्वी रथोंकी मनोहर चीत्कार, पृथिवीके कम्पनसे उत्पन्न हुए शब्द और इन सबकी करोड़ों प्रकारकी प्रतिध्वनियोंके शब्द सब एक साथ मिलकर विशाल शब्द कर रहे थे ॥३१-३४॥ इस प्रकार परम शोभाको धारण करनेवाले विद्याधर राजाओंसे घिरे हुए सुन्दर शरीरके धारक राम और लक्ष्मणने नगरीमें प्रवेश किया ॥३५॥ उस समय विद्याधर देव थे, राम-लक्ष्मण इन्द्र थे और अयोध्यानगरी स्वर्ग थी तब उनका वर्णन कैसा किया जाय ? ॥३६॥ श्रीरामके मुख रूपी चन्द्रमाको देखकर मधुरध्वनि करनेवाला लोक रूपी सागर, बढ़ती हुई वेलाके साथ वृद्धिको प्राप्त हो रहा था ॥३७॥ पहिष्यानमें आये पुरुष जिन्हें पद-पद पर पूज रहे थे, तथा जयवन्त रहो, बढ़ते रहो, जीते रहो, समृद्धिमान् होओ, इत्यादि शब्दोंके द्वारा जिन्हें स्थान-स्थान पर आशीर्वाद दिया जा रहा था ऐसे दोनों भाई नगरमें प्रवेश कर रहे थे ॥३८॥ अत्यन्त ऊँचे विमान तुल्य भवनोंके शिखरों पर स्थित स्त्रियोंके नेत्रकमल राम लक्ष्मणको देखते ही खिल उठते थे ॥३९॥ पूर्ण चन्द्रमाके समान कमललोचन राम और वर्षाकालीन मेघके समान श्याम, सुन्दर लक्षणोंके धारक लक्ष्मणको देखनेके लिए तत्पर स्त्रियाँ अन्य सब काम छोड़ अपने मुखोंसे आकाशके कमल वनके समान कर रही थीं ॥४०-४१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि राजन् ! उस समय परस्परमें अत्यधिक सम्पर्क होने पर जिनके हार टूट गये थे ऐसी स्त्रियोंके पयोधरों अर्थात् स्तनरूपी पयोधरों अर्थात् मेघोंने

१. प्रलय- म० । २. कम्पे शपा इव तेषाम् । ३. महहासा -म० । ४. चक्र -म० । ५. शक्ता म०, क० ।

च्युतं मि[1]थिलेशं भूमौ काञ्चीनूपुरकुण्डलम् । तासां तद्गतचित्तानां श्रवणश्चैवमुद्गताः ॥४३॥
यस्यैषाङ्गलता भाति प्रिया गुणधरा सती । देवी विदेहजा सीऽयं पद्मनाभो महेक्षणः ॥४४॥
निहतः प्रधने येन सुग्रीवाकृतिमन्दरः । वृत्रदैत्यपतेर्भ्राता स साहसगतिः खलः ॥४५॥
अयं लक्ष्मीधरो येन शक्रतुल्यपराक्रमः । हतो लङ्केश्वरो युद्धे स्वेन चक्रेण वक्षसि ॥४६॥
सुग्रीवोऽयं महाशक्तस्तनयोऽस्यायमङ्गदः । अयं भामण्डलाभिख्यः सीतादेव्याः सहोदरः ॥४७॥
देवेन जातमात्रः सन्नाहृतोऽयं यो[2]पहृतस्तदा । मुक्तोऽनुकम्पया भूयो दृष्टो विद्याधरेन्दुना ॥४८॥
[2]उन्मादेन (?) वने तस्मिन् गृहीत्वा च प्रमोदिना । पुत्रस्तवायमित्युक्त्वा पुण्यवत्यै समर्पितः ॥४९॥
एषोऽसौ दिव्यरत्नाभकुण्डलोद्योतिताननः । विद्याधरमहाधीशो भाति सार्थकशब्दितः ॥५०॥
चन्द्रोदरसुतः सोऽयं सखि श्रीमान् विराधितः । श्रीशैलः पवनस्यायं पुत्रो वानरकेतनः ॥५१॥
एवं विस्मयसुक्ताभिस्तोषिणीभिः समुत्कटाः । लक्षिताः पौरनारीभिः प्राप्तास्ते पार्थिवालयम् ॥५२॥
तावत्प्रासादमूर्धस्थे पुत्रस्नेहपरायणे । सम्प्रस्रुतस्तने वीरमातरावववतेरतुः ॥५३॥
महागुणधरा देवी साधुशीलाऽपराजिता । कैकयी केकया चापि सुप्रजाश्च सुचेष्टिताः ॥५४॥
भवान्तरसमायोगमिव प्राप्तास्तथोरमा । मातरोऽयुः समीपस्थं मङ्गलोद्यतचेतसः ॥५५॥
ततो मातृजनं वीक्ष्य मुदितौ कमलेक्षणौ । पुष्पयानात् समुत्तीर्यं लोकपालोपमद्युती ॥५६॥

अपूर्व वृष्टि की थी ॥४२॥ जिनके चित्त राम-लक्ष्मणमें लग रहे थे ऐसी स्त्रियोंकी मेखला, नूपुर और कुण्डल टूट-टूटकर पृथिवी पर पड़ रहे थे तथा उनमें परस्पर इस प्रकार वार्तालाप हो रहा था ॥४३॥ कोई कह रही थी कि जिनकी गोदमें गुणोंको धारण करनेवाली यह राजा जनककी पुत्री पतिव्रता सीता प्रिया विद्यमान है यही विशाल नेत्रोंको धारण करनेवाले राम हैं ॥४४॥ कोई कह रही थी कि हाँ, ये वे ही राम हैं जिन्होंने सुग्रीवकी आकृतिके चोर दैत्यराज वृत्रके नाती दुष्ट साहसगतिको युद्धमें मारा था ॥४५॥ कोई कह रही थी कि ये इन्द्र तुल्य पराक्रमके धारी लक्ष्मण हैं जिन्होंने युद्धमें अपने चक्रसे वक्षःस्थल पर प्रहार कर रावणको मारा था ॥४६॥ कोई कह रही थी कि यह महाशक्तिशाली सुग्रीव है, यह उसका बेटा अंगद है, यह सीतादेवीका सगा भाई भामण्डल है जिसे उत्पन्न होते ही देवने पहले तो हर लिया था फिर दयासे छोड़ दिया था और चन्द्रगति विद्याधरने देखा था ॥४७-४८॥ यही नहीं किन्तु हर्षसे युक्त हो उसे वनमें झेला था तथा 'यह तुम्हारा पुत्र है' इस प्रकार कहकर रानी पुण्यवतीके लिए सौंपा था। अपने दिव्य रत्नमयी कुण्डलोंसे जिसका मुख देदीप्यमान हो रहा है तथा जो सार्थक नामका धारी है ऐसा यह विद्याधरोंका राजा भामण्डल अत्यधिक शोभित हो रहा है ॥४९-५०॥ हे सखि ! यह चन्द्रोदरका लड़का श्रीमान् विराधित है और यह वानरचिह्नित पताकाको धारण करनेवाला पवनञ्जयका पुत्र श्रीशैल (हनूमान्) है ॥५१॥ इस प्रकार आश्चर्य तथा संतोषको धारण करनेवाली नगरवासिनी स्त्रियाँ जिन्हें देख रही थी ऐसे उत्कट शोभाके धारक सब लोग राजभवनमें पहुँचे ॥५२॥ जब तक ये सब राजभवनमें पहुँचे तब तक जो भवनके शिखर पर स्थित थीं, पुत्रोंके प्रति स्नेह प्रकट करनेमें तैयार थीं तथा जिनके स्तनोंसे दूध झर रहा था ऐसी दोनों वीर माताएँ ऊपरसे उतर कर नीचे आ गईं ॥५३॥ महागुणोंको धारण करनेवाली तथा उत्तम शीलसे युक्त अपराजिता (कौशल्या) कैकयी (सुमित्रा), केकया (भरतकी माता) और सुप्रजा (सुप्रभा) उत्तम चेष्टाको धारण करनेवाली तथा मङ्गलाचारमें निपुण ये चारों माताएँ साथ-साथ राम-लक्ष्मणके समीप आईं मानो भवान्तरमें ही संयोगको प्राप्त हुई हों ॥५४-५५॥

तदनन्तर जो माताओंको देखकर प्रसन्न थे, जिनके नेत्र कमलके समान थे और जो लोकपालोंके तुल्य कान्तिको धारण करनेवाले थे ऐसे राम-लक्ष्मण दोनों भाई पुष्पक विमानसे उतर

१. न पतितं क०, ख०, प० । २. 'उन्मादेन' इति पाठेन भाव्यम् ।

कृताञ्जलिपुटौ नम्रौ सनृपौ साङ्गनाजनौ । मातॄणां नेमतुः पादाबुपगम्य क्रमेण तौ ॥५७॥
आशीर्वादसहस्राणि वर्षन्त्यः शुभदानि ताः । परिष्वजिरे पुत्रौ स्वसंवेद्यमिताः सुखम् ॥५८॥
पुनः पुनः परिष्वज्य तृप्तिसम्बन्धवर्जिताः । चुचुम्बुर्मस्तके कम्पिकरामर्शनतत्पराः ॥५९॥
आनन्दवाष्पपूर्णाक्षाः कृतासनपरिग्रहाः । सुखदुःखं समावेद्य धृतिं ताः परमां ययुः ॥६०॥
मनोरथसहस्राणि गुणितान्यसकृत्पुरा । तासां श्रेणिक पुण्येन फलितान्यीप्सिताधिकम् ॥६१॥
सर्वाः सुरजनन्यस्ताः साधुभक्ताः सुचेतसः । स्नुषाशतसमाकीर्णा लक्ष्मीविभवसङ्गताः ॥६२॥
वीरसूनुप्रभावेण निजपुण्योदयेन च । महिमानं परिप्राप्ता गौरवं च सुपूजितम् ॥६३॥
क्षारोदसागरान्तायां प्रतिघातविवर्जिताः । क्षितावेकातपत्रायां ददुराज्ञां यथेप्सितम् ॥६४॥

आर्याच्छन्दः

इष्टसमागममेतं शृणोति यः पठति चातिशुद्धमतिः ।
लभते सम्पदमिष्टामायुः पूर्णं सुपुण्यं च ॥६५॥
एकोऽपि कृतो नियमः प्राप्तोऽभ्युदयं जनस्य सद्बुद्धेः ।
कुरुते प्रकाशमुच्चै रविरिव तस्मादिमं कुरुत ॥६६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रामलक्ष्मणसमागमाभिधानं नाम द्व्यशीतितमं पर्व ॥८२॥

कर नीचे आये और दोनोंने हाथ जोड़कर नम्रीभूत हो साथमें आये हुए समस्त राजाओं और अपनी स्त्रियोंके साथ क्रमसे समीप जाकर माताओंके चरणोंमें नमस्कार किया ॥५६-५७॥ कल्याणकारी हजारों आशीर्वादोंको देती हुई उन माताओंने दोनों पुत्रोंका आलिङ्गन किया। उस समय वे सब स्वसंवेद्य सुखको प्राप्त हो रही थीं अर्थात् जो सुख उन्हें प्राप्त हुआ था उसका अनुभव उन्हींको हो रहा था—अन्य लोग उसका वर्णन नहीं कर सकते थे ॥५८॥ वे बार-बार आलिङ्गन करती थीं फिर भी तृप्त नहीं होती थीं, मस्तक पर चुम्बन करती थीं, काँपते हुए हाथसे उनका स्पर्श करती थीं, और उनके नेत्र हर्षके आँसुओंसे पूर्ण हो रहे थे। तदनन्तर आसन पर आरूढ हो परस्परका सुख-दुःख पूछ कर वे सब परम धैर्यको प्राप्त हुईं ॥५९-६०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इनके जो हजारों मनोरथ पहले अनेकों बार गुणित होते रहते थे वे अब पुण्यके प्रभावसे इच्छासे भी अधिक फलीभूत हुए ॥६१॥ जो साधुओंकी भक्त थीं, उत्तम चित्तको धारण करनेवाली थीं, सैकड़ों पुत्र-वधुओंसे सहित थीं, तथा लक्ष्मीके वैभवको प्राप्त थीं ऐसी उन वीर माताओंने वीर पुत्रोंके प्रभाव और अपने पुण्योदयसे लोकोत्तर महिमा तथा गौरवको प्राप्त किया ॥६२-६३॥ वे एक छत्रसे सुशोभित लवणसमुद्रान्त पृथिवीमें बिना किसी बाधाके इच्छानुसार आज्ञा प्रदान करती थीं ॥६४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अत्यन्त विशुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाला जो मनुष्य इस इष्ट समागमके प्रकरणको सुनता है अथवा पढ़ता है वह इष्ट सम्पत्ति पूर्ण आयु तथा उत्तम पुण्यको प्राप्त होता है ॥६५॥ सद्बुद्धि मनुष्यका किया हुआ एक नियम भी अभ्युदयको प्राप्त हो सूर्यके समान उत्तम प्रकाश करता है। हे भव्य जनो ! इस नियमको अवश्य करो ॥६६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें राम-लक्ष्मणके समागमका वर्णन करनेवाला ब्यासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥८२॥

त्र्यशीतितमं पर्व

पुनः प्रणम्य शिरसा पृच्छति श्रेणिको यतिम् । गृहे श्रीविस्तरं[1] तेषां समुद्भूतातिकौतुकः ॥१॥
उवाच गौतमः पद्मा लक्ष्मणा भरता नृप । शत्रुघ्नश्च न शक्यन्ते भोगाः कार्त्स्न्येन शंसितुम् ॥२॥
तथाऽपि शृणु ते राजन् वेदयामि समासतः । रामचक्रिप्रभावेण विभवस्य समुद्भवम् ॥३॥
नन्द्यावर्ताभ्यसंस्थानं बहुद्वारोच्चगोपुरम् । शक्रालयसमं कान्तं भवनं भवनं श्रियः ॥४॥
चतुःशाल इति ख्यातः प्राकारोऽस्य विराजते । महाद्रिशिखरोत्तुङ्गो वैजयन्त्यभिधा सभा ॥५॥
शाला चन्द्रमणी रम्या सुवीथीति प्रकीर्तिता । प्रासादकूटमत्यन्तमुत्तुङ्गमवलोकनम् ॥६॥
प्रेक्षागृहं च विन्ध्याभं वर्द्धमानकसंज्ञितम् । परिकर्मोपयुक्तानि कर्मान्तभवनानि च ॥७॥
कुक्कुटाण्डप्रभं गर्भगृहकूटं महाद्भुतम् । एकस्तम्भधृतं कल्पतरुतुल्यं मनोहरम् ॥८॥
मण्डलेन तदावृत्य देवीनां गृहपालिका । तरङ्गाली परिख्याता स्थिता रत्नसमुज्ज्वला ॥९॥
महदम्भोजकाण्डं च विद्युद्दलसमद्युति[2] । सुश्लिष्टा सुभगस्पर्शा शय्या सिंहशिरःस्थिता ॥१०॥
उद्यद्भास्करसङ्काशमुत्तमं हरिविष्टरम् । चामराणि शशाङ्कांशुसञ्चयप्रतिमानि च ॥११॥
इष्टच्छायकरं स्फीतं छत्रं तारापतिप्रभम् । सुखेन[3] गमने कान्ते पादुके विषमोचिके ॥१२॥
अनर्घाणि च वस्त्राणि दिव्यान्याभरणानि च । दुर्भेद्यं कवचं कान्तं मणिकुण्डलयुग्मकम् ॥१३॥
अमोघाश्च गदाखड्गकनकारिशिलीमुखाः । अन्यानि च महास्त्राणि भासुराणि रणाजिरे ॥१४॥

अथानन्तर जिसे अत्यन्त कौतुक उत्पन्न हुआ था ऐसे राजा श्रेणिकने शिरसे प्रणाम कर गौतम स्वामीसे पूछा कि हे भगवन्! उन राम-लक्ष्मणके घरमें लक्ष्मीका विस्तार कैसा था? ॥१॥ तब गौतम स्वामीने कहा कि हे राजन्! यद्यपि राम-लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्नके भोगोंका वर्णन सम्पूर्ण रूपसे नहीं किया जा सकता तथापि हे राजन्! बलभद्र और नारायणके प्रभावसे उनके जो वैभव प्रकट हुआ था वह संक्षेपसे कहता हूँ सो सुन ॥२-३॥ उनके अनेक द्वारों तथा उच्च गोपुरोंसे युक्त, इन्द्रभवनके समान सुन्दर लक्ष्मीका निवासभूत नन्द्यावर्त नामका भवन था ॥४॥ किसी महागिरिके शिखरोंके समान ऊँचा चतुःशाल नामका कोट था, वैजयन्ती नामकी सभा थी। चन्द्रकान्त मणियोंसे निर्मित सुवीथी नामकी मनोहर शाला थी, अत्यन्त ऊँचा तथा सब दिशाओंका अवलोकन करानेवाला प्रासादकूट था, विन्ध्यगिरिके समान ऊँचा वर्द्धमानक नामक प्रेक्षागृह था, अनेक प्रकारके उपकरणोंसे युक्त कार्यालय थे, उनका गर्भगृह कुक्कुटीके अण्डेके समान महान् आश्चर्यकारी था, एक खम्भे पर खड़ा था, और कल्पवृक्षके समान मनोहर था, ॥५-८॥ उस गर्भगृहको चारों ओरसे घेर कर तरङ्गाली नामसे प्रसिद्ध तथा रत्नोंसे देदीप्यमान रानियोंके महलोंकी पंक्ति थी ॥९॥ बिजलीके खण्डोंके समान कान्तिवाला अम्भोजकाण्ड नामका शय्यागृह था, सुन्दर, सुकोमल स्पर्शवाली तथा सिंहके शिरके समान पायों पर स्थित शय्या थी, उगते हुए सूर्यके समान उत्तम सिंहासन था, चन्द्रमाकी किरणोंके समूहके समान चमर थे ॥१०-११॥ इच्छानुकूल छायाको करनेवाला चन्द्रमाके समान कान्तिसे युक्त बड़ा भारी छत्र था, सुखसे गमन करानेवाली विषमोचिका नामकी दो खड़ाऊँ थीं ॥१२॥ अनर्घ्य वस्त्र थे, दिव्य आभूषण थे, दुर्भेद्य कवच था, देदीप्यमान मणिमय कुण्डलोंका जोड़ा था, कभी व्यर्थ नहीं जानेवाले गदा, खड्ग, कनक, चक्र, बाण तथा रणाङ्गणमें चमकनेवाले अन्य बड़े-बड़े

---

१. श्रीविस्तरे म० । २. द्युतिः म०, ब० । ३. गगने म०, ब० ।

पञ्चाशद्बलकोटीनां लक्षाणि गदितानि च । स्वयं चरणशीलानां कोटिरभ्यधिका गवाम् ॥१५॥
सप्ततिः साधिकाः कोट्यः कुलानां स्फीतसम्पदाम् । नित्यं न्यायप्रवृत्तानां साकेतनगरीजुषाम् ॥१६॥
भवनान्यतिशुभ्राणि सर्वाणि विविधानि च । अक्षीणकोशपूर्णानि रत्नवन्ति कुटुम्बिनाम् ॥१७॥
पालया बहुविधैर्धान्यैः पूर्णा गण्डाद्रिसन्निभाः । विज्ञेयाः कुट्टिमतलाश्चतुःशालाः सुखावहाः ॥१८॥
प्रवरोद्यानमध्यस्था नानाकुसुमशोभिताः । दीर्घिकाश्चारुसोपानाः परिक्रीडनकोचिताः ॥१९॥
प्रेक्षयगोमहिषीवृन्दस्फीतास्तत्र कुटुम्बिनः । सौख्येन महता युक्ताः रेजुः सुरवरा इव ॥२०॥
दण्डनायकसामन्ता लोकपाला इवोदिताः । महेन्द्रतुल्यविभवा राजानः पुरुतेजसः ॥२१॥
सुन्दर्योऽप्सरसां तुल्याः संसारसुखभूमयः । निखिलं चोपकरणं यथाभिमतसौख्यदम् ॥२२॥
एवं रामेण भरतं नीतं शोभां परामिदम् । हरिषेणनरेन्द्रेण यथा चक्रभृता पुरा ॥२३॥
चैत्यानि रामदेयेन कारितानि सहस्रशः । भान्ति भव्यजनैर्नित्यं पूजितानि महर्द्धिभिः ॥२४॥
देशग्रामपुरारण्यगृहरथ्यागतो जनः । सदेति सङ्कथां चक्रे सुखी रचितमण्डलः ॥२५॥
साकेतविषयः सर्वः सर्वथा पश्यतोऽधुना । विलम्बयितुमुद्युक्तश्चित्रं गीर्वाणविष्टपम् ॥२६॥
मध्ये शक्रपुरीतुल्या नगरी यस्य राजते । अयोध्या निलयैस्तुङ्गैरशक्यपरिवर्णनैः ॥२७॥
किमसौ विदशक्रीडापर्वतास्तेजसाऽऽवृताः । आहोस्विच्छरदभ्रौघाः किंवा विश्रामहालयाः ॥२८॥
प्राकारोऽयं समस्ताशा द्योतयन् परमोन्नतः । समुद्रवेदिकातुल्यो महाशिखरशोभितः ॥२९॥

शस्त्र थे ॥१३-१४॥ पचास लाख हल थे, एक करोड़से अधिक अपने आप दूध देनेवाली गायें थीं ॥१५॥ जो अत्यधिक सम्पत्तिके धारक थे तथा निरन्तर न्यायमें प्रवृत्त रहते थे ऐसे अयोध्या-नगरीमें निवास करनेवाले कुलोंकी संख्या कुछ अधिक सत्तर करोड़ थी ॥१६॥ गृहस्थोंके समस्त घर अत्यन्त सफेद, नाना आकारोंके धारक, अक्षीण खजानोंसे परिपूर्ण तथा रत्नोंसे युक्त थे ॥१७॥ नानाप्रकारके अन्नोंसे परिपूर्ण नगरके बाह्य प्रदेश छोटे मोटे गोल पर्वतोंके समान जान पड़ते थे और पक्के फरसोंसे युक्त भवनोंकी चौशालें अत्यन्त सुखदायी थीं ॥१८॥ उत्तमोत्तम बगीचोंके मध्यमें स्थित, नाना प्रकारके फूलोंसे सुशोभित, उत्तम सीढ़ियोंसे युक्त एवं क्रीडाके योग्य अनेकों वापिकाएँ थीं ॥१९॥ देखनेके योग्य अर्थात् सुन्दर सुन्दर गायों और भैंसोंके समूहसे युक्त वहाँके कुटुम्बी अत्यधिक सुखसे सहित होनेके कारण उत्तम देवोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥२०॥ धनाके नायक स्वरूप जो सामन्त थे वे लोकपालोंके समान कहे गये थे तथा विशाल तेजके धारक राजा लोग महेन्द्रके समान वैभवसे युक्त थे ॥२१॥ अप्सराओंके समान संसारके सुखकी भूमि स्वरूप अनेक सुन्दरी स्त्रियाँ थीं, और इच्छानुकूल सुखके देनेवाले अनेक उपकरण थे ॥२२॥ जिस प्रकार पहले, चक्ररत्नको धारण करनेवाले राजा हरिषेणके द्वारा यह भरत क्षेत्र परम शोभाको प्राप्त हुआ था उसी प्रकार यह भरत क्षेत्र रामके द्वारा परम शोभाको प्राप्त हुआ था ॥२३॥ अत्यधिक सम्पदाको धारण करनेवाले भव्यजन जिनकी निरन्तर पूजा करते थे ऐसे हजारों चैत्यालय श्री रामदेवने निर्मित कराये थे ॥२४॥ देश, गाँव, नगर, वन, घर और गलियोंके मध्यमें स्थित सुखिया मनुष्य मण्डल बाँध-बाँधकर सदा यह चर्चा करते रहते थे ॥२५॥ कि देखो यह समस्त साकेत देश, इस समय आश्चर्यकारी स्वर्ग लोककी उपमा प्राप्त करनेके लिए उद्यत है ॥२६॥ जिस देशके मध्यमें जिनका वर्णन करना शक्य नहीं है ऐसे ऊँचे ऊँचे भवनोंसे अयोध्यापुरी इन्द्रकी नगरीके समान सुशोभित हो रही है ॥२७॥ वहाँके बड़े बड़े विद्यालयोंको देखकर यह संदेह उत्पन्न होता था कि क्या ये तेजसे आवृत देवोंके क्रीड़ाचल हैं अथवा शरद् ऋतुके मेघोंका समूह है ? ॥२८॥ इस नगरीका यह प्राकार समस्त दिशाओंको देदीप्यमान कर रहा है, अत्यन्त ऊँचा है, समुद्रकी वेदिकाके समान है और बड़े-बड़े शिखरोंसे

---

१. पञ्चाशद्बलकोटीनां म० । ४. लक्ष्मण—म०, ख० । रक्षण ब० । ३. चोपशरणं म० ।

सुवर्णरत्नसंघातो रश्मिभिर्भासितप्रकरः । कृत इदमित्यलोकेऽस्मिन् मानसस्याप्यगोचरः ॥३०॥
नूनं पुण्यजनैरेषा विनीता नगरी शुभा । सम्पूर्णा रामदेवेन विहिताऽन्येव शोभना ॥३१॥
सम्प्रदायेन यः स्वर्गः श्रूयते कोऽपि सुन्दरः । नूनं तमेवमादाय सम्प्राप्तौ रामलक्ष्मणौ ॥३२॥
आहोस्विदेव पूर्वेयं भवेदुत्तरकोशला । दुर्गमा जनितात्यन्तं प्राणिनां पुण्यवर्जिताम् ॥३३॥
[1]सशरीरेण लोकेन [2]सस्त्रीपशुधनादिना । त्रिदिवं रघुचन्द्रेण नीता कान्तिमिमौ गता ॥३४॥
एक एव महान् दोषः [3]सुप्रकाशोऽत्र दृश्यते । महानिन्द्यत्रपाहेतुः सतामत्यन्तदुस्त्यजः ॥३५॥
यद्विद्याधरनाथेन हृताभिरमता ध्रुवम् । वैदेही पुनरानीता तत्किं पथ्यस्य युज्यते ॥३६॥
क्षत्रियस्य कुलीनस्य ज्ञानिनो मानशालिनः । जनाः पश्यत कर्मेदं किमन्यस्याभिधीयताम् ॥३७॥
इति क्षुद्रजनोद्गीतः परिवादः समन्ततः । सीतायाः कर्मतः पूर्वाद् विस्तारं विष्टपे गतः ॥३८॥
अथासौ भरतस्तत्र पुरे [4]स्वर्गप्रपाकरे । सुरेन्द्रसदृशैर्भोगैरपि नो विन्दते रतिम् ॥३९॥
स्त्रीणां शतस्य साग्रस्य भर्ता प्राणमहेश्वरः । विद्वेष्टि सन्ततं [5]राज्यलक्ष्मीं तुल्यां तथापि ताम् ॥४०॥
निर्व्यूहबलभीशृङ्गप्रघणश्रेणिहारिभिः । प्रासादैर्मण्डलीबन्धरचितैरुपशोभिते [6] ॥४१॥
विचित्रमणिनिर्माणकुट्टिमे चारुदीर्घिके । मुक्तादामचिते हेमखचिते पुष्पितद्रुमे ॥४२॥
अनेकाश्चर्यसंकीर्णे [7]यथाकालमनोहरे । सर्वशब्दरजस्थाने सुन्दरीजनसंकुले ॥४३॥

सुशोभित है ॥२९॥ जिसने अपनी किरणोंसे आकाशको प्रकाशित कर रक्खा है तथा जिसका चिन्तवन मनसे भी नहीं किया जा सकता ऐसे सुवर्ण और रत्नोंकी राशि जैसी अयोध्यामें थी वैसी तीनलोकमें भी अन्यत्र उपलब्ध नहीं थी ॥३०॥ जान पड़ता है कि पुण्यजनोंके द्वारा भरी हुई यह शुभ और शोभायमान नगरी श्रीरामदेवके द्वारा मानो अन्य ही कर दी गई है ॥३१॥ सम्प्रदाय वश सुननेमें आता है कि स्वर्ग नामका कोई सुन्दर पदार्थ है सो ऐसा लगता है मानो उस स्वर्गको लेकर ही राम-लक्ष्मण यहाँ पधारे हों ॥३२॥ अथवा यह वही पहलेकी उत्तरकोशल पुरी है जो कि पुण्यहीन मनुष्योंके लिए अत्यन्त दुर्गम हो गई है ॥३३॥ ऐसा जान पड़ता है कि इस कान्तिको प्राप्त हुई यह नगरी श्री रामचन्द्रके द्वारा इसी शरीर तथा स्त्री पशु और धनादि सहित लोगोंके साथ ही साथ स्वर्ग भेज दी गई है ॥३४॥ इस नगरीमें यही एक सबसे बड़ा दोष दिखाई देता है जो कि महानिन्दा और लज्जाका कारण है तथा सत्पुरुषोंके अत्यन्त दुःख पूर्वक छोड़नेके योग्य है ॥३५॥ वह दोष यह है कि विद्याधरोंका राजा रावण सीताको हर ले गया था सो उसने अवश्य ही उसका सेवन किया होगा। अब वही सीता फिरसे लाई गई है सो क्या रामको ऐसा करना उचित है ? ॥३६॥ अहो जनो ! देखो जब क्षत्रिय, कुलीन, ज्ञानी और मानी पुरुषका यह काम है तब अन्य पुरुषका क्या कहना है ॥३७॥ इस प्रकार क्षुद्र मनुष्योंके द्वारा प्रकट हुआ सीताका अपवाद, पूर्व कर्मोदयसे लोकमें सर्वत्र विस्तारको प्राप्त हो गया ॥३८॥

अथानन्तर स्वर्गकी लज्जा करनेवाले इस नगरमें रहता हुआ भरत इन्द्र तुल्य भोगोंसे भी प्रीतिको प्राप्त नहीं हो रहा था ॥३९॥ वह यद्यपि डेढ़ सौ स्त्रियोंका प्राणनाथ था तथापि निरन्तर उस उन्नत राज्यलक्ष्मीके साथ द्वेष करता रहता था ॥४०॥ वह ऐसे मनोहर क्रीड़ास्थलमें जो कि छपरियों-अट्टालिकाओं, शिखरों और देहलियोंकी मनोहर कान्तिसे युक्त, पंक्तिबद्ध रचित बड़े-बड़े महलोंसे सुशोभित था, जहाँके फर्श नाना प्रकारके रङ्ग-बिरङ्गे मणियोंसे बना हुआ था, जहाँ सुन्दर सुन्दर वापिकाएँ थीं, जो मोतियोंकी मालाओंसे व्याप्त था, सुवर्णजटित था, जहाँ वृक्ष फूलोंसे युक्त थे, जो अनेक आश्चर्यकारी पदार्थोंसे व्याप्त था, समयानुकूल मनको हरण करनेवाला था, बांसुरी और मृदङ्गके बजनेका स्थान था, सुन्दरी स्त्रियोंसे युक्त था, जिसके समीप ही मदभीगे

---

१. स्वशरीरेण ज०, ख०, म०। २. स्वस्त्री म०। ३. सुप्रकाशोऽत्र म०। ४. स्वर्ग्यं म०। ५. राज्यं लक्ष्मीं म०,ज०। ६. -रुपशोभितैः त०। ७. यथा काले म०।

प्रान्तस्थितमदक्लिन्नकपोलवरवारणे । वासिते मदगन्धेन तुरङ्गरवहारिणि ॥४४॥
कृतकोमलसङ्गीते रत्नोद्योतपटावृते[1] । रम्ये क्रीडनकस्थाने रुचिरेऽपि स्वभिणामपि ॥४५॥
संसारभीरुरत्यन्तं नृपशङ्कितमानसः । धृतिं न लभते व्याधभीतः सारङ्गको यथा ॥४६॥
लभ्यं दुःखेन मानुष्यं चपलं जलबिन्दुवत् । यौवनं फेनपुञ्जेन सदृशं दोषसङ्कटम् ॥४७॥
समाप्तिविरसा भोगा जीवितं स्वप्नसन्निभम् । सम्बन्धो बन्धुभिः सार्द्धं पक्षिसङ्गमनोपमः ॥४८॥
इति निश्चित्य यो धर्मं करोति न शिवावहम् । स जराजर्जरः पश्चाद्दह्यते शोकवह्निना ॥४९॥
यौवनेऽभिनवे रागः कोऽस्मिन् मूढकवल्लभे । अपवादकुलावासे सन्ध्योद्योतविनश्वरे ॥५०॥
अवश्यं त्यजनीये च नानाव्याधिकुलालये । शुक्रशोणितसम्मूले देहयन्त्रेऽपि का रतिः ॥५१॥
न तृप्यतीन्धनैर्वह्निः सलिलैर्न नदीपतिः । न जीवो विषयैर्यावत्संसारमपि सेवितैः ॥५२॥
कामासक्तमतिः पापो न किञ्चिद् वेत्ति देहवान् । यत्पतङ्गसमो लोभी दुःखं प्राप्नोति दारुणम् ॥५३॥
गलगण्डसमानेषु क्लेदचरणकारिषु । स्तनाख्यमांसपिण्डेषु बीभत्सेषु कथं रतिः ॥५४॥
दन्तकीटकसम्पूर्णे ताम्बूलरसलोहिते । क्षुरिकाच्छेदसदृशे शोभा वक्त्रबिले नु[2] का ॥५५॥
नारीणां चेष्टिते वायुदोषादिव समुद्गते । उन्मादजनिते प्रीतिर्विलासाभिहितेऽपि का ॥५६॥
गृहान्तर्ध्वनिना तुल्ये मनोधृतिनिवासिनी । सङ्गीते रुदिते चैव विशेषो नोपलक्ष्यते ॥५७॥

कपोलोंसे युक्त हाथी विद्यमान थे, जो मदकी गन्धसे सुवासित था, घोड़ोंकी हिनहिनाहटसे मनोहर था, जहाँ कोमल संगीत हो रहा था, जो रत्नोंके प्रकाशरूपी पटसे आवृत था, तथा देवोंके लिए भी रुचिकर था, धैर्यको प्राप्त नहीं होता था। चकित चित्तका धारक भरत संसारसे अत्यन्त भयभीत रहता था। जिस प्रकार शिकारीसे भयको प्राप्त हुआ हरिण सुन्दर स्थानोंमें धैर्यको प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार भरत भी उक्त प्रकारके सुन्दर स्थानोंमें धैर्यको प्राप्त नहीं हो रहा था ॥४१-४६॥ वह सोचता रहता था कि मनुष्य पर्याय बड़े दुःखसे प्राप्त होती है फिर भी पानीकी बूँदके समान चञ्चल है, यौवन फेनके समूहके समान भङ्गुर तथा अनेक दोषोंसे संकट पूर्ण है ॥४७॥ भोग अन्तिम कालमें विरस अर्थात् रससे रहित है, जीवन स्वप्नके समान है और भाई-बन्धुओंका सम्बन्ध पक्षियोंके समागमके समान है ॥४८॥ ऐसा निश्चय करनेके बाद भी जो मनुष्य मोक्ष-सुखदायी धर्म धारण नहीं करता है वह पीछे जरासे जर्जर चित्त हो शोक-रूपी अग्निसे जलता रहता है ॥४९॥ जो मूर्ख मनुष्योंको प्रिय है, अपवाद अर्थात् निन्दाका कुलभवन है एवं सन्ध्याके प्रकाशके समान विनश्वर है ऐसे नवयौवनमें क्या राग करना है ? ॥५०॥ जो अवश्य ही छोड़ने योग्य है, नाना व्याधियोंका कुलभवन है, और रजवीर्य जिसका मूल कारण है ऐसे इस शरीर रूपी यन्त्रमें क्या प्रीति करना है ? ॥५१॥ जिस प्रकार ईन्धनसे अग्नि नहीं तृप्त होती और जलसे समुद्र नहीं तृप्त होता उसी प्रकार जब तक संसार है तब तक सेवन किये हुए विषयोंसे यह प्राणी तृप्त नहीं होता ॥५२॥ जिसकी बुद्धि पापमें आसक्त हो रही है ऐसा पापी मनुष्य कुछ भी नहीं समझता है और लोभी मनुष्य पतंगके समान दारुण दुःखको प्राप्त होता है ॥५३॥ जिनका आकार गलगण्डके समान है तथा जिनसे निरन्तर पसीना झरता रहता है, ऐसे स्तन नामक मांसके घृणित पिण्डोंमें क्या प्रेम करना है ? ॥५४॥ जो दाँतरूपी कीड़ोंसे युक्त है तथा जो ताम्बूलके रसरूपी रुधिरसे सहित है ऐसे छुरीके छापके समान जो मुखरूपी बिल है उसमें क्या शोभा है ? ॥५५॥ स्त्रियोंकी जो चेष्टा मानो वायुके दोषसे ही उत्पन्न हुई है अथवा उन्माद जनित है उसके विलासपूर्ण होने पर भी उसमें क्या प्रीति करना है ? ॥५६॥ जो घरके भीतरकी ध्वनिके समान है तथा जो मनके धैर्यमें निवास करता है (रोदन पक्षमें मनके अधैर्यमें निवास करता है) ऐसे संगीत तथा रोदनमें कोई

१. पटाहते म० । २. तृप्यति धनै- म० । ३. बिलेन का० म० ।

अमेध्यमयदेहाभिश्छन्नाभिः केवलं त्वचा । नारीभिः कीदृशं सौख्यं सेवमानस्य जायते ॥५८॥
विट्कुम्भद्वितयं[1] नीत्वा संयोगमतिलज्जनम् । विमूढमानसः लोकः[2] सुखमित्यभिमन्यते ॥५९॥
इच्छामात्रसमुद्भूतैर्दिव्यैर्यो भोगविस्तरैः । न तृप्यति कथं तस्य तृप्तिर्मानुषभोगकैः ॥६०॥
तृप्तिं न तृणकोटिस्थैरवश्यायकणैर्वने । व्रजतीन्धनविक्रायः केवलं श्रममश्नुते ॥६१॥
सर्वाऽप्युत्तमया राज्यश्रिया तृप्तिमनाप्तवान् । सौदासः कुरुते कर्म तथाविधमसेवत ॥६२॥
गङ्गायां पूरयुक्तायां प्रविष्टा मांसलुब्धकाः । काका हस्तिशवं मृत्युं प्राप्नुवन्ति महोदधौ ॥६३॥
मोहपङ्कनिमग्नेयं[3] प्रजामण्डूकिकां[4] ते । लोभाहिनाऽतितीव्रेण नरकच्छिद्रमापिता[5] ॥६४॥
एवं चिन्तयतस्तस्य भरतस्य विरागिणः । विघ्नेन बहवो यान्ति दिवसाः शान्तचेतसः ॥६५॥
व्रतमप्राप्नुवञ्जैनं सर्वदुःखविनाशनम् । पञ्जरस्थो यथा सिंहः स समर्थोऽपि सीदति ॥६६॥
प्रशान्तहृदयोऽत्यर्थंकैकयायाचनादसौ । ध्रियते हृत्रिवाक्ल्यां सस्नेहाभ्यां समुत्कटम् ॥६७॥
उच्यते च यथा भ्रातस्त्वमेव पृथिवीतले । सकले स्थापितो राजा पित्रा दीक्षाभिलाषिणा ॥६८॥
सोऽभिषिक्तो भवान्नाथो गुरुणा विषये न[6] तु । अस्माकमपि हि स्वामी कुरु लोकस्य पालनम् ॥६९॥
इदं सुदर्शनं चक्रमिमे विद्याधराधिपाः । तवाज्ञासाधनं पत्नीमिव भुंक्ष्व वसुन्धराम् ॥७०॥
धारयामि स्वयं छत्रं शशाङ्कधवलं तव । शत्रुघ्नश्चामरं धत्ते मन्त्री लक्ष्मणसुन्दरः ॥७१॥

विशेषता नहीं दिखाई देती ॥५७॥ जिनका शरीर अपवित्र वस्तुओंसे तन्मय है तथा जो केवल चमड़ेसे आच्छादित हैं ऐसी स्त्रियोंसे उनकी सेवा करने वाले पुरुषको क्या सुख होता है ? ॥५८॥ मूर्खमना प्राणी मलभृत घटके समान अत्यन्त लज्जाकारी संयोगको प्राप्त हो मुझे सुख हुआ है ऐसा मानता है ॥५९॥ अरे ! जो इच्छामात्रसे उत्पन्न होनेवाले स्वर्गसम्बन्धी भोगोंके समूहसे तृप्त नहीं होता उसे मनुष्य पर्यायके तुच्छ भोगोंसे कैसे तृप्ति हो सकती है ? ॥६०॥ ईन्धन बेचने वाला मनुष्य वनमें तृणोंके अग्रभाग पर स्थित ओसके कणोंसे तृप्तिको प्राप्त नहीं होता केवल श्रमको ही प्राप्त होता है ॥६१॥ उस सौदासको तो देखो जो राजलक्ष्मीसे तृप्त नहीं हुआ किन्तु इसके विपरीत जिसने नरमांस-भक्षण जैसा अयोग्य कार्य किया ॥६२॥ जिस प्रकार प्रवाह-युक्त गङ्गामें मांसके लोभी काक, मृत हस्तीके शवको चूथते हुए तृप्त नहीं होते और अन्तमें महासागरमें प्रविष्ट हो मृत्युको प्राप्त होते हैं उसी प्रकार संसारके प्राणी विषयोंमें तृप्त न हो अन्तमें भवसागरमें डूबते हैं ॥६३॥ हे आत्मन् ! मोहरूपी कीचड़में फँसी यह तेरी प्रजारूपी मेंढकी लोभरूपी तीव्र सर्पके द्वारा ग्रस्त हो आज नरक रूपी बिलमें ले जाई जा रही है ॥६४॥ इस प्रकार विचार करते हुए उस शान्त चित्तके धारक विरागी भरतकी दीक्षामें विघ्न करने वाले बहुतसे दिन व्यतीत हो गये ॥६५॥ जिस प्रकार समर्थ होने पर भी पिंजड़ेमें स्थित सिंह दुखी होता है उसी प्रकार भरत दीक्षाचारण करनेमें समर्थ होता हुआ भी सर्व दुःखको नष्ट करने वाले जिनेन्द्रव्रतको नहीं प्राप्त होता हुआ दुःखी हो रहा था ॥६६॥ भरतकी माता केकयाने उसे रोकनेके लिए रामलक्ष्मणसे याचना की सो अत्यधिक स्नेहके धारक रामलक्ष्मणने प्रशान्तचित्त भरतको रोक कर इस प्रकार समझाया कि हे भाई ! दीक्षाके अभिलाषी पिताने तुम्हींको सकल पृथिवीतलका राजा स्थापित किया था ॥६७-६८॥ यतश्च पिताने जगत्का शासन करनेके लिए निश्चयसे आपका अभिषेक किया था इसलिए हमलोगोंके भी आप ही स्वामी हो । अतः आप ही लोकका पालन कीजिये ॥६९॥ यह सुदर्शनचक्र और ये विद्याधर राजा तुम्हारी आज्ञाके साधन हैं इसलिए पत्नीके समान इस वसुधाका उपभोग करो ॥७०॥ मैं स्वयं तुम्हारे ऊपर

---

१. द्वितीयं । २. शोकः म० । ३. प्रजां मण्डूकिकायते म० । ४. मापिना म० । दापिना ख० । नरकच्छिद्रनापिना ब०, क० । ५. विषयेव न तु म० ।

इत्युक्तोऽपि न चेद्वाक्यं ममेदं कुरुते भवान् । यास्यामोऽद्य ततो भूयस्तदेव मृगवद्वनम् ॥७२॥
जित्वा राक्षसवंशस्य तिलकं रावणाभिधम् । भवद्दर्शनसौख्यस्य तृषिता वयमागताः ॥७३॥
निःप्रत्यूहमिदं राज्यं भुञ्जतो तावदावयोः । अस्माभिः सहितः पश्चात्प्रवेक्ष्यसि तपोवनम् ॥७४॥
एवं भाषितुमासक्तमेनं पद्मं सुचेतसम् । जगाद भरतोऽत्यन्तविषयासक्तिनिःस्पृहः ॥७५॥
इच्छामि देव सम्यक्तुमेतां राज्यश्रियं द्रुतम् । त्यक्त्वा यां सत्तपः कृत्वा वीरा मोक्षं समाश्रिताः ॥७६॥
सदा नरेन्द्र कामार्थौ चञ्चलौ दुःखसङ्गतौ । विद्वेष्यौ सुरिलोकस्य सुमूढजनसेवितौ ॥७७॥
अशाश्वतेषु भोगेषु सुरलोकसमेष्वपि । हलायुध न मे तृष्णा समुद्रौपम्यवत्स्वपि ॥७८॥
संसारसागरं घोरं मृत्युपातालसङ्कुलम् । जन्मकल्लोलसङ्कीर्णं रत्यरत्युरुवीचिकम् ॥७९॥
रागद्वेषमहाग्राहं नानादुःखभयङ्करम् । व्रतपोतं समारुह्य वाञ्छामि तरितुं नृप ॥८०॥
पुनःपुनरहं राजन् भ्राम्यन् विविधयोनिषु । गर्भवासादिषु भ्रान्तो दुःसहं दुःखमासदान् ॥८१॥
एवमुक्ते समाकर्ण्य बाष्पव्याकुललोचनाः । नृपा विस्मयमापन्ना जगदुः कम्पितस्वनाः ॥८२॥
वचनं कुरु तातीयं लोकं पालय पार्थिव । यदि तेऽभिमता लक्ष्मीर्मुनिः पश्चाद् भविष्यसि ॥८३॥
उवाच भरतो वाक्यं तातस्योक्तं मया कृतम् । चिरं प्रपालितो लोको मानितो भोगविस्तरः ॥८४॥
दत्तं च परमं दानं साधुवर्गः सुतर्पितः । तातेन यत्कृतं कर्तुं तदपीच्छामि साम्प्रतम् ॥८५॥
अनुमोदनमद्यैव मह्यं किं न प्रयच्छत । श्लाघ्ये वस्तुनि सम्बन्धः कर्तव्यो हि यथा तथा ॥८६॥

चन्द्रमाके समान सफेद छत्र धारण करता हूँ, शत्रुघ्न चमर धारण करता है और लक्ष्मण तेरा मन्त्री है ॥७१॥ इस प्रकार कहने पर भी यदि तुम मेरी बात नहीं मानते हो तो मैं फिर उसी तरह हरिणकी नाईं आज वनमें चला जाऊँगा ॥७२॥ राक्षस वंशके तिलक रावणको जीत कर हम लोग आपके दर्शन सम्बन्धी सुखकी तृष्णासे ही यहाँ आये हैं ॥७३॥ अभी तुम इस निर्विघ्न विशालराज्यका उपभोग करो पश्चात् हमारे साथ तपोवनमें प्रवेश करना ॥७४॥ विषय सम्बन्धी आसक्तिसे जिसका हृदय अत्यन्त निःस्पृह हो गया था ऐसे भरतने पूर्वोक्त प्रकार कथन करनेमें तत्पर एवं उत्तम हृदयके धारक रामसे इस तरह कहा कि ॥७५॥ हे देव ! जिसे छोड़कर तथा उत्तम तप कर वीर मनुष्य मोक्षको प्राप्त हुए हैं मैं उस राज्यलक्ष्मीका शीघ्र ही त्याग करना चाहता हूँ ॥७६॥ हे राजन् ! ये काम और अर्थ चञ्चल हैं, दुःखसे प्राप्त होते हैं, अत्यन्त मूर्ख जनोंके द्वारा सेवित हैं तथा विद्वज्जनोंके द्वेषके पात्र हैं ॥७७॥ हे हलायुध ! ये नश्वर भोग स्वर्ग लोकके समान हों अथवा समुद्र की उपमाको धारण करनेवाले हों तो भी मेरी इनमें तृष्णा नहीं है ॥७८॥ हे राजन् ! जो अत्यन्त भयंकर है, मृत्यु रूपी पाताल तक व्याप्त है, जन्म रूपी कल्लोलोंसे युक्त है, जिसमें रति और अरति रूपी बड़ी-बड़ी लहरें उठ रही हैं, जो राग-द्वेष रूपी बड़े-बड़े मगर-मच्छोंसे सहित है एवं नाना प्रकारके दुःखोंसे भयंकर है, ऐसे इस संसार रूपी सागरको मैं व्रत रूपी जहाज पर आरूढ़ हो तैरना चाहता हूँ ॥७९-८०॥ हे राजन् ! नाना योनियोंमें बार-बार भ्रमण करता हुआ मैं गर्भवासादिके दुःसह दुःख प्राप्त कर थक गया हूँ ॥८१॥

इस प्रकार भरतके शब्द सुन जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त हो रहे थे, जो आश्चर्यको प्राप्त थे तथा जिनके स्वर कम्पित थे ऐसे राजा बोले कि हे राजन् ! पिताका वचन अङ्गीकृत करो और लोकका पालन करो । यदि लक्ष्मी तुम्हें इष्ट नहीं है तो कुछ समय पीछे मुनि हो जाना ॥८२-८३॥ इसके उत्तरमें भरतने कहा कि मैंने पिताके वचनका अच्छी तरह पालन किया है, चिरकाल तक लोककी रक्षा की है, भोगसमूहका सम्मान किया है ॥८४॥ परम दान दिया है, साधुओंके समूहको संतुष्ट किया है, अब जो कार्य पिताने किया था वही करना चाहता हूँ ॥८५॥ आप लोग मेरे लिए आज ही अनुमति क्यों नहीं देते हैं ? यथार्थमें उत्तम कार्यके साथ तो जिस तरह

---

१. संगती म० ।

जित्वा शत्रुगणं संख्ये द्विपसङ्घातभीषणे । नन्दाद्यैरिव या लक्ष्मीर्भवद्भिः समुपार्जिता ॥८७॥
महत्यपि न सा तृप्तिं ममोत्पादयितुं क्षमा । गङ्गेव वारिनाथस्य तत्त्वमार्गे घटे ततः ॥८८॥
इत्युक्त्वात्यन्तसंविग्नस्तानापृच्छ्य ससम्भ्रमः । सिंहासनात् समुत्तस्थौ भरतो[1] भरतो यथा ॥८९॥
मनोहरगतिश्चैव यावद् गन्तुं समुद्यतः । नारायणेन संरुद्धस्तावत् सस्नेहसम्भ्रमम् ॥९०॥
करेणोद्धर्तयन्नेव सौमित्रिकरपल्लवम् । यावदाश्वासयन्नश्रुदिनास्यां च मातरम् ॥९१॥
तावद् रामाज्ञया प्राप्ताः स्त्रियो लक्ष्मीसुविभ्रमाः । रुरुदुर्भरतं वातकम्पितोत्पललोचनाः ॥९२॥
एतस्मिन्नन्तरे सीता स्वयं श्रीरिव देहिनी । उर्वी भानुमती देवी विशल्या सुन्दरी तथा ॥९३॥
ऐन्द्री रत्नवती लक्ष्मीः सार्था गुणवतीश्रुतिः । कान्ता बन्धुमती भद्रा कौबेरी नलकूबरा ॥९४॥
तथा कल्याणमालासौ चन्द्रिणी मानसोत्सवा । मनोरमा प्रियानन्दा चन्द्रकान्ता कलावती ॥९५॥
रत्नस्थली सुरवती श्रीकान्ता गुणसागरा । पद्मावती तथाऽन्याश्च स्त्रियो दुःशक्यवर्णनाः ॥९६॥
मनःप्रहरणाकारा दिव्यवस्त्रविभूषणाः । समुद्भवशुभक्षेत्रभूमयः स्नेहगोत्रजाः ॥९७॥
कलासमस्तसन्दोहफलदर्शनतत्पराः । वृताः[2] समन्ततश्चारुचेतसो लोभनोद्यताः ॥९८॥
सर्वादरेण भरतं जगदुर्हारिनिःस्वनाः । वातोद्धूतनवोदारपद्मिनीखण्डकान्तयः[3] ॥९९॥
देवर क्रियतामेकः प्रसादोऽस्माकमुद्यतः । सेवामहे जलक्रीडां भवता सह सुन्दरीम् ॥१००॥
त्यज्यतामपरा[4] चिंता नाथ मानसखेदिनी । भ्रातृजायासमूहस्य क्रियतामस्य सुप्रियम् ॥१०१॥

बने उसी तरह सम्बन्ध जोड़ना चाहिए ॥८६॥ हाथियोंकी भीड़से भयङ्कर युद्धमें शत्रुसमूहको जीतकर नन्द आदि पूर्व बलभद्र और नारायणोंके समान आपने जो लक्ष्मी उपार्जित की है वह यद्यपि बहुत बड़ी है तथापि मुझे संतोष उत्पन्न करनेके लिए समर्थ नहीं है। जिस प्रकार गङ्गा नदी समुद्र को तृप्त करनेमें समर्थ नहीं है उसी प्रकार यह लक्ष्मी भी मुझे तृप्त करनेमें समर्थ नहीं है, इसलिए अब तो मैं यथार्थ मार्गमें ही प्रवृत्त होता हूँ ॥८७-८८॥ इस प्रकार कहकर तथा उनसे पूछकर तीव्र संवेगसे युक्त भरत संभ्रमके साथ भरत चक्रवर्तीकी नाईं शीघ्र ही सिंहासनसे उठ खड़ा हुआ ॥८९॥ अथानन्तर मनोहर गतिको धारण करनेवाला भरत ज्यों ही वनको जानेके लिए उद्यत हुआ त्योंही लक्ष्मणने स्नेह और संभ्रमके साथ उसे रोक लिया अर्थात् उसका हाथ पकड़ लिया ॥९०॥ अपने हाथसे लक्ष्मणके करपल्लवको अलग करता हुआ भरत जब तक अविरल अश्रुवर्षा करनेवाली माताको समझाता है तब तक रामकी आज्ञासे, जिनकी लक्ष्मीके समान चेष्टाएँ थीं तथा जिनके नेत्र वायुसे कम्पित नील कमलके समान थे ऐसी भरतकी स्त्रियाँ आकर उसके प्रति रोदन करने लगीं ॥९१-९२॥ इसी बीचमें शरीरधारिणी साक्षात् लक्ष्मीके समान सीता, उर्वी, भानुमती, विशल्या, सुन्दरी, ऐन्द्री, रत्नवती, लक्ष्मी, सार्थक नामको धारण करने वाली गुणवती, कान्ता, बन्धुमती, भद्रा, कौबेरी, नलकूबरा, कल्याणमाला, चन्द्रिणी, मानसोत्सवा, मनोरमा, प्रियानन्दा, चन्द्रकान्ता, कलावती, रत्नस्थली, सुरवती, श्रीकान्ता, गुणसागरा, पद्मावती, तथा जिनका वर्णन करना अशक्य है ऐसी दोनों भाइयोंकी अन्य अनेक स्त्रियाँ वहाँ आ पहुँचीं ॥९३-९६॥ उन सब स्त्रियोंका आकार मनको हरण करनेवाला था, वे सब दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सहित थीं, अनेक शुभभावोंके उत्पन्न होनेकी क्षेत्र थीं, स्नेह की वंशज थीं, समस्त कलाओंके समूह एवं फलके दिखानेमें तत्पर थीं, घेरकर सब ओर खड़ी थीं, सुन्दर चित्तकी धारक थीं, लुभावनेमें उद्यत थीं, मनोहर शब्दोंसे युक्त थीं, तथा वायुसे कम्पित कमलिनियोंके समूहके समान कान्तिकी धारक थीं। उन सबने बड़े आदरके साथ भरतसे कहा ॥९७-९९॥ कि देवर ! हम लोगों पर एक बड़ी प्रसन्नता कीजिए। हम लोग आपके साथ मनोहर जलक्रीड़ा करना चाहती हैं ॥१००॥ हे नाथ ! मनको खिन्न करनेवाली अन्य चिन्ता छोड़िए, और अपनी

---

१. भरत-चक्रवर्तीव । २. वृताः म० । ३. वातोद्धूत -म० । ४. -मपरां म० । ५. चिन्तां म० ।

तादृशीभिस्तथाप्यस्य सङ्गतस्य न मानसम् । बभाम विकियां काञ्चिद् दाक्षिण्यं केवलं श्रितः ॥१०२॥
सम्प्राप्तप्रसरास्तस्मात्ततः शङ्काविवर्जिताः । नार्यस्ता भरतीयाश्च[1] प्रापुः परमसम्मदम् ॥१०३॥
परिवार्य ततस्तासं समस्ताश्चारुविभ्रमाः । प्रवरीणां महारम्यं सरः सरसिजेक्षणाः ॥१०४॥
क्रीडानिस्पृहचित्तोऽपी तत्त्वार्थगतमानसः । योषितामनुरोधेन जलसङ्गममिच्छियत् ॥१०५॥
देवीजनसमाकीर्णो विनयेन समन्वितः । विरराज सरः प्राप्तः करी यूथपतिर्यथा ॥१०६॥
स्निग्धैः सुगन्धिभिः कान्तैस्त्रिभिरुद्वर्तनैरसौ । उद्भासितः पृथुच्छायापहरल्लितवारिभिः ॥१०७॥
किञ्चित्संक्रीडय सद्चेष्टः सुस्नातः सुमनोहरः । सरसः केकयासुनुरुत्तीर्णः परमेश्वरः ॥१०८॥
विहितार्हन्महापूजः पद्मनीलोत्पलादिभिः । सादरेणाङ्गनौघेन स समग्रमलङ्कृतः ॥१०९॥
एतस्मिन्नन्तरे योऽसौ महाजलधराकृतिः । त्रिलोकमण्डनाभिख्यः खमतो गजपतिः शुभः ॥११०॥
आस्फालं स समाभिघ्न महाभैरवनिःस्वनः । निःससार निजावासाद् दानदुर्दिनिताम्बरः ॥१११॥
घनाघनघनोदारगम्भीरं तस्य गर्जितम् । श्रुत्वाऽयोध्यापुरी[2] जाता समुन्मत्तजनेव सा ॥११२॥
जनितोदारसङ्कष्टैर्भयस्तब्धश्रुतेक्षणैः । राजमार्गान्तराः पूर्णाः सायासाधोरणैर्गजैः ॥११३॥
यथानुकूलमाश्रित्य दिशो दश महाभयाः । नेशुस्ते मदनिर्युक्ता गृहीतस्यन्दिरंहसा ॥११४॥
हेमरत्नमहाकूटं गोपुरं गिरिसन्निभम् । विध्वस्य भरतं तेन प्रवृत्तो वारणोत्तमः ॥११५॥

भौजाइयोंके समूहकी यह प्रिय प्रार्थना स्वीकृत कीजिए ॥१०१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि यद्यपि उन सब स्त्रियोंने भरतको घेर लिया था फिर भी उसका चित्त रञ्चमात्र भी विकारको प्राप्त नहीं हुआ। केवल दाक्षिण्य वश उसने उनकी प्रार्थना स्वीकृत कर ली ॥१०२॥

तदनन्तर आज्ञा प्राप्तकर राम, लक्ष्मण और भरतकी स्त्रियाँ शङ्कारहित हो परम आनन्दको प्राप्त हुईं ॥१०३॥ तत्पश्चात् सुन्दर चेष्टाओंसे युक्त वे कमललोचना स्त्रियाँ भरतको घेरकर महारमणीय सरोवरमें उतरीं ॥१०४॥ जिसका चित्त तत्त्वके चिन्तन करनेमें लगा हुआ था तथा क्रीड़ासे निःस्पृह था ऐसा भरत केवल स्त्रियोंके अनुरोधसे ही जलके समागमको प्राप्त हुआ था अर्थात् जलमें उतरा था ॥१०५॥ स्त्रियोंसे घिरा हुआ विनयी भरत, सरोवरमें पहुँचकर ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो झुण्डका स्वामी गजराज ही हो ॥१०६॥ अपनी विशाल कान्तिसे जलको रङ्गीन करनेवाले, चिकनाईसे युक्त, सुन्दर तथा सुगन्धित तीन उबटन उस भरतकी देहपर लगाये गये थे ॥१०७॥ उत्तम चेष्टाओंसे युक्त एवं अतिशय मनोहर राजा भरत, कुछ क्रीड़ाकर तथा अच्छी तरह स्नानकर सरोवरसे बाहर निकल आये ॥१०८॥ तदनन्तर कमल और नीलोत्पल आदिसे जिसने अर्हन्त भगवान्‌की महापूजा की थी ऐसा भरत उन आदरपूर्ण स्त्रियोंके समूहसे अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥१०९॥

इसी बीचमें महामेघके समान त्रिलोकमंडन नामका जो प्रसिद्ध गजराज था वह खम्भेको तोड़कर अपने निवासगृहसे बाहर निकल आया। उस समय वह महाभयंकर शब्द कर रहा था तथा मद जलसे आकाशको वर्षायुक्त कर रहा था ॥११०-१११॥ मेघकी सघन विशाल गर्जनाके समान उसकी गर्जना सुनकर समस्त अयोध्यापुरी ऐसी हो गई मानो उसके समस्त लोग उन्मत्त ही हो गये हों ॥११२॥ जिन्होंने भीड़के कारण धक्कामुक्की कर रक्खी थी, तथा जिनके कान और नेत्र भयसे स्थिर थे ऐसे इधर-उधर दौड़नेका श्रम उठाने वाले महावतोंसे युक्त हाथियोंसे नगरके राजमार्ग भर गये थे ॥११३॥ घोड़ोंके वेगको ग्रहण करनेवाले वे महाभयदायी मदोन्मत्त हाथी इच्छानुकूल दशों दिशाओंमें बिखर गये—फैल गये ॥११४॥ जिसके महाशिखर सुवर्ण तथा रत्नमय थे ऐसे पर्वतके समान विशाल गोपुरको तोड़कर वह त्रिलोकमण्डन हाथी जिस

---

१. भारतीयाश्च म० । २. याता म० ।

त्रासाकुलेक्षणा नार्यो महासम्भ्रमसङ्गताः । शिश्रियुर्भरतं त्राणं मानुं दीधितयो यथा ॥११५॥
भरताभिमुखं यान्तं जनो वीक्ष्य गजोत्तमम् । हाहेति परमं तारं विलापं परितोऽकरोत् ॥११७॥
विह्वला मातरश्चास्य महोद्वेगसमागताः । बभूवुः परमाशङ्काः पुत्रस्नेहपरायणाः ॥११८॥
तावत् परिकरं बद्ध्वा पद्माभो लक्ष्मणस्तथा । उपसर्पति सच्छत्रमहाविज्ञानसङ्गतः ॥११९॥
नभश्चरमहामात्रान् समुत्सार्य भयार्दितान् । बलाद् गृहीतुमुद्युक्तो तमिभेन्द्रमलं चलम् ॥१२०॥
सरोषमुक्तनिस्वानो दुःप्रेक्ष्यः प्रबलो जवी । नागपाशैरपि गजः संरोद्धुं न स शक्यते ॥१२१॥
ततोऽक्षनाजनान्तस्थं श्रीमन्तं कमलेक्षणम् । भरतं वीक्ष्य नागोऽसौ व्यतीतं भवमस्मरत्[1] ॥१२२॥
सञ्जातोद्वेगभारश्च कृत्वा प्रशिथिलं करम् । भरतस्याग्रतो नागस्तस्थौ विनयसङ्गतः ॥१२३॥
जगाद भरतश्चैनं परं मधुरया गिरा । अहोऽनेकपनाथ त्वं रोषितः केन हेतुना ॥१२४॥
निशम्य वचनं तस्य संज्ञां सम्प्राप्य वारणः । अत्यर्थशान्तचेतस्को निश्चलः सौम्यदर्शनः ॥१२५॥
स्थितमग्रे वरस्त्रीणां स्निग्धं भरतमीक्षते । पुरे[2] वाप्सरसां वृन्दे स्वर्गे गीर्वाणसत्तमम् ॥१२६॥
परिज्ञानी ततो नागश्चिन्तामेवं समाश्रितः । मुक्त्वाऽऽऽयतनिःश्वासो विकारपरिवर्जितः ॥१२७॥
एषोऽसौ यो महानासीत् कल्पे ब्रह्मोत्तराभिधे । देवः शशाङ्कशुभ्रश्रीर्वयस्यः परमो मम ॥१२८॥
च्युतोऽयं पुण्यशेषेण जातः पुरुषसत्तमः । कष्टं निन्दितकर्माहं तिर्यग्योनिमुपागतः ॥१२९॥
कार्याकार्यविवेकेन सुदूरं परिवर्जितम् । कथं प्राप्तोऽस्मि हस्तित्वं धिगेतदिति गर्हितम् ॥१३०॥

ओर भरत विद्यमान था उसी ओर गया ॥११५॥ तदनन्तर जिनके नेत्र भयसे व्याकुल थे और जो बहुत भारी बेचैनीसे युक्त थीं ऐसी समस्त स्त्रियाँ रक्षाके निमित्त भरतके समीप उस प्रकार पहुँचीं जिस प्रकार कि किरणें सूर्यके समीप पहुँचती हैं ॥११६॥ उस गजराजको भरतके सन्मुख जाता देख, लोग चारों ओर 'हाय हाय' इसप्रकार जोरसे विलाप करने लगे ॥११७॥ पुत्रस्नेहमें तत्पर माताएँ भी महा उद्वेगसे सहित, परम शंकासे युक्त तथा अत्यन्त विह्वल हो उठीं ॥११८॥ उसी समय छल तथा महाविज्ञानसे युक्त राम और लक्ष्मण, कमर कसकर भयसे पीड़ित विद्याधर महावतोंको दूर हटा उस अतिशय चपल गजराजको बलपूर्वक पकड़नेके लिए उद्यत हुए ॥११९-१२०॥ वह गजराज क्रोधपूर्वक उच्च चिंघाड़ कर रहा था, दुर्दर्शनीय था, प्रबल था, वेगशाली था और नागपाशोंके द्वारा भी नहीं रोका जा सकता था ॥१२१॥

तदनन्तर स्त्रीजनोंके अन्तमें स्थित श्रीमान् कमललोचन भरतको देखकर उस हाथीको अपने पूर्व भवका स्मरण हो आया ॥१२२॥ जिसे बहुत भारी उद्वेग उत्पन्न हुआ था ऐसा यह हाथी सूंड़को शिथिलकर भरतके आगे विनयसे बैठ गया ॥१२३॥ भरतने मधुर वाणीमें उससे कहा कि अहो गजराज ! तुम किस कारण रोषको प्राप्त हुए हो ॥१२४॥ भरतके उक्त वचन सुन चैतन्यको प्राप्त हुआ गजराज अत्यन्त शान्तचित्त हो गया, उसकी चञ्चलता जाती रही और उसका दर्शन अत्यन्त सौम्य हो गया ॥१२५॥ उत्तमोत्तम स्त्रियोंके आगे स्थित स्नेह पूर्ण भरतको यह हाथी इस प्रकार देख रहा था मानो स्वर्गमें अप्सराओंके समूहमें बैठे हुए इन्द्रको ही देख रहा हो ॥१२६॥

तदनन्तर जो परिज्ञानी था, अत्यन्त दीर्घ उच्छ्वास छोड़ रहा था ऐसा यह विकाररहित हाथी इस प्रकारकी चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥१२७॥ वह चिन्ता करने लगा कि यह वही है जो ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें चन्द्रमाके समान शुक्ल शोभाको धारण करनेवाला मेरा परम मित्र देव था ॥१२८॥ यह वहाँसे च्युत हो अवशिष्ट पुण्यके कारण उत्तम पुरुष हुआ और खेद है कि मैं निन्दित कार्य करता हुआ इस तिर्यञ्च योनिमें उत्पन्न हुआ हूँ ॥१२९॥ मैं कार्य-अकार्यके विवेकसे रहित

१. -मस्मरन् म० । २. वा सरसां म० । ३. परिवर्तितम् म० ।

परितप्येऽधुना व्यर्थं किमिदं स्मृतिसङ्गतः । करोमि कर्म तत्तेन लभ्यते हितमात्मने ॥१३१॥
उद्वेगकरणं नात्र कारणं दुःखमोक्षणे । तस्मादुपायमेवाहं घटे सर्वादरान्वितः ॥१३२॥

उपेन्द्रवज्रा

इति स्मृतातीतभवो गजेन्द्रो भवे तु[1] वैराग्यमलं प्रपन्नः ।
दुरीहितैकान्तपराङ्मुखात्मा स्थितः सुकर्मार्जनचिन्तनाग्रः ॥१३३॥

उपजातिवृत्तम्

कृतानि कर्माण्यशुभानि पूर्वं सन्तापमुग्रं जनयन्ति पश्चात् ।
तस्माज्जनाः कर्म शुभं कुरुध्वं रवौ सति प्रस्खलनं न युक्तम् ॥१३४॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे त्रिभुवनालङ्कारद्योभाभिधानं नाम त्र्यशीतितमं पर्व ।

इस हस्ती पर्यायको कैसे प्राप्त हो गया ? अहो इस पापपूर्ण चेष्टाको धिक्कार हो ॥१३०॥ अब इस समय पूर्ण भवकी स्मृतिको प्राप्त हो व्यर्थ ही क्यों संताप करूँ, अब तो वह कार्य करता हूँ कि जिससे आत्महितकी प्राप्ति हो ॥१३१॥ उद्वेग करना दुःखके छूटनेका कारण नहीं है इसलिए मैं पूर्ण आदरके साथ वही उपाय करता हूँ जो दुःखके छूटनेका कारण है ॥१३२॥ इसप्रकार जिसे पूर्वभवका स्मरण हो रहा था, जो संसारके विषयमें अत्यधिक वैराग्यको प्राप्त हुआ था, जिसकी आत्मा पापपूर्ण चेष्टासे अत्यन्त विमुख थी तथा जो पुण्य कर्मके संचय करनेकी चिन्तासे युक्त था ऐसा वह त्रिलोकमण्डन हाथी भरतके आगे शान्तिसे बैठ गया ॥१३३॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! पूर्वभवमें किये हुए अशुभकर्म पीछे चलकर उग्र संताप उत्पन्न करते हैं इसलिए हे भव्यजनो ! शुभ कार्य करो क्योंकि सूर्यके रहते हुए स्खलित होना उचित नहीं है ॥१३४॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें त्रिलोकमंडन हाथीके शमित होनेका वर्णन करनेवाला तेरासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥८३॥

१. भवेत्तु म० ।

चतुरशीतितमं पर्व

तथा विचिन्तयन्नेव विनयी द्विपसत्तमः । पद्माभचक्रपाणिभ्यां ददृशे विस्मयं परम् ॥१॥
किञ्चिदाशङ्कितास्याभ्यामुपसृत्य शनैः शनैः । महाकालघनाकारो जगृहे भावितप्रियः ॥२॥
प्राप्य नारायणादाज्ञामन्यैरुत्तमसम्मदैः । सर्वालङ्कारयोगेन परां पूजां च लम्भितः ॥३॥
प्रशान्ते द्विरदश्रेष्ठे नगर्याकुलतोज्झिता । घनाघनपटोन्मुक्ता रराज शरदा समम् ॥४॥
विद्याधरनृनार्यौघैश्चण्डा यस्योत्तमा गतिः । रोद्धुं नातिबलैः शक्या नाकसद्भिरिव वा ॥५॥
सोऽयं कैलासकम्पस्य राक्षसेन्द्रस्य वाहनः । भूतपूर्वः कथं रुद्धः सीरिणा लक्ष्मणेन च ॥६॥
तादृशीं विकृतिं गत्वा यदयं शममागतः । तदस्य पूर्वलोकस्य पुण्यं दीर्घायुरावहम् ॥७॥
नगर्यामिति सर्वस्यां परं विस्मयमीयुषः । लोकस्य संकथा जाता विधूतकरमस्तका ॥८॥
ततः सीताविशल्याभ्यां समं तं वारणेश्वरम् । आरुह्य सुमहाभूतिभरतः प्रस्थितो गृहम् ॥९॥
महालङ्कारभारिण्यः शेषा अपि वराङ्गनाः । विचित्रवाहनारूढा भरतं पर्यवेष्टयन् ॥१०॥
तुरङ्गरथमारूढो विभूत्या परयान्वितः । शत्रुघ्नोऽस्य महातेजाः प्रययावग्रतः स्थितः ॥११॥
कम्बलाम्लातकभेर्यादिमहावाद्यनिस्वनः । सञ्जातः शङ्खशब्देन मिश्रः कोलाहलान्वितः ॥१२॥
कुसुमामोदसुभगं त्यक्त्वा ते नन्दनोपमम् । त्रिदशा इव संप्राप्तुराल्यं सुमनोहरम् ॥१३॥
उत्तीर्य द्विरदाद् राजा प्रविश्याऽऽहारमण्डपम् । साधून् सम्तर्प्य विधिवत् प्रणम्य च विशुद्धधीः ॥१४॥

अथानन्तर जो इस प्रकार विचार कर रहा था जिसका आकार महाश्याम मेघके समान था तथा जिसके प्रति मधुर शब्दोंका उच्चारण किया गया था ऐसे उस हाथीको परम आश्चर्य धारण करनेवाले तथा कुछ कुछ शङ्कित चित्तवाले राम लक्ष्मणने धीरे धीरे पास जाकर पकड़ लिया ॥१-२॥ लक्ष्मणकी आज्ञा पाकर उत्तम हर्षसे युक्त अन्य लोगोंने सर्व प्रकारसे अलंकार पहिनाकर उस हाथीका बहुत भारी सत्कार किया ॥३॥ उस गजराजके शान्त होनेपर जिसकी आकुलता छूट गई थी ऐसी यह नगरी मेघरूपी पटसे रहित हो शरद् ऋतुके समान सुशोभित हो रही थी ॥४॥ जिसकी अत्यन्त प्रचण्ड गति विद्याधर राजाओं तथा अत्यन्त बलवान् देवोंके द्वारा भी नहीं रोकी जा सकती थी ॥५॥ ऐसा यह कैलासको कम्पित करनेवाले रावणका भूतपूर्व वाहन राम और बलभद्रके द्वारा कैसे रोक लिया गया ? ॥६॥ उस प्रकारकी विकृतिको प्राप्त होकर जो यह शान्त भावको प्राप्त हुआ है सो यह उसकी दीर्घायुका कारण पूर्व पर्यायका पुण्य ही समझना चाहिए ॥७॥ इस तरह समस्त नगरीमें परम आश्चर्यको प्राप्त हुए लोगोंमें हाथ तथा मस्तकको हिलानेवाली चर्चा हो रही थी ॥८॥ तदनन्तर सीता और विशल्याके साथ उस गजराज पर सवार हो महाविभूतिके धारक भरतने घरकी ओर प्रस्थान किया ॥९॥ जो उत्तमोत्तम अलंकार धारण कर रही थीं तथा नाना प्रकारके वाहनोंपर आरूढ थीं ऐसी शेष स्त्रियाँ भी भरतको घेरे हुए थीं ॥१०॥ घोड़ोंके रथपर बैठा परम विभूतिसे युक्त महातेजस्वी शत्रुघ्न, भरतके आगे आगे चल रहा था ॥११॥ शङ्खोंके शब्दसे मिश्रित तथा कोलाहलसे युक्त कम्बल अम्लातक तथा भेरी आदि महावाद्योंका शब्द हो रहा था ॥१२॥ जिस प्रकार देव नन्दन वनको छोड़कर अपने अत्यन्त मनोहर स्वर्गको प्राप्त होते हैं उसी प्रकार वे सब फूलोंकी सुगन्धिसे युक्त कुसुमामोद नामक उद्यानको छोड़कर अपने मनोहर घरको प्राप्त हुए ॥१३॥

तदनन्तर विशुद्ध बुद्धिके धारक राजा भरतने हाथीसे उतरकर आहार मण्डपमें प्रवेशकर

---

१. कृतपूर्वकथं म० ।

मित्रामात्यादिभिः सार्द्धं भ्रातृपत्नीभिरेव च । आहारमकरोत् स्वं स्वं ततो यातो जनः पदम् ॥१५॥
किं क्रुद्धः किं पुनः शान्तः किंस्थितो भरतान्तिके । किमेतदिति लोकस्य कथा नेभे निवर्तते ॥१६॥
मगधेन्द्राथ निःशेषा महामात्राः समागताः । प्रणम्यादरिणोऽवोचन् पद्मं लक्ष्मणसङ्गतम् ॥१७॥
अहोऽद्य वर्तते देव तुरीयो राजदन्तिनः । विमुक्तपूर्वकृत्यस्य शलथविग्रहधारिणः ॥१८॥
यतः प्रभृति संक्षोभं सम्प्राप्य शममागतः । तत एव समारभ्य वर्तते ध्यानसङ्गतः ॥१९॥
महापद्मं विनिःश्वस्य मुकुलाक्षोऽतिविह्वलः । चिरं किं किमपि ध्यात्वा हन्ति हस्तेन मेदिनीम् ॥२०॥
बहुप्रियशतैः स्तोत्रैः स्तूयमानोऽपि सन्ततम् । कर्णौ नैव गृह्णाति न रवं कुरुते पुनः ॥२१॥
विधाय दन्तयोरग्रे करं मीलितलोचनः । लेप्यकर्म गजेन्द्रस्य चिरं याति समुन्नतम् ॥२२॥
किमयं कृत्रिमो दन्ती किंवा सत्यमहाद्विपः । इति तत्र समस्तस्य मत्तिर्लोकस्य वर्तते ॥२३॥
चाटुवाक्यानुरोधेन गृहीतमपि कृच्छ्रतः । विमुञ्चत्यास्यमप्राप्तं कवलं मृष्टमप्यलम् ॥२४॥
त्रिपदीछेदललितं समुत्सृज्य शुचान्वितः । आसज्य किञ्चिदालाने विनिःश्वस्यावतिष्ठते ॥२५॥
समस्तशास्त्रसत्कारविमलीकृतमानसैः । प्रख्यातैरप्यलं वैद्यैर्भावो नास्योपलक्ष्यते ॥२६॥
रचितं स्वादरेणापि सङ्गीतं सुमनोहरम् । न शृणोति यथापूर्वं क्वापि निश्चितमानसः ॥२७॥
मङ्गलैः कौतुकैर्योगैर्मन्त्रैर्विद्याभिरौषधैः । न प्रत्यापत्तिमायाति लालितोऽपि महादरैः ॥२८॥
न विहारे न निद्रायां न ग्रासे न च वारिणि । कुरुते याचितोऽप्यीप्सां सुहृन्मानमितो यथा ॥२९॥

और विधिपूर्वक प्रणामकर साधुओंको सन्तुष्ट किया ॥१४॥ तत्पश्चात् मित्रों, मन्त्री आदि परिजनों और भौजाइयोंके साथ भोजन किया। उसके बाद सब लोग अपने अपने स्थान पर चले गये ॥१५॥ त्रिलोकमण्डन हाथी कुपित क्यों हुआ ? फिर शान्त कैसे हो गया ? भरतके पास क्यों जा बैठा ? यह सब क्या बात है ? इस प्रकार लोगोंकी हस्तिविषयक कथा दूर ही नहीं होती थी ॥ भावार्थ—जहाँ देखो वहीं हाथीके विषयकी चर्चा होती रहती थी ॥१६॥ तदनन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! सब महावतोंने आकर तथा आदर पूर्वक प्रणाम कर राम लक्ष्मणसे कहा ॥१७॥ कि हे देव ! अहो ! सब कार्य छोड़े और शिथिल शरीरको धारण किये हुए त्रिलोकमण्डन हाथीको आज चौथा दिन है ॥१८॥ जिस समयसे यह क्षोभको प्राप्त हो शान्त हुआ है उसी समयसे लेकर वह ध्यानमें आरूढ है ॥१९॥ वह आँख बन्दकर अत्यन्त विह्वल होता हुआ बड़ी लम्बी सांस भरता है और चिरकाल तक कुछ कुछ ध्यान करता हुआ सूँडसे पृथ्वीको ताड़ित करता रहता है अर्थात् पृथिवीपर सूँड़ पटकता रहता है ॥२०॥ यद्यपि उसकी निरन्तर सैकड़ों प्रिय स्तोत्रोंसे स्तुति की जाती है तथापि वह न ग्रास ग्रहण करता है और न कानोंमें शब्द ही करता है अर्थात् कुछ भी सुनता नहीं है ॥२१॥ वह नेत्र बन्दकर दाँतोंके अग्रभाग पर सूँड़ रखे हुए ऐसा निश्चल खड़ा है मानो चिरकाल तक स्थिर रहनेवाला हाथीका चित्राम ही है ॥२२॥ क्या यह बनावटी हाथी है ? अथवा सचमुचका महागजराज है इस प्रकार उसके विषयमें लोगोंमें तर्क उत्पन्न होता रहता है ॥२३॥ मधुर वचनोंके अनुरोधसे यदि किसी तरह ग्रास ग्रहण कर भी लेता है तो वह उस मधुर ग्रासको मुख तक पहुँचनेके पहले ही छोड़ देता है ॥२४॥ वह त्रिपदी छेदकी लीलाको छोड़कर शोकसे युक्त होता हुआ किसी खम्भेमें कुछ थोड़ा अटककर सांस भरता हुआ खड़ा है ॥२५॥ समस्त शास्त्रोंके सत्कारसे जिनका मन अत्यन्त निर्मल हो गया है ऐसे प्रसिद्ध प्रसिद्ध वैद्योंके द्वारा भी इसके अभिप्रायका पता नहीं चलता ॥२६॥ जिसका चित्त किसी अन्य पदार्थमें अटक रहा है ऐसा यह हाथी बड़े आदरके साथ रचित अत्यन्त मनोहर संगीतको पहलेके समान नहीं सुनता है ॥२७॥ वह महान् आदरसे प्यार किये जाने पर भी मङ्गल मय कौतुक, योग, मन्त्र, विद्या और औषधि आदिके द्वारा स्वस्थताको प्राप्त नहीं हो रहा है ॥२८॥ वह मानको प्राप्त हुए मित्रके समान याचित होनेपर भी न विहारमें, न निद्रामें,

दुर्ज्ञानान्तरमीदृक् रहस्यं परमाद्भुतम् । किमेतदिति नो विद्मो गजस्य मनसि स्थितम् ॥३०॥
न शक्यस्तोषमानेतुं न च लोभं कदाचन । न याति क्रोधमप्येष दन्ती चित्रार्पितो यथा ॥३१॥
सकलस्यास्य राज्यस्य मूलमद्भुतविक्रमः । त्रिलोकभूषणो देव वर्तते करटीदृशः ॥३२॥
इति विज्ञाय देवोऽत्र प्रमाणं कृत्यवस्तुनि । निवेदनक्रियामात्रसारा ह्यस्मादृशां मतिः ॥३३॥

इन्द्रवज्रा

श्रुत्वेहितं नागपतेस्तदीदृक् पूर्वेहितात्यन्तविभिन्नरूपम् ।
जातौ नरेन्द्रावधिकं विचिन्तौ पद्माभलक्ष्मानिलयौ क्षणेन ॥३४॥

उपजातिः

आलानगेहान्निसृतः किमर्थं शमं पुनः केन गुणेन यातः[1] ।
कृणोसि कस्मादशनं न नाग इत्युद्यतिः पद्मरविर्बभूव ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्योक्ते पद्मपुराणे त्रिभुवनालङ्काराभिधानं नाम चतुरशीतितमं पर्व ॥८४॥

न घास उठानेमें और न जलमें ही इच्छा करता है ॥२९॥ जिसका जानना कठिन है ऐसा यह कौनसा परम अद्भुत रहस्य इस हाथीके मनमें स्थित है यह हम नहीं जानते ॥३०॥ यह हाथी न तो सन्तोषको प्राप्त हो सकता है न कभी लोभको प्राप्त होता है और न कभी क्रोधको प्राप्त होता है, यह तो चित्रलिखितके समान खड़ा है ॥३१॥ हे देव ! अद्भुत पराक्रमका धारी यह हाथी समस्त राज्यका मूल कारण है । हे देव ! यह त्रिलोकमण्डन ऐसा ही हाथी है ॥३२॥ हे देव ! इस प्रकार जानकर अब जो कुछ करना हो सो इस विषयमें आप ही प्रमाण हैं अर्थात् जो कुछ आप जानें सो करें क्योंकि हमारे जैसे लोगोंकी बुद्धि तो निवेदन करना ही जानती है ॥३३॥ इस प्रकार गजराजकी पूर्वचेष्टाओंसे अत्यन्त विभिन्न पूर्वोक्त चेष्टाको सुनकर राम लक्ष्मण राजा क्षण भरमें अत्यधिक चिन्तित हो उठे ॥३४॥ 'यह हाथी बन्धनके स्थानसे किसलिए बाहर निकला ? फिर किस कारण शान्तिको प्राप्त हो गया ? और किस कारण आहारको स्वीकृत नहीं करता है' इस प्रकार रामरूपी सूर्य अनेक वितर्क करते हुए उदित हुए ॥३५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य प्रणीत पद्मपुराणमें त्रिलोकमण्डन हाथीके शान्त होनेका वर्णन करनेवाला चौरासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥८४॥

---

१. जातः म० ।

पञ्चाशीतितमं पर्व

एतस्मिन्नन्तरे राजन् भगवान् देशभूषणः । कुलभूषणयुक्तश्च सम्प्राप्तो मुनिभिः समम् ॥१॥
अयोध्यशिखरावासीत् प्रतिमां चतुराननाम् । श्रितयोरुपसर्गोऽसौ जनितः पूर्ववैरिणा ॥२॥
एतल्लक्ष्मणवीराभ्यां प्रातिहार्ये कृते ततः । केवलज्ञानमुत्पन्नं लोकालोकावभासनम् ॥३॥
ततस्तुष्टेन तार्क्ष्येण भक्तिस्नेहमुपेयुषा[1] । रत्नास्त्रवाहनान्याभ्यां दत्तानि विविधानि वै ॥४॥
अप्रसाद्यशिखरत्वं प्राप्तौ संशयितौ रणे । चक्रतुर्विजयं शत्रोर्यतो राज्यमवापतुः ॥५॥
देवासुरस्तुतावेतौ तौ लोकत्रयविश्रुतौ । मुनीन्द्रौ नगरीमुख्यां प्राप्ताबुत्तरकोशलाम् ॥६॥
नन्दनप्रतिमे तौ च महेन्द्रोदयनामनि । उद्यानेऽवस्थितौ पूर्वं यथा सञ्जयनन्दनौ ॥७॥
महागणसमाकीर्णौ चन्द्रार्कप्रतिमाविमौ । सम्प्राप्तौ नगरीलोको विवेद परमोदयौ ॥८॥
ततः पद्मप्रभकेशौ भरतारिनिषूदनौ । एते वन्दारवो गन्तुं संयतेन्द्रान् समुद्यताः ॥९॥
आरुह्य वारणानुन्नानुत्कृष्टा भान्ति सद्गुणैः । जातिस्मरं पुरस्कृत्य त्रिलोकतिलकं शुभम् ॥१०॥
देवा इव प्रदेशं तं प्रस्थिताश्चारुचेतसः । कल्याणपर्वतौ यत्र स्थितौ निर्ग्रन्थसत्तमौ ॥११॥
कैकया कैकयी देवी कोशलेन्द्रात्मजा तथा । सुप्रजाश्चेति विख्यातास्तेषां श्रेणिक मातरः ॥१२॥
जिनशासनसद्भावाः साधुभक्तिपरायणाः । देवीशतसमाकीर्णा देव्याभा गन्तुमुद्यताः ॥१३॥

अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! इसी बीचमें अनेक मुनियोंके साथ-साथ देशभूषण और कुलभूषण केवली अयोध्यामें आये ॥१॥ वे देशभूषण कुलभूषण जिन्हें कि वंशस्थविल पर्वत पर चतुरानन प्रतिमा योगको प्राप्त होने पर उनके पूर्वभवके वैरीने उपसर्ग किया था और बाद राम-लक्ष्मणके द्वारा सेवा किये जाने पर जिन्हें लोकालोकको प्रकाशित करनेवाला केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था ॥२-३॥ तदनन्तर संतोषको प्राप्त हुए गरुडेन्द्रने भक्ति और स्नेहसे युक्त हो राम-लक्ष्मणके लिए नानाप्रकारके रत्न, अस्त्र और वाहन प्रदान किये थे ॥४॥ निरस्त्र होनेके कारण रणमें संशय अवस्थाको प्राप्त हुए राम-लक्ष्मणने जिनके प्रसादसे शत्रुको जीता था तथा राज्य प्राप्त किया था ॥५॥ देव और धरणेन्द्र जिनकी स्तुति कर रहे थे तथा तीनों लोकोंमें जिनकी प्रसिद्धि थी ऐसे वे मुनिराज देशभूषण तथा कुलभूषण नगरियोंमें प्रमुख अयोध्या नगरीमें आये ॥६॥ जिसप्रकार पहले संजय और नन्दन नामक मुनिराज आये थे उसी प्रकार आकर वे नन्दनवनके समान महेन्द्रोदय नामक वनमें ठहर गये ॥७॥ वे केवली, मुनियोंके महासंघसे सहित थे, चन्द्रमा और सूर्यके समान देदीप्यमान थे तथा परम अभ्युदयके धारक थे। उनके आते ही नगरीके लोगोंको इनका ज्ञान हो गया ॥८॥ तदनन्तर वन्दना करनेके अभिलाषी राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न ये चारों भाई उन केवलियोंके पास जानेके लिए उद्यत हुए ॥९॥ सूर्योदय होने पर उन्होंने नगरमें सर्वत्र घोषणा कराई। तदनन्तर उन्नत हाथियों पर सवार हो एवं जातिस्मरणसे युक्त त्रिलोकमण्डन हाथीको आगे कर देवोंके समान सुन्दर चित्तके धारक होते हुए वे सब उस स्थानकी ओर चले जहाँ कि कल्याणके पर्वतस्वरूप दोनों निर्ग्रन्थ मुनिराज विराजमान थे ॥१०-११॥ जिनका उत्तम अभिप्राय जिनशासनमें लग रहा था, जो साधुओंकी भक्ति करनेमें तत्पर थीं, सैकड़ों देवियाँ जिनके साथ थीं तथा देवाङ्गनाओंके समान जिनकी आभा थी ऐसी हे श्रेणिक ! उन चारों भाइयोंकी माताएँ कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी और सुप्रजा (सुप्रभा) भी जानेके लिए उद्यत हुईं

१. -मुपेयुषाम् म० ।

मुनिदर्शनतृष्णास्ता सुग्रीवप्रमुखा मुदा । विद्याधराः समायाता महाविभवसङ्गताः ॥१३॥
आतपत्रं मुनेर्दृष्ट्वा सकलोडुपसन्निभम् । उत्तीर्य पद्मनाभाद्या द्विरदेभ्यः समागताः ॥१५॥
कृताञ्जलिपुटाः [1]स्तुत्वा प्रणम्य च यथाक्रमम् । समर्च्य च मुनींस्तस्थुरात्मयोग्यासु भूमिषु ॥१६॥
शुश्रुवुश्च मुनेर्वाक्यं सुसमाहितचेतसः । संसारकारणध्वंसि धर्मशंसनतत्परम् ॥१७॥
अणुधर्मोऽग्रधर्मश्च श्रेयसः पदवी द्वयी । पारम्पर्येण तत्राद्या परा साक्षात्प्रकीर्तिता ॥१८॥
गृहाश्रमविधिः [2]पूर्वः महाविस्तारसङ्गतः । परो निर्ग्रन्थशूराणां कीर्तितोऽयन्महोदयः ॥१९॥
अनादिनिधने लोके यत्र लोभेन मोहिताः । जन्तवो दुःखमत्युग्रं प्राप्नुवन्ति कुयोनिषु ॥२०॥
धर्मो नाम परो बन्धुः सोऽयमेको [3]हितो महान् । मूलं यस्य दया शुद्धा फलं वक्तुं न शक्यते ॥२१॥
ईप्सितं[4] जन्तुना सर्वं लभ्यते धर्मसङ्गमात् । धर्मः पूज्यतमो लोके बुधा धर्मेण भाविताः ॥२२॥
दयामूलस्तु यो धर्मो महाकल्याणकारणम् । वृथाधर्मेषु सोऽन्येषु विद्यते नैव जातुचित् ॥२३॥
जिनेन्द्रविहिते सोऽयं मार्गे परमदुर्लभे । सदा सन्निहितः[5] येन त्रैलोक्याग्रमवाप्यते ॥२४॥
पातालेऽसुरनाथाद्या भोग्यां चक्रधरादयः । फलं शक्रादयः स्वर्गे परमं यस्य भुञ्जते ॥२५॥
तावत् प्रस्तावमासाद्य साधुं नारायणः स्वयम् । प्रणम्य शिरसाऽपृच्छदिति सङ्गतपाणिकः ॥२६॥
उपमृद्य प्रभो स्तम्भं नागेन्द्रः क्षोभमागतः । प्रशमं हेतुना केन सहसा पुनरागतः ॥२७॥
भगवन्निति संशान्तिमप्यपाकर्तुमर्हसि । ततो जगाद वचनं केवली देशभूषणः ॥२८॥

जो मुनिराजके दर्शन करनेकी तृष्णासे ग्रस्त थे तथा महावैभवसे सहित थे ऐसे सुग्रीव आदि विद्याधर भी हर्षपूर्वक वहाँ आये थे ॥१२-१४॥ पूर्णचन्द्रमाके समान मुनिराजका छत्र देखते ही रामचन्द्र आदि हाथियोंसे उतर कर पैदल चलने लगे ॥१५॥ सबने हाथ जोड़कर यथाक्रमसे मुनियोंकी स्तुति की, प्रणाम किया, पूजा की और तदनन्तर सब अपने-अपने योग्य भूमियोंमें बैठ गये ॥१६॥ उन्होंने एकाग्र चित्त होकर संसारके कारणोंको नष्ट करनेवाले एवं धर्मकी प्रशंसा करनेमें तत्पर मुनिराजके वचन सुने ॥१७॥ उन्होंने कहा कि अणुधर्म और पूर्णधर्म—अणुव्रत और महाव्रत ये दोनों मोक्षके मार्ग हैं इनमेंसे अणुधर्म तो परम्परासे मोक्षका कारण है, पर महाधर्म साक्षात् ही मोक्षका कारण कहा गया है ॥१८॥ पहला अणुधर्म महाविस्तारसे सहित है तथा गृहस्थाश्रममें होता है और दूसरा जो महाधर्म है वह अत्यन्त कठिन है तथा महाशूर वीर निर्ग्रन्थ साधुओंके ही होता है ॥१९॥ इस अनादिनिधन संसारमें लोभसे मोहित हुए प्राणी नरक आदि कुयोनियोंमें तीव्र दुःख पाते हैं ॥२०॥ इस संसारमें धर्म ही परम बन्धु है, धर्म ही महाहितकारी है। निर्मल दया जिसकी जड़ है उस धर्मका फल नहीं कहा जा सकता ॥२१॥ धर्मके समागमसे प्राणी समस्त इष्ट वस्तुओंको प्राप्त होता है। लोकमें धर्म अत्यन्त पूज्य है। जो धर्मकी भावनासे सहित हैं, लोकमें वही विद्वान् कहलाते हैं ॥२२॥ जो धर्म दयामूलक है वही महाकल्याणका कारण है। संसारके अन्य अधम धर्मोंमें वह दयामूलक धर्म कभी भी विद्यमान नहीं है अर्थात् उनसे वह भिन्न है ॥२३॥ वह दयामूलकधर्म, जिनेन्द्र भगवान्‌के द्वारा प्रणीत परम दुर्लभमार्गमें सदा विद्यमान रहता है जिसके द्वारा तीन लोकका अग्रभाग अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है ॥२४॥ जिस धर्मके उत्तम फलको पातालमें धरणेन्द्र आदि, पृथिवी पर चक्रवर्ती आदि और स्वर्गमें इन्द्र आदि भोगते हैं ॥२५॥ उसीसमय प्रकरण पाकर लक्ष्मणने स्वयं हाथ जोड़कर शिरसे प्रणामकर मुनिराजसे यह पूछा कि हे प्रभो ! त्रिलोकमण्डन नामक गजराज खम्भेको तोड़कर किस कारण क्षोभको प्राप्त हुआ और फिर किस कारण अकस्मात् ही शान्त हो गया ? ॥२६-२७॥ हे भगवन् ! आप मेरे इस संशयको दूर करनेके लिए योग्य हैं। तदनन्तर देशभूषण केवलीने निम्नप्रकार वचन कहे ॥२८॥

१. श्रुत्वा म० । २. पूर्वं म० । ३. हितः पुमान् म० । ४. इहितं म० । ५. सन्निहिते म० ।

बलोद्रेकादयं तुङ्गात् संक्षोभं परमं गतः । स्मृत्वा पूर्वभवं भूयः शमयोगमशिश्रियत् ॥२९॥
आसीदादौ युगेऽयोध्यानगर्यामुत्तमश्रुतिः । नाभिसो मरुदेव्याश्च निमित्तात्तनुमाश्रितः ॥३०॥
त्रैलोक्यक्षोभणं कर्म समुपार्ज्य महोदयः । प्रकटत्वं परिप्राप्तस्तिसृ देवेन्द्रभूतिभिः ॥३१॥
विन्ध्यहिमनगोत्तुङ्गस्तनीं[1] सागरमेखलाम् । पत्नीमिव निजां साध्वीं वरयां योऽसेवत क्षितिम् ॥३२॥
भगवान् वृषभेन्द्रोऽसौ सुरैरभ्यर्चनमस्कृतः । पुराऽरमत पुर्यस्यां दिवीव त्रिदशाधिपः ॥३३॥
श्रीमान्वृषभदेवोऽसौ द्युतिकान्तिसमन्वितः । लक्ष्मीश्रीकान्तिसम्पन्नः कल्याणगुणसागरः ॥३४॥
त्रिज्ञानी धीरगम्भीरो दृङ्मनोहारिचेष्टितः । अभिरामवपुः सत्त्वी प्रतापी परमोऽभवत् ॥३५॥
सौधर्मेन्द्रप्रधानैर्यैस्त्रिदशैरप्रजन्मनि । हेमरत्नघटैर्मेरावभिषिक्तः सुभक्तिभिः ॥३६॥
गुणान् कस्तस्य शक्नोति वक्तुं केवलिवर्जितः । ऐश्वर्यं प्रार्थ्यते यस्य सुरेन्द्रैरपि सन्ततम् ॥३७॥
कालं द्राघिष्ठमत्यन्तं भुक्त्वा श्रीविभवं परम् । अप्सरःपरमां वीक्ष्य तां नीलाञ्जनतर्कताम् ॥३८॥
स्तुतो लौकान्तिकैर्देवैः स्वयम्बुद्धो महेश्वरः । न्यस्य पुत्रशते राज्यं निष्क्रान्तो जगतां गुरुः ॥३९॥
उद्याने तिलकाभिख्ये प्रजाभ्यो यदसौ गतः । [2]प्रजागमिति तत्तेन लोके तीर्थं प्रकीर्तितम् ॥४०॥
संवत्सरसहस्रं स दिव्यं मेरुरिवाचलः । गुरुः प्रतिमया तस्थौ त्यक्ताशेषपरिग्रहः ॥४१॥
स्वामिभक्त्या समं तेन ये श्रामण्यमुपस्थिताः । षण्मासाभ्यन्तरे भग्ना दुःसहैस्ते परीषहैः ॥४२॥

उन्होंने कहा कि यह हाथी अत्यधिक पराक्रमकी उत्कटतासे पहले तो परम क्षोभको प्राप्त हुआ था और उसके बाद पूर्वभवका स्मरण होनेसे शान्तिको प्राप्त हो गया था ॥२९॥ इस कर्म-भूमिरूपी युगके आदिमें इसी अयोध्या नगरीमें राजा नाभिराज और रानी मरुदेवीके निमित्तसे शरीरको प्राप्तकर उत्तम नामको धारण करनेवाले भगवान् ऋषभदेव प्रकट हुए थे। उन्होंने पूर्व-भवमें तीन लोकको क्षोभित करनेवाले तीर्थङ्कर नाम कर्मका बन्ध किया था उसीके फलस्वरूप वे इन्द्रके समान विभूतिसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुए थे ॥३०-३१॥ विन्ध्याचल और हिमाचल ही जिसके उन्नत स्तन थे तथा समुद्र जिसकी करधनी थी ऐसी पृथिवीका जिन्होंने सदा अनुकूल चलनेवाली अपनी पतिव्रता पत्नीके समान सदा सेवन किया था ॥३२॥ तीनों लोक जिन्हें नमस्कार करते थे ऐसे वे भगवान् ऋषभदेव पहले इस अयोध्यापुरीमें उस प्रकार रमण करते थे जिस प्रकार कि स्वर्गमें इन्द्र रमण करता है ॥३३॥ वे श्रीमान् ऋषभदेव द्युति तथा कान्तिसे सहित थे, लक्ष्मी, श्री और कान्तिसे सम्पन्न थे, कल्याणकारी गुणोंके सागर थे, तीन ज्ञानके धारी थे, धीर और गम्भीर थे, नेत्र और मनको हरण करनेवाली चेष्टाओंसे सहित थे, सुन्दर शरीरके धारक थे, बलवान् थे और परम प्रतापी थे ॥३४-३५॥ जन्मके समय भक्तिसे भरे सौधर्मेन्द्र आदि देवोंने सुमेरु पर्वतपर सुवर्ण तथा रत्नमयी घटोंसे उनका अभिषेक किया था ॥३६॥ इन्द्र भी जिनके ऐश्वर्यकी निरन्तर चाह रखते थे उन ऋषभदेवके गुणोंका वर्णन केवली भगवान्को छोड़कर कौन कर सकता है ? ॥३७॥ बहुत लम्बे समय तक लक्ष्मीके उत्कृष्ट वैभवका उपभोग कर वे एक दिन नीलाञ्जना नामकी अप्सराको देख प्रतिबोधको प्राप्त हुए ॥३८॥ लौकान्तिक देवोंने जिनकी स्तुति की थी ऐसे महावैभवके धारी जगद्गुरु भगवान् ऋषभदेव अपने सौ पुत्रोंपर राज्यभार सौंपकर घरसे निकल पड़े ॥३९॥ यतश्च भगवान् प्रजासे निःस्पृह हो तिलकनामा उद्यानमें गये थे इसलिए लोकमें वह उद्यान प्रजाग इस नामका तीर्थ प्रसिद्ध हो गया ॥४०॥ वे भगवान् समस्त परिग्रहका त्यागकर एक हजार वर्ष तक मेरुके समान अचल प्रतिमा योगसे खड़े रहे अर्थात् एक हजार वर्ष तक उन्होंने कठिन तपस्या की ॥४१॥ स्वामिभक्तिके कारण उनके साथ जिन चार हजार राजाओंने मुनिव्रतका धारण किया था वे छः महीनेके भीतर ही दुःसह परीषहोंसे पराजित हो गये ॥४२॥

---

१. स्थलीं म० । २. प्रयाग म० ।

ते भग्ननिश्चयाः क्षुद्राः स्वेच्छाविरचितव्रताः । [1]वल्किनः फलमूलाद्यैर्वालवृत्तिमुपाश्रिताः ॥४३॥
तेषां मध्ये महामानो मरीचिरिति यो ह्यसौ । परिव्राजकमार्गस्य कापाय्या सकषायधीः ॥४४॥
सुप्रभस्य विनीतायां सूर्यचन्द्रोदयौ सुतौ । प्रह्लादनाख्यमहिषीकुक्षिभूमिसहोद्भवौ ॥४५॥
स्वामिना सह निष्क्रान्तौ प्रथितौ सर्वविष्टपे । भग्नौ श्रामण्यतोऽत्यन्तप्रीतौ तं शरणं गतौ ॥४६॥
मरीचिशिष्ययोः कूटप्रतापक्षमयोर्नयोः । तयोः शिष्यगणो जातः परिव्राड्वृंदितो महान् ॥४७॥
कुधर्माचरणाद् भ्रान्तौ संसारं तौ चतुर्गतिम् । सहितौ पूरिता खोर्वी ययोस्त्यक्तकलेवरैः ॥४८॥
ततश्चन्द्रोदयः कर्मवशान्नागाभिधे पुरे । राज्ञो हरिपतेः पुत्रो मनोलूतासमुद्भवः ॥४९॥
जातः कुलंकराभिख्यः प्राप्तश्च नृपतां पराम् । पूर्वस्नेहानुबन्धेन भावितेन भवान् बहून् ॥५०॥
सूर्योदयः पुरेऽत्रैव स्यातः श्रुतिरतः श्रुती । विश्वाङ्के[2]ऽग्निकुण्डायां जातोऽभूत्तत्पुरोहितः ॥५१॥
कुलङ्करोऽन्यदा गोत्रसम्पत्त्या कृतसेवनान् । तापसान् सेवितुं गच्छन्नपश्यन्मुनिपुङ्गवम् ॥५२॥
अभिनन्दितसंज्ञेन सेनाऽसौ नतिमागतः । जगद्धितविनेत्रेण सर्वलोकहितैषिणा ॥५३॥
यत्र त्वं प्रस्थितस्तत्र [4]तव चेभ्यः पितामहः । तापसः सर्पतां प्राप्तः काष्ठमध्येऽवतिष्ठते ॥५४॥
काष्ठे विपाट्यमाने तं तापसेन गतो भवान् । रक्षिष्यति[5] गतस्यास्य तत्र सर्वं तथाऽभवत् ॥५५॥

उन क्षुद्र पुरुषोंने अपना निश्चय तोड़ दिया, स्वेच्छानुसार नाना प्रकारके व्रत धारण कर लिये और वे अज्ञानी जैसी चेष्टाको प्राप्त हो फल-मूल आदिका भोजन करने लगे ॥४३॥

उन भ्रष्ट राजाओंके बीच महामानी, कषायले—गेरुसे रँगे वस्त्रोंको धारण करनेवाला तथा कषाय युक्त बुद्धिसे युक्त जो मरीचि नामका साधु था उसने परिव्राजकका मत प्रचलित किया ॥४४॥ इसी विनीता नगरीमें एक सुप्रभ नामका राजा था उसकी प्रह्लादना नामकी स्त्रीकी कुक्षिरूपी भूमिसे उत्पन्न हुए महामणियोंके समान सूर्योदय और चन्द्रोदय नामके दो पुत्र थे ॥४५॥ ये दोनों पुत्र समस्त संसारमें प्रसिद्ध थे। उन्होंने भगवान् आदिनाथके साथ ही दीक्षा धारण की थी परन्तु मुनिपदसे भ्रष्ट होकर वे पारस्परिक तीव्र प्रीतिके कारण अन्तमें मरीचिकी शरणमें चले गये ॥४६॥ मायामयी तपश्चरण और व्रतको धारण करनेवाले मरीचिके उन दोनों शिष्योंके अनेक शिष्य हो गये जो परिव्राट् नामसे प्रसिद्ध हुए ॥४७॥ मिथ्याधर्मका आचरण करनेसे वे दोनों चतुर्गति रूप संसारमें साथ-साथ भ्रमण करते रहे। उन दोनों भाइयोंने पूर्वभवोंमें जो शरीर छोड़े थे उनसे समस्त पृथिवी भर गई थी ॥४८॥

तदनन्तर चन्द्रोदयका जीव कर्मके वशीभूत हो नाग नामक नगरमें राजा हरिपतिके मनोलूता नामक रानीसे कुलंकर नामक पुत्र हुआ जो आगे चलकर उत्तम राज्यको प्राप्त हुआ। और सूर्योदयका जीव इसी नगरमें विश्वाङ्क नामक ब्राह्मणके अग्निकुण्डा नामकी स्त्रीसे श्रुतिरत नामका विद्वान् पुत्र हुआ। अनेक भवोंमें वृद्धिको प्राप्त हुए पूर्वस्नेहके संस्कारसे श्रुतिरत राजा कुलंकरका पुरोहित हुआ ॥४९-५१॥ किसी समय राजा कुलंकर गोत्रपरम्परासे जिनकी सेवा होती आ रही थी ऐसे तपस्वियोंकी सेवा करनेके लिए जा रहा था सो मार्गमें उसने किन्हीं दिगम्बर मुनिराजके दर्शन किये ॥५२॥ उन मुनिराजका नाम अभिनन्दित था, वे अवधिज्ञानरूपी नेत्रसे सहित थे तथा सब लोगोंका हित चाहनेवाले थे। जब राजा कुलंकरने उन्हें नमस्कार किया तब उन्होंने कहा कि हे राजन! तू जहाँ जा रहा है वहाँ तेरा सम्पन्न पितामह जो तापस हो गया था मरकर साँप हुआ है और काष्ठके मध्यमें विद्यमान है। एक तापस उस काष्ठको चीर रहा है सो तू जाकर उसकी रक्षा करेगा। जब कुलंकर वहाँ गया तब मुनिराजके कहे अनुसार ही सब

१. वल्किनः म०। २. ऽनेत्यतोऽ-म०। ३. विश्वाहेना-म०, क०। ४. तापसेभ्यः म०। तव च + इभ्यः। ५. रक्षिष्यसि म०, क०।

कदागमसमापन्नान् दृष्ट्वाऽसौ तापसांस्ततः । प्रबोधमुत्तमं प्राप्तः श्रामण्यं कर्तुमुद्यतः ॥५६॥
वसुपर्वतकश्रुत्या मूढश्रुतिरतस्ततः । तममोहयदेवं च पापकर्मा पुनर्जगौ ॥५७॥
गोत्रक्रमागतो राजन् धर्मोऽयं तव वैदिकः । ततो हरिपतेः पुत्रो यदि त्वं तत्समाचर ॥५८॥
नाथ वेदविधिं कृत्वा सुतं न्यस्य निजे पदे । करिष्यसि हितं पश्चात् प्रसादः क्रियतां मम ॥५९॥
एवमेतदथाभीष्टा श्रीदामेति प्रकीर्तिता । महिष्यस्यन्तरायस्य नूनं राज्ञाऽन्यसङ्गता ॥६०॥
ज्ञातास्मि येन वैराग्यात् प्रव्रज्यां कर्तुमिच्छति । प्रव्रज्येदपि किं नो वा को जानाति मनोगतिम् ॥६१॥
तस्माद्वधापादयाम्येनं विषेणेत्यनुचिन्त्य सा । पुरोहितान्वितं पापा कुलङ्करममारयत् ॥६२॥
ततोऽनुध्यानमात्रेण पशुघातेन पापतः । कालप्राप्तावभूतां तौ निकुञ्जे शशकौ वने ॥६३॥
भेकत्वं मूषकत्वं च बर्हिणत्वं पृदाकुताम् । हरित्वं च पुनः प्राप्तौ कर्मानिलजवेरितौ ॥६४॥
पूर्वश्रुतिरतौ हस्ती दर्दुरश्चेतरोऽभवत् । तस्याक्रान्तः स पादेन चकारासुविमोचनम् ॥६५॥
वर्षाभूत्वं पुनः प्राप्तः शुष्के सरसि भक्षितः । काकैः कुक्कुटतां प्राप्तो मार्जारस्तं तु हत्यसौ ॥६६॥
कुलङ्करचरो जन्मत्रितयं कुक्कुटोऽभवत् । भक्षितो द्विजपूर्वेण मार्जारेण नृजन्मना ॥६७॥
राजद्विजचरौ मत्स्यशिशुमारत्वमागतौ । धृतौ जालेन कैवर्तैः कुठारेणऽऽहतौ मृतौ ॥६८॥
शिशुमारस्तयोरुक्तकाबद्धाशतनमोऽभवत् । विप्रोऽसौ रमणो मत्स्यो द्विजो राजगृहे तयोः ॥६९॥

हुआ ॥५३-५५॥ तदनन्तर उन तापसोंको मिथ्याशास्त्रसे युक्त देखकर राजा कुलंकर उत्तम प्रबोधको प्राप्त हो मुनिपद धारण करनेके लिए उद्यत हुआ ॥५६॥

अथानन्तर राजा वसु और पर्वतके द्वारा अनुमोदित 'अजैर्यष्टव्यम्' इस श्रुतिसे मोहको प्राप्त हुए पापकर्मा श्रुतिरत नामा पुरोहितने उन्हें मोहमें डालकर इस प्रकार कहा कि हे राजन्! वैदिक धर्म तुम्हारी वंशपरम्परासे चला रहा है इसलिए यदि तुम राजा हरिपतिके पुत्र हो तो उसी वैदिक धर्मका आचरण करो ॥५७-५८॥ हे नाथ! अभी तो वेदमें बताई हुई विधिके अनुसार कार्य करो फिर पिछली अवस्थामें अपने पद पर पुत्रको स्थापित कर आत्माका हित करना। हे राजन्! मुझपर प्रसाद करो—प्रसन्न होओ ॥५९॥

अथानन्तर राजा कुलंकरने 'यह बात ऐसी ही है' यह कह कर पुरोहितकी प्रार्थना स्वीकृत की। तदनन्तर राजाकी श्रीदामा नामकी प्रिय स्त्री थी जो परपुरुषासक्त थी। उसने उक्त घटनाको देखकर विचार किया कि जान पड़ता है इस राजाने मुझे अन्य पुरुषमें आसक्त जान लिया है इसीलिए यह विरक्त हो दीक्षा लेना चाहता है। अथवा यह दीक्षा लेगा या नहीं लेगा इसकी मनकी गतिको कौन जानता है? मैं तो इसे विष देकर मारती हूँ ऐसा विचार कर उस पापिनीने पुरोहित सहित राजा कुलंकरको मार डाला ॥६०-६२॥ तदनन्तर पशुघातका चिन्तवन करने मात्रके पापसे वे दोनों मर कर निकुञ्ज नामक वनमें खरगोश हुए ॥६३॥ तदनन्तर कर्मरूपी वायुके वेगसे प्रेरित हो क्रमसे मेंढक, चूहा, मयूर, अजगर और मृग पर्यायको प्राप्त हुए ॥६४॥ तत्पश्चात् श्रुतिरत पुरोहितका जीव हाथी हुआ और राजा कुलंकरका जीव मेंढक हुआ सो हाथीके पैरसे दबकर मेंढक मृत्युको प्राप्त हुआ ॥६५॥ पुनः सूखे सरोवरमें मेंढक हुआ सो कौओंने उसे खाया। तदनन्तर मुर्गा हुआ और हाथीका जीव मार्जार हुआ ॥६६॥ सो मार्जारने मुर्गाका भक्षण किया। इस तरह कुलंकरका जीव तीन भव तक मुर्गा हुआ और पुरोहितका जीव जो मार्जार था वह मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ सो उसने उस मुर्गाको खाया ॥६७॥ तदनन्तर राजा और पुरोहितके जीव क्रमसे मच्छ और शिशुमार अवस्थाको प्राप्त हुए। सो धीवरोंने जालमें फँसाकर उन्हें पकड़ा तथा कुल्हाड़ोंसे काटा जिससे मरणको प्राप्त हुए ॥६८॥ तदनन्तर उन दोनोंमें जो शिशुमार था वह

---

१. -ऽनुध्यान -म०, क० । २. सर्पताम् । ३. कुरुत्वं म० । ४. मण्डूकताम् । ५. कुक्कुटोऽ- म० ।

निःस्वत्वेनाक्षरत्वे च सति जन्तुद्विपात्[1] पशुः । रमणः सम्प्रधार्यैवं वेदार्थी निःसृतो गृहात् ॥७०॥
क्षोणीं पर्यटता तेन गुरुवेश्मसु शिक्षिताः । चत्वारः साङ्गका वेदाः प्रस्थितश्च पुनर्गृहम् ॥७१॥
मागधं नगरं प्राप्तो भ्रातृदर्शनलालसः । भास्करेऽस्तङ्गते चासौ व्योम्नि मेघान्धकारिते ॥७२॥
नगरस्य बहिर्यक्षनिलये वा समाश्रितः । क्षोणीध्वानस्य मध्यस्थे तत्र चेदं प्रवर्त्तते ॥७३॥
विनोदस्याङ्गना तस्य समिधास्या कुशीलिका[2] । अशोकदत्तसंकेता तं यक्षालयमायता ॥७४॥
अशोकदत्तको मार्गे गृहीतो दण्डपाशिकैः । विनोदोऽपि गृहीतासिर्यावत्पदमागतः ॥७५॥
सद्भावमन्त्रणं श्रुत्वा समिधा क्रोधसंगिना । सायकेन विनोदेन रमणः प्रासुकीकृतः ॥७६॥
विनोदो दयितायुक्तो हृष्टः प्रच्छन्नपापकः । गृहं गतः पुनस्तौ च संसारं पुरुमाटतुः ॥७७॥
महिषत्वमितोऽरण्ये विनोदो रमणः पुनः । ऋक्षौ बभूव निश्चक्षुर्दग्धौ शालवने च तौ ॥७८॥
जातौ गिरिवने व्याधौ सूतौ च हरिणौ पुनः । तयोर्बन्धुजनत्रासादिशो यातो यथायथम् ॥७९॥
जीवन्तावेव [3]तावाप्तौ [4]निषादैः कान्तलोचनौ । स्वयम्भूस्तिसृभो राजा विमलं वन्दितुं गतः ॥८०॥
सुरासुरैः समं नत्वा जिनेन्द्रं समहर्द्धिकः । प्रत्यागच्छन्ददर्शैतौ स्थापितौ च जिनालये ॥८१॥

मरकर राजगृह नगरमें ब्रह्मशा नामक पुरुष और उसका नामक स्त्रीके विनोद नामका पुत्र हुआ तथा जो मच्छ था वह भी कुछ समय बाद उसी नगरमें तथा उन्हीं दम्पतीके रमण नामका पुत्र हुआ ॥६६॥ दोनों ही अत्यन्त दरिद्र तथा मूर्ख थे इसलिए रमणने विचार किया कि अत्यन्त दरिद्रता अथवा मूर्खताके रहते हुए मनुष्य मानो दो पैर वाला पशु ही है । ऐसा विचारकर वह वेद पढ़नेकी इच्छासे घरसे निकल पड़ा ॥७०॥ तदनन्तर पृथिवीमें घूमते हुए उसने गुरुओंके घर जाकर अङ्गों सहित चारों वेदोंका अध्ययन किया । अध्ययनके बाद वह पुनः अपने घर की ओर चला ॥७१॥ जिसे भाईके दर्शनकी लालसा लग रही थी ऐसा रमण चलता-चलता जब सूर्यास्त हो गया था और आकाशमें मेघोंमें अन्धकार छा रहा था तब राजगृह नगर आया ॥७२॥ वहाँ वह नगरके बाहर एक पुराने बगीचामें जो यक्षका मन्दिर था उसमें ठहर गया । वहाँ निम्न प्रकार घटना हुई ॥७३॥ रमणका जो भाई विनोद राजगृह नगरमें रहता था उसकी स्त्रीका नाम समिधा था । यह समिधा दुराचारिणी थी सो अशोकदत्त नामक जारका संकेत पाकर उसी यक्ष-मन्दिरमें पहुँची जहाँ कि रमण ठहरा हुआ था ॥ ७४॥ अशोकदत्तको मार्गमें कोतवालने पकड़ लिया इसलिए वह संकेतके अनुसार समिधाके पास नहीं पहुँच सका । इधर समिधाका असली पति विनोद तलवार लेकर उसके पीछे-पीछे गया ॥७५॥ वहाँ समिधाके साथ रमणका सद्भावपूर्ण वार्तालाप सुन विनोदने क्रोधित हो रमणको तलवारसे निष्प्राण कर दिया ॥७६॥

तदनन्तर प्रच्छन्न पापी विनोद हर्षित होता हुआ अपनी स्त्रीके साथ घर आया । उसके बाद वे दोनों दीर्घकाल तक संसारमें भटकते रहे ॥७७॥ तत्पश्चात् विनोदका जीव तो वनमें भैंसा हुआ और रमणका जीव उसी वनमें अन्धा रीछ हुआ सो दोनों ही उस शालवनमें जलकर मरे ॥७८॥ तदनन्तर दोनों ही गिरिवनमें व्याध हुए फिर मरकर हरिण हुए । उन हरिणोंके जो माता पिता आदि बन्धुजन थे वे भयके कारण दिशाओंमें इधर-उधर भाग गये । दोनों बच्चे अकेले रह गये । उनके नेत्र अत्यन्त सुन्दर थे इसलिए व्याधोंने उन्हें जीवित ही पकड़ लिया । अथानन्तर तीसरा नारायण राजा स्वयंभूति श्रीविमलनाथ स्वामीके दर्शन करनेके लिए गया ॥७९-८०॥ बहुत भारी ऋद्धिको धारण करनेवाला राजा स्वयंभू जब सुरों और असुरोंके साथ जिनेन्द्रदेवकी वन्दना करके लौट रहा था तब उसने उन दोनों हरिणोंको देखा सो व्याधोंके

१. पादद्वयधारकः पशुः इत्यर्थः । २. कुशीलकः म० । ३. तौ + आप्तौ इतिच्छेदः । तावप्तौ म० । ४. विषादैः म०, निषादैः व्याधैः ।

संयतान्[1] तत्र पश्यन्तौ भक्षयन्तौ यथेप्सितम् । अन्नं राजकुले प्राप्तौ हरिणौ परमां धृतिम् ॥८२॥
आयुष्येषः परिक्षीणे लब्धमृत्युः समाधिना । सुरलोकमितोऽन्योऽपि तिर्यक्षु पुनरभ्रमत् ॥८३॥
ततः कथमपि प्राप कर्मयोगान्मनुष्यताम् । विनोदचरसारङ्गः स्वप्ने राज्यमिवोदितम् ॥८४॥
जम्बूद्वीपस्य भरते काम्पिल्यनगरे धनी । द्वाविंशतिप्रमाणाभिर्हेमकोटिभिरर्जितः ॥८५॥
अमुष्य धनदाङ्कस्य वणिजो रमणोऽमरः । च्युतो भूषणनामाऽभूद् वारुण्यां तनयः शुभः ॥८६॥
नैमित्तेनायमादिष्टः प्रव्रजिष्यत्ययं ध्रुवम् । श्रुत्वैवं धनदो लोकाद्भृशं दुर्हृतमानसः ॥८७॥
सत्पुत्रप्रेमसक्तेन तेन वेश्म निधापितम् । योग्यं सर्वक्रियायोगे यत्र तिष्ठति भूषणः ॥८८॥
सेव्यमानो वरस्त्रीभिर्वस्त्राहारविलेपनैः । विविधैर्ललितं चक्रे सुन्दरं तत्र भूषणः ॥८९॥
नैक्षिष्ट भानुमुदयन्तं नास्तं यान्तं च नोडुपम्[2] । स्वप्नेऽप्यसौ गतौ भूमिं गृहशैलस्य पञ्चमीम् ॥९०॥
मनोरथशतैर्लब्धः पुत्रोऽसावेक एव हि । पूर्वस्नेहानुबन्धेन दयितो जीवितादपि ॥९१॥
धनदः सोदरः पूर्वं भूषणस्य पिताऽभवत् । विचित्रं खलु संसारे प्राणिनां नटचेष्टितम् ॥९२॥
तावत्सप्राभृते श्रुत्वा देवदुन्दुभिनिस्वनम् । दृष्ट्वा देवागमं श्रुत्वा शब्दं चाऽभूद् विबुद्धवान् ॥९३॥
स्वभावान्मृदुचेतस्कः सद्धर्माचारतत्परः । महाप्रमोदसम्पन्नः करकुड्मलमस्तकः ॥९४॥

पाससे लेकर उसने उन्हें जिनमन्दिरमें रखवा दिया ॥८१॥ वहाँ मुनियोंके दर्शन करते और राजदरबारसे इच्छानुकूल भोजन ग्रहण करते हुए दोनों हरिण परम धैर्यको प्राप्त हुए ॥८२॥ उन दोनों हरिणोंमें एक हरिण आयु क्षीण होनेपर समाधिमरणकर स्वर्ग गया और दूसरा तिर्यञ्चोंमें भ्रमण करता रहा ॥८३॥

तदनन्तर विनोदका जीव जो हरिण था उसने कर्मयोगसे किसी तरह मनुष्य पर्याय प्राप्त की मानो स्वप्नमें राज्य ही उसे मिल गया हो ॥८४॥ अथानन्तर जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें काम्पिल्य नामक नगरके मध्य बाईस करोड़ दीनारका धनी एक धनद नामका वैश्य रहता था सो रमणका जीव मरकर जो देव हुआ था वह यहाँसे च्युत हो उसकी वारुणी नामक स्त्रीसे भूषण नामका उत्तम पुत्र हुआ ॥८५-८६॥ किसी निमित्तज्ञानीने धनद वैश्यसे कहा कि तेरा यह पुत्र निश्चित ही दीक्षा धारण करेगा सो निमित्तज्ञानीके वचन सुन धनद संसारसे उद्विग्नचित्त रहने लगा ॥८७॥ उस उत्तम पुत्रकी प्रीतिसे युक्त धनद सेठने एक ऐसा घर बनवाया जो सब कार्य करनेके योग्य था। उसी घरमें उसका भूषण नामा पुत्र रहता था। भावार्थ—उसने सब प्रकारकी सुविधाओंसे पूर्ण महल बनवाकर उसमें भूषण नामक पुत्रको इसलिए रक्खा कि कहीं बाहर जानेपर किसी मुनिको देखकर वह दीक्षा न ले ले ॥८८॥ उत्तमोत्तम स्त्रियाँ नाना प्रकारके वस्त्र आहार और विलेपन आदिके द्वारा जिसकी सेवा करती थी ऐसा भूषण वहाँ सुन्दर चेष्टाएँ करता था ॥८९॥ वह सदा अपने महलरूपी पर्वतके पाँचवें खण्डमें रहता था इसलिए उसने कभी स्वप्नमें भी न तो उदित हुए सूर्यको देखा था और न अस्त होता हुआ चन्द्रमा ही देखा था ॥९०॥ धनद सेठने सैकड़ों मनोरथोंके बाद यह एक ही पुत्र प्राप्त किया था इसलिए वह उसे पूर्व स्नेहके संस्कारवश प्राणोंसे भी अधिक प्यारा था ॥९१॥ धनद, पूर्वभवमें भूषणका भाई था अब इस भवमें पिता हुआ सो ठीक ही है क्योंकि संसारमें प्राणियोंकी चेष्टाएँ नटकी चेष्टाओंके समान विचित्र होती हैं ॥९२॥ तदनन्तर किसी दिन रात्रि समाप्त होते ही भूषणने देव दुन्दुभिका शब्द सुना, देवोंका आगमन देखा और उनका शब्द सुना जिससे वह विबोधको प्राप्त हुआ ॥९३॥ वह भूषण स्वभावसे ही कोमलचित्त था, समीचीन धर्मका आचरण करनेमें तत्पर था, महाहर्षसे युक्त था तथा उसने दोनों हाथ जोड़कर मस्तकसे लगा रक्खे थे ॥९४॥

---

१. सङ्गतौ म० । २. चन्द्रम् ।

श्रीधरस्य मुनीन्द्रस्य वन्दनार्थं त्वरान्वितः । सोपानेऽवतरन्दष्टः सोऽहिना तमुमत्यजत् ॥९५॥
माहेन्द्रस्वर्गमारुह्यरयुतो द्वीपे च पुष्करे । चन्द्रादित्यपुरे जातः प्रकाशयशसः सुतः ॥९६॥
माताऽस्य माधवीत्यासीत् स जगद्द्युतिसंज्ञितः । राजलक्ष्मीं परिप्राप्तः परमां यौवनोदये ॥९७॥
संसारात् परमं भीरुरसौ स्थविरमन्त्रिभिः । उपदेशं प्रयच्छद्भिः राज्यं कृच्छ्रेण कार्यते ॥९८॥
कुलक्रमागतं वत्स राज्यं पालय सुन्दरम् । पालितेऽस्मिन् समस्तेयं सुखिनी जायते प्रजा ॥९९॥
तपोधनान् स राज्यस्थः साधून् सन्तर्प्य सन्ततम् । गत्वा देवकुरुं काले कल्पमैशानमाश्रितः ॥१००॥
पल्योपमान् बहून् तत्र देवीजनसमावृतः । नानारूपधरो भोगान् बुभुजे परमद्युतिः ॥१०१॥
च्युतो जम्बूमति द्वीपे विदेहे मेरुपश्चिमे । रत्नाख्या[1] बालहरिणी महिष्यश्चक्रवर्तिनः ॥१०२॥
बभूव तनयस्तस्य सर्वलोकसमुत्सवः । अभिरामोऽभिनामाभ्यां महागुणसमुच्चयः ॥१०३॥
महावैराग्यसम्पन्नं प्रव्रज्याभिमुखं च तम् । ऐश्वर्येऽयोजयच्चक्री कृतवीवाहकं बलात् ॥१०४॥
त्रीणि नारीसहस्राणि सततं गुणचर्चितम् । लालयन्ति स्म यत्नेन वारिस्थमिव वारणम् ॥१०५॥
वृतस्ताभिरसौ मेने रतिसौख्यं विषोपमम् । श्रामण्यं केवलं कर्तुं न लेभे शान्तमानसः ॥१०६॥
असिधारावतं तीव्रं तासां मध्यगतो विभुः । चकार हारकेयूरमुकुटादिविभूषितः ॥१०७॥
स्थितो वरासने श्रीमान् वनिताभ्यः समन्ततः । उपदेशं ददौ जैनधर्मशंसनकारिणम् ॥१०८॥

वह श्रीधर मुनिराजको वन्दनाके लिए शीघ्रतासे सीढ़ियोंपर उतरता चला आ रहा था कि साँपके काटनेसे उसने शरीर छोड़ दिया ॥९५॥ वह मरकर माहेन्द्र नामक चतुर्थ स्वर्गमें उत्पन्न हुआ। वहाँसे च्युत होकर पुष्करद्वीपके चन्द्रादित्य नामक नगरमें राजा प्रकाशयशका पुत्र हुआ। माधवी इसकी माता थी और स्वयं उसका जगद्द्युति नाम था। यौवनका उदय होनेपर वह अत्यन्त श्रेष्ठ राज्यलक्ष्मीको प्राप्त हुआ ॥९६-९७॥ वह संसारसे अत्यन्त भयभीत रहता था, इसलिए वृद्ध मन्त्री उपदेश दे देकर बड़ी कठिनाईसे उससे राज्य कराते थे ॥९८॥ वृद्ध मन्त्री उससे कहा करते थे कि हे वत्स ! कुलपरम्परासे आये हुए इस सुन्दर राज्यका पालन करो क्योंकि राज्यका पालन करनेसे ही समस्त प्रजा सुखी होती है ॥९९॥ भूषण, राज्यकार्यमें स्थिर रहता हुआ सदा तपस्वी मुनियोंको आहारादिसे सन्तुष्ट रखता था। अन्तमें वह मरकर देवकुरु नामा भोगभूमिमें गया और वहाँसे मरकर ऐशान स्वर्गमें उत्पन्न हुआ ॥१००॥ वहाँ परम कान्ति को धारण करनेवाले उस भूषणके जीवने देवीजनोंसे आवृत होकर तथा नानारूपके धारक हो अनेक पल्यों तक भोगोंका उपभोग किया ॥१०१॥ वहाँसे च्युत हो जम्बूद्वीपके पश्चिम विदेह क्षेत्रमें अचल चक्रवर्तीकी बालमृगीके समान सरल, रत्ना नामकी रानीके सब लोगोंको आनन्दित करनेवाला महागुणोंका धारी पुत्र हुआ। वह पुत्र शरीर तथा नाम दोनोंसे ही अभिराम था अर्थात् 'अभिराम' इस नामका धारी था और शरीरसे अत्यन्त सुन्दर था ॥१०२-१०३॥ अभिराम महावैराग्यसे सहित था तथा दीक्षा धारण करनेके लिए उद्यत था परन्तु चक्रवर्तीने उसका विवाह कर उसे जबर्दस्ती ऐश्वर्यमें-राज्यपालनमें नियुक्त कर दिया ॥१०४॥ सदा तीन हजार स्त्रियाँ, जलमें स्थित हाथीके समान उस गुणी पुत्रका सावधानी पूर्वक लालन करती थीं ॥१०५॥ उन सब स्त्रियोंसे घिरा हुआ अभिराम, रतिसम्बन्धी सुखको विषके समान मानता था और शान्त चित्त हो केवल मुनिव्रत धारण करनेके लिए उत्कण्ठित रहता था परन्तु पिताकी परतन्त्रतासे उसे वह प्राप्त नहीं कर पाता था ॥१०६॥ उन सब स्त्रियोंके बीचमें बैठा तथा हार केयूर मुकुट आदिसे विभूषित हुआ वह अत्यन्त कठिन असिधारा व्रतका पालन करता था ॥१०७॥ जिसे चारों ओरसे स्त्रियाँ घेरे हुई थीं ऐसा वह श्रीमान् अभिराम, उत्तम आसनपर बैठकर उन सबके

१. रत्नाख्यान् ब० । २. महिष्यः ब० । ३. विवाहकं म० ।

चिरं संसारकान्तारे भ्राम्यता पुण्यकर्मतः । मानुष्यकमिदं कृच्छ्रात् प्राप्यते प्राणधारिणा ॥१०६॥
जानानः को जनः कूपे क्षिपति स्वं महाशयः । विषं वा कः पिबेत् को वा भृगौ निद्रां निषेवते ॥११०॥
को वा रत्नेप्सया नाग मस्तकं पाणिना स्पृशेत् । विनाशकेषु कामेषु धृतिर्जायेत कस्य वा ॥१११॥
सुकृतासक्तिरेकैव श्लाघ्या मुक्तिसुखावहा । जानतां चञ्चलेऽत्यन्तं जीविते निस्पृहात्मनाम् ॥११२॥
एवमाद्या गिरः श्रुत्वा परमार्थोपदेशिनीः । उपशान्ता स्त्रियः शक्त्या[1] नियमेषु ररंजिरे ॥११३॥
राजपुत्रः सुदेहेऽपि स्वकीये रागवर्जितः । चतुर्थादिनिराहारैः कर्मकालुष्यमक्षिणोत् ॥११४॥
तपसा च विचित्रेण समाहितमना विभुः । शरीरं तनुतां निन्ये ग्रीष्मादित्य इवोदकम् ॥११५॥
चतुःषष्टिसहस्राणि वर्षाणां स सुदर्शनः । अकम्पितमना धीरस्तपश्चक्रेऽतिदुःसहम् ॥११६॥
पञ्चप्रणामसंयुक्तं समाधिमरणं श्रितः । अशिश्रियत् सुदेवत्वं कल्पे ब्रह्मोत्तराभिधे ॥११७॥
असौ धनदपूर्वस्तु जीवः संसृत्य योनिषु । पोदने नगरे जज्ञे जम्बूभरतदक्षिणे ॥११८॥
[3]शकुनाग्निमुखास्तस्य माहनौ जन्मकारणम् । नाम्ना मृदुमतिश्चासौ व्यर्थेन परिभाषितः ॥११९॥
द्यूताविनयसक्तात्मा रथ्यारेणुसमुक्षितः । नानापराधवद्वेष्यः स बभूव दुरीहितः ॥१२०॥
लोकोपालम्भखिन्नाभ्यां पितृभ्यां स निराकृतः । पर्यटन्य धरणीं प्राप यौवने पोदनं पुनः ॥१२१॥

लिए जैनधर्मकी प्रशंसा करनेवाला उपदेश देता था ॥१०८॥ वह कहा करता था इस संसाररूपी अटवीमें चिरकालसे भ्रमण करनेवाला प्राणी पुण्यकर्मोदयसे बड़ी कठिनाईसे इस मनुष्य भवको प्राप्त होता है ॥१०९॥ उदार अभिप्रायको धारण करनेवाला कौन मनुष्य जान-बूझकर अपने आपको कुएँमें गिरता है ? कौन मनुष्य विषपान करता है ? अथवा कौन मनुष्य पहाड़की चोटीपर शयन करता है ? ॥११०॥ अथवा कौन मनुष्य रत्न पानेकी इच्छासे नागके मस्तकको हाथसे छूता है ? अथवा विनाशकारी इन इन्द्रियोंके विषयोंमें किसे कब सन्तोष हुआ है ? ॥१११॥ अत्यन्त चञ्चल जीवनमें जिनकी स्पृहा शान्त हो चुकी है ऐसे मनुष्योंकी जो एक पुण्यमें प्रशंसनीय आसक्ति है वही उन्हें मुक्तिका सुख देनेवाली है ॥११२॥ इत्यादि परमार्थका उपदेश देनेवाली वाणी सुनकर उसकी वे स्त्रियाँ शान्त हो गई थीं तथा शक्ति अनुसार नियमोंका पालन करने लगी थीं ॥११३॥ वह राजपुत्र अपने सुन्दर शरीरमें भी रागसे रहित था इसलिए वेला आदि उपवासोंसे कर्मकी कलुषताको दूर करता रहता था ॥११४॥ जिसका चित्त सदा सावधान रहता था ऐसा वह राजपुत्र विचित्र तपस्याके द्वारा शरीरको उस तरह कृश करता रहता था जिस तरह कि ग्रीष्मऋतुका सूर्य पानीको कृश करता रहता है ॥११५॥ निर्मल सम्यग्दर्शनको धारण करनेवाले उस निश्चलचित्त धीर राजपुत्रने चौंसठ हजार वर्षतक अत्यन्त दुःसह तप किया ॥११६॥ अन्तमें पञ्चपरमेष्ठियोंके नमस्कारसे युक्त समाधिमरणको प्राप्त हो ब्रह्मोत्तर नामक स्वर्गमें उत्तम देव पर्यायको प्राप्त हुआ है ॥११७॥

अथानन्तर भूषणके भवमें जो उसका पिता धनदसेठ था उसका जीव नाना योनियोंमें भ्रमणकर जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्रकी दक्षिण दिशामें स्थित जो पोदनपुर नामका नगर था उसमें अग्निमुख और शकुना नामक ब्राह्मण ब्राह्मणी उसके जन्मके कारण हुए। उन दोनोंके वह मृदुमति नामका पुत्र हुआ। वह मृदुमति निरर्थक नामका धारी था अर्थात् मृदुबुद्धि न होकर कठोर बुद्धि था ॥११८-११९॥ जिसकी बुद्धि जुआ तथा अविनयमें आसक्त रहती थी, जो मार्ग धूलिसे धूसरित रहता था तथा जो नाना प्रकारके अपराध करनेके कारण लोगोंके द्वेषका पात्र था, ऐसा वह अत्यन्त दुष्ट चेष्टाओंका धारक था ॥१२०॥ लोगोंके उलाहनोंसे खिन्न होकर माता-पिताने उसे घरसे निकाल दिया जिससे वह पृथिवीमें जहाँ तहाँ भ्रमण कर यौवनके समय पुनः

---

१. शक्ता म० । २. -भिराहारैः म० । ३. शकुनाग्निमुखस्तस्य माहनी म० ।

प्रविष्टो भवनं किञ्चिज्जलं पातुमयाचत । अददान्माहनी तस्मै जलं निपतदश्रुका ॥१२२॥
सुशीतलाम्बुसन्तृप्तात्मा पप्रच्छासौ कृतस्वया । रुद्यते करुणायुक्तं[1] इत्युक्ते माहनी जगौ ॥१२३॥
भद्र त्वदाकृतिर्बालो मया पतिसमेतया । करुणोज्झितया गेहात् पुत्रको हा निराकृतः ॥१२४॥
स त्वया भ्राम्यता देशे यदि स्यादीक्षितः क्वचित् । नीलोत्पलप्रतीकाशस्ततो वेद्य तद्गतम् ॥१२५॥
ततोऽसावश्रुमानूचे सवित्रि[2] रुदितं त्यज । समाधत्सिहि सोऽहं ते चिरदुर्लभपुत्रकः सुतः ॥१२६॥
शकुनाग्निमुखेनामा पुत्रप्राप्तिमहोत्सवम् । परिप्राप्ता सुखं तस्थौ स्रवत्पयस्तनस्तती ॥१२७॥
तेजस्वी सुन्दरो धीमान्नानाशास्त्रविशारदः । सर्वस्त्रीहृन्मनोहारी धूर्तानां मस्तके स्थितः ॥१२८॥
द्यूतेऽत्रे सदा जेता सुविदग्धः कलालयः । कामोपभोगसक्तात्मा रेमे मृदुमतिः पुरे ॥१२९॥
वसन्तडमरा नाम गणिकानामनुत्तमा । द्वितीया रमणाचारे तस्याभूत्[3] परमेप्सिता[4] ॥१३०॥
पितरौ बन्धुभिः सार्द्धं दारिद्र्यात्तेन मोचितौ । राजलीलां परिप्राप्तौ लब्धसर्वसमीहितौ ॥१३१॥
कुण्डलाद्यैरलङ्कारैः पिताभूदतिभासुरः । नानाकार्यगणव्यग्रा माता काञ्च्यादिमण्डिता ॥१३२॥
शशाङ्कनगरे राजगृहं कीर्यरतोऽन्यदा । विष्टो मृदुमतिः शब्दमशृणोन्नन्दिवर्द्धनम् ॥१३३॥
शशाङ्कमुखसंज्ञस्य गुरोश्चरणमूलतः । मयाद्य परमो धर्मः श्रुतः शिवसुखप्रदः ॥१३४॥
विषया विषवद्देवि परिणामे सुदारुणाः । तस्मान्नजाम्यहं दीक्षां न शोकं कर्तुमर्हसि ॥१३५॥

पोदनपुरमें आया ॥१२१॥ वहाँ एक ब्राह्मणके घरमें प्रविष्ट हो उसने पीनेके लिए जल माँगा सो ब्राह्मणीने उसे जल दिया। जल देते समय उस ब्राह्मणीके नेत्रोंसे टप-टप कर आंसू नीचे पड़ रहे थे ॥१२२॥अत्यन्त शीतल जलसे जिसकी आत्मा संतुष्ट हो गई थी ऐसे उस मृदुमतिने पूछा कि हे दयावति ! तू इस तरह क्यों रो रही है ? उसके इस प्रकार कहने पर ब्राह्मणीने कहा कि ॥१२३॥ हे भद्र ! मुझ निर्दया ने अपने पतिके साथ मिलकर तेरे ही समान आकृतिवाले अपने छोटेसे पुत्रको बड़े दुःखकी बात है कि घरसे निकाल दिया था ॥१२४॥ सो अनेक देशोंमें घूमते हुए तूने यदि कहीं उसे देखा हो तो उसका पता बता, वह नीलकमलके समान श्यामवर्ण था ॥१२५॥ तदनन्तर अश्रु छोड़ते हुए उसने कहा कि हे माता ! रोना छोड़, धैर्य धारण कर, वह मैं ही तेरा पुत्र हूँ जो चिरकाल बाद सामने आया हूँ ॥१२६॥ शकुना ब्राह्मणी, अपने अग्निमुख नामक पतिके साथ पुत्र प्राप्तिके महोत्सवको प्राप्त हो सुखसे रहने लगी और उसके स्तनोंसे दूध झरने लगा ॥१२७॥ मृदुमति, अत्यन्त तेजस्वी था, सुन्दर था, बुद्धिमान् था, नाना शास्त्रोंमें निपुण था, सर्व स्त्रियोंके नेत्र और मनको हरनेवाला था, धूर्तोंके मस्तकपर स्थित था अर्थात् उनमें शिरोमणि था ॥१२८॥ वह जुआमें सदा जीतता था, अत्यन्त चतुर था, कलाओंका घर था, और कामोपभोगमें सदा आसक्त रहता था। इस तरह वह नगरमें सदा क्रीड़ा करता रहता था ॥१२९॥ उस पोदनपुर नगरमें एक वसन्तडमरा नामकी वेश्या, समस्त वेश्याओंमें उत्तम थी। जो कामभोगके विषयमें उसकी अत्यन्त इष्ट स्त्री थी ॥१३०॥ उसने अपने माता-पिताको अन्य बन्धुजनोंके साथ-साथ दरिद्रतासे मुक्त कर दिया था जिससे वे समस्त इच्छित पदार्थोंको प्राप्त कर राजा-रानी जैसी लीलाको प्राप्त हो रहे थे ॥१३१॥ उसका पिता कुण्डल आदि अलंकारोंसे अत्यन्त देदीप्यमान था तथा माता मेखला आदि अलंकारोंसे युक्त हो नाना कार्य-कलापमें सदा व्यग्र रहती थी ॥१३२॥ एक दिन वह मृदुमति चोरी करनेके लिए शशाङ्कनामा नगरके राजमहलमें घुसा। वहाँका राजा नन्दिवर्धन विरक्त हो रानीसे कह रहा था सो उसे उसने सुना था ॥१३३॥ उसने कहा कि आज मैंने शशाङ्कमुख नामक गुरुके चरणमूलमें मोक्ष सुखका देनेवाला उत्तम धर्म सुना है ॥१३४॥ हे देवि ! ये विषय विषके समान अत्यन्त दारुण हैं

१. करुणायुक्तं म०, करुणायुक्ते इत्युक्ते इति पदच्छेदः। २. सवितृ म०। ३. वसन्तसमये म०। ४. परमेप्सिता म०। ५. नन्दिवर्धनम् म०।

शिक्षयन्तं नृपं देवीमेवं श्रीनन्दिवर्द्धनम् । श्रुत्वा मृदुमतिर्बोधिं निर्मलां समुपाश्रितः ॥१३६॥
संसारभावसंविग्नः साधोश्चन्द्रमुखश्रुतेः । पादमूलेऽभजद्दीक्षां सर्वग्रन्थविमोचिताम् ॥१३७॥
अतपत् स तपो घोरं विधिं शास्त्रोक्तमाचरन्। भिक्षां[1] स्वात् प्राप्नुवन्किञ्चित् प्रासुकां क्षमयान्वितः १३८
अथ दुर्गगिरेर्मूर्द्धि मान्यो गुणनिधिर्मुनिः । चकार चतुरो मासान्वार्षु[2]कानशनस्थितान् ॥१३९॥
सुरासुरस्तुतो धीरः समाप्तनियमोऽभवत् । उत्पपात मुनिः क्वापि विधिना गगनायनः ॥१४०॥
अथो मृदुमतिर्भिक्षाकरणार्थं सुचेष्टितः । आलोकनगरं प्राप्तो युगमात्राहितेक्षणः ॥१४१॥
ददर्श सम्भ्रमेणैतं पौरलोकः सपार्थिवः । शैलाग्रेऽवस्थितः सोऽयमिति ज्ञात्वा सुभक्तिकः ॥१४२॥
भक्ष्यैर्बहुप्रकारैस्तं तर्पयन्ति स्म पूजितम् । जिह्वेन्द्रियरसे मायां स च भेजे कुकर्मतः ॥१४३॥
स एवं यः पर्वतस्याग्रे यतिनाथो व्यवस्थितः । वन्दितस्त्रिदशैरेवमुक्तः सोऽनमयच्छिरः ॥१४४॥
अज्ञानादभिमानेन दुःखबीजमुपार्जितम् । स्वादगौरवसक्तेन[3] तेनेदं स्वस्य वञ्चनम् ॥१४५॥
एतत्तेन गुरोरग्रे न मायाशल्यमुद्धृतम् । दुःखभाजनतां येन सम्प्राप्तः परमामिमाम् ॥१४६॥
ततो मृदुमतिः कालं कृत्वा तं कल्पमाश्रितः । अभिरामोऽमरो यत्र वर्त्तते महिमान्वितः ॥१४७॥
पूर्वकर्मानुभावेन तयोरतिनिर[4]..... त्रिविष्टपेऽवसत् प्रीत्या परर्द्धिसंस्थयोः ॥१४८॥
देवीजनसमाकीर्णौ सुखसागरवर्त्तिनौ । बहूनब्धिसमांस्तत्र रेमाते तौ स्वपुण्यतः ॥१४९॥

इसलिए मैं दीक्षा धारण करता हूँ तुम शोक करनेके योग्य नहीं हो ॥१३५॥ इस प्रकार रानीको शिक्षा देते हुए श्री नन्दिवर्धन राजाको सुनकर वह मृदुमति अत्यन्त निर्मल बोधिको प्राप्त हुआ ॥१३६॥ संसारकी दशासे विरक्त हो उसने शशाङ्कमुख नामा गुरुके पादमूलमें सर्व परिग्रह का त्याग करानेवाली जिनदीक्षा धारण कर ली ॥१३७॥ अब वह शास्त्रोक्त विधिका आचरण करता तथा जब कभी प्रासुक भिक्षा प्राप्त करता हुआ क्षमाधर्मसे युक्त हो घोर तप करने लगा ॥१३८॥

अथानन्तर गुणनिधि नामक एक उत्तम मुनिराजने दुर्गगिरि नामक पर्वतके शिखर पर आहारका परित्याग कर चार माहके लिए वर्षायोग धारण किया ॥१३९॥ सुर और असुरोंने जिसकी स्तुति की तथा जो चारण ऋद्धिके धारक थे ऐसे वे धीर वीर मुनिराज चार माहका नियम समाप्त कर कहीं विधिपूर्वक आकाशमार्गसे उड़ गये—विहार कर गये ॥१४०॥ तदनन्तर उत्तम चेष्टाओंके धारक एवं युगमात्र पृथिवी पर दृष्टि डालनेवाले मृदुमति नामक मुनिराज भिक्षा के लिए आलोकनामा नगरमें आये ॥१४१॥ सो राजा सहित नगरवासी लोगोंने यह जानकर कि ये वे ही महामुनि हैं जो पर्वतके अग्रभाग पर स्थित थे उन्हें आते देख बड़े संभ्रमसे भक्ति सहित उनके दर्शन किये ॥१४२॥ तथा उनकी पूजा कर उन्हें नाना प्रकारके आहारोंसे संतुष्ट किया। और जिह्वा इन्द्रियमें आसक्त हुए उन मुनिने पाप कर्मके उदयसे माया धारण की ॥१४३॥ नगरवासी लोगोंने कहा कि तुम वही मुनिराज हो जो पर्वतके अग्रभागपर स्थित थे तथा देवोंने जिनकी वन्दना की थी। इस प्रकार कहने पर उन्होंने अपना सिर नीचा कर लिया किन्तु यह नहीं कहा कि मैं वह नहीं हूँ ॥१४४॥ इस प्रकार भोजनके स्वादमें लीन मृदुमति मुनिने अज्ञान अथवा अभिमानके कारण दुःखके बीजस्वरूप इस आत्मवञ्चनाका उपार्जन किया अर्थात् माया की ॥१४५॥ यतश्च उन्होंने गुरुके आगे अपनी यह माया शल्य नहीं निकाली इसलिए वे इस परम दुःखकी पात्रताको प्राप्त हुए ॥१४६॥ तदनन्तर मृदुमति मुनि मरण कर उसी स्वर्गमें पहुँचे जहाँ कि ऋद्धियों सहित अभिराम नामका देव रहता था ॥१४७॥ पूर्व कर्मके प्रभावसे परम ऋद्धिको धारण करनेवाले उन दोनों देवोंकी स्वर्गमें अत्यन्त प्रीति थी ॥१४८॥ देवियोंके समूहसे

१. भिक्षां प्राप्नुवन् किञ्चित्प्रासुकां स क्षमान्वितः ब० । २. -स्थ म० । स्तु प० । ३. तेनैदं म० । ४. समास्तत्र ज० ।

च्युतो मृदुमतिस्तस्मात् पुण्यराशिपरिक्षये । मायावशेषकर्मांको जम्बूद्वीपं समागतः ॥१५०॥
उत्तुङ्गशिखरो नाम्ना निकुञ्ज इति भूधरः । अटव्यां तस्य शल्लक्यो गहनायां विशेषतः ॥१५१॥
अयं जीमूतसंघातसंकाशो वारणोऽभवत् । क्षुब्धार्णवसमस्वानो गतिनिर्जितमारुतः ॥१५२॥
अत्यन्तभैरवाकारः कोपकालेऽभिमानवान् । शशाङ्ककुन्दसङ्काशो दन्तिराजगुणान्वितः ॥१५३॥
विजयादिमहानागभोजजः परमद्युतिः । द्विषद्भैरावतस्येव स्वच्छन्दकृतविग्रहः ॥१५४॥
सिंहव्याघ्रमहावृक्षगण्डशैलविनाशकृत् । आसतां मानुषास्तावद्दुर्ग्रहः खेचरैरपि ॥१५५॥
समस्तश्वापदत्रासं कुर्वन्नामोदमात्रतः । रमते गिरिकुञ्जेषु नानापल्लवहारिषु ॥१५६॥
अक्षोभ्ये विमले नानाकुसुमैरुपशोभिते । मानसे सरसि क्रीडां कुरुतेऽनुचरान्वितः ॥१५७॥
विलासं सेवते सारं कैलासे सुलभेक्षिते । मन्दाकिन्याः मनोज्ञेषु ह्रदेषु च परः सुखी ॥१५८॥
अन्येषु च नगारण्यप्रदेशेष्वतिहारिषु । भजते क्रीडनं कान्तं बान्धवानां महोदयः ॥१५९॥
अनुवृत्तिप्रसक्तानां करेणूनां स भूरिभिः । सहस्रैः सङ्गतः सौख्यं भजते यूथपोचितम् ॥१६०॥
इतस्ततश्च विचरन् द्विरदौघसमावृतः । शोभते पक्षिसङ्घातैर्विनतानन्दनो यथा ॥१६१॥
घनाघनघनस्वानो दाननिर्झरपर्वतः । लङ्केन्द्रेणेक्षितः सोऽयमासीद्वारणसत्तमः ॥१६२॥
विद्यापराक्रमोद्रेण तेनायं साधितोऽभवत् । त्रिलोककण्टकाभिख्यां प्रापितश्चाफलक्षणः ॥१६३॥

युक्त तथा सुखरूपी सागरमें निमग्न रहनेवाले वे दोनों देव अपने पुण्योदयसे अनेक सागरपर्यन्त उस स्वर्गमें क्रीड़ा करते रहे ॥१४९॥

तदनन्तर मृदुमतिका जीव, पुण्यराशिके क्षीण होने पर वहाँसे च्युत हो मायाचारके दोषसे दूषित होनेके कारण जम्बूद्वीपमें आया ॥१५०॥ जम्बूद्वीपमें ऊँचे-ऊँचे शिखरोंसे सहित निकुञ्ज नामका एक पर्वत है उस पर अत्यन्त सघन शल्लकी नामक वन है ॥१५१॥ उसी वनमें यह मेघ-समूहके समान हाथी हुआ है। इसका शब्द क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रके समान है, इसने अपनी गतिसे वायुको जीत लिया है, क्रोधके समय इसका आकार अत्यन्त भयंकर हो जाता है, यह महा अभिमानी है, इसकी दाँतें चन्द्रमाके समान उज्ज्वल हैं। यह गजराजके गुणोंसे सहित है, विजय आदि महागजराजोंके वंशमें उत्पन्न हुआ है, परम दीप्तिको धारण करनेवाला है, मानो ऐरावत हाथीसे द्वेष ही रखता है, स्वेच्छानुसार युद्ध करनेवाला है, सिंह व्याघ्र बड़े-बड़े वृक्ष तथा छोड़ी मोटी अनेक गोल चट्टानोंका विनाश करने वाला है, मनुष्योंकी बात जाने दो विद्याधरोंके द्वारा भी इसका पकड़ा जाना सरल नहीं है, यह अपनी गन्धमात्रसे समस्त वन्य पशुओंको भय उत्पन्न करता है तथा नाना प्रकारके पल्लवोंसे युक्त पहाड़ी निकुञ्जोंमें क्रीड़ा करता रहता है। ॥१५२–१५६॥ जिसे कोई क्षोभित नहीं कर सकता तथा जो नाना प्रकारके फूलोंसे सुशोभित है ऐसे मानस सरोवरमें यह अपने अनुयायियोंके साथ क्रीड़ा करता है ॥१५७॥ यह अनायास दृष्टिमें आये हुए कैलास पर्वत पर तथा गङ्गा नदीके मनोहर ह्रदोंमें अत्यन्त सुखी होता हुआ श्रेष्ठ शोभाको प्राप्त होता है ॥१५८॥ अपने बन्धुजनोंके महाभ्युदयको बढ़ानेवाला यह हाथी इनके सिवाय अत्यन्त मनोहर पहाड़ी वन प्रदेशोंमें सुन्दर क्रीड़ा करता है ॥१५९॥ अनुकूल आचरण करनेमें तत्पर रहनेवाली हजारों हथिनियोंके साथ मिलकर यह यूथपतिके योग्य सुखका उपभोग करता है ॥१६०॥ हाथियोंके समूहसे घिरा हुआ यह हाथी जब यहाँ-वहाँ विचरण करता है तब पक्षियोंके समूहसे आवृत गरुड़के समान सुशोभित होता है ॥१६१॥

जिसकी गर्जना मेघगर्जनाके समान सघन है तथा जो दानरूप झरनोंके निकलनेके लिए मानो पर्वत ही है ऐसा यह उत्तम गजराज लंकाके धनी रावणके द्वारा देखा गया अर्थात् रावणने इसे देखा ॥१६२॥ तथा विद्या और पराक्रमसे उग्र रावणने इसे वशीभूत किया एवं सुन्दर-सुन्दर

अप्सरोभिः समं स्वर्गे प्रकीड्य सुचिरं सुखम् । करिणीभिः समं क्रीडामकरोत् सुकरी पुनः ॥१६४॥
ईदृशी कर्मणां शक्तिर्यज्जीवाः सर्वयोनिषु । वस्तुतो दुःखयुक्तासु प्राप्नुवन्ति परां रतिम् ॥१६५॥
च्युतः सङ्घभिरामोऽपि साकेतानगरे नृपः । भरतोऽयमभूद्धीमान् सद्धर्मगतमानसः ॥१६६॥
विलीनमोहनिचयः सोऽयं भोगपराङ्मुखः । श्रामण्यमीहते कर्तुं पुनर्भवनिवृत्तये ॥१६७॥
गोतमस्वामिनो यौ[1] मरीचिप्रवर्तिते । समये दीक्षितावास्तां परित्यक्तमहाव्रतौ ॥१६८॥
तावेतौ मानिनौ भानुशशाङ्कोदयसंज्ञितौ । संसारदुःखितौ भ्रान्तौ भ्रातरौ कर्मचेष्टितौ ॥१६९॥
कृतस्य कर्मणो लोके सुखदुःखविधायिनः । जना निस्तपसोऽवश्यं प्राप्नुवन्ति फलोदयम् ॥१७०॥
चन्द्रः कुलङ्करो यश्च समाधिमरणो[2] मृगः । सोऽयं नरपतिर्जातो भरतः साधुमानसः ॥१७१॥
आदित्यश्रुतिविप्रश्च कृष्णभ्रुवः कुरङ्गकः । सम्प्राप्तो गजतामेष पापकर्मानुभावतः ॥१७२॥
प्रमुच्य बन्धनस्तम्भं बलवानुद्धतः परम् । भरतालोकनात् स्मृत्वा पूर्वजन्म शमं गतः ॥१७३॥

शार्दूलविक्रीडितम्

इत्थैवं गतिमागतिं च विविधां बाह्यं सुखं वा ध्रुवं
कर्मारण्यमिदं विहाय विषमं धर्मे रमध्वं बुधाः ।
मानुष्यं समवाप्य यैर्जिनवरप्रोक्तो न धर्मः कृत-
स्ते संसारसुदुःखमभ्युपगताः स्वार्थस्य दूरे स्थिताः ॥१७४॥

लक्षणोंसे युक्त इस हाथीका त्रिलोककंटक नाम रखा ॥१६३॥ यह पूर्वभवमें स्वर्गमें अप्सराओंके साथ चिरकाल तक क्रीड़ा कर सुखी हुआ अब हस्तिनियोंके साथ क्रीड़ा कर सुखी हो रहा है ॥१६४॥ यथार्थमें कर्मोंकी ऐसी ही विचित्र शक्ति है कि जीव, दुःखोंसे युक्त नाना योनियोंमें परम प्रीतिको प्राप्त होते हैं ॥१६५॥ अभिरामका जीव भी च्युत हो अयोध्या नगरीमें राजा भरत हुआ है। यह भरत अत्यन्त बुद्धिमान् है तथा समीचीन धर्ममें इसका हृदय लग रहा है ॥१६६॥ जिसके मोहका समूह विलीन हो चुका है तथा जो भोगोंसे विमुख है ऐसा यह भरत पुनर्भव दूर करनेके लिए मुनि दीक्षा धारण करना चाहता है ॥१६७॥ श्रीऋषभदेवके समय ये दोनों सूर्योदय और चन्द्रोदय नामक भाई थे तथा उन्हीं ऋषभदेवके साथ जिनधर्ममें दीक्षित हुए थे किन्तु बादमें अभिमानसे प्रेरित हो महाव्रत छोड़कर मरीचिके द्वारा चलाये हुए परिव्राजक मतमें दीक्षित हो गये जिसके फलस्वरूप संसारके दुःखसे दुःखी हो कर्मोंका फल भोगते हुए चिरकाल तक संसारमें भ्रमण करते रहे ॥१६८-१६९॥ सो ठीक ही है क्योंकि संसारमें जो मनुष्य तप नहीं करते हैं वे अपने द्वारा किये हुए सुख दुःखदायी कर्मका फल अवश्य ही प्राप्त करते हैं ॥१७०॥ जो चन्द्रोदयका जीव पहले कुलंकर और उसके बाद समाधि मरण करनेवाला मृग हुआ था वही क्रम-क्रमसे उत्तम हृदयको धारण करनेवाला राजा भरत हुआ है ॥१७१॥ और सूर्योदय ब्राह्मणका जीव मरकर मृग हुआ फिर क्रम-क्रमसे पापकर्मके उदयसे इस हस्ती पर्यायको प्राप्त हुआ है ॥१७२॥ अत्यन्त उत्कट बलको धारण करनेवाला यह हाथी पहले तो बन्धनका खम्भा उखाड़ कर क्षोभको प्राप्त हुआ परन्तु बादमें भरतके देखनेसे पूर्वभवका स्मरणकर शान्त हो गया ॥१७३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे विद्वज्जनो ! इस तरह नाना प्रकारकी गति-आगति तथा बाह्य सुख और दुःखको जानकर इस विषम कर्म अटवीको छोड़ धर्ममें रमण करो क्योंकि जिन्होंने मनुष्य पर्याय प्राप्त कर जिनेन्द्र कथित धर्म धारण नहीं किया है वे संसार-भ्रमणको प्राप्त हो

---

१. यौ म० । २. मरीचिः प्रवर्तते म० । ३. रमणो मृगः ज० ।

आर्यागीतिवृत्तम्

जिनवरवदनविनिर्गतमुपलभ्य शिवैकदानतत्परमतुलम् ।
निर्जितरविरुचिमुकुतं कुरुत यतो यात निर्मलं परमपदम् ॥१७५॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे भरतत्रिभुवनालङ्कारसमाध्यनुभवानुकीर्तनं नाम पञ्चाशीतितमं पर्व ॥८५॥

आत्म-हितसे दूर रहते हैं ॥१७४॥ हे भव्यजनो ! जो श्री जिनेन्द्र देवके मुखारविन्दसे प्रकट हुआ है तथा मोक्षके देनेमें तत्पर है ऐसे अनुपम जिनधर्मको पाकर सूर्यकी कान्तिको जीतनेवाला पुण्य संचय करो जिससे निर्मल परम पदको प्राप्त हो सको ॥१७५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें भरत तथा त्रिलोकमण्डन हाथीके पूर्वभवोंका वर्णन करनेवाला पचासवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥८५॥

षडशीतितमं पर्व

साधोस्तद्वचनं श्रुत्वा सुपवित्रं तमोऽपहम् । संसारसागरे घोरे नानादुःखनिवेदनम् ॥१॥
विस्मयं परमं प्राप्ता भरतानुभवोद्भवम् । पुस्तकर्मगतैवाऽऽसीत् सा सभा चेष्टितोज्झिता ॥२॥
भरतोऽथ समुत्थाय प्रचलद्धारकुण्डलः । प्रतापप्रथितः श्रीमान् देवेन्द्रसमविभ्रमः ॥३॥
बहुन् संवेगमुत्तुङ्गं प्रह्वकायो महामनाः । रभसान्वितमासाद्य [1]बद्धपाण्यब्जकुड्मलः ॥४॥
ज्ञानुसर्पाडितक्षोणिः प्रणिपत्य मुनीश्वरम् । संसारवासखिन्नोऽसौ जगाद सुमनोहरम् ॥५॥
नाथ योनिसहस्रेषु सङ्कटेषु चिरं भ्रमन् । महाध्वश्रमखिन्नोऽहं यच्छ मे मुक्तिकारणम् ॥६॥
उद्भ्रमाणाय सम्भूतिमरणोग्रतरङ्गया । मह्यं संसृतिनद्या त्वं हस्तालम्बकरो भव ॥७॥
इत्युक्त्वा रक्तनिःशेषग्रन्थपर्यङ्कबन्धनः । स्वकरेणाऽकरोल्लुञ्चं महासत्त्वसमन्वितः ॥८॥
परं सम्यक्त्वमासाद्य महाव्रतपरिग्रहः । दीक्षितो भरतो जातस्तत्क्षणेन मुनिः परः ॥९॥
साधु साधिति देवानामन्तरिक्षेऽभवत् स्वनः । पेतुः पुष्पाणि दिव्यानि भरते मुनितामिते ॥१०॥
सहस्रमधिकं राज्ञां भरतस्यानुरागतः । क्रमागतां श्रियं त्यक्त्वा श्रामण्यं समशिक्षियत् ॥११॥
अनुग्रहक्षयः केचिन्नमस्कृत्य मुनिं जनाः । उपासाञ्चक्रिरे धर्मं विधिनागारसङ्गतम् ॥१२॥
सम्भ्रान्ता केकया वाष्पदुर्दिनाऽऽकुलचेतना । धावन्ती पतिता भूमौ श्यामोहं च समागता ॥१३॥

अथानन्तर जो अत्यन्त पवित्र थे, अज्ञानरूपी अन्धकारको नष्ट करनेवाले थे, संसाररूपी घोर सागरके नाना दुःखोंका निरूपण करनेवाले थे और भरतके पूर्वभवोंका वर्णन करनेवाले थे ऐसे महामुनि श्री देशभूषण केवलीके उक्त वचन सुन कर वह समस्त सभा चित्रलिखितके समान निश्चल हो गई ॥१-२॥ तदनन्तर जिनके हार और कुण्डल हिल रहे थे, जो प्रतापसे प्रसिद्ध थे, श्रीमान् थे, इन्द्रके समान विभ्रमको धारण करनेवाले थे, अत्यधिक संवेगके धारक थे, जिनका शरीर नम्रीभूत था, मन उदार था, जिन्होंने हस्तरूपी कमलकी बोंड़ियोंको बाँध रक्खा था और जो संसार सम्बन्धी निवाससे अत्यन्त खिन्न थे ऐसे भरतने पृथिवी पर घुटने टेक कर मुनिराज को नमस्कार कर इस प्रकारके अत्यन्त मनोहारी वचन कहे ॥३-५॥ कि हे नाथ ! मैं संकटपूर्ण हजारों योनियोंमें चिरकालसे भ्रमण करता हुआ मार्गके महाश्रमसे खिन्न हो चुका हूँ अतः मुझे मोक्षका कारण जो तपश्चरण है वह दीजिये ॥६॥ हे भगवन् ! मैं जन्म-मरण रूपी ऊँची लहरोंसे युक्त संसाररूपी नदीमें चिरकालसे बहता चला आ रहा हूँ सो आप मुझे हाथका सहारा दीजिये ॥७॥ इस प्रकार कह कर भरत समस्त परिग्रहका परित्याग कर पर्यङ्कासनसे स्थित हो गये तथा महाधैर्यसे युक्त हो उन्होंने अपने हाथसे केश लोंच कर डाले ॥८॥ इस प्रकार परम सम्यक्त्वको पाकर महाव्रतको धारण करनेवाले भरत तत्क्षणमें दीक्षित हो उत्कृष्ट मुनि हो गये ॥९॥ उस समय भरतके मुनि अवस्थाको प्राप्त होनेपर आकाशमें देवोंका धन्य धन्य यह शब्द हुआ तथा दिव्य पुष्पोंकी वर्षा हुई ॥१०॥ भरतके अनुरागसे प्रेरित हो कुछ अधिक एक हजार राजाओंने क्रमागत राज्यलक्ष्मीका परित्याग कर मुनिदीक्षा धारण की ॥११॥ जिनकी शक्ति हीन थी ऐसे कितने ही लोगोंने मुनिराजको नमस्कार कर विधिपूर्वक गृहस्थ धर्म धारण किया ॥१२॥ जो निरन्तर अश्रुओंकी वर्षा कर रही थी, तथा जिसकी चेतना अत्यन्त आकुल थी ऐसी भरतकी माता केकया घबड़ा कर उनके पीछे-पीछे दौड़ती जा रही थी सो बीचमें ही पृथिवी

१. बद्धः पाणब्ज -म० । २. -सन्नोऽहं ख०, ज० । ३. नष्टास्त्वं म०, ज० । ४. हस्तलम्ब -म० ।

सुतप्रीतिभराक्रान्ता ततोऽसौ निश्चलाङ्गिका । गोशीर्षादिरसैरेव संज्ञामुपैति न ॥१४॥
व्यक्तचेतनतां प्राप्य चिराय स्वयमेव सा । अरोदीत करुणं धेनुर्वत्सेनेव वियोजिता ॥१५॥
हा मे वत्स मनोह्लाद सुविनीत गुणाकर । क्व प्रयातोऽसि वचनं प्रयच्छाङ्गानि धारय ॥१६॥
त्वया पुत्रक संत्यक्ता दुःखसागरवर्त्तिनी । कथं स्थास्यामि शोकार्ता हा किमेतदनुष्ठितम् ॥१७॥
कुर्वन्तीति समाक्रन्दं हलिना चक्रिणा च सा । आनीयत समाश्वासं वचनैरतिसुन्दरैः ॥१८॥
पुण्यवान् भरतो विद्वानम्ब शोकं परित्यज । आवां ननु न किं पुत्रौ तवाज्ञाकरणोद्यतौ ॥१९॥
इति कातरतां कृच्छ्राद्याजिता शान्तमानसा । सपत्नीवाक्यजातैश्च सा बभूव विशोकिका ॥२०॥
विशुद्धा चाकरोन्निन्दामात्मनः शुद्धमानसा । धिक् स्त्रीकलेवरमिदं बहुदोषपरिप्लुतम् ॥२१॥
अत्यन्ताशुचिभीभत्सं मलरानिर्झरोपमम् । करोमि कर्म तद् येन विमुच्ये पापकर्मतः ॥२२॥
पूर्वमेव जिनोक्तेन धर्मेणाऽसौ सुभाविता । महासंवेगसम्पन्ना सितैकवसनान्विता ॥२३॥
सकाशे पृथिवीमत्याः सह नारीशतैस्त्रिभिः । दीक्षां जग्राह सम्यक्त्वं धारयन्ती सुनिर्मलम् ॥२४॥

उपजातिः

त्यक्त्वा समस्तं गृहिधर्मजालं प्राप्याऽऽर्यिकाधर्ममनुत्तमं सा ।
रराज मुक्ता घनसङ्गमेन शशाङ्कलेखेव कलङ्कहीना ॥२५॥
इतोऽभवद्भिक्षुगणः सुतेजास्तथाऽऽर्यिकाणां प्रचयोऽन्यतोऽभूत् ।
सदा सदो भूरसरोजयुक्तसरः समं तद्वदते स्म कान्तम् ॥२६॥

पर गिर कर मूर्छित हो गई थी ॥१३॥ तदनन्तर जो पुत्रकी प्रीतिके भारसे युक्त थी, तथा जिसका शरीर निश्चल पड़ा हुआ था ऐसी वह केकया गोशीर्ष आदि चन्दनके जलके सींचने पर भी चेतनाको प्राप्त नहीं हो रही थी ॥१४॥ बहुत समय बाद जब वह स्वयं चेतनाको प्राप्त हुई तब बछड़ेसे रहित गायके समान करुण रोदन करने लगी ॥१५॥ वह कहने लगी कि हाय मेरे वत्स ! तू मनको आह्लादित करनेवाला था, अत्यन्त विनीत था और गुणोंकी खान था। अब तू कहाँ चला गया ? उत्तर दे और मेरे अङ्गोंको धारण कर ॥१६॥ हाय पुत्रक ! तेरे द्वारा छोड़ी हुई मैं दुःखरूपी सागरमें निमग्न हो शोकसे पीड़ित होती हुई कैसे रहूँगी ? यह तूने क्या किया ? ॥१७॥ इस प्रकार विलाप करती हुई भरतकी माताको राम और लक्ष्मणने अत्यन्त सुन्दर वचनोंसे सन्तोष प्राप्त कराया ॥१८॥ उन्होंने कहा—हे माता ! भरत बड़ा पुण्यवान् और विद्वान् है, तू शोक छोड़ । क्या हम दोनों तेरे आज्ञाकारी पुत्र नहीं हैं ? ॥१९॥ इस प्रकार जिससे बड़े भयसे उत्पन्न कातरता छुड़ाई गई थी तथा जिसका हृदय अत्यन्त शुद्ध था, ऐसी वह केकया सपत्नीजनोंके वचनोंसे शोकरहित हो गई थी ॥२०॥ वह शुद्धहृदया जब सचेत हुई तब अपने आपकी निन्दा करने लगी । वह कहने लगी कि स्त्रीके इस शरीरको धिक्कार हो जो अनेक दोषोंसे आच्छादित है ॥२१॥ अत्यन्त अपवित्र है, ग्लानिपूर्ण है, नगरी निर्झर अर्थात् गटरके प्रवाहके समान है । अब तो मैं वह कार्य करूँगी जिसके द्वारा पापकर्मसे मुक्त हो जाऊँगी॥२२॥ वह जिनेन्द्र प्रणीत धर्मसे तो पहले ही प्रभावित थी, इसलिए महान वैराग्यसे प्रयुक्त हो एक सफेद साड़ीसे युक्त हो गई ॥२३॥ तदनन्तर निर्मल सम्यक्त्वको धारण करती हुई उसने तीन सौ स्त्रियोंके साथ साथ पृथिवीमती नामक आर्याके पास दीक्षा ग्रहण कर ली ॥२४॥ समस्त गृहस्थधर्मके जालको छोड़ कर तथा आर्यिकाका उत्कृष्ट धर्म धारण कर वह केकया मेघके संगमसे रहित निष्कलंक चन्द्रमाकी रेखाके समान सुशोभित हो रही थी ॥२५॥ उस समय देशभूषण मुनिराजकी सभामें एक ओर तो उत्तम तेजको धारण करनेवाले मुनियोंका समूह विद्यमान था और दूसरी ओर

---

१. युक्तं सदः समं म० ।

एवं जनस्तत्र बभूव नाना-व्रतक्रियासङ्गपवित्रचित्तः ।
समुद्गते भव्यजनस्य कस्य रवौ प्रकाशेन न [1]युक्तिरस्ति ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे भरतकेकयानिष्क्रमणाभिधानं नाम षडशीतितमं पर्व ॥८६॥

आर्यिकाओंका समूह स्थित था इसलिए वह सभा अत्यधिक कमल और कमलिनियोंसे युक्त सरोवरके समान सुन्दर जान पड़ती थी ॥२६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस तरह वहाँ जितने मनुष्य विद्यमान थे उन सभीके चित्त नाना प्रकारकी व्रत सम्बन्धी क्रियाओंके संगसे पवित्र हो रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि सूर्योदय होने पर कौन भव्य जन प्रकाशसे युक्त नहीं होता ? अर्थात् सभी होते हैं ॥२७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें भरत और केकयाकी दीक्षाका वर्णन करनेवाला छियासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥८६॥

---

१. मुक्ति म० ।

सप्ताशीतितमं पर्व

अथ साधुः प्रशान्तात्मा लोकत्रयविभूषणः । अणुव्रतानि मुनिना विधिना परिलम्भितः ॥१॥
सम्यग्दर्शनसंयुक्तः संज्ञानः सक्रियोद्यतः । सागारधर्मसम्पूर्णो मतङ्गजवरोऽभवत् ॥२॥
पक्षमासादिभिर्भक्तश्च्युतैः[1] पत्रादिभिः स्वयम् । एकैः स पारणां कर्ता दिवानूनैकवेलिकाम् ॥३॥
गजः संसारभीतोऽयं सच्चेष्टासपरायणः । अर्च्यमानो जनैः क्षोणीं विजहार विशुद्धिमान् ॥४॥
लड्डुकान् सण्डकान् मृष्टान्विविधाश्चारुपूरिकाः । पारणासमये तस्मै सत्कारं ददौ जनः ॥५॥
तनुकर्मशरीरोऽसौ संवेगाऽऽनसंयतः । उग्रं चत्वारि वर्षाणि तपश्चक्रे यमाङ्कुशः ॥६॥
स्वैरं स्वैरं परित्यज्य भुक्तिमुग्रतपा गजः । सल्लेखनां परिप्राप्य ब्रह्मोत्तरमशिश्रियत् ॥७॥
वराङ्गनासमाकीर्णो हारकुण्डलमण्डितः । पूर्वं सुरसुखं प्राप्तो गजः पुण्यानुभावतः ॥८॥
भरतोऽपि महातेजा महाव्रतधरो विभुः । धराधरगुरुस्थैर्यबाह्याभ्यन्तरपरिग्रहः ॥९॥
व्युत्सृष्टाङ्गो महाधीरस्तिष्ठञ्जस्तमिते रवौ । विजहार यथान्यायं चतुराराधनोद्यतः ॥१०॥
अनिरुद्धो यथा वायुर्मृगेन्द्र इव निर्भयः । अक्षोभ्यो निष्कम्पो मन्दरो यथा ॥११॥
जातरूपधरः सत्यकवचः क्षान्तिसायकः । परीषहजयोद्युक्ततपःसंयत्यवर्तत ॥१२॥
समः शत्रौ च मित्रे च समानः सुखदुःखयोः । उत्तमः श्रमणः सोऽभूत् समधीस्तृणरत्नयोः ॥१३॥

अथानन्तर जिसकी आत्मा अत्यन्त शान्त थी ऐसे उस उत्तम त्रिलोकमण्डन हाथीको मुनिराजने विधिपूर्वक अणुव्रत धारण कराये ॥१॥ इस तरह वह उत्तम हाथी, सम्यग्दर्शनसे युक्त, सम्यग्ज्ञानका धारी, उत्तम क्रियाओंके आचरणमें तत्पर और गृहस्थ धर्मसे सहित हुआ ॥२॥ वह एक पक्ष अथवा एक मास आदिका उपवास करता था तथा उपवासके बाद अपने आप गिरे हुए सूखे पत्तोंसे दिनमें एक बार पारणा करता था ॥३॥ इस तरह जो संसारसे भयभीत था, उत्तम चेष्टाओंके धारण करनेमें तत्पर था, और अत्यन्त विशुद्धिसे युक्त था ऐसा वह गजराज मनुष्योंके द्वारा पूजित होता हुआ पृथिवी पर भ्रमण करता था ॥४॥ लोग पारणाके समय उसके लिए बड़े सत्कारके साथ मीठे-मीठे लाडू मांडे और नाना प्रकारकी पूरियाँ देते थे ॥५॥ जिसके शरीर और कर्म—दोनों ही अत्यन्त क्षीण हो गये थे, जो संवेग रूपी खम्भेसे बँधा हुआ था, तथा यम ही जिसका अंकुश था ऐसे उस हाथीने चार वर्ष तक उग्र तप किया ॥६॥ जो धीरे-धीरे भोजनका परित्याग कर अपने तपश्चरणको उग्र करता जाता था ऐसा वह हाथी सल्लेखना धारण कर ब्रह्मोत्तर स्वर्गको प्राप्त हुआ ॥७॥ वहाँ उत्तम स्त्रियोंसे सहित तथा हार और कुण्डलोंसे मण्डित उस हाथीने पुण्यके प्रभावसे पहले ही जैसा देवोंका सुख प्राप्त किया ॥८॥

इधर जो महातेजके धारक थे, महाव्रती थे, विभु थे, पर्वतके समान स्थिर थे, बाह्याभ्यन्तर परिग्रहके त्यागी थे, शरीरकी ममतासे रहित थे, महाधीर वीर थे, जहाँ सूर्य डूब जाता था वहीं बैठ जाते थे, और चार आराधनाओंकी आराधनामें तत्पर थे ऐसे भरत महामुनि न्यायपूर्वक विहार करते थे ॥९-१०॥ वे वायुके समान बन्धनसे रहित थे, सिंहके समान निर्भय थे, समुद्रके समान क्षोभसे रहित थे, और मेरुके समान निष्कम्प थे ॥११॥ जो दिगम्बर मुद्राको धारण करनेवाले थे, सत्वरूपी कवचसे युक्त थे, क्षमारूपी बाणोंसे सहित थे और परीषहोंके जीतनेमें सदा तत्पर रहते थे ऐसे वे भरतमुनि सदा तपरूपी युद्धमें विद्यमान रहते थे ॥१२॥ वे शत्रु और मित्र, सुख और दुःख तथा तृण और रत्नमें समान रहते थे। इस तरह वे समबुद्धिके

१. च्युतः म० । २. तपोरूपसंग्रामे ।

सूचीनिक्षिप्तमार्गेषु भ्राम्यतः शास्त्रपूर्वकम् । शत्रुस्थानेषु तस्याभूच्चतुरङ्गबलचारिता ॥१४॥
अत्यन्तप्रलयं कृत्वा मोहनीयस्य कर्मणः । अवाप केवलज्ञानं लोकालोकावभासनम् ॥१५॥

आर्यागीतिः

ईदृक्माहात्म्ययुतः काले क्रमानुक्रमेण विगतरजस्कः ।
यदभीप्सितं तदेव स्थानं प्राप्तो यतो न भूयः पातः ॥१६॥
भरतर्षेरिदमनघं सुचरितमनुकीर्तयेन्नरो यो भक्त्या ।
स्वायुरियत्तिं स कीर्तिं यशो बलं धनविभूतिमारोग्यं च ॥१७॥
सारं सर्वकथानां परमिदं चरितमुन्नतगुणं शुभ्रम् ।
शृण्वन्तु जना भव्या निर्जितरविते जसो भवन्ति यदाशु ॥१८॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे भरतनिर्वाणगमनं नामसप्तसप्ततितमं पर्व ॥८७॥

नामक उत्तम मुनि थे ॥१३॥ वे अपनी कान्तिसे स्वाप्त मार्गमें शास्त्रानुसार ईर्यासमितिसे चलते थे तथा शत्रुओंके स्थानोंमें भी उनका निर्भय विहार होता था ॥१४॥ तदनन्तर मोहनीय कर्मका अत्यन्त प्रलय—समूल क्षय कर वे लोक-अलोकको प्रकाशित करनेवाले केवलज्ञानको प्राप्त हुए ॥१५॥ जो इस प्रकारकी महिमासे युक्त थे तथा अनुक्रमसे जिन्होंने कर्मरजको नष्ट किया था ऐसे वे भरतमुनि उस अभीष्ट स्थान—मुक्तिस्थानको प्राप्त हुए कि जहाँसे फिर लौटकर आना नहीं होता ॥१६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य भरतमुनिके इस निर्मल चरितको भक्ति-पूर्वक कहता-सुनता है वह अपनी आयु पर्यन्त कीर्ति, यश, बल, धनवैभव और आरोग्यको प्राप्त होता है ॥१७॥ यह चरित्र सर्व कथाओंका उत्तम सार है, उन्नत गुणोंसे युक्त है और उज्ज्वल है। हे भव्यजनो! इसे तुम सब ध्यानसे सुनो जिससे शीघ्र ही सूर्यके तेजको जीतनेवाले हो सको ॥१८॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें भरतके निर्वाणका कथन करनेवाला सतासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥८७॥

अष्टाशीतितमं पर्व

भरतेन समं वीरा निष्क्रान्ता ये महानृपाः । निःस्पृहा स्वशरीरेऽपि प्रव्रज्यां समुपागताः ॥१॥
प्राज्ञानां दुर्लभं मार्गं तेषां सुपरमात्मनाम् । कीर्त्तयिष्यामि केषांचिन्नामानि शृणु पार्थिव ॥२॥
सिद्धार्थः सिद्धसाध्यार्थो रतिदो रतिवर्द्धनः । अम्बुवाहरथो जाम्बूनदः शल्यः शशाङ्कपात् ॥३॥
विरसो नन्दनो नन्द आनन्दः सुमतिः सुधीः । सदाश्रयो महाबुद्धिः सूर्यारो जनवल्लभः ॥४॥
इन्द्रध्वजः श्रुतधरः सुचन्द्रः पृथिवीधरः । अलकः सुमतिः क्रोधः कुन्दरः सत्ववान्हरिः ॥५॥
सुमित्रो धर्ममित्रायः सम्पूर्णेन्दुः प्रभाकरः । नघुषः सुन्दनः शान्तिः प्रियधर्मात्ययस्तथा ॥६॥
विशुद्धकुलसम्भूताः सदाचारपरायणाः । सहस्राधिकसंख्याना भुवनास्यातचेष्टिताः ॥७॥
एते हस्त्यश्वपादानं प्रवालस्वर्णमौक्तिकम् । अन्तःपुरं च राज्यं च बहुजीर्णतृणं यथा ॥८॥
महाव्रतधराः शान्ता नानालब्धिसमाश्रिताः । आत्मध्यानानुरूपेण यथायोग्यं पदं श्रिताः ॥९॥
निष्क्रान्ते भरते तस्मिन् भरतोपमचेष्टिते । मेने शून्यकमात्मानं लक्ष्मणः स्मृतसद्गुणः ॥१०॥
शोकाकुलितचेतस्को विषादं परमं भजन् । सूत्कारमुखरः क्लान्तलोचनेन्दीवरद्युतिः ॥११॥
विराधितभुजस्तम्भकृतावष्टम्भविग्रहः । तथापि प्रज्वलन् लक्ष्म्या मन्दवर्णमवोचत ॥१२॥
अधुना वर्त्तसे क्वासौ भरतो गुणभूषणः । तरुणेन सता येन शरीरे प्रीतिरुज्झिता ॥१३॥
इष्टं बन्धुजनं त्यक्त्वा राज्यं च त्रिदशोपमम् । सिद्धार्थी स कथं भेजे जैनधर्मं सुदुर्धरम् ॥१४॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! अपने शरीरमें भी स्पृहा नहीं रखनेवाले जो बड़े-बड़े वीर राजा भरतके साथ दीक्षाको प्राप्त हुए थे तथा अत्यन्त दुर्लभ मार्गको प्राप्त हो जिन्होंने परमात्म पद प्राप्त किया था ऐसे उन राजाओंमेंसे कुछके नाम कहता हूँ सो सुनो ॥१-२॥ जिसके समस्त साध्य पदार्थ सिद्ध हो गये थे ऐसा सिद्धार्थ, रतिको देनेवाला रतिवर्द्धन, मेघरथ, जाम्बूनद, शल्य, शशाङ्कपाद् (चन्द्रकिरण), विरस, नन्दन, नन्द, आनन्द, सुमति, सुधी, सदाश्रय, महाबुद्धि, सूर्यार, जनवल्लभ, इन्द्रध्वज, श्रुतधर, सुचन्द्र, पृथिवीधर, अलक, सुमति, क्रोध, कुन्दर, सत्ववान्, हरि, सुमित्र, धर्ममित्राय, पूर्णचन्द्र, प्रभाकर, नघुष, सुन्दन, शान्ति और प्रियधर्म आदि ॥३-६॥ ये सभी राजा विशुद्ध कुलमें उत्पन्न हुए थे, सदाचारमें तत्पर थे, हजारसे अधिक संख्याके धारक थे और संसारमें इनकी चेष्टाएँ प्रसिद्ध थीं ॥७॥ ये सब हाथी, घोड़े, पैदल सैनिक, मूँगा, सोना, मोती, अन्तःपुर और राज्यको जीर्ण-तृणके समान छोड़कर महाव्रतके धारी हुए थे। सभी शान्तचित्त एवं नाना ऋद्धियोंसे युक्त थे और अपने-अपने ध्यानके अनुरूप यथायोग्य पदको प्राप्त हुए थे ॥८-९॥

भरत चक्रवर्तीके समान चेष्टाओंके धारक भरतके दीक्षा ले लेने पर उसके गुणोंका स्मरण करनेवाले लक्ष्मण अपने आपको सूना मानने लगे ॥१०॥ यद्यपि उनका चित्त शोकसे आकुलित हो रहा था, वे परम विषादको प्राप्त थे, उनके मुखसे सू-सू शब्द निकल रहा था, जिनके नेत्र-रूपी नील-कमलोंकी कान्ति म्लान हो गई थी और उनका शरीर विराधितकी भुजारूपी खम्भोंके आश्रय स्थित था तथापि वे लक्ष्मीसे देदीप्यमान होते हुए धीरे-धीरे बोले कि ॥११-१२॥ गुण-रूपी आभूषणोंको धारण करनेवाला वह भरत इस समय कहाँ है ? जिसने तरुण होने पर भी शरीरसे प्रीति छोड़ दी है ॥१३॥ इष्ट बन्धुजनोंको तथा देवोंके समान राज्यको छोड़कर सिद्ध होनेकी इच्छा रखता हुआ वह अत्यन्त कठिन जैनधर्मको कैसे धारण कर गया ? ॥१४॥

---

१. नघुषः ।

आह्लादयन् सदः सर्वं ततः पद्मो विधानवित् । जगाद परमं धन्यो भरतः सुमहानसौ ॥१५॥
तस्यैकस्य मतिः शुद्धा तस्य जन्मार्थसङ्गतम् । विषान्नमिव यस्यक्त्वा राज्यं प्राव्रज्यमास्थितः ॥१६॥
पूज्यता वर्ण्यतां तस्य कथं परमयोगिनः । देवेन्द्रा अपि नो शक्ता यस्य वक्तुं गुणाकरम् ॥१७॥
कैकयानन्दनस्यैव प्रारब्धगुणकीर्त्तनाः । सुखदुःखरसोन्मिश्रा मुहूर्तं पार्थिवा स्थिताः ॥१८॥
ततः समुत्थिते पद्मे सोद्वेगे लक्ष्मणे तथा । तथा स्वमास्पदं याता नरेन्द्रा बहुविस्मयाः ॥१९॥
सम्प्रधार्यं पुनः प्राप्ताः कर्त्तव्याहितचेतसः । पद्मनाभं नमस्कृत्य प्रीत्या वचनमब्रुवन् ॥२०॥
विदुषामज्ञकानां वा प्रसादं कुरु नाथ नः । राज्याभिषेकमन्विच्छ सुरलोकसमद्युतिः ॥२१॥
विदधत्स्वैफलत्वं नश्चक्षुषोर्हृदयस्य च । तवाभिषेकसौख्येन भरितस्य नरोत्तम ॥२२॥
विभ्रतसप्तगुणैश्वर्यं राजराजो दिने दिने । पादौ नमति यत्रैष तत्र राज्येन किं मम ॥२३॥
प्रतिकूलमिदं वाच्यं न भवद्भिर्ममादृशम् । स्वेच्छाविधानमात्रं हि ननु राज्यमुदाहृतम् ॥२४॥
इत्युक्ते जयशब्देन पद्मामभिनन्द्य ते । गत्वा नारायणं प्रोचुः स चायातो बलान्तिकम् ॥२५॥
प्रावृडारम्भसम्भूतसम्वराम्भोदनिःस्वनाः । ततः समाहता भेर्यः शङ्खशब्दपुरःसराः ॥२६॥
दुन्दुभ्यानकझल्लर्यस्तूर्याणि प्रवराणि च । मुमुचुर्नादमुत्तुङ्गं वंशादिस्वनसङ्गतम् ॥२७॥
मङ्गलानि च गीतानि नाट्यानि विविधानि च । प्रवृत्तानि मनोज्ञानि यच्छन्ति प्रमदं परम् ॥२८॥

तदनन्तर समस्त सभाको आह्लादित करते हुए विधि-विधानके वेत्ता रामने कहा कि यह भरत परम धन्य तथा अत्यन्त महान् है ॥१५॥ एक उसीकी बुद्धि शुद्ध है, और उसीका जन्म सार्थक है कि जो विषमिश्रित अन्नके समान राज्यका त्याग कर दीक्षाको प्राप्त हुआ है ॥१६॥ जिसके गुणोंकी खानका वर्णन करनेके लिए इन्द्र भी समर्थ नहीं हैं ऐसे उस परम योगीकी पूज्यताका कैसे वर्णन किया जाय ? ॥१७॥ जिन्होंने भरतके गुणोंका वर्णन करना प्रारम्भ किया था, ऐसे राजा मुहूर्त भर सुख-दुःखके रससे मिश्रित होते हुए स्थित थे ॥१८॥ तदनन्तर उद्वेगसे सहित राम और लक्ष्मण जब उठ कर खड़े हुए तब बहुत भारी आश्चर्यसे युक्त राजा लोग अपने अपने स्थान पर चले गये ॥१९॥

अथानन्तर करने योग्य कार्यमें जिनका चित्त लग रहा था ऐसे राजा लोग परस्पर विचार कर पुनः रामके पास आये और नमस्कार कर प्रीति पूर्वक निम्न वचन बोले ॥२०॥ उन्होंने कहा कि हे नाथ ! हम विद्वान् हों अथवा मूर्ख ! हमलोगों पर प्रसन्नता कीजिये । आप देवोंके समान कान्तिको धारण करनेवाले हैं अतः राज्याभिषेककी स्वीकृति दीजिये ॥२१॥ हे पुरुषोत्तम ! आप हमारे नेत्रों तथा अभिषेक सम्बन्धी सुखसे भरे हुए हमारे हृदयको सफलता करो ॥२२॥ यह सुन रामने कहा कि जहाँ सात गुणोंके ऐश्वर्यको धारण करनेवाला राजाओंका राजा लक्ष्मण प्रतिदिन हमारे चरणोंमें नमस्कार करता है वहाँ हमें राज्यकी क्या आवश्यकता है ? ॥२३॥ इसलिए आप लोगोंको मेरे विषयमें इस प्रकारके विरुद्ध वचन नहीं कहना चाहिये क्योंकि इच्छानुसार कार्य करना ही तो राज्य कहलाता है ॥२४॥ कहनेका सार यह है कि आपलोग लक्ष्मणका राज्याभिषेक करो । रामके इस प्रकार कहने पर सबलोग जयध्वनिके साथ रामका अभिनन्दन कर लक्ष्मणके पास पहुँचे और नमस्कार कर राज्याभिषेक स्वीकृत करनेकी बात बोले । इसके उत्तरमें लक्ष्मण श्रीरामके समीप आये ॥२५॥

तदनन्तर वर्षाऋतुके प्रारम्भमें एकत्रित घनघटाके समान जिनका विशाल शब्द था तथा जिनके प्रारम्भमें शङ्खोंके शब्द हो रहे थे ऐसी भेरियाँ बजाई गईं ॥२६॥ दुन्दुभि, ढक्का, झालर, और उत्तमोत्तम तूर्य, बाँसुरी आदिके शब्दोंसे सहित उच्च शब्द छोड़ रहे थे ॥२७॥ मङ्गलमय

---

१. सुरलोकसमद्युति म० । २. विदधत्सफलत्वं नश्च -म० ।

तस्मिन् महोत्सवे जाते स्वार्थीयासनसंस्थितौ । विभूत्या परया युक्तौ सङ्गतौ रामलक्ष्मणौ ॥२९॥
रुक्मकाञ्चननिर्माणैर्नानारत्नमयैस्तथा । कलशैर्युक्तपद्मास्यैरभिषिक्तौ यथाविधि ॥३०॥
मुकुटाङ्गदकेयूरहारकुण्डलभूषितौ । दिव्यस्रग्वस्त्रसम्पन्नौ वरालेपनचर्चितौ ॥३१॥
सीरपाणिर्जयत्वेवञ्चक्री जयतु लक्ष्मणः । इति तौ जयशब्देन खेचरैरभिनन्दितौ ॥३२॥
राजेन्द्रयोस्तयोः कृत्वा खेचरेन्द्रा महोत्सवम् । गत्वाऽभिषिषिचुर्देवीं स्वामिनीं तु विदेहजाम् ॥३३॥
सङ्गासौभाग्यसम्पन्ना पूर्वमेव हि साऽभवत् । प्रधाना सर्वदेवीभ्यस्तस्मिन्नेकाङ्गविक्रमैः ॥३४॥
आनन्द्य जयशब्देन सैवैर्हीमभिषेचनम् । कृत्वा चक्रुर्विशल्यायाश्चक्रिपत्नीविभुत्वकृत् ॥३५॥
स्वामिनी लक्ष्मणस्यापि प्राणदानाद् बभूव या । मर्यादामात्रकं तस्यास्तत्स्नातमभिषेचनम् ॥३६॥
जय त्रिखण्डनाथस्य लक्ष्मणस्याथ सुन्दरि । इति तां जयशब्देन तेऽभिनन्द्य स्थिताः सुखम् ॥३७॥
त्रिकूटशिखरे राज्यं ददौ रामो विभीषणे । सुग्रीवस्य च किष्किन्धे वानरध्वजभूभृतः ॥३८॥
श्रीपर्वते मरुजस्य गिरौ श्रीनगरे पुरे । विराधितनरेन्द्रस्य गोत्रक्रमनिषेविते ॥३९॥
महार्णवोर्मिसन्तानचुम्बिते बहुकौतुके । किष्किन्धे च पुरे स्फीतं पतित्वं नलनीलयोः ॥४०॥
विजयार्द्धदक्षिणे स्थाने प्रख्याते रथनूपुरे । राज्यं जनकपुत्रस्य प्रणतोग्रनभश्चरम् ॥४१॥
दैवोपगीतनगरे कृतो रत्नजटी नृपः । शेषा अपि यथायोग्यं विषयस्वामिनः कृताः ॥४२॥

सुन्दर गीत, और नाना प्रकारके मनोहर नृत्य उत्तम आनन्द प्रदान कर रहे थे ॥२८॥ इस प्रकार उस महोत्सवके होने पर परम विभूतिसे युक्त राम और लक्ष्मण साथ ही साथ अभिषेकके आसन पर आरूढ हुए ॥२९॥ तत्पश्चात् जिनके मुख, कमलोंसे युक्त थे ऐसे चाँदी सुवर्ण तथा नाना प्रकारके रत्नोंसे निर्मित कलशोंके द्वारा विधिपूर्वक उनका अभिषेक हुआ ॥३०॥ दोनों ही भाई मुकुट, अङ्गद, केयूर, हार और कुण्डलोंसे विभूषित किये गये। दोनों ही दिव्य मालाओं और वस्त्रोंसे सम्पन्न तथा उत्तमोत्तम विलेपनसे चर्चित किये गये ॥३१॥ जिनके हाथमें हलायुध विद्यमान है ऐसे श्रीराम और जिनके हाथमें चक्ररत्न विद्यमान है ऐसे लक्ष्मणकी जय हो इस प्रकार जय-जयकारके द्वारा विद्याधरोंने दोनोंका अभिनन्दन किया ॥३२॥ इस प्रकार उन दोनों राजाधिराजोंका महोत्सव कर विद्याधर राजाओंने स्वामिनी सीतादेवीका जाकर अभिषेक किया ॥३३॥ वह सीतादेवी पहलेसे ही महा सौभाग्यसे सम्पन्न थी फिर उस समय अभिषेक होनेसे विशेष कर सब देवियोंमें प्रधान हो गई थी ॥३४॥ तदनन्तर जय-जयकारसे सीताका अभिनन्दन कर उन्होंने बड़े वैभवके साथ विशल्याका अभिषेक किया। उसका वह अभिषेक चक्रवर्तीकी पट्टराज्ञीके विभुत्वको प्रकट करनेवाला था ॥३५॥ जो विशल्या प्राणदान देनेसे लक्ष्मणकी भी स्वामिनी थी उसका अभिषेक केवल मर्यादा मात्रके लिए हुआ था अर्थात् वह स्वामिनी तो पहले से ही थी उसका अभिषेक केवल नियोग मात्र था ॥३६॥ अथानन्तर हे तीन खण्डके अधिपति लक्ष्मणकी सुन्दरि ! तुम्हारी जय हो इस प्रकारके जय-जयकारसे उसका अभिनन्दन कर सब राजा लोग सुखसे स्थित हुए ॥३७॥

तदनन्तर श्री रामने विभीषणके लिए त्रिकूटाचलके शिखरका, वानरवंशियोंके राजा सुग्रीवको किष्किन्ध पर्वतका, हनूमानको श्रीपर्वतका, राजा विराधितके लिए उसकी वंश-परम्परासे सेवित श्रीपुर नगरका और नल तथा नीलके लिए महासागरकी तरङ्गोंसे चुम्बित अनेक कौतुकोंको धारण करनेवाले, किष्किन्धपुरका विशाल साम्राज्य दिया ॥३८-४०॥ भामण्डलके लिए विजयार्ध पर्वतके दक्षिणमें स्थित रथनूपुर नगर नामक प्रसिद्ध स्थानमें उग्र विद्याधरोंको नम्रीभूत करनेवाला राज्य दिया ॥४१॥ रत्नजटीको देवोपगीत नगरका राजा बनाया और शेष लोग भी यथायोग्य देशोंके स्वामी किये गये ॥४२॥

उपजातिः

एवं स्वपुण्योदययोग्यमासा राज्यं नरेन्द्राश्चिरमप्रकम्पम् ।
रामानुमत्या बहुलब्धहर्षास्तस्थुर्यथास्वं निलयेषु दीप्ताः ॥४३॥
पुण्यानुभावस्य फलं विशालं विज्ञाय सम्यग्जगति प्रसिद्धम् ।
कुर्वन्ति ये धर्मरतिं मनुष्या रवेर्युतिं ते जनयन्ति सर्वाम्[1] ॥४४॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे राज्याभिषेकाभिधानं विभागदर्शनं नाम अष्टाशीतितमं पर्व ॥८८॥

इस प्रकार जो अपने-अपने पुण्योदयके योग्य चिरस्थायी राज्यको प्राप्त हुए थे तथा रामचन्द्रजीकी अनुमतिसे जिन्हें अनेक हर्षके कारण उपलब्ध थे ऐसे वे सब देदीप्यमान राजा अपने-अपने स्थानोंमें स्थित हुए ॥४३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य जगत्में प्रसिद्ध पुण्यके प्रभावका फल जानकर धर्ममें प्रीति करते हैं वे सूर्यकी प्रभाको भी कृश कर देते हैं ॥४४॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें राज्याभिषेकका वर्णन करनेवाला तथा अन्य राजाओंके विभागको दिखलानेवाला अठासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥८८॥

१. तन्वम् म० ।

नवाशीतितमं पर्व

अथ सम्यग्वहन् प्रीतिं पद्माभो लक्ष्मणस्तथा । ऊचे शत्रुघ्नमिष्टं स्वं विषयं रुचिमानय ॥१॥
गृह्णासि किमयोध्यार्द्धं साधु वा पोदनापुरम् । किं वा राजगृहं रम्यं यदि वा पौण्ड्रसुन्दरम् ॥२॥
ह्यास्याः शतशस्तस्य राजधान्यः सुतेजसः । उपदिष्टा न चास्यैता निद्रुमानिसे पदम् ॥३॥
मधुरायाचने तेन कृते पद्मः पुनर्जगौ । मधुनामि च तत्स्वामी त्वया ज्ञातो न किं रिपुः ॥४॥
जामाता रावणस्यासावनेकाहवशोभितः । शूलं चमरनाथेन यस्य दत्तमनिष्फलम् ॥५॥
अमरैरपि दुर्वारं तडिद्वार्कदुःसहम् । हत्वा[1] प्राणान् सहस्रस्य शूलमेति पुनः करम् ॥६॥
यस्यार्थं कुर्वतां मन्त्रमस्माकं वर्तते समा । रात्रावपि न विन्दामो निद्रां चिन्तासमाकुलाः ॥७॥
हरीणामन्वयो येन जायमानेन पुष्कलः । नीतः परममुद्योतं लोकस्तिग्मांशुना यथा ॥८॥
खेचरैरपि दुःसाध्यो लवणार्णवसंज्ञकः । सुतो यस्य कथं शूरं तं विजेतुं भवान् क्षमः ॥९॥
ततो जगाद शत्रुघ्नः किमत्र बहुभाषितैः । प्रयच्छ मधुरां मह्यं ग्रहीष्यामि ततः स्वयम् ॥१०॥
मधूकमिव कृन्तामि मधुं यदि न संयुगे । ततो दशरथेनाहं पित्रा सार्धं वहामि नो ॥११॥
शरभः सिंहसङ्घातमिव तस्य बलं यदि । न चूर्णयामि न भ्राता युष्माकमहकं तदा ॥१२॥
नास्मि सुप्रजसः कुक्षौ सम्भूतो यदि तं रिपुम् । नयामि दीर्घनिद्रां न त्वदाशीः कृतपालनः ॥१३॥

अथानन्तर अच्छी तरह प्रीतिको धारण करनेवाले राम और लक्ष्मणने शत्रुघ्नसे कहा कि जो देश तुझे इष्ट हो उसे स्वीकृत कर ॥१॥ क्या तू अयोध्याका आधाभाग लेना चाहता है ? या उत्तम पोदनपुरको ग्रहण करना चाहता है ? या राजगृह नगर चाहता है अथवा मनोहर पौण्ड्र-सुन्दर नगरकी इच्छा करता है ? ॥२॥ इस प्रकार राम-लक्ष्मणने उस तेजस्वीके लिए सैकड़ों राजधानियाँ बताईं पर वे उसके मनमें स्थान नहीं पा सकीं ॥३॥ तदनन्तर जब शत्रुघ्नने मथुराकी याचना की तब रामने उससे कहा कि मथुराका स्वामी मधु नामका शत्रु है यह क्या तुम्हें ज्ञात नहीं है ? ॥४॥ वह मधु रावणका जमाई है, अनेक युद्धोंसे सुशोभित है, और चमरेन्द्रने उसके लिए कभी व्यर्थ नहीं जानेवाला वह शूल रत्न दिया है, कि जो देवोंके द्वारा भी दुर्निवार है, जो ग्रीष्म ऋतुके सूर्यके समान अत्यन्त दुःसह है, और जो हजारोंके प्राण हरकर पुनः उसके हाथमें आ जाता है ॥५-६॥ जिसके लिए मन्त्रणा करते हुए हमलोग चिन्तातुर हो सारी रात निद्राको नहीं प्राप्त होते हैं ॥७॥ जिस प्रकार सूर्य उदित होता हुआ ही समस्त लोकको परमप्रकाश प्राप्त कराता है उसी प्रकार जिसने उत्पन्न होते ही विशाल हरिवंशको परमप्रकाश प्राप्त कराया था ॥८॥ और जिसका लवणार्णव नामका पुत्र विद्याधरोंके द्वारा भी दुःसाध्य है उस शूरवीरको जीतनेके लिए तू किस प्रकार समर्थ हो सकेगा ? ॥९॥

तदनन्तर शत्रुघ्नने कहा कि इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ है ? आप तो मुझे मथुरा दे दीजिये मैं उससे स्वयं ले लूँगा ॥१०॥ यदि मैं युद्धमें मधुको मधुके छत्तेके समान नहीं तोड़ डालूँ तो मैं पिता दशरथसे अहंकार नहीं धारण करूँ अर्थात् उनके पुत्र होनेका गर्व छोड़ दूँ ॥११॥ जिस प्रकार अष्टापद सिंहोंके समूहको नष्ट कर देता है उसी प्रकार यदि मैं उसके बलको चूर्ण नहीं कर दूँ तो आपका भाई नहीं होऊँ ॥१२॥ आपका आशीर्वाद ही जिसकी रक्षा कर रहा है ऐसा मैं यदि उस शत्रुको दीर्घ निद्रा नहीं प्राप्त करा दूँ तो मैं सुप्रजाकी कुक्षिमें उत्पन्न हुआ नहीं कहलाऊँ ॥१३॥ इस प्रकार उत्तम तेजका धारक शत्रुघ्न जब पूर्वोक्त प्रतिज्ञाको प्राप्त हुआ

---

१. कृत्वा म० ।

एवमास्थां समारूढे तस्मिन्नुत्तमतेजसि । विस्मयं परमं प्राप्ता विद्याधरमहेश्वराः ॥१४॥
ततस्तमुद्यतं गन्तुं समुत्सार्य हलायुधः । जगाद दक्षिणामेकां वीर मे यच्छ याचितः ॥१५॥
तमरिघ्नोऽब्रवीद्दाता त्वमनन्यसमो विभुः । याचसे किं ततः श्लाघ्यं परं मेऽन्यद् भविष्यति ॥१६॥
असूनामपि नाथस्त्वं का कथाऽन्यत्र वस्तुनि । युद्धविघ्नं विमुच्यैकं ब्रूहि किं करवाणि वः ॥१७॥
ध्यात्वा जगाद पद्माभो यद्वत्सकसो वचः मधुः । रहितः शूलरत्नेन लोभ्यः क्षिप्रे मदर्थनात् ॥१८॥
यथाऽऽज्ञापयसीत्युक्त्वा सिद्धाज्ञया समर्च्य च । भुक्त्वा मातरमागत्य नत्वाऽपृच्छत् सुखस्थिताम्॥१९॥
समीक्ष्य तनयं देवी स्नेहाद्दाद्याय मस्तके । जगाद जय वत्स त्वं शरैः शत्रुगणं शितैः ॥२०॥
वत्समर्द्धासने कृत्वा वीरसूरगदत् पुनः । वीर दर्शयितव्यं ते पृष्ठं संयति न द्विषाम् ॥२१॥
त्यागतं कृतार्थं त्वां वीक्ष्य जातक संयुगात् । पूजां परां करिष्यामि जिनानां हेमपङ्कजैः ॥२२॥
त्रैलोक्यमङ्गलाधानः सुरासुरनमस्कृताः । मङ्गलं तव यच्छन्तु जितरागादयो जिनाः ॥२३॥
संसारप्रभवं मोहं यैर्जितोऽत्यन्तदुर्जयः । अर्हन्तो भगवन्तस्ते भवन्तु तव मङ्गलम् ॥२४॥
चतुर्गतिविधानं ये दैशयन्ति त्रिकालगम् । ददतां ते स्वयम्बुद्धास्तव बुद्धिं रिपोर्जये ॥२५॥
करस्थामलकं यद्वल्लोकालोकं स्वतेजसा । पश्यन्तः केवलालोका भवन्तु तव मङ्गलम् ॥२६॥
कर्मणाऽष्टप्रकारेण मुक्ताश्चैलोक्यमूर्द्धगाः । सिद्धाः सिद्धिकरा वत्स भवन्तु तव मङ्गलम् ॥२७॥
कमलादित्यचन्द्रक्षमामन्दराब्धिवियत् समाः । आचार्याः परमाधारा भवन्तु तव मङ्गलम् ॥२८॥

तब विद्याधर राजा परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥१४॥ तदनन्तर वहाँ जानेके लिए उद्यत शत्रुघ्नको सामनेसे दूर हटाकर श्रीरामने कहा कि हे वीर ! मैं तुझसे याचना करता हूँ तू मुझे एक दक्षिणा दे ॥१५॥ यह सुन शत्रुघ्नने कहा कि असाधारण दाता तो आप ही हैं सो आप ही जब याचना कर रहे हैं तब मेरे लिए इससे बढ़कर अन्य प्रशंसनीय क्या होगा ? ॥१६॥ आप तो मेरे प्राणोंके भी स्वामी हैं फिर अन्य वस्तुकी क्या कथा है ? एक युद्धके विघ्नको छोड़कर कहिये कि मैं आपकी क्या करूँ ? आपकी क्या सेवा करूँ ? ॥१७॥

तदनन्तर रामने कुछ ध्यान कर उससे कहा कि हे वत्स ! मेरे कहनेसे तू एक बात मान ले। वह यह कि जब मधु शूल रत्नसे रहित हो तभी तू अवसर पाकर उसे क्षोभित करना अन्य समय नहीं ॥१८॥ तत्पश्चात् 'जैसी आपकी आज्ञा हो' यह कहकर तथा सिद्ध परमेष्ठियोंको नमस्कार और उनकी पूजा कर भोजनोपरान्त शत्रुघ्न सुखसे बैठी हुई माताके पास आकर तथा प्रणाम कर पूछने लगा ॥१९॥ रानी सुप्रजाने पुत्रको देखकर उसका मस्तक सूँघा और उसके बाद कहा कि हे पुत्र ! तू तीक्ष्ण बाणोंके द्वारा शत्रु समूहको जीते ॥२०॥ वीरप्रसविनी माताने पुत्रको अर्धासन पर बैठाकर पुनः कहा कि हे वीर ! तुझे युद्धसे शत्रुओंको पीठ नहीं दिखाना चाहिए ॥२१॥ हे पुत्र ! तुझे युद्धसे विजयी हो लौटा देखकर मैं सुवर्ण कमलोंसे जिनेन्द्र भगवान्‌की परम पूजा करूँगी ॥२२॥ जो तीनों लोकोंके लिए मङ्गल स्वरूप हैं, तथा सुर और असुर जिन्हें नमस्कार करते हैं ऐसे वीतराग जिनेन्द्र तेरे लिए मङ्गल प्रदान करें ॥२३॥ जिन्होंने संसारके कारण अत्यन्त दुर्जेय मोहको जीत लिया है ऐसे अर्हन्त भगवान् तेरे लिए मङ्गल स्वरूप हों ॥२४॥ जो तीन काल सम्बन्धी चतुर्गतिके विधानका निरूपण करते हैं ऐसे स्वयम्बुद्ध जिनेन्द्र भगवान् तेरे लिए शत्रुके जीतनेमें बुद्धि प्रदान करें ॥२५॥ जो अपने तेजसे समस्त लोकालोकको हाथ पर रक्खे हुए आमलकके समान देखते हैं ऐसे केवलज्ञानी तुम्हारे लिए मङ्गल स्वरूप हों ॥२६॥ जो आठ प्रकारके कर्मोंसे रहित हो त्रिलोक शिखर पर विद्यमान हैं ऐसे सिद्धिके करनेवाले सिद्ध परमेष्ठी, हे वत्स ! तेरे लिए मङ्गल स्वरूप हों ॥२७॥ जो कमलके समान निर्लिप्त, सूर्यके

१. मवत्या न० । २. तीक्ष्णैः ।

परात्मशासनाभिज्ञाः कृतानुगतशासनाः । सदायुष्मन्नुपाध्यायाः कुर्वन्तु तव मङ्गलम् ॥२६॥
तपसा द्वादशाङ्गेन निर्वाणं साधयन्ति ये । भद्र ते साधवः शूरा भवन्तु तव मङ्गलम् ॥३०॥
इति प्रणीत्य[1] विघ्नघ्नीमाशिषं दिव्यमङ्गलाम् । प्रणम्य मातरं यातः शत्रुघ्नः सदनो बहिः ॥३१॥
हेमकक्षापरीतं स समारूढो महागजम् । रराजाम्बुदपृष्ठस्थः सम्पूर्ण इव चन्द्रमाः ॥३२॥
नानायानसमारूढैर्नरराजशतैर्वृतः । शुशुभे स वृतो देवैः सहस्रनयनो यथा ॥३३॥
प्रीतावासानुहर्षाति भ्रातरं स समागतम् । जगौ पूज्य निवर्तस्व व्राजाज्यनपेक्षतः ॥३४॥
लक्ष्मणेन धनूरत्नं समुद्रावर्तमर्पितम् । तस्मै ज्वलनवक्त्राश्च शराः पवनरंहसः ॥३५॥
कृतान्तवक्त्रमात्मानं नियोज्यास्मै चमूपतिम् । लक्ष्मणेन समं रामश्चिन्तायुक्तो न्यवर्तत ॥३६॥
राजन्नरिघ्नवीरोऽपि महाबलसमन्वितः । मथुरां प्रति याति स्म मधुराजेन पालिताम् ॥३७॥
क्रमेण पुण्यभागायास्तीरं प्राप्य ससम्भ्रमम् । सैन्यं न्यवेशयद्दूरमध्वानं समुपागतम् ॥३८॥
कृताशेषक्रियस्तत्र मन्त्रिवर्गो गतश्रमः । चकार संशयापन्नो मन्त्रमत्यन्तसूक्ष्मधीः ॥३९॥
मधुमङ्गकृताशंसां पश्यतास्य धियं शिशोः । केवलं योऽभिमानेन प्रवृत्तो नयवर्जितः ॥४०॥
महार्वीर्यः पुरा येन मान्धाता निर्जितो रणे । खेचरैरपि दुःसाध्यो जय्यः सोऽस्य कथं मधुः ॥४१॥
[2]चलत्पादातनुक्लोलिशस्त्रमाहकुलाकुलम् । कथं वाञ्छति बाहुभ्यां तरितुं मधुसागरम् ॥४२॥

समान तेजस्वी, चन्द्रमाके समान शान्तिदायक, पृथिवीके समान निश्चल, सुमेरुके समान उन्नत-उदार, समुद्रके समान गम्भीर और आकाशके समान निःसङ्ग हैं तथा परम आधार स्वरूप हैं ऐसे आचार्य परमेष्ठी तेरे लिए मङ्गलरूप हों ॥२८॥ जो स्वि और पर शासनके जाननेवाले हैं तथा जो अपने अनुगामी जनोंको सदा उपदेश करते हैं ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी हे आयुष्मन् ! तेरे लिए मङ्गल रूप हों ॥२९॥ और जो बारह प्रकारके तपके द्वारा मोक्ष सिद्ध करते हैं—निर्वाण प्राप्त करते हैं ऐसे शूरवीर साधु परमेष्ठी हे भद्र ! तेरे लिए मङ्गल स्वरूप हों ॥३०॥ इस प्रकार विघ्नोंको नष्ट करनेवाले दिव्य मङ्गल स्वरूप आशीर्वादको स्वीकृत कर तथा माताको प्रणाम कर शत्रुघ्न घरसे बाहर चला गया ॥३१॥ सुवर्णमयी मालाओंसे युक्त महागज पर बैठा शत्रुघ्न मेघपृष्ठ पर स्थित पूर्ण चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहा था ॥३२॥ नाना प्रकारके वाहनों पर आरूढ सैकड़ों राजाओंसे घिरा हुआ वह शत्रुघ्न, देवोंसे घिरे इन्द्रके समान सुशोभित हो रहा था ॥३३॥ अत्यधिक प्रीतिको धारण करनेवाले भाई राम और लक्ष्मण तीन पड़ाव तक उसके साथ गये थे । तदनन्तर उसने कहा कि हे पूज्य ! आप लौट जाइये अब मैं निरपेक्ष हो शीघ्र ही आगे जाता हूँ ॥३४॥ उसके लिए लक्ष्मणने सागरावर्त नामका धनुषरत्न और वायुके समान वेगशाली अग्निमुख बाण समर्पित किये ॥३५॥ सत्यश्रात् अपनी समानता रखनेवाले कृतान्त-वक्त्रको सेनापति बनाकर रामचन्द्रजी चिन्तायुक्त होते हुए लक्ष्मणके साथ वापिस लौट गये ॥३६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! बड़ी भारी सेना अथवा अत्यधिक पराक्रमसे युक्त वीर शत्रुघ्नने मधु राजाके द्वारा पालित मथुराकी ओर प्रयाण किया ॥३७॥ क्रम-क्रमसे पुण्यभागा नदीका तट पाकर उसने दीर्घ मार्गको पार करनेवाली अपनी सेना संभ्रम सहित ठहरा दी ॥३८॥ वहाँ जिन्होंने समस्त क्रिया पूर्ण की थी, जिनका श्रम दूर हो गया था और जिनकी बुद्धि अत्यन्त सूक्ष्म थी ऐसे मन्त्रियोंके समूहने संशयारूढ़ हो परस्पर इस प्रकार विचार किया ॥३९॥ कि अहो ! मधुके पराजयकी आकांक्षा करनेवाली इस बालककी बुद्धि तो देखो जो नीतिरहित हो केवल अभिमानसे ही युद्धके लिए प्रवृत्त हुआ है ॥४०॥ जो विद्याधरोंके द्वारा भी दुःसाध्य था ऐसा महाशक्तिशाली मान्धाता जिसके द्वारा पहले युद्धमें जीता गया था वह मधु इस बालकके द्वारा कैसे जीता जा सकेगा ? ॥४१॥ जिसमें चलते हुए पैदल सैनिक रूपी ऊँची ऊँची लहरें उठ रही

१. सदा युष्मानुपाध्यायाः म० । २. प्रतीक्ष्य । ३. विघ्नापहारिणीम् । ४. बलात् ज० ।

पाद्यातस्तद्ग्रहाकृष्टं मत्स्यवल्लणभीषणम् । प्रविश्य मधुकान्तारं को निःक्रामति जीवितः ॥४३॥
एवमुक्तं समाकर्ण्य कृतान्तकुटिलोऽब्रवीत् । यूयं भीताः किमित्येवं त्यक्त्वा मानसमुन्नतिम् ॥४४॥
अमोघेन किलाऽऽरूढो गर्वं शूलेन यद्यपि । हन्तुं तथापि तं शक्तो मधुं शत्रुघ्नसुन्दरः ॥४५॥
करेण बलवान् दन्ती पातयेद्वरणीरुहान् । प्रस्रवद्दानधारोऽपि सिंहेन तु निपात्यते ॥४६॥
लक्ष्मीप्रतापसम्पन्नः सत्ववान् बलवान् बुधः । सुसहायश्च शत्रुघ्नः शत्रुघ्नो जायते ध्रुवम् ॥४७॥
अथ मन्त्रिजनाऽऽदेशान् मधुरानगरीं गताः । प्रत्यावृत्य चरा वार्तां वदन्ति स्म यथाविधि ॥४८॥
शृणु देवाऽस्ति पूर्वस्यां मधुरा नगरी दिशि । उद्यानं रम्यमत्यन्तं राजलोकसमावृतम् ॥४९॥
मध्येऽमरकुरोर्यद्वत्कुबेरच्छन्दसंज्ञितम् । इच्छापूरणसम्पन्नं विपुलं राजतेतराम् ॥५०॥
जयन्त्याऽत्र महादेव्या सहितस्याद्य वर्त्तते । वारांगतगजस्येव स्पर्शवश्यस्य भूभृतः ॥५१॥
कामिनो दिवसः षष्ठस्त्यक्ताशेषान्यकर्मणः । महासुस्थाभिमानस्य प्रमादवशवर्तिनः ॥५२॥
प्रतिज्ञां तव नो वेद नागमं कामवश्यधीः । बुधैरुपेक्षितो मोहान्ध भिषग्भिः सरोगवत् ॥५३॥
प्रस्तावे यदि नैतस्मिन् मधुराऽध्यास्यते ततः । अन्यपुंवाहिनीवाहैर्दुःसहः स्यान्मधूदधिः ॥५४॥
वचनं तत्समाकर्ण्य शत्रुघ्नः क्रमकोविदः । ययौ शतसहस्रेण यवूनां मधुरां पुरीम् ॥५५॥

हैं तथा जो शस्त्ररूपी मगरमच्छोंसे व्याप्त है ऐसे मधुरूपी सागरको यह भुजाओंसे कैसे तैरना चाहता है ? ॥४२॥ जो पैदल सैनिक रूपी बड़े-बड़े वृक्षोंसे युक्त तथा मदोन्मत्त हाथियोंसे भयंकर है ऐसे मधुरूपी वनमें प्रवेश कर कौन पुरुष जीवित निकलता है ? ॥४३॥ इस प्रकार मन्त्रियोंका कहा सुनकर कृतान्तवक्त्र सेनापतिने कहा कि तुम लोग अभिमानको छोड़कर इस तरह भयभीत क्यों हो रहे हो ? ॥४४॥ यद्यपि मधु, अमोघ शूलके कारण गर्व पर आरूढ है—अहंकार कर रहा है तथापि शत्रुघ्न उसे मारनेके लिए समर्थ हैं ॥४५॥ जिसके मदकी धारा झर रही है ऐसा बलवान् हाथी यद्यपि अपनी सूँड़से वृक्षोंको गिरा देता है तथापि वह सिंहके द्वारा मारा जाता है ॥४६॥ यतश्च शत्रुघ्न लक्ष्मी और प्रतापसे सहित है, धैर्यवान् है, बलवान् है, बुद्धिमान् है, और उत्तम सहायकोंसे युक्त है इसलिए अवश्य ही शत्रुको नष्ट करनेवाला होगा ॥४७॥

अथानन्तर मन्त्रिजनोंके आदेशसे जो गुप्तचर मथुरा नगरी गये थे उन्होंने लौटकर विधिपूर्वक यह समाचार कहा कि हे देव ! सुनिये, यहाँसे उत्तर दिशामें मथुरा नगरी है। वहाँ नगरके बाहर राजलोकसे घिरा हुआ एक अत्यन्त सुन्दर उद्यान है ॥४८-४९॥ सो जिस प्रकार देवकुरुके मध्यमें इच्छाओंको पूर्ण करनेवाला कुबेरच्छन्द नामका विशाल उपवन सुशोभित है उसी प्रकार वहाँ वह उद्यान सुशोभित है ॥५०॥ अपनी जयन्ती नामक महादेवीके साथ राजा मधु इसी उद्यानमें निवास कर रहा है। जिस प्रकार हथिनीके वशमें हुआ हाथी बन्धनमें पड़ जाता है उसी प्रकार राजा मधु भी महादेवीके वशमें हुआ बन्धनमें पड़ा है ॥५१॥ वह राजा अत्यन्त कामी है, उसने अन्य सब काम छोड़ दिये हैं वह महा अभिमानी है तथा प्रमादके वशीभूत है। उसे उद्यानमें रहते हुए आज छठवाँ दिन है ॥५२॥ जिसकी बुद्धि कामके वशीभूत है ऐसा वह मधु राजा, न तो तुम्हारी प्रतिज्ञाको जानता है और न तुम्हारे आगमनका ही उसे पता है। जिस प्रकार वैद्य किसी रोगीकी उपेक्षा कर देते हैं उसी प्रकार मोहकी प्रबलतासे विद्वानोंने भी उसकी उपेक्षा कर दी है ॥५३॥ यदि इस समय मथुरापर अधिकार नहीं किया जाता है तो फिर वह मधुरूपी सागर अन्य पुरुषोंकी सेनारूपी नदियोंके प्रवाहसे दुःसह हो जायगा—उसका जीतना कठिन हो जायगा ॥५४॥ गुप्तचरोंके यह वचन सुनकर क्रमके जाननेमें निपुण शत्रुघ्न एक लाख घोड़ा लेकर मथुराकी ओर चला ॥५५॥

---

१. देवकुरो- । २. अश्वानाम् ।

अर्द्धरात्रे व्यतीतेऽसौ परलोके प्रमादिनि । निवृत्य प्राविशद्द्वारस्थानं लब्धमहोदयः ॥५६॥
आसीद् योगीव शत्रुघ्नः द्वारं कर्मेव चूर्णितम् । प्रासाज्यन्तमनोज्ञा च मथुरा सिद्धिभूरिव ॥५७॥
देवो जयति शत्रुघ्नः श्रीमान् दशरथात्मजः । बन्दिनामिति वक्त्रेभ्यो महानादः समुद्ययौ ॥५८॥
परेणाथ समाक्रान्तां विज्ञाय नगरीं जनः । लङ्कायामङ्गदप्राप्तौ यथा क्षोभमितो भयात् ॥५९॥
त्रासात्तरलनेत्राणां स्त्रीणामाकुलतामुषाम् । सद्यः प्रचलिता गर्भा हृदयेन समं भृशम् ॥६०॥
महाकलकलारावप्रेरणे प्रतिबोधिनः । उत्तस्थुः सहसा शूराः सिंहा इव भयोज्झिताः ॥६१॥
विध्वस्य शब्दमात्रेण शत्रुलोकं मधोर्गृहम् । सुप्रभातनयोऽविक्षदत्यन्तोर्जितविक्रमः ॥६२॥
तत्र दिव्यायुधाकीर्णां सुतेजाः परिपालयन् । शालामवस्थितः प्रीतो यथार्हं समितोदयः ॥६३॥
मधुराभिर्मनोज्ञाभिर्गिरभिरशेषतः । नीतो लोकः समाश्वासं नष्टो त्राससमागमम् ॥६४॥
शत्रुघ्नं मथुरां ज्ञात्वा प्रविष्टं मधुसुन्दरः । निरैद् रावणवत्कोपादुद्यानात् स महाबलः ॥६५॥
शत्रुघ्नरक्षितं स्थानं प्रवेष्टुं मधुराधिपः । निर्ग्रन्थरक्षितं मोहो यथा शक्नोति नो तदा ॥६६॥
प्रवेशं विविधोपायैरलब्ध्वाप्यभिमानवान् । रक्षितोऽपि शूलेन न सन्धिं वृणुते मधुः ॥६७॥
असहन्तः परानीकं द्रष्टुं दर्पसमुद्धुरम् । शत्रुघ्नसैनिकाः सैन्यात् स्वस्माच्चिर्ययुरंहसः ॥६८॥
तत्राहवसमारम्भे शात्रुघ्नं सकलं बलम् । प्राप्तं जातश्च संयोगस्तयोः सैन्यसमुद्रयोः ॥६९॥
रथेभवाजिपादाताः समर्था विविधायुधाः । रथैभैः साद्रिपादातैराकीर्णाः सह वेगिभिः ॥७०॥

तदनन्तर अर्धरात्रि व्यतीत होनेपर जब सब लोग आलस्यमें निमग्न थे, तब महान् ऐश्वर्य को प्राप्त हुए शत्रुघ्नने लौटकर मथुराके द्वारमें प्रवेश किया ॥५६॥ वह शत्रुघ्न योगीके समान था, द्वार कर्मोंके समूहके समान चूर चूर हो गया था, और अत्यन्त मनोहर मथुरा नगरी सिद्ध भूमिके समान थी ॥५७॥ 'राजा दशरथके पुत्र शत्रुघ्नकी जय हो' इस प्रकार बन्दीजनोंके मुखोंसे बड़ा भारी शब्द उठ रहा था ॥५८॥

अथानन्तर जिस प्रकार लंकामें अंगदके पहुँचने पर लंकाके निवासी लोग भयसे क्षोभको प्राप्त हुए थे उसी प्रकार नगरीको शत्रुके द्वारा आक्रान्त जान मथुरावासी लोग भयसे क्षोभको प्राप्त हो गये ॥५९॥ भयके कारण जिनके नेत्र चञ्चल हो रहे थे तथा जो आकुलताको प्राप्त थीं ऐसी स्त्रियोंके गर्भ उनके हृदयके साथ-साथ अत्यन्त विचलित हो गये ॥६०॥ महा कलकल शब्दकी प्रेरणा होने पर जो जाग उठे थे ऐसे निर्भय शूर-वीर सिंहोंके समान सहसा उठ खड़े हुए ॥६१॥ तदनन्तर अत्यन्त प्रबल पराक्रमको धारण करनेवाला शत्रुघ्न, शब्दमात्रसे ही शत्रु-समूहको नष्ट कर राजा मधुके घरमें प्रविष्ट हुआ ॥६२॥ यहाँ वह अतिशय प्रतापी शत्रुघ्न दिव्य शस्त्रोंसे व्याप्त आयुधशालाकी रक्षा करता हुआ स्थित था। वह प्रसन्न था तथा यथायोग्य अभ्युदयको प्राप्त था ॥६३॥ वह मधुर तथा मनोज्ञ वाणीके द्वारा सबको सान्त्वना प्राप्त कराता था इसलिए सबने भयका परित्याग किया था ॥६४॥ तदनन्तर शत्रुघ्नको मथुरामें प्रविष्ट जानकर वह महाबलवान् मधुसुन्दर रावणके समान क्रोध वश उद्यानसे बाहर निकला ॥६५॥ उस समय जिस प्रकार निर्ग्रन्थ मुनिके द्वारा रक्षित आत्मामें मोह प्रवेश करनेके लिए समर्थ नहीं है उसी प्रकार शत्रुघ्नके द्वारा रक्षित अपने स्थानमें राजा मधु प्रवेश करनेके लिए समर्थ नहीं हुआ ॥६६॥ यद्यपि मधु नाना उपाय करने पर भी मथुरामें प्रवेशको नहीं पा रहा था, और शूलसे रहित था तथापि वह अभिमानी होनेके कारण शत्रुघ्नसे सन्धिकी प्रार्थना नहीं करता था ॥६७॥ तदनन्तर अहंकारसे उत्कट शत्रु सेनाको देखनेके लिए असमर्थ हुए शत्रुघ्नके घुड़सवार सैनिक अपनी सेनासे बाहर निकले ॥६८॥ वहाँ युद्ध प्रारम्भ होते-होते शत्रुघ्नकी समस्त सेना आ पहुँची और दोनों ही पक्षकी सेना रूपी सागरोंके बीच संयोग हो गया अर्थात् दोनों ही सेनाओंमें मुठभेड़ शुरू हुई ॥६९॥ उस समय शक्तिसे सम्पन्न तथा नाना प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले रथ हाथी तथा

असहन्परसैन्यस्य दर्पं रौद्रमहास्वनम् । कृतान्तकुटिलोऽविशद् वेगवानाहितं बलम् ॥७१॥
अवारितगतिस्तत्र रणे क्रीडां चकार सः । स्वयम्भूरमणोशाने विविक्षुपतिर्यथा ॥७२॥
अथ तं गोचरीकृत्य कुमारो लवणार्णवः । बाणैर्वर्षं इवाम्भोभिस्तिरश्चक्रे महाधरम् ॥७३॥
सोऽप्याकर्णसमाकृष्टैः शरैराशीविषप्रभैः । चिच्छेद सायकास्तस्य तैश्च व्याप्तं महीनभः ॥७४॥
अन्योन्यं विरथीकृत्य सिंहाविव बलोत्कटौ । करिपृष्ठसमारूढौ सरोषौ चक्रतुर्युधम् ॥७५॥
वितार्डितः कृतान्तः सः प्रथमं वक्षसीषुणा । चकार कवचं शत्रु शरैरन्तरसैरनन्तरम् ॥७६॥
ततस्तोमरमुद्यम्य कृतान्तवदनं पुनः । लवणोऽताडयत् क्रोधविस्फुरल्लोचनद्युतिः ॥७७॥
स्वशोणितनिषेकाक्तौ महासंरम्भवर्षिणौ । किंशुकानोकहच्छायौ प्रभौ तौ विरेजतुः ॥७८॥
गदासिचक्रसम्पातो बभूव तुमुलस्तयोः । परस्परबलोन्मादविषादकरणोत्कटः ॥७९॥
दत्तयुद्धशिरं शक्त्या ताडितो लवणार्णवः । वक्षस्यपासृतः क्षोणीं स्वर्गीव सुकृतक्षयात् ॥८०॥
पतितं तनयं वीक्ष्य मधुराहवमस्तके । धावन् कृतान्तवक्त्राय शत्रुघ्नेन विशाडितः ॥८१॥
शत्रुघ्नगिरिणा रुद्धो मधुवाहो व्यवर्द्धत । गृहीतः शोककोपाभ्यां दुःसहाभ्यामुपक्रमन् ॥८२॥
दृष्टिमाशीविषस्येव तस्याशक्तं निरीक्षितुम् । सैन्यं स्यन्दवदभ्युग्रात् वाताद् वानदलीयवत् ॥८३॥
तस्याभिमुखमालोक्य व्रजन्तं सुव्रजः सुतम् । अभिमानसमारूढा योधाः प्रत्यागता मुहुः ॥८४॥

घोड़ोंके सवार एवं पैदल सैनिक, वेगशाली रथ, हाथी तथा घोड़ोंके सवारों एवं पैदल सैनिकोंके साथ भिड़ गये ॥७०॥ शत्रु सेनाके भयंकर शब्द करनेवाले दर्पको सहन नहीं करता हुआ कृतान्तवक्त्र बड़े वेगसे शत्रुकी सेनामें जा घुसा ॥७१॥ सो जिस प्रकार स्वयम्भूरमण समुद्रमें इन्द्र बिना किसी रोक-टोकके क्रीड़ा करता है उसी प्रकार वह कृतान्तवक्त्र भी बिना किसी रोक-टोकके युद्धमें क्रीड़ा करने लगा ॥७२॥ तदनन्तर जिस प्रकार मेघ, जलके द्वारा महापर्वतको आच्छादित करता है उसी प्रकार मधुसुन्दरके पुत्र लवणार्णवने, कृतान्तवक्त्रका सामना कर उसे बाणोंसे आच्छादित किया ॥७३॥ इधर कृतान्तवक्त्रने भी, कान तक खिंचे हुए सर्प तुल्य बाणोंके द्वारा उसके बाण काट डाले और उनसे पृथिवी तथा आकाशको व्याप्त कर दिया ॥७४॥ सिंहोंके समान बलसे उत्कट दोनों योद्धा परस्पर एक दूसरेके रथ तोड़कर हाथीकी पीठ पर आरूढ हो क्रोध सहित युद्ध करने लगे ॥७५॥ प्रथम ही लवणार्णवने कृतान्तवक्त्रके वक्षःस्थल पर बाणसे प्रहार किया सो उसके उत्तरमें कृतान्तवक्त्रने भी बाणों तथा शस्त्रोंके प्रहारसे शत्रु और कवचको अन्तरसे रहित कर दिया अर्थात् शत्रुका कवच तोड़ डाला ॥७६॥ तदनन्तर क्रोधसे जिसके नेत्रोंकी कान्ति देदीप्यमान हो रही थी ऐसे लवणार्णवने तोमर उठाकर कृतान्तवक्त्र पर पुनः प्रहार किया ॥७७॥ जो अपने रुधिरके निषेकसे युक्त थे तथा महाक्रोध पूर्वक जो भयंकर युद्ध कर रहे थे ऐसे दोनों वीर फूले हुए पलाश वृक्षके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७८॥ उन दोनोंके बीच, अपनी-अपनी सेनाके हर्ष विषाद करनेमें उत्कट गदा खड्ग और चक्र नामक शस्त्रोंकी भयंकर वर्षा हो रही थी ॥७९॥ तदनन्तर चिरकाल तक युद्ध करनेके बाद जिसके वक्षःस्थल पर शक्ति नामक शस्त्रसे प्रहार किया गया था ऐसा लवणार्णव पृथिवी पर इस प्रकार गिर पड़ा जिस प्रकार कि पुण्य क्षय होनेसे कोई देव पृथिवी पर आ पड़ता है ॥८०॥

रणाग्र भागमें पुत्रको गिरा देख मधु कृतान्तवक्त्रको लक्ष्य कर दौड़ा परन्तु शत्रुघ्नने उसे बीचमें धर ललकारा ॥८१॥ जो दुःखसे सहन करने योग्य शोक और क्रोधके वशीभूत था ऐसा मधुरूपी प्रवाह शत्रुघ्नरूपी पर्वतसे रुककर समीपमें वृद्धिको प्राप्त हुआ ॥८२॥ आशीविष सर्पके समान उसकी दृष्टिको देखनेके लिए असमर्थ हुई शत्रुघ्नकी सेना उस प्रकार भाग उठी जिस प्रकार कि तीक्ष्ण वायुसे सूखे पत्तोंका समूह भाग उठता है ॥८३॥ तदनन्तर शत्रुघ्नको उसके

१. शत्रुघ्नम् ।

तावदेव प्रपद्यन्ते भङ्गं भीत्याऽनुगामिनः । यावत्स्वामिनमीक्षन्ते न पुरो विकचाननम् ॥८५॥
अथोत्तमरथारूढो दिव्यं कार्मुकमाश्रयत् । हारराजितवक्षस्को मुकुटीलोलकुण्डलः ॥८६॥
शरदादित्यसङ्काशो निःप्रत्यूहगतिः प्रभुः । व्रजन्नभिमुखः शत्रोरत्युग्रक्रोधसङ्गतः ॥८७॥
तदा शतानि योधानां बहूनि दहति क्षणात् । संशुष्कपत्रकूटानि यथा दावोऽरिमर्दनः ॥८८॥
न कश्चिदन्यमतस्तस्य रणे वीरोऽवतिष्ठते । जिनशासनवीरस्य यथान्यमतदूषितः ॥८९॥
योऽपि तेन समं योद्धुं कश्चिद् वाञ्छति मानवान् । सोऽपि दन्तीव सिंहाग्रे विध्वंसं व्रजति क्षणात् ॥९०॥
उन्मत्तसदृशं जातं तत्सैन्यं परमाकुलम् । निपतच्छतभूयिष्ठं मधुं शरणमाश्रितम् ॥९१॥
रंहसा गच्छतस्तस्य मधुश्चिच्छेद [1]केतनम् । रथाश्वास्तस्य तेनाऽपि विलुप्ताः क्षुरसायकैः ॥९२॥
ततः सम्भ्रान्तचेतस्को मधुः क्षितिधरोपमम् । वारुणेन्द्रं समारुह्य क्रोधज्वलितविग्रहः ॥९३॥
प्रच्छादयितुमुद्युक्तः शरैरन्तरवर्जितैः । महामेघ इवादित्यबिम्बं दशरथात्मजः ॥९४॥
छिन्दानेन शरान् बद्धकवचं तस्य पुष्कलः । रणप्राभृतकाचारः कृतः शत्रुघ्नसूरिणा ॥९५॥
अथ शूलायुधस्यक्तं ज्ञात्वाऽऽत्मानं निबोधवान् । सुतमृत्युमहाशोको वीक्ष्य शत्रुं सुदुर्जयम् ॥९६॥
बुद्ध्वाऽऽश्रमनोऽवसानं च कर्म च क्षीणमूर्जितम् । वैराग्यं वचनं धीरः सस्मारानुशयान्वितः ॥९७॥

सामने जाते देख जो अभिमानी योद्धा थे वे पुनः लौट आये ॥८४॥ सो ठीक ही है क्योंकि अनुगामी-सैनिक भयसे तभी तक पराजयको प्राप्त होते हैं जब तक कि वे सामने प्रसन्नमुख स्वामीको नहीं देख लेते हैं ॥८५॥

अथानन्तर जो उत्तम रथपर आरूढ़ हुआ दिव्य धनुषको धारण कर रहा था, जिसका वक्षःस्थल हारसे सुशोभित था, जो शिर पर मुकुट धारण किये हुए था, जिसके कुण्डल हिल रहे थे, जो शरत् ऋतुके सूर्यके समान देदीप्यमान था, जिसकी चालको कोई रोक नहीं सकता था, जो सब प्रकारसे समर्थ था, और अत्यन्त तीव्र क्रोधसे युक्त था ऐसा शत्रुघ्न शत्रुके सामने जा रहा था ॥८६-८७॥ जिस प्रकार दावानल, सूखे पत्तोंकी राशिको क्षण भरमें जला देता है उसी प्रकार शत्रुओंको नष्ट करनेवाला वह शत्रुघ्न सैकड़ों योधाओंको क्षण भरमें जला देता था ॥८८॥ जिस प्रकार जिनशासनमें निपुण विद्वान्के सामने अन्य मतसे दूषित मनुष्य नहीं ठहर पाता है उसी प्रकार कोई भी वीर युद्धमें उसके आगे नहीं ठहर पाता था ॥८९॥ जो कोई भी मानी मनुष्य, उसके साथ युद्ध करनेकी इच्छा करता था वह सिंहके आगे हाथीके समान क्षणभरमें विनाशको प्राप्त हो जाता था ॥९०॥ जो उन्मत्तके समान अत्यन्त आकुल थी तथा जो अधिकांश घायल होकर गिरे हुए योद्धाओंसे प्रचुर थी ऐसी राजा मधुकी सेना मधुकी शरणमें पहुँची ॥९१॥

अथानन्तर मधुने वेगसे जाते हुए शत्रुघ्नकी ध्वजा काट डाली और शत्रुघ्नने भी क्षुराके समान तीक्ष्ण बाणोंसे उसके रथ और घोड़े छेद दिये ॥९२॥ तदनन्तर जिसका चित्त अत्यन्त संभ्रान्त था, और जिसका शरीर क्रोधसे प्रज्वलित हो रहा था ऐसा मधु पर्वतके समान विशाल गजराज पर आरूढ़ होकर निकला ॥९३॥ सो जिस प्रकार महामेघ सूर्यके बिम्बको आच्छादित कर लेता है उसी प्रकार मधु भी निरन्तर छोड़े हुए बाणोंसे शत्रुघ्नको आच्छादित करनेके लिए उद्यत हुआ ॥९४॥ इधर चतुर शत्रुघ्नने भी उसके बाण और कसे हुए कवचको छेदकर रणके पाहुनेका जैसा सत्कार होना चाहिए वैसा पुष्कलताके साथ उसका सत्कार किया अर्थात् खूब खबर ली ॥९५॥

अथानन्तर जो अपने आपको शूल नामक शस्त्रसे सहित जानकर प्रतिबोधको प्राप्त हुआ था तथा पुत्रकी मृत्युका महाशोक जिसे पीड़ित कर रहा था ऐसे मधुने शत्रुको दुर्जेय देख कर विचार किया कि अब मेरा अन्त होनेवाला है। भाग्य की बात कि उसी समय उसके प्रबल

---

१. कानतम् म० ।

अशाश्वते समस्तेऽस्मिन्नारम्भे दुःखदायिनि । कर्मैकमेव संसारे शस्यते धर्मकारणम् ॥९८॥
नृजन्म सुकृती प्राप्य धर्मे दत्ते न यो मतिम् । स मोहकर्मणा जन्तुर्वञ्चितः परमार्थतः ॥९९॥
ध्रुवं पुनर्भवं ज्ञात्वा पापेनात्महितं मया । न कृतं स्ववशे काले धिङ्मां मूढं प्रमादिनम् ॥१००॥
आत्माधीनस्य पापस्य कथं जाता न मे सुधीः । पुरस्कृतोऽरिणेदानीं किं करोमि हताशकः ॥१०१॥
प्रदीप्ते भवने कीदक् तडागखननादरः । को वा भुजङ्गदष्टस्य कालो मन्त्रस्य साधने ॥१०२॥
सर्वथा यावदेतस्मिन् समये स्वार्थकारणम् । शुभं मनःसमाधानं कुर्वे तावदनाकुलः ॥१०३॥
अर्हद्भ्योऽथ विमुक्तेभ्य आचार्येभ्यस्तथा त्रिधा । उपाध्यायगुरुभ्यश्च साधुभ्यश्च नमो नमः ॥१०४॥
अर्हन्तोऽथ विमुक्ताश्च साधवः केवलीरितः । धर्मश्च मङ्गलं शश्वदुत्तमं मे चतुष्टयम् ॥१०५॥
द्वीपेष्वर्धतृतीयेषु त्रिपञ्चार्जनभूमिषु । अर्हतो लोकनाथानामेषोऽस्मि प्रणतस्त्रिधा ॥१०६॥
यावज्जीवं सहावद्यं योगं मुञ्चे न चात्मकम् । निन्दामि च पुरोपात्तं प्रत्याख्यानपरायणः ॥१०७॥
अनादौ भवकान्तारे यन्मया समुपार्जितम् । मिथ्या दुष्कृतमेतन्मे स्थितोऽहं तत्त्वसङ्गतौ ॥१०८॥
व्युत्सृजाम्येष हातव्यमुपादेयमुपाददे । ज्ञानं दर्शनमात्मा मे शेषं संयोगलक्षणम् ॥१०९॥
संस्तरः परमार्थेन न तृणं न च भूः शुभा । मत्या कलुषया मुक्तो जीव एव हि संस्तरः ॥११०॥
एवं समुत्थानमास्थाय त्यक्त्वा ग्रन्थं द्वयात्मकम् । ध्यायतो गजपृष्ठस्थो मधुः केशानपानयत् ॥१११॥

कर्मका उदय क्षीण हो गया जिससे उसने बड़ी धीरता और पश्चात्तापके साथ दिगम्बर मुनियोंके वचनका स्मरण किया ॥९६-९७॥ वह विचार करने लगा कि यह समस्त आरम्भ क्षणभङ्गुर तथा दुःख देनेवाला है। इस संसारमें एक वही कार्य प्रशंसा योग्य है जो धर्मका कारण है ॥९८॥ जो पुण्यात्मा प्राणी मनुष्य जन्म पाकर धर्ममें बुद्धि नहीं लगाता है वह यथार्थमें मोह कर्मके द्वारा ठगा गया है ॥९९॥ पुनर्जन्म अवश्य ही होगा ऐसा जानकर भी मुझ पापीने उस समय अपना हित नहीं किया जिस समय कि काल अपने आधीन था अतः प्रमाद करनेवाले मुझ मूर्खको धिक्कार है ॥१००॥ मैं पापी जब स्वाधीन था तब मुझे सद्बुद्धि क्यों नहीं उत्पन्न हुई ? अब जब कि शत्रु मुझे अपने सामने किये हुए है तब मैं अभागा क्या करूँ ? ॥१०१॥ जब भवन जलने लगता है तब कुँआ खुदवानेके प्रति आदर कैसा ? और जिसे साँपने डस लिया है उसे मन्त्र सिद्ध करनेका समय क्या है ? अर्थात् ये सब कार्य तो पहलेसे करनेके योग्य होते हैं ॥१०२॥ इस समय तो सब प्रकारसे यही उचित जान पड़ता है कि मैं निराकुल हो मनका शुभ समाधान करूँ क्योंकि वही आत्महितका कारण है ॥१०३॥ अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पाँचों परमेष्ठियोंके लिए मन, वचन कायसे बार बार नमस्कार हो ॥१०४॥ अर्हन्त, सिद्ध, साधु और केवली भगवान्‌के द्वारा कहा हुआ धर्म ये चारों पदार्थ मेरे लिए सदा मङ्गल स्वरूप हैं ॥१०५॥ अढ़ाई द्वीप सम्बन्धी पन्द्रह कर्मभूमियोंमें जितने अर्हन्त हैं मैं उन सबको मन वचन कायसे नमस्कार करता हूँ ॥१०६॥ मैं जीवन पर्यन्तके लिए सावद्य योगका त्याग करता हूँ उसके विपरीत शुद्ध आत्माका त्याग नहीं करता हूँ तथा प्रत्याख्यानमें तत्पर होकर पूर्वोपार्जित पाप कर्मकी निन्दा करता हूँ ॥१०७॥ इस आदिरहित संसार रूप अटवीमें मैंने जो पाप किया है वह मिथ्या हो।' अब मैं तत्त्व विचार करनेमें लीन होता हूँ ॥१०८॥ यह मैं छोड़ने योग्य समस्त कार्योंको छोड़ता हूँ और ग्रहण करने योग्य कार्यको ग्रहण करता हूँ, ज्ञान दर्शन ही मेरी आत्मा है पर पदार्थके संयोगसे होनेवाले अन्य भाव सब पर पदार्थ हैं ॥१०९॥ समाधिमरणके लिए यथार्थमें न तृण ही सांथरा है और न उत्तम भूमि ही सांथरा है किन्तु कलुषित बुद्धिसे रहित आत्मा ही उत्तम सांथरा है ॥११०॥ इस प्रकार समीचीन ध्यान पर आरूढ हो उसने अन्तरङ्ग तथा बहिरङ्ग दोनों प्रकारके परिग्रह छोड़ दिये

---

१. पञ्चदशकर्मभूमिषु । २. प्रणतस्त्रिधा म० ।

गाढक्षतशरीरोऽसौ धृतिं परमदुर्धराम् । अध्यासीनः कृतोत्सर्गः कायादेः सुविशुद्धधीः ॥११२॥
शत्रुघ्नोऽपि तदाऽऽगत्य नमस्कारपरायणः । क्षन्तव्यं च त्वया साधो मम दुष्कृतकारिणः ॥११३॥
अमरात्सरसः संख्ये निरीक्षितुमुपागताः । पुष्पाणि मुमुचुस्तस्मै विस्मिता भावतत्पराः ॥११४॥

उपजातिवृत्तम्

ततः समाधिं समुपेत्य काले कृत्वा मधुस्तत्क्षणमात्रकेण ।
महासुखाम्भोधिनिमग्नचेताः सनत्कुमारे त्रिदशोत्तमोऽभूत् ॥११५॥
शत्रुघ्नवीरोऽप्यभवत्कृतार्थो विवेश मोदी मथुरां सुतेजाः ।
स्थितश्च तस्यां राजसंज्ञितायां पुरीव मेघेश्वरसुन्दरोऽसौ ॥११६॥
एवं जनस्य स्वविधानभाजो भवे भवत्यात्मनि दिव्यरूपम् ।
तस्मात् सदा कर्म शुभं कुरुध्वं रवेः परां येन रुचिं प्रयाताः[2] ॥११७॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे मधुसुन्दरवधाभिधानं नाम नवाशीतितमं पर्व ॥८६॥

और बाहमें हाथीपर बैठे बैठे ही उसने केश उखाड़कर फेंक दिये ॥१११॥ यद्यपि उसके शरीरमें गहरे घाव लग रहे थे, तथापि वह अत्यन्त दुर्धर धैर्यको धारण कर रहा था। उसने शरीर आदिकी ममता छोड़ दी थी और अत्यन्त विशुद्ध बुद्धि धारण की थी ॥११२॥ जब शत्रुघ्नने यह हाल देखा तब उसने आकर उसे नमस्कार किया और कहा कि हे साधो! मुझ पापीके लिए क्षमा कीजिए ॥११३॥ उस समय जो अप्सराएँ युद्ध देखनेके लिए आई थीं उन्होंने आश्चर्यसे चकित हो विशुद्ध भावनासे उस पर पुष्प छोड़े ॥११४॥ तदनन्तर समाधिमरणकर मधु क्षण मात्रमें ही जिसका हृदय उत्तम सुखरूपी सागरमें निमग्न था ऐसा सनत्कुमार स्वर्गमें उत्तम देव हुआ ॥११५॥ इधर वीर शत्रुघ्न भी कृतकृत्य हो गया। अब उत्तम तेजके धारक उस शत्रुघ्नने बड़ी प्रसन्नतासे मथुरामें प्रवेश किया और जिस प्रकार हस्तिनापुरमें मेघेश्वर-जयकुमार रहते थे उसी प्रकार वह मथुरामें रहने लगा ॥११६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! इस प्रकार समाधि धारण करनेवाले पुरुष जो भव धारण करते हैं उसमें उन्हें दिव्य रूप प्राप्त होता है इसलिए हे भव्य जनो! सदा शुभ कार्य ही करो जिससे सूर्यसे भी अधिक उत्कृष्ट कान्तिको प्राप्त हो सको ॥११७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें मधु सुन्दरके वधका वर्णन करनेवाला नवासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥८६॥

---

१. सख्यं म० । २. प्रयाताः म० ।

नवतितमं पर्व

ततोऽरिघ्नानुभावेन विफलं तेजसोज्झितम् । अमोघमपि तद्दिव्यं शूलरत्नं विधिच्युतम् ॥१॥
वहन् खेदं च शोकं च त्रपां च जवमुक्तवत् । स्वामिनोऽसुरनाथस्य चमरस्यान्तिकं ययौ ॥२॥
मरणे कथिते तस्य मधोरत्यन्तरञ्जितः । साद्रः खेदशोकाभ्यां तत्सौहार्दगतस्मृतिः ॥३॥
रसातलरसमुत्थाय त्वरावानतिभासुरः । प्रवृत्तो मथुरां गन्तुमसौ संरम्भसङ्गतः ॥४॥
भ्राम्यन्नभ सुपर्णेन्द्रो वेणुदारी[1] तमैक्षत । अपृच्छच्च क दैत्येन्द्र गमनं प्रस्तुतं त्वया ॥५॥
ऊचेऽसौ परमं मित्रं येन मे निहतं मधुः । सज्रमस्यास्य वैषम्यं विधातुमहमुद्यतः ॥६॥
सुपर्णेशो जगौ किं न विशल्यास्तम्भवं त्वया । माहात्म्यं निहितं कर्णे येनैवमभिलप्यसि ॥७॥
जगादासावतिक्रान्ताः कालास्ते परमाद्भुताः । अचिन्त्यं येन माहात्म्यं विशल्यायास्तथाविधम् ॥८॥
कौमारव्रतयुक्तासावासीदद्भुतकारिणी । योगेन जनितेदानीं निर्विषेव भुजङ्गिका ॥९॥
नियताचारयुक्तानां प्रभवन्ति मनीषिणाम् । भावा निरतिचाराणां श्लाघ्याः पूर्वकपुण्यजाः ॥१०॥
जिगं विशल्यया तावद् गर्वमाश्रित्य परम् । यावन्नारायणस्यास्यं न दृष्टं मदनावहम् ॥११॥
सुरासुरपिशाचाद्या विभ्यति व्रतचारिणाम्[3] । तावद् यावच्च ते तीक्ष्णं निश्चयासिं[4] जहत्यहो ॥१२॥

अथानन्तर मधु सुन्दरका वह दिव्य शूल रत्न यद्यपि अमोघ था तथापि शत्रुघ्नके प्रभावसे निष्फल हो गया था, उसका तेज छूट गया था और वह अपनी विधिसे च्युत हो गया था ॥१॥ अन्तमें वह खेद शोक और लज्जाको धारण करता हुआ निर्वेगकी तरह अपने स्वामी असुरोंके अधिपति चमरेन्द्रके पास गया ॥२॥ शूल रत्नके द्वारा मधुके मरणका समाचार कहे जाने पर उसके सौहार्दका जिसे बार-बार स्मरण आ रहा था ऐसा चमरेन्द्र खेद और शोकसे पीड़ित हुआ ॥३॥ तदनन्तर वेगसे युक्त, अत्यन्त देदीप्यमान और क्रोधसे सहित वह चमरेन्द्र पातालसे उठकर मथुरा जानेके लिए उद्यत हुआ ॥४॥ अथानान्तर भ्रमण करते हुए गरुड़कुमार देवोंके इन्द्र वेणुदारीने चमरेन्द्रको देखा और देखकर उससे पूछा कि हे दैत्यराज ! तुमने कहाँ जानेकी तैयारी की है ? ॥५॥ तब चमरेन्द्रने कहा कि जिसने मेरे परम मित्र मधु सुन्दरको मारा है उस मनुष्यकी विषमता करनेके लिए यह मैं उद्यत हुआ हूँ ॥६॥ इसके उत्तरमें गरुडेन्द्रने कहा कि क्या तुमने कभी विशल्याका माहात्म्य कर्णमें धारण नहीं किया—नहीं सुना जिससे कि ऐसा कह रहे हो ? ॥७॥ यह सुन चमरेन्द्रने कहा कि अब अत्यन्त आश्चर्यको करनेवाला वह समय व्यतीत हो गया जिस समय कि विशल्याका वैसा अचिन्त्य माहात्म्य था ॥८॥ जब वह कौमार व्रतसे युक्त थी तभी आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली थी अब इस समय तो नारायणके संयोगसे वह विष रहित भुजंगीके समान हो गई है ॥९॥ जो मनुष्य नियमित आचारका पालन करते हैं, बुद्धिमान् हैं तथा सब प्रकारके अतिचारोंसे रहित हैं उन्हींके पूर्व पुण्यसे उत्पन्न हुए प्रशंसनीय भाव अपना प्रभाव दिखाते हैं ॥१०॥ अत्यधिक गर्वको धारण करनेवाली विशल्याने तभी तक विजय पाई है जब तक कि उसने काम चेष्टाको धारण करनेवाला नारायणका मुख नहीं देखा था ॥११॥ व्रतका आचरण करनेवाले मनुष्योंसे सुर-असुर तथा पिशाच आदि तभी तक डरते हैं जब तक कि वे निश्चय रूपी तीक्ष्ण खड्गको नहीं छोड़ देते हैं ॥१२॥ जो मनुष्य मद्य मांससे निवृत्त है, सैकड़ों प्रतिपक्षियोंको नष्ट करनेवाले उसके अन्तरको दुष्ट जीव तब तक नहीं लाँघ सकते जब तक कि इसके नियमरूपी कोट विद्यमान रहता है ॥१३॥ रङ्गोंमें एक कालाग्नि नामक भयंकर

१. वेणुधारी म० । २. क पुस्तके एष श्लोको नास्ति । ३. प्रतिचारिणां म० । ४. जहत्यहो म०, ज० ।

मत्तामिषनिवृत्तस्य तावच्छूलशतान्तरम् । लङ्घयन्ति न दुःसाध्या यावत् सालोऽस्य नैयमः ॥१३॥
कालाग्निर्नाम रुद्राणां दारुणो न श्रुतस्त्वया । सक्तो दयितया सार्कं निर्विण्णो निधने गतः ॥१४॥
अत्र वा किं तवैतेन कुरु कृत्यं मनीषितम् । ज्ञास्यामि स्वयमेवाहं कर्त्तव्यं मित्रविद्विषः ॥१५॥
इत्युक्त्वा खं व्यतिक्रम्य मथुरायां सुदुर्मनाः । ऐक्षतोत्सवसंपन्नं महान्तं सर्वलोकगम् ॥१६॥
अचिन्तयच्च लोकोऽयमकृतज्ञो महाखलः । स्थाने राष्ट्रे च यद्दैन्यस्थाने तोषमितः परम् ॥१७॥
बाहुच्छायां समाश्रित्य सुचिरं सुरसौख्यवान् । स्थितो यः स कथं लोको मधोर्मृत्योर्न दुःखितः ॥१८॥
प्रवीरः कातरैः शूरसहस्रेण च पण्डितः । सेव्यः किञ्चिज्जनैर्मूर्खमकृतज्ञं परित्यजेत् ॥१९॥
आस्तां तावदसौ राजा स्निग्धो मे येन सूदितः । संस्थानं राष्ट्रमेतस्यैतावत्क्षयाम्यहम् ॥२०॥
इति ध्यात्वा महारौद्रः क्रोधसम्भारचोदितः । उपसर्गं समारेभे कर्तुं लोकस्य दुःसहम् ॥२१॥
विकृत्य सुमहारोगांल्लोकं दग्धुं समुद्यतः । क्षयदाव इवोद्दारं कक्षयं कारुण्यवर्जितः ॥२२॥
यत्रैव यः स्थितः स्थाने निविष्टः शयितोऽपि वा । अचलस्तत्र तत्रैव दीर्घनिद्रामसंवृतः ॥२३॥
उपसर्गं समालोक्य कुलदैवतचोदितः । अयोध्यानगरीं यातः शत्रुघ्नः साधनान्वितः ॥२४॥
समुपात्तजयं शूरं भ्रातरं भीमसंयुगात् । रामलक्ष्मणमुख्यास्तु तुष्टा लालयकाधरादयः ॥२५॥
पूर्णाशा सुप्रजाश्रासौ विधाय जिनपूजनम् । धार्मिकेभ्यो महादानं दुःखितेभ्यस्तथाऽददात् ॥२६॥

आर्याछन्दम्

यद्यपि महाभिरामा साकेता काञ्चनोज्ज्वलैः प्रासादैः ।
धेनुरिव सर्वकामप्रदानचतुरा त्रिविष्टपोपभोगा ॥२७॥

रुद्रका नाम क्या तुमने नहीं सुना जो आसक्त होनेके कारण विद्या रहित हो स्त्रीके साथ ही साथ मृत्युको प्राप्त हुआ था ॥१४॥ अथवा जाओ, तुझे इससे क्या प्रयोजन ? इच्छानुसार काम करो, मैं स्वयं ही मित्र और शत्रुका कर्तव्य ज्ञात करूँगा ॥१५॥

इतना कहकर अत्यन्त दुष्ट चित्तको धारण करनेवाला वह चमरेन्द्र आकाशको लाँघकर मथुरा पहुँचा और वहाँ पहुँच कर उसने समस्त लोगोंमें व्याप्त बहुत भारी उत्सव देखा ॥१६॥ वह विचार करने लगा कि ये मथुराके लोग अकृतज्ञ तथा महादुष्ट हैं जो घर अथवा देशमें दुःखका अवसर होने पर भी परम संतोषको प्राप्त हो रहे हैं अर्थात् खेदके समय हर्ष मना रहे हैं ॥१७॥ जिसकी भुजाओंकी छाया प्राप्त कर जो चिरकाल तक देवों जैसा सुख भोगते रहे वे अब उस मधुकी मृत्युसे दुःखी क्यों नहीं हो रहे हैं ? ॥१८॥ शूर-वीर मनुष्य कायर मनुष्योंके द्वारा सेवनीय है और पण्डित-जन हजारों शूर-वीरोंके द्वारा सेव्य है सो कदाचित् मूर्खकी तो सेवा की जा सकती है पर अकृतज्ञ मनुष्यको छोड़ देना चाहिए ॥१९॥ अथवा यह सब रहे, जिसने हमारे स्नेही राजाको मारा है मैं उसके निवास स्वरूप इस समस्त देशको पूर्ण रूपसे क्षय प्राप्त कराता हूँ ॥२०॥ इस प्रकार विचारकर महारौद्र परिणामोंके धारक चमरेन्द्रने क्रोधके भारसे प्रेरित हो लोगोंपर दुःसह उपसर्ग करना प्रारम्भ किया ॥२१॥ जिस प्रकार प्रलयकालका दावानल विशाल वनको जलानेके लिए उद्यत होता है उसी प्रकार वह निर्दय चमरेन्द्र अनेक महारोग फैलाकर लोगोंको जलानेके लिए उद्यत हुआ ॥२२॥ जो मनुष्य जिस स्थानपर खड़ा था, बैठा था अथवा सो रहा था वह वहीं अचल हो दीर्घ निद्रा-मृत्युको प्राप्त हो गया ॥२३॥ उपसर्ग देखकर कुल-देवतासे प्रेरित हुआ शत्रुघ्न अपनी सेनाके साथ अयोध्या चला गया ॥२४॥ विजय प्राप्त कर महायुद्धसे लौटे हुए शूरवीर शत्रुघ्नका राम, लक्ष्मण आदिने हर्षित हो अभिनन्दन किया ॥२५॥ जिसकी आशा पूर्ण हो गई थी ऐसी शत्रुघ्नकी माता सुप्रजाने जिनपूजा कर धर्मात्माओं तथा दीन-दुःखी मनुष्योंके लिए दान दिया ॥२६॥ यद्यपि अयोध्या नगरी सुवर्णमयी महलोंसे अत्यन्त

१. यसौ + इतः इतिच्छेदः ।

शत्रुघ्नकुमारोऽसौ मधुरापुर्यां सुरक्तहृदयोऽभवत् ।
न तथापि धृतिं भेजे वैदेह्या विरहितो यथासीद् रामः ॥२८॥
स्वप्न इव भवति चारुसंयोगः प्राणिनां यदा तत्कालः ।
जनयति परमं तापं निदाघरविरश्मिसन्तापाद्धिकम् ॥२९॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते श्रीपद्मपुराणे मथुरोपसर्गाभिधानं नाम नवतितमं पर्व ॥९०॥

सुन्दर थी, कामधेनुके समान समस्त मनोरथोंके प्रदान करनेमें चतुर थी और स्वर्ग जैसे भोगोपभोगोंसे सहित थी तथापि शत्रुघ्नकुमारका हृदय मथुरामें ही अत्यन्त अनुरक्त रहता था वह, जिस प्रकार सीताके बिना राम, धैर्यको प्राप्त नहीं होते थे उसी प्रकार मथुराके बिना धैर्यको प्राप्त नहीं होता था ॥२७-२८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! प्राणियोंको सुन्दर वस्तुओंका समागम जब स्वप्नके समान अल्प कालके लिए होता है तब वह ग्रीष्मऋतु सम्बन्धी सूर्यकी किरणोंसे उत्पन्न सन्तापसे भी कहीं अधिक सन्तापको उत्पन्न करता है ॥२९॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्यद्वारा कथित पद्मपुराणमें मथुरापर उपसर्गका वर्णन करनेवाला नब्बेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥९०॥

एकनवतितमं पर्व

अथ राजगृहस्वामी जगाद्दद्भुतकौतुकः । भगवन्केन कार्येण तामेवासावयाचत ॥१॥
बह्व्यो राजधान्योऽन्याः सन्ति स्वर्लोकसन्निभाः । तत्र शत्रुघ्नवीरस्य का प्रीतिर्मथुरां प्रति ॥२॥
दिव्यज्ञानसमुद्रेण गणोडुशशिना ततः । गौतमेनोच्यत [1]प्रीतिर्यथा तत्कुरु चेतसि ॥३॥
बहवो हि भवास्तस्य तस्यामेवाभवँस्ततः । तामेव प्रति सोद्रेकं स्नेहमेष न्यषेवत ॥४॥
संसारार्णवसंसेवी जीवः कर्मस्वभावतः । जम्बूमद्द्वीपभरते मथुरां समुपागतः ॥५॥
क्रूरो यमुनदेवाख्यो धर्मैकान्तपराङ्मुखः । स प्रेत्य क्रोडवालेयवायसत्वान्यसेवत ॥६॥
अजत्वं च परिप्राप्तो मृतो भवनदाहतः । महिषो जलवाहोऽभूत्पायसे गवले वहन् ॥७॥
पञ्चवारान्महिषो भूत्वा दुःखप्रापणसङ्गतः । पञ्चकृत्वो मनुष्यत्वं दुःकुलेष्वधनोऽभजत् ॥८॥
मध्यकर्मसमाचाराः प्राप्यार्यत्वं मनुष्यताम् । प्राणिनः प्रतिपद्यन्ते किञ्चित्कर्मपरिक्षयम् ॥९॥
ततः कुलन्धराभिख्यः साधुसेवापरायणः । विप्रोऽसावभवद्रूपी शीलसेवाविवर्जितः ॥१०॥
अशङ्कित इव स्वामी पुरस्तस्या जयाशया । यातो देशान्तरं तस्य महिषी ललितामिधा ॥११॥
प्रासादस्था कदाचित्सा वातायनगतेक्षणा । निरैक्षत तकं विप्रं दुश्चेष्टं कृतकारणम् ॥१२॥
सा तं क्रीडन्तमालोक्य मनोभवशराहता । आनाययद्गृहोऽत्यन्तमाप्तया चित्तहारिणम् ॥१३॥
तस्या एकासने तावदुपविष्टो नृपश्च सः । अज्ञातागमनोऽपश्यत्सहसा तद्विचेष्टितम् ॥१४॥

अथानन्तर अद्भुत कौतुकको धारण करने वाले राजा श्रेणिकने गौतम स्वामीसे पूछा कि हे भगवन् ! यह शत्रुघ्न किस कार्यसे उसी मथुराकी याचना करता था ॥१॥ स्वर्गलोकके समान अन्य बहुत सी राजधानियाँ हैं उनमेंसे केवल मथुराके प्रति ही वीर शत्रुघ्नकी प्रीति क्यों है ?॥२॥ तब दिव्य ज्ञानके सागर एवं गणरूपी नक्षत्रोंके बीच चन्द्रमाके समान गौतम गणधरने कहा कि जिस कारण शत्रुघ्नकी मथुरामें प्रीति थी उसे मैं कहता हूँ तू चित्तमें धारण कर ॥३॥ यतश्च उसके बहुतसे भव उसी मथुरामें हुए थे इसलिए उसीके प्रति यह अत्यधिक स्नेह धारण करता था ॥४॥ संसार रूपी सागरका सेवन करने वाला एक जीव कर्मस्वभावके कारण जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरतक्षेत्रकी मथुरा नगरीमें यमुनदेव नामसे उत्पन्न हुआ । वह स्वभावका क्रूर था तथा धर्मसे अत्यन्त विमुख रहता था । मरनेके बाद वह क्रमसे सूकर, गधा और कौआ हुआ ॥५-६॥ फिर बकरा हुआ, तदनन्तर भवनमें आग लगनेसे मर कर लम्बे-लम्बे सींगोंको धारण करनेवाला भैंसा हुआ । यह भैंसा पानी ढोनेके काम आता था ॥७॥ यह यमुनदेवका जीव छह बार तो नाना दुःखोंको प्राप्त करनेवाला भैंसा हुआ और पाँच बार नीच कुलोंमें निर्धन मनुष्य हुआ ॥८॥ सो ठीक ही है क्योंकि जो प्राणी मध्यम आचरण करते हैं वे आर्य मनुष्य हो कुछ-कुछ कर्मोंका क्षय करते हैं ॥९॥ तदनन्तर वह साधुओंकी सेवामें तत्पर रहने वाला कुलन्धर नामका ब्राह्मण हुआ । यह कुलन्धर रूपवान तो था पर शीलकी आराधनासे रहित था ॥१०॥ एक दिन उस नगरका राजा विजय प्राप्त करनेकी आशासे निःशङ्क की तरह दूसरे देशको गया था और उसकी ललिता नामकी रानी महलमें अकेली थी । एक दिन वह झरोखेपर दृष्टि डाल रही थी कि उसने संकेत करनेवाले उस दुश्चेष्ट ब्राह्मणको देखा ॥११-१२॥ क्रीडा करते हुए उस कुलन्धर ब्राह्मणको देख कर रानी कामके बाणोंसे घायल हो गई जिससे उसने एक विश्वासपात्र सखीके द्वारा उस हृदयहारीको अत्यन्त एकान्त स्थानमें बुलवाया ॥१३॥ महलमें जाकर वह

---

१. प्रीतिं म० ।

मायाप्रवीणया तावद्देव्या क्रन्दितमुन्नतम् । बन्दिकोऽयमिति त्रस्तो गृहीतश्च भटैरसौ ॥१५॥
अष्टाङ्गनिग्रहं कर्तुं नगरीतो बहिः कृतः । सेवितेनामलद्दृष्टः कल्याणाख्येन साधुना ॥१६॥
यदि प्रव्रज्यसीत्युक्त्वा तेनासौ प्रतिपन्नवान् । राज्ञः क्रूरमनुष्येभ्यो मोचितः [1]श्रमणोऽभवत् ॥१७॥
सोऽतिकष्टं तपः कृत्वा महाभावनयान्वितः । अभूदृतुविमानेशः किन्नु धर्मस्य दुष्करम् ॥१८॥
मथुरायां महाचित्तश्चन्द्रभद्र इति प्रभुः । तस्य भार्या धरा नाम त्रयस्तस्याश्च सोदराः ॥१९॥
सूर्याब्धियमुनाशब्दैर्देवान्तैर्नामभिः स्मृता । श्रीसन्मित्रचन्द्रप्रभोग्रार्का मुखान्ताश्चापराः सुताः ॥२०॥
द्वितीया चन्द्रभद्रस्याद्वितीया कनकप्रभा । आगत्यर्तुविमानात् स तस्यां जातोऽचलाभिधः ॥२१॥
कलागुणसमृद्धोऽसौ सर्वलोकमनोहरः । बभौ देवकुमाराभः सत्क्रीडाकरणोद्यतः ॥२२॥
अथान्यः कश्चिदङ्गाख्यः कृत्वा धर्मानुमोदनम् । श्रावस्त्यामङ्गिकागर्भे कम्पेनाप्यभिधोऽभवत् ॥२३॥
कवाटर्जीविना तेन कम्पेनाविनयान्वितः । अपो निर्घाटितो गेहाद् दुद्राव भयदुःखितः ॥२४॥
अथाचलकुमारोऽसौ नितान्तं तर्पितः पितुः । धराया भ्रातृभिस्तैश्च मुखान्तैरष्टभिः सुतैः ॥२५॥
[2]ईर्ष्यमाणो रहो हन्तुं मात्रा ज्ञात्वा पलायितः । महता कष्टकेनाङ्घ्रौ ताडितस्तिलके वने ॥२६॥

रानीके साथ जिस समय एक आसनपर बैठा था उसी समय राजा भी कहींसे अकस्मात् आ गया और उसने उसकी वह चेष्टा देख ली ॥१४॥ यद्यपि मायाचारमें प्रवीण रानीने जोरसे रोदन करते हुए कहा कि यह बन्दी जन है तथापि राजाने उसका विश्वास नहीं किया और योद्धाओंने उस भयभीत ब्राह्मणको पकड़ लिया ॥१५॥ तदनन्तर आठों अङ्गोंका निग्रह करनेके लिए वह कुलन्धर विप्र नगरीके बाहर ले जाया गया वहाँ जिसकी इसने कई बार सेवा की थी ऐसे कल्याण नामक साधुने इसे देखा और देखकर कहा कि यदि तू दीक्षा ले ले तो तुझे छुड़ाता हूँ। कुलन्धरने दीक्षा लेना स्वीकृत कर लिया जिससे साधुने राजाके दुष्ट मनुष्योंसे उसे छुड़ाया और छुड़ाते ही वह श्रमण साधु हो गया ॥१६-१७॥ तदनन्तर बहुत बड़ी भावनाके साथ अत्यन्त कष्टदायी तप तपकर वह सौधर्मस्वर्गके ऋतुविमानका स्वामी हुआ सो ठीक ही है क्योंकि धर्मके लिए क्या कठिन है ? ॥१८॥

अथानन्तर मथुरामें चन्द्रभद्र नामका उदारचित्त राजा था, उसकी स्त्रीका नाम धरा था और धराके तीन भाई थे— सूर्यदेव, सागरदेव और यमुनादेव। इन भाइयोंके सिवाय उसके श्रीमुख, सन्मुख, सुमुख, इन्द्रमुख, प्रभामुख, उग्रमुख, अर्कमुख और अपरमुख ये आठ पुत्र थे। ॥१९-२०॥ उसी चन्द्रभद्र राजाकी द्वितीय होने पर भी जो अद्वितीय—अनुपम थी ऐसी कनकप्रभा नामकी द्वितीय पत्नी थी सो कुलंधर विप्रका जीव ऋतु-विमानसे च्युत हो उसके अचल नामका पुत्र हुआ ॥२१॥ वह अचल कला और गुणोंसे समृद्ध था, सब लोगोंके मनको हरनेवाला था और समीचीन क्रीड़ा करनेमें उद्यत रहता था इसलिए देव कुमारके समान सुशोभित होता था ॥२२॥

अथानन्तर कोई अङ्ग नामका मनुष्य धर्मकी अनुमोदना कर श्रावस्ती नामा नगरीमें कम्प नामक पुरुषकी अङ्गिका नामक स्त्रीसे अप नामका पुत्र हुआ ॥२३॥ कम्प कपाट बनानेकी आजीविका करता था अर्थात् जातिका बढ़ई था और उसका पुत्र अत्यन्त अविनयी था इसलिए उसने उसे घरसे निकाल दिया था। फलस्वरूप वह भयसे दुखी होता हुआ इधर-उधर भटकता रहा ॥२४॥ अथानन्तर पूर्वोक्त अचलकुमार पिताका अत्यन्त प्यारा था इसलिए इसकी सौतेली माता धराके तीन भाई तथा मुखान्त नामको धारण करनेवाले आठों पुत्र एकान्तमें मारनेके लिए उसके साथ ईर्ष्या करते रहते थे। अचलकी माता कनकप्रभाको उनकी इस ईर्ष्याका पता चल गया

---

१. भ्रमणो म० । २. ईर्ष्यमाणो म० ।

गृहीतदारुभारेण तेनापेनाथ वीक्षितम् । अतिकष्टं क्षणन् खेदादचलो निश्चलः स्थितः ॥२७॥
दारुभारं परित्यज्य सेन तस्यासिकन्यया । आकृष्टः कण्टको दत्त्वा[1] कटकं चेति भाषितः ॥२८॥
यदि नामाचलं किञ्चिच्छृणुयाल्लोकविश्रुतम् । त्वया तस्य ततोऽभ्याशं गन्तव्यं संशयोज्झितम् ॥२९॥
अपो[2] यथोचितं यातो राजपुत्रोऽपि दुःखवान् । कौशाम्बीबाह्यमुद्देशं प्राप्तः सत्त्वसमुन्नतः ॥३०॥
सत्रेन्द्रदत्तनामानं कोशावत्ससमुद्भवम्[3] । ययौ कलकलाशब्दात् सेवमानं खरूलिकाम् ॥३१॥
विजित्य विशिखाचार्यं लब्धपूजोऽथ भूभृता । प्रवेश्य नगरीमिन्द्रदत्ताख्यां लम्भितः सुताम् ॥३२॥
क्रमेण चानुभावेन चारुणा पूर्वकर्मणा । उपाध्याय इति ख्यातो वीरोऽसौ पार्थिवोऽभवत् ॥३३॥
अङ्गादीन् विषयाञ्जित्वा प्रतापी मथुरां श्रितः । बाह्योद्देशे कृतावासः स्थितः कटकसङ्कटः ॥३४॥
चन्द्रभद्रनृपः पुत्रमारोऽयमिति भाषितैः । सामन्ताः सकलास्तस्य भिन्नास्येनार्थसङ्कटैः ॥३५॥
एकाकी चन्द्रभद्रश्च विषादं परमं भजन् । श्यालान् सम्प्रेषयद्देवशब्दान्तान् सन्धिवाञ्छया ॥३६॥
दृष्ट्वा ते तं परिज्ञाय विलक्षाल्लासमागताः । अदृष्टसेवकाः साकं धरायास्तनयैः कृताः ॥३७॥
अचलस्य समं मात्रा सञ्जातः परमोत्सवः । राज्यं च प्रणताशेषराजकं गुणपूजितम् ॥३८॥

इसलिए उसने उसे कहीं बाहर भगा दिया। एक दिन अचल तिलक नामक वनमें जा रहा था कि उसके पैरमें एक बड़ा भारी काँटा लग गया। काँटा लग जानेके कारण दुःखसे अत्यन्त दुःखदायी शब्द करता हुआ वह उसी तिलक वनमें एक ओर खड़ा हो गया। उसी समय लकड़ियोंका भार लिये हुए अप वहाँसे निकला और उसने अचलको देखा ॥२५-२७॥ अपने लकड़ियोंका भार छोड़ छुरीसे उसका काँटा निकाला। इसके बदले अचलने उसे अपने हाथका कड़ा देकर कहा कि यदि तू कभी किसी लोक प्रसिद्ध अचलका नाम सुने तो तुझे संशय छोड़कर उसके पास जाना चाहिए ॥२८-२९॥

तदनन्तर अप यथायोग्य स्थान पर चला गया और राजपुत्र अचल भी दुःखी होता हुआ धैर्यसे युक्त हो कौशाम्बी नगरीके बाह्यप्रदेशमें पहुँचा ॥३०॥ वहाँ कौशाम्बीके राजा कोशावत्सका पुत्र इन्द्रदत्त, बाण चलानेके स्थानमें बाण विद्याका अभ्यास कर रहा था सो उसका कलकला शब्द सुन अचल उसके पास चला गया ॥३१॥ वहाँ इन्द्रदत्तके साथ जो उसका विशिखाचार्य अर्थात् शस्त्र विद्या सिखानेवाला गुरु था उसे अचलने पराजित किया था। तदनन्तर जब राजा कोशावत्सको इसका पता चला तब उसने अचलका बहुत सन्मान किया और सम्मानके साथ नगरीमें प्रवेश कराकर उसे अपनी इन्द्रदत्ता नामकी कन्या विवाह दी ॥३२॥ तदनन्तर वह क्रम-क्रमसे अपने प्रभाव और पूर्वोपार्जित पुण्यकर्मसे पहले तो उपाध्याय इस नामसे प्रसिद्ध था और उसके बाद राजा हो गया ॥३३॥ तत्पश्चात् वह प्रतापी अङ्ग आदि देशोंको जीत कर मथुरा आया और उसके बाह्य स्थानमें डेरे देकर सेनाके साथ ठहर गया ॥३४॥ यह चन्द्रभद्र राजा 'पुत्रको मारनेवाला है' ऐसे यथार्थ शब्द कहकर उसने उसके समस्त सामन्तोंको अपनी ओर फोड़ लिया ॥३५॥ जिससे चन्द्रभद्र अकेला रह गया। अन्तमें परम विषादको प्राप्त होते हुए उसने सन्धिकी इच्छासे अपने सूर्यदेव, अधिदेव और यमुनादेव नामक तीन साले भेजे ॥३६॥ सो वे उसे देख तथा पहिचान कर लज्जित हो भयको प्राप्त हुए और धरा रानीके आठों पुत्रोंके साथ-साथ सेवकोंसे रहित हो गये अर्थात् भयसे भाग गये ॥३७॥ अचलको माताके साथ मिलकर बड़ा उल्लास हुआ और जिसमें समस्त राजा नम्रीभूत थे तथा जो गुणोंसे पूजित था ऐसा राज्य उसे प्राप्त हुआ ॥३८॥

१. कण्टकं म० । २. अथो ख० । ३. कोशाम्बत्ससमुद्भवम् म० । कोशावत्समयोज्झितम् क० ।

अन्यदा नटरङ्गस्य मध्ये तमपमागतम् । हन्यमानं प्रतीहारैर्दृष्ट्वाऽभिज्ञातवान् नृपः ॥३६॥
तस्मै संयुक्तमापाद्य आवस्तीं जन्मभूमिकाम् । कृतापरङ्गसंज्ञाय ददावचलभूपतिः ॥४०॥
तावुद्यानं गतौ क्रीडां विधातुं पुरुसम्पदौ । यशःसमुद्रमाचार्यं दृष्ट्वा नैर्ग्रन्थ्यमाश्रितौ ॥४१॥
संयमं परमं कृत्वा सम्यग्दर्शनभावितौ । मृतौ समाधिना जातौ देवेशौ कमलोत्तरे ॥४२॥
ततश्च्युतः समानोऽसावचलः पुण्यशेषतः । सुप्रजोलोचनानन्दः शत्रुघ्नोऽयमभून्नृपः ॥४३॥
तेनानेकभवप्राप्तिसम्बन्धेनास्य भूपतेः । बभूव परमप्रीतिर्मधुरां प्रति पार्थिव ॥४४॥
गृहस्य शाखिनो वाऽपि यस्यच्छायां समाश्रयेत् । स्थीयते दिनमप्येकं प्रीतिस्तत्रापि जायते ॥४५॥
किं पुनर्यत्र भूयोऽपि जन्मभिः संगतिः कृता । संसारभावयुक्तानां जीवानामीदृशी गतिः ॥४६॥
परिभ्रम्यापरङ्गोऽपि पुण्यशेषाद्भूतबलौ । कृतान्तवक्त्रविख्यातः सेनायाः पतिरूर्जितः ॥४७॥
इति धर्मार्जनादेतौ प्राप्तौ परमसम्पदः । धर्मेण रहितैर्नैतत् न हि किञ्चिदुखावहम् ॥४८॥
अनेकमपि सञ्चित्य जन्तुर्दुःखमलक्षये । धर्मतीर्थे श्रुते(श्रवेत्) शुद्धिं जलतीर्थमनर्थकम् ॥४९॥

आर्या

एवं पारम्पर्यादागतमिदमद्भुतं नितान्तसुदारम् ।
कथितं शत्रुघ्नायनमवबुध्य बुधा भवन्तु धर्मसुरक्ताः ॥५०॥

अथानन्तर किसी एक समय पैरका काँटा निकालनेवाला अपर नटोंकी रङ्गभूमिमें आया सो प्रतीहारी लोग उसे मार रहे थे। राजा अचलने उसे देखते ही पहिचान लिया ॥३९॥ और अपने पास बुलाकर उसका अपरंग नाम रक्खा तथा उसकी जन्मभूमि स्वरूप श्रावस्ती नगरी उसके लिए दे दी ॥४०॥ ये दोनों ही मित्र साथ-साथ ही रहते थे। परम सम्पदाको धारण करनेवाले दोनों मित्र एक दिन क्रीड़ा करनेके लिए उद्यान गये थे सो वहाँ यशःसमुद्र नामक आचार्यके दर्शन कर उनके समीप दोनों ही निर्ग्रन्थ अवस्थाको प्राप्त हो गये ॥४१॥ सम्यग्दर्शनकी भावनासे युक्त दोनों मुनियोंने परम संयम धारण किया और दोनों ही आयुके अन्तमें समाधिमरण कर स्वर्गमें देवेन्द्र हुए ॥४२॥ सन्मानसे सुशोभित वह अचलका जीव, स्वर्गसे च्युत हो अवशिष्ट पुण्यके प्रभावसे माता सुप्रजाके नेत्रोंको आनन्दित करनेवाला यह राजा शत्रुघ्न हुआ है ॥४३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! अनेक भवोंमें प्राप्तिका सम्बन्ध होनेसे इसकी मथुराके प्रति परम प्रीति है ॥४४॥ जिस घर अथवा वृक्षकी छायाका आश्रय लिया जाता है अथवा वहाँ एक दिन भी ठहरा जाता है उसकी उसमें प्रीति हो जाती है ॥४५॥ फिर जहाँ अनेक जन्मोंमें बार-बार रहना पड़ता है उसका क्या कहना है? यथार्थमें संसारमें परिभ्रमण करनेवाले जीवोंकी ऐसी ही गति होती है ॥४६॥ अपरंगका जीव भी स्वर्गसे च्युत हो पुण्य शेष रहनेसे कृतान्तवक्त्र नामका प्रसिद्ध एवं बलवान् सेनापति हुआ है ॥४७॥ इस प्रकार धर्मार्जनके प्रभावसे ये दोनों परम सम्पदाको प्राप्त हुए हैं सो ठीक ही है क्योंकि धर्मसे रहित प्राणी किसी सुखदायक वस्तुको नहीं प्राप्त कर पाते हैं ॥४८॥ इस प्राणीने अनेक भवोंमें पापका संचय किया है सो दुःख रूपी मलका क्षय करनेवाले धर्मरूपी तीर्थमें शुद्धिको प्राप्त करना चाहिए इसके लिए जलरूपी तीर्थका आश्रय लेना निरर्थक है ॥४९॥ इस प्रकार आचार्य परम्परासे आगत, अत्यन्त आश्चर्यकारी एवं उत्कृष्ट शत्रुघ्नके इस चरितको जानकर हे विद्वज्जनो! सदा धर्ममें अनुरक्त

---

१. सुप्रजालोचनानन्दः म०, ज० । २. धर्माज्ञनादेतौ म० ।

श्रुत्वा परमं धर्मं न भवति येषां सदीहिते मतिः ।
शुभनेत्राणां तेषां रविरुदितोऽनर्थकीभवति ॥५१॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे शत्रुघ्नभवानुकीर्तनं नामैकनवतितमं पर्व ॥९१॥

होओ ॥५०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस परमधर्मको सुनकर जिनकी उत्तम चेष्टामें प्रवृत्ति नहीं होती शुभ नेत्रोंको धारण करनेवाले उन लोगोंके लिए उदित हुआ सूर्य भी निरर्थक हो जाता है ॥५१॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें शत्रुघ्नके भवोंका वर्णन करनेवाला एकानवेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥९१॥

द्विनवतितमं पर्व

विहरन्तोऽन्यदा प्राप्ता निर्ग्रन्था मथुरां पुरीम् । गगनायनिनः सप्त [1]सप्तसप्तिसमद्युतिः ॥१॥
सुरमन्युर्द्वितीयश्च श्रीमन्युरिति कीर्तितः । अन्यः श्रीनिचयो नाम तुरीयः सर्वसुन्दरः ॥२॥
पञ्चमो जयवान् ज्ञेयः षष्ठो विनयलालसः । चरमो जयमित्राख्यः सर्वे चारित्रसुन्दराः ॥३॥
राज्ञः श्रीनन्दनस्यैते धरणीसुन्दरीभवाः । तनया जगति ख्याता गुणैः शुद्धैः प्रभापुरे ॥४॥
प्रीतिङ्करमुनीन्द्रस्य देवागममुदीक्ष्य ते । प्रतिबुद्धाः समं पित्रा धर्मं कर्तुं समुद्यताः ॥५॥
मासजातं नृपो न्यस्य राज्ये डमरमङ्गलम् । प्रवव्राज समं पुत्रैर्वीरः प्रीतिङ्करान्तिके ॥६॥
केवलज्ञानमुत्पाद्य काले श्रीनन्दनोऽविशत् । सप्तर्षयस्त्वमी तस्य तनया मुनिसत्तमाः ॥७॥
काले विकालवत्काले कन्दपूरावृतान्तरे । न्यग्रोधतरुमूले ते योगं सम्मुनयः श्रिताः ॥८॥
तेषां तपःप्रभावेन चमरासुरनिर्मिता । मारी श्वशुरदृष्टेव नारी विटगताऽनशत् ॥९॥
घनजीमूतसंसिक्ता[2] मथुराविषयोर्वरा । अकृष्टपच्यसस्याढ्यैः सञ्छन्ना सुमहाशयैः ॥१०॥
रोगेति परिनिर्मुक्ता मथुरानगरी शुभा । पितृदर्शनतुष्टेव रराज नविका वधूः ॥११॥
युक्तं बहुप्रकारेण रसत्यागादिकेन ते । [3]षष्ठादिनोपवासेन चक्रुरत्युत्कटं तपः ॥१२॥
नभो निमेषमात्रेण विप्रकृष्टं विलङ्घ्य ते । चक्रुः पुरेषु विजयपोदनादिषु पारणाम् ॥१३॥

अथानन्तर किसी समय गगनगामी एवं सूर्यके समान कान्तिके धारक सात निर्ग्रन्थ मुनि विहार करते हुए मथुरापुरी आये। उनमेंसे प्रथम सुरमन्यु, द्वितीय श्रीमन्यु, तृतीय श्रीनिचय, चतुर्थ सर्वसुन्दर, पञ्चम जयवान्, षष्ठ विनयलालस और सप्तम जयमित्र नामके धारक थे। ये सभी चारित्रसे सुन्दर थे अर्थात् निर्दोष चारित्रके पालक थे। राजा श्रीनन्दनकी धरणी नामक रानीसे उत्पन्न हुए पुत्र थे, निर्दोष गुणोंसे जगत्में प्रसिद्ध थे तथा प्रभापुर नगरके रहने वाले थे ॥१-४॥ ये सभी, प्रीतिङ्कर मुनिराजके केवलज्ञानके समय देवोंका आगमन देख प्रतिबोधको प्राप्त हो पिताके साथ धर्म करनेके लिए उद्यत हुए थे ॥५॥ वीरशिरोमणि राजा श्रीनन्दन, डमर-मङ्गल नामक एक माहके बालकको राज्य देकर अपने पुत्रोंके साथ प्रीतिङ्कर मुनिराजके समीप दीक्षित हुए थे ॥६॥ समय पाकर श्रीनन्दन राजा तो केवलज्ञान उत्पन्न कर सिद्धालयमें प्रविष्ट हुए और उनके उक्त पुत्र उत्तम मुनि हो सप्तर्षि हुए ॥७॥ जहाँ परस्परका अन्तर कन्दोंके समूहसे आवृत्त था ऐसे वर्षाकालके समय वे सब मुनि मथुरा नगरीके समीप वटवृक्षके नीचे वर्षा योग लेकर विराजमान हुए ॥८॥ उन मुनियोंके तपके प्रभावसे चमरेन्द्रके द्वारा निर्मित महामारी उस प्रकार नष्ट हो गई जिस प्रकार कि श्वसुरके द्वारा देखी हुई विट मनुष्यके पास गई नारी नष्ट हो जाती है ॥९॥ अत्यधिक मेघोंसे सींची गई मथुराके देशोंकी उपजाऊ भूमि बिना जोते बखरे अर्थात् अनायास ही उत्पन्न होने वाले बहुत भारी धान्यके समूहसे व्याप्त हो गई ॥१०॥ उस समय रोग और ईतियोंसे छूटी शुभ मथुरा नगरी उस प्रकार सुशोभित हो रही थी, जिस प्रकार कि पिताके देखनेसे सन्तुष्ट हुई नई वधू सुशोभित होती है ॥११॥ वे सप्तर्षि नाना प्रकारके रस परित्याग आदि तथा वेला तेला आदि उपवासोंके साथ अत्यन्त उत्कट तप करते थे ॥१२॥ वे अत्यन्त दूरवर्ती आकाशको निमेष मात्रमें लाँघकर विजयपुर, पोदनपुर आदि दूर-दूरवर्ती नगरोंमें

---

१. सूर्यसमकान्तयः । २. संसक्ता म० । ३. षष्ठादिनोप-म० ।

लब्धां परगृहे भिक्षां पाणिपात्रतलस्थिताम् । शरीरस्थितिमात्राय जक्षुस्ते क्षपणोत्तमाः ॥१४॥
नभोमध्यगते भानावन्यदा ते महाशमाः । साकेतामविशन् वीरा युगमात्रावलोकिनः ॥१५॥
शुद्धभिक्षैषणाकूताः प्रलम्बितमहाभुजाः । अर्हद्दत्तगृहं प्राप्ता भ्राम्यन्तस्ते यथाविधि ॥१६॥
अर्हद्दत्तश्च सम्प्राप्तश्चिन्तामेतामसम्भ्रमः । वर्षाकालः क्व चेदृक्षः क्व चेदं मुनिचेष्टितम् ॥१७॥
प्राग्भारकन्दरानद्युतटे मूले च शाखिनः[1] । शून्यालये जिनागारे ये चान्यत्र क्वचित्स्थिताः ॥१८॥
मुनयो श्रमणा अस्यां नेमे समयखण्डनम् । कृत्वा हिण्डनशीलत्वं प्रपद्यन्ते सुचेष्टिताः ॥१९॥
प्रतिकूलितसूत्रार्था एते तु ज्ञानवर्जिताः । निराचार्या निराचाराः कथं कालेऽत्र हिण्डकाः ॥२०॥
अकालेऽपि किल प्राप्ताः स्वपत्न्यास्य सुभक्तया । तर्पिताः प्राप्तकालेन ते गृहीतार्थया तया ॥२१॥
आर्हतं भवनं जग्मुः शुद्धसंयतसङ्कुलम् । यत्र त्रिभुवनानन्दः स्थापितो मुनिसुव्रतः ॥२२॥
चतुरङ्गुलमानेन ते स्पृक्कधरणीतलाः । आयान्तो श्रुतिना दृष्टा लब्धिप्राप्ताः प्रसाधवः ॥२३॥
पद्भ्यामेव जिनागारं प्रविष्टाः श्रद्धयोद्यया । अभ्युत्थाननमस्यादिविधिना श्रुतिनार्चिताः ॥२४॥
अस्मदीयोऽयमाचार्यो यत्किञ्चिद्वन्दनोद्यतः । इति ज्ञात्वा श्रुतेः शिष्या दध्युः सप्तर्षिनिन्दनम्[2] ॥२५॥
जिनेन्द्रवन्दनां कृत्वा सम्यक् स्तुतिपरायणाः । यातास्ते वियदुत्पत्य स्वमाश्रमपदं पुनः ॥२६॥
चारणश्रमणान् ज्ञात्वा मुनींस्ते मुनयः पुनः । स्वनिन्दनादिना युक्ताः साधुचित्तमुपागताः ॥२७॥

पारणा करते थे ॥१३॥ वे उत्तम मुनिराज परगृहमें प्राप्त एवं हस्तरूपी पात्रमें स्थित भिक्षाको केवल शरीरकी स्थिरताके लिए ही भक्षण करते थे ॥१४॥

अथानन्तर किसी एक दिन जब कि सूर्य आकाशके मध्यमें स्थित था तब महा शान्तिको धारण करने वाले वे धीर-वीर मुनिराज जूड़ा प्रमाण भूमिको देखते हुए अयोध्या नगरीमें प्रविष्ट हुए ॥१५॥ जो शुद्ध भिक्षा ग्रहण करनेके अभिप्रायसे युक्त थे और जिनकी लम्बी-लम्बी भुजाएँ नीचे की ओर लटक रही थीं ऐसे वे मुनि विधि पूर्वक भ्रमण करते हुए अर्हद्दत्त सेठके घर पहुँचे ॥१६॥ उन मुनियोंको देखकर संभ्रमसे रहित अर्हद्दत्त सेठ इस प्रकार विचार करने लगा कि यह ऐसा वर्षा काल कहाँ और यह मुनियोंकी चेष्टा कहाँ ? ॥१७॥ इस नगरीके आस-पास प्राग्भार पर्वतकी कन्दराओंमें, नदीके तटपर, वृक्षके मूलमें, शून्य घरमें, जिनालयमें तथा अन्य स्थानोंमें जहाँ कहीं जो मुनिराज स्थित हैं उत्तम चेष्टाओंको धारण करनेवाले वे मुनिराज समयका खण्डन कर अर्थात् वर्षा योग पूरा किये बिना इधर-उधर परिभ्रमण नहीं करते ॥१८-१९॥ परन्तु ये मुनि आगमके अर्थको विपरीत करनेवाले हैं, ज्ञानसे रहित हैं, आचार्योंसे रहित हैं और आचारसे भ्रष्ट हैं इसीलिए इस समय यहाँ घूम रहे हैं ॥२०॥ यद्यपि वे मुनि असमयमें आये थे तो भी अर्हद्दत्त सेठकी भक्त एवं अभिप्रायको ग्रहण करनेवाली वधूने उन्हें आहार देकर सन्तुष्ट किया था ॥२१॥ आहारके बाद वे शुद्ध-निर्दोष प्रवृत्ति करनेवाले मुनियोंसे व्याप्त अर्हन्त भगवान्के उस मन्दिरमें गये जहाँ कि तीन लोकको आनन्दित करनेवाले श्री मुनिसुव्रत भगवान्की प्रतिमा विराजमान थी ॥२२॥ अथानन्तर जो पृथिवीसे चार अंगुल ऊपर चल रहे थे ऐसे उन ऋद्धिधारी उत्तम मुनियोंको मन्दिरमें विद्यमान श्री श्रुतिभट्टारकने देखा ॥२३॥ उन मुनियोंने उत्तम श्रद्धाके साथ पैदल चल कर ही जिन मन्दिरमें प्रवेश किया तथा श्रुतिभट्टारकने खड़े होकर नमस्कार करना आदि विधिसे उनकी पूजा की ॥२४॥ 'यह हमारे आचार्य चाहे जिसकी वन्दना करनेके लिए उद्यत हो जाते हैं।' यह जानकर श्रुतिभट्टारकके शिष्योंने उन सप्तर्षियोंकी निन्दा का विचार किया ॥२५॥ तदनन्तर सम्यक् प्रकारसे स्तुति करनेमें तत्पर वे सप्तर्षि, जिनेन्द्र भगवान्की वन्दना कर आकाशमार्गसे पुनः अपने स्थानको चले गये ॥२६॥ जब वे आकाशमें उड़े तब उन्हें चारण ऋद्धिके धारक जान कर श्रुतिभट्टारकके शिष्य जो अन्य मुनि थे वे अपनी

---

१. शालिनः म० । २. नन्दनम् ग० । वन्दनम् ख० ।

अर्हद्दत्ताय यातायं जिनालयमिहान्तरे । द्युतिना गदितं दृष्टाः साधवः स्युस्त्वयोत्तमाः ॥२८॥
वन्दिताः पूजिता वा स्युर्महासत्त्वा महौजसः । मथुराकृतसंवासा[1] मयाऽमी कृतसंकथाः ॥२९॥
महातपोधना दृष्टास्तेऽस्माभिः शुभचेष्टिताः । मुनयः परमोदारा वन्द्या गगनगामिनः ॥३०॥
ततः प्रभावमाकर्ण्य साधूनां श्रावकाधिपः । तदा विषण्णहृदयः पश्चात्तापेन तप्यते ॥३१॥
धिक् सोऽहमगृहीतार्थः सम्यग्दर्शनवर्जितः । अयुक्तोऽसदाचारो न मुख्यो मेऽस्त्यधार्मिकः ॥३२॥
मिथ्यादृष्टिः कुतोऽन्योऽन्यो मत्तः प्रत्यवरोऽधुना । अभ्युत्थायार्चिता नत्वा साधवो यस्य तर्पिताः ॥३३॥
साधुरूपं समालोक्य न मुञ्चत्यासनं तु यः । दृष्ट्वाऽयमन्यते यश्च स मिथ्यादृष्टिरुच्यते ॥३४॥
पापोऽहं पापकर्मा च पापात्मा पापभाजनम् । यो वा निन्द्यतमः कश्चिज्जिनवाक्यबहिष्कृतः ॥३५॥
शरीरे मर्मसंघाते तावन्मे दह्यते मनः । यावदञ्जलिमुद्धृत्य साधवस्ते न वन्दिताः ॥३६॥
अहंकारसमुत्थस्य पापस्यास्य न विद्यते । प्रायश्चित्तं परं तेषां मुनीनां वन्दनादृते ॥३७॥
अथ ज्ञात्वा समासन्नां[2] कार्तिकीं परमोत्सुकः । अर्हच्छ्रेष्ठी महादृष्टिर्नृपतुल्यपरिच्छदः ॥३८॥
निर्ज्ञातमुनिमाहात्म्यः स्वनिन्दाकरणोद्यतः । सप्तर्षिपूजनं कर्तुं प्रस्थितो बन्धुभिः समम् ॥३९॥
रथकुञ्जरपादातचतुरङ्गबलसंयुतः । पूजां सप्तर्षिवर्गस्य कर्तुमग्रे यति स्म सत्वरम् ॥४०॥
समृद्ध्या परया युक्तः शुभध्यानपरायणः । कार्तिकामलसप्तम्यां प्राप्तः साधुमुनि[4] पदम् ॥४१॥

निन्दा गर्हा आदि करते हुए निर्मल हृदयको प्राप्त हुए अर्थात् जो मुनि पहले उन्हें उन्मार्गगामी समझकर उनकी निन्दाका विचार कर रहे थे वे ही मुनि अब उन्हें चारण ऋद्धिके धारक जान कर अपने अज्ञानकी निन्दा करने लगे तथा अपने चित्तकी कलुषताको उन्होंने दूर कर दिया ॥२७॥ इसी बीचमें अर्हद्दत्त सेठ जिन-मन्दिरमें आया सो द्युतिभट्टारकने उससे कहा कि आज तुमने उत्तम मुनि देखे होंगे ? ॥२८॥ वे मुनि सबके द्वारा वन्दित हैं, पूजित हैं, महाधैर्यशाली हैं, एवं महातपस्वी हैं। वे मथुराके निवासी हैं और उन्होंने मेरे साथ वार्तालाप किया है ॥२९॥ महातपश्चरण ही जिनका धन है, जो शुभ चेष्टाओंके धारक हैं, अत्यन्त उदार हैं, वन्दनीय हैं और आकाशमें गमन करनेवाले हैं ऐसे उन मुनियोंके आज हमने दर्शन किये हैं॥३०॥ तदनन्तर द्युतिभट्टारकसे साधुओंका प्रभाव सुनकर अर्हद्दत्त सेठ बहुत ही खिन्न चित्त हो पश्चात्तापसे संतप्त हो गया ॥३१॥ वह विचार करने लगा कि यथार्थ अर्थको नहीं समझने वाले मुझ मिथ्यादृष्टिको धिक्कार हो। मेरा अनिष्ट आचरण अयुक्त था, अनुचित था, मेरे समान दूसरा अधार्मिक नहीं है ॥३२॥ इस समय मुझसे बढ़कर दूसरा मिथ्यादृष्टि कौन होगा जिसने उठ कर मुनियोंकी पूजा नहीं की तथा नमस्कार कर उन्हें आहारसे सन्तुष्ट नहीं किया ॥३३॥ जो मुनिको देखकर आसन नहीं छोड़ता है तथा देख कर उनका अपमान करता है वह मिथ्यादृष्टि कहलाता है ॥३४॥ मैं पापी हूँ, पापकर्मा हूँ, पापात्मा हूँ, पापका पात्र हूँ अथवा जिनागमकी श्रद्धासे दूर रहनेवाला जो कोई निन्द्यतम है वह मैं हूँ ॥३५॥ जब तक मैं हाथ जोड़कर उन मुनियोंकी वन्दना नहीं कर लेता तब तक शरीर एवं मर्मस्थलमें मेरा मन दाहको प्राप्त होता रहेगा ॥३६॥ अहंकारसे उत्पन्न हुए इस पापका प्रायश्चित्त उन मुनियोंकी वन्दनाके सिवाय और कुछ नहीं हो सकता॥३७॥

अथानन्तर कार्तिकी पूर्णिमाको निकटवर्ती जानकर जिसकी उत्सुकता बढ़ रही थी, जो महासम्यग्दृष्टि था, राजाके समान वैभवका धारक था, मुनियोंके माहात्म्यको अच्छी तरह जानता था, तथा अपनी निन्दा करनेमें तत्पर था ऐसा अर्हद्दत्त सेठ सप्तर्षियोंकी पूजा करनेके लिए अपने बन्धुजनोंके साथ मथुराकी ओर चला ॥३८-३९॥ रथ, हाथी, घोड़े और पैदल सैनिकोंके समूहके साथ वह सप्तर्षियोंकी पूजा करनेके लिए बड़ी शीघ्रतासे जा रहा था ॥४०॥ परम समृद्धिसे युक्त एवं शुभध्यान करनेमें तत्पर रहनेवाला वह सेठ कार्तिक शुक्ला सप्तमीके दिन सप्तर्षियोंके

१. मया सार्धम् । २. -त्वित्वा नत्वा म० । ३. समासन्नं म० । ४. साधुमुनिम् म० ।

सम्राप्युत्तमसम्यक्त्वो विधाय मुनिवन्दनाम् । पूजोपकरणं कर्तुमुद्यतः सर्वयत्नतः ॥४२॥
प्रपामाटकसङ्गीतशालादिपरिराजितम् । जातं तदाश्रमस्थानं स्वर्गदेशमनोहरम् ॥४३॥
तं वृत्तान्तं समाकर्ण्य शत्रुघ्नः स्वतुरीयकः । महातुरङ्गमारूढः सप्तसुम्यन्तिकं ययौ ॥४४॥
मुनीनां परया भक्त्या पुत्रस्नेहाच्च पुष्कलात् । माताऽप्यस्य गता पश्चात् समुद्ग्राहितकोडिका ॥४५॥
ततः प्रणम्य भक्त्यैव सम्पदं हर्षनिर्भरः । मुनीन् सप्ताऽनियान् पारणार्थमयाचत ॥४६॥
तत्रोक्तं मुनिमुख्येन नरपुङ्गव कल्पितम् । उपेत्य भोक्तुमाहारं संयतानां न वर्त्तते ॥४७॥
अकृताकारितां भिक्षां मनसा नानुमोदिताम् । गृह्णतां विधिना युक्तां तपः पुष्यति योगिनाम् ॥४८॥
ततो जगाद शत्रुघ्नः प्रसादं मुनिपुङ्गवाः । ममेदं कर्तुमर्हन्ति विज्ञापकसुवत्सलाः ॥४९॥
कियन्तमपि कालं मे नगर्यामिह तिष्ठत । शिवं सुभिक्षमेतस्यां प्रजानां येन जायते ॥५०॥
आगतेषु भवत्स्वेषा समृद्धा सर्वतोऽभवत् । नष्टापातेषु[1] नलिनी यथा विसरदुत्सवा ॥५१॥
इत्युक्त्वाऽचिन्तयच्छ्राद्धः कदा नु खलु वाञ्छितम् । अन्नं[2] दास्यामि साधुभ्यो विधिना सुसमाहितः ॥५२॥
अथ श्रेणिक शत्रुघ्नं निरीक्ष्याऽऽनतमस्तकम् । कालानुभावमाचख्यौ यथावन्मुनिसत्तमः ॥५३॥
धर्मनन्दनकालेषु व्ययं यातेष्वनुक्रमात् । भविष्यति प्रचण्डोऽत्र निर्धर्मसमयो महान् ॥५४॥
दुःपाषण्डैरिदं जैनं शासनं परमोन्नतम् । तिरोधास्यते क्षुद्रैरंशुभिर्भानुबिम्बवत् ॥५५॥

स्थान पर पहुँच गया ॥४१॥ वहाँ उत्तम सम्यक्त्वको धारण करनेवाला वह श्रेष्ठ मुनियोंकी वन्दना कर पूर्ण प्रयत्नसे पूजाकी तैयारी करनेके लिए उद्यत हुआ ॥४२॥ प्याऊ, नाटक-गृह तथा संगीत-शाला आदिसे सुशोभित वह आश्रमका स्थान स्वर्गप्रदेशके समान मनोहर हो गया ॥४३॥ यह वृत्तान्त सुन राजा दशरथका चतुर्थ पुत्र शत्रुघ्न महातुरङ्ग पर सवार हो सप्तर्षियोंके समीप गया ॥४४॥ मुनियोंकी परम भक्ति और पुत्रके अत्यधिक स्नेहसे उसकी माता सुप्रजा भी खजाना लेकर उसके पीछे आ पहुँची ॥४५॥

तदनन्तर भक्त हृदय एवं हर्षसे भरे शत्रुघ्नने नियमको पूर्ण करनेवाले मुनियोंको नमस्कार कर उनसे पारणा करनेकी प्रार्थना की ॥४६॥ तब उन मुनियोंमें जो मुख्य मुनि थे उन्होंने कहा कि हे नरश्रेष्ठ ! जो आहार मुनियोंके लिए संकल्प कर बनाया जाता है उसे ग्रहण करनेके लिए मुनि प्रवृत्ति नहीं करते ॥४७॥ जो न स्वयं की गई है, न दूसरेसे कराई गई और न मनसे जिसकी अनुमोदना की गई है ऐसी भिक्षाको विधि पूर्वक ग्रहण करनेवाले योगियोंका तप पुष्ट होता है ॥४८॥ तदनन्तर शत्रुघ्नने कहा कि हे मुनिश्रेष्ठो ! आप प्रार्थना करनेवालों पर अत्यधिक स्नेह रखते हैं अतः हमारे ऊपर यह प्रसन्नता करनेके योग्य हैं कि आप कुछ काल तक मेरी इस नगरीमें और ठहरिये जिससे कि इसमें रहनेवाली प्रजाको आनन्ददायी सुभिक्षकी प्राप्ति हो सके ॥४९-५०॥ आप लोगोंके आने पर यह नगरी उस तरह सब ओरसे समृद्ध हो गई है जिस तरह कि वर्षाके नष्ट हो जाने पर कमलिनी सब ओरसे समृद्ध हो जाती है—खिल उठती है ॥५१॥ इतना कहकर श्रद्धासे भरा शत्रुघ्न चिन्ता करने लगा कि मैं प्रमाद रहित हो विधि पूर्वक मुनियोंके लिए मन वाञ्छित आहार कब दूँगा ॥५२॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! शत्रुघ्नको नतमस्तक देखकर उन उत्तम मुनिराजने उसके लिए यथायोग्य कालके प्रभावका निरूपण किया ॥५३॥ उन्होंने कहा कि जब अनुक्रमसे तीर्थंकरोंका काल व्यतीत हो जायगा तब यहाँ धर्मकर्मसे रहित अत्यन्त भयंकर समय होगा ॥५४॥ दुष्ट पाखण्डी लोगोंके द्वारा यह परमोन्नत जैन शासन उस तरह तिरोहित हो जायगा जिस तरह कि धूलिके छोटे-छोटे कणोंके द्वारा सूर्यका बिम्ब तिरोहित हो जाता है ॥५५॥ उस

---

१. प्रातेषु म० । २. अन्यं म० ।

श्मशानसदृशा ग्रामाः प्रेतलोकोपमाः पुरः । क्लिष्टा जनपदाः कृत्स्ना भविष्यन्ति दुरीहिताः ॥५६॥
कुकर्मनिरतैः क्रूरैश्चोरैरिव निरन्तरम् । दुःपाषण्डैरयं लोको भविष्यति समाकुलः ॥५७॥
महीतलं खलं द्रव्यपरिमुक्ताः कुटुम्बिनः । हिंसाक्लेशसहस्राणि भविष्यन्तीह सन्ततम् ॥५८॥
पितरौ प्रति निःस्नेहाः पुत्रास्तौ च सुतान् प्रति । चौरा इव च राजानो भविष्यन्ति कलौ सति ॥५९॥
सुखिनोऽपि नराः केचिन् मोहयन्तः परस्परम् । कथाभिर्दुर्गतीशाभी रंस्यन्ते पापमानसाः ॥६०॥
संक्षयन्त्यतिशयाः सर्वे त्रिदशागमनादयः । कषायबहुले काले शत्रुघ्न ! समुपागते ॥६१॥
आतरूपधरान् दृष्ट्वा साधून् व्रतगुणान्वितान् । सञ्जुगुप्सां करिष्यन्ति महामोहान्विता जनाः ॥६२॥
अप्रशस्तं प्रशस्तत्वं मन्यमानाः कुचेतसः । भयपक्षे पतिष्यन्ति पतङ्गा इव मानवाः ॥६३॥
प्रशान्तहृदयान् साधून् विहस्योद्यताः[1] । मूढा मूढेषु दास्यन्ति केचिदन्नं प्रयत्नतः ॥६४॥
इत्थमेतं निराकृत्य प्राहुयान्यं समागतम् । यतिनो मोहिनो देयं दास्यन्त्यहितभावनाः ॥६५॥
बीजं शिलातले न्यस्तं सिच्यमानं सदापि हि । अनर्थकं यथा दानं तथाशीलेषु गेहिनाम् ॥६६॥
अवज्ञाय मुनीन् गेही गेहिने यः प्रयच्छति । त्यक्त्वा स चन्दनं मूढो गृह्णात्येव विभीतकम् ॥६७॥
इति ज्ञात्वा समायातं कालं दुःषमताधमम् । विधत्स्वात्महितं किञ्चिस्थिरैकार्यं शुभोदयम् ॥६८॥
नामग्रहणकोऽस्माकं भिक्षावृत्तिमवाससाम् । परिकल्पय तत्सारं सत्र द्रविणसम्पदः ॥६९॥
आगमिष्यति काले सा श्रान्तानां त्यक्तवेश्मनाम् । भविष्यत्याश्रयो राजन् स्वगृहाशयसन्निभः ॥७०॥

समय ग्राम श्मशानके समान, नगर यमलोकके समान और देश क्लेशसे युक्त निन्दित तथा दुष्ट चेष्टाओंके करनेवाले होंगे ॥५६॥ यह संसार चोरोंके समान कुकर्ममें निरत तथा क्रूर दुष्ट पाषण्डी लोगोंसे निरन्तर व्याप्त होगा ॥५७॥ यह पृथिवीतल दुष्ट तथा गृहस्थ निर्धन होंगे साथ ही यहाँ हिंसा सम्बन्धी हजारों दुःख निरन्तर प्राप्त होते रहेंगे ॥५८॥ पुत्र, माता-पिताके प्रति और माता-पिता पुत्रोंके प्रति स्नेह रहित होंगे तथा कलिकालके प्रकट होने पर राजा लोग चोरोंके समान धनके अपहर्ता होंगे ॥५९॥ कितने ही मनुष्य यद्यपि सुखी होंगे तथापि उनके मनमें पाप होगा और वे दुर्गतिको प्राप्त करानेमें समर्थ कथाओंसे परस्पर एक दूसरेको मोहित करते हुए क्रीड़ा करेंगे ॥६०॥ हे शत्रुघ्न ! कषाय बहुल समयके आने पर देवागमन आदि समस्त अतिशय नष्ट हो जावेंगे ॥६१॥ तीव्र मिथ्यात्वसे युक्त मनुष्य व्रत रूप गुणोंसे सहित एवं दिगम्बर मुद्राके धारक मुनियोंको देखकर ग्लानि करेंगे ॥६२॥ अप्रशस्तको प्रशस्त मानते हुए कितने ही दुर्हृदय लोग भयके पक्षमें उस तरह जा पड़ेंगे जिस तरह कि पतङ्गे अग्निमें जा पड़ते हैं ॥६३॥ हँसी करनेमें उद्यत कितने ही मूढ मनुष्य शान्त चित्त मुनियोंको तिरस्कृत कर मूढ मनुष्योंके लिए आहार देवेंगे ॥६४॥ इस प्रकार अनिष्ट भावनाको धारण करनेवाले गृहस्थ उत्तम मुनिका तिरस्कार कर तथा मोही मुनिको बुलाकर उसके लिए योग्य आहार आदि देंगे ॥६५॥ जिस प्रकार शिलातल पर रखा हुआ बीज यद्यपि सदा सींचा जाय तथापि निरर्थक होता है—उसमें फल नहीं लगता है उसी प्रकार शील रहित मनुष्योंके लिए दिया हुआ गृहस्थोंका दान भी निरर्थक होता है ॥६६॥ जो गृहस्थ मुनियोंकी अवज्ञाकर गृहस्थके लिए आहार आदि देता है वह मूर्ख चन्दनको छोड़कर बहेड़ा ग्रहण करता है ॥६७॥ इस प्रकार दुःषमताके कारण अधम कालको आया जान आत्माका हित करनेवाला कुछ शुभ तथा स्थायी कार्य कर ॥६८॥ तू नामी पुरुष है अतः निर्ग्रन्थ मुनियोंको भिक्षावृत्ति देनेका निश्चय कर। यही तेरी धन-सम्पदाका सार है ॥६९॥ हे राजन् ! आगे आनेवाले कालमें थके हुए मुनियोंके लिए भिक्षा देना अपने गृहदानके समान एक बड़ा भारी आश्रय होगा

---

१. विहस्योद्यताः म० । २. प्राहुर्यान्यसमागतं म० । ३. स्थिरं कार्यं म० । क० पुस्तके ६८ तः ७१ पर्यन्ताः श्लोका न सन्ति ।

तस्माद्दानमिदं दत्त्वा वत्से स्वमधुना भज । सागारशीलनियमं कुरुजन्मार्थसङ्गतम् ॥७१॥
जायतां मथुरालोकः सम्यग्धर्मपरायणः । दयावात्सल्यसम्पन्नो जिनशासनभावितः ॥७२॥
स्थाप्यन्तां जिनबिम्बानि पूजितानि गृहे गृहे । अभिषेकाः प्रवर्त्यन्तां विधिना पाल्यतां प्रजा ॥७३॥
सप्तर्षिप्रतिमा दिक्षु चतसृष्वपि यत्नतः । नगर्यां कुरु शत्रुघ्न तेन शान्तिर्भविष्यति ॥७४॥
अद्यप्रभृति यद्गेहे बिम्बं जैनं न विद्यते । मारी भक्षयति व्याघ्री यथाऽनाथं कुरङ्गकम् ॥७५॥
यस्यांगुष्ठप्रमाणापि जैनेन्द्री प्रतियातना[1] । गृहे तस्य न मारी स्यात्सार्पभीता यथोरगी ॥७६॥
यथाऽऽज्ञापयसीत्युक्ताः[2] शत्रुघ्नेन प्रमोदिना । समुत्पत्य नभो याताः साधवः साधुवाञ्छिताः ॥७७॥
अथ निर्वाणधामानि परिस्मृत्य प्रदक्षिणम् । मुनयो जानकीगेहमवतेरुः शुभागतेः ॥७८॥
वहन्ती सम्मदं तुङ्गं श्रद्धादिगुणशालिनी । परमान्नेन तान् सीता विधियुक्तमपारयत्[3] ॥७९॥
जानक्या भक्तितो दत्तमन्नं सर्वगुणोद्गतम् । भुक्त्वा पाणितले दत्त्वाऽऽशीर्वादं मुनयो ययुः ॥८०॥
नगर्यां बहिरन्तश्च शत्रुघ्नः प्रतिमास्ततः । अतिद्विषज्जिनेन्द्राणां प्रतिमारहितात्मनाम् ॥८१॥
सप्तर्षिप्रतिमाश्चापि काष्ठासु चतसृष्वपि । अस्थापयन्मनोज्ञाङ्गा सर्वेतिकृतवारणाः ॥८२॥
पृष्ठे त्रिविष्टपस्यैव पुरमन्यां न्यवेशयत्[4] । मनोज्ञां सर्वतः स्फीतां सर्वोपद्रवर्वर्जिताम् ॥८३॥
योजनत्रयविस्तारां सर्वतश्चिगुणां च यत् । [5]अधिकां मण्डलत्वेन स्थितामुत्तमतेजसम् ॥८४॥
आपातालतलाद् भिन्नमूलाः पृथ्व्यो मनोहराः । परिखा[6] भान्ति सुमहासौलवासगृहोपमा ॥८५॥

इसलिए हे वत्स ! तू यह दान देकर इस समय गृहस्थके शीलव्रतका नियम धारण कर तथा अपना जीवन सार्थक बना ॥७०-७१॥ मथुराके समस्त लोग समीचीन धर्मके धारण करनेमें तत्पर, दया और वात्सल्य भावसे सम्पन्न तथा जिन शासनकी भावनासे युक्त हों ॥७२॥ घर-घरमें जिन-प्रतिमाएँ स्थापित की जावें, उनकी पूजाएँ हों, अभिषेक हों और विधिपूर्वक प्रजाका पालन किया जाय ॥७३॥ हे शत्रुघ्न ! इस नगरीकी चारो दिशाओंमें सप्तर्षियोंकी प्रतिमाएँ स्थापित करो। उसीसे सब प्रकारकी शान्ति होगी ॥७४॥ आजसे लेकर जिस घरमें जिन-प्रतिमा नहीं होगी उस घरको मारी उस तरह खा जायगी जिस तरह कि व्याघ्री अनाथ मृगको खा जाती है ॥७५॥ जिसके घरमें अँगूठा प्रमाण भी जिन-प्रतिमा होगी उसके घरमें गरुड़से डरी हुई सर्पिणीके समान मारीका प्रवेश नहीं होगा ॥७६॥ तदनन्तर 'जैसी आप आज्ञा करते हैं वैसा ही होगा' इस प्रकार हर्षसे युक्त सुप्रीयने कहा और उसके बाद उत्तम अभिप्रायको धारण करनेवाले वे सभी साधु आकाशमें उड़कर चले गये ॥७७॥

अथानन्तर निर्वाण क्षेत्रोंकी प्रदक्षिणा देकर शुभगतिको धारण करनेवाले वे मुनिराज सीता के घरमें उतरे ॥७८॥ सो अत्यधिक हर्षको धारण करनेवाली एवं श्रद्धा आदि गुणोंसे सुशोभित सीताने उन्हें विधि पूर्वक उत्तम अन्नसे पारणा कराई ॥७९॥ जानकीके द्वारा भक्ति पूर्वक दिये हुए सर्वगुणसम्पन्न अन्नको अपने हस्ततलमें ग्रहणकर तथा आशीर्वाद देकर वे मुनि चले गये ॥८०॥ तदनन्तर शत्रुघ्नने नगरके भीतर और बाहर सर्वत्र उपमा रहित जिनेन्द्र भगवान्की प्रतिमाएँ स्थापित कराईं ॥८१॥ और सुन्दर अवयवों की धारक तथा समस्त ईतियोंका निवारण करनेवाली सप्तर्षियोंकी प्रतिमाएँ भी चारों दिशाओंमें विराजमान कराईं ॥८२॥ उसने एक दूसरी ही नगरीकी रचना कराई जो ऐसी जान पड़ती थी मानो स्वर्गके ऊपर ही रची गई हो। वह सब ओरसे मनोहर थी, विस्तृत थी, सब प्रकारके उपद्रवोंसे रहित थी, तीन योजन विस्तार वाली थी, सब ओरसे त्रिगुण थी, विशाल थी, मण्डलाकारमें स्थित थी और उत्तम तेजकी धारक थी ॥८३-८४॥ जिनकी जड़ें पातालतक फूटी थीं ऐसी सुन्दर वहाँ की भूमियाँ थीं तथा जो बड़े-

---

१. प्रतिमा । २. -युक्त्वा म०, ब० । ३. पारणां कारयामास । ४. उपमारहितानाम् । ५. पुरी ब० । ६. अधिकं म० । ७. परितो म० । ८. शाल म० ।

उद्यानान्यधिकां शोभां दधुः पुष्पफलाकुलाम् । वाप्यः पद्मोत्पलच्छन्ना जाताः शकुनिनादिताः ॥८६॥
कैलासशिखरसङ्काशाः प्रासादाश्चारुलक्षणाः । विमानप्रतिमा रेजुः विलोचनमनोहराः ॥८७॥
सुवर्णधान्यरत्नाढ्याः[1] सम्मेदशिखरोपमाः । नरेन्द्रसदृशाः श्लाघ्या जाताः सर्वकुटुम्बिनः ॥८८॥
राजानस्त्रिदशैस्तुल्या असमानविभूतयः । धर्मार्थकामसंसक्ताः साधुचेष्टापरायणाः ॥८९॥
प्रयच्छन्निच्छया तेषामाज्ञां विज्ञानसङ्गतः । रराज पुरि शत्रुघ्नः सुराणां वरुणो यथा ॥९०॥

आर्यागीतिच्छन्दः

एवं मथुरापुर्यां निवेशमत्यद्भुतं च सप्तर्षीणाम् ।
शृण्वन् कथयन्वापि प्राप्नोति जनश्रुतिश्रेयं भद्रनरम् ॥९१॥
साधुसमागमसक्ताः पुरुषाः सर्वमनीषितं सेवन्ते ।
तस्मात् साधुसमागममाश्रित्य सदारवेः समास्थ दीप्ताः ॥९२॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे मथुरापुरीनिवेशऋषिदानगुणोपसर्गहननाभिधानं नाम द्विनवतितमं पर्व ॥९२॥

बड़े वृक्षोंके निवास गृहके समान जान पड़ती थी ऐसी परिखा उसके चारों ओर सुशोभित हो रही थी ॥८५॥ वहाँके बाग-बगीचे फूलों और फलोंसे युक्त अत्यधिक शोभाको धारण कर रहे थे और कमल तथा कुमुदोंसे आच्छादित वहाँकी वापिकाएँ पक्षियोंके नादसे मुखरित हो रही थीं ॥८६॥ जो कैलासके शिखरोंके समान थे, सुन्दर-सुन्दर लक्षणोंसे युक्त थे, तथा नेत्रोंके चोर थे ऐसे वहाँके भवन विमानोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥८७॥ वहाँके सर्व कुटुम्बी सुवर्ण अनाज तथा रत्न आदिसे सम्पन्न थे, सम्मेद शिखरकी उपमा धारण करते थे, राजाओंके समान प्रसिद्धिसे युक्त तथा अत्यन्त प्रशंसनीय थे ॥८८॥ वहाँके राजा देवोंके समान अनुपम विभूतिके धारक थे, धर्म, अर्थ और काममें सदा आसक्त रहते थे तथा उत्तम चेष्टाओंके करनेमें निपुण थे ॥८९॥ इच्छानुसार उन राजाओंपर आज्ञा चलाता हुआ विशिष्ट ज्ञानी शत्रुघ्न मथुरा नगरीमें उस प्रकार सुशोभित होता था जिस प्रकार कि देवोंपर आज्ञा चलाता हुआ वरुण सुशोभित होता है ॥९०॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि जो इस प्रकार मथुरापुरीमें सप्तर्षियोंके निवास और उनके आश्चर्यकारी प्रभावको सुनता अथवा कहता है वह शीघ्र ही चारों प्रकारके मङ्गलको प्राप्त होता है ॥९१॥ जो मनुष्य साधुओंके समागममें सदा तत्पर रहते हैं वे सर्व मनोरथोंको प्राप्त होते हैं इसीलिए हे सत्पुरुषो ! साधुओंका समागमकर सदा सूर्यके समान देदीप्यमान होओ ॥९२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें मथुरापुरीमें सप्तर्षियोंके निवास, दान, सुख तथा उपसर्गके नष्ट होनेका वर्णन करनेवाला बानवेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥९२॥

---

१. रत्नाढ्याः म० ।

त्रिनवतितमं पर्व

अथ रत्नपुरं नाम विजयार्द्धेऽस्ति दक्षिणम् । पुरं रत्नरथस्तत्र राजा विद्याधराधिपः ॥१॥
मनोरमेति तस्यास्ति दुहिता रूपशालिनी । पूर्णचन्द्राननाऽभिख्यमहिषीकुक्षिसम्भवा ॥२॥
समीक्ष्य यौवनं तस्या नवं राजा सुचेतनः । वरान्वेषणशेमुष्या बभूव परमाकुलः ॥३॥
मन्त्रिभिः सह सङ्गत्य स चक्रे सम्प्रधारणाम् । कस्मै योग्याय यच्छामः कुमारीमेतकामिति ॥४॥
एवं दिनेषु गच्छत्सु राज्ञि चिन्तावशीकृते । कदाचिन्नारदः प्राप्तस्ततः स मानमाप च ॥५॥
तस्मै विदितनिःशेषलोकचेष्टितबुद्धये । राजा प्रस्तुतमाख्यौ सुखासीनाय सादरः ॥६॥
अवद्वारो जगौ राजन् विज्ञातो भवता न किम् । भ्राता युगप्रधानस्य पुंसो लाङ्गललक्ष्मणः ॥७॥
विभागः परमां लक्ष्मीं लक्ष्मणश्चारुलक्षणः । चक्रानुभावविनतसमस्तप्रतिमानवः ॥८॥
तस्येयं सदृशी कन्या हृदयानन्ददायिनी । ज्योत्स्ना कुमुदखण्डस्य यथा परमसुन्दरी ॥९॥
एवं प्रभाषमाणेऽस्मिन् रत्नस्यन्दनसूनवः । क्रुद्धा हरिमनोवायुवेगाख्या मानशालिनः ॥१०॥
स्मृत्वा स्वजनघातोत्थं वैरं प्रत्यग्रमुल्बणम् । जगुः कालानिलप्रख्याः परिस्फुरितविग्रहाः ॥११॥
अद्यैव व्यतिपत्याऽऽशु समाहूय दुरीहितः । अस्माभिर्यो विहन्तव्यस्तस्मै कन्या न दीयते ॥१२॥
इत्युक्ते राजपुत्रभ्रूविकारपरिचोदितैः । किङ्करीवैरवद्वारः पादाकर्षणमापितः ॥१३॥
नभस्तलं समुत्पत्य ततः सुरमुनिर्वृतम् । साकेतायां सुमित्राजमुपसृत्य महादरः ॥१४॥
अस्य विस्तरतो वार्तां निवेद्य भुवनस्थिताम् । कन्यायाश्च विशेषेण व्यक्तकौतुकलक्षणः ॥१५॥

अथानन्तर विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण दिशामें रत्नपुर नामका नगर है। वहाँ विद्याधरोंका राजा रत्नरथ राज्य करता था ॥१॥ उसकी पूर्ण चन्द्रानना नामकी रानीके उदरसे उत्पन्न मनोरमा नामकी रूपवती पुत्री थी ॥२॥ पुत्रीका नव-यौवन देख विचारवान् राजा वरके अन्वेषणकी बुद्धिसे परम आकुल हुआ ॥३॥ 'यह कन्या किस योग्य वरके लिए देवें, इस प्रकार उसने मन्त्रियों के साथ मिलकर विचार किया ॥४॥ इस तरह राजाके चिन्ताकुल रहते हुए जब कितने ही दिन बीत गये तब किसी समय नारद आये और राजासे उन्होंने सन्मान प्राप्त किया ॥५॥ जिनकी बुद्धि समस्त लोककी चेष्टाको जाननेवाली थी ऐसे नारद जब सुखसे बैठ गये तब राजाने आदरके साथ उनसे प्रकृत बात कही ॥६॥ इसके उत्तरमें अवद्वार नामके धारक नारदने कहा कि हे राजन्! क्या आप इस युगके प्रधान पुरुष श्री रामके भाई लक्ष्मणको नहीं जानते ? वह लक्ष्मण उत्कृष्ट लक्ष्मीको धारण करनेवाला है, सुन्दर लक्षणोंसे सहित है तथा चक्रके प्रभावसे उसने समस्त शत्रुओंको नतमस्तक कर दिया है ॥७-८॥ सो जिस प्रकार चन्द्रिका कुमुदवनको आनन्द देनेवाली है उसी प्रकार हृदयको आनन्द देनेवाली यह परम सुन्दरी कन्या उसके अनुरूप है ॥९॥ नारदके इस प्रकार कहने पर रत्नरथके हरिवेग, मनोवेग तथा वायुवेग आदि अभिमानी पुत्र-कुपित हो उठे ॥१०॥ आत्मीय जनोंके घातसे उत्पन्न अत्यधिक नूतन वैरका स्मरण कर वे प्रलय कालकी अग्निके समान प्रदीप्त हो उठे तथा उनके शरीर क्रोधसे काँपने लगे। उन्होंने कहा कि जिस दुष्टको आज ही जाकर तथा शीघ्र ही बुलाकर हमलोगोंको मारना चाहिए उसके लिए कन्या नहीं दी जाती है ॥११-१२॥ इतना कहने पर राजपुत्रोंकी भौंहोंके विकारसे प्रेरित हुए किङ्करोंके समूहने नारदके पैर पकड़ कर खींचना चाहा परन्तु उसी समय देवर्षि नारद शीघ्र ही आकाश-तलमें उड़ गये और बड़े आदरके साथ अयोध्या नगरीमें लक्ष्मणके समीप जा पहुँचे ॥१३-१४॥ पहले तो नारदने विस्तारके साथ लक्ष्मणके लिए समस्त संसारकी वार्ता सुनाई और उसके बाद

कन्यामदर्शयच्चित्रे चित्रां रतिचित्तहारिणीम् । त्रैलोक्यसुन्दरीशोभामेकीकृत्येव निर्मिताम् ॥१६॥
तां समालोक्य सौमित्रिः पुस्तनिष्कम्पलोचनः । अनन्यजस्य[1] वीरोऽपि परिप्राप्तोऽतिवश्यताम् ॥१७॥
अचिन्तयच्च यद्येतत्स्त्रीरत्नं न लभे ततः । इदं मे निष्फलं राज्यं शून्यं जीवितमेव वा ॥१८॥
उवाच चादरं बिभ्रद् भगवन् गुणकीर्त्तनम् । कुर्वन् मम कुमारैस्तैः कथं वा त्वं खलीकृतः ॥१९॥
प्रचण्डत्वमिदं तेषां पापानां विक्षिपाम्यहम् । असमीक्षितकार्याणां क्षुद्राणां निहताशयम् ॥२०॥
व्रज स्वास्थ्यं रजः शुद्धं तव मूर्द्धानमाश्रितम् । पादस्तु शिरसि न्यस्तो मदीयेऽसौ महामुने ॥२१॥
इत्युक्त्वाऽऽक्षाय संरब्धो विराधितखगेश्वरम् । जगाद लक्ष्मणो रत्नपुरं गम्यं त्वरान्वितम् ॥२२॥
तस्माद्देशय पन्थानमित्युक्तः स रणोत्कटः[2] । लेखैराकारयत् सर्वान् सीमाव्रतः खेचराधिपान् ॥२३॥
महेन्द्रविन्ध्यकिष्किन्धमलयादिपुराधिपाः । विमानाच्छादिताऽऽकाशाः साकेतामागतास्ततः ॥२४॥
वृतस्तैः सुमहासैन्यैर्लक्ष्मणो विजयोन्मुखः । लोकपालैर्यथा लेखो ययौ पद्मपुरःसरः ॥२५॥
नानाशस्त्रदलप्रस्तदिवाकरमरीचयः । प्राप्ता रत्नपुरं भूपाः सितच्छत्रोपशोभिताः ॥२६॥
ततः परबलं प्राप्तं ज्ञात्वा रत्नपुरो नृपः । साकं समस्तसामन्तैः सङ्क्ष्यचुक्षुर्विनिर्ययौ ॥२७॥
तेन निष्क्रान्तमात्रेण महारभसधारिणा[4] । विस्तीर्णदक्षिणं सैन्यं क्षणं प्रस्तमिवाभवत् ॥२८॥
चक्रकर्त्तरबाणासिकुन्तपाशगदादिभिः । बभूव गहनं तेषां युद्धमुद्धतयोधवम् ॥२९॥

मनोरमा कन्याकी वार्ता विशेष रूपसे बतलाई। उसी समय कौतुकके चिह्न प्रकट करते हुए नारदने चित्रपटमें अङ्कित यह अद्भुत कन्या दिखाई। वह कन्या नेत्रोंके हरणको हरनेवाली थी और ऐसी जान पड़ती थी मानो तीन लोककी सुन्दरियोंकी शोभाको एकत्रित कर ही बनाई गई हो ॥१५-१६॥ उस कन्याको देखकर जिसके नेत्र मृण्मय पुतलेके समान निश्चल हो गये थे ऐसा लक्ष्मण वीर होने पर भी कामके वशीभूत हो गया ॥१७॥ वह विचार करने लगा कि यदि यह स्त्रीरत्न मुझे नहीं प्राप्त होता है तो मेरा यह राज्य निष्फल है तथा यह जीवन भी सूना है ॥१८॥ आदरको धारण करते हुए लक्ष्मणने नारदसे कहा कि हे भगवन्! मेरे गुणोंका निरूपण करते हुए आपको उन कुमारोंने दुःखी क्यों किया? ॥१९॥ कार्यका विचार नहीं करनेवाले उन हृदयहीन पापी क्षुद्र पुरुषोंकी इस प्रचण्डताको मैं अभी हाल नष्ट करता हूँ ॥२०॥ हे महामुने! उन कुमारोंने जो पादप्रहार किया है सो उसकी धूलि आपके मस्तकका आश्रय पाकर शुद्ध हो गई है और उस पादप्रहारको मैं समझता हूँ कि वह मेरे मस्तक पर ही किया गया है अतः आप स्वस्थताको प्राप्त हों ॥२१॥ इतना कहकर क्रोधसे भरे लक्ष्मणने विराधित नामक विद्याधरोंके राजाको बुलाकर कहा कि मुझे शीघ्र ही रत्नपुर पर चढ़ाई करनी है ॥२२॥ इसलिए मार्ग दिखाओ। इस प्रकार कहने पर कठिन आज्ञाको धारण करनेवाले उस रणवीर विराधितने पत्र लिखकर समस्त विद्याधर राजाओंको बुला लिया ॥२३॥

तदनन्तर महेन्द्र, विन्ध्य, किष्किन्ध और मलय आदि पर्वतोंपर बसे नगरोंके अधिपति, विमानोंके द्वारा आकाशको आच्छादित करते हुए अयोध्या आ पहुँचे ॥२४॥ बहुत भारी सेनासे सहित उन विद्याधर राजाओंके द्वारा घिरा हुआ लक्ष्मण विजयके सम्मुख हो रामचन्द्रजीको आगे कर उस प्रकार चला जिस प्रकार कि लोकपालोंसे घिरा हुआ देव चलता है ॥२५॥ जिन्होंने नाना शस्त्रोंके समूहसे सूर्यकी किरणें आच्छादित कर ली थीं तथा जो सफेद छत्रोंसे सुशोभित थे ऐसे राजा रत्नपुर पहुँचे ॥२६॥ तदनन्तर परचक्रको आया जान, रत्नपुरका युद्धनिपुण राजा समस्त सामन्तोंके साथ बाहर निकला ॥२७॥ महावेगको धारण करनेवाले उस राजाने निकलते ही दक्षिणकी समस्त सेनाको क्षण भरमें ग्रस्त जैसा कर लिया ॥२८॥ तदनन्तर चक्र, क्रकच, बाण, खड्ग, कुन्त, पाश, गदा आदि शस्त्रोंके द्वारा उन सबका उद्दण्डताके कारण गहन युद्ध हुआ ॥२९॥

---

१. कामस्य । २. शरणोत्कटः म० । ३. -राद्याय तत्सर्वान्-म० । ४. धारिणा म० ।

अप्सरःसंहतिर्योग्यनभोदेशाश्चर्यवस्थिता । सुमोचाञ्जलयुक्तेषु स्थानेषु कुसुमाञ्जलीः ॥३०॥
ततः परबलाम्भोधौ सौमित्रिर्वज्रवानलः । विजृम्भितुं समायुक्तो योधयादःपरिक्षयः ॥३१॥
रथा वरतुरङ्गाश्च नागाश्च मदतोयदाः । तृणवत्तस्य वेगेन दिशो दश समाश्रिताः ॥३२॥
युद्धक्रीडां क्वचिच्चक्रे शक्रशक्तिर्हलायुधः । किष्किन्धपार्थिवोऽन्यत्र परमः कपिलक्षण ॥३३॥
अपरत्र प्रभाजालपरीतो महाजवः । लाङ्गूलपाणिरुत्साह्मा विविधाद्भुतचेष्टितः ॥३४॥
एवमेतैर्महायोधैर्विजयार्द्धबलं महत् । शरत्प्रभातमेघाभं क्वापि[1] नीतं मरुत्समैः ॥३५॥
ततोऽधिपतिना सार्कं विजयार्द्धिभुवो नृपाः । स्वस्थानाभिमुखा नेशुः प्रक्षीणप्रथनेप्सिताः ॥३६॥
दृष्ट्वा पलायमानांस्तान् वीरान् रत्नरथात्मजान् । परमामर्षसम्पूर्णोत्कारदः कलहप्रियः ॥३७॥
कृत्वा कलकलं व्योम्नि कृतताडमहास्वनः । जगाद विस्फुरद्गात्रः स्मितास्यो विकचेक्षणः ॥३८॥
यूयं ते चपलाः क्रुद्धा दुश्चेष्टा मन्दबुद्धयः । पलायन्ते न संसोढा यैर्लक्ष्मणगुणोन्नतिः ॥३९॥
दुर्विनीतान् प्रसह्यैतान्नरं गृह्णीत मानवाः । पराभवं तदा कृत्वा क्वाधुना मे पलाय्यते ॥४०॥
इत्युक्ते पृष्ठतस्तेषामुपात्तजयकीर्तयः । प्रतापपरमा धीराः प्रस्थिता ग्रहणोद्यताः ॥४१॥
प्रत्यासन्नेषु तेष्वासीत्तदा रत्नपुरं पुरम् । आसन्नपार्श्वसंसक्तमहादाववनोपमम् ॥४२॥
तावत् सुकन्यका रत्नभूता तत्र मनोरमा । सखीभिरावृता दृष्टमात्रलोकमनोरमा ॥४३॥

आकाशमें योग्य स्थानपर स्थित अप्सराओंका समूह आश्चर्यसे युक्त स्थानोंपर पुष्पाञ्जलियाँ छोड़ रहे थे ॥३०॥ तत्पश्चात् जो योधा रूपी जलजन्तुओंका क्षय करनेवाला था ऐसा लक्ष्मणरूपी वड़वानलपर चक्ररूपी समुद्रके बीच अपना विस्तार करनेके लिए उद्यत हुआ ॥३१॥ रथ, उत्तमोत्तम घोड़े, तथा मद रूपी जलको बहाने वाले हाथी, उसके वेगसे तृणके समान दशों दिशाओंमें भाग गये ॥३२॥ कहीं इन्द्रके समान शक्तिको धारण करनेवाले राम युद्ध-क्रीड़ा करते थे तो कहीं वानर रूप चिह्नसे उत्कृष्ट सुग्रीव युद्धकी क्रीड़ा कर रहे थे ॥३३॥ और किसी एक जगह प्रभाजालसे युक्त, महावेगशाली, उग्र हृदय एवं नाना प्रकारकी अद्भुत चेष्टाओंको करने वाला हनूमान् युद्धक्रीड़ाका अनुभव कर रहा था ॥३४॥ जिस प्रकार शरद्ऋतुके प्रातःकालीन मेघ वायुके द्वारा कहीं ले जाये जाते हैं—तितर-बितर कर दिये जाते हैं उसी प्रकार इन महायोद्धाओंके द्वारा विजयार्ध पर्वतकी बड़ी भारी सेना कहीं ले जाई गई थी—पराजित कर इधर-उधर खदेड़ दी गई थी ॥३५॥ तदनन्तर जिनके युद्धके मनोरथ नष्ट हो गये थे ऐसे विजयार्ध-पर्वतपरके राजा अपने अधिपति—स्वामीके साथ अपने-अपने स्थानोंकी ओर भाग गये ॥३६॥ तीव्र क्रोधसे भरे, रत्नरथके उन वीर पुत्रोंको भागते हुए देख कर जिन्होंने आकाशमें ताली पीटनेका बड़ा शब्द किया था, जिनका शरीर चञ्चल था, मुख हास्यसे युक्त था, तथा नेत्र खिल रहे थे ऐसे कलहप्रिय नारदने कल-कल शब्द कर कहा कि ॥३७-३८॥ अहो ! ये वे ही चपल, क्रोधी, दुष्ट चेष्टाके धारक तथा मन्दबुद्धिसे युक्त रत्नरथके पुत्र भागे जा रहे हैं जिन्होंने कि लक्ष्मणके गुणोंकी उन्नति सहन नहीं की थी ॥३९॥ अरे मानवो ! इन उद्दण्ड लोगोंको शीघ्र ही बलपूर्वक पकड़ो । उस समय मेरा अनादर कर अब कहाँ भागना हो रहा है ? ॥४०॥ इतना कहनेपर जिन्होंने जीतका यश प्राप्त किया था तथा जो प्रतापसे श्रेष्ठ थे, ऐसे कितने ही धीर-वीर उन्हें पकड़नेके लिए उद्यत हो उनके पीछे दौड़े ॥४१॥ उस समय उन सबके निकटस्थ होनेपर रत्नपुर नगर उस वनके समान हो गया था जिसके कि समीप बहुत बड़ा दावानल लग रहा था ॥४२॥

अथानन्तर उसी समय, जो दृष्टिमें आये हुए मनुष्यमात्रके मनको आनन्दित करनेवाली थी, घबड़ाई हुई थी, घोड़ोंके रथपर आरूढ़ थी, तथा महाप्रेमके वशीभूत थी ऐसी रत्नस्वरूप

१. भङ्क्त्वा म० । २. गात्रस्मितास्यो म० ।

सम्भ्रान्ताश्वरथारूढा महाप्रेमवशीकृता । सौमित्रिमुपसम्पन्ना पौलोमीव विडौजसम्[1] ॥४४॥
सा प्रसादनसंयुक्तां प्रसाद्यां प्राप्य कन्यकाम् । प्रशान्तकलुषो जातो भ्रुकुटीरहितानन: ॥४५॥
ततो रत्नरथः साकं सुतैर्मानविवर्जितः । प्रीत्या निर्गत्य नगराद्युपायनसमन्वितः ॥४६॥
देशकालविधानज्ञो दृष्टात्मपरपौरुषः । सङ्गत्य सुष्ठु तुष्टाव सृगनागारिकेतनौ ॥४७॥
अन्तरेऽत्र समागत्य सुमहाजनमध्यगम् । नारदोऽहेयवद्रत्नरथं सस्मितभाषितैः ॥४८॥
का वार्त्ता तेऽधुना रत्नरथ क्षुद्रशतोऽथ वा । केचित्[3]कुशलमुत्तुङ्गभटगर्जितकारिणः ॥४९॥
नूनं रत्नरथो न त्वं स हि गर्वमहाद्रिजः[4] । नारायणांघ्रिसेवाढ्यो नरोऽन्यस्त्वं भुवः ॥५०॥
कृत्वा कहकहाशब्दं करास्फालकरः पुनः । जगौ भो रथिपुत्रे कच्चित्सुखं रत्नरथात्मजाः ॥५१॥
सोऽयं नारायणो यस्य भवद्भिस्तादृशं तदा । गदितं हृदयग्राहि स्वगृहोद्धतचेष्टितैः ॥५२॥
एवं सत्यपि तैरुक्तं त्वयि नारद कोपिते । महापुरुषसम्पर्कः प्राप्तोऽस्माभिः सुदुर्लभः ॥५३॥
इति नर्मसमेताभिः कथाभिः क्षणमात्रकम् । अवस्थाय पुरं सर्वे विविशुः परमर्द्धयः ॥५४॥

इन्द्रवज्रा

श्रीदामनामा रतितुल्यरूपा रामाय दत्ता सुमनोऽभिरामा ।
रामामिमां प्राप्य परं स रेमे मेरुप्रभावः कृतपाणियोगः ॥५५॥
दत्ता तथा रत्नरथेन जाता स्वयं[5] दशास्यक्षयकारणाय ।
मनोरमार्यप्रतिपन्ननामा तयोश्च दत्ता परिणीतिरुच्चा ॥५६॥

मनोरमा कन्या वहाँ लक्ष्मणके समीप उस प्रकार आई जिस प्रकार कि इन्द्राणी इन्द्रके पास जाती है ॥४३-४४॥ जो प्रसाद करनेवाले लोगोंसे सहित थी तथा जो स्वयं प्रसाद करानेके योग्य थी ऐसी उस कन्याको पाकर लक्ष्मणकी कलुषता शान्त हो गई तथा उसका मुख भृकुटियोंसे रहित हो गया ॥४५॥ तत्पश्चात् जिसका मान नष्ट हो गया था, जो देशकालकी विधिको जाननेवाला था, जिसने अपना-पराया पौरुष देख लिया था और जो योग्य भेंटसे सहित था ऐसे राजा रत्नरथने प्रीतिपूर्वक पुत्रोंके साथ नगरसे बाहर निकल कर सिंह और गरुडकी पताकाओंको धारण करनेवाले राम-लक्ष्मणकी अच्छी तरह स्तुति की ॥४६-४७॥ इसी बीचमें नारदने आकर बहुत बड़ी भीड़के मध्यमें स्थित रत्नरथको मन्द हास्यपूर्ण वचनोंसे इस प्रकार लज्जित किया कि अहो ! अब तेरा क्या हाल है ? तू रत्नरथ था अथवा रजोरथ ? तू बहुत बड़े योद्धाओंके कारण गर्जना कर रहा था सो अब तेरी कुशल तो है ? ॥४८-४९॥ जान पड़ता है कि तू गर्वका महापर्वत स्वरूप वह रत्नरथ नहीं है किन्तु नारायणके चरणोंकी सेवामें स्थित रहनेवाला कोई दूसरा ही राजा है ॥५०॥ तदनन्तर कहकहा शब्द कर तथा एक हाथसे दूसरे हाथकी ताली पीटते हुए कहा कि अहो ! रत्नरथके पुत्रो ! सुखसे तो हो ? ॥५१॥ यह वही नारायण है कि जिसके विषयमें उस समय अपने घरमें ही उद्धत चेष्टा दिखानेवाले आप लोगोंने उस तरह हृदयको पकड़नेवाली बात कही थी ॥५२॥ इस प्रकार यह होने पर भी उन सबने कहा कि हे नारद ! तुम्हें कुपित किया उसीका यह फल है कि हमलोगोंको जिसका मिलना अत्यन्त दुर्लभ था ऐसा महापुरुषोंका संपर्क प्राप्त हुआ ॥५३॥ इस प्रकार विनोद पूर्ण कथाओंसे वहाँ क्षणभर ठहर कर सब लोगोंने बड़े वैभवके साथ नगरमें प्रवेश किया ॥५४॥ उसी समय जो रतिके समान रूपकी धारक थी तथा देवोंको भी आनन्दित करनेवाली थी ऐसी श्रीदामा नामकी कन्या रामके लिए दी गई। ऐसी स्त्रीको पाकर जिनका मेरुके समान प्रभाव था तथा जिन्होंने उसका पाणिग्रहण किया था ऐसे श्रीराम अत्यधिक प्रसन्न हुए ॥५५॥ तदनन्तर राजा रत्नरथने रावणका क्षय करनेवाले लक्ष्मणके

---

१. इन्द्रम् । २. सारं म० । ३. केचित् म० । ४. महाबलः ग० । ५. दशास्यक्षणकरणाय म० ।

एवं प्रचण्डा अपि यान्ति [1]साम रत्नान्यनर्घाणि च संश्रयन्ते ।
पुण्यानुभावेन यतो जनानां ततः कुरुध्वं रविनिर्मलं तत् ॥५७॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे मनोरमालंभाभिधानं नाम त्रिनवतितमं पर्व ॥९३॥

लिए सार्थक नामवाली मनोरमा कन्या दी और उन दोनोंका उत्तम पाणिग्रहण हुआ ॥५६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि यतश्च इस तरह मनुष्योंके पुण्य प्रभावसे अत्यन्त क्रोधी मनुष्य भी शान्तिको प्राप्त हो जाते हैं और अमूल्य रत्न उन्हें प्राप्त होते रहते हैं इसलिए हे भव्यजनो ! सूर्यके समान निर्मल पुण्यका संचय करो ॥५७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्यद्वारा कथित पद्मपुराणमें मनोरमाकी प्राप्तिका कथन करनेवाला तेरानवेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥९३॥

---

१. नाम म०, क०, ख०, च० ।

चतुर्णवतितमं पर्व

अन्योऽपि[1] दक्षिणश्रेण्यां विजयार्धस्य खेचराः । शस्त्रान्धकारिते संख्ये लक्ष्मणेन वशीकृताः ॥१॥
अत्यन्तदुःसहाः सन्तो महापन्नगसन्निभाः । शौर्यखेदविनिर्मुक्ता जाता रामानुसेविनः ॥२॥
नामानि राजधानीनां तासां ख्यातानि कानिचित् । कीर्तयिष्यामि ते राजन् स्वःपुरीसमतेजसाम् ॥३॥
पुरं रविप्रभं नाम तथा वह्निप्रभं शुभम् । काञ्चनं मेघसंज्ञं च तथा च शिवमन्दिरम् ॥४॥
[2]गन्धर्वगीतसमुत्तं पुरं लक्ष्मीधरं तथा । किन्नरोद्गीतसंज्ञं च जीमूतशिखरं परम् ॥५॥
मर्त्यानुगीतं चक्राङ्कं विश्रुतं रथनूपुरम् । श्रीमद्दुरवाभिख्यं चारुश्रीमलयश्रुतिम् ॥६॥
श्रीगृहं[3] भास्कराभं च तथारिञ्जयसंज्ञकम् । ज्योतिःपुरं शशिच्छायं गान्धारमलयं वनम् ॥७॥
सिंहस्थानं मनोज्ञं च भद्रं श्रीविजयस्वनम् । कान्तं यक्षपुरं रम्यं तिलकस्थानमेव च ॥८॥
परमाण्येवमादीनि पुराणि पुरुषोत्तम । परिक्रान्तानि भूरीणि लक्ष्मणेन महात्मना ॥९॥
प्रसाध्य धरणीं सर्वां रत्नैः सप्तभिरन्वितः । नारायणपदं कृत्स्नं प्राप लक्ष्मणसुन्दरः ॥१०॥
चक्रं छत्रं धनुः शक्तिर्गदा मणिरसिस्तथा । एतानि सप्त रत्नानि परिप्राप्तानि लक्ष्मणम् ॥११॥
उवाच श्रेणिको भूयो भगवंस्त्वत्प्रसादतः । रामलक्ष्मणयोर्ज्ञातं माहात्म्यं विधिना मया ॥१२॥
अधुना ज्ञातुमिच्छामि लवणाङ्कुशसम्भवम् । सौमित्रिपुत्रसम्भूतिं तथा वक्तुमर्हसि ॥१३॥
ततो मुनिगणस्वामी जगाद परमस्वनम् । शृणु वक्ष्यामि ते राजन् कथावस्तु मनोचितम् ॥१४॥
युगप्रधाननरयोः पद्मलक्ष्मणयोस्तयोः । निष्कण्टकमहाराज्यजातभोगोपभुक्तयोः ॥१५॥
अतिक्रान्तेषु पक्षाश्च मासा वर्षयुगानि च । दोहदुन्दुकामराज्ञातसुमहासुखसक्तयोः ॥१६॥

अथानन्तर विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें रत्नरथके सिवाय जो अन्य विद्याधर थे शस्त्रोंके अन्धकारसे युक्त युद्धमें लक्ष्मणने उन सबको भी वश कर लिया ॥१॥ जो विद्याधर पहले महानागके समान अत्यन्त दुःसह थे वे अब शूर-वीरता रूपी विषसे रहित हो रामके सेवक हो गये ॥२॥ हे राजन् ! अब मैं स्वर्गके समान तेजको धारण करने वाली उन नगरियोंके कुछ नाम तेरे लिए कहूँगा सो श्रवण कर ॥३॥ रविप्रभ, वह्निप्रभ, काञ्चन, मेघ, शिवमन्दिर, गन्धर्वगीत, अमृतपुर, लक्ष्मीधर, किन्नरोद्गीत, जीमूतशिखर, मर्त्यानुगीत, चक्रपुर, रथनूपुर, दुरव, मलय, श्रीगृह, भास्कराभ, अरिञ्जय, ज्योतिःपुर, शशिच्छाय, गान्धार, मलय, सिंहपुर, श्रीविजयपुर, यक्षपुर और तिलकपुर । हे पुरुषोत्तम ! इन्हें आदि लेकर अनेक उत्तमोत्तम नगर उन महापुरुष लक्ष्मणने वशमें किये ॥४-९॥ इस प्रकार लक्ष्मणसुन्दर समस्त पृथिवीको वश कर सात रत्नोंसे सहित होता हुआ सम्पूर्ण नारायण पदको प्राप्त हुआ ॥१०॥ चक्र, छत्र, धनुष, शक्ति, गदा, मणि और खड्ग ये सात रत्न लक्ष्मणको प्राप्त हुए थे ॥११॥ [तथा हल, मुसल, गदा और रत्नमाला ये चार रत्न रामको प्राप्त थे ।] तदनन्तर श्रेणिकने गौतम स्वामीसे कहा कि हे भगवन् ! मैंने आपके प्रसादसे विधिपूर्वक राम और लक्ष्मणका माहात्म्य जान लिया है अब लवणाङ्कुशकी उत्पत्ति तथा लक्ष्मणके पुत्रोंका जन्म जानना चाहता हूँ सो आप कहनेके योग्य हैं ॥१२-१३॥

तदनन्तर मुनिसंघके स्वामी श्री गौतम गणधरने उच्चस्वरमें कहा कि हे राजन ! सुन, मैं तेरी इच्छित कथावस्तु कहता हूँ ॥१४॥ अथानन्तर युगके प्रधान पुरुष जो राम, लक्ष्मण थे वे निष्कण्टक महाराज्यसे उत्पन्न भोगोपभोगकी सामग्रीसे सहित थे तथा दोदुंदक नामक देवके द्वारा अनुज्ञात महासुखमें आसक्त थे । इस तरह उनके दिन, पक्ष, मास, वर्ष और युग व्यतीत हो

---

१. अन्योऽपि म० । २. गान्धर्व म० । ३. श्रीगृहं म० ।

सुरस्त्रीभिः समानानां स्त्रीणां सत्कुलजन्मनाम् । सहस्राण्यवरोध्यानि दश सप्त च लक्ष्मणे ॥१७॥
तासामष्टौ महादेव्यः कीर्तिश्रीरतिसन्निभाः । गुणशीलकलावत्यः सौम्याः सुन्दरचेष्टिताः ॥१८॥
तासां जगत्प्रसिद्धानि कीर्त्यमानानि भूपते । शृणु नामानि चारूणि यथावदनुपूर्वशः ॥१९॥
राज्ञः श्रीद्रोणमेघस्य विशल्येत्याख्या सुतादितः । ततो रूपवती ख्याता[1]प्रतिरूपविवर्जिता ॥२०॥
तृतीया वनमालेति वसन्तश्रीरिवापरा । अन्या कल्याणमालाख्या नामाख्यातमहागुणा ॥२१॥
पञ्चमी रतिमालेति रतिमालेव रूपिणी । षष्ठी च जितपद्मेति जितपद्मा मुखश्रिया[2] ॥२२॥
अन्या भगवती नाम चरमा च मनोरमा । अग्रमहिष्य इमा अष्टावुक्ता गरुडलक्ष्मणः ॥२३॥
दयिताश्चसहस्रं तु पद्माभस्यामरीसमा । ततश्च महादेव्यो जगत्प्रख्यातकीर्तयः ॥२४॥
प्रथमा जानकी ख्याता द्वितीया च प्रभावती । ततो रतिनिभाऽभिख्या श्रीदामा च रमा स्मृता ॥२५॥
एतासां च समस्तानां मध्यस्था चारुलक्षणा[3] । जानकी शोभतेऽत्यर्थं सतारेन्दुकला यथा ॥२६॥
द्वे शते शतमर्द्धं च पुत्राणां तार्क्ष्यलक्ष्मणः । तेषां च कीर्तयिष्यामि शृणु नामानि कानिचित् ॥२७॥
वृषभो धरणश्चन्द्रः शरभो मकरध्वजः । धारणो हरिनागश्च श्रीधरो मदनोऽच्युतः ॥२८॥
तेषामष्टौ प्रधानाश्च कुमारास्त्वारुचेष्टिताः । अनुरक्ता गुणैर्येषामनन्यमनसो जनाः ॥२९॥
विशल्यासुन्दरीसूनुः प्रथमं श्रीधरः स्मृतः । अलौ पुरि विनीतायां राजते दिवि चन्द्रवत् ॥३०॥
ज्ञेयो रूपवतीपुत्रः पृथिवीतिलकाभिधः । पृथिवीतलविख्यातः पृथ्वीं कान्त्या समुद्वहन् ॥३१॥
पुत्रः कल्याणमालाया मङ्गलाभिख्यो मङ्गलैकक्रियोद्यतः ॥३२॥
विमलप्रभनामाऽभूत् पद्मावत्यां शरीरजः । तनयोऽर्जुनवृक्षाख्यो वनमालासमुद्भवः ॥३३॥

गये ॥१५-१६॥ जो देवाङ्गनाओंके समान थीं तथा उत्तम कुलमें जिनका जन्म हुआ था ऐसी सत्तरह हजार स्त्रियाँ लक्ष्मणकी थीं ॥१७॥ उन स्त्रियोंमें कीर्ति, लक्ष्मी और रतिकी समानता प्राप्त करनेवाली गुणवती, शीलवती, कलावती, सौम्य और सुन्दर चेष्टाओंको धारण करनेवाली आठ महादेवियाँ थीं ॥१८॥ हे राजन् ! अब मैं यथा क्रमसे उन महादेवियोंके सुन्दर नाम कहता हूँ सो सुन ॥१९॥ सर्वप्रथम राजा द्रोणमेघकी पुत्री विशल्या, उसके अनन्तर उपमासे रहित रूपवती, फिर तीसरी वनमाला, जो कि वसन्तकी लक्ष्मीसे मानो सहित ही थी, जिसके नामसे ही महागुणोंकी सूचना मिल रही थी ऐसी चौथी कल्याणमाला, जो रतिमालाके समान रूपवती थी ऐसी पाँचवीं रतिमाला, जिसने अपने मुखसे कमलको जीत लिया था ऐसी छठवीं जितपद्मा, सातवीं भगवती और आठवीं मनोरमा ये लक्ष्मणकी आठ प्रमुख स्त्रियाँ थीं ॥२०-२३॥ रामचन्द्र जीकी देवाङ्गनाओंके समान आठ हजार स्त्रियाँ थीं। उनमें जगत् प्रसिद्ध कीर्तिको धारण करनेवाली चार महादेवियाँ थीं ॥२४॥ प्रथम सीता, द्वितीय प्रभावती, तृतीय रतिनिभा और चतुर्थ श्रीदामा ये उन महादेवियोंके नाम हैं ॥२५॥ इन सब स्त्रियोंके मध्यमें स्थित सुन्दर लक्षणों वाली सीता, ताराओंके मध्यमें स्थित चन्द्रकलाके समान सुशोभित होती थी ॥२६॥ लक्ष्मणके अढ़ाई सौ पुत्र थे उनमेंसे कुछके नाम कहता हूँ सो सुन ॥२७॥ वृषभ, धरण, चन्द्र, शरभ, मकरध्वज, धारण, हरिनाग, श्रीधर, मदन और अच्युत ॥२८॥ जिनके गुणोंमें अनुरक्त हुए पुरुष अनन्यचित्त हो जाते थे ऐसे सुन्दर चेष्टाओंको धारण करने वाले आठ कुमार उन पुत्रोंमें प्रमुख थे ॥२९॥

उनमेंसे श्रीधर, विशल्या सुन्दरीका पुत्र था जो अयोध्यापुरीमें उस प्रकार सुशोभित होता था जिस प्रकार कि आकाशमें चन्द्रमा सुशोभित होता है ॥३०॥ रूपवतीके पुत्रका नाम पृथिवी-तिलक था जो उत्तम कान्तिको धारण करता हुआ पृथिवीतल पर अत्यन्त प्रसिद्ध था ॥३१॥ कल्याणमालाका पुत्र मङ्गल नामसे प्रसिद्ध था वह अनेक कल्याणोंका पात्र था तथा माङ्गलिक क्रियाओंके करनेमें सदा तत्पर रहता था ॥३२॥ पद्मावतीके विमलप्रभ नामका पुत्र हुआ था।

---

१. सुखश्रिया म० । २. लक्ष्मणा म० ।

अतिवीर्यस्य तनया श्रीकेशिनमसूत च । आत्मजो भगवत्याश्च सत्यकीर्तिः प्रकीर्तितः ॥३४॥
सुपार्श्वकीर्तिनामानं सुतं प्राप मनोरमा । सर्वे चैते महासत्त्वाः शक्तिशास्त्रविशारदाः ॥३५॥
नखमांसवदेतेषां भ्रातॄणां संगतिर्दृढा । सर्वत्र श्लाघ्यते लोके समानोचितचेष्टिता ॥३६॥
अन्योन्यहृदयासीनाः प्रेमनिर्भरचेतसः । अष्टौ दिवीव वसवो रेमिरे स्वेच्छितं पुरि ॥३७॥
पूर्वं जनितपुण्यानां प्राणिनां शुभचेतसाम् । आरभ्य जन्मतः सर्वं जायते सुमनोहरम् ॥३८॥

उपजातिवृत्तम्

एवं च कारस्न्येन कुमारकोट्यः स्मृता नरेन्द्रप्रभवाश्चतस्रः ।
कोऽर्थर्द्धयुक्ताः पुरि तत्र शक्त्या ख्याता नितान्तं परया मनोज्ञाः ॥३९॥

आर्या

नानाजनपदनिरतं परिगतमुकुटोत्तमाङ्कं नृपवक्त्रम् ।
षोडशसहस्रसंख्यं वन्दे हरिचरणानुगं स्मृतं रवितेजः ॥४०॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रामलक्ष्मणविभूतिदर्शनीयाभिधानं नाम चतुर्नवतितमं पर्व ॥९४॥

वनमालाने अर्जुनवृक्ष नामक पुत्रको जन्म दिया था ॥३३॥ राजा अतिवीर्यकी पुत्रीने श्रीकेशी नामक पुत्र उत्पन्न किया था। भगवतीका पुत्र सत्यकीर्ति इस नामसे प्रसिद्ध था ॥३४॥ और मनोरमाने सुपार्श्वकीर्ति नामक पुत्र प्राप्त किया था। ये सभी कुमार महाशक्तिशाली तथा शस्त्र और शास्त्र दोनोंमें निपुण थे ॥३५॥ इन सब भाइयोंकी नख और मांसके समान सुदृढ संगति थी तथा इन सबकी समान एवं उचित चेष्टा लोकमें सर्वत्र प्रशंसा प्राप्त करती थी ॥३६॥ सो परस्पर एक दूसरेके हृदयमें विद्यमान थे तथा जिनके चित्त प्रेमसे परिपूर्ण थे ऐसे ये आठों कुमार स्वर्गमें आठ वसुओंके समान नगरमें अपनी इच्छानुसार क्रीड़ा करते थे ॥३७॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जिन्होंने पूर्व पर्यायमें पुण्य उत्पन्न किया है तथा जिनका चित्त शुभभाव रूप रहा है ऐसे प्राणियोंकी समस्त चेष्टाएँ जन्मसे ही अत्यन्त मनोहर होती हैं इस प्रकार उस नगरीमें सब मिलाकर साढ़े चार करोड़ राजकुमार थे जो उत्कृष्ट शक्तिसे प्रसिद्ध तथा अत्यन्त मनोहर थे ॥३८-३९॥ जो नाना देशोंमें निवास करते थे, जिनके मस्तक पर मुकुट बँधे हुए थे, तथा जिनका तेज सूर्यके समान था ऐसे सोलह हजार राजा राम और लक्ष्मणके चरणोंकी सेवा करते थे ॥४०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें राम-लक्ष्मणकी विभूतिको दिखानेवाला चौरानबेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥९४॥

पञ्चनवतितमं पर्व

एवं दिनेषु गच्छत्सु भोगसम्भारयोगिषु । धर्मार्थकाममूलसम्बन्धनिरन्तरतिकारिषु ॥१॥
विमानाभेऽन्यदा सुप्ता भवने जानकी सुखम् । शयनीये शरन्मेघमालाललिततमार्दवे ॥२॥
अपश्यत् पश्चिमे यामे स्वप्नमम्भोजलोचना । दिव्यतूर्यनिनादैश्च मङ्गलैर्बोधमागता ॥३॥
ततोऽतिविमले जाते प्रभाते संशयान्विता । कृतदेहस्थितिः कान्तमियाय सुसखीवृता ॥४॥
अपृच्छच्च मया नाथ स्वप्नो योऽद्य निरीक्षितः । अर्थं कथयितुं तस्य [1]लब्धवर्णं त्वमर्हसि ॥५॥
शरदिन्दुसमच्छायौ क्षुब्धसागरनिःस्वनौ । कैलासशिखराकारौ सर्वालङ्कारभूषितौ ॥६॥
कान्तिमस्रितसर्वाङ्गौ प्रवरौ शरभोत्तमौ । प्रविष्टौ मे मुखं मन्ये विलसल्लिलकेसरौ ॥७॥
शिखरात् पुष्पकस्याथ सम्भ्रमेणोरुणान्विता । वातनुन्ना पताकेवापतितास्मि किल क्षितौ ॥८॥
पद्मनाभस्ततोऽवोचत्करभद्वयदर्शनात् । [2]प्रवरोर्वचिरेणैव पुत्रयुग्मसवाप्स्यसि[3] ॥९॥
पतनं पुष्पकस्याग्राद्धयिते न प्रशस्यते । अथवा शमदानस्थाः प्रयान्तु प्रशमं ग्रहाः ॥१०॥
वसन्तोऽथ परिप्राप्तस्तिलकामुक्तकङ्कटः । नीपनागेश्वरारूढः सहकारशरासनः ॥११॥
पद्मनाराचसंयुक्तः केसरापूरितेषुधिः । गीयमानोऽलिलोकैर्मधुलसकदम्बकैः ॥१२॥
कदम्बवनवातेन हारिणा निःश्वसन्निव । मल्लिकाकुसुमोद्योतैः शत्रूनन्यान् हसन्निव ॥१३॥

अथानन्तर इस प्रकार भोगोंके समूहसे युक्त तथा धर्म अर्थ और कामके सम्बन्धसे अत्यन्त प्रीति उत्पन्न करनेवाले दिनोंके व्यतीत होने पर किसी दिन सीता विमान तुल्य भवनमें शरद् ऋतुकी मेघमालाके समान कोमल शय्या पर सुखसे सो रही थी कि उस कमललोचनाने रात्रिके पिछले प्रहरमें स्वप्न देखा और देखते ही दिव्य वादित्रोंके मङ्गलमय शब्दसे वह जागृत हो गई ॥१-३॥ तदनन्तर अत्यन्त निर्मल प्रभातके होने पर संशयको प्राप्त सीता, शरीर सम्बन्धी क्रियाएँ करके सखियों सहित पतिके पास गई ॥४॥ और पूछने लगी कि हे नाथ ! आज मैंने जो स्वप्न देखा है हे विद्वन् ! आप उसका फल कहनेके लिए योग्य हैं ॥५॥ मुझे ऐसा जान पड़ता है कि शरद्ऋतुके चन्द्रमाके समान जिनकी कान्ति थी, क्षोभको प्राप्त हुए सागरके समान जिनका शब्द था, कैलाशके शिखरके समान जिनका आकार था, जो सब प्रकारके अलङ्कारोंसे अलंकृत थे, जिनकी उत्तम दाढ़े कान्तिमान् एवं सफेद थीं और जिनकी गरदनकी उत्तम जटाएँ सुशोभित हो रही थीं ऐसे अत्यन्त श्रेष्ठ दो अष्टापद मेरे मुखमें प्रविष्ट हुए हैं ॥६-७॥ यह देखनेके बाद दूसरे स्वप्नमें मैंने देखा है कि मैं वायुसे प्रेरित पताकाके समान अत्यधिक सम्भ्रमसे युक्त हो पुष्पक-विमानके शिखरसे गिरकर नीचे पृथिवीपर आ पड़ी हूँ ॥८॥ तदनन्तर रामने कहा कि हे वरोरु ! अष्टापदोंका युगल देखनेसे तू शीघ्र ही दो पुत्र प्राप्त करेगी ॥९॥ हे प्रिये ! यद्यपि पुष्पकविमानके अग्रभागसे गिरना अच्छा नहीं है तथापि चिन्ताकी बात नहीं है क्योंकि शान्तिकर्म तथा दान करनेसे पापग्रह शान्तिको प्राप्त हो जावेंगे ॥१०॥

अथानन्तर जो तिलकपुष्परूपी कवचको धारण किये हुए था। कदम्बरूपी गजराजपर आरूढ था, आम्ररूपी धनुष साथ लिये था, कमलरूपी बाणोंसे युक्त था, बकुल रूपी भरे हुए तरकसोंसे सहित था, निर्मल गुञ्जार करनेवाले भ्रमरोंके समूह जिसका सुयश गा रहे थे, जो कदम्बसे सुवासित सघन सुन्दर वायुसे मानो सांस ही ले रहा था, मालतीके फूलोंके प्रकाशसे जो मानो दूसरे शत्रुओंकी हँसी कर रहा था और कोकिलाओंके मधुर आलापसे जो मानो अपने

---

१. हे विद्वन् । 'लब्धवर्णो विचक्षणः' इत्यमरः । २. हे प्रवरोरु + अचिरेण । ३. -भवाप्स्यति म० ।

कलपुंस्कोकिलालापैर्जनरञ्जिव निर्मोचितम् । विभ्रन्नरपतेर्लीलां लोकाकुलत्वकारिणीम् ॥१३॥
अङ्कोटनखरो विभ्रद्दंष्ट्राङ्कुरवकात्मिकाम् । लोहिताशोकनयनश्चलत्पल्लवजिह्वकः ॥१५॥
वसन्तकेसरी प्राप्तो[1] विदेशजनमानसम् । नयमानः परं त्रासं सिंहकेसरकेसरः ॥१६॥
रमणीयं स्वभावेन वसन्तेन विशेषतः । महेन्द्रोदयमुद्यानं जातं नन्दनसुन्दरम् ॥१७॥
विचित्रकुसुमा वृक्षा विचित्रचलपल्लवा । मत्ता इव विघूर्णन्ते दक्षिणानिलसङ्गताः ॥१८॥
पद्मोत्पलादिसञ्छन्नाः शकुन्तगणनादिताः । वाप्यो वरं विराजन्ते जनसेवितरोधसः ॥१९॥
हंससारसचक्राह्वकुररागां मनोहराः । स्वनाः कारण्डवानां च प्रवृत्ता रागिदुःसहाः ॥२०॥
निपातोत्पतनैस्तेषां विमलं लुलितं जलम् । प्रमोदादिव संवृत्तं तरङ्गाढ्यं समाकुलम् ॥२१॥
पद्मादिभिर्जलं व्याप्तं स्थलं कुरवकादिभिः । गगनं रजसा तेषां वसन्ते जृम्भिते सति ॥२२॥
गुच्छगुल्मलतावृक्षाः प्रकारा बहुधा स्थिताः । वनस्पतेः परां शोभामुपजग्मुः समन्ततः ॥२३॥
काले तस्मिन्वरेन्द्रस्य जनकस्य शरीरजाम् । किञ्चिद् गर्भकृतश्रान्तिकृशाभूनशरीरिकाम् ॥२४॥
वीक्ष्य पृच्छति पद्माभः किं ते कान्ते मनोहरम् । सम्पादयाम्यहं ब्रूहि दोहदं किमसीदृशी ॥२५॥
ततः संस्मित्य वैदेही जगाद कमलानना । नाथ चैत्यालयान्द्रष्टुं भूरीन् वाञ्छामि भूतले ॥२६॥
त्रैलोक्यमङ्गलाकारेभ्यः पञ्चवर्णेभ्य आदरात् । जिनेन्द्रप्रतिबिम्बेभ्यो नमस्कर्तुं समाशयः ॥२७॥
हेमरत्नमयैः पुष्पैः पूजयामि जिनानिति । इयं मे महती श्रद्धा किमन्यदभिवाञ्छ्यते ॥२८॥

योग्य वार्तालाप ही कर रहा था ऐसा लोकमें आकुलता उत्पन्न करने वाली राजाकी शोभाको धारण करता हुआ वसन्तकाल आ पहुँचा ॥१३-१४॥ अङ्कोट पुष्प ही जिसके नाखून थे, जो कुरवक रूपी दाढ़को धारण कर रहा था, लाल लाल अशोक ही जिसके नेत्र थे, चञ्चल किसलय ही जिसकी जिह्वा थी, जो परदेशी मनुष्यके मनको परम भय प्राप्त करा रहा था और बकुल पुष्प ही जिसको गरदनके बाल थे ऐसा वसन्तरूपी सिंह आ पहुँचा ॥१५-१६॥ अयोध्याका महेन्द्रोदय उद्यान स्वभावसे ही सुन्दर था परन्तु उस समय वसन्तके कारण विशेष रूपसे नन्दन-वनके समान सुन्दर हो गया था ॥१७॥ जिनमें रङ्ग-बिरङ्गे फूल फूल रहे थे तथा जिनके नाना प्रकारके पल्लव हिल रहे थे, ऐसे वृक्ष दक्षिणके मलय समीरसे मिलकर मानो पागलकी तरह झूम रहे थे ॥१८॥ जो कमल तथा नील कमल आदिसे आच्छादित थीं, पक्षियोंके समूह जहाँ शब्द कर रहे थे, और जिनके तट मनुष्योंसे सेवित थे ऐसी वापिकाएँ अत्यधिक सुशोभित हो रही थीं ॥१९॥ रागी मनुष्योंके लिए जिनका सहना कठिन था ऐसे हंस, सारस, चकवा, कुरर और कारण्डव पक्षियोंके मनोहर शब्द होने लगे ॥२०॥ उन पक्षियोंके उत्पतन और विपतनसे क्षोभको प्राप्त हुआ निर्मल जल हर्षसे ही मानो तरङ्ग युक्त होता हुआ व्याकुल हो रहा था ॥२१॥ वसन्तका विस्तार होनेपर जल, कमल आदिसे, स्थल कुरवक आदिसे और आकाश उनकी परागसे व्याप्त हो गया था ॥२२॥ उस समय गुच्छे, गुल्म, लता तथा वृक्ष आदि जो वनस्पतिकी जातियाँ अनेक प्रकारसे स्थित थीं वे सब ओरसे परम शोभाको प्राप्त हो रही थीं ॥२३॥

उस समय गर्भके द्वारा की हुई थकावटसे जिसका शरीर कुछ-कुछ श्रान्त हो रहा था ऐसी जनकनन्दिनीको देखकर रामने पूछा कि हे कान्ते ! तुझे क्या अच्छा लगता है ? सो कह । मैं अभी तेरी इच्छा पूर्ण करता हूँ तू ऐसी क्यों हो रही है ? ॥२४-२५॥ तब कमलमुखी सीताने मुसकरा कर कहा कि हे नाथ ! मैं पृथिवीतल पर स्थित अनेक चैत्यालयोंके दर्शन करना चाहती हूँ ॥२६॥ जिनका स्वरूप तीनों लोकोंके लिए मङ्गल रूप है ऐसी पञ्चवर्णकी जिन-प्रतिमाओंको आदर पूर्वक नमस्कार करनेका मेरा भाव है ॥२७॥ सुवर्ण तथा रत्नमयी पुष्पोंसे जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा करूँ यह मेरी बड़ी श्रद्धा है । इसके सिवाय और क्या इच्छा करूँ ? ॥२८॥

१. विवश म० । २. नीयमानः म० । ३. सद्योत्पलादि-म० । ४. पृच्छसि म० ।

एवमाकर्ण्य पद्मामः स्मेरवक्त्रः प्रमोदवान् । समादिशत् प्रतीहारी तत्क्षणत्रस्तविक्रियाम् ॥२९॥
अयि कल्याणि ! निक्षेपसमाप्तौ गद्यतामिति । जिनालयेषु क्रियतामर्चना महतीत्यलम् ॥३०॥
महेन्द्रोदयमुद्यानं समेत्य सुमहादरम् । क्रियतां सर्वलोकेन सुशोभा जिनवेश्मनाम् ॥३१॥
तोरणैर्वैजयन्तीभिर्घण्टालम्बूषगोलकैः । अर्धचन्द्रैर्वितानैश्च वस्त्रैश्च सुमनोहरैः ॥३२॥
तथोपकरणैरन्यैः समस्तैरतिसुन्दरैः । लोको महीं समस्तायां करोतु जिनपूजनम् ॥३३॥
निर्वाणधामचैत्यानि विभूष्यन्तां विशेषतः । महानन्दाः प्रवर्त्यन्तां सर्वसम्पत्तिसङ्गताः ॥३४॥
कल्याणं दोहदं तेषु दैवेज्ञाः प्रतिपूजयन् । विहराम्यनया सार्कं महिमानं समेधयन् ॥३५॥
आदिष्टया सयेत्यात्मपदे कृत्वाऽऽत्मसन्निभाम् । यथोक्तं गोदनोऽमात्यस्तेनादिष्टाः स्वकिङ्कराः ॥३६॥
व्यतिपत्य महोद्योगैस्ततस्तैः सम्मदान्वितैः । उपशोभा[1] जिनेन्द्राणामालयेषु प्रवर्तिता ॥३७॥
महागिरिगुहाद्वारगम्भीरेषु मनोहराः । स्थापिताः पूर्णकलशाः सुहारादिविभूषिताः ॥३८॥
मणिचित्रसमाकृष्टचित्ता[2] परमपट्टकाः । प्रसारिता विशालासु हेममण्डलभित्तिषु ॥३९॥
अत्यन्तविमलाः शुद्धाः स्तम्भेषु मणिदर्पणाः । हारा गवाक्षवक्त्रेषु स्वच्छनिर्झरहारिणः ॥४०॥
विचित्रा भक्तयो न्यस्ता रत्नचूर्णेन चारुणा । विभक्ताः पञ्चवर्णेन पादनीचरभूमिषु ॥४१॥
न्यस्तानि छातपत्राणि सहस्रच्छदनानि च । देहलीकाण्डयुक्तानि कमलान्यपरत्र च ॥४२॥
हस्तसम्पर्कयोग्येषु स्थानेषु कृतसुज्ज्वलम् । किङ्किणीजालकं मत्तकामिनीसमनिःस्वनम् ॥४३॥
पञ्चवर्णैर्विकाराढ्यैश्चामरैर्मण्डितध्वजैः । संयुक्ताः पटलम्बूषाः स्वायताङ्गाः प्रलम्बिताः ॥४४॥

यह सुनकर हर्षसे मुसकराते हुए रामने तत्काल ही नम्रीभूत शरीरको धारण करनेवाली द्वारपालिनी से कहा कि हे कल्याणि ! विलम्ब किये बिना ही मन्त्रीसे यह कहो कि जिनालयोंमें अच्छी तरह विशाल पूजा की जावे ॥२९-३०॥ सब लोग बहुत भारी आदरके साथ महेन्द्रोदय उद्यानमें जाकर जिन-मन्दिरोंकी शोभा करें ॥३१॥ तोरण, पताका, घंटा, लम्बूष, गोले, अर्धचन्द्र, चंदोवा, अत्यन्त मनोहर वस्त्र, तथा अत्यन्त सुन्दर अन्यान्य समस्त उपकरणोंके द्वारा लोग सम्पूर्ण पृथिवी पर जिन-पूजा करें ॥३२-३३॥ निर्वाण क्षेत्रोंके मन्दिर विशेष रूपसे विभूषित किये जावें तथा सर्व सम्पत्तिसे सहित महा आनन्द—बहुत भारी हर्षके कारण प्रवृत्त किये जावें ॥३४॥ उन सबमें पूजा करनेका जो सीताका दोहला है वह बहुत ही उत्तम है सो मैं पूजा करता हुआ तथा जिन शासन की महिमा बढ़ाता हुआ इसके साथ विहार करूँगा ॥३५॥ इस प्रकार आज्ञा पाकर द्वारपालिनीने अपने स्थान पर अपने ही समान किसी दूसरी स्त्रीको नियुक्त कर रामके कहे अनुसार मन्त्रीसे कह दिया और मन्त्रीने भी अपने सेवकोंके लिए तत्काल आज्ञा दे दी ॥३६॥

तदनन्तर महान् उद्योगी एवं हर्षसे सहित उन सेवकोंने शीघ्र ही जाकर जिन-मन्दिरोंमें सजावट कर दी ॥३७॥ महापर्वतकी गुफाओंके समान जो मन्दिरोंके विशाल द्वार थे उन पर उत्तम हार आदिसे अलंकृत पूर्ण कलश स्थापित किये गये ॥३८॥ मन्दिरोंकी सुवर्णमयी लम्बी-चौड़ी दीवालों पर मणिमय चित्रोंसे चित्तको आकर्षित करनेवाले उत्तमोत्तम चित्रपट फैलाये गये ॥३९॥ खम्भोंके ऊपर अत्यन्त निर्मल एवं शुद्ध मणियोंके दर्पण लगाये गये और झरोखोंके अग्रभागमें स्वच्छ झरनेके समान मनोहर हार लटकाये गये ॥४०॥ मनुष्योंके जहाँ चरण पड़ते थे ऐसी भूमियोंमें पाँच वर्णके रत्नमय सुन्दर चूर्णसे नाना प्रकारके बेल-बूटे खींचे गये थे ॥४१॥ जिनमें सौ अथवा हजार कलिकाएँ थीं तथा जो लम्बी डंडीसे युक्त थे ऐसे कमल उन मन्दिरोंकी देहलियों पर तथा अन्य स्थानों पर रक्खे गये थे ॥४२॥ हाथसे पाने योग्य स्थानोंमें मत्त स्त्रीके समान शब्द करनेवाली उज्ज्वल छोटी-छोटी घंटियोंके समूह लगाये गये थे ॥४३॥ जिनकी मणिमय

---

१. उपशोभी म० । २. चित्राः म० । ३. 'देहल्याम्' इति पाठः सम्यक् प्रतिभाति । ४. पद- म० ।

भाषमान्यत्यन्तचित्राणि प्रापितानि प्रसारणम् । सौरभाकृष्टभृङ्गाणि कृतान्युत्तमशिल्पिभिः ॥४५॥
विशालातोद्यशालाभिः कलिताभिश्च नैकशः । तथा प्रेक्षकशालाभिः तदुद्यानमलङ्कृतम् ॥४६॥
एवमत्यन्तसारीभिरत्युर्वीभिर्विभूतिभिः । महेन्द्रोदयमुद्यानं जातं नन्दनसुन्दरम् ॥४७॥

आर्या छन्दः

अथ भृत्यासुरपतिबलपुरजनपदसमन्वितो देवीभिः ।
सर्वामात्यसमेतः पद्मः सीतान्वितो ययावुद्यानम् ॥४८॥
परमं गजमारूढः सीतायुक्तो रराज सार्वं पद्मः ।
ऐरावतपृष्ठगतः शच्या यथा दिवौकसां नाथः ॥४९॥
नारायणोऽपि च यथा परमास्तृद्धिं समुद्वहन् याति स्म ।
शेषजनश्च सदार्हं हृष्टः स्फीतो[1] महाशपानसमृद्धः ॥५०॥
कदलीगृहमनोहररुचिरेष्वतिमुक्तकमण्डपेषु च मनोज्ञेषु ।
देव्यः स्थिता महार्हा यथार्हमन्यो जनश्च सुखमासीनः ॥५१॥
अवतीर्य गजाद् रामः कामः कमलोत्पलसङ्कुले समुद्गोद्गारे[2] ।
सरसि सुखं विमललले रेमे क्षीरोदसागरे शक्र इव ॥५२॥
तस्मिन् सङ्क्रीड्य चिरं कृत्वा पुष्पोच्चयं जलादुत्तीर्य ।
दिव्येनार्चनविधिना वैदेह्या सङ्गतो जिनानानर्च ॥५३॥
रामो मनोभिरामः काननलक्ष्मीसमाभिरुद्भस्त्रीभिः ।
[3]कृतपरिवरणो रेजे वसन्त इव मूर्तिमानुपेतः श्रीमान् ॥५४॥

डंडियाँ थीं ऐसे पाँचवर्णके कामदार चमरोंके साथ-साथ बड़ी-बड़ी हाँडियाँ लटकाई गई थीं॥४४॥ जो सुगन्धिसे भ्रमरोंको आकर्षित कर रही थीं तथा उत्तम कारीगरोंने जिन्हें निर्मित किया था ऐसी नाना प्रकारकी मालाएँ फैलाई गई थीं ॥४५॥ अनेकोंकी संख्यामें जगह-जगह बनाई गई विशाल वादनशालाओं और प्रेक्षकशालाओं—दर्शकगृहोंसे वह उद्यान अलंकृत किया गया था ॥४६॥ इस प्रकार अत्यन्त सुन्दर, विशाल विभूतियोंसे वह महेन्द्रोदय उद्यान नन्दनवनके समान सुन्दर हो गया था ॥४७॥

अथानन्तर नगरवासी तथा देशवासी लोगोंके साथ, स्त्रियोंके साथ, समस्त मन्त्रियोंके साथ, और सीताके साथ रामचन्द्रजी इन्द्रके समान बड़े वैभवसे उस उद्यानकी ओर चले ॥४८॥ सीताके साथ-साथ उत्तम हाथी पर बैठे हुए राम ठीक उस तरह सुशोभित हो रहे थे जिस तरह इन्द्राणीके साथ ऐरावतके पृष्ठपर बैठा हुआ इन्द्र सुशोभित होता है ॥४९॥ यथायोग्य ऋद्धिको धारण करनेवाले लक्ष्मण तथा हर्षसे युक्त एवं अत्यधिक अन्न पानकी सामग्रीसे सहित शेष लोग भी अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार जा रहे थे ॥५०॥ वहाँ जाकर देवियाँ मनोहर कदली गृहोंमें तथा अतिमुक्तक लताके सुन्दर निकुञ्जोंमें महावैभवके साथ ठहर गईं तथा अन्य लोग भी यथा योग्य स्थानोंमें सुखसे बैठ गये ॥५१॥ हाथीसे उतर कर रामने कमलों तथा नील कमलोंसे व्याप्त एवं समुद्रके समान विशाल, निर्मल जलवाले सरोवरमें सुखपूर्वक उस तरह क्रीड़ा की जिस तरह कि क्षीरसागरमें इन्द्र करता है ॥५२॥ तदनन्तर सरोवरमें चिर काल तक क्रीड़ा कर, उन्होंने फूल तोड़े और जलसे बाहर निकल कर पूजाकी दिव्य सामग्रीसे सीताके साथ मिलकर जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा की ॥५३॥ वनलक्ष्मियोंके समान उत्तमोत्तम स्त्रियोंसे घिरे हुए मनोहारी राम उस समय ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो शरीरधारी श्रीमान् वसन्त ही आ पहुँचा हो ॥५४॥

---

१. महाज्ञ -म० । २. कामः कमलोत्पलसंकुले समुदारे म० । ३. कृतपरिचरणो म० ।

देवीभिरनुपमाभिः सोऽष्टसहस्रप्रमाणसङ्ख्याभिः ।
रेजे निर्मलदेहस्ताराभिरिवावृतो ग्रहाणामधिपः ॥५५॥
अमृताहारविलेपनशयनासनवासगन्धमाल्यादिभवम् ।
शब्दरसरूपगन्धस्पर्शसुखं तत्र राम आपोदारम्[1] ॥५६॥
एवं जिनेन्द्रभवने प्रतिदिनपूजाविधानयोगरतस्य ।
रामस्य रविः प्रभया जायाः सविलेजसः सुदारयुतस्य ॥५७॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे जिनेन्द्रपूजादोहदाभिधानं नाम पञ्चनवतितमं पर्व ॥९५॥

आठ हजार प्रमाण अनुपम देवियोंसे घिरे हुए, निर्मल शरीरके धारक राम उस समय ताराओंसे घिरे हुए चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहे थे ॥५५॥ उस उद्यानमें रामने अमृतमय आहार, विलेपन, शयन, आसन, निवास, गन्ध तथा माला आदिसे उत्पन्न होनेवाले शब्द, रस, रूप, गन्ध और स्पर्श सम्बन्धी उत्तम सुख प्राप्त किया था ॥५६॥ इस प्रकार जिनेन्द्र मन्दिरमें प्रतिदिन पूजा-विधान करनेमें तत्पर सूर्यके समान तेजस्वी, उत्तम स्त्रियोंसे सहित रामको अत्यधिक प्रीति उत्पन्न हुई ॥५७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें जिनेन्द्र पूजारूप दोहलेका वर्णन करनेवाला पंचानवेवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥९५॥

१. आप + उदारम् ।

षण्णवतितमं पर्व

उद्यानेऽवस्थितस्यैवं रामस्य सुचेतसः । तृषिता इव सम्प्रापुः प्रजा दर्शनकाङ्क्षया ॥१॥
आवितं प्रतिहारीभिः परम्परयात् प्रजागमम् । विज्ञाय दक्षिणस्याक्ष्णः स्पन्दं प्राप विदेहजा ॥२॥
अचिन्तयच्च किं [1]त्वेतन्निवेदयति मे परम् । दुःखस्याऽऽगमनं नेत्रमधस्तात् स्पन्दनं भजत् ॥३॥
पापेन विधिना दुःखं प्रापिता सागरान्तरे । [2]दुष्टस्तेन न सन्तुष्टः किमन्यत् प्रापयिष्यति ॥४॥
निर्मितानां स्वयं शश्वत् कर्मणामुचितं फलम् । भुवं प्राणिभिराप्तव्यं न तस्कृत्यं[3]निवारणम् ॥५॥
उपगुप्य प्रयत्नेन शीतांशुकमिवांशुमान् । पालयन्नपि नित्यं स्वं कर्मणां फलमश्नुते ॥६॥
अगदच्च विचेतस्का देव्यो मृत श्रुतागमाः । सम्यग्विचार्य मेऽधस्ताल्लोचस्पन्दनजं फलम् ॥७॥
तासामनुमती नाम देवी निश्चयकोविदा । जगाद [4]देवि को नाम विधिरन्योऽत्र दृश्यते ॥८॥
यत् कर्म निर्मितं पूर्वं सितं मलिनमेव वा । स कृतान्तो विधिर्वासौ दैवं तच्च तदीश्वरः ॥९॥
कृतान्तेनाहमानीता व्यवस्थामेतिकामिति । पृथक्[5]निरूपणं तत्र जनस्याज्ञानसम्भवम् ॥१०॥
अथातो गुणदोषज्ञा गुणमालेति कीर्तिता । जगाद सान्त्वनोद्युक्ता देवीं देवनयाऽन्विताम् ॥११॥
देवि त्वमेव देवस्य सर्वतोऽपि गरीयसी । तवैव च प्रसादेन जनस्यान्यस्य संयुता[6] ॥१२॥
ततोऽहं न प्रपश्यामि सुयुक्तेनापि चेतसा । यस्ते यास्यति दुःखस्य कारणत्वं सुचेष्टिते ॥१३॥

अथानन्तर जब इस प्रकार शुद्ध हृदयके धारक राम महेन्द्रोदय नामक उद्यानमें अवस्थित थे तब उनके दर्शनकी आकांक्षासे प्रजा उनके समीप इस प्रकार पहुँची मानो प्यासी ही हो ॥१॥ 'प्रजाका आगमन हुआ है' यह समाचार परम्परासे प्रतिहारियोंने सीताको सुनाया, सो सीताने जिस समय इस समाचारको जाना उसी समय उसकी दाहिनी आँख फड़कने लगी ॥२॥ सीताने विचार किया कि अधोभागमें फड़कनेवाला नेत्र मेरे लिए किस भारी दुःखके आगमनकी सूचना दे रहा है ॥३॥ पापी विधाताने मुझे समुद्रके बीच दुःख प्राप्त कराया है सो जान पड़ता है कि वह दुष्ट उससे संतुष्ट नहीं हुआ, देखूँ अब वह और क्या प्राप्त कराता है ? ॥४॥ प्राणियोंने जो निरन्तर स्वयं कर्म उपार्जित किये हैं उनका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है—उसका निवारण करना शक्य नहीं है ॥५॥ जिस प्रकार सूर्य यद्यपि चन्द्रमाका पालन करता है परन्तु प्रयत्न पूर्वक अपने तेजसे उसे तिरोहित कर पालन करता है इसलिए वह निरन्तर अपने कर्मका फल भोगता है (?) व्याकुल होकर सीताने अन्य देवियोंसे कहा कि अहो देवियो ! तुमने तो आगमको सुना है इसलिए अच्छी तरह विचार कर कहो कि मेरे नेत्रके अधोभागके फड़कनेका क्या फल है ? ॥६-७॥ उन देवियोंके बीच निश्चय करनेमें निपुण जो अनुमती नामकी देवी थी वह बोली कि हे देवि ! इस संसारमें विधि नामका दूसरा कौन पदार्थ दिखाई देता है ? ॥८॥ पूर्व पर्यायमें जो अच्छा या बुरा कर्म किया है वही कृतान्त, विधि, दैव अथवा ईश्वर कहलाता है ॥९॥ 'मैं पृथग् रहनेवाले कृतान्तके द्वारा इस अवस्थाको प्राप्त कराई गई हूँ, ऐसा जो मनुष्यका निरूपण करना है वह अज्ञानमूलक है ॥१०॥

तदनन्तर गुण दोषको जाननेवाली गुणमाला नामकी दूसरी देवीने सान्त्वना देनेमें उद्यत हो दुःखिनी सीतासे कहा कि हे देवि ! प्राणनाथको तुम्हीं सबसे अधिक प्रिय हो और तुम्हारे ही प्रसादसे दूसरे लोगोंको सुखका योग प्राप्त होता है ॥११-१२॥ इसलिए सावधान चित्तसे भी मैं

१. त्वेतन्नि-म० । २. दुष्टस्तेन म० । ३. शक्यं निवारणं म०, ज० । ४. देवी म० । ५. सुखयोगः ।

अन्यास्तत्र जगुर्देव्यो देव्यत्र जनितेन किम् । [1]वितर्केण विशालेन शान्तिकर्म विधीयताम् ॥१४॥
अभिषेकैर्जिनेन्द्राणामत्युदारैश्च पूजनैः । दानैरिच्छाभिपूरैश्च क्रियतामशुभेरणम् ॥१५॥
एवमुक्ता जगौ सीता देव्यः साधु समीरितम् । दानं पूजाऽभिषेकश्च तपश्चाशुभसूदनम् ॥१६॥
विघ्नानां नाशनं दानं रिपूणां वैरनाशनम् । पुण्यस्य समुपादानं महतो यशसस्तथा ॥१७॥
इत्युक्त्वा भद्रकलशं समाहूय जगाविति । किमिच्छदानमासूतेर्दीयतां प्रतिवासरम् ॥१८॥
यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा द्रविणाधिकृतो ययौ । इयमप्यादरे तस्थौ जिनपूजादिगोचरे ॥१९॥
ततो जिनेन्द्रगेहेषु तूर्यशब्दाः समुद्ययुः । शङ्खकोटिरवोन्मिश्राः प्रावृड्घनरवोपमाः ॥२०॥
जिनेन्द्रचरितस्यस्तचित्रपट्टाः प्रसारिताः । पयोघृतादिसम्पूर्णाः कलशाः समुपाहृताः ॥२१॥
भूषिताङ्गो द्विपारूढः कञ्चुकी सितवस्त्रभृत् । कः केनार्थीत्ययोध्यायां घोषणामददात् स्वयम् ॥२२॥
एवं सुविधिना दानं महोत्साहमदीयत । विविधं नियमं देवी निजशक्त्या चकार च ॥२३॥
प्रावर्त्यन्त महापूजा अभिषेकाः सुसम्पदः । पापवस्तुनिवृत्तात्मा बभूव समधीर्जनः ॥२४॥
इतिक्रियाप्रसक्तायां सीतायां शान्तचेतसि । आस्थानमण्डपे तस्थौ दर्शने शक्रवद्बलः ॥[3] २५॥
प्रतीहारविनिर्मुक्तद्वाराः सम्भ्रान्तचेतसः । ततो जनपदाः सैंहं धामेवास्थानमाश्रिताः ॥२६॥
रत्नकाञ्चननिर्माणमदृष्टां जातुचित् पुनः । सभामालोक्य गम्भीरां प्रजानां चलितं मनः ॥२७॥

उस पदार्थको नहीं देखता जो हे सुचेष्टिते ! तुम्हारे दुःखका कारणपना प्राप्त कर सके ॥१३॥ उक्त दोके सिवाय जो वहाँ अन्य देवियाँ थीं उन्होंने कहा कि हे देवि ! इस विषयमें अत्यधिक तर्क-वितर्क करनेसे क्या लाभ है ? शान्तिकर्म करना चाहिए ॥१४॥ जिनेन्द्र भगवान्के अभिषेक, अत्युदार पूजन और किमिच्छक दानके द्वारा अशुभ कर्मको दूर हटाना चाहिए ॥१५॥ इस प्रकार कहने पर सीताने कहा कि हे देवियो ! आप लोगोंने ठीक कहा है क्योंकि दान, पूजा, अभिषेक और तप अशुभ कर्मोंको नष्ट करनेवाला है ॥१६॥ दान विघ्नोंका नाश करनेवाला है, शत्रुओंका वैर दूर करनेवाला है, पुण्यका उपादान है तथा बहुत भारी यशका कारण है ॥१७॥ इतना कहकर सीताने भद्रकलश नामक कोषाध्यक्षको बुलाकर कहा कि प्रसूति पर्यन्त प्रतिदिन किमिच्छक दान दिया जावे ॥१८॥ 'जैसी आज्ञा हो' यह कहकर उधर कोषाध्यक्ष चला गया और इधर यह सीता भी जिनपूजा आदि सम्बन्धी आदरमें निमग्न हो गई ॥१९॥

तदनन्तर जिन मन्दिरोंमें करोड़ों शङ्खोंके शब्दमें मिश्रित, एवं वर्षाकालिक मेघ गर्जनाकी उपमा धारण करनेवाले तुरही आदि वादित्रोंके शब्द उठने लगे ॥२०॥ जिनेन्द्र भगवान्के चरित्रसे सम्बन्ध रखनेवाले चित्रपट फैलाये गये और दूध, घृत आदिसे भरे हुए कलश बुलाये गये ॥२१॥ आभूषणोंसे आभूषित तथा श्वेत वस्त्रको धारण करनेवाले कञ्चुकीने हाथी पर सवार हो अयोध्यामें स्वयं यह घोषणा दी कि कौन किस पदार्थकी इच्छा रखता है ? ॥२२॥ इस प्रकार विधि पूर्वक बड़े उत्साहसे दान दिया जाने लगा और देवी सीताने अपनी शक्तिके अनुसार नाना प्रकारके नियम ग्रहण किये ॥२३॥ उत्तम वैभवके अनुरूप महापूजाएँ और अभिषेक किये गये तथा मनुष्य पापपूर्ण वस्तुसे निवृत्त हो शान्तचित्त हो गये ॥२४॥ इस प्रकार जब शान्त चित्तकी धारक सीता दान आदि क्रियाओंमें आसक्त थी तब रामचन्द्र इन्द्रके समान सभामण्डपमें आसीन थे ॥२५॥

तदनन्तर द्वारपालोंने जिन्हें द्वार छोड़ दिये थे तथा जिनके चित्त व्यग्र थे ऐसे देशवासी लोग सभा मण्डपमें उस तरह डरते-डरते पहुँचे जिस तरह कि मानो सिंहके स्थान पर ही जा रहे हों ॥२६॥ रत्न और सुवर्णसे जिसकी रचना हुई थी तथा जो पहले कभी देखनेमें नहीं आई

---

१. वितर्केण विशालेन म० । २. ऋषिताङ्गो म० । ३. रामः ।

हृदयानन्दनं राममालोक्य नयनोत्सवम् । उल्लसन् मनसो नेमुः प्रबद्धाञ्जलयः प्रजाः ॥२८॥
तीव्र कम्पितदेहास्ता मुहुः कम्पितमानसाः । पद्मो जगाद भो भद्रा श्रुतागमनकारणम् ॥२९॥
विजयोऽथ सुराजिश्च मधुमान् वसुलो धरः । काश्यपः पिङ्गलः कालः क्षेमाद्याश्च महत्तराः ॥३०॥
निश्चलाश्चरणन्यस्तलोचना गलितौजसः । न किञ्चिदूचुराक्रान्ताः प्रभावेण महीपतेः ॥३१॥
चिराद्दुस्सहते वक्तुं मतिर्यद्यपि कृच्छ्रतः । निःक्रामति तथाप्येषा वक्त्रागाराच्च वाग्वधूः ॥३२॥
गिरा सान्त्वनकारिण्या पद्मः पुनरभाषत । भूत स्वागतिनो भूत कैमर्थ्येन समागताः ॥३३॥
हस्तुका अपि ते भूयः समस्तकरणोज्झिताः । तस्थुः पुस्त इव न्यस्ताः सुनिष्णातेन शिल्पिना ॥३४॥
ह्रीपाशकण्ठबद्धास्ते किञ्चिच्चञ्चललोचनाः । अर्भका इव सारङ्गा [1]जस्रराकुलचेतसः ॥३५॥
ततः प्राग्रहरस्तेषामुवाच स्खलिताक्षरम् । देवाभयप्रसादेन प्रसादः क्रियतामिति ॥३६॥
ऊचे नरपतिर्भद्रा न किञ्चिद्भवतां भयम् । प्रकाशयत चित्तस्थं स्वस्थतामुपगच्छत ॥३७॥
अहं सकलं त्यक्त्वा साम्प्रतानीं भजाम्यहम् । मिश्रीभूतं जलं त्यक्त्वा यथा हंसः [2]स्तनोज्झवम् ॥३८॥
अभयेऽपि ततो लब्धे कृच्छ्रप्रस्थापिताक्षरः । जगाद मन्दनिःस्वानो विजयोऽञ्जलिमस्तकः ॥३९॥
विज्ञाप्यं श्रूयतां नाथ पद्मराम नरोत्तम । प्रजाधुनाऽखिला जाता मर्यादारहिताभिका ॥४०॥
स्वभावादेव लोकोऽयं महाकुटिलमानसः । प्रकटं प्राप्य दृष्टान्तं न किञ्चित्तस्य दुष्करम् ॥४१॥

थी ऐसी उस गम्भीर सभाको देखकर प्रजाके लोगोंका मन चञ्चल हो गया ॥२७॥ हृदयको आनन्दित करनेवाले और नेत्रोंको उत्सव देनेवाले श्रीरामको देखकर जिनके चित्त खिल उठे थे ऐसे प्रजाके लोगोंने हाथ जोड़कर उन्हें नमस्कार किया ॥२८॥ जिनके शरीर कम्पित थे तथा जिनका मन बार-बार काँप रहा था ऐसे प्रजाजनोंको देखकर रामने कहा कि अहो भद्रजनो ! अपने आगमनका कारण कहो ॥२९॥ अथानन्तर विजय, सुराजि, मधुमान्, वसुल, धर, काश्यप, पिङ्गल, काल और क्षेम आदि बड़े-बड़े पुरुष, राजा रामचन्द्रजीके प्रभावसे आक्रान्त हो कुछ भी नहीं कह सके। वे चरणोंमें नेत्र लगाकर निश्चल खड़े रहे और सबका ओज समाप्त हो गया ॥३०-३१॥ यद्यपि उनकी बुद्धि कुछ कहनेके लिए चिरकालसे उत्साहित थी तथापि उनकी वाणी रूपी वधू मुखरूपी घरसे बड़ी कठिनाईसे नहीं निकलती थी ॥३२॥

तदनन्तर रामने सान्त्वना देने वाली वाणीसे पुनः कहा कि आप सबलोगोंका स्वागत है। कहिये आप सब किस प्रयोजनसे यहाँ आये हैं ॥३३॥ इतना कहने पर भी वे पुनः समस्त इंद्रियोंसे रहितके समान खड़े रहे। निश्चल खड़े हुए वे सब ऐसे जान पड़ते थे कि मानो किसी कुशल कारीगरने उन्हें मिट्टी आदिके खिलौनेके रूपमें रच कर निक्षिप्त किया हो—वहाँ रख दिया हो ॥३४॥ जिनके कण्ठ लज्जा रूपी पाशसे बँधे हुए थे, जो मृगोंके बच्चोंके समान कुछ कुछ चञ्चल लोचनवाले थे तथा जिनके हृदय अत्यन्त आकुल हो रहे थे ऐसे वे प्रजाजन उल्लाससे रहित हो गये—म्लान मुख हो गये ॥३५॥

तदनन्तर उनमें जो मुखिया था वह जिस किसी तरह टूटे-फूटे अक्षरोंमें बोला कि हे देव ! अभय दान देकर प्रसन्नता कीजिये ॥३६॥ तब राजा रामचन्द्रने कहा कि हे भद्र पुरुषो ! आप लोगोंको कुछ भी भय नहीं है, हृदयमें स्थित बातको प्रकट करो और स्वस्थताको प्राप्त होओ ॥३७॥ मैं इस समय समस्त पापका परित्याग कर उस तरह निर्दोष वस्तुको ग्रहण करता हूँ जिस प्रकार कि हंस मिले हुए जलको छोड़कर केवल दूधको ग्रहण करता है ॥३८॥ तदनन्तर अभय प्राप्त होने पर भी जो बड़ी कठिनाईसे अक्षरोंको स्थिर कर सका था ऐसा विजय नामक पुरुष हाथ जोड़ मस्तकसे लगा मन्द स्वरमें बोला कि हे नाथ ! हे राम ! हे नरोत्तम ! मैं जो निवेदन करना चाहता हूँ उसे सुनिये, इस समय समस्त प्रजा मर्यादासे रहित हो गई है ॥३९-४०॥ यह मनुष्य

---

१. जगु- म० । जन्तु- ख० । जन्तु- क० । जगु ब० पुस्तके संशोधितपाठः । २. दुग्धम् ।

परमं चापलं धत्ते निसर्गेण प्लवङ्गमः । किमङ्ग पुनरारुह्य चपलं यन्त्रपञ्जरम् ॥४२॥
तरुण्यो रूपसम्पन्नाः पुंसामल्पबलात्मनाम् । ह्रियन्ते बलिभिः छिद्रे पापचित्तैः प्रसह्य च ॥४३॥
प्राक्तदुःखां प्रियां साध्वीं विरहात्यन्तदुःखितः । कश्चित् सहायमासाद्य पुनरानयते गृहम् ॥४४॥
प्रक्षीणधर्ममर्यादा यावन्नश्यति नावनिः । उपायश्चिन्त्यतां तावत्प्रजानां हितकाम्यया ॥४५॥
राजा मनुष्यलोकेऽस्मिन्नपुना त्वं यदा प्रजाः । न पासि विधिना नाशमिमा यान्ति तदा ध्रुवम् ॥४६॥
नगरोद्यानसभाग्रामप्रपाध्वपुरवेश्मसु । अवर्णवादमेकं ते मुक्त्वा नान्यास्ति सङ्कथा ॥४७॥
स तु दाशरथी रामः सर्वशास्त्रविशारदः । हृतां विद्याधरेशेन जानकीं पुनरानयत् ॥४८॥
तत्र नूनं न दोषोऽस्ति कश्चिदप्येवमाश्रिते । व्यवहारेऽपि विद्वांसः प्रमाणं जगतः परम् ॥४९॥
किं च यादृशमुर्वीशः कर्मयोगं निषेवते । स एव सहतेऽस्माकमपि मार्गानुवर्तिनाम् ॥५०॥
एवं प्रदुष्टचित्तस्य वदमानस्य भूतले । निरङ्कुशस्य लोकस्य काकुत्स्थ कुरु निग्रहम् ॥५१॥
एक एव हि दोषोऽयमभविष्यच्च चेततः । व्यलम्भयिष्यदैतस्मै राज्यमाखण्डलेशताम् ॥५२॥
एवमुक्तं समाकर्ण्य क्षणमेकमभून्नृपः । विषादमुद्गरावातविचलद्धृदयो भृशम् ॥५३॥
अचिन्तयच्च हा कष्टमिदमन्यत्समागतम् । यद्यशोवनजखण्डं मे दग्धुं लग्नोऽयशोऽनलः ॥५४॥
यत्कृतं दुःसहं सोढं विरहव्यसनं मया । सा क्रिया कुलचन्द्रं मे प्रकरोति मलीमसम् ॥५५॥
[1]विनीतां यां समुद्दिश्य प्रवीराः कपिकेतवः । करोति मलिनां सीतां सा मे गोत्रकुमुद्वतीम् ॥५६॥

स्वभावसे ही महाकुटिलचित्त है फिर यदि कोई दृष्टान्त प्रकट मिल जाता है तो फिर उसे कुछ भी कठिन नहीं रहता ॥४१॥ वानर स्वभावसे ही परम चञ्चलता धारण करता है फिर यदि चञ्चल यन्त्र रूपी पञ्जर पर आरूढ़ हो जावे तो कहना ही क्या है ॥४२॥ जिनके चित्तमें पाप समाया हुआ है ऐसे बलवान् मनुष्य अवसर पाकर निर्बल मनुष्योंकी तरुण स्त्रियोंको बलात् हरने लगे हैं ॥४३॥ कोई मनुष्य अपनी साध्वी प्रियाको पहले तो परित्यक्त कर अत्यन्त दुखी करता है फिर उसके विरहसे स्वयं अत्यन्त दुखी हो किसीकी सहायतासे उसे घर बुलवा लेता है ॥४४॥ इसलिए हे नाथ ! धर्मकी मर्यादा छूट जानेसे जबतक पृथ्वी नष्ट नहीं हो जाती है तब तक प्रजाके हितकी इच्छासे कुछ उपाय सोचा जाय ॥४५॥ आप इस समय मनुष्य लोकके राजा होकर भी यदि विधि पूर्वक प्रजाकी रक्षा नहीं करते हैं तो वह अवश्य ही नाशको प्राप्त हो जायगी ॥४६॥ नदी, उपवन, सभा, ग्राम, प्याऊ, मार्ग, नगर तथा घरोंमें इस समय आपके इस एक अवर्णवादको छोड़कर और दूसरी चर्चा ही नहीं है कि राजा दशरथके पुत्र राम समस्त शास्त्रों में निपुण होकर भी विद्याधरोंके अधिपति रावणके द्वारा हृत सीताको पुनः वापिस ले आये ॥४७–४८॥ यदि हम लोग भी ऐसे व्यवहारका आश्रय लें तो उसमें कुछ भी दोष नहीं है क्योंकि जगत्के लिए तो विद्वान् ही परम प्रमाण हैं। दूसरी बात यह है कि राजा जैसा काम करता है वैसा ही काम उसका अनुकरण करनेवाले हम लोगोंमें भी बलात् होने लगता है ॥४९–५०॥ इस प्रकार दुष्ट हृदय मनुष्य स्वच्छन्द होकर पृथिवी पर अपवाद कर रहे हैं सो हे काकुत्स्थ ! उनका निग्रह करो ॥५१॥ यदि आपके राज्यमें एक यही दोष नहीं होता तो यह राज्य इन्द्रके भी साम्राज्य को विडम्बित कर देता ॥५२॥ इस प्रकार उक्त निवेदनको सुनकर एक क्षणके लिए राम, विषाद रूपी मुद्गरकी चोटसे जिनका हृदय अत्यन्त विचलित हो रहा था ऐसे हो गये ॥५३॥ वे विचार करने लगे कि हाय हाय, यह बड़ा कष्ट आ पड़ा। जो मेरे यश रूपी कनलवनको जलानेके लिए अपयशरूपी अग्नि लग गई ॥५४॥ जिसके द्वारा किया हुआ विरहका दुःसह दुःख मैंने सहन किया है वही क्रिया मेरे कुल रूपी चन्द्रमाको अत्यन्त मलिन कर रही है ॥५५॥ जिस विनयवती सीताको लक्ष्य कर वानरोंने वीरता दिखाई वही सीता मेरे गोत्ररूपी कुमुदिनीको मलिन

---

१. विनीतायां ज० ।

यत्कृते मथितुर्लीलां रिपुचक्रेण तां कुलम् । मदीयेन कृतं सा मे मलयत्यद्य दर्पणम् ॥५७॥
युक्तं जनपदो वक्ति दुष्टपुंसि परालये । अवस्थिता कथं सीता लोकनिन्द्या मयाहृता ॥५८॥
अपश्यन् क्षणमात्रं यां भवामि विरहाकुलः । अनुरक्तां त्यजाम्येतां दयितामधुना कथम् ॥५९॥
चक्षुर्मांसमयोर्वासं कृत्वा यात्यवस्थिता मम । गुणधन्यामदोषां तां कथं मुञ्चामि जानकीम् ॥६०॥
अथवा वेत्ति नारीणां चेतसः को विचेष्टितम् । दोषाणां प्रभवो यासु साक्षाद्वसति मन्मथः ॥६१॥
धिक्स्त्रियं सर्वदोषाणामाकरं तापकारणम् । विशुद्धकुलजातानां पुंसां पङ्कं सुदुस्त्यजम् ॥६२॥
अभिहन्त्रीं समस्तानां बलानां रागसंश्रयाम् । स्मृतीनां परमं भ्रंशं सत्यस्खलनखातिकाम् ॥६३॥
विघ्नं निर्वाणसौख्यस्य ज्ञानप्रभवसूदनीम् । भस्मच्छन्नाग्निसङ्काशां दर्भसूचीसमानिकाम् ॥६४॥
दृङ्मात्ररमणीयां तां निर्मुक्तमिव पन्नगः । तस्मात्यजामि वैदेहीं महादुःखजिहासया ॥६५॥
अशून्यं सर्वदा तीव्रस्नेहबन्धवशीकृतम् । यया मे हृदयं मुख्यां विरहामि कथं सकाम् ॥६६॥
यद्यप्यहं स्थिरस्वान्तस्तथाप्यासन्नवर्त्तिनी । अर्चिर्वन्मम वैदेही मनोविलयनक्षमा ॥६७॥
मन्ये दूरस्थिताऽप्येषा चन्द्ररेखा कुमुद्वतीम् । यथा चालयितुं शक्ता धृतिं मम मनोहरा ॥६८॥
इतो जनपरीवादश्चेतः स्नेहः सुदुस्त्यजः । अहोऽस्मि भयरागाभ्यां प्रक्षिप्तो गहनान्तरे ॥६९॥
श्रेष्ठा सर्वप्रकारेण दिवौकोयोषितामपि । कथं त्यजामि तां साध्वीं प्रीत्या यातामिवैकताम् ॥७०॥
एतां यदि न मुञ्चामि साक्षाद्दुःकीर्तिमुद्गताम् । कृपणो मत्समो मह्यां तदैतस्यां न विद्यते ॥७१॥

कर रही है ॥५६॥ जिसके लिए मैंने समुद्र उतर कर शत्रुओंका संहार करनेवाला युद्ध किया था वही जानकी मेरे कुलरूपी दर्पणको मलिन कर रही है ॥५७॥ देशके लोग ठीक ही तो कहते हैं कि जिस घरका पुरुष दुष्ट है, ऐसे पराये घरमें स्थित लोक निन्द्य सीताको मैं क्यों ले आया ? ॥५८॥ जिसे मैं क्षणमात्र भी नहीं देखता तो विरहाकुल हो जाता हूँ इस अनुरागसे भरी प्रिय दयिताको इस समय कैसे छोड़ दूँ ? ॥५९॥ जो मेरे चक्षु और मनमें निवास कर अवस्थित है उस गुणोंकी भाण्डार एवं निर्दोष सीताका परित्याग कैसे कर दूँ ? ॥६०॥ अथवा उन स्त्रियोंके चित्तकी चेष्टा को कौन जानता है जिनमें दोषोंका कारण काम साक्षात् निवास करता है ॥६१॥ जो समस्त दोषोंकी खान है। संतापका कारण है तथा निर्मलकुलमें उत्पन्न हुए मनुष्योंके लिए कठिनाईसे छोड़ने योग्य पङ्क स्वरूप है उस स्त्रीके लिए धिक्कार है ॥६२॥ यह स्त्री समस्त बलोंको नष्ट करने वाली है, रागका आश्रय है, स्मृतियोंके नाशका परम कारण है, सत्यव्रतके स्खलित होनेके लिए खाई रूप है, मोक्ष सुखके लिए विघ्न स्वरूप है, ज्ञानकी उत्पत्तिको नष्ट करने वाली है, भस्मसे आच्छादित अग्निके समान है, डाभकी अनीके तुल्य है अथवा देखने मात्रमें रमणीय है। इसलिए जिस प्रकार साँप काँचुलीको छोड़ देता है उसी प्रकार मैं महादुःखको छोड़नेकी इच्छासे सीताको छोड़ता हूँ ॥६३-६५॥ उत्कट स्नेह रूपी बन्धनसे वशीभूत हुआ मेरा हृदय सदा जिससे अशून्य रहता है उस मुख्य सीताको कैसे छोड़ दूँ ? ॥६६॥ यद्यपि मैं दृढ चित्त हूँ तथापि समीप में रहने वाली सीता ज्वालाके समान मेरे मनको विलीन करनेमें समर्थ है ॥६७॥ मैं मानता हूँ कि जिस प्रकार चन्द्रमाकी रेखा दूरवर्तिनी होकर भी कुमुदिनीको विचलित करनेमें समर्थ है उसी प्रकार यह सुन्दरी सीता भी मेरे धैर्यको विचलित करनेमें समर्थ है ॥६८॥ इस ओर लोकनिन्दा है और दूसरी ओर कठिनाईसे छूटने योग्य स्नेह है। अहो ! मुझे भय और रागने सघन वनके बीचमें ला पटका है ॥६९॥ जो देवाङ्गनाओंमें भी सब प्रकारसे श्रेष्ठ है तथा जो प्रीतिके कारण मानो एकताको प्राप्त है उस साध्वी सीताको कैसे छोड़ दूँ ॥७०॥ अथवा उठी हुई साक्षात् अपकीर्तिके समान इसे यदि नहीं छोड़ता हूँ तो पृथिवी पर इसके विषयमें मेरे समान दूसरा

---

१. मुख्यं म०, मुख्यां ज० । २. आहोऽस्मि म० । ३. देवाङ्गनानामपि ।

वसन्ततिलकावृत्तम्

स्नेहापवादभयसङ्गतमानसस्य व्यामिश्रतीव्ररसवेगवशीकृतस्य ।
रामस्य गाढपरितापसमाकुलस्य कालस्तदा निरुपमः स बभूव कृच्छ्रः ॥७२॥

वंशस्थवृत्तम्

विरुद्धपूर्वोत्तरमाकुलं परं [1]विसन्धिसालेतरवेदनान्वितम् ।
अभूदिदं केसरिकेतुचिन्तनं निदाघमध्याह्नरवेः सुदुःसहम् ॥७३॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे जनपरीवादचिन्ताभिधानं नाम षण्णवतितमं पर्व ॥९६॥

कृपण नहीं होगा ॥७१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जिनका मन स्नेह अपवाद और भयसे संगत था, जो मिश्रित तीव्र रसके वेगसे वशीभूत थे, तथा जो अत्यधिक संतापसे व्याकुल थे ऐसे रामका यह समय उन्हें अनुपम दुःख स्वरूप हुआ था ॥७२॥ जिसमें पूर्वापर विरोध पड़ता था जो अत्यन्त आकुलता रूप था, जो स्थिर अभिप्रायसे रहित था और दुःखके अनुभवसे सहित था ऐसा यह रामका चिन्तन उन्हें ग्रीष्मऋतु सम्बन्धी मध्याह्नके सूर्यसे भी अधिक अत्यन्त दुःसह था ॥७३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध श्री रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें लोकनिन्दाकी चिन्ताका उल्लेख करनेवाला छियानवेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥९६॥

---

१. विसन्धि-ज० (१)

सप्तनवतितमं पर्व

ततः कथमपि न्यस्य चिन्तामेकत्र वस्तुनि । आज्ञापयत् प्रतीहारं लक्ष्मणाकारणं प्रति ॥१॥
प्रतीहारवचः श्रुत्वा लक्ष्मणः सम्भ्रमान्वितः । तुरङ्गं चलमारुह्य कृत्येष्वागतमानसः ॥२॥
रामस्यासन्नतां प्राप्य प्रणिपत्य कृताञ्जलिः । आसीनो भूतले रम्ये लग्नादृष्टिर्विनेक्षणः ॥३॥
स्वयमुत्थाप्य तं पद्मो विनयानतविग्रहम् । [1]परमाश्रवतामाजं चक्रेऽर्धासनसङ्गतम् ॥४॥
शत्रुघ्नाद्येश्वराः भूपाश्चन्द्रोदर[2]सुतादयः । तथाविशन् कृतानुज्ञा आसीनाश्च यथोचितम् ॥५॥
पुरोहितः पुरः श्रेष्ठी मन्त्रिणोऽन्ये च सज्जनाः । यथायोग्यं समासीनाः कुतूहलसमन्विताः ॥६॥
ततः क्षणमिव स्थित्वा बलदेवो यथाक्रमम् । लक्ष्मणाय परीवादसमुत्पत्तिं न्यवेदयत् ॥७॥
तदाकर्ण्य सुमित्राजो रोषलोहितलोचनः । सज्जद्धुमादिशन् योधानिदं च पुनरब्रवीत् ॥८॥
अद्य गच्छाम्यहं [3]दुर्जनैवारिधेः । करोमि [4]मृषा मिथ्यावाक्यजिह्वाभिरक्षितां ॥९॥
उपमानविनिर्मुक्तशीलसम्भारधारिणीम् । द्विषन्ति गुणगम्भीरां सीतां ये तान्नये क्षयम् ॥१०॥
ततो दुरीक्षितां प्राप्तं हरिं क्रोधवशीकृतम् । संक्षुब्धसंसदं वाक्यैरिमैरशमयन्नृपः ॥११॥
सौम्यपूर्वकृतोपस्थैः सदृष्टैर्भरतस्य च । महीसागरपर्यन्ता पालितेयं नरोत्तमैः ॥१२॥
इक्ष्वाकुवंशतिलका आदित्ययशसादयः । आसन्नेषां रणे पृष्ठं दृष्टं नेन्दोरिवारिभिः ॥१३॥
तेषां यशःप्रतानेन कौमुदीपटशोभिना । अलङ्कृतमिदं लोकत्रितयं रहिसान्तरम् ॥१४॥

अथानन्तर किसी तरह एक वस्तुमें चिन्ताको स्थिर कर श्रीरामने लक्ष्मणको बुलानेके लिए द्वारपालको आज्ञा दी ॥१॥ कार्योंके देखनेमें जिनका मन लग रहा था ऐसे लक्ष्मण, द्वारपालके वचन सुन हड़बड़ाहटके साथ चञ्चल घोड़े पर सवार हो श्रीरामके निकट पहुँचे और हाथ जोड़ नमस्कार कर उनके चरणोंमें दृष्टि लगाये हुए मनोहर पृथिवी पर बैठ गये ॥२-३॥ जिनका शरीर विनयसे नम्रीभूत था तथा जो परम आज्ञाकारी थे ऐसे लक्ष्मणको स्वयं उठाकर रामने अर्धासन पर बैठाया ॥४॥ जिनमें शत्रुघ्न प्रधान था ऐसे विराधित आदि राजा भी आज्ञा लेकर भीतर प्रविष्ट हुए और सब यथायोग्य स्थानों पर बैठ गये ॥५॥ पुरोहित, नगरसेठ, मन्त्री तथा अन्य सज्जन कुतूहलसे युक्त हो यथायोग्य स्थान पर बैठ गये ॥६॥

तदनन्तर क्षण भर ठहर कर रामने यथाक्रमसे लक्ष्मणके लिए अपवाद उत्पन्न होनेका समाचार सुनाया ॥७॥ सो उसे सुनकर लक्ष्मणके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। उन्होंने उसी समय योद्धाओंको तैयार होनेका आदेश दिया तथा स्वयं कहा कि मैं आज दुर्जन रूपी समुद्रके अन्तको प्राप्त होता हूँ और मिथ्यावादी लोगोंकी जिह्वाओंसे पृथिवीको आच्छादित करता हूँ ॥८-९॥ अनुपम शीलके समूहको धारण करनेवाली एवं गुणोंसे गम्भीर सीताके प्रति जो द्वेष करते हैं मैं उन्हें आज क्षयको प्राप्त कराता हूँ ॥१०॥ तदनन्तर जो क्रोधके वशीभूत हो दुर्दर्शनीय अवस्थाको प्राप्त हुए थे तथा जिन्होंने सभाको क्षोभ युक्त कर दिया था ऐसे लक्ष्मणको रामने इन वचनोंसे शान्त किया कि हे सौम्य! यह समुद्रान्त पृथिवी भगवान् ऋषभदेव तथा भरत चक्रवर्ती जैसे उत्तमोत्तम पुरुषोंके द्वारा चिरकालसे पालित है ॥११-१२॥ अर्ककीर्ति आदि राजा इक्ष्वाकुवंशके तिलक थे। जिस प्रकार कोई चन्द्रमाकी पीठ नहीं देख सकता उसी प्रकार इनकी पीठ भी युद्धमें शत्रु नहीं देख सके थे ॥१३॥ चाँदनी रूपी पटके समान सुशोभित उनके यशके समूहसे ये तीनों

---

१. परमाश्रयता-म० । २. चन्द्रोदय म० । ३. मन्तर्दुर्जन-म० । ४. जिह्वतिरोहिताम् म० ।

कथं तद्रागमात्रस्य कृते पापस्य भङ्गिनः । वहन्निरर्थकं प्राणान् विदधामि मलीमसम् ॥१५॥
अकीर्तिः परमल्पापि याति वृद्धिमुपेक्षिता । कीर्तिरल्पापि देवानामपि नाथैः प्रयुज्यते ॥१६॥
भोगैः किं परमोदारैरपि प्रक्षयवत्सलैः । कीर्त्युद्यानं प्ररूढं यद्वह्नतेऽकीर्तिवह्निना ॥१७॥
सद्वैतच्छ्रुतशास्त्राणां वध्यं नावर्णभाषितम् । हेयामस्मद्गुहस्थायां सत्यामपि सुचेतसि ॥१८॥
पश्यास्मोज्झनानन्दकारिणस्तिग्मतेजसः । अस्तं [1]यातस्य को रात्रौ सत्यामस्ति निवर्तकः ॥१९॥
अपवादरजोभिर्मे महाविस्तारगामिभिः । छायायाः क्रियते हानं मा [2]भूदेतद्वारणम् ॥२०॥
शशाङ्कविमलं गोत्रमकीर्तिघनलेखया । माकुरप्राप्य मां भ्रातरित्यहं यत्नतत्परः ॥२१॥
शुष्केन्धनमहाकूटे सलिलाप्लाववर्जितः । माविशिष्ट यथा बह्निरयशो भुवने कृतम् ॥२२॥
कुलं महार्हमेतन्मे प्रकाशममलोज्ज्वलम् । यावत्कलङ्क्यते नाऽरं तावदौपयिकं कुरु ॥२३॥
अपि त्यजामि वैदेहीं निर्दोषां शीलशालिनीम् । प्रमादयामि नो कीर्तिं लोकसौख्यहृतात्मकः ॥२४॥
ततो जगाद सौमित्रिर्भ्रातृस्नेहपरायणः । राजन्न खलु वैदेह्या विधातुं शोकमर्हसि ॥२५॥
लोकापवादमात्रेण कथं त्यजसि जानकीम् । स्थितां सर्वसतीमूर्ध्नि सर्वाकारमनिन्दिताम् ॥२६॥
असत्यं [3]वक्तु दुर्लोकः प्राणिनां शीलधारिणाम् । न हि तद्वचनात्तेषां परमार्थत्वमश्नुते ॥२७॥
मृद्यमाणोऽसितकृष्णोऽपि विषदूषितलोचनैः । सितत्वं परमार्थेन न विमुञ्चति चन्द्रमाः ॥२८॥
आत्मा शीलसमृद्धस्य जन्तोर्भवति साक्षिताम् । परमार्थाय पर्याप्तं वस्तुतत्त्वं [4] न चाह्नतः ॥२९॥

लोक निरन्तर सुशोभित हैं ॥१४॥ निष्प्रयोजन प्राणोंको धारण करता हुआ मैं, पापी एवं भङ्गुर स्नेहके लिए उस कुलको मलिन कैसे कर दूँ ? ॥१५॥ अल्प भी अकीर्ति उपेक्षा करने पर वृद्धिको प्राप्त हो जाती है और थोड़ी भी कीर्ति इन्द्रोंके द्वारा भी प्रयोगमें लाई जाती है—गाई जाती है ॥१६॥ जब कि अकीर्ति रूपी अग्निके द्वारा हरा-भरा कीर्तिरूपी उद्यान जल रहा है तब इन नश्वर विशाल भोगोंसे क्या प्रयोजन सिद्ध होनेवाला है ? ॥१७॥ मैं जानता हूँ कि देवी सीता, सती और शुद्ध हृदयवाली नारी है पर जब तक वह हमारे घरमें स्थित रहती है तब तक यह अवर्णवाद शस्त्र और शास्त्रोंके द्वारा दूर नहीं किया जा सकता ॥१८॥ देखो, कमल वनको आनन्दित करनेवाला सूर्य रात्रि होते ही अस्त हो जाता है सो उसे रोकनेवाला कौन है ? ॥१९॥ महाविस्तारको प्राप्त होनेवाली अपवाद रूपी रजसे मेरी कान्तिका ह्रास किया जा रहा है सो यह अनिवारित न रहे—इसकी रुकावट होना चाहिए ॥२०॥ हे भाई ! चन्द्रमाके समान निर्मल कुल मुझे पाकर अकीर्ति रूपी मेघकी रेखासे आवृत न हो जाय इसीलिए मैं यत्न कर रहा हूँ ॥२१॥ जिस प्रकार सूखे ईन्धनके समूहमें जलके प्रवाहसे रहित अग्नि बढ़ती जाती है उस प्रकार उत्पन्न हुआ यह अपयश संसारमें बढ़ता न रहे ॥२२॥ मेरा यह महायोग्य, प्रकाशमान, अत्यन्त निर्मल एवं उज्ज्वल कुल जबतक कलङ्कित नहीं होता है तब तक शीघ्र ही इसका उपाय करो ॥२३॥ जो जनताके सुखके लिए अपने आपको अर्पित कर सकता है ऐसा मैं निर्दोष एवं शीलसे सुशोभित सीताको छोड़ सकता हूँ परन्तु कीर्तिको नष्ट नहीं होने दूँगा ॥२४॥

तदनन्तर भाईके स्नेहमें तत्पर लक्ष्मणने कहा कि हे राजन् ! सीताके विषयमें शोक नहीं करना चाहिए ॥२५॥ समस्त सतियोंके मस्तक पर स्थित एवं सर्व प्रकारसे अनिन्दित सीताको आप मात्र लोकापवादके भयसे क्यों छोड़ रहे हैं ? ॥२६॥ दुष्ट मनुष्य शीलवान मनुष्योंकी बुराई कहें पर उनके कहनेसे उनकी परमार्थता नष्ट नहीं हो जाती ॥२७॥ जिनके नेत्र विषसे दूषित हो रहे हैं ऐसे मनुष्य यद्यपि चन्द्रमाको अत्यन्त काला देखते हैं पर यथार्थमें चन्द्रमा शुक्लता नहीं छोड़ देता है ॥२८॥ शीलसम्पन्न प्राणीकी आत्मा साक्षिताको प्राप्त होती है अर्थात् वह स्वयं ही

---

१. यानस्य म० । २. भूदातपवारणम् म० । ३. वक्ति म० । ४. वस्तुत्वं म० ।

नो पृथग्जनवादेन संक्षोभं यान्ति कोविदाः । न शुनो [1]भषणाद्धस्ती वैलक्ष्यं [2]प्रतिपद्यते ॥३०॥
विचित्रस्यास्य लोकस्य तरङ्गसमचेष्टिनः । परदोषकथासक्तेर्निग्रहं [3]स्वो वि[4] ॥३१॥
शिलामुत्पाट्य शीतांशुं शिवांसुर्मोहवत्सलः । स्वयमेव नरो नाशमसन्दिग्धं ॥३२॥
अभ्याख्यानपरो दुष्टस्तथा परगुणासहः । निर्याति दुर्गतिं जन्तुर्दुःकर्मा प्रतिपद्य ॥३३॥
बलदेवस्ततोऽवोचद्यथा वदसि लक्ष्मण । सत्यमेवमिदं बुद्धिर्मध्यस्था तव शोभना ॥३४॥
किन्तु लोकविरुद्धानि त्यजतः शुद्धिशालिनः । न दोषो दृश्यते कश्चिद्गुणश्चैकान्तसम्भवः ॥३५॥
सौख्यं जगति किं तस्य का वाऽऽशा जीवितं प्रति । दिशो यस्यायशोदावज्वालालीढाः समन्ततः ॥३६॥
किमनर्थकृतार्थेन सविषेणौषधेन किम् । किं वीर्येण न रक्ष्यन्ते प्राणिनो येन भीरवः ॥३७॥
चारित्रेण न तेनार्थो येन नात्मा हितोद्यतः । ज्ञानेन तेन किं येन ज्ञातो नाध्यात्मगोचरः ॥३८॥
प्रशस्तं जन्म नो तस्य यस्य कीर्तिवधूं वराम् । बली हरति दुर्वादस्ततस्तु मरणं वरम् ॥३९॥
आस्तां जनपरीवादो दोषोऽप्यतिमहान्मम । परपुंसा हृता सीता यत्पुनर्गृहमाहृता ॥४०॥
रक्षसो भवनोद्याने चकार वसतिं चिरम् । अभ्यर्थिता च दूतीभिर्वदमानाभिरीप्सितम् [5]॥४१॥
दृष्टा च दुष्टया दृष्ट्या समीपावनिवर्तिना । असकृद्राक्षसेन्द्रेण भाषिता च यथेप्सितम् ॥४२॥
एवंविधा तको सीतां गृह्णानयता मया । कथं न लज्जितं किंवा दुष्करं मूढचेतसाम् ॥४३॥

अपनी वास्तविकताको कहता है। यथार्थमें वस्तुका वास्तविक भाव ही उसकी यथार्थताके लिए पर्याप्त है बाह्यरूप नहीं ॥२९॥ साधारण मनुष्यके कहनेसे विद्वज्जन क्षोभको प्राप्त नहीं होते क्योंकि कुत्ताके भोंकनेसे हाथी लज्जाको प्राप्त नहीं होता ॥३०॥ तरङ्गके समान चेष्टाको धारण करनेवाला यह विचित्र लोक दूसरेके दोष कहनेमें आसक्त है सो इसका निग्रह स्वयं इनकी आत्मा करेगी ॥३१॥ जो मूर्ख मनुष्य शिला उखाड़ कर चन्द्रमाको नष्ट करना चाहता है वह निःसन्देह स्वयं ही नाशको प्राप्त होता है ॥३२॥ चुगली करनेमें तत्पर एवं दूसरेके गुणोंको सहन नहीं करनेवाला दुष्कर्मा दुष्ट मनुष्य निश्चित ही दुर्गतिको प्राप्त होता है ॥३३॥

तदनन्तर बलदेवने कहा कि लक्ष्मण! तुम जैसा कह रहे हो सत्य वैसा ही है और तुम्हारी मध्यस्थ बुद्धि भी शोभाका स्थान है ॥३४॥ परन्तु लोक विरुद्ध कार्यका परित्याग करनेवाले शुद्धिशाली मनुष्यका कोई दोष दिखाई नहीं देता अपितु उसके विरुद्ध गुण ही एकान्त रूपसे संभव मालूम होता है ॥३५॥ उस मनुष्यको संसारमें क्या सुख हो सकता है? अथवा जीवनके प्रति उसे क्या आशा हो सकती है जिसकी दिशाएँ सब ओरसे निन्दारूपी दावानलकी ज्वालाओंसे व्याप्त हैं ॥३६॥ अनर्थको उत्पन्न करनेवाले अर्थसे क्या प्रयोजन है? विष सहित औषधिसे क्या लाभ है? और उस पराक्रमसे भी क्या मतलब है जिससे भयमें पड़े प्राणियोंकी रक्षा नहीं होती? ॥३७॥ उस चारित्रसे प्रयोजन नहीं है जिससे आत्मा अपना हित करनेमें उद्यत नहीं होता और उस ज्ञानसे क्या लाभ जिससे अध्यात्मका ज्ञान नहीं होता ॥३८॥ उस मनुष्यका जन्म अच्छा नहीं कहा जा सकता जिसकी कीर्ति रूपी उत्तम वधूको अपयश रूपी बलवान् हर ले जाता है। अरे! इसकी अपेक्षा तो उसका मरना ही अच्छा है ॥३९॥ लोकापवाद जाने दो, मेरा भी तो यह बड़ा भारी दोष है जो मैं पर पुरुषके द्वारा हरी हुई सीताको फिरसे घर ले आया ॥४०॥ सीताने राक्षसके गृहोद्यानमें चिर काल तक निवास किया, कुत्सित वचन बोलनेवाली दूतियोंने उससे अभिलषित पदार्थकी याचना की, समीपकी भूमिमें वर्तमान रावणने उसे कई बार दुष्ट दृष्टिसे देखा तथा इच्छानुसार उससे वार्तालाप किया। ऐसी उस सीताको घर लाते

---

१. भाषणाद्धस्ती म०, ज०, ख० भषणं श्वरवः। २. श्वो म., ख.। ३. विधास्यते ख०। ४. -रिक्षितम् म०। ५. भविता म०।

कृतान्तवक्त्रसेनानीः शब्द्यतामाविलम्बितम् । सीता गर्भद्विसीया मे गृहादद्यैव नीयताम् ॥४४॥
एवमुक्तेऽञ्जलिं[1] बद्ध्वा सौमित्रिः प्रणताननः । जगाद देव नो युक्तं त्यक्तुं जनकसम्भवाम् ॥४५॥
सुमार्दवाङ्घ्रिकमला सर्वा सुखैधिता । एकाकिनी यथा[2] यातु क वैदेही विलेन[3] वा ॥४६॥
गर्भभारसमाक्रान्ता परमं खेदमाश्रिता । राजपुत्री त्वया त्यक्ता संश्रयं कं प्रपद्यते ॥४७॥
बलिपुष्पादिकं दृष्टं लोकेन तु जिनादिकम् । कल्प्यते भक्तियुक्तेन को दोषः परदर्शने ॥४८॥
प्रसीद नाथ निर्दोषामसूर्यम्पश्यकोमलाम् । माऽत्याक्षीर्मैथिलीं वीर भवदर्पितमानसाम् ॥४९॥
ततोऽत्यन्तदृढीभूतविरागः क्रोधभारभाक् । काकुत्स्थः प्रवरोऽवोचदप्रसन्नसुखोऽनुजम् ॥५०॥
लक्ष्मीधर न वक्तव्यं त्वया किञ्चिदतः परम् । मयैतच्चिन्तितं कृत्यमवश्यं साध्वसाधु वा ॥५१॥
निर्मानुष्ये वने त्यक्ता सहायपरिवर्जिता । जीवतु म्रियतां वाऽपि सीताऽऽत्मीयेन कर्मणा ॥५२॥
क्षणमप्यत्र मे देशे मा शिष्टनगरेऽपि वा । कुत एव गृहे सीता मलवर्द्धनकारिणी ॥५३॥
चतुरश्वमथाऽऽरुह्य रथं सैन्यसमावृतः । जय नन्देति शब्देन बन्दिभिः परिपूजितः ॥५४॥
समुच्छ्रितसितच्छत्रश्चापी कवचकुण्डली । कृतान्तवक्त्रसेनानीरीशितुः प्रस्थितोऽन्तिकम् ॥५५॥
तं तथाविधमायान्तं दृष्ट्वा नगरयोषिताम् । कथा बहुविकल्पाऽऽसीद् वितर्कागतचेतसाम् ॥५६॥

हुए मैंने लज्जाका अनुभव क्यों नहीं किया ? अथवा मूर्ख मनुष्योंके लिए क्या कठिन है ? ॥४१-४३॥ कृतान्तवक्त्र सेनापतिको शीघ्र ही बुलाया जाय और अकेली गर्भिणी सीता आज ही मेरे घरसे ले जाई जाय ॥४४॥

इस प्रकार कहने पर लक्ष्मणने हाथ जोड़ कर विनम्र भावसे कहा कि हे देव ! सीताको छोड़ना उचित नहीं है ॥४५॥ जिसके चरण कमल अत्यन्त कोमल हैं, जो कृशाङ्गी है, भोली है और सुख पूर्वक जिसका लालन-पालन हुआ है ऐसी अकेली सीता उपद्रवपूर्ण मार्गसे कहाँ जायगी ? ॥४६॥ जो गर्भके भारसे आक्रान्त है ऐसी सीता तुम्हारे द्वारा त्यक्त होने पर अत्यखेदको प्राप्त होती हुई किसकी शरणमें जायगी ? ॥४७॥ रावणने सीताको देखा यह कोई अपराध नहीं है क्योंकि दूसरेके द्वारा देखे हुए बलि पुष्प आदिकको क्या भक्तजन जिनेन्द्रदेवके लिए अर्पित नहीं करते ? अर्थात् करते हैं अतः दूसरेके देखनेमें क्या दोष है ? ॥४८॥ हे नाथ ! हे वीर ! प्रसन्न होओ कि जो निर्दोष है, जिसने कभी सूर्य भी नहीं देखा है जो अत्यन्त कोमल है, तथा आपके लिए जिसने अपना हृदय अर्पित कर दिया है ऐसी सीताको मत छोड़ो ॥४९॥

तदनन्तर जिनका विद्वेष अत्यन्त दृढ़ हो गया था, जो क्रोधके भारको प्राप्त थे, और जिनका मुख अप्रसन्न था ऐसे रामने छोटे भाई—लक्ष्मणसे कहा कि हे लक्ष्मीधर ! अब तुम्हें इसके आगे कुछ भी नहीं कहना चाहिए। मैंने जो निश्चय कर लिया है वह अवश्य किया जायगा चाहे उचित हो चाहे अनुचित ॥५०-५१॥ निर्जन वनमें सीता अकेली छोड़ी जायगी। वहाँ वह अपने कर्मसे जीवित रहे अथवा मरे ॥५२॥ दोषकी वृद्धि करनेवाली सीता भी मेरे इस देशमें अथवा किसी उत्तम सम्बन्धीके नगरमें अथवा किसी घरमें क्षण भरके लिए निवास न करे ॥५३॥

अथानन्तर जो चार घोड़ों वाले रथ पर सवार होकर जा रहा था, सेनासे घिरा था, बन्दीजन 'जय' 'नन्द' आदि शब्दोंके द्वारा जिसकी पूजा कर रहे थे, जिसके शिर पर सफेद छत्र लगा हुआ था, जो धनुषको धारण कर रहा था तथा कवच और कुण्डलोंसे युक्त था ऐसा कृतान्तवक्त्र सेनापति स्वामीके समीप चला ॥५४-५५॥ उसे-उस प्रकार आता देख, जिनके चित्त तर्क वितर्कमें लग रहे थे ऐसी नगरकी स्त्रियोंमें अनेक प्रकारकी चर्चा होने लगी ॥५६॥

---

१. मुक्त्वाञ्जलिं म० । २. यथा जातु म० । ३. वनेऽखिले ग० ।

किमिदं हेतुना केन त्वराबानेष लक्ष्यते । कं प्रत्येष सुसंरम्भः किन्नु कस्य भविष्यति ॥५७॥
शस्त्रान्धकारमध्यस्थो निदाघार्कसमद्युतिः । मातः कृतान्तवक्त्रोऽयं कृतान्त इव भीषणः ॥५८॥
एवमादिकथासक्तनगरीयोषिदीक्षितः । अन्तिकं रामदेवस्य सेनानीः समुपागमत् ॥५९॥
प्रणिपत्य ततो नाथं शिरसा धरणीस्पृशा । अगाद् देव वेद्याज्ञामिति सङ्कृतपाणिकः ॥६०॥
पद्मनाभो जगौ गच्छ सीतामपनय द्रुतम् । मार्गे जिनेन्द्रसद्मानि दर्शयन् कृतदोहदाम् ॥६१॥
सम्मेदगिरिजैनेन्द्रनिर्वाणावनिकल्पितान् । प्रदर्श्य चैत्यसङ्घातानाशापूरणपण्डितान् ॥६२॥
अटवीं सिंहनादाऽऽख्यां[1] नीत्वा जनविवर्जिताम् । अवस्थाप्यैतिकां सौम्य त्वरितं पुनरावज ॥६३॥
यथाऽऽज्ञापयसीत्युक्त्वा वितर्कपरिवर्जितः । जानकीं समुपागम्य सेनानीरित्यभाषत ॥६४॥
उत्तिष्ठ रथमारोह देवि कुर्वभिवाञ्छितम् । प्रणम्य चैत्यगेहानि भजाशंसाफलोदयम् ॥६५॥
इति प्रसाद्यमाना सा सेनान्या मधुरस्वनम् । प्रमोदमानहृदया रथमूलमुपागता ॥६६॥
जगाद च चतुर्भेदः सङ्घो जयतु सन्ततम् । जैनो जयतु पद्माभः साधुवृत्तैकतत्परः ॥६७॥
[2]प्रमादात्यसितं किञ्चिदसुन्दरविचेष्टितम् । क्षम्यन्तु सकलं देवा जिनालयनिवासिनः ॥६८॥
मनसा कान्तसक्तेन सकलं च सखीजनम् । त्यवर्तयच्छिरश्चैवमत्यन्तोत्सुकमानसा ॥६९॥
सुखं तिष्ठत सत्सख्यो नमस्कृत्य जिनालयान् । एषाऽहमागताम्येव कृत्वा नोत्सुकता परा ॥७०॥

यह क्या है ? यह किस कारण उतावला दिखाई देता है ? किसके प्रति यह कुपित है ? आज किसका क्या होनेवाला है ? हे मातः ! जो शस्त्रोंके अन्धकारके मध्यमें स्थित है तथा जो ग्रीष्म ऋतुके सूर्यके समान तेजसे युक्त है ऐसा यह कृतान्तवक्त्र यमराजके समान भयंकर है ॥५७–५८॥ इत्यादि कथामें आसक्त नगरकी स्त्रियाँ जिसे देख रही थीं ऐसा सेनापति श्रीरामके समीप आया ॥५९॥

तदनन्तर उसने पृथिवीका स्पर्श करनेवाले शिरसे स्वामीको प्रणाम कर हाथ जोड़ते हुए यह कहा कि हे देव ! मुझे आज्ञा दीजिए ॥६०॥ रामने कहा कि जाओ, सीताको शीघ्र ही छोड़ आओ । उसने जिनमन्दिरोंके दर्शन करनेका दोहला प्रकट किया था इसलिए मार्गमें जो जिनमन्दिर मिलें उनके दर्शन कराते जाना । तीर्थंकरोंकी निर्वाणभूमि सम्मेदाचल पर निर्मित, एवं आशाओंके पूर्ण करनेमें निपुण जो प्रतिमाओंके समूह हैं उनके भी उसे दर्शन कराते जाना । इस प्रकार दर्शन करानेके बाद इसे सिंहनाद नामकी निर्जन अटवीमें ले जाकर तथा वहाँ ठहरा कर हे सौम्य ! तुम शीघ्र ही वापिस आ जाओ ॥६१–६३॥

तदनन्तर बिना किसी तर्क वितर्कके 'जो आज्ञा' यह कह कर सेनापति सीताके पास गया और इस प्रकार बोला कि हे देवि ! उठो, रथ पर सवार होओ, इच्छित कार्य करो, जिनमन्दिरोंके दर्शन करो और इच्छानुकूल फलका अभ्युदय प्राप्त करो ॥६४–६५॥ इस प्रकार सेनापति जिसे मधुर शब्दों द्वारा प्रसन्न कर रहा था तथा जिसका हृदय अत्यन्त हर्षित हो रहा था ऐसी सीता रथके समीप आई ॥६६॥ रथके समीप आकर उसने कहा कि सदा चतुर्विध संघकी जय हो तथा उत्तम आचारके पालन करनेमें एकनिष्ठ जिनभक्त रामचन्द्र भी सदा जयवन्त रहें ॥६७॥ यदि हमसे प्रमाद वश कोई असुन्दर चेष्टा हो गई है तो जिनालयमें निवास करने वाले देव मेरे उस समस्त अपराधको क्षमा करें ॥६८॥ अत्यन्त उत्सुक हृदयको धारण करनेवाली सीताने पतिमें लगे हुए हृदयसे समस्त सखीजनोंको यह कह कर लौटा दिया कि हे उत्तम सखियो ! तुम लोग सुखसे रहो । मैं जिनालयोंको नमस्कार कर अभी आती हूँ, अधिक उत्कण्ठा

---

१. नादाख्यां स० । २. -त्युक्ता म० । ३. प्रमादात्यसितं म० ।

एवं सदुक्तिः पत्युश्चानादेशाच्च योषितः । शेषा विहरणे बुद्धिं न चक्रुराहूतमानिताः ॥७१॥
ततः सिद्धानमस्कृत्य प्रमोदं परमं श्रिता । प्रसन्नवदना सीता रथमारोहदुज्ज्वलम् ॥७२॥
सा तं रथं समारूढा रत्नकाञ्चनकल्पितम् । रेजे सुरवधूर्यद्वद्विमानं रत्नमालिनी ॥७३॥
रथः कृतान्तवक्त्रेण चोदितो वरवाजियुक् । ययौ भरतनिर्मुक्तो नाराच इव वेगवान् ॥७४॥
शुष्कद्रुमसमारूढो वायसोऽत्यन्तमाकुलः । रराट विरसं धुन्वन्सकृत्पक्षमस्तकम् ॥७५॥
सुमहाशोकसन्तप्ता [1]धूतमुक्तशिरोरुहा । रुरोदाभिमुखं नारी कुर्वती परिदेवनम् ॥७६॥
पश्यन्त्यप्येवमादीनि दुर्निमित्तानि जानकी । व्रजत्येव जिनासक्तसमानसा स्थिरनिश्चया ॥७७॥
महीभृच्छिखरश्रृङ्गकन्दरावनगह्वरम् । निमेषेण समुल्लङ्घ्य योजनं याय्यसौ रथः ॥७८॥
तार्क्ष्यवेगाश्वसंयुक्तः सितकेतुविराजितः । आदित्यरथसङ्काशो रथो यात्यभिवारितः ॥७९॥
रामशक्रप्रियारूढो मनोरथजवो रथः । कृतान्तमातलिक्षिप्तमनुधावः शोभतेतराम् ॥८०॥
तत्रोपाश्रयसंयुक्ततनुः सुपरमासना । । याति सीता सुखं क्षोणीं पश्यन्ती विविधामिति ॥८१॥
क्वचिद्ग्रामे पुरेऽरण्ये सरांसि कमलादिभिः । कुसुमैरतिरम्याणि सवाऽदृश्यन्त सोत्सुकम् ॥८२॥
क्वचिद्घनपटच्छन्ननभोरात्रितमः समम् । दुरालक्ष्यपृथग्भावं विशालं वृक्षगह्वरम् ॥८३॥
च्युतपुष्पफला तन्वी विपन्ना विरलोद्विपा । अटवी क्वचिदुच्छाया विधवा कुलजा यथा ॥८४॥

करना योग्य है ॥६९-७०॥ इस प्रकार सीताके कहनेसे तथा पतिका आदेश नहीं होनेसे सुन्दर भाषण करनेवाली अन्य स्त्रियोंने उसके साथ जानेकी इच्छा नहीं की थी ॥७१॥

तदनन्तर परम प्रमोदको प्राप्त, प्रसन्नमुखी सीता, सिद्धोंको नमस्कार कर उज्ज्वल रथ पर आरूढ़ हो गई ॥७२॥ रत्न तथा सुवर्ण निर्मित रथ पर आरूढ़ हुई सीता उस समय इस तरह सुशोभित हो रही थी जिस तरह कि विमान पर आरूढ़ हुई रत्नमालासे अलंकृत देवाङ्गना सुशोभित होती है ॥७३॥ कृतान्तवक्त्र सेनापतिके द्वारा प्रेरित, उत्तम घोड़ोंसे जुता हुआ वह रथ भरत चक्रवर्तीके द्वारा छोड़े हुए बाणके समान बड़े वेगसे जा रहा था ॥७४॥ उस समय सूखे वृक्ष पर अत्यन्त व्याकुल कौआ, पङ्ख तथा मस्तकको बार-बार कँपाता हुआ विरस शब्द कर रहा था ॥७५॥ जो महाशोकसे संतप्त थी, जिसने अपने बाल कम्पित कर छोड़ दिये थे, तथा जो विलाप कर रही थी ऐसी एक स्त्री सामने आकर रोने लगी ॥७६॥ यद्यपि सीता इन सब अशकुनोंको देख रही थी तथापि जिनेन्द्र भगवान्में आसक्त चित्त होनेके कारण वह दृढ़ निश्चयके साथ आगे चली जा रही थी ॥७७॥ पर्वतोंके शिखर, गड्ढे, गुफाएँ और वन इन सब से ऊँची नीची भूमिको उल्लंघन कर वह रथ निमेष मात्रमें एक योजन आगे बढ़ जाता था ॥७८॥ जिसमें गरुड़के समान वेगशाली घोड़े जुते थे, जो सफेद पताकाओंसे सुशोभित तथा जो कान्तिमें सूर्यके रथके समान था ऐसा वह रथ बिना किसी रोक-टोकके आगे बढ़ता जाता था ॥७९॥ जिस पर रामरूपी इन्द्रकी प्रिया—इन्द्राणी आरूढ़ थी, जिसका वेग मनोरथके समान तीव्र था, और जिसके घोड़े कृतान्तवक्त्ररूपी मातलिके द्वारा प्रेरित थे ऐसा वह रथ अत्यधिक शोभित हो रहा था ॥८०॥ वहाँ जो तकियाके सहारे उत्तम आसनसे बैठी थी ऐसी सीता नाना प्रकारकी भूमिको इस प्रकार देखती हुई जा रही थी ॥८१॥ वह कहीं गाँवमें, कहीं नगरमें और कहीं जंगलमें कमल आदिके फूलोंसे अत्यन्त मनोहर तालाबोंको बड़ी उत्सुकतासे देखती जाती थी ॥८२॥ वह कहीं वृक्षोंको उस विशाल कुरमुदको देखती जाती थी जहाँ मेघ रूपी पटसे आच्छादित आकाशवाली रात्रिके समान सघन अन्धकार था और जिसका पृथक्पना बड़ी कठिनाईसे दिखाई पड़ता था ॥८३॥ कहीं जिसके फल फूल और पत्ते गिर गये थे, जो कृश थी

---

१. धूतमुक्ता शिरोरुहा म० । २. विरला द्विपा म० ।

सहकारसमालग्ना क्वचिन् सुन्दरमाधवी । नेत्येव चपलाऽशोकमभिलषति ॥८५॥
महापादपसङ्घातः क्वचिद्दावविनाशितः । न भाति हृदयं साधोः खलवाक्याहतं यथा ॥८६॥
सुपल्लवलताजालैः क्वचिन् मन्दानिलेरितैः । नृत्यं वसन्तपत्नीव वनराजी निषेवते ॥८७॥
क्वचित् पुलिन्दसङ्घातमहाकलकलारवैः । उद्भ्रान्तविहगा दूरं गता सारङ्गसंहतिः ॥८८॥
क्वचिदुच्चशिलाग्रं पश्यन्ती चोर्ध्वमस्तका । विचित्रधातुनिर्माणैर्नयनैः कौतुकान्वितैः ॥८९॥
क्वचिदच्छाल्पनीराभिः सरिद्भिः शोषितप्रिया । नारीवाश्रुपरिपूर्णाक्षा भाति सन्तापशोभिता ॥९०॥
नानाशकुन्तसद्भावैर्जल्पतीव मनोहरम् । करोतीव क्वचिद्वीक्ष्य निर्झराट्टहसं मुदा ॥९१॥
मकरन्दालिलुब्धाभिर्भृङ्गीभिर्मदमन्थरम् । क्वचित् संस्तूयमानेव शोभते नमिता फलैः ॥९२॥
सपल्लवमहाशाखैर्वृक्षैर्वायुविधूनितैः । उपचारमसक्तेव पुष्पवृष्टिं विमुञ्चते ॥९३॥
एवमादिक्रियासक्तामटवीं श्वापदाकुलाम् । पश्यन्ती याति वैदेही पत्याभावेक्षिमानसा ॥९४॥
तावच्च मधुरं श्रुत्वा स्वनमत्यन्तमांसलम् । दध्यौ किन्वेष रामस्य दुन्दुभिध्वनिरायतः ॥९५॥
इति प्रतर्कमापन्ना दृष्ट्वा भागीरथीमसौ । एतद्बोधप्रतिस्वार्थं जानात्यन्यदिशि श्रुतम् ॥९६॥
अन्तर्नक्रझषग्राहमकरादिविघट्टिताम् । उच्छलोर्मिसमासङ्गात् क्वचित्कम्पितपङ्कजाम् ॥९७॥
समूलोन्मूलितोत्तुङ्गरोधोगतमहीरुहाम् । विदारितमहाशैलमात्रसङ्घातरंहसम् ॥९८॥

जिसकी जड़ें विरली विरली थी, तथा जो छाया (पक्षमें कान्ति) से रहित थी ऐसी कुलीन विधवाके समान अटवीको देखती जाती थी ॥८४॥ उसने देखा कि कहीं आम्रवृक्षसे लिपटी सुन्दर माधवी लता, चपल वेश्याके समान निकटवर्ती अशोक वृक्षपर अभिलाषा कर रही है ॥८५॥ उसने देखा कि कहीं दावानलसे नाशको प्राप्त हुए बड़े बड़े वृक्षोंका समूह दुर्जनके वाक्योंसे ताड़ित साधुके हृदयके समान सुशोभित नहीं हो रहा है ॥८६॥ कहीं उसने देखा कि मन्द मन्द वायुसे हिलते हुए उत्तम पल्लवों वाली लताओंके समूहसे वनराजी ऐसी सुशोभित हो रही है मानो वसन्तकी पत्नी नृत्य ही कर रही हो ॥८७॥ कहीं उसने देखा कि भीलोंके समूहकी तीव्र कल-कल ध्वनिसे जिसने पक्षियोंको उड़ा दिया है ऐसी हरिणोंकी श्रेणी बहुत दूर आगे निकल गई है ॥८८॥ वह कहीं विचित्र धातुओंसे निर्मित, कौतुकपूर्ण नेत्रोंसे, मस्तक ऊपर उठा पर्वतकी ऊँची चोटीको देख रही थी ॥८९॥ कहीं उसने देखा कि स्वच्छ तथा अल्प जल वाली नदियोंसे यह अटवी उस संतापवती विरहिणी स्त्रीके समान जान पड़ती है कि जिसका पति परदेश गया है और जिसके नेत्र आसुओंसे परिपूर्ण हैं ॥९०॥ यह अटवी कहीं तो ऐसी जान पड़ती है मानो नाना पक्षियोंके शब्दके बहाने मनोहर वार्तालाप ही कर रही हो और कहीं उज्ज्वल निर्झरों से युक्त होनेके कारण ऐसी विदित होती है मानो हर्षसे अट्टहास ही कर रही हो ॥९१॥ कहीं मकरन्दकी लोभी भ्रमरियोंसे ऐसी जान पड़ती है मानो मदसे मन्थर ध्वनिमें भ्रमरियाँ उसकी स्तुति ही कर रही हों और फलोंके भारसे वह संकोचवश नम्र हुई जा रही हो ॥९२॥ कहीं उसने देखा कि वायुसे हिलते हुए उत्तमोत्तम पल्लवों और महाशाखाओंसे युक्त वृक्षोंके द्वारा यह अटवी विनय प्रदर्शित करनेमें संलग्नकी तरह पुष्पवृष्टि छोड़ रही है ॥९३॥ जिसका मन रामकी अपेक्षा कर रहा था ऐसी सीता उपर्युक्त क्रियाओंमें आसक्त एवं वन्य पशुओंसे युक्त अटवीको देखती हुई आगे जा रही थी ॥९४॥

तदनन्तर उसी समय अत्यन्त पुष्ट मधुर शब्द सुनकर वह विचार करने लगी कि क्या यह रामके दुन्दुभिका विशाल शब्द है ? ॥९५॥ इस प्रकारका तर्क कर तथा आगे गङ्गा नदीको देखकर उसने जान लिया कि यह अन्य दिशामें सुनाई देनेवाला इसीका शब्द है ॥९६॥ उसने देखा कि यह गङ्गानदी कहीं तो भीतर क्रीड़ा करनेवाले नाके, मच्छ तथा मकर आदिसे विघट्टित है, कहीं उठती हुई बड़ी-बड़ी तरङ्गोंके संसर्गसे इसमें कमल कम्पित हो रहे हैं ॥९७॥ कहीं इसने

समुद्रकोडपर्यन्तां सगरात्मजनिर्मिताम् । आरसातलगम्भीरां पुलिनैः शोभितां सितैः ॥९९॥
फेनमालासमासक्तविशालावर्तभैरवाम् । प्रान्तावस्थितसत्त्वानशकुन्तगणराजिताम् ॥१००॥
अश्वास्ते तां समुत्तीर्णाः पवनोपमरंहसः । [1]सम्यक्त्वसारयोगेन संसृतिं साधवो यथा ॥१०१॥
ततो मेरुवदक्षोभ्यचित्तोऽपि सततं भवन् । सेनानीः परमं प्राप विषादं सदयस्तदा ॥१०२॥
किञ्चिद्वक्तुमशक्तात्मा महादुःखनिपीडितः । निरुद्धकण्ठः स्खलितुं प्रवृत्तोष्णाश्रुकः ॥१०३॥
विधाय स्यन्दनं लग्नः कर्तुं क्रन्दनमुत्कटम् । निधाय मस्तके हस्तौ म्लानाङ्गो विगतद्युतिः ॥१०४॥
ततो जगाद वैदेही भग्नहृदया सती । कृतान्तवक्त्र कस्मात्त्वं विरौषीदं सुदुःखितवत् ॥१०५॥
प्रस्तावेऽत्यन्तहर्षस्य विषादयसि मामपि । विजनेऽस्मिन् महारण्ये कस्मादाश्रितरोदनः ॥१०६॥
स्वाम्यादेशस्य कृत्यत्वाद्वक्तव्यत्वान्नियोगतः । कथञ्चिद्रोदनं कृत्वा यथावत्स न्यवेदयत् ॥१०७॥
विषाग्निशस्त्रसदृशं शुभे दुर्जनभाषितम् । श्रुत्वा देवेन दुष्कीर्तेः[2] परमं भयमीयुषा ॥१०८॥
सन्त्यक्तेयं दुस्त्यजं स्नेहं दोहदानां नियोगतः । त्यक्तासि [3]देवि रामेण श्रमणेन रतिर्यथा ॥१०९॥
स्वामिन्यस्ति प्रकारोऽसौ नैव येन स विष्णुना । अनुनीतस्तवार्थेन न तथाप्यत्यजद् ग्रहम् ॥११०॥
तस्मिन् स्वामिनि नीरागे शरणं तेऽस्ति न क्वचित् । धर्मसम्बन्धमुक्तायां जीवे सौख्यस्थितेरिव ॥१११॥

किनारे पर स्थित ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंको जड़से उखाड़ डाला है, कहीं इसके वेगने बड़े-बड़े पर्वतोंकी चट्टानोंके समूहको विदारित कर दिया है ॥९८॥ यह समुद्रकी गोदमें फैली है, राजा सगरके पुत्रों द्वारा निर्मित है, रसातल तक गहरी है, सफेद पुलिनोंसे शोभित है ॥९९॥ फेनके समूहसे सहित बड़ी-बड़ी भँवरोंसे भयंकर है, और समीपमें स्थित पक्षियोंके समूहसे सुशोभित है ॥१००॥ पवनके समान वेगशाली वे घोड़े उस गङ्गानदीको उस तरह पार कर गये जिस तरह कि साधु सम्यग्दर्शनके सार पूर्ण योगसे संसारको पार कर जाते हैं ॥१०१॥

तदनन्तर कृतान्तवक्त्र सेनापति यद्यपि मेरुके समान सदा निश्चल चित्त रहता था तथापि उस समय वह दया सहित होता हुआ परम विषादको प्राप्त हो गया ॥१०२॥ कुछ भी कहनेके लिए जिसकी आत्मा अशक्त थी, जो महादुःखसे ताड़ित हो रहा था, तथा जिसके बलात् आँसू निकल रहे थे ऐसा कृतान्तवक्त्र अपने आप पर नियन्त्रण करने तथा खड़े होनेके लिए असमर्थ हो गया ॥१०३॥ तदनन्तर जिसका समस्त शरीर ढीला पड़ गया था और जिसकी कान्ति नष्ट हो गई थी ऐसा सेनापति रथ खड़ा कर और मस्तक पर दोनों हाथ रखकर जोर-जोरसे रुदन करने लगा ॥१०४॥ तत्पश्चात् जिसका हृदय टूट रहा था ऐसी सती सीताने कहा कि हे कृतान्तवक्त्र ! तू अत्यन्त दुःखी मनुष्यके समान इस तरह क्यों रो रहा है ? ॥१०५॥ तू इस अत्यधिक हर्षके अवसरमें मुझे भी विषाद युक्त कर रहा है। बता तो सही कि तू इस निर्जन महावनमें क्यों रो रहा है ॥१०६॥ स्वामीका आदेश पालन करना चाहिए अथवा अपने नियोगके अनुसार यथार्थ बात अवश्य कहना चाहिए इन दो कारणोंसे जिस किसी तरह रोना रोक कर उसने यथार्थ बातका निरूपण किया ॥१०७॥ उसने कहा कि हे शुभे ! विष अग्नि अथवा शस्त्रके समान दुर्जनोंका कथन सुनकर जो अपकीर्तिसे अत्यधिक भयभीत हो गये थे ऐसे श्रीरामने दुःखसे छूटने योग्य स्नेह छोड़कर दोहलोंके बहाने हे देवि ! तुम्हें उस तरह छोड़ दिया है जिस तरह कि मुनि रतिको छोड़ देते हैं ॥१०८-१०९॥ हे स्वामिनि ! यद्यपि ऐसा कोई प्रकार नहीं रहा जिससे कि लक्ष्मणने आपके विषयमें उन्हें समझाया नहीं हो तथापि उन्होंने अपनी हठ नहीं छोड़ी ॥११०॥ जिस प्रकार धर्मके सम्बन्धसे रहित जीवको सुखस्थितिकी कहीं शरण नहीं प्राप्त होती उसी प्रकार

१. सम्यक् संसारयोगेन (?) म० । २. दुःकीर्तेः म० । ३. देव म० ।

न सविधौ न च भ्राता न च बान्धवसंहतिः । आश्रयस्तेऽधुना देवि मृगाकुलमिदं वनम् ॥११२॥
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा वज्रेणेवाभिताडिता । हृदये दुःखसम्भारव्याप्ता मोहमुपागता ॥११३॥
संज्ञां प्राप्य च कृच्छ्रेण स्खलितोद्गतवर्णगीः । जगादापृच्छनं कर्तुं सकृन्मे नाथमीक्षय ॥११४॥
सोऽवोचद्देवि दूरं सा नगरी रहिताऽधुना । कुतः पश्यसि पद्माभं परमं चण्डशासनम् ॥११५॥
ततोऽश्रुजलधारासिः क्षालयन्त्यास्यपङ्कजम् । तथापि निर्भरस्नेहरसाक्रान्ता जगादिदम् ॥११६॥
सेनापते त्वया वाच्यो रामो मद्वचनादिदम् । यथा मत्त्यागजः कार्यो न विषादस्त्वया प्रभो ॥११७॥
अवलम्ब्य परं धैर्यं महापुरुष सर्वथा । सदा रक्ष प्रजां सम्यक्पितेव न्यायवत्सलः ॥११८॥
परिप्राप्तकलापारं नृपमाह्लादकारणम् । शरच्चन्द्रमसं यद्वदिच्छन्ति सततं प्रजाः ॥११९॥
संसाराद् दुःखनिर्घोराम्मुच्यन्ते येन देहिनः । भव्यास्तद्दर्शनं सम्यगाराधयितुमर्हसि ॥१२०॥
साम्राज्यादपि पद्माभ तदेव बहु मन्यते । नश्यत्येव पुना राज्यं दर्शनं स्थिरसौख्यदम् ॥१२१॥
तदभव्यजुगुप्सातो भीतेन पुरुषोत्तम । न कथञ्चित्त्वया त्याज्यं नितान्तं तद्धि दुर्लभम् ॥१२२॥
रत्नं पाणितलं प्राप्तं परिभ्रष्टं महोदधौ । उपायेन पुनः केन सङ्गतिं प्रतिपद्यते ॥१२३॥
क्षिप्त्वामृतफलं कूपे महाऽऽपत्तिभयङ्करे । परं प्रपद्यते दुःखं पश्चात्तापहतः शिशुः ॥१२४॥
यस्य यत्सदृशं तस्य प्रवदन्त्यनिवारितः । को ह्यस्य जगतः कर्तुं शक्नोति मुखबन्धनम् ॥१२५॥

उन स्वामीके निःस्नेह होने पर आपके लिए कहीं कोई शरण नहीं जान पड़ता ॥१११॥ हे देवि ! तेरे लिए न माता शरण है, न भाई शरण है, और न कुटुम्बीजनोंका समूह ही शरण है। इस समय तो तेरे लिए मृगोंसे व्याप्त यह वन ही शरण है ॥११२॥

तदनन्तर सीता उसके वचन सुन हृदयमें वज्रसे ताड़ितके समान अत्यधिक दुःखसे व्याप्त होती हुई मोहको प्राप्त हो गई ॥११३॥ बड़ी कठिनाईसे चेतना प्राप्त कर उसने लड़खड़ाते अक्षरों वाली वाणीमें कहा कि कुछ पूछनेके लिए मुझे एक बार स्वामीके दर्शन करा दो ॥११४॥ इसके उत्तरमें कृतान्तवक्त्रने कहा कि हे देवि ! इस समय तो वह नगरी बहुत दूर रह गई है अतः अत्यधिक कठोर आज्ञा देनेवाले स्वामी-रामको किस प्रकार देख सकती हो ? ॥११५॥ तदनन्तर सीता यद्यपि अश्रुजलकी धारामें मुखकमलका प्रक्षालन कर रही थी तथापि अत्यधिक स्नेह रूपी रससे आक्रान्त हो उसने यह कहा कि ॥११६॥ हे सेनापते ! तुम मेरी ओरसे रामसे यह कहना कि हे प्रभो ! आपको मेरे त्यागसे उत्पन्न हुआ विषाद नहीं करना चाहिए ॥११७॥ हे महापुरुष ! परम धैर्यका अवलम्बन कर सदा पिताके समान न्यायवत्सल हो प्रजाकी अच्छी तरह रक्षा करना ॥११८॥ क्योंकि जिस प्रकार प्रजा पूर्ण कलाओंको प्राप्त करनेवाले शरद् ऋतुके चन्द्रमाकी सदा इच्छा करती है—उसे चाहती है उसी प्रकार कलाओंके पारको प्राप्त करनेवाले एवं आह्लादके कारण भूत राजाकी प्रजा सदा इच्छा करती है—उसे चाहती है ॥११९॥ जिस सम्यग्दर्शनके द्वारा भव्य जीव दुःखोंसे भयंकर संसारसे छूट जाते हैं उस सम्यग्दर्शनकी अच्छी तरह आराधना करनेके योग्य हो ॥१२०॥ हे राम ! साम्राज्यकी अपेक्षा वह सम्यग्दर्शन ही अधिक माना जाता है क्योंकि साम्राज्य तो नष्ट हो जाता है परन्तु सम्यग्दर्शन स्थिर सुखको देनेवाला है ॥१२१॥ हे पुरुषोत्तम ! अभव्योंके द्वारा की हुई जुगुप्सासे भयभीत होकर तुम्हें वह सम्यग्दर्शन किसी भी तरह नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि वह अत्यन्त दुर्लभ है ॥१२२॥ हथेलीमें आया रत्न यदि महासागरमें गिर जाता है तो फिर वह किस उपायसे प्राप्त हो सकता है ? ॥१२३॥ अमृत-फलको महा आपत्तिसे भयंकर कुँएमें फेंककर पश्चात्तापसे पीड़ित बालक परम दुःखको प्राप्त होता है ॥१२४॥ जिसके अनुरूप जो होता है वह उसे बिना किसी प्रतिबन्धके कहता ही है क्योंकि

श्रूयतोऽपि त्वया तत्तत्स्वार्थनाशनकारणम् । [1]पडेनेव न कर्तव्यं हृदये गुणभूषण ॥१२५॥
तीव्राज्ञोऽपि यथाभूतो जगदर्थावभासनात् । विकारमतुं[2] न प्राप्तो भवादित्य इव प्रियः ॥१२७॥
भजस्व प्रस्खलं[3] दानैः प्रीतियोगैर्निजं जनम् । परं च शीलयोगेन मित्रं सद्भावसेवनैः ॥१२८॥
यथोपपन्नमन्नेन समेतमतिथिं गृहम् । साधून् समस्तभावेन प्रणामाभ्यर्चनादिभिः ॥१२९॥
क्षान्त्या क्रोधं मृदुत्वेन मानं निर्विषयस्थितम्[4] । मायामार्जवयोगेन जय्या लोभं तनूकुरु ॥१३०॥
सर्वशास्त्रप्रवीणस्य नोपदेशस्तव क्षमः । चापलं हृदयस्येदं स्वत्प्रेमग्रहयोगिनः ॥१३१॥
कृतं वश्यतया किंचिद् परिहासेन वा पुनः । मयाऽविनयमात्रं तं क्षमितुं प्रभवन्तु मे ॥१३२॥
एतावद्दर्शनं नूनं भवता सह मे प्रभो । पुनः पुनरतो वच्मि क्षन्तव्यं साध्वसाधु वा ॥१३३॥
इत्युक्त्वा पूर्वमेवासावावर्तीर्णा रथोदरात् । पपात धरणीपृष्ठे तृणोपलसमाकुले ॥१३४॥
धरण्यां पतिता तस्यां मूर्च्छानिश्चेतनीकृता । रराज जानकी यद्वत् पर्यस्ता रत्नसंहतिः ॥१३५॥
नष्टचेष्टां तकां दृष्ट्वा सेनानीरतिदुःखितः । अचिन्तयदियं प्राणान् दुष्करं धारयिष्यति ॥१३६॥
अरण्येऽत्र महाभीष्मे श्वापदसङ्घातसङ्कुले । विद्यते न धीरोऽपि प्रत्याशां जीवितं प्रति ॥१३७॥
मृगाक्षीमेतिकां त्यक्त्वा विपिनेऽस्मिन्नमुत्तमे । स्थानं न तत् प्रपश्यामि यत्र मां शान्तिरेष्यति ॥१३८॥
इतो निर्दयताऽत्युग्रा स्वाम्याज्ञा निश्चिताऽन्यतः । अहो दुःखमहावर्तमध्यं प्राप्तोऽस्मि पापकः ॥१३९॥

इस संसारका मुख बन्धन करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥१२५॥ हे गुणभूषण ! यद्यपि आत्म-हितको नष्ट करनेवाली अनेक बातें आप श्रवण करेंगे तथापि पडिल (पागल) के समान उन्हें हृदयमें नहीं धारण करना—विचार पूर्वक ही कार्य करना ॥१२६॥ जिस प्रकार सूर्य यद्यपि अत्यन्त तेजस्वी रहता है तथापि संसारके समस्त पदार्थोंको प्रकाशित करनेसे यथाभूत है एवं कभी विकारको प्राप्त नहीं होता इसलिए लोगोंको प्रिय है उसी प्रकार यद्यपि आप तीव्र शासनसे युक्त हो तथापि जगत्के समस्त पदार्थोंको ठीक-ठीक जाननेके कारण यथाभूत यथार्थ रूप रहना एवं कभी विकारको प्राप्त नहीं होनेसे सूर्यके समान सबको प्रिय रहना ॥१२७॥ दुष्ट मनुष्यको कुछ देकर वश करना, आत्मीय जनोंको प्रेम दिखाकर अनुकूल रखना, शत्रुको उत्तमशील अर्थात् निर्दोष आचरणसे वश करना और मित्रको सद्भाव पूर्वक की गई सेवाओंसे अनुकूल रखना ॥१२८॥ क्षमासे क्रोधको, मार्दवसे चाहे जहाँ होनेवाले मानको, आर्जवसे मायाको और धैर्यसे लोभको कृश करना ॥१२९-१३०॥ हे नाथ ! आप तो समस्त शास्त्रोंमें प्रवीण हो अतः आपको उपदेश देना योग्य नहीं है, यह जो मैंने कहा है वह आपके प्रेम रूपी ग्रहसे संयोग रखनेवाले मेरे हृदय-की चपलता है ॥१३१॥ हे स्वामिन् ! आपके वशीभूत होनेसे अथवा परिहासके कारण यदि मैंने कुछ अविनय किया हो तो उस सबको क्षमा कीजिये ॥१३२॥ हे प्रभो ! जान पड़ता है कि आपके साथ मेरा दर्शन इतना ही था इसलिए बार-बार कह रही हूँ कि मेरी प्रवृत्ति उचित हो अथवा अनुचित सब क्षमा करने योग्य है ॥१३३॥ जो रथके मध्यसे पहले ही उतर चुकी थी ऐसी सीता इस प्रकार कहकर तृण तथा पत्थरोंसे व्याप्त पृथिवी पर गिर पड़ी ॥१३४॥ उस पृथिवी पर पड़ी, मूर्च्छासे निश्चल सीता ऐसी जान पड़ती थी मानो रत्नोंका समूह ही बिखर गया हो ॥१३५॥ चेष्टा हीन सीताको देखकर सेनापति अत्यन्त दुःखी हो इस प्रकार विचार किया कि यह प्राणोंको बड़ी कठिनाईसे धारण कर सकेगी ॥१३६॥ हिंसक जीवोंके समूहसे भरे हुए इस महा भयंकर वनमें धीर वीर मनुष्य भी जीवित रहनेकी आशा नहीं रख सकता ॥१३७॥ इस विकट वनमें इस मृगनयनीको छोड़कर मैं वह स्थान नहीं देखता जहाँ मुझे शान्ति प्राप्त हो सकेगी ॥१३८॥ इस ओर अत्यन्त भयंकर निर्दयता है और उस ओर स्वामीकी सुदृढ़ आज्ञा है। अहो ! मैं पापी

१. पडेनेव अहिलेनेव । पडः अहिलः इति श्री० हि० । एडेनेव म० । २. -मतुं म०, ग०, ख० । ३. प्रस्खलं म० । ४. निर्विषया स्थितम् म० ।

धिग् भृत्यतां जगन्निन्द्यां यत् किञ्चन विधायिनीम् । पराधत्तीकृतात्मानं क्षुद्रमानवसेविताम् ॥१४०॥
यन्त्रचेष्टितुलस्यस्य दुःखैकनिहितात्मनः । भृत्यस्य जीवितादूरं वरं कुक्कुरजीवितम् ॥१४१॥
[1]नरेन्द्रशक्तिवश्यः स निन्द्यनामा पिशाचवत् । विदधाति न किं भृत्यः किं वा न परिभाषते ॥१४२॥
चित्रचापसमानस्य निःकृत्यगुणधारिणः । नित्यनम्रशरीरस्य निन्द्यं भृत्यस्य जीवितम् ॥१४३॥
[2]सङ्गारकूटकस्येव पश्चाद्विमुखचेतसः । निर्माल्यवद्वहिर्मोक्षि धिग्धिग्भृत्यनाम्नोऽसुधारणम् ॥१४४॥
पश्चात् कृतगुरुत्वस्य लोपार्थमपि नामिनः । तुलायन्त्रसमानस्य धिग्भृत्यस्याऽसुधारणम् ॥१४५॥
उन्नत्या त्रपया दीप्त्या वर्जितस्य निजेच्छया । मा स्म भूज्जन्म भृत्यस्य पुस्तकर्मसमात्मनः ॥१४६॥
विमानस्यापि मुक्तस्य गत्या गुरुतया समम् । अधस्ताद्गच्छतो नित्यं धिग्भृत्यस्यासुधारणम् ॥१४७॥
निःसत्त्वस्य महामांसविक्रयं कुर्वतः सदा । निर्मदस्यास्वतन्त्रस्य धिग्भृत्यस्यासुधारणम् ॥१४८॥
भृत्यताकरणीयेन कर्मणाऽस्मि वशीकृतः । एतां [3]यत्र विमुञ्चामि प्रस्तावेऽप्यत्र दारुणे ॥१४९॥
इति विमृश्य सन्त्यज्य सीतां धर्मधियं यथा । अयोध्याऽभिमुखोऽयासीत्सेनानीः सत्रपात्मकः ॥१५०॥
इतराऽपि परिप्राप्तसंज्ञा परमदुःखिता । यूथभ्रष्टेव सारङ्गी बालाऽक्रन्दं समाश्रिता ॥१५१॥

दुःख रूपी महाआवर्तके बीच आ पड़ा हूँ ॥१३९॥ जिसमें इच्छाके विरुद्ध चाहे जो करना पड़ता है, आत्मा परतन्त्र हो जाती है, और क्षुद्र मनुष्य ही जिसकी सेवा करते हैं ऐसी लोकनिन्द्य दासवृत्तिको धिक्कार है ॥१४०॥ जो यन्त्रकी चेष्टाओंके समान है तथा जिसकी आत्मा निरन्तर दुःख ही उठाती है ऐसे सेवकके जीवनकी अपेक्षा कुक्कुरका जीवन बहुत अच्छा है ॥१४१॥ जो नरेन्द्र अर्थात् राजा (पक्षमें मान्त्रिक) की शक्तिके आधीन है तथा निन्द्य नामका धारक है ऐसा सेवक पिशाचके समान क्या नहीं करता है ? और क्या नहीं बोलता है ? ॥१४२॥ जो चित्र लिखित धनुषके समान है, जो कार्य रहित गुण अर्थात् डोरी (पक्षमें ज्ञानादि) से सहित है तथा जिसका शरीर निरन्तर नम्र रहता है ऐसे भृत्यका जीवन निन्द्य जीवन है ॥१४३॥ सेवक कचड़ा घरके समान है। जिस प्रकार लोग कचड़ा घरमें कचड़ा डालकर पीछे उससे अपना चित्त दूर हटा लेते हैं उसी प्रकार लोग सेवकसे काम लेकर पीछे उससे चित्त हटा लेते हैं—उसके गौरवको भूल जाते हैं, जिस प्रकार कचड़ाघर निर्माल्य अर्थात् उपभुक्त वस्तुओंको धारण करता है उसी प्रकार सेवक भी स्वामीकी उपभुक्त वस्तुओंको धारण करता है। इस प्रकार सेवक नामको धारण करनेवाले मनुष्यके जीवित रहनेको बार-बार धिक्कार है ॥१४४॥ जो अपने गौरवको पीछे कर देता है तथा पानी प्राप्त करनेके लिए भी जिसे झुकना पड़ता है इस प्रकार तुला यन्त्रकी तुल्यताको धारण करनेवाले भृत्यका जीवित रहना विकार पूर्ण है ॥१४५॥ जो उन्नति, लज्जा, दीप्ति और स्वयं निजकी इच्छासे रहित है तथा जिसका स्वरूप मिट्टीके पुतलेके समान क्रियाहीन है ऐसे सेवकका जीवन किसीको प्राप्त न हो ॥१४६॥ जो विमान अर्थात् व्योमयान (पक्षमें मान रहित) होकर भी गतिसे रहित है तथा जो गुरुताके साथ-साथ निरन्तर नीचे जाता है ऐसे भृत्यके जीवनको धिक्कार है ॥१४७॥ जो स्वयं शक्तिसे रहित है, अपना मांस भी बेचता है, सदा मदसे शून्य है और परतन्त्र है ऐसे भृत्यके जीवनको धिक्कार है ॥१४८॥ जिसके उदयमें भृत्यता करनी पड़ती है ऐसे कर्मसे मैं विवश हो रहा हूँ इसीलिए तो इस दारुण अवसरके समय भी इस भृत्यताको नहीं छोड़ रहा हूँ ॥१४९॥ इस प्रकार विचार कर धर्म बुद्धिके समान सीताको छोड़कर सेनापति लज्जित होता हुआ अयोध्याके सम्मुख चला गया ॥१५०॥

तदनन्तर इधर जिसे चेतना प्राप्त हुई थी ऐसी सीता अत्यन्त दुःखी होती हुई यूथसे

---

१. राजा मन्त्रवादी च । २. सत्कार म० । संसार ब० । संकारः कचारा इति क्षीरत्त टि० । ३. येन म०, क०, ख०, ज० ।

रुदत्याः करुणं तस्याः पुष्पमोक्षापदेशतः । वनस्पतिसमूहेऽपि नूनं रुदितमेव तत् ॥१५२॥
निसर्गरमणीयेन स्वरेण परिदेवनम् । ततोऽसौ कर्तुमारब्धा महाशोकवशीकृता ॥१५३॥
हा पद्मेक्षण हा पद्म हा नरोत्तम हा प्रभो । यत्तु प्रतिवचो देव कुरु साधारणं मम ॥१५४॥
सततं साधुचेष्टस्य सद्गुणस्य सचेतसः । न तेऽस्ति दोषगन्धोऽपि महापुरुषतायुजः ॥१५५॥
पुरा स्वयंकृतस्येदं प्राप्तं मे कर्मणः फलम् । अवश्यं परिभोक्तव्यं व्यसनं परमोत्कटम् ॥१५६॥
किं करोतु प्रियोऽप्यस्यो जनकः पुरुषोत्तमः । किं वा बान्धवलोको मे स्वकर्मण्युदयस्थिते ॥१५७॥
नूनं जन्मनि पूर्वस्मिन्नसत्पुण्यमुपार्जितम् । मन्दभाग्याजनेऽरण्ये दुःखं प्राप्ताऽस्मि दुस्तरम् ॥१५८॥
अवर्णवचनं नूनं मया गोष्ठीष्वनुष्ठितम् । यस्योदयेन सम्प्राप्तमिदं व्यसनमीदृशम् ॥१५९॥
गुरोः समग्रमादाय नूनमन्यत्र जन्मनि । व्रतं मया पुनर्भग्नं यस्येदं फलमीदृशम् ॥१६०॥
अथवा परुषैर्वाक्यैः कस्यित् विषफलोपमैः[1] । निर्भर्त्सितो भवेऽन्यस्मिन् जातं यद्दुःखमीदृशम् ॥१६१॥
अन्यत्र जनने मन्ये पद्मखण्डस्थितं मया । चक्राह्वयुगलं भिन्नं स्वामिना रहितास्मि यत् ॥१६२॥
किं वा सरसि पद्मादिभूषिते रचिताश्रयम् । पुरुषाणामुदाराणां गतिलीलाविलम्बकम् ॥१६३॥
जघनेन वरस्त्रीणां सौन्दर्येण कृतोपमम् । सौमित्रिसौधसच्छायं पद्मारुणमुखक्रमम् ॥१६४॥
वियोजितं भवेऽन्यस्मिन्हंसयुग्मं कुचेष्टया । प्राप्ताऽस्मि वासनं घोरं येनेदृक् हताशिका ॥१६५॥
गुञ्जाफलार्द्धवर्णाक्षमन्योन्यार्पितमानसम् । कृष्णागुरुभवाश्यन्तघनोद्यद्धूमधूसरम् ॥१६६॥

बिछुड़ी हरिणीके समान रोदन करने लगी ॥१५१॥ करुण रोदन करनेवाली सीताके दुःखसे दुःखी होकर वृक्षोंके समूहने भी मानो पुष्प छोड़नेके बहाने ही रोदन किया था ॥१५२॥ तदनन्तर महा महा शोकके वशीभूत सीता स्वभाव सुन्दर स्वरसे विलाप करने लगी ॥१५३॥ वह कहने लगी कि हे कमललोचन ! हा पद्म ! हा नरोत्तम ! हा प्रभो ! हा देव ! उत्तर देओ मुझे सान्त्वना करो ॥१५४॥ आप निरन्तर उत्तम चेष्टाके धारक हैं, सद्गुणोंसे सहित हैं, सहृदय हैं और महापुरुषतासे युक्त हैं। मेरे त्यागमें आपका लेश मात्र भी दोष नहीं है ॥१५५॥ मैंने पूर्व भवमें जो स्वयं कर्म किया था उसीका यह फल प्राप्त हुआ है अतः यह बहुत भारी दुःख मुझे अवश्य भोगना चाहिए ॥१५६॥ जब मेरा अपना किया कर्म उदयमें आ रहा है तब पति, पुत्र, पिता, नारायण अथवा अन्य परिवारके लोग क्या कर सकते हैं ॥१५७॥ निश्चित ही मैंने पूर्व भवमें पापका उपार्जन किया होगा इसीलिए तो मैं अभागिनी निर्जन वनमें परम दुःखको प्राप्त हुई हूँ ॥१५८॥ निश्चित ही मैंने गोष्ठियोंमें किसीका मिथ्या दोष कहा होगा जिसके उदयसे मुझे यह ऐसा संकट प्राप्त हुआ है ॥१५९॥ निश्चित ही मैंने अन्य जन्ममें गुरुके समग्र व्रत लेकर भग्न किया होगा जिसका यह ऐसा फल प्राप्त हुआ है ॥१६०॥ अथवा अन्य भवमें मैंने विष फलके समान कठोर वचनोंसे किसीका तिरस्कार किया होगा इसीलिए मुझे ऐसा दुःख प्राप्त हुआ है ॥१६१॥ जान पड़ता है कि मैंने अन्य जन्ममें कमलवनमें स्थित चकवा चकवीके युगलको अलग किया होगा इसीलिए तो मैं भर्तासे रहित हुई हूँ ॥१६२॥ अथवा जो कमल आदिसे विभूषित सरोवरमें निवास करता था, जो उत्तम पुरुषोंकी गमन सम्बन्धी लीलामें विलम्ब उत्पन्न करनेवाला था, जो अपने कल-कूजन और सौन्दर्यमें स्त्रियोंकी उपमा प्राप्त करता था, जो लक्ष्मणके महलके समान उत्तम कांतिसे युक्त था, और जिसके मुख तथा चरण कमलके समान लाल थे ऐसे हंस-हंसियोंके युगलको मैंने पूर्वभवमें अपनी कुचेष्टासे जुदा-जुदा किया होगा इसीलिए तो मैं अभागिनी इस घोर निष्कासनको प्राप्त हुई हूँ—घरसे अलग की गई हूँ ॥१६३-१६५॥ अथवा गुंजाफलके अर्ध भाग के समान जिसके नेत्र थे, परस्पर एक दूसरेके लिए जिसने अपना हृदय सौंप रक्खा था, जो काला-

---

१. फलविषोपमैः म० ।

समारब्धसुखक्रीडं कण्ठस्थकलनिःस्वनम् । पारावतयुगं पापचेतसा स्यात्पृथक्कृतम् ॥१६७॥
अस्थाने स्थापितं किं वा बद्धं मारितमेव वा । सम्भावनादिनिर्युक्तं दुःखमीदृगताऽस्मि यत् ॥१६८॥
वसन्तसमये रम्ये किं वा कुसुमितांघ्रिपे । परपुष्टयुगं भिन्नं यस्येदं फलमीदृशम् ॥१६९॥
अथवा श्रमणाः क्षान्ता सद्वृत्ता निर्जितेन्द्रियाः । निन्दिता विदुषां वन्द्या दुःखं प्राप्ताऽस्मि यन्महत् ॥१७०॥
सद्भृत्यपरिवारेण शासमानन्दकारिणा । कृतसेवा सदा यासं स्थिता स्वर्गसमे गृहे ॥१७१॥
साऽधुना क्षीणपुण्यौघा निर्बन्धुर्गहने[2] वने । दुःखसागरनिर्मग्ना कथं तिष्ठामि पापिका ॥१७२॥
नानारत्नकरोद्योते सत्प्रच्छदपटावृते । शयनीये महारम्ये सर्वोपकरणान्विते ॥१७३॥
वंशत्रिसरिकावीणासङ्गीतमधुरस्वनैः । असेविषि सुखं निद्रां प्रत्यूषसि तथा च या ॥१७४॥
अयशोदावनिर्दग्धा साऽहं सम्प्रति दुःखिनी । प्रधाना रामदेवस्य महिषी परिकीर्तिता ॥१७५॥
तिष्ठाम्येकाकिनी कष्टे कान्तारे दुःकृतात्मिका । कीटकर्कशदर्भाग्रावीथाख्ये महीतले ॥१७६॥
म्रियन्ते यत्नवान्येमामवस्थामीदृशीं मयि । ततो वज्रविनिर्माणाः प्राणा नूनमिमे मर्के[3] ॥१७७॥
अवस्थां च परां प्राप्य शतधा यन्न दीर्यते । अहो हृदय नास्त्यन्यः सदृशस्तव साहसी ॥१७८॥
किं करोमि क्व गच्छामि कं यामि कमाश्रये । कथं तिष्ठामि किं जातमिदं हा मातरीदृशम् ॥१७९॥
हा पद्म सद्गुणाम्भोधे हा नारायण भक्तक । हा तात किं न मां वेत्सि हा मातः किं न रक्षसि ॥१८०॥
अहो विद्याधराधीश भ्रातः कृष्णबलप्रिय । दुःखावर्तकृतभ्रान्तिरियं तिष्ठाम्यलक्षणा ॥१८१॥

गुरु चन्दनसे उत्पन्न हुए सघन धूमके समान धूसर वर्ण था, जो सुखसे क्रीड़ा कर रहा था, और कण्ठमें मनोहर अव्यक्त शब्द विद्यमान था ऐसे कबूतर-कबूतरियोंके युगलको मैंने पाप पूर्ण चित्त से जुदा जुदा किया होगा। अथवा अनुचित स्थानमें उसे रक्खा होगा अथवा बाँधा होगा अथवा मारा होगा, अथवा सन्मान—लालन-पालन आदिसे रहित किया होगा इसीलिए मैं ऐसे दुःखको प्राप्त हुई हूँ ॥१६६–१६८॥ अथवा जब सब वृक्ष फूलोंसे युक्त हो जाते हैं ऐसे रमणीय वसन्तके समय कोकिल और कोकिलाओंके युगलको मैंने पृथक् पृथक् किया होगा जिसका यह ऐसा फल प्राप्त हुआ है ॥१६९॥ अथवा मैंने क्षमाके धारक, सदाचारके पालक, इन्द्रियोंको जीतने वाले तथा विद्वानोंके द्वारा वन्दनीय मुनियोंकी निन्दा की होगी जिसके फलस्वरूप इस महादुःख को प्राप्त हुई हूँ ॥१७०॥ आज्ञा मिलते ही हर्षित होने वाले उत्तम भृत्योंके समूह जिसकी सदा सेवा करते थे ऐसी जो मैं पहले स्वर्ग तुल्य घरमें रहती थी वह मैं इस समय बन्धुजनसे रहित इस सघन वनमें कैसे रहूँगी ? मेरे पुण्यका समूह क्षय हो गया है, मैं दुःखोंके सागरमें डूब रही हूँ तथा मैं अत्यन्त पापिनी हूँ ॥१७१॥ जिस पर नाना रत्नोंकी किरणोंका प्रकाश फैल रहा था, जो उत्तर चादरसे आच्छादित था, महा रमणीय था तथा सब प्रकारके उपकरणोंसे सहित था ऐसे उत्तम शयन पर सुखसे निद्राका सेवन करती थी तथा प्रातःकालके समय बाँसुरी, त्रिसरिका और वीणाके संगीतमय मधुर स्वरसे जागा करती थी ॥१७२–१७४॥ वही मैं अपयश रूपी दावानलसे जली दुःखिनी, श्री रामदेवकी प्रधान रानी पापिनी अकेली इस दुःकदायी वनके बीच कीड़े, कठोर डाभ और तीक्ष्ण पत्थरोंके समूहसे युक्त पृथिवीतलमें कैसे रहूँगी ? ॥१७५–१७६॥ यदि ऐसी अवस्था पाकर भी ये प्राण मुझमें स्थित हैं तब तो कहना चाहिए कि मेरे प्राण वज्रसे निर्मित हैं ॥१७७॥ अहो हृदय ! ऐसी अवस्थाको पाकर भी जो तुम सौ टुकड़े नहीं हो जाते हो उससे जान पड़ता है कि तुम्हारे समान दूसरा साहसी नहीं है ॥१७८॥ क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किससे कहूँ ! किसका आश्रय लूँ ? कैसे ठहरूँ ? हाय मातः ! यह ऐसा क्यों हुआ ? ॥१७९॥ हे सद्गुणोंके सागर राम ! हा भक्त लक्ष्मण ! हा पिता ! क्या तुम मुझे नहीं जानते हो ? हा मातः ! तुम मेरी रक्षा क्यों नहीं करती हो ? ॥१८०॥ अहो विद्याधरोंके अधीश भाई

---

१. कोकिलयुगलम् । २. निर्बन्धुमहणे । ३. मे मम ।

अपुण्यया मया सार्द्धं पत्या परमसम्पदा । कष्टं [1]मह्यां जिनेन्द्राणां कृता सद्मसु नार्चना ॥१८२॥
एवं तस्यां समाक्रन्दं कुर्वन्त्यां विह्वलात्मनि । राजा [2]वज्रशङ्घाख्यस्तं वनान्तरमागतः ॥१८३॥
पौण्डरीकपुरः स्वामी गजबन्धार्थमागतः । प्रत्यागच्छन् महाभूतिर्गृहीतवरवारणः ॥१८४॥
तस्य सैन्यशिरोजाताः क्षुभ्यमानाः पदातयः । नानाशस्त्रकराः क्रान्ताः शूरा बद्धासिधेनवः ॥१८५॥
श्रुत्वा सद्रुदितस्वानं तथाप्यतिमनोहरम् । संशयाताः परित्रस्ताः पदं न परतो ययुः ॥१८६॥
अश्वौघमपि संरुद्धं पुरोभागमवस्थितम् । साशङ्कैरकृतमेरं साद्धिभिः श्रुतनिःस्वनैः ॥१८७॥

उपजातिवृत्तम्

कुतोऽत्र भीमेऽतितरामरण्ये परासुताकारणभूरिसत्त्वे ।
अयं निनादो रुदितस्य रम्यः स्त्रैणो नु चित्रं परमं किमेतत् ॥१८८॥

मालिनीवृत्तम्

मृगमहिषतरक्षुद्वीपिशार्दूलले[3]ले समरशरभसिंहे कोलदंष्ट्राकराले[4] ।
सुविमलशशिरेखाहारिणी केयमस्मिन् हृदयहरणदक्षं कक्षमध्ये विरौति ॥१८९॥
सुरवरवनितेयं किन्नु सौधर्मकल्पादवनितलमुपेता पातिता वासवेन ।
उत जनसुखगीतासा नु देवी विधात्री भुवनविधनहेतोरागता स्यात् कुतोऽपि ॥१९०॥
इति जनितवितर्कं वर्जितोऽऽत्मोद्यमेहं[5] प्रजवसरणयुक्तैर्मूलगैः पूर्यमाणम् ।
प्रहतबहलतूर्यं तन्महावर्तकल्पं स्थितमपगतचेष्टं सैनिकं निश्चलाभम् ॥१९१॥

कुण्डलमण्डित ! यह मैं कुलक्षणा दुःखरूपी आवर्तमें भ्रमण करती यहाँ पड़ी हूँ ॥१८१॥ खेद है कि मैं पापिनी पतिके साथ बड़े वैभवसे, पृथिवी पर जो जिनमन्दिर हैं उनमें जिनेन्द्र भगवान की पूजा नहीं कर सकी ॥१८२॥

अथानन्तर जब विह्वल चित्त सीता विलाप कर रही थी तब एक वज्रजंघ नामक राजा उस वनके मध्य आया ॥१८३॥ वज्रजंघ पुण्डरीकपुरका स्वामी था, हाथी पकड़नेके लिए उस वनमें आया था और हाथी पकड़कर बड़े वैभवसे लौटकर वापिस आ रहा था ॥१८४॥ उसकी सेनाके अग्रभागमें जो सैनिक उछलते हुए जा रहे थे वे यद्यपि अपने हाथोंमें नाना प्रकारके शस्त्र लिये थे, सुन्दर थे, शूरवीर थे और छुरियाँ बाँधे हुए थे तथापि सीताका वह अतिशय मनोहर रोदनका शब्द सुनकर वे संशयमें पड़ गये तथा इतने भयभीत हो गये कि एक डग भी आगे नहीं दे सके ॥१८५-१८६॥ सेनाके आगे चलने वाला जो घोड़ोंका समूह था वह भी रुक गया तथा उस रोदनका शब्द सुन आशङ्कासे युक्त घुड़सवार भी उसे प्रेरित नहीं कर सके ॥१८७॥ वे विचार करने लगे कि जहाँ मृत्युके कारणभूत अनेक प्राणी विद्यमान हैं ऐसे इस अत्यन्त भयंकर वनमें यह स्त्रीके रोनेका मनोहर शब्द हो रहा है सो यह बड़ी विचित्र क्या बात है ? ॥१८८॥ जो मृग, भैंसा, भेड़िया, चीता और तेंदुआसे चञ्चल है जहाँ अष्टापद और सिंह घूम रहे हैं, तथा जो सुअरोंकी दाढ़ोंसे भयंकर है ऐसे इस वनके मध्यमें अत्यन्त निर्मल चन्द्रमाकी रेखाके समान यह कौन हृदयके हरनेमें निपुण रो रही है ? ॥१८९॥ क्या यह सौधर्म स्वर्गसे इंद्रके द्वारा छोड़ी और पृथिवीतल पर आई हुई कोई इंद्राणी है अथवा मनुष्योंके सुख संगीतको नष्ट करने वाली एवं प्रलयके कारणको उत्पन्न करने वाली कोई देवी कहींसे आ पहुँची है ? ॥१९०॥ इस प्रकार जिसे तर्क उत्पन्न हो रहा था, जिसने अपनी चेष्टा छोड़ दी थी, वेगसे चलनेवाले मूल पुरुष जिसमें आकर इकट्ठे हो रहे थे, जिसमें अत्यधिक बाजे बज रहे थे, जो किसी बड़ी भँवरके समान जान पड़ती थी और जो आश्चर्यसे युक्त थी ऐसी वह विशाल सेना निश्चल खड़ी हो गई ॥१९१॥

---

१. मह्यं म०, ख० । २. वज्रजङ्घनामा । ३. दंष्ट्रान्तराले म० । ४. देशं म० । ५. तूलं ख० ।

[1]तुरगमकरवृन्दं प्रौढपादातमीनं विधृतवरकरेणुग्राहजालं सशब्दम् ।
रविकिरणविपक्षप्रस्फुरत्खड्गवीचिप्रतिभयमभवत्तत्सैन्यमम्भोधिकल्पम् ॥१६२॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सीतानिर्वासनविप्रलापवज्रजङ्घागमनाभिधानं नाम सप्तनवतितमं पर्व ॥९७॥

घोड़ोंके समूह ही जिसमें मगर थे, तेजस्वी पैदल सैनिक ही जिसमें मीन थे, हाथियोंके समूह ही जिसमें ग्राह थे, जो प्रचण्ड शब्दसे युक्त था और सूर्यकी किरणोंके पड़नेसे चमकती हुई तलवार रूपी तरङ्गोंसे जो भय उत्पन्न करनेवाली थी ऐसी वह सेना समुद्रके समान जान पड़ती थी ॥१६२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा विरचित श्री पद्मपुराणमें सीताके निर्वासन, विलाप और वज्रजङ्घके आगमनका वर्णन करनेवाला सतानवेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥९७॥

१. अयं श्लोकः क०पुस्तके नास्ति ।

अष्टनवतितमं पर्व

ततः पुरो महाविद्यानिरुद्धामिव जाह्नवीम् । चक्राभूतां चमूं दृष्ट्वा वज्रजङ्घः करेणुगः ॥१॥
पप्रच्छासन्नपुरुषान् यूयमेवं कुतः स्थिताः । कुतः केन प्रतीघातो गमनस्य किमाकुलाः ॥२॥
पारम्पर्येण ते यावत् प्रचक्षन्ति स्थितिकारणम् । तावत्किञ्चित्समासीदन्[1] राजा शुश्राव रोदनम् ॥३॥
अगाद् च समस्तेषु लक्षणेषु कृतश्रमः । यस्या रुदितशब्दोऽयं श्रूयते सुमनोहरः ॥४॥
विद्युद्गर्भरुचा सत्या गर्भिण्याऽप्रतिरूपया । ध्रुवं पुरुषपद्मस्य भवितव्यं स्त्रियाऽनया ॥५॥
एवमेतत्कुतो देव सन्देहोऽत्र त्वयोदिते । अनेकमद्भुतं कर्म भवता हि पुरेक्षितम् ॥६॥
एवं तस्य समृत्यस्य कथा यावत्प्रवर्त्तते । तावदग्रेसरा सीतासमीपं सत्विनो गताः ॥७॥
पप्रच्छुः पुरुषा देवि का त्वं निर्मानुषे वने । विरौषि करुणं शोकमसम्भाव्यमिदं श्रिता ॥८॥
न दृश्यन्ते भवादृश्यो लोकेऽन्याकृतयः शुभाः । दिव्या किमसि किं वाऽन्या काचित् सृष्टिरनुत्तमा ॥९॥
यदीदृगीदृशं धत्से वपुरक्लिष्टमुत्तमम् । ततोऽयन्तं न बालक्ष्यः कोऽयं शोकस्तवापरः ॥१०॥
वद कल्याणि कथ्यं चेदिदं नः कौतुकं परम् । दुःखान्तोऽपि च सत्येवं कदाचिदुपजायते ॥११॥
ततस्तान् सुमहाशोकध्वान्तीकृतसमस्तदिक् । पुरुषान् सहसा दृष्ट्वा नानाशस्त्रकरोज्ज्वलान् ॥१२॥
सीता त्रासससुत्पन्नपृथुवेपथुसङ्कुला । दातुमाभरणान्येषां लोलनेत्रा समुद्यता ॥१३॥
सत्वमूढास्ततो भीता जगदुः पुरुषाः पुनः । सम्त्रासं देवि शोकं च त्यज संश्रय धीरताम् ॥१४॥

अथानन्तर आगे महाविद्यासे रुकी गङ्गानदीके समान चक्राकार परिणत सेनाको देख, हाथी पर खड़े हुए वज्रजङ्घने निकटवर्ती पुरुषोंसे पूछा कि तुमलोग इस तरह क्यों खड़े हो गये ? गमनमें किसने किस कारण रुकावट डाली ? और तुमलोग व्याकुल क्यों हो रहे हो ? ॥१-२॥ निकटवर्ती पुरुष जबतक परम्परासे सेनाके रुकनेका कारण पूछते हैं तबतक कुछ निकट बढ़कर राजाने स्वयं रोनेका शब्द सुना ॥३॥ समस्त लक्षणोंमें जिसने श्रम किया था ऐसा राजा वज्रजङ्घ बोला कि जिस स्त्रीका यह अत्यन्त मनोहर रोनेका शब्द सुनाई पड़ रहा है वह बिजलीके मध्य-भागके समान कान्तिवाली, पतिव्रता तथा अनुपम गर्भिणी है। यही नहीं उसे निश्चय ही किसी श्रेष्ठ पुरुषकी स्त्री होना चाहिए ॥४-५॥ हे देव ! ऐसा ही है—आपके इस कथनमें संदेह कैसे हो सकता है ? क्योंकि आपने पहले अनेक आश्चर्यजनक कार्य देखे हैं ॥६॥ इस प्रकार सेवकों और राजा वज्रजङ्घके बीच जबतक यह वार्ता होती है तबतक आगे चलनेवाले कुछ साहसी पुरुष सीताके समीप जा पहुँचे ॥७॥ उन्होंने पूछा कि हे देवि ! इस निर्जन वनमें तुम कौन हो ? तथा असंभाव्य शोकको प्राप्त हो यह करुण विलाप क्यों कर रही हो ? ॥८॥ इस संसारमें आपके समान शुभ आकृतियाँ दिखाई नहीं देतीं। क्या तुम देवी हो ? अथवा कोई अन्य उत्तम सृष्टि हो ? ॥९॥ जब कि तुम इस प्रकारके क्लेश रहित उत्तम शरीरको धारण कर रही हो तब यह बिलकुल ही नहीं जान पड़ता कि तुम्हें यह दूसरा दुःख क्या है ? ॥१०॥ हे कल्याणि ! यदि यह बात कहने योग्य है तो कहो, हमलोगोंको बड़ा कौतुक है। ऐसा होने पर कदाचित् दुःखका अन्त भी हो सकता है ॥११॥

तदनन्तर महाशोकके कारण जिसे समस्त दिशाएँ अन्धकार रूप हो गई थीं ऐसी सीता अचानक नाना शस्त्रोंकी किरणोंसे देदीप्यमान उन पुरुषोंको देखकर भयसे एक दम काँप उठी, उसके नेत्र चञ्चल हो गये और वह इन्हें आभूषण देनेके लिए उद्यत हो गई ॥१२-१३॥ तदनन्तर

---

१. निकटीभवन् । २. चालक्ष्यः म० ।

किं वा विभूषणैरेभिस्तिष्ठन्तु त्वयि वृक्षिणे । [1]भावयोगं प्रपद्यस्व किमर्थमसि विह्वला ॥१५॥
श्रीमानयं परिप्राप्तो वज्रजङ्घ इति क्षितौ । प्रसिद्धः सकलैर्युक्तो राजधर्मैर्नरोत्तमः ॥१६॥
सम्यग्दर्शनरत्नं यः साहस्यपरिवर्जितम् । अविनाशमनाधेयमहार्यं सारसौख्यदम् ॥१७॥
शङ्कादिमलनिर्मुक्तं हेमपर्वतनिश्चलम् । हृदयेन समाधत्ते सचेता भूषणं परम् ॥१८॥
सम्यग्दर्शनमीदृक्षं यस्य साध्वि विराजते । गुणास्तस्य कथं श्लाघ्ये वर्ण्यन्तामस्मदादिभिः ॥१९॥
जिनशासनतत्त्वज्ञः शरणागतवत्सलः । परोपकारसंसक्तः करुणार्द्रितमानसः ॥२०॥
लब्धवर्णो विशुद्धात्मा निन्द्यकृत्यनिवृत्तधीः । पितेव रक्षिता लोके ज्ञाता भूतहिते रतः ॥२१॥
दीनादीनां विशेषेण [2]मातुरप्यनुपालकः । शुद्धकर्मकरः शत्रुमहीधरमहाशनिः ॥२२॥
शास्त्रशास्त्रकृताभ्यासः शान्तिकर्मणि । जानात्यन्यकलत्रं च कूपं साजगरं मया ॥२३॥
धर्मे परममासक्तो भवपातभयात्सदा । सत्यस्थापितसद्वाक्यो वाढं नियमितेन्द्रियः ॥२४॥
अस्य देवि गुणान् वक्तुं योऽखिलानभिवाञ्छति । तरितुं स ध्रुवं वष्टि [3]गात्रमात्रेण सागरम् ॥२५॥
यावदेतैः कथा तेषां तत्रैव चित्तबन्धिनी [4]तावद्भूपः परिप्राप्तः किञ्चिदद्भुतसङ्गतः ॥२६॥
अवतीर्य करेणोश्च योग्यं विनयमुद्वहन् । निसर्गशुद्धया दृष्ट्या पश्यन्नेवमभाषत ॥२७॥
अहो वज्रमयो नूनं पुरुषः [4]सुविचेतनः । यदस्त्यत्रास्मिहारण्ये त्वां न दीर्णः सहस्रधा ॥२८॥
ब्रूहि कारणमेतस्या अवस्थाया शुभाशये । विश्वस्ता भव मा भैषीर्गर्भायासं हि मा कृथाः ॥२९॥

यथार्थ ज्ञानके समझनेमें मूढ पुरुषोंने भयभीत होकर पुनः कहा कि हे देवि ! भय तथा शोक छोड़ो, धीरताका आश्रय लेओ ॥१४॥ हे सरले ! इन आभूषणोंसे हमें क्या प्रयोजन है ? ये तुम्हारे ही पास रहें। भाव योगको प्राप्त होओ अर्थात् हृदयको स्थिर करो और बताओ कि विह्वल क्यों हो ?—दुःखी क्यों हो रही हो ? ॥१५॥ जो समस्त राजधर्मसे सहित है तथा पृथिवी पर वज्रजङ्घ नामसे प्रसिद्ध है ऐसा यह श्रीमान् उत्तम पुरुष यहाँ आया है ॥१६॥ सावधान चित्तसे सहित यह वज्रजङ्घ सदा उस सम्यग्दर्शन रूपी रत्नको हृदयसे धारण करता है जो साहस्यसे रहित है, अविनाशी है, अनाधेय है, अहार्य है, श्रेष्ठ सुखको देनेवाला है, शङ्कादि दोषोंसे रहित है, सुमेरुके समान निश्चल है और उत्कृष्ट आभूषण स्वरूप है ॥१७-१८॥ हे साध्वि ! हे प्रशंसनीये ! जिसके ऐसा सम्यग्दर्शन सुशोभित है उसके गुणोंका हमारे जैसे पुरुष कैसे वर्णन कर सकते हैं ? ॥१९॥ वह जिन शासनके रहस्यको जाननेवाला है, शरणमें आये हुए लोगोंसे स्नेह करनेवाला है, परोपकारमें तत्पर है, दयासे आर्द्रचित्त है, विद्वान् है, विशुद्ध हृदय है, निन्द्य कार्योंसे निवृत्त बुद्धि है, पिताके समान रक्षक है, प्राणिहितमें तत्पर है, दीन-हीन आदिका तथा खास कर मातृ-जातिका रक्षक है, शुद्ध कार्यको करनेवाला है, शत्रुरूपी पर्वतको नष्ट करनेके लिए महावज्र है। शास्त्र और शास्त्रका अभ्यासी है, शान्ति कार्यमें थकावटसे रहित है, परस्त्रीको अजगर सहित कूपके समान जानता है, संसार-पातके भयसे धर्ममें सदा अत्यन्त आसक्त रहता है, सत्यवादी है और अच्छी तरह इन्द्रियोंको वश करनेवाला है ॥२०-२४॥ हे देवि ! जो इसके समस्त गुणोंको कहना चाहता है वह मानो मात्र शरीरसे समुद्रको तैरना चाहता है ॥२५॥ जबतक उन सबके बीच मनको बाँधनेवाली यह कथा चलती है तबतक कुछ आश्चर्यसे युक्त राजा वज्रजङ्घ भी वहाँ आ पहुँचा ॥२६॥ हस्तिनीसे उतर कर योग्य विनय धारण करते हुए राजा वज्रजङ्घने स्वभाव शुद्ध दृष्टिसे देखकर इस प्रकार कहा कि ॥२७॥ अहो ! जान पड़ता है कि यह पुरुष वज्रमय तथा चेतनाहीन है इसलिए इस वनमें तुम्हें छोड़ता हुआ वह हजार टूक नहीं हुआ है ॥२८॥ हे शुभाशये ! अपनी इस अवस्थाका कारण कहो, निश्चिन्त होओ, डरो मत तथा गर्भको कष्ट मत पहुँचाओ ॥२९॥

१. भावं योगं म० । २. मानुष्या अनुपालकः म० । ३. कामयते । ४. सुविचेतनः म० ।

ततः कथयितुं कृच्छ्राद्विरताऽपि सती क्षणम् । पुना रुरोद शोकोरुचक्रपीडितमानसा ॥३०॥
मुहुस्ततोऽनुयुक्ता सा राज्ञा मधुरभाषिणा । ध्यात्वा मन्युं जगौ क्लिष्टहंसगद्गदनिःस्वना ॥३१॥
विज्ञातुं यदि ते वाञ्छा राजन् यच्छ ततो मनः । कथा मे मन्दभाग्याया ह्यमत्यन्तदीर्घिका ॥३२॥
सुता जनकराजस्य प्रभामण्डलसोदरा । स्नुषा दशरथस्याहं सीता पद्माभधारिका ॥३३॥
केकयावरदानेन भरताय निजं पदम् । दत्त्वाऽनरण्यपुत्रोऽसौ तपस्विपदमाश्रयत् ॥३४॥
रामलक्ष्मणयोः साकं मया प्रस्थितमायतम् । जातं श्रुतं त्वया नूनं पुण्यचेष्टितसङ्गतम् ॥३५॥
हृताऽस्मि राक्षसेन्द्रेण पत्युः सुप्तावसङ्गमे । जाते भुक्तवती वार्त्तां सम्प्राप्यैकादशेऽहनि ॥३६॥
आकाशगामिभिर्यानैरुत्तीर्य मकरालयम् । जित्वा दशमुखं युद्धे पत्याऽस्मि पुनराहृता ॥३७॥
राज्यपङ्कं परित्यज्य भरतो भरतोपमः । धामपद्मं परमाश्रित्य सिद्धिं धूतरजा ययौ ॥३८॥
अपत्यशोकनिर्दग्धा प्रव्रज्यासौ च केकया । देवी कृत्वा तपः सम्यग्देवलोकमुपागता ॥३९॥
महीतले चिरमयं[1] जनोऽयं दुष्टमानसः । अपीति परिवादं मे शङ्कया परिवर्जितः ॥४०॥
रावणः परमः प्राज्ञो भूत्वाऽन्यस्त्रियमग्रहीत् । तामानीय पुना रामः सेवते धर्मशास्त्रवित् ॥४१॥
यया ह्यवस्थया राजा वर्त्तते दृढनिश्चयः । सैवाऽस्माकमपि क्षेमा[2] नूनं दोषो न विद्यते ॥४२॥
साऽहं गर्भान्विता जाता कृशाङ्गा वसुधातले । चिन्तयन्ती जिनेन्द्राणां करोम्यभ्यर्चनामिति ॥४३॥
ततो भर्त्ता मया सार्द्धमुद्युक्तश्चैत्यवन्दने । जिनेन्द्रातिशयस्थानेष्वायन्तविभवान्वितः ॥४४॥
अगर्दीत् प्रथमं सीते गत्वाऽष्टापदपर्वतम् । पद्मं भुवनानन्दं प्रणंस्यावः कृतार्चनौ ॥४५॥

ततनन्तर सती सीता यद्यपि कुछ कहनेके लिए क्षण भरको दुःखसे विरत हुई थी तथापि शोकरूपी विशाल चक्रसे हृदयके अत्यन्त पीड़ित होनेके कारण वह पुनः रोने लगी ॥३०॥ तत्पश्चात् मधुर भाषण करनेवाले राजाने जब बार बार पूछा तब वह जिस किसी तरह शोकको रोककर दुःखी हंसके समान गद्गद वाणीसे बोली ॥३१॥ उसने कहा कि हे राजन् ! यदि तुम्हें जाननेकी इच्छा है तो इस ओर मन लगाओ क्योंकि मुझ अभागिनीकी यह कथा अत्यन्त लम्बी है ॥३२॥ मैं राजा जनककी पुत्री, भामण्डलकी बहिन, दशरथकी पुत्रवधू और रामकी पत्नी सीता हूँ ॥३३॥ राजा दशरथ, केकयाके वरदानसे भरतके लिए अपना पद देकर तपस्वीके पदको प्राप्त हो गये ॥३४॥ फलस्वरूप राम लक्ष्मणको मेरे साथ वनको जाना पड़ा सो हे पुण्यचेष्टित ! जो कुछ हुआ वह सब तुमने सुना होगा ॥३५॥ राक्षसोंके अधिपति रावणने मेरा हरण किया, स्वामी रामका सुग्रीवके साथ समागम हुआ और ग्यारहवें दिन समाचार पाकर मैंने भोजन किया ॥३६॥ आकाशगामी वाहनोंसे समुद्र तैरकर तथा युद्धमें रावणको जीतकर मेरे पति मुझे पुनः वापिस ले आये ॥३७॥ भरत चक्रवर्तीके समान भरतने राज्यरूपी पङ्कका परित्याग कर परम दिगम्बर अवस्था धारण कर ली और कर्मरूपी धूलिको उड़ाकर निर्वाणपद प्राप्त किया ॥३८॥ पुत्रके शोकसे दुखी केकया रानी दीक्षा लेकर तथा अच्छी तरह तपश्चरण कर स्वर्ग गई ॥३९॥ पृथिवीतल पर मर्यादाहीन दुष्ट हृदय मनुष्य निःशङ्क होकर मेरा अपवाद कहने लगे कि रावणने परम विद्वान् होकर परस्त्री ग्रहण की और धर्मशास्त्रके ज्ञाता राम उसे वापिस लाकर पुनः सेवन करने लगे ॥४०-४१॥ दृढ़ निश्चयको धारण करने वाला राजा जिस दशामें प्रवृत्ति करता है वही दशा हमलोगोंके लिए भी हितकारी है इसमें दोष नहीं है ॥४२॥ कृश शरीरको धारण करने वाली वह मैं जब गर्भवती हुई तब मैंने ऐसा विचार किया कि पृथिवी तल पर जितने जिनबिम्ब हैं उन सबकी मैं पूजा करूँ ॥४३॥ तदनन्तर अत्यधिक वैभवसे सहित स्वामी राम, जिनेन्द्र भगवान्के अतिशय स्थानोंमें जो जिनबिम्ब थे उनकी वन्दना करनेके लिए मेरे साथ उद्यत हुए ॥४४॥ उन्होंने कहा कि हे सीते ! सर्व प्रथम कैलास पर्वत पर जाकर जगत्को आनन्दित

१. दशरथः । २. क्षेमी म० ।

अस्यां ततो विनीतायां जन्मभूमिप्रतिष्ठिता । प्रतिमा ऋषभादीनां नमस्यावः सुसम्पदा ॥४६॥
काम्पिल्ये विमलं नन्तुं यास्यावो भावतस्ततः । धर्मं रत्नपुरे चैव धर्मसद्भावदेशिनम् ॥४७॥
श्रावस्त्यां शम्भवं शुभ्रं चम्पायां वासुपूज्यकम् । पुष्पदन्तं च काकन्द्यां कौशाम्ब्यां पद्मतेजसम् ॥४८॥
चन्द्राभं चन्द्रपुर्यां च शीतलं भद्रिकावनौ । मिथिलायां ततो मल्लिं नमस्कृत्य जिनेश्वरम् ॥ ४९॥
वाराणस्यां सुपार्श्वं च श्रेयांसं सिंहनिःस्वने । शान्तिं कुन्थुमरं चैव पुरे हास्तिनि नामनि ॥५०॥
कुशाग्रनगरे देवि सर्वज्ञं मुनिसुव्रतम् । धर्मचक्रमिदं यस्य उज्वलत्यद्यापि सुउज्वलम् ॥५१॥
ततोऽन्यान्यपि वैदेहि जिनातिशययोगतः । स्थानान्यतिपवित्राणि प्रथितान्यखिलेनस[1] ॥५२॥
त्रिदशासुरगन्धर्वैः स्तुतानि प्रणतानि च । वन्दावहे समस्तानि तत्परायणमानसौ ॥५३॥
पुष्पकाग्रं समारुह्य विलङ्घ्य गगनं द्रुतम् । मया सह जिनानर्चं सुमेरुशिखरेष्वपि ॥५४॥
भद्रशालवनोद्भूतैस्तथा नन्दनसम्भवैः । पुष्पैः सौमनसोर्यैश्च जिनेन्द्रानर्चय प्रिये ॥५५॥
कृत्रिमाकृत्रिमाण्यस्मिंश्चैत्यानभ्यर्च्य विष्टपे । प्रवन्द्य चागमिष्यावः साकेतां दयिते पुनः ॥५६॥
एकोऽपि हि नमस्कारो भावेन विहितोऽर्हतः । मोचयत्येनसो जन्तुं जन्मान्तरकृतादपि ॥५७॥
ममापि परमा कान्ते तुष्टिर्मनसि वर्त्तते । चैत्यालयान् महापुण्यान् पश्यामीति त्वदाशया ॥५८॥
काले पूर्णतमस्कन्ने भूते निःकिञ्चने जने । जगत्तारार्धिपेनेव येनेशेन[2] विराजितम् ॥५९॥
प्रजानां पतिरेको यो ज्येष्ठस्त्रैलोक्यवन्दितः । भव्यानां भवभीरूणां मोक्षमार्गोपदेशकः ॥६०॥

करनेवाले श्री ऋषभ जिनेन्द्रकी पूजा कर उन्हें नमस्कार करेंगे ॥४५॥ फिर इस अयोध्या नगरीमें जन्मभूमिमें प्रतिष्ठित जो ऋषभ आदि तीर्थंकरोंकी प्रतिमाएँ हैं उन्हें उत्तम वैभवके साथ नमस्कार करेंगे ॥४६॥ फिर काम्पिल्य नगरमें श्री विमलनाथको भावपूर्वक नमस्कार करनेके लिए जावेंगे और उसके बाद रत्नपुर नगरमें धर्मके सद्भावका उपदेश देनेवाले श्रीधर्मनाथको नमस्कार करनेके लिए चलेंगे ॥४७॥ श्रावस्ती नगरीमें शंभवनाथको, चम्पापुरीमें वासुपूज्यको, काकन्दीमें पुष्पदन्तको, कौशाम्बीमें पद्मप्रभको, चन्द्रपुरीमें चन्द्रप्रभको, भद्रिकावनिमें शीतलनाथको, मिथिलामें मल्लि जिनेश्वरको, वाराणसीमें सुपार्श्वको, सिंहपुरीमें श्रेयान्सको, हस्तिनापुरीमें शान्ति कुंथु और अरनाथको और हे देवि ! उसके बाद कुशाग्रनगर-राजगृहीमें उन सर्वज्ञ मुनि सुव्रतनाथकी वन्दना करनेके लिए चलेंगे जिनका कि आज भी यह अत्यन्त उज्ज्वल धर्मचक्र देदीप्यमान हो रहा है ॥४८-५१॥ तदनन्तर हे वैदेहि ! जिनेन्द्र भगवान्‌के अतिशयोंके योगसे अत्यन्त पवित्र, सर्वत्र प्रसिद्ध देव असुर और गन्धर्वोंके द्वारा स्तुत एवं प्रणत जो अन्य स्थान हैं तत्पर चित्त होकर उन सबकी वन्दना करेंगे ॥५२-५३॥ तदनन्तर पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो शीघ्र ही आकाशको उल्लंघ कर मेरे साथ सुमेरुके शिखरों पर विद्यमान जिन-प्रतिमाओंकी पूजा करना ॥५४॥ हे प्रिये ! भद्रशाल वन, नन्दन वन और सौमनस वनमें उत्पन्न पुष्पोंसे जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा करना ॥५५॥ फिर हे दयिते ! इस लोकमें जो कृत्रिम-अकृत्रिम प्रतिमाएँ हैं उन सबकी वन्दना कर अयोध्या वापिस आवेंगे ॥५६॥ अर्हन्त भगवान्‌के लिए भाव-पूर्वक किया हुआ एक ही नमस्कार इस प्राणीको जन्मान्तरमें किये हुए पापसे छुड़ा देता है ॥५७॥ हे कान्ते ! तुम्हारी इच्छासे महापवित्र चैत्यालयोंके दर्शन कर लूँगा इस बातका मेरे मनमें भी परम संतोष है ॥५८॥ पहले जब यह काल अज्ञानान्धकारसे आच्छादित था तथा कल्पवृक्षोंके नष्ट हो जानेसे मनुष्य एकदम अकिञ्चन हो गये थे तब जिन आदिनाथ भगवान्‌के द्वारा यह जगत् उस तरह सुशोभित हुआ था जिस तरहकी चन्द्रमासे सुशोभित होता है ॥५९॥ जो प्रजाके अद्वितीय स्वामी थे, ज्येष्ठ थे, तीन लोकके द्वारा वन्दित थे, संसारसे डरनेवाले भव्यजीवों-

१. "अखिलेनस" सर्वपुस्तकेष्वित्थमेव पाठोऽस्ति किन्तु तस्यार्थः स्पष्टो न भवति । २. येन सेना विराजितम् ज० ।

यस्याष्टगुणमैश्वर्यं नानातिशयशोभितम् । अजस्रपरमाश्चर्यं सुरासुरमनोहरम् ॥६१॥
जीवप्रभृतितत्त्वानि विशुद्धानि प्रदर्श्य यः । भव्यानां कृतकर्तव्यो निर्वाणं परमं गतः ॥६२॥
सर्वरत्नमयं दिव्यमालयं चक्रवर्तिना । निर्माप्य यस्य कैलासे प्रतिमा स्थापिता प्रभोः ॥६३॥
सा भास्करप्रतीकाशा पञ्चचापशतोच्छ्रिता । प्रतिभाप्रतिरूपस्य दिव्या यस्य विराजते ॥६४॥
यस्याद्यापि महापूजा गन्धर्वामरकिन्नरैः । अप्सरोनागदैत्याद्यैः क्रियते यत्नतः सदा ॥६५॥
अनन्तः परमः सिद्धः शिवः सर्वगतोऽमलः । अर्हंस्त्रैलोक्यपूजार्हः यः स्वयम्भूः स्वयंप्रभुः ॥६६॥
तं कदा नु प्रभुं गत्वा कैलासे परमाचले । ऋषभं देवमभ्यर्च्य स्तोष्यामि सहितस्त्वया ॥६७॥
प्रस्थितस्य मया साकमेवं धृत्याऽतिदुष्करा । प्राप्ता जनपरीवादवार्ता दावाग्निदुःसहा ॥६८॥
चिन्तितं मे ततो भर्त्रा प्रेक्षापूर्वविधायिना । लोकः स्वभावकुटिलोऽयं नान्यथा याति वश्यताम् ॥६९॥
वरं प्रियजने त्यक्ते मृत्युरप्यनुसेवितः । यशसो नोपघातोऽयं कल्पान्तस्थायिनः ॥७०॥
साहं जनपरीवादाद्विदुषा तेन भिन्यता । संत्यक्ता परमेऽरण्ये दोषेण परिवर्जिता ॥७१॥
विशुद्धकुलजातस्य क्षत्रियस्य सुचेतसः । विज्ञातसर्वशास्त्रस्य भवत्येवेदमीहितम् ॥७२॥
एवं निर्वाससम्बन्धं वृत्तान्तं स्वं निवेद्य सा । दीना रोदितुमारब्धा शोकज्वलनतापिता ॥७३॥
तामश्रुजलपूर्णास्यां क्षितिरेणुसमुक्षिताम् । दृष्ट्वा कुलिशजङ्घोऽपि क्षुब्धोत्तमसत्त्वभृत् ॥७४॥
ततो जनकराजस्य तनयामधिगम्य ताम् । समाश्वासयदाहूतः समाश्वासयदादृतः ॥७५॥

के लिए मोक्षमार्गका उपदेश देनेवाले थे ॥६०॥ जिनका अष्ट प्रातिहार्य रूपी ऐश्वर्य नाना प्रकारके अतिशयोंसे सुशोभित था, निरन्तर परम आश्चर्यसे युक्त था और सुरासुरोंके मनको हरनेवाला था ॥६१॥ जो भव्य जीवोंके लिए जीवादि निर्दोष तत्त्वोंका स्वरूप दिखाकर अन्तमें कृतकृत्य हो निर्वाण पदको प्राप्त हुए थे ॥६२॥ चक्रवर्ती भरतने कैलास पर्वत पर सर्वरत्नमय दिव्य मन्दिर बनवा कर उन भगवान्‌की जो प्रतिमा विराजमान कराई थी वह सूर्यके समान देदीप्यमान है, पाँच सौ धनुष ऊँची है, दिव्य है, तथा आज भी उसकी महापूजा गन्धर्व, देव, किन्नर, अप्सरा, नाग तथा दैत्य आदि सदा यत्नपूर्वक करते हैं ॥६३-६५ जो ऋषभदेव भगवान् अनन्त हैं—परम पारिणामिक भावकी अपेक्षा अन्त रहित हैं, परम हैं—अनन्त चतुष्टयरूप उत्कृष्ट लक्ष्मी से युक्त हैं, सिद्ध हैं—कृतकृत्य हैं, शिव हैं—आनन्दरूप हैं, ज्ञानकी अपेक्षा सर्वगत हैं, कर्ममलसे रहित होनेके कारण अमल हैं, प्रशस्तरूप होनेसे अर्हन्त हैं, त्रैलोक्यकी पूजाके योग्य हैं, स्वयंभू हैं और स्वयं प्रभु हैं। मैं उन भगवान् ऋषभदेवकी कैलास नामक उत्तम पर्वत पर जा कर तुम्हारे साथ कब पूजा करूँगा और कब स्तुति करूँगा ? ॥६६-६७॥ इस प्रकार निश्चय कर बहुत भारी धैर्यसे उन्होंने मेरे साथ प्रस्थान कर दिया था परन्तु बीचमें ही दावानलके समान दुःसह लोकापवादकी वार्ता आ गई ॥६८॥ तदनन्तर विचारपूर्वक कार्य करनेवाले मेरे स्वामीने विचार किया कि यह स्वभावसे कुटिल लोक अन्य प्रकारसे वश नहीं हो सकते ॥६९॥ इसलिए प्रिय जनका परित्याग करने पर यदि मृत्युका भी सेवन करना पड़े तो अच्छा है परन्तु कल्पान्त काल तक स्थिर रहनेवाला यह यशका उपघात श्रेष्ठ नहीं है ॥७०॥ इस तरह यद्यपि मैं निर्दोष हूँ तथापि लोकापवादसे डरनेवाले उन बुद्धिमान् स्वामीने मुझे इस बीहड़ वनमें छुड़वा दिया है ॥७१॥ सो जो विशुद्ध कुलमें उत्पन्न है, उत्तम हृदयका धारक है और सर्वशास्त्रोंका ज्ञाता है ऐसे क्षत्रियकी यह चेष्टा होती ही है ॥७२॥ इस तरह वह दीन सीता अपने निर्वाससे सम्बन्ध रखनेवाला अपना सब समाचार कह कर शोकाग्निसे संतप्त होती हुई पुनः रोने लगी ॥७३॥

तदनन्तर जिसका मुख आँसुओंके जलसे पूर्ण था तथा जो पृथिवीकी धूलिसे सेवित थी ऐसी उस सीताको देखकर उत्तम सत्त्वगुणका धारक राजा वज्रजङ्घ भी क्षोभको प्राप्त हो गया ॥७४॥ तत्पश्चात् उसे राजा जनककी पुत्री जान राजा वज्रजंघने पास जाकर बड़े आदरसे उसे

शोकं विरह मा रोदीर्जिनशासनभाविता । किमार्तं कुरुषे ध्यानं देवि दुःखस्य वर्द्धनम् ॥७५॥
किं न वैदेहि ते ज्ञाता लोकेऽत्र स्थितिरीदृशी । अनित्याशरणैकत्वान्यत्वादिपरिभाविनी ॥७७॥
मिथ्यादृष्टिर्वधूर्यद्वच्छोचसि मुहुर्मुहुः । श्रुतार्थैवासि साध्वीभ्यः सततं चारुभाषणे ॥७८॥
नतु जीवेन किं दुःखं न प्राप्तं मूढचेतसा । भवभ्रमणसक्तेन मोक्षमार्गमजानता ॥७९॥
संयोगा विप्रयोगाश्च भवसागरवर्त्तिना । क्लेशावर्त्तनिमग्नेन प्राप्ता जीवेन भूरिशः ॥८०॥
खजलस्थलचारेण तिर्यग्योनिषु दुःसहम् । दुःखं जीवेन सम्प्राप्तं वर्षाशीतातपादिजम् ॥८१॥
अपमानपरीवादविरहाक्रोशनादिजम् । मनुष्यत्वेऽपि किं नाम दुःखं जीवेन नार्जितम् ॥८२॥
कुत्सिताचारसम्भूतं ततोत्कृष्टर्द्धिदर्शिजम् । च्युतिजं च महादुःखं सम्प्राप्तं त्रिदशेष्वपि ॥८३॥
नरकेषु तु यद्दुःखं तत् कथं कथ्यतां शुभे । शीतोष्णक्षारशस्त्रीवन्यालान्योन्यसमुद्भवम् ॥८४॥
विप्रयोगाः समुत्कण्ठा व्याधयो दुःखमृत्यवः । शोकाश्चानन्तशः प्राप्ता भवे जीवेन मैथिलि ॥८५॥
तिर्यगूर्ध्वमधस्ताद्वा स्थानं सन्नास्ति विष्टपे । जीवेन यत्र न प्राप्ता जन्ममृत्युजरादयः ॥८६॥
स्वकर्मवायुना शश्वद् भ्राम्यता भवसागरे । मनुष्यत्वेऽपि जीवेन प्राप्ता स्त्रीतनुरीदृशी ॥८७॥
कर्मभिस्तव शुक्लावः परिशेषैः शुभाशुभैः । अभिरामो गुणैः रामः पतिर्जातः शुभोदयः ॥८८॥
पुण्योदयं समं तेन परिप्राप्य सुखोदयम् । अपुण्योदयतो दुःखं पुनः प्राप्तोऽसि दुःसहम् ॥८९॥
लङ्काद्वीपेऽसि यत् प्राप्ता पापा विद्याभृता हृता । [1]एकादशदिने भुक्तिं मुक्तमाल्यानुलेपना ॥९०॥

सान्त्वना दी थी ॥७५॥ साथ ही यह कहा कि हे देवि ! शोक छोड़, रो मत, तू जिन शासनकी महिमासे अवगत है । दुःखका बढ़ानेवाला जो आर्तध्यान है उसे क्यों करती है ? ॥७६॥ हे वैदेहि ! क्या तुझे ज्ञात नहीं है कि संसारकी स्थिति ऐसी ही अनित्य अशरण एकत्व और अन्यत्व आदि रूप है ॥७७॥ जिससे तू मिथ्यादृष्टि स्त्रीके समान बार-बार शोक कर रही है । हे सुन्दर-भाषणवाली ! तूने तो निरन्तर साधुओंसे यथार्थ बातको सुना है ॥७८॥ निश्चयसे सम्यग्दर्शनको न जान कर संसार भ्रमण करनेमें आसक्त मूढ हृदय प्राणीने क्या-क्या दुःख नहीं प्राप्त किया है ? ॥७९॥ संसार रूपी सागरमें वर्तमान तथा क्लेश रूप भँवरमें निमग्न हुए इस जीवने अनेकों बार संयोग और वियोग प्राप्त किये हैं ॥८०॥ तिर्यञ्च योनियोंमें इस जीवने खेचर जलचर और स्थलचर होकर वर्षा शीत और आतप आदिसे उत्पन्न होनेवाला दुःख सहा है ॥८१॥ मनुष्य पर्यायमें भी अपमान निन्दा विरह और गाली आदिसे उत्पन्न होनेवाला कौन-सा महादुःख इस जीवने नहीं प्राप्त किया है ? ॥८२॥ देवोंमें भी हीन आचारसे उत्पन्न, बड़ी-बड़ी उत्कृष्ट ऋद्धिके देखनेसे उत्पन्न एवं वहाँसे च्युत होनेके कारण उत्पन्न महादुःख प्राप्त हुआ है ॥८३॥ और हे शुभे ! नरकोंमें शीत, उष्ण, क्षार जल, शस्त्र समूह, दुष्ट जन्तु तथा परस्परके मारण ताडन आदिसे उत्पन्न जो दुःख इस जीवने प्राप्त किया है वह कैसे कहा जा सकता है ? ॥८४॥ हे मैथिलि ! इस जीवने संसारमें अनेकों बार वियोग, उत्कण्ठा, व्याधियाँ, दुःख पूर्ण मरण और शोक प्राप्त किये हैं ॥८५॥ इस संसारमें ऊर्ध्व मध्यम अथवा अधोभागमें वह स्थान नहीं है जहाँ इस जीवने जन्म मृत्यु तथा जरा आदिके दुःख प्राप्त नहीं किये हों ॥८६॥ अपने कर्मरूपी वायुके द्वारा संसार-सागरमें निरन्तर भ्रमण करनेवाले इस जीवने मनुष्य पर्यायमें भी स्त्रीका ऐसा शरीर प्राप्त किया है ॥८७॥ शेष बचे हुए शुभाशुभ कर्मोंसे युक्त जो तू है सो तेरा गुणोंसे सुन्दर तथा शुभ अभ्युदयसे युक्त राम पति हुआ है ॥८८॥ पुण्योदयके अनुसार उसके साथ सुखका अभ्युदय प्राप्त कर अब पापके उदयसे तू दुःसह दुःखको प्राप्त हुई है ॥८९॥ देख, रावणके द्वारा हरी जा कर तू लङ्का पहुँची, वहाँ तूने माला तथा लेप आदि लगाना छोड़ दिया तथा ग्यारहवें दिन

१. एकादशे दिवे भुक्तिं मुक्तिमाल्यानुलेपना म० ।

प्रतिपक्षे हते तस्मिन् प्रत्यानीता ततः सती । सम्प्राप्ताऽसि पुनः सौख्यं बलदेवप्रसादतः ॥९१॥
अशुभोदयतो भूयो गर्भोद्यानसमन्विता । विना दोषेण मुक्तासि परिवादोरगक्षता ॥९२॥
यः साधुकुसुमागारं प्रदीपयति दुर्गिरा । अत्यन्तदारुणः पापो वह्निना दह्यतामसौ ॥९३॥
परमा देवि धन्या त्वमहो सुश्लाघ्यचेष्टिता । चैत्यालयनमस्कारदोहदं यदसि श्रिता ॥९४॥
अद्यापि पुण्यमस्त्येव तव सच्छीलशालिनि । दृष्टासि यन्मयाऽरण्ये प्राप्तेन द्विपकारणम् ॥९५॥
इन्द्रवंशप्रसूतस्य शुभैकचरितात्मनः । राज्ञो द्विरदवाहस्य सुबन्धुमहिषीभवः ॥९६॥
सुतोऽहं वज्रजङ्घाख्यः पुण्डरीकपुराधिपः । त्वं मे धर्मविधानेन ज्यायसी गुणिनि स्वसा ॥९७॥
एह्युत्तिष्ठोत्तमे यावः पुरं तामसमुत्सृज । राजपुत्रि कृतेऽप्यस्मिन् कार्यं किञ्चिन्न सिद्धयति ॥९८॥
स्थितायास्तत्र ते पद्मः पश्चात्तापसमाकुलः । पुनरन्वेषणं साध्वि करिष्यति न संशयः ॥९९॥
परिभ्रष्टं प्रमादेन महार्घगुणमुज्ज्वलम् । रत्नं को न पुनर्विद्वानन्विष्यति महादरः ॥१००॥
सान्त्ध्यमाना ततस्तेन धर्मसारकृतात्मना । धृतिं जगाम वैदेही परं प्राप्येव बान्धवम् ॥१०१॥
प्रशशंस च तं स त्वं भ्राता मे परमः शुभः । यशस्वी सुमतिः सत्त्वी शूरः सज्जनवत्सलः ॥१०२॥

आर्या

अधिगतसम्यग्दृष्टिर्गृहीतपरमार्थबोधिपूतात्मा ।
साधुरिव भावितात्मा व्रतगुणशीलार्थमुद्युक्तः ॥१०३॥

चरितं सत्पुरुषस्य व्यपगतदोषं परोपकारनियुक्तम् ।
कथयति कस्य न शोकं जिनमतनिरतप्रगाढचेतस्कस्य ॥१०४॥

श्रीरामके प्रसादसे पुनः सुखको प्राप्त हुई अब फिर गर्भवती हो पापोदयसे निन्दारूपी साँपके द्वारा डँसी गई है और बिना दोषके ही यहाँ छोड़ी गई है ॥९०-९२॥ जो साधुरूपी फूलोंके महलको दुर्वचनके द्वारा जला देता है वह अत्यन्त कठिन पाप अग्निके द्वारा भस्मीभूत हो अर्थात् तेरा पापकर्म शीघ्र ही नाशको प्राप्त हो ॥९३॥ अहो देवि! तू परम धन्य है, और अत्यन्त प्रशंसनीय चेष्टाकी धारक है जो तू चैत्यालयोंको वन्दनाके दोहलाको प्राप्त हुई है ॥९४॥ हे उत्तम-शीलशोभिते! आज भी तेरा पुण्य है ही जो हाथीके निमित्त वनमें आये हुए मैंने तुझे देख लिया ॥९५॥ मैं इन्द्रवंशमें उत्पन्न, एक शुभ आचारका ही पालन करनेवाले राजा द्विरदवाहकी सुबन्धु नामक रानीसे उत्पन्न हुआ वज्रजंघ नामका पुत्र हूँ, मैं पुण्डरीकनगरका स्वामी हूँ। हे गुणवति! तू धर्म विधिसे मेरी बड़ी बहिन है ॥९६-९७॥ हे उत्तमे, चलो उठो नगर चलें, शोक छोड़ो क्योंकि हे राजपुत्रि! इस शोकके करनेपर भी कोई कार्य सिद्ध नहीं होता है ॥९८॥ हे पतिव्रते! तुम वहाँ रहोगी तो पश्चात्तापसे आकुल होते हुए राम फिरसे तुम्हारी खोज करेंगे इसमें संशय नहीं है ॥९९॥ प्रमादसे गिरे, महामूल्य गुणोंके धारक उज्ज्वल रत्नको कौन विद्वान् बड़े आदरसे फिर नहीं चाहता है? अर्थात् सभी चाहते हैं ॥१००॥

तदनन्तर धर्मके रहस्यसे कुशल अर्थात् धर्मके मर्मको जाननेवाले उस वज्रजंघके द्वारा समझाई गई सीता इस प्रकार धैर्यको प्राप्त हुई मानो उसे भाई ही मिल गया हो ॥१०१॥ उसने वज्रजंघकी इस तरह प्रशंसा की कि हाँ तू मेरा वही भाई है, तू अत्यन्त शुभ है, यशस्वी है, बुद्धिमान् है, धैर्यशाली है, शूरवीर है, साधु-वत्सल है, सम्यग्दृष्टि है, परमार्थको समझनेवाला है, रत्नत्रयसे पवित्रात्मा है, साधुकी भाँति आत्मचिन्तन करनेवाला है तथा व्रत गुण और शीलकी प्राप्तिके लिए निरन्तर तत्पर रहता है ॥१०२-१०३॥ निर्दोष एवं परोपकारमें तत्पर सत्पुरुषका चरित, किस जिनमतके प्रगाढ़ श्रद्धालीका शोक नहीं नष्ट करता? अर्थात् सभीका भोजन प्राप्त किया। फिर शत्रु रावणके मारे जाने पर वहाँसे पुनः वापिस लाई गई और बलदेव

नूनं पूर्वत्र भवे सहोदरस्त्वं च बभूवाविसथप्रीतः ।
हरसि तमो मे येन स्फीतं रविवद्विशुद्धात्मा ॥१०५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सीतासमाश्वासनं नामाष्टनवतितमं पर्व ॥९८॥

करता है ॥१०४॥ निश्चित ही तू पूर्वभवमें मेरा यथार्थ प्रेम करनेवाला भाई रहा होगा इसीलिए तो तू सूर्यके समान निर्मल आत्माका धारक होता हुआ मेरे विस्तृत शोक रूपी अन्धकारको हरण कर रहा है ॥१०५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्यद्वारा विरचित पद्मपुराणमें सीताको सान्त्वना देनेका वर्णन करनेवाला अठानवेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥९८॥

नवनवतितमं पर्व

अथ क्षणादुपानीतां सुस्तम्भां भक्तिभासुराम् । विमानसदृशीं रम्यां सत्प्रमाणप्रतिष्ठिताम् ॥१॥
वरदर्पणलम्बूषचन्द्रचामरहारिणीम् । हारबुद्बुदसंयुक्तां विचित्रांशुकशालिनीम् ॥२॥
प्रसारितमहामाल्यां चित्रकर्मविशेषिताम् । [illegible] ॥३॥
कस्तूरी परमया युक्ता महासैनिकमध्यगा । प्रतस्थे कर्मवैचित्र्यं चिन्तयन्ती सविस्मया ॥४॥
दिनैस्त्रिभिरतिक्रम्य तदरण्यं सुभीषणम् । पुण्डरीकसुराष्ट्रं सा प्रविष्टा साधुचेष्टिता ॥५॥
समस्तसस्यसम्पन्निस्तिरोहितमहीतलम् । ग्रामैः कुक्कुटसम्पाद्यैः [1]पुराकारैर्विराजितम् ॥६॥
पुरैर्नाकपुरच्छायैरासेवनकदर्शनम् । पश्यन्ती विषयं श्रीमदुद्यानादिविभूषितम् ॥७॥
मान्ये भगवति श्लाघ्ये दर्शनेन वयं तव । विधूतकिल्बिषा जाता कृतार्था भवसङ्गिनः ॥८॥
एवं महत्तरप्रष्ठैः स्तूयमाना कुटुम्बिभिः । सोपायनैर्नृपच्छायैर्वन्द्यमाना च भूरिशः ॥९॥
रचिताञ्जलिसम्मानैः पार्थिवैश्च सुरोपमैः । कृतप्रणाममभ्युद्यं शस्यमाना पदे पदे ॥१०॥
अनुक्रमेण सम्प्राप पौण्डरीकपुरान्तिकम् । मनोभिराममत्यन्तं पौरलोकनिषेवितम् ॥११॥
वैदेह्यागमनं श्रुत्वा स्वाम्यादेशेन सत्वरम् । उपशोभा पुरे चक्रे परमाधिकृतैर्जनैः ॥१२॥
[2]परितो हितसंस्काराः रथ्याः सन्निक्वरवराः । सुगन्धिभिर्जलैः सिक्ताः कृताः पुष्पतिरोहिताः ॥१३॥
इन्द्रचापसमानानि तोरणान्युच्छ्रितानि च । कलशाः स्थापिता द्वारे सम्पूर्णाः पल्लवाननाः[3] ॥१४॥

अथानन्तर राजा वज्रजघने क्षण भरमें एक ऐसी पालकी बुलाई जिसमें उत्तम खम्भे लगे हुए थे, जो नाना प्रकारके बेल-बूटोंसे सुशोभित थी, विमानके समान थी, रमणीय थी, योग्य प्रमाणसे बनाई गई थी, उत्तम दर्पण, फन्नूस, तथा चन्द्रमाके समान उज्ज्वल चमरोंसे मनोहर थी, हारके बुद्बुदोंसे सहित थी, रङ्ग-बिरङ्गे वस्त्रोंसे सुशोभित थी, जिस पर बड़ी-बड़ी मालाएँ फैलाकर लगाई गई थीं, जो चित्र रचनासे सुन्दर थी, और उत्तमोत्तम झरोखोंसे युक्त थी। ऐसी पालकी पर सवार हो सीताने प्रस्थान किया। उस समय सीता उत्कृष्ट सम्पदासे सहित थी, महा सैनिकोंके मध्य चल रही थी, कर्मोंकी विचित्रताका चिन्तन कर रही थी तथा आश्चर्यसे चकित थी ॥१-४॥ उत्तम चेष्टाको धारण करनेवाली सीता, तीन दिनमें उस भयंकर अटवीको पारकर पुण्डरीक देशमें प्रविष्ट हुई ॥५॥ समस्त प्रकारकी धान्य सम्पदाओंसे जिसकी भूमि आच्छादित थी, तथा कुक्कुटसंपाद्य अर्थात् निकट-निकट बसे हुए पुर और नगरोंसे जो सुशोभित था ॥६॥ स्वर्गपुरके समान कान्तिवाले नगरोंसे जो इतना अधिक सुन्दर था कि देखते-देखते तृप्ति ही नहीं होती थी, तथा जो बाग-बगीचे आदिसे विभूषित था ऐसे पुण्डरीक देशको देखती हुई वह आगे जा रही थी ॥७॥ हे मान्ये ! हे भगवति ! हे श्लाघ्ये ! तुम्हारे दर्शनसे हम संसारके प्राणी निष्पाप एवं कृतकृत्य हो गये ॥८॥ इस प्रकार राजाकी कान्तिको धारण करनेवाले गाँवके बड़े-बूढ़े लोग भेंट ले लेकर उसकी बार-बार वन्दना करते थे ॥९॥ अर्घ आदिके द्वारा सन्मान करनेवाले देव तुल्य राजा उसे प्रणामकर पद-पद पर उसकी अत्यधिक प्रशंसा करते जाते थे ॥१०॥ अनुक्रमसे वह अत्यन्त मनोहर तथा पुरवासी लोगोंसे सेवित पुण्डरीकपुरके समीप पहुँची ॥११॥ सीताका आगमन सुन स्वामीके आदेशसे अधिकारी लोगोंने शीघ्र ही नगरमें बहुत भारी सजावट की ॥१२॥ तिराहों और चौराहोंसे सहित बड़े-बड़े मार्ग सब ओरसे सजाये गये, सुगन्धित जलसे सींचे गये तथा फूलोंसे आच्छादित किये गये ॥१३॥ इन्द्रधनुषके समान रङ्ग-बिरङ्गे

---

१. पुराकारैर्विराजितं म० । २. परितो श्रुत-ख० । परितः कृतसत्काराः म० । ३. पल्लवानने म० ।

विलसद्ध्वजमालाढ्यं समुद्गतशुभस्वरम् । कर्तुं नृत्तमिवाऽऽसक्तं नगरं सम्प्रमोदवत् ॥१५॥
गोपुरेण समं शालः समारूढमहाजनः । हर्षादिव परां वृद्धिं प्राप कोलाहलान्वितः ॥१६॥
अन्तर्बहिश्च तत्स्थानं सीतादर्शनकाङ्क्षिभिः । जङ्गमत्वमिव प्राप्तं जनौघैः प्रचलात्मकैः ॥१७॥
ततो विविधवाद्यिग्रनादेनाऽऽशाभिपूरिणा । शङ्खस्वनविमिश्रेण बन्दिनिःस्वानयोगिना ॥१८॥
विस्मयव्याप्तचित्तेन पौरेण कृतवीक्षणा । विवेश नगरं सीता लक्ष्मीरिव सुरालयम् ॥१९॥
उद्यानेन परिक्षिप्तं वापिकाकृतमण्डनम् । मेरुकूटसमाकारं बलदेवसमद्युतिम् ॥२०॥
वज्रजङ्घगृहान्तस्थं प्रासादमतिसुन्दरम् । पूज्यमाना नृपस्त्रीभिः प्रविष्टा जनकात्मजा ॥२१॥
बिभ्रता परमं तोषं वज्रजङ्घेन सूरिणा । भ्रात्रा भामण्डलेनेव पूज्यमाना सुचेतसा ॥२२॥
जय जीवाभिनन्देति वर्द्धस्वाऽऽज्ञापयेति च । ईशाने देवते पूज्ये स्वामिनीति च शब्दिता ॥२३॥
आज्ञां प्रतीच्छता मूर्ध्ना सम्भ्रमं दधता परम् । प्रबद्धाञ्जलिना सार्द्धं परिवर्गेण चारुणा ॥२४॥
अवसत्तत्र वैदेही समुद्भूतमनीषिता । कथाभिर्धर्मसक्ताभिः पद्मभूमिव सन्ततम् ॥२५॥
प्राभृतं यावदायाति सामन्तेभ्यो महीपतेः । दत्तेन तेन वैदेही धर्मकार्यमसेवत ॥२६॥
असावपि कृतान्तास्यस्तप्यमानमना भृशम् । स्थूरीपृष्ठान् परिश्रान्तान् खेदवानुपालयन् ॥२७॥

तोरण खड़े किये गये, द्वारों पर जलसे भरे तथा मुखों पर पल्लवोंसे सुशोभित कलश रखे गये ॥१४॥ जो फहराती हुई ध्वजाओं और मालाओंसे सहित था, तथा जहाँ शुभ शब्द हो रहा था ऐसा वह नगर आनन्द-विभोर हो मानो नृत्य करनेके लिए ही तत्पर था ॥१५॥ गोपुरके साथ साथ जिसपर बहुत भारी लोग चढ़कर बैठे हुए थे ऐसा नगरका कोट इस प्रकार जान पड़ता था मानो हर्षके कारण कोलाहल करता हुआ परम वृद्धिको ही प्राप्त हो गया हो ॥१६॥ भीतर बाहर सब जगह सीताके दर्शनकी इच्छा करनेवाले चलते-फिरते जन-समूहसे उस नगरका प्रत्येक स्थान ऐसा जान पड़ता था मानो जंगमपनाको ही प्राप्त हो गया हो अर्थात् चलने-फिरने लगा हो ॥१७॥

तदनन्तर शङ्खोंके शब्दसे मिश्रित, एवं बन्दीजनोंके विरद गानसे युक्त नाना प्रकारके वादित्रोंका शब्द जब दिग्दिगन्तको व्याप्त कर रहा था तब सीताने नगरमें इस तरह प्रवेश किया जिस तरह कि लक्ष्मी स्वर्गमें प्रवेश करती है। उस समय आश्चर्यसे जिनका चित्त व्याप्त हो रहा था ऐसे नगरवासी लोग सीताका बार-बार दर्शन कर रहे थे ॥१८-१९॥ तदनन्तर जो उद्यानसे घिरा हुआ था, वापिकाओंसे अलंकृत था, मेरुके शिखरके समान ऊँचा था और बलदेवकी कान्तिके समान सफेद था ऐसे वज्रजङ्घके घरके समीप स्थित अत्यन्त सुन्दर महलमें राजाकी स्त्रियोंसे पूजित होती हुई सीताने प्रवेश किया ॥२०-२१॥ वहाँ परम सन्तोषको धारण करनेवाला, बुद्धिमान एवं उत्तम हृदयका धारक राजा वज्रजङ्घ, भाई भामण्डलके समान जिसकी पूजा करता था ॥२२॥ 'हे ईशाने ! हे देवते ! हे पूज्ये ! हे स्वामिनि ! तुम्हारी जय हो, जीवित रहो, आनन्दित होओ, बढ़ती रहो और आज्ञा देओ, इस प्रकार जिसका निरन्तर विरदगान होता रहता था ॥२३॥ परम संभ्रमके धारक, हाथ जोड़, मस्तक झुका आज्ञा प्राप्त करनेके इच्छुक सुन्दर परिजन सदा जिसके साथ रहते थे, तथा इच्छा करते ही जिसके मनोरथ पूर्ण होते थे ऐसी सीता वहाँ निरन्तर धर्म सम्बन्धी तथा राम सम्बन्धी कथाएँ करती हुई निवास करती थी ॥२४-२५॥ राजा वज्रजङ्घके पास सामन्तों की ओरसे जितनी भेंट आती थी वह सब सीताके लिए दे देता था और उसीसे वह धर्मकार्यका सेवन करती थी ॥२६॥

अथानन्तर जिसका मन अत्यन्त सन्तप्त हो रहा था, जो अत्यधिक खेदसे युक्त था, जो

---

१. कृतान्तवक्त्रसेनापतिः ।

समन्तान्नृपलोकेन पूर्यमाणस्त्वरावता । जगाम रामदेवस्य समीपं विनतानतः ॥२८॥
अब्रवीच्च प्रभो ! सीता [1]गर्भमात्रसहायिका । मया त्वद्वचनाद्भीमे कान्तारे स्थापिता नृप ॥२९॥
नानालिघोरनिःस्वानश्वापदीघनिषेविते । वेतालाकारवृक्षौघसंछन्नान्धकारिते ॥३०॥
निसर्गद्वेषसंसक्तयुद्धव्याघ्रमहिषाधिके । निबद्धदुन्दुभिध्वाने मरुता कोटरश्रिता ॥३१॥
कन्दरोदरसम्मूर्च्छत्सिंहनादप्रतिध्वनौ । दारुकक्वजस्वामभीमसुप्तशयु[2]स्वने ॥३२॥
[3]तृष्यत्तरिक्षुविध्वस्तसारङ्गास्तस्तुप्तिके[4] । घातकीस्तबकालेढ्रिशोणिताशङ्किसिंहके ॥३३॥
कृतान्तस्यापि भीभारसमुद्भवनपण्डिते । अरण्ये देव त्वद्वाक्याद्देवी रहिता मया ॥३४॥
अश्रुदुर्दिनवक्त्राया दीपिताया महाशुचा । सन्देशं देव सीताया निबोध कथयाम्यहम् ॥३५॥
स्वामाह मैथिली देवी यदीच्छस्यात्मने हितम् । जिनेन्द्रे मा मुचो भक्तिं यथा त्यक्ताऽहमीदृशी ॥३६॥
स्नेहानुरागसंसक्तो मानी यो मां विमुञ्चति । नूनं जिनेऽप्यसौ भक्तिं परित्यजति पार्थिवः ॥३७॥
वाग्बली यस्य यत् किञ्चित् परिवादं जनः खलः । आवेद्यायं वदत्येव तं हृद्यार्थं मनीषिणा ॥३८॥
निर्दोषाया जनो दोषं न तथा मम भाषते । यथा सद्धर्मरत्नस्य सम्यग्बोधबहिःकृतः ॥३९॥
को दोषो यदहं त्यक्ता भीषणे विजने वने । सम्यग्दर्शनसंशुद्धिं राम न त्यक्तुमर्हसि ॥४०॥

थके हुए घोड़ोंको विश्राम देनेवाला था और जिसे शीघ्रता करनेवाले राजाओंने सब ओरसे घेर लिया था ऐसा कृतान्तवक्त्र सेनापति, मुखको नीचा किये हुए श्रीरामदेवके समीप गया ॥२७-२८॥ और बोला कि हे प्रभो ! हे राजन् ! आपके कहनेसे मैं एक गर्भ ही जिसका सहायक था ऐसी सीताको भयंकर वनमें ठहरा आया हूँ ॥२९॥ हे देव ! आपके कहनेसे मैं सीताको उस वनमें छोड़ आया हूँ जो नाना प्रकारके अत्यन्त भयंकर शब्द करनेवाले वन्य पशुओंके समूहसे सेवित है, वेतालोंका आकार धारण करनेवाले दुर्दृश्य वृक्षोंके समूहसे जहाँ घोर अन्धकार व्याप्त है, जहाँ स्वाभाविक द्वेषसे निरन्तर युद्ध करनेवाले व्याघ्र और जंगली भैंसा अधिक हैं, जहाँ कोटरमें टकरानेवाली वायुसे निरन्तर दुन्दुभिका शब्द होता रहता है, जहाँ गुफाओंके भीतर सिंहोंके शब्दकी प्रतिध्वनि बढ़ती रहती है, जहाँ सोये हुए अजगरोंका शब्द लकड़ीपर चलनेवाली करोंतसे उत्पन्न शब्दके समान भयंकर है, जहाँ प्यासे भेड़ियोंके द्वारा हरिणोंके लटकते हुए पोते नष्ट कर डाले गये हैं। जहाँ रुधिरकी आशंका करनेवाले सिंह घातकी वृक्षके गुच्छोंको चाटते रहते हैं और जो यमराजके लिए भी भयका समूह उत्पन्न करनेमें निपुण है ॥३०-३४॥ हे देव ! जिसका मुख अश्रुओंकी वर्षासे दुर्दिनके समान हो रहा था तथा जो महाशोकसे अत्यन्त प्रज्वलित थी ऐसा सीताका संदेश मैं कहता हूँ सो सुनो ॥३५॥ सीता देवीने आपसे कहा है कि यदि अपना हित चाहते हो तो जिस प्रकार मुझे छोड़ दिया है उस प्रकार जिनेन्द्रदेवमें भक्तिको नहीं छोड़ना ॥३६॥ स्नेह तथा अनुरागसे युक्त जो मानी राजा मुझे छोड़ सकता है निश्चय ही वह जिनेन्द्रदेवमें भक्ति भी छोड़ सकता है ॥३७॥ वचन बलको धारण करनेवाला दुष्ट मनुष्य बिना विचारे चाहे जिसके विषयमें चाहे जो निन्दाकी बात कह देता है परन्तु बुद्धिमान् मनुष्यको उसका विचार करना चाहिए ॥३८॥ साधारण मनुष्य मुझ निर्दोषके दोष उस प्रकार नहीं कहते जिस प्रकार कि सम्यग्ज्ञानसे रहित मनुष्य सद्धर्म रूपी रत्नके दोष कहते फिरते हैं। भावार्थ—दूसरेके कहनेसे जिस प्रकार आपने मुझे छोड़ दिया है उस प्रकार सद्धर्म रूपी रत्नको नहीं छोड़ देना क्योंकि मेरी अपेक्षा सद्धर्म रूपी रत्नकी निन्दा करनेवाले अधिक हैं ॥३९॥ हे राम ! आपने मुझे भयंकर निर्जन वनमें छोड़ दिया है सो इसमें क्या दोष है ? परन्तु इस तरह

१. गर्भमात्रं सहायो यस्या सा । २. दारुकीचक्रनिःस्वान ब० । ३. शयुरजगरः । ४. तृत्यत्तरिक्षु म० । ५. पुत्रिके म०, ख० ।

एतदेकभवे दुःखं वियुक्तस्य मया सह । सम्यग्दर्शनहानौ तु दुःख जन्मनि जन्मनि ॥४१॥
नरस्य सुलभं लोके निधिस्त्रीवाहनादिकम् । सम्यग्दर्शनरत्नं तु साम्राज्यादपि दुर्लभम् ॥४२॥
राज्ये विधाय पापानि पतनं नरके ध्रुवम् । ऊर्ध्वं गमनमेकेन सम्यग्दर्शनतेजसा ॥४३॥
सम्यग्दर्शनरत्नेन यस्यात्मा कृतभूषणः । लोकद्वितयमप्यस्य कृतार्थत्वमुपाश्नुते ॥४४॥
सन्दिष्टमिति जानक्या स्नेहनिर्भरचित्तया । श्रुत्वा कस्य न वीरस्य जायते मतिरुत्तमा ॥४५॥
स्वभावाद्भीरुका भीरुर्भीष्यमाणा सुभीरुभिः । विभीषिकाभिरुग्राभिर्भीमाभिः पौंस्निनोऽप्यलम् ॥४६॥
भासुरोग्रमहाव्यालजालकालभयङ्करे । सामिशुष्कसरोमज्जच्छूत्कुर्वन्मत्तवारणे ॥४७॥
कर्कन्धुकण्टकाश्लिष्टपुच्छार्त्तचमरावले । अलाकलिलश्रद्धादौक्यमानाकुलैणके ॥४८॥
कपिकच्छूरजःसङ्गनितान्तचलमर्कटे । प्रलम्बकेसरच्छन्नवक्त्रविक्रन्ददृष्टके ॥४९॥
तृष्यातुरवृकक्रामत्कलसद्रसनपल्लवे । गुञ्जाकोशोत्कुटाच्छोटनाकुलभोगिनि ॥५०॥
परुषानिलसञ्चारक्रूरक्रन्दश्रिताङ्घ्रिपे । क्षणसम्भूतवातूलसमुद्धूतरजोदले ॥५१॥
महाजगरसञ्चारचूर्णितानेकपादपे । उद्वृत्तमत्तसागेन्द्रध्वस्तभीमामुथारिणि ॥५२॥
वराहव्याहिनाखातसरःकोडसुकर्कशे । कण्टकावटवल्मीककूटसङ्कटभूतले ॥५३॥
शुष्कपुष्पद्रवोत्तप्तभ्रद्यमर्त्तगर्मुति[3] । कूप्यच्छलिलनिर्मुक्तसूक्ष्मीशतकरालिते ॥५४॥

आप सम्यग्दर्शनकी शुद्धताको छोड़नेके योग्य नहीं हैं ॥४०॥ क्योंकि मेरे साथ वियोगको प्राप्त हुए आपको इसी एक भवमें दुःख होगा परन्तु सम्यग्दर्शनके छूट जाने पर तो भव-भवमें दुःख होगा ॥४१॥ लोकमें मनुष्यको स्त्री तथा वाहन आदिका मिलना सुलभ है परन्तु सम्यग्दर्शन रूपी रत्न साम्राज्यसे भी कहीं अधिक दुर्लभ है ॥४२॥ राज्यमें पाप करनेसे मनुष्यका नियमसे नरकमें पतन होता है परन्तु उसी राज्यमें यदि सम्यग्दर्शन साथ रहता है तो एक उसीके तेजसे ऊर्ध्वगमन होता है—स्वर्गकी प्राप्ति होती है ॥४३॥ जिसकी आत्मा सम्यग्दर्शन रूपी रत्नसे अलंकृत है। उसके दोनों लोक कृतकृत्यताको प्राप्त होते हैं ॥४४॥ इस प्रकार स्नेह पूर्ण चित्तको धारण करनेवाली सीताने जो संदेश दिया है उसे सुनकर किस वीरके उत्तम बुद्धि उत्पन्न नहीं होती ? ॥४५॥ जो स्वभावसे ही भीरु है यदि उसे दूसरे भय उत्पन्न कराते हैं तो उसके भीरु होनेमें क्या आश्चर्य ? परन्तु उग्र एवं भयंकर विभीषिकाओंसे तो पुरुष भी भयभीत हो जाते हैं। भावार्थ—जो भयंकर विभीषिकाएँ स्वभाव-भीरु सीताको प्राप्त हैं वे पुरुषको भी प्राप्त न हों ॥४६॥

हे देव! जो अत्यन्त देदीप्यमान—दुष्ट हिंसक जन्तुओंके समूहसे यमराजको भी भय उत्पन्न करनेवाला है, जहाँ अर्ध शुष्क तालाबकी दल-दलमें फँसे हाथी शूत्कार कर रहे हैं, जहाँ बेरीके काँटोंमें पूँछके उलझ जानेसे सुरा गायोंका समूह दुःखी हो रहा है, जहाँ मृगमरीचिमें जलकी श्रद्धासे दौड़नेवाले हरिणोंके समूह व्याकुल हो रहे हैं, जहाँ करेंचकी रजके संगसे वानर अत्यन्त चञ्चल हो उठे हैं, जहाँ लम्बी-लम्बी जटाओंसे मुख ढँक जानेके कारण रीछ चिल्ला रहे हैं, जहाँ प्याससे पीड़ित भेड़ियोंके समूह अपनी जिह्वा रूपी पल्लवोंको बाहर निकाल रहे हैं, जहाँ गुमचीकी फलियोंके चटकने तथा उनके दाने ऊपर पड़नेसे साँप कुपित हो रहे हैं, जहाँ वृक्षोंका आश्रय लेनेवाले जन्तु, तीव्र वायुके संचारसे 'कहीं वृक्ष टूट कर ऊपर न गिर पड़े, इस भयसे क्रूर क्रन्दन कर रहे हैं, जहाँ क्षण एकमें उत्पन्न बवण्डरमें धूलि और पत्तोंके समूह एकदम उड़ने लगते हैं, जहाँ बड़े-बड़े अजगरोंके संचारसे अनेक वृक्ष चूर चूर हो गये हैं, जहाँ उद्दण्ड मदोन्मत्त हाथियोंके द्वारा भयंकर प्राणी नष्ट कर दिये गये हैं, जो सूकरोंके समूहसे खोदे गये तालाबोंके मध्य भागसे कठोर है, जहाँका भूतल काँटे, गड्ढे, बबाठे और मिट्टीके टीलोंसे व्याप्त है, जहाँ फूलोंका रस

१. क्रन्दवृक्षके म० । २. ध्वनि -म० । ३. गर्मुत् भ्रमरः श्री० टि० । ४. कुप्या सलिल -म० ।

एवंविधे महारण्ये रहिता देव जानकी । मन्ये न क्षणमप्येकं प्राणान् धारयितुं क्षमा ॥५५॥
ततः सेनापतेर्वाक्यं श्रुत्वा रौद्रमरेरपि । विषादमगमद्रामस्तेनैव विदितात्मकम् ॥५६॥
अस्मिन्नवद्य किं न्वेतान्मलत्वाक्यवशात्मना । मयका मूढचित्तेन कृतमत्यन्तनिन्दितम् ॥५७॥
सादृशी राजपुत्री क्व क्व चेदं दुःखमीदृशम् । इति सञ्चिन्त्य यावोऽसौ मूर्च्छां मुकुलितेक्षणः ॥५८॥
चिराच्च प्रतिकारेण प्राप्य संज्ञां सुदुःखितः । विप्रलापं परं चक्रे दयितागतमानसः ॥५९॥
हा त्रिवर्णसरोजाभे हा विशुद्धगुणाम्बुधे[1] । हा वक्त्रजितताराधे हा पद्मान्तरकोमले ॥६०॥
अयि वैदेहि वैदेहि देहि देहि वचो द्रुतम् । जानास्येव हि मे चित्तं त्वदतेऽत्यन्तकातरम् ॥६१॥
उपमानविनिर्मुक्तशीलधारिणि हारिणि । हितप्रियसमालापे पापवर्जितमानसे ॥६२॥
अपराधविनिर्मुक्ता निर्घृणेन मयोज्झिता । प्रविष्टा हृदि कां वार्तां वने वासमवाप्स्यसि ॥६३॥
महाप्रतिभयेऽरण्ये क्रूरश्वापदसङ्कटे । कथं तिष्ठसि सम्त्यक्ता देवि भोगविवर्जिता ॥६४॥
मदोत्सिक्तचकोराक्षि लावण्यजलदीर्घिके । अपाविनयसम्पन्ने हा देवि क्व गतासि मे ॥६५॥
निःश्वासोच्छ्वासमोदजालेन मदान् भृङ्गारसङ्गतान् । [2]वारयन्ती कराब्जेन भ्रमरान् खेदमाप्स्यति ॥६६॥
क्व यास्यसि विचेतस्का यूथभ्रष्टा मृगी यथा । एकाकिनी वने भीमे चिन्तितेऽपि सुदुःसहे ॥६७॥
अब्जगर्भमृदुकान्ती [3]पादुकौ चारुलक्षणौ । कथं सह सहिष्येते सङ्गं कर्कशया भुवा ॥६८॥

सूख जानेसे घामसे पीड़ित भौंरे छटपटाते हुए इधर-उधर उड़ रहे हैं और जो कुपित सेहियोंके द्वारा छोड़े हुए काँटोंसे भयंकर है ऐसे महावनमें छोड़ी हुई सीता क्षणभर भी प्राण धारण करनेके लिए समर्थ नहीं है ऐसा मैं समझता हूँ ॥४७–५५॥

तदनन्तर जो शत्रुसे भी अधिक कठोर थे ऐसे सेनापतिके वचन सुनकर राम विषादको प्राप्त हुए और उतनेसे ही उन्हें अपने आपका बोध हो गया—अपनी त्रुटि अनुभवमें आ गई॥५६॥ वे विचार करने लगे कि मुझ मूर्ख हृदयने दुर्जनोंके वचनोंके वशीभूत हो यह अत्यन्त निन्दित कार्य क्यों कर डाला ? ॥५७॥ कहाँ वह वैसी राजपुत्री ? और कहाँ यह ऐसा दुःख ? इस प्रकार विचार कर राम नेत्र बन्द कर मूर्छित हो गये ॥५८॥ तदनन्तर जिनका हृदय सीतामें लग रहा था ऐसे राम उपाय करनेसे चिरकाल बाद सचेत हो अत्यन्त दुखी होते हुए परम विलाप करने लगे ॥५९॥ वे कहने लगे कि हाय सीते ! तेरे नेत्र तीन रङ्गके कमलके समान हैं, तू निर्मल गुणों का सागर है, तूने अपने मुखसे चन्द्रमाको जीत लिया है, तू कमलके भीतरी भागके समान कोमल है ॥६०॥ हे वैदेहि ! हे वैदेहि ! शीघ्र ही वचन देओ। यह तो तू जानती ही है कि मेरा हृदय तेरे बिना अत्यन्त कातर है ॥६१॥ तू अनुपम शीलको धारण करने वाली है, सुन्दरी है, तेरा वार्तालाप हितकारी तथा प्रिय है। तेरा मन पापसे रहित है ॥६२॥ तू अपराधसे रहित थी फिर भी निर्दय होकर मैंने तुझे छोड़ दिया। हे मेरे हृदयमें वास करने वाली ! तू किस दशा को प्राप्त हुई होगी ? ॥६३॥ हे देवि ! महाभयदायक एवं दुष्ट वन्य पशुओंसे भरे हुए वनमें छोड़ी गई तू भोगोंसे रहित हो किस प्रकार रहेगी ? ॥६४॥ तेरे नेत्र मदोन्मत्त चकोरके समान हैं, तू सौन्दर्य रूपी जलकी वापिका है, लज्जा और विनयसे सम्पन्न है। हाय मेरी देवि ! तू कहाँ गई ? ॥६५॥ हाय देवि ! श्वासोच्छ्वासकी सुगन्धिसे भ्रमर तेरे मुखके समीप इकट्ठे होकर झंकार करते होंगे उन्हें कर कमलसे दूर हटाती हुई तू अवश्य ही खेदको प्राप्त होगी ॥६६॥ जो विचार करने पर भी अत्यन्त दुःसह है ऐसे भयंकर वनमें झुण्डसे बिछुड़ी मृगीके समान तू अकेली शून्य हृदय हो कहाँ जायगी ? ॥६७॥ कमलके भीतरी भागके समान कोमल एवं सुन्दर लक्षणोंसे युक्त

---

१. गुणेषुधे ख०, ब०, म० । २. वादयन्ती म० । ३. पादुकौ म० ।

कृत्याकृत्यविवेकेन सुदूरं मुक्तमानसैः । गृहीता किमसि म्लेच्छैः पल्लीं नीता सुभीषणाम् ॥६६॥
पूर्वादपि प्रिये दुःखादिदं दुःखमनुत्तमम् । प्राप्तासि साध्वि कान्तारे दारुणेन मयोज्झिता ॥७०॥
रात्रौ तमसि निर्भेदे सुप्ता खिन्नशरीरिका । वनरेणुपरीताङ्गा किमाक्रान्ताऽसि हस्तिना ॥७१॥
गृध्रर्क्षभल्लगोमायुशार्दूलऋक्षसमाकुले । निर्मार्गे परमारण्ये प्रियसे दुःखिता कथम् ॥७२॥
दंष्ट्राकरालवक्त्रेण धृताङ्गेन महाक्षुधा । किं व्याघ्रेणोपनीताऽसि प्रियेऽवस्थामशोभिताम् ॥७३॥
किं वा विलोलजिह्वेन विलसत्केसरालिना । सिंहेनास्यथवा सत्त्वशाली को योषितीदृशः ॥७४॥
ज्वालाकलापिनोत्तुङ्गपादपाभावकारिणा । दावेन किन्नु नीताऽसि देव्यवस्थामशोभनाम् ॥७५॥
अथवा ज्योतिरंशस्य करैरत्यन्तदुःसहैः । जन्तुधर्म किमासाऽसि छायासर्पणविह्वला ॥७६॥
नृशंसेऽपि मयि स्वान्तं कृत्वा शोभनशालिका । विदीर्णहृदया किन्नु मार्यधर्मसमाश्रिता ॥७७॥
वातिरत्नजटिभ्यां मे सदृशः को नु साम्प्रतम् । प्रापयिष्यति सीताया वार्तां कुशलशंसिनीम् ॥७८॥
हा प्रिये हा महाशीले हा मनस्विनि हा शुभे । क्व तिष्ठसि क्व याताऽसि किं करोषि न वेत्सि किम् ॥७९॥
अहो कृतान्तवक्त्रासौ सत्यमेव त्वया प्रिया । त्यक्तातिदारुणेऽरण्ये कथमेवं करिष्यसि ॥८०॥
ब्रूहि ब्रूहि न सा कान्ता त्यक्ता तव मयेतरम् । वक्त्रेणानेन चन्द्रेण क्षरतेवामृतोत्करम् ॥८१॥
इत्युक्तोऽपत्रपाभारनतवक्त्रो गतप्रभः । प्रतिपत्तिविनिर्मुक्तः सेनानीरकुलोऽभवत् ॥८२॥

तेरे पैर कठोर भूमिके साथ समागमको किस प्रकार सहन करेंगे ? ॥६८॥ अथवा जिनका मन, कृत्य और अकृत्यके विवेकसे बिलकुल ही रहित है ऐसे म्लेच्छ लोग तुझे पकड़ कर अत्यन्त भयंकर पल्लीमें ले गये होंगे ॥६९॥ हे प्रिये ! हे साध्वि ! मुझ दुष्टने तुझे वनमें छोड़ा है अतः अबकी बार पहले दुःखसे भी कहीं अधिक दुःखको प्राप्त हुई है ॥७०॥ अथवा तू खेदखिन्न एवं वनकी धूलीसे व्याप्त हो रात्रिके सघन अन्धकारमें सो रही होगी सो तुझे हाथीने दबा दिया होगा ॥७१॥ जो गीध रीछ भालू शृगाल खरगोश और उल्लुओंसे व्याप्त है तथा जहाँ मार्ग दृष्टिगोचर नहीं होता ऐसे बीहड़ वनमें दुखी होती हुई तू कैसे रहेगी ? ॥७२॥ अथवा हे प्रिये ! जिसका मुख दाढ़ोंसे भयंकर है, अंगड़ाई लेनेसे जिसका शरीर कम्पित है तथा जो तीव्र भूखसे युक्त है ऐसे किसी व्याघ्रने तुम्हें शब्दागोचर अवस्थाको प्राप्त करा दिया है ? ॥७३॥ अथवा जिसकी जिह्वा लप-लपा रही है और जिसकी गरदनके बालोंका समूह सुशोभित है ऐसे किसी सिंहने तुम्हें शब्दातीत दशाको प्राप्त करा दिया है क्योंकि ऐसा कौन है जो स्त्रियोंके विषयमें शक्ति-शाली न हो ? ॥७४॥ अथवा हे देवि ! ज्वालाओंके समूहसे युक्त, तथा ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंका अभाव करने वाले दावानलके द्वारा तू क्या अशोभन अवस्थाको प्राप्त कराई गई है ? ॥७५॥ अथवा तू छायामें जाने के लिए असमर्थ रही होगी इसलिए क्या सूर्यकी अत्यन्त दुःसह किरणोंसे मरणको प्राप्त हो गई है ॥७६॥ अथवा तू प्रशस्त शीलकी धारक थी और मैं अत्यन्त क्रूर प्रकृतिका था। फिर भी तुने मुझमें अपना चित्त लगाया। क्या इसी असमञ्जसभावसे तेरा हृदय विदीर्ण हो गया होगा और तू मृत्युको प्राप्त हुई होगी ॥७७॥ हनूमान् और रत्नजटीके समान इस समय कौन है ? जो सीताकी कुशल वार्ता प्राप्त करा देगा ? ॥७८॥ हा प्रिये ! हा महाशीलवति ! हा मनस्विनि ! हा शुभे ! तू कहाँ है ? कहाँ चली गई ? क्या कर रही है ? क्या कुछ भी नहीं जानती ? ॥७९॥ अहो कृतान्तवक्त्र ! क्या सचमुच ही तुमने प्रियाको अत्यन्त भयानक वनमें छोड़ दिया है ? नहीं नहीं तुम ऐसा कैसे करोगे ? ॥८०॥ इस मुखचन्द्रसे अमृतके समूहको झराते हुएके समान तुम कहो-कहो कि मैंने तुम्हारी उस कान्ताको नहीं छोड़ा है ॥८१॥ इस प्रकार कहने पर लज्जाके भारसे जिसका मुख नीचा हो गया था, जिसकी प्रभा समाप्त हो गई थी, और जो स्वीकृतिसे रहित था ऐसा

---

१. के योषितीदृशी ब० । किं योषितीदृशः म० ।

स्थिते निर्वचने तस्मिन् ध्यात्वा सीतां सुदुःखिताम् । पुनर्मूर्च्छां गतो रामः कृच्छ्रात्संज्ञां च लम्भितः ॥८३॥
लक्ष्मणोऽभ्यन्तरे प्राप्तो जगादान्तःशुचं स्पृशन् । आकुलोऽसि किमित्येवं देव धैर्यं समाश्रय ॥८४॥
फलं पूर्वार्जितस्येदं कर्मणः समुपागतम् । सकलस्यापि लोकस्य राजपुत्र्या न केवलम् ॥८५॥
प्राप्तव्यं येन यल्लोके दुःखं कल्याणमेव वा । स तं स्वयमवाप्नोति कुतश्चिद्व्यपदेशतः ॥८६॥
आकाशमपि नीतः सन् वनं वा श्वापदाकुलम् । मूर्धानं वा महीध्रस्य पुण्येन स्वेन रक्ष्यते ॥८७॥
देव सीतापरित्यागश्रवणाद्भरतावनौ । अकरोदास्पदं दुःखं प्राकृतीयमनःस्वपि ॥८८॥
प्रजानां दुःखतप्तानां विलीनानां समन्ततः । अश्रुधारापदेशेन हृदयं त्वंगलन्निव ॥८९॥
परिदेवनमेवं च चक्रेऽत्यन्तसमाकुलः । हिमाहतप्रभाम्भोजखण्डसन्निभवक्त्रकः ॥९०॥
हा दुष्टजनवाक्याग्निप्रदीपितशरीरिके । गुणसस्यसमुत्पत्तिभूमिभूतसुभावने ॥९१॥
राजपुत्रि क्व यातासि सुकुमाराङ्घ्रिपल्लवे । शीलाद्रिधरणक्षोणि सीते सौम्ये मनस्विनि ॥९२॥
खलवाक्यतुषारेण मातः पश्य समन्ततः । गुणराट् विसिनी दग्धा राजहंसनिषेविता ॥९३॥
सुभद्रासदृशी भद्रा सर्वाचारविचक्षणा । सुखासिकेव लोकस्य मूर्ता क्वासि वरे गता ॥९४॥
भास्करेण विना का द्यौः का निशा शशिना विना । क्षीरत्नेन विना तेन साकेता वाऽपि कीदृशी ॥९५॥

सेनापति व्याकुल हो गया ॥८२॥ जब कृतान्तवक्त्र चुप खड़ा रहा तब अत्यन्त दुःखसे युक्त सीता का ध्यान कर राम पुनः मूर्च्छाको प्राप्त हो गये और बड़ी कठिनाईसे सचेत किये गये ॥८३॥

इसी बीचमें लक्ष्मणने आकर हृदयमें शोक धारण करनेवाले रामका स्पर्श करते हुए कहा कि हे देव ! इस तरह व्याकुल क्यों होते हो ? धैर्य धारण करो ॥८४॥ यह पूर्वोपार्जित कर्मका फल समस्त लोकको प्राप्त हुआ है न केवल राजपुत्रीको ही ॥८५॥ संसारमें जिसे जो दुःख अथवा सुख प्राप्त करना है वह उसे किसी निमित्तसे स्वयमेव प्राप्त करता है ॥८६॥ यह प्राणी चाहे आकाशमें ले जाया जाय, चाहे क्रूर पशुओंसे व्याप्त वनमें ले जाया जाय और चाहे पर्वतकी चोटी पर ले जाया जाय सर्वत्र अपने पुण्यसे ही रक्षित होता है ॥८७॥ हे देव ! सीताके परित्यागका समाचार सुनकर इस भरतक्षेत्रकी समस्त वसुधामें साधारणसे साधारण मनुष्योंके भी मनमें दुःखने अपना स्थान कर लिया है ॥८८॥ दुःखसे संतप्त एवं सब ओरसे द्रवीभूत प्रजाजनोंके हृदय अश्रुधाराके बहाने मानो गल-गलकर बह रहे हैं ॥८९॥ रामसे इतना कहकर अत्यन्त व्याकुल हो लक्ष्मण स्वयं विलाप करने लगे और उनका मुख हिमसे ताडित कमल-वनके समान निष्प्रभ हो गया ॥९०॥ वे कहने लगे कि हाय सीते ! तेरा शरीर दुष्टजनोंके वचन रूपी अग्निसे प्रज्वलित हो रहा है, तू गुणरूपी धान्यकी उत्पत्तिके लिए भूमि स्वरूप है तथा उत्तम भावनासे युक्त है ॥९१॥ हे राजपुत्रि ! तू कहाँ गई ? तेरे चरण-किसलय अत्यन्त सुकुमार थे ? तू शील रूपी पर्वतको धारण करनेके लिए पृथिवी रूप थी, हे सीते ! तू बड़ी ही सौम्य और मनस्विनी थी ॥९२॥ हे मातः ! देख, दुष्ट मनुष्योंके वचनरूपी तुषारसे गुणोंसे सुशोभित तथा राजहंसोंसे निषेवित यह कमलिनी सब ओरसे दग्ध हो गई है। भावार्थ—यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार द्वारा विसिनी शब्दसे सीताका उल्लेख किया गया है। जिस प्रकार कमलिनी गुण अर्थात् तन्तुओंसे सुशोभित होती है उसी प्रकार सीता भी गुण अर्थात् दया दाक्षिण्य आदि गुणोंसे सुशोभित थी और जिस प्रकार कमलिनी राजहंस पक्षियोंसे सेवित होती है उसी प्रकार सीता भी राजहंस अर्थात् राजशिरोमणि रामचन्द्रसे सेवित थी ॥९३॥ हे उत्तमे ! तू सुभद्राके समान भद्र और सर्व आचारके पालन करनेमें निपुण थी तथा समस्त लोककी मूर्तिधारिणी सुख स्थिति स्वरूप थी। तू कहाँ गई ? ॥९४॥ सूर्यके विना आकाश क्या ? और चन्द्रमाके विना रात्रि क्या ? उसी प्रकार उस स्त्रीरत्नके विना अयोध्या कैसी ? भावार्थ—जिस प्रकार सूर्यके विना आकाशकी और

---

१. कुतश्चिद्व्यपदेशतः म० ।

वेणुवीणामृदङ्गादिनिःस्वानपरिवर्जिता । नगरी देव सञ्जाता करुणाक्रन्दपूरिता ॥९६॥
रथ्यासूद्यानदेशेषु कान्तारेषु सरित्सु च । त्रिकचत्वरभागेषु भवनेष्वापणेषु च ॥९७॥
सन्ततास्रिपतन्तीभिरश्रुधाराभिरुद्गतः । पङ्कः समस्तलोकस्य घनकालभवोपमः ॥९८॥
बाष्पगद्गदया वाचा कृच्छ्रेण समुदाहरन् । गुणप्रसूनवर्षेण परोक्षामपि जानकीम् ॥९९॥
पूजयत्यखिलो लोकस्तदेकगतमानसः । सा हि सर्वसतीमूर्ध्नि पदं चक्रे गुणोज्ज्वला ॥१००॥
सशुकण्ठापराधीनैः स्वयं देव्याऽनुपालितैः । क्लेशैरपि परं दीनं रुदितं धृतविग्रहैः ॥१०१॥
तदेवं गुणसम्बन्धसमस्तजनचेतसः । कृते कस्य न जानक्या वर्तते शुगनुत्तरा ॥१०२॥
किन्तु कोविद नोपायः प्राप्तापो मनीषिते । इति सञ्चिन्त्य धीरत्वमवलम्बितुमर्हसि ॥१०३॥
इति लक्ष्मणवाक्येन पद्मनाभः प्रसादितः । शोकं किञ्चित्परित्यज्य कर्तव्ये निदधे मनः ॥१०४॥
प्रेतकर्मणि जानक्याः सादरं जनमादिशत् । द्राग् भद्रकलशं चैव समाहूय जगादिति ॥१०५॥
समादिष्टोऽसि वैदेह्या पूर्वं भद्र यथाविधम् । तेनैव विधिना दानं तामुद्दिश्य प्रदीयताम् ॥१०६॥
यथाऽऽज्ञापयसीत्युक्त्वा कोषाध्यक्षः सुमानसः । अर्थिनामीप्सितं द्रव्यं नवमासानशिश्रियत् ॥१०७॥
सहस्रैरष्टभिः क्षीणा सेव्यमानोऽपि सन्ततम् । वैदेहीं मनसा रामो निमेषमपि नात्यजत् ॥१०८॥
सीताशब्दमयस्तस्य समालापः सदाऽभवत् । सर्वं ददर्श वैदेहीं तद्गुणाकृष्टमानसः ॥१०९॥
क्षितिरेणुपरीताङ्गां गिरिगह्वरवर्तिनाम् । अपश्यज्जानकीं स्वप्ने नेत्राम्बुकृतदुर्दिनाम् ॥११०॥

चन्द्रमाके बिना रात्रिकी शोभा नहीं है उसी प्रकार सीताके बिना अयोध्याकी शोभा नहीं है ॥९५॥ हे देव ! समस्त नगरी बाँसुरी वीणा तथा मृदङ्ग आदिके शब्दसे रहित तथा करुण क्रन्दनसे पूर्ण हो रही है ॥९६॥ गलियोंमें, बागबगीचोंके प्रदेशोंमें, वनोंमें, नदियोंमें, तिराहों-चौराहोंमें, महलोंमें और बाजारोंमें निरन्तर निकलने वाली समस्त लोगोंकी अश्रुधाराओंसे वर्षा ऋतुके समान कीचड़ उत्पन्न हो गया है ॥९७-९८॥ यद्यपि जानकी परोक्ष हो गई है तथापि उसी एकमें जिसका मन लग रहा है ऐसा समस्त संसार अश्रुसे गद्गद वाणीके द्वारा बड़ी कठिनाईसे उच्चारण करता हुआ गुणरूप फूलोंकी वर्षासे उसकी पूजा करता है सो ठीक ही है क्योंकि गुणोंसे उज्ज्वल रहनेवाली उस जानकीने समस्त सती स्त्रियोंके मस्तक पर स्थान किया था अर्थात् समस्त सतियोंमें शिरोमणि थी ॥९९-१००॥ स्वयं सीतादेवीने जिनका पालन किया था तथा जो उसके अभावमें उत्कण्ठासे विवश हैं ऐसे शुक आदि चतुर पक्षी भी शरीरको कँपाते हुए अत्यन्त दीन रुदन करते रहते हैं ॥१०१॥ इस प्रकार समस्त मनुष्योंके चित्तके साथ जिसके गुणोंका संबन्ध था ऐसी जानकीके लिए किस मनुष्यको भारी शोक नहीं है ? ॥१०२॥ किन्तु हे विद्वन् ! पश्चात्ताप करना इच्छित वस्तुके प्राप्त करनेका उपाय नहीं है ऐसा विचार कर धैर्य धारण करना योग्य है ॥१०३॥ इस प्रकार लक्ष्मणके वचनसे प्रसन्न रामने कुछ शोक छोड़कर कर्तव्य—करने योग्य कार्यमें मन लगाया ॥१०४॥ उन्होंने जानकीके मरणोत्तर कार्यके विषयमें आदर सहित लोगोंको आदेश दिया तथा भद्रकलश नामक खजानचीको शीघ्र ही बुलाकर यह आदेश दिया कि हे भद्र ! सीताने तुझे पहले जिस विधिसे दान देनेका आदेश दिया था उसी विधिसे उसे लक्ष्य कर अब भी दान दिया जाय ॥१०५-१०६॥ 'जैसी आज्ञा हो' यह कहकर शुद्ध हृदयको धारण करनेवाला कोषाध्यक्ष नौ मास तक याचकोंके लिए इच्छित दान देता रहा ॥१०७॥ यद्यपि आठ हजार स्त्रियाँ निरन्तर रामकी सेवा करती थीं तथापि राम पल भरके लिए भी मनसे सीताको नहीं छोड़ते थे ॥१०८॥ उनका सदा सीता शब्द रूप ही समालाप होता था अर्थात् वे सदा 'सीता-सीता' कहते रहते थे और उसके गुणोंसे आकृष्ट चित्त हो सबको सीता रूप ही देखते थे अर्थात् उन्हें सर्वत्र सीता-सीता ही दिखाई देती थी ॥१०९॥ पृथिवीकी धूलिसे जिसका शरीर व्याप्त है, जो पर्वतकी गुफामें वास कर रही है तथा अश्रुओंकी जो लगातार वर्षा कर रही

मनसा च सशल्येन गाढशोको विमुह्यवान् । अचिन्तयत्ससूत्कारो वाष्पाच्छादितलोचनः ॥११॥
कष्टं लोकान्तरस्थाऽपि सीता सुन्दरचेष्टिता । न विमुञ्चति मां साध्वी सानुबन्धा हितोद्यता ॥११२॥
स्वैरं स्वैरं ततः सीताशोके विरलतामिते । परिशिष्टवरस्त्रीभिः पद्मो धृतिमुपागमत् ॥११३॥
तौ श्रीरथाङ्गदिव्याङ्गौ परमन्यायसङ्गतौ । प्रीत्याऽनन्तरया युक्तौ प्रशस्तगुणसागरौ ॥११४॥
पालयन्तौ महीं सम्यक्सुनिम्नगापतिमेखलाम् । सौधर्मैशानदेवेन्द्राविव रेजतुरुत्कटम् ॥११५॥

आर्याच्छन्दः

सौ तत्र कोशलायां सुरलोकसमानमानवायां राजन् ।
परमान् प्राप्तौ भोगान् सुप्रभपुरुषोत्तमौ यथा पुरुषेन्द्रौ ॥११६॥
[1]स्वकृतसुकर्मोदयतः सकलजमानन्ददानकोविदचरितौ ।
सुखसागरे निमग्नौ रविभाव[2]ज्ञातकालमवतस्थाते ॥११७॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रामशोकाभिधानं नाम नवनवतितमं पर्व ॥९९॥

है ऐसी सीताको वे स्वप्नमें देखते थे ॥११०॥ अत्यधिक शोकको धारण करनेवाले राम जब जागते थे तब सशल्य मनसे आंसुओंसे नेत्रोंको आच्छादित करते हुए सू-सू शब्दके साथ चिन्ता करने लगते थे कि अहो ! बड़े कष्टकी बात है कि सुन्दर चेष्टाको धारण करनेवाली सीता लोकान्तरमें स्थित होने पर भी मुझे नहीं छोड़ रही है । वह साध्वी पूर्व संस्कारसे सहित होनेके कारण अब भी मेरा हित करनेमें उद्यत है ॥१११–११२॥ तदनन्तर धीरे-धीरे सीताका शोक विरल होने पर राम अवशिष्ट स्त्रियोंसे धैर्यको प्राप्त हुए ॥११३॥ जो परम न्यायसे सहित थे, अविरल प्रीतिसे युक्त थे, प्रशस्त गुणोंके सागर थे, और समुद्रान्त पृथिवीका अच्छी तरह पालन करते थे ऐसे हल और चक्र नामक दिव्य अङ्गको धारण करनेवाले राम-लक्ष्मण सौधर्मेन्द्रके समान अत्यधिक सुशोभित होते थे ॥११४–११५॥ गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! जहाँ देवोंके समान मनुष्य थे ऐसी उस अयोध्या नगरीमें उत्तम कान्तिको धारण करने वाले दोनों पुरुषोत्तम, इन्द्रोंके समान परम भोगोंको प्राप्त हुए थे ॥११६॥ अपने द्वारा किये हुए पुण्य कर्मके उदयसे जिनका चरित समस्त मनुष्योंके लिए आनन्द देने वाला था, तथा जो सूर्यके समान कान्ति वाले थे ऐसे राम लक्ष्मण अज्ञात काल तक सुखसागरमें निमग्न रहे ॥११७॥

इसप्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध श्री रविषेणाचार्य द्वारा रचित पद्मपुराणमें रामके शोकका वर्णन करने वाला निन्यानवेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥९९॥

---

१. सुप्रभौ म० । २. सुकृत -म० । ३. रविभौ + अज्ञातकालम्, इतिच्छेदः ।

शतं पर्व

एवं तावदिदं जातमिदमन्यन्नरेश्वर । शृणु वक्ष्यामि तं वृत्तं लवणाङ्कुशगोचरम् ॥१॥
अथ [illegible] ॥२॥
श्यामतासमवष्टब्धचारुचूचुकचूलिकैः । पयोधरघटौ पुत्रपानार्थमिव मुद्रितौ ॥३॥
स्तन्यार्थमानने न्यस्ता दुग्धसिन्धुरिवायता । सुस्निग्धधवला दृष्टिर्माधुर्यमदधात्परम् ॥४॥
सर्वमङ्गलसंघातैर्गौरवेणेव निर्मिता । अमन्दायतकल्याणगौरवोन्नतनादिव ॥५॥
मन्दं मन्दं प्रयच्छन्त्याः क्रमं निर्मलकुट्टिमे । प्रतिबिम्बास्तुजेन क्ष्मा पूर्वसेवामिवाकरोत् ॥६॥
सूतिकालकृताकांक्षा कपोलप्रतिबिम्बिता । समलक्ष्यत लक्ष्मीर्वा शय्याऽपाश्रयपुत्रिका ॥७॥
रात्रौ सोपोपयानायां व्यंशुके स्तनमण्डले । श्वेतच्छत्रमिवाधारि सङ्कान्तं शशिमण्डलम् ॥८॥
वासवेश्मनि सुप्तायां अपि प्रचलबाहुकाः । चित्रचामरवारिण्यश्चामराणि व्यधूनयन् ॥९॥
स्वप्ने पद्मजिनोपुंड्रपुटवारिभिरादरात् । अभिषेको महानागैरकारि परिमण्डितैः ॥१०॥
असकृज्जयनिःस्वानं जनन्याः प्रतिबुद्धताम् । सबन्दशालिकाशालभञ्जिका अपि चक्रिरे ॥११॥
परिवारजनाह्वानेष्वादिशेति ससम्भ्रमाः । अशरीरा विनिश्चेरुर्वाचः परमकोमलाः ॥१२॥

अथानन्तर श्री गौतम स्वामी कहते हैं कि हे नरेश्वर ! इसप्रकार यह वृत्तान्त तो रहा अब दूसरा लवणाङ्कुशसे सम्बन्ध रखनेवाला वृत्तान्त कहता हूँ सो सुन ॥१॥ तदनन्तर जनकनन्दिनी-के कृश शरीरने धवलता धारण की, सो ऐसा जान पड़ता था मानो समस्त प्रजाजनोंके निर्मल पुण्यने उसे ग्रहण किया था, इसलिए उसकी धवलतासे ही उसने धवलता धारण की हो ॥२॥ स्तनोंके सुन्दर चूचुक सम्बन्धी अग्रभाग श्यामवर्णसे युक्त हो गये, सो ऐसे जान पड़ते थे मानो पुत्रके पीनेके लिए स्तनरूपी घट मुद्रबन्द करके ही रख दिये हों ॥३॥ उसकी स्नेहपूर्ण धवल दृष्टि उस प्रकार परम माधुर्यको धारण कर रही थी मानो दूधके लिए उसके मुख पर लम्बी-चौड़ी दूधकी नदी ही लाकर रख दी हो ॥४॥ उसकी शरीरयष्टि सब प्रकारके मङ्गलोंके समूहसे युक्त थी इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो अपरिमित एवं विशाल कल्याणोंका गौरव प्रकट करनेके लिए ही युक्त थी ॥५॥ जब सीता मणिमयी निर्मल फर्शपर धीरे-धीरे पैर रखती थी तब उनका प्रति-बिम्ब नीचे पड़ता था, उससे ऐसा जान पड़ता था मानो पृथिवी प्रतिरूपी कमलके द्वारा उसकी पहलेसे ही सेवा कर रही हो ॥६॥ प्रसूति कालमें जिसकी आकांक्षा की जाती है ऐसी जो पुत्तलिका सीताकी शय्याके समीप रखी गई थी उसका प्रतिबिम्ब सीताके कपोलमें पड़ता था उससे वह पुत्तलिका लक्ष्मीके समान दिखाई देती थी ॥७॥ रात्रिके समय सीता महलकी छत पर चली जाती थी, उस समय उसके वस्त्र रहित स्तनमण्डल पर जो चन्द्रबिम्बका प्रतिबिम्ब पड़ता था वह ऐसा जान पड़ता था मानो गर्भके ऊपर सफेद छत्र ही धारण किया गया हो ॥८॥ जिस समय वह निवास-गृहमें सोती थी उस समय भी चञ्चल भुजाओंसे युक्त एवं नाना प्रकारके चमर धारण करनेवाली स्त्रियाँ उसपर चमर ढोरती रहती थीं ॥९॥ स्वप्नमें अलंकारोंसे अलंकृत बड़े-बड़े हाथी, कमलिनीके पत्रपुटमें रखे हुए जलके द्वारा उसका आदरपूर्वक अभिषेक करते थे ॥१०॥ जब वह जागती थी तबै बार-बार जय-जय शब्द होता था, उससे ऐसा जान पड़ता था मानो महलके ऊर्ध्व भागमें सुशोभित पुत्तलियाँ ही जय-जय शब्द कर रही हों ॥११॥ जब वह परिवार-के लोगोंको बुलाती थी तब 'आज्ञा देओ' इस प्रकारके संभ्रम सहित शरीर रहित परम कोमल

---

१. सीतायाः । २. पुटं वारिभि -म० ।

क्रीडयाऽपि कृतं सेहे नाज्ञाभङ्गं मनस्विनी । सुक्षिप्रेष्वपि कार्येषु भ्रूभ्राम्यस्त्रविभ्रमम् ॥१३॥
यथेच्छं विद्यमानेऽपि मणिदर्पणसन्निधौ । मुखमुल्लासखड्गाग्रे जातं व्यसनमीक्षितुम् ॥१४॥
समुल्लासारितवीणाद्या नारीजनविरोधिनः । श्रोत्रयोरसुखायन्त कार्मुकध्वनयः परम् ॥१५॥
कक्षाः पक्षालिसिंहेषु चक्राते परमां रतिम् । ननाम कथमप्यङ्गमुत्तमं स्तम्भितं यथा ॥१६॥
पूर्णेऽथ नवमे मासि चन्द्रे श्रवणसङ्गते । श्रावणस्य दिने देवी पौर्णमास्यां सुमङ्गला ॥१७॥
सर्वलक्षणसम्पूर्णौ पूर्णचन्द्रनिभाननौ । सुखं सुखकरौ मानमसूत सुतयुग्मकम् ॥१८॥
नृत्यमय्य इवाभूवंस्तथोस्तूभयतोः प्रजाः । भेरीपटहनिःस्वाना जाताः शङ्खस्वनान्विताः ॥१९॥
उन्मत्तमर्त्यलोकाभश्चारुसम्पत्समन्वितः । स्वसुर्प्रीत्या नरेन्द्रेण जनितः परमोत्सवः ॥२०॥
अनङ्गलक्षणाभिख्यामेकोऽमण्डयदेतयोः । मदनाङ्कुशनामान्यः सद्भूतार्थनियोगतः ॥२१॥
ततः क्रमेण तौ वृद्धिं बालकौ भजतस्तदा । जननीहृदयानन्दौ प्रवीरपुरुषाङ्कुरौ ॥२२॥
रक्षार्थं सर्षपकणा विन्यस्ता मस्तके तयोः । समुन्मिषत्प्रतापाग्निस्फुलिङ्गा इव रेजिरे ॥२३॥
वपुर्गौरोचनापङ्कपिञ्जरं परिचारितम् । समभिव्यज्यमानेन सहजेनेव तेजसा ॥२४॥
विकटा हाटकाबद्धवैयाघ्रनखपंक्तिका । रेजे दर्पाङ्कुरालीव समुन्नेदमिता हृदि ॥२५॥
आद्यं जल्पितमव्यक्तं सर्वलोकमनोहरम् । बभूव जन्मपुण्याहः[1] सत्यग्रहणसन्निभम् ॥२६॥
मुखस्मितानि रम्याणि कुसुमानीव सर्वतः । हृदयानि समाकर्षन् कुलानीव मधुव्रतान्[2] ॥२७॥

वचन अपने-आप उच्चरित होने लगते थे ॥१२॥ वह मनस्विनी क्रीड़ामें भी किये गये आज्ञा भङ्गको नहीं सहन करती थी तथा अत्यधिक शीघ्रताके साथ किये हुए कार्योंमें भी विभ्रम पूर्वक भौंहें घुमाती थी ॥१३॥ यद्यपि समीपमें इच्छानुकूल मणियोंके दर्पण विद्यमान रहते थे तथापि उसे उभारी हुई तलवारके अग्रभागमें मुख देखनेका व्यसन पड़ गया था ॥१४॥ वीणा आदिको दूर कर स्त्रीजनोंको नहीं रुचनेवाली धनुषकी टंकारका शब्द ही उसके कानोंमें सुख उत्पन्न करता था ॥१५॥ उसके नेत्र पिंजड़ोंमें बन्द सिंहोंके ऊपर परम प्रीतिको प्राप्त होते थे और मस्तक तो बड़ी कठिनाईसे नम्रीभूत होता मानो खड़ा ही हो गया हो ॥१६॥

तदनन्तर नवम महीना पूर्ण होने पर जब चन्द्रमा श्रवण नक्षत्र पर था, तब श्रावण मास की पूर्णिमाके दिन, उत्तम मङ्गलाचारसे युक्त समस्त लक्षणोंसे परिपूर्ण एवं पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली सोत्ताने सुखपूर्वक सुखदायक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥१७-१८॥ उन दोनोंके उत्पन्न होने पर प्रजा नृत्यमयीके समान हो गई और शङ्खोंके शब्दोंके साथ भेरियों एवं नगाड़ोंके शब्द होने लगे ॥१९॥ बहिनकी प्रीतिसे राजाने ऐसा महान् उत्सव किया जो उन्मत्त मनुष्य लोकके समान था और सुन्दर सम्पत्तिसे सहित था ॥२०॥ उनमेंसे एकने अनङ्गलक्षण नामको अलंकृत किया और दूसरेने सार्थक भावसे मदनाङ्कुश नामको सुशोभित किया ॥२१॥

तदनन्तर माताके हृदयको आनन्द देनेवाले, प्रवीर पुरुषके अंकुर स्वरूप वे दोनों बालक क्रम-क्रमसे वृद्धिको प्राप्त होने लगे ॥२२॥ रक्षाके लिए उनके मस्तक पर जो सरसोंके दाने डाले गये थे वे देदीप्यमान प्रतापरूपी अग्निके तिलगोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥२३॥ गोरोचना की पङ्कसे पीला पीला दिखने वाला उनका शरीर ऐसा जान पड़ता था मानो अच्छी तरहसे प्रकट होनेवाले स्वाभाविक तेजसे ही घिरा हो ॥२४॥ सुवर्णमालामें खचित व्याघ्र सम्बन्धी नखोंकी बड़ी-बड़ी पंक्ति उनके हृदय पर ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो दर्पके अंकुरोंका समूह ही हो ॥२५॥ सब लोगोंके मनको हरण करनेवाला जो उनका अव्यक्त प्रथम शब्द था वह उनके जन्म दिनकी पवित्रताके सत्यंकारके समान जान पड़ता था अर्थात् उनका जन्म दिन पवित्र दिन है, यह सूचित कर रहा था ॥२६॥ जिस प्रकार पुष्प भ्रमरोंके समूहको आकर्षित करते हैं,

१. पुण्याह -म० । २. सत्यग्रहणं सत्यंकारः श्री० टी० । ३. मधुव्रताम् म० ।

जननीक्षीरसेकोत्थविलासहसितैरिव । जातं दशनकैर्वक्त्रपद्मकं लब्धमण्डनम् ॥२८॥
धात्रीकराङ्गुलीलग्नौ पञ्चबाणि पदानि तौ । एवंभूतौ प्रयच्छन्तौ मनः कस्य न जहतुः ॥२९॥
पुत्रकौ [1]तादृशौ वीक्ष्य चारुक्रीडनकारिणौ । शोकहेतुं विसस्मार समस्तं जनकात्मजा ॥३०॥
वर्द्धमानौ च तौ कान्तौ निसर्गोदारविभ्रमौ । देहावस्थां परिप्राप्तौ विद्यासंग्रहणोचिताम् ॥३१॥
ततस्तत्पुण्ययोगेन सिद्धार्थो नाम विश्रुतः । शुद्धात्मा क्षुल्लकः प्राप वज्रजङ्घस्य मन्दिरम् ॥३२॥
सन्ध्यात्रयमवन्द्यं यो महाविद्यापराक्रमः । मन्दरोरसि वन्दित्वा जिनानेति पदं क्षणात् ॥३३॥
प्रशान्तवदनो धीरो लुञ्चरञ्जितमस्तकः । साधुभावनसंचेतस्को वस्त्रमात्रपरिग्रहः ॥३४॥
उत्तमाणुव्रतो नानागुणशोभनभूषितः । जिनशासनतत्त्वज्ञः कलाजलधिपारगः ॥३५॥
अंशुकेनोर्ध्वगतेन सितेन प्रचलात्मना । मृणालकाण्डजालेन नागेन्द्र इव मन्थरः ॥३६॥
करजनालिकां कक्षे कृत्वा प्रियसखीमिव । मनोज्ञममृतास्वादं धर्मवृद्धिरिति ब्रुवन् ॥३७॥
गृहे गृहे शनैर्भिक्षां पर्यटन् विधिसङ्गतः । गृहोत्तमं समासीदद्यत्र सिद्धति जानकी ॥३८॥
जिनशासनदेवीव सा मनोहरभावना । दृष्ट्वा क्षुल्लकमुत्तार्यं सम्भ्रान्ता नवमालिकाम्[2] ॥३९॥
उपगत्य समाधाय करवारिरुहद्वयम् । इच्छाकारादिना सम्यक् सम्पूज्य विधिकोविदा ॥४०॥
विशिष्टेनान्नपानेन समतर्पयदादरात् । जिनेन्द्रशासनाऽभक्तान् सा हि पश्यति बान्धवान् ॥४१॥
निवर्तितान्यकर्त्तव्यः सविश्रब्धः सुखं स्थितः । पृष्टो जगाद सीतायै स्ववार्त्तां भ्रमणादिकम् ॥४२॥

उसी प्रकार उनकी भोली भाली मनोहर मुसकानें सब ओरसे हृदयोंको आकर्षित करती थीं ॥२७॥ माताके क्षीरके सिञ्चनसे उत्पन्न विलास हास्यके समान जो छोटे-छोटे दाँत थे उनसे उनका मुख-रूपी कमल अत्यन्त सुशोभित हो रहा था ॥२८॥ धायके हाथकी अँगुली पकड़ कर पाँच छह डग देनेवाले उन दोनों बालकोंने किसका मन हरण नहीं किया था ॥२९॥ इस प्रकार सुन्दर क्रीड़ा करनेवाले उन पुत्रोंको देखकर माता सीता शोकके समस्त कारण भूल गई ॥३०॥ इस तरह क्रम-क्रमसे बढ़ते तथा स्वभावसे उदार विभ्रमको धारण करते हुए वे दोनों सुन्दर बालक विद्या ग्रहणके योग्य शरीरकी अवस्थाको प्राप्त हुए ॥३१॥

तदनन्तर उनके पुण्य योगसे सिद्धार्थ नामक एक प्रसिद्ध शुद्ध हृदय क्षुल्लक, राजा वज्रजङ्घके घर आया ॥३२॥ वह क्षुल्लक महाविद्याओंके द्वारा इतना पराक्रमी था कि तीनों संध्याओंमें प्रतिदिन मेरुपर्वत पर विद्यमान जिन-प्रतिमाओंकी वन्दना कर क्षण भरमें अपने स्थान पर आ जाता था ॥३३॥ वह प्रशान्त मुख था, धीर वीर था, केशलुंच करनेसे उसका मस्तक सुशोभित था, उसका चित्त शुद्ध भावनाओंसे युक्त था, वह वस्त्र मात्र परिग्रहका धारक था, उत्तम अणुव्रती था, नानागुण रूपी अलंकारोंसे अलंकृत था, जिन शासनके रहस्यको जाननेवाला था, कलारूपी समुद्रका पारगामी था, धारण किये हुए सफेद चञ्चल वस्त्रसे ऐसा जान पड़ता था मानो मृणालोंके समूहसे वेष्टित मन्द मन्द चलनेवाला गजराज ही हो, जो पीछीको प्रिय सखी के समान बगलमें धारण कर अमृतके स्वादके समान मनोहर 'धर्मवृद्धि' शब्दका उच्चारण कर रहा था, और घर घरमें भिक्षा लेता हुआ धीरे-धीरे चल रहा था, इस तरह भ्रमण करता हुआ संयोगवश उस उत्तम घरमें पहुँचा, जहाँ सीता बैठी थी ॥३४-३८॥ जिनशासन देवीके समान मनोहर भावनाको धारण करनेवाली सीताने ज्योंही क्षुल्लकको देखा, त्योंही वह संभ्रमके साथ नौखण्डा महलसे उतर कर नीचे आ गई ॥३९॥ तथा पास जाकर और दोनों हाथ जोड़कर उसने इच्छाकार आदिके द्वारा उसकी अच्छी तरह पूजा की। तदनन्तर विधिके जाननेमें निपुण सीताने उसे आदर पूर्वक विशिष्ट अन्न पान देकर संतुष्ट किया, सो ठीक ही है क्योंकि वह जिन-शासनमें आसक्त पुरुषोंको अपना बन्धु समझती है ॥४०-४१॥ भोजनके बाद अन्य कार्य

---

१. तादृशौ -म० । २. नवमालिका म० ।

महोपचारविनयप्रयोगहृतमानसः । क्षुल्लकः परितुष्टात्मा ददर्श लवणाङ्कुशौ ॥४३॥
महानिमित्तमष्टाङ्गं ज्ञाता[1] सुश्राविकामसौ । सम्भाषयितुमप्राक्षीद् वार्तां पुत्रकसङ्गताम् ॥४४॥
तयावेदितवृत्तान्तो वाष्पदुर्दिननेत्रया । क्षणं शोकसमाक्रान्तः क्षुल्लको दुःखितोऽभवत् ॥४५॥
उवाच च न देवि त्वं विधातुं शोकमर्हसि । यस्या देवकुमाराभौ प्रशस्तौ बालकाविमौ ॥४६॥
अथ तेन जनप्रेमप्रवणीकृतचेतसा । अचिराच्छस्त्रशास्त्राणि ग्राहितौ लवणाङ्कुशौ ॥४७॥
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नौ कलागुणविशारदौ । दिव्यास्त्रोपसंहारविषयातिविचक्षणौ ॥४८॥
बिभ्रतुस्तौ परां लक्ष्मीं महापुण्यानुभावतः । प्रस्तावरणसम्बन्धौ निधानकलशाविव ॥४९॥
न हि कश्चिद्गुरोः खेदः शिष्ये शक्तिसमन्विते । सुखेनैव प्रदर्श्यन्ते भावाः सूर्येण नेत्रिणे ॥५०॥
भजतां संस्तवं पूर्वं गुणानामागमः सुखम् । खेदोऽवतरतां कोऽसौ हंसानां मानसं ह्रदम् ॥५१॥
उपदेशं ददत्पात्रे गुरुर्याति कृतार्थताम् । अनर्थकः समुद्योतो रवेः कौशिकगोचरः ॥५२॥
स्फुरद्यशःप्रतापाभ्यामाक्रान्तभुवनावथ । अभिरामदुरालोकौ शीततिग्मकराविव ॥५३॥
व्यक्ततेजोबलावग्निमारुताविव सङ्गतौ । शिलाहृढवपुःस्कन्धौ हिमविन्ध्याचलाविव ॥५४॥
महावृषौ यथा कान्तयुगसंयोजनोचितौ । धर्माध्वमाविवान्यन्तरमणीयौ सुखावहौ ॥५५॥

ओर वह क्षुल्लक निश्चित हो सुखसे बैठ गया। तदनन्तर पूछने पर उसने सीताके लिए अपने भ्रमण आदिकी वार्ता सुनाई ॥४२॥ अत्यधिक उपचार और विनयके प्रयोगसे जिसका मन हरा गया था, ऐसे क्षुल्लकने अत्यन्त संतुष्ट होकर लवणांकुशको देखा ॥४३॥ अष्टाङ्ग महानिमित्तके ज्ञाता उस क्षुल्लकने वार्तालाप बढ़ानेके लिए श्राविकाके व्रत धारण करनेवाली सीतासे उसके पुत्रोंसे सम्बन्ध रखनेवाली वार्ता पूछी ॥४४॥ तब नेत्रोंसे अश्रुकी वर्षा करती हुई सीताने क्षुल्लकके लिए सब समाचार सुनाया, जिसे सुनकर क्षुल्लक भी शोकाक्रान्त हो दुःखी हो गया ॥४५॥ उसने कहा भी कि हे देवि ! जिसके देवकुमारोंके समान ये दो बालक विद्यमान हैं ऐसी तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए ॥४६॥

अथानन्तर अत्यधिक प्रेमसे जिसका हृदय वशीभूत था ऐसे उस क्षुल्लकने थोड़े ही समयमें लवणांकुशको शस्त्र और शास्त्र विद्या ग्रहण करा दी ॥४७॥ वे पुत्र थोड़े ही समयमें ज्ञान-विज्ञानसे संपन्न, कलाओं और गुणोंमें विशारद तथा दिव्य शस्त्रोंके आह्वान एवं छोड़नेके विषयमें अत्यन्त निपुण हो गये ॥४८॥ महापुण्यके प्रभावसे वे दोनों, जिनके आवरणका सम्बन्ध नष्ट हो गया था, ऐसे खजानेके कलशोंके समान परम लक्ष्मीको धारण कर रहे थे ॥४९॥ यदि शिष्य शक्तिसे सहित है, तो उससे गुरुको कुछ भी खेद नहीं होता, क्योंकि सूर्यके द्वारा नेत्रवान् पुरुषके लिए समस्त पदार्थ सुखसे दिखा दिये जाते हैं ॥५०॥ पूर्व परिचयको धारण करनेवाले मनुष्योंको गुणोंकी प्राप्ति सुखसे हो जाती है सो ठीक ही है क्योंकि मानस-सरोवरमें उतरनेवाले हंसोंको क्या खेद होता है ? अर्थात् कुछ भी नहीं ॥५१॥ पात्रके लिए उपदेश देनेवाला गुरु कृतकृत्यताको प्राप्त होता है। क्योंकि जिस प्रकार उल्लूके लिए किया हुआ सूर्यका प्रकाश व्यर्थ होता है, उसी प्रकार अपात्रके लिए दिया हुआ गुरुका उपदेश व्यर्थ होता है ॥५२॥

अथानन्तर बढ़ते हुए यश और प्रतापसे जिन्होंने लोकको व्याप्त कर रक्खा था ऐसे वे दोनों पुत्र चन्द्र और सूर्यके समान सुन्दर तथा दुरालोक हो गये अर्थात् वे चन्द्रमाके समान सुन्दर थे और सूर्यके समान उनकी ओर देखना भी कठिन था ॥५३॥ प्रकट तेज और बलके धारण करनेवाले वे दोनों पुत्र परस्पर मिले हुए अग्नि और पवनके समान जान पड़ते थे अथवा जिनके शरीरके कन्धे शिलाके समान दृढ़ थे ऐसे वे दोनों भाई हिमाचल और विन्ध्याचलके समान दिखाई देते थे॥५४॥अथवा वे कान्त युग संयोजन अर्थात् सुन्दर जुवा धारण करनेके योग्य

१. ज्ञात्वा म० । २. प्रवीण म० ।

पूर्वापरककुम्भागाविव लोकालिलक्षितौ । उदयास्तमयाधाने सर्वतेजस्विनां क्षमौ ॥५६॥
अम्बुवर्णिवसंरोधसङ्क्षे कुकुटीरके । तेजसः परिनिन्दन्तौ छायामपि पराङ्मुखाम् ॥५७॥
अपि पादनखस्थेन प्रतिबिम्बेन लज्जितौ । केशानामपि भङ्गेन प्राप्नुवन्तावशं परम् ॥५८॥
चूडामणिगतेनापि छत्रेणानेन लज्जितौ । अपि दर्पणदृष्टेन प्रतिपुंसोपतापिनौ ॥५९॥
अम्भोधरधृतेनाऽपि धनुषा कृतकोपनौ । अनानमद्भिरालेख्यप्राभिर्वैरपि खेदितौ ॥६०॥
स्वरूपमण्डलसन्तोषलङ्घितस्य रवेरपि । अनादरेण पश्यन्तौ तेजसः प्रतिघातकम् ॥६१॥
निन्दन्तौ बलिनं वायुमप्यवीचितविग्रहम् । हिमवत्यपि सामर्यौ चमरीबालवीजिते ॥६२॥
शङ्खैः सोल्लुण्ठनाथानामपि खेदितचेतसौ । प्रचेतसमपीशानमभूषयन्तावुदन्वताम् ॥६३॥
सच्छत्रानपि निश्छायान् कुर्वाणौ धरणीश्वितः[2] । मुखेन मधु मुञ्चन्तौ प्रसन्नौ सत्सुसेवितौ ॥६४॥
दुष्टभूपालवंशानामप्यनासन्नवर्तिनाम् । कुर्वाणावुष्मणा ग्लानिं सम्प्राप्तसहजन्मना ॥६५॥
शस्त्रसंस्तवनश्यामसुद्वहन्तौ करोत्तरम् । शेषराजप्रतापाग्निपरिनिर्वापणादिव ॥६६॥
घोरैः कार्मुकनिःस्वानैर्योग्याकाले समुद्गतैः । आलपन्ताविवाभोगाः सकलदिग्वधूः ॥६७॥
ईदृशो लवणस्तादृगीदृशस्तादृशोऽङ्कुशः । इत्यलं विकलच्छन्दप्रादुर्भावौ शुभोदयौ ॥६८॥

(पक्षमें युगकी उत्तम व्यवस्था करनेमें निपुण) महावृषभोंके समान थे अथवा धर्माश्रमोंके समान रमणीय और सुखको धारण करनेवाले थे ॥५५॥ अथवा वे समस्त तेजस्वी मनुष्योंके उदय तथा अस्त करनेमें समर्थ थे, इसलिए लोग उन्हें पूर्व और पश्चिम दिशाओंके समान देखते थे ॥५६॥ यह विशाल पृथिवी, निकटवर्ती समुद्रसे घिरी होनेके कारण उन्हें छोटी-सी कुटियाके समान जान पड़ती थी और इस पृथिवी रूपी कुटियामें यदि उनकी छाया भी तेजसे विमुख जाती थी तो उसकी भी वे निन्दा करते थे ॥५७॥ पैरके नखोंमें पड़नेवाले प्रतिबिम्बसे भी वे लज्जित हो उठते थे और बालोंके भंगसे भी अत्यधिक दुःख प्राप्त करते थे ॥५८॥ चूड़ामणिमें प्रतिबिम्बित छत्रसे भी वे लज्जित हो जाते थे और दर्पणमें दिखनेवाले पुरुषके प्रतिबिम्बसे भी खीझ उठते थे ॥५९॥ मेघके द्वारा धारण किये हुए धनुषसे भी उन्हें क्रोध उत्पन्न हो जाता था और नमस्कार नहीं करनेवाले चित्रलिखित राजाओंसे भी वे खेदखिन्न हो उठते थे ॥६०॥ अपने विशाल तेज की बात दूर रहे—अत्यन्त अल्प मण्डलमें सन्तोषको प्राप्त हुए सूर्यके भी तेजमें यदि कोई रुकावट डालता था तो वे उसे अनादरकी दृष्टिसे देखते थे ॥६१॥ जिसका शरीर दिखाई नहीं देता था ऐसी बलिष्ठ वायुको भी वे खण्डित कर देते थे तथा चमरी गायके बालोंसे वीजित हिमालयके ऊपर भी उनका क्रोध भड़क उठता था ॥६२॥ समुद्रोंमें भी जो शङ्ख पड़े रहते थे उन्हींसे उनके चित्त खिन्न हो जाते थे तथा समुद्रोंके अधिपति वरुणको भी वे सहन नहीं करते थे ॥६३॥ छत्रोंसे सहित राजाओंको भी वे निश्छाय अर्थात् छायासे रहित (पक्षमें कान्तिसे रहित) कर देते थे और सत्पुरुषोंके द्वारा सेवित होनेपर प्रसन्न हो मुखसे मधु छोड़ते थे अर्थात् उनसे मधुर वचन बोलते थे ॥६४॥ वे साथ-साथ उत्पन्न हुए प्रतापसे दूरवर्ती दुष्ट राजाओंके वंशको भी ग्लानि उत्पन्न कर रहे थे अर्थात् दूरवर्ती दुष्ट राजाओंको भी अपने प्रतापसे हानि पहुँचाते थे फिर निकटवर्ती दुष्ट राजाओंका तो कहना ही क्या है ? ॥६५॥ निरन्तर शस्त्र धारण करनेसे उनके हस्ततल काले पड़ गये थे जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो शेष अन्य राजाओंके प्रतापरूप अग्निको बुझानेसे ही काले पड़ गये थे ॥६६॥ अभ्यासके समय उत्पन्न धनुषके गम्भीर शब्दोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो निकटवर्ती समस्त दिशारूपी स्त्रियोंसे वार्तालाप ही कर रहे हों ॥६७॥ 'जैसा लवण है वैसा ही अंकुश है' इस प्रकार उन दोनोंके विषयमें

---

१. लक्षितौ म० । २. नृपान् । ३. अभ्यासकाले 'योग्या गुणनिकाभ्यासः' इति कोषः । योग्यकाले म० ।

नवयौवनसम्पन्नौ महासुन्दरचेष्टितौ । प्रकाशतां परिप्राप्तौ धरण्यां लवणाङ्कुशौ ॥६६॥
अभिनन्द्यौ समस्तस्य लोकस्योत्सुकताकरौ । पुण्येन घटितात्मानौ सुखकारणदर्शनौ ॥७०॥
युवत्यास्य[1] कुमुद्वत्याः शरत्पूर्णेन्दुतां गतौ । वैदेह्याहृदयानन्दमयजङ्गममन्दरौ ॥७१॥
कुमारादित्यसङ्काशौ पुण्डरीकनिभेक्षणौ । द्वीपदेवकुमाराभौ श्रीवत्साङ्कितवक्षसौ ॥७२॥
अनन्तविक्रमाधारौ भवाम्भोधितटस्थितौ । परस्परमहाप्रेमबन्धनप्रवणीकृतौ ॥७३॥
मनोहरणसंसक्तौ धर्ममार्गेस्थितावपि । वक्रतापरिनिर्मुक्तौ कोटिस्थितगुणावपि ॥७४॥
विजित्य तेजसा भानुं स्थितौ कान्त्या निशाकरम् । ओजसा त्रिदशाधीशं गाम्भीर्येण महोदधिम् ॥७५॥
मेरुं स्थिरत्वयोगेन क्षमाधर्मेण मेदिनीम् । शौर्येण मेघनिःस्वानं गत्या मारुतनन्दनम् ॥७६॥
गृह्णायानामिषूं मुक्तमपि वेगादूरतः । मकरग्राहनक्राद्यैः कृतक्रीडौ महाजले ॥७७॥
श्रमसौख्यमसम्प्राप्तौ मत्तैरपि महाद्विपैः । भयादिव तनुच्छायात्[2] स्खलिताकंकरोत्करौ ॥७८॥
धर्मतः सम्मितौ साधोरर्ककीर्तेश्च[3] सत्वतः । सम्यग्दर्शनतोऽगस्य दानाच्छ्रीविजयस्य च ॥७९॥
अयोध्याभिमानेन साहसान्मधुकैटभौ । महाहवसमुद्योगादिन्द्रजिन्मेघवाहनौ ॥८०॥
गुरुशुश्रूषणोद्युक्तौ जिनेश्वरकथारतौ । शत्रूणां जनितत्रासौ नाममात्रश्रुतेरपि ॥८१॥

लोगोंके मुखसे शब्द प्रकट होते थे तथा दोनों ही शुभ अक्षणुत्यसे सहित थे ॥६८॥ जो नव यौवनसे सम्पन्न थे और महासुन्दर चेष्टाओंके धारक थे, ऐसे लवण और अङ्कुश पृथिवीमें प्रसिद्धि को प्राप्त हुए ॥६९॥ वे दोनों समस्त लोगोंके द्वारा अभिनन्दन करनेके योग्य थे और सभी लोगोंकी उत्सुकताको बढ़ानेवाले थे। पुण्यसे उनके स्वरूपकी रचना हुई थी तथा उनका दर्शन सबके लिए सुखका कारण था ॥७०॥ युवती स्त्रियोंके मुखरूपी कुमुदिनीके विकासके लिए वे दोनों शरद् ऋतुके पूर्ण चन्द्रमा थे और सीताके हृदय सम्बन्धी आनन्दके लिए मानो चलते फिरते सुमेरु ही हों ॥७१॥ वे दोनों अन्य कुमारोंमें सूर्यके समान थे, सफेद कमलोंके समान उनके नेत्र थे। वे द्वीपकुमार नामक देवोंके समान थे तथा उनके वक्षःस्थल श्रीवत्स चिह्नसे अलंकृत थे ॥७२॥ अनन्त पराक्रमके आधार थे, संसार-समुद्रके तट पर स्थित थे, परस्पर महाप्रेमरूपी बन्धनसे बँधे थे ॥७३॥ वे धर्मके मार्गमें स्थित होकर भी मनके हरण करनेमें लीन थे—मनोहारी थे और कोटिस्थित गुणों अर्थात् धनुषके दोनों छोरों पर डोरीके स्थित होने पर भी वक्रता अर्थात् कुटिलतासे रहित थे (परिहार पक्षमें उनके गुण करोड़ोंकी संख्यामें स्थित थे तथा वे मायाचार रूपी कुटिलतासे रहित थे) ॥७४॥ वे तेजसे सूर्यको; कान्तिसे चन्द्रमाको, ओजसे इन्द्रको, गाम्भीर्यसे समुद्रको, स्थिरताके योगसे सुमेरुको, क्षमाधर्मसे पृथिवीको, शूर-वीरतासे जयकुमारको और गतिसे हनुमान्‌को, जीतकर स्थित थे ॥७५-७६॥ वे छोड़े हुए बाणको भी अपने वेगसे पास ही में पकड़ सकते थे तथा विशाल जलमें मगरमच्छ तथा नाके आदि जल जन्तुओंके साथ क्रीड़ा करते थे ॥७७॥ मदमाते महा-गजोंके साथ युद्ध कर भी वे श्रमसम्बन्धी सुखको प्राप्त नहीं होते थे तथा उनके शरीरकी प्रभासे भयभीत होकर ही मानो सूर्यकी किरणोंका समूह स्खलित हो गया था ॥७८॥ वे धर्मकी अपेक्षा साधुके समान, सत्त्व अर्थात् धैर्यकी अपेक्षा अर्ककीर्तिके समान, सम्यग्दर्शनकी अपेक्षा पर्वतके समान और दानकी अपेक्षा श्री विजय बलभद्रके समान थे ॥७९॥ अभिमानसे अयोध्य थे अर्थात् उनके साथ कोई युद्ध नहीं कर सकता था, साहससे मधुकैटभ थे और महायुद्ध सम्बन्धी उद्योग से इन्द्रजित् तथा मेघवाहन थे ॥८०॥ वे गुरुओंकी सेवा करनेमें तत्पर रहते थे, जिनेन्द्रदेवकी कथा अर्थात् गुणगान करनेमें लीन रहते थे तथा नामके सुनने मात्रसे शत्रुओंको भय उत्पन्न

---

१. युवत्यास्याः म० । २. तरस्थितौ म० । ३. तनुच्छाया स्खलिता -ज० । ४. अर्ककीर्तिश्च म० ।

शार्दूलविक्रीडितम्

एवं तौ गुणरत्नपर्वतवरौ विज्ञानपाताळिनौ
लक्ष्मीश्रीद्युतिकीर्तिकान्तिनिलयौ चित्तद्विपेन्द्राङ्कुशौ ।
सौराज्यालयभारधारणदृढस्तम्भौ महीभास्करौ
संवृत्तौ लवणाङ्कुशौ नरवरौ चित्रैककर्माकरौ ॥८२॥

आर्यावृत्तम्

धीरौ प्रपौण्डनगरे रेमाते तौ यथेप्सितं मदनामौ ।
लज्जितरवितेजस्कौ हलधरनारायणौ यथायोग्यम् ॥८३॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे लवणांकुशोद्भवाभिधानं नाम शतसंख्यं पर्व ॥१००॥

करनेवाले थे ॥८१॥ इस प्रकार वे दोनों भाई लवण और अंकुश गुणरूपी रत्नोंके उत्तम पर्वत थे, विज्ञानके सागर थे, लक्ष्मी श्री द्युति कीर्ति और कान्तिके घर थे, मनरूपी गजराजके लिए अंकुश थे, सौराज्यरूपी घरका भार धारण करनेके लिए मजबूत खम्भे थे, पृथिवीके सूर्य थे, मनुष्योंमें श्रेष्ठ थे, आश्चर्यपूर्ण कार्योंकी खान थे ॥८२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस तरह मनुष्योंमें श्रेष्ठ तथा सूर्यके तेजको लज्जित करने वाले वे दोनों कुमार प्रपौण्ड नगरमें बलभद्र और नारायणके समान इच्छानुसार क्रीड़ा करते थे ॥८३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध तथा रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें लवणांकुश की उत्पत्तिका वर्णन करनेवाला सौवां पर्व पूर्ण हुआ ॥१००॥

एकाधिकशतं पर्व

ततो दारक्रियायोग्यौ दृष्ट्वा तावतिसुन्दरौ । वज्रजङ्घो मतिं चक्रे कन्यान्वेषणतत्पराम् ॥१॥
लक्ष्मीदेव्याः समुत्पन्नां शशिचूलाभिधानकाम् । द्वात्रिंशत्कन्यकायुक्तामाद्यस्याकल्पयत्सुताम् ॥२॥
विवाहमङ्गलं द्रष्टुमुभयोर्युगपन्नृपः । अभिलष्यन् द्वितीयस्य कन्यां योग्यां समन्ततः ॥३॥
अपश्यन्मनसा खेदं परिप्राप्त इवोत्तमाम् । सस्मार सहसा सद्यः कृतार्थत्वमिवाव्रजत् ॥४॥
पृथिवीनगरेशस्य राज्ञोऽस्ति प्रवराङ्गजा । शुद्धा कनकमालाख्याऽमृतवत्यङ्गसम्भवा ॥५॥
रजनीपतिलेखेव सर्वलोकमनोहरा । श्रियं जयति या पद्मवती पद्मविवर्जिता ॥६॥
या साम्यं शशिचूलायाः समाश्रितवती शुभा । इति सञ्चिन्त्य तद्धेतोर्दूतं प्रेषितवान्नृपः ॥७॥
पृथिवीपुरमासाद्य स क्रमेण विचक्षणः । जगाद कृतसम्मानो राजानं पृथुसंज्ञकम्[1] ॥८॥
तावदेवेक्षितो दृष्ट्वा दूतो राज्ञा विशुद्धया । कन्यायाचनसम्बन्धं यावद् गृह्णाति नो वचः ॥९॥
उवाच च न ते[2] दूत काचिदप्यस्ति दूषिता । यतो भवान् पराधीनः परवाक्यानुवादकृत् ॥१०॥
निरुष्माणश्चलात्मानो बहुभङ्गसमाकुलाः । जलौघा इव नीयन्ते यथेष्टं हि भवद्विधाः ॥११॥
कर्तुं तथापि ते युक्तो निग्रहः पापभाषिणः । परेण प्रेरितं किन्नु यन्त्रं हन्तुं विहन्यते ॥१२॥
किञ्चिरकर्तुमशक्तस्य रजःपातसमात्मनः । अपाकरणमात्रेण मया ते दूत सत्कृतम् ॥१३॥

अथानन्तर उन सुन्दर कुमारोंको विवाहके योग्य देख, राजा वज्रजंघने कन्याओंके खोजने में तत्पर बुद्धि की ॥१॥ सो प्रथम ही अपनी लक्ष्मी रानीसे उत्पन्न शशिचूला नामकी पुत्रीको अन्य बत्तीस कन्याओंके साथ लवणको देना निश्चित किया ॥२॥ राजा वज्रजङ्घ दोनों कन्याओंका विवाह मङ्गल एक साथ देखना चाहता था। इसलिए वह द्वितीय पुत्रके योग्य कन्याओंकी सब ओर खोज करता रहा ॥३॥ उत्तम कन्याको न देख एक दिन वह मनमें खेदको प्राप्त हुएके समान बैठा था कि अकस्मात् उसे शीघ्र ही स्मरण आया और उससे वह मानो कृतकृत्यताको ही प्राप्त हो गया ॥४॥ उसने स्मरण किया कि 'पृथिवी नगरके राजाकी अमृतवती रानीके गर्भसे उत्पन्न कनकमाला नामकी एक शुद्ध तथा श्रेष्ठ पुत्री है ॥५॥ वह चन्द्रमाकी रेखाके समान सब लोगोंको हरण करनेवाली है, लक्ष्मीको जीतती है और कमलोंसे रहित मानो कमलिनी ही है ॥६॥ वह शशिचूलाकी समानताको प्राप्त है तथा शुभ है'। इस प्रकार विचार कर उसके निमित्तसे राजा वज्रजंघने दूत भेजा ॥७॥ बुद्धिमान् दूतने क्रम-क्रमसे पृथिवीपुर पहुँच कर तथा सन्मान कर वहाँके राजा पृथुसे वार्तालाप किया ॥८॥ उसी समय राजा पृथुने विशुद्ध दृष्टिसे दूतकी ओर देखा और दूत जब तक कन्याकी याचनासे सम्बन्ध रखनेवाला वचन ग्रहण नहीं कर पाता है कि उसके पहले ही राजा पृथु बोल उठे कि रे दूत ! इसमें तेरा कुछ भी दोष नहीं है क्योंकि तू पराधीन है और परके वचनोंका अनुवाद करनेवाला है ॥९-१०॥ जो स्वयं ऊष्मा-आत्मगौरव (पक्षमें गरमी) से रहित हैं, जिनकी आत्मा चञ्चल है तथा जो बहुभंगों-अनेक अपमानों (पक्षमें अनेक तरंगों) से व्याप्त हैं इस तरह जलके प्रवाहके समान जो आप जैसे लोग हैं, वे इच्छानुसार चाहे जहाँ ले जाये जाते हैं ॥११॥ यद्यपि यह सब है तथापि तूने पापपूर्ण वचनोंका उच्चारण किया है, अतः तेरा निग्रह करना योग्य है क्योंकि दूसरेके द्वारा चलाया हुआ विघातक यन्त्र क्या नष्ट नहीं किया जाता ? ॥१२॥ हे दूत ! मैं जानता हूँ कि तू धूली पानके समान है, और कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं है इसलिए यहाँसे हटा देना मात्र ही तेरा सत्कार (?) अर्थात्

---

१. पृथुसंज्ञगम् म० । २. वचनं दूतः म० । ३. केन म० ।

कुलं शीलं धनं रूपं समानत्वं बलं वयः । देशो विद्यागमश्चेति यद्यप्युक्ता वरे गुणाः ॥१४॥
तथापि तेषु सर्वेषु सन्तोऽभिजनमेककम् । वरिष्ठमनुरुध्यन्ते शेषेषु तु मनःसमम् ॥१५॥
स च न ज्ञायते यस्य वरस्य प्रथमो गुणः । कथं प्रदीयते तस्मै कन्या मान्या समन्ततः ॥१६॥
निरूपं भाषमाणाय तस्मै सुप्रतिकूलनम् । दातुं युक्तं [1]कुमारीं न [2]कुमारीं तु वदाम्यहम् ॥१७॥
इत्येकान्तपरिध्वस्तवचनो निरुपायकः । दूतः श्रीवज्रजंघाय गत्वाऽवस्थां न्यवेदयत् ॥१८॥
ततो गत्वार्धमध्वानं स्वयमेव प्रपन्नवान् । अर्थाचत महादूतवदनेन पृथुं पुनः ॥१९॥
अलब्ध्वाऽसौ ततः कन्यां तथापि जनितादरः । पृथोर्ध्वंसयितुं देशं क्रोधनुन्नः समुद्यतः ॥२०॥
पृथुदेशावधेः पाता सामन्तो व्याघ्ररथो नृपः । वज्रजङ्घेन सङ्ग्रामे जित्वा बन्धनमाहृतः ॥२१॥
ज्ञात्वा व्याघ्ररथं बद्धं सामन्तं सुमहाबलम् । देशं विनाशयन्तं च वज्रजङ्घं समुद्यतम् ॥२२॥
पृथुः सहायताहेतोः पोदनाधिपतिं नृपम् । मित्रमाह्वाययामास यावत्परमसैनिकम् ॥२३॥
तावत्कुलिशजंघेन पौण्डरीकपुरं द्रुतम् । समाह्वाययितुं पुत्रान् प्रहितो लेखवाहकः ॥२४॥
पितुराज्ञां [3]प्रमाणीकृत्य राजपुत्रास्तदा तदा । भेरीशङ्खादिनिःस्वानं प्रयाणार्थमदापयन् ॥२५॥
ततः कोलाहलस्तुङ्गो महान् संक्षोभकारणः । पौण्डरीकपुरे जातो घूर्णमानार्णवोपमः ॥२६॥
तावदश्रुतपूर्वं तं श्रुत्वा सन्नाहनिःस्वनम् । किमेतदिति पार्श्वस्थानप्राक्षां लवणाङ्कुशौ ॥२७॥
स्वनिमित्तं ततः श्रुत्वा वृत्तान्तं तत्समन्ततः । वैदेहीनन्दनौ गन्तुमुद्यतौ समरार्थिनौ ॥२८॥

निमग्न है ॥१३॥ यद्यपि कुल, शील, धन, रूप, समानता, बल, अवस्था, देश और विद्या गम ये नौ वरके गुण कहे गये हैं तथापि उत्तम पुरुष उन सबमें एक कुलको ही श्रेष्ठ गुण मानते हैं—इसका होना आवश्यक समझते हैं, शेष गुणोंमें इच्छानुसार प्रवृत्ति है अर्थात् हों तो ठीक न हों तो ठीक ॥१४-१५॥ परन्तु यही कुल नामका प्रथम गुण जिस वरमें न हो उसे सब ओरसे माननीय कन्या कैसे दी जा सकती है ? ॥१६॥ सो इस तरह निर्लज्जतापूर्वक विरुद्ध वचन कहनेवाले उसके लिए कुमारी अर्थात् पुत्रीका देना तो युक्त नहीं है परन्तु कुमारी अर्थात् खोटा मरण मैं अवश्य देता हूँ ॥१७॥ इस प्रकार जिसके वचन सर्वथा उपेक्षित कर दिये गये थे ऐसे दूतने निरुपाय हो वापिस जाकर वज्रजङ्घके लिए सब समाचार कह सुनाया ॥१८॥

तदनन्तर यद्यपि राजा वज्रजङ्घने स्वयं आधे मार्ग तक जाकर किसी महादूतके द्वारा पृथुसे कन्याकी याचना की ॥१९॥ और उसके प्रति आदर व्यक्त किया तथापि वह कन्याको प्राप्त नहीं कर सका। फलस्वरूप वह क्रोधसे प्रेरित हो पृथुका देश उजाड़नेके लिए तत्पर हो गया ॥२०॥ राजा पृथुके देशकी सीमाका रक्षक एक व्याघ्ररथ नामका राजा था उसे वज्रजङ्घने संग्राममें जीत कर बन्धनमें डाल दिया ॥२१॥ महाबलवान् अथवा बड़ी भारी सेनासे सहित व्याघ्ररथ सामन्तको युद्धमें बद्ध तथा वज्रजङ्घको देश उजाड़नेके लिए उद्यत जानकर राजा पृथुने सहायताके निमित्त पोदनदेशके अधिपति अपने मित्र राजाको जो कि उत्कृष्ट सेनासे युक्त था जबतक बुलवाया तबतक वज्रजङ्घने भी अपने पुत्रोंको बुलानेके लिए शीघ्र ही एक पत्र सहित आदमी पौण्डरीकपुरको भेज दिया ॥२२-२४॥ पिताकी आज्ञा सुनकर राजपुत्रोंने शीघ्र ही युद्धके लिए भेरी तथा शङ्ख आदिके शब्द दिलवाये ॥२५॥

तदनन्तर पौण्डरीकपुरमें लहराते हुए समुद्रके समान क्षोभ उत्पन्न करनेवाला बहुत बड़ा कोलाहल उत्पन्न हुआ ॥२६॥ वह अश्रुतपूर्व युद्धकी तैयारीका शब्द सुन लवण और अङ्कुशने निकटवर्ती पुरुषोंसे पूछा कि यह क्या है ? ॥२७॥ तदनन्तर यह सब वृत्तान्त हमारे ही निमित्त से हो रहा है, यह सब ओरसे सुन युद्धकी इच्छा रखनेवाले सीताके दोनों पुत्र जानेके लिए

---

१. कन्यां । २. कुमृत्युम् । ३. प्रमाणीकृत्य ।

अतित्वरापरीतौ तौ पराभूत्युद्भवासहौ । अपि नासहतां यानमभिव्यक्तमहाद्युती ॥२९॥
तौ वारयितुमुद्युक्ता वज्रजङ्घस्य सूनवः । सर्वमन्तःपुरं चैव परिवर्गश्च यत्नतः ॥३०॥
अपकर्णितसद्वाक्यौ जानकी वीक्ष्य पुत्रकौ । जगाद तनयस्नेहपरिद्रवितमानसा ॥३१॥
बालकौ नैव युद्धस्य भवतः समयः समः[1] । न हि वत्सौ नियुज्येते महारथधुरामुखे ॥३२॥
ऊचतुस्तौ त्वया मातः किमेतदिति भाषितम् । किमत्र वृद्धकैः कार्यं वीरभोग्या[2] वसुन्धरा ॥३३॥
कियता देहभारेण ज्वलनस्य प्रयोजनम् । दिधक्षतो महाकक्षं स्वभावेनेह कारणम् ॥३४॥
एवमुद्गतवाक्यौ तौ तनयौ वीक्ष्य जानकी । बाष्पं मिश्ररसोत्पन्नं नेत्रयोः किञ्चिदाश्रयत् ॥३५॥
सुस्नातौ तौ कृताहारौ ततोऽलङ्कृतविग्रहौ । प्रणम्य प्रयतौ सिद्धान् वपुषा मनसा गिरा ॥३६॥
प्रणिपत्य सविश्रीं च समस्तविधिपण्डितौ । उपयातावगारस्य बहिः सत्तममङ्गलैः ॥३७॥
रथौ ततः समारुह्य परमौ जित्वराजिनौ । सम्पूर्णौ विविधैरस्त्रैरुपरि प्रस्थितौ पृथोः ॥३८॥
तौ महासैन्यसम्पन्नौ चापन्यस्तसहायकौ । मूर्त्येव सङ्गतिं प्राप्तौ समुद्योगपराक्रमौ ॥३९॥
परमोदारचेतस्कौ पुरुसङ्ग्रामकौतुकौ । यत्नभिर्विंशतैः प्राप्तौ वज्रजङ्घं महोदयौ ॥४०॥
ततः शत्रुबलं श्रुत्वा परमोद्योगमन्तिकम् । निरैन्महाबलान्तस्थः पृथिवीनगरात्पृथुः ॥४१॥
भ्रातरः सुहृदः पुत्रा मातुला मातुलाङ्गजाः । एकपात्रभुजोऽन्ये च परमप्रीतिसङ्गताः ॥४२॥

उद्यत हो गये ॥२८॥ जो अत्यन्त उतावलीसे सहित थे, जो पराभवकी उत्पत्तिको रंचमात्र भी सहन नहीं कर सकते थे और जिनका विशाल तेज प्रकट हो रहा था ऐसे उन दोनों वीरोंने वाहनका विलम्ब भी सहन नहीं किया था ॥२९॥ वज्रजङ्घके पुत्र, समस्त अन्तःपुर तथा परिकर के समस्त लोग उन्हें यत्नपूर्वक रोकनेके लिए उद्यत हुए परन्तु उन्होंने उनके वचन अनसुने कर दिये। तदनन्तर पुत्रस्नेहसे जिसका हृदय द्रवीभूत हो रहा था ऐसी सीताने उन्हें युद्धके लिए उद्यत देख कहा कि हे बालको! यह तुम्हारा युद्धके योग्य समय नहीं है क्योंकि महारथकी धुराके आगे बछड़े नहीं जोते जाते ॥३०-३२॥ इसके उत्तरमें दोनों पुत्रोंने कहा कि हे मातः! तुमने ऐसा क्यों कहा? इसमें वृद्धजनोंकी क्या आवश्यकता है? पृथिवी तो वीरभोग्या है ॥३३॥ महावनको जलानेवाली अग्निके लिए कितने बड़े शरीरसे प्रयोजन है? अर्थात् अग्निका बड़ा शरीर होना अपेक्षित नहीं है, इस विषयमें तो उसे स्वभावसे ही प्रयोजन है ॥३४॥ इस प्रकारके वचनोंका उच्चारण करनेवाले पुत्रोंको देखकर सीताके नेत्रोंमें मिश्ररससे उत्पन्न आँसुओंने कुछ आश्रय लिया अर्थात् उसके नेत्रोंसे हर्ष और शोकके कारण कुछ-कुछ आँसू निकल आये ॥३५॥

तदनन्तर जिन्होंने अच्छी तरह स्नानकर आहार किया शरीरको अलंकारोंसे अलंकृत किया और मन, वचन, कायसे सिद्ध परमेष्ठीको बड़ी सावधानीसे नमस्कार किया, ऐसे समस्त विधि-विधानके जाननेमें निपुण दोनों कुमार माताको नमस्कार कर उत्तम मङ्गलाचार पूर्वक घरसे बाहर निकले ॥३६-३७॥ तदनन्तर जिनमें वेगशाली घोड़े जुते थे और जो नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे परिपूर्ण थे ऐसे उत्तम रथोंपर सवार होकर दोनों भाइयोंने राजा पृथुके ऊपर प्रस्थान किया ॥३८॥ बड़ी भारी सेनासे सहित एवं धनुषमात्रको सहायक समझनेवाले दोनों कुमार ऐसे जान पड़ते थे मानो शरीरधारी उद्योग और पराक्रम ही हों ॥३९॥ जिनका हृदय अत्यन्त उदार था तथा जो संग्रामके बहुत भारी कौतुकसे युक्त थे ऐसे महाभ्युदयके धारक दोनों भाई छह दिनमें वज्रजङ्घके पास पहुँच गये ॥४०॥

तदनन्तर परमोद्योगी शत्रुकी सेनाको निकटवर्ती सुनकर बड़ी भारी सेनाके मध्यमें स्थित राजा पृथु अपने पृथिवीपुरसे बाहर निकला ॥४१॥ उसके भाई, मित्र, पुत्र, मामा, मामाके

---

१. समे म० । २. वीरभोज्या म० ।

सुह्माङ्गा वङ्गमगधप्रभृतिक्षितिगोचराः । समन्तेन महीपालाः प्रस्थिताः सुमहाबलाः ॥४३॥
रथाश्वनागपात्राढ्याः कटकेन समावृताः । वज्रजङ्घं प्रति क्रुद्धाः प्रययुस्ते सुतेजसः ॥४४॥
रथेभतुरगस्थानं श्रुत्वा तूर्यस्वनान्वितम् । सामन्ता वज्रजङ्घीयाः सन्नद्धा योद्धुमुद्यताः ॥४५॥
प्रत्यासन्नं समायाते सेनाऽस्यद्वितये ततः । परानीकं महोत्साहौ प्रविष्टौ लवणाङ्कुशौ ॥४६॥
अतिक्षिप्रपरावर्त्तौ सालुद्धारुषाविव । आरेभाते परिक्रोडां [1]परसैन्यमहाह्रदे ॥४७॥
इतस्ततश्च तौ दृष्टादृष्टौ विद्युल्लतोपमौ । दुरालक्ष्यबलमापन्नौ परासोढपराक्रमौ ॥४८॥
गृह्णन्तौ सन्दधानौ वा मुञ्चन्तौ वा शिलीमुखान् । नादृश्येतामदृश्यन्त केवलं निहताः परे ॥४९॥
विभिन्नैः विशिखैः क्रूरैः पतितैः सह वाहनैः । महीतलं समाक्रान्तं कृतमत्यन्तदुर्गमम् ॥५०॥
निमेषेण पराभग्नं सैन्यमुन्मत्तसन्निभम् । द्विपयूथं [2]परिभ्रान्तं सिंहत्रासितं यथा ॥५१॥
ततोऽसौ क्षणमात्रेण पृथुराजस्य वाहिनी । लवणाङ्कुशसूर्येषुमयूखैः परिशोषिता ॥५२॥
कुमारयोस्तयोरिच्छामन्तरेण भयार्दिताः । अर्कतूलसमूहाभा नष्टा शेषा यथा ककुप् ॥५३॥
असहायो विषण्णात्मा पृथुर्भङ्गपथे स्थितः । अनुधाव्य कुमाराभ्यां सचापाभ्यामितीरितः ॥५४॥
नरखेट पृथो व्यर्थं क्वापि प्रपलाय्यते । एतौ तावागतावावामज्ञातकुलशीलकौ ॥५५॥
अज्ञातकुलशीलाभ्यामावाभ्यां त्वं ततोऽन्यथा । पलायनमिदं कुर्वन् कथं न त्रपसेऽधुना ॥५६॥
ज्ञापयावोऽधुनात्मीये कुलशीले शिलीमुखैः । अवधानपरस्तिष्ठ बलाद्वा स्थाप्यसेऽथवा ॥५७॥

लड़के तथा एक बर्तनमें खानेवाले परमप्रीतिसे युक्त अन्य लोग एवं सुह्म, अङ्ग, वङ्ग, मगध आदि के महाबलवान् राजा उसके साथ चले ॥४२-४३॥ कटक-सेनासे घिरे हुए उत्तम शस्त्रोंसे युक्त रथ, घोड़े, हाथी तथा पैदल सैनिक क्रुद्ध होकर वज्रजंघकी ओर बढ़े चले आ रहे थे ॥४४॥ रथ, हाथी और घोड़ोंके स्थानको तुरहीके शब्दसे युक्त सुनकर वज्रजंघके सामन्त भी युद्ध करनेके लिए उद्यत हो गये ॥४५॥ तदनन्तर जब दोनों सेनाओंके अग्रभाग अत्यन्त निकट आ पहुँचे तब अत्यधिक उत्साहको धारण करनेवाले लवण और अङ्कुश शत्रुकी सेनामें प्रविष्ट हुए ॥४६॥ अत्यधिक शीघ्रतासे घूमनेवाले वे दोनों कुमार, महाक्रोधको धारण करते हुएके समान शत्रुदलरूपी महा-सरोवरमें सब ओर क्रीड़ा करने लगे ॥४७॥ बिजलीरूपी लताकी उपमाको धारण करनेवाले वे कुमार कभी यहाँ और कभी वहाँ दिखाई देते थे और फिर अदृश्य हो जाते थे। शत्रु जिनका पराक्रम नहीं सह सका था ऐसे वे दोनों वीर बड़ी कठिनाईसे दिखाई देते थे अर्थात् उनकी ओर आँख उठाकर देखना भी कठिन था ॥४८॥ बाणोंको ग्रहण करते, डोरीपर चढ़ाते और छोड़ते हुए वे दोनों कुमार दिखाई नहीं देते थे, केवल मारे हुए शत्रु ही दिखाई देते थे ॥४९॥ तीक्ष्ण बाणों द्वारा घायल होकर गिरे हुए वाहनोंसे व्याप्त हुआ पृथिवीतल अत्यन्त दुर्गम हो गया था ॥५०॥ शत्रुकी सेना पागलके समान निमेषमात्रमें पराभूत हो गई—तितर-बितर हो गई और हाथियोंका समूह सिंहसे डराये हुएके समान इधर-उधर दौड़ने लगा ॥५१॥ तदनन्तर पृथु राजा की सेनारूपी नदी, लवणाङ्कुशरूपी सूर्यकी बाणरूपी किरणोंसे क्षणमात्रमें सुखा दी गई ॥५२॥ जो योद्धा शेष बचे थे वे भयसे पीड़ित हो अर्कतूलके समूहके समान उन कुमारोंकी इच्छाके बिना ही दिशाओंमें भाग गये ॥५३॥ असहाय एवं खेदखिन्न पृथु पराजयके मार्गमें स्थित हुआ अर्थात् भागने लगा तब धनुर्धारी कुमारोंने उसका पीछा कर उससे इस प्रकार कहा कि अरे नीच नरपृथु! अब व्यर्थ कहाँ भागता है? जिनके कुल और शीलका पता नहीं ऐसे ये हम दोनों आ गये ॥५४-५५॥ जिनका कुल और शील अज्ञात है ऐसे हम लोगोंसे भागता हुआ तू इस समय लज्जित क्यों नहीं होता है? ॥५६॥ अब हम बाणोंके द्वारा अपने कुल और शीलका पता

---

१. परसैन्यं महाह्रदे म० । २. परिभ्रान्तैः म० ।

इत्युक्ते विनिवृत्यासौ पृथुराह कृताञ्जलिः । अज्ञानजनितं दोषं वीरौ मे क्षन्तुमर्थथ ॥५८॥
माहात्म्यं भवदीयं मे नाऽऽयातं मतिगोचरम । भास्करीयं यथा तेजः कुमुदप्रचयोदरम् ॥५९॥
इदमेव हि धीराणां कुलशीलनिवेदनम् । शस्यते न तु भाषया तद्धि सन्देहसङ्कुलम् ॥६०॥
अरण्यदाहशक्तस्य पावकस्य न को जनः । ज्वलनादेव सम्भूमिं मूढोऽपि प्रतिपद्यते ॥६१॥
भवन्तौ परमौ धीरौ महाकुलसमुद्भवौ । अस्माकं स्वामिनौ प्राप्तौ यथेष्टसुखदायिनौ ॥६२॥
एवं प्रशस्यमानौ तौ कुमारौ नतमस्तकौ । जातौ निर्वासिताशेषकोपौ शान्तमनोमुखौ ॥६३॥
वज्रजङ्घप्रधानेषु ततः प्राप्तेषु राजसु । ससाक्षिकाऽभवत्प्रीतिः पृथुना सह वीरयोः ॥६४॥
प्रणाममात्रतः प्रीता जायन्ते मानशालिनः । नोन्मूलयन्ति नद्योघा वेतसान् प्रणतानमून् ॥६५॥
ततस्तौ सुमहाभूत्या पृथुनः पृथिवीपुरम् । प्रवेशितौ सहस्तस्य जनस्यानन्दकारिणौ ॥६६॥
मदनाङ्कुशवीरस्य पृथुना परिकल्पिता । कन्या कनकमालाऽसौ महाविभवसङ्गता ॥६७॥
अत्र भीत्वा निशामेकां करणोद्यतचेतसौ । निर्गतौ[1] नगराज्जेतुं समस्तां पृथिवीमिमाम् ॥६८॥
सुह्माङ्गमगधैर्वङ्गैः पोदनेशादिभिस्तथा । वृतौ[2] लोकाक्षनगरं गन्तुमेतौ[3] समुद्यतौ ॥६९॥
आक्रामन्तौ सुखं तस्य सम्बद्धान् विषयान् बहून् । अभ्यर्णत्वं परिप्राप्तौ तौ महासाधनान्वितौ ॥७०॥
कुबेरकान्तनामानं राजानं तत्र मानिनम् । समक्षोभयतां[4] नागं पक्षाविव गरुन्मतः ॥७१॥

देते हैं, सावधान होकर खड़े हो जाओ अथवा बलात् खड़े किये जाते हो ॥५७॥ इस प्रकार कहने पर पृथुने लौटकर तथा हाथ जोड़कर कहा कि हे वीरो ! मेरा अज्ञात जनित दोष क्षमा करनेके योग्य हो ॥५८॥ जिस प्रकार सूर्यका तेज कुमुद-समूहके मध्य नहीं आता उसी प्रकार आप लोगों का माहात्म्य मेरी बुद्धिमें नहीं आया ॥५९॥ धीर, वीर मनुष्योंका अपने कुल, शीलका परिचय देना ऐसा ही होता है । वचनों द्वारा जो परिचय दिया जाता है वह ठीक नहीं है क्योंकि उसमें सन्देह हो सकता है ॥६०॥ ऐसा कौन मूढ़ मनुष्य है जो जलने मात्रसे, वनके जलानेमें समर्थ अग्निकी उत्पत्तिको नहीं जान लेता है ? । भावार्थ—अग्नि प्रज्वलित होती है इतने मात्रसे ही उसकी वनदाहक शक्तिका अस्तित्व मूर्खसे मूर्ख व्यक्ति भी स्वीकृत कर लेता है ॥६१॥ आप दोनों परम धीर, महाकुलमें उत्पन्न एवं यथेष्ट सुख देनेवाले हमारे स्वामी हो ॥६२॥ इस प्रकार जिनकी प्रशंसाकी जा रही थी ऐसे दोनों कुमार नतमस्तक, शान्तचित्त तथा शान्त मुख हो गये और उनका सब क्रोध दूर हो गया ॥६३॥ तदनन्तर जब वज्रजंघ आदि प्रधान राजा आ गये तब उनकी साक्षी पूर्वक दोनों वीरोंकी पृथुके साथ मित्रता हो गई ॥६४॥ आचार्य कहते हैं कि मानशाली मनुष्य प्रणाममात्रसे प्रसन्न हो जाते हैं, सो ठीक ही है क्योंकि नदियोंके प्रवाह नम्रीभूत वेतसके पौधोंको नहीं उखाड़ते ॥६५॥

तदनन्तर राजा पृथुने, सब लोगोंको आनन्द उत्पन्न करनेवाले दोनों वीरोंको बड़े वैभवके साथ नगरमें प्रविष्ट कराया ॥६६॥ वहाँ पृथुने महाविभवसे सहित अपनी कनकमाला कन्या वीर मदनाङ्कुशके लिए देना निश्चित किया ॥६७॥ तदनन्तर कार्य करनेमें निपुण दोनों वीर वहाँ एक रात्रि व्यतीतकर इस समस्त पृथिवीको जीतनेके लिए नगरसे बाहर निकल पड़े ॥६८॥ सुह्म, अङ्ग, मगध, वङ्ग तथा पोदनपुर आदिके राजाओंसे घिरे हुए दोनों कुमार लोकाक्षनगरको जानेके लिए उद्यत हुए ॥६९॥ बहुत बड़ी सेनासे सहित दोनों वीर उससे सम्बन्ध रखनेवाले अनेक देशोंपर सुखसे आक्रमण करते हुए लोकाक्ष नगरके समीप पहुँचे ॥७०॥ वहाँ जिस प्रकार गरुड़के पक्ष नागको क्षोभित करते हैं उसी प्रकार उन दोनोंने वहाँके कुबेरकान्त नामक अभि-

---

१. नगरी जेतुं म० । २. वृतौ म० । ३. मेतैः ज० । ४. समक्षोभयतां म० ।

चतुरङ्गाकुले भीमे परमे समराङ्गणे । जित्वा कुबेरकान्तं तौ पूर्यमाणबलौ मुहुः ॥७२॥
सहस्रैर्नरनाथानामावृतौ वश्यतां गतैः । कूच्छ्राधिगमने यानैर्लम्पाकविषयं गतौ ॥७३॥
एककर्णं विनिर्जित्य राजानं तत्र पुष्कलम् । गतौ मार्गानुकूल्याद्वाहरेन्द्रौ विजयस्थलीम् ॥७४॥
तत्र भ्रातृशतं जित्वा समालोकनमात्रतः । गतौ गङ्गां समुत्तीर्य कैलासस्योत्तरां दिशम् ॥७५॥
तत्र नन्दनचारूणां देशानां कृतसङ्गमौ । पूज्यमानौ नरश्रेष्ठैर्नानोपायनपाणिभिः ॥७६॥
भाषकुन्तलकालाम्बुनन्दिनन्दनसिंहलान् । शलभानमलांश्चौलान्भीमान् भूतरवादिकान् ॥७७॥
नृपान् वशत्वमानीय सिन्धोः कूलं परं गतौ । परार्णवतटास्तस्थान् चक्रतुः प्रणतान्कुधान् ॥७८॥
पुरखेटमटम्बेन्द्रा विषयाद्रीश्वराश्च ये । वशत्वे स्थापितास्ताभ्यां कांश्चित्तान् कीर्तयाम्यहं ते ॥७९॥
एते जनपदाः केचिदार्या म्लेच्छास्तथा परे । विद्यमानद्वयाः केचिद् विविधाचारयुक्तयः ॥८०॥
भीरवो यवनाः कक्षाश्चारवश्चिजटा नटाः । शकैकेरलनेपाला मालवाश्चलशर्बराः ॥८१॥
बृषाणवैद्यकाश्मीरा हिडिम्बावह्यबर्बराः । त्रिशिराः पारशैलाश्च गौशीलोशीनरास्तथा ॥८२॥
सूर्यारकाः सनर्ताश्च खशा विन्ध्याः शिखापदाः । मेखलाः शूरसेनाश्च बाह्लीकोलूककोसलाः ॥८३॥
दरीगान्धारसौवीराः पुरीकौबेरकोहराः । अन्ध्रकालकलिङ्गाद्या नानाभाषा पृथग्गुणाः ॥८४॥
विचित्ररत्नवस्त्राद्या बहुपादपजातयः । नानाकरसमायुक्ता हेमादिवसुशालिनः ॥८५॥
देशानामेवमादीनां स्वामिनः समराजिरे । जिताः केचिद्गताः केचित्प्रतापादेव वश्यताम् ॥८६॥
ते महाविभवैर्युक्ता देशभाजोऽनुरागिणः । लवणाङ्कुशयोरिच्छां कुर्वाणा वज्रमुर्महीम् ॥८७॥

मानी राजाको क्षोभयुक्त किया ॥७१॥ तदनन्तर चतुरङ्ग सेनासे युक्त अत्यन्त भयंकर रणाङ्गण में कुबेरकान्तको जीतकर वे आगे बढ़े, उस समय उनकी सेना अत्यधिक बढ़ती जाती थी ॥७२॥ वहाँसे चलकर आधीनताको प्राप्त हुए हजारों राजाओंसे घिरे हुए लम्पाक देशको गये वहाँ स्थलमार्गसे जाना कठिन था इसलिए नौकाओंके द्वारा जाना पड़ा ॥७३॥ वहाँ एककर्ण नामक राजाको अच्छी तरह जीतकर मार्गकी अनुकूलता होनेसे दोनों ही कुमार विजयस्थली गये ॥७४॥ वहाँ देखने मात्रसे ही सौ भाइयोंको जीतकर तथा गङ्गा नदी उतरकर दोनों कैलास की ओर उत्तर दिशामें गये ॥७५॥ वहाँ उन्होंने नन्दनवनके समान सुन्दर-सुन्दर देशोंमें अच्छी तरह गमन किया तथा नाना प्रकारकी भेंट हाथमें लिये हुए उत्तम मनुष्योंने उनकी पूजा की॥७६॥ तदनन्तर भाषकुन्तल, कालाम्बु, नन्दी, नन्दन, सिंहल, शलभ, अनल, चौल, भीम तथा भूतरव आदि देशोंके राजाओंको वशकर वे सिन्धुके दूसरे तटपर गये तथा वहाँ पश्चिम समुद्रके दूसरे तटपर स्थित राजाओंको नम्रीभूत किया ॥७७-७८॥ पुरखेट तथा मटम्ब आदिके स्वामी एवं अन्य जिन देशोंके अधिपतियोंको उन दोनों कुमारोंने वश किया था हे श्रेणिक ! मैं यहाँ तेरे लिए उनका कुछ वर्णन करता हूँ ॥७९॥ ये देश कुछ तो आर्य देश थे, कुछ म्लेच्छ देश थे, और कुछ नाना प्रकारके आचारसे युक्त दोनों प्रकारके थे ॥८०॥ भीरु, यवन, कक्ष, चारु, त्रिजट, नट, शक, केरल, नेपाल, मालव, आरुल, शर्बर, बृषाण, वैद्य, काश्मीर, हिडिम्ब, अवष्ट, बर्बर, त्रिशिर, पारशैल, गौशील, उशीनर, सूर्यारक, सनर्त, खश, विन्ध्य, शिखापद, मेखल, शूरसेन, बाह्लीक, उलूक, कोसल, दरी, गांधार, सौवीर, पुरी, कौबेर, कोहर, अन्ध, काल और कलिङ्ग इत्यादि अनेक देशोंके स्वामी रणाङ्गणमें जीते गये थे और कितने ही प्रतापसे ही आधीनताको प्राप्त हो गये थे । इन सब देशोंमें अलग-अलग नाना प्रकार की भाषाएँ थीं, पृथक्-पृथक् गुण थे, नाना प्रकार रत्न तथा वस्त्रादिका पहिरावा था, वृक्षोंकी नाना जातियाँ थीं, अनेक प्रकारकी खानें थीं और सुवर्णादि धनसे सब सुशोभित थे ॥८१-८६॥ महावैभवसे युक्त तथा अनुरागसे सहित नाना देशोंके मनुष्य लवणाङ्कुशकी इच्छानुसार कार्य

प्रसाद्य पृथिवीमेतामथ तौ पुरुषोत्तमौ । नानाराजसहस्राणां महतामुपरि स्थितौ ॥८८॥
रक्षन्तौ विषयान् सम्यङ् नानाचारुकथारतौ । पौण्डरीकपुरं (?) सेन प्रस्थितौ पुरुसम्मदौ ॥८९॥
राष्ट्राधिकृतैः पूजां प्राप्यमाणौ च भूयसीम् । समीपीभावतां प्राप्तौ पुण्डरीकस्य पार्थिवैः ॥९०॥
ततः सप्तमभूपृष्ठं प्रासादस्य समाश्रिता । वृता परमनारीभिः सुखासनपरिग्रहा ॥९१॥
तरलच्छातजीमूतपरिधूसरमुत्थितम् । रजःपटलमदाक्षीदप्राक्षीच्च सखीजनम् ॥९२॥
किमिदं दृश्यते सख्यो दिगाक्रमणचञ्चलम् । ऊचुस्ता देवि सैन्यस्य रजश्चक्रमिदं भवेत् ॥९३॥
तथा हि पश्य मध्येऽस्य ज्ञायते स्वच्छवारिणः । अर्णवं मकराणां वा प्लवमानकदम्बकम् ॥९४॥
नूनं स्वामिनि सिद्धार्थौ कुमारावागताविमौ । तथा ह्येतौ प्रदृश्येते तावेव भुवनोत्तमौ ॥९५॥
आसीदेवं कथा यावत्सीतादेव्या मनोहरा । तावत्प्रेसराः प्राप्ता नरा इष्टनिवेदिनः ॥९६॥
उपशोभा ततः पृथ्वी समस्ता[1] नगरे कृता । लोकेनादरयुक्तेन बिभ्रता तोषमुत्तमम् ॥९७॥
प्राकारशिखरावस्थामुच्छ्रिता विमलध्वजाः । मार्गदेशाः कृता दिव्यतोरणासङ्गसुन्दराः ॥९८॥
आजानुकं पूरितो राजमार्गः पुष्पैः सुगन्धिभिः । चारुवन्दनमालाभिः शोभमानः पदे पदे ॥९९॥
स्थापिता द्वारदेशेषु कलशाः पल्लवाननाः । पट्टवस्त्रादिभिः[2] शोभा कृता चापणवर्त्मनि ॥१००॥
विद्याधरैः कृतं देवैराहोस्वित्स्वयमा स्वयम् । पौण्डरीकपुरं जातमयोध्यासमदर्शनम् ॥१०१॥
दृष्ट्वा सम्प्रविशन्तौ तौ महाविभवसङ्गतौ । आसीन्नगरनारीणां लोको दुःशक्यवर्णनः ॥१०२॥

करते हुए पृथिवीमें भ्रमण करते थे ॥८७॥ इस प्रकर इस पृथिवीको प्रसन्न कर वे दोनों पुरुषोत्तम, अनेक हजार बड़े-बड़े राजाओंके ऊपर स्थित थे ॥८८॥ नाना प्रकारकी सुन्दर कथाओंमें तत्पर तथा अत्यधिक हर्षको धारण करनेवाले वे दोनों कुमार देशोंकी अच्छी तरह रक्षा करते हुए पौण्डरीकपुरकी ओर चले ॥८९॥ राष्ट्रोंके प्रथम अधिकारी राजाओंके द्वारा अत्यधिक सन्मानको प्राप्त कराये गये दोनों भाई क्रम-क्रमसे पौण्डरीकपुरकी समीपताको प्राप्त हुए ॥९०॥

तदनन्तर महलकी सातवीं भूमिपर सुखसे बैठी एवं उत्तम स्त्रियोंसे घिरी सीताने चञ्चल पतले मेघके समान धूसर वर्ण धूलिपटलको उठते देखा तथा सखीजनोंसे पूछा कि हे सखियो ! दिशाओंपर आक्रमण करनेमें चञ्चल अर्थात् सब ओर फैलनेवाली यह क्या वस्तु दिखाई देती है ? इसके उत्तरमें उन्होंने कहा कि यह सेनाका धूलिपटल होना चाहिये ॥९१-९३॥ इसीलिए तो देखो स्वच्छ जलके समान इस धूलिपटलके बीचमें मगरमच्छोंके तैरते हुए समूहके समान घोड़ोंका समूह दिखाई दे रहा है ॥९४॥ हे स्वामिनि ! जान पड़ता है कि ये दोनों कुमार कृत-कृत्य होकर आये हैं, हाँ देखो, वे ही लोकोत्तम कुमार दिखाई दे रहे हैं ॥९५॥ इस तरह जब तक सीता देवीकी मनोहर कथा चल रही थी कि तब तक इष्ट समाचारकी सूचना देनेवाले अग्रगामी पुरुष आ पहुँचे ॥९६॥ तदनन्तर उत्तम सन्तोषको धारण करनेवाले आदरयुक्त मनुष्यों ने नगरमें सब प्रकारकी विशाल शोभा की ॥९७॥ कोटके शिखरोंके ऊपर निर्मल ध्वजाएँ फहराई गईं, मार्ग दिव्यतोरणोंसे सुन्दर किये गये ॥९८॥ राजमार्ग घुटनों तक सुगन्धित फूलोंसे भरा गया एवं पद-पद पर सुन्दर वन्दनमालाओंसे युक्त किया गया ॥९९॥ द्वारों पर पल्लवोंसे युक्त कलश रक्खे गये और बाजारकी गलियोंमें रेशमी वस्त्रादिसे शोभा की गई ॥१००॥ उस समय पौण्डरीकपुर अयोध्याके समान दिखाई देता था, सो ऐसा जान पड़ता था मानो विद्याधरों ने, देवोंने अथवा लक्ष्मीने ही स्वयं उसकी वैसी रचना की हो ॥१०१॥ महा वैभवके साथ प्रवेश करते हुए उन दोनों कुमारोंको देखकर नगरकी स्त्रियोंमें जो चेष्टा हुई उसका वर्णन करना

१. समस्तां नगरे म० । २. पट्टवस्त्रादिभिः म० ।

सा सपुत्रौ रत्नकोणस्थ कृतकृत्यपुरागतौ । निममज्जेव वैदेही [1]सिन्धावमृतवारिणि ॥१०३॥

आर्या छन्दः

विरचितकरपुटकमलौ जननीमुपगम्य सादरौ परमम् ।
नेमतुरवनतशिरसौ सैन्यरजोधूसरौ वीरौ ॥१०४॥
तनयस्नेहप्रवणा पद्मप्रमदा सुतौ परिष्वज्य ।
करतलकृतपरमर्शा शिरसि [2]निनिक्षोत्तमानन्दा ॥१०५॥
जननीजनितं[3] सौ पुनरभिनन्द्य परं प्रसादमानत्यौ[4] ।
रविचन्द्राविव लोकव्यवहारकरौ स्थितौ योग्यम् ॥१०६॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते श्रीपद्मपुराणे लवणाङ्कुशदिग्विजयकीर्त्तनं नामैकाधिकशतं पर्व ॥१०१॥

अशक्य है ॥१०२॥ कृतकृत्य होकर पास आये हुए पुत्रोंको देखकर सीता तो मानो अमृतके समुद्रमें ही डूब गई ॥१०३॥ तदनन्तर जिन्होंने कमलके समान अञ्जलि बाँध रक्खी थी, जो अत्यधिक आदरसे सहित थे, जिनके शिर झुके हुए थे तथा जो सेना की धूलिसे धूसर थे ऐसे दोनों वीरोंने पास आकर माताको नमस्कार किया ॥१०४॥ जो पुत्रोंके प्रति स्नेह प्रकट करनेमें निपुण थी, हस्ततलसे जो उनका स्पर्श कर रही थी तथा जो उत्तम आनन्दसे युक्त थी ऐसी रामकी पत्नी-सीताने उनका मस्तक चूमा ॥१०५॥ तदनन्तर वे माताके द्वारा किये हुए परम प्रसादको पुनः पुनः नमस्कारके द्वारा स्वीकृत कर सूर्य चन्द्रमाके समान लोक व्यवहारको सम्पन्न करते हुए यथायोग्य सुखसे रहने लगे ॥१०६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध श्रीरविषेणाचार्य द्वारा रचित श्री पद्मपुराणमें लवणांकुश की दिग्विजयका वर्णन करनेवाला एकसौ एकवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१०१॥

---

१. सिद्धा—म० । २. चुचुम्ब । ३. जननीं जनितौ । ४. प्रसादमानयत्या म० ।

द्युत्तरशतं पर्व

एवं तौ परमैश्वर्यं प्राप्तावुत्तमसान्वौ । स्थितावाज्ञां प्रयच्छन्तावुन्नतानां महीभृताम् ॥१॥
तदा कृतान्तवक्त्रं तु नारदः परिपृष्ठवान् । जानकीत्यजनोद्देशं दुःखी भ्राम्यन् गवेषकः ॥२॥
दर्शनेऽवस्थितौ वीरौ प्राप तान्यां च पूजितः । आसनादिप्रदानेन गृहस्थमुनिवेषभृत् ॥३॥
ततः सुखं समासीनः परमं तोषमुद्वहन् । अपश्यत्तावबद्वारः कृतस्निग्धनिरीक्षणः ॥४॥
रामलक्ष्मणयोर्लक्ष्मीर्यादृशी नरनाथयोः । तादृशी सर्वथा भूयादचिराद्भवतोरपि ॥५॥
ततस्तावूचतुः कौ तौ भगवन् रामलक्ष्मणौ । कीदृग्गुणसमाचारौ कस्य वा कुलसम्भवौ ॥६॥
ततो जगाववद्वारः कृत्वा [1]विस्मितमाननम् । स्थिरमूर्तिः क्षणं स्थित्वा [2]भ्रामयन् करपल्लवम् ॥७॥
भुजाभ्यामुद्धिनेन्मेरुं प्रतरेन्निस्तापतिम् । नरो न तद्गुणान् वक्तुं कश्चिदेतयोः समर्थः ॥८॥
अनन्तेनापि कालेन वदनैरन्तवर्जितैः । सकलोऽपि न लोकोऽयं तयोर्वक्तुं गुणान् क्षमः ॥९॥
इदं तद्गुणसम्प्रश्नप्रतीकारसमाकुलम् । हृदयं कम्पमानं मे पश्यतां जातकौतुकौ ॥१०॥
तथापि भवतोर्वाक्यात् स्थूलोल्लेखसमाश्रयात् । वदामि तद्गुणं किञ्चिच्छृणुतं पुण्यवर्धनम् ॥११॥
अस्तीक्ष्वाकुकुलव्योमसकलामलचन्द्रमाः । नाम्ना दशरथो राजा दुर्वृत्तेन्धनपावकः ॥१२॥
अधिसिष्ठन् महातेजोमूर्तिरुत्तरकोसलम् । सवितेव प्रकाशत्वं धत्ते यः सर्वविष्टपे ॥१३॥
पुरुषाद्रीन्द्रतो यस्मान्निःसृताः कीर्तिसिन्धवः । उदन्वत् सङ्गता बोधा ह्लादयन्त्यखिलं जगत् ॥१४॥
तस्य राज्यमहाभारवहनक्षमचेष्टिताः । चत्वारो गुणसम्पन्नास्तनया सुनया इव ॥१५॥

अथानन्तर परम ऐश्वर्यको प्राप्त हुए वे दोनों पुरुषोत्तम बड़े-बड़े राजाओंको आज्ञा प्रदान करते हुए स्थित थे॥१॥ उसी समय कृतान्तवक्त्र सेनापतिसे सीताके छोड़नेका स्थान पूछकर उसकी खोज करनेवाले दुखी नारद भ्रमण करते हुए वहाँ पहुँचे। सो दोनों ही वीर उनकी दृष्टिमें पड़े। गृहस्थमुनि अर्थात् क्षुल्लकका वेष धारण करनेवाले उन नारदजीका दोनों ही कुमारोंने आसनादि देकर सम्मान किया॥२-३॥ तदनन्तर सुखसे बैठे परम सन्तोषको धारण करते एवं स्नेहपूर्ण दृष्टिसे देखते हुए नारदने उन कुमारोंसे कहा कि राजा राम लक्ष्मणकी जैसी विभूति है सर्वथा वैसी ही विभूति शीघ्र ही आप दोनोंकी भी हो॥४-५॥ इसके उत्तरमें उन्होंने कहा कि हे भगवन्! वे राम लक्ष्मण कौन हैं? कैसे उनके गुण और समाचार हैं तथा किस कुलमें उत्पन्न हुए हैं?॥६॥

तदनन्तर क्षणभरके लिए निश्चल शरीर बैठकर मुखको आश्चर्यसे चकित करते एवं करपल्लवको हिलाते हुए नारद बोले॥७॥ कि मनुष्य भुजाओंसे मेरुको उठा सकता है और समुद्रको तैर सकता है परन्तु इन दोनोंके गुण कहनेके लिए कोई समर्थ नहीं है॥८॥ यह सबका सब संसार, अनन्तकाल तक और अनन्त जिह्वाओंके द्वारा भी उनके गुण कहनेके लिए समर्थ नहीं है॥९॥ आपने उनके गुणोंका प्रश्न किया सो इनके उत्तर स्वरूप प्रतिकारसे आकुल हुआ हमारा हृदय काँपने लगा है। आप कौतुकके साथ देखिये॥१०॥ फिर भी आपलोगोंके कहनेसे स्थूलरूपमें उनके कुल पुण्यवर्धक गुण कहता हूँ सो सुनो॥११॥

इक्ष्वाकुवंशरूपी आकाशके पूर्णचन्द्रमा तथा दुराचाररूपी ईन्धनके लिए अग्निस्वरूप एक दशरथ नामके राजा थे॥१२॥ जो महातेजस्वरूप थे। उत्तर कोसल देशपर शासन करते थे तथा सूर्यके समान समस्त संसारमें प्रकाश करते थे॥१३॥ जिस पुरुषरूपी पर्वतराजसे निकलीं और समुद्रमें गिरी हुई कीर्तिरूपी उज्ज्वल नदियाँ समस्त संसारको आनन्दित करती हैं॥१४॥ राज्यका

---

१. विस्मितमाननम् म० । २. भ्रामयन् म० ।

राम इत्यादिनस्तेषामभिरामः समन्ततः । आद्यः सर्वश्रुतज्ञोऽपि विश्रुतः सर्वविष्टपे ॥१६॥
लक्ष्मणेनानुजेनासौ सीतया च द्वितीयया । जनकस्य नरेन्द्रस्य सुतयाऽत्यन्तभक्तया ॥१७॥
[1]जानकं पालयन् सत्यं कृत्वाऽयोध्यां वितानिकाम् । छद्मस्थः पर्यटन् क्ष्मोणीं प्राविशद्दण्डकं वनम् ॥१८॥
स्थानं सत्र परं दुर्गं महाविद्याभृतामपि । सोऽध्यास्त खेणवृत्तान्तं जातं चन्द्रनखाभवम् ॥१९॥
संग्रामे वेदितुं वार्त्तां पद्मोऽगादनुजस्य च । दशग्रीवेण वैदेही हृता च छलवर्त्तिना ॥२०॥
ततो महेन्द्रकिष्किन्ध्यश्रीशैलमलयेश्वराः । नृपा विराधितायाश्च प्रधानाः कपिकेतवः ॥२१॥
महासाधनसम्पन्ना महाविद्यापराक्रमाः । रामगुणानुरागेण पुण्येन च समाश्रिताः ॥२२॥
लङ्केश्वरं रणे जित्वा वैदेही पुनराहृता । देवलोकपुरीतुल्या विनीता च कृता खगैः ॥२३॥
तत्र तौ परमैश्वर्यसेवितौ पुरुषोत्तमौ । नागेन्द्राविव मोदेते [2]सन्मुखं रामलक्ष्मणौ ॥२४॥
रामो वा न कथं ज्ञातो यस्य लक्ष्मीधरोऽनुजः । चक्रं सुदर्शनं यस्य मोघतापरिवर्जितम् ॥२५॥
एकैकं रक्ष्यते यस्य तदेकमतचेतसा । रत्नं देवसहस्रेण राजराजस्य कारणम् ॥२६॥
सन्त्यक्ता जानकी येन प्रजानां हितकाम्यया । तस्य रामस्य लोकेऽस्मिन्नास्ति कश्चिदनेदृक्षः ॥२७॥
आस्तां तावदयं लोकः स्वर्गेऽप्यस्य गुणैः कृताः । मुखरा देवसङ्घाताश्चेतःपराधणचेतसः ॥२८॥
ततोऽङ्कुशो जगादासौ मुने रामेण जानकी । कस्य हेतोः परित्यक्ता वद वाञ्छामि वेदितुम् ॥२९॥
ततः कथितनिःशेषवृत्तान्तमिदमब्रवीत् । तद्गुणानुगचेतस्को देवर्षिः साञ्जलिस्तदा ॥३०॥

महाभार उठानेमें जिनकी चेष्टाएँ समर्थ हैं तथा जो गुणोंसे सम्पन्न हैं ऐसे उनके सुनयके समान चार पुत्र हैं ॥१५॥ उन सब पुत्रोंमें राम प्रथम पुत्र हैं जो सब ओरसे सुन्दर हैं तथा सर्वशास्त्रों के ज्ञाता होनेपर भी जो समस्त संसारमें विभ्रम अर्थात् शास्त्रसे रहित (पक्षमें—प्रसिद्ध) हैं ॥१६॥ अपने छोटे भाई लक्ष्मण और स्त्री सीताके साथ जो कि राजा जनककी पुत्री थी तथा अत्यन्त भक्त थी, पिताके सत्यकी रक्षा कराते हुए अयोध्याको सूनीकर छद्मस्थवेषमें पृथिवीपर भ्रमण करने लगे तथा भ्रमण करते हुए दण्डकवनमें प्रविष्ट हुए ॥१७-१८॥ वहाँ महाविद्याधरोंके लिए भी अत्यन्त दुर्गम स्थानमें वे रहते थे और वहीं चन्द्रनखा सम्बन्धी स्त्रीका वृत्तान्त हुआ अर्थात् चन्द्रनखाने अपना स्त्रीचरित्र दिखाया ॥१९॥ उधर राम, छोटे भाईकी वार्ता जाननेके लिए युद्धमें गये उधर कपटवृत्ति रावणने सीताका हरण कर लिया ॥२०॥ तदनन्तर महेन्द्र, किष्किन्ध, श्रीशैल और मलयके अधिपति तथा विराधित आदि प्रधान-प्रधान वानरवंशी राजा जो कि महासाधनसे सम्पन्न और विद्यारूप महापराक्रमके धारक थे, रामके गुणोंके अनुरागसे अथवा अपने पुण्योदयसे इनके समीप आये और युद्धमें रावणको जीतकर सीताको वापिस ले आये। विद्याधरोंने अयोध्याको स्वर्गपुरीके समान कर दिया ॥२१-२३॥ परम ऐश्वर्यसे सेवित, पुरुषोंमें उत्तम श्रीराम लक्ष्मण यहाँ नागेन्द्रोंके समान एक दूसरेके सम्मुख आनन्दसे समय बिताते थे ॥२४॥ अथवा अभीतक आप दोनोंको उन रामका ज्ञान क्यों नहीं हुआ जिनका कि वह लक्ष्मण अनुज हैं, जिनके पास कभी व्यर्थ नहीं जाने वाला सुदर्शन चक्र विराजमान है॥२५॥ इसके सिवाय जिसके पास ऐसे और भी रत्न हैं जिनकी एकाग्रचित्त होकर प्रत्येककी हजार-हजार देव रक्षा करते हैं तथा जो उसके राजाधिराजत्वके कारण हैं ॥२६॥ जिन्होंने प्रजाके हित की इच्छासे सीताका परित्याग कर दिया, इस संसारमें ऐसा कौन है जो रामको नहीं जानता हो ॥२७॥ अथवा इस लोककी बात जाने दो इसके गुणोंसे स्वर्गमें भी देवोंके समूह शब्दायमान तथा तत्परचित्त हो रहे हैं ॥२८॥

तदनन्तर अङ्कुशने कहा कि हे मुने ! रामने सीता किस कारण छोड़ी सो कहो मैं जानना चाहता हूँ ॥२९॥ तत्पश्चात् सीताके गुणोंसे जिनका चित्त आकृष्ट हो रहा था तथा जिनके नेत्रोंमें

१. जनकस्येदं जानकं पितृसम्बन्धि इत्यर्थः । २. सत्सुखं म० ।

विशुद्धगोत्रचारित्रहृदया गुणशालिनी । अष्टयोषित्सहस्राणामग्रणीः सुविचक्षणा ॥३१॥
सावित्रीं सह गायत्रीं श्रियं कीर्तिं धृतिं ह्रियम् । पवित्रत्वेन निर्जित्य स्थिता जैनश्रुतेः समा ॥३२॥
नूनं जन्मान्तरोपात्तपापकर्मानुभावतः । जनापवादमात्रेण त्यक्ताऽसौ विजने वने ॥३३॥
दुर्लोकवर्मभानूक्तिर्दाधिसिप्रसितापिता । प्रायेण विलयं प्राप्ता सती सा सुखवृद्धिमा ॥३४॥
सुकुमाराः प्रपद्यन्ते दुःखमल्पेनकारणात्[1] । म्लायन्ति मालतीमालाः प्रदीपालोकमात्रतः ॥३५॥
अरण्ये किं पुनर्भीमे व्यालजालसमाकुले । वैदेही धारयेत् प्राणानसूर्यम्पश्यलोचना ॥३६॥
जिह्वा दुष्टभुजङ्गेव सन्दृष्यानागसं जनम् । कथं न पापलोकस्य व्रजत्येव निवर्त्तनम् ॥३७॥
आर्जवादिगुणश्लाघ्यामत्यन्तविमलां सतीम् । योऽत्र तादृशीं लोको दुःखं प्रेत्येह चाश्नुते ॥३८॥
अथवा स्वोचिते नित्यं कर्मण्याश्रितजागरे । किमत्र भाष्यतां कस्य संसारोऽत्र जुगुप्सितः ॥३९॥
इत्युक्त्वा शोकभारेण समाक्रान्तमना मुनिः । न किञ्चिच्छक्नुवन्वक्तुं मौनयोगमुपाश्रितः ॥४०॥
अथाङ्कुशो विहस्योचे ब्रह्मन् कुलशोभनम् । कृतं रामेण वैदेहीं मुञ्चता भीषणे वने ॥४१॥
बहवो जनवादस्य निराकरणहेतवः । सन्ति तत्र किमित्येवं विद्धां किल चकार सः ॥४२॥
अनङ्गलवणोऽवोचद्विनीता नगरी मुने । कियद्दूरं ततोऽवोचदवद्वारगतिप्रियः ॥४३॥
योजनानामयोध्या स्यादितः षष्ट्यधिकं शतम् । यस्यां स वर्तते रामः शशाङ्कविमलप्रियः ॥४४॥
कुमारावूचतुर्यावस्तं निर्जेतुं किमास्यते । महीकुटीरके ह्यस्मिन् कस्यान्यस्य प्रधानता ॥४५॥

आँसू छलक आये थे ऐसे नारदने कथा पूरी करते हुए कहा ॥३०॥ कि उसका गोत्र, चारित्र तथा हृदय अत्यन्त शुद्ध है, वह गुणोंसे सुशोभित है, आठ हजार स्त्रियोंकी अग्रणी है, अतिशय पण्डिता है, अपनी पवित्रतासे सावित्री, गायत्री, श्री, कीर्ति, धृति और ह्री देवीको पराजितकर विद्यमान है तथा जिनवाणीके समान है ॥३१-३२॥ निश्चित ही जन्मान्तरमें उपार्जित पाप कर्मके प्रभावसे केवल लोकापवादके कारण उन्होंने उसे निर्जन वनमें छोड़ा है ॥३३॥ सुखसे वृद्धिको प्राप्त हुई वह सती दुर्जनरूपी सूर्यकी कटूक्तिरूपी किरणोंसे संतप्त होकर प्रायः नष्ट हो गई होंगी ॥३४॥ क्योंकि सुकुमार प्राणी थोड़े ही कारणसे दुःखको प्राप्त हो जाते हैं जैसे कि मालतीकी माला दीपकके प्रकाशमात्रसे मुरझा जाती है ॥३५॥ जिसने अपने नेत्रोंसे कभी सूर्य नहीं देखा ऐसी सीता हिंसक जन्तुओंसे भरे हुए भयंकर वनमें क्या जीवित रह सकती है ? ॥३६॥ पापी मनुष्यकी जिह्वा दुष्ट भुजङ्गीके समान निरपराध लोगोंको दूषित कर निवृत्त क्यों नहीं होती है ? ॥३७॥ आर्जवादि गुणोंसे प्रशंसनीय और अत्यन्त निर्मल सीता जैसी सतीका जो अपवाद करता है वह इस लोक तथा परलोक दोनों ही जगह दुःखको प्राप्त होता है ॥३८॥ अथवा अपने द्वारा वंचित कर्म आश्रित प्राणीके नष्ट करनेके लिए जहाँ सदा जागरूक रहते हैं वहाँ किससे क्या कहा जाय ? इस विषयमें तो यह संसार ही निन्दाका पात्र है ॥३९॥ इतना कहकर जिनका मन शोकके भारसे आक्रान्त हो गया था ऐसे नारदमुनि आगे कुछ भी नहीं कह सके अतः चुप बैठ गये ॥४०॥

अथानन्तर अङ्कुशने हँस कर कहा कि हे ब्रह्मन् ! भयंकर वनमें सीताको छोड़ते हुए रामने कुलकी शोभाके अनुरूप कार्य नहीं किया ॥४१॥ लोकापवादके निराकरण करनेके अनेक उपाय हैं फिर उनके रहते हुए क्यों उन्होंने इस तरह सीताको विद्ध किया—घायल किया ॥४२॥ अनंगलवण नामक दूसरे कुमारने भी कहा कि हे मुने ! यहाँसे अयोध्या नगरी कितनी दूर है ? इसके उत्तरमें भ्रमणके प्रेमी नारदने कहा कि यह अयोध्या यहाँसे साठ योजन दूर है जिसमें चन्द्रमाके समान निर्मल प्रियाके स्वामी राम रहते हैं ॥४३-४४॥ यह सुन दोनों कुमारोंने कहा कि हम उन्हें

---

१. -मल्पेनुकारणात् म० । २. व्रजत्यवनिर्वर्तनम् म० ।

ऊचतुर्वज्रजङ्घं च मामास्मिन्वसुधातले । सुह्मसिन्धुकलिङ्गाद्या राजानः सर्वसाधनाः ॥४४॥
आज्ञाप्यन्तां यथा क्षिप्रमयोध्यागमनं प्रति । सज्जीभवत सर्वेण रणयोग्येन वस्तुना ॥४५॥
संलक्ष्यन्तां महानागा विमदा मदशालिनः । समुच्चुतमहाशब्दा वाजिनो वायुरंहसः ॥४६॥
योधाः कटकविख्याताः समरादपलायिनः । निरीक्ष्यन्तां सुशस्त्राणि माज्यंतां कण्टकादिकम् ॥४७॥
तूर्यनादा प्रदाप्यन्तां शङ्खनिःस्वानसङ्गताः । महाहवसमारम्भसम्भावणविचक्षणाः ॥५०॥
एवमाज्ञाप्य सङ्ग्राससमानन्दसमागतम् । आधाय मानसे धीरौ महासम्मदसङ्गतौ ॥५१॥
शक्राविव विनिश्चिन्त्य त्रिदशान् धरणीपतीन् । महाविभवसम्पन्नौ यथास्वं तस्थतुः सुखम् ॥५२॥
ततस्ततोः समाकर्ण्य पद्मनाभाभिषेणनम् । उत्कण्ठां बिभ्रती तूष्णीं रुरोद जनकात्मजा ॥५३॥
ततः सीतासमीपस्थं सिद्धार्थो नारदं जगौ । इदमीदृक्त्वयाऽऽरब्धं कथं कार्यमशोभनम् ॥५४॥
सम्प्रोत्साहनशीलेन रणकौतुकिना परम् । त्वयेदं रचितं पश्य कुटुम्बस्य विभेदनम् ॥५५॥
स जगाद न जानामि वृत्तान्तमहमीदृशम् । यतः सङ्कथनं न्यस्तं पद्मलक्ष्मणगोचरम् ॥५६॥
एवं गतेऽपि मा भैषीर्नेह किञ्चिदसुन्दरम् । भविष्यतीति जानामि स्वस्थतां नीयतां मनः ॥५७॥
ततः समीपतां गत्वा तौ कुमारावबोचताम् । अम्बेदं रुद्यते कस्माद्दाक्षेपविवर्जितम् ॥५८॥
प्रतिकूलं कृतं केन केन वा परिभाषितम् । दुर्मानसस्य कस्याद्य करोम्यसुवियोजनम् ॥५९॥
अनौषधकरः कोऽसौ क्रीडनं कुरुतेऽहिना । कोऽसौ ते मानवः शोकं करोति त्रिदशोऽपि वा ॥६०॥
कस्यासि कुपिता मातर्जनस्य गलितायुषः । प्रसादः क्रियतामम्ब शोकहेतुनिवेदने ॥६१॥

जीतनेके लिए चलते हैं। इस पृथिवीरूपी कुटियामें किसी दूसरेकी प्रधानता कैसे रह सकती है ? ॥४४॥ उन्होंने वज्रजंघसे भी कहा कि हे मामा ! इस वसुधा तल पर जो सुह्म, सिन्धु तथा कलिङ्ग आदि सर्वसाधनसम्पन्न राजा हैं उन्हें आज्ञा दी जाय कि आप लोग अयोध्याके प्रति चलनेके लिए रण के योग्य सब वस्तुएँ लेकर शीघ्र ही तैयार हो जावें ॥४५-४५॥ मद रहित तथा मद सहित बड़े-बड़े हाथी, महाशब्द करनेवाले तथा वायुके समान शीघ्रगामी घोड़े, सेनामें प्रसिद्ध तथा युद्धसे नहीं भागनेवाले योद्धा देखे जावें, उत्तम शस्त्रोंका निरीक्षण किया जाय, कवच आदि साफ किये जावें और महायुद्धके प्रारम्भकी खबर देनेमें निपुण तथा शङ्खके शब्दोंसे मिश्रित तुरहीके शब्द दिलाये जावें ॥४८-५०॥ इस प्रकार राजाओंको आज्ञा दे जो प्राप्त हुए युद्ध सम्बन्धी आनन्दको हृदयमें धारण कर अत्यधिक हर्षसे युक्त थे ऐसे धीर-वीर तथा महावैभवसे सम्पन्न दोनों कुमार उन इन्द्रोंके समान जो देवोंको आज्ञा देकर निश्चिन्त हो जाते हैं निश्चिन्त हो यथा योग्य सुखसे विद्यमान हुए ॥५१-५२॥

तदनन्तर उनकी रामके प्रति चढ़ाई सुन अत्यधिक उत्कण्ठाको धारण करती हुई सीता रोने लगी ॥५३॥ तदनन्तर सीताके समीप खड़े नारदसे सिद्धार्थने कहा कि तुमने यह ऐसा अशोभन कार्य क्यों प्रारम्भ किया ? ॥५४॥ रणके कौतुकी एवं रणका प्रोत्साहन देनेवाले तुमने देखो यह कुटुम्बका बड़ा भेद कर दिया है—घरमें बड़ी फूट डाल दी है ॥५५॥ नारदने कहा कि मैं इस वृत्तान्तको ऐसा थोड़े ही जानता था। मैंने तो केवल उनके सामने राम-लक्ष्मण सम्बन्धी चर्चा ही रक्खी थी ॥५६॥ किन्तु ऐसा होने पर भी डरो मत कुछ भी अशोभन कार्य नहीं होगा यह मैं जानता हूँ अतः मनको स्वस्थ करो ॥५७॥ तदनन्तर दोनों कुमार समीप जाकर सीतासे बोले कि हे अम्ब ! क्यों रो रही हो ? बिना किसी विलम्बके शीघ्र ही कहो ॥५८॥ किसने तुम्हारे विरुद्ध काम किया है अथवा किसने तुम्हारे विरुद्ध कुछ कहा है ? आज किस दुष्ट हृदयके प्राणोंका वियोग करूँ ? ॥५९॥ ओषधि जिसके हाथमें नहीं ऐसा वह कौन मनुष्य साँपके साथ क्रीड़ा करता है ? वह कौन मनुष्य अथवा देव है जो तुम्हें शोक उत्पन्न करता है ? ॥६०॥ हे मातः ! आज किस क्षीणायुष्क पर कुपित हुई हो ? हे अम्ब ! शोक

एवमुक्ता सती देवी जगाद विधृताश्रुका । न कस्यचिदहं पुत्रौ कुपिता कमलेक्षणौ ॥६२॥
भवत्पितुर्मया ध्यातमद्य तेनाऽस्मि दुःखिता । रोदिमि प्रबलायातमयनोदकसन्ततिः ॥६३॥
उक्तवत्यामिदं तस्यां तदा श्रेणिक वीरयोः । सिद्धार्थो न पिताऽस्माकमिति बुद्धिः समुद्गता ॥६४॥
ततस्तामूचतुर्मातः कोऽस्माकं जनकः क्व वा । इति पृष्टाऽवदत्सीता स्ववृत्तान्तमशेषतः ॥६५॥
स्वस्य सम्भवमाचख्यौ रामसम्भवमेव च । अरण्यागमनं चैव हृतिमागमनं तथा ॥६६॥
यथा देवर्षिणा ख्यातं तच्च सर्वं सविस्तरम् । वर्त्ततेऽद्यापि कः कालो वृत्तान्तस्य निगूहने ॥६७॥
एतदुक्त्वा जगौ पुत्रौ भवतोर्गर्भजातयोः । किंवदन्तीभयेनाहं युष्मत्पितोज्झिता वने ॥६८॥
तत्र सिंहरवाख्यायामटव्यां कृतरोदना । वारणार्थं गतेनाहं वज्रजङ्घेन वीक्षिता ॥६९॥
अनेन प्राप्तनागेन विनियर्तनकारिणा । विशुद्धशक्तिरत्नेन आगता स्वगृहं मम ॥७०॥
अहं स्वसेति सम्भाष्य करुणासक्तचेतसा । आनीतेदं निजं स्थानं पूजया चानुपालिता ॥७१॥
तस्यास्य जनकस्येव भवने विभवान्विते । भवन्तौ सम्भवतोऽहं पद्मनाभशरीरजौ ॥७२॥
तेनेयं पृथिवी वत्सौ हिमवत्सागरावधिः । लक्ष्मणानुजयुक्तेन विहिता परिचारिका ॥७३॥
महाऽऽहवेऽधुना जाते श्रोष्यामि किमशोभनम् । नाथस्य भवतोः किंवा किं वा देवरगोचरम् ॥७४॥
अनेन ध्यानभारेण परिपीडितमानसा । अहं रोदिमि सत्पुत्रौ कुतोऽन्यद्विह कारणम् ॥७५॥
तच्छ्रुत्वा परमं प्राप्तौ सम्मदं विमलकारिणौ । विकासिवदनाम्भोजाकूचतुर्लवणाङ्कुशौ ॥७६॥

का कारण बतलानेकी प्रसन्नता करो ॥६१॥ इस प्रकार कहने पर सीता देवीने अश्रु धारण करते हुए कहा कि हे कमललोचन पुत्रो ! मैं किसी पर कुपित नहीं हूँ ॥६२॥ आज मुझे तुम्हारे पिताका स्मरण हो आया है इसीलिए दुःखी हो गई हूँ और इसीलिए बलात् अश्रु डालती हुई रो रही हूँ ॥६३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! सीताके इस प्रकार कहने पर उन दोनों वीरोंको यह बुद्धि उत्पन्न हुई कि सिद्धार्थ हमारा पिता नहीं है ॥६४॥ तत्पश्चात् उन दोनोंने पूछा कि हे मातः ! हमारा पिता कौन है ? कहाँ है ? इस प्रकार पूछने पर सीताने अपना सब वृत्तान्त कह दिया ॥६५॥ अपना जन्म, रामका जन्म, वनमें जाना, वहाँ हरण होना तथा पुनः वापिस आना आदि जैसा वृत्तान्त नारदने कहा था वैसा सब विस्तारसे कह सुनाया क्योंकि वृत्तान्तके छिपाने का अब कौन-सा अवसर है ? ॥६६-६७॥

यह कह कर सीताने कहा कि जब तुम दोनों गर्भमें थे तब लोकापवादके भयसे तुम्हारे पिताने मुझे वनमें छोड़ दिया था ॥६८॥ मैं उस सिंहरवा नामकी अटवीमें रो रही थी कि हाथी पकड़नेके लिए गये हुए वज्रजंघने मुझे देखा ॥६९॥ जो हाथी प्राप्त कर अटवीसे लौट रहा था, जो विशुद्ध शक्ति रूपी रत्नका धारक था, महात्मा था एवं दयालुचित्त था, ऐसा यह श्रावक वज्रजंघ मुझे बहिन कह इस स्थान पर ले आया और बड़े सन्मानके साथ उसने हमारा पालन किया ॥७०-७१॥ जो तुम्हारे पिताके ही समान हैं ऐसे इस वज्रजंघके वैभवशाली घरमें मैंने तुम दोनोंको जन्म दिया है । तुम दोनों श्रीरामके शरीरसे उत्पन्न हो ॥७२॥ हे वत्सो ! लक्ष्मण नामक छोटे भाईसे सहित उन श्रीरामने हिमालयसे लेकर समुद्रपर्यन्तकी इस समस्त पृथिवीको अपनी दासी बनाया है ॥७३॥ अब आज उनके साथ तुम्हारा महायुद्ध होनेवाला है सो मैं क्या पतिकी अमाङ्गलिक वार्ता सुनूँगी ? या तुम्हारी ? अथवा देवर की ? ॥७४॥ इसी ध्यानके कारण खिन्न चित्त होनेसे मैं रो रही हूँ । हे भले पुत्रो ! यहाँ और दूसरा कारण क्या हो सकता है ?॥७५॥

यह सुनकर लवणाङ्कुश परम हर्षको प्राप्त हो आश्चर्य करने लगे, और उनके मुखकमल खिल उठे । उन्होंने कहा कि अहो ! यह सुधन्वा, लोकश्रेष्ठ, श्रीमान्, विशाल एवं उज्ज्वल कीर्तिके

अहो सोऽसौ पिताऽस्माकं [1]सुधन्वा लोकपूजितः । श्रीमान् विशालसत्कीर्तिः कृतानेकमहाद्भुतः ॥७७॥
विषादं मा गमः मातर्वने [2]त्यक्ताहमित्यतः । भग्नौ मानोन्नतिं पश्य रामलक्ष्मणयोर्द्रुतम् ॥७८॥
सीताऽप्यवोचदलमलं विरोद्धुं गुरुणा सुतौ । न वर्तेते इदं कर्तुं व्रजतां सौम्यचित्तताम् ॥७९॥
महाविनययोगेन समागत्य कृतानती । पितरं [3]पश्यतं वत्सौ मार्गोऽयं नयसङ्गतः ॥८०॥
ऊचतुस्तौ रिपुस्थानप्राप्तं मातः कथं नु तम् । मूयो गत्वा वचः क्लीबमावां ते तनयाविति ॥८१॥
वरं मरणमस्माभ्यां अत्र सङ्ग्राममूर्द्धनि । न तु भवितृभोद्दिष्टं प्रवीरजननिन्दितम् ॥८२॥
स्थितायामथ वैदेह्यां शोकं चिन्तार्तचेतसि । अभिषेकादिकं कृत्यं भेजाते लवणाङ्कुशौ ॥८३॥
अतिमङ्गलसङ्घौ च कृतसिद्धनमस्कृती । [4]प्रसान्त्व्य मातरं किञ्चित् प्रणम्य च मुमङ्गलौ ॥८४॥
आरूढौ द्विरदौ चन्द्रसूर्यौ वा नगमस्तकम् । प्रस्थितावभिसाकेतं लङ्कां वा रामलक्ष्मणौ ॥८५॥
ततः सङ्ग्रामशब्देन ज्ञात्वा निर्गमनं तयोः । क्षिप्रं योधसहस्राणि निर्जग्मुः पौण्डरीकतः ॥८६॥
परस्परप्रतिस्पर्द्धासमुत्फुल्लितचेतसाम् । सैन्यं दर्शयतां राज्ञां संघट्टः परमोऽभवत् ॥८७॥
स्वैरं योजनमात्रं सौ महाकटकसङ्गतौ । पालयन्तौ महीं सम्यङ्नाशस्योपशोभिताम् [5]॥८८॥
अग्रतः प्रसृतोदारप्रतापौ परमेश्वरौ । प्रयातौ विषयान्यस्तैः पूज्यमानौ नरेश्वरैः ॥८९॥
महाकुठारहस्तानां तथा कुद्दालधारिणाम् । पुंसां दशसहस्राणि संप्रयाति तदग्रतः ॥९०॥
छिन्दन्तः पादपादींस्ते जनयन्ति समन्ततः । उच्चावचनिर्मुक्तां महीं दर्पणसन्निभाम् ॥९१॥

धारक तथा अनेक महान आश्चर्यके करनेवाले श्री राम हमारे पिता हैं ॥७६-७७॥ हे मातः ! 'मैं वनमें छोड़ी गई हूँ' इस बातका विषाद मत करो। तुम शीघ्र ही राम-लक्ष्मणका अहंकार खण्डित देखो ॥७८॥ तब सीताने कहा कि हे पुत्रो ! पिताके साथ विरोध करना रहने दो। यह करना उचित नहीं है। तुम लोग शान्तचित्तताको प्राप्त करो ॥७९॥ हे वत्सो ! बड़ी विनयके साथ जाओ और नमस्कार कर पिताके दर्शन करो यही मार्ग न्यायसंगत है ॥८०॥

यह सुन लवणांकुशने कहा कि वे हमारे शत्रुके स्थानको प्राप्त हैं अतः हे मातः ! हम लोग जाकर यह दीन वचन उनसे किस प्रकार कहें कि हम तुम्हारे लड़के हैं ॥८१॥ संग्रामके अग्रभाग में यदि हम लोगोंको मरण प्राप्त होता है तो अच्छा है परन्तु वीर मनुष्योंके द्वारा निन्दित ऐसा विचार रखना अच्छा नहीं है ॥८२॥ अथानन्तर जिसका चित्त चिन्तासे दुःखी हो रहा था ऐसी सीता चुप हो रही और लवणांकुशने स्नान आदि कार्य सम्पन्न किये ॥८३॥ तत्पश्चात् जिन्होंने मङ्गलमय मुनिसंघकी सेवा की थी, सिद्ध भगवान्‌को नमस्कार किया था तथा माताको सान्त्वना देकर प्रणाम किया था ऐसे मङ्गलमय वेषको धारण करनेवाले दोनों कुमार दो हाथियों पर उस प्रकार आरूढ़ हुए जिस प्रकार कि चन्द्रमा और सूर्य पर्वतके शिखर पर आरूढ़ होते हैं। तदनन्तर दोनोंने अयोध्याकी ओर उस तरह प्रयाण किया जिस तरह कि राम-लक्ष्मणने लङ्काकी ओर किया था ॥८४-८५॥ तत्पश्चात् तैयारीके शब्दसे उन दोनोंका निर्गमन जानकर हजारों योधा शीघ्र ही पौण्डरीकपुरसे बाहर निकल पड़े ॥८६॥ परस्परकी प्रतिस्पर्धासे जिनका चित्त बढ़ रहा था ऐसे अपनी-अपनी सेनाएँ दिखलानेवाले राजाओंमें बड़ी धक्कम-धक्का हो रही थी ॥८७॥ तदनन्तर जो एक योजन तक फैली हुई बड़ी भारी सेनासे सहित थे जो नाना प्रकारके धान्यसे सुशोभित पृथिवीका अच्छी तरह पालन करते थे, जिनका उत्कृष्ट प्रताप आगे-आगे चल रहा था और जो उन-उन देशोंमें स्थापित राजाओंके द्वारा पूजा प्राप्त कर रहे थे, ऐसे दोनों भाई प्रजाकी रक्षा करते हुए चले जा रहे थे ॥८८-८९॥ बड़े-बड़े कुल्हाड़े और कुदालें धारण करनेवाले दश हजार पुरुष उनके आगे-आगे चलते थे ॥९०॥ वे वृक्षों आदिको

---

१. सुधन्वी म० । २. त्यक्त्वाह-म० । ३. पश्यत म० । ४. प्रशान्त्य म० । ५. नाशस्योप -म० ।

महिषोष्ट्रमहोक्षाणां कोशसंभारवाहिनः । प्रयान्ति प्रथमं [1]मन्त्री पक्षयश्च मृदुस्वनाः ॥९१॥
ततः पदातिसङ्घाता युवसारङ्गविभ्रमाः । पश्चात्तुरङ्गवृन्दानि कुर्वन्त्युत्तमचेष्टितम् ॥९२॥
अथ काञ्चनकक्षाभिर्मिलान्तकुलराजभाः । महाघण्टाकृतस्थानाः शङ्खचामरधारिणः ॥९३॥
बुद्बुदादर्शलम्बूषचारुवेषा महोद्धताः । अयस्त्राणसुवर्णादिबद्धशुभ्रमहारदाः ॥९४॥
रत्नचामीकराद्यात्मकण्ठमालाविभूषिताः । चलत्पर्वतसङ्काशा नानावर्णकलङ्किनः ॥९५॥
केचिन्निर्भरनिश्स्यन्दगण्डा मुकुलितेक्षणाः । हृष्टा दानोद्गमाः केचिन्नेगच्छन्तो घनोपमाः ॥९७॥
अधिष्ठिताः सुसन्नाहैर्नानाशास्त्रविशारदैः । समुद्भूतमहाशब्दैः पुरुषैः पुरुदीप्तिभिः ॥९८॥
स्वान्यसैन्यसमुद्भूतनिनादज्ञानकोविदाः । सर्वशिक्षासुसम्पन्ना दन्तिनश्चारुविभ्रमाः ॥९९॥
बिभ्राणाः कवचं चारु पश्चाद्विन्यस्तखेटकाः । सादिनस्तत्र राजन्ते परमं कृतपाणयः ॥१००॥
अश्ववृन्दखुराघातसमुद्भूतेन रेणुना । नभः पाण्डुरजीमूतचयैरिव [2]समन्ततम् ॥१०१॥
शस्त्रान्धकारपिहिता नानाविभ्रमकारिणः । [3]अहंयवः समुद्वृत्ताः प्रयान्ते पदातयः ॥१०२॥
शयनासनताम्बूलगन्धमाल्यैर्मनोहरैः । न कश्चिद्दुःस्थितस्तत्र वस्त्राहारविलेपनैः ॥१०३॥
नियुक्ता राजवाक्येन सन्ततः पथि मानवाः । दिने दिने महादक्षा बद्धकक्षाः सुचेतसः ॥१०४॥
मधु शीधु घृतं वारि नानान्नं रसवत्परम् । परमादरसम्पन्नं प्रयच्छन्ति समन्ततः ॥१०५॥

काटते हुए ऊँची-नीची भूमिको सब ओरसे दर्पणके समान करते जाते थे ॥९१॥ सबसे पहले खजानेके भारको धारण करनेवाले भैंसे ऊँट तथा बड़े-बड़े बैल जा रहे थे। फिर कोमल शब्द करते हुए गाड़ियोंके सेवक चल रहे थे। तदनन्तर तरुण हरिणके समान उछलनेवाले पैदल सैनिकोंके समूह और उनके बाद उत्तम चेष्टाएँ करनेवाले घोड़ोंके समूह जा रहे थे ॥९२-९३॥ उनके पश्चात् जो सुवर्णकी मालाओंसे अत्यधिक सुशोभित थे, जिनके गलेमें बँधे हुए बड़े-बड़े घण्टा शब्द कर रहे थे, जो शङ्खों और चामरोंको धारण कर रहे थे, काँचके छोटे-छोटे गोले तथा दर्पण तथा फानूसों आदिसे जिनका वेष बहुत सुन्दर जान पड़ता था, जो महाउद्दण्ड थे, जिनकी सफेद रङ्गकी बड़ी-बड़ी खीसें लोहा तामा तथा सुवर्णादिसे जड़ी हुई थीं, जो रत्न तथा सुवर्णादिसे निर्मित कण्ठमालाओंसे विभूषित थे, चलते-फिरते पर्वतोंके समान जान पड़ते थे, नाना रङ्गके चित्रामसे सहित थे, जिनमेंसे किन्हींके गण्डस्थलोंसे अत्यधिक मद झर रहा था, कोई नेत्र बन्द कर रहे थे, कोई हर्षसे परिपूर्ण थे, किन्हींके मदकी उत्पत्ति होनेवाली थी, कोई वेगसे तीक्ष्ण थे और कोई मेघोंके समान थे, जो कवच आदिसे युक्त, नाना शास्त्रोंमें निपुण, महाशब्द करनेवाले और अत्यन्त तेजस्वी पुरुषोंसे अधिष्ठित थे, जो अपनी तथा परायी सेनामें उत्पन्न हुए शब्दके जाननेमें निपुण थे, सर्वप्रकारकी शिक्षासे सम्पन्न थे और सुन्दर चेष्टाको धारण करनेवाले थे ऐसे हाथी जा रहे थे ॥९४-९९॥ उनके पश्चात् जो सुन्दर कवच धारण कर रहे थे, जिन्होंने पीछेकी ओर ढाल टाँग रक्खी थी तथा भाले जिनके हाथोंमें थे ऐसे घुड़सवार सुशोभित हो रहे थे ॥१००॥ अश्वसमूहके खुराघातसे उठी धूलिसे आकाश ऐसा व्याप्त हो गया था मानो सफेद मेघोंके समूहसे ही व्याप्त हो गया हो ॥१०१॥ उनके पश्चात् जो शस्त्रोंके अन्धकारसे आच्छादित थे, नाना प्रकारकी चेष्टाओंको करनेवाले थे, अहङ्कारी थे तथा उदात्त आचारसे युक्त थे ऐसे पदाति चल रहे थे ॥१०२॥ उस विशाल सेनामें शयन, आसन, पान, गन्ध, माला तथा मनोहर वस्त्र, आहार और विलेपन आदिसे कोई दुःखी नहीं था अर्थात् सबके लिए उक्त पदार्थ सुलभ थे ॥१०३॥ राजाकी आज्ञानुसार नियुक्त होकर जो मार्गमें सब जगह व्याप्त थे, अत्यन्त चतुर थे कार्य करनेके लिए जो सदा कमर कसे रखते थे और उत्तम हृदयसे युक्त थे ऐसे मनुष्य प्रति

१. मन्त्री म० । २. समन्ततः म० । ३. अहङ्कारयुक्ताः 'अहंशुभमोर्युस्' इति युसूप्रत्ययः ।

नादर्शि मलिनस्तत्र न दीनो न बुभुक्षितः । तृषितो न कुवस्त्रो वा जनो न च विचिन्तकः ॥१०६॥
नानाभरणसम्पन्नाश्चारुवेषाः सुकान्तयः । पुरुषास्तत्र नार्यश्च रेजुः सैन्यमहार्णवे ॥१०७॥
विभूत्या परया युक्तावेवं जनकजात्मजौ । साकेताविषयं प्राप्ताविन्द्राविव सुरास्पदम् ॥१०८॥
यवपुण्ड्रेक्षुगोधूमप्रभृत्युत्तमसम्पदा । सस्येन शोभिता यत्र वसुधान्तरवर्जिता ॥१०९॥
सरितो राजहंसौघैः सरांसि कमलोत्पलैः । पर्वता विविधैः पुष्पैर्गीतैरुद्यानभूमयः ॥११०॥
नैचिकीमहिषीव्रातैर्महोक्षस्वरहारिभिः[1] गोपीभिर्मञ्चसक्ताभिर्यत्र भान्ति वनानि च ॥१११॥
सीमान्तावस्थिता यत्र ग्रामा नगरसन्निभाः । त्रिविष्टपपराभानि राजन्ते नगराणि च ॥११२॥
स्वैरं तमुपभुञ्जानौ विषयं विषयप्रियम् । परेण तेजसा युक्तौ गच्छन्तौ लवणाङ्कुशौ ॥११३॥
दन्तिनो रणचण्डानां गण्डनिर्गतवारिणा[2] । कर्दमत्वं समानीता सकलाः पथि पांसवः ॥११४॥
भृशं पटुखुराघातैर्वाजिनां चञ्चलात्मनाम् । जर्जरत्वमिवानीता कोसलाविषयावनिः ॥११५॥
ततः सन्ध्यासमासक्तघनौघेनेव सङ्गतम् । दूरे नभः समालक्ष्य जगदुर्लवणांकुशौ ॥११६॥
किमेतद्दृश्यते माम तुङ्गशोणमहाद्युति[3] । वज्रजङ्घस्ततोऽवोचत्परिज्ञाय चिरादिव ॥११७॥
देवावेषा विनीतासौ दृश्यते नगरी परा । हेमप्राकारसञ्जाता यस्याश्छायेयमुच्चता ॥११८॥
अस्यां हलधरः श्रीमानास्तेऽसौ भवतोः[4] पिता । यस्य नारायणो भ्राता शत्रुघ्नश्च महागुणः ॥११९॥
शौर्यमान्त्सममेताभिः कथाभिरितिसक्तयोः[5] । सुखेन गच्छतोरासीदन्तराले तयोर्नदी ॥१२०॥

बड़े आदरके साथ सबके लिए मधु, स्वादिष्ट पेय, घी, पानी और नाना प्रकारके रसीले भोजन सब ओर प्रदान करते रहते थे ॥१०४-१०५॥ उस सेनामें न तो कोई मनुष्य मलिन दिखाई देता था, न दीन, न भूखा, न प्यासा, न कुत्सित वस्त्र धारण करनेवाला और न चिन्तातुर ही दिखाई पड़ता था ॥१०६॥ उस सेनारूपी महासागरमें नाना आभरणोंसे युक्त, उत्तम वेशसे सुसज्जित एवं उत्तम कान्तिसे युक्त पुरुष और स्त्रियाँ सुशोभित थीं ॥१०७॥ इस प्रकार परमविभूतिसे युक्त सीताके दोनों पुत्र उस तरह अयोध्याके उस देशमें पहुँचे जिस तरह कि इन्द्र देवोंके स्थानमें पहुँचते हैं ॥१०८॥ जौ, पौंडे, ईख तथा गेहूँ आदि उत्तमोत्तम धान्योंसे जहाँकी भूमि निरन्तर सुशोभित है ॥१०९॥ वहाँकी नदियाँ राजहंसोंके समूहोंसे, तालाब कमलों और कुवलयोंसे, पर्वत नाना प्रकारके पुष्पोंसे और बाग-बगीचोंकी भूमियाँ सुन्दर संगीतोंसे सुशोभित हैं ॥११०॥ जहाँके वन बड़े-बड़े बैलोंके शब्दोंसे, सुन्दर गायों और भैंसोंके समूहसे तथा मचानपर बैठी गोपालिकाओंसे सुशोभित हैं ॥१११॥ जहाँकी सीमाओंपर स्थित गाँव नगरोंके समान और नगर स्वर्गपुरीके समान सुशोभित हैं ॥११२॥ इस तरह पञ्चेन्द्रियके विषयोंसे प्रिय उस देशका इच्छानुसार उपभोग करते हुए, परमतेजके धारक लवणाङ्कुश आनन्दसे चले जाते थे ॥११३॥ रणके कारण तीव्र क्रोधको प्राप्त हुए हाथियोंके गण्डस्थलसे झरनेवाले जलसे मार्गकी समस्त धूलि कीचड़पनेको प्राप्त हो गई थी ॥११४॥ चञ्चल घोड़ोंके तीक्ष्ण खुराघातसे उस कोमल देशकी भूमि मानों अत्यन्त जर्जर अवस्थाको प्राप्त हो गई थी ॥११५॥

तदनन्तर लवणाङ्कुश, दूरसे ही आकाशको सन्ध्याकालीन मेघोंके समूह सहित जैसा देखकर बोले कि हे माम ! जिसकी लाल-लाल विशाल कान्ति बहुत ऊँची उठ रही है ऐसा यह क्या दिखाई दे रहा है ? यह सुन वज्रजङ्घने बहुत देरतक पहिचाननेके बाद कहा कि हे देवो! यह वह उत्कृष्ट अयोध्या नगरी दिखाई दे रही है जिसके सुवर्णमय कोटकी यह कान्ति इतना ऊँची उठ रही है ॥११६-११८॥ इस नगरीमें वह श्रीमान् बलभद्र रहते हैं जो कि तुम दोनोंके पिता हैं तथा नारायण और महागुणवान् शत्रुघ्न जिनके भाई हैं ॥११९॥ इस तरह शूर-वीरता

---

१. नैचिकी—म०, नैचिकी = धेनुः । २. वारिणां म० । ३. द्युतिः म० । ४. भवतः म० । ५. रक्तसक्तयोः म० ।

[1]प्रवृत्तवेगमात्रेण नगरीं ग्रहणेप्सिणोः । जातोऽन्तरे तयोरेव नदी सिद्धिप्रस्थितयोरिव ॥१२१॥
सैन्यमावासितं तत्र परिश्रमसमागतम् । सुरसैन्यमिवोदारमुपनन्दनसन्निगम् ॥१२२॥
अथ श्रुत्वा परानीकं स्थितमासन्नगोचरे । किञ्चिद्विस्मयमापन्नावूचतुः पद्मलक्ष्मणौ ॥१२३॥
त्वरितं कः पुनर्मर्तुमयं वाञ्छति मानवः । युद्धापदेशमाश्रित्य यद्येत्यन्तिकमावयोः ॥१२४॥
ततो नारायणश्चाज्ञां विराधितमहीभृते । क्रियतां साधनं सज्जं युद्धाय क्षेपवर्जितम् ॥१२५॥
वृषनागगरुडवज्रादिकेतनाः खेचराधिपाः । क्रियन्तामुदितज्ञाना सम्प्राप्ते रणकर्मणि ॥१२६॥
यथाऽऽज्ञापयसीत्युक्त्वा विराधितखगेश्वरः । नृपान् किष्किन्धनाथाद्यान् समाहूय समुद्यतः ॥१२७॥
दूतदर्शनमात्रेण सर्वे ते खेचरेश्वराः । अयोध्यानगरीं प्राप्ता महासाधनसङ्गताः ॥१२८॥
अभात्यन्ताकुलात्मानौ तदा सिद्धार्थनारदौ । प्रभामण्डलराजाय गत्वा ज्ञापयतां द्रुतम् ॥१२९॥
श्रुत्वा स्वसुर्यथा वृत्तं वात्सल्यगुणयोगतः । बभूव परमं दुःखी प्रभामण्डलमण्डितः ॥१३०॥
विषादं विस्मयं हर्षं बिभ्राणश्च त्वरान्वितः । आरुह्य मनसा तुल्यं विमानं पितृसङ्गतः ॥१३१॥
समेतः सर्वसैन्येन किङ्कर्तव्यत्वविह्वलः । पौण्डरीकपुरं चैव प्रस्थितः स्नेहनिर्भरः ॥१३२॥
प्रभामण्डलमायातं जनकं मातरं तथा । दृष्ट्वा सीता नवीभूतशोकोत्थाय त्वरान्विता ॥१३३॥
विप्रलापं परिष्वज्य चक्रेऽश्रुकृतदुर्दिना । निर्वासनादिकं दुःखं वेदयन्ती सुविह्वला ॥१३४॥
सान्त्वयित्वाऽतिकृच्छ्रेण तां प्रभामण्डलो जगौ । देवि संशयमापन्नौ पुत्रौ ते साधु नो कृतम् ॥१३५॥

और गौरवसे सहित कथाओंसे जो अत्यन्त प्रसन्न थे ऐसे सुखसे जाते हुए उन दोनोंके बीच नदी आ पड़ी ॥१२०॥ जो अपने चालू वेगसे ही उस नगरीको ग्रहण करनेकी इच्छा रखते थे ऐसे उन दोनों वीरोंके बीच वह नदी उस प्रकार आ पड़ी जिसप्रकार कि मोक्षके लिए प्रस्थान करनेवालेके बीच तृष्णा आ पड़ती है ॥१२१॥ जिस प्रकार नन्दन वनकी नदीके समीप देवोंकी विशाल सेना ठहराई जाती है उसी प्रकार उस नदीके समीप अपनी सेना ठहरा दी गई ॥१२२॥

अथानन्तर शत्रुकी सेनाको निकटवर्ती स्थानमें स्थित सुन परम आश्चर्यको प्राप्त होते हुए राम लक्ष्मणने कहा कि ॥१२३॥ यह कौन मनुष्य शीघ्र ही मरना चाहता है जो युद्धका बहाना लेकर हम दोनोंके पास चला आ रहा है ॥१२४॥ लक्ष्मणने उसी समय राजा विराधितको आज्ञा दी कि बिना किसी विलम्बके युद्धके लिए सेना तैयार की जाय ॥१२५॥ रणका कार्य उपस्थित हुआ है इसलिए वृष, नाग तथा वानर आदिकी पताकाओंको धारण करने वाले विद्याधर राजाओंको सब समाचारका ज्ञान कराओ अर्थात् उनके पास सब समाचार भेजे जाँय ॥१२६॥ 'जैसी आप आज्ञा करते हैं वैसा ही होगा' इस प्रकार कह कर राजा विराधित सुग्रीव आदि राजाओंको बुला कर युद्धके लिए उद्यत हो गया ॥१२७॥ दूतके देखते ही वे सब विद्याधर राजा बड़ी-बड़ी सेनाएं लेकर अयोध्या आ पहुँचे ॥१२८॥

अथानन्तर जिनकी आत्मा अत्यन्त आकुल हो रही थी ऐसे सिद्धार्थ और नारदने शीघ्र ही जा कर भामण्डलके लिए सब खबर दी ॥१२९॥ बहिन सीताका जो हाल हुआ था उसे सुन कर वात्सल्य गुणके कारण भामण्डल बहुत दुखी हुआ ॥१३०॥ तदनन्तर विषाद विस्मय और हर्षको धारण करने वाला, शीघ्रतासे सहित एवं स्नेहसे भरा भामण्डल, किंकर्तव्यविमूढ हो पिता सहित मनके समान शीघ्रगामी विमान पर आरूढ़ हो सब सेनाके साथ पौण्डरीकपुरकी ओर चला ॥१३१-१३२॥ भामण्डल, पिता और माताको आया देख जिसका शोक नया हो गया था ऐसी सीता शीघ्रतासे उठ सबका आलिङ्गन कर आसुंओंकी लगातार वर्षा करती हुई विलाप करने लगी। वह उस समय अपने परित्याग आदिके दुःखको बतलाती हुई विह्वल हो उठती थी ॥१३३-१३४॥ भामण्डलने उसे बड़ी कठिनाईसे सान्त्वना देकर कहा कि हे देवि ! तेरे पुत्र

१. प्रवृत्ते ज० ।

हलचक्रधरौ ताभ्यामुपेत्य क्षोभितौ यतः । सुराणामपि यौ वीरौ न जय्यौ पुरुषोत्तमौ ॥१३५॥
कुमारयोस्तयोर्यावत्प्रमादो नोपजायते । तावदस्तावदेहाशु चिन्तयामोऽभिरक्षणम् ॥१३७॥
ततः पुत्रवधूनेत्रा सीता भामण्डलाश्रिता । प्रवृत्ता तनयौ तेन वज्रजङ्घबलान्वितौ ॥१३८॥
रामलक्ष्मणयोर्लक्ष्मीं कोऽसौ वर्णयितुं क्षमः । इति श्रेणिक संक्षेपात्कीर्त्यमानमिदं शृणु ॥१३९॥
रथाश्वगजपादातमहार्णवसमावृतौ । वहन्ताविव संरम्भं निर्गतौ रामलक्ष्मणौ ॥१४०॥
अश्वयुक्तरथारूढः शत्रुघ्नश्च प्रतापवान् । हारराजितवक्षस्को निर्ययौ युद्धमानसः ॥१४१॥
ततोऽभवत्कृतान्तास्यः सर्वसैन्यपुरःसरः । मानी हरिणकेशीव नाकौकःसैनिकाग्रणीः ॥१४२॥
शरासनकृतच्छायं चतुरङ्गं महाद्युति । अप्रमेयं बलं तस्य प्रतापपरिवारणम् ॥१४३॥
सुरप्रासादसङ्काशो मध्यस्तम्भोऽन्तकध्वजः । शात्रवानीकदुष्प्रेक्षो रेजे तस्य महारथः ॥१४४॥
अनुमार्गं त्रिमूर्धोऽस्य ततो वह्निशिखो नृपः । सिंहविक्रमनामा च तथा दीर्घभुजश्रुतिः ॥१४५॥
सिंहोदरः सुमेरुश्च बालिखिल्यो महाबलः । प्रचण्डो रौद्रभूतिश्च शरभः स्यन्दनः पृथुः ॥१४६॥
कुलिशश्रवणक्रुद्धो मारिदत्तो रणप्रियः । मृगेन्द्रवाहनाद्याश्च सामन्ता मत्तमानसाः ॥१४७॥
सहस्रपञ्चकेयत्ता नानाशस्त्रान्धकारिणः । निर्जग्मुर्वन्दिनां वृन्दैरुद्गीतगुणकोटयः ॥१४८॥
एवं कुमारकोट्योऽपि कुटिलानीकसङ्गताः । दृष्टप्रत्ययशस्त्राग्रे क्षणविन्यस्तचक्षुषः ॥१४९॥
युद्धानन्दकृतोत्साहा नाथभक्तिपरायणाः । महाबलास्त्वराढ्यो निर्ययुः कम्पितक्षमाः ॥१५०॥
रथैः केचिद्गजैस्तुङ्गैर्हयैः केचिद्घनोपमैः । महार्णवतरङ्गाभैस्तुरङ्गैरपरैः परे ॥१५१॥

संशयको प्राप्त हुए हैं। उन्होंने यह अच्छा नहीं किया ॥१३५॥ उन्होंने जाकर उन बलभद्र और नारायणको क्षोभित किया है जो पुरुषोत्तम और देवोंके भी अजेय हैं ॥१३६॥ जब तक उन कुमारोंका प्रमाद नहीं होता है तब तक आओ शीघ्र ही चलें और रक्षाका उपाय सोचें ॥१३७॥ तदनन्तर पुत्र-वधुओं सहित सीता भामण्डलके विमानमें बैठ उस ओर चली जिस ओर कि वज्रजङ्घ और सेनासे सहित दोनों पुत्र गये थे ॥१३८॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! राम लक्ष्मणकी पूर्ण लक्ष्मीका वर्णनके लिए कौन समर्थ है ? इसलिए संक्षेपसे ही यहाँ कहते हैं सो सुन ॥१३९॥ रथ, घोड़े, हाथी और पैदल सैनिक रूप महासागरसे घिरे हुए राम लक्ष्मण क्रोधको धारण करते हुएके समान निकले ॥१४०॥ जो घोड़े जुते हुए रथ पर सवार था, जिसका वक्षःस्थल हारसे सुशोभित था तथा जिसका मन युद्धमें लग रहा था ऐसा प्रतापी शत्रुघ्न भी निकल कर बाहर आया ॥१४१॥ जिस प्रकार हरिणकेशी देव सैनिकोंका अग्रणी होता है उसी प्रकार मानी कृतान्तवक्त्र सब सेनाका अग्रसर हुआ ॥१४२॥ जिसमें धनुषोंकी छाया हो रही थी तथा जो महा कान्तिसे युक्त थी ऐसी उसकी अपरिमित चतुरङ्गिणी सेना उसके प्रतापको बढ़ा रही थी ॥१४३॥ जिसमें बीचके खम्भा के ऊपर ध्वजा फहरा रही थी, तथा जो शत्रुओंकी सेनाके द्वारा दुर्निरीक्ष्य था ऐसा उसका बड़ा भारी रथ देवोंके महलके समान सुशोभित हो रहा था ॥१४४॥ कृतान्तवक्त्रके पीछे त्रिमूर्ध, फिर अग्निशिख, फिर सिंहविक्रम, फिर दीर्घबाहु, फिर सिंहोदर, सुमेरु, महाबलवान् बालिखिल्य, अत्यन्त क्रोधी रौद्रभूति, शरभ, स्यन्दन, क्रोधी वज्रकर्ण, युद्धका प्रेमी मारिदत्त, और मदोन्मत्त मनके धारक मृगेन्द्रवाहन आदि पाँच हजार सामन्त बाहर निकले। ये सभी सामन्त नाना शस्त्र रूपी अन्धकारको धारण करनेवाले थे तथा चारणोंके समूह उनके करोड़ों गुणोंका उद्गान कर रहे थे ॥१४५-१४८॥ इसी प्रकार जो कुटिल सेनाओंसे सहित थी, जिन्होंने विश्वासप्रद शस्त्र के ऊपर क्षण भरके लिए अपनी दृष्टि डाली थी, युद्ध सम्बन्धी हर्षसे जिनका उत्साह बढ़ रहा था, जो स्वामीकी भक्तिमें तत्पर थीं, महाबलवान् थीं, शीघ्रतासे सहित थीं और जिन्होंने पृथिवीको कम्पित कर दिया था ऐसी कुमारोंकी अनेक श्रेणियाँ भी बाहर निकलीं ॥१४९-१५०॥ नाना प्रकार

शिबिकाशिखरैः केचिद्युग्यैर्योग्यतरैः परे । निर्ययुर्बृंहुवादित्रबधिरीकृतदिङ्मुखाः ॥१५२॥
सकवचशिरस्त्राणाः क्रोधालिङ्गितचेतसः । पुराद्दृष्टसुविक्रान्तप्रसादपरसेवकाः ॥१५३॥
ततः श्रुत्वा परानीकनिःस्वनं सम्भ्रमान्वितः । सज्जध्वमिति सैन्यं स्वं वज्रजङ्घः समादिशत् ॥१५४॥
ततस्ते परसैन्यस्य श्रुत्वा निःस्वनमाकुताः । स्वयमेव सुसन्नद्धास्तस्थान्तिकमुपागमन् ॥१५५॥
कालानलाप्रचण्डाङ्गवङ्गा नेपाकयर्बराः । पौण्ड्रा मागधसौरसाश्च पारशैलाः ससिंहलाः ॥१५६॥
कालिङ्गकाश्च राजानो रत्नाङ्काद्या महाबलाः । एकादशसहस्राणि युक्ता द्युतमतेजसा[1] ॥१५७॥
एवं तत्परमं सैन्यं परसैन्यकृतागमम् । सङ्कटमुत्तमं प्राप्तं चलितं प्रचलायुधम् ॥१५८॥
तयोः समागमो रौद्रो देवासुरकृतादुतः । बभूव सुमहाशब्दः क्षुब्धाकूपारयोरिव ॥१५९॥
प्रहर प्रथमं क्षुद्र मुञ्चास्त्रं किमुपेक्षसे । प्रहन्तुं प्रथमं शस्त्रं न मे जातु प्रवर्तते ॥१६०॥
प्रहृतं लघुना तेन विशदोऽभूद्भुजो मम । प्रहरस्व बलुर्गाढं दृढपीडितमुष्टिकः ॥१६१॥
किञ्चिद् व्रज पुरोभागं सञ्चारो नास्ति सङ्गरे । सायकस्त्वेनमुत्क्षिप्य क्षुरिकां वा समाश्रय ॥१६२॥
किं वेपसे न हन्मि त्वां मुञ्च मार्गमयं परः । भटो युद्धमहाकण्डूचपलोऽग्रेऽवतिष्ठताम् ॥१६३॥
किं वृथा गर्जसि क्षुद्र न धैर्यं वाचि तिष्ठति । भयं ते चेष्टितेनैव करोमि रणपूजनम् ॥१६४॥
एवमाद्या महाराव्या भटानां शौर्यशालिनाम् । निर्ह्रादस्तिगम्भीरा वदनेभ्यः समन्ततः ॥१६५॥

के वादित्रोंसे जिन्होंने दिशाओंको बहिरा कर दिया था, जो कवच और टोपसे सहित थे, जिनके चित्त क्रोधसे व्याप्त थे, तथा जिनके सेवक पूर्व दृष्ट, परम पराक्रमी और प्रसन्नता प्राप्त करनेमें तत्पर थे ऐसे कितने ही लोग पर्वतोंके समान ऊँचे रथोंसे, कितने ही मेघोंके समान हाथियोंसे, कितने ही महासागरकी तरङ्गोंके समान घोड़ोंसे, कितने ही बालकके शिखरोंसे और कितने ही अत्यन्त योग्य वृषभोंसे अर्थात् इन पर आरूढ हो बाहर निकले ॥१५१-१५३॥

तदनन्तर परकीय सेनाका शब्द सुनकर संभ्रमसे सहित वज्रजङ्घने अपनी सेनाको आदेश दिया कि तैयार होओ ॥१५४॥ तदनन्तर पर-सेनाका शब्द सुनकर कवच आदिसे आवृत सब सैनिक तैयार हो वज्रजङ्घके पास स्वयं आ गये ॥१५५॥ प्रलय कालकी अग्निके समान प्रचण्ड अङ्ग, वङ्ग, नेपाल, बर्बर, पौण्ड, मागध, सौरस, पारशैल, सिंहल, कालिङ्गक तथा रत्नाङ्क आदि महाबलवान् एवं उत्तमतेजसे युक्त ग्यारह हजार राजा युद्धके लिए तैयार हुए ॥१५६-१५७॥ इसप्रकार जिसने शत्रुसेनाकी ओर मुख किया था, तथा जिसमें शस्त्र चल रहे थे ऐसी वह चञ्चल उत्कृष्ट सेना उत्तम संघट्टको प्राप्त हुई अर्थात् दोनों सेनाओंमें तीव्र मुठभेड़ हुई ॥१५८॥ उन दोनों सेनाओंमें ऐसा भयंकर समागम हुआ जो पहले हुए देव और असुरोंके समागमसे भी कहीं आश्चर्यकारी था तथा क्षोभको प्राप्त हुए दो समुद्रोंके समागमके समान महाशब्द कर रहा था ॥१५९॥ 'अरे क्षुद्र ! पहले प्रहार कर, शस्त्र छोड़, क्यों उपेक्षा कर रहा है ? मेरा शस्त्र पहले प्रहार करनेके लिए कभी प्रवृत्त नहीं होता ॥१६०॥ अरे, उसने हलका प्रहार किये इससे मेरी भुजा स्वस्थ रही आई अर्थात् उसमें कुछ हुआ ही नहीं, जरा दृढ़ मुट्ठी कस कर शरीरपर जोरदार प्रहार कर ॥१६१॥ कुछ सामने आ, युद्धमें बाणका संचार ठीक नहीं हो रहा है, अथवा फिर बाणको छोड़ छुरी उठा ॥१६२॥ क्यों काँप रहा है ? मैं तुझे नहीं मारता, मार्ग छोड़, युद्धकी महाखाजसे चपल यह दूसरा प्रबल योद्धा सामने खड़ा हो ॥१६३॥ अरे क्षुद्र ! व्यर्थ क्यों गरज रहा है ? वचनमें शक्ति नहीं रहती, यह मैं तेरी चेष्टासे ही रणकी पूजा करता हूँ' ॥१६४॥ इन्हें आदि लेकर, पराक्रमसे सुशोभित योद्धाओंके मुखोंसे सब ओर अत्यन्त गम्भीर महाशब्द निकल रहे

१. कालानलाः प्रचण्डाङ्ग-म०, ज० । २. तेजसः म० । ३. वर्तते म० ।

भूगोचरनरेन्द्राणां यथायातः समन्ततः । नभश्चरनरेन्द्राणां तथैवान्यन्तसङ्कुलः[1] ॥१६५॥
लवणाङ्कुशयोः पक्षे स्थितो जनकनन्दनः । वीरः पवनवेगश्च मृगाङ्को विद्युदुज्ज्वलः ॥१६६॥
महापैन्यसमायुक्ता सुरछन्दादयस्तथा । महाविद्याधरेशानां महारणविशारदाः ॥१६७॥
लवणाङ्कृशसम्भूतिं श्रुतवानथ तत्त्वतः । ऊर्ध्वसेचरसामन्तसङ्घट्टशलथतां नयन् ॥१६८॥
यथा कर्तव्यविज्ञानप्रयोगास्यन्तकोविदः । वैदेहीसुतयोः पक्षं वायुपुत्रोऽप्यशिश्रियत् ॥१७०॥
लाङ्गूलपाणिना तेन निर्यता[2] रामसैन्यतः । प्रभामण्डलवीरस्य चित्तमानन्दकृतम् ॥१७१॥
विमानशिखरारूढां ततः संदृश्य जानकीम् । औदासीन्यं ययुः सर्वे विहायसरपार्थिवाः ॥१७२॥
कृताञ्जलिपुटाश्चैनां प्रणम्य परम [illegible] । तस्थुरावृत्य विभ्राणा विस्मयं परमोत्तमम् ॥१७३॥
चित्रस्तहरिणीनेत्रा समुद्भूतरुजृम्भः । वैदेही बलयोः सङ्गमालुलोके सवेपथुः ॥१७४॥
क्षोभयन्तावधोद्दारं तत्सैन्यं प्रचलद्ध्वजम्[3] । पक्षालघमीधरौ तेन प्रवृत्तौ लवणाङ्कुशौ ॥१७५॥
मृगनागारिसंलक्ष्यध्वजयोरनयोः पुरः । स्थितौ कुमारवीरौ तौ प्रतिपक्षमुखं श्रितौ ॥१७६॥
आपातमात्रकेणैव रामदेवस्य सद्ध्वजम् । अनङ्गलवणश्चापं निचकर्त कृतायुधः ॥१७७॥
विहस्य कार्मुकं यावत्सोऽन्यदाददाति स्म [illegible] । तावल्लवणवीरेण शरेण विरथीकृतः ॥१७८॥
अथान्यं रथमारुह्य काकुत्स्थोऽलघुविक्रमः । अनङ्गलवणं क्रोधात्ससर्प भ्रकुटीं वहन् ॥१७९॥
घर्मार्कदुर्निरीक्ष्याङ्गः समुत्क्षिप्तशरासनः । चमरासुरनाथस्य वज्रीवासौ गतोऽन्तिकम् ॥१८०॥

थे ॥१६५॥ जिसप्रकार भूमिगोचरी राजाओंकी ओरसे भयंकर शब्द आ रहा था उसी तरह विद्याधर राजाओंकी ओरसे भी अत्यन्त महान् शब्द आ रहा था ॥१६६॥ भामण्डल, वीर पवनवेग, बिजलीके समान उज्ज्वल मृगाङ्क तथा महा विद्याधर राजाओंके प्रतिनिधि देवच्छन्द आदि जो कि बड़ी बड़ी सेनाओंसे युक्त तथा महायुद्धमें निपुण थे, लवणाङ्कुशके पक्षमें खड़े हुए ॥१६७-१६८॥

अथानन्तर जब कर्तव्यके ज्ञान और प्रयोगमें अत्यन्त निपुण हनूमान्ने लवणाङ्कुशकी वास्तविक उत्पत्ति सुनी तब वह विद्याधर राजाओंके संघट्टको शिथिल करता हुआ लवणाङ्कुशके पक्ष में आ गया ॥१६९-१७०॥ लाङ्गूल नामक शस्त्रको हाथमें धारण कर रामकी सेनासे निकलते हुए हनूमानने भामण्डलका चित्त हर्षित कर दिया ॥१७१॥ तदनन्तर विमानके शिखरपर आरूढ जानकीको देखकर सब विद्याधर राजा उदासीनताको प्राप्त हो गये ॥१७२॥ और हाथ जोड़ बड़े आदरसे उसे प्रणाम कर अत्यधिक आश्चर्यको धारण करते हुए उसे घेरकर खड़े हो गये ॥१७३॥ सीताने जब दोनों सेनाओंकी मुठभेड़ देखी तब उसके नेत्र भयभीत हरिणीके समान चञ्चल हो गये, उसके शरीरमें रोमाञ्च निकल आये और कँपकँपी छूटने लगी ॥१७४॥

अथानन्तर चञ्चल ध्वजाओंसे युक्त उस विशालसेनाको क्षोभित करते हुए लवणाङ्कुश, जिस ओर राम लक्ष्मण थे उसी ओर बढ़े ॥१७५॥ इसतरह प्रतिपक्ष भावको प्राप्त हुए दोनों कुमार सिंह और गरुड़की ध्वजा धारण करनेवाले राम-लक्ष्मणके सामने आ डटे ॥१७६॥ आते ही के साथ अनङ्गलवणने शस्त्र चलाकर रामदेवकी ध्वजा काट डाली और धनुष छेद दिया ॥१७७॥ हँसकर राम जब तक दूसरा धनुष लेनेके लिए उद्यत हुए तब तक वीर लवणने वेगसे उन्हें रथ रहित कर दिया ॥१७८॥ अथानन्तर प्रबल पराक्रमी राम, भौंह तानते हुए, दूसरे रथ पर सवार हो क्रोधवश अनङ्गलवणकी ओर चले ॥१७९॥ ग्रीष्म कालके सूर्यके समान दुर्निरीक्ष्य नेत्रोंसे युक्त एवं धनुष उठाये हुए राम अनङ्गलवणके समीप उस प्रकार पहुँचे जिस प्रकार कि असुर कुमारोंके इन्द्र चमरेन्द्रके पास इन्द्र

१. संकुलं ब० । २. निर्जिता म० । ३. प्रचलद्ध्वजे म० ।

स चापि जानकीसूनुरुद्धृत्य सशरं धनुः । रणग्राबूर्णकं दातुं पद्मनाभमुपागमत् ॥१८१॥
ततः परमभूद्युद्धं पद्मस्य लवणस्य च । परस्परं समुत्कृत्तशस्त्रसङ्घातकर्कशम् ॥१८२॥
महाहवो यथा जातः पद्मस्य लवणस्य च । अनुक्रमेण तेनैव लक्ष्मणस्याङ्कुशस्य च ॥१८३॥
एवं द्वन्द्वमभूद्युद्धं स्वामिरागमुपेयुषाम् । सामन्तानामपि स्वस्ववीरशोभाभिलाषिणाम् ॥१८४॥
अश्ववृन्दं क्वचित्तुङ्गं तरङ्गकृतरङ्गणम् । निरुद्धं परचक्रेण घनं चक्रे रणाङ्गणम् ॥१८५॥
क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाहं प्रतिपक्षं पुरःस्थितम् । निरीक्ष्य रणकण्डूले निदधे मुखमन्यतः ॥१८६॥
केचिन्नाथं समुत्सृज्य प्रविष्टाः परवाहिनीम् । स्वामिनाम समुच्चार्य निजघ्नुरभिलक्षितम् ॥१८७॥
अनाहतनराः केचिद्दर्पशौण्डा महाभटाः । प्रच्छरदानधाराणां करिणामरितामिताः ॥१८८॥
दन्तशय्यां समाश्रित्य कश्चित्समददन्तिनः । रणनिद्रासुखं लेभे परमं भटसत्तमः ॥१८९॥
कश्चिदभ्यायतोऽश्रस्य भग्नशस्त्रो महाभटः । अदत्त्वा पदवीं प्राणान् ददौ स करताडनम् ॥१९०॥
प्रच्युतं प्रथमाघाताद्भटं कश्चिन्नपान्वितः । भणन्तमपि नो भूयः प्रजहार महामनाः ॥१९१॥
च्युतशस्त्रं क्वचिद्वीक्ष्य भटमच्युतमानसः । शस्त्रं दूरं परित्यज्य बाहुभ्यां योद्धुमुद्यतः ॥१९२॥
दातारोऽपि प्रविख्याता सदा समरवर्त्तिनः । प्राणानपि ददुर्वीरा न पुनः पृष्ठदर्शनम् ॥१९३॥
अस्रकर्दमनिर्मग्नचक्रकृच्छ्रबलद्रथम् । तोत्रप्रसोदनोद्युक्तः स्खलितश्च न सारथिः ॥१९४॥
क्षणदृश्यसमुद्भूतस्यन्दनोन्मुक्तचीत्कृतम् । तुरङ्गजवविक्षिप्तभटसीमन्तिताविलम् ॥१९५॥

पहुँचता है ॥१८०॥ इधर सीतासुत अनङ्गलवण भी बाण सहित धनुष उठाकर रणकी भेंट देनेके लिए रामके समीप गये ॥१८१॥ तदनन्तर राम और लवणके बीच परस्पर कटे हुए शस्त्रोंके समूहसे कठिन परम युद्ध हुआ ॥१८२॥ इधर जिस प्रकार राम और लवणका महायुद्ध हो रहा था उधर उसी प्रकार लक्ष्मण और अङ्कुशका भी महायुद्ध हो रहा था ॥१८३॥ इसी प्रकार स्वामीके रागको प्राप्त तथा अपने अपने वीरोंकी शोभा चाहने वाले सामन्तोंमें भी द्वन्द्व-युद्ध हो रहा था ॥१८४॥ कहीं परचक्रसे रुका और तरङ्गोंके समान चञ्चल ऊँचे घोड़ोंका समूह रणाङ्गणको सघन कर रहा था—वहाँकी भीड़ बढ़ा रहा था ॥१८५॥ कवच टूट गया था ऐसे सामने खड़े शत्रुको देख रणकी खाजसे युक्त योद्धा दूसरी ओर मुख कर रहा था ॥१८६॥ कितने ही योद्धा स्वामीको छोड़ शत्रुकी सेनामें घुस पड़े और अपने स्वामीका नाम ले कर जो भी दिखे उसे मारने लगे ॥१८७॥ तीव्र अहंकारसे भरे कितने ही महायोद्धा, मनुष्योंकी उपेक्षा कर मदस्रावी हाथियोंको शत्रुताको प्राप्त हुए ॥१८८॥ कोई एक उत्तम योद्धा मदोन्मत्त हाथीकी दन्तरूपी शय्या का आश्रय ले रणनिद्राके उत्तम सुखको प्राप्त हुआ अर्थात् हाथीके दांतोंसे घायल हो कर कोई योद्धा मरणको प्राप्त हुआ ॥१८९॥ जिसका शस्त्र टूट गया था ऐसे किसी योद्धाने सामने आते हुए घोड़ेके लिए मार्ग तो नहीं दिया किन्तु हाथ ठोक कर प्राण दे दिये ॥१९०॥ कोई एक योधा प्रथम प्रहारमें ही गिर गया था इसलिए उसके बकने पर भी उदारचेता किसी महायोद्धाने लज्जित हो उस पर पुनः प्रहार नहीं किया ॥१९१॥ जिसका हृदय नहीं टूटा था ऐसा कोई योद्धा, सामनेके वीरको शस्त्र रहित देख, अपना भी शस्त्र फेंककर मात्र भुजाओंसे ही युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ था ॥१९२॥ कितने ही वीरोंने सदाके सुप्रसिद्ध दानी हो कर भी युद्ध क्षेत्रमें आकर अपने प्राण तो दे दिये थे पर पीठके दर्शन किसीको नहीं दिये ॥१९३॥ किसी सारथिका रथ रुधिरकी कीचड़में फँस जानेके कारण बड़ी कठिनाईसे चल रहा था इसलिए वह चाबुकसे ताड़ना देनेमें तत्पर होने पर भी शीघ्रताको प्राप्त नहीं हो रहा था ॥१९४॥ इस प्रकार उन दोनों सेनाओं में वह महायुद्ध हुआ जिसमें कि शब्द करने वाले घोड़ोंके द्वारा खींचे गये रथ चीं चीं शब्द कर

१. रणनिद्रां सुखं म०, ज०, फ० ।

निःक्रामद्रुधिरोद्गारसहितोरुभटस्वनम् । वेगवच्छस्त्रसम्पातजासवह्निकणोत्करम् ॥१९६॥
करिशूत्कृतसम्भूतसीकरासारजालकम् । करिदारितवक्षस्कभटसङ्कटभूतलम् ॥१९७॥
पर्यस्तकरिसङ्घट्टरुद्धमार्गाकुलायतम् । नाममेघपरिश्योतन्मुक्ताफलमहोपलम् ॥१९८॥
मुक्तासारसमाघातविकटं कर्मरङ्गकम् । नागोच्छ्रालितपुन्नागकृतखेचरसङ्गमम् ॥१९९॥
शिरःक्रीतयशोरत्नं मूर्च्छाजनितविश्रमम् । मरणप्राप्तनिर्वाणं बभूव रणमाकुलम् ॥२००॥

आर्याच्छन्दः

जीविततृष्णारहितं साधुस्वनजलधिलुब्धयोधेयम् ।
समरं समरसमाप्तिर्नाम्नाहसि खण्डिते वा खण्डाद्यः ॥२०१॥
भक्तिः स्वामिनि परमा निष्क्रयदानं प्रचण्डरणकण्डूः ।
रवितेजसां भटानां जग्मुः सङ्ग्रामहेतुत्वम् ॥२०२॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते श्रीपद्मपुराणे लवणाङ्कुशसमेतयुद्धाभिधानं द्व्युत्तरशतं पर्व ॥१०२॥

रहे थे, जो घोड़ोंके वेगसे उड़े हुए सामन्त भटोंसे व्याप्त था ॥१९५॥ जिसमें महायोद्धाओंके शब्द निकलते हुए खूनके उद्गारसे सहित थे, जहाँ वेगशाली शस्त्रोंके पड़नेसे अग्निकणोंका समूह उत्पन्न हो रहा था ॥१९६॥ जहाँ हाथियोंके सूसू शब्दके साथ जलके छींटोंका समूह निकल रहा था, जहाँ हाथियोंके द्वारा विदीर्ण वक्षःस्थल वाले योद्धाओंसे भूतल व्याप्त था ॥१९७॥ जहाँ इधर-उधर पड़े हुए हाथियोंसे युद्धका मार्ग रुक जानेके कारण यातायातमें गड़बड़ी हो रही थी। जहाँ हाथी रूपी मेघोंसे मुक्ताफल रूपी महोपलों—बड़े बड़े ओलोंकी वर्षा हो रही थी, ॥१९८॥ जो मोतियोंकी वर्षाके समाघातसे विकट था, नाना प्रकारके कर्मोंकी रङ्गभूमि था, जहाँ हाथियों के द्वारा उखाड़ कर ऊपर उछाले हुए पुंनागके वृक्ष, विद्याधरोंका संगम कर रहे थे ॥१९९॥ जहाँ शिरोंके द्वारा यशरूपी रत्न खरीदा गया था, जहाँ मूर्च्छासे विश्राम प्राप्त होता था, और मरणसे जहाँ निर्वाण मिलता था ॥२००॥ इस प्रकार वीरोंको चाहे बड़ी टुकड़ी हो चाहे छोटी, सबमें वह युद्ध हुआ कि जो जीवनकी तृष्णासे रहित था, जिसमें योधाओंके समूह धन्य धन्य शब्दरूपी समुद्रके लोभी थे तथा जो समरससे सहित था—किसी भी पक्षकी जय पराजयसे रहित था ॥२०१॥ स्वामीमें अटूट भक्ति, जीविका प्राप्तिका बदला चुकाना और रणकी तेज खाज यही सब सूर्यके समान तेजस्वी योद्धाओंके संग्रामके कारणपनेको प्राप्त हुए थे ॥२०२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें लवणांकुश के युद्धका वर्णन करने वाला एक सौ दोवां पर्व समाप्त हुआ ॥१०२॥

त्र्युत्तरशतं पर्व

अतो मगधराजेन्द्र भवाञ्छ्रुतमानसः । निवेदयामि युद्धं ते विशेषकृतवर्णनम् ॥१॥
[1]सम्येष्टा वज्रजङ्घोऽभूदनङ्गलवणाम्बुधेः । मदनाङ्कुशनाथस्य पृथुः प्रथितविक्रमः ॥२॥
सुमित्रातनुजातस्य चन्द्रोदरनृपात्मजः । कृतान्तवक्त्रतिग्मांशुः पद्मनाभमरुत्वतः ॥३॥
वज्रावर्तं समुद्धूय धनुरत्युद्धुरध्वनिः । पद्मनाभः कृतान्तास्यं जगौ गम्भीरभारतिः ॥४॥
कृतान्तवक्त्र वेगेन रथं प्रत्यरि वाहय । मोघीभवत्तनूभारः किमेवमलसायसे ॥५॥
सोऽवोचद्देव वीरस्य वाजिनो जर्जरीकृतान् । अमुना नरवीरेण सुनिशातैः शिलीमुखैः ॥६॥
अमी निद्रामिव प्राप्ता देहविद्राणकारिणीम् । दूर[2] विकारनिर्मुक्ता जाता गलितरंहसः ॥७॥
नैते चाटुशतान्युक्ता[3] न हस्ततलताडिताः । बहुन्यायतमङ्गं तु [4]वपन्तः कुर्वते परम् ॥८॥
[illegible] शोणितधारानिः कुर्वाणा वसुधातलम् । अनुरागनिवोदारं भवते दर्शयन्त्यमी ॥९॥
इमौ च पश्य मे बाहू शरैः कङ्कटभेदिभिः । समुत्फुल्लकदम्बस्रग्गुणसाम्यमुपागतौ ॥१०॥
पद्मोऽवदन्नमाप्येवं कार्मुकं शिथिलायते । ज्ञायते कर्मनिर्मुक्तं चित्रार्पितशरासनम् ॥११॥
एतन्मुशलरत्नं च कार्येण परिवर्जितम् । सूर्यावर्तगुरुभूतं दोर्दण्डमुपविष्यति ॥१२॥
दुर्वारिरिपुनागेन्द्रसूदितां यच्च भूरिशः । गतं[5] लाङ्गलरत्नं मे तदिदं विफलं स्थितम् ॥१३॥
परपक्षपरिक्षोदक्षमाणां पक्षरक्षिणाम्[6] । अमोघानां महास्त्राणामीदृशी वर्तते गतिः[7] ॥१४॥

अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे मगधराजेन्द्र ! सावधान चित्त होओ अब मैं तेरे लिए युद्धका विशेष वर्णन करता हूँ ॥१॥ अलङ्कलवण रूपी सागरका सारथि वज्रजङ्घ था, मदनाङ्कुशका प्रसिद्ध पराक्रमी राजा पृथु, लक्ष्मणका चन्द्रोदरका पुत्र विराधित और राम रूपी इन्द्रका सारथि कृतान्तवक्त्र रूपी सूर्य था ॥२-३॥ विशाल गर्जना करने वाले रामने गम्भीर वाणी द्वारा वज्रावर्त नामक धनुष उठा कर कृतान्तवक्त्र सेनापतिसे कहा ॥४॥ कि हे कृतान्तवक्त्र! शत्रुकी ओर शीघ्र ही रथ बढ़ाओ। इस तरह शरीरके भारको शिथिल करते हुए क्यों अलसा रहे हो ? ॥५॥ यह सुन कृतान्तवक्त्रने कहा कि हे देव ! इस नर वीरके द्वारा अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंसे जर्जर हुए इन घोड़ोंको देखो ॥६॥ वे शरीरको दूर करने वाली निद्राको ही मानो प्राप्त हो रहे हैं अथवा विकारसे निर्मुक्त हो वेग रहित हो रहे हैं ? ॥७॥ अब ये न तो सैकड़ों मीठे शब्द कहने पर और न हथेलियोंसे ताड़ित होने पर शरीरको लम्बा करते हैं—शीघ्रतासे चलते हैं किन्तु अत्यधिक शब्द करते हुए स्वयं ही लम्बा शरीर धारण कर रहे हैं ॥८॥ ये रुधिर की धारासे पृथिवीतलको लाल लाल कर रहे हैं सो मानों आपके लिए अपना महान् अनुराग ही दिखला रहे हों ॥९॥ और इधर देखो, ये मेरी भुजाएं कवचको भेदन करने वाले बाणोंसे फूले हुए कदम्ब पुष्पोंकी मालाके सादृश्यको प्राप्त हो रही हैं ॥१०॥ यह सुन रामने भी कहा कि इसी तरह मेरा भी धनुष शिथिल हो रहा है और चित्रलिखित धनुषकी तरह क्रिया शून्य हो रहा है ॥११॥ यह मुशल रत्न कार्यसे रहित हो गया है और सूर्यावर्त धनुषके कारण भारी हुए भुजदण्ड को पीड़ा पहुँचा रहा है ॥१२॥ जो दुर्वार शत्रु रूपी हाथियोंको वश करनेके लिए अनेकों बार अङ्कुशपनेको प्राप्त हुआ था ऐसा यह मेरा हल रत्न निष्फल हो गया है ॥१३॥ शत्रुपक्षको नष्ट करने में समर्थ एवं अपने पक्षकी रक्षा करने वाले अमोघ महा शस्त्रोंकी भी ऐसी दशा हो रही है

१. सारथिः । २. द्वारं म० । ३. न्युक्त्वा म० । ४. कृपतां म० । ५. भङ्गं म० । ६. दक्षिणां म० । ७. मतिः मः ।

यथापराजिताजस्य वर्त्ततेऽनर्थकाखता । तथा लक्ष्मीधरस्यापि मदनाङ्कुशगोचरे ॥१५॥
विज्ञातज्ञातिसम्बन्धौ सापेक्षौ लवणाङ्कुशौ । युयुधाते ऽनपेक्षौ तु निर्ज्ञातौ रामलक्ष्मणौ ॥१६॥
तथाप्यस्त्रं सदिव्यास्त्रो विषादपरिवर्जितः । प्रासचक्रशरासारं मुमुचे लक्ष्मणोऽङ्कुशे ॥१७॥
वज्रदण्डैः शरैर्वृष्टिं तामपाकिरदङ्कुशः । पद्मनाभविनिर्मुक्तामनङ्गलवणो यथा ॥१८॥
उपवक्षस्ततः पक्षं प्रासेन लवणोऽक्षिणोत् । मदनाङ्कुशवीरश्च लक्ष्मणं नैपुणान्वितः ॥१९॥
लक्ष्मणं घूर्णमानाक्षिहृदयं वीक्ष्य सम्भ्रमी । विराधितो रथं चक्रे प्रतीपं कोशलां प्रति ॥२०॥
ततः संज्ञां परिप्राप्य रथं दृष्ट्वाऽन्यतः स्थितम् । जगाद लक्ष्मणः कोपकपिलीकृतलोचनः ॥२१॥
भो विराधित सद्बुद्धे किमिदं भवता कृतम् । रथं निवर्त्तय क्षिप्रं रणे पृष्ठं न दीयते ॥२२॥
पुच्छिपूरितदेहस्य स्थितस्याभिमुखं रिपोः । शूरस्य मरणं श्लाघ्यं नेदं कर्म जुगुप्सितम् ॥२३॥
सुरमानुषमध्येऽस्मिन् परामध्यापदं श्रिताः । कथं भजन्ति कातर्यं स्थिताः पुरुषमूर्द्धनि ॥२४॥
पुत्रो दशरथस्याहं भ्राता रामस्य लक्ष्मणः । नारायणः क्षितौ ख्यातस्तस्येदं सदृशं कथम् ॥२५॥
त्वरितं गदितेनैवं रथस्तेन निवर्त्तितः । पुनर्युद्धमभूद्घोरं प्रतीपागतसैनिकम् ॥२६॥
लक्ष्मणेन ततः कोपान्तदभ्रमान्तचिकीर्षया । असीधमुद्धृतं चक्रं देवासुरभयङ्करम् ॥२७॥

॥१४॥ इधर लवणाङ्कुशके विषयमें जिस प्रकार रामके शस्त्र निरर्थक हो रहे थे उधर उसी प्रकार मदनाङ्कुशके विषयमें लक्ष्मणके शस्त्र भी निरर्थक ही हो रहे थे ॥१५॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि इधर लवणाङ्कुशको तो राम लक्ष्मणके साथ अपने जाति सम्बन्धका ज्ञान था अतः वे उनकी अपेक्षा रखते हुए युद्ध करते थे—अर्थात् उन्हें घातक चोट न लग जावे इसलिए बचा बचा कर युद्ध करते थे पर उधर राम लक्ष्मणको कुछ ज्ञान नहीं था इसलिए वे निरपेक्ष हो कर युद्ध कर रहे थे ॥१६॥ यद्यपि इस तरह लक्ष्मणके शस्त्र निरर्थक ही हो रहे थे तथापि वे दिव्यास्त्रसे सहित होनेके कारण विषादसे रहित थे। अबकी बार उन्होंने अङ्कुशके ऊपर भाले सामान्य चक्र तथा बाणोंकी जोरदार वर्षा की सो उसने वज्रदण्ड तथा बाणोंके द्वारा उस वर्षाको दूर कर दिया। इसी तरह अनंगलवणने भी रामके द्वारा छोड़ी अस्त्र-वृष्टिको दूर कर दिया था ॥१७-१८॥

तदनन्तर इधर लवणने वक्षःस्थलके समीप रामको प्रास नामा शस्त्रसे घायल किया और उधर चातुर्यसे युक्त वीर मदनांकुशने भी लक्ष्मणके ऊपर प्रहार किया ॥१९॥ उसकी चोटसे जिसके नेत्र और हृदय घूमने लगे थे ऐसे लक्ष्मणको देख विराधितने घबड़ा कर रथ उलटा अयोध्याकी ओर फेर दिया ॥२०॥ तदनन्तर चेतना प्राप्त होने पर जब लक्ष्मणने रथको दूसरी ओर देखा तब लक्ष्मणने क्रोधसे लाल लाल नेत्र करते हुए कहा कि हे बुद्धिमन्! विराधित! तुमने यह क्या किया? शीघ्र ही रथ लौटाओ। क्या तुम नहीं जानते कि युद्धमें पीठ नहीं दी जाती है? ॥२१-२२॥ बाणोंसे जिसका शरीर व्याप्त है ऐसे शूर वीरका शत्रुके सन्मुख खड़े खड़े मर जाना अच्छा है पर यह घृणित कार्य अच्छा नहीं है ॥२३॥ जो मनुष्य, पुरुषोंके मस्तक पर स्थित हैं अर्थात् उनमें प्रधान हैं वे देवों और मनुष्योंके बीच परम आपत्तिको प्राप्त हो कर भी कातरताको कैसे प्राप्त हो सकते हैं? ॥२४॥ मैं दशरथका पुत्र, रामका भाई और पृथिवी पर नारायण नामसे प्रसिद्ध हूँ उसके लिए यह काम कैसे योग्य हो सकता है? ॥२५॥ इस प्रकार कह कर लक्ष्मणने शीघ्र ही पुनः रथ लौटा दिया और पुनः जिसमें सैनिक लौट कर आये थे ऐसा भयंकर युद्ध हुआ ॥२६॥

तदनन्तर कोप वश लक्ष्मणने संग्रामका अन्त करनेकी इच्छासे देवों और असुरोंको भी

१. अपराजिताजस्य कौशल्यापुत्रस्य । यथा पराजिता यस्य ज० । २. तामपाकरदंशुकः म० ।

ज्वालावलीपरीतं तद्दुःप्रेक्ष्यं [1]पूर्वसन्निभम् । नारायणेन दीप्तेन प्रहितं हन्तुमङ्कुशम् ॥२८॥
अङ्कुशस्यान्तिकं गत्वा चक्रं विगलितप्रभम् । । निवृत्य लक्ष्मणस्यैव पुनः पाणितलं गतम् ॥२९॥
क्षिप्तं क्षिप्तं सुकोपेन लक्ष्मणेन त्वरावता । चक्रमन्तिकमस्यैव प्रतियाति पुनः पुनः ॥३०॥
अथाङ्कुशकुमारेण बिभ्रता विभ्रमं परम् । धनुर्दण्डः सुधीरेण भ्रामितो रणशालिना ॥३१॥
तथाभूतं समालोक्य सर्वेषां रणमीयुषाम् । विस्मयव्याप्तचित्तानां क्षेमुर्षीयमजायत ॥३२॥
अयं परमसत्त्वोऽसौ जातश्चक्रधरोऽधुना । भ्रमता यस्य चक्रेण संशये सर्वमाहितम् ॥३३॥
किमिदं स्थिरमाहोस्विद् भ्रमणं समुपाश्रितम् । ननु न स्थिरसेतद्हि श्रूयतेऽस्यातिगर्जितम् ॥३४॥
अलीकं लक्षणैः ख्यातं नूनं कोटिशिलादिभिः । यतस्तदिहसुत्पन्नं चक्रमन्यस्य साम्प्रतम् ॥३५॥
कथं वा मुनिवाक्यानामन्यथात्वं प्रजायते । किं भवन्ति वृथोक्तानि जिनेन्द्रस्यापि शासने ॥३६॥
भ्रमिसञ्चारदण्डोऽयं चक्रमेतदिति स्वनः । समाकुलः समुच्चस्थौ तत्रत्येभ्योऽखिलजन्तुभ्यः ॥३७॥
सावज्ञलक्ष्मणवीरोऽपि परमं सत्त्वमुद्वहन् । जगाद नूनमेतौ तावुदितौ बलचक्रिणौ ॥३८॥
इति व्रीडापरिध्वस्तं निष्क्रियं वीक्ष्य लक्ष्मणम् । समीपं तस्य सिद्धार्थो गत्वा नारदसम्मतः ॥३९॥
जगौ नारायणो देव त्वमेवात्र कुतोऽन्यथा । जिनेन्द्रशासनोक्तं हि निष्कम्पं मन्दरादपि ॥४०॥
जानक्यास्तनयावेतौ कुमारौ लवणाङ्कुशौ । ययोर्गर्भस्थयोरासीदसौ विरहिता वने ॥४१॥
परिज्ञातमितः पश्चादापदं दुःखसागरे । भवानिति न ख्यातामत्र जाना कृतार्थता ॥४२॥

भय उत्पन्न करने वाला अमोघ चक्ररत्न उठाया ॥२७॥ और ज्वालावलीसे व्याप्त, दुष्प्रेक्ष्य एवं सूर्यके सदृश वह चक्ररत्न क्रोधसे देदीप्यमान लक्ष्मणने अंकुशको मारनेके लिए चला दिया ॥२८॥ परन्तु वह चक्र अंकुशके समीप जा कर निष्प्रभ हो गया और लौट कर पुनः लक्ष्मणके ही हस्ततलमें आ गया ॥२९॥ तीव्र क्रोधके कारण वेगसे युक्त लक्ष्मणने कई बार वह चक्र अंकुशके समीप फेंका परन्तु वह बार बार लक्ष्मणके ही समीप लौट जाता था ॥३०॥

अथानन्तर परम विभ्रमको धारण करने वाले रणशाली, सुधीर अंकुश कुमारने अपने धनुष दण्डको उस तरह घुमाया कि उसे वैसा देख रणमें जितने लोग उपस्थित थे उन सबका चित्त आश्चर्यसे व्याप्त हो गया तथा सबके यह बुद्धि उत्पन्न हुई कि अब यह परम शक्तिशाली दूसरा चक्रधर नारायण उत्पन्न हुआ है जिसके कि घूमते हुए चक्रने सबको संशयमें डाल दिया है ॥३१-३३॥ क्या यह चक्र स्थिर है अथवा भ्रमणको प्राप्त है ? अत्यधिक गर्जना सुनाई पड़ रही है ॥३४॥ चक्ररत्न कोटिशिला आदि लक्षणोंसे प्रसिद्ध है सो यह मिथ्या जान पड़ता है क्योंकि इस समय यह चक्र यहाँ दूसरेको ही उत्पन्न हो गया है ॥३५॥ अथवा मुनियोंके वचनोंमें अन्यथापन कैसे हो सकता है ? क्या जिनेन्द्र भगवान्‌के भी शासनमें कही हुई बातें व्यर्थ होती हैं ? ॥३६॥ यद्यपि वह धनुष दण्ड घुमाया गया था तथापि जिनकी बुद्धि मारी गई थी ऐसे लोगों के मुखसे व्याकुलतासे भरा हुआ यही शब्द निकल रहा था कि यह चक्ररत्न है ॥३७॥ उसी समय परम शक्तिको धारण करनेवाले लक्ष्मणने भी कहा कि जान पड़ता है ये दोनों बलभद्र और नारायण उत्पन्न हुए ॥३८॥

अथानन्तर लक्ष्मणको लज्जित और निश्चेष्ट देख नारदकी संमतिसे सिद्धार्थ लक्ष्मणके पास जा कर बोला कि हे देव ! नारायण तो तुम्हीं हो, जिन शासनमें कही बात अन्यथा कैसे हो सकती है ? वह तो मेरु पर्वतसे भी कहीं अधिक निष्कम्प है ॥३९-४०॥ ये दोनों कुमार जानकीके लवणाङ्कुश नामक वे पुत्र हैं जिनके कि गर्भमें रहते हुए यह वनमें छोड़ दी गई थी ॥४१॥ मुझे यह ज्ञात है कि आप सीता-परित्यागके पश्चात् दुःख रूपी सागरमें गिर गये थे अर्थात् अपने

---

१. सूर्यसदृशम् । २. जानकी ।

लवणाङ्कुशमाहात्म्यं ततो ज्ञात्वा समन्ततः । मुमोच कवचं शस्त्रं लक्ष्मणः शोककर्षितः ॥४३॥
श्रुत्वा तमथ वृत्तान्तं विषादभरपीडितः । परित्यक्तधनुर्वर्मा घूर्णमानसिरीक्षणः ॥४४॥
स्यन्दनात्तरसोत्तीर्णो दुःखस्मरणसङ्गतः । पर्यस्तघर्मातले पद्मो मूर्छासंमीलितलोचनः ॥४५॥
चन्दनोदकसिक्तश्च स्पष्टां सम्प्राप्य चेतनाम् । स्नेहाकुलमना यातः पुत्रयोरन्तिकं द्रुतम् ॥४६॥
ततो रथात्समुत्तीर्य तौ युक्तकरकुड्मलौ । तातस्यानमतां पादौ शिरसा स्नेहसङ्गतौ ॥४७॥
ततः पुत्रौ परिष्वज्य स्नेहद्रवितमानसः । विलापमकरोत्पद्मो वाष्पदुर्दिनितानतः ॥४८॥
हा मया तनयौ कष्टं गर्भस्थौ मन्दबुद्धिना । निर्दोषौ भीषणेऽरण्ये विमुक्तौ सह सीतया ॥४९॥
हा वत्सौ विपुलैः पुण्यैर्मयाऽपि कृतसम्भवौ । उदरस्थौ कथं प्राप्तौ व्यसनं परमं वने ॥५०॥
हा सुतौ वज्रजङ्घोऽयं वने चेत्तत्र नो भवेत् । परमेयं वा तदा वक्त्रपूर्णचन्द्रमिमं कुतः ॥५१॥
हा शावकाविमैरस्त्रैरमोघैर्निहतौ न यत् । तत्सुरैः पालितौ यद्वा सुकृतैः परमोदयैः ॥५२॥
हा वत्सौ विशिखैर्विद्धौ[1] पतितौ सङ्गुणान्वितौ । भवन्तौ जानकी वीक्ष्य किं कुर्यादिति वेद्मि न[2] ॥५३॥
निर्वासनकृतं दुःखमितरैरपि दुःसहम् । भवद्भ्यां सा सुपुत्राभ्यां त्यक्ता गुणशालिनी ॥५४॥
भवतोरन्यथाभावं प्रतिपद्य सुजातयोः । नेष्यि जीवेद् ध्रुवं नेति जानकी शोकविह्वला ॥५५॥
लक्ष्मणोऽपि सबाष्पाक्षः सम्भ्रान्तः शोकविह्वलः । स्नेहनिर्भरमालिङ्गद् विनयप्रणतावितौ ॥५६॥

सीता परित्यागका बहुत दुःख अनुभव किया था और आपके दुःखी रहते रत्नोंकी सार्थकता नहीं थी ॥४२॥

तदनन्तर सिद्धार्थसे लवणाङ्कुशका माहात्म्य जान कर शोकसे कृश लक्ष्मणने कवच और शस्त्र छोड़ दिये ॥४३॥ अथानन्तर इस वृत्तान्तको सुन जो विषादके भारसे पीड़ित थे, जिन्होंने धनुष और कवच छोड़ दिये थे, जिनके नेत्र घूम रहे थे, जिन्हें पिछले दुःखका स्मरण हो आया था, जो बड़े वेगसे रथसे उतर पड़े थे तथा मूर्च्छाके कारण जिनके नेत्र निमीलित हो गये थे ऐसे राम पृथिवीतल पर गिर पड़े ॥४४-४५॥ तदनन्तर चन्दन मिश्रित जलके सींचनेसे जब सचेत हुए तब स्नेहसे आकुल हृदय होते हुए शीघ्र ही पुत्रोंके समीप चले ॥४६॥

तदनन्तर स्नेहसे भरे हुए दोनों पुत्रोंने रथसे उतर कर हाथ जोड़ शिरसे पिताके चरणोंको नमस्कार किया ॥४७॥ तत्पश्चात् जिनका हृदय स्नेहसे द्रवीभूत हो गया था और जिनका मुख आंसुओंसे दुर्दिनके समान जान पड़ता था ऐसे राम दोनों पुत्रोंका आलिङ्गन कर विलाप करने लगे ॥४८॥ वे कहने लगे कि हाय पुत्रो ! जब तुम गर्भमें स्थित थे तभी मुझ मन्दबुद्धिने तुम दोनों निर्दोष बालकोंको सीताके साथ भीषण वनमें छोड़ दिया था ॥४९॥ हाय पुत्रो ! बड़े पुण्यके कारण मुझसे जन्म लेकर भी तुम दोनोंने उदरस्थ अवस्थामें वनमें परम दुःख कैसे प्राप्त किया ? ॥५०॥ हाय पुत्रो ! यदि उस समय उस वनमें यह वज्रजङ्घ नहीं होता तो तुम्हारा यह मुखरूपी पूर्ण चन्द्रमा किस प्रकार देख पाता ? ॥५१॥ हाय पुत्रो ! जो तुम इन अमोघ शस्त्रोंसे नहीं हने गये हो सो जान पड़ता है कि देवोंने अथवा परम अभ्युदयसे युक्त पुण्यने तुम्हारी रक्षा की है ॥५२॥ हाय पुत्रो ! बाणोंसे विधे और युद्धभूमिमें पड़े तुम दोनोंको देखकर जानकी क्या करती यह मैं नहीं जानता ॥५३॥ निर्वासन-परित्यागका दुःख तो अन्य मनुष्योंको भी दुःसह होता है फिर आप जैसे सुपुत्रोंके द्वारा छोड़ी गुणशालिनी सीताकी क्या दशा होती ? ॥५४॥ आप दोनों पुत्रोंका मरण जान शोकसे विह्वल सीता निश्चित ही जीवित नहीं रहती ॥५५॥

जिनके नेत्र अश्रुओंसे पूर्ण थे, तथा जो संभ्रान्त हो शोकसे विह्वल हो रहे थे ऐसे लक्ष्मणने

---

१. बद्धौ म० । २. नः म० ।

शत्रुघ्नाद्या महीपालाः श्रुत्वा वृत्तान्तमीदृशम् । तमुद्देशं गताः सर्वे प्राप्ताः प्रीतिमनुत्तमाम् ॥५७॥
ततः समागमो जातः सेनयोरुभयोरपि । स्वामिनोः सङ्गमे जाते सुखविस्मयपूर्णयोः ॥५८॥
सीताऽपि पुत्रमाहात्म्यं दृष्ट्वा सङ्गममेव च । पौण्डरीकं विमानेन प्रतीतहृदयाऽगमत् ॥५९॥
अवतीर्य ततो व्योम्नः सम्भ्रमी जनकात्मजः । स्वसारौ निर्व्रणौ पश्यन्नालिलिङ्ग सबाष्पदृक् ॥६०॥
लाङ्गूलपाणिरत्येवं प्राप्तः प्रीतिपरायणः । आलिङ्गति स्म तौ साधु जातमित्युच्चरन्मुहुः ॥६१॥
श्रीविराधितसुग्रीवावेवं प्राप्तौ सुसङ्गमम् । नृपा विभीषणाद्याश्च सुसम्भाषणतत्पराः ॥६२॥
अथ भूम्योमचाराणां [1]सुराणामिव सङ्गमः । जातः समागमोऽत्यन्तमहानन्दसमुद्भवः ॥६३॥
परिप्राप्य परं कान्तं पद्मः पुत्रसमागमम् । बभार परमां लक्ष्मीं धृतिनिर्भरमानसः ॥६४॥
मेने सुपुत्रलम्भं च भुवनत्रयराज्यतः । सुदूरमधिकं रम्यं भावं कमपि संश्रितः ॥६५॥
विद्याधर्यः समानन्दं ननृतुर्गगनाङ्गणे । भूगोचरस्त्रियो भूमौ समुन्मत्तजगन्निभम् ॥६६॥
परं कृतार्थमात्मानं मेने नारायणस्तथा । जितं च भुवनं कृत्स्नं प्रमोदोत्फुल्ललोचनः ॥६७॥
सगरोऽहमिमौ तौ मे वीरौ भीमभगीरथौ । इति बुद्ध्या [2]कृतौपम्यो दधार परमद्युतिम् ॥६८॥
पद्मः प्रीतिं परां बिभ्रद्वज्रजङ्घमपूजयत् । भामण्डलसमस्त्वं मे सुचेता इति चाब्रवीत् ॥६९॥
ततः पुरैव रम्याऽसौ पुनः स्वर्गसमा कृता । साकेता नगरी भूयः कृता परमसुन्दरी ॥७०॥
रम्या या स्त्रीस्वभावेन कलाज्ञानविशेषतः । आचारमात्रतस्तस्या क्रियते भूषणादरः ॥७१॥

भी विनयसे नम्रीभूत दोनों पुत्रोंका बड़े स्नेहके साथ आलिङ्गन किया ॥५६॥ शत्रुघ्न आदि राजा भी इस वृत्तान्तको सुन उस स्थानपर गये और सभी उत्तम आनन्दको प्राप्त हुए ॥५७॥ तदनन्तर जब दोनों सेनाओंके स्वामी समागम होनेपर सुख और आश्चर्यसे पूर्ण हो गये तब दोनों सेनाओंका परस्पर समागम हुआ ॥५८॥ सीता भी पुत्रोंका माहात्म्य तथा समागम देख निश्चित हृदय हो विमान द्वारा पौण्डरीकपुर वापिस लौट गई ॥५९॥

तदनन्तर संभ्रमसे भरे भामण्डलने आकाशसे उतर कर घाव रहित दोनों भानेजोंको साश्रुदृष्टिसे देखते हुए उनका आलिङ्गन किया ॥६०॥ प्रीति प्रकट करनेमें तत्पर हनूमान्‌ने भी 'बहुत अच्छा हुआ' इस शब्दका बार-बार उच्चारण कर उन दोनोंका आलिङ्गन किया ॥६१॥ विराधित तथा सुग्रीव भी इसी तरह सत्समागमको प्राप्त हुए और विभीषण आदि राजा भी कुमारोंसे वार्तालाप करनेमें तत्पर हुए ॥६२॥

अथानन्तर देवोंके समान भूमिगोचरियों तथा विद्याधरोंका यह समागम अत्यधिक महान् आनन्दका कारण हुआ ॥६३॥ अत्यन्त सुन्दर पुत्रोंका समागम पाकर जिनका हृदय धैर्यसे भर गया था ऐसे रामने उत्कृष्ट लक्ष्मी धारण की ॥६४॥ किसी अनिर्वचनीय भावको प्राप्त हुए श्रीरामने उन सुपुत्रोंके लाभको तीनलोकके राज्यसे भी कहीं अधिक सुन्दर माना ॥६५॥ विद्याधरोंकी स्त्रियाँ बड़े हर्षके साथ आकाशरूपी आँगनमें और भूमिगोचरियोंकी स्त्रियाँ उन्मत्त संसारकी नाईं पृथ्वीपर नृत्य कर रही थीं ॥६६॥ हर्षसे जिनके नेत्र फूल रहे थे ऐसे नारायणने अपने आपको कृतकृत्य माना और समस्त संसारको जीता हुआ समझा ॥६७॥ मैं सगर हूँ और ये दोनों वीर भीम तथा भगीरथ हैं इस प्रकार बुद्धिसे उपमाको करते हुए लक्ष्मण परम दीप्तिको धारण कर रहे थे ॥६८॥ परमप्रीतिको धारण करते हुए रामने वज्रजंघका खूब सम्मान किया और कहा कि सुन्दर हृदयसे युक्त तुम मेरे लिए भामण्डलके समान हो ॥६९॥

तदनन्तर यह अयोध्या नगरी स्वर्गके समान तो पहले ही की जा चुकी थी उस समय और भी अधिक सुन्दर की गई थी ॥७०॥ जो स्त्री कला और ज्ञानकी विशेषतासे स्वभावतः

---

१. सुराणामेव म० । २. कृतौपम्यो म०, ज० ।

ततो गजघटापृष्ठे स्थितं सूर्यसमप्रभम् । आरूढः पुष्पकं रामः सपुत्रो भास्करो यथा ॥७२॥
नारायणोऽपि तत्रैव स्थितो रेजे स्वलङ्कृतः । विद्युत्त्रोऽभ्र महामेघः सुमेरोः शिखरे यथा ॥७३॥
बाह्योद्यानानि चैत्यानि प्राकारं च ध्वजाकुलम् । पश्यन्तो विविधैर्यानैः प्रस्थितास्ते शनैः शनैः ॥७४॥
[1]त्रिप्रसृतद्विपार्श्वीयरथपादातसङ्कुलाः । अभवन्निशिताश्चापध्वजच्छत्रान्धकारिताः ॥७५॥
दरीमन्दिरसंवृन्दोवाटाः परिपूरिताः । महाकुतूहलाकीर्णैर्लवणाङ्कुशदर्शने ॥७६॥
नयनाञ्जलिभिः पातुं सुन्दर्यो लवणाङ्कुशौ । प्रवृत्ताः न पुनः प्रापुस्तृप्तिमुत्तानमानसाः ॥७७॥
तत्रैकगतचित्तानां पश्यन्तीनां सुयोषिताम् । महासङ्कट्टतो भ्रष्टं न ज्ञातं हारकुण्डलम् ॥७८॥
मातर्मनागितो वक्त्रं कुरु मे [2]किल कौतुकम् । आत्मम्भरिरियमेतत्ते कियदस्त्वखकौतुके ॥७९॥
विनतं कुरु मूर्धानं सखि किञ्चित्प्रसादतः । उच्चद्वाऽसि किमित्येवं घस्मिन्नकमितो नय ॥८०॥
किमेव परमप्राणे [3]तुदसि क्षिप्तमानसे । पुरः पश्यसि किं नेमां पीडितां मर्तृदारिकाम् ॥८१॥
मनागवसृता तिष्ठ पतितास्मि गताऽसि किम् । निश्चेतनात्वमेवं त्वं किं कुमारं न वीक्षसे ॥८२॥
ह। मातः कीदृशी योषिदिह पश्यामि सेऽत्र किम् । इमां मे प्रेरिकां कस्मात्त्वं वारयसि दुर्बले ॥८३॥
एतौ तावर्धचन्द्राभललाटौ लवणाङ्कुशौ । यानेतौ रामदेवस्य कुमारौ पार्श्वयोः स्थितौ ॥८४॥
अनङ्गलवणः कोऽत्र कतरो मदनाङ्कुशः । अहो परममेतौ हि तुल्याकाराङ्गभावपि ॥८५॥
महारजतरागार्कं [4]वारवाणं दधाति यः । लवणोऽयं शुकच्छायवल्लोऽलावङ्कुशो भवेत् ॥८६॥

सुन्दर है उसका आभूषण सम्बन्धी आदर पद्धति मात्रसे किया जाता है अर्थात् वह पद्धति मात्रसे आभूषण धारण करती है ॥७१॥ तदनन्तर जो गजघटाके पृष्ठ पर स्थित सूर्यके समान कान्तिसम्पन्न था ऐसे पुष्पक विमान पर राम अपने पुत्रों सहित आरूढ हो सूर्यके समान सुशोभित होने लगे ॥७२॥ जिस प्रकार बिजलीसे सहित महामेघ, सुमेरुके शिखर पर आरूढ होता है उसी प्रकार उत्तम अलंकारोंसे सहित लक्ष्मण भी उसी पुष्पक विमान पर आरूढ हुए ॥७३॥ इस प्रकार वे सब नगरीके बाहरके उद्यान, मन्दिर और ध्वजाओंसे व्याप्त कोटको देखते हुए नानाप्रकारके वाहनोंसे धीरे-धीरे चले ॥७४॥ जिनके तीन स्थानोंसे मद झर रहा था ऐसे हाथी, घोड़ोंके समूह, रथ तथा पैदल सैनिकोंसे व्याप्त नगरके मार्ग, धनुष, ध्वजा और छत्रोंके द्वारा अन्धकार युक्त हो रहे थे ॥७५॥ महलोंके झरोखे, लवणांकुशको देखनेके लिए महा कौतूहलसे युक्त उत्तम स्त्रियोंके समूहसे परिपूर्ण थे ॥७६॥ नयन रूपी अञ्जलियोंके द्वारा लवणाकुशका पान करनेके लिए प्रवृत्त उदारहृदया स्त्रियाँ संतोषको प्राप्त नहीं हो रही थीं ॥७७॥ उन्हीं एकमें जिनका चित्त लग रहा था ऐसी देखने वाली स्त्रियोंके पारस्परिक धक्का धूमीके कारण हार और कुण्डल टूट कर गिर गये थे पर उन्हें पता भी नहीं चल सका था ॥७८॥ हे मातः ! जरा मुख यहाँसे दूर हटा, क्या मुझे कौतुक नहीं है ? हे अखण्डकौतुके ! तेरी यह स्वार्थपरता कितनी है ? ॥७९॥ हे सखि ! प्रसन्न होकर मस्तक कुछ नीचा कर लो, इतनी तनी क्यों खड़ी हो । यहाँसे चोटीको हटा लो ॥८०॥ हे प्राणहीने ! हे क्षिप्तहृदये ! इस तरह दूसरेको क्यों पीड़ित कर रही है ? क्या आगे इस पीड़ित लड़कीको नहीं देख रही है ? ॥८१॥ जरा हटकर खड़ी होओ, मैं गिर पड़ी हूँ, इस तरह तू क्या निश्चेतनताको प्राप्त हो रही है ? अरे कुमारको क्यों नहीं देखती है ? ॥८२॥ हाय मातः ! कैसी स्त्री है ? यदि मैं देखती हूँ तो तुझे इससे क्या प्रयोजन ? हे दुर्बले ! मेरी इस प्रेरणा देनेवालीको क्यों मना करती है ? ॥८३॥ जो ये दो कुमार श्रीरामके दोनों ओर बैठे हैं ये ही अर्धचन्द्रमाके समान ललाटको धारण करनेवाले लवण और अंकुश हैं ॥८४॥ इनमें अतंग लवण कौन है और मदनांकुश कौन है ? अहो ! ये दोनों ही कुमार अत्यन्त सदृश आकारके धारक हैं ॥८५॥ जो यह महारजतके रंगसे रँगे—लालरंगके कवचको

१. त्रिप्रसृतद्विपार्श्वीयं रथपादात- म० । २. किन्तु म० । ३. तुदसि ज० । ४. वरं वाणं म० ।

अहो पुण्यवती सीता यस्याः सुतनयावियौ । अहो धन्यतमा सा स्त्री यानयो रमणी भवेत् ॥८७॥
एवमाद्याः कथास्तत्र मनःश्रोत्रमलिम्लुचाः । प्रवृत्ताः परमस्त्रीणां तदेकगतचक्षुषाम् ॥८८॥
कपोलमतिसङ्घट्टात्कुण्डलोरगदंष्ट्रया । न विवेद तदा काचिद् विक्षतं सदृनासिका ॥८९॥
अन्यनारीभुजोत्पीडात्करस्थाश्रिसकवाटके । कञ्चुकेऽभ्युन्नतो रेजे स्तनांशः सघनेन्दुवत् ॥९०॥
न विवेद च्युता काञ्ची काचिच्छिङ्किणिनीमपि । प्रत्यागमनकाले तु सन्दिता स्खलिताऽभवत् ॥९१॥
धम्मिल्लमकरीतुंडाकोटिस्फाटितमंशुकम् । महत्तरिकया काचिदष्टेष्टपरिभाषिता ॥९२॥
विश्रांशिमनसोऽन्यस्य वपुषि श्लथतां गते[3] । विस्रस्तबाहुलतिकापतनात्कटकोऽपतत् ॥९३॥
कस्याश्चिदन्यवनिताकर्णाभरणसङ्गतः । विश्लिष्टस्रपतितो हारः कुसुमाञ्जलितां गतः ॥९४॥
बभूवुरुद्गतास्तासां निमेषपरिवर्जिताः । गतयोरपि कालाच्चिरयोर्दूरं तथा स्थिताः ॥९५॥

मालिनीवृत्तम्

इति वरभवनाद्रिस्त्रीलतामुक्तपुष्पप्रकरगलितधूलीधूसराकाशदेशाः ।
परमविभवभाजो भूभुजो राघवाद्याः प्रविविशुरतिरम्याः मन्दिरं मङ्गलाढ्यम् ॥९६॥

द्रुतविलम्बितवृत्तम्

अनभिसंहितमीदृशमुत्तमं दयितजंतुसमागममोत्सवम् ।
भजति पुण्यरविप्रतिबोधितप्रवरमानसवारिरुहो जनः ॥९७॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रामलवणांकुशसमागमाभिधानं नाम त्र्युत्तरशतं पर्व ॥१०३॥

धारण करता है वह लवण है और जो तोताके पङ्खके समान हरे रंगके वस्त्र पहने है वह अंकुश है ॥८६॥ अहो ! सीता बड़ी पुण्यवती है जिसके कि ये दोनों उत्तम पुत्र हैं। अहो ! वह स्त्री अत्यन्त धन्य है जो कि इनकी स्त्री होगी ॥८७॥ इस प्रकार उन्हीं एकमें जिनके नेत्र लग रहे थे ऐसी उत्तमोत्तम स्त्रियोंके बीच मन और कानोंको हरण करनेवाली अनेक कथाएँ चल रही थीं ॥८८॥ उनमें जिसका चित्त लग रहा था ऐसी किसी स्त्रीने उस समय अत्यधिक धक्का-धूमीके कारण कुण्डल रूपी साँपकी दाँढ़से विमान-वायल हुए अपने कपोलको नहीं जानती थी ॥८९॥ अन्य स्त्रीकी भुजाके उत्पीड़नसे बन्द चोलीके भीतर उठा हुआ किसीका स्तन मेघ सहित चन्द्रमाके सुशोभित हो रहा था ॥९०॥ किसी एक स्त्रीकी मेखला शब्द करती हुई नीचे गिर गई फिर भी उसे पता नहीं चला किन्तु लौटते समय उसी करधनीसे पैर फँस जानेके कारण वह गिर पड़ी ॥९१॥ किसी स्त्रीकी चोटीमें लगी मकरीकी डाँड़से फटे हुए वस्त्रको देखकर कोई बड़ी बूढ़ी स्त्री किसीसे कुछ कह रही थी ॥९२॥ जिसका मन ढीला हो रहा था ऐसे किसी दूसरे मनुष्यके शरीरके शिथिलताको प्राप्त करने पर उसकी नीचेकी ओर लटकती हुई बाहुरूपी लताके अग्रभागसे कड़ा नीचे गिर गया ॥९३॥ किसी एक स्त्रीके कर्णाभरणमें उलझा हुआ हार टूटकर गिर गया और ऐसा जान पड़ने लगा मानो फूलोंकी अञ्जलि ही बिखेर दी गई हो ॥९४॥ उन दोनों कुमारोंको देखकर किन्हीं स्त्रियोंके नेत्र निर्निमेष हो गये और उनके दूर चले जाने पर भी वैसे ही निर्निमेष रहे आये ॥९५॥ इस प्रकार उत्तमोत्तम भवनरूपी पर्वतों पर विद्यमान स्त्री रूपी लताओंके द्वारा छोड़े हुए फूलोंके समूहसे निकली धूलीसे जिन्होंने आकाशके प्रदेशोंको धूसर-वर्ण कर दिया था तथा जो परम वैभवको प्राप्त थे ऐसे श्रीराम आदि अत्यन्त सुन्दर राजाओंने मङ्गलसे परिपूर्ण महलमें प्रवेश किया ॥९६॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि पुण्यरूपी सूर्यके द्वारा जिसका उत्तम मनरूपी कमल विकसित हुआ है ऐसा मनुष्य इस प्रकारके अचिन्तित तथा उत्तम प्रियजनोंके समागमसे उत्पन्न आनन्दको प्राप्त होता है ॥९७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें राम तथा लवणांकुशके समागमका वर्णन करने वाला एक सौ तीसरा पर्व समाप्त हुआ ॥१०३॥

---

१. सङ्कटा म० । २. तद्गतात्मिकाः म० । ३. गता क० । ४. मङ्गलं म० ।

चतुरुत्तरशतं पर्व

अथ विज्ञापितोऽन्यस्मिन्दिने हलधरो नृपः । मरुत्सुग्रीवविभीषणपुरःसरैः ॥१॥
नाथ प्रसीद विषयेऽन्यस्मिन्जनकदेहजा । दुःखमास्ते समानेतुं तामादेशो विधीयताम् ॥२॥
निःश्वस्य दीर्घमुष्णं च क्षणं किञ्चिद्विचिन्त्य च । ततो जगाद पद्माभो बाष्पस्यामितदिङ्मुखः ॥३॥
अनघं वेद्मि सीतायाः शीलमुत्तमचेतसः । प्राप्तायाः परिवादं तु पश्यामि वदनं कथम् ॥४॥
समस्तं भूतले लोकं प्रत्याययतु जानकी । ततस्तया समं वासो भवेदेव कुतोऽन्यथा ॥५॥
एतस्मिन्भुवने तस्मान्नृपाः जनपदैः समम् । निमंत्र्यंतां परं प्रीत्या सकलाश्च नभश्चराः ॥६॥
समस्तं शपथं तेषां कृत्वा सम्यग्विधानतः । निरघप्रभवं सीता शचीव प्रतिपद्यताम् ॥७॥
एवमस्विति तैरेवं कृतं क्षेपविवर्जितम् । राजानः सर्ववेशेभ्यः सर्वदिग्भ्यः समाहृताः ॥८॥
नानाजनपदा बालवृद्धयोषित्समन्विताः । अयोध्यानगरीं प्राप्ता महाकौतुकसंगताः ॥९॥
असूर्यंपश्यनार्योऽपि यत्राऽऽजग्मुः ससंभ्रमाः । ततः किं प्रकृतिस्थस्य जनस्यान्यस्य भण्यताम् ॥१०॥
वर्षीयांसोऽतिमात्रं ये बहुवृत्तान्तकोविदाः । राष्ट्रप्राग्रहराः ख्यातास्ते चान्ये च समागताः ॥११॥
तदा दिक्षु समस्तासु मार्गत्वं सर्वमेदिनीम् । सीता जनसमूहेन परमक्षुब्धमीयुषा ॥१२॥
तुरगैः स्यन्दनैर्युग्यैः शिबिकाभिर्मतङ्गजैः । अन्यैश्च विविधैर्यानैर्लोकिसम्पत्समागताः ॥१३॥
आगच्छद्भिः खगैरूर्ध्वमधश्च क्षितिगोचरैः । जगाऽजंगमेवेति तदा समुपलक्ष्यते ॥१४॥

अथानन्तर किसी दिन हनूमान् सुग्रीव तथा विभीषण आदि प्रमुख राजाओंने श्री रामसे प्रार्थना की कि हे देव ! प्रसन्न होओ, सीता अन्य देशमें दुःखसे स्थित है इसलिए लानेकी आज्ञा की जाय ॥१-२॥ तब लम्बी और गरम श्वास ले तथा क्षण भर कुछ विचार कर आँसुओंसे दिशाओं को मलिन करते हुए श्रीरामने कहा कि यद्यपि मैं उत्तम हृदयको धारण करने वाली सीताके शील को निर्दोष जानता हूँ तथापि वह यत्नश्च लोकापवादको प्राप्त है अतः उसका मुख किस प्रकार देखूँ ॥३-४॥ पहले सीता पृथिवीतल पर समस्त लोगोंको विश्वास उत्पन्न करावे उसके बाद ही उसके साथ हमारा निवास हो सकता है अन्य प्रकार नहीं ॥५॥ इसलिए इस संसारमें देशवासी लोगोंके साथ समस्त राजा तथा समस्त विद्याधर बड़े प्रेमसे निमन्त्रित किये जावें ॥६॥ उन सब के समक्ष अच्छी तरह शपथ कर सीता इन्द्राणीके समान निष्कलङ्क जन्मको प्राप्त हो ॥७॥ 'एवमस्तु'-'ऐसा ही हो' इस प्रकार कह कर उन्होंने बिना किसी विलम्बके उक्त बात स्वीकृत की; फल स्वरूप नाना देशों और समस्त दिशाओंसे राजा लोग आ गये ॥८॥ बालक वृद्ध तथा स्त्रियोंसे सहित नाना देशोंके लोग महाकौतुकसे युक्त होते हुए अयोध्या नगरीको प्राप्त हुए ॥९॥ सूर्यको नहीं देखने वाली स्त्रियाँ भी जब संभ्रमसे सहित हो वहाँ आई थीं तब साधारण अन्य मनुष्यके विषयमें तो कहा ही क्या जावे ? ॥१०॥ अत्यन्त वृद्ध अनेक लोगोंका हाल जाननेमें निपुण जो राष्ट्रके श्रेष्ठ प्रसिद्ध पुरुष थे वे तथा अन्य सब लोग वहाँ एकत्रित हुए ॥११॥ उस समय परम भीड़को प्राप्त हुए जन समूहने समस्त दिशाओंमें समस्त पृथिवीको मार्ग रूपमें परिणत कर दिया था ॥१२॥ लोगोंके समूह घोड़े, रथ, बैल, पालकी तथा नाना प्रकारके अन्य वाहनोंके द्वारा वहाँ आये थे ॥१३॥ ऊपर विद्याधर आ रहे थे और नीचे भूमिगोचरी, इसलिए उन सबसे उस समय यह जगत् ऐसा जान पड़ता था मानो जंगम ही हो अर्थात् चलने फिरने वाला ही हो ॥१४॥

सुप्रपञ्चाः कृता मंचाः क्रीडापर्वतसुन्दराः । विशालाः परमाः शाला मण्डिता [1]तूर्यमण्डपाः ॥१५॥
अनेकपुरसम्पन्नाः प्रासादाः स्तम्भधारिताः । उदारजालकोपेता रचितोदारमण्डपाः ॥१६॥
तेषु स्त्रियः समं स्त्रीभिः पुरुषाः पुरुषैः समम् । यथायोग्यं स्थिताः सर्वे शपथेक्षणकांक्षिणः ॥१७॥
शयनासनताम्बूलभक्ष्यमाल्यादिनाऽखिलम् । कृतमागन्तुलोकस्य सौस्थित्यं राजमानवैः ॥१८॥
ततो रामसमादेशात्प्रभामण्डलसुन्दरः । लक्ष्मीधरो वायुपुत्रः किष्किन्ध्याधिपतिस्तथा ॥१९॥
चन्द्रोदरसुतो रत्नजटी चेति महानृपाः । पौण्डरीकं पुरं याता बलिनो नभसा क्षणात् ॥२०॥
ते विभ्यस्य बहिः सैन्यमन्तरङ्गजनान्विताः । विविशुर्जानकीस्थानं ज्ञापिताः सानुमोदनाः ॥२१॥
विधाय जयशब्दं च प्रकीर्य कुसुमाञ्जलिम् । पादयोः पाणियुग्माङ्कमस्तकेन प्रणम्य च ॥२२॥
उपविष्टा महीपृष्ठे चारुकुट्टिमभासुरे । क्रमेण सङ्कथां चक्रुः पौरस्त्या विनयानताः ॥२३॥
सम्भाषितो सुगम्भीरा सीताश्रुपिहितेक्षणा । [2]आत्माभिनिन्दनाप्रायं जगाद परिमन्थरम् ॥२४॥
असज्जनवचोदावदग्धान्यङ्गानि साम्प्रतम् । क्षीरोदधिजलेनापि न मे [3]गच्छन्ति निर्वृतिम् ॥२५॥
ततस्ते जगदुर्देवि भगवत्यघुनोत्तमे । शोकं सौम्ये च मुञ्चस्व प्रकृतौ कुरु मानसम् ॥२६॥
अस्मन्मिथ्यापवादे कोऽसौ त्वयि यः परिवादकः । कोऽसौ चालयति क्षोणीं वह्नेः पिबति कः शिखाम् ॥२७॥
सुमेरुमूर्ध्वमुत्क्षेप्तुं साहसं कस्य विद्यते । जिह्वया लेढि मूढात्मा कोऽसौ चन्द्रार्कयोर्वपुः ॥२८॥
गुणशैलमहीभ्रं ते कोऽसौ चालयितुं क्षमः । न स्फुटत्यपवादेन कस्य जिह्वा सहस्रधा ॥२९॥
अस्माभिः किङ्करगणा नियुक्ता भरतावनौ । परिवादरतो देव्या दुष्टात्मा वध्यतामिति ॥३०॥

क्रीड़ा-पर्वतोंके समान लम्बे चौड़े मञ्च तैयार किये गये, उत्तमोत्तम विशाल शालाएँ, कपड़ेके उत्तम तम्बू, तथा जिनकी अनेक गाँव समा जावें ऐसे खम्भों पर खड़े किये गये, बड़े बड़े झरोखोंसे युक्त तथा विशाल मण्डपोंसे सुशोभित महल बनवाये गये ॥१५-१६॥ उन सब स्थानोंमें स्त्रियाँ स्त्रियोंके साथ और पुरुष पुरुषोंके साथ, इस प्रकार शपथ देखनेके इच्छुक सब लोग यथायोग्य ठहर गये ॥१७॥ राजाधिकारी पुरुषोंने आगन्तुक मनुष्योंके लिए शयन आसन ताम्बूल भोजन तथा माला आदिके द्वारा सब प्रकारकी सुविधा पहुँचाई थी ॥१८॥

तदनन्तर रामकी आज्ञासे भामण्डल, विभीषण, हनूमान्, सुग्रीव, विराधित और रत्नजटी आदि बड़े बड़े बलवान् राजा क्षणभरमें आकाश मार्गसे पौण्डरीकपुर गये ॥१९-२०॥ वे सब, सेनाको बाहर ठहरा कर अन्तरङ्ग लोगोंके साथ सूचना देकर तथा अनुमति प्राप्त कर सीताके स्थानमें प्रविष्ट हुए ॥२१॥ प्रवेश करते ही उन्होंने सीतादेवीका जय जयकार किया, पुष्पाञ्जलि बिखेरी, हाथ जोड़ मस्तकसे लगा चरणोंमें प्रणाम किया, सुन्दर मणिमय फर्शसे सुशोभित पृथिवी पर बैठे और सामने बैठ विनयसे नम्रीभूत हो क्रमपूर्वक वार्तालाप किया ॥२२-२३॥ तदनन्तर संभाषण करनेके बाद अत्यन्त गम्भीर सीता, आंसुओंसे नेत्रोंको आच्छादित करती हुई अधिकांश आत्म निन्दा रूप वचन धीरे धीरे बोली ॥२४॥ उसने कहा कि दुर्जनोंके वचन रूपी दावानलसे जले हुए मेरे अङ्ग इस समय क्षीरसागरके जलसे भी शान्तिको प्राप्त नहीं हो रहे हैं ॥२५॥ तब उन्होंने कहा कि हे देवि ! हे भगवति ! हे उत्तमे ! हे सौम्ये ! इस समय शोक छोड़ो और मनको प्रकृतिस्थ करो ॥२६॥ संसारमें ऐसा कौन प्राणी है जो तुम्हारे विषयमें अपवाद करने वाला हो। वह कौन है जो पृथिवी चला सके और अग्निशिखाका पान कर सके ? ॥२७॥ सुमेरु पर्वतको उठानेका किसमें साहस है ? चन्द्रमा और सूर्यके शरीरको कौन मूर्ख जिह्वासे चाटता है ? ॥२८॥ तुम्हारे गुण रूपी पर्वतको चलानेके लिए कौन समर्थ है ? अपवादसे किसकी जिह्वा के हजार टुकड़े नहीं होते ? ॥२९॥ हम लोगोंने भरत क्षेत्रकी भूमिमें किंकरोंके समूह यह कह कर नियुक्त कर रक्खे हैं कि जो भी देवीकी निन्दा करनेमें तत्पर हो उसे मार डाला जाय ॥३०॥

---

१. वस्त्रनिर्मितमण्डपाः । २. आत्मभिनन्दनप्रायं म० । ३. गच्छति म० ।

पृथिव्यां योऽतिनीचोऽपि सीतागुणकथारतः । विनीतस्य गृहे तस्य रत्नवृष्टिर्निपात्यताम् ॥३१॥
अनुरागेण ते धान्यराशिषु क्षेत्रमानवाः । कुर्वन्ति स्थापनां[1] सस्यसम्पत्प्रार्थनतत्पराः ॥३२॥
एतत्ते पुष्पकं देवि प्रेषितं रघुभानुना । प्रसीदारुह्यतामेतदुह्यतां कोशलां पुरीम् ॥३३॥
पद्मः पुरं च देशश्च न शोभन्ते त्वया विना । यथा तरुगृहाकाशं लतादीपेन्दुमूर्त्तिभिः ॥३४॥
सुखं मैथिलि पश्याद्य सद्यः पूर्णेन्दुरुक्प्रभोः । ननु पार्श्वुर्वचः कार्यमवश्यं कोविदे त्वया ॥३५॥
एवमुक्ता प्रधानस्त्रीशतोत्तमपरिच्छदा । महद्धर्या पुष्पकारूढा तरसा नभसा ययौ ॥३६॥
अथायोध्यां पुरीं दृष्ट्वा भास्करं चास्तसङ्गतम्[2] । सा महेन्द्रोदयोद्याने निम्ये चिन्तातुरा निशाम् ॥३७॥
यदुद्यानं सपद्मायास्तदासीत्सुमनोहरम् । तदेतत्स्मृतपूर्वायास्तस्या जातमसाम्प्रतम् ॥३८॥
सीताशुद्ध्यनुरागाद्वा पद्मबन्धावथोदिते । प्रसाधितेऽखिले लोके किरणैः किङ्करैरिव ॥३९॥
शपथादिव दुर्वादे भीते ध्वान्ते खमं गते । समीपं पद्मनाभस्य प्रस्थिता जनकात्मजा ॥४०॥
सा करेणुसमारूढा दोर्मनस्याहतप्रभा । भास्करालोकदृष्टेव सानुगाऽऽसीन्महौषधिः ॥४१॥
तथाप्युत्तमनारीभिराकृता भद्रभावना । रेजे सा नितरां तन्वी ताराभिर्वा विधोः कला ॥४२॥
ततः परिषदं पृथ्वीं गम्भीरां विनयस्थिताम् । वन्द्यमानेक्ष्यमाना च धीरा रामाऽविशत् ॥४३॥
विषादी विस्मयी हर्षी संक्षोभी जनसागरः । वर्द्धस्व जय नन्देति चकाराभेदितं स्वनम् ॥४४॥

और जो पृथिवीमें अत्यन्त नीच होने पर भी सीताकी गुण कथामें तत्पर हो उस विनीतके घरमें रत्नवर्षा की जाय ॥३१॥ हे देवि ! धान्य रूपी सम्पत्तिकी इच्छा करने वाले खेतके पुरुष अर्थात् कृषक लोग अनुराग वश धान्यकी राशियोंमें तुम्हारी स्थापना करते हैं ? भावार्थ—लोगोंका विश्वास है कि धान्य राशिमें सीताकी स्थापना करनेसे अधिक धान्य उत्पन्न होता है ॥३२॥ हे देवि ! रामचन्द्र जी ने तुम्हारे लिए यह पुष्पक विमान भेजा है सो प्रसन्न हो कर इस पर चढ़ा जाय और अयोध्याकी ओर चला जाय ॥३३॥ जिस प्रकार लताके बिना वृक्ष, दीपके बिना घर और चन्द्रमाके बिना आकाश सुशोभित नहीं होते उसी प्रकार तुम्हारे बिना राम, अयोध्या नगरी और देश सुशोभित नहीं होते ॥३४॥ हे मैथिलि ! आज शीघ्र ही स्वामीका पूर्णचन्द्रके समान मुख देखो । हे कोविदे ! तुम्हें पति वचन अवश्य स्वीकृत करना चाहिए ॥३५॥ इस प्रकार कहने पर सैकड़ों उत्तम स्त्रियोंके परिकरके साथ सीता पुष्पक विमान पर आरूढ हो गई और बड़े वैभव के साथ वेगसे आकाशमार्गसे चली ॥३६॥ अथानन्तर जब उसे अयोध्यानगरी दिखी उसी समय सूर्य अस्त हो गया अतः उसने चिन्तातुर हो महेन्द्रोदय नामक उद्यानमें रात्रि व्यतीत की ॥३७॥ रामके साथ होने पर जो उद्यान पहले उसके लिए अत्यन्त मनोहर जान पड़ता था वही उद्यान पिछली घटना स्मृत होने पर उसके लिए अयोग्य जान पड़ता था ॥३८॥

अथानन्तर सीताकी शुद्धिके अनुरागसे ही मानों जब सूर्य उदित हो चुका, किङ्करोंके समान किरणोंसे जब समस्त संसार अलंकृत हो गया और शपथसे दुर्वादके समान जब अन्धकार भयभीत हो क्षयको प्राप्त हो गया तब सीता रामके समीप चली ॥३९-४०॥ मनकी अशान्तिसे जिसकी प्रभा नष्ट हो गई थी ऐसी हस्तिनीपर चढ़ी सीता, सूर्यके प्रकाशसे आलोकित, पर्वतके शिखर पर स्थित महौषधिके समान यद्यपि निष्प्रभ थी तथापि उत्तम स्त्रियोंसे घिरी, उच्च भावनावाली दुबली पतली सीता, ताराओंसे घिरी चन्द्रमाकी कलाके समान अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥४१-४२॥

तदनन्तर जिसे सब लोग वन्दना कर रहे थे तथा जिसकी सब स्तुति कर रहे थे ऐसी धीर वीरा सीताने विशाल, गम्भीर एवं विनयसे स्थित सभामें प्रवेश किया ॥४३॥ विषाद, विस्मय,

---

१. प्रार्थनां म० । २. शस्य—म० । ३. चास्तसङ्गतं म० ।

अहोरूपमहो धैर्यमहो सत्त्वमहो द्युतिः । अहो महानुभावत्वमहो गाम्भीर्यमुत्तमम् ॥४५॥
अहोऽस्या वीरपत्नत्वं समागमनसूचितम् । श्रीमज्जनकराजस्य सुतायाः सितकर्मणः ॥४६॥
एवमुद्घुषितास्फानां नराणां सहयोषिताम् । वदनेभ्यो विनिश्चेरुर्वाचो व्याप्तदिगन्तराः ॥४७॥
गगने खेचरो लोको धरण्यां धरणीचरः । उदात्तकौतुकस्तस्थौ निमेषरहितेक्षणः ॥४८॥
प्रजातसम्मदाः केचित्पुरुषाः प्रमदास्तथा । अभीक्ष्णाञ्चक्रिरे रामं सङ्कल्पूनमिवामराः ॥४९॥
पार्श्वस्थौ वीक्ष्य रामस्य केचिच्च लवणाङ्कुशौ । जगदुः सदृशावस्य सुकुमाराविमाविति ॥५०॥
लक्ष्मणं केचिदैक्षन्त प्रतिपक्षक्षयक्षमम् । शत्रुघ्नसुन्दरं केचिदेके जनकनन्दनम् ॥५१॥
ख्यातं केचिद्बभूमन्तं त्रिकूटाधिरुहि ४ ३ । अन्ये तिरोहितं केचिद्विभीषणमरक्षसम् ॥५२॥
केचिज्जनकराजस्य सुतां विस्मितचेतसः । वसतिः सा हि नेत्राणां क्षणमात्रान्यचारिणाम् ॥५३॥
उपसृत्य ततो रामं दृष्ट्वा व्याकुलमानसा । वियोगसागरस्यान्तं प्राप्तं जानकयमन्यत ॥५४॥
प्राप्तायाः पद्मभार्यायाः लक्ष्मणोऽर्घं ददौ ततः । प्रणामं चक्रिरे भूपाः सम्भ्रान्ता रामपार्श्वगाः ॥५५॥
ततोऽभिमुखमायन्तीं वीक्ष्य तां रभसान्विताम् । राघवोऽक्षोभ्यसत्त्वोऽपि सकम्पहृदयोऽभवत् ॥५६॥
अचिन्तयच्च मुक्ताऽपि वने व्यालसमाकुले । मम लोचनचौरेयं कथं भूयः समागता ॥५७॥
अहो विगतलज्जेयं महासत्त्वसमन्विता । यैवं निरस्यमानापि विरागं न प्रपद्यते ॥५८॥
ततस्तद्विहितं ज्ञात्वा वितानीभूतमानसा । विरहो न मयोत्तीर्ण इति साऽभूद्विषादिनी ॥५९॥

हर्ष और क्षोभसे सहित मनुष्योंका अपार सागर बार-बार यह शब्द कह रहा था कि वृद्धिको प्राप्त होओ, जयवन्त होओ और समृद्धिसे सम्पन्न होओ ॥४४॥ अहो ! उज्ज्वल कार्य करनेवाली श्रीमान् राजा जनककी पुत्री सीताका रूप धन्य है ? धैर्य धन्य है, पराक्रम धन्य है, उसकी कान्ति धन्य है, महानुभावता धन्य है, और समागमसे सूचित होनेवाली इसकी निष्कलंकता धन्य है ॥४५-४६॥ इस प्रकार उल्लसित शरीरोंको धारण करनेवाले मनुष्यों और स्त्रियोंके मुखोंसे दिगन्तरालको व्याप्त करनेवाले शब्द निकल रहे थे ॥४७॥ आकाशमें विद्याधर और पृथिवीमें भूमिगोचरी मनुष्य, अत्यधिक कौतुक और निमेष रहित नेत्रोंसे युक्त थे ॥४८॥ अत्यधिक हर्षसे सम्पन्न कितनी ही स्त्रियाँ तथा कितने ही मनुष्य रामको टकटकी लगाये हुए उस प्रकार देख रहे थे जिस प्रकार कि देव इन्द्रको देखते हैं ॥४९॥ कितने ही लोग रामके समीपमें स्थित लवण और अंकुशको देखकर यह कह रहे थे कि अहो ! ये दोनों सुकुमार कुमार इनके ही सदृश हैं ॥५०॥ कितने ही लोग शत्रुका क्षय करनेमें समर्थ लक्ष्मणको, कितने ही शत्रुघ्नको, कितने ही भामण्डलको, कितने ही हनूमान्‌को, कितने ही विभीषणको, कितने ही विराधितको और कितने ही सुग्रीवको देख रहे थे ॥५१-५२॥ कितने ही आश्चर्यसे चकित होते हुए जनकसुता को देख रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि वह क्षण मात्रमें अन्यत्र विचरण करनेवाले नेत्रोंकी मानो वसति ही थी ॥५३॥ तदनन्तर जिसका चित्त अत्यन्त आकुल हो रहा था ऐसी सीताके पास जाकर तथा रामको देख कर माना था कि अब वियोगरूपी सागरका अन्त आ गया है ॥५४॥ आई हुई सीताके लिए लक्ष्मणने अर्घ दिया तथा रामके समीप बैठे हुए राजाओंने हड़बड़ा कर उसे प्रणाम किया ॥५५॥

तदनन्तर वेगसे सामने आती हुई सीताको देख कर यद्यपि राम अक्षोभ्य पराक्रमके धारक थे तथापि उनका हृदय काँपने लगा ॥५६॥ वे विचार करने लगे कि मैंने तो इसे हिंसक जन्तुओंसे भरे वनमें छोड़ दिया था फिर मेरे नेत्रोंको चुरानेवाली यह यहाँ कैसे आ गई ? ॥५७॥ अहो ! यह बड़ी निर्लज्ज है तथा महाशक्तिसे सम्पन्न है जो इस तरह निकाली जाने पर भी विरागको प्राप्त नहीं होती ॥५८॥ तदनन्तर रामकी चेष्टा देख, शून्यहृदया सीता यह सोचकर विषाद करने

१. वन्द्यमानेष्यमाना च म० ।

विरहोदन्वतः कूलं मे मनःपात्रमागतम् । नूनमेष्यति विध्वंसमिति चिन्ताकुलाऽभवत् ॥६०॥
किङ्कर्तव्यविमूढा सा पादाङ्गुष्ठेन लीलया । विलिखन्ती क्षितिं तस्थौ बलदेवसमीपगा ॥६१॥
अग्रतोऽवस्थिता तस्य विरेजे जनकात्मजा । पुरन्दरपुरे[1] जाता लक्ष्मीरिव शरीरिणी ॥६२॥
ततोऽभ्यधायि रामेण सीते तिष्ठसि किं पुरः । अपसर्प न शक्तोऽस्मि भवतोमभिवीक्षितुम् ॥६३॥
मध्याह्ने दीधितिं सौरीमाशीविषमणेः शिखाम् । वरमुत्सहते चक्षुरीक्षितुं भवतीं तु नो ॥६४॥
दशास्यभवने मासान् बहूनन्तः पुरावृता । स्थिता यदाहृता भूयः समस्तं किं ममोचितम् ॥६५॥
ततो जगाद वैदेही निष्ठुरो नास्ति त्वत्समः[2] । तिरस्करोषि मां येन सुविद्यां प्राकृतो यथा[3] ॥६६॥
दोहलव्याजमा नीत्वा वनं कुटिलमानसः[4] । गर्भाधानसमेतां मे त्यक्तुं किं सदृशं तव ॥६७॥
असमाधिमृतिं प्राप्ता तत्र स्यामहकं यदि । ततः किं ते भवेत् सिद्धं मम दुर्गतिदायिनः ॥६८॥
अतिस्वल्पोऽपि सद्भावो मय्यस्ति यदि वा कृपा । क्षान्त्यार्याणां ततः किं न नीत्वा वसतिमुत्सृता ॥६९॥
अनाथानामबन्धूनां दरिद्राणां सुदुःखिनाम् । जिनशासनमेतद्धि शरणं परमं मतम् ॥७०॥
एवं गतेऽपि पद्माभ प्रसीद किमिहोरुणा । कथितेन प्रयच्छाऽऽज्ञामित्युक्त्वा दुःखिताऽरुदत् ॥७१॥
रामो जगाद जानामि देवि शीलं तवानघम् । मदनुव्रततां चोच्चैर्भावस्य च विशुद्धताम् ॥७२॥
परिवादमिमं किन्तु प्राप्ताऽसि प्रकटं परम् । स्वभावकुटिलस्वान्तामेतां प्रत्याययं प्रजाम् ॥७३॥

लगी कि मैंने विरह रूपी सागर अभी पार नहीं कर पाया है ॥५९॥ विरह रूपी सागरके तटको प्राप्त हुआ मेरा मनरूपी जहाज निश्चित ही विध्वंसको प्राप्त हो जायगा—नष्ट हो जायगा ऐसी चिन्तासे वह व्याकुल हो उठी ॥६०॥ 'क्या करना चाहिए' इस विषयका विचार करनेमें मूढ़ सीता, पैरके अंगूठेसे भूमिको कुरेदती हुई रामके समीप खड़ी थी ॥६१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि उस समय रामके आगे खड़ी सीता ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो शरीरधारिणी स्वर्गकी लक्ष्मी ही हो अथवा इन्द्रके आगे मूर्तिमती लक्ष्मी ही खड़ी हो ॥६२॥

तदनन्तर रामने कहा कि सीते ! सामने क्यों खड़ी है ? दूर हट, मैं तुम्हें देखनेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥६३॥ मेरे नेत्र मध्याह्नके समय सूर्यकी किरणको अथवा आशीविष-सर्पके मणिकी शिखाको देखनेके लिए अच्छी तरह उत्साहित हैं परन्तु तुझे देखनेके लिए नहीं ॥६४॥ तू रावणके भवनमें कई मास तक उसके अन्तःपुरसे आवृत्त होकर रही फिर भी मैं तुम्हें ले आया सो यह सब क्या मेरे लिए उचित था ? ॥६५॥

तदनन्तर सीताने कहा कि तुम्हारे समान निष्ठुर कोई दूसरा नहीं है । जिस प्रकार एक साधारण मनुष्य उत्तम विद्याका तिरस्कार करता है उसी प्रकार तुम मेरा तिरस्कार कर रहे हो ॥६६॥ हे वक्रहृदय ! दोहलाके बहाने वनमें ले जाकर मुझ गर्भिणीको छोड़ना क्या तुम्हें उचित था ? ॥६७॥ यदि मैं वहाँ कुमरणको प्राप्त होती तो इससे तुम्हारा क्या प्रयोजन सिद्ध होता ? केवल मेरी ही दुर्गति होती ॥६८॥ यदि मेरे ऊपर आपका थोड़ा भी सद्भाव होता अथवा थोड़ी भी कृपा होती तो मुझे शान्तिपूर्वक आर्यिकाओंकी वसतिके पास ले जाकर क्यों नहीं छोड़ा ॥६९॥ यथार्थमें अनाथ, अबन्धु, दरिद्र तथा अत्यन्त दुःखी मनुष्योंका यह जिनशासन ही परम शरण है ॥७०॥ हे राम ! यहाँ अधिक कहनेसे क्या ? इस दशामें भी आप प्रसन्न हों और मुझे आज्ञा दें । इस प्रकार कह कर वह अत्यन्त दुःखी हो रोने लगी ॥७१॥

तदनन्तर रामने कहा कि हे देवि ! मैं तुम्हारे निर्दोष शील, पातिव्रत्यधर्म एवं अभिप्रायकी उत्कृष्ट विशुद्धताको जानता हूँ किन्तु यतश्च तुम लोगोंके द्वारा इस प्रकट भारी अपवादको प्राप्त हुई हो अतः स्वभावसे ही कुटिलचित्तको धारण करनेवाली इस प्रजाको विश्वास दिलाओ । इसकी

---

१. पुरो म० । २. ते समः ब० । ३. साधारणो जनः । ४. कुटिलमानसः म०, ज० ।

एवमस्त्विति वैदेही जगौ सम्मदिनी ततः । दिव्यैः पञ्चभिरप्येषा लोकं प्रत्याययाम्यहम् ॥७४॥
विषाणां विषमं नाथ कालकूटं पिबाम्यहम् । आशीविषोऽपि यं घ्राणा सद्यो गच्छति भस्मताम् ॥७५॥
आरोहामि तुलां वह्निज्वालां रौद्रां विशामि वा । यो वा मनसभिप्रेतः समयस्तं करोम्यहम् ॥७६॥
क्षणं विचिन्त्य पद्माभो जगौ वह्निं विशेत्यसौ । जगौ सीता विशाम्मीति महासम्मदधारिणी ॥७७॥
प्रसिषेधोऽमया मृत्युरित्यदीर्यत[1] नारदः । शोकोत्पीडैरपीड्यन्त श्रीशैलाद्या नरेश्वराः ॥७८॥
पावकं प्रविविक्षन्तीं परिमिश्चित्य मातरम् । चक्रतुस्तद्गतिं कुल्लावात्मनोर्लवणाङ्कुशौ ॥७९॥
महाप्रभावसम्पन्नः प्रहर्षं धारयंस्ततः । सिद्धार्थक्षुल्लकोऽवोचद्दृष्ट्वा भुजमुच्छ्रितम् ॥८०॥
न सुरैरपि वैदेह्याः शीलव्रतमशेषतः । शक्यं कीर्त्तयितुं कैव कथा क्षुद्रशरीरिणाम् ॥८१॥
पातालं प्रविशेन्मेरुः शुष्येयुर्मकरालयाः । न पद्मचलनं किञ्चित्सीतासाध्वीव्रतस्य तु ॥८२॥
इन्दुरर्कत्वमायाच्छेदर्कः शीतांशुतां व्रजेत् । न तु सीतापरीवादः कथञ्चित्सत्यतां व्रजेत् ॥८३॥
विद्याबलसमृद्धेन मया पञ्चसु मेरुषु । वन्दना जिनचन्द्राणां कृता शाश्वतधामसु ॥८४॥
सा मे विफलतां[2] यायात्पद्मनाभ सुदुर्लभा । विपश्चिदिदं सीतायाः शीलस्यास्ति मनागपि ॥८५॥
भूरिवर्षसहस्राणि सचेलेन मया कृतम् । तपस्तेन[3] शपे नाहं यथेमौ तव पुत्रकौ ॥८६॥
भीमज्वालावलीभङ्गं सर्वभङ्ग[4] सुनिष्ठुरम्' । मा विशेदनलं सीता तस्मात्पद्म विचक्षण ॥८७॥

शङ्का दूर करो ॥७२-७३॥ तब सीताने हर्षयुक्त हो 'एवमस्तु' कहते हुए कहा कि मैं पाँचों ही दिव्य शपथोंसे लोगोंको विश्वास दिलाती हूँ ॥७४॥ उसने कहा कि हे नाथ ! मैं उस कालकूटको पी सकती हूँ जो विषोंमें सबसे अधिक विषम है तथा जिसे सूंघकर आशीविष सर्प भी तत्काल भस्मपनेको प्राप्त हो जाता है ॥७५॥ मैं तुलापर चढ़ सकती हूँ अथवा भयङ्कर अग्निकी ज्वालामें प्रवेश कर सकती हूँ अथवा जो भी शपथ आपको अभीष्ट हो उसे कर सकती हूँ ॥७६॥ क्षणभर विचारकर रामने कहा कि अच्छा अग्निमें प्रवेश करो। इसके उत्तरमें सीताने बड़ी प्रसन्नतासे कहा कि हाँ, प्रवेश करती हूँ ॥७७॥ 'इसने मृत्यु स्वीकृत कर ली' यह विचारकर नारद विदीर्ण हो गया और हनूमान् आदि राजा शोकके भारसे पीड़ित हो उठे ॥७८॥ 'माता अग्निमें प्रवेश करना चाहती है' यह निश्चयकर लवण और अङ्कुशने बुद्धिमें अपनी भी उसी गतिका विचार कर लिया अर्थात् हम दोनों भी अग्निमें प्रवेश करेंगे ऐसा उन्होंने मनमें निश्चय कर लिया ॥७९॥ तदनन्तर महाप्रभावसे सम्पन्न एवं बहुत भारी हर्षको धारण करनेवाले सिद्धार्थ क्षुल्लकने भुजा ऊपर उठाकर कहा कि सीताके शीलव्रतका देव भी पूर्णरूपसे वर्णन नहीं कर सकते फिर क्षुद्र प्राणियोंकी तो कथा ही क्या है ? ॥८०-८१॥ हे राम ! मेरु पातालमें प्रवेश कर सकता है और समुद्र सूख सकते हैं परन्तु सीताके शीलव्रतमें कुछ चञ्चलता उत्पन्न नहीं की जा सकती ॥८२॥ चन्द्रमा सूर्यपनेको प्राप्त हो सकता है और सूर्य चन्द्रपनेको प्राप्त कर सकता है परन्तु सीताका अपवाद किसी भी तरह सत्यताको प्राप्त नहीं हो सकता ॥८२-८३॥ मैं विद्याबलसे समृद्ध हूँ और और मैंने पाँचों मेरु पर्वतोंपर स्थित शाश्वत-अकृत्रिम चैत्यालयोंमें जो जिन-प्रतिमाएँ हैं उनकी वन्दना की है। हे राम ! मैं जोर देकर कहता हूँ कि यदि सीताके शीलमें थोड़ी भी कमी है तो मेरी यह दुर्लभ वन्दना निष्फलताको प्राप्त हो जाय ॥८४-८५॥ मैंने वस्त्रखण्ड धारण कर कई हजार वर्ष तक तप किया सो यदि ये तुम्हारे पुत्र न हों तो मैं उस तपकी शपथ करता हूँ अर्थात् तपकी शपथपूर्वक कहता हूँ कि ये तुम्हारे ही पुत्र हैं ॥८६॥ इसलिए हे बुद्धिमन् राम ! जिसमें भयङ्कर ज्वालावली रूप लहरें उठ रही हैं तथा जो सबका संहार करनेवाली है ऐसी अग्निमें

---

१. रित्युदीर्यत म० । २. विपुलतां म० । ३. ततस्तेन म० । ४. ज्वालावती· म० ।

व्योम्नि वैद्याधरो लोको धरण्यां धरणीचरः । जगाद साधु साधूक्तमिति मुक्तमहास्वनः ॥८८॥
प्रसीद देव पद्माभ प्रसीद व्रज सौम्यताम् । नाथ मा राम मा राम कार्षीः पावकमानसम् ॥८९॥
सती सीता सती सीता न सम्भाव्यमिहान्यथा । महापुरुषपत्नीनां जायते न विकारिता ॥९०॥
इति बाष्पभराद्गाढो गद्गदा जनसागरात् । संक्षुब्धाद्भिनिरचैरुर्व्याप्तसर्वदिगन्तराः ॥९१॥
महाकोलाहलस्वानैः समं सर्वांसुधारिणाम् । अत्यन्तशोकिनां स्थूला निपेतुर्वाष्पबिन्दवः ॥९२॥
पद्मो जगाद यद्येवं भवन्तः करुणापराः । ततः पुरा परिवादमभाषिष्यं कुतो जनाः ॥९३॥
एवमाज्ञापयंस्तस्मिन्नपेक्षश्च किङ्करान् । आलम्ब्य परमं सत्त्वं विशुद्धिन्यस्तमानसः ॥९४॥
पुरुषौ द्वावधस्तादूर्ध्वाक् अन्यतामत्र मेदिनी । शतानि त्रीणि हस्तानां चतुष्कोणा प्रमाणतः ॥९५॥
विधायैवंविधां वापीं सुशुष्कैः परिपूर्यताम् । इन्धनैः परमस्थूलैः कृष्णागरुकचन्दनैः ॥९६॥
प्रचण्डमहलज्वालो ज्वाल्यतामाशुशुक्षणिः । साक्षान्मृत्युरिवोपात्तविग्रहो निर्विलम्बितम् ॥९७॥
यथाऽऽज्ञापयमित्युक्ता महाकृद्दालपाणिभिः । किङ्करैस्तत्कृतं सर्वं कृतान्तानुगसेवकैः ॥९८॥
यस्यामेवाथ वेलायां संवादः पद्मसीतयोः । क्रियते किङ्करैर्मीमप्रज्वालनं च दारुणम् ॥९९॥
तदनन्तरं शर्वर्यां ध्यानमुत्तममीयुषः । महेन्द्रोदयमेदिन्यां सर्वभूषणयोगिनः ॥१००॥
उपसर्गो महानासीज्जनितः पूर्ववैरतः । अत्यन्तरौद्रराक्षस्या विद्युद्वक्त्राभिधानया ॥१०१॥
अपृच्छदथ सम्बन्धं श्रेणिको मुनिपुङ्गवम् । ततो गणधरोऽवोचत्तस्मै श्रूयतामिति ॥१०२॥

सीता प्रवेश नहीं करे ॥८७॥ क्षुल्लककी बात सुन आकाशमें विद्याधर और पृथ्वीपर भूमिगोचरी लोग 'अच्छा कहा-अच्छा कहा' इस प्रकारकी जोरदार आवाज लगाते हुए बोले कि 'हे देव प्रसन्न होओ, प्रसन्न होओ, सौम्यताको प्राप्त होओ, हे नाथ ! हे राम ! हे राम ! मनमें अग्निका विचार मत करो ॥८८-८९॥ सीता सती है, सीता सती है, इस विषयमें अन्यथा सम्भाषन नहीं हो सकती । महापुरुषोंकी पत्नियोंमें विकार नहीं होता ॥९०॥ इस प्रकार समस्त दिशाओंके अन्तरालको व्याप्त करनेवाले, तथा अश्रुओंके भारसे गद्गद अवस्थाको प्राप्त हुए शब्द, संक्षुभित जनसागरसे निकलकर सब ओर फैल रहे थे ॥९१॥ तीव्र शोकसे युक्त समस्त प्राणियोंके आंसुओंकी बड़ी-बड़ी बूँदें महान् कलकल शब्दोंके साथ-साथ निकलकर नीचे पड़ रही थीं ॥९२॥

तदनन्तर रामने कहा कि हे मानवो ! यदि इस समय आप लोग इस तरह दया प्रकट करनेमें तत्पर हैं तो पहले आप लोगोंने अपवाद क्यों कहा था ? ॥९३॥ इस प्रकार लोगोंके कथनकी अपेक्षा न कर जिन्होंने मात्र विशुद्धतामें मन लगाया था ऐसे रामने परम दृढ़ताका आलम्बनकर किङ्करोंको आज्ञा दी कि ॥९४॥ यहाँ शीघ्र ही दो पुरुष गहरी और तीन सौ हाथ चौड़ी चौकोन पृथ्वी प्रमाणके अनुसार खोदो और ऐसी वापी बनाकर उसे कालागुरु तथा चन्दनके सूखे और बड़े मोटे ईन्धन परिपूर्ण करो । तदनन्तर उसमें बिना किसी विलम्बके ऐसी अग्नि प्रज्वलित करो कि जिसमें अत्यन्त तीक्ष्ण ज्वालाएँ निकल रही हों तथा जो शरीरधारी साक्षात् मृत्युके समान जान पड़ती हो ॥९५-९७॥ तदनन्तर बड़े-बड़े कुदाले जिनके हाथमें थे तथा जो यमराजके सेवकोंसे भी कहीं अधिक थे ऐसे सेवकोंने 'जो आज्ञा' कहकर रामकी आज्ञानुसार सब काम कर दिया ॥९८॥

अथानन्तर जिस समय राम और सीताका पूर्वोक्त संवाद हुआ था तथा किङ्कर लोग जिस समय अग्नि प्रज्वालनका भयङ्कर कार्य कर रहे थे उसी समयसे लगी हुई रात्रिमें सर्वभूषण मुनिराज महेन्द्रोदय उद्यानकी भूमिमें उत्तम ध्यान कर रहे थे सो पूर्व वैरके कारण विद्युद्वक्त्रा नामकी राक्षसीने उनपर महान् उपसर्ग किया ॥९९-१०१॥ तदनन्तर राजा श्रेणिकने गौतमस्वामीसे

१. गद्गदाजन- ग० । २. एष श्लोकः म० पुस्तके नास्ति ।

विजयार्द्धोत्तरे वास्ये [1]सर्वपूर्वत्र शोभिते । गुञ्जाभिधाननगरे राजाऽभूत् सिंहविक्रमः ॥१०३॥
तस्य श्रीरित्यभूज्जायां पुत्रः सकलभूषणः । अष्टौ शतानि तत्कान्ता अग्र्या किरणमण्डला ॥१०४॥
कदाचित्सा सपत्नीभिरुच्यमाना सुमानसा । चित्रे मैथुनिकं चक्रे देवा हेमशिखाभिधम् ॥१०५॥
तं राजा सहसा वीक्ष्य परमं कोपमागतः । पत्नीभिश्चोच्यमानश्च प्रसादं पुनरागमत् ॥१०६॥
सम्मदेनान्यदा सुप्ता साध्वी किरणमण्डला । मुहुर्हेमशिखाभिख्यां प्रमादात्समुपाददे ॥१०७॥
श्रुत्वा तां सुतरां क्रुद्धो राजा वैराग्यमागतः । प्राव्राजीत्साऽपि मृत्वाऽभूद्विद्युद्वक्त्रेति राक्षसी ॥१०८॥
तस्य सा भ्रमतो भिक्षां कृत्वा त्रुटितबन्धनम् । मत्तगजं परिक्रुद्धा प्रत्यूहैरितराऽनवत् ॥१०९॥
गृहदाहं रजोवर्षमश्वोष्ट्रादिमुखागमम् । कण्टकावृतमार्गत्वं तथा चक्रे दुराहिता ॥११०॥
क्षित्वाऽन्यदा गृहे सन्धिमेतं प्रतिमया स्थितम् । स्थापयत्यानने तस्य स चौर इति गृह्यसे ॥१११॥
मुच्यते च परामृश्य परमार्थपराङ्मुखैः । महता जनवृन्देन स्वनता बद्धमण्डलः ॥११२॥
कृतभिक्षस्य निर्यातः कदाचित्तिसृदा स्त्रियः । हारं गलेऽस्य बध्नाति स चौर इति कथ्यते ॥११३॥
अतिक्रूरमनाः पापा एवमादीनुपद्रवान् । चक्रे सा तस्य निर्वेदरहिता सततं परान् ॥११४॥
ततोऽस्य प्रतिमास्थस्य महेन्द्रोदयनोगचरे । उपसर्गं परं चक्रे पूर्ववैरानुबन्धतः ॥११५॥
वेतालैः करिभिः सिंहैर्व्याघ्रैरुग्रैर्महोरगैः । नानारूपैर्गुणैर्दिव्यनारीदर्शनलोभनैः ॥११६॥

इनके पूर्व वैरका सम्बन्ध पूछा सो गणधर भगवान् बोले कि हे नरेन्द्र ! सुन ॥१०२॥ विजयार्धपर्वतकी उत्तर श्रेणीमें सर्वत्र सुशोभित गुंजा नामक नगरमें एक सिंहविक्रमनामक राजा रहता था । उसकी रानीका नाम श्री था और उन दोनोंका सकलभूषण नामका पुत्र था । सकलभूषणकी आठ सौ स्त्रियाँ थीं उनमें किरणमण्डला प्रधान स्त्री थी ॥१०३–१०४॥ शुद्धहृदयको धारण करनेवाली किरणमण्डलाने किसी समय सपत्नियोंके कहनेपर चित्रपटमें अपने मामाके पुत्र हेमशिख का रूप लिखा उसे देख राजा सहसा परम कोपको प्राप्त हुआ परन्तु अन्य पत्नियोंके कहनेपर वह पुनः प्रसन्नताको प्राप्त हो गया ॥१०५–१०६॥ पतिव्रता किरणमण्डला किसी समय हर्ष सहित अपने पतिके साथ सोई हुई थी सो सोते समय प्रमादके कारण उसने बार-बार हेमशिखका नाम उच्चारण किया जिसे सुनकर राजा अत्यन्त कुपित हुआ और कुपित होकर उसने वैराग्य धारण कर लिया । उधर किरणमण्डला भी मरकर विद्युद्वक्त्रा नामकी राक्षसी हुई ॥१०७–१०८॥ जब सकलभूषणमुनि भिक्षाके लिए भ्रमण करते थे तब वह दुष्ट राक्षसी कुपित हो अन्तराय करनेमें तत्पर हो जाती थी । कभी वह मत्त हाथीका बन्धन तोड़ देती थी, कभी घरमें आग लगा देती थी, कभी रजकी वर्षा करने लगती थी, कभी घोड़ा अथवा बैल बनकर उनके सामने आ जाती थी और कभी मार्गको कण्टकोंसे आवृत कर देती थी ॥१०९–११०॥ कभी प्रतिमायोगसे विराजमान मुनिराजको, घरमें सन्धि फोड़कर उसके आगे लाकर रख देती थी और यह कहकर पकड़ लेती थी कि यही चोर है तब हल्ला करते हुए लोगोंकी भीड़ उन्हें घेर लेती थी, कुछ परमार्थसे विमुख लोग उनका अनादर कर उसके बाद उन्हें छोड़ देते थे ॥१११–११२॥ कभी आहार कर जब बाहर निकलने लगते तब आहार देनेवाली स्त्रीका हार इनके गलेमें बाँध देती और कहने लगती कि यह चोर है ॥११३॥ इस प्रकार अत्यन्त क्रूर हृदयको धारण करनेवाली वह पापिनी राक्षसी निर्वेदसे रहित हो सदा एकसे बढ़कर उपसर्ग करती रहती थी ॥११४॥ तदनन्तर यही मुनिराज महेन्द्रोदयनामा उद्यानमें प्रतिमा योगसे विराजमान थे सो उस राक्षसीने पूर्व वैरके संस्कारसे इनपर परम उपसर्ग किया ॥११५॥ वह कभी वेताल बनकर कभी हाथी सिंह व्याघ्र तथा भयङ्कर सर्प होकर और कभी नानाप्रकारके गुणोंसे

१. सर्वत्र भी० टि० ।

उपसर्गैर्यदाऽमीभिः स्खलितं नास्य मानसम् । तदा तस्य मुनीन्द्रस्य ज्ञानं केवलमुद्गतम् ॥११७॥
ततः केवलसम्भूतिमहिमाहितमानसाः । सुरासुराः समायाताः सुराशीरपुरःसराः ॥११८॥
स्तम्भेरभैर्मृगाधीशैः स्थूरीवृष्टैः कमेलकैः । बालेयैरुरुभिर्व्याघ्रैः शरभैः सृमरैः खगैः ॥११९॥
विमानैः स्यन्दनैर्युग्यैर्यानैरन्यैश्च चारुभिः । ज्योतिःपथं समासाद्य महासम्पत्समन्विताः ॥१२०॥
पवनोद्धूतसरकेशवस्त्रकेतनपंक्तयः । मौलिकुण्डलहारांशुसमुद्योतितपुष्कराः ॥१२१॥
अप्सरोगणसङ्कीर्णाः साकेताभिमुखाः सुराः । अवतेरुरलं हृष्टाः पश्यन्तो धरणीतलम् ॥१२२॥
अवलोक्य ततः सीतावृत्तान्तं मेघकेतनः । शक्रं जगाद देवेन्द्र पश्येदमपि दुष्करम् ॥१२३॥
सुराणामपि दुःस्पर्शो महाभयसमुद्भवः । सीताया उपसर्गोऽयं कथं नाथ प्रवर्तते ॥१२४॥
श्राविकायाः सुशीलायाः परमस्वच्छचेतसः । दुरीक्ष्यः कथमेतस्या आयतेऽयमुपप्लवः ॥१२५॥
आखण्डलस्ततोऽवोचदहं सकलभूषणम् । त्वरितं वन्दितुं यामि कर्त्तव्यं त्वमिहाश्रय ॥१२६॥
अभिधायेति देवेन्द्रो महेन्द्रोदयसम्मुखम् । ययावेषोऽपि मेघाङ्कः सीतास्थानमुपागमत् ॥१२७॥
तत्र व्योमतलस्थोऽसौ विमानशिखरे स्थितः । सुमेरुशिखरच्छाये समुद्योतयते दिशाम् ॥१२८॥

आर्यागीतिच्छन्दः

रविरिव विराजमानः सर्वजनमनोहरं स पश्यति रामम् ॥१२९॥

इत्यार्ष श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सकलभूषणदेवागमनाभिधानं नाम चतुरुत्तरशतं पर्व ॥१०४॥

दिव्य स्त्रियोंका रूप दिखाकर उपसर्ग किया ॥११६॥ परन्तु जब इन उपसर्गोंसे इनका मन विचलित नहीं हुआ तब इन मुनिराजको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ॥११७॥

तदनन्तर केवलज्ञान उत्पन्न होनेकी महिमामें जिनका मन लग रहा था ऐसे इन्द्रष्ट आदि समस्त सुर असुर वहाँ आये ॥११८॥ हाथी, सिंह, घोड़े, ऊँट, गधे, बड़े-बड़े व्याघ्र, अष्टापद, सामर, पक्षी, विमान, रथ, बैल, तथा अन्य अन्य सुन्दर वाहनोंसे आकाशको आच्छादित कर सब लोग अयोध्याकी ओर आये। जिनके केश, वस्त्र तथा पताकाओंकी पङ्क्तियाँ वायुसे हिल रही थीं तथा जिनके मुकुट, कुण्डल और हारकी किरणोंसे आकाश प्रकाशमान हो रहा था ॥११८-१२१॥ जो अप्सराओंके समूहसे व्याप्त थे तथा जो अत्यन्त हर्षित हो पृथिवीतलको अच्छी तरह देख रहे थे ऐसे देव लोग नीचे उतरे ॥१२२॥ तदनन्तर सीताका वृत्तान्त देख मेघकेतु नामक देवने अपने इन्द्रसे कहा कि हे देवेन्द्र ! जरा इस अत्यन्त कठिन कार्यको भी देखो ॥१२३॥ हे नाथ ! देवोंको भी जिसका स्पर्श करना कठिन है तथा जो महाभयका कारण है ऐसा यह सीताका उपसर्ग क्यों हो रहा है ? सुशील एवं अत्यन्त स्वच्छ हृदयको धारण करनेवाली इस श्राविकाके ऊपर यह दुरीक्ष्य उपद्रव क्यों हो रहा है ? ॥१२४-१२५॥ तदनन्तर इन्द्रने कहा कि मैं सकलभूषण केवलीकी वन्दना करनेके लिए शीघ्रतासे जा रहा हूँ इसलिए यहाँ जो कुछ करना योग्य हो वह तुम करो ॥१२६॥ इतना कहकर इन्द्र महेन्द्रोदय उद्यानके सन्मुख चला और यह मेघकेतु देव सीताके स्थान पर पहुँचा ॥१२७॥ वहाँ यह आकाशतलमें सुमेरुके शिखरके समान कान्तिसे युक्त दिशाओंको प्रकाशित करने लगा। विमानके शिखरपर स्थित हुआ ॥१२८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि उस विमानकी शिखरपर सूर्यके समान सुशोभित होनेवाले उस मेघकेतु देवने वहींसे सर्वजन मनोहारी रामको देखा ॥१२९॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित श्री पद्मपुराणमें सकलभूषणके केवलज्ञानोत्सवमें देवोंके आगमनका वर्णन करनेवाला एकसौचौथा पर्व समाप्त हुआ ॥१०४॥

१. 'समुद्योतयते दिशाम्' इति पाठः न पुस्तके एव विद्यते । अन्येषु पुस्तकेषु पाठो नास्त्येव । २. १२९ तमश्लोकस्य पूर्वार्द्धः पुस्तकचतुष्टयेऽपि नास्ति ।

पञ्चोत्तरशतं पर्व

तां निरीक्ष्य ततो वापीं तृणकाष्ठप्रपूरिताम् । समाकुलमना ध्यायति काकुत्स्थचन्द्रमाः ॥१॥
कुतः पुनरिमां कान्तां पश्येयं गुणतूणिकाम् । महालावण्यसम्पन्नां शुतिशीलपरावृताम् ॥२॥
विकासिमालतीमालासुकुमारशरीरिका । नूनं यास्यति विध्वंसं स्पृष्टमात्रेव वह्निना ॥३॥
अभविष्यदियं नो चेत्कुले जनकभूभृतः । परिवादमिमं नाप्स्यन्मरणं च हुताशने ॥४॥
उपलप्स्ये कुतः सौख्यं क्षणमप्यनया विना । वरं वासोऽनयाऽरण्ये न विनः दिवि राजते ॥५॥
महानिश्चिन्तचित्तेयमपि मर्तुं व्यवस्थिता । प्रविशन्ती कृताऽस्याभिर्न रोद्धुं लोकस्य लज्यते ॥६॥
उन्मुक्तसुमहाशब्दः सिद्धार्थः क्षुल्लकोऽप्ययम् । तूष्णीं स्थितः किमु व्याजं करोम्येतन्निवर्त्तते ॥७॥
अथ वा येन यादृशं मरणं समुपार्जितम् । नियमं स तदाऽऽप्नोति कस्तद्वारयितुं क्षमः ॥८॥
तदाऽपह्रियमाणाया ऊर्ध्वं लवणतोयधेः । मत्तस्खलत्क्रियाया नेच्छत्येषेति कोपिना[1] ॥९॥
खड्गविपलिना किं नालुलितमस्याः शिरोऽसिना । येनाऽयमपरः प्रातः संशयोऽयन्तदुस्तरः ॥१०॥
वरं हि मरणं श्लाघ्यं न वियोगः सुदुःसहः । श्रुतिस्मृतिहरोऽसौ हि परमः कोऽपि निन्दितः ॥११॥
यावज्जीवं हि विरहस्तापं यच्छति चेतसः । मृतेति श्रिवसे स्वैरं कथाकांक्षा च तद्गता ॥१२॥
इति चिन्तातुरे तस्मिन् वाप्यां प्रज्वालयतेऽनलः । समुत्पन्नोरुकारुण्या रुरुदुर्नरयोषितः ॥१३॥

अथानन्तर तृण और काष्ठसे भरी उस वापीको देख श्रीराम व्याकुलचित्त होते हुए इस प्रकार विचार करने लगे कि ॥१॥ गुणोंकी पुञ्ज, महा सौन्दर्यसे सम्पन्न एवं कान्ति और शीलसे युक्त इस कान्ताको अब पुनः कैसे देख सकूँगा ॥२॥ खिली हुई मालतीकी मालाके समान सुकुमार शरीरको धारण करनेवाली यह कान्ता निश्चित ही अग्निके द्वारा स्पृष्ट होते ही नाशको प्राप्त हो जायगी ॥३॥ यदि यह राजा जनकके कुलमें उत्पन्न नहीं हुई होती तो इस लोकापवादको तथा अग्निमें मरणको प्राप्त नहीं होती ॥४॥ इसके बिना मैं क्षण भरके लिए भी और किससे सुख प्राप्त कर सकूँगा ? इसके साथ वनमें निवास करना भी अच्छा है पर इसके बिना स्वर्गमें रहना भी शोभा नहीं देता ॥५॥ यह भी महा निश्चिन्तहृदया है कि मरनेके लिए उद्यत हो गई। अब दृढ़ताके साथ अग्निमें प्रवेश करनेवाली है सो इसे कैसे रोका जाय ? लोगोंके समक्ष रोकनेमें लज्जा उत्पन्न हो रही है ॥६॥ उस समय बड़े जोरसे हल्ला करनेवाला यह सिद्धार्थ नामक क्षुल्लक भी चुप बैठा है, अतः इसे रोकनेमें क्या बहाना करूँ ? ॥७॥ अथवा जिसने जिस प्रकारके मरणका अर्जन किया है नियमसे वह उसी मरणको प्राप्त होता है उसे रोकनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥८॥ उस समय जब कि यह पतिव्रता लवण समुद्रके ऊपर हरकर ले जाई जा रही थी तब 'यह मुझे नहीं चाहती है' इस भावसे कुपित हो रावणने खड्गसे इसका शिर क्यों नहीं काट डाला ? जिससे कि यह इस अत्यन्त दुस्तर संशयको प्राप्त हुई है ॥९-१०॥ मर जाना अच्छा है परन्तु दुःसह वियोग अच्छा नहीं है क्योंकि श्रुति तथा स्मृतिको हरण करनेवाला वियोग कोई अत्यन्त निन्दित पदार्थ है ॥११॥ विरह तो जीवन-पर्यन्तके लिए चित्तका संपर्क प्रदान करता रहता है और 'मर गई' यह सुन उस सम्बन्धी कथा और इच्छा तत्काल छूट जाती है ॥१२॥ इस प्रकार रामके चिन्तातुर होनेपर वापीमें अग्नि जलाई जाने लगी। दयावती स्त्रियाँ रो उठीं ॥१३॥

---

१. कोपिता म० ।

ततोऽन्धकारितं व्योम धूमेन घनमुद्यता । अभूदकालसम्प्राप्तप्रावृड्मेघैरिवावृतम् ॥१४॥
जङ्गमैकमिवोद्भूतं जगत्कोकिलसङ्कुलैः । कोकिलसङ्कुलैः क्वचिदहो कपोतसङ्कुलम् ॥१५॥
अशक्नुवन्निव द्रष्टुमुपसर्गं तथाविधम् । दयार्द्रहृदयः शीघ्रं भानुः क्वापि तिरोदधे ॥१६॥
[1]प्रज्वालश्चबलनश्चोग्रः सर्वाशासु महाज्वः । गव्यूतिपरिमाणाभिर्ज्वालाभिर्विकरालितः ॥१७॥
किं निरन्तरतीव्रांशुसहस्रैरुद्गतं नभः । [2]पातालकिंशुकारण्यैः सहसा किं समुत्थितैः ॥१८॥
आहोस्विद्गगनं प्राप्तमुत्पातमयसन्ध्यया । हाटकात्मकमेकं तु प्रारब्धं भवितुं जगत् ॥१९॥
सौदामिनीमयं किन्तु सञ्जातं भुवनं तदा । जिगीषया परो जातः किमु जङ्गममन्दरः ॥२०॥
ततः सीता समुत्थाय नितान्तस्थिरमानसा । [3]कायोत्सर्गं क्षणं कृत्वा स्तुत्वा भावार्पितान् जिनान् ॥२१॥
ऋषभादीन्समस्तांश्च धर्मतीर्थस्य देशकान् । सिद्धान् समस्तसाधूंश्च सुव्रतं च जिनेश्वरम् ॥२२॥
यस्य संहृष्यते तीर्थं तदा सम्मदधारिभिः । परमैश्वर्यसंयुक्तैस्त्रिदशासुरमानवैः ॥२३॥
सर्वप्राणिहिताऽऽचार्यचरणौ च मनःस्थितौ । प्रणम्योदारगम्भीरा विनीता जानकी जगौ ॥२४॥
कर्मणा मनसा वाचा रामं मुक्त्वा परं नरम् । समुद्वहामि न स्वप्नेऽप्यन्यं सत्यमिदं मम ॥२५॥
यद्येतदनृतं वह्निः तदा मामेव पावकः । भस्मसाद्भावमप्राप्तामपि प्रापयतु क्षणात् ॥२६॥
अथ पद्माक्षरं नान्यं मनसाऽपि वहाम्यहम् । ततोऽयं ज्वलनो दीप्तोऽस्मान् मां शुद्धिसमन्विताम् ॥२७॥

तदनन्तर अत्यधिक उठते हुए धूमसे आकाश अन्धकारयुक्त हो गया और ऐसा जान पड़ने लगा मानो असमयमें प्राप्त हुए वर्षाकालीन मेघोंसे ही व्याप्त हो गया हो ॥१४॥ उस समय जगत् ऐसा जान पड़ने लगा मानो भ्रमरोंसे युक्त, कोकिलाओंसे युक्त अथवा कबूतरोंसे युक्त दूसरा ही जगत् उत्पन्न हुआ है ॥१५॥ सूर्य आच्छादित हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो दयासे आर्द्रहृदय होनेके कारण उस प्रकारके उपसर्गको देखनेके लिए असमर्थ होता हुआ शीघ्र ही कहीं जा छिपा हो ॥१६॥ उस बापीमें ऐसी भयङ्कर अग्नि प्रज्वलित हुई कि समस्त दिशाओंमें जिसका महावेग फैल रहा था और जो कोशों प्रमाण लम्बी-लम्बी ज्वालाओंसे विकराल थी ॥१७॥ उस समय उस अग्निको देख इस प्रकार संशय उत्पन्न होता था कि क्या एक साथ उदित हुए हजारों सूर्योंसे आकाश आच्छादित हो रहा है ? अथवा पाताललोकके पलाश वृक्षोंका समूह क्या सहसा ऊपर उठ आया है ? अथवा आकाशको क्या प्रलयकालीन सन्ध्याने घेर लिया है ? अथवा यह समस्त जगत् एक सुवर्णरूप होनेकी तैयारी कर रहा है अथवा समस्त संसार बिजलीमय हो रहा है अथवा जीतनेकी इच्छासे क्या दूसरा चलता-फिरता मेरु ही उत्पन्न हुआ है ? ॥१८-२०॥

तदनन्तर जिसका मन अत्यन्त दृढ़ था ऐसी सीताने उठकर क्षणभरके लिए कायोत्सर्ग किया, भावनासे प्राप्त जिनेन्द्र भगवान्‌की स्तुति की, ऋषभादि तीर्थंकरोंको नमस्कार किया, सिद्ध परमेष्ठी, समस्त साधु और मुनिसुव्रत जिनेन्द्र, जिनके कि तीर्थकी उस समय हर्षके धारक एवं परम ऐश्वर्यसे युक्त देव असुर और मनुष्य सदा सेवा करते हैं और मनमें स्थित सर्वप्राणि हितैषी आचार्यके चरणयुगल इन सबको नमस्कार कर उदात्त गाम्भीर्य और अत्यधिक विनयसे युक्त सीताने कहा ॥२१-२४॥ कि मैंने रामको छोड़कर किसी अन्य मनुष्यको स्वप्नमें भी मन-वचन और कायसे धारण नहीं किया है यह मेरा सत्य है ॥२५॥ यदि मैं यह मिथ्या कह रही हूँ तो यह अग्नि दूर रहने पर भी मुझे क्षण भरमें भस्मभावको प्राप्त करा दे—राखका ढेर बना दे ॥२६॥ और यदि मैंने रामके सिवाय किसी अन्य मनुष्यको मनसे भी धारण नहीं किया है तो विशुद्धिसे

---

१. प्रज्वाल-म० । २. पातालं किंशुकां गौघाः न० । ३. किन्तु म० । ४. कायोत्सर्गं म० ।

[1]मिथ्यादृशंनिनीं पापां क्षुद्रिकां व्यभिचारिणीम् । ज्वलनो मां दहत्येव सतीं सतस्थितां तु मा ॥२८॥
अभिधायेति सा देवि प्रविवेशानलं च तम् । जातं च [2]स्फटिकस्वच्छं सलिलं सुखशीतलम् ॥२९॥
भित्त्वेव सहसा क्षोणीं तरसा पयसोद्गता । परमं पूरिता वापी रत्नभृङ्गकुलाऽभवत् ॥३०॥
[3]नोल्मुकानि न काष्ठानि नाङ्गारा[4] न तृणादिकम् । आलोक्यते तदा तत्र [5]वृत्तवापिकसूचनम् ॥३१॥
पर्यन्तबद्धफेनौघवलया वेगशालिनः । आवर्तास्तत्र संवृत्ता गम्भीरा भीमदर्शनाः ॥३२॥
भवन्मृदङ्गनिस्वानात् क्वचित् गुलुगुलायते । भुंभुंदुभुम्भायतेऽन्यत्र क्वचित् पटपटायते ॥३३॥
क्वचिन्मुञ्चति हुङ्कारान्धूंकारान्क्वचिदायसान् । क्वचिद्दिमिदिमिस्वानान् जुगुद्धुद्धुदिति क्वचित् ॥३४॥
क्वचिच्चकलकलारावांश्छसछसदिति क्वचित् । टुट्टु[6] घण्टासमुद्घुष्टमिति क्वचिदितीति च ॥३५॥
एवमादिपरिक्षुब्धसागराकारनिःस्वना । क्षणाद्रोधःस्थितं वापी लग्ना प्लावयितुं जनम् ॥३६॥
जानुमात्रं क्षणादम्भः श्रोणिदघ्नमभूत्क्षणात् । पुनर्निमेषमात्रेण स्तनद्वयसमं गतम् ॥३७॥
नेति पौरुषतो यावत्तावत्त्रस्ता महीचराः । किङ्कर्तव्यातुरा जाताः खेचरा विषदाश्रिताः ॥३८॥
कण्ठस्पर्शि ततो जाते वारिण्युरुजवान्विते । विह्वलाः सङ्गता मञ्चास्तेऽपि मज्जत्कतां गताः ॥३९॥
केचित् [7]प्लवितुमारब्धा जातेंभसि शिरोतिगे । वस्त्रक्रियकसम्बन्धसन्दिग्धोर्ध्वैकबाहुगाः[8] ॥४०॥
त्रायस्व देवि त्रायस्व मान्ये लक्ष्मि सरस्वति । महाकृतयाणि धर्माख्ये सर्वप्राणिहितैषिणि ॥४१॥

सहित मुझे यह अग्नि नहीं जलावे ॥२७॥ यदि मैं मिथ्यादृष्टि, पापिनी, क्षुद्रा और व्यभिचारिणी होऊँगी तो यह अग्नि मुझे जला देगी और यदि सदाचारमें स्थित सती होऊँगी तो नहीं जला सकेगी ॥२८॥ इतना कहकर उस देवीने उस अग्निमें प्रवेश किया परन्तु आश्चर्यकी बात कि वह अग्नि स्फटिकके समान स्वच्छ, सुखदायी तथा शीतल जल हो गई ॥२९॥ मानो सहसा पृथिवीको फोड़ कर वेगसे उठते हुए जलसे वह वापिका लबालब भर गई तथा चञ्चल तरङ्गोंसे व्याप्त हो गई ॥३०॥ वहाँ अग्नि थी इस बातकी सूचना देने वाले न लूगर, न काष्ठ, न अंगार और न तृणादिक कुछ भी दिखाई देते थे ॥३१॥ उस वापिकामें ऐसी भयंकर भँवरें उठने लगीं जिनके कि चारों ओर फेनोंके समूह चक्कर लगा रहे थे जो अत्यधिक वेगसे सुशोभित थीं तथा अत्यन्त गंभीर थीं ॥३२॥ कहीं मृदङ्ग जैसा शब्द होनेसे 'गुलु गुल' शब्द होने लगा, कहीं 'भुं भुंदुभुंभ'की ध्वनि उठने लगी और कहीं 'पट पट'की आवाज आने लगी ॥३३॥ उस वापीमें कहीं हुँकार, कहीं लम्बी-चौड़ी धूंकार, कहीं दिमिदिमि, कहीं जुगुद् जुगुद्, कहीं कल कल ध्वनि, कहीं शसद-भसद्, और कहीं चांदीके घण्टा जैसी आवाज आ रही थी ॥३४-३५॥ इस प्रकार जिसमें क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रके समान शब्द उठ रहा था ऐसी वह वापी क्षणभरमें तटपर स्थित मनुष्योंको डुबाने लगी ॥३६॥ वह जल क्षणभरमें घुटनोंके बराबर, फिर नितम्बके बराबर, फिर निमेष मात्रमें स्तनोंके बराबर हो गया ॥३७॥ वह जल पुरुष प्रमाण नहीं हो पाया कि उसके पूर्व ही पृथिवी पर चलने वाले लोग भयभीत हो उठे तथा क्या करना चाहिए इस विचारसे दुखी विद्याधर आकाशमें जा पहुँचे ॥३८॥ तदनन्तर तीव्र वेगसे युक्त जल जब कण्ठका स्पर्श करने लगा तब लोग व्याकुल हो कर मंचोंपर चढ़ गये किन्तु थोड़ी देर बाद वे मञ्च भी डूब गये ॥३९॥ तदनन्तर जब वह जल शिरको उल्लंघन कर गया तब कितने ही लोग तैरने लगे। उस समय उनकी एक भुजा वस्त्र तथा बच्चोंको संभालनेके लिए ऊपरकी ओर उठ रही थी ॥४०॥ "हे देवि !

---

१. अत्रायमुपयुक्तः श्लोको महानाटकस्य—'मनसि वचसि काये जागरे स्वप्नमार्गे, मम यदि प्रतिभावो राघवादन्य पुंसि । तदिह दह शरीरं पावके मामकीनं, मम सुकृतदुरितकार्ये देव साक्षी त्वमेव' इति । २. स्फटिकं स्वच्छं म० । ३. नोल्मुकानि म० । ४. नागाराः म० । ५. वृद्धं म० । ६. टुट्टु घंटा समुत्तस्था -म० । ७. स्तवितु-म० । ८. बाहनाः म० ।

दयां कुरु महासाध्वि मुनिमानसनिर्मले । इति वाचो विनिश्चेरुर्वारिविह्वललोकतः ॥४२॥
ततः सरसिरुहगर्भकोमलं नखभावितम् । स्पृष्ट्वा वापीवधूरुसिंहस्तैः पद्मकमद्वयम् ॥४३॥
प्रशान्तकलुषावर्ता त्यक्तभीषणनिस्वना । क्षणेन सौम्यतां प्राप्ता ततो लोकोऽभवत्सुखी ॥४४॥
उत्पलैः कुमुदैः पद्मैः[1] संकुला साऽभवत्क्षणात् । सौरभ्यलोभभृङ्गौघसङ्गीतकमनोहरा ॥४५॥
क्रौञ्चानां चक्रवाकानां हंसानां च कदम्बकैः । तथा कादम्बकादीनां सुस्वनानां विराजिता ॥४६॥
मणिकाञ्चनसोपानैर्वीचीसन्तानसङ्गिभिः । पुष्पैर्मरकतच्छायाकोमलैश्चातिसंवृता ॥४७॥
उत्तस्थौ च मध्येऽस्या विपुलं विमलं शुभम् । सहस्रच्छदनं पद्मबिसकिञ्जं विकटं मृदु ॥४८॥
नानाभक्तिपरीतांगं रत्नौघांशुकावृतम् । आसीत्सिंहासनं तस्य मध्ये तुल्येन्दुमण्डलम् ॥४९॥
तत्रामरवरस्त्रीभिर्मा भैषीरिति सान्त्विता । सीताऽवस्थापिता रेजे श्रीरिवाभ्युदयोदया ॥५०॥
कुसुमाञ्जलिभिः सार्द्धं साधु साध्विति निःस्वनैः । गगनस्थैः समुत्सृष्टैर्देवकदम्बकैः ॥५१॥
झुंझुमैर्जवो गुंजा विनेदुः पटहाः पटु । नांदयो ननन्दुरायातं[2] चक्रुः काहलाः कलम् ॥५२॥
अशब्दायन्त शङ्खौघा धीरं तूर्याणि दध्वनुः । ववणुर्विशदं वंशाः कांसतालानि चक्रुः ॥५३॥
[3]वलिताः श्वेडितोद्घुष्टकुष्टादिकरणोद्यताः । तुष्टा ननृतुरन्योन्यश्लिष्टा वैद्याधरा गणाः ॥५४॥
श्रीमज्जनकराजस्य तनया परमोदया । श्रीमतो बलदेवस्य पत्नी विजयतेतराम् ॥५५॥

रक्षा करो, हे मान्ये ! हे लक्ष्मि ! हे सरस्वति ! हे महाकल्याणि ! हे धर्मसहिते ! हे सर्वप्राणिहितैषिणि ! रक्षा करो ॥४१॥ हे महापवित्रते ! हे मुनिमानसनिर्मले ! दया करो । इस प्रकार जलसे भयभीत मनुष्योंके मुखसे शब्द निकल रहे थे ॥४२॥

तदनन्तर वापिकारूपी वधू, तरङ्गरूपी भुजाओंके द्वारा कमलके मध्यभागके समान कोमल एवं नखोंसे सुशोभित रामके चरणयुगलका स्पर्शकर क्षणभरमें सौम्यदशाको प्राप्त हो गई । उसकी मलिन भँवरें शान्त हो गईं और उसका भयंकर शब्द छूट गया । इससे लोग भी सुखी हुए ॥४३-४४॥ वह वापी क्षण भरमें नील कमल, सफेद कमल तथा सामान्य कमलोंसे व्याप्त हो गई और सुगन्धिसे मदोन्मत्त भ्रमर समूहके संगीतसे मनोहर दिखने लगी ॥४५॥ सुन्दर शब्द करनेवाले क्रौञ्च, चकवाक, हंस तथा बदक आदि पक्षियोंके समूहसे सुशोभित हो गई ॥४६॥ मणि तथा स्वर्ण निर्मित सीढ़ियों और लहरोंके बीचमें स्थित मरकतमणिकी कान्तिके समान कोमल पुष्पोंसे उसके किनारे अत्यन्त सुन्दर दिखने लगे ॥४७॥

अथानन्तर उस वापीके मध्यमें एक विशाल, विमल, शुभ, खिला हुआ तथा अत्यन्त कोमल सहस्र दल कमल प्रकट हुआ और उस कमलके मध्यमें एक ऐसा सिंहासन स्थित हुआ कि जिसका आकार नानाप्रकारके बेल-बूटोंसे व्याप्त था, जो रत्नोंके प्रकाश रूपी वस्त्रसे वेष्टित था, और कान्तिसे चन्द्रमण्डलके समान था ॥४८-४९॥ तदनन्तर 'डरो मत' इसप्रकार उत्तम देवियाँ जिसे सान्त्वना दे रही थीं ऐसी सीता सिंहासन पर बैठाई गई । उस समय आश्चर्यकारी अभ्युदयको धारण करनेवाली सीता लक्ष्मीके समान सुशोभित हो रही थी ॥५०॥ आकाशमें स्थित देवोंके समूहने संतुष्ट होकर पुष्पाञ्जलियोंके साथ-साथ 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' यह शब्द छोड़े ॥५१॥ गुँजा नामके मनोहर वादित्र गूँजने लगे, नगाड़े जोरदार शब्द करने लगे, नान्दी लोग अत्यधिक हर्षित हो उठे, काहल मधुर शब्द करने लगे, शङ्खोंके समूह बज उठे, तूर्य गम्भीर शब्द करने लगे, बाँसुरी स्पष्ट शब्द कर उठी तथा काँसेकी झाँझें मधुर शब्द करने लगीं ॥५२-५३॥ वलित, श्वेडित, उद्घुष्ट तथा कुष्ट आदिके करनेमें तत्पर, संतोषसे युक्त विद्याधरोंके समूह परस्पर एक दूसरेसे मिलकर नृत्य करने लगे ॥५४॥ सब ओरसे यही ध्वनि आकाश और पृथिवीके अन्त-

---

१. पद्मैः म० । २. -रावतं म० । ३. वलितान् म० ।

अहो चित्रमहो चित्रमहो शीलं सुनिर्मलम् । एवं स्तनः समुत्सस्थौ रोदसी प्राप्य सर्वतः ॥५५॥
ततोऽकृत्रिमसाद्रस्नेहसम्मग्नमानसौ । तीर्त्वा ससम्भ्रमौ प्राप्तौ जानकीं लवणाङ्कुशौ ॥५७॥
स्थितौ च पार्श्वयोः पद्मपुत्रप्रीतिनम्रधियौ । समाश्वास्य समाघ्रातौ मस्तके [illegible] ॥५८॥
जाम्बूनदमयीयष्टिमिव शुद्धां हुताशने । अत्युत्तमप्रभासङ्कपरिवारितविग्रहाम् ॥५९॥
मैथिलीं राघवो वीक्ष्य कमलालयवासिनीम् । महानुरागरक्तात्मा तदन्तिकमुपागमत् ॥६०॥
जगौ च देवि कल्याणि प्रसीदोत्तमपूजिते । शरत्सम्पूर्णचन्द्रास्ये महाद्भुतविचेष्टिते ॥६१॥
कदाचिदपि नो भूयः करिष्याम्यागः[1] ईदृशम् । दुःखं वा ते ततोऽत्यन्तं दोषं मे साध्वि मर्षय ॥६२॥
योषिदष्टसहस्राणामपि त्वं परमेश्वरी । स्थिता मूर्धनि दद्स्वाज्ञां मय्यपि प्रभुतां कुरु ॥६३॥
अज्ञानप्रवणीभूतचेतसा मयकेदृशम् । किंवदन्तीभयात्सृष्टं कष्टं प्राप्तोऽसि यत्सति ॥६४॥
सकाननवनामेतां सखेचरजनां महीम् । समुद्रान्तां मया सार्धं यथेष्टं विचर प्रिये ॥६५॥
पूज्यमाना समस्तेन जगता परमादरम् । त्रिविष्टपसमान् भोगान् भावय स्वमहीतले ॥६६॥
उद्यद्भास्करसङ्काशं पुष्पकं कामगत्वरम् । आरुहा मेरुसानूनि पश्य देवि समं मया ॥६७॥
तेषु तेषु प्रदेशेषु भवतीचित्तहारिषु । क्रियतां रमणं कान्ते मया वचनकारिणा ॥६८॥
विद्याधरवरस्त्रीभिः सुरस्त्रीभिरिवावृता । मनस्विनि भजैश्वर्यं सद्यः सिद्धमनीषिता ॥६९॥

रालको व्याप्त कर उठ रही थी कि श्रीमान् राजा जनककी पुत्री और श्रीमान् बलभद्र श्रीरामकी परम अभ्युदयवती पत्नीकी जय हो ॥५५॥ अहो बड़ा आश्चर्य है, बड़ा आश्चर्य है इसका शील अत्यन्त निर्मल है ॥५५-५६॥

तदनन्तर माताके अकृत्रिम स्नेहमें जिनके हृदय डूब रहे थे ऐसे लवण और अंकुश शीघ्रतासे जलको तैर कर सीताके पास पहुँच गये ॥५७॥ पुत्रोंकी प्रीतिसे बढ़ी हुई सीताने आश्वासन देकर जिनके मस्तक पर सूंघा था तथा जिनका शरीर विनयसे नम्रीभूत था ऐसे दोनों पुत्र उसके दोनों ओर खड़े हो गये ॥५८॥ अग्निमें शुद्ध हुई स्वर्णमय यष्टिके समान जिसका शरीर अत्यधिक प्रभाके समूहसे व्याप्त था तथा जो कमल रूपी गृहमें निवास कर रही थी ऐसी सीताको देख बहुत भारी अनुरागसे अनुरक्त चित्त होते हुए राम उसके पास गये ॥५९-६०॥ और बोले कि हे देवि ! प्रसन्न होओ, तुम कल्याणवती हो, उत्तम मनुष्योंके द्वारा पूजित हो, तुम्हारा मुख शरद् ऋतुके पूर्ण चन्द्रमाके समान है, तथा तुम अत्यन्त अद्भुत चेष्टाकी करनेवाली हो ॥६१॥ अब ऐसा अपराध फिर कभी नहीं करूँगा अथवा अब तुम्हारा दुःख बीत चुका है। हे साध्वि ! मेरा दोष क्षमा करो ॥६२॥ तुम आठ हजार स्त्रियोंकी परमेश्वरी हो। उनके मस्तक पर विद्यमान हो, आज्ञा देओ और मेरे ऊपर भी अपनी प्रभुता करो ॥६३॥ हे सति ! जिसका चित्त अज्ञानके आधीन था ऐसे मेरे द्वारा लोकापवादके भयसे दिया दुःख तुमने प्राप्त किया है ॥६४॥ हे प्रिये ! अब वन-अटवी सहित तथा विद्याधरोंसे युक्त इस समुद्रान्त पृथिवीमें मेरे साथ इच्छानुसार विचरण करो ॥६५॥ समस्त जगत्के द्वारा परम आदर पूर्वक पूजी गई तुम, अपने पृथिवी तल पर देवोंके समान भोगोंको भोगो ॥६६॥ हे देवि ! उदित होते हुए सूर्यके समान तथा इच्छानुसार गमन करनेवाले पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो तुम मेरे साथ सुमेरुके शिखरोंको देखो अर्थात् मेरे साथ सर्वत्र भ्रमण करो ॥६७॥ हे कान्ते ! जो जो स्थान तुम्हारे चित्तको हरण करने वाले हैं उन स्थानोंमें मुझ आज्ञाकारीके साथ यथेच्छ क्रीड़ा की जाय ॥६८॥ हे मनस्विनि ! देवाङ्गनाओंके समान विद्याधरोंकी उत्कृष्ट स्त्रियोंसे घिरी रह कर तुम शीघ्र ही ऐश्वर्यका उपभोग करो। तुम्हारे

१. प्रबुद्धया म० । २. अपराधम् म० ।

दोषाब्धिमग्नकस्यापि विवेकरहितस्य मे । उपसन्नस्य सुश्लाघ्ये प्रसीद क्रोधमुत्सृज ॥७०॥
ततो जगाद वैदेही राजन्नैवास्मि कस्यचित् । कुपिता किं विषादं त्वमीदृशं समुपागतः ॥७१॥
न कश्चिदत्र ते दोषस्तवान्येषां न च । स्वकर्मणः फलं दत्तमिदं मे परिपाकिना ॥७२॥
बलदेव प्रसादात्ते भोगा भुक्ताः सुरोपमाः । अधुना तदहं कुर्वे जाये स्त्री न यतः पुनः ॥७३॥
एतैर्विनाशिभिः क्षुद्रैरयसङ्गैः सुदारुणैः । किं वा प्रयोजनं भोगैर्मूढमानवसेवितैः ॥७४॥
योनिलक्षाध्वसङ्क्रान्त्या खेदं प्राप्ताऽस्म्यनुत्तमम् । साहं दुःखक्षयाकांक्षा दीक्षां जैनेश्वरीं भजे ॥७५॥
इत्युक्त्वाऽभिनवाशोकपल्लवोपमपाणिना । मूर्द्धजान् स्वयमुद्धृत्य पद्माया अर्पयद्ददृहा ॥७६॥
इन्द्रनीलद्युतिच्छायान् सुकुमारान् मनोहरान् । केशान्वीक्ष्य ययौ मोहं रामोऽपतच्च भूतले ॥७७॥
यावदाश्वासनं तस्य प्रारब्धं चन्दनादिना । पृथ्वीमत्याऽर्यया तावद्दीक्षिता जनकात्मजा ॥७८॥
ततो दिव्यानुभावेन सा विघ्नपरिवर्जिता । संवृत्ता श्रमणा साध्वी वस्त्रमात्रपरिग्रहा ॥७९॥
महाव्रततरक्षिप्तमहासंवेगसङ्गता । देवासुरसमायोगं ययौ सोद्यानमुत्तमम् ॥८०॥
पप्रौ मौक्तिकगोशीर्षतालवृन्तानिलादिभिः । लब्धप्राक्तनचैतन्यस्तद्दिदृक्षुस्तनिरीक्षणः ॥८१॥
अदृष्ट्वा राघवः सीतां शून्यीभूतदशांशकः । शोककोपकषायात्मा समारुह्य महागजम् ॥८२॥
समुच्छ्रितसितच्छत्रश्चामरोत्क्षेपवीजितः । नरेन्द्रैरिन्द्रवद्देवैर्वृतो हस्तितलाङ्गलैः ॥८३॥
मौक्तिकोत्कलदच्छायः क्षणलब्धविलोचनः । उदात्तनिनदोऽवोचद्वचोऽपि निजभीतिदम् ॥८४॥

सब मनोरथ सिद्ध हुए हैं ॥६९॥ हे प्रशंसनीये ! मैं दोष रूपी सागरमें निमग्न हूँ तथा विवेकसे रहित हूँ । अब तुम्हारे समीप आया हूँ सो प्रसन्न होओ और क्रोधका परित्याग करो ॥७०॥

तदनन्तर सीताने कहा कि हे राजन् ! मैं किसी पर कुपित नहीं हूँ, तुम इस तरह विषाद को क्यों प्राप्त हो रहे हो ? ॥७१॥ इसमें न तुम्हारा दोष है न देशके अन्य लोगोंका । यह तो परिपाकमें आनेवाले अपने कर्मके द्वारा दिया हुआ फल है ॥७२॥ हे बलदेव ! मैंने तुम्हारे प्रसादसे देवोंके समान भोग भोगे हैं इसलिए उनकी इच्छा नहीं । अब तो वह काम करूँगी जिससे फिर स्त्री न होना पड़े ॥७३॥ इन विनाशी, क्षुद्र प्राप्त हुए आकुलतामय अत्यन्त कठोर एवं मूर्ख मनुष्यों के द्वारा सेवित इन भोगोंसे मुझे क्या प्रयोजन है ? ॥७४॥ लाखों योनियोंके मार्गमें भ्रमण करती करती इस भारी दुःखको प्राप्त हुई हूँ । अब मैं दुःखोंका क्षय करनेकी इच्छासे जैनेश्वरी दीक्षा धारण करती हूँ ॥७५॥ यह कह उसने निःस्पृह हो अशोकके नवीन पल्लव तुल्य हाथसे स्वयं केश उखाड़ कर रामके लिए दे दिये ॥७६॥ इन्द्रनील मणिके समान कान्ति वाले अत्यन्त कोमल मनोहर केशोंको देख राम मूर्च्छाको प्राप्त हो पृथिवी पर गिर पड़े ॥७७॥ इधर जब तक चन्दन आदिके द्वारा रामको सचेत किया जाता है तब तक सीता पृथ्वीमति आर्यिकासे दीक्षित हो गई ॥७८॥

तदनन्तर देवकृत प्रभावसे जिसके सब विघ्न दूर हो गये थे ऐसी पतिव्रता सीमा वस्त्रमात्र परिग्रहको धारण करने वाली आर्यिका हो गई ॥७९॥ महाव्रतोंके द्वारा जिसका शरीर पवित्र हो चुका था तथा जो महासंवेगको प्राप्त थी ऐसी सीता देव और असुरोंके समागमसे सहित उत्तम उद्यानमें चली गई ॥८०॥ इधर मोतियोंकी माला, गोशीर्षचन्दन तथा व्यजन आदिकी वायुसे जब रामकी मूर्च्छा दूर हुई तब वे उसी दिशाकी ओर देखने लगे परन्तु वहाँ सीताको न देख उन्हें दशों दिशाएँ शून्य दिखने लगीं । अन्तमें शोक और क्रोधके कारण कलुषित चित्त होते हुए महागज पर सवार हो चले ॥८१-८२॥ उस समय उनके शिर पर सफेद छत्र फहरा रहा था, चमरोंके समूह ढौरे जा रहे थे, तथा वे स्वयं अनेक राजाओंसे घिरे हुए थे । इसलिए देवोंसे

१. तावदीक्षिता म० । २. दशांशकः म० । ३. हस्तितलायतः म० ।

प्रियस्य प्राणिनो मृत्युर्वरिष्ठो विरहस्तु न । इति पूर्वं प्रतिज्ञातं मया निश्चितचेतसा ॥८५॥
यदि तत् किं वृथा देवैः प्रातिहार्यमिदं शठैः । वैदेही विहितं येन मयेदं समनुष्ठितम् ॥८६॥
लुप्तकेशोमपीमां मे यदि नार्पयत द्रुतम् । अद्य देवानदेवान्वः करोमि च जगद्धियत् ॥८७॥
कथं मे ह्रियते पत्नी सुरैर्न्यायव्यवस्थितैः । तिष्ठन्तु मे पुरः शस्त्रं गृह्णन्तु क्व नु ते गताः ॥८८॥
एवमादिकृताचेष्टो लक्ष्मणेन विनीतिना । सान्त्व्यमानो बहूपायं प्राप्तः सुरसमागमम् ॥८९॥
[1]सर्वभूषणमैक्षिष्ट ततः श्रवणपूर्वजम् । गाम्भीर्यधैर्यसम्पन्नं वरासनकृतस्थितिम् ॥९०॥
ज्वलज्ज्वलनतो दीप्तिं बिभ्राणं परमर्द्धिकम् । दहन्तं दहनं देहं कलुषस्योपसेदुषाम् ॥९१॥
[3]विबुधेष्वपि राजन्तं केवलज्ञानतेजसा । वीतजीमूतसङ्घातं भानुबिम्बमिवोदितम् ॥९२॥
चक्षुःकुमुदिनीकान्तं चन्द्रं वा वीतलाञ्छनम् । परेण परिवेषेण [4]प्रवृत्तं देहतेजसा ॥९३॥
तमालोक्य मुनिश्रेष्ठं लघोगाद् भद्रमानतम् । अवतीर्य च नागेन्द्राज्जगामास्य समीपताम् ॥९४॥
विधाय चाञ्जलिं भक्त्या कृत्वा शान्तः प्रदक्षिणाम् । त्रिविधं गृहिणां नाथोऽनंसीन्नाथं[5]मवेरमनाम् ॥९५॥
मुनीन्द्रदेहजच्छायास्तमिसांशुकिरीटकाः । वैलक्ष्यादिव चस्खलिः कुण्डलैः श्लिष्टगण्डकाः ॥९६॥

आवृत इन्द्रके समान जान पड़ते थे, उन्होंने लाङ्गल नामक शस्त्र हाथमें ले रक्खा था, तरुण कोकनद—रक्त कमलके समान उनकी कान्ति थी और वे क्षण-क्षणमें लोचन बन्द कर लेते थे तदनन्तर उच्चस्वरके धारक रामने ऐसे वचन कहे जो आत्मीयजनोंको भी भय देने वाले थे ॥८३-८४॥ उन्होंने कहा कि प्रिय प्राणीकी मृत्यु हो जाना श्रेष्ठ है परन्तु विरह नहीं; इसी लिए मैंने पहले दृढ़चित्त हो कर अग्नि-प्रवेशकी अनुमति दी थी ॥८५॥ जब यह बात थी तब फिर क्यों अविवेकी देवोंने सीताका यह अतिशय किया जिससे कि उसने यह दीक्षाका उपक्रम किया ॥८६॥ हे देवो ! यद्यपि उसने केश उखाड़ लिये हैं तथापि तुम लोग यदि उस दशामें भी उसे मेरे लिए शीघ्र नहीं सौंप देते हो तो मैं आजसे तुम्हें अदेव कर दूँगा—देव नहीं रहने दूँगा और जगत्को आकाश बना दूँगा ॥८७॥ न्यायकी व्यवस्था करनेवाले देवों द्वारा मेरी पत्नी कैसे हरी जा सकती है ? वे मेरे सामने खड़े हों तथा शस्त्र ग्रहण करें, कहाँ गये वे सब ? ॥८८॥ इस प्रकार जो अनेक चेष्टाएँ कर रहे थे तथा विविध नीतिको जाननेवाले लक्ष्मण जिन्हें अनेक उपायोंसे सान्त्वना दे रहे थे ऐसे राम, जहाँ देवोंका समागम था ऐसे उद्यानमें पहुँचे ॥८९॥

तदनन्तर उन्होंने मुनियोंमें श्रेष्ठ उन सर्वभूषण केवलीको देखा कि जो गाम्भीर्य और धैर्यसे सम्पन्न थे, उत्तम सिंहासन पर विराजमान थे ॥९०॥ जलती हुई अग्निसे कहीं अधिक कान्तिको धारण कर रहे थे, परम ऋद्धियोंसे युक्त थे, शरणागत मनुष्योंके पापको जलानेवाले शरीरको धारण कर रहे थे ॥९१॥ जो केवलज्ञान रूपी तेजके द्वारा देवोंमें भी सुशोभित हो रहे थे, मेघोंके आवरणसे रहित उदित हुए सूर्य मण्डलके समान जान पड़ते थे, ॥९२॥ जो चक्षुरूपी कुमुदिनियोंके लिए प्रिय थे, अथवा कलङ्क रहित चन्द्रमाके समान थे, और मण्डलाकार परिणत अपने शरीरके उत्तम तेजसे आवृत थे ॥९३॥

तदनन्तर जो अभी-अभी ध्यानसे उन्मुक्त हुए थे तथा सर्व सुरासुर जिन्हें नमस्कार करते थे ऐसे उन मुनिश्रेष्ठको देखकर राम हाथीसे नीचे उतर कर उनके समीप गये ॥९४॥ तत्पश्चात् गृहस्थोंके स्वामी श्रीरामने शान्त हो भक्तिपूर्वक अञ्जलि जोड़ प्रदक्षिणा देकर उन मुनिराजको मन-वचन-कायसे नमस्कार किया ॥९५॥ अथानन्तर उन मुनिराजकी शरीर सम्बन्धी कान्तिके कारण जिनके मुकुट निष्प्रभ हो गये थे तथा लज्जाके कारण ही मानो चमकते हुए कुण्डलों द्वारा

---

१. एष श्लोकः म० पुस्तके नास्त्येव । २. सेदुषम् म० । ३. विबुद्धेष्वपि म० । ४. वृत्तं देहस्य तेजसा म० । ५. मुनीनां नाथम् ।

भावार्पितनमस्काराः करकुड्मलमस्तकाः । मानवेन्द्रैः समं योग्यमुपविष्टाः सुरेश्वराः ॥९७॥
चतुर्भेदसुरो देवा नानालङ्कारधारिणः । अलक्ष्यन्त मुनीन्द्रस्य रवेरिव मरीचयः ॥९८॥
रराज राजराजोऽपि रामो नात्यन्तदूरगः । मुनेः सुमेरुकूटस्य पार्श्वे कल्पतरुर्यथा ॥९९॥
लक्ष्मीधरनरेन्द्रोऽपि मौलिकुण्डलराजितः । विद्युत्वानिव जीमूतः शुशुभेऽस्तिकपर्वतः ॥१००॥
शत्रुघ्नोऽपि महाशत्रुभयदानविचक्षणः । द्वितीय इव भाति स्म कुबेरश्चारुदर्शनः ॥१०१॥
गुणसौभाग्यनूगीरौ वीरौ तौ च सुलक्षणौ । सूर्यचन्द्रमसौ यद्वदेजतुर्लवणाङ्कुशौ ॥१०२॥
बाह्यालङ्कारमुक्ताऽपि वस्त्रमात्रपरिग्रहा । आर्या रराज वैदेही रविमूर्त्येव संयता ॥१०३॥
मनुष्यनाकवासेषु धर्मश्रवणकांक्षिषु । धरण्यामुपविष्टेषु ततो विनयशालिषु ॥१०४॥
धीरोऽभयनिनादाख्यो मुनिः शिष्यगणाग्रणीः । सन्देहतापशान्त्यर्थं पप्रच्छ मुनिपुङ्गवम् ॥१०५॥
विपुलं निपुणं शुद्धं तत्त्वार्थं मुनिबोधनम् । ततो जगाद योगीशः कर्मक्षयकरं वचः ॥१०६॥
रहस्यं तत्तदा तेन विदुषां महात्मनाम् । कथितं तत्समुद्रस्य कणमेकं वदाम्यहम् ॥१०७॥
प्रशस्तदर्शनज्ञाननन्दनं भव्यसम्मतम् । वस्तुतत्त्वमिदं तेन प्रोक्तं परमयोगिना ॥१०८॥
अनन्तालोकखान्तस्थो मृदङ्गद्वयसन्निभः । लोको व्यवस्थितोऽवस्तात्तिर्यगूर्ध्वव्यवस्थितः ॥१०९॥
त्रैविध्येनामुना तस्य ख्याता त्रिभुवनाभिधा । अधस्तात् सन्दृश्यादेर्विज्ञेयाः सप्तभूमयः ॥११०॥

जिनके कपोल आलिङ्गित थे, जिन्होंने भाव पूर्वक नमस्कार किया था, और जो हाथ जोड़कर मस्तकसे लगाये हुए थे ऐसे देवेन्द्र वहाँ नरेन्द्रके समान यथायोग्य बैठे थे ॥९६-९७॥ नाना अलंकारोंको धारण करनेवाले चारों प्रकारके देव, मुनिराजके समीप ऐसे दिखाई देते थे मानो सूर्यके समीप उसकी किरणें ही हों ॥९८॥ मुनिराजके निकट स्थित राजाधिराज राम भी ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो सुमेरुके शिखरके समीप कल्प वृक्ष ही हो ॥९९॥ मुकुट और कुण्डलोंसे सुशोभित लक्ष्मण भी, किसी पर्वतके समीप स्थित बिजलीसे सहित मेघके समान सुशोभित हो रहे थे ॥१००॥ महाशत्रुओंको भय देनेमें निपुण सुन्दर शत्रुघ्न भी द्वितीय कुबेरके समान सुशोभित हो रहा था ॥१०१॥ गुण और सौभाग्यके तरकस तथा उत्तम लक्षणोंसे युक्त वे दोनों वीर लवण और अंकुश सूर्य और चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहे थे ॥१०२॥ वस्त्रमात्र परिग्रहको धारण करनेवाली आर्या सीता यद्यपि बाह्य अलंकारोंसे सहित थी तथापि वह ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो सूर्यकी मूर्तिसे ही सम्बद्ध हो ॥१०३॥

तदनन्तर धर्मश्रवणके इच्छुक तथा विनयसे सुशोभित समस्त मनुष्य और देव जब यथायोग्य पृथिवी पर बैठ गये तब शिष्य समूहमें प्रधान, अभयनिनाद नामक, धीर वीर मुनिने सन्देह रूपी संतापको शान्त करनेके लिए सर्वभूषण मुनिराजसे पूछा ॥१०४-१०५॥ तदनन्तर मुनिराजने वह वचन कहे कि जो अत्यन्त विस्तृत थे, चातुर्यपूर्ण थे, शुद्ध थे, तत्त्वार्थके प्रतिपादक थे, मुनियोंके प्रबोधक थे और कर्मोंका क्षय करनेवाले थे ॥१०६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि उस समय उन योगिराजने विद्वानों तथा महात्माओंके लिए जो रहस्य कहा था वह समुद्रके समान भारी था। हे श्रेणिक ! मैं तो यहाँ उसका एक कण ही कहता हूँ ॥१०७॥ उन परम योगीने जो वस्तुतत्त्वका निरूपण किया था वह प्रशस्त दर्शन और ज्ञानके धारक पुरुषोंके लिए आनन्द देनेवाला था तथा भव्य जीवोंको इष्ट था ॥१०८॥

उन्होंने कहा कि यह लोक अनन्त अलोकाकाशके मध्यमें स्थित दो मृदङ्गोंके समान है, नीचे, बीचमें तथा ऊपरकी ओर स्थित है ॥१०९॥ इस तरह तीन प्रकारसे स्थित होनेके कारण इस लोकको त्रिलोक अथवा त्रिविध कहते हैं। मेरु पर्वतके नीचे सात भूमियाँ हैं ॥११०॥

---

१. रामोऽत्यन्तदूरगः ।

रत्नाभा प्रथमा तत्र यस्यां भवनजाः सुराः । पङ्कस्तस्याततः पोष्यो महाभयसमावहाः ॥१११॥
शर्करावालुकापङ्कधूमध्वान्ततमोनिभाः । सुमहादुःखदायिन्यो भिन्यान्यध्वान्तसंकुलाः ॥११२॥
तप्तायस्तलदुःस्पर्शमहाविषमदुर्गमाः । शीतोग्रवेदनाः काश्चिद्वसारुधिरकर्दमाः ॥११३॥
श्वसर्पमनुजादीनां कुथितानां कलेवरैः । सन्मिश्रो यो भवेद्गन्धस्तादृशस्तत्र कीर्तितः ॥११४॥
नानाप्रकारदुःखौघकारणानि समाहरन् । याति तत्र महाशब्दः प्रचण्डोद्दण्डमारुतः ॥११५॥
रसनस्पर्शनासक्ता जीवास्तत् कर्म कुर्वते । सरिष्ठा नरके येन पतन्त्यायसपिण्डवत् ॥११६॥
हिंसानृतश्चौर्यान्यस्त्रीसङ्गादनिवर्त्तनाः । नरकेषूपजायन्ते पापभारगुरुकृताः ॥११७॥
मनुष्यजन्म सम्प्राप्य सततं भोगसक्तताः । जनाः प्रचण्डकर्माणो गच्छन्ति नरकावनिम् ॥११८॥
विधाय कारयित्वा च पापं समनुमोद्य च । रौद्रार्त्तप्रवणा जीवा यान्ति नारकवोजताम् ॥११९॥
वज्रोपमेषु कुड्येषु निःसन्धिकृतपूरणाः । नारकेनाग्निना पापा दह्यन्ते कृतविस्वराः ॥१२०॥
ज्वलद्वह्निचयाद्भीता यान्ति वैतरणीं नदीम् । शीतलाम्बुकृताकांक्षास्तस्यां मुञ्चन्ति देहकम् ॥१२१॥
ततो महोत्कटक्षारदग्धदेहोत्थवेदनाः । मृगा इव परित्रस्ता असिपत्रवनं स्थिताः ॥१२२॥
छायाप्राप्त्याशया यत्र सङ्गता दुष्कृतप्रियाः । प्राप्नुवन्त्यसिनाराचचक्रकुन्तादिदारणम्[3] ॥१२३॥
खरमारुतनिर्धूतैर्नरकागसमाश्रितैः । तीक्ष्णैरस्त्रसमूहैस्ते दार्यन्ते शरणोज्झिताः ॥१२४॥

उनमें पहली भूमि रत्नप्रभा है जिसके अब्बहुल भागको छोड़कर ऊपरके दो भागोंमें भवनवासी तथा व्यन्तर देव रहते हैं। उस रत्नप्रभाके नीचे महाभय उत्पन्न करनेवाली शर्करा प्रभा, बालुका-प्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा नामकी छह भूमियाँ और हैं जो अत्यन्त तीव्र दुःखको देनेवाली हैं तथा निरन्तर घोर अन्धकारसे व्याप्त रहती हैं ॥१११-११२॥ उनमेंसे कितनी ही भूमियाँ संतप्त लोहेके तलके समान दुःखदायी गरम स्पर्श होनेके कारण अत्यन्त विषम और दुर्गम हैं तथा कितनी ही शीतकी तीव्र वेदनासे युक्त हैं। उन भूमियोंमें चर्बी और रुधिरकी कीच मची रहती है ॥११३॥ जिनके शरीर सड़ गये हैं ऐसे अनेक कुत्ते, सर्प तथा मनुष्यादिकी जैसी मिश्रित गन्ध होती है वैसी ही उन भूमियोंकी बतलाई गई है ॥११४॥ वहाँ नानाप्रकारके दुःख-समूहके कारणोंको साथमें ले आनेवाली महाशब्द करती हुई प्रचण्ड वायु चलती है ॥११५॥ स्पर्शन तथा रसना इन्द्रियके वशीभूत जीव उस कर्मका सञ्चय करते हैं कि जिससे वे लोहेके पिण्डके समान भारी हो उन नरकोंमें पड़ते हैं ॥११६॥ हिंसा, झूठ, चोरी, परस्त्रीसंग तथा परिग्रहसे निवृत्त नहीं होनेवाले मनुष्य पापके भारसे बोझिल हो नरकोंमें उत्पन्न होते हैं ॥११७॥ जो मनुष्य-जन्म पाकर निरन्तर भोगोंमें आसक्त रहते हैं ऐसे प्रचण्डकर्मा मनुष्य नरकभूमिमें जाते हैं ॥११८॥ जो जीव स्वयं पाप करते हैं, दूसरेसे कराते हैं तथा अनुमोदन करते हैं, वे रौद्र तथा आर्त्तध्यानमें तत्पर रहनेवाले जीव नरकायुको प्राप्त होते हैं ॥११९॥ वज्रोपम दीवालोंमें ठूँस-ठूँस कर भरे हुए पापी जीव नरकोंकी अग्निसे जलाये जाते हैं और तब वे महाभयंकर शब्द करते हैं ॥१२०॥ जलती हुई अग्निके समूहसे भयभीत हो नारकी, शीतल जलकी इच्छा करते हुए वैतरणी नदीकी ओर जाते हैं और उसमें अपने शरीरको छोड़ते हैं अर्थात् गोता लगाते हैं ॥१२१॥ गोता लगाते ही अत्यन्त तीव्र क्षारके कारण उनके जले हुए शरीरमें भारी वेदना होती है। तदनन्तर मृगोंकी तरह भयभीत हो उस असिपत्रवनमें पहुँचते हैं ॥१२२॥ जहाँ कि पापी जीव छायाकी इच्छासे इकट्ठे होते हैं परन्तु छायाके बदले खड्ग, बाण, चक्र तथा भाले आदि शस्त्रोंसे छिन्न-भिन्न दशाको प्राप्त होते हैं ॥१२३॥ तीक्ष्ण वायुसे कम्पित नरकके वृक्षोंसे प्रेरित तीक्ष्ण अस्त्रोंके

१. पारणाः म० । २. दारुणं म०, ज० । ३. नारकांग-ज० ।

छिन्नपादभुजस्कन्धकर्णवक्त्राक्षिनासिकाः । भिन्नतालुशिरःकुक्षिहृदया निपतन्ति ते ॥१२५॥
कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते केचिदूर्ध्वीकृताङ्घ्रयः । यन्त्रैः केचित्पीड्यन्ते बलिभिः परुषस्वनम् ॥१२६॥
अरिभिः परमक्रोधैः केचिन् मुद्गरपीडिताः । कुर्वते लोठनं भूमौ सुमहावेदनाकुलाः ॥१२७॥
महातृष्णादिता दीना याचन्ते वारिविह्वलाः । ततः प्रदीयते तेषां त्रपुसाम्रादिविद्रुतम् ॥१२८॥
स्फुलिङ्गोद्गमरौद्रं तं तप्तोद्दीप्य विकत्थिताः । पर्यवस्थितसैतदका दण्डपाणिरक्षकाः ॥१२९॥
ब्रुवते नास्ति तृष्णा मे मुञ्च मुञ्च व्रजाम्यहम् । अनिच्छतां ततस्तेषां तद्बलेन प्रदीयते ॥१३०॥
विनिपात्य क्षितावेषां कन्दतां लोहदण्डकैः । विदार्यास्यं विषं रक्तं कलिलं च निधीयते ॥१३१॥
तस्तेषां प्रदहत्कण्ठं हृदयं स्फोटयद् भृशम् । जठरं प्राप्य निर्यांसि पुरीषराशिना समम् ॥१३२॥
पश्चात्तापहताः पश्चात् पालकैर्नारकावनेः । स्मार्यन्ते दुष्कृतं दीनाः कुशास्त्रपरिभाषितम् ॥१३३॥
गुरुलोकं समुल्लङ्घ्य तदा वाक्पटुना सता । मांसं निर्दोषमित्युक्तं यत्ते तत् क्वाधुना गतम् ॥१३४॥
माङ्सेन बहुभेदेन मद्येन च पुरा कृतम् । श्राद्धं गुणवदित्युक्तं यत्ते तत् क्वाधुना गतम् ॥१३५॥
इत्युक्त्वा वैक्रियैरन्यैराहृत्याहृत्य निष्ठुरम् । कुर्वाणाः कृपणं चेष्टाः खादन्ते स्वशरीरकम् ॥१३६॥
स्वप्नदर्शननिःसारां स्मारयित्वा च राजताम् । तज्जातैरेव पीड्यन्ते विरूपस्तो विडम्बनैः ॥१३७॥
एवमादीनि दुःखानि जीवाः पापकृतो नृप । निमेषमप्यविश्रान्ता लभन्ते नारकक्षितौ ॥१३८॥

समूहसे वे शरण रहित नारकी छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ॥१२४॥ जिनके पैर, भुजा, स्कन्ध, कर्ण, मुख, आँख और नाक आदि अवयव कट गये हैं तथा जिनके तालु, शिर, पेट और हृदय विदीर्ण हो गये हैं ऐसे लोग वहाँ गिरते रहते हैं ॥१२५॥ जिनके पैर ऊपरको उठे हुए हैं ऐसे कितने ही नारकी दूसरे बलवान् नारकियोंके द्वारा कुम्भीपाकमें पकाये जाते हैं और कितने ही कठोर शब्द करते हुए घानियोंमें पेल दिये जाते हैं ॥१२६॥ तीव्र क्रोधसे युक्त शत्रुओंने जिन्हें मुद्गरसे पीड़ित किया है ऐसे कितने ही नारकी अत्यन्त तीव्र वेदनासे व्याकुल हो पृथिवी पर लोट जाते हैं ॥१२७॥ तीव्र प्याससे पीड़ित दीन हीन नारकी विह्वल हो पानी माँगते हैं पर पानीके बदले उन्हें पिघला हुआ राँगा और ताँबा दिया जाता है ॥१२८॥ निकलते हुए तिलगोंसे भयंकर उस राँगा आदिके द्रवको देखकर वे प्यासे नारकी काँप उठते हैं, उनके चित्त फिर जाते हैं तथा कण्ठ आँसुओंसे भर जाते हैं ॥१२९॥ वे कहते हैं कि मुझे प्यास नहीं है, छोड़ो-छोड़ो मैं जाता हूँ पर नहीं चाहने पर भी उन्हें बलात् वह द्रव पिलाया जाता है ॥१३०॥ चिल्लाते हुए उन नारकियोंको पृथिवी पर गिराकर तथा लोहेके डंडेसे उनका मुख फाड़कर उसमें बलात् विष, रक्त तथा ताँबा आदिका द्रव डाला जाता है ॥१३१॥ वह द्रव उनके कण्ठको जलाता और हृदयको फोड़ता हुआ पेटमें पहुँचता है और मलकी राशिके साथ-साथ बाहर निकल जाता है ॥१३२॥ तदनन्तर जब वे पश्चात्तापसे दुःखी होते हैं तब उन दीन हीन नारकियोंको नरक भूमिके रक्षक मिथ्याशास्त्रों द्वारा कथित पापका स्मरण दिलाते हैं ॥१३३॥ वे कहते हैं कि उस समय तुमने बोलनेमें चतुर होनेके कारण गुरुजनोंका उल्लंघन कर 'मांस निर्दोष है' यह कहा था सो अब तुम्हारा वह कहना कहाँ गया ? ॥१३४॥ 'नानाप्रकारके मांस और मदिराके द्वारा किया हुआ श्राद्ध अधिक फलदायी होता है, ऐसा जो तुमने पहले कहा था सो अब तुम्हारा वह कहना कहाँ गया ? ॥१३५॥ यह कहकर उन्हें विक्रिया युक्त नारकी बड़ी निर्दयतासे मार-मारकर उन्हींका शरीर खिलाते हैं तथा वे अत्यन्त दीन चेष्टाएँ करते हैं ॥१३६॥ 'राज्य-अवस्था स्वप्न-दर्शनके समान निःसार है' यह स्मरण दिलाकर उन्हींसे उत्पन्न हुए विडम्बनाकारी उन्हें पीड़ित करते हैं और वे करुणक्रन्दन करते हैं ॥१३७॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! पाप करनेवाले जीव नारकियोंकी भूमिमें

---

१. वर्ण-म० ।

तस्मात्फलमधर्मस्य ज्ञात्वेदमतिदुःसहम् । प्रशान्तहृदयाः सन्तः सेवध्वं जिनशासनम् ॥१३६॥
अनन्तरमधोवासा ज्ञाता भवनवासिनाम् । देवारण्यार्णवद्वीपास्तथा योग्याश्च भूमयः ॥१४०॥
पृथिव्यापश्च तेजश्च मारुतिश्चा वनस्पतिः । शेषाश्चसाश्च जीवानां निकायाः षट् प्रकीर्तिताः ॥१४१॥
धर्माधर्मवियत्कालजीवपुद्गलभेदतः । षोढा द्रव्यं समुद्दिष्टं सरहस्यं जिनेश्वरैः ॥१४२॥
सप्तभङ्गीनयोमार्गः सम्यक्प्रतिपदं मतः । प्रमाणं सकलादेशो नयोऽवयवसाधनम् ॥१४३॥
एकद्वित्रिचतुःपञ्चहृषीकेष्वविरोधतः । सत्वं जीवेषु विज्ञेयं प्रतिपक्षसमन्वितम् ॥१४४॥
सूक्ष्मबादरभेदेन शेयास्ते च शरीरतः । पर्याप्ता इतरे चैव पुनस्ते परिकीर्तिताः ॥१४५॥
भव्याभव्यादिभेदं च जीवद्रव्यमुदाहृतम् । संसारे तद्द्वयोन्मुक्ताः सिद्धास्तु परिकीर्तिताः ॥१४६॥
ज्ञेयदृश्यस्वभावेषु परिणामः स्वशक्तितः । उपयोगश्च तद्रूपं ज्ञानदर्शनतो द्विधा ॥१४७॥
ज्ञानमष्टविधं ज्ञेयं चतुर्धा दर्शनं मतम् । संसारिणो विमुक्ताश्च ते सचित्तविचेतसः ॥१४८॥
वनस्पतिपृथिव्याद्याः स्थावराः शेषकाश्चसाः । पञ्चेन्द्रियाः श्रुतिघ्राणचक्षुरस्वमसनान्विताः ॥१४९॥
पोताण्डजजरायूनामुदितो[1] गर्भसम्भवः । देवानामुपपादस्तु नारकाणां च कीर्तितः ॥१५०॥
सम्मूर्च्छनं समस्तानां शेषाणां जन्मकारणम् । योन्यस्तु विविधाः प्रोक्ताः महादुःखसमन्विताः ॥१५१॥

क्षणभरके लिए भी विश्राम लिये बिना पूर्वोक्त प्रकारके दुःख पाते रहते हैं ॥१३८॥ इसलिए हे शान्त हृदयके धारक सत्पुरुषो ! 'यह अधर्मका फल अत्यन्त दुःसह है' ऐसा जानकर जिन-शासनकी सेवा करो ॥१३९॥ अनन्तरवर्ती रत्नप्रभाभूमि भवनवासी देवोंकी निवास भूमि है यह पहले ज्ञात कर चुके हैं। इसके सिवाय देवारण्य वन, सागर तथा द्वीप आदि भी उनके निवासके योग्य स्थान हैं ॥१४०॥

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ये पाँच स्थावर और एक त्रस ये जीवोंके छह निकाय कहे गये हैं ॥१४१॥ धर्म, अधर्म, आकाश, काल, जीव और पुद्गलके भेदसे द्रव्य छह प्रकारके हैं ऐसा श्री जिनेन्द्रदेवने रहस्य सहित कहा है ॥१४२॥ प्रत्येक पदार्थका सप्तभङ्गी द्वारा निरूपण करनेका जो मार्ग है वह प्रशस्त मार्ग माना गया है। प्रमाण और नयके द्वारा पदार्थोंका कथन होता है। पदार्थके समस्त विरोधी धर्मोंका एक साथ वर्णन करना प्रमाण है और किसी एक धर्मका सिद्ध करना नय है ॥१४३॥ एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पाँच इन्द्रिय जीवोंमें बिना किसी विरोधके सत्त्व-सत्ता-नामका गुण रहता है और यह अपने प्रतिपक्ष-विरोधी तत्त्वसे सहित होता है ॥१४४॥ वे जीव शरीरकी अपेक्षा सूक्ष्म और बादरके भेदसे दो प्रकारके जानना चाहिए। उन्हीं जीवोंके फिर पर्याप्तक और अपर्याप्तककी अपेक्षा दो भेद और भी कहे गये हैं ॥१४५॥ जीवद्रव्यके भव्य अभव्य आदि भेद भी कहे गये हैं परन्तु यह सब भेद संसार अवस्थामें ही होते हैं, सिद्ध जीव इन सब भेदों रहित कहे गये हैं ॥१४६॥ ज्ञेय और दृश्य स्वभावोंमें जीवका जो अपनी शक्तिसे परिणमन होता है वह उपयोग कहलाता है, उपयोग ही जीवका स्वरूप है, यह उपयोग ज्ञान दर्शनके भेदसे दो प्रकारका है ॥१४७॥ ज्ञानोपयोग मतिज्ञानादिके भेदसे आठ प्रकारका है, और दर्शनोपयोग चक्षुर्दर्शन आदिके भेदसे चार प्रकारका है। जीवके संसारी और मुक्तकी अपेक्षा दो भेद हैं तथा संसारी जीव संज्ञी और असंज्ञी भेदसे दो प्रकारके हैं ॥१४८॥ वनस्पतिकायिक तथा पृथिवीकायिक आदि स्थावर कहलाते हैं, शेष त्रस कहे जाते हैं। जो स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और कर्ण इन पाँचों इन्द्रियोंसे सहित हैं वे पञ्चेन्द्रिय कहलाते हैं ॥१४९॥ पोतज, अण्डज तथा जरायुज जीवोंके गर्भजन्म कहा गया है तथा देवों और नारकियोंके उपपाद जन्म बतलाया गया है ॥१५०॥ शेष जीवोंकी उत्पत्तिका कारण सम्मूर्च्छन जन्म है। इस तरह गर्भ, उपपाद और सम्मूर्च्छनकी अपेक्षा जन्मके

१. -भादितो म० ।

औदारिकं शरीरं तु वैक्रियाऽऽहारके तथा । तैजसं कार्मणं चैव विद्धि सूक्ष्मं परं परम् ॥१५२॥
असङ्ख्येयं प्रदेशेन गुणतोऽनन्तके परे । आदिसम्बन्धमुक्ते च चतुर्णामेककालता ॥१५३॥
जम्बूद्वीपमुखा द्वीपा लवणाद्याश्च सागराः । प्रकीर्तिताः शुभा नाम संख्यानपरिवर्जिताः ॥१५४॥
पूर्वात् द्विगुणविष्कम्भाः पूर्वविक्षेपवर्तिनः । वलयाकृतयो मध्ये जम्बूद्वीपः प्रकीर्तितः ॥१५५॥
मेरुनाभिरसौ वृत्तो लक्षयोजनमानभृत् । त्रिगुणं तत्परिक्षेपादधिकं परिकीर्तितम् ॥१५६॥
पूर्वापरायतास्तत्र विज्ञेयाः कुलपर्वताः । हिमवांश्च महाञ्ज्ञेयो निषधो नील एव च ॥१५७॥
रुक्मी च शिखरी चेति समुद्रजलसङ्गताः । तान्यान्येभिर्विभक्तानि जम्बूद्वीपगतानि च ॥१५८॥
भरताख्यमिदं क्षेत्रं ततो हैमवतं हरिः । विदेहो रम्यकाख्यं च हैरण्यवतमेव च ॥१५९॥
ऐरावतं च विज्ञेयं गङ्गाद्याश्चापि निम्नगाः । प्रोक्तं द्विर्धातकीखण्डे पुष्करार्धे च पूर्वकम् ॥१६०॥
आर्या म्लेच्छा मनुष्याश्च मानुषाच्चलतोऽपरे । विज्ञेयास्तत्प्रभेदाश्च संख्यानपरिवर्जिताः ॥१६१॥
विदेहे कर्मणो भूमिर्भरतैरावते तथा । देवोत्तरकुरुभोगक्षेत्रं शेषाश्च भूमयः ॥१६२॥
त्रिपल्यान्तर्मुहूर्ते तु स्थिती नृणां परावरे । मनुष्याणामिव ज्ञेया तिर्यग्योनिमुपेयुषाम् ॥१६३॥
अष्टभेदभृतो वेद्या व्यन्तराः किन्नरादयः । तेषां क्रीडनकावासा यथायोग्यमुदाहृताः ॥१६४॥

तीन भेद हैं परन्तु तीव्र दुःखोंसे सहित योनियाँ अनेक प्रकारकी कही गई हैं ॥१५१॥ औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण ये पाँच शरीर हैं। ये शरीर आगे-आगे सूक्ष्म-सूक्ष्म हैं ऐसा जानना चाहिए ॥१५२॥ औदारिक, वैक्रियिक और आहारक ये तीन शरीर प्रदेशोंकी अपेक्षा उत्तरोत्तर असंख्यात गुणित हैं तथा तैजस और कार्मण ये दो शरीर उत्तरोत्तर अनन्त गुणित हैं। तैजस और कार्मण ये दो शरीर आदि सम्बन्धसे युक्त हैं अर्थात् जीवके साथ अनादि कालसे लगे हुए हैं और उपर्युक्त पाँच शरीरोंमेंसे एक साथ चार शरीर तक हो सकते हैं ॥१५३॥

मध्यम लोकमें जम्बूद्वीपको आदि लेकर शुभ नामवाले असंख्यात द्वीप और लवण समुद्रको आदि लेकर असंख्यात समुद्र कहे गये हैं ॥१५४॥ ये द्वीप-समुद्र पूर्वके द्वीप-समुद्रसे दूने विस्तार वाले हैं, पूर्व-पूर्वको घेरे हुए हैं तथा वलयके आकार हैं। सबके बीचमें जम्बूद्वीप कहा गया है ॥१५५॥ जम्बूद्वीप मेरु पर्वतरूपी नाभिसे सहित है, गोलाकार है तथा एक लाख योजन विस्तार वाला है, इसकी परिधि तिगुनीसे कुछ अधिक कही गई है ॥१५६॥ उस जम्बूद्वीपमें पूर्वसे पश्चिम तक लम्बे हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी ये छह कुलाचल हैं। ये सभी समुद्रके जलसे मिले हैं तथा इन्हींके द्वारा जम्बूद्वीप सम्बन्धी क्षेत्रोंका विभाग हुआ है ॥१५७-१५८॥ यह भरत क्षेत्र है इसके आगे हैमवत, उसके आगे हरि, उसके आगे विदेह, उसके आगे रम्यक, उसके आगे हैरण्यवत और उसके आगे ऐरावत—ये सात क्षेत्र जम्बूद्वीपमें हैं। इसी जम्बूद्वीपमें गङ्गा, सिन्धु आदि चौदह नदियाँ हैं। धातकीखण्ड तथा पुष्करार्धमें जम्बूद्वीपसे दूनी-दूनी रचना है ॥१५९-१६०॥ मनुष्य, मानुषोत्तर पर्वतके इसी ओर रहते हैं, इनके आर्य और म्लेच्छकी अपेक्षा मूलमें दो भेद हैं तथा इनके उत्तर भेद असंख्यात हैं ॥१६१॥ देवकुरु, उत्तरकुरु रहित विदेह क्षेत्र, तथा भरत और ऐरावत इन तीन क्षेत्रोंमें कर्मभूमि है और देवकुरु, उत्तर कुरु तथा अन्य क्षेत्र भोगभूमिके क्षेत्र हैं ॥१६२॥ मनुष्योंकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्यकी और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्तकी है। तिर्यञ्चोंकी उत्कृष्ट तथा जघन्य स्थिति मनुष्योंके समान तीन पल्य और अन्तर्मुहूर्तकी है ॥१६३॥

व्यन्तर देवोंके किन्नर आदि आठ भेद जानना चाहिए। इन सबके क्रीड़ाके स्थान यथा-

---

१. आदिसम्बन्धमुक्तश्च म०, ज० ।

ऊर्ध्वं व्यन्तरदेवानां ज्योतिषां चक्रमुज्ज्वलम् । मेरुप्रदक्षिणं नित्यगतिभ्रद्भार्कराजकम् ॥१६५॥
संख्येयानि सहस्राणि योजनानां व्यतीत्य च । तत ऊर्ध्वं महालोको विज्ञेयः कल्पवासिनाम् ॥१६६॥
सौधर्मस्त्वथैशानः कल्पस्तत्र प्रकीर्तितः । ज्ञेयः सानत्कुमारश्च तथा माहेन्द्रसंज्ञकः ॥१६७॥
ब्रह्म ब्रह्मोत्तरो लोको लान्तवश्च प्रकीर्तितः । कापिष्ठश्च तथा शुक्रो महाशुक्राभिधस्तथा ॥१६८॥
शतारोऽथ सहस्रारः कल्पश्चानतशब्दितः । प्राणतश्च परिज्ञेयस्तत्परश्चारणाच्युतौ ॥१६९॥
नव ग्रैवेयकास्तेभ्यामुपरिष्टात्प्रकीर्तिताः । अहमिन्द्रतया येषु परमर्द्धिदृशाः स्थिताः ॥१७०॥
विजयो वैजयन्तश्च जयन्तोऽथापराजितः । सर्वार्थसिद्धिनामा च पञ्चैतेऽनुत्तराः स्मृताः ॥१७१॥
अग्रे त्रिभुवनस्यास्य क्षेत्रमुत्तमभासुरम् । कर्मबन्धनमुक्तानां पदं ज्ञेयं महाद्भुतम् ॥१७२॥
ईषत्प्राग्भारसंज्ञासौ पृथिवी शुभदर्शना । उत्तानधवलच्छत्रप्रतिरूपा शुभावहा ॥१७३॥
सिद्धा यत्रावतिष्ठन्ते पुनर्भवविवर्जिताः । महासुखसमाविष्टाः स्वात्मशक्तिव्यवस्थिताः ॥१७४॥
रामो जगाद भगवन् तेषां विगतकर्मणाम् । संसारभावनिर्मुक्तं निर्दुःखं कीदृशं सुखम् ॥१७५॥
उवाच केवली लोकत्रितयस्यास्य यत्सुखम् । व्याबाधभङ्गदुःपाकैर्दुःखमेव हि तन्मतम् ॥१७६॥
कर्मणाऽष्टप्रकारेण परतन्त्रस्य सर्वदा । नास्य संसारिजीवस्य सुखं नाम मनागपि ॥१७७॥
यथा सुवर्णपिण्डस्य वेष्टितस्यायसा भृशम् । आत्मीया नश्यति छाया तथा जीवस्य कर्मणा ॥१७८॥
मृत्युजन्मजराव्याधिसहस्रैः सततं जनाः । मानसैश्च महादुःखैः पीड्यन्ते सुखमत्र किम् ॥१७९॥
असिधारामधुस्वादसमं विषयजं सुखम् । दग्धे[1]चन्दनवद्दिव्यं चक्रिणां सक्रियाजवत् ॥१८०॥

योग्य कहे गये हैं ॥१६४॥ व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंका निवास ऊपर मध्यलोकमें है। इनमें ज्योतिषी देवोंका चक्र देदीप्यमान कान्तिका धारक है, मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देता हुआ निरन्तर चलता रहता है तथा सूर्य और चन्द्रमा उसके राजा हैं ॥१६५॥ ज्योतिश्चक्रके ऊपर संख्यात हजार योजन व्यतीत कर कल्पवासी देवोंका महालोक शुरू होता है यही ऊर्ध्वलोक कहलाता है ॥१६६॥ ऊर्ध्वलोकमें सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार, आनत, प्राणत और आरण, अच्युत ये आठ युगलोंमें सोलह स्वर्ग हैं ॥१६७-१६९॥ उनके ऊपर ग्रैवेयक कहे गये हैं जिनमें अहमिन्द्र रूपसे उत्कृष्ट देव स्थित हैं। (नव ग्रैवेयकके आगे नव अनुदिश हैं और उनके ऊपर) विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित तथा सर्वार्थसिद्धि ये पाँच अनुत्तर विमान हैं ॥१७०-१७१॥ इस लोकत्रयके ऊपर उत्तम देदीप्यमान तथा महा आश्चर्यसे युक्त सिद्धक्षेत्र है जो कर्म बन्धनसे रहित जीवोंका स्थान जानना चाहिए ॥१७२॥ ऊपर ईषत्प्राग्भार नामकी वह शुभ पृथ्वी है, जो ऊपरकी ओर किये हुए धवलछत्रके आकार है, शुभरूप है, और जिसके ऊपर पुनर्भवसे रहित, महासुख सम्पन्न तथा स्वात्मशक्तिसे युक्त सिद्धपरमेष्ठी विराजमान रहते हैं ॥१७३-१७४॥

तदनन्तर इसी बीचमें रामने कहा कि हे भगवन् ! उन कर्मरहित जीवोंके संसार भावसे रहित तथा दुःखसे दूर कैसा सुख होता है ? ॥१७५॥ इसके उत्तरमें केवली भगवान्‌ने कहा कि इस तीन लोकका जो सुख है वह आकुलतारूप, विनाशात्मक तथा दुरन्त होनेके कारण दुःख-रूप ही माना गया है ॥१७६॥ आठप्रकारके कर्मसे परतन्त्र इस संसारी जीवको कभी रञ्चमात्र भी सुख नहीं होता ॥१७७॥ जिस प्रकार लोहेसे वेष्टित सुवर्णपिण्डकी अपनी निजकी कान्ति नष्ट हो जाती है उसी प्रकार कर्मसे वेष्टित जीवकी अपनी निजकी कान्ति बिलकुल ही नष्ट हो जाती है ॥१७८॥ इस संसारके प्राणी निरन्तर जन्म-जरामरण तथा बीमारी आदिके हजारों एवं मानसिक महादुःखोंसे पीड़ित रहते हैं अतः यहाँ क्या सुख है ? ॥१७९॥ विषय-जन्यसुख खड्गधारा

१. -दग्धचन्दन -मु० ।

ध्रुवं परमनाबाधमुपमानविवर्जितम् । आत्मस्वाभाविकं सौख्यं सिद्धानां परिकीर्तितम् ॥१८१॥
सुप्तया किं ध्वस्तनिद्राणां नीरोगाणां किमौषधैः । सर्वज्ञानां कृतार्थानां किं दीपतपनादिना ॥१८२॥
आयुधैः किमभीतानां निर्मुक्तानामरातिभिः । पश्यतां विपुलं सर्वसिद्धार्थानां किमीहया ॥१८३॥
[1]आत्म सुखतृप्तानां किं कृत्यं भोजनादिना । देवेन्द्रा अपि यत्सौख्यं वाञ्छन्ति सततोन्मुखाः ॥१८४॥
नास्ति यद्यपि तत्त्वेन प्रतिमाऽस्य तथाऽपि ते । वदामि प्रतिबोधार्थं सिद्धात्मसुखगोचरे ॥१८५॥
[2]सचक्रवर्तिनो मर्त्याः सेन्द्रा यच्च सुराः सुखम् । कालेनानन्तविमुक्तेन सेवन्ते भवहेतुजम् ॥१८६॥
अनन्तपूरणस्यापि भागस्य तदकर्मणाम् । सुखस्य तुलयां नैति सिद्धानामीदृशं सुखम् ॥१८७॥
जनेभ्यः सुखिनो भूपाः भूपेभ्यश्चक्रवर्तिनः । चक्रिभ्यो व्यन्तरास्तेभ्यः सुखिनो ज्योतिषाऽमराः ॥१८८॥
ज्योतिर्भ्यो भवनावासास्तेभ्यः कल्पभुवः क्रमात् । ततो ग्रैवेयकावासास्ततोऽनुत्तरवासिनः ॥१८९॥
अनन्तानन्तगुणितास्तेभ्यः सिद्धिपदस्थिताः । सुखं नापरमुत्कृष्टं विद्यते सिद्धसौख्यतः ॥१९०॥
अनन्तं दर्शनं ज्ञानं वीर्यं च सुखमेव च । आत्मनः स्वमिदं रूपं तच्च सिद्धेषु विद्यते ॥१९१॥
संसारिणस्तु तान्येव कर्मोपशमभेदतः । वैचित्र्यवन्ति जायन्ते बाह्यवस्तुनिमित्ततः ॥१९२॥
शब्दादिप्रभवं सौख्यं शल्ययुक्तं व्याधिकीलकैः । नवव्रणभवे तत्र सुखाशा मोहहेतुका ॥१९३॥
गत्यागतिविमुक्तानां प्रक्षीणक्लेशसम्पदाम् । लोकशेखरभूतानां सिद्धानामसमं सुखम् ॥१९४॥

पर लगे हुए मधुके स्वादके समान है, स्वर्गका सुख जले हुए घावपर चन्दनके लेपके समान है और चक्रवर्तीका सुख विषमिश्रित अन्नके समान है ॥१८०॥ किन्तु सिद्ध भगवानका जो सुख है वह नित्य है, उत्कृष्ट है, आबाधासे रहित है, अनुपम है, और आत्मस्वभावसे उत्पन्न है ॥१८१॥ जिनकी निद्रा नष्ट हो चुकी है उन्हें शयनसे क्या ? नीरोग मनुष्योंको औषधिसे क्या ? सर्वज्ञ तथा कृतकृत्य मनुष्योंको दीपक तथा सूर्य आदिसे क्या ? शत्रुओंसे रहित निर्भीक मनुष्योंके लिए आयुधोंसे क्या ? देखते-देखते जिनके पूर्ण रूपमें सब मनोरथ सिद्ध हो गये हैं ऐसे मनुष्योंको चेष्टासे क्या ? और आत्मसम्बन्धी महा सुखसे संतुष्ट मनुष्योंको भोजनादिसे क्या प्रयोजन है ? इन्द्र लोग भी सिद्धोंके जिस सुखकी सदा उन्मुख रहकर इच्छा करते रहते हैं। यद्यपि यथार्थमें उस सुखकी उपमा नहीं है तथापि तुम्हें समझानेके लिए सिद्धोंके उस आत्मसुखके विषयमें कुछ कहता हूँ ॥१८२-१८५॥ चक्रवर्ती सहित समस्त मनुष्य और इन्द्र सहित समस्त देव अनन्त कालमें जिस सांसारिक सुखका उपभोग करते हैं वह कर्म रहित सिद्ध भगवान्‌के अनन्तवें सुखकी भी सदृशताको प्राप्त नहीं होता। ऐसा सिद्धोंका सुख है ॥१८६-१८७॥ साधारण मनुष्योंकी अपेक्षा राजा सुखी हैं, राजाओंकी अपेक्षा चक्रवर्ती सुखी हैं, चक्रवर्तियोंकी अपेक्षा व्यन्तर देव सुखी हैं, व्यन्तर देवोंकी अपेक्षा ज्योतिष देव सुखी हैं ॥१८८॥ ज्योतिष देवोंकी अपेक्षा भवनवासी देव सुखी हैं, भवनवासियोंकी अपेक्षा कल्पवासी देव सुखी हैं, कल्पवासी देवोंकी अपेक्षा ग्रैवेयक वासी सुखी हैं, ग्रैवेयकवासियोंकी अपेक्षा अनुत्तरवासी सुखी हैं ॥१८९॥ और अनुत्तरवासियोंसे अनन्तानन्त गुणित सुखी सिद्ध जीव हैं। सिद्ध जीवोंके सुखसे उत्कृष्ट दूसरा सुख नहीं है ॥१९०॥ अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्तवीर्य और अनन्तसुख यह चतुष्टय आत्माका निज स्वरूप है और वह सिद्धोंमें विद्यमान है ॥१९१॥ परन्तु संसारी जीवोंके वे ही ज्ञान दर्शन आदि कर्मोंके उपशममें भेद होनेसे तथा बाह्य वस्तुओंके निमित्तसे अनेक प्रकारके होते हैं ॥१९२॥ शब्द आदि इन्द्रियोंके विषयोंसे होनेवाला सुख व्याधिरूपी कीलोंके द्वारा शल्य युक्त है इसलिए शरीरसे होनेवाले सुखमें सुखकी आशा करना मोहजनित आशा है ॥१९३॥ जो गमनागमनसे विमुक्त हैं, जिनके समस्त क्लेश नष्ट हो चुके हैं एवं जो लोकके मुकुट स्वरूप हैं अर्थात् लोकाग्रमें विद्यमान

---

१. माहात्म्य- म० । २. सुचक्र—म०, ज० ।

यदीयं दर्शनं ज्ञानं लोकालोकप्रकाशकम् । क्षुद्रद्रव्यप्रकाशेन नैव ते भानुना समाः ॥१९५॥
करस्थामलकज्ञानसर्वभागेऽप्यपुष्कलम् । छद्मस्थपुरुषोत्पन्नं सिद्धज्ञानस्य नो समम् ॥१९६॥
समं त्रिकालभेदेषु सर्वभावेषु केवली । ज्ञानदर्शनयुक्तात्मा नेतरः सोऽपि सर्वथा ॥१९७॥
ज्ञानदर्शनभेदोऽयं यथा सिद्धेतरात्मनाम् । सुखेऽपि दृश्यतां तद्वत्तथा वीर्येऽपि दृश्यताम् ॥१९८॥
दर्शनज्ञानसौख्यानि सकलत्वेन तत्त्वतः । सिद्धानां केवली वेत्ति शेषेष्वौपमिकं वचः ॥१९९॥
अभव्यात्मभिरप्राप्यमिदं जैनेन्द्रमास्पदम् । आयन्तमपि यत्नाढ्यैः कायसंक्लेशकारिभिः ॥२००॥
अनादिकालसम्बद्धां विरहेण विवर्जिताम् । अविद्यागृहिणीं ते हि शश्वदाश्लिष्य शेरते ॥२०१॥
विमुक्तिवनितालाऽऽश्लेषसमुत्कण्ठापरायणाः । भव्यास्तु दिवसान् कृच्छ्रं प्रेरयन्ति तपःस्थिताः ॥२०२॥
सिद्धिशक्तिविनिर्मुक्ता अभव्याः परिकीर्तिताः । भविष्यत्सिद्धयो जीवा भव्यशब्दसुपाश्रिताः ॥२०३॥
जिनेन्द्रशासनादन्यशासने रघुनन्दन । न[2] सर्वयत्नयोगेऽपि विद्यते कर्मणां क्षयः ॥२०४॥
यत्कर्म क्षपयत्यज्ञो भूरिभिर्भवकोटिभिः । ज्ञानी मुहूर्तयोगेन त्रिगुप्तस्तदपोहयेत् ॥२०५॥
प्रतीतो जगतीऽप्येतत्पारमार्थ्यं निरञ्जनः । दृष्टो परमार्थेन यैः ते क्षीणकर्मतिः ॥२०६॥
गृहीतं बहुभिर्विद्धि लोकमार्गमसारकम् । परमार्थपरिप्राप्त्यै गृहाण जिनशासनम् ॥२०७॥
एवं रघूत्तमः श्रुत्वा वचः सकलभूषणम् । प्रणिपत्य जगौ नाथ तारयाऽस्मान्भवादिति ॥२०८॥

हैं उन सिद्धोंका सुख अपनी समानता नहीं रखता ॥१९४॥ जिनका दर्शन और ज्ञान लोकालोकको प्रकाशित करनेवाला है, वे क्षुद्र द्रव्योंको प्रकाशित करनेवाले सूर्यके समान नहीं कहे जा सकते ॥१९५॥ जो हाथ पर स्थित आँवलेके सर्वभागोंके जाननेमें असमर्थ है ऐसा छद्मस्थ पुरुषोंका ज्ञान सिद्धोंके समान नहीं है ॥१९६॥ त्रिकाल सम्बन्धी समस्त पदार्थोंके विषयमें एक केवली ही ज्ञान दर्शनसे सम्पन्न होता है, अन्य नहीं ॥१९७॥ सिद्ध और संसारी जीवोंमें जिस प्रकार यह ज्ञान दर्शनका भेद है उसी प्रकार उनके सुख और वीर्यमें भी यह भेद समझना चाहिए ॥१९८॥ यथार्थमें सिद्धोंके दर्शन, ज्ञान और सुखको सम्पूर्ण रूपसे केवली ही जानते हैं अन्य लोगोंके वचन तो उपमा रूप ही होते हैं ॥१९९॥ यह जिनेन्द्र भगवान्का स्थान—सिद्धपद, अभव्य जीवोंको अप्राप्य है, भले ही वे अनेक यत्नोंसे सहित हों तथा अत्यधिक काय-क्लेश करनेवाले हों॥२००॥ इसका कारण भी यह है कि वे अनादि कालसे सम्बद्ध तथा विरहसे रहित अविद्यारूपी गृहिणीका निरन्तर आलिङ्गन कर शयन करते रहते हैं ॥२०१॥ इनके विपरीत मुक्तिरूपी स्त्रीके आलिङ्गन करनेमें जिनकी उत्कण्ठा बढ़ रही है ऐसे भव्य जीव तपश्चरणमें स्थित होकर बड़ी कठिनाईसे दिन व्यतीत करते हैं अर्थात् वे जिस किसी तरह संसारका समय बिताकर मुक्ति प्राप्त करना चाहते हैं ॥२०२॥ जो मुक्ति प्राप्त करनेकी शक्तिसे रहित हैं वे अभव्य कहलाते हैं और जिन्हें मुक्ति प्राप्त होगी वे भव्य कहे जाते हैं ॥२०३॥ सर्वभूषण केवली कहते हैं कि हे रघुनन्दन ! जिनेन्द्रशासनको छोड़कर अन्यत्र सर्व प्रकारका यत्न होने पर भी कर्मोंका क्षय नहीं होता है ॥२०४॥ अज्ञानी जीव जिस कर्मको अनेक करोड़ों भवोंमें क्षीण कर पाता है उसे तीन गुप्तियोंका धारक ज्ञानी मनुष्य एक मुहूर्तमें ही क्षय कर देता है ॥२०५॥ यह बात संसारमें भी प्रसिद्ध है कि यथार्थमें निरञ्जन—निष्कलङ्क परमात्माका दर्शन वही कर पाते हैं जिनके कि कर्म क्षीण हो गये हैं ॥२०६॥ यह सारहीन संसारका मार्ग तो अनेक लोगोंने पकड़ रक्खा है पर इससे परमार्थकी प्राप्ति नहीं, अतः परमार्थकी प्राप्तिके लिए एक जिनशासनको ही ग्रहण करो ॥२०७॥ इस प्रकार सकलभूषणके वचन सुनकर श्रीरामने प्रणाम कर कहा कि हे नाथ ! इस संसार-सागरसे पार

---

१. यत्नाद्यैः म० । २. सर्वरत्नम-० ।

भगवन्नधमा मध्या उत्तमाश्चासुधारिणः । भव्याः केन विमुच्यन्ते विधिना भववासतः ॥२०९॥
उवाच भगवान् सम्यग्दर्शनज्ञानचेष्टितम् । मोक्षवर्त्म समुद्दिष्टमिदं जैनेन्द्रशासने ॥२१०॥
तत्त्वश्रद्धानमेतस्मिन् सम्यग्दर्शनमुच्यते । चेतनाचेतनं तत्त्वमनन्तगुणपर्ययम् ॥२११॥
निसर्गाधिगमद्वाराद्भक्त्या तत्त्वमुपाददत् । सम्यग्दृष्टिरिति प्रोक्तो जीवो जिनमते रतः ॥२१२॥
शङ्का काङ्क्षा विचिकित्सा च परशासनसंस्तवः । प्रत्यक्षोदारदोषाद्या एते सम्यक्त्वदूषणाः ॥२१३॥
स्थैर्यं जिनवरागारे रमणं भावना पराः । शङ्कादिरहितत्वं च सम्यग्दर्शनशोधनम् ॥२१४॥
सर्वज्ञशासनोक्तेन विधिना ज्ञानपूर्वकम् । क्रियते यदसाध्येन सुचारित्रं तदुच्यते ॥२१५॥
गोपायितहृषीकत्वं वचोमानसयन्त्रणम् । विद्यते यत्र निष्पापं सुचारित्रं तदुच्यते ॥२१६॥
अहिंसा यत्र भूतेषु त्रसेषु स्थावरेषु च । क्रियते न्याययोगेषु सुचारित्रं तदुच्यते ॥२१७॥
मनःश्रोत्रपरिह्लादं स्निग्धं मधुरमर्थवत् । शिवं यत्र वचः सत्यं सुचारित्रं तदुच्यते ॥२१८॥
अदत्तग्रहणे यत्र निवृत्तिः क्रियते त्रिधा । दत्तं च गृह्यते न्याय्यं सुचारित्रं तदुच्यते ॥२१९॥
सुराणामपि सम्पूज्यं दुर्धरं महतामपि । ब्रह्मचर्यं शुभं यत्र सुचारित्रं तदुच्यते ॥२२०॥
शिवमार्गमहाविघ्नमूर्च्छात्यजनपूर्वकः । परिग्रहपरित्यागः सुचारित्रं तदुच्यते ॥२२१॥
परपीडाविनिर्मुक्तं दानं श्रद्धादिसङ्गतम् । दीयते यन्निवृत्तेभ्यः सुचारित्रं तदुच्यते ॥२२२॥

लगाओ ॥२०८॥ उन्होंने यह भी पूछा कि हे भगवन् ! जघन्य मध्यम तथा उत्तमके भेदसे भव्य जीव तीन प्रकारके हैं सो ये संसार-वाससे किसी विधिसे छूटते हैं ? ॥२०९॥

तब सर्वभूषण भगवान्ने कहा कि जैनेन्द्र शासन—जैनधर्ममें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इनकी एकता ही को मोक्षका मार्ग बताया है ॥२१०॥ इनमेंसे तत्त्वोंका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहलाता है। अनन्त गुण और अनन्त पर्यायोंको धारण करनेवाला तत्त्व चेतन, अचेतनके भेदसे दो प्रकारका है ॥२११॥ स्वभाव अथवा परोपदेशके द्वारा भक्तिपूर्वक जो तत्त्वको ग्रहण करता है वह जिनमतका श्रद्धालु सम्यग्दृष्टि जीव कहा गया है ॥२१२॥ शङ्का कांक्षा,विचिकित्सा,अन्यदृष्टि प्रशंसा और प्रत्यक्ष ही उदार मनुष्योंमें दोषादि लगाना—उनकी निन्दा करना ये सम्यग्दर्शनके पाँच अतिचार हैं ॥२१३॥ परिणामोंको स्थिरता रखना, जिनायतन आदि धर्म क्षेत्रोंमें रमण करना—स्वभावसे उनका अच्छा लगना, उत्तम भावनाएँ भाना तथा शङ्कादि दोषोंसे रहित होना ये सब सम्यग्दर्शनको शुद्ध रखनेके उपाय हैं ॥२१४॥ सर्वज्ञके शासनमें कही हुई विधिके अनुसार सम्यग्ज्ञान पूर्वक जितेन्द्रिय मनुष्यके द्वारा जो आचरण किया जाता है वह सम्यक्चारित्र कहलाता है ॥२१५॥ जिसमें इन्द्रियोंका वशीकरण और वचन तथा मनका नियन्त्रण होता है वही निष्पाप—निर्दोष सम्यक्चारित्र कहलाता है ॥२१६॥ जिसमें न्यायपूर्ण प्रवृत्ति करनेवाले त्रस स्थावर जीवोंपर अहिंसा की जाती है उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं ॥२१७॥ जिसमें मन और कानोंको आनन्दित करनेवाले, स्नेहपूर्ण, मधुर, सार्थक और कल्याणकारी वचन कहे जाते हैं उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं ॥२१८॥ जिसमें अदत्तवस्तुके ग्रहणमें मन, वचन, कायसे निवृत्ति की जाती है तथा न्यायपूर्ण दी हुई वस्तु ग्रहण की जाती है उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं ॥२१९॥ जहाँ देवोंके भी पूज्य और महापुरुषोंके भी कठिनतासे धारण करने योग्य शुभ ब्रह्मचर्य धारण किया जाता है वह सम्यक्चारित्र कहलाता है ॥२२०॥ जिसमें मोक्षमार्गमें महाविघ्नकारी मूर्च्छाके त्यागपूर्वक परिग्रहका त्याग किया जाता है उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं ॥२२१॥ जिसमें मुनियोंके लिए परपीडासे रहित तथा श्रद्धा आदि गुणोंसे सहित दान दिया जाता है उसे

---

१. च कुत्सा च म० । २. परिपीडा—म० ।

विनयो नियमः शीलं ज्ञानं दानं दया दमः । ध्यानं च यत्र मोक्षार्थं सुचारित्रं तदुच्यते ॥२२३॥
एतद्गुणसमायुक्तं जिनेन्द्रवचनोदितम् । श्रेयः सम्प्राप्तये सेव्यं चारित्रं परमोदयम् ॥२२४॥
शक्यं करोत्यशक्ये तु श्रद्धावान् स्वस्य निन्दकः । सम्यक्त्वसहितो जन्तुः शक्तश्चारित्रसङ्गतः ॥२२५॥
यत्र नैते न विद्यन्ते समीचीना महागुणाः । तत्र नास्ति सुचारित्रं न च संसारनिर्गमः ॥२२६॥
दयादमक्षमा यत्र न विद्यन्ते न संवरः । न ज्ञानं न परित्यागस्तत्र धर्मो न विद्यते ॥२२७॥
हिंसानृतचौर्यस्त्रीसमारम्भसमाश्रयः । क्रियते यत्र धर्मार्थं तत्र धर्मो न विद्यते ॥२२८॥
दीक्षामुपेत्य यः पापे मूढचेताः प्रवर्त्तते । [1]आरम्भिणोऽस्य चारित्रं विमुक्तिर्वा न विद्यते ॥२२९॥
षण्णां जीवनिकायानां क्रियते यत्र पीडनम् । धर्मव्याजेन सौख्यार्थं न तेन शिवमाप्यते ॥२३०॥
वधताडनबन्धाङ्करोहनादिविधायिनः । ग्रामक्षेत्रादिसक्तस्य प्रव्रज्या का ह्यनात्मनः ॥२३१॥
क्रयविक्रयसक्तस्य पचित्वाचनकारिणः । सहिरण्यस्य का मुक्तिर्दीक्षितस्य दुरात्मनः ॥२३२॥
मर्दनस्नानसंस्कारमाल्यधूपानुलेपनम् । सेवन्ते दुर्विदग्धा ये नोचितास्ते न मोक्षगाः ॥२३३॥
हिंसां दोषविनिर्मुक्तां वदन्तः स्वमनीषया । शास्त्रं वेषं च वृत्तं च दूषयन्ति समूढकाः ॥२३४॥
एकरात्रं वसन् ग्रामे नगरे पञ्चरात्रकम् । नित्यमूर्द्धभुजस्तिष्ठन् मासे मासे च पारयन् ॥२३५॥
मृगैः सममरण्यान्यां शयानो विचरन्नपि । कुर्वन्नपि मृगोः पातं मौनवान्निःपरिग्रहः ॥२३६॥
मिथ्यादर्शनदुष्टात्मा कुलिङ्गी बीजवर्जितः । पद्भ्यामगम्यदेशं [2]वा नैवाप्नोति शिवालयम् ॥२३७॥

सम्यक्चारित्र कहते हैं ॥२२३॥ जिसमें विनय, नियम, शील, ज्ञान, दया, दम और मोक्षके लिए ध्यान धारण किया जाता है उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं ॥२२३॥ इस प्रकार इन गुणोंसे सहित, जिन शासनमें कथित, परम अभ्युदयका कारण जो सम्यक्चारित्र है, कल्याण प्राप्तिके लिए उसका सेवन करना चाहिए ॥२२४॥ सम्यग्दृष्टि जीव शक्य कार्यको करता है और अशक्य कार्यकी श्रद्धा रखता है परन्तु जो शक्त अर्थात् समर्थ होता है वह चारित्र धारण करता है ॥२२५॥ जिसमें पूर्वोक्त समीचीन महागुण नहीं हैं उसमें सम्यक्चारित्र नहीं है, और न उसका संसारसे निकलना होता है ॥२२६॥ जिसमें दया, दम, क्षमा नहीं हैं, संवर नहीं है, ज्ञान नहीं है, और परित्याग नहीं हैं उसमें धर्म नहीं रहता ॥२२७॥ जिसमें धर्मके लिए हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रहका आश्रय किया जाता है वहाँ धर्म नहीं है ॥२२८॥ जो मूर्ख हृदय दीक्षा लेकर पापमें प्रवृत्ति करता है उस आरम्भीके न चारित्र है और न उसे मुक्ति प्राप्त होती है ॥२२९॥ जिसमें धर्मके बहाने सुख प्राप्त करनेके लिए छह कायके जीवोंकी पीडा की जाती है उस धर्मसे कल्याणकी प्राप्ति नहीं होती ॥२३०॥ जो मारना, ताडना, बाँधना, आँकना तथा दोहना आदि कार्य करता है तथा गाँव, खेत आदिमें आसक्त रहता है उस अनात्मज्ञका दीक्षा लेना क्या है ? ॥२३१॥ जो वस्तुओंके खरीदने और बेंचनेमें आसक्त है, स्वयं भोजनादि पकाता है अथवा दूसरेसे याचना करता है, और स्वर्णादि परिग्रह साथ रखता है, ऐसे आत्महीन दीक्षित मनुष्यको क्या मुक्ति प्राप्त होगी ? ॥२३२॥ जो अविवेकी मनुष्य दीक्षित होकर मर्दन, स्नान, संस्कार, माला, धूप तथा विलेपन आदिका सेवन करते हैं वे मोक्षगामी नहीं हैं—उन्हें मोक्ष प्राप्त नहीं होता ॥२३३॥ जो अपनी बुद्धिसे हिंसाको निर्दोष कहते हुए शास्त्र वेष तथा चारित्रमें दोष लगाते हैं वे मूढतासे सहित हैं—मिथ्यादृष्टि हैं ॥२३४॥ जो गाँवमें एक रात और नगरमें पाँच रात रहता है, निरन्तर ऊपरकी ओर भुजा उठाये रहता है, महीने-महीनेमें एक बार भोजन करता है, मृगोंके साथ अटवीमें शयन करता है, उन्हींके साथ विचरण करता है, भृगुपात भी करता है, मौनसे रहता है, और परिग्रहका त्याग करता है, वह मिथ्या दर्शनसे दूषित होनेके कारण कुलिङ्गी है तथा मोक्षके कारण जो सम्यग्दर्शनादि उनसे रहित है। ऐसा जीव पैरोंसे चलकर किसी अगम्य-

१. मुक्ति—म० । २. आरम्भितोऽ -म० । ३. च म० ।

अग्निवारिप्रवेशादिपापं धर्मधिया श्रयन् । प्रयाति दुर्गतिं जीवो मूढः स्वहितवर्त्मनि ॥२३८॥
रौद्रार्तध्यानसक्तस्य सकामस्य कुकर्मणः । उपायविपरीतस्य जायते निन्दिता गतिः ॥२३९॥
मिथ्यादर्शनयुक्तोऽपि यो दद्यात्साध्वसाधुषु । धर्मबुद्धिरसौ पुण्यं बध्नाति विपुलोदयम् ॥२४०॥
भुञ्जानोऽपि फलं तस्य धर्मस्यासौ त्रिविष्टपे । लक्षभागदलेनाऽपि सम्यग्दृष्टेर्न सम्मितः ॥२४१॥
सम्यग्दर्शनमुत्तुङ्गं सुश्लाघ्याः संवहन्ति ये । देवलोकप्रधानास्ते भवन्ति नियमप्रियाः ॥२४२॥
क्लेशिताऽपि महायत्नं मिथ्यादृष्टिः कुलिङ्गकः । देवकिङ्करभावेन फलं हीनमवाप्नुते ॥२४३॥
सप्ताष्टसु नृदेवत्वमवलङ्क्यान्तिसौख्यभाक् । श्रमणत्वं समाश्रित्य सम्यग्दृष्टिर्विमुच्यते ॥२४४॥
वीतरागैः समस्तज्ञैरिमं मार्गं प्रदर्शितम् । अन्तुविषयमूढात्मा प्रार्थयत्तु न वाञ्छति ॥२४५॥
आशापाशैर्दृढं बद्धा मोहेनाधिष्ठिता भृशम् । तृष्णागारं समानीताः पापहिल्लीरवाहिनः ॥२४६॥
रसनं स्पर्शनं प्राप्य दुःखसौख्याभिमानिनः । वराका विविधा जीवाः क्लिश्यन्ते शरणोज्झिताः ॥२४७॥
[1]बिभेति मृत्युतो नास्य ततो मोक्षः प्रजायते । काङ्क्षत्यनारतं सौख्यं न च लाभोऽस्य सिद्ध्यति ॥२४८॥
इत्थं भीतिकामाभ्यां विफलाभ्यां वशीकृतः । केवलं तापमायाति चेतनो निरुपायकः ॥२४९॥
आशया नित्यमाविष्टो भोगान् भोक्तुं समीहते । न करोति धृतिं धर्मे काञ्चने मशको यथा ॥२५०॥

स्थान अथवा मोक्षको प्राप्त नहीं कर सकता ॥२३५-२३७॥ जो धर्म बुद्धिसे अग्निप्रवेश तथा जलप्रवेश आदि पाप करता है वह आत्महितके मार्गमें मूढ है और दुर्गतिको प्राप्त होता है ॥२३८॥ जो रौद्र और आर्तध्यानमें आसक्त है, कामपर जिसने विजय प्राप्त नहीं की है, जो खोटे काम करता है तथा उपायसे विपरीत प्रवृत्ति करता है उसकी निन्दित गति—कुगति होती है ॥२३९॥ जो मनुष्य मिथ्यादर्शनसे युक्त होकर भी धर्म बुद्धिसे साधु और असाधुके लिए दान देता है वह विपुल अभ्युदयको देनेवाले पुण्य कर्मका बन्ध करता है ॥२४०॥ यद्यपि ऐसा जीव स्वर्गमें उस धर्मका फल भोगता है तथापि वह सम्यग्दृष्टिको प्राप्त होनेवाले फलके लाखमेंसे एक भागके भी बराबर नहीं है ॥२४१॥ जो मनुष्य उत्कृष्ट सम्यग्दर्शन धारण करते हैं तथा चारित्रसे प्रेम रखते हैं वे इस लोकमें भी प्रशंसनीय होते हैं और मरनेके बाद देवलोकमें प्रधान होते हैं ॥२४२॥ मिथ्यादृष्टि कुलिङ्गी मनुष्य, बड़े प्रयत्नसे क्लेश उठाकर भी देवोंका किङ्कर बन तुच्छ फलको प्राप्त होता है। भावार्थ—मिथ्यादृष्टि कुलिङ्गी मनुष्य यद्यपि तपश्चरणके अनेक क्लेश उठाता है तथापि वह उसके फलस्वरूप स्वर्गमें उत्तम पद प्राप्त नहीं कर पाता किन्तु देवोंका किङ्कर होकर हीन फल प्राप्त कर पाता है ॥२४३॥ सम्यग्दृष्टि मनुष्य, सात आठ भवोंमें मनुष्य और देव पर्यायमें परिभ्रमणसे उत्पन्न हुए सुखको भोगता हुआ अन्तमें मुनिदीक्षा धारणकर मुक्त हो जाता है ॥२४४॥ वीतराग सर्वज्ञ देवके द्वारा दिखाये हुए इस मार्गको, विषयी मनुष्य प्राप्त नहीं करना चाहता ॥२४५॥ जो आशारूपी पाशसे मजबूत बँधे हैं, मोहसे अत्यधिक आक्रान्त हैं, तृष्णारूपी घरमें लाकर डाले गये हैं, पापरूपी जञ्जीरको धारण कर रहे हैं तथा स्पर्श और रसको पाकर जो दुःखको ही सुख मान बैठे हैं इस तरह नाना प्रकारके शरण रहित बेचारे दीन प्राणी निरन्तर क्लेश उठाते रहते हैं ॥२४६-२४७॥ यह प्राणी मृत्युसे डरता है पर उससे छुटकारा नहीं हो पाता। इसी प्रकार निरन्तर सुख चाहता है पर उसकी प्राप्ति नहीं हो पाती ॥२४८॥ इस प्रकार निष्फल भय और कामसे वश हुआ यह प्राणी निरुपाय हो मात्र संतापको प्राप्त होता रहता है ॥२४९॥ निरन्तर आशासे घिरा हुआ यह प्राणी भोग भोगनेकी चेष्टा करता है परन्तु जिस प्रकार मच्छर स्वर्णमें संतोष नहीं करता उसी

---

१. पापशृङ्खलावाहिनः । २. बिभेति मृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो नित्यं शिवं वाञ्छति नास्य लाभः । तथापि बालो भयकामवश्यो वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादीः । बृहत्स्वयम्भूस्तोत्रे ।

सङ्क्लेशवह्नितप्तो बह्वारम्भक्रियोद्यतः । न कञ्चिदर्थमाप्नोति क्षीयते चास्य सङ्गतम् ॥२५१॥
असौ पुराकृतात्पापादप्राप्यार्थं मनोगतम् । प्रत्युताऽनर्थमाप्नोति महान्तमतिदुर्जरम् ॥२५२॥
इदं कृतमिदं कुर्वे करिष्येऽहं सुनिश्चितम् । मर्ताहं वास्वदः पापान्मृत्युं यान्तीति चिन्तकाः ॥२५३॥
न हि प्रतीक्षते मृत्युरसुभाजां कृताकृतम् । समाक्रामत्यकाण्डेऽसौ मृगकं केसरी यथा ॥२५४॥
अहिते हितमिथ्याशा सुदुःखे सुखसम्मतिः । अनित्ये शाश्वताकूतं शरणाशा भयावहे ॥२५५॥
हिते सुखे परित्राणे ध्रुवे च विपरीतधीः । अहो कुदृष्टिसक्तानामन्यथैव व्यवस्थितिः ॥२५६॥
भार्याबारणप्रविष्टः सन् मनुष्यो बनवारणः । विषयामिषसक्तश्च मत्स्यो बन्धं समश्नुते ॥२५७॥
कुटुम्बसुमहापङ्के विस्तरे मोहसागरे । मग्नोऽवसीदति स्फूर्जन्दुर्बलो महिषी यथा ॥२५८॥
[illegible] निगडबद्धस्य मोक्षोऽन्धकूपतः क्वचित् । स्निग्धैः स्नेहपाशैस्तु ततः कृच्छ्रेण मुच्यते ॥२५९॥
बोधिं मनुष्यलोकेऽपि जैनेन्द्रीं सुष्ठु दुर्लभाम् । प्राप्तुमर्हत्यभव्यस्तु[1] नैव मार्गं जिनोदितम् ॥२६०॥
घनकर्ममलक्लाक्ता अभव्या नित्यमेव हि । संसारचक्रमारूढा भ्राम्यन्ति क्लेशबाहिताः ॥२६१॥
ततः कृत्वाञ्जलिं मूर्ध्नि जगाद रघुनन्दनः । किमस्मि भगवन् भव्यो मुच्ये कस्मादुपायतः ॥२६२॥
शक्नोमि पृथिवीमेतां त्यक्तुं सान्तःपुरामहम् । लक्ष्मणस्य सुकृतं न शक्नोम्येकमुज्झितुम् ॥२६३॥
स्नेहोर्मिचन्द्रखण्डेषु तरन्तं लक्ष्मणोत्तमम् । अवलम्बनदानेन मां त्रायस्व मुनीश्वर ॥२६४॥

प्रकार यह प्राणी धर्ममें धैर्य धारण नहीं करता ॥२५०॥ संक्लेशरूपी अग्निसे संतप्त हुआ यह प्राणी बहुत प्रकारके आरम्भ करनेमें तत्पर रहता है परन्तु किसी भी प्रयोजनको प्राप्त नहीं अपितु इसके पासका जो सुख है वह भी चला जाता है ॥२५१॥ यह जीव पूर्वकृत पापके कारण मनोभिलषित पदार्थको प्राप्त नहीं होता किन्तु अत्यन्त दुर्जर बहुत भारी अनर्थको प्राप्त होता है ॥२५२॥ 'मैं यह कर चुका, यह करता हूँ और यह आगे करूँगा।' इस प्रकार मनुष्य निश्चय कर लेता है पर कभी मरूँगा भी इस बातका कोई विचार नहीं करते ॥२५३॥ मृत्यु इस बातकी प्रतीक्षा नहीं करती कि प्राणी, कौन काम कर चुके और कौन काम नहीं कर पाये। वह तो जिस प्रकार सिंह मृग पर आक्रमण करता है उसी प्रकार असमयमें भी आक्रमण कर बैठती है ॥२५४॥ अहो! मिथ्या दृष्टि मनुष्य, अहितको हित, दुःखको सुख, अनित्यको नित्य, भयदायकको शरणदायक, हितको अहित, सुखको दुःख, रक्षकको अरक्षक और ध्रुवको अध्रुव समझते हैं। इस प्रकार कहना पड़ता है कि मिथ्यादृष्टि मनुष्योंकी व्यवस्था अन्य प्रकार ही है ॥२५५-२५६॥ यह मनुष्य रूपी जङ्गली हाथी, भार्या रूपी बन्धनमें पड़कर बन्धको प्राप्त होता है अथवा यह मनुष्य रूपी मत्स्य विषय रूपी मांसमें आसक्त हो बन्धका अनुभव करता है ॥२५७॥ कुटुम्बरूपी बहुत कीचड़से युक्त एवं लम्बे-चौड़े मोहरूपी महासागरमें फँसा हुआ यह प्राणी दुबले-पतले भैंसेके समान छटपटाता हुआ दुःखी हो रहा है ॥२५८॥ बेड़ियोंसे बँधे हुए मनुष्यका अन्धे कुँएसे छुटकारा हो सकता है परन्तु स्नेह रूपी पाशसे बँधा प्राणी उससे बड़ी कठिनाईसे छूट पाता है ॥२५९॥ जिसका पाना मनुष्यलोकमें भी अत्यन्त दुर्लभ है ऐसी जिनेन्द्र प्रतिपादित बोधिको प्राप्त करनेके लिए अभव्य प्राणी योग्य नहीं है। इसी प्रकार जिनेन्द्र कथित रत्नत्रय मार्गको भी प्राप्त करनेके लिए अभव्य समर्थ नहीं हैं ॥२६०॥ तीव्र कर्म मल कलंकसे युक्त रहनेवाले अभव्य जीव, निरन्तर संसाररूपी चक्रपर आरूढ हो क्लेश उठाते हुए घूमते रहते हैं ॥२६१॥

तदनन्तर हाथ जोड़ मस्तकसे लगाकर रामने कहा कि हे भगवन्! क्या मैं भव्य हूँ? और किस उपायसे मुक्त होऊँगा? ॥२६२॥ मैं अन्तःपुरसे सहित इस पृथिवीको छोड़नेके लिए समर्थ हूँ, परन्तु एक लक्ष्मणका उपकार छोड़नेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥२६३॥ मैं बिना किसी

---

१. -त्यभव्यास्तु म० ।

उवाच भगवान् राम न शोकं कर्तुमर्हसि । ऐश्वर्यं बलदेवस्य भोक्तव्यं भवता ध्रुवम् ॥२६५॥
राज्यलक्ष्मीं परिप्राप्य दिवीव त्रिदशाधिपः । जैनेश्वरं व्रतं प्राप्य कैवल्यमयमेष्यसि ॥२६६॥

आर्याच्छन्दः

श्रुत्वा केवलिभाषितमुत्तमहर्षप्रजातपुलको रामः ।
विकसितनयनः श्रीमान् प्रसन्नवदनो बभूव धृत्या युक्तः ॥२६७॥
विज्ञाय चरमदेहं दाशरथिं विस्मिताः सुरासुरमनुजाः ।
केवलिरविणोद्योतितमत्यन्तप्रीतिमानसाः समशंसन् ॥२६८॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रामधर्मश्रवणाभिधानं नाम पञ्चोत्तरशतं पर्व ॥१०५॥

आधारके स्नेहरूपी सागरकी तरङ्गोंमें तैर रहा हूँ, सो हे मुनीन्द्र ! अवलम्बन देकर मेरी रक्षा करो ॥२६४॥ तदनन्तर भगवान् सर्वभूषण केवलीने कहा कि हे राम ! तुम शोक करनेके योग्य नहीं हो । आपको बलदेवका वैभव अवश्य भोगना चाहिए । जिस प्रकार इन्द्र स्वर्गकी राज्यलक्ष्मीको प्राप्त होता है उसी प्रकार यहाँकी राज्यलक्ष्मीको पाकर तुम अन्तमें जिनेश्वर दीक्षाको धारण करोगे तथा केवलज्ञानमय मोक्षधामको प्राप्त होओगे ॥२६५-२६६॥ इस प्रकार केवली भगवान्‌का उपदेश सुनकर जिन्हें हर्षातिरेकसे रोमाञ्च निकल आये थे, जिनके नेत्र विकसित थे, जो श्रीमान् थे एवं प्रसन्नमुख थे ऐसे श्रीराम धैर्य—सुख संतोषसे युक्त हुए ॥२६७॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि वहाँ जो भी सुर-असुर और मनुष्य थे वे रामको चरम शरीरी जानकर आश्चर्यसे चकित हो गये तथा अत्यन्त प्रसन्नचित्त हो केवलीरूपी सूर्यके द्वारा प्रकाशित वस्तुतत्त्वकी प्रशंसा करने लगे ॥२६८॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें रामके धर्म-श्रवणका वर्णन करनेवाला एकसौ पाँचवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१०५॥

षडुत्तरशतं पर्व

वृषभः खेचराणां तद्भक्तिभूषो विभीषणः । निर्भीषणमहाभूषं वृषभं व्योमवाससाम् ॥१॥
पाणियुग्ममहाम्भोजभूषितोत्तमदेहभृत् । स नमस्कृत्य पप्रच्छ धीमान् सकलभूषणम् ॥२॥
भगवन् पद्मनाभेन किमनेन भवान्तरे । सुकृतं येन माहात्म्यं प्रतिपन्नोऽयमीदृशम् ॥३॥
अस्य पत्नी सती सीता दण्डकारण्यवर्तिनः । केनानुबन्धदोषेण राक्षसेन तदा हृता ॥४॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु शास्त्राणि सकलं विदन् । कृत्याकृत्यविवेकज्ञो धर्माधर्मविचक्षणः ॥५॥
प्रधानगुणसम्पन्नो भूत्वा मोहवशं गतः । पतङ्गत्वमितः कस्मात्परस्त्रीलोभपावके ॥६॥
भ्रातृपक्षाभिलाषेण भूत्वा वनचरोऽपि सन् । लक्ष्मणेनेह संग्रामे स कथं भुवि सूदितः ॥७॥
स सादृग्बलवानासीद्विद्याधरमहेश्वरः । कृतानेकाद्भुतः प्राप्तः कथं मरणमीदृशम् ॥८॥
अथ केवलिनो वाणी जगाद बहुजन्मगम् । संसारे परमं वैरमेतेनाऽऽसीत्सहानयोः ॥९॥
इह जम्बूमतिद्वीपे भरते क्षेत्रनामनि । नगरे नयदत्ताख्यो वाणिजोऽभूत्समस्वकः ॥१०॥
सुनन्दा गेहिनी तस्य धनदत्तः शरीरजः । द्विजोऽयो वसुदत्तस्तत्सुहृद्यज्ञबलिद्विजः ॥११॥
वणिक्सागरदत्ताख्यस्तत्रैव नगरेऽपरः । पत्नी रत्नप्रभा तस्य गुणवत्युदितात्मजा ॥१२॥
रूपयौवनलावण्यकान्तिसद्विभ्रमान्विका । अनुजो गुणवान्नामा तस्या आसीत्सुचेतसः ॥१३॥

अथानन्तर जो विद्याधरोंमें प्रधान था, रामकी भक्ति ही जिसका आभूषण थी, और जो हस्तयुगलरूपी महाकमलोंसे सुशोभित मस्तकको धारण कर रहा था ऐसे बुद्धिमान् विभीषणने निर्भय तेजरूपी आभूषणसे सहित एवं निर्ग्रन्थ मुनियोंमें प्रधान उन सकलभूषण केवलीको नमस्कार कर पूछा कि ॥१-२॥ हे भगवन् ! इन रामने भवान्तरमें ऐसा कौन-सा पुण्य किया था जिसके फलस्वरूप ये इस प्रकारके माहात्म्यको प्राप्त हुए हैं ॥३॥ जब ये दण्डकवनमें रह गये थे तब इनकी पतिव्रता पत्नी सीताको किस संस्कार दोषसे रावणने हरा था ॥४॥ रावण धर्म, अर्थ, काम और मोक्षविषयक समस्त शास्त्रोंका अच्छा जानकार था, कृत्य-अकृत्यके विवेकको जानता था और धर्म-अधर्मके विषयमें पण्डित था। इस प्रकार यद्यपि वह प्रधान गुणोंसे सम्पन्न था तथापि मोहके वशीभूत हो वह किस कारण परस्त्रीके लोभरूपी अग्निमें पतङ्गपनेको प्राप्त हुआ था ? ॥५-६॥ भाईके पक्षमें अत्यन्त आसक्त लक्ष्मणने वनचारी होकर संग्राममें उसे कैसे मार दिया ॥७॥ रावण वैसा बलवान्, विद्याधरोंका राजा और अनेक अद्भुत कार्योंका कर्ता होकर भी इस प्रकारके मरणको कैसे प्राप्त हो गया ? ॥८॥

तदनन्तर केवली भगवान्की वाणीने कहा कि इस संसारमें राम-लक्ष्मणका रावणके साथ अनेक जन्मसे उत्कट वैर चला आता था ॥९॥ जो इस प्रकार है—इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें एकक्षेत्र नामका नगर था उसमें नयदत्त नामका एक वणिक् रहता था जो कि साधारण धनका स्वामी था। उसकी सुनन्दा नामकी स्त्रीसे एक धनदत्त नामका पुत्र था जो कि रामका जीव था, दूसरा वसुदत्तनामका पुत्र था जो कि लक्ष्मणका जीव था। एक यज्ञबलिनामका ब्राह्मण वसुदेवका मित्र था सो तुम—विभीषणका जीव था ॥१०-११॥ उसी नगरमें एक सागरदत्त नामक दूसरा वणिक् रहता था, उसकी स्त्रीका नाम रत्नप्रभा था और दोनोंके एक गुणवती नामकी पुत्री थी जो कि सीताकी जीव थी ॥१२॥ वह गुणवती, रूप, यौवन, लावण्य, कान्ति और उत्तम विभ्रमसे युक्त थी। सुन्दर चित्तको धारण करनेवाली उस गुणवतीका एक गुणवान् नामका छोटा भाई था

---

१. महाभूषं म० । २. कृतानेकाद्भुतं म० । ३. ससारो ख ।

पित्राकूतं परिज्ञाय प्रीतेन कुलकांक्षिणा । दत्ता प्रौढकुमारी सा धनदत्ताय सूरिणा ॥१४॥
श्रीकान्त इति विख्यातो वणिक्पुत्रोऽपरो धनी । स तां सन्ततमाकांक्षद् प्रस्तमितमानसः ॥१५॥
वित्तस्याल्पतयावज्ञां धनदत्ते विधाय च । श्रीकान्तायोद्यता[1] दातुं माता तां क्षुद्रमानसा ॥१६॥
विचेष्टितमिदं ज्ञात्वा वसुदत्तः प्रियाग्रजः । यज्ञदत्तूपदेशेन श्रीकान्तं हन्तुमुद्यतः ॥१७॥
मण्डलाग्रं समुद्यम्य रात्रौ तमसि गह्वरे । निःशब्दपदविन्यासो नीलवस्त्रावगुण्ठितः ॥१८॥
श्रीकान्तं भवनोद्याने प्रमादिनमवस्थितम् । गत्वा प्राहरदेषोऽपि श्रीकान्तेनासिना हतः ॥१९॥
एवमन्योन्यघातेन मृत्युं तौ समुपागतौ । विन्ध्यपादमहारण्ये समुत्पन्नौ कुरङ्गकौ ॥२०॥
दुर्जनैर्धनदत्ताय कुमारी वारिता ततः । क्रुध्यन्ति ते हि निर्व्याजादुपदेशे तु किं पुनः ॥२१॥
तेन दुर्दैवयुना भ्रातुः कुमार्यापगमेन च । धनदत्तो गृहाद्दुःखी देशानभ्रमदाकुलः ॥२२॥
धनदत्तापरिप्राप्तिश्रा साऽपि बाला सुदुःखिता । अनिष्टान्यवरा गेहे नियुक्तान्नप्रदाविधौ ॥२३॥
मिथ्यादृष्टिस्वभावेन द्वेष्टि दृष्ट्वा निरम्बरम् । साऽसूयते समाक्रोशत्यपि निर्भर्त्सयत्यपि ॥२४॥
जिनशासनमेकान्तान्न श्रद्धत्तेऽतिदुर्जना । मिथ्यादर्शनसक्तात्मा कर्मबन्धानुरूपतः ॥२५॥
ततः कालागमनेन [illegible] । [illegible] ॥ द्वौ तत्र वसतौ कुरङ्गकौ ॥२६॥
पूर्वानुबन्धदोषेण तस्या एव कृते पुनः । मृगावन्योन्यमुद्वृत्तौ हत्वा शूकरतां गतौ ॥२७॥

जो कि भामण्डलका जीव था ॥१३॥ जब गुणवती युवावस्थाको प्राप्त हुई तब पिताका अभिप्राय जानकर कुलकी इच्छा करनेवाले बुद्धिमान् गुणवान्‌ने प्रसन्न होकर उसे नयदत्तके पुत्र धनदत्तके लिए देना निश्चित कर दिया ॥१४॥ उसी नगरीमें एक श्रीकान्त नामका दूसरा वणिक् पुत्र था। जो अत्यन्त धनाढ्य था तथा गुणवतीके रूपसे अपहृतचित्त होनेके कारण निरन्तर उसकी इच्छा करता था। यह श्रीकान्त रावणका जीव था ॥१५॥ गुणवतीकी माता क्षुद्र हृदयवाली थी, इसलिए वह धनकी अल्पताके कारण धनदत्तके ऊपर अवज्ञाका भाव रख श्रीकान्तको गुणवती देनेके लिए उद्यत हो गई। तदनन्तर धनदत्तका छोटा भाई वसुदत्त यह चेष्टा जान यज्ञदत्तके उपदेशसे श्रीकान्तको मारनेके लिए उद्यत हुआ ॥१६-१७॥ एक दिन वह रात्रिके सघन अन्धकारमें तलवार उठा चुपके-चुपके पैर रखता हुआ नीलवस्त्रसे अवगुण्ठित हो श्रीकान्तके घर गया सो वह घरके उद्यानमें प्रमादसहित बैठा था जिससे वसुदत्तने जाकर उसपर प्रहार किया। बदलेमें श्रीकान्तने भी उसपर तलवारसे प्रहार किया ॥१८-१९॥ इस तरह परस्परके घातसे दोनों मरे और मरकर विन्ध्याचलकी महाअटवीमें मृग हुए ॥२०॥ दुर्जन मनुष्योंने धनदत्तके लिए कुमारीका लेना मना कर दिया सो ठीक ही है क्योंकि दुर्जन किसी कारणके बिना ही क्रोध करते हैं फिर उपदेश मिलनेपर तो कहना ही क्या है ? ॥२१॥ भाईके कुमरण और कुमारीके नहीं मिलनेसे धनदत्त बहुत दुःखी हुआ जिससे वह घरसे निकलकर आकुल होता हुआ अनेक देशोंमें भ्रमण करता रहा ॥२२॥ इधर जिसे दूसरा वर इष्ट नहीं था ऐसी गुणवती धनदत्तकी प्राप्ति नहीं होनेसे बहुत दुःखी हुई। वह अपने घरमें अन्न देनेके कार्यमें नियुक्त की गई अर्थात् घरमें सबके लिए भोजन परोसनेका काम उसे सौंपा गया ॥२३॥ वह अपने मिथ्यादृष्टि स्वभावके कारण निर्ग्रन्थ मुनिको देखकर उनसे सदा द्वेष करती थी, उनके प्रति ईर्ष्या रखती थी, उन्हें गाली देती थी तथा उनका तिरस्कार भी करती थी ॥२४॥ कर्मबन्धके अनुरूप जिसकी आत्मा सदा मिथ्यादर्शनमें आसक्त रहती थी ऐसी वह अतिदुष्टा जिनशासनका बिलकुल ही श्रद्धान नहीं करती थी ॥२५॥

तदनन्तर आयु समाप्त होने पर आर्त्तध्यानसे मर कर यह उसी अटवीमें मृगी हुई जिसमें कि वे श्रीकान्त और वसुदत्तके जीव मृग हुए थे ॥२६॥ पूर्व संस्कारके दोषसे उसी मृगीके लिए

---

१. श्रीकान्तायोद्यतो दातुं श्रान्तां तां क्षुद्रमानसः म० । २. नियुक्तान्नप्रदा-म० ।

द्विरदौ महिषौ गावौ प्लवगौ द्वीपिनौ वृकौ । रुरू च तौ समुत्पन्नावन्योन्यं च हतस्तथा ॥२८॥
जले स्थले च भूयोऽपि वैरानुसरणोद्यतौ । भ्राम्यतः पापकर्माणौ म्रियमाणौ तथाविधम् ॥२९॥
परमं दुःखितः सोऽपि धनदत्तोऽध्वखेदितः । अन्यदाऽस्तङ्गते भानौ श्रमणाश्रममागमत् ॥३०॥
तत्र साधूनभाषिष्ट तृषितोऽप्युदकं मम । प्रयच्छत सुखिन्नस्य यूयं हि सुकृतप्रियाः ॥३१॥
तत्रैकश्रमणोऽवोचत् मधुरं परिसान्त्वयन् । रात्रावप्यमृतं युक्तं न पातुं किं पुनर्जलम् ॥३२॥
चक्षुर्व्यापारनिर्मुक्ते काले पापैकदारुणे । अदृष्टसूक्ष्मजन्तवाक्ये मार्गार्कास्त [1]विभास्करे ॥३३॥
आतुरेणाऽपि भोक्तव्यं विकाले भद्र न त्वया । मा पत व्यसनोदारसलिले भवसागरे ॥३४॥
उपशान्तस्ततः पुण्यकथाभिः सोऽल्पशक्तिकः । अणुव्रतधरो जातो दयालिङ्गितमानसः ॥३५॥
कालधर्मं च सम्प्राप्य सौधर्मे सत्सुरोऽभवत् । मौलिकुण्डलकेयूरहारमुद्राङ्कितोज्ज्वलः ॥३६॥
पूर्वपुण्योदयात्तत्र सुरस्त्रीसुखलालितः । महाप्सरःपरिवारो मोदते वज्रपाणिवत् ॥३७॥
ततश्च्युतः समुत्पन्नः पुरश्रेष्ठमहापुरे । धारिण्यां श्रेष्ठिनो मेरोर्जैनात् पद्मरुचिः सुतः ॥३८॥
तत्रैव च पुरे नाम्नः छत्रच्छायो नरेश्वरः । महिषीगुणमञ्जूषा श्रीदत्ता तस्य भामिनी ॥३९॥
आगच्छन्नन्यदा गोष्ठं गत्वा तुरगपृष्ठतः । अपश्यद् भुवि पर्यस्तं मैरवो[3] जीर्णकं वृषम् ॥४०॥

दोनों फिर लड़े और परस्पर एक दूसरेको मार कर शूकर अवस्थाको प्राप्त हुए ॥२७॥ तदनन्तर वे दोनों हाथी, भैंसा, बैल, बानर, चीता, भेड़िया और कृष्ण मृग हुए तथा सभी पर्यायोंमें एक दूसरेको मार कर मरे ॥२८॥ पाप कार्यमें तत्पर रहने वाले वे दोनों जलमें, स्थलमें जहाँ भी उत्पन्न होते थे वहीं वैरका अनुसरण करनेमें तत्पर रहते थे और उसी प्रकार परस्पर एक दूसरे को मार कर मरते थे ॥२९॥

अथानन्तर मार्गके खेदसे थका अत्यन्त दुःखी धनदत्त, एक दिन सूर्यास्त होजाने पर मुनियों के आश्रममें पहुँचा ॥३०॥ वह प्यासा था इसलिए उसने मुनियोंसे कहा कि मैं बहुत दुःखी होरहा हूँ अतः मुझे पानी दीजिए आप लोग पुण्य करना अच्छा समझते हैं ॥३१॥ उनमेंसे एक मुनिने सान्त्वना देते हुए मधुर शब्द कहे कि रात्रिमें अमृत पीना भी उचित नहीं है फिर पानीकी तो बात ही क्या है ? ॥३२॥ हे वत्स ! जब नेत्र अपना व्यापार छोड़ देते हैं, जो पापकी प्रवृत्ति होने से अत्यन्त दारुण है, जो नहीं दिखनेवाले सूक्ष्म जन्तुओंसे सहित है, तथा जब सूर्यका अभाव हो जाता है ऐसे समय भोजन मत कर ॥३३॥ हे भद्र ! तुझे दुःखी होने पर भी असमयमें नहीं खाना चाहिए। तू दुःखरूपी गम्भीर पानीसे भरे हुए संसार-सागरमें मत पड़ ॥३४॥ तदनन्तर मुनिराजकी पुण्य कथासे वह शान्त हो गया, उसका चित्त दयासे आलिङ्गित हो उठा और इनके फलस्वरूप वह अणुव्रतका धारी हो गया। यतश्च वह अल्पशक्तिका धारक था इसलिए महाव्रती नहीं बन सका ॥३५॥ तदनन्तर आयुका अन्त आनेपर मरणको प्राप्त हो वह सौधर्म स्वर्गमें मुकुट, कुंडल, बाजूबन्द, हार, मुद्रा और अनन्तसे सुशोभित उत्तम देव हुआ ॥३६॥ वहाँ वह पूर्व-पुण्योदयके कारण देवाङ्गनाओंके सुखसे लालित था, अप्सराओंके बड़े भारी परिवारसे सहित था तथा इन्द्रके समान आनन्दसे समय व्यतीत करता था ॥३७॥

तदनन्तर वहाँसे च्युत होकर महापुर नामक श्रेष्ठ नगरमें जैनधर्मके श्रद्धालु मेरु नामक सेठकी धारिणी नामक स्त्रीसे पद्मरुचि नामक पुत्र हुआ ॥३८॥ उसी नगरमें एक छत्रच्छाय नामका राजा रहता था। उसकी श्रीदत्ता नामकी स्त्री थी जो कि रानीके गुणोंकी मानो पिटारी ही थी ॥३९॥ किसी एक दिन पद्मरुचि घोड़े पर चढ़ा अपने गोकुलकी ओर आ रहा था, सो मार्गमें

१. विभास्वरे म० । २. तुरङ्गदो-ख०, ज०, क० । ३. मेरुपुत्रः = पद्मरुचिः ।

सुगन्धिवस्त्रमाल्योऽसाववतीर्य तुरङ्गतः । आदरेण तमुत्थाणं दयावानातुरं गतः ॥४१॥
दीयमाने जपे तेन कर्णे पञ्चनमस्कृतेः । शृण्वन्नुक्षशरीरो स शरीरान्निरितस्ततः[1] ॥४२॥
श्रीदत्तायां च सञ्जातं तनुदुःकर्मजालकः । छत्रच्छायोऽभवत्तोषी दुर्लभे पुत्रजन्मनि ॥४३॥
उदारा नगरे शोभा जनिता द्रव्यसम्पदा । समुत्सवो महान् जातो वादित्रबधिरीकृतः ॥४४॥
ततः कर्मानुभावेन पूर्वजन्मसमस्मरन् । दौर्गत्यं दारुणं तत्र वाहदुःखानुभविनम् ॥४५॥
श्रुतिं पञ्चनमस्कारौं चेतसा च सदा वहन् । बालक्रीडाप्रसक्तोऽपि महासुभगविभ्रमः ॥४६॥
कदाचिद् विहरन् प्राप्तः स तां वृषभृतक्षितिम् । पर्यज्ञासीत् प्रदेशांश्च पूर्वमाचरितान् स्वयम् ॥४७॥
वृषभध्वजनामासौ कुमारो वृषभूमिकाम् । अवतीर्य गजात् स्वैरमपश्यद् दुःखिताशयः ॥४८॥
दृष्ट्वं समाधिरत्नस्य दातारं श्लाघ्यचेष्टितम् । अपश्यन् दर्शने तस्य दध्यौ चौपयिकं ततः ॥४९॥
अथ कैलासशृङ्गाभं कारयित्वा जिनालयम् । चरितानि पुराणानि पट्टकादिष्वलेखयत् ॥५०॥
द्वारदेशे च तस्यैव पटं स्वभवचित्रितम् । पुरुषैः पालने न्यस्तैरधिष्ठितमतिष्ठिपत् ॥५१॥
वन्दारुश्चैत्यभवनं तत् पद्मरुचिरागमत् । अपश्यच्च प्रहृष्टात्मा तच्चित्रं विस्मितस्ततः ॥५२॥

उसने पृथिवी पर पड़ा एक बूढ़ा बैल देखा ॥४०॥ सुगन्धित वस्त्र तथा माला आदिको धारण करनेवाला पद्मरुचि घोड़ेसे उतर कर दयालु होता हुआ आदरपूर्वक उस बैलके पास गया ॥४१॥ पद्मरुचिने उसके कानमें पञ्चनमस्कार मन्त्रका जाप सुनाया। सो जब पद्मरुचि उसके कानमें पञ्चनमस्कार मन्त्रका जप दे रहा था तभी उस मन्त्रको सुनती हुई बैलकी आत्मा उस शरीरसे बाहर निकल गई अर्थात् नमस्कार मन्त्र सुनते-सुनते उसके प्राण निकल गये ॥४२॥ मन्त्रके प्रभावसे जिसके कर्मोंका जाल कुछ कम हो गया था ऐसा वह पद्मरुचि, उसी नगरके राजा छत्रच्छायकी श्रीदत्ता नामकी रानीके पुत्र हुआ। यतश्च छत्रच्छायके पुत्र नहीं था इसलिए वह उसके उत्पन्न होनेपर बहुत संतुष्ट हुआ ॥४३॥ नगरमें बहुत भारी संपदा खर्च कर अत्यधिक शोभा की गई तथा बाजोंसे जो बहरा हो रहा था ऐसा महान् उत्सव किया गया ॥४४॥

तदनन्तर कर्मोंके संस्कारसे उसे अपने पूर्व जन्मका स्मरण हो गया। बैलपर्यायमें बोझा ढोना, शीत तथा आतप आदिसे उत्पन्न दारुण दुःख उसने भोगे थे तथा जो उसे पञ्चनमस्कार मन्त्र श्रवण करनेका अवसर मिला था वह सब उसकी स्मृतिपटलमें झूलने लगा। महासुन्दर चेष्टाओंको धारण करता हुआ वह, जब बालकालीन क्रीड़ाओंमें आसक्त रहता था तब भी मनमें पञ्चनमस्कार मन्त्रके श्रवणका सदा ध्यान रखता था ॥४५-४६॥ किसी एक दिन वह विहार करता हुआ उस स्थान पर पहुँचा जहाँ उस बैलका मरण हुआ था। उसने एक-एक कर अपने घूमनेके सब स्थानोंको पहिचान लिया ॥४७॥

तदनन्तर वृषभध्वज नामको धारण करनेवाला वह राजकुमार हाथीसे उतर कर दुःखित चित्त होता हुआ इच्छानुसार बहुत देर तक बैलके मरनेकी उस भूमिको देखता रहा ॥४८॥ समाधि मरण रूपी रत्नके दाता तथा उत्तम चेष्टाओंसे सहित उस बुद्धिमान् पद्मरुचिको जब वह नहीं देख सका तब उसने उसके देखनेके लिए योग्य उपायका विचार किया ॥४९॥ अथानन्तर उसने उसी स्थान पर कैलासके शिखरके समान एक जिनमन्दिर बनवाया, उसमें चित्रपट आदि पर महापुरुषोंके चरित तथा पुराण लिखवाये ॥५०॥ उसी मन्दिरके द्वारपर उसने अपने पूर्वभवके चित्रसे चित्रित एक चित्रपट लगवा दिया तथा उसकी परीक्षा करनेके लिए चतुर मनुष्य उसके समीप खड़े कर दिये ॥५१॥

तदनन्तर वन्दनाकी इच्छा करता हुआ पद्मरुचि एक दिन उस मन्दिरमें आया और

१. निर्गतः ।

तस्मिन्नद्वेक्षणो यावदसौ तस्मिन्नमीक्षते । वृषध्वजस्य पुरुषैस्तावत् संवादितं श्रुतम् ॥५३॥
ततो महर्द्धिसम्पन्नः समारुह्य द्विपोत्तमम् । इष्टसङ्गमनाकांक्षी राजपुत्रः समागमत् ॥५४॥
अवतीर्य च नागेन्द्रादविशज्जिनमन्दिरम् । पश्यन्तं च तदासक्तं धारणेयं निरैक्षत ॥५५॥
नेत्रास्यहस्तसत्कारसूचितोत्तुङ्गविस्मयम् । अन्तसंस्तं पादयोरेनं परिज्ञाय वृषध्वजः ॥५६॥
गोवृत्तमरणं तस्मै धारिणीसूनुरब्रवीत् । राजपुत्रोऽगदीत् सोऽहमिति विस्तारिलोचनः ॥५७॥
सम्भ्रमेण च सम्पूज्य गुरुं शिष्यवरो यथा । तुष्टः [1]पद्मरुचिं राजतनयः समुदाहरत् ॥५८॥
मृत्युसङ्कटसम्पूर्णे काले मत्तोऽधिकं परम् । त्वमस्मद्बन्धुरिव प्राप्तः समाधेः प्रापकोऽभवत् ॥५९॥
समाध्यमृतपाथेयं त्वया दत्तं दयालुना । स पश्य तृप्तिसम्पन्नः सम्प्राप्तोऽहमिमं भवम् ॥६०॥
नैव तत् कुरुते माता न पिता न सहोदरः । न बान्धवा न गोत्राणां प्रियं यन्मे त्वया कृतम् ॥६१॥
नेक्षे पञ्चनमस्कारश्रुतिदानविनिष्क्रयम् । तथापि मे परा भक्तिः त्वयि कारयतीरितम् ॥६२॥
आज्ञां प्रयच्छ मे नाथ ब्रूहि किं करवाणि ते । आज्ञादानेन मां भक्तं भजस्व पुरुषोत्तम ॥६३॥
गृहाण सकलं राज्यमहं ते दासरूपकः । नियुज्यतामयं देहः कर्मण्यभिमतीहिते ॥६४॥
एवमादिसुसम्भाषं तयोः प्रेमाभवत् परम् । सम्यक्त्वं चैव राज्यं च सम्प्रयोगश्च सन्ततः ॥६५॥
[2]अस्थिमज्जानुरक्तौ तौ [3]सागारव्रतसङ्गतौ । जिनबिम्बानि चैत्यानि भुञ्जतिष्ठिपतां स्थिरौ ॥६६॥

हर्षित चित्त होता हुआ उस चित्रको देखने लगा। तदनन्तर आश्चर्यचकित हो उसी चित्रपर नेत्र गड़ा कर ज्यों ही वह उसे देखता है कि वृषभध्वज राजकुमारके सेवकोंने उसे उसका समाचार सुना दिया ॥५२-५३॥ तदनन्तर विशाल सम्पदासे सहित राजपुत्र, इष्टके समागमकी इच्छा करता हुआ उत्तम हाथी पर सवार हो वहाँ आया ॥५४॥ हाथीसे उतर कर उसने जिनमन्दिरमें प्रवेश किया और वहाँ बड़ी तल्लीनताके साथ उस चित्रपटको देखते हुए धारिणीसुत—पद्मरुचिको देखा ॥५५॥ जिसके नेत्र, मुख तथा हाथोंके सत्कारसे अत्यधिक आश्चर्य सूचित हो रहा था ऐसे उस पद्मरुचिको पहिचान कर वृषभध्वजने उसके चरणोंमें नमस्कार किया ॥५६॥ पद्मरुचिने उसके लिए बैलके दुःखपूर्ण मरणका समाचार कहा जिसे सुन कर उत्फुल्ल लोचनोंको धारण करनेवाला राजपुत्र बोला कि वह बैल मैं ही हूँ ॥५७॥ जिस प्रकार उत्तम शिष्य गुरुकी पूजा कर सन्तुष्ट होता है उसी प्रकार वृषभध्वज राजकुमार भी शीघ्रतासे पद्मरुचिकी पूजा कर सन्तुष्ट हुआ। पूजाके बाद राजपुत्रने पद्मरुचिसे कहा कि मृत्युके संकटसे परिपूर्ण उस कालमें आप मेरे प्रियबन्धुके समान समाधि प्राप्त करानेके लिए आये थे ॥५८-५९॥ उस समय तुमने दयालु होकर जो समाधिरूपी अमृतका सम्बल मेरे लिए दिया था देखो, उसीसे तृप्त होकर मैं इस भवको प्राप्त हुआ हूँ ॥६०॥ तुमने जो मेरा भला किया है वह न माता करती है, न पिता करता है, न सगा भाई करता है, न परिवारके अन्य लोग करते हैं और न देव ही करते हैं ॥६१॥ तुमने जो मुझे पञ्चनमस्कार मन्त्र श्रवणका दान दिया था उसका मूल्य यद्यपि मैं नहीं देखता तथापि आपमें जो मेरी परम भक्ति है वही यह चेष्टा करा रही है ॥६२॥ हे नाथ! मुझे आज्ञा दो मैं आपका क्या करूँ? हे पुरुषोत्तम! आज्ञा देकर मुझ भक्तको अनुगृहीत करो ॥६३॥ तुम यह समस्त राज्य ले लो, मैं तुम्हारा दास रहूँगा। अभिलषित कार्यमें इस शरीरको नियुक्त कीजिए ॥६४॥ इत्यादि उत्तम शब्दोंके साथ-साथ उन दोनोंमें परम प्रेम होगया, दोनोंको ही सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई, वह राज्य दोनोंका सम्मिलित राज्य हुआ और दोनोंका संयोग चिर संयोग होगया ॥६५॥ जिनका अनुराग ऊपर ही ऊपर न रहकर हड्डी तथा मज्जा तक पहुँच गया था ऐसे वे दोनों श्रावकके व्रतसे सहित हुए। स्थिर चित्तके धारण करनेवाले उन दोनोंने पृथिवी

१. धारिण्याः पुत्रं पद्मरुचिम् । २. अस्थिमज्जनुरक्तौ म० । ३. सागरव्रत म० ।

स्तूपैश्च धवलाम्भोजमुकुलप्रतिमामितैः । समपादयत्सां कोणीं शतशः कृतभूषणाम् ॥६७॥
ततः समाधिमाराध्य मरणे वृषभध्वजः । त्रिदशोऽभवदीशाने पुण्यकर्मफलानुभूः ॥६८॥
सुरस्त्रीनयनाम्भोजविकासिनयनद्युतिः । तथाऽक्रीडत् परिध्यातसम्पन्नसकलेप्सितः ॥६९॥
काले पद्मरुचिः प्राप्य समाधिमरणं तथा । ईशान एव गीर्वाणः कान्तो वैमानिकोऽभवत् ॥७०॥
च्युत्वापरविदेहे तु विजयाचलमस्तके । नन्द्यावर्तपुरेशस्य राज्ञो नन्दीश्वरश्रुतेः ॥७१॥
तनयः कनकाभायां नयनानन्दसंज्ञकः । खेचरेन्द्रश्रियं तत्र भुक्त्वा [illegible] ॥७२॥
ततः श्रामण्यमास्थाय कृत्वा सुविकटं तपः । कालधर्मं समासाद्य माहेन्द्रं कल्पमाश्रयत् ॥७३॥
मनोज्ञपञ्चविषयद्वारं परमसुन्दरम् । परिप्राप सुखं तत्र पुण्यवल्लीमहाफलम् ॥७४॥
च्युतस्ततो गिरेर्मेरोर्भागे पूर्वदिशि स्थिते । क्षेमार्यां पुरि सञ्जातः श्रीचन्द्र इति विश्रुतः ॥७५॥
माता पद्मावती तस्य पिता विपुलवाहनः । तत्र स्वर्गोपभुक्तस्य निष्यन्दं कर्मणोऽभजत् ॥७६॥
तस्य पुण्यानुभावेन कोशो विषयसाधनम् । दिने दिने[1] परां वृद्धिमसेवत समन्ततः ॥७७॥
ग्रामस्थानीयसम्पन्नां पृथिवीं विविधाकराम् । प्रियामिव महाप्रीत्या श्रीचन्द्रः समपालयत् ॥७८॥
हावभावमनोज्ञाभिर्नारीभिस्तत्र लालितः । पर्यरंसीत् सुरस्त्रीभिः सुरेन्द्र इव सङ्गतः ॥७९॥
संवत्सरसहस्राणि सुभूरीणि क्षणोपमम् । तस्य दोदुन्दुकस्येव महैश्वर्ययुजोऽगमन् ॥८०॥
गुप्तिव्रतसमित्युग्रः सङ्घेन महताऽऽवृतः । समाधिगुप्तयोगीन्द्रः पुरं तदभ्यदागमत् ॥८१॥

पर अनेक जिनमन्दिर और जिनबिम्ब बनवाये ॥६६॥ सफेद कमलकी बोंडियोंके समान स्तूपोंसे सैकड़ों बार पृथिवीको अलंकृत किया ॥६७॥

तदनन्तर मरणके समय समाधिकी आराधना कर वृषभध्वज ईशान स्वर्गमें पुण्य कर्मका फल भोगनेवाला देव हुआ ॥६८॥ उस देवके नयनोंकी कान्ति देवाङ्गनाओंके नयनकमलोंको विकसित करनेवाली थी, तथा क्रीड़ा करते समय ध्यान करते ही उसके समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते थे ॥६९॥ इधर पद्मरुचि भी आयुके अन्तमें समाधिमरण प्राप्तकर ईशान स्वर्गमें ही सुन्दर वैमानिक देव हुआ ॥७०॥ तदनन्तर पद्मरुचिका जीव वहाँसे चय कर पश्चिम विदेह क्षेत्रके विजयार्ध पर्वत पर नन्द्यावर्त नगरके राजा नन्दीश्वरकी कनकाभा रानीसे नयनानन्द नामका पुत्र हुआ। वहाँ उसने चिरकाल तक विद्याधर राजाकी विशाल लक्ष्मीका उपभोग किया ॥७१-७२॥ तदनन्तर मुनि-दीक्षा ले अत्यन्त विकट तप किया और अन्तमें समाधिमरण प्राप्त कर माहेन्द्र स्वर्ग प्राप्त किया ॥७३॥ वहाँ उसने पुण्यरूपी लताके महाफलके समान पञ्चेन्द्रियोंके विषय द्वारसे अत्यन्त सुन्दर मनोहर सुख प्राप्त किया ॥७४॥

तदनन्तर वहाँसे च्युत होकर मेरु पर्वतके पश्चिम दिग्भागमें स्थित क्षेमपुरी नगरीमें श्रीचन्द्र नामका प्रसिद्ध राजपुत्र हुआ ॥७५॥ वहाँ उसकी माताका नाम पद्मावती और पिताका नाम विपुलवाहन था। वह वहाँ स्वर्गमें भोगे हुए कर्मका जो निःस्यन्द शेष रहा था उसीका मानो उपभोग करता था ॥७६॥ उसके पुण्य प्रभावसे उसका खजाना, देश तथा सैन्य बल सब ओरसे प्रतिदिन परम वृद्धिको प्राप्त हो रहा था ॥७७॥ वह श्रीचन्द्र, एक ग्रामके स्थानापन्न, नानाखानोंसे सहित विशाल पृथिवीका प्रियाके समान महाप्रीतिसे पालन करता था ॥७८॥ वहाँ वह हाव-भावसे मनोज्ञ स्त्रियोंके द्वारा लालित होता हुआ देवाङ्गनाओंसे सहित देवेन्द्रके समान क्रीड़ा करता था ॥७९॥ दोदुंदुक देवके समान महान् ऐश्वर्यको प्राप्त हुए उस श्रीचन्द्रके कई हजार वर्ष एक क्षणके समान व्यतीत हो गये ॥८०॥

अथानन्तर किसी समय व्रत समिति और गुप्तिसे श्रेष्ठ एवं बहुत भारी संघसे आवृत

---

१. दिनं म० ।

उद्यानेऽवस्थितस्यास्य तत्र ज्ञात्वा जनोऽखिलः । वन्दनागमनं कर्तुं सम्मदालापतत्परः[1] ॥८२॥
स्तुवतोऽस्य परं भक्त्या नादं घनकुलोपमम् । कर्णमादाय संशुश्रुवे श्रीचन्द्रोऽभूच्छदन्तिकात् ॥८३॥
कस्यैष श्रूयते नादो महासागरसन्निभः । अजानद्भिः समादिष्टैस्तैरमात्यः कृतोऽन्तिकः ॥८४॥
ज्ञायतां कस्य नादोऽयमिति राज्ञा स भाषितः । गत्वा ज्ञात्वा पराकृत्य मूर्ध्नि प्राह्मवेदयत् ॥८५॥
ततो विकचराजीवराजमाननिरीक्षणः । सस्त्रीकः सम्मदोद्भूतपुलकः प्रस्थितो नृपः ॥८६॥
प्रसन्नमुखतारेशं निरीक्ष्य मुनिपुङ्गवम् । सम्भ्रमी शिरसा नत्वा न्यसीदद्विनयाद्भुवि ॥८७॥
भव्याम्भोजप्रधानस्य मुनिभास्करदर्शने । तस्यासीदात्मसंवेद्यः कोऽपि प्रेममहाभरः ॥८८॥
ततः परमगम्भीरः सर्वश्रुतिविशारदः । अदाज्जनमहौघाय मुनिस्तत्त्वोपदेशनम् ॥८९॥
अनगारं सहागारं धर्मं [2]द्विविधमब्रवीत् । अनेकभेदसंयुक्तं संसारोत्तारणावहम् ॥९०॥
करणं चरणं द्रव्यं प्रथमं च सभेदकम् । अनुयोगमुखं[3] योगी जगाद वदतां वरः ॥९१॥
आक्षेपणीं पराक्षेपकारिणीमकरोत् कथाम् । ततो निक्षेपणीं तत्त्वमतनिक्षेपकोविदाम् ॥९२॥
संवेजनीं च संसारभयप्रत्ययबोधनीम् । निर्वेदनीं तथा पुण्यां भोगवैराग्यकारिणीम् ॥९३॥
सन्धावतोऽस्य संसारे कर्मयोगेन देहिनः । कृच्छ्रेण महता प्राप्तिर्मुक्तिमार्गस्य जायते ॥९४॥

समाधिगुप्त नामक मुनिराज उस नगरमें आये ॥८१॥ 'मुनिराज आकर उद्यानमें ठहरे हैं।' यह जानकर मुनिकी वन्दना करनेके लिए नगरके सब लोग हर्षपूर्वक बात-चीत करते हुए उद्यानमें गये ॥८२॥ भक्तिपूर्वक स्तुति करनेवाले जनसमूहका मेघमण्डलके समान जो भारी शब्द हो रहा था उसे कान लगाकर श्रीचन्द्रने सुना और निकटवर्ती लोगोंसे पूछा कि यह महासागरके समान किसका शब्द सुनाई दे रहा है ? जिन लोगोंसे राजाने पूछा था वे उस शब्दका कारण नहीं जानते थे इसलिए उन्होंने मन्त्रीको राजाके निकट कर दिया ॥८३-८४॥ तब राजाने मंत्रीसे कहा कि मालूम करो यह किसका शब्द है ? इसके उत्तरमें मंत्रीने जाकर तथा सब समाचार जानकर वापिस आ निवेदन किया कि उद्यानमें मुनिराज आये हैं ॥८५॥

तदनन्तर जिसके नेत्र खिले हुए कमलके समान सुशोभित हो रहे थे तथा जिसके हर्षके रोमाञ्च उठ आये थे ऐसा राजा श्रीचन्द्र अपनी स्त्रीके साथ मुनिवन्दनाके लिए चला ॥८६॥ वहाँ प्रसन्न मुखचन्द्रके धारक मुनिराजके दर्शन कर राजाने शीघ्रतासे शिर झुकाकर उन्हें नमस्कार किया और उसके बाद वह विनयपूर्वक पृथिवी पर बैठ गया ॥८७॥ भव्यरूपी कमलोंमें प्रधान राजा श्रीचन्द्रको मुनिरूपी सूर्यके दर्शन होनेपर अपने आप अनुभवमें आने योग्य कोई अद्भुत महाप्रेम उत्पन्न हुआ ॥८८॥ तदनन्तर परमगम्भीर और सर्वशास्त्रोंके विशारद मुनिराजने उस अपार जनसमूहके लिए तत्त्वोंका उपदेश दिया ॥८९॥ उन्होंने कहा कि अवान्तर अनेक भेदोंसे सहित तथा संसार सागरसे तारने वाला धर्म, अनगार और सागारके भेदसे दो प्रकारका है ॥९०॥ वक्ताओंमें श्रेष्ठ मुनिराजने अनुयोग द्वारसे वर्णन करते हुए कहा कि अनुयोगके १ प्रथमानुयोग २ करणानुयोग ३ चरणानुयोग और ४ द्रव्यानुयोगके भेदसे चार भेद हैं ॥९१॥ तदनन्तर उन्होंने अन्य मत-मतान्तरोंकी आलोचना करनेवाली आक्षेपणी कथा की। फिर स्वकीय तत्त्वका निरूपण करनेमें निपुण निक्षेपणी कथा की। तदनन्तर संसारसे भय उत्पन्न करनेवाली संवेजनी कथा की और उसके बाद भोगोंसे वैराग्य उत्पन्न करनेवाली पुण्यवर्धक निर्वेदनी कथा की ॥९२-९३॥ उन्होंने कहा कि कर्मयोगसे संसारमें दौड़ लगानेवाले इस प्राणीको मोक्षमार्गकी प्राप्ति बड़े कष्टसे

१. सम्मदं तोषतत्परः म० । २. तैरमा कृत्यतोऽन्तिकः ब०, -रमात्यकृतोऽन्तिकः ख०, ज० । ३. विविध-म० । ४. मुख्यं म० ।

सन्ध्याबुद्बुदफेनोर्मिविद्युदिन्द्रधनुःसमः । भङ्गुरत्वेन लोकोऽयं न किञ्चिदिह सारकम् ॥९५॥
नरके दुःखमेकान्तादेति तिर्यक्षु वाऽसुमान् । मनुष्यत्रिदशानां च सुखेनैवैष तृप्यति ॥९६॥
माहेन्द्रभोगसम्पत्तिर्यो न तृप्तिमुपागतः । स कथं क्षुद्रकैस्तृप्तिं व्रजेन्मनुजभोगकैः ॥९७॥
कथञ्चिद् दुर्लभं लब्ध्वा निधानमरवनो यथा । नरत्वं मुह्यति व्यर्थं विषयास्वादलोभतः ॥९८॥
काष्ठेः शुष्केन्धनैस्तृप्तिः काम्बुवेरापगाजलैः । विषयास्वादसौख्यैः का तृप्तिरस्य शरीरिणः ॥९९॥
मज्जन्निव जले खिन्नो विषयामिषमोहितः । वृकोऽपि मन्दतामेति समोऽन्धीकृतमानसः ॥१००॥
दिवा तपति तिग्मांशुर्मदनस्तु दिवानिशम् । समस्ति वारणं भानोर्मदनस्य न विद्यते ॥१०१॥
जन्ममृत्युजरादुःखं संसारे स्मृतिभीतिदम् । अरहट्टघटीयन्त्रसन्ततं कर्मसम्भवम् ॥१०२॥
अजङ्गमं यथाऽन्येन यन्त्रं भ्रान्तपरिभ्रमम् । शरीरमध्रुवं पूति तथा स्नेहोऽत्र मोहतः[1] ॥१०३॥
जलबुद्बुदनिःसारं ज्ञात्वा मनुजसम्भवम् । निर्विण्णाः कुलजा मार्गं प्रपद्यन्ते जिनोदितम् ॥१०४॥
उत्साहकवचच्छन्ना निश्चयाश्वस्थसादिनः । ध्यानखड्गधरा धीराः प्रस्थिताः सुगतिं प्रति ॥१०५॥
अन्यच्छरीरमन्योऽहमिति सञ्चिन्त्य निश्चिताः । तथा शरीरके स्नेहं धर्मं कुरुत मानवाः ॥१०६॥
सुखदुःखादयस्तुल्याः स्वजनेतरयोः समाः । रागद्वेषविनिर्मुक्ताः श्रमणाः पुरुषोत्तमाः ॥१०७॥
सैषिणं [illegible] दुःखा [illegible] दुःखश्वापदसङ्कुला ॥१०८॥

होती है ॥९४॥ यह संसार विनाशी होनेके कारण संन्ध्या, बबूले, फेन, तरङ्ग, बिजली और इन्द्र-धनुषके समान है। इसमें कुछ भी सार नहीं है ॥९५॥ यह प्राणी नरक अथवा तिर्यञ्चगतिमें एकान्त रूपसे दुःख ही प्राप्त करता है और मनुष्य तथा देवोंके सुखमें यह तृप्त नहीं होता है ॥९६॥ जो इन्द्र सम्बन्धी भोग-सम्पदाओंसे तृप्त नहीं हुआ वह मनुष्योंके क्षुद्र भोगोंसे कैसे तृप्त हो सकता है ? ॥९७॥ जिस प्रकार निर्धन मनुष्य किसी तरह दुर्लभ खजाना पाकर यदि प्रमाद करता है तो उसका वह खजाना व्यर्थ चला जाता है। इसी प्रकार यह प्राणी किसी तरह दुर्लभ मनुष्य पर्याय पाकर विषय स्वादके लोभमें पड़ यदि प्रमाद करता है तो उसकी मनुष्य-पर्याय व्यर्थ चली जाती है ॥९८॥ सूखे ईन्धनसे अग्निकी तृप्ति क्या है ? नदियोंके जलसे समुद्रकी तृप्ति क्या है ? और विषयोंके आस्वाद-सम्बन्धी सुखसे संसारी प्राणीकी तृप्ति क्या है ? ॥९९॥ जलमें डूबते हुए खिन्न मनुष्यके समान विषय रूपी आमिषसे मोहित हुआ चतुर मनुष्य भी मोहान्धीकृत चित्त होकर मन्दताको प्राप्त हो जाता है ॥१००॥ सूर्य तो दिनमें ही तपता है पर काम रात दिन तपता रहता है। सूर्यका आवरण तो है पर कामका आवरण नहीं है ॥१०१॥ संसारमें अरहटकी घटीके समान निरन्तर कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाला जो जन्म, जरा और मृत्यु सम्बन्धी दुःख है वह स्मरण आते ही भय देने वाला है ॥१०२॥ जिस प्रकार अजंगम यन्त्र जंगम प्राणीके द्वारा घुमाया जाता है उसी प्रकार यह अनित्य तथा बीभत्स शरीर भी चेतन द्वारा घुमाया जाता है। इस शरीरमें जो स्नेह है वह मोहके कारण ही है ॥१०३॥ यह मनुष्य जन्म पानीके बबूलेके समान निःसार है ऐसा जानकर कुलीन मनुष्य विरक्त हो जिन-प्रतिपादित मार्गको प्राप्त होते हैं ॥१०४॥ जो उत्साह रूपी कवचसे आच्छादित हैं, निश्चय रूपी घोड़ेपर सवार हैं और ध्यानरूपी खड्गको धारण करनेवाले हैं ऐसे धीर वीर मनुष्य सुगतिके प्रति प्रस्थान करते हैं ॥१०५॥ हे मानवो ! शरीर जुदा है और मैं जुदा हूँ ऐसा विचार कर निश्चय करो तथा शरीरमें स्नेह छोड़कर धर्म करो ॥१०६॥ जिन्हें सुख-दुःखादि समान हैं, जो स्वजन और परजनोंमें समान हैं तथा राग-द्वेष आदिसे रहित हैं ऐसे मुनि ही पुरुषोत्तम हैं ॥१०७॥ उन्हीं

---

१. 'अजङ्गमं जङ्गमनेययन्त्रं यथा तथा जीवधृतं शरीरम् । बीभत्सु पूति अपि तापकं च स्नेहो वृथापेति हितं त्वमाख्यः' ॥ बृहत्स्वयंभूस्तोत्रे समन्तभद्रस्य ।

निशम्येति मुनेरुक्तं श्रीचन्द्रो बोधिमाश्रितः । पराचीनसुखमागच्छन् विषयास्वादसौख्यतः ॥१०९॥
धृतिकान्ताय पुत्राय दत्त्वा राज्यं महामनाः । समाधिगुप्तनाथस्य पार्श्वे श्रामण्यमग्रहीत् ॥११०॥
सम्यग्भावनया युक्तश्चैयोगी शुद्धिमादधत् । समितिस्थान्वितो गुप्तया रागद्वेषपराङ्मुखः ॥१११॥
रत्नत्रयमहाभूषः क्षान्त्यादिगुणसङ्गतः । जिनशासनसम्पूर्णः श्रमणः सुसमाहितः ॥११२॥
पञ्चोदारव्रताधारः सत्त्वानामनुपालकः । सप्तभीस्थाननिर्मुक्तो धृत्या परमयान्वितः ॥११३॥
सुविहारपरः सोढा परीषहगणान् मुनिः । षष्ठाष्टमार्द्धमासादिकृतसंशुद्धपारणः ॥११४॥
ध्यानस्वाध्याययुक्तात्मा निर्ममोऽतिजितेन्द्रियः । निर्निदानकृतिः शान्तः परः शासनवत्सलः ॥११५॥
प्रासुकाचारकुशलः सङ्गानुग्रहतत्परः । बालाग्रकोटिमात्रेऽपि स्पृहामुक्तः परिग्रहे ॥११६॥
अस्नानमलसाध्वङ्गो[1] निराकाङ्क्षो निरम्बरः । एकरात्रस्थितिर्ग्रामे नगरे पञ्चरात्रभाक् ॥११७॥
कन्दरापुलिनोद्याने प्रशस्तावासमक्रमः । व्युत्सृष्टाङ्गः स्थिरो मौनी विद्वान् सम्यक्तपोरतः ॥११८॥
एवमादिगुणः कृत्वा जर्जरं कर्मपञ्जरम् । श्रीचन्द्रः कालमासाद्य ब्रह्मलोकाधिपोऽभवत् ॥११९॥
निवासे परमे तत्र श्रीकीर्तिद्युतिकान्तिभाक् । चूडामणिकृतालोको भुवनत्रयविश्रुतः ॥१२०॥
ऋद्ध्या परमया क्रीडन्समनुध्यानजन्मना । अहमिन्द्रसुरो यद्वदासीद् भरतभूपतिः ॥१२१॥
नन्दनादिषु देवेन्द्राः सौधर्माद्याः सुसम्पदः । निषेव्युदीरमाणास्तं तदुत्कण्ठापरायणाः ॥१२२॥

मुनियोंने अपने शुक्ल ध्यान रूपी नेत्रके द्वारा दुःख रूपी वन्य पशुओंसे व्याप्त इस अत्यन्त विशाल समस्त कर्मरूपी अटवीको भस्म किया है ॥१०८॥ इस प्रकार मुनिराजका उपदेश सुन कर श्रीचन्द्र विषयास्वाद-सम्बन्धी सुखसे पराङ्मुख हो रत्नत्रयको प्राप्त हो गया ॥१०९॥ फल-स्वरूप उस उदारचेताने धृतिकान्त नामक पुत्रके लिए राज्य देकर समाधिगुप्त मुनिराजके समीप मुनिदीक्षा धारण कर ली ॥११०॥ अब वे श्रीचन्द्रमुनि समीचीन भावनासे सहित थे, त्रियोग सम्बन्धी शुद्धिको धारण करते थे, समितियों और गुप्तियोंसे सहित थे तथा राग-द्वेषसे विमुख थे ॥१११॥ रत्नत्रय रूपी उत्तम अलंकारोंसे युक्त थे, क्षमा आदि गुणोंसे सहित थे, जिन-शासन से ओत-प्रोत थे, श्रमण थे और उत्तम समाधानसे युक्त थे ॥११२॥ पञ्च महाव्रतोंके धारक थे, प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले थे, सात भयोंसे निर्मुक्त थे तथा उत्तम धैर्यसे सहित थे ॥११३॥ ईर्यासमितिपूर्वक उत्तम विहार करनेमें तत्पर थे, परीषहोंके समूहको सहन करने वाले थे, मुनि थे, तथा बेला, तेला और पक्षोपवासादि करनेके बाद पारणा करते थे ॥११४॥ ध्यान और स्वाध्यायमें निरन्तर लीन रहते थे; ममता रहित थे, इन्द्रियोंको तीव्रतासे जीतने वाले थे, उनके कार्य निदान अर्थात् आगामी भोगाकांक्षासे रहित होते थे, वे परम शान्त थे और जिन शासनके परम स्नेही थे ॥११५॥ अहिंसक आचरण करनेमें कुशल थे, मुनिसंघपर अनुग्रह करनेमें तत्पर थे, और बालकी अनीमात्र परिग्रहमें भी इच्छासे रहित थे ॥११६॥ स्नानके अभावमें उनका शरीर मलसे सुशोभित था, वे आसक्तिसे रहित थे, दिगम्बर थे, गाँवमें एक रात्रि और नगरमें पाँच रात्रि तक ही ठहरते थे ॥११७॥ पर्वतकी गुफाओं, नदियोंके तट अथवा बाग-बगीचोंमें ही उनका उत्तम निवास होता था, उन्होंने शरीरसे ममता छोड़ दी थी, वे स्थिर थे, मौनी थे, विद्वान् थे और सम्यक् तपमें तत्पर थे ॥११८॥ इत्यादि गुणोंसे सहित श्रीचन्द्रमुनि कामरूपी पञ्जरको जर्जर—जीर्ण-शीर्णकर तथा समाधिमरण प्राप्तकर ब्रह्मस्वर्गके इन्द्र हुए ॥११९॥

वहाँ वे उत्तम विमानमें श्री, कीर्ति, द्युति और कान्तिको प्राप्त थे, चूड़ामणिके द्वारा प्रकाश करनेवाले थे, तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध थे ॥१२०॥ यद्यपि ध्यान करते ही उत्पन्न होनेवाली परम ऋद्धिसे क्रीड़ा करते थे तथापि अहमिन्द्रदेवके समान अथवा भरत चक्रवर्तीके समान निर्लिप्त ही रहते थे ॥१२१॥ नन्दन वन आदि स्थानोंमें उत्तम सम्पदाओंसे युक्त सौधर्म आदि इन्द्र जब

---

१. साध्वङ्गे म० ।

मणिहेमात्मके कान्ते मुक्ताजालविराजिते । रमते स्म विमानेऽसौ दिव्यस्त्रीनयनोत्सवः ॥१२३॥
या [1]श्रीश्चन्द्रचरस्यास्य स वा वाचस्पतेरपि । संवत्सरशतेनाऽपि शक्या वक्तुं विभीषण ॥१२४॥
अनर्घ्यं परमं रत्नं रहस्यमुपमोज्झितम् । त्रैलोक्यप्रकटं मूढा न विदुर्जिनशासनम् ॥१२५॥
मुनिधर्मजिनेन्द्राणां माहात्म्यमुपलभ्य सत् । मिथ्याभिमानसंमूढा धर्मं प्रति पराङ्मुखाः ॥१२६॥
इहलोकसुखस्यार्थं शिशुर्यः कुरुते रतः । तदसौ कुरुते स्वस्य ध्यायन्नपि न यद्द्विषः ॥१२७॥
कर्मबन्धस्य चित्रत्वान्न सर्वो बोधिभाजनः । केचिल्लब्ध्वाऽपि मुञ्चन्ति पुनरन्यव्यपेक्षया ॥१२८॥
बहुकुत्सितलोकेन गृहीते बहुदोषके । [2]मारंध्वं निन्दिते धर्मे कुरुध्वं [3]चित्स्वबन्धुताम् ॥१२९॥
जिनशासनतोऽन्यत्र दुःखमुक्तिर्न विद्यते । तस्मादनन्यचेतस्का जिनमर्चयताऽनिशम् ॥१३०॥
त्रिदशत्वान्मनुष्यत्वं सुरत्वं मानुषत्वतः । एवं [4]मनोहरं प्राप्तो धनदत्तो निवेदितः ॥१३१॥
वक्ष्याम्यतः समासेन वसुदत्तादिसंसृतिम् । कर्मणां चित्रतायोगात् चित्रत्वमनुबिभ्रतीम् ॥१३२॥
पुरे मृणालकुण्डाख्ये[5] प्रतापी यशसोज्ज्वलः । राजा विजयसेनाख्ये रत्नचूलास्य भामिनी ॥१३३॥
वज्रकम्बुः सुतस्तस्य हेमवत्यस्य भामिनी । शम्भुनामा तयोः पुत्रः प्रख्यातो धरणीतले ॥१३४॥
पुरोधाः परमस्तस्य श्रीभूतिस्तत्त्वदर्शनः । तस्य पत्नी गुणैर्युक्ता पत्नी नाम्ना सरस्वती ॥१३५॥
आसीद्गुणवती याऽसौ तिर्यग्योनिषु सा चिरम् । भ्रान्त्वा कर्मानुभावेन सम्यग्धर्मविवर्जिता ॥१३६॥

उनकी ओर देखते थे तब उन जैसा वैभव प्राप्त करनेके लिए उत्कण्ठित हो जाते थे ॥१२२॥ देवाङ्गनाओंके नेत्रोंको उत्सव प्रदान करनेवाले वे ब्रह्मेन्द्र, मणि तथा सुवर्णसे निर्मित एवं मोतियोंकी जालीसे सुशोभित सुन्दर विमानमें रमण करते थे ॥१२३॥ श्रीसकलभूषण केवली कहते हैं कि हे विभीषण ! श्रीचन्द्रके जीव ब्रह्मेन्द्रकी जो विभूति थी उसे बृहस्पति भी सौ वर्षमें भी नहीं कह सकता ॥१२४॥ जिनशासन अमूल्य रत्न है, अनुपम रहस्य है तथा तीनों लोकोंमें प्रकट है परन्तु मोही जीव इसे नहीं जानते ॥१२५॥ मुनिधर्म तथा जिनेन्द्रदेवके उत्तम माहात्म्य को जानकर भी मिथ्या अभिमानमें चूर रहनेवाले मनुष्य धर्मसे विमुख रहते हैं ॥१२६॥ जो बालक अर्थात् अज्ञानी इस लोकसम्बन्धी सुखके लिए मिथ्यामतमें प्रीति करता है वह अपना ध्यान रखता हुआ भी उसका वह अहित करता है जिसे शत्रु भी नहीं करते ॥१२७॥ कर्म-बन्धकी विचित्रता होनेसे सभी लोग रत्नत्रयके धारक नहीं हो जाते । कितने ही लोग उसे प्राप्त कर भी दूसरेके चक्रमें पड़कर पुनः छोड़ देते हैं ॥१२८॥ हे भव्यजनो ! अनेक खोटे मनुष्यों के द्वारा गृहीत एवं बहुत दोषोंसे सहित निन्दित धर्ममें रमण मत करो । अपने चित् स्वरूपके साथ बन्धुताका काम करो ॥१२९॥ जिनशासनको छोड़कर अन्यत्र दुःखसे मुक्ति नहीं है इसलिए हे भव्यजनो ! अनन्यचित्त हो निरन्तर जिनभगवान्‌की अर्चा करो ॥१३०॥ इस प्रकार देवसे उत्तम मनुष्य पर्याय और मनुष्यसे उत्तम देवपर्यायको प्राप्त करनेवाले धनदत्तका वर्णन किया ॥१३१॥ अब संक्षेपसे कर्मोंकी विचित्रताके कारण विविधरूपताको धारण करनेवाले, वसुदत्तादिके भ्रमणका वर्णन करता हूँ ॥१३२॥

अथानन्तर मृणालकुण्डनामक नगरमें प्रतापवान् तथा यशसे उज्ज्वल विजयसेन नामका राजा रहता था । रत्नचूला उसकी स्त्री थी ॥१३३॥ उन दोनोंके वज्रकम्बु नामका पुत्र था और हेमवती उसकी स्त्री थी । उन दोनोंके पृथिवीतलपर प्रसिद्ध शम्भु नामका पुत्र था ॥१३४॥ उसके श्रीभूति नामका परमतत्त्वदर्शी पुरोहित था और उसकी स्त्रीके योग्य गुणोंसे सहित सरस्वती नामकी स्त्री थी ॥१३५॥ पहले जिस गुणवतीका उल्लेख कर आये हैं वह समीचीन धर्मसे रहित

---

१. श्रीचन्द्रचरस्यास्य म० । २. मा गं भा कुरुत । मारध्वं म० । ३. चेत्स्वबन्धुना म०, ख०, ज० । ४. मनोहरप्राप्तो म० । ५. मृणालकुण्डाख्यो म० ।

मोहेन निन्दनैः स्त्रैणैर्निदानैरभिगूहनैः । स्त्रीत्वमुत्तमदुःखार्तं भजमाना[1] पुनः पुनः ॥१३७॥
साधुष्ववर्णवादेन दुरवस्थाखलीकृता । परिप्राप्ता करेणुत्वमासीन्मन्दाकिनीतटे ॥१३८॥
सुमहापङ्कनिर्मग्ना परावशस्थिराङ्गिका । विमुक्तमन्दसूत्कारा मुकुलीकृतलोचना ॥१३९॥
सुमूर्षन्ती समालोक्य खेचरेण कृपावता । तदाकर्णजनाभ्यर्णौ कर्णेजपमुपाहृतः ॥१४०॥
ततस्तनुकषायत्वात्क्षेत्रगुणतोऽपि च । प्रत्याख्यानाच्च तद्भावीभूतेः सा सुताऽभवत् ॥१४१॥
भिक्षार्थिनं मुनिं गेहं प्रविष्टमवलोक्य सा । उपहासात्ततः पित्रा शमिता श्राविकाऽभवत् ॥१४२॥
तस्याः परमरूपायाः सुकन्यायाः कृतेऽवनौ । उत्कण्ठिता महीपालाः शम्भुस्तेषु विशेषतः ॥१४३॥
मिथ्यादृष्टिः कुबेरेण समो भवति यद्यपि । तथाऽपि नास्मै देयेयं प्रतिज्ञेति पुरोधसः ॥१४४॥
ततः प्रकुपितेनासौ शम्भुना शयितो निशि । हिंसितः सुरतां प्राप्तो जिनधर्मप्रसादतः ॥१४५॥
ततो वेदवतीमेनां प्रत्यक्षां देवतामिव । अनिच्छन्तीं प्रभुत्वेन बलादुद्वोढुमुद्यतः ॥१४६॥
मनसा[2] कामतप्तेन तामालिङ्ग्योपचुम्ब्य च । विस्फुरन्तीं रतिं साक्षान्मैथुनेनोपचक्रमे ॥१४७॥
ततः प्रकुपितात्यन्तं चण्डा वह्निशिखेव सा । विरक्तहृदया बाला वेपमानशरीरिका ॥१४८॥
आत्मनः शीलनाशेन वधेन जनकस्य च । बिभ्राणा परमं दुःखं प्राह लोहितलोचना ॥१४९॥
व्यापाद्य पितरं पाप कामितोऽस्मि बलेन यत् । [3]अबुधार्थमुपास्ये ततोऽहं पुरुषाधम ॥१५०॥

हो कर्मोंके प्रभावसे तिर्यञ्च योनिमें चिरकाल तक भ्रमण करती रही ॥१३६॥ वह मोह, निन्दा, स्त्री सम्बन्धी निदान तथा अपवाद आदिके कारण बार-बार तीव्र दुःखसे युक्त स्त्रीपर्यायको प्राप्त करती रही ॥१३७॥ तदनन्तर साधुओंका अवर्णवाद करनेके कारण वह दुःखमयी अवस्थासे दुखी होती हुई गङ्गा नदीके तटपर हथिनी हुई ॥१३८॥ वहाँ वह बहुत भारी कीचड़में फँस गई जिससे उसका शरीर एकदम पराधीन होकर अचल हो गया। वह धीरे-धीरे सू-सू शब्द छोड़ने लगी तथा नेत्र बन्दकर मरणासन्न अवस्थाको प्राप्त हुई ॥१३९॥ तदनन्तर उसे मरती देख तरङ्गवेग नामक दयालु विद्याधरने उसे कानमें नमस्कार मन्त्रका जाप सुनाया ॥१४०॥ उस मन्त्र के प्रभावसे उसकी कषाय मन्द पड़ गई, उसने उसी स्थानका क्षेत्र संन्यास धारण किया तथा उक्त विद्याधरने उसे प्रत्याख्यान-संयम दिया। इन सब कारणोंके मिलनेसे वह श्रीभूतिनामक पुरोहितके वेदवती नामकी पुत्री हुई ॥१४१॥ एक बार भिक्षाके लिए घरमें प्रविष्ट मुनिको देखकर उसने उनकी हँसी की तब पिताने उसे समझाया जिससे वह श्राविका हो गई ॥१४२॥ वेदवती परम सुन्दरी कन्या थी अतः उसे प्राप्त करनेके लिए पृथिवीतलके राजा अत्यन्त उत्कण्ठित थे और उनमें शम्भु विशेष रूपसे उत्कण्ठित था ॥१४३॥ पुरोहितकी यह प्रतिज्ञा थी कि यद्यपि मिथ्यादृष्टि पुरुष सम्पत्तिमें कुबेरके समान हो तथापि उसके लिए यह कन्या नहीं दूँगा ॥१४४॥ इस प्रतिज्ञासे शम्भु बहुत कुपित हुआ और उसने रात्रिमें सोते हुए पुरोहितको मार डाला। पुरोहित मरकर जिनधर्मके प्रसादसे देव हुआ ॥१४५॥

तदनन्तर जो साक्षात् देवताके समान जान पड़ती थी ऐसी इस वेदवतीको उसकी इच्छा न रहनेपर भी शम्भु अपने अधिकारसे बलात् विवाहनेके लिए उद्यत हुआ ॥१४६॥ साक्षात् रतिके समान शोभायमान उस वेदवतीका शम्भुने कामके द्वारा संतप्त मनसे आलिङ्गन किया। चुम्बन किया और उसके साथ बलात् मैथुन किया ॥१४७॥ तदनन्तर जो अत्यन्त कुपित थी, अग्निशिखाके समान तीक्ष्ण थी, जिसका हृदय विरक्त था, शरीर काँप रहा था, जो अपने शील के नाश और पिताके वधसे तीव्र दुःख धारण कर रही थी—तथा जिसके नेत्र लाल-लाल थे ऐसी उस वेदवतीने शम्भुसे कहा कि अरे पापी ! नीच पुरुष ! तूने पिताको मारकर बलात् मेरे

१. भजमानाः म० । २. कामतप्तेन म० । ३. -मुपश्ये म० ।

परलोकगतस्यापि पितुर्नाहं मनोरथम् । क्षुम्पामि तेन दुर्दृष्टिकामनान्मरणं वरम् ॥१५१॥
हरिकान्तार्यिकायाश्च पार्श्वं गत्वा ससम्भ्रमम् । प्रणम्य साऽकरोद्बाला तपः परमदुष्करम् ॥१५२॥
लुञ्चनोत्थितसंरूक्षमूर्द्धजा मांसवर्जिता । प्रकटास्थिसिराजाला तपसा शुष्कदेहिका ॥१५३॥
कालधर्मं परिप्राप्य स्वर्गलोकमुपागता । पुण्योदयसमासादितं सुरसौख्यमसेवत ॥१५४॥
तया विरहितः शम्भुर्लघुत्वं भुवने गतः । विबन्धुभृत्यलक्ष्मीको प्राप्तदुन्मत्ततां कुधीः ॥१५५॥
मिथ्याभिमानसम्मूढो जिनवाक्यात्पराङ्मुखः । हसति श्रमणान् दृष्ट्वा दुरुक्तं च प्रवर्तते ॥१५६॥
मधुमांससुराहारः पापानुमननोद्यतः । तिर्यङ्नरकवासेषु सुदुःखेष्वभ्रमच्चिरम् ॥१५७॥
अथोपशमनात्किञ्चित्कर्मणः क्लेशकारिणः । कुशध्वजस्य विप्रस्य सावित्र्यां तनयोऽभवत् ॥१५८॥
प्रभासकुन्दनामानौ प्राप्य बोधिं सुदुर्लभाम् । पार्श्वे विचित्रसेनस्य मुनेर्दीक्षामसेवत ॥१५९॥
विमुक्तरतिकन्दर्पगर्वसंरम्भमत्सरः । निर्विकारस्तपश्चक्रे दयावान्विजितेन्द्रियः ॥१६०॥
षष्ठाष्टमार्द्धमासादिनिराहारः स्पृहोज्झितः । यत्रास्तमितनिलयो वसन् शून्यवनादिषु ॥१६१॥
गुणशीलसुसम्पन्नः परीषहसहः परः । आतापनरतो ग्रीष्मे पिनद्धमलकञ्चुकः ॥१६२॥
वर्षासु मेघमुक्ताभिरम्भिः विक्लन्नतरोरधः । प्रालेयपटसंवीतो हेमन्ते पुलिनस्थितः ॥१६३॥
एवमादिक्रियायुक्तः सोऽन्यदा सिद्धमन्दिरम् । सम्मेदं वन्दितुं यातः स्मृतसप्तभवान्तरम् ॥१६४॥

साथ काम सेवन किया है, इसलिए मैं तेरे वधके लिए ही आगामी पर्यायमें उत्पन्न होऊँगी। यद्यपि मेरे पिता परलोक चले गये हैं तथापि मैं उनकी इच्छा नष्ट नहीं करूँगी। मिथ्यादृष्टि पुरुषको चाहनेकी अपेक्षा मर जाना अच्छा है ॥१४८-१५१॥

तदनन्तर उस बालाने शीघ्र ही हरिकान्ता नामक आर्यिकाके पास जाकर दीक्षा ले अत्यन्त कठिन तपश्चरण किया ॥१५२॥ लोंच करनेके बाद उसके शिरपर रूखे बाल निकल आये थे, तपके कारण उसका शरीर ऐसा सूख गया था मानो मांस उसमें है ही नहीं और हड्डी तथा नसोंका समूह स्पष्ट दिखाई देने लगा था ॥१५३॥ आयुके अन्तमें मरण कर वह ब्रह्मस्वर्ग गई। वहाँ पुण्योदयसे प्राप्त हुए देवोंके सुखका उपभोग करने लगी ॥१५४॥ वेदवतीसे रहित शम्भु, संसारमें एकदम हीनताको प्राप्त हो गया, उसके भाई-बन्धु, दासी-दास तथा लक्ष्मी आदि सब छूट गये और वह दुर्बुद्धि उन्मत्त अवस्थाको प्राप्त हो गया ॥१५५॥ वह झूठ-मूठके अभिमानमें चूर हो रहा था तथा जिनेन्द्र भगवान्‌के वचनोंसे पराङ्मुख रहता था। वह मुनियोंको देख उनकी हँसी उड़ाता तथा उनके प्रति दुष्ट वचन कहता था ॥१५६॥ इस प्रकार मधु मांस और मदिरा ही जिसका आहार था तथा जो पापकी अनुमोदना करनेमें उद्यत रहता था ऐसा शम्भु तीव्र दुःख देनेवाले नरक और तिर्यञ्चगतिमें चिरकाल तक भ्रमण करता रहा ॥१५७॥

अथानन्तर दुःखदायी पाप कर्मका कुछ उपशम होनेसे वह कुशध्वज ब्राह्मणकी सावित्री नामक स्त्रीमें पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१५८॥ प्रभासकुन्द उसका नाम था। फिर अत्यन्त दुर्लभ रत्नत्रयको पाकर उसने विचित्रसेन मुनिके समीप दीक्षा धारण कर ली ॥१५९॥ जिसने रति काम, गर्व, क्रोध तथा मत्सरको छोड़ दिया था, जो दयालु था तथा इन्द्रियोंको जीतनेवाला था ऐसे उस प्रभासकुन्दने निर्विकार होकर तपश्चरण किया ॥१६०॥ वह दो दिन, तीन दिन तथा एक पक्ष आदिके उपवास करता था, उसकी सब प्रकारकी इच्छाएँ छूट गई थीं, जहाँ सूर्य अस्त हो जाता था वहीं वह शून्य वन आदिमें ठहर जाता था ॥१६१॥ गुण और शीलसे सम्पन्न था, परीषहोंको सहन करनेवाला था, ग्रीष्मऋतुमें आतापनयोग धारण करनेमें तत्पर रहता था, मलरूपी कञ्चुकसे सहित था, वर्षाऋतुमें वृक्षके नीचे मेघोंके द्वारा छोड़े हुए जलसे भीगता रहता था और हेमन्तऋतुमें बर्फरूपी वस्त्रसे आवृत होकर नदियोंके तटपर स्थित रहता था, इत्यादि क्रियाओंसे युक्त हुआ वह प्रभासकुन्द किसी समय उस सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखरकी वन्दना करनेके लिए गया।

कनकप्रभसंज्ञस्य तत्र विद्याभृतो विभोः । विभूतिं गगने वीक्ष्य प्रशान्तोऽपि न्यदानयत् ॥१६५॥
अलं विभवमुक्तेन तावन्मुक्तिपदेन मे । ईदृगैश्वर्यमाप्नोमि तपोमाहात्म्यमस्ति चेत् ॥१६६॥
अहो पश्यत मूढत्वं जनितं पापकर्मभिः । रत्नं त्रैलोक्यमूल्यं यद्विक्रीतं शाकमुष्टिना ॥१६७॥
भवन्त्युद्भवकालेषु विपद्यन्ते विपर्यये । धियः कर्मानुभावेन केन किं क्रियतामिह ॥१६८॥
निदानदूषितात्मासौ कृत्वातिविकटं तपः । सनत्कुमारमारुह्य भोगानत्रैवतेऽन्वभूत् ॥१६९॥
च्युतः पुण्यावशेषेण भोगस्मरणमानसः । रत्नश्रवःसुतो जातो कैकस्यां रावणाभिधः ॥१७०॥
लङ्कायां च महैश्वर्यं प्राप्तो दुर्ललितक्रियम् । कृतानेकमहाश्चर्यं प्रतापाक्रान्तविष्टपम् ॥१७१॥
असौ तु ब्रह्मलोकेशो दशसागरसंमितम् । स्थित्वा कालं च्युतो जातो रामो दशरथात्मजः ॥१७२॥
तस्यापराजितासूनोः पूर्वपुण्यावशेषतः । भूत्या रूपेण वीर्येण समो जगति दुर्लभः ॥१७३॥
धनदत्तोऽभवत्तोऽसौ सोऽयं पद्मो मनोहरः । यशसा चन्द्रकान्तेन समाविष्टदिगन्तरः ॥१७४॥
वसुदत्तोऽभवद्यश्च श्रीभूतिश्च द्विजः क्रमात् । जातो नारायणः सोऽयं सौमित्रिः श्रीलतातरुः ॥१७५॥
श्रीकान्तः क्रमयोगेन योऽसौ शम्भुरभागतः । अभूत्प्रभासकुन्दश्च सञ्जातः स दशाननः ॥१७६॥
येनेह भरतक्षेत्रे खण्डत्रयमखण्डितम् । अङ्गुलान्तरविन्यस्तमिव वश्यत्वमाहृतम् ॥१७७॥
आसीद् गुणवती या तु श्रीभूतेश्च सुता क्रमात् । सेयं जनकराजस्य सीतेति तनयाऽजनि ॥१७८॥

जो कि स्मृतिमें आते ही पापका नाश करनेवाला था ॥१६२-१६४॥ यद्यपि वह शान्त था तथापि उसने वहाँ आकाशमें कनकप्रभ नामक विद्याधरकी विभूति देख निदान किया कि मुझे वैभवसे रहित मुक्तिपदकी आवश्यकता नहीं है। यदि मेरे तपमें कुछ माहात्म्य है तो मैं ऐसा ऐश्वर्य प्राप्त करूँ ॥१६५-१६६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अहो पापकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई मूर्खता तो देखो कि उसने त्रिलोकी मूल्य रत्नको शाककी एक मुट्ठीमें बेच दिया ॥१६७॥ अथवा ठीक है क्योंकि कर्मोंके प्रभावसे अभ्युदयके समय मनुष्यके सद्बुद्धि उत्पन्न होती है और विपरीत समय में सद्बुद्धि नष्ट हो जाती है। इस संसारमें कौन क्या कर सकता है ? ॥१६८॥

तदनन्तर जिसकी आत्मा निदानसे दूषित हो चुकी थी ऐसा प्रभासकुन्द, अत्यन्त विकट तप कर सनत्कुमार स्वर्गमें आरूढ़ हुआ और वहाँ भोगोंका उपभोग करने लगा ॥१६९॥ तत्पश्चात् भोगोंके स्मरण करनेमें जिसका मन लग रहा था ऐसा वह देव अवशिष्ट पुण्यके प्रभाव वश वहाँसे च्युत हो लङ्का नगरीमें राजा रत्नश्रवा और उनकी रानी कैकसीके रावण नामका पुत्र हुआ। वहाँ वह निदानके अनुसार उस महान् ऐश्वर्यको प्राप्त हुआ जिसकी क्रियाएँ अत्यन्त विलासपूर्ण थीं, जिसमें बड़े-बड़े आश्चर्यके काम किये गये थे तथा जिसने प्रतापसे समस्त लोकको व्याप्त कर रक्खा था ॥१७०-१७१॥

तदनन्तर श्रीचन्द्रका जीव, जो ब्रह्मलोकमें इन्द्र हुआ था वहाँ दश सागर प्रमाण काल तक रह कर च्युत हो दशरथका पुत्र राम हुआ। उसकी माताका नाम अपराजिता था। पूर्व पुण्यके अवशिष्ट रहनेसे इस संसारमें विभूति, रूप और पराक्रमसे रामकी तुलना करनेवाला पुरुष दुर्लभ था ॥१७२-१७३॥ पहले जो धनदत्त था वही चन्द्रमाके समान यशसे संसारको व्याप्त करने वाला मनोहर राम हुआ है ॥१७४॥ पहले जो वसुदत्त था फिर श्रीभूति ब्राह्मण हुआ वही क्रमसे लक्ष्मी रूपी लताके आधारके लिए वृक्षस्वरूप नारायण पदका धारी यह लक्ष्मण हुआ है ॥१७५॥ पहले जो श्रीकान्त था वही क्रम-क्रमसे शम्भु हुआ फिर प्रभासकुन्द हुआ और अब रावण हुआ था ॥१७६॥ वह रावण कि जिसने भरतक्षेत्रके सम्पूर्ण तीन खण्ड अंगुलियोंके बीचमें बचे हुएके समान अपने वश कर लिये थे ॥१७७॥ जो पहले गुणवती थी फिर क्रमसे श्रीभूति

---

१. निदानं चक्रेऽन्यदा नयन् म० ।

जाता च बलदेवस्य पत्नी विनयशालिनी । शीलकोशी सुरेशस्य शचीव सुविचेष्टिता ॥१७९॥
योऽसौ गुणवतीभ्राता गुणवानभवत्तदा । सोऽयं भामण्डलो जातः सुहृल्लक्ष्मणरामयोः ॥१८०॥
अत्रामृतमतीदेवी ब्रह्मलोकनिवासिनी । च्यवतेऽद्येति तत्रैव काले कुण्डलमण्डितः ॥१८१॥
विदेहायास्तयोर्गर्भे समुत्पन्नः समागमः । तदभ्रातृयुगलं जातमनघं सुमनोहरम् ॥१८२॥
योऽसौ यज्ञबलिर्विप्रः स त्वं जातो विभीषणः । असौ वृषभकेतुस्तु सुग्रीवोऽयं कपिध्वजः ॥१८३॥
त एते पूर्वया प्रीत्या तथा पुण्यानुभावतः । यूयं रक्तात्मका जाता रामस्याखिलकर्मणः ॥१८४॥
पूर्वभाजननं बालेर्यदपृच्छद् विभीषणः । केवली च समाचख्यौ शृणु ते श्रेणिकाधुना ॥१८५॥
रागद्वेषादिदुःखौघे संसारे चतुरङ्गके । वृन्दारण्यस्थले जज्ञुरेकः कृष्णमृगोऽभवत् ॥१८६॥
साधुस्वाध्यायनिःस्वानं श्रुत्वायुर्विलये मृगः । ऐरावते विनिस्थाने प्राप नृत्वमनिन्दितम् ॥१८७॥
सम्यग्दृष्टिः पिताऽभ्यासीद् विहीताख्यः सुचेष्टितः । माता शिवमतिः पुत्रो मेघदत्तस्तयोरयम् ॥१८८॥
अणुव्रतधरः सोऽयं जिनपूजासमुद्यतः । वन्दारुः कृतसत्कालः कल्पमैशानमाप्नवत् ॥१८९॥
च्युत्वा जम्बूमति द्वीपे विदेहे पूर्वभूमिके । पुरोऽस्ति विजयावत्याः समीपे सततोत्सवः ॥१९०॥
सुग्रामः पत्तनाकारो नामतो मत्तकोकिलः । कान्तशोकः प्रभुस्तत्र तस्य रत्नाकिनी प्रिया ॥१९१॥
तयोः सुप्रभनामाऽभूत्तनयश्चारुदर्शनः । बहुबन्धुजनाकीर्णः शुभैकचरितप्रियः ॥१९२॥
संसारे दुर्लभां प्राप्य बोधिं जिनमतानुगाम् । अग्रहीत् संयमं पार्श्वे संयतस्य महामुनेः ॥१९३॥

पुरोहितकी वेदवती पुत्री हुई थी वही अब क्रमसे राजा जनक की सीता नामकी पुत्री हुई है ॥१७८॥ यह सीता बलदेव—रामकी विनयवती पत्नी है, शीलका खजाना है तथा इन्द्रकी इन्द्राणीके समान सुन्दर चेष्टाओंको धारण करने वाली है ॥१७९॥ उस समय जो गुणवतीका भाई गुणवान् था वही यह रामका परममित्र भामण्डल हुआ है ॥१८०॥ ब्रह्मलोकमें निवास करने वाली गुणवतीका जीव अमृतमती देवी जिस समय च्युत हुई थी उसी समय कुण्डल-मण्डित भी च्युत हुआ था सो इन दोनोंका जनककी रानी विदेहाके गर्भमें समागम हुआ। यह बहिन-भाईका जोड़ा अत्यन्त मनोहर तथा निर्दोष था ॥१८१–१८२॥ जो पहले यज्ञबलि ब्राह्मण था वह तू विभीषण हुआ है और जो वृषभकेतु था वह यह वानरकी ध्वजासे युक्त सुग्रीव हुआ है ॥१८३॥ इस प्रकार तुम सभी पूर्व प्रीतिसे तथा पुण्यके प्रभावसे पुण्यकर्मा रामके साथ प्रीति रखने वाले हुए हो ॥१८४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इसके बाद विभीषणने सकल-भूषण केवलीसे बालिके पूर्वभव पूछे सो केवलीने जो निरूपण किया उसे मैं कहता हूँ सो सुन ॥१८५॥

राग, द्वेष आदि दुःखोंके समूहसे भरे हुए इस चतुर्गति रूप संसारमें वृन्दावनके बीच एक कृष्णमृग रहता था ॥१८६॥ आयुके अन्तके समय वह मृग मुनियोंके स्वाध्याय का शब्द सुन ऐरावत क्षेत्रके विनीतामा नगरमें उत्तम मनुष्य पर्यायको प्राप्त हुआ ॥१८७॥ वहाँ सम्यग्दृष्टि तथा उत्तम चेष्टाओंको धारण करनेवाला विहीत नामका पुरुष इसका पिता था और शिवमति इसकी माता थी। उन दोनोंके यह मेघदत्त नामका पुत्र हुआ था ॥१८८॥ मेघदत्त अणुव्रतका धारी था, जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनेमें सदा उद्यत रहता था और जिन-चैत्यालयोंकी वन्दना करने वाला था। आयुके अन्तमें समाधिमरण कर वह ऐशान स्वर्गमें उत्पन्न हुआ ॥१८९॥ जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें विजयावती नगरीके समीप एक मत्तकोकिल नामका उत्तम ग्राम है जिसमें निरन्तर उत्सव होता रहता है तथा जो नगरके समान सुन्दर है। उस ग्रामका स्वामी कान्तशोक था तथा रत्नाकिनी उसकी स्त्री थी। मेघदत्तका जीव ऐशान स्वर्गसे च्युत होकर उन्हीं दोनोंके सुप्रभ नामका सुन्दर पुत्र हुआ। यह सुप्रभ अनेक बन्धुजनोंसे सहित था तथा शुभ आचार ही उसे प्रिय था ॥१९०–१९२॥ उसने संसारमें दुर्लभ जिनमतानुगामी रत्नत्रयको पाकर संयतनामा महामुनिके

अतप्यत सुप्रभस्तीव्रं यथाविधि महाशयः । संवत्सरसहस्राणि बहूनि सुमहामनाः ॥१९४॥
नानालब्धियुक्तोऽपि यो न गर्वमुपागतः । संयोगजेषु भावेषु त्यक्तवान् ममतां च यः ॥१९५॥
विकटायुःसिसाधयिषुः स्यात्स महामुनिः । पर्यायं केवलं नायुरतः सर्वार्थसिद्धिमैत् ॥१९६॥
त्रयस्त्रिंशत्समुद्रायुस्तत्र भुक्त्वा महासुखम् । वालिनाख्योऽजनिष्टासौ प्रतापी खेचराधिपः ॥१९७॥
ऋक्षरदर्शनराज्यं यः प्राप किष्किन्धभूधरे । भ्राता यस्यैव सुग्रीवो महागुणसमन्वितः ॥१९८॥
विरोधमनिरूढोऽपि लङ्काधिपतिना समम् । विन्यस्याश्रु श्रियं जीवदयार्थं दीक्षितोऽभवत् ॥१९९॥
दशाननेन गर्वेण सामर्थ्येन समुद्धृतः । पादाङ्गुष्ठेन कैलासस्त्याजितो येन साधुना ॥२००॥
निर्दह्य स भवारण्यं परमध्यानतेजसा । त्रिलोकाग्रं समारूढः प्राप्तो जीवनिजस्थितिम् ॥२०१॥
परस्परमनेकत्र भवेऽन्यान्यवधः कृतः । श्रीकान्तवसुदत्ताभ्यां महावैरानुबन्धतः ॥२०२॥
पूर्वं वेदवतीकाले सम्बन्धप्रीतिना परम् । रावणेन हृता सीता तथा कर्मानुभावतः ॥२०३॥
श्रीभूतिर्वेदविद्विप्रः सम्यग्दृष्टिरनुत्तमः । हिंसितो वेदतत्त्वार्थं शम्भुना कामिना यतः ॥२०४॥
श्रीभूतिः स्वर्गमारुह्य प्रतिष्ठनगरे च्युतः । भूत्वा पुनर्वसुः शोकात्सनिदानतपोऽन्वितः ॥२०५॥
सनत्कुमारमारुह्य च्युत्वा दशरथात्मजः । भूत्वा रामानुजस्तीव्रस्नेहो लक्ष्मणचक्रभृत् ॥२०६॥
शम्भुपूर्वं ततः शत्रुमवधीत्पूर्ववैरतः । दशाननमयं वीरः सुमित्राजो निकाचितात् ॥२०७॥
भ्रातृवियोगजं दुःखं यदाऽऽसीत्सह सीतया । निमित्तमाश्रमासीत्तद्दशवक्त्रस्य संक्षये ॥२०८॥

पास जिन-दीक्षा धारण कर ली ॥१९३॥ इस प्रकार उदार अभिप्राय और विशाल हृदयको धारण करनेवाले सुप्रभ मुनिने कई हजार वर्ष तक विधिपूर्वक कठिन तपश्चरण किया ॥१९४॥ वे सुप्रभ मुनि नानाऋद्धियोंसे सहित होनेपर भी गर्वको प्राप्त नहीं हुए थे तथा संयोगजन्य भावोंमें उन्होंने सब ममता छोड़ दी थी ॥१९५॥ तदनन्तर जिन्हें कषायकी उपशम अवस्थामें होनेवाला शुक्ल-ध्यानका प्रथम भेद प्रकट हुआ था ऐसे वे महामुनि सिद्ध अवस्थाको अवश्य प्राप्त होते परन्तु आयु अधिक नहीं थी इसलिए उसी उपशान्त दशामें मरणकर सर्वार्थसिद्धि गये ॥१९६॥ वहाँ तैंतीस सागर तक महासुख भोगकर वे वालिनामके प्रतापी विद्याधरोंके राजा हुए ॥१९७॥ जिन्होंने किष्किन्ध पर्वत पर विविध सामग्रीसे युक्त राज्य प्राप्त किया था, महागुणवान् सुग्रीव जिनका भाई है। लंकाधिपति रावणके साथ विरोध होने पर भी जो इस सुग्रीवके ऊपर राज्य-लक्ष्मी छोड़ जीवदयाके अर्थ दीक्षित हो गये थे, तथा गर्व वश रावणके द्वारा उठाये हुए कैलास को जिन्होंने साधु अवस्थामें अपनी सामर्थ्यसे केवल पैरका अंगूठा दबा कर छुड़वा दिया था। वही वालि मुनि उत्कृष्ट ध्यानके तेजसे संसार रूपी वनको भस्म कर तीन लोकके अग्रभाग पर आरूढ़ हो आत्माके निज स्वरूपमें स्थितिको प्राप्त हुए हैं ॥१९८-२०१॥

श्रीकान्त और वसुदत्तने महावैरके कारण अनेक भवोंमें परस्पर एक दूसरेका वध किया है ॥२०२॥ पहले वेदवतीकी पर्यायमें रावणका जीव सीताके साथ सम्बन्ध करना चाहता था उसी संस्कारसे उसने रावणकी पर्यायमें सीताका हरण किया ॥२०३॥ जब रावण शम्भु था तब उसने कामी होकर वेदवतीकी प्राप्तिके लिए वेदोंके जाननेवाले, उत्तम सम्यग्दृष्टि श्रीभूति ब्राह्मण की हत्या की थी ॥२०४॥ वह श्रीभूति स्वर्ग गया वहाँसे च्युत होकर प्रतिष्ठ नगरमें पुनर्वसु विद्याधर हुआ सो शोकवश निदान सहित तपकर सानत्कुमार स्वर्गमें उत्पन्न हुआ। तदनन्तर वहाँ से च्युत हो दशरथका पुत्र तथा रामका छोटा भाई परम स्नेही लक्ष्मण नामका चक्रधर हुआ ॥२०५-२०६॥ इस वीर लक्ष्मणने, नहीं छूटनेवाले पूर्व वैरके कारण ही शम्भुका जीव जो दशानन हुआ था उसे मारा है ॥२०७॥ यतश्च पूर्वभवमें सीताके जीवको रावणके जीवके द्वारा भाईके वियोगका दुःख उठाना पड़ा था इसलिए सीता रावणके क्षयमें निमित्त हुई है ॥२०८॥

१. त्रिलोकाग्रं म० । २. दशाननभयं म० ।

अकूपारं समुत्तीर्य धरणीचारिणा सता । हिंसितो हिंसकः पूर्वं लक्ष्मणेन दशाननः ॥२०९॥
राक्षसीश्रीक्षपाचन्द्रं तं निहत्य दशाननम् । सौमित्रिणा समाक्रान्ता पृथिवीयं ससागरा ॥२१०॥
क्वासौ तथाविधः शूरः क्व चेयं गतिरीदृशी । माहात्म्यं कर्मणामेतदसम्भाव्यमवाप्यते ॥२११॥
वध्यघातकयोरेवं जायते व्यत्ययः पुनः । संसारभावसक्तानां जन्तूनां स्थितिरीदृशी ॥२१२॥
क्व नाके परमा भोगाः क्व दुःखं नरके पुनः । विपरीतमहोऽत्यन्तं कर्मणां दुर्विचेष्टितम् ॥२१३॥
परमाद्यमहाकूटं यादृशं विषदूषितम् । तपस्तादृशमेवोग्रनिदानकृतदूषणम् ॥२१४॥
इयं शाल्मं द्रुमं छित्त्वा कोद्रवाणां कृतिः कृता । अमृतेनावलेकेन पोषितो विषपादपः ॥२१५॥
सूत्रार्थं चूर्णिता सेयं परमा रत्नसंहतिः । गोशीर्षं चन्दनं दग्धमङ्गारार्थितचेतसा ॥२१६॥
जीवलोकेऽखिला नाम सर्वदोषमहाखनिः । किं नाम न कृते तस्याः क्रियते कर्म कुत्सितम् ॥२१७॥
प्रत्यावृत्त्य कृतं कर्म फलमर्पयति ध्रुवम् । तत्कर्तुमन्यथा केन शक्यते भुवनत्रये ॥२१८॥
कृत्वापि सङ्गतिं धर्मे यद्यन्तीदृशीं गतिम् । उच्यतामितरेषां किं तत्र निर्धर्मचेतसाम् ॥२१९॥
श्रामण्यसङ्गतस्यापि साध्यमत्सरसेविनः । कृत्वाऽप्युग्रतपो भ्रान्ति शिवं संज्वलनस्पृशः ॥२२०॥
न शमो[1] न तपो यस्य मिथ्यादृष्टेर्न संयमः । संसारोत्तरणं तस्य क उपायो दुरात्मनः ॥२२१॥
ह्रियन्ते वायुना यत्र गजेन्द्रा मदशालिनः । पूर्वमेव हृतास्तत्र शशकाः स्थलवर्तिनः ॥२२२॥
एवं परमदुःखानां ज्ञात्वा कारणमीदृशम् । मा काष्ठं वैरसम्बन्धं जनाः स्वहितकाङ्क्षिणः ॥२२३॥

लक्ष्मणने भूमिगोचरी होनेपर भी समुद्रको पारकर पूर्व पर्यायमें अपना घात करनेवाले रावणको मारा है ॥२०९॥ राक्षसोंकी लक्ष्मीरूपी रात्रिको सुशोभित करनेके लिए चन्द्रमा स्वरूप रावणको मारकर लक्ष्मणने इस सागर सहित समस्त पृथिवीपर अपना अधिकार किया है ॥२१०॥ सकलभूषण केवली कहते हैं कि कहाँ तो वैसा शूर वीर और कहाँ ऐसी गति ? यह कर्मोंका ही माहात्म्य है कि असम्भव वस्तु भी प्राप्त हो जाती है ॥२११॥ इस प्रकार वध्य और घातक जीवोंमें पुनः-पुनः बदली होती रहती है अर्थात् पहली पर्यायमें जो वध्य होता है वह आगामी पर्यायमें उसका घातक होता है और पहली पर्यायमें जो घातक होता है वह आगामी पर्यायमें वध्य होता है। संसारी जीवोंकी ऐसी ही स्थिति है ॥२१२॥ कहाँ तो स्वर्गमें उत्तम भोग और कहाँ नरकमें तीव्र दुःख ? अहो ! कर्मोंकी बड़ी विपरीत चेष्टा है ॥२१३॥ जिस प्रकार परम स्वादिष्ट अन्नकी महाराशि विषसे दूषित हो जाती है, उसी प्रकार परम उत्कृष्ट तप भी निदानसे दूषित हो जाता है ॥२१४॥ निदान अर्थात् भोगाकांक्षाके लिए तपको दूषित करना ऐसा है जैसा कि कल्पवृक्ष काटकर कोदोंके खेतकी बाड़ी लगाना अथवा अमृत सींचकर विषवृक्षको बढ़ाना अथवा सूतके लिए उत्तम मणियोंकी मालाका चूर्ण करना अथवा अंगारके लिए गोशीर्ष चन्दनको जलाना ॥२१५-२१६॥ संसारमें स्त्री समस्त दोषोंकी महाखान है। ऐसा कौन निन्दित कार्य है जो उसके लिए नहीं किया जाता हो ? ॥२१७॥ किया हुआ कर्म लौटकर अवश्य फल देता है उसे भुवनत्रयमें अन्यथा करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥२१८॥ जब धर्म धारण करनेवाले मनुष्य भी इस गतिको प्राप्त होते हैं तब धर्महीन मनुष्योंकी बात ही क्या है ? ॥२१९॥ जो मुनिपद धारण करके भी साध्यपदार्थोंके विषयमें मत्सर भाव रखते हैं ऐसे संज्वलन कषायके धारक मुनियोंको उग्र तपश्चरण करने पर भी शिव अर्थात् मोक्ष अथवा वास्तविक कल्याणकी प्राप्ति नहीं होती ॥२२०॥ जिस मिथ्यादृष्टिके न शम अर्थात् शान्ति है, न तप है और न संयम है उस दुरात्माके पास संसार-सागरसे उतरनेका उपाय क्या है ? ॥२२१॥ जहाँ वायुके द्वारा मदोन्मत्त हाथी हरण किये जाते हैं वहाँ स्थलमें रहनेवाले खरगोश तो पहले ही हरे जाते हैं ॥२२२॥ इस प्रकार

---

१. समो म० ।

भाष्यपि न वक्तव्या दुरितादानकारिणी । सीतायाः पश्यत [1]प्राप्तो दुर्वादः शब्दमात्रतः ॥२२४॥
ग्रामो मण्डलिको नाम तत्रायातः सुदर्शनः । मुनिसुद्यानमायातं [2]वन्दित्वा तं गता जनाः ॥२२५॥
सुदर्शना स्थिता तत्र स्वसारं सङ्घगो ब्रुवन् । ईक्षितो वेदवत्याऽसौ सार्या [3]श्रमणया सया ॥२२६॥
ततो ग्रामीणलोकाय सम्यग्दर्शनतत्परा । जगाद पश्यतेदृक्षं [4]श्रमणं भ्रुव सुन्दरम् ॥२२७॥
मया सुयोषिता सार्कं स्थितो रहसि वीक्षितः । ततः कैश्चित् प्रतीतं तत्र तु कैश्चिद्विचक्षणैः ॥२२८॥
अनादरो मुनेर्लोकैः कृतश्चावमहोऽमुना । वेदवत्या मुखं "शून्यं देवतया नियोगतः ॥२२९॥
[6]अपुण्यया मयाऽलीकं चोदितं भवतामिति [7] । तया प्रत्यायितो लोक इत्याद्यत्र कथा स्मृता ॥२३०॥
एवं सद्भ्रातृयुगलं निन्दितं यत्तदानया । अवर्णवादमीदृक्षं प्राप्तेयं वितथं ततः ॥२३१॥
दृष्टः सत्योऽपि दोषो न वाच्यो जिनमतश्रिता । उच्यमानोऽपि चान्येन वार्यः सर्वप्रयत्नतः ॥२३२॥
ब्रुवाणो लोकविद्वेषकरणं शासनाश्रितम् । प्रतिपन्न चिरं दुःखं संसारमवगाहते ॥२३३॥
सम्यग्दर्शनरत्नस्य गुणोऽत्यन्तमयं महान् । यद्दोषस्य कृतस्यापि प्रयत्नादुपगूहनम् ॥२३४॥
अज्ञानान्मत्सराद्वापि दोषं वितथमेव तु । प्रकाशयन्नतोऽत्यन्तं जिनमार्गाद्बहिः स्थितः ॥२३५॥
इति श्रुत्वा मुनीन्द्रस्य भाषितं परमाद्भुतम् । सुरासुरमनुष्यास्ते विस्मयं परमं गताः ॥२३६॥

परम दुःखोंका ऐसा कारण जानकर हे आत्महितके इच्छुक भव्य जनो ! किसीके साथ वैरका सम्बन्ध मत रक्खो ॥२२३॥

जिससे पापबन्ध हो ऐसा एक शब्द भी नहीं बोलना चाहिए। देखो, शब्द मात्रसे सीता को कैसा अपवाद प्राप्त हुआ ? ॥२२४॥ इसकी कथा इस प्रकार है कि जब सीता वेदवतीकी पर्यायमें थी तब एक मण्डलिक नामका ग्राम था। उस ग्राममें एक सुदर्शन नामक मुनि आये। मुनिको उद्यानमें आया देख लोग उनकी वन्दनाके लिए गये। वन्दना कर जब सब लोग चले गये तब उनके पास एक सुदर्शना नामकी आर्यिका जो कि मुनिकी बहिन थी बैठी रही और मुनि उसे सद्वचन कहते रहे। वेदवतीने उस उत्तम साध्वी—आर्यिकाके साथ मुनिको देखा। तदनन्तर अपने आपको सम्यग्दृष्टि बतानेमें तत्पर वेदवतीने गाँवके लोगोंसे कहा कि हाँ, आप लोग ऐसे साधुके अवश्य दर्शन करो और उन्हें अच्छा बतलाओ। मैंने उन साधुको एकान्तमें एक सुन्दर स्त्रीके साथ बैठा देखा है। वेदवतीकी यह बात किन्हींने मानी और जो विवेकी थे ऐसे किन्हीं लोगोंने नहीं मानी ॥२२५–२२८॥ इस प्रकरणसे लोगोंने मुनिका अनादर किया। तथा मुनिने यह प्रतिज्ञा ली कि जब तक यह अपवाद दूर न होगा तबतक आहारके लिए नहीं निकलूँगा। इस अपवादसे वेदवतीका मुख फूल गया तब उसने नगरदेवताकी प्रेरणा पा मुनिसे कहा कि मुझ पापिनीने आपके विषयमें झूठ कहा है। इस तरह मुनिसे क्षमा कराकर उसने अन्य लोगोंको भी विश्वास दिलाया। इस प्रकार वेदवतीकी पर्यायमें सीताने उन बहिन-भाईके युगलकी झूठी निन्दा की थी इसलिए इस पर्यायमें यह इस प्रकारके मिथ्या अपवादको प्राप्त हुई है ॥२२९–२३१॥ यदि यथार्थ दोष भी देखा हो तो जिनमतके अवलम्बीको नहीं कहना चाहिए और कोई दूसरा कहता भी हो तो उसे सब प्रकारसे रोकना चाहिए ॥२३२॥ फिर लोकमें विद्वेष फैलानेवाले शासन सम्बन्धी दोषको जो कहता है वह दुःख पाकर चिरकाल तक संसारमें भटकता रहता है ॥२३३॥ किये हुए दोषको भी प्रयत्नपूर्वक छिपाना यह सम्यग्दर्शनरूपी रत्नका बड़ा भारी गुण है ॥२३४॥ अज्ञान अथवा मत्सर भावसे भी जो किसीके मिथ्या दोष को प्रकाशित करता है वह मनुष्य जिनमार्गसे बिलकुल ही बाहर स्थित है ॥२३५॥ इस प्रकार सकलभूषण केवलीका अत्यधिक आश्चर्यसे भरा हुआ उपदेश सुनकर समस्त सुर असुर और

---

१. प्राप्ता म० । २. -मायान्तं म० । ३. श्रवणया म० । ४. -तेदृशं म० । ५. सून्यं म० । ६. अपुण्यामा म० । ७. भगवानिति म० ।

ज्ञात्वा सुदुर्जरं वैरं सौमित्रेः रावणस्य च । महादुःखभयोपेतं निर्मत्सरमभूत्सदः ॥२३७॥
मुनयः शङ्किता जाता देवाश्चिन्तां [1]परां गताः । राजानः प्रापुरुद्वेगं प्रतिबुद्धाश्च केचन ॥२३८॥
विमुक्तगर्वसम्भाराः परिशान्ताः प्रवादिनः । अपि सम्यक्त्वमायाता आसन्ये कर्मकर्कशाः ॥२३९॥
कर्मदौरात्म्यसम्भारक्षणमात्रकमूर्छिता । समाश्वसत्सभा हा हा धिक् चित्रमिति वादिनी ॥२४०॥
कृत्वा करपुटं मूर्ध्नि प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् । [2][3]मनुष्यासुरगीर्वाणाः प्रशशंसुर्विभीषणम् ॥२४१॥
भवत्समाश्रयाद्भद्र श्रुतमस्माभिरुत्तमम् । चरितं बोधनं पुण्यं मुनिपादप्रसादतः ॥२४२॥
ततो नरेन्द्रदेवेन्द्रमुनीन्द्राः सम्मदोत्कटाः । सर्वज्ञं तुष्टुवुः सर्वे परिवर्गसमन्विताः ॥२४३॥
त्रैलोक्यं भगवंस्त्वया सकलभूषण । भूषितं तेन नामेदं तव युक्तं सहार्थकम् ॥२४४॥
तिरस्कृत्य श्रियं सर्वां ज्ञानदर्शनवर्तिनी । केवलश्रीरियं भाति तव दूरीकृतोपमा ॥२४५॥
अनाथमध्रुवं दीनं जन्ममृत्युवशीकृतम् । क्लिश्यतेऽद्यो जगत्प्राप्य स्वं पदं जैनमुत्तमम् ॥२४६॥

शार्दूलविक्रीडितम्

नानाव्याधिजरावियोगमरणप्रोद्भूतिदुःखं परं ।
प्राप्तानां मृगयुप्रवेजितमृगव्रातोपमावर्त्मिनाम् ।
कृच्छ्रोत्सर्जनदारुणाशुभमहाकर्मावरुद्धात्मना—
मस्माकं कृतकार्यं यच्च निकटं कर्मक्षयं केवलिन् ॥२४७॥

मनुष्य परम विस्मयको प्राप्त हुए ॥२३६॥ लक्ष्मण और रावणके सुदृढ़ वैरको जानकर समस्त सभा महादुःख और भयसे सिहर उठी तथा निर्वैर हो गई। अर्थात् सभाके सब लोगोंने वैरभाव छोड़ दिया ॥२३७॥ मुनि संसारसे भयभीत हो गये, देवलोग परम चिन्ताको प्राप्त हुए, राजा उद्वेगको प्राप्त हुए और कितने ही लोग प्रतिबुद्ध हो गये ॥२३८॥ अपनी वक्तृत्व-शक्तिका अभिमान रखनेवाले कितने ही लोग अहंकारका भार छोड़ शान्त हो गये। जो कर्मोदयसे कठिन थे अर्थात् चारित्रमोहके तीव्रोदयसे जो चारित्र धारण करनेके लिए असमर्थ थे उन्होंने केवल सम्यग्दर्शन प्राप्त किया ॥२३९॥ कर्मोंकी दुष्टताके भारसे जो क्षणभरके लिए मूर्च्छित हो गई थी ऐसी सभा 'हा हा, धिक् चित्रम्' आदि शब्द कहती हुई साँसें भरने लगी ॥२४०॥ मनुष्य, असुर और देव हाथ जोड़ मस्तकसे लगा मुनिराजको प्रणामकर विभीषणकी प्रशंसा करने लगे कि हे भद्र! आपके आश्रयसे ही मुनिराजके चरणोंका प्रसाद प्राप्त हुआ है और उससे हमलोग इस उत्तम ज्ञानवर्धक पुण्य चरितको सुन सके हैं ॥२४१-२४२॥

तदनन्तर हर्षसे भरे एवं अपने-अपने परिकरसे सहित समस्त नरेन्द्र सुरेन्द्र और मुनीन्द्र सर्वज्ञदेवकी स्तुति करने लगे ॥२४३॥ कि हे सकलभूषण! भगवन्! आपके द्वारा ये तीनों लोक भूषित हुए हैं इसलिए आपका यह 'सकलभूषण' नाम सार्थक है ॥२४४॥ ज्ञान और दर्शनमें वर्तमान तथा उपमासे रहित आपकी यह केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी संसारकी अन्य समस्त लक्ष्मियों का तिरस्कार कर अत्यधिक सुशोभित हो रही है ॥२४५॥ अनाथ, अध्रुव, दीन तथा जन्म जरा मृत्युके वशीभूत हुआ यह संसार अनादि कालसे क्लेश उठा रहा है पर आज आपके प्रसादसे जिनप्रदर्शित उत्तम आत्मपदको प्राप्त हुआ है ॥२४६॥ हे केवलिन्! हे कृतकृत्य! जो नाना प्रकारके रोग, बुढ़ापा, वियोग तथा मरणसे उत्पन्न होनेवाले परम दुःखको प्राप्त हैं, जो शिकारीके द्वारा डराये हुए मृगसमूहकी उपमाको प्राप्त हैं तथा कठिनाईसे छूटनेयोग्य दारुण एवं अशुभ महाकर्मोंसे जिनकी आत्मा अवरुद्ध है—घिरी हुई है ऐसे हम लोगोंके लिए शीघ्र ही कर्मोंका क्षय

---

१. चिन्तान्तरं ज० । २. दूरात्म म० । दूरात्म ज० । ३. मनुष्यसुरगीर्वाणाः म० ।

नष्टानां विषयान्धकारगहने संसारवासे भव
त्वं दीपः शिवलब्धिकांक्षणमहातृष्णेदितानां सरः ।
बहिः कर्मसमूहकक्षदहने व्यग्रीभवच्चेतसां
नानादुःखमहातुषारपतनव्याकम्पितानां रविः ॥२४८॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रणीते श्रीपद्मचरिते सपरिवारारामदेवपूर्वभवाभिधानं नाम षडुत्तरशतं पर्व ॥१०६॥

प्रदान कीजिए ॥२४७॥ हे नाथ ! विषयरूपी अन्धकारसे व्याप्त संसार-वासमें भूले हुए प्राणियोंके आप दीपक हो, मोक्षप्राप्तिकी इच्छारूप तीव्र प्याससे पीड़ित मनुष्योंके लिए सरोवर हो, कर्म-समूहरूपी वनको जलानेके लिए अग्नि हो, तथा व्याकुलचित्त एवं नाना दुःखरूपी महातुषारके पड़नेसे कम्पित पुरुषोंके लिए सूर्य हो ॥२४८॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य प्रणीत पद्मपुराणमें परिवर्ग सहित रामदेव के पूर्वभवोंका वर्णन करनेवाला एक सौ छठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१०६॥

सप्तोत्तरशतं पर्व

ततः श्रुत्वा महादुःखं भवसंसृतिसम्भवम् । कृतान्तवक्त्रनोऽवोचत्पद्मं दीक्षाभिकाङ्क्षया ॥१॥
मिथ्यापथपरिभ्रान्त्या संसारेऽस्मिन्ननादिके । खिन्नोऽहमधुनेच्छामि श्रामण्यं समुपासितुम् ॥२॥
पद्मनाभस्ततोऽवोचद्दुस्त्यज स्नेहमुत्तमम् । अत्यन्तदुर्धरां चर्यां कथं धारयसीदृशीं[2] ॥३॥
कथं सहिष्यसे शीतान् शीतोष्णादीन् परीषहान् । महाकण्टकतुल्यानि वाक्यानि च दुरात्मनाम् ॥४॥
अज्ञातक्लेशसम्पर्कः कमलकोशकोमलः । कथं भूमितलेऽरण्ये निशां[3]व्यालिनि नेष्यसि ॥५॥
प्रकटास्थिसिराजालः पक्षमासाद्युपोषितः । कथं परगृहे भिक्षां भोक्ष्यसे पाणिभाजने ॥६॥
नासहिष्ठ द्विषां सैन्यं यो मातङ्गघटाकुलम् । नीचास्परिभवं सह्यं कथं वा सहिष्यसे ॥७॥
कृतान्तास्यस्ततोऽवोचद् यस्यास्नेहरसायनम् । परित्यक्तुमहं सोढुस्तस्यान्यत्किमसह्यकम् ॥८॥
यावच्च मृत्युवज्रेण देहस्तम्भो निपात्यते । तावदिच्छामि निर्गन्तुं दुःखान्नाशवसङ्कटात् ॥९॥
धारयन्ति न निर्यांतं वह्निज्वालाकुलालयात् । दयावन्तो यथा सद्मदुःखसङ्घातवादपि ॥१०॥
वियोगः सुचिरेणापि जायते यत्नवद्भिधैः । ततो निन्दितसंसारः को न वेत्त्यात्मनो हितम् ॥११॥
अवश्यं स्वद्वियोगेन दुःखं भावि सुदुःसहम् । मा भूदुत्तरकालेऽस्मिंस्ति मे मतिरद्यता ॥१२॥

अथानन्तर भव-भ्रमणसे उत्पन्न महादुःखको सुनकर कृतान्तवक्त्र सेनापतिने दीक्षा लेने की इच्छासे रामसे कहा कि मिथ्यामार्गमें भटक जानेके कारण मैं इस अनादि संसारमें खेद-खिन्न हो रहा हूँ अतः अब मुनिपद धारण करनेकी इच्छा करता हूँ ॥१-२॥ तब रामने कहा कि उत्तम स्नेह छोड़कर इस अत्यन्त दुर्धरचर्याको किस प्रकार धारण करोगे ? ॥३॥ शीत उष्ण आदिके तीव्र परीषह तथा महाकण्टकोंके समान दुर्जन मनुष्योंके वचन किस प्रकार सहोगे ? ॥४॥ जिसने कभी क्लेशका सम्पर्क जाना नहीं तथा जो कमलके मध्यभागके समान कोमल है ऐसे तुम हिंसक जन्तुओंसे भरे हुए वनमें पृथिवी तलपर रात्रि किस तरह बिताओगे ? ॥५॥ जिसकी हड्डियों तथा नसोंका जाल स्पष्ट दिख रहा है तथा जिसने एक पक्ष, एक मास आदिका उपवास किया है ऐसे तुम परगृहमें हस्तरूपी पात्रमें भिक्षा-भोजन कैसे ग्रहण करोगे ? ॥६॥ जिसने हाथियोंके समूहसे व्याप्त शत्रुओंकी सेना कभी सहन नहीं की है ऐसे तुम नीचजनोंसे प्राप्त पराभवको किस प्रकार सहन करोगे ? ॥७॥

तदनन्तर कृतान्तवक्त्रने कहा कि जो आपके स्नेहरूपी रसायनको छोड़नेके लिए समर्थ है उसके लिए अन्य क्या असह्य है ? ॥८॥ जब तक मृत्युरूपी वज्रके द्वारा शरीर रूपी स्तम्भ नहीं गिरा दिया जाता है तब तक मैं दुःखसे अन्धे इस संसाररूपी संकटसे बाहर निकल जाना चाहता हूँ ॥९॥ अग्निकी ज्वालाओंसे प्रज्वलित घरसे निकलते हुए मनुष्योंको जिस प्रकार दयालु मनुष्य रोककर उसी घरमें नहीं रखते हैं उसी प्रकार दुःखसे संतप्त संसारसे निकले हुए प्राणीको दयालु मनुष्य उसी संसारमें नहीं रखते हैं ॥१०॥ जब कि अभी नहीं तो बहुत समय बाद भी आप जैसे महान् पुरुषोंके साथ वियोग होगा ही तब संसारको बुरा समझनेवाला कौन पुरुष आत्माके हित को नहीं समझेगा ? ॥११॥ यह ठीक है कि आपके वियोगसे होनेवाला दुःख अवश्य ही अत्यन्त असह्य है फिर भी ऐसा दुःख पुनः प्राप्त न हो इसीलिए मेरी यह बुद्धि उत्पन्न हुई है ॥१२॥

---

१. कृतान्तवक्त्रः सेनापतिः । २. सीदृशम् म० । ३. दुष्टसत्त्वयुक्ते ।

नियम्याश्रूणि कृच्छ्रेण व्याकुलो राघवोऽवदत् । मनुष्यां श्रियमुज्झित्वा धन्यस्त्वं सद्व्रतोन्मुखः ॥१३॥
एतेन जन्मना नो चेत्त्वं निर्वाणमवेष्यसि । ततो बोध्योऽस्मि देवेन त्वया सङ्कटमागतः ॥१४॥
यद्येकमपि किञ्चिन्मे जानास्युपकृतं ततः । नेदं विस्मरणीयं ते भद्रेत्वं कुरु सङ्गरम् ॥१५॥
यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा प्रणम्य च यथाविधि । उपसृत्योरुसंवेगः सेनानीः सर्वभूषणम् ॥१६॥
प्रणम्य सकलं त्यक्त्वा बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहम् । सौम्यवक्त्रः सुविक्रान्तो निष्क्रान्तः कान्तचेष्टितः ॥१७॥
एवमाद्या महाराजा वैराग्यं परमं गताः । महासंवेगसम्पन्ना नैर्ग्रन्थ्यं व्रतमाश्रिताः ॥१८॥
केचिच्छ्रावकतां प्राप्ताः सम्यग्दर्शनतां परे । मुदितैवं सभा साऽभाद्रत्नत्रयविभूषणा ॥१९॥
प्रयाति नगतो[1] नाथे ततः सकलभूषणे । प्रणम्य भक्तितो याता यथायातं सुरासुराः ॥२०॥
पद्मोपमेक्षणः पद्मो नत्वा सकलभूषणम् । अनुक्रमेण साधूंश्च मुक्तिसाधनतत्परान् ॥२१॥
उपागमद्विनीतात्मा सीतां विमलतेजसम्[2] । घृताहुत्या समुद्भूतां स्फीतां वह्निशिखामिव ॥२२॥
क्षान्त्याऽऽर्यागणमध्यस्थां स्फुरत्स्वकिरणोत्कराम् । सुभ्रुवां ध्रुवामन्यामिव तारां गणावृताम् ॥२३॥
सद्वृत्ताद्यन्तनिभृतां त्यक्तस्रग्गन्धभूषणाम् । धृतिकीर्तिरतिश्रीह्रीपरिवारां तथापि ताम् ॥२४॥
मृदुचारसितश्लक्ष्णप्रलम्बाम्बरधारिणीम् । मन्दानिलचलत्फेनपटां पुण्यमदीमिव ॥२५॥
[3]विकासिकाशसङ्घातविशदां शरदं यथा । कौमुदीमिव उद्योतां कुमुदाकरहासिनीम् ॥२६॥

तदनन्तर व्यग्र हुए रामने बड़ी कठिनाईसे आँसू रोककर कहा कि मेरे समान लक्ष्मीको छोड़कर जो तुम उत्तम व्रत धारण करनेके लिए उन्मुख हुए हो अतः तुम धन्य हो ॥१३॥ इस जन्मसे यदि तुम निर्वाणको प्राप्त न हो सको और देव होओ तो संकटमें पड़ा हुआ मैं तुम्हारे द्वारा सम्बोधने योग्य हूँ ॥१४॥ हे भद्र ! यदि मेरे द्वारा किया हुआ एक भी उपकार तुम मानते हो तो यह बात भूलना नहीं। ऐसी प्रतिज्ञा करो ॥१५॥ 'जैसी आप आज्ञा कर रहे हैं वैसा ही होगा' इस प्रकार कहकर तथा विधिपूर्वक प्रणामकर उत्कट वैराग्यसे भरा सेनापति सर्वभूषण केवलीके पास गया और प्रणाम कर तथा बाह्याभ्यन्तर सर्व प्रकारका परिग्रह छोड़ सौम्यवक्त्र हो गया। अब वह आत्महितके विषयमें तीव्र पराक्रमी हो गया, गृह जंजालसे निकल चुका तथा सुन्दर चेष्टाका धारक हो गया ॥१६-१७॥ इस प्रकार परम वैराग्यको प्राप्त एवं महासंवेगसे सम्पन्न कितने ही महाराजाओंने निर्ग्रन्थ व्रत धारण किया—जिन-दीक्षा ली ॥१८॥ कितने ही लोग श्रावक हुए और कितने ही लोग सम्यग्दर्शनको प्राप्त हुए। इस प्रकार हर्षित हो रत्नत्रयरूपी आभूषणोंसे विभूषित वह सभा अत्यन्त सुशोभित हो रही थी ॥१९॥

अथानन्तर जब सकलभूषण स्वामी उस पर्वतसे विहार कर गये तब भक्तिपूर्वक प्रणाम कर सुर और असुर यथास्थान चले गये ॥२०॥ कमललोचन राम सकलभूषण केवली तथा मुक्तिके सिद्ध करनेमें तत्पर साधुओंको यथाक्रमसे प्रणामकर विनीत भावसे उस सीताके पास गये जो कि निर्मल तेजको धारण कर रही थी तथा घीकी आहुतिसे उत्पन्न अग्निकी शिखाके समान देदीप्यमान थी ॥२१-२२॥ वह क्षान्तिपूर्वक आर्यिकाओंके समूहके मध्यमें स्थित थी, उसकी स्वयंकी किरणोंका समूह देदीप्यमान हो रहा था, वह उत्तम शान्त भौंहोंसे युक्त थी और ऐसी जान पड़ती थी मानो समूहसे आवृत दूसरी ही ध्रुवतारा हो ॥२३॥ जो सम्यक्चारित्रके धारण करनेमें अत्यन्त दृढ़ थी, जिसने माला, गन्ध तथा आभूषण छोड़ दिये थे, फिर भी जो धृति, कीर्ति, रति, श्री और लज्जारूप परिवारसे युक्त थी। जो कोमल सफेद चिकने एवं लम्बे वस्त्रको धारण कर रही थी, अतएव मन्द-मन्द वायुसे जिसके फेनका समूह मिल रहा था ऐसी पुण्यकी नदीके समान जान पड़ती थी अथवा खिले हुए काशके फूलोंके समूहसे विशद शरद् ऋतुके

१. नामतो म० । २. विमलतेजसाम् म० । ३. तारागणावृताम् म० । ४. विकाशिकाशसंकाशां म० ।

महाविरागतः साक्षाद्वित्र प्रव्रजितां श्रियम् । वपुष्मतीमिव प्राप्तां जिनशासनदेवताम् ॥२७॥
एवंविधां समालोक्य सभ्रमभ्रष्टमानसः । कल्पद्रुम इवाकम्पो बलदेवः क्षणं स्थितः ॥२८॥
प्रकृतिस्थिरनेत्रभ्रूप्राप्तावेतां विचिन्तयन् । शरत्पयोदमालानां समीप इव पर्वतः ॥२९॥
इयं सा मद्भुजारब्धरतिप्रवरसारिका । विलोचनकुमुद्वत्याश्चन्द्रलेखा स्वभावतः ॥३०॥
मयुक्ताऽप्यगमत्रासं या पयोदरवादपि । अरण्ये सा कथं भीमे न भेष्यति तपस्विनी ॥३१॥
नितम्बगुरुतायोगललिताऽलसगामिनी । तपसा विलयं मूलं प्रयास्यति सुकोमला ॥३२॥
क्वेदं वपुः क्व जैनेन्द्रं तपः परमदुष्करम् । पद्मिन्यां क इवाऽऽयासो हिमस्य तरुदाहिनः ॥३३॥
अन्नं यथेप्सितं भुक्तं मया [1]परमनोहरम् । यथालाभं कथं भिक्षां सैषा समधियास्यति ॥३४॥
वीणावेणुमृदङ्गैर्या कृतमङ्गलनिःस्वनाम् । निद्राऽसेवत सत्तल्पे [2]कल्पकल्पालयस्थिताम् ॥३५॥
दुर्भैरवश्वापदे सेयं वने मृगरवाकुले । कथं भयानकीं भीरुः प्रेरयिष्यति शर्वरीम् ॥३६॥
किं मयोपचितं पश्य मोहसङ्कृतचेतसा । पृथग्जनपरीवादाद्धारिता प्राणवल्लभा ॥३७॥
अनुकूला प्रिया साध्वी सर्वविष्वप्सुन्दरी । प्रियंवदा सुखश्रोणी कुतोऽन्या प्रमदेदृशी ॥३८॥
एवं चिन्ताभराक्रान्तचित्तः परमदुःखितः । वेपितात्माऽभवत्पद्मश्चलत्पद्माकरोपमः ॥३९॥
ततः कैवलिनो वाक्यं संस्मृत्य विधृताश्रुकः । कृच्छ्रसंस्तम्भितौत्सुक्यो बभूव विगतज्वरः ॥४०॥

समान मालूम होती थी अथवा कुमुदोंके समूहको विकसित करनेवाली कार्तिकी पूर्णिमाकी चाँदनीके समान विदित होती थी, अथवा जो महाविरागसे ऐसी जान पड़ती थी मानो दीक्षाको प्राप्त हुई साक्षात् लक्ष्मी ही हो, अथवा शरीरको धारण करनेवाली साक्षात् जिनशासनकी देवी ही हो ॥२४-२७॥ ऐसी उस सीताको देख संभ्रमसे जिनका हृदय टूट गया था ऐसे राम क्षण भर कल्पवृक्षके समान निश्चल खड़े रहे ॥२८॥ स्वभावसे निश्चल नेत्र और भृकुटियोंकी प्राप्ति होने पर इस साध्वी सीताका ध्यान करते हुए राम ऐसे जान पड़ते थे मानो शरद् ऋतुकी मेघमालाके समीप कोई पर्वत ही खड़ा हो ॥२९॥ सीताको देख-देखकर राम विचार कर रहे थे कि यह मेरी भुजाओं रूपी पिंजरेके भीतर विद्यमान उत्तम सेना है अथवा मेरे नेत्ररूपी कुमुदिनीके लिए स्वभावतः चन्द्रमाकी कला है ॥३०॥ जो मेरे साथ रहनेपर भी मेघके शब्दसे भी भयको प्राप्त हो जाती थी वह बेचारी तपस्विनी भयंकर वनमें किस प्रकार भयभीत नहीं होगी ? ॥३१॥ विलम्बकी गुरुताके कारण जो सुन्दर एवं अलसाई हुई चाल चलती थी वह सुकोमल सीता तप के द्वारा निश्चित ही नाशको प्राप्त हो जायगी ॥३२॥ कहाँ यह शरीर और कहाँ जिनेन्द्रका कठोर तप ? जो हिम वृक्षको जला देता है उसे कमलिनीके जलानेमें क्या परिश्रम है ? ॥३३॥ जिसने पहले इच्छानुसार परम मनोहर अन्न खाया है, वह अब जिस किसी तरह प्राप्त हुई भिक्षाको कैसे ग्रहण करेगा ? ॥३४॥ वीणा, बाँसुरी तथा मृदङ्गके माङ्गलिक शब्दोंसे युक्त तथा स्वर्गलोकके सदृश उत्तम भवनमें स्थित जिस सीताकी निद्रा, उत्तम शय्यापर सेवा करती थी वही कातर सीता अब डाभकी अनियोंसे व्याप्त एवं मृगोंके शब्दसे व्याप्त वनमें भयानक रात्रिको किस तरह बितावेगी ? ॥३५-३६॥ देखो, चित्त मोहसे युक्त है ऐसे मैंने क्या किया ? न कुछ साधारण मनुष्योंकी निन्दा से प्रेरित हो प्राणवल्लभा छोड़ दी ॥३७॥ जो अनुकूल है, प्रिय है, पतिव्रता है, सर्व संसारकी अद्वितीय सुन्दरी है, प्रिय वचन बोलनेवाली है, और सुखकी भूमि है ऐसी दूसरी स्त्री कहाँ है ? ॥३८॥ इस तरह चिन्ताके भारसे जिनका चित्त व्याप्त था, जो अत्यन्त दुखी थे, तथा जिनकी आत्मा काँप रही थी ऐसे राम चञ्चल कमलाकरके समान हो गये ॥३९॥ तदनन्तर केवलीके वचनोंका स्मरण कर जिन्होंने उमड़ते हुए आँसू रोके थे तथा जो बड़ी कठिनाईसे अपनी उत्सुकता

---

१. परं मनोहरं प्र० । २. स्वर्गतुल्यभवनस्थिताम् ।

अथ स्वाभाविकीं दृष्टिं बिभ्राणः सहसम्भ्रमः । अधिगम्य सतीं सीतां भक्तिस्नेहान्वितोऽनमत् ॥४१॥
नारायणोऽपि सौम्यात्मा प्रणम्य रचिताञ्जलिः । अभ्यनन्दयदार्यां तां पद्मनाभमनुस्मरन् ॥४२॥
धन्या भगवति त्वं नो वन्द्या जाता सुचेष्टिता । शीलाचलेश्वरं वा त्वं क्षितिवद्वहसेऽधुना ॥४३॥
जिनवागमृतं लब्धं परमं प्रथमं त्वया । [1]निरुक्तं येन संसारसमुद्रं प्रतरिष्यसि ॥४४॥
अपरासामपि स्त्रीणां सतीनां चारुचेतसाम् । इयमेव गतिर्लोकद्वितयप्रस्तुता ॥४५॥
आत्मा कुलद्वयं लोकस्त्वया सर्वं प्रसाधितम् । एवंविधं क्रियायोगं भजन्त्या साधुचित्तया ॥४६॥
क्षन्तव्यं यत्कृतं किञ्चिदस्माभिरनघे साध्वसाधु वा । संसारभावसक्तानां स्खलितं च पदे पदे ॥४७॥
त्वयैवंविधया शान्ते जिनशासनसक्तया । परमानन्दितं चित्तं विषादेऽपि मनस्विनि ॥४८॥
अभिनन्द्येति वैदेहीं [2]प्रहृष्टमनसाविव । प्रयातौ नगरीं कृत्वा पुरस्ताल्लवणाङ्कुशौ ॥४९॥
विद्याधरमहीपालाः प्रमोदं परमं गताः । विस्मयाकम्पिता भूत्वा परया ययुरग्रतः ॥५०॥
मध्ये राजसहस्राणां वर्तमानौ मनोहरौ । पुरं विविशतुर्वीराविन्द्राविव सुरावृतौ ॥५१॥
देव्यस्तदग्रतो नानायानारूढा विचेतसः । प्रययुः परिवारेण यथाविधि समाश्रिताः ॥५२॥
प्रविशन्तं [3]बलं वीक्ष्य नार्यः प्रासादमूर्धगाः । विचित्ररससम्पन्नमभाषन्त परस्परम् ॥५३॥
अयं श्रीबलदेवोऽसौ मानी शुद्धिपरायणः । अनुकूला प्रिया येन हारिता सुविपश्चिता ॥५४॥
जगौ काचित्प्रवीराणां विशुद्धकुलजन्मनाम् । नराणां स्थितिरेषैव कृतमेतेन सुन्दरम् ॥५५॥

को रोक सके थे ऐसे श्रीराम किसी तरह पीड़ा रहित हुए ॥४०॥ अथानन्तर स्वाभाविक दृष्टिको धारण करते हुए रामने सम्भ्रमके साथ सती सीताके पास जाकर भक्ति और स्नेहके साथ उसे नमस्कार किया ॥४१॥ रामके साथ ही साथ सौम्यहृदय लक्ष्मणने भी हाथ जोड़ प्रणामकर आर्या सीताका अभिनन्दन किया ॥४२॥ और कहा कि हे भगवति ! तुम धन्य हो, उत्तम चेष्टा की धारक हो और यतश्च इस समय पृथिवीके समान शीलरूपी सुमेरुको धारण कर रही हो अतः हम सबकी वन्दनीय हो ॥४३॥ जिसके द्वारा तुम संसार-समुद्रको चुपचाप पार करोगी वह श्रेष्ठ जिनवचन रूपी अमृत सर्व प्रथम तुमने ही प्राप्त किया है ॥ ४४॥ हम चाहते हैं कि सुन्दर चित्तकी धारक अन्य पतिव्रता स्त्रियोंकी भी दोनों लोकोंमें प्रशंसनीय यही गति हो ॥४५॥ इस प्रकारके क्रियायोगको प्राप्त करनेवाली एवं उत्तम चित्तकी धारक तुमने अपनी आत्मा दोनों कुल तथा लोक सब कुछ वशमें किया है ॥४६॥ हे सुनये ! हमने जो कुछ साधु अथवा असाधु—अच्छा या बुरा कर्म किया है वह क्षमा करने योग्य है क्योंकि संसार दशामें आसक्त मनुष्योंसे भूल पद-पदपर होती है ॥४७॥ हे शान्ते ! हे मनस्विनि ! इस तरह जिन-शासनमें आसक्त रहनेवाली तुमने मेरे विषाद युक्त चित्तको भी अत्यन्त आनन्दित कर दिया है ॥४८॥ इस प्रकार सीताकी प्रशंसा कर प्रसन्न चित्तकी तरह राम तथा लक्ष्मण, लवण और अंकुशको आगे कर नगरीकी ओर चले ॥४९॥ परम हर्षको प्राप्त हुए विद्याधर राजा विस्मयाकम्पित होते हुए बड़े वैभवसे आगे-आगे जा रहे थे ॥५०॥ हजारों राजाओंके मध्यमें वर्तमान दोनों मनोहर वीरोंने, देवोंसे घिरे हुए इन्द्रोंके समान नगरमें प्रवेश किया ॥५१॥ उनके आगे नाना प्रकारके वाहनोंपर आरूढ़, बेचैन एवं अपने-अपने परिकरसे विधिपूर्वक सेवित रानियाँ जा रही थीं ॥५२॥ रामको प्रवेश करते देख महलके शिखरों पर आरूढ़ स्त्रियाँ, विचित्र रससे युक्त परस्पर वार्तालाप कर रही थीं ॥५३॥ कोई कह रही थी कि ये राम बड़े मानी तथा शुद्धिमें तत्पर हैं कि जिन्होंने विद्वान् होकर भी अपनी अनुकूल प्रिया हरा दी है—छोड़ दी है ॥५४॥ कोई कह रही थी कि विशुद्ध कुलमें जन्म लेनेवाले वीर मनुष्यों

---

१. निसर्क्तं -म० । २. प्रकृष्टमनसाविव म०। ३. रामम् ।

एवं सति विशुद्धात्मा प्रव्रज्यां समुपागता । कस्य नो जानकी जाता मनसः सौख्यकारिणी ॥५६॥
अन्योचे सखि पश्येमं वैदेहा पद्मसुभ्रितम् । ज्योत्स्नया शशिनं मुक्तं दीप्त्या विरहितं रविम् ॥५७॥
अन्योचे किं परायत्तकान्तिरस्य करिष्यति । स्वयमेवातिकान्तस्य बलदेवस्य धीमतः ॥५८॥
काचिदूचे त्वया सीते किं कृतं पुरुषोत्तमम् । ईदृशं नाथमुज्झित्वा वज्रदारुणचित्तया ॥५९॥
जगावन्या परं सीता धन्या चित्तवती सती । यथार्थां या गृहानर्थान्निःसृता स्वहितोद्यता ॥६०॥
काचिदूचे कथं धीरौ त्वयेमौ सुकुमारकौ । रहितौ मानसानन्दौ सुभक्तौ सुकुमारकौ ॥६१॥
कदाचिच्चलति प्रेम न्यस्तं भर्तरि योषिताम् । स्वस्तन्यकृतपोषेषु जातेषु न तु जातुचित् ॥६२॥
अन्योचे परमावेतौ पुरुषौ पुण्यपोषणौ । किमत्र कुरुते माता स्वकर्मनिरते जने ॥६३॥
एवमादिकृतालापाः पद्मतीक्ष्णतत्पराः । न तृप्तियोगमायेदुर्मधुकर्य इव स्त्रियः ॥६४॥
केचिल्लक्ष्मणमैक्षन्त जगदुश्च नरोत्तमाः । सोऽयं नारायणः श्रीमान्प्रभावाक्रान्तविष्टपः ॥६५॥
चक्रपाणिरयं राजा लक्ष्मीपतिरनुत्तमः । साक्षादरातिदाराणां वैधव्यव्रतविग्रहः ॥६६॥

आर्याजातिः

एवं प्रशस्यमानौ नमस्यमानौ च पौरलोकसमूहैः ।
स्वभवनमनुप्रविष्टौ स्वयंप्रभं वरविमानमिव देवेन्द्रौ ॥६७॥

की यही रीति है । इन्होंने जो किया है वह ठीक किया है ॥५५॥ इस प्रकारकी घटनासे निष्कलङ्क हो दीक्षा धारण करनेवाली जानकी किसके मनके लिए सुख उत्पन्न करनेवाली नहीं है ? ॥५६॥ कोई कह रही थी कि हे सखि ! सीतासे रहित इन रामको देखो । ये चाँदनीसे रहित चन्द्रमा और दीप्तिसे रहित सूर्यके समान जान पड़ते हैं ॥५७॥ कोई कह रही थी कि बुद्धिमान् राम स्वयं ही अत्यन्त सुन्दर हैं, दूसरेके आधीन होनेवाली कान्ति इनका क्या करेगी ? ॥५८॥ कोई कह रही थी कि हे सीते ! ऐसे पुरुषोत्तम पतिको छोड़कर तूने क्या किया ? यथार्थमें तू वज्रके समान कठोर चित्तवाली है ॥५९॥ कोई कह रही थी कि सीता परमधन्य, विवेकवती, पतिव्रता एवं यथार्थ स्त्री है जो कि आत्महितमें तत्पर हो घरके अनर्थसे निकल गई—दूर हो गई ॥६०॥ कोई कह रही थी कि हे सीते ! तेरे द्वारा ये दोनों सुकुमार, मनको आनन्द देनेवाले तथा अत्यन्त भक्त पुत्र कैसे छोड़े गये ? ॥६१॥ कदाचित् भर्तापर स्थित स्त्रियोंका प्रेम विचलित हो जाता है परन्तु अपने दूधसे पुष्ट किये हुए पुत्रोंपर कभी विचलित नहीं होता ॥६२॥ कोई कह रही थी कि दोनों कुमार पुण्यसे पोषण प्राप्त करनेवाले परमोत्तम पुरुष हैं । यहाँ माता क्या करती है ? जब कि सब लोग अपने-अपने कर्ममें निरत हैं अर्थात् कर्मानुसार फल प्राप्त करते हैं ॥६३॥ इस प्रकार वार्तालाप करनेवाली तथा पद्म अर्थात् राम (पक्षमें कमल) के देखनेमें तत्पर स्त्रियाँ भ्रमरियोंके समान तृप्तिको प्राप्त नहीं हुई ॥६४॥ कितने ही उत्तम मनुष्य लक्ष्मणको देखकर कह रहे थे कि यह वह नारायण है कि जो अद्भुत लक्ष्मीसे सहित है, अपने प्रभावसे जिसने संसारको आक्रान्त कर रक्खा है, जो हाथमें चक्ररत्नको धारण करनेवाला है, देदीप्यमान है, लक्ष्मीपति है, सर्वोत्तम है और शत्रु स्त्रियोंका मानो साक्षात् शरीरधारी वैधव्य व्रत ही है ॥६५-६६॥ इस प्रकार नगरवासी लोगोंके समूह प्रशंसा कर जिन्हें नमस्कार कर रहे थे ऐसे राम और लक्ष्मण अपने भवनमें उस तरह प्रविष्ट हुए जिस तरह कि दो इन्द्र स्वयं विमानमें प्रविष्ट होते हैं ॥६७॥

अनुष्टुप्

[1]एतत् पद्मस्य चरितं यो निबोधति संततम् ।
अपापो लभते लक्ष्मीं स भाति च परं रवेः ॥६८॥

इत्यार्षे श्रीपद्मचरिते श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते प्रव्रजितसीताभिधानं नाम सप्तोत्तरशतं पर्व ॥१०७॥

गौतमस्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य रामके इस चरितको निरन्तर जानता है—अच्छी तरह इसका अध्ययन करता है वह निष्पाप हो लक्ष्मी प्राप्त करता है तथा सूर्यसे भी अधिक शोभायमान होता है ॥६८॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा कथित श्री पद्मपुराणमें सीताकी दीक्षा का वर्णन करनेवाला एक सौ सातवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१०७॥

---

१. एवं म० ।

अष्टोत्तरशतं पर्व

पद्मस्य चरितं राजा श्रुत्वा दुरितदारणम् । निर्मुक्तसंशयात्मानं व्यशोचदिति चेतसा ॥१॥
निरस्तः सीतया दूरं स्नेहबन्धः स तादृशः । सहिष्यते महाचर्यां सुकुमारा कथं नु सा ॥२॥
परम धात्रा[1] मृगाक्षौ तौ मात्रा विरहमाकृतौ । सर्वर्द्धिद्युतिसम्पन्नौ कुमारौ लवणाङ्कुशौ ॥३॥
तातावशेषतां प्राप्तौ कथं मातृवियोगजम् । दुःखं तौ विसहिष्येते निरन्तरसुखैधितौ ॥४॥
महौजसामुदाराणां विषमं जायते तदा । तत्र शेषेषु काऽवस्था ध्यात्वेत्यूचे गणाधिपम् ॥५॥
सर्वज्ञेन ततो दृष्टं जगत्प्रत्ययमागतम् । इन्द्रभूतिर्जगौ तस्मै चरितं लवणाङ्कुशम् ॥६॥
अभूच्च पुरि काकन्द्यामधिपो रतिवर्द्धनः । पत्नी सुदर्शना तस्य पुत्रौ प्रियहितङ्करौ ॥७॥
अमात्यः सर्वगुप्ताख्यो राज्यलक्ष्मीधुरन्धरः । ज्ञेयः प्रभोः प्रतिस्पर्द्धी वधोपायपरायणः ॥८॥
अमात्यवनिता रक्ता राजानं विजयावली । शनैरबोधयद्गत्वा पत्या कार्यं समीहितम् ॥९॥
बहिरप्रत्ययं राजा श्रितः प्रत्ययमान्तरम् । अभिज्ञानं ततोऽवोचदेतस्मै विजयावली ॥१०॥
कलहं सदसि श्वोऽसौ समुत्थोत्थापिता तव । परस्त्रीविरतो राजा बुद्ध्यैव पुनरग्रहीत् ॥११॥
बाह्यवीक्ष्य कथं मेऽसौ परं भक्तोऽपभाषते । विजयावलि सम्भाव्यं कदाचिदपि नेदृशम् ॥१२॥

अथानन्तर राजा श्रेणिक रामका पापापहारी चरित सुनकर अपने आपको संशययुक्त मानता हुआ मनमें इस प्रकार विचार करने लगा कि यद्यपि सीताने दूरतक बढ़ा हुआ उस प्रकारका स्नेहबन्धन तोड़ दिया है फिर भी सुकुमार शरीरको धारक सीता महाचर्याको किस प्रकार कर सकेगी ? ॥१-२॥ देखो, विधाताने मृगके समान नेत्रोंको धारण करनेवाले, सर्व-ऋद्धि और कान्तिसे सम्पन्न दोनों लवणांकुश कुमारोंको माताका विरह प्राप्त करा दिया। अब पिता ही उनके शेष रह गये सो निरन्तर सुखसे वृद्धिको प्राप्त हुए दोनों कुमार मातके वियोग-जन्य-दुखको किस प्रकार सहन करेंगे ? ॥३-४॥ जब महाप्रतापी बड़े-बड़े पुरुषोंकी भी ऐसी विषम दशा होती है तब अन्य लोगोंकी तो बात ही क्या है ? ऐसा विचार कर श्रेणिक राजाने गौतम गणधरसे कहा कि सर्वज्ञदेवने जगत्का जो स्वरूप देखा है उसका मुझे प्रत्यय है— श्रद्धान है। तदनन्तर इन्द्रभूति गणधर, श्रेणिकके लिए लवणांकुशका चरित कहने लगे ॥५-६॥

उन्होंने कहा कि हे राजन् ! काकन्दी नगरीमें राजा रतिवर्धन रहता था। उसकी स्त्रीका नाम सुदर्शन था और उन दोनोंके प्रियङ्कर नामक दो पुत्र थे ॥७॥ राजाका एक सर्वगुप्त नामका मन्त्री था जो यद्यपि राज्यलक्ष्मीका भार धारण करनेवाला था तथापि वह राजाके साथ भीतर ही भीतर स्पर्धा रखता था और उसके मारनेके उपाय जुटानेमें तत्पर रहता था ॥८॥ मन्त्रीकी स्त्री विजयावली राजामें अनुरक्त थी इसलिए उसने धीरेसे जाकर राजाको मन्त्रीकी सब चेष्टा बतला दी ॥९॥ राजाने बाह्यमें तो विजयावलीकी बातका विश्वास नहीं किया किन्तु अन्तरङ्गमें उसका विश्वास कर लिया। तदनन्तर विजयावलीने राजाके लिए उसका चिह्न भी बतलाया ॥१०॥ उसने कहा कि मन्त्री कल सभामें आपकी कलहको बढ़ावेगा अर्थात् आपके प्रति बक-झक करेगा। परस्त्री विरत राजाने इस बातको बुद्धिसे ही पुनः ग्रहण किया अर्थात् अन्तरङ्गमें तो इसका विश्वास किया बाह्यमें नहीं ॥११॥ बाह्यमें राजाने कहा कि हे विजयावलि ! वह तो मेरा

---

१. दैवेन ।

ततोऽन्यत्र दिने चिह्नं भावं ज्ञात्वा महीपतिः । क्षमानिवारणेनैव प्रैषयद्दुरितागमम् ॥१३॥
राजा कोपति मामेष इत्युक्त्वा प्रतिपक्षितः । सामन्तानभिनस्सर्वानमात्यः पापमानसः ॥१४॥
राजवासगृहं रात्रौ ततोऽमात्यो महेन्धनैः । अदीपयन्महोक्षस्तु प्रमादरहितः सदा ॥१५॥
प्राकारपुटगुप्तेन प्रदेशेन सुरङ्गया । भार्यां पुत्रौ पुरस्कृत्य निःससार शनैः सुधीः ॥१६॥
यातश्च कशिपुं तेन काशीपुर्यां महीपतिम् । न्यायशीलं स्वसामन्तमुग्रवंशधुरन्धरम् ॥१७॥
राज्यस्थः सर्वगुप्तोऽथ दूतं सम्प्राहिणोद्यथा । कशिपो मां नमस्येति ततोऽसौ प्रत्यभाषत ॥१८॥
[1]स्वामिघातकृतो हन्ता दुःखदुर्गतिभाक् खलः । पूर्वविधो न नाम्नाऽपि कीर्त्यते सेव्यते कथम् ॥१९॥
सयोषितसुतो दग्धो येनेशो रतिवर्द्धनः । स्वामिस्त्रीबालघातं तं न स्मर्तुमपि वर्त्तते ॥२०॥
पापस्यास्य शिरश्छित्वा सर्वलोकस्य पश्यतः । तत्क्षणेनैव करिष्यामि रतिवर्द्धननिष्क्रयम् ॥२१॥
एवं मं दूतमुत्सार्य दूरं नासिरुन्धन्य सः । अभूत्तो तुर्मतं सद्बुद्धिस्थितः कर्त्तव्यवस्तुनि ॥२२॥
स्वामिभक्तिपरस्यास्य कशिपोर्बलशालिनः । अभूदखि प्रगन्तव्यममात्यं प्रति सर्वदा ॥२३॥
सर्वगुप्तो महासैन्यसमेतः सह पार्थिवैः । दूतप्रबोधितः प्राप चक्रवर्तीव मानवान् ॥२४॥
काशिदेशं तु विस्तीर्णं प्रविष्टः सागरोपमः । सन्धानं कशिपुर्नैच्छद्योद्धव्यमिति निश्चितः ॥२५॥
रतिवर्द्धनराजेन प्रेषितः कशिपुं प्रति । दण्डपाणिर्युधा प्राप्तः प्रविष्टश्च निशागमे ॥२६॥

परम भक्त है वह ऐसा विरुद्ध भाषण कैसे कर सकता है ? तुमने जो कहा है वह तो किसी तरह सम्भव नहीं है ॥१२॥

तदनन्तर दूसरे दिन राजाने उक्त चिह्न जानकर अर्थात् कलहका अवसर जान क्षमारूप शस्त्रके द्वारा उस अनिष्टको टाल दिया ॥१३॥ 'यह राजा मेरे प्रति क्रोध रखता है—अपशब्द कहता है' ऐसा कहकर पापी मन्त्रीने सब सामन्तोंको भीतर-ही भीतर फोड़ लिया ॥१४॥ तदनन्तर किसी दिन उसने रात्रिके समय राजाके निवासगृहको बहुत भारी ईंधनसे प्रज्वलित कर दिया परन्तु राजा सदा सावधान रहता था ॥१५॥ इसलिए वह बुद्धिमान, स्त्री और दोनों पुत्रोंको लेकर प्राकार-पुटसे सुगुप्त प्रदेशमें होता हुआ सुरङ्गसे धीरे-धीरेसे बाहर निकल गया ॥१६॥ उस मार्गसे निकलकर वह काशीपुरीके राजा कशिपुके पास गया। राजा कशिपु न्याय-शील, उग्रवंशका प्रधान एवं उसका सामन्त था ॥१७॥ तदनन्तर जब सर्वगुप्त मन्त्री राज्यगद्दी पर बैठा तब उसने दूत द्वारा सन्देश भेजा कि हे कशिपो ! मुझे नमस्कार करो। इसके उत्तरमें कशिपुने कहा ॥१८॥ यह स्वामीका घात करनेवाला दुष्ट दुःखपूर्ण दुर्गतिको प्राप्त होगा। ऐसे दुष्टका तो नाम भी नहीं लिया जाता फिर सेवा कैसे की जावे ॥१९॥ जिसने स्त्री और पुत्रों सहित अपने स्वामी रतिवर्धनको जला दिया उस स्वामी, स्त्री और बालघातीका तो स्मरण करना भी योग्य नहीं है ॥२०॥ इस पापीका सब लोगोंके देखते-देखते शिर काटकर आज ही रतिवर्धनका बदला चुकाऊँगा, यह निश्चय समझो ॥२१॥ इस तरह, जिस प्रकार विवेकी मनुष्य मिथ्यामतको दूर हटा देता है उसी प्रकार उस दूतको दूर हटाकर तथा उसकी बात काटकर वह करने योग्य कार्यमें तत्पर हो गया ॥२२॥ तदनन्तर स्वामि-भक्तिमें तत्पर इस बलशाली कशिपु की दृष्टि, सदा चढ़ाई करनेके योग्य मन्त्रीके प्रति लगी रहती थी ॥२३॥

तदनन्तर दूतसे प्रेरित, चक्रवर्तीके समान मानो, सर्वगुप्त मन्त्री बड़ी भारी सेना लेकर अनेक राजाओंके साथ आ पहुँचा ॥२४॥ यद्यपि समुद्रके समान विशाल सर्वगुप्त, लम्बे चौड़े काशी देशमें प्रविष्ट हो चुका था तथापि कशिपुने सन्धि करनेकी इच्छा नहीं की किन्तु युद्ध करना चाहिए इसी निश्चयपर वह दृढ़ रहा आया ॥२५॥ उसी दिन रात्रिका प्रारम्भ होते ही

१. कृत स्वामिघातो येन सः स्वामिघातकृतः 'बाहिताग्न्यादिषु' इति क्तान्तस्य परनिपातः । स्वामिघात-कृतं हन्ता म०, ल०, ज० ।

जगौ च वर्द्धसे दिष्ट्या देवेनो रतिवर्द्धनः । कासौ कासाविति स्फीतः तुष्टः कशिपुरभ्यधात् ॥२७॥
उद्याने स्थित इत्युक्ते सुतरां प्रमदान्वितः । निर्ययावर्घपाद्येन सोऽन्तःपुरपुरःसरः ॥२८॥
जयत्यजेयराजेन्द्रो रतिवर्द्धन इत्यभूत् । उत्सवो दर्शने तस्य कशिपोर्दानमानतः ॥२९॥
संयुगे सर्वगुप्तस्य जीवतो ग्रहणं ततः । रतिवर्द्धनराजस्य काकन्द्यां राज्यसङ्गमः ॥३०॥
विज्ञाय ते हि जीवन्तं स्वामिनं रतिवर्द्धनम् । सामन्ताः सङ्गता [1]मुक्त्वा सर्वगुप्तं रणान्तरे ॥३१॥
पुनर्जन्मोत्सवश्चक्रे रतिवर्द्धनभूभृतः । महद्भिर्दानसम्मानैर्देवतानां च पूजनैः ॥३२॥
नीतः प्रत्यन्तवासित्वं मृततुल्यममात्यकः । दर्शनेनोज्झितः पापः सर्वलोकविगर्हितः ॥३३॥
कशिपुः काशिराजोऽसौ वाराणस्यां महाद्युतिः । रेमे परमया लक्ष्म्या लोकपाल इवापरः ॥३४॥
अथ भोगविनिर्विण्णः कदाचिद्रतिवर्द्धनः । श्रमणत्वं भदन्तस्य सुभानोरन्तिकेऽग्रहीत् ॥३५॥
आसीत्तया कृतो भेदः सर्वगुप्तेन निश्चितः । मनो विद्वेष्यतां प्राप्ता परमं तस्य भामिनी ॥३६॥
नाहं जाता नरेन्द्रस्य न पत्युरिति शोकिनी । अकामतपसा जाता राक्षसी विजयावली ॥३७॥
उपसर्गं तयोदारे क्रियमाणेतिवैरतः । सुध्याने कैवलं राज्यं सम्प्राप्तो रतिवर्द्धनः ॥३८॥
श्रामण्यं विमलं कृत्वा प्रियङ्करहितङ्करौ । ग्रैवेयकस्थितिं प्राप्तौ चतुर्थभवतः परम् ॥३९॥
शामल्यां दामदेवस्य तत्रैव पुरि नन्दनौ । वसुदेववसुदेवाख्यौ गुण्यावस्थामितौ[2] द्विजौ ॥४०॥

रतिवर्धन राजाके द्वारा कशिपुके प्रति भेजा हुआ एक युवा दण्ड हाथमें लिये वहाँ आया और बोला कि हे देव ! आप भाग्यसे बढ़ रहे हैं क्योंकि राजा रतिवर्द्धन यहाँ विद्यमान हैं। इसके उत्तरमें हर्षसे फूले हुए कशिपुने सन्तुष्ट होकर कहा कि वे कहाँ हैं ? वे कहाँ हैं ? २६–२७॥ 'उद्यानमें स्थित हैं' इस प्रकार कहनेपर अत्यन्त हर्षसे युक्त कशिपु अन्तःपुरके साथ अर्घ तथा पादोदक साथ ले निकला ॥२८॥ 'जो किसीके द्वारा जीता न जाय ऐसा राजाधिराज रतिवर्धन जयवन्त हैं' यह सोचकर उसके दर्शन होनेपर कशिपुने दान-सन्मान आदिसे बड़ा उत्सव किया ॥२९॥ तदनन्तर युद्धमें सर्वगुप्त जीवित पकड़ा गया और राजा रतिवर्धनको राज्यकी प्राप्ति हुई ॥३०॥ जो सामन्त पहले सर्वगुप्तसे आ मिले थे वे स्वामी रतिवर्धनको जीवित जानकर रणके बीचमें ही सर्वगुप्तको छोड़ उसके पास आ गये थे ॥३१॥ बड़े-बड़े दान सन्मान देवताओंका पूजन आदिसे रतिवर्धन राजाका फिरसे जन्मोत्सव किया गया ॥३२॥ और सर्वगुप्त मन्त्री चाण्डालके समान नगरके बाहर बसाया गया, वह मृतकके समान निस्तेज हो गया, उस पापीकी ओर कोई आँख उठाकर भी नहीं देखता था तथा सर्वलोकमें वह निन्दित हुआ ॥३३॥ महाकान्तिको धारण करनेवाला काशीका राजा कशिपु वाराणसीमें उत्कृष्ट लक्ष्मीसे ऐसी क्रीड़ा करता था मानो दूसरा लोकपाल ही हो ॥३४॥

अथानन्तर किसी समय राजा रतिवर्धनने भोगोंसे विरक्त हो सुभानु नामक मुनिराजके समीप जिनदीक्षा धारण कर ली ॥३५॥ सर्वगुप्तने निश्चय कर लिया कि यह सब भेद उसकी स्त्री विजयावलीका किया हुआ है इससे वह परम विद्वेष्यताको प्राप्त हुई अर्थात् मन्त्रीने अपनी स्त्रीसे अधिक द्वेष किया ॥३६॥ विजयावलीने देखा कि मैं न तो राजाकी हो सकी और न पतिकी हो रही इसीलिए शोकयुक्त हो अकाम तप कर वह राक्षसी हुई ॥३७॥ तीव्र वैरके कारण उसने रतिवर्धन मुनिके ऊपर घोर उपसर्ग किया परन्तु वे उत्तम ध्यानमें लीन हो केवलज्ञान रूपी राज्यको प्राप्त हुए ॥३८॥

राजा रतिवर्धनके पुत्र प्रियङ्कर और हितङ्कर निर्मल मुनिपद धारण कर ग्रैवेयकमें उत्पन्न हुए। इस भवसे पूर्व चतुर्थ भवमें वे शामली नामक नगरमें दामदेव नामक ब्राह्मणके वसुदेव

---

१. मुक्ताः म० । २. -मिमौ म० ।

विश्वाप्रियङ्गुनामानौ ज्ञेये सुवनिते तयोः । आसीद्गृहस्थभावश्च शंसनीयो मनीषिणाम् ॥४१॥
सा श्रीतिलकाभिख्ये दानं दत्त्वा सुभावनौ । त्रिपल्यभोगितां प्राप्तौ सस्त्रीकावुत्तरे कुरौ ॥४२॥
साधुसद्दामवृक्षोत्थमहाफलसमुद्भवम् । भुक्त्वा भोगं परं तत्र प्राप्तावैशानवासिताम् ॥४३॥
भुक्तभोगौ ततश्च्युत्वा बोधिलक्ष्मीसमन्वितौ । क्षीणदुर्गतिकर्माणौ जातौ प्रियहितङ्करौ ॥४४॥
चतुष्कर्ममयारण्यं शुक्लध्यानेन वह्निना । निर्दह्य निर्वृतिं प्राप्तो मुनीन्द्रो रतिवर्द्धनः ॥४५॥
कथितौ यौ समासेन वीरौ प्रियहितङ्करौ । ग्रैवेयकाच्च्युतावेतौ भव्यौ तौ लवणाङ्कुशौ ॥४६॥
राजन् सुदर्शना देवी तदाऽऽसीत्स्नेहबन्धना । [illegible] स्त्रीत्वभावानुभावतः ॥४७॥
निदानशृङ्खलाबद्धा भ्राम्यन्ती दुःखसङ्कटम् । कृच्छ्रं स्त्रीत्वं विनिर्जित्य भुक्त्वा विविधयोनिषु ॥४८॥
अयं क्रमेण सम्पन्नो मनुष्यः पुण्यचोदितः । सिद्धार्थो धर्मसक्तात्मा विद्याविधिविशारदः ॥४९॥
तत्पूर्वस्नेहसंसक्तौ बालकौ लवणाङ्कुशौ । अनेन संस्कृतौ जातौ त्रिदशैरपि दुर्जयौ ॥५०॥

उपजातिवृत्तम्

एवं विदित्वा सुलभौ नितान्तं जीवस्य लोके पितरौ सदैव ।
कर्त्तव्यमेतद्बुधिया प्रयत्नाद्विमुच्यते येन शरीरदुःखात् ॥५१॥
विमुच्य सर्वं भवबृंहिहेतुं कर्मोद्भवदुःखप्रभवं जुगुप्सम् ।
कृत्वा तपो जैनमतोपदिष्टं रविं तिरस्कृत्य शिवं प्रयात ॥५२॥

इत्यार्षे श्रीपद्मपुराणे रविषेणाचार्यप्रोक्ते लवणाङ्कुशपूर्वभवाभिधानं नामाष्टोत्तरशतं पर्व ॥१०८॥

और सुदेव नामके गुणी पुत्र थे ॥३९-४०॥ विश्वा और प्रियङ्गु नामकी उनकी स्त्रियाँ थीं जिनके कारण उनका गृहस्थ पद विद्वज्जनोंके द्वारा प्रशंसनीय था ॥४१॥ श्रीतिलक नामक मुनिराजके लिए उत्तम भावोंसे दान देकर वे स्त्री सहित उत्तरकुरु नामक उत्तम भोगभूमिमें तीन पल्यकी आयुको प्राप्त हुए ॥४२॥ वहाँ साधु-दान रूपी वृक्षसे उत्पन्न महाफलसे प्राप्त हुए उत्तम भोग भोग कर वे ऐशान स्वर्गमें निवासको प्राप्त हुए ॥४३॥ तदनन्तर जो आत्मज्ञान रूपी लक्ष्मी से सहित थे, तथा जिनके दुर्गतिदायक कर्म क्षीण हो गये थे ऐसे दोनों देव, वहाँसे भोग भोग कर च्युत हुए तथा पूर्वोक्त राजा रतिवर्धनके प्रियङ्कर और हितङ्कर नामक पुत्र हुए ॥४४॥

रतिवर्धन मुनिराज शुक्ल ध्यान रूपी अग्निके द्वारा अघातिया कर्म रूपी वनको जला कर निर्वाणको प्राप्त हुए ॥४५॥ संक्षेपसे जिन प्रियङ्कर और हितङ्कर वीरोंका वर्णन किया गया है वे ग्रैवेयकसे ही च्युत हो भव्य लवण और अंकुश हुए ॥४६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! काकन्दीके राजा रतिवर्धनकी जो पुत्रोंसे अत्यन्त स्नेह करनेवाली सुदर्शना नामकी रानी थी वह पति और पुत्रोंके वियोगसे पीड़ित हो स्त्रीत्वभावके कारण निदानबन्ध रूपी साँकलसे बद्ध होती हुई दुःख रूपी सङ्कटमें घूमती रही और नाना योनियोंमें स्त्री पर्यायका उपभोग कर तथा बड़ी कठिनाईसे उसे जीत कर क्रमसे मनुष्य हुई । उसमें भी पुण्यसे प्रेरित धार्मिक तथा विद्याओंकी विधिमें निपुण सिद्धार्थ नामक क्षुल्लक हुई ॥४७-४९॥ उनमें पूर्व स्नेह होनेके कारण इस क्षुल्लकने लवण और अंकुश कुमारोंको विद्याओंसे इस प्रकार संस्कृत—सुशोभित किया जिससे कि वे देवोंके द्वारा भी दुर्जय हो गये ॥५०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस प्रकार 'संसारमें प्राणीको माता-पिता सदा सुलभ हैं' ऐसा जान कर विद्वानोंको प्रयत्नपूर्वक ऐसा काम करना चाहिए कि जिससे वे शरीर सम्बन्धी दुःखसे छूट जावें ॥५१॥ संसार वृद्धिके कारण, विशाल दुःखोंके जनक एवं निन्दित समस्त कर्मको छोड़ कर हे भव्यजनो ! जैनमतमें कहा हुआ तप कर तथा सूर्यको तिरस्कृत कर मोक्षकी ओर प्रयाण करो ॥५२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा कथित, पद्मपुराणमें लवणाङ्कुशके पूर्वभवोंका वर्णन करनेवाला एक सौ आठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१०८॥

नवोत्तरशतं पर्व

पतिपुत्रान् परित्यज्य विश्रुतप्रथितचेष्टिता । निष्क्रान्ता कुरुते सीता यत्तच्छृणुष्व मे शृणु ॥१॥
तस्मिन् विहरते काले श्रीमान् सकलभूषणः । दिव्यज्ञानेन यो लोकमलोकं चावबुध्यते ॥२॥
अयोध्या सकला येन गृहाश्रमविधौ कृता । सुधृत्या सुस्थितिं प्राप्ता सद्धर्मप्रतिलम्भिता ॥३॥
प्रजा च सकला तस्य वाक्ये भगवतः स्थिता । रेजे साम्राज्ययुक्तेन राज्ञेव कृतपालना ॥४॥
सद्धर्मोत्सवसन्तानस्तत्र काले महोदयः । सुप्रबोधतमो लोकः साधुपूजनतत्परः ॥५॥
मुनिसुव्रतनाथस्य तत्तीर्थं भवनाशनम् । विराजतेतरां यद्वदरमल्लिजिनान्तरम् ॥६॥
अपि या त्रिदशस्त्रीणामतिशेते मनोज्ञताम् । तपसा शोषिता साऽभूत्सीता वृन्देव माधवी ॥७॥
महासंवेगसम्पन्ना दुर्भावपरिवर्जिता । अत्यन्तनिन्दितं स्त्रीत्वं चिन्तयन्ती सती सदा ॥८॥
संसक्तभूरजोवस्त्रबद्धोरस्कशिरोरुहा । अस्नानस्वेदसञ्जातमलकञ्चुकधारिणी ॥९॥
अष्टमार्द्धर्तु कालादिकृतशास्त्रोक्तपारणा । शीलव्रतगुणासक्ता रागद्वेषविवर्जिता ॥१०॥
अध्यात्मनियतात्यन्तं शान्ता स्वान्तवशात्मिका । तपोऽधिकुरुतेऽन्यैर्यं जनान्तरसुदुःसहम् ॥११॥
मांसवर्जितसर्वाङ्गा व्यक्तास्थिस्नायुपञ्जरा । पार्थिवद्रव्यनिर्मुक्ता [1]पौस्तीव [2]प्रतिमातना ॥१२॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिसकी चेष्टाएँ समस्त संसारमें प्रसिद्धि पा चुकी थीं ऐसी सीता पति तथा पुत्रका परित्याग कर तथा दीक्षित हो जो कुछ करती थी वह तेरे लिए कहता हूँ सो सुन ॥ १ ॥ उस समय यहाँ पर श्रीमान् सकलभूषण केवलीका विहार हो रहा था जो कि दिव्यज्ञानके द्वारा लोक अलोकको जानते थे ॥ २ ॥ जिन्होंने समस्त अयोध्याको गृहाश्रमका पालन करनेमें निपुण, संतोषसे उत्तम अवस्थाको प्राप्त एवं समीचीन धर्मसे सुशोभित किया था ॥ ३ ॥ उन भगवान्‌के वचनमें स्थित समस्त प्रजा ऐसी सुशोभित होती थी मानो साम्राज्यसे युक्त राजा ही उसका पालन कर रहा हो ॥ ४ ॥ उस समयके मनुष्य समीचीन धर्मके उत्सव करनेवाले, महाभ्युदयसे सम्पन्न, सम्यग्ज्ञानसे युक्त एवं साधुओंकी पूजा करनेमें तत्पर रहते थे ॥५॥ मुनिसुव्रत भगवान्‌का वह संसारापहारी तीर्थ उस तरह अत्यधिक सुशोभित हो रहा था जिस तरह कि अरनाथ और मल्लिनाथ जिनेन्द्रका अन्तर काल सुशोभित होता था ॥६॥

तदनन्तर जो सीता देवाङ्गनाओंकी भी सुन्दरताको जीतती थी वह तपसे सूखकर ऐसी हो गई जैसी जली हुई माधवी लता हो ॥७॥ वह सदा महासंवेगसे सहित तथा खोटे भावोंसे दूर रहती थी तथा स्त्री पर्यायको सदा अत्यन्त निन्दनीय समझती रहती थी ॥८॥ पृथिवीकी धूलिसे मलिन वस्त्रसे जिसका वक्षःस्थल तथा शिरके बाल सदा आच्छादित रहते थे, जो स्नानके अभावमें पसीनासे उत्पन्न मैल रूपी कञ्चुकको धारण कर रही थी, जो चार दिन, एक पक्ष तथा ऋतुकाल आदिके बाद शास्त्रोक्त विधिसे पारणा करती थी, शीलव्रत और मूलगुणोंके पालन करनेमें तत्पर रहती थी, राग-द्वेषसे रहित थी, अध्यात्मके चिन्तनमें तत्पर रहती थी, अत्यन्त शान्त थी, जिसने अपने आपको अपने मनके अधीन कर रक्खा था, जो अन्य मनुष्योंके लिए दुःसह, अत्यन्त कठिन तप करती थी, जिसका समस्त शरीर मांससे रहित था, जिसकी हड्डी और आँतोंका पञ्जर प्रकट दिख रहा था, जो पार्थिव तत्त्वसे रहित लकड़ी आदिसे बनी प्रतिमा

---

१. पुस्तनिर्मिता । २. प्रतिमेव ।

अवलीनकगण्डान्ता सम्बद्धा केवलं त्वचा । उत्कटभ्रुतटा शुष्का नदीव निस्तरामभात् ॥१३॥
युगमानमहीपृष्ठन्यस्तसौम्यनिरीक्षणा । तपःकारणदेहार्थं भिक्षां चक्रे यथाविधि ॥१४॥
[1]अन्यथात्वमिवानीता तपसा साधुचेष्टिता । नाऽऽत्मीयपरकीयेन जनेनाऽज्ञायि गोचरे ॥१५॥
दृष्ट्वा तामेव कुर्वन्ति तस्या एव सदा कथाम् । न च प्रत्यभिजानन्ति तदा तामार्यिकां जनाः ॥१६॥
एवं द्वाषष्टिवर्षाणि तपः कृत्वा समुन्नतम् । त्रयस्त्रिंशद्दिनं कृत्वा परमाराधनाविधिम् ॥१७॥
उच्छ्रितं संस्तरं बहूपकरियज्य शरीरकम् । आरणाच्युतमारुह्य प्रतीन्द्रत्वमुपागमत् ॥१८॥
माहात्म्यं पश्यतेदृक्षं धर्मस्य जिनशासने । जन्तुः स्त्रीत्वं पदुज्झित्वा पुमान् जातः सुरप्रभुः ॥१९॥
तत्र कल्पे मणिच्छायासमुद्योतितपुष्करे । काञ्चनादिमहाद्रव्यविचित्रपरमाद्भुते ॥२०॥
सुमेरुशिखराकारे विमाने परिवारिणि । परमैश्वर्यसम्पन्नः सम्प्राप्तः त्रिदशेन्द्रताम् ॥२१॥
देवीशतसहस्राणां नयनानां समाश्रयः । तारागणपरीवारः शशाङ्क इव राजते ॥२२॥
इत्यन्यानि च साधूनि चरितानि नरेश्वरः । पापघातीनि शुश्राव पुराणानि गणेश्वरात् ॥२३॥
राजोचे कस्तदा नाथो देवानामारणाच्युते । बभौ यस्य प्रतिस्पर्द्धी सीतेन्द्रोऽपि तपोबलात् ॥२४॥
मधुरित्याह भगवान् भ्राता यस्य स कैटभः । येन भुक्तं महैश्वर्यं द्वाविंशत्यब्धिसम्मितम् ॥२५॥
चतुःषष्टिसहस्रेषु किञ्चिदग्रेष्वनुक्रमात् । वर्षाणां समतीतेषु सुकृतस्यावशेषतः ॥२६॥

के समान जान पड़ती थी, जिसके कपोल भीतर घुस गये थे, जो केवल त्वचासे आच्छादित थी, जिसका भ्रूकुटितल ऊँचा उठा हुआ था तथा उससे जो सूखी नदीके समान जान पड़ती थी। युग प्रमाण पृथिवी पर जो अपनी सौम्यदृष्टि रखकर चलती थी, जो तपके कारण शरीरकी रक्षाके लिए विधिपूर्वक भिक्षा ग्रहण करती थी, जो उत्तम चेष्टासे युक्त थी, तथा तपके द्वारा उस प्रकार अन्यथाभावको प्राप्त हो गई थी कि विहारके समय उसे अपने पराये लोग भी नहीं पहिचान पाते थे ॥९-१५॥ ऐसी उस सीताको देखकर लोग सदा उसीकी कथा करते रहते थे। जो लोग उसे एक बार देखकर पुनः देखते थे वे उसे 'यह वही है' इस प्रकार नहीं पहिचान पाते थे ॥१६॥ इस प्रकार बासठ वर्ष तक उत्कृष्ट तप कर तथा तैंतीस दिनकी उत्तम सल्लेखना धारणकर उपभुक्त विस्तरके समान शरीरको छोड़कर वह आरण-अच्युत युगलमें आरूढ़ हो प्रतीन्द्र पदको प्राप्त हुई ॥१७-१८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अहो! जिन-शासनमें धर्मका ऐसा माहात्म्य देखो कि यह जीव स्त्री पर्यायको छोड़ देवोंका स्वामी पुरुष हो गया ॥१९॥

जहाँ मणियोंकी कान्तिसे आकाश देदीप्यमान हो रहा था तथा जो सुवर्णादि महाद्रव्योंके कारण विचित्र एवं परम आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला था ऐसे उस अच्युत स्वर्गमें वह अपने परिवारसे युक्त सुमेरुके शिखरके समान विमानमें परम ऐश्वर्यसे सम्पन्न प्रतीन्द्र पदको प्राप्त हुई ॥२०-२१॥ वहाँ लाखों देवियोंके नेत्रोंका आधारभूत वह प्रतीन्द्र, तारागणोंके परिवारसे युक्त चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहा था ॥२२॥ इस प्रकार राजा श्रेणिकने श्रीगौतम गणधरके मुखारविन्दसे अन्य उत्तमोत्तम चरित्र तथा पापोंको नष्ट करनेवाले अनेक पुराण सुने ॥२३॥ तदनन्तर राजा श्रेणिकने कहा कि उस समय आरणाच्युत कल्पमें देवोंका ऐसा कौन अधिपति अर्थात् इन्द्र सुशोभित था कि सीतेन्द्र भी तपोबलसे जिसका प्रतिस्पर्धी था ॥२४॥ इसके उत्तरमें गणधर भगवान्‌ने कहा कि उस समय वह मधुका जीव आरणाच्युत स्वर्गका इन्द्र था, जिसका भाई कैटभ था तथा जिसने बाईस सागर तक इन्द्रके महान् ऐश्वर्यका उपभोग किया था ॥२५॥ अनुक्रमसे कुछ अधिक चौंसठ हजार वर्ष बीत जानेपर अवशिष्ट पुण्यके प्रभावसे वे मधु

---

१. अन्यथामिवानीता म० [अन्यथात्वमिवानीता] इति पाठः सम्यक् प्रतिभाति। अन्ययामिव सा नीता अ०।

इह प्रद्युम्नशाम्बौ तौ भावेतौ मधुकैटभौ । द्वारिकायां समुत्पन्नौ पुत्रौ कृष्णस्य भारते ॥२७॥
षष्टिवर्षसहस्राणि चत्वारि च ततः परम् । रामायणस्य विज्ञेयमन्तरं भारतस्य च ॥२८॥
अरिष्टनेमिनाथस्य तीर्थे नाकादिह च्युतः । मधुर्बभूव रुक्मिण्यां वासुदेवस्य नन्दनः ॥२९॥
मगधाधिपतिः प्राह नाथ वागमृतस्य ते । अतृप्तिमुपगच्छामि धनस्येव धनेश्वरः ॥३०॥
तावन्मधोः सुरेन्द्रस्य चरितं विनिगद्यताम् । भगवन् श्रोतुमिच्छामि प्रसादः क्रियतां मम ॥३१॥
कैटभस्य च तद्भ्रातुरवधानपरायण । गणेन्द्र चरितं ब्रूहि सर्वं हि विदितं तव ॥३२॥
आसीदन्यभवे तेन किं कृतं प्रकृतं भवेत् । कथं वा त्रिजगच्छ्रेष्ठा लब्धा बोधिः सुदुर्लभा ॥३३॥
क्रमवृत्तिरियं वाणी तावकी धीश्च मानिका । उत्सुकं च परं चित्तमहो युक्तमनुक्रमात् ॥३४॥
गण्याह मगधाभिख्ये देशोऽस्मिन्सर्वसस्यके । चातुर्वर्ण्यप्रमुदिते धर्मकामार्थसंयुते ॥३५॥
चारुचैत्यालयाकीर्णे पुरग्रामाकराऽऽचिते । नद्युद्यानमहारम्ये साधुसङ्घसमाकुले ॥३६॥
राजा नित्योदितो नाम तत्र कालेऽभवन्महान् । शालिग्रामोऽस्ति तत्रैव देशे ग्रामः पुरोपमः ॥३७॥
ब्राह्मणः सोमदेवोऽत्र भार्या तस्याग्निलेत्यभूत् । विज्ञेयौ तनयौ तस्या[1] वह्निमारुतभूतिकौ ॥३८॥
षट्कर्मविधिसम्पन्नौ वेदशास्त्रविशारदौ । अस्मत्तः कोऽपरोऽस्तीति नित्यं पण्डितमानिनौ ॥३९॥
अभिमानमहादाहसन्तापोद्भूतविभ्रमौ । भोग एव सदा सेव्य इति धर्मपराङ्मुखौ ॥४०॥

और कैटभके जीव भरतक्षेत्रकी द्वारिका नगरीमें महाराज श्रीकृष्णके प्रद्युम्न तथा शाम्ब नामके पुत्र हुए ॥२६-२७॥ इस तरह रामायण और महाभारतका अन्तर कुछ अधिक चौंसठ हजार वर्ष जानना चाहिए ॥२८॥ अरिष्टनेमि तीर्थंकरके तीर्थमें मधुका जीव स्वर्गसे च्युत होकर इसी भरत क्षेत्रमें श्रीकृष्णकी रुक्मिणी नामक स्त्रीसे प्रद्युम्न नामका पुत्र हुआ ॥२९॥ यह सुनकर राजा श्रेणिक ने गौतम स्वामीसे कहा कि हे नाथ ! जिस प्रकार धनवान् मनुष्य धनके विषयमें तृप्तिको प्राप्त नहीं होता है उसी प्रकार मैं भी आपके वचन रूपी अमृतके विषयमें तृप्तिको प्राप्त नहीं हो रहा हूँ ॥३०॥ हे भगवन् ! आप मुझे अच्युतेन्द्र मधुका पूरा चरित्र कहिए मैं सुननेकी इच्छा करता हूँ, मुझपर प्रसन्नता कीजिए ॥३१॥ इसी प्रकार हे ध्यानमें तत्पर गणराज ! मधुके भाई कैटभका भी पूर्ण चरित कहिए क्योंकि आपको वह अच्छी तरह विदित है ॥३२॥ उसने पूर्वभवमें कौन सा उत्तम कार्य किया था तथा तीनों जगत्में श्रेष्ठ अतिशय दुर्लभ रत्नत्रयकी प्राप्ति उसे किस प्रकार हुई थी ? ॥३३॥ हे भगवन् ! आपकी यह वाणी क्रम-क्रमसे प्रकट होती है, और मेरी बुद्धि भी क्रम-क्रमसे पदार्थको ग्रहण करती है तथा मेरा चित्त भी अनुक्रमसे अत्यन्त उत्सुक हो रहा है इस तरह सब प्रकरण उचित ही जान पड़ता है ॥३४॥

तदनन्तर गौतम गणधर कहने लगे कि जो सर्व प्रकारके धान्यसे सम्पन्न है, जहाँ चारों वर्णके लोग अत्यन्त प्रसन्न हैं, जो धर्म, अर्थ और कामसे सहित है, सुन्दर-सुन्दर चैत्यालयोंसे युक्त है, पुर ग्राम तथा खानों आदिसे व्याप्त है, नदियों और बाग-बगीचोंसे अत्यन्त सुन्दर है, मुनियोंके संघसे युक्त है ऐसे इस मगध नामक देशमें उस समय नित्योदित नामका बड़ा राजा था। उसी देशमें नगरकी समता करनेवाला एक शालिग्राम नामका गाँव था ॥३५-३७॥ उस ग्राममें एक सोमदेव नामका ब्राह्मण था। अग्निला उसकी स्त्री थी और उन दोनोंके अग्निभूति तथा वायुभूति नामके दो पुत्र थे ॥३८॥ वे दोनों ही पुत्र सन्ध्या-वन्दनादि षट् कर्मोंकी विधिमें निपुण, वेद-शास्त्रके पारङ्गत, और 'हमसे बढ़ कर दूसरा कौन है' इस प्रकार पाण्डित्यके अभिमानमें चूर थे ॥३९॥ अभिमान रूपी महादाहके कारण जिन्हें अत्यधिक उन्माद उत्पन्न हुआ था ऐसे वे दोनों भाई 'सदा भोग ही सेवन करने योग्य हैं' यह सोच कर धर्मसे विमुख रहते थे ॥४०॥

१. अग्निभूतिवायुभूतिनामानौ ।

कस्यचित्त्वथ कालस्य विहरन् क्षितिमण्डलम् । मुनिः साधुभिर्युक्तः सम्प्राप्तो नन्दिवर्द्धनः ॥४१॥
मुनिः स चावधिज्ञानात्समस्तं जगदीक्षते । अभ्युद्यास बहिर्ग्राममुद्यानं साधुसम्मतम् ॥४२॥
ततश्चागमनं श्रुत्वा श्रमणानां महात्मनाम् । शालिग्रामजनो भूत्या सर्वः पुर निर्ययौ ॥४३॥
अपृच्छतां ततो वह्निवायुभूती विलोक्य तम् । क्वायं जनपदो याति सुसङ्घीर्णः परस्परम् ॥४४॥
ताभ्यां कथितमन्येन मुनिः प्राप्तो निरम्बरः । तस्यैव वन्दनां कर्तुमखिलः प्रस्थितो जनः ॥४५॥
अग्निभूतिस्ततः क्रुद्धः सह भ्रात्रा विनिर्गतः । विवादे श्रमणान्सर्वान् जयामीति वचोऽवदत् ॥४६॥
उपगम्य च साधूनां मुनीन्द्रं मध्यवर्तिनम् । अपश्यद्ग्रहताराणां मध्ये चन्द्रमिवोदितम् ॥४७॥
प्रधानसंयतेनैतौ प्रोक्तौ सात्यकिना ततः । एवमागच्छतां विप्रौ किञ्चिद्विज्ञपयेतं गुरौ ॥४८॥
उवाच प्रहसन्नग्निर्भवद्भिः किं प्रयोजनम् । जगादागमयोरत्र दोषो नास्तीति संयतः ॥४९॥
द्विजेनैकेन च प्रोक्तमेतान् श्रमणपुङ्गवान् । वादे जेतुमुपायातौ दूरे किमधुना स्थितौ ॥५०॥
एवमस्त्विति सामर्षौ मुनीन्द्रस्य पुरः स्थितौ । ऊचतुश्च ससुङ्गर्वौ किं वेत्स्यसि पुनः पुनः ॥५१॥
सावधिर्भगवानाह भवन्ताववागतौ कुतः । ऊचतुस्तौ न ते ज्ञातौ शालिग्रामात्किमागतौ ॥५२॥
मुनिराहावगच्छामि शालिग्रामादुपागतौ । अनादिजन्मकान्तारे भ्रमन्तावागतौ कुतः ॥५३॥
तौ समूचतुरप्योऽपि को वेत्तीति ततो मुनिः । अगाद् शृणुतां विप्रावधुना कथयाम्यहम् ॥५४॥

अथानन्तर किसी समय अनेक साधुओंके साथ इस पृथ्वी पर विहार करते हुए नन्दिवर्धन नामक मुनिराज उस शालिग्राममें आये ॥४१॥ वे मुनि अवधि-ज्ञानसे समस्त जगत्को देखते थे तथा आकर गाँवके बाहर मुनियोंके योग्य उद्यानमें ठहर गये ॥४२॥ तदनन्तर उत्कृष्ट आत्माके धारक मुनियोंका आगमन सुन शालिग्रामके सब लोग वैभवके साथ बाहर निकले ॥४३॥ तत्पश्चात् अग्निभूति और वायुभूतिने उन नगरवासी लोगोंको जाते देख किसीसे पूछा कि ये गाँवके लोग परस्पर एक दूसरेसे मिल कर समुदाय रूपमें कहाँ जा रहे हैं ? ॥४४॥ तब उसने उन दोनों से कहा कि एक निर्वस्त्र दिगम्बर मुनि आये हुए हैं उन्हींकी वन्दना करनेके लिए ये सब लोग जा रहे हैं ॥४५॥ तदनन्तर क्रोधसे भरा अग्निभूति, भाईके साथ निकल कर बाहर आया और कहने लगा कि मैं समस्त मुनियोंको वादमें अभी जीतता हूँ ॥४६॥ तत्पश्चात् पास जाकर उसने ताराओं के बीचमें उदित चन्द्रमा के समान मुनियोंके बीचमें बैठे हुए उनके स्वामी नन्दिवर्द्धन मुनिको देखा ॥४७॥ तदनन्तर सात्यकि नामक प्रधान मुनिने उनसे कहा कि हे विप्रो ! आओ और गुरु से कुछ पूछो ! ॥४८॥ तब अग्निभूतिने हँसते हुए कहा कि हमें आप लोगोंसे क्या प्रयोजन है ? इसके उत्तरमें मुनिने कहा कि यदि आप लोग यहाँ आ गये हैं तो इसमें दोष नहीं है ॥४९॥ उसी समय एक ब्राह्मणने कहा कि ये दोनों इन मुनियोंको वादमें जीतनेके लिए आये हैं इस समय दूर क्यों बैठे हैं ॥५०॥ तदनन्तर 'अच्छा ऐसा ही सही' इस प्रकार कहते हुए क्रोधसे युक्त दोनों ब्राह्मण, मुनिराजके सामने बैठ गये और बड़े अहंकारमें चूर होकर बार-बार कहने लगे कि बोल क्या जानता है ? बोल क्या जानता है ? ॥५१॥ तदनन्तर अवधिज्ञानी मुनिराज ने कहा कि आप दोनों कहाँ से आ रहे हैं ? इसके उत्तरमें विप्र-पुत्र बोले कि क्या तुझे यह भी ज्ञात नहीं है कि हम दोनों शालिग्रामसे आये हैं ॥५२॥ तदनन्तर मुनिराजने कहा कि आप शालिग्रामसे आये हैं यह तो मैं जानता हूँ मेरे पूछनेका अभिप्राय यह है कि इस अनादि संसार-रूपी वनमें घूमते हुए आप इस समय किस पर्यायसे आये हैं ? ॥५३॥ तब उन्होंने कहा कि इसे क्या और भी कोई जानता है या मैं ही जानूँ। तत्पश्चात् मुनिराजने कहा कि अच्छा विप्रो ! सुनो मैं कहता हूँ ॥५४॥

---

१. सत्युकिना ज०, ख । सत्यकिना क० । २. विधुननं क० ।

ग्रामस्यैतस्य सीमान्ते [illegible] समौ । अन्योन्यानुगतप्रेम्णौ शृगालौ विकृताननौ ॥५५॥
आसीदत्रैव च ग्रामे चिरवासः कृषीवलः । ख्यातः ग्रामरको नाम गतोऽसौ क्षेत्रमन्यदा ॥५६॥
पुनरेमीति सञ्चिन्त्य भानावस्ताभिलाषिणि । [1]त्यक्तोपकरणं क्षेत्रे सङ्गतः क्षुधितो गृहम् ॥५७॥
तावदञ्जनशैलाभाः प्लावयन्तो महीतलम् । अकस्मादुद्गता मेघा ववर्षुर्नक्तवासरम् ॥५८॥
प्रशान्ता सप्तरात्रेण रात्रौ तमसि भीषणे । जम्बुकौ तौ विनिष्क्रान्तौ गह्वरादतिक्षुधा ॥५९॥
अथोपकरणं किल्ल कर्दमोपलसङ्कुलम् । तत्राम्भो भक्षितं सर्वं प्राप्तौ चोदरवेदनाम् ॥६०॥
अकामनिर्जरायुक्तौ वर्षानिलसमाहतौ । ततः कालं गतौ जातौ सोमदेवस्य नन्दनौ ॥६१॥
स च ग्रामरकः प्राप्तोऽन्वेषकोऽपरयदेतकौ । निर्जीवौ जम्बुकौ तेन गृहीत्वा जनितौ दृतौ ॥६२॥
अचिरेण मृतश्चासौ सुतस्यैवाभवत्सुतः । जातिस्मरत्वमासाद्य मूकीभूय व्यवस्थितः ॥६३॥
पुत्रं[2] पितुरिति ज्ञात्वेत्याहरामि कथं त्वहम् । स्नुषां च मातुरित्यस्माद्धेतोर्मौनमुपाश्रितः ॥६४॥
यदि न प्रत्ययः सम्यक् तिष्ठत्यस्मासु वयम् । मध्ये स्वजनवर्गस्य द्विजो मां द्रष्टुमागतः ॥६५॥
आहूय गुरुणा चोक्तः स त्वं ग्रामरकस्तया । आसीस्त्वमधुना जातस्तोकस्यैव शरीरजः ॥६६॥
संसारस्य स्वभावोऽयं रङ्गमध्ये यथा नटः । राजा भूत्वा भवेद्भृत्यः प्रेष्यश्च प्रभुतां व्रजेत् ॥६७॥
एवं पिताऽपि [3]तोकत्वमेति तोकश्च तातताम् । मासा पत्नीत्वमायाति पत्नी चायाति मातृताम् ॥६८॥

इस गाँवकी सीमाके पास वनकी भूमिमें दो शृगाल साथ-साथ रहते थे। वे दोनों ही परस्पर एक दूसरेसे अधिक प्रेम रखते थे तथा दोनों ही विकृत मुखके धारक थे ॥५५॥ इसी गाँवमें एक ग्रामरक नामका पुराना किसान रहता था। वह एक दिन अपने खेतपर गया। जब सूर्यास्तका समय आया तब वह भूखसे पीड़ित होकर घर गया और अभी वापिस आता हूँ यह सोचकर अपने उपकरण खेतमें ही छोड़ आया ॥५६-५७॥ वह घर आया नहीं कि इतनेमें अकस्मात् उठे तथा अञ्जनगिरिके समान काले बादल पृथिवीतलको डुबाते हुए रात-दिन बरसने लगे। वे मेघ सात दिनमें शान्त हुए अर्थात् सात दिन तक झड़ी लगी रही। ऊपर जिन दो शृगालोंका उल्लेख कर आये हैं वे भूखसे पीड़ित हो रात्रिके घनघोर अन्धकारमें वनसे बाहर निकले ॥५८-५९॥

अथानन्तर वर्षासे भीगे और कीचड़ तथा पत्थरोंमें पड़े वे सब उपकरण जिन्हें कि किसान छोड़ आया था दोनों शृगालोंने खा लिये। खाते ही के साथ उनके उदरमें भारी पीड़ा उठी। अन्तमें वर्षा और वायुसे पीड़ित दोनों शृगाल अकामनिर्जराकर मरे और सोमदेव ब्राह्मणके पुत्र हुए ॥६०-६१॥ तदनन्तर वह ग्रामरक किसान अपने उपकरण ढूँढ़ता हुआ खेतमें पहुँचा तो वहाँ उसने इन मरे हुए दोनों शृगालोंको देखा। किसान उन मृतक शृगालोंको लेकर घर गया और वहाँ उसने उनकी मशकें बनाईं ॥६२॥ वह ग्रामरक भी जल्दी ही मर गया और मरकर अपने ही पुत्रके पुत्र हुआ। उस पुत्रको जाति-स्मरण हो गया जिससे वह गूँगा बनकर रहने लगा ॥६३॥ 'मैं अपने पूर्वभवके पुत्रको पिताके स्थानमें समझ कर कैसे बोलूँ तथा पूर्वभवकी पुत्र-वधूको माताके स्थानमें जानकर कैसे बोलूँ' यह विचार कर ही वह मौनको प्राप्त हुआ है ॥६४॥ यदि तुम्हें इस बातका ठीक ठीक विश्वास नहीं है तो वह ब्राह्मण मेरे दर्शन करनेके लिए यहाँ आया है तथा अपने परिवारके बीचमें बैठा है ॥६५॥ मुनिराजने उसे बुलाकर कहा कि तू वही ग्रामरक किसान है और इस समय अपने पुत्रका ही पुत्र हुआ है ॥६६॥ यह संसारका स्वभाव है। जिस प्रकार रङ्गभूमिके मध्य नट राजा होकर दास बन जाता है और दास प्रभुताको प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार पिता भी पुत्रपनेको प्राप्त हो जाता है, और पुत्र पितृ पर्यायको प्राप्त

---

१. त्यक्तोपकरणं म० । २. पुत्रः म० । ३. पुत्रत्वम् ।

उद्घाटनघटीयन्त्रसदृशेऽस्मिन् भवारमनि । [1]उपर्यधरतां यान्ति जीवाः कर्मवशं गताः ॥६९॥
इति ज्ञात्वा भवावस्थां नितान्तं वत्स निन्दिताम् । अधुना मूकतां मुञ्च कुरु वाचां क्रियां सतीम् ॥७०॥
इत्युक्तः परमं हृष्ट उत्थाय विगतज्वरः । [2]उद्भूतघनरोमाञ्चः प्रोत्फुल्लनयनाननः ॥७१॥
गृहीत इव भूतेन परिक्रम्य प्रदक्षिणाम् । निपपातोत्तमाङ्गेन छिन्नमूलतरुर्यथा ॥७२॥
उवाच विस्मितश्चोच्चैरहं सर्वज्ञपराक्रमः । इहस्थः सर्वलोकस्य सकलां पश्यसि स्थितिम् ॥७३॥
संसारसागरे घोरे कदर्थनं निमज्जतः । सत्त्वानुकम्पया बोधिस्त्वया मे नाथ दर्शिता ॥७४॥
मनोगतं मम ज्ञातं भवता दिव्यबुद्धिना । इत्युक्त्वा जगृहे दीक्षां सात्मान् संत्यज्य बान्धवान् ॥७५॥
तस्य प्रामरकस्यैतच्छ्रुत्वोपाख्यानमीदृशम् । संबुद्धा बहवो लोके श्रमणाः श्रावकास्तथा ॥७६॥
गत्वा च ते हतीं दृष्ट्वा सर्वलोकेन तद्गृहे । ततः कलकलो जातो विस्मयश्च समन्ततः ॥७७॥
अथोपहसितौ राजंस्तौ जनेन द्विजासिकौ । इमौ तौ पशुमांसादौ जम्बुकौ द्विजतां गतौ ॥७८॥
एताभ्यां [3]ब्रह्मतावादे विमूढाभ्यां सुखार्थिनी । प्रजेयं मुषिता सर्वा सकाभ्यां पशुहिंसने ॥७९॥
अमी तपोधनाः शुद्धाः श्रमणा [4]ब्राह्मणाधिकाः । ब्राह्मणा इति विख्याता हिंसासुखिव्रतश्रिताः ॥८०॥
महाव्रतशिखाटोपाः क्षान्तियज्ञोपवीतिनः । ध्यानाग्निहोत्रिणः शान्ता मुक्तिसाधनतत्पराः ॥८१॥
सर्वारम्भप्रवृत्ता ये नित्यमब्रह्मचारिणः । द्विजाः स्म इति भाषन्ते क्रियया न पुनर्द्विजाः ॥८२॥

हो जाता है । माता पत्नी हो जाती है और पत्नी माता बन जाती है ॥६७-६८॥ यह संसार अरहटके घटीयन्त्रके समान है इसमें जीव कर्मके वशीभूत हो ऊपर-नीची अवस्थाको प्राप्त होता रहता है ॥६९॥ इसलिए हे वत्स ! संसार दशाको अत्यन्त निन्दित जानकर इस समय गूँगापन छोड़ और वचनोंको उत्तम क्रिया कर अर्थात् प्रशस्त वचन बोल ॥७०॥

मुनिराजके इतना कहते ही वह अत्यन्त हर्षित होता हुआ उठा, वह ऐसा प्रसन्न हुआ मानो उसका ज्वर उतर गया हो, उसके शरीरमें सघन रोमाञ्च निकल आये, तथा उसके नेत्र और मुख हर्षसे फूल उठे ॥७१॥ भूतसे आक्रान्त हुएके समान उसने मुनिकी प्रदक्षिणाएँ दीं। तदनन्तर कटे वृक्षके समान मस्तकके बल उनके चरणोंमें गिर पड़ा ॥७२॥ उसने आश्चर्य चकित हो जोरसे कहा कि हे भगवन्, आप सर्वज्ञ हैं। यहाँ बैठे-बैठे ही आप समस्त लोककी सम्पूर्ण स्थितिको देखते रहते हैं ॥७३॥ मैं इस भयंकर संसार-सागरमें डूब रहा था सो आपने प्राण्यनुकम्पासे हे नाथ ! मेरे लिए रत्नत्रय रूप बोधिका दर्शन कराया है ॥७४॥ आप दिव्यबुद्धि हैं अतः आपने मेरा मनोगत भाव जान लिया। इस प्रकार कहकर उस प्रामरकके जीव ब्राह्मणने रोते हुए भाई-बान्धवोंको छोड़कर दीक्षा धारण कर ली ॥७५॥ प्रामरकका यह ऐसा व्याख्यान सुन बहुतसे लोग मुनि तथा श्रावक हो गये ॥७६॥ सब लोगोंने उसके घर जाकर पूर्वोक्त शृगालोंके शरीरसे बनी मशकें देखी जिससे सब ओर कलकल तथा आश्चर्य छा गया ॥७७॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! लोगोंने यह कहकर उन ब्राह्मणोंकी बहुत हँसी की कि ये वे ही पशुओंका मांस खानेवाले शृगाल ब्राह्मण पर्यायको प्राप्त हुए हैं ॥७८॥ 'सब कुछ ब्रह्म ही ब्रह्म है' इस प्रकारके ब्रह्माद्वैतवादमें मूढ एवं पशुओंकी हिंसामें आसक्त रहनेवाले इन दोनों ब्राह्मणोंने सुखकी इच्छुक समस्त प्रजाको लूट डाला है ॥७९॥ तपरूपी धनसे युक्त ये शुद्ध मुनि ब्राह्मणोंसे अधिक श्रेष्ठ हैं क्योंकि यथार्थमें ब्राह्मण वे ही कहलाते हैं जो अहिंसा व्रतको धारण करते हैं ॥८०॥ जो महाव्रत रूपी लम्बी चोटी धारण करते हैं, जो क्षमारूपी यज्ञोपवीतसे सहित हैं, जो ध्यानरूपी अग्निमें होम करनेवाले हैं, शान्त हैं तथा मुक्तिके सिद्ध करनेमें तत्पर हैं वे ही ब्राह्मण कहलाते हैं ॥८१॥ इसके विपरीत जो सब प्रकारके आरम्भमें

---

१. उपर्युपरितां म० । २. उद्भूतघनरोमाञ्च प्रोत्फुल्ल- म० । ३. ब्रह्मतावाद—म० । ४. ब्राह्मणोधिकाः म० ।

यथा केचिन्नरा लोके सिंहदेवाग्निनामकाः । तथामी विरतेर्भ्रष्टाः ब्राह्मणा नामधारकाः ॥८३॥
अमी सुश्रमणा धन्या ब्राह्मणाः परमार्थतः । ऋषयः संयता धीराः शान्ता दान्ता जितेन्द्रियाः ॥८४॥
भद्रान्तास्त्यक्तसन्देहा भगवन्तः सतापसाः । मुनयो यतयो वीरा लोकोत्तरगुणस्थिताः ॥८५॥
परिव्रजन्ति ये मुक्त्यै भवहेतौ परिग्रहे । ते परिव्राजका ज्ञेया निर्ग्रन्था एव निश्चिताः ॥८६॥
तपसा क्षपयन्ति स्वं क्षीणरागाः क्षमान्विताः । क्षिण्वन्ति च यतः पापं क्षपणास्तेन कीर्त्तिताः ॥८७॥
यमिनो वीतरागाश्च निर्मुक्ताङ्गा निरम्बराः । योगिनो ध्यानिनो वन्द्या ज्ञानिनो निःस्पृहा बुधाः ॥८८॥
निर्वाणं साधयन्तीति साधवः परिकीर्त्तिताः । आचार्या यत्सदाचारं चरन्त्याचारयन्ति च ॥८९॥
अनगारगुणोपेता भिक्षवः शुद्धभिक्षया । श्रमणाः [1]सितकर्माणः परमश्रमवर्त्तिनः ॥९०॥
इति साधुस्तुतिं श्रुत्वा तथा निन्दमात्मनः । रहःस्थितौ विलज्जौ च विमानौ विगतप्रभौ ॥९१॥
गते च सवितर्यस्तं [2]प्रकाशनसुदुःखितौ । अन्विष्यन्तौ गतौ स्थानं यत्रासौ भगवान् स्थितः ॥९२॥
निस्सङ्गः साधुसंघेन वनैकान्तेऽतिगह्वरे । नरकैः सङ्कटेऽत्यन्तं विविधचितिकाचिते ॥९३॥
[3]क्रव्याच्छापदनादाढ्ये पिशाचभुजगाकुले । सूचीभेदतमश्छन्ने महाबीभत्सदर्शने ॥९४॥
एवंविधे श्मशानेऽसौ निर्जन्तुनि शिलातले । पापाभ्यामाश्रितस्ताभ्यां प्रतिमास्थानमास्थितः ॥९५॥

प्रवृत्त हैं तथा जो निरन्तर कुशीलमें लीन रहते हैं वे केवल यह कहते हैं कि हम ब्राह्मण हैं परन्तु क्रियासे ब्राह्मण नहीं हैं ॥८२॥ जिस प्रकार कितने ही लोग सिंह, देव अथवा अग्नि नामके धारक हैं उसी प्रकार व्रतसे भ्रष्ट रहनेवाले ये लोग भी ब्राह्मण नामके धारक हैं इनमें वास्तविक ब्राह्मणत्व कुछ भी नहीं है ॥८३॥ जो ऋषि, संयत, धीर, शान्त, दान्त और जितेन्द्रिय हैं ऐसे ये मुनि ही धन्य हैं तथा वास्तविक ब्राह्मण हैं ॥८४॥ जो भद्रपरिणामी हैं, संदेहसे रहित हैं, ऐश्वर्य सम्पन्न हैं, अनेक तपस्वियोंसे सहित हैं, यति हैं और वीर हैं ऐसे मुनि ही लोकोत्तर गुणोंके धारण करनेवाले हैं ॥८५॥ जो परिग्रहको संसारका कारण समझ उसे छोड़ मुक्तिको प्राप्त करते हैं वे परिव्राजक कहलाते हैं सो यथार्थमें मोहरहित निर्ग्रन्थ मुनि ही परिव्राजक हैं ऐसा जानना चाहिए ॥८६॥ चूँकि ये मुनि क्षीणराग तथा क्षमासे सहित होकर तपके द्वारा अपने आपको कृश करते हैं, पापको नष्ट करते हैं इसलिए क्षपण कहे गये हैं ॥८७॥ ये सब यमी, वीतराग, निर्मुक्तशरीर, निरम्बर, योगी, ध्यानी, ज्ञानी, निःस्पृह और बुध हैं अतः ये ही वन्दना करने योग्य हैं ॥८८॥ चूँकि ये निर्वाणको सिद्ध करते हैं इसलिए साधु कहलाते हैं, और उत्तम आचारका स्वयं आचरण करते हैं तथा दूसरोंको भी आचरण कराते हैं इसलिए आचार्य कहे जाते हैं ॥८९॥ ये गृहत्यागीके गुणोंसे सहित हैं तथा शुद्ध भिक्षासे भोजन करते हैं इसलिए भिक्षुक कहलाते हैं और उज्ज्वल कार्य करनेवाले हैं, अथवा कर्मोंका नष्ट करनेवाले हैं तथा परम निर्दोष श्रममें वर्तमान हैं इसलिए श्रमण कहे जाते हैं ॥९०॥ इस प्रकार साधुओंकी स्तुति और अपनी निन्दा सुनकर वे अहंकारी विप्र पुत्र लज्जित, अपमानित तथा निष्प्रभ हो एकान्तमें जा बैठे ॥९१॥

अथानन्तर जो अपने शृगालादि पूर्व भवोंके उल्लेखसे अत्यन्त दुखी थे ऐसे दोनों पुत्र सूर्यके अस्त होनेपर खोज करते हुए उस स्थानपर पहुँचे जहाँ कि वे भगवान् नन्दिवर्धन मुनीन्द्र विराजमान थे ॥९२॥ वे मुनीन्द्र संघ छोड़, निःस्पृह हो वनके एकान्त भागमें स्थित उस श्मशान प्रदेशमें विद्यमान थे कि जो अत्यधिक गर्तोंसे युक्त था, नरककूटोंसे परिपूर्ण था, नाना प्रकारकी चिताओंसे व्याप्त था, मांसभोजी वन्य पशुओंके शब्दसे व्याप्त था, पिशाच और सर्पोंसे आकीर्ण था, सुईके द्वारा भेदने योग्य—गाढ अन्धकारसे आच्छादित था, और जिसका देखना तीव्र घृणा उत्पन्न करनेवाला था। ऐसे श्मशानमें जीव-जन्तु रहित शिलातलपर प्रतिमायोगसे विराज-

---

१. सितं विनाशितं श्री० टि० । २. प्रकाशनं शृगालादिकथनं श्री० टि० । ३. क्रव्यश्वापद म० ।

आकृष्टखड्गहस्तौ च क्रुद्धौ जगदतुः समम् । जीवं रक्षतु ते लोकः क्व यासि श्रमणाधुना ॥९६॥
पृथिव्यां ब्राह्मणाः श्रेष्ठा वयं प्रत्यक्षदेवताः । निर्लज्जस्त्वं महादोषो जम्बुका इति भाषसे ॥९७॥
ततोऽत्यन्तप्रचण्डौ तौ दुष्टौ रक्तकलोचनौ । जातौ कृपाविनिर्मुक्तौ सुयक्षेण निरीक्षितौ ॥९८॥
सुमनाश्चिन्तयामास पश्य निर्दोषमीदृशम् । हन्तुमभ्युद्यतौ साधुं मुक्ताङ्गं ध्यानतत्परम् ॥९९॥
ततः संस्थानमास्थाय तौ घोदृगितामसी । यक्षेण च तदग्रेण स्तम्भितौ निश्चलौ स्थितौ ॥१००॥
विकर्म कर्तुमिच्छन्तावुपसर्गं महामुनेः । प्रतीहारावि क्रूरौ तस्थतुः पार्श्वयोरिमौ ॥१०१॥
ततः सुविमले काले जाते जाताब्जबान्धवे । संहृत्य सन्मुनिर्योगं निःस्पृहैकान्ततः स्थितः ॥१०२॥
सङ्घश्चतुर्विधः सर्वः शालिग्रामजनस्तथा । प्राप्तः परमयोगीशमिति विस्मयवान् जगौ ॥१०३॥
कावेतावीदृशौ पापौ धिक्कष्टं कर्तुमीहितौ अग्निवायू दुराचारावेतौ तावाततायिनौ ॥१०४॥
तौ चाचिन्तयतामुच्चैः प्रभावोऽयं महामुनेः । आवां येन बलोद्भूतौ स्तम्भितौ स्थावरीकृतौ ॥१०५॥
अनयाऽवस्थया मुक्तौ जीविष्यामो वयं यदा । तदा सम्प्रतिपत्स्यामो दर्शनं [1]मौनिसत्तमम् ॥१०६॥
अत्रान्तरे परिप्राप्तः सोमदेवः ससंभ्रमः । भार्ययाऽग्निलया साकं प्रसादयति तं मुनिम् ॥१०७॥
भूयो भूयः प्रणामेन बहुभिश्च प्रियोदितैः । दम्पती चक्रतुश्चाटुं पादमर्दनतत्परौ ॥१०८॥

मान उन मुनिराजको उन दोनों पापियोंने देखा ॥९३-९५॥ उन्हें देखते ही जिन्होंने तलवार खींचकर हाथमें ले ली थी तथा जो अत्यन्त कुपित हो रहे थे ऐसे उन ब्राह्मणोंने एक साथ कहा कि लोग आकर तेरे प्राणोंकी रक्षा करें। अरे श्रमण ! अब तू कहाँ जायगा ? ॥९६॥ हम ब्राह्मण पृथिवीमें श्रेष्ठ हैं तथा प्रत्यक्ष देवता स्वरूप हैं और तू महादोषोंसे भरा निर्लज्ज है फिर भी हम लोगोंको तू 'शृगाल थे' ऐसा कहता है ॥९७॥

तदनन्तर जो अत्यन्त तीव्र क्रोधसे युक्त थे, दुष्ट थे, लाल-लाल नेत्रोंके धारक थे, बिना विचारे काम करनेवाले थे और दयासे रहित थे ऐसे उन दोनों ब्राह्मणोंको यक्षने देखा ॥९८॥ उन्हें देखकर वह देव विचार करने लगा कि अहो ! देखो; ये ऐसे निर्दोष, शरीरसे निःस्पृह और ध्यानमें तत्पर मुनिको मारनेके लिए उद्यत हैं ॥९९॥ तदनन्तर तलवार चलानेके आसनसे खड़े होकर उन्होंने अपनी-अपनी तलवार ऊपर उठाई नहीं कि यक्षने उन्हें कील दिया जिससे वे मुनिराजके आगे उसी मुद्रामें निश्चल खड़े रह गये ॥१००॥ महामुनिके विरुद्ध उपसर्ग करनेकी इच्छा रखनेवाले वे दोनों दुष्ट उनकी दोनों ओर इस प्रकार खड़े थे मानो उनके अंगरक्षक ही हों ॥१०१॥

तदनन्तर निर्मल प्रातःकालके समय सूर्योदय होनेपर वे मुनिराज योग समाप्त कर एकान्त स्थानसे निकल बाहर मैदानमें बैठे ॥१०२॥ उसी समय चतुर्विध संघ तथा शालिग्रामवासी लोग उन योगिराजके पास आये सो यह दृश्य देख आश्चर्यचकित हो बोले कि अरे ! ये कौन पापी हैं ? हाय हाय कष्ट पहुँचानेके लिए उद्यत इन पापियोंको धिक्कार है। अरे ये उपद्रव करनेवाले तो वे ही आततायी अग्निभूति और वायुभूति हैं ॥१०३-१०४॥ अग्निभूति और वायुभूति भी विचार करने लगे कि अहो ! महामुनिका यह कैसा उत्कृष्ट प्रभाव है कि जिन्होंने बलका दर्प रखनेवाले हम लोगोंको कीलकर स्थावर बना दिया ॥१०५॥ इस अवस्थासे छुटकारा होनेपर यदि हम जीवित रहेंगे तो इन उत्तम मुनिराजके दर्शन अवश्य करेंगे ॥१०६॥ इसी बीचमें घबड़ाया हुआ सोमदेव अपनी अग्निला स्त्रीके साथ वहाँ आ पहुँचा और उन मुनिराजको प्रसन्न करने लगा ॥१०७॥ पैर दबानेमें तत्पर दोनों ही स्त्री पुरुष, बार-बार प्रणाम करके तथा अनेक

---

१. मुनिसत्तमम् म० ।

जीवतां देव दुःपुत्रावेतौ नः कोपमुत्सृज । सम्प्रेष्यबान्धवा नाथ वयमाज्ञाकरास्तव ॥१०८॥
संयतो वक्ति कः कोपः साधूनां यद्ब्रवीष्यदः । वयं सर्वस्य सदयाः सममित्रारिबान्धवाः ॥११०॥
प्राह यक्षोऽतिरक्ताक्षो बृहद्गम्भीरनिस्वनः । माऽस्याख्यानं गुरोरस्य जनमध्ये प्रदातकम् ॥१११॥
साधून्वीक्ष्य जुगुप्सन्ते सद्योऽनर्थं प्रयान्ति ते । न पश्यन्त्यात्मनो दौष्ट्यं दोषं कुर्वन्ति साधुषु ॥११२॥
यथाऽऽदर्शतले क्षिप्तमात्मरूपं करोति यः । तादृशं कुरुते भावं तादृशं लभते फलम् ॥११३॥
तद्दृष्ट्वासाधुं समालोक्य प्रस्थानादिक्रियोद्यतः । यादृशं कुरुते भावं तादृशं लभते फलम् ॥११४॥
प्रहसनं प्रहासेन कलहं परुषोक्तितः । वधेन मरणं प्रोक्तं विद्वेषेण च पातकम् ॥११५॥
इति साधौर्निषुक्तेन परिनिन्द्येन वस्तुना । फलेन तादृशेनैव कर्त्ता योगमुपाश्नुते ॥११६॥
एतौ स्वोपचितैर्दोषैः प्रेर्यमाणौ स्वकर्मभिः । तव पुत्रौ मया विप्र स्तम्भितौ न हि साधुना ॥११७॥
वेदाभिमाननिर्दग्धावेतौ [1]क्षुद्रवनीपकौ । म्रियेतां धिविक्रियाचारौ संयतस्यातितापिनौ ॥११८॥
इति जल्पन्तमायुधं यक्षं [2]प्रतिभयीषणम् । प्रसादयति साधुं च विप्रः प्राञ्जलिमस्तकः ॥११९॥
उद्धर्बाहुः परिक्रोशन्निन्दयन्ताडयन्नुरः । समग्निलया विप्रो [3]विप्रकीर्णोऽभवत् ॥१२०॥

मीठे वचन कहकर उनकी सेवा करने लगे ॥१०८॥ उन्होंने कहा कि हे देव ! ये मेरे दुष्ट पुत्र जीवित रहें, क्रोध छोड़िए, हे नाथ ! हम सब भाई-बान्धवों सहित आपके आज्ञाकारी हैं ॥१०९॥

इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा कि मुनियोंको क्या क्रोध है ? जो तुम यह कह रहे हो, हम तो सबके ऊपर दयासहित हैं तथा मित्र शत्रु भाई बान्धव आदि सब हमारे लिए समान हैं ॥११०॥ तदनन्तर जिसके नेत्र अत्यन्त लाल थे ऐसा यक्ष अत्यधिक गम्भीर स्वरमें बोला कि यह कार्य इन गुरु महाराजका है ऐसा जनसमूहके बीच नहीं कहना चाहिए ॥१११॥ क्योंकि जो मनुष्य साधुओंको देखकर उनके प्रति घृणा करते हैं वे शीघ्र ही अनर्थको प्राप्त होते हैं। दुष्ट मनुष्य अपनी दुष्टता तो देखते नहीं और साधुओंपर दोष लगाते हैं ॥११२॥ जिस प्रकार दर्पणमें अपने आपको देखता हुआ कोई मनुष्य मुखको जैसा करता है उसे अवश्य ही वैसा देखता है ॥११३॥ उसी प्रकार साधुको देखकर सामने जाना, खड़े होना आदि क्रियाओंके करनेमें उद्यत मनुष्य जैसा भाव करता है वैसा ही फल पाता है ॥११४॥ जो मुनिकी हँसी करता है वह उसके बदले रोना प्राप्त करता है। जो उनके प्रति कठोर शब्द कहता है वह उसके बदले कलह प्राप्त करता है, जो मुनिको मारता है वह उसके बदले मरणको प्राप्त होता है जो उनके प्रति विद्वेष करता है वह उसके बदले पाप प्राप्त करता है ॥११५॥ इस प्रकार साधुके विषयमें किये हुए निन्दनीय कार्यसे उसका करनेवाला वैसे ही कार्यके साथ समागम प्राप्त करता है ॥११६॥ हे विप्र ! तेरे ये पुत्र अपने ही द्वारा संचित दोष और अपने ही द्वारा कृत कर्मोंसे प्रेरित होते हुए मेरे द्वारा कीले गये हैं साधु महाराजके द्वारा नहीं ॥११७॥ जो वेदके अभिमानसे जल रहे हैं, अत्यन्त कठिन हैं, निन्दनीय क्रियाका आचरण करनेवाले हैं तथा संयमी साधुकी हिंसा करनेवाले हैं ऐसे तेरे ये पुत्र मृत्युको प्राप्त हों इसमें क्या हानि है ? ॥११८॥ हाथ जोड़कर मस्तकसे लगाये हुए ब्राह्मण, इस प्रकार कहते हुए, तीव्र, क्रोध युक्त तथा शत्रु भयदायी यक्ष और मुनिराज—दोनोंको प्रसन्न करने लगा ॥११९॥ जिसने अपनी भुजा ऊपर उठाकर रक्खी थी, जो अत्यधिक चिल्लाता था, अपनी तथा अपने पुत्रोंकी निन्दा करता था, और अपनी छाती पीट रहा था ऐसा विप्र अग्निलाके साथ अत्यन्त पीड़ित हो रहा था ॥१२०॥

१. क्षुद्रौ श्री० टि० । २. शत्रुभयंकरम् । ३. विप्रकीर्णः पीडितः श्री० टि० ।

गुरुराह ततः कान्त हे यक्ष कमलेक्षण । सुष्यतामनयोर्दोषो मोहप्रस्तचित्तयोः ॥१२१॥
जिनशासनवात्सल्यं कृतं सुकृतिना त्वया । नैतं प्राणिवधं भद्र[1] मत्कृते कर्तुमर्हसि ॥१२२॥
यथाऽऽज्ञापयसीत्युक्त्वा गुह्यकेन विसर्जितौ । आश्वस्योपसृतौ भक्त्या पादमूलं गुरोस्ततः ॥१२३॥
नत्वौ प्रदक्षिणां कृत्वा शिरःस्थकरकुड्मलौ । साध्वीर्यां महाचर्यां ग्रहीतुं शक्तिवर्जितौ ॥१२४॥
अणुव्रतानि गृह्णीतां सम्यग्दर्शनभूषितौ । अमूढौ श्रावकौ जातौ गृहधर्मसुखे रतौ ॥१२५॥
पितराधनयोः सम्यक्श्रद्धयाऽपरिकीर्तितौ । कालं गतौ विना [2]धर्माद्भ्रमितौ भवसागरे ॥१२६॥
तौ तु सम्यक्त्वसन्देहौ जिनशासनभावितौ । हिंसाद्यं लौकिकं कार्यं वर्जयन्तौ विषं यथा ॥१२७॥
कालं कृत्वा समुत्पन्नौ सौधर्मे विबुधोत्तमौ । सर्वेन्द्रियमनोह्लादं यत्र दिव्यं महत्सुखम् ॥१२८॥
एतामयोध्यां समुद्रस्य धारिण्याः कुक्षिसम्भवौ । नन्दनौ नयनानन्दौ श्रेष्ठिनस्तौ बभूवतुः ॥१२९॥
पूर्णकाञ्चनभद्राख्यौ भ्रातरावेव तौ सुखम् । पुनः श्रावकधर्मेण गतौ सौधर्मदेवताम् ॥१३०॥
अयोध्यानगरीन्द्रस्य हेमनाभस्य भामिनी । नाम्नाऽमरावती तस्यां समुत्पन्नौ दिवश्च्युतौ ॥१३१॥
जगतीह प्रविख्यातौ संज्ञया मधुकैटभौ । अजय्यौ भ्रातरौ चारू कृतान्तसमविभ्रमौ ॥१३२॥
ताभ्यामियं समाक्रान्ता मही सामन्तसङ्कटा । स्थापिता स्वतनौ राजन् प्रज्ञाभ्यां धीमुषी यथा ॥१३३॥
नेच्छत्याज्ञां नरेन्द्रैको भीमो नाम महाबलः । शैलान्तः पुरमाश्रित्य चमरो नन्दनं यथा ॥१३४॥

तदनन्तर मुनिराजने कहा कि हे कमललोचन ! सुन्दर ! यक्ष ! जिनका चित्त मोहसे अत्यन्त जड़ हो रहा है ऐसे इन दोनोंका दोष क्षमा कर दिया जाय ॥१२१॥ तुझ पुण्यात्माने जिन-शासनके साथ वात्सल्य दिखलाया यह ठीक है किन्तु हे भद्र ! मेरे निमित्त यह प्राणिवध करना उचित नहीं है ॥१२२॥ तत्पश्चात् 'जैसी आप आज्ञा करें' यह कहकर यक्षने दोनों विप्र-पुत्रोंको छोड़ दिया। तदनन्तर दोनों ही विप्र-पुत्र समाधान होकर भक्तिपूर्वक गुरुके चरण-मूलमें पहुँचे ॥१२३॥ और दोनोंने ही हाथ जोड़ मस्तकसे लगा प्रदक्षिणा देकर उन्हें नमस्कार किया तथा साधु दीक्षा प्रदान करनेकी प्रार्थना की। परन्तु साधु-सम्बन्धी कठिन चर्याको ग्रहण करनेके लिए उन्हें शक्तिरहित देख मुनिराजने कहा कि तुम दोनों सम्यग्दर्शनसे विभूषित होकर अणुव्रत ग्रहण करो। आज्ञानुसार वे गृहस्थ धर्मके सुखमें लीन विवेकी श्रावक हो गये ॥१२४-१२५॥इनके माता-पिता समीचीन श्रद्धासे रहित थे इसलिए मरकर धर्मके बिना संसार सागरमें भ्रमण करते रहे ॥१२६॥ परन्तु अग्निभूति और वायुभूति संदेह छोड़ जिनशासनकी भावनासे ओत-प्रोत हो गये थे, तथा हिंसादिक लौकिक कार्य उन्होंने विषके समान छोड़ दिये थे इसलिए वे मरकर उस सौधर्म स्वर्गमें उत्तम देव हुए जहाँ कि समस्त इन्द्रियों और मनको आह्लादित करनेवाला दिव्य महान् सुख उपलब्ध था ॥१२७-१२८॥

तदनन्तर वे दोनों अयोध्या आकर वहाँके समुद्र सेठकी धारिणी नामक स्त्रीके उदरसे नेत्रोंको आनन्द देनेवाले पुत्र हुए ॥१२९॥ पूर्णभद्र और काञ्चनभद्र उनके नाम थे। ये दोनों भाई सुखसे समय व्यतीत करते थे। तदनन्तर पुनः श्रावक धर्म धारणकर उसके प्रभावसे सौधर्म स्वर्गमें देव हुए ॥१३०॥ अबकी बार वे दोनों, स्वर्गसे च्युत हो अयोध्या नगरीके राजा हेमनाभ और उनकी रानी अमरावतीके इस संसारमें मधु, कैटभ नामसे प्रसिद्ध पुत्र हुए। ये दोनों भाई अजेय, सुन्दर तथा यमराजके समान विभ्रमको धारण करनेवाले थे ॥१३१-१३२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! जिस प्रकार विद्वान् लोग अपनी बुद्धिको अपने आधीन कर लेते हैं उसी प्रकार इन दोनोंने सामन्तोंसे भरी हुई इस पृथिवीको आक्रमण कर अपने आधीन कर लिया था ॥१३३॥ किन्तु एक भीम नामका महाबलवान् राजा उनकी आज्ञा नहीं मानता था। जिस

---

१. भद्रं म० । २. धर्माद्भ्रमतः म० ।

वीरसेनेन लेखश्च प्रेषितस्तस्य भूपतेः । उद्वासितानि धामानि पृथिव्यां भीमवह्निना ॥१३५॥
ततो मधु क्षणं क्रुद्धो भीमकस्योपरि द्रुतम् । ययौ सर्वबलौघेन युक्तो योधैः समन्ततः ॥१३६॥
क्रमान्मार्गवशात्प्राप्तो न्यग्रोधनगरं च तत् । वीरसेनो नृपो यत्र प्रीतियुक्तो विवेश च ॥१३७॥
चन्द्राभा चन्द्रकान्तास्या वीरसेनस्य भामिनी । देवी निरीक्षिता तेन मधुना जगदिन्दुना ॥१३८॥
अनया सह संवासो वरं विन्ध्यवनान्तरे । चन्द्राभया विना भूतं न राज्यं सार्वभूमिकम् ॥१३९॥
इति सञ्चिन्तयन् राजा भीमं निर्जित्य संयुगे । आस्थापयद्वशे शत्रूनन्यांश्च तत्कृतागसः ॥१४०॥
अयोध्यां पुनरागत्य सपत्नीकान्नराधिपान् । आहूय विपुलैर्दानैर्विससर्जयति मानितान् ॥१४१॥
आहूतो वीरसेनोऽपि सह पत्न्या ययौ द्रुतम् । अयोध्याबहिरुद्याने मध्येऽस्थात्सरयूतटे ॥१४२॥
देव्या सह समाहूतः प्रविष्टो भवनं मधोः । उदारदानसम्मानो[1] वीरसेनो विसर्जितः ॥१४३॥
अद्यापि मन्यते मेयमिति रुद्धा मनोहरा । चन्द्राभा नरचन्द्रेण प्रेषितान्तःपुरं ततः ॥१४४॥
महादेव्यभिषेकेण प्रापिता चाभिषेचनम् । आरूढा सर्वदेवीनामुपरिस्थितमास्पदम् ॥१४५॥
श्रियेव स तया सार्कं निमग्नः सुखसागरे । स्वं सुरेन्द्रसमं मेने भोगान्धीकृतमानसः ॥१४६॥

प्रकार चमरेन्द्र नन्दन वनको पाकर प्रफुल्लित होता है उसी प्रकार वह पहाड़ी दुर्गका आश्रय कर प्रफुल्लित था ॥१३४॥ राजा मधुके एक भक्त सामन्त वीरसेनने उसके पास इस आशयका पत्र भी भेजा कि हे नाथ ! इधर भीमरूपी अग्निने पृथिवीके समस्त घर उजाड़ कर दिये हैं ॥१३५॥

तदनन्तर उसी क्षण क्रोधको प्राप्त हुआ राजा मधु, अपनी सब सेनाओंके समूह तथा योधाओंसे परिवृत हो राजा भीमके प्रति चल पड़ा ॥१३६॥ क्रम-क्रमसे चलता हुआ वह मार्ग-वश उस न्यग्रोध नगरमें पहुँचा जहाँ कि उसका भक्त वीरसेन रहता था। राजा मधुने बड़े प्रेमके साथ उसमें प्रवेश किया ॥१३७॥ वहाँ जाकर जगत्के चन्द्र स्वरूप राजा मधुने वीरसेनकी चन्द्राभा नामकी चन्द्रमुखी भार्या देखी। उसे देखकर वह विचार करने लगा कि इसके साथ विन्ध्याचलके वनमें निवास करना अच्छा है। इस चन्द्राभाके बिना मेरा राज्य सार्वभूमिक नहीं है—अपूर्ण है ॥१३८-१३९॥ ऐसा विचार करता हुआ राजा उस समय आगे चला गया और युद्धमें भीमको जीतकर अन्य शत्रुओंको भी उसने वश किया। परन्तु यह सब करते हुए भी उसका मन उसी चन्द्राभामें लगा रहा ॥१४०॥ फलस्वरूप उसने अयोध्या आकर राजाओंको अपनी-अपनी पत्नियोंके सहित बुलाया और उन्हें बहुत भारी भेंट देकर सम्मानके साथ विदा कर दिया ॥१४१॥ राजा वीरसेनको भी बुलाया सो वह अपनी पत्नीके साथ शीघ्र ही गया और अयोध्याके बाहर बगीचेमें सरयू नदीके तटपर ठहर गया ॥१४२॥ तदनन्तर सन्मानके साथ बुलाये जानेपर उसने अपनी रानीके साथ मधुके भवनमें प्रवेश किया। कुछ समय बाद उसने विशेष भेंटके द्वारा सन्मान कर वीरसेनको तो विदा कर दिया और चन्द्राभाको अपने अन्तःपुरमें भेज दिया परन्तु भोला वीरसेन अब भी यह नहीं जान पाया कि हमारी सुन्दरी प्रिया यहाँ रोक ली गई है ॥१४३-१४४॥

तदनन्तर महादेवीके अभिषेक द्वारा, अभिषेकको प्राप्त हुई चन्द्राभा सब देवियोंके ऊपर स्थानको प्राप्त हुई। भावार्थ—सब देवियोंमें प्रधान देवी बन गई ॥१४५॥ भोगोंसे जिसका मन अन्धा हो रहा था ऐसा राजा मधु, लक्ष्मीके समान उस चन्द्राभाके साथ सुखरूपी सागरमें निमग्न होता हुआ अपने आपको इन्द्रके समान मानने लगा ॥१४६॥

१. उदारदार म० ।

वीरसेननृपः सोऽथं विज्ञाय विहृतां प्रियाम् । उन्मत्तत्वं परिप्राप्तो रतिं क्वापि न विन्दते ॥१४७॥
मण्डवस्याभवद्भिक्ष्यस्तापसोऽसौ जलप्रियः । मूढं विस्मापयंल्लोकं तपः पञ्चाग्निकं श्रितः ॥१४८॥
अन्यदा मधुराजेन्द्रो धर्मासनमुपागतः । करोति मन्त्रिभिः सार्द्धं व्यवहारविचारणम् ॥१४९॥
भूपाचाररसम्पन्नं सत्यं सम्मदलक्षणम् । प्रविष्टोऽन्तःपुरं धीरस्तत्पनेऽस्तमिलाषुके ॥१५०॥
खिन्ना तं प्राह चन्द्राभा किमिदथ चिरायितम् । वयं क्षुदर्दिता नाथ दुःखं वेलामिमां स्थिताः ॥१५१॥
सोऽप्योचद्व्यवहारोऽयमरालः[1] पारदारिकः । छेत्तुं न शक्यते यस्मात्तस्मादथ चिरायितम् ॥१५२॥
विहस्योवाच चन्द्राभा को दोषोऽन्यप्रियारतौ । परभार्या प्रिया यस्य तं पूजय यथेप्सितम् ॥१५३॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा क्रुद्धो मधुविभुर्जगौ । ये पारदारिका दुष्टा निग्राह्यास्ते न संशयः ॥१५४॥
दण्ड्याः पञ्चकदण्डेन निर्वास्याः पुरुषाधमाः । स्पृशन्तोऽन्यबलामन्यां भाषयन्तोऽपि दुर्मताः ॥१५५॥
सम्मूढाः परदारेषु ये पापादनिवर्त्तिनः । अधः प्रपतनं येषां ते पूज्याः कथमीदृशाः ॥१५६॥
देवी पुनरुवाचेदं सहसा कमलेक्षणा । अहो धर्मपरो जातु भवान् भूपालनोद्यतः ॥१५७॥
महान् यद्येष दोषोऽस्ति परदारैषिणां नृणाम् । एतं निग्रहमुद्दीर्य न करोषि किमात्मनः ॥१५८॥
प्रथमस्तु भवानेव परदाराभिगामिनाम् । कोऽन्येषां क्रियते दोषो यथा राजा तथा प्रजाः ॥१५९॥
स्वयमेव नृपो यत्र नृशंसः पारदारिकः । तत्र किं व्यवहारेण कारणं स्वस्थतां व्रज ॥१६०॥

इधर राजा वीरसेनको जब पता चला कि हमारी प्रिया हरी गई है तो वह पागल हो गया और किसी भी स्थानमें रतिको प्राप्त नहीं हुआ अर्थात् उसे कहीं भी अच्छा नहीं लगा ॥१४७॥ अन्तमें मूर्ख मनुष्योंको आनन्द देनेवाला राजा वीरसेन किसी मण्डवनामक तापसका शिष्य हो गया और मूर्ख मनुष्योंको आश्चर्यमें डालता हुआ पञ्चाग्नितप तपने लगा ॥१४८॥

किसी एक दिन राजा मधु धर्मासनपर बैठकर मन्त्रियोंके साथ राज्यकार्यका विचार कर रहा था । सो ठीक ही है क्योंकि राजाओंके आचारसे सम्पन्न सत्य ही हर्षदायक होता है । उस दिन राज्यकार्यमें व्यस्त रहनेके कारण धीरवीर राजा अन्तःपुरमें तब पहुँचा जब कि सूर्य अस्त होनेके सन्मुख था ॥१४९-१५०॥ खेदखिन्न चन्द्राभाने राजासे कहा कि नाथ ! आज इतनी देर क्यों की ? हमलोग भूखसे अबतक पीड़ित रहे ॥१५१॥ राजाने कहा कि यतश्च यह परस्त्री सम्बन्धी व्यवहार (मुकदमा) टेढ़ा व्यवहार था अतः बीचमें नहीं छोड़ा जा सकता था इसीलिए आज देर हुई है ॥१५२॥ तब चन्द्राभाने हँसकर कहा कि परस्त्रीसे प्रेम करनेमें दोष ही क्या है ? जिसे परस्त्री प्यारी है उसको तो इच्छानुसार पूजा करनी चाहिए ॥१५३॥ उसके उक्त वचन सुन राजा मधुने क्रुद्ध होकर कहा कि जो दुष्ट परस्त्री-लम्पट हैं वे अवश्य ही दण्ड देनेके योग्य हैं इसमें संशय नहीं है ॥१५४॥ जो परस्त्रीका स्पर्श करते हैं अथवा उससे वार्तालाप करते हैं ऐसे दुष्ट नीच पुरुष भी पाँच प्रकारके दण्डसे दण्डित करने योग्य हैं तथा देशसे निकालनेके योग्य हैं फिर जो पापसे निवृत्त नहीं होनेवाले परस्त्रियोंमें अत्यन्त मोहित हैं अर्थात् परस्त्रीका सेवन करते हैं उनका तो अधःपात--नरक जाना निश्चित ही है ऐसे लोग पूजा करने योग्य कैसे हो सकते हैं ? ॥१५५-१५६॥ तदनन्तर कमललोचना देवी चन्द्राभाने बीचमें ही बात काटते हुए कहा कि अहो ! आप बड़े धर्मात्मा हैं ? तथा पृथिवीका पालन करनेमें उद्यत हैं ॥१५७॥ यदि परदाराभिलाषी मनुष्योंका यह बड़ा भारी दोष माना जाता है तो हे राजन् ! अपने आपके लिए भी आप यह दण्ड क्यों नहीं देते ? ॥१५८॥ परस्त्रीगामियोंमें प्रथम तो आप ही हैं फिर दूसरोंको दोष क्यों दिया जाता है क्योंकि यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध है कि जैसा राजा होता है वैसी प्रजा होती है ॥१५९॥ जहाँ राजा स्वयं क्रूर एवं परस्त्रीगामी है वहाँ व्यवहार-अभियोग

१. नक्रः ।

येन बीजाः प्ररोहन्ति जगतो यच्च जीवनम् । जातस्ततो जलाद्वह्निः किमिहापरमुच्यताम् ॥१६१॥
उपलभ्येदृशं वाक्यं प्रतिरुद्धोऽभवन्मधुः । एवमेवेति तां देवीं पुनः पुनरभाषत ॥१६२॥
तथाप्यैश्वर्यपाशेन वेष्टितो दुःखसागरात् । भोगसंवर्त्तगो येन कर्मणा नाभमुच्यते ॥१६३॥
दीर्घायसि[1] गते काले सुप्रबोधसुखान्विते । सिंहपादाह्वयः साधुः प्राप्तोऽयोध्यां महागुणः ॥१६४॥
सहस्राम्रवने कान्ते मुनीन्द्रं समवस्थितम् । श्रुत्वा मधुः समायासीत्सपत्नीकः सहानुगः ॥१६५॥
गुरुं प्रणम्य विधिना संविश्य धरणीतले । धर्मं संश्रुत्य जैनेन्द्रं भोगेभ्यो विरतोऽभवत् ॥१६६॥
राजपुत्री महागोत्रा रूपेणाप्रतिमा भुवि । अत्याक्षीदधिराज्यं च ज्ञात्वा दुर्गतिवेदनाम् ॥१६७॥
विदित्वैश्वर्यमाभाव्यं मुनीभूतः स कैटभः । महाचर्यासमाक्लिष्टो विजहार महीं मधुः ॥१६८॥
रराज माधवीं घोणीं राज्यं च कुलवर्द्धनः । सर्वस्य नयनानन्दः स्वजनस्य परस्य च ॥१६९॥

वंशस्थवृत्तम्

मधुः सुघोरं परमं तपश्चरन्महामनाः वर्षशतानि भूरिशः ।
विधाय कालं विधिनाऽऽरणाच्युते जगाम देवेन्द्रपदं रणच्युतः ॥१७०॥

उपजातिः

अयं प्रभावो जिनशासनस्य यदिन्द्रतापीदृशपूर्ववृत्तैः ।
को विस्मयो वा त्रिदशेश्वरत्वे प्रयान्ति यन्मोक्षपुरं प्रयत्नात् ॥१७१॥

देखनेसे क्या प्रयोजन सिद्ध होता है ? सर्वप्रथम आप स्वस्थताको प्राप्त होइए ॥१६०॥ जिससे अङ्कुरोंकी उत्पत्ति होती है तथा जो जगत्का जीवनस्वरूप है उस जलसे भी यदि अग्नि उत्पन्न होती है तब फिर और क्या कहा जाय ? ॥१६१॥ इस प्रकारके वचन सुनकर राजा मधु निरुत्तर हो गया और 'इसी प्रकार है' यह वचन बार-बार चन्द्राभासे कहने लगा ॥१६२॥ इतना सब हुआ फिर भी ऐश्वर्यरूपी पाशसे वेष्टित हुआ वह दुःखरूपी सागरसे निकल नहीं सका सो ठीक है क्योंकि भोगोंमें आसक्त मनुष्य कर्मसे छूटता नहीं है ॥१६३॥

अथानन्तर सम्यक्प्रबोध और सुखसे सहित बहुत भारी समय बीत जानेके बाद एक बार महागुणोंके धारक सिंहपादनामक मुनि अयोध्या आये ॥१६४॥ और वहाँके अत्यन्त सुन्दर सहस्राम्र वनमें ठहर गये। यह सुन अपनी पत्नी तथा अनुचरोंसे सहित राजा मधु उनके पास गया ॥१६५॥ वहाँ विधिपूर्वक गुरुको प्रणामकर वह पृथिवीतलपर बैठ गया तथा जिनेन्द्र प्रतिपादित धर्म श्रवणकर भोगोंसे विरक्त हो गया ॥१६६॥ जो उच्च कुलीन थी तथा सौन्दर्यके कारण जो पृथ्वीपर अपनी सानी नहीं रखती थी ऐसी राजपुत्री तथा विशाल राज्यको उसने दुर्गतिकी वेदना जान तत्काल छोड़ दिया ॥१६७॥ उधर मधुका भाई कैटभ भी ऐश्वर्यको चञ्चल जानकर मुनि हो गया। तदनन्तर मुनिव्रतरूपी महाचर्यासे क्लेशका अनुभव करता हुआ मधु पृथ्वीपर विहार करने लगा ॥१६८॥ स्वजन और परजन-सभीके नेत्रोंको आनन्द देनेवाला कुलवर्धन राजा मधुकी विशाल पृथ्वी और राज्यका पालन करने लगा ॥१६९॥ महामनस्वी मधुमुनि सैकड़ों वर्षों तक अत्यन्त कठिन एवं उत्कृष्ट तपश्चरण करते रहे। अन्तमें विधिपूर्वक मरणकर रणसे रहित आरणाच्युत स्वर्गमें इन्द्रपदको प्राप्त हुए ॥१७०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अहो ! जिनशासनका प्रभाव आश्चर्यकारी है क्योंकि जिनका पूर्वजीवन ऐसा निन्दनीय रहा उन लोगोंने भी इन्द्रपद प्राप्त कर लिया। अथवा इन्द्रपद प्राप्त कर लेनेमें क्या आश्चर्य है ? क्योंकि प्रयत्न

१. दीर्घतरे ।

अनुष्टुप्

मधोरिन्द्रस्य संभूतिरेषा ते कथिता मया । सीता यस्य प्रतिस्पर्द्धी संभूतः पाकशासनः ॥१७२॥

वंशस्थवृत्तम्

अतः परं चित्तहरं मनीषिणां कुमारवीराष्टकचेष्टितं परम् ।
वदामि पापस्य विनाशकारणं कुरु श्रुतौ श्रेणिक भूभृतां रवे ॥१७३॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे मधूपाख्यानं नाम नवोत्तरशतं पर्व ॥१०९॥

करनेसे तो मोक्षनगर तक पहुँच जाते हैं ॥१७१॥ हे श्रेणिक ! मैंने तेरे लिए उस मधु इन्द्रकी उत्पत्ति कही जिसकी कि प्रतिस्पर्धा करनेवाली सीता प्रतीन्द्र हुई है ॥१७२॥ हे राजाओंके सूर्य ! श्रेणिक महाराज ! अब मैं इसके आगे विद्वानोंके चित्तको हरनेवाला, आठ वीर कुमारोंका वह चरित्र कहता हूँ कि जो पापका नाश करनेवाला है, उसे तू श्रवण कर ॥१७३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें मधुका वर्णन करनेवाला एक सौ नौवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥१०९॥

दशाधिकशतं पर्व

काञ्चनस्थाननाथस्य तनये रूपगर्विते । ते काञ्चनरथस्याऽऽस्तां वयोमौता शतह्रदा ॥१॥
तयोः स्वयंवरार्थेन समस्तान् भूमिभृचरान् । आह्वानयत्पिता प्रीत्या लेखवाहैर्महाजवैः ॥२॥
दत्तो विज्ञापितो लेखो विनीतापतये[1] तथा । स्वयंवरविधानं मे दुहितुश्चिन्त्यतामिति ॥३॥
ततस्तौ रामलक्ष्मीशौ समुत्पन्नकुतूहलौ । ऋद्धया परमया युक्तान् सर्वान् प्राहिणुतां सुतान् ॥४॥
ततः कुमारवीरास्ते कृत्वाऽग्रे लवणाङ्कुशौ । प्रययुः काञ्चनस्थानं सुप्रेमाणः परस्परम् ॥५॥
विमानशतमारूढा विद्याधरगणावृताः । श्रिया नैकुमारामा वियन्मार्गं समागताः ॥६॥
आपूर्यमाणसत्सैन्याः पश्यन्तो दूरगां महीम् । काञ्चनस्यन्दनस्याऽऽयुः पुटभेदनमुत्तमम् ॥७॥
यथार्हं ते अपि श्रेण्यौ निविष्टे तत्र रेजतुः । सदसीव सुधर्मायां नानालङ्कारभूषिते ॥८॥
समस्तविभवोपेता नरेन्द्रास्तत्र रेजिरे । विचित्रकृतसच्चेष्टास्त्रिदशा इव नन्दने ॥९॥
तत्र कन्ये दिनेऽन्यस्मिन्प्रशस्ते कृतमङ्गले । निर्जग्मतुर्निजावासाद्भ्रीलक्ष्म्याविव सद्गुणे ॥१०॥
देशतः कुलतो विद्याचेष्टिताद्धामधेयतः । ताभ्यामकथयत्सर्वान् कञ्चुकी जगतीपतीन् ॥११॥
प्लवङ्गहरिशार्दूलवृषनागादिकेतनान् । विद्याधरान् सुकन्ये ते आलोकेतां शनैः क्रमात् ॥१२॥
दृष्ट्वा निश्चित्य ते प्राप्ता वैलक्ष्यं [2]विहतत्विषः । ह्रीयमाना समारूढास्तुलां सन्देहविग्रहाम् ॥१३॥

अथानन्तर काञ्चनस्थान नामक नगरके राजा काञ्चनरथकी दो पुत्रियाँ थीं जो सौन्दर्यके गर्वसे गर्वित थीं तथा जिनकी माताका नाम शतह्रदा था ॥१॥ उन दोनों कन्याओंके स्वयंवरके लिए उनके पिताने महावेगशाली पत्रवाहक दूत भेजकर समस्त भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओंको बुलवाया ॥२॥ एक पत्र इस आशयका अयोध्याके राजाके पास भी भेजा गया कि मेरी पुत्रीका स्वयंवर है अतः विचारकर कुमारोंको भेजिए ॥३॥ तदनन्तर जिन्हें कुतूहल उत्पन्न हुआ था ऐसे राम और लक्ष्मणने परम सम्पदासे युक्त अपने सब कुमार वहाँ भेजे ॥४॥ तत्पश्चात् परस्पर प्रेमसे भरे हुए, वे सब कुमार, लवण और अंकुशको आगेकर काञ्चनस्थानकी ओर चले ॥५॥ सैकड़ों विमानोंमें बैठे, विद्याधरोंके समूहसे आवृत एवं लक्ष्मीसे देवकुमारोंके समान दिखनेवाले वे सब कुमार आकाश-मार्गसे जा रहे थे ॥६॥ जिनकी सेना उत्तरोत्तर बढ़ रही थी तथा जो दूर छूटी पृथिवीको देखते जाते थे ऐसे सब कुमार काञ्चनरथके उत्तम नगरमें पहुँचे ॥७॥ वहाँ देव-सभाके समान सुशोभित सभामें नाना अलंकारोंसे भूषित यथायोग्य स्थापित विद्याधरों और भूमिगोचरियोंकी दोनों श्रेणियाँ सुशोभित हो रही थीं ॥८॥ समस्त वैभवोंसे सहित राजा नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करते हुए उन श्रेणियोंमें उस तरह सुशोभित हो रहे थे जिस तरह कि नन्दन वनमें देव सुशोभित होते हैं ॥९॥

वहाँ दूसरे दिन जिनका मङ्गलाचार किया गया था तथा जो उत्तम गुणोंको धारण करने वाली थीं ऐसी दोनों कन्याएँ ह्री और लक्ष्मीके समान अपने निवास-स्थानसे बाहर निकलीं ॥१०॥ स्वयंवर-सभामें जो राजा आये थे कंचुकीने उन सबका देश, कुल, धन, चेष्टा तथा नामकी अपेक्षा दोनों कन्याओंके लिए वर्णन किया ॥११॥ ये सब वानर, सिंह, शार्दूल, वृषभ तथा नाग आदिकी पताकाओंसे सहित विद्याधर बैठे हैं। हे उत्तम कन्याओ ! इन्हें तुम क्रम-क्रमसे देखो ॥१२॥ उन कन्याओंको देखकर जो लज्जाको प्राप्त हो रहे थे तथा जिनकी कान्ति फीकी

---

१. अयोध्यापतये । २. श्रीलक्ष्म्याविव म० । ३. विहितत्विषः म० ।

द्रक्ष्यन्ते ये तु ते स्वस्य सज्जयन्तो विभूषणम् । नाक्षालिषुः क्रिया कृत्यास्तिष्ठाम इति चञ्चलाः ॥१४॥
प्रवरिष्यति कं वेधा रूपगर्वज्वराकुला । मन्येऽस्माकमिति प्राप्ताश्चिन्तां ते चलमानसाः ॥१५॥
गृह्णीते किं विजित्यैते सुरासुरजगद्द्वयम् । पताके कामदेवेन लोकोन्मादनकारणे ॥१६॥
अथोत्तमकुमार्यौ ते निरीक्ष्य लवणाङ्कुशौ । विद्धे मन्मथबाणेन निश्चलत्वमुपागते ॥१७॥
महादृष्ट्याऽनुरागेण बद्धया तिमनोहरः । अनङ्गलवणोऽग्राहि मन्दाकिन्याऽग्रकन्यया ॥१८॥
शशाङ्कवक्त्रया चारुभाग्यया वरकन्यया । शशाङ्कभाग्यया युक्तो जगृहे मदनाङ्कुशः ॥१९॥
ततो हलहलारावस्तस्मिन् सैन्ये समुत्थितः । जयो[1]द्भुष्टहरिवानसंयुक्त [illegible]
मन्ये व्यपाटयन् व्योम हरितो वा समन्ततः । उद्भ्रियमाणैर्लोकस्य मनोभिः परमन्त्रैः ॥२१॥
अहो सदृशसम्बन्धो दृष्टोऽस्माभिरयं परः । गृह्णीतो यत्सुकन्याभ्यामेतौ पद्माभनन्दनौ ॥२२॥
गाम्भीर्यं भुवनाख्यातमुदारं लवणं गता । मन्दाकिनी यदेतं हि नापूर्णं कृतमेतया ॥२३॥
जेतुं सर्वजगत्कान्तिं चन्द्रभाग्या समुद्यता । अकरोत्साधु यद्योग्यं मदनाङ्कुशमग्रहीत् ॥२४॥
इति तत्र विनिश्चेरुः सज्जनानां गिरः पराः । सतां हि साधुसम्बन्धाच्चित्तमानन्दमीयते ॥२५॥
विशल्यादिमहादेवीनन्दनाश्चारुचेतसः । अष्टौ कुमारवीरास्ते प्रख्याता[2] वसवो यथा ॥२६॥
शतैरष्टभिरन्यैर्वा भ्रातृणां प्रीतिमानसैः । युक्तास्तारागणान्तस्था ग्रहा इव विरेजिरे ॥२७॥

पड़ गई थी ऐसे राजकुमार उन कन्याओंके द्वारा देखे जाकर संशयकी तराजूपर आरूढ़ हो रहे थे ॥१३॥ जो राजकुमार उस कन्याओंके द्वारा देखे जाते थे वे अपने आभूषणोंको सजाते हुए करने योग्य क्रियाओंको भूल जाते थे तथा हम कहाँ बैठे हैं यह भूल चञ्चल हो उठते थे ॥१४॥ सौन्दर्यरूपी गर्वके ज्वरसे आकुल यह कन्या हम लोगोंमेंसे किसे वरेगी इस चिन्ताको प्राप्त हुए राजकुमार चञ्चलचित्त हो रहे थे ॥१५॥ वे उन कन्याओंको देखकर विचार करने लगते थे कि क्या देव और दानवोंके दोनों जगत्को जीतकर कामदेवके द्वारा ग्रहण की हुई, लोगोंके उन्मादकी कारणभूत ये दो पताकाएँ ही हैं ॥१६॥

अथानन्तर वे दोनों कुमारियाँ लवणाङ्कुशको देख कामबाणसे विद्ध हो निश्चल खड़ी हो गयीं ॥१७॥ उन दोनों कन्याओंमें मन्दाकिनी नामकी जो बड़ी कन्या थी उसने अनुरागपूर्ण महादृष्टिसे अनङ्गलवणको ग्रहण किया ॥१८॥ और चन्द्रमुखी तथा सुन्दर भाग्यसे युक्त चन्द्रभाग्या नामकी दूसरी उत्तम कन्याने अपने योग्य मदनाङ्कुशको ग्रहण किया ॥१९॥ तदनन्तर उस सेनामें जयध्वनिसे उत्कृष्ट सिंहनादसे सहित हलहलका तीव्र शब्द उठा ॥२०॥ ऐसा जान पड़ता था कि तीव्र लज्जासे भरे हुए लोगोंके जो मन सब ओर दौड़े जा रहे थे उनसे मानो आकाश अथवा दिशाएँ ही फटी जा रही थीं ॥२१॥ उस कोलाहलके बीच समझदार मनुष्य कह रहे थे कि अहो ! हम लोगोंने यह योग्य उत्कृष्ट सम्बन्ध देख लिया जो इन कन्याओंने रामके इन पुत्रोंको ग्रहण किया है ॥२२॥ मन्दाकिनी अर्थात् गङ्गानदी, गम्भीर तथा संसारप्रसिद्ध, लवणसमुद्रके पास गयी है सो इस लवण अर्थात् अनंग लवणके पास जाती हुई इस मन्दाकिनी नामा कन्याने भी कुछ अपूर्ण अयोग्य काम नहीं किया है ॥२३॥ और सर्व जगत्की कान्तिको जीतनेके लिए उद्यत इस चन्द्रभाग्याने जो मदनांकुशको ग्रहण किया है सो अत्यन्त योग्य कार्य किया है ॥२४॥ इस प्रकार उस सभामें सज्जनोंकी उत्तम वाणी सर्वत्र फैल रही थी सो ठीक ही है क्योंकि उत्तम सम्बन्धसे सज्जनोंका चित्त आनन्दको प्राप्त होता ही है ॥२५॥ लक्ष्मणकी विशल्या आदि आठ महादेवियोंके जो आठ वीर कुमार, सुन्दर चित्तके धारक, आठ वसुओंके समान सर्वत्र प्रसिद्ध थे वे प्रीतिसे भरे हुए अपने अढ़ाई सौ भाइयोंसे इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानो ताराओंके मध्यमें स्थित ग्रह ही हों ॥२६-२७॥

१. -मेता न० । २. भुवनं ख्यातं म० । ३. वासवो म० ।

बलवन्तः समुद्वृत्तास्तेऽन्ये लक्ष्मणसूनवः । क्रोधादुत्पतितुं शक्ता वैदेहीनन्दनौ यतः ॥२८॥
ततोऽष्टाभिः सुकन्याभि[1]स्तद्भ्रातृबलमुद्धतम् । मन्त्रैरिव शमं नीतं भुजङ्गमकुलं बलम् ॥२९॥
प्रशान्तिं भ्रातरो यात तद्भ्रातृभ्यां समं ननु । किमाभ्यां क्रियते कार्यं कन्याभ्यामधुना शुभाः ॥३०॥
स्वभावाद्वलिता जिह्मा विशेषाद्दन्यचेतसः । ततः [2]सुहृदयस्तासामर्थे को विकृतिं भजेत् ॥३१॥
अपि निर्जितदेवीभ्यामेताभ्यां नास्ति कारणम् । अस्माकं चेत्प्रियं कर्तु [3]निवर्तध्वमितो मनः ॥३२॥
एवमष्टकुमाराणां वचनैः [4]प्रग्रहैरिव । तुरङ्गमबलं तृप्तं भ्रातॄणां स्थापितं वशे ॥३३॥
वृतौ यत्र [5]सुकन्याभ्यां वैदेहीतनुसम्भवौ । प्रदेशे तत्र संवृत्तस्तुमुलस्तूर्यनिस्वनः ॥३४॥
वंशाः सकाहलाः शङ्खा भम्भाभेर्यः सझर्झराः । मनःश्रोत्रहरं भेदुर्व्याप्तदूरदिगन्तराः ॥३५॥
स्वायंवरीं समालोक्य विभूतिं लक्ष्मणात्मजाः । [6]शुशुचुर्वीक्ष्य देवेन्द्रामिव क्षुद्रर्धयः सुराः ॥३६॥
नारायणस्य पुत्राः स्मो द्युतिकान्तिपरिष्कृताः । नवयौवनसम्पन्नाः सुसहाया बलोत्कटाः ॥३७॥
गुणेन केन हीनाः स्म यदेकमपि नो जनम् । परित्यज्य वृतावेतौ कन्याभ्यां जानकीसुतौ ॥३८॥
अथवा विस्मयः कोऽत्र किमर्थादं जगद्गतम् । कर्मवैचित्र्ययोगेन विचित्रं सचराचरम् ॥३९॥
प्रागेव यद्यवासव्यं येन यत्र यथा यतः । तत्परिप्राप्यतेऽवश्यं तेन तत्र तथा ततः ॥४०॥

यहाँ उन आठके सिवाय बलवान् तथा उत्कट चेष्टाके धारक जो लक्ष्मणके अन्य पुत्र थे वे क्रोधवश लवण और अंकुशकी ओर झपटनेके लिए तत्पर हो गये परन्तु उन सुन्दर कन्याओंको लक्ष्यकर उद्धत चेष्टा दिखानेवाली भाइयोंकी उस सेनाको पूर्वोक्त आठ प्रमुख वीरोंने उस प्रकार शान्त कर दिया जिस प्रकारकी मन्त्र चञ्चल सर्पोंके समूहको शान्त कर देते हैं ॥२८-२९॥ उन आठ भाइयोंने अन्य भाइयोंको समझाते हुए कहा कि 'भाइयो ! तुम सब उन दोनों भाइयोंके साथ शान्तिको प्राप्त होओ। हे भद्र जनो ! अब इन दोनों कन्याओंसे क्या कार्य किया जाना है ? स्त्रियाँ स्वभावसे ही कुटिल हैं फिर जिनका चित्त दूसरे पुरुषमें लग रहा है उनका तो कहना ही क्या है ? इसलिए ऐसा कौन उत्तम हृदयका धारक है जो उनके लिए विकारको प्राप्त हो। भले ही इन कन्याओंने देवियोंको जीत लिया हो फिर भी इनसे हम लोगोंको क्या प्रयोजन है ? इसलिए यदि अपना कल्याण करना चाहते हो तो इनकी ओरसे मनको लौटाओ' ॥३०-३२॥ इस तरह उन आठ कुमारोंके वचनोंसे भाइयोंका वह समूह उस प्रकार वशीभूत हो गया जिस प्रकार कि लगामोंसे घोड़ोंका समूह वशीभूत हो जाता है ॥३३॥ जिस स्थानमें उन उत्तम कन्याओंके द्वारा सीताके पुत्र वरे गये थे वहाँ बाजोंका तुमुलशब्द होने लगा ॥३४॥ बहुत दूर तक दिग्-दिगन्तको व्याप्त करनेवाले, बाँसुरी, काहला, शंख, भंभा, भेरी तथा झर्झर आदि बाजे मन और कानोंको हरण करने वाले मनोहर शब्द करने लगे ॥३५॥ जिस प्रकार इन्द्रकी विभूति देख क्षुद्र ऋद्धिके धारक देव शोकको प्राप्त हो जाते हैं उसी प्रकार स्वयंवरकी विभूति देख लक्ष्मणके पुत्र क्षोभको प्राप्त हो गये ॥३६॥ वे सोचने लगे कि हम नारायणके पुत्र हैं, दीप्ति और कान्तिसे युक्त हैं, नवयौवनसे सम्पन्न हैं, उत्तम सहायकोंसे युक्त हैं तथा बलसे प्रचण्ड हैं ॥३७॥ हम लोग किस गुणमें हीन हैं कि जिससे हम लोगोंमेंसे किसी एकको भी इन कन्याओंने नहीं वरा किन्तु उसके विपरीत हम सबको छोड़ जानकीके पुत्रोंको वरा ॥३८॥ अथवा इसमें आश्चर्य ही क्या है ? जगत्की ऐसी ही विचित्र चेष्टा है, कर्मोंकी विचित्रताके योगसे यह चराचर विश्व विचित्र ही जान पड़ता है ॥३९॥ जिसे जहाँ जिस प्रकार जिस कारणसे जो वस्तु पहले ही प्राप्त करने योग्य होती है उसे वहाँ उसी प्रकार उसी कारणसे वही वस्तु अवश्य प्राप्त होती है ॥४०॥

---

१. ततोऽष्टभिः म० । २. सुकन्याभिः म० ब० । ३. भुजङ्गमतुलं बलम् ज० । ४. सहृदयः ब०,क० । ५. विवर्तध्व- । ६. प्रग्रहैरपि म० । ७. तुरङ्गचञ्चलं म० । ८. यत्तु म० । ९. शुशुचु- म० ।

एवं लक्ष्मणपुत्राणां कुर्वतां प्रारब्धशोचने । ऊचे रूपवतीपुत्रः प्रहस्य गतविस्मयः ॥४१॥
स्त्रीमात्रस्य कृते कस्मादेवं शोचत सत्वराः । चेष्टितादिति वो हास्यं परमं समजायत ॥४२॥
किमाभ्यां [1]निर्वृतेर्दूत्या लब्धा जैनेश्वरी द्युतिः । अबुधा इव यद्व्यर्थं संशोचत पुनः पुनः ॥४३॥
रम्भास्तम्भसमानानां निःसाराणां हतात्मनाम् । कामानां वशगाः शोकं हास्यं नो कर्तुमर्हथ ॥४४॥
सर्वे शरीरिणः कर्मवशी वृत्तिमुपाश्रिताः । न तत्कुरुथ किं येन तत्कर्म परिणश्यति ॥४५॥
गहने भवकान्तारे प्रणष्टाः प्राणधारिणः । ईदृंश्यि [2]यानि दुःखानि निरस्यत ततस्तकम् ॥४६॥
भ्रातरः कर्मभूरेषा जनकस्य प्रसादतः । मोहिहावधृतास्माभिर्मोहवेष्टितबुद्धिभिः ॥४७॥
अङ्कस्थेन पितुर्बाल्ये बाच्यमानं पुरा मया । पुस्तके श्रुतमत्यन्तं सुस्वरं वस्तु सुन्दरम् ॥४८॥
भवानां किल सर्वेषां दुर्लभो मानुषो भवः । प्राप्य तं स्वहितं यो न कुरुते स तु वञ्चितः ॥४९॥
ऐश्वर्यं पात्रदानेन तपसा लभते दिवम् । ज्ञानेन च शिवं जीवो दुःखदां गतिमंहसा ॥५०॥
पुनर्जन्म ध्रुवं ज्ञात्वा तपः कुर्मो न चेद् वयम् । अवाप्स्या ततो भूयो दुर्गतिर्दुःखसङ्कटा ॥५१॥
एवं कुमारवीरास्ते प्रतिबोधमुपागताः । संसारसागराऽसारावेदमाऽऽवर्तभीतिगाः ॥५२॥
त्वरितं पितरं गत्वा प्रणम्य विनयस्थिताः । प्राहुर्मधुरमत्यर्थं रचिताञ्जलिकुड्मलाः ॥५३॥
तात नः शृणु विज्ञप्तिं न विघ्नं कर्तुमर्हसि । दीक्षामुपेतुमिच्छामो यत्र सत्राऽनुकूलताम् ॥५४॥
विद्युदाकालिकं क्षेत्रजगत्सारविवर्जितम् । विलोक्यो[3]दीयतेऽस्माकमत्यन्तं परमं [4]भयम् ॥५५॥
कथञ्चिदधुना प्राप्ता बोधिरस्माभिरुत्तमा । अथो नोभूतयः सारं ऋणस्यामो भवोदधेः ॥५६॥

इस प्रकार जब लक्ष्मणके पुत्र शोक करने लगे तब जिसका आश्चर्य नष्ट हो गया था ऐसे रूपवतीके पुत्रने हँसकर कहा कि अरे भले पुरुषो ! स्त्री मात्रके लिए इस तरह क्यों शोक कर रहे हो ? तुम लोगोंकी इस चेष्टासे परम हास्य उत्पन्न होता है—अधिक हँसी आ रही है ॥४१-४२॥ हमें इन कन्याओंसे क्या प्रयोजन है ? हमें तो मुक्तिकी दूती स्वरूप जिनेन्द्रभगवान्‌की कान्तिकी प्राप्ति हो चुकी है अर्थात् हमारे मनमें जिनेन्द्र मुद्राका स्वरूप झूल रहा है। फिर क्यों मूर्खोंके समान तुम व्यर्थ ही बार-बार इसीका शोक कर रहे हो ? ॥४३॥ केलेके स्तम्भके समान निःसार तथा आत्माको नष्ट करनेवाले कामोंके वशीभूत हो तुम लोग शोक और हास्य करनेके योग्य नहीं हो ॥४४॥ सब प्राणी कर्मके वशमें पड़े हुए हैं इसलिए वह काम क्यों नहीं करते कि जिससे वह कर्म नष्ट हो जाता है ॥४५॥ इस संसार रूपी सघन वनमें भूले हुए प्राणी ऐसे दुःखोंको प्राप्त हो रहे हैं इसलिए उस संसार वनको नष्ट करो ॥४६॥ हे भाइयो ! यह कर्मभूमि है परन्तु पिताके प्रसादसे मोहाक्रान्त बुद्धि होकर हम लोग इसे स्वर्ग जैसा समझ रहे हैं ॥४७॥ पहले बाल्यावस्थामें पिताकी गोदमें स्थित रहनेवाले मैंने किसीके द्वारा पुस्तकमें बाँची गई एक बहुत ही सुन्दर वस्तु सुनी थी कि सब भवोंमें मनुष्यभव दुर्लभ भव है उसे पाकर जो अपना हित नहीं करता है वह वञ्चित रहता है—ठगाया जाता है ॥४८-४९॥ यह जीव पात्रदानसे ऐश्वर्यको, तपसे स्वर्गको, ज्ञानसे मोक्षको, और पापसे दुःखदायी गतिको प्राप्त होता है ॥५०॥ 'पुनर्जन्म अवश्य होता है' यह जानकर भी यदि हम तप नहीं करते हैं तो फिरसे दुःखोंसे भरी हुई दुर्गति प्राप्त करनी होगी ॥५१॥ इस प्रकार संसार-सागरके मध्य दुःखानुभवरूपी भँवरसे भयभीत रहनेवाले वे वीरकुमार प्रतिबोधको प्राप्त हो गये ॥५२॥ और शीघ्र ही पिताके पास जाकर तथा प्रणाम कर विनयसे खड़े हो हाथ जोड़ अत्यन्त मधुर स्वरमें कहने लगे कि हे पिताजी ! हमारी प्रार्थना सुनिए। आप विघ्न करनेके योग्य नहीं हैं। हम लोग दीक्षा ग्रहण करना चाहते हैं सो इसमें अनुकूलताको प्राप्त हूजिए ॥५३-५४॥ इस संसारको बिजलीके समान क्षणभङ्गुर तथा सारसे रहित देखकर हम लोगोंको अत्यन्त तीव्र भय उत्पन्न हो रहा है ॥५५॥ हम लोग इस समय

१. निर्वृते म०। २. यानि म०, ज०। ३. विलोक्य दीयते ब०, ज०। ४. रुषम् म०, ज०।

आशीविषफणा[1]भीमान् कामान् शङ्कासुकानलम् । हेतून् परमदुःखस्य वाञ्छामो दूरमुज्झितुम् ॥५७॥
नास्य माता पिता भ्राता बान्धवाः सुहृदोऽपि वा । सहायाः कर्मतन्त्रस्य परित्राणं शरीरिणः ॥५८॥
ज्ञातं विप्रस्तवाऽस्मासु[2] वात्सल्यमुपमोज्झितम् । मातॄणां च परं स्नेहबन्धनं भववासिनाम् ॥५९॥
किं तर्हि सुचिरं सौख्यं भवद्वात्सल्यसंभवम् । भुक्त्वाऽपि विरहोऽवश्यं प्राप्यः क्रकचदारुणः ॥६०॥
अतृप्त एव भोगेषु जीवो कृमिरिवाधमः । इमं विमोक्ष्यते देहं किं प्राप्तं गणयते तदा ॥६१॥
ततो लक्ष्मीधरोऽवोचत्परमस्नेहविह्वलः । आघ्राय मस्तके पुत्रानवीक्ष्य च पुनः पुनः ॥६२॥
एते कैलासशिखरप्रतिमा हेमरत्नजाः । प्रासादाः कनकस्तम्भसहस्रपरिशोभिताः ॥६३॥
नानाकुट्टिमभूभागाश्चारुनिर्व्यूहसङ्गताः । सुसेव्या विमलाः कान्ताः सर्वोपकरणान्विताः ॥६४॥
मलयाचलसद्गन्धमारुताकृष्टषट्पदाः । स्नानादिविधिसम्पत्तियोग्यनिर्मलभूमयः ॥६५॥
शरच्चन्द्रप्रभा गौराः सुरस्त्रीसमयोषितः । गुणैः सन्महिताः सर्वैः कल्पप्रासादसन्निभाः ॥६६॥
वीणावेणुमृदङ्गादिसङ्गीतकमनोहराः । जिनेन्द्रचरितासक्तकथात्यन्तपवित्रिताः ॥६७॥
[3]उषित्वा सुखमेतेषु रम्यगेषु वत्सकाः । प्रतिपद्य कथं दीक्षां वत्स्यथानन्तवनाचलम् ॥६८॥
[4]सञ्चक्ष्य स्नेहनिघ्नं मां शोकसप्तां च मातरम् । न युक्तं वत्सका गन्तुं सेव्यतां तावदीश्वरा[5]" ॥६९॥

किसी तरह उस उत्तम बोधिको प्राप्त हुए हैं कि नौकास्वरूप जिस बोधिके द्वारा संसार-सागरके उस पार पहुँचेंगे ॥५६॥ जो आशीविष-सर्पके फनके समान भयङ्कर हैं, शङ्का अर्थात् भय जिनके प्राण हैं तथा जो परमदुःखके कारण हैं ऐसे भोगोंको हम दूरसे ही छोड़ना चाहते हैं ॥५७॥ इस कर्माधीन जीवकी रक्षा करनेके लिए न माता सहायक है, न पिता सहायक है, न भाई सहायक है, न कुटुम्बीजन सहायक हैं और न मित्र लोग सहायक हैं ॥५८॥ हे तात ! हम लोगोंपर आपका तथा माताओंका जो उपमारहित परम वात्सल्य है उसे हम जानते हैं और यह भी जानते हैं कि संसारी प्राणियोंके लिए यही बड़ा बन्धन है परन्तु आपके स्नेहसे होनेवाला सुख क्या चिरकाल तक रह सकता है ? भोगनेके बाद भी उसका विरह अवश्य प्राप्त करना होता है और ऐसा विरह कि जो करौंतके समान भयङ्कर होता है ॥५९-६०॥ यह जीव भोगोंमें तृप्त हुए बिना ही कृमिकी तरह इस शरीरको छोड़ देगा तब क्या प्राप्त हुआ कहलाया ? ॥६१॥

तदनन्तर परमस्नेहसे विह्वल लक्ष्मण अपने पुत्रोंको मस्तकपर सूँघकर तथा पुनः पुनः उनकी ओर देखकर बोले कि ये महल जो कि कैलासके शिखरके समान हैं, सुवर्ण तथा रत्नोंसे निर्मित हैं, सुवर्णके हजारों खम्भोंसे सुशोभित हैं, जिनके फर्शोंकी भूमियाँ नानाप्रकारकी हैं, जो सुन्दर-सुन्दर छज्जोंसे सहित हैं, अच्छी तरह सेवन करने योग्य हैं, निर्मल हैं, सुन्दर हैं, सब प्रकारके उपकरणोंसे सहित हैं, मलयाचल जैसी सुगन्धित वायुसे जिनमें भ्रमर आकृष्ट होते रहते हैं, जहाँ स्नानादि कार्योंके योग्य जुदी-जुदी उज्ज्वल भूमियाँ हैं, जो शरदृतुके चन्द्रमाके समान आभावाले हैं, शुभ्रवर्ण हैं, जिनमें देवाङ्गनाओंके समान स्त्रियोंका आवास है, जो सब प्रकारके गुणोंसे सहित हैं, स्वर्गके भवनोंके समान हैं, वीणा, वेणु, मृदङ्ग आदिके संगीतसे मनोहर हैं और जिनेन्द्र भगवान्‌के चरित सम्बन्धी कथाओंसे अत्यन्त पवित्र हैं, सामने खड़े हैं सो हे बालको ! इन महलोंमें सुखसे रहकर अब तुम लोग दीक्षा धारणकर वन और पहाड़ोंके बीच कैसे रहोगे ? ॥६२-६८॥ हे पुत्रो ! स्नेहाधीन मुझे तथा शोकसंतप्त माताको छोड़कर जाना योग्य नहीं है इसलिए ऐश्वर्यका सेवन करो ॥६९॥

---

१. फणान् भीमान् म० । २. शङ्कासुखानल -ब० । ३. तथास्मासु म० । ४. सर्वं म० । ५. उज्झित्वा म० । ६. त्यक्त्वा, संवीक्ष्य ज०, ख० । ७. तावदीशतां ज०, ख० ।

स्नेहावासनचित्तास्ते संविमुश्य क्षणं धिया । भवभीता हृषीकाऽऽप्यसौख्यैकान्तपराङ्मुखाः ॥७०॥
उदारवीरतादत्तमहावष्टम्भशालिनः । ऊचुः कुमारवृषभास्तत्त्वविन्यस्तचेतसः ॥७१॥
मातरः पितरोऽन्ये च संसारेऽनन्तशो गताः । स्नेहबन्धनमेतासामेतद्धि चारकं गृहम् ॥७२॥
पापस्य परमारम्भं नानादुःखाभिवर्द्धनम् । गृहपञ्जरकं मूढाः सेवन्ते न प्रबोधिनः ॥७३॥
शारीरं मानसं दुःखं मा भूत्नूयोऽपि नो यथा । तथा सुनिश्चिताः कुर्मः किं वयं स्वस्य वैरिणः ॥७४॥
निर्दोषोऽहं न मे पापमस्तीत्यपि विचिन्तयन् । मलिनत्वं गृही याति शुक्लांशुकमिव स्थितम् ॥७५॥
अत्यायोत्थाय यत्नेन गृहाश्रमनिवासिनाम् । पापे रतिस्ततस्त्यक्तो गृहिधर्मो महात्मभिः ॥७६॥
भुञ्यतां तावदैश्वर्यमिति यत्प्रोक्तवानसि । तदन्धकारकूपे नः क्षिपसि ज्ञानवानपि ॥७७॥
पिबन्तं सृगकं व्याधो हन्ति तृषा जलम् । तथैव पुरुषं मृत्युर्हन्ति भोगैरतृप्तकम् ॥७८॥
विषयप्राप्तिसंसक्तमस्वतन्त्रमिदं जगत् । कामैराशीविषैः साकं क्रीडत्यज्ञमनौषधम् ॥७९॥
विषयामिषसंसक्ता मग्ना गृहजलाशये । रुग्ण वडिशयोगेन नरमीना व्रजन्त्ययमुम् ॥८०॥
अत एव नृलोकेशो जगत्त्रितयवन्दितः । जगत्स्वकर्मणां वश्यं जगाद भगवानृषिः ॥८१॥
तुरन्तैस्तदलं तात प्रियसङ्गमलोभनैः । विचक्षणजनद्विष्टैस्तडिच्चपलाश्चलैः ॥८२॥

तदनन्तर स्नेहके दूर करनेमें जिनके चित्त लग रहे थे, जो संसारसे भयभीत थे, इन्द्रियोंसे प्राप्त होने योग्य सुखोंसे एकान्तरूपसे विमुख थे, उदार वीरताके द्वारा दिये हुए आलम्बनसे जो सुशोभित थे तथा तत्त्व विचार करनेमें जिनके चित्त लग रहे थे ऐसे वे सब कुमार बुद्धि द्वारा क्षणभर विचार कर बोले कि इस संसारमें माता-पिता तथा अन्य लोग अनन्तों बार प्राप्त होकर चले गये हैं। यथार्थमें स्नेहरूपी बन्धनको प्राप्त हुए मनुष्योंके लिए यह घर एक बन्दी गृहके समान है ॥७०-७२॥ जिसमें पापका परम आरम्भ होता है तथा जो नाना दुःखोंको बढ़ानेवाला है ऐसे गृहरूपी पिंजड़ेकी मूर्ख मनुष्य ही सेवा करते हैं बुद्धिमान् नहीं ॥७३॥ जिस तरह शारीरिक और मानसिक दुःख हमें पुनः प्राप्त न हों उस तरह ही दृढ़ निश्चय कर हम कार्य करना चाहते हैं। क्या हम अपने आपके वैरी हैं ॥७४॥ गृहस्थ यद्यपि यह सोचता है कि मैं निर्दोष हूँ, मेरे पाप नहीं हैं, फिर भी वह रखे हुए शुक्लवस्त्रके समान मलिनताको प्राप्त हो ही जाता है ॥७५॥ यतश्च गृहस्थाश्रममें निवास करनेवाले मनुष्योंको उठ-उठकर पापमें प्रीति होती है इसीलिए महात्मा पुरुषोंने गृहस्थाश्रमका त्याग किया है ॥७६॥ आपने जो कहा है कि अच्छी तरह ऐश्वर्यका उपभोग करो सो आप हमें ज्ञानवान् होकर भी अन्धकूपमें फेंक रहे हैं ॥७७॥ जिस प्रकार प्याससे पानी पीते हुए हरिणको शिकारी मार देता है उसी प्रकार भोगोंसे अतृप्त मनुष्यको मृत्यु मार देती है ॥७८॥ विषयोंकी प्राप्तिमें आसक्त, परतन्त्र, अज्ञानी तथा औषधसे रहित यह संसार कामरूपी सर्पोंके साथ क्रीड़ा कर रहा है।

भावार्थ—जिस प्रकार साँपोंके साथ खेलनेवाले अज्ञानी एवं औषधरहित मनुष्य मरणको प्राप्त होता है उसी प्रकार आस्रवबन्ध और संवर निर्जराके ज्ञानसे रहित यह जीव इन्द्रिय भोगोंके साथ क्रीड़ा करता हुआ मृत्युको प्राप्त होता है ॥७९॥ घररूपी जलाशयमें मग्न तथा विषयरूपी मांसमें आसक्त ये मनुष्यरूपी मच्छ रोगरूपी बंशीके योगसे मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥८०॥ इसीलिए मनुष्यलोकके स्वामी, लोकत्रयके द्वारा वन्दित भगवान् जिनेन्द्रने जगत्को अपने कर्मके आधीन कहा है। भावार्थ—भगवान् जिनेन्द्रने बताया है कि संसारके सब प्राणी स्वीकृत कर्मोंके आधीन हैं ॥८१॥ इसलिए हे तात ! जिनका परिणाम अच्छा नहीं है, प्रियजनोंका समागम जिनका प्रलोभन है, जो विद्वज्जनोंके द्वेषपात्र हैं तथा जो बिजलीके समान चञ्चल हैं ऐसे इन भोगोंसे पूरा पड़े अर्थात्

१. स्नेहबन्धनमेतद्धि चारकं नारकं गृहम् म०, ख० ।

ध्रुवं यदा समासाद्यो विरहो बन्धुभिः समम् । असमञ्जसरूपेऽस्मिन्संसारे का रतिस्तदा ॥८३॥
अयं मे प्रिय इत्याऽऽस्थाव्यामोहोपनिबन्धना[1] । एक एव यतो जन्तुर्गत्यागमनदुःखभाक् ॥८४॥
मिथ्यागमकुहार्णवे मोहसङ्गसपङ्कके । शोकसंतापफेनाढ्ये भवाऽऽवर्तसमाकुले ॥८५॥
व्याधिमृत्युमिकल्लोले मोहपातालगह्वरे । क्रोधादिमकरक्रूरनक्रसंघातसङ्कुले ॥८६॥
कुहेतुसमयोद्भूतनिर्ह्रादास्यन्तभैरवे । मिथ्यात्वमारुतोद्धूते दुर्गतिक्षारवारिणि ॥८७॥
नितान्तदुःसहोदारवियोगवडवानले । सुचिरं[2] तात खिन्नाः स्मो घोरे संसारसागरे ॥८८॥
नानायोनिषु संभ्रम्य कृच्छ्रात्प्राप्ता मनुष्यताम् । कुर्मस्तथा यथा भूयो मज्जामो नाऽत्र सागरे ॥८९॥
ततः परिजनाकीर्णावापृच्छ्य पितरौ क्रमात् । अष्टौ कुमारवीरास्ते निर्जग्मुर्गृहचारकात् ॥९०॥
आसीन्निःक्रामतां तेषामीश्वरत्वे तथाविधे । बुद्धिर्जीर्णतृणे यद्वत्संसाराचारवेदिनाम् ॥९१॥
ते महेन्द्रोदयोद्यानं गत्वा संवेगकं ततः । महाबलमुनेः पार्श्वे जगृहुर्निरगारताम् ॥९२॥

आर्या

सर्वारम्भविरहिता विहरन्ति नित्यं निरम्बरा विधियुक्तम् ।
शान्ता दान्ता मुक्ता निरपेक्षाः परमयोगिनो ध्यानरताः ॥९३॥

उपजातिः

सम्यक्तपोभिः प्रविधूय पापमध्यात्मयोगैः परिरुध्य पुण्यम् ।
ते क्षीणनिःशेषभवप्रपञ्चाः प्रापुः पदं जैनमनन्तसौख्यम् ॥९४॥

इनको आवश्यकता नहीं है ॥८२॥ जब कि बन्धुजनोंके साथ विरह अवश्यंभावी है तब इस अटपटे संसारमें क्या प्रीति करना है ? ॥८३॥ 'यह मेरा प्यारा है' ऐसी आस्था केवल व्यामोहके कारण उत्पन्न होती है क्योंकि यह जीव अकेला ही गमनागमनके दुःखको प्राप्त होता है ॥८४॥ मिथ्याशास्त्र ही जिसमें खोटे द्वीप हैं, मोहरूपी कीचड़से जो युक्त है, जो शोक संतापरूपी फेनसे सहित है, जन्मरूपी भँवरोंके समूहसे व्याप्त है, व्याधि तथा मृत्युरूपी तरङ्गोंसे युक्त है, मोहरूपी गहरे गर्तोंसे सहित है, क्रोधादि कषाय रूपी क्रूर मकर और नाकोंके समूहसे लहरा रहा है, मिथ्या तर्कशास्त्रसे उत्पन्न शब्दोंसे अत्यन्त भयंकर है, मिथ्यात्व रूपी वायुके द्वारा कम्पित है, दुर्गतिरूपी खारे पानीसे सहित है और अत्यन्त दुःसह तथा उत्कट वियोग रूपी बड़वानलसे युक्त है ऐसे भयंकर संसार-सागरमें हे तात ! हम लोग बहुत समयसे खेद-खिन्न हो रहे हैं ॥८५-८८॥ नाना योनियोंमें परिभ्रमण करनेके बाद हम बड़ी कठिनाईसे मनुष्य पर्यायको प्राप्त हुए हैं इसलिए अब वह काम करना चाहते हैं कि जिससे पुनः इस संसार-सागरमें न डूबें ॥८९॥

तदनन्तर परिजनके लोगोंसे घिरे हुए माता-पितासे पूछकर वे आठों वीर कुमार क्रम-क्रमसे घर रूपी कारागारसे बाहर निकले ॥९०॥ संसार-स्वरूपको जाननेवाले, घरसे निकलते हुए उन वीरोंकी उस प्रकारके विशाल साम्राज्यमें ठीक उस तरहकी अनादर बुद्धि हो रही थी जिस प्रकार कि जीर्ण-तृणमें होती है ॥९१॥ तदनन्तर उन्होंने महेन्द्रोदय नामा उद्यानमें जाकर संवेगपूर्वक महाबल मुनिके समीप निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण कर ली ॥९२॥ जो सब प्रकारके आरम्भसे रहित थे, दिगम्बर थे, क्षमा युक्त थे, दमन शील थे, सब झंझटोंसे मुक्त थे, निरपेक्ष थे और ध्यानमें तत्पर थे ऐसे वे परम योगी निरन्तर विहार करते रहते थे ॥९३॥ समीचीन तपके द्वारा पापको नष्ट कर, और अध्यात्मयोगके द्वारा पुण्यको रोककर जिन्होंने संसारका

---

१ निबन्धनः म० । २. सुचिरे म० ।

एतत् कुमाराष्टकमङ्गलं यः पठेद् विनीतः शृणुयाच्च भक्त्या ।
तस्य क्षयं याति समस्तपापं रविप्रभस्योदयते च चन्द्रः ॥६५॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रणीते कुमाराष्टकनिष्क्रमणाभिधानं नाम दशोत्तरशतं पर्व ॥११०॥

समस्त प्रपञ्च नष्ट कर दिया था ऐसे वे आठों मुनि अनन्त सुखसे युक्त निर्वाण पदको प्राप्त हुए ॥६४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य विनीत हो भक्ति पूर्वक इन आठ कुमारोंके मङ्गलमय चरितको पढ़ता अथवा सुनता है सूर्यके समान कान्तिको धारण करनेवाले उस मनुष्यका सब पाप नष्ट हो जाता है तथा उत्तम चन्द्रमाका उदय होता है ॥६५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा प्रणीत पद्मपुराणमें आठ कुमारोंकी दीक्षाका वर्णन करनेवाला एक सौ दसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥११०॥

एकादशोत्तरशतं पर्व

गणी वीरजिनेन्द्रस्य प्रथमः प्रथमः[1] सताम् । अवेदयन्मनोवार्तं प्रभामण्डलचेष्टितम् ॥१॥
[2]विद्याधरमहाकान्तकामिनीबाहुवल्लिजे । सौख्यपुष्पासवे सक्तः प्रभामण्डलषट्पदः ॥२॥
अचिन्तयदहं चीर्त्वा यद्युपैम्युपवाससाम् । सदैतद्वज्रनाभस्रक्खण्डं [3]पद्मत्वसंशयम् ॥३॥
एतासां मत्समासक्तचेतसां विरहे मम । वियोगो भविताऽवश्यं प्राणैः सुखमपालितैः ॥४॥
दुस्त्यजानि दुरापानि कामसौख्यान्यवारितम् । भुक्त्वा श्रेयस्करं पश्चात् करिष्यामि ततः परम् ॥५॥
भोगैरुपार्जितं पापमत्यन्तमपि पुष्कलम् । सुध्यानवह्निनाऽवश्यं भस्मयामि क्षणान्ततः ॥६॥
अत्र सेनां समावेश्य विमानक्रीडनं भजे । उद्दासयामि शत्रूणां नगराणि समन्ततः ॥७॥
मानश्रृङ्गोन्नतेर्भङ्गं करोमि रिपुखड्गिनाम् । स्थापयाम्युभयश्रेण्योर्वशे शासनकारिते ॥८॥
मेरोर्मरकतादीनां रत्नानां विमलेष्वलम् । शिलातलेषु रम्येषु क्रीडामि ललनान्वितः ॥९॥
एवमादीनि वस्तूनि ध्यायतस्तस्य [5]जानकेः । समतीयुर्मुहूर्तानि संवत्सरशतान्यलम् ॥१०॥
कृतमेतत्करोम्येतं करिष्यामीदमित्यसौ । चिन्तयन्नात्मनोऽवेदी चायुः संहारमागतम् ॥११॥
अन्यदा सप्तमस्कन्धं प्रासादस्याधितिष्ठतः । अपतद्वज्रनिर्भिन्नं तस्य कालं ततो गतः ॥१२॥
अशेषतो निजं वेत्ति जन्मान्तरविचेष्टितम् । दीर्घसूत्रस्तथाऽप्यात्मसमुद्धारे स नो स्थितः ॥१३॥

अथानन्तर वीर जिनेन्द्रके प्रथम गणधर सज्जनोत्तम श्री गौतमस्वामी मनमें आये हुए भामण्डलका चरित्र कहने लगे ॥१॥ विद्याधरोंकी अत्यन्त सुन्दर स्त्री रूपी लताओंसे उत्पन्न सुख रूपी फूलोंके आसवमें आसक्त भामण्डल रूपी भ्रमर इस प्रकार विचार करता रहता था कि यदि मैं दिगम्बर मुनियोंकी दीक्षा धारण करता हूँ तो यह स्त्रीरूपी कमलोंका समूह निःसन्देह कमलके समान आचरण करता है अर्थात् कमलके ही समान कोमल है ॥२-३॥ जिनका चित्त मुझमें लग रहा है ऐसी ये स्त्रियाँ मेरे विरहमें अपने प्राणोंका सुखसे पालन नहीं कर सकेंगी अतः उनका वियोग अवश्य हो जायगा ॥४॥ अतएव जिनका छोड़ना तथा पाना दोनों ही कठिन हैं ऐसे इन काम सम्बन्धी सुखोंको पहले अच्छी तरह भोग लूँ बादमें कल्याणकारी कार्य करूँ ॥५॥ यद्यपि भोगोंके द्वारा उपार्जित किया हुआ पाप अत्यन्त पुष्कल होगा तथापि उसे सुध्यान रूपी अग्निके द्वारा एक क्षणमें जला डालूँगा ॥६॥ यहाँ सेना ठहराकर विमानोंसे क्रीड़ा करूँ और सब ओर शत्रुओंके नगर उजाड़ कर दूँ ॥७॥ दोनों श्रेणियोंमें शत्रु रूपी गेंडा हाथियोंके मान रूपी शिखरकी जो उन्नति हो रही है उसका भंग करूँ तथा उन्हें आज्ञाके द्वारा किये हुए अपने वशमें स्थापित करूँ ॥८॥ और मेरु पर्वतके मरकत आदि मणियोंके निर्मल एवं मनोहर शिलातलोंपर स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करूँ ॥९॥ इत्यादि वस्तुओंका विचार करते हुए उस भामण्डलके सैकड़ों वर्ष एक मुहूर्तके समान व्यतीत हो गये ॥१०॥ 'यह कर चुका, यह करता हूँ और यह करूँगा' वह यही विचार करता रहता था, पर अपनी आयुका अन्तिम अवसर आ चुका है यह नहीं विचारता था ॥११॥

एक दिन वह महलके सातवें खण्डमें बैठा था कि उसके मस्तक पर वज्र गिरा जिससे वह मृत्युको प्राप्त हो गया ॥१२॥ यद्यपि वह अपने जन्मान्तरकी समस्त चेष्टाको जानता था

१. आद्यः । २ श्रेष्ठः । ३. विद्याधरी -म० । ४. प्रेमखण्डं म० । ५. पद्ममिवाचरति । ६. जनकापत्यस्य भामण्डलस्य ।

तृष्णाविषादहन्तॄणां क्षणमप्यस्ति नो शमः । मूर्धोपकण्ठदष्टाङ्घ्रिर्मृत्युः कालमुदीक्षते ॥१३॥
अस्य दग्धशरीरस्य कृते क्षणविनाशिनः । हताशः कुरुते किं न जीवो विषयदासकः ॥१५॥
ज्ञात्वा जीवितमानाढ्यं त्यक्त्वा सर्वपरिग्रहम् । स्वहिते वर्त्तते यो न स मश्यत्यकृतार्थकः ॥१६॥
सहस्रेणापि शास्त्राणां किं येनात्मा न शाम्यति । तृप्तमेकपदेनापि येनाऽऽत्मा शममश्नुते ॥१७॥
कर्तुं मिच्छति सद्धर्मं न [1]करोति [2]यथाप्ययम् । पिपं पियासुर्विच्छिन्नपक्ष[3]काक इव श्रमम् ॥१८॥
विमुक्तो व्यवसायेन लभते चेप्सितीहितम् । न लोके विरहो कश्चिन्नरेन्द्रविणोऽपि वा ॥१९॥
अतिथिं द्वारगतं साधुं गुरुवाक्यं प्रतिक्रियाम् । प्रतीक्ष्य सुकृतं चाशु नावसीदति मानवः ॥२०॥

आर्यागीतिः

नानाव्यापारशतैराकुलहृदयस्य दुःखितः प्रतिदिवसम् ।
रत्नमिव करतलस्थं अश्यत्यायुः प्रमादतः प्राणभृतः ॥२१॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाऽऽचार्योक्ते पद्मपुराणे भामण्डलपरलोकाभिगमनं नामैकादशोत्तरशतं पर्व ॥१११॥

तथापि इतना दीर्घसूत्री था कि आत्म-कल्याणमें स्थित नहीं हुआ ॥१३॥ तृष्णा और विषादको नष्ट करनेवाले मनुष्योंको क्षणभरके लिए भी शान्ति नहीं होती क्योंकि उनके मस्तकके समीप पैर रखनेवाला मृत्यु सदा अवसरकी प्रतीक्षा किया करता है ॥१४॥ क्षणभरमें नष्ट हो जानेवाले इस अधम शरीरके लिए, विषयोंका दास हुआ यह नीच प्राणी क्या क्या नहीं करता है ? ॥१५॥ जो मनुष्य-जीवनको भङ्गुर जान समस्त परिग्रहका त्यागकर आत्महितमें प्रवृत्ति नहीं करता है वह अकृतकृत्य दशामें ही नष्ट हो जाता है ॥१६॥ उन हजार शास्त्रोंसे भी क्या प्रयोजन है जिससे आत्मा शान्त नहीं होती और वह एक पद भी बहुत है जिससे आत्मा शान्ति को प्राप्त हो जाता है ॥१७॥ जिस प्रकार कटे पक्षका काक आकाशमें उड़ना तो चाहता पर वैसा श्रम नहीं करता उसी प्रकार यह जीव सद्धर्म करना तो चाहता है पर यह जैसा चाहिए वैसा श्रम नहीं करता ॥१८॥ यदि उद्योगसे रहित मनुष्य इच्छानुकूल पदार्थको पाने लगें तो फिर संसारमें कोई भी विरही अथवा दरिद्र नहीं होना चाहिए ॥१९॥ जो मनुष्य द्वारपर आये हुए अतिथि साधुको आहार आदि दान देता है तथा गुरुओंके वचन सुन तदनुकूल शीघ्र आचरण करता है वह कभी दुःखी नहीं होता ॥२०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि नाना प्रकारके सैकड़ों व्यापारोंसे जिसका हृदय आकुल हो रहा है तथा इसीके कारण जो प्रतिदिन दुःखका अनुभव करता रहता है ऐसे प्राणीकी आयु हथेलीपर रखे रत्नके समान नष्ट हो जाती है ॥२१॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य विरचित पद्मपुराणमें भामण्डलके परलोकगमनका वर्णन करनेवाला एक सौ ग्यारहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१११॥

---

१. कर्णोति म० (?) २. तमप्ययम् म० । ३. पक्षः काक इव म० ।

द्वादशोत्तरशतं पर्व

अथ याति शनैः कालः पद्मचक्राङ्करोज्झितः[1] । परस्परमहास्नेहबद्धयोस्तिविधः सुखम् ॥१॥
[2]परमैश्वर्यसंघोरू रामलक्ष्मणवर्धिनौ । यथा नन्दनदत्तौ तौ मोदेते नरकुञ्जरौ ॥२॥
शुष्यन्ति सरितो यस्मिन् काले दावाग्निसंकुले । तिष्ठन्त्यभिमुखा मानोः श्रमणाः प्रतिमायताः ॥३॥
तत्र तावति रम्येषु जलयन्त्रेषु [4]सद्मसु । उद्यानेषु च निःशेषप्रियसाधनशालिषु ॥४॥
[5]चन्दनाम्बुमहामोदशीतशीकरवर्षिभिः । चामरैरुपवीज्यन्तौ तालवृन्तैश्च सत्तमैः ॥५॥
स्वच्छस्फटिकपट्टस्थौ[6] चन्दनद्रवचर्चितौ । जलार्द्रनलिनीपुष्पदलमूलीषसंस्तरौ ॥६॥
एलालवङ्गकर्पूरचोद[7]संसर्गशीतलम् । विमलं सलिलं स्वादु सेवमानौ मनोहरम् ॥७॥
विचित्रसत्कथादत्तवनिताजनसेवितौ । शीतकालमिवाऽऽनीतं बलाद्धारयतः शुचौ ॥८॥
योगिनः समये यत्र तरुमूलव्यवस्थिताः । क्षपयन्त्यशुभं कर्म वारानिर्धूतमूर्तयः ॥९॥
विलसद्विद्युदुद्योते तत्र मेघान्धकारिते । वृहद्वर्षरवोद्रीर्णे कूलमुद्वहसिन्धुके ॥१०॥
मेरुशृङ्गसमाकारवर्त्मिनौ वरवाससौ । कुङ्कुमद्रवदिग्धाङ्गावगुरुप्रयुक्तामितागुरू ॥११॥
महाविलासिनीनेत्रभृङ्गौघकमलाकरौ । तिष्ठतः सुन्दरीक्रीडौ यक्षेन्द्राविव सौ सुखम् ॥१२॥

अथानन्तर पारस्परिक महास्नेहसे बँधे राम-लक्ष्मणका, उष्ण वर्षा और शीतके भेदसे तीन प्रकारका काल धीरे-धीरे व्यतीत हो रहा था ॥१॥ परम ऐश्वर्यके समूहरूपी कमलवनमें विद्यमान रहनेवाले वे दोनों पुरुषोत्तम चन्दनसे लिप्त हुएके समान सुशोभित हो रहे थे ॥२॥ जिस समय नदियाँ सूख जाती हैं, वन दावानलसे व्याप्त हो जाते हैं और प्रतिमायोगको धारण करनेवाले मुनि सूर्यके सम्मुख खड़े रहते हैं। उस समय राम-लक्ष्मण, जलके फव्वारोंसे युक्त सुन्दर महलोंमें तथा समस्त प्रिय उपकरणोंसे सुशोभित उद्यानोंमें क्रीड़ा करते थे ॥३-४॥ चन्दनमिश्रित जलके महासुगन्धित शीतलकणोंको बरसानेवाले चमरों तथा उत्तमोत्तम पङ्खोंसे वहाँ उन्हें हवा की जाती थी। वहाँ वे स्फटिकके स्वच्छ पटियोंपर बैठते थे, चन्दनके द्रवसे उनके शरीर चर्चित रहते थे, जलसे भीगे कमलपुष्पोंकी कलियोंके समूहसे बने बिस्तरोंपर शयन करते थे। इलायची लौंग कपूरके चूर्णके संसर्गसे शीतल निर्मल स्वादिष्ट और मनोहर जलका सेवन करते थे, और नानाप्रकारकी कथाओंमें दक्ष स्त्रियाँ उनकी सेवा करती थीं। इस प्रकार ऐसा जान पड़ता था मानो वे ग्रीष्म कालमें भी शीतकालको पकड़कर बलात् धारण कर रहे थे ॥५-८॥

जिनका शरीर जलकी धाराओंसे धुल गया है ऐसे मुनिराज जिस समय वृक्षोंके मूलमें बैठकर अपने अशुभ कर्मोंका क्षय करते हैं ॥९॥ जहाँ कहीं कौंधती हुई बिजलीके द्वारा प्रकाश फैल जाता है तो कहीं मेघोंके द्वारा अन्धकार फैला हुआ है, जहाँ जलके प्रवाह विशाल घर्-घर् शब्द करते हुए बहते हैं और जहाँ किनारोंको ढहाकर बहा ले जानेवाली नदियाँ बहती हैं, उस वर्षाकालमें वे मेरुके शिखरके समान उन्नत महलोंमें विद्यमान रहते थे, उत्तम वस्त्र धारण करते थे, कुङ्कुम-केशरके द्रवसे उनके शरीर लिप्त रहते थे, अपरिमित अगुरुचन्दनका वे उपयोग करते थे। महाविलासिनी स्त्रियोंके नेत्र रूप भ्रमर समूहके लिए वे कमलवनके समान सुखकारी थे और सुन्दरी स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करते हुए यक्षेन्द्रके समान सुखसे विद्यमान रहते थे ॥१०-१२॥

---

१. शीतोष्णवर्षात्मकः । २. परमैश्वर्यतासानौ राजीव -म । ३. नन्दनदत्तौ म० । ४. पद्मसु म० । ५. चन्दनार्द्र -म० । ६. पद्मस्थौ म० । ७. क्षोदः संसर्ग म० । ८. -मुद्गत -म० ।

प्रालेयपटसंवीता धर्मध्यानस्थचेतसः । तिष्ठन्ति योगिनो यत्र निशि स्थण्डिलपृष्ठगाः ॥१३॥
तस्मिन् काले महाचण्डशीतवातहतद्रुमे । पद्माकरसमुत्साहे वापिमोष्णकरोद्गमे ॥१४॥
प्रासादावनिकुञ्जिस्थौ तिष्ठतस्तौ यथेप्सितम् । श्रीमथवनिवचोऽकीडालम्बनवक्षसौ ॥१५॥
वीणामृदङ्गवंशादिसम्भूतं मधुरस्वरम् । कुर्वाणौ मनसि स्वेच्छं परं श्रोत्ररसायनम् ॥१६॥
वाणीनिर्जितवीणाभिरनुकूलाभिरादराद् । सेव्यमानौ वरस्त्रीभिरमरीभिरिवामरौ ॥१७॥
नक्तं दिनं परिस्फीतभोगसम्पत्समन्वितौ । सुखं तौ नयतः कालं सर्वपुण्यानुभावतः ॥१८॥
एवं तौ तावदासेते पुरुषौ जगदुत्कटौ । अथ श्रीशैलवीरस्य वृत्तान्तं शृणु पार्थिव ॥१९॥
सेवते परमैश्वर्यं नगरे कर्णकुण्डले । पूर्वपुण्यानुभावेन स्वर्गीवामिलनन्दनः ॥२०॥
विद्याधरमहत्त्वेन[1] सहितः परमक्रियः । स्त्रीसहस्रपरीवारः स्वेच्छयाऽटति मेदिनीम् ॥२१॥
वरं विमानमारूढः[2] परमर्द्धिसमन्वितः । सत्काननादिषु श्रीमांस्तदा क्रीडति देववत् ॥२२॥
अन्यदा जगदुन्मादहेतौ कुसुमहासिनि । वसन्तसमये[3] प्राप्ते प्रियामोदनभस्वति ॥२३॥
जिनेन्द्रभक्तिसंवीतमानसः पवनात्मजः । हृष्टः सन्मस्थितो मेरुमन्तःपुरसमन्वितः ॥२४॥
नानाकुसुमरम्याणि सेवितानि शुभाशिभिः । कुलपर्वतसानूनि प्रस्थितः सोऽवतिष्ठते ॥२५॥
मत्तभृङ्गान्यपुष्टौघनादवन्ति[4] मनोहरैः । सरोभिर्दर्शनीयानि स वनानि च भूरिशः ॥२६॥
मिथुनैरुपभोग्यानि पत्रपुष्पफलैस्तथा । काननानि विचित्राणि रत्नोद्योतितपर्वतान्[5] ॥२७॥

जिस कालमें रात्रिके समय धर्मध्यानमें लीन, एवं वनके खुले चबूतरोंपर बैठे मुनिराज बर्फरूपी वस्त्रसे आवृत हो स्थित रहते हैं, जहाँ अत्यन्त शीत वायुसे वृक्ष नष्ट हो जाते हैं, कमलोंके वन सूख जाते हैं और जहाँ लोग सूर्योदयको अत्यन्त पसन्द करते हैं ऐसे शीतकालमें वे महलोंके गर्भगृहमें इच्छानुसार रहते थे, उनके वक्षःस्थल तरुण स्त्रियोंके स्तनोंकी क्रीड़ाके आधार थे, वीणा, मृदङ्ग, बाँसुरी आदिसे उत्पन्न, कानोंके लिए उत्तम रसायनस्वरूप मधुरस्वरको वे अपनी इच्छानुसार करते थे, जिन्होंने अपनी वाणीसे वीणाको जीत लिया था ऐसी अनुकूल स्त्रियाँ बड़े आदरसे उनकी सेवा करती थीं और इसीलिए वे देवियोंके द्वारा सेवित देवोंके समान जान पड़ते थे। इस प्रकार वे पुण्यकर्मके प्रभावसे रातदिन अत्यधिक भोगसम्पदासे युक्त रहते हुए सुखसे समय व्यतीत करते थे ॥१३-१८॥

गौतमस्वामी कहते हैं कि इस तरह वे दोनों लोकोत्तम पुरुष सुखसे विद्यमान थे। हे राजन्! अब वीर हनूमान्का वृत्तान्त सुन ॥१९॥ पूर्वपुण्यके प्रभावसे हनूमान् कर्णकुण्डल नगरमें देवके समान परम ऐश्वर्यका उपभोग कर रहा था ॥२०॥ विद्याधरोंके माहात्म्यसे सहित तथा उत्तमोत्तम क्रियाओंसे युक्त हनूमान् हजारों स्त्रियोंका परिवार लिये इच्छानुसार पृथ्वीमें भ्रमण करता था ॥२१॥ उत्तम विमानपर आरूढ तथा उत्तम विभूतिसे युक्त श्रीमान् हनूमान् उत्तम वन आदि प्रदेशोंमें देवके समान क्रीड़ा करता था ॥२२॥

अथानन्तर किसी समय जगत्के उन्मादका कारण, फूलोंसे सुशोभित एवं प्रिय सुगन्धित वायुके संचारसे युक्त वसन्तऋतु आई ॥२३॥ सो उस समय जिनेन्द्र भक्तिसे जिसका चित्त व्याप्त था ऐसा हर्षसे भरा हनूमान् अन्तःपुरके साथ मेरुपर्वतकी ओर चला ॥२४॥ वह बीचमें नाना प्रकारके फूलोंसे मनोहर और देवोंके द्वारा सेवित कुलाचलोंके शिखरोंपर ठहरता जाता था ॥२५॥ जिनमें मदोन्मत्त भ्रमर और कोयलोंके समूह शब्द कर रहे थे, तथा जो मनोहर सरोवरोंसे दर्शनीय थे ऐसे अनेकों वन, पत्र, पुष्प और फलोंके कारण जो स्त्री-पुरुषोंके युगलसे

---

१. सहस्रेण म० । २. -मारूढः म० । ३. प्रेम-म० । ४. मत्तभृङ्गान्यपुष्टौघा नादयन्ति म० । ५. पर्वताः म०, ज० ।

सरितो विशदद्वीपा नितान्तविमलाम्भसः । वापीः प्रवरसोपानास्तत्तीरोत्तुङ्गपादपाः ॥२८॥
नानाजलजकिञ्जल्ककिर्मीरसलिलानि च । सरांसि मधुरस्वानैः सेवितानि पतत्रिभिः ॥२९॥
महातरङ्गसङ्गोत्थफेनमालाट्टहासिनीः । महाप्राहोग्रकीर्णा बहुचित्रा महानदीः ॥३०॥
विलसद्वनमालाभिर्युक्तान्युपवनैर्वरैः । मनोहरणदक्षाणि चित्राण्यायतनानि च ॥३१॥
[1]जिनेन्द्रवरकूटानि नानारत्नमयानि च । कल्मषक्षोददक्षाणि युक्तमानान्यनेकशः ॥३२॥
एवमादीनि वस्तूनि वीक्षमाणः शनैः शनैः । सेव्यमानश्च कान्ताभिर्ययौ परमोदयः ॥३३॥
नभःशिरःसमारूढो विमानशिखरस्थितः । दर्शयन् याति सद्वस्तु [2]कान्तां हृष्टतनूरुहः ॥३४॥
पश्य पश्य प्रिये धामान्यतिरम्याणि मन्दरे । रूपमाणि जिनेन्द्राणाममूनि शिखरान्तिके ॥३५॥
नानारत्नशरीराणि भास्करप्रतिमानि च । शिखराणि मनोज्ञानि तुङ्गानि विपुलानि च ॥३६॥
गुहा मनोहरद्वारा गम्भीरा रत्नदीपिताः । परस्परसमाकीर्णा दीधितीरतिदूरगाः ॥३७॥
इदं [3]भद्रशालाख्यं वनं क्षितितले स्थितम् । मेखलायां स्थितं [4]ख्यातं नन्दनं भुवि ॥३८॥
इदं वक्षःप्रदेशस्य कल्पद्रुमलतात्मकम् । नानारत्नशिलाशोभि वनं सौमनसं स्थितम् ॥३९॥
[5]जिनागारसहस्राढ्यं त्रिदशक्रीडनोचितम् । पाण्डुकाख्यं वनं भाति शिखरे सुमनोहरम् ॥४०॥
अच्छिन्नोत्सवसन्तानमहमिन्द्रजगत्समम् । यक्षकिन्नरगन्धर्वसङ्गीतपरिनादितम् ॥४१॥
सुरकन्यासमाकीर्णमप्सरोगणसङ्कुलम् । विचित्रगुणसम्पूर्णं दिव्यपुष्पसमन्वितम् ॥४२॥
सुमेरोः शिखरे रम्ये स्वभावसमवस्थिते । इदमालोक्यते जैनं भवनं परमाद्भुतम् ॥४३॥

सेवनीय थे ऐसे विचित्र वन, रत्नोंसे जगमगाते हुए पर्वत, जिनमें निर्मल टापू थे तथा अत्यन्त स्वच्छ पानी भरा था ऐसी नदियाँ, जिनमें उत्तम सीढ़ियाँ लगी थीं तथा जिनके तटोंपर ऊँचे-ऊँचे वृक्ष खड़े थे ऐसी वापिकाएँ, नानाप्रकारके कमलोंकी केशरसे जिनका पानी चित्र-विचित्र हो रहा था तथा जो मधुर शब्द करनेवाले पक्षियोंसे सेवित थे ऐसे सरोवर, जो बड़ी-बड़ी तरङ्गोंके साथ उठी हुई फेनपङ्क्तिसे मानो अट्टहास कर रही थीं तथा जो बड़े-बड़े जल-जन्तुओंसे व्याप्त थीं ऐसी अनेक आश्चर्योंसे भरी महानदियाँ, सुशोभित वन-पंक्तियों एवं उत्तमोत्तम उपवनोंसे युक्त तथा मनको हरण करनेमें निपुण नाना प्रकारके भवन, और नाना प्रकारके रत्नोंसे निर्मित, पाप नष्ट करनेमें समर्थ तथा योग्य प्रमाणसे युक्त अनेकों जिनकूट इत्यादि वस्तुओंको देखता तथा स्त्रियोंके द्वारा सेवित होता हुआ परम अभ्युदयका धारक हनूमान् धीरे-धीरे चला जा रहा था ॥२६-३३॥ जो आकाशमें बहुत ऊँचे चढ़कर विमानके शिखरपर स्थित था तथा जिसके रोमाञ्च निकल रहे थे ऐसा यह हनूमान् स्त्रीके लिए तत् तत् वस्तुएँ दिखाता हुआ जा रहा था ॥३४॥ यह कहता जाता था कि हे प्रिये ! देखो देखो, सुमेरु पर्वतपर शिखरके समीप वे कितने सुन्दर स्थान हैं वहीं जिनेन्द्र भगवान्‌के अभिषेक हुआ करते हैं ॥३५॥ ये नाना रत्नोंसे निर्मित, सूर्य तुल्य, मनोहर, ऊँची और बड़े-बड़े शिखर देखो ॥३६॥ इन मनोहर द्वारोंसे युक्त तथा रत्नों से आलोकित गम्भीर गुफाओं और परस्पर एक दूसरेसे मिली, दूर-दूर तक फैलनेवाली किरणों को देखो ॥३७॥ यह पृथिवीतलपर मनोहर भद्रशाल वन है, यह मेखलापर स्थित जगत्प्रसिद्ध नन्दन वन है, यह उपरितन प्रदेशके वक्षःस्थलस्वरूप, कल्पवृक्ष और कल्पवेलोंसे तन्मय एवं नाना रत्नमयी शिलाओंसे सुशोभित सौमनस वन है, और यह उसके शिखरपर हजारों जिन-मन्दिरोंसे युक्त देवोंकी क्रीड़ाके योग्य पाण्डुक नामका अत्यन्त मनोहर वन है ॥३८-४०॥ यह सुमेरुके स्वाभाविक सुरम्य शिखरपर परम आश्चर्योंसे भरा हुआ वह जिनमन्दिर दिखाई देता है कि जिसमें उत्सवोंकी परम्परा कभी टूटती ही नहीं है, जो अहमिन्द्र लोकके समान है, यक्ष

१. जिनेन्द्रनर-म० । २. समुद्धृततनूरुहः म० । ३. भद्रशालाख्यं म० । ४. ख्यातं म० । ५. जिनागारं सहस्राढ्यं ।

उवलज्ज्वलनसन्ध्याभ्रमेघवृन्दसमप्रभम् । जाम्बूनदमयं भानुकूटप्रतिमसुन्नतम् ॥४४॥
अशेषोत्तमरत्नौघभूषितं परमाकृति[1] । मुक्तादामसहस्राढ्यं बुद्बुदादर्शशोभितम् ॥४५॥
किङ्किणीपट्टलम्बूषप्रकीर्णकविराजितम् । प्राकारतोरणोत्तुङ्गगोपुरैः परमैर्युतम् ॥४६॥
नानावर्णध्वलत्केतुकाञ्चनस्तम्भभासुरम् । गम्भीरं चारुनिर्व्यूहमशक्यशेषवर्णनम् ॥४७॥
पञ्चाशद्योजनायामं षट्त्रिंशन्मानमुत्तमम् । इदं जिनगृहं कान्ते सुमेरोर्मुकुटायते ॥४८॥
इति शंसन्महादेव्यै सर्मीपत्यमुपागतः । अवतीर्य विमानाग्राद्धृष्टः प्रदक्षिणाम् ॥४९॥
तत्र सर्वातिशेषस्तु महैश्वर्यसमन्वितम् । नक्षत्रग्रहताराणां शशाङ्कमिव मध्यगम् ॥५०॥
केसर्यासनमूर्धस्थं स्फुरत्स्फारस्ततेजसम् । शुभ्राभ्रशिखरस्थाग्रे शरदीव दिवाकरम् ॥५१॥
प्रतिबिम्बं जिनेन्द्रस्य सर्वलक्षणसङ्गतम् । सान्तःपुरो नमश्चक्रे रचिताञ्जलिमस्तकः ॥५२॥
जिनेन्द्रदर्शनोद्भूतमहासम्मदसम्पदाम् । विद्याधरवरस्त्रीणां हृष्टिरासीद्वलं परा ॥५३॥
उत्पन्नघनरोमाञ्चा विपुलाऽऽयतलोचनाः । भक्त्या परमया युक्ताः सर्वोपकरणान्विताः ॥५४॥
महाकुलसमुत्पन्नाः स्त्रियः परमचेष्टिताः । चक्रुः पूजां जिनेन्द्राणां त्रिदशप्रमदा इव ॥५५॥
जाम्बूनदमयैः पद्मैः पद्मरागमयैस्तथा । चन्द्रकान्तमयैश्चापि स्वभावकुसुमैरिति ॥५६॥
सौरभाक्रान्तदिक्चक्रैर्गन्धैश्च परमोज्ज्वलैः । पवित्रद्रव्यसम्भूतैर्धूपैराकुलकोटिभिः ॥५७॥

किन्नर और गन्धर्वोंके संगीतसे शब्दायमान है, देवकन्याओंसे व्याप्त है, अप्सराओंके समूहसे आकीर्ण है, नाना प्रकारके गणोंसे परिपूर्ण है और दिव्य पुष्पोंसे सहित है ॥४१-४३॥ जो जलती हुई अग्निके समान लाल लाल सन्ध्यासे युक्त मेघ समूहके समान प्रभासे युक्त है, स्वर्णमय है, सूर्यकूटके समान है, उन्नत है, सब प्रकारके उत्तम रत्नोंके समूहसे भूषित है, उत्तम आकृतिवाला है, हजारों मोतियोंकी मालाओंसे सहित है, छोटे-छोटे गोले और दर्पणोंसे सुशोभित है, छोटी-छोटी घंटियों, रेशमी वस्त्र, फन्नूस और चमरोंसे अलंकृत है, उत्तमोत्तम प्राकार, तोरण, और ऊँचे गोपुरोंसे युक्त है, जिस पर नाना रंगकी पताकाएँ फहरा रही हैं, जो सुवर्णमय खम्भोंसे सुशोभित है, गम्भीर है, सुन्दर छज्जोंसे युक्त है, जिसका सम्पूर्ण वर्णन करना अशक्य है, जो पचास योजन लम्बा है और छत्तीस योजन चौड़ा है। हे कान्ते! ऐसा यह जिन-मन्दिर सुमेरु पर्वतके मुकुटके समान जान पड़ता है ॥४४-४८॥

इस प्रकार महादेवीके लिए मन्दिरकी प्रशंसा करता हुआ हनूमान् जब मन्दिरके समीप पहुँचा तब विमानके अग्रभागसे उतरकर हर्षित होते हुए उसने सर्वप्रथम प्रदक्षिणा दी ॥४९॥ तदनन्तर अन्य सबको छोड़ उसने अन्तःपुरके साथ हाथ जोड़ मस्तकसे लगा जिनेन्द्र भगवान्‌की उस प्रतिमाको नमस्कार किया कि जो महान् ऐश्वर्यसे सहित थी, नक्षत्र ग्रह और ताराओंके बीचमें स्थित चन्द्रमाके समान सुशोभित थी, सिंहासनके अग्रभागपर स्थित थी, जिसका अपना विशाल तेज देदीप्यमान था, जो सफेद मेघके शिखरके अग्रभागपर स्थित शरत्कालीन सूर्यके समान थी, तथा सब लक्षणोंसे सहित थी ॥५०-५२॥ जिनेन्द्र-दर्शनसे जिन्हें महाहर्ष रूप सम्पत्तिकी उद्भूति हुई थी ऐसी विद्याधरराजकी स्त्रियोंको दर्शन कर बड़ा संतोष उत्पन्न हुआ ॥५३॥ तदनन्तर जिनके सघन रोमाञ्च निकल आये थे, जिनके लम्बे नेत्र हर्षातिरेकसे और भी अधिक लम्बे दिखने लगे थे, जो उत्कृष्ट भक्तिसे युक्त थीं, सब प्रकारके उपकरणोंसे सहित थीं, महाकुलमें उत्पन्न थीं, तथा परमचेष्टाको धारण करनेवाली थीं ऐसी उन विद्याधरियोंने देवाङ्गनाओंके समान जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा की ॥५४-५५॥ सुवर्णमय, पद्मराग मणिमय तथा चन्द्रकान्तमणिमय कमल, तथा अन्य स्वाभाविक पुष्प, सुगन्धिसे दिङ्मण्डलको व्याप्त करनेवाली

---

१. परमाकृतिम् म० । २. उच्चधूमशिखैः श्री० टि० ।

भक्तिकल्पितसान्निध्यै रत्नदीपैर्महाशिखैः । चित्रवस्त्वुपहारैश्च[1] जिनमानर्च मारुतिः ॥५८॥
ततश्चन्दनदिग्धाङ्गः कुङ्कुमस्थासकाञ्चितः । [2]सूत्रपत्रोर्णसंवीताशेषो विगतकल्मषः ॥५९॥
वानराङ्कस्फुरज्ज्योतिश्चक्रमौलिर्महाप्रभः । प्रमोदपरमस्फीतनेत्रांशुनिचितानन: ॥६०॥
ध्यात्वा जिनेश्वरं स्तुत्वा स्तोत्रैरघविनाशनैः । सुरासुरगुरोर्बिम्बं जिनस्य परमं मुहुः ॥६१॥
ततः सविभ्रमस्थाभिरप्सरोभिरभीक्षितः । विधाय [3]वल्लकीमङ्के गेयामृतमुदाहरत् ॥६२॥
जिनचन्द्रार्चनन्यस्तविकासिनयना जनाः । नियमावहितात्मानः शिवं निदधते करे ॥६३॥
न तेषां दुर्लभं किञ्चित् कल्याणं शुद्धचेतसाम् । ये जिनेन्द्रार्चनासक्ता जना मङ्गलदर्शनाः ॥६४॥
श्रावकान्वयसम्भूतिर्भक्तिर्जिनवरे दृढा । समाधिनाऽवसानं च पर्याप्तं जन्मनः फलम् ॥६५॥
उपवीण्येति सुचिरं भूयः स्तुत्वा समर्च्य च । विधाय वन्दनां भक्तिमादधानो नवां नवाम् ॥६६॥
अप्रयच्छन् जिनेन्द्राणां पृष्ठं स्पष्टसुचेतसाम् । अनिच्छन्निव विश्रब्धो निर्ययावर्हदालयात् ॥६७॥
ततो विमानमास्थाय स्त्रीसहस्रसमन्वितः । मेरोः प्रदक्षिणं चक्रे ज्योतिर्देव इवोत्तमः ॥६८॥
शैलराज इव प्रीत्या श्रीशैलः सुन्दरक्रियः । करोति स्म तदा मेरोरापृच्छामिव पक्षिमाम् ॥६९॥
प्रकीर्य वरपुष्पाणि सर्वेषु जिनवेश्मसु । जगाम मन्थरं व्योम्नि भरतक्षेत्रसम्मुखः ॥७०॥
ततः परमरागाक्ता सन्ध्याऽऽश्लिष्य दिवाकरम् । अस्तशिलिन्मुदावासं भेजे खेदनिनीषया ॥७१॥

परम उज्ज्वल गन्ध जिसकी धूमशिखा बहुत ऊँची उठ रही थी ऐसा पवित्र द्रव्यसे उत्पन्न धूप, भक्तिसे समीपमें लाकर रक्खे हुए बड़ी-बड़ी शिखाओंवाले दीपक, और नाना प्रकारके नैवेद्यसे हनूमान्ने जिनेन्द्रदेवकी पूजा की ॥५६-५८॥ तदनन्तर जिसका शरीर चन्दनसे व्याप्त था, जो केशरके तिलकोंसे युक्त था, जिसका शरीर वस्त्रसे आच्छादित था, जिसके पाप छूट गये थे, जिसका मुकुट वानर चिह्नसे चिह्नित एवं स्फुरायमान किरणोंके समूहसे युक्त था और हर्षके कारण अत्यधिक विस्तृत नेत्रोंकी किरणोंसे जिसका मुख व्याप्त था ऐसे हनूमान्ने जिनेन्द्र भगवान्का ध्यान कर, तथा पापको नष्ट करनेवाले स्तोत्रोंसे सुरासुरोंके गुरु श्री जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाकी बार-बार उत्तम स्तुति की ॥५९-६१॥ तदनन्तर विलास-विभ्रमके साथ बैठी हुई अप्सराएँ जिसे देख रही थी ऐसे हनूमान्ने वीणा गोदमें रख संगीत रूपी अमृत प्रकट किया ॥६२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जिन्होंने अपने नेत्र जिनेन्द्र भगवान्की पूजामें लगा रक्खे हैं तथा जिनकी आत्मा नियम पालनमें सावधान है ऐसे मनुष्य कल्याणको सदा अपने हाथमें रखते हैं ॥६३॥ जो जिनेन्द्र भगवान्की पूजामें लीन हैं तथा उनके मङ्गलमय दर्शन करते हैं ऐसे निर्मल चित्तके धारक मनुष्योंके लिए कोई भी कल्याण दुर्लभ नहीं है ॥६४॥ श्रावकके कुलमें जन्म होना, जिनेन्द्र भगवान्में सुदृढ़ भक्ति होना, और समाधिपूर्वक मरण होना, यही मनुष्य जन्मका पूर्ण फल है ॥६५॥ इस तरह चिरकाल तक वीणा बजाकर, बार-बार स्तुति और पूजा कर, वन्दना कर तथा नयी-नयी भक्तिकर आत्मज्ञ जिनेन्द्र भगवान्के लिए पीठ नहीं देता हुआ हनूमान् नहीं चाहते हुए की तरह विश्रब्ध हो जिन-मन्दिरसे बाहर निकला ॥६६-६७॥ तदनन्तर हजारों स्त्रियोंके साथ विमानपर चढ़कर उसने उत्तम ज्योतिषीदेवके समान मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा दी ॥६८॥ उस समय सुन्दर क्रियाओंको धारण करनेवाला हनूमान् एक दूसरे गिरिराजके समान प्रेमवश, मानो सुमेरुसे जानेकी अन्तिम आज्ञा ही ले रहा हो ॥६९॥ तदनन्तर सब जिन-मन्दिरोंपर उत्तम फूल बरसाकर भरतक्षेत्रकी ओर धीरे-धीरे आकाशमें चला ॥७०॥

अथानन्तर परमराग (अत्यधिक लालिमा पक्षमें उत्कट प्रेम) से युक्त सन्ध्या सूर्यका आलिङ्गनकर खेद दूर करनेकी इच्छासे ही मानो अस्ताचलके ऊपर निवासको प्राप्त हुई ॥७१॥

---

१. चित्रवस्त्वुपहारेण-म० । २. सूत्रपत्रार्ण ख० । पटोलको वस्त्र वा श्री० टि० । ३. वीणाम् ।

कृष्णपक्षे तदा रात्रिस्तारावन्धुभिरावृता । रहिता चन्द्रमाथेन नितान्तं न विराजते ॥७२॥
अवतीर्य ततस्तेन सुरदुन्दुभिनामनि । शैलपादे परं रम्ये सैन्यमाधासितं शनैः ॥७३॥
तत्र पद्मोत्पलामोदवाहिमन्थरमारुते[1] । सुखं जिनकथाऽऽसक्ता यथास्वं सैनिकाः स्थिताः ॥७४॥
अथोपरि विमानस्य विषण्णः शिखरान्तिके । प्राग्भारचन्द्रशालायाः कैलासाधित्यकोपमे ॥७५॥
ज्योतिष्प्रभात्समुत्सृष्टारपतत्प्रस्फुरितप्रभम् । ज्योतिर्बिम्बं महत्सूनुरालोकत समोऽभवत् ॥७६॥
अचिन्तयच्च हा कष्टं संसारे नास्ति तत्पदम् । यत्र न क्रीडति स्वैरं मृत्युः सुरगणेष्वपि ॥७७॥
तडिदुल्कातरङ्गाभिभङ्गुरं जन्म सर्वतः । देवानामपि यत्र स्यात् प्राणिनां तत्र का कथा ॥७८॥
अनन्तशो न भुक्तं यत्संसारे चेतनावता । न तदास्ति सुखं नाम दुःखं वा भुवनत्रये ॥७९॥
अहो मोहस्य माहात्म्यं परमेतद्बलान्वितम् । एतावन्तं यतः कालं दुःखपर्यटितं भवेत् ॥८०॥
उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यौ भ्रान्त्वा कृच्छ्रात्सहस्रशः । अवाप्यते मनुष्यत्वं कष्टं नष्टमनाप्तवत् ॥८१॥
विनश्वरसुखासक्ताः सौहित्यपरिवर्जिताः । परिणामं प्रपद्यन्ते प्राणिनस्तापसङ्कटम् ॥८२॥
चलान्युत्पथवृत्तानि दुःखदानि परााणि च । इन्द्रियाणि न शाम्यन्ति विना जिनपथाश्रयात् ॥८३॥
[2]आनायेन यथा दीना बध्यन्ते मृगपक्षिणः । तथा विषयजालेन बध्यन्ते मोहिनो जनाः ॥८४॥
आशीविषसमानैर्यो रमते विषयैः समम् । परिणामे स मूढात्मा दह्यते दुःखवह्निना ॥८५॥
को ह्येकदिवसं राज्यं वर्षमन्विष्य यातनाम् । प्रार्थयेत विमूढात्मा तद्वद्विषयसौख्यभाक् ॥८६॥

वह समय कृष्ण पक्षका था, अतः तारारूपी बन्धुओंसे आवृत और चन्द्रमारूपी पतिसे रहित रात्रि अत्यधिक सुशोभित नहीं हो रही थी इसलिए उसने आकाशसे उतर सुरदुन्दुभि नामक परम मनोहर प्रत्यन्त पर्वतपर धीरेसे अपनी सेना ठहरा दी ॥७२-७३॥ जहाँ कमलों और नील कमलोंकी सुगन्धिको धारण करनेवाली वायु धीरे-धीरे बह रही थी ऐसे उस प्रत्यन्त पर्वतपर जिनेन्द्रभगवान्की कथामें लीन सैनिक यथायोग्य सुखसे ठहर गये ॥७४॥

अथानन्तर हनूमान् कैलास पर्वतके ऊपरी मैदानके समान विमानकी चन्द्रशाला सम्बन्धी शिखरके समीप सुखसे बैठा था कि उसने बहुत ऊँचे आकाशसे गिरते हुए तथा क्षण एकमें अन्धकार रूप हो जाने वाले देदीप्यमान कान्तिके धारक ज्योतिर्बिम्बको देखा ॥७५-७६॥ देखते ही वह विचार करने लगा कि हाय हाय बड़े दुःखकी बात है कि इस संसारमें वह स्थान नहीं है जहाँ देवसमूहके बीच भी मृत्यु इच्छानुसार क्रीड़ा नहीं करती हो ॥७७॥ जहाँ देवोंका भी जन्म सब ओरसे बिजली, उल्का और तरङ्गके समान अत्यन्त भङ्गुर है वहाँ अन्य प्राणियोंकी तो कथा ही क्या है ? ॥७८॥ इस प्राणीने संसारमें अनन्तबार जिस सुख-दुःखका अनुभव नहीं किया है वह तीन लोकमें भी नहीं है ॥७९॥ अहो ! यह मोहकी बड़ी प्रबल महिमा है कि यह जीव इतने समय तक दुःखसे भटकता रहा है ॥८०॥ हजारों उत्सर्पिणियों और अपसर्पिणियोंमें कष्ट सहित भ्रमण करनेके बाद मनुष्य पर्याय प्राप्त होती है सो खेद है कि वह उस प्रकार नष्ट हो गई कि जिस प्रकार मानो प्राप्त ही न हुई हो ॥८१॥ विनाशी सुखोंमें आसक्त प्राणी कभी तृप्ति को प्राप्त नहीं होते और उसी अतृप्त दशामें संतापसे परिपूर्ण अन्तिम अवस्थाको प्राप्त हो जाते हैं ॥८२॥ चञ्चल, कुमार्गमें प्रवृत्ति करने वाली और अत्यन्त दुःखदायी इन्द्रियाँ जिन-मार्गका आश्रय लिए बिना शान्त नहीं होतीं ॥८३॥ जिस प्रकार दीन मृग और पक्षी जालसे बद्ध हो जाते हैं उसी प्रकार ये मोही प्राणी विषय-जालसे बद्ध होते हैं ॥८४॥ जो मनुष्य सर्पके समान विषयोंके साथ क्रीड़ा करता है वह मूर्ख फलके समय दुःख रूपी अग्निसे जलता है ॥८५॥ जैसे कोई मनुष्य वर्षभर कष्ट भोगकर एक दिनके राज्यकी अभिलाषा करे वैसे ही विषय-सुखका उपभोग करने-

१. मारुताः म० । २. हनुमान् । ३. अनायेन म०, ज० ।

कदाचिद् [1]बुध्यमानोऽपि मोहतस्करवञ्चितः । न करोति जनः स्वार्थं किमतः कष्टमुत्तमम् ॥८७॥
भुक्त्वा त्रिविष्टपे धर्मं मनुष्यभवसञ्चितम् । पश्चान्मुषितवद्दीनो दुःखी भवति चेतनः ॥८८॥
भुक्त्वापि [2]त्रैदशान् भोगान् सुकृते क्षयमागते । शेषकर्मसहायः सन् चेतनः क्वापि गच्छति [3] ॥८९॥
[4]एतदेव प्रतीच्येण त्रिजगत्पतिनोदितम् । यथा जन्तोर्निजं कर्म बान्धवः शत्रुरेव वा ॥९०॥
तदलं निन्दितैरेभिर्भोगैः परमदारुणैः । विप्रयोगः सहाभीभिरवश्यं येन जायते ॥९१॥
प्रियं जनमिमं त्यक्त्वा करोमि न तपो यदि । सदा सुभूमचक्रीव मरिष्याम्यवितृप्तकः ॥९२॥
श्रीमत्यो हरिणीनेत्रा योषिद्गुणसमन्विताः । अत्यन्तदुस्त्यजा मुग्धा मदाहितमनोरथाः ॥९३॥
कथमेतास्त्यजामीति सञ्चिन्त्य विमनाः क्षणम् । अध्यायदुपलब्धं हृदयस्य प्रबुद्धधीः ॥९४॥

अज्ञातच्छन्दः (?)

दीर्घं कालं रत्वा त्रिदे गुणयुवतीभिः [5]समविभूतिभिः ।
मर्त्यक्षेत्रेऽप्यसमं भूयः [6]प्रमदवरललितवनिताजनैः [7]परिकलितः ॥९५॥

अज्ञातच्छन्दः (?)

को वा यातस्तृप्तिं जन्तुर्विविधविषयसुखरतिभिर्नदीभिरिवोदधिः ।
नानाजन्मभ्रान्त श्रान्त प्रश्न हृदय शममपि किमाकुलितं भवेत् ॥९६॥

बाला यह मूर्ख प्राणी, चिरकाल तक कष्ट भोगकर थोड़े समयके लिए सुखकी आकांक्षा करता है ॥८६॥ यद्यपि यह प्राणी जानता हुआ भी मोहरूपी चोरके द्वारा ठगाया जाता है तथापि कभी आत्मकल्याण नहीं करता इससे अधिक कष्ट और क्या होगा ? ॥८७॥ यह प्राणी मनुष्यभवमें संचित धर्मका स्वर्गमें उपभोगकर पश्चात् लुटे हुए मनुष्यके समान दीन और दुःखी हो जाता है ॥८८॥ यह जीव देवों सम्बन्धी भोग भोगकर भी पुण्यके क्षीण होनेपर अवशिष्ट कर्मोंकी सहायतासे जहाँ कहीं चला जाता है ॥८९॥ पूज्यवर त्रिलोकीनाथने यही कहा है कि इस प्राणीका बन्धु अथवा शत्रु अपना कर्म ही है ॥९०॥ इसलिए जिनके साथ अवश्य ही वियोग होता है ऐसे उन निन्दित तथा अत्यन्त कठोर भोगोंसे पूरा पड़े—उनकी हमें आवश्यकता नहीं है ॥९१॥ यदि मैं इन प्रियजनोंका त्यागकर तप नहीं करता हूँ तो सुभूम चक्रवर्तीके समान अतृप्त दशामें मरूँगा ॥९२॥ 'जो हरिणियोंके समान नेत्रोंवाली हैं, स्त्रियोंके गुणोंसे सहित हैं, अत्यन्त कठिनाई से छोड़ने योग्य हैं, भोली हैं और मुझपर जिनके मनोरथ लगे हुए हैं ऐसी इन श्रीमती स्त्रियोंको कैसे छोड़ूँ' ऐसा विचारकर यद्यपि यह क्षणभरके लिए बेचैन हुआ तथापि वह तत्काल ही प्रबुद्ध बुद्धि हो हृदयके लिए इस प्रकार उलाहना देने लगा ॥९३-९४॥ कि हे हृदय ! जिसने दीर्घकाल तक स्वर्गमें उत्तम विभूतिकी धारक गुणवती स्त्रियोंके साथ रमण किया तथा मनुष्य-लोकमें भी जो अत्यधिक हर्षसे भरी सुन्दर स्त्रियोंसे लालित हुआ ऐसा कौन मनुष्य नदियोंसे समुद्रके समान नाना प्रकारके विषय-सुख सम्बन्धी प्रीतिसे सन्तुष्ट हुआ है ? अर्थात् कोई नहीं । इसलिए हे नाना जन्मोंमें भटकनेवाले श्रान्त हृदय ! शान्तिको प्राप्त हो, व्यर्थ ही आकुलित क्यों हो

---

१. बध्यमानोऽपि म० । २. त्रिदशान् म० । ३. गच्छसि म० । ४. एतदेवं प्रतीच्येण म० 'पूज्यः प्रतीच्यः' इत्यमरः । ५. समनुभूतिभिः म० । ६. प्रमदवरवनिताजनैः म० । ७. खपुस्तके ९४-९५ तमश्लोकयोः क्रममेदो वर्तते ।

वसन्ततिलकावृत्तम्

किं न श्रुता नरकभीमविरोधरौद्रास्तीक्ष्णासिपत्रवनसङ्कटदुर्गमार्गाः ।
रागोद्भवेन जनितं घनकर्मपङ्कं यन्नेच्छसि क्षपयितुं तपसा समस्तम् ॥६७॥
आसीन्निरर्थकतमो धिगतीतकालो [1]दीर्घेऽसुखार्णवजले पतितस्य निन्द्ये [2] ।
आत्मानमद्य भवपञ्जरसन्निरुद्धं मोक्षामि [3] लब्धशुभमार्गमतिप्रकाशः ॥६८॥

आर्या

इति कृतनिश्चयचेताः परिदृष्टयथार्थजीवलोकविवेकः ।
रविरिव गतघनसङ्गस्तेजस्वी गन्तुमुद्यतोऽहं मार्गम् ॥६९॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रणीते पद्मपुराणे हनुमन्निर्वाणं नाम द्वादशोत्तरशतं पर्व ॥११२॥

रहा है ? ॥६५-६६॥ हे हृदय ! क्या नरकके भयंकर विरोधसे दुःखदायी एवं तीक्ष्ण असिपत्र वनसे संकट पूर्ण दुर्गम मार्ग, तूने सुने नहीं हैं कि जिससे रागोत्पत्तिसे उत्पन्न समस्त सघनकर्म रूपी पङ्कको तू तपके द्वारा नष्ट करनेकी इच्छा नहीं कर रहा है ॥६७॥ धिक्कार है कि दीर्घ तथा निन्दनीय दुःखरूपी सागरमें डूबे हुए मेरा अतीतकाल सर्वथा निरर्थक हो गया। अब आज मुझे शुभ मार्ग और शुभ बुद्धिका प्रकाश प्राप्त हुआ है इसलिए संसार रूपी पिंजड़ेके भीतर रुके आत्माको मुक्त करता हूँ—भव-बन्धनसे छुड़ाता हूँ ॥६८॥ इस प्रकार जिसने हृदयमें दृढ़ निश्चय किया है तथा जीव लोकका जिसने यथार्थ विवेक देख लिया है ऐसा मैं मेघके संसर्गसे रहित सूर्यके समान तेजस्वी होता हुआ सन्मार्गपर गमन करनेके लिए उद्यत हुआ हूँ ॥६९॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य विरचित पद्मपुराणमें हनूमान्के वैराग्यका वर्णन करनेवाला एक सौ बारहवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥११२॥

---

१. दीर्घः सुखार्णवजले म० । दीर्घे सुखार्णव-ज० । २. निन्द्यः म० । ३. विरुद्धं म० । ४. मोक्ष्यामि म० ।

त्रयोदशोत्तरशतं पर्व

अथ रात्र्यवसानायां सपत्नीयनिभो रविः । जगदुद्योतयामास दीप्त्या साधुर्यथा गिरा ॥१॥
नक्षत्रगणमुत्सार्य बोधिता नलिनाकराः । रविणा जिननाथेन भव्यानां निचया इव ॥२॥
आपृच्छत [1]सखीन् [2]वातिर्महासंवेगसङ्गतः । निःस्पृहात्मा यथापूर्वं भरतोऽयन् तपोवनम् ॥३॥
ततः कृपणलोलाक्षाः [3]परमोद्वेगवाहिनः [4]। नाथं विज्ञापयन्ति स्म सचिवाः प्रेमनिर्भराः ॥४॥
अनाथान् देव नो कर्तुमस्मानर्हसि सद्गुण । प्रभो प्रसीद भक्तेषु क्रियतामनुपालनम् ॥५॥
जगाद मारुतिर्यूयं परमप्यनुवर्तिनः । अनर्थबान्धवा एव मम नो हितहेतवः ॥६॥
उत्तरन्तं भवाम्भोधिं तत्रैव प्रक्षिपन्ति ये । हिंसास्ते कथमुच्यन्ते वैरिणः परमार्थतः ॥७॥
माता पिता सुहृद्भ्राता न सहायत्वमागताः । यदा नरकवासेषु प्राप्तं दुःखमनुत्तमम् ॥८॥
मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य बोधिं च जिनशासने । प्रमादो नोचितः कर्तुं निमेषमपि धीमतः ॥९॥
[5]समुष्यापि परं प्रीतैर्भवद्भिः सह भोगवत् । अवश्यंभाव्युत्कस्तीव्रो विरहः कर्मनिर्मितः ॥१०॥
देवासुरमनुष्येन्द्रा स्वकर्मवशवर्तिनः । कालदावानलालीढाः के वा न प्रलयं गताः ॥११॥
पल्योपमसहस्राणि त्रिदिवेऽनेकशो मया । भुक्ता भोगा न वाऽतृप्यं वह्निः शुष्केन्धनैरिव ॥१२॥
गतागतविधेर्दात्रे भवोऽपि सुमहाऽधमः । सदृशं नाम कस्मैऽपि जातो वक्तुमक्षमा ॥१३॥

अथानन्तर रात्रि व्यतीत होनेपर स्वर्णके समान सूर्यने दीप्तिसे जगत्को उस तरह प्रकाशमान कर दिया जिस तरह कि साधु वाणीके द्वारा प्रकाशमान करता है ॥१॥ सूर्यने नक्षत्रसमूहको हटाकर कमलोंके समूहको उस तरह विकसित कर दिया जिस तरह कि जिनेन्द्रदेव भव्योंके समूहको विकसित कर देता है ॥२॥ जिस प्रकार पहले तपोवनको जाते हुए भरतने अपने मित्रजनोंसे पूछा था उसी प्रकार महासंवेगसे युक्त, तथा निःस्पृह चित्त हनूमान्ने मित्रजनोंसे पूछा ॥३॥ तदनन्तर जिनके नेत्र अत्यन्त दीन तथा चञ्चल थे, जो परम उद्वेगको धारण कर रहे थे एवं जो प्रेमसे भरे हुए थे ऐसे मन्त्रियोंने स्वामीसे प्रार्थना की कि हे देव ! आप हम लोगोंको अनाथ करनेके योग्य नहीं हैं। हे उत्तम गुणोंके धारक प्रभो ! भक्तोंपर प्रसन्न हूजिए और उनका पालन कीजिए ॥४-५॥ इसके उत्तरमें हनूमान्ने कहा कि तुम लोग परम अनुयायी होकर भी हमारे अनर्थकारी बान्धव हो हितकारी नहीं ॥६॥ जो संसार-समुद्रसे पार होते हुए मनुष्यको उसीमें गिरा देते हैं वे हितकारी कैसे कहे जा सकते हैं ? वे तो यथार्थमें वैरी ही हैं ॥७॥ जब मैंने नरकवासमें बहुत भारी दुःख पाया था तब माता-पिता, मित्र, भाई—कोई भी सहायताको प्राप्त नहीं हुए थे—किसीने सहायता नहीं की थी ॥८॥ दुर्लभ मनुष्य-पर्याय और जिन-शासनका ज्ञान प्राप्तकर बुद्धिमान् मनुष्यको निमेष मात्र भी प्रमाद करना उचित नहीं है ॥९॥ परम प्रीतिसे युक्त आप लोगोंके साथ रहकर जिस प्रकार भोगकी प्राप्ति हुई है उसी प्रकार अब कर्म-निर्मित तीव्र विरह भी अवश्यंभावी है ॥१०॥ अपने-अपने कर्मके आधीन रहनेवाले ऐसे कौन देवेन्द्र असुरेन्द्र अथवा मनुष्येन्द्र हैं जो काल रूपी दावानलसे व्याप्त हो विनाशको प्राप्त न हुए हों ? ॥११॥ मैंने स्वर्गमें अनेकों बार हजारों पल्य तक भोग भोगे हैं फिर भी सूखे ईन्धनसे अग्निके समान तृप्त नहीं हुआ ॥१२॥ गमनागमनको देनेवाला

---

१. सखीं म० । २. वातस्यापत्यं पुमान् वातिः हनूमान् । ३. लोभाख्याः ख० । लोभाक्षाः म० । ४. वाहिताः म० । ५. मनुष्योऽपि परं प्रीतैर्भवद्भिः सहभोगवान् ब० ।

देहिनो यत्र मुह्यन्ति दुर्गतं भवसङ्कटम् । विलङ्घ्य गन्तुमिच्छामि पदं गर्भविवर्जितम्[1] ॥१४॥
वज्रसारतनौ तस्मिन्नेवं कृतविचेष्टिते । अभूदन्तःपुरस्त्रीणां महानाक्रन्दितध्वनिः ॥१५॥
समाश्वास्य विषादार्तं प्रमदाजनमाकुलम् । वचोभिर्बोधने शक्तैर्नानावृत्तान्तदर्शिभिः ॥१६॥
तनयांश्च समाधाय राजधर्मे यथाक्रमम् । सर्वाभियोगकुशलः शुभावस्थितमानसः ॥१७॥
सुहृदां चक्रवालेन महता परिसो वृतः । विमानभवनाद् राजा निर्ययौ वायुनन्दनः ॥१८॥
नरयानं समारुह्य रत्नकाञ्चनभासुरम् । बुद्बुदादर्शलम्बूषचित्रचामरसुन्दरम् ॥१९॥
सुपुण्डरीकसङ्काशं बहुभक्तिविराजितम् । चैत्योद्यानं यतः श्रीमान् प्रस्थितः परमोदयः ॥२०॥
विलसत्केतुमालाढ्यं तस्य यानमुदीक्ष्य तत् । ययौ हर्षविषादं च जनः सक्ताश्रुलोचनः ॥२१॥
तत्र चैत्यमहोद्याने विचित्रद्रुममण्डिते । सारिकाचञ्चरीकान्यपुष्टकोलाहलाकुले ॥२२॥
नानाकुसुमकिञ्जल्कसुगन्धिसततायने । संयतो धर्मरत्नाख्यस्तदा तिष्ठति कीर्तिमान् ॥२३॥
धर्मरत्नमहाराशिमत्यन्तोत्तमयोगिनम् । यथा बाहुबली पूर्वं भावप्लावितमानसः ॥२४॥
नरयानात् समुत्तीर्य हनूमानाससाद तम् । भगवन्तं नभोयातं[2] चारणर्द्धिगणावृतम् ॥२५॥
प्रणम्य भक्तिसम्पन्नः कृत्वा गुरुमहं परम् । जगाम शिरसि न्यस्य करराजीवकुड्मलम् ॥२६॥
उपेत्य भवतो दीक्षां निर्मुक्ताङ्गो महामुने । अहं विहर्तुमिच्छामि प्रसादः क्रियतामिति ॥२७॥

यह कर्म मुझसे भी अधिक महाबलवान् है। मेरा शरीर तो अब अक्षम—असमर्थ हो गया है ॥१३॥ प्राणी जिस दुर्गम जन्म संकटको पाकर मोहित हो जाते हैं—स्वरूपको भूल जाते हैं। मैं उसे उल्लङ्घनकर गर्भातीत पदको प्राप्त करना चाहता हूँ ॥१४॥

इस प्रकार वज्रमय शरीरको धारण करनेवाले हनूमान्‌ने जब अपनी दृढ़ चेष्टा दिखाई तब उसके अन्तःपुरकी स्त्रियोंमें रुदनका महाशब्द उत्पन्न हो गया ॥१५॥ तदनन्तर समझानेमें समर्थ एवं नाना प्रकारके वृत्तान्तोंका निरूपण करनेवाले वचनोंके द्वारा विषादसे पीड़ित, व्यग्र स्त्रियोंको सान्त्वना देकर तथा समस्त पुत्रोंको यथाक्रमसे राजधर्ममें लगाकर व्यवस्थापटु तथा शुभ कार्यमें मनको स्थिर करने वाले राजा हनूमान्, मित्रोंके बहुत बड़े समूहसे परिवृत हो विमानरूपी भवनसे बाहर निकले ॥१६-१८॥ जो रत्न और सुवर्णसे देदीप्यमान थी, छोटे-छोटे गोले, दर्पण, फन्नूस तथा नाना प्रकारके चमरोंसे सुन्दर थी और दिव्य-कमलके समान नाना प्रकारके वेलबूटोंसे सुशोभित थी ऐसी पालकीपर सवार हो परम अभ्युदयको धारण करनेवाला श्रीमान् हनूमान जिस ओर मन्दिरका उद्यान था उसी ओर चला ॥१९-२०॥ जिसपर पताकाएँ फहरा रही थीं तथा जो मालाओंसे सहित थी ऐसी उसकी पालकी देखकर लोग हर्ष तथा विषाद दोनोंको प्राप्त हो रहे थे और दोनों ही कारणोंसे उनके नेत्रोंमें आँसू झलक रहे थे ॥२१॥ जो नाना प्रकारके वृक्षोंसे मण्डित था, मैंना, भ्रमर तथा कोयलके कोलाहलसे व्याप्त था और जिसमें नाना फूलोंकी केशरसे सुगन्धित वायु बह रही थी ऐसे मन्दिरके उस महोद्यानमें उस समय धर्मरत्न नामक यशस्वी मुनि विराजमान थे ॥२२-२३॥

जिनका मन वैराग्यकी भावनासे आप्लुत था ऐसे बाहुबली जिस प्रकार पहले धर्मरूपी रत्नोंकी महाराशि स्वरूप अत्यन्त उत्तम योगी—श्री ऋषभ जिनेन्द्रके समीप गये थे उसी प्रकार वैराग्य भावनासे आप्लुत हृदय हनूमान् पालकीसे उतरकर आकाशगामी एवं चारणर्द्धियोंसे आवृत उन भगवान् धर्मरत्न नामक मुनिराजके समीप पहुँचा ॥२४-२५॥ पहुँचते ही उसने प्रणाम किया, बहुत बड़ी गुरुपूजा की और तदनन्तर हस्तरूपी कमल-कुड्मलोंको शिरपर धारण कर कहा कि हे महामुने! मैं आपसे दीक्षा लेकर तथा शरीरसे ममता छोड़ निर्द्वन्द्व विहार करना

---

१. विवर्तिनम् म० । २. नभोयानं म० ।

पतिराहोत्तमं युक्तमेवमस्तु सुमानसः । जगन्निःसारमालोक्य क्रियतां स्वहितं परम् ॥२८॥
अशाश्वतेन देहेन विहस्तु[1] शाश्वतं पदम् । परमं तव कल्याणी मतिरेषा समुद्गता ॥२९॥
इत्यनुज्ञां मुनेः प्राप्य संवेगरभसान्वितः । कृतप्रणमनस्तुष्टः पर्यङ्कासनमाश्रितः ॥३०॥
मुकुटं कुण्डले हारमवशिष्टं विभूषणम् । समुत्ससर्ज वस्त्रं च मानसं च परिग्रहम् ॥३१॥
दयितानिगडं भित्त्वा दग्ध्वा जालं ममत्वजम् । छित्त्वा स्नेहमयं पाशं त्यक्त्वा सौख्यं विषोपमम् ॥३२॥
वैराग्यदीपशिखया मोहध्वान्तं निरस्य च । कमप्यपकरं दृष्ट्वा शरीरमतिभङ्गुरम् ॥३३॥
स्वयं सुसुकुमाराभिर्जितपद्माभिरुत्तमम् । उत्तमाङ्गरुहो नीत्वा करशाखाभिरुत्तमः ॥३४॥
निःशेषसङ्गनिर्मुक्तो मुक्तिलक्ष्मीं समाश्रितः । महाव्रतधरः श्रीमान्ह्रीशैलः शुशुभेतराम् ॥३५॥
निर्वेदप्रभुरागाभ्यां प्रेरितानि महात्मनाम् । शतानि सप्त साग्राणि पञ्चाशद्भिः सुचेतसाम् ॥३६॥
विद्याधरमरेन्द्राणां महासंवेगवर्तिनाम् । स्वपुत्रेषु पदं दत्त्वा प्रतिपन्नानि योगिताम् ॥३७॥
विद्युद्गत्यादिनामानः परमप्रीतमानसाः । मुक्तसर्वकलङ्कास्ते श्रिताः श्रीशैलविभ्रमम् ॥३८॥
कृत्वा परमकारुण्यं विप्रलापं महाशुचम् । वियोगानलसन्तप्ताः परं निर्वेदमागताः ॥३९॥
प्रयिता बन्धुमत्याख्यामुपगम्य महत्तराम् । प्रयुज्य विनयं भक्त्या विधाय महमुत्तमम् ॥४०॥
श्रीमत्यो भवतो भीता धीमत्यो नृपयोषितः । महद्भूषणनिर्मुक्ताः शीलभूषाः प्रवव्रजुः ॥४१॥
बभूव विभवस्तासां तदा जीर्णतृणोपमः । महामहाजनः प्रायो रतिबद्धिरतो भृशम् ॥४२॥

चाहता हूँ अतः मुझपर प्रसन्नता कीजिए ॥२६-२७॥ यह सुन उत्तम हृदयके धारक मुनिराजने कहा कि बहुत अच्छा, ऐसा ही हो, जगत्को निःसार देख अपना परम कल्याण करो ॥२८॥ विनश्वर शरीरसे अविनाशी पद प्राप्त करनेके लिए जो तुम्हारी कल्याणरूपिणी बुद्धि उत्पन्न हुई है यह बहुत उत्तम बात है ॥२९॥

इस प्रकार मुनिकी आज्ञा पाकर जो वैराग्यके वेगसे सहित था, जिसने प्रणाम किया था, और जो संतुष्ट होकर पद्मासनसे विराजमान था ऐसे हनूमान्ने मुकुट, कुण्डल, हार तथा अन्य आभूषण, वस्त्र और मानसिक परिग्रहको तत्काल छोड़ दिया ॥३०-३१॥ उसने स्त्री रूपी बेड़ी तोड़ डाली थी, ममतासे उत्पन्न जालको जला दिया था, स्नेह रूपी पाश छेद डाली थी, सुखको विषके समान छोड़ दिया था, अत्यन्त भङ्गुर शरीरको अद्भुत अपकारी देख वैराग्य रूपी दीपककी शिखासे मोहरूपी अन्धकारको नष्ट कर दिया था, और कमलको जीतनेवाली अपनी सुकुमार अङ्गुलियोंसे शिरके बाल नोच डाले थे। इस प्रकार समस्त परिग्रहसे रहित, मुक्ति रूपी लक्ष्मीके सेवक, महाव्रतधारी, और वैराग्य लक्ष्मीसे युक्त उत्तम हनूमान् अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥३२-३४॥ उस समय वैराग्य और स्वामिभक्तिसे प्रेरित, उदारात्मा, शुद्ध हृदय और महासंवेगमें वर्तमान सातसौ पचास विद्याधर राजाओंने अपने-अपने पुत्रोंके लिए राज्य देकर मुनिपद धारण किया ॥३५-३७॥ इस प्रकार जिनके चित्त अत्यन्त प्रसन्न थे, तथा जिनके सब कलंक छूट गये थे ऐसे वे विद्युद्गति आदि नामको धारण करनेवाले मुनि हनूमान्की शोभाको प्राप्त थे अर्थात् उन्हींके समान शोभायमान थे ॥३८॥

तदनन्तर जो वियोगरूपी अग्निसे संतप्त थी, महाशोकदायी अत्यन्त करुण विलाप कर परम निर्वेद—वैराग्यको प्राप्त हुई थीं, श्रीमती थीं, संसारसे भयभीत थीं, धीमती थीं, महा-आभूषणोंसे रहित थीं, और शीलरूपी आभूषणको धारण करनेवाली थीं ऐसी राजस्त्रियोंने बन्धुमती नामकी प्रसिद्ध आर्यिकाके पास जाकर तथा भक्ति पूर्वक नमस्कार और उत्तम पूजा कर दीक्षा धारण कर ली ॥३९-४१॥ उस समय उन सबके लिए वैभव जीर्णतृणके समान जान पड़ने लगा

---

१. परम् म० ।

व्रतगुप्तिसमित्युद्यैः शैलः श्रीशैलसूज्ज्वः । महातपोधनो धीमान् गुणशीलविभूषणः ॥४३॥

आर्याच्छन्दः

धरणीधरैः प्रहृष्टैरुपगीतो वन्दितोऽप्सरोभिश्च ।
अमलं समयविधानं सर्वज्ञोक्तं समाचर्य ॥४४॥
निर्दग्धमोहनिचयो जैनेन्द्रं प्राप्य पुष्कलं ज्ञानविधिम् ।
निर्वाणगिरावसिधच्छ्रीशैलः श्रमणसत्तमः पुरुषरविः ॥४५॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते हनूमन्निर्वाणाभिधानं नाम त्रयोदशोत्तरशतं पर्व ॥११३॥

था सो ठीक ही है क्योंकि उत्तम पुरुष राग करने वालोंसे अत्यन्त विरक्त रहते ही हैं ॥४२॥ इस प्रकार जो व्रत, गुप्ति और समितिके मानो उच्च पर्वत थे ऐसे श्री हनूमान् मुनि महातप रूपी धनके धारक, धीमान् और गुण तथा शील रूपी आभूषणोंसे सहित थे ॥४३॥ हर्षसे भरे बड़े-बड़े राजा जिनकी स्तुति करते थे, अप्सराएँ जिन्हें नमस्कार करती थीं, जिन्होंने मोहकी राशि भस्म कर दी थी, जो मुनियोंमें उत्तम थे, तथा पुरुषोंमें सूर्यके समान थे ऐसे श्रीशैल महामुनिने सर्वज्ञ प्रतिपादित निर्मल आचारका पालन कर तथा जिनेन्द्र सम्बन्धी पूर्णज्ञान प्राप्तकर निर्वाण गिरिसे सिद्ध पद प्राप्त किया ॥४४-४५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें हनूमान्‌के निर्वाणका वर्णन करनेवाला एकसौ तेरहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥११३॥

चतुर्दशोत्तरशतं पर्व

प्रव्रज्यामष्टवीराणां श्रुत्वा वायुसुतस्य च । रामो जहास किं भोगो भुक्तस्तैः कातरैरिति ॥१॥
सन्तं सन्त्यज्य ये भोगं प्रव्रजन्त्यायतेक्षणाः । नूनं ग्रहगृहीतास्ते वायुना वा वशीकृताः ॥२॥
नूनं तेषां न विद्यन्ते कुशला वैद्यवातिकाः[1] । यतो मनोहरान् कामान्परित्यज्य व्यवस्थिताः ॥३॥
एवं भोगमहासङ्गसौख्यसागरसेविनः । आसीत्तस्य जडा बुद्धिः कर्मणा वशमीयुषः ॥४॥
[2]भुज्यमानाऽल्पसौख्येन संसारपदमीयुषाम्[3] । प्रायो विस्मयते सौख्यं श्रुतमप्यतिसंसृति[4] ॥५॥
एवं तयोर्महाभोगमग्नयोः प्रेमबद्धयोः[5] । पद्मवैकुण्ठयोः कालो धर्मकुण्ठो विवर्तते ॥६॥
अथान्यदा समायातः सौधर्मेन्द्रो महाद्युतिः । ऋद्ध्या परमया युक्तो धैर्यगाम्भीर्यसंस्थितः ॥७॥
सेवितः सचिवैः सर्वैर्नानालङ्कारधारिभिः । कार्त्स्न्यस्वरमहाशैल इव गण्डमहीधरैः ॥८॥
सुखं तेजःपरिच्छन्ने निषण्णः सिंहविष्टरे । सुमेरुशिखरस्थस्य वैभवस्य श्रियमुद्वहन् ॥९॥
चन्द्रादित्योत्तमोद्योतरत्नालङ्कृतविग्रहः । मनोहरेण रूपेण जुष्टो नेत्रसमुत्सवः ॥१०॥
बिभ्राणो विमलं हारं तरङ्गितमहाप्रभम्[6] । प्रवाहमिव सैतोदं श्रीमान्निषधभूधरः ॥११॥
हारकुण्डलकेयूरप्रभृत्युत्तमभूषणैः । समन्तादावृतो देवैर्नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ॥१२॥

अथानन्तर लक्ष्मणके आठ वीर कुमारों और हनूमान्‌की दीक्षाका समाचार सुन श्रीराम यह कहते हुए हँसे कि अरे ! इन लोगोंने क्या भोग भोगा ? ॥१॥ जो दूरदर्शी मनुष्य, विद्यमान भोगको छोड़कर दीक्षा लेते हैं जान पड़ता है कि वे ग्रहोंसे आक्रान्त हैं अथवा वायुके वशीभूत हैं । भावार्थ—या तो उन्हें भूत लगे हैं या वे वायुकी बीमारीसे पीड़ित हैं ॥२॥ जान पड़ता है कि ऐसे लोगोंकी औषधि करने वाले कुशल वैद्य नहीं हैं इसीलिए तो वे मनोहर भोगोंको छोड़ बैठते हैं ॥३॥ इस प्रकार भोगोंके महासंगसे होने वाले सुख रूपी सागरमें निमग्न तथा चारित्र-मोहनीय कर्मके वशीभूत श्रीरामचन्द्रकी बुद्धि जड़ रूप हो गई थी ॥४॥ भोगनेमें आये हुए अल्प सुखसे उपलक्षित संसारी प्राणियोंको यदि किसीके लोकोत्तर सुखका वर्णन सुननेमें भी आता है तो प्रायः वह आश्चर्य उत्पन्न करता है ॥५॥ इस प्रकार महाभोगोंमें निमग्न तथा प्रेमसे बँधे हुए उन राम-लक्ष्मणका काल चारित्र रूपी धर्मसे निरपेक्ष होता हुआ व्यतीत हो रहा था ॥६॥

अथानन्तर किसी समय महा कान्तिसे युक्त, उत्कृष्ट ऋद्धिसे सहित, धैर्य और गाम्भीर्यसे उपलक्षित सौधर्मेन्द्र देवोंकी सभामें आकर विराजमान हुआ ॥७॥ नाना अलंकारोंको धारण करने वाले समस्त मन्त्री उसकी सेवा कर रहे थे इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो अन्य छोटे पर्वतोंसे परिवृत सुमेरु महापर्वत ही हो ॥८॥ कान्तिसे आच्छादित सिंहासनपर बैठा हुआ वह सौधर्मेन्द्र सुमेरुके शिखरपर विराजमान जिनेन्द्रकी शोभाको धारण कर रहा था ॥९॥ चन्द्रमा और सूर्यके समान उत्तम प्रकाश वाले रत्नोंसे उसका शरीर अलंकृत था । वह मनोहर रूपसे सहित तथा नेत्रोंको आनन्द देने वाला था ॥१०॥ जिसकी बहुतभारी कान्ति फैल रही थी ऐसे निर्मल हारको धारण करता हुआ वह ऐसा जान पड़ता था मानो सीतोदा नदीके प्रवाहको धारण करता हुआ निषध पर्वत ही हो ॥११॥ हार, कुण्डल, केयूर आदि उत्तम आभूषणोंको धारण करने

---

१. वैद्यवातिकाः म० । २. क पुस्तके एष श्लोको नास्ति । ३. -मीयुषः म० । ४. संसृतिः । ५. प्रेमबन्धयोः म० । ६. महाप्रभः म० ।

चन्द्रनक्षत्रसादृश्यं चारु मानुषगोचरम् । उक्तं यतोऽन्यथाकल्पज्योतिषामन्तरं महत् ॥१३॥
महाप्रभावसम्पन्नो दिशो दश निजौजसा । भासयन्परमोदात्ततरुर्जैनेश्वरो यथा ॥१४॥
अशक्यवर्णनो मूरे संवत्सरशतैरपि । अप्यहर्यैर्जनैर्जिह्वासहस्रैरपि संस्तुतः ॥१५॥
लोकपालप्रधानानां शुराणां शुद्धचेतसाम् । यथाऽऽत्मं निषण्णानां पुराणमिदमब्रवीत् ॥१६॥
येनैषोऽत्यन्तदुःसाध्यः संसारः परमासुरः । निहतो ज्ञानचक्रेण महारिः सुखसूदनः ॥१७॥
अर्हन्तं तं परं भक्त्या भावपुष्पैरनन्तरम् । नाथमर्चयताऽशेषदोषकक्षविभावसुम् ॥१८॥
कषायोग्रतरङ्गाढ्यात् कामग्राहसमाकुलात् । यः संसारार्णवाद् भव्यान् समुत्तारयितुं क्षमः ॥१९॥
यस्य प्रजातमात्रस्य मन्दरे त्रिदशेश्वराः । अभिषेकं निषेवन्ते परं क्षीरोदवारिणा ॥२०॥
अर्चयन्ति च भक्त्याढ्यास्तदेकाग्रानुवर्तिनः । पुरुषार्थाऽऽहितस्वान्ताः परिवर्गसमन्विताः ॥२१॥
विन्ध्यकैलासवक्षोजां पारावारोर्मिमेखलाम् । यावत्स्त्रीं महीं त्यक्त्वा मुक्तिस्त्रियोषितम् ॥२२॥
महामोहतमस्कन्नं धर्महीनमपार्थिवम् । येनेदमेत्य नाकाग्रादालोकं प्रापितं जगत् ॥२३॥
अत्यन्ताद्भुतवीर्येण येनाष्टौ कर्मशत्रवः । क्षपिताः क्षणमात्रेण हरिणेवेह दन्तिनः ॥२४॥

वाले देव उस सौधर्मेन्द्रको सब ओरसे घेरे हुए थे इसलिए वह नक्षत्रोंसे आवृत चन्द्रमाके समान जान पड़ता था ॥१३॥ इन्द्र तथा देवोंके लिए जो चन्द्रमा और नक्षत्रोंका सादृश्य कहा है वह मनुष्यकी अपेक्षा है क्योंकि स्वर्गके देव और ज्योतिषी देवोंमें बड़ा अन्तर है। भावार्थ—मनुष्य-लोकमें चन्द्रमा और नक्षत्र उज्ज्वल दिखते हैं इसलिए इन्द्र तथा देवोंको उनका दृष्टान्त दिया है यथार्थमें चन्द्रमा नक्षत्र रूप ज्योतिषी देवोंसे स्वर्गवासी देवोंकी ज्योति अधिक है और देवोंकी ज्योतिसे इन्द्रोंकी ज्योति अधिक है ॥१३॥ वह इन्द्र स्वयं महाप्रभावसे सम्पन्न था और अपने तेजसे दशों दिशाओंको प्रकाशमान कर रहा था इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो जिनेन्द्र सम्बन्धी अत्यन्त ऊँचा अशोक वृक्ष ही हो ॥१४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि यदि सब लोग मिलकर हजारों जिह्वाओंके द्वारा निरन्तर उसका वर्णन करें तो सैकड़ों वर्षोंमें भी वर्णन पूरा नहीं हो सकता ॥१५॥

तदनन्तर उस इन्द्रने, यथायोग्य आसनोंपर बैठे लोकपाल आदि शुद्ध हृदयके धारक देवोंके समक्ष इस पुराणका वर्णन किया ॥१६॥ पुराणका वर्णन करते हुए उसने कहा कि अहो देवो ! जिन्होंने अत्यन्त दुःसाध्य, सुखको नष्ट करनेवाले तथा महाशत्रु स्वरूप इस संसाररूपी महाअसुरको ज्ञानरूपी चक्रके द्वारा नष्ट कर दिया है और जो समस्त दोष रूपी अटवीको जलानेके लिए अग्निके समान हैं उन परमोत्कृष्ट अर्हन्त भगवान्‌की तुम निरन्तर भक्तिपूर्वक भाव रूपी फूलोंसे अर्चा करो ॥१७-१८॥ कषायरूपी उन्नत तरङ्गोंसे युक्त तथा कामरूपी मगर-मच्छोंसे व्याप्त संसार रूपी सागरसे जो भव्य जीवोंको पार लगानेमें समर्थ हैं, उत्पन्न होते ही जिनका इन्द्र लोग सुमेरु पर्वतपर क्षीरसागरके जलसे उत्कृष्ट अभिषेक करते हैं। तथा भक्तिसे युक्त, मोक्ष पुरुषार्थमें चित्तको लगानेवाले एवं अपने-अपने परिजनोंसे सहित इन्द्र लोग तदेकाग्र चित्त होकर जिनकी पूजा करते हैं ॥१९-२१॥ विन्ध्य और कैलाश पर्वत जिसके स्तन हैं तथा समुद्रकी लहरें जिसकी मेखला हैं ऐसी पृथिवी रूपी स्त्रीका त्यागकर तथा मुक्ति रूपी स्त्रीको लेकर जो विद्यमान हैं ॥२२॥ महामोह रूपी अन्धकारसे आच्छादित, धर्महीन तथा स्वामी हीन इस संसारको जिन्होंने स्वर्गके अग्रभागसे आकर उत्तम प्रकाश प्राप्त कराया था ॥२३॥ और जिस प्रकार सिंह हाथियोंको नष्ट कर देता है उसी प्रकार अत्यन्त अद्भुत पराक्रमको धारण करने वाले जिन्होंने आठ कर्म रूपी शत्रुओंको क्षणभरमें

१. कल्पं-म० ।

जिनेन्द्रो भगवानर्हन् स्वयम्भूः शम्भुरूर्जितः । स्वयम्प्रभो महादेवः स्थाणुः कालञ्जरः शिवः ॥२५॥
महाहिरण्यगर्भश्च देवदेवो महेश्वरः । सद्धर्मचक्रवर्ती च विभुस्तीर्थंकरः कृती ॥२६॥
संसारसूदनः सूरिर्ज्ञानचक्षुर्भवान्तकः । एवमादिर्यथार्थाख्यो गीयते यो मनीषिभिः ॥२७॥
[1]निगूढप्रकटस्वार्थैरभिधानैः सुनिर्मलैः । स्तूयते स मनुष्येन्द्रैः सुरेन्द्रैरच सुभक्तिभिः ॥२८॥
प्रसादाद्यस्य नाथस्य कर्ममुक्ताः शरीरिणः । त्रैलोक्याग्रेऽवतिष्ठन्ते यथास्वप्रकृतिस्थिताः ॥२९॥
इत्यादि यस्य माहात्म्यं स्मृतमप्यघनाशनम् । पुराणं परमं दिव्यं सम्मदोत्पत्तिकारणम् ॥३०॥
महाकल्याणमूलस्य स्वार्थकांक्षणतत्पराः । तस्य देवाधिदेवस्य भक्ता भवत सन्ततम् ॥३१॥
[2]अनादिनिधने जन्तुः प्रेर्यमाणः स्वकर्मभिः । दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं धिक् कश्चिदपि मुह्यति ॥३२॥
चतुर्गतिमहावर्ते महासंसारमण्डले । पुनर्बोधिः कुतस्तेषां ये द्विषन्त्यर्हदक्षरम् ॥३३॥
कृच्छ्रान्मानुषमासाद्य यः स्याद्बोधिविवर्जितः । पुनर्भ्राम्यत्यपुण्यात्मा सः स्वयंरथचक्रवत् ॥३४॥
अहो धिङ्मानुषे लोके गतानुगतिकैर्जनैः । जिनेन्द्रो नादृतः कैश्चित्संसारारिनिषूदनः ॥३५॥
मिथ्यातपः समाचर्य भूत्वा देवो लवर्धिकः[3] । च्युत्वा मनुष्यतां प्राप्य कष्टं द्रुह्यति जीवकः ॥३६॥
कुधर्माश्रयसक्तोऽसौ महामोहवशीकृतः । न जिनेन्द्रं महेन्द्राणामपीन्द्रं [4]प्रतिपद्यते ॥३७॥
विषयामिषलुब्धात्मा जन्तुर्मानुजतां गतः । मुह्यते मोहनीयेन कर्मणा कष्टमुत्तमम् ॥३८॥
अपि दुर्दैवयोगाद्यैः स्वर्गं प्राप्य कुतापसः । स्वहीनतां परिज्ञाय दह्यते चिन्तयाऽतुरः ॥३९॥
रत्नद्वीपोपमे रम्ये तदा धिङ्मन्दबुद्धिना । मयाऽर्च्छासने किं नु श्रेयो न कृतमात्मनः ॥४०॥

नष्ट कर दिया है ॥२४॥ जिनेन्द्र-भगवान्, अर्हन्त, स्वयंभू, शम्भु, ऊर्जित, स्वयंप्रभ, महादेव, स्थाणु, कालंजर, शिव, महाहिरण्यगर्भ, देवदेव, महेश्वर, सद्धर्म चक्रवर्ती, विभु, तीर्थंकर, कृति, संसारसूदन, सूरि, ज्ञानचक्षु और भवान्तक इत्यादि यथार्थ नामोंसे विद्वज्जन जिनकी स्तुति करते हैं ॥२५-२७॥ उत्तम भक्तिसेयुक्त नरेन्द्र और देवेन्द्र गूढ़ तथा अगूढ़ अर्थको धारण करने वाले अत्यन्त निर्मल शब्दों द्वारा जिनकी स्तुति करते हैं ॥२८॥ जिनके प्रसादसे जीव कर्मरहित हो तीन लोकके अग्रभागमें स्वस्वभावमें स्थित रहते हुए विद्यमान रहते हैं ॥२९॥ जिनका इस प्रकारका माहात्म्य स्मृतिमें आनेपर भी पापका नाश करनेवाला है और जिनका परम दिव्य पुराण हर्षकी उत्पत्तिका कारण है ॥३०॥ हे आत्मकल्याणके इच्छुक देवजनो ! उन महा-कल्याणके मूल देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान्के तुम सदा भक्त होओ ॥३१॥ इस अनादि-निधन संसारमें अपने कर्मोंसे प्रेरित हुआ कोई विरला मनुष्य ही दुर्लभ मनुष्य पर्यायको प्राप्त करता है परन्तु धिक्कार है कि वह भी मोहमें फँस जाता है ॥३२॥ जो 'अर्हन्त' इस अक्षरसे द्वेष करते हैं उन्हें चतुर्गति रूप बड़ी-बड़ी आवर्तोंसे सहित इस संसाररूपी महासागरमें रत्नत्रयकी प्राप्ति पुनः कैसे हो सकती है ? ॥३३॥ जो बड़ी कठिनाईसे मनुष्यभव पाकर रत्नत्रयसे वर्जित रहता है, वह पापी रथके चक्रके समान स्वयं भ्रमण करता रहता है ॥३४॥ अहो धिक्कार है कि इस मनुष्य-लोकमें कितने ही गतानुगतिक लोगोंमें संसार-शत्रुको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्का आदर नहीं किया ॥३५॥ यह जीव मिथ्या तपकर अल्प ऋद्धिका धारक देव होता है और वहाँसे च्युत होकर मनुष्य पर्याय पाता है फिर भी खेद है कि द्रोह करता है ॥३६॥ महामोहके वशीभूत हुआ यह जीव, मिथ्याधर्ममें आसक्त हो बड़े-बड़े इन्द्रोंके इन्द्र जो जिनेन्द्र भगवान् हैं उन्हें प्राप्त नहीं होता ॥३७॥ विषय रूपी मांसमें जिसकी आत्मा लुभा रही है ऐसा यह प्राणी मनुष्य पर्याय कर्मको पाकर मोहनीयके द्वारा मोहित हो रहा है, यह बड़े कष्टकी बात है ॥३८॥ मिथ्यातप करनेवाला प्राणी दुर्दैवके योगसे यदि स्वर्ग भी प्राप्त कर लेता है तो वहाँ अपनी हीनताका अनुभव करता हुआ चिन्तातुर हो जलता रहता है ॥३९॥ वहाँ वह सोचता है कि अहो ! रत्नद्वीपके

---

१. निगूढः प्रकटः म० । २. अनादिनिधनो म० । ३. लवर्द्धिकः म० । ४. प्रतिपद्यन्ते म० ।

हा धिक्कुशास्त्रनिचयैस्तैश्च वाक्यदुभिः खलैः । पापैर्मानिभिरुन्मार्गे पातितः पतितैः कथम् ॥४१॥
एवं मानुष्यमासाद्य जैनेन्द्रमतमुत्तमम् । दुर्विज्ञेयमधन्यानां जन्तूनां दुःखभागिनाम् ॥४२॥
महर्द्धिकस्य देवस्य च्युतस्य स्वर्गतो भवेत् । आर्हती दुर्लभा बोधिर्देहिनोऽन्यस्य किं पुनः ॥४३॥
धन्यः सोऽनुगृहीतश्च मानुषत्वे भवोत्तमे । यः करोत्यात्मनः श्रेयो बोधिमासाद्य नैष्ठिकीम् ॥४४॥
तत्रैवात्मगतं प्राह सुरश्रेष्ठो विभावसुः । कदा नु खलु मानुष्यं प्राप्स्यामि स्थितिसंक्षये ॥४५॥
विषयारिं परित्यज्य स्थापयित्वा वशे मनः । नीत्वा कर्म प्रयास्यामि तपसा गतिमार्हतीम् ॥४६॥
तत्रैको विबुधः प्राह स्वर्गस्थस्येदृशी मतिः । अस्माकमपि सर्वेषां नूत्वं प्राप्य विमुह्यति ॥४७॥
यदि प्रत्ययसे नैतद् ब्रह्मलोकात् परिच्युतम् । मानुष्यैश्वर्यसंयुक्तं पद्माभं किं न पश्यसि ॥४८॥
अत्रोवाच महातेजाः शक्रोपतिरसौ स्वयम् । सर्वेषां बन्धनानां तु स्नेहबन्धो महादृढः ॥४९॥
हस्तपादाङ्गबद्धस्य मोक्षः स्यात्सुधारिणः । स्नेहबन्धनबद्धस्य कुतो मुक्तिर्विधीयते ॥५०॥
योजनानां सहस्राणि गन्तुं शक्तो व्रजेत् नरः । स्नेहपाशानुबद्धस्तु न व्रजेत् स्नेहतः क्वचित् ॥५१॥
अस्य लक्ष्मणनो नित्यमनुरक्तो गदायुधः । अतृप्तो दर्शने कृत्यं जीवितेनापि वाञ्छति ॥५२॥
निमेषमपि नो यस्य विकलं हृदिनो मनः । स तं लक्ष्मीधरं स्वप्तुं शक्नोति सुकृतं कथम् ॥५३॥

समान सुन्दर जिन-शासनमें पहुँचकर भी मुझ मन्दबुद्धिने आत्माका हित नहीं किया अतः मुझे धिक्कार है ॥४०॥ हाय हाय धिक्कार है कि मैं उन मिथ्या शास्त्रोंके समूह तथा वचन-रचनामें चतुर, पापी, मानी तथा स्वयं पतित दुष्ट मनुष्योंके द्वारा कुमार्गमें कैसे गिरा दिया गया ? ॥४१॥ इस प्रकार मनुष्य-भव पाकर भी अधन्य तथा निरन्तर दुःख उठानेवाले मनुष्योंके लिए यह उत्तम जिन-शासन दुर्ज्ञेय ही बना रहता है ॥४२॥ स्वर्गसे च्युत हुए महर्द्धिक देवके लिए भी जिनेन्द्र प्रतिपादित रत्नत्रयका पाना दुर्लभ है फिर अन्य प्राणीकी तो बात ही क्या है ? ॥४३॥ सब पर्यायोंमें उत्तम मनुष्य-पर्यायमें निष्ठापूर्ण रत्नत्रय पाकर जो आत्माका कल्याण करता है वही धन्य है तथा वही अनुगृहीत-उपकृत है ॥४४॥

उसी सभामें बैठा हुआ इन्द्ररूपी सूर्य, मन-ही-मन कहता है कि यहाँकी आयुपूर्ण होनेपर मैं मनुष्य-पर्यायको कब प्राप्त करूँगा ? ॥४५॥ कब विषयरूपी शत्रुको छोड़कर मनको अपने वश कर, तथा कर्मको नष्टकर तपके द्वारा मैं जिनेन्द्र सम्बन्धी गति अर्थात् मोक्ष प्राप्त करूँगा ॥४६॥ यह सुन देवोंमें से एक देव बोला कि जब तक यह जीव स्वर्गमें रहता है तभी तक उसके ऐसा विचार होता है, जब हम सब लोग भी मनुष्य-पर्यायको पा लेते हैं तब यह सब विचार भूल जाता है ॥४७॥ यदि इस बातका विश्वास नहीं है तो ब्रह्मलोकसे च्युत तथा मनुष्योंके से युक्त राम-बलभद्रको जाकर क्यों नहीं देख लेते ? ॥४८॥

इसके उत्तरमें महातेजस्वी इन्द्रने स्वयं कहा कि सब बन्धनोंमें स्नेहका बन्धन अत्यन्त दृढ़ है ॥४९॥ जो हाथ-पैर आदि अवयवोंसे बँधा है ऐसे प्राणीको मोक्ष हो सकता है परन्तु स्नेहरूपी बन्धनसे बँधे प्राणीको मोक्ष कैसे हो सकता है ? ॥५०॥ बेड़ियोंसे बँधा मनुष्य हजारों योजन भी जा सकता है परन्तु स्नेहसे बँधा मनुष्य एक अङ्गुल भी जानेके लिए समर्थ नहीं है ॥५१॥ लक्ष्मण, राममें सदा अनुरक्त रहता है वह इसके दर्शन करते-करते कभी तृप्त ही नहीं होता और अपने प्राण देकर भी उसका कार्य करना चाहता है ॥५२॥ पलभरके लिए भी जिसके दूर होनेपर रामका मन बेचैन हो उठता है वह उस उपकारी लक्ष्मणको छोड़नेके लिए

१. सुष्ठु करोतीति सुकृत् तम् ।

छन्दः (?)

कर्मणामिदमदभ्रमीहितं बुद्धिमानपि यदेति विमूढताम् ।
अन्यथा श्रुतसर्वनिजायतिः कः करोति न हितं सचेतनः ॥५४॥
एवमेतदहो त्रिदशाः स्थितं देहिनामपरमत्र किमुच्यताम् ।
कृत्यमत्र भवारिविनाशनं यत्नमेत्य परमं सुचेतसा ॥५५॥

मालिनीच्छन्दः

इति सुरपतिमार्गं तत्त्वमार्गानुरक्तं जिनवरगुणसङ्गात्यन्तपूतं मनोज्ञम् ।
रविशशिमरुदाद्याः प्राप्य चेतोविशुद्धा भवभयमभिजग्मुर्मानवत्वाभिकाङ्क्षाः ॥५६॥

इत्यार्षे श्रीपद्मचरिते रविषेणाचार्यप्रणीते शक्रसुरसंकथाभिधानं नाम चतुर्दशोत्तरशततमं पर्व ॥११४॥

कैसे समर्थ हो सकता है ? ॥५३॥ कर्मकी यह ऐसी ही अद्भुत चेष्टा है कि बुद्धिमान् मनुष्य भी विमोहको प्राप्त हो जाता है अन्यथा जिसने अपना समस्त भविष्य सुन रक्खा है ऐसा कौन सचेतन प्राणी आत्महित नहीं करता ॥५४॥ इस प्रकार अहो देवो ! प्राणियोंके विषयमें यहाँ और क्या कहा जाय ? इतना ही निश्चित हुआ कि उत्तम प्रयत्न कर अच्छे हृदयसे संसार रूपी शत्रुका नाश करना चाहिए ॥५५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस प्रकार यथार्थ मार्गसे अनुरक्त एवं जिनेन्द्र भगवान्‌के गुणोंके संगसे अत्यन्त पवित्र, सुरपतिके द्वारा प्रदर्शित मनोहर मार्गको पाकर जिनके चित्त विशुद्ध हो गये थे तथा जो मनुष्य-पर्याय प्राप्त करनेकी आकांक्षा रखते थे ऐसे सूर्य, चन्द्र तथा कल्पवासी आदि देव संसारसे भयको प्राप्त हुए ॥५६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा प्रणीत पद्मपुराणमें इन्द्र और देवोंके बीच हुई कथाका वर्णन करनेवाला एकसौ चौदहवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥११४॥

पञ्चदशोत्तरशतं पर्व

अथाऽऽसनं विमुञ्चन्तं शक्रं नत्वा सुरासुराः । यथायथं ययुस्थित्वं वहन्तो भावमुत्कटम् ॥१॥
कुतूहलवशौ द्वौ तु विबुधौ कृतनिश्चयौ । पद्मनारायणस्नेहमीहमानौ परीक्षितुम् ॥२॥
क्रीडैकरसिकावेतावन्योन्यप्रेमसङ्गतौ । परस्परः प्रीतिमनयोरित्यागातां प्रधारणाम् ॥३॥
दिवसं विप्रसिस्येकमप्यस्यादर्शनं न यः । मरणे पूर्वजस्यासौ हरिः किमु विचेष्टते ॥४॥
शोकविह्वलितस्यास्य वीक्षमाणौ विचेष्टितम् । परिहासं क्षणं कुर्वो गच्छावः कोशलां पुरीम् ॥५॥
शोकाकुलं मुखं विष्णोर्जायते कीदृशं तु तत् । कस्मै कुप्यति यात्ति क्व करोति किमु भाषणम् ॥६॥
कृत्वा प्रधारणामेतां रत्नचूलो दुरीहितः । नाम्नतो मृगचूलश्च विनीतां नगरीं गतौ ॥७॥
[1]तत्रैत्याकुरुतां पद्मभवने क्रन्दितध्वनिम् । समस्तान्तःपुरस्त्रीणां दिव्यमायासमुद्भवम् ॥८॥
प्रतीहारसुहृन्मन्त्रिपुरोहितपुरोगमाः । अधोमुखा ययुर्विष्णुं जगुश्च [2]रामपञ्चताम् ॥९॥
मृतो राघव इत्येतद्वाक्यं श्रुत्वा यदायुधः । मन्दप्रभञ्जनाधूतनीलोत्पलनिभेक्षणः ॥१०॥
हा किमिदं समुच्चरितमित्यर्धोच्चरजल्पनः । मनोवितानतां प्राप्तः सहसाऽभ्यमुञ्चत [3] ॥११॥
ताडितोऽशनिनेवासौ काञ्चनस्तम्भसंश्रितः । सिंहासनगतः पुत्तलकमन्यस्त इव स्थितः ॥१२॥
अनिमीलितनेत्रोऽसौ तथाऽवस्थितविग्रहः । बभार जीवतो रूपं क्वापि प्रहितचेतसः ॥१३॥
वीक्ष्य निर्गतजीवं तं [4]भ्रातृमृत्यनलाहतम् । त्रिदशौ व्याकुलीभूतौ जीवितुं दातुमक्षमौ ॥१४॥

अथानन्तर आसनको छोड़ते हुए इन्द्रको नमस्कारकर नाना प्रकारके उत्कट भावको धारण करनेवाले सुर और असुर यथायोग्य स्थानोंपर गये ॥१॥ उनमेंसे राम और लक्ष्मणके स्नेहकी परीक्षा करनेके लिए चेष्टा करनेवाले, क्रीड़ाके रसिक तथा पारस्परिक प्रेमसे सहित दो देवोंने कुतूहलवश यह निश्चय किया, यह सलाह बाँधी कि चलो इन दोनोंकी प्रीति देखें ॥२-३॥ जो उनके एक दिनके भी अदर्शनको सहन नहीं कर पाता है ऐसा नारायण अपने अग्रजके मरणका समाचार पाकर देखें क्या चेष्टा करता है ? शोकसे विह्वल नारायणकी चेष्टा देखते हुए क्षण-भरके लिए परिहास करें। चलो, अयोध्यापुरी चलें और देखें कि विष्णुका शोकाकुल मुख कैसा होता है ? वह किसके प्रति क्रोध करता है और क्या कहता है ? ऐसी सलाहकर रत्नचूल और मृगचूल नामके दो दुराचारी देव अयोध्याकी ओर चले ॥४-७॥ वहाँ जाकर उन्होंने रामके भवन-में दिव्य मायासे अन्तःपुरकी समस्त स्त्रियोंके रुदनका शब्द कराया तथा ऐसी विक्रिया की कि द्वारपाल, मित्र, मन्त्री, पुरोहित तथा आगे चलनेवाले अन्य पुरुष नीचा मुख किये लक्ष्मणके पास गये और रामकी मृत्युका समाचार कहने लगे। उन्होंने कहा कि 'हे नाथ ! रामकी मृत्यु हुई है'। यह सुनते ही लक्ष्मणके नेत्र मन्द-मन्द वायुसे कम्पित नीलोत्पलके वनसमान चञ्चल हो उठे ॥८-१०॥ 'हाय यह क्या हुआ ?' वे इस शब्दका आधा उच्चारण ही कर पाये थे कि उनका मन शून्य हो गया और वे अश्रु छोड़ने लगे ॥११॥ वज्रसे ताड़ित हुए के समान वे स्वर्णके खम्भेसे टिक गये और सिंहासनपर बैठे-बैठे ही मिट्टीके पुतलेकी तरह निश्चेष्ट हो गये ॥१२॥ उनके नेत्र यद्यपि बन्द नहीं हुए थे तथापि उनका शरीर ज्योंका त्यों निश्चेष्ट हो गया। वे उस समय उस जीवित मनुष्यका रूप धारणकर रहे थे जिसका कि चित्त कहीं अन्यत्र लगा हुआ है ॥१३॥ भाईकी मृत्यु रूपी अग्निसे ताड़ित लक्ष्मणको निर्जीव देख दोनों देव बहुत व्याकुल

---

१. तत्रत्यं कुरुतां म०, ब० । २. राममृत्युम् । ३. सहसाऽभ्यमुञ्चत म० । ४. मृत्वनलाहतम् म० ।

नूनमस्येदृशो मृत्युर्विधिनेति कृताशयौ । विषादविस्मयाऽऽपूर्णौ सौधर्ममकथी गतौ ॥१५॥
पश्चात्तापाऽनलज्वालाकास्त्स्न्योपालीढमानसौ[1] । न तत्र तौ धृतिं जातु सम्प्राप्तौ निन्दितात्मकौ ॥१६॥
अप्रेक्ष्यकारिणां पापमानसानां हतात्मनाम् । अनुष्ठितं स्वयं कर्म जायते तापकारणम् ॥१७॥
दिव्यमायाकृतं कर्म तदा ज्ञात्वा तथाविधम् । प्रसादमितुमुद्युक्ताः सौमित्रिं प्रवराः स्त्रियः ॥१८॥
कयाऽकृतज्ञया नाथ मूढयाऽस्यपमानितः । सौभाग्यगर्ववाहिन्या परमं दुर्विदग्धया ॥१९॥
प्रसीद मुच्यतां कोपो देव दुःखासिकापि वा । ननु यत्र जने कोपः क्रियतां तत्र [2]यन्मतम् ॥२०॥
इत्युक्त्वा काश्चिदालिङ्ग्य परमप्रेमभूमिकाः । निपेतुः पादयोर्नानाचाटुजल्पिततत्पराः ॥२१॥
काश्चिद्वीणां विधायाङ्के तद्गुणग्रामसङ्गतम् । जगुर्मधुरमारब्धं प्रसादनकृताशयाः ॥२२॥
काश्चिदाननमालोक्य कृतप्रियशतोद्यताः । समाभाषयितुं यत्नं सर्वसन्दोहतोऽभवन् ॥२३॥
स्तनोपपीडमाश्लिष्य काश्चिद् विमलविभ्रमाः । कान्तस्य कान्तमालिम्पन् गण्डं कुण्डलमण्डितम् ॥२४॥
ईषत्पादं समुद्धृत्य काश्चिन्मधुरभाषिताः । चक्रुः शिरसि संकुचत्कमलोदरसन्निभम् ॥२५॥
काश्चिदर्भकसारङ्गालोचनाः कर्तुमुद्यताः । सोन्मादविभ्रमक्षिप्तकटाक्षोत्पलशेखरम् ॥२६॥
जृम्भमाणमुखायताः काश्चित्तदाननकृतेक्षणाः । मन्दं मन्दमङ्गुरङ्गानि स्वस्वसन्धिषु ॥२७॥
एवं विचेष्टमानानां तासामुत्तमयोषिताम् । यत्नोऽनर्थकतां[4] प्राप तत्र चैतन्यवर्जिते ॥२८॥

हुए परन्तु वे जीवन देनेमें समर्थ नहीं हो सके ॥१५॥ 'निश्चय ही इसकी इसी विधिसे मृत्यु होनी होगी' ऐसा विचारकर विषाद और आश्चर्यसे भरे हुए दोनों देव निष्प्रभ हो सौधर्म स्वर्ग चले गये ॥१५॥ पश्चात्ताप रूपी अग्निकी ज्वालासे जिनका मन समस्तरूपसे व्याप्त हो रहा था तथा जिनकी आत्मा अत्यन्त निन्दित थी ऐसे वे दोनों देव स्वर्गमें कभी धैर्यको प्राप्त नहीं होते थे अर्थात् रात-दिन पश्चात्तापकी ज्वालामें झुलससे रहते थे ॥१६॥ सो ठीक ही है क्योंकि बिना विचारे काम करनेवाले नीच, पापी मनुष्योंका किया कार्य उन्हें स्वयं सन्तापका कारण होता है ॥१७॥

तदनन्तर 'यह कार्य लक्ष्मणने अपनी दिव्य मायासे किया है' ऐसा जानकर उस समय उनकी उत्तमोत्तम स्त्रियाँ उन्हें प्रसन्न करनेके लिए उद्यत हुईं ॥१८॥ कोई स्त्री कहने लगी कि हे नाथ ! सौभाग्यके गर्वको धारण करनेवाली किस अकृतज्ञ, मूर्ख और कुचतुर स्त्रीने आपका अपमान किया है ? ॥१९॥ हे देव ! प्रसन्न हूजिए, क्रोध छोड़िए तथा यह दुःखदायी आसन भी दूर कीजिए। यथार्थमें जिसपर आपका क्रोध हो उसका जो चाहें सो कीजिए ॥२०॥ यह कहकर परम प्रेमकी भूमि तथा नाना प्रकारके मधुर वचन कहनेमें तत्पर कितनी ही स्त्रियाँ आलिङ्गन कर उनके चरणोंमें लोट गईं ॥२१॥ प्रसन्न करनेकी भावना रखनेवाली कितनी ही स्त्रियाँ गोदमें वीणा रख उनके गुण-समूहसे सम्बन्ध रखनेवाला अत्यन्त मधुर गान गाने लगीं ॥२२॥ सैकड़ों प्रिय वचन कहनेमें तत्पर कितनी ही स्त्रियाँ उनका मुख देख वार्तालाप करानेके लिए सामूहिक यत्न कर रही थीं ॥२३॥ उज्ज्वल शोभाको धारण करनेवाली कितनी ही स्त्रियाँ स्तनोंको पीड़ित करनेवाला आलिङ्गन कर पतिके कुण्डलमण्डित सुन्दर कपोलको सूँघ रही थीं ॥२४॥ मधुर भाषण करनेवाली कितनी ही स्त्रियाँ, विकसित कमलके भीतरी भागके समान सुन्दर उनके पैरको कुछ ऊपर उठाकर शिरपर रख रही थीं ॥२५॥ बालमृगीके समान चञ्चल नेत्रोंको धारण करनेवाली कितनी ही स्त्रियाँ उन्माद तथा विभ्रमके साथ छोड़े हुए कटाक्ष रूपी नील कमलोंका सेहरा बनानेके लिए ही मानो उद्यत थीं ॥२६॥ लम्बी जमुहाई लेनेवाली कितनी ही स्त्रियाँ उनके मुखकी ओर दृष्टि डालकर धीरे-धीरे अँगड़ाई ले रही थीं और अँगुलियोंकी संधियाँ चटका रही थीं ॥२७॥ इस प्रकार चेष्टा करने वाली उन उत्तम स्त्रियोंका सब यत्न चेतनारहित

---

१. कर्मागालीढ म० । २. जातौ म० । ३. यन्मनः म० । ४. -नर्थकतः म० ।

तासि सप्तदश स्त्रीणां सहस्राणि हरेर्विभुः । मन्दमारुतनिर्धूतचित्राम्बुजवनश्रियम्[1] ॥२९॥
तस्मिंस्तथाविधे नाथे स्थिते कृच्छ्रसमागतः[2] । व्याकुले मनसि स्त्रीणां निदधे संशयः पदम् ॥३०॥
सुदुश्चिन्त्यं च दुर्भाव्यं भावं दुःश्रवमेव च । कृत्वा मनसि मुग्धाश्यः पस्पृशुर्मोहसङ्गताः ॥३१॥
सुरेन्द्रवनितासाम्यसमवेष्टिततेजसाम् । तदा शोकाभिसन्तानां नैतासां चारुताऽभवत् ॥३२॥
श्रुत्वाऽन्तश्चरवक्त्रेभ्यस्तं वृत्तान्तं तथाविधम् । ससम्भ्रमं परिप्राप्तः पद्माभः सचिवैर्वृतः ॥३३॥
अन्तःपुरं प्रविष्टश्च परमाप्तजनावृतः । ससम्भ्रमैर्जनैर्दृष्टो विच्छिन्नविरलक्रमः ॥३४॥
ततोऽपश्यद्विनिष्क्रान्तकान्तद्युतिसमुद्भवम् । वदनं धर्मान्तस्य प्रभातशशिपाण्डुरम् ॥३५॥
न सुस्थितमिवात्यन्तं परिभ्रष्टं स्वभावतः । तत्कालभग्नमूलाम्बुरुहसाम्यमुपागतम् ॥३६॥
अचिन्तयच्च किं नाम कारणं येन मे स्वयम् । आस्ते रुष्टो विषादी च किञ्चिन्नितमस्तकः ॥३७॥
उपसृत्य च सस्नेहं मुहुराघ्राय मूर्द्धनि । हिमाऽऽहतनगाकारं पद्महस्तं परिष्वजे ॥३८॥
चिह्नानि जीवमुक्तस्य परयन्नपि समन्ततः । अमृतं लक्ष्मणं मेने काकुत्स्थः स्नेहनिर्भरः ॥३९॥
नताङ्गयष्टिरावक्रा शोका दोःपरिघौ[4] श्लथौ । प्राणनाकुञ्चनोन्मेषप्रभृतीहोज्झिता तनुः[5] ॥४०॥

लक्ष्मणके विषयमें निरर्थकपनेको प्राप्त हो गया ॥२८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि उस समय लक्ष्मणकी सत्रह हजार स्त्रियाँ मन्द-मन्द वायुसे कम्पित नाना प्रकारके कमल वनकी शोभा धारण कर रही थीं ॥२९॥

तदनन्तर जब लक्ष्मण उसी प्रकार स्थित रहे आये तब बड़ी कठिनाईसे प्राप्त हुए संशयने उन स्त्रियोंके व्यग्र मनमें अपना पैर रक्खा ॥३०॥ मोहमें पड़ी हुईं वे भोली-भाली स्त्रियाँ मनमें ऐसा विचार करती हुईं उनका स्पर्श कर रही थीं कि सम्भव है हमलोगोंने इनके प्रति मनमें कुछ खोटा विचार किया हो, कोई न कहने योग्य शब्द कहा हो, अथवा जिसका सुनना भी दुःखदायी है, ऐसा कोई भाव किया हो ॥३१॥ इन्द्राणियोंके समूहके समान चेष्टा और तेजको धारण करनेवाली वे स्त्रियाँ उस समय शोकसे ऐसी संतप्त हो गईं कि उनकी सब सुन्दरता समाप्त हो गई ॥३२॥

अथानन्तर अन्तःपुरचारी प्रतिहारोंके मुखसे यह समाचार सुन मन्त्रियोंसे घिरे राम घबड़ाहटके साथ वहाँ आये ॥३३॥ उस समय घबड़ाये हुए लोगोंने देखा कि परम प्रामाणिक जनोंसे घिरे राम जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाते हुए अन्तःपुरमें प्रवेश कर रहे हैं ॥३४॥ तदनन्तर उन्होंने जिसकी सुन्दर कान्ति निकल चुकी थी और जो प्रातःकालीन चन्द्रमाके समान पाण्डुर वर्ण था ऐसा लक्ष्मणका मुख देखा ॥३५॥ वह मुख पहलेके समान व्यवस्थित नहीं था, स्वभावसे बिलकुल भ्रष्ट हो चुका था, और तत्काल उखाड़े हुए कमलकी सदृशताको प्राप्त हो रहा था ॥३६॥ वे विचार करने लगे कि ऐसा कौन-सा कारण आ पड़ा कि जिससे आज लक्ष्मण मुझसे रूखा तथा विषादयुक्त हो शिरको कुछ नीचा झुकाकर बैठा है ॥३७॥ रामने पास जाकर बड़े स्नेहसे बार-बार उनके मस्तकपर सूँघा और तुषारसे पीड़ित वृक्षके समान आकारवाले उनका बार-बार आलिङ्गन किया ॥३८॥ यद्यपि राम सब ओरसे मृतकके चिह्न देख रहे थे तथापि स्नेहसे परिपूर्ण होनेके कारण वे उन्हें अमृत अर्थात् जीवित ही समझ रहे थे ॥३९॥ उनकी शरीर-यष्टि झुक गई थी, गरदन टेढ़ी हो गई थी, भुजा रूपी अर्गल ढीले पड़ गये थे और शरीर, साँस लेना, हस्त-पादादिक अवयवोंको सिकोड़ना तथा नेत्रोंका टिमकार पड़ना आदि

१. -श्रियाम् म० । २. समागताः म० । ३. तत्कालतरु-म० । ४. वक्त्रेभ्या न० । ५. प्राणना-भ० । प्राणानां ज० ।

ईदृशं लक्ष्मणं वीक्ष्य विमुक्तं स्वशरीरिणा । उद्वेगोरुभयाक्रान्तः प्रस्विन्नोदपराजितः[1] ॥४१॥
अथाऽसौ दीनदीनास्यो मूर्च्छमानो मुहुर्मुहुः । वाष्पाकुलेक्षणोऽपश्यदस्याङ्गानि समन्ततः ॥४२॥
न क्षतं नखरेखाया अपि तुल्यमिहेक्ष्यते[2] । [3]अवस्थामीदृशीं केन भवेदमुपागतः ॥४३॥
इति ध्यायन् समुद्भूतवेपथुस्तद्विदं जनम् । आह्वाययद्विषण्णात्मा सूर्णं विद्वानपि स्वयम् ॥४४॥
यदा वैद्यगणैः सर्वैर्मन्त्रौषधिविशारदैः । प्रतिशिष्टः कलापारैः परीक्ष्य धरणीधरः ॥४५॥
तदाहताशतां प्राप्तो रामो मूर्च्छां समागतः । [4]पर्यासे वसुधापृष्ठे छिन्नमूलस्तरुर्यथा ॥४६॥
हारैश्चन्दननीरैश्च तालवृन्तानिलैर्निमैः । कृच्छ्रेण त्याजितो मोहं [5]विललाप सुविह्वलः ॥४७॥
समं शोकविषादाभ्यामसौ पीडनमाश्रितः । उत्ससर्ज यदश्रूणां प्रवाहं [6]पिहितानमम् ॥४८॥
वाष्पेण [7]पिहितं वक्त्रं रामदेवस्य लक्षितम् । विरलाम्भोदसंवीतचन्द्रमण्डलसन्निभम् ॥४९॥
अत्यन्तविक्लवीभूतं तमालोक्य तथाविधम् । वितानतां परिप्राप्तवन्तःपुरमहार्णवः ॥५०॥
दुःखसागरनिर्मग्नाः शुष्यद्गात्र्यः वरस्त्रियः । भृशं व्याप्तशिरो वाष्पाऽऽक्रन्दाभ्यां रोदसी समम् ॥५१॥
हा नाथ भुवनानन्द सर्वसुन्दरजीवित । प्रयच्छ वचितां वाचं क्वासि यातः किमर्थकम् ॥५२॥
अपराधादृते कस्मादस्मानेवं विमुञ्चसि । नन्वाऽऽगः सत्यमप्यास्ते जने [8]तिष्ठति नो चिरम् ॥५३॥
एतस्मिन्नन्तरे श्रुत्वा तद्वृत्तं लवणाङ्कुशौ । विषादं परमं प्राप्ताविति चिन्तामुपागतौ ॥५४॥

चेष्टाओंसे रहित हो गया था ॥४०॥ इस प्रकार लक्ष्मणको अपनी आत्मासे विमुक्त देख उद्वेग तथा तीव्र भयसे आक्रान्त राम पसीनासे तर हो गये ॥४१॥

अथानन्तर जिनका मुख अत्यन्त दीन हो रहा था, जो बार-बार मूर्च्छित हो जाते थे, और जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे, ऐसे राम सब ओरसे उनके अंगोंको देख रहे थे ॥४२॥ वे कह रहे थे कि इस शरीरमें कहीं नखकी खरोंच बराबर भी तो घाव नहीं दिखाई देता फिर यह ऐसी अवस्थाको किसके द्वारा प्राप्त कराया गया ?—इसकी यह दशा किसने कर दी ? ॥४३॥ ऐसा विचार करते-करते रामके शरीरमें कँप-कँपी छूटने लगी तथा उनकी आत्मा विषादसे भर गई । यद्यपि वे स्वयं विद्वान् थे तथापि उन्होंने शीघ्र ही इस विषयके जानकार लोगोंको बुलवाया ॥४४॥ जब मन्त्र और औषधिमें निपुण, कलाके पारगामी समस्त वैद्योंने परीक्षा कर उत्तर दे दिया तब निराशाको प्राप्त हुए राम मूर्च्छाको प्राप्त हो गये और उखड़े वृक्षके समान पृथिवीपर गिर पड़े ॥४५-४६॥ जब हार, चन्दन मिश्रित जल और तालवृन्तके अनुकूल पवनके द्वारा बड़ी कठिनाईसे मूर्च्छा छुड़ाई गई तब अत्यन्त विह्वल हो विलाप करने लगे ॥४७॥ चूँकि राम शोक और विषादके द्वारा साथ ही साथ पीड़ाको प्राप्त हुए थे इसीलिए वे मुखको आच्छादित करनेवाला अश्रुओंका प्रवाह छोड़ रहे थे ॥४८॥ उस समय आँसुओंसे आच्छादित रामका मुख विरले-विरले मेघोंसे ढँके चन्द्रमण्डलके समान जान पड़ता था ॥४९॥ उस प्रकारके गम्भीर हृदय रामको अत्यन्त दुःखी देख अन्तःपुर रूपी महासागर निर्मर्याद अवस्थाको प्राप्त हो गया अर्थात् उसके शोककी सीमा नहीं रही ॥५०॥ जो दुःखरूपी सागरमें निमग्न थीं तथा जिनके शरीर सूख गये थे ऐसी उत्तम स्त्रियोंने अत्यधिक आँसू और रोनेकी ध्वनिसे पृथिवी तथा आकाशको एक साथ व्याप्त कर दिया था ॥५१॥ वे कह रही थीं कि हा नाथ ! हा जगदानन्द ! हा सर्वसुन्दर जीवित ! प्रिय वचन देओ, कहाँ हो ? किस लिए चले गये हो ? ॥५२॥ इस तरह अपराधके बिना ही हमलोगोंको क्यों छोड़ रहे हो ? और अपराध यदि सत्य भी हो तो भी वह मनुष्यमें दीर्घ काल तक नहीं रहता ॥५३॥

इसी बीचमें यह समाचार सुनकर परम विषादको प्राप्त हुए लवण और अंकुश इस प्रकार

---

१ रामः । २. -मिहेष्यते म० । ३. अवस्थां कीदृशीं म० । ४. पर्यासो म० । ५. विललापि म० । ६. विहितानमम् म० । ७. विहितं म० । ८. तिष्ठति म०, ज० ।

धिगसारं मनुष्यत्वं नाऽतोऽस्त्यन्यन्महाधमम् । मृत्युर्यच्छत्यवस्कन्दं यदज्ञातो निमेषतः ॥५५॥
यो न निर्मूहितुं शक्यः सुरविद्याधरैरपि । नारायणोऽप्यसौ नीतः कालपाशेन [1]वश्यताम् ॥५६॥
आगाद्देव शरीरेण किमनेन धनेन च । अवधार्येति सम्बोधं वैदेहीजावुपेयतुः ॥५७॥
पुनर्गर्भाशयाद् भीतौ मत्वा सातक्रमद्वयम् । महेन्द्रोदयमुद्यानं शिविकाऽवस्थितौ गतौ ॥५८॥
तत्रामृतस्वराभिख्यं शरणीकृत्य संयतम् । बभूवतुर्महाभागौ श्रमणौ लवणाङ्कुशौ ॥५९॥
गृह्णतोरनयोर्दीक्षां तदा सत्तमचेतसोः । पृथिव्यामभवद् बुद्धिर्मृत्तिकागोलकादिता ॥६०॥
एकतः पुत्रविरहो भ्रातृमृत्युवशमन्यतः । इति शोकमहावर्ते परावर्तत राघवः ॥६१॥
राज्यतः पुत्रतश्चापि स्वभूताज्जीवितादपि । तथाऽपि [2]दयितोऽतोऽस्य परं लक्ष्मीधरः प्रियः ॥६२॥

आर्यागीतिच्छन्दः

कर्मनियोगेनैवं प्राणेऽवस्थामशोभनामाप्तजने ।
[3]सशोकं वैराग्यं च प्रतिपद्यन्ते विचित्रचित्ताः पुरुषाः ॥६३॥
कालं प्राप्य जनानां किञ्चिच्च निमित्तमात्रकं परमार्थम् ।
सम्बोधरविरुदेति स्वकृतविपाकेऽन्तरङ्गहेतौ जाते ॥६४॥

इत्यार्षे श्रीपद्मपुराणे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते लवणाङ्कुशतपोऽभिधानं नाम पञ्चदशोत्तरशतं पर्व ॥११५॥

विचार करने लगे कि सारहीन इस मनुष्य-पर्यायको धिक्कार हो। इससे बढ़कर दूसरा महानीच नहीं है क्योंकि मृत्यु बिना जाने ही निमेषमात्रमें इसपर आक्रमण कर देती है ॥५४-५५॥ जिसे देव और विद्याधर भी वश नहीं कर सके थे ऐसा यह नारायण भी कालके पाशसे वशीभूत अवस्थाको प्राप्त हो गया ॥५६॥ इन नश्वर शरीर और नश्वर धनसे हमें क्या आवश्यकता है ? ऐसा विचारकर सीताके दोनों पुत्र प्रतिबोधको प्राप्त हो गये ॥५७॥ तदनन्तर 'पुनः गर्भवासमें न आना पड़े' इससे भयभीत हुए दोनों वीर, पिताके चरण-युगलको नमस्कार कर पालकीमें बैठ महेन्द्रोदय नामक उद्यानमें चले गये ॥५८॥ वहाँ अमृतस्वर नामक मुनिराजकी शरण प्राप्तकर दोनों बड़भागी मुनि हो गये ॥५९॥ उत्तम चित्तके धारक लवण और अंकुश जब दीक्षा ग्रहण कर रहे थे तब विशाल पृथिवीके ऊपर उनकी मिट्टीके गोलेके समान अनादरपूर्ण बुद्धि हो रही थी ॥६०॥ एक ओर पुत्रोंका विरह और दूसरी ओर भाईकी मृत्युका दुःख—इस प्रकार राम शोक रूपी बड़ी भँवरमें घूम रहे थे ॥६१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि रामको लक्ष्मण राज्यसे, पुत्रसे, स्त्रीसे और अपने द्वारा धारण किये जीवनसे भी कहीं अधिक प्रिय थे ॥६२॥ संसारमें मनुष्य नाना प्रकारके हृदयके धारक हैं इसीलिए कर्मयोगसे आप्तजनोंके ऐसी अशोभन अवस्थाको प्राप्त होनेपर कोई तो शोकको प्राप्त होते हैं और कोई वैराग्यको प्राप्त होते हैं ॥६३॥ जब समय पाकर स्वकृत कर्मका उदयरूप अन्तरङ्ग निमित्त मिलता है तब बाह्यमें किसी भी परपदार्थका निमित्त पाकर जीवोंके प्रतिबोध रूपी सूर्य उदित होता है उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो जाता है ॥६४॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा विरचित पद्मपुराणमें लक्ष्मणका मरण और लवणांकुशके तपका वर्णन करनेवाला एकसौ पन्द्रहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥११५॥

---

१. पश्यताम् म० । २. दयितातोऽस्य म० । ३. स (निः) शोकं वैराग्यं म० । स न शोकं वैराग्यं च ब० ।

षोडशोत्तरशतं पर्व

कालधर्मं परिप्राप्ते राजन् लक्ष्मणपुङ्गवे । त्यक्तं युगप्रधानेन रामेण व्याकुलं जगत् ॥१॥
[1]स्वरूपमृदु सद्गन्धं स्वभावेन हरेर्वपुः । जीवेनाऽपि परित्यक्तं न पद्माभस्तदाऽत्यजत् ॥२॥
आलिङ्गति निधायाङ्के मार्ष्टि जिघ्रति [2]निकृन्तति । निषीदति समाधाय सस्पृष्टं भुजपञ्जरे ॥३॥
अवाप्नोति न विश्वासं क्षणमप्यस्य मोचने । बालोऽमृतफलं यद्वत् स तं मेने महाप्रियम् ॥४॥
विललाप च हा भ्रातः किमिदं युक्तमीदृशम् । यत्परित्यज्य मां गन्तुं मतिरेकाकिना कृता ॥५॥
ननु नाऽहं किमु ज्ञातस्तवः स्वद्विरहासहः । यन्मां निक्षिप्य दुःखाग्नावकस्मादिदमीहसे ॥६॥
हा तात किमिदं क्रूरं परं व्यवसितं त्वया । यदसंवाद्य मे लोकमन्यं दूरं प्रयाणकम् ॥७॥
प्रयच्छ सकृदप्याशु वत्स प्रतिवचोऽमृतम् । दोषात् किं नाऽसि किं क्रुद्धो ममापि सुविनीतकः ॥८॥
कृतवानसि नो जातु मानं मयि मनोहर । अन्य एवाऽसि किं जातो वद वा किं मया कृतम् ॥९॥
दूरादेवान्यदा दृष्ट्वा मामभ्युत्थाय सादरम्[3] । रामं सिंहासने कृत्वा महीपृष्ठं न्यसेवथाः ॥१०॥
अधुना मे [4]शिरस्यस्मिन्निन्दुकान्तनखावली । पादेऽपि लक्ष्मणन्यस्ते रुषे सूरयसि नो कथम् ॥११॥
देव त्वरितमुत्तिष्ठ मम पुत्रौ वनं गतौ । दूरं न गच्छतो यावत्तावत्क्षात्रानयामहे ॥१२॥
त्वया विरहिता एताः कृतार्तकुररीरवाः । भवद्गुणग्रहग्रस्ता विलोलन्ति महीतले ॥१३॥
अङ्गहारशिरोरत्नमेखलाकुण्डलादिकम् । आक्रन्दन्तं प्रियालोकं वारयस्याकुलं न किम् ॥१४॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! लक्ष्मणके मृत्युको प्राप्त होनेपर युग-प्रधान रामने इस व्याकुल संसारको छोड़ दिया ॥ १ ॥ उस समय स्वरूपसे कोमल और स्वभाव सुगन्धित नारायणका शरीर यद्यपि निर्जीव हो गया था तथापि राम उसे छोड़ नहीं रहे थे ॥२॥ वे उसका आलिङ्गन करते थे, गोदमें रखकर उसे पोंछते थे, सूँघते थे, चूमते थे और बड़ी उमंग के साथ भुजपंजरमें रखकर बैठते थे ॥३॥ इसके छोड़नेमें वे क्षणभरके लिए भी विश्वासको प्राप्त नहीं होते थे। जिस प्रकार बालक अमृत फलको महाप्रिय मानता है। उसी प्रकार वे उस मृत शरीर को महाप्रिय मानते थे ॥४॥ कभी विलाप करने लगते कि हाय भाई ! क्या तुझे यह ऐसा करना उचित था। मुझे छोड़कर अकेले ही तूने चल दिया ॥५॥ क्या तुझे यह विदित नहीं कि मैं तेरे विरहको सहन नहीं कर सकता जिससे तू मुझे दुःख रूपी अग्निमें डालकर अकस्मात् यह करना चाहता है ॥६॥ हाय तात ! तूने यह अत्यन्त क्रूर कार्य क्यों करना चाहा जिससे कि मुझसे पूछे बिना ही परलोकके लिए प्रयाण कर दिया ॥७॥ हे वत्स ! एक बार तो प्रत्युत्तर रूपी अमृत शीघ्र प्रदान कर। तू तो बड़ा विनयवान् था फिर दोषके बिना ही मेरे ऊपर भी कुपित क्यों हो गया है ? ॥८॥ हे मनोहर ! तूने मेरे ऊपर कभी मान नहीं किया, फिर अब क्यों अन्य-रूप हो गया है ? कह, मैंने क्या किया है ? ॥९॥ तू अन्य समय तो रामको दूरसे ही देखकर आदरपूर्वक खड़ा हो जाता था और उसे सिंहासनपर बैठाकर स्वयं पृथिवीपर नीचे बैठता था ॥१०॥ हे लक्ष्मण ! इस समय चन्द्रमाके समान सुन्दर नखावलीसे युक्त तेरा पैर मेरे मस्तकपर रखा है फिर भी तू क्रोध ही करता है क्षमा क्यों नहीं करता ? ॥११॥ हे देव ! शीघ्र उठ, मेरे पुत्र वनको चले गये हैं सो जब तक वे दूर नहीं पहुँच जाते हैं तब तक उन्हें वापिस ले आवें ॥१२॥ तुम्हारे गुण ग्रहणसे मस्त ये स्त्रियाँ तुम्हारे बिना कुररीके समान करुण शब्द करती हुई पृथिवीतलमें लोट रही हैं ॥१३॥ हार, चूड़ामणि, मेखला तथा कुण्डल आदि आभूषण नीचे गिर गये हैं ऐसी

---

१. स्वरूपं मृदु म० । २. लुम्पति । ३. -माहृतः म० । ४. निषेवय म० । ५. सरस्यस्मिन् ।

किं करोमि क्व गच्छामि त्वया विरहितोऽधुना । स्थानं तन्नानुपश्यामि जायते यत्र निर्वृतिः ॥१५॥
आलेचनकमेतत्ते पश्यामि[1]यद्यपि[2]प्रियम्, अपूरकामकं तन्मे त्यक्तुं समुचितं तव ॥१६॥
मरणव्यसने भ्रातुरपूर्वोऽयं ममान्तकम् । दग्धुं शोकाग्निरुग्रः[3] किं त्वदेनि विमुञ्चसि ॥१७॥
न कृशानुर्दहत्येवं नैवं शोषयते विषम् । उपमानविनिर्मुक्तं यथा भ्रातुः परायणम् ॥१८॥
अहो लक्ष्मीधर क्रोधधैर्यं संहर साम्प्रतम् । वेलाऽतीताऽनगाराणां महर्षीणामियं हि सा ॥१९॥
अयं रविरुपैत्यस्तं बोधस्वैतानि साम्प्रतम् । पद्मानि त्वत्समानि सरसां जले ॥२०॥
शय्यां व्यरचयत् क्षिप्रं कृत्वा विष्णुं भुजान्तरे । व्यापारान्तरनिर्मुक्तः स्वप्तुं रामः प्रचक्रमे ॥२१॥
श्रवणे देवसद्भावं ममैकस्य निवेदय । केनासि कारणेनैतामवस्थामीदृशीमितः ॥२२॥
प्रसन्नचन्द्रकान्तं ते वक्त्रमासीन्मनोहरम् । अधुना विगतच्छायं कस्मादीदृगिदं स्थितम् ॥२३॥
मृदुप्रभञ्जनाऽऽधूतकरपल्लवसन्निभे । आस्तां निरीक्षणे कस्मादधुना म्लानिमागते ॥२४॥
ब्रूहि ब्रूहि किमिष्टं ते सर्वं सम्पादयाम्यहम् । एवं न शोभसे विष्णो सव्यापारं मुखं कुरु ॥२५॥
देवी सीता स्मृता किन्ते समदुःखसहायिनी । परलोकं गता साध्वी विषण्णोऽसि भवेत्ततः[2] ॥२६॥
विषादं मुञ्च लक्ष्मीश विरुद्धा[3] ऋक्षसंहतिः । अवस्कन्दागता सेयं साकेतामवगाहते ॥२७॥
क्रुद्धस्यापीदृशं वक्त्रं मनोहर न जातुचित् । तवाऽऽसीदधुना वत्स मुञ्च मुञ्च विचेष्टितम् ॥२८॥

करुण रुदन करती हुई इन व्याकुल स्त्रियोंको मना क्यों नहीं करते हो ? ॥१४॥ अब तेरे विना क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? वह स्थान नहीं देखता हूँ जहाँ पहुँचनेपर सन्तोष उत्पन्न हो सके ॥१५॥ जिसे देखते-देखते तृप्ति ही नहीं होती थी ऐसे तेरे इस मुखको मैं अब भी देख रहा हूँ फिर अनुरागसे भरे हुए मुझे छोड़ना क्या तुझे उचित था ? ॥१६॥ इधर भाईपर मरणरूपी संकट पड़ा है उधर यह अपूर्व शोकाग्नि मेरे शरीरको जलानेके लिए तत्पर है, हाय मैं अभागा क्या करूँ ? ॥१७॥ भाईका उपमातीत मरण शरीरको जिस प्रकार जलाता और सुखाता है उस प्रकार न अग्नि जलाती है और न विष सुखाता है ॥१८॥ अहो लक्ष्मण ! इस समय क्रोधकी आसक्तिको दूर करो । यह गृहत्यागी मुनियोंके संचारका समय निकल गया ॥१९॥ देखो, यह सूर्य अस्त होने जा रहा है और तालाबोंके जलमें कमल तुम्हारे निद्रा निमीलित नेत्रोंके समान हो रहे हैं ॥२०॥ यह कहकर अन्य सब कार्योंसे निवृत्त रामने शीघ्र ही शय्या बनाई और लक्ष्मण को छातीसे लगा सोनेका उपक्रम किया ॥२१॥ वे कहते कि हे देव ! इस समय मैं अकेला हूँ । आप मेरे कानमें अपना अभिप्राय बता दो कि किस कारणसे तुम इस अवस्थाको प्राप्त हुए हो ? ॥२२॥ तुम्हारा मनोहर मुख तो उज्ज्वल चन्द्रमाके समान सुन्दर था पर इस समय यह ऐसा कान्तिहीन कैसे हो गया ? ॥२३॥ तुम्हारे नेत्र मन्द-मन्द वायुसे कम्पित पल्लवके समान थे फिर इस समय म्लानिको प्राप्त कैसे हो गये ? ॥२४॥ कहो, कहो, तुझे क्या इष्ट है ? मैं सब अभी ही पूर्ण किये देता हूँ । हे विष्णो ! तू इस प्रकार शोभा नहीं देता, मुखको व्यापारसहित कर अर्थात् मुखसे कुछ बोल ॥२५॥ क्या तुझे सुख-दुःखमें सहायता देनेवाली सीता देवीका स्मरण हो आया है परन्तु वह साध्वी तो परलोक चली गई है क्या इसी लिए तुम विषादयुक्त हो ॥२६॥ हे लक्ष्मीपते ! विषाद छोड़ो, देखो विद्याधरोंका समूह विरुद्ध होकर आक्रमणके लिए आ पहुँचा है और अयोध्यामें प्रवेश कर रहा है ॥२७॥ हे मनोहर ! कभी क्रुद्ध दशामें भी तुम्हारा ऐसा मुख नहीं हुआ फिर अब क्यों रहा है ? हे वत्स ! ऐसी विरुद्ध चेष्टा अब तो छोड़ो ॥२८॥

---

१. वैमुख्यम्, मरणमित्यर्थः । २. विषण्णोऽसि म० । ३. विद्याधरसमूहः ।

प्रसीदैव [1]तवानृतपूर्वं पादौ नमाम्यहम् । ननु त्वयातोऽखिले लोके मम त्वमनुकूलने ॥२९॥
असमानप्रकाशस्त्वं जगद्दीपः समुन्नतः । [2]चलिताऽकालवातेन प्रायो निर्वापितोऽभवत् ॥३०॥
राजराजत्वमासाद्य नीत्वा लोकं महोत्सवम् । अनाथीकृत्य तं कस्माद् भवितागमनं तव ॥३१॥
चक्रेण द्विषतां चक्रं जित्वा सकलमूर्जितम् । कथं नु सहसेऽद्य त्वं कालचक्रपराभवम् ॥३२॥
राजश्रिया तवाराजद्यदिदं सुन्दरं वपुः । तदद्यापि तथैवेदं शोभते जीवितोज्झितम् ॥३३॥
निद्रां राजेन्द्र मुञ्चस्व समतीता विभावरी । निवेदयति सन्ध्येयं परिप्राप्तं दिवाकरम् ॥३४॥
सुप्रभातं जिनेन्द्राणां लोकालोकावलोकिनाम् । अन्येषां भव्यपद्मानां शरणं मुनिसुव्रतः ॥३५॥
प्रभातमपि जानामि ध्वान्तमेतदहं परम् । वदनं पश्यतस्तेऽद्य पश्यामि गतविभ्रमम् ॥३६॥
उत्तिष्ठ मा चिरं स्वाप्सीर्मुञ्च निद्रां विचक्षण । आश्रयावः सभास्थानं तिष्ठ सामन्तदर्शने ॥३७॥
भासो विनिद्रतामेष सशोकः कमलाकरः । [3]कस्मादभ्युत्थितस्त्वं तु निद्रितं सेवसे भवान् ॥३८॥
विपरीतमिदं जातु त्वया नैवमनुष्ठितम् । उत्तिष्ठ राजकृत्येषु भवावहितमानसः ॥३९॥
भ्रातस्त्वयि चिरं सुप्ते जिनवेश्मसु नोचिताः । क्रियन्ते चारुसङ्गीता भेरीमङ्गलनिःस्वनाः ॥४०॥
श्लथप्रभातकर्तव्याः करुणासक्तचेतसः । उद्वेगं परमं प्राप्ता यतयोऽपि स्वयादृशे ॥४१॥
वीणावेणुमृदङ्गादिनिस्वानपरिवर्जिता । त्वद्वियोगाकुलीभूता नगरीयं न राजते ॥४२॥

प्रसन्न होओ, देखो मैंने कभी तुझे नमस्कार नहीं किया किन्तु आज तेरे चरणोंमें नमस्कार करता हूँ। अरे! तू तो मुझे अनुकूल रखनेके लिए समस्त लोकमें प्रसिद्ध है ॥२९॥ तू अनुपम प्रकाशका धारी बहुत बड़ा लोकप्रदीप है सो इस असमयमें चलनेवाली प्रचण्ड वायुके द्वारा प्रायः बुझ गया है ॥३०॥ तुमने राजाधिराज पद पाकर लोकको बहुत भारी उत्सव प्राप्त कराया था अब उसे अनाथकर तुम्हारा आना किस प्रकार होगा ? ॥३१॥ अपने चक्ररत्नके द्वारा शत्रुओंके समस्त सबल दलको जीतकर अब तुम कालचक्रका पराभव क्यों सहन करते हो ॥३२॥ तुम्हारा जो सुन्दर शरीर पहले राजलक्ष्मीसे जैसा सुशोभित था वैसा ही अब निर्जीव होनेपर भी सुशोभित है ॥३३॥ हे राजेन्द्र ! उठो, निद्रा छोड़ो, रात्रि व्यतीत हो गई, यह सन्ध्या सूचित कर रही है कि अब सूर्यका उदय होनेवाला है ॥३४॥

लोकालोकको देखनेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌का सदा सुप्रभात है तथा भगवान् मुनिसुव्रतदेव अन्य भव्य जीवरूपी कमलोंके लिए शरणस्वरूप हैं ॥३५॥ इस प्रभातको भी मैं परम अन्धकार स्वरूप ही जानता हूँ क्योंकि मैं तुम्हारे मुखको चेष्टारहित देख रहा हूँ ॥३६॥ हे चतुर ! उठ, देर तक मत सो, निद्रा छोड़, चल सभास्थलमें चलें, सामन्तोंको दर्शन देनेके लिए सभास्थलमें बैठ ॥३७॥ देख, यह शोकसे भरा कमलाकर विनिद्र अवस्थाको प्राप्त हो गया है—विकसित हो गया है पर तू विद्वान् होकर भी निद्राका सेवन क्यों कर रहा है ? ॥३८॥ तूने कभी ऐसी विपरीत चेष्टा नहीं की अतः उठ और राजकार्योंमें सावधानचित्त हो ॥३९॥ हे भाई ! तेरे बहुत समय तक सोते रहनेसे जिन-मन्दिरोंमें सुन्दर सङ्गीत तथा भेरियोंके माङ्गलिक शब्द आदि उचित क्रियाएँ नहीं हो रही हैं ॥४०॥ तेरे ऐसे होनेपर जिनके प्रातःकालीन कार्य शिथिल हो गये ऐसे दयालु मुनिराज भी परम उद्वेगको प्राप्त हो रहे हैं ॥४१॥ तुम्हारे वियोगसे दुःखी हुई यह नगरी वीणा बाँसुरी तथा मृदङ्ग आदिके शब्दसे रहित होनेके कारण सुशोभित नहीं

१. तवानृतपूर्वं म० । २. चलिताकाल म० । ३. कस्मादभ्युदितस्त्वं तु निन्दितं म० ।

आर्याच्छन्दः

पूर्वोपचितमशुद्धं नूनं मे कर्म पाकमायातम् ।
भ्रातृवियोगव्यसनं प्राप्तोऽस्मि यदीदृशं कष्टम् ॥४३॥
युद्ध इव शोकभाजश्चैतन्यसमागमानन्दम् ।
उत्तिष्ठ मानदक्षे कुरु सकृदाप्यन्तखिन्नस्य ॥४४॥

इत्यार्षे श्रीपद्मपुराणे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते रामदेवविप्रलापं नाम षोडशोत्तरशतं पर्व ॥११६॥

हो रही है ॥४२॥ जान पड़ता है कि मेरा पूर्वोपार्जित पाप कर्म उदयमें आया है इसीलिए मैं भाईके वियोगसे दुःखपूर्ण ऐसे कष्टको प्राप्त हुआ हूँ ॥४३॥ हे मानव सूर्य ! जिस प्रकार तूने पहले युद्धमें सचेत हो मुझ शोकातुरके लिए आनन्द उत्पन्न किया था उसी प्रकार अब भी उठ और अत्यन्त खेदसे खिन्न मेरे लिए एक बार आनन्द उत्पन्न कर ॥४४॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य प्रणीत पद्मपुराणमें श्रीरामदेवके विलापका वर्णन करनेवाला एक सौ सोलहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥११६॥

सप्तदशोत्तरशतं पर्व

ततो विदितवृत्तान्ताः सर्वे विद्याधराधिपाः । सह स्त्रीभिः समायातास्त्वरिताः कोशलां पुरीम् ॥१॥
विभीषणः समं पुत्रैश्चन्द्रोदरनृपात्मजः । समेतः परिवर्गेण सुग्रीवः शशिवर्द्धनः ॥२॥
बाष्पविप्लुतनेत्रास्ते सम्भ्रान्तमनसोऽविशन् । भवनं पद्मनाभस्य भरिताञ्जलयो नताः ॥३॥
विषादिनो विधिं कृत्वा पुरस्तात्ते महीतले । उपविश्य क्षणं स्थित्वा मन्दं व्यज्ञापयन्निदम् ॥४॥
देव यद्यपि दुर्मोचः शोकोऽस्य परमात्मजः । ज्ञातज्ञेयस्तथापि त्वयैनं सन्त्यक्तुमर्हसि ॥५॥
एवमुक्त्वा स्थितेष्वेषु वचः प्रोचे विभीषणः । परमार्थस्वभावस्य लोकतत्त्वविचक्षणः ॥६॥
अनादिनिधना राजन् स्थितिरेषा व्यवस्थिता । अद्यना नेयमस्यैव प्रवृत्ता भुवनोदरे ॥७॥
जातेनाऽवश्यमर्त्तव्यमत्र संसारपञ्जरे । प्रतिक्रियाऽस्ति नो मृत्योरुपायैर्विविधैरपि ॥८॥
अनार्य्ये[1] नियतं देहे शोकस्यालम्बनं मुधा । उपायैर्हि प्रवर्त्तन्ते स्वार्थस्य कृतबुद्धयः ॥९॥
आक्रन्दितेन नो कश्चित्परलोकगतो गिरम् । प्रयच्छति ततः शोकं न राजन् कर्तुमर्हसि ॥१०॥
नारीपुरुषसंयोगाच्छरीराणि शरीरिणाम् । उत्पद्यन्ते व्ययन्ते च प्राससाम्यानि बुद्बुदैः ॥११॥
लोकपालसमेतानामिन्द्राणामपि नाकतः । [2]नष्टा योनिजवेहानां प्रच्युतिः पुण्यसंक्षये ॥१२॥
गर्भाक्लिष्टे रुजाकीर्णे तृणबिन्दुचलाचले । क्लेदकैकससङ्घाते काऽऽस्था मार्यशरीरके ॥१३॥
अजरामरणंमन्यः किं शोचसि जनो मृतम् । मृत्युवक्त्रान्तरक्षिप्तमात्मानं किं न शोचति ॥१४॥

समाचार मिलनेपर समस्त विद्याधर राजा अपनी स्त्रियोंके साथ शीघ्र ही अयोध्यापुरी आये ॥१॥ अपने पुत्रोंके साथ विभीषण, राजा विराधित, परिजनोंसे सहित सुग्रीव और चन्द्रवर्धन आदि सभी लोग आये ॥२॥ जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे तथा मन घबड़ाये हुए थे ऐसे सब लोगोंने अञ्जलि बाँधे-बाँधे रामके भवनमें प्रवेश किया ॥३॥ विषादसे भरे हुए सब लोग योग्य शिष्टाचारकी विधि कर रामके आगे पृथिवीतलपर बैठ गये और क्षणभर चुपचाप बैठनेके बाद धीरे-धीरे यह निवेदन करने लगे कि हे देव ! यद्यपि परम इष्टजनके वियोगसे उत्पन्न हुआ यह शोक दुःखसे छूटने योग्य है तथापि आप पदार्थके ज्ञाता हैं अतः इस शोकको छोड़नेके योग्य हैं ॥४-५॥ इस प्रकार कहकर जब सब लोग चुप बैठ गये तब परमार्थ स्वभाववाले आत्माके लौकिक स्वरूपके जाननेमें निपुण विभीषण निम्नाङ्कित वचन बोला ॥६॥ उसने कहा कि हे राजन् ! यह स्थिति अनादिनिधन है। संसारके भीतर आज इन्हीं एककी यह दशा नहीं हुई है ॥७॥ इस संसाररूपी पिंजड़ेके भीतर जो उत्पन्न हुआ है उसे अवश्य मरना पड़ता है। नाना उपायोंके द्वारा भी मृत्युका प्रतिकार नहीं किया जा सकता ॥८॥ जब यह शरीर निश्चित ही विनश्वर है तब इसके विषयमें शोकका आश्रय लेना व्यर्थ है। यथार्थमें बात यह है कि जो कुशलबुद्धि मनुष्य हैं वे आत्महितके उपायोंमें ही प्रवृत्ति करते हैं ॥९॥ हे राजन् ! परलोक गया हुआ कोई मनुष्य रोनेसे उत्तर नहीं देता इसलिए आप शोक करनेके योग्य नहीं हैं ॥१०॥ स्त्री और पुरुषके संयोगसे प्राणियोंके शरीर उत्पन्न होते हैं और पानीके बबूलेके समान अनायास ही नष्ट हो जाते हैं ॥११॥पुण्यक्षय होनेपर जिनका वैक्रियिक शरीर नष्ट हो गया है ऐसे लोकपालसहित इन्द्रों को भी स्वर्गसे च्युत होना पड़ता है ॥१२॥ गर्भके क्लेशोंसे युक्त, रोगोंसे व्याप्त, तृणके ऊपर स्थित बूँदके समान चञ्चल तथा मांस और हड्डियोंके समूह स्वरूप मनुष्यके तुच्छ शरीरमें क्या आदर करना है ? ॥१३॥ अपने आपको अजर-अमर मानता हुआ यह मनुष्य मृत

---

१. अनार्ये ब, अनार्ये ख०, अनार्यो क० । २. नष्टयोनिजवेहानां म० ।

यदा निधनमस्यैव केवलस्य तदा सति । उच्चैराक्रन्दितुं युक्तं न सामान्ये पराभवे ॥१५॥
यदैव हि जनो जातो मृत्युनाधिष्ठितस्तदा । तत्र साधारणे धर्मे ध्रुवे किमिति शोच्यते ॥१६॥
अभीष्टसङ्गमाकाङ्क्षी मुधा दुष्यति शोकवान् । शबरार्त्त इवारण्ये चमरः केशलोभतः ॥१७॥
सर्वैरेवियदास्माभिरितो गम्यं वियोगतः । तदा किं क्रियते शोकः प्रथमं तत्र गम्यते ॥१८॥
लोकस्य साहसं पश्य निर्भीस्तिष्ठति यत्पुरः । मृत्योर्वज्राग्रदण्डस्य सिंहस्येव कुरङ्गकः ॥१९॥
लोकनाथं विमुच्यैकं कश्चिदन्यः श्रुतस्त्वया । पाताले भूतले वा यो न जातो मृत्युनाऽर्दितः ॥२०॥
संसारमण्डलापन्नं दह्यमानं सुगन्धिना । सदा च विन्ध्यदावाग्निं भुवनं किं न वीक्षसे ॥२१॥
पर्यट्य भवकान्तारं प्राप्य [1]कामभुजिष्यताम् । मत्तद्विपा इवाऽऽयान्ति कालपाशस्य वश्यताम् ॥२२॥
धर्ममार्गं समालम्ब्य गतोऽपि त्रिदशालयम् । अशाश्वततया नद्या पात्यते तटवृक्षवत् ॥२३॥
सुरमानवनाथानां चयाः शतसहस्रशः । निधनं समुपानीताः कालमेघेन वह्नयः ॥२४॥
दूरमम्बरमुत्प्लुत्य समापाय रसातलम् । स्थानं [2]तत्र प्रपश्यामि [3]यत्र [4]मृत्योरगोचरः [5] ॥२५॥
षष्ठकालक्षये सर्वं यायते भारतं जगत् । धराधरा विशीर्यन्ते मर्त्यकाये तु का कथा ॥२६॥
वज्रपंभवपुर्बद्धा [5]अप्यवध्याः सुरासुरैः । नन्वनित्यतया लब्धा रम्भागर्भोपमैस्तु किम् ॥२७॥

व्यक्तिके प्रति क्यों शोक करता है ? यह मृत्युकी डाँढ़ोंके बीच क्लेश उठानेवाले अपने आपके प्रति शोक क्यों नहीं करता ? ॥१४॥ यदि इन्हीं एकका मरण होता तब तो जोरसे रोना उचित था परन्तु जब यह मरण सम्बन्धी पराभव सबके लिए समानरूपसे प्राप्त होता है तब रोना उचित नहीं है ॥१५॥ जिस समय यह प्राणी उत्पन्न होता है उसी समय मृत्यु इसे आ घेरती है । इस तरह जब मृत्यु सबके लिए साधारण धर्म है तब शोक क्यों किया जाता है ? ॥१६॥ जिस प्रकार जङ्गलमें भीलके द्वारा पीड़ित चमरी मृग—बालोंके लोभसे दुःख उठाता है उसी प्रकार इष्ट पदार्थोंके समागमकी आकांक्षा रखनेवाला यह प्राणी शोक करता हुआ व्यर्थ ही दुःख उठाता है ॥१७॥ जब हम सभी लोगोंको वियुक्त होकर यहाँसे जाना है तब सर्वप्रथम उनके चले जानेपर शोक क्यों किया जा रहा है ? ॥१८॥ अरे, इस प्राणीका साहस तो देखो जो यह सिंहके सामने मृगके समान वज्रदण्डके धारक यमके आगे निर्भय होकर बैठा है ॥१९॥ एक लक्ष्मीधरको छोड़कर समस्त पाताल अथवा पृथिवीतलपर किसी ऐसे दूसरेका नाम आपने सुना कि जो मृत्युसे पीड़ित नहीं हुआ हो ॥२०॥ जिस प्रकार सुगन्धिसे उपलक्षित विन्ध्याचलका वन, दावानलसे जलता है उसी प्रकार संसारके चक्रको प्राप्त हुआ यह जगत् कालानलसे जल रहा है, यह क्या आप नहीं देख रहे हैं ? ॥२१॥ संसाररूपी अटवीमें घूमकर तथा कामकी आधीनता प्राप्तकर ये प्राणी मदोन्मत्त हाथियोंके समान कालपाशकी आधीनताको प्राप्त करते हैं ॥२२॥ यह प्राणी धर्मका मार्ग प्राप्तकर यद्यपि स्वर्ग पहुँच जाता है तथापि नश्वरताके द्वारा उस तरह नीचे गिरा दिया जाता है जिस प्रकार कि नदीके द्वारा तटका वृक्ष ॥२३॥ जिस प्रकार प्रलयकालीन मेघके द्वारा अग्नियाँ नष्ट हो जाती हैं, उसी प्रकार नरेन्द्र और देवेन्द्रोंके लाखों समूह कालरूपी मेघके द्वारा नाशको प्राप्त हो चुके हैं ॥२४॥ आकाशमें बहुत दूर तक उड़कर और नीचे रसातलमें बहुत दूर तक जाकर भी मैं उस स्थानको नहीं देख सका हूँ जो मृत्युका अगोचर न हो ॥२५॥ छठवें कालकी समाप्ति होनेपर यह समस्त भारतवर्ष नष्ट हो जाता है और बड़े-बड़े पर्वत भी विशीर्ण हो जाते हैं तब फिर मनुष्यके शरीरकी तो कथा ही क्या है ? ॥२६॥ जो वज्रमय शरीरसे युक्त थे तथा सुर और असुर भी जिन्हें मार नहीं सकते थे ऐसे लोगोंको भी अनित्यताने प्राप्त कर लिया है फिर केलेके भीतरी भागके समान निःसार मनुष्योंकी तो बात ही

१. मदनपारवश्यम् । २. तत्र म० । ३. यत्र म० । ४. 'यत्र मृत्युरगोचरः' इति शुद्धं प्रतिभाति ।
५. अप्यवन्ध्या० म० ।

जनन्यापि समाश्लिष्टं मृत्युर्हरति देहिनम् । पातालान्तर्गतं यद्वत् काद्रवेयं[1] द्विजोत्तमः[2] ॥२८॥
हा भ्रातर्दयिते पुत्रेत्येवं क्रन्दन् सुदुःखितः । कालाहिना जगद्भग्नो ग्रासतामुपनीयते ॥२९॥
करोम्येतत्करिष्यामि वदत्येवमनिष्टधीः । जनो विशति कालास्यं भीमं पोत इवार्णवम् ॥३०॥
जनं भवान्तरं प्राप्तमनुगच्छेज्जनो यदि । द्विष्टैरिष्टैश्च नो जातु जायेत विरहस्ततः ॥३१॥
परे स्वजनमामी यः कुरुते स्नेहसम्मतिम् । विशति क्लेशवह्निं स मनुष्यकलभो ध्रुवम् ॥३२॥
स्वजनौघाः परिप्राप्ताः संसारे यैऽस्य धारिणाम् । सिन्धुसैकतसङ्घाता अपि सन्ति न तत्समाः ॥३३॥
य एव लालितोऽन्यत्र विविधप्रियकारिणा । स एव रिपुतां प्राप्तो हन्यते तु महाऽसुभा ॥३४॥
पीतौ पयोधरौ यस्य जीवस्य जननान्तरे । त्रस्ताहतस्य तस्यैव खाद्यते मांसमप्रं धिक् ॥३५॥
स्वामीति पूजितः पूर्वं यः शिरोनमनादिभिः । स एव दासतां प्राप्तो हन्यते पादताडनैः ॥३६॥
विभोः पश्यत मोहस्य [3]शक्तिं येन वशीकृतः । जनोऽन्विष्यति संयोगं हस्तेनेव महोरगम् ॥३७॥
प्रदेशस्तिलमात्रोऽपि विद्यते न स विद्यते । यत्र जीवः परिप्राप्तो न मृत्युं जन्म एव वा ॥३८॥
ताम्रादिकलिलं पीतं जीवेन नरकेषु यत् । [4]स्वयम्भूरमणे तावत् सलिलं न हि विद्यते ॥३९॥
वराहभवयुक्तेन यो नीहारोऽशनीकृतः । मन्ये विन्ध्यसहस्रेभ्यो बहुशोऽत्यन्तदूरतः ॥४०॥
परस्परस्वनाशेन कृता या मूर्द्धसंहतिः । ज्योतिषां मार्गमुल्लङ्घ्य यावत्सा यदि रुध्यते ॥४१॥

क्या है ? ॥२७॥ जिस प्रकार पातालके अन्दर छिपे हुए नागको गरुड़ खींच लेता है उसी प्रकार मातासे आलिङ्गित प्राणीको भी मृत्यु हर लेती है ॥२८॥ हाय भाई ! हाय प्रिये ! हाय पुत्र ! इस प्रकार चिल्लाता हुआ यह अत्यन्त दुःखी संसाररूपी मेंढक, कालरूपी साँपके द्वारा अपना ग्रास बना लिया जाता है ॥२९॥ 'मैं यह कर रहा हूँ और यह आगे करूँगा' इस प्रकार दुर्बुद्धि मनुष्य कहता रहता है फिर भी यमराजके भयंकर मुखमें उस तरह प्रवेश कर जाता है जिस तरह कि कोई जहाज समुद्रके भीतर ॥३०॥ यदि भवान्तरमें गये हुए मनुष्यके पीछे यहाँके लोग जाने लगें तो फिर शत्रु मित्र—किसीके भी साथ कभी वियोग ही न हो ॥३१॥ जो परको स्वजन मानकर उसके साथ स्नेह करता है वह नरकुञ्जर अवश्य ही दुःखरूपी अग्निमें प्रवेश करता है ॥३२॥ संसारमें प्राणियोंको जितने आत्मीयजनोंके समूह प्राप्त हुए हैं समस्त समुद्रोंकी बालूके कण भी उनके बराबर नहीं हैं। भावार्थ—असंख्यात समुद्रोंमें बालूके जितने कण हैं उनसे भी अधिक इस जीवके आत्मीयजन हो चुके हैं ॥३३॥ नाना प्रकारकी प्रियचेष्टाओंको करनेवाला यह प्राणी, अन्य भवमें जिसका बड़े लाड़-प्यारसे लालन-पालन करता है वही दूसरे भवमें इसका शत्रु हो जाता है और तीव्र क्रोधको धारण करनेवाले उसी प्राणीके द्वारा मारा जाता है ॥३४॥ जन्मान्तरमें जिस प्राणीके स्तन पिये हैं, इस जन्ममें भयभीत एवं मारे हुए उसी जीवका माँस खाया जाता है, ऐसे संसारको धिक्कार है ॥३५॥ 'यह हमारा स्वामी है' ऐसा मानकर जिसे पहले शिरोनमन—शिर झुकाना आदि विनयपूर्ण क्रियाओंसे पूजित किया था वही इस जन्ममें दासताको प्राप्त होकर लातोंसे पीटा जाता है ॥३६॥ अहो ! इस सामर्थ्यवान मोहकी शक्ति तो देखो जिसके द्वारा वशीभूत हुआ यह प्राणी इष्टजनोंके संयोगको उस तरह ढूँढ़ता फिरता है जिस तरह कि कोई हाथसे महानागको ॥३७॥ इस संसारमें तिलमात्र भी वह स्थान नहीं है जहाँ यह जीव मृत्यु अथवा जन्मको प्राप्त नहीं हुआ हो ॥३८॥ इस जीवने नरकोंमें ताँबा आदिका जितना पिघला हुआ रस पिया है उतना स्वयंभूरमण समुद्रमें पानी भी नहीं है ॥३९॥ इस जीवने सूकरका भव धारणकर जितने विष्ठाको अपना भोजन बनाया है मैं समझता हूँ कि वह हजारों विन्ध्याचलोंसे भी कहीं बहुत अधिक अत्यन्त ऊँचा होगा ॥४०॥ इस जीवने परस्पर एक दूसरेको मारकर जो मस्तकोंका समूह काटा है यदि उसे एक जगह रोका जाय—एक

---

१. सर्पम् । २. गरुडः । ३. शक्तिर्येन म० । ४. स्वयंभूरमणो म० ।

शर्करावरणीयातैर्दुःखं प्राप्तमनुत्तमम् । श्रुत्वा तस्कस्य रोचेत मोहेन सह मित्रता ॥४२॥

आर्यावृत्तम्

यस्य कृतेऽपि [1]निमेषं नेच्छति दुःखानि विषयसुखसंसक्तः ।
पर्यटति च संसारे ग्रस्तो मोहग्रहेण मत्तवदात्मा ॥४३॥
एतद् वन्ध्यशरीरं युक्तं त्यक्तुं कषायचिन्तायासम् ।
अन्यस्मादन्यतरं[2] किं पुनरीदृग्विधं कलेवरभारम् ॥४४॥
इत्युक्तोऽपि विभिक्तं खेचररविणा विपश्चिता रामः ।
नोज्झति लक्ष्मणमूर्त्तिं गुरोरिवाऽऽज्ञां विनीतात्मा ॥४५॥

इत्यार्षे श्रीपद्मपुराणे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते लक्ष्मणवियोगविभीषणसंसारस्थितिवर्णनं नाम सप्तदशोत्तरशतं पर्व ॥११७॥

स्थानपर इकट्ठा किया जाय तो वह ज्योतिषी देवोंके मार्गको भी उल्लंघन कर आगे जा सकता है ॥४१॥ नरक-भूमिमें गये हुए जीवोंने जो भारी दुःख उठाया है उसे सुन मोहके साथ मित्रता करना किसे अच्छा लगेगा ? ॥४२॥ विषय-सुखमें आसक्त हुआ यह प्राणी जिस शरीरके पीछे पलभरके लिए भी दुःख नहीं उठाना चाहता तथा मोहरूपी ग्रहसे ग्रस्त हुआ पागलके समान संसारमें भ्रमण करता रहता है, ऐसे कषाय और चिन्तासे खेद उत्पन्न करनेवाले इस शरीरको छोड़ देना ही उचित है क्योंकि इनका यह ऐसा शरीर क्या अन्य शरीरसे भिन्न है—विलक्षण है ? ॥४३-४४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि विद्याधरोंमें सूर्य स्वरूप बुद्धिमान् विभीषणने यद्यपि रामको इस तरह बहुत कुछ समझाया था तथापि उन्होंने लक्ष्मणका शरीर उस तरह नहीं छोड़ा जिस तरह कि विनयी शिष्य गुरुकी आज्ञा नहीं छोड़ता है ॥४५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें लक्ष्मणके वियोगको लेकर विभीषणके द्वारा संसारकी स्थितिका वर्णन करने वाला एकसौ सत्रहवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥११७॥

---

१. निमिषं दुःखानि म० । २. -दन्यतरं पुनरीदृग् म० ।

अष्टादशोत्तरशतं पर्व

सुग्रीवाद्यैस्ततो भूपैर्विज्ञप्तं देव साम्प्रतम् । चितां कुर्मो नरेन्द्रस्य देहं संस्कारमापय ॥१॥
कलुषात्मा जगादासौ मातृभिः पितृभिः समम् । चितायामाशु दह्यन्तां भवन्तः सपितामहाः ॥२॥
यः कश्चिद् विद्यते बन्धुर्युष्माकं पापचेतसाम् । भवन्त एव तेनाऽऽशा मज्जन्तु निधनं द्रुतम् ॥३॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गच्छामः प्रदेशं लक्ष्मणाऽपरम् । शृणुमो नेदृशं यत्र खलानां कटुकं वचः ॥४॥
एवमुक्त्वा तनुं भ्रातुर्जिघृक्षोरस्य सत्वरम् । पृष्ठस्कन्धादि राजानो ददुः सम्भ्रमवर्त्तिनः ॥५॥
अविश्वसन् स तेभ्यस्तु स्वयमादाय लक्ष्मणम् । प्रदेशमपरं यातः शिशुर्विषफलं यथा ॥६॥
जगौ बाष्पपरीताक्षो भ्रातः किं सुप्यते चिरम् । उत्तिष्ठ वर्त्तते वेला स्नानभूमिर्विधेयसाम् ॥७॥
इत्युक्त्वा तं मृतं कृत्वा साश्रये स्नानविष्टरे । अभ्यषिञ्चन्महामोहो हेमकुम्भाम्भसा चिरम् ॥८॥
अलङ्कृत्य च निःशेषभूषणैर्मुकुटादिभिः । सदाज्ञोऽज्ञापयत् क्षिप्रं भुक्तिभूसत्कृतानिति ॥९॥
नानारत्नशरीराणि जाम्बूनदमयानि च । भाजनानि विधीयन्तां अन्नं चाऽऽनीयतां परम् ॥१०॥
समुपाहियतामच्छा आशं कादम्बरी वरा । विचित्रमुपदंशं[1] च रसबोधनकारणम् ॥११॥
एवमाज्ञां समासाद्य परिवर्गेण सादरम् । तथाविधं कृतं सर्वं नाथकुद्यतचेतसा ॥१२॥
[2]लक्ष्मणस्यान्तरास्यस्य राघवः पिण्डमादधे । न स्वविष्टश्जिनेन्द्रोक्तमभव्यश्रवणे यथा । ॥१३॥

अथानन्तर सुग्रीव आदि राजाओंने कहा कि हे देव ! हम लोग चिता बनाते हैं सो उस-पर राजा लक्ष्मीधरके शरीरको संस्कार प्राप्त कराइए ॥१॥ इसके उत्तरमें कुपित होकर रामने कहा कि चितापर माताओं, पिताओं और पितामहोंके साथ आप लोग ही जलें ॥२॥ अथवा पाप पूर्ण विचार रखनेवाले आप लोगोंका जो भी कोई इष्ट बन्धु हो उसके साथ आप लोग ही शीघ्र मृत्युको प्राप्त हों ॥३॥ इस प्रकार अन्य सब राजाओंको उत्तर देकर वे लक्ष्मणके प्रति बोले कि भाई लक्ष्मण ! उठो, उठो, चलो दूसरे स्थानपर चलें। जहाँ दुष्टोंके ऐसे वचन नहीं सुनने पड़ें ॥४॥ इतना कहकर वे शीघ्र ही भाईका शरीर उठाने लगे तब घबड़ाये हुए राजाओं-ने उन्हें पीठ तथा कन्धा आदिका सहारा दिया ॥५॥ राम, उन सबका विश्वास नहीं रखते थे इसलिए स्वयं अकेले ही लक्ष्मणको लेकर उस तरह दूसरे स्थानपर चले गये जिस तरह कि बालक विषफलको लेकर चला जाता है ॥६॥ वहाँ वे नेत्रोंमें आँसू भरकर कहे कि भाई ! इतनी देर क्यों सोते हो ? उठो, समय हो गया, स्नान-भूमिमें चलो ॥७॥ इतना कहकर उन्होंने मृत लक्ष्मणको आश्रयसहित (टिकनेके उपकरणसे सहित) स्नानकी चौकीपर बैठा दिया और स्वयं महामोहसे युक्त हो सुवर्णकलशमें रक्खे जलसे चिरकाल उसका अभिषेक करते रहे ॥८॥ तदनन्तर मुकुट आदि समस्त आभूषणोंसे अलंकृत कर, भोजन-गृहके अधिकारियोंको शीघ्र ही आज्ञा दिलाई कि नाना रत्नमय एवं स्वर्णमय पात्र इकट्ठे कर उनमें उत्तम भोजन लाया जाय ॥९-१०॥ उत्तम एवं स्वच्छ मदिरा लाई जाय तथा रससे भरे हुए नाना प्रकारके स्वादिष्ट व्यञ्जन उपस्थित किये जावें। इस प्रकार आज्ञा पाकर स्वामीकी इच्छानुसार काम करनेवाले सेवकोंने आदरपूर्वक सब सामग्री लाकर रख दी ॥११-१२॥

तदनन्तर रामने लक्ष्मणके मुखके भीतर भोजनका ग्रास रक्खा। पर वह उस तरह भीतर प्रविष्ट नहीं हो सका, जिस तरह कि जिनेन्द्र भगवान्का वचन अभव्यके कानमें प्रविष्ट

---

१. व्यञ्जनम् । २. लक्ष्मणस्य + अन्तर् + आस्यस्य इतिच्छेदः ।

ततोऽगदद् यदि क्रोधो मयि देव कृतस्त्वया । ततोऽस्यान्न किमायातममृतस्वादिनोऽन्धसः ॥१४॥
इयं श्रीधर ते नित्यं दयिता मदिरोत्तमा । इमां तावत् पिब न्यस्तां चषके विकचोत्पले ॥१५॥
इत्युक्त्वा तां मुखे न्यस्य चकार सुमहादरः । कथं विशतु सा तत्र चार्वी संक्रान्तचेतने ॥१६॥
इत्यसौ क्रियाजातं जीवतीव स लक्ष्मणे । चकार स्नेहमूढात्मा मोघं निर्वेदवर्जितः ॥१७॥
गीतैः स चारुभिर्वेणुवीणानिस्वनसङ्गतैः । परासुरपि रामाज्ञां प्राहासापन्न लक्ष्मणः ॥१८॥
चन्दनार्चितदेहं तं दोर्भ्यामुद्यम्य सस्पृहः । कृत्वाङ्के मस्तकेऽचुम्बत् पुनर्गण्डे पुनः करे ॥१९॥
अपि लक्ष्मण किम्ते स्यादिदं सञ्जातमीदृशम् । न येन मुञ्चसे निद्रां सकृदेव निवेदय ॥२०॥
इति स्नेहग्रहाविष्टो यावदेव विचेष्टते । महामोहकृतालग्ने कर्मण्युदयमागते ॥२१॥
तावद्विदितवृत्तान्ता रिपवः क्षोभमागता । परे तेजसि कालास्ते गर्जन्तो विषदा इव ॥२२॥
विरोधिताशया दूरं सामर्षा सुन्दनन्दनम् । चारुरत्नाख्यमाजग्मुरसौ कुलिशमालिनम् ॥२३॥
ऊचे च [1]मद्गुरोर्येन मीत्वा सोदरकारकौ । पातालनगरे चासौ राज्येऽस्थापि विराधितः ॥२४॥
वानरध्वजिनीचन्द्रं सुग्रीवं प्राप्य बान्धवम् । उद्यतोऽलङ्घिभिः कान्तायां रामेणाऽऽर्तिमता ततः ॥२५॥
उदन्वन्तं समुल्लङ्घ्य नभोगैर्यानवाहनैः । द्वीपा विध्वंसितास्तेन लङ्कां जेतुं युयुत्सुना ॥२६॥

नहीं होता है ॥१३॥ तत्पश्चात् रामने कहा कि हे देव ! तुम्हारा मुझपर क्रोध है तो यहाँ अमृतके समान स्वादिष्ट इस भोजनने क्या बिगाड़ा ? इसे तो ग्रहण करो ॥१४॥ हे लक्ष्मीधर ! तुम्हें यह उत्तम मदिरा निरन्तर प्रिय रहती थी सो खिले हुए नील कमलसे सुशोभित पान-पात्रमें रखी हुई इस मदिराको पिओ ॥१५॥ ऐसा कहकर उन्होंने बड़े आदरके साथ वह मदिरा उनके मुखमें रख दी पर वह सुन्दर मदिरा निश्चेतन मुखमें कैसे प्रवेश करती ॥१६॥ इस प्रकार जिनकी आत्मा स्नेहसे मूढ़ थी तथा जो वैराग्यसे रहित थे ऐसे रामने जीवित दशाके समान लक्ष्मणके विषयमें व्यर्थ ही समस्त क्रियाएँ कीं ॥१७॥ यद्यपि लक्ष्मण निष्प्राण हो चुके थे तथापि रामने उनके आगे वीणा बाँसुरी आदिके शब्दोंसे सहित सुन्दर संगीत कराया ॥१८॥ तदनन्तर जिसका शरीर चन्दनसे चर्चित था ऐसे लक्ष्मणको बड़ी इच्छाके साथ दोनों भुजाओंसे उठाकर रामने अपनी गोदमें रख लिया और उनके मस्तक कपोल तथा हाथका बार-बार चुम्बन किया ॥१९॥ वे उनसे कहते कि हे लक्ष्मण, तुझे यह ऐसा हो क्या गया जिससे तू नींद नहीं छोड़ता, एक बार तो बता ॥२०॥ इस प्रकार महामोहसे सम्बद्ध कर्मका उदय आनेपर स्नेह रूपी पिशाचसे आक्रान्त राम जब तक यहाँ यह चेष्टा करते हैं तब तक यहाँ यह वृत्तान्त जान शत्रु उस तरह क्षोभको प्राप्त हो गये जिस तरह कि परम तेजअर्थात् सूर्यको आच्छादित करनेके लिए गरजते हुए काले मेघ ॥२१-२२॥ जिनके अभिप्रायमें बहुत दूर तक विरोध समाया हुआ था तथा जो अत्यधिक क्रोधसे सहित थे ऐसे शत्रु, शम्बूकके भाई सुन्दके पुत्र चारुरत्नके पास गये और चारुरत्न उन सबको साथ ले इन्द्रजित्के पुत्र वज्रमालीके पास गया ॥२३॥ उसे उत्तेजित करता हुआ चारुरत्न बोला कि लक्ष्मणने हमारे काका और बाबा दोनोंको मारकर पाताल लंकाके राज्यपर विराधितको स्थापित किया ॥२४॥ तदनन्तर वानरवंशियोंकी सेनाको हर्षित करनेके लिए चन्द्रमा स्वरूप एवं भाईके समान हितकारी सुग्रीवको पाकर विरहसे पीड़ित रामने अपनी स्त्री सीताका समाचार प्राप्त किया ॥२५॥ तत्पश्चात् लंकाको जीतनेके लिए युद्ध करनेके इच्छुक रामने विद्याधरोंके साथ विमानों द्वारा समुद्रको लाँघकर

---

१. मद्गुरौ येन नीत्वा सोदरकारकौ म० । मीत्वा = हत्वा, सोदरकारकौ मम भ्रातृजनकौ श्री० टि०, मम गुरुः सुन्दस्तस्य सोदरम् ।

सिंहवाहार्यमहाविद्ये रामलक्ष्मणयोस्तयोः । उत्पन्ने बन्दितां नीतास्ताभ्यामिन्द्रजितादयः ॥२७॥
चक्ररत्नं समासाद्य येनाऽघाति दशाननः । अधुना कालचक्रेण लक्ष्मणोऽसौ निपातितः ॥२८॥
आसंस्तस्य भुजच्छायां श्रित्वा मत्ता प्लवङ्गमाः । साम्प्रतं लुप्तपक्षास्ते परमास्कन्दतां गताः ॥२९॥
अद्यास्ति द्वादशः पक्षो रावणस्येयुषः क्षुधम् । प्रेताङ्गं वहमानस्य व्यामोहः कोऽपरोऽस्यतः ॥३०॥
यद्यप्यप्रतिमल्लोऽसौ हलरत्नादिमर्दनः । तथापि लङ्घितुं शक्यः शोकपङ्कगतोऽभवत् ॥३१॥
तस्यैव विभिमस्वस्य न जात्वन्यस्य कस्यचित् । यस्यानुजेन विध्वस्ता सर्वास्मद्वंशसङ्गतिः ॥३२॥
अथेन्द्रजितिराकर्ण्य व्यसनं स्वोरुगोत्रजम् । प्रतिघासितमार्गेण जज्वाल क्षुब्धमानसः ॥३३॥
आज्ञाप्य सचिवान् सर्वान् भेर्या संयति राजितान् । प्रययौ प्रति साकेतं सुन्दसोकसमन्वितः ॥३४॥
सैन्याकूपारगुप्तौ तौ सुग्रीवं प्रति कोपितौ[1] । पद्मनाभमयासिष्टां प्रकोपयितुमुद्यतौ ॥३५॥
वज्रमालिनमायातं श्रुत्वा सौन्दिसमन्वितम् । सर्वे विद्याधराधीशा रघुचन्द्रमसिश्रियम् ॥३६॥
वितामतां परिप्राप्ता क्षुब्धाऽयोध्या समन्ततः । लवणाङ्कुशयोर्यद्वदागमे भीतिवेपिता ॥३७॥
अरातिसैन्यमभ्यर्णमालोक्य रघुभास्करः । कृत्वाङ्के लक्ष्मणं सत्वं वहमानस्तथाविधम् ॥३८॥
उपनीतं समं बाणैर्वज्रावर्तमहाधनुः । आलोकत स्वभावस्थं कृतान्तभ्रूलतोपमम् ॥३९॥
एतस्मिन्नन्तरे नाके जातौ विष्टरवेषधुः । कृतान्तवक्त्रदेवस्य जटायुद्विजशस्य च ॥४०॥

अनेक द्वीप नष्ट किये ॥२६॥ राम-लक्ष्मणको सिंहवाहिनी एवं गरुडवाहिनी नामक विद्याएँ प्राप्त हुईं। उनके प्रभावसे उन्होंने इन्द्रजित आदिको बन्दी बनाया ॥२७॥ तथा जिस लक्ष्मणने चक्ररत्न पाकर रावणको मारा था इस समय वही लक्ष्मण कालके चक्रसे मारा गया है ॥२८॥ उसकी भुजाओंकी छाया पाकर वानरवंशी उन्मत्त हो रहे थे पर इस समय वे पक्ष कट जानेसे अत्यन्त आक्रमणके योग्य अवस्थाको प्राप्त हुए हैं। शोकको प्राप्त हुए रामको आज बारहवाँ पक्ष है वे लक्ष्मणके मृतक शरीरको लिये फिरते हैं अतः कोई विचित्र प्रकारका मोह—पागलपन उनपर सवार है ॥२९-३०॥ यद्यपि हल-मुसल आदि शस्त्रोंको धारण करनेवाले राम अपनी सानी नहीं रखते तथापि इस समय शोकरूपी पंकमें फँसे होनेके कारण उनपर आक्रमण करना शक्य है ॥३१॥ यदि हमलोग डरते हैं तो एक उन्हींसे डरते हैं और किसीसे नहीं जिनके कि छोटे भाई लक्ष्मणने हमारे वंशकी सब संगति नष्ट कर दी ॥३२॥

अथानन्तर इन्द्रजितका पुत्र वज्रमाली अपने विशाल वंशपर उत्पन्न पूर्व संकटको सुनकर क्षुभित हो उठा और प्रसिद्ध मार्गसे प्रज्वलित होने लगा अर्थात् क्षत्रिय कुल प्रसिद्ध तेजसे दमकने लगा ॥३३॥ वह मन्त्रियोंको आज्ञा दे तथा भेरीके द्वारा सब लोगोंको युद्धमें इकट्ठाकर सुन्दपुत्र चारुरत्नके साथ अयोध्याकी ओर चला ॥३४॥ जो सेना रूपी समुद्रसे सुरक्षित थे तथा सुग्रीवके प्रति जिनका क्रोध उमड़ रहा था ऐसे वे दोनों—वज्रमाली और चारुरत्न, रामको कुपित करनेके लिए उद्यत हो उनकी ओर चले ॥३५॥ चारुरत्नके साथ वज्रमालीको आया सुन सब विद्याधर राजा रामचन्द्रके पास आये ॥३६॥ उस समय अयोध्या किंकर्तव्यमूढ़ताको प्राप्त हो सब ओरसे क्षुभित हो उठी तथा जिस प्रकार लवणांकुशके आनेपर भयसे काँपने लगी थी उसी प्रकार भयसे काँपने लगी ॥३७॥ अनुपम पराक्रमको धारण करनेवाले रामने जब शत्रुसेनाको निकट देखा तब वे मृत लक्ष्मणको गोदमें रख बाणोंके साथ लाये हुए उस वज्रावर्त नामक महाधनुषकी ओर देखने लगे कि जो अपने स्वभावमें स्थित था तथा यमराजकी भ्रुकुटि रूपी लताके समान कुटिल था ॥ ३८-३९॥

इसी समय स्वर्गमें कृतान्तवक्त्र सेनापति तथा जटायु पक्षीके जीव जो देव हुए थे उनके

---

१. कोपिनौ म० ।

विमाने यत्र सम्भूतो जटायुश्चित्रशोभनः । तस्मिन्नेव कृतान्तोऽपि तस्यैव विभुतां गतः ॥४१॥
कृतान्तस्त्रिदशोऽवोचद् भो गीर्वाणपते कुतः । इमं यातोऽसि संरम्भं सोऽभाद्योजितावधिः ॥४२॥
यदाऽहमभवं गृध्रस्तदा येनेष्टपुत्रवत् । लालितः शोकतप्तं तमेति शत्रुबलं महत् ॥४३॥
ततः कृतान्तदेवोऽपि प्रयुज्यावधिलोचनम् । अधोभूयिष्ठदुःखार्तो बभाषे क्रोधभासुरः ॥४४॥
सखे सत्यं ममाप्येष प्रभुरासीत् सुवत्सलः । प्रसादादस्य भूपृष्ठे कृतं दुर्लङ्घितं मया ॥४५॥
भाषितश्चाहमेतेन गाढनात्परमोचनम् । तदिदं जातमेतस्य तदेह्येनमितो लघु ॥४६॥
इत्युक्त्वा प्रचलत्कालकेशकुन्तलसंहती[1] । स्फुरत्किरीटभाचक्रौ विलसन्मणिकुण्डलौ ॥४७॥
माहेन्द्रकल्पतो देवौ श्रीमन्तौ प्रति कोसलाम् । जग्मतुः परमोद्योगौ प्रतिपक्षविचक्षणौ ॥४८॥
सामानिकं कृतान्तोऽगाद् अत्र स्वं द्विषतां बलम् । विमोहय रघुश्रेष्ठं रक्षितुं[2] तु व्रजाम्यहम् ॥४९॥
ततो जटायुर्गीर्वाणः कामरूपविवर्त्तकृत् । सुधीरुदारमत्यन्तं परसैन्यममोहयत् ॥५०॥
आगच्छतामरातीनामयोध्यामीक्षितां पुरः । पुनः प्रदर्शयामास पर्वतं पृष्ठतः पुनः ॥५१॥
निरवशेषाद्[3]-गीर्वाणां प्रभुलेपरक्षोद्विरिद् । आरेभे रोदसी व्याप्तुमयोध्याभिरनन्तरम् ॥५२॥
अयोध्यैव विनीतेयमियं सा कोसला पुरी । अहो सर्वमिदं जातं नगरीगहनात्मकम् ॥५३॥
इति वीक्ष्य महीपृष्ठं खं चायोध्यासमाकुलम् । मायोक्त्वा विधुक्तं तद्वीक्ष्यापक्रममभूद्बलम् ॥५४॥

आसन कम्पायमान हुए ॥४०॥ जिस विमानमें जटायुका जीव उत्तम देव हुआ था उसी विमानमें कृतान्तवक्त्र भी उसीके समान वैभवका धारी देव हुआ था ॥४१॥ कृतान्तवक्त्रके जीवने जटायुके जीवसे कहा कि हे देवराज ! आज इस क्रोधको क्यों प्राप्त हुए हो ? इसके उत्तरमें अवधिज्ञानको जोड़नेवाले जटायुके जीवने कहा कि जब मैं गृध्र पर्यायमें था तब जिसने मित्र पुत्रके समान मेरा लालन-पालन किया था आज उसके संमुख शत्रुकी बड़ी भारी सेना आ रही है और वह स्वयं भाईके मरणसे शोक-संतप्त है ॥४२-४३॥ तदनन्तर कृतान्तवक्त्रके जीवने भी अवधिज्ञान रूपी लोचनका प्रयोगकर नीचे होनेवाले अत्यधिक दुःखसे दुःखी तथा क्रोधसे देदीप्यमान होते हुए कहा कि मित्र, सच है वह हमारा भी स्नेही स्वामी रहा है । इसके प्रसादसे मैंने पृथिवीतलपर अनेक दुर्दान्त चेष्टाएँ की थी ॥४४-४५॥ इसने मुझसे कहा भी था कि संकटसे मुझे छुड़ाना । आज वह संकट इसे प्राप्त हुआ है इसलिए आओ शीघ्र ही इसके पास चलें ॥४६॥

इतना कहकर जिनके काले-काले केश तथा कुन्तलोंका समूह हिल रहा था, जिनके मुकुटोंका कान्तिचक्र देदीप्यमान हो रहा था, जिनके मणिमय कुण्डल सुशोभित थे, जो परम उद्योगी थे तथा शत्रुका पक्ष नष्ट करनेमें निपुण थे ऐसे वे दोनों श्रीमान् देव, माहेन्द्र स्वर्गसे अयोध्याकी ओर चले ॥४७-४८॥ कृतान्तवक्त्रके जीवने जटायुके जीवसे कहा कि तुम तो जाकर शत्रु सेनाको मोहित करो—उसकी बुद्धि भ्रष्ट करो और मैं रामकी रक्षा करनेके लिए जाता हूँ ॥४९॥ तदनन्तर इच्छानुसार रूपपरिवर्तित करनेवाले बुद्धिमान् जटायुके जीवने शत्रुकी उस बड़ी भारी सेनाको मोहयुक्त कर दिया—भ्रममें डाल दिया ॥५०॥ 'यह अयोध्या दिख रही है' ऐसा सोचकर जो शत्रु उसके समीप आ रहे थे उस देवने मायासे उनके आगे और पीछे बड़े-बड़े पर्वत दिखलाये । तदनन्तर अयोध्याके निकट खड़े होकर उसने शत्रु विद्याधरोंकी समस्त सेनाका निराकरण किया और पृथिवी तथा आकाश दोनोंको अयोध्या नगरियोंसे अविरल व्याप्त करना शुरू किया ॥५१-५२॥ जिससे 'यह अयोध्या है, यह विनीता है, यह कोशलापुरी है, इस तरह यहाँकी समस्तभूमि और आकाश अयोध्या नगरियोंसे तन्मय हो गया ॥५३॥ इस

---

१. संहती म० । २. रक्षितं तु म०, ज० ।

वभणुश्चाकुला केन प्रकारेण स्वजीवितम् । धारयामः परा यत्र काऽप्येषा रामदेवता ॥५५॥
ईदृशी विक्रिया शक्तिः कुतो विद्याधरर्द्धिषु । किमिदं कृतमस्माभिरनालोचितकारिभिः ॥५६॥
विरुद्धा अपि हंसस्य[1] खद्योताः किं नु कुर्वते । यस्यांशुसहस्राप्तं परिजाज्वल्यते जगत् ॥५७॥
प्रपलायितुकामानामपि नः साम्प्रतं सखे । नास्ति मार्गः सुभीमेऽस्मिन्बले तृणाति विश्वपम् ॥५८॥
महान्न मरणेऽप्यस्ति गुणो जीवन् हि मानवः । कदाचिदेति कल्याणं स्वकर्मपरिपाकतः ॥५९॥
शुद्धबुद्धा इव यस्मिन्नर्मभिः सैनिकोर्मिभिः । आनीताः स्म प्रविध्वंसं किं भवेदजितं ततः ॥६०॥
इत्यन्योन्यकृताऽऽलापमुद्भूतपृथुवेपथु[2] । विद्याधरबलं सर्वं जातमत्यन्तविह्वलम् ॥६१॥
विक्रियाक्रीडनं कृत्वा जटायुरिति पार्थिव । पलायनपथं तेषां दक्षिणं कृपया ददौ ॥६२॥
प्रस्पन्दमानचित्तास्ते [illegible] शरीराकाः । शशंसुः सैनिकं वेगात् त्रस्तेनस्तताः खिन्ना यथा ॥६३॥
तस्मै विभीषणायाऽग्रे दास्यामो नु किमुत्तरम् । का वा शोभाऽधुनाऽस्माकमत्यन्तोपहतात्मनाम् ॥६४॥
जायया दर्शयिष्यामः कथा वक्त्रं स्वदेहिनाम् । कुतो वा धृतिरस्माकं का वा जीवितशेमुषी ॥६५॥
अवधार्येति सर्वोऽस्तस्मिन्निन्द्रजितात्मजः । प्राप्तो विरागमैश्वर्ये विभूतिं बोध्य दैविकीम् ॥६६॥
समेतश्चारुरत्नेन स्निग्धकैश्च सभूमिभिः । रतिवेगमुनेः पार्श्वे विरोषः श्रमणोऽभवत् ॥६७॥
दृष्ट्वाऽनन्तरथेहांस्तान्निर्मुक्तकलुषान्नृपान् । विद्युत्प्रहरणं देवः समहार्षीत् प्रभीषणः ॥६८॥

प्रकार पृथिवी और आकाश दोनोंको अयोध्याओंसे व्याप्त देखकर शत्रुओंकी वह सेना अभिमानसे रहित हो आपत्तिमें पड़ गई ॥५४॥ सेनाके लोग परस्पर कहने लगे कि जहाँ यह राम नामका कोई अद्भुत देव विद्यमान है वहाँ अब हम अपने प्राण किस तरह धारण करें—जीवित कैसे रहें ? ॥५५॥ विद्याधरोंकी ऋद्धियोंमें ऐसी विक्रिया शक्ति कहाँसे आई ? बिना विचारे काम करनेवाले हमलोगोंने यह क्या किया ? ॥५६॥ जिसकी हजार किरणोंसे व्याप्त हुआ जगत् सब ओरसे देदीप्यमान हो रहा है, बहुतसे जुगनूँ विरुद्ध होकर भी उस सूर्यका क्या कर सकते हैं ? ॥५७॥ जबकि यह भयंकर सेना समस्त जगत्में व्याप्त हो रही है तब हे सखे ! हम भागना भी चाहें तो भी भागनेके लिए मार्ग नहीं है ॥५८॥ मरनेमें कोई बड़ा लाभ नहीं है क्योंकि जीवित रहनेवाला मनुष्य कदाचित् अपने कर्मोंके उदयवश कल्याणको प्राप्त हो जाता है ॥५९॥ यदि हम इन सैनिक रूपी तरङ्गोंके द्वारा बबूलोंके समान नाशको भी प्राप्त हो गये तो उससे क्या मिल जायगा ? ॥६०॥ इस प्रकार जो परस्पर वार्तालाप कर रही थी तथा जिसे अत्यधिक कँपकँपी छूट रही थी ऐसी वह विद्याधरोंकी समस्त सेना अत्यन्त विह्वल हो गई ॥६१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! तदनन्तर जटायुके जीवने इस तरह विक्रिया द्वारा क्रीड़ाकर दयापूर्वक उन विद्याधर शत्रुओंको दक्षिण दिशाकी ओर भागनेका मार्ग दे दिया ॥६२॥ इस प्रकार जिनके चित्त चञ्चल थे तथा जिनके शरीर काँप रहे थे ऐसे वे सब विद्याधर बाजसे डरे पक्षियोंके समान बड़े वेगसे भागे ॥६३॥

अब आगे विभीषणके लिए क्या उत्तर देंगे ? इस समय जिनकी आत्मा एक दम दीन हो रही है ऐसे हम लोगोंकी क्या शोभा है ? ॥६४॥ हम अपने ही लोगोंको क्या कान्ति लेकर मुख दिखावेंगे ? हम लोगोंको धैर्य कहाँ हो सकता है ? अथवा जीवित रहनेकी इच्छा ही हम लोगोंको कहाँ हो सकती है ? ॥६५॥ ऐसा निश्चय कर उनमें जो इन्द्रजितका पुत्र वज्रमाली था वह लज्जासे युक्त हो गया। यतश्च वह देवोंका प्रभाव देख चुका था अतः उसे अपने ऐश्वर्यमें वैराग्य उत्पन्न हो गया। फल स्वरूप वह सुन्दके पुत्र चारुरत्न तथा अन्य स्नेही जनोंके साथ, क्रोध छोड़ रतिवेग नामक मुनिके पास साधु हो गया ॥६६-६७॥ भयभीत करनेके लिए जटायुका

---

१. सूर्यस्य । 'हंसः पक्ष्यात्मसूर्येषु' इत्यमरः । २. वेपथुः म० ।

दध्यावुद्विग्नचित्तः स कृतावधिनियोजनः । अहोऽमी [1]प्रतिबोधाख्याः संवृत्ताः परमर्षयः ॥६८॥
दोषांस्तदास्मिन्दासित्वा [2] साधूनां विमलात्मनाम् । महादुःखं परिप्राप्तं तिर्यक्षु नरकेषु च ॥७०॥
यस्यानुबन्धमद्यापि [3]सहे शत्रोर्दुरात्मनः । येन श्लोकेन न श्रान्तः पुनर्दीर्घं भवार्णवम् ॥७१॥
इति सञ्चिन्त्य शान्तात्मा स्वं निवेद्य यथाविधि । प्रणम्य भक्तिसम्पन्नः सुधीः साधूनमर्षयत् ॥७२॥
तथा कृत्वा च साकेतमगाद् यत्र विमोहितः । भ्रातृशोकेन काकुत्स्थः शिशुवत्परिचेष्टते ॥७३॥
आकल्पान्तरमापन्नं सिञ्चन्तं शुष्कपादपम् । पद्मनाभमबोधार्थं कृतान्तं वीक्ष्य सादरम् ॥७४॥
जटायुः क्षीरमास्राव्य गोकलेवरयुग्मके । बीजं शिलातले वप्तुमुद्यतः [4]प्राजनं दधत् ॥७५॥
[5]कृपीटपूरितां कुम्भीं कृतान्तस्तत्पुरोऽमथत् । जटायुश्चक्रमाशोष्य सिकतां पर्यपीडयत् ॥७६॥
अन्यानि चार्थहीनानि कार्याणि त्रिदशाविमौ । चक्रतुः स तयो गत्वा पप्रच्छेति क्रमान्वितम् ॥७७॥
परेतं सिञ्चसे मूढ कस्मादेनमनोकहम् । कलेवरे [6] हलं प्राज्ञि बीजं हारयसे कुतः ॥७८॥
क्षीरनिर्मथने लब्धिर्नवनीतस्य किं कृता । वालुकापीडनाद्वाल स्नेहः सञ्जायतेऽथ किम् ॥७९॥
केवलं श्रम एवात्र फलं माण्वपि काङ्क्षितम् । लभ्यते किमिदं व्यर्थं समारब्धं विचेष्टितम् ॥८०॥
[illegible] हलेनैतं हन्दाहमपि सरसः । जीवेन रहितामेतां तनुं वहसि किं मृषा ॥८१॥

जीव देव, विद्युत्प्रहार नामक शस्त्र लेकर उन सबको दक्षिणकी ओर खदेड़ रहा था सो उन सब राजाओंको नग्न तथा क्रोधरहित देख उसने अपना विद्युत्प्रहार नामक शस्त्र संकुचित कर लिया ॥६८॥ उद्विग्न चित्तका धारी वह देव अवधिज्ञानका प्रयोगकर विचार करने लगा कि अहो ! ये सब तो प्रतिबोधको प्राप्त हो परम ऋषि हो गये हैं ॥६९॥ उस समय (राजा दण्डककी पर्यायमें) मैंने निर्दोष आत्माके धारी साधुओंको दोष दिया था—घानीमें पिलवाया था सो उसके फल स्वरूप तिर्यञ्चों और नरकोंमें मैंने बहुत भारी दुःख उठाया है। तथा अब भी उसी दुष्ट शत्रुका संस्कार भोग रहा हूँ परन्तु वह संस्कार इतना थोड़ा रह गया है कि उसके निमित्तसे पुनः दीर्घ संसारमें भ्रमण नहीं करना पड़ेगा ॥७०-७१॥ ऐसा विचारकर उस बुद्धिमान्ने शान्त हो अपने आपका परिचय दिया और भक्तिपूर्वक प्रणामकर उन मुनियोंसे क्षमा माँगी ॥७२॥

तदनन्तर इतना सब कर, वह अयोध्यामें वहाँ पहुँचा जहाँ भाईके शोकसे मोहित हो राम बालकके समान चेष्टा कर रहे थे ॥७३॥ वहाँ उसने बड़े आदरसे देखा कि कृतान्तवक्त्रका जीव रामको समझानेके लिए वेष बदलकर एक सूखे वृक्षको सींच रहा है ॥७४॥ यह देख जटायुका जीव भी दो मृतक बैलोंके शरीरपर हल रखकर परेना हाथमें लिये शिलातलपर बीज बोनेका उद्यम करने लगा ॥७५॥ कुछ समय बाद कृतान्तवक्त्रका जीव रामके आगे जलसे भरी मटकीको मथने लगा और जटायुका जीव घानीमें बालू डाल पेलने लगा ॥७६॥ इस प्रकार इन्हें आदि लेकर और भी दूसरे-दूसरे निरर्थक कार्य इन दोनों देवोंने रामके आगे किये। तदनन्तर रामने यथाक्रमसे उनके पास जाकर पूछा कि अरे मूर्ख ! इस मृत वृक्षको क्यों सींच रहा है ? मृतक कलेवरपर हल क्यों रक्खे हुए हैं ?, पत्थरपर बीज क्यों बरबाद करता है ? पानीके मथनेमें मक्खनकी प्राप्ति कैसे होगी ? और रे बालक ! बालूके पेलनेसे क्या कहीं तेल उत्पन्न होता है ? इन सब कार्योंमें केवल परिश्रम ही हाथ रहता है इच्छित फल तो परमाणु बराबर भी नहीं मिलता फिर यह व्यर्थकी चेष्टा क्यों प्रारम्भ कर रक्खी है ॥७७-८०॥

तदनन्तर क्रमसे उन दोनों देवोंने कहा कि हम भी एक यथार्थ बात आपसे पूछते हैं

---

१. प्रीतिबोधाख्याः म० । २. दापित्वा म० । ३. मोह-म० । ४. 'प्राजनं सीदनं तोत्त्रम्' इत्यमरः । ५. कुमीट म० । ६. कलेवरं म० ।

लक्ष्मणाङ्गं ततो दोर्भ्यामालिङ्ग्य वरलक्षणम् । इदं जगाद भूरेषः कलुषीभूतमानसः ॥८२॥
भो भो कुत्सयते कस्मात् सौमित्रिं पुरुषोत्तमम् । अमङ्गलाभिधानस्य किं ते दोषो न विद्यते ॥८३॥
कृतान्तेन समं यावद् विवादोऽस्येति वर्तते । जटायुस्तावदायातो वहन्मरकलेवरम् ॥८४॥
तं दृष्ट्वाऽभिमुखं रामो बभाषे केन हेतुना । कलेवरमिदं स्कन्धे वहसे मोहसङ्गतः ॥८५॥
तेनोक्तमनुबुद्ध्यस्व मां कस्माद्न स्वं विचक्षणः । यतः प्राणनिमेषादिमुक्तं वहसि विग्रहम् ॥८६॥
बालाग्रमात्रकं दोषं परस्य विप्रमार्गसे । मेरुकूटप्रमाणान् स्वान् कथं दोषान् न पश्यसि ॥८७॥
दृष्ट्वा भवन्तमस्माकं परमा प्रीतिरुद्गता । सदृशः सदृशेष्वेव रज्यन्तीति सुभाषितम् ॥८८॥
सर्वेषामस्मदादीनां यथेप्सितविधायिनाम् । भवान् पूर्वं पिशाचानां त्वं राजा परमेप्सितः ॥८९॥
उन्मत्तसैन्यध्वजं दत्त्वा भ्रमामः सकलां महीम् । उन्मत्तां प्रकृतीकुर्मः समस्तां प्रत्यवस्थिताम् ॥९०॥
एवमुक्तमनुश्रित्य मोहे शिथिलतां गते । गुरुवाक्यभवं चाऽन्यत् स्मृत्वा ह्रीमानभून्नृपः[1] ॥९१॥
मुक्तमोहघनजालः प्रतिबोधमरीचिभिः । नृपद्राकाभवत्तत्र राजते परमं तदा ॥९२॥
शमपङ्कविनिर्मुक्तमिव शारदमम्बरम् । विमलं तस्य सञ्जातं मानसं सत्त्वसङ्गतम् ॥९३॥
स्मृतैरमृतसम्पन्नैर्हृतशोको गुरूदितैः । पुरेव नन्दनस्वास्थ्यं दधानः शुशुभेतराम् ॥९४॥
अवकीर्णस्तदोत्साहस्तैरेव पुरुषोत्तमः । स्नात्वा प्राप यथा मेरुर्जिनाभिषववारिभिः ॥९५॥

कि आप इस जीवरहित शरीरको व्यर्थ ही क्यों धारण कर रहे हैं ? ॥८१॥ तब जिनका मन कलुषित हो रहा था ऐसे श्री रामदेवने उत्तम लक्षणोंके धारक लक्ष्मणके शरीरका भुजाओंसे आलिङ्गनकर कहा कि अरे अरे ! तुम पुरुषोत्तम लक्ष्मणकी बुराई क्यों करते हो ? ऐसे अमाङ्गलिक शब्दके कहनेमें क्या तुम्हें दोष नहीं लगता ? ॥८२-८३॥ इस प्रकार जब तक रामका कृतान्तवक्त्रके जीवके साथ उक्त विवाद चल रहा था तब तक जटायुका जीव एक मृतक मनुष्यका शरीर लिये हुए वहाँ आ पहुँचा ॥८४॥ उसे सामने खड़ा देख रामने उससे पूछा कि तू मोह युक्त हुआ इस मृत शरीरको कन्धे पर क्यों रक्खे हुए है ? ॥८५॥ इसके उत्तरमें जटायुके जीवने कहा कि तुम विद्वान् होकर भी हमसे पूछते हो पर स्वयं अपने आपसे क्यों नहीं पूछते जो श्वासोच्छ्वास तथा नेत्रोंकी टिमकार आदिसे रहित शरीरको धारण कर रहे हो ॥८६॥ दूसरेके तो बालके अग्रभाग बराबर सूक्ष्म दोषको जल्दीसे देख लेते हो पर अपने मेरुके शिखर बराबर बड़े-बड़े दोषोंको भी नहीं देखते हो ? ॥८७॥ आपको देखकर हम लोगोंको बड़ा प्रेम उत्पन्न हुआ क्यों कि यह सूक्ति भी है कि सदृश प्राणी अपने ही सदृश प्राणीमें अनुराग करते हैं ॥८८॥ इच्छानुसार कार्य करनेवाले हम सब पिशाचोंके आप सर्वप्रथम मनोनीत राजा हैं ॥८९॥ हम उन्मत्तोंके राजाकी ध्वजा लेकर समस्त पृथिवीमें घूमते फिरते हैं और उन्मत्त तथा प्रतिकूल खड़ी समस्त पृथिवीको अपने अनुकूल करने जाते हैं ॥९०॥ इस प्रकार देवोंके वचनोंका आलम्बन पाकर रामका मोह शिथिल हो गया और वे गुरुओंके वचनोंका स्मरण कर अपनी मूर्खतापर लज्जित हो उठे ॥९१॥ उस समय जिनका मोहरूपी मेघ-समूहका आवरण दूर हो गया था ऐसे राजा रामचन्द्र रूपी चन्द्रमा प्रतिबोधरूपी किरणोंसे अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥९२॥ उस समय धैर्यगुणसे सहित रामका मन मेघ-रूपी कीचड़से रहित शरद् ऋतुके आकाशके समान निर्मल हो गया था ॥९३॥ स्मरणमें आये तथा अमृतसे निर्मितकी तरह मधुर गुरुओंके वचनोंसे जिनका शोक हर लिया गया था ऐसे राम उस समय उस तरह अत्यधिक सुशोभित हुए थे जिस तरह कि पहले पुत्रोंके मिलाप-सम्बन्धी सुखको धारण करते हुए सुशोभित हुए थे ॥९४॥ उस समय उन्हीं गुरुओंके वचनोंसे जिन्होंने धैर्य धारण किया था

---

१. श्रीमानभून्नृपः म० ।

[1]प्रालेयवातसम्पर्कविमुक्ताम्भोजखण्डवत् । प्रजह्लादे विशुद्धात्मा विमुक्तकलुपाशयः ॥९६॥
महान्तमन्धतमसम्मूढो भानोः प्राप्त इवोदयम् । महाक्षुदर्दितो लेभे परमान्नमिवेप्सितम् ॥९७॥
तृषा परमया ग्रस्तो महासर इवागमत् । महौषधमिव प्राप्तस्यन्तव्याधिपीडितः ॥९८॥
यानपात्रमिवासाद्यतर्तुकामो[2] महार्णवम् । डाण्डप्रतिपक्षः सन्मार्गं प्राप्येव नागरः ॥९९॥
गन्तुमिच्छन्निजं देशं महासार्थमिव श्रितः[3] । निर्गन्तुं चारकादिच्छोर्भग्नेव सुदृढार्गला ॥१००॥
जिनमार्गसृतिं [illegible] पद्मपत्राभः प्रमोदभाक् । [illegible] परां कान्तिं [illegible]कमलेक्षणः ॥१०१॥
मन्यमानः स्वमुत्तीर्णमन्धकूपोदरादिव । भवान्तरमिव प्राप्तो मनसीदं समादधे ॥१०२॥
अहो तृणाग्रसंसक्तजलबिन्दुचलाचलम् । मनुष्यजीवितं यद्वत्क्षणाकाशमुपागतम् ॥१०३॥
भ्रमताऽत्यन्तकृच्छ्रेण चतुर्गतिभवान्तरे । नृशरीरं मया प्राप्तं कथं मूढोऽस्म्यनर्थकः ॥१०४॥
कस्येष्टानि कलत्राणि कस्यार्थाः कस्य बान्धवाः । संसारे सुलभं [4]ह्येतद् बोधिरेका सुदुर्लभा ॥१०५॥
इति ज्ञात्वा प्रबुद्धं तं मायां संहृत्य तौ सुरौ । चक्रतुर्देवसंवृद्धिं लोकविस्मयकारिणीम् ॥१०६॥
अपूर्वः प्रववौ वायुः सुखस्पर्शः सुसौरभः । नभो यानैर्विमानैश्च व्याप्तमत्यन्तसुन्दरैः ॥१०७॥
गीयमाने सुरस्त्रीभिर्वीणानिःस्वनसङ्गतम् । आत्मीयं चरितं रामः शृणोति स्म क्रमस्थितम् ॥१०८॥
एतस्मिन्नन्तरे देवः कृतान्तोऽभा जटायुषा । रामं पप्रच्छ किं नाथ प्रेरिताः दिवसाः सुखम् ॥१०९॥

ऐसे पुरुषोत्तम राम, जिनेन्द्र भगवान्के जन्माभिषेकके जलसे मेघके समान कान्तिको प्राप्त हुए थे ॥९५॥ जिनकी आत्मा विशुद्ध थी तथा अभिप्राय कलुषतासे रहित था ऐसे राम उस समय तुषारकी वायुसे रहित कमल वनके समान आह्लादसे युक्त थे ॥९६॥ उस समय उन्हें ऐसा हर्ष हो रहा था मानो महान् गाढ़ अन्धकारमें भूला व्यक्ति सूर्यके उदयको प्राप्त होगया हो, अथवा तीव्र क्षुधासे पीड़ित व्यक्ति इच्छानुकूल उत्तम भोजनको प्राप्त हुआ हो ॥९७॥ अथवा तीव्र प्याससे ग्रस्त मनुष्य किसी महासरोवरको प्राप्त हुआ हो अथवा अत्यधिक रोगसे पीड़ित मनुष्य महौषधिको प्राप्त होगया हो ॥९८॥ अथवा महासागरको पार करनेके लिए इच्छुक मनुष्यको जहाज मिल गई हो अथवा कुमार्गमें पड़ा नागरिक सुमार्गमें आ गया हो ॥९९॥ अथवा अपने देशको जानेके लिए इच्छुक मनुष्य व्यापारियोंके किसी महासंघमें आ मिला हो अथवा कारागृहसे निकलनेके लिए इच्छुक मनुष्यका मजबूत अर्गल टूट गया हो ॥१००॥ जिन मार्गका स्मरण पाकर राम हर्षसे खिल उठे और फूले हुए कमलके समान नेत्रोंको धारण करते हुए परम कान्तिको धारण करने लगे ॥१०१॥ उन्होंने मनमें ऐसा विचार किया कि जैसे मैं अन्धकूपके मध्यसे निकल कर बाहर आया हूँ अथवा दूसरे ही भवको प्राप्त हुआ हूँ ॥१०२॥ वे विचार करने लगे कि अहो, तृणके अग्रभागपर स्थित जलकी बूंदोंके समान चञ्चल यह मनुष्यका जीवन क्षणभरमें नष्ट हो जाता है ॥१०३॥ चतुर्गति रूप संसारके बीच भ्रमण करते हुए मैंने बड़ी कठिनाईसे मनुष्य-शरीर पाया है फिर व्यर्थ ही क्यों मूर्ख बन रहा हूँ ? ॥१०४॥ ये इष्ट स्त्रियाँ किसकी हैं ? ये धन, वैभव किसके हैं ? और ये भाई-बान्धव किसके हैं ? संसारमें ये सब सुलभ हैं परन्तु एक बोधि ही अत्यन्त दुर्लभ है ॥१०५॥

इस प्रकार श्री रामको प्रबुद्ध जान कर सुकृत दोनों देवोंने अपनी माया समेट ली तथा लोगोंको आश्चर्यमें डालनेवाली देवोंकी विभूति प्रकट की ॥१०६॥ सुखकर स्पर्शसे सहित तथा सुगन्धिसे भरी हुई अपूर्व वायु बहने लगी और आकाश अत्यन्त सुन्दर वाहनों और विमानोंसे व्याप्त हो गया ॥१०७॥ देवाङ्गनाओं द्वारा वीणाके मधुर शब्दके साथ गाया हुआ अपना क्रमपूर्ण चरित श्री रामने सुना ॥१०८॥ इसी बीचमें कृतान्तवक्त्रके जीवने जटायुके जीवके साथ

---

१. प्रालेयवास म० । २. तनुकामो-म० । ३. श्रिताः म० । ४. विधि-म० ।

एवमुक्तौ जगौ राजा पृच्छतुः किं शिवं मम । तेषां सर्वसुखान्येव ये श्रामण्यमुपागताः ॥११०॥
भवन्तावस्मि पृच्छामि कौ युवां सौम्यदर्शनौ । केन वा कारणेनेदं कृतमीदृग्विचेष्टितम् ॥१११॥
ततो जटायुर्देवोऽगादिति जानासि भूपते । गृध्रोऽरण्ये यदाशिश्ये शमिष्यामि मुनीक्षणात् ॥११२॥
लालयिष्ये च यत्तत्र भ्रात्रा देव्या सह त्वया । सीता हृता हनिष्ये च रावणेनाऽभियोगकृत् ॥११३॥
यच्च कर्णेजपः शोकविह्वलेन त्वया प्रभो । दापितस्ते नमस्कारः पञ्चसरपुरुषाश्रितः ॥११४॥
सोऽहं जटायुरालापेन सञ्जातेऽहं त्रिविष्टपम् । तथाविधं परित्यज्य दुःखं तिर्यग्भवोद्भवम् ॥११५॥
सुरसौख्यैर्महोदारैर्[1] मोहितेन मया गुरो । [2]अविज्ञेन हि न ज्ञाता सवासाता गतेयता ॥११६॥
अवसानेऽधुना देव स्वकर्मकृतचेतसः । किञ्चित्किल प्रतीकारं समनुष्ठातुमागतः ॥११७॥
ऊचे कृतान्तदेवोऽपि गत्वा किञ्चित् सुरेप्सताम् । सोऽहं नाथ कृतान्ताख्यः सेनानीरभवं तव ॥११८॥
स्मर्तव्योऽसि त्वया कृच्छ्रे इति बुद्ध्वोदितं त्वया । विधातुं तदहं स्वामिन् भवदन्तिकमागतः ॥११९॥
विलोक्य [3]त्रैबुधीमृद्धिं भूतभोगधरा जनाः । परमं विस्मयं प्राप्ता बभूवुर्विमलाशयाः ॥१२०॥
रामो जगाद सेनान्यमप्रमेयं सुरेशिनाम् । उदसीसरतां भद्रौ प्रत्यनीकस्थितात्मनाम् ॥१२१॥
तौ युवामागतौ नाकात्सां प्रबोधयितुं सुरौ । महाप्रभावसम्पन्नावत्यन्तशुद्धमानसौ ॥१२२॥
इति सम्भाष्य तौ रामो निष्क्रान्तः शोकसङ्कटात् । सरयूरोधसंवृत्या लक्ष्मणं समिधाकरत् ॥१२३॥

मिलकर श्री रामसे पूछा कि हे नाथ ! क्या ये दिन सुखसे व्यतीत हुए ? देवोंके ऐसा पूछनेपर राजा रामचन्द्रने उत्तर दिया कि मेरा सुख क्या पूछते हो ? समस्त सुख तो उन्हींको प्राप्त है जो मुनि पदको प्राप्त हो चुके हैं ॥१०६–११०॥ मैं आपसे पूछता हूँ कि सौम्य दर्शन वाले आप दोनों कौन हैं ? और किस कारण आप लोगोंने ऐसी चेष्टा की ? ॥१११॥ तदनन्तर जटायुके जीव देवने कहा कि हे राजन् ! जानते हैं आप, जब मैं वनमें गीध था और मुनिराजके दर्शनसे शान्तिको प्राप्त हुआ था ॥११२॥ वहाँ आपने भाई लक्ष्मण और देवी—सीताके साथ मेरा लालन-पालन किया था । सीता हरी गई थी और उसमें मैं रुकावट डालनेवाला था अतः रावणके द्वारा मारा गया था ॥११३॥ हे प्रभो ! उस समय शोकसे विह्वल होकर आपने मेरे कानमें पञ्च परमेष्ठियोंसे सम्बन्ध रखने वाला पञ्च नमस्कार मन्त्रका जाप दिलाया था ॥११४॥ मैं वही जटायु, आपके प्रसादसे उस प्रकारके तिर्यञ्च गति सम्बन्धी दुःखका परित्याग कर स्वर्गमें उत्पन्न हुआ था ॥११५॥ हे गुरो ! देवोंके अत्यन्त उदार महासुखोंसे मोहित होकर मुझ अज्ञानीने नहीं जाना कि आपपर इतनी विपत्ति आई है ॥११६॥ हे देव ! जब आपकी विपत्तिका अन्त आया तब आपके कर्मोदयने मुझे इस ओर ध्यान दिलाया और कुछ प्रतीकार करनेके लिए आया हूँ ॥११७॥

तदनन्तर कृतान्तवक्त्रका जीव भी कुछ अच्छा-सा देव धारणकर बोला कि हे नाथ ! मैं आपका कृतान्तवक्त्र सेनापति था ॥११८॥ आपने कहा था कि 'कष्टके समय मेरा स्मरण रखना' सो हे स्वामिन् ! आपका वही आदेश बुद्धिगतकर आपके समीप आया हूँ ॥११९॥ उस समय देवोंकी उस ऋद्धिको देख भोगी मनुष्य परम आश्चर्यको प्राप्त होते हुए निर्मलचित्त हो गये ॥१२०॥ तदनन्तर रामने कृतान्तवक्त्र सेनापति तथा देवोंके अधिपति जटायुके जीवोंसे कहा कि अहो भद्र पुरुषो ! तुम दोनों विपत्तिग्रस्त जीवोंका उद्धार करनेवाले हो ॥१२१॥ देखो, महाप्रभावसे सम्पन्न एवं अत्यन्त शुद्ध हृदयके धारक तुम दोनों देव मुझे प्रबुद्ध करनेके लिए स्वर्गसे यहाँ आये ॥१२२॥ इस प्रकार उन दोनोंसे वार्तालाप कर शोकरूपी संकटसे पार हुए रामने सरयू नदीके तटपर लक्ष्मणका दाह संस्कार किया ॥१२३॥

---

१. मदोदारै-म० । २. ज्ञानेनावधिना ज्ञात्वाऽसाताऽऽगतेदृशी म० । ३. देवसम्बन्धिनीं ।

परं विबुद्धभावश्च विषादपरिवर्जितः । अवाद धर्ममर्यादापालनार्थमिदं वचः ॥१२४॥

उपजातिः

शत्रुघ्न राज्यं कुरु मर्त्यलोके तपोवनं सम्प्रविशाम्यहं तु ।
सर्वस्पृहादूरितमानसात्मा पदं समाराधयितुं जिनानाम् ॥१२५॥
रागाद्वहं नो खलु भोगलुब्धः मनस्तु निःसङ्गसमाधिराज्ये ।
समाश्रयिष्यामि तवैव देव त्वया समं नास्ति गतिर्ममान्या ॥१२६॥
कामोपभोगेषु मनोहरेषु सुहृत्सु सम्बन्धिषु बान्धवेषु ।
वस्तुष्वभीष्टेषु च जीवितेषु कस्यास्ति तृप्तिर्भुवि भवेऽस्मिन् ॥१२७॥

इत्यार्षे पद्मपुराणे श्रीरविषेणाचार्यप्रणीते लक्ष्मणसंस्कारकरणं कल्याणमित्रदेवाभिगमाभिधानं नामाष्टादशोत्तरशतं पर्व ॥११८॥

तदनन्तर वैराग्यपूर्ण हृदयके धारक विषादरहित रामने धर्म-मर्यादाकी रक्षा करनेवाले निम्नाङ्कित वचन शत्रुघ्नसे कहे ॥१२४॥ उन्होंने कहा कि हे शत्रुघ्न ! तुम मनुष्यलोकका राज्य करो। सब प्रकारकी इच्छाओंसे जिसका मन और आत्मा दूर हो गई है ऐसा मैं मुक्ति पदकी आराधना करनेके लिए तपोवनमें प्रवेश करता हूँ ॥१२५॥ इसके उत्तरमें शत्रुघ्नने कहा कि देव ! मैं रागके कारण भोगोंमें लुब्ध नहीं हूँ। मेरा मन निर्ग्रन्थ समाधिरूपी राज्यमें लग रहा है इसलिए मैं आपके साथ उसी निर्ग्रन्थ समाधि रूप राज्यको प्राप्त करूँगा। इसके अतिरिक्त मेरी दूसरी गति नहीं है ॥१२६॥ हे नरसूर्य ! इस संसारमें मनको हरण करनेवाले कामोपभोगोंमें, मित्रोंमें, सम्बन्धियोंमें, भाई-बान्धवोंमें, अभीष्ट वस्तुओंमें तथा स्वयं अपने आपके जीवनमें किसे तृप्ति हुई है ? ॥१२७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य प्रणीत पद्मपुराणमें लक्ष्मणके संस्कारका वर्णन करनेवाला एक सौ अठारहवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥११८॥

एकोनविंशोत्तरशतं पर्व

तच्चस्य वचनं श्रुत्वा हितमत्यन्तनिश्चितम् । मनसा क्षणमालोच्य सर्वकर्तव्यदक्षिणम् ॥१॥
विलोक्याऽऽसीनमासन्नमनङ्गलवणात्मजम् । क्षितीश्वरपदं तस्मै ददौ स परमर्द्धिकम् ॥२॥
[1]अनन्तलवणः सोऽपि पितृतुल्यगुणक्रियः । प्रणताऽखिलसामन्तो जातः कुलधुराधरः ॥३॥
परं प्रतिष्ठितः सोऽयमनुरागप्रतापवान्[2] । [3]धरणीमङ्गलं सर्वमापच्च विजयो यथा ॥४॥
सुभूषणाय पुत्राय लङ्काराज्यं विभीषणः । सुग्रीवोऽपि निजं राज्यमङ्गदाङ्गभुवे ददौ ॥५॥
ततो दाशरथी रामः सविषान्नमिवेक्षितम् । कलत्रमिव चागस्वि[4] राज्यं भरतवज्जहौ ॥६॥
एकं निःश्रेयसस्थाङ्गं[5] देवासुरनमस्कृतम् । साधकैर्मुनिभिर्जुष्टं समभावगुणोदितम् ॥७॥
जन्ममृत्युपरित्रस्तः शिथिलकर्मकलङ्कभृत् । विधिमार्गं वृणोति स्म मुनिसुव्रतदेशितम् ॥८॥
बोधिं सम्प्राप्य काकुत्स्थः क्लेशभावविनिर्गतः । अर्चीपिष्टाधिकं मेघवलयनिःसृतभानुवत् ॥९॥
अथार्हद्दासनामानं श्रेष्ठिनं द्रष्टुमागतम् । कुशलं सर्वसङ्घस्य पप्रच्छेह सदःस्थितः ॥१०॥
उवाच स महाराज व्यसनेन तवाऽमुना । व्यथनं परमं प्राप्ता यतयोऽपि महीतले ॥११॥
अवबुध्य विबन्धात्मा किल व्योमचरो मुनिः । सुव्रतो भगवान् प्राप मुनिसुव्रतवंशभृत् ॥१२॥

अथानन्तर शत्रुघ्नके हितकारी और दृढ़ निश्चयपूर्ण वचन सुनकर राम क्षणभरके लिए विचारमें पड़ गये। तदनन्तर मनसे विचार कर अनङ्गलवणके पुत्रको समीपमें बैठा देख उन्होंने उसीके लिए परम ऋद्धिसे युक्त राज्यपद प्रदान किया ॥१-२॥ जो पिताके समान गुण और क्रियाओंसे युक्त था, तथा जिसे समस्त सामन्त प्रणाम करते थे ऐसा वह अनन्तलवण भी कुलका भार उठानेवाला हुआ ॥३॥ परम प्रतिष्ठाको प्राप्त एवं उत्कट अनुराग और प्रतापको धारण करनेवाले अनन्तलवणने विजय बलभद्रके समान पृथिवीतलके समस्त मङ्गल प्राप्त किये ॥४॥ विभीषणने लंकाका राज्य अपने पुत्र सुभूषणके लिए दिया और सुग्रीवने भी अपना राज्य अङ्गदके पुत्रके लिए प्रदान किया ॥५॥

तदनन्तर जिस प्रकार पहले भरतने राज्य छोड़ दिया था उसी प्रकार रामने राज्यको विष मिले अन्नके समान अथवा अपराधी स्त्रीके समान देखकर छोड़ दिया ॥६॥ जो जन्म-मरणसे भयभीत थे तथा जो शिथिलीभूत कर्म कलङ्कको धारणकर रहे थे ऐसे श्रीरामने भगवान् मुनिसुव्रतनाथके द्वारा प्रदर्शित आत्म-कल्याणका एक वही मार्ग चुना जो कि मोक्षका कारण था, सुर-असुरोंके द्वारा नमस्कृत था, साधक मुनियोंके द्वारा सेवित था तथा जिसमें माध्यस्थ भाव रूप गुणका उदय होता था ॥७-८॥ बोधिको पाकर क्लेश भावसे निकले राम, मेघ-मण्डलसे निर्गत सूर्यके समान अत्यधिक देदीप्यमान हो रहे थे ॥९॥

अथानन्तर राम सभामें विराजमान थे उसी समय अर्हद्दास नामका एक सेठ उनके दर्शन करनेके लिए आया था, सो रामने उससे समस्त मुनिसंघकी कुशल पूछी ॥१०॥ सेठने उत्तर दिया कि हे महाराज! आपके इस कष्टसे पृथिवीतलपर मुनि भी परम व्यथाको प्राप्त हुए हैं ॥११॥ उसी समय मुनिसुव्रत भगवान्की वंश-परम्पराको धारण करनेवाले निर्बन्ध आत्माके धारक, आकाशगामी भगवान् सुव्रत नामक मुनि रामकी दशा जान वहाँ आये ॥१२॥

---

१. अनंगलवणः म० । २. अनुरागं प्रतापवान् म०, क० । ३. धरणीमण्डले सर्वं सावर्थं विजयो यथा म०, क० । धरणीमण्डले सर्वे स्युर्ज्यविजया यथा ज० । ४. सापराधं । ५. सदःस्थितम् म० ।

इति श्रुत्वा महामोदप्रजातपुलकोद्गमः । विस्तारिलोचनः श्रीमान् सम्मतस्थेऽस्मिकं यतेः ॥१३॥
भूचरैश्चरमहाराजैः सेव्यमानो महोदयः । विजयः[1] स्वर्णकुम्भं वा सुभक्तियुतमागमत् ॥१४॥
गुणप्रवरनिर्ग्रन्थसहस्रकृतपूजनम् । प्रणमामोपसृत्यैव शिरसा रचिताञ्जलिः ॥१५॥
दृष्ट्वा स तं महात्मानं मुक्तिकारणमुत्तमम् । अग्रे निमग्नमात्मानममृतस्येव सागरे ॥१६॥
अविधं महिमानं च परं अद्धातिपूरितः । पूर्वं यथा महापद्मः सुव्रतस्येव योगिनः ॥१७॥
सर्वादरार्धितात्मानो[2] विद्याधरणा अपि । ध्वजतोरणवस्त्रार्घसङ्गीत[3]र्दीर्घयुः परम् ॥१८॥
विभामायामतीतायां भास्करेऽभिविवेदिते । प्रणम्य राघवः साधून् वव्रे निर्ग्रन्थदीक्षणम् ॥१९॥
निर्मूलकृतसर्वस्वस्फुरद्रागद्वेषो यथाविधि । प्रसादात्तव योगीन्द्र विहर्तुं[4] महमुत्सहे ॥२०॥
अवोचत गणाधीशः परमं नृप साध्वतम् । किमनेन समस्तेन विनाशिखावसादिना ॥२१॥
सनातननिराबाधपरातिशयसौख्यदम् । मनीषितं परं युक्तं जिनधर्मे अगाहितुम् ॥२२॥
एवं प्रभाषिते साधौ विरागां भववस्तुनि । दत्तं प्रदक्षिणं चक्रे सुमेरुं[5] रविर्यथा रयैः ॥२३॥
समुत्पन्नमहाबोधिः महासंवेगकञ्चुकः । बद्धकक्षो महाधृत्या कर्माणि क्षपणोद्यतः ॥२४॥
आशापाशं समुच्छिद्य निर्दह्य स्नेहपञ्जरम् । भित्त्वा कलत्रशृङ्खलां मोहदर्पं निहत्य च ॥२५॥

मुनि आये हैं यह सुन अत्यधिक हर्षके कारण जिन्हें रोमाञ्च निकल आये थे तथा जिनके नेत्र फूल गये थे ऐसे श्रीराम मुनिके समीप गये ॥१३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जिस प्रकार पहले विजय बलभद्र स्वर्ण कुम्भ नामक मुनिराज के समीप गये थे उसी प्रकार भूमिगोचरी तथा विद्याधर राजाओंके द्वारा सेवित एवं महाभ्युदयके धारक राम सुभक्तिके साथ सुव्रत मुनिके पास पहुँचे। गुणोंके श्रेष्ठ हजारों निर्ग्रन्थ जिनकी पूजा कर रहे थे ऐसे उन मुनिके पास आकर रामने हाथ जोड़ शिरसे नमस्कार किया ॥१४-१५॥ मुक्तिके कारणभूत उन उत्तम महात्माके दर्शन कर रामने अपने आपको ऐसा जाना मानो अमृतके सागरमें ही निमग्न होगया होऊँ ॥१६॥ जिस प्रकार पहले महापद्म चक्रवर्तीने मुनिसुव्रत भगवान् की परम महिमा की थी उसी प्रकार श्रद्धासे भरे श्रीमान् रामने उन सुव्रत नामक मुनिराजकी परम महिमा की ॥१७॥ सब प्रकारके आदर करनेमें योग देने वाले विद्याधरोंने भी ध्वजा तोरण अर्घदान तथा संगीत आदिकी उत्कृष्ट व्यवस्था की थी ॥१८॥

तदनन्तर रात व्यतीत होनेपर जब सूर्योदय हो चुका तब रामने मुनियोंको नमस्कार कर निर्ग्रन्थ दीक्षा देनेकी प्रार्थना की ॥१९॥ उन्होंने कहा कि हे योगिराज ! जिसके समस्त पाप दूर होगये हैं तथा राग-द्वेषका परिहार हो चुका है ऐसा मैं आपके प्रसादसे विधिपूर्वक विहार करनेके लिए उत्कण्ठित हूँ ॥२०॥ इसके उत्तरमें मुनिसंघके स्वामीने कहा कि हे राजन् ! तुमने बहुत अच्छा विचार किया, विनाशसे नष्ट हो जाने वाले इस समस्त परिकरसे क्या प्रयोजन है ? ॥२१॥ सनातन, निराबाध तथा उत्तम अतिशयसे युक्त सुखको देने वाले जिनधर्ममें अवगाहन करनेकी जो तुम्हारी भावना है वह बहुत उत्तम है ॥२२॥ मुनिराजके इस प्रकार कहनेपर संसारकी वस्तुओंमें विराग रखनेवाले रामने उन्हें उस प्रकार प्रदक्षिणा दी जिस प्रकार कि सूर्य सुमेरु पर्वतकी देता है ॥२३॥ जिन्हें महाबोधि उत्पन्न हुई थी, जो महासंवेग रूपी कवचको धारण कर रहे थे और जो कमर कसकर बड़े धैर्यके साथ कर्मोंका क्षय करनेके लिए उद्यत हुए थे ऐसे श्री राम आशारूपी पाशको छोड़कर, स्नेहरूपी पिंजड़ेको जलाकर, स्त्री रूपी सांकलको तोड़कर, मोहका घमण्ड चूरकर, और आहार, कुण्डल, मुकुट तथा वस्त्रको

---

१. विजयनामा प्रथमबलभद्रो यथा स्वर्णकुम्भमुनेः पार्श्वं जगाम तथेति भावः। २. सर्वदारार्थिता-स्मानो म० । ३. संगीतावित्र्यधुः परम् म०, संगीताद्यिर्व्यधुः परम् ज०, ख० । ४. मुनि-म० । ५. स्त्रीशृङ्खलाम् ।

आहारं कुण्डलं मौलिमपमीयाम्बरं तथा । परमार्थार्पितस्वान्तस्तनुलग्नमलावलिः ॥२५॥
श्वेताब्जसुकुमाराभिरङ्गुलीभिः शिरोरुहान् । निराचकार काकुत्स्थः पर्यङ्कासनमास्थितः ॥२७॥
रराज सुतरां रामस्त्यक्ताशेषपरिग्रहः । [1]सैंहिकेयविनिर्मुक्तो [2]हंसमण्डलविभ्रमः ॥२८॥
शीलतानिलयीभूतो गुप्तो गुप्त्याऽभिरूपया । पञ्चकं समितेः प्राप्तः पञ्चसर्वंसहं श्रितः ॥२९॥
षट्जीवकायरक्षस्थो दण्डत्रितयसूदनः । सप्तभीतिविनिर्मुक्तः पोढशाष्टमदार्दनः ॥३०॥
श्रीवत्सभूषितोरस्को गुणभूषणमानसः । जातः सुश्रमणः पद्मो मुक्तितत्त्वविधौ दृढः ॥३१॥
अदृष्टविग्रहैर्देवैराजघ्ने सुरदुन्दुभिः । दिव्यप्रसूनवृष्टिश्च विविक्तैर्भक्तितत्परैः ॥३२॥
निष्कामति तदा रामे गृहिभावोरुकल्मषात् । चक्रे कल्याणमित्राभ्यां देवाभ्यां परमोत्सवः ॥३३॥
भूदेवे तत्र निष्क्रान्ते सनृपा भूचियश्चराः । चित्तान्तरमिदं जग्मुर्विस्मयव्याप्तमानसाः ॥३४॥
विभूतिरत्नमीदृक्षं यत्र त्यक्त्वाऽसिदुस्त्यजम् । देवैरपि [3]कृतस्वार्थो रामदेवोऽभवन्मुनिः ॥३५॥
तत्रास्माकं परित्याज्यं किमिवास्ति प्रलोभकम् । सिद्धाः केवलं येन व्रतेच्छाविकलात्मकाः ॥३६॥
एवमादि परिध्याय कृत्वान्तःपरिदेवनम् । संवेगिनो [4]निराक्रान्ता बहवो गृहबन्धनात् ॥३७॥
छित्त्वा रागमयं पाशं भित्त्वा द्वेषवैरिणम् । सर्वसङ्गविनिर्मुक्तः शत्रुघ्नः श्रमणोऽभवत् ॥३८॥
विभीषणोऽथ सुग्रीवो नीलश्चन्द्रनखो नलः । क्रव्यो विराधिताद्याश्च निरीयुः खेचरेश्वराः ॥३९॥
विद्याभृतो परित्यज्य विद्यां प्राव्राज्यमीयुषाम् । केषाञ्चिच्चारणी लब्धिर्भूयोजन्माऽभवत्पुनः ॥४०॥

छोड़कर पर्यङ्कासनसे विराजमान होगये । उनका हृदय परमार्थके चिन्तनमें लग रहा था, उनके शरीरपर मलका पुञ्ज लग रहा था, और उन्होंने श्वेत कमलके समान सुकुमार अंगुलियोंके द्वारा शिरके बाल उखाड़ कर फेंक दिये थे ॥२४-२७॥ जिनका सब परिग्रह छूट गया था ऐसे राम उस समय राहुके चङ्गुलसे छूटे हुए सूर्यके समान सुशोभित हो रहे थे ॥२८॥ जो शीलव्रतके घर थे, उत्तम गुप्तियोंसे सुरक्षित थे, पञ्च समितियोंको प्राप्त थे और पाँच महाव्रतोंकी सेवा करते थे ॥२९॥ छह कायके जीवोंकी रक्षा करनेमें तत्पर थे, मन, वचन, कायकी प्रवृत्ति रूप तीन प्रकारके दण्डको नष्ट करने वाले थे, सप्त भयसे रहित थे, आठ प्रकारके मदको नष्ट करने वाले थे ॥३०॥ जिनका वक्षस्थल श्रीवत्सके चिह्नसे अलंकृत था, गुणरूपी आभूषणोंके धारण करनेमें जिनका मन लगा था और जो मुक्तिरूपी तत्त्वके प्राप्त करनेमें सुदृढ़ थे ऐसे राम उत्तम श्रमण होगये ॥३१॥ जिनका शरीर दिख नहीं रहा था ऐसे देवोंने देवदुन्दुभि बजाई, तथा भक्ति प्रकट करनेमें तत्पर पवित्र भावनाके धारक देवोंने दिव्य पुष्पोंकी वर्षा की ॥३२॥ उस समय श्री रामके गृहस्थावस्था रूपी महापापसे निष्क्रान्त होनेपर कल्याणकारी मित्र—कृतान्तवक्त्र और जटायुके जीवरूप देवोंने महान् उत्सव किया ॥३३॥ वहाँ श्री रामके दीक्षित होनेपर राजाओं सहित समस्त भूमिगोचरी और विद्याधर आश्चर्यसे चकितचित्त हो इस प्रकार विचार करने लगे कि देवोंने भी जिनका कल्याण किया ऐसे राम देव जहाँ इस प्रकारकी दुस्त्यज विभूतिको छोड़कर मुनि हो गये वहाँ हम लोगोंके पास छोड़नेके योग्य प्रलोभन है ही क्या ? जिसके कारण हम व्रतकी इच्छासे रहित हैं ॥३४-३६॥ इस प्रकार विचारकर तथा हृदयमें अपनी आसक्तिपर दुःख प्रकटकर संवेगसे भरे अनेकों लोग घरके बन्धनसे निकल भागे ॥३७॥

शत्रुघ्न भी रागरूपी पाशको छेदकर, द्वेषरूपी वैरीको नष्टकर तथा समस्त परिग्रहसे निर्मुक्त हो श्रमण हो गया ॥३८॥ तदनन्तर विभीषण, सुग्रीव, नील, चन्द्रनख, नल, क्रव्य तथा विराधित आदि अनेक विद्याधर राजा भी बाहर निकले ॥३९॥ जिन विद्याधरोंने विद्याका परि-

---

१. राहुविनिर्मुक्तः । २. सूर्यमण्डलविभ्रमः । ३. स्वार्थैः म० । ४. निर्गताः ।

एवं श्रीमति निष्क्रान्ते रामे जातानि षोडश । श्रमणानां सहस्राणि साधिकानि महीपते ॥४१॥
सप्तविंशसहस्राणि प्रधानवरयोषिताम् । श्रीमतीश्रमणोपार्श्वे बभूवुः परमार्यिकाः ॥४२॥
अथ पद्माभनिर्ग्रन्थो गुरोः प्राप्यानुमोदनम् । एकाकी विहृतद्वन्द्वो विहारं प्रतिपन्नवान् ॥४३॥
गिरिगह्वरदेशेषु भीमेषु क्षुब्धचेतसाम् । क्रूरश्वापदशब्देषु रात्रौ वासमसेवत ॥४४॥
गृहीतोत्तमयोगस्य विधिसन्नावसङ्गिनः । तस्यामेवास्य शर्वर्यामवधिज्ञानमुद्गतम् ॥४५॥
आलोकत यथाऽवस्थं रूपि येनाखिलं जगत् । यथा पाणितलन्यस्तं विमलं स्फटिकोपलम् ॥४६॥
ततो विदितमेतेनापरतो लक्ष्मणो यथा । विक्रियां तु मनो नास्य गतं विच्छिन्नबन्धनम् ॥४७॥
समा शतं कुमारत्वे मण्डलित्वे शतत्रयम् । चत्वारिंशच्च विजये यस्य संवत्सरा गताः ॥४८॥
एकादशसहस्राणि तथा पञ्चशतानि च । अब्दानां पृथिवीं पद्मश्च साम्राज्यं येन सेवितम् ॥४९॥
षोऽसौ वर्षसहस्राणि प्राप्य द्वादश [1]भोगिताम् । ऊनानि पञ्चविंशत्या विनिरिरयं गतः ॥५०॥
देवयोस्तत्र नो [2]दोषः सर्वाकारेण विद्यते । तथा हि प्राप्तकालोऽयं भ्रातृमृत्यूपदेशतः ॥५१॥
अनेकं मम तस्यापि विविधं जन्म तद्गतम् । वसुदत्तादिकं मोहपराधीनचेतसः ॥५२॥
एवं सर्वमतिक्रान्तमज्ञासीत् पद्मसंयतः । धैर्यमत्युत्तमं बिभ्रद्व्रतशीलधराधरः ॥५३॥
परया लेश्यया युक्तो गम्भीरो गुणसागरः । बभूव स महाचेताः सिद्धिलक्ष्मीपरायणः ॥५४॥
युष्मानपि वदाम्यस्मिन् सर्वानिह समागतान् । रमध्वं तत्र सन्मार्गे रतो यत्र रघूत्तमः ॥५५॥

त्यागकर दीक्षा धारण की थी उनमेंसे कितने ही लोगोंको पुनः चारणऋद्धि उत्पन्न हो गई थी ॥४०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! उस समय रामके दीक्षा लेनेपर कुछ अधिक सोलह हजार साधु हुए और सत्ताईस हजार प्रमुख प्रमुख स्त्रियाँ श्रीमती नामक साध्वीके पास आर्यिका हुईं ॥४१-४२॥

अथानन्तर गुरुकी आज्ञा पाकर श्रीराम निर्ग्रन्थ मुनि, सुख-दुःखादिके द्वन्द्वको दूरकर एकाकी विहारको प्राप्त हुए ॥४३॥ वे रात्रिके समय पहाड़ोंकी उन गुफाओंमें निवास करते थे जो चञ्चल चित्त मनुष्योंके लिए भय उत्पन्न करनेवाले थे तथा जहाँ क्रूर हिंसक जन्तुओंके शब्द व्याप्त हो रहे थे ॥४४॥ उत्तम योगके धारक एवं योग्य विधिका पालन करनेवाले उन मुनिको उसी रातमें अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया ॥४५॥ उस अवधिज्ञानके प्रभावसे वे समस्त रूपी जगत्को हथेलीपर रखे हुए निर्मल स्फटिकके समान ज्यों-का-त्यों देखने लगे ॥४६॥ उस अवधिज्ञानके द्वारा उन्होंने यह भी जान लिया कि लक्ष्मण परभवमें कहाँ गया परन्तु यतश्च उनका मन सब प्रकारके बन्धन तोड़ चुका था इसलिए विकारको प्राप्त नहीं हुआ ॥४७॥ वे सोचने लगे कि देखो, जिसके सौ वर्ष कुमार अवस्थामें, तीन सौ वर्ष मण्डलेश्वर अवस्थामें और चालीस वर्ष दिग्विजयमें व्यतीत हुए ॥४८॥ जिसने ग्यारह हजार पाँच सौ साठ वर्ष तक साम्राज्य पदका सेवन किया ॥४९॥ और जिसने पचीस कम बारह हजार वर्ष भोगोपना प्राप्तकर व्यतीत किये वह लक्ष्मण अन्तमें भोगोंसे तृप्त न होकर नीचे गया ॥५०॥ लक्ष्मणके मरणमें उन दोनों देवोंका कोई दोष नहीं है, यथार्थमें भाईकी मृत्युके बहाने उसका वह काल ही आ पहुँचा था ॥५१॥ जिसका चित्त मोहके आधीन था ऐसे मेरे तथा उसके वसुदत्तको आदि लेकर अनेक प्रकारके नाना जन्म साथ-साथ बीत चुके हैं ॥५२॥ इस प्रकार व्रत और शीलके पर्वत तथा उत्तम धैर्यको धारण करनेवाले पद्ममुनिने समस्त बीती बात जान ली ॥५३॥ वे पद्ममुनि उत्तम लेश्यासे युक्त, गम्भीर, गुणोंके सागर, उदार हृदय एवं मुक्ति रूपी लक्ष्मीके प्राप्त करनेमें तत्पर थे ॥५४॥ गौतम-स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! मैं यहाँ आये हुए तुम सब लोगोंसे भी कहता हूँ कि तुम लोग

१. योगिताम् म० । २. द्वेषः म० ।

जैने शक्त्या च भक्त्या च शासने सङ्गतत्पराः । जना विन्दन्ति तत्स्थानं जन्म मुक्तिपदान्तिकम् ॥५५॥
जिनाक्षरमहारत्ननिधानं प्राप्य भो जनाः । कुलिङ्गसमयं सर्वं परित्यजत दुःखदम् ॥५७॥
कुमन्थैर्मोहितात्मानः सदसत्कलुषक्रियाः । जात्यन्धा इव गच्छन्ति त्यक्त्वा कल्याणमन्यतः ॥५८॥
[1]नानोपकरणं दृष्ट्वा साधनं शक्तिवर्जिताः । निर्दोषमिति भाषित्वा गृह्णते मुखराः परे ॥५९॥
व्यर्थमेव कुलिङ्गास्ते मूढैरन्यैः पुरस्कृताः । प्रक्षिप्तलनवो भारं वहन्ति मृतका इव ॥६०॥

आर्यागीतिः

ऋषयस्ते खलु येषां परिग्रहे नास्ति याचने वा बुद्धिः ।
तस्मात्ते निर्ग्रन्थाः साधुगुणैरन्विता बुधैः संसेव्याः ॥६१॥
श्रुत्वा बलदेवस्य त्यक्त्वा भोगं परं विमुक्तिग्रहणम् ।
भवत भवभावशिथिला व्यसनरवेस्तापमाप्नुत न पुनर्यत्नात् ॥६२॥

इत्यार्षे श्रीपद्मपुराणे श्रीरविषेणाऽऽचार्यप्रणीते बलदेवनिष्क्रमणाभिधानं नाम एकोनविंशोत्तरशतं पर्व ॥११९॥

उसी मार्गमें रमण करो जिसमें कि रघूत्तम—राममुनि रमण करते थे ॥५५॥ जिन-शासनमें शक्ति और भक्तिपूर्वक प्रवृत्त रहनेवाले मनुष्य, जिस समस्त प्रयोजनकी प्राप्ति होती है ऐसे मुक्तिपदके निकटवर्ती जन्मको प्राप्त होते हैं ॥५६॥ हे भव्य जनो ! तुम सब जिनवाणी रूपी महारत्नोंके खजानेको पाकर कुलिङ्गियोंके दुःखदायी समस्त शास्त्रोंका परित्याग करो ॥५७॥ जिनकी आत्मा खोटे शास्त्रोंसे मोहित हो रही है तथा जो कपट सहित कलुषित क्रिया करते हैं ऐसे मनुष्य जन्मान्धोंकी तरह कल्याण मार्गको छोड़कर अन्यत्र चले जाते हैं ॥५८॥ कितने ही शक्तिहीन बकवादी मनुष्य नाना उपकरणोंको साधन समझ 'इनके ग्रहणमें दोष नहीं है' ऐसा कहकर उन्हें ग्रहण करते हैं सो वे कुलिङ्गी हैं । मूर्ख मनुष्य उन्हें व्यर्थ ही आगे करते हैं वे खिन्न शरीर होते हुए बोझा ढोनेवालोंके समान भारको धारण करते हैं ॥५९-६०॥ वास्तवमें ऋषि वे ही हैं जिनकी परिग्रहमें और उसको याचनामें बुद्धि नहीं है । इसलिए उत्तम गुणोंके धारक निर्मल निर्ग्रन्थ साधुओंकी ही विद्वज्जनोंकी सेवा करनी चाहिए । गौतम स्वामी कहते हैं कि हे भव्य-जनो ! इस तरह बलदेवका चरित सुनकर तथा संसारके कारणभूत समस्त उत्तम भोगोंका त्याग-कर यत्नपूर्वक संसारवर्धक भावोंसे शिथिल होओ जिससे फिर कष्टरूपी सूर्यके संतापको प्राप्त न हो सको ॥६१-६२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध तथा रविषेणाचार्य प्रणीत पद्मपुराणमें बलदेवकी दीक्षाका वर्णन करनेवाला एकसौ उन्नीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥११९॥

---

१. नानोपकरणा म०, ब० ।

विंशोत्तरशतं पर्व

एवमादीन् गुणान् राजन् बलदेवस्य योगिनः । धरणोऽप्यक्षमो वक्तुं जिह्वाकोटिविकारगः ॥१॥
उपोष्य द्वादशं सोऽथ धीरो विधिसमन्वितः । नन्दस्थलीं पुरीं भेजे पारणार्थं महातपाः ॥२॥
तरुणं [1]तरणिं दीप्त्या द्वितीयमिव भूधरम् । अन्यं दाक्षायणीनाथमगम्यमिव भास्वतः ॥३॥
दीप्तस्फटिकसंशुद्धहृदयं पुरुषोत्तमम् । मूर्त्येव सङ्गतं धर्ममनुरागं त्रिलोकगम् ॥४॥
आनन्दमिव सर्वेषां गत्वैकरसमेव स्थितम् । महाकान्तिप्रवाहेण कलयन्तमिव क्षितिम् ॥५॥
सकलाम्भोजखण्डानां पूरयन्तमिवाम्बरम् । तं वीक्ष्य नगरीलोकः समस्तः क्षोभमागतः ॥६॥
अहो चित्रमहो चित्रं भो भो पश्यत पश्यत । अदृष्टपूर्वमीदृक्षमाकारं भुवनातिगम् ॥७॥
अयं कोऽपि महोक्षेति आयातीह सुसुन्दरः । प्रलम्बदोर्युगः श्रीमान्पूर्वनरमन्दरः ॥८॥
अहो धैर्यमहो सत्त्वमहो रूपमहो द्युतिः । अहो कान्तिरहो शान्तिरहो मुक्तिरहो गतिः ॥९॥
कोऽयमीदृक्कृतः कस्मिन् समभ्येति मनोहरः । युगान्तरस्थिरन्यस्तशान्तदृष्टिः समाहितः ॥१०॥
उदारपुण्यमेतेन कतरन्मण्डितं कुलम् । कुर्यादनुग्रहं कस्य गृह्णानोऽन्नं सुकर्मणः ॥११॥
सुरेन्द्रसदृशं रूपं कुतोऽन्यत्र भुवने परम् । अक्षोभ्यसत्त्वशैलोऽयं रामः पुरुषसत्तमः ॥१२॥
एतैस्तैस्तसो हृद्यैर्जन्मनः कर्मणो मतेः । कुरुष्व चरितार्थत्वं देहस्य चरितस्य च ॥१३॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! इस तरह योगी बलदेवके गुणोंका वर्णन करनेके लिए एक करोड़ जिह्वाओंकी विक्रिया करनेवाला धरणेन्द्र भी समर्थ नहीं है ॥१॥ तदनन्तर पाँच दिनका उपवासकर धीर वीर महातपस्वी योगी राम पारणा करनेके लिए विधि-पूर्वक—ईर्यासमितिसे चार हाथ पृथिवी देखते हुए नन्दस्थली नगरीमें गये ॥२॥ वे राम अपनी दीप्तिसे ऐसे जान पड़ते थे मानो तरुण सूर्य ही हों, स्थिरतासे ऐसे लगते थे मानो दूसरा पर्वत ही हों, शान्त स्वभावके कारण ऐसे जान पड़ते थे मानो सूर्यके अगम्य दूसरा चन्द्रमा ही हों, उनका हृदय धवल स्फटिकके समान शुद्ध था, वे पुरुषोंमें श्रेष्ठ थे, ऐसे जान पड़ते थे मानो मूर्तिधारी धर्म ही हों, अथवा तीन लोकके जीवोंका अनुराग ही हो, अथवा सब जीवोंका आनन्द एकरूपताको प्राप्त होकर स्थित हुआ हो, वे महाकान्तिके प्रवाहसे पृथिवीको तर कर रहे थे, और आकाशको सफेद कमलोंके समूहसे पूर्ण कर रहे थे। ऐसे श्रीरामको देख नगरीके समस्त लोग क्षोभको प्राप्त हो गये ॥३-६॥ लोग परस्पर कहने लगे कि अहो ! आश्चर्य देखो, अहो आश्चर्य देखो जो पहले कभी देखनेमें नहीं आया ऐसा यह लोकोत्तर आकार देखो ॥७॥ यह कोई अत्यन्त सुन्दर महावृषभ यहाँ आ रहा है, अथवा जिसकी दोनों लम्बी भुजाएँ नीचे लटक रही हैं ऐसा यह कोई अद्भुत मनुष्य रूपी मंदराचल है ॥८॥ अहो, इनका धैर्य धन्य है, सत्त्व-पराक्रम धन्य है, रूप धन्य है, कान्ति धन्य है, शान्ति धन्य है, मुक्ति धन्य है और गति धन्य है ॥९॥ जो एक युग प्रमाण अन्तरपर बड़ी सावधानीसे अपनी शान्तदृष्टि रखता है ऐसा यह कौन मनोहर पुरुष यहाँ कहाँसे आ रहा है ॥१०॥ उदार पुण्यको प्राप्त हुए इसके द्वारा कौनसा कुल मण्डित हुआ है—यह किस कुलका अलंकार है ? और आहार ग्रहणकर किसपर अनुग्रह करता है ? ॥११॥ इस संसारमें इन्द्रके समान ऐसा दूसरा रूप कहाँ हो सकता है ? अरे ! जिनका पराक्रम रूपी पर्वत क्षोभ रहित है ऐसे ये पुरुषोत्तम राम हैं ॥१२॥ आओ आओ

---

१. तरणिर्दीप्त्या म० ।

इतिदर्शनसक्तानां पौराणां पुरुविस्मयः । समाकुलः समुत्तस्थौ रमणीयः परं ध्वनिः ॥१४॥
प्रविष्टे नगरीं रामे यथासमयचेष्टितैः । नारीपुरुषसङ्घातै रथ्याः मार्गाः प्रपूरिताः ॥१५॥
विचित्रभक्ष्यसम्पूर्णपात्रहस्ताः समुत्सुकाः । प्रवराः प्रमदास्तस्थुः गृहीतकरकाम्भसः ॥१६॥
हठं परिकरं बद्ध्वा मनोज्ञजलपूरितम् । आदाय कलशं पूर्णमाजग्मुर्बहवो नराः ॥१७॥
इतः स्वामिन्नितः स्वामिन् स्थीयतामिह सन्मुने । प्रसादाद्भूयतामत्र विचेरुरिति सद्गिरः ॥१८॥
अमाति हृदये हर्षे हृष्टदेहरुहोऽपरे । उत्कृष्टघर्घरिडास्फोटसिंहनादानदन्मुहुः ॥१९॥
मुनीन्द्र जय वर्द्धस्व नन्द पुण्यमहीधर । पूर्व च पुनरुक्तामिर्वाग्भिरापूरितं नभः ॥२०॥
अमत्रमानय क्षिप्रं स्थालमालोकय द्रुतम् । आम्बूनदमयीं पात्रीमवलम्बितमाहर ॥२१॥
क्षीरमानीयतामिक्षुः सन्निधीक्रियतां दधि । राजते भाजने भव्ये लघु स्थापय पायसम् ॥२२॥
शर्करां कर्करां कर्कारं कुरु करण्डके । कर्पूरपूरितां क्षिप्रं पूरकापटलं नय ॥२३॥
रसालां कलशे सारां त्वरसा विधिवद्विते । मोदकान् परमोदारान् प्रमोदाद्देहि दक्षिणे ॥२४॥
एवमादिभिरालापैराकुलैः कुलयोषिताम् । पुरुषाणां च तन्मध्ये पुरमासीत्तदात्मकम् ॥२५॥
अतिपात्यपि नो कार्यं मन्यते, नार्भका अपि । आलोक्यन्ते तदा तत्र सुमहासम्भ्रमैर्जनैः ॥२६॥
वेगिभिः पुरुषैः कैश्चिदागच्छद्भिः सुसङ्कटे । पात्यन्ते विशिखामार्गे जना भाजनपाणयः ॥२७॥
एवमभ्युन्नतस्वान्तं कृतसम्भ्रान्तचेष्टितम् । उन्मत्तमिव संवृत्तं नगरं तत्समन्ततः ॥२८॥
कोलाहलेन लोकस्य यतस्तेन च तेजसा । आक्रान्तविपुलस्तम्भान् बभञ्जुः कुलरा अपि ॥२९॥

इन्हें देखकर अपने चित्त, दृष्टि, जन्म, कर्म, बुद्धि, शरीर और चरितको सार्थक करो। इस प्रकार श्रीरामके दर्शनमें लगे हुए नगरवासी लोगोंका बहुत भारी आश्चर्यसे भरा सुन्दर कोलाहल-पूर्ण शब्द उठ खड़ा हुआ ॥१३-१४॥

तदनन्तर नगरीमें रामके प्रवेश करते ही समयानुकूल चेष्टा करनेवाले नर-नारियोंके समूहसे नगरके लम्बे-चौड़े मार्ग भर गये ॥१५॥ नाना प्रकारके खाद्य पदार्थोंसे परिपूर्ण पात्र जिनके हाथमें थे तथा जो जलकी झारी धारण कर रही थी ऐसी उत्सुकतासे भरी अनेक उत्तम स्त्रियाँ खड़ी हो गईं ॥१६॥ अनेकों मनुष्य पूर्ण तैयारीके साथ मनोज्ञ जलसे भरे पूर्ण कलश ले-लेकर आ पहुँचे ॥१७॥ 'हे स्वामिन्! यहाँ आइए, हे स्वामिन! यहाँ ठहरिए, हे मुनिराज! प्रसन्नतापूर्वक यहाँ विराजिए' इत्यादि उत्तमोत्तम शब्द चारों ओर फैल गये ॥१८॥ हृदयमें हर्षके नहीं समानेपर जिनके शरीरमें रोमाञ्च निकल रहे थे ऐसे कितने ही लोग जोर-जोरसे अस्पष्ट सिंहनाद कर रहे थे ॥१९॥ हे मुनीन्द्र! जय हो, हे पुण्यके पर्वत! वृद्धिंगत होओ तथा समृद्धिमान् होओ' इस प्रकारके पुनरुक्त वचनोंसे आकाश भर गया था ॥२०॥ 'शीघ्र ही बर्तन लाओ, स्थालको जल्दी देखो, सुवर्णकी थाली जल्दी लाओ, दूध लाओ, गन्ना लाओ, दही पासमें रक्खो, चांदीके उत्तम बर्तनमें शीघ्र ही खीर रक्खो, शीघ्र ही खड़ी शक्कर-मिश्री लाओ, इस बर्तनमें कर्पूरसे सुवासित शीतल जल भरो, शीघ्र ही पूड़ियोंका समूह लाओ, कलशमें शीघ्र ही विधिपूर्वक उत्तम शिखरिणी रखो, अरी, चतुरे! हर्षपूर्वक उत्तम बड़े बड़े लड्डू दे' इत्यादि कुलाङ्गनाओं और पुरुषोंके शब्दोंसे वह नगर तन्मय हो गया ॥२१-२५॥ उस समय उस नगरमें लोग इतने संभ्रममें पड़े हुए थे कि भारी जरूरतके कार्यको भी लोभ नहीं मानते थे और न कोई बच्चोंको ही देखते थे ॥२६॥ सकड़ी गलियोंमें बड़े वेगसे आने-वाले कितने ही लोगोंने हाथोंमें बर्तन लेकर खड़े हुए मनुष्य गिरा दिये ॥२७॥ इस प्रकार जिसमें लोगोंके हृदय अत्यन्त उन्नत थे तथा जिसमें हड़बड़ाहटके कारण विरुद्ध चेष्टाएँ की जा रही थीं ऐसा वह नगर सब ओरसे उन्मत्तके समान हो गया था ॥२८॥ लोगोंके उस भारी

तेषां कपोलपार्श्वेषु पालिता विपुलाश्चिरम् । प्लावयन्तः पयःपूरा गण्डश्रोत्रविनिर्गताः ॥३०॥
उत्कर्णनेत्रमध्यस्थतारकाः कवलत्यजः । उद्ग्रीवा वाप्यधस्तारं कृतगर्जा हेषितैः ॥३१॥
आकुलाध्यक्षलोकेन [1]कृतानुगमनाः परे । चक्रुरत्याकुलं लोकं त्रस्तास्त्रुटितबन्धनाः ॥३२॥
एवंविधो जनो यावद्भवद्दानतत्परः । परस्परमहाक्षोभपरिपूरणचञ्चलः ॥३३॥
तावच्छ्रुत्वा ध्वनिं घोरं क्षुब्धसागरसन्निभम् । प्रासादान्तर्गतो राजा प्रतिनन्दीत्यनन्दितः ॥३४॥
सहसा क्षोभमापन्नः किमेतदिति सत्वरम् । हर्म्यमूर्द्धानमारुक्षत् परिच्छदसमन्वितः ॥३५॥
ततः प्रधानसाधुं तं वीक्ष्य लोकविशेषकम् । कलङ्कपङ्कनिर्मुक्तशशाङ्कधवलच्छविम् ॥३६॥
आज्ञापयद् बहून् वीरान् यथैनं मुनिसत्तमम् । व्यतिपत्य द्रुतं प्रीत्या परिप्रापयतात्र मे ॥३७॥
यदाज्ञापयति स्वामीत्युक्त्वा प्रव्रजितास्ततः । राजमानवसिंहास्ते समुत्सारितजन्तवः ॥३८॥
गत्वा व्यज्ञापयन्नेवं मस्तकन्यस्तपाणयः । मुनिं मधुरवाणीकान्तिकान्तिहृतचेतसः ॥३९॥
भगवन्नीप्सितं[2] वस्तु गृहाणेत्यस्मदीश्वरः । विज्ञापयति भक्त्या त्वां सदनं तस्य गम्यताम् ॥४०॥
अपथ्येन विवर्णेन विरसेन रसेन च । पृथग्जनप्रणीतेन किमनेन तवान्धसा ॥४१॥
एह्यागच्छ महासाधो प्रसादं कुरु याचितः । अन्नं यथेप्सितं स्वैरमुपभुङ्क्ष्व निराकुलम् ॥४२॥
इत्युक्त्वा दातुमुद्युक्ता भिक्षां प्रवरयोषितः । विषण्णचेतसो राजपुरुषैरपसारिताः ॥४३॥
उपचारप्रकारेण जातं ज्ञात्वान्तरायकम् । राजपौरावृतः साधुः सर्वतोऽभूरपराङ्मुखः ॥४४॥

कोलाहल और तेजके कारण हाथियोंने भी बाँधनेके खम्भे तोड़ डाले ॥२९॥ उनकी कपोल-पालियोंमें जो मद्जल अधिक मात्रामें चिरकालसे सुरक्षित था वह गण्डस्थल तथा कानोंके विवरोंसे निकल-निकलकर पृथिवीको तर करने लगा ॥३०॥ जिनके कान खड़े थे, जिनके नेत्रोंकी पुतलियाँ नेत्रोंके मध्यमें स्थित थीं, जिन्होंने घास खाना छोड़ दिया था, और जिनकी गरदन ऊपरकी ओर उठ रही थी ऐसे घोड़े गम्भीर हिनहिनाहट करते हुए भयभीत दशामें खड़े थे ॥३१॥ जिन्होंने भयभीत होकर बन्धन तोड़ दिये थे तथा जिनके पीछे पीछे घबड़ाये हुए सईस दौड़ रहे थे ऐसे कितने ही घोड़ोंने मनुष्योंको व्याकुल कर दिया ॥३२॥ इस प्रकार जब तक दान देनेमें तत्पर मनुष्य पारस्परिक महाक्षोभसे चञ्चल हो रहे थे तब तक क्षुभित सागरके समान उनका घोर शब्द सुनकर महलके भीतर स्थित प्रतिनन्दी नामका राजा कुछ रुष्ट हो सहसा क्षोभको प्राप्त हुआ और 'यह क्या है' इस प्रकार शब्द करता हुआ परिकरके साथ शीघ्र ही महलकी छतपर चढ़ गया ॥३३-३५॥

तदनन्तर महलकी छतसे लोगोंके तिलक और कलंक रूपी पङ्कसे रहित चन्द्रमाके समान धवल कान्तिके धारक उन प्रधान साधुको देखकर राजाने बहुतसे वीरोंको आज्ञा दी कि शीघ्र ही जाकर तथा प्रीतिपूर्वक नमस्कार कर इन उत्तम मुनिराजको यहाँ मेरे पास लेआओ ॥३६-३७॥ 'स्वामी जो आज्ञा करें' इस प्रकार कह कर राजाके प्रधान पुरुष, लोगोंकी भीड़को चीरते हुए उनके पास गये ॥३८॥ और वहाँ जाकर हाथ जोड़ मस्तकसे लगा मधुर वाणीसे युक्त और उनकी कान्तिसे हृत चित्त होते हुए इस प्रकार निवेदन करने लगे कि ॥३९॥ हे भगवन् ! इच्छित वस्तु ग्रहण कीजिए' इस प्रकार हमारे स्वामी भक्तिपूर्वक प्रार्थना करते हैं सो उनके घर पधारिए ॥४०॥ अन्य साधारण मनुष्योंके द्वारा निर्मित अपथ्य, विवर्ण और विरस भोजनसे आपको क्या प्रयोजन है ॥४१॥ हे महासाधो ! आओ प्रसन्नता करो, और इच्छानुसार निराकुलता पूर्वक अभिलषित आहार ग्रहण करो ॥४२॥ ऐसा कहकर भिक्षा देनेके लिए उद्यत उत्तम स्त्रियोंको राजाके सिपाहियोंने दूर हटा दिया जिससे उनके चित्त विषाद युक्त हो गये ॥४३॥ इस तरह उपचारकी विधिसे उत्पन्न हुआ अन्तराय जानकर मुनिराज, राजा

---

१. कृतानुग गताः परे म० । २. भीप्सितं म० ।

नगरीयंस्तत्र निर्याति यतावतियतात्मनि । पूर्वस्मादपि संजातः संक्षोभः परमो जने ॥४५॥

उत्कण्ठाकुलहृदयं कृत्वा लोकं [1]समस्तसंसक्तसुखः ।
गत्वा श्रमणोऽरण्यं गहनं रात्रं समाचचार मतिमान् ॥४६॥

दृष्ट्वा तथाविधं तं पुरुषवरिं चारुचेष्टितं नयनहरम् ।
जाते पुनर्वियोगे तिर्यञ्चोऽप्युत्तमामधृतिमाजग्मुः ॥४७॥

इत्यार्षे पद्मपुराणे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पुरसंक्षोभाभिधानं नाम विंशोत्तरशतं पर्व ॥१२०॥

तथा नगरवासी दोनोंके अंशसे विमुख होगये ॥४४॥ तदनन्तर अत्यन्त यत्नाचार पूर्वक प्रवृत्ति करने वाले मुनिराज जब नगरीसे वापिस लौट गये तब लोगोंमें पहलेकी अपेक्षा अत्यधिक क्षोभ होगया ॥४५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! जिन्होंने इन्द्रिय सम्बन्धी सुखका त्याग कर दिया था ऐसे मुनिराजने समस्त मनुष्योंको उत्कण्ठासे व्याकुलहृदय कर सघन वनमें चले गये और वहाँ उन्होंने रात्रि भरके लिए प्रतिमा योग धारण कर लिया अर्थात् सारी रात कायोत्सर्गसे खड़े रहे ॥४६॥ सुन्दर चेष्टाओंके धारक नेत्रोंको हरण करने वाले तथा पुरुषोंमें सूर्य समान उन वैसे मुनिराजको देखनेके बाद जब पुनः वियोग होता था तब तिर्यञ्च भी अत्यधिक अधीरताको प्राप्त हो जाते थे ॥४७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध श्री रविषेणाचार्य द्वारा प्रणीत पद्मपुराणमें नगरके क्षोभका वर्णन करने वाला एकसौ बीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१२०॥

---

१. समस्तसुखसक्तः ब० ।

एकविंशोत्तरशतं पर्व

अथ द्वादशमादाय द्वितीयं मुनिपुङ्गवः । सहिष्णुरितरागम्यं चकार समवग्रहम् ॥१॥
अस्मिन् मृगकुलाकीर्णे वने या मम जायते । भिक्षा तामेव गृह्णामि सन्निवेशं विशामि न ॥२॥
इति तत्र समारूढे मुनौ घोरमुपग्रहम्[1] । दुष्टाश्वेन हृतो राजा प्रतिनन्दी प्रसूतिना ॥३॥
अन्विष्यन्ती जनौघेभ्यो हृतिमार्गं समाकुला । स्यूरोपृष्ठसमारूढा महिषी प्रभवाह्वया ॥४॥
किं भवेदिति भूयिष्ठं चिन्तयन्ती खरावती । प्रास्थिष्ठत्वरमार्गेण भटचक्रसमन्विता ॥५॥
ह्रियमाणस्य भूपस्य सरः संवृतमन्तरे । तत्र पङ्के ययुर्मग्नः कलभ इव गोहिकः ॥६॥
ततः प्राप्ता वरारोहा वीक्ष्य पद्माभिमत्सरः । किञ्चिल्लिस्मिताननाऽवोचत्साश्वेवाश्वो[2] नृपाभ्यधात् ।
अपाहरिष्यथ नो चेदद्रक्ष्यत ततः कुतः । सरो नन्दनपुष्पाढ्यमभिकाङ्क्षितदर्शनम् ॥८॥
सफलोऽयं वरा[3]ऽऽगात उद्यानोद्गम इदम् । उद्यानसमिदं द्रष्टमासेचनकदर्शनम् ॥९॥
इति नर्मपरं कृत्वा जल्पितं प्रियसङ्गता । सखीजनावृता तस्थौ सरसस्तस्य रोधसि ॥१०॥
प्रक्रीड्य विमले तोये विधाय कुसुमोच्चयम् । परस्परमलंकृत्य दम्पती भोजने स्थितौ ॥११॥
एतस्मिन्नन्तरे साधुरुपवासविधौ गतः । तयोः सन्निधिमासीदत् क्रियामार्गविशारदः ॥१२॥
तं समीक्ष्य समुद्भूतप्रमदः पुलकान्वितः । अभ्युत्तस्थौ सपत्नीको राजा परमसम्भ्रमः ॥१३॥

अथानन्तर कष्ट सहन करने वाले, मुनिश्रेष्ठ श्री रामने पाँच दिनका दूसरा उपवास लेकर यह अवग्रह किया कि मृग समूहसे भरे हुए इस वनमें मुझे जो भिक्षा प्राप्त होगी उसे ही मैं ग्रहण करूँगा—भिक्षाके लिए नगरमें प्रवेश नहीं करूँगा ॥१-२॥ इस प्रकार कठिन अवग्रह लेकर जब मुनिराज वनमें विराजमान थे तब एक प्रतिनन्दी नामका राजा दुष्ट घोड़ेके द्वारा हरा गया ॥३॥ तदनन्तर उसकी प्रभवा नामकी रानी शोकातुर हो मनुष्योंके समूहसे हरणका मार्ग खोजती हुई घोड़ेपर चढ़कर निकली। अनेक योधाओंका समूह उसके साथ था। 'क्या होगा ? कैसे राजाका पता चलेगा ?' इस प्रकार अत्यधिक चिन्ता करती हुई वह बड़े वेगसे उसी मार्गसे निकली ॥४-५॥ हरे जानेवाले राजाके बीचमें एक तालाब पड़ा सो वह दुष्ट अश्व उस तालाबकी कीचड़में उस तरह फँस गया जिस तरह कि गृहस्थ स्त्रीमें फँस रहता है ॥६॥ तदनन्तर सुन्दरी रानी, वहाँ पहुँचकर और कमल आदिसे युक्त सरोवरको देखकर कुछ मुसकराती हुई बोली कि राजन् ! घोड़ाने अच्छा ही किया ॥७॥ यदि आप इस घोड़ेके द्वारा नहीं हरे जाते तो नन्दन वन जैसे पुष्पोंसे सहित यह सुन्दर सरोवर कहाँ पाते ? इसके उत्तर में राजाने कहा कि हाँ यह उद्यान-यात्रा आज सफल हुई जब कि जिसके देखनेसे तृप्ति नहीं होती ऐसे इस अत्यन्त सुन्दर वनके मध्य तुम आ पहुँची ॥८-९॥ इस प्रकार हास्यपूर्ण वार्ता-कर पतिके साथ मिली रानी, सखियोंसे आवृत हो उसी सरोवरके किनारे ठहर गई ॥१०॥

तदनन्तर निर्मल जलमें क्रीड़ा कर, फूल तोड़कर तथा परस्पर एक दूसरेको अलंकृत कर जब दोनों दम्पति भोजन करनेके लिए बैठे तब इसी बीचमें उपवासकी समाप्तिको प्राप्त एवं साधुकी क्रियामें निपुण मुनिराज राम, उनके समीप आये ॥११-१२॥ उन्हें देख जिसे हर्ष उत्पन्न हुआ था, तथा रोमाञ्च उठ आये थे ऐसा राजा रानीके साथ घबड़ा कर उठकर

---

१. मुपग्रहे म०, ज०। २. साश्वेवाश्वो नृपाविशत् म०। साश्विवाश्वो नृपाविशत् ज०। ३. रोधिता म०।

प्रणम्य स्थीयतामत्र भगवन्निति शब्दवान् । संशोध्य भूतलं चक्रे कमलादिभिरर्चितम् ॥१४॥
सुगन्धिजलसम्पूर्णं पात्रमुद्धृत्य भामिनी । देवी वारि ददौ राजा पादावक्षालयन्मुनेः ॥१५॥
शुचिश्चामोदसर्वाङ्गस्ततो राजा महादरः । क्षीरेयादिकमाहारं सद्गन्धरसदर्शनम् ॥१६॥
हेमपात्रगतं कृत्वा श्रद्धया परयान्वितः । आत्मं स्म परिवेवेष्टि प्राप्ते परमसुक्षमे ॥१७॥
ततोऽन्नं दीयमानं तद्बुद्धिमेवमभिभाजनम् । सुदानकारणादाढ्यं मनोरथगुणोपमम् ॥१८॥
तुष्ट्यादिभिर्गुणैर्युक्तं ज्ञात्वा दातारमुत्तमम् । प्रहृष्टमनसो देवा विहायस्यभ्यनन्दयन् ॥१९॥
अनुकूलो ववौ वायुः पञ्चवर्णा सुगौरभाम् । पुष्पवृष्टिमुमुञ्चन्त प्रमथाः प्रमदान्विताः ॥२०॥
चित्रश्रोत्रहरो जज्ञे पुष्करे[1] दुन्दुभिस्वनः । अप्सरोगणसङ्गीतप्रवरध्वनिसङ्गतः ॥२१॥
तुष्टाः कन्दर्पिणो देवाः कृतानेकविधस्वनाः । चक्रुर्बहुलं व्योम्नि ननृतुश्च समाकुलम् ॥२२॥
अहो दानमहो दानमहो पात्रमहो विधिः । अहो देयमहो दाता साधु साधु परं कृतम् ॥२३॥
वर्द्धस्व जय नन्देतिप्रभृतिः परमाकुलः । विहायोमण्डपव्यापी निःस्वनस्त्रैदशोऽभवत् ॥२४॥
नानारत्नसुवर्णादिपरमद्रविणात्मिका । पपात वसुधारा च द्योतयन्ती दिशो दश ॥२५॥
पूजामवाप्य देवेभ्यो मुनेर्देशव्रतानि च । विशुद्धदर्शनो राजा पृथिव्यामाप गौरवम् ॥२६॥

एवं सुदानं विनिगोह्य पत्न्या भक्तिप्रणतो नृपतिः कृतार्थिः[2] ।
वहन्नितान्तं परमं प्रमोदं मनुष्यजन्माऽऽसफलं विवेद ॥२७॥

खड़ा होगया ॥१३॥ उसने प्रणाम कर कहा कि हे भगवन्! खड़े रहिए, तदनन्तर पृथिवीतलको शुद्ध कर उसे कमल आदिसे पूजित किया ॥१४॥ रानीने सुगन्धित जलसे भरा पात्र उठाकर जल दिया और राजाने मुनिके पैर धोये ॥१५॥ तदनन्तर जिसका समस्त शरीर हर्षसे युक्त था ऐसे वज्रबल राजाने बड़े आदरके साथ उत्तम गन्ध रस और रूपसे युक्त खीर आदिक आहार सुवर्ण पात्रमें रक्खा और उसके बाद उत्कृष्ट श्रद्धासे सहित हो वह उत्तम आहार उत्तम पात्र अर्थात् मुनिराजको समर्पित किया ॥१६-१७॥ तदनन्तर जिस प्रकार दयालु मनुष्यका दान देनेका मनोरथ बढ़ता जाता है उसी प्रकार मुनिके लिए दिया जाने वाला अन्न उत्तम दानके कारण बर्तनमें वृद्धिको प्राप्त होगया था। भावार्थ—श्री राम मुनि अक्षीणऋद्धिके धारक थे इसलिए उन्हें जो अन्न दिया गया था वह अपने बर्तनमें अक्षीण हो गया था ॥१८॥ दाताको श्रद्धा तुष्टि भक्ति आदि गुणोंसे युक्त उत्तम दाता जानकर देवोंने प्रसन्नचित्त हो आकाशमें उसका अभिनन्दन किया अर्थात् पञ्चाश्चर्य किये ॥१९॥ अनुकूल—शीतल मन्द सुगन्धित वायु चली, देवोंने हर्षित हो पाँच वर्णकी सुगन्धित पुष्पवृष्टि की, आकाशमें कानोंको हरने वाला नाना प्रकारका दुन्दुभि नाद हुआ, अप्सराओंके संगीतकी उत्तम ध्वनि उस दुन्दुभिनादके साथ मिली हुई थी, संतोषसे युक्त कन्दर्प जातिके देवोंने अनेक प्रकारके शब्द किये तथा आकाशमें नानारस पूर्ण अनेक प्रकारका नृत्य किया ॥२०-२२॥ अहो दान, अहो पात्र, अहो विधि, अहो देय, अहो दाता तथा धन्य धन्य आदि शब्द आकाशमें किये गये ॥२३॥ बढ़ते रहो, जय हो, तथा समृद्धिमान् होओ आदि देवोंके विशाल शब्द आकाश-रूपी मण्डपमें व्याप्त होगये ॥२४॥ इनके सिवाय नाना प्रकारके रत्न तथा सुवर्णादि उत्तम द्रव्योंसे युक्त धनकी वृष्टि दशों दिशाओंको प्रकाशित करती हुई पड़ी ॥२५॥ विशुद्ध सम्यग्दर्शनका धारक राजा प्रतिनन्दी देवोंसे पूजा तथा मुनिसे देशव्रत प्राप्त कर पृथिवीमें गौरवको प्राप्त हुआ ॥२६॥ इस प्रकार भक्तिसे नम्रीभूत भार्या सहित राजाने सुपात्रके लिए दान देकर अत्यधिक हर्षका

---

१. आकाशे । २. जायासहितः ।

रामोऽपि कृत्वा समयोदितार्थं विधक्तशय्यासनमध्यवर्ती ।
तपोऽतिदीप्तो विजहार भूमौ रविः प्राप्त इव द्वितीयः ॥२८॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे दानप्रसङ्गाभिधानं नामैकविंशोत्तरशतं पर्व ॥१२१॥

अनुभव किया और मनुष्य जन्मको सफल माना ॥२७॥ इधर श्री रामने भी आगममें कहे अनुसार प्रवृत्ति कर, एकान्त स्थानमें शयनासन किया तथा तपसे अत्यन्त देदीप्यमान हो पृथिवीपर उस तरह योग्य विहार किया कि जिस तरह मानो दूसरा सूर्य ही पृथिवीपर आ पहुँचा हो ॥२८॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य विरचित पद्मपुराणमें श्रीरामके आहार दानका वर्णन करने वाला एकसौ इक्कीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१२१॥

द्वाविंशत्युत्तरशतं पर्व

भगवान् बलदेवोऽसौ प्रशान्तरतिमत्सरः । अत्युग्रं तपश्चक्रे सामान्यजनदुःसहम् ॥१॥
[1]अष्टमाद्युपवासस्थः [2]स्वमध्यस्थे विरोचने । पर्युपास्यत गोपाद्यैररण्ये गोचरं भ्रमन् ॥२॥
व्रतगुप्तिसमित्याद्यसमयज्ञो जितेन्द्रियः । साधुवात्सल्यसम्पन्नः स्वाध्यायनिरतः सुकृत् ॥३॥
लब्धानेकमहालब्धिरपि निर्विक्रियः परः । परीषहभटं मोहं पराजेतुं समुद्यतः ॥४॥
तपोऽनुभावतः शान्तैर्व्याघ्रैः सिंहैश्च वीक्षितः । विस्तारिलोचनोद्ग्रीवैर्मृगाणां च कदम्बकैः ॥५॥
निःश्रेयसगतस्वान्तः स्पृहासक्तिविवर्जितः । प्रयत्नपरमं मार्गं विजहार वनान्तरे ॥६॥
शिलातलस्थितो जातु पर्यङ्कासनसंस्थितः । ध्यानान्तरं विवेशासौ भानुर्मेघान्तरं यथा ॥७॥
मनोज्ञे क्वचिदुद्देशे लम्बितमहाभुजः । अस्थान्निष्कम्पचित्तात्मा प्रतिमया प्रभुः ॥८॥
युगान्तरेक्षणः श्रीमान् प्रशान्तो विहरन् क्वचित् । वनस्पतिनिवासाभिः सुरस्त्रीभिरपूज्यत ॥९॥
एवं निरुपमात्मासौ तपश्चक्रे तथाविधम् । कालेऽस्मिन् दुःषमे शक्यं ध्यातुमन्यपरैर्नयत् ॥१०॥
ततोऽसौ विहरन् साधुः [3]प्राप्तः कोटिशिलां क्रमात् । नमस्कृत्योद्धृता पूर्वं भुजाभ्यां लक्ष्मणेन या ॥११॥
महात्मा तां समारुह्य प्रच्छिन्नस्नेहबन्धनः । तस्थौ प्रतिमया रात्रौ कर्मक्षपणकोविदः ॥१२॥

अथानन्तर जिनके राग-द्वेष शान्त हो चुके थे ऐसे श्री भगवान् बलदेवने सामान्य मनुष्यों के लिए अशक्य अत्यन्त कठिन तप किया ॥१॥ जब सूर्य आकाशके मध्यमें चमकता था तब तेल आदिका उपवास धारण करनेवाले राम वनमें आहारार्थ भ्रमण करते थे और गोपाल आदि उनकी उपासना करते थे ॥२॥ वे व्रत गुप्ति समिति आदिके प्ररूपक शास्त्रोंके जाननेवाले थे, जितेन्द्रिय थे, साधुओंके साथ स्नेह करनेवाले थे, स्वाध्यायमें तत्पर थे, अनेक उत्तम कार्योंके विधायक थे, अनेक महाऋद्धियाँ प्राप्त होनेपर भी निर्विकार थे, अत्यन्त श्रेष्ठ थे, परीषह रूपी योद्धा तथा मोहको जीतनेके लिए उद्यत रहते थे, तपके प्रभावसे व्याघ्र और सिंह शान्त होकर उनकी ओर देखते थे, जिनके नेत्र हर्षसे विस्तृत थे तथा जिन्होंने अपनी गरदन ऊपरको ओर उठा ली थी ऐसे मृगोंके झुण्ड बड़े प्रेमसे उन्हें देखते थे, उनका चित्त मोक्षमें लग रहा था, तथा जो इच्छा और आसक्तिसे रहित थे। इस प्रकार उत्तम गुणोंको धारण करनेवाले भगवान् राम वनके मध्य बड़े प्रयत्नसे—ईर्यासमितिपूर्वक मार्गमें विहार करते थे ॥३-६॥ कभी शिलातल-पर खड़े होकर अथवा पर्यङ्कासनसे विराजमान होकर उस तरह ध्यानके भीतर प्रवेश करते थे जिस तरह कि सूर्य मेघोंके भीतर प्रवेश करता है ॥७॥ वे प्रभु कभी किसी सुन्दर स्थानमें दोनों भुजाएँ नीचे लटकाकर मेरुके समान निष्कम्पचित्त हो प्रतिमायोगसे विराजमान होते थे ॥८॥ कहीं अत्यन्त शान्त एवं वैराग्य रूपी लक्ष्मीसे युक्त राम जूड़ा प्रमाण भूमिको देखते हुए विहार करते थे और वनस्पतियोंपर निवास करनेवाली देवाङ्गनाएँ उनकी पूजा करती थीं ॥९॥ इस प्रकार अनुपम आत्माके धारक महामुनि रामने जो उस प्रकार कठिन तप किया था, इस दुःषम नामक पञ्चम कालमें अन्य मनुष्य उसका ध्यान नहीं कर सकते हैं ॥१०॥ तदनन्तर विहार करते हुए राम क्रम-क्रमसे उस कोटिशिलापर पहुँचे जिसे पहले लक्ष्मणने नमस्कारकर अपनी भुजाओंसे उठाया था ॥११॥ जिन्होंने स्नेहका बन्धन तोड़ दिया था तथा जो कर्मोंका क्षय करनेके लिए उद्यत थे ऐसे महात्मा श्री राम उस शिलापर आरूढ़ हो रात्रिके समय प्रतिमा-योगसे विराजमान हुए ॥१२॥

---

१. अष्टम्याद्युप-म० । २. स्वमध्यस्थे म० । ३. प्राप्त-म० ।

अथासावच्युतेन्द्रेण [1]प्रयुक्तावधिचक्षुषा । उदारस्नेहयुक्तेन सीतापूर्वेण वीक्षितः ॥१३॥
आत्मनो भवसंबन्धं संस्मृत्य च यथाक्रमम् । जिनशासनमार्गस्य प्रभवं च महोत्तमम् ॥१४॥
दृष्ट्वा सोऽयं नराधीशो रामो भुवनभूषणः । योऽभवन्मानुषे लोके स्त्रीभूताया: पतिर्मम ॥१५॥
पश्य कर्मविचित्रत्वान्मानसस्य विचेष्टितम् । अन्यथाकाङ्क्षितं पूर्वमन्यथा काङ्क्ष्यतेऽधुना ॥१६॥
कर्मणः पश्यताधानं ही शुभाशुभयोः पृथक् । विचित्रं जन्म लोकस्य यत्साक्षादिदमीक्ष्यते ॥१७॥
जगतो विस्मयकरौ सीरिचक्रायुधाविमौ । जातावूर्ध्वाधरस्थानभाजावुचितकर्मतः ॥१८॥
एक: प्रधीर्धसंसारी क्षीणसंसारपेटकः । द्वितीय: पूर्णसंसारो निरये दुःखितोऽभवत् ॥१९॥
विषयैरवितृप्तात्मा लक्ष्मणो दिव्यमानुषैः । अधोलोकमनुप्राप्तः कृतपापोऽभिमानतः ॥२०॥
राजीवलोचनः श्रीमानेषोऽसौ लक्ष्मणाग्रजः । विप्रयोगेन सौमित्रेरुपेतः शरणं जिने ॥२१॥
बहिः शत्रून् पराजित्य हलरत्नेन सुन्दरः । इन्द्रियाण्यधुना जेतुमुद्यतो ध्यानशक्तितः ॥२२॥
तदस्य क्षपकश्रेणिमारूढस्य करोमि यत् । इह येन वयस्यो मे ध्यानभ्रष्टोऽभिजायते ॥२३॥
ततोऽनेन सह प्रीत्या महामैत्रीसमुत्थया । मेरुं नन्दीश्वरं वापि सुखं यास्यामि शोभया ॥२४॥
विमानशिखरारूढौ विभूत्या परयान्वितौ । अन्योन्यं वेदयिष्यावो दुःखानि च सुखानि च ॥२५॥
[2]सौमित्रिमधरप्राप्तमानेतुं प्रतिबुद्धताम् । सह तेनागमिष्यामि रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥२६॥
इदमन्यच्च संचिन्त्य सीतादेवः स्वयंप्रभः । सौधर्मकल्पमन्येद्यु: समागादरुणाच्युतात् ॥२७॥

अथानन्तर जिसने अवधिज्ञान रूपी नेत्रका प्रयोग किया था तथा जो अत्यधिक स्नेहसे युक्त था ऐसे सीताके पूर्व जीव अच्युत स्वर्गके प्रतीन्द्रने उन्हें देखा ॥१३॥ उसी समय उसने अपने पूर्व भव तथा जिन शासनके महोत्तम माहात्म्यको क्रमसे स्मरण किया ॥१४॥ स्मरण करते ही उसे ध्यान आ गया कि ये संसारके आभूषण स्वरूप वे राजा राम हैं जो मनुष्य लोकमें जब मैं सीता थी तब मेरे पति थे ॥१५॥ वह प्रतीन्द्र विचार करने लगा कि अहो कर्मोंकी विचित्रतासे होनेवाली मनकी विविध चेष्टाको देखो जो पहले अन्य प्रकारकी इच्छा थी और अब अन्य प्रकारकी इच्छा हो रही है ॥१६॥ अहो ! कार्योंकी शुभ अशुभ कर्मोंमें जो पृथक् पृथक् प्रवृत्ति है उसे देखो । लोगोंका जन्म विचित्र है जो कि यह साक्षात् ही दिखाई देता है ॥१७॥ ये बलभद्र और नारायण जगत्को आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले थे पर अपने-अपने योग्य कर्मोंके प्रभावसे ऊर्ध्व तथा अधःस्थान प्राप्त करनेवाले हुए अर्थात् एक लोकके ऊर्ध्व भागमें विराजमान होंगे और एक अधोलोकमें उत्पन्न हुआ ॥१८॥ इनमें एक बड़ा तो क्षीण संसारी तथा चरम शरीरी है और दूसरा छोटा—लक्ष्मण, पूर्ण संसारी नरकमें दुःखी हो रहा है ॥१९॥ दिव्य तथा मनुष्य सम्बन्धी भोगोंसे जिसकी आत्मा तृप्त नहीं हुई ऐसा लक्ष्मण पापकर अभिमानके कारण नरकमें दुःखी हो रहा है ॥२०॥ यह कमललोचन श्रीमान् बलभद्र, लक्ष्मणके वियोगसे जिनेन्द्र भगवान्की शरणमें आया है ॥२१॥ यह सुन्दर, पहले हलरत्नसे बाह्य शत्रुओंको पराजित कर अब ध्यानकी शक्तिसे इन्द्रियोंको जीतनेके लिए उद्यत हुआ है ॥२२॥ इस समय यह क्षपक श्रेणीमें आरूढ़ है इसलिए मैं ऐसा काम करता हूँ कि जिससे यह मेरा मित्र ध्यानसे भ्रष्ट हो जाय ॥२३॥ [और मोक्ष न जाकर स्वर्गमें ही उत्पन्न हो] तब महामित्रतासे उत्पन्न प्रीतिके कारण इसके साथ सुखपूर्वक मेरुपर्वत और नन्दीश्वर द्वीपको जाऊँगा उस समयकी शोभा ही निराली होगी । विमानके शिखरपर आरूढ़ तथा परम विभूतिके सहित हम दोनों एक दूसरेके लिए अपने दुःख और सुख बतलावेंगे ॥२४-२५॥ फिर अधोलोकमें पहुँचे हुए लक्ष्मणको प्रतिबुद्धता प्राप्त करानेके लिए शुभकार्यके करनेवाले उन्हीं रामके साथ जाऊँगा ॥२६॥ यह तथा इसी

१. प्रत्युक्ता-म० । २. सौमित्रिमथ सम्प्राप्त-म० ।

तत्रावतरति स्फीतं तन्माद्यां नन्दनोपमे । वने यत्र स्थितः साधुर्ध्यानयोगेन राघव ॥२८॥
बहुपुष्परजोवाही सर्वो वायुः सुखावहः । कोलाहलरवो रम्यः पक्षिणां सर्वतोऽभवत् ॥२९॥
प्रबलं चञ्चरीकाणां चञ्चलं बकुले कुलम् । प्रघुष्टं [1]परपुष्टानां पुष्टं जुष्टं कदम्बकैः ॥३०॥
[2]सरुषुः सारिकारचारुनानास्वरविशारदाः । शिक्षीकुर्विंशदस्वानाः शुकाः सम्प्राप्तकिंशुकाः ॥३१॥
मञ्जर्यः सहकाराणां विरेजुर्भ्रमरान्विताः । [3]तीक्ष्णा इव संशाता[4] नूतनाश्चित्तजन्मनः ॥३२॥
कुसुमैः कर्णिकाराणामरण्यं पिञ्जरीकृतम् । पीतपिष्टातकेनेव कर्तुं क्रीडनमुद्यतम् ॥३३॥
अनपेक्षितगण्डूषमदिरानेकदौहदः । वबृषे [5]बकुलः प्रावृट् नभोभवकुलैरिव ॥३४॥
जानकीवेषमास्थाय कामरूपः सुरोत्तमः । समीपं रामदेवस्य मन्थरं गन्तुमुद्यतः ॥३५॥
मनोऽभिरमणे तस्मिन् वने जनविवर्जिते । विचित्रपादपप्राते सर्वर्तुकुसुमाकुले ॥३६॥
सीता किल महाभागा पर्यटन्ती सुखं वनम् । अकस्मादग्रतः साधोः सुन्दरी समदृश्यत ॥३७॥
अवोचत च दृष्टोऽसि कथञ्चिदपि राघव । भ्रमन्त्या विष्टपं सर्वं मया पुण्येन भूरिणा ॥३८॥
वियोगोर्मिसङ्कीर्णे स्नेहमन्दाकिनीह्रदे । मग्नां सुवदनां नाथ मां सम्धारय साम्प्रतम् ॥३९॥
विचेष्टितैः सुमिष्टोक्तैर्ज्ञात्वा मुनिमकम्पनम् । मोहपापार्जितस्वान्ता पुरःपार्श्वानुवर्तिनी ॥४०॥
मनोभवज्वरग्रस्ता वेपमानशरीरिका । स्फुरितारुणसुश्रोष्ठी जगादैवं मनोरमा ॥४१॥
अहं देवासमीक्ष्यैव तदा पण्डितमानिनी । दीक्षिता त्वां परित्यज्य विहरामि तपस्विनी ॥४२॥

प्रकारका अन्य विचारकर सीताका जीव स्वयंप्रभ देव, अन्य देवोंके साथ आरणाच्युत कल्पसे उतरकर सौधर्म कल्पमें आया ॥२७॥ तदनन्तर सौधर्म कल्पसे चलकर वह पृथिवीके उस विस्तृत वनमें उतरा जो कि नन्दन वनके समान जान पड़ता था और जहाँ महामुनि रामचन्द्र ध्यान लगाकर विराजमान थे ॥२८॥ उस वनमें अनेक फूलोंकी परागको धारण करनेवाली सुखदायक वायु बह रही थी और सब ओर पक्षियोंका मनोहर कल-कल शब्द हो रहा था ॥२९॥ बकुल वृक्षके ऊपर भ्रमरोंका सबल समूह चञ्चल हो रहा था तथा कोकिलाओंके समूह जोरदार मधुर शब्द कर रहे थे ॥३०॥ नाना प्रकारके सुन्दर शब्द प्रकट करनेमें निपुण मैनाएँ मनोहर शब्द कर रही थीं और पलाश वृक्षोंपर बैठे शुक स्पष्ट शब्दोंका उच्चारण करते हुए क्रीड़ा कर रहे थे ॥३१॥ भ्रमरोंसे सहित आमोंकी मञ्जरियाँ कामदेवके नूतन तीक्ष्ण बाणोंके समान जान पड़ती थीं ॥३२॥ कनेरके फूलोंसे पीला-पीला दिखनेवाला वन ऐसा जान पड़ता था मानो पीले रङ्गके चूर्णसे क्रीड़ा करनेके लिए उद्यत ही हुआ हो ॥३३॥ मदिराके गण्डूषरूपी दौहदकी अपेक्षा करनेवाला बकुल वृक्ष ऐसा बरस रहा था जैसा कि वर्षा काल मेघोंके समूहसे बरसता है ॥३४॥

अथानन्तर इच्छानुसार रूप बदलनेवाला वह स्वयंप्रभ प्रतीन्द्र जानकीका वेष रख मदमाती चालसे रामके समीप जानेके लिए उद्यत हुआ ॥३५॥ वह वन मनको हरण करनेवाला, एकान्त, नाना प्रकारके वृक्षोंसे युक्त एवं सब ऋतुओंके फूलोंसे व्याप्त था ॥३६॥ तदनन्तर सुखपूर्वक वनमें घूमती हुई सीता महादेवी, अकस्मात् उक्त साधुके आगे प्रकट हुई ॥३७॥ वह बोली कि हे राम ! समस्त जगत्में घूमती हुई मैंने बहुत भारी पुण्यसे जिस किसी तरह आपको देख पाया है ॥३८॥ हे नाथ ! वियोगरूपी तरङ्गोंसे व्याप्त स्नेहरूपी गङ्गाकी धारमें पड़ी हुई मुझ सुवदनाको आप इस समय सहारा दीजिए—डूबनेसे बचाइए ॥३९॥ जब उसने नाना प्रकारकी चेष्टाओं और मधुर वचनोंसे मुनिको अकम्प समझ लिया तब मोहरूपी पापसे जिसका चित्त ग्रसा था, जो कभी मुनिके आगे खड़ी होती थी और कभी दोनों बगलोंमें जा सकती थी, जो काम ज्वरसे ग्रसी थी, जिसका शरीर काँप रहा था और जिसका लाल-लाल ऊँचा ओंठ फड़क रहा था ऐसी मनोहारिणी सीता वनसे बोली कि हे देव, अपने आपको

---

१. कोकिलानाम् । २. सरुषुः म० । ३. बाणा इव । ४. तीक्ष्णा । ५. बकुलैः म० ।

सद्विद्याधरकन्याभिस्तताश्चास्मि हृता सती । अत्रोचे संविपश्चिद्भिरिदं विविधदर्शनैः ॥४३॥
अलं प्रव्रज्यया तावद् [1]वयस्येवं विरुद्धया । इयमत्यन्तमद्धामो पूज्यते ननु[2] नैष्ठिकी ॥४४॥
यौवनोष्मा तनुः क्वेयं क्व चेदं दुष्करं व्रतम् । [3]शशलक्ष्मणदीधित्या भिद्यते किं महीधरः ॥४५॥
गच्छामस्त्वां पुरस्कृत्य वयं सर्वाः समाहिताः । बलदेवं वरिष्यामस्तव देवि समाश्रयात् ॥४६॥
अस्माकमपि सर्वासां त्वमग्रमहिषी भव । क्रीडामः सह रामेण जम्बूद्वीपतले सुखम् ॥४७॥
अत्रान्तरे समं प्राप्ता नानालङ्कारभूषिताः । भूयःसहस्रसंख्यानाः कन्या दिव्यश्रियान्विताः ॥४८॥
राजहंसवधूलीला मनोज्ञगतिविभ्रमाः । सीतेन्द्रविक्रियाजन्या जग्मुः पद्मसमीपताम् ॥४९॥
यदस्यो मधुरं काश्चित्परपुष्टस्वनादपि । विरेजिरेतरां कन्याः साक्षाल्लक्ष्म्य इव स्थिताः ॥५०॥
मनःप्रह्लादनकरं परं श्रोत्ररसायनम् । दिव्यं गेयामृतं चक्रुर्वंशवीणास्वमानुगम् ॥५१॥
भ्रमरासितकेश्यस्ताः क्षणांशुसमतेजसः । सुकुमारास्तलोदर्यः पीनोन्नतपयोधराः ॥५२॥
चारुशृङ्गारहासिन्यो नानावर्णसुवाससः । विचित्रविभ्रमालापाः कान्तिपूरितपुष्कराः ॥५३॥
कामयाञ्चक्रिरे मोहं सर्वतोऽवस्थिता मुनेः । श्रीबाहुबलिनः पूर्वं यथा त्रिदशकन्यकाः ॥५४॥
आकृष्य बकुलं काचिच्छायाऽन्वेषी[4] खिन्नती क्वचित् । उद्वेजितालिचक्रेण भ्रमणं शरणे स्थिता ॥५५॥
काश्चिल्किल [5]विषादेन कृतपक्षपरिग्रहाः । पप्रच्छुर्निर्णयं देव किंनामाऽयं वनस्पतिः ॥५६॥

पण्डिता माननेवाली मैं उस समय बिना विचारे ही आपको छोड़कर दीक्षिता हो गई और तपस्विनी बनकर इधर-उधर विहार करने लगी ॥४०-४२॥ तदनन्तर विद्याधरोंकी उत्तम कन्याएँ मुझे हरकर ले गईं। वहाँ उन विदुषी कन्याओंने नाना उदाहरण देते हुए मुझसे कहा कि ऐसी अवस्थामें यह विरुद्ध दीक्षा धारण करना व्यर्थ है क्योंकि यथार्थमें यह दीक्षा अत्यन्त वृद्धा स्त्रियोंके लिए ही शोभा देती है ॥४३-४४॥ कहाँ तो यह यौवनपूर्ण शरीर और कहाँ यह कठिन व्रत ? क्या चन्द्रमाकी किरणसे पर्वत भेदा जा सकता है ? ॥४५॥ हम सब तुम्हें आगे कर चलती हैं और हे देवि ! तुम्हारे आश्रयसे बलदेवको वरेंगी—उन्हें अपना भर्ता बनावेंगी ॥४६॥ हम सभी कन्याओंके बीच तुम प्रधान रानी होओ। इस तरह रामके साथ हम सब जम्बूद्वीपमें सुखसे क्रीड़ा करेंगी ॥४७॥ इसी बीचमें नाना अलंकारोंसे भूषित तथा दिव्य लक्ष्मीसे युक्त हजारों कन्याएँ वहाँ आ पहुँचीं ॥४८॥ राजहंसीके समान जिनकी सुन्दर चाल थी ऐसी सीतेन्द्रकी विक्रियासे उत्पन्न हुईं वे सब कन्याएँ रामके समीप गईं ॥४९॥ कोयलसे भी अधिक मधुर बोलनेवाली कितनी ही कन्याएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो साक्षात् लक्ष्मी ही स्थित हों ॥५०॥ कितनी ही कन्याएँ मनको आह्लादित करनेवाले, कानोंके लिए उत्तम रसायन स्वरूप तथा बाँसुरी और वीणाके शब्दसे अनुगत दिव्य संगीतरूपी अमृतको प्रकट कर रही थीं। जिनके केश भ्रमरोंके समान काले थे, जिनकी कान्ति बिजलीके समान थी, जो अत्यन्त सुकुमार और कृशोदरी थीं, स्थूल और उन्नत स्तनोंको धारण करनेवाली थीं, सुन्दर शृंगार पूर्ण हास्य करनेवाली थीं, रङ्ग-बिरङ्गे वस्त्र पहने हुई थीं, नाना प्रकारके हाव-भाव तथा आलाप करनेवाली थीं और कान्तिसे जिन्होंने आकाशको भर दिया था ऐसी वे सब कन्याएँ मुनिके चारों ओर स्थित हो उस तरह मोह उत्पन्न कर रही थीं, जिस तरह कि पहले बाहुबलीके आसपास खड़ी देव-कन्याएँ ॥५१-५४॥ कोई एक कन्या छायाकी खोज करती हुई बकुल वृक्षके नीचे पहुँची। वहाँ पहुँचकर उसने उस वृक्षको खींच दिया जिससे उसपर बैठे भ्रमरोंके समूह उड़कर उस कन्याकी ओर झपटे और उनसे भयभीत हो वह कन्या मुनिकी शरणमें जा खड़ी हुई ॥५५॥ कितनी ही कन्याएँ किसी

१. वयस्येव म०, ब० । २. न तु म० । ३. बललक्ष्मणदीधित्या म०, शललक्ष्मणदीर्घित्या ज०, क०, ख० । ४. छायासौ । ५. विषादेन म०, ज० ।

दूरस्थमाधवीपुष्पग्रहणच्छद्मना परा । स्रंसमानांशुका बाहुमूलं स्वमदर्शयत् ॥५७॥
आरभ्य मण्डलीमन्याश्चलितारकरप्लवाः । सहस्रतालसङ्गीता रासकं क्रातुमुद्यताः ॥५८॥
नितम्बफलके काचिद्रम्भास्वच्छारुणांशुके । चण्डातकं नभोनीलं चकार किल लज्जया ॥५९॥
एवंविधक्रियाजालैरितरप्राणिहारिभिः । क्षोभ्यन्त न यदा रामाः पवनैरिव मन्दरः ॥६०॥
ऋजुदृष्टिर्विशुद्धात्मा परीषहगणाशनिः । प्रविष्टो [1]धवलध्यानप्रथमं सुप्रभो यथा ॥६१॥
तस्य सत्त्वपदन्यस्तं चित्तमत्यन्तनिर्मलम् । समेतमिन्द्रियैरासीदात्मनः प्रवणं परम् ॥६२॥
कुर्वन्तु वाञ्छितं [2]बाह्या क्रियाजालमनेकधा । प्रच्यवन्ते न तु स्वार्थात्परमार्थविचक्षणा ॥६३॥
यदा सर्वप्रयत्नेन ध्यानप्रत्यूहलालसः । चेष्टां चकार सीतेन्द्रः सुरमायाविकल्पिताम् ॥६४॥
अत्रान्तरे मुनिः पूर्वमत्यन्तशुचिरागमत् । अनादिकर्मसङ्घातं विधुर्दग्धुं समुद्यतः ॥६५॥
कर्मणः प्रकृतीः षष्टिं निधूय दृढनिश्चयः । क्षपकश्रेणिमारूढदुत्तरां पुरुषोत्तमः ॥६६॥
माघशुक्लस्य पक्षस्य द्वादश्यां निशि पश्चिमे । यामे केवलमुत्पन्नं ज्ञानं तस्य महात्मनः ॥६७॥
[3]सर्वार्थचक्षुषमुद्भूते तस्य केवलचक्षुषि । लोकालोकद्वयं जातं गोष्पदप्रतिमं प्रभोः ॥६८॥
ततः सिंहासनाकम्पप्रयुक्तावधिचक्षुषः । सप्रणामं सुरार्धीशाः प्रचेलुः सम्भ्रमान्विताः ॥६९॥
आजग्मुश्च महाभूत्या महासङ्घातवर्तिनः । विधातुमुद्यताः श्राद्धाः केवलोत्पत्तिपूजनम् ॥७०॥

वृक्षके नामको लेकर विवाद करती हुई अपना पक्ष लेकर मुनिराजसे निर्णय पूछने लगीं कि देव ! इस वृक्षका क्या नाम है ? ॥५६॥ जिसका वस्त्र खिसक रहा था ऐसी किसी कन्याने ऊँचाईपर स्थित माधवी लताका फूल तोड़नेके छलसे अपना बाहुमूल दिखाया ॥५७॥ जिनके हस्तरूपी पल्लव हिल रहे थे तथा जो हजारों प्रकारके तालोंसे युक्त संगीत कर रही थीं ऐसी कितनी ही कन्याएँ मण्डली बाँधकर रासक क्रीड़ा करनेके लिए उद्यत थीं ॥५८॥ किसी कन्याने जलके समान स्वच्छ लाल वस्त्रसे सुशोभित अपने नितम्बतटपर लज्जाके कारण आकाशके समान नील वर्णका लँहगा पहन रक्खा था ॥५९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अन्य मनुष्योंके चित्तको हरण करनेवाली इस प्रकारकी क्रियाओंके समूहसे राम उस तरह क्षोभको प्राप्त नहीं हुए जिस प्रकार कि वायुसे मेरुपर्वत क्षोभको प्राप्त नहीं होता है ॥६०॥ उनकी दृष्टि अत्यन्त सरल थी, आत्मा अत्यन्त शुद्ध थी और वे स्वयं परीषहोंके समूहको नष्ट करनेके लिए वज्र स्वरूप थे, इस तरह वे सुप्रभके समान शुक्ल ध्यानके प्रथम पायेमें प्रविष्ट हुए ॥६१॥ उनका हृदय सत्त्व गुणसे सहित था, अत्यन्त निर्मल था, तथा इन्द्रियोंके समूहके साथ आत्माके ही चिन्तनमें लग रहा था ॥६२॥ बाह्य मनुष्य इच्छानुसार अनेक प्रकारकी क्रियाएँ करें परन्तु परमार्थके विद्वान् मनुष्य आत्मकल्याणसे च्युत नहीं होते ॥६३॥ ध्यानमें विघ्न डालनेकी लालसासे युक्त सीतेन्द्र, जिस समय सर्व प्रकारके प्रयत्नके साथ देवमायासे निर्मित चेष्टा कर रहा था उस समय अत्यन्त पवित्र मुनिराज अनादि कर्म समूहको जलानेके लिए उद्यत थे ॥६४-६५॥ दृढ़ निश्चयके धारक पुरुषोत्तम, कर्मोंकी साठ प्रकृतियाँ नष्टकर उत्तरवर्ती क्षपक श्रेणीपर आरूढ़ हुए ॥६६॥ माघ शुक्ल द्वादशीके दिन रात्रिके पिछले पहरमें उन महात्माको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ॥६७॥ सर्वदर्शी केवलज्ञान रूपी नेत्रके उत्पन्न होनेपर उन प्रभुके लिए लोक अलोक दोनों ही गोष्पदके समान तुच्छ हो गये ॥६८॥

तदनन्तर सिंहासनके कम्पित होनेसे जिन्होंने अवधिज्ञानरूपी नेत्रका प्रयोग किया था ऐसे सब इन्द्र संभ्रम के साथ प्रणाम करते हुए चले ॥६९॥ तदनन्तर जो देवोंके महा समूहके बीच वर्तमान थे, श्रद्धासे युक्त थे और केवलज्ञानकी उत्पत्तिकी पूजा करनेके लिए

---

१. धवलं ध्यानप्रथमं म० । २. बाह्यक्रिया । ३. सर्वद्रव्य-म० ।

दृष्ट्वा रामं समासीनं घातिकर्मविनाशनम् । प्रणेमुर्भक्तिसम्पन्नाश्चारणर्द्धिसुरासुराः ॥७१॥
तस्य जातात्मरूपस्य वन्द्यस्य भुवनेश्वरैः । जातं समवसरणं समग्रं परमेष्ठिनः ॥७२॥
ततः स्वयम्प्रभाभिख्यः सीतेन्द्रः केवलार्चनम् । कृत्वा प्रदक्षिणीकृत्य मुनिमक्षमयन्मुहुः ॥७३॥
क्षमस्व भगवन् दोषं कृतं दुर्बुद्धिना मया । प्रसीद कर्मणामन्तं यच्छ मह्यमपि द्रुतम् ॥७४॥

आर्यागीतिः

एवमनन्तश्रीद्युति-कान्तियुतो नूतनार्तमूर्तिर्भगवान् ।
कैवल्यसुखसमृद्धिं बलदेवोऽवाप्तवान्जिनोत्तमभक्त्या ॥७५॥
पूजामाहात्म्यमरं कृत्वा स्तुत्वा प्रणम्य भक्त्या परया ।
प्रविहर्तुमुद्यतेऽमरवरौ जग्मुर्देवा यथाक्रमं प्रमदयुताः ॥७६॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे पद्मस्य केवलोत्पत्त्यभिधानं नाम द्वाविंशत्युत्तरशतं पर्व ॥१२२॥

उद्यत थे ऐसे सब इन्द्र बड़े वैभवके साथ वहाँ आ पहुँचे ॥७०॥ घातिया कर्मोंका नाश करने वाले सिंहासनासीन रामके दर्शन कर चारणऋद्धिधारी मुनिराज तथा समस्त सुर और असुरोंने उन्हें प्रणाम किया ॥७१॥ जिन्हें आत्मरूपकी प्राप्ति हुई थी, तथा जो संसारके समस्त इन्द्रोंके द्वारा वन्दनीय थे ऐसे परमेष्ठी पदको प्राप्त श्री रामके सम्पूर्ण समवसरणकी रचना हुई ॥७२॥ तदनन्तर स्वयंप्रभ नामक सीतेन्द्रने केवलज्ञानकी पूजा कर मुनिराजकी प्रदक्षिणा दी और बार-बार क्षमा कराई ॥७३॥ उसने कहा कि हे भगवन्! मुझ दुर्बुद्धिके द्वारा किया हुआ दोष क्षमा कीजिए, प्रसन्न हूजिए और मेरे लिए भी शीघ्र ही कर्मोंका अन्त प्रदान कीजिए अर्थात् मेरे कर्मोंका क्षय कीजिए ॥७४॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि इस प्रकार अनन्त लक्ष्मी द्युति और कान्तिसे सहित तथा प्रसन्न मुद्राके धारक भगवान् बलदेवने श्री जिनेन्द्रदेवकी उत्तम भक्तिसे केवलज्ञान तथा अनन्त सुख रूपी समृद्धिको प्राप्त किया ॥७५॥ मुनियोंमें सूर्यके समान तेजस्वी श्री राम मुनि जब विहार करनेको उद्यत हुए तब हर्षसे भरे देव शीघ्र ही भक्तिपूर्वक पूजाकी महिमा, स्तुति तथा प्रणाम कर यथाक्रमसे अपने-अपने स्थानोंपर चले गये ॥७६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध श्री रविषेणाचार्य द्वारा रचित पद्मपुराणमें श्री राममुनिको केवलज्ञान उत्पन्न होनेका वर्णन करनेवाला एकसौ बाईसवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥१२२॥

त्रयोविंशोत्तरशतं पर्व

अथ संस्मृत्य सीतेन्द्रो लक्ष्मणाधरगुणार्णवम् । प्रतिबोधयितुं वाञ्छन् प्रतस्थे [1]वालुकाप्रभाम् ॥१॥
मानुषोत्तरमुल्लङ्घ्य गिरिं मर्त्यसुदुर्गमम् । रत्नप्रभामतिक्रम्य [2]शर्करां चापि मेदिनीम् ॥२॥
प्राप्तो ददर्श बीभत्सां कृच्छ्रातिशयदुःसहाम् । पापकर्मसमुद्भूतामवस्थां नरकश्रिताम् ॥३॥
असुरत्वं गतो योऽसौ शम्बूको लक्ष्मणा हृतः । व्याधदारकवत् सोऽत्र हिंसाक्रीडनमाश्रितः ॥४॥
आतृणेद् कांश्चिदुद्बाध्य कांश्चिद्भृत्यैरघातयत् । नारकानावृतान् कांश्चित्परस्परमयूयुधत् ॥५॥
केचिद् बध्वाग्निकुण्डेषु क्षिप्यन्ते विकृतस्वराः । शाल्मलीषु नियुज्यन्ते केचित् प्रत्यङ्गकण्टकम् ॥६॥
ताड्यन्तेऽयोमयैः केचिन्मुसलैरभितः स्थितैः । स्वमांसरुधिरं केचिल्लाल्यन्ते निर्दयैः सुरैः ॥७॥
गाढप्रहारनिर्भिन्नाः कृतभूतललोठनाः । श्वमार्जारहरिव्याघ्रैर्भक्ष्यन्ते पक्षिभिस्तथा ॥८॥
केचिच्छूलेषु भिद्यन्ते ताड्यन्ते घनमुद्गरैः । कुम्भ्यामन्ये निधीयन्ते ताम्रादिकलिलाम्भसि ॥९॥
करपत्रैर्विदार्यन्ते बद्ध्वा दारुषु निश्चलाः । केचित्कैश्चिच्च पाय्यन्ते ताम्रादिकलिलं बलात् ॥१०॥
केचिद्यन्त्रेषु पीड्यन्ते हन्यन्ते सायकैः परे । दन्ताक्षिरसनादीनां प्राप्नुवन्त्युद्धृतिं परे ॥११॥
एवमादीनि दुःखानि विलोक्य नरकाश्रिताम् । उत्पन्नपुरुकारुण्यः सोऽभूदमरपुङ्गवः ॥१२॥

अथानन्तर सीतेन्द्र, लक्ष्मणके गुणरूपी सागरका स्मरणकर उसे संबोधनेकी इच्छा करता हुआ बालुकाप्रभाकी ओर चला ॥१॥ मनुष्योंके लिए अत्यन्त दुर्गम मानुषोत्तर पर्वतको लाँघकर तथा क्रमसे नीचे रत्नप्रभा और शर्कराप्रभाकी भूमिको भी उल्लंघनकर वह तीसरी बालुकाप्रभा भूमिमें पहुँचा। वहाँ पहुँचकर उसने नारकियोंकी अत्यन्त घृणित कष्टकी अधिकतासे दुःसह एवं पाप कर्मसे उत्पन्न अवस्था देखी ॥२-३॥ लक्ष्मणके द्वारा मारा गया जो शम्बूक असुरकुमार हुआ था वह शिकारीके पुत्रके समान इस भूमिमें हिंसापूर्ण क्रीड़ा कर रहा था ॥४॥ वह कितने ही नारकियोंको ऊपर बाँधकर स्वयं मारता था, कितनों ही को सेवकोंसे मरवाता था और घिरे हुए कितने ही नारकियोंको परस्पर लड़ाता था ॥५॥ विरूप शब्द करने वाले कितने ही नारकी बाँधकर अग्निकुण्डोंमें फेंके जाते थे, और कितने ही जिनके अङ्ग-अङ्गमें काँटा लग रहे थे ऐसे सेमरके वृक्षोंपर चढ़ाये-उतारे जाते थे ॥६॥ कितने ही सब ओर खड़े हुए नारकियोंके द्वारा लोह-निर्मित मूसलोंसे कूटे जाते थे और कितने ही को निर्दय देवोंके द्वारा अपना मांस तथा रुधिर खिलाया जाता था ॥७॥ गाढ़ प्रहारसे खण्डित हो पृथिवी-तलपर लोटने वाले नारकी कुत्ते, बिलाव, सिंह, व्याघ्र तथा अनेक पक्षियोंके द्वारा खाये जा रहे थे ॥८॥ कितने ही शूलीपर चढ़ा कर भेदे जाते थे, कितने ही घनों और मुद्गरोंसे पीटे जाते थे, कितने ही ताँबा आदिके स्वरस रूपी जलसे भरी कुम्भियोंमें डाले जाते थे ॥९॥ लकड़ियाँ बाँध देनेसे निश्चल खड़े हुए कितने नारकी करौंतोंसे विदारे जाते थे, और कितने ही नारकियोंको जबरदस्ती ताम्र आदि धातुओंका पिघला द्रव पिलाया जाता था ॥१०॥ कितने ही कोल्हुओंमें पेले जाते थे, कितने ही बाणोंसे छेदे जाते थे, और कितने ही दाँत, नेत्र तथा जिह्वाके उपाड़ने-का दुःख प्राप्त कर रहे थे ॥११॥ इस प्रकार नारकियोंके दुःख देखकर सीतेन्द्रको बहुत भारी दया उत्पन्न हुई ॥१२॥

---

१. शर्कराप्रभां म०, ज० । २. वालुकां म०, ज०, ख० । ३. वधाग्निकुण्डेषु म० ।

अग्निकुण्डाद् विनिर्यांतमथालोकत लक्ष्मणम् । बहुधा नारकैरन्यैरर्द्यमानं समन्ततः ॥१३॥
सीदन्तं विक्रियाप्राप्ते भीमे वैतरणीजले । छिद्यमानं च कनकैरसिपत्रवनान्तरे ॥१४॥
वधाय चोद्यतं तस्य बाधमानं भयानकम् । क्रुद्धं बृहद्गदापाणिं हन्यमानं तथा परैः ॥१५॥
[1]प्रचोद्यमानं घोराक्षं [2]खरदेहं बृहन्मुखम् । तेन देवकुमारेण शम्बूकेन दशाननम् ॥१६॥
अत्रान्तरे महातेजाः सीतेन्द्रः सन्निधिं गतः । तर्जयन् तत्र तीव्रं तं गणं भवनवासिनाम् ॥१७॥
अरे ! रे ! पाप शम्बूक प्रारब्धं किमिदं त्वया । कथमद्यापि ते नास्ति शमो निर्घृणचेतसः ॥१८॥
मुञ्च क्रूराणि कर्माणि भव स्वस्थः सुराधम । किमनेनाभिमानेन परमानर्थहेतुना ॥१९॥
श्रुत्वेदं नारकं दुःखं जन्तोर्भयमुदीर्यते । प्रत्यक्षं किं पुनः कृत्वा त्रासस्तव न जायते ॥२०॥
शम्बूके प्रशमं प्राप्ते ततोऽसौ विबुधेश्वरः । प्रबोधयितुमुद्युक्तो यावत्तावदमी द्रुतम् ॥२१॥
अतिदारुणकर्माणश्चला दुर्ग्रहचेतसः । देवप्रभाभिभूताश्च नारकाः परिदुद्रुवुः ॥२२॥
करुदन्त्रापरे दीना धाराश्रुगलितानना: । धावन्तः पतिताः केचिन्नर्त्तेषु विषमेष्वलम् ॥२३॥
मा मा नश्यत सन्त्रस्ता निवर्त्तध्वं सुदुःखिताः । न भेतव्यं न भेतव्यं नारका भवत स्थिताः ॥२४॥
एवमुक्ताः सुरेन्द्रेण समाश्वासनचेतसा । प्राविशन्नन्धतमसं वेपमानाः समन्ततः ॥२५॥
भण्यमानास्ततो भूयः शक्रेणेषन्नयोज्झिताः । ह्यायुक्तास्ते ततः कृच्छ्रादवधानमुपागताः ॥२६॥

तदनन्तर उसने अग्निकुण्डसे निकले और अन्य अनेक नारकियोंके द्वारा सब ओरसे घेरकर नाना तरहसे दुःखी किये जानेवाले लक्ष्मणको देखा ॥१३॥ वहीं उसने देखा कि, लक्ष्मण विक्रिया कृत मगर-मच्छोंसे व्याप्त वैतरणीके भयंकर जलमें छटपटा रहा है और असिपत्र वनमें [illegible] पत्तोंसे छेदा जा रहा है ॥१४॥ उसने यह भी देखा कि लक्ष्मणको मारनेके लिए बाधा पहुँचाने वाला एक भयंकर नारकी कुपित हो हाथमें बड़ी भारी गदा लेकर उद्यत हो रहा है तथा उसे दूसरे नारकी मार रहे हैं ॥१५॥ सीतेन्द्रने वहीं उस रावणको देखा कि जिसके नेत्र अत्यन्त भयंकर थे, जिसके शरीरसे मल-मूत्र झड़ रहे थे, जिसका मुख बहुत बड़ा था और शम्बूकका जीव असुरकुमार देव जिसे लक्ष्मणके विरुद्ध प्रेरणा दे रहा था ॥१६॥

तदनन्तर इसी बीचमें महातेजस्वी सीतेन्द्र, भवनवासियोंके उस दुष्ट समूहको डाँटते दिखाता हुआ पासमें पहुँचा ॥१७॥ उसने कहा कि अरे ! रे ! पापी शम्बूक ! तूने यह क्या प्रारम्भ कर रक्खा है ? तुझ निर्दयचित्तको क्या अब भी शान्ति नहीं है ? ॥१८॥ हे अधमदेव ! क्रूर कार्य छोड़, मध्यस्थ हो, अत्यन्त अनर्थके कारणभूत इस अभिमानसे क्या प्रयोजन सिद्ध होना है ? ॥१९॥ नरकके इस दुःखको सुनकर ही प्राणीको भय उत्पन्न हो जाता है, फिर तुझे प्रत्यक्ष देखकर भी भय क्यों नहीं उत्पन्न होता है ? ॥२०॥ तदनन्तर शम्बूकके शान्त हो जानेपर ज्योंही सीतेन्द्र संबोधनेके लिए तैयार हुआ त्योंही अत्यन्त क्रूर काम करनेवाले, चञ्चल एवं दुर्ग्रह चित्तके धारक वे नारकी देवकी प्रभासे तिरस्कृत हो शीघ्र ही इधर-उधर भाग गये ॥२१-२२॥ कितने ही दीन-हीन नारकी, धाराबद्ध पड़ते हुए आँसुओंसे मुखको गीला करते हुए रोने लगे, कितने ही दौड़ते-ही-दौड़ते अत्यन्त विषम गर्तोंमें गिर गये ॥२३॥ तब सान्त्वना देते हुए सीतेन्द्रने कहा कि 'अहो नारकियो ! भागो मत, भय-भीत मत होओ, तुम लोग बहुत दुःखी हो, लौटकर आओ, भय मत करो, भय मत करो, खड़े रहो' इस प्रकार कहनेपर भी वे भयसे काँपते हुए गाढ़ अन्धकारमें प्रविष्ट हो गये ॥२४-२५॥ तदनन्तर यही बात जब सीतेन्द्रने फिरसे कही तब कहीं उनका कुछ-कुछ भय कम हुआ और बड़ी

---

१. प्रबोध्यमानं ख०, ब० । २. घोराक्षखरदेहं म० ।

महामोहहृतात्मानः कथं नरकसम्भवाः । एतयाऽवस्थया युक्ता न जानीथाऽऽत्मनो हितम् ॥२७॥
अदृष्टलोकपर्यन्ता हिंसानृतपरस्विनः । रौद्रध्यानपराः प्राप्ता नरकस्थं प्रतिद्विषः ॥२८॥
भोगाधिकारसंसक्तास्तीव्रक्रोधादिरञ्जिताः । विरुद्धकर्मनिरता नित्यं सम्प्राप्ता दुःखमीदृशम् ॥२९॥
रमणीये विमानाग्रे ततो वीक्ष्य सुरोत्तमम् । सौमित्रिराक्षसौ पूर्वमप्राक्षां को भवानिति ॥३०॥
स तयोः सकलं वृत्तं पद्मनाभस्य तथाऽऽत्मनः । कर्मान्वितमभाषिष्ट विचित्रमिति सम्भवम् ॥३१॥
ततः श्रुत्वा स्ववृत्तान्तं प्रतिबोधमुपागतौ । उपशान्तात्मकौ दीनमेवं शुशुचतुस्तकौ ॥३२॥
धृतिः किं न कृता धर्मे तदा मानुषजन्मनि । अवस्थामिमकां येन प्राप्ताः स्मः पापकर्मभिः ॥३३॥
हा ! हा ! किं कृतमस्माभिरात्मदुःखपरं परम् । अहो मोहस्य माहात्म्यं यत्स्वार्थादपि हीयते ॥३४॥
त्वमेव धन्यो देवेन्द्र यस्त्यक्त्वा विषयस्पृहाम् । जिनवाक्यामृतं पीत्वा सम्प्राप्तोऽस्यमरेशताम् ॥३५॥
ततोऽसौ पुरुकारुण्यो मा भैष्टेति बहुस्वनम् । एतैत नरकाम्भोकं नये युष्मानितीरयन् ॥३६॥
ततः परिकरं बध्वा ग्रहीतुं स्वयमुद्यतः । दुर्ग्रहास्तु विलीयन्ते तेऽग्निना नवनीतवत् ॥३७॥
सर्वोपायैरपीन्द्रेण ग्रहीतुं स्पष्टमेव च । न शक्यास्ते यथा भावाश्छायया दर्पणे स्थिताः ॥३८॥
ततस्तेऽत्यन्तदुःखार्ता जगदुर्दैवयानिमः । पुराकृतानि कर्माणि तानि भोग्यान्यसंशयम् ॥३९॥

कठिनाईसे वे चित्तकी स्थिरताको प्राप्त हुए ॥२६॥ शान्त वातावरण होनेपर सीतेन्द्रने कहा कि महामोहसे जिनकी आत्मा हरी गई है ऐसे हे नारकियो ! तुम लोग इस दशासे युक्त होकर भी आत्माका हित नहीं जानते हो ? ॥२७॥ जिन्होंने लोकका अन्त नहीं देखा है, जो हिंसा, झूठ और परधनके हरणमें तत्पर हैं, रौद्रध्यानी हैं तथा नरकमें स्थित रहनेवालेके प्रति जिनकी द्वेष-बुद्धि है ऐसे लोग ही नरकमें आते हैं ॥२८॥ जो भोगोंके अधिकारमें संलग्न हैं, तीव्र क्रोधादि कषायोंसे अनुरञ्जित हैं और निरन्तर विरुद्ध कार्य करनेमें तत्पर रहते हैं ऐसे लोग ही इस प्रकारके दुःखको प्राप्त होते हैं ॥२९॥

अथानन्तर सुन्दर विमानके अग्रभागपर स्थित सुरेन्द्रको देखकर लक्ष्मण और रावणके जीवने सबसे पहले पूछा कि आप कौन हैं ? ॥३०॥ तब सुरेन्द्रने उनके लिए श्रीरामका तथा अपना सब वृत्तान्त कह सुनाया और साथ ही यह भी कहा कि कर्मानुसार यह सब विचित्र कार्य संभव हो जाते हैं ॥३१॥ तदनन्तर अपना वृत्तान्त सुनकर जो प्रतिबोधको प्राप्त हुए थे तथा जिनकी आत्मा शान्त हो गई थी ऐसे वे दोनों दीनता पूर्वक इस प्रकार शोक करने लगे ॥३२॥ कि अहो ! हम लोगोंने उस समय मनुष्य जन्ममें धर्ममें रुचि क्यों नहीं की ? जिससे पाप-कर्मोंके कारण इस अवस्थाको प्राप्त हुए हैं ॥३३॥ हाय हाय, आत्माको दुःख देनेवाला यह क्या विकट कार्य हम लोगोंने कर डाला ? अहो ! यह सब मोहकी महिमा है कि जिसके कारण जीव आत्महितसे भ्रष्ट हो जाता है ॥३४॥ हे देवेन्द्र ! तुम्हीं धन्य हो, जो विषयोंकी इच्छा छोड़ तथा जिन वाणीरूपी अमृतका पानकर देवोंकी ईशताको प्राप्त हुए हो ॥३५॥

तदनन्तर अत्यधिक करुणाको धारण करनेवाले देवेन्द्रने कई बार कहा कि 'डरो मत, डरो मत, आओ, आओ, मैं तुम लोगोंको नरकसे निकालकर स्वर्ग लिये चलता हूँ' ॥३६॥ तत्पश्चात् वह सुरेन्द्र कमर कसकर उन्हें स्वयं ले जानेके लिए उद्यत हुआ परन्तु वे पकड़नेमें न आये। जिस प्रकार अग्निमें तपानेसे नवनीत पिघलकर रह जाता है उसी प्रकार वे नारकी भी पिघलकर वहीं रह गये ॥३७॥ इन्द्रने उन्हें उठानेके लिए सभी प्रयत्न किये पर वे उठाये नहीं जा सके। जिस प्रकार दर्पणमें प्रतिबिम्बित पदार्थ ग्रहणमें नहीं आते उसी प्रकार वे भी ग्रहणमें नहीं आ सके ॥३८॥ तदनन्तर अत्यन्त दुःखी होते हुए उन नारकियोंने कहा कि हे देव ! हम लोगोंके जो पूर्वोपार्जित कर्म हैं, वे निःसन्देह भोगनेके योग्य हैं

विषयामिषलुब्धानां प्राप्तानां नरकासुखम्[1] । स्वकृतप्राप्तिवश्यानां किङ्करिष्यन्ति देवताः ॥४०॥
एतस्त्वोपचितं कर्म भोक्तव्यं यन्नियोगतः । तदास्माकं न शक्नोषि दुःखान्मोचयितुं सुर ॥४१॥
परित्रायस्व सीतेन्द्र नरकं येन हेतुना । प्राप्स्यामो न पुनर्यूयं हि त्वमस्माकं दयापरः ॥४२॥
देवो जगाद परमं शाश्वतं शिवमुत्तमम् । रहस्यमिव मूढानां प्रख्यातं भुवनत्रये ॥४३॥
कर्मप्रमथनं शुद्धं पवित्रं परमार्थदम् । अप्राप्तपूर्वमासं वा दुर्गृहीतं प्रमादिनाम् ॥४४॥
दुर्विज्ञेयमभव्यानां बृहद्भवभयानकम् । कल्याणं दुर्लभं सुष्ठु सम्यग्दर्शनमूर्जितम् ॥४५॥
यदीच्छतात्मनः श्रेयस्तत एवं गतेऽपि हि । सम्यक्त्वं प्रतिपद्यस्व काले बोधिप्रदं शुभम् ॥४६॥
इतोऽन्यदुत्तरं नास्ति न भूतं न भविष्यति । इह सेत्स्यन्ति सिद्ध्यन्ति सिधिषुश्च महर्षयः ॥४७॥
अर्हद्भिर्गदिता भावा भगवद्भिर्महोत्तमैः । तथैवेति दृढं भक्त्या सम्यग्दर्शनमिष्यते[2] ॥४८॥
इत्यादिभिर्वचोभिर्यैः सम्यक्त्वं नरके स्थितम् । सुरेन्द्रः शोचितुं लग्नस्तथाप्युत्तमभोगभाक् ॥४९॥
तद्भवं कान्तिलावण्यशरीरमतिसुन्दरम् । निर्दग्धं कर्मणा पश्य नवोद्यानमिवाग्निना ॥५०॥
अचिन्त्रीयत यां दृष्ट्वा भुवनं सकलं तदा । द्युतिः सा क्व गतोदात्ता चारुकीर्तितसंयुता ॥५१॥
कर्मभूमौ सुखाल्पस्य यस्य क्षुद्रस्य कारणे । ईदृग्दुःखार्णवे मग्ना भवन्तो दुरितक्रियाः ॥५२॥
इत्युक्तैः प्रतिपन्नं तैः सम्यग्दर्शनमुत्तमम् । अनादिभवसंक्लिष्टैर्यन्न प्राप्तं कदाचन ॥५३॥

हैं ॥३९॥ जो विषयरूपी आमिषके लोभी होकर नरकके दुःखको प्राप्त हुए हैं तथा जो अपने द्वारा किये हुए कर्मोंके पराधीन हैं उनका देव लोग क्या कर सकते हैं ? ॥४०॥ यतश्च अपने द्वारा किया हुआ कर्म नियमसे भोगना पड़ता है इसलिए हे देव ! तुम हम लोगोंको दुःखसे छुड़ानेमें समर्थ नहीं हो ॥४१॥ हे सीतेन्द्र ! हमारी रक्षा करो, अब हम जिस कारण फिर नरकको प्राप्त न हों कृपाकर वह बात तुम हमें बताओ ॥४२॥

तदनन्तर देवने कहा कि जो उत्कृष्ट है, नित्य है, आनन्द रूप है, उत्तम है, मूढ़ मनुष्योंके लिए मानो रहस्यपूर्ण है, जगत्त्रयमें प्रसिद्ध है, कर्मोंको नष्ट करनेवाला है, शुद्ध है, पवित्र है, परमार्थको देनेवाला है, जो पहले कभी प्राप्त नहीं हुआ है और यदि प्राप्त हुआ भी है तो प्रमादी मनुष्य जिसकी सुरक्षा नहीं रख सके हैं, जो अभव्य जीवोंके लिए अज्ञेय है और दीर्घ संसारको भय उत्पन्न करनेवाला है, ऐसा सबल एवं दुर्लभ सम्यग्दर्शन ही आत्माका सबसे बड़ा कल्याण है ॥४३-४५॥ यदि आप लोग अपना भला चाहते हैं तो इस दशामें स्थित होनेपर भी सम्यक्त्व को प्राप्त करो। यह सम्यक्त्व समयपर बोधिको प्रदान करनेवाला एवं शुभरूप है ॥४६॥ इससे बढ़कर दूसरा कल्याण न है, न था, न होगा। इसके रहते ही महर्षि सिद्ध होंगे, अभी हो रहे हैं और पहले भी हुए थे ॥४७॥ महा उत्तम अरहन्त जिनेन्द्र भगवान्ने जीवादि पदार्थोंका जैसा निरूपण किया है वह वैसा ही है। इस प्रकार भक्तिपूर्वक दृढ़ श्रद्धान होना सो सम्यग्दर्शन है ॥४८॥ इत्यादि वचनोंके द्वारा नरकमें स्थित उन लोगोंको यद्यपि सीतेन्द्रने सम्यग्दर्शन प्राप्त करा दिया था तथापि उत्तम भोगोंका अनुभव करनेवाला वह सीतेन्द्र उनके प्रति शोक करनेमें लीन था ॥४९॥ उसकी आँखोंमें उनका पूर्वभव झूल गया और उसे ऐसा लगने लगा कि देखो, जिस प्रकार अग्निके द्वारा नवीन उद्यान जल जाता है उसी प्रकार इनका कान्ति और लावण्य पूर्ण सुन्दर शरीर कर्मके द्वारा जल गया है ॥५०॥ जिसे देख उस समय सारा संसार आश्चर्यमें पड़ जाता था। इनकी वह उदात्त तथा सुन्दर कीर्तिसे युक्त कान्ति कहाँ गई ? ॥५१॥ वह उनसे कहने लगा कि देखो कर्मभूमिके उस क्षुद्र सुखके कारण आप लोग पापकर इस दुःखके सागरमें निमग्न हुए हैं ॥५२॥ इस प्रकार सीतेन्द्रके कहनेपर अनादि भवोंमें क्लेश उठानेवाले

---

१. नरकायुषम् म० । २. -मिष्यतः ब०, ज०, क० । -मिष्यत ख० ।

एतस्मिन्नन्तरे दुःखमनुभूय निकाचितम् । उद्धृत्य प्राप्य मानुष्यमुपेमः शरणं जिनम् ॥५३॥
अहोऽतिपरमं देव त्वयाऽस्मभ्यं हितं कृतम् । यत्सम्यग्दर्शने रत्ने समेत्य विनियोजिताः ॥५५॥
हे सीतेन्द्र महाभाग ! गच्छ गच्छारणाच्युतम् । शुद्धधर्मफलं स्फीतमनुभूय शिवं व्रज ॥५६॥
एवमुक्तः सुरेन्द्रोऽसौ शोकहेतुविवर्जितः । तथापि परमर्द्धिश्च सः शोचन्मनोगतमना ॥५७॥
दत्त्वा तेषां समाधानं पुनर्बोधिप्रदं शुभम् । महासुकृतमाधीरः समारोहन्निजास्पदम् ॥५८॥
शङ्कितात्मा च भूयश्चतुःशरणतत्परः । बहुशश्च करोति स्म पञ्चमेरुप्रदक्षिणम् ॥५९॥
तद्दीक्षय नारकं दुःखं स्मृत्वा च त्रिदशोत्तमः । वेपितात्मा विमानेऽपि स्वनिमालक्ष्य तं सुधीः ॥६०॥
प्रकम्पमानहृदयः श्रीमच्चन्द्रनिभाननः । उद्युक्तो भरतक्षेत्रे भूयोऽवतरितुं सुधीः ॥६१॥
सम्पतद्भिर्विमानौघैः समीरसमवर्चिभिः । तुरङ्गमहरिद्वीपमतङ्गजवटाकुलैः ॥६२॥
नानावर्णाम्बरधरैर्हरिसक्मुकुटोज्ज्वलैः । विचित्रवाहनारूढैर्ध्वजच्छत्रादिशोभितैः ॥६३॥
शतघ्नीशक्तिचक्रासिधनुःकुन्तगदाधरैः । व्रजद्भिः सर्वतः कान्तैरमरैः साप्सरोगणैः ॥६४॥
मृदङ्गदुन्दुभिस्वानैर्वेणुवीणास्वनान्वितैः । जयनन्दरवोन्मिश्रैराप्यते स्म तदा नभः ॥६५॥
जगाम शरणं पद्मं सीतेन्द्रः परमोदयः । कृताञ्जलिपुटो भक्त्या प्रणनाम पुनः पुनः ॥६६॥
एवं च स्तवनं कर्तुमारेभे विनयान्वितः । संसारतारणोपायप्रतिपत्तिदृढाशयः ॥६७॥

उन लोगोंने वह उत्तम सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया जो कि उन्हें पहले कभी प्राप्त नहीं हुआ था ॥५३॥ उन्होंने कहा कि इस बीचमें जिसका छूटना अशक्य है ऐसे इस दुःखको भोगकर जब यहाँ से निकलेंगे तब मनुष्य भव धारणकर श्री जिनेन्द्र देवकी शरण रहेंगे ॥५४॥ अहो देव ! तुमने हम सबका बड़ा हित किया जो यहाँ आकर उत्तम सम्यग्दर्शनमें लगाया है ॥५५॥ हे महाभाग ! सीतेन्द्र ! जाओ जाओ अपने आरणाच्युत कल्पको जाओ और शुद्ध धर्मका विशाल फल भोगकर मोक्षको प्राप्त होओ ॥५६॥ इस प्रकार उन सबके कहनेपर यद्यपि वह सीतेन्द्र शोकके कारणोंसे रहित हो गया था तथापि परम ऋद्धिको धारण करनेवाला वह मन ही मन शोक करता जाता था ॥५७॥ तदनन्तर महान् पुण्यको धारण करनेवाला वह धीर-वीर सुरेन्द्र, उन सबके लिए बोधि दायक शुभ उपदेश देकर अपने स्थानपर आरूढ हो गया ॥५८॥

नरकसे निकलकर जिसकी आत्मा अत्यन्त भयभीत हो रही थी ऐसा वह सीतेन्द्र मन ही मन अरहन्त सिद्ध साधु और केवली प्रणीत धर्म इन चारकी शरणको प्राप्त हुआ और अनेकों बार उसने मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणाएँ दीं ॥५९॥ नरकगतिके उस दुःखको देखकर, स्मरणकर, तथा वहाँके शब्दका ध्यानकर वह सुरेन्द्र विमानमें भी काँप उठता था ॥६०॥ जिसका हृदय काँप रहा था तथा जिसका मुख शोभासम्पन्न चन्द्रमाके समान था, ऐसा वह बुद्धिमान् सुरेन्द्र फिरसे भरत क्षेत्रमें उतरनेके लिए उद्यत हुआ ॥६१॥ उस समय वायुके समान वेगशाली घोड़े, सिंह तथा मदोन्मत्त हाथियोंके समूहसे युक्त, चलते हुए विमानोंसे और नाना रंगके वस्त्रोंको धारण करने वाले, वानर तथा माला आदिके चिह्नोंसे युक्त मुकुटोंसे उज्ज्वल, नाना प्रकारके वाहनोंपर आरूढ़, पताका तथा छत्र आदिसे शोभित शतघ्नी, शक्ति, चक्र, असि, धनुष, कुन्त और गदाको धारण करने वाले, सब ओर गमन करते हुए, अप्सराओंके समूहसे सहित सुन्दर देवोंसे और बाँसुरी तथा वीणाके शब्दोंसे सहित तथा जय जयकार, नन्द, वर्धस्व आदि शब्दोंसे मिश्रित मृदङ्ग और दुन्दुभि के नादसे आकाश भर गया था ॥६२-६५॥

अथानन्तर परम अभ्युदयको धारण करनेवाला सीतेन्द्र श्री राम केवलीकी शरणमें गया। वहाँ जाकर उसने हाथ जोड़ भक्तिपूर्वक बार-बार प्रणाम किया ॥६६॥ तदनन्तर संसार-सागरसे पार होनेके उपाय जाननेके लिए जिसका अभिप्राय दृढ़ था ऐसे उस विनयी सीतेन्द्रने श्री राम

ध्यानमारुततुल्येन तपःसंदीपितात्मना । त्वया जन्माटवी दग्धा दीप्तेन ज्ञानवह्निना ॥६८॥
शुक्ललेश्यात्रिशूलेन मोहनीयरिपुर्हतः । [1]दृढवैराग्यवज्रेण चूर्णितं स्नेहपञ्जरम् ॥६९॥
संशये वर्त्तमानस्य [2]भवारण्यविवर्त्तिनः । शरणं [3]भव मे नाथ मुनीन्द्र भवसूदन ॥७०॥
कृतकृत्यश्च ! सर्वज्ञ ! कृतकृत्य ! जगद्गुरो । परित्रायस्व पद्माभ मामत्याकुलमानसम् ॥७१॥
मुनिसुव्रतनाथस्य सम्यगासेव्य शासनम् । संसारसागरस्यान्तं गतोऽन्तं तपसोरुणा ॥७२॥
राम युक्तं किमेतत्ते यदहं त्यक्त्वा विहाय माम् । एकेन गम्यते तुङ्गममलं पदमच्युतम् ॥७३॥
ततो मुनीश्वरोऽवोचन्मुञ्च रागं सुरार्चित । मुक्तिर्वैराग्यनिष्ठस्य रागिणो भवमज्जनम् ॥७४॥
भवशस्त्रक्य शिला कण्ठे दोर्भ्यां तर्तुं न शक्यते । नदी सद्भू रागाद्यैस्तरितुं संसृतिः क्षमा ॥७५॥
ज्ञानशीलगुणासक्तैस्तीर्यते भवसागरः । ज्ञानानुगतचित्तेन गुरुवाक्यानुवर्त्तिना ॥७६॥
अादिमध्यावसानेषु वेदितव्यमिदं बुधैः । सर्वेषां [4]यन्महातेजाः केवली ग्रसते गुणान् ॥७७॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि यच्चान्यत्कारणं नृप । सीतादेवो यदप्राक्षीद् बभाषे यच्च केवली ॥७८॥
कथं नाथ समस्तज्ञ भव्या दशरथादयः । लवणाङ्कुशयोः का वा दृष्टा नाथ त्वया गतिः ॥७९॥
सोऽवोचदागते कल्पे देवो दशरथोऽभवत् । कैकया कैकयी चैव सुप्रजाश्चापराजिता ॥८०॥

केवलीकी इस तरह स्तुति करना प्रारम्भ किया ॥६७॥ वह कहने लगा कि हे भगवन् ! आपने ध्यानरूपी वायुसे युक्त तथा तपके द्वारा की हुई देदीप्यमान ज्ञानरूपी अग्निसे संसाररूपी अटवीको दग्ध कर दिया है ॥६८॥ आपने शुद्ध लेश्यारूपी त्रिशूलके द्वारा मोहनीय कर्मरूपी शत्रुका घात किया है, और दृढ़ वैराग्यरूपी वज्रके द्वारा स्नेहरूपी पिंजड़ा चूर-चूर कर दिया है ॥६९॥ हे नाथ ! मैं संसाररूपी अटवीके बीच पड़ा जीवन-मरणके संशयमें झूल रहा हूँ अतः हे मुनीन्द्र ! हे भवसूदन ! मेरे लिए शरण हूजिए ॥७०॥ हे राम ! आप प्राप्त करने योग्य सब पदार्थ प्राप्त कर चुके हैं, सब पदार्थोंके ज्ञाता हैं, कृतकृत्य हैं, और जगत्के गुरु हैं अतः मेरी रक्षा कीजिए, मेरा मन अत्यन्त व्याकुल हो रहा है ॥७१॥ श्री मुनिसुव्रतनाथके शासनकी अच्छी तरह सेवा-कर आप विशाल तपके द्वारा संसार-सागरके अन्तको प्राप्त हुए हैं ॥७२॥ हे राम ! क्या यह तुम्हें उचित है जो तुम मुझे बिलकुल छोड़ अकेले ही उन्नत निर्मल और अविनाशी पदको जा रहे हो ॥७३॥

तदनन्तर मुनिराजने कहा कि हे सुरेन्द्र ! राग छोड़ो क्योंकि वैराग्यमें आरूढ मनुष्यकी मुक्ति होती है और रागी मनुष्यका संसारमें डूबना होता है ॥७४॥ जिस प्रकार कण्ठमें शिला बाँधकर भुजाओंसे नदी नहीं तैरी जा सकती उसी प्रकार रागादिसे संसार नहीं तिरा जा सकता ॥७५॥ जिसका चित्त निरन्तर ज्ञानमें लीन रहता है तथा जो गुरुजनोंके कहे अनुसार प्रवृत्ति करता है ऐसा मनुष्य ही ज्ञानशील आदि गुणोंकी आसक्तिसे संसार-सागरको तैर सकता है ॥७६॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! विद्वानोंको यह समझ लेना चाहिए कि महाप्रतापी केवली आदि मध्य और अवसानमें अर्थात् प्रत्येक समय सब पदार्थोंके गुणोंको ग्रस्त करते हैं—जानते हैं ॥७७॥ हे राजन् ! अब इसके आगे सीतेन्द्रने जो पूछा और केवलीने जो उत्तर दिया वह सब कहूँगा ॥७८॥

सीतेन्द्रने केवलीसे पूछा कि हे नाथ ! हे सर्वज्ञ ! ये दशरथ आदि भव्य जीव कहाँ हैं ? तथा लवण और अंकुशकी आपने कौन-सी गति देखी है ? अर्थात् ये कहाँ उत्पन्न होंगे ? ॥७९॥ तब केवलीने कहा कि राजा दशरथ आनत स्वर्गमें देव हुए हैं। इनके सिवाय सुमित्रा, कैकयी,

---

१. दृढं वैराग्य म० । २. भवासव म० । ३. भवने म० । ४. यान्महातेजाः म० । ५. कैकसी म० ।

जनकः कनकश्चैव सम्यग्दर्शनतत्पराः[1] । एते स्वशक्तियोगेन कर्मणा तुल्यभूतयः ॥८१॥
ज्ञानदर्शनतुल्यौ द्वौ श्रमणौ लवणाङ्कुशौ । विरजस्कौ महाभागौ यास्यतः पदमक्षयम् ॥८२॥
इत्युक्ते हर्षतोऽत्यन्तममरेन्द्रो महाद्युतिः । संस्मृत्य भ्रातरं स्नेहाद्पृच्छत्तस्य चेष्टितम् ॥८३॥
भ्राता तवापि इत्युक्ते सीतेन्द्रो दुःखितोऽभवत् । कृताञ्जलिपुटोऽपृच्छज्जातः क्वेति मुनीश्वर ॥८४॥
पद्मनाभस्ततोऽवोचदच्युतेन्द्र गदं शृणु । चेष्टितेन यतो येन स्थानं तव सोदरः ॥८५॥
अयोध्यायां कुलपतिर्बहुकोटिधनेश्वरः । मकरीदयिता कामभोगी वज्राङ्कसंज्ञकः ॥८६॥
अतिक्रान्तो बहुसुतैः पार्थिवोपमविभ्रमः । श्रुत्वा निर्वासितां सीतामिति चिन्तासमाश्रितः ॥८७॥
साऽत्यन्तसुकुमाराङ्गा गुणैर्दिव्यैरलङ्कृता । कान्तु प्राप्ता वनेऽवस्थामिति दुःखी ततोऽभवत् ॥८८॥
स्थितार्द्रहृदयश्चासौ वैराग्यं परमाश्रितः । द्युतिसंज्ञमुनेः पार्श्वे निष्क्रान्तो द्विषसंसृतिः ॥८९॥
अशोकतिलकाभिख्यौ विनीतौ तस्य पुत्रकौ । निमित्तज्ञं द्युतिं प्रष्टुं पितरं जातुचिद्गतौ ॥९०॥
तत्रैव च तमालोक्य स्नेहाद् वैराग्यतोऽपि च । द्युतिमूले व्यतिक्रान्तावशोकतिलकावपि ॥९१॥
द्युतिः परं तपः कृत्वा प्राप्य संक्षयमायुषः । दत्वा सानुजनोत्कण्ठामूर्ध्वग्रैवेयकं गतः ॥९२॥
यथागुरूक्तमादिष्टं पिता-पुत्रौ त्रयस्तु ते । ताम्रचूडपुरं प्राप्तौ प्रस्थितौ वन्दितुं जिनम् ॥९३॥
पञ्चाशद्योजनं तत्र सिकताणवमाप्नुयाम् । अप्राप्तानां च तावन्तं घनकालः समागतः ॥९४॥

सुप्रजा (सुप्रभा) और अपराजिता (कौशल्या), जनक तथा कनक ये सभी सम्यग्दृष्टि अपने-अपने सामर्थ्यके अनुसार बँधे हुए कर्मसे उसी आनत स्वर्गमें तुल्य विभूतिके धारक देव हैं ॥८०-८१॥ ज्ञान और दर्शनकी अपेक्षा समानता रखनेवाले लवण और अंकुश नामक दोनों महाभाग मुनि कर्मरूपी धूलिसे रहित हो अविनाशी पद प्राप्त करेंगे ॥८२॥ केवलीके इस प्रकार कहनेपर सीतेन्द्र हर्षसे अत्यधिक सन्तुष्ट हुआ। तदनन्तर उसने स्नेह वश भाई—भामण्डलका स्मरणकर उसकी चेष्टा पूछी ॥८३॥ इसके उत्तरमें तुम्हारा भाई भी, इतना कहते ही सीतेन्द्र कुछ दुःखी हुआ। तदनन्तर उसने हाथ जोड़कर पूछा कि हे मुनिराज, वह कहाँ उत्पन्न हुआ है ? ॥८४॥ तदनन्तर पद्मनाभ (राम) ने कहा कि हे अच्युतेन्द्र ! तुम्हारा भाई जिस चेष्टासे जहाँ उत्पन्न हुआ है उसे कहता हूँ सो सुन ॥८५॥

अयोध्या नगरीमें अपने कुलका स्वामी अनेक करोड़का धनी, तथा मकरी नामक प्रियाके साथ कामभोग करनेवाला एक 'वज्राङ्क' नामका सेठ था ॥८६॥ उसके अनेक पुत्र थे तथा वह राजाके समान वैभवको धारण करनेवाला था। सीताको निर्वासित सुन वह इस प्रकारकी चिन्ताको प्राप्त हुआ कि 'अत्यन्त सुकुमाराङ्गी तथा दिव्य गुणोंसे अलंकृत सीता वनमें किस अवस्थाको प्राप्त हुई होगी' ? इस चिन्तासे वह अत्यन्त दुःखी हुआ ॥८७-८८॥ तदनन्तर जिसके पास दयालु हृदय विद्यमान था, और जिसे संसारसे द्वेष उत्पन्न हो रहा था ऐसा वह वज्राङ्क सेठ परम वैराग्यको प्राप्त हो द्युति नामक मुनिराजके पास दीक्षित हो गया। इसकी दीक्षाका हाल घरके लोगोंको विदित नहीं था ॥८९॥ उसके अशोक और तिलक नामके दो विनयवान् पुत्र थे, सो वे किसी समय निमित्तज्ञानी द्युति मुनिराजके पास अपने पिताका हाल पूछनेके लिए गये ॥९०॥ वहीं पिताको देखकर स्नेह अथवा वैराग्यके कारण अशोक तथा तिलक भी उन्हीं द्युति मुनिराजके पादमूलमें दीक्षित हो गये ॥९१॥ द्युति मुनिराज परम तपश्चरणकर तथा आयुका क्षय प्राप्तकर शिष्यजनोंको उत्कण्ठा प्रदान करते हुए ऊर्ध्व ग्रैवेयकमें अहमिन्द्र हुए ॥९२॥ यहाँ पिता और दोनों पुत्र मिलकर तीनों मुनि, गुरु के कहे अनुसार प्रवृत्ति करते हुए जिनेन्द्र भगवान्‌की वन्दना करनेके लिए ताम्रचूडपुरकी ओर चले ॥९३॥ बीचमें पचास योजन प्रमाण बालूका समुद्र (रेगिस्तान) मिलता था सो वे इच्छित स्थान तक नहीं पहुँच पाये, बीचमें ही वर्षा-

---

१. तत्परः म० ।

तत्रैकं दुर्लभं प्राप्य [1]पात्रदानोदयोपमम् । बहुशाखोपशाखाढ्यमनोकहमिमे स्थिताः ॥९५॥
ततो जनकपुत्रेण व्रजता कोशलां पुरीम् । दृष्टास्ते मानसे चास्य जातमेतत्सुकर्मणः ॥९६॥
इमे समयरक्षार्थमिहास्युर्विजने वने । प्राणसाधारणोच्चारं कुर्वीरः क्व नु साधवः ॥९७॥
इति सञ्चिन्त्य चारुयन्तनिकटं परमं पुरम् । कृतं [2]सविषयं तेन सद्विद्योद्दारशक्तिना ॥९८॥
स्थाने स्थाने च घोषाद्यसन्निवेशानदर्शयत् । स्वभावार्पितरूपश्च प्रणमद् विनयी मुनीन् ॥९९॥
काले देशे च भावेन [3]सतो गोचरमागतान् । [4]पर्युपास्त यथान्यायं सम्मदी परिवर्गवान् ॥१००॥
पुनश्चानुत्तरेऽरण्ये पर्युपासित संयतान् । अन्यांश्च भुवि सङ्क्लिष्टान् साधूत्कृष्टसंयमान् ॥१०१॥
[5]पुण्यसागरवाणिज्यसेवका [6]मुक्तिभावने । दृष्टान्तस्तेन वक्तव्यास्तस्य धर्मानुरागिणः ॥१०२॥
अन्यदोद्यानयातोऽसौ[7] यथासुखमवस्थितः । शयने श्रीमान्मालिन्या पत्निया कालमाहृतः ॥१०३॥
ततः साधुप्रदानोत्थपुण्यतो मेरुदक्षिणे । कुरौ जातस्त्रिपल्यायुर्दिव्यलक्षणभूषितः ॥१०४॥
पात्रदानफलं तत्र महाविपुलतां गतम् । समं सुन्दरमालिन्या भुङ्क्तेऽसौ परमद्युतिः ॥१०५॥
पात्रभूतान्नदानाच्च शक्त्याढ्यास्तर्पयन्ति ते । ते भोगभूमिमासाद्य प्राप्नुवन्ति परं पदम् ॥१०६॥
स्वर्गे भोगं प्रभुञ्जन्ति भोगभूमेश्च्युता नराः । तत्रस्थानां स्वभावोऽयं दानैर्भोगस्य सम्पदः ॥१०७॥

काल आगया ॥९४॥ उस रेगिस्तानमें जिसका मिलना अत्यन्त कठिन था तथा जो पात्र दानसे प्राप्त होनेवाले अभ्युदयके समान जान पड़ता था एवं जो अनेक शाखाओं और उपशाखाओंसे युक्त था ऐसे एक वृक्षको पाकर उसके आश्रय बनकर तीनों मुनिराज ठहर गये ॥९५॥

तदनन्तर अयोध्यापुरीको जाते समय जनकके पुत्र भामण्डलने वे तीनों मुनिराज देखे। देखते ही इस पुण्यात्माके मनमें यह विचार आया कि ये मुनि, आचारकी रक्षाके निमित्त इस निर्जन वनमें ठहर गये हैं परन्तु प्राण धारणके लिए आहार कहाँ करेंगे ? ॥९६-९७॥ ऐसा विचारकर सद्विद्याकी उत्तम शक्तिसे युक्त भामण्डलने बिलकुल पासमें एक अत्यन्त सुन्दर नगर बसाया जो सब प्रकारकी सामग्रीसे सहित था, स्थान-स्थानपर उसने घोष—अहीर आदिके रहनेके ठिकाने दिखलाये। तदनन्तर अपने स्वाभाविक रूपमें स्थित हो उसने विनय पूर्वक मुनियोंके लिए नमस्कार किया ॥९८-९९॥ वह अपने परिजनोंके साथ वहीं रहने लगा तथा योग्य देश कालमें दृष्टिगोचर हुए सत्पुरुषोंको भावपूर्वक न्यायके साथ हर्षसहित भोजन कराने लगा ॥१००॥ इस निर्जन वनमें जो मुनिराज थे उन्हें तथा पृथिवीपर उत्कृष्ट संयमको धारण करनेवाले जो अन्य विपत्तिग्रस्त साधु थे उन सबको वह आहार आदि देकर संतुष्ट करने लगा ॥१०१॥ मुक्तिकी भावना रख पुण्यरूपी सागरमें वाणिज्य करनेवाले मनुष्योंके जो सेवक हैं धर्मानुरागी भामण्डलको उन्हींका दृष्टान्त देना चाहिए। अर्थात् मुनि तो पुण्यरूपी सागरमें वाणिज्य करनेवाले हैं और भामण्डल उनके सेवकके समान है ॥१०२॥ किसी एक दिन भामण्डल उद्यानमें गया था वहाँ अपनी मालिनी नामक स्त्रीके साथ वह शय्यापर सुखसे पड़ा था कि अचानक वज्रपात होनेसे उसकी मृत्यु हो गई ॥१०३॥ तदनन्तर मुनि-दानसे उत्पन्न पुण्यके प्रभावसे वह मेरु पर्वतके दक्षिणमें विद्यमान देवकुरुमें तीन पल्यकी आयुवाला दिव्य लक्षणोंसे भूषित उत्तम आर्य हुआ ॥१०४॥ इस तरह उत्तम दीप्तिको धारण करनेवाला वह आर्य, अपनी सुन्दर मालिनी स्त्रीके साथ उस देवकुरुमें महाविस्तारको प्राप्त हुए पात्रदानके फलका उपभोग कर रहा है ॥१०५॥ जो शक्तिसम्पन्न मनुष्य, पात्रोंके लिए अन्न देकर संतुष्ट करते हैं वे भोगभूमि पाकर परम पदको प्राप्त होते हैं ॥१०६॥ भोगभूमिसे च्युत हुए मनुष्य स्वर्गमें भोग भोगते

---

१. प्रान्तदीनोच्चयोपमम् म० । प्रान्तदीनोच्चयोपमम् (?) ज०, क० । २. सविषसम्पन्नं (?) म०, ३. सतां गोचरमागतां म० । सतां गोचरमायतं ब० । ४. भोजयामास, श्री० टि० । ५. ततो नगरवाणिज्य- ज०, पुण्यसागर-ख० । ६. शक्तिभावना क० । ७. प्रातोऽसौ म० ।

दानतो [1]सातप्राप्तिश्च स्वर्गमोक्षैककारणम् । इति श्रुत्वा पुनः पृष्टो रावणो बालुकां गतः ॥१०८॥
तथा नारायणो ज्ञातो लक्ष्मणोऽधोगतिं गतः । उत्थाय दुरितस्यान्ते नाथ कोऽनुभविष्यति ॥१०९॥
प्राप्स्यते गतिं कां वा दशाननचरः [2]प्रभो । को तु वाऽहं भविष्यामीत्येवमिच्छामि वेदितुम् ॥११०॥
इति स्वयंप्रभे[3] प्रश्नं कृत्वा विदितचेतसि । सर्वज्ञो वचनं प्राह भविष्यद्भवसम्भवम् ॥१११॥
भविष्यतः स्वकर्माभ्युदयौ रावणलक्ष्मणौ । तृतीयनरकादेत्य अनुपूर्वाच्च मन्दरात् ॥११२॥
शृणु सीतेन्द्र निर्जित्य दुःखं नरकसम्भवम् । मरायां विजयावत्यां मनुष्यत्वेन चाप्स्यते ॥११३॥
गृहिण्यां रोहिणीनाम्न्यां सुनन्दस्य कुटुम्बिनः । सम्यग्दृष्टेः प्रियौ पुत्रौ क्रमेणैतौ भविष्यतः ॥११४॥
अर्हद्दासर्षिदासाख्यौ वेदितव्यौ च सद्गुणैः । अत्यन्तमहचेतस्कौ श्लाघनीयक्रियापरौ ॥११५॥
[4]गृहस्थविधिनाभ्यर्च्य देवदेवं जिनेश्वरम् । अणुव्रतधरौ कालं सुग्रीवाणौ भविष्यतः ॥११६॥
पञ्चेन्द्रियसुखं तत्र चिरं प्राप्य मनोहरम् । च्युत्वा भूयश्च तत्रैव जनिष्येते महाकुले ॥११७॥
सदानेन हरिक्षेत्रं प्राप्य च त्रिदिवं गतौ । प्रच्युतौ पुरि तत्रैव नृपपुत्रौ भविष्यतः ॥११८॥
[5]तातः कुमारकीर्त्याख्यो लक्ष्मीस्तु जननी तयोः । वीरौ कुमारकावेतौ जयकान्तजयप्रभौ ॥११९॥
ततः परं तपः कृत्वा लान्तवं कल्पमाश्रितौ । विबुधोत्तमतां गत्वा भोक्ष्येते तत्रत्यं सुखम् ॥१२०॥
त्वमत्र भरतक्षेत्रे च्युतः सहारणाच्युतात् । सर्वरत्नपतिः श्रीमान् चक्रवर्ती भविष्यसि ॥१२१॥
तौ च स्वर्गच्युतौ देवौ पुण्यनिस्यन्दतेजसा । इन्द्रायुधरथाभिख्यौ तव पुत्रौ भविष्यतः ॥१२२॥

हैं क्योंकि वहाँके मनुष्योंका यह स्वभाव ही है। यथार्थमें दानसे भोगकी संपदाएँ प्राप्त होती हैं ॥१०७॥ दानसे सुखकी प्राप्ति होती है और दान स्वर्ग तथा मोक्षका प्रधान कारण है। इस प्रकार भामण्डलके दानका माहात्म्य सुनकर सीतेन्द्रने बालुकाप्रभा पृथिवीमें पड़े हुए रावण और उसी अधोभूमिमें पड़े लक्ष्मणके विषयमें पूछा कि हे नाथ! यह लक्ष्मण पापका अन्त होने-पर नरकसे निकलकर क्या होगा?, हे प्रभो! वह रावणका जीव कौन गतिको प्राप्त होगा और मैं स्वयं इसके बाद क्या होऊँगा? यह सब मैं जानना चाहता हूँ ॥१०८-११०॥ इस प्रकार प्रश्नकर जब स्वयंप्रभ नामका सीतेन्द्र उत्तर जाननेके लिए उद्यत चित्त हो गया तब सर्वज्ञ देवने उनके आगामी भवोंकी उत्पत्तिसे सम्बन्ध रखनेवाले वचन कहे ॥१११॥

उन्होंने कहा कि हे सीतेन्द्र! सुन, स्वकृत कर्मके अभ्युदयसे सहित रावण और लक्ष्मण, नरक सम्बन्धी दुःख भोगकर तथा तीसरे नरकसे निकलकर मेरुपर्वतसे पूर्वकी ओर विजयावती नामक नगरीमें सुनन्द नामक सम्यग्दृष्टि गृहस्थकी रोहिणी नामक स्त्रीके क्रमशः अर्हद्दास और ऋषिदास नामके पुत्र होंगे। ये पुत्र सद्गुणोंसे प्रसिद्ध, अत्यधिक उत्सवपूर्ण चित्तके धारक और प्रशंसनीय क्रियाओंके करनेमें तत्पर होंगे ॥११२-११५॥ वहाँ गृहस्थकी विधिसे देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजाकर अणुव्रतके धारी होंगे और अन्तमें मरकर उत्तम देव होंगे ॥११६॥ वहाँ चिरकाल तक पञ्चेन्द्रियोंके मनोहर सुख प्राप्तकर वहाँसे च्युत हो उसी महाकुलमें पुनः उत्पन्न होंगे ॥११७॥ फिर पात्रदानके प्रभावसे हरिक्षेत्र प्राप्तकर स्वर्ग जावेंगे। तदनन्तर वहाँसे च्युत हो उसी नगरमें राजपुत्र होंगे ॥११८॥ वहाँ इनके पिताका नाम कुमारकीर्ति और माताका नाम लक्ष्मी होगा तथा स्वयं ये दोनों कुमार जयकान्त और जयप्रभ नामके धारक होंगे ॥११९॥ तदनन्तर तप करके लान्तव स्वर्ग जावेंगे। वहाँ उत्तम देवपद प्राप्तकर तत्सम्बन्धी सुखका उपभोग करेंगे ॥१२०॥ हे सीतेन्द्र! तू आरणाच्युत कल्पसे च्युत हो इस भरतक्षेत्रके रत्नस्थलपुर नामक नगरमें सब रत्नोंका स्वामी चक्ररथ नामका श्रीमान् चक्रवर्ती होगा ॥१२१॥ रावण और लक्ष्मणके जीव जो लान्तव स्वर्गमें देव हुए थे वे वहाँसे च्युत हो पुण्य रसके प्रभावसे तुम्हारे क्रमशः इन्द्ररथ

---

१. भोग-म० । २. चरोपमम् म० । ३. सोऽयं प्रभोः म० । ४. एष श्लोकः म पुस्तके नास्ति । ५. ततः कुमारकीर्त्याख्यौ म० ।

आसीत् प्रतिरिपुर्योऽसौ दशवक्त्रो महाबलः । येनेमे भारते वास्ये त्रयः खण्डा वशीकृताः ॥१२३॥
न कामयेत्परस्य स्त्रीमकामामिति निश्चयः । अपि जीवितमत्याक्षीत्तत्सत्यमनुपालयन् ॥१२४॥
सोऽयमिन्द्ररथाभिख्यो भूत्वा धर्मपरायणः । प्राप्य श्रेष्ठान् भवान् कांश्चित्तिर्यङ्नरकवर्जितान् ॥१२५॥
स मानुष्यं समासाद्य दुर्लभं सर्वदेहिनाम् । तीर्थकृत्कर्मसङ्घातमर्जयिष्यति पुण्यवान् ॥१२६॥
ततोऽनुक्रमतः पूजामवाप्य भुवनत्रयात् । मोहादिशत्रुसङ्घातं निहत्यार्हंतमाप्स्यति ॥१२७॥
रत्नस्थलपुरे कृत्वा राज्यं [1]चक्ररथस्त्वसौ । वैजयन्तेऽहमिन्द्रत्वमवाप्स्यति तपोबलात् ॥१२८॥
स त्वं तस्य जिनेन्द्रस्य प्रच्युतः स्वर्गलोकतः । आद्यो गणधरः श्रीमानृद्धिप्राप्तो भविष्यति ॥१२९॥
ततः परमनिर्वाणं यास्यसीत्यमरेश्वरः । श्रुत्वा यथौ परां तुष्टिं भाविसेनाऽन्तरात्मना ॥१३०॥
अथं तु लक्ष्मणो भावः सर्वज्ञेन निवेदितः । अम्भोरथनामासौ भूत्वा चक्रधरात्मजः ॥१३१॥
चारून् कांश्चिद्भवान् भ्रान्त्वा धर्मसङ्गतचेष्टितः । विदेहे पुष्करद्वीपे शतपत्राह्वये पुरे ॥१३२॥
लक्ष्मणः स्वोचिते काले प्राप्य जन्माभिषेचनम् । चक्रपाणिरयमर्हत्वं लब्ध्वा निर्वाणमेष्यति ॥१३३॥
सम्पूर्णैः सप्तभिर्वर्षैरहमप्यपुनर्भवः । गमिष्यामि गता यत्र साधवो भरतादयः ॥१३४॥
भविष्यद्भववृत्तान्तमवगम्य सुरोत्तमः । अपेतसंशयः श्रीमान्महाभावनयान्वितः ॥१३५॥
परिणूय नमस्कृत्य पद्मनाभं पुनः पुनः । तस्मिन्नुद्यति चैत्यानि वन्दितुं विहृतिं श्रितः ॥१३६॥
जिननिर्वाणधामानि परं भक्तः समर्चयन् । तथा नन्दीश्वरद्वीपे जिनेन्द्रार्चामहर्दिकः ॥१३७॥

और मेघरथ नामक पुत्र होंगे ॥१२२॥ जो पहले दशानन नामका तेरा महाबलवान् शत्रु था, जिसने भरतक्षेत्रके तीन खण्ड वश कर लिये थे, और जिसके यह निश्चय था कि जो परस्त्री मुझे नहीं चाहेगी उसे मैं नहीं चाहूँगा। निश्चय ही नहीं, जिसने जीवन भले ही छोड़ दिया था पर इस सत्यव्रतको नहीं छोड़ा था किन्तु उसका अच्छी तरह पालन किया था। वह रावणका जीव धर्मपरायण इन्द्ररथ होकर तिर्यञ्च और नरकको छोड़ अनेक उत्तम भव पा मनुष्य होकर सर्व प्राणियोंके लिए दुर्लभ तीर्थंकर नाम कर्मका बन्ध करेगा। तदनन्तर वह पुण्यात्मा अनुक्रमसे तीनों लोकोंके जीवोंसे पूजा प्राप्तकर मोहादि शत्रुओंके समूहको नष्टकर अर्हन्त पद प्राप्त करेगा ॥१२३–१२७॥ और तेरा जीव जो चक्ररथ नामका चक्रधर हुआ था वह रत्नस्थलपुरमें राज्यकर अन्तमें तपोबलसे वैजयन्त विमानमें अहमिन्द्र पदको प्राप्त होगा ॥१२८॥ वही तू स्वर्गलोकसे च्युत हो उक्त तीर्थंकरका ऋद्धिधारी श्रीमान् प्रथम गणधर होगा ॥१२९॥ और उसके बाद परम निर्वाणको प्राप्त होगा। इस प्रकार सुनकर सीताका जीव सुरेन्द्र, भावपूर्ण अन्तरात्मासे परमसंतोषको प्राप्त हुआ ॥१३०॥ सर्वज्ञ देवने लक्ष्मणके जीवका जो निरूपण किया था, वह मेघरथ नामका चक्रवर्तीका पुत्र होकर धर्मपूर्ण आचरण करता हुआ कितने ही उत्तम भवोंमें भ्रमणकर पुष्करद्वीप सम्बन्धी विदेह क्षेत्रके शतपत्र नामा नगरमें अपने योग्य समयमें जन्माभिषेक प्राप्तकर तीर्थंकर और चक्रवर्ती पदको प्राप्त हो निर्वाण प्राप्त करेगा ॥१३१–१३३॥ और मैं भी सात वर्ष पूर्ण होते ही पुनर्जन्मसे रहित हो वहाँ जाऊँगा जहाँ भरत आदि मुनिराज गये हैं ॥१३४॥

इस प्रकार आगामी भवोंका वृत्तान्त जानकर जिसका सब संशय दूर हो गया था, तथा जो महाभावनासे सहित था ऐसा सुरेन्द्र सीतेन्द्र, श्री पद्मनाभ केवलीकी बार-बार स्तुतिकर तथा नमस्कारकर उनके अभ्युदय युक्त रहते हुए चैत्यालयोंकी वन्दना करनेके लिए चला गया ॥१३५–१३६॥ वह अत्यन्त भक्त हो तीर्थंकरोंके निर्वाण-क्षेत्रोंकी पूजा करता, नन्दीश्वर द्वीपमें जिन-प्रतिमाओंकी अर्चा करता, देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान्‌को निरन्तर मनमें धारण करता

१. चक्रधरस्त्वसौ ब० ।

देवदेवं जिनं जिष्णुनाथोत्थानसमुद्यतम् । वैकुण्ठमिव प्राप्तः परमं शर्म धारयन् ॥१३८॥
लुप्तितं कलुषं कर्म मन्यमानः सुसम्मदः । सुकृतः स्वर्गमारोहद् सुरसङ्घसमावृतः ॥१३९॥
स्वर्गं सेन तदा यातो[1] भ्रातृस्नेहात् पुरातनात् । भामण्डलचरो दृष्टः कुरौ सम्भाषितः[2] प्रियम् ॥१४०॥
तत्रारणाच्युते कल्पे सर्वकामगुणप्रदे । अमरीणां सहस्राणि रमयन्नीश्वरः स्थितः ॥१४१॥
दश सप्त च वर्षाणां सहस्राणि बलायुषः । चापानि षोडशोत्सेधः सानुजस्य प्रकीर्तितः ॥१४२॥
इत्थमवधार्येदमन्तरं पुण्यपापयोः । पापं दूरं परित्यज्य वरं पुण्यमुपार्जितम् ॥१४३॥

आर्यागीतिः

पश्यत बलेन विभुना जिनेन्द्रवरशासने धृतिं प्राप्तेन ।
जन्मजरामरणमहारिपवो बलिनः पराजिताः पद्मेन ॥१४४॥
स हि जन्मजरामरणव्युच्छेदान्निष्परमकैवल्यसुखम् ।
अतिशयदुर्लभमनघं सम्प्राप्तो जिनवरप्रसादादतुलम् ॥१४५॥
मुनिदेवासुरवृषभैः स्तुतमहितनमस्कृतो निधूतदोषः ।
प्रमदशतैकपगीतो विद्याधरपुष्पवृष्टिभिर्दुर्लक्ष्यः ॥१४६॥
आराध्य जैनसमयं परमविधानेन पञ्चविंशतिवर्षान् ।
प्राप त्रिभुवनशिखरं सिद्धपदं सर्वजीवनिकायललामम् ॥१४७॥
व्यपगतभवहेतुं तं योगधरं शुद्धभावहृदयधरं वीरम् ।
अनगारवरं सकला प्रणमत रामं मनोऽभिरामं शिरसा ॥१४८॥

स्वयं केवली पदको प्राप्त हुए के समान परम सुखका अनुभव करता, पाप कर्मको भस्मीभूत मानता, हर्षित तथा सदाचारसे युक्त होता और देवोंके समूहसे आवृत होता हुआ स्वर्गलोक चला गया ॥१३७-१३९॥ उस समय उसने स्वर्ग जाते-जाते भाईके पुरातन स्नेहके कारण देवकुरुमें भामण्डलके जीवको देखा और उसके साथ प्रिय वार्तालाप किया ॥१४०॥ वह सौतेन्द्र सर्व मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले उस आरणाच्युत कल्पमें हजारों देवियोंके साथ रमण करता हुआ रहता था ॥१४१॥ रामकी आयु सत्रह हजार वर्षकी तथा उनके और लक्ष्मणके शरीरकी ऊँचाई सोलह धनुषकी थी ॥१४२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस तरह पुण्य और पापका अन्तर जानकर पापको दूरसे ही छोड़कर पुण्यका ही संचय करना उत्तम है ॥१४३॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! देखो जिनेन्द्र देवके उत्तम शासनमें धैर्यको प्राप्त हुए बलभद्र पदके धारी विभु रामचन्द्रने जन्म-जरा-मरण रूपी महाबलवान् शत्रु पराजित कर दिये ॥१४४॥ वे रामचन्द्र, श्री जिनेन्द्र देवके प्रसादसे जन्म-जरा-मरणका व्युच्छेदकर अत्यन्त दुर्लभ, निर्दोष, अनुपम, नित्य और उत्कृष्ट कैवल्य सुखको प्राप्त हुए ॥१४५॥ मुनीन्द्र देवेन्द्र और असुरेन्द्रोंके द्वारा जो स्तुत, महित तथा नमस्कृत हैं, जिन्होंने दोषोंको नष्ट कर दिया है, जो सैकड़ों प्रकारके हर्षसे उपगीत हैं तथा विद्याधरोंकी पुष्प-वृष्टियोंकी अधिकतासे जिनका देखना भी कठिन है ऐसे श्रीराम महामुनि, पचीस वर्ष तक उत्कृष्ट विधिसे जैनाचारकी आराधनाकर समस्त जीव समूहके आभरणभूत, तथा सिद्ध परमेष्ठियोंके निवास क्षेत्र स्वरूप तीन लोकके शिखरको प्राप्त हुए ॥१४६-१४७॥ हे भव्य जनो ! जिनके संसारके कारण—मिथ्या दर्शनादिभाव नष्ट हो चुके थे, जो उत्तम योगके धारक थे, शुद्ध भाव और शुद्ध हृदयके धारक थे, कर्मरूपी शत्रुओंके जीतनेमें वीर थे, मनको आनन्द देनेवाले थे और मुनियोंमें श्रेष्ठ थे उन भगवान् रामको शिरसे

---

१. यातं म०, यात्रा ज० । २. सम्भाषितप्रियम् म० । ३. सिद्धिपदम् म० ।

विजितसरुणार्कतेजसमधरीकृतपूर्णचन्द्रमण्डलं कान्तम् ।
सर्वोपमानभावव्यतिगमरूपातिरूढमूर्जितचरितम् ॥१४९॥
पूर्वस्नेहेन तथा सीतादेवाधिपेन धर्मस्थतया ।
परमर्द्धितं परमर्द्धिप्राप्तं पद्मं यतिप्रधानं नमत ॥१५०॥
योऽसौ बलदेवानामष्टमसङ्ख्यो नितान्तशुद्धशरीरः ।
श्रीमानमन्तबलभृन्नियमशतसहस्रभूषितो गतविकृतिः ॥१५१॥
तमनेकशीलगुणशतसहस्रधरमतिशुद्धकीर्तिमुदारम् ।
ज्ञानप्रदीपममलं प्रणमत रामं त्रिलोकनिर्गतयशसम् ॥१५२॥
निर्दग्धकर्मपटलं गम्भीरगुणार्णवं विमुक्तक्षोभम् ।
मन्दरमिव निष्कम्पं प्रणमत रामं यथोक्तचरितश्रमणम् ॥१५३॥
विनिहत्य कषायरिपून् येन सुखाद्यशेषतो द्वन्द्वानि ।
त्रिभुवनपरमेश्वरतां यश्च प्राप्तो जिनेन्द्रशासनसक्तः ॥१५४॥
निर्धूतकलुषरजसं सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्रमयम् ।
तं [illegible] प्रणतमनसं प्रणम्यरं सर्वदुःखसंक्षयसक्तम् ॥१५५॥
चेष्टितमनघं चरितं करणं चारित्रमित्यमी यच्छब्दाः ।
पर्यायो रामायणमिष्टं तेन चेष्टितं रामस्य ॥१५६॥
बलदेवस्य सुचरितं दिव्यं यो भावितेन मनसा नित्यम् ।
विस्मयहर्षाविष्टस्वान्तः प्रतिदिनमपेतशङ्कितकरणः ॥१५७॥
वाचयति शृणोति जनस्तस्यायुर्बुद्धिमीयते पुण्यं च ।
आकृष्टखड्गहस्तो रिपुरपि न करोति वैरमुपशममेति ॥१५८॥

प्रणाम करो ॥१४८॥ जिन्होंने तरुण सूर्यके तेजको जीत लिया था, जिन्होंने पूर्ण चन्द्रमाके मण्डलको नीचा कर दिया था, जो अत्यन्त सुदृढ था, पूर्व स्नेहके वश अथवा धर्ममें स्थित होनेके कारण सीताके जीव प्रतीन्द्रने जिनकी अत्यधिक पूजा की थी, तथा जो परम ऋद्धिको प्राप्त थे ऐसे मुनिप्रधान श्रीरामचन्द्रको नमस्कार करो ॥१४९-१५०॥ जो बलदेवोंमें आठवें बलदेव थे, जिनका शरीर अत्यन्त शुद्ध था, जो श्रीमान् थे, अनन्त बलके धारक थे, हजारों नियमोंसे भूषित थे और जिनके सब विकार नष्ट हो गये थे ॥१५१॥ जो अनेक शील तथा लाखों उत्तरगुणोंके धारक थे, जिनकी कीर्ति अत्यन्त शुद्ध थी, जो उदार थे, ज्ञानरूपी प्रदीपसे सहित थे, निर्मल थे और जिनका उज्ज्वल यश तीन लोकमें फैला हुआ था उन श्रीरामको प्रणाम करो ॥१५२॥ जिन्होंने कर्मपटलको जला दिया था, जो गंभीर गुणोंके सागर थे, जिनका क्षोभ छूट गया था, जो मन्दरगिरिके समान अकम्प थे तथा जो मुनियोंका यथोक्त चारित्र पालन करते थे उन श्रीरामको नमस्कार करो ॥१५३॥ जिन्होंने कषायरूपी शत्रुओंको नष्टकर सुख-दुःखादि समस्त द्वन्द्वोंका त्याग कर दिया था, जो तीन लोककी परमेश्वरताको प्राप्त थे, जो जिनेन्द्र देवके शासनमें लीन थे, जिन्होंने पापरूपी रज उड़ा दी थी, जो सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रसे तन्मय हैं, संसारको नष्ट करनेवाले हैं, तथा समस्त दुःखोंका क्षय करनेमें तत्पर हैं ऐसे मुनिवर श्रीरामको प्रणाम करो ॥१५४-१५५॥

चेष्टित, अनघ, चरित, करण और चारित्र ये सभी शब्द यतश्च पर्यायवाचक शब्द हैं अतः रामकी जो चेष्टा है वही रामायण कही गई है ॥१५६॥ जिसका हृदय आश्चर्य और हर्षसे आक्रान्त है तथा जिसके अन्तःकरणसे सब शङ्काएँ निकल चुकी हैं ऐसा जो मनुष्य प्रतिदिन भावपूर्ण मनसे बलदेवके चरित्रको बाँचता अथवा सुनता है उसकी आयु वृद्धिको प्राप्त होती है,

किं चान्यद्भवतो लभते धर्मं यशः परं यशसोऽर्थी ।
राज्यभ्रष्टो राज्यं प्राप्नोति न संशयोऽत्र कश्चित्कृत्यः ॥१५७॥
इष्टसमायोगार्थी लभते तं क्षिप्रसो धनं धनार्थी ।
जायार्थी वरपत्नीं पुत्रार्थी गोत्रनन्दनं प्रवरपुत्रम् ॥१६०॥
अविलष्टकर्मविधिना लाभार्थी लाभमुत्तमं सुखजननम् ।
कुशली विदेशगमने स्वदेशगमनेऽथवापि सिद्धसमीहः ॥१६१॥
व्याधिरुपैति प्रशमं ग्रामनगरवासिनः सुरास्तुष्यन्ति ।
नक्षत्रैः सह क्रुटिला अपि भान्वाद्या ग्रहा भवन्ति प्रीताः ॥१६२॥
तुष्टिन्तितानि दुर्भावितानि दुष्कृतशतानि यान्ति प्रलयम् ।
यत् किञ्चिदपरमशिवं तत्सर्वं क्षयमुपैति पद्मकथाभिः ॥१६३॥
यद्वा निहितं हृदये साधु तदाप्नोति रामकीर्त्तनासक्तः ।
इष्टं करोति भक्तिः सुदृढा सर्वज्ञभावगोचरनिरता ॥१६४॥
भवशतसहस्रसञ्चितमसौ हि दुरितं तृणेद्धि जिनवरभक्त्या ।
व्यसनार्णवमुत्तीर्य प्राप्नोत्यर्हत्पदं सुभावः क्षिप्रम् ॥१६५॥

शार्दूलविक्रीडितम्

एतत् तत्सुसमाहितं सुनिपुणं दिव्यं पवित्राक्षरं
नानाजन्मसहस्रसञ्चितघनक्लेशौघनिर्णाशनम् ।
आख्यानैर्विविधैश्चितं सुपुरुषव्यापारसङ्कीर्त्तनं
भव्याम्भोजपरप्रहर्षजननं सद्भीर्सितं भक्तितः ॥१६६॥

पुण्य बढ़ता है, तथा तलवार खींचकर हाथमें धारण करनेवाला भी शत्रु उसके साथ वैर नहीं करता है, अपितु शान्तिको प्राप्त हो जाता है ॥१५७-१५८॥ इसके सिवाय इसके बाँचने अथवा सुननेसे धर्मका अभिलाषी मनुष्य धर्मको पाता है, यशका अभिलाषी परमयशको पाता है, और राज्यसे भ्रष्ट हुआ मनुष्य पुनः राज्यको प्राप्त करता है इसमें कुछ भी संशय नहीं करना चाहिए ॥१५९॥ इष्ट संयोगका अभिलाषी मनुष्य शीघ्र ही इष्टजनके संयोगको पाता है, धनका अर्थी धन पाता है। स्त्रीका इच्छुक उत्तम स्त्री पाता है और पुत्रका अर्थी गोत्रको आनन्दित करनेवाला उत्तम पुत्र पाता है ॥१६०॥ लाभका इच्छुक सरलतासे सुख देनेवाला उत्तम लाभ प्राप्त करता है, विदेश जानेवाला कुशल रहता है और स्वदेशमें रहनेवालेके सब मनोरथ सिद्ध होते हैं ॥१६१॥ उसकी बीमारी शान्त हो जाती है, ग्राम तथा नगरवासी देव संतुष्ट रहते हैं, था नक्षत्रोंके साथ साथ सूर्य आदि कुटिल ग्रह भी प्रसन्न हो जाते हैं ॥१६२॥ रामकी कथाओंसे श्रेन्तित, तथा दुर्भावित सैकड़ों पाप नष्ट हो जाते हैं, तथा इनके सिवाय जो कुछ अन्य अमङ्गल हैं वे सब क्षयको प्राप्त हो जाते हैं ॥१६३॥ अथवा हृदयमें जो कुछ उत्तम बात है राम-कथाके कीर्तनमें लीन मनुष्य उसे अवश्य पाता है, सो ठीक ही है क्योंकि सर्वज्ञदेव सम्बन्धी सुदृढ़ भक्ति इष्टपूर्ति करती ही है ॥१६४॥ उत्तम भावको धारण करनेवाला मनुष्य, जिनेन्द्रदेवकी भक्तिसे लाखों भवोंमें संचित पाप कर्मको नष्ट कर देता है, तथा दुःख रूपी सागरको पारकर शीघ्र ही अर्हन्त पदको प्राप्त करता है ॥१६५॥

ग्रन्थकर्त्ता श्री रविषेणाचार्य कहते हैं कि बड़ी सावधानीसे जिसका समाधान बैठाया गया है, जो दिव्य है, पवित्र अक्षरोंसे सम्पन्न है, नाना प्रकारके हजारों जन्मोंमें संचित अत्यधिक क्लेशोंके समूहको नष्ट करनेवाला है, विविध प्रकारके आख्यानों-अवान्तर कथाओंसे व्याप्त है, सत्पुरुषोंकी चेष्टाओंका वर्णन करनेवाला है, और भव्य जीवरूपी कमलोंके परम हर्षको करने

निर्दिष्टं सकलैर्जनेन भुवनैः श्रीवर्द्धमानेन यत्
सत्त्वं वासवभूतिना निगदितं जम्बोः प्रशिष्यस्य च ।
शिष्येणोत्तरवाग्मिना प्रकटितं पद्मस्य वृत्तं मुनेः
श्रेयःसाधुसमाधिवृद्धिकरणं सर्वोत्तमं मङ्गलम् ॥१६७॥
ज्ञाताशेषकृतान्तसन्मुनिमनःसोपानपर्वावली
पारम्पर्यसमाश्रितं सुवचनं सारार्थमत्यद्भुतम् ।
आसीदिन्द्रगुरोर्दिवाकरयतिः शिष्योऽस्य चाहंन्मुनि-
स्तस्माल्लक्ष्मणसेनसन्मुनिरदःशिष्यो रविस्तु स्मृतम् ॥१६८॥
सम्यग्दर्शनशुद्धिकारणगुरुश्रेयस्करं पुष्कलं
विस्पष्टं परमं पुराणममलं श्रीमत्प्रबोधिप्रदम् ।
रामस्याद्भुतविक्रमस्य सुकृतो माहात्म्यसङ्कीर्तनं
श्रोतव्यं सततं विचक्षणजनैरात्मोपकारार्थिभिः ॥१६९॥

छन्दः (१)

हलधरकृतोद्विग्नोऽनयोश्च प्रथितं वृत्तमिदं समस्तलोके ।
कुशलं कलुषं च तत्र बुद्ध्वा शिवमात्मीकुरुतेऽशिवं विहाय ॥१७०॥
अपि नाम शिवं गुणानुबन्धि व्यसनस्फातिकरं शिवेतरत् ।
तद्विषयस्पृहया तदेति मैत्रीमशिवं तेन न शान्तये कदाचित् ॥१७१॥

वाला है ऐसा यह पद्मचरित मैंने भक्ति वश ही निरूपित किया है ॥१६६॥ श्री पद्ममुनिका जो चरित मूलमें सब संसारसे नमस्कृत श्रीवर्धमान स्वामीके द्वारा कहा गया, फिर इन्द्रभूति गणधरके द्वारा सुधर्मा और जम्बू स्वामीके लिए कहा गया तथा उनके बाद उनके शिष्योंके शिष्य श्री उत्तरवाग्मी अर्थात् श्रेष्ठवक्ता श्री कीर्तिधर मुनिके द्वारा प्रकट हुआ तथा जो कल्याण और साधुसमाधिकी वृद्धि करनेवाला है, ऐसा यह पद्मचरित सर्वोत्तम मङ्गल स्वरूप है ॥१६७॥ यह पद्मचरित, समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता उत्तम मुनियोंके मनको सोपान परम्पराके समान नाना पर्वोंकी परम्परासे युक्त है, सुभाषितोंसे भरपूर है, सारपूर्ण है तथा अत्यन्त आश्चर्यकारी है। इन्द्र गुरुके शिष्य श्री दिवाकर यति थे, उनके शिष्य अर्हद्यति थे, उनके शिष्य लक्ष्मणसेन मुनि थे और उनका शिष्य मैं रविषेण हूँ ॥१६८॥ जो सम्यग् दर्शनकी शुद्धताके कारणोंसे श्रेष्ठ है, कल्याणकारी है, विस्तृत है, अत्यन्त स्पष्ट है, उत्कृष्ट है, निर्मल है, श्री-सम्पन्न है, रत्नत्रय रूप बोधिका दायक है, तथा अद्भुत पराक्रमी पुण्यस्वरूप श्री रामके माहात्म्यका उत्तम कीर्तन करनेवाला है ऐसा यह पुराण आत्मोपकारके इच्छुक विद्वज्जनोंके द्वारा निरन्तर श्रवण करनेके योग्य है ॥१६९॥

बलभद्र नारायण और इनके शत्रु रावणका यह चरित्र समस्त संसारमें प्रसिद्ध है। इसमें अच्छे और बुरे दोनों प्रकारके चरित्रोंका वर्णन है। इनमें बुद्धिमान् मनुष्य बुद्धि द्वारा विचार कर अच्छे अंशको ग्रहण करते हैं और बुरे अंशको छोड़ देते हैं ॥१७०॥ जो अच्छा चरित्र है वह गुणोंको बढ़ानेवाला है और जो बुरा चरित्र है वह कष्टोंकी वृद्धि करनेवाला है, इनमें से जिस मनुष्यको जिस विषयकी इच्छा हो वह उसीके साथ मित्रताको करता है अर्थात् गुणोंको चाहने वाला अच्छे चरित्रसे मित्रता बढ़ाता है और कष्ट चाहनेवाला बुरे चरित्रसे मित्रता करता है।

यदि तावदसौ नभश्चरेन्द्रो व्यसनं प्राप परस्त्रनाहिताशः ।
स्निधनं गतवाननङ्गरोगः किमुतान्यो रतिरङ्गनासुभावः (?) ॥१७२॥
सततं सुखसेवितोऽप्यसौयद् दशवक्त्रो वरकामिनीसहस्रैः ।
अतितृप्तमतिर्विनाशमागादितरस्तृप्तिमुपैष्यतीति मोहः ॥१७३॥
स्वकलत्रसुखं हितं रहित्वा परकान्ताभिरतिं करोति पापः ।
व्यसनार्णवमस्युदारमेव प्रविशत्येव विशुष्कदारुकल्पः ॥१७४॥
व्रजत त्वरिता जना भवन्तो बलदेवप्रमुखाः पदं गता यत्र ।
जिनशासनभक्तिरागरक्ताः सुदृढं प्राप्य यथाबलं सुवृत्तम् ॥१७५॥
सुकृतस्य फलेन जन्तुरुच्चैः पदमाप्नोति सुसम्पदो निधानम् ।
दुरितस्य फलेन तत्तु दुःखं कुगतिस्थं समुपैत्यसंशयं स्वभावः ॥१७६॥
कुकृतं प्रथमं सुदीर्घरोषः परपीडाभिरतिर्वधश्च रूक्षम् ।
सुकृतं विनयः श्रुतं च शीलं सदयं साध्वसमत्सरः शमश्च ॥१७७॥
न हि कश्चिदहो ददाति किञ्चिद्द्रविणारोग्यसुखादिकं जनानाम् ।
अपि नाम यदा सुरा ददन्ते बहवः किन्तु विदुःखितास्तवेते ॥१७८॥
बहुधा गदितेन[2] किन्त्वनेन पदमेकं सुकृधा निबुध्य यत्नात् ।
बहुभेदविपाककर्मसूक्तं सदुपायाप्तिविधौ सदा रमध्वम् ॥१७९॥

अनुष्टुप्

उपायाः परमार्थस्य कथितास्तत्त्वतो बुधाः ।
सेव्यन्तां शक्तितो येन निष्क्रामत भवार्णवात् ॥१८०॥

इससे इतना सिद्ध है कि बुरा चरित्र कभी शान्तिके लिए नहीं होता ॥१७१॥ जब कि परस्त्रीकी आशा रखनेवाला विद्याधरोंका राजा-रावण कष्टको प्राप्त होता हुआ अन्तमें मरणको प्राप्त हुआ तब साक्षात् रति-क्रीड़ा करनेवाले अन्य काम रोगीकी तो कथा ही क्या है ? ॥१७२॥ हजारों उत्तमोत्तम स्त्रियाँ जिसकी निरन्तर सेवा करती थीं ऐसा रावण भी जब अतृप्तबुद्धि होता हुआ मरणको प्राप्त हुआ तब अन्य मनुष्य तृप्तिको प्राप्त होगा यह कहना मोह ही है ॥१७३॥ अपनी स्त्रीके हितकारी सुखको छोड़कर जो पापी पर-स्त्रियोंमें प्रेम करता है वह सूखी लकड़ीके समान दुःखरूपी बड़े सागरमें नियमसे प्रवेश करता है ॥१७४॥ अहो भव्य जनो ! तुम लोग जिन-शासनकी भक्तिरूपी रङ्गमें रँगकर तथा शक्तिके अनुसार सुदृढ़ चारित्रको महणकर शीघ्र ही उस स्थानको जाओ जहाँ कि बलदेव आदि महापुरुष गये हैं ॥१७५॥ पुण्यके फलसे यह जीव उच्च पद तथा उत्तम सम्पत्तियोंका भण्डार प्राप्त करता है और पापके फलसे कुगति सम्बन्धी दुःख पाता है यह स्वभाव है ॥१७६॥ अत्यधिक क्रोध करना, परपीड़ामें प्रीति रखना, और रूक्ष वचन बोलना यह प्रथम कुकृत अर्थात् पाप है और विनय, श्रुत, शील, दया सहित वचन, अमात्सर्य और क्षमा ये सब सुकृत अर्थात् पुण्य हैं ॥१७७॥ अहो ! मनुष्योंके लिए धन आरोग्य तथा सुखादिक कोई नहीं देता है । यदि यह कहा जाय कि देव देते हैं तो वे स्वयं अधिक संख्यामें दुःखी क्यों हैं ? ॥१७८॥ बहुत कहनेसे क्या ? हे विद्वज्जनो ! यत्नपूर्वक एक प्रमुख आत्म पदको तथा नाना प्रकारके विपाकसे परिपूर्ण कर्मोंके स्वरसको अच्छी तरह जानकर सदा उसीकी प्राप्तिके उपायोंमें रमण करो ॥१७९॥ हे विद्वज्जनो ! हमने इस ग्रन्थमें परमार्थकी प्राप्तिके उपाय कहे हैं सो उन्हें शक्तिपूर्वक काममें लाओ जिससे संसाररूपी सागरसे पार हो

---

१. -ननंगरागः म० । २. किन्त्वनेन म० ।

छन्दः (?)

इति जीवविशुद्धिदानदक्षं परितः शास्त्रमिदं नितान्तरम्यम् ।
सकले भुवने रविप्रकाशं स्थितमुद्योतितसर्ववस्तुसिद्धम् ॥१८१॥
द्विशताभ्यधिके समासहस्रे समतीतेऽर्द्धचतुर्थवर्षयुक्ते ।
जिनभास्करवर्द्धमानसिद्धे[1] चरितं पद्ममुनेरिदं निबद्धम् ॥१८२॥

अनुष्टुप्

कुर्वन्त्वत्रयाश्च सान्निध्यं सर्वाः समयदेवताः । कुर्वाणाः सकलं लोकं जिनभक्तिपरायणम् ॥१८३॥
कुर्वन्तु[2] वचनै[3] रक्षां समये सर्ववस्तुषु । सर्वादरसमायुक्ता भव्या लोकसुवत्सलाः ॥१८४॥
व्यञ्जनान्तं स्वरान्तं वा किञ्चिन्नामेह कीर्तितम् । अर्थस्य वाचकः शब्दः शब्दो वाक्यमिति स्थितम् ॥
लक्षणालङ्कृती वाच्यं प्रमाणं छन्द आगमः । सर्वं चामलचित्तेन ज्ञेयमत्र सुखागतम्[4] ॥१८६॥
हृदमष्टादश प्रोक्तं सहस्राणि प्रमागतः । शास्त्रमानुष्टुपश्लोकैस्त्रयोविंशतिसङ्गतम् ॥१८७॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते श्रीपद्मपुराणे बलदेवसिद्धिगमनाभिधानं नाम त्रयोविंशोत्तरशतं पर्व ॥१२३॥

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

सको ॥१८०॥ इस प्रकार यह शास्त्र जीवोंके लिए विशुद्धि प्रदान करनेमें समर्थ, सब ओरसे अत्यन्त रमणीय, और समस्त विश्वमें सूर्यके प्रकाशके समान सब वस्तुओंको प्रकाशित करनेवाला है ॥१८१॥ जिनसूर्य श्री वर्धमान जिनेन्द्रके मोक्ष जानेके बाद एक हजार दो सौ तीन वर्ष छह माह बीत जानेपर श्री पद्ममुनिका यह चरित्र लिखा गया है ॥१८२॥ मेरी इच्छा है कि समस्त श्रुतदेवता जिन शासन देव, निखिल विश्वको जिन-भक्तिमें तत्पर करते हुए यहाँ अपना सांनिध्य प्रदान करें ॥१८३॥ वे सब प्रकारके आदरसे युक्त, लोकस्नेही भव्य देव समस्त वस्तुओंके विषयमें अर्थात् सब पदार्थोंके निरूपणके समय अपने वचनोंसे आगमकी रक्षा करें ॥१८४॥ इस ग्रन्थमें व्यञ्जनान्त अथवा स्वरान्त जो कुछ भी कहा गया है वही अर्थका वाचक शब्द है, और शब्दोंका समूह ही वाक्य है, यह निश्चित है ॥१८५॥ लक्षण, अलंकार, अभिधेय, लक्ष्य और व्यङ्ग्यके भेदसे तीन प्रकारका वाच्य, प्रमाण, छन्द तथा आगम इन सबका यहाँ अवसरके अनुसार वर्णन हुआ है सो शुद्ध हृदयसे उन्हें जानना चाहिए ॥१८६॥ यह पद्मचरित ग्रन्थ अनुष्टुप् श्लोकोंकी अपेक्षा अठारह हजार तेईस श्लोक प्रमाण कहा गया है ॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य प्रणीत पद्मपुराणमें बलदेवकी सिद्धि-प्राप्तिका वर्णन करनेवाला एकसौ तेईसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१२३॥

---

१. सिद्धे चरितं म० । २. कुर्वते म० । ३. वचने म० । ४. सुखागतम् क०, सुसङ्गतम् ख० ।

टीकाकर्तृप्रशस्तिः

दशार्णसरितस्तीरे पद्मग्रामो विराजते । यत्र लीलाधरो जैनो न्यवात्सीच्छ्रावकव्रतः ॥१॥
पुत्रास्तस्य त्रयोऽभूवन् जैनधर्मपरायणाः । गल्लीलालो ततो नन्द-लालः सद्धर्मभूषितः ॥२॥
प्यारेलालस्ततो ज्ञेयो वात्सल्यामृतसागरः । गल्लीलालस्य भार्यासीज्ञानकी ज्ञानकोसमा ॥३॥
तयोः पुत्रास्त्रयो जाताः सौहार्दार्णवसन्निभाः । [1]आलम्बेन्दुरभूदाद्यो लघोरेलालनामकः ॥४॥
मध्यमः सूनुरत्यक्ष पन्नालालाभिधो बुधः । तातं दिवङ्गते माता सूनूनादाय सागरम् ॥५॥
समागता स्वनामेर्हि साहाय्यं समवाप्य सा । आलम्बेन्दुस्ततो यातः स्वस्रपाश्वं स्वमन्दिरम् ॥६॥
माता विपत्तिमायाता सार्धं पुत्रद्वयेन सा । वर्णिना पूज्यपादेन पन्नालालः प्रवेशितः ॥७॥
सागरस्थं महाविद्यालयं प्रज्ञाविभूषितः । माता द्वितीयपुत्रेण गृहभारं बभार सा ॥८॥
विद्यालये पठन् पन्नालालो विनयभूषितः । अचिरेणैव कालेन विद्वानासीद् गुरुप्रियः ॥९॥
लोकनाथस्ततश्चेदीलालः पण्डितमण्डनः । कपिलेश्वरो मुकुन्दश्च बाबूरामः कुशाग्रधीः ॥१०॥
एषां पादप्रसादेन शास्त्रविद्यामहोदधिः । काव्यविद्यामहासिन्धुस्तेनोत्तीर्णः सुखेन हि ॥११॥
सम्यक्त्वालङ्कृतस्वान्तो दयापीयूषसागरः । दयाचन्द्रो महाप्राज्ञो धर्मन्यायमहाबुधः ॥१२॥
धर्मन्यायगुरुस्तस्य बभूवाह्लाददायकः । धर्मे न्याये च साहित्ये 'शास्त्री' पदविभूषितः ॥१३॥
साहित्याचार्यपदवीं लब्धवानचिरं ततः । विद्यालये स्वकीये च वर्णिना सूक्ष्मदर्शिना ॥१४॥
कारितोऽध्यापकस्तस्मिन्नध्यापनपटुः प्रियः । मुखं बिभर्ति भारं स्व-मध्यमेन सनाभिनः ॥१५॥
एतस्मिन्नन्तरे क्रूर-कृतान्तेन स्वमालयम् । आनीतो मध्यमस्तस्य सनाभिः सहजप्रियः ॥१६॥
तेन दुःखासिभारेण स्वान्ते कष्टंभरश्चसौ । चिन्तयन् कर्मवैचित्र्यं चकाराश्रुकृतिं तथा ॥१७॥
ग्रन्थाः सुरचितास्तेन रचनापटुबुद्धिना । केचित् सम्पादिताः केचिदनुवादेन भूषिताः ॥१८॥
सूरिणा रविषेणेन रचितं सुरभाव्या । चरितं पद्मनाभस्य लोकत्रयमणीयते ॥१९॥
माहात्म्यं तस्य किं ब्रूमः स्वरूप्याधीयतां स्वयम् । अभ्येतुर्हृदयं शीघ्रं महानन्देन पूर्यते ॥२०॥
सम्यक्त्वं जायते नूनं तस्याभ्यासपटोः सदा । टीका विरचिता तस्य पन्नालालेन तेन हि ॥२१॥
टीकानिर्माणवेलायामालम्बोऽकस्मि तेन यः । कथ्यते स कथा वाचा हृदयालयमध्यगः ॥२२॥
आषाढासितसप्तम्यां रविवारदिने तथा । यामिन्याः पश्चिमे यामे टीका पूर्णा बभूव सा ॥२३॥
भूतवसुभूवसुयुग(२४८४)-वर्षे वीराब्दसंज्ञिते पूर्णा । टीका बुधजनचेतः कुमुदकलापप्रहर्षिणी सेयम् ॥२४॥
पुराणाब्धिरगम्योऽयमर्थबोधिविभूषितः । सर्वथा शरणंमन्ये रविषेणं महाकविम् ॥२५॥
जिनागमस्य मिथ्यार्थो मामूम्मे करयुग्मतः । इति चिन्ताभरं चित्ते संवहामि निरन्तरम् ॥२६॥
तथाप्येतद् विजानामि गम्भीरः शास्त्रसागरः । क्षुद्रोऽहमल्पविज्ञानो गृहभारकदर्थितः ॥२७॥
पदे पदे त्रुटिं कुर्यां ततो हे बुधबान्धवाः । क्षमध्वं मां, न मे चित्तं जिनवाक्यविदूषकम् ॥२८॥

ग्रन्थोऽयं समाप्तः ।

---

१. आलमचन्द्रः ।